Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिवर्तित–परिवर्धित–श्रीकृष्णपूजन–भागवतहवनविधान–प्रत्यध्यायसार–टिप्पणी–प्रतिस्कन्धश्रवणमाहात्म्य–नानामाहात्म्य–दृष्टान्त आदि सहित—

अथ

माहात्म्य सहित द्वादशस्कन्ध पर्यन्त–

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

(सरस्वती भाषाटीका दृष्टान्त और प्रकाश टिप्पणीसे समन्वित)

टीकाकार–महामहोपाध्याय श्रीपण्डित प्रभुदत्तशास्त्रिपौत्र महामहोपाध्यायश्रीपण्डित विद्याधरशास्त्रिपुत्र—याज्ञिक सम्राट्—
उत्तरप्रदेशीय–सरकारद्वारा सम्मानित विद्वान् आचार्य श्रीदौलतरामगौड वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न।

प्रकाशक–बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त बुकसेलर, राजादरवाजा, नाथ–कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

मूल्य
३७)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यद्गाथाश्रवणेन पाण्डवकुलोद्भूतः परीक्षिन्नृपो लेभे दिव्यगतिं तथैव विदुरोऽसौ धुन्धकारी द्विजः ।
स्थाविर्यञ्च निरस्य भक्तितनयौ प्राप्तौ पुनर्यौवनं श्रीमद्भागवतं ददातु सततं सर्वाश्च ते सम्पदः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

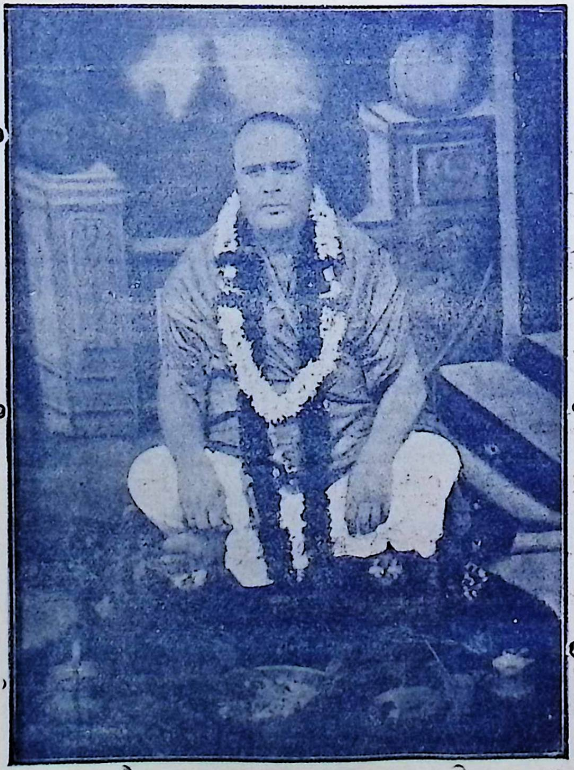

महामहोपाध्याय पं० विद्याधरगौड

अब जिनकी पुनीत स्मृति अवशिष्ट रह गयी है उन पूज्य पितृदेवके पावनतम कर-कमलों में ... ...

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भागवत के हवन का प्रकार—

गृहस्थश्चेत् यदा होता कर्तव्यः कर्मशान्तये । प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥
पायसं तिलसर्पिश्च, तिलान्नादिकसंयुतम् । अथवा हवनं कुर्यात् गायत्र्या सुसमाहितः ॥
ब्रह्मस्तुतिं समुच्चार्य पूर्वार्धहवनं चरेत् । वेदस्तुतिं पठित्वादावुत्तरार्धाहुतिं चरेत् ॥
प्रत्यध्यायं समाप्तौ च मन्त्राष्टकमुदीरयेत् । विष्णुर्नारायणो ब्रह्मा श्रीशिवो वासुदेव च ॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सङ्कर्षणमथाष्टकम् ॥

हवनारंभके समय दसम स्कध पूर्वार्ध अध्याय छठे श्लोक २२ से २६ तक का पाठ मात्र कर—उनकी जगह क्रमसे

ॐ विष्णवे स्वाहा । ॐ नारायणाय स्वाहा । ॐ ब्रह्मणे स्वाहा । ॐ शिवाय स्वाहा ।
ॐ वासुदेवाय स्वाहा । ॐ प्रद्युम्नाय स्वाहा । ॐ अनिरुद्धाय स्वाहा ।
ॐ संकर्षणाय स्वाहा ।

इन मन्त्रों से हवन करने का विधान मिलता है ।

—दौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रथमस्कन्धसे--द्वादशस्कन्ध-

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

[विषयसूची]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय-सरकार द्वारा संम्मानित विद्वान् आचार्य श्रीदौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय — पृष्ठ

❋ अथ माहात्म्य ❋

१ शौनकजीके पूछनेपर श्रीसूतजी द्वारा श्रीनारदजी को सप्ताह सुननेकी इच्छा क्यों हुई—आदि बतलाना १

२ श्रीनारदजीके बहुत उपयों द्वारा भी कुछ न होनेसे बदरीकाश्रम में तपस्या करनेके समय सनकादिकोंको देखना आदि वर्णन ४

३ सनकादिकोंकी आज्ञासे हरिद्वार के आनन्दतट पर सप्ताह यज्ञ का विधान बतलाना आदि वर्णन ८

४ कथाकी पूर्वरेखाका वर्णन तथा विचरते हुए आत्मदेवको संन्यासी द्वारा पुत्र प्राप्त होनेका उपाय बतलाना अदि वर्णन ११

५ पिताके स्वर्गवास हो जाने पर माताको कष्ट देना, गोकर्ण की–तीर्थ यात्रा करना, वेश्याओंके पञ्जेमें आनेपर प्रेतत्व योनि प्राप्त करना—आदि वर्णन १५

६ कथाके सुननेके लिए मुहूर्त पूछना, पत्र द्वारा सबको सूचित करना, मण्डपादिका निर्माण करना, पुत्र प्राप्त्यर्थ श्रवण करना, आदि वर्णन १९

७ शास्त्रीयमत द्वारा स्मार्तयज्ञ भी दो पक्षमें समाप्त हो सकते हैं २४

८ स्तम्भवष्टन विचार ,,

९ स्मार्तयज्ञोंमें अवभृथस्थान अत्यावश्यक ,,

१० आचार्यके चाञ्चल्यतापर उसका प्रतिनिधि हो सकता है २५

११ विधवाकर्तृकनान्दीश्राद्धविचार ,,

१२ स्विष्टकृद्धोमविचार ,,

१३ शान्तिकपौष्टिककर्ममें नान्दीश्राद्धविचार २६

१४ महारुद्रादिमें मधुपर्कविचार ,,

१५ प्रतिष्ठादिमें अग्निस्थापनविचार ,,

१६ अग्निचक्रविचार ,,

१७ आभ्युदयिकश्राद्धमें ब्राह्मणोपवेशनविचार ,,

१८ मलमासमें पिताके आद्यश्राद्धमें वृषोत्सर्ग विचार २७

१९ जीवच्छ्राद्धानन्तर नित्यनैमित्तिक कर्ममें अधिकार विचार ,,

२० पिताके क्षयाहमें श्राद्धपर विचार ,,

२१ नारायणवलिपर विचार २८

२२ सांकल्प ,,

२३ कुष्ठीकी उत्तरक्रियापर विचार ५

२४ प्रतिष्ठाके अधिकारी ,,

२५ मासकादिश्राद्ध पर विचार २९

२६ बदरीक्षेत्र आदि में श्राद्ध करनेपर भी गयाश्राद्ध करना इसपर विचार ,,

२७ गयातीर्थमें होनेवाले सांकल्पोंका संकलन ६

२८ श्राद्धादि दिनमें क्षौरकर्म विचार ३१

२९ आधुनिकाचार्य स्वरचित या पररचित ऐसे अनेक प्रकारान्तर लोकोंसे अपठ यजमान या उनकी स्त्रियोंसे स्वकार्य साधनकर उदर पूर्ति कर सकता है ,,

३० यजतिजुहोतीनां को भेदः ३३

३१ भागवत सप्ताह पारायणारंभ पूजन ३४

प्रथमस्कन्ध

१ भागवतश्रवणविधान १

२ काशीका संकल्प ,,

३ मुनियोंका हवन आदि क्रियाओं से निवृत्त श्रीसूतजी से भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र और धर्म किसकी शरणमें गया आदि छः प्रश्न करना २

४ शौनक आदि ब्राह्मणोंके छः प्रश्नोंमेंसे रोमहर्षण पुत्र श्रीसूतजीके द्वारा चार प्रश्नोंका उत्तर सुनना ३

५ बचे हुए पञ्चम और षष्ठ प्रश्नका उत्तर सुनना ५

६ जब तपस्या और प्रवचन आदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
से श्री वेदव्यासजी को सन्तोष होसका तब उन्होंने इस भागवत पुराण का प्रारम्भ किया यह वर्णन	७
७ कलियुगमें सबधर्मोंसे श्रेष्ठ श्रीहरि का कीर्तन ही है यह नारदजी का महर्षि व्यासजीको उपदेश	६
८ व्यासजीकी प्रतीतिकेलिए पूर्व-जन्ममें किए गए हरिकीर्तनसे नारदजीका अपना भाग्योदय वर्णन	१३
९ भागवतश्रोता राजा परीक्षित्‌का जन्मवर्णन करनेके पहले सोए हुए द्रौपदीके बच्चोंका वध करने से अश्वत्थामाको क्या दण्ड मिला	१४
१० क्रुद्ध अश्वत्थामाके अस्त्रसे भग-वान् श्रीकृष्णद्वारा पूर्व उत्तराके गर्भकी रक्षा, कुन्तीकी स्तुति और राजा युधिष्ठिरके शोकका वर्णन	१७

विषय	पृष्ठ
११ युधिष्ठिरकेलिए भीष्मद्वारा सब धर्मोंका निरूपण, कृष्णकी स्तुति और मुक्तिका वर्णन	२१
१२ कृतकार्य हुए भगवान्‌के हस्तिना पुरसे द्वारकागमन तथ हस्ति नापुरकी स्त्रियोंद्वारा कीगई भगवान्‌की स्तुतिका वर्णन	२४
१३ अपने बन्धुओंद्वारा स्तुत होरहे भगवान् कृष्णके द्वारकापुरीमें प्रवेश तथा प्रेमका वर्णन	२६
१४ राजा परीक्षित्‌का जन्म वर्णन	२८
१५ विदुरजीको समझाने बुझानेपर धृतराष्ट्रका घरसे चुपचाप निकल भागना तथा नारदजीके द्वारा राजा युधिष्ठिरको ज्ञानोपदेश	३०
१६ नानाविध अरिष्टोंको देखकर राजाको शंकित होना तथा भग वान् श्रीकृष्णके तिरोधानका अनुमान करना	३४
१७ कलिका प्रवेश जानकर विपुल	

विषय	पृष्ठ
राज्यभारको परीक्षित्‌के ऊपर छोड़कर राजा युधिष्ठिर स्वर्गको चले गये—यह वर्णन	३६
१८ परीक्षित्‌का दिग्वजय एवं पृथ्वी धर्म संवाद	४०
१९ राजा परीक्षित्‌का सरस्वती तट पर कलियुगको यथोचित् शिक्षा देकर उसको आश्रय देना	४२
२० राजा परीक्षित्‌को शृङ्गीऋषिका शाप	४४
२१ कुकृत्यपर पश्चात्ताप करनेवाले अनशनधारी परीक्षित्‌के पास अवधूतवेषमें शुकदेवजीका अचानक आना	४७
२२ प्रथमस्कन्ध श्रवण महात्म्य	५०
२३ भगवान्‌की लीलाका रूप	,,
२४ श्रीभगवान् कृष्णजीके धात्रियों के नाम	,,
द्वितीयस्कन्ध—	
१ आठहजार श्लोकोंके श्रवणसे	

विषय	पृष्ठ
कृष्णलोक प्राप्त	१
२ भागवतके स्वरूको पहचानिए	,,
३ सम्प्रदायानुसार पुराणके आरंभ में शोचनीय बात	,,
४ मूर्तिके सान्निध्यमें यन्त्रनिर्माण अनावश्यक	,,
५ भगवतप्रेमी भी अतिसंकटमें अतिरुद्रयागादि द्वारा शिवको प्रसन्नकर सहायता ले सकता है	,,
६ देवताकेपूजनारंभमें विचारणीय बातें	,,
७ विष्णुभक्त अनेक महोत्सवोंपर विष्णुयाग कर सकते हैं	,,
८ कामनापर कुण्डोंका निर्माणप्रकार	,,
९ कुण्डोंके अठारह संस्कार	,,
१० कुण्डोंके शरीरका स्वरूप	,,
११ कामनापरक स्रुवादि निर्माणप्रकार	,,
१२ लिखितपद्मपुराणोक्तमाहात्म्यम्	२
१३ भगवान्‌ने स्वर्णकीस्त्रीका दान करना	६
१४ भगवद्ध्यानकी रीति और भग	

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

	विषय	पृष्ठ
	वान्‌के विराटस्वरूपका वर्णन	७
१५	सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिका वर्णन	६
१६	तत् तत् कामनाओंसे तत् तत् देवताओंकी उपासना तथा उनमें भगवद्भक्तिकी प्रधानता	१२
१७	सृष्टिके विषयमें राजा परीचित्‌का प्रश्न	१४
१८	भगवान्‌का ब्रह्माद्वारा भ्रममें पड़े नारदजीको तत्त्वज्ञानोपदेश	१६
१९	उस विराट् भगवान्‌की विभूतियों का सहस्रशीर्षा इत्यादि श्रुति प्रमाणप्रदर्शनपूर्वक वर्णन	१९
२०	भगवान्‌के लीलावतारोंका कर्म और प्रयोजनके साथ साथ ब्राह्मद्वारा वर्णन	२१
२१	जीव और ईश्वरविषयक राजा परीचित्‌के अनेक प्रश्न	२६
२२	भगवान् विष्णुद्वारा ब्रह्मासे कहे गये श्रीमद्भागवतका पुनः वर्णन	२८
२३	भगवान्‌की व्याख्या द्वारा ही राजा परीचित्‌के प्रश्नोंका स्पष्ट उत्तर	३१
२४	गोपालोंके नाम श्रीकृष्णकारूप और कृष्णकी स्त्रियोंके नामादि का कथन	३४
२५	देवस्थापनाका नियम, प्रतिमा ग्रहणमें नियम और कामनापरक स्रुवका निर्माणप्रकार	,,
२६	षडङ्गन्यासका नियम, आचार्यकी आज्ञा आवश्यक, होमार्थ अग्निके नाशका फल—मन्थनाग्निके नाशसे पुनः मन्थन और अष्टाक्षरादि जपका फल	,,
२७	स्वप्नमें-किसी वस्तुको देखनेका फल	
२८	अपनीपत्नियों और यादवों के गृहोंकी संख्या	२८

तृतीय स्कन्ध——

	विषय	पृष्ठ
१	सामग्रीके विना भी यज्ञ करनेका फल	१
२	पात्रोंका निर्माणप्रकार	,,
३	विदुरकी तीर्थयात्रा और उद्धवसे भेंट	६
४	उद्धवके द्वारा श्रीकृष्णका वर्णन	९
५	श्रीकृष्णका चरित्र तथा यादवों को शाप	१०
६	यादवोंका संहार श्रीकृष्णका स्वधाम गमन और विदुरको सन्देश	१३
७	विदुरका मैत्रेयसे प्रश्न और उनका सृष्टिक्रम वर्णन	१५
८	विराजकी उत्पत्ति और उसके आगेकी सृष्टि	१८
९	मायाका निरूपण और विदुरका सृष्टिविस्तारके विषयमें प्रश्न	२०
१०	सृष्टिक्रम और नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति	२२
११	ब्रह्मदेवकृत भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का आशीर्वाद	२४
१२	नवसर्गोंका प्रकार वर्णन	२६
१३	कालका निरूपण	२९
१४	ब्रह्मदेवके शरीर और मनसे सृष्टि	३१
१५	वाराहावतारसे पृथ्वीका उद्धार	३४
१६	दितिका गर्भधारण	३६
१७	कुमारोंका जय-विजयोंको शाप	३९
१८	सनकादि मुनियोंका जय और विजयको शाप	४२
१९	हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षकी उत्पत्ति तथा हिर हिरण्याक्षकी दिग्विजय	४५
२०	भगवान् वराह और हिरण्याक्ष-का युद्ध	४७
२१	हिरण्याक्षका वध	४८
२२	ब्रह्माके शरीरसे देवतादिकों की सृष्टि	५०
२३	कर्दमको भगवान्‌का वर और स्वायंभुवमनुसे उनकी भेट	५३
२४	देवहूतिसे कर्दमऋषिका विवाह	५६
२५	कर्दम और देवहूतिका विहार तथा देवहूतिकी अन्तिम प्रार्थना	५८
२६	कपिलका आविर्भाव और	

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय — पृष्ठ

कर्दमका प्रस्थान ६१
२७ देवहूतिका प्रश्न और कपिलका भक्तिलक्षण कहना ६३
२८ महदादितत्त्वोंकी उत्पत्ति तथा लक्षण एवं विराट की उत्पत्ति ६६
२९ योगके अनुष्ठानका वर्णन ६९
३० भगवानका ध्यान ७१
३१ भक्तिके साधन, ब्रह्मदर्शनकी महत्ता तथा कालका स्वरूप ७४
३२ संसारी जीवके इस लोकमें प्राप्त होने वाली यातनाओंका वर्णन ७६
३३ जीवके गर्भवासका वर्णन ७८
३४ कपिलका प्रयाण और देवहूतिका योगसाधनसे मोक्ष ८२
३५ कर्ममार्गियोंकी गति तथा ब्रह्म तत्वज्ञानका उपसंहार ८०
३६ श्रीधरजीके विषयमें एक कथा ८४
३७ अष्टादश पुराणान्तर्गत श्रीमद्-भागवत वोपदेव कृत नहीं है „
३८ वन-प्रतिवनोंके नाम „

विषय — पृष्ठ

३९ प्रायश्चित्तों का संकलन ८५

चतुर्थ स्कन्ध—

१ भागवतके पठनका नियम १
२ भागवतशास्त्रके सान्निध्यमें कृष्ण का अनमोल निवास १
३ कलियुगमें भागवतपुराणकी कथा अत्यावश्यक „
४ भागवतकी निन्दासे यमदूतोंका ताड़न „
५ वैसाखमासमें भागवतश्रवणसे ब्रह्मतत्वकी प्राप्ति „
६ सब पुराणोंमें भागवतका ही श्रेष्ठत्व कथन „
७ शरीरके अनेकावस्थामें पुराण श्रवणसे स्वप्नोरथ सिद्धिलाभ „
८ पुस्तकादिप्रतिग्रहप्रायश्चित्तम् „
९ श्रीशुकोक्तभागवतके पाठसे भगवान्‌को वशीकरण करना २
१० भगवान् श्रीकृष्ण के आठ पटरानियों के उदरसे उत्पन्न हुए पुत्रोंके नाम „

विषय — पृष्ठ

११ मनुकी कन्याओंके वंशका वर्णन „
१२ प्रजापतियोंके यज्ञमें शंकर तथा दक्षके विद्वेषमें हेतु ४
१३ पिताके यज्ञमें जानेकी इच्छाकर रही सतीको नीति और युक्तियों से शंकरजीका मना करना ६
१४ शंकरको छोड़कर सतीका पिताके घर जाना तथा अपमानित होकर शरीर छोड़ देना ९
१५ सतीका नाश सुनकर शंकरका वीरभद्रको उत्पन्न करना तथा उसके द्वारा दक्षका मारा जाना ११
१६ देवताओंके साथ ब्रह्माजीका शंकरके समीप जाना और दक्षको जीवित करनेके लिए प्रार्थना करना १३
१७ दक्षके यज्ञका पुनः प्रवर्तित होना तथा वहाँपर प्रकटहुए भगवान् की स्तुति करना १५
१८ ध्रुवका वनगमन तथा तपस्यासे भगवान्‌को प्रसन्न करना १९

विषय — पृष्ठ

१९ ध्रुवका भगवान्‌से वर प्राप्तकर नगरको लौटना तथा पिताद्वारा मिले हुए राज्यको भोगना २३
२० ध्रुवका अलकापुरी जाकर यक्षोंका वध करना २७
२१ यक्षोंका वधकारनेवाले ध्रुवको मनुका उपदेश देकर रोकना २८
२२ भगवान्‌का भजन करके ध्रुवका परमपदको जाना ३०
२३ राजा अङ्गका पुत्रकी दुष्टताके कारण घरसे निकल जाना ३०
२४ कुपुत्रके भयसे राजा अंगके चले जानेपर राजा वेनका क्रोधित होकर ब्राह्मणोंने वध किया ३५
२५ ब्राह्मणोंद्वारा वेनके मथित हुए बाहुसे उत्पन्न पृथुका अभिषेक वर्णन ३७
२६ समस्त देवताओंसे सम्मानित तथा पत्नीसे युक्त पृथुकी सूतादि-कने स्तुति की ३९

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
२७ मनुष्योंकी क्षुधाशान्तिके निमित्त बीजोंको छिपारखनेवाली पृथ्वीको मारनेके लिए राजा पृथुका उद्यत होना तथा भयभीत होकर पृथ्वीका उनकी स्तुति करना	४०
२८ पृथ्वीके वचनसे पृथु दिने अपने अपने वत्स तथ अपने अपने पात्रमें उससे अपना-अपना दूध दुहा	४२
२९ अश्वमेधयज्ञके अंगभूत घोड़ेका अपहरण करनेसे इन्द्रको मारनेके लिए उद्यत पृथुको ब्रह्माने रोक दिया	४४
३० पृथुके यज्ञमें भगवान्‌का अनुशासन तथा वरदान देना	४६
३१ महायज्ञमें राजा पृथुका प्रजाओंको उपदेश देना	५४
३२ राजा पृथुको सनत्कुमारका ज्ञानोपदेश	६१
३३ स्त्रीके सहित राजा पृथुका वैकुण्ड जाना	५४
३४ प्राचीनबर्हिसे प्रचेताओंकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा रुद्रजीत का वर्णन	५६
३५ नारदका प्राचीनबर्हिको पुरञ्जय की कथा सुनाना	६०
३६ पुरञ्जनका शिकार खेलना	६३
३७ स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त होनेसे पुरञ्जनकी वृद्धावस्था तथा रोगादिका वर्णन	५४
३८ स्त्रीकी चिन्तासे पुरञ्जनका स्त्री होना तथा दैववशात् मुक्ति प्राप्त करना	६६
३९ उक्त कथाका परोक्षार्थ व्याख्यान करना	६९
४० प्रसन्न हुए भगवान्‌से वर लेकर आये हुए प्रचेताओंका वृक्षोंकी कन्याओंके साथ विवाह तथा राज्य करना	७३
४१ दक्षको राज्य देकर प्रचेताओंका वनमें जाना तथा मुक्तिको प्राप्त करना	७६
४२ दानसे कृष्णरूपमे पुनः प्राप्त	"
४३ मतमतान्तरोंसे श्रीभगवान् कृष्ण जीकी जन्मपत्रियाँ	७७
४४ दानसे कृष्णरूपमें पुनः प्राप्त	"
४५ भगवान्‌ने कृष्णावतार में उन कामातुर स्त्रियोंकी इच्छाओंकी पूर्ति करना स्वीकार किया	"
४५ चतुर्थस्कन्धमाहात्म्य	७८
४६ यन्त्रनाश-प्रायश्चित्तम्	"
४७ पूजाकाले यन्त्रादिपतनप्रायश्चित्तम्	"
४८ मालानाशप्रायश्चित्तम्	"
पञ्चम स्कन्ध—	
१ प्रसंगवश रामायण सुन्दरकाण्डके पारायणका विधान	१
२ ब्रह्माकी आज्ञासे प्रियव्रतका पालन करना	४
३ आग्नीध्रका चरित्र	७
४ नाभिके यज्ञसे प्रसन्न होकर ऋषभरूपसे भगवान्‌का अवतार	९
५ ऋषभका राज्यपालन	११
६ ऋषभका उपदेश	१२
७ ऋषभ भगवान्‌का अवधूतआचरण	१४
८ भरतका चरित्र	१७
९ अन्तमें भरतकी मृगमें आसक्ति और मृगजन्म	१८
१० भरतका ब्राह्मणजन्म और जडवत् वृत्ति	२१
११ आंगिरसपुत्रकी रहूगणराजासे भेट	२३
१२ रहुगणके उपदेश	२५
१३ रहुगणके प्रश्नका समाधान	२७
१४ संसाररूपी अरण्यका वर्णन	२८
१५ अरण्यरूपकका स्पष्टीकरण	३०
१६ भरतके वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंका वर्णन	३३
१७ भूगोलमें इलावृतखण्डका वर्णन	३४
१८ जम्बूद्वीपकी नदियों तथा इलावृतवर्षका वर्णन	३६
१९ जम्बूद्वीपके भद्राश्वादिवर्षोंकावर्णन	३९

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
२० किंपुरुषादिवर्षोंका वर्णन	४२
२१ प्लक्षादि छः द्वीपोंका वर्णन	४४
२२ सूर्यका वर्णन	४७
२३ ग्रहनक्षत्रोंका वर्णन	४६
२४ शिशुमार भगवान्का वर्णन	५०
२५ पातालका वर्णन	५१
२६ शेषका वर्णन	५४
२७ नरकोंका वर्णन	५६
२८ पञ्चमस्कन्धका माहात्म्य	५६
२६ पुराणके फलका स्वरूप	,,
३० पुराणकी निन्दाका फल	,,
३१ पुराणपीठस्थितव्याससे कलह का फल	,,
३२ पुराणश्रवणसे उत्तमलोक की प्राप्ति	,,
३३ कलियुगमें पुराणश्रवणका विशिष्ट कथन	,,
३४ पुराणश्रवणसे विष्णुलोक गमन	,,
३५ पुराणश्रवणानन्तर सपत्नीकव्यास को अमूल्यरत्नवस्त्रादिदानसे पुण्य फल चहाना	५६
३६ व्यासकी प्रदक्षिणासे पृथ्वी प्रदक्षिणाका फल	,,
३७ भागवतके श्रवणसे उत्तमोत्तम फल	,,
३८ भागवतद्विजोंके सम्मुख न जानेपर भगवान्का विशेष प्रकोप	६०
३६ कार्तिकमासमें पुराणश्रवणसे फल कथन	,,
४० भगवान् विष्णुद्वारा भागवतका विशिष्टतम रूप	,,
४१ सप्ताहपारायणका क्रम	,,

षष्ठस्कन्ध—

विषय	पृष्ठ
१ टीकाकारोंमें श्रीधरस्वामीका महत्व	१
२ विभिन्नकामनाओंसे भिन्न भिन्न दिनोंमें परायण विधि	३
३ परायणके और भेद	५
४ श्रीमद्भागवत महापुराणका अनुष्ठान प्रकार	५
५ बारहस्कन्धोंमें भगवान्के शरीरका समन्वय	८
६ दोपक्षके अनुष्ठान न करनेका स्वरूप	,,
७ श्रीमद्भागवतसप्ताहपारायण	,,
८ स्कन्धानुसारेण कस्मिन्दिने कियदवधिपाठविराम	,,
६ सप्ताहपारायणविधान	,,
१० भागवत-अध्यायके पाठका नियम	,,
११ कौशिकसंहितोक्तपारायणविधान	,,
१२ दासीपति अजामिल ब्राह्मणके चरित्रका वर्णन	,,
१३ भगवान् विष्णुके दूतों द्वारा उनके गुणोंका निरूपण तथा अजामिल की विष्णुस्वरूपप्राप्ति वर्णन	११
१४ यमराज और उनके दूतोंकी परस्पर बात चीत वर्णन	१४
१५ हंसगुह्य स्तोत्रका वर्णन	१६
१६ हर्यश्व और शबलाश्व नामवाले दक्षपुत्रोंकी विरक्ति और दक्षका नारदको शाप देना	१६
१७ प्रजापति दक्षसे जायमानसन्तान संख्या और उनके कुलका विस्तारवर्णन	२१
१८ देवताओं द्वारा बृहस्पतिका तिरस्कार करनेसे ऐश्वर्यहीन होना तथा विश्वरूपको पुरोहित चुनना आदि वर्णन	२३
१६ नारायणकवच विषयकवर्णन	२५
२० वृत्रासुरके जन्मकी कथा	२७
२१ वीतराग महातपस्वी दधीचि ऋषिके पास देवताओंका जाकर उनकी अस्थियाँ माँगनेकी प्रार्थना करना, ऋषीके स्वीकार करनेपर उस वज्रद्वारा वृत्रासुर के साथ युद्ध करना	३१
२२ देवविरोधी वृत्रासुरका संग्राममें देवताओं द्वारा अपनी छिन्न भिन्न की गई दैत्यसेनाओंको वीरोचित उपदेश	३२
२३ दैत्यपति वृत्रासुरका स्वर्गाधिपति	

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

विषय — पृष्ठ

इन्द्रद्वारा हनन ३४
२४ वृत्रासुरका वध करनेसे मूर्तिरूपी ब्रह्महत्याका इन्द्रको सताना ३६
२५ वृत्रासुरके पहले जन्मका इतिहास वर्णन ३८
२६ पुत्रशोकसे सन्तप्त राजा तथा राजमण्डलको अंगिरा ऋषि और देवर्षि नारदका उपदेश ४१
२७ संसारको मिथ्या समझने वाले राजा चित्रकेतुको देवर्षि नारदके कथनानुसार भगवान्‌के दर्शनसे कार्य सिद्धि वर्णन
२८ भगवान् द्वारा प्राप्तविमानमें स्थिर हुए चित्रकेतुको पार्वती का शाप देना ४५
२९ दिति अदिति वंशकथा और मरुत् नामक लड़कोंका वर्णन ४८
३० असन्तति वालोंके लिए पुंसवन नामक व्रत विषयक वर्णन ५१
३१ श्रवणमाहात्म्य ५३
३२ अष्टादशपुराण पारायण विधान ५३
३३ पारायण-विधान ,,
३४ कौशिकसंहितोक्त श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

सप्तमस्कन्ध—

१ कर्मकाण्डोपयोगी कुछ बातें २
२ श्रीदेवर्षि नारद और सत्यवादी युधिष्ठिरजी की बातचीत वर्णन ४
३ आपत्तिकालमें स्वबान्धवों को हिरण्यकशिपु दैत्यका वीरोचित उपदेश ७
४ दैत्यराज हिरण्यकश्यपके तपसे सन्तप्त देवताओंके आग्रहमात्रसे ब्रह्माजीका किसीसे न मरनेका उसको वर देना १०
५ वरप्राप्त उस दैत्यपतिने नाना, विध ऐश्वर्य सम्पन्न हो स्वयं ही मदोन्मत्त होनेसे देवोंको कष्ट पहुँचानेसे उनके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति आदि आकाशवाणी यह वर्णन १२
६ असुरराज हिरण्यकशिपु पुत्र प्रह्लादसे क्रोधित हो अपने सेवकोंसे उसके वधका उपदेश १५
७ भगवान्‌में विश्वास रखनेवाले प्रह्लादका दैत्यबालकोंको सनातनधर्मानुकूल उपदेश १८
८ अपनी माता कयाधुके गर्भमें स्थित प्रह्लादको देवर्षि नारदजी का सदुपदेश स्वतः प्राप्त होना २०
९ नृसिंहरूपधारीका असुरराज हिरण्यकशिपुका हनन करना और देवोंकी स्तुति ३२
१० अनेकदेवताओंको भयोत्पन्न होनेसे प्रह्लादने नृसिंहरूपधारी भगवान्‌की स्तुतिकर प्रसन्न किया और उनका उसको वरदेनेको उद्यत होना २७
११ नृसिंह भगवान्‌का इसे मन चाहा वरदेना, सांसारिककार्यों में संलग्न रहना, अन्तर्ध्यान होते, समय ब्रह्माको भी यथोचित शिक्षा आदि वर्णन ३२
१२ ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र इनके कर्मका प्रतिपादन और पतिव्रता स्त्रियोंके धर्मका वर्णन ३४
१३ गुरुकुलवासी ब्रह्मचारीका कर्तव्य और वानप्रस्थाश्रमीके नित्य-कर्मका प्रकार ३८
१४ वानप्रस्थधर्मनिरूपण प्रह्लाद तथा सह्यपर्वतपर स्थित मुनिसे बात चीत—
१५ गृहस्थाश्रमीपुरुषोंके लिए गृहस्थाश्रमकर्मोंका निरूपण ४२
१६ प्राणियोंको भगवान्‌से प्रेमभक्ति बढ़ानेके लिए नारदजीके इतिकर्तव्यताकास्मरण रखना चाहिये ४४
१७ सप्तमस्कन्धश्रवणविधान ४८
१८ भागवतका स्वरूप
१९ भागवतदानका पुरातनस्वरूप ,,

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
२० श्राद्ध पर विचार	,,
२१ श्राद्धमें ग्राह्यहवि	५४
२२ अग्राह्य पेय	५५
२३ त्याज्य हवि	५६
२४ त्याज्य जल	५६
२५ ग्राह्यपात्र और पुष्प	,,
२६ वर्ज्य पुष्प	,,
२७ संकलन श्राद्धपर	५७

अष्टमस्कन्ध—

विषय	पृष्ठ
१ प्रत्येक मन्वन्तरके व्यासों का नाम	२
२ पुराणकी कुछ झलक	२
३ पुरोहितलक्षण	,,
४ शाकल्यका प्रमाण	,,
५ भागवतसे रोगादिकी निवृत्ति	,,
६ अष्टादश पुराणोंका दान	,,
७ पुस्तकोंका दान प्रकार	,,
८ स्वायम्भुव आदि चार मनुओंका ऋषि आदिके साथ-साथ वर्णन	,,
९ हथिनियोंके साथ जलमें क्रीडा करते समय ग्राह द्वारा पकड़लिये गये गजेन्द्रकी अचानक उत्पन्न हो गई भगवान्‌की स्तुतिका वर्णन	४
१० गजेन्द्र द्वारा स्तुत श्रीहरिने शीघ्र आकर ग्राहसे उसे छुड़ाया	५
११ गज और ग्राह इन दोनोंमें ग्राह भगवान्‌के स्पर्शसे फिर गन्धर्व होकर अपने लोकको चला गया, लेकिन गजराजको अपना पार्षद बनाकर भगवान् अपने साथ ले गये	७
१२ पञ्चम षष्ठ मनुके वर्णनके बाद दुर्वासा ऋषिके शापसे श्री विहीन हुए देवताओं द्वारा भगवान्‌की स्तुति	९
१३ देवताओं द्वारा भगवान्‌की स्तुति तथा भगवान्‌के आदेशसे असुरोंके साथ अमृतके लिए देवताओंका महान् उद्योग	११
१४ समुद्रमन्थनसे उत्पन्न विषके भयसे व्याकुल मनुष्यों द्वारा स्तुत भगवान् शंकरका विषपान	१४
१५ समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मीके भगवान्‌को अपना वर चुनलेनेके बाद धन्वन्तरिके अमृतकलशका दैत्यों द्वारा अपहरण होजानेपर मोहिनीरूपकी उत्पत्ति	१६
१६ मोहिनीरूपसे मोहित दैत्योंके द्वारा अमृतकलशके समर्पित करदिये जानेपर उन्हें अपने रूपमें फँसाकर मोहिनीरूपधारी भगवान्‌के द्वारा देवताओंको अमृत प्रदान	१९
१७ देवताओंके साथ दैत्योंकी मायासे देवताओंके विषादको प्राप्त होजानेपर भगवान् श्रीहरिका आविर्भाव	२०
१८ देहासुरसंग्राममें बचे हुए देवताओं तथा दैत्योंको नारदका आदेश एवं मरे हुए दैत्योंको शुक्रद्वारा जीवन	२३
१९ मोहिनीरूपदेखनेके लिए उत्सुक शंकरजीको मोहित करनेकेबाद भगवान्‌की शान्त्वना	२५
२० सप्तम मन्वन्तरसे लेकर सम्पूर्ण मन्वन्तरोंका पृथक्-पृथक् वर्णन	२८
२१ भगवान् श्रीविष्णुके वशवर्ति संपूर्ण मनु आदिके पृथक्-पृथक् कर्मोंका वर्णन	३०
२२ भृगुवंशी ब्राह्मणोंद्वारा विश्वजित् यज्ञकरानेके अनन्तर बलिका स्वर्ग पर विजय	३१
२३ पुत्रोंके नाशसे चिन्ता कर रही अदितिको उसके पति कश्यपजी के द्वारा पयोव्रतका उपदेश	३२
२४ अदितके पयोव्रतसे प्रसन्न होकर उसकी कामनाओंकी पूर्तिकेलिए उसके पुत्ररूपसे अवतरित हुए भगवान्—	३५
२५ अश्वमेधयागमें पहुँचकर भृगु	

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय — पृष्ठ

वंशी ब्राह्मणों तथा राजा बलि द्वारा सत्कृतहुए वामन भगवान् से 'आप जो चाहते हैं मुझसे माँग लीजिए' यह बलिका कथन ३७

२६ वामन भगवान् द्वारा राजा बलिसे तीन डेग जमीन माँगनेपर देनेकी प्रतिज्ञा करचुके राजाबलि से न देनेकेलिए शुक्रका उपदेश ३९

२७ अपने गुरु शुक्राचार्यके क्रोधित होकर शाप देनेपर भी सत्यपर अटल बलिका वामनको भूमिदान ४२

२८ संसारमें ख्याति बढ़ानेके लिए वामन भगवान्के तीन डेग भूमि नापनेके बहाने राजाबलिकाबन्धन ४३

२९ वरुणपाशसे बँधे हुए बलिके द्वारा अपने मस्तकपर भगवान्से तीसरा चरण रखनेकी प्रार्थनाके अनन्तर स्वर्गसे भी अधिक रमणीय रसातललोकमें उसका वास ४५

३० अपने पितामहके साथ राजा बलि के पातालमें चले जानेपर उपेन्द्र के साथ भगवान् विष्णुका स्वर्ग में जाकर पूर्ववत् आनन्द करना ४७

३१ प्रसंगवश मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुकी लीला तथा महासागरमें राजर्षि सत्यव्रतकी रक्षाका वर्णन ४९

३२ अष्टमस्कन्धमाहात्म्य— ५२

३३ प्रतिष्ठाविषयकविचार ,,

नवमस्कन्ध—

१ पुराणश्रवणविधि— १

२ आचार्यकी अलौकिकतापर विचार ,,

३ संसारद्वारा ही भगवान्के पूजनसे लाभ ,,

५ अकारण उन्मत्त यादवोंके शाप का भीषणरूप ,,

अकारण उत्पातमें शान्ति ,,

६ वैदिकब्राह्मणोंहीका होतृत्वमें अधिकार ,,

७ यन्त्रपर विचार ,,

८ इलाकी उत्पत्ति, सुद्युम्नको स्त्रीत्व प्राप्ति तथा पुरुरवा की उत्पत्ति का वर्णन २

९ मनुके दो विरक्त हुए पुत्रों तथा करूषक आदि पाँच पुत्रोंके वंशोंका वर्णन ३

१० मनुपुत्र शर्यातिके वंशका वर्णन ५

११ मनुपुत्र नभगकी कथा तथा उनके पुत्र अम्बरीष द्वारा कृत्याका नाश ७

१२ सुदर्शनचक्रसे दुर्वासाकी रक्षा १०

१३ अम्बरीषके वंशका तथा इक्ष्वाकु के वंशमें उत्पन्न हुए शशादसे लेकर मान्धाता तकके राजाओं का वर्णन १२

१४ मान्धाताके वंशमें उत्पन्न हुए पुरुकुत्स और हरिश्चन्द्रका आख्यान १५

१५ रोहितके वंशमें उत्पन्न हुए सगरके साठहजार लड़कोंका कपिलमुनिकी आँखे खुलते ही भस्म हो जाना १६

राजा खट्वांगतक अंशुमान्का वंश तथा भगीरथ द्वारा भूतल पर गङ्गाको लाना १६

१७ राजा खट्वांगके वंशमें उत्पन्न हुए श्रीरामचन्द्रजीके लंकाधिपति रावणको मारकर अयोध्यामें आगमन तक चरित्र का वर्णन १९

१८ भाइयोंके साथ अयोध्यामें रहकर श्रीरामचन्द्रजीका यज्ञ करना २४

१९ इक्ष्वाकुपुत्र शशादके वंश उत्पन्न हुए श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशके वंशका वर्णन

२० जिस वंशमें जनक आदि ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए थे, उस इक्ष्वाकु के पुत्र निमिके वंशका वर्णन २७

२१ गुरुपत्नी तारामें चन्द्रमाके वीर्यसे उत्पन्न हुए बुधके वीर्यसे इलामें पैदा हुए पुरूरवाको उर्वशी द्वारा बतलाई गई युक्तिसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
गन्धर्वलोककी प्राप्तिका वर्णन	२९
२२ पुरूरवाके वंशमें उत्पन्न हुए गाधिके दामाद जमदग्निके लड़के परशुराम द्वारा सहस्रार्जुनका वध वर्णन	३१
२३ सहस्रार्जुनके पुत्रों द्वारा जमदग्निके मार दिये जानेपर परशुराम द्वारा पुनः क्षत्रियोंके संहार तथा विश्वामित्रके वंशका वर्णन	३३
२४ पुरूरवाके ज्येष्ठपुत्र आयुके पाँच लड़कोंमें क्षत्रवृद्ध आदि चार लड़कोंके वंशका वर्णन	३५
२५ ययातिके पाँच पुत्रोंमें सबसे छोटेमें युवावस्था पिताको देकर पिताकी वृद्धावस्था ले ली	३६
२६ बकरी और बकरेके दृष्टान्त से अपना आचरण सुनानेके बाद राजा ययाति मुक्ति को प्राप्त हो गया	३९

विषय	पृष्ठ
२७ पूरुवंश में उत्पन्न दुष्यन्त के लड़के भरतके यश का वर्णन	४१
२८ राजा दुष्यन्तके पुत्र वितथके वंशका वर्णन करते हुए रन्तिदेव तथा अजमीढ़ आदिके चरित्रका सविस्तार वर्णन	४३
२९ दिवोदासके वंशवर्णनके बाद ऋक्ष-वंशमें उत्पन्न हुए जरासन्ध, पार्थ तथा दुर्योधन आदि का वर्णन	४५
३० ययातिके पुत्र अनु, द्रुह्यु और तुर्वसुके वंशवर्णनके बाद विषयपर्यन्त यदुवंशका वर्णन	४७
३१ राजा विदर्भके पुत्रोंके अनेक शाखाओंमें फैले हुए वंशका बलदेव और भगवान् श्रीकृष्ण की उत्पत्ति तक वर्णन	४९
३२ नवमस्कन्धका माहात्म्य	५२
३३ गौरीतन्त्रोक्त भागवत माहात्म्य	,,
३४ स्कन्दपुराणोक्त भागवत माहात्म्य	५४

दशमस्कन्ध पूर्वार्ध

विषय	पृष्ठ
१ गंगा पूजन	१
२ कृष्णपूजनक्रम	२
३ श्रीकृष्णपूजन	,,
४ पुस्तकपूजन	६
५ व्यासपूजन	,,
६ कामनापरक संकल्पोंका संकल्प	७
७ अनेक वस्तुओंके देवता	,,
८ गोपालोंके नाम	८
९ उपगोपालों के गण	,,
१० चौसठ महन्त	,,
११ बत्तीस उपमहन्त	,,
१२ अष्टसखी	,,
१३ नवमञ्जरी	,,
१४ अष्ट कविराज	,,
१५ भगवान् द्वारा पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव और देवकी का विवाह और आकाशवाणी सुन कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रों को मार डालना	१०

विषय	पृष्ठ
१६ देवकीके सातवें गर्भको रोहिणीके गर्भमें डाल आना और भगवान् को देवकीके गर्भमें आना	१३
१७ भगवान्का अवतार लेना, वसुदेव और देवकीका स्तुति करना और वसुदेवको उन्हें गोकुल ले आना	१५
१८ योगमायाके द्वारा यह बतलाना कंसके मारनेवालेने जन्म ले लिया है और कंसके बालकों के नाशका निश्चय	१८
१९ नन्दका अपने पुत्रका जन्मोत्सव मनाना और कंसको कर देने के लिए मथुरा जाना	२१
२० नन्दके गोकुल लौटते समय रास्तेमें पूतनाका वृत्तान्त सुनना और उससे विस्मित होना	२३
२१ श्रीकृष्णका शकटासुर एवं तृणावर्तका उद्धार तथा विश्वरूप दिखलाना	२५
२२ गर्गाचार्यको बुलाकर बलराम	

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
और कृष्णका नामकरण करना, कृष्णका मिट्टी खाते समय पकड़ा जाना और माताको मुँहमें सारा ब्रह्माण्ड दिखलाना	२७
२३ श्रीकृष्णका मटकी फोड़ना तथा यशोदाका उन्हें डोरीमे बाँध देना	३१
२४ कृष्णका नलकूबर और मणिग्रीव का उद्धार करना	३२
२५ श्रीकृष्णका वत्स और बकासुर का उद्धार करना	३४
२६ अघासुरका उद्धार	३७
२७ ब्रह्माका बाल-बछड़ोंको चुराना और भगवान्का स्वयं बाल-बछड़ा बन जाना	४०
२८ ब्रह्माका श्रीकृष्णकी स्तुति करना	४४
२९ श्रीकृष्णका धेनुकासुरका उद्धार एवं कालियदहके जलपानसे मृत गौओं एवं गोपबालकोंकी रक्षा करना	४९
३० कृष्णका कालियदमन	५१
३१ श्रीकृष्णका व्रजवासियोंको दवाग्निसे बचाना	५६
३२ बलराम द्वारा प्रलम्बासुरका उद्धार होना	५७
३३ श्रीकृष्णका दवाग्नि पी लेना	५९
३४ वर्षा और शरदऋतुका वर्णन और कृष्णके बरसाती खेल	६०
३५ वेणुगीत	६३
३६ चीरहरणलीला	६४
३७ ग्वालोंका यज्ञशालामें जाकर भात माँगना	६७
३८ इन्द्रकी पूजा रोककर श्रीकृष्णकी गोवर्धनपूजाकी सलाह देना	७०
३९ इन्द्रका कोप और कृष्णका गोवर्धन धारण	७२
४० नन्दजीको कृष्णका माहात्म्य बतलाना	७३
४१ कामधेनु और इन्द्रके द्वारा श्रीकृष्णका अभिषेक	७५
४२ श्रीकृष्णका वरुणको वशमें करना	७७
४३ श्रीकृष्णका रासके लिये गोपियोंसे बात चीत	४८
४४ उन्मत्त गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण का अन्वेषण	८१
४५ दर्शनकी अभिलाषा कर रही गोपियों द्वारा भगवान्के गुणों का गान करना	८४
४६ भगवान्का प्रकट होना तथा गोपियोंका सम्मान करना	८५
४७ श्रीकृष्णका गोपियोंके साथ महारास क्रीड़ा करना	८७
४८ सुदर्शन और शंखचूड़का उद्धार	८९
४९ युगलगीत	९१
५० अरिष्टासुरका उद्धार तथा कंसका अक्रूरजीको व्रज भेजना	९३
५१ केशी और व्योमासुरका उद्धार	९५
५२ अक्रूरजीका व्रजमें आना	९७
५३ कृष्ण और बलरामका मथुरा जाना	१००
५४ अक्रूरजीका भगवान्की स्तुति करना	१०३
५५ श्रीकृष्णका मथुरामें पहुँच जाना	१०५
५६ कुब्जाको सीधा करना, धनुभंग तथा कंसका घबड़ाना	१०७
५७ कुवलयापीड़का उद्धार और रङ्गशालामें आना	१०९
५८ चाणूर, मुष्टिक, अन्य पहलवान् तथा कंसका उद्धार	१११
५९ श्रीकृष्णका नन्दबाबाको सान्त्वना देना, उग्रसेनको अभिषिक्त करना और गुरुकुलमें प्रवेश	११४
६० उद्धवजीको व्रज भेजना	११७
६१ भ्रमरगीत	१२०
६२ श्रीकृष्णका कुब्जा और अक्रूर के यहाँ जाना	१२४
६३ अक्रूरजीका हस्तिनापुर गमन	१२६
६४ पाण्डवपत्नी द्रौपदीसे सत्यभामा को यथोचित शिक्षा	१२८

दशमस्कन्ध उत्तरार्ध

विषय	पृष्ठ
१ सत्यभामा द्वारा श्रीकृष्णका दान	१
२ भगवान् श्रीकृष्णकी सखियोंके नाम	४
३ सखियोंका वर्णन	५

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
४ भगवान्की स्त्रियों और पुत्रों आदिके नाम	५
५ भगवान् कृष्णके अगल-बगल भागमें बैठनेवाली और सखियों का वर्णन	"
६ गोपियोंके नामोंका संकेत असंख्य-यूथगणोंका नाम और भगवान् की पटरानियोंके नाम	"
७ भगवान् कृष्णने अपनी माया द्वारा एकही समय सबसे विवाह किया	६
८ राधाके कुलका वर्णन	"
९ श्रीकृष्णचन्द्रके वंश का वर्णन	६
१० भगवान् श्रीकृष्णके सखाओंका नाम	"
११ भगवान् श्रीकृष्णकी बांसुरीका स्वरूप	"
१२ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमल का चिह्न	"
१३ वृन्दावनकी श्रेष्ठता	"
१४ यादवोंके नाम	७
१५ भगवान् श्रीकृष्णके गाय चराने का मुहूर्त	"
१६ गौवोंके नाम	"
१७ महारथियोंके नाम	"
१८ नन्द, उपनन्द गोप और राधिका की सखियोंके नाम	"
१९ राधाके महलके दरवाजोंका वर्णन	"
२० जरासन्धके भयसे समुद्रके भीतर नगर बसाकर अपने बान्धवोंको भगवान्का रखना	८
२१ मुचुकुन्दद्वारा कालयवनका भस्म होना तथा मुकुन्दके ऊपर भगवान्का अनुग्रह करना	११
२२ जरासन्धको चकमा देकर बलराम और श्रीकृष्णका द्वारकामें प्रवेश तथा रुक्मिणीका पत्र ब्राह्मण द्वारा पढ़वालेनेपर कृष्ण की उस पर स्वीकृति	१५
२३ रुक्मिणीहरण	१६
२४ शत्रुपक्षीय राजाओंको जीतलेने केवाद रुक्मीको कुरूप बनाकर छोड़देनेपर श्रीकृष्णका द्वारकामें रुक्मिणीसे विवाह	२०
२५ कृष्णसे प्रद्युम्नकी उत्पत्ति शम्बरासुरद्वारा प्रद्युम्नका अपहरण, प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध अपनी पत्नी रतिके साथ द्वारका पुरीमें प्रद्युम्नका आना तथा प्रद्युम्नके खोजाने और पुनः मिलजानेसे उनके कुटुम्बियों द्वारा सन्तति विषयके सुखदुःख प्रकट करना	२४
२६ मिथ्या अभियोग लगनेपर स्यमन्तकमणिका भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अन्वेषण तथा जाम्बवान् और सत्राजित्की कन्या के साथ भगवान् का विवाह	२६
२७ सोये हुए सत्राजित्को मारकर स्यमन्तकमणिकी चोरी, शतधन्वाका कृष्णद्वारा वध, भयके मारे भागे हुए अक्रूरजी को बुलाना तथा उनसे मणि लेकर उसे द्वारका वासियोंको दिखलाकर उससे अपना कलंक मिटाकर पुनः अक्रूरजी को भगवान् श्रीकृष्णका मणि दे देना	२९
२८ कालिन्दी आदि पाँच कन्याओं का भगवान् द्वारा पाणिग्रहण	३१
२९ भौमासुरको मारकर उसके घर से सोलह-हजार राजकन्याओंको अपने घर लाकर उनके साथ विवाह करना तथा स्वर्गसे पारिजात अपने घर उठा लाना	३४
३० कान्ताओंमें रमण करनेवाले मनुष्योंके आनन्दविषयोंके अनुकरणोंद्वारा रुक्मिणीके साथ प्रेमकलहके बहाने भगवान्के	

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

	विषय	पृष्ठ
	ऐश्वर्य का वर्णन	३७
३१	भगवान् श्रीकृष्णकी पुत्र-पौत्र आदि सन्ततिका वर्णन और अनिरुद्धके विवाहमें बलदेवजी द्वारा रुक्मिणी वधकी कथा	४१
३२	उषाके साथ अनिरुद्धका मिलन	४३
३३	बाणासुर यादवोंके संग्राममें भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा बाणासुरकी भुजाओंका भेदन तथा माहेश्वर ज्वरकी स्तुति	४५
३४	उपवनोंमें खेलरहे प्रद्युम्न आदि पुत्रोंसे शुष्ककूपमें गिरे नृगद्वारा ब्राह्मण शाप सुनकर ब्राह्मणोंके प्रति अनीति न करनेका उपदेश देना	४८
३५	बलदेवका गोकुलमें पहुँचकर विरहमें व्याकुल नन्दादिको सान्त्वना तदनन्तर युवतियोंके साथ क्रीडाकर रहे बलदेवका यमुनाको दण्ड देना	५१
३६	श्रीकृष्णका रूपधारण करनेवाले पौण्ड्रकराज्यको उसके साथियों सहित मारकर भगवान् शंकरकी तपस्या कर रहे काशीराजके पुत्र सुदक्षिणसहित काशीको भस्म करना	५३
३७	रेवतकपर्वतके ऊपर गोपियोंके साथ बलदेवजीका यथेच्छ विहार तथा द्विविद्का वध	५५
३८	जाम्बवतीपुत्र शाम्बके कौरवों द्वारा युद्धमें पकड़लिए जानेपर बलदेव जीके द्वारा हस्तिनापुरको गङ्गामें डुबादेनेकी इच्छासे हलके नोंकसे खींचना	५७
३९	सोलहहजार स्त्रियोंके प्रत्येक घरमें भगवान्को गार्हस्थ्यधर्मको देखकर विस्मित हुए श्रीनारद मुनिकी स्तुति	५९
४०	आह्निककृत्यसे निवृत्त हो भगवान्के सुधर्मा सभामें पहुँचनेपर जरासन्धद्वारा कैद किए गये राजाओंके दूतका सन्देश सुनते समय नारद जीका युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें जानेकेलिए निमन्त्रण देनेकेबाद उद्धवके साथ भगवान्की मन्त्रणा	६२
४१	उद्धवकी सलाहसे भगवान् श्रीकृष्णके इन्द्रप्रस्थ पहुँचनेपर पांडवों द्वारा महान् उत्सवकी तैयारी तथा राजसूययज्ञकी समाप्ति होजानेपर भीम दुर्योधन आदिमें कलह उत्पन्न कराकर भगवान्का पृथ्वीका भार हलका करना	६५
४२	युधिष्ठिरद्वारा राजसूययज्ञका आयोजन तथा जरासन्धका वध	६८
४३	कारागारसे मुक्तहुए राजाओंको विदाकर भगवान् श्रीकृष्णका भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थमें लौट आना	७१
४४	राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञ तथा अग्रपूजाके प्रसङ्गसे शिशुपालके वध आदिका वर्णन	७३
४५	राजा युधिष्ठिरकी चढ़ी बढ़ी राज सम्पत्तिको देख उनसे सन्तप्त हुए दुर्योधनका मानभङ्ग	७५
४६	यदुवंशियों और शाल्वके महान् युद्धमें द्युमानकी गदासे मूर्छित हुए प्रद्युम्नका रणभूमिसे सारथि द्वारा निर्गमन	७६
४७	अनेकप्रकारकी माया जाननेवाले शाल्वका भगवान् श्रीकृष्णजी द्वारा वध तथा सौभविमानका नाश	७७
४८	दन्तवक्र और विदूरथको मारकर भगवान्का द्वारकामें रमण करना तथा कुछ दिनोंके बाद बलरामजीके द्वारा सूतका मारा जाना	८१
४९	मुनियोंके कथनानुसार बलदेवजीका उस राक्षसको मारना और तीर्थोंमें भ्रमण करना	८४
५०	भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा ब्राह्मणका सत्कार	८६

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
५१ भगवान् द्वारा प्राप्त सुदामाकी अलौकिक समृद्धिका वर्णन	८९
५२ सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रमें भगवान् कृष्णके साथ व्रजवासी आदि सगे सम्बन्धियों तथा अनेक राजाओंकी भेट	९१
५३ द्रौपदीके पूछने पर भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियोंका अपने-अपने विवाह की बातें बतलाना	९४
५४ वसुदेवजीका विष्णुयज्ञोत्सव तथा उसमें समागत बन्धुओंकी विदाई का वर्णन	९७
५५ श्रीकृष्ण तथा बलरामजीका अपने पिता वसुदेवजीको ज्ञान प्रदान करना तथा अपनी माताजीको उनके मृतबच्चोंको लाकर देना	१०१
५६ सुभद्राका अपहरण तथा भगवान् श्रीकृष्णका अपने भक्त मैथिल राजा एवं श्रुतदेव ब्राह्मणके ऊपर अनुग्रह करना	१०५
५७ भगवान्‌की वेदों द्वारा स्तुति	१०८

विषय	पृष्ठ
५८ भगवान् विष्णुकी सेवासे मुक्ति तथा अन्य देवताओंकी सेवासे विभूति प्राप्त होती है	११४
५९ ब्रह्मा विष्णु और महेश इनमें श्रेष्ठ कौन है इसकी भृगुद्वारा परीक्षा	११७
६० भगवान् श्रीकृष्णका स्त्रियोंके साथ विहार उनकी प्रेमरसभरी मधुर तथा यादवोंका विस्तार इन सब का वर्णन	१२१
६१ दशमस्कन्धश्रवणमाहात्म्य	१२४
६२ अन्य टीकाकारोंकी अपेक्षा श्रीधर स्वामीकी श्रेष्ठता	१२५
६३ ज्वरतर्पण	१२६
६४ सहस्रब्राह्मण भोजनविधिः,	
एकादश स्कन्ध	
१ कुछ अन्यपुराण उप पुराणोंका ज्ञान आवश्यक	१
२ उन्मत्त यादवोंको पिण्डारकक्षेत्रमें ऋषियोंका भीषण शाप	३

विषय	पृष्ठ
३ वसुदेवका प्रश्न और उत्तरमें नारद का निमि-आर्षेय संवाद कथन	५
४ विष्णुकी मायाके बारेमें निमिका प्रश्न और अन्तरिक्षका उत्तर	८
५ भगवान्‌के नानाविध अवतारोंका विशिष्टतम वर्णन	१०
६ वैदिककर्मका रहस्य तथा योगा—नुसार भगवान्‌की महिमा वर्णन	१२
७ देवताओंका द्वारकामें आकर प्रार्थना करना द्वारकामें उत्पात और उद्धवकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना	१५
८ अवधूतका आख्यान तथा कपोत के वंशका उपाख्यान	१७
९ अवधूतका अजगरादिसे प्राप्त शिक्षाका कथन और पिङ्गला नामक वेश्याका उपाख्यान	२०
१० कुरपक्षी आदिसे प्राप्त शिक्षा	२३
११ निष्कामकर्मकी श्रेष्ठता और सकामकर्मकी निन्दा	२४
१२ बद्ध और मुक्तोंके लक्षण तथा	

विषय	पृष्ठ
साधुके लक्षण	२६
१३ परमात्मामें अनन्यभावका महत्व और आत्मज्ञान	२८
१४ हंस-सनकादि संवाद	३०
१५ पुरुषार्थ तथा उसके साधनोंका वर्णन	३३
१६ सिद्धियोंका वर्णन	३५
१७ विभूति वर्णन	३६
१८ वर्णाश्रमधर्मप्रतिपादन	३८
१९ वानप्रस्थ तथा संन्यासीके धर्मोंका वर्णन	४१
२० ज्ञान-विज्ञानका निरूपण, भक्तिके साधन यम नियम आदिके लक्षण	४३
२१ कर्म, ज्ञान और भक्तियोग निरूपण	४६
२२ गुण-दोष विचार तथा वेदका रहस्य	४८
२३ तत्वका संख्याओंका वर्णन	५०
२४ भिक्षुगीताका वर्णन	५३
२५ सांख्य-योगका निरूपण	५६
२६ सात्विक, राजस और तामस गुणोंका निरूपण	५८

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषय	पृष्ठ
२७ पुरूरवाका निर्वेद और सत्सङ्गकी महिमा	६०
२८ भगवान्‌की पूजा का प्रकार	६१
२९ संक्षेपसे ज्ञानयोगका निरूपण	६४
३० भगवान्‌का अन्तिम उपदेश और उद्धवका प्रस्थान	६७
३१ यादवकुलका नाश और भगवान्‌की महाप्रस्थानकी तैयारी	६९
३२ श्रीकृष्णका निर्याण तथा वसुदेवादिका	
३३ प्राणत्याग और स्त्रियों का अग्निप्रवेश गौरीपूजन और भगवान् श्रीकृष्णजी की लीला	७४
३४ राधाके नामोंका कथन	,,
३५ राधाके सखियोंके नाम और उनके कार्य	,,
३६ भागवत श्लोकसंख्या	,,
३७ रावणके प्रधान सैनिक	,,
३८ रावणके औरसपुत्र	,,
३९ रावणके सैनिकोंके नाम	७५
द्वादशस्कन्ध—	
१ भागवतमहापुराणश्रवण करना अत्यावश्यक	१
२ भागवतदानमें विशेषता	
३ मरणावस्थाके सान्निध्यमें भागवतके पाठका क्रम	,,
४ किन किन स्कन्धपाठश्रवणसे विशिष्ट लाभ	,,
५ श्रीमद्भागवतसे क्या नहीं मिल सकता	,,
६ कुछ बीजोंका संकलन	,,
७ संग्रहश्लोक	२
८ श्रीकृष्णचन्द्रके अपने परधाम पहुँच जानेके बादमें इस पृथ्वीके राजाओंका वर्णन	८
९ कलियुगका दोष बढ़ जानेपर कल्कि भगवान्‌का अवतार	१०
१० राज्य आदिमें ममत्वबुद्धिके दोष तथा कलिके गुणका वर्णन	१२
११ प्रलयवर्णन	१४
१२ परब्रह्मके उपदेशसे मृत्युके भय का निवारण	१७
१३ राजा परीक्षित्‌का मोक्ष, जनमेजयके नागयज्ञ तथा वेदोंके विभागवर्णन	१७
१४ अथर्ववेदकी संहिताओं तथा लक्षण-पूर्वक पुराणोंका वर्णन	
१५ मार्कण्डेयकी तपस्यामें विघ्नस्वरूप आये हुए कामादि इन्द्रके गणोंकी असफलता तथा नर-नारायणकी स्तुतिका वर्णन	२३
१६ भगवान्‌की मायाका अवलोकन	२६
१७ भगवान् शंकरका मार्कण्डेय ऋषि-को वरदान	२७
१८ पूजा करनेके लिए महापुरुषके लक्षण वर्णनके बाद सूर्यके व्यूहका प्रतिमासका पृथक् पृथक् वर्णन	३०
१९ संक्षिप्त विषयानुक्रमणिका	३३
२० यथाक्रम पुराणश्लोकोंकी संख्या तथा भागवतके दानमाहात्म्यका वर्णन	३६
२१ पुराण	३७
२२ वैष्णवभेद	,,
२३ दशनाम संन्यासी	,,
२४ अक्षौहिणी	,,
२५ मुहूर्तविचार	,,

विषयसूची समाप्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मण्डपका नकशा

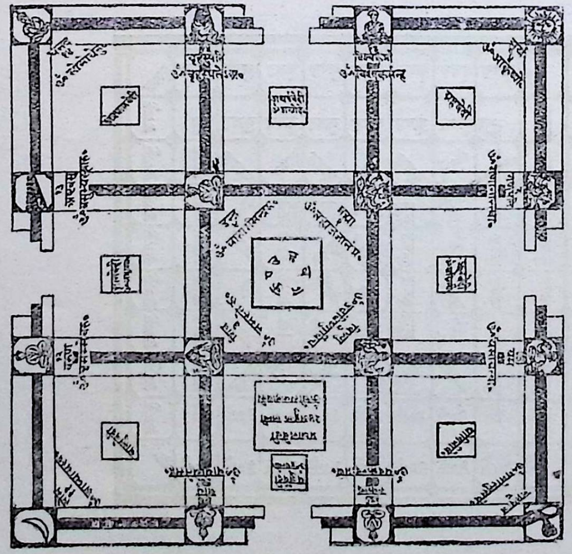

कामदेवकृतविष्णुयन्त्र

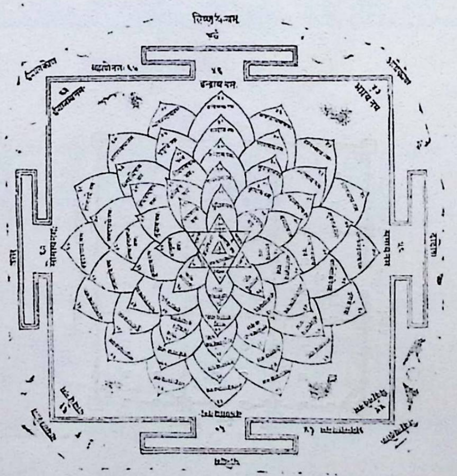

अनन्तदेवकृतविष्णुयन्त्र

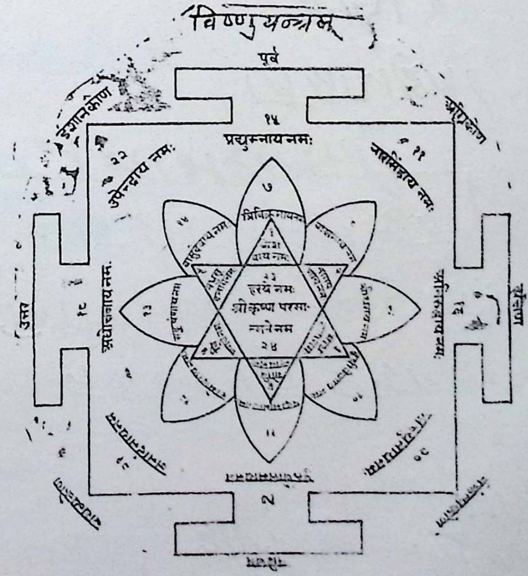

नोट—मतमतान्तरसे सविधि नानाप्रकार यन्त्र और न्यास वीरमित्रोदयके पूजाप्रकाश तथा भक्तिप्रकाशमें देखिये और मुद्रित प्रतिष्ठेन्दुशेखरसे चतुर्वेदोक्त मण्डपादिपूजनमें सहायता लीजिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शतमुखकोटिहोमका नकशा

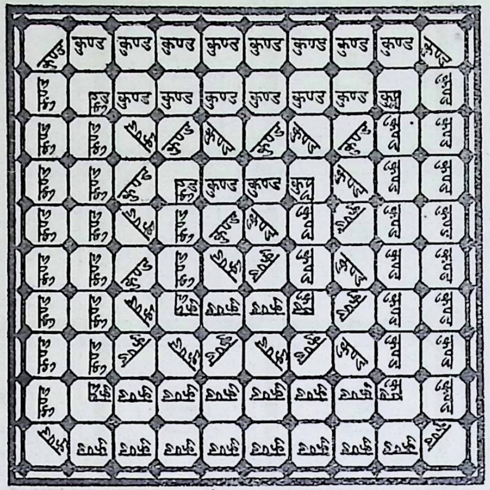

दशमुखकोटिहोमका नकशा

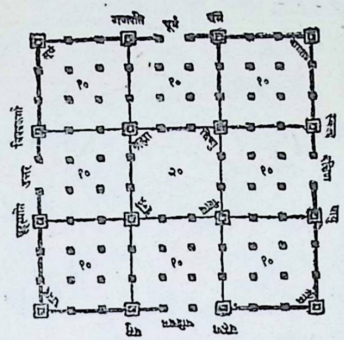

महारुद्र यज्ञ विचार

श्रीः

महारुद्रमत्र एकादश

[illegible]

[illegible]

पद्मनाभशास्त्री

विद्याधरशर्मा

३/१/४०

नोट—श्रीभगवान् विष्णुदेवका हवन-पूजन सविधि नाना-कुण्ड बनाकर कर सकता है। इसका विवेचन कामदेवकृतविष्णुयागमें है। वह पुस्तक प्रकाशित है—उसमें देखिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—

(भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६९ पुष्पलता)

[माहात्म्य]

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—संयुक्तप्रान्तीय सरकार द्वारा संमानित विद्वान् आचार्य श्री दौलतराम गौड वेदाचार्य,
मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

भार्गव भूषण, प्रेस, गायघाट, बनारस ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ शौनक जी के पूछने पर श्री सूत जी द्वारा श्री नारद जी को सप्ताह सुनने की इच्छा क्यों हुई आदि बतलाना ❀

जो श्रीशुकदेवजी जन्मसे ही संन्यासियोंकी तरह सकल सांसारिक कर्मोंको त्यागकर उपनयनादि संस्कारोंसे रहित अशरणशरण अखिलब्रह्माण्डनायक श्रीनारायणका भजन करनेके लिए गर्भबन्धनसे छूटकर जिस समय वनको जाने लगे, उस समय महर्षि मुकुटमणि इनके पिता श्रीवेदव्यासजी पुत्र स्नेहसे व्याकुल होकर 'हे पुत्र, हे पुत्र,' ऐसा चिल्लाते हुए इनके पीछे दौड़े। उस समय पिताको अपने मोहके व्याकुल देखकर वृक्षात्मक होकर उत्तर दिया। ऐसे सर्वान्तर्यामी श्रीशुकदेवजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ परम पवित्र नैमिषारण्यक्षेत्रमें व्यासासनको अलंकृत करते हुए विशालबुद्धि श्रीसूतजीको नमस्कार करके कथारूपी रसास्वादनमें कुशल श्रीशौनकजीने कहा—॥ २ ॥ अज्ञानरूपी अन्धकारको नाश करनेके लिए करोड़ों सूर्यके समान

❀ अथ प्रथमोऽध्यायः ❀

॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ १ ॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवाद्य महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशलः शौनकोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ शौनक उवाच ॥ अज्ञानध्वान्तविध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभ ॥ सूताख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम् ॥ ३ ॥ भक्तिज्ञानविरागाप्तविवेको वर्धते कथम् ॥ मायामोहनिरासश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ४ ॥ इह घोरे कलौ प्राप्ते जीवश्चासुरतां गतः ॥ क्लेशक्रान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम् ॥ ५ ॥ श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना ॥ ६ ॥ चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरेन्द्रः स्वर्गसंपदम् ॥ प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य च ॥ सर्वसिद्धान्तनिष्पन्नं संसारभयनाशनम् ॥ ८ ॥ भक्त्योघवर्धनं यच्च कृष्ण-

तेजस्वी श्रीसूतजी महाराज कर्णरोगके लिए रसायन तुल्य श्रीभगवान्‌जी कथा हमलोगोंको सुनाइये ॥ ३ ॥ और यह बतलाइये कि भक्ति, ज्ञान, विरागादि साधनोंसे प्राप्त ज्ञानकी वृद्धि किस प्रकार होती है। तथा वैष्णव लोग मायामोहका निराश किस प्रकार करते हैं ॥ ४ ॥ इस घोर कलियुगके प्राप्त होनेसे यह जीव दैवी सम्पत्तिको त्यागकर आसुरी सम्पत्तिको प्राप्त हुआ है। अतः सांसारिक क्लेशसे अत्यन्त पीड़ित इस जीवात्माके अज्ञान निवृत्ति पूर्वक अपने स्वरूपको जाननेके लिए उत्कृष्ट साधन क्या है ॥ ५ ॥ पवित्र से भी पवित्र तथा श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला जो साधन हो वह कृपाकर हमारे प्रति कहिए ॥ ६ ॥ हे श्रीसूतजी महाराज, जिस प्रकार चिन्तामणिमें लौकिक सुख देनेकी सामर्थ्य हैं उसी प्रकार कल्पवृक्षमें स्वर्गीय सुख देनेकी शक्ति सुनी जाती है, किन्तु यदि श्रीगुरुचरणचिन्तामणिजी कृपादृष्टि हो जाय तो वह योगियोंको भी दुर्लभ श्रीवैकुण्ठधाम देनेमें समर्थ हैं ॥ ७ ॥ इस श्रीशौनकजीका प्रश्न सुनकर श्रीसूतजीने कहा—हे शौनक, तुम्हारे हृदयमें श्रीमन्नारायणके प्रति तथा गुरुओंके प्रति बड़ी श्रद्धा है, इसलिये मैं समस्त सिद्धान्तका सार और संसार भय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को दूर करनेवाला तथा श्रीनारायणके प्रति भक्ति बढ़ानेवाला और श्रीभगवान्‌को सन्तुष्ट करनेवाला जो साधन है सो मैं तुम्हारे प्रति वर्णन करूँगा। इसलिये सावधान होकर श्रवण करो। कालरूपी सर्पसे बचनेका उपाय श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतको ही बतलाया है ॥ ८–१० ॥ श्रीमद्भागवतसे बढ़कर मनकी शुद्धिके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। जब जन्मान्तरीय पुण्य उदय होता है, तब भागवत जैसे अमोघ साधनकी प्राप्ति होती हैं ॥ ११ ॥ जिस समय राजर्षि परीक्षित्‌को कथा सुनानेके लिए श्रीशुकदेवजी व्यासासनपर बैठे थे, उस समय अमृतपूर्ण कलशको लेकर देवता लोग वहाँपर उपस्थित हुए और श्रीशुकदेवजीको नमस्कार करके स्वार्थसाधनमें कुशल देवताओंने कहा–हे भगवन्, कथारूपो अमृतको आप हम लोगोंको दे दीजिए तथा इस अमृतघटको उसके बदलेमें लीजिए ॥ १२, १३ ॥ जिसके पीनेसे राजा परीक्षित्‌को तक्षकरूप मृत्युसे भय नहीं रहेगा और हम लोग श्रीमद्भागवतामृतका पान करेंगे

सन्तोषहेतुकम् ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि सावधानतया शृणु ॥९॥ कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्नाशहेतवे ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम्
॥ १० ॥ एतस्मादपरं किञ्चिन्मनः शुद्ध्यै न विद्यते ॥ जन्मान्तरे भवेत्पुण्यं तदा भागवतं लभेत् ॥ ११ ॥ परीक्षिते कथां वक्तुं सभायां संस्थिते
शुके ॥ सुधाकुम्भं गृहीत्वैव देवास्तत्र समागमन् ॥१२॥ शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः ॥ कथासुधां प्रयच्छस्व गृहीत्वैव सुधामिमाम्
॥ १३ ॥ एवं विनिमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ॥ प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम् ॥ १४ ॥ क्व सुधा क्व कथा लोके क्व काचः
क्व मणिर्महान् ॥ ब्रह्मरातो विचार्येति तदा देवाञ्जहास ह ॥१५॥ अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम्॥ श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि
दुर्लभा ॥ १६ ॥ राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः ॥ स च लोके तुलां बध्वाऽतोलयत्साधनान्यजः ॥ १७ ॥ लघून्यन्यानि
जातानि गौरवेण इदं महत् ॥ तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १८ ॥ मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं क्षितौ ॥ पठनाच्छ्रवणात्सद्यो
वैकुण्ठफलदायकम् ॥ १९ ॥ सप्ताहश्रवणेनैव सर्वथा मुक्तिदायकम् ॥ सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः ॥ २० ॥ यद्यपि ब्रह्मसंबन्धाच्छ्रु-
तमेतत्सुरर्षिणा ॥ सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य भाषितः ॥ २१ ॥ शौनक उवाच ॥ लोकविग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ॥ विधिश्रवे कुतः

॥ १४ ॥ इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना सुनकर श्रीशुकदेवजीने यह विचार किया कि कहाँ तो लौकिक अमृत और कहाँ अलौकिक यह भगवान्‌की कथा, अर्थात् कहाँ काँच और कहाँ मणि ऐसा विचारकर हँसने लगे ॥ १५ ॥ और देवताओंको अभक्त समझकर कथामृत नहीं दिया, जो यह श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ १६ ॥ कथाश्रवणसे राजाका मोक्ष देखकर ब्रह्माजीको भी आश्चर्य हुआ था, तब ब्रह्माने तराजूके एक पलरे पर श्रीमद्भागवतको रखा और दूसरेपर मुक्तिके अन्यान्य साधनोंको रखा, किन्तु जब दोनोंको तौला तब सब साधन भागवतकी अपेक्षा छोटे ही सिद्ध हुए। तब संपूर्ण ऋषि बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ उन लोगोंने पृथ्वीमें श्रीमद्भागवतशास्त्रको भगवद्रूप स्वीकृत किया। जो यह भागवत्‌शास्त्र पाठ करनेसे और श्रवण करनेसे शीघ्र ही वैकुण्ठ फलको देनेवाला है ॥ १९ ॥ प्राचीन समयमें श्री नारदजीके प्रति दयासिन्धु सनकादि ऋषियोंने सप्ताहविधि वर्णनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। तथा सप्ताह श्रवणको ही मुक्ति दायक बतलाया है ॥ २० ॥ यद्यपि नारदजीने सप्ताहविधि पूर्वकालमें ब्रह्माजीसे सुनी थी। तथापि पुनः सनकादि ऋषियोंसे प्राप्त की ॥ २१ ॥ शौनक जीने कहा--हे सूतजी महाराज, लोकविग्रहमें प्रवृत्त अतएव चञ्चलतायुक्त नारदजीको सप्ताहविधिके श्रवणमें श्रद्धा कैसे उत्पन्न हुई। तथा शनकादि ऋषियोंके साथ उनका संयोग कहाँ हुआ ॥ २२ ॥ श्रीसूतजीने कहा--इस विषयमें आप लोगोंके सामने एक भक्ति पोषक उपाख्यान सुनाता हूँ, जो कि श्रीशुकदेवजीने कृपा करके मुझसे कहा था ॥ २३ ॥ एकबार चारों सनकादि महर्षि नर-नारायण भगवान्के दर्शन करनेके लिये तथा सत्सङ्गति करनेके वास्ते बदरिकाश्रम गये और उन्होंने वहाँपर नारदजीको देखा ॥ २४ ॥ उन्होंने नारदजीसे कहा--हे ब्रह्मन्, आपका मुखकमल आज उदास क्यों है आप बड़े चिन्तासे व्याकुल दीखते हैं। आप इस समय कहाँसे आ रहे हैं तथा कहाँको जा रहे हैं ॥ २५ ॥ इस समय आप इस प्रकार उदासीन

प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः सह ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि भक्तिपुष्टं कथानकम् ॥ शुकेन मम यत्प्रोक्तं रहः शिष्यं विचार्य च ॥ २३ ॥ एकदा तु विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः॥ सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥ २४ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ कथं ब्रह्मन्दीनमुखः कुतश्चिन्तापरो भवान् ॥ त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥२५॥ इदानीं शून्यचित्तोऽसि गतवित्तो यथा जनः ॥ तवेदं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ॥ पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा ॥ २७ ॥ हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धम् ॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः ॥ २८ ॥ नापश्यं कुत्रचिच्छर्म मनः सन्तोषकारकम् ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताधुना ॥ २९ ॥ सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ॥ उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥ ३० ॥ मन्दाः सुमन्दमतयो मदभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥ ३१ ॥ तरुणीप्रभुता गेहे शालको बुद्धिदायकः ॥ कन्याया विक्रयो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ॥३२॥ आश्रमा यवनैरुद्धास्तीर्थानि सरितस्तथा ॥ देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥३३॥

अर्थात् खिन्न मालूम होते हैं, जिसप्रकार धनके नाश हो जानेसे लोभी मनुष्य। आप जैसे विरक्त महात्माओंको इस प्रकार चिन्ता करना उचित नहीं है आप मुझसे इसका कारण शीघ्र बतलाइये ॥ २६ ॥ यह सुनकर श्रीनारदजीने कहा—हे भगवन्, हम सर्वश्रेष्ठ समझकर पृथ्वीपर गये ॥ २७ ॥ वहाँ पुष्कर, गोदावरी, प्रयाग, काशी, हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबन्ध, रामेश्वर आदि अनेक तीर्थों में घूमते फिरे ॥ २८ ॥ किन्तु मनको शान्ति कहीं नहीं मिली, कारण कि अधर्मके मित्र कलियुगने सम्पूर्ण पृथ्वीको व्याप्त कर लिया है ॥ २९ ॥ सत्य दान, तप, पवित्रता, दया आदि सद्गुणोंका नाम भी नहीं रहा। संसारके समस्त प्राणी उदर-परायण हो गये हैं तथा नीच प्रकृतिवाले और छल-कपटपूर्वक व्यवहार करने वाले हो गये हैं ॥३०॥ अतएव पापके आधिक्यसे मन्द बुद्धि तथा मन्द शरीरवाले और मन्द भाग वाले होनेके कारण रातदिन उपद्रवोंसे आक्रान्त रहते हैं तथा कलियुगमें जो साधु लोग हैं वे भी साधारण प्राणियोंकी तरह पाखण्डी हो गये हैं और विरक्त संयासी हैं वे लोग भी गृहस्थोंके तुल्य मकान बनाकर विषयासक्त हो गये हैं ॥ ३१ ॥ कलियुगमें सबके घर स्त्री ही प्रधान है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रत्येक कार्यमें सलाह देने वाला साला ही प्रधान है, तथा लोभके कारण लोग अपनी कन्या बेचनेका भी संकोच नहीं करते हैं और घरमें स्त्री तथा पुरुषमें झगड़ा होता रहता है ॥ ३२ ॥ आश्रम तीर्थ गङ्गादि नदियों तथा देवस्थानोंमें मुसलमान लोग रहने लग गये हैं और कितने ही तीर्थोंको नष्ट कर दिया है ॥ ३३ ॥ योगी, सिद्ध, ज्ञानी तथा सत्कर्म करने वाला प्राणी कोई नहीं मिला। कलियुगकी दावाग्निने सम्पूर्ण साधनों को भस्म कर डाला है ॥ ३४ ॥ इस कलिकालमें सकल प्राणी अन्न बेचने लग गये हैं तथा ब्राह्मण लोग वेदको बेचने लगे हैं और स्त्रियाँ अपना सतीत्व खोकर जीविका चला रही हैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कलियुगके दोषोंको देखता हुआ तथा पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ यमुनाजीके किनारे आया, जहाँ पर श्रीहरिने अपनी लीला की है ॥ ३६ ॥ वहाँपर मैंने एक आश्चर्यपूर्ण घटना देखी। हे महर्षियो, आप लोग उसे ध्यानपूर्वक सुनिये। एक तरुण अवस्थावाली स्त्री वहाँपर बैठी थी उसका चित्त किसी चिन्तासे खिन्न हो रहा था॥ ३७ ॥ उसके समीपमें दो वृद्धावस्थाके पुरुष पड़े थे उनकी थोड़ी थोड़ी श्वास चल रही थी मानो वे बेहोश थे। वह स्त्री उन लोगोंकी सेवा कर रही थी,

न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः ॥ कलिदावानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥३४॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः ॥ कामिन्यः केशशूलिन्यः संभवन्ति कलाविह ॥ ३५ ॥ एवं पश्यन्कलेर्दोषान्पर्यटन्नवनीमहम् ॥ यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३६ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३७ ॥ द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ ॥ शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदन्ती च तयोः पुरः ॥ ३८ ॥ दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः ॥ वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा दूरात् गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् ॥ मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला सा ब्रवीद्वचः ॥४०॥ बालोवाच ॥ भो भो साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ॥ दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाऽघहरं परम् ॥ ४१ ॥ बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्भविष्यति ॥ यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥४२॥ नारद उवाच ॥ काऽसि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ॥ वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥४३॥ बालोवाच ॥ अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ॥ ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥४४॥ गङ्गाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समा-

उनको जगाती थी और उनके समीपमें बैठी हुई रो रही थी ॥ ३८ ॥ अपने शरीरकी रक्षावाले को दसो दिशाओंमें देखती थी सैकड़ों स्त्रियाँ सेवा करती थीं समझाती थीं और बार-बार हवा करती थीं ॥ ३९ ॥ उसको दूरसे ही देखकर आश्चर्यसे उसके पास मैं गया। मुझे देखकर वह उठकर खड़ी हो गई तथा विह्वल वाणीसे मुझसे कहने लगी ॥ ४० ॥ श्रीभक्तिने कहा—हे महात्मन्, कृपाकर कुछ समय ठहरकर मेरी चिन्ता दूर कीजिए, क्योंकि आपका दर्शन संसारके पापों तथा तापोंसे छुड़ानेवाला है ॥ ४१ ॥ मुझे आशा है कि प्रायः आपके वचनामृतसे मुझे शान्ति प्राप्त होगी। जब मनुष्योंके पूर्व जन्मका अथवा इस जन्मका भाग्योदय होता है तब आप जैसे महात्माओंके दर्शन होते हैं ॥ ४२ ॥ इतना सुनकर श्रीनारदजीने कहा—हे सुन्दरि, तुम कौन हो, और ये दोनों कौन हैं? तुम्हारे साथ कमलके समान नेत्रवाली ये स्त्रियाँ कौन है? देवि, तुम अपने दुःखका कारण कहो ॥ ४३ ॥ श्रीभक्तिने कहा—हे मुने, मैं भक्ति हूँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और ये दोनों मेरे पुत्र हैं। इनका नाम ज्ञान तथा वैराग्य हैं। ये दोनों कलियुगके प्रभावसे बचपनमें ही वृद्धावस्थाको प्राप्त हो गये हैं ॥ ४४ ॥ और ये स्त्रियाँ गङ्गा यमुना आदि सरिताएँ हैं। ये सब मेरी सेवामें प्रस्तुत हैं, तो भी मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है। यद्यपि देवता मेरे विषयमें बड़ा परिश्रम कर रहे हैं, सेवामें लगे हुए हैं, किन्तु मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है, यह सब कलिका ही प्रभाव है ॥ ४५ ॥ हे तपोधन, इस समय आप सावधान होकर मेरी बात सुनिये, क्योंकि आपका चित्त बड़ा दयालु है। मेरी बात बड़ी विस्तृत तथा विचित्र है। उसका श्रवण कर कुछ मुझे शान्ति प्रदान कीजिये ॥ ४६ ॥ हे महर्षे, मेरा जन्म द्रविडदेशमें हुआ, कर्णाटकदेशमें मेरी वृद्धि हुई अर्थात् उन्नति हुई तथा कहीं-कहीं महाराष्ट्रमें भी उन्नति हुई, किन्तु गुजरात देशमें मेरी बड़ी अवनति हुई अर्थात् वहाँ जाकर मैं बूढ़ी हो गई ॥ ४७ ॥ वहाँपर घोर कलियुगके प्रभावके कारण पाखण्डियोंने मुझे तथा मेरे अङ्गोंको खण्डित

गताः ॥ तथापि न च मे श्रेयः सेवितायाः सुरैरपि ॥४५॥ इदानीं शृणु मद्वार्तां सचिन्तस्त्वं तपोधन ॥ वार्ता मे विततास्त्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४६ ॥ उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥४७॥ तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गता ॥ दुर्बलाऽहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥ ४८ ॥ वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी । जाताऽहं युवती सम्यक् प्रेष्ठरूपा तु सांप्रतम् ॥ ४९ ॥ इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ॥ इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५० ॥ जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुःखिता ॥ साहं तु तरुणी तस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५१ ॥ त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ॥ घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५२ ॥ अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ॥ वद योगिनिधे धीमन् कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ॥ न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ नारद उवाच ॥ शृणुष्वावहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥ ५५ ॥ तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ जना

कर दिया है, इसीकारण मैं पुत्रके सहित दुर्बल हो गई हूँ, मेरे सारे अङ्ग शिथिल हो गये हैं ॥ ४८ ॥ किन्तु इस परम पवित्र वृन्दावनके संयोगसे मेरा शरीर पुनः नूतन हो गया है और मेरा सौन्दर्य बढ़ गया है, जो भक्तोंके मनको हरनेवाला है ॥ ४९ ॥ ये हमारे दोनों पुत्र श्रमके कारण यहाँ सो रहे हैं। इनको बड़ा क्लेश है, इस कारण अब हमलोग इस स्थानको त्यागकर विदेशको चले जायँगे ॥ ५० ॥ हे मुने दोनों पुत्र वृद्धावस्थाको प्राप्त हो चुके हैं, इसी कारण मुझे बड़ा दुःख है। हे भगवन्, मैं किस कारणसे युवती हूँ तथा ये दोनों मेरे पुत्र क्यों अकालमें ही वृद्ध हो गये, इसका कारण कहिये ॥ ५१ ॥ जब हम तीनों एक साथ रहते हैं, तब यह विपरीत क्यों हुआ ? माताको वृद्धा होना तथा पुत्रोंको युवा होना तो लोकमें घटता है ॥ ५२ ॥ इसी कारण मैं आश्चर्यचकित होकर चिन्ता कर रही हूँ। इसीलिये हे योगसागर, इस विषयमें आप कहिये, क्या कारण है ॥ ५३ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे निष्पापे, मैं ज्ञानके द्वारा विचारकर देखता हूँ कि इसमें क्या कारण है, तुम किसी प्रकारका खेद मत करो श्रीहरि सब कल्याण करेंगे ॥ ५४ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, एकक्षणमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

योगके द्वारा सब वृत्तान्त जानकर नारदजीने कहा—हे सुन्दरि, सावधान होकर सुनो, यह महाघोर कलिकाल है ॥ ५५ ॥ इसीसे सदाचारका लोप हो गया है तथा योगके उपाय और नाना प्रकारकी तपश्चर्या लुप्त हो गई है। मनुष्य प्रायः पापाचरणके द्वारा असुरोंकी तरह आचरण करने लग गये हैं। शठतामें किसीप्रकारकी त्रुटि नहीं रखते ॥ ५६ ॥ इस कलियुगमें प्रायः सज्जन दुःखी और दुष्ट लोग सुखी रहेंगे, किन्तु बुद्धिमान् लोग धैर्य धारण करेंगे। वही सच्चे धैर्यवान् तथा वही सच्चे पण्डित होंगे ॥ ५७ ॥ अब यह मर्त्यलोककी भूमि दर्शन करने लायक तथा स्पर्श करने लायक नहीं रही। अति पापाचरणके द्वारा शेष भगवान्‌के ऊपर बोझ बढ़ता जा रहा है। प्रतिवर्ष मंगलकी विदाई संसारसे हो रही है ॥ ५८ ॥ ज्ञान और वैराग्य जो तुम्हारे पुत्र हैं इनके सहित तुम्हें भी कोई नहीं देख सकेगा। विषयानुरागी प्राणियोंने तुम्हारी उपेक्षा कर दी है, इसीसे तुम्हारी पुत्रोंके सहित वृद्धावस्था आ गई है

अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ॥ ५६ ॥ इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ॥ धत्ते धैर्यं तु यो धीमान् स धीरः पण्डितोऽथवा ॥ ५७ ॥ अस्पृश्यानवलोक्येयं शेषभारकरीधरा ॥ वर्षे वर्षेक्रमाज्जाता मङ्गलं नाभिदृश्यते ॥ ५८ ॥ न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति सांप्रतम् ॥ उपेक्षिताऽनुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता ॥ ५९ ॥ वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ॥ धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६० ॥ अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ॥ न किञ्चिदात्मसुकेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥६१॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ॥ प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६२ ॥ करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ॥ इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥६३॥ नारद उवाच ॥ यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु ॥ सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥६४॥ यदा मुकुन्दो भगवान् क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ॥ तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ६५॥ दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ॥ न मया मारणीयोऽयं सारङ्ग इव सारभुक् ॥ ६६ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात्

॥ ५९ ॥ किन्तु इस वृन्दावनके संयोगसे जो तुम्हारा नवीन स्वरूप हो गया है इसका कारण यह है कि यहाँपर भक्तिका बाहुल्य है। इस वृन्दावनको धन्यवाद है कि जहाँपर भक्ति नृत्य कर रही है ॥ ६० ॥ किन्तु यहाँपर ज्ञान और वैराग्यका ग्राहक न होनेसे इन दोनोंकी जरावस्था दूर नहीं हो रही है। वृन्दावनके संयोगसे इनकी आत्मा को कुछ शान्ति प्राप्त हुई है। इसलिए इन्हें कुछ निद्रा आरही है ॥ ६१ ॥ इतना सुनकर भक्तिने कहा——हे महर्षे, धर्मात्मा राजा परीक्षित्‌ने कलियुगको स्थान क्यों दिया तथा कलियुगके प्रवृत्त होने पर संसारका समस्त सार कहाँ चला गया ॥ ६२॥ अनन्त करुणासागर श्रीहरि अधर्मको कैसे देखते हैं। ये हमारे मनमें बड़ा सन्देह है। इसको इसको आप दूर कीजिये आपके बचनामृतसे हमको बड़ी शान्ति प्राप्त हुई है ॥ ६३ ॥ श्रीनारदजीने कहा–हे सुन्दरि, जो तुमने मुझसे प्रश्न किया है उसका उत्तर प्रेमसे श्रवण करो। मैं सम्पूर्ण वृत्तान्त कहूँगा, जिससे तुम्हारा मोह दूर हो जायगा ॥६४॥ जिस समय श्री भगवान् कृष्णचन्द्र इस पृथ्वीको छोड़कर गोलोकको चले गये, उसी दिनसे सम्पूर्ण साधनोंमें विघ्न करनेवाला कलियुग आ गया ॥ ६५ ॥ जब राजा परीक्षित्‌ने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिग्विजयमें उसे देखा, तब वह दीनके समान उनकी शरणमें आ गया। उस समय राजाने सोचा कि इसको नष्ट नहीं करना चाहिए, किन्तु भ्रमरके समान इनका सार ग्रहण करना चाहिए ॥ ६६ ॥ जो फल तपस्या, योग, समाधि आदिसे प्राप्त नहीं होता वह फल कलियुगमें भगवान्के नामकीर्तनसे प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ यद्यपि यह कलियुग पापोंका घर है तथापि एकही गुण इसमें देखकर राजा परिक्षित्ने कलियुगमें होनेवाले प्राणियोंके सुखके लिये इसे रहने दिया ॥ ६८ ॥ मनुष्योंके कुकर्माचरणसे सम्पूर्ण सार इस समय निकल गया है। जिससे पृथ्वीमें पदार्थ बीजसे रहित छिलकेके समान स्थिर हैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने पैसेके लोभसे भागवतकी कथा घर-घरमें प्रत्येक मनुष्यमें फैला दी है। जिससे कथाका सार चला गया ॥ ७० ॥ अत्यन्त उग्र कर्मोंके रहनेवाले नास्तिक और पापी मनुष्य भी तीर्थोंमें रहने लग गये हैं। इससे तीर्थोंका सार चला गया है ॥ ७१ ॥ काम, क्रोध, लोभ तथा तृष्णाके द्वारा व्याकुल

॥ ६७ ॥ एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ॥ विष्णुरातः स्थापितवान्कलिजानां सुखाय च ॥ ६८ ॥ कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥ पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ६९ ॥ विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ॥ कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥७०॥ अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ॥ तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥ कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः ॥ तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः ॥ ७२ ॥ मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ॥ शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥ ७३ ॥ पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ॥ पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७४ ॥ नहि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरःसरा ॥ एवं प्रलयतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥ ७५ ॥ अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ॥ अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७७ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ॥ साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७८ ॥ जयति जयति मायां यस्य काया-

चित्तवाले भी तपस्या कर रहे हैं, इसलिये तपका सार नष्ट हो गया है ॥ ७२ ॥ मनकी चंचलताके कारण तथा लोभ, दम्भ, पाखण्ड आदिके आश्रयण करनेसे और शास्त्रके अभ्यास न होनेसे ध्यान तथा योगका भी फल नष्ट हो गया ॥ ७३ ॥ आजकल पण्डित लोग पशुओंकी तरह विषयाशक्त हो गये हैं। पुत्रके उत्पन्न करनेमें तो ये बड़े कुशल हैं। तथा अपनेको संसार बन्धनसे छुड़ानेमें असमर्थ हैं ॥ ७४ ॥ आजकल सम्प्रदायानुसार वैष्णवधर्म कहीं दृष्टि गोचर नहीं होता। इस प्रकार प्रत्येक स्थानमें वस्तुओंका सार नष्ट हो गया है। ७५ ॥ यह तो युगका धर्म है। इससे इसका प्रचार अधिक है, इसलिए भगवान् समीपमें रहते हुए भी कलियुगके अत्यांचारको सह रहे हैं ॥ ७६ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, इस प्रकार नारदजीके वचनको सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ और नारदजीसे फिर जो उसने कहा, पुनः बोली वह सब तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥ ७७ ॥ हे महर्षे, तुमको धन्यवाद है। तुम्हारा आगमन मेरे बड़े भाग्यसे हुआ है, क्योंकि साधुओंका दर्शन सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होता है ॥ ७८ ॥ जिन आपके वचनोंको मानकर कयाधुके पुत्र प्रह्लादने भगवान् की माया को जीत लिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा सुनितिका पुत्र ध्रुव भी आपके वचनोंको धारण करके ध्रुवपदको प्राप्त हो गया, ऐसे सबके कल्याण करनेवाले ब्रह्माके पुत्र आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ ७९ ॥

धवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥ ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि ॥७९॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

पहले अध्यायका सार—शौनकजी ने कहा—हे सूतजी महाराज, त्रिभुवनमें सदा विचरण करनेवाले नारदजीको सप्ताह सुननेकी बुद्धि कैसे हुई ? सूतजीने कहा-हे ऋषियो, इस विषयमें एक सुन्दर कहानी है, मैं उसे सुनाता हूँ चारों ओर घूमते हुए बदरिकाश्रममें पहुँचे हुए नारदजीसे सनकादि ऋषियोंने उनकी उदासीका कारण पूछा। नारदजीने कहा—हे महात्माओ, आजकल सारे संसारमें कलिका साम्राज्य है। सभी अपने-अपने धर्मसे अलग हो गये हैं। एक दिन संसारका पर्यटन करता हुआ मैं यमुनाके तटपर पहुँचा। वहां एक स्त्री दो वृद्ध पुरुषोंके समीपमें बैठकर रो रही थी और बहुतसी स्त्रियाँ उसे समझा रही थीं। निकट जाकर मैंने रोनेका कारण पूछा। उसने कहा—भगवन्, मैं भक्ति हूँ, ये दोनों वृद्ध मेरे पुत्र हैं, जो कलियुगके प्रभावसे वचपनमें ही वृद्ध हो चले हैं, इनका नाम है—ज्ञान और वैराग्य। ये स्त्रियाँ सब गंगादि पवित्र नदियाँ हैं। हे भगवन्, आप दयासागर हैं, मैं युवती हूँ और ये मेरे दोनों पुत्र वृद्ध क्यों हो गये हैं ? नारदजीने योगद्वारा सारी बातें जानकर कहा-हे मनोरमे, घोर कलि आ गया है। अतः अब सदाचारका लोप हो गया है विषयासक्त पुरुषोंने तुम्हारी उपेक्षा कर दी है चूँकि इस वृन्दावनमें भक्तिका प्रावल्य है अतः तुम तो युवती बनी हुई हो, लेकिन ज्ञान और वैराग्यका कोई ग्राहक न होनेसे वे तुम्हारे बच्चे वृद्ध हो गये हैं। भक्तिने कहा—भगवन्, ऐसे कलियुगके लिये परीक्षित्ने स्थान क्यों दिया ? नारदजीने कहा-हे सुन्दरि, और युगोंकी अपेक्षा कलिमें एक सबसे बढ़कर गुण यह है कि इस युगमें भगवान्के नामकीर्तनसे ही मुक्त हो जाती है, और युगोंमें योग आदिसे भी कठिनतासे प्राप्त होती है, इसीसे राजाने इसे रहने दिया। हे सुन्दरि, इस युगमें अब किसीमें भी सार नहीं है। जिसे जो करना चाहिए वह वह न कर दूसरेका धर्म करने लग गया। मनुष्य पशुओंकी नाईं विषय करने लग गये हैं। हे सुन्दरि, चूँकि यह युगका धर्म है अतः भगवान् सब कुछ देखते हुए चुपचाप सहन करते चले जा रहे हैं। सूतजीने कहा-हे ऋषियो, नारदकी ऐसी बात सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ, वह आश्चर्यमग्न हो गई। नारदको धन्यवाद दे रही उसने कहा-भगवन्, आप का दर्शन सर्वसिद्धि प्रदान करनेवाला है। महात्मन्, जिसके वचनका श्रवणकर ध्रुव और प्रह्लाद तर गये ऐसे आपको मेरा कोटिशः प्रणाम है पहला अध्याय समाप्त *

* अथ द्वितीयोऽध्यायः *

नारद उवाच ॥ वृथा खेदायसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ॥ श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥ द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ॥ पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥ २ ॥ त्वं तु भक्ते प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ॥ त्वयाहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥ सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ॥ कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥ इति

※ श्री नारद जी के बहुत उपायों द्वारा भी कुछ न होने से बदरिकाश्रम में तपस्या करने के समय सनकादिकों को देखना आदि वर्णन ※

नारदजीने कहा—हे सुन्दरि, तुम व्यर्थ खेद कर रही हो, इसप्रकार चिन्तायुक्त क्यों हो ? भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका स्मरण कर, तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा ॥१॥ जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अत्याचारी कौरवोंके सन्तापसे सन्तप्त द्रौपदीकी रक्षा की तथा नानाप्रकारकी आपत्तियोंसे गोपियोंकी रक्षा की है वे भगवान् कहीं चले नहीं गये हैं ॥ २ ॥ तुम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तो उसकी प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय उसकी प्रिया हो। तुम्हारे बुलानेसे तो भगवान् वैकुण्ठ छोड़कर नीचोंके भी घरमें आ जाते हैं ॥ ३ ॥ यद्यपि सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीन युगोंमें ज्ञान तथा वैराग्य मुक्तिके साधन थे, किन्तु कलियुगमें तो केवल ब्रह्म सायुज्य मुक्ति देनेवाली एकमात्र भक्ति ही है ॥ ४ ॥ इसप्रकार निश्चय करके चिदानन्द श्रीहरिने तुम्हें बनाया, जो श्रीहरि परमानन्द चैतन्यकी मूर्ति हैं ॥ ५ ॥ एक बार हाथ जोड़कर तुमने भगवान्‌से पूछा था कि हे भगवन्, हम क्या आपकी सेवा करें। यह सुनकर श्रीभगवान् कृष्णने तुम्हें आज्ञा दी कि तुम हमारे भक्तोंका पालन करो ॥ ६ ॥ तुमने श्रीभगवान्‌को स्वीकार किया। तब भगवान् तुम्हारे ऊपर बड़े प्रसन्न हुए। तबसे श्रीहरिने मुक्तिरूपी दासी तथा ज्ञान और वैराग्य नामक दो सेवक दिये ॥ ७ ॥ तबसे तुम वैकुण्ठमें अपने स्वरूपसे भक्तोंका पोषण करती हो तथा पृथ्वीमें भक्तिकी पुष्टिके लिये तुमने अपना छायारूप धारण किया है ॥ ८ ॥

निश्चित्य चिद्रूपः सरूपां त्वां ससर्ज ह ॥ परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥ बद्धाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ॥ त्वां तदाज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ॥ भूमौ भक्तिविपोषाय छायारूपं त्वया कृतम् ॥ ८ ॥ मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥ पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ॥ अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥ ६ ॥ मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ॥ कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥ ९ ॥ कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ॥ त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेवसा ॥ १० ॥ स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ॥ पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षिते ॥ ११ ॥ उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ॥ तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥ १२ ॥ कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ॥ तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥ अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ॥ तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये ॥१४॥ तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ॥ पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयाः कृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥ येषां चित्ते वसेद्भक्तिः

अनन्तर तुम ज्ञान और वैराग्यको लेकर मर्त्यलोकमें आई और सत्ययुगसे लेकर द्वापर पर्यन्त बड़े आनन्दसे रही। किसी प्रकारका तुम्हें कष्ट नहीं हुआ ॥ ९ ॥ कलियुगके आनेसे पाखण्ड रोगसे पीड़ित होकर तुम्हारी आज्ञा पाकर मुक्ति क्षयको प्राप्त हो गई अर्थात् वैकुण्ठको चली गई ॥ १० ॥ अवसर आनेपर जब तुम बुलाती हो तब आ जाती है। ज्ञान और वैराग्यको तो तुमने अपना पुत्र बनाकर यहींपर अपने पासहीमें रखा है ॥ ११ ॥ कलियुगमें उपेक्षाके कारण तुम्हारे पुत्र दुर्बल तथा वृद्ध हो गये हैं, तथापि तुम इसकी कोई चिन्ता न करो। इसके विषयमें हम उपाय सोच रहे हैं ॥ १२ ॥ हे वरानने, कलियुगके सदृश कोई युग नहीं है, इसलिये इस युगमें तुम्हारी स्थापना मैं घर-घर करूँगा तथा प्रत्येक मनुष्यमें करूँगा ॥१३॥ अन्यधर्मोंका तिरस्कार करके तथा भगवत्सम्बन्धी उत्सवोंका प्रसार करके तुम्हारा प्रचार करूँगा। इसप्रकार तुम्हारा यदि प्रचार न करूँ, तो मैं श्रीहरिका दास न कहाऊँ, यह मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ ॥ १४ ॥ तुमसे युक्त पापात्मा जीव भी इस कलियुगमें निर्भय होकर श्रीहरिके मन्दिरमें जा सकेंगे ॥ १५ ॥ जिन भक्तोंके हृदयमें प्रेमरूपा भक्तिका निवास होगा, वे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वप्नमें भी यमराजके दर्शन न कर सकेंगे ॥ १६ ॥ प्रेत, पिशाच, राक्षस, असुर आदि कोई भी भक्तोंको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १७ ॥ श्रीहरि तपस्या वेदपाठ तथा ज्ञानादि साधन के द्वारा उतने शीघ्र नहीं प्राप्त होते हैं, जितने शीघ्र भक्तिके द्वारा प्राप्त होते हैं। इसके विषयमें यदि प्रमाण चाहते हो, तो व्रजकी गोपियाँ ही इसमें प्रमाणभूत हैं ॥ १८ ॥ मनुष्यको करोड़ों जन्मोंके बाद भक्तिमें प्रेम उत्पन्न होता है, इसलिये कलियुगमें भक्ति ही एकमात्र साधन है। भक्तिके द्वारा ही भगवत्साक्षात्कारतक हो जाता है ॥ १९ ॥ जो लोग भक्तिसे द्रोह करते हैं उनका ठिकाना तीनों लोकमें कहीं नहीं लगता। प्राचीनकालमें महर्षि दुर्वासाजीने भक्तिसे द्रोह किया था, इसलिये वह बड़े भारी कष्टको प्राप्त हुए थे ॥ २० ॥ इसलिये व्रत, तीर्थ सेवन, योग, यज्ञ, आदिमें परिश्रम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मुक्ति देनेके लिये एकमात्र भक्ति ही समर्थ है॥ २१ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, इसप्रकार

सर्वदा प्रेमरूपिणी ॥ न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥ १६ ॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वा सुरोऽपि वा ॥ भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥ न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ॥ हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥ १८ ॥ नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते ॥ कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः ॥ १९ ॥ भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये॥ दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तविनिन्दकः ॥ २० ॥ अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ॥ अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥ सूत उवाच॥ इति नारदनिर्णीतं स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ॥ सर्वाङ्गपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ अहो नारद धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ॥ न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥२३॥ कृपालुना त्वया साधो मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ॥ पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥२४॥ सूत उवाच॥ तस्या वचः समाकर्ण्य कारुण्यं नारदो गतः॥ तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥२५॥ मुखं संयोग्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन् ॥ ज्ञानं प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ॥ बोध्यमानौ तदा तेन कथञ्चिच्चोत्थितौ बलात् ॥ २७ ॥ नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ ॥ बकवत्पतितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमाङ्गकौ ॥ २८ ॥ क्षुत्क्षामौ तौ

श्री नारदजीके द्वारा वर्णित अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिको बड़ा आनन्द हुआ और वह पूर्ववत् शरीरसे पुष्ट होकर श्री नारदजीसे बोली ॥ २२ ॥ हे नारदजी, मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ, आपको धन्यवाद है। मुझे मालूम हो गया कि मेरे ऊपर आपका अचल प्रेम है। आजसे मैं आपको कभी न छोड़ूँगी। बल्कि आपके हृदयमें सर्वदा निवास करूँगी॥ २३ ॥ हे महात्मन्, आप बड़े दयालु हैं, आपने क्षणभरमें मेरी सम्पूर्ण बाधा दूर कर दी है, किन्तु भगवन्, हमारे इन दोनों पुत्रोंमें चेतना नहीं है अर्थात् वे दोनों बेहोश हैं, इसलिये कृपाकर इन दोनोंको जगा दीजिये ॥ २४ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, इसप्रकार दीनतायुक्त भक्तिके वचनों को सुनकर श्रीनारदजीको बड़ी दया आ गई। अपने हाथोंसे उनका स्पर्श करते हुए उन्हें जगाना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥ उनके कानके समीप अपना मुख करके उच्च स्वरसे नारदजीने कहा—हे ज्ञान तथा हे वैराग्य शीघ्र जागो ॥ २६ ॥ जब श्री नारदजीने वेद वेदान्त तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गीतापाठकी घोषणा की तब किसी प्रकार बड़े कष्टसे वे दोनों उठे ॥ २७ ॥ उनको नेत्रोंसे दीखता नहीं था। तथा आलस्याधिक्यसे वे बार-बार जम्भाई ले रहे थे। बक पक्षीकी तरह उनके बाल सफेद हो गये थे तथा सूखे काठकी तरह उनके हाथ पैर अकड़ गये थे ॥ २८ ॥ भूखसे व्याकुल तथा दुर्बल वे दोनों चारों ओर देखकर पुनः शयन करने लगे। यह देखकर ऋषिको बड़ी चिन्ता हुई कि अब मुझे क्या करना चाहिए ॥ २९ ॥ अहो, आश्चर्य, क्या कारण है कि इनको निद्रा आती है। इनका बुढ़ापा बढ़ता ही जाता है। हे शौनक, इसप्रकार चिन्ता करते हुए श्रीनारदजीने श्रीहरिका स्मरण किया ॥ ३० ॥ उसी समय आकाशवाणी हुई हे नारदजी, तुम खेद मत करो, तुम्हारा उद्योग सफल होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ३१ ॥ हे नारद, तुम इसके लिए सत्कर्मका अनुष्ठान करो। वह सत्कर्म साधुओंमें भूषण जो साधु हैं वे तुमसे कहेंगे ॥ ३२ ॥ सत्कर्म करनेपर इन दोनोंकी निद्रा तथा वृद्धता दूर हो

निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ॥ ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च ॥ २९ ॥ अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ॥ चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३० ॥ व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ॥ उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥३१॥ एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ॥ तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः॥३२॥ सत्कर्मणि कृते तस्मिन्सनिद्रा वृद्धताऽनयोः ॥ गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥ इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ॥ नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अनयाकाशवाण्याऽपि गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥ किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः ॥३५॥ क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम् ॥ मयात्र किं प्रकर्तव्यं यदुक्तं व्योमभाषया ॥३६॥ सूत उवाच ॥ तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः ॥ तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७ ॥ वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किञ्चिन्निश्चित्य नोच्यते ॥ असाध्यं केचन प्राचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥ ३८ ॥ मूकीभूतास्तथाऽन्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः । हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः ॥ ३९ ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥

जायगी तथा भक्तिका प्रसार उसी समय सर्वत्र हो जायगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार स्पष्टरूपसे वह आकाशवाणी सब लोगोंको सुनाई दी। नारदजी बड़े विस्मयको प्राप्त हुए और कहने लगे यही तो हमने अच्छी तरहसे नहीं समझा ॥ ३४ ॥ श्री नारदजीने कहा—इस आकाशवाणीने भी गुप्त रूपसे बतलाया है। भला वह कौन साधन है जिसके अनुष्ठानसे इन दोनोंका कार्य हो जायगा ॥ ३५ ॥ वे सन्त लोग कहाँ होंगे और किस प्रकार साधन देंगे जो आकाशवाणीने कहा है। इस विषयमें हमें क्या करना चाहिए ॥ ३६ ॥ श्री सूतजीने कहा— हे शौनकजी, श्रीनारदजी उन दोनोंको वहीं बैठाकर देशाटनको निकल गये। प्रत्येक तीर्थमें जाकर तथा मार्गमें ऋषियोंसे साधनके विषयमें प्रश्न करते फिरे ॥ ३७ ॥ वृत्तान्त तो सब लोगोंने सुना, किन्तु निश्चित किसीने कुछ नहीं कहा। कुछ लोगोंने कहा कि यह कार्य तो असाध्य है। किन्हीं लोगोंने दुर्बोध बतलाया ॥ ३८ ॥ कितने लोग तो प्रश्न सुनकर चुप हो गये और कितने लोग भाग गये उस समय तीनों लोकमें विस्मय करने वाला हाहाकार मच गया ॥ ३९ ॥ जब वेद तथा वेदान्तके घोषसे और गीतापाठसे जगानेपर भक्ति, ज्ञान तथा विराग ये तीनों नहीं उठ सके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ४० ॥ तब और दूसरा कोई उपाय नहीं है। योगी नारद भी जिसे नहीं सके, तो दूसरे मनुष्य भला कैसे समझ सकते हैं? इस प्रकार पूछे गये ऋषियोंसे जब निणय नहीं हो सका ॥ ४१, ४२ ॥ तब चिन्तायुक्त हो नारदजी बदरिकाश्रम आये। और यह निश्चय किया कि अब मैं यहींपर तपस्या करूँगा ॥ ४३ ॥ इतनेमें ही करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशयुक्त सनकादि मुनियोंको आते देखा ॥ ४४ ॥ नारदजीने कहा इस समय बड़े भाग्यसे आपलोगोंका समागम हुआ। इसलिये आपलोग कृपाकर कहिए, जो मैं पूछता हूँ ॥ ४५ ॥ क्योंकि आपलोग योगी बुद्धिमान् और सम्पूर्ण शास्त्रोंके जानने वाले हैं। आप लोगोंकी अवस्था तो पाँच वर्षकी ही रहती है, किन्तु पूर्वजोंके भी पूर्वज आपलोग हैं ॥ ४६ ॥ आपका सदा वैकुण्ठमें वास रहता है और आपलोग भगवान्‌के कीर्तनमें तत्पर रहते हैं। लीलारूपी रसपानसे मत्त तथा कथामात्र ही आप लोगोंका जीवन है ॥ ४७ ॥ आप लोगोंके मुखमें हरिका नाम सदा रहता

भक्तिज्ञानविरागाणां नोद्‌दतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥४०॥ उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत् ॥४१॥ तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः ॥ एवं ऋषिगणैः पृष्टैर्निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥ ततश्चिन्तातुरः सोथ बदरीवनमागतः ॥ तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः ॥४३ ॥ तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ॥ कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः सङ्गमः स्थितः ॥ कुमारा वदतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ४५ ॥ भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः ॥ पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४६ ॥ सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्त्तनतत्पराः ॥ लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥४७॥ हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः ॥ अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते ॥ ४८ ॥ येषां भ्रूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा ॥ भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ ॥ ४९ ॥ अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह ॥ अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥ ५० ॥ अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ॥ अनुष्ठेयं कथं तावत्प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥ ५१ ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ॥ स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ॥ उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥५३॥ अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ॥ सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥ त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ॥ घटते

है। जिससेकी समयसे प्राप्त वृद्धावस्था आपलोगोंके ऊपर आक्रमण नहीं कर पाती ॥ ४८ ॥ पहले आपके भ्रूभङ्गमात्रसे भगवान्‌के द्वारपाल पृथ्वीमें गिर गये और आपलोगोंकी ही कृपासे पुनः स्वर्गको प्राप्त हो गये ॥ ४८ ॥ अहो मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आपलोगोंका यहाँ दर्शन हुआ अतः मुझ दीनके ऊपर आपलोग दया करें ॥ ५० ॥ जो आकाशवाणीने कहा है वह क्या साधन है? वह किस प्रकार किया जाय? सब विस्तारपूर्वक कहिए ॥ ५१ भक्ति, ज्ञान तथा विराग इन तीनोंको सुख कैसे मिलेगा और सम्पूर्ण वर्णोंमें इनकी स्थापना कैसे होगी? ये सब बातें प्रयत्नपूर्वक कहिए ॥ ५२ ॥ तब कुमार कहने लगे कि हे देवर्षे, चिन्ता मत करो चित्तमें हर्ष लाओ। यहाँपर पहलेसे ही सुखपूर्वक करने योग्य उपाय हैं ॥ ५३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अहो नारद, तुम धन्य हो, विरक्तोंके शिरोमणि तथा कृष्णके भक्तोंमें अग्रगण्य तथा योगमें सूर्यके समान हो ॥ ५४ ॥ भक्तिका अनुशरण करने वाले तुम्हारे विषयमें आश्चर्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि भगवान्के भक्तोंको भक्तिकी स्थापना करना योग्य ही है ॥ ५५ ॥ इस संसारमें ऋषियोंने बहुतसे मार्ग प्रगट किये हैं, परन्तु वे सब परिश्रमसे प्राप्त होते हैं और प्रायः स्वर्गतत्वका फल ही उनसे मिलता है ॥ ५६ ॥ जो बैकुण्ठ प्राप्त करनेका मार्ग है वह गुप्त है उसका उपदेश करनेवाले पुरुष प्रायः भाग्यसे ही मिलते हैं ॥ ५७ ॥ जो तुमसे पहले आकाशवाणीने सत्कर्म कहा है वह मैं कहता हूँ, तुम प्रसन्न होकर स्थिर चित्तसे सुनो ॥ ५८ ॥ संसारमें जो द्रव्य-यज्ञ, तप-यज्ञ, योग यज्ञ तथा स्वाध्याय ज्ञान यज्ञादि हैं वे कर्मको सूचित करनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु जो सत्कर्मको कहनेवाला है वह ज्ञानियोंने ज्ञानयज्ञ ही बतलाया है। वह शुकदेवजीने भागवतमें कहा है ॥ ६० ॥ भागवतके शब्दसे भक्ति, ज्ञान तथा विराग इन

कृष्णदासस्य भक्तेः स्थापनता सदा ॥ ५५ ॥ ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ॥ श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥ ५६ ॥ वैकुण्ठसाधकः पन्थाः स तु गोप्यो हि वर्तते ॥ तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७ ॥ सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत्पुरा ॥ तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ॥ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः ॥ ५९ ॥ सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ॥ श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥ ६० ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ॥ व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥ प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ॥ कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥६२॥ ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ॥ प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदनिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ॥ तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥६५॥ छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ॥ विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥६६॥ कुमारा ऊचुः ॥ वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा ॥ अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलोन्नतिः ॥६७॥ अमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वदते यथा ॥ संभूय स पृथग्भूतः फले विश्व-

तीनोंका दुःख दूर हो जायगा। और इनको सुख प्राप्त होगा। जैसे सिंहके शब्दसे भेड़िये भाग जाते हैं वैसे ही भागवतके सुननेसे कलियुगके सम्पूर्ण दोष दूर हो जायंगे ॥ ६२ ॥ ज्ञान तथा वैराग्यसे युक्त प्रेमरसको बहानेवाली भक्ति प्रत्येक मनुष्यमें तथा प्रत्येक घरमें क्रीड़ा करेगी ॥ ६३ ॥ तब नारदजीने कहा—जब वेद वेदान्तके घोषसे तथा गीताके पाठसे जगानेपर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं उठे हैं ॥ ६४ ॥ तब भला भागवतके सुनानेसे कैसे उठ जायंगे, क्योंकि उस कथामें तो श्लोक तथा पद-पदमें वेदका अर्थ भरा पड़ा है ॥ ६५ ॥ आपलोग मेरे इस सन्देहको दूर कीजिये, बिलम्ब न कीजिये, क्योंकि आप शरणागतपर दया करनेवाले हैं ॥ ६६ ॥ तब कुमार कहने लगे, वेद और उपनिषद्के सारसे यह कथा तैयार की गई है। इससे यह उत्तम प्रतीत होती है। जैसे वृक्षका सार फल प्रतीत होता है ॥ ६७ ॥ वृक्षकी जड़से लेकर पत्तेतक रस रहता है परन्तु वह उतना स्वाद नहीं देता जितना पृथक् भूत फल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वाद देता है ॥ ६८ ॥ जैसे दूधमें रहता हुआ भी घी उतना स्वाद नहीं देता और वही पृथक् किया गया देवताओंको भी रस बढ़ाता है, ईखमें जैसे शर्करा रहती है, परन्तु पृथक् की हुई ही मीठी लगती है, वैसे ही यह भागवतकी कथा है ॥६९, ७०॥ यह भागवत नामका पुराण ब्रह्म सम्मत है भक्ति ज्ञान तथा वैराग्यके स्थापनार्थ प्रकाशित किया गया है ॥ ७१ ॥ वेद तथा वेदान्तमें निष्णात और गीताको बनानेवाले व्यासजीको जब मोहके कारण दुःख हुआ ॥७२॥ तब आपने उन्हें चतुःश्लोकी भागवत सुनाई थी, जिसके सुननेसे व्यासजी बाधारहित हो गये ॥७३॥ श्रीभागवतके सुननेसे सब शोक दुःखादि दूर हो जाते हैं। उसमें आपको विस्मय क्या है। जिस से कि आपने प्रश्न किया ॥७४॥ नारदजीने कहा—मैं आप महानुभावोंकी शरणमें हूँ, जिनका दर्शन सम्पूर्ण अशुभोंको नाश करता है, सांसारिक दुःखरूपी दावानलसे पीडित मनुष्योंका कल्याण करता है और भगवान् शेषके द्वारा गाई गई कथारूपी अमृतका जो पान करनेवाले हैं ॥७५॥ बहुत जन्मोंके पुण्यका उदय होनेपर जब मनुष्य सत्संग प्राप्त करता है तब कहीं जाकर अज्ञानके द्वारा किये गये मोह और मदरूपी अन्धकारको नाशकर ज्ञानका उदय होता है ॥७६॥

मनोहरः ॥ ६८ ॥ यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ॥ पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥ ६९ ॥ इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ॥ पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥ ७० ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥ ७१ ॥ वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि ॥ परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥७२॥ तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ॥ तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः॥७३॥ तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान्॥ श्रीमद्भागवतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ॥ निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ॥ अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

द्वितीय अध्याय का सार—श्रीनारदजीने कहा–हे सुन्दरि, कलियुगके सदृश कोई युग नहीं है। इस युगमें मैं तुम्हारी घर–घरमें स्थापना करूँगा। हे सुमुखि, इस युगमें योगादि कठिन तपस्याकी कोई आवश्यकता नहीं है एकमात्र मुक्ति देनेमें तुम्हीं समर्थ हो। श्रीसूतजीने कहा हे शौनकजी, यों नारदजीकी बातें सुन लेनेके बाद भक्तिने बहुत प्रसन्न होकर कहा–हे मुनीश्वर ! आप बड़े दयालु हैं। आपने मेरी सारी बाधाएँ दूरकर दी है किन्तु हे भगवन्, मेरे इन दोनों पुत्रोंको शीघ्र सचेतन बना दीजिये वे दोनों बेहोश हैं। यों भक्तिके दीन वचनों सुनकर नारदजी उनके कानके समीप बड़े जोरसे कहा–हे ज्ञान और वैराग्य' शीघ्र उठो, नारदजीने वेद-वेदान्त आदि पाठोंकी घोषणा की, फिर भी वे उठ न सके। उनकी ऐसी दशा देखकर नारदजीको आश्चर्य हुआ तब तक अकाशवाणी हुई–हे नारदजी, खेद न करो, तुम्हारी कामना पूरी होगी। सत्कर्मका अनुष्ठान करो। हे शौनकजी, उस आकाशवाणीको सुनकर नारदजी आश्चर्यमें डूब गये, अन्तमें निश्चय किया कि अन्यत्र चलकर ऋषियोंसे पूछ-ताछ करूँ कि सत्यकर्मके साधन क्या हैं ? यों विचारकर देशाटनको निकल गये और जहाँ-तहाँ साधुओंसे पूछते फिरे। किसीने ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया। आखिरकार घूमते-घूमते बदरिकाश्रममें आकर तपस्या करनेका विचार करही रहे थे कि सामने सनकादि मुनियोंको आते देखा। नारदजीने कहा—भगवन् ! बड़े भाग्यसे आप लोगोंसे भेंट हो गई। आप लोग तो पाँच वर्षके ही रहते हैं लेकिन हैं आप लोग पूर्वजोंके भी पूर्वज। आप लोगोंकी जिह्वापर हरिनाम सदा विराजमान रहता है। अतः आप लोग वृद्ध नहीं होते। आकाशवाणीके विषयमें तो सब बातें आप लोग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जानते ही हैं, मुझे उसके विषयमें कहिये । हे शौनक जी, कुमारोंने कहा—हे नारदजी, आप धन्य हो, चिन्ता मत करो, यहाँ सब साधन उपस्थित हैं आकाशवाणीने जो सत्कर्म करनेके लिये कहा है, सो मैं कहता हूँ; सुनो ! हे नारदजी, यों तो इस संसारमें अनेक तरहके यज्ञ बतलाये गये हैं । लेकिन उनमें सत्कर्मका साधन ज्ञानयज्ञ सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है, जिसका श्रीशुकदेवजीने भागवतमें वर्णन किया है । हे मुने, भागवत सुननेसे कलिके सब दोष दूर होजाते हैं । नारदजीने कहा—हे कुमारो, जब वेदान्तादिके दोष तथा गीता पाठसे वे ज्ञान और वैराग्य न जाग सके तो इस भागवतके श्रवणसे कैसे जाग जायँगे ? कुमारोंने कहा—हे मुने, वेद और उपनिषद्के सारसे यह तैयार की गई है । जैसे वृक्ष जड़से लेकर पत्तों तकमें रहता है, परन्तु वह उतना स्वाद नहीं देता, जितना कि उस वृक्षसे पृथक् ऊपर फल, वैसेही यह भागवत है । यह भागवत ब्रह्मसम्मत है और ज्ञान-वैराग्य तथा भक्तिकी स्थापनाके लियेही तैयार किया गया है । नारदजी महाभारत आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना करने पर भी जब व्यासजीको शान्ति न मिली, तब तुमने ही इस भागवतका व्यासजीसे वर्णन किया था, कहो, याद है कि नहीं ? नारदजीने कहा—हे कुमारो, आप महानुभावोंकी शरणमें मैं हूँ । आपके दर्शन अनेक अशुभोंके नाशक हैं, आपलोग भगवान् शेष द्वारा गाई कथा रूपी अमृतका पान करने वाले हैं । बहुत जनोंके पुण्योदयसे पाप-जैसे लोगोंका सत्सङ्ग मिलता है, जो मोहमयको नष्टकर देता है ।

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

नारद उवाच ॥ ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥ यत्र कार्यो मया यज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह । महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥ कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं वदतामितः ॥ ३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने ॥ गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ॥ ४ ॥ नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ॥ नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम् ॥ ५ ॥ रम्यमेकान्तदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितम् ॥ यत्समीस्थजीवानां वैरं चेतसि न स्थितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ॥ अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥ ७ ॥ पुरस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णं कलेवरम् ॥ तद्द्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिरतत्र गमिष्यति ॥ ८ ॥ यत्र भागवती वार्ता तत्र

❀ सनकादिकों की आज्ञा से हरिद्वार के आनन्द तटपर सप्ताह यज्ञ का विधान बतलाना आदि वर्णन ❀

श्रीनारदजीने कहा—हे कुमारो, भक्ति, ज्ञान तथा विरागके स्थापनार्थ शुकशास्त्र कथासे उज्वल ज्ञानयज्ञ करुँगा ॥ १ ॥ वह ज्ञानयज्ञ मैं कहाँपर करूँ वह स्थान आप मुझसे कहिये तथा भागवतकी महिमाका भी वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ श्रीभागवतकी कथा कितने दिन सुननी चाहिए और क्या इसकी विधि है, सो भी मुझसे कहिए ॥ ३ ॥ सनत्कुमारोंने कहा—हे नारदजी, सुनो, विवेकी तथा विनम्र तुम्हें हम स्थान बतलाते हैं । हरिद्वारके पास आनन्द नामक तट है ॥ ४ ॥ जो नाना प्रकारके ऋषिगणोंसे सेवित तथा देवसिद्धोंसे सेवित लता और वृक्षोंसे युक्त है, वहाँ नवीन कोमल वालुका फैली हुई है ॥ ५ ॥ जो बड़ा मनोहर है, एकान्त है, तथा सुवर्ण कमलोंसे शोभित है । जहाँपर रहनेवाले प्राणियोंके मनमें वैर भाव नहीं रहता है ॥ ६ ॥ वहींपर विना प्रयत्नके ही ज्ञानयज्ञ करो । वहीं अपूर्वरससे युक्त कथा होगी ॥ ७ ॥ भक्ति भी वृद्धावस्थाके कारण जीर्ण तथा दुर्बल शरीरवाले ज्ञान और वैराग्यको आगे करके वहाँ आयगी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ८ ॥ क्योंकि जहाँपर भगवान्‌की कथा होती है । वहाँपर भक्ति आदि अवश्य जाते हैं, और कथाके शब्दोंको सुनकर वे तीनों तरुण हो जाते हैं ॥ ९ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनकजी, इसप्रकार कहकर वे कुमार नारदजीके साथ कथारसका पान करनेके लिये वेगसे गङ्गातटको चले गये ॥ १० ॥ जब वे लोग तटपर आ गये तब उस समय पृथ्वी, देवलोक तथा ब्रह्मलोकमें बड़ा कोलाहल मचा ॥ ११ ॥ जो वैष्णव थे वे भागवतरूप अमृत पान करने लिये दौड़ते हुए आये ॥ १२ ॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय तथा पिप्पलाद सबके सब वहाँपर आ गये ॥ १३ ॥ तथा याज्ञवल्क्य और जैगीषव्य, व्यास, पराशर, छायाशुक जाजलि, जह्नु आदि सम्पूर्ण मुख्य मुनिगण स्त्री, पुत्र तथा शिष्योंके साथ प्रेमसे युक्त होकर वहाँपर आये ॥ १४ ॥ मूर्तियोंको धारण कर वेदान्त, वेद, मन्त्र और तन्त्र आये । सत्रह पुराण और छः शास्त्र भी आये ॥ १५ ॥

भक्त्यादिकं व्रजेत् ॥ कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं तरुणायते ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा कुमारास्ते नारदेन समं ततः ॥ गङ्गातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥ १० ॥ यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत् ॥ भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥११॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ॥ धावन्तोऽप्याययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥ भृगुर्वसिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवल-देवरातौ ॥ रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकण्डपुत्रोऽत्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥ योगेश्वरा व्यासपराशरौ च छायाशुको जाजलिजह्नु-मुख्याः ॥ सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सह पुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥ वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ॥ दशसप्तपुराणानि षट्शास्त्राणि तथाययुः ॥ १५ ॥ गङ्गाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ॥ क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकाकादिवनानि च ॥ १६ ॥ नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः सम्बोध्य चानयत् ॥ १७ ॥ दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासन-मुत्तमम् ॥ कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥ वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ॥ मुख्यभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ ॥ १९ ॥ एक भागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ॥ वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥ २० ॥ जयशब्दो नमः शब्द शङ्खशब्दस्तथैव च ॥ चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥ विमानानि समारुह्य कियन्तो देवनायकाः ॥ कल्पवृक्षप्रसू-

गङ्गादि नदियाँ पुष्करादि सरोवर तथा सम्पूर्ण क्षेत्र, दिशाएँ और दण्डकारण्य आदि सब वन, देव, गन्धर्व, किन्नर तथा पर्वत आदि भी आये जो गुरुताके कारण नहीं आये थे, उन्हें भृगुजीने अपने शिष्योंके द्वारा बुलवा लिया ॥ १६,१७ ॥ तदन्तर दीक्षित हुए नारदजीने बैठनेके लिए सनत्कुमारोंको आसन दिया । और सबसे वन्दित हुए सनकादि कृष्णका स्मरण करते हुए आसनपर बैठ गये ॥ १८ ॥ कथा सुननेके लिए आगे वैष्णव, विरक्त, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी बैठे और उसके आगे नारदजी बैठे ॥ १९ ॥ एक ऋषि, दूसरी ओर देवता, एक ओर वेद, उपनिषद् तथा दूसरी ओर तीर्थ और स्त्रियां यों सब बैठ गये ॥ २० ॥ उस समय वहाँपर जय शब्द, नमः शब्द तथा शंखोंके शब्द हुए । चूर्ण, लावा तथा पुष्पोंकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वृष्टि हुई ॥ २१ ॥ कितने देवनायक विमानोंमें बैठकर कम्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ॥ २२ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, इसप्रकार जब सबलोग सावधान होकर बैठ गये, तब सनत्कुमारोंने नारदजीको भागवतका माहात्म्य सुनाना आरम्भ कर दिया है ॥२३॥ कुमारोंने कहा—हे नारद, मैं तुम्हें भागवतकी महिमा सुनाता हूँ, जिसके सुननेसे मुक्ति सहजमें ही प्राप्त हो जाती है ॥ २४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा श्रवण करना चाहिए, जिसके सुननेमात्रसे ही हरि हृदयमें स्थित हो जाते हैं ॥ २५ ॥ यह भागवतग्रन्थ, जिसमें अठारह हजार श्लोक, बारह स्कन्ध तंथा परीक्षित् और शुकदेवजी का संवाद है, तुम सुनो ॥ २६ ॥ मनुष्य इस संसारमें अज्ञानके कारण तभीतक भटकता फिरता है, जबतक एकक्षण भी भागवतकी कथा अपने कानोंसे नहीं सुनता ॥ २६ ॥ बहुतसे शास्त्रों तथा श्रम पैदा करनेवाले अन्य पुराणोंके श्रवणसे क्या होता है, केवल एक भागवत शास्त्र ही मुक्ति देनेमें समर्थ है ॥ २८ ॥ जिसके घरमें

नानि सर्वांस्तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं तेष्वेकचित्तेषु श्रीमद्भागवतस्य च ॥ माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामो महिमा शुकशास्त्रजः ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ ॥ सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥ ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः ॥ परीक्षिच्छुकसंवादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥ तावत्संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ॥ यावत्कर्णगता नास्ति शुकशास्त्रकथा क्षणम् ॥ २७ ॥ किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ॥ एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति ॥ २८ ॥ कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३० ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ॥ यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥ न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥ वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ॥ त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ॥ ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशीकथा ॥ ३५ ॥ तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ॥ एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते

भागवतकी कथा नित्य होती है, वह घर तीर्थरूप है। जो उसमें रहता है उसके सब पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २९ ॥ हजारों अश्वमेधयज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेययज्ञ भागवत कथाकी सोलहवीं कलाको भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ३० ॥ हे तपोधनो, जबतक मनुष्य अच्छी तरहसे भागवतकी कथा नहीं सुनते तभीतक इस शरीरमें पाप निवास करते रहते हैं ॥ ३१ ॥ गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर, तथा प्रयाग ये तीर्थ भी भागवतकी बराबरी नहीं करते ॥ ३२ ॥ यदि मोक्षकी इच्छा करते हो, तो भागवतके अध्यायके एक या चौथाई श्लोकका नित्य अपने मुखसे पाठ किया करो ॥ ३३ ॥ वेद, वेदमाता, पुरुषसूक्त, वेदत्रयी, भागवत तथा द्वादशाक्षरमन्त्र, सूर्य, प्रयाग, संवत्सरात्मककाल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र सुरभि, द्वादशी, तुलसी, वसन्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा पुरुषोत्तम–इनमें बुद्धिमान् मनुष्य भेद नहीं देखते ॥ ३४–३६ ॥ जो पुरुष भागवतको अर्थके सहित प्रतिदिन पढ़ता है उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ जो भागवतके आधे श्लोक या चतुर्थांश श्लोकका पाठ करता है, वह नित्यही राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञका पुण्य प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥ नित्य भागवतका पढ़ना तथा भगवान्का चिन्तन करना, तुलसीकी रक्षा करना और गायोंका पालन करना बराबर है ॥ ३९ ॥ जो शरीर छोड़ते समय भागवत सुनता है। उसे भगवान् प्रसन्न होकर वैकुण्ठ पद देते हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य सुवर्णके सिंहासनपर रखकर भावगत ब्राह्मणको दान करता है, वह निश्चय ही कृष्णके साथ सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥ जिस मूर्खने जन्म भर मन लगाकर भागवतकी कथा नहीं सुनी, अपने जन्मसे माँ-बापको दुःख देनेवाले उस मूर्खने सचमुच चाण्डाल तथा गधेके समान अपना जन्म व्यर्थ बिताया ॥ ४२ ॥ जिसने थोड़ी भी

॥ ३६ ॥ यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ॥ जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः ॥ नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३८ ॥ उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ॥ तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥ ३९ ॥ अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ॥ प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥ हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ॥ कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥ आजन्ममात्रमपि येन शठेन किञ्चिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता ॥ चाण्डालवच्च खरवद्बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्मजननी जनिदुःखभाजा ॥ ४२ ॥ जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किञ्चित् ॥ धिक्तं नरं पशुसमं भुवि भाररूपमेवं वदन्ति दिवि देवसरोजमुख्याः ॥ ४३ ॥ दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ॥ कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव तु लभ्यते ॥ ४४ ॥ तेन योगनिधे धीमन् श्रोतव्या सा प्रयत्नतः ॥ दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥ सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ॥ ४६ ॥ मनोवृत्तिजयश्चैव नियमाचरणं तथा ॥ दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४७ ॥ श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम् ॥ तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥ मन-

भागवतकी कथा नहीं सुनी, वह पाप कर्म करनेवाला जीता हुआ ही मृतकके समान है। देवताओंकी सभामें देवश्रेष्ठ उसे धिक्कारते हैं। और कहते हैं कि यह पशुके समान पृथ्वीका भाररूप है ॥ ४३ ॥ इस संसारमें भागवतकी कथा दुर्लभ है। जब करोड़ों जन्मोंका पुण्योदय होता है, तब यह कहीं कथा मिलती है ॥ ४४ ॥ इससे हे नारद, यह कथा प्रयत्नके साथ सुननी चाहिए। इसके सुननेमें दिनोंका कोई नियम नहीं है। इसे सदा सुन सकते हो ॥ ४५ ॥ सत्य तथा ब्रह्मचर्यमें तत्पर होकर सदा इसका श्रवण करना चाहिए। परन्तु कलियुगमें इनका ठीक ठीक पालन न होनेसे शुकदेवजीकी विशेष आज्ञा जान लेनी चाहिए ॥ ४६ ॥ मनकी वृत्तियोंका जीतना, नियमका पालन करना और दीक्षा धारण करनेमें असमर्थ होनेसे सप्ताह सुनना चाहिए, ऐसा उन्होंने कहा है ॥ ४७ ॥ श्रद्धापूर्वक माघमासमें नित्य सुननेसे जो फल होता है। वह फल शुकदेवजीने सप्ताह श्रवणमें बतलाया है, ॥ ४८ ॥ मनके न जीतनेसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रोगसे और मनुष्योंकी आयु कम होनेसे तथा कलिमें बहुत दोष होनेसे सप्ताह श्रवणको ही उचित कहा है ॥ ४९ ॥ जो फल तपस्यासे नहीं प्राप्त होता, योग और समाधिसे नहीं मिलता, वह सप्ताह श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त हो जाता है ॥ ५० ॥ यज्ञसे अधिक सप्ताह गरजता है। व्रत, तपस्या, तीर्थ तथा योगसे भी अत्यन्त अधिक सप्ताह गरजता है। हे नारदजी, और अधिक क्या कहें, यह तो सबसे अधिक गरजता है, खूब गरजता है ॥ ५१, ५२ ॥ शौनकजी ने कहा—हे सूतजो, आपने इस समय यह आश्चर्यसे युक्त कथा कही है, परन्तु कृपाकर आप यह तो मुझे बतलाइये कि इस भागवत पुराणमें मनुष्योंके कल्याण करनेकी इतनी सामर्थ्य कहाँसे आई योगविद् ब्रह्माके भी आदिकारण परब्रह्मका बोधक यह हुआ कैसे ॥ ५२ ॥ सूतजी ने कहा—हे शौनकजी, जिस समय भगवान् कृष्ण इस पृथ्वीको छोड़कर अपने स्थानको जाने लगे तब, 'एकादश स्कन्धमें' भगवान् द्वारा प्रतिपादित ज्ञानको सुनकर भी उद्धवने यह

सश्राजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणे लभेत् ॥ ५० ॥ यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ॥ तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥ योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ॥ किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥ शौनक उवाच ॥ साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिधर्मान्विगणय्य सांप्रतम् ॥ निःश्रेसे भागवतं पुराणं जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥ ५३ ॥ सूत उवाच ॥ यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ॥ एकादशं परिश्रुत्याप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ॥ मच्चिते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ५५ ॥ आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ॥ तत्सङ्गेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ॥ ५६ ॥ तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ॥ अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥ अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ॥ भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥ त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले ॥ निर्गुणोपासने कष्टमतः किञ्चिद्विचारय ॥ ५९ ॥ इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः ॥ भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥ ६० ॥ स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च

बात पूछी ॥ ५४ ॥ उद्धवने कहा—हे गोविन्द, तुम तो भक्तोंका कार्य करके चले जाओगे किन्तु मेरे हृदयमें एक बड़ी भारी चिन्ता लगी हुई है, उसे सुनकर मुझे या दूसरोंको जैसे सुख हो, वैसा उपाय बतलाते जाओ ॥ ५५ ॥ यह घोर कलियुग आ गया है, जिससे कि पुनः दुष्ट मनुष्य होंगे। जिनके संगसे सज्जन भी उग्ररूप धारणकर दुष्टता करने लग जायँगे ॥ ५६ ॥ हे भगवन्, भारसे पीड़ित होकर गोरूपको धारण करनेवाली यह पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी, क्योंकि तुम्हारे सिवा दूसरा कोई उसकी रक्षा करनेवाला मुझे नहीं दीखता ॥५७॥ अतः हे भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले कृष्ण, तुम सज्जनोंके ऊपर दया करके अब मत जाओ, क्योंकि भक्तोंके लिये ही आप निराकार होते हुए भी साकार हुए हो ॥ ५८ ॥ आपके वियोगसे आपके भक्त इस पृथ्वीमें किसप्रकार रहेंगे, क्योंकि निर्गुणकी उपासना करनेमें कष्ट होता है, इसलिए इसका भी कुछ विचारकर देखो ॥ ५९ ॥ इसप्रकार उद्धवके बचनोंको सुन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर प्रभासक्षेत्रमें भगवान् चिन्ता करने लग गये कि भक्तोंकी सहायतार्थ मैं क्या करूँ ॥ ६०॥ बहुत देरतक सोचने विचारनेके बाद भगवान्ने अपने तेजको भागवतमें रख दिया, वह तेज भागवतरूपी समुद्रमें प्रविष्ट हो गया ॥ ६१ ॥ हे शौनकजी, इसलिए यह शब्दमयी भगवान् कृष्णकी प्रत्यक्ष मूर्ति है। जिसके पढ़ने, सुनने तथा दर्शन करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२ ॥ अन्य साधनोंको तिरस्कृत करके कलियुगमें यह सप्ताहश्रवण सबसे अधिक फल देनेवाला कहा गया है ॥ ६३ ॥ दुःख दरिद्रता, दुर्भाग्य यथा पापोंका नाश करने और काम क्रोधको जीतनेके लिये कलियुगमें यह धर्म कहा गया है ॥ ६४ ॥ विष्णुकी मायाको अन्य उपायोंसे देवता भी नहीं छोड़ सकते, पुनः मनुष्य कैसे छोड़ सकते हैं। इसलिए उसे छुड़ानेके के लिए सप्ताहश्रवण श्रीशुकदेवने कहा ॥ ६५ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनकजी, इसप्रकार ऋषियोंके द्वारा सप्ताह श्रवणरूप महान् धर्मके प्रकाशित किये जानेपर उस समय जो एक बड़ा

भागवतेऽदधात् ॥ तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवन् ॥ ६१ ॥ तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ॥ सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पाप-नाशिनी ॥ ६ ॥ सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ॥ साधानानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः ॥६३॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षा-लनाय च ॥ कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोऽमीरितः ॥ ६४ ॥ अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ॥ कथं त्याज्या भवेत्पुंभिः सप्ताहो-ऽतः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम् ॥ आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम् ॥ ६६ ॥ भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ॥ श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥ ६७ ॥ तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ॥ कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥६८॥ ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताधुनेयम् ॥ एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा ॥६९॥ भक्तिरुवाच ॥ भवद्भिरद्यैव कृताऽस्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन ॥ काहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥७०॥ भक्तेषु गोविन्दसुरूपधर्त्री प्रेमैककर्त्री भवरोगहन्त्री ॥ सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥७१॥ ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः

आश्चर्य हुआ उसे मैं कहता हूँ, तुम सुनो ॥६६॥ भक्ति अपने दोनों पुत्र ज्ञान और वैराग्यको साथमें लेकर सहसा वहाँपर प्रकट हुई और हे कृष्ण, हे गोविन्द, हे हरे, हे मुरारे, हे नाथ, इस प्रकार कीर्तन करने लगी ॥ ६७ ॥ वहाँपर भागवतार्थको भूषित करनेवाली तथा सुन्दरवेपसे अलंकृत भक्तिको आई देखकर सदस्य लोग विचार करने लगे कि यह कि यह मुनियोंके बीचमें कहाँ आई और कैसे इसने प्रवेश किया ॥ ६८ ॥ तब कुमारोंने कहा—यह कथाके अर्थसे ही इस समय यहाँपर आई हुई है। इसप्रकारके वचनोंको सुनकर वह नम्रतापूर्वक सनत्कुमारोंसे कहने लगी ॥ ६९ ॥ आपलोगोंने कलियुगसे क्षीण हुई मुझे कथारूपी रससे पुष्ट किया है सो, आपलोग मुझे बतलाइये कि अब मैं इस समय कहाँपर बैठूँ। भक्तिके ऐसा कहनेपर कुमारोंने कहा ॥ ७० ॥ हे भक्ति, गोविन्दके स्वरूपको धारण करनेवाली, प्रेम करनेवाली तथा संसारके रोगोंका नाश करनेवाली तुम धैर्य धारणकर भगवान्के युक्त जो वैष्णव हैं उनके मनमें जाकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बैठ जाओ ॥ ७१ ॥ क्योंकि उनके मनमें बैठे रहनेसे कलियुगमें होनेवाले जितने दोष हैं वे समर्थ रहते हुए भी तुमको देखनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते। इसप्रकार कहनेपर भक्ति भक्तोंके हृदयमें जाकर बैठ गई ॥ ७२ ॥ सम्पूर्ण भुवनोंमें वेही निर्धन मनुष्य धन्य हैं, जिनके हृदयमें एक भगवान्‌की भक्ति ही वास करती है और भगवान् भी अपने लोकको छोड़कर

प्रभवोऽपि लोके ॥ एवं तदाज्ञावसरेऽपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥७२॥ सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ॥ हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥७३॥ ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य ॥ यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥७४॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

भक्तिरूपी सूत्रसे बँधकर भक्तोंके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥७३॥ इस पृथ्वीमें मैं तुमसे इस भागवतकी महिमाका कहाँतक वर्णन करूँ, किसका आश्रय करके कथा कहनेपर वक्ता तथा श्रोता दोनों ही कृष्णकी सत्ता प्राप्त कर लेते हैं। अतः अब अन्य धर्मोंकी इस पृथ्वीपर आवश्यकता न रही ॥ ७४ ॥

तृतीय अध्यायका सार—नारदजीने कहा–हे कुमारो, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाके लिये मैं ज्ञानयज्ञ करना चाहता हूँ, उसके लिये आपलोग उचित स्थान बतलाइये। साथ ही भगवतकी महिमा तथा विधि भी बतलाइये। कुमारोंने कहा–हे नारद, हरिद्वारके आनन्दतटपर चलकर यज्ञ करो, वह बहुत ही रमणीय स्थान है। वहाँपर भगवान्‌की अपूर्वरस समन्वित कथा होगी। ज्ञान और वैराग्य अपने वृद्ध दोनों लड़कों साथ भक्ति भी आयगी। सूतजीने कहा—हे शौनकजी, यों कह कर कुमार भी गंगातटकी ओर चल दिये। जहाँ तहाँसे अनेक देवर्षि, सुर, नर आदि पहुंच गये। यथोचित सबके बैठ जानेपर कुमारोंने कहा—हे नारद, सुनो, भागवतकी महिमा सुनाता हूँ। एक भागवत ही मनुष्यको मुक्ति दिलानेमें समर्थ है। हजारों अश्वमेध यज्ञ इसकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते। हे नारद, मनुष्य तभीतक पापी बना हुआ रहता है जबतक कि भागवत नहीं सुनता। जो मनुष्य प्रतिदिन इसके अध्यायके एक, आधे या चौथाई श्लोकका भी पाठ किया करता है,उसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पुरुष शरीर छोड़ते समय भागवत सुनता है, भगवान् उसे वैकुण्ठ पद देते हैं। जो मनुष्य भागवत ब्राह्मणको दान देता है। वह भगवत्सायुज्यमुक्ति प्राप्त करता है। जिसने जीवनमें भगवान् की थोड़ीसी भी कथा न सुनी, वह जीता हुआ भी मृतक समान है। करोड़ों जन्मोंके बाद पुण्योदय होनेपर भगवान्‌की कथा सुननेका अवसर मिलता है। यों तो इसका सदा श्रवण करना चाहिए, लेकिन श्रीशुकदेवजीने मनुष्योंके कल्याणके लिये सप्ताह श्रवण को अधिक महत्व दिया है, क्योंकि नानाविधि रोगोंसे व्याकुल मनुष्योंकी आयु भक्तिमें बहुत कम है। जो फल तपस्या आदिके द्वारा मिलता है वह सप्ताहश्रवणसे अनायास प्राप्त हो जाता है। शौनकजीने कहा—हे सूतजी महाराज, यह तो आपने बड़े आश्चर्यकी बात कही है, इसमें इतनी सामर्थ्य आई कहाँसे ? यह तो बतलाये। श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, जब भगवान् अपने धामको जाने लगे तब उद्धवने उनसे पूछा—भगवान् ! कहाँ चले जा रहे हो, मेरे मनकी चिन्ता दूर करते जाओ। यह तो जानते ही हो कि कलि आ गया है, इसमें दुष्टोंका भरमार रहेगा। उनके संसर्गसे सज्जन भी दुष्टता करनेसे बाज न आयेंगे। जब पृथिवी भारसे दबने लगेगी तब वह किसकी शरणमें जायगी ? तुम्हारे सिवा दूसरा कोई रक्षक तो दीखता है नहीं, इसलिए थोड़ा विचार तो कर लो आगे कहाँ चले जा रहे हो। ऐसी उद्धवकी बातें सुनकर बहुत विचार करनेके बाद भगवानने अपने तेजको भागवतमें रख दिया। इसलिए हे शौनकजी, यह भागवत भगवान् कृष्ण की प्रत्यक्ष मूर्ति है। इसके पढ़ने सुननेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। अन्य साधनोंकी अपेक्षा इस कलिमें सप्ताहश्रवण अधिक फल देनेवाला है। हे शौनकजी, ऋषियों द्वारा सप्ताहश्रवणके प्रकाशित होनेपर ऋषियोंके बीचमें ज्ञान और वैराग्य अपने दोनों लड़कोंको लेकर भक्ति आ गई। मुनियोंने कुमारोंसे पूछा—यह हम लोगोंके बीचमें कहाँसे आ गई ? कुमारोंने कहा–हे मुनियो, यह कथाके लिये यहाँ आई है। तदन्तर नम्रतापूर्वक भक्तिने कहा—महानुभावो, मैं तो क्षीण हो गई थी, आपलोगोंने कथामृतसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुझे पुष्ट बनाया, अब बतलाइये कि मैं बैठूँ कहाँ ? कुमारोंने कहा—हे भक्ति, अब तुम भगवद्भक्तोंके मनमें जाकर बैठ जाओ। वहाँ कलिके दोष तुम्हें न देख पायंगे। उसके बाद भक्ति भक्तोंके मनमें जाकर बैठ गई। कुमारों ने कहा—हे नारद, भागवतकी महिमाका अब अधिक क्या वर्णन करूँ, जिससे श्रोता और वक्ता दोनों ही भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाते हैं। तृतीय अध्याय समाप्त ❀

❀ कथाकी पूर्व रेखाका वर्णन तथा विचरते हुए आत्मदेव को संन्यासी द्वारा पुत्र प्राप्त होने का उपाय बतलाना, आदि वर्णन ❀

श्रीसूतजीने कहा—हे शौनक, इसप्रकार अपने भक्तोंके चित्तसे आलोकित भक्तिको देखकर वनमालाको धारण किये हुए ॥१॥ मेघवर्ण, पीताम्बरधारी, भक्तोंके मनको हरण करनेवाले, कमरमें करधनी पहिने हुए, चमक रहे मुकुट और कुण्डलोंसे शोभायमान, त्रिवलीसे ललित, कौस्तुभमणिसे विराजित, कोटिकामदेवके समान कान्तिमान् हरिचन्दनसे लिप्त ॥ ३ ॥ परमानन्द चिदानन्दस्वरूप मधुरमूर्ति, मुरलीधर, भक्तवत्सल भगवान् भी वैकुण्ठको छोड़कर निर्मल अपने भक्तोंके मनमें निवास करने लगे ॥ ४ ॥ वैकुण्ठवासी जो उद्धवादि वैष्णव थे,

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

सूत उवाच ॥ अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ॥ निजलोकं परित्यज्य भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १ ॥
वनमाली घनश्यामः पीतवासाः मनोहरः ॥ काञ्चीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥ २ ॥ त्रिभङ्गललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः ॥
कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३ ॥ परमानंदचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ॥ आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च
॥ ४ ॥ वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ॥ तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः ॥ ५ ॥ तदा जयजयारावो
रसपुष्टिरलौकिकी ॥ चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शङ्खरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥ तत्सभासंस्थितानां च देहगेहात्मविस्मृतिः ॥ दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां
नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥७॥ अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य विलोकितो मया ॥ मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पा-
पतमा भवन्ति ॥ ८ ॥ अतो नृलोके ननु नास्ति किञ्चिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ॥ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति
चान्यत् ॥ ९ ॥ के के विशुध्यन्ति वदन्तु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ॥ कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोऽपि नवीनमार्गः ॥ १० ॥

वे भी कथा श्रवणके लिये गुप्तरूपसे आये और बैठकर कथा सुनने लगे ॥ ५ ॥ उसके चारों ओर जय-जय शब्द होने लगे, अलौकिक भक्ति रसकी वृद्धि हो गई, गुलाल, अबीर आदि चूर्णोंकी और पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी तथा बार-बार शंखकी ध्वनि होने लगी ॥ ६ ॥ उस सभामें जितने लोग उपस्थित थे वे सब लोग अपने देह-गेहको भूल गये। तब श्रीनारदजीने इस प्रकार उनकी तन्मय अवस्थाको देखकर कहा ॥ ७ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे मुनिश्वरो, आज हमने सप्ताहकी बड़ी अलौकिक महिमा देखी है, जिससे यहाँपर अवस्थित मूढ़ दुष्ट, शठ तथा पशु-पक्षी सभी निष्पाप हो गये हैं ॥ ८ ॥ इसलिये इस कलियुगसे आक्रान्त मृत्युलोकमें चित्तकी शुद्धिके लिये तथा पापोंके समूह का नाश करनेके लिये श्रीमद्भागवत कथाको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छोड़कर और कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ हे भगवन्, आपलोग बड़े कृपालु हैं। आप लोगोंने लोकका हित विचारकर कोई यह नवीन मार्ग प्रकाशित किया है, इसलिये यह बत लाइये कि कथाका श्रवण करनेसे कौन-कौनसे पापी मुक्त होते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार सनकादि मुनियोंने कहा--हे नारद, जो लोग निरन्तर पाप करते रहते हैं, दुराचारके प्रेमी हैं कुमार्ग गामी हैं, क्रोधरूपी अग्निसे रातदिन जल रहे हैं तथा जो कुटिल और कामी हैं उन लोगोकी सप्ताह यज्ञसे मुक्ति होती है ॥ ११ ॥ जो सत्य हीन है, माता-पिताकी निन्दा करनेवाले हैं, रातदिन तृष्णासे व्याकुल हैं, ब्रह्मचर्य्यादि आश्रम धर्मसे हीन है, जो दम्भी पाखण्डी, डाही तथा हिंसक हैं वे सब लोग कलियुगमें सप्ताहरूपी यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १२ ॥ जो लोग सबसे छल कपट करनेवाले हैं क्रूर स्वभावके हैं पिशाचकी तरह दया शून्य हैं तथा ब्राह्मणके धनको खानेवाले और व्यभिचार करने वाले हैं, कलियुगमें वे पाँच उग्र महापाप करनेवाले

कुमारा ऊचुः ॥ ये मानवाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ ११ ॥ सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ॥ ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१२॥ पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ॥ ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१३॥ कायेन वाचा मनसाऽपि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ॥ परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१४॥ अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥ तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ॥ यत्र वर्णाःस्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥ आत्मदेवः पुरे तस्मिन्सर्ववेदविशारदः ॥ श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥ १७ ॥ भिक्षुको वित्तवान् लोके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता ॥ स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा ॥१८॥ लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ॥ शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥ १९ ॥ एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्यो रममाणयोः ॥ अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥ २० ॥ पश्चाद्धर्माः

इस सप्ताहरूपी यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १३ ॥ जो मूर्ख मनसा, वाचा और कमणा रातदिन हठपूर्वक पाप करते रहते हैं, जो नीच दुष्ट अन्तः करण वाले दूसरोंका धन खाकर मस्त बने फिरते हैं वे इस कलियुगमें सप्ताहरूपी यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १४ ॥ इस विषयमें तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, जिसके सुननेसे ही पाप दूर हो जाते हैं ॥ १५ ॥ हे नारद, प्राचीनकालमें तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक नगर था। जिसमें चारों वर्ण अपने धर्मसे सत्कर्मोंमें तत्पर रहते थे ॥ १६ ॥ उस नगरमें सम्पूर्ण वेद तथा श्रौत-स्मार्त कर्ममें निष्णात दूसरे सूर्यके ससान आत्मदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था ॥ १७ ॥ वह भिक्षुक होते हुए भी बहुत धनी था उसकी सुन्दर तथा अच्छे कुलमें उत्पन्न धुन्धुली नामकी स्त्री थी जो अपनी बातको ही पुष्ट करनेवाली थी ॥ १८ ॥ वह दुनियाँ भरकी बात करनेमें तत्पर, क्रूर प्रकृतिकी, बकवाद करनेवाली, घरके कार्यमें शूर कृपण तथा सदा झगड़ा करनेवाली थी ॥ १९ ॥ इस प्रकार वे दोनों स्त्री पुरुष बड़े आनन्दके साथ अपना जीवन बिता रहे थे। उन दोनोंको धन तथा गृह आदिकी कुछ भी कमी नहीं थी, फिर भी नाना प्रकारकी सम्पत्तियाँ और विषयभोग उन्हें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जब सुख देनेमें समर्थ न हुए ॥ २० ॥ तब उन्होंने सन्तान प्राप्तिके लिए धर्म करना शुरू कर दिया। गाय, भूमि, सुवर्ण तथा, वस्त्र नित्य गरीबोंको देने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार उन्होंने अपना आधा धन पुण्यमार्गमें उठा दिया, तो भी उन्हें पुत्र नहीं हुआ और न कोई पुत्री हुई अतः वह ब्राह्मण बहुत चिन्तायुक्त हुआ ॥ २२ ॥ एक दिन वह ब्राह्मण दुःखके कारण घर छोड़कर वनमें गया और मध्याह्नके समय तृषित होकर तालाबके समीप गया ॥ २३ ॥ पुत्रके दुःखसे अत्यन्त दुर्बल वह जल पीकर वहीं बैठा था। इतने ही समयमें वहाँ पर कोई संन्यासी आ गया ॥ २४ ॥ जब वह जल पी चुका तब उसके पास गया और प्रणाम करके साँस लेता हुआ उसके सम्मुख खड़ा हो गया॥ २५ ॥ तब संन्यासीने कहा—हे ब्राह्मण, तुम क्यों रोते हो। तुमको कौन-सी बड़ी चिन्ता है। तुम अपने दुःखका कारण हमसे कहो ॥ २६ ॥ तब ब्राह्मणने कहा—हे ऋषे, पापसे एकत्रित किया हुआ अपना दुःख मैं आपसे क्या कहूँ।

समारब्धास्ताभ्यां सन्तानहेतवे ॥ गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥२१॥ धनार्धं धर्ममात्रेण ताभ्यां नीतं तथापि च ॥ न पुत्रो नापि वा पुत्रो ततश्चिन्तातुरो भृशम् ॥ २२ ॥ एकदा स द्विजो दुःखाद् गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ मध्याह्ने तृषितो जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥२३॥ पीत्वा जलं विषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ॥ मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् ॥ नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन् संस्थितः पुरः ॥ २५ ॥ यतिरुवाच ॥ कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी ॥ वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन सञ्चितम् ॥ मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥ २७ ॥ मद्दत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः ॥ प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥ २८ ॥ धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ॥ धिग्धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं सन्ततिं विना ॥ २९ ॥ पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् ॥ यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३० ॥ यत्फलं मद्गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति ॥ निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवतेन मे ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा न रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वं दुःखपीडितः ॥ तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी ॥ ३२ ॥ तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥ यतिरुवाच ॥ मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ॥

मेरे पूर्वज उष्ण जल पी रहे हैं ॥ २७ ॥ हे ऋषे, मेरे द्वारा बड़े आदरसे दिये हुएको ब्राह्मण तथा देवता ग्रहण नहीं करते। पुत्र न रहनेसे दुःखी मैं प्राण त्यागनेके लिए यहाँपर आया हूँ ॥ २८ ॥ अहो, पुत्रके बिना जीवनको धिक्कार है, घरको धिक्कार है, पुत्ररहित मनुष्यके धनको धिक्कार है, तथा सन्ततिके बिना कुलको भी धिक्कार है ॥ २९ ॥ स्त्रीकी बात तो दूर रख दीजिये जिस गायको मैं पालता हूँ, वह भी वन्ध्या हो जाती है और जिस वृक्षको मैं लगाता हूँ वह भी वन्ध्या हो जाता है ॥ ३० ॥ जो फल मेरे घर आता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ऐसे अभागी पुत्र रहित मेरे जीवनसे क्या प्रयोजन ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर जब वह दुःखके कारण उसके पास उच्चस्वरसे रोने लगा, तब उस यति के चित्तमें बड़ी दया आई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ३२ ॥ उसके ललाटमें लिखे हुए अक्षरोंको बाँचा और सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर विस्तार पूर्वक कहने लगा—॥ ३३ ॥ हे विप्र, प्रजारूपी अज्ञानको छोड़ो, क्योंकि कर्मकी गति बलवान् होती है। इससे विचारकर संसारकी वासनाओंको छोड़ो ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण, सुनो, मैंने तुम्हारे प्रारब्धका अवलोकन किया, तुम्हारे प्रारब्धमें सात जन्मतक पुत्र नहीं लिखा है ॥३५॥ हे विप्र, पुत्रसे आजतक किसीने सुख नहीं पाया। पुत्रके कारण ही राजा सगरने दुःख पाया। इससे हे ब्राह्मण, पुत्रकी आशा छोड़ो, पहले अङ्गराजाने अपने बेन नामक पुत्रकी दुष्टता से दुःखी होकर घर-बारको छोड़कर जङ्गलमें चला गया। संन्यासमें हो संपूर्ण सुख है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे यते, विवेकसे मेरा क्या होगा। मुझे तो पुत्र दो, नहीं तो मैं तुम्हारे सन्मुख प्राणोंको छोड़ता हूँ ॥ ३७ ॥ मुझे ऐसा मालूम होता है कि पुत्रके सुखसे रहित यह संन्यासाश्रम भी शुष्क ही है। इस संसारमें पुत्र आदिसे युक्त गृहस्थाश्रम सरस है ॥ ३८ ॥ इस

विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ३४ ॥ शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ॥ सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥ सन्ततेः सगरो दुःखमवापाङ्गः पुरा तथा ॥ रे मुञ्चाद्य कुटुम्बाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ॥ नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥ पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ॥ गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ॥ चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखाविमार्जनात् ॥ ३९ ॥ न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा देवहतोद्यमः ॥ अतो हठेन युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥ तस्याग्रहं तमालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ॥ इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति ॥ ४१ ॥ सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम् ॥ वर्षावधि स्त्रिया तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः ॥ पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥ ४३ ॥ तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ॥ अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥ ४४ ॥ फलभक्ष्येण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ॥ स्वल्पभक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्यं कथं भवेत् ॥ ४५ ॥ दैवाद्धाटीं व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ॥ शुकवन्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥ ४६ ॥ तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे

प्रकार ब्राह्मणके आग्रहको देखकर उस यतिने कहा—हे आत्मदेव, ब्रह्माके लेखको मिटानेसे चित्रकेतुको कष्ट ही प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ तुम पुत्रसे सुख प्राप्त नहीं करोगे। तुम हठी हो, तुमसे क्या कहें ॥ ४० ॥ उसके आग्रहको देखकर उसने एक फल दिया, और कहा कि हे आत्मदेव, जाओ, यह फल अपनी स्त्रीको खिला दो उससे पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ यदि तुम्हारी स्त्री सत्यता-पवित्रतासे युक्त होकर दया-दान धर्म करेगी तथा एक समय भोजनकर एक वर्ष तक नियमसे रहेगी, तो अच्छा पुत्र होगा ॥ ४२ ॥ इसप्रकार कहकर वह योगी चला गया और ब्राह्मण भी घर आकर स्त्रीके हाथमें फल देकर कहीं चला गया ॥ ४३ ॥ उसकी स्त्री बड़ी कुटिल थी। वह सखियोंके सामने रोने लगी और कहने लगी कि मुझे बड़ी चिन्ता है। मैं फल नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥ क्योंकि फल खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भसे पेट बढ़ जायगा। जिससे अल्प भोजन होगा। अल्प भोजन होनेसे शक्ति कम हो जायगी, फिर घरका कार्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुझसे कैसे होगा ॥ ४५ ॥ यदि दैववश वाटिकामें जाना पड़े तो गर्भिणी वहाँसे घरकी ओर कैसे भागेगी। कहीं शुकके सदृश गर्भ अधिक दिनतक पेटहीमें रह गया तो फिर वह कुक्षिसे कैसे बाहर निकलेगा यदि कहीं तिरछा हो जायगा, तो मेरा मरण ही हो जायगा। लड़का उत्पन्न होनेमें बड़ा दुःख होता है। उसे सुकुमारी मैं कैसे सह सकूँगी ॥ ४७ ॥ जब मुझे पुत्र होगा तब मैं दुबली हो जाऊँगी। उस समय ननद मेरा सम्पूर्ण धन लूट ले जायगी और जो सत्य-शौचादि नियम हैं वे भी तो काटे नहीं दीखते हैं ॥ ४८ ॥ बालकके पालनेमें भी बड़ा दुःख होता है। इससे मेरा विचार है कि बन्ध्या तथा विधवा स्त्री सुखी रहती है ॥ ४९ ॥ इसप्रकार कुतर्कसे उसने फल नहीं खाया और पतिके पूछनेपर कह दिया कि मैंने खा लिया है ॥ ५० ॥ एक समय उसकी बहिन आई तब उसके सम्मुख सारी बातें उसने कह दी कि मुझे बड़ी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ उस चिन्ताके कारण मैं दुर्बल होती जाती हूँ क्या

मरणं भवेत् ॥ प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७ ॥ मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा ॥ सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥ लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते ॥ वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥ एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ॥ पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥ ५० ॥ एकदा भगिनी तस्यास्तद्गृहं स्वेच्छयाऽऽगता ॥ तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे ॥ ५१ ॥ दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ॥ साब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥ ५२ ॥ तावत्कालं सगर्भेव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम् ॥ वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥ ५३ ॥ षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति ॥ तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥ फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु सांप्रतम् ॥ तत्तदाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥ अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ॥ आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धुलीं ददौ ॥ ५६ ॥ तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ॥ लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥ ५७ ॥ ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मङ्गलं बहु ॥ ५८ ॥ भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ॥ अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥ मत्स्वसायाः प्रसूताया मृतो बालस्तु

करूँ। उसकी छोटी बहिनने कहा—मुझे अभी गर्भ है, सो मैं उत्पन्न होते ही तुमको दे दूँगी ॥ ५२ ॥ तब तक तुम 'मुझे गर्भ है' ऐसा कहकर छिपी रहो और हमारे पतिको धन दे दो जिससे कि वह तुमको दे देगा ॥ ५३ ॥ और मनुष्योंसे कह देगा कि हमारा छः महीनेका बालक मर गया है मैं प्रतिदिन तुम्हारे घर आकर बालकका पोषण करूँगी ॥ ५४ ॥ इस समय परीक्षाके लिए यह फल गायको दे दो। तब उसने यह संपूर्ण कार्य वैसा ही किया ॥ ५५ ॥ कुछ दिनके बाद उसके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ और उसके पिताने लाकर धुन्धुलीको दे दिया ॥ ५६ ॥ धुन्धुलीने पतिसे कहा—हे स्वामिन्, मुझे पुत्र उत्पन्न हुआ है। सब मनुष्योंको बड़ा भारी आनन्द हुआ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर आत्मदेवने पुत्रका जात-कर्म करके ब्राह्मणोंको दान दिया, उनके द्वारपर गाने तथा बाजोंके शब्द होने लगे ॥ ५८ ॥ तदन्तर धुन्धुलीने अपने पतिसे कहा—हे स्वामिन्, मेरे स्तनोंमें दूध नहीं है, इससे दूसरेके दूधसे मैं बालकको कैसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पालूँ ॥ ५९ ॥ मेरी बहिनको अभी बालक हुआ था, जो मर गया है। उसे अपने घर रख लो, वह तुम्हारे बालकका पोषण करेगी ॥ ६० ॥ स्त्रीकी बात सुनकर पतिने पुत्रके रक्षणार्थ वही किया। माताने पुत्रका नाम धुन्धुकारी रखा ॥ ६१ ॥ तीन महीनेसे पश्चात् गायने बड़े सुन्दर सुवर्णके समान चमकते हुए एक बालकको पैदा किया ॥ ६० ॥ उसे देखकर ब्राह्मण प्रसन्न हुआ और उसके संपूर्ण संस्कारोंको किया। सभी मनुष्य बड़ा आश्चर्य मानकर देखनेके लिए आए ॥ ६३ ॥ और कहने लगे कि देखो, आत्मदेवका आज भाग्योदय हो गया, जो गायने देवरूपधारी बालकको उत्पन्न किया, इसके भाग्यकी और क्या सराहना की जाय ॥ ६४ ॥ दैववश यह रहस्य किसीको मालूम नहीं हुआ आत्मदेवने उस बालकको गायके समान कानवाला देखकर उसका नाम 'गोकर्ण' रखा ॥ ६५ ॥ कुछ समयके बाद वे दोनों पुत्र जवान हुए। गोकर्ण तो ज्ञानी पण्डित हुआ। और धुन्धुकारी बड़ा दुष्ट हुआ ॥६६॥

वर्तते ॥ तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥ पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ॥ पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१ ॥ त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान्स्वयमादधे ॥ मत्वाश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ॥ ६३ ॥ भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ॥ धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४ ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ॥ गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥ ६५ ॥ कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ॥ गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ॥६६॥ स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधसंयुतः ॥ दुष्परिग्रहकर्ता च शवहस्तेन भोजनः ॥ ६७ ॥ चोरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः ॥ लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे निपातयत् ॥ ६८ ॥ हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ॥ चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्च सङ्गतः ॥ ६९ ॥ तेन वेश्याकुसङ्गेन पैत्र्यं वित्तं तु नाशितम् ॥ एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥ तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ॥ वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१ ॥ क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ॥ प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥ तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ॥ बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥ असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ॥ सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवान् ज्वलते-

वह स्नान, शौचादि क्रियाओंसे रहित, क्रोधी, भक्ष्याभक्ष्यके विचारसे रहित श्मशानचारी हुआ ॥ ६७ ॥ वह धुन्धुकारी चोर तथा सबसे द्वेष करनेवाला था। दूसरेके घर को जला देता तथा क्रीडाके बहाने बालकोंको ले जाकर कुएंमें गिरा देता था ॥ ६८ ॥ हिंसा करनेवाला, शस्त्र धारण करनेवाला दीन और अंधोंको दुःख देनेवाला और चाण्डालोंका सङ्ग करनेवाला वह हाथमें फाँस लिए हुए घूमता-फिरता था। वेश्याओंके सङ्गसे उसने पिताका धन नाश कर दिया और एक दिन माता पिताको खूब पीटकर जो कुछ वर्तन थे, सब उठा ले गया ॥ ७० ॥ सदाका कृपण उसका पिता धनहीन होकर रोने लगा और कहने लगा कि ऐसे पुत्रसे बाँझ रहना अच्छा था, क्योंकि कुपुत्र दुःखदायक होता है ॥ ७१ ॥ मैं कहाँ रहूँ, कहाँ जाऊँ मेरा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुःख दूर कौन करेगा। मैं तो दुःखसे प्राणोंको छोड़े देता हूँ ॥ ७२ ॥ तब बुद्धिमान् गोकर्णने आकर वैराग्य दिखाता हुआ पिताको समझाया ॥ ५३ ॥ गोकर्णने कहा—हे पिताजी, यह संसार असार है। उसमें दुःख ही दुःख है। किसका कौन पुत्र है ? किसका कौन पिता है। जो स्नेह करता है, वह दिन-रात त्रास पाता है ॥ ७४ ॥ इन्द्रको सुख नहीं है, चक्रवर्ती राजा को भी सुख नहीं है। केवल एकान्तमें रहनेवाले विरक्त संन्यासीको ही सुख है ॥ ७५ ॥ प्रजारूप अज्ञानको छोड़िये। मोह करनेसे नरकमें गिरना पड़ता है। एक-न-एक-दिन यह देह छूट ही जायगी। इससे सबको छोड़कर वनको चले जाइये ॥ ७६ ॥ इसप्रकार गोकर्णके वचनोंको सुनकर वनमें जानेकी इच्छा करते हुए पिताने कहा—हे पुत्र, मैं वनमें जाकर क्या करूँगा ? वह मुझसे विस्तार पूर्वक कहो ॥ ७७ ॥ हे दयासागर, स्नेहरूपपाशसे बँधा हुआ पंगु मूर्ख मैं अपने कर्मसे अन्धकूपमें गिर गया हूँ। इसलिए हे पुत्र गोकर्ण, अब मेरा

ऽनिशम् ॥ ७४ ॥ न चेन्द्रस्य सुखं किञ्चिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ ७५ ॥ मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ॥ निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥ तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताऽब्रवीत् ॥ किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ७७ ॥ अन्धकूपे स्नेहपाशैर्बद्धः पङ्गुरहं शठः ॥ कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ॥ पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥ धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषान् जहि कामतृष्णाम् ॥ अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥८०॥ एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥ युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययाऽसौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

उद्धार करो ॥ ७८ ॥ गोकर्णने कहा—हे पिताजी, हड्डी मांस तथा रक्त युक्त इस शरीरमें अहंबुद्धिको छोड़ दीजिये, स्त्री-पुत्रोंमें जो ममता है उसे भी छोड़ दीजिये। और इस संसारको क्षणभंगुर समझ लीजिये तथा वैराग्यसे युक्त होकर भक्तिमें मन लगाइये ॥ ७९ ॥ तथा भागवत धर्मोंका अनुष्ठान कीजिये और संसारके धर्मोंको छोड़ दीजिये। साधुपुरुषोंकी सेवा कीजिये और संपूर्ण वासनाओंको नष्ट कीजिये। दूसरोंके दोष तथा गुणोंका विचार न करते हुए आप कथारूपी रसका सदा पान करते रहिये ॥ ८० ॥ इसप्रकार पुत्रके वचनोंसे घरको छोड़कर साठ वर्षका वह वृद्ध ब्राह्मण वनमें चला गया। वहाँ भगवान्‌की सेवा करता हुआ दशमस्कन्धका प्रतिदिन पाठ करनेसे श्रीकृष्ण भगवान्‌की शुभ सन्निधिको प्राप्त हो गया ॥ ८१ ॥

चतुर्थ अध्याय का सार—श्री सूतजीने कहा—हे शौनकजी, इसतरह अपने भक्तोंके चित्तमें विराज रही भक्तिको देखकर, पीताम्बरधारी भक्त वत्सल भगवान् भी वैकुण्ठ छोड़कर अपने भक्तोंके मनमें विराजित होने लगे। गुप्तरूपसे आकर उद्धवादि वहीं बैठ गये। वहाँ जितने थे, सभी अपनेको भूल गये। सबकी वैसी अवस्था देखकर नारदजीने कहा—हे ऋषियो, मैंने सप्ताहकी अलौकिक महिमा आज देखी है, यहाँ पर उपस्थित सभी जीव निष्पाप हो गये हैं। भागवत कथाके सिवा पापनाशक कोई दूसरा नहीं दीखता। नारदकी ऐसी बात सुनकर कुमारोंने कहा—हे नारद, चाहे किसी तरहका भी महापापी क्यों न हो, वह सप्ताह श्रवणसे पवित्र हो जाता है। इस विषयमें तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ, सुनो ! तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक नगरमें एक ब्राह्मण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहता था। उसका आत्मदेव नाम था। वह वहाँके सभी ब्राह्मणोंमें धनी था। उसकी धुन्धुली नामकी एक बड़ी कर्कशा स्त्री थी। सांसारिक नानाविध सुखोंके रहते हुए भी वह पुत्र न होनेसे वहुत दुःखी था। इस दुःखसे दुःखी वह एक दिन घर छोड़कर वनमें चला गया। कड़ी धूपमें प्यासके मारे वेचैन हो रहा वह एक तालाबके किनारे पहुंच कर जल पीकरके बैठ गया। इसी समय कोई संन्यासी वहींपर आ गया। वह ब्राह्मण उसको प्रणाम कर साँस खींचता हुआ सामने खड़ा हो गया। यतिने पूछा–हे विप्र, कहो क्यों रोते हो ब्राह्मणने कहा–पुत्रके बिना दुःखी होकर मैं प्राण-त्याग करने यहाँ आया हूँ। यतिको दया आ गई। उसने ललाटाक्षर पढ़कर सारी बातें जानकर कहा–हे विप्र,तुम्हारे भाग्यमें सातजन्मतक पुत्र नहीं बदा है। हे विप्र,पुत्रके लिये चिन्ता मत करो, आजतक किसीको भी पुत्र से सुख नहीं मिला। ब्राह्मणने कहा—भगवन्, अपना ज्ञान अपने पास रखिये, मुझे पुत्र दीजिये, अन्यथा यहीं प्राण छोड़ता हूँ। बहुत समझानेपर भी ब्राह्मणके न माननेपर यतिने एक फल देते हुए कहा—लो, इसे अपनी स्त्रीको खिला दो, तुम्हें अच्छा पुत्रहोगा। ब्राह्मणने उसे घर लाकर अपनी पत्नीको दे दिया, लेकिन उसकी कर्कशा स्त्रीने न खाकर अलग रख दिया और स्वामीसे कह दिया कि मैंने खा लिया है। अनन्तर एक दिन उसकी छोटी बहिन उसके घर आई। उस छोटी बहिनसे अपनी सारी कहानी सुनानेपर उसकी बहिनने कहा—मुझे गर्भ है, बच्चा पैदा होते ही उसे तुम्हारी गोदमें रख दूँगी तबतक गर्भवती बनकर छिपी रहो तथा यह फल गायको खिला दो तदनन्तर उसकी बहिनको पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके पतिने लाकर धुन्धुली को दे दिया। पुत्रोत्पत्ति सुनकर ब्राह्मणको बड़ी खुशी हुई। उसने उसका जातकर्म करनेके बाद ब्राह्मणोंको दान दिया। बादमें उसकी गायको भी एक पुत्र हुआ। सभी आश्चर्य करन लगे। किसीको भी यह बात मालूम न होने पायी। धुन्धुलीने अपने पुत्रका नाम रखा—धुन्धुकारी और उस गायके पेटसे उत्पन्न बालकका नाम रखा—गोकर्ण। दोनों पुत्र जवान हुए, धुन्धुकारी निकला बड़ा भारी व्याभिचारी और गोकर्ण हुआ ज्ञानी पण्डित। व्यभिचारी उस धुन्धुकारीसे पिताको बड़ा कष्ट हुआ। आखिरकार वह ब्राह्मण जब प्राण देनेपर उतारू हो गया तब गोकर्णने खूब समझाया गोकर्णके उपदेशसे वह वनमें चला गया और वहीं भगवान्की सेवा करता हुआ दशमस्कन्धका प्रतिदिन पाठ करनेसे श्रीकृष्णस्वरूप प्राप्त हो गया। चौथा अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

सूत उवाच॥ पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम्॥ क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत्॥ १॥ इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः॥ कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता॥ २॥ गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः॥ न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः॥ ३॥ धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः॥ अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः॥ ४॥ एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः॥ तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन्॥ ५॥ यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः॥ ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च

❀ पिता के स्वर्गवास हो जाने पर माता को कष्ट देना, गोकर्णका तीर्थ यात्रा करना, वेश्याओं के पञ्जे में आने पर प्रेतत्व योनि प्राप्त करना—आदि वर्णन ❀

श्रीसूतजीने कहा–हे शौनक, पिताका स्वर्गवास हो जानेपर धुन्धुकारीने माताको बड़ी पीड़ा पहुँचाई और उसने कहा कि शीघ्र बता, धन कहाँ है नहीं तो अभी लातोंसे मार गिराऊँगा, ॥ १ ॥ इस प्रकार उसके वचनोंसे भयभीत होकर पुत्रके दुःखसे उसकी माता रात्रिके समय कुएँमें गिर पड़ी और उसका प्राण छूट गया ॥ २ ॥ माता पिताकी ऐसी अवस्था होनेपर गोकर्ण भी दुःख-सुख, शत्रु-मित्र—इनको बराबर समझकर योगाश्रयण करते हुए तीर्थयात्राके लिये निकल गया ॥ ५ ॥ पाँच वेश्याओंसे घिरा हुआ वह धुन्धुकारी घरमें ही रहने लगा और वह मूर्ख उनके पालन-पोषणके लिये बड़े बड़े बुरे (निन्दनीय) कर्म करने लगा ॥ ४ ॥ एक वार उन कुलटाओंने उसके सामने गहनोंकी इच्छा प्रकट की। उसको पूर्ण करनेके लिये अपनी मृत्युको स्मरण न कर वह कामान्ध घरसे निकल पड़ा ॥ ५ ॥ इधर-उधर जाकर कहींसे धन चुराकर पुनः घरको लौट आया और उन वेश्याओंको सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा कुछ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खरीदकर लाये हुए भूषण भी उसने दिये ॥ ६ ॥ उस धनके ढेरको वे देखकर रात्रिमें उन वेश्याओंने विचार किया कि यह प्रतिदिन चोरी करता है। अतः एक दिन अवश्य ही राजा इसको पकड़ लेगा ॥ ७ ॥ और सब धन लेकर इसको निश्चय जानसे मरवा देगा, इसलिये धनकी रक्षाके लिये हमलोग मिलकर इसको क्यों न मार दें ॥ ८ ॥ इसे मारकर सब धन ले करके कहीं अन्यत्र हमलोग चले जायँ तो बहुत अच्छा होगा, यों निश्चय करके उन वेश्याओंने सोये हुए धुन्धुकारीकी रस्सियोंसे बाँधकर ॥ ९ ॥ गलेमें उसके फाँसी डालकर ऐसा उपाय किया, जिससे कि उसकी मृत्यु तुरन्त हो जाय, लेकिन उसके प्राण शीघ्र नहीं निकले। उस समय चिन्तायुक्त हो गयीं ॥ १० ॥ शीघ्र मारनेके लिये उन वेश्याओंने जलते हुए अग्निके अङ्गार उसके मुखमें भर दिये। अग्निसे अधिक पीड़ाके कारण व्याकुल होकर उसने प्राण छोड़ दिये ॥ ११ ॥ उसकी लाशको लेकर कुलटाओंने एक गडढेमें गिरा दी। प्रायः

॥ ६ ॥ बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्यो विचारयन् ॥ चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ॥ अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥ ८ ॥ निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥ पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ॥ त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाऽभवन् ॥ १० ॥ तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥ तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥ लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ॥ आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन् वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥ स्त्रीणां नैव तु विश्वासं मृतानां कारयेद् बुधः ॥ विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥ १४ ॥ सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥१५॥ संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ॥ धुन्धुकारी बभूवाथ महान्प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥ वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७ ॥ न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहुर्वदन् ॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥ अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ॥ यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र

स्त्रियोंमें साहस अधिक होता है। इस रहस्यको दैवयोगसे कोई नहीं जान पाया ॥ १२ ॥ कुछ लोगोंने पूछा कि तुम्हारा पति कहाँ गया है इसके उत्तरमें वेश्याओंने कहा कि हमारा आदमी बहुत दूर विदेशमें धन कमानेके लोभसे चला गया है, इस वर्षमें शीघ्र ही आनेकी आशा है ॥ १३ ॥ विद्वान्‌को चाहिए कि दुष्ट स्त्रीका विश्वास कभी न करे। जो दुष्ट स्त्रीका विश्वास करता है वह मूर्ख विपत्तियोंमें फँस जाता है ॥ १४ ॥ यों तो बहुधा स्त्रियोंका वचन कामीपुरुषोंके कामको जगानेवाला तथा अमृतरूप होता है, परन्तु इनका हृदय छुरेकी धारसे तीक्ष्ण होता है, ऐसा स्त्रियोंका संसारमें कौन प्यारा कहा जा सकता है ॥ १५ ॥ इसप्रकार बहुत पुरुषोंको स्वीकार करनेवाली वे कुलटायें सब धनको लेकर अन्यत्र चली गईं और धुन्धुकारी पापाचरण करनेसे महान् प्रेतयोनिको प्राप्त हो गया ॥ १६ ॥ प्रतिदिन वायुका शरीरका धारण कर दसों दिशाओंमें घूमता रहे, तथा शीत और घामसे परिश्रान्त होकर भूख प्याससे व्याकुल हो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहे उसने ॥ १७ ॥ बार बार मुखसे दैव दैव चिल्लाते हुए कहींपर भी अपना रक्षक नहीं देखा। कुछ कालके बाद गोकर्णने लोगोंसे सुना कि धुन्धुकारी मर गया ॥ १८ ॥ इसे अनाथ समझ कर गयाजीमें जाकर गोकर्णने श्राद्ध किया तथा जिस जिस तीर्थमें वह जाता था वहाँपर श्राद्ध करता था ॥ १६ ॥ इसप्रकार गोकर्ण भ्रमण करता हुआ अपने नगरमें आया। रात्रिमें लोगोंने इसके आगमनको नहीं जाना और वह अपने घरके आँगनमें आकर सो गया ॥ २० ॥ रात्रिमें धुन्धुकारीने अपने भाईको सोया हुआ जानकर अर्धरात्रिके समय बड़ा भारी स्वरूप दिखाया ॥ २१ ॥ एक बार भेड़ बन गया दूसरी बार हाथी बन गया, फिर भैंसा बन गया, पुनः एक बार इन्द्रका रूप धारण किया, फिर अग्नि बन गया और इसके बाद पुनः पुरुष बन गया ॥ २२ ॥ इस विपरीत भावको देखकर धैर्यके साथ गोकर्णने 'यह कोई नारकीय है' ऐसा निश्चय कर उससे पूछा ॥ २३ ॥ गोकर्णने कहा—तुम अत्यन्त भयानक रात्रिमें

श्राद्धमवर्तयत् ॥ १६ ॥ एवं भ्रमन्स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुमागतो लक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥ सकृद्धस्ती सकृन्मेषः सकृच्च महिषोऽभवत् ॥ सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥ वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ॥ किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥ अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५ ॥ ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयत् ॥ तत्सेकाद्धतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥ प्रेत उवाच ॥ अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः ॥ स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥ २७ ॥ कर्मणो नास्ति संख्या मे महाज्ञाने विवर्तिनः ॥ लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥ २८ ॥ अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ॥ वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥२६॥ अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय ॥ गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३० ॥ गोकर्ण उवाच ॥ त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः ॥ तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥ गया-

इस दशाको क्यों प्राप्त हुए हो, तुम प्रेत हो अथवा पिशाच या राक्षस, जो हो हमसे कहो ॥ २४ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनकजी, गोकर्णने जब इसप्रकार पूछा तब यह बारंबार ऊँचे स्वरसे रोने लगा। वह बोलनेमें असमर्थ था, केवल उसने संकेत मात्र किया ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अपनी अँजलीमें जल लेकर उसके ऊपर कोई मन्त्र पढ़ करके छोड़ दिया, जिससे वह निष्पाप होकर बोलने लगा ॥ २६ ॥ प्रेतने कहा—हे गोकर्ण, मैं धुन्धुकारी नामका तुम्हारा भाई हूँ। मैंने अपने ही पापसे ब्राह्मणत्वका नाश किया है ॥ २७ ॥ अत्यन्त अज्ञानी मेरे कर्मोंकी संख्या नहीं है। मनुष्योंकी हिंसा करनेवाला मैं स्त्रियोंके द्वारा बड़े दुःखसे मारा गया हूँ ॥ २८ ॥ जिससे प्रेतभावको प्राप्त हुआ मैं इस दुर्दशाको धारण किए हुए हूँ। केवल वायुका भक्षण करके मैं जी रहा हूँ। क्योंकि फलका उदय तो दैवके अधीन है ॥ २६ ॥ हे कृपाके सागर मेरे भाई गोकर्ण, मुझे इस प्रेतयोनिसे जल्दी मुक्त करो। इसप्रकार प्रेतका वचन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुनकर गोकर्णने उससे कहा ॥३०॥ गोकर्णने कहा—मैंने तुम्हारे लिए तो गयामें विधिवत् श्राद्ध करके पिण्ड दिया है, फिर भी तुम मुक्त क्यों नहीं हुए, यह मुझे बड़ा आश्चर्य है ॥३१॥ यदि गया श्राद्धसे मुक्ति नहीं हुई, तो और कोई उपाय नहीं है। मैं अब क्या करूँ, सो तुम विस्तारपूर्वक कहो ॥ ३२ ॥ प्रेतने कहा——हे गोकर्ण, गयामें सैकड़ों श्राद्ध करनेसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी। इससे तुम कोई दूसरा उपाय विचारो ॥ ३३ ॥ इसप्रकार प्रेतका वचन सुनकर गोकर्णको बड़ा विस्मय हुआ, वह कहने लगा कि यदि सैकड़ों श्राद्धसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं होगी तो तुम्हें मुक्त करना कठिन है॥ ३४ ॥ हे प्रेत, इस समय तुम निर्भय होकर अपने स्थानपर बैठे रहो, मैं तुम्हारी मुक्तिके लिए कुछ विचार करूँगा। तब धुन्धुकारी अपने स्थानपर चला गया॥ ३५ ॥ गोकर्ण विचार करने लगा। उस रात्रिमें वह वहींपर रहा ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल गोकर्णको आया हुआ देखकर मनुष्य बड़ी प्रसन्नतासे वहाँपर आये। गोकर्णने

श्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह ॥ किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२ ॥ प्रेत उवाच ॥ गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥ उपायमपरं किञ्चित्तद्विचारय साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य गोकर्णो विस्मयं गतः ॥ शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ३४ ॥ इदानीं तु निजं स्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ॥ त्वन्मुक्तिसाधकां किञ्चिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥ धुन्धुकारी निजं स्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ॥ गोकर्णश्चिन्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥३६॥ प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ॥ तत्सर्वं कथितं तेन यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥ विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ॥ तन्मुक्तिं नैव पश्यन्ति पश्यन्तः शास्त्रसञ्चयान् ॥ ३८ ॥ ततः सर्वे सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ॥ गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा ॥३९॥ तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन्ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ॥४०॥ तच्छ्रुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमित्यभ्यभाषत ॥ श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु ॥ ४१ ॥ इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ सर्वेऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ॥४२॥ गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ॥४३॥ पङ्ग्वन्धवृद्धमन्दाश्च तेऽपि पापक्षयाय वै ॥ समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ॥४४॥ यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ स प्रेतोऽपि तदा यातः स्थानं

जो कुछ रात्रिमें हुआ था. वह सब उन लोगोंसे कह सुनाया ॥ ३७ ॥ बड़े-बड़े विद्वान्, योगी तथा वेदपाठी अपने-अपने शास्त्रोंको देखकर भी उसकी मुक्तिका जब उपाय न प्राप्त कर सके ॥ ३८ ॥ तदन्तर उन्होंने उसकी मुक्तिके विषयमें भगवान् सूर्यनारायणसे पूछनेका निश्चय किया। तब गोकर्णने भगवान् सूर्यके रथकी गति रोक दी ॥ ३९ ॥ और कहा——हे जगत् के साक्षी, आपको नमस्कार है। आप मुझे मुक्तिका कारण बतलाइये ॥ ४० ॥ ऐसा सुनकर भगवान् सूर्यदेव दूरसे ही कहने लगे कि——हे गोकर्ण, श्रीमद्भागवत सुननेसे मुक्ति अवश्य होती है। सात दिनमें उसका पाठ कर डालो ॥ ४१ ॥ इसप्रकार सूर्यके धर्मरूपी वचनोंको सबने सुना, और सभी कहने लगे कि यह तो अत्यन्त सरल उपाय है। अतः इसे प्रयत्नसे करना चाहिए ॥ ४२ ॥ तब गोकर्णने निश्चय करके कथा कहना आरम्भ किया। जिसे सुननेके लिए देश तथा ग्रामोंसे मनुष्य आये ॥ ४३ ॥ जो पंगु, अन्धे, वृद्ध तथा मूर्ख थे, वे भी अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पापको नष्ट करनेके लिए आये। उस समय देवताओंको भी विस्मय देनेवाला मनुष्योंका समूह एकत्रित हुआ ॥ ४४ ॥ जब गोकर्ण आसनपर बैठकर कथा कहने लगा, तब वह प्रेत भी इधर-उधर स्थान देखता हुआ आया ॥ ४५ ॥ उसने वहाँपर सात गाँठवाला ऊँचा एक बाँस देखा। उसके नीचेके छिद्रमें बैठकर कथा सुनने लगा ॥ ४६ ॥ चूँकि प्रेत वायुरूप होते हैं अतः उनका स्थिर रहना कठिन है। यही कारण है कि वह बाँसमें प्रविष्ट हो गया। अनन्तर गोकर्णने भगवद्भक्त ब्राह्मणको श्रोता बनाया ॥ ४७ ॥ और प्रथमस्कन्धसे लेकर कथा कहना शुरू किया जब सामको कथा समाप्त हुई तब वहाँपर एक बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४८ ॥ संपूर्ण मनुष्योंके देखते-देखते उस बाँसकी एक गाँठ फट गई, दूसरे दिन दूसरी गाँठ फट गई ॥४९॥ तथा तीसरे दिन तीसरी गाँठ फट गई—इसीप्रकार सात दिनमें उस बाँसकी सातों गाँठ फट गई ॥ ५० ॥ वह प्रेत भागवतके बारहो स्कन्ध सुननेसे प्रेतयोनिको छोड़कर दिव्यरूपको प्राप्त

पश्यन्नितस्ततः ॥४५॥ सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ॥४६॥ वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ॥ ४८ ॥ वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ द्वितीयेऽह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ॥ ४९ ॥ तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रंथिभेदनम् ॥ एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रन्थिविभेदनम् ॥ ५० ॥ कृत्वाऽपि द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः ॥ ५१ ॥ पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ॥ ५२ ॥ त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ॥ धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥ ५३ ॥ सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ॥५४॥ अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनः कर्मभिः कृतम् ॥५५॥ श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्वेदसंसदि ॥ ५६ ॥ अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ ५७ ॥ अध्रुवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ॥५८॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं

हो गया ॥ ५१ ॥ श्यामवर्ण, पीताम्बर, कुण्डल तथा तुलसीकी मालाओं से सुशोभित वह गोकर्णको प्रणाम कर कहने लगा—॥ ५२ ॥ हे भाई गोकर्ण, तुमने मुझे इस प्रेतयोनिसे मुक्त किया है। भगवान्‌की कथा धन्य है, जिसके सुननेसे प्रेतकी पीड़ा दूर हो जाती है ॥ ५३ ॥ तथा सप्ताहके लिए धन्यवाद है। जो भगवान् कृष्णके गोलोकके फलको देता है। सप्ताहश्रवणसे संपूर्ण पाप काँपते हैं ॥ ५४ ॥ यह कथा हम लोगोंके पापोंको शीघ्रही नाश करेगी। मन, वाणी तथा कर्मसे जो भी छोटा-बड़ा पाप किया जाता है, उसे सप्ताह उस तरह नष्ट कर देता है, जिस तरह अग्नि समिधाओंको जला देती है ॥ ५५ ॥ इस भरतवर्षमें वेदवादियोंकी सभामें विद्वानोंके द्वारा कथा न सुननेवाले मनुष्योंका जीवन निष्फल कहा गया है ॥ ५६ ॥ अज्ञानसे पाले-पोसे गये बलवान् तथा क्षणभंगुर इस शरीरसे कथा सुननेके सिवा और कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ५७ ॥ यह शरीर मूत्र तथा हड्डियोंका घर है। इसमें हड्डि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

योंके खंभे हैं स्नायुओंसे यह बँधा हुआ है। मांस और खूनसे लिप्त है तथा त्वचासे ढँका हुका दुर्गन्धसे युक्त है ॥ ५८ ॥ वृद्धावस्था तथा शोकसे पीडित, रोगोंका स्थान, दुःखी एवं अनेक दोषोंसे युक्त यह एक क्षणमें नष्ट हो जानेवाला है ॥५६॥ इस शरीरको अन्तमें प्राणोंसे हीन हो जानेपर कीटोंके भोजनका विषय बननेपर विष्ठा तथा जला दिये जानेपर भस्म बनाना पड़ता है, ऐसे अनित्य शरीरसे मनुष्यको स्थिर कर्म करना चाहिए ॥ ६० ॥ जो अन्न सबेरे पकाया जाता है वह सामको नष्ट हो जाता है। उसी अन्नके रससे पुष्ट हुए इस शरीरमें क्या नित्यता है ॥ ६१ ॥ सप्ताह सुननेसे भगवान्‌का सामीप्य प्राप्त होता है, इसलिए सम्पूर्ण दोषोंको दूर करनेके लिए एकमात्र यही उत्तम साधन है ॥ ६२ ॥ जो कथा सुननेसे वंचित हैं उनका जन्म केवल मरनेके लिए ही होता है, जैसे कि पानीमें बुलबुले तथा जन्तुओंमें मशक आदि छोटे-छोटे कीडे उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥ जिस कथाके श्रवणसे जड़ तथा शुष्क

मूत्रपुरीषयोः ॥ जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् ॥५६॥ दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभङ्गुरम् ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञान्तं शरीरमिति वर्णितम् ॥ ६० ॥ अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्न हि ॥ यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ॥ ६१ ॥ तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ॥ ६२ ॥ अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम् ॥ बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ॥ जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणर्जिताः ॥ ६३ ॥ जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र ग्रन्थिविभेदनम् ॥ चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥ ६५ ॥ संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ॥ कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव बुधैः स्मृता ॥ ६६ ॥ एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानमगमत्तदा ॥ वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥ ६७ ॥ सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः ॥ विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥६८॥ गोकर्ण उवाच ॥ अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ॥ आनीतानी विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥ श्रवणं समभागेन सर्वेषमिह दृश्यते ॥ फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥ ७० ॥ हरिदासा ऊचुः ॥ श्रवणस्य विभेदेन फलभेदोऽपि संस्थितः ॥ श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥ ७१ ॥ फलभेदस्ततो जातो भजनादपि

बाँसकी गाँठोंका भेदन हो गया, उससे चित्तकी ग्रन्थियोंका भेदन हो जाय, तो क्या आश्चर्य है ॥ ६४ ॥ सप्ताह श्रवणसे मनुष्यके हृदयकी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, संपूर्ण संशय दूर हो जाते हैं और इसके संपूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५ ॥ संसाररूपी कीचड़को धो डालनेमें निपुण कथारूपी गङ्गामें स्नान करनेसे मनुष्य मुक्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ इसप्रकार उसके कहनेपर वैकुण्ठमें रहनेवालोंसे युक्त चमकता हुआ एक विमान वहाँ आ गया ॥ ६७ ॥ और सबके देखते-देखते उस विमानमें धुन्धुकारी बैठ गया। तदनन्तर उस विमानमें विष्णु भक्तोंको देखकर गोकर्ण कहने लगा ॥ ६८ ॥ गोकर्णने कहा—हे भगवान्‌के पार्षदो, मेरी कथा सुननेवाले बहुतसे पुण्यात्मा मनुष्य यहाँपर उपस्थित हैं, फिर आप लोग उन सबके लिए एक साथ विमान क्यों नहीं लाये ॥ ६९ ॥ क्योंकि संपूर्ण मनुष्योंने कथाका श्रवण बराबर किया है, परन्तु यह फलमें भेद क्यों हो गया, सो आप लोग मुझसे कहनेकी कृपा कीजिये ॥ ७० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐसी गोकर्णकी बात सुनकर हरिदास कहने लगे–कि हे गोकर्ण, श्रवणमें भेद होनेसे फलमें भी हुआ है। संपूर्ण मष्नुयोंने श्रवण तो किया है सही, परन्तु वैसा मनन नहीं किया है, जैसा कि धुन्धुकारीने किया है ॥ ७१ ॥ अतः उसी भेदके कारण फलमें भी भेद हुआ है। हे मानद गोकर्ण, प्रेतने तो सात दिन तक निराहार व्रत करके कथा सुनी है ॥७२॥ तथा उसने मनन भी स्थिर चित्तसे खूब किया है। प्राप्त किया गया भी जो ज्ञान दृढ़ नहीं किया जाता वह नष्ट हो जाता है तथा शास्त्र भी प्रमाद करनेसे नष्ट हो जाते हैं ॥७३॥ जिस मंत्रमें सन्देह रहता है उसका फल नहीं होता और चंचल चित्तसे जो जप किया जाता है वह नष्ट हो जाती है। जिसदेशमें भगवद्भक्त नहीं रहता वह देश नष्ट है और जिस श्राद्धमें अयोग्य मनुष्य रहता है वह श्राद्ध भी नष्ट ही है ॥ ७४ ॥ जो दान वेद न जाननेवालेको दिया जाता है उसका कोई फल नहीं होता, तथा आचार-विचार न रहनेसे कुल नष्ट हो जाता है। गुरुके वचनोंमें विश्वास,

मानद ॥ सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम् ॥ ७२ ॥ मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥७३॥ सन्दिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपो जपः ॥ अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ॥७४॥ हतमश्रोत्रिये दानमनाचारहतं कुलम् ॥ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्वभावना ॥ ७५ ॥ मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ॥ ७६ ॥ पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ॥ ७७ ॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ॥ श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः ॥ ७८ ॥ सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः ॥ कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद ॥ ७९ ॥ विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ॥ जयशब्दा नमः शब्दास्तत्रासन्बहवस्तदा ॥ ८० ॥ पाञ्चजन्य-ध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ॥ गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥ श्रोतॄनन्यान्घनश्यामान्पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥ तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः ॥ विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा

अपनेमें दीन भावना रहे, मनके दोषोंके ऊपर विजय तथामें निश्चल मति रहे, तब कहीं जाकर सुननेका फल होता है ॥ ७६ ॥ एक बार पुनः कथा सुननेसे संपूर्ण मनुष्योंको वैकुण्ठ प्राप्त होगा। हे गोर्ण, तुम्हें तो भगवान् स्वयं आकर गोलोक देंगे ॥ ७७ ॥ इसप्रकार कहकर भगवान्के सेवक वैकुण्ठको चले गये। गोकर्णने श्रावण मासमें पुनः कथा कहना प्रारम्भ किया ॥७८॥ और उन मनुष्योंने पुनः सात दिन तक कथा श्रवण की तथा उसका खूब मनन भी किया। हे नारद, उस कथाके सँमाप्त हो जानेपर जो कुछ हुआ, सो तुम सुनो ॥७९॥ कथा समाप्त होते ही वहाँपर विमान तथा भक्तोंके साथ भगवान् श्रीहरि प्रकट हुए। उस समय वहाँ जय जयकार तथा नमः शब्दकी ध्वनि होने लगी ॥ ८० ॥ वहाँपर भगवान्ने स्वयं पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनि की और गोकर्णका आलिङ्गनकर उसे अपने सदृश बना दिया ॥ ८१ ॥ तथा और भी जितने सुननेवाले थे, उनको भगवान्ने उसी समय मेघके समान श्यामवर्ण तथा पीताम्बरको धारण किए हुए, मुकुट और कुण्डलसे सुशोभित बना दिया ॥ ८२ ॥ उस ग्राममें चाण्डालादि जितनी जातियोंके जीव थे, उन्हें गोकर्णकी कृपासे भगवान्ने विमानमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बैठा लिया ॥ ८३ ॥ और जहाँपर योगी लोग जाते हैं, उस भगवान्‌के लोकमें उन्हें भेज दिया। तथा कथा सुननेसे प्रसन्न हुए भगवान् गोकर्णके साथ गोलोकको चले गये ॥ ८४ ॥ जैसे पहले अयोध्याके रहनेवाले रामके साथ चले गये थे, वैसे ही कृष्ण भी अपने गाँवके रहनेवाले सबको योगियोंसे दुर्लभ गोलोकको गये ॥ ८५ ॥ जहाँपर सूर्य, चन्द्रमा सिद्धोंकी भी कभी गति नहीं होती उन लोकोंको वे कथा सुननेसे चले गये ॥ ८६ ॥ सप्ताह श्रवणसे इस कथामें एकत्रित किए हुए उत्तम फलको मैं तुमसे क्या कहूँ। जिन्होंने भागवत कथाका अक्षर

॥ ८३ ॥ प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ॥ ८४ ॥ कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण सङ्गताः ॥८५॥ तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ॥ तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ८६ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु सञ्चितम् ॥ कर्णेन गोकर्णकथाक्षरो यैः पीतश्च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥ वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसञ्चितैः ॥ योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन यान्ति ताम् ॥ ८८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥ ८९ ॥ आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥ श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमाहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भी कानसे सुना, वे पुनः इस संसारमें नहीं आये। अर्थात् मुक्त हो गये ॥ ८७ ॥ जिस गतिको मनुष्य सप्ताह श्रवणसे प्राप्त करते हैं। उसे वायु जल और पत्ते खाकर देहको सुखानेवाले बहुत समयसे एकत्रित किए हुए तपसे तथा योगसे प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ८८ ॥ इस पवित्र इतिहासको ब्रह्मसुखसे पूर्ण शाण्डिल्य मुनि चित्रकूट पर्वतपर बैठे हुए पढ़ते हैं। यह आख्यान अत्यन्त पवित्र है। एक समय संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, श्राद्धमें पढ़नेसे पितरोंको तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे मोक्ष हो जाता है ॥ ८९, ९० ॥

पञ्चम अध्यायका सार—हे शौनकजी, एक दिन धुन्धुकारीने माताको खूब पीटा, वह अति दुःखके कारण कुएँ में जाकर गिर पड़ी और इस संसारसे सदाके लिये विदा हो गई। माता-पिताकी मृत्युके बाद गोकर्ण तीर्थयात्राके लिये घरसे निकल गया। इधर धुन्धुकारीकी यह दशा थी कि पाँच वेश्याओंको लेकर अपने घरमें रहने लगा। पिताकी सारी सम्पत्ति जब समाप्त हो गई तब चोरी आदिके द्वारा उन वेश्याओंका पालन करने लगा। एक दिन वेश्याओंने मिलकर विचार किया कि अब इसके पास धन तो है नहीं, चोरी चाण्डाली करके लाता है एक दिन अवश्य ही पकड़ा जायगा और उस दिन अवश्य मारा जायगा। ऐसी दशामें हमीं लोग मिलकर इसे क्यों न मार डालें और धन लेकर अन्यत्र चले जायँ। ऐसा निश्चयकर धुन्धुकारीको मार करके उसकी सारी सम्पत्ति लेकर चम्पत हो गई। कुछ दिनके बाद लोगोंसे गोकर्णने सुना कि धुन्धुकारी मर गया। गोकर्णने उसे अनाथ समझकर गयामें जाकर उसकी श्राद्ध क्रिया की और पिण्डदान दिया। बहुत दिनोंके बाद घूमते घूमते वह अपने घर आया और आँगनमें अकेले जाकर सो गया। गाँववालोंको यह बात मालूम नहीं हुई। आधी रातमें अपने भाईको सोया हुआ जानकर धुन्धुकारीने अपना भयंकर स्वरूप दिखलाया। गोकर्णने उससे पूछा—कहोजी, तुम कौन हो। सूतजीने कहा—हे शौनकजी, गोकर्णके पूछनेपर वह खूब रोने लगा, वह बोलनेमें असमर्थ था, अतः जलकी ओर संकेतमात्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया। मन्त्र पढ़कर गोकर्णने उसके ऊपर पानीके छींटे डाले। तब वह बोलने लगा। उसन अपनी मृत्युकी सारी कथा कही। गोकर्णने पूछा—कहोजी, मैंने तो तुम्हारी मुक्तिके लिये गयामें श्राद्ध किया और पिण्डदान दिया फिर भी तुम प्रेत बने ही रहे। प्रेतने कहा—भाई गोकर्ण; मैंने इतना ज्यादा पाप किया कि गयाश्राद्धसे मेरी मुक्ति न हुई, अब कोई दूसरा उपाय सोचो। गोकर्णने कहा—जाओ, अपने स्थानपर बैठ जाओ, कल तुम्हारी मुक्तिका उपाय सोचूँगा। दूसरे दिन गोकर्णको आया हुआ जानकर गाँववाले सब मिलनेके लिये आये। गोकर्णने रातकी सारी घटना उन लोगोंसे कह सुनाई। हे शौनकजी, उस प्रेतकी मुक्तिके लिये जब किसीने कोई उपाय नहीं बतलाया तब गोकर्णने सूर्यदेवकी गति रोककर उनसे पूछा—भगवन्, आप जगत् के साक्षी हैं। मुक्तिका उपाय बतलाइये। सूर्यदेवने कहा—गोकर्ण, भागवतका सप्ताह पाठ करो, मुक्ति अवश्य होगी। भगवद्भक्त एक ब्राह्मणको श्रोता बनाकर गोकर्णने कथा आरम्भ की। वहाँ एक आश्चर्य जनक घटना यह होने लगी कि पहले दिन वहाँके बाँसकी पहली गाँठ दूसरे दिन दूसरी और तीसरे दिन तीसरी-यों सात दिनमें सातों गाँठ फट गयीं। सप्ताह खतम होनेपर धुन्धुकारी दिव्यरूपको धारण कर गोकर्णसे कहा-भाई, तुमने सप्ताह सुनाकर मुझे मुक्त किया है। भगवान्की कथा धन्य है, जिसके श्रवणसे मेरे जैसे प्रेत भी मुक्त हो जाते हैं विष्णुके सेवक विमानमें धुन्धुकारीको बैठाकर जब ले जाने लगे, तब गोकर्णने कहा—भगवान्के रूपमें हमारे यहाँ अनेक श्रोता उपस्थित हैं उनके लिये भी एकही साथ विमान क्यों नहीं लाये ? उन्होंने उत्तर दिया—हे गोकर्ण देखो श्रवण भेदसे इसमें भेद हो गया है, जैसे धुन्धुकारीने मन लगाकर श्रवण किया है वैसे उन्होंने नहीं किया है, अतः एकबार फिर सप्ताह सुनाओ। फिर वे मुक्त हो जायँगे। और तुम्हें तो लेने साक्षात् भगवान् आवेंगे। गोकर्णको वैसाही किया। तब भगवान् अपने सेवकोंके साथ प्रकट हुए। गोकर्णके गाँवमें जितनी जातियोंके लाग कथाके श्रोता थे, उन सबकों विमानमें बैठकर भगवान्ने बैकुण्ठमें भेज दिया और गोकर्णको अपने साथ लेकर गोलोक चले गये। हे शौनकजी, सप्ताहका माहात्म्य बहुत बड़ा है। योगसे जिस भक्तिको योगी नहीं पा सकते वह सप्ताहसे प्राप्त हो जाती है। इस पवित्र इतिहासको शाण्डिल्य मुनि चित्रकूट पर्वतपर बैठकर प्रतिदिन पाठ करते हैं। यह व्याख्यान पवित्र है इसके सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। पाँचवा अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ॥ सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधि स्मृतः ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छय यत्नतः ॥ विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ॥ एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥ मासानां विग्रहे यानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ॥ सहायाश्चेतरे चात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥ देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ॥ भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६ ॥ देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः

✻ कथा सुनने के लिए मुहूर्त्त पूछना, पत्र द्वारा सबको सूचित करना, मण्डपादि का निर्माण करना, पुत्र प्राप्त्यर्थ श्रवण करना-आदि वर्णन ✻

इसके अनन्तर सनकादि मुनियोंने कहा—हे नारद, हम तुमसे सप्ताह श्रवणकी विधिका वर्णन करेंगे। प्रायः विधिपूर्वक सप्ताह सुननेके लिये अधिक धनकी अपेक्षा है ॥१॥ सबसे पहिले ज्यौतिषीको बुलाकर मुहूर्त पूछकर प्रयत्नसे जिसप्रकार विवाहके लिए धन एकत्रित किया जाता है उसी प्रकार मनुष्य धन इकट्ठा करे ॥ २ ॥ भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ तथा श्रावण ये मास कथा सुननेवाले श्रोताओंको मोक्ष देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ इन महीनोंमें भी जो तिथि नक्षत्रादि त्याज्य हैं उनको त्याग देना चाहिये और जो भी साधन इसके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सहायक हों उनका उद्योग पूर्वक संपादन करना चाहिये ॥ ४ ॥ तथा देश-देशमें इस वार्ताको प्रयत्न पूर्वक भेजना चाहिये कि यहाँपर श्रीभागवतकी कथा होगी, आपको सपरिवार आना चाहिये ॥ ५ ॥ जो लोग हरिकथासे और हरिकीर्तनसे दूर रहते हैं उनको, स्त्रियों तथा शूद्रोंको जिसप्रकार बोध हो जाय, वैसा ही उपाय करना चाहिये ॥ ६ ॥ देश देशमें प्रसिद्ध विरक्त हों तथा वैष्णव जो कीर्तनके प्रेमी हों उनके पास निमंत्रण पत्र भेजना चाहिये उसे लिखनेका तरीका इसप्रकार है—॥ ७ ॥ यहाँपर एक सप्ताह तक अति दुर्लभ सत्पुरुषोंका सत्संग होगा और अपूर्व अमृतरूपी कथा होगी ॥ ८ । श्रीमद्भागवत-रूपी सुधापान करनेके लिये कथा रसके विषयमें लम्पट जो आपलोग हैं, सो प्रेममें तत्पर होकर शीघ्र आइये ॥ ९ ॥ यदि आपको ज्यादा अवकाश न हो, तो एक दिनके लिये अवश्य पधारिये आपको सर्वथा आगमन अवश्य करना चाहिये, क्योंकि यहाँपर एक क्षण भी दुर्लभ है ॥ १० ॥ इसप्रकार सबको विनय

कीर्तनोत्सुकाः ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७ ॥ सतां समाजो भविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ॥ अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ॥ भवन्तश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥ नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ॥ सर्वथा गमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥ एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ॥ आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥ तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ॥ विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ॥ १२ ॥ शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ॥ १३ ॥ अर्वाक् पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ॥ कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः ॥ १४ ॥ फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ॥ वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥ उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ॥ प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुख-

पूर्वक बुलाना चाहिये तथा आनेवाले अतिथियोंके रहनेके लिये स्थानका प्रबन्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥ तीर्थस्थानमें, जङ्गलमें अथवा घरमें कथा श्रवण करनी चाहिये । जहाँपर विशाल भूमि हो, वहींपर कथाका स्थल निश्चय करना चाहिये ॥ १२ ॥ जहाँपर कथा कहना हो, पहिले वहाँकी भूमिका शोधन, उसके बाद झाड़ूसे मार्जन, तत्पश्चात् गोमयादिसे लेपन, उसके बाद गेरु आदि धातुसे मंडन करना चाहिये । गृहकी सामग्रीको लेकर गृहके एक कोणमें रख देना चाहिये ॥ १३ ॥ कथा प्रारंभसे पाँच दिनके पहले ही सप्ताहोपयोगी वस्तुओंका संग्रह प्रयत्नसे करना चाहिये, केलेके स्तम्भोंके द्वारा अत्यन्त ऊँचा मण्डप बनाना चाहिये ॥ १४ ॥ फल तथा पुष्प दलोंसे युक्त मण्डपको चारों ओर चाँदनी तान देनी चाहिये तथा मण्डपकी चारों दिशाओंमें अत्यन्त ऊँचा तथा संपत्तिशाली ध्वजायें गाड़ देनी चाहिये ॥ १५ ॥ मंडपके ऊपरके भागमें सातों लोकोंकी रचना करनी चाहिये । उन स्थानोंमें ब्राह्मणों तथा विरक्त लोगोंको स्थापित करना चाहिये ॥ १६ ॥ पहिले इन महात्माओंके लिये यथा क्रमसे यथायोग्य आसनोंका प्रबन्ध करना चाहिये । इसके बाद वक्ताके लिये सुन्दर दिव्य आसन मँगाना चाहिये ॥ १७ ॥ ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यदि वक्ताका मुख उत्तर दिशामें हो, तो श्रोताको पूर्व मुख होना चाहिये। यदि वक्ताका प्राङ्मुख हो, तो श्रोताको उत्तराभिमुख होना चाहिये ॥ १८ ॥ अथवा पूज्य-पूजकके मध्यदेशको ही पूर्वदिशा समझनी चाहिये। श्रोताओंके लिये जैसी शास्त्रसम्मत वक्ताकी विधि है, वह देश-कालादिको जाननेवाले पुरुषोंने बतलाया है ॥ १९ ॥ विरक्त, वैष्णव, ब्राह्मण, वेदशास्त्र विहित संस्कारोंसे संस्कृत, दृष्टान्त कुशल, धैर्य्यवान्, विद्वान् तथा त्यागी वक्ता होना चाहिये ॥ २० ॥ अनेक धर्मावलम्बी, स्त्री लम्पट तथा पाखण्डावादी जो हैं, वे चाहे पण्डित ही क्यों न हों, फिर भी उन्हें श्रीमद्भागवत ग्रन्थका वक्ता नहीं स्वीकार करना चाहिये ॥ २१ ॥ वक्ताकी सहायताके लिये एक और उसीप्रकारके विद्वान्को उसके पासमें स्थापित करना चाहिये, जो कि श्रोताओंके द्वारा की गई शंकाओंका समाधान भलीभांति कर सके तथा लोगोंको समझानेमें चतुर हों ॥ २२ ॥ वक्ताको व्रत स्वीकार करनेके पहिले प्रातःकाल क्षौरक्रिया कर लेनी चाहिये

स्तदा ॥ १८ ॥ अथवा पूर्वदिग्ज्ञेयापूज्यपूजकमध्यतः ॥ श्रोतॄणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥१९॥ विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्र-विशुद्धिकृत् ॥ दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिस्पृहः ॥ २० ॥ अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ॥ शुभशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥ २१ ॥ वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ॥ पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ २२ ॥ वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग्व्रताप्तये ॥ अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ॥२३॥ नित्यं संक्षेपतः कृत्वा सन्ध्याद्य सप्रयत्नतः ॥ कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पितॄन् सन्तर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५ ॥ कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ॥ प्रदक्षिणा नमस्कारान्पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥ संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥ कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥ श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ॥ कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥२८॥ ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥

और अरुणोदयके समय तक शौच स्नानसे निवृत्त हो जाना चाहिये ॥ २३ ॥ प्रतिदिन सप्ताह पर्यन्त–तक संक्षेपसे सन्ध्यादि करना चाहिये तथा कथामें किसी प्रकारका विघ्न न हो, इसलिये श्रीगणेशजीकी आराधना करनी चाहिये। शारीरिक तथा मानसिक शुद्धिके लिये पितृतर्पण करके कुछ प्रायश्चित्त करना चाहिये। एक मंडलाकार दिव्य स्थानकी कल्पना करके वहाँपर श्रीहरिको स्थापित करना चाहिये ॥२४॥ इसके बाद श्रीकृष्ण भगवान्के उद्देश्य करके क्रमसे सब देवताओंकी पूजा करनी चाहिये, फिर पूजनके अन्तमें प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके भगवान्की स्तुति करनी चाहिये ॥ २५ ॥ हे करुणसागर, इस संसार सागरमें मग्न मुझ दीनका इस भवार्णवसे उद्धार करें। हे नाथ, मुझे कर्म तथा मोहने पकड़ लिया है, इनसे शीघ्र छुड़ाओ ॥ २६ ॥ इसके बाद धूप, दीप, नैवेद्य आदिके द्वारा श्रीभागवत् ग्रन्थकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर श्रीफलको लेकर नमस्कार करना चाहिये तथा प्रसन्नचित्त हो उससमय केवल स्तुति करनी चाहिये ॥२८॥ हे नाथ, यह भागवत नामक जो ग्रन्थ है, सो प्रत्यक्ष भगवान् कृष्णका ही स्वरूप है। मैंने इस संसार सागरसे मुक्तहोनेके लिये स्वीकार किया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ ३० ॥ हे केशव, मेरा यह मनोरथ आपको निर्विघ्नता पूर्वक सर्वथा सफल करना होगा, क्योंकि मैं आपका सेवक हूँ ॥ ३१ ॥ इसप्रकारके दीन वचन भगवान्के सामने कहकर उसके अनन्तर वक्ताकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ इसप्रकार प्रार्थना करे कि--हे विद्वन्, आप समस्त शास्त्रोंके विद्वान् हैं, तथा शुकदेवस्वरूप हैं, इसलिये आप इस कथाजन्य प्रकाशके द्वारा मेरे अज्ञानको नाश कर दीजिये ॥ ३३ ॥ अनन्तर, अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये प्रेमपूर्वक नियमको स्वीकार करके सप्ताह पर्यन्त उसका यथोचित पालन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ कथा में किसी प्रकारका विघ्न न हो, इसलिये पाँच ब्राह्मणोंको वरण करना चाहिये और उनके द्वारा द्वादशाक्षर मंत्रका जप करना चाहिये ॥३५॥ इसके अनन्तर विप्र और वैष्णव तथा जो कीर्तन करनेवाले हों उन सबसे आज्ञा लेकर तथा उन सबको नमस्कार करके स्वयं आसनके ऊपर विराजमान हो जाना चाहिये ॥३६॥ संसारके धन, मकान, स्त्री, पुत्र आदिकी चिंताको दूर करके

स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥३०॥ मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ॥ निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥३१॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ॥ संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥३२॥ शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥ तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ॥ सप्तरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥ वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ॥ कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणान्वैष्णवांश्चान्यान् तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ ३६ ॥ लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत्फलमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तिकम् ॥ वाचनीया कथा सम्यग्धीरकण्ठं सुधीमता ॥ ३८ ॥ कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ॥ तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥ मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥ उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥ घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात्सुखम् ॥ ४१ ॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभक्तेन वा पुनः ॥ सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥ ४२ ॥ भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्न-

कथामें एकाग्रचित्त होकर पवित्र बुद्धिसे जो कथाका श्रवण करता है वह अवश्य उत्तम फलको प्राप्त करता है ॥३७॥ सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहर तक अच्छी तरह गंभीर स्वरसे वक्ताको कथा कहनी चाहिये ॥३८॥ तदनन्तर मध्याह्नके समय कथा बन्दकर देनी चाहिये। कथाकी विश्रान्ति कालमें वैष्णवभक्तोंको कथाके उपलक्ष्यमें कीर्तन करना चाहिये ॥ ४० ॥ मल-मूत्र जीतनेके लिये अल्पाहार करना उचित है कथा श्रोताको हविष्यान्न भोजन कराके वह भी एकबार करके कथा श्रवण करना चाहिये ॥ ४० ॥ शरीरमें शक्ति हो, तो सातराततक उपवास कर कथा श्रवण करना चाहिये अथवा घृतपान करके या दुग्धपान करके कथा श्रवण करना चाहिये ॥ ४१ ॥ अथवा फलाहार करके एक अन्न खाकर कथा श्रवण करना चाहिये। तात्पर्य यह कि जो सुख साध्य हो वही करना चाहिये ॥ ४२ ॥ यदि उपवास करनेसे कथाश्रवणमें मन न लगे अर्थात् कथामें विघ्न हो, तो उपवासकी अपेक्षा भोजन करनाही उचित है, जिससे कि कथासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चित्त लगे ॥ ४३ ॥ हे नारद, अब मैं तुमसे सप्ताह व्रत करनेवाले पुरुषके नियम का वर्णन करता हूँ, जिनलोगोंने विष्णुदीक्षा मंत्र नहीं लिया है, उनको कथा सुनने का अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ कथा श्रवण करने वालेको ब्रह्मचर्य्य व्रतको धारण करना, पृथ्वीपर सोना पत्तलमें अथवा कथा की समाप्ति होने पर भोजन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ पदार्थ या जिसमें बुरी भावना होगई हो और एक दिन पहले का पकाया गया हो, उसे कथा व्रती को नहीं खाना चाहिये ॥४७॥ काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर यानी ईर्ष्या, लोभ, दंभ तथा मोह, द्वेष इनको त्याग देना चाहिये ॥ ४७ ॥ वेदों, वैष्णव ब्राह्मण, गुरु, तथा गोकी सेवा करनेवालों एवं स्त्री, राजा और बड़ेलोगों की निन्दा कथा व्रतीको न करनी चाहिये न सुननी चाहिये ॥ ४८ ॥ रजस्वला स्त्री, शूद्र, म्लेच्छ, आदि पतित तथा जो ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले हों और जिनको वेदाध्ययनका अधिकार नहीं है, उनके साथ कथा व्रतीको भाषण नहीं करना

करो यदि ॥ ४३ ॥ सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु नारद ॥ विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यमधः सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥४५॥ द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥ कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च यथाव्रती ॥ ४७ ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥४८॥ रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रातकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥४९॥ सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ उदारमानसं तद्वदेव कुर्यात्कथाव्रती ॥ ५० ॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥ अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५१ ॥ अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा च या नारी तथा श्राव्यः प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत् ॥ अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३ ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ॥ जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥५४॥ अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥५५॥ एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन्समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्याऽतिभक्तितः ॥५६॥ प्रसादतुलसीमालाः श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ॥

चाहिये ॥४०॥ इसी प्रकार सत्य, शौच, मौन, सरलता, नम्रता, उदारता इनसबका भी पालन कथाव्रती को नित्य करना चाहिये ॥ ५० ॥ जो दरिद्र हों, जिसको क्षणरोग हुआ हो, जो भाग्य हीन हो, पापी हो, जो सन्तान हीन हो और जो मोक्ष चाहता हो ऐसे प्राणीको अवश्य कथा श्रवण करना चाहिये ॥५१॥ इसी प्रकार जिस नारी को रजोधर्म न होताहो अथवा जिसके एक सन्तान होकर फिर सन्तान न होता हो, जिसके सन्तान होता ही न हो, जिसके बच्चे होकर मर जाते हों अथवा जिसका गर्भ गिर जाता हो, ऐसी नारीको यह कथा प्रयत्नसे श्रवण करना चाहिये ॥ ५२ ॥ ये लोग यदि विधिपूर्वक सप्ताह श्रवण करे, तो तत्-तत् अक्षय फल अवश्य प्राप्त करे, इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि यह कथा अति उत्तम है अतएव कोटि यज्ञके फलको देनेवाली है ॥५३॥ इसप्रकार विधिपूर्वक व्रत करनेके बाद उद्यापन करना चाहिये, जो सकाम श्रोता हों, उनको जन्माष्टमीव्रतकी तरह करना चाहिये ॥ ५४ ॥ जो भक्त द्रव्यहीन हो, उनके लिये उद्यापनका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आग्रह नहीं है, क्योंकि वे निष्काम वैष्णव हैं अतः केवल श्रवणमात्रसे ही पवित्र हो गये हैं ॥ ५५ ॥ इसप्रकार सप्ताहकी समाप्ति होजानेपर श्रोताओंको यथोचित वक्ताकी भक्तिपूर्वक और पुस्तककी पूजा करनी चाहिये ॥ ५६ ॥ तथा अन्य श्रोताओंके लिए प्रसाद और तुलसीकी माला देनी चाहिये। तदनन्तर मृदङ्ग, वीणा आदिके द्वारा मधुर स्वरसे भगवान्का कीर्तन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ इसके बाद जयघोष, नमश्शब्दघोष तथा शंखघोष करना चाहिये। ब्राह्मण और वाचकोंके लिये अन्नदान तथा वित्तदान करना चाहिये ॥ ५८ ॥ यदि श्रोता विरक्त हो, तो दूसरे दिन गीता श्रवण करना चाहिये। यदि गृहस्थ हो, तो किये हुए कर्मकी सिद्धिके लिये उसे हवन करना चाहिये ॥ ५९ ॥ सुन्दर खीर बनाकर उसमें सहत, घृत, तिल, अन्न इत्यादि मिलाकर दशमस्कन्धके प्रत्येक श्लोकसे हवन करना चाहिये ॥ ६० ॥ अथवा श्रीगायत्रीमंत्रसे हवन करना चाहिये, क्योंकि यह पुराण गायत्रीमय है तथा श्रीनारायण भी गायत्रीके स्व-

मृदङ्गतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥ ५७ ॥ जयशब्दं नमःशब्दं शङ्खशब्दं च कारयेत् ॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥५८॥
विरक्तश्चेद्भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ॥ गृहस्थश्चेत्तदा होमः कर्त्तव्यः कर्मशान्तये ॥ ५९ ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥
पायसं मधुसर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम् ॥ ६० ॥ अथवा हवनं कुर्याद्गायत्र्या सुसमाहितः ॥ तन्मयत्वात्पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥
होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ॥ नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः ॥ ६२ ॥ दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम् ॥
तेन स्यात्सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६३ ॥ द्वादशब्राह्मणान्पश्चाद्भोजयेन्मधुपायसैः ॥ दद्यात्सुवर्णधेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४ ॥
शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥ संपूज्यावाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ॥
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६ ॥ आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ॥ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥
फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ॥ धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥ ६८ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ इति ते कथितं सर्वं किं भूयः

रूप हैं ॥ ६१ ॥ यदि हवन करनेमें असमर्थ हो, तो बुद्धिमान्को चाहिये कि वह हवन योग्य द्रव्यको उसके फलकी सिद्धिके लिये दान कर दे इस दानसे जो कुछ इस यज्ञमें न्यूनाधिक रूप त्रुटि हो गई होगी, वह सब शान्त हो जायगी और भी जो नानाप्रकारके दोष हैं वे शान्त हो जायँगे ॥ ६२ ॥ तथा अवशिष्ट दोषोंकी शान्तिके लिये श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करना चाहिये। इसका पाठ करनेसे सब सफल हो जायगा, क्योंकि इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं ॥ ६३ ॥ इसके अनन्तर बारह ब्राह्मणोंको मधु और खीरका भोज कराना चाहिये तथा व्रतके फलकी सिद्धिके लिये सुवर्ण तथा गोदान करना चाहिये ॥ ६४ ॥ यदि शक्ति हो तो तीनपल सुवर्णका सिंहासन बनवाकर उसके ऊपर मनोहर अक्षरोंसे लिखाकर श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापन करना चाहिये ॥ ६५ ॥ इसके बाद आवाहना दिषोडशोपचारसे पुस्तककी पूजा करके वस्त्र आभूषण, और गन्ध आदिसे पूजन किये गये जितेन्द्रिय ब्राह्मणको दक्षिणाके सहित प्रदान कर देना चाहिये ॥६६॥ इसप्रकार बुद्धिमान् श्रोता आचार्यको पुस्तक दान देकर भवबन्धनसे छूट जाता है। इसप्रकार विधि सहित पूजन करनेसे समस्त पापोंके दूर होजानेपर ॥६७।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह श्रीमद्भागवत पुराण फलदायक होता है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन हो जाता है ॥ ६८ ॥ श्रीसनकादिमुनियोंने कहा–हे नारद, इन सब इतिहासोंका मैंने तुमसे वर्णन कर दिया, अब तुम्हारी क्या सुननेकी इच्छा है। केवल श्रीमद्भागवतके ही श्रवणसे मुक्ति और भुक्ति दोनों प्राप्त हो जाती हैं ॥ ६९ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, इतना कहकर उन महात्माओंने श्रीमद्भागवतकी कथा आरम्भ की, जो कि समस्त पापोंको दूर करनेवाली तथा भुक्ति और मुक्ति देनेवाली है ॥ ७० ॥ इसप्रकार जितेन्द्रिय श्रोताओंने सप्ताह श्रवण करते हुए विधिपूर्वक श्रीपुरुषोत्तम भगवान्की स्तुति की ॥ ७१ ॥ इसके अनन्तर ज्ञान वैराग्य तथा श्रीमती भक्तिदेवी—ये तीनों परम पुष्टिको प्राप्त हुए तथा सबके मनको हरण करनेवाली ज्ञान और वैराग्यकी तरुणावस्था पुनः प्राप्त हो गई ॥ ७२ ॥ अपने मनोरथकी सिद्धि होनेसे श्रीनारदजी कृतकृत्य हो गये। इनका शरीर पुलकायमान हो गया तथा परमानन्दसे पूर्ण हो

श्रोतुमिच्छसि ॥ श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ॥ सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७० ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ॥ यथाविधि ततो देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७१ ॥ तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता परा ॥ तारुण्यं परमं चाभूत्सर्वभूतमनोहरम् ॥७२॥ नारदश्च कृतार्थोऽभूत्सिद्धे स्वीये मनोरथे ॥ पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसंभृतः ॥ ७३ ॥ एवं कथां समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ॥ अद्य मे भगवान् लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥७५॥ श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ॥ वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥७६॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ॥ परिभ्रमन् समायातः शुको योगीश्वरस्तदा॥७७॥ तत्रायया षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ॥ कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥७८॥ दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ॥ प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत्संशृणुतामलां गिरम् ॥ ७९ ॥ श्रीशुक

गये ॥ ७३ ॥ इसप्रकार भगवत् प्रिय श्रीनारदजी कथाको श्रवण करके प्रेमसे गद्गद् वाणीके द्वारा हाथ जोड़कर श्रीसनकादि मुनियोंके प्रति बोले ॥ ७४ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे भगवन्, आज मैं धन्य हूँ, आप लोगोंने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है। आज मुझे समस्त पाप दूर करनेवाले श्रीनारायणकी प्राप्ति हो गई ॥ ७५ ॥ हे तपोधन, संपूर्ण धर्मोंकी अपेक्षा मैं श्रीहरि कथा श्रवणको ही श्रेष्ठ समझता हूँ क्योंकि जिस कथाके श्रवणसे वैकुण्ठनिवासी भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ७६ ॥ श्रीसूतजीने कहा–शौनकजी, इसप्रकार वैष्णव श्रेष्ठ श्रीनारदजीके कथनके अनन्तर पर्यटन करते हुए उस स्थानपर श्रीयोगियोंके ईश्वर शुकदेवजी उपस्थित हो गये ॥ ७७ ॥ कथाके अन्तमें अपनेही आनन्दसे परिपूर्ण श्रीमद्भागवतको धीरे-धीरे पढ़ते हुए षोडशवर्ष की अवस्थावाले तथा ज्ञानमहासागरके चन्द्रस्वरूप व्यासजीके पुत्र श्रीशुकदेवजी वहाँपर आ गये ॥ ७८ ॥ सदस्यलोगोंने परम तेजस्वी श्रीशुकदेवजीको देखते ही उठकर सुन्दर आसन दिया। इसके अनन्तर श्रीशुकदेवजी महाराजकी श्रीनारदजीने विधिवत् पूजा की। तदन्तर आसनपर बैठकर निर्मलवाणीद्वारा जो कुछ उन्होंने कहा, उसको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपलोग प्रेमसे श्रवण करें ॥ ७९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे रसास्वादनमें चतुर भावुक पुरुषो, आपलोग वेदरूपी कल्पवृक्षके शुकके मुखसे च्युत तथा अमृतमय रससे पूर्ण भागवतरूपी रसवान् फलका मुक्ति पर्यन्त पान करते चलें ॥ ८० ॥ इस श्रीमद्भागवतमें राग द्वेषादि रहित सत्पुरुषोंके छल कपटरहित निष्काम परमधर्मका निरूपण किया गया है तथा इस ग्रन्थमें तीनों तापोंको दूर करनेवाला और मोक्ष देनेवाला जो ब्रह्म है वही संसाररूपसे प्रतीत हो रहा है इत्याकारक ज्ञानका प्रतिपादन किया गया है। अन्य शास्त्रोंके द्वारा अति शीघ्र आत्मज्ञान होना कठिन है, किन्तु महामुनि व्यासदेव विरचित इस ग्रन्थके श्रवण-मननसे तो शीघ्र ही ईश्वरीय ज्ञान तथा साक्षात्कार हो जाता है ॥ ८१ ॥ यह श्रीमद्भागवतग्रन्थ सम्पूर्ण पुराणोंका मुकुटमणि है तथा वैष्णवका धन है जिसमें परमहंस महात्माओंके धर्मका निरूपण भलीभाँति किया गया है। ज्ञान-विरागके सहित निष्काम कर्म बतलाया गया है, जिसके श्रवण, मनन

उवाच ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥८०॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ ८१ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं यस्मिन्पारमहंस्यमेवममलं ज्ञानं परं गीयते ॥ यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्प्रपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ ८२ ॥ स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ॥ अतः पिबन्तु सद्भक्त्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ॥ ८३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे सति बादरायणे मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ॥ प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ॥ भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमन् कीर्तनदर्शनाय ॥ ८५ ॥ प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत् ॥ इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तनं ते कुमारा यत्राग्रे भावभक्ता रसरचनतया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८६ ॥ ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ॥ अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥ ८७ ॥ मत्तो वरं भागवता वृणुध्वं

तथा पठन, पाठनसे मनुष्य भक्तिरूप साधनके द्वारा मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥ सत्यलोकमें, कैलाशमें तथा वैकुण्ठमें भी यह रस दुर्लभ है इसलिये हे श्रोताओ, आपलोग भक्तिपूर्वक इसका पान करो ॥ ८३ ॥ श्रीसूतजीने कहा--हे शौनकजी, श्रीशुकदेवजीके इतना कहनेके बाद प्रह्लाद, राजा बलि, उद्धव तथा अर्जुन आदिके सहित बीच सभामें श्रीहरि प्रकट हो गये। तब श्रीनारदजीने भक्तोंके सहित श्रीहरिकी पूजा की ॥ ८४ ॥ उस समय श्रेष्ठ आसनपर आसीन प्रसन्नमुख श्रीहरिको देखकर उनके सामने सबलोग कीर्तन करने लगे। उस कीर्तनके दर्शनके लिये पार्वतीके सहित शंकरजी तथा ब्रह्माजी भी आ गये ॥ ८५ ॥ कीर्तनके समय प्रह्लादने मधुर स्वरसे ताल बजाया तथा उद्धवने विजयघंट और श्रीनारदजीने वीणा बजायी। श्रीअर्जुनने राग उठाया तथा इन्द्रने मृदंग बजाया और सब देवताओंने जय-जय ध्वनि की। तथा सनकादि मुनियोंने श्रीहरिके सन्मुख कीर्तन किया और रसरचनामें प्रवीण श्रीशुकदेवजी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जहाँपर भावके वक्ता बने ॥ ८६ ॥ इसके बाद सबके सामने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य--ये तीनों नटकी तरह नृत्य करने । इस अलौकिक कीर्तनको देखकर अति प्रसन्न होकर श्रीहरि बोले ॥ ८७ ॥ हे परम भागवतो, मैं तुम्हारे कीर्तनसे अति प्रसन्न हूँ, इसलिये आपलोग मुझसे कुछ बरदान मांगिये इसप्रकार भगवान्के वचनोंको सुनकर अति प्रसन्न होकर श्रीहरिके प्रति सनकादि मुनियोंने कहा-- ॥ ८८ ॥ हे भगवन्, इस सप्ताहरूपी यज्ञमें आप इन सब भक्तोंके ऊपर भलीभाति प्रसन्न रहना, सप्ताहयज्ञके द्वारा शीघ्र प्राप्त होना और हे भगवन्, यह हमलोगोंका मनोरथ पूर्ण करना--इतनी प्रार्थना सुनकर 'एवमस्तु' कहकर श्रीहरि अन्तर्हित हो गये ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर श्रीनारदजीने शुकदेवजीके तथा श्रीसनकादि मुनियोंके चरणोंमें नमस्कार किया । इसके बाद सब श्रोतालोग हर्षित होकर अपने-अपने मोहको दूरकर तथा कथारूपी अमृतका पान करके अपने-अपने आश्रमको चले गये ॥ ९० ॥ श्रीशुकदेवजीने ज्ञान और

प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि सांप्रतम् ॥ श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्तं हरिमूचिरे ते ॥ ८८ ॥ नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात् ॥ मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वाऽन्तरधीयताच्युतः ॥ ८९ ॥ ततोऽनमत्तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च ॥ अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥ ९० ॥ भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रस्वकीयेऽपि तदा शुकेन ॥ अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥ ९१ ॥ दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ॥ संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥ शौनक उवाच ॥ शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ॥ सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥ सूत उवाच ॥ आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ॥ नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ॥ ९४ ॥ परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये ॥ शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम् ॥ ९५ ॥ तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ॥ ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥ इत्येतत्ते समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥ कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ ९७ ॥ कृष्ण-

वैराग्यके सहित भक्तिकी रक्षा अपने ग्रन्थमें की है, इसलिये श्रीमद्भागवतके सेवनसे श्रीहरि अपने वैष्णव भक्तोंके हृदयमें प्रकट हो जाते हैं ॥९१॥ यह श्रीमद्भागवतग्रन्थ दारिद्र्य दुःखरूपी ज्वरसे दग्ध तथा मायारूपी पिशाचिनीसे पीसे गये और संसाररूपी सिन्धुमें डूबते हुए प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये गर्जना करता है ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर श्रीशौनकजीने कहा—हे सूतजी महाराज, श्रीशुकदेवजीने राजा परिक्षित्के प्रति किस समय कथा सुनाई, गोकर्णने धुन्धुकारीके प्रति कब कही तथा सनकादिमुनियोंने नारदजीके प्रति कब सुनाई--इस हमारे सन्देहको आप दूरकर दीजिये ॥ ९३ ॥ श्रीसूतजीने कहा--हे शौनकजी, भगवान् श्रीकृष्ण के गोलोक पधारनेके बाद तीसवर्ष कलियुगके अधिक बीत जानेपर भाद्रपदमासमें नवमीसे श्रीशुकदेवजीने कथा प्रारम्भ की ॥ ९४ ॥ राजा परीक्षित्के कथा श्रवणके अनन्तर दो सौ वर्ष कलिके व्यतीत हो जानेपर शुद्ध आषाढ़ मासमें नवमीसे गोकर्णने धुन्धुकारीके प्रति कथा सुनाई ॥ ९५ ॥ इसके बाद तीस वर्ष और कलि बीत जानेपर कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें नवमीसे ब्रह्माके पुत्र सनकादि मुनियोंने श्रीनारदजीके प्रति कथा सुनाई ॥ ९६ ॥ हे निष्पाप, जो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपलोगोंने हमसे पूछा, सो हमने आपलोगोंसे कह दिया। कलियुगमें श्रीभागवतकी कथा भवरोगको नाश करनेवाली है ॥ ९७ ॥ यह श्रीमद्भागवतग्रन्थ श्रीहरिको बड़ा प्रिय है, समस्त पापोंको दूर करनेवाला है, मुक्तिका एकमात्र कारण है और भक्तिके विलासका वर्धक है। इसलिये हे महात्माओ, इस कथामृतका पान आपलोग आदरसे किया करो। इससे बढ़कर और कोई हितकारक नहीं है ॥ ९८ ॥ श्रीयमराजजी यमपाशको हाथमें लिये हुए अपने अनुचरको बुलाकर उसके कानमें कहते हैं कि देखो, भगवान् कथामें मरत जो भक्तलोग हैं उनको कभी न लाना, क्योंकि मेरा शासन वैष्णवोंके ऊपर नहीं है ॥ ९९ ॥ इस असार संसारमें विषयरूपी विषके संगसे जिनकी बुद्धि व्याकुल हो गई है, उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग अपने कल्याणके लिये क्षणमात्र भी किंचित् शुकोक्तिसुधाका पान किया करें, व्यर्थमें क्यों कुमार्गपर चल रहे हैं। श्रीमद्भागवतसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें राजा परीक्षित्

प्रियं सकलकश्मलनाशनं च मुक्त्यैकहेतुमिह भक्तिविलासकारि ॥ सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८ ॥ स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथासु मत्तान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥ असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः क्षणार्धं क्षमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ॥ किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवण-गतमुक्त्युक्तिकथने ॥ १०० ॥ रहः प्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ॥ कण्ठे संबध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१ ॥ इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ॥ जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥१०२॥ एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ॥ तौ सम्यग्विधिकरणात्फलं लभेते याथार्थ्यान्न हि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥१०३॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ समाप्तमिदं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्।

ही साक्षी हैं ॥ १०० ॥ भक्तिरसके प्रवाहमें स्थित श्रीशुकदेवजीने इस कथाका वर्णन किया है, इसलिये यह कथा जिसके कण्ठसे सम्बन्ध करती है, वह वैकुण्ठका स्वामी हो जाता है ॥ १०१ ॥ इसप्रकार परम गोपनीय सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका सार मैंने तुमसे शास्त्रपुंजको देखकर कहा है। इसलिये संसारमें श्रीशुकदेवजीकी कथासे बढ़कर और कुछ भी साधन नहीं है। अतः ये पारलौकिक सुखकी प्राप्तिके लिये प्रत्येक मनुष्यको 'द्वादशस्कन्धात्मक' कथामृतका पान करना चाहिए ॥ १०२ ॥ जो इसको नियमसे श्रवण करता है तथा भक्तिपूर्वक जो वैष्णवोंके प्रति इसका वर्णन करता है, उन दोनोंको उत्तम विधि करनेके कारण यथार्थ फल प्राप्त होता है। उसके लिये इस लोकमें कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१०३॥

षष्ठ अध्यायका सार–सनकादि मुनियोंने कहा–हे नारद जी, अब सप्ताह सुननेकी क्या विधि उसे सुनो। ड सप्ताह सुननेके लिए मुहूर्त पूछ लेना चाहिये। अनन्तर जहां कथा सुननी हो वहां की भूमि शुद्धकर देनी चाहिये। बादमें अपने इष्टमित्रों के पास निमन्त्रण भेज देना चाहिये कि अमुक तिथिको सप्ताह होगा, आप सपरिवार आनेकी कृपा कीजियेगा। केले आदिके खम्भोंसे सुन्दर मण्डप बनवाना चाहिए। अनन्तर शास्त्रोंमें निष्णात वैष्णव विद्वान्की नानाविध वस्त्रों और आभूषणों आदिसे अलङ्कृत करके भगवान्की मूर्ति वहां रखकर पूजनके बाद कथा सुननी चाहिए। भगवान्की कथा में मन लगे, इसलिए थोड़ा भोजन करना उचित है सप्ताहकी समाप्ति होजानेपर दशमस्कन्धके प्रत्येक श्लोकोंसे या गायत्रीमन्त्रसे हवन करना चाहिये। विरक्त श्रोताके लिए तो गीता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रवणका विधान है अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये । कथाकी समाप्ति हो जानेपर आचार्यकी यथाशक्ति द्रव्यादिसे पूजा करनी चाहिये । नारद, सप्ताह सुननेकी विधि तो बतला दी । अब कहो, क्या सुननेकी इच्छा है । केवल एक भागवत–हे शौनकजी, यों कहकर उन महात्माओंने भागवतकी कथा शुरू कर दी सभी महात्माओंने कथा सुनते हुए भगवान्‌की स्तुति की । तदनन्तर वैराग्य और भक्ति प्राप्त हो गई । ज्ञान तथा वैराग्य पुनः तरुण हो गये ! अपनी अभीष्ट सिद्धि देखकर नारदको बड़ी प्रसन्नता हुई । नारदजीने कहा–भगवन्, आप लोगोंने बड़ी दयाकी ! मेरे समस्त पाप नष्ट हो गये । सूतजीने कहा—हे शौनकजी, यों नारदजीके कहनेपर कहींसे घूमते घूमते श्रीशुकदेवजी वहाँ आ पहुँचे । नारदजीके द्वारा विधिवत् उनकी पूजा हो जानेपर आसनपर बैठकर उन्होंने कहा–हे रसिकभावको, यह वेदरूपी कल्प वृक्षका भागवतरूपी सुन्दर फल है, जो शुकदेवजीके मुखसे गिया है । आप लोग का जबतक मोक्ष न हो जाय, तबतक इसके रसका पान करते चलिये । इसके श्रवण-मननसे तत्काल भगवत्साक्षात्कार हो जाता है । हे शौनकजी, इतना कहते ही उद्धवादि अपने भक्तोंके साथ सभाके बीचमें, श्रीहरि प्रकट हो गये प्रसन्न मुख भगवान्‌को देखकर सब लोग कीर्तन करने लगे । अनन्तर भगवान्‌ने कहा–हे मेरे भक्तो, मैं तुम्हारे कीर्तनसे खूब प्रसन्न हूँ । मुझसे वर माँग लो । तब कुमारों ने कहा–भगवन्, बस सप्ताह यज्ञमें इन सब भक्तों के ऊपर प्रसन्न रहना, सप्ताह यज्ञके द्वारा शीघ्र दर्शन देना और हम लोगों का मनोरथ पूर्ण करना । इतनी प्रार्थना के बाद 'शिवमस्तु' कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये । नारदजीने कुमारों और शुकदेवमुनिके चरणों में नमस्कार किया । अनन्तर सब लोग अपने अपने आश्रम को चले गये । तदनन्तर शौनकजीने कहा—हे सूतजी, ये सब कथायें कब-कब हुई थीं सूतजी ने कहा—हे शौनकजी, भगवान कृष्णके गोलोक चले जाने पर कलिके तीसवर्ष बीत जाने के बाद राजा परीक्षित् को श्रीशुकदेवजीने भाद्रपद मास की नवमी से कथा सुनाई थी तदनन्तर कलि के दो सौ वर्ष बीत जाने पर गोकर्ण ने धुन्धुकारीको शुद्ध आषाढमास की नवमीसे तथा उसके बाद तीस वर्ष और बीत जाने पर कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमीसे कुमारों ने नारदजीको कथा सुनाई थी । छठा अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(शास्त्रीयमत द्वारा स्मार्तयज्ञ भी दो पक्षमें समाप्त हो सकते हैं)

अथेदानीमिदं विचार्यते यत् एकं कर्म एकस्मिन्पक्षे समापयितुं शक्यते वा न वेति। तत्र श्रौतेषु कर्मसु पर्यालोच्यमानेषु स्पष्टं निर्णेतुं शक्यते। शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे वा प्रारब्धं कर्म तदितरस्मिन्पक्षे समापयितुं शक्यत इति। इष्टिपशुसोमरूपेण विभक्तानां क्रतूनां 'य इष्ट्या पशुना सोमेन वा यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा यजेत' इत्यनेन वाक्येन पर्वकालानुष्ठेयत्वं बोध्यते। तत्रेष्टयः द्व्यहकालाः सद्यस्कालाश्च द्वेधा विभक्ताः। दर्शेष्टिः द्व्यहकालाः, सौर्यादिविकृतयः सद्यस्काला अपि भवन्ति। दर्शेष्टिरिति सा व्यवह्रियते, या अमावास्यानन्तरं शुक्लपक्षप्रतिपदि क्रियमाणइष्टिः। तत्र अमावास्यायामेव तदीयानि कानि च नाङ्गानि प्रारभ्यते सायं दोहशाखाहरणवत्सापाकरणादीनि। अवशिष्टानि चाङ्गानि प्रधानानि च प्रतिपदि समाप्यते। एतेनेदं निश्चितं भवति यत् एकस्मिन्पक्षे एकं कर्म उपक्रम्यापरस्मिन्पक्षे समापयितुं शक्यते। तथैव ज्योतिष्टोमः पञ्चदिनसाध्यः। 'य इष्ट्या' इति वाक्यबलेन स यागः कस्मिंश्चनपक्षे एकादश्यां प्रारभ्यते, समाप्यते च पर्वकालस्यार्धरात्रौ अवभृथस्नानं न समाप्तं, तर्हि प्रतिपदि प्रातः तत्कर्म समाप्यते। एवं क्रियमाणमिदं कर्म विगुणं भवति, फलप्रदं न भवति इति च मीमांसका याज्ञिका वा नाङ्गीकुर्वते। एवमेव नक्षत्रेष्टिः सप्तविंशति २७ दिनेषु सम्पत्स्यते। तत्र चावश्यं पक्षद्वयं साध्यत्वं तस्य कर्मणः स्वीकर्तव्यमिति को वा नाङ्गीकुर्यात्। एवमेव द्वादशाहमारभ्य सहस्रसंवत्सरपर्यन्तं साध्यानि यान्यसंख्येयानि कर्माणि तेषामेकस्मिन्नेव पक्षे समाप्तिः कथं भवेत्। अत्र चावश्यं भिन्नभिन्नपक्षानुष्ठेयत्वं स्वीकर्तव्यमिति कस्तन्दिहीत? एतान्युदाहरणान्यादाय स्मार्तकर्मस्वपि रुद्रविष्णुयागसूर्ययागादिष्वपि व्यवस्था कर्तुं शक्यते। यत् शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे वा रुद्रादियागमुपक्रम्य तदितरस्मिन्पक्षे समापयितुं शक्यत इति। कश्चन यजमानः लक्षसंख्याकारुद्राहुतीश्चिकीर्षति, अपि चाल्पसंख्याकानव ऋत्विजो ऽवृणोत्। स कथमिव तावत्संख्याका आहुतीः एकस्मिन्पक्षे समापयितुं प्रभवेत्? रुद्रयागादिविधायकवाक्येषु कुत्रापि नायं विशेषः कथितः। यत् एकस्मिन्नेव पक्षे समापनीया इमे यागा इति। प्रारम्भदिनान्येव तत्र तत्र निर्दिष्टानि, समापनदिनानि तु ऐच्छिकान्यवेति प्रयोगविधितोऽवगन्तव्यं भवति। प्रयोगविधिर्हि सर्वत्र श्रौतेषु स्मार्तेषु वा कर्मसु अविलम्बेन पदार्थाननुष्ठापयति। तत्र तत्र श्रौतकर्मणां नियतदिनानुष्ठेयत्वं विधिना बोधितम्। तथा स्मार्तयागविधायकवाक्येष्वश्रवणात्कथमिववक्तुं शक्यते। यदेकस्मिन्नेव पक्षे समारब्धं कर्मपरिसमापनीयमिति। अतः स्मार्तकर्मणि रुद्रयागप्रभृतीनि, एकस्मिन्पक्षे प्रारभ्यापरस्मिन्पक्षे समापयितुं शक्यन्त इति बोध्यम्।

(स्तम्भवेष्टनविचार)

रुद्रयागादिमण्डपेषु मण्डपादभितोऽलङ्कारार्थं वेष्टितानि वस्त्राणि कर्मकर्तृभिः ऋत्विग्भिः स्प्रष्टुं शक्यन्ते न वेति विचारे शक्यन्त इत्येवोत्तरं वक्तव्यम्। एतादृशवस्त्रवेष्टनविधायकस्मृतेः न बाधिका काचनस्मृतिर्दृश्यते क्वापि। यथा ज्योतिष्टोमे औदुम्बर्याख्या स्थूणा वस्त्रेण वेष्टनीयत्वेन स्मर्यते। 'औदुम्बरी, सर्वा वेष्टयितव्येति। अस्याश्च स्मृते—'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वा उद्गायेत्' इति श्रुतिबोधिका वर्तत इति। तत्रौदुम्बर्यां वेष्टनं निषिद्धं प्रतिभाति। तद्वत्प्रकृतं वेष्टनश्चेत् कया चन श्रुत्या प्रतिषिध्येत, तर्हि तत्स्पर्शनमपि न कर्तव्यमित्यापतेत्। न च तथा वर्तते। यद्यपि 'शुचिना कर्मकर्तव्यम्' इत्यादिशास्त्रेण कर्मकरणावसरे शुचिभिः साव्यृत्विग्भिरिति प्रतीयते, तथापि नूतनैरेववस्त्रैः स्तम्भवेष्टनस्य क्रियमाणत्वात्तादृशवस्त्रस्पर्शनेन शुचित्वाव्याघातात् न तत्स्पर्शनेकोऽपि दोषः। न चापि तत्स्पर्शने कर्मविगुणं भवति, निषिद्धत्वाभावात्। अतस्तादृशवस्त्रस्पर्शनं न दोषायेति सिद्धम्।

[स्मार्तयज्ञोंमें अवभृथस्नान अत्यावश्यक]

रुद्रादियागेषु कर्मसमापनान्तेऽवभृथस्नानं क्रियते। तद्युक्तं न वेति विचारे युक्तमित्येव प्रतिभाति। ज्योतिष्टोमादिसोमयागेषु कर्मसमाप्त्यनन्तरं नद्यां तडागे वा अवभृथेष्टिं कृत्वा ॥२४॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तत्र सर्वैः स्नानं कर्तव्यमिति विधिरस्ति । अयं चावभृथो मुख्यः परिगण्यते । एवं दर्शपूर्णमासयोरप्यवभृथस्नानं विहितम् । 'एष वै दर्शपूर्णमासयोरवभृथः यदपांन्युत्सेकः'–इति । अत्र नदीतटाकादिष्ववगाहनपूर्वकमुख्यावभृथस्नानाभावेऽपि अपां व्युत्सेकरूपगौणावभृथस्नानं तत्र कर्तव्यत्वेन विहितम् । तद्वत् प्रकृतेऽपि रुद्रादियागे कर्मणस्साङ्गत्वसिद्धयेऽन्ते गौणावगाहनस्नानं कृतमपि न दोषाय भवेत् । यद्यपि कुत्रापि विधिर्नावलोक्यते अवभृथस्नानं कर्तव्यमिति, तथापि यागसमाप्त्यनन्तरं पुण्येषु तीर्थेषु तदङ्गत्वेनावभृथस्नाने कृते न कोऽपि दोषः । प्रत्युतावभृथस्नानकरणेनैव कर्मणस्साद्गुण्यं भवेदिति शिष्टाचारस्य वर्तमानत्वादवश्यमाचरणीयमवभृथस्नानम् । शिष्टाचारस्यापि प्रामाण्यस्य व्यवस्थापनात् मीमांसाशास्त्रे । अतस्तदनुरोधेन अवभृथस्नानमाचरणीयमेवेत्याभाति ।

(आचार्यके चाञ्चल्यतापर उसका प्रतिनिधि हो सकता है)

सम्प्रति भूयसां विदुषां वैदिकानां च आचार्यस्य प्रतिनिधिर्भवितुमर्हति न वेति महती विप्रतिपत्ति दरीदृश्यते । आदौ आचार्यशब्देन कोऽर्थोऽभिवक्षते तस्य कुत्र शक्तिः कुत्र लक्षणा इति विचारमर्हति । विषयेऽस्मिन् शास्त्रकाराणां कीदृशोऽभिप्रायः इति च किञ्चित्प्रस्तूयते । तथाहि आचार्यशब्दः मन्वादिभिः महर्षिभिः– एवं निरुक्तः 'उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः । सकल्पं स रहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षत इति । अनेनाचार्यलक्षणमुच्यत इत्यविप्रतिपन्नं समेषां विदुषाम् । तथा वाचस्पतिमिश्रोऽपि सूत्रे प्रसङ्गात्समन्वयप्राचीनसंमतमाचार्यलक्षणमुपावर्तयत् तदुपोद्बलकत्वेन । आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे यस्मात्स आचार्य उपाहृतः । इतीदं पद्यमुदाहार्षीत् । एवमेवान्यैरपि प्राचीनैः महर्षिभिः स्वेषु स्वेषु ग्रन्थेस्वाचार्यलक्षणं प्राणायि । तत्राचार्यशब्दो मुख्य इति । एवं कर्मकाण्डेऽपि वैदिकैः कर्मादौ 'सकलकर्मकर्तारमाचार्यं वृणे [वृणीमहे] इति पठन्ति । अतः वैदिकप्रक्रियायाम् आचार्यशब्दः सकलकर्मकर्तृबोधनतात्पर्येण प्रयुज्यत इति संप्रधार्यत पूर्वोक्तावाचार्यौ नाभिप्रतौ किन्तु अयमेवाचार्यसंमत इति । आचार्यवरणानन्तरं च 'ऋत्विजो वृणीते' तदनन्तरं च यजमानः एवं सङ्कल्पयते 'एषां वृतानां ब्राह्मणाना मन्योन्यसाहाय्येनाचार्यमुखेन च इदं कर्म कारयिष्ये–इति । अतः यथा ऋत्विजः दक्षिणया परिक्रीयन्ते एवं सकलकर्मकर्ता आचार्योऽपि । तस्य विशिष्यदक्षिणाम्नानात् । अयं चाचार्यः क्रियमाणस्य कर्मणः न्यूनातिरेकादिकृतं दोषं परिहाय कर्म सगुणं साङ्गोपाङ्गतया च कर्म सुष्ठुसंपादयतीत्ययं वैदिके कर्मणि दर्शपूर्णमासादावध्वर्युरिव प्रधानभूतः सन् आचार्य इत्यभिधीयते । तस्मात् दक्षिणया परिक्रीतत्वादस्य ऋत्विक् त्वं न विहन्यते । अतएव प्रधानभूतऋत्विक् इत्यप्युच्यते । उपक्रमे विषयेऽयं प्रस्तुत यत् कर्मकाण्डे कर्मस्वरूपसंपादकत्वं च आचार्यपदवाच्यस्य प्रतिनिधिर्न वेति । तत्राचार्यस्यापि प्रतिनिधिरस्तीति सोपपत्तिकमुत्पादयामः । तथाहि कर्मणः द्रव्यदेवतामन्त्रऋत्विगादिना साध्यत्वेन श्रुतद्रव्याद्यप्रचारे अन्यस्य प्रतिनिधिरस्ति न वेति विचारः पूर्वमीमांसादर्शनअधिकारलक्षणे प्रतिनिधिपादे कृतः । तत्र केषां न इति विचिकित्सायां देवतायाः प्रतिनिधिर्न भवति, आहवनीयाद्यग्नीनां प्रतिनिधिर्भवति न मन्त्रस्य न वा अदृष्टार्थस्य प्रयाजादेः । अयमभिप्रायः–देवतादीनां शास्त्रैस्समधिगम्यत्वेनाग्निदेवतया यददृष्टमुत्पद्यते तदेवादृष्टं सूर्यदेवतया समुत्पद्यत इत्यत्र प्रमाणाभावात् देवतादीनां प्रतिनिधिर्न भवति । तथा च जैमिनीयसूत्रम्–'न देवताग्निशब्दक्रियाद्दष्टार्थत्वात्' इति । तथा यजमानस्यापि प्रतिनिधिर्न भवति । यजमानस्यापि प्रतिनिधिस्वीकारे प्रतिनिहितोऽपि स्वयमेव यजमानः स्यात् न तु प्रतिनिधिरिति तस्मात् यजमानस्य प्रतिनिधिर्न भवतीति । तथा चोक्तं जैमिना,–'तथा स्वामिनः फलसमवायात् फलस्य कर्मयोगित्वादिति । अतः एतेषां पूर्वोक्तानां प्रतिनिधिर्न भवतीति । ऋत्विजान्तु प्रतिनिधिर्भवत्येव तेषां कर्मकरत्वात् । आचार्योऽपि ऋत्विग्जातीय इत्युक्तम् । ऋत्विजस्तु प्रत्यक्षमेव कर्मस्वरूपं सम्पादयन्तीति न तेषामदृष्टार्थत्वम् ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपि तु दृष्टार्थत्वमेवेति समधिगतमीमांसान्यायतत्त्वानां पुरतः न किञ्चित् पिष्टं पिष्यते। अत्र दैवात् मानुषाद्वा अपराधात् रोगादेर्वा यदि वृतोऽप्याचार्यः कर्ममध्ये अपरमेचादानीं प्रारब्धस्य कर्मणः अवश्यपरिसमापनीयत्वेनान्याचार्यः वरणीय एव। अन्यथा 'कर्मणः फलजनकत्वासंभवात्' तस्मात् अन्यस्याचार्यस्य प्रतिनिधित्वेन वरणं शास्त्रीयमेवेति न किञ्चिद्वक्तव्यमवशिष्यते विदितवेदितव्यानां पुरस्तात्। अपि च एवं बहुषु स्थलेषु व्याध्यादिना उपपीडितमाचार्यं परित्यज्य शिष्टसंप्रदाये बहुधा दृष्टमिति। शिष्टाचारोऽप्यमुमेवार्थं द्रढयतितराम्। जैमिनिरपि उपक्रान्तस्य काम्यस्य कर्मणः नित्यस्य वा अवश्यपरिसमापनीयत्वेन विहितद्रव्यऋत्विगाद्यपचारे अन्यः आगमयितव्य इति सुस्पष्टं प्रत्यपीपदत्। 'आगमो वा चादनार्था विशेषात्' इति अन्यशेषः। प्रतिनिधेयस्य ऋत्विगादेरिति तस्मादाचार्यस्य प्रतिनिधित्वेन किञ्चिद्दुष्यति। अपि च मीमांसकेश्वरः जैमिनिः-अस्मिन्नेव प्रकरणे 'अन्यमागमयेत् अवैगुण्यात्' इति सूत्रया-मास। अस्यायमर्थः-यदा वृतानां मध्ये अन्य ऋत्विगाचार्यपदवाच्यः प्रधानऋत्विग्वा यद्यपचत् केनचिन्निमित्तेन। तदानीं कर्मवैगुण्यपरिहाराय साङ्गोपाङ्गतासिध्यर्थं चान्यः प्रतिनिधय इति। अन्यथा वैगुण्यापत्तेरिति। तस्मात् अयमर्थः पर्यवस्यति ऋत्विजः आचार्यस्य वा केनचिचिन्निमित्तेनापचारे अन्यः कश्चन प्रतिनिधेयः स च प्रतिनिहितः लौकिकेन शास्त्रीयेण वा वरणेन संस्कृतः न स्वयं प्रत्यवैति न वा यजमानं प्रत्यवायेन यो जयति। अभिमतेन फलेन सङ्गमयतीति समेषां वैदिकविदुषां निश्चप्रचोऽर्थः। तस्मात् वयमिदमेवान्ते प्रतिपिपादयिष्यामः यत् यजमानस्य प्रतिनिधिर्न भवत्याचा र्यादेस्तु वरणेन संस्कृतस्यापि दैवात्मानुषादपराधादपचारे अन्यः प्रतिनिधेयः। स च शास्त्रीयेण लौकिकेन वा वरणेन सामिधेनीप्रवचनकाले होतृवत्संकृतः साङ्गोपाङ्गतया कर्मसाद्गुण्यं सम्पादयितुं प्रभवति सः न दुष्यति न वा यजमानः प्रतिनिहितेनाचार्येण समनुष्ठितात्कर्मणः प्रत्यवायं भजते। अपि तु समीहितेन फलेनात्मानं संयुनक्तीति सोपपत्तिकं प्रतिपादयामो वयम्।

(विधवाकर्तृकनान्दीश्राद्धविचार)

विधवाकर्तृकनान्दीश्राद्धे पुत्रसत्त्वे पुत्रेण यानुद्दश्य श्राद्धं क्रियते तानेवोद्दिश्य विधवाऽपि श्राद्धं कुर्यात्। अर्थात्-स्वश्वश्रूप्रभृतीनां तिसृणां स्वभर्तृप्रभृतीनां त्रयाणां स्वपितृप्रभृतीनां त्रयाणां च इति नवानां श्राद्धं कुर्यात्। उद्देश्यवाचकशब्दोच्चारणे परं विशेषः। पुत्रकवेतृस्वमातृपितामहीति स्वपितृपितामहेति च ब्रूयात्। विधवा तु श्वश्र्वादिशब्देन पत्यादिशब्देन पित्रादिशब्देन च उद्देश्यं कथयेत्। "अपुत्रा पुत्रवत्पत्नी पुत्रकर्मसमाचरेत्" इति श्राद्धमयूखोदाहृतवचनात्। अतश्च पुत्रकर्तृकनान्दीश्राद्धवत् विधवाश्राद्धमपि नवदेवत्यम्। अत एव श्राद्धमयूखे विधवायायास्तु पुत्राभावे तद्वदेवाधिकारः। तस्याः "अपुत्रा पुत्रवत्पत्नीपुत्रकर्म समाचरेत्" इति वचनात् पुत्रवदिति वतिना प्रकरणानुरोधात् श्राद्धक्रियातुल्यतोक्त्या पुत्रकर्तृकश्राद्धवदेव देवताः। उद्देश्यत्वं तु पित्रादीनां भर्तृत्वादिना। तन्मातामहानां च पित्रादिना। यं प्रति येन रूपेण संबंधिता तं प्रति तेनैव रूपेणोद्देश्यत्वात्। 'स्वभर्तृकप्रभृतित्रिभ्य' इति वचनं षड्दैवत्यदर्शश्राद्धादिविषयम्। एवं 'चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता' इति वचनं मृग्यं मूलं महालयपार्वणपरं वा" इत्युक्तम्। एवं च विधवाकर्तृनान्दीश्राद्धं नवदेवत्यमिति सिद्धान्तः।

(स्विष्टकृद्धोम-विचार:)

यत्र अनेकदिनसाध्यमेकमेव कर्म तत्र प्रथमदिने चरुहोमः द्वितीयादिदिनेषु द्रव्यान्तरेण होमः, तत्र प्रथमदिने चरुहोमे निष्पन्ने तं चरुमाज्यप्रक्षेपेण आऽन्तं धारयित्वा अन्तिमदिने एव द्रव्यान्तरैः साकं चरोरप्यवदाय स्विष्टकृद्धोमः कर्तव्ये न तु प्रथमदिन एव चरुहोमानन्तरं स्विष्टकृत्। अस्योपयुक्तद्रव्यसंस्कारकत्वेऽपि "प्राक्स्विष्टकृत आवापः" [गो० गृ० १. ८. १६.]

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इति सूत्रात् प्रधानहोमसमाप्त्यनन्तरमेव विधानात्। मध्ये तदनुष्ठाने क्रमभङ्गापत्त्या कर्मवैगुण्यावश्यंभावात् स्विष्टकृच्छब्दासामञ्जस्याच्च। सुष्ठु इष्टं करोतीति हि तस्य व्युत्पत्तिः। सुष्ठुकरणं तु कर्मसमाप्तावेव भवति न मध्ये। अतश्च यदर्थं स्विष्टकृत् होमस्तत्समाप्तावेव स कर्तुं शक्यते इत्यन्ते एव स्विष्टकृद्धोमः। एतेन—'स्विष्टकृद्यागो माऽस्तु शेषस्य तत्स्थापनस्य च प्रयोजकः परप्रयुक्तद्रव्योपजीवित्वात् शेषस्य तस्य प्रयोजक एवं संस्कार्यत्वात्। अन्यथा पशुपुरोडाशेऽपि स्विष्टकृत्स्यात्। तेन "एकत्रहिंविष्याज्यस्विष्टकृतः स्युस्तुल्यकालाः" इति सूत्रोक्तेदिनरूपैककाले एकः स्विष्टकृत्। कालभेदे तु नाना। तथा च प्रथमदिने चरोः स्विष्टकृत्। अन्ते तु तिलादेरिति स्विष्टकृद्यागद्वयं कार्यम्। यत्र तु प्रत्यहं चरुहोमस्तत्र प्रत्यहं स्विष्टकृत्" इति प्रयोगचिन्तामणिकारोक्तं प्रत्युक्तमिति बोध्यम्।

[शान्तिक पौष्टिककर्म में नान्दीश्राद्ध विचार]

शान्तिकपौष्टिकादिकर्म यदि जीवत्पितृकेण क्रियते तदा तदङ्गभूते नान्दीश्राद्धे येभ्य एवेति वाक्येन पितामहादिभ्य एव पिण्डदानं याजुषैः कार्यम्। न चैतच्छङ्कनीयम्—यत् श्लोकस्यास्य पूर्वार्द्धे वृद्धौ तीर्थेत्यादिना निमित्तानां परिगणनात् तत्रैवायं नियमो नान्यत्र जलाशयोत्सर्गादाविति" तत्र वृद्ध्यादीनां पृथक् पृथक्निमित्तेन स्वीकारे प्रतिनिमित्तं वाक्यपरिसमाप्तौ वाक्यभेदप्रसङ्गात्। "जातपुत्रःकृष्णकेशोऽग्नीनादधीत" इत्यत्र यथा पदद्वयेन अवस्थाविशेषो लक्ष्यते एवमत्रापि वृद्ध्यादिपदैर्जीवत्पितृककर्तृकश्राद्धमात्रस्य लक्षणात्। तेन शान्तिकपौष्टिकादिकर्मस्वपि कर्माङ्गभूतनान्दीश्राद्धे येभ्य एवेति न्यायोऽनुसर्तव्यः। शाङ्खायनैस्तु न स्वीक्रियत एतत्।

[महारुद्रादि में मधुपर्क का विचार]

महारुद्रादौ भिन्नशाखीयानां ब्राह्मणानां यजमानशाखयैव मधुपर्क इति पक्षस्य सर्वदेशेषु भूयान् प्रचारः। युक्तं चैतत्। अत्र यजमानस्य कर्तृकत्वात् कर्तृशाखयैव कर्मानुष्ठानस्योचितत्वात्। "यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत्। अप्रमाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धे तमसि मज्जति" इति परशाखया कर्मानुष्ठाने दोषाश्रयणात्। शाखान्तरेणानुष्ठाने तच्छाखीयमन्त्राणां यजमानादिनाऽनध्येयत्वदशायामेतदर्थमध्ययनकल्पगौरवापत्तेः। 'अर्च्यस्य या भवेच्छाखेति वचनं सोमयागपरम्। अर्च्यस्य यच्छाखीयं कर्म तच्छाखया मधुपर्कमाचरन्ति चातुश्चरणे मैथिलाः। तदयुक्तमिति नारायणभट्टाः। यतो मधुपर्काहेषु स्नातकराजमातुलादिषु कर्माभावेन एतस्यासंभवात्। क्वचिदधीयमानशाखायाः क्वचिच्च कर्म सम्बन्ध्या ग्रहणे वैरूप्यापत्तेः। अतः सोमयागेऽपि एकरूपेणाधीयमानशाखयैव मधुपर्क इति।

(प्रतिष्ठादि में अग्निस्थापन विचार)

प्रतिष्ठादौ तत्तत्प्रधानदेवतास्थापनानन्तरमग्निस्थापनम्, अग्निस्थापनानन्तरं वा प्रधानस्थापनमिति विवादे "आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे—इत्यनेन प्रधानस्थापनानन्तरमग्निस्थापनस्य विहितत्वात् मयूखकारादिभिस्तथैव लेखनात् आश्वलायनैस्तदनुसारेणानुष्ठानाच्च "अनुक्तमन्यतो ग्राह्यम्" इति न्यायेन अस्माभिर्याजुषैरपि तथैवानुष्ठेयम्। अर्थात् प्रथमतः प्रधानस्थापन ततोऽग्निस्थापनमिति। तत्र वयं रोचयामहे याजुषाणामस्माकं सूत्रे परिशिष्टादौ ग्रहयज्ञस्य प्रतिष्ठादेर्वाऽनुक्तत्वेऽपि तत्र शाखान्तरस्यैव शरणीकरणीयत्वेन तत्र च बह्वृचशाखाया भिन्नवेदगतत्वेन विप्रकृष्टत्वात् न तत् गृहीतुं शक्यम्, किन्तु यजुर्वेदगतायाः कस्याश्चिच्छाखाया एव सन्निकृष्टतरत्वेन सैवानुसर्तव्या इति समुचितम्। तत्र बौधायनगृह्ये ग्रहयज्ञप्रकरणे [प्र० ६, खं० १५] अग्निस्थापनानन्तरमेव प्रधानस्थापनं विहितम्। तदेवास्माभिर्गृहीतुं युक्तम्। तस्या यजुर्वेदान्तर्गततैत्तिरीयशाखीयत्वात्। ग्रहयज्ञस्य च सर्वप्रकृतित्वस्य सर्वसम्मतत्वात्। प्रकृति-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वद्विकृतिः कर्तव्येति शास्त्रेणासति विशेषवचने प्रकृतिनिर्दिष्टस्यैव क्रमस्य विकृतावपि स्वीकार्यत्वात् । अतएव साद्यस्के अग्निषोमीयसवनीयानूबन्ध्यानां त्रयाणामेकस्मिन् काले सहानुष्ठाने कस्य प्रथममनुष्ठानमिति संशये स्थानरूपप्रमाणविशेषेण सवनीयस्य प्रथममनुष्ठाने कृते अवशिष्टयोरग्नीषोमीयानुबन्ध्ययोर्मध्ये कस्य प्रथममनुष्ठानमिति संशये उत्पन्ने सति तत्र विकृतौ विशेषाश्रवणात् प्रकृतिदृष्टः क्रम एवानुसरणीयः। अतश्च अग्नीषोमीयस्य प्रथमनुष्ठानं तत आनुबन्ध्यस्येति निर्णीतं पञ्चमे। तद्वदत्रापि विकृतिभूते प्रतिष्ठादौ यत्र विशेषवचनं नास्ति तत्र ग्रहयज्ञोक्त एव क्रमोऽनुष्ठेय इति प्रथममग्निस्थापनं ततः प्रधानस्थापनम् ॥ यत्र त्वेकादश्युद्यापनादौ नैवं क्रम आश्रयितुं शक्यते तत्र पूर्वेद्युः प्रधानस्थापनस्य विहितत्वाद् द्वितीयदिने एवाग्निस्थापनस्य कर्तव्यत्वात्। तत्र भवतु क्रमवैपरीत्यं पूर्वेद्युः प्रधानस्थापनमपरेद्युरग्निस्थापनमिति। अन्यत्र सर्वत्रापि पूर्वोक्त एव क्रमः। अश्वलायनानां तु स्वगृह्योक्तत्वादादौ प्रधानस्थापनं ततोऽग्निस्थापनमिति युक्तमेव। यत्रापि अन्यप्रधानेन साकं ग्रहयज्ञानुष्ठानं यथा महारुद्रादौ तत्र प्रधानापूर्वं ग्रहस्थापनस्य विशिष्यविधानात् तथैव कर्तव्यम्। प्रतिष्ठादौ तु प्रधानानन्तरमिति विशेषः। इति शम्।

ग्रहयज्ञोऽपि यदा परिशिष्टोक्तप्रकारेण क्रियते तदा ग्रहस्थापनानन्तरमग्निस्थापनादि कार्यम्। यदा तु पौराणो ग्रहमखस्तदा "पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। अग्निप्रणयनं कृत्वा वेद्यामावाहयेत्सुरान्-इति मात्स्यादग्निस्थापनोत्तरं ग्रहस्थापनमिति निष्कर्ष इति प्रयोगचिन्तामणौ।

(अग्निचक्रविचार)

कस्य चित् प्रधानभूतस्य कर्मणोऽङ्गत्वेनानुष्ठीयमानस्य होमादेः कालाग्निचक्रादिचिन्तनमावश्यकं न वेति विचारे प्रधानकालादेवारणीयत्वस्य शास्त्रसिद्धत्वेन प्रधानसन्निधावङ्गानां स्वतन्त्र्याभावात् स्वातन्त्र्येण तेषां कालादिविचारणमनपेक्षितमेव। यद्यङ्गानां कालाद्यपेक्षा क्रियेत् तदा प्रधानस्य स्वकालातिपतिरूपदोषापत्त्या प्रधानविरोधः प्रसज्यते। स चायुक्तः। अतः प्रधानानुरोधेनाङ्गामेवान्यथा नयनस्य शास्त्रसिद्धतया अङ्गगुणविरोधे च तादर्थ्यात् इति मीमांसान्यायसिद्धतया च नाङ्गविषये कालाग्निचक्रादिचिन्तनमिति।

(आभ्युदयिकश्राद्धमें ब्राह्मणोपवेशन प्रकार)

आभ्युदयिकश्राद्धे ब्राह्मणोपवेशनप्रकारे चत्वारः पक्षाः। तत्रैकः पार्वणवत्। अर्थात्-पश्चिमदेशे प्राङ्मुखा दैवब्राह्मणाः, ततो दक्षिणत उदङ्मुखाः पैतृका इति। द्वितीयः पक्षः- दक्षिणत उदङ्मुखाः वैश्वदेविका ब्राह्मणाः, पश्चिमतः प्राङ्मुखाः पैतृका इति। तृतीयः पक्षः-दैविकानां पैतृकानां च सर्वेषां ब्राह्मणानां प्राङ्मुखत्वमुदङ्मुखत्वं वेति। चतुर्थस्तु-उत्तरतः प्राङ्मुखो वैश्यदेविकान्, दक्षिणत उदङ्मुखान् पैतृकानुपवेशयन्तीति। इमे चत्वारोऽपि पक्षः स्मृतिकारैरुक्ताः। तत्र सर्वत्रापि ब्राह्मणानामुपवेशनक्रमः पूजाप्रकारश्च प्रादक्षिण्येनैव कर्तव्यः। तत्रापि इदानीं यो विशेषतो वैदिकैः समादृतः प्रचलितो द्वितीयः पक्षः तस्मिन्नपि पक्षे देवपितृब्राह्मणमध्ये कर्ता उदङ्मुख उपविश्य प्रथमं दैविकान् प्रागारभ्य प्रत्यगपवर्गं पूजयित्वा ततः पैतृकान् दक्षिणत आरभ्य उदगपवर्गं पूजयेत्। एवं कृते प्रादक्षिण्येन पूजनं सिद्धं भवति। अतोऽयमपिपक्षः सर्वथा शास्त्रीय एवं। दर्भवटुपक्षे च वैश्वदेविकं दर्भवटुमुदङ्मुखं, पैतृकांश्च प्राङ्मुखोपविष्टेन कर्त्रा यत्पूजनादिकं क्रियते तदपि इममेव द्वितीयं पक्षमवलम्ब्य क्रियते। अस्मिन्पक्षे कुशवटूनां मध्ये कर्तुरुपवेशनार्थं स्थानसौकर्याभावात् सर्वतः पश्चादुपविश्य क्रियते इति द्वितीय-एवायं पक्षो मन्तव्यः। अतोऽयमपि पक्षः सर्वथाशास्त्रानुमत एव। सर्वेषामुदङ्मुखत्वरूपे तृतीयपक्षेऽपि प्रादक्षिण्यसिद्ध्यर्थं प्रागारभ्य प्रत्यगपवर्गमेव पूजादिकं सम्पादनीयमिति विशेषः। सर्वं चैतत् रुद्रकल्पद्रुमादौ स्पष्टम्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(मलमास में पिता के आद्यश्राद्ध में वृषोत्सर्ग पर विचार)

मलमासे पितुराद्यश्राद्धे क्रियमाणे वृषोत्सर्गः कर्त्तव्यो न वेति विप्रतिपत्तौ–"नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रयतः सन् मलिम्लुचे। तीर्थश्राद्धं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च । इति । नित्य-नैमित्तिककर्मणोः प्रेतश्राद्धस्य च कर्तव्यत्वाविधानात् । 'एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैश्श्राद्धशतैरपि' इति वचनात् । एकादशाहिकवृषोत्सर्गस्य नित्यत्वबोधनात् । 'अशौचान्तद्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्याद्विचक्षणः । वृषोत्सर्गं च कुर्वीत देया च कपिला शुभा–इति वायुपुराणीयव्यासवचनात्, अशौचान्तद्वितीया निमित्तकत्वात्, तस्य नित्यनैमित्तिकत्वे पर्यवसानात् । एकादशाहिक—वृषोत्सर्गस्य तदैव नियतकालकर्तव्यतया मुहूर्तविषयाऽभावात् गुर्वस्तशुक्रस्तादावपि एकादशाहपाते सकलशिष्टैरपि कर्तव्याऽऽचारदर्शनात् । शय्यादिदानवत् नियतकालकर्तव्यत्वात् आद्यश्राद्धवत् कर्तव्य एव । षोडश श्राद्धवत् तस्याऽपि प्रेतोपकारकत्वात् । बौधायनेनाऽपि काम्यनैमित्तकयोः पार्थक्यं निरूप्य कार्तिक्यादौ क्रियमाणस्य काम्यस्यैव निषेधात् । एकादशादिकस्य नैमित्तकत्वेन कर्तव्योपदेशात् । वृषोत्सर्गमात्रस्य बाधकाऽभावाच्च । ननु ? अग्न्याधेयम् इति बृहस्पतिवचनस्य बाधकसत्वेऽपि कथं बाधकाऽभाव इति तत्रैव वचने यज्ञदान-व्रतानि चेति पूर्वत्र व्रतशब्दोपादानात् । पुनर्देवव्रतवृषोत्सर्गेत्यत्र व्रतशब्दस्य व्रतपरत्वे पुनरुक्त्यापत्तेर्न व्रतपरत्वम् । तर्हि देवव्रतशब्दस्य वृषोत्सर्गशब्दे सम्बन्धात् । देवव्रतरूपो यो वृषोत्सर्गः कार्तिक्यादौ क्रियमाणः तत्रैव बाधकप्रसक्तेः न तु वृषोत्सर्गमात्रे । प्रेतवृषोत्सर्गादौ एकादशाहीयेऽपि तत्रैव कृत्यरत्नाकरे श्रीचण्डेश्वरठक्कुरस्यापि व्याख्यानात् । तद्यथा कृत्यरत्नाकरे मलिम्लुचतरङ्गे—"अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञ-दान-व्रतानि च । देवव्रतवृषोत्सर्गचूड़ाकरणमेखलाः । माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् । अग्न्याधेयमग्न्याधानम्, स्वर्गादिदेवतामुद्दिश्य व्रतरूपो यो वृषोत्सर्गः तथा च षष्ठीव्रते मत्स्यपुराणम्—"कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्" तथा देवीक्रमपूजायाम् देवीपुराणम्—"गवोत्सर्गश्च कर्तव्यो नीलं वा वृषमुत्सृजेत्" । इत्यादि । तथैव द्वैतनिर्णये वाचस्पतिमिश्रैरप्युक्तत्वात् । यथा-एतच्च कर्म कार्तिकी चैत्री रेवत्यामाश्वयुजीषु चतसृष्विति । किन्तु कार्तिकी चैत्र्यादिकं प्रथमाब्दिकव्यतिरिक्तमिह ग्राह्यम् । प्रथमाऽब्दे श्वाभ्युदयिककाम्यकर्मनिषेधात् । एकादशाहे तु तद्विधेर्निरवकाशतया अगत्यैवाऽभ्युदयिकाऽभावे वृषोत्सर्गसिद्धेः । आभ्युदयिकं चात्रैच्छिकत्वेनाऽवश्यकम् । कार्तिक्यां वृषोत्सर्गात् प्राक् अपूपत्रयदानमपि । कार्तिक्यां अपूपां दत्वा इति विशेषश्रवणात् । तदयमत्राऽनुष्ठानक्रमः—ॐ अद्य कार्तिक्यां चैत्र्यां वा अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः मोक्षकामः सोपकरणवत्सतयष्टकसहितनीलवृषोत्सर्गमहं करिष्ये । यथोक्तलक्षणवृषोत्सर्गे नीलपदमपहाय वत्सर्यचतुष्टयपक्षे अष्टपदस्थाने चतुष्टयपदं प्रक्षिप्य इदमेव वाक्यम् । प्रेतलोकविमुक्तिस्वर्गलोकप्राप्ती तु न फलम्—"अहन्येकादशे प्राप्ते यस्य चेत्सृज्यते वृषः । प्रेतलोकाद्विमुक्तः सन् स्वर्गलोकं समश्नुते" इति विशिष्य आम्नानात् । विश्वजिन्न्यायसिद्धस्तु स्वर्गः कार्तिक्यादावप्यनिरुद्ध एवेति । तथा च नरहरिकृते द्वैतनिर्णये–एकादशाहीय–वृषोत्सर्गे प्रेतलोकविमुक्तिपूर्वकस्वर्गलोकप्राप्तिः फलम् अर्थवाद-श्रुतेः, न तु विश्वजिन्न्यायात् स्वर्गः प्रकृते तदनवतारात्। तथाहि- यत्फलविशेषतो न श्रुतम् । निष्फले च प्रवृत्त्यनुपपत्तिः । तत्र न्यायः प्रवर्तते । अत्र च अर्थवादादिकं प्रेतलोकविमुक्त्यादि-फलं श्रुतम् । अतः कथं तदवतारः । न च सतोऽप्यर्थवादस्य समभिव्याहृतशय्यादिपञ्चकफलाऽऽकाङ्क्षापूरणाऽक्षमत्वेनाकाङ्क्षा विरहात्. तदफलत्वे साधारणफलं स्वर्गः-इति न्यायावतार इति वाच्यम्, वृषोत्सर्गफलबोधकस्यार्थवादस्य । "एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृजते वृषः । प्रेतलोकाद्विमुच्येत स्वर्गलोकं स गच्छति । इत्येवं रूपस्य तस्य तत्साकाङ्क्षत्वात् । श्रुतफलत्यागोऽश्रुतफलकल्पनं च न्यायाऽवतारेस्यादिति महद्गौरवमितिनिर्णीतत्वात् । अशौचान्तेऽपि कर्तव्यं वृषोत्सर्गादिकं सुतैः । मलिम्लुचादिदोषस्तु न ग्राह्यस्तत्र कश्चन" इति विशारदप्रभृति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वचनात्। "नैऋर्तानां हितार्थाय जगत्कर्ता नृपः प्रभुः। निर्ममे मलिनं मासं प्रेतानां च हिताय वै" । अत्र प्रेतक्रियाः सर्वाः कर्तव्यास्तु मलिम्लुचे" इति भविष्यपुराणात्। शय्यादानं वृषोत्सर्गश्च शक्तेन अशौशान्ते मलमासेऽप्यवश्यं कर्तव्यम्। मत्स्यपुराणे एकादशाहश्राद्धतुल्याविधानात् इति।

(जीवच्छ्राद्धानन्तरनित्यनैमित्तिककर्म में अधिकार विचार)

केनचिच्छ्रद्धालुना पुरुषेण आत्मसन्तरणार्थं जीवच्छ्राद्धे कृते तदनन्तरं तस्य नित्यनैमित्तिककाम्यादिकर्मसु कर्तव्यता विषयकसंशये सञ्जाते "नित्यनैमित्तिकादीनि कुर्याद्वा सन्त्यजेत वा" इत्यादिभिर्लिङ्गपुराणोक्तवचनैरिदमवगम्यते यत् सन्ध्याजपहोमादावश्वश्यके कर्मणि तस्याधिकारोऽस्ति। एवं प्रतिग्रहादिना न सञ्चयमकुर्वन् शरीरमात्रौपायिकं प्रतिग्राहादिकं कर्तुं शक्नोति। येन कर्मणा विना शरीरधारणं न शक्यते कर्तुं तत्र कर्मण्यार्थादधिकारः सिद्धयत्येव। एवं जीवश्राद्धानन्तरं तस्य पुत्रादावुत्पन्ने तदीयजातकर्मादिसंस्कारेषु तस्याधिकारोऽस्त्येव। तस्य सर्वं प्रकर्तव्यं पुत्रोऽपि ब्रह्मविद् भवेत्। कन्यका यदि सञ्जाता पश्चात्तस्य महात्मनः। मुच्यते नात्र सन्देहः पितरो नरकादपि। पश्चाज्जाते कुमारे च स्वक्षेत्रे चात्मनो यदि। इत्यादिवचनात् अनेन जीवच्छ्राद्धे न श्राद्धकर्तुः पित्रादीनामपि चोत्तमलोकप्राप्तिश्रवणादिहलोके तस्य श्राद्धानन्तरं यावज्जीवं केनापि प्रकारेणापवित्रताऽपि नास्तीति सिद्धम्।

(पिताके क्षयाह में श्राद्धपर विचार)

मृतस्य पितुः क्षयाहे पुत्रेण श्राद्धमेकोद्दिष्टविधिना कार्यम् उत पार्वणविधानेन इति प्रश्ने—मिताक्षरानिर्णयसिन्ध्वादिनिबन्धग्रन्थपर्यालोचनयाऽयमेव निर्णयः सारभूतोऽवगम्यते। ग्रन्थेषु हि "सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतः। मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि" एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः। अकृतं तद्विजानीयाद् भवेच्च पितृघातकः" इत्यादि यमव्यासादिवचनैर्मृततिथावेकोद्दिष्टमेव कार्यम्। अन्यथा दोष इत्यवगम्यते। "आपाद्य च सपिण्डत्वमौरसो विधिवत्सुतः। कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेऽहनि। "सपिण्डीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत् सदा। प्रतिसंवत्सरं विद्वाँश्छागलेयोदितो विधिः—इत्यादि जमदग्निशातातपवचनैस्तु क्षयेऽहनि पार्वणश्राद्धस्यैव कर्तव्यता प्रतीयते। सति चैवं स्मृति द्वैविध्ये शास्त्रतो यद्यपि विकल्प एव प्राप्नोति तथापि 'देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्म तथाऽपरे। त्रयः श्राद्धमिच्छन्ति" इत्यादिवचनेन देशधर्मस्य कुलपरम्परागतधर्मस्य चावश्यपरिपालनीयत्वात् त्यागे च दोषस्मरणात् यस्मिन् देशे यस्मिन् कुले मृतेऽहनि स्वपूर्वजैः पितुः पार्वणमेवानुष्ठीयते तद्देशकुलोत्पन्नेन पुरुषेण पार्वणमेवानुष्ठेयम् यस्मिन् कुले चैकोद्दिष्टं पूर्वैरनुष्ठितं तत्कुलोत्पन्नेन तदेवानुष्ठेयम्। अयमेव सिद्धान्तो निर्णयसिन्धुकारेण मिताक्षराकारेण च स्पष्टमभिहितः। "वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्रीहियववद्विकल्पः। स च देशाचारव्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः (इति निर्णयसिन्धौ)। क्षयाहे पार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्प एक तथा वंशसमाचारव्यवस्थायां सत्यां व्यवस्थितो विकल्पः। असत्यामैच्छिकः" (मिताक्षरा) इति अस्माकं यजुर्वेदिनामाचार्यवरेण भगवता याज्ञवल्क्येन तु—"मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। प्रति संवत्सरं चैव" याज्ञ० १।२५६ इति स्पष्टमेवमृततिथावेकोद्दिष्टस्य कर्तव्यता विहिता। (अत्रश्लोके एकोद्दिष्टपदाभावेऽपि पूर्वतः एकोद्दिष्टपदमनुवर्तते। तथैव व्याख्यातं मिताक्षरायाम् 'प्रति संवत्सरं मृतेऽहनि एकोद्दिष्टमुपदिष्टं योगीश्वरेण" इति)। अतश्चाचार्योपदिष्टत्वादेवपक्षोऽयमस्मद्देशीयैर्यजुर्वेदिभिरस्मत्पूर्वतनैः सुदृढमादृत इत्यस्माभिरयमेव पक्षः सुतरामादरणीय इति।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(नारायणबलिपर विचार)

सर्वत्र स्मृतिषु अन्त्येष्टिकर्मप्रस्तावे यो नारायणबलिरुक्तः सप्रेतमात्रे कर्तव्य उत दुर्मरणादिनिमित्तविशेष एवेति शङ्कायां सु समुदितायाम्-सर्वत्र दुर्मरणादिनिमित्ते संभाविते, संन्यासिनश्च नारायणबलेः कर्तव्यतया विधानात् केवलमरणे तस्य कर्तव्यत्वमेव नास्ति। यदि मोहात् क्रियेत तदा दोषभागी स्यात् अविहितस्य करणात्। अतश्च यदि भृगुपातादिना दुर्मरणं भवति कस्यचित् तस्य प्रथमतः और्ध्वदैहिककर्मयोग्यतासिध्यर्थं प्रायश्चित्तादिकमनुष्ठाय ततो दशगात्रादिकं कृत्वा एकादशेह्नि नारायणबलिमनुष्ठाय आद्यश्राद्धादिकं कुर्यात्। नारायणबलेरौर्ध्वदेहिककर्मणि उद्देश्यत्वयोग्यताविधायकत्वात्। संन्यासिनस्तु द्वादशाहे नारायणबलिं कुर्यात्। अयमेव सर्वधर्मशास्त्रानुगृहीतस्य सिद्धान्तस्य सारः नतु कदापि केवलमृतौ नारायणबलेरनुष्ठानं कार्यमिति।

(सङ्कल्पः)

ॐविष्णुः ३ ॐ नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय ॐतत्सत् श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्र० र्धे द्वितीययामे तृतीयमुहूर्ते श्रीश्वेत० स्वायंभुवस्वारोचिषोत्तमतामसरैवतचाक्षुषेति षण्मनूनामतिक्रम्यमाणे सम्प्रति सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमस्य कलियुगस्य प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे निखिलजनपावने आर्यावर्तैकदेशे सकलदुष्टसंहारपूर्वकं निखिलसज्जनपरिपालनार्थं दिव्यभौमान्तरिक्षादित्रिविधोपप्लवैः परिपीडितं भारतं वर्षं समुद्धर्तुं कृतावतारेण समातसुरगणनुतेन नृणां कल्याणदात्रा कारुण्याकुलमानसेन सतां शोकापहर्त्रा जन्तूनां जनिदुःखमृत्युलहरीसन्तापहर्त्रा प्रौढानुग्रहपूर्णशीतलरुचं बिभ्रता श्रीकेदारेश्वरेणाधिष्ठिते निखिलागमपुराणवचोभिः प्रशस्यमाने साधुशीलैः वैदिककर्मानुष्ठाननिरतैर्भूसुरैः शिष्टपरिपालनबद्धपरिकरैः क्षत्रियैः सनातनधर्मोद्धरणैकतानमतिभिर्वैश्यकुलावतंसैः द्विजातिपरिचरणैकतत्परैस्तुरीयजात्यवलम्बिभिश्च विभूषिते सकललोकपावन्याः एतत्प्रान्तीय अमुकनद्याः अमुके तटे विराजमाने अस्मिन् क्षेत्रे विक्रमशके बौद्धावतारे अमुकायने श्रीसूर्ये अमुकऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकसूर्ये एव ग्रहगु० गोत्रः शर्मा, सर्वेषां भारतवर्षीयद्विजात्यादिस्त्रीपुंसानां नित्यकल्याणप्राप्त्यर्थं कायिकवाचिकामानसिकसांसर्गिकचतुर्विधपापक्षयपूर्वकमाध्यत्मिकाधिदैविकाधिभौतिकत्रिविधतापोपशान्तिसकलदुःखाशेषनिवृत्ति (परमपदप्राप्तिव्याध्यादिजरामृत्युरोगभयशोकाद्युपसर्गनिर्मुक्तिधनधान्य) पुत्रपौत्र [दीर्घायुष्ट्वनैरुज्यकीर्तिलाभसद्विद्योपार्जनक्षेमस्थैर्यैश्वर्यस्थिरलक्ष्मीगजाश्वादिसम्पत्प्रवृद्धये] सभासदभिवृद्धिपूर्वकजन्मवर्षमासकुण्डलीस्थविषमस्थानस्थितसूर्याद्यन्यतमग्रहसूचितसूचयिष्माणैतज्जन्यान्तरोपार्जितसकलबाधानिवृत्तये (पवित्रतमास्मद्भारतदेशवासिनां सनातनधर्मश्रद्धावतामितोप्यधिकं सनातनधर्मे श्रद्धाभिवृध्यर्थमविद्यमानश्रद्धानामन्येषां सनातनधर्मेऽस्मिन्पवित्रतमे निखिलपुरुषार्थरत्नाकरे सर्वेषां निरतिशयश्रद्धाभक्तिसमुत्पत्यर्थं सनातनधर्मानुष्ठानप्रचारादिषु सर्वेषां प्रवृत्तिपरतासिद्धये सनातनधर्मप्रतिपादकानां वेदप्रभृतीनां पुराणान्तानां धार्मिकग्रन्थानां सर्वासां विद्यानां च आचन्द्रार्कमभिवृद्धये पुण्यकालेस्मिन् श्रीसच्चिदानन्दसाम्बप्रीत्यर्थं जगद्बीजपुरुषोत्तमलक्ष्मीनारायणप्रीत्यर्थम् एकषष्ट्युत्तरशतधामन्त्रविभागपक्षेण सनवग्रहमखहवनात्मकमहारुद्रम् [पुरुषसूक्तेन लक्ष्मीसूक्तेन च प्रत्यृचं षष्टिसहस्राधिकैकलक्षसंख्यं होमात्मकं श्रीलक्ष्मीनारायणयागं] एभिर्द्विजैः शमदमादिनिखिलगुणगणभरितैः सह अद्यारभ्य करिष्ये।

[कुष्ठिकी उत्तर क्रियापर विचार]

कस्यचित्त्रैवर्णिकान्यतमस्य श्वित्रिणो दैवान्मृतौ तदुत्तराधिकारिभिस्तस्य दाहः कर्त्तव्यो न वेति प्रश्ने उत्तरम्-"शृणु कुष्ठिगणं विप्र उच्चरोच्चारतो गुरुम्। विकर्चूत्रणताश्चौ च कृष्ण-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्वेते तथाष्टकम्" इत्युक्त्वा "मृते तु प्रापयेत्तीर्थमथवा तरुमूलकम्। न पिण्डं नोदकं कार्यं न च दाहक्रियां चरेत्। यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यतिचान्द्रायणं चरेत्" इत्यादिवक्येन यद्यपि तस्य दाहे यतिचान्द्रायणप्रायश्चित्तं विहितं तथापि अकृतप्रायश्चित्तकुस्थ्यादिदेहविषयम्, अन्यथा एषां प्रायश्चित्तोपदेशो विफलः स्यात् इत्यादिना निर्णयसिन्धौ रघुनन्दनकृतशुद्धितत्त्वादि-ग्रन्थेषु च कृतप्रायश्चित्तस्य दाहे प्रायश्चित्तानुक्त्वा कृतप्रायश्चित्तस्य शिवत्रिणो दाहादिकं कर्तव्यमिति।

[प्रतिष्ठाके अधिकारी]

कल्पतरौ देवीपुराणे वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा। चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः। ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः। भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्य-जानां तथा मतः। मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्यास्तथैव च। लिंगं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा। भविष्ये—यस्तु पूजयते लिंगं देवादिं च जगत्पतिम्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः। तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकाननुत्तमान्। तिथितत्त्वे स्कान्दे शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये। तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते। ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च सुव्रते। एवं दिने दिने देवं पूजयेद् विकापतिम्। संन्यासीदेवदेवेश प्रणवेनैव पूजयेत्। नमोंतेन शिवेनैव पूजाविधानं पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गविषयम्। नारदीये-यः द्रोणार्चितं लिंगं विष्णुं वापि नमेन्नरः। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि। पाखण्डपूजितं लिंगं नत्वा पाखण्डतां व्रजेत्। आभीरभूजितं लिंगं नत्वा नरकमश्नुते। योषिद्भिः पूजितं लिंगं विष्णुं वापि नमेत्तु यः। सकोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं वसेदिति, इदं नूतनस्थापितलिंगविषयम्। यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मंत्रवद्भिर्यथा विधिः। तदा प्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न संस्पृशेदिति तत्रैवोक्तेः। वाराहे-स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नरेश्वर। स्थापने नाधिकारोस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च॥ तस्मात्त्रैवर्णिकानामेव स्थापनेधिकारः। केचनस्त्रीशूद्राणां साक्षात्स्था-पनेऽधिकारो न द्रव्यद्वाराऽस्तीतिवदन्त तेषां पूर्तादौ अधिकारादर्शनात्। तदुक्तं स्कान्दे-सर्ववर्णैस्तु संस्थाप्याः संपूज्याः सर्वदेवताः। लिङ्गान्यपि आकल्परौरवं नरकं वसेदित्यादीनि तानि नूतनस्थापितलिङ्गविषयाणि। यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मंत्रवद्भिर्यथा विधिः। तदा प्रभृति शूद्रश्च योषिद्भिर्वा न संस्पृशेदितितत्रैवोक्तेः। प्रतिष्ठितायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः। स्त्रीणामनुप-नीतानां स्पर्शेनाधिकारोस्तीत्युक्तत्वात्। यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुंवा पि नमेत्तु यः। इहैवात्यंतदुःखानि पश्यत्यामुष्मिमे किमु। शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि वा। केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते। ब्राह्मण्यपि हरं विष्णुं न स्पर्शेच्छ्रेय इच्छति। सनाथामृतनाथां वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः इति बृहन्नारदीयस्कांदाद्युक्तेः। उक्तं च त्रिस्थलीसेतौ-चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्ण्वादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति तु युक्तं पश्यामः। शूद्रकमलाकरे तु-अतएव स्पर्शनेनाधिकारोस्तीत्यन्यत्र पाठ इत्युक्तम्। तत्वं तु स्त्रीशूद्रयोः शालग्रामे नूतनस्थापितदेवे च स्पर्शनिषेधः, अन्यत्र स्पर्शसहिता पूजाकार्या। तदुक्तं वाराहे-शालग्रामे न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुन्धरे। स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शोवज्रस्पर्शादिको मतः। मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन। सपतेन्नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवे। यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुन्धरे। दूरादेवास्पृशन्पूजां कारयेत्सुसमाहितः। प्रतिमादौ तु न निषेधः। सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमास्सर्वदेवताः। लिङ्गा-न्यपि च पूज्यानि मणिभिः कल्पितास्तथेति वाराहोक्तेः। अन्ये तु स्पर्शमात्रे शूद्रस्य निषेधः स्थापनं तु भवत्येव। शूद्रस्थापिते चान्यस्य न दोषः शूद्रस्य फलमस्त्येवेत्याहुः अन्ये तु शालग्रामशिलां वापि चक्रांकितशिलां तथा। ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेदिति प्रयोगपारिजाते विष्णुधर्मोक्तेः। चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयोराजन्यजातिभिः। वैश्यैर्द्वावेव संपूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिरितिस्कांदाच्च दीक्षितानां भवत्येव पूजेत्याहुः। सर्वथा प्रासादप्रतिष्ठादौ शूद्रस्यास्त्येवाधिकारः। अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके-इति मोक्षधर्मेषु व्यासवचनादितिदि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्-इति पूर्तकमलाकरे । नमोन्तेन शिवे नैव स्त्रीणां पूजा विधीयते । विरक्तानां च शूद्राणामेवं पूजा प्रकीर्तिता । पञ्चाक्षरस्य श्रुतौ नम आदित्वेपि स्त्रीशूद्रयोनमोन्तत्त्वम् । अन्ये तु अन्तेभिन्नं नमः शब्दमाहुः-इति पूर्तकमलाकरे । दिनकरोद्योते-तु अत्र चाधिकारिणो यद्यपि तत्तत्फलकामाः जैमिनीयषाष्ठन्यायेन च अर्थिनः समर्थाविद्वांस्सः त्रैवर्णिका एव प्राप्नुवंति तथापि अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मेह्यवैदिके इति वचनाच्छूद्रस्याप्यधिकारः । यत्तु स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च नराधिप । स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्यनचेति त्रिस्थलीसेतौ वचनं तदसच्छूद्रविषयं साक्षात्कर्तृत्वप्रतिषेधकं वा अतएव ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यश्चांडालैरपि भैरव इत्यादीनिवचनानि विभेदप्रतिमापरिमाणविशेषविधायकानि वक्ष्यमाणवाक्यान्यपि संगच्छंत इति दिक् । शिवपूजाधिकारिणः लैंगे-ब्राह्मणोनैव पूज्योऽहं शुचिना शुचिनापि वा । स्त्रीशूद्रकरस्पर्शो वज्रादपिसुदुःसहः । अत्र केचित् स्त्री शूद्राणां स्पर्शसहितपूजानिषेधार्थत्वं विशेषणं मन्यते । वस्तुतस्तु स्त्रीशूद्रस्पर्शनिषेधः प्रतिष्ठितलिङ्गशालिग्रामविषयः । यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं० न संस्पृशेदिति प्रतिष्ठितस्पर्शनिषेधात् विहितश्चरलिंगेषु स्पर्शस्त्रीशूद्रयोरपि । न स्थावरेषु लिङ्गेषु सत्यमेतन्मयोच्यते । इति लैंगे चरलिंगेष्वेवस्पर्शविधानाच्च । तत्रावाणपार्थिवयोरेवस्पर्शः कार्यः स्तदुक्तं शिवरहस्ये-स्पर्शः पार्थिवलिङ्गस्य वाणलिङ्गस्य चादरात् । स्त्रीभिः कार्यस्तथाशूद्रै रेषशास्त्रविनिर्णय-इति चतुर्वर्णैरितिवचनाद्विष्णवादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्पः । शिवसर्वस्वे भविष्ये चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्लिंगं स्थाप्यं प्रयत्नतः । लिंगं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा इति लिङ्गस्थापने शूद्रस्य नाधिकार ऐति । निष्कर्षस्तु प्रतिमा सर्वैः स्थाप्याः चरलिङ्गं सर्वैः स्थिरलिंगं स्त्रीशूद्रैः स्वयं संकल्पं कृत्व ब्राह्मणद्वारा कर्तव्यम् । केचिद्दीक्षिता दीक्षितभेदेन व्यवस्थां मन्यते । केचिद्द्रव्यद्वारा वदन्ति ।

(मासिकादिश्राद्ध पर विचार)

मृतस्याशौचपूरकपिण्डदानास्थिसञ्चयनसपिण्डीकरणजननरज आदौ दिनस्य ग्रहणं, मासिकवार्षिकादौ तिथेर्ग्रहणमित्यत्र किं मानमिति विचारे 'शुद्ध्येद् विप्रोदशाहेन' प्रथमे ऽहनि यः पिण्डः, प्रथमेऽह्नि तृतीये वा अस्थिसञ्चयनं मतम्, द्वादशाहे सपिण्डनम्, जननेप्येवमेवाहः, रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नैवोदितो रविः इत्यादौ सर्वत्र स्मृतिकारैरहः शब्दोपादानात् सर्वत्र दिनस्यैव ग्रहणं तेषामभिप्रेतं दृश्यते । मासिकाब्दौ तु मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि । प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः" पारणे मरणे नृणां तिस्थितात्कालिकी मता" "मृताहस्तु यथा तिथि" इत्यादि विशेषवचनात् मरणसमये या तिथिस्तस्था एव ग्रहणं न तु दिनस्य । एवमाशौचादिविधायकेषु वचनेषु दिनशब्दश्रवणात् तेषु दिनस्यैव ग्रहणम्, मासिकाब्दौ तु तिथिग्रहणस्यैव विशेषतो विधानात्तिथेरेवग्रहणमिति निर्णयः ।

(बदरीक्षेत्र-आदि में श्राद्ध करने पर भी गयाश्राद्ध करना—इसपर विचार)

शिरःकपालं यत्रैतत्पपात ब्राह्मणः पुरा । तत्रैव बदरीक्षेत्रे पिण्डदातुं प्रभुः पुमान् । मोहाद् गयायां दद्याद्यः स पितृन् पातयेत्स्वकान् । लभते च ततः शापं नारदैतन्मयोदितम् ॥ इति सनत्कुमारसंहितावचनेन बदर्यां कृतश्राद्धस्य यद्यपि गयायां श्राद्धकरणं निषिद्धमिवापाततः प्रतीयते तथापि नेदं निषेधकं वचनम् । "गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्तो नाभिगच्छति । शोचन्ति पितरस्तेषां वृथा तस्य परिश्रमः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः । प्रदद्याद् विधिवत्पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः —इत्यादिवचनेन गयाश्राद्धस्य पितृऋणापाकरणरूपेण नित्यप्यश्रवणात् अकरणे प्रत्यवायश्रवणात् जीवता शक्तेन पुरुषेण गयाश्राद्धस्यावश्यकर्तव्यताप्रतीतेः कैरपि निबन्धकृद्भिर्बदरीश्राद्धानन्तरं गयाश्राद्धस्याकरणलेखनाच्च । अतोऽत्र-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्लोकद्वये मोहात् शापम् इत्यादि पदद्वयं वदरीश्राद्धानन्तरं न गयाश्राद्धनिषेधप्रतिपादकं किन्तु वदरीश्राद्धप्रशंसाबोधकम् नहि निन्दान्यायेन। यथा वा—"अपशवो वा अन्ये गो अश्वेभ्यः पशवो गो अश्वाः" इत्यनेन गवाश्वयोविधानार्थमितरेषां पशूनामपशुत्वं बोध्यते तद्वत्। तत्र हि पशुत्वं प्रत्यक्षमेव अजादिषु। तच्च नापह्नोतुं शक्यते। अतश्च गवाश्वौस्तोतुमेव तदितरेषामजादीनां निन्दा। सा च गवाश्वस्तु तावेव पर्यवस्यति। तद्वत्प्रकृतेऽपि वदरीश्राद्धं स्तोतुमेव गयानिन्दा, न तु गयाश्राद्धनिवृत्तौ तात्पर्यम्। इयमेव व्यवस्था वार्षिकमहालयादि श्राद्धादावप्यवगन्तव्या। पित्र्यमाधनात्कुर्यात् (मनु, ३।२७९) 'मृताहं समतिक्रम्य चाण्डालः कोटिजन्मसु' इत्यादिवाक्यैः जीवता पुरुषेण यावज्जीवमवश्यकर्तव्यताबोधनादिक्रमे प्रत्यवायश्रवणादिति।

[गयातीथमें होनेवाले सङ्कल्पोंका संकलन]

१—अमुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकदेवशर्मणाम्, एवम्—मात्रादीनां मातामहादीनां च पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकावाप्तिकामः श्राद्धमहं करिष्ये। २—पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकावाप्तिकामः प्रेतपर्वते पिण्डदानमहं करिष्ये। ३—प्रेतत्वविमुक्तकामनया मोक्षकामनया वा प्रेतशिलायां श्राद्धमहं करिष्ये। ४—जन्मान्तरशतकृतदुष्कृतविलयकामो (प्रेतत्वविमुक्तिकामो) रामतीर्थे अस्मिन् स्नानमहं करिष्ये। ५—विष्णुलोकगमनकामो रामतीर्थे श्राद्धं पिण्डदानं वा करिष्ये। ६—पित्रादिप्रेतत्वविमुक्तिपूर्वकपितृत्वप्राप्तिकामो रामतीर्थे पितॄणां पिण्डदानमहं करिष्ये। ७—ॐ भासमानस्वकर्तृकशिवगमनकामः प्रभासेशनमस्कारमहं करिष्ये। ८—पापक्षयकाम उत्तरमानसे स्नानमहं करिष्ये। ९—पित्रादित्रयमात्रादित्रयमातामहादित्रयाणां शाश्वतब्रह्मलोकप्राप्तिकामो मुक्तिकामो वा श्राद्धमहं करिष्ये। १०—पितृसूर्यलोकनयनकाम (गमनकामनाय) उत्तरार्कस्य [नतिमहं करिष्ये] पूजनं करिष्ये। ११—पितृमुक्तिकाम उदीचीतीर्थे स्नानमहं करिष्ये। १२—[पितृ] मुक्तिकामः कनखलतीर्थे स्नानं करिष्ये। १३—पितृमुक्तिकामो दक्षिणमानसे स्नानमहं करिष्ये। १४—दशलक्षाश्वमेधजन्य [अश्वमेधसहस्रसहस्रजन्य] फलविलक्षणफलप्राप्तिकामः पितॄणां विष्णुलोकप्राप्तिकामो वा फल्गुतीर्थे स्नानमहं करिष्ये। १५—पितृसहितात्मविष्णुपुरनयनकामः [पित्रादिसहितात्मवैष्णवपद] फल्गुतीर्थे स्नात्वा गदाधरदर्शनहं करिष्ये। १६—ब्रह्मलोकगमनकामो धर्मारण्यगमनमहं करिष्ये। १७—सर्वपापक्षयकामो मतङ्गवाप्यां स्नानमहं करिष्ये। १८—[पितृ] तारणकामो [ब्रह्म] कूपयूपयोर्मध्ये श्राद्धमहं करिष्ये। १९—ऋणत्रयविमुक्तिकामोऽस्मिन् ब्रह्मसरसि स्नानमहं करिष्ये। २०—पितृब्रह्मलोकनयनकामो ब्रह्मतटे श्राद्धमहं करिष्ये। २१—पितृमोक्षकामो ब्रह्मप्रकल्पिताम्रसेचनमहं करिष्ये। २२—वाजपेयजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो ब्रह्मयूपप्रदक्षिणमहं करिष्ये। २३—पितृब्रह्मपुरनयनकामो ब्रह्मनमस्कारमहं करिष्ये। २४—(सकल) पापक्षयकामो विष्णुपददर्शनमहं करिष्ये। २५—पितृमोक्षकामो सकलपापक्षयकामो विष्णुपदस्पर्शनमहं करिष्ये। २६—पितृमोक्षकामो विष्णुपदे विष्णुपूजनमहं करिष्ये। २७—आत्मसहितकुलसहस्रोद्धरणपूर्वकविष्णुलोकनयनकामो विष्णुपदे श्राद्धमहं करिष्ये। अद्यामुकगोत्रस्यामुकशर्मणः स्वर्गप्राप्तिकामो गायशिरसि पिण्डदानमहं करिष्ये। २९—अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो मोक्षप्राप्तिकामो गायशिरसि पिण्डदानमहं करिष्ये। ३०—पापक्षयपूर्वकाक्षयस्वर्गप्राप्तिकामो गदालोले स्नानमहं करिष्ये। ३१—पितृलोकनयनकामो गदालोले श्राद्धमहं करिष्ये। ३२—पितॄणामक्षयतृप्तिकामः पितृब्रह्मपुरनयनकामो वाऽक्षयवटे श्राद्धमहं करिष्ये। ३३—पितृब्रह्मलोकनयनकामो ब्रह्मकल्पितान् ब्राह्मणानहं भोजयिष्ये। ३४—कोटिब्राह्मणजनजन्यफलसमफलप्राप्तिकामोऽक्षयवटतले एकं ब्राह्मणमहं भोजयिष्ये। ३५—पितृब्रह्मलोकपुरनयनकामो वटेशदर्शनपूजनमहं करिष्ये। ३६—महाकल्पकृतापापक्षयकामो गयाप्रवेशमहं करिष्ये। ३७—अनोन्ततीर्थे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुलशतस्वर्गनयनकामनया मध्याह्नसन्ध्यावन्दनश्राद्धानि करिष्ये। ३८—करिष्यमाणगयायात्राङ्गतया उपवासं करिष्ये। ३९—अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपि-
तामहानाममुकामुकशर्मणाममुकगोत्राणां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकमुकशर्मणां करिष्यमाणगयायात्रां पूर्वाङ्गभूतघृतप्रधानद्रव्यकपार्वणश्राद्धमहं करिष्ये। ४०—प्रतिपदमश्वमेधफल-
प्राप्तिकामो यथोक्तफलकामः करिष्यमाणगयाश्राद्धोद्देश्यकगयायात्रामहं करिष्ये। ४१—अश्वमेधसहस्रजन्यफलविलक्षणफलप्राप्तिकामः फल्गुतीर्थे स्नानमहं करिष्ये। ४२—अद्यामुके मासे
अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकशर्मणाममुकगोत्राणां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकमुकशर्मणां प्रेतशिलाप्रभासब्रह्मकुण्डप्रेतपर्वतो-
त्तरमानसोदीचीकनखलदक्षिणमानसफल्गुतीर्थेधर्मारण्यमतङ्गवापीब्रह्मयूपकूपपतितपावनक्षेत्रबोधितीर्थब्रह्मसरोवररुद्रपदविष्णुपदब्रह्मपददक्षिणाग्निपदगार्हपत्यपदाहवनीयपदसभ्यपदावसथ्यपदेन्द्र—
पदसूर्यपदकार्तिकेयपदागस्त्यपदक्रौञ्चपदगणेशपदचन्द्रपदकश्यपपदागयाशिरो गदालोलाक्षयवटगायत्रीतीर्थसावित्रीतीर्थसरस्वतीतीर्थविशालालेलिहानभरताश्रममुण्डपृष्ठाकाशगङ्गागिरिकर्णमुख-
गोदावरीवैतरणीगोप्रचारदेविकापुष्करिणीघृतकुल्यामधुकुल्याकोटितीर्थपाण्डुशिलामधुश्रवादशाश्वमेधहंसतीर्थाद्यनेकतीर्थावयकसमुदायरूपायविप्रधानमहाक्षेत्रात्मकगयातीर्थप्राप्तिनिमित्तकश्राद्धमहं
करिष्ये। ४३—अमुमगोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकशर्मणाममुकगोत्राणां मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुकामुकदेवीनाममुकगोत्राणां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुक-
मुकशर्मणाममुकगोत्राणां मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामहीनाममुकामुकदेवीनां प्रेतत्वविमुक्तिकामः [संभावितं प्रेतत्वविमुक्त्यर्थं] प्रेताशिलायां श्राद्धमहं करिष्ये। ४४—स्वर्गप्राप्ति-
कामनयां रामनमस्कारमहं करिष्ये। ४५-स्वर्गकामनया ब्रह्मकुण्डे स्नानतर्पणं चाहं करिष्ये। ४६—पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकवाप्तिकामः प्रेतपर्वते श्राद्धमहं करिष्ये। ४७—पितृगणगतप्रेतत्व-
विमुक्तिस्वगतप्रेतत्वाभावकामः प्रेतपर्वते तिलमिश्रमक्तूनिःक्षेपमहं करिष्ये। ४८-पापक्षयसूर्यलोकावाप्तिपितृमुक्तिकाम उत्तरमानसे स्नानमहं करिष्ये। ४९—अक्षयतृप्तिकाम उत्तरमानसेश्राद्ध-
महं करिष्ये। ५०—पितृमुक्तिकाम उदीचीतीर्थे स्नानमहं करिष्ये। ५१—मुक्तिकाम उदीचीतीर्थे श्राद्धमहं करिष्ये। ५२--मुक्तिकामो दक्षिणमासे श्राद्धमहं करिष्ये। ५३--मुक्तिकाम फल्गु-
तीर्थे श्रद्धामह करिष्ये। ५४--ब्रह्मलोकनयनकामः पञ्चतीर्थ्यां स्नानमहं करिष्ये। ५५--अक्षयतृप्तिकामो मतङ्गवाप्यां श्राद्धमहं करिष्ये। ५६—स्वर्गकामो धर्मेश्वरनमस्कारमहं करिष्ये।
५७—स्वर्गकामो बोधितरुनमनमहं करिष्ये। ५८-पापक्षयकामो ब्रह्मसरसि स्नानमहं करिष्ये। ५९—वाजपेयजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो ब्रह्मकूपप्रदक्षिणामहं करिष्ये। ६०—अद्येत्यादि वृद्ध-
प्रपितामहीनाममुकदेवीनाममुककामोमुकपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ६१—आत्मसहितकुलशतशिवपुरनयनकामो श्राद्धमहं करिष्ये। ६२ —आत्मसहितकुलशतनरकोद्धरणपूर्वकब्रह्मलोकनयन-
कामो ब्रह्मपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ६३—वाजपेयजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो दक्षिणाग्निपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ६४—राजसूयजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो गार्हपत्यपदे श्राद्धमहं करिष्ये।
६५—अश्वमेधमंलसमफलप्राप्तिकाम आहवनीयपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ६६—सोमलोकप्राप्तिकाम आवसथ्यपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ६७—शक्रलोकनयनकाम इन्द्रपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ६८—चन्द्र-
लोकनयनकामश्चन्द्रपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ६९—पतितसूर्यपितृसूर्यलोकनयनकामः सूर्यपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ७०—शिवपुरनयनकामः कार्तिकेयपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ७१—ब्रह्मपुरनयनकामोऽ
गस्त्यपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ७२—ब्रह्मलोकनयनकामः क्रौञ्चपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ७३—मोक्षपदनयनकामो मतङ्गपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ७४—ब्रह्मलोकनयनकामो गणेशपदे श्राद्धमहं करिष्ये।
७५—ब्रह्मलोकनयनकामः कश्यपपदे श्राद्धमहं करिष्ये। ७६—पितृतारणकामः कनकेशकेदारेशनारसिंहवामनपूजनमहं करिष्ये। ७७-अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपिता-
महानाममुकामुकशर्मणाममुकगोत्राणां मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुकामुकदेवीनाममुकगोत्राणां। मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकामुकशर्मणाममुकगोत्राणां मातामहीप्रमातामहीवृद्ध-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रमातामहीनाममुकामुकदेवीनामन्येषां दीयमानपिण्डोद्देश्यानामुद्धरणपूर्वकस्वर्गनयनकामो गयाशीर्षे पिण्डदानमहं करिष्ये । ७८—पितृरुद्रपदनयनकामः प्रपितामहनमस्कारमहं करिष्ये । ७९—स्वर्गकामो गायत्रीतीर्थे स्नानं प्रातःसन्ध्योपासनञ्चाहं करिष्ये । ८०—कुलब्राह्मणतानयनकामो गायत्रीतीर्थे श्राद्धमहं करिष्ये । ८१—कुलशतस्वर्गनयनकामः सावित्रीतीर्थे स्नानं मध्याह्नसन्ध्योपासनं चाहं करिष्ये । ८२—कुलसर्वज्ञतानयनकामः सरस्वतीतीर्थे स्नानं सायं सन्ध्योपासनं चाहं करिष्ये । ८३— बहुजन्मकृतसन्ध्यालोपजनितपापत्रीमुक्तिकामः सरस्वती-तीर्थे सन्ध्यात्रयवन्दनमहं करिष्ये । ८४—कुलशतब्रह्मलोकनयनकामो विशालायां श्राद्धमहं करिष्ये । ८५—त्रिसप्तकुलोद्धरणकामो वैतरण्यां स्नानमहं करिष्ये । ८६—त्रिसप्तकुलोद्धरणकाम इमां गां रुद्रदैवतां यथोपकल्पितोपकरणसहितामुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे । ८७—यथाकालमरणोत्तरयमद्वारस्थकृष्णावैतरणी नदी सन्तरणकाम इमां कृष्णागवीं यथोपकल्पितोपकरणसहितां रुद्रदैवताममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे । ८८—स्वर्गनयनकामो देवनद्यां श्राद्धमहं करिष्ये । ८९--पितृतारणकामो मार्कण्डेयेश नमस्कार-महं करिष्ये । ९०—पितृतारणकामः कोटीश्वरनमस्कारमहं करिष्ये । ९१—नरकस्थपितृपूतत्वस्वर्गनयनकामः पाण्डुशिलादर्शनमहं करिष्ये । ९२-देवानां शाश्वताव्ययपदप्राप्तिकामः पाण्डु-शिलायां श्राद्धमहं करिष्ये । ९३-अयुताश्वमेधफलप्राप्तिकामो मधुस्रवायां स्नानमहं करिष्ये । ९४—सहस्रकुलोद्धरणपूर्वकविष्णुलोकनयनकामो मधुस्रवायां श्राद्धमहं करिष्ये । ९५—स्वर्ग-नयनकामो दशाश्वमेधतीर्थे श्राद्धमहं करिष्य । ९६—पितृशिवपुरनयनकामो दशाश्वमेधनमस्कारमहं करिष्ये । ९७—पितृशिवपुरनयनकामो हंसनमस्कारमहं करिष्ये । ९८—ब्रह्मलोक-भागित्वभवनकामो मतङ्गपदे श्राद्धमहं करिष्ये । ९९—आत्ममुक्तिकामो मथोकुण्डे स्नानमहं करिष्ये । १००—पितृमुक्तिकामो मथोकुण्डे तर्पणमहं करिष्ये । १०१—मुक्तिकामो मथो-कुण्डे श्राद्धमहं करिष्ये । १०२—स्वर्गनयनकामो रामेश्वरनमस्कारमहं करिष्ये । १०३—पितृस्वर्गनयनकामोऽङ्गारकेश्वरनमस्कारमहं करिष्ये । १०४—अश्वमेधफलसमफलप्राप्तिकामो गयाकूपेश्राद्धमहं करिष्ये । १०५-गोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः पतितस्य सकलपापक्षयनरकोद्धारपूर्वकस्वर्गनयनकामनया गयाकूपे श्राद्धमहं करिष्ये । १०६--पितृसन्तारणकामो गयाकूपभस्मना स्नानमहं करिष्ये । १०७--ब्रह्मलोकनयनकामो रामपुष्करिण्यां श्राद्धमहं करिष्ये। १०८--त्रिः सप्तकुलोद्धरणकामः सुषुम्नायां श्राद्धमहं करिष्ये। १०९--अश्वमेधफलसमफलप्राप्तिकामो वसिष्ठकुण्डे स्नात्वा वसिष्ठेशनमनमहं करिष्ये । ११०--ब्रह्मलोकनयनकामो धेनुकारण्ये श्राद्धमहं करिष्ये। १११--ब्रह्मलोकनयनकामः कामधेनुपदे श्राद्धमहं करिष्ये । ११२--ब्रह्मलोकनयनकामः काम-धेनुनमस्कारमहं करिष्ये । ११३--स्वर्गलोकनयनकामः कर्दमाले श्राद्धमहं करिष्ये । ११४--स्वर्गलोकनयनकामश्चण्डिकानमस्कारमहं करिष्ये । ११५--पितृमुक्तिकामो गयागजपूजनमहं करिष्ये । एवमेव गयादित्यगायत्रीगदाधरगयागयाशिरसामपि पञ्चानां पूजने तदेवफलम् । तत्र वाक्ये तत्तन्नाममात्रोल्लेखनमिति विशेषः । ११६—कुलशतोद्धारपूर्वकब्रह्मलोक-नयनकामनया गयायां श्राद्धमहं करिष्ये। ११७--देवीनां कुलशतसहितविष्णुपुरगमनकामो भरताश्रमे श्राद्धमहं करिष्ये । ११८--ब्रह्मपुरनयनकामः कुण्डपर्वते श्राद्धमहं करिष्ये । ११९--स्वर्ग-नयनकामो मतङ्गपदे श्राद्धमहं करिष्ये । १२०--ब्रह्मपुरनयनकाम उद्यन्तपर्वते श्राद्धमहं करिष्ये । १२१--कोटिजन्मावच्छिन्नधनाढ्यवेदपारगविप्रभवनकाम उद्यन्तकुण्डे मध्याह्ने स्नात्वा सन्ध्यावन्दनमहं करिष्ये । १२२-दिवौकोगणपूज्यमानपितृसहितात्मब्रह्मलोकनयनकामोऽगस्त्यपदे श्राद्धमहं करिष्ये । १२३--योनिसंकष्टनिवृत्तिपूर्वकपरब्रह्मलोकगमनकामनया ब्रह्मयोनिप्रवेश निर्गमावहं करिष्ये । १२४--ब्रह्मण्यकामो गयाकुमारनमनमहं करिष्ये । १२५--सोमलोकनयनकामनया सोमकुण्डे स्नानं तर्पणं चाहं करिष्ये । १२६--सोमलोकनयनकामः सोमकुण्डे श्राद्ध-महं करिष्ये। १२७--काकशिलायां काकेभ्यो बलिदानमहं करिष्ये । १२८--स्वर्गप्राप्त्युत्तरब्रह्मलोकप्राप्तिकामः स्वर्गद्वारेशनमनमहं करिष्ये । १२९--स्वर्गनयनपूर्वकस्वनैर्मल्यकाम आकाशगङ्गायां

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्राद्धमहं करिष्ये। १३०--स्वर्गकामो भस्मकूटे भस्मस्नानमहं करिष्ये। १३१-स्वर्गप्राप्तिकामः कपिलेशनमस्कारमहं करिष्ये। १३२-स्वर्गकामो माहेशीकुण्डे श्राद्धमहं करिष्ये। १३३-निजस्वर्गप्राप्तिकामो रुक्मिणीकुण्डे श्राद्धमहं करिष्ये। १३४-विष्णुलोकगमनकामो भस्मकूटे जानुगर्ते श्राद्धमहं करिष्ये। १३५—ऋणत्रयविमुक्तिपूर्वकपितृमुक्तये श्रीजनार्दनदर्शनपूजन-नमनान्यहं करिष्ये। १३६-मुक्तिनयनकामः प्रेतकूटे श्राद्धकहं करिष्ये। १३७-ब्रह्मपुरनयनकामो वैकुण्ठपर्वते श्राद्धमहं करिष्ये। एवमेव लोहदण्डे हेमकूटे च केवलनामोल्लेखनमेव। १३८-शम्भुपुरगमनकामो गृध्रेश्वरदर्शनपूजननमनान्यहं करिष्ये। १३९-स्वर्गप्राप्तिकामो गृध्रवटनमस्कारमहं करिष्ये। १४०-पितृलोकनमनकामो गृध्रगुहायां श्राद्धमहं करिष्ये। १४१-स्वर्गनयनकामो माहेश्वर्यां धारायां श्राद्धमहं करिष्ये। १४२-शिवलोकगमनकाम ऋणमोचनदर्शनमहं करिष्ये। १४३-शिवलोकगमनकामः पापमोचनेश दर्शनमहं करिष्ये। १४४-स्व.विघ्न-मोचनपूर्वकपितृशिवपुरनयनकाम आदिपाले गजविनायकदर्शनमहं करिष्ये। १४५—स्वर्गकामो गयादित्यदर्शनमहं करिष्ये। १४६—पितृतारणकाम आदिपालस्थब्रह्मदर्शनमहं करिष्ये। १४७—ब्रह्मपुरनयनकामः शिलानाभौ श्राद्धमहं करिष्ये। १४८—सकलपापक्षयकामो मुण्डपृष्ठाद्रि दर्शनमहं करिष्ये। कुलत्रयस्वर्गनयनकामो मुण्डपृष्ठाद्रि क्रौञ्चपादाङ्कितश्वेताशिलास्थ जलाशये स्नानं तर्पणं चाहं करिष्ये। १४९—ब्रह्मलोकनयनकामो मुण्डपृष्ठाद्रिक्रौञ्चपादांकितश्वेतशिलास्थ विन्द्रादिकुण्डे श्राद्धमहं करिष्ये। १५०—गोत्रस्य शर्मणः स्वस्य परस्य वा यथाकालमरणोत्तरगयाश्राद्धजन्यफलसमफलप्राप्तिकामनया जनार्दनपूजनादिविशिष्टतद्धस्तदधिभक्तादिपिण्डदानमहं करिष्ये। १५१—अमुकशर्मणो जीवितस्य मम यथाकालमरणोत्तरगया-श्राद्धजन्यफलसमफलप्राप्तये जनार्दनदक्षहस्ते नैवेद्यशेषदधिभक्तपिण्डमहं ददे।

१५२—सर्वसौभाग्यसिद्धये श्रीमङ्गलापूजनमहं करिष्ये। १५३-अमुकगोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकशर्मणाममुकगोत्राणां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुका-मुकशर्मणां कृतगयायात्रोक्तसङ्गभूतघृतप्रधानद्रव्यकपार्वणश्राद्धमहं करिष्ये। १५४-मम समस्तपितृणां नानानिरयोद्धारणद्वारा शाश्वतब्रह्मविष्ण्वादिलोकावाप्त्यर्थं स्वस्य कायिकवाचिकमान-सिकसकलपापक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गयायात्रां प्रयागयात्रां काशीयात्रां वा करिष्ये। १५५—प्रयागादौ हेमाद्रिसङ्कल्पं केचिद्वदन्ति तत्तु निर्मूलत्वात् प्रतारणमात्रमिति कमलाकरकृत-लघुत्रिस्थलीसेतौ पृ० ७। १५५-अमुकगोत्राणाममुकशर्मणामस्मत्पित्रादीनां मात्रादीनां मातामहादीनां तत्पत्नोनां पत्न्याः पुत्रस्य दुहितुर्भ्रातुःपितृव्यमातुलतत्पत्नीनां पितृमातृष्वसृभगिनीनां सापत्न्यानां सधवानां पृथग्वा श्वशुरश्वश्रू शालकगुरूपाध्यायमित्रादीनां शर्मणां गोत्राणां वस्वादिरूपाणां च सम्भावितप्रेतत्वनाशपुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकावाप्तिसिध्यर्थमात्मनश्च सर्वपापक्षय-ब्रह्मलोकावाप्त्यर्थं प्रेतपर्वते श्राद्धमहं करिष्ये। १५७-अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः कृतैतत्पार्वणश्राद्धप्रतिष्ठार्थमिदं रजतं चन्द्रदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। १५८--अमुकगोत्रायाः मातामह्या अमुकीदेव्याः कृतैतत्पार्व०। १५९-पित्रादीनां कुलशतोद्धारपूर्वकब्रह्मलोकनयनकामो गयायां श्राद्धमहं करिष्ये। १६०--मम शरीरे सकलरोगविमुक्त्यर्थंमम पुत्रादि कलत्रादेश्च सर्वेष्टजनस्य प्रेतपीडोपशान्त्यर्थं यथानामगोत्राणामनिर्दिष्टपेक्षिकानां सात्त्विकराजसतामसरूपाणां दिव्यान्तरिक्षभूमिस्थानां विष्णुब्रह्मरुद्रशर्माणामसद्गतीनां स्वर्गलोकाद्यक्षय्य-विष्णुलोकप्राप्त्यर्थमेकोद्दिष्टविधिना एकतन्त्रेण पिण्डत्रयात्मकं त्रिपिण्डीश्राद्धमहं करिष्ये। इति पिशाचमोचनतीर्थे विशेषः। १६१--अमुकगोत्रस्यामुकप्रेतस्य धनिष्ठादिपञ्चकमरणोत्पन्न-दुर्गतिनिवारणार्थं पुत्रादिसकलकुटुम्बरक्षार्थं पुत्तलकैः सह शवदाहे यथास्थानपुत्तलस्थापनपूजनमहं करिष्ये। १६२--अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो ममौर्ध्वदेहिकफलावाप्तये जीवच्छ्राद्धमहं करिष्ये। १६३--अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणां सपत्नीकानां वसुरुद्रादित्यरूपाणाममुकगोत्राणामस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकामुकशर्मणां सपत्नीकानां वसुरुद्रादि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्यरूपाणां पुरुरवार्द्रवसुज्ञ ज्ञकविश्वेदेवपूर्वकं पार्वणविधिना अर्धपिण्डदानसहितपितृतृप्तिकामो युष्मदनुज्ञया दर्शश्राद्धमहं करिष्ये। १६४-दानकल्पोक्तफलकामः सकलपापक्षयपूर्वकशय्यादानमहं करिष्ये। १६५-अमुकगोत्रायाः मम समस्तपापक्षयपूर्वकसकलमनोरथसिद्धिपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तये इमे उपानहौ इदं छत्रं च इदं शयनवस्त्रं च इमां नौकां च यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं संप्रददे। १६६--अद्य मातुः सांवत्सरक्षयाहमहापर्वणि पार्वणविधिना कृतस्य प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धस्य समृद्ध्यर्थं मातृपितामहीप्रपितामहीनामक्षय्यतृप्तिप्राप्त्यर्थं दास्यमानानि साज्यानि सगुडानि सशाकानि एकोत्तरशतसङ्ख्याकेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽहं संप्रददे। १६७-मातु प्रतिसंवत्सरक्षयाहमहापर्वणि कृतस्य पार्वणविधिना प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धस्य दक्षिणासमृद्ध्यर्थं हिरण्यरजतप्रत्याम्नायीभूतमिदं द्रव्यमुपविष्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽहं संप्रददे। १६८-अस्य मातृश्राद्धस्य न्यूनातिरिक्तदोषनिवृत्त्यर्थं दास्यमानमिमां भूयसीं दक्षिणां भूयांसेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽहं संप्रददे। १६९--सकलपापक्षयपूर्वकरुद्रालयगमनाद्यनेककल्पव्यापिस्वर्गलोकत्रासपरार्द्धद्वयव्यापिवरुणलोकगमनपूर्वकश्रीमद्विष्णुपदप्राप्त्यर्थं कृतैतत् घटादीनामुत्सर्गमहं करिष्ये। १७०--ममेह जन्मनि। जन्मान्तरे च ज्ञाताज्ञातकामाकामकृतकायिकवाचिकसांसर्गिकरहस्यप्रकाश्यमहापातकातिपातकसङ्कीर्णकादिसकलपातकनिवृत्तिरूपचित्तशुद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् (एकविंशतिकुलोद्धारपूर्वकं मम समस्तपितॄणां शाश्वतश्रीरुद्रलोकनिवासार्थं) वृषोत्सर्गाख्यं कर्माऽहं करिष्ये। १७१--गोत्रस्याद्यः प्रेतस्य धनिष्ठादिनक्षत्रपञ्चकमृत्युचितविनाशार्थं पञ्चकमरणविधिं करिष्ये। १७२-गोत्रस्याद्यः शर्मणः आत्महत्यादिपाखण्डित्वादिजनितपापोपशमनार्थमौर्ध्वदेहिके संप्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये। १७३-गोत्रः शर्माऽहम् अद्यारभ्य संवत्सरं यावत् वर्षशतदानप्राप्तये अमुकगोत्रस्यामुकस्य क्षुत्तृषानिवारणार्थमिमान् मोदकान् चणकदक्षिणाद्युपस्करयुतान् जलपात्रं रज्जुं कटं वस्त्रादिकं च यथानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मणेश्वाहं संप्रददे। १७४-गयायात्राधिकारसिद्ध्यर्थं कायिकाद्यनेकपापक्षयपूर्वकं यथाशक्ति गोदानं करिष्ये। १७५-करिष्यमाणगयायात्रानिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं गणेशनवग्रहेष्टदेवतानां पूजनं करिष्ये। १७६--मम समस्तपित्रादीनामेकविंशतिकुलोद्धरणार्थं कृतस्य गयाश्राद्धकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थञ्च श्रीगदाधरदेवताप्रीत्यर्थं गयाहवनकर्माऽहं करिष्ये-इति केचित्। १७७--अमुकगोत्रा अमुकनाम्नी मम स्वभर्तृश्वसुरपरश्वसुरादीनां सकलपितॄणां च उद्धारणार्थं गयाश्राद्धस्य साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च श्रीगदाधरदेवताप्रीत्यर्थं गयाहवनकर्माहं करिष्ये।

[श्राद्धादि दिनमें क्षौरकर्म विचार]

यस्मिन्मासि मृताहः सस्यात्तन्मासंपक्षमेव वा क्षुरकर्म न कुर्वीत परान्नं च रतिं त्यजेत्॥ 'मासि मासि गृहस्थस्य पक्षे पक्षे तु यज्विनाम्। ऋतौ मासे यतीनाञ्च यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम्॥ अधिमासो यदा विप्र तदा चौरद्वयं भवेत्। मासद्वयेन प्रथमं मासैकेन तथापरम्॥

[आधुनिकाचार्य-स्वरचित या परचित ऐसे अनेक प्रकारान्तर श्लोकोंसे अपठ यजमान या उनकी स्त्रियोंसे स्वकार्य साधनकर उदरपूर्तिकर सकता है।]

[गणेशोपचारः] ध्यानम्--उमा-महेशाऽङ्क-विभूषणाख्यं गजाननं मूषक-वाहनं त्वाम्। रक्तोज्ज्वलं दिव्य-पटं दधानं सदा गणेशं हृदि चिन्तयामी॥ आवाहनम्-आराध्यमानोऽसि सदा सयत्नै, सन्तोष्यमानो बहुधा च देवैः। तथापि 'तेऽहं मम चाऽसि त्वं भो!' आवाहये त्वामत एव दीनः॥ आसनम्-गृहं त्वदीयं सकलं त्वदीयमहं त्वदीयस्तव चासनं वै। स्वीकृत्य देवाऽनुगृहाण दासं त्वदर्थमेवाद्य सुसज्जितं यत्॥ पाद्यम्-त्वया गृहीतं सुर-संघ-दत्तं पाद्यं पवित्रं बहुधाऽद्ययावत्। परं न देवेश! कुतोऽपि लब्धं मोदाश्रुभिर्दुष्टमतो गृहाण॥ अर्घ्यम्-मूढो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऽस्मि जानामि न चार्घ्यदानं परं न चित्ता मयि तेऽर्घ्यदाने । यतो हि त्वं दीन-जनानुकम्पी, गृह्णासि श्रद्धार्पितमेव देव ? ॥ आचमनीयम्-श्रीमन् ! गृहाणाऽचमनीयमेतम् मयार्पितं देव ! विसर्पि सन्धम् । तवोचितं नास्ति गणेश ! जाने तथापि श्रद्धा-रस पूरितं मे ॥ स्नानम्-देवेश ! लम्बोदर ! शुद्धमेतत् तीर्थोदकं यत्नतयाऽर्जितं मे । स्नानं कुरु त्वं सफलो यथा स्यान्क्रमो मदीयः करुणा-लवाने ॥ मधुपर्कः-पुरःप्रभो ! ते मधुपर्क एषन शोभते तुच्छतया दयालो ! स्वीकृत्य देवेश ! तथापि दीने दयार्द्रतां दर्शय दीनबन्धो ! कुंकुमम्-पाद-द्वये कुंकम-चूर्णमेतत् परिस्फुरद्गन्ध-युते त्वदीये । समर्प्यते दीन-जनानुकम्पिन् ! प्रसीद देवेश ! गृहाण सर्वम् ॥ धूपः—निजास्य-निश्वास-सुगन्ध-बन्धुं दिव्यं सुरम्यं किल धूम-जालम् । भक्त्या समाराधन-मानसेन समाऽर्पितं स्वीकुरु देवदेव ! ॥ दीपः—दयानिधे ! भास्कर-दीप दर्शनं पुरस्तवेयं किल दीप-मालिका । तथापि चाशा मम मानसे विभो ! निराशतां नेयमुरी करोत्यहो ! ॥ नैवेद्यम्-मत्वातिदिव्यं परिपाक-सिद्ध नैवेद्यमेतत् किल विघ्न-नाशिन् ! । भक्त्योपनीतं पुरतो मया ते गृहाण देवेश ! दयां कुरुष्व ॥ ताम्बूलम्-एला-लवङ्ग-क्रमुकादि-युक्तं हे विश्व-सन्ताप-विनाश-कारिन् ! ॥ ताम्बूलमेतन्मम भक्ति-युक्तं गृहाण देवेश ! निवेदितं मे ॥ दक्षिणा—सर्वं त्वदीयं मम नास्ति किञ्चिद् ददामि किं ते वद दक्षिणायाम् । तथापि देवेश ! मयार्पितं त्वं स्वकीय-मेवाद्य गृहाण नाथ ! ॥ नीराजना-दयानिधिं वेत्ति न को जगत्यां लम्बोदरं त्वां वद दीन-बन्धो ! । अजानताऽर्चा सरणीं मयाऽपि नीराजनाऽतः किल कल्प्यते ते ॥ परिक्रमा-पुनाति विश्वं हि परिक्रमा ते सुरासुरैरर्चित-पाद-पद्म ! । अतो दयानाथ ! यथाविधं तां करोमि भक्त्यानन मस्तकोऽहम् ॥ पुष्पाञ्जलिः-पुष्पाञ्जलिं नाथ समर्पयामि गृहाण देवेश ! जगन्निवास ! । समर्पितं त्वं किल भक्ति-पूर्वं जहासि नो नाथ ! गणेश ! जाने ॥ स्तवनम्-सौख्याकरस्त्वं करुणा-करश्च भक्तार्ति-हर्त्तासि ददासि सर्वम् । अहं न याचे परमीश ! किञ्चिद् विहाय भक्तिं परमां त्वदीयाम् ॥

[अथ वरुणोपचारः] ध्यानम्—आश्रित्य यं भवति धन्यतरा प्रतीची रत्नाकरत्वमुपयाति पयः समूहः । पाशश्च यस्य भवपाश-विनाशकारी तं पाश वारिशमहं हृदि चिन्तयामि ॥ आवाहनम्-यद् दृष्टिकोणरहिता वसुधा सदैव वन्ध्येव भाति विफलीकृतबीजशक्तिः । तं वारिवारिशमहं वरुणं सदैव धाराधरं सुखकरं प्रियमाह्वयामि ॥ आसनम्--अयि ? विभो ? शरणागतवत्सल ? यदपि हीनमिदं भवतां कृत तदपि भक्तजनं खलु वीक्ष्य मां सम्मुचित प्रियमासनमास्यताम् । पाद्यम्--अहो मदीयं खलु पुण्यसञ्चितं श्रीमद्भिरद्यावधि रचितोऽस्मि यत् । अकिञ्चनोऽहं भवतां कृते यदि तथापि पादार्घ्यमिदं प्रगृह्यताम् ॥ अर्घ्यम्--विमलचम्पकपुष्पसमन्वितं त्रिविधताप-विनाशन-नायकम् । प्रियकरप्रियमर्घ्यमिदं विभो ! परिगृहाण जलाधिप ! पाशभृत् ॥ आचमनम्—कस्तूरिका सुरभिचन्दनवासनासि स्वेलालवङ्गलवली परिपूरितञ्च । मध्याह्नसूर्यप्रतिबिम्बमिव प्रकाशं दत्तं गृहाण वरमाचनं मयेदम् ॥ मधुपर्कः--सौवर्णपात्रधृतप्रीतिविवर्धकेन मिश्रीकृतेन मधुना पयसा घृतेन । सज्जीकृतं सविधिवन्मधुपर्कसंज्ञं देवो दधातु हृदये करुणाशयेऽस्मिन् ॥ स्नानम्--कङ्कोलपत्रहरिचन्दनवासितेन कश्मीरजेन घनसारसमन्वितेन । एलालवङ्गललवलीविमलोदकेन स्नानं कुरुष्व भगवन्मुनिवेदितेन ॥ रक्तचूर्णम—निखिलभुवनमध्ये विस्तृता यस्य कीर्तिः सुरनरमुनिवन्द्यो वन्दनीयप्रभावः । स खलु वरुणदेवो भक्तिपूर्वं प्रदत्तं भुवि भवभयहारी अङ्गरागं दधातु ॥ धूपम्—कर्पूरकुंकुमसुगन्धिसुगन्धितं हि कस्तूरिचन्दनद्रवैः परिवर्धितं तम् । विज्ञैर्बुधैश्च विबुधैः समुपासितं त्वं धूपं गृहाण सुरभिं परिपावनञ्च ॥ दीपः--तमोनाशकं दीप्तिदीप्तं प्रदीपं प्रभा-भासुरं भासयन्तं गृहान्तम् । स्फुरज्ज्योतिषं वर्तियुक्तं सुदीपं जगद्वन्द्य देव त्वमङ्गीकुरुष्व ॥ नैवद्यम्--सौवर्णपात्रे समलङ्कृतेऽस्मिन् यथायथं तं विनिवेशितञ्च । सुस्वादुशीतं मधुरं नवञ्च नैवेद्यमङ्गीकुरु देवदेव ? ॥ ताम्बूलम्—एलालवङ्गलवलीक्रमुकादियुक्तं सुस्वादुगन्धिसुरभिं सुमनोहरञ्च । भूपैः प्रयाणसमये प्रियमादृतं तं ताम्बूलरागमुररीकुरु देवदेव ॥ दक्षिणा—भूसुरैः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुरसमैरखिलैर्या वन्दिताऽमृतभुजैः समुपास्या। तां गृहाण निजभक्तनिवेद्यां दक्षिणां सुमनसामपि पूज्याम् ॥ नीराजना—कस्तूरिकुंकुमसुगन्धिसुगन्धितेन एलालवंगघनसारसमन्वितेन। सौवर्णपात्रघृतगोमयवर्धकेन नीराजनामयि ! करोमि तवतिथिर्थीम् ॥ प्रदक्षिणा—समागतानां भवपाशनाशिनां भपादशानांत्रयतापहाहिणाम्। विधीयते यां त्रिदुषां गृहे सदा प्रदक्षिणां दक्षिण ! ते करोमि ताम् ॥ पुष्पाञ्जलिः—हे पाशभृत् वरुणनाथ जलेश देव दीने दयां मयि विधेहि सदा सुदेव !। नातः परं किमपि प्रार्थयितव्यमस्ति पुष्पाञ्जलिं ननु गृहाण सदा मदीयम् ॥ [नवग्रहार्चनम्] ध्यानम्—बृहस्पतिं दैत्यगुरुं महीसुतं शनैश्चरं चन्द्रसुतं च राहुम्। दिवाकरं चन्द्रमसं सुकेतुं स्वकीयचित्ते वहुचिन्तयामि ॥ आवाहनम्—समस्तप्रत्यूहसमुच्चयस्य विनाशने प्राप्तगुणाः सुभव्याः। आवाहनं वो वितनोमि देवाः भवन्तु कल्याणवरा भवन्तः ॥ आसनम्—रोचिष्णुकाञ्चनचयांशुपिशङ्गिताशं वैदूर्यरत्ननिकरैरभिभासितं तम्। पीठं सदा सदमरैः प्रियमादृतं स साङ्गा नवग्रहवराः सततं भजन्तु ॥ पाद्यम्—कस्तूरिका सुरभिचन्दनमोदयुक्तमेलालवङ्गघनसारसुवासितं च। पाद्यं ददामि जगदेकनिवासदेवाः साङ्गा नवग्रहवराः ! प्रतिमानयन्तु ॥ अर्घ्यम्—सौजन्यसौख्यजननीजननीजनानां येषां कृपैव वसुधारिणी वै। ते सर्वदेव गुरुगौरवधारिदेहा अर्घ्यं सदैव हि ग्रहा मम धारयन्तु ॥ आचमनीयम्—कंकोलपत्रहरिचन्दनपुष्पयुक्तं एलालवङ्गलवलीघनसारसारम्। दत्तं सदैव हृदयेऽस्मिन् देवा ! भजन्तु शुभमाचमनीयमम्भः ॥ मधुपर्कः—अधिकमानयुतः प्रियकारकः स मधुपर्क इतः स समुस्थितः। सुविहितस्य तस्यस्य सुरप्रियाः कुरुत स्वीरणं नव संख्यकाः ! ॥ स्नानम्—जले समादाय विचित्र पुष्पाण्यग्र्याणि चानीय निपातितानि। स्नानं विधेयं विबुधाः ! समन्तादागत्य युष्माभिरिहाङ्गणे मे ॥ रक्तचूर्णम्—धूपादिकेनाति सुवासितं तथा शोणश्रियानन्दविवर्धितेन च। श्रीरक्तचूर्णमलतापहारकं नवग्रहा वो मनसार्पयामि ॥ धूपः—लवङ्गपाटीरजचूर्णवर्धितं नरासुराणामपि सौख्यदायकम्। लोकत्रय गन्धचयप्रसारकं गृह्णन्तु धूपं गुरुकं नवग्रहाः ! ॥ दीपः—सद्वर्तिकां ज्ञानविवर्धिकामिमां निपात्य दीपे विनिवेदितां तथा। प्रज्वालितं ध्वान्तविनाशकारकं गृह्णन्तु ज्ञानस्य विशालरूपकम् ॥ नैवेद्यम्—सिद्धानकर्पूरविराजितं पुरः सौरभ्यसान्द्रेण विवर्धितं तथा। नैवेद्यमेतद्रुचिरं सुगन्धितं स्वीकृत्य मामत्र कृतार्थयन्तु वै ॥ ताम्बूलम्—दिव्या गृहा ! नव समेत्य गृह मदायं भक्त्यार्पितं परमगन्धयुतं सुरम्यम्। एलालवङ्गबहुलं क्रमुकादियुक्तं ताम्बूलमद्य मम गृह्णत हे सुरेन्द्राः ! ॥ दक्षिणा—दैवासुरैर्नित्यमशेषकाले प्रगीयमाना प्रभवः ! पुराणाः !। गृह्णन्तु सद्यः खलु दक्षिणां च ध्यानेन भक्ते मयि वर्तितव्यम् ॥ नीराजना—नीराजना सौख्यप्रदा सदैव गाढान्धकारादपि दूरकर्त्री। अशेषपापैः परिपूरितस्य शुद्धिं करोति प्रियमानवस्य ॥ प्रदक्षिणा—प्रदक्षिणाः सन्ति प्रदक्षिणास्तथा पदे पदे दुःखविनाशिकाः अपि। जन्मान्तरस्यापि विनाशकारिकाः पापस्य याश्चित्तविवर्धितस्य च ॥ पुष्पाञ्जलिः—पुष्पाञ्जलिं सकलदिव्यग्रहा ! मदीयं भक्त्यार्पितं मधुरगन्धयुतं ससारम्। दीने विधाय करुणां मयि हे सुरेन्द्राः ! स्वीकृत्य दीनजनवत्सलतां किरन्तु ॥ स्तवनम्—भानुःशशीधरणिजः सबुधो गुरुश्च शुक्रस्तथा दवसनायकस्तनुरेषः। राहुः सदैव जगतां सुहितः सकतुरेते गृहाः शिवकराः सततं भवन्तु ॥ [रुद्रस्य] ध्यानम्—वृष-वाहन ! सर्प-भूषण ! डमरू-वादक ! शूल-धारक !। सततं हृदि चिन्तयामि त्वामयि गङ्गाधर ! चन्द्रशेखर ! ॥ आवाहनम्—क्रियते करुणा-निधे ! विभो ! गिरिशाऽवाहनमद्य ते मया। भगवन्निज-पादुपङ्कजैः कुरु पूतं मम सद्मपावनैः ॥ आसनम्—अयि रुद्र ! सुसज्जित मया तव हेतोरिदमद्य चासनम्। करुणेश ! गृहाण वर्धय निज-दासस्य यशो-वितानकम् ॥ पाद्यम्—अयि वाद्यमिहं प्रदीयते बहुभीतेन मया दयानिधे ! ॥ करुणां कुरु गृह्यतामिदं शिव ! दूरीकुरु मामकं भयम् ॥ अर्घ्यम्—करुणा यदि नाथ ते मयि यदि श्रद्धार्पितमेव गृह्यते। पुनरीश ! विलम्ब्यते कथं कथमर्घ्यन्त ममाद्य गृह्यते ॥ आचमनीयम्—गिरिशोपहरामि ते पुरो निज-भक्त्या परिपूरित मुदा। इदमाचमनीयमीश्वर ! करुणां दर्शय गृह्यतां प्रभो ! ॥ स्नानम्—मया ते प्रियं संभृतं गाङ्गमीश ! जलं पूतपूतं त्वदर्थं त्रिनेत्र !। प्रसीद प्रभो ! हे जटा·

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जूटधारिन् ! कुरु स्नानमीशान ! देवाधिदेव ! ।। मधुपर्कः–अयि दयामय ! देव ! समर्प्यते शिव ! हरे ! मधुपर्कलवस्तव । पतित-पावन ! पावन-पादयोरनुगृहाण जप कुरु मे विभो !।। कुङ्-
कुमम्श्रुतस्त्व मयी दीनबन्धुर्दयालुस्तथा चाशुतोषः पुनः को विलम्बः ? । मया भक्ति-युक्तेन दीनेन दत्तं गृहाणाधुना कौङ्कुमं चूर्णमेतत्।।धूपः–इदं गन्धयुक्तं विभो ! धूप-जालं त्वदर्थं मया
संभृतं किं नवाऽलम् । यदि स्यादिदं स्वीकृतं ह्याशुतोष ! यथार्थं भवेन्नाम ते दीन-बन्धो!दीपः–प्रदीपायसे त्वं जगत्यां दयालो ! प्रदीपः पुरस्ते न शोभा दधाति । त्रिलोक्येश ! लोकस्यरागातं
तथापि महादेव ! दीपं पुरस्तेऽर्पयामि ।। नैवेद्यम्–समानीतमीशान ! नैवेद्यमेतत् त्वदर्थं मनोहारि पक्वं सुगन्धितम् । दयानाथ ! मन्ये न योग्यं तथापि विभो ! तेऽस्मि किं वा दयापा-
त्रमेवम् ।। ताम्बूलम्–चिदानन्दमूर्ते ! दयानाथ ! रुद्र ! लवङ्गादि- युक्तं सुताम्बूलमेतत् । मया दीयते दीन-बन्धुर्यतस्त्वं गृहाणेश ! भक्त्यार्पितं ताप-हारिन् ! ।। दक्षिणा–त्वमेवासि दाता
विधाता दयालुददामीश ! किं दक्षिणा–व्याजतोऽहम् । तथापीश ! मत्वा स्व-दासार्पितां तामिमां दक्षिणां दीनबन्धो ! गृहाण ।। नीराजना-तारावली प्रदिदिनं वितनोति रुद्र ! नीराजनां तव
विभो ! भवपाश-नाशिन् ! । तामेव देव ! विदधत् किल दीन-बन्धो ! लज्जे विलोक्य तव वैभवर्तिहर्तः ! ।। परिक्रमा देवाधिदेव ! भुवने वितनोति नित्यं पुण्यानि नाशयति पापचयान् जना-
नाम् । भक्त्या कृता त्रिभुवनेश ! परिक्रमा ते मां नो पुनासि करुणेश ! कथं तयैव ।। पुष्पाञ्जलिः–पुष्पं विना मयि दयामय ! नास्ति किञ्चिद् दीनोऽस्मि त्वं शरणदोऽसि च मादृशानाम् ।
कृत्वा महेश ! करुणामत एव दीने पुष्पाञ्जलिं मम गृहाण दया विधातः ! ।। स्तवनम्–दीनं ज्वलन्मम मनो विषयाग्नि कुण्डे आक्रारयत्पतितमां किल दीन-बन्धुं । त्वत्तोऽपरं कथय कं
परमेश्वरं हा ! पायाद्दयामय ! विभो ! शिव ! शूलधारिन् !।। [अनलस्तवनम्] ध्यानम्–देवाग्रगण्योऽस्यनल ! त्वमेव विश्वासो ! विश्वविषादहारिन् । पूतात्मभिर्ध्यातमशेषकार्यें वन्दे प्रभु
वायुसुखं विशालम् ।। आह्वानम्–प्रवर्धमानस्य मलस्यहारी वनस्य वंशेषु दवानलस्त्वम् । विवर्धमानौर्व ! समुद्रसान्द्रे सानन्दमायाहि मदर्थमत्र ।। आसनम्–महार्हसिंहासनमच्छशोभं शुभाषितै
र्भासितमङ्कमस्ति । कल्याणकारिन् ! मुदितेन चैतत् गृहाण चित्तेन कृपीटयोने ! ।। पाद्यम्–अनेकतीर्थोपहृताः किलापश्चानीय सानन्दमिह स्थितास्ताः । तासां समुत्पादितमद्य पाद्यं गृहाण दे . !
जयन्निवास ! ।। अर्घ्यम्–जलजचम्पकपुष्पचयान्वितं रुचिरमर्घ्यमनर्घ्यकरस्थितम् । प्रतिगृहाण धनञ्जय ! सादरं सकलसारमयं हि यदुत्तमम् ।। आचमनीयम्–मदनवर्ष्मविनाशक ! पावक !
द्विजमुखे सुखसद्मनिवासकः ! । प्रतिगृहाण सुपुष्पसमन्वितं ललितमाचमनं सुखपूर्वकम् । मधुपर्कः–अधिकतामधियाति सितस्य यः स मधुपर्क इतः समुपस्थितः । दिनकरस्य श्रमस्य विनाशकः
प्रतिगृहाण प्रियं समुपागतम् ।। स्नानम्–श्रीमल्लिकादिकुसुमैश्च सुवातसितेन स्नानीयचूर्णसकलेन विराजितेन । स्नानं कुरुष्व रुचिरेण जलेन तेन प्रेम्णो ममाति कृपणस्य प्रियोन्नतिः स्यात् ।
रक्तचूर्णम्–प्रत्यूषकालनिसृतस्य रवेः समानं धूपादिकेन गुरुणापिसुवासितं च । श्रीरक्तचूर्णमधिकेन मयाहृतेन प्रीत्या गृहाण हुतभुक् ! परिपालकस्त्वम् ।। धूपः-लवङ्गपाटीरजचूर्णसंयुतं य-
देवासुरसौख्यशालिनम् । सद्यः सुगन्धीकृतहर्म्यकोष्ठकं धूपं गृहाणेश ! सुवासितं तथा ।। दीपः-गाढान्धकारस्य महान्तमेनं शत्रुं तथा ज्ञानविशुद्धदेवम् । सद्वर्तिकर्पूरयुतं प्रदीपं गृहाण देवेश !
उपर्बुधस्त्वम् ।। नैवेद्यम्-माणिक्यपात्रे विधिवत्प्रसारितं देवाहमेतत् प्रियक्षीरभोजनम् । गृहाण नैवेद्यमिदं सुरोचितं ददामि तुभ्यं मनसा हविर्भुजे ।। ताम्बूलम्-एलालवङ्गनिचयैरधिकं सुयुक्तं
तूर्णं मया सुविहितं सकलं तदेतत् । ताम्बूलपत्रमधुनाः भवतः पुरस्तादङ्गीकुरुष्व प्रियदेव ! दयाधिराज ! ।। दक्षिणा–दैवासुरैर्नित्यमशेषकाले विगीयमानोऽसि धनञ्जय ! त्वम् । गृहाण सद्यः खलु
दक्षिणां च ध्यानेन तथ्ये मयि वर्तितव्यम् ।। नीराजना–नीराजना नाथ ! सदा त्वदीया गाढान्धकारस्य विनाशिकेयम् । अशेषपापैरपि पूरितस्य शुद्धिं करोति प्रियमानवस्य ।। प्रदक्षिणा–प्रद-
क्षिणा नाथ ! मया प्रकार्या पदे पदे दुःखविनाशनी ते । जन्मान्तरस्यापि करोति नाशं पापस्य या चित्तविवर्धितस्य ।। पुष्पाञ्जलिः–कथं तस्य वै चित्रभानोश्चिराय स्तुतिं कर्तुकामोऽपि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सामर्थ्यमीयात् । कविः कोऽपि साक्षाद् गिरा वा गणेशो गुणान् यस्य गातुं भजेन्न प्रभुत्वम् ॥ स्तवनम्-वयं बालका ज्ञानहीनाः सदैव नमामो भवन्तं दयादानदक्षम् । भवच्छास्त्रमेतत् प्रपूर्णं धरायां कयाचित् सुयुक्त्या प्रभो ! तारणीयाः ॥ (षोडशमातृका) ध्यानम्-न चार्चनं पुण्यतमं शुभप्रदं जानाम्यहं धन्यतमाः ! सुमातरः ! सुरप्रियाः षोडशमातृकाः मम भूयासरज्ञानविनाशकारिकाः॥ आवाहनम्-दारिद्र्यदावानलनाशिकाः सदा भजाम्यहं दुःखनिधौ निमग्नः । कृपाकटाक्ष मयि मन्दबुद्धौ मदर्थमायान्तु निपात्य मातरः ! ॥ आसनम्-सिंहासनं सुन्दरशोभमद्य ससज्जितं तन्मणिभिः सुसौम्यम् । शिवप्रदाः षोडशसंख्यकाश्च गृह्णन्तु देवासुरपूज्यमानाः ॥ पाद्यम्-अनेकतीर्थोपहृतानिनीराण्यादाय गन्धान्वितमद्य पाद्यम् । सम्पादितं सारयुतं सुरम्यं गृह्णन्तु चोत्फुल्लसरोजनेत्राः ॥ अर्घ्यम्-जलजचम्पकपुष्पगणान्वितं रुचिरमर्घ्यमधन्यकरस्थितम् । सकलसारमयं हि यद्गत्तमं कुरुत स्वीकरणं मम मातरः ॥ आचमनम्-सकलगन्धयुतं सुमनोहरं निखिलरोगविनाशकरं शुभम् । ललितमाचमनं सुखपूर्वकं कुरुत स्वीकृतिमङ्ग सुमातरः ॥ मधुपर्कः-दिनकरस्य श्रमस्य विनाशको धवलवर्णयुतः प्रियकारकः । स मधुपर्क इतः पुरतः स्थितः कुरुत स्वीकरणं मम मातरः ॥ स्नानम्-स्नानीयचूर्णसकलेन विराजितेन गन्धान्वितेन कुसुमैश्च सुवासितेन । स्नानं विधेयमधुना रुचिरेण नीरेणात्यन्तमुग्धहृदयेऽपि कृपाविधेया ॥ रक्तचूर्णम्-प्रभातकालस्य रवेः समानं श्रीरक्तचूर्णं मनसा ददामि । धूपादिकेनाति सुगन्धितं तद् गृह्णन्तु प्रीत्याऽखिललोकवन्द्याः ॥ धूपः-मनुष्यदेवासुरसान्द्रसौख्यदं लवङ्गपाटीजचूर्णसंयुतम् । सद्यः सुगन्धीकृतहर्म्यकोष्ठकं धूपं प्रियार्थं प्रददामि मातरः ॥ दीपः-लोकान्धकारस्य विनाशदक्षं सद्वर्तिपूरयुतं प्रदीपम् । प्रज्वाल्य सानन्दममुं ददामि गृह्णन्तु चाज्ञानविनाशिकाः ! मे ॥ नैवेद्यम्-सुवर्णपात्रे विधिवत्प्रसारितं सुगन्धद्रव्यैश्च सुगन्धितं मुदा । सुधाशनाः ! स्वीकुरुत प्रियं तथा नैवेद्यमेतन्मनसा सुमातरः ! ॥ ताम्बूलम्-एललवङ्गनिचयैरतिगन्धयुक्तं ताम्बूलमद्य हृदयेन ददामि रम्यम् । गृह्णन्तु भद्रमधिकं वितरन्तु मह्य सह्य न लोक इह वै ज्वलनं कदापि ॥ दक्षिणा-देवासुरैर्नित्यमशेषकाले सुगीयमाना मम मातरश्च ! । गृह्णन्तु सद्यः प्रियदक्षिणां वै ध्यानेन तथ्ये मयि वर्तितव्यम् ॥ नीराजना-नीराजनां षोडशसंख्यकाः! मुदा करोमि दुःखस्य विनाशिकामहम् । अनेकपापार्दितमानवश्च या पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे ॥ प्रदक्षिणा-प्रदक्षिणामद्य करोमि सद्यः पदे पदे दुःखविनाशकारिणीम् । जनौघपापस्य करोति नाशं दासस्य या सा मुदमादधाति ॥ पुष्पाञ्जलिः-ज्ञात्वा सुखं सुरुचिरं भुवने मया नो भ्रान्त सदापि नवयोनिसमुद्भवेन । शान्तिर्न चात्र विलपामि घनान्धकारे युक्त्या कयापि कलयन्तु ममापि भद्रम् ॥ पञ्चामृतं—पञ्चविकारनाशकं दुग्धादिभिर्निर्मितमद्य सुन्दरम् । निःशेषपापान्तकमच्छदर्शनं गृह्णन्तु दासस्य सदा सुमातरः ! ॥ वस्त्रम-कौशेयमच्छं हि सुवस्त्रमेतद्वन्द्याः ! स्थितं वै पुरतः सुमञ्चे । ददामि गन्धेन युतं ममापि प्रियश्च कुर्वन्तु सदा पुराणाः ! ॥ उपवस्त्रम्-उपवस्त्रमिदं सुवासितं सुरवन्द्याः ! सितमस्ति साम्प्रतम् । इह लोकनिधौ सुनाविकाः ! पतितस्यापि जनस्य गृह्णत ॥ पुष्पाणि-पुष्पाणि सन्तीह सुगन्धवन्ति चाघ्राय सानन्दतरा भवन्तु । सन्तापयुक्तन्निजमद्य भक्तं नक्तं दिवं धन्यतमाः ! पुनन्तु ॥ गन्धः-गन्धं प्रकामं रुचिरं सुवन्द्याः ! वन्द्यं ददाम्यद्य भवत्प्रियार्थम् । लोकैककूपे पतितं क्षणन्त रक्षन्तुचाज्ञानविनाशिकाः ! माम् ॥ अक्षताः-तण्डुलास्तु भवदर्थमिहाद्य चार्पिताः कुरुत वै स्वीकरणम् । पूजिताः सकललोकसहायाः सौख्यदाः सकलपापहराश्च ॥

[यजतिजुहोतीनांको भेदः]

यागहोमयोः को भेद इति विचारे प्रथमं तावदिदं निर्णीयते-यत्र यजेतेति यजधातुना क्रियाभिधानं जुहोतीति हुधातुना च होमविधानम्, तत्र उभयत्रापि अंशत्रयमस्ति । उद्देशांशः, त्यागांशः प्रक्षेपांशश्च । यत्रदेवतामुद्दिश्य इदं न मम इति द्रव्यं त्यज्यते तत्र देवतागत उद्देशांशः, द्रव्यगतस्त्यागांशः, देवतामुद्दिश्य त्यक्तस्य द्रव्यस्य कुत्र प्रक्षेप इत्याकाङ्क्षायां "यदा- ॥३२॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हवनीये जुहोति" (तै० ब्रा० १०।१०।१०) इत्यादिना आहवनीदिष्वग्निषु यः प्रक्षेपः क्रियते स प्रक्षेपांशः। एतत् त्रितयमपि यागे होमे च विद्यत एव, तथापि प्रक्षेपांशस्य अङ्गत्वम्, उद्देशांशत्यागांशयोः प्राधान्यं च यत्रास्ति स यागपदार्थः। उद्देशांशत्यागांशप्रक्षेपांशानां यत्र समं प्राधान्यं स होमपदार्थः। अयं च विभागो याज्ञिकैः, जैमिन्यादिभिः सूत्रकारैश्चाङ्गीकृतः। अत एव जैमिनिः "यजतिचोदना द्रव्यदेवताक्रियं समुदाये कृतार्थत्वात्, तदुक्ते श्रवणाज्जुहोतिरासेचनाधिकः स्यात् (४। २। २७-२८) इति सूत्रयामास। व्याख्यातारश्च "देवतोद्देशद्रव्यत्यागप्रक्षेपेषु समप्रधानेषु जुहोतिपदप्रयोगः। अतश्च प्रक्षेपाङ्गकक्रियाद्वयवृत्तिजातिर्यागत्वम्, क्रियात्रयवृत्तिजातिश्च होमत्वम् इति (भाट्टदीपिकायां ३।४।१८) स्पष्टमूचुः। अतश्च यजिधातुना विहितो यागः, स च एतादृशस्वरूपः। हुधातुनाऽभिहितश्च होमः, स च एवंरूपइति फलितम्। एवं च यत्र शान्तिकपौष्टिकादिषु कर्मसु यजिधातुना विधानाभावः, तत्र यागत्वं नास्ति इति शतरुद्रियादौ जुहोतिचोदनाचोदितत्वात् होमत्वमेव तेषाम्, इति तत्र सङ्कल्पादौ होमपदस्यैवोल्लेखः कार्यो, नतु यागपदस्य। अत एव अग्निहोत्रे प्रातरग्निहोत्रं होष्यामीत्येवोल्लेखो, न तु यक्ष्ये इति। एवं च नवग्रहहोमादिषु होमस्यैव विशेषतोऽभिधानात्तेषां होमत्वमेव, नतु यागता। अत एव शान्तिकपौष्टिकादिहोमेषु नवग्रहधर्मातिदेशोक्तिस्तत्र तत्र ग्रन्थकृतां सङ्गच्छते। यदि नवग्रहहोमस्य यागत्वं स्यात् तर्हि यागीयानां धर्माणां होमे अतिदेशाभावकथनं विरुद्ध्येत। निर्णीतं हि पूर्वमीमांसायाम् (४.२) होमयागयोः वैसादृश्यं परस्परं धर्मानतिदेश इति। एवं च नवग्रहहोमादिषु मख-यज्ञादिशब्दप्रयोगो गौणः। यथा—स एष यज्ञ पञ्चविधः अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोमः (ऐ० ब्रा०) इति अग्निहोत्रेऽपि यज्ञशब्दप्रयोगो गौणः, तद्वत् इति।

—दौलतराम गौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ॐ अथ गणेशाम्बिकापूजनम् ॐ

गणानां त्वा गणपतये नमः	आवाहनम्
अम्बेऽअम्बिके अम्बिकायै नमः	
मनो जूतिः, अस्यै प्राणाः	प्रतिष्ठापनम्
पुरुषऽ एवेदम्	आसनम्
एतावानस्य	पाद्यम्
त्रिपादूर्ध्व	अर्घ्यम्
ततो विराडजायत	आचमनम्
तस्माद्यज्ञात्	स्नानम्
पञ्चनद्यः	पञ्चामृतस्नानम्
पयः पृथिव्याम्	पयः स्नानम्
दधिक्राव्णः	दधिस्नानम्
घृतं मिमिक्षे	घृतस्नानम्
मधु वाता	मधुस्नानम्
अपां रसम्	शर्करास्नानम्
शुद्धबालः	शुद्धोदकस्नानम्
युवा सुवासाः	वस्त्रम्
सुजातो ज्योतिषा	उपवस्त्रम्
यज्ञोपवीतं परमम्	यज्ञोपवीतम्
त्वां गन्धर्वा	गन्धम्
अक्षन्नमीमदन्त	अक्षतान्
ओषधीः प्रतिमोदध्वम्	पुष्पमालाम्
काण्डात्काण्डात्	दूर्वाङ्कुरान्
सिन्धोरिव	सिन्दूरम्
अहिरिव	नानापरिमलद्रव्याणि
धूरसि	धूपम्
अग्निर्ज्योतिः	दीपम्
अन्नपतेन्नस्य	नैवेद्यम्
अंशुना ते	करोद्वर्तनम्
यत्पुरुषेण	ताम्बूलम्
याः फलिनीः	फलम्
हिरण्यगर्भः	दक्षिणाम्
इदर्ठ० हविः	नीराजनम्
यज्ञेन यज्ञमयजन्त	पुष्पाञ्जलिम्
ये तीर्थानि	प्रदक्षिणाम्
रक्ष रक्ष	विशेषार्घ्यम्
विघ्नेश्वराय	प्रार्थना

ॐ अथ कलश-स्थापनम् ॐ

महीद्यौः	भूमिस्पर्शः
धान्यमसि	धान्यविकरणम्
आजिघ्र	कलशस्थापनम्
वरुणस्योत्तम्भ	कलशे जलप्रक्षेपः
त्वां गन्धर्वा	गन्धप्रक्षेपः
या ओषधीः	सर्वौषधिप्र०
काण्डात्काण्डात्	दूर्वाङ्कुरप्र०
अश्वत्थेव	पञ्चपल्लवप्र०
पवित्रेस्थः	पवित्रप्र०
स्योना पृथिवि	सप्तमृत्तिकाप्र०
याः फलिनीः	पूगीफलप्र०
परिवाजपतिः	पञ्चरत्नप्र०
हिरण्यगर्भः	हिरण्यप्रक्षेपः
सुजातो ज्योतिषा	वस्त्रवेष्टनम्
पूर्णादर्वि	पूर्णपात्रन्यासः
या फलिनीः	नारिकेलफलस्थापनम्
तत्वा यामि	वरुणावाहनम्
ॐ अप्पतये नमः	वरुणपूजनम्
कलाः कला हि	गङ्गाद्यावाहनम्
मनो जूतिः	वरुणाद्यावाहितदेवताप्रतिष्ठाप…
ततोः षोडशोपचारैः पूजयेत्	
देवदानवसंवादे	प्रार्थना

ॐ अथ पुण्याहवाचनम् ॐ

दीर्घानागा, त्रीणि पदा	आशिषः प्रार्थना
अपां मध्ये	
शिवा आपः सन्तु	जलम्
लक्ष्मीर्वसति	
सौमनस्यमस्तु	पुष्पम्
अक्षतं चास्तु	
चक्षतं चारिष्टं चास्तु	अक्षतान्
गन्धाः पान्तु	गन्धम्
अक्षताः पान्तु	अक्षतान्
पुष्पाणि पान्तु	पुष्पाणि
सफलताम्बूलानि पान्तु	सफलताम्बूलम्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दक्षिणाः पान्तु	दक्षिणाम्
पुनस्त्वाऽपः पान्तु	जलम्
दीर्घमायुः	प्रार्थना
यं कृत्वा	प्रार्थना
द्रविणोदाः	
सविता त्वा	
न तद्रक्षांऽसि	मन्त्रपाठः
उच्चाते	
उपास्मै गायता	
व्रतजपनियम	प्रार्थना
प्रसीदन्तु भवन्तः	प्रार्थना

ततो यजमानः—ॐ शान्तिरस्तु–इत्यादि पठेत्

निकामे निकामे—शुक्राङ्गारकबुध पठनम्

ब्राह्मंपुण्य, पुनन्तु मा	ॐ पुण्याहम्
पृथिव्याम्, यथेमां	ॐ कल्याणम्
सागरस्य, सत्रस्य ऋद्धिः	ॐ कर्म ऋध्यताम्
स्वस्तिऽस्तु, स्वस्तिनः	ॐ आयुष्मते स्वस्ति
समुद्रमथनाज्जाता, श्रीश्चते	ॐ अस्तु श्रीः
मृकण्डसूनो, शतमिन्नु	शतं जीवन्तु भवन्तः
शिवगौरी विवाहे,मनसःकामम्	अस्तु श्रीः
प्रजापतिर्लोक, प्रजापतेनत्व	
आयुष्मते स्वस्ति, प्रतिपन्थाम	आयुष्मते स्वस्ति

❀ अथाभिषेकः ❀

पयः पृथिव्याम्। पञ्चनद्यः। कोऽसि कतमोऽसि। शिरो मे वरुणस्योत्तम्भनम्। देवस्य त्वा। जिह्वा मे। बाहू मे। पृष्ठीर्मे। देवस्य त्वा। देवस्य त्वा। नाभिर्मे। प्रतिक्षत्रे। त्रयादेवाः। विश्वानि देव। धामच्छदग्निः। प्रथमाद्वितीयैः। त्वं यविष्ठ। अन्नपतेऽन्नस्य। द्यौः शान्तिः। यतो यतः।

❀ अथ मातृकापूजनम् ❀

गणानां त्वा	गणपतये नमः
आयङ्गौः	गौर्यै
हिरण्यरूपा उषसः	पद्मायै
निवेशनः सङ्गम	शच्यै
मेधाम्मे	मेधायै
सविता त्वा	सावित्र्यै
विज्यन्धनुः	विजयायै
वह्वीनां पिता	जयायै
इन्द्रऽआसान्नेता	देवसेनायै
पितृभ्यः स्वधायिभ्यः	स्वधायै
स्वाहा प्राणेभ्यः	स्वाहायै
आपोऽअस्मान्	मातृभ्यः
रयिश्च मे	लोकमातृभ्यः
यत्प्रज्ञानम्	धृत्यै
त्र्यम्बकं यजामहे	पुष्ट्यै
अङ्गान्यात्मन्	तुष्ट्यै
प्राणाय स्वाहा	आत्मनः कुलदेवतायै
गौरी पद्मा शची मेधा	प्रार्थना

'ॐ गणपत्यादिकुलदेवतान्तमातृभ्यो नम इति षोडशोपचारैः पूजयेत्।

❀ अथ वसोर्धारापूजनम् ❀

वसोः पवित्रम्	सप्तधाराकरणम्
ॐ कामधुक्षः	गुडेनैकीकरणम्
मनसः कामम्	श्रियै नमः
श्रीश्चते	लक्ष्म्यै
भद्रं कर्णेभिः	धृत्यै
मेधाम्मे	मेधायै
प्राणाय स्वाहा	स्वाहायै
आयङ्गौः	प्रज्ञायै
पावकानः	सरस्वत्यै
मनोजूतिः	प्रतिष्ठापनम् यथोपचारैः पूजयेत्
श्रीर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा	प्रार्थना
यदङ्गत्वेन भो देव्यः	प्रार्थना

❀ आयुष्यमन्त्र-जपः ❀

आयुष्यं वर्चस्यम्। न तद्रक्षांऽसि। यदाबध्नन्। मन्त्रपाठः

❀ अथ नान्दीश्राद्धप्रयोगः ❀

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः	पाद्यम्
ॐ मातृपितामहीप्रपितामह्यः	
ॐ पितृपितामहप्रपितामहाः	

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ॐ मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः	
ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः	
ॐ मातृपितामहीप्रपितामह्यः	आसनदानम्
ॐ पितृपितामहप्रपितामहाः	
ॐ मातामहप्रमातामहवृद्ध प्रमातामहाः	

गन्धादिदानम्—
(सत्य० इदं गन्धाद्यर्चनं स्वा०)
भोजननिष्क्रयदानम्—
(इदं युग्मब्राह्मणभोजननि०)
सक्षीरयवमुदकदानम्
(सत्य० विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः प्रीय०)

अघोराः पितरः सन्तु	जलधारादानम्
गोत्रन्नो वर्धताम्	प्रार्थना
सत्यवसु० कृतस्य नान्दी०	दक्षिणादानम्
उपास्मै गायता	पाठमात्रम्
इडामग्ने	
वाजे वाजे वत	विसर्जनम्
आमा वाजस्य	अनुव्रजनम्

❀ अथाचार्यादिवरणम् ❀

ततः यजमानो गन्धादिना आचार्यादिब्राह्मणान् संपूज्य वृणुयात् ।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति	रक्षासूत्रबन्धनम्
ब्राह्मणाः सन्तु शास्तारः इत्यादि	प्रार्थना
अस्मिन्कर्मणि ये ये तु	प्रार्थना

❀ अथ पश्चिमद्वारेणमण्डपप्रवेश ❀

चतुर्भुजां शुक्लवर्णाम्	भूमिध्यानम्
आगच्छ देवि	
उधृतासि	प्रणामः
ब्रह्मणा निर्मिते	भूम्यै अर्घदानम्
यमेन पूजिते	
नन्दे नन्दय वासिष्ठे	प्रार्थना
स्वस्ति न इन्द्रो	पाठः
देवा आयान्तु	
इयं वेदिः सुभूः	महावेदिसमीपे-
भूमिर्भूमिवागात्	मध्यकुण्डसमीपे वा पाठमात्रम्

आचार्यो वामहस्ते गौरसर्षपान् गृहीत्वा दिग्रक्षणं कुर्यात् । तत्र मन्त्राः—
रक्षोहणं बलगहनम् । रक्षोहणो वो बलगहनः। रक्षसां भागोसि । रक्षोहा विश्वचर्षणिः । यदत्र संस्थितम् । अपसर्पन्तु ते भूताः । भूतानि राक्षसा वापि । इति ।

❀ अथ पञ्चगव्यकरणम् ❀

तत्सवितुर्वरेण्यम्	गोमूत्रम्
गन्धद्वाराम्	गोमयम्
आप्यायस्व	पयः
दधिक्राव्णः	दधि
तेजोसि	आज्यम्
देवस्य त्वा	कुशोदकम्
'ॐ' प्रणवेन	आलोडनम् (कुशैरापोहिष्ठेति) कर्मभूमिं प्रोक्षेत्)

❀ अथ मण्डपाङ्गवास्तुपूजनम् ❀

विशन्तु भूतले	आग्नेयादिचतुर्विदिक्षु लोहशंकुरोपणम्
अग्निभ्योऽप्यथ	माषभक्तबलिदानम्

नैर्ऋत्याधिपतिश्चैव
वायव्याधिपतिश्चैव
रुद्रेभ्यश्चैव
वेद्युपरि सुवर्णशलाकया प्रागग्रा द्व्यङ्गुलान्तराला नव रेखा कार्या
तत्र मन्त्रः—
ॐ लक्ष्म्यै नमः १ यशोवत्यै न०२ कान्तायै न०३ सुप्रियायै न०४ विमलायै न० ५ शिवायै न० ६ सुभगायै न० ७ सुमत्यै न० ८ इडायै नमः ६ । तत उदगग्रा नवरेखाः कार्याः—ॐ धान्यायै नमः१ प्राणायै न० २ विशालायै न० ३ स्थिरायै न०४भद्रायै न० ५ जयायै न०६ निशायै न० ७ विरजायै न० ८ विभवायै नमः६

❀ अथ शिख्यादिवास्तुमण्डलस्थदेवानामावाहनं पूजनं च ❀

१ तमीशानम्	शिखिने नमः
२ शन्नो वातः	पर्जन्याय
३ मर्माणि ते	जयन्ताय
४ आयाविन्द्रो वसः	
५ वण्महाँऽअसि	सूर्याय
६ व्रतेन दीक्षाम्	सत्याय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

७ आत्वाहार्षम्	भृशाय
८ यावाङ्कशा	आकाशाय
९ वायो ये ते	वायवे
१० पूषन्तव	पूष्णे (पूषणम्)
११ तत्सूर्यस्य	वितथाय
१२ अक्षन्नमीमदन्त	गृहक्षताय
१३ यमाय त्वाङ्गिरस्वते	यमाय
१४ गन्धर्वस्त्वा	गन्धर्वाय
१५ सौरीबलाका	भृङ्गराजाय
१६ मृगो न भीमः	मृगाय
१७ उशन्तस्त्वा	पितृभ्यो
१८ द्वे विरूपे	दौवारिकाय
१९ नीलग्रीवा शितिकण्ठादि	सुग्रीवाय
२० नमो गणेभ्यः	पुष्पदन्ताय
२१ इमम्मे	वरुणाय
२२ यमश्विना	असुराय
२३ शन्नो देवी	शोषाय
२४ एतत्ते	पापाय
२५ द्रापेऽअन्धसस्पते	रोगाय
२६ अहिरिव भोगैः	अहये
२७ अवतत्य धनुष्ट्वम्	मुख्याय
२८ इमा रुद्राय	भल्लाटाय
२९ सोमꣳ राजानम्	सोमाय
३० नमोऽस्तु सर्पेभ्यो	सर्पेभ्यः
३१ इडऽएहि	अदित्यै

३२ अदितिर्द्यौः	दित्यै
३३ अप्स्वग्ने	अद्भ्यः
३४ हस्त आधाय	सावित्राय
३५ आषाढं युत्सु	जयाय
३६ नमस्ते	रुद्राय
३७ यदद्य	अर्यम्णे
३८ विश्वानि देव	सवित्रे
३९ विवस्वन्नादित्यै	विवस्वते
४० सबोधि	विबुधाधिपाय
४१ मित्रस्य चर्षणी	मित्राय
४२ नायियित्री	राजयक्ष्मणे
४३ स्योना पृथिवि	पृथ्वीधराय
४४ आतेवत्सोम	आपवत्साय
४५ ब्रह्मयज्ञानम्	ब्रह्मणे
४६ यन्ते देवी	चरक्यै
४७ अक्षराजाय	विदार्यै
४८ इन्द्रास्य क्रोडः	पूतनायै
४९ यस्यास्ते	पापराक्षस्यै
५० यदक्रन्द्रः	स्कन्दाय
५१ यदद्य	अर्यम्णे (अर्यमणम्)
५२ हिङ्काराय स्वाहा	जृम्भकाय
५३ कास्विदासीत्	पिलिपिच्छाय
१ त्रातारमिन्द्रम्	इन्द्राय
२ त्वन्नोऽअग्ने	अग्नये
३ यमाय त्वा	यमाय
४ असुन्वन्तमयज	निर्ऋतये
५ तत्त्वा यामि	वरुणाय
६ आ नो नियुद्भिः	वायवे
७ वयꣳ सोम	सोमाय
८ तमीशानम्	ईशानाय
९ अस्मेरुद्रा	ब्रह्मणे
१० स्थोना पृथिवी	अनन्ताय

ततः- मनोजूतिरिति प्रतिष्ठाप्य षोडशोपचारैः पूजयेत् । तत्र कलशस्थापनविधिना कलशं संस्थाप्य तदुपरि स्वर्णमयीं वास्तुप्रतिमामन्युत्तारणप्राणप्रतिष्ठापूर्वकं स्थापयेत् पूजयेच्च । तत्र मन्त्राः- समुद्रस्य त्वा । हिमस्य त्वा । उपज्मन्नु । अपामिदन्न्यय । अग्ने पावक । स नः पावक । पावकया यश्चि । नमस्ते हरसे । नृषदेवेडप्सु । ये देवा देवानाम् । प्राणदाऽअपानदा । ये देवा-देवेष्वधि ।

ततः 'ॐ शिखिने एष पायसबलिर्न मम' एवं भूतैः पूर्वोक्तनाममन्त्रैः शिख्यादिवास्तुमण्डलस्थदेवताभ्यः पायसबलिदानम् । ततः 'ॐवास्तुपुरुषाय एष बलिर्न मम, इति मन्त्रेण प्रधानवास्तुपुरुषाय बलिं दद्यात् । ततः त्रिसूत्र्या मण्डपवेष्टनं जलदुग्धराराढानं च । तत्र मन्त्रा- कृणुष्वपाजः । तव भ्रमासः । प्रतिस्पशोविसृज । उदग्ने तिष्ठ । ऊर्ध्वो भव । पुनन्तु मा पितरः । अग्नऽआयूँषि । पुनन्तु मा देवजनाः । पवित्रेण पुनीहि । यत्ते पवित्रम् । पवमानः सोऽअद्य नः । उभाभ्यां देव । वैश्वदेवी पुनती ।

❀ अथ मण्डपपूजनम् ❀

तत्र ईशानकोणादारभ्य मध्ये चतुरः स्तम्भान पूजयेत्—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(१) ब्रह्म यज्ञानम् ब्रह्मणे नमः
(सावित्र्यै नमः, वास्तुदेवतायै,
ब्राह्म्यै, गङ्गायै)
ऊर्ध्वऽऊषुण ऊतये नागमात्रे नमः
आयङ्गौः शाखाबन्धनम्
यतो यत. स्तम्भाभिन्त्रणम्
(एवं सर्वत्र)
(२) इदं विष्णुः विष्णवे नमः
(लक्ष्म्यै नमः, आदित्यै, नन्दायै,
वैष्णव्यै)
ऊर्ध्वऽऊषु
यतो यतः
(३) नमः शम्भवाय च शम्भवे नमः
(गौर्यै, माहेश्वर्यै, शोभनायै, भद्रायै)
ऊर्ध्व ऊषु
आयङ्गौः
यतो यत.
(४) त्रातारमिन्द्रम् इन्द्राय नमः
(इन्द्राण्यै, आनन्दायै, विभूत्यै,
अदित्यै)
ऊर्ध्वऽऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः
ततो मण्डपाद्बहिः ईशानादारभ्य
द्वादश स्तम्भान् पूजयेत्— सूर्याय नमः

(१) आ कृष्णेन,
(सौर्यै न०, भूत्यै, सावित्र्यै,
ऊर्ध्वऽऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः
[२] गणानां त्वा गणपतये नमः
(सरस्वत्यै, विघ्नहारिण्यै, जयायै)
ऊर्ध्वऽऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः यमाय नमः
(३) यमायत्वा
(पूर्वसन्ध्यायै, अञ्जन्यै, क्रूरायै,
नियन्त्र्यै)
ऊर्ध्वऽऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः
(४) नमोऽस्तु सर्पेभ्यो नागराजाय नमः
(मध्यमसन्ध्यायै, धरायै,
पद्मायै, महापद्मायै)
ऊर्ध्वऽऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः
(५) यदक्रन्दः
(पश्चिसन्ध्यायै)
ऊर्ध्वऽऊष

आयङ्गौः
यतो यतः
(६) वायो येते वायवे नमः
(वायव्यै, गायत्र्यै, मध्यम-
सन्ध्यायै)
ऊर्ध्वऽऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः
(७) आप्यायस्व सोमाय नमः
(सावित्र्यै, अमृतकालायै,
विजयायै, पश्चिमसन्ध्यायै)
ऊर्ध्वऽऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः
(८) इमम्मे वरुणाय
(वारुण्यै, पाशधारिण्यै, बृहत्यै)
ऊर्ध्वऊषु
आयङ्गौः
यतो यत.
(९) वसुभ्यस्त्वा अष्टवसुभ्यो नमः
(विनतायै, अणिमायै, भूत्यै,
गरिमायै)
ऊर्ध्वऊष
आयङ्गौः
यतोयत.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(१०) सोमो धेनुठं सोमः धनदाय नमः
(आदित्यायै, लघिमायै,
सिनीवाल्यै,)
ऊर्ध्व ऊषु
आयङ्गौः
यतो यतः

(११) बृहस्पतेअतिय दर्यो: बृहस्पते नमः
(पौर्णमास्यै, सावित्र्यै, वास्तु-
देवतायै)
ऊर्ध्व ऊष
आयङ्गौः
यतो यतः

(१२ (विश्वकर्मन्हविषा विश्वकर्मणे नमः
(सिनीवाल्यै, वास्तुदेवतायै,
सावित्र्यै)
ऊर्ध्वं ऊपु
आयङ्गौः
यतो यतः

❀ अथ पूर्वादिदिक्क्रमेण तोरणपूजा ❀

अग्निमीडे तोरणनिधानम्। 'ॐ सुदृढतोरणाय नमः' इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। दक्षिणे- राहवे नमः। वामे-बृहस्पतते नमः। तत्र कलशस्थापनविधिनैकं कलशं संस्थाप्य तस्मिन् कलशे ध्रुवाय नमः- इत्यावाह्य पूजयेत्। इषे त्वा-इति तोरणं निधाय' ॐसुभद्रतोरणाय नमः, पूजयेत्। दक्षिणे- सूर्याय नमः। अङ्गारकाय नम। कलश संस्थाप्य धरायै नमः-इत्यावाह्य पूजयेत्। अग्न आयाहि-इति तोरणनिधानम्। सु (भीम) शर्मतोरणाय नमः। दक्षिणे- शुक्राय नमः। वामे—बुधाय नमः। कलशं संस्थाप्य वाक्पतये नमः इत्या०। शन्नो देवी० तोरण०। सुहोत्रतोरणाय नमः। दक्षिणे सोमाय नमः। व मे—केतुशनिभ्यां नमः। कलशं संस्थाप्य तत्र विघ्नेशाय नम इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

❀ अथ द्वारपूजा ❀

पूर्वद्वारे—कलशद्वयं संस्थाप्य तत्र ऐरावताय नमः-इति पूजयेत्। ऊर्ध्वं-द्वारश्रियै नमः। अधः-देहल्यै न०। वामदक्षिणस्तम्भयोः-गणेशाय न०। स्कन्दाय न०। कलशद्वये-गङ्गायै न०। यमुनायै न० इत्यावाह्य पूजयेत्। ऋग्वेदिनौ द्वारपालौ वृत्वा अग्निमीडे-इति गन्धादिना पूजयेत्। द्वारकलशयोः—त्रातारमिन्द्रमिति इन्द्रं पूजयेत्। 'आशुःशिशानः' इति पीतां पताकां पीतं ध्वजं च समुच्छ्रयेत्। इन्द्राय बलिदानं च। तत आग्नेयीं गत्वा कलशं संस्थाप्य तत्र अमृताय नमः, पुण्डरीकाय नम इत्यावाह्य पूजयेत्। कलशे अग्नये नम इत्यग्निमावाह्य पूजयेत्। 'अग्निं दूतम्, इति रक्तां पताकां रक्तं ध्वजं च समुच्छ्रयेत्। त्वन्नोऽअग्ने-इत्यग्निं पूजयेत्। बलिदानं च। दक्षिणद्वारे-कलशद्वयं स्थापयित्वा तत्र वामननामकदिग्गजाय नम इति पूजयेत्। ऊर्ध्वं—द्वारश्रियै नमः। अधः—देहल्यै नमः। स्तम्भयोः—पुष्पदन्ताय नमः। कपर्दिने नमः। कलशद्वये—गोदायै न०, कृष्णाय नमः। यजुर्वेदिनौ द्वारपालौ वृत्वा 'इषे त्वोर्ज्जेत्वा' इति पूजयेत्। पुनः कलशद्वये—यमाय नम इति यमं संपूज्यार्घ्यं दत्त्वा 'आयङ्गौः' इति कृष्णौ पताकाध्वजौ समुच्छ्रयेत्। यमाय बलिदानं च। नैर्ऋतिं गत्वा कलशं स्थापयित्वा वरुणं संपूज्य कुमुदाय नमः, दुर्जजाय नम इति पूजयेत्। तत्रैव निर्ऋतये नम इति निर्ऋतिं संपूज्य 'मोषूणः' इति नीलवर्णौ पताकाध्वजौ समुच्छ्रयेत्। निर्ऋतये सघृतकृष्णव्रीह्यन्नदानं च। पश्चिमद्वारे—गत्वा कलशद्वयं स्थापयित्वा तत्र अञ्जनाख्यदिग्गजाय नम इति पूजयेत्। ऊर्ध्वं द्वारश्रियै न०। अधः—देहल्यै नमः। स्तम्भयोः नन्दने नमः चण्डाय नमः। कलशद्वये-रेवायै नमः। ताप्यै नमः। सामवेदिनौ द्वारपालौ वृत्वा 'अग्न आयाहि' इति पूजयेत्। द्वारकलशयोः-वरुणाय नम इति वरुणं संपूज्यार्घ्यं दत्वा 'इमम्मे' इति श्वेतां पताकां श्वेतं ध्वजं च समुच्छ्रयेत्। वरुणाय नवनीतौदनबलिदानं च। वायुकोणे गत्वा कलशं संस्थाप्य वरुणं पूजयित्वा पुष्पदन्ताय नमः, सिद्धार्थाय नम इति पुष्पदन्तसिद्धार्थौ वायवे नम इति वायुं च संपूज्य 'वायो येते' इति धूम्रां पताकां धूम्रं ध्वजं च समुच्छ्रयेत्। 'तववाय वृतस्पते' इति वायुं सपूज्य यवौदनबलिं दद्यात्। उत्तरद्वारि गत्वा कलशद्वयं संस्थाप्य वरुणं पूजयित्वा सार्वभौमनामकदिग्गजाय नम इति पूजयेत्। ऊर्ध्वं—द्वारश्रियै न०। अधः—देहल्यै०। वामदक्षिणस्तम्भयोः—महाकालाय नमः, भृङ्गिणे नमः। द्वारकलशयोः—वाण्यै नमः। वेण्यै नमः। अथर्ववेदिनौ द्वारपालौ वृत्वा 'शन्नो देवी०' इति पूजयेत्। पुनः द्वारकलशयोः—सोमाय नम इति सोमं संपूज्य 'आप्यायस्व' इत्यर्घं दद्यात्। 'वयठं० सोम' इति हरितां पताकां हरितं ध्वजं च समुच्छ्रयेत्। सोमाय प्रैयङ्गवबलिं दद्यात्। ईशानकोणे गत्वा पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा वरुणं संपूज्य सुप्रतीकाय नमः। मङ्गलाय नम इति सुप्रतीकमङ्गलौ पूजयेत्। कलशे-ईशाना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नम इति ईशानं संपूज्य 'तमीशानम्' श्वेतां पताकां ध्वजं समुच्छ्रयेत्। अनेनैव मन्त्रेण ईशानं संपूज्य गवेधुकबलिं दद्यात् । पूर्वंशानयोमध्ये गत्वा अनन्ताय नम इत्यनन्तं संपूज्य 'नमोऽस्तु' इति मेघवर्णां श्वेतां वा पताकां ध्वजं च समुच्छ्रयेत् । 'आयङ्गौ' इत्यनन्तं संपूज्य माषभक्तबलिं दद्यात्। पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ब्रह्मणे नम इति ब्रह्माणमावाह्य 'ब्रह्मयज्ञानम्' इति रक्तां पताकां ध्वजं च समुच्छ्रयेत्। अनेनैव मन्त्रेण ब्रह्माणं संपूज्य माषभक्तबलिं दद्यात्। ततो मण्डपमध्ये—पञ्चवर्णं महाध्वजम् 'इन्द्रस्य वृष्णो' इति मन्त्रेण रोपयेत् 'ब्रह्मयज्ञानम्' महाध्वजाय नम इति पूजयेच्च।

❀ प्रधानवेद्यां सर्वतोभद्रदेवतानावाहनं पूजनं च ❀

ब्रह्मयज्ञानम्	ब्रह्मणे नमः
वयठं॰ सोम	सोमाय
तमीशानम्	ईशानाय
त्रातारमिन्द्रम्	इन्द्राय
त्वन्नो अग्ने	अग्नये
यमायत्वाङ्गि	यमाय
असुन्वन्तमयज	निर्ऋतये
तत्वायामि	वरुणाय
आ नो नियुद्भिः	वायवे
सुगावो देवाः	अष्टवसुभ्यः
रुद्राः सठं॰ सृज्य	एकादशरुद्रेभ्यः
यज्ञो देवानाम्	द्वादशादित्येभ्यः
यावाङ्कशा	अश्विभ्यां
ओमासश्चर्ष	सपैतृकविश्वेभ्यो देवेभ्यः
अभित्यन्देवठं॰ स	सप्तयक्षेभ्यः
नमोऽस्तु सर्पे	भूतनागेभ्यः
ऋताषाड्त	गन्धर्वाप्सरोभ्यः
यदक्रन्दः	स्कन्दाय
आशुःशिशानः	नन्दीश्वराय
यत्ते गात्रा	शूलाय
अवरुद्र मदीमहि	महाकालाय
अदितिद्यौः	दक्षादिसप्तगणेभ्यः
अम्बेऽअम्बिके	दुर्गायै
इदं विष्णुः	विष्णवे
पितृभ्यः स्वधायिभ्यः	स्वधायै
परंमृत्यो	मृत्युरोगेभ्यः
गणानां त्वा	गणपतये
शन्नो देवीः	अद्भ्यः
मरुतो यस्य	मरुद्भ्यः
स्योना पृथिवी	पृथिव्यै
पञ्चनद्यः	गङ्गादिनदीभ्यः
इमम्मे	सप्तसागरेभ्यः
परित्वा	मेरवे

अतोऽग्रे नाममन्त्रेणैव स्थापनमुपलभ्यते- ॐगदायै नमः । ॐत्रिशूलाय। ॐवज्राय। ॐशक्तये। ॐदण्डाय। ॐखड्गाय। ॐपाशाय। ॐअंकुशाय। ॐगौतमाय। ॐभरद्वाजाय। ॐविश्वामित्राय। ॐकश्यपाय। ॐजमदग्नये। ॐवसिष्ठाय। ॐअत्रये। ॐअरुन्धत्यै। ॐऐन्द्र्यै। ॐकौमार्यै। ॐब्राह्म्यै। ॐवाराह्यै। ॐचामुण्डायै। ॐ वैष्णव्यै। ॐमाहेश्वर्यै। ॐवैनायक्यै। एता देवताः षोडशोपचारैः सम्पूज्य मध्ये कलशस्थापनविधिना कलशं संस्थाप्य तदुपरि संस्थाप्य देवप्रतिमामग्न्युत्तारणप्राणप्रतिष्ठापूर्वकं संस्थाप्य षोडशोपचारैः संपूजयेत्। ततो ब्रह्मादिदेवेभ्यः 'ॐ ब्रह्मणे नमः' पायसबलिं समर्पयामि' एवं भूतैर्नाममन्त्रैः पायसबलिं दद्यात्।

❀ अथाग्निस्थापनम् ❀

तत्रादौ पञ्चभूसंस्कारान् कुर्यात्। तद्यथा त्रिभिः कुशैः प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा भूमिं त्रिः परिसमुह्य। गोमयोदकाभ्यां प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा भूमिं त्रिरुपलिप्य, स्रुवेण प्रागग्रप्रादेशमात्रमुत्तरोत्तरक्रमेण त्रिरुल्लिख्य, अनामिकांगुष्ठेन प्रथमरेखातः पांसूनुद्धृत्य वामहस्ते धृत्वा तथैव द्वितीयरेखातः पांसूनुद्धृत्य तानपि वामहस्ते कृत्वा तथैव तृतीयरेखातः समुद्धृत्य वामहस्ते कृत्वा तत्सर्वं दक्षिणहस्तेन ईशान्यां प्रक्षिप्य, उदकेन नीचेन हस्तेनाभ्युक्ष्य तैजसेन पात्रयुग्मेन सम्पुटीकृतं प्रदीप्तं वह्न्यङ्गारमयमग्निं स्वाभिमुखं मध्ये वाग्यतः अग्निं दूतम् इति मन्त्रेण स्थापयेत। तदुपरि तद्रक्षार्थं किञ्चित्काष्ठं निदध्यात्। मेखलासु-

इदं विष्णुः	विष्णवे नमः
ब्रह्म यज्ञानम्	ब्रह्मणे नमः
इमारुद्राय	रुद्राय नमः
योन्याम्–अम्बेऽअम्बिके	गौर्यै नमः
नाभौ–नाभिर्मे	नाभ्यधिष्ठातृदेवतायै नमः
कण्ठे– नीलग्रीवाः शितिकण्ठा	

इत्यावाह्य यथोपचारैः संपूजयेत्। चत्वारिश्रृङ्गा' इत्यग्निं पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

❀ अथ ग्रहाणामावाहनं पूजनं च ❀

ऐशान्यां वस्त्राच्छादिते पीठे नवग्रहमण्डलं विलिख्य सूर्यादिनवग्रहान अधिदेवता–प्रत्यधिदेवता-पञ्चलोकपाल-वास्तोष्पति-क्षेत्रपालदशदिक्पालसहितानावाहयेत्। तद्यथा —

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आ कृष्णेन	सूर्याय नमः
इमन्देवा	चन्द्रमसे
अग्निर्मूर्द्धा	भौमाय
उद्बुध्यस्वाग्ने	बुधाय
बृहस्पतेऽअति	बृहस्पतये
अन्नात्परिस्रुतः	शुक्राय
शन्नो देवीः	शनिश्चराय
कयानश्चित्र	राहवे
केतुंकृण्वन्	केतवे

ततोऽधिदेवतास्थापनं ग्रहदक्षिणपार्श्वे—

त्र्यम्बकं यजामहे	ईश्वराय
श्रीश्चते	उमायै
यदक्रन्दः	स्कन्दाय
विष्णोरराटमसि	विष्णवे
आ ब्रह्मन्	ब्रह्मणे
स योषा इन्द्र	इन्द्राय
यमायत्वाङ्गि	यमाय
कार्षिरसि	कालाय
चित्रावसो	चित्रगुप्ताय

प्रत्यधिदेवतास्थापनं ग्रहवामपार्श्वे—

अग्निन्दूतम्	अग्नये
आपो हि	अद्भ्यः
स्योना पृथिवि	पृथिव्यै
इदं विष्णुः	विष्णवे
इन्द्र आसान्ने	इन्द्राय
अदित्यैरास्ना	इन्द्राण्यै
प्रजापतेनत्व	प्रजापतये
नमोऽस्तु	सर्पेभ्यः
ब्रह्म ज्ञानम्	ब्रह्मणे

लोकपालानां स्थापनं ग्रहाणामुत्तरे—

गणानां त्वा	गणपतये
अम्बेअम्बिके	अम्बिकायै
वायोयेते	वायवे
घृतं घृतपावा	आकाशाय
यावाङ्कशा	अश्विभ्यां
वास्तोष्पते	वास्तोष्पतये
नहिस्पश	क्षेत्राधिपतये

मण्डलस्य बाह्ये इन्द्रादिदशदिक्पालानामावाहनम्—

त्रातारमिन्द्र	इन्द्राय
त्वन्नो अग्ने	अग्नये
यमायत्वाङ्गि	यमाय
असुन्वन्त	निर्ऋतये
तत्वायामि	वरुणाय
आ नो नियुद्भिः	वायवे
वयꣳ सोम	सोमाय
तमीशानम्	ईशानाय
अस्मे रुद्रा	ब्रह्मणे
स्योना पृथिवी	अनन्ताय

ततः—मनोजूतिरिति प्रतिष्ठाप्य षोडशोपचारैः संपूजयेत्। ततो ग्रहवेदीशाने कलशस्थापनविधिना रुद्रकलशं संस्थाप्य तत्र 'असंख्याता' इति मन्त्रेण असंख्यातरुद्रानावाह्य पूजयेत्।

❀ अथ योगिनीपूजनम् ❀

आग्नेय्यां पीठे रक्तवस्त्राच्छादिते पूर्वभागे त्रीणि त्र्यस्राणि विलिख्य तेषु कलशत्रयं विधिना संस्थाप्य तदुपरि सौवर्णीस्तिस्रः प्रतिमाः कृताग्न्युत्तारणाः संस्थाप्य महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीरावाह्य षोडशोपचारैः संपूजयेत्। तदग्रे कोष्ठेषु वक्ष्यमाणा देवीरावाहयेत्—

तमीशानम्	गजाननायै नमः
आ ब्रह्मन्	सिंहमुख्यै
महाँ इन्द्रः	गृध्रास्यायै
सद्यो जातः	काकतुण्डिकायै
आदित्यं	उष्ट्रग्रीवायै
स्वर्णघर्मः	हयग्रीवायै
सत्यञ्च मे	वाराह्यै
भार्यैदार्वाहा	शरभाननायै
जिह्वा मे	उलूकिकायै
हिङ्काराय स्वाहा	शिवारावायै (शिवारावाम्)
अग्निश्च मे घर्म	मयूरायै
पूषन्तव	विकटाननायै
वेद्या वेदिः	अष्टवक्त्रायै
अयमग्निः सहस्रिणः	कोटराक्ष्यै
इमम्मे	कुब्जायै
यमायत्वा मखाय	विकटलोचनायै
यमेन दत्तं	शुष्कोदर्यै
मित्रस्य चर्षं	ललज्जिह्वायै (ललज्जिह्वाम्)
अग्ने ब्रह्म गृ	श्वदंष्ट्रायै
भग प्रणेतः	वानराननायै

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुपर्णोऽसि ग	ऋक्षाक्ष्यै
पितृभ्यः स्वधा	केकराक्ष्यै
यातेरुद्र शिवातनूर	बृहत्तुण्डायै
वरुणः प्राविता	सुराप्रियायै
हठंसः शुचि	कपालहस्तायै
सुसन्दृशन्त्वा	रक्ताक्ष्यै
प्रतिपदसि	शुक्यै
देवीरापो श्र	श्येन्यै
हविष्मतीरिमा	कपोतिकायै
श्रीश्चते	पाशहस्तायै
भुवोयज्ञस्य	दण्डहस्तायै
कदाचनस्त	प्रचण्डायै
भद्रं कर्णेभिः	चण्डविक्रमायै
इषे त्वोर्जेत्वा	शिशुघ्न्यै
देवीद्यावा पृ	पापहन्त्र्यै
विश्वानि देव	काल्यै
असुन्वन्तमय	रुधिरपायिन्यै
अग्निश्चम श्रा	वसाधयायै
बह्वीनां पिता	गर्भभक्षायै
नमस्ते रुद्र	शवहस्तायै
ऋतञ्च मे	आन्त्रमालिन्यै
ते आचर	स्थूलकेश्यै
वेद्या वेदिः	बृहत्कुक्ष्यै
पावकानः	सर्पास्यायै
अस्कन्नमद्य	प्रेतवाहिन्यै
तीव्रान्घो	दन्तशूककरायै

महीद्यौः	क्रौञ्च्यै
उपयामगृहीतोसि सावि	मृगशीर्षायै
आप्यायस्व	वृषाननायै
काषिरसि	व्यात्तास्यायै
त्र्यम्बकं यजामहे	धूमनिश्वासायै
अम्बे अम्बिके	व्योमैकचरणोर्ध्वदृशे
विष्णोरराटमसि	तापन्यै
ब्राह्मणमद्य	शोषणीदृष्ट्यै
आ नो भद्राः	कोटर्यै
एका च मे	स्थूलनासिकायै
ब्रह्माणि मे	विद्युत्प्रभायै
असङ्ख्याता	कस्वाल्यै
अहिरिव	मार्जार्यै
तिस्रस्त्रेधा	कटपूतनायै
सरस्वती योन्या	अट्टाट्टहासायै
इदं विष्णुः	कामाक्ष्यै
वृषणऽऊर्मि	मृगाक्ष्यै
मृगो न भीमः	मृगलोचनायै

इत्यावाह्य षोडशोपचारैः संपूजयेत् ।

❀ अथ क्षेत्रपालपूजनम् ❀

वायव्यां श्वेतवस्त्राच्छादिते पीठे चतुरस्रं विलिख्य तिर्यङ्मान्यां पार्श्वमान्मां च सूत्रद्वन्द्वं समान्तरालं दद्यात् । एवं समानि नव कोष्ठानि संपद्यन्ते । मध्ये कोष्ठऽष्टदलं विलिख्य कलशं संस्थाप्य पूर्णपात्रे कृताग्न्युत्तारणं सौवर्णं क्षेत्रपालं 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इत्यावाह्य स्थापयेत् । पूर्वादिकोष्ठेषु षट्सु षट्दलानि सम्पाद्य, उत्तरेशानयोः कोष्ठयोस्तु सप्तदलानि कुर्यात्—

पूर्वकोष्ठे षट्सु दलेषु-

इमौ ते पक्षा	अजराय नमः (अजरम्)
प्रथमा वाम्	व्यापकाय
इन्द्रस्य वज्रः	इन्द्रचौराय
एवेदिन्द्रम्	इन्द्रमूर्तये
उक्षा समुद्रः	उक्ष्णे (उक्षाणम्)
यद्देवा देव	कूष्माण्डाय

आग्नेयषट्सु दलेषु—

सन इन्द्राय	वरुणाय
बाहू मे	बटुकाय
मुञ्चन्तु मा	विमुक्ताय
कुर्वन्ने वेह	लिप्तकाय
सन्नः सिन्धु	नीललोकाय
नमो गणेभ्यः	एकदंष्ट्राय

दक्षिणषट्के—

अर्मेभ्यो हस्ति	ऐरावताय
ओषधीः प्रति	ओषधीघ्नाय
त्र्यम्बकं यजामहे	बन्धनाय
देवसवितः	दिव्यकराय
सीसेन तन्त्रम्	कम्बलाय
आशुः शिशानो	भीषणाय

नैर्ऋत्यषट्के—

इमठं साहस्रम्	गवयाय (गवयम्)
कुम्भो वनिष्ठुः	घण्टाय
आक्रन्दयबल	व्यालाय
इन्द्रा याहि	अंशवे
चन्द्रमा प्स्वन्त	चन्द्रवारुणाय (चन्द्रवारणम्)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गणानान्त्वा	घटाटोपाय
पश्चिमे षट्सु दलेषु—	
उग्रं लोहि	जटिलाय
पवित्रेण पुनीहि	क्रतवे
आजिघ्र	घण्टेश्वराय
वायो शुक्रः	विकटाय
दैव्या होतारा	मणिमानाय
त्रीणि त आहुः	गणिबन्धाय
वायव्यादिकोष्ठे षट्सु दलेषु क्रमेण—	
प्रतिश्रुत्काया	मुण्डाय
शुद्धबालः सर्वं	बर्बूकराय
वनस्पते वीड्व	सुधापाय
सुपर्णं वस्ते	वैनाय (वैनम्)
अग्ने अच्छा	पवनाय

भद्रं कर्णेभिः	ढुण्ढकरणाय
उत्तरादिकोष्ठे सप्तसु दलेषु—	
अपांफेनेन	स्थविराय
वातं प्राणेना	दन्तुराय
इदं हविः	धनदाय
खड्गो वैश्व	नागकर्णाय
मृगो न भीमः	महाबलाय
इन्दुर्दक्षः	फेत्काराय
जीमूतस्येव	वीरकाय
ईशानादि सप्तसुदलेषु क्रमेण—	
तीव्रान्घोषान्	सिंहाय
अग्निन्दूतम्	मृगाय
अदित्यास्त्वा	यक्षाय
द्यौस्ते पृथि	मेघवाहनाय

संबर्हिरङ्क्ता	तीक्ष्णाय
पवमानः सोऽअद्य	अमलाय
अभ्यर्षत	शुक्राय

इत्यजरादिक्षेत्रपालानावाह्य मनो जूतिरिति प्रतिष्ठाप्य षोडशोपचारैः संपूजयेत्—

❀ अथ कुशकण्डिकादिविधिः ❀

अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनम् । तत्र ब्रह्मोपवेशनम् । अग्नेरुत्तरतः प्रागग्रैः कुशैः प्रणीतासंस्कारार्थमेकमासनम्, प्रणीताप्रणयनार्थं च द्वितीयमासनं कल्पयित्वा, प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणाप्रपूर्य दर्भैराच्छाद्य ब्रह्मणो मुखमवलोक्य प्रथमासने निधाय द्वितीयासने निदध्यात् । ततोऽग्न्यायतनस्य समन्ताद्द्वादशाङ्गुलं स्थलं त्यक्त्वा प्रागग्रैरुदगग्रैश्च त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिश्चतुर्भिर्वा कुशैरग्नेःपरिस्तरणम्। तद्यथा-आग्नेयादीशानान्तम् । ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तम् । नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम् । अग्नितः प्रणीतापर्यन्तम् । इतरथावृत्तिः । ततः पात्रासानार्थं कुशानास्तीर्य तत्र अर्थवन्ति वस्तूनि अग्नेः पश्चिमतः प्राक्संस्थानि प्राग्बिलानि उदगग्राणि, उत्तरतश्चेत् उदक्संस्थानि उदग्बिलानि प्रागग्राणि कार्यक्रमेणासादयेत् । पवित्रच्छेदानि त्रीणि कुशतरुणानि, द्वे पवित्रे साग्रे अनन्तर्गर्भे, प्रोक्षणीपात्रम्, आज्यस्थाली, चरुस्थाली, सम्मार्जनकुशास्त्रयः पञ्च वा, उपयमनकुशाः सप्त नव वा, समिधस्तिस्रः, स्रुवः आज्यम्, पूर्णपात्रम्, कर्मोपयोगिनी दक्षिणा एताम्यासादयेत् । अन्येषां चोपकल्पनीयानां द्रव्याणामासदनम् । द्वौ कुशौ वामहस्ते कृत्वा यत्र कुशत्रयं निधाय कुशद्वयं कुशत्रयस्योपरितः प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा कुशत्रयं च वामेन गृहीत्वा छिन्द्यात् कुशत्रयं त्यजेत् एवं प्रच्छिद्य प्रादेशमात्रे पवित्रे कुर्यात् । तत्र ग्रन्थिं कुर्यादविश्लेषाय । प्रोक्षणीपात्रं प्रणीतातासमीपे निधाय तत्र सपवित्रेण करेण प्रणीतोदमासिच्य हस्तद्वयस्यानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां धृतपवित्राभ्यामप उत्पूय पवित्रे प्रोक्षणीषु निधाय तत्पात्रं वामहस्ते कृत्वा दक्षिणहस्तेनोदिङ्गनम् । प्रणीतोदकेन प्रोक्षणम् । पवित्राभ्यां प्रोक्षण्युदकेन आज्यस्थाल्याः प्रोक्षणम् । सम्मार्जनकुशानां प्रोक्षणम् । उपयमनकुशानां प्रो. । तृस्तृणां समिधां प्रो० । स्रुवस्य प्रो । पूर्णपात्रस्य प्रो० । दक्षिणायाः प्रो० । उपकल्पनीयानां द्रव्याणां प्रोक्षणम् । ततः सपवित्रं प्रोक्षणीपात्रम् अग्निप्रणीतयोर्मध्ये स्थापयेत् । आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः । चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकासेकपूर्वकं तण्डलप्रक्षेपः । अग्नौ दक्षिणत आज्याधिश्रणम् । आज्यस्योत्तरतश्चरोरधिश्रयणम् । अर्धश्रिते चरौ ज्वलदुल्मुकेनोभयोः पर्यग्निकरणम् । उल्मुकं वह्नौ प्रक्षिप्य इतरथावृत्तिं कुर्यात् । दक्षिणहस्तेन अधोबिलं स्रुवं प्राञ्चं प्रतप्य सव्ये पाणौ उत्तानं कृत्वा दक्षिणेन सम्मार्जनकुशानामग्रैर्मूलतोऽग्रपर्यन्तं प्राञ्चं संम्मृज्य कुशमूलैरधस्ताद्भागे स्रुवपुष्करस्य अग्रमारभ्य मूलपर्यन्तं प्रत्यञ्चं सम्मृज्य सम्मार्जनकुशान् अग्नौ प्रक्षिपेत् । ततः प्रणीतोदकेन स्रुवमभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य आत्मनो दक्षिणतो निदध्यात् । आज्यमुत्तार्य उत्तरतः स्थापयित्वा अग्नेः पश्चाद् आनयेत् । चरोरुद्वासनम् । अग्नेरुत्तरत एवाज्यस्य प्रदक्षिणीकृत्य आज्यस्योत्तरतश्चरुं स्थापयेत् । अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्राभ्यामाज्यमुत्पूय, अवेक्ष्य, अपद्रव्यनिरसनं कृत्वा प्रोक्षणीश्च पूर्ववत् उत्पूय तासु धृत्वा उपयमनकुशानादाय वामकरे कृत्वा तिस्रो घृताक्ताः प्रागग्रः समिधो मूलमध्यमोर्मध्यभागेन धृत्वा आदध्यात् । ततः प्रोक्षण्युदकेन सपवित्रेण दक्षिणचुलुकगृहीतेन ईशानाद्युत्तरपर्यन्तं संप्रोक्ष्य इतरथावृत्तिं च कृत्वा पवित्रे प्रणीतासु निदध्यात् । ततोऽमुकनामाग्ने सुप्रतिष्ठितो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(माहात्म्य)

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—

(भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६९ पुष्पलता)

[प्रथम-स्कन्ध]

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय [संयुक्तप्रान्तीय] सरकार द्वारा संमानित विद्वान् आचार्य श्री दौलतराम गौड वेदाचार्य,

मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीमद्भागतश्रवणविधानम्—

शतं भोज्यं प्रतिस्कन्धं स्वर्णं दद्याद्यथावसु । श्रुते सिंहं सुवर्णस्य पलंमानस्य साम्बरम् १ आचार्याय सुधीर्दत्वा मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः । गायत्र्या हवनं कार्यं पायसेनाऽऽज्यतस्तथा २ तिल व्रीहिभिरेवात्र मता व्याहृतयो यवौ । होमान्ते भगवान्विष्णुः पूज्यः स्वर्णमयः शुभैः ३ उपचारैः षोडशभिर्मन्त्रैः पौरुषसंभवैः । ततश्च धेनुदानं च वक्त्रे देयं प्रयत्नतः ४ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणम् । फलदं स्यात्पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ५ धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं नात्र संशयः । अर्थवादान्वदन्त्येव पुराणानि च केचन ६ न तथा भारतं सम्यक्छ्रुतं भागवतं जनैः । विधानसहितं सम्यक् पुराणफलदं भवेत् । तस्माद्विधानयुक्तं तु पुराणं शृणुयान्नरः ७ (विधानमाला पृष्ठ २२५ से उद्धृत) ।

सङ्कल्पः—पश्चिमदिक्स्थदेहलीविनायकपूर्वदिक्स्थकालविनायकयोरन्तःस्थितसोमसूर्यान्वयभूभृत्प्रतिष्ठितासंख्यातलिङ्गोपेतायां पञ्चविंशतिक्रोशमितपञ्चक्रोशीस्थितानेकलिङ्गैरनेकगणैरनेकगौरीभिश्चाभिरक्षितायाम् एकयोजनस्वर्गभूम्यावेष्टितमध्यमेश्वरमारभ्य देहलीविनायकपर्यन्तं सूत्रभ्रामणेन संजातरेखामध्यवर्तिनि पूर्वस्मिन् गङ्गापारे कालाक्षरण-भद्रकालेय-कालकम्पनाभिधगणचतुष्टयाभिरक्षितायां दक्षिणेऽसीधाराव्यवस्थितकर्दमलिप्तविग्रहवीरभद्रनभः स्थूलकर्णमहाबाहुपरिरक्षितायाम् पश्चिमे देहलीपार्श्वस्थितविशालाक्ष-महाभीम-कुण्डोदर-महोदराभिरक्षितायाम् उत्तरे वरणापार्श्वस्थितनन्दी-शोण-पञ्चालखरपादकरण्डजेरान्दगोपिकाभिरभिरक्षितायाम् प्रथमप्रदक्षिणे मणिकर्णिकेश्वरादिपञ्चत्रिंशता, द्वितीयप्रदक्षिणे त्रिसन्ध्येश्वरादिदशभिः, तृतीयप्रदक्षिणे चण्डेश्वरादितिसृभिः, चतुर्थप्रदक्षिणे राजराजेश्वरादितिसृभिः, पञ्चमप्रदक्षिणे परेश्वरादिचतसृभिः, षष्ठप्रदक्षिणे मार्कण्डेयेश्वरादि द्वाभ्याम्, सप्तमप्रदक्षिणे गङ्गेश्वरादि पञ्चदशभिर्देवताभिर्विराजितायाम् पूर्वादिक्रमेण प्रतिद्वारं मणिकर्णिकेश्वरब्रह्मेश्वरगोकर्णेश्वरभारभूतेश्वरैर्विराजितायाम्, तुण्डवक्त्रभीषणशङ्कुकर्णपिचण्डिलगणैरभिरक्षितायाम् सोमेश्वरवायुकोणस्थायोध्याक्षेत्र-उत्तरार्कादिवरणापर्यन्तस्थितमथुराक्षेत्र-असीसंभेदकोणस्थगङ्गाद्वारक्षेत्र-बिन्दुमाधवादिकृत्तिवासेश्वरान्तकाञ्चीक्षेत्रवृद्धकालादिकृत्तिवासावधिस्थितावन्तीक्षेत्रशङ्खोद्धारप्रदेशस्थितद्वारावतीक्षेत्रत्रिपुरीविलसितायां कुरुक्षेत्रस्थाण्वीश्वरनैमिषाद्यष्टषष्ट्यायतनाधीशसंसेवितायाम्, ओंकारेश्वरत्रिलोचनेश्वरकेदारेश्वरादिपञ्चाशन्महालिङ्गैः—असीसङ्गमपिशाचमोचनकपिलधारामत्स्योदरीगोदावरीविशालवदरिकाश्रमपरशुरामहंसवासुकिनरनारायणरामघण्टाकर्णविष्णुपादोदकभैरवयमकेदारादिशतद्वयतीर्थैरादिकेशवहरिकेशवज्ञानकेशवभृगुकेशवगङ्गाकेशवाद्यनेककेशवैः, शेषमाधव-असीमाधवप्रयागमाधवबिन्दुमाधवकालमाधवाद्यनेकमाधवैः, लक्ष्मीनृसिंहज्वालानृसिंहविदारनृसिंहनिर्वाणनृसिंहाद्यनेकनृसिंहैः, आदिवाराहयज्ञवाराहाद्यनेकवाराहैः, अनन्तवामनाद्यनेकवामनैः, पञ्चोत्तरशतनारायणैः, एकोत्तरशतजलशायिभिः, त्रिंशत्कमठमूर्तिभिः, विंशतिमत्स्यमूर्तिभिः, अष्टोत्तरशतंगोपालमूर्तिभिः, असंख्यातबुद्धमूर्तिभिः, त्रिंशत्परशुराममूर्तिभिः, एकोत्तरशतरघुनाथमूर्तिभिः, एकोनपञ्चाशद्राममूर्तिभिः, गन्धर्वसागरसिन्धुसागरगङ्गासागरसप्तसागरपूर्वसागरेश्वरादिसागरैः, अत्रीश्वरादिसप्तर्षिलिङ्गैः, सनकेश्वरादिमहायोगीश्वरैः, शङ्कुकर्णेश्वरादिगणलिङ्गैः, धुन्धुमारेश्वरादिराजर्षिलिङ्गैः, कपालमोचनदुर्गालक्ष्मीमातृपितृमरीचिकुण्डादिकुण्डैः, ज्येष्ठवापीज्ञानवाप्यादिवापीभिः, चन्द्रकूपधर्मकूपव्यासकूपकालकूपादिकूपैः, मुक्तिमण्डपशृङ्गारमण्डपकैलासमण्डपवैराग्यमण्डपऐश्वर्यमण्डपज्ञानमण्डपहरिश्चन्द्रमण्डपमोक्षलक्ष्मीविलासादिमण्डपैः, असिताङ्गभैरवाद्यष्टभैरवैः कालभैरवादिभिश्च संरक्षितायाम् आदित्येश्वरादिनवग्रहेश्वरैः, दक्षेश्वराद्यष्टलिङ्गैः, आग्नीध्रेश्वराद्येकादशमहालिङ्गैः मुखनिर्मालिकागौरीमङ्गलागौर्यादिनवगौरीभिः, मणिकर्णिकाद्यशीतिसंख्याभिरन्तर्गृहदेवताभिः, अर्कविनायकदुर्गविनायकभीमचण्डविनायकादिषट्पञ्चाशद्विनायकैः, ढुण्ढिराजादिपञ्चमहाविनायकैः मन्दाकिनीचक्रपुष्करिणीपञ्चपुष्करिण्यादिस्रोतिकाभिः, अविमुक्तेश्वरादिपडङ्गैः, विश्वेश्वरादिद्वितीयषडङ्गैः, ॐकारेश्वरादितृतीयषडङ्गैः, विष्णुपादोदकादिचतुर्थषडङ्गैः, पञ्चायतनपीठाद्यनेकपीठैः, लोलार्क-उत्तरार्कसांबादित्यद्रुपदादित्यमयूखादित्यवृद्धादित्यगङ्गादित्यकेशवादित्ययमादित्य-अरुणादित्यविमलादित्यखखोल्कादित्येति द्वादशादित्यैः, शैलपुत्रीब्रह्मचारिणीचित्रघण्टादिनवदुर्गाभिः, गजाननासिंहमुखीत्यादिचतुःषष्टियोगिनीभिः, मणिकर्णिकाद्यष्टादशोत्तरशतपञ्चक्रोशीयात्रादेवताभिः, रुद्रसरोवरयूपसरोवरमानससरोवरादिसरोवरैः, मध्याह्नस्नानार्थं समागतैरनेककोटिसंख्यैर्देवर्षिप्रभृतिभिः संसेवितायां वाराणस्यामष्टोत्तरशतसंख्याकश्रीमद्भागवतपारायणेन भगवतो राधाकृष्णस्य प्रसादसिद्ध्यर्थं भगवतः श्रीकृष्णचन्द्रस्य प्रसादेन सर्वेषां भारतीयानां जनानां वर्तमानपीडोपद्रव-अन्न-वस्त्र-लाभ-दीनतापरमुखनिरीक्षणपरित्यागपूर्वकं क्षेमस्थैर्यवीर्यविजयायुरारोग्यैश्वर्यवृद्ध्यर्थं यथाशक्ति कायेन मनसा वाचा धनेन साहाय्यमाचरतामास्तिकशिरोमणीनां श्रेष्ठिवर्याणां गृहे वसतां द्विपदां चतुष्पदां च नीरोगनिरुपद्रवादिसर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थम् इतोऽपि महदैश्वर्यावाप्त्यर्थं प्रतिष्ठाद्यैहिकामुष्मिकस्वर्गादिब्रह्मकल्पान्तफलप्राप्त्यर्थम् उपचीयमान-अधर्मनिवृत्तिपुरःसरं धर्माभिवृद्ध्यर्थं समेषां प्राणिनां सद्भावनोत्पादनार्थं विश्वकल्याणार्थं समस्तमङ्गलावाप्त्यर्थम् इष्टकाम्यार्थसिद्ध्यर्थं श्रीकृष्णचरणारविन्दयोःअचञ्चलाभक्तिसिध्यर्थम् अष्टोत्तरशतसंख्याकश्रीमद्भागवतपारायणम् एतेषां ब्राह्मणानामन्योन्यसाहाय्येन (ऋत्विङ्मुखेन, आचार्यमुखेन) कारयिष्ये। (तेन परमेश्वरं प्रीणयामि)।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ मुनियों का हवन आदि क्रियाओं से निवृत्त श्री सूतजी से भगवान् श्री कृष्ण का चरित्र और धर्म किसकी शरण में गया आदि छः प्रश्न करना ❀

अर्थोंमें गृहीत अन्वय और व्यतिरेकसे जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारका कारण है, जिसने आदि कवि ब्रह्माके लिए वेदोंको प्रकाशित किया, जिसके विषयमें बड़े-बड़े विद्वान् लोगोंको भी मोह उत्पन्न हो जाता है, जिसमें तेज, जल और मिट्टीमें परस्पर एककी दूसरेमें सत्यरूपसे प्रतीति होनेकी तरह असत्य तीन तरहकी सृष्टि जिसकी सत्यतासे सत्य-सी

❀ अथ प्रथमोऽध्यायः ❀

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ॥ तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमही ॥ १ ॥ धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो

भासती है और जिसके तेजसे अज्ञानान्धकार सर्वदा निरस्त है उस सर्वज्ञ स्वतः सिद्धज्ञान, सत्य परब्रह्म परमात्माका हम ध्यान करते हैं ॥ १ ॥ भगवान् नारायण से संक्षेप द्वारा कहे गये, तदनन्तर श्रीमहामुनि वेदव्यासजी द्वारा विस्तारसे रचित इस सुन्दर भागवतमें मत्सर यानी डाह से रहित और जीवोंपर अनुकम्पा करनेवाले सज्जनोंके फलकी अभिलाषासे रहित, केवल ईश्वरका आराधनरूप उत्कृष्ट धर्मका निरूपण किया गया है। इसमें परम सुखदायक और आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीनों तापोंका उन्मूलन करने

दृष्टान्त—ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करने की पुरातन शैली है। व्यास जी महाराज द्वारा रचित जिस भागवत से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होता है। उनमें मङ्गलाचरण का देना ग्रन्थ रचयिता को क्यों कर याद न रहा?

उत्तर—सत्तरह महापुराणों के निर्माण कर चुकने के बाद भी श्री व्यास जी का मन स्थिर न हो सकने से नारद जी की संमति से भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ की निर्माण-क्रिया में ब्रह्म-प्रतिपादन को ही मङ्गला-चरण रूप मान कर ग्रन्थारम्भ कर दिया।

दृष्टान्त—प्रायः पुराणों और उपपुराणों में या कथा के आरम्भ में 'श्रीभगवान् उवाच' नारद उवाच, आदि.वाक्य मिलते हैं फिर इस ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीव्यास जी ने 'श्री व्यास उवाच' ऐसा क्यों नहीं लिखा?

उत्तर—कहां तो उन्हें हृदय में शान्ति प्रतीत नहीं हो रही थी, उतने में ही श्री नारद जी ने उन्हें रास्ता बतला दिया। उसी हर्ष में मग्न हो वे यहाँ लिख न सके।

दृष्टान्त—सूतजी महाराज से सनकादि ऋषियों ने कृष्णावतार की कथा क्यों कर पूछी।

उत्तर—ज्ञान शून्य और ज्ञानवान् को क्रम से गोपी-क्रीड़ा और मोक्ष रूपी विषय का ज्ञान होने से यह कथा दो प्रकार की है। भक्त लोग भ्रम में न पड़ें इसलिए कृष्णावतार वर्णन विषय पूछा।

दृष्टान्त—श्रीशुकदेव जी गोदोहन मात्र ही भक्तों के गृह में निवास करते थे। वही राजा परीक्षित् को गङ्गा तट पर सात दिन तक भागवत का सप्ताह विधि विधान द्वारा सुनाने के लिए क्यों कर रुक गये।

उत्तर—सुना जाता है कि भगवान् आनन्द कन्द श्री कृष्ण जी ने उनका पूजन करते हुए यह वर मांगा था कि मेरे प्रिय पाण्डवों के पौत्र राजा परीक्षित् का उद्धार कीजिये इसीलिए ही वे सात दिन तक रुक गये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाला परमार्थभूत वस्तु विना यत्नकेही ज्ञात हो जाता है। अथवा वास्तव यानी वस्तु का (ब्रह्मका) अंश जीव, वस्तुकी शक्ति माया और वस्तुका काय जगत्—ये सब वस्तुरूप ही हैं, उससे पृथक् नहीं हैं; यह अनायास समझमें आ जाता है। अन्य शास्त्रोंसे या अन्य शास्त्रोंमें कहे गये साधनोंसे क्या परमेश्वर शीघ्र हृदयमें स्थिर किये जा सकते हैं ? नहीं; किन्तु अधिक विलम्बसे कथञ्चित् किये जा सकते हैं। इसमें तो श्रवण करनेकी अभिलाषा करनेवाले पुण्यशाली पुरुषोंसे हृदयमें ईश्वर तत्काल ही स्थिर किये जाते हैं ॥ २ ॥ हे रसज्ञो, हे रसविशेषकी भावनामें चतुर पुरुषो, सब पुरुषार्थोंका साधन भूत जो वेदरूपी कल्पवृक्ष है उसका फल है—यह भागवत। यह पहले वैकुण्ठ में था, नारदमुनिने वहाँ से लाकर मुझे दिया और मैंने शुकदेवमुनि के मुख में रख दिया। शुकदेवमुनि के मुखसे शिष्य-प्रशिष्य रूप पल्लवों की परम्परा से धीरे-धीरे अखण्ड ही यह इस पृथिवी पर टपक पड़ा। तात्पर्य यह है कि बहुत ऊंचे स्थानसे गिरकर भी टुकड़े टुकड़े नहीं हो गया। यह परमानन्दरूप रस से परिपूर्ण है (लोकमें प्रसिद्ध है कि शुक पक्षी के मुखसे स्पृष्ट फल अमृत की नाईं स्वादु होता है) इसलिए इस

हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥ नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥४॥ त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ॥ सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥५॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६ ॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ॥ अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥ वेत्थ त्वं सौम्य

भागवत नामक फल को जिसमें छिलका और गुठलीका नामतक नहीं है, जो रसस्वरूप है; बार-बार मोक्षपर्यन्त यानी जीवन्मुक्ति होने पर भी खूब पीते रहो ॥३॥ भगवान् विष्णुके 'नैमिश'* क्षेत्रमें शौनक प्रभृति ऋषि लोग विष्णुलोककी प्राप्तिके लिए हजार वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले यज्ञ करने की इच्छासे बैठे ॥ ४ ॥ उन मुनियोंने एक दिन बहुत सबेरे घृत आदिसे हवन करके सत्कारपूर्वक आसन पर सुशोभित हुए सूतजीसे बड़े आदरके साथ यह प्रश्न पूछा ॥ ५ ॥ ऋषियोंने कहा—हे पापशून्य सूत जी, आपने महाभारत आदि इतिहास सहित पुराणोंका और जो धर्मशास्त्र हैं उनका भी अध्ययन किया है तथा उनकी भलीभाँति व्याख्या भी की है ॥ ६ ॥ विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीवेदव्यासजी तथा सगुण और निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान रखनेवाले और दूसरे ऋषि लोग भी जिन शास्त्रों को अच्छी तरह जानते हैं। हे सौम्य सूतजी, आप उन सबको उन महामुनियों की दयासे तत्त्वतः जानते हैं; क्योंकि गुरु लोग अपने प्रेमी शिष्य से गुप्त बातें भी बतला

* ब्रह्मा द्वारा रचित मनोमय चक्र की नेमि जहाँ टूट गई थी उसी स्थानका नाम 'नैमिश' है। यह स्थान अवध के सीतापुर जिले में है। इसके विषय में वाराहपुराण में लिखा है कि इस स्थानपर गौरमुख नामक मुनिने निमिष मात्र में असुरों की बड़ी भारी सेना नष्ट कर दी थी, इसीसे इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा। देवीभागवतमें लिखा है कि ऋषि लोग जब कलिकालके भय से बहुत घबराए तब ब्रह्माने उन्हें मनोमय चक्र देकर कहा कि तुम लोग इस चक्रके पीछे-पीछे चलो, जहाँ इसकी नेमि (घेरा, चक्कर) विशीर्ण हो जाय उसे अत्यन्त पवित्र स्थान समझना। वहाँ रहने से तुम्हें कालिका कोई भय नहीं रहेगा। कहते हैं कि सौतमुनिने इस स्थान पर ऋषियों को एकत्र करके महाभारत की कथा कही थी। विष्णुपुराण में लिखा है, इस क्षेत्रमें गोमती में स्नान करने से सब पापों का क्षय हो जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिया करते हैं ॥ ७, ८ ॥ इसलिए हे आयुष्मन्, उन उन शास्त्रोंमें पुरुषोंके परम कल्याण का साधन जो आपने दृढ़ निश्चय किया है वह हम लोगों से कहने की कृपा कीजिये ॥ ९ ॥ हे साधो, इस कलियुग में मनुष्य प्रायः अल्पायु, अत्यन्त आलसी, मन्दमति, मन्दभाग्य और नानाविध रोग आदि उपद्रवोंसे व्याकुल रहेंगे ॥ १० ॥ हे परोपकारपरायण सूतजी, जिसमें अनेक कर्मोंका भरमार है ऐसे अलग अलग सुनने योग्य बहुत से शास्त्र हैं। इसलिए इनमें जो सार है, उसे अपनी बुद्धी से निकालकर हम श्रद्धावानों से कहिए; जिससे हम लोगों की अन्तरात्मा भलीभाँति प्रसन्न हो ॥ ११ ॥ हे सूतजी, आपका कल्याण हो भक्तोंके प्रतिपालक भगवान् जिस कार्यकी अभिलाषासे वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीमें उत्पन्न हुए [वह आपको मालूम है] ॥ १२ ॥ उसे सुननेकी अभिलाषा रखनेवाले हम लोगोंसे क्रमशः कहिये। सामान्यतः जिस भगवान्का अवतार संसारके कल्याण और समृद्धिके लिये होता है॥ १३ ॥ घोर

तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ९ ॥ प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ॥ मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥ भूरीणि सूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ॥ अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनाऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ११ ॥ सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सात्वतांपतिः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥ १२ ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् ॥ यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥ १३ ॥ आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ॥ ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥१४॥ यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ॥ सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥ १५ ॥ को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ॥ शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥ तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥ अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः ॥ लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥ १८ ॥ वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लो-

विपत्तिमें पहुंचा हुआ जो मनुष्य विवश होकर बरबस भगवान्का नाम लेता है वह शीघ्र ही उस विपत्तिसे छुटकारा पाजाता है। कारण कि उस नामसे स्वयं भय भी डर जाता है ॥१४॥ हे सूतजी, गङ्गाका जल, भगवान्के चरणकमलोंसे निकला हुआ है, बहुत दिनों तक सेवन करनेसे पवित्र करता है किन्तु जिस परमात्माके चरणकमलोंका आश्रय करने वाले तथा शान्तिके आधार मुनि लोग सेवकोंको शीघ्र पवित्र कर देते हैं ॥ १५ ॥ अपने अतःकरण की शुद्धि की चाह रखने वाला इस संसारमें भला ऐसा कौन पुरुष है, जो पवित्र कीर्तिवाले नारदादि भक्तों से गाये जा रहे उस भगवान्के सांसारिक दुःखोंको नष्ट कर देनेवाले यशका श्रवण न करेगा ॥ १६ ॥ लीलासे ब्रह्मा, रुद्र आदि की मूर्ति धारण करनेवाले नारदादि भक्तोंसे भलीभाँति गाये गये उस भगवान्के बड़े-बड़े विश्वसृष्टि आदि कामोंका हम श्रद्धावानोंसे वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥ हे बुद्धिसागर, अपनी मायासे इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे विष्णु भगवान्की मत्स्यावतारादिकी सुन्दर कथाएँ अब कहिये ॥ १८ ॥ योग-यागादिमें हम लोग तृप्त हो चुके हैं, परन्तु उत्तम चरित्र भगवान्के विक्रममें हम लोग तो तृप्त नहीं हो रहे हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भले ही और दूसरे लोग हो जायँ; क्योंकि भगवान्‌की मनोहर कथा सुननेवाले रसिक जनोंको पद-पदमें खूब स्वाद मिलता जाता है ॥ १९ ॥ जिसने अपनी मायासे मनुष्यका रूप धारणकर अपना वास्तविक असल स्वरूप छिपा रक्खा, उस भगवान् केशवने बलरामजीके साथ मनुष्योंसे न होने लायक जो गोवर्द्धन पर्वत उठाना आदि अद्भुत चरित्र किया; हे सूतजी, वह कहिये यानी श्रीकृष्ण चरित्रका वर्णन कीजिये ॥ २० ॥ कलियुग आ गया है, यह जानकर उसके भयसे विष्णुपदमें जानेकी इच्छा कर भगवान् विष्णुके इस क्षेत्रमें हजारों वर्षोंमें समाप्त होने वाले यज्ञ करनेकी अभिलाषासे हम लोग बैठे हुए हैं इसलिये भगवान् विष्णुकी कथा सुननेके लिए हम लोगोंको बहुत समय मिल गया है ॥ २१ ॥ पुरुषोंके सत्त्वका (धैर्यका) अपहरण करनेवाले दुस्तर संसार तैर जानेकी इच्छा कर रहे हमलोगों को विधातासे आप ऐसे अचानक दिखला दिये गये हैं जैसे दुस्तर सागर तैरने की इच्छा कर रहे पुरुषोंको कर्णधार ॥ २२ ॥ हे सूतजी, कवच की नाईं धर्म की रक्षा करने वाले, ब्राह्मणोंके हितैषी, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाने पर धर्म किसीकी शरणमें गया? यह कहिए ॥ २३ ॥

कविक्रमे ॥ यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥१९॥ कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः ॥ अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपट-मानुषः ॥ २० ॥ कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम् ॥ आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥ २१ ॥ त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् ॥ कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥ २२ ॥ ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥ स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रथम अध्याय सार—हे सूत जी, जो शास्त्रों का तत्व हो जिसे अल्प-अवस्था वाले अल्पज्ञानी जीवोंका कल्याण हो उसका वर्णन कीजिये, और दुष्टोंका नाश, धार्मिकों की रक्षा के निमित्त श्रीभगवान् ने पृथ्वीपर अवतार क्यों लिया ! लीलाधारी भगवान् के अनेक कर्मोंका वर्णन कीजिये और यह भी कहिये अन्तमें धर्मकी क्या गति हुई ।

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

व्यास उवाच ॥ इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१॥ सूत उवाच ॥ यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेत-कृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥२॥ यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमे-

शौनक आदि ब्राह्मणों के छः प्रश्नों में से रोमहर्षण पुत्र सूत जी द्वारा चार का उत्तर सुनना

श्री व्यासजीने कहा—शौनक आदि ब्राह्मणोंके ऐसे प्रश्नोंसे खूब प्रसन्न हुए रोमहर्षणके पुत्र सूतजीने उन लोगोंके वचनकी सराहना कर प्रश्नोंका उत्तर देना आरम्भ कर दिया ॥ १ ॥ सूतजीने कहा— कर्मोंसे शून्य यानी नैष्ठिक होनेके कारण कर्ममार्गमें प्रवृत्त न हुए, इसलिए सबकुछ छोड़-छाड़कर अकेले बिना यज्ञोपवीत धारण किये हुए ही आश्रमसे भागकर जंगलमें जा रहे जिन्हें श्री व्यासजीने विरहसे कातर होकर हे पुत्र, हे पुत्र, यों बहुत ऊँचे स्वरसे जब पुकारा, तब तन्मय होनेके कारण अर्थात् शुकरूप होनेके कारण वृक्षोंने ही 'हाँ पिताजी, यों उत्तर दिया अर्थात् मेरे पिताजी पुत्रस्नेहके बन्धनमें न पड़ जायँ, इसलिए अपने उत्तर न देकर जिन्होंने वृक्षोंसे ही उत्तर दिलाया, उस समस्त प्राणियोंके हृदयमें योगबलसे प्रवेश करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाले महामुनिको प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ संसार नामक गाढ़े अन्धकारको तैर जानेकी चाह रखनेवाले संसारी जीवोंके ऊपर दया करके जिन्होंने अपना असाधारण प्रभाव रखनेवाले, अखिल श्रुतियोंके सार, अद्वितीय एवं आत्मतत्त्वके साक्षात् प्रकाशक तथा पुराणोंके मध्यमें अत्यन्त गोप्य, 'भागवत' पुराणका वर्णन किया है, उस मुनियोंके गुरु श्री व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीकी शरणमें जाता हूँ ॥ ३ ॥ प्रत्येक कथावाचकको उचित है कि सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ भगवान्‌के अवतार स्वरूप नर, नारायण, सरस्वती देवी और श्री व्यासजीको नमस्कार कर ग्रन्थका आरम्भ करें ॥ ४ ॥ हे महर्षियो, आप लोगों ने मुझ से बहुत सुन्दर प्रश्न किया है जिससे संसारका मंगल होगा क्योंकि आप लोगोंका यह प्रश्न कृष्ण भगवान्‌के विषय में किया गया है जिससे अन्तरात्मा प्रसन्न होती है ॥ ५ ॥ वही पुरुषोंका परम धर्म है जिससे भगवान् कृष्ण में फल कामना से रहति, विघ्नोंसे शून्य भक्ति उत्पन्न होती है, जिससे आत्मा प्रसन्न होती है ॥ ६ ॥

कमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ॥ संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥४॥ मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ॥ यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा संप्रसीदति ॥ ५ ॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ॥ अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ॥ ६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥ ७ ॥ धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ॥ नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८ ॥ धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥ कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ॥ जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥ वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ॥ ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥ तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ १२ ॥ अतः पुंभिर्द्वि-

भगवान् वासुदेव में प्रयोजित भक्तियोग यानी लगी हुई भक्ति जिस वैराग्य और ज्ञानको उत्पन्न करती है वह अहैतुक होता है अर्थात् शुष्क तर्कादि से दृष्टिगोचर नहीं होता। तात्पर्य यह है कि वह उपनिषद्-गम्य होता है ॥७॥ भली भाँति सम्पादित पुरुषोंका धर्म यदि भनवान् कृष्णकी कथाओं में प्रेम नहीं पैदा कर सका, तो वह केवल व्यर्थ श्रम ही है ॥ ८ ॥ जैसे मोक्षके लिए सम्पादित धर्मका फल अर्थ उचित नहीं होता, वैसे ही धर्म ही है मुख्य फल जिसका, ऐसे धनका फल विषय भोग भी मुनियों द्वारा लाभदायक नहीं कहा गया है ॥ ९ ॥ विषय भोगका फल इन्द्रियोंकी प्रसन्नता नहीं है। किन्तु जितने कामके सेवन से मनुष्यका जीवन बना रहे यानी स्वास्थ्य में किसी प्रकारकी कमजोरी न आ सके उतना ही काम लाभप्रद है। और जीवन बना रहे——इसका यह फल नहीं है कि नानाविध उपायोंसे इस संसारमें सिरपर अनेक झंझट उठाकर धन बटोरा जाय, किन्तु तत्त्व जिज्ञासा ही फल है ॥ १० ॥ जो अद्वय ज्ञान है (एक परमात्मा सत्य है और संसारकी सब वस्तुएँ मिथ्या हैं—इस तरहका ज्ञान है) उसे ही तत्त्वज्ञानियोंने तत्त्व कहा है । उसीको वेदान्ती लोग 'ब्रह्म' हिरण्य-
॥ ३ ॥
गर्भ की उपासना करने वाले 'परमात्मा' और भक्ति करने वाले 'भगवान्' इस नाम से पुकारते हैं ॥ ११ ॥ वेदान्तादि के श्रवणसे प्राप्त हुई ज्ञान-वैराग्यसे युक्त भक्ति द्वारा श्रद्धावान् मुनि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोग उस परमात्मतत्त्वको आत्मा में (क्षेत्रज्ञ में) ही देखते हैं ॥ १२ ॥ इसलिए हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों एवं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार आश्रमों के लिए जो अलग अलग नियम बनाये गये हैं, उनके अनुसार पुरुषोंसे भलीभाँति अनुष्ठित धर्मका फल भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करना है ॥ १३ ॥ इसलिए एकचित्त नित्य भक्तपति भगवान् श्रीकृष्ण, का श्रवण, कीर्तन, ध्यान और पूजन करना चाहिये ॥१४॥ जिस भगवान् की ध्यानरूप तलवार से युक्त ज्ञानी लोग अहङ्काररूपी गाँठ पैदा करनेवाले कर्म को छिन्न भिन्न कर डालते हैं, उस भगवान्‌की कथामें भला कौन प्रेम न करेगा ? ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो, पुण्य तीर्थोंके निषेवनसे तपशून्य हुए पुरुषको महात्माओं की सेवा करनेका अवसर मिलता है उस सेवासे धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है। तदनन्तर भगवान् के गुणानुवाद सुनने की इच्छा। उसके बाद श्रद्धावान् उस शुश्रूषुको भगवान्

जश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥१३॥ तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतांपतिः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १४ ॥ यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम् ॥ छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥ १५ ॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ १७ ॥ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ १८ ॥ तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये ॥ चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्वे प्रसीदति ॥१९॥ एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्व-विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥२०॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥२१॥ अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ॥ वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥ २२ ॥ सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ॥ स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञः श्रेयांसि तत्र खलु सत्वतनोर्नृणां स्युः ॥२३॥ पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तु

वासुदेवकी कथामें अभिरुचि उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥ जिनका श्रवण और कीर्तन पुण्य स्वरूप है, वेद सज्जनों के हितकारी भगवान् श्रीकृष्णजी अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें अवस्थित होकर हृदयमें रहनेवाली कामादि वासनाओं को चूर-चूर कर डालते हैं ॥ १७ ॥ पश्चात्ताप रातों-दिन भगवद्भक्तों या भागवत शास्त्रोंकी (भगवान् के गुणोंका प्रतिपादन करने वाले शास्त्रोंकी) लगातार सेवासे हृदयकी कामादि वासनाओंके नष्ट हो जानेपर पुण्यश्लोक (उत्तम चरित वाले) भगवान् श्रीकृष्ण में किसी प्रकारका विक्षेप न होनेसे निश्चल भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥ तब रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाले जो काम, लोभ आदि विकार हैं उनसे किसी तरह विकृत न हुआ यह चित्त सत्त्व गुणोंमें स्थित होकर उपशान्त हो जाता है ॥१९॥ यों भगवान्‌की भक्ति के योगसे प्रसन्नमन होनेके कारण आसक्ति से शून्य हुए पुरुषको भगवान् के स्वरूपका भलीभाँति ज्ञान हो जाता है ॥ २० ॥ आत्मस्वरूप भूत ईश्वरका साक्षात्कार हो जानेपर इस भाग्यकी अहङ्काररूप हृदयकी गाँठ नष्ट हो जाती है, सब संदेह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ २१ ॥ इसलिए नित्य निःसन्देह बड़े आनन्द के साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विद्वान् सब मनको प्रसन्न रखनेवाली, भगवान् वासुदेवमें भक्ति करते हैं ॥ २२ ॥ सत्त्व, रज और तम——तीन प्रकृतिके गुण हैं। उससे मुक्त होकर इस संसार में यद्यपि एक परम उत्कृष्ट पुरुष यानी भगवान् कृष्ण ही इस विश्वकी स्थिति, सृष्टि और प्रलय के लिए विष्णु, ब्रह्मा और महेश——इन भिन्न भिन्न नामोंको धारण करते हैं; परन्तु उन तीनों में मनुष्योंको शुभ फल तो सत्वगुण प्रधान भगवान् वासुदेव से ही मिलते हैं ॥ २३ ॥ प्रकाशरहित लकड़ीकी अपेक्षा जैसे धूम श्रेष्ठ है क्योंकि कुछ देर तो वह प्रकाशयुक्त रहता है और उस धूमकी अपेक्षा, उसी धूम से ही उत्पन्न हुई तीन वेदरूपी अग्नि साक्षात् कर्म साधन होने से जैसे श्रेष्ठ है; वैसे ही अज्ञानरूपी तमोगुणकी अपेक्षा रजोगुण श्रेष्ठ है, और उसकी अपेक्षा सत्त्वगुण श्रेष्ठ है जो ब्रह्मांका प्रकाश यानी ब्रह्मज्ञान कराने वाला है। तात्पर्य यह कि तमोगुण प्रधान शिवकी अपेक्षा ब्रह्मा और रजोगुण प्रधान उस ब्रह्माकी अपेक्षा सत्त्वगुण प्रधान विष्णु श्रेष्ठ हैं ॥ २४ ॥ यही कारण है कि प्राचीन कालमें ऋषियोंने विशुद्ध सत्त्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा की थी; इसलिए जो लोग उन प्राचीन ऋषियों का अनुवर्तन करेंगे यानी उन्हीं लोगों के समान

रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २४ ॥ भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते ये नु तानिह ॥ २५ ॥ मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ ॥ नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥ २६ ॥ रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ॥ पितृभूतप्रजेशादीञ्छ्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ॥ वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥२८॥ वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥ वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ २९ ॥ स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ॥ सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥ ३० ॥ तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ॥ अन्तः प्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३१ ॥ यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ॥ नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२ ॥ असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ॥

भगवान् की आराधना करेंगे उनका इस संसारमें महान् कल्याण होगा ॥ २५ ॥ मुक्तिकी चाह रखनेवाले पुरुष किसी भी देव की निन्दा न करते हुए भयङ्कर आकार वाले भूतपति पितर, पिशाच आदि को छोड़कर शान्तरूप नारायणकी कलाओं की आराधना किया करते हैं ॥ २६ ॥ इस संसार में ऐसे लोगोंकी भी कमी नहीं है जिनका स्वभाव भूत पिशाचोंकी नाईं रजोगुण और तमोगुणमय है। वे ही धन ऐश्वर्य और बाल-बच्चों के इच्छुक होकर पितर, भूत प्रजापति आदि की आराधना किया करते हैं ॥ २७ ॥ सब वेद प्रधानरूपसे भगवान् के गुण गाया करते हैं। जो यज्ञ किये जाते हैं उनका भी तात्पर्य भगवत्प्राप्ति हो है। योग शास्त्रोंका पर्यवसान भगवान् वासुदेवकी प्राप्तिमें है। आसन प्राणायाम आदि क्रियाएँ भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के लिए ही बतलाई गई हैं। वेदान्तादि ज्ञानशास्त्र भगवान् वासुदेवका प्रतिपादन करते हैं। ज्ञान शब्दका तात्पर्य है---भगवान् वासुदेवका ज्ञान। दान व्रतादि विषयोंका प्रतिपादन करने वाले धर्मशास्त्र भी भगवान् आनन्दस्वरूप हैं इसलिए उनका अंशभूत होनेसे स्वर्गादिफल भी वासुदेव पर ही हैं ॥ २९ ॥ स्वयं निर्गुण और व्यापक होते हुए भी भगवान्ने सत्त्व रज और तमोगुण स्वरूप तथा कार्यकारणरूप अपनी मायासे इस संसारकी पहले रचना की ॥ ३० ॥ उस मायासे उत्पन्न हुए इन आकाशादि पदार्थों में भीतर प्रविष्ट होकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् स्वयं प्रकाश चैतन्यात्मक होते हुए भी 'ये सब पदार्थ मेरे अधीन हैं' इस प्रकारके अभिमानसे ग्रस्त-से अवभासित होते हैं ॥ ३१ ॥ जिस तरह अग्नि स्वरूपको प्रकाशित करनेवाली लकड़ी आदिमें प्रविष्ट हुई एकही अग्नि, लकड़ी आदिके आकारके अनुसार यानी लम्बा, गोल, छोटा या बड़ा जैसा लकड़ी आदिका आकार होता है वैसे ही भिन्न-भिन्न आकारकी प्रतीत होती है उसी तरह विश्वात्मा परमेश्वर प्राणियोंमें प्रविष्ट होकर उन प्राणियोंकी योनियोंमें प्राप्त आकारोंके अनुसार नाना प्रकारके प्रतीत होते हैं ॥ ३२ ॥ वह भगवान् कृष्ण भूत सूक्ष्म (शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध) श्रोत्रादि इन्द्रियाँ और मन—इन सत्त्वादि गुणमय भावोंसे उत्पन्न किये हुए अण्डजादि चार प्रकारके शरीरोंमें निविष्ट होकर उन-उन शरीरोंके अनुरूप विषयोंका अपनी इच्छासे उपभोग करते हैं ॥ ३३ ॥ और जगत्का निर्माण करनेवाले यही भगवान् देवोंमें ब्रह्मा, इन्द्र आदि, तिर्यक् योनियोंमें मत्स्य, कच्छप आदि और मनुष्य योनियोंमें राम, कृष्ण आदि लीलावतारोंमें अनुरक्त होकर यानी राम, कृष्ण आदि रूपसे इस पृथिवीपर अवतीर्ण होकर सत्त्वगुणसे लोगोंका पालन करते हैं ॥ ३४ ॥

स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥ ३३ ॥ भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः । लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

द्वितीय अध्याय का सार—भगवान् की भक्ति ही मुख्य है जिससे थोड़ी आयु वालों का कल्याण हो सकता है। संसार की स्थिति आदि के लिए भगवान् अवतरित होते हैं। नाना रुपोंको धारण करनेवाली माया द्वारा कार्य करा रहे भगवान् निर्गुण होते हुए भी सगुण से प्रतीत होते हैं। लोक में अवतार धारण कर श्री भगवान् अनेक तरह की लीलाएँ करते हैं।

* अथ तृतीयोऽध्यायः *

सूत उवाच ॥ जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥ संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥ यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥ नाभिहृदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥ यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ॥ तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥४॥ एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥ यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५ ॥ स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥

* बचे हुए पञ्चम और षष्ठ प्रश्न का उत्तर सुनना *

सूतजीने कहा—हे महर्षियो, भगवान्ने सृष्टिके आदिमें विश्व रचने की अभिलाषासे महत्तत्त्व अहङ्कार और पाँच तन्मात्राओंसे (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे) निष्पन्न हुए तथा जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन एवं पृथिवी आदि पाँच महाभूत—ये सोलह कलाएँ उपस्थित थीं ऐसे पौरुष रूपका ग्रहण किया यानी पुरुषावतार धारण किया ॥ १ ॥ समुद्रमें विश्रान्त हुए समाधिरूपी नींदका विस्तार कर रहे जिस भगवान्के नाभिरूपी सरोवरमें खिले हुए कमलसे मरीचि आदि विश्वस्रष्टा ऋषियोंके अधिपति ब्रह्माजी [पाद्मकल्पमें] उत्पन्न हुए थे ॥ २ ॥ जिस भगवान्के स्थूल शरीरके अवयव-व विन्यासोंसे विश्व-सृष्टिका विकास हुआ है उसी भगवान्का वह स्वरूप रज और तमोगुणसे रहित सत्त्वगुणरूप सर्वश्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके इस रूपका योगी लोग अपनी विशाल ज्ञानरूपी आँखोंसे अवलोकन किया करते हैं। भगवान्का यह रूप हजारों पैर, जांघ, भुजा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा मस्तकोंसे अद्भुत एवं हजारों मुंह, नाक, कान, और आँखों तथा हजारों मुकुट, वस्त्र कुण्डलोंसे शोभायमान है ॥ ४ ॥ जिस भगवान्के अंशसे यानी भगवान्से उत्पन्न हुए
ब्रह्मा, ब्राह्मासे उत्पन्न हुए मरीचि आदि ऋषि और उन मरीचि आदि ऋषियोंसे देव, पशु-पक्षी और मनुष्य आदि की सृष्टि होती है उस नारायण भगवान्का यह अविनश्वर रूप मत्स्यादि
नाना अवतारोंकी उत्पत्ति और नाशका स्थान है ॥ ५ ॥ उसी भगवान्ने प्रथम ब्राह्मणरूप सनत्कुमारका अवतार लेकर अखण्डित दुश्चर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया ॥ ६ ॥ उस यज्ञेश्वर
भगवान्ने इस विश्वकी उत्पत्तिके लिए, हिरण्याक्ष द्वारा पातालपुरीमें पहुंचाई गई पृथिवीके उद्धारकी अभिलापासे दूसरा वाराह रूप अवतार धारण किया ॥ ७ ॥ उसी भगवान्ने ऋषियोंके
वंशमें देवर्षि (नारद) का तृतीय अवतार लेकर वैष्णव पञ्चरात्रागमशास्त्र यानी भक्तिशास्त्रका वर्णन किया। जिस शास्त्रके अनुसार किये गये कर्मोंसे मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोंको
मुक्ति मिलती है ॥ ८ ॥ पाँचवाँ सिद्धेश्वर कपिल मुनिका अवतार लेकर उस भगवान्ने समयके प्रभावसे इधर उधर विखरे हुए सांख्यशास्त्रका, जिसमें तत्त्वोंके समूहोंका निश्चय किया

चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥ द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥
तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः ॥ तन्त्रं सात्वतमाचष्टे नैष्कर्म्यं कर्मिणां यतः ॥८॥ तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ॥ भूत्वात्मोपश-
मोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥९॥ पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥१०॥ षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं
वृतः प्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥ ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ॥ स यामाद्यैः सुरग-
णैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥ १२ ॥ अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितो
भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ॥ दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे ॥ नाव्यारोप्य महीमय्या-

गया है; 'आसुरि' को उपदेश दिया ॥ १० ॥ 'तुम्हारे सदृश मेरे पुत्र हो' ऐसा अत्रि मुनिके भगवान्से वर माँगने पर तुम्हारे सदृश मेरे पुत्र हो इसका मतलब यह है कि मुझे ही ये
अपना 'लड़का बनाना चाहते हैं' इस प्रकारकी दोषदृष्टि न कर भगवान्ने छठे अवतारमें उनका पुत्र होकर राजा अलर्क और प्रह्लाद आदिको आत्माविद्याका उपदेश दिया
॥ ११ ॥ इसके वाद प्रजापति 'रुचि' की 'आकूती' नामवाली स्त्रीके गर्भसे भगवान्का सातवाँ अवतार यज्ञनामक हुआ। उस यज्ञने अपने ही लड़के याम आदि देवताओंके
साथ स्वाम्भुव मन्वन्तरकी रक्षा की ॥ १२ ॥ अष्टम अवतारमें भगवान्ने राजा नाभिको धर्मपत्नी 'मेरुदेवी' के उदरसे ऋषभावतार लेकर सब आश्रमोंसे पूजित परमहंस ॥ ५ ॥
योगियोंका मार्ग दिखलाया, जो धीर पुरुषोंके सेवन योग्य था ॥ १३ ॥ ऋषियोंके बहुत प्रार्थना करने पर भगवान्ने राजा पृथुनामक नवाँ अवतार ग्रहण किया। और
गोस्वरूप इस पृथिवीसे दुग्धरूपमें सकल औषधियोंका दोहन किया अर्थात् औषधि तो एक उपलक्षण मात्र है, संसारकी सब वस्तुएँ भगवान्ने इस पृथिवीसे दुह लीं। हे ब्राह्मणो इस
पृथिवीरूपी गाय दुहनेसे यह अवतार सब अवतारोंसे अत्यन्त मनोहर है ॥ १४ ॥ इसी तरह भगवान्ने चाक्षुनामक मन्वन्तरमें सब समुद्रोंके एकमें मिल जाने पर, जैसे वे प्रलयकालमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मिलते हैं; मत्स्यका रूप ग्रहण किया और नावरूपी पृथिवीमें राजा सत्यव्रत को बैठाकर उसकी रक्षाकी, जो आगे चलकर वही वैवस्वत मनु हुआ ॥ १५ ॥ सर्वव्यापक उसी भगवान्ने सुर और असुरोंके समुद्रका मथन करते समय ग्यारहवें अवतारमें कछुआ वन करके मन्दराचल पर्वतको अपने पीठपर धारण किया ॥ १६ ॥ बारहवां धन्वन्तरीका अवतार लेकर उस भगवान्ने देवताओंको अमृतका कलश लाकर दिया और तेरवें अवतारमें मोहिनी स्त्रीका रूप धारण करके दैत्योंको मोहित कर देवताओंको अमृतका पान कराया ॥ १७ ॥ चौदहवा 'नरसिंह' अवतार लेकर ब्रह्माके वरदानके कारण अजेय वने । उस दैत्योंके राजा हिरण्यकशिपुकी छाती भगवान्ने उस तरह फाड़ डाली जिस तरह चटाई वनानेवाला गाँठ रहित तृण ॥ १८ ॥ भगवन्का पन्द्रहवाँ अवतार वामनरूप था जिसका अर्थ—दुष्टोंका मद चूर चूर कर देने वाला । भगवान् पन्द्रहवाँ वामनावतार लेकर राजा बलिके यज्ञमें पहुँचे । वहाँ उसका सव कुछ ले

मपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥ सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ॥ दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ ॥ धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशमेव च ॥ अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥ १७ ॥ चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ॥ ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥ पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ॥ पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥ अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ॥ त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो त्रिःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥ ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥ एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ॥ रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धो नाम्नाऽजिनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥ अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ॥ जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥

लेनेकी चाहसे सिर्फ तीन डेग जमीनकी भिक्षा माँगी । और राजा बलिने बिना हिचकिचाहटके तीन डेग जमीन नाप लेने की स्वीकृति देदी । उस तीन डेगमें ही बलिका सर्वस्व अपहर कर स्वर्ग का राज इन्द्रको दे दिया ॥ १९ ॥ सोलहवें अवतारमें अर्थात् परशुरामावतारमें भगवान्ने राजाओंको ब्रह्मद्वेषी देखकर कुपित हो इस पृथिवीको इक्कीसवार क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया ॥ २० ॥ सतारहवें अवतारमें पराशरके वीर्यसे सत्यवतीके पेटमें व्यास रूपसे उत्पन्न हुए भगवान्ने 'इन पुरुषोंमें अब अधिक बुद्धि नहीं है' यह देखकर वेदरूपी वृक्षकी अनेक शाखाएँ तैयार कीं ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर अट्ठारहवें अवतारमें पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका रूप धारणकर देवताओंके कार्य सम्पादनकी अभिलाषासे समुद्र-बन्धन आदि पराक्रमोंसे भरे हुए अनेक आश्चर्यजनक कार्य किये ॥ २२ ॥ उन्नीसवें और बीसवें अवतारमें यादवोंके वंशमें भगवान्ने बलराम और श्रीकृष्ण रूपसे जन्म लेकर पृथिवीका बोझ उतारा ॥ २३ ॥ उसके बाद कलियुगके उपस्थित होनेपर देवताओंके द्वेषियोंको मोहित करने के लिए कीकट देशोंमें यानी गयाके प्रदेशोंमें भगवान् जिनके पुत्र बुद्ध नामसे विख्यात होंगे ॥ २४ ॥ तत्पश्चात् कलियुगकी सन्धिमें अपनी प्रजाकी सम्पत्तिका अपहरण करनेके लिए जब कि राजा लोग चोरोंके समान आचरण करने लगेंगे तब विश्वभावन भगवान् कल्कि नामसे विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर जन्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेंगे ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो, जिसप्रकार गहरे तालाबसे, जिसका जल कभी कम नहीं होता, छोटी छोटी नदियाँ हजारोंकी संख्यामें निकलती हैं उसीप्रकार सत्त्वगुण सागर हरिसे असंख्य अवतार प्रकट हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ नारद आदि ऋषि, स्वायम्भुव प्रभृति मनु ब्रह्मादि देव, महातेजस्वी मनुके पुत्र, तथा कश्यप आदि प्रजापति-ये सब भगवान् हरिके कला (अवतार) विशेष हैं ॥ २७ ॥ ये सब तो परमेश्वरके कोई एक अंश हैं और कलाविभूतियोंसे सम्पन्न हैं लेकिन कृष्ण तो भगवान् साक्षात् नारायण ही हैं। ये सब अवतार प्रत्येक युगमें दैत्योंसे परिपीडित लोकोंको सुखी बनाते हैं ॥ २८ ॥ जो मनुष्य सुबह और सामको पवित्र होकर भगवान्के अतिरहस्य जन्म कलाओंका भक्तिसे पाठ करता है वह संसारसे छुटकारा पा जाता है यानी वह मुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥ चिदेकरस जीवका यह स्थूल शरीर भगवान्की जो माया है उसके महदादिरूप गुणोंसे अपनेमें ही विरचित है ॥ ३० ॥ अज्ञानियोंने वायुके आश्रयसे रहनेवाले मेघोंके समूहका जैसे आकाशमें आरोप किया है अथवा जैसे पृथिवीकी धूलीका आरोप वायुमें किया है वैसे ही आत्मामें दृश्यत्वादिधर्मवाले शरीरका

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ॥ यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥ ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ॥ कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७ ॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥ इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥ २८ ॥ जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ॥ सायंप्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ॥ मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ ३० ॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ॥ एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥ अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययात्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥ यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ॥ संपन्न एवेति

आरोप किया है ॥ ३१ ॥ किञ्च, उन अज्ञानियोंने इस स्थूल शरीरसे भिन्न एक दूसरे शरीरका भी आरोप किया है; जो सूक्ष्म है, क्योंकि हाथ, पैर, आदि अवयवोंके परिणामोंसे अपरिगत सत्त्वादि गुणोंसे विरचित हुआ है। तात्पर्य यह कि आकार विशेषसे रहित होनेके कारण वह अतिसूक्ष्म है। कारण कि आजतक न तो वह आँखोंसे देखा गया और न कानोंसे सुना गया है। जो कोई वस्तु आकार विशेषसे युक्त रहती है वह हम लोगोंकी नाईं अवश्य दिखाई देती है या इन्द्रादिकी नाईं सुनाई देती है, परन्तु यह वैसा नहीं है। जो वस्तु न तो आँखोंसे दिखाई देती और न कानोंसे सुनी जाती है, ऐसी उस सूक्ष्मवस्तुके अस्तित्वमें तो आप सन्देह कर नहीं सकते, क्योंकि वह जीवकी उपाधिसे विभूषित है—'जीवो जीवेन निर्मुक्तो' 'जीवो जीवं विहाय' इत्यादि स्थलोंमें जीवोपाधिमें (लिङ्गदेहमें) जीव शब्दका प्रयोग होनेसे वह 'जीव' की उपाधिसे विभूषित है। भोगका घर होनेके कारण इस स्थूल शरीरको ही जीवकी उपाधिसे विभूषित क्यों नहीं करते ? एकलिङ्गदेहात्मक सूक्ष्म शरीरको 'जीव' उपाधिसे अलंकृत करने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा सन्देह आप कर नहीं सकते, क्योंकि वार बार उसका जन्म हुआ करता है ॥ ३२ ॥ चूँकि अविद्यासे आत्मामें कल्पित हैं, इसलिये जब ये स्थूल और सूक्ष्म शरीर दोनों श्रवण, मनन आदि भक्तिसे उत्पन्न विद्या द्वारा स्वरूप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के यथार्थ ज्ञानसे निषिद्ध हो जाते हैं तब यह जीव ज्ञानैकस्वरूप ही हो जाता है ॥ ३३ ॥ संसार रूपसे खेल खेल रही परमेश्वरकी यह माया भगवान्‌की दयासे ही यदि कहीं शान्त होकर विद्यारूपसे परिगत हो जाती है अर्थात् जब तक यह अविद्या रूपसे आवरण और विक्षेप करती रहती है तब तक उपरत नहीं होती। परन्तु जब वही विद्यारूपसे परिणत हो जाती है तब स्थूल और सूक्ष्म अपनी दोनों उपाधियोंको जलाकर बिना लड़कीकी अग्निके समान शान्त हो जाती है। उसके बाद यह जीव ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो ही जाता है, यह तत्वज्ञानियोंने कहा है और उस ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त कर यह जीव अपने परमानन्द स्वरूपमें शोभित होने लगता है ॥ ३४ ॥ जिस तरह मायाके सम्बन्धसे जीवका जन्मादि हुआ करता है उसी तरह अजन्मा, अकर्ता और अन्तर्यामी उस परमेश्वरके भी वेदोंमें गुप्तरूपसे वर्णित जन्म और कर्मोंका कवियोंने (ब्रह्मादि कवियोंने) वर्णन किया है ॥ ३५ ॥ जिसकी लीलाएँ निरर्थक नहीं हुआ करती

विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥ एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ॥ वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥ स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥ न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ॥ नामानि रूपाणि मनोवचोभिः सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥ ३७ ॥ स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ॥ यो मायया सन्तततयाऽनुवृत्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥ ३८ ॥ अथेह धन्या भगवन्त इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥ ४० ॥ निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥ ४१ ॥

वही ईश्वर इस सारे विश्वकी रचना करता है, पालन करता है और नाश करता है। परन्तु इसमें असक्त नहीं होता। बिल्कुल स्वतन्त्र वह ईश्वर सृष्टिकालमें सब भूतोंके अन्तर स्थित होकर रूप, रस, गन्ध आदि जो छः इन्द्रियोंके विषय हैं, उन्हें दूरसे ही गन्ध सूँघनेकी नाईं ग्रहण करता है परन्तु उनमें आसक्त नहीं होता, क्योंकि वह त्वचा, आँख, कान, नाक, जिह्वा और मन—इन छः इन्द्रियोंका नियन्ता है ॥ ३६ ॥ अपने मनसे रूपों और वचनोंसे नामोंका भलीभाँति विस्तार कर रहे उस जगत्कर्ता ईश्वरकी लीलाओंको भगवान्‌की भक्ति न करनेवाला कोई भी कुबुद्धि पुरुष तर्कादिके कौशलसे उस तरह नहीं जान सकता जिस तरह जादूगरकी करतूतोंको अज्ञानी ॥ ३७ ॥ परन्तु जो भक्त निष्कपट भावसे निरन्तर अनुकूल वृत्तिसे यानी सेवासे भगवान्‌के चरणकमलों की गन्धका सेवन करता है वह दुरन्तवीर्य, विश्वकर्ता, परमेश्वर भगवान् कृष्णका स्वरूप जानता है ॥ ३८ ॥ हे ऋषियो, सर्वज्ञ आप लोग धन्य हैं—कृतार्थ हैं क्योंकि इस तरह प्रश्नोंसे आप लोगोंने अपनी मनोवृत्ति अनन्यभावसे सब लोकोंके स्वामी भगवान् वासुदेवमें अर्पित कर दी है। जिस भावके उदित होनेपर मनुष्यको फिर महाभयंकर जन्म-मरणादिका आवर्तन नहीं होता यानी मनुष्य फिर आवागमनके चक्रमें नहीं पड़ता ॥ ३९ ॥ सर्ववेदतुल्य इस भागवत नामक पुराणकी रचना भगवान् वेदव्यासजीने की है, जिसमें पुण्य

दृष्टान्त—जैसे ईश्वर की लीला को प्राणी आत्म ज्ञान के बिना नहीं जान पाता। वैसे ही लोक में साधारण नट के व्यापार को अर्थात् उसके खेल में होने वाले चरित्र को जानना तो कठिन है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र वर्णित है ॥ ४० ॥ यह परम पूजनीय, कल्याणका घर और धनका खजाना है। सब वेदों और इतिहासोंमें सारपदार्थका यह सार यानी निचोड़ है। संसार के कल्याणके लिए वेदव्यासजीने यह भागवत शुकदेव नामक आत्मज्ञानी अपने लड़केको दिया था। और उस शुकदेवमुनिने इसकी कथा महाराज परीक्षित्को सुनाई थी, जो परम वैराग हो जानेके कारण मृत्युपर्यन्त अनशन व्रतका संकल्प करके परमहर्षियोंसे घिरे हुए गङ्गातटपर बैठे हुए थे। हे ब्राह्मणो, उस गङ्गातटपर तेजके पुञ्ज, विप्रर्षि श्रीशुकदेवजी महाराज परीक्षित्को भगवान्की कथा सुना रहे थे, मैं पहुंचा और उनके अनुग्रहसे वहीं पर बैठ गया। वहाँ पर जैसा श्रीशुकदेवमुनिसे संक्षेपमें मैंने अध्ययन किया है वह अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोगोंको विस्तार पूर्वक सुनाता हूँ ॥ ४१-४४ ॥ धर्म और ज्ञानके साथ भगवान् श्रीकृष्णके अपने परमपदमें चले जानेपर कलियुगमें ज्ञानरूपी आँखोंसे शून्य पुरुषोंके उद्धारके लिए इस समय यह भागवतपुराणरूपी सूर्यका उदय हुआ है ॥ ४५ ॥

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥ स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ ४२ ॥ प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः ॥ तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ॥४३॥ अहं चाध्यगम तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात ॥ सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ॥४४॥ कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

तीसरे अध्याय का सार—श्रीभगवान् का नानाविध चरित्र वर्णन पुरुषावतारादि से कहा गया है, और धर्मका आश्रय केवल श्रीमद्भागवत नामक महापुराण ही है।

* अथ चतुर्थोऽध्यायः *

व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥ वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥ कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ॥ कुतः सञ्चोदितः कृष्णः कृतवान् संहितां मुनिः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः ॥ एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥ ४ ॥

* जब तपस्या और प्रवचन आदिसे श्री वेदव्यासजीको सन्तोष न हो सका तब उन्होंने इस भागवत पुराणका प्रारम्भ किया, यह वर्णन *

श्रीव्यासजीने कहा--मैं आनन्दसे आप लोगोंको भगवान्की कथा सुनाऊँगा, यों कह रहे श्री सूतजीकी प्रशंसा करके हजारों वर्षमें पूर्ण होने वाले यज्ञ करनेकी इच्छासे बैठे हुए उन ऋषियोंमें वृद्ध कुलपति ऋग्वेदी शौनकजीने कहा ॥ १ ॥ शौनकजीने कहा--हे बोलनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ महाभाग सूतजी, भगवान्की वह पुण्य कथा हम लोगोंको सुनाइये जो भगवान् शुकदेवजीने परीक्षित् से कही थी ॥ २ ॥ किस युगमें, किस जगहपर और किस मतलबसे यह संहिता प्रवृत्त हुई अर्थात् महाभारतादि धर्मशास्त्रोंके रचियता वेदव्यासकी इस संहिताके बनानेमें कारण क्या है ? और किससे प्रेरित होकर कृष्णद्वैपायन व्यासजीने इस संहिताकी रचना की ॥ ३ ॥ उस व्यासजीके पुत्र श्रीशुकदेवजी महायोगी, ब्रह्मज्ञानी भेद-शून्य और एकमें ही चित्तलगानेवाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

थे, 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जगर्ति संयमी' इस स्मृतिके अनुसार उद्बुद्ध होकर संसारमें लोगोंसे छिपकर विचरण किया करते थे, जिससे मालूम पड़ता था कि यह बिल्कुल मूर्ख है ॥ ४ ॥ एक दिन आश्रमसे निकलकर जङ्गलकी ओर नगें शरीर दौड़े जा रहे अपने पुत्र शुकदेवजी के पीछे-पीछे व्यासजी दौड़े। रास्तेमें एक तालावमें अप्सराएं नंगी नहा रही थीं। उन लोगोंने व्यासजीको देखतेही मारे शर्मके अपने-अपने कपड़े पहन लिए। लेकिन आगे-आगे नंगे दौड़े जा रहे श्रीशुकदेवमुनिको देखकर कपड़े नहीं पहने, यह देखकर व्यास जीने उन सबोंसे कारण पूछा और उन्होंने उत्तर दिया कि भगवन् आपकी भेद-भरी दृष्टि है यानी 'यह स्त्री है' और यह पुरुष है' ऐसी आपकी दृष्टि है, लेकिन पवित्र दृष्टिवाले आपके लड़के की दृष्टि भेदभरी नहीं है, यही कारण है कि हमने उन्हें देखकर कपड़े न पहने ॥ ५ ॥ ऐसे उन्मत्त, गूंगे और जड़की नाई पहले कुरु और जाङ्गल नामक देशों में पहुँचकर उसके

दृष्ट्वाऽनुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥ ५ ॥ कथमालक्षितः पौरैः संप्राप्तः कुरुजाङ्गलान् ॥ उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥ ६ ॥ कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ॥ संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥ ७ ॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥ अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ॥ तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥ ९ ॥ स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः ॥ प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥ १० ॥ नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हाऽऽनीय धनानि शत्रवः ॥ कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११ ॥ शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ॥ जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किञ्चन ॥ मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्द-

बाद हस्तिनापुरमें विचरण कर रहे उनको वहाँ के नागरिकोंने कैसे पहचाना ॥ ६ ॥ हे सूतजी, यों पागलोंकी नाई भटक रहे शुकदेवमुनिके साथ पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न राजर्षि परीक्षित्की बातजीत कैसे हुई ? जहाँ यह भागवत संहिता उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ महाभाग शुकदेवमुनि गृहस्थोंके घर उतनी ही देर ठहरते हैं जितना समय गाय दुहनेमें लगता है और वह भी भिक्षाके लिए नहीं किन्तु उसका घर पवित्र करनेके लिए अतः इस तरहका पुरुष यहाँ वक्ता है, यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ८ ॥ हे सूतजी, अभिमन्युके लड़के राजा परीक्षित्को भगवद्भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, उनके आश्चर्यजनकमयी जन्म और कर्मोंका हम लोगोंसे वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ पाण्डवोंकी मर्यादा बढ़ानेवाला चक्रवर्ती वह राजा परीक्षित् अपने साम्राज्यकी सारी सम्पदाएँ छोड़कर गङ्गाके तटपर किसलिए मरणपर्यन्त अनशन व्रतका सङ्कल्प करके बैठा रहा ? ॥ १० ॥ शत्रु अपने कल्याणके लिऐ प्रभूत धनोंकी रासी लगाकर जिस राजा परीक्षित्के चरणपीठका चुम्बन किया करते थे; हे सूतजी, उस वीर युवकने अपने प्राणोंके साथ जिसका त्याग अत्यन्त कठिन है ऐसी राजलक्ष्मी छोड़देनेकी इच्छा क्योंकी ? ॥ ११ ॥ जो पुरुष भगवद्भक्तियोंमें तत्पर रहते हैं वे लोकके कल्याणके लिए, समृद्धि और ऐश्वर्यके लिए जीवन धारण करते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं न कि अपने स्वार्थके लिए। ऐसी स्थितिमें उस राजाने विरूप होकर दूसरोंके आश्रय भूत होकर शरीर क्यों छोड़ा? ॥ १२ ॥ इसलिए हे सूतजी, हमने आपसे जो कुछ प्रश्न किये हैं उन सबका उत्तर हमें दीजिये। क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इनों वर्णोंसे अलग रहनेके कारण वेदोंको छोड़कर अन्यत्र वाणि के विषयमें हम आपको पारंगत समझते हैं ॥ १३ ॥ सूतजीने कहा—तृतीय युगके समाप्तिकालमें द्वापर आनेपर भगवान्‌की कला रूपसे पराशरमुनिके वीर्यसे सत्यवतीमें योगी व्यासजी उत्पन्न हुए थे ॥ १४ ॥ वह एक दिन सरस्वती नदीके पवित्र जलमें स्नान करके सन्ध्या बन्दनादि नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर रविमण्डलके उदित होनेपर एक विविक्त देशमें यानी बदरिकाश्रममें बैठे हुए थे ॥ १५ ॥ भूत और भविष्यके ज्ञाता अमोघ दृष्टि वाले ऋषि व्यासजी अप्रत्यक्ष वेगवाले काल द्वारा किये गये प्रत्येक युगमें पृथक् पृथक् रहने वाले युगधर्मोंका परस्पर साङ्कर्य देखकर पृथिवीपर प्रत्येक युगमें

सात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥ स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचिः ॥ विविक्त देश आसीन उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥ परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ १६ ॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निःसत्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८ ॥ चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥ ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ॥ इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ॥ वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥ २१ ॥ अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ॥ इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥ त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥२३॥ त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ॥ एवं चकार भगवान् व्यासः कृपणवत्सलः ॥२४॥ स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसि

भौतिक शरीर आदिमें कालकृत शक्तिका ह्रास आदि देखकर एवं श्रद्धासे रहित धैर्यशून्य मन्दबुद्धि, अल्पायु और भाग्यहीन पुरुषोंकों दिव्यदृष्टिसे देखकर उस विषयकी चिन्ता करने लगे, जो सब वर्ण और आश्रमका हितकारक था ॥ १६-१८ उसके बाद चातुर्होत्र वैदिक कर्मको प्रजाओंकी शुद्धि करनेवाला देखकर, यज्ञ बराबर होते रहें इनका विच्छेद न हो, इसलिए एक ही वेदकी चार शाखाएँ कर डालीं ॥ १९ ॥ पृथक् किये गये वेदोंके चार नाम हैं—ऋग्, यजु, साम, अथर्व और इतिहास तथा पुराण पाँचवाँ वेद कहलाता है ॥ २० ऋग्वेद का अध्ययन करनेवाले पैल ऋषि हुए, सामका गान करनेवाले जैमिनी कवि और एक वैशंपायन ही अकेले यजुर्वेदमें निष्णात थे ॥२१॥ 'सुमन्तु' नामक क्रूर स्वभाव वाले मुनि अथर्ववेद के ज्ञाता थे। इतिहास और पुराणोंके ज्ञाता मेरे पिता रोमहर्षण थे। इन ऋषियोंने भी अपने-अपने वेदोंकी अनेक तरहसे विभाग कर डाला तथा आगे चलकर उनके शिष्योंकी परम्परासे उन वेदोंकी अनेक शाखाएँ हो गई ॥ २६ ॥ जिन वेदोंको पहले अतिमेधावी पुरुष धारण किया करते थे उन्हीं वेदोंको अल्पबुद्धिवाले पुरुष जिस तरह धारण कर सकें, ऐसा विचार करके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दीनदयाल भगवान् श्रीव्यासजीने वेदोंका विभाग कर डाला ॥ २४ ॥ स्त्री, शूद्र और द्विजबन्धुओंको (ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्योंमें जो पतित हैं उनको) वेदोंके श्रवणका अधिकार नहीं है। कर्मरूप श्रेयके साधनमें जो मूढ़ हैं यानी कर्म करके जो कल्याण प्राप्त नहीं कर सकते उन स्त्री शूद्रादिकोंका इसी प्रकारसे कल्याण हो। इस अभिप्रायसे उन लोगोंके ऊपर कृपाकरके भगवान् व्यासमुनिने महाभारतकी रचना की। परन्तु हे ब्राह्मणो, इस तरह लगातार दिन-रात प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर हुए व्यासजीका हृदय जब किसी तरहके भी कार्योंसे सन्तुष्ट न हो सका, तब सरस्वतीके किनारे खिन्न हृदय उस धर्मवित्ने पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर 'मुझे शान्ति नहीं मिल रही है, इसका क्या कारण है' यों तर्क करते हुए अपने मनमें यह कहा— नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनकर मैंने निष्कपट बुद्धिसे वेद गुरु और अग्निकी पूजाकी तथा उनकी आज्ञाओंका खूब पालन किया। महाभारतके बहाने मैंने वेदोंका अर्थ खोलकर दिखा दिया। जिस

मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥ इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ २५ ॥ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ॥ सर्वात्मकेनापि यदा नाऽतुष्यद्धृदयं ततः ॥ २६ ॥ नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥ २७ ॥ धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ॥ मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥२८॥ भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः॥ दृश्यते यत्र धर्मादि-स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥२९॥ अथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ॥ असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥३०॥ किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ॥ प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३१ ॥ तस्यैव खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ॥ कृष्णस्य नारदोऽभ्यागा-दाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥ ३२ ॥ तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ॥ पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

महाभारतमें स्त्री, शूद्रादि सभी अपना-अपना धर्म भलीभाँति देख रहे हैं। तथापि मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि, मेरा देहके अन्दर स्थित यह जीवात्मा वस्तु परिपूर्ण एवं ब्रह्मतः तेजस्वियोंमें अति श्रेष्ठ होता हुआ भी अपने असल स्वरूपके साथ तादात्म्यभावको न प्राप्त हुआ-सा प्रतीत हो रहा है ॥ २५-३० ॥ अथवा मैंने क्या विस्तारपूर्वक भागवत धर्मोंका निरूपण नहीं किया ? क्योंकि वे भागवतधर्म परमहंसोंके प्रिय तो हैं ही, भगवान् अच्युतके भी अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ यों अपनी आत्माको तुच्छ समझकर खिन्न हो रहे कृष्णद्वैपा-यनके पूर्वकथित आश्रममें कहींसे घूमते हुए नारदमुनि आ धमके ॥ ३२ ॥ नारदजी आ गये, यह जानकर सहसा उठकरके व्यासमुनिने देवताओंसे पूजित नारदकी विधिवत् पूजा की ॥३३॥

चौथे अध्याय का सार—सरस्वतीके पवित्र तटपर सन्ध्यावन्दन आदि नित्य कर्मसे निवृत्त होकर भगवान् व्यासजीने मनुष्योंकी आयु और बुद्धिका विचारकरके पहले वेदोंका विभागकर डाला। तदनन्तर ब्रह्मसूत्रकी रचना की। इसके बाद विशेषतः स्त्री और शूद्रोंकी सद्प्राप्तिके लिए महाभारतकी रचना की। इतना करने पर भी हार्दिक सन्तोष न मिलनेसे अपने जीवनको धिक्कार रहे थे तब तक नारदमुनिजी उनके पास पहुँच गये। चौथा अध्याय समाप्त ❋

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूतजीने कहा--हे ऋषियो, इसके बाद, हाथमें वीणा लिए हुए सुखसे बैठे मुसकुरा रहे-से महायशस्वी देवर्षि नारदजीने समीपमें आसन अलंकृत किये हुए विप्रर्षि वेदव्यासजीसे प्रसन्नमुखसे कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥ नारदजीने कहा—हे महाभाग पराशरपुत्र व्यासजी, आपका शरीराभिमानी आत्मा क्या उस शरीरसे सन्तुष्ट हो रहा है या मनोभिमानी आत्मा क्या उस मनसे सन्तोष पा रहा है ॥ २ ॥ धर्मादिक जिन वस्तुओंसे ज्ञान प्राप्त करना आपको अभिष्ट था, उसका ज्ञान आपको भलीभाँति हो चुका है और उनका अनुष्ठान भी आप अच्छी तरह कर चुके हैं, क्योंकि धर्मादि सब पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण महान् अद्भुत महाभारतकी आपने रचना की है ॥ ३ ॥ और अधिक क्या कहें जो नित्य पर-ब्रह्म

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

सूत उवाच ॥ अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिः प्राह विप्रर्षि वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ॥ परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥ जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् ॥ कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्मसनातनम् ॥ अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ॥ तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥ स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ॥ परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ॥ ६ ॥ त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ॥ परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥७॥ नारद उवाच ॥ भवता-

परमात्मा है उसके विषयमें आप अधिक विचार कर चुके हैं तथा आपने उसे प्राप्त कर लिया है फिर भी हे प्रभो, अपनेको अकृतार्थ-जैसे समझकर शोच क्यों कर रहे हैं ? ॥ ४ ॥ श्रीव्यासजीने कहा—हे नारदमुने, आपने जितनी बातें अभी कही हैं वे सबकी सब मुझमें विद्यमान हैं, फिर भी मेरा शरीर और मानस आत्मा सन्तुष्ट नहीं हो रहा है। इसलिए हे नारदजी, अगाध ज्ञानके भण्डार ब्रह्माजीके सुपुत्र आपसे मैं पूछता हूँ कि—उस असन्तोषका कारण क्या है, जो मेरे लिए बिल्कुल अस्पष्ट है ॥ ५ ॥ नारदजी, आप समस्त गुप्त बातें जानते हैं क्योंकि आपने उस असङ्ग पुराणपुरुषकी खूब उपासना की है, जो सङ्कल्पसे ही सत्व, रज और तम--इन गुणोंसे विश्वकी रचना, स्थिति और संहार करता है ॥ ६ ॥ किञ्च, आप तीनों लोकमें भ्रमण कर रहे सूर्यकी नाईं समदर्शी हैं। योगबलसे प्राणवायुकी नाईं सब प्राणियोंके अन्दर विचरण करते हुए आत्मसाक्षी (बुद्धि वृत्तियोंके ज्ञाता) बन गये हैं । अतः परब्रह्ममें योगसे निष्णात हुए और वेदोंमें स्वाध्याय नियमोंसे पारङ्गत हुए मुझमें जो अत्यधिक न्यूनता रह गई है, कहिये वह क्या है ? ॥ ७ ॥ नारदजीने कहा--हे व्यासजी, आपने भगवान्के निर्मल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यशका भलीभाँति वर्णन नहीं किया है, क्योंकि जिस धर्मादिज्ञानसे वह भगवान् खुश न हों। उस ज्ञानको मैं न्यून समझता हूँ ॥ ८ ॥ हे मुनिवर्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका एवं इनके साधनोंका जिस तरह आपने वर्णन किया है उस तरह भगवान् वासुदेवकी महिमाका वर्णन नहीं किया है अर्थात् धर्मादिकी तरह प्रधान रूपसे वासुदेवकी महिमाका वर्णन नहीं किया है ॥९॥ चित्र पदोंसे (*) युक्त भी जिस वाक्यने संसारको पवित्र करदेनेवाले भगवान् विष्णुके यशका यदि कभी वर्णन नहीं किया है तो वह कौवोंके तुल्य कामियोंके रतिका स्थान है; यों महर्षि लोग मानते हैं। जहाँ सुन्दर ब्रह्मपदके निवासी, सत्वगुणप्रधान मनमें विहार करनेवाले यति लोग कभी भी वैसे ही रमण नहीं करते, जैसे कमनीय पद्मखण्डके निवासी, मानसरोवरमें विहार करनेवाले हंस पक्षी कौवोंके क्रीड़ाके स्थान गड्ढोंमें ॥ १० ॥ वह वाक्योंका प्रयोग जनताके पापोंका नाश कर देता है, जिसमें अशुद्धशब्दोंका भरमार रहने पर भी प्रत्येक श्लोकमें अनन्त

ऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ॥ येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥८॥ यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥९॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥ १० ॥ तद्वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ११ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् । कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥१२॥ अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ॥ उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥१३॥ ततोऽन्यथा किञ्चन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ॥ न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥ १४ ॥ जुगु-

भगवान् विष्णुके यशसे अङ्कित नाम रहते हैं; जिन नामोंका महात्मा लोग, किसी वक्ताके मिल जाने पर वर्णन करते हैं और किसीके न मिलने पर एकान्तमें स्वयं कीर्तन करते हैं ॥११॥ निष्कर्म यानी ब्रह्म तदाकाकार होनेसे निष्कर्मतारूप निरञ्जन (मायिक उपाधिका निवर्तक) भी ज्ञान यदि भगवान् अच्युतकी भक्तिसे शून्य रहता है तो वह अधिक शोभित नहीं होता अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारके योग्य नहीं होता तब साधन और फलकालमें दुःखस्वरूप जो काम्य और अकाम्य कर्म है वह भी यदि ईश्वरमें समर्पित न हो तो भला फिर वह कैसे शोभित हो सकता है, क्योंकि बहिर्मुख होनेसे वह सत्त्वका शोधक तो है नहीं ॥ १२ ॥ इसलिए हे महाभाग, चूँकि आप यथार्थज्ञानी, शुद्धयशवाले, सत्यमें निरत और व्रतधारी हैं, अतः उरुक्रम भगवान् विष्णुकी उन लीलाओंका—संसारी जीवों के बन्धनसे मुक्तिके लिए समाधिसे—आप स्मरण कीजिये और स्मरणकर फिर वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥ भगवान्की लीलाओंसे अलग दृष्टि दे रहे अतएव प्रकारान्तरसे जो कुछ अन्य बातें कहनेकी चाह रख रहे आपकी बुद्धि—बोलनेकी इच्छासे मनमें स्फुरित हुए रूपों और नामोंसे अस्थिर होकर—कदाचित् दूसरे

(*) 'चित्रपदोंसे' यहाँ शब्दालङ्कारका ग्रहण है।

वाल्मिकी मुनि ने उलटा नाम जप कर संसार को पूर्ण शिक्षा दी-उलटा नाम जपत जग जाना। वाल्मिकी भये ब्रह्म समाना॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषयमें वैसेही स्थान न पाले जैसे कि वायुके झोंकसे झकझोर दी गई नौका ॥ १४ ॥ निन्द्य काम्यकर्म आदिमें स्वभावतः अनुरक्त हुए पुरुषको धर्मके लिए यानी सकामधर्म करने लिए उपदेश दे रहे आपका बड़ा भारी अन्याय है, क्योंकि जिसके वाक्यसे 'यही मुख्य धर्म हैं' यों निश्चय कर बैठा हुआ साधारण आदमी अन्य तत्त्वज्ञानी द्वारा किये गये या स्वयं आपके द्वारा किये गये काम्यकर्मोंका निषेध 'यह ठीक है' ऐसा नहीं मानेगा; बल्कि प्रवृत्तिमार्गके जो अधिकारी नहीं हैं उनका विषय उसे मान लेगा ॥ १५ ॥ अत्यन्त निपुण कोई एक ही सब कर्मोंके त्यागसे काल तथा देशसे अन्त और पार रहित, अनन्त—सर्वव्यापक इस भगवान्के निर्विकल्पक सुखात्मक स्वरूपका ज्ञान कर पाता हैं न कि प्रवृत्तिपथका कोई पथिक। इसलिए हे विभो, देहादिमें अभिमान रखनेवाले अतएव सत्त्वादि गुणोंके कारण प्रवृत्ति मार्गका अनुसरण कर रहे पुरुषोंके लिए भगवान्की लीलाओंका ही वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ अपना

प्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः ॥ यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥१५॥ विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ॥ प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान् दर्शय चेष्टितं विभोः ॥१६॥ त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ॥ यत्र क्व वाऽभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥ तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ॥ तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥१८॥ न वै जनो जातु कथञ्चनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ॥ स्मरन्मुकुन्दांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥ १९ ॥ इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ॥ तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥ त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक् परस्य पुंसः परमात्मनः

धर्म छोड़कर भगवान्के चरणकमलोंकी सेवा कर रहा पुरुष अपरिपक्व ही कथञ्चित् मर जाय भगवान्के चरणकमलोंकी सेवासे भ्रष्ट हो जाय या भ्रष्ट होकर किसी नीच योनिमें पैदा हो जाय तो भी भक्तिरसिक उस पुरुषका भक्तिरसकी वासनासे वासित होनेसे क्या अमङ्गल हो सकेगा? कभी नहीं तथा भगवान्का भजन न कर रहे पुरुषोंका ही धर्मानुष्ठानसे कौनसा अर्थ सिद्ध होगा? ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंको उसीकी प्राप्तिके लिए अधिक यत्न करना चाहिये जिसे स्थावरसे लेकर ब्रह्मपर्यन्तकी योनियोंमें भटक रहे जीव प्राप्त नहीं कर पाते। वह विषय सुख तो नरकादि जगहोंमें भी गम्भीर वेग वाले कालकी महिमासे पूर्व कर्मोंके द्वारा यों ही प्राप्त होता रहता है जैसे बिना प्रयत्नके दुःख ॥ १८ ॥ भगवान् मुकुन्दकी सेवा करनेवाला पुरुष कभी किसी तरह कुयोनिमें पहुंचकर भी केवल कर्ममें निष्ठा रखनेवालेकी नाईं संसारमें बार-बार नहीं आयेगा क्योंकि भक्तिरससे वशीभूत हुआ वह प्राणी वहाँ पर भी भगवान् मुकुन्दके चरणोंके आलिङ्गनकर स्मरणकर फिर उसे छोड़नेकी इच्छा न करेगा ॥ १९ ॥ जिससे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश होते रहते हैं, यह सब विश्व भगवद्रूप ही है तथा वह ईश्वर इस विश्वसे पृथक् हैं अर्थात् ईश्वरसे प्रपञ्च पृथक् नहीं है लेकिन ईश्वर तो इस प्रपञ्चसे अलग है ही। उसे तो आप स्वयं समझते हैं तथापि मैंने आपसे केवल एक इशारा कर दिया है ॥ २० ॥ हे अमोघ दृष्टिवाले व्यासजी, आप स्वयं अपनेको समझ लीजिये कि, आप जन्मरहित होते हुए भी विश्वके लिए परमपुरुष परमात्माके अंश स्वरूपसे उत्पन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए हैं । इसलिए भगवान् विष्णुके पराक्रमका खूब वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥ पुरुषके तप, स्वाध्याय, सुन्दर यज्ञ, वेदके अङ्गरूप विशेषोक्ति तथा ज्ञान और दान धर्मका यही एक नित्य फल कहा गया है, जो भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन करना है ॥ २२ ॥ हे व्यासजी, अपनी कहानी सुनाकर मैं पूर्व जन्ममें वेदवादी ऋषियोंकी किसी दासीके पेटसे पैदा हुआ था । जब मैं अभी बच्चा ही था तभी मेरी माँने वर्षाऋतुमें एक जगह निवास करनेकी इच्छा कर रहे योगियोंकी सेवामें मुझे नियुक्त कर दिया ॥ २३ ॥ यद्यपि वे मुनि लोग किसी व्यक्तिविशेषके ऊपर अधिक प्रेम दर्शानेवाले नहीं थे तथापि चाञ्चल्यरहित, जितेन्द्रिय, खेल-कूदमें मनोयोग न देनेवाले, सेवामें सदा लगे रहे अनुकूल वर्ताव रखने और थोड़े बोलनेवाले मुझ बालकके ऊपर उन्होंने बड़ी कृपाकी ॥ २४ ॥ मैं उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पात्रोंमें लगा हुआ जूठा अन्न केवल एकबार खाता था । उससे मैं बिल्कुल निष्पाप हो गया । इस तरह उनकी सेवामें लगे

कलाम् ॥ अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥ इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ॥ अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥२२॥ अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ॥ निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥२३॥ तेमय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ॥ चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥२४॥ उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ॥ एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥२५॥ तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ॥ ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ॥२६॥ तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ॥ ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥ इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ॥ सङ्कीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमापहा ॥२८॥ तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ॥ श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥ २९ ॥ ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ॥ अन्ववोचन्गमिष्यन्तः

रहे विशुद्ध चित्त मेरी उन लोगोंके धर्ममें यानी भगवद्भजनमें अभिरुचि उत्पन्न हो गई ॥ २५ ॥ व्यासजी, वहाँ प्रतिदिन भगवान् कृष्णका गुणगान कर रहे उन यतियोंकी दयासे भगवान्की मनोहर कथाए सुनता था । यों बराबर उन कथाओंका श्रद्धासे श्रवण कर रहे मेरा प्रिय यश भगवान्में अभिरुचि बहुत बढ़ गई ॥ २६ ॥ हे महामुने, जब दिव्य-यश भगवान् मेरी अभिरुचि खूब बढ़ गई तब मेरी बुद्धि भगवान्में टिक गई; जिससे 'प्रपञ्चरहित ब्रह्मस्वरूप मुझमें स्थूल और सूक्ष्म यह शरीर अपनी अविद्यासे कल्पित है, वस्तुतः है नहीं' यों तत्काल मैं देखने लगा ॥ २७ ॥ यों वर्षा और शरद्—इन ऋतुओंमें उन महात्मा मुनियोंसे गाये जा रहे भगवान् विष्णुके निर्मल यशका तीनों काल श्रवण कर रहे मेरे हृदयमें अपने रजोगुण तथा तमोगुणका नाश कर देनेवाली भगवान्की भक्ति उत्पन्न हो गई ॥ २८ ॥ यों त्वपदार्थके ज्ञानसे युक्त, दृढ़ भक्तिमान्, विनीत, पापशून्य, भगवान्में अनुरक्त, श्रद्धा रख रहे जितेन्द्रिय तथा मुनियोंकी सेवामें तत्पर मुझ बालकको, उन दीनवत्सल मुनियोंने चातुर्मास्य गवाकर वहाँसे अन्यत्र जाते समय दयाकर साक्षात् भगवान्से कहे गये उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ज्ञानका उपदेश दिया, जो अत्यन्त गुप्त था ॥ २९,३० ॥ जिससे ही मैंने विश्वस्रष्टा भगवान् वसुदेवकी मायाका प्रभाव जान सका। जिस मायाके प्रभावका ज्ञान हो जानेसे प्राणी भगवान्के स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन्, सबके नियन्ता ब्रह्मस्वरूप भगवान्में समर्पित जो कर्म आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—इन तीनों तापोंके निवर्तक होते हैं उन सब कर्मोंका मैंने आपसे अच्छी तरह वर्णन कर दिया है ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत व्यासजी, भूतोंको जो रोग जिससे उत्पन्न होता है वही द्रव्य रोग नहीं छुड़ा पाता, किन्तु अन्य द्रव्यों में मिलकर तो रोगको अवश्य ही जैसे छुड़ा देता है; वैसेही मनुष्योंके जो सब कर्म संसार बन्धनके हेतु रहते हैं वेही ईश्वरमें अर्पितकर दिये जानेपर कर्मोंको नाश करनेमें समर्थ हो जाते हैं ॥ ३३,३४ ॥ इस कर्मभूमिमें भगवदर्पण द्वारा भगवान्को प्रसन्न करनेवाला जो कर्म किया जाता है, उस कर्मके ही अधीन भक्तियाग समन्वित ज्ञान है ॥ ३५ ॥ जब भगवान्की शिक्षासे मनुष्य बार-

कृपया दीनवत्सलः ॥ ३० ॥ येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः ॥ मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितं ब्रह्मन् तापत्रयचिकित्सितम् ॥ यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥ आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ॥ तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३ ॥ एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ॥ त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥ ३४ ॥ यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ॥ ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् ॥ गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥ ३६ ॥ ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥३७॥ इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ॥ यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥ ३८ ॥ इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ॥ अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥ ३९ ॥ त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ॥ आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे व्यासनारदसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

बार कर्म करते रहते हैं तब श्रीकृष्णके गुण और नामोंका बराबर कीर्तन तथा स्मरण करते रहते हैं ॥ ३६ ॥ हे भगवन्, तुम्हें नमस्कार है, वासुदेवको मनसे नमस्कार करता हूँ। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ यों भगवान्के स्वरूपका वर्णन करनेवाले मन्त्रोंसे मन्त्रप्रतिपाद्य मूर्तिवाले या मूर्ति रहित यज्ञपुरुषका जो यजन (पूजन) करता है वह पुरुष सम्यग्दर्शी होता है यानी भगवान्का साक्षात्कार करनेवाला होता है ॥३८॥ हे ब्रह्मन्, मेरे द्वारा भलिभाँति अनुष्ठित अपने उपदेशको समझकर, भगवान् केशवने मुझे ज्ञान, ऐश्वर्य और अपनेमें प्रेम दिया ॥३९॥ हे बहुश्रुत व्यासजी, आप भी भगवान्के प्रसिद्ध यज्ञका प्रधानरूपसे वर्णन कीजिये, जिसके ज्ञान होनेसे विद्वानोंकी भी जाननेकी इच्छा समाप्त हो जाती है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्योंकि आध्यात्मिक आदि दुःखोंसे अत्यन्त पीड़ित हुए प्राणियोंके क्लेशकी शान्ति किसी दूसरी तरहसे नहीं मानी गई है ॥ ४० ॥

पञ्चम अध्यायका सार--हे नारदजी, महाभारत आदि धर्मग्रन्थोंकी रचना करनेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है इसका क्या कारण है ? यों व्यासजीके अपनी दुःखद आत्म-कहानी सुनानेपर श्रीनारदमुनिने उन्हें निम्नलिखित उपदेश दिया--हे व्यासजी, भगवान् कृष्णके गुणके विना वर्णाश्रम धर्मका समुचित अनुष्ठान भी निरर्थक ही है। संसार-सागरमें डूब रहे प्राणियोंको भगवान्के यशका श्रवण और कीर्तन आदि नावका काम देते हैं। पूर्व जन्ममें मैं एक दासीका लड़का था लेकिन भगवान्का गुणगान करनेवाले ब्राह्मणोंकी सेवा. करनेसे मेरी निर्मल बुद्धि भगवद्-भक्तिमें जम गई। बराबर भगवान्के नामोंका कीर्तन करता रहा उसका फल है कि मुझे तत्त्वज्ञान हो गया है और आये दिन शान्तिपूर्वक भगवान्के यशका कीर्तन करता हुआ स्वच्छन्द विचरता हूँ। इसलिए आप भी प्रधान रूपसे भगवान्के गुणोंका वर्णन कीजिये। पाँचवाँ अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ षष्ठोऽध्यायः ❋

सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ॥ भूयः पप्रच्छ तं ब्रम्हन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भिक्षुभि-र्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव ॥ वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥२॥ स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते वरं वयः॥ कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥३॥ प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ॥ न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥४॥ नारद उवाच ॥ भिक्षु-भिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥ वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किङ्करी ॥ मय्यात्मजेऽन-न्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥६॥ साऽस्वतन्त्रा न कल्पासीद्योगक्षेमं ममेच्छती ॥ ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥७॥ अहं च तद् ब्रह्मकुल ऊषिवांस्तदवेक्षया ॥ दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥८॥ एकदा निर्गतां गेहाद्दुहन्तीं निशि गां पथि ॥ सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः

❋ व्यासजीकी प्रतीतिके लिए पूर्व जन्ममें किये गये हरि कीर्तन से नारदजीका अपना भाग्योदय वर्णन ❋

सूतजीने कहा--हे ब्रह्मन्, इसतरह देवर्षि नारदका पहला जन्म और कर्म सुनकर सत्यवतीके पुत्र व्यासजीने उनसे फिर पूछा ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा--हे मुने, आपको विज्ञानोपदेश देनेवाले उन यतिनोंके वहाँसे दूर देश चले जानेपर बाल्य-अवस्थामें वर्तमान आपने पुनः क्या किया ? ॥२॥ हे ब्रह्मपुत्रनारदमुने, लड़कपनके बादकी आयु आपने किस व्यवहारसे गवाई और मृत्युकाल आनेपर इस दासीपुत्रभूत शरीरका आपने किस तरह त्याग किया ? ॥३॥ हे देवश्रेष्ठ, आपकी पूर्वकालकी स्मृतिको एक कल्पके बादके कालने कैसे नहीं नष्ट किया, क्योंकि यह काल सबको नष्ट कर देनेवाला है ॥४॥ नारदजीने कहा--हे व्यासमुने, विज्ञानोपदेश देनेवाले उन यतियोंके कहीं दूर देश चले जानेपर बचपनमें मौजूद मैंने उसके बादका समय यों गवाया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥५॥ मैं अपनी उस माँका एकही लड़का था, जो मेरी माँ ज्ञानशून्य एक दासी औरत थी। चूँकि मेरा दूसरा कोई आधार था नहीं, इसलिए मुझ लड़के पर वह बड़ा स्नेह करती थी ॥६॥ यद्यपि वह मेरे योगक्षेत्रकी अर्थात् जो चीज मेरे पास न थी उसे प्राप्त करने तथा जो चीज मेरे पास थी उसकी रक्षा करनेकी इच्छा रखती थी तथापि स्वतन्त्र न होनेके कारण कुछ करनेमें समर्थ नहीं हो पाती थी, क्योंकि यह सारा संसार परमात्माके वशमें उस तरह है, जिस तरह लकड़ीकी औरत यानी कठपुतली ॥७॥ मैं पाँच वर्षका बच्चा था, दिशाओं, देश और कालका ज्ञान मुझे था नहीं; मेरी माँ मेरा खूब प्यार करती थी इसलिए जब तक मेरी माँ जीती है तब तक इसे छोड़कर मेरा भाग जाना उचित नहीं है, यह विचार करके या यों कहिये कि माँके स्नेह बन्धनसे ही मैं उन ब्राह्मणोंके झुण्डमें निवास कर रहा था ॥ ८ ॥ एक समय मेरी मां रातमें गाय दुहनेके लिए घरसे बाहर निकली जा रही थी रास्तेमें कालसे प्रेरित पैरसे दबे हुए एक सांपने उसे डस लिया

कृपणां कालचोदितः ॥९॥ तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ॥ अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥१०॥ स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥११॥ चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ॥ जलाशयान् शिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥१२॥ चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ॥ नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥१३॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ॥ घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाऽजिरम् ॥ १४ ॥ परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ॥ स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥ १५ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आश्रितः ॥ आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ॥ औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७ ॥ प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ॥ आनन्दसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥१८॥

जिससे मेरी मां सदाके लिए इस संसारसे विदा हो गई ॥ ९ ॥ तब मैं उस अपनी मांकी मृत्युका भक्तोंके कल्याणकी चाह रखनेवाले परमेश्वरकी दया समझकर वहांसे उत्तर दिशाकी ओर चल दिया ॥ १० ॥ उस ओर मैंने ऐश्वर्योंसे सुसम्पन्न हरे-भरे अनेकों देश, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंसे बसे गांव, गायोंके झुण्ड, रत्नोंकी खानें, खेतिहरोंके गांव, पर्वतोंके नीचेके गांव, पुष्पवाटिकाएं वन और उपवन ॥ ११ ॥ सोने और चांदियोंसे चित्र-विचित्र पर्वत, हाथियोंकी सूड़ोंसे तोड़ दी गई शाखाओंवाले वृक्ष, पवित्र जलोंसे भरे तालाब तथा देवताओंसे सेवित, खिले हुए कमलोंसे युक्त, विचित्र शब्द करनेवाली चिड़ियोंकी चहक और भौरोंके गुञ्जारसे मनोहर अनेक सरोवरोंको लाँघते हुए अकेले ही मैंने घोर भयङ्कर विस्तृत जङ्गल देखा, नलवेणु तथा सरकण्डोंके झुण्डों, कुशा और वायुके आघातसे स्वयं झंकार करनेवाले बांसोंसे दुर्गम था और जो केवल सांपों, उल्लुओं तथा सियारोंका क्रीडास्थान बन चुका था ॥ १२-१४॥ उस समय मेरी इन्द्रियां, आत्मा और देह थक गई थी, भूख प्याससे जब मैं बेचैन हो गया, तब एक नदीके हृद (कुण्ड) में स्नानकर आचमन करके जल पिया जिससे मेरी थकावट दूर हो गई ॥ १५ ॥ उस निर्जन जंगलमें एक पीपलके पेड़के नीचे बैठकर जैसा सुना था उसके अनुसार, अपने हृदयमें स्थित परमात्माका मनसे ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भक्तिके वशीभूत चित्तसे भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान कर रहे तथा आंखोंमें आंसू भर लाये मेरे हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुजी धीरे-धीरे आविर्भूत होने लगे ॥ १७ ॥ हे मुने, उस समय मेरे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अङ्गोंमें रोमाञ्च हो गया। अत्यन्त सन्तुष्ट, आनन्दके सागरमें लीन हुए मैंने उस समय अपना शरीर या दूसरा और कुछ भी नहीं देखा॥ १८ ॥ उसके बाद शोक दूर करने वाला मनमोहन जो भगवान्‌का रूप है वह सहसा न देखकर व्याकुलतासे खिन्न हृदय सा होकर जागरूक हो गया ॥ १९ ॥ फिर वह रूप देखनेकी लालसासे मैं अपना मन हृदयमें लगाकर बार बार ध्यान करके भी जब वह रूप न देख सका तब मैं अतृप्त होकर आतुर- सा हो गया ॥ २० ॥ यों एकान्तमें भगवान्‌के रूप देखनेकी लालसासे यत्न कर रहे मुझसे वेदवाणीके अविषय भगवान्‌ने सुन्दर गम्भीर शब्दके द्वारा (आकाश वाणी द्वारा) मेरे शोकको नष्ट करते हुए से कहा—हे मेरे द्विज भक्त, नारद तुम इस जन्ममें यहाँ मेरा दर्शन करनेके योग्य नहीं हो, क्योंकि कामादि मलोंसे रहित न हुए कुयोनियों को मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। २१-२२ ॥ हे पापशून्य नारदजी, जो केवल एक बार मैंने अपना स्वरूप तुम्हें दिखलाया, इसका सिर्फ इतनाही

रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम् ॥ अपश्यन्सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ॥ वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥ २० ॥ एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् ॥ गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव् ॥२१॥ हन्तास्मिन् जन्मनि भवान्न मां द्रष्टुमिहार्हति ॥ अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥ २२ ॥ सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ॥ मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥२३॥ यत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ॥ हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनताम्‌सि ॥ २४ ॥ मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्यते कर्हिचित् ॥ प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥ २५ ॥ एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ॥ अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥ २६ ॥ नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि

मतलब था कि तुम्हारी प्रीति मुझमें बनी रहे। कारण कि मेरे दर्शनकी कामना रखनेवाला साधु पुरुष अपने हृदयकी सभी कामनाओंको धीरे धीरे छोड़ देता है यानी उसके अन्तः करणमें और कोई दूसरी चाह नहीं रहती ॥ २३ ॥ थोड़े दिन तक सज्जनोंकी जो तुमने सेवाकी है उसीका यह फल है कि मुझमें तुम्हारी बुद्धि जम गई है। इसलिए निन्दनीय इस शरीरको छोड़कर तुम आगे चलकर मेरे सेवक बनोगे ॥ २४ ॥ मुझमें अच्छी तरह लगी हुई तुम्हारी यह बुद्धि कहीं विपत्तिमें न फँसेगी यानी किसी तरह नष्ट नहीं होगी। सम्पूर्ण प्रजाओंका संहार हो जानेपर भी मेरी दयासे तुम्हारी स्मृति यों ही त्यों-की त्यों बनी रहेगी तात्पर्य यह है तुम्हें अपनी पूर्व जन्मकी बातें सदा स्मृतिपथमें आती रहेंगी ॥ २५ ॥ इतनी बातें कहकर हृदयाकाशमें स्थित मूर्तिवाले, सबके नियामक और नजदीक रहते हुए भी न दिखाई पड़नेवाले वे अत्यन्त अद्भुत स्वरूपवाले भगवान् चुप हो गये और मैंने भी ब्रह्मादि देवोंमें सबसे बड़े उस अदृष्ट भगवान्‌को, जिन्होंने मेरे ऊपर इतनी बड़ी दया की है सिरसे प्रणाम किया ॥ २६ ॥ इसके बाद लज्जा छोड़कर किसी और दूसरी चीजकी कामना न करके घमण्ड तथा

दृष्टान्त—मुनियों की सेवा करने वाली श्री नारद जी की माता का सर्प द्वारा मरण सुनना—यह बड़े आश्चर्य की बात है।
उत्तर—पुत्र नारद के ज्ञान की मस्ती में संलग्न हो जानेपर शूद्र जाति में उत्पन्न मुझे अपनी शरण में कीजिये, यों कहने पर उसकी इस प्रकार इह लीला समाप्त हुई।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

डाहसे शून्य होकर सन्तुष्ट मनसे अनन्त भगवान्के नामोंका पाठ करता हुआ तथा रहस्योंसे भरी हुई कल्याणमयी उनकी करतूतें याद करता हुआ मैं अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा करके बहुत दिनों तक इस पृथिवी पर विचरण करता रहा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्, इस तरह आशक्तिसे शून्य तथा शुद्ध स्वरूप होकर भगवान् कृष्णमें अपनी दृढ़ बुद्धि लगाकर इधर उधर भटक रहे मेरा मृत्युकाल सुदामा पर्वतके ऊपर भगवान् द्वारा निर्दिष्ट समयपर बिजलीके समान अचानक आकार उपस्थित हो गया ॥ २८ ॥ पहले कहनेके अनुसार भगवान्के द्वारा उस पार्षदरूपमें मुझे पहुचा दिये जानेपर मेरा यह पाञ्चभौतिक शरीर पृथिवी पर गिर पड़ा, क्योंकि अब इसके प्रारब्ध कर्मोंकी बिल्कुल समाप्ति हो चुकी थी ॥ २९ ॥ कल्पकी समाप्तिके समय इन तीनों लोकोंका उपसंहार कर प्रलयकालके समुद्रके जलके भीतर भगवान् नारायणके सो जानेपर शयनकी इच्छा कर रहें ब्रह्मके पेटमें उनके निःश्वासोंके साथ मैं भी चला गया ॥३०॥ हजार

कृतानि च स्मरन् ॥ गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥ २७ ॥ एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ॥ कालः प्रादु-
रभूत्काले तडित्सौदामनी यथा ॥ २८ ॥ प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ॥ आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ॥ २९ ॥
कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ॥ शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥ ३० ॥ सहस्रयुगपर्यन्त उत्थायेदं सिसृक्षतः ॥ मरीचि-
मिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः ॥ अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥३२॥
देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥ मूर्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥ ३३ ॥ प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ॥
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥३४॥ एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ॥ भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥ ३५ ॥
यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ॥ मुकुन्दसेवया यद्वत्तथात्माऽद्धा न शाम्यति ॥ ३६ ॥ सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥

युगोंके व्यतीत हो जाने पर पुनः उठकर इस संसारकी रचना करनेकी इच्छा कर रहे ब्रह्माजीकी इन्द्रियोंसे मैं और मरीचि आदि ऋषि उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ मैं भगवान् महाविष्णुकी दयासे अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके तीनों लोकमें बाहर भीतर कहीं भी वे रोक टोक घूमता रहता हूँ ॥ ३२ ॥ निषाद आदि स्वरूपी ब्रह्मसे विभूषित अर्थात् स्वयं सिद्ध सात स्वरोंसे युक्त भगवान् द्वारा दी गई इस वीणाको प्रत्येक रागकी इक्कीस मूर्च्छनाओंसे युक्त कर अर्थात् बजा करके भगवान् हरिकी कथाओंका गान करता हुआ मैं विचरता रहता हूँ ॥३३॥ सम्पूर्ण तीर्थ-रूपी चरणवाले तथा प्रिय भक्तरूपी श्रोत्रवाले वे भगवान् प्रेम पूर्वक उनके गुणोंका गान करते हुए मुझको आदरपूर्वक बुलाये हुए-से शीघ्र आकर हृदयमें दर्शन देते हैं ॥ ३४ ॥ बार-बार विषय भोगकी इच्छासे आतुर चित्तवाले प्राणियोंके लिए भगवान्के चरित्रोंका यह प्रतिक्षण कीर्त्तन ही भवसागरसे पार लगानेवाली नौका देखी गई है ॥ ३५ ॥ काम लोभरूपी दुश्मनोंसे बार-बार पीडित हुआ मन भगवान् मुकुन्दकी सेवासे जिस तरह शीघ्र उपशान्त हो जाता है उस तरह यम, नियम आदि योग मार्गोंसे नहीं॥ ३६ ॥ हे पापशून्य व्यासजी, जो कुछ आपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुझसे पूछा था, वह अपना जन्म-कर्मका रहस्य सब कुछ मैंने आपसे सुना दिया, जिससे आपके चित्तको खूब शान्ति मिले ॥ ३७ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनक आदि ऋषियो, इसतरह नारदमुनि सत्यवतीके लड़के व्यासजीसे बातें करके उनसे आज्ञा लेकर किसी प्रकारका अपने मनमें सङ्कल्प न कर वीणा बजाते हुए वहाँसे चल दिये ॥ ३८ ॥ अहो, यह देवर्षि नारद मुनि धन्य हैं, जो शार्ङ्गधन्वा भगवान्की कीर्तियोंका अपनी वीणा द्वारा गान करते हुए स्वयं आनन्दमें डूबकर अनेक विध दुःखोंसे परिपीडित इस संसारको आनन्दमें डूबा देते हैं ॥ ३९ ॥

जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ॥ आमन्त्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ३८ ॥ अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ॥ गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अध्यायसार—कौतुकसे परिपूर्ण व्यासजीके नारदजीसे दासी पुत्रकी तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति कैसे हुई, यह पूछनेपर नारदजीने कहा—हे व्यासजी, गाय दुहते समय सांपके डस देनेपर जब मेरी मांकी मृत्यु हो गई तब इस संसारमें कुछ फँसानेवाली और कोई दूसरी चीज तो थी नहीं। मेरा स्नेह बन्धन टूट गया था। उस समय मेरी केवल पांच वर्षकी आयु थी। मैं उस जङ्गलकी ओर चल दिया, जहां चित्तसे विक्षोभ होनेकी आशङ्का नहीं थी। जङ्गलमें घूमते हुए भूख-प्याससे व्याकुल मैं एक तालाबके किनारे जा पहुँचा। वहां स्नानकर आचमन किया और उसके बाद मैंने खूब जलका पान किया। उससे मेरी कुछ थकावट दूर हो गई। उसके बाद एक पीपलके पेड़के नीचे बैठकर भगवान्का ध्यान करने लगा। अचानक मुझे एक बार भगवान्के दर्शन हुए। मैं उस समय मूर्च्छित हो गया था। होश आजाने पर भगवान्का वह रूप मुझे फिर न दिखाई पड़ा। मैं वह रूप फिर देखनेकी इच्छासे बेचैन हो रहा था तब तक आकाशवाणी हुई इस जन्ममें अब फिर तुझे मेरा रूप दिखाई नहीं देगा। दूसरे जन्ममें तुम मेरे सेवक बनोगे। तथा मेरे रूप अमृतका पान करोगे प्रलय होने पर मैं भी ब्रह्माके पेटमें चला गया और जब दूसरी सृष्टि हुई तब फिर मरीचि आदि ऋषियोंके साथ उत्पन्न हुआ। भगवान्का गुणगान करता हुआ मैं आज अप्रतिहत मतिसे तीनों लोकोंमें विचरता हूँ। जब चाहता हूँ भगवान् मुझे दर्शन दे जाते हैं। इस संसार-सागरसे पार पानेके लिए भगवान्के चरितोंका कीर्तन ही एकमात्र नौका है। हे व्यासजी, यही मेरी आत्म-कहानी है।

* अथ सप्तमोऽध्यायः *

शौनक उवाच ॥ निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः ॥ श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे ॥ शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥ २ ॥ तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरी-

* भागवत श्रोता राजा परीक्षित्का जन्मवर्णन करनेके पहले सोये हुए द्रौपदीके बच्चोंका बध करनेसे अश्वत्थामाको क्या दण्ड मिला ? यह वर्णन *

शौनकजीने कहा—हे सूतजी, नारदमुनिके चले जाने पर उनका अभिप्राय सुनकर बदरिकाश्रममें निवास करनेवाले सर्वसमर्थ भगवान् वेदव्यासजीने बादमें क्या किया ? ॥ १ ॥ सूतजीने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्भव था नहीं, इसलिए जब अश्वत्थामाने अपनेको रक्षकहीन देख लिया यानी अश्वत्थामाको जब यह विश्वास हो गया कि अब मुझे अर्जुनसे बचानेवाला दूसरा कोई नहीं है तब उसने ब्रह्मास्त्रको ही अपना एकमात्र संरक्षक समझा ॥ १९ ॥ उसके बाद जलका आचमन कर ध्यान करके ब्रह्मास्त्रका उपसंहार (ब्रह्मास्त्र छोड़नेके बाद फिर उसे वापिस कैसे किया जाता है, यह) न जानते हुए भी प्राण-नास उपस्थित समझकर अश्वत्थामाने छोड़ दिया ॥ २० ॥ अस्त्रसे एक प्रचण्ड तेज सभी दिशाओंमें प्रकट हो गया, यह देखकर तथा उससे प्राणनाशक विपत्ति आई देखकरके भगवान् श्रीकृष्णजीसे अर्जुनने कहना आरम्भ किया ॥२१॥ अर्जुनने कहा—हे महाभाग, हे अपने भक्तोंको अभयदान देनेवाले श्रीकृष्ण, संसार रूपी आगसे जल रहे जीवोंके प्राणरक्षक अकेले एक आपही हो ॥ २२ ॥ क्योंकि आप प्रकृतिसे परपुरुष, सबके मूल कारण और साक्षात् ईश्वर हो । अपनी शक्तिसे मायाका अभिभव

सलिलं सन्दधे तत्समाहितः ॥ अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥ २० ॥ ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतोदिशम् ॥ प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥ २१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयङ्कर ॥ त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥ २२ ॥ त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ॥ मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥ स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ॥ विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम्॥२४॥ तथाऽयं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥ स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥२५॥ किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥२६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ॥ नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते॥२७॥न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा॥२८॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा । स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय सन्दधे ॥ २९ ॥ संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी

करके अपने कैवल्यस्वरूपमें ही आप स्थित हो ॥ २३ ॥ वही आप अपने पराक्रमसे मायासे विमोहित चित्तवाले जीवोके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी कल्याणका सम्पादन करते हो ॥ २४ ॥ और आपका जो यह श्रीकृष्णावतार हुआ है वह भी पृथ्वीका भार उतारनेके लिए एवं अनन्य भक्ति करनेवाले अपने परमभक्तों तथा यादवोंको पुनः पुनः आपके स्वरूपका ध्यान करनेके लिए ही हुआ है ॥ २५ ॥ हे देव-देव, सभी दिशाओंमें जो यह परमदारुण तेज आ रहा है, यह क्या है ? कहाँसे आरहा है ? यह मैं कुछ नहीं समझ पाता ॥ २६ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे अर्जुन, समझ लो कि यह द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र है । यद्यपि उसको यह मालूम नहीं है कि यह कैसे लौटाया जाता है तथापि प्राणबाधा उपस्थित होजानेसे उसने छोड़ दिया है ॥ २७ ॥ इस ब्रह्मास्त्रका निवर्तक दूसरा कोई अस्त्र नहीं, इसलिए तुम ब्रह्मास्त्र छोड़कर उसके तेजसे सभी दिशाओंमें फैले हुए इस ब्रह्मास्त्रके उत्कट तेजको काट डालो

दृष्टान्त—जो ब्रह्मास्त्र तीन लोक को नाश कर सकता था, वह शीतल क्यों हो गया।
उत्तर—जहाँ हृदय में साक्षात् श्रीभगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी की मूर्ति विराज रही है। वहाँ बड़े २ एटम बम क्या कर सकेगें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्योंकि ब्रह्मास्त्र छोड़ने और लौटानेमें तुम तो अत्यन्त कुशल हो ॥ २८ ॥ सूतजीने कहा—हे ऋषियो, भगवान् श्रीकृष्णने जो कहा उसे सुनकर शत्रुरूपी वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुनने जलाचमन करके भगवान्की प्रदक्षिणाकर ब्रह्मास्त्रके निवारणके लिए अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया ॥ २९ ॥ उसके बाद उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंके असंख्य बाणोंसे घिरे हुए तेज परस्पर मिलकर स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें व्याप्त हो करके प्रलय कालके सूर्य तथा अग्निकी नाई बढ़ने लगे ॥ ३० ॥ उस समय अश्वत्थामा और अर्जुनके ब्रह्मास्त्रोंका भयङ्कर तेज तीनों लोकोंको जला रहा था, यह देखकर उस तेजसे जल रही सभी प्रजाओंने यही समझा कि क्या यह प्रलयकालीन अग्नि तो नहीं है ? ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण प्रजाओं और वह सब लोकोंका नाश जानकर तथा भगवान् श्रीकृष्णकी सम्मति जान करके अर्जुनने दोनों ब्रह्मास्त्रोंको लौटा लिया ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर क्रोधके मारे लाल आंखे कर अर्जुनने गौतमवंशमें उत्पन्न हुई कृपीके दारुण

शरसंवृते ॥ आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥३०॥ दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रीँल्लोकान्प्रदहन्महत् ॥ दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥ ३१ ॥ प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ॥ मतं च वासुदेवस्य सञ्जहारार्जुनो द्वयम् ॥ ३२ ॥ तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ॥ बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥ शिबिराय निनीषन्तं रज्ज्वा बद्ध्वा रिपुं बलात् ॥ प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥३४॥ मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ॥ योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥ मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ॥ प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ॥ तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम ॥ आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८ ॥ तदसौ वध्यतां पाप आततायात्मबन्धुहा ॥ भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ॥

लड़के अश्वत्थामाको शीघ्र पकड़कर उस तरह बांध दिया, जिस तरह यज्ञीय पशुको अपना धर्म समझकर रस्सीसे यज्ञ करनेवाला बांध देता है ॥ ३३ ॥ अपने दुश्मन अश्वत्थामाको जबरदस्ती रस्सीसे बांधकर शिविरमें ले जा रहे अर्जुनसे कमलाक्ष भगवान् श्रीकृष्णने बहुत कुपित होकर कहा—हे पार्थ, इसकी रक्षा करना तुम्हे उचित नहीं है। इस नीच ब्राह्मणको मार डालो, जिसने रातमें सोये हुए निरपराध बच्चोंकी निष्कारण हत्या की है ॥ ३४, ३५ ॥ शराब पीकर मतवाले बने हुए, असावधान रहनेवाले ग्रहादिके कारण पागल हुए, सोये हुए बालक औरत, उद्यम न करनेवाले, शरणमें आये हुए, रथसे शून्य और भयभीत हुए शत्रुको धार्मिक लोग नहीं मारते ॥ ३६ ॥ जो दयाहीन, दुष्ट दूसरोंके प्राणोंसे यानी दूसरोंका प्राण लेकर अपने प्राणोंका परिपोषण करता है उसे मार डालना उसका ही कल्याण करना है, क्योंकि इस तरहके पापियोंको यदि दण्ड नहीं दिया जाया, तो वह पापी दण्डस्वरूप प्रायश्चित्तसे रहित दोषके कारण अधोगतिको ही प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ और तुमने द्रौपदीका पुत्रशोक दूर करनेके लिए उससे जो यह कहा है कि हे भामिनि, तुम्हारे बच्चोंकी हत्या करनेवाले अश्वत्थामाका सिर काटकर तुम्हें ला दूंगा—यह बात मेरे सामनेकी है, मैं वहीं खड़े-खड़े सुन रहा था और तुमने द्रौपदीसे कही थी ॥ ३८ ॥ इसलिए अपने बच्चोंका नाश करनेवाले आततायी पापी इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अश्वत्थामाको मार डालो। हे वीर, इस कुलाङ्गारने बालकोंको मारकर धृतराष्ट्र और दुर्योधनका भी बुरा ही किया है उन्हें भी इस कार्यसे अत्यन्त दुःख ही हुआ है, क्योंकि वंशके विद्यमान रहते उनका भी उपकार ही होता ॥ ३९ ॥ इस तरह अर्जुनके धर्मकी परीक्षा कर रहे भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको मरनेके लिए यद्यपि उसे प्रेरित किया तथापि अपने बच्चोंका वध करनेवाले भी गुरुपुत्र अश्वत्थामाको मारनेकी अर्जुनने इच्छा नहीं की क्योंकि वह एक महान् आत्मा था। उसने मनमें विचार किया--यह अश्वत्थामा यद्यपि आततायी है, फिर भी है तो ब्राह्मण और गुरुका पुत्र ही। इसे मारना मुझे उचित नहीं है ॥ ४० ॥ बादमें, उस अर्जुनने, जिसके रथके सारथि भगवान् गोविन्द हैं, अपने शिविरमें पहुंचकर अपने मरे हुए पुत्रोंका शोक कर रही द्रौपदीको अश्वत्थामा ले जाकर समर्पित कर दिया ॥ ४१ ॥ पशुवत् रस्सीसे बाँधकर उस तरह लाये गये, सोये हुए बच्चोंकी हत्यारूप दारुण कर्म करनेसे नीचेकी ओर मुँह

नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महं महान् ॥ ४० ॥ अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः ॥ न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान्हतान् ॥ ४१ ॥ तथाऽऽहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ॥ निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥ उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती ॥ मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥ ४३ ॥ सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ॥ अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥४४॥ स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥ तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्याऽऽस्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ॥ वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मारोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ॥ यथाहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥४७॥ यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः ॥ तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम् ॥४८॥ सूत उवाच ॥

किये हुए महारथी अपकारी गुरुके पुत्र अश्वत्थामाको देखकर सुन्दर स्वभाववाली द्रौपदी दयासे पिघल गई। कृपापूर्ण दृष्टिसे एक बार सिरसे पैर तक उसे देखकर तत्काल ही प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ रस्सीसे बाँधकर अश्वत्थामाको लाना द्रौपदीको बरदाश्त न हो सका। वह पतिव्रता देवी सहन न करती हुई झट बोलने लगी--छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये यह ब्राह्मण साक्षात् गुरु है ॥ ४३ ॥ जिनकी दयासे आपने गोप्यमन्त्रोंके साथ धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की है और जिनके अनुग्रहसे 'अस्त्र कैसे छोड़े जाते और लौटाये जाते हैं' इत्यादि विधियोंके साथ सम्पूर्ण अस्त्रोंकी शिक्षा आपने प्राप्त की है ॥ ४४ ॥ वही यह भगवान् द्रोणाचार्य पुत्ररूपसे उपस्थित हैं। उनके शरीरका आधा हिस्सा तो कृपी नामसे उनकी धर्म-पत्नी आज भी वर्तमान हैं। चूँकि वह वीर बच्चा पैदा करनेवाली थीं, इसलिए अपने पतिका उन्होंने अनुगमन नहीं किया ॥ ४५ ॥ इसलिए हे धर्मज्ञ महाभाग, वह गुरुकुल आपसे दुःख पाने योग्य नहीं है,

एक समय पुरातन शिष्य ने गुरुपुत्र को सुवर्ण दान लेने के लिए अपने घर बुलाने का विशेष आग्रह किया। स्वीकार कर लेने पर वे दोनों रास्ते में चले जा रहे थे कि शिष्य की दैव योग से अकस्मात् बुद्धि विपरीत हो जाने मात्र से गुरुपुत्र का हनन कर उनकी सारी वस्तु ग्रहण करली और गुरु जी से भी सब सत्य कथा कह सुनाई। इससे गुरु प्रसन्न हुए और उनके प्रसाद से पुत्र भी जीवित हो गया। अर्थात् संसार में गुरु या गुरुकुल में श्रद्धा रखने वाला प्राणी कभी भी विपत्ति में नहीं पड़ सकता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किन्तु सदा पूज्य और बन्द्य है ॥ ४६ ॥ जिस तरह अपने बच्चोंकी मृत्युसे दुःखी होकर बार-बार अपने मुखपर आँसुओंकी झड़ी लगाती हुई मैं रोती फिरती हूँ, उसी तरह अश्वत्थामाकी माता गौतमकी पुत्री पतिव्रता कृपी न रोती फिरें ॥ ४७ ॥ अजितेन्द्रिय जिन क्षत्रियोंसे ब्राह्मणकुल कुपित किया जाता है, शोकसे व्याप्त वह ब्राह्मणकुल शीघ्रही सपरिवार उन क्षत्रियोंका कुल जला डालता है ॥ ४८ ॥ सूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, इस तरह धर्मयुक्त, न्यायके अनुकूल करुणासे परिपूर्ण, निष्कपट, समान और महत् द्रौपदीके वचनका धर्मराज युधिष्ठिरने अनुमोदन किया ॥ ४६ ॥ नकुल सहदेव, सात्यकि, अर्जुन देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और वहाँ पर उपस्थित जो दूसरे पुरुष तथा औरतें थीं, उन सबने द्रौपदीके बचनकी प्रशंसा की ॥ ५० ॥ लेकिन वहाँपर अकेले भीमसेनने कुपित होकर कहा—जिस अश्वत्थामाने न तो अपने लिए और न राजाके लिए ही, किन्तु व्यर्थमें सोये हुये बच्चोंकी हत्याकी उस अश्व-

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ॥ राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥ ४६ ॥ नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनञ्जयः ॥ भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥५०॥ तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः ॥ न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून्वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ॥ आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥५३॥ कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ॥ प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ॥ मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥५५॥ विमुच्य रशना-बद्धं बालहत्याहतप्रभम् ॥ तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥ ५६ ॥ वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ॥ एष हि ब्रह्मबन्धूनां

त्थामाका बध करना ही उसका बहुत बड़ा कल्याण करना है, अन्यथा इस घोर पापसे इसका नरकपन अनिवार्य है। इसको नरकसे छुटकारा मिल नहीं सकता ॥ ५१ ॥ इस तरह भीमकी उक्ति और द्रौपदीकी बातें सुनकर अपने सुहृद् अर्जुनकी तरफ देखकर मुसकराते हुए से चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्णने यों कहा ॥ ५२ ॥ श्री भगवान्ने कहा—हे पार्थ, वध योग्य अपराध करने पर भी जात्या ब्राह्मणका वध नहीं करना चाहिए, तथा हथियार लेकर वध करनेके लिए तैयार हुए किसी भी आततायीका वध अवश्य करना चाहिए, चाहे वह आततायी वेदान्त शास्त्रमें पारङ्गत ब्राह्मण हो क्यों न हो। उसे मारनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यादोपसे दूषित नहीं होता—मैंने ही ये दोनों बातें कही हैं, इसलिए ये मेरे दो अनुशासन—आज्ञा हैं इन दोनोंमें जो तुम्हें उचित मालूम पड़े, उसीका परिपालन करो ॥ ५३ ॥ अपनी प्रिया द्रौपदीको समझाते हुए तुमने अश्वत्थामाको मार डालनेकी जो प्रतिज्ञा की है उसे सत्य कर डालो। भीमसेन, द्रौपदी और मुझको जो प्रिय है; उसे भी कर दिखाओ ॥ ५४ ॥ सूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, अर्जुनने शीघ्र भगवान् श्रीकृष्णका हार्दिक अभिप्राय समझकर तलवारसे उस ब्राह्मणके सिरका मणि, केशोंके साथ काट दिया ॥ ५५ ॥ रस्सीसे बँधे हुए बालहत्याके कारण प्रभाहीन तथा तेज और मणिसे रहित अश्वत्थामाको बन्धनसे निर्मुक्तकर अपने शिविरसे निकाल दिया ॥ ५६ ॥ केस कटवा देना, धन ले लेना, और अपने स्थानसे निकाल देना—बस, नीच ब्राह्मणोंका वध है, इससे अतिरिक्त दैहिक बध ब्राह्मणोंके लिए शास्त्र सम्मत नहीं है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर अपने पुत्रोंके शोकसे आतुर हुए सब पाण्डवोंने अपने बचोंकी मृत्युसे दुःखित हुई द्रौपदीके साथ मरे हुए अपने बान्धवोंको श्मशानमें पहुचाना, उनकी चिता सजाना और उन्हें फिर जलाना इत्यादि जो उनकी क्रियाएँ अवशिष्ट थीं, वे सब कियाएँ कीं ॥ ५८ ॥

वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भा० म० प्र० द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अध्यायसार—नारदमुनिके चले जाने पर विशेष रूपसे भगवद्गुणानुवाद करनेकी इच्छासे श्रीवेदव्यासजीने भागवत संहिताकी रचना कर अपने लड़के शुकदेवमुनिको उसका अध्ययन कराया। मोक्ष साधनमें तत्पर सम्पूर्ण पदार्थोंमें उपेक्षा भाव रखनेवाले तथा अपने आत्मामें ही सदा रमण करनेवाले शुकदेवमुनिको भागवत पढ़नेकी कोई आवश्यकता न थी, फिर भी उन्होंने भगवद्भक्तिसे प्रेरित होकर उसका अध्ययन किया। भागवत श्रोता राजा परीक्षित्का जन्म वर्णन करनेके पहले श्रीवेदव्यासजीने महाभारतके सौप्तिक पर्वकी की कथाका संक्षेपसे वर्णन किया। अर्थात् सोये हुए द्रौपदीके बचोंकी जब अश्वत्थामाने हत्या कर डाली और जब यह बात अर्जुनके कानमें पहुँची तब अर्जुनने गुरु-पुत्र अश्वत्थामाके वधकी प्रतिज्ञा की। प्राण हरणके लिये दौड़े आ रहे अर्जुनको देखकर अश्वत्थामाको प्राण बचनेका जब कोई दूसरा उपाय न रहा, तब उसने ब्रह्मास्त्र छोड़ने और लौटानेकी पूरी क्रिया न जानते हुए भी ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। भगवान् कृष्णकी आज्ञासे अर्जुनने उसका ब्रह्मास्त्र व्यर्थ बनाकर रस्सीसे बाँध करके अपने शिविरमें लाकर द्रौपदीको समर्पित कर दिया। अश्वत्थामाकी वैसी दशा देखकर द्रौपदी दयासे पिघल गई। शीघ्र उसे छोड़ देनेके लिए अर्जुनसे कहा। द्रौपदीकी बातें उस समय वहाँ जितने उपस्थित थे पसन्द आई लेकिन एक सिर्फ भीमसेनको पसन्द नहीं आई। भीमसेन अश्वत्थामाको मारदेना ही उचित समझते थे। भगवान् कृष्णका मनोगत अभिप्राय समझकर अर्जुनने अश्वत्थामाके मस्तकको केश सहित मणिसे शून्य बनाकर अपने स्थानसे निकाल दिया। इसके बाद सबने श्मशानमें जाकर मरे हुए बचोंका दाह संस्कार किया। सातवाँ अध्याय समाप्त ❋

❋ अथाष्टमोऽध्यायः ❋

सूत उवाच ॥ अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ॥ दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥ ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ॥ आलुप्ता हरिपादाब्जरजः पूतसरिज्जले ॥ २ ॥ तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं

❋ क्रुद्ध अश्वत्थामाके अस्त्रसे भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा पूर्व उत्तराके गर्भकी रक्षा कुन्तीकी स्तुति और राजा युधिष्ठिरके शोकका वर्णन ❋

सूतजीने कहा—हे ऋषियो, उसके बाद मृत्युको प्राप्त हुए जलकी इच्छा कर रहे अपने बान्धवोंको गङ्गामें जलाञ्जली देनेके लिये शास्त्रायविधिके अनुसार स्त्रियोंको आगे करके भगवान् श्रीकृष्णके साथ पाण्डव गङ्गाके तटपर गये ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजीके चरणकमलोंकी धूलिसे पवित्र हुई गङ्गाके जलमें स्नान करके मृत्युको प्राप्त हुए आत्मीयोंको जलाञ्जलि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देकर उसके बाद वहाँ कुछ कालतक उनके लिए खूब विलाप करके पुनः गङ्गाजलमें उन सबने स्नान किया ॥ २ ॥ उसके बाद उस गङ्गाके किनारे बैठे हुए भीमसेन आदि अपने भाइयोंके साथ युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र और पुत्रोंके शोकसे दुःखित हुई गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी तथा बन्धुओंके वियोगसे शोकाकुल सब बान्धवोंको व्यासादि ऋषियोंके साथ श्रीकृष्णने––प्राणियोंमें मृत्यु कालकी गतिका किसी तरह प्रतीकार नहीं किया जा सकता, मृत्यु अनिवार्य है, इसलिए जब जिसकी मृत्यु आ जायगी वह इस दुनियाँमें ठहर नहीं सकता––यों समझा-बुझाकर शान्त किया ॥ ३, ४ ॥ इस तरह भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदीके केश खीचनेसे क्षीणायु हुए पापी राजाओंका नाश करके दुर्योधन आदि धूर्तों के द्यूतक्रीडामें जीत लिया गया अपना राज्य धर्मराज युधिष्ठिरको पुनः दिलाकर तथा उत्तम अनुष्ठाता जहाँ उपस्थित थे ऐसे तीन अश्वमेध यज्ञ धर्मराजसे कराकर उनका इन्द्रकी नाईं पवित्र यश दशों दिशाओंमें फैलाया ॥ ५, ६ ॥ उसके

सहानुजम् ॥ गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥ सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धून् शुचार्पितान् ॥ भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥ साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वराज्यं कितवैर्हृतम् ॥ घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ ५ ॥ याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ॥ तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥ ६ ॥ आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ॥ द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥ गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां रथमास्थितः ॥ उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥ पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते ॥ नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥ अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥१०॥ ॥ सूत उवाच ॥ उपधार्य वचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः ॥ अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥११॥ तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान्॥ आत्मानोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥१२॥ व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ॥ सुदर्शनेन स्वा-

अनन्तर सात्यकि और उद्धवजीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे जानेकी अनुमति लेकर, वेदव्यास आदि ब्राह्मणोंकी पूजाकर तथा उनसे स्वयं पूजित होकरके द्वारिका जानेकी इच्छासे हे शौनकजी, रथपर ज्योंहि बैठे त्योंही उन्होंने देखा––परीक्षित्की माता उत्तरा भयसे विह्वल होकर मेरी ही ओर दौड़ती आ रही है ॥८॥ वह आकर कहने लगी––हे महायोगिन्, हे देवदेव, हे जगत्पते, मेरी रक्षा करो । मेरी रक्षा करो । मेरा भय दूर करनेवाला और दूसरा कोई नहीं है । सिवा तुम्हारे और किसी दूसरेको भयरहित मैं नहीं देखती क्योंकि जगत्में सभी जीव परस्पर मृत्युसे स्वयं ग्रस्त हैं । वे दूसरेकी रक्षा क्या कर सकेंगे ॥ ९ ॥ हे विभो, हे ईश, तप्त लोहेके अग्रभागवाला एक बाण मेरी ओर दौड़े आ रहा है । यह मुझे भले जला डाले लेकिन हे नाथ, मेरे गर्भका नाश न करे ॥ १० ॥ सूतजीने कहा––हे मुनिश्रेष्ठ शौनकजी, उत्तराका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण समझ गये कि पराभवसे अत्यन्त कुपित होकर अश्वत्थामाने इस पृथिवीको पाण्डवोंसे शून्य कर देनेके लिए यह ब्रह्मास्त्र फेंका है ॥ ११ ॥ उसी समय दीप्त पाँच बाण अपनी ओर आते देखकर पाण्डवोंने उन्हें काट देनेके लिए अपने अस्त्र उठा लिए ॥ १२ ॥ चूँकि और दूसरे अस्त्रोंसे ब्रह्मास्त्रका दूर होना अत्यन्त कठिन था इसलिए अपनेमें दृढ़भक्ति देखकर सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने अपने सुदर्शनचक्र नामक अस्त्रसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने पाण्डवोंकी रक्षा की ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण जीवोंके अन्तर्यामी योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंकी सन्ततिकी रक्षाके लिए अपनी मायासे उत्तराके उदरमें प्रविष्ट होकर उसका गर्भ ढक लिया ॥ १४ ॥ हे भृगुवंशमें सर्वश्रेष्ठ शौनकजी, यद्यपि वह ब्रह्मास्त्र अमोघ था, उसकी प्रतिक्रिया किसी दूसरे अस्त्रसे न हो सकने वाली थी, तथापि भगवान् श्रीकृष्णके सुदर्शन-चक्रका स्पर्श पाते ही विलकुल शान्त हो गया ॥ १५ ॥ हे शौनकजी, सर्वाश्चर्यमय उस भगवान् अच्युतके विषयमें यह कुछ भी आश्चर्य मत मानिये, क्योंकि भगवान् स्वयं जो अजन्मा होते हुए भी सर्वशक्ति सम्पन्न अपनी मायादेवीसे इस विश्वकी सृष्टि, रक्षा और नाश किया करते हैं ॥ १६ ॥ उसके वाद ब्रह्मास्त्रतेजसे छुटकारा पाये हुए अपने पुत्रों और द्रौपदीके साथ, पतिव्रता कुन्तीने द्वारिका जानेके लिए तैयार हुए भगवान् श्रीकृष्णसे यह कहा ॥ १७ ॥ कुन्ती बोली——हे कृष्ण, यद्यपि तुम मुझसे हो तो अवस्थामें छोटे तथापि मैं तुमको प्रणाम करती हूँ,

स्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥१३॥ अन्तःस्थ सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ॥ स्वमाययावृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥ १४ ॥ यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ॥ वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥१५॥ मामंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ॥ य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ १६ ॥ ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ॥ प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ॥ अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् ॥ न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९ ॥ तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ॥ भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ २० ॥ कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ॥ नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥२१॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२२॥ यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ॥ विमोचिताहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३ ॥ विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ॥ मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चाऽऽस्मिहरेऽ

क्योंकि तुम मायासे परे और मायाके नियन्ता आदि पुरुष हो, अतएव सब जीवोंके बाहर-भीतर पूर्णरूपसे अवस्थित् हो, फिर भी किसीसे दिखाई नहीं देते हो ॥ १८ ॥ तुम मायारूपी परदेसे विलकुरु ढक दिये गये हो, इन्द्रियजन्य ज्ञानके अविषय और अव्यय हो । जिस तरह नानाविध रूप धारण करनेवाले नटका स्वरूप साधारण पुरुष नहीं जान पाता, उसी तरह देहाभिमानी पुरुष तुम्हारा स्वरूप नहीं जान पाता । तुम्हारी भक्ति कैसे की जाती है, यह मुझे मालूम नहीं है । मैं बिलकुल अज्ञ हूँ, इसलिए हे कृष्ण, मैं केवल तुम्हें नमस्कार करती हूँ ॥१९॥ हे कृष्ण, आत्मानात्मका विवेक रखनेवाले, मननशील तथा विषयवासनाओंसे शून्य महात्माओंको भी जब तुम उस अपनी महिमासे (पूर्णरूपसे) दिखाई नहीं देते, तब हम स्त्रियाँ तुम्हारी भक्ति करनेके लिए भला कैसे तुम्हें देख सकती हैं ॥ २० ॥ इसलिए हे कृष्ण, हे वासुदेव, हे देवकी-नन्दन, हे नन्द गोपके दुलारे, हे गोविन्द, तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पद्मनाभ, हे पद्ममालिन्, हे पद्मनेत्र और हे पद्मपाद, तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है और बार-बार नमस्कार है ॥ २२ ॥ अपनी मातासे भी बढ़कर तुम्हारा मुझमें प्रेम है, क्योंकि हे हृषीकेश, दुष्ट कंस द्वारा जेलमें बन्दकी गई देवकीको विपत्तिसे जैसे तुमने छुड़ाया क्या सचमुच वैसे ही मुझे भी विपत्तिसे छुड़ाया है? तनिक सोचो तो सही, वह तो बहुत दिनोंसे जेलमें सड़ रही थीं तथा शोकसे सन्तप्त ही रही थीं, इसलिए केवल एक बार उन्हें छुड़ाया; उनके बच्चोंकी तो रक्षा तुमने की नहीं। लेकिन मेरी दशा तो इससे बिलकुल विपरीत है। हे विभो, तुमने मुझे तो एक विपत्तिसे नहीं, बल्कि विपत्तियोंके समूहसे, बच्चोंके साथ, अनेक बार शीघ्र छुड़ाया है ॥ २३ ॥ हे हरे, दुर्योधन द्वारा दिये गये विषसे, लाक्षागृहके दाहसे हिडिम्ब आदि राक्षसोंके दर्शनसे, जूएके अड्डे से वनवासमें अनेक विपत्तियोंसे युद्धमें भीष्म आदि अनेक महारथियोंके अस्त्रोंसे तथा अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भी, सब तरहसे सर्वदा तुमने हमारी रक्षा की है ॥ २४ ॥ हे जगद्गुरो, हमें सदा सब जगह वे विपत्तियाँ ही प्राप्त हों, जिन विपत्तियोंमें तुम्हारा वह दर्शन प्राप्त होता है, जिससे फिर जीवोंको संसार दर्शन नहीं मिलता ॥ २५ ॥ सम्पत्तियाँ तो कल्याण प्राप्तिकी वियोगक हैं। श्रेष्ठ कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्राध्ययन और सम्पत्तियोंसे जिनका मद बहुत बढ़ गया है ऐसा पुरुष, तुम्हें हे कृष्ण, हे गोविंद—

भिरक्षिताः ॥२४॥ विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ॥ भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥२५॥ जन्मैश्वर्यश्रुतिश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ॥ नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥ २६ ॥ नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥ मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ॥ समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥ न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ॥ न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद् द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम् ॥२९॥ जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ॥ तिर्यङ्नृषिषु यादस्सु यदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३० ॥ गोप्याऽऽददेत्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ॥ वक्त्रं निनीय

इत्यादि नामोंसे कभी पुकार नहीं सकता। तुम तो उन्हें साक्षात् दर्शन देनेवाले हो, जिन्हें धनादिमें आसक्ति नहीं होती जिनके पास कुछ नहीं रहता ॥ २६ ॥ इसलिए भक्तरूपी धनसे सम्पन्न, धर्म, अर्थ और कामके विषय सत्त्वादि गुणवृत्तियोंसे शून्य, अतएव अपने स्वरूपमें सदा रमण करनेवाले, रागादि दोषोंसे शून्य तथा अपने भक्तोंको मोक्ष दानमें समर्थ हे श्रीकृष्ण, तुम्हें अनेक नमस्कार है ॥ २७ ॥ हे श्रीकृष्ण तुम सबके नियामक, और अन्तसे शून्य तथा सबमें समभाव रखनेवाले कालरूपी प्रभु भी हो—मैं तुम्हें ऐसा ही मानती हूँ, मैं तुम्हें देवकी-पुत्र रूपसे नहीं मानती। जीवोंमें जो परस्पर कलह उत्पन्न होता है, उसेमें वैषम्य दिखाई पड़ता है, स्वतः तुममें वैषम्य है नहीं ॥ २८ ॥ हे भगवान्, अवतार धारण कर मनुष्योंका अनुकरण कर रहे तुम्हें क्या करनेकी इच्छा है, यह कोई नहीं जान पाता। तुम अपने भक्तोंके ऊपर अनुग्रह तथा दुष्टोंका दमन करते हो, तुम्हारे विषयमें मनुष्योंकों ऐसी विषम बुद्धि उत्पन्न होती है, लेकिन हे श्रीकृष्ण, तुम्हारा कोई प्रिय नहीं हैं और न कोई तुम्हारा अप्रिय है ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् सबकी आत्मा, अज और अकर्ता होते हुए भी तुहारा तिर्यग् योनियोंमें वाराहादि रूपसे, मनुष्योंमें रामादि रूपसे, ऋषियोंमें वामनादि रूपसे तथा जलचरोंमें मत्स्यादि रूपसे जो जन्म और नानाविध अद्भुत कर्म हुआ है वह अत्यन्त विडम्बन है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ३० ॥ अवतार धारण करके जो तुम साधारण मनुष्योंका व्यवहार करते हो वह भी कम आश्चर्यकी बात नहीं है, देखो न—गोकुलमें तुम्हारे दहीका मटाका फोड़नेपर यशोदाने तुम्हें बाँधनेके लिए जब हाथमें रस्सी ली, तब तुमने जो अपनी दशा दिखलाई वह मुझे अत्यन्त मोहित कर रही है क्योंकि मृत्यु भी जिससे भयभीत होती है ऐसे तुम उस समय माँ मुझे पीटेगी' इस भयकी भावनासे नीचे मुँह करके खड़े। और मुखपर आँसू आ जानेसे तुम्हारी आँखे काजल मिले हुए जलसे भरी हुई मारे भयके व्याकुल रो रही थीं ॥ ३१ ॥ कोई कहते हैं--तुम अज होते हुए भी धर्मराज युधिष्ठिरकी कीर्ति फैलानेके लिए यदुके कुलमें उस तरह उत्पन्न हुए हो, जिस तरह मलयाचल पर्वतकी कीर्ति फैलानेके लिए चन्दन उत्पन्न होता है ॥ ३२ ॥ दूसरे कहते हैं—ये वसुदेव और देवकी सुतपा और पृश्नि नामसे पूर्वजन्ममें प्रसिद्ध थे। इन दोनोंने तुमसे अपना पुत्र होनेके लिए प्रार्थना की थी। उनकी पूर्तिके लिए तथा इस जगत्‌का कल्याण और असुरोंका संहार करनेके लिए अजन्मा होते हुए भी तुम वसुदेवकी धर्म-पत्नी देवकीके गर्भसे पैदा हुए हो ॥ ३३ ॥ कोई कहते हैं—भारी बोझसे सागरमें

भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥ केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ॥ यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥ ३२ ॥ अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ॥ अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥ भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ ॥ सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥ भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ॥ श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ ३५ ॥ शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ॥ त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥ ३६ ॥ अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ॥ येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥ ३७ ॥ के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ॥ भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥३८॥ नेयं शोभिष्यते

डूब रही नौकाकी तरह पापियोंके अति भारसे दब रही पृथिवीका भार उतारनेके लिए ब्रह्माकी प्रार्थना स्वीकारकर तुमने अवतार धारण किया है ॥ ३४ ॥ कोई कहते हैं—परमानन्दस्वरूप का ज्ञान न होनेके कारण देहाभिमानसे यथेच्छा किये गये कर्मोंसे गर्भवास आदि नानाविध दुःखोंसे इस संसारमें क्लेशित हो रहे जीवोंका दुःखोंसे दूर करनेके तथा उनने श्रवण और स्मरणके योग्य कर्म करनेके लिए तुमने अवतार धारण किया है ॥६५॥ हे कृष्ण, जो मनुष्य तुम्हारे चरितोंका निरन्तर श्रवण, गान, कथन, स्मरण तथा अभिनन्दन करते हैं, वे ही जन्मपरम्परा का नाश करनेवाले तुम्हारे चरण कमलों के शीघ्रदर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ अपने भक्तोंके अभीष्ट पूर्ण रखनेवाले हे प्रभो, जिन्हें तुम्हारे चरण-कमलोंके सिवा और कोई दूसरा आश्रय है हीं नहीं, क्योंकि जो अनेक राजाओंको दुःख देनेके कारण घोर अपराधी बन चुके हैं, ऐसे हम अनुजीवी मित्रको आज तुम क्यों छोड़े जा रहे हो ॥ ३७ ॥ इन्द्रियोंके स्वामी जीवके इस शरीरसे निकल जानेपर जैसे चक्षु आदि इन्द्रियाँ किसी कामकी नहीं रह जाती वैसे ही हे श्रीकृष्ण, जिस दिन तुम इन लोगोंको नहीं देखोगे, उस दिन ख्याति और समृद्धिसे युक्त यदुवंसियोंके साथ हम पाण्डव किस कामके रह जायँगे अर्थात् हमारे कहनेका तात्पर्य यह है कि तुम्हारे विना हम लोगोंकी ताकत किसी कामकी न रह जायगी ॥ ३८ ॥ हे गदाधर, वज्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अंकुश आदि असाधारण लक्षणोंसे लक्षित तुम्हारे चरणोंसे अङ्कित यह हम लोगोंकी भूमि जिस तरह इस समय शोभा पा रही है वैसी शोभा तुम्हारे चले जानेपर न पा सकेगी ॥ ३९ ॥ और हे माधव भलीभाँति पकी हुई औषधियों और लताओंसे सुशोभित तथा नानाविध सम्पत्तियोंसे समृद्ध ये हमारे देश और यहाँ के वन, पर्वत, नदी तथा समुद्र तुम्हारे कृपाकटाक्षसे ही बढ़ रहे यानी सबसे आदर पा रहे हैं ॥ ४० ॥ हे विश्वेश, हे विश्वात्मन् हे विश्वमूर्ति श्रीकृष्ण, यदि तुम यहांसे चले गये तो पाण्डवोंको तुम्हारे वियोगसे असह्य पीड़ा होगी और यदि न गये तो यादवोंको भी कम दुःख न होगा, इसलिए अब तुमसे यही एक विनती है कि पाण्डव तथा यादव इन दोनों आत्मीयोंमें जो मेरा दृढ़ सनेह बन्धन है उसे काट डालो ॥ ४१ ॥ और हे मधुपते, जिस तरह अपना मार्ग रोकनेवाली वस्तुको दूर फेंकती हुई गङ्गा समुद्रमें अपना प्रवाह मिला देती हैं उसी तरह मेरी बुद्धि किसी तरहकी विघ्न-बाधाओंको कुछ न गिनती

तत्र यथेदानीं गदाधरः ॥ त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥ इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः ॥ वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥ अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ॥ स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥४१॥ त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ॥ रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ॥ मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥ ४४ ॥ तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ॥ स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ ४५ ॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः ॥४६॥ आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन्सुहृदां वधम् ॥ प्राकृतेना-

हुई तुममें अनन्यभावसे अखण्ड निरन्तर प्रेम करे ॥ ४२ ॥ हे कृष्ण हे यादवोंमें श्रेष्ठ, हे अर्जुन मित्र हे पृथिवीके भारस्वरूप पापी राजाओंके वंशको अग्निके सदृश जला डालने वाले, हे अक्षीण प्रभाव, हे गोविन्द हे गो ब्राह्मण और देवताओंकी पीड़ा दूर करनेके लिए अवतार धारण करने वाले, हे जोगेश्वर, हे अखिलगुरो, हे भगवन्, तुम्हें नमस्कार है ॥४३॥ सूतजीने कहा--हे ब्राह्मणो, मधुर पदोंसे युक्त वाक्योंसे जब भगवान्‌के सम्पूर्ण गुणोंकी कुन्तीने स्तुति की तब वैकुण्ठ भगवान् सबको मायासे मोहित कर रहे से धीरेसे मुसकराये ॥ ४४ ॥ उसकी प्रार्थना स्वीकार कर रथसे उतरकर हस्तिनापुर आ गये और वहीं कुछ दिन ठहरकर फिर कुन्ती, सुभद्रा आदि स्त्रियोंसे आज्ञा लेकरके अपनी द्वारिकापुरी जानेके लिए तैयार ही थे, कि राजा युधिष्ठिरने--कुछ दिन और यहीं रहिये, यों प्रेमपूर्वक प्रार्थना करके रोक लिया ॥ ४५ ॥ अपने भक्त भीष्मपितामहके प्राण छोड़नेका महोत्सव देखनेके लिए राजा युधिष्ठिरके साथ कुरुक्षेत्रमें पहुँचना और वहीं पर भीष्मपितामहके मुखसे ही युधिष्ठिरको ज्ञान दिलाना चाहिए—इन दोनों कार्योंको पूर्ण करनेकी ईश्वरेच्छाको न जानते हुए व्यासादि ऋषियों तथा अद्भुतकर्म करनेवाले श्रीकृष्णजीसे अनेक इतिहासों द्वारा खूब समझाये जानेपर भी कालकवलित अपने आत्मीयोंके शोकसे विह्वल राजा युधिष्ठिरको जब विवेक न प्राप्त हुआ। अर्थात् खूब समझाने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर भी उन्हें जब शान्ति न मिली ॥ ४६ ॥ तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने बान्धवोंकी मृत्यु याद करके अविवेक पूर्ण चित्तसे स्नेह और मोहके वशमें पड़कर कहने लगे--अहो, मुझ दुरात्माके हृदयमें बैठे हुए अज्ञानको तो देखो—कौवों और सियारोंके आहारस्वरूप इस शरीरके सुखके लिए मैंने अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ मार डालीं ॥ ४७,४८ ॥ बच्चों, ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, मित्रों, पितरों और गुरुके द्रोही मेरा दश करोड़ वर्षोंमें भी नरकसे निस्तार नहीं होगा ॥ ४६ ॥ धर्मयुद्धमें शत्रुओंका वध करने पर प्रजापालक राजाको पाप नहीं लगता—इत्यादि शिक्षास्वरूप शास्त्रोंके वचन मुझे बोध देनेके लिए समर्थ नहीं हो रहे हैं, क्योंकि वे वचन तो प्रजापालक राजाके लिए ही हैं और मैंने जो यह बुरा कर्म किया है वह सिर्फ राज्यके लोभसे किया है, इसलिए मुझे तो पाप लगेगा ही ॥ ५० ॥ युद्धमें किया गया पुरुषोंका वध धर्म संगत हो सकता है, किन्तु जिनके पतियोंका वध किया है उन स्त्रियोंको जो यह असह्य दुःख

त्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ॥ ४७ ॥ अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ॥ पारक्यस्यैव देहस्य बह्वयो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥ ४८ ॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ॥ न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ ४६ ॥ नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ॥ इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥ ५० ॥ स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१॥ यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ॥ भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० म० प्र० कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

उत्पन्न हुआ है, उसे तो गृहस्थाश्रममें किये गये कर्मोंसे दूर करनेमें मैं समर्थ नहीं हूं ॥ ५१ ॥ 'सर्वं पाप्मानं तरति' इस श्रुतिके अनुसार यदि यह कहिये कि अश्वमेध याग करनेसे सभी पाप नष्ट हो जायँगे, तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जिस तरह कीचड़का जल गाढ़ कीचड़से धुलता अथवा जिस तरह भूलसे तनिक शराब पीनेका पातक जान बूझकर खूब शराब पीनेसे दूर नहीं होता, उसी तरह भूलसे की गई जीवहत्याका पाप जान बूझकर किये गये हिंसा अयुक्त यागोंसे दूर नहीं होता ॥ ५२ ॥

अध्यायसार—हे संसार सागरको पार कर जानेकी इच्छा रखनेवाले भागवतके प्रेमियो, अपने बन्धुओंकी मृत्युसे सन्तप्त हृदय युधिष्ठिर प्रभृति पाण्डओंको समझा बुझाकर उनसे अनुमति लेकर ज्योंही द्वारका जानेके लिए भगवान् रथपर बैठे कि उन्होंने देखा--परीक्षित्की माता उत्तरा व्याकुल होकर दौड़ी आ रही है भगवान्के समीप आते ही उत्तराने कहा— हे महायोगिन् मेरे गर्भकी रक्षा करो। तुम्हारे सिवा मैं इस संसारमें किसी दूसरेको रक्षक नहीं देख पाती। उत्तराकी बात सुनतेही भक्तवत्सल भगवान् समझ गये कौरववंशके अंकुरके नाशकी इच्छासे अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र फेंका है। भगवान्ने झट अपने सुदर्शनचक्रसे उसे काट दिया और उत्तराके गर्भकी रक्षाकी इसके बाद द्वारका जानेके लिए भगवान् जब तैयार हुए तब कुन्ती नाना प्रकारसे उनकी स्तुती करने लगी। कुन्ती द्वारा की गई अपनी स्तुति स्वीकारकर तथा कुन्ती आदि स्त्रियोंसे आज्ञा लेकर फिर ज्योंही रथपर चढ़नेकी इच्छा की, त्यों-

जिस सेनामें २१८७० रथ, २१८७० हाथी, १०९३५० मनुष्य और ६५६१० घोड़े रहते हैं, वह एक अक्षौहिणी सेना कही जाती है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही स्नेहके मारे युधिष्ठिरने कुछ दिन और यहीं रहनेके लिए उन्हें रोक लिया। प्राज्य साम्राज्यका लाभ होनेपर भी राजा युधिष्ठिर वीरोंसे शून्य पृथिवीको देखकर भगवान्के सामने अत्यन्त अनुताप करने लगे।

[युधिष्ठिरके लिए भीष्म द्वारा सब धर्मोंका निरूपण, कृष्णकी स्तुति और मुक्तिका वर्णन]

सूतजीने कहा—हे शौनकजी, इस तरह प्रजाओंके द्रोहसे भयभीत हुए युधिष्ठिर सम्पूर्ण धर्मोंकी जाननेकी अभिलाषासे जहां भीष्मजी शरशय्यापर पड़े हुए थे उस कुरुक्षेत्रको हस्तिनापुरसे चल दिये ॥१॥ तब भीमसेन आदि सब भाई तथा व्यास, धौम्य आदि ब्राह्मण भी स्वर्ण-भूषित सुन्दर घोड़ोंसे युक्त रथपर बैठकर महाराज युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चल पड़े ॥ २ ॥ हे विप्रकुल

❀ अथ नवमोऽध्यायः ❀

सूत उवाच ॥ इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ॥ ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ १ ॥ तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ॥ अन्वगच्छन्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनञ्जयः ॥ स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ॥ प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥४॥ तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ॥ राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ॥५॥ पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः ॥ बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥६॥ वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ॥ कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥७॥ अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः ॥ शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥ ८ ॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ॥ पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥ ९ ॥ कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ॥ हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥ १० ॥ पाण्डुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसङ्गतान् ॥

श्रेष्ठ शौनकजी, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुनके साथ रथपर बैठकर चल दिये। उस समय महाराज युधिष्ठिर भगवान् कृष्ण आदिसे घिरे होनेके कारण चारो ओर यक्षोंसे घिरे हुए कुबेरकी नाईं सुशोभित हो रहे थे ॥३॥ हस्तिनापुर पहुंचनेपर भगवान् कृष्णके साथ सपरिवार पाण्डवोंने, स्वर्गसे गिरे हुए किसी देवताके सदृश, पृथिवीपर पड़े हुए तेजके पुञ्ज भीष्मजीको देखकर प्रणाम किया ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ शौनकजी, वहाँ पर उसी समय सब ब्रह्मर्षि, देवर्षि, तथा राजर्षि लोग भीष्मजीके दर्शनके लिए आ पहुँचे ॥५॥ पर्वत, नारद, धौम्य भगवान् व्यास बृहदश्वा, भरद्वाज, शिष्योंके साथ रेणुकाके लड़के परशुराम ॥६॥ वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, कौशिक, और सुदर्शन ॥७॥ हे ब्रह्मन्, और भी अनेक श्रीशुक आदि विमल मुनि कश्यप तथा बृहस्पतिजी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आ धमके ॥ ८ ॥ अपने पास इकट्ठे होकर आये हुए उन महाभाग ऋषियोंको देखकर अष्टवसुओंमें श्रेष्ठ, देश और कालका विभाग जाननेवाले धर्मयज्ञ भीष्मजीने शरशय्यापर पड़े हुए ही मनसा वाचा उन ऋषियोंकी पूजा की ॥ ९ ॥ और भगवान् कृष्णके प्रभावको जाननेवाले भीष्मजीने अपनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मायासे शरीर धारण करनेवाले, हृदयके अन्दर विराजमान होते हुए भी सामने बैठे हुए जगदीश्वर श्रीकृष्णकी भी वैसी ही पूजा की ॥१०॥ उसके बाद भीष्मजीने विनय और प्रेमसे युक्त समीपमें बैठे हुए युधिष्ठिर आदि पाण्डुपुत्रोंको प्रेमकी आँसुओंसे अन्धी हो रही आँखोंसे देखा तथा उनसे वे कहने लगे ॥ ११ ॥ धर्मारूढ़ पाण्डवो, ओह, यह कितने दुःख और अन्यायकी बात है कि तुमलोग ब्राह्मण, धर्म और कृष्णका आश्रय पाकर भी आज कष्ट पूर्वक जीवन बिता रहे हो, यह ठीक नहीं ॥ १२ ॥ मैं तुम लोगोंसे क्या कहूँ, अतिरथी पाण्डुके मर जाने पर बालक पुत्रोंसे युक्त तुम्हारी माँ बहू कुन्ती तुम लोगोंके लिए तुम बालकोंके साथ कई बार अनेकों दुःख प्राप्त कर चुकी है ॥ १३ ॥ मैं तो यह समझता हूँ कि आज तक जो कुछ तुम लोगोंको आपत्तियाँ उठानी पड़ीं वह सब कालका ही प्रभाव था, क्योंकि बादलोंकी पंक्तियाँ जैसे वायुके आधीन रहती हैं वैसे ही इन्द्रादि लोकपालोंके साथ यह सारा लोक कालके वश-

अभ्याचष्टानुरागास्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥ अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः ॥ जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥
संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा वधूः ॥ युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥ सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ॥
सकालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥ १४ ॥ यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ॥ कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत्
॥१५॥ न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् ॥ यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥ १६ ॥ तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ ॥
तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७ ॥ एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ॥ मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु
॥ १८ ॥ अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः ॥ देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ॥ १९ ॥ यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ॥
अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥ २० ॥ सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहङ्कृतेः ॥ तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥

वर्ती है ॥ १४ ॥ जहाँ धर्मसुत राजा, गदापाणि भीमसेन, धनुर्धारी अर्जुन गाण्डीव धनुष और भगवान् कृष्ण मित्र हों, वहाँ भी विपत्ति ! ॥ १५ ॥ हे राजन् इन भगवान् श्रीकृष्णको क्या करनेकी इच्छा है, यह कोई पुरुष जान नहीं सकता, क्योंकि जिनकी लीलाओंको जाननेकी इच्छासे प्रवृत्त होनेपर बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी कवि ब्रह्मादि भी मोहग्रस्त हो जाते हैं ॥ १६ ॥ इसलिए हे भारतकुल श्रेष्ठ, हे समर्थ, हे कुलपरम्परागत स्वामिन्, सुख-दुःख इन सबको ईश्वराधीन समझकर उस ईश्वरमें चित्त लगाकरके अनाथ प्रजाओंका पालन किया करो ॥ १७ ॥ यह श्रीकृष्ण साक्षात् आदि पुरुष भगवान् नारायण हैं । अपनी मायासे संसारको मोहित करके छिपकर यादवोंमें विचरते हैं ॥ १८ ॥ राजन्, इनके अत्यन्त गुप्त प्रभाव को भगवान् शङ्करजी, देवर्षि नारद और साक्षात् भगवान् कपिल मुनि ही जानते हैं ॥ १९ ॥ जिन्हें तुम अज्ञानके कारण अपना ममेरा भाई, उपकारोंकी अपेक्षा न कर अपना एक बहुत बड़ा उपकार करनेवाला प्रिय मित्र मान बैठे हो और अत्यन्त विश्वास होनेके कारण इन्हें तुम अपना मन्त्री, दूत तथा सारथी बना चुके हो ॥ २० ॥ लेकिन यह भगवान् श्रीकृष्ण सबकी आत्मा, समदर्शी, सुख-दुःख मानापमान आदि द्वन्द्वोंसे शून्य, अभिमानरहित तथा राग, द्वेष आदिसे शून्य हैं, इसलिए यह नीच कर्म जो मैंने किया है वह मुझे नहीं करना चाहिये था—वह मेरे योग्य नहीं था,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इससे अवश्य मुझे पाप होगा तथा यह जो मैंने उत्तम कर्म किया है, यह मेरे योग्य था, इससे तो मुझे पुण्यकी ही प्राप्ति होगी—इस तरह इनकी बुद्धिमें विषमता कहीं पर नहीं है ॥२१॥ तथापि हे नृप, इनकी अपने अनन्य भक्तोंके ऊपर कितनी दया है, यह तो देखो, क्योंकि प्राणोंका त्याग कर रहे मुझे दर्शन देनेके लिये यह श्रीकृष्णजी इस समय साक्षात् स्वयं यहाँ आ गये हैं॥ २२ ॥ अपने शरीरको छोड़ते समय योगी जिन भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर जिनके नामोंका वाणीसे कीर्तन करता हुआ विषयवासनाओं तथा कर्मोंसे छूट जाता है ॥ २३ ॥ जिनका मुखकमल प्रसन्न हास और लाल-लाल आँखोंसे खूब सुशोभित हो रहा है तथा जिनका योगी लोग अपने हृदयमें केवल चिन्तन किया करते हैं वह देवाधिदेव चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्ण आज मेरे सामने खड़े हैं, इसलिए अब जब तक मैं अपनी इच्छाके अनुसार अपना शरीर नहीं छोड़ देता तब तक मुझे दयापूर्ण आंखोंसे देखते रहें ॥ २४ ॥ सूतजीने

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् ॥ यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥ भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् ॥
त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥ २३ ॥ स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ॥ प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो
ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे ॥ अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥ २५ ॥
पुरुषस्वभावविहितान्यथावर्णं यथाश्रमम् ॥ वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥ २६ ॥ दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः ॥
स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥२७॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथामुने ॥ नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥२८॥ धर्मं
प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ॥ यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥२९॥ तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे ॥
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३० ॥ विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ॥

कहा—हे ऋषि शौनकजी, भीष्मजीकी उस तरहकी करुणापूर्ण बातें सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने शरशय्यापर शयन कर रहे भीष्मजीसे नानाविध धर्म विषयक प्रश्न किया जहाँ अनेक ऋषि उसे सुन रहे थे ॥ २५ ॥ हे मुने, नारदजीके साधारण धर्म, वर्णों के धर्म, आश्रमोंके धर्म, वैराग्य और राग (अकाम और काम) इन उपाधियोंसे क्रमशः कहे गये प्रवृत्तिऔर निवृत्तिरूप धर्म, दानधर्म, राजधर्म, विभागपूर्वक शमदमादि मोक्ष धर्म, स्त्रीधर्म, भागवतधर्म तथा अधिकारके अनुसार निश्चित किये गये उपायोंके साथ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन सबका संक्षेप और विस्तारसे तत्त्ववित् भीष्मजीने नानाविध आख्यानोंके अन्तर्गत इतिहासोंमें जैसा कहा गया है ठीक उसीके अनुसार वर्णन किया ॥२६–२८॥ इस तरह धर्मोंका वर्णन कर रहे भीष्मजीका वह उत्तरायण काल आ गया, जो अपनी इच्छाके अनुसार शरीरका त्याग करनेवाले योगीको अभिलषित रहता है ॥ २९ ॥ तब युद्धमें समीपस्थ हजारों रथियोंकी रक्षा करने वाले भीष्मजीने अपनी वाणियोंका उपसंहार कर ममता आदि आसक्तियोंसे शून्य अपना मन सामने स्थित, चमक रहे पीले वस्त्रसे सुशोभित चतुर्भुज, आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया और भगवान्की मूर्तिपर अपनी आंखें निर्निमेष कर लीं ॥ ३० ॥ इसी विशुद्ध धारणासे पापशून्य हुए तथा भगवान् श्रीकृष्णकी कृपादृष्टिसे तत्क्षणही शस्त्रप्रहारजन्य व्यथाओंसे निर्मुक्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एवं सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके विविध भ्रमणोंसे निवृत्त हुए भगवान् जनार्दन श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥ भीष्मजीने कहा——नानाविध धर्मादि उपायोंसे मैंने अपनी मनोनिग्रहस्वरूपा निष्काम बुद्धि यदुवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी स्वरूपभूत परमानन्दको प्राप्त होते हुए भी कभी क्रीडा करनेके लिए उस प्रकृति (योग माया) को स्वीकार कर लेते हैं जिस प्रकृतिसे सृष्टिपरम्परा चलती है । तात्पर्य यह कि मायाको स्वीकार करने पर भी स्वरूपके तिरोधानसे जीवोंकी नाईं यह भगवान् श्रीकृष्ण परतन्त्र नहीं हो जाते यानी मायासे इनके स्वरूपकी महिमा कहीं ढक नहीं जाती ॥ ३२ ॥ तीनों लोकोंमें सर्वातिशायी सौन्दर्यशाली, तमालके सदृश वर्णवाले, प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंकी नाईं चमकीले पीताम्बरसे सुशोभित तथा घूँघरदार केशोंसे कमनीय मुखकमलसे विराजमान शरीरको धारण कर रहे अर्जुनके प्रिय मित्र भगवान् श्रीकृष्णमें फलाभिसन्धिसे रहित मेरा प्रेम सदा बना रहे

निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजन् जनार्दनम् ॥ ३१ ॥ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ॥ स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥३२॥ त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ॥ वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥ युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये ॥ मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥ सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ॥ स्थितवती परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥ ३५ ॥ व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ॥ कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥ ३६ ॥[1] स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ॥ धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥३७॥

॥ ३३ ॥ युद्धमें घोड़ोंके खुरोंकी धूलिसे धूसर वर्ण तथा इधर-उधर बिखरे हुए केशोंसे व्याप्त एवं घोड़े हांकनेसे उत्पन्न हुए भक्तवात्सल्यके द्योतक स्वेदबिन्दुओंसे अलंकृत मुखवाले और मेरे पैने बाणोंसे कवच फट जानेके कारण विद्ध हो रहे शरीरसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा मन सदा रमण किया करे ॥ ३४ ॥ हे अच्युत, दोनों सेनाओंके बीचमें मेरा रथ स्थापित करो यह अपने प्रिय मित्र अर्जुनकी बात सुनकर तत्क्षणहो पाण्डवों और कौरवोंकी सेनाके बीचमें रथ खड़ाकरके उस पर बैठे हुए 'यह भीष्म हैं, यह द्रोणाचार्य हैं तथा यह कर्ण है,' इत्यादि नामपूर्वक प्रत्येक वीरोंका परिचय दिलानेके बहाने कालदृष्टिसे दुर्योधनके सभी सैनिकोंकी आयुका हरण कर अर्जुनको विजय दिलानेवाले भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा प्रेम सदा बना रहे ॥३५॥ युद्धमें दूर खड़ी हुई कौरवोंकी सेनाके* आगे स्थित भीष्म आदिको देखकर 'अगर मैं इनको मारता हूँ तो मुझे भयङ्कर पाप लगेगा, इस दोष बुद्धिसे स्वजनोंके वधसे विमुख हुए अर्जुनकी

१ श्री आनन्द कन्द भगवान् श्री कृष्णजी ने महाभारतके महायुद्ध में घोषणा की थी कि जब तक युद्धकी समाप्ति न होगी तब तक मै अस्त्र ग्रहण न करूगा । इसे सुन कर बाल ब्रह्मचारी भीष्म जी ने उसी क्षण बड़े २ योद्धाओं के समक्ष कहा कि मैं इन्हें अस्त्र ग्रहण करा कर ही रहूँगा । इसीलिए भीष्म को प्रतिज्ञा पूर्ण हो कि भगवान मुरारी चक्र द्वारा भीष्म को ही मारने दौड़े ।

*पृतना उस सेनाका नाम है जिसमें २४३ हाथी, २४० रथ, ७२९ घोड़े और १२१५ पैदल सिपाही रहते हैं ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'मैं इन्हें मारनेवाला हूँ' इत्यादि कुबुद्धिको जिन्होंने आत्मविद्याका उपदेश देकर दूर किया उस परमानन्द स्वरूप भगवान् कृष्णके चरणोंमें मेरा परम प्रेम हो ॥३६॥ 'मैं' विना शस्त्र धारण किये ही अर्जुनकी सहायता करूंगा' यह अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर 'मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण कराकर छोड़ूंगा' इस मेरी प्रतिज्ञाको भलीभाँति सत्य करनेके लिए रथपर वैठे हुए जो भगवान् सहसा रथसे नीचे उतरकर हाथसे रथकी पहिया ले करके मेरी ओर उस प्रकार झपटे, जिस प्रकार हाथीकी ओर मारनेके लिए सिंह झपटता है। उस समय मारे क्रोधके अपनी मनुष्य लीला भूलकर ऐसे चल रहे थे कि इनके उदरमें स्थित सम्पूर्ण भुवनोंके भारसे पृथिवी पग-पग पर डगमगा रही थी और इनका चादर रास्तेकी धूल साफ कर रहा था ॥ ३७ ॥ इस तरह जव यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरी ओर दौड़े, तव आततायी धनुर्धारी मैंने अपने तीखे बाणोंसे इनके ऊपर प्रहार किया, अतः इनका कवच कटकर पृथिवी पर जा गिरा और इनका सारा

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ॥ प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥ ३८ ॥ विजयरथ कुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरस्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ॥ भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥ ३९ ॥ ललितगतिविलास-वल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ॥ कृतमनुकृतवत्य उन्मादान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥४०॥ मुनिगणनृपवर्यसङ्कुलेऽन्तःसदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ॥ अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥४१॥ तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्म-कल्पितानाम् ॥ प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥ ४२ ॥ सूत उवाच ॥ कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ॥

शरीर खूनसे व्याप्त हो गया। उस समय अर्जुनके जबर्दस्ती रोकने पर भी उनकी बातोंका कुछ ख्याल न कर मुझे मारनेके लिए सम्मुख आकर डट गये तब तो दुनियाँकी आँखोंसे देखने पर ऐसा मालूम पड़ता था कि यह अर्जुनके पक्षपाती हैं, लेकिन वास्तवमें विचार कर देखा जाय तो यह मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिए ही यानी मेरे भक्तकी प्रतिज्ञा झूठी न हो, इस विचारसे ही उस तरह मेरी ओर झपटे थे। ऐसे भक्तवत्सल भगवान् मुकुन्द मेरी गति हों ॥ ३८ ॥ युद्ध कालमें अर्जुनके रथरूपी कुटुम्बकी सैकड़ों अकार्य कार्योंसे भी रक्षा करनेवाले हाथों में चाबुक लेकर घोड़ोंकी बागडोर थामनेकी शोभासे सुशोभित हो रहे भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ मुमुर्षुकी सप्रेम भक्ति हो, जिन्हें देखकर इस महाभारतकी लड़ाईमें मरे हुए वीर भक्तवत्सा-रूप्य मुक्तिको प्राप्त हो चुके हैं ॥ ३९ ॥ ललित गमन, विलास, मन्दहास्य और प्रेमपूर्वक कृपाकटाक्षोंसे श्रीकृष्णने जिनका खूब सम्मान किया, वे गोपियाँ उत्कट मदसे अन्धी होकर गोवर्धन धारण आदि लीलाओंका अनुकरण करती हुई जिनके स्वरूपको प्राप्त हो गईं; उस भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा प्रेम स्थिर बना रहे ॥ ४० ॥ राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये हुए अनेक महर्षिगणों और अनेक राजाओंसे व्याप्त सभाके बीचमें 'अहो कैसा इनका मनमोहक रूप है, कैसी अद्भुत् इनकी महिमा है, इस तरह आश्चर्य पूर्वक दर्शनीय जो भगवान् श्रीकृष्ण प्रजाको प्राप्त हुए, वहीं सम्पूर्ण संसारकी आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण आज मेरी आँखोंके सामने विराज रहे हैं, यह मेरा कितना बड़ा सौभाग्य है ॥ ४१ ॥ इसलिए, स्वयं निर्मित सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें अधिष्ठित तथा सूर्यकी नाईं एक होते हुए भी सबकी आँखोंमें अनेक रूप प्रतीत हो रहे इन अजन्मा भगवान् श्रीकृष्णमें सम्पूर्ण भेदभाव तथा मोहमाया छोड़कर भलीभाँति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लीन हो रहा हूं ॥ ४२ ॥ सूतजीने कहा—इस तरह उस भीष्मजीके परमात्मा भूत भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपमें मन, वाणी और दृष्टियोंकी कृतियोंके साथ अपनी बुद्धि स्थापित करके लीन हो जाने पर उनके श्वास बाहर न निकलकर भीतर ही विलीन हो गये ॥४३॥ उपाधि-शून्य परमात्मस्वरूपमें भीष्मजी मिल गये यह जानकर वहाँ पर उपस्थित वे व्यासादि सभी ऋषिगण उस प्रकार मौन हो गये जिस प्रकार सायङ्कालमें पक्षी ॥ ४४ ॥ इस तरह भगवान् श्रीकृष्णकी शुभसन्निधिमें भीष्मजीका शरीरान्त हो जानेपर वहाँ देवता तथा मनुष्यों द्वारा बजायी गई दुन्दुभियाँ बजने लगीं, राजाओंमें जो साधु पुरुष थे वे प्रशंसा करने लगे और आकाशसे पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी ॥ ४५ ॥ हे भार्गव, अच्छी तरह परमात्मस्वरूपको प्राप्त कर चुके (मुक्त हुए) उस भीष्मजीके शरीरका दाहादि संस्कार कराकर राजा युधिष्ठिर कुछ देर तक उनके वियोगसे दुःखित बने रहे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमन नारदादि मुनियोंने भगवान् कृष्णकी

आत्मन्यात्मानमावेस्य साऽन्तःश्वास उपारमत् ॥४३॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥४४॥ तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ॥ शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव ॥ युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥ तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ॥ ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ॥४७॥ ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ॥ पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४८ ॥ पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥ चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥ ४९ ॥ इति श्रीम० म० प्र० युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

उनके वेदोक्त नामों द्वारा खूब स्तुति की और उसके बाद कृष्णमय हृदयवाले वे सब ऋषि, महर्षि पुनः अपने-अपने आश्रमको चल दिये ॥ ४७ ॥ उसके बाद श्रीकृष्णके साथ राजा युधिष्ठिरने हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्र और सन्तप्त गान्धारीको समझा-बुझाकर शान्त किया ॥ ४८ ॥ उसके अनन्तर धृतराष्ट्रकी आज्ञा तथा श्रीकृष्णकी सम्मति पाकर समर्थ राजा युधिष्ठिर अपने पिता-पितामहके राज्यका धर्मपूर्वक परिपालन करने लगे ॥ ४९ ॥

अध्यायसार––हे भागवतामृतका पान करनेवाले रसिको, शरशय्या पर पड़े हुए अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे श्रीभीष्मजीके पास कुरुक्षेत्रमें हस्तिनापुरसे धर्मराज युधिष्ठिर धर्मज्ञानकी अभिलाषासे आये। उनके पीछे-पीछे उनके परिवारके साथ उनके सब भाई तथा भगवान् श्रीकृष्ण भी आ गये। उसी समय वहाँ अनेक ऋषि महर्षि आकर उपस्थित हो गये। भीष्मजीने शरशय्या पर पड़े हुए ही सबकी मनसा वाचा पूजा की। एक बार उन्होंने पाण्डवोंकी ओर प्रेमकी आँसुओंसे भरी आँखोंसे देखा और वे कहने लगे––हे धर्मज्ञ पाण्डवो, कालकी महिमा विचित्र है। यह उसीका सब प्रभाव था कि तुम लोगोंको भी अनेक विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। इसके बाद युधिष्ठिरने उनसे अनेक प्रकारके धर्मविषयक प्रश्न किये और उनका भीष्मजीने उत्तर दिया। उसके बाद सामने स्थित भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए भेदभावना तथा मोहमायासे शून्य होकर काल आनेपर भगवान्‌के स्वरूपमें लीन हो गये। उसके बाद सब ऋषि-महर्षि लोग अपने अपने आश्रमको वापिस चले गये और राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर आकर धृतराष्ट्रकी आज्ञा और भगवान् श्रीकृष्ण की सम्मतिसे धर्मपूर्वक अपनी प्रजाओंका पालन करने लगे। नव अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शौनकजीने कहा--हे सूतजी, अपने राज्य आदि धनके विषयमें डाह करनेवाले आततायी दुर्योधन आदिकी हत्या करके धार्मिकोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर--अपने भाइयोंके साथ बन्धुओंके बधसे संकुचित भोगवाला या राज्यकी प्राप्तिसे प्राप्त भोगवाला होकर--राज्य करनेमें प्रवृत्त कैसे हुए अथवा प्रवृत्त होकर उन्होंने आगे चलकर क्या किया ? ॥ १ ॥ सूतजीने कहा--हे शौनकजी, अपने भक्तोंके अभ्युदयकी निरन्तर भावना करनेवाले, संसारके संरक्षक, जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण कुरुवंशरूपी दावाग्निसे दग्ध हुए कुरुवंशको परीक्षितकी रक्षा द्वारा अंकुरित करके युधिष्ठिरको अपने राज्यसिंहासनपर प्रतिष्ठित करके स्वयं प्रसन्नचित्त हो गये ॥ २ ॥ भीष्म और भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कही गई बातें सुन करके यह सम्पूर्ण जगत्

❋ अथ दशमोऽध्यायः ❋

॥ शौनक उवाच ॥ हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ॥ निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥ २ ॥ निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ॥ शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥ कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ॥ सिषिचुः स्म व्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४ ॥ नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ॥ फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥ ५ ॥ नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ॥ अजातशत्राववभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६ ॥ उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः ॥ सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥ ७ ॥ आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ॥ आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥ ८ ॥ सुभद्रा

परमेश्वरके अधीन है न कि स्वतन्त्र—इसप्रकारके उत्पन्न तत्त्वज्ञानसे 'मैं ही कर्ता हूं' इसतरहका मोह जिनका नष्ट हो गया, ऐसे राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंसे सुसेवित होते हुए श्रीकृष्णका आश्रय लेकर समुद्रपर्यन्त पृथिवीका उसतरह पालन करने लगे जिसतरह इन्द्र स्वर्गका ॥ ३ ॥ उनके शासनकालमें मेघ खूब बरसता था पृथिवी अभिलषित पदार्थोंका यथेष्ट प्रदान करती थी और बड़े-बड़े थन वाली गायें, आनन्द पूर्वक अपने दूधसे गोशालाओंको खूब सींचती थीं ॥ ४ ॥ नदी, समुद्र, वनस्पति और लताओंसे युक्त पर्वत तथा सम्पूर्ण औषधियां प्रत्येक ऋतुमें धर्मराजकी इच्छाके अनुसार फलती थीं ॥ ५ ॥ अजातशत्रु धर्मराज युधिष्ठरके राज्यकालमें प्राणियोंको मानसिक तथा शारीरिक रोग, शीतोष्णादि जन्य क्लेश तथा आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक किसी प्रकारके भी दुःख कभी नहीं हुए ॥ ६ ॥ पाण्डवोंको शोक-शून्य करनेके लिए तथा अपनी बहिन सुभद्राके हितकी कामनासे हस्तिनापुरमें कई-एक मास तक रह कर ॥ ७ ॥ राजा युधिष्ठिरसे सलाह करके उनकी आज्ञा लेकर तथा अभिवादन पूर्वक उनका आलिङ्गन करके भीम और अर्जुनसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आलिङ्गित होकर तथा नकुल सहदेवसे अभिवादित होते हुए भगवान् श्रीकृष्णजी द्वारका जानेके लिए रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ८ ॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती तथा उत्तरा गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीम धौम्य ऋषि तथा सत्यवती आदि स्त्रियाँ—ये सबके सब भगवान् श्रीकृष्णको महिमासे विशेष मोहित होनेके कारण शार्ङ्गधन्वा भगवान्का विरह न सह सके ॥ ९, १० ॥ क्योंकि जिस भगवान्के साधु पुरुषों द्वारा वर्णित हो रहे रुचिकर यशको एक बार भी सुनकर सत्सङ्गतिके कारण पुत्रादिविषयरूपी दुःसङ्गों से निर्मुक्त विवेकी पुरुष भगवान्के गुणोंका कीर्तन करनेवाले सज्जनोंकी सङ्गति छोड़ना कभी नहीं चाहता ॥ ११ ॥ फिर वे ही पाण्डव भला उस भगवान् श्रीकृष्णका विरह कैसे सह सकते हैं ? जिन्होंने दर्शन, स्पर्शन, प्रेमपूर्वक वार्तालाप, शयन, आसन और भोजन आदि व्यवहारों द्वारा श्रीकृष्णमें अपनी सारी बुद्धि लगा दी है ॥ १२ ॥ इसलिए निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्

द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ॥ गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥९॥ वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ॥ न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥ सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ॥ कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥११॥ तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् ॥ दर्शनस्पर्शसँल्लापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥ सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ॥ वीक्षन्तः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥१३॥ न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ॥ निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः॥१४॥मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ॥ धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥१५॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ॥ ववृषुः कुसुमैः कृष्णे प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ॥ रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥१७॥ उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः

श्रीकृष्णको देखते हुए वे सबके सब पाण्डव इधर-उधर उनकी पूजाकी सामग्री लानेके लिए चल पड़े, क्योंकि वे सब भगवान्के स्नेहसे अच्छी तरह बँध गये थे, अतएव उनका चित्त भी भगवान् श्रीकृष्णके साथ ही जा रहा था ॥ १३ ॥ भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णके घरसे बाहर निकलते समय, अधिक प्रेम होनेके कारण द्रौपदी पाण्डवोंकी स्त्रियोंने अपनी आंखोसे बाहर आ रहे आंसू यात्राकालमें किसी तरहका अमङ्गल न हो, इस विचारसे आंखोंके भीतर ही रोक लिये ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके जाते समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी वीणा पणव (छोटा नगाड़ा), गोमुख (नरसिंहा), धुन्धुरी (खंजरी), आनक (तासा), घण्टे और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे ॥ १५ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णको देखनेकी इच्छासे कौरवोंकी स्त्रियां प्रसादों के शिखरोंपर यानी महलों के छतोंपर बैठ करके[1] प्रेम और लज्जापूर्वक मुसकराती हुई भगवान् श्रीकृष्णको देखकर उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥१६॥ गुडाकेश प्रिय अर्जुन ने अपने प्रियतम श्रीकृष्णका मोतियोंकी झालरों से विभूषित तथा रत्नजटित दण्डसे अलंकृत सफेद छाता अपने हाथमें पकड़ लिया ॥ १७ ॥ उद्धव और सात्यकिने अत्यन्त सुन्दर

१. विधवा धर्म को पालन करनेवाली कुलीन वंश वाली कौरवों की पत्नियों ने श्री भगवान् श्री कृष्ण जी से प्रेम और लज्जायुक्त क्यों हुईं ! अपमानित करने वालों के पत्नियों की रक्षा इन्हीं के हाथ है—इससे लज्जित हुईं । और जैसे हमारी गति हुई तद्वत् इनकी पत्नियों की भी होगी यह ध्यान कर मुसकराईं ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चँवर पक‌ड़ लिये उस समय भगवान् श्रीकृष्ण स्त्रियों द्वारा की पुष्पवृष्टिसे उस मार्गमें खूब शोभित हो रहे थे ॥ १८ ॥ अनेक जगहों पर निगु`ण और सगुण श्रीकृष्ण के रूप या अनुरूप ब्राह्मणों द्वारा दिये गये आशीर्वाद उस समय सत्य सुनाई पड़े ॥ १९ ॥ जिनका चित्त पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णमें ही लगा हुआ है, ऐसी हस्तिनापुरकी स्त्रियोंकी परस्परकी बातें सब श्रुतियों को मनोहर लगती थीं यानी उनकी परस्परकी बातों की मूर्तिमती उपनिषदें भी प्रशंसा करती थीं ॥ २० ॥ उन स्त्रियों में जो भगवान् के तेज और सौन्दर्य के अतिशयसे विस्मित हो रही थीं, उनसे दूसरी स्त्रियाँ कहने लगीं—सत्त्व, रज, और तम इन गुणोंकी उत्पत्तिके पूर्व तथा प्रयलकालमें जीवोपाधिभूत सत्वादि शक्तियोंका लय हो जानेसे जीवों के ईश्वर स्वरूपमें मिल जानेपर जो एक उपाधिशून्य पुरातन –पुरुष अपने निष्प्रपञ्च स्वरुपमें स्थित था, वही यह भगवान् श्रीकृष्ण हैं, इसलिए साक्षात् ईश्वर होनेसे इनके विषयमें किसी प्रकारका विस्मय नहीं करना चाहिए ॥ २१ ॥ वही शास्त्रकण पुरातन –पुरुष आज नामरूप शून्य जीवात्माके विषयमें नाम–रूपोंकी रचना करनेकी इच्छासे अपनी कालशक्तिसे प्रेरित तथा अपने अंश

कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥ अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ॥ नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥ अन्योन्य-मासीत्सञ्जल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ॥ कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥२०॥ स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ॥ अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशिसुप्तशक्तिषु ॥२१॥ स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ॥ अनामरू-पात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥ स वा अयं यत्पदमत्रसूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ॥पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥ स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ॥ य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥ यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्वतः किल ॥ धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५॥ अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ॥ यदेष पुंसामृषभः श्रियः प्रियः स्वजन्मना चंक्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥

भूत जीवोंको मोहित करनेवाली अतएव नाम-रूपोंकी सृष्टिकी चाह कर रही मायाको पुनः अङ्गीकार कर चुके हैं ॥ २२ ॥ एक बहुत बड़ा सौभाग्य है कि हम लोगोंको इनका अतिदुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ, क्योंकि यह श्रीकृष्ण वही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हैं, जिनके चरणकमलोंका इससंसारमें जितेन्द्रिय योगी लोग प्राणवायुको रोक करके भक्तिसे उत्कण्ठित निर्मल बुद्धिसे सदा दर्शन किया करते हैं तथा हे सखि, बुद्धियोंको निर्मल बनानेमें भी यही कारण है। मेरी रायमें तो यही बुद्धिको अच्छी तरह निर्मल बना सकते हैं, न कि योग आदि ॥ २३ ॥ हे सखि, वेद, उपनिषद् तथा नारदपञ्चरात्र आदि ग्रन्थोंमें रहस्यका निरूपण करनेवालोंने जिनकी सत्कथाओंका भलीभाँति गान किया है वही यह भगवान् श्रीकृष्ण हैं। जो एक ईश्वर अपनी लीलासे जगत्‌की सृष्टि करते, रक्षा करते और फिर उसका नाश करते हैं लेकिन किसी कार्यमें आसक्त नहीं होते ॥ २४ ॥ जिससमय तमोगुणसे व्याप्त बुद्धिवाले राजा लोग अधर्मसे केवल अपने प्राणोंका परिपोषण किया करते हैं उस समय यही भगवान् श्रीकृष्ण संसारके कल्याणके लिए तत्-तत् अवसरपर विशुद्ध सत्त्वगुणके द्वारा अनेक अवतार धारण करके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपना ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञा, दया और अद्भुत कर्म प्रकट करते हैं ॥ २५ ॥ चूँकि यह पुरुषोत्तम भगवान् लक्ष्मीपति अपने जन्मसे यदुकुलका सत्कार कर रहे हैं। इसलिए वह यदुकुल परम श्लाघ्यतम है। इन्होंने अपने विचरणसे मथुराका अत्यन्त सम्मान किया है, अतः वह मथुरापुरी अत्यन्त पुण्यतम है। हे सखि, इनकी महिमा आश्चर्यजनक है ॥ २६ ॥ और यह तो सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात है कि यह द्वारकापुरी स्वर्गके यशका तिरस्कार करनेवाली तथा पृथिवीके पुण्य और यशको बढ़ानेवाली हो गई है, क्योंकि यहाँकी सब प्रजाएँ अनुग्रहके लिए इष्ट मुसकुराहट पूर्वक अवलोकन करनेवाळे अपने स्वामी श्रीकृष्णका नित्य दर्शन पाती थीं, तात्पर्य यह कि यह सुख स्वर्गमें नहीं है ॥ २७ ॥ हे सखि, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इनकी रुक्मिणी, सत्याभामादि स्त्रियोंने पूर्व जन्ममें व्रत, स्नान और हवन आदिसे इनका भलीभाँति पूजन किया होगा, क्योंकि वे इनके अधरामृतका खूब बार-बार पान किया करती हैं, जिस

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ॥ पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७ ॥ नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ॥ पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥ या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयम्बरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ॥ प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥२९॥ एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ॥ यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥ एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् ॥ निरीक्षणेनाभिनन्दन्सस्मितेन ययौ हरिः ॥ ३१ ॥ अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ॥ परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥ ३२ ॥ अथ दूरागताञ्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् ॥ सन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥ कुरुजाङ्गलपाञ्चालाञ्शूरसेनान्स यमुनान् ॥ ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ॥ आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥३५॥

अधरामृतकी लालसासे वृजस्त्रियाँ अत्यन्त मोहित हो गई थीं इसलिए भगवान् श्रीकृष्णका सौन्दर्य निराला है ॥ २८ ॥ स्वयंवरमें शिशुपाल आदि बलिष्ठ राजाओंको पराजित कर पराक्रम-रूपी मूल्य द्वारा लाई गई, प्रद्युम्न, साम्ब और अम्बकी माताएँ जो रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा तथा नाग्नजिती आदि पटरानियाँ एवं भौमासुरके वधके समय हजारों लाई गई जो दूसरी स्त्रियाँ हैं वे अपवित्र और स्वातन्त्र्यशून्य अपने स्त्रीत्वको ही केवल सुन्दर बना रही हैं, क्योंकि पारिजात आदि सुन्दर वस्तुएँ लाकर देने तथा नानाविध प्रेम भरी बातोंसे अपने मनमें खुश हो रहे पद्मलोचन पति भगवान् श्रीकृष्णजी जिनके घरसे कभी बाहर नहीं निलकते ॥ २९, ३० ॥ इसतरह अपनी सहेलियोंसे प्रेमभरी विचित्र बातें कर रही हस्तिनापुरकी स्त्रियोंको मुसकुराहटपूर्वक अपने कृपाकटाक्षोंसे अभिनन्दित करते हुए भगवान् श्रीकृष्णजी नगरके बाहर हो गये ॥३१॥ कहीं रास्तेमें दुश्मन इनके ऊपर किसी तरहका प्रहार न करें—यों शत्रुओंसे शङ्कित होकर अत्यन्त स्नेहके कारण अजातशत्रु युधिष्ठिरने भगवान् मधुसूदनकी रक्षाके लिए अपनी चतुरंगिणी सेना उनके पीछे लगा दी ॥ ३२ ॥ उसके बाद अपने अत्यन्त स्नेही, विर-हसे व्याकुल हुए तथा बहुत दूर तक अपने साथ आये हुए पाण्डवोंको पीछे लौटाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने प्रिय-पात्र उद्धव आदिके साथ अपनी द्वारिकापुरीको चल दिये ॥ ३३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुरु, जाङ्गल, पाञ्चाल, शूरसेन यमुनाके तट प्रदेश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र मत्स्य तथा सरस्वती नदीके तटके देश ॥ ३४ ॥ मारवाड़, थोड़ जल धन्वनामक देशोंको लाँघकर सौवीर और आभीर इन दोनोंके आगे आनर्तदेश (द्वारका) में वह सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्ण आ गये। हे भार्गव, उनके घोड़े उस समय अधिक थके हुए नहीं थे ॥ ३५ ॥ हस्तिनापुरसे भगवान्के चलनेपर रास्तेमें जो-जो देश मिलते गये, उन-उन देशके निवासियोंने तत्-तत् स्थानोंपर भगवान् विष्णुको भेंट लाकर समर्पित की । सायंकालमें भगवान् श्रीकृष्ण पश्चिम दिशामें आ पहुँचे और उसी समय स्वर्गस्थ भगवान् सूर्यदेव जलमें प्रविष्ट हो गये यानी अस्त हो गये ॥ ३६ ॥

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ॥ सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥ ३६ ॥ इति श्रीम० म० प्र० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अध्यायसार—हे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्तो, जब धर्मराज युधिष्ठिर धर्मपूर्वक अपनी प्रजाओंका पालन करने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको कृतकार्य समझकर परम प्रसन्न हुए और द्वारका जानेके लिए पाण्डवोंसे आज्ञा ली। विरह-व्याकुल पाण्डवों तथा उनकी औरतोंने बड़े दुःखके साथ उन्हें जानेकी अनुमति दी। भगवान्के हतिनापुर छोड़ेते समय द्रौपदी आदि स्त्रियोंकी आँखोमें आँसू भर आये परन्तु अमङ्गलकी आशङ्कासे उन स्त्रियोंने उन्हें बाहर नहीं होने दिया। बड़े सज-धजके साथ हस्तिनापुरसे निकल रहे भगवान्के सौन्दर्यको देखकर वहांकी स्त्रियाँ उनकी प्रशंसा करने लगीं। प्रेमभरी उन स्त्रियोंकी आत्मविषयक स्तुति सुनंकर भगवान् कृष्ण उन्हें अपनी कृपाकटाक्षोंसे सम्मानित करते हुए नगरसे बाहर हो गये। बहुत दूर अपने पीछे आ रहे विरह-व्याकुल पाण्डवोंको लौटाकर उद्धव आदिके साथ द्वारकाको चल दिये। रास्तेमें जो-जो देश मिलते गये वहाँके रहनेवालोंने भगवान्को बड़े प्रेमके साथ स्तुतिपूर्वक भेंट चढ़ाई। उनकी भेंट स्वीकार कर भगवान् श्री कृष्ण पश्चिम दिशा में आये और भगवान् सूर्य उसी समय अस्त हो गये। दशवा अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ एकादशोऽध्यायः ❋

सूत उवाच ॥ आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धान् जनपदान्स्वकान् ॥ दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥१॥ स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ॥ दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे यथाऽब्जषण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥ तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ॥प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥३॥ तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः ॥ आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥४॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ॥

❋ अपने बन्धुओं द्वारा स्तुत हो रहे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारकापुरीमें प्रवेश तथा प्रेम का वर्णन❋

सूतजीने कहा—हे शौनक जी, अपने समृद्ध द्वारकामें पहुँचकर वहाँके निवासियोंका विषाद दूर करते हुए-से श्री भगवान् श्रीकृष्णजीने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥१॥ भगवान् द्वारा बजाया जा रहा वह शङ्ख प्रकृत्या सफेद उदर वाला होता हुआ भी भगवान् श्रीकृष्णके अधरकी लालीमासे लाल होकर भगवान्के करकमलोंके मध्यमें उसतरह सुशोभित हो रहा था, जिस तरह लाल कमलोंके समूह पर बैठकर उच्चस्वरसे शब्द कर रहा राजहंस ॥ २ ॥ संसारके भयदायक कालको भी भयभीत करनेवाले उस शङ्खके शब्दको सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दर्शनके लिए उत्कण्ठित द्वारकाकी सकल प्रजाएँ भगवान्की ओर दौड़ गईं ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके नजदीक आते ही बड़े आदरके साथ प्रजाओंने भगवान्को, सूर्यको दीपककी नाईं, भेंट समर्पित की और आनन्दसे प्रफुल्लवदन वे सब प्रजाएँ आत्माराम, सर्वदा अपने परमानन्दस्वरूपके लाभ से पूर्ण काम, सबके प्रियमित्र तथा सबके संरक्षक उस भगवान् श्रीकृष्णसे—हर्षके कारण गद्गद वाणी द्वारा उस प्रकार भाषण करने लगीं, जिस प्रकार बच्चे अपने पितासे भाषण किया करते हैं ॥ ४,५ ॥ हे नाथ हम तुम्हारे चरणकमलमें सदा नत हैं, जो ब्रह्मा, सनकादि ऋषि तथा सुरेन्द्रसे वन्दित एवं इस संसारमें परम कल्याण चाहनेवालोंकी परम शरण है और जहाँ ब्रह्मादि सबके प्रभु कालकी भी प्रभुता नहीं चलती ॥ ६ ॥ इसलिये हे विश्वभावन, हम लोगोंके उद्भवके लिए आप सदा तैयार रहिये, आप ही हम लोगोंकी माता, हम सबों के पिता, मित्र, पति, सद्गुरु और परम देवता हैं, आपकी निरन्तर सेवासे हम सब

पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥५॥ नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चिवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ॥ परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परःप्रभुः ॥ ६ ॥ भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ॥ त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥ ७ ॥ अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ॥ प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥८॥ यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाथ सुहृद्दिदृक्षया ॥ तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाऽक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥ इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ॥ शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥ १० ॥ मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥ ११ ॥ सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ॥ उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२ ॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥ संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ॥ सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पा--

कृतार्थ हो चुके हैं ॥ ७ ॥ भगवान् हम लोग आपसे सनाथ हैं, क्योंकि हम लोग आपके उस रूपको सदा अवलोकन किया करते हैं जिसका दर्शन देवताओं की भी दुर्लभ है, जो प्रेमपूर्वक मन्द हास्यसे युक्त तथा कृपाकटाक्षसे समन्वित मुखकमल वाला है एवं जिसके सम्पूर्ण अङ्गोंसे सौन्दर्य टपक रहा है ॥ ८ ॥ हे कमल नयन, हे अच्युत, जब आप अपने मित्रोंको देखनेकी अभिलाषासे हस्तिनापुर या मथुरा जाते हैं तब जैसे नेत्रोंको सूर्यके दर्शन बिना एक क्षण करोड़ों वर्षोंके समान प्रतीत होता है ॥ ९ ॥ इस तरह कही कई प्रजाओंकी बातें सुनते हुए भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उनके ऊपर अभिनन्दनपूर्वक अवलोकनसे अनुग्रह करते हुये द्वारिकापुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ १० ॥ वह द्वारिकापुरी भगवान् कृष्णके समान बलशाली मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर अन्धक और वृष्णियोंसे साँपोंसे सुरक्षित भोगवतीके तुल्य, सुरक्षित थी ॥ ११ ॥ सब ऋतुओंमें पुष्प, फल आदि सम्पत्तियोंसे युक्त पवित्र वृक्ष और लतामण्डपोंसे सुशोभित उद्यान आदिके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए अनेक तालाबोंकी शोभासे सम्पन्न थी ॥ १२॥ उसके द्वारों, गृहोंके द्वारों और मार्गोंमें उत्सवके उत्साहसे तोरण बँधे हुए थे। चित्र-विचित्र, ध्वजा और पताकाओंके अग्रभागोंमें पहनाये गये कपड़ोंसे उनके भीतर सूर्यका आतप नहीं पहुँच पाता था ॥ १३ ॥ वहाँके राज-मार्गोंकी, इधर साधारण मार्गोंकी तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाजारकी सड़कोंकी खूब सफाई की गई थी। घरों के आँगनमें कूड़ा करकटका कहीं नाम निशान नहीं था। और खूब सफाईके बाद वहाँ सुगन्धित जल छिड़के गये थे। वह फल, पुष्प, अक्षत और कोमल पत्तोंसे अवकीर्ण थी॥ १४॥ घरोंके प्रत्येक दरवाजेपर स्थापित दधि, अक्षत, फल, ईख, पूर्णकलश, पूजनकी सामग्री, धूप और दीपकोंसे वह अलंकृत थी॥ १५॥ उस समय निरतिशय प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णको आते हुए सुनकर महामना वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुत विक्रमवाले बलराम, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और जाम्बवतीके पुत्र साम्ब—ये सबके सब अत्यन्त आनन्दके वेगसे शय्या, आसन और भोजन आदि छोड़कर मंगलके लिये गजराजको आगे करके हाथमें पुष्प आदि माङ्गलिक वस्तुएँ लिये हुए वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाले ब्राह्मणोंके साथ शङ्ख आदि माङ्गलिक बाजोंके शब्दों तथा वेदमन्त्रपाठोंसे आहत प्रेमके मारे संभ्रमसे युक्त तथा हर्षान्वित हो रथोंपर बैठ करके भगवान् श्रीकृष्णकी तरफ चल

क्षताङ्कुरैः ॥ १४ ॥ द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ॥ अलङ्कृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः ॥ अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥१६॥ प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ प्रहर्षवेगोच्छ्वशितशयनासन भोजनाः ॥१७॥ वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः ॥ शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ॥ १८ ॥ प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥ १९ ॥ नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः ॥ गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥ २० ॥ भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ॥ यथाविध्युपसङ्गम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २१ ॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ॥ आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ॥ आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम् ॥२३॥ राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ॥ हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥२४॥ नित्यं निरी-

दिये। उस समय भगवान्का आगमन सुनकर अनेक नट आदि उनके दर्शनके निमित्त चल पड़े तथा कानोंमें झलक रहे कुण्डलोंसे प्रकाशमान कपोलों द्वारा अपने मुखकी शोभा बढ़ा रही सैकड़ों नर्तकियाँ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिए उत्सुक होकर गाड़ी आदि भिन्न-भिन्न सवारियों पर बैठकर चल दीं॥ १६---१९॥ हाव-भावपूर्वक नवों रसोंका अभिनय करनेमें चतुर नट, तालादिके अनुसार नाचनेवाले नर्तक, गानमें कुशल गवैये, पुराण बाँचनेवाले सूत, वंशावली गानेवाले मागध, तथा समयोचित स्तुति करनेवाले बन्दी भी भगवान् श्रीकृष्णके अद्भुत चरितोंका गान करते हुए चल पड़े॥ २०॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने भी बलराम आदि अपने बन्धुओं तथा उनके पीछे-पीछे आ रहे सब पुरवासियोंकी भेंट स्वीकार कर यथोचित रीतिसे उनसे मिल करके उनका खूब सम्मान किया। किसीको माथा नवाकर, किसीको छातीसे लगाकर, किसीसे हाथ मिलाकर, किसीकी ओर मन्द मुसकुराहटके साथ सिर्फ देखकर, किसीको उपदेश देकर तथा किसीको अभिलषित वर देकर भगवान्ने वसुदेवजीसे लेकर चाण्डाल पर्यन्त सबका योग्यताके मुताबिक खूब सम्मान किया॥ २१, २२॥ और स्वयं श्रीवसुदेव आदि पूज्यों, गर्गाचार्य प्रभृति ब्राह्मणों तथा स्त्रियोंके साथ उपस्थित उग्रसेन आदि वृद्ध लोगों द्वारा नानाविध आशिर्वादोंसे अभिनन्दित हो रहे तथा अनेक दूसरे बन्दीजनोंसे स्तुत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

होकर भगवान्‌ने नगरमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ हे विप्र शौनकजी, भगवान् श्रीकृष्णके राजमार्गमें पहुंचनेपर उनके दर्शनके लिये उत्सुक द्वारकाके धनी लोगोंकी कुलस्त्रियाँ अपने-अपने महलके छतों पर चढ़ गईं ॥ २४ ॥ क्योंकि यद्यपि द्वारकानिवासी सौंदर्यके धाम अङ्गसे सुशोभित भगवान् अच्युतका नित्यही दर्शन किया करते थे तथापि उनकी आँखें तृप्त नहीं होती थीं ॥ २५ ॥ वक्षःस्थल लक्ष्मीका निवासस्थान है, जिनका मुख सकल प्राणियोंकी आँखोंका सौंदर्यरूपी अमृतका पान करनेके लिये—पात्र है, जिनकी बाहुलतायें लोकपालोंके निवासस्थान हैं और जिनके चरणकमल भक्तोंके आश्रयस्थान हैं, उन्हें नित्य देख रहे द्वारकावासियोंकी आँखें तृप्त न होती थीं ॥ २६ ॥ सफेद छत्र और चँवरोंसे मण्डित तथा फूलोंकी वर्षासे अभिवर्षित पीताम्बरधारो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी राजपथमें वनमालासे उस तरह सुशोभित हो रहे थे, जिस तरह सूर्य, चन्द्र, तारागणोंसे युक्त इन्द्र धनुष एवं बिजलीसे बादल

क्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ॥ न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम् ॥ २५ ॥ श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् ॥ बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ॥ पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनो यथाऽर्कोडुपचाप वैद्युतैः ॥ २७ ॥ प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ॥ ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥ ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ॥ प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥ पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य सञ्जातमनोमहोत्सवाः ॥ उत्तस्थुरारात्सहसासनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥ तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् । निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥

॥ २७ ॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजी माता-पिताके घरोंमें पहुँचे । वहाँ माताओंने उन्हें गलेसे लगाया एवं भगवान्‌ने भी बड़े आनन्दके साथ देवकी प्रभृति प्रमुख सातो माताओंको मस्तकसे यानी माँथा नवाकर प्रणाम किया ॥ २८ ॥ स्नेहके कारण जिनके स्तनोंसे दूध चू रहा था, ऐसी वे मातायें अपने प्यारे बच्चे भगवान् श्रीकृष्णको गोदमें लेकर आनन्दसे विह्वल मन हो आँखोंसे उत्पन्न हर्षके आँसुओंसे सींचने लगीं ॥ २९ ॥ उसके बाद भगवान् अपने भवनमें प्रविष्ट हुए, जो सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा सर्वोत्तम था और जहाँपर रुक्मिणी प्रभृति सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके महल थे ॥ ३० ॥ देशान्तरसे लौटकर अपने घर आए हुए स्वामीको दूरहीसे देखकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्त्रियोंके मनमें महान् आनन्द उत्पन्न हो गया, उनके नेत्र और मुख लज्जित हो गये । परदेशमें गये पतिके समय धारण किये हुए व्रतोंके साथही झट आसन और अन्तःकरणसे उठ खड़ी हो गई तात्पर्य यह कि भगवान् श्रीकृष्णके साथ मिलनेमें अन्तःकरणका भी व्यवधान वे न बरदाश्त कर सकीं ॥ ३१ ॥ हे शौनकजी, घर आ रहे अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको अत्यन्त अनुरागवती वे स्त्रियाँ (विदेशमें रहते समय) अपनी बुद्धिसे हृदयमें आलिङ्गन देती थीं किन्तु बादमें परदेशमें लौटकर घर आते समय अपनी दृष्टियोंसे तथा बिलकुल नजदीक पहुँच जाने पर अपने बच्चोंके द्वारा उन लोगोंने आलिङ्गन दिया । उस समय विलज्जित हो रही उन स्त्रियोंकी आँखोंसे निकल रहे प्रेमके आँसू अनेक तरहसे रोके जाने पर भी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अत्यन्त विवश हो जानेके कारण कुछ जमीनपर गिर ही पड़े ॥३२॥ यद्यपि वह भगवान् सर्वदा उनके नजदीक रहते हुए भी एकान्तवासी थे तथापि उनके चरणकमल प्रत्येक क्षणमें उन स्त्रियोंको नये-नयेसे ही मालूम पड़ते थे, क्योंकि चञ्चल स्वभाव लक्ष्मी भी जिन चरणकमलोंका कभी त्याग नहीं करती, फिर दूसरी ऐसी कौन स्त्री है, जो उस पदसे अलग होनेकी इच्छा करेगी ? ॥ ३३ ॥ हे शौनकजी, इस तरह शस्त्रधारण किये विना ही वह भगवान्—पृथ्वीके ऊपर भार देनेके लिये ही जिनका जन्म हुआ था तथा अक्षौहिणी सेनाओंसे चारो ओर जिनका तेज फैल रहा था, ऐसे पापी राजाओंमें परस्पर दुश्मनी पैदाकर उनका परस्पर वध होनेपर—उस तरह उपरत (शान्त) हो गये, जिस तरह जंगलमें बाँसोंके परस्पर सङ्घर्ष द्वारा आग पैदाकर उसके भस्म हो जानेपर पवन उपरत (शान्त) हो जाता है ॥३४॥ वह भगवान् अपनी मायासे इस मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होकर साधारण मनुष्यकी तरह रुक्मिणी प्रभृति उत्तम समूहोंमें

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ॥ पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥ एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ॥ विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥ स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ॥ रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥३५॥ उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ॥ संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६ ॥ तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् ॥ आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥ ३७ ॥ एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ॥ न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ३८॥ तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः ॥ अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥ इति श्रीम० प्र० श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

रहकर विहार करने लगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियोंके गम्भीर अभिप्रायके सूचक स्वच्छ, सुन्दर मन्दहास्य और लज्जाशील तिरछी निगाहोंसे ताड़ित हुये जगद्विजयी कामदेवने भी मोहित होकर यानी मेरा काम तो येही कर डालेंगी, अब इस धनुषकी आवश्यकता ही क्या रही—यों विचारकर मारे लज्जाके अपना धनुष फेंक दिया, वे भी उत्तम स्त्रियाँ जिस भगवान् श्रीकृष्णके मनको अपने विविध कपट जालोंसे क्षुभित करनेमें समर्थ न हो सकीं॥ ३६ ॥ असङ्ग भी उस भगवान् श्रीकृष्णको सत्यभामामें आसक्तिके कारण पारिजात हरण आदि व्यापार विशेषसे युक्त देखकर यह संसार अपने सादृश्यसे आसक्ति युक्त मनुष्य समझता है, क्योंकि वह उनके वास्तविक तत्त्वको न जाननेवाला है ॥ ३७ ॥ यही ईश्वरका ऐश्वर्य है कि—प्रकृतिके कार्य स्त्री, पुत्र आदिमें स्थित होकर भी उसके गुणोंके कार्य राग, मोह, सुख-दुःख आदिसे वह उस तरह सदा युक्त नहीं होता, जिस तरह आत्मामें स्थित आनन्दादि गुणोंसे आत्माश्रया बुद्धि युक्त नहीं होती ॥३८॥ अपने स्वामीकी वास्तविक महिमाको न जाननेवाली मूढ़ अवलाओंने एकान्तमें अपने मनके अनुकूल बर्ताव करनेवाले उस भगवान् श्रीकृष्णको अपने वशीभूत उस तरह जाना, जिस तरह ईश्वरकी यथार्थ महिमाको न जाननेवाली बुद्धियाँ (अहं वृत्तियाँ) ईश्वरको (क्षेत्रज्ञको) अपने अधीन जानती हैं अर्थात् सगुण, निर्गुण, कर्ता या अकर्ता यथाभिरुचि समझती हैं ॥ ३९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्यारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे भागवत प्रेमियो, इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकापुरीमें प्रवेश किया। वहाँके निवासियोंने भगवान्को आते देखकर अपने घरोंको तोरण पंक्तियोंसे खूब सजाया था। सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त जलसे वहाँकी सड़कें भलीभाँति सींची गई थीं। प्रदीपोंकी पंक्तियाँ खूब शोभा रही थीं। उस समय महोत्सव देखनेके लिए दूर-दूरसे आये हुए लोगोंसे वह नगरी व्याप्त हो गई थी। आनन्दसे उछल रही चन्द्रमुखी पुरस्त्रियोंसे वह देदीप्यमान थी, वहाँ सुवासिनी महिलाएँ गीत गा रही थीं। सड़कोंपर बिखरे हुए फूलों और धानके लावोंसे वह नगरी परिशोभित हो रही थी ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन हो रहा था और वहाँ प्रत्येक घरके द्वारपर जलसे परिपूर्ण सुवर्णके कलश स्थापित किये गये थे। अपने बन्धुओं द्वारा समर्पित उपहारोंको स्वीकार कर भगवान्ने उनका यथोचित सम्मान किया। अपनी माताओं और पिताजीसे मिलनेके बाद अपने महलमें पहुँचकर अपनी रुक्मिणी आदि स्त्रियोंको आनन्द संसारमें डुबाया। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त*

शौनकजीने कहा—हे सूतजी, अश्वत्थामा द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्रसे निहत हुए उत्तराके गर्भको भगवान्ने पुनः जीवित किया ॥ १ ॥ उस महाबुद्धिशाली महात्मा परीक्षित्का जन्म, उनके कर्म तथा उनका निधन जिसप्रकारसे हुआ था एवं वह राजा परीक्षित् शरीरको छोड़कर जिसप्रकार लोकान्तरको चले गये ॥ २ ॥ इत्यादि वह सब बातें हम सुनना चाहते हैं, यदि आप

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

शौनक उवाच ॥ अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा ॥ उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥१॥ तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ॥ निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥२॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामि गदितुं यदि मन्यसे॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥३॥ सूत उवाच ॥ अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रञ्जयन्प्रजाः ॥ निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादानुसेवया ॥४॥ सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही ॥ जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम् ॥ ५ ॥ किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः ॥ अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥ ६ ॥ मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन ॥ ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥७॥ अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् ॥ अपीच्यदर्शनं श्यामं

* राजा परीक्षित्का जन्म वर्णन *

वर्णन करना उचित समझते हों, तो कृपाकर हम श्रद्धावानोंसे उन राजा परीक्षित्के विषयमें वर्णन कीजिये, जिन्हें शुकदेवमुनिने ज्ञानोपदेश दिया था ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनक मुने, भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी निरन्तर सेवासे सम्पूर्ण कामनाओंसे निःस्पृह होकर धर्मराज युधिष्ठिरने प्रजाओंको रञ्जित करते हुए माँ बापकी तरह उनका पालन किया ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो, भगवान् श्रीकृष्णमें संसक्त चित्तवाले राजा युधिष्ठिरको नानाविध सांसारिक सम्पत्तियाँ, यज्ञद्वारा मिलनेवाले लोक, रानी, भ्रातृभक्त भाई, पृथिवी, जम्बूद्वीपका आधिपत्य, स्वर्गतक पहुँचा हुआ यश—ये सब विषय, जिनकी देवता भी रात-दिन चाहना करते हैं, क्या आनन्द दे सके ? जैसे भूखे मनुष्यको अन्नके अतिरिक्त और दूसरे चन्दन आदि पदार्थ आनन्द नहीं देते वैसे ही राजा युधिष्ठिरको ये सब तनिक भी आनन्द न दे सके ॥ ५, ६ ॥ हे भृगुनन्दन, अपनी मांके गर्भमें अवस्थित ब्रह्मास्त्रके तेजसे जल रहे उस वीर परीक्षित्ने किसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक पुरुषका दर्शन किया ॥ ७ ॥ जो अँगूठेभरका अत्यन्त निर्मल था। जिसके मस्तकपर किरीट चमचमा रहा था, जो अति सुन्दररूपसे युक्त था, जो श्यामवर्णका था और जो विकार शून्य था तथा बिजलीके समान चमचमा रहे वस्त्रसे भूषित था ॥ ८ ॥ जो अत्यन्त सुन्दर दीख रहे चार भुजाओंसे युक्त था, जिसके दोनों कानोंमें तपाये गये सोनेके समान कान्तिवाले दो कुण्डल झलक रहे थे। जिसकी आँखें लाल-लाल थीं, जो हाथमें गदा लिए हुये था तथा जो अपनी चारों ओर घूम रही बिजलीके समान चमक रही गदाको घूमा रहा था ॥ ९ ॥ जैसे सूर्य हिमको नष्ट कर देता है वैसे ही अपनी गदासे ब्रह्मास्त्रके तेजको नष्ट कर रहे अपने समीपमें उस पुरुषको देखकर गर्भगत उस परिक्षित्ने तर्क किया—अहो, यह अनुपम सौन्दर्यशाली पुरुष कौन है? ॥ १० ॥ सर्वव्यापक, धर्मरक्षक, अमेयात्मा भगवान् श्रीहरि उस ब्रह्मास्त्रका छेदनकर उस दस महीने लड़केके देखते-देखते ही वहीं अन्तर्हित हो गये ॥ ११ ॥ उत्तरोत्तर

तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ८ ॥ श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् ॥ क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥ परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ॥ ९ ॥ अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ॥ विधमन्तं सन्निकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ १० ॥ विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः ॥ मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥११॥ ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ॥ जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥ १२ ॥ तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ॥ जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ १३ ॥ हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ॥ प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥१४॥ तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् ॥ एष ह्यस्मिन्प्रजातन्तौ कुरूणां पौरवर्षभः ॥ १५ ॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ॥ रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १६ ॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ॥ भविष्यति न सन्देहो महाभागवतो महान् ॥१७॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अप्येष वंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः ॥ अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः॥ पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ॥ ब्रह्मण्यः सत्यसन्धश्च रामो दाश-

सम्पूर्ण गुणोंका आधिक्य सूचन करनेवाले, अन्य ग्रहोंके साथ-साथ शुभ ग्रहोंका जहाँपर उदय है ऐसे लग्नमें पाण्डुवंशको धारण करनेवाला, बलमें पुनः उत्पन्न दूसरे पाण्डुकी नाईं, वह पुत्र पैदा हुआ ॥ १२ ॥ प्रसन्नमन हुए राजाने उस बच्चेका जात-कर्म धौम्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंके द्वारा पुण्याहवाचन कराकर कराया ॥ १३ ॥ दान कालका उचित ज्ञान रखनेवाले राजाने पुत्रोत्पत्तिके पुण्यकालमें सोना, गौ, भूमि, गाँव, हाथी-घोड़े, श्रेष्ठ वस्तुएँ और सुन्दर अन्न आदि ब्राह्मणोंको दान दिये ॥ १४ ॥ उन सन्तुष्ट ब्राह्मणोंने विनीत धर्मराजसे यों कहा—हे पौरवर्षभ, कुरुवंशकी विशुद्ध इस प्रजातन्तु गर्भके दुर्निवार दैवके द्वारा नष्टकर दिये जानेपर आपके ऊपर अधिक अनुग्रह रखनेके कारण चूँकि प्रभावशील भगवान् श्रीविष्णु द्वारा यह बालक दिया गया है, अतः यह लड़का 'विष्णुरात' इस नामसे प्रसिद्ध और भगवान्का महान् भक्त होगा तथा हे राजन्, यह अपने गुणोंके कारण इस संसारमें विपुलकीर्तिसे सम्पन्न होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ १५–१७ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठो, क्या यह बालक साधुवाद (प्रशंसा) तथा सत्कीर्तिके द्वारा पुण्यश्लोक, राजर्षि अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूर्वज महात्माओंके आचारोंके सदृश आचरण करनेवाला होगा ॥१८॥ ब्राह्मणोंने कहा—हे पार्थ, प्रजापालक मनुके पुत्र साक्षात् इक्ष्वाकुकी नाईं तथा सत्य प्रतिज्ञावाले ब्राह्मण हितकारी दशरथके लड़के श्रीरामचन्द्रकी नाईं यह बालक होगा ॥ १९ ॥ हे राजन्, यह लड़का शरणागतोंका रक्षक और दाता, उशीनरदेशाधिपति शिविके समान होगा तथा यह अपनी जातियों और यज्ञकर्त्ताओंकी उज्ज्वल कीर्तिका विस्तार करनेवाला होगा ॥ २० ॥ हे राजन्, यह बालक धनुर्धारियोंमें अग्रणी तथा अर्जुन और कार्तवीर्यके समान होगा। यह अग्निकी नाईं दुर्धर्ष (दुःसह) तथा समुद्रकी नाईं दुस्तर होगा ॥ २१ ॥ दूसरी जगह शरण न मिलनेके कारण हिमाचलकी नाईं सज्जनोंके लिये निषेव्य होगा और मृगेन्द्रकी नाईं पराक्रमी होगा। यह पृथ्वीकी नाईं तितिक्षु (अपराधोंको क्षमा करनेवाला) होगा तथा माता-पिताकी नाईं सहिष्णु होगा ॥ २२ ॥ यह समतामें ब्रह्माके सदृश तथा प्रसन्न होनेमें तो भगवान् शंकरके सदृश

रथिर्यथा ॥ १९ ॥ एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिविः ॥ यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२०॥ धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः ॥ हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥ मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव ॥ तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥२२॥ पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ॥ आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥ सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः ॥ रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥ २४ ॥ धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः ॥ आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥ २५ ॥ राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् ॥ निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥ २६ ॥ तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ॥ प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्ग पदं हरेः ॥ २७ ॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ ॥ हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥ २८ ॥ इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः ॥ लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ॥२९॥ स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः ॥ गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ॥ ३० ॥ स राजपुत्रो ववृध आशु शुक्ल इवोडुपः ॥ आपूर्यमाणः पितृभिः

होगा। लक्ष्मीके आश्रय श्रीहरिकी नाईं सभी प्राणियोंका आश्रयदाता होगा ॥ २३ ॥ सम्पूर्णसद्गुणोंके माहात्म्यमें तो यह बालक भगवान् श्रीकृष्णके तुल्य होगा। हे राजन्, राजा रन्तिदेवकी नाईं उदार तथा यह ययातिकी नाईं धार्मिक होगा ॥ २४ ॥ यह धैर्यमें बलिके समान तथा भगवान् कृष्णमें सुन्दर अभिनिवेश रखनेवाले प्रह्लादकी नाईं, सुन्दर अभिनिवेश रखनेवाला होगा। यह अनेक अश्वमेध याग करनेवाला और वृद्धोंकी भलीभाँति सेवा करनेवाला होगा ॥ २५ ॥ हे राजन्, यह जन्मेजय आदि राजर्षियोंको पैदा करनेवाला तथा उत्पथगामियोंका शासक होगा। यह धर्म और पृथ्वीके लिए कलिका भी निग्रह करनेवाला होगा ॥ २६ ॥ हे राजन्, यह बालक शृङ्गि नामक ब्राह्मणपुत्रके द्वारा भेजे गये साँपसे अपनी मृत्यु सुनकर विरक्त होकरके भगवान् श्रीहरिके चरणमें पहुँचेगा ॥ २७ ॥ हे राजन्, यह निश्चित है कि यह लड़का व्यासपुत्र शुकदेव मुनिसे आत्मविषयक यथार्थज्ञान प्राप्त कर इस शरीरको गंगाजीमें छोड़कर ऐसे मोक्षपदको प्राप्त कर लेगा, जहाँ पहुँच जानेपर मनुष्यको किसीसे भय नहीं रहता ॥ २८ ॥ जातकशास्त्रके महान् पण्डित ब्राह्मण सब यों राजा युधिष्ठिरसे उत्पन्न हुए उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बालकका भविष्य कहकर राजासे खूब पूजा लेकरके अपने-अपने घर चले गये ॥ २९ समर्थ होकरके गर्भमें देखे गये पुरुषका ध्यानकर रहा यह लड़का गर्भके बाहर आनेपर इस लोकमें दिखाई दे रहे अनेक मनुष्योंसे प्रत्येक मनुष्यकी परिक्षा करता फिरा कि क्या यह वही मनुष्य है, जिसे मैंने गर्भमें देखा था। हे शौनकजी, इसलिये यह इस लोकमें 'परीक्षित' इस नामसे विख्यात हुआ ॥ ३० ॥ हे शौनकजी, युधिष्ठिर आदि राजाओं तथा चौंसठ कलाओंसे परिपूर्ण हो रहा वह राजपुत्र उस तरह शीघ्र बढ़ने लगा, जिस तरह रोज-रोज शुक्लपक्षमें अपनी पन्द्रह कलाओंके परिपूर्ण होरहा चन्द्रमा बढ़ता है ॥ ३१ ज्ञातिद्रोह जनित पापको विनष्ट कर देनेकी चाहसे अश्वमेघ यागद्वारा यज्ञ करनेकी इच्छा रख रहे वह राजा युधिष्ठिर बिना कर और दण्ड लगाये धनकी प्राप्ति न होनेसे सोच करने लग गये ॥ ३२ ॥ राजाके अभिप्रायको लखकर उनके और भाई श्रीकृष्णसे प्रेरित होकर उत्तर दिशामें पहुँचे तथा वहाँसे राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणों द्वारा छोड़ दिये गये बहुतसे सोनेके पात्र आदि धन उठा लाये ॥३३॥ उसी द्रव्यसे यज्ञ करनेकी अनेक सामग्रियोंको जुटाकर ज्ञातिद्रोहसे डरे हुये धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने तीन अश्वमेध यज्ञोंसें भगवान् श्रीहरिकी भली भाँति आराधना की ॥ ३४ ॥ राजा युधिष्ठिरके द्वारा बुलाये जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण वहा आये और वहाँ आकर ब्राह्मणोंके द्वारा राजासे

काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥ ३१ ॥ यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया ॥ राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः ॥ ३२ ॥ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः ॥ धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ॥३३॥ तेन संभृतसंभारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समजयद्धरिम् ॥ ३४ ॥ आहूतो भगवान्राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृदां प्रियकाम्यया ॥३५॥ ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः ॥ ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अश्वमेधयाग कराया। अपने मित्रोंका प्रिय सम्पदान करनेकी चाहसे यानी उनको खुश करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कितनेही महीनों तक वहाँ रह गये ॥३५॥ हे ब्रह्मन्, इसके बाद भीम आदि भाइयों अथा द्रौपदीके साथ-साथ राजा युधिष्ठिरसे जानेकी अनुमति लेकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनके साथ यदुओंसे घिरे हुए द्वारिकापुरीको चल दिये ॥ ३६ ॥

बारहवें अध्यायका सार—सूतजीने कहा-शौनकधी, भगवान् विष्णु द्वारा रक्षित उत्तराके गर्भसे शुभग्रहोंसे युक्त शुभ लग्नमें पाण्डुवंशको बढ़ाने वाला वह बच्चा पैदा हुआ। राजा युधिष्ठिर को बड़ी खुशी हुई। ब्राह्मणोंको बुलाकर राजाने उसका जातकर्म कराया तथा सुवर्ण आदि खूब दान दिये। अनन्तर ब्राह्मणोंने कहा-हे राजन्, यह बच्चा विष्णु द्वारा गर्भमें रक्षित होनेके कारण विष्णुरात नामसे प्रसिद्ध होगा, और भगवान्का बहुत बड़ा भक्त होगा। यह प्रजापालन मनुके पुत्र इक्ष्वाकुकी नाईं तथा रामचन्द्रके सदृश कीर्तिशाली होगा यह शरणागतोंका रक्षक शिविके समान होगा। यों उस लड़केका भविष्य बतलाकर आशीर्वाद देते हुए ब्राह्मण आनन्दपूर्वक अपने घर चले गये। तदन्तर हे शौनकजी, वह लड़का गर्भमें देखे हुए भगवान्को बाहर ढूँढ़ता फिरा, परीक्षा करता फिरा कि यह वही पुरुष है, जिसे मैंने गर्भमें देखा था या दूसरा। इसलिए परीक्षित् नामसे प्रसिद्ध हुआ। हे शौनकजी, तदनन्तर जाति विद्रोह जनित पापकी निवृत्तिके लिए राजाने अश्वमेध याग करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु धनके अभावसे चिन्तित राजाको देखकर भीम आदि उनके भाई उत्तर दिशामें चले गये। राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणों द्वारा छोड़े गये धनको वे वहांसे उठा लाये। उसीसे राजा युधिष्ठिरने तीन अश्वमेध याग किये। यज्ञमें राजा द्वारा बड़े आदरके साथ बुलाये गये भगवान् भी कई महीनों तक वहीं ठहर गये तदनन्तर अर्जुनको साथ लेकर द्वारिकामें आ गये। बारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूतजीने कहा—हे शौनकजी तीर्थ करनेके लिये निकले हुए विदुरजी मैत्रेय मुनिसे अपनी गति भगवान् श्रीकृष्णको जानकर उस ज्ञानविषयभूत आत्मगतिके द्वारा (आत्मगतिरूप श्रीकृष्ण ज्ञान द्वारा) जानने योग्य सभी पदार्थों का ज्ञान हो जानेपर हस्तिनापुरमें चले आये ॥ १ ॥ मैत्रेयजीके आगे विदुरजीने कर्मयोग व्रतादि विषयक जितने प्रश्न उपस्थित किये थे, उनमें केवल तीन-चार प्रश्नोंके अर्थज्ञानसे ही भगवान् गोविन्दमें एकनिष्ठा भक्ति उत्पन्न हो जानेसे कृतार्थ होते हुए वह बाकी बचे हुए प्रश्नोंसे विराम ले लिये। तात्पर्य यह कि जितने प्रश्नों का उत्तर उन्हें मिला, उतनेहीसे वह महान् ज्ञानी बन गये, क्योंकि एकमात्र भक्ति हो जानेपर अन्यकी जिज्ञासा बिककुल व्यर्थ हो जाती है, अतः दूसरे प्रश्नके उत्तरकी जिज्ञासा नहीं

❀ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

सूत उवाच ॥ विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ॥ ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥ यावतः कृतवान्प्रश्नान्क्षत्ता कौषारवाग्रतः ॥ जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २ ॥ तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः ॥ धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा॥३॥ गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी ॥ अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥ प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ॥ अभिसङ्गम्य विधिवत्परिष्वङ्गाभिवादनैः ॥ ५ ॥ मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः ॥ राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥६॥ तं भुक्तवन्तमासीनं विश्रान्तं सुखमासने ॥ प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ॥ विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥८॥ कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् ॥ तीर्थानि

की ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्, आये हुए उस अपने बन्धुको देखकर अपने भाइयोंके साथ राजा युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र युयुत्सु, सञ्जय, कृपाचार्य, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, द्रोणाचार्य की स्त्री और दूसरी-दूसरी पाण्डवजातिकी स्त्रियाँ तथा अपने बाल-बच्चोंके साथ भिन्न-भिन्न जातिकी स्त्रियाँ—ये सबके सब हर्षमें आकर उस तरह उठकर विदुरजीकी ओर दौड़ चले जिस तरह किसी मूर्च्छादि दोषसे प्राणों के मूर्च्छित हो जानेपर सभी हाथ, पैर आदि मूर्च्छित हो जाते हैं तथा प्राणोंके पुनः सचेष्ट होनेपर वे सबके सब सचेष्ट हो उठ जाते हैं। इसके बाद विधिवत् आलिङ्गन और अभिवादन आदिसे खूब मिलकर विरहकी उत्कण्ठासे विवश हुए वे सबके सब प्रेमकी आँसुओंकी धारा बहाने लगे। राजा युधिष्ठिरके द्वारा दिये गये आसनपर विदुरजीके बैठ जानेके बाद राजाने उनकी भलीभांति पूजा की ॥ ३—६ ॥ भोजन कर लेनेके बाद विश्रान्त होकर विदुरजीके आसनपर सुखसे बैठ जानेपर विनयसे अत्यन्त सिर नवाये हुए राजा युधिष्ठिर कहने लगे, जहाँ धृतराष्ट्र आदि सभी सुन रहे थे ॥ ७ ॥ राजा युधिष्ठिरने कहा—हे भगवन्, जिस तरह विहंग सब अपने बच्चोंको अतिस्नेह होनेके कारण अपने पाँख की छायासे पालते-पोसते और बढ़ाते हैं उसी तरह आपकी पक्षपातरूपी छायासे संवर्द्धित हुए हम सबोंको क्या आप कभी याद भी करते हैं? क्योंकि माताजीके साथ साथ हम सबोंको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विष, लाक्षागृहकी आग आदि अनेक विपत्तियोंके समूहसे आपने छुड़ाया था ॥ ८ ॥ हे भगवन्, इस भूमण्डलपर विचरण कर रहे आपने किस वृत्तिसे इस शरीरका पोषण किया तथा इस भूतलपर अपने किन-किन तीर्थों और मुख्य-मुख्य क्षेत्रोंका सेवन किया ॥ ९ ॥ हे विभो, आप-जैसे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थस्वरूप रहते हैं तथा अपने अन्तःकरणमें स्थित किये हुए गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णके कारण मलिन मनवाले पुरुषोंके संसर्गसे मलिन हुए तीर्थोंको पवित्र बना डालते हैं ॥ १० ॥ हे तात, मेरे बान्धव तथा मित्र यादव लोग, जिनके देवता भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, अपनी नगरीमें सुखपूर्वक रहते तो हैं न ? कहिये, आपके द्वारा वे कहीं देखे या सुने गये थे कि नहीं ? ॥ ११ ॥ यों राजा युधिष्ठिर के पूछनेपर विदुरजीको अपने भ्रमणमें जैसा अनुभव हुआ उन सबका क्रमशः अच्छी तरह धर्मराजसे वर्णन कर दिया, लेकिन यदुकुल का नाश हो गया है, इसका वर्णन उन्होंने नहीं किया ॥१२॥ स्वयं उपस्थित विप-

क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूलते ॥९॥ भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ॥ तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता ॥ १० ॥ अपि नः सुहृदस्तात बाधवाः कृष्णदेवताः ॥ दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥ ११ ॥ इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् ॥ यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥१२॥ नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ॥ नावेदयेत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥१३॥ कञ्चित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥ १४ ॥ अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ॥ यावद्दधार शूद्रत्वं *शापाद्वर्षशतं यमः ॥१५॥ युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलन्धरम् ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ ॥ एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया ॥ अत्याक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥१७॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ॥ राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम्

त्तियाँ मनुष्योंको अक्सर दुःसह हुआ करती हैं, इसलिये अपने पाण्डव बन्धुओंको दुःखित देखनेमें असमर्थ हो रहे करुणासे भरे हुए विदुरजीने यदुकुलके नाशका वर्णन नहीं किया ॥१३॥ इसके बाद धर्मराजके द्वारा देवताके सदृश सत्कृत होते हुए विदुरजीने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रको आत्मतत्त्वका उपदेश देते हुए तथा सबको प्रसन्नचित्त रखते हुए कुछ कालतक सुखपूर्वक हस्तिनापुर में निवास किया ॥ १४ ॥ शूद्र होते हुए भी विदुरजीने तत्त्वोपदेश कैसे दिया ? ऐसी शंका न करनी चाहिए, क्योंकि वस्तुतः विदुरजी शूद्र नहीं थे, किन्तु धर्मराज थे। यदि यों कहिये कि यमराजके यहाँ आ जानेमें कारण क्या है तथा यहाँ आ जानेके बाद यमलोकमें दण्ड देनेवाला कौन था ? तो इस विषयमें सुनिये—जबतक माण्डव्य ऋषिके शापसे इस भूमण्डलके ऊपर यमराजने विदुरदेहसे सौ वर्षोंतक शूद्रत्वका धारण किया, तबतक उनकी जगहपर अर्यमा नामक पितरने पापी जनोंके विषयमें दण्ड देनेका कार्यभार धारण किया था

* एक समय राजकर्मचारी अनजान माण्डव्य ऋषिको चोरोंके साथ ही पकड़ कर राजा के समीप ले गये। राजाने इन्हें फांसी की सजा सुना दी। उन्हें फांसी गृह में ले जाकर फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया गया कि इतने ही में राजाका आदमी पत्र लेकर आया कि ये माण्डव्य ऋषि हैं इनको फांसी न दी जाय। ये वहां से चलकर धर्मराज (यमराज) के पास पहुंचे उनसे कारण पूछा–उन्होंने कहा कि आपने अपने बाल्यकालमें छोटे २ जीवोंको कुशा से छेदन किया था इससे यह गति हुई। ऋषि ने विचारा मैंने इतना तप किया फिर भी कोई फल न हुआ यह सोचते २ उन्हें क्रोध की अग्नि तीव्र हुई और उसी आवेश में शाप दिया कि तूँ दासी के गर्भ से जन्म लेगा। इससे वे विदुर नाम से प्रसिद्ध हुए यह कथा महाभारत में है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ १५ ॥ राज्य प्राप्त किये हुए युधिष्ठिरजी अपने वंशधर पौत्र परीक्षित्‌को देखकर लोकपालोंके सदृश अपने भीमादि भाइयोंके साथ-साथ सर्वोत्कृष्ट राज्यश्रीसे खूब आनन्दित हुए ॥ १६ ॥ इस तरह गृहोंमें संसक्त अतएव गृहके व्यापारोंमें रात-दिन लगे रहनेसे प्रमत्त बने हुए यानी परमात्माको बिलकुल भूल गये हम सबोंका परम दुस्तर महान् काल अनजानमें ही निकल गया ॥ १७ ॥ हमलोगोंकी इतनी बड़ी जीवनकी लम्बी आयु अनजानमें ही गुजर गई—यह जानकर विदुरजीने धृतराष्ट्रसे कहा––हे राजन्, शीघ्र निकल चलिये, देखिये–यह मृत्युभय आ गया है ॥ १८ ॥ हे प्रभो, जिसका कभी भी किसी तरहसे यहाँ प्रतीकार नहीं किया जा सकता, वही भगवान् कालदेव हम सबके सिरपर आकर उपस्थित हो गये ॥१९॥ जिस कालरूपी भगवान् श्रीहरिसे आक्रान्त हुआ यह प्राणी प्रियतम अपने प्राणोंसे भी वियुक्त कर दिया जाता है, फिर धनादि अन्य वस्तुओंसे वियुक्तकर दिया जाता है, इस विषयमें तो कहना क्या ?

॥१८॥ प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ॥ स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥१९ ॥ येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ॥
जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ २० ॥ पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ॥ आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥२१॥
अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् ॥ भीमेनावर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥ २२ ॥ अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ॥
हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥२३॥ तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः ॥ परैत्यनिच्छतो जीर्णोजरया वाससी इव ॥२४॥
गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ॥ अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥ २५ ॥ यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ हृदि
कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥२६॥ अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ॥ इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥२७॥ एवं

॥ २० ॥ हे राजन्, आपके पिता, भाई, मित्र और पुत्र तो सबके सब मर चुके, आपकी अवस्था भी अब खतम हो चली, यह आपका शरीर वृद्धावस्थाके कारण जर्जर हो गया है; फिर भी आप एक दूसरेके घरकी उपासना कर रहे हैं—दूसरेके घरमें रहकर गुजारा कर रहे हैं ॥२१॥ अहो, जन्तुको जीनेकी बड़ी भारी आशा लगी रहती है, जिससे कि आप भी जिस भीमके द्वारा आपके लड़के मारे गये उसी भीमके द्वारा दिये गये अन्नको आप कुत्तेकी नाईं खाते हैं तात्पर्य यह है कि यदि आपको इस जीवनका मोह नहीं रहता तो फिर आप पालतू कुत्ताकी नाईं भीमके द्वारा दिये गये टुकड़ोंको खाकर यहाँ क्यों पड़े रहते ॥ २२ ॥ हे राजन्, जिन्हें मार डालनेके लिये आपने अग्नि में झोकवा दिया, जिनके मरणके लिये आपने विष दिया, जिनकी स्त्रीकी आपने भरी सभामें बेइज्जती की, जिनकी जमीन यानी राज्य और सारा धन आपने छीन लिया, उनके द्वारा दिये गये अन्न खाकर बचाये गये प्राणोंसे भला अब आपका कौनसा दूसरा मतलब सिद्ध होगा ॥ २३ ॥ राजन्, यों गर्हित जीवन बिताये हुए जीनेकी अभिलाषा पाकर रहे भी आपका यह शरीर आपकी इच्छा न रहते हुए भी पुराने वस्त्रकी नाईं बुढ़ापासे जीर्ण होकर नष्ट हो ही जायगा। अतः आपसे मेरा कहना है आप धीर बन जाइये ॥ २४ ॥ यश और धर्मादिसे शून्य इस शरीरको विषयाभिलाषों से विरक्त तथा सम्पूर्ण अभिमानोंसे शून्य होकर जो प्राणी छोड़ देता है, हे राजन्, अविज्ञात गति वही धीर कहा गया है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ अपने आप या किसी दूसरेके उपदेशसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस भूतलपर सम्पूर्ण विषयों से विरक्त तथा आत्मज्ञानसे सम्पन्न जो मनुष्य अपने हृदयमें भगवान श्रीहरिको स्मरण करता हुआ घरसे निकल जाता है यानी सभी वस्तुओंका त्यागकर सन्यासी हो जाता है वही नरोत्तम कहलाता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे राजन्, अपने सगे सम्बन्धियों को जिससे आपका जाना मालूम न पड़ सके, उस ढंगसे यानी चुपके से आप यहांसे उत्तर दिशाकी ओर चले जाइये, क्योंकि हे राजन् ! इसके बाद जो समय आनेवाला है वह प्रायः पुरुषों के धैर्य, दया आदि गुणोंका विनाशक ही होगा ॥ २७ ॥ यों अजमीढ़वशंमें पैदा हुए प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र अपने छोटे भाई विदुरजीसे ज्ञान प्राप्तकर चित्तमें दृढ़ता आ जानेसे अपनी स्त्री आदि सगे सम्बन्धियों में लगे हुए स्नेह बन्धनको काटकर भाई विदुरके बतलाये गये पथसे ही वहाँसे निकल गये ॥ २८ ॥ युद्धमें शूरोंको जैसे तीव्र प्रहार आनन्दोत्पादक होता है वैसेही भूतोंके साथ द्रोह छोड़ देनेवाले योगियों को हर्ष देनेवाले हिमालय

राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः ॥ छित्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिमो निश्चकाम भ्रातृसन्दिर्शिताध्वा॥२८॥ पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ॥ हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ॥ २६ ॥ अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ॥ गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥३०॥ तत्र सञ्जयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः॥ गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥ ३१ ॥ अम्बा च हतपुत्रार्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत् ॥ अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया ॥ आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥३२॥ पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ॥ अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३३॥ सूत उवाच ॥

पर्वतके उपर जा रहे अपने पतिके पीछे-पीछे सुशीला और पतिव्रता सुबलकी पुत्री गान्धारी भी चली गई ॥ २६ ॥ सन्यावन्दनके अनन्तर हवनकर लेनेके बाद अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर तिल, गो, भूमि और सुवर्ण दान देकर ब्राह्मणों को नमस्कार करके अपने गुरुजनों को प्रणाम करने के लिये जब घरमें प्रविष्ट हुए तब वहाँ अपने पूज्य विदुर, धृतराष्ट्र तथा गान्धारी किसीको भी न देख पाये ॥ ३० ॥ वहाँपर अकेले बैठे हुए सञ्जयसे अपने पूज्यों को न देखते हुए व्याकुल चित्त होकर राजाने पूछा—हे सञ्जय, दोनों आँखो से हीन वृद्ध हमारे चाचा कहाँ हैं ? ॥ ३१ ॥ अपने सब बच्चों के मर जानेसे अत्यन्त दुःखित हमारी माँ (चाची) गान्धारी कहाँ हैं ? हे सञ्जय, भला बतलाओ तो सही, क्या मन्दमति मुझ अभागेके विषयमें किसी तरहके अपराधकी आशंका कर रहे परम हितचिन्तक चाचाजी अपनी भार्याके साथ कहाँ चले गये ? अपने पुत्रोंके मर जानेसे अत्यन्त दुःखित वे क्या गंगाजीमें तो जाकर नहीं डूब गये ॥ ३२ ॥ हमारे पिता पाण्डुजीके मर जानेपर माताजीके साथ हम सब सुहृत् शिशुओंकी हमारे जिन दोनों चाचाओंने (धृतराष्ट्र और विदुरजीने) अनेक बार विपत्तियों

एक समय पतिव्रत को पालन करनेवाली स्त्रीका पति अपनी पत्नी की जांघ पर सिर रख कर शयन कर रहा था कि उस स्त्री का मध्यम पुत्र खेलते खेलते प्रज्वलित अग्नि के समीप आ गया। और आगे बढ़ते ही जा रहा था कि उसकी माँने विचारा कि यदि मैं इसे पकड़ती हूँ कि मेरे पूज्य पति देव जाग जाते हैं इससे पतिव्रत धर्म का पालन भंग होता है ऐसा विचार कर ही रही थी कि उसका पुत्र उसी अग्निमें जा गिरा। पर उसके प्रभाव से वह अग्नि शीतल हो गयी। आज के युग में भी जो पतिव्रता स्त्रियाँ हैं उनके कुलद्वय की गणना सर्व प्रथम मानी जाती है। सावित्री ने भी पतिव्रत धर्म से सत्यवान को जीवित किया यहाँ तक नहीं राज्यपाट, आदि वैभव भी प्राप्त किये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से रक्षा को ह वे आज यहांसे कहां चले गये ॥ ३३ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनकजी, कृपा और स्नेहसे बेचैन होजानेके कारण अत्यन्त पीड़ित तथा अपने मालिक धृतराष्ट्रको न देखनेसे विरह व्याकुल सूतको [सञ्जयको] राजा युधिष्ठिरके प्रति कुछ भी उत्तर देते न बना ॥ ३४ ॥ कुछ समय बाद अपने दोनों हाथोंसे आँसू पोछकर अपने-आप अपने मनको धैर्ययुक्त बना करके अपने प्रभु धृतराष्ट्रके चरणों का स्मरणकर रहे सञ्जयने अजातशत्रुसे कहा ॥ ३५ ॥ सञ्जयने कहा—हे कुलनन्दन, हे महावाहो, आपके चाचाओं तथा गान्धारीके निश्चयको मैं आपसे नहीं कह सकता, क्योंकि वे महात्मा लोग मुझे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये ॥ ३६ ॥ यों कहकर कुछ देरतक सञ्जय उनके अकस्मात् चले जानेसे शोककर रहा था कि इतनेहीमें भगवान् नारदजी अपने तुम्बुरुके साथ वहाँ अचानक आ धमके। उन्हें देखकर युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ शीघ्र उठकर खड़े हो गये और उनका अभिवादन करके शोक

कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ॥ आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥३४॥ विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥ ३५ ॥ सञ्जय उवाच ॥ नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन ॥ गान्धार्या वा महावाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥३६॥ अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुम्बुरुः ॥ प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन्क्व गतावितः ॥ अम्बा वा हतपुत्रार्ता क्व गता च तपस्विनी ॥ कर्णधार इवापारे भगवान्पारदर्शकः ॥३८॥ अथावभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ मा कञ्चन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥३९॥ लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः ॥ स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ ४० ॥ यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः ॥ वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ॥४१॥ यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ॥ इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥४२॥ यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ॥

वेगके कारण उनको पूजा कर रहे से युधिष्ठिरजी कहने लगे ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे भगवन्, मैं यह नहीं जानता कि मेरे दोनों चाचा यहांसे कहाँ चले गये या अपने पुत्रोंके मर जाने से अत्यन्त दुःखित तपस्विनी मेरी चाचीजी यहांसे कहाँ चली गईं। हे भगवन्, अपार शोकसागरमें पार दिखानेवाले कर्णधार-जैसे अकेले आपही मालूम पड़ते हैं अतः दयाकर मुझसे कहिये कि वे लोग कहाँ चले गये ॥ ३८ ॥ राजा युधिष्ठिरकी यह बात सुन लेनेके बाद मुनियोंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् नारदजीने कहा—हे राजन्, किसीके लिये शोक मत करो, क्योंकि यह सारा संसार परमेश्वरके अधीन है ॥३९॥ लोकपालोंके साथ-साथ ये सब लोक जिस परमेश्वरकी पूजा करते हैं, वही परमात्मा सब भूतोंको संयुक्त यानी एकत्रित तथा वियुक्त यानी अलग-अलग करता है ॥ ४० ॥ नाकमें नाथ पहनाकर एक लम्बी रस्सीमें अपनी-अपनी रस्सियोंसे बँधे हुए बैल जैसे अपने स्वामीकी पूजा करते हैं यानी हुकूमत मानते हैं वैसे ही कर्तव्याकर्तव्य विधायक वेदात्मक वाणीरूपी एक लम्बी रस्सीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ इत्यादि नामोंसे बँधे हुए सभी पुरुष भगवान्से प्रेरित होकर गगवान् परमेश्वरकी पूजा करते हैं ॥ ४१ ॥ जिस तरह क्रीड़ाके साधन वस्तुओंका संयोग और वियोग क्रीड़ा करनेवालेकी इच्छासे होता है, उस तरह इस संसारमें सभी पुरुषोंका संयोग और वियोग परमेश्वरकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इच्छासे होता है ॥ ४२ ॥ यदि आप इस लोकको यानी जनको जीवरूपसे ध्रुव (नित्य) और देहरूपसे अध्रुव (अनित्य) मानते हो या शुद्ध ब्रह्मस्वरूप होनेसे या अनिर्वचनीय होनेसे इसे न तो ध्रुव मानते हो और न अध्रुव या चित् और जडांशस्वरूपसे ध्रुव और अध्रुव दोनों मानते हो, तो हे राजन्, इन चारों पक्षोंमें भलीभाँति विचारकर देखनेसे पता चलता है कि आपके चाचा आदि अज्ञानजनित स्नेहके सिवा किसी तरह भी शोक करनेके योग्य नहीं हैं। अर्थात् उन लोगोंके विषयमें शोकका कारण केवल स्नेह ही है और वह स्नेह भी बिलकुल अज्ञानमूलक है ॥ ४३ ॥ इसलिये हे राजन्, मेरे बिना दीन और अनाथ बने हुए वे कैसे रह सकेंगे—इस तरहकी अपने मनकी व्याकुलता छोड़ दो ॥ ४४ ॥ जैसे अजगर द्वारा निगल लिया गया पुरुष दूसरेकी रक्षा नहीं कर सकता है वैसे ही काल, कर्म और गुणोंके अधीन यह पाञ्चभौतिक जड़ात्मक शरीर भला कैसे दूसरेकी रक्षा कर सकता है ॥ ४५ ॥ बिना हाथवाले

सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥ ४३ ॥ तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ॥ कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥ ४४ ॥ कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥ ४५ ॥ अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ॥ फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥ ४६ ॥ तदिदं भगवान्राजन्नेक आत्मात्मनां स्वदृक् ॥ अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥४६॥ सोऽयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः ॥ कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम् ॥ ४८ ॥ निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ॥ तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥ ४६ ॥ धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया ॥ दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥५०॥ स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ॥ सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥५१॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ॥ अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ॥५२॥ जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः ॥ हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्व-

हाथवालोंके, बिना पैरवाले चार पैरवालोंके तथा छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े बड़े-बड़े पक्षी आदि जीवोंके जीवन हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन्, इसलिए यह सारा संसार स्वयं भासमान भगवान् ही है उनसे पृथक् नहीं है। वह परमात्मा एक है नाना नहीं है। हे राजन्, वह सबकी आत्मा है अतः उसमें सजातीय भेद नहीं है। वह अन्दर भोक्तारूपसे तथा बाहर भोग्यरूपसे भासता है अतः उसमें विजातीय भेद भी नहीं है। हे राजन्, सिर्फ मायाके कारण ही वह अनेक तरहका प्रतीत होता है, उसे तुम देखो ॥ ४७ ॥ हे महाराज, वह भूतभावन भगवान् कालरूप परमेश्वर इस भूतलपर देवताओंके शत्रुओंका संहार करनेके लिये कृष्णनामसे अवतरित हुए हैं ॥ ४८ ॥ देवताओंका कार्य तो वे पूरा कर चुके हैं, थोड़ा कुछ जो बच गया है उसके समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उसे पूरा करके वे अपने धामको चले जायँगे, इसलिये हे राजन्, जबतक ईश्वर इस लोकमें रहते हैं तबतक तुम लोग भी ठहरे रहो ॥ ४६ ॥ अपने भाई विदुरजी तथा अपनी भार्या गान्धारीके साथ धृतराष्ट्रजी हिमालयके दक्षिणकी ओर ऋषियोंके आश्रममें पहुँच गये हैं ॥ ५० ॥ जो प्रसिद्ध गंगाजी हैं, उन्होंने जहाँपर सात ऋषियोंकी प्रसन्नताके लिये अपनेको पृथक्-पृथक् सात स्रोतोंसे सात भागोंमें बाँट दिया है, अतएव उस तीर्थको सप्तस्रोत कहते हैं ॥ ५१ ॥ उसी तीर्थमें स्नानकर विधिपूर्वक हवन करनेके अनन्तर भोजनके स्थानमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकमात्र जलका ही ग्रहण करते हुए मनको उपशान्त बना करके पुत्रादि सम्पूर्ण इच्छाओंसे शून्य होकर दिन गवाँ रहे हैं। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि वे अष्टांगयोगका आश्रयण कर अपना जीवन बिता रहे हैं ॥ ५२ ॥ जितासन होकर अपनी सांस रोक करके छवों इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया है। भगवान्‌में निरन्तर भावना रखनेसे रज, सत्त्व और तमोरूप मलको ध्वस्त कर दिया है ॥ ५३ ॥ घटोपाधिसे वियुक्तकर यानी घटको फोड़कर घटाकाश महाकाशमें जैसे लय हो जाता है वैसे ही अहंकारके आस्पद मनको स्थूल देहसे वियुक्त होकर विज्ञानात्मामें यानी बुद्धिमें संयुक्त करके, उस विज्ञानात्माको दृश्यांशसे वियुक्तकर क्षेत्रज्ञ यानी द्रष्टामें उसका लय करके तथा उस क्षेत्रज्ञको भी द्रष्टाके अंशसे वियुक्तकर सबके आश्रय विशुद्ध ब्रह्ममें उसका लय करके मायाके गुणोंकी वासनाको ध्वस्त किये हुए, चक्षु आदि इन्द्रियों तथा मनका निरोधकर इन्द्रियोंके भोज्य सम्पूर्ण विषयोंका परित्याग करते हुए धृतराष्ट्र ठूंठ

तमोमलः ॥५३॥ विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ॥ ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥ ५४ ॥ ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्ध-करणाशयः ॥ निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ॥ ५५ ॥ तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः ॥ स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पञ्चमेऽहनि ॥ कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥५६॥ दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ॥ बहिःस्थिता पतिं साध्वी तमग्निम-नुवेक्ष्यति ॥५७॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन ॥ हर्षशोकयुतस्तस्माद्गन्ता तीर्थनिषेवकः ॥ ५८ ॥ इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतु-म्बुरुः ॥ युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

वृक्षकी नाईं स्थिर अवस्थित हैं ॥ ५४, ५५ ॥ हे राजन्, सम्पूर्ण सांसारिक कर्मोंका परित्यागकर बैठे हुए उस धृतराष्ट्रके मार्गमें जाकर विघ्नरूप खड़े मत हो जाओ। हे महीपते, आज से आनेवाले पाँचवें रोज वह धृतराष्ट्र अपना कलेवर छोड़ देंगे और निष्प्राण यह कलेवर अपने आप योगसे उत्पन्न अग्निके द्वारा भस्मीभूत हो जायगा ॥ ५६ ॥ पर्णशालाके सहित अपने पतिके शरीरको योगाग्निके साथ गार्हपत्यादि अग्नियोंसे जलते देखकर बाहर स्थित उनकी साध्वी पत्नी भी अपने पतिके पीछे अग्निमें प्रविष्ट हो जायगी ॥ ५७ ॥ और विदुर तो अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र तथा उनकी पत्नीकी आश्चर्यजनक गति देखकर हर्ष और विषादसे युक्त होते हुए वहांसे तीर्थाटनके लिये निकल जायँगे ॥ ५८ ॥ यों कहकर नारदजी अपने तुम्बुरुके साथ स्वर्गको चल दिये, युधिष्ठिरने भी उनकी बातें हृदयमें रखकर शोक छोड़ दिया ॥ ५९ ॥

तेरहवें अध्यायका सार—सूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, तीर्थाटनके लिए निकले हुए विदुरजी मैत्रेयजीसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति कर हस्तिनापुरमें चले आये। राजा युधिष्ठिरके पूछनेपर उन्होंने यदु-कुलका नाश न बतलाकर तीर्थोंमें हुए अपने अनुभवको ही बतलाया। तदन्तर विदुरजी अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रसे यों कहा—हे राजन्, जिन लोगों की मृत्युके लिए आप सतत प्रयत्न करते रहे आज उन्हींके द्वारा दिये गये अन्न खानेमें आपको शर्म नहीं आ रही है। इस वृद्धावस्थामें अब आप किस सुखके लिये ठहरे हुये हैं। कालदेव हम लोगोंके मस्तकपर नाच रहे हैं। मुझे आपको देखकर आश्चर्य हो रहा है कि अभी भी जीनेकी लालसा बनी हुई है। राजन्, अब कितने दिनों तक दूसरोंके द्वारा दिये गये टुकड़े खाकर कुत्तेकी नाईं जीवन व्यतीत करेंगे। आइये मेरे साथ, चलिये वनमें, छोड़िये इस मोह मायाको और कीजिये भगवान्‌के चरणोंका ध्यान। हे शौनकजी, यों विदुरके समझानेपर उन्हींके साथ धृतराष्ट्र चुपचाप घरसे जंगलको निकल गये। उनके पीछे उनकी धर्मपत्नी गान्धारी भी चली गईं। सबेरे युधिष्ठिर उन्हें न देखकर शोकसे व्याकुल हो रहे थे कि तबतक नारदजी वहाँ आ गये। अपने चाचाओं तथा चाचीके विषयमें शोक कर रहे युधिष्ठिरसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नारदजीने कहा—राजन्, शोक मत करो यह सारा संसार परमेश्वरके अधीन है। अपने चाचाओंके विषयमें शोक मत करो, वे शोक करनेके योग्य नहीं हैं। वे सब सप्तस्रोत तीर्थमें चले गये हैं। आपके चाचा धृतराष्ट्र वहाँ सम्पूर्ण मायाजालका त्याग कर भगवान्‌के चिन्तनमें लगे हैं। शीघ्र ही वे योगाग्नि द्वारा अपना प्राण छोड़ देंगे और उनके पीछे उनकी धर्मपत्नी सती हो जायगी। अपने बड़े भाईकी सुगति देखकर वहाँसे फिर कहीं अन्यत्र चल देंगे। यों नारदजीके समझानेपर युधिष्ठिर शोकशून्य हो गये। तेरहवाँ अध्याय समाप्त*

* नानाविध अरिष्टोंको देखकर राजाको शंकित होना तथा भगवान् श्रीकृष्णके तिरोधानका अनुमान करना *

सूतजीने कहा हे मुनियो, अपने बन्धुओंको देखनेके लिये तथा पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय जाननेके लिये द्वारकापुरीमें अर्जुनके चले जाने पर कितने ही (सात) महीने व्यतीत हो गये और जब वहाँसे अर्जुन वापस नहीं आये, तब युधिष्ठिरने अप्रिय करनेवाले भयंकर उत्पात देखे ॥ १, २ ॥ जहाँ ऋतुओंने अपने-अपने धर्म बदल दिये हैं, ऐसे कालकी

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

सूत उवाच ॥ संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥१॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः ॥ ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥२॥ कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ॥ पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥३॥ जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम्॥पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम्॥४॥(कन्याविक्रयिणं तातं सुतं पित्रोरपोषकम्॥ ब्राह्मणान्वेदविमुखान् शूद्रान्वै ब्रह्मवादिनः ॥) निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ॥ लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥६॥ गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ॥ नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥७॥ अपि देवर्षिणादिष्टः सकालोऽयमुपस्थितः ॥ यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥८॥ यस्मान्नः सम्पदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ॥ आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥९॥ पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्या-

भयंकर गति, क्रोध, लोभ और मिथ्या भाषणसे युक्त मनुष्योंकी अत्यधिक पापयुक्त बातें, कपट भरे हुए लोगोंके व्यवहार, धोखेबाजीसे भरी हुई दोस्ती, पिता, माता, सुहृद्, भाई तथा स्त्री- पुरुषोंमें रातों दिनके कलह आदि अत्यन्त अशुभ निमित्त देखकर एवं कालके विपरीत हो जानेपर लोभादिके कारण अधर्ममें बढ़ी हुई मनुष्योंकी प्रवृत्ति देख करके राजा युधिष्ठिर अपने भाई भीमसे कहने लगे ॥ ३–५ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे भीमसेन, बन्धुओंको देखनेके लिये तथा पुण्यश्लोक कृष्णके अभिप्राय जाननेके लिये मैंने अर्जुनको द्वारका भेजा है। हे भीमसेन, अबतक सात महीने गुजर गये, लेकिन तुम्हारा भाई वापस क्यों नहीं आता, यह बात मेरी समझमें नहीं आती ॥ ६, ७ ॥ क्या देवर्षि नारद द्वारा बतलाया गया वह काल आ गया, जब कि क्रीड़ाके साधन अपने अङ्गका त्याग करनेकी चाह भगवान् करेंगे ॥ ८ ॥ क्योंकि जिस भगवान् श्रीकृष्णके कारण ये सम्पदाएँ, यह सारा राज्य, ये सब स्त्रियाँ, ये हम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोगोंके प्राण, यह कुल और ये सारी प्रजाएँ हमें प्राप्त हुई थीं। हे भीमसेन, जिनकी दयासे शत्रुओंके ऊपर हमने विजय प्राप्त की थी और ये स्वर्गादिक उत्तमलोक जिनके अनुग्रहसे हमारे अधीनमें हो चुके थे, इसलिये हे भीमसेन, भगवान्‌के वियोगके विना यह अनिष्ट हमें दिखाई नहीं देता ॥९॥ मनुष्योंमें व्याघ्र सरीखे भीमसेन, इन दारुण दिव्य, भौम और दैहिक*उत्पातोंको तो देखो जो हमारी बुद्धिमें मोह पैदा कर देनेवाले निकट भविष्यमें आनेवाले भयको बतला रहे हैं॥ १० ॥ हे भीमसेन, मेरी बायें ओरकी उरू, आँख और भुजा बार-बार फड़क रही है तथा मेरा हृदय काँप रहा है—इससे मालूम पड़ता है कि ये सब मुझे तुरन्त अनिष्ट फल प्रदान करेंगे ॥ ११ ॥ हे भीम, देखो, अपने मुँहसे आग उगिल रही यह सियारी उदित हो रहे सूर्यकी ओर मुँह फेरकर फेंकर रही है और देखो, यह कुत्ता मुझे देखकर विना भयके खूब रो रहा है ॥ १२ ॥ गाय आदि मुझे बायें ओर करके चले जा रहे हैं

न्भौमान्सदैहिकान् ॥ दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥१०॥ ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ॥ वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ॥११॥ शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना ॥ मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभीरुवत् ॥१२॥ शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ॥ वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥१३॥ मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन्मनः ॥ प्रत्युलकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥१४॥ धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ॥ निर्घातश्च महानासीत्साकं च स्तनयित्नुभिः ॥१५॥ वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ॥ असृग्वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥१६॥ सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ॥ ससङ्कुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥ नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ॥ न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥१८॥ न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति

और गदहे आदि मुझे दाहिने ओर करके चले जा रहे हैं अर्थात् अशुभदायक विपरीत मार्गसे ये सब जा रहे हैं। हे पुरुषव्याघ्र भीम, ये मेरे घोड़े भी मुझे रोते हुए जैसे दीख रहे हैं ॥१३॥ मृत्युकी सूचना देनेवाला यह कबूतर मेरे हृदयको कँपाता हुआ क्रूर बोली बोल रहा है यह उल्लू और कौआ दोनों रातभर जागते हुए अपने कुत्सित शब्दोंसे इस विश्वको शून्य कर देनेकी इच्छा कर रहे हैं ॥ १४ ॥ सब दिशाएँ धूसर हो रही हैं, चारों ओर दूरतक बिछाई गई कुशाएँ जैसे यज्ञाग्निको ढँक देती हैं वैसे ही ये परिधियाँ लोकको आवृत कर रही हैं—ढँक रही हैं, पर्वतोंके साथ-साथ सारी पृथिवी काँप रही है तथा घोर-गर्जनके साथ आकाशमें बिना बादलके महान् वज्रपात हो रहा है ॥ १५ ॥ धूलिसे सभी दिशाओंमें अन्धकारकी सृष्टि कर रही तीक्ष्ण स्पर्शसे युक्त वायु बह रही है और चारों ओर मेघ बीभत्स-जैसे खूनकी वर्षा कर रहे हैं ॥ १६ ॥ हे भीम, देखो, सूर्य प्रभाहीन हो गये हैं, आकाशमें ग्रहोंका परस्पर युद्ध हो रहा है। हे भीम, भगवान् रुद्रके अनुचरोंसे मिश्रित प्राणियोंसे यह आकाश और पृथिवी मानों जल रही है ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण नदियाँ, नद, तालाब और प्राणियोंके मन क्षुभित हो रहे हैं। आग घीसे जल नहीं रही है। हे भीम, यह काल क्या करेगा, यह मेरी समझमें नहीं आ रहा है ॥ १८ ॥ गायोंके बछड़े उनके स्तन नहीं पी रहे हैं, गायें दूध नहीं दुहातीं,

*दिव्य यानी आकाशमें बिना बादलके बिजली चमकना, भौम यानी पृथ्वीपर भूकम्प आदिका होना और दैहिक यानी वामनयन आदिका फड़कना।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आँसू बहा रही वे रो रही हैं। बैल सब व्रजमें (खिला-पिलाकर जहाँ एक बाँध दिये जाते हैं–गोठमें) हर्षित नहीं दीख रहे हैं ॥ १९ ॥ मालूम पड़ता है कि ये देवमूर्तियाँ रो रही हैं, उनके शरीरसे पसीना चू रहा है तथा मालूम पड़ता है कि वे और कहीं जानेकी तैयारीमें हैं। ये देश, ये गाँव, ये नगर, ये उद्यान, ये रत्नोंकी खानें तथा ये सब ऋषियोंके आश्रम श्रीसे हीन हो रहे हैं तथा आनन्दसे रहित दीख रहे हैं। हे भीम, यह मेरी समझमें नहीं आता कि ये सब हमें कौन दुःख दिखलायेंगे ॥ २० ॥ हे भीम, इन महोत्पातोंसे तो मैं यही समझता हूँ कि यह पृथ्वी वज्र, अंकुश आदि असाधारण चिह्नोंसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंसे अब शून्य हो गई है। हे भीम, इसका सौभाग्य नष्ट हो गया ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन्, नानाविध अरिष्टोंको देख चुके चित्तसे यों चिन्ता कर रहे राजा युधिष्ठिरके निकट अर्जुन द्वारकासे लौट आये ॥ २२ ॥ उस समय काल-सी अपनी आँखोंसे आँसुओंकी बूँद

च मातरः ॥ रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥ दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ॥ इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्या-
नाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥ मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ॥ अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौ-
भगा ॥२१॥ इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ॥ राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥२२॥ तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ॥
अधोवदनमब्बिन्दून्मुञ्चन्तं नयनाब्जयोः ॥ २३ ॥ विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ॥ पृच्छतिस्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥
युधिष्ठिर उवाच ॥ कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते ॥ मधुभोजदशार्हार्हाः सात्वतान्धकवृष्णयः ॥ २५ ॥ शूरो मातामहः कच्चित्स्व-
स्त्यास्ते वाथ मारिषः ॥ मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥ २६ ॥ सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ॥
आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥२७॥ कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ॥ हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥२८॥
आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ॥ कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ॥२९॥ प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ॥

बहा रहे, नीचे मुँह किये हुए अत्यन्त व्याकुल अर्जुन अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके चरणोंमें एक-उ-एक आकर अभूतपूर्व ढंगसे गिर पड़े ॥ २३ ॥ उस तरहसे अपने चरणोंमें गिरे हुए कान्तिहीन अर्जुनको देखकर नारद मुनिकी बातोंका स्मरण करते हुए उद्विग्न हृदय राजा युधिष्ठिर अपने मित्रोंके बीचमें अर्जुनसे पूछने लगे ॥ २४ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे अर्जुन मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णि कुलके हमारे बान्धव सम्बन्धी द्वारकापुरीमें सुखसे हैं न ? ॥ २५ ॥ हमारे मान्य मातामह शूरनामक यादव कुशलसे तो हैं न ? अपने भाइयोंके साथ हमारे मामा वसुदेवजी कुशलसे हैं न ? ॥ २६ ॥ उनकी सातो स्त्रियाँ जो परस्पर बहिन तथा हमारी मामी लगती हैं, कहो अर्जुन, वे देवकी आदि अपने पुत्रों तथा पुत्र-वन्धुओंके साथ-साथ स्वयं कुशलपूर्वक हैं न ॥ २७ ॥ हे अर्जुन, अपने निष्कृष्ट पुत्रके कारण अत्यन्त दुःखित हुए राजा उग्रसेन अभी जी रहे हैं न ? और उनके भाई देवक, हृदीक, हृदीकके लड़के कृतवर्मा, अक्रूर, जयन्त, गद, सारण तथा शत्रुजीत आदि और जो यादव हैं वे सबके सब कुशलसे तो हैं न ? हे अर्जुन कहो यदुओंके पति भगवान् बलरामजी सुखसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं न ? ॥ २८, २९ ॥ सम्पूर्ण यादवोंके मध्यमें महारथी प्रद्युम्न तो मजेमें हैं न ? युद्धमें महावेग रखनेवाले भगवान् अनिरुद्धजी आजकल खूब आनन्द तो ले रहे हैं न ? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवतीके लड़के साम्ब तथा इनके अतिरिक्त जो भगवान् श्रीकृष्णके लड़कोंमें सर्वश्रेष्ठ ऋषभ आदि हैं वे सब अपने पुत्रोंके साथ खूब आनन्दसे हैं न ? ॥ ३१ ॥ तथा श्रुतदेव, उद्धव आदि जो भगवान् श्रीकृष्णके अनुचर हैं वे सब एवं इनके अतिरिक्त सुनन्द और नन्दजी श्रेष्ठ यादव बलराम तथा श्रीकृष्णकी भुजाओंके आश्रय रखनेवाले हैं वे सब कुशलपूर्वक हैं न ? हे अर्जुन, स्नेह प्रचुर हृदयवाले वे लोग हमारे कुशलका तो स्मरण करते हैं न ॥ ३२, ३३ ॥ अपने मित्रोंसे घिरे हुए भक्तवत्सल, ब्रह्मण्य भगवान् गोविन्द भी द्वारकापुरीमें सुधर्मा नामक सभामें सुखपूर्वक हैं न ॥ ३४ ॥ कारण कि लोकोंके मङ्गल, क्षेम, और उद्धवके लिये आजकल आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बलरामको साथ लेकर यदु-

गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥३०॥ सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥३१॥ तथै-वानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः ॥ सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥३२॥ अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ॥ अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥३३॥ भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥३४॥ मङ्ग-लाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ॥ आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ॥३५॥ यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः ॥ क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥३६॥ यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ॥ निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥ यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ॥ अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥३८॥ कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ॥ अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥३९॥ कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः ॥ न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥४०॥ कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ॥ शरणोपसृतं सत्त्वं

कुलरूपी सागरमें पहुँचे हुए हैं ॥ ३५ ॥ जिस श्रीकृष्णके बाहुदण्ड द्वारा रक्षित अपनी नगरीमें सबसे पूजित हुए आजकल यादव लोग वैकुण्ठनाथके अनुचरोंकी नाईं, परमानन्दको प्राप्त करते हुए खूब क्रीडा कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ जिस भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दकी सेवारूपी सर्वश्रेष्ठ कर्मसे सत्यभामा आदि सोलह हजार स्त्रियाँ भी श्रीकृष्णके बलसे देवताओंको जीत कर देवभोग्य पारिजात आदि वृक्षोंको, जो शचीके भोगके लायक हैं, द्वारका में हर लाती हैं ॥ ३७ ॥ जिसके बाहुबलके अभ्युदयसे जीनेवाले वीर यादव सब निडर होकर सुरश्रेष्ठ योग्य सुधर्मा नामक देवसभाको जबरदस्ती उठा लाकर अपने यहाँ रोज-रोज खूब चरणोंसे कुचलते हैं ॥ ३८ ॥ हे तात, तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है न ? क्योंकि तुम तेजहीन मुझे मालूम पड़ रहे हो। हे तात, चूँकि तुम वहाँ अधिक दिनों तक ठहरे रहे अतः मुझे मालूम पड़ता है कि उन लोगोंने तुम्हारा सत्कार नहीं किया। अथवा हे तात, उन लोगोंने क्या तुम्हारा तिरस्कार किया है ? ॥ ३९ ॥ प्रेमशून्य परुष शब्द आदिके द्वारा तुम्हारे ऊपर उन लोगोंने चोट तो न पहुँचाई ? या याचकोंको तुमने 'मैं कुछ अवश्य दूँगा' यों कहकर उन्हें कुछ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं दिया है क्या ? अथवा हे तात, याचकोंको तुमने 'आशा रखो मैं अवश्य तुम्हें दूंगा' यों जो तुमने प्रतिज्ञा की है उसकी क्या तुमने पूर्ति नहीं की ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, बालक, गाय, वृद्ध, रोगी, स्त्री या शरणागत किसी अन्य प्राणीका कहीं तुमने त्याग तो नहीं किया है, क्योंकि तुम तो सबके अक्षयदाता हो न ? ॥ ४१ ॥ किसी अगम्य (निन्दित) स्त्रीके पास तो नहीं गये थे या किसी गम्य स्त्रीके पास, जो मलिन वस्त्रादिसे असत्कृत थी, नहीं गये थे क्या ? अथवा मार्गमें आनेसे अधिक बल न रखनेवाले यानी समान बलवाले या अपनेसे कम बलवाले वीरोंसे कहीं पछाड़े तो नहीं गये ॥ ४२ ॥ अथवा हे अर्जुन, अपने साथ भोजन करनेवाले बुड्ढा या बालकोंको छोड़कर कहीं अकेले तो नहीं भोजन कर लिया। क्या तुमने ऐसा कोई घृणित कार्य तो नहीं कर लिया है, जो बिलकुल अक्षम है ॥ ४३ ॥ सदा एक साथ रहनेवाले प्रियतम हृदयस्वरूप अपने बन्धु श्रीकृष्णसे मैं शून्य हो गया हूँ, क्या ऐसा तो नहीं मान रहे हो ? अन्यथा हे अर्जुन, तुम्हें इस तरहकी मानसिक पीड़ा नहीं हो सकती ॥ ४४ ॥

नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥४१॥ कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् ॥ पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥४२॥ अपिस्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् ॥ जुगुप्सितं कर्म किञ्चित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥४३॥ कच्चित्प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ॥ शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥४४॥ इति श्रीम० म० प्र० युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

चौदहवें अध्यायका सार—सूतजीने कहा—हे शौनकजी, अपने बन्धुओंको देखनेके लिये द्वारकामें अर्जुनको आये जब सात महीने गुजर गये तब युधिष्ठिरको नाना प्रकारके उत्पात दिखाई पड़ने लगे। पापप्रचुर मनुष्योंके व्यवहारको देखकर अपने भाई भीमसे युधिष्ठिरने कहा—हे भीम, नारदजी द्वारा बतलाया गया भगवानके शरीर त्यागका वह समय अब आ गया है, क्योंकि हे भीम, भगवान्‌के वियोगके बिना ये सब अनिष्ट हमें दिखाई न देते। हे भीम, देखो, यह सियारी फेंकर रही है, यह कुत्ता रो रहा है। आकाशमें बिना बादलके बीजली तड़प रही है। पृथिवी काँप रही है। मालूम पड़ता है कि अब इस पृथिवीका सौभाग्य चला गया। यों नाना प्रकारके अनिष्टोंको देखकर युधिष्ठिर चिन्ता कर ही रहे थे कि तबतक अर्जुन आकर उनके चरणोंपर गिर पड़े। अर्जुनको उठाकर राजाने पूछा—हे अर्जुन, कहो हमारे सम्बन्धी लोग अच्छे हैं न, हमारे मामा वसुदेव तथा उनकी पत्नी देवकी आदि हमारी मामी सब अच्छी तरहसे हैं न? हे तात उग्रसेन तथा बलराम आदि मजेमें हैं न? भगवान्‌के लड़के प्रद्युम्न आदि मजेमें तो हैं न? उद्धव आदि भगवान्‌के अनुचर सब कुशलसे हैं न? हे तात, वे लोग क्या कभी हमलोगोंको याद भी करते हैं? कहो भगवान् अपने मित्रोंके साथ खूब आनन्दमें हैं न? हे तात, तुम्हारा चेहरा क्यों उतरा है, तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है न? अधिक दिनोंतक रहनेके कारण क्या तुम्हारा अपमान तो नहीं हुआ। हे अर्जुन, रास्तेमें किसी वीरसे पराजित तो नहीं हुए अथवा कोई भयंकर गर्हित काम तो नहीं किया है, जो अक्षम है। अथवा अपने प्रियमित्र कृष्णसे शून्य तो अपनेको नहीं समझ रहे हो। हे तात, कहो, इतने उदास क्यों हो। चौदहवाँ अध्याय समाप्त*

❀ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❀

[कलिका प्रवेश जानकर विपुल राज्य भारको परीक्षित्‌के ऊपर छोड़कर राजा युधिष्ठिर स्वर्गको चले गये—यह वर्णन]

सूत उवाच ॥ एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽविकल्पितः ॥ नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥१॥ शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो

तजीने कहा—हे शौनकजी, यों श्रीकृष्णजीके वियोगसे अत्यन्त खिन्न हुए श्रीकृष्णके परममित्र अर्जुनसे उनके बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिरने नानाविध शंकाओंके आस्पद अर्जुनके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रूपको देखकर बार-बार अनेक प्रश्न पूछे, किन्तु शोकसे सूख रहे मुख और हृदयरूपी कमलवाले प्रभाहीन हुए अर्जुन सर्व व्यापक एक उसी श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए कुछ भी उत्तर न दे सके ॥ १, २ ॥ नेत्रोंसे बार-बार निकल रही आँसुओंको बड़े दुःखके साथ भीतर ही रोक कर तथा बाहर आई हुईको अपने हाथसे पोंछकर श्रीकृष्णके आँखोंके ओट हो जानेके कारण और अधिक बढ़ गई प्रेमकी उत्कण्ठासे व्याकुल हुए अर्जुन सारथी आदिके कर्मोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी हितैषिता, उपकारिता, सुहृत्त्व तथा सम्बन्धिताका स्मरण करके वाष्पसे कण्ठावरोध हो जानेके कारण गद्गद् वाणीसे अपने बड़े भाई युधिष्ठिरसे कहने लगे ॥ ३, ४ ॥ अर्जुनने कहा—हे महाराज, बन्धुरूपी उस श्रीकृष्णसे मैं अब शून्य हो गया। मुझे छोड़ रहे या यों कहिये कि मुझे धोखा दे रहे जिसने—देवताओंको भी विस्मयमें डाल देनेवाला जो मुझमें तेज था, उसे हर लिया ॥ ५ ॥ जिसके क्षणिक वियोगसे यह सारा लोक अप्रियदर्शन

हतप्रभः ॥ विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥२॥ कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनामृज्य नेत्रयोः ॥ परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥३॥
सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ॥ नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥४॥ अर्जुन उवाच ॥ वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ॥
येन मेऽपहतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥५॥ यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ॥ उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते तथा ॥६॥ यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमु-
पागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ॥ तेजो हतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाऽधिगता च कृष्णा ॥७॥ यत्सन्निधावहमु
खाण्डवमग्नयेऽदामिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ॥ लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥८॥ यत्तेजसा
नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ॥ तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ॥९॥ पत्न्यास्त-
वाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ॥ स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यैस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥१०॥

उस तरह हो जाता है, जिस तरह यह (पिता आदि) प्राणसे रहित हो जानेसे मृतक कहा जाता है ॥ ६ ॥ जिसके बलसे मैं कामके मदसे अत्यन्त मतवाले राजा द्रुपदके घर पहुँचे हुए अनेक राजाओंके तेजको मैंने स्वयम्बरमें सबके सामने सिर्फ धनुषको हाथमें उठाकर हर लिया था और पीछे बाण चढ़ाकर उस धनुषसे यन्त्रके ऊपर घूम रहे मत्स्यका मैंने बेध किया था उन सब राजाओंको पराजित कर मैंने द्रौपदीको प्राप्त किया ॥ ७ ॥ जिस श्रीकृष्णकी सन्निधिमें देवताओंके साथ इन्द्रको जीतकर मैंने जबरदस्ती खाण्डववन अग्निको दे दिया। खाण्डववनके दाहमें सुरक्षित मय द्वारा विरचित मैंने वह सभा प्राप्त की जो अद्भुत शिल्परूपी मायासे समन्वित थी और इसके बाद आपके राजसूययज्ञमें सभी दिशाओंसे अनेक राजे भेट लेकर आपके पास दौड़े आये ॥ ८ ॥ एक अयुत (दस हजार) हाथियोंकी उत्साहशक्ति और बल रखनेवाले आपके छोटे भाई आर्य भीमसेनने यज्ञके लिये सम्पूर्ण राजाओंके सिरपर चरण रखनेवाले जरासन्धका जिस श्रीकृष्णके तेजसे बध किया, क्योंकि उसके पराजित हुए बिना आपका राजसूय यज्ञ कभी नहीं हो सकता था। उसे मारकर महाभैरव यज्ञके लिये जिन राजाओंको बलि चढ़ानेके वास्ते पशुओंकी तरह लाकर उसने जेलमें ठूंस दिया था उन राजाओंको आपके भाईने चूँकि जेलसे छुड़ाया था, इसलिये आपके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजसूयज्ञमें आकर उन सब राजाओंने आपको नानाविध भेंट समर्पित की ॥ ९ ॥ दुःशासन आदि जिन कुटिल पुरुषोंने आपकी पत्नी द्रौपदीकी चोटी, जो राजसूय यज्ञमें किये गये महाभिषेकसे श्लाध्यतम और रम्य थी, खींचकर भरी सभामें उसका स्पर्श किया और नंगा करनेके लिये जब वे उतारू हो गये तब उस समय द्रौपदीके स्मरण करतेही हमलोगोंके ऊपर दया कर भगवान् श्रीकृष्ण उनकी रक्षाके लिये वहाँ तत्क्षण ही पहुँच गये। भगवान्के चरणोंको नमस्कार करते समय जिस द्रौपदीके नयनोंसे दुःखके आँस भगवान्के चरणोंपर गिर पड़े उस भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे ही जिस आपके छोटे भाईने उन पापियोंको मारकर उनकी स्त्रियोंको विधवा बनाकर उन्हें सदाके लिये खुले हुए केशोंसे युक्त बना दिया ॥ १० ॥ जिस भगवान् श्रीकृष्णने बनमें आकर हमलोगोंकी—हमारे दुश्मन दुर्योधन द्वारा विहित, दस हजार शिष्योंकी पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवाले दुर्वासाके शापरूपी भयङ्कर संकटसे रक्षा

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः॥शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकी तृप्ताममंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः॥११॥
यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ॥ अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम्
॥ १२ ॥ तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ॥ सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण
भूम्ना॥ १३ ॥ यद्बान्धवाः कुरुबलाब्धिमनन्तपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्यसत्त्वम् ॥ प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं

की, क्योंकि बटुलीमें अवशिष्ट शाकरूपी अन्न खाकर जिस भगवान्के तृप्त हो जानेसे अघमर्षण करनेके लिये जलमें निमग्न संम्पूर्ण मुनियोंके समूहने तीनों लोकको ही तृप्त समझा। तात्पर्य यह कि उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि हमें अजीर्ण हो गया है, अतः वे सबके सब तालाब परसे ही भाग गये ॥ ११ ॥ जिस श्रीकृष्णके तेजके कारण मैंने गिरजा सहित भगवान् शङ्करको आश्चर्यमें डाल दिया था और अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए भगवान् शङ्करने मुझे अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया था तथा और-और लोकपालोंने भी अपने-अपने अस्त्र मुझे दिये थे और भी मैंने इसी कलेवरसे महेन्द्रके भवनमें पहुँचकर इन्द्रके आधे आसनको भी प्राप्त किया था ॥ १२ ॥ हे युधिष्ठिर महाराज, जिस श्रीकृष्णके प्रभावसे युक्त तथा गाण्डीवके चिन्हसे सुशोभित उसी स्वर्गमें क्रीड़ाकर रहे मेरे दोनों बाहुदण्डका—निवात कवच आदि दैत्योंके नाशके लिए इन्द्रके साथ सभी देवताओंने—आश्रय लिया था, अपनी महिमामें अवस्थित उस पुरुषसे आज मैं वञ्चित होगया ॥ १३ ॥ भीष्मादि बड़े-बड़े दुस्तर तिमिङ्गिल आदिरूप जलजन्तुओं से भरे हुए अनन्त और अपार कौरवों की सेनारूपी सागर

पराजित पाण्डवों को तेहर वर्ष के लिए वनवास मिला, उस समय भा नीच कुलाधम दुर्योधन अपनी दुष्टता का परिचय दे रहा था।

एक समय दुर्वासा मुनि से दुर्योधन ने कहा कि महाराज! आप अपने दस हजार शिष्यों ने सहित युधिष्ठर के यहाँ जाकर 'भिक्षा' कीजिये। पर यह स्मरण रहे कि जब द्रौपदी भोजन कर चुके तब आप उनके अतिथि बनें। ऐसा हा हुआ वे पाण्डवोंके पास पहुँचे। कहा कि आज हम सब आपके अतिथि हैं, हम मध्याह्न सन्ध्याकर आ रहे हैं। पाण्डव और द्रौपदी बड़े चिन्तित हुए। द्रौपदी ने श्री बंशीधारी भगवान् कृष्ण का स्मरण किया कि वे आकर कहने लगे, हे पतिव्रते, मैं भूखा हूँ, जल्दी ही भोजन करा दो। द्रौपदीने कहाँ मैं भोजन कर चुका अब उस सूर्य द्वारा प्रदत्त पात्र में कुछ नहीं है। श्री भगवान् ने कहा देखो उसमें जो कुछ लगा हो वही ले आवो। उसमें साग लगा था वही भगवान् ने खाया जिससे वे मुनिगण तृप्त हो वहीं से लज्जा युक्त हो पलायन तत्पर हुए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को जिस कृष्णरूपी बान्धवसे युक्त मैं अकेले रथसे पार कर गया दुश्मनोंके द्वारा चुराकर लिये जारहे गोधनको मैंने छीन लिया तथा शत्रुओंके मस्तकसे उनके प्रभावके आस्पदरूप मणिमय बहुत से धन उन्हें अपने मोहनास्त्रसे मोहित करके मैंने हर लाये ॥ १४ ॥ हे विभो, अनेक राजाओंके समूहों के रथमण्डलोंसे मण्डित, भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य और शल्य की सेनाओं में जिस श्रीकृष्णने सारथिरूपसे मेरे आगे चलते हुए रथपूथपों के (महारथी वीरों के) आयु, मन, उत्साह आदि शक्ति और तेजको अपनी एकमात्र दृष्टिसे ही हर लिया था ॥ १५ ॥ जिस श्रीकृष्णकी भुजाओं में स्थापित मुझे द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और शन्तनुके भाई बाह्लिक आदि वीरों द्वारा प्रयुक्त हुए अमोघ महिमावाले भी अस्त्र मुझे उस तरह स्पर्श न कर सके, जिस तरह हिरण्यकशिपु द्वारा प्रेरित हुए अस्त्र प्रह्लादको ॥ १६ ॥ ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण

शिरोभ्यः ॥ १४ ॥ यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ॥ अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥ १५ ॥ यद्दोःषु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैन्धवबाह्लिकाद्यैः ॥ अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥ १६ ॥ सौत्ये वृतः कुमतिनात्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ॥ मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥१७॥ नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ॥ सञ्जल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ॥ सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महिताय कुमतेरघं मे ॥ १९ ॥ सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥ अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥ तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ॥ सर्वं क्षणेन तदभूदस-

को मैंने सारथीके कार्यमें नियुक्त किया था, मुझसे बढ़कर कुबुद्धि कौन होगा ! मोक्षके लिये जिसके चरणकमलका भव्यलोग भजन किया करते हैं, जो मुमुक्षुजनोंको आत्मज्ञानके दाता हैं, जो साक्षात् ईश्वर हैं, और जयद्रथको मारनेके समय जब मेरे घोड़े बिलकुल थक गये तब रथसे उतरकर भूमिपर खड़ा होकरके मैंने बाणोंसे पृथिवीका भेदन करके जल निकाला। उस समय जिस भगवान्की दयासे मेरे शत्रुओंके चित्त ही उड़ गये, जिससे कि वे सब मेरे ऊपर प्रहार न कर सके ॥ १७ ॥ हे नरदेव, उदार गम्भीर और रुचिर मुसकुराहटसे सुशोभित माधवके परिहासवाक्य तथा कार्य सम्पादन करनेके समय से पार्थ, हे अर्जुन, हे सखे, हे कुरुनन्दन, इत्यादि जो मनोज्ञ भाषण होते थे, वे आज स्मरणकर रहे मेरे हृदयको क्षुभित कर रहे हैं ॥ १७ ॥ सोने, बैठने, घूमने फिरने आत्मप्रशंसा करने भोजन आदि करनेमें हम दोनोंका ऐक्य रहता था। कदाचित् वैपरीत्य देखकर अक्सर मैं उन्हें कह दिया करता था--कहो मित्र, बड़े सत्यवादी बने रहे, यह क्या हो रहा है ! यों मित्र होने के नाते मेरे द्वारा तिरस्कृत होनेपर भी वे अतिमहिमाशाली होनेके कारण मुझ कुबुद्धिके सब अपराधोंको सदा उस तरह सहते थे, जिस तरह मित्रके अपराधको मित्र तथा पुत्रके अपराधको पिता सहता है ॥ १८ ॥ भिन्न भिन्न अवसरोंपर पराक्रम दिखाने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाला मैं आज अपने प्रिय हितैषी मित्र पुरुषोत्तमसे रहित हूँ अतएव हृदयसे शून्य हूँ यानी मूर्छित प्रायः हूँ। हे राजन्, उरुक्रम भगवान् श्रीकृष्णकी सोलहहजार स्त्रियोंकी रक्षा कर रहा मैं मार्गमें नीच गोपवालोंसे, अवलाकी नाईं, पराजित हो गया हूं ॥ २० ॥ वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ और वे ही घोड़े हैं तथा रथ पर आरूढ़ होनेवाला भी वही मैं हूं। जिन्हें राजा लोग बराबर नमस्कार किया करते थे, लेकिन हे राजन्! आज वें सबके सब क्षणभरमें ही एक उस ईशसे शून्य होजानेके कारण—भस्ममें किये गये हवन, मायावी पुरुषसे प्राप्त पदार्थ तथा ऊषरभूमिमें बोये गये बीजकी नाईं कार्य-सम्पादनमें असमर्थ हो गये ॥ २१ ॥ हे राजन्, जिनके कुशल आदिके विषयमें आपने मुझसे पूछा है उन हमारे बान्धवोंके बीचमें द्वारकामें सिर्फ अब चार या पांच ही बच गये हैं। ब्राह्मणके शापसे उनकी बुद्धि नष्ट हो गई है अतः वे बारुणी मदिरा पीकर उसके नशेमें अचेत हो गये

दीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥२१॥ राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ॥ विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥२२॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ॥ अजानतामिवान्योन्यं चतुष्पञ्चावशेषिताः ॥ २३ ॥ प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ॥ मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ॥ दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥ ॥२५॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः ॥ यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्सञ्जहार ह ॥ २६ ॥ देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ॥ हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥२७॥ एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ॥ सौहार्देनातिगाढेन शान्तासीद्विमला मतिः ॥ २८ ॥ वासुदेवाङ्घ्रयनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ॥ भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥२९॥ गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि ॥ कालकर्मतमो-

थे—उनका चित्त विक्षिप्त हो गया था, जिससे कि परस्पर वे एक दूसरेको बिल्कुल भूल गये। उन्हें इसका कुछ भी पता न था कि ये सब हम सगे सम्बन्धी हैं। एक दूसरेपर मुट्ठियोंसे प्रहार करते हुए उनमें अधिकांश इस संसारसे कूट कर गये हैं ॥ २२, २३ ॥ यह जो यादव कुलका उपसंहार हुआ हैं; सो सभी प्रायः भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला है। क्योंकि ईश्वरसे ही व्याघ्र मनुष्य तथा पिता, पुत्र आदि प्राणी परस्पर एक दूसरेका नाश तथा पालन करते हैं ॥२४॥ हे राजन्, जैसे जलमें निवास करनेवाले मत्स्य आदिके बीचमें जो छोटे मत्स्य आदि रहते हैं उन्हें बड़े खा डालते हैं और जैसे दुर्बलोंको बलवान् मार डालते तथा जो भी बलवान्, होते हैं वे भी बलवानोंसे परस्पर लड़कर एक दूसरेको मार देते हैं, वैसे ही सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुने बलिष्ठ पाण्डवोंके द्वारा दुर्योधन तथा जसरान्ध आदिका नाश कर एवं बलवान् यदुवंशियोंके द्वारा दुर्बल दुष्ट राजाओंका संहारकर तथा यदुवंशियोंका भी परस्पर एक दूसरेसे नाश कर पृथ्वीके भारको हलका किया ॥ २५, २६ ॥ राजन्, इसके बाद अधिक मैं आपसे नहीं कह सकता, क्योंकि जिस देशमें जिस कालमें या जिस, अर्थमें प्रयुक्त हुए जो भगवान् गोविन्दके अभिभाषण मेरे साथ हुए हैं उनका जब मैं स्मरण करता हूँ तो मेरे चित्तको वे बराबर अपनी ओर खींच लेते हैं—मैं लाचार हूँ ॥ २७ ॥ हे ऋषियो, इस तरह अतिगाढ प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका स्मरणकर रहे अर्जुनकी मति रागादिरहित होनेसे शोक-शून्य हो गई थी ॥ २८ ॥ भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके निरन्तर ध्यानसे खूब बढ़ी हुई भक्तिसे अर्जुनकी बुद्धिके सम्पूर्ण कामादि का नाश हो गया था। यों रागादिसे रहित हुए अर्जुनने—महाभारत युद्धके प्रारम्भमें जो भगवान् श्रीकृष्णने गीताद्वारा उन्हें ज्ञानोपदेश दिया था, वह बहुत दिन हो जानेके कारण भोगोंमें अभिनिवेश रहनेसे यद्यपि तिरोहित हो गया था, फिर भी उसे पुनः--प्राप्त किया अर्थात् अर्जुनको वह ज्ञान पुनः उपलब्ध हो गया ॥ २९, ३० ॥ ब्रह्मात्मज्ञान होनेसे अर्जुनकी अविद्या नैर्गुण्यमें--निर्गुणभावमें लीन होगई, उस नैर्गुण्यके कारण गुणकार्य लिङ्गका नाश हो गया, लिङ्गरहित होनेसे स्थूल शरीरमें जो उनका अभिमान था, वह भी चला गया। तदनन्तर परिच्छेदके अभावसे द्वैतरूपी जो अर्जुनका भ्रम था, वह छिन्न-भिन्न हो गया। इसलिए वे शोकरहित हो गये ॥ ३१ ॥ हे ऋषियो, भगवानूका वैकुण्ठगमन तथा यदुकुलका नाश सुनकर निश्चलचित्त हो महाराज युधिष्ठिरने भी परलोक

रुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥ ३० ॥ विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ॥ लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसंभवः ॥३१॥ निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ॥ स्वः पथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥३२॥ पृथाप्यनुश्रुत्य धनञ्जयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ॥ एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥३३॥ ययाहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ॥ कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापिशितुः समम् ॥३४॥ यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः ॥ भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥ ३५ ॥ यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ॥ तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ॥३६॥ युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ॥ विभा-

पथका पथिक होनेका विचार किया ॥ ३२ ॥ कुन्ती भी अर्जुन द्वारा रहे गये यदुवंशियोंका नाश तथा भगवानूका वैकुण्ठगमन सुनकर अधोक्षज भगवान्में एकान्त भक्तिसे अपने उपरामको प्राप्त हो गईं—जीवन्मुक्त हो गईं ॥ ३३ ॥ जिस शरीरसे भगवान्ने इस पृथ्वीका भार उतारा था उस शरीरको भी उन्होंने ऐसे त्याग दिया, जैसे कि काँटा लेकर पैरमें गड़े हुए कांटेको निकालकर फिर उस काँटेको भी मनुष्य त्याग देता है, क्योंकि पृथ्वीका भारभूत शरीर तथा उनको जिसने धारण किया था वह शरीर--दोनोंही संहार्य होनेके कारण भगवानूको एक-से थे--दोनोंका संहार भगवानूको एक-सा अभीष्ट था ॥ ३४ ॥ जैसे नट अपने स्वरूपमें स्थित हो मत्स्य आदि रूप धारण करता और पुनः उसे छोड़ देता है वैसेही भगवान् भी अपने स्वरूपमें स्थिर रहकर पृथ्वीका भार हलका करनेके लिए मनुष्य शरीर धारणकर जिस शरीरसे इस पृथ्वीका भार उतारा उस शरीरको भी अन्तर्हित कर दिया ※ ॥ ३५ ॥ श्रवण करने योग्य जिनकी सुन्दर कथाएँ ऐसे मुकुन्द भगवान्ने जिस दिन अपने शरीरसे इस पृथ्वीका त्याग कर दिया उसी दिन अविवेकियोंके अधर्मका कारण कलियुग प्रविष्ट हो गया + ॥ ३६ ॥ बुद्धिमान् महाराज युधिष्ठिरजीने—नगर रास घर तथा प्रत्येक प्राणीके मनमें लोभ झूठ कुटिलता, परपीड़ा, इत्यादि

※ चूँकि भगवान्का विग्रह सच्चिदानन्द स्वरूप है, इसलिए भौतिक विग्रहवत् उसका त्याग नहीं हो सकता था, इसीलिए उन्होंने विग्रहको अन्तर्हित कर लिया, यह तात्पर्य है।

+ यद्यपि वह अंशसे पहलेही प्रविष्ट हो चुका था, फिर भी भगवान्ने जिस दिन इस पृथ्वीका अपने शरीरसे त्याग कर दिया उसी दिन कलियुगकी चारों तरफ बोलबाला हो गई।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अधर्मोंका समूह जिसमें विद्यमान् है ऐसे कलिके विचरणका भलिभाँति पर्यालोचन करके—स्वयं भी इस संसारसे विदा होनेके लिए उचित कर्तव्यका पालन किया ॥ ३७ ॥ सम्राट् युधिष्ठिरने शिल्पित एवं औदार्य आदि गुणोंके कारण बिलकुल अपने सदृश अपने पौत्र परीक्षित्को समुद्रजलरूपी नीवि (परिधानविशेष) से युक्त इस पृथ्वीका पति बनाकर हस्तिनापुरमें अभिषिक्त कर दिया ॥ ३८ ॥ तथा अनिरुद्धके पुत्रको भी, जिसका नाम वज्र था, मथुरामें शूरसेनदेशका अधिपति बनाकर अभिषिक्त कर दिया। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर प्राजापत्ययाग* करके -गार्हपत्य आदि अग्नियोंका अपनेमें आरोप कर लिया ॥ ३९ ॥ अहंकार रहित समस्त बन्धनका (अविद्याका) उच्छेदकर महाराज युधिष्ठिरजी उस घरके अन्दर ही राजोचित वस्त्र, वलय आदि सबका परित्याग करके वाणी आदि समस्त इन्द्रियोंको मनमें विलीन कर दिया—मनके अधीन उनकी वृत्ति होनेसे उनमें अमरकी

व्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥ ३७ ॥ स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ॥ तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥३८॥ मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥३९॥ विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् ॥ निर्ममो निरहङ्कारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥ ४० ॥ वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ॥ मृत्यावपानं सोत्सर्गं तंपञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ॥ सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥४२॥ चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ ४३ ॥ अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ॥ उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ॥ हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ॥४४॥ सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥४५॥ते साधुकृतस-

भावना कर ली। उस मनको फिर प्राणमें तथा उस प्राणको फिर अपान में एवं अपान प्राणका अपकर्षण होनेके कारण उत्सर्ग मूलक अपान व्यापारके सहित उस अपानको भी मृत्युमें यानी उसके अभिमानी देवतामें विलीन कर दिया और उस मृत्युको भी पीछे उन्होंने पञ्चमहाभूतोंके ऐक्यरूपदेहमें मिला दिया—देहकी ही मृत्यु होती है, आत्माकी नहीं, ऐसी उन्होंने भावना कर ली ॥ ४०, ४१ ॥ इसके बाद पृथ्वी आदि भूतपञ्चकका तीनों गुणमें विलय करके उन तीनोंको फिर एकमें (अविद्यामें) मननशील महराज युधिष्ठिरजीने विलीन कर दिया। तदनन्तर सम्पूर्ण आरोपोंकी कारणभूता उस अविद्याको उन्होंने जीवमें विलीन किया और शोधित उस आत्माको भी निर्विकार ब्रह्ममें लेजाकर विलीन कर दिया। मेरे कहनेका तात्पर्य यह कि उस ब्रह्मका अन्यत्र और कहीं पर लय नहीं होता ॥४२॥ चीर वस्त्रधारी, निराहारी, तथा मौनी बनकर लोकसम्बन्ध निवृत्तिके लिए माथ मुड़ाकरके जड़, उन्मत्त एवं पिशाचकी नाईं अपना स्वरूप दिखलाते हुए किसीकी प्रतीक्षा न करते हुए तथा बधिरकी तरह किसीकी बात न सुनते हुए महाराज युधिष्ठिरजी अपने घरसे निकल पड़े ॥ ४३ ॥ हृदयमें परब्रह्म परमात्माका ध्यान करते हुए वे उत्तर दिशामें प्रविष्ट हुए, जो मुनियोंसे पहले सेवित थी तथा जहाँ जाकर मनुष्य पुनः वहाँसे इस

* देखिये मेरे रा प्रकाशित प्रजापतियाग।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संसारमें नहीं लौट आता ॥ ४४ ॥ इस पृथ्वीके ऊपर स्थित सभी प्रजाओंको अधमके मित्र कलिसे व्याप्त देखकर उनके सभी भाई गृहत्यागका निश्चय करके उन्हींके पीछे निकल पड़े ॥ ४५ ॥ यज्ञादि सम्पूर्ण साधनोंका सम्पादन कर लेनेके बाद युधिष्ठिर आदि सबने भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको ही आत्माकी मुख्य शरण समझकर उसीका मनसे चिन्तन करने लगे । भगवान् श्रीकृष्णके चरणाविन्दके सतत ध्यानसे प्रवृद्ध भक्ति के कारण उन लोगोंकी बुद्धि विशुद्ध हो गई थी। शास्त्र-प्रसिद्ध परम-श्रेष्ठ उन नारायण भगवान्के चरणोंमें ही अपनी बुद्धि स्थिर करके विशुद्ध मनसे अपना सम्पूर्ण कल्मष धोते हुए वे सबके सब विषयासक्तचित्त पुरुषों द्वारा अप्राप्य भगवत्स्थानरूप गतिको प्राप्त हो गये ॥ ४६-४८ ॥ अन्तःकरणमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रवेशसे भगवान् श्रीकृष्णमें ही अपने चित्तको लगाये हुए आत्मवान् विदुरजी भी प्रभास क्षेत्रमें अपनी देहका परित्याग करके उस समय उनको ले

र्वार्थां ज्ञात्वात्यन्तिकमात्मनः ॥ मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४६॥ तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ॥ तस्मिन्नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥४७॥ अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ॥ विधूतकल्मषास्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥४८॥ विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ॥ कृष्णादेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥ द्रौपदी च तदाज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ॥ वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥५०॥ यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम् ॥ शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥५१॥ इति श्रीम० म० प्र० पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

जानेके लिए आये हुए अपने पितरोंके साथ अपने अधिकार स्थानको चले गये ॥ ४९ ॥ तब द्रौपदी भी स्वामियोंको अपनी आवश्यकता न समझकर भगवान् वासुदेवमें अनन्यमति हो उस भगवान्को प्राप्त हो गयीं ॥ ५० ॥ भगवान्के प्रिय पाण्डुके पुत्रोंके इस तरहका अत्यन्त शुभदायक और पवित्र सम्प्रयाण (स्वर्गारोहण,) जो प्राणी श्रद्धासे सुनता है वह भी भगवान् विष्णुमें भक्ति लाभकर भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ५१ ॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार——ऋषियो, महाराज युधिष्ठिरने जब अर्जुनके मुखसे भगवान् श्रीकृष्णकी लोकलीलाकी समाप्ति तथा अपने सम्बन्धी यदुवंशियोंके नाशकी कथा सुनी तो उन्हें निर्वेद हो आया । प्रत्येक प्राणीके मनमें कलिधर्मका प्रवेश देखकर उन्होंने गृहत्यागकी तैयारी की । उन्होंने अपने पौत्र परीक्षितको हस्तिनापुरमें तथा अनिरुद्धके लड़के वज्रको मथुरामें अभिषिक्त-कर अपने स्वयं एक दिन चुपचाप चीरवस्त्र धारणकर उत्तर——दिशाकी ओर चल दिये । उनके पीछे उनके और चारो भाई भी हो लिये । वे लोग भगवान् नारायणके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए इस स्थूल शरीरका परित्यागकर भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो गये । आत्मवान् विदुरजी भी प्रभासक्षेत्रमें भगवान्का स्मरण करते हुए उन्हें लानेके लिए आए, अपने पितरोंके साथ स्वाधिकार स्थानको चले गये। अन्तमें महारानी द्रौपदीजी भी अपने पतियोंको अपनी आवश्यकता न समझकर भगवान्में दत्तचित्त हो भगवान्के ही रूपको प्राप्त हो गयीं । पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ❋

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूतजीने कहा——हे विप्र, पाण्डवोंके स्वर्गारोहणके बाद परमभक्त परीक्षित् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी शिक्षाके अनुसार पृथ्वीका पालन करने लगे। उनमें वे सभी गुण ठीक वैसेही विद्यमान थे, जिनका कि उनके जन्मकालमें ज्योतिषियोंने जैसा संकेत किया था॥ १॥ उन्होंने उत्तरकी कन्या इरावतीसे विवाह किया और उससे जनमेजय आदि चार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २॥ उन्होंने गंगाके तटपर कृपाचार्यको आचार्य बनाकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये, उनमें बहुत-बहुत दक्षिणाएँ दी गयीं। उनमें देवता लोग सबके लिए प्रत्यक्ष हो गये थे॥ ३॥ एकबार जबकि वे दिग्विजय करने जारहे थे, रास्तेमें उन्हें राजाके वेषमें शूद्ररूप कलियुग दीख पड़ा। वह गाय और बैलको पैरोंसे ठुकरा रहा था राजाने जबरदस्ती से उसे पकड़कर दण्ड दिया॥ ४॥ शौनकजीने कहा——सूतजी, दिग्विजयकी उस वेलामें राजा परीक्षितने कलिको दण्डमात्र क्यों दिया? और राजचिह्नको धारण करनेवाला

❋ अथ षोडशोऽध्यायः ❋

सूत उवाच॥ ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह॥ यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा॥१॥ स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम्॥ जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत्सुतान्॥२॥ आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान्॥ शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः॥३॥ निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित्॥ नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा॥४॥ शौनक उवाच॥ कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः॥ नृदेवचिह्नधृक्शूद्रः कोऽसौ गां यः पदाऽहनत्॥५॥ तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्॥ अथवाऽस्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्॥६॥ किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः॥ क्षुद्रायुषं नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम्॥७॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि॥ न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहान्तकः॥८॥ एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः॥ अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः॥९॥ मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै॥ निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः॥ १०॥ सूत उवाच॥ यदा परीक्षित्कुरुजाङ्गले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्र-

वह शूद्र कौन था, जिसने गौवोंपर लात चलायी थी। ? यदि वह विषय श्रीकृष्णकी कथासे सम्बन्ध रखता हो अथवा उनके भक्तोंसे सम्बन्ध रखता हो, तो महाभाग सूतजी, इसे अवश्य कहिये हे सूतजो मोक्षाभिलाषी अल्पायु मरणधर्मा हम लोगोंको दुनियाँदारीकी चर्चासे कोई मतलब नहीं है, उससे तो आयुका अपव्यय मात्र होता है महर्षियोंने [मोक्षाभिलाषी हम मनुष्योंकी कम आयु देखकर] यमराजको हो यहाँ यज्ञांग पशुमारणकर्ममें बुलाकर नियुक्तकर दिया है। जब तक यमराज इस कर्ममें लगे रहेंगे, तब तक किसीको मृत्युका कोई भय नहीं है। अहो, इस समय हरिलीलारूपी अमृतसे आप्यायित अत्याश्चर्यमय वचन मनुष्य खूब पीवें, इसलिए परमर्षियोंने भगवान् यमराजको यही बुला लिया है॥ ५-९॥ जो अभागे हैं और जिनकी बुद्धि तथा आयु मन्द है वे बेचारे अपनी थोड़ी आयुको रातमें सोकर एवं दिनमें व्यर्थके कामोंमें उझलाकर खो देते हैं॥ १०॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूतजीने कहा--शौनकजी, राजा परीक्षित् उन दिनों कुरुजाङ्गलदेशमें रह रहे थे, उनकी सेनासे वह देश सुरक्षित था। जब उन्होंने सुना कि उस देश में कलियुगका प्रवेश हो गया है तो उन्हें दुःख हुआ, परन्तु इस खयालसे कि 'चलो लड़ने का अवसर हाथ आया' वे ज्यादा दुःखी न हुए। वह अनतिप्रिय बात सुनकर रणवीर परीक्षित्ने झटसे धनुष उठा लिया ॥ ११ ॥ और सामने सुसज्जित रथपर जा बैठा। उस रथमें श्याम घोड़े जुते थे—एवं उसपर सिंहका ध्वजा फहरा रहा था। उस समय वे चारो ओरसे रथ घोड़े, हाथी तथा पैदल सेनाओंसे घिरे हुए थे। इस तरह दिग्विजयके लिये प्रस्थान किया ॥ १२ ॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तरकुरु एवं किंपुरुष आदि वर्षोंको जीतकर वहाँके राजाओंसे पूजा भेंट ग्रहण किया ॥ १३ ॥ राजा परीक्षित्ने उन-उन देशोंमें अपने पूर्वजोंकी प्रशंसा सुनी। उनकी प्रशंसामें श्रीकृष्णका माहात्म्य टपकता था ॥ १४ ॥ राजा परीक्षित्को यह भी

वर्तिते ॥ निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥११॥ स्वलङ्कृतं श्यामतुरङ्गयोजितं रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात् ॥ वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥१२॥ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् ॥ किंपुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥१३॥ तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ॥ प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥१४॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ॥ स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥१५॥ तेभ्यः परमसन्तुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ॥१६॥ सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ॥ स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥१७॥ तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ॥ नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत्तन्निबोध मे ॥१८॥ धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य

सुननेको मिलता था कि किस तरह भगवान्ने उन्हें अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे बचाया, वृष्णियोंके साथ पाण्डवोंका कैसा स्नेह था और किस तरहकी उनकी भक्ति कृष्णमें थी? ॥ १५ ॥ महामना राजा परिक्षित् सुयश सुनानेवालोंसे वहुत सन्तुष्ट हुए। प्रेमसे उनकी आँखें खिल उठीं। उन्होंने वहुत धन, हारादि एवं कपड़े उन्हें दिये ॥ १६ ॥ जब परीक्षित्को कृष्णकी वे बातें याद आती थीं कि किस तरह वे उनके पूर्वजोंके स्नेहसे सारथी बने, उनकी सभाके सदस्य बने, उनकी सेवा-टहल की, मित्र एवं दूत तक बने, वीरासनसे बैठ उनकी निगरानी की, इतनाही नहीं वे उनके पीछे-पीछे चले तथा स्तवन-प्रणाम तक किया, तो उनकी कृष्णविषयक भक्ति और बढ़ जाती थी तथा तब उनके चरणोंमें अधिक झुक जाते थे ॥ १७ ॥ इस तरह परीक्षित् अपने पूर्वज पाण्डवोंकी तरह श्रीकृष्णमें भक्तिको परिनिष्ठित करते हुए देशका देश जीतते जा रहे थे। उनके पासमें ही एक आश्चर्यजनक घटना हो गयी—उसे मैं सुनाता हूँ हे शौनकजी, सुनिये ॥ १८ ॥ धर्म केवल एक पैरसे लँगड़ाकर घूम रहा था उसने गौके वेषमें पृथ्वीको देखा, जिसका मुख आँसुओंसे ढँक गया था, वह बच्चा विहीन

जिस समय घोड़े, रथ और पैदल सेना सहित राजा परीक्षित् दिग्विजय के लिए अपनी नगरी से हो मार्ग में जा रहे थे उस समय उनके पूर्वजों का यश गान कौन कैसे कर रहा था। हे परीक्षित्, हम सब तुम्हारे पूर्वजों के समय में वड़े सुखी थे। अब दुष्टों से हम सताये जा रहे हैं—यह सुन उनके कष्ट के कारण को दूर किया। वे यश गान वाले मुनिवृन्द थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माताकी तरह आकुल थी ॥ १९ ॥ धर्मने उससे पूछा—कल्याणि, तुम सकुशल तो हो ! माँ, तुम्हारा मुख म्लान है, तुम श्रीहीन हो गयी हो। मेरी समझसे तुममें अवश्य कोई भीतर रोग है। क्या तुम्हारा कोई प्रियजन तुमसे दूर हो गया है, जिसके लिए तुम शोक कर रही हो ? ॥ २० ॥ क्या तुम मेरे तीन पैरोंके टूट जाने एवं एक पैर रह जानेसे शोच कर रही हो ? अथवा इसलिए शोच कर रही हो कि तुमपर अब शूद्र राज्य करेंगे ? या उन देवताओंकी तुम्हें चिन्ता है, जिन्हें अब यज्ञमें भाग नहीं दिया जाता ? हो सकता है कि तुम आज ही प्रजाके लिए चिन्तित हो, क्योंकि उन्हें भी अवर्षणसे बड़ा कष्ट है ? ॥ २१ ॥ अवथा हे पृथिवि, नर–पिशाचोंसे सतायी गयी बालक वनिताओं के लिए तुम्हें शोक हो रहा है ? हो सकता है कि तुम उस विद्याके लिए शोच कर रही हो, जो कुकर्मी ब्राह्मणोंके पास कैद है। अथवा तुम इसलिए शोच कर रही हो कि कुलीन ब्राह्मण लोग अब ब्राह्मणद्रोही राजाओंकी सेवा कनने लगे हैं ? ॥ २२ ॥ आजके राजा लोग कलिसे प्रभावित हैं, उन्होंने कई राष्ट्रोंको लूट खसोट लिया है। तुम उनकी तो चिन्ता नहीं कर रही हो ?

गाम् ॥ पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१९॥ धर्म उवाच ॥ कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि ग्लायतेषन्मुखेन ॥ आलक्षये भवतीमन्तराधिं दूरेबन्धुं शोचसि कञ्चनाम्ब ॥२०॥ पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ॥ आहो सुरादीन्हतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यवर्षति ॥ २१ ॥ अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ॥ वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥ २२ ॥ किं क्षत्रबन्धून्कलिनोपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ॥ इतस्ततो वाशनपानवासः स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २३ ॥ यद्वाम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ॥ अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥२४॥ इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुन्धरे येन विकर्शितासि ॥ कालेन वा ते बलिनां बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ॥२५॥ धरण्युवाच ॥ भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ॥ चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥२६॥ सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम् ॥ शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥२७॥ ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ॥ स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥२८॥ प्रागल्भ्यं

अथवा उन लोगोंकी चिन्ता कर रही हो, जो खान-पान, स्नान, कपड़े एवं मैथुनके लिए ही केवल मर रहे हैं ? ॥ २३ ॥ माता पृथ्वी, यह भी हो सकता है, तुम उन भगवान् कृष्णके लिए शोक कर रही हो जिन्होंने तुम्हारे भारी भारको उतारनेके लिए अवतार लिया था और अब वे अन्तर्हित हो गये हैं ? उनके कर्म तो मोक्षके लिए अवलम्ब ही हैं। ॥ २४ ॥ माता पृथ्वी, तुम अपने शोकका कारण मुझसे अवश्य बतलाओ, तुम इतनी दुबली क्यों हो गयी हो ? क्या बलवानोंका भी बलवान् कालने तुम्हारे उस सौभाग्यका तो न हरण कर दिया है, जिसकी देवतातक पूजा करते हैं ? ॥ २५ ॥ देवी पृथ्वीने कहा—धर्म, जिन्हें तुम पूछ रहे हो उन सब बातोंको तो स्वयं जानते हो। जिस परमात्माकी कृपासे तुम लोककल्याणकर चार पैरोंसे युक्त रहते हो, जिसमें सत्य, शौच, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सलरता, शम, दम, तपस्या, समता, सहिष्णुता, उपरति, शास्त्र, ज्ञान, वैराग्य,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐश्वर्य, वीरता, तेज, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, यश, आत्माभिमान, अहङ्कारशून्यता ये स्वाभाविक तथा अन्य गुण जिन्हें महत्त्वाकांक्षी लोग चाहा करते हैं, विद्यमान रहते हैं और उनसे कभी अलग नहीं होते—महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होते ॥ २६–३० ॥ मैं उन्हीं लक्ष्मीनिवास, गुणाश्रयं भगवान्से विरहित एवं पापी कलियुगसे आवृत इस लोकके लिए अब शोक कर रही हूँ ॥ ३१ ॥ मुझे अपने लिए तुम्हारे लिए भी शोच हो रहा है, क्यों कि तुम देवताओंमें श्रेष्ठ हो। इसी तरह देवता, पितर, ऋषि, साधु, एवं सभी वर्णाश्रमोंके लिए मैं दुःखी हूँ ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवतालोगोंने जिन लक्ष्मीकी कृपाकटाक्ष पानेके लिए भगवान्के शरणागत हो कड़ीसे कड़ी तपस्या की है, वह लक्ष्मीजी अब अपने कमलवनके वासको छोड़कर बड़े अनुरागसे भगवान्के सुभग चरणकमलोंका आश्रयण कर रही हैं ॥ ३३ ॥ भगवान्के चरणोंमें कमल, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा

प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ॥ गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहङ्कृतिः ॥ २९ ॥ एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ॥ प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥३०॥ तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन सांप्रतम् ॥ शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥३१॥ आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ॥ देवान्पितृनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाश्रमान् ॥३२॥ ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्ना ॥ सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥३३॥ तस्याहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलङ्कृताङ्गी ॥ त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥३४॥ यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ॥ त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥३५॥ का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ॥ स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्किताया: ॥३६॥ तयोरेवं कथयतोः पृथ्वीधर्मयोस्तदा ॥ परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥३७॥ इति श्रीम० म० प्र० पृथ्वीधर्मसंवादो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

आदिके चिन्ह हैं। उन चरणोंसे मेरे अङ्ग भी अलङ्कृत हुए थे। और तब मेरे सौभाग्यका तीनों लोकोंमें कोई सन्तुलन नहीं कर सकता था। किन्तु भगवान्के लीलासंवरण करते ही मेरा सारा सौभाग्य नष्ट हो गया मानो मुझमें जो गर्व हो आया था, यह उसीका दण्ड है ॥ ३४ ॥ वे सर्वथा स्वतन्त्र थे। उस समय मैं असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंके भारसे पीड़ित थी। उन्हीं भगवान्ने उस भारसे मुझे मुक्त किया। और तुम्हें भी लंगड़ा देख तुममें चारो पैरोंकी प्रतिष्ठा करनेके लिए उन्होंने यदुकुलमें मूर्त सौंदर्यके रूपमें अपनेको प्रकट किया था ॥ ३५ ॥ पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्णके प्रेमपूर्वक वीक्षण, मधुर मुसकान एवं मीठी बोलसे सत्यभामादि मधुकुलकी स्त्रियोंका मदसहितस्थैर्य लुप्त हो जाता था और वे आपेसे बाहर हो जाती थीं। उन श्रीकृष्णके चरणस्पर्शसे मुझमें भी सदा रोमाञ्च होता रहता था। तुमही बताओ, भला उन श्याम सुन्दरके विरहको कोई स्त्री कैसे सह सकती है ॥ ३६ ॥ पृथ्वी और धर्म जब इस तरहसे बात कर रहे थे, उसी समय राजर्षि परीक्षित् पूर्वको ओर बहनेवाली सरस्वतीनदीके तटपर आये ॥ ३७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सोलहवें अध्यायका सार—राजा परीक्षित कुरुजाङ्गलदेशमें रह रहे थे। वहाँ उन्होंने सुना कि पृथ्वीपर कलियुगका आगमन हो चुका है वे उससे लड़नेके लिए तत्पर हो उठे। सुसज्जित रथपर दिग्विजय करते हुए वे बढ़ते जाते थे। एक दिन आश्चर्यजनक घटना हुई। धर्म बैलका रूप धर एक पैरसे लँगड़ा-लँगड़ाकर चल रहा था। इतनेमें उसे गौके वेषमें पृथ्वी देख पड़ी जो बेजार होकर रो रही थी। धर्मने उससे उसका कारण पूछा। उसने बतलाया कि कलियुगके आजानेसे देवता, धर्म, ऋषि, मुनि, वर्ण, आश्रम आदि सभी निर्बल पड़ गये हैं। अतः इनकी दशापर मुझे तरह आ रही है और सबसे बड़ी बात यह है कि अब मैं भगवान्‌से वियुक्त हो चुकी हूँ। उनका विरह सहा नहीं जाता। जब उनके चरण मेरे शरीरपर पड़ते थे, तो तीनों लोकके लोग मेरे भाग्यका भूरि-भूरि सराहना करते थे। पर अब मुझ जैसा कोई अभागिन नहीं है। जब इन दोनोंकी बात चीत शुरू थी, उसी समय राजा परीक्षित् सरस्वतीके तटपर पहुँचे। सोलहवाँ अध्याय समाप्त *

* अथ सप्तदशोऽध्यायः *

* राजा परीक्षित्‌का सरस्वती तट पर कलियुगको यथोचित शिक्षा देकर उसको आश्रय देना *

सूत उवाच॥ तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत्॥ दण्डहस्तं च विषलं ददृशे नृपलाञ्छनम्॥१॥ वृषं मृणाधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम्॥ वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम्॥२॥ गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम्॥ विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम्॥३॥ पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम्॥ मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः॥४॥ कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान्बली॥ नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः॥५॥ कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सहगाण्डीवधन्वना॥ शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन्वधमर्हसि॥६॥ त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन्॥ वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन्॥७॥ न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते॥ भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन्विना ते

श्रीसूतजीने कहा—सरस्वतीके तटपर राजा परीक्षित्‌ने गाय, बैलके जोड़ेको अनाथकी तरह मार खाते देखा। और देखा कि एक शूद्र राजाओंका चिह्न धारण किये हुए है तथा हाथमें एक डण्डा लिये हुए है॥ १॥ बैल कमलरज्जुकी तरह सफेद था डरसे काँप रहा था और मूत रहा था। शूद्रने उसे पीटा भी था। एक ही पैरपर वह खड़ा था और उसे बड़ी तकलीफ हो रही थी॥ २॥ धर्मकी हेतुभूत गाय बड़ी लाचार एवं दुबली थी। उसका बछड़ा वहाँ नहीं था, शूद्रके पैरोंसे आहत होकर रो रही थी, खूब भूखी थी और कुछ घास खानेको चाह रही थी॥ ३॥ सोनेके रथपर बैठे हुए राजाने धनुष तान लिया तथा मेघ-सी गंभीरध्वनिमें उससे पूछा॥ ४॥ तुम तो बली दीखते हो। फिर मेरे राज्यमें जिसका एकमात्र मैं ही रक्षक हूं ऐसे इन दुर्बलोंको क्यों सता रहे हो? नटके समान वेषसे तो तुम राजा हो, पर कर्मसे तो शूद्र ही प्रतीत होते हो?॥ ५॥ अर्जुनके साथ श्रीकृष्णके परमधाम चले जाने पर एकान्तमें इन निरपराधोंपर इस तरह हाथ उठाने वाले वस्तुतः तुम कौन हो! तुम तो मृत्युदण्डके योग्य हो!॥ ६॥ बाद उन्होंने धर्मसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूछा—आप तो बिलकुल कमलतन्तुकी तरह सफेद हैं, पर आपके तीन पैर कटे हैं और आप एक ही पैरसे रेंग रहे हैं। आप कौन हैं ? आपको देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। क्या आप बैलके रूपमें कोई देवता तो नहीं हैं ? पुरवंशी राजाओंके बाहुबलसे सुरक्षित इस पृथ्वीपर आपके बिना किसी और को मैंने अश्रु गिराते न देखा ॥ ७ ॥ वृषभ देवता, अब आप शोक न करें, आपको इस शूद्रसे अब कोई भय भी नहीं करना चाहिये। गौ माता आपका कल्याण हो। मैं दुष्टोंका शासक हूँ, इसलिए अब आप भय न करें। जिस असावधान राजाके राज्यमें सज्जन प्रजाएँ दुष्ट लोगोंसे सतायी जाती हैं, उस राजाके यश, आयु, सौभाग्य और परमार्थका सर्वथा नाश ही हो जाता है ॥ १० ॥ राजाओंके लिए सबसे बड़ा धर्म यह है कि वह पीड़ितोंकी पीड़ाको मिटा दे। अतः मैं प्राणियोंके द्रोही इस दुष्टको मारही डालता हूँ ॥ ११ ॥ सुरभिपुत्र, चार पादोंसे युक्त आपके तीन पैर किस

प्राणिनां शुचः ॥८॥ मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् ॥ मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥९॥ यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः ॥ तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥१०॥ एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ॥ अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥११॥ कोऽवृश्चत्तव पदांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद ॥ माभूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥१२॥ आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ॥ आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥१३॥ जनेऽनागस्यघं युञ्जन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ॥ साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥१४॥ अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ॥ आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥ राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ॥ शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥१६॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ॥ येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥१७॥ न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ॥ पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥१८॥ केचिद्विकल्पवचना आहुरात्मानमात्मनः ॥

दुष्टने काट डाले हैं ? श्रीकृष्ण भक्त राजाओंके राजमें आपके जैसे और कोई दुःखी न हो ॥ १२ ॥ हे वृषदेव, आप सज्जन हैं और आपने कोई अपराध भी नहीं किया है। फिर भी जिसने आपको विरूप बनाया है, उसे आप बतलाइये। उसने तो पाण्डवकुलमें कलङ्क लगाया है ॥ १३ ॥ जो प्राणी निरपराध प्राणीको सताता है, उसे तो सब जगह मेरा भय हो सकता है। दुष्टोंको दण्ड देनेसे साधुओं का कल्याण होता है ॥ १४ ॥ जो निरपराध प्राणियोंको सतानेवाला दुष्ट है, यदि वह साक्षात् देवता भी हो तो भी मैं उसकी भुजाओं को बिजायठ सहित काट गिराऊँगा ॥ १५ ॥ राजाओंका यह परम धर्म है कि वह यहाँ अपने-अपने धर्ममें लगे लोगोंकी बराबर रक्षा करें। और जो लोग बिना आपत्तिकालके ही विपथगामी हो जाते हैं, उन्हें शास्त्रानुसार दण्ड दें ॥ १६ ॥ धर्मने कहा—राजन्, पाण्डववंशजोंके लिए पीड़ितोंको यह अभयदान देना तो युक्त ही है। पाण्डवोंके ऐसे-ऐसे गुणोंसे आकृष्ट होकर ही भगवान्ने उनका दौत्य किया था ॥ १७ ॥ नरश्रेष्ठ, मैं उस पुरुषको नहीं जानता, जो क्लेश-निदान है। शास्त्रोंमें भी इस सम्बन्धमें बहुतसे मतभेद दीख पड़ते हैं उनसे हमारी बुद्धि मोहित हो चुकी ॥ १८ ॥ कोई—योगी लोग आत्माको ही अपना प्रभु यानी सुख-दुःख प्रदाता मानते हैं, कुछ भेद बुद्धिवाले आत्माको ही स्वतन्त्र प्रभु समझते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं, ताकि लोग अपने सुख-दुःखके कारण आत्माको ही बतलाते हैं। कुछ ज्यौतिषी लोग दैवको प्रभु कहते हैं। मीमांसक लोग तो कर्मको और लोकायतिक-चार्वाकलोग स्वभाव को ही प्रभु समझते हैं॥ कुछ लोगोंका यह निश्चय है कि यह विषय तर्क और वाणीके परे है। अब इनमें जो मुक्त हो उसे तुमही बुद्धि द्वारा निश्चित करो॥ २०॥ सूतजीने कहा--शौनकजी, जब धर्मने इस तरहकी बातें कहीं, तो उनके चित्तको समाधान हो गया और उनका क्लेश जाता रहा। उन्होंने धर्मसे कहा॥ २१॥ राजाने कहा--आप तो धर्मकी बातें कर रहे हैं, आप इसके पूरे जानकार हैं। मैं तो आपको बैलका रूप धरे धर्मही समझता हूँ। आपने अपने अपराधीका नाश इसलिए नहीं बतलाया कि जो गति अधर्म करने वालोंकी होती है वही गति उसके सूचित करनेवालोंकी होती है॥२२॥ अथवा आपने अपराधीका नाम इसलिए नहीं बतलाया कि प्राणियोंके मन, वाणीसे भगवान्की माया परखी नहीं जा सकती॥२३॥

दैवमन्येऽपरे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥१९॥ अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ॥ अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥२०॥ एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड् द्विजसत्तम ॥ समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥२१॥ राजोवाच ॥ धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ॥ यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥ अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ॥ चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥२३॥ तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ॥ अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव॥२४॥ इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ॥ तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥२५॥ इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥२६॥ शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना ॥ अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥२७॥ इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ॥ निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥२८॥ तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ॥ तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥२९॥ पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ॥ शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥३०॥ राजोवाच ॥ न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति

तपश्चर्या, शौच, दया और सत्य ये आपके चार चरण कहे गये हैं। उनमें आपके तीन चरण तो अधर्मके अंश अहंकार, आशक्ति और मदसे नष्ट हो चुके हैं॥२४॥ धर्म देवता, इस समय आपका सत्यरूप एक चरण बच रहा है, जिससे आप कुछ गतिमान् हैं। लेकिन इस पैरको भी यह असत्यसे प्रवर्धित होकर पापी कलियुग नष्ट करना चाहता है॥ २५॥ पृथ्वी देवीके भारको स्वयं भगवान्ने हटाया था। उनके सुन्दर चरणोंके विन्याससे इनका सब तरहसे बहुत-बहुत मंगल हुआ था॥ २६॥ किन्तु आज यह उनसे परित्यक्ता हैं अभागिनीकी तरह इसलिए शोक कर रही हैं कि अब मुझे ब्राह्मण द्वेषी राजाके व्याजसे शूद्र भोग करेंगे॥ २७॥ इस तरह धर्म एवं पृथिवीको आश्वासन देकर महारथी राजा परीक्षित्ने अधर्मके मूल कलियुगके संहारके लिए तीक्ष्ण तलवार निकाल ली॥ २८॥ जब कलियुगने उन्हें मारनेके लिए उद्यत देखा, मारे भयके विह्वल हो गया। एवं जल्दीसे राजचिह्नोंको उतार फेंका और उनके चरणोंपर लोट गया॥ २९॥ परीक्षित् यशस्वी थे, गरीबोंपर प्रेम रखते थे और शरणमें आये हुएकी रक्षा करते थे। उसे उस तरह शरणमें आया देख उन्हें दया हो आयी तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्होंने उसे मारा नहीं। उससे हँसकर कहा ॥ ३० ॥ परीक्षित्‌ने कहा–अर्जुनके यशस्वी वंशजोंसे अब तुम्हें कोई भय नहीं रहा, क्योंकि तुम शरणमें आये हो। किन्तु तुम अब मेरे राज्यमें मत रहना, क्योंकि तुम अधर्मके प्रबल सहायक हो ॥ ३१ ॥ तुम्हारे रहनेसे ही राजाओंकी देहमें, लोभ, झूठ, चोरी, अन्य नीच कुकृत्य, मायाविता, झगड़ा, और ढोंग आदि अधर्मसमूहोंका प्रवेश होता है ॥ ३२ ॥ इसलिए अधर्मबन्धु कलियुग, तुम्हें इस ब्रह्मावर्तमें कभी न रहना चाहिये। क्योंकि यह प्रदेश धर्म और सत्यके व्यवहारसे व्याप्त है। यहीं पर यज्ञके जानकार लोग यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करते हैं ॥ ३३ ॥ इस ब्रह्मावर्तमें भगवान् विष्णु यज्ञरूपसे पूजित होकर याग करने वालोंका कल्याण करते हैं। वह परमात्मा वायुकी तरह अग-जगके भीतर-बाहर अनुस्यूत हैं और सबकी कामनाको सफल बनाते हैं ॥ ३४ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनकजी, परीक्षित्‌की यह आज्ञा सुनतेही कलियुग काँपने

किञ्चित् ॥ न वर्तितव्यं भवता कथञ्चन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥३१॥ त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ॥ लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥३२॥ न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ॥ ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥३३॥ यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ॥ कामानमोघान्स्थिरजङ्गमानामन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥३४॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ॥ तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥३५॥ कलिरुवाच ॥ यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ॥ लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥३६॥ तन्मे धर्मभृतांश्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि॥ यत्रैव नियमो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥३७॥ सूत उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ॥ द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३८॥ पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ॥ ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥३९॥ अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ॥ औत्तरेयेण दत्तानि

लगा वह उसके शिरपर तलवार लिए यमराजकी तरह तैयार थे। कहा—महाराज, आपकी आज्ञासे मैं जहाँ-कहीं रहना चाहता हूं, वहाँ-वहाँ आप धनुष ताने दीख पड़ते हैं। इसलिए धार्मिक-शिरोमणि, आप मुझे किसी ऐसे स्थानका निर्देश करें, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ रहूँ ॥ ३६, ३७ ॥ सूतजीने कहा—उसके प्रार्थना करनेपर राजा परीक्षित् ने उसे चार स्थान दिये—जुआ, शराब पीना, स्त्री एवं हिंसा। इन चारोंमें असत्य, अभिमान, आसक्ति और निष्ठुरता—ये चार अर्धम निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ उसने एक जगह और माँगी, तब उन्होंने उसे एक और स्थान 'सोना' दिया। उससे झूठ, अभिमान, काम, रजोगुण और पञ्चम वैर ये पाँच स्थान उसके अर्थतः प्राप्त हो गये ॥ ३९ ॥ अधर्म

प्रश्न–पाण्डव वंशोद्भूत महाबुद्धिमान् राजा परीक्षित् ने जब कलि को निवास करने की (जूवा, मद्यपान, व्यभिचारिणी स्त्री, जहाँ प्राणी मारे जाते हों, सुवर्ण, असत्य, मद, काम, व्यसन, और वैर) जगह दे दी। फिर मृत सांप को तपस्वी मुनि के गले में क्यों कर धारण कराया।

उत्तर–एक समय बाल्यकाल में राजा परीक्षित् ने नकली सर्प बनाकर मुनिपावक के गले में धारण करा दिया था। उसी कारण मुनि ने शाप दिया तेरी मृत्यु इस प्रकार के कुकृत्य करने पर शाप से ही होगी। वही उनकी मृत्यु का आदिकारण था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उद्भावक कलियुग परीक्षित्‌के दिये हुए इन पाँच स्थानोंमें उनकी आज्ञाका पालन करते हुए रहने लगा ॥ ४० ॥ इसलिये अभ्युदय चाहने वालोंको चाहिये कि वे इन वस्तुओंका सेवन न करें। खासकर प्रजापालक धार्मिक राजाको जो अपने धार्मिक शासन द्वारा दुनियाँका उपदेशक है, इनसे अवश्य बचना चाहिए ॥ ४१ । बादमें उन्होंने बैलके टूटे हुए तीन चरणोंको (तप, पवित्रता, दया) को जोड़ दियां। और पृथ्वीको आश्वासन देकर उसकी वृद्धि की ॥ ४२ ॥ वह राजा परीक्षित् इस समय भी (कीर्तिरूपदेहसे) राजोचित आसन पर जिसको कि उसके दादा युधिष्ठिरने वन जाते समय सौंपा था, विराजमान है। महाभाग वह चक्रवर्ती राजर्षि परीक्षित् कुरुवंशी राज्यलक्ष्मीसे उल्लसित होकर यशरूप महान् शरीरसे

न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥४०॥ अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ॥ विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥४१॥ वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति ॥ प्रतिसन्दध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४२॥ स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् ॥ पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥४३॥ आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् ॥ गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥४४॥ इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ॥ यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥४५॥ इति श्रीम० म० प्र० कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

आज भी हस्तिनापुरमें विद्यमान है अभिमन्यु पुत्र यह परीक्षित् सचमुच ऐसे ही ऐश्वर्यसे सम्पन्न है। उसीके शासनकालमें आप लोगोंने दीर्घकालिक यज्ञकी दीक्षा की है ॥ ४३-४५ ॥

सत्रहवें अध्यायका सार--राजा परीक्षित्‌ने उस सरस्वतीके तटपर गाय बैलके एक जोड़ेको देखा, जो किसी राजा बेषधारी शूद्रसे पीटे जा रहे थे। राजा परीक्षित्‌ने तुरन्त धनुष चढ़ा लिया और डाँटकर राजवेषधारी कलियुगको ललकारा। फिर उन्होंने उस गाय बैलके जोड़े से उसका परिचय पूछा। उन्हें ज्ञात हुआ कि यह बैल, जिसके तीन पैर टूट गये हैं, धर्म है और गाय वस्तुतः पृथ्वी है। उन्होंने उन्हें सान्त्वना दी तथा कलियुगको दण्ड देनेके लिए आगे बढ़े। कलियुग पैरपर गिर पड़ा और अपने रहनेके लिए जगह माँगी। परीक्षित्‌ने उसे पाँच स्थान दिये--जुआ, शराब खाना, स्त्री, हिंसा और सोना। इन पाँचोमें ये पाँच सदा विद्यमान रहते हैं--झूठ, अभिमान, काम, रजोगुण तथा शत्रुता। इसलिए अपना कल्याण चाहनेवाले लोग इनका सेवन कभी न करें। सत्रहवां अध्याय समाप्त ❋

❀ अथ अष्टादशोऽध्यायः ❀

❋ राजा परीक्षित्‌को शृङ्गीऋषिका शाप ❋

सूत उवाच ॥ यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ॥ अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥१॥ ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राण-

श्रीसूतजीने कहा--ऋषियो, भगवान् श्रीकृष्णके कार्य बड़े विलक्षण होते हैं। उन्हींकी कृपासे राजा परीक्षित् अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जलकर भी माताके पेटमें मरे नहीं ॥१॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसो तरह जब ब्राह्मणके शापके कारण तक्षकके द्वारा उनके प्राणोंके हरणका समय आया, तो भी राजा परीक्षित् उस बड़े भारी भयसे तनिक भी सहमे नहीं। क्योंकि उन्होंने अपना अन्तःकरण भगवान्में अर्पित कर दिया था अथवा उनकी सारी वासनाएँ भगवान्को अर्पित हो चुकी थीं ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीका शिष्य बनकर यानी उनकी सीखके अनुसार उन्होंने सब तरफसे आसक्ति हटाकर श्रीकृष्णके स्वरूपका परिज्ञान कर लिया था और इसी हालतमें गङ्गातट पर अपनी देह छोड़ दी ॥ ३ ॥ जो लोग भगवान्की लीला-कथाओंको सुनते हैं और उनके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं, उन्हें मरते समय भी किसी तरहका मोह नहीं होता ॥ ४ ॥ जबतक चक्रवर्ती परीक्षित् पृथ्वीपर राज्य करते रहे, तब तक सर्वत्र प्रविष्ट हुए भी कलियुगका इस भारतवर्षमें कोई प्रभाव न पड़ा ॥ ५ ॥ जिस दिन जिस क्षणमें भगवान् श्रीकृष्णजीनें इस पृथ्वीका परित्याग किया, उसी दिन उसी क्षणमें

विल्पवात् ॥ न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥२॥ उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ॥ वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥३॥ नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ॥ स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥४॥ तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ॥ यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥५॥ यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ॥ तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥ नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ॥ कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥७॥ किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ॥ अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥८॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया ॥ वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥९॥ या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ॥ गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥१०॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ॥ यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥११॥ कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ॥ आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥१२॥ तुल-

अधर्मका कारणभूत कलियुग इस पृथ्वीपर सर्वत्र छा गया ॥ ६ ॥ जैसे भ्रमर सारग्राही होता है उसी तरह राजा परीक्षित् भी सारग्राही थे। इसीलिये उन्होंने कलियुगको नष्ट नहीं किया। वे जानते थे कि इसमें एक बड़ा गुण यह है कि इस युगमें पुण्य तो जल्दी ही सिद्ध होते हैं, परन्तु पाप नहीं——मानसिक पुण्य तो होता है, परन्तु मानसिक पाप नहीं होता ॥ ७ ॥ अविवेकियोंके लिए यह कलियुग शूर और धीर है, किन्तु जो विवेकी पुरुष हैं उनके विषयमें तो इस कलिसे कुछ भी करते नहीं बनता। यह प्रमत्त पुरुषोंके ही ऊपर साव-धान होकर चोट करता है, जैसे कि भेड़िया भेड़ोंके ही ऊपर चोट करता है अर्थात्—जैसे भेड़िया बच्चों एवं असावधान व्यक्तिको ही सताता है, उसी तरह कलियुग भी असावधान लोगोंपर ही अपना रोब गाँठता है। बल्कि धर्मवीरोंसे यह काँपता है, अतः सावधान व्यक्तियोंको कलियुगमें कोई खतरा नहीं है ॥ ८ ॥ ऋषियो, आपने श्रीकृष्णकथासे सम्बन्ध रखनेवाला परीक्षित्का आख्यान मुझसे पूछा था, उसीके अनुसार मैंने यह पुण्यकथा कह डाली ॥ ९ ॥ भगवान्की जो जो कथाएँ हैं वे सारी कथाएँ उनके वात्सल्यादि गुण तथा अद्भुतकर्मोंका आश्रयण करनेवाली हैं जो अभ्युदय चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे कीर्तनीय उस कर्मा भगवान्की उन सारी कथाओंका सेवन करते रहें ॥ १० ॥ ऋषियोंने कहा कि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे सौम्य सूतजी, आपने हम मरणधर्माओंके लिए कृष्णकी विमलकीर्तिसुधाका पान कराया है, अतः आप भी बहुत वर्षोंतक जीयें ॥ ११ ॥ यज्ञकर्मके सतत अनुष्ठानसे हमारा शरीर धुएँसे भर गया है, किन्तु उसका फल अप्रत्यक्ष है, अतः उसपर पूरा भरोसा नहीं है। लेकिन आप तो प्रत्यक्ष ही कृष्णके चरणकमलका मधु हमें पिला रहे हैं ॥ १२ ॥ भगवान् के भक्तोंकी संगतिसे स्वर्ग या मोक्ष किसीकी तनिक भी हम तुलना नहीं कर सकते। फिर नश्वर मनुष्योंके राज्य आदिसे उसकी क्या तुलना हम कर सकते हैं ? ॥ १३ ॥ महात्माओंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌की कथाओंसे कौन रसिक तृप्त हो सकता है ? जिनमें भगवान् शंकर और ब्रह्मा मुख्य हैं ऐसे योगेश्वर भी प्राकृतगुणरहित उनके गुणका पार नहीं पाते ॥ १४ ॥ अतः हमलोग तो सन्तोंके एकमात्र आधार भगवान्‌के उदार चरितको ही सुननेकी इच्छा रखते हैं। और हे विद्वन्, हमलोगोंके मध्यमें भगवत्प्रधान आप ही हैं

याम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥१३॥ को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥१४॥ तन्नो भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ हरेरुदारं चरितं विशुद्धं
शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥१५॥ स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमभ्रबुद्धिः ॥ ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम्
॥१६॥ तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ॥ आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥१७॥ सूत उवाच ॥
अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ॥ दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥ कुतः पुनर्गृणतो
नाम तस्य महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो महद्गुणत्वाद्यमनन्तमाहुः ॥१९॥ एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानति-
शायनस्य ॥ हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥२०॥ अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ॥ सेशं पुना-

इसलिए आप उन्हींका गुणानुवाद सुनाइये ॥ १५ ॥ अनल्प विमलबुद्धिवाले सन्त परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट जिस ज्ञानसे अपवर्गनामक श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी छाया पायी, आप हमें परीक्षित्‌के उसी भक्तिको सुनाइए। उस चरित्रमें श्रीकृष्णचरित तो अनुस्यूत है ही उसमें कोई बात छिपाई भी नहीं गयी है और भक्तियोगकी तो गजबकी निष्ठा उसमें है, वह परम पुण्यावह है तथा भगवद्भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है ॥ १६, १७ ॥ सूतजीने कहा—अहो, विलोमसंकर होते हुए भी हमारा जन्म आज वृद्धोंकी सेवासे धन्य हो गया। महापुरुषोंके साथ जो वार्तालाप होता है, वह अकुलीनताके दुःखको शीघ्र ही मिटा देता है ॥ १८ ॥ फिर उनलोगोंके लिए तो कहना ही क्या है, जो कि भक्तोंके आश्रयभूत भगवान्‌का नाम लेते है। भगवान्‌की शक्ति अनन्त हैं और वे आप अनन्त हैं। उनके गुणोंके अन्त न होनेसे ही उन्हें अनन्त कहा जाता है ॥ १९ ॥ भगवान्‌के गुणोंकी समता भी जब कहीं नहीं है, तब उनसे बढ़कर भला कोई कैसे होगा ? उनकी महत्ताका कुछ अन्दाज इससे लगाया जा सकता है कि ब्रह्मा आदिके चाहनेपर भी लक्ष्मीजीने उन्हें स्वीकार न किया और न चाहने पर भी उन्होंने विष्णुके चरणरेणुकी सेवा स्वीकार की ॥ २० ॥ दूसरी बात यह है कि ब्रह्माने भगवान्‌के चरण धोनेके लिए जो जल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिया, वह उनके चरणनखोंसे निकलकर गंगा नामसे प्रसिद्ध हो गयी और वह गङ्गाजी महादेव आदि बड़े-बड़े देवताओंके सहित सारे जगत्को पवित्र बनाती हैं। तब इन कृष्णसे भिन्न ईश्वर पदका अर्थ इस लोकमें और कौन हो सकता है? ॥ २१ ॥ उन भगवान्में जिनका प्रेम सहसा घनीभूत हो जाता है वे भक्त अपने शरीरमें रूढ़ हुए अभिनिवेशको हटाकर अन्तिम परमहंसोंके आश्रमको चले जाते हैं, जिस आश्रममें अहिंसा और उपशम स्वाभाविक धर्म है ॥ २२ ॥ सूर्य सदृश तेजस्वी ऋषियो, आपने जैसा पूछा है मैं अपनी बुद्धि एवं बोधके अनुसार उसे ही कहता हूँ। भगवान्के गुण तो अनन्त हैं, उनका अन्त पाना तो किसीके लिए भी असम्भव है। फिर भी जैसे आकाशमें अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार गरुड आदि पक्षी उड़ते हैं, परन्तु उसका अन्त नहीं कर पाते उसी तरह ज्ञानी लोग भी अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार ही भगवान्की महिमाको विषम करते तथा उनका वर्णन

त्यन्यतमो मुकुन्दात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ २१ ॥ यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ॥ व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥ अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष्व आत्मावगमोऽत्र यावान् ॥ नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥ एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वने ॥ मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥२४॥ जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥ २५ ॥ प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ॥ स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥२६॥ विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ॥ विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥ २७ ॥ अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः ॥ अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥ २८ ॥ अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ॥ ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च ॥२९॥ स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ॥ विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥३०॥ एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ॥ मृषासमाधिराहो-

करते हैं। मैं भी अपनी शक्तिके अनुसार ही कुछ कहूंगा ॥ २३ ॥ एकबार राजा परीक्षित् धनुष तानकर वनमें आखेट कर रहे थे। मृगका पीछा करनेसे वे थक गये और उन्हें अत्यन्त भूख-प्यास लग आयी ॥ २४ ॥ वहाँ कोई जलाशय न देख एक आश्रममें घुसे वहाँ उन्होंने रागादि रहित एक मुनिको देखा, जो आँखें मीचकर आसन जमाकर शान्ति से बैठे थे ॥ २५ ॥ उनकी इन्द्रिय, प्राण, मन एवं बुद्धि प्रत्याहृत हो गयी थी और वे बाह्यव्यापारसे उपरत हो गये थे। इसलिए जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिके ऊपर उठकर यानी तुरीयावस्थारूपसमाधिमें प्राप्त होकर वे ब्रह्ममें लीन हो रहे थे। उनमें कोई विकार नहीं था, बिखरी जटाओं एवं मृगचर्म में बैठे हुए थे। इधर परीक्षित्का तो गला सूख रहा था अतः उन्होंने उस रूपमें बैठे हुए उस मुनिसे पानी माँगा ॥ २६, २७ ॥ ऋषिको तो कुछ पता नहीं था, अतः उन्होंने इनका कोई आतिथ्य न किया। जब राजाने देखा कि मुझे बैठनेके लिए एक तृण-भी न मिला, भूमिपर भी बैठनेको न कहा गया, अर्घ्य और बातचीत तक किसीने न की तो उन्होंने समझा कि मेरा यहाँ अपमान किया गया। और तब वे बहुत कुपित हुए ॥ २८ ॥ हे शौनकजी, राजा भूख-प्याससे आकुल थे। अतः सहसा ब्राह्मणके ऊपर अति क्रोध और ईर्ष्या उनमें जाग पड़ी। पर यह घटना इनके जीवनमें पहलीबार आज

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही घटी ॥ २९ ॥ उन्होंने क्रोधकर उन ब्रह्मर्षिके गलेमें एक मरे साँपको धनुषकी नोंकसे उठाकर डाल दिया और अपनी राजधानीको लौट आये ॥ ३० ॥ उनके मनमें यह विचार उठा था कि क्या सचमुच इनकी इन्द्रियाँ समाधिमें उपरत हो गयीं हैं, या मेरी उपेक्षाकर ऐसे क्षत्रबन्धुओंके आने जानेसे हमारा कार्य बनता या बिगड़ता है, ऐसी भावनाकर झूठ-मूठ स्वांग रच रखा है ? ॥ ३१ ॥ उन ऋषिका लड़का बड़ा तेजस्वी था, वह बाहर बालकोंके साथ खेल रहा था। उसने जब सुना कि राजाके द्वारा उसके पिताके गलेमें साँप डाल कर कष्ट दिया है, तो बोला ॥ ३२ ॥ बलि-खाकर मुटाये कौओंकी तरह इन राजाओंको तो देखो, ये कितने अधर्ममें लग गये हैं। जैसे द्वारका प्रहरी कुत्ता अपने स्वामीको निरादर करे उसी तरह राजाने ब्राह्मणका अपमान किया है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको अपना द्वारपाल बनाया है, फिर उन्हें दरवाजे परही रहना चाहिए, वह उनके पात्रमें खानेका

स्वित्किं नु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥ ३१ ॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः ॥ राज्ञाऽघं प्रापितं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥३२॥ अहो अधर्मः पालानां पीन्वां बलिभुजामिव ॥ स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥ ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः ॥ स कथं तद्गृहे द्वास्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥ ३४ ॥ कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ॥ तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥३५॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ॥ कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ॥३६॥ इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ॥ दङ्क्ष्यति स्म

अधिकारी अपनेको कैसे मानने लगे ? ॥ ३४ ॥ उन्मार्ग–गामियोंके शासक भगवान् कृष्ण थे उनके जाते ही लोगोंने मर्यादाको तोड़ना प्रारम्भ कर दिया है। पर अब मैं ही शासन करूँगा, देखो कि मेरा बल कितना है ॥ ३५ ॥ क्रोधसे उसकी आखें लाल हो गयी थीं। उसने अपने समवयस्क ऋषि बालकोंमें ऐसा कहकर कौशिकीके जलका आचमनकर

एक समय राजा परीक्षित् शिकार खेलते हुए भूख प्यास से संतप्त हो किसी आश्रम में गये। वहाँ उन्होंने नेत्र बन्द मृग चर्माच्छादित मुनि को देख जल मांगा। पर उन ऋषि को ऋषि न जानकर उन्हें क्रोध आ गया। और उसी आवेश में अपने धनुषसे मरे सांप को उनके गले में डालकर वे अपने नगर चले गये। इधर लड़कों के साथ खेलते हुए उस ऋषि कुमार को जब यह समाचार मालूम हुआ तो उसे क्रोध हुआ और क्रोध के वशीभूत हो कौशिकी नदी का जल लेकर शाप दिया कि आज से सातवें दिन यही तक्षक उस राजा को काटेगा। कह कर वह बालक अपने आश्रम पर आकर पिता के गले में मृत सांप को देख उच्चस्वर से रुदन करने लगा। इतने ही में हे ब्रह्मन् पुत्र के विलाप को सुन उसके पिता जिनका नाम शमीक ऋषि था नेत्र खोले पूछा हे वत्स, कहो तुझे क्या कष्ट है। मुनि पुत्र से सब वृत्तान्त सुन वे बड़े दुःखित हुए। कहा तुमने कार्य यथोचित नहीं किया। इधर राजा भी विचार करने लगे कि मैंने बड़ा निन्दित कर्म किया है। इतने ही में उन्हें मालूम हो गया आज के सातवें दिन मृत्यु होगी—

यों यह सुनते ही पुत्र को राज्याधिकारी बनाना, घरसे गङ्गातट पर जाना, मुनियों-अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, परशुराम, उतथ्य आदि एवं शुकदेवजी का आगमन, भागवत कथा में अपने प्रश्नों का उत्तर पाना आदि कार्य सात दिन कैसे संभव हो सकते हैं ?

उत्तर—राजा परीक्षित् ने अधिक कार्य जान पाण्डवों के मित्र श्री आनन्दकन्द वंशीधारी भगवान् कृष्ण का ध्यान किया। उनके प्रभाव से दिन इतने बड़े हुए की राजा के सब कार्य सात दिन में परिपूर्ण हुए यह कथक्कडों का कथन है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाग्वज्रको छोड़ा शाप दिया ॥ ३६ ॥ कुलाङ्गार, मर्यादा तोड़नेवाले और द्रोह बढ़ानेवाले उस राजाको मेरी प्रेरणासे आजसे सातवें दिन तक्षक डँस लेगा ॥ ३७ ॥ इसके बाद वह आश्रममें आया। वहाँ उसे पिताके गलेमें साँप पड़ा देख बड़ा दुःखी हुआ और वह तार-स्वरसे रो पड़ा ॥ ३८ ॥ हे शौनकजी, जब शमीकऋषिने लड़केका रोना सुना, तो उन्होंने धीरेसे अपनी आखें खोल दीं। तब उन्हें अपने गलेमें मरा साँप दीख पड़ा ॥ ३९ ॥ उसे हटाकर उन्होंने लड़केसे पूछा कि बच्चा, तुम रो क्यों रहे हो ? तुम्हें किसने सताया है ? तब उस लड़केने सारी बातें कहीं ॥ ४० ॥ ऋषिने शापके अयोग्य राजाको शाप देनेकी बात सुनी, तो उन्होंने लड़केको बड़ा फटकारा। अरे अज्ञ, खेद है कि तुमने छोटीसी भूलके लिए इतना बड़ा दण्ड दे दिया ॥ ४१ ॥ बेटा, तुम्हारी बुद्धि अभी कच्ची है। राजाकी ख्याति भगवान् विष्णुसे दी गयी है। मनुष्योंके साथ राजाकी तुम तुलना नहीं कर सकते। क्योंकि

कुलाङ्गारं चोदितो मे तत्द्रुहम् ॥ ३७ ॥ ततोऽभ्येत्याश्रमे बालो गले सर्पकलेवरम् ॥ पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥३८॥ स वा आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम् ॥ उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥३९॥ विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि ॥ केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४० ॥ निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत् ॥ अहो बतांहो महदद्य ते कृतमल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥४१॥ न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ॥ यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥४२॥ अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः। तदा हि चोरप्रचुरो विनङ्क्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥४३॥ तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ॥ परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते पशून् स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥४४॥ तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥ ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसङ्करः ॥४५॥ धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ॥ साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट्॥ क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥४६॥ अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ॥ पापं

राजाके दुर्विषह तेजसे रक्षित प्रजाएँ निर्भय होकर कल्याण प्राप्त करती हैं ॥ ४२ ॥ बेटा, राजारूपी परमात्मा विष्णुके न रहने पर यह संसार चोरोंसे भर जायगा और अरक्षित भेड़ोंकी तरह यह तत्काल नष्ट हो जायगा ॥ ४३ ॥ राजाके न रहनेसे प्रजाओंके धनका अपहरण करनेवाले चोर आदिके निमित्त जो अत्याचार होंगे उनका भागी हमें भी बनना पड़ेगा, क्योंकि राजाके अभावमें निमित्त हमी हो गये। इसलिए पापका सम्बन्ध हम लोगोंमें न होना ही अच्छा है। बेटा, राजाके न रहनेपर चोरप्रचुर जनता परस्पर मार-काट मचाने लगती है, गाली-गलौज बकती है, तथा स्त्री, धन और पशुओंका अपहरण करने लग जाती है ॥ ४४ ॥ तब वेदविहित वर्णाश्रमाचारयुक्त आर्यधर्म भी विलुप्त हो जाता है। और तब अर्थ तथा काम प्रधान होकर प्रजा कुत्ते तथा बन्दरोंकी तरह अगम्यागमन कर वर्णशङ्करी सृष्टि करने लगती है ॥ ४५ ॥ सम्राट् राजा परीक्षित् तो बड़े यशस्वी और धर्मके रक्षक हैं उन्होंने अश्वमेधयज्ञ किया है। वे साक्षात् महाभागवत हैं—बहुत बड़े सन्त हैं, राजर्षि हैं, वे बेचारे भूख-प्याससे युक्त हो लाचार हो रहे थे अतः उन्हें कोई शाप न देना ॥ ४६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चाहिये था ॥ ४६ ॥ यह लड़का है, इसकी बुद्धि अभी निरी कच्ची है । इसने अपने निष्पाप सेवकका अपराध किया है, अतः सर्वात्मा भगवान् इसके इस पापको शान्त कर दें ॥ ४७ ॥ वे शमीकऋषि भगवान्के भक्त थे। वे राजासे स्वयं अपमानित किये गये थे, किन्तु उन्होंने उनके अपराधके प्रति दृष्टि ही नहीं डाली । वे महर्षि तो केवल अपने अज्ञके किये पापका ही पश्चात्ताप करने लगे । भगवान्के भक्त समर्थ होकर भी तिरस्कार करनेवाले, ठगनेवाले, शापदेनेवाले, आक्षेप करनेवाले, मारनेवालेका तनिक भी प्रतिकार नहीं करते ॥ ४८, ४९ ॥ यह अधिकांशमें देखा जाता है कि दूसरोंके द्वारा सुख-दुःखोंमें पहुँचाये जाने परभी इस लोकमें सन्त लोग न तो दुःखी होते हैं और न सुखीही होते हैं । क्योंकि वे आत्मनिष्ठ रहते हैं ॥५०॥

कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥४७॥ तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हतापि वा ॥ नास्य तत्प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥४८॥ इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ॥ स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥४९॥ प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ॥ न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥५०॥ इति श्रीमद्भा० म० प्र० विप्रशापोपलम्भनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अठारहवें अध्यायका सार—राजा परीक्षित् सारग्राही थे। उन्होंने अपने राज्यमें कलियुगका प्रश्रय इसलिए दिया था कि कलियुगमें और युगोंकी अपेक्षा एक बड़ा विलक्षण गुण है । इसमें मानसिक पुण्य तो होता है, पर मानसिक पाप नहीं होता । एक दिन राजा शिकार करते-करते बिलकुल थक गये । कोई साथमें न था । भूख-प्याससे उनका गला सूख रहा था । किन्तु बहुत ढूँढ़ने पर भी उन्हें कोई जलाशय नहीं मिला । तब वे पासके आश्रममें गये । वहाँ शमीकऋषि समाधिस्थ बैठे थे । राजाके बहुत बार पुकारने पर भी उनका ध्यान टूटा नहीं । राजाने सोचा कि यह ब्राह्मण मेरी उपेक्षाकर समाधिका ढोंग रच रहा है । बस उन्होंने धनुषकी नोकसे एक साँप उठाकर उनके गळेमें डाल दिया । और वे नगर लौट आये । इधर शमीकऋषिका लड़का शृङ्गी कुछ बालकोंके साथ खेल रहा था । उसे जब यह बात मालूम हुई, तो वह आगबबूला हो गया । उससे पिताका यह अपमान सहा न गया । उसने कौशिकी नदीमें उतरकर शाप दिया कि आजसे सातवें दिन तक्षक नाग राजाको डँसेगा । बादमें जब वह पिताके आश्रममें आया, तो उसको पिताके गलेमें साँप लटका मिला । वह पुक्का फाड़कर रोने लगा । ऋषिकी समाधि टूटी, पूछा, "क्यों रो रहे हो" । उसने सारी बात बतला दी । राजाको शाप देनेकी बात सुनकर ऋषिने अपने बच्चेको फटकारा । कहा कि थोड़ीसी गलतीके लिए तुमने इतना बड़ा शाप देकर बड़ा पाप मोल लिया है वह तो धार्मिक और प्रजावत्सल राजा था । उससे दुनियाँमें शान्ति थी । अब उसके न रहने पर जो लूट-पाट मचेगा, उसका पाप हमें भी तो लगेगा । अठारहवाँ ध्याय समाप्त *

❀ अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः ❀

कुकृत्यपर पश्चात्ताप करनेवाले अनशनधारी परीक्षित्के पास अवधूत वेषमें शुकदेवजीका अचानक आना

सूत उवाच ॥ महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥ अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥१॥ ध्रुवं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूतजीने कहा—हे शौनकजी, राजधानी पहुँचनेपर राजा परीक्षित्‌को अपने उस कुकृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने कहा कि अहो, मुझमें तो अनार्यों जैसा व्यवहार हो गया। भला वह ब्राह्मण बेचारा तो निरपराध था, मैंने उसके साथ वैसा कृत्य कैसे कर डाला? निश्चय ही उसने अपने तेजको छिपा रखा था ॥१॥ उस भूदेवके अपमानके फलस्वरूप निश्चयही तुरन्त मेरे ऊपर कोई दुस्तर विपत्ति पड़ेगी किन्तु इस तरह विपत्तिका पड़ना भी श्रेयस्कर ही है, क्योंकि भाग लेनेसे इस पापसे छूटकारा मिल जायगा। और मुझे ऐसी चेतावनी मिल जायगी कि फिर मैं ऐसा न कर सकूंगा ॥ २ ॥ उकसायी हुई ब्राह्मणकी कोपाग्नि आज ही अभद्र मेरी सेना और समृद्धकोषका नाश कर डाले, ताकि ब्राह्मण, देवता तथा गौ के प्रति मेरी बुद्धि फिर न बुरी हो ॥ ३ ॥ वे इस तरह सोचही रहे थे कि ऋषिकुमारके दिये गये शापको उन्होंने सुना कि शीघ्रही तक्षकसे मेरी मृत्यु होगी।

ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ॥ तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा॥२॥अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपित-ब्रह्मकुलानलो मे ॥ दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः॥३॥ स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निरृतिस्तक्षकाख्यः ॥ स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥४॥अथो विहायेममुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ॥ कृष्णाङ्घ्रिसेवाम-धिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥५॥ या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ॥ पुनाति लोकानुभयत्र सेशान् कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥६॥ इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ॥ दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्त-सङ्गः ॥७॥ तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः ॥ प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥८॥ अत्रि-र्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ॥ पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥९॥ मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ॥ मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ १० ॥ अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ॥

उन्होंने उस तक्षकके विषाग्निको भी अच्छा ही समझा। क्योंकि उसकी भीति आशक्तिसे हटाकर वैराग्य उत्पन्न करनेवाली थी ॥४॥ उन्होंने इसलोक और परलोकके भोगको पहलेसे ही तुच्छ समझकर त्याग रखा था। इसबार वे उससे सर्वात्मना मन हटा कर श्रीकृष्णके चरणका आश्रय ले गंगातटपर प्रायोपवेश [अनशन] करने लगे ॥५॥ गंगाजी तो भगवान्‌के उस चरणधूलि संपृक्त जलको ढोती हैं, जिसमें तुलसीकी गन्ध मिली हुई है। और इस तरह वे महादेव आदि सहित त्रिभुवनको पवित्र करती रहती हैं, तो फिर मुमूर्षु व्यक्ति उनका क्यों न सेवन करें ॥ ६ ॥ गंगामें इस तरह अनशनका निश्चयकर राजा परीक्षित् कृष्णके चरणोंमें अनन्यभावको धारण करने लगे। उस समय वे समस्त आशक्तियोंका उन्होंने परित्याग कर दिया था और मुनिके व्रतको अङ्गीकार कर लिया था ॥ ७ ॥ वहाँपर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्ठनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्र, प्रमद, इध्मबाह, आदि मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिसेन, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्त, व्यास, नारद आदि महानुभाव आदि मुनि अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शिष्योंके साथ जगत्को पवित्र करते हुए आये। प्रायः सन्त लोग स्वयं तीर्थयात्राके बहाने तीर्थको भी पवित्र करनेके लिए विचरते हैं ॥ ८, १० ॥ इसके अतिरिक्त और देवर्षि, ब्रह्मर्षि एवं वरुण आदि राजर्षि लोग वहाँ आये। राजा परीक्षित्ने उस श्रेष्ठ ऋषियोंके समुदायकी पूजाकर उनके चरणोंपर शिर रखकर प्रणाम किया ॥ ११ ॥ जब वे लोग सुख-पूर्वक बैठ गये तब राजा परीक्षित् उनको फिरसे नमस्कार कर उनके आगे हाथ जोड़कर कुछ करना चाहते थे, उसे सुनाने लगे ॥ १२ ॥ राजाने कहा—अहो, हम तो सभी राजाओं में अधिक भाग्यशाली हैं क्योंकि सन्तोंके स्नेहपात्र हैं। राजाओंका समूह तो स्वभावतः गर्ह्यकर्म कर बैठता है। और इस तरह वह ब्राह्मणोंके चरणोंसे दूर पड़ जाता है ॥ १३ ॥ मैं भी वैसा ही राजा हूँ, गृहस्थीमें पापात्मा मैं कैसा हुआ हूँ। फिर भी भगवान् शापरूपसे वैराग्यका कारण बनकर हमारे पास पहुंचे हैं, ताकि शापसे भयभीत हो मैं दुनियाँसे विरक्त

नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥११॥ सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ॥ विज्ञापयामास विविक्त-चेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥१२॥ राजोवाच ॥ अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ॥ राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दू-राद्विसृष्टं बत गर्ह्य कर्म ॥१३॥ तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ॥ निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥१४॥ तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ॥ द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥ पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ॥ महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥१६॥ इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ॥ उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥१७॥ एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देव-सङ्घाः ॥ प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥ महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ॥ ऊचुः प्रजा-नुग्रहशीलसारा यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥ १९ ॥ न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ॥ येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो

हो जाऊँ ॥ १४ ॥ अब मैं भगवान्की ओर बढ़ गया हूं आप लोग और गंगामाता आशीर्वाद दें। ब्राह्मणकुमारके शापसे चाहे तक्षक आवे या तक्षकके वेषमें कोई और आवे तथा मुझे काट भी ले, तो भी अब इसकी मुझे कोई परवाह नहीं है। आप लोग विष्णुका संकीर्तन करें ॥ १५ ॥ मैं आपको फिर प्रणाम करता हूँ और आशीर्वाद चाहता हूँ कि मैं जिस-जिस योनिमें उत्पन्न होऊँ मुझे भगवान्में भक्ति, भगवान्के—शरणागत महात्माओंकी संगति एवं प्राणियोंमें मैत्री प्राप्त हो ॥ १६ ॥ राजा परीक्षित् दृढ़ निश्चयी और धीर थे वे इतना कहकर गंगाके दक्षिणतट पर पूर्वाभिमुखी कुशासन पर उत्तरकी ओर मुँह करके बैठ गये। अपने पुत्रको उन्होंने राज्यका भार पहलेसे ही सौंप दिया था ॥ १७ ॥ इस तरह राजा जब प्रायोपदेश (अनशन) करनेके लिए बैठ गये, तो आकाशसे देवताओंने उनकी प्रशंसाकर बड़ी प्रसन्नतासे पुष्पवृष्टि की। नगारे भी बज उठे ॥ १८ ॥ जितने महर्षिलोग आदि थे, सभीने राजा परीक्षित्की प्रशंसाकर 'धन्य-धन्य' कहा। वे लोग तो अकारण ही दुनियाँपर अनुग्रह करने वाले होते हैं। श्रीकृष्णके गुणके अनुकूल ही वे बोले ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजर्षि-श्रेष्ठ परीक्षित्, तुम पाण्डव–वंशियोंके लिये यह आश्चर्यकी कोई बात नहीं है, क्योंकि स्वभावतः तुमलोग कृष्णकी ओर झुके हुए हो। पाण्डवोंने तो भवगान्के सान्निध्यकी इच्छासे राजमुकुटसे युक्त राज्यसिंहासनका जल्दीसे जल्दी परित्याग कर दिया था॥ २०॥ फिर उन्होंने आपसमें बात की कि जबतक राजा पार्थिव शरीर छोड़कर रज-शोकविरहित लोकमें नहीं जाता है तब तक हमलोग यहीं रहें। इसे भगवत्सान्निध्य प्राप्त होगा, क्योंकि यह भक्तोंमें श्रेष्ठ है॥ २१॥ राजा परीक्षित् ऋषियोंकी समतामें युक्त, मीठी, अर्थवान् और युक्तिपूर्ण वाणी सुनकर उसकी प्रशंसाकर श्रीकृष्णलीलाका श्रवण करनेकी इच्छासे बोले॥ २२॥ आपलोग सत्यलोकमें रहनेवाले मूर्तिमान् वेदकी तरह हैं और सभी दिशाओं से आये हैं। दूसरों पर दया दिखलानेके अतिरिक्त आपमें ऐहिक तथा पारलौकिक कोई स्वार्थ नहीं है॥ २३॥ मुझे आपपर विश्वास है, इसलिए महात्माओ, मैं आपसे पूछनेयोग्य

जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥२०॥ सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय॥ लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥२१॥ आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम्॥ आभाषतैतानभिनन्द्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः॥ २२ ॥ समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे॥ नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥२३॥ ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम्॥ सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥२४॥ तत्रागमद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः॥ अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः॥ २५ ॥ तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम्॥ चार्वायताक्षोन्नसतुल्य-कर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम्॥ २६ ॥ निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च॥ दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम्॥ २७ ॥ श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन॥ प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम्॥२८॥ स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार॥ ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपवि-

यह प्रश्न करता हूँ कि जो जल्दी ही मरनेवाला है उसके लिए परमशोधक कौनसा कृत्य है? यह आप आपसमें परामर्श कर बतला दें॥ २४॥ इसी समय व्यासपुत्र शुकदेव भगवान् यों ही पृथ्वीपर घूमते-घामते वहाँ आ पधारे। वे किसीकी कोई अपेक्षा नहीं करते थे। उनमें कोई आश्रमोचित चिन्ह भी न दीखता था। आत्मानन्दमें सन्तुष्ट रहते थे। बहुतसे लड़कोंसे वे घिरे हुए थे। उनका वेष अवधूतका था॥ २५॥ १६ वर्षकी अवस्था थी। चरण, हाथ, जंघा, बाहु, कन्धा और कपोल बहुत कोमल थे। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी और बहुत सुन्दर थीं। ऊँची नाक थी कान बराबर थे। सुन्दर भौंहें और सुन्दरतम मुख था। कण्ठ तो बिलकुल शंखकी तरह था॥ २६॥ घुट्टी उभड़ी न थी। वक्षःस्थल ऊँचा और चौड़ा था। नाभि आवर्तकी तरह गहरी थी। पेट त्रिवलिसे पुष्ट एवं सुन्दर था। कोई वस्त्र न था, मुखपर केश बिखरे हुए थे। घुटने तक बाहु थे और उनकी कान्ति देवताओंकी सी थी॥ २७॥ श्याम रङ्ग था। किशोर अवस्था थी। उनके शरीरकी कान्ति एवं सुन्दर मुस्कुराहट स्त्रियोंको बड़ी अच्छी लगती थी। यद्यपि उन्होंने तेज छिपा रखा था, फिर भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके लक्षणोंके जाननेवाले ऋषियोंने उन्हें पहिचान लिया और अपने-अपने आसनसे उठ खड़े हुए ॥ २८ ॥ राजा परीक्षित्ने नवागन्तुक अतिथिके चरणोंमें शिर टेककर प्रणाम किया और विधिवत् पूजा की। अज्ञ बच्चे और स्त्रियाँ, जो उनके पीछे लगे थे, उनका सत्कार होता देख लौट गये। लोगोंने पूजा करके उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाया ॥ २९ ॥ शुकदेवजी बड़े-बड़े देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंसे घिरकर वैसे ही खूब शोभित हो रहे थे, जैसे भगवान् चन्द्रमा ग्रह, नक्षत्र और ताराओंसे घिरकर शोभित होते हैं ॥ ३० ॥ जब अकुण्ठित बुद्धि शुकदेवमुनि शान्त चित्तसे बैठ गये तब राजा परीक्षित्ने उनके पास पहुँच सिर नवाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सावधानीसे मीठी-सत्यवाणीसे पूछा ॥ ३१॥ हम तो क्षत्रियोंमें अधम हैं। फिर भी हमें आपलोगोंने सत्सङ्गतिके योग्य समझा और अतिथिरूपसे दर्शन देकर हमें कृतार्थ किया ॥ ३२ ॥ आपलोगोंके स्मरणमात्रसे

वेश पूजितः ॥२६॥ स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसङ्घैः ॥ व्यरोचतालं भगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥ ३० ॥ प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिर्नत्वा गिरा सूनृतयाऽन्वपृच्छत् ॥ ३१ ॥ अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ॥ कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥३२॥ येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः ॥ किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥ सान्निध्यात्ते महायोगिन् पातकानि महान्त्यपि ॥ सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥३४॥ अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ॥ पैतृष्वसेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥ ३५ ॥ अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ॥ नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥३६॥ अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ॥ पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥३७॥ यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥३८॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥३९॥ सूत उवाच ॥ एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥ प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥४०॥ इति

पुरुषोंके गृह पवित्र हो जाते हैं। फिर यदि आपका दर्शन-स्पर्श हो और चरणप्रक्षालन आसन आदि देकर पूजा करनेका अवसर मिले तो कितने भाग्यकी बात है ॥ ३३ ॥ महायोगिन्, जैसे विष्णुसे दैत्योंका सर्वथा नाश हो जाता है, उसी तरह आपके सान्निध्यसे पुरुषोंके बड़ेसे बड़े पाप एक क्षणमें ध्वस्त हो जाते हैं॥ ३४ ॥ पाण्डवोंपर प्रेम रखनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् अवश्य ही मुझपर प्रसन्न हैं। मैं उनकी बुआके लड़कोंका पौत्र हूँ। उन्होंने अपने बुआके लड़कोंकी प्रसन्नताके लिए ही तो मेरा बन्धुत्व स्वीकार किया है ॥ ३५ ॥ नहीं तो जिनकी गतिका कोई पता नहीं, जो सिद्ध हैं एवं जिनके दर्शन दुर्लभ हैं, ऐसे आप स्वयं आकर हम मरणासन्नोंको दर्शन कैसे देते ? ॥३६॥ अतः आप योगियोंके परमगुरु हैं, मैं आपसे यह पूछता हूँ कि जो सर्वथा मरणासन्न है उस पुरुषको कौनसा कार्य और कौनसी सिद्धि करनी चाहिये ॥ ३७ ॥ हे प्रभो, सभी सामान्य जन भी जिसे सुन सकें, जप कर सकें, स्मरण कर सके, भजन कर सकें और भी कर सकें ऐसे कर्तव्यको तथा इससे विपरीत त्याज्यकर्मको भी बतलाइये ॥ ३८ ॥ भगवन् आप तो गृहस्थोंके घरमें गोदोहन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जितना समय तक भी नहीं ठहरते। अतः आपका दर्शन बहुत दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ श्रीसूतजीने कहा—शौनकजी, राजा परीक्षित्से इसतरहकी मीठीवाणीसे पूछे जानेपर धर्मतत्त्वके ज्ञाता भगवान् शुकदेवजी उत्तर देने लगे ॥ ४० ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः।

उन्नीसवें अध्यायका सार—जब राजा परीक्षित् राजधानीमें आये तो उन्हें अपनी करनीपर बड़ा पछतावा हुआ। उन्होंने सोचा कि अब जल्दी ही मेरा विनाश हो जाय तो अच्छा है, ताकि इस कुकृत्यका फल यहीं मिटा लूँ। इसी समय उन्हें शापका समाचार मिला। वे गंगाके तटपर अनशन करनेके लिए बैठ गये। इसी बीचमें बड़े-बड़े देवर्षि ब्रह्मर्षि और राजर्षि वहाँ पहुंचे। राजाने-बहुत सेवा की। और पूछा कि महाराज हमारी मृत्यु समीप आई है अतः विचार कर कुछ सुगम साधन बतलाइये। इसी बीचमें शुकदेवजी वहाँ आ पहुँचे जो अवधूत वेषमें थे। उन्हें देखकर सारी ऋषियोंकी मण्डली उठ खड़ी हुई। उन्हें पूजाकर ऊँचे आसनपर बिठलाया गया। तब परीक्षित्ने उनसे भी वही प्रश्न किया कि महराज, मेरे उपयुक्त कोई सुगम साधन बतलाइये। साथ ही वह साधन ऐसा हो कि सभी लोगोंके व्यवहारमें आ सके। उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त *

प्रथमस्कन्धश्रवणमाहात्म्यम्—मातृसङ्गमने चैव यत्पापं प्राप्यते नरैः। प्रथमस्कन्धश्रवणात्तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ पादादिजानुपर्यन्तं ममाङ्गं प्रथमो विधे। ब्रह्मोवाच—मातृगाम्यभवत्को वा कस्मिन्देशे स्थितश्च सः ॥ प्रथमस्कन्धश्रवणात्कथं मुक्तो वद प्रभो। हरिरुवाच-अवन्तीनगरे रम्ये राजासीच्छ्रीकरो महान् ॥ तस्य भार्याद्वयं चासीत्सिन्धुसौवीरदेशजम्। तयोर्मध्ये च या ज्येष्ठा नाम्ना केसरिणीति च ॥ अजा नाम्ना कनिष्ठा तु सौवीराधिपतेः सुता। पतिधर्मरता ज्येष्ठा कनिष्ठा न पतिप्रिया ॥ सर्वाङ्गसुन्दरी सा हि शापदोषेण दुःखिता। ब्रह्मोवाच-ब्रूहि विष्णो कथं शापोऽभूत्तस्याः कीदृशोऽथ वा। हरिरुवाच--पुराघौघहरं नाम तीर्थं लोकमलापहम्। तत्र विप्रः सुधर्माख्यस्तपस्वी न्यवसत्पुरा ॥ ग्रीष्मे तपति पञ्चाग्नीन्पर्वाश्वासारषाड् जले। आकण्ठमग्नः शिशिरे वर्षाणामयुतायुतम् ॥ एकपाद ऊर्ध्वपादः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः। वायुभक्षः पर्णभक्षो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ एवं विधो द्विजस्तत्र तताप परमं तपः। दृष्ट्वा तस्य तपो जिष्णुर्भयमापेदिवान्बहु ॥ इन्द्रासने स्पृहा ह्यस्य सश्चिन्त्येत्यब्रवीत्तदा। अप्सरसं पुष्पवन्तीं समाहूय पितामह ॥ इन्द्र उवाच—भो भो पुष्पवति देवि मम कार्यं समाचर। अघौघनाशने तीर्थे सुधर्मा नामको द्विजः ॥ तत्तपोव्याकुली भूतं त्रैलोक्यं सचराचरम्। यथा मोहो भवेत्तस्य तथा कार्यं त्वया लघु ॥ हरिरुवाच-इति वाक्यं समाकर्ण्य सहस्राक्षस्य धीमतः। ऋषेः शापात्त्रस्तमनाश्विन्ययामास साप्सराः ॥ गमने विप्रशापः स्यादन्यथा दण्ड इन्द्रतः। सा जगाम ततो दिव्यं मुनेस्तस्य तपोवनम् ॥ नानाद्रुमैः पन्नगणैर्वृतं दृष्ट्वा च तं मुनिम्। तथा नृत्यं समारेभे गीतवाद्यमनोहरम् ॥ तस्या नादेन रम्येण तत्रासीन्मधुसंभवः। कामो रत्या समागत्य दध्रे पुष्पमयं धनुः ॥ तच्छ्रुत्वा निनदं तस्याः प्रबुद्धो मुनिपुङ्गवः ॥ तां च दृष्ट्वा सधर्मात्मा वाक्यमाह वराननाम्। का त्वं कस्यासि किं ब्रूहि यत्त्वन्मन्मनसेप्सितम् ॥ पुष्पवत्युवाच-देवकन्यां सुगीतज्ञां लीलया त्वत्समीपगाम्। त्वं विद्धि मां च पत्नीत्वे मया सह सुखं भज॥ विमानमिदमास्थाय देवानां पानभूमिषु। एते मत्सहगा विप्र त्वां भजेयुः सुखं भज ॥ सुधर्मोवाच-नाहं कामीह सुभगे मा कुरुष्व तपोव्ययम्। पुनः सा प्रार्थयामास तां भजस्व सुमध्यमाम् ॥ विज्ञाय तद्धठं विप्रस्तस्यै शापद्वयं ददौ। संसारार्णवमग्नानां प्रलोभयसि मां यतः। अतस्त्वं मानुषे लोके भवस्वात्मजगामिनी। सौवीराधिपतेः पुत्री सा जाता मुनिशापतः। तामजा संज्ञिकां राज्ञे श्रीकराय ददौ पिता ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कदाचिच्छ्रीकरो राजा निर्जनं वनमध्यगात् । यया च तथा सार्धं मृगयासक्तमानसः । राज्ञी पुत्रं समालेभे नृपसङ्गान्मनोहरम् । जाते पुत्रे मृतो राजा तत्पुत्रस्तु नृपोऽभवत् ॥ सपत्नी पुत्र-राज्येन सा दुःखं प्राप्य दारुणम् । जगाम वाणिजा सार्धं रत्यासक्तमतिः सदा ॥ सोऽपि वैश्योमृतिं प्राप ततः सातीव दुःखिता । अहोकष्टमहो दुःखं मया प्राप्तमभाग्यया । श्रीकरो हि मृतो राजा जातोऽपि निधनं गतः ॥ एतस्मिन्नन्तरे दैवान्मृते केशरिणीसुते । अजापुत्रोऽभवद्राजा कीर्तिमानिति विश्रुतः ॥ तदा सञ्चिन्त्य मनसा जीवनं मे कथं त्विह । बभूव नर्तकी ब्रह्मन्सा सङ्केतोपजीविनी ॥ तत्सुतो दिग्विजये व्यग्रो दैवात्तत्र जगाम ह । यत्र माता ह्यजा नाम नर्तकी भावमाश्रिता ॥ एकदा स वने राजा तया सार्धं ययाभ ह । कामार्तश्च निशापाये प्रातः स्वस्थानमाययौ ॥ द्वौ द्विजौ ज्ञानसम्पन्नौ तत्रस्थौ तं समूचतुः । समागतं नृपं दृष्ट्वा कृतं पापं महन्नृप ॥ राजोवाच—किं कृतं हि मया पापं प्रायश्चितं च किं ततः । विप्रावूचतुः-न वक्तुं शक्यते तच्च यन्निशायां त्वया कृतम् । यया साकं कृतं पापं तामेव प्रष्टुमर्हसि ॥ त्वं तस्याः कोऽभवत्पूर्वं तव सा काभवत्पुरा । इत्युक्त्वा तौ गतौ विप्रौ राजा वेश्यागृहं गतः ॥ विशोकमसिमादाय प्रोवाच गणिकां प्रति । का त्वं दुष्टे कस्य पुत्री कस्य भार्याभवत्पुरा ॥ सर्वमेतत्समाचक्ष्व यदि कल्याणमिच्छसि । सौवीराधिपतेः पुत्री श्रीकरस्य प्रिया ह्ययम् ॥ पुत्रे जाते दशाहे तु श्रीकरः पञ्चतामितः । राज्यं प्राप्तं सपत्न्याश्च पुत्रेण तेन दुःखिता ॥ गताहं वणिजा सार्धं सोऽपि मद्दैवतो मृतः । महीपतेः पुरा चाहं पुत्ररत्नमवाप ह ॥ कीर्तिमन्तमिति ख्यातं तं त्यक्त्वात्र समागता । वैश्याभवं वैश्यमृतौ वृत्तमेतन्मम प्रभो ॥ राजोवाच—श्रीकरो मे पिता चासीत्त्वं मे मातेति निश्चितम् । धिक् त्वां मातृगणं मां धिगित्युक्त्वा निर्ययौ वनम् ॥ गते पुत्रेऽनुगासाभूत्तीर्थयात्रां प्रचक्रतुः । एकदा यमुनातीरे स्नानार्थं तौ समागतौ ॥ ताभ्यां तत्र श्रुता गाथा प्रथमस्कन्धसम्भवा । तत्पुण्येन गतौ तौ तु वैकुण्ठं योगिदुर्लभम्—इति ॥

(भगवान्‌की लीलाका रूप)

पुरा कृष्णो महातेजा यदा प्रभासमागतः । सहितो यादवैः सर्वैः षट्पञ्चात्प्रकोटिभिः ॥ षोड़शैव सहस्राणि गोप्यस्तत्र समागताः । लक्षमेकं तथा षष्टिरेते कृष्णसुताः प्रिये ॥ ततो गोप्यो महादेवि विद्यायाः षोड़श स्मृताः । तासां नामानि ते वक्ष्ये तानि ह्येकमना शृणु ॥ लम्बिनी चन्द्रिका कान्ता क्रूरा शान्ता महोदया । भीषणी नन्दिनी शोका सुपूर्व-विमलाऽक्षया ॥ सुभद्रा शोभना पुण्या हंसातीता कला क्रमात् । हंस एव मतः कृष्णः परमात्मा जनार्दनः । तस्यैताः शक्तयो देवि षोड़शैव प्रकीर्तिताः ॥ चन्द्ररूपीमतः कृष्णः कला-रूपाश्वताः स्मृताः ॥ सम्पूर्णमण्डला तासां मालिनी षोड़शी कला ॥ प्रतिपत्तिथिमारभ्य सञ्चरत्यासु चन्द्रमाः ॥ षोड़शैव कलायास्तु गोपीरूपा वरानने ॥ एकैकशस्ताः सम्भिन्नाः सहस्रेण पृथक् पृथक् । एवं ते कथितं देवी रहस्यं ज्ञानसम्भवम् ॥ य एवं वेद पुरुषः स ज्ञेयो वैष्णवो बुधैः ॥

(श्रीभगवान् कृष्णजीके धात्रियोंके नाम)

अम्बिका च कलिम्बा च धातृके स्तनदात्रिके ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(प्रथम-स्कन्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६९ पुष्पलता

[द्वितीय-स्कन्ध]

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा संमानित विद्वान्—आचार्य-श्रीदौलतरामगौड,
वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(अठारह हजार श्लोकों के श्रवणसे कृष्णलोक प्राप्ति)

ग्रन्थाष्टादशसोरुयां द्वादशस्कन्धसम्मितम्। शुकप्रोक्तं भागवतं श्रुत्वा निर्वाणतां व्रजेत्॥

(भागवतके स्वरूपको पहचानिये)

पुरा भागवता प्रोक्तं कृष्णेन ब्रह्मणे शुके। पुराणसारं शुद्धं तत् तेन भागवतं विदुः॥

(संप्रदायानुसार पुराणके आरम्भमें शोचनीय बात)

चौरमन्त्रपरिज्ञानं विना हे ब्राह्मणीश्वरि। पुराणं प्रपठेद्यस्तु स एव मूर्तिमान्कलिः॥ परजन्मनि पापिष्ठः स भवेच्चौरकुक्कुरः।

(मूर्तिके सान्निध्यमें यन्त्रनिर्माण अनावश्यक)

द्विगुणं पूजनं तत्र द्विगुणं बलिदानकम्। द्विगुणं प्रजपेन्मन्त्रं द्विगुणं होममाचरेत्॥ अन्यथा विफला पूजा विफलं बलिदानकम्। सर्वं हि विफलं यस्मात्तस्माद् यंत्रं न कारयेत्।

(भागवत प्रेमी भी अतिसंकटमें अतिरुद्रयागादिद्वारा शिवको प्रसन्नकर सहायता ले सकता है)

जातिध्वंसे कुलोच्छेदे आयुषो नाश आगते। महाभये समुत्पन्ने सर्वाभिचारसंभवे॥ यत्नेन पूजयेद्देवि! लिङ्गमष्टोत्तरं शतम्। दुग्धनिर्झरधाराभिः श्रोत्रान्तमभिषेचयेत्॥ अतिरुद्रप्रयोगादौ रुद्राध्यायेन वा पुनः। नीलकण्ठेन वा देवि! स्तवेन तोषयेच्छिवम्॥ 'अभिशापे महाव्याधौ महापापविनाशने। यज्ञदौ ग्रहपीडायां युद्धयात्रा मुखे तथा॥ अनुष्ठितो नरै रुद्रो रौद्रापीडानिवारणः। 'पित्तज्वरे समुत्पन्ने शिवं सस्नाप्य वारिभिः। 'षडङ्गरुद्रजाप्येन प्रेतमोक्षमवाप्नुयात्।

[देवताके पूजनारम्भमें विचारणीय बातें]

एकाहमर्च्चनाद्बाधात् द्विगुणं देवपूजनम्। दिनद्वये भवेद्द्विगुणं तद्द्वैगुण्यं दिनत्रये॥ ततः षण्मासपर्यन्तं यदि पूजा न सम्भवेत्। तदाष्टकलशैर्देवं स्नापयित्वा यजेत्सुधीः॥ षण्मासात्परतो देवं प्राक्संस्कारविधानतः। पुनः सुसंस्कृतं कृत्वा पूजयेत्साधकाग्रणीः॥ खण्डितं स्फुटितं व्यङ्गं संपृष्टं कुष्ठरागिणा। पतितं दुष्टभूम्यादौ न देवं पूजयेद्बुधः॥ हीनाङ्गं स्फुटितं मग्नं देवं तोये विवर्जयेत्। स्पर्शादिदोषदुष्टन्तु संस्कृत्य पुनरर्च्चयेत। महापीठे अनादिलिङ्गं सर्वदोषापवर्जिते। सर्वदा पूजयेत्तत्र स्वस्व मिष्टसुखाप्तये॥

(विष्णुभक्त अनेक महोत्सवोंपर विष्णुयाग कर सकते हैं)

द्वादश्याभिष्टकाले तु संक्रान्तौ श्राद्धवासरे। अयनेषु विवाहादौ व्रतबन्धे च सद्मनि॥ वापीकूपतडागादौ ऽप्रपारामप्ररोपणे। नवान्ने जन्मदिवसे विष्णुयागं समारभेत॥ दीक्षायां चोत्सवे प्राप्ते शयन्यां बोधवासरे। पवित्र्यं उपाकर्मगोदाने दानकर्मणि॥ यात्रादौ ग्रहणे चैव प्रायश्चित्ते विशेषतः। प्रतिष्ठायां हरेर्दोलारोहणे विजयोत्सवे॥ कार्तिके मार्गशीर्षे च मकरे मेषभास्करे। मलिम्लुजे सिनीवाल्यां युगमन्वादिवासरे॥ रथयात्राद्मनकपित्रारोपणेषु च। अवतारजयन्तीषु वैष्णवाना समागमे॥ एवं होम विधायाथ वैष्णवं वैष्णवोत्तमः। नैमित्तिकं ततः कुर्यादाज्ञेयं परमात्मनः॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा घृतेन मुनिसत्तमाः। जलेन विधिना सम्यक्परिषिच्य समन्ततः। ततः पूर्णाहुतिं दद्याद्वैष्णवैर्ब्राह्मणैःसह।

[कामनापरक कुण्डोंका निर्माण प्रकार]

मुमुक्षूणां वैष्णवानां चतुरस्रं परिकीर्तितम्। सकामानां क्षत्रियाणां वर्तुलं परिकीर्तितम्॥ वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम्। एतद्वर्णानुसारेण न निषिद्धं कदाचन॥ 'पुत्रार्थं तु चतुर्णान्तु योनिकुण्डं प्रकीर्तितम्। अर्धेन्द्वाख्यं तु सर्वेषां वश्यादि शुभकर्मणि॥ शत्रुक्षयार्थं त्र्यस्त्रं स्याद्वर्तुलं शान्तिकर्मणि। छेदमारणयोः कुण्डं षडस्त्रं तु प्रकीर्तितम्॥ पद्माभं वृष्टिदं प्रोक्तमष्टास्रं रोगनाशनम्। विप्राणां चतुरस्रं तु मखे निष्कामकामयोः॥ चतुरस्रं तु वृत्तानां सर्वेषामेवभीरितम्। 'शान्तिके चतुरस्रं स्यात्पौष्टिके वृत्तमेव च। त्रिकोणमभिचारे तु पञ्चास्रं मारणे मतम्॥ षडस्रं मोहने चैव सप्तास्रं स्तम्भने मतम्॥ मोहे तु कारयेत्कुण्डमेकहस्तकम्। चतुरस्रं त्रिकोणं वा वृत्तं च मेखलात्रयम्॥ 'वैश्वदेवञ्च कुर्वीत कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा॥ अरत्निमात्रं तत्कार्यं विंशत्यङ्गुलमेव वा॥ प्रादेशमात्रमथवा चतुरस्रं सन्मततः। 'वैश्वदेवे प्रकुर्वीत कुण्डमष्टादशाङ्गुलम्॥ मेखलात्रयसंयुक्तं द्विमेखलमथापि वा। स्यादेकमेखलं वापि चतुरस्त्रं समन्ततः। अपि ताम्रमयं प्रोक्तं कुण्डमत्र नीषिणः। 'स्थण्डिले वा प्रकर्तव्यो नित्यमहो मनीषिणा।

(कुण्डोंके अठारह संस्कार)

अष्टादश संस्काराः कुण्डानां तु प्रकीर्तिताः। वीक्षणं प्रोक्षणं चैव ताडनाभ्युक्षणे तथा॥ खननं पूरणं चैव समीकरणसेचने। कण्ठनं मार्जनं चैव त्रिसूत्रीकरणं पुनः॥ अर्चनं वज्रकरणं चतुष्पथविभाजनम्। वदुपादाक्षिकरणं संस्काराष्टादश स्मृता॥

[कुण्डोंके शरीरका स्वरूप]

प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू दक्षिणसौम्ययोः। बदरं कुण्डमित्युक्तं योनि पादौ तु पश्चिमे॥

[कामनापरक स्रुवादि निर्माण प्रकार]

सौवर्णौ स्रुक्स्रुवौ स्यातां सौम्यकर्मणि सर्वतः। भवेतामायसावेतौ स्तम्भनादिषु कर्मसु॥ स्रुक्स्रुवौ तैजसौ ग्राह्यौ न कांस्यायसैसकौ। यज्ञदारुभयौ वाऽपि तान्त्रिकौ शिल्पिसम्मतौ॥ 'सुवर्णरूप्यताम्रैर्वा स्रुक्स्रुवौ दारुजावपि। अयमयौ स्रुक्स्रुवौ च कारसकरमथावपि॥ 'पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरे स्रुवस्रुवौ मतौ। निदध्याद्वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि॥ 'स्रुक्स्रुवौ शिंशपाश्वत्थश्रीपर्णी खदिराम्रजौ। इत्यादि। देखिये—विद्यार्णवतन्त्र, उत्तरतन्त्र, तन्त्रचिन्तामणि, तन्त्रसमुच्चय, वाणीविलासतन्त्र, मेरुतन्त्र, शारदातिलक, तन्त्रसार, फेत्कारिणीतन्त्र, आदि तंन्त्रपुस्तकोंसे प्रतीत होता है कि हरेक लकड़ीका स्रुक, स्रुव और महा स्रुव बन सकता है।

—दौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[लिखितं—पद्मपुराणोक्तं माहात्म्यम्]

शौनक उवाच—श्रीमद्भागवतं प्रोक्तं पुराणं दशलक्षणम् । परीक्षितशुकसंवादं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥ तत्राप्युक्तं त्वया सूत गमनं भिक्षुभिः सह । शुकश्च प्राक्तवान् किं किं कुत्र स्थित्वा महामुनिः ॥ २ ॥ कस्मिन् स्थाने कृतो वासः सूत सर्वैः समन्वितः । किमुक्तवान् महायोगी संशयं क्षेत्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ सूत उवाच—अद्य मे सफलं जन्म सफलं कर्म चैव हि । पठितश्च श्रुतश्चाद्य सर्वं साफल्यमेव च ॥ ४ ॥ त्वया खलु मुनिश्रेष्ठ भगवान् स्मारितः शुचिः । सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वपापहरः कविः ॥ ५ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि कथा पापहरां शुभाम् । त्रैलोक्य तनयादात्रीं सर्वविघ्ननिवारिणीम् ॥ ६ ॥ यां श्रुत्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः । परीक्षितोऽस्य राजर्षेर्नृदेवस्य द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ शुकेन मुनिना विप्रा ज्ञानरूपेण धीमता । सर्वज्ञेनेन शुभश्चोक्तं परोक्षं ज्ञानमुत्तमम् ॥ ८ ॥ शुकस्तुतमनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः । जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ९ ॥ विश्वं दर्पणदृश्यमाणनगरीतुल्यं विचारे सति । ज्ञात्वा तत्क्षणभङ्गुरं रुचिकरं वीची यथा वारिधौ॥ एवं चेतसिऽनित्यचिन्त्यममलं ज्ञानं परं आत्मनो निर्गुण्यं विमलं विशुद्धिकरणं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ ॥१०॥ इति श्रीपद्मपुराणे भागवत-माहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ।

सूत उवाच—एकदा चम्पकारण्यं मुनिवर्यैर्निषेवितम् । हेमावती नदी यत्र कूजितं कोकिलैर्द्विजैः ॥ १ ॥ हंसकारण्डकैश्चैव सारसै बहुशब्दितम् । मत्तभ्रमरगुञ्जारं नानावृक्षैः सुशोभितम् ॥ २ ॥ शालैस्तमालैस्तरलैश्चम्पकैः कीचकैर्नलैः । वेणुगुल्मलताभिश्च कदम्बैर्बकुलैस्तथा ॥ ३ ॥ अन्यैरुच्चावचैर्वृक्षैः कलपुष्पैविराजितम् । मुनीनामाश्रमै रम्यैस्तापसानां विराजितम् ॥ ४ ॥ केचिद्द्रुमायनं कुर्युः केचिच्चीरनिवासिनाम् ॥ केचिद्भूमौ समासीनाः केचिच्चान्द्रायणे रताः ॥ ५ ॥ अपरे नियताहाराः प्राणायाम परे रताः । केचिदष्टाङ्गयोगेषुनिपुणावन वासिनः ॥ ६ ॥ तत्रशास्त्ररता केचिद्यात्रासाधनतत्पराः । उपचारैरनैकैश्च पूजां कुर्वन्ति बान्धवाः ॥ ७ ॥ शिवपूजारताः केचिदपरे शक्तिगाणपाः । नानाविधिहुतद्रव्यैः होमं कुर्वन्ति चापरे ॥ ८ ॥ पञ्चाग्रेर्द्वादशाग्नेश्च तापं कुर्वन्ति योगिनः । मौनीध्यानी तथा जापी विवस्त्राः केशधारिणः ॥ ९ ॥ पर्णभक्ष्यास्तृणाशी च ज्ञानी ज्ञानपरायणः । ब्रह्मचारी वनस्थाश्च यतयो बहवस्तथा ॥१०॥ वेदान्तशास्त्रनिपुणा वेदवेदाङ्गपारगाः । केषामध्यापने प्रीतिः केषां ध्याने हरेर्मतिः ॥ ११ ॥ केचिद्दिगम्बरा शान्ता विवस्त्रावस्त्रधारिणः । केचिद् गुह्यपिधानाश्च वायुः भक्षाशिनः सदा ॥ १२ ॥ निर्मले चोदके स्नात्वा जाप्या ब्रह्मसनातनम् । नारायणपरोः केचिद् यतयो ब्रह्मवादिनः ॥१३॥ तत्र मार्गेषु निपुणाः पूजामार्गप्रदर्शकाः कुशपाणि कुशाशीनाः कुशय्याः कुशे रताः ॥१४॥ कुशाविन्दुकुशाहाराः कुशैर्देवार्चने रताः । फलाहाराः पुष्पभक्षाः पर्णभक्षास्तथैव च ॥ १५ ॥ पयोभक्षा वारिभक्षा वायुभक्षा वसन्त्यपि । निराहरा यतिश्रेष्ठाः केचिद्वल्कलवाससः ॥ १६ ॥ केषां भिक्षासने प्रीतिः केषां प्रीतिरयाचने । करपात्रधृताहारा गोमुखे भोजने रताः ॥ १७ ॥ पञ्चसप्तमिते ग्रासा भक्षणे तत्पराः सदा । आहारनियमं कृत्वा तिष्ठन्ति मुनियोऽमलाः ॥ १८ ॥ रुद्राक्षैः कृतभूषणाः शिवपराः पञ्चाक्षरे नैष्ठिकाः सर्वाङ्गे धृतभस्मसाररुचिराः शान्ता शिवं वादिनः ॥ स्तोत्राणां श्रवणं तथैव पठनं शिष्यांस्तथा पाठनम् । रागद्वेषविमुक्तसत्त्वनिरता शैवं मनुं स्मारकाः ॥ १८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे भागवतमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ।

सूत उवाच—यतयो वैष्णवाः केचित् तिलकं चोर्ध्वपौण्ड्रकम् । तुलसीकाष्ठजामाला सर्वाङ्ग हरिचन्दनम् ॥१॥ तप्तपुड्रं तथामाला नामदीक्षासु शोभिताः । गीतानामसहस्रं च स्तवराजरते रताः ॥ २ ॥ गजेन्द्रमोक्षणं पञ्चरत्नपाठकराः सदा । केचिद्रामपरास्तत्र केचित् कृष्णपरायणः ॥ ३ ॥ शुष्कमुद्राधरा केचित् केचिद् दण्डस्य धारिणः । सर्वे ते मुनयो दिवा सर्वे ब्रह्मेति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वत्सला: ॥ ४ ॥ एकस्मिन्समये तत्र व्यासपुत्रो महामुनिः । ऋषिभिर्मुनिवर्यैश्च साकं सर्वे जगाम ह ॥ ५ ॥ तत्रस्था मुनयः सर्वे सहसोत्थाय चानघाः । ववन्दे शिरसा कश्चिद्दष्टाङ्गनतमः कृताः ॥ ६ ॥ आसनं सुखमास्तीर्य पूजितः सुरपूजितः । चन्दनालिप्तसर्वाङ्गे पुष्पमाला समर्पिताः ॥७॥ धूपदीपादिनैवेद्यनमस्कारप्रदक्षिणाः । स्तुतिपाठस्तैः सर्वैः पुष्पाञ्जलिसमर्पणम् ॥८॥ यतय ऊचुः–श्रीगुरो हि नमस्तेऽस्तु वयं किङ्करसेवकाः । नमस्ते व्यासपुत्राय नमस्तेऽस्तु शुकाय च ॥९॥ नमस्ते योगीनाथाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे । नमस्तेऽस्तु यतीन्द्राय सर्वज्ञाय नमोस्तुते ।१०। नमस्ते ज्ञानविज्ञाय सर्वविघ्नोपहारिणे । सर्वसिद्धिप्रदात्रे च कारुण्याय नमो नमः ॥ ११ ॥ श्रीगुरु सच्चिदानन्दं सर्ववेदान्तपारगम् । शान्तं परमकल्याणं श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ १२ ॥ शरण्यं शाश्वतं ज्ञेयं वित्ताढ्यं वित्तरूपिणम् । यस्य ज्ञानमयं रूपं श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच–एवं ज्ञानमयी स्तुतिं प्रवितता कृत्वा तदा योगिभिर्विद्यावादविवर्जितैर्मुनिवरैः शान्तैः सदा सर्वगैः । ध्यात्वा श्रीगुरुपादुकां सुघटितां रत्नोज्ज्वलां शोभितां कारुण्यैः कलवायनैपुणपरैः प्रश्ने कृताः उद्यमाः ॥ १४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे भागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ।

शमिक उवाच–श्रीमद्भागवतं योगिन् श्रावितं करुणाम्बुने । परीक्षितोऽस्य राजर्षेस्तत्र किं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ दानं दानस्य माहात्म्यं श्रोतृणां किं फलं स्मृतम् । दयया परया ब्रूहि कथं मुक्तिरवाप्यते ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच–यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो यः पुरुषः पुराणः । हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथाजन्मगतंनराणाम् ॥ ३ ॥ तस्मात् सर्वात्मना सिद्धाः श्रोतव्यं मोक्षकांक्षिभिः मुक्तैर्निर्विषयैः सर्वैर्महापातकिभिः सदा ॥४॥ श्लोकार्द्धं श्लोक पादं तवा नित्यं भागवतस्य च । शृण्वन् फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥५॥ भाद्रे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां शुचिस्थले कार्तिके शुक्लद्वादश्यां सप्तम्यां माघमासि वै ॥६॥ कार्तिके शुक्लद्वादश्यां युक्तायां श्रवणेन च । फाल्गुने च सिते पक्षे वैशाखे तृतीया यदि ॥७॥ आषाढे पौर्णमास्यां तु शुद्धचित्तेन वै सदा । श्रावणे शुक्लपक्षे तु पवित्रारोपणे दिने ॥८॥ कृष्णपक्षे तथाष्टम्यां नवम्यां वा तथैव च । एकादश्यां च द्वादश्यां अमासोमदिनेऽनघाः ॥ ९ ॥ एते मासाःशुभाःप्रोक्ताः वाञ्छितार्थवरप्रदाः स्नानं बहिर्जले कृत्वा परिध्यायैकमम्बरन् ॥१०॥ द्वितीयमुत्तरं वासः कृत्वा सर्वात्मिकिक्रियाः । सौवर्णरजते पीठे सिंहाकारे शुभे कृते ॥११॥ श्रीमद्भागवतं तत्रस्थापयित्वा द्विजन्मने । यो ददाति विशुद्धात्मा तस्य पुण्यं वदामि वः ॥१२॥ गवां वाजिसहस्राणि चतुराशीति चानघ । मेरुतुल्यं सुवर्णंच सप्तार्णववती मही ॥१३॥ तत्फलं समवाप्नोति श्लोकैकेन सदा नरः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं चाद्भुतं महत् ॥१४॥ सारस्वतं च नगरं सौवर्णरचितं शुभम् । धनधान्यश्च सम्पूर्णं वैष्णवैर्वेदभाषितम् ॥१५॥ सरस्वत्यास्तटे कश्चित्पावको मुनिसत्तमः । तस्य भार्या सुशीला च पातिव्रत्यपरायणा ॥१६॥ वनस्थाचीरवसना स्वामिकार्ये परायणा । अग्निशुश्रूषणपरा रागद्वेषविवर्जिता ॥१७॥ मुनिः सन्तानहीनोःऽसौ पुनः पाणिग्रहः कृतः । दुःशीला भार्यया साकं रममाणो मुनिर्यदा ॥ १८ ॥ कलाहः कुरुते नित्यं किं भोक्तव्यं तव गृहे । भाग्यहीनो लताहारो दीनो धनविवर्जितः ॥ १९ ॥ किमर्थं याचिता दुष्ट अहं राजकुलोद्भवा । एवं ब्रुवति सा नित्यं मुनिर्दुखेन पीडितः ॥ २० ॥ एकः पुत्रो यदा जातो तां त्यक्त्वा सदनं गतः । प्रथमस्कन्धव्याख्यानं छात्राणां पाठयन् मुदा ॥ २१ ॥ नमः कृष्णाय शान्ताय शुद्धायाऽमिततेजसे । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं यदूनां पतये नमः ॥ २२॥ गोविन्द गोकुलपते जगदीश नाथ गोपेश राम नृहरे हयशीर्षकूर्म । बाराह वामन मुकुन्द रथाङ्गपाणे दामोदराच्युत-हरे भगवन्नमस्ते ॥ २३ ॥ इति श्री पद्मपुराणे भागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच–तस्मिन्वने महाघोरे महासर्पं कुलाचलात् । आगत्य धृतवांस्तत्र स जातस्तत्क्षणात् शुचिः ॥ १ ॥ दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानेनार्कवर्चसा । वैकुण्ठं भुवनं सिद्धा गन्तु कामो बभूव सः ॥ २ ॥ पावकेन स संपृष्टः कस्त्वं कुत्र गमिष्यसि । द्विव्यदेहधरः कस्मात् जातस्त्वं वद कारणम् ॥ ३ ॥ सप उवाच–विदेहनगरे विप्र शामको नाम राजते । द्वौ पुत्रौ शाम-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कस्याऽऽस्तां कन्या चैका वरानना ॥ ४ ॥ रूपवान् दीर्घबाहुश्च द्रव्यस्यार्जनतत्परौ । कदाचित्तौ महारण्ये व्याघ्रेणैकेन रूपवान् ॥ ५ ॥ भक्षितः शामको विप्रो महासर्पेण दंशितः । सर्वं धनं
समादाय दीर्घं बहुगतव्यथः ॥ ६ ॥ भक्षितं वेश्यसौर्यकं कालेन निर्धनोऽभवत् । चौर्यं कृत्वा पुनर्द्रव्यमानयित्वा तु भक्षितम् ॥ ७ ॥ कस्मिंश्चित्समये दुतैः बहुभिः राजसेवकैः । ताडितो
राजभवने निगडे च निरोधितः ॥ ८ ॥ याच्यमानो जनैः सर्वैं राजा कोपं न मुक्तवान् । राजदूतभटैः सर्वैर्नगराच्च बहिः कृताः ॥९॥ नदीतीरे वृक्षमूले कुत्रचिद्धरिमन्दिरे । पर्वतस्य गुहायां
वै स्थित्वा चौर्यं समाचरन् ॥ १० ॥ केनचित्सर्पराजेन दंशितो निशि सुप्तवान् । पुनः सर्पत्वमापन्नो वर्षाणामयुतं यदा ॥ ११ ॥ ततः कालेन प्राप्तोऽस्मि भवतः शरणान्तिकम् । श्रुतं भागवतं
विप्र! स्कन्दमेकं विवक्षया ॥ १२ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन जातोऽस्मि दिव्यदेहवान् । विमाने सम्यगारूढो ह्यगमद्विष्णुमन्दिरे ॥ १३ ॥ नमस्ते विप्रवर्याय सद्य मोक्षप्रदे नमः । ज्ञानवैराग्य-
रूपाय ज्ञानदात्रे नमो नमः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच–सर्पदेहं विहायेत्थं दिव्यदेहेन चानव । पावकं मुनिमानभ्य वैकुण्ठभुवनं गतः ॥ १५ ॥ पावकोऽपि मुनिश्रेष्ठः स्नानं कृत्वा महीतले ।
कुशासने समासीनो जपन् ब्रह्मसनातनम् ॥ १६ ॥ नियमेन कृताहारः प्राणायामेन संयुतः । ध्यानं धारणयायुक्तं कृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥१७॥ इदं पवित्रं श्रुतिसारमेकं विप्रस्य चाख्यान-
मघौघरूपम् । सर्पमोक्षं निजकर्मपाशाच्छ्रुत्वा लभेद्यज्ञशताधिपुण्यम् ॥ १८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे भागवतमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच–अतः परं प्रवक्ष्यामि द्वितीयस्कन्ध वर्णनम् । यच्छ्रुत्वा जीवसंघाता बहवस्त्रिदिवं गताः ॥१॥ कृष्णाया उत्तरे तीरे भीमाया दक्षिणे तटे । प्राकारत्रयसंयुक्तं नगरं राम-
निर्मितम् ॥ २ ॥ राजद्वारे पूर्वभागे चत्वरं चातिसुन्दरम् । चत्वारो यत्र वर्तन्ते वर्णाश्च ब्राह्मणादयः ॥ ३ ॥ कृष्णशर्मा ऋषिस्तत्र वेदवेदान्तपारगः । श्रौते स्मार्ते च निष्णातो मुनिर्मोक्ष-
परायणः ॥ ४ ॥ तस्य पश्चाऽभवन् पुत्राश्चत्वारा वेदवित्तमाः । विष्णुशर्मा देवशर्मा शिवशर्मा तृतीयकः ॥ ५ ॥ चतुर्थो हरिशर्मा च शास्त्रे नैपुण्यवान् शुचिः । पञ्चमो जडतां प्राप्तो
नारदस्योपदेशतः ॥ ६ ॥ नोवाच किमपि स्पष्ट लोकास्तं मूकमूचिरे । कृत्वा द्विजातिसंस्कारं गायत्री सर्वकामदाम् ॥७॥ उपदिष्टवान् पिता तस्य नोब्रुवन्मूकवत्सुतः । ताडितो पातितो भूम्यां
धर्षितो लोकबालकैः ॥ ८ ॥ केनचिद्रज्जुभिर्बध्वा जलेऽगाधे निपातितः । एवं दुःखेन सन्तप्त स्वयमेव विचारितम् ॥९॥ कस्मान्ममेदं दुःखं वा वास्तवं वा मृषात्मकम् । जड उवाच-आत्मा
शुद्धोऽमलो नित्यं कामरागविवर्जितः । निर्गुणो निरहङ्कारः शुद्धसत्त्वो निरञ्जनः ॥ १० ॥ निर्वीजी वै निराभासो निरावर्णो निराशिषः । निर्मलो निष्फलो बुद्धो निष्फलङ्की निरामयः ॥११॥
एतादृशः स्वयंज्योतिः कथं दुःखेन सीदति । देहो जड पराधीनो मांसमेध्यसमन्वितः ॥१२॥ अस्थित्वग्रोममज्जाभिः रेतः शोणितनिर्मितः । काकश्रृगालयोर्भक्ष्यः कृमिविटभस्मसंज्ञकः ॥१३॥
रोगाभिभूतनिः सारा कथं दुःखेन सीदति । ब्रह्माऽहं चिन्तयामीति शुद्धभावेन सर्वदा ॥ १४ ॥ आरब्धभोगपर्यन्तं देहस्तिष्ठति नान्यथा । श्रीशुक उवाच-विप्रेण ऋषिवर्येण कृत्वा चिन्ते दृढा
मतिः ॥ १५ ॥ नीतोऽनद्याऽद्यवेगेन यो जनानां चतुःशतम् । नदीतीरे स्थितो वृक्ष ह्यश्वत्थो दीर्घदर्शनः ॥ १६ ॥ तत्रस्थेन पिशाचेन शीघ्रं नीतो वहिर्जलात् । भक्षणाय कृतो योगः पिशा-
चेन कुबुद्धिना ॥ १७ ॥ मुनिना मानसे जप्त नारदस्य प्रभाषितम् । किञ्चिच्छ्रुतं पिशाचेन जातो दिव्यवपुर्यतः ॥ १८ । प्रदक्षिणं नमस्कृत्य कृताञ्जलिरभाषत । अहं पुराभवे विप्र हिंस-
कस्य कुलोद्भवः ॥ १९ ॥ मारिता बहवो जीवा वने वृक्षे स्थिता जले । तेन पापेन विप्रेन्द्र दुष्टरूपेण कर्मणा ॥ २० ॥ प्राप्तः पैशाचयोनिं तु सर्वभक्षकरीं सदा । किं त्वया भाषिते विप्र येन
पापद्विमोचितः ॥ २१ ॥ सौवर्णसदृशं देहं प्राप्तोऽहंगतकल्मषः । जड् उवाच–अहं पुरा भवे विप्रकुलोत्पन्नो महीतले ॥ २२ ॥ नारदेनोपदिष्टोऽहं श्लोकानां सप्तकं महत् । शुकः पञ्चत्व-
मापन्नो रामनामाग्निसायकः ॥ २४ ॥ आत्मने मुखदोषेण रोधितो राममन्दिरे । कर्मणि क्षीणातां प्राप्ते शरीरं त्यक्तवानहम् ॥ २५ ॥ पुनर्मानुषतां प्राप्तो ब्राह्मणस्य गृहे मुने जड्तां मूकतां

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राप्तो जन्मान्तरमनुस्मरन् ॥ २६ ॥ प्राप्तो द्विजातिसंस्कारं ब्राह्मणस्य कुलोचितम् । मौनेन साधितं कार्यं स्वकीयं कर्मनिर्मितम् ॥ २७॥ बहु दुःखेन दुःखार्तो न जातो ब्रह्मचिन्तने । घुनयौँ पालितो लोके रागतः तव सन्निधौ ॥ २८ ॥ सप्तश्लोकप्रसादेन मुक्तोऽहं प्राणसङ्कटात् । श्रीशुक उवाच–जडेन मुनिना तस्य श्रावितं परमाद्भुतम् ॥ २९ ॥ द्वितीयस्कन्धव्याख्यानं ज्ञान-विज्ञानसंयुतम् । तच्छ्रुत्वा प्रेतराजेन नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ ३० ॥ गतो विमानमारुह्य वैकुण्ठभवनं प्रति । सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ३१ ॥ स पश्यन् भक्तिभावेन मुनिरात्मानुचिन्तकः । यदृच्छया भ्रमन् योगी प्राप्तो बदरिकाश्रमम् ॥ ३२ ॥ यत्र नारायणः साक्षात् नारदेन उपासितः । नारायणं नरसखं प्रविकीर्णकेशं पद्मासनं मकरकुण्डलयुक्तकर्णम् । येन घृतो भृगुमुनेश्चरणप्रहारो वक्षस्य मुञ्च मुनयः शरणं प्रपेदुः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवत माहात्म्ये पद्मपुराणे उत्तरखण्डे षष्ठोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच–सूर्यदेहातटे विप्र रूपशर्मेति वैष्णवः । श्रीमुद्राधारकः शान्तः श्रीमद्भागवते रतः ॥ १ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं दृढं शुभ्रं गोपिचन्दननिर्मितम् । विष्णुवालासमाकारं ललाटे रेखयायुतम् ॥ २ ॥ चक्रे द्वे दक्षिणे बाह्वौ शंखमेकं मुने गदा । पार्श्वे नामनि चत्वारि वामकुक्षौ तथैव च ॥ ३ ॥ दक्षकुक्षौ यथा बाहौ दक्षिणे च समन्ततः । ललाटे तु गदामेकां नारायणमथ द्वयम् ॥ ४ ॥ हृदि चक्रद्वयं नाभौ पृष्ठे ककुदिवन्न्यसेत् । एवं मुद्रा धृता येन विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥ तस्य विप्रस्य द्वे भार्ये रूपयौवनकामुके । एका गुणवती नारी द्वितीया कलहोत्सुकाः ॥ ६ ॥ ज्येष्ठा भवानि नामा च अन्या वीरवधूरिति । ताभ्यां पुत्रो भवेत् द्वौ द्वौ चत्वारो हरिवल्लभाः ॥ ७ ॥ तृतीयस्कन्धव्याख्यानं छात्रान् संपाठयन् स्थितः । अश्वत्थतरोर्मूले स्वगृहे विष्णुसन्निधौ ॥ ८ ॥ वृक्षात् निर्गतो व्यालो दिव्यरूपधरस्तदा । प्रदक्षिणं नमस्कृत्य वैकुण्ठगमनोत्सुकः ॥ ९ ॥ उवाच विप्रस्तं व्यालं वैष्णवो द्विजसत्तमाः । कस्मादत्र निवासस्ते कारणं जन्मनश्च किम् ॥ १० ॥ वद स्वस्वमुखेनात्र किं पुण्यं साधितं त्वया । कस्मात्कर्म फलादेव व्यालत्वं प्राप्तवानसि ॥११॥ व्याल उवाच—जन्मान्तरे द्विजश्रेष्ठ कृपणो वैश्यतां गतः । हुतं दत्तं तपस्तप्तं वाङ्मात्रेण कदाचन ॥ १२ ॥ बहुधोपार्जितं द्रव्यं प्राणादधिकवल्लभम् । कर्मणोऽवसरे किञ्चिद् न दत्तं याचकाय वै ॥ १३ ॥ व्यालयोनिं समापन्नो वृक्षमूले भयङ्करीम् । भागवतश्रवणादेव जातोऽहं दिव्यदेहवान् ॥ १४ ॥ ब्रह्मसाक्षाद् द्विजेन्द्रो वै वैकुण्ठभुवनं प्रति । गमिष्यामि कृतार्थोऽहं कृपया परया तव ॥ १५ ॥ इदं रहस्यं परमं पवित्रं ज्ञानात्मकं पापविनाशनं च । मोक्षप्रदं पुत्रानागमश्च सर्वोदयं यः शृणुयाच्च नित्यम् ॥१६॥ इति श्रीभागवतमाहात्म्ये पद्मपुराणे उत्तरखण्डे सप्तमोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच—गङ्गायमुनयोर्मध्ये नगरं चातिसुन्दरम् । तस्य चोत्तरदिग्भागे वने वृक्षसमुद्भवे ॥ १ ॥ आश्रमो मुनिवर्यस्य देवलस्य महात्मनः । तत्रत्या ऋषयः सर्वे श्रुत्वा भागवतोत्तमम् ॥ २ ॥ कृतकृत्यं मन्यमाना ऋषयः पारदर्शिनः । नातिदूरे स्थितो वृक्षः खदिरः कण्टकान्वितः ॥ ३ ॥ तस्याद्विनिर्गतो देवः पुरुषः कनकसन्निभः । विमानेन समारूढो वैकुण्ठगमनोत्सुकः ॥ ४ ॥ तं दृष्टवा शीघ्रवेगेन देवलो वाक्यमब्रवीत् । केन पुण्यप्रभावेण मोक्षाय गमनं तव ॥ ५ ॥ पुरुष उवाच–जन्मान्तरे महारण्ये म्लेच्छतस्कररूपधृक् । द्विवारात्रे महामार्गे बहवो हिंसता मया ॥ ६ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्रा ये चान्यजातयः । व्याघ्रा वराहश्चोलूकाः पक्षिणः पशवो परे ॥७॥ तेषां संख्या न जनामि कुटुम्बभरणे रतः । ग्रामं गत्वा गृहान् लुण्ठ्वा स्फोटिता ज्वालिता मया ॥ ८ ॥ विष्णुदेवालये तत्र तस्मिन् गुप्तेन संस्थितः । सम्मार्जनं तत्र कृतं कर्म स्वदेहस्य सुखाय वै ॥ ९ ॥ एतादृशं कृतं कर्म आजन्ममरणान्तिकम् ॥ १० ॥
२ बध्वा पाशैः सहस्रैश्च ताडितो तीव्रमुद्गरैः । कुत्रचित् पतितो भूमौ पुनरुत्थाय चापरे ॥ ११ ॥ आज्ञया यमराजस्य क्षिप्तो वृक्षस्य कोटरे । अन्नोदकं विना स्वामिन्क्षुधया तृष्णयार्दितः ॥१२॥ संमार्जनस्य पुण्येन जातोऽहं तव सन्निधौ । चतुर्थस्कन्धमाख्यान श्रुत्वा पापैर्विमुक्तवान् ॥१३॥ विमानेन समारूढो वैकुण्ठं विष्णुपालितम् । गमिष्यामि न सन्देहो विप्रवर्य नमोऽस्तु ते ॥१४॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुक उवाच–इत्युक्त्वा स गतः प्रेतो मुनिं नत्वा पुनः पुनः । शीघ्रवेगेन मानेन विमानेनार्कवर्चसा ॥ १५ ॥ इदं रहस्यं परमं त्रिकालज्ञानं सततं करोति । श्रुत्वा नरो वाप्यथवा च नारी मोक्षं लभेत्पुण्यकृतार्थशीघ्रम् ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवतमाहात्म्ये पद्मपुराणे उत्तराखण्डे अष्टमोऽध्यायः ।

स्कन्ध वै पञ्चमं श्रुत्वा बहवोऽपि दिवं गताः । तत्रैक महदाश्चर्यमितिहासं पुरातनम् ॥ १ ॥ यमुनोपवने वैश्यः सधनो चातिनिष्ठुरः । पुत्रहीनो दुराचारी पापिष्ठो निरहं कृतः ॥ २ ॥ निर्गतो मनसि धृत्वा गयाश्राद्धं महालये । भाद्रे मासे कृष्णपक्षे पौर्णमादिकवासरात् ॥ ३ ॥ श्राद्धानि षोडशाहानि कृतानि विष्णुसन्निधौ । सप्त दानानि तत्राष्ट पितृणां मुक्तिहेतवे ॥ ४ ॥ बहुधनं द्विजातिभ्यो दत्वा चैव तु निर्गतः । स्वगृहं च यदा प्राप्तो ज्ञातिबन्धूनसखींस्तथा ॥ ५ ॥ नानाविप्रान् सदाचारान् भोजितवान् दत्तसदक्षिणान् । मध्यरात्रौ तदा वाणिं गगनात् श्रुतवान् ध्वनिम् ॥ ६ ॥ पितृमुक्तिर्न जाता ते गयाश्राद्धेन कर्मणा । पञ्चमस्कन्धव्याख्यानं श्रुत्वा पापैर्विमुच्यते ॥ ७ ॥ तस्मात्सर्वात्मना वैश्य श्रवणे चादरं कुरु । श्रीशुक उवाच—इति गगनेरितां वाणिं श्रुत्वा वैश्यो निजादरात् ॥ ८ ॥ पञ्चमस्कन्धव्याख्यानं पितृणां मोक्षदायकम् । तदान्तरे विमानञ्च घण्टावादनपूर्वकम् ॥ ९ ॥ आरुह्य पितरः सर्वे वैकुण्ठभुवनं गताः । इदं पवित्रं सततं पुराणं महापानं भक्तजनैरुपस्कृतम् । गोविन्द दामोदर वासुदेव पदे पदे नाम सदैव गीतम् ॥ १० ॥ इति श्रीभागवतमाहात्म्ये पद्मपुराणे उत्तराखण्डे नवमोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच—अतः परं प्रवक्ष्यामि षष्ठस्कन्धसमुद्भवम् । माहात्म्यं त्रिषु लोकेषु श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ तापीनदीचोत्तरेतीरे नगरीमिव निर्मिता । तस्यां विप्र सदाचारो विदुरः पावकोपमः ॥ २ ॥ अग्निहोत्री सदाचारी स्वकर्मनिरतो मुनिः । तस्य भार्या विशालाक्षी त्रीन् पुत्रान् व्यजीजनत् ॥ ३ ॥ गोपालो धेनुपालाश्च सुरभिपालकस्तथा । गोपालो निर्गतो गेहात् चाण्डालीभोग्यकाम्यया ॥ ४ ॥ द्वाभ्यां देशान्तरे गत्वा पुत्रानुत्पाद्य नीचवत् । द्विजत्वं नाशितं तेन मूर्खेण द्विजसूनुना ॥ ५ ॥ अवलोकनार्थं विधुरो निर्गतो भार्यया सह । देशन् ग्रामान् तथा घोषान् आश्रमान् मुनिसेवितान् ॥ ६ ॥ पर्वतान् सप्तकारण्यान् तीर्थानि भुवनत्रये । भ्रामयित्वातिविश्रान्तः तापीतीरे समागतः ॥ ७ ॥ स्वगेहे स्थापिता भार्या पुनर्ग्रामात् बहिर्गतः । रेवातीरे महीतीरे प्रभासे द्वारकावने ॥ ८ ॥ पुष्करे नैमिषे क्षेत्रे प्रयागे राजमन्दिरे । वाराणस्यां गयायां च क्षेत्रे वै पुरुषोत्तमे ॥९॥ सा गंगासागरे स्नात्वा सप्त गोदातटे गतः । तुला धात्री भरद्वाजो गौतमो वृद्धगौतमः ॥ १० ॥ कौशिका च वशिष्ठा च सप्तगो देवि विश्रुता । वैङ्कटेशे च श्रीशैले रामक्षेत्रे कुमारके ॥ ११ ॥ गोकर्णे च शिवक्षेत्रे यत्रसन्निहितः शिवः । भीमातीरे शिवक्षेत्रे त्र्यम्बकेश्वरसन्निधौ ॥ १२ ॥ अधस्तान् कुङ्कुणे देशे भ्रामयित्वा द्विजोत्तमः । तां दृष्ट्वा तत्र चाण्डाली मुनिनवाक्मुवाच ह ॥१३॥ षष्ठस्कन्धस्य ग्रन्थोऽयं तव भर्त्तुः प्रदीयताम् । गृहीत्वा चागता गेहे पुस्तकं भर्त्तुरर्पितम् ॥ १४ ॥ तेन तत्रोत्तरं दत्तं मूर्खेणापठितेन वै । इदं वक्तुं न शक्नोमि ग्रन्थबाहुल्यविस्तरम् ॥ १५ ॥ यथा पुनः परावर्त्य विप्राय च निवेदितम् । तदा विप्रेण श्लोकैकं लिखित्वा प्रेषितं तदा ॥ १६ ॥ प्रत्यहं पठनीयं च त्वया निर्मलबुद्धिना । साकैः सं परिहास्यं वा स्तोमेहेलनमेव वा ॥ १७ ॥ वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः । पठनात् श्लोकमेकेन मुक्ती गोपालपातकी ॥ १८ ॥ विमानेन समारूढो गतो वैकुण्ठसन्निधौ । विदुशोऽपि गतो गेहे वैराग्येन समाहितः ॥ १९ ॥ त्यक्त्वा देहं च पार्थिव्यं वैकुण्ठभुवनं गतः । पापिष्ठं धर्मनष्ट कविवरकथितं कर्मकाण्डाद्विनष्टं पापेनातीवयुक्तं मलिनगुणयुतं वेदमार्गाद्विभ्रष्टम् । कालेनैकेन दुष्टं कर्मविधिवशात् व्याधिरोगैश्चग्रस्तं श्रीमद्भागवतं पुनाति पठनात् श्लोकाश्च श्लोकार्द्धतः ॥ २० ॥ इति श्रीभागवतमाहात्म्ये पद्मपुराणे उत्तराखण्डे दशमोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच–सप्तमस्कन्धव्याख्यानं श्रुत्वा व्याघ्रौ च निर्मलौ । तौ बलात् प्राप्नुवन्तौ पार्षदौ विष्णुसन्निधौ ॥ १ ॥ पुलस्त्य उवाच—व्याघ्रौ क्रूरत्वमापन्नौ पशुयोनौ विनिर्मितौ ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हिंसापरायणौ नष्टौ कथं तौ श्रवणे रतौ ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच–जन्मान्तरे द्विज श्रेष्ठौ वेदवेदाङ्गपारगौ । राजमान्यौ सदाचारौ द्राविड़ेशसमुद्भवौ ॥ ३ ॥ राजा मुनिवरौ ज्ञात्वा दानाध्यक्षौ निरापितौ । ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वल्पं स्वगृहे भूरिमानितौ ॥ ४ ॥ राजद्वारात् धनं नीतं द्वाभ्यां कोट्यवधिं किल । तेन पापेन तौ विप्रौ व्याघ्रयोनिमवापतुः ॥ ५ ॥ एकस्मिन् समयेऽरण्ये वृद्धब्राह्मण आगतः । भक्षणाय कृतोद्योगौ व्याघ्रौ वै बलिनां बलौ ॥ ६ ॥ स्मरणं च कृतं विष्णोर्विप्रेण व्याघ्रसन्निधौ । श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ ७ ॥ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् । इदं श्रुत्वा तु तौ व्याघ्रौ सर्वपापात् विनिर्गतौ ॥ ८ ॥ दिव्यदेहधरौभूत्वा नत्वा विप्राय ऊचतुः । किं त्वया श्रावितं विप्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९ ॥ यच्छ्रुत्वा दिव्यमापन्नौ देहौ कनकसन्निभौ । विप्र उवाच–इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥ १० ॥ श्रीशुकेन पुरा प्रोक्तं अभिमन्युसुताय वै । युवाभ्यां श्रावितो व्याघ्रौ सप्तमस्कन्ध उत्तमम् ॥ ११ इदं रहस्यं कस्मिश्चित् न देयं निन्दकाय वै । व्याघ्रावूचतुः– अतः परं श्रोतुकामा सज्जनौ तव सन्निधौ ॥ १२ ॥ श्रावनीयः सविस्तारं सप्तमस्कन्धउत्तमम् श्रीशुकउवाच–इत्येतयोर्वच श्रुत्वा सप्तमस्कन्धः श्रावितोऽद्भुतः ॥ १३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तौ वैकुण्ठभुवनं गतौ । विष्णुपार्षदतां प्राप्तौ द्वौ पुण्यकारिणौ ॥ १४ ॥ श्रुत्वैतत्स्कन्धमात्म्यं नरो मोक्षमवाप्नुयात् । इति श्रीमाभागवतमाहात्म्ये पद्मपुराणे उत्तरखण्डे एकादशोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच–अष्टमस्कन्धश्रवणात् दीर्घबाहुर्दिवं गतः । यः पुण्योपार्जितान् भोगान् भुक्त्वा राजा दिवि स्थिता ॥ १ ॥ पुनर्महीतले यातो महाराजो दिवश्च्युतः । ववन्दे गुरुपुत्राय राजा तस्मै द्विजातये ॥ २ ॥ राजोवाच–कस्मात् स्वर्गाच्युतो विप्र तत्र किं कारणं मुने । पुनः किं करणीयं मे मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ३ ॥ गुरुपुत्र उवाच–पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वाणि कृतवानसि । तेन पुण्येन राजत्वं प्राप्तोऽसि पृथवीतले ॥ ४ ॥ अष्टमस्कन्धव्याख्यानं श्रुतं हास्येन कर्मणा । श्रवणस्य प्रभावेण स्वर्गः प्राप्तस्त्वयाऽनघ ॥ ५ ॥ हास्यकृतं द्विजातीनां तस्मात्स्वर्गाच्युतो मुनि । श्रद्धया परया भुक्तः श्रीमद्भागवतं शृणु ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच–दीर्घबाहुः स राजर्षिः प्रातःकाले समुत्थितः । स्मृत्वा पादाम्बुजं शुद्धं गुरोः पापहरं शिवम् ॥ ७ ॥ नारायणं नमस्कृत्य पृथिवी प्रार्थिता मुने । शौचमाचनं स्नानं शास्त्रोक्तविधिना कृतम् ॥ ८ ॥ अष्टमस्कन्धव्याख्यानमेकाग्रमनसा श्रुतम् । आदौ पौराणिकीं पूजां कृत्वा चं अभिवादनम् ॥ ९ ॥ व्यासासनं स्थितो विप्रः पूजितश्चन्दनैः फलैः । पुष्पैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥१०॥ प्रदक्षिणां नमस्कारं कृत्वा निर्मलमानसः । स्थित्वाऽजिनासने राजाऽशृणोत् भागवतं च हि ॥११॥ विमानोपरि चास्थाय सर्वया सभया सह । नागरैः सचरैः साकं विष्णुलोकं गतस्तदा ॥ १२ ॥ पवित्रं शुद्धमाख्यानं कथितं तव चानघ । श्रुत्वा पुण्यमवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ १३ ॥ इति श्री भागवतमाहात्म्येपद्मपुराणे उत्तराखण्डे द्वादशोऽध्यायः ।

श्रीशुक उवाच–अतः परं प्रवक्ष्यामि महात्मन वयेवहि । बहवो मोक्षमापन्ना ब्राह्मणाःक्षत्रियास्तथा ॥ १ ॥ सुन्दरे नर्मदातीरे पुरी माहिष्मती शुचिः । तस्यां सुधार्मिको राजा प्रजापालनतत्परपरः ॥ २ ॥ द्रव्यं न्यायञ्च गृह्णति वैश्येभ्यो धर्मपूर्वकम् । तस्य राष्ट्रे न दुःखार्त्ता जनाश्च रिपवो ह्यपि ॥ ३ ॥ भार्या दश सहस्राक्षी पंचादशदधिकाः शुभाः । रूपयौवनसम्पन्नाः सर्वावयवसुन्दरा ॥४॥ सर्वाभरणासंयुक्ता मृगनेत्रोपमायुताः । राजशुश्रूषणपरा अन्योन्ये प्रीतिमुद्वहाः ॥ ५ ॥ राजा वृद्धत्वमापन्नाः पुत्रदुःखेन दुःखितः । तृणविन्दुप्रसादेन पुत्रो जातोऽति सुन्दरः ॥ ६ ॥ अतिहर्षेण दानानि गजवाजिसहस्रशः । रथादीन् स सुवर्णं च दत्त्वा पात्राय वै पुनः ॥ ७ ॥ पुत्रस्य पञ्चमे वर्षे कृत्वा संस्कारं कर्म च । राज्यं त्यक्त्वा गतो राजा वैराग्योन वनं प्रति ॥८॥ पञ्चकं तृतीये हुत्वा एकतत्त्वे त्रितयं हि च । एकतत्त्वं ब्रह्मवियुक्त्वा राजामोक्षपदं गतः ॥९॥ राजपुत्रेण धर्मेण प्रजासंरक्षणं कृतम् । दिव्यैर्वस्त्रैस्तथा चन्दनैर्धेनुभिर्गोवृषैरपि १०

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिणीता कतिचिद्भार्याः स्वदेशात् दक्षिणकादपि । राजानो बहवस्तस्य शरणागतवत्सलाः ॥११॥ विदर्भदेशाधिपो राजा सोपि चात्यन्तनिर्मलः । वैष्णवोधर्मवादी च दानैर्देवे सदारतः ॥१२॥
तस्यामात्यः सुशर्मा च त्रयोविंशत्यनीकपैः । आगतौ युद्धमाकाङ्क्षन् तेन विद्रावितं पुरम् ॥१३॥ पलायनपरो राजा त्यक्त्वा राज्यं धनादिकम् । पुनः कतिपयैर्मासैः स्वकीयेनगरेऽगमत् ॥१४॥
तस्य माता सुशीला सा रक्षिता वैश्य या गृहे । नृत्यगानपराजाता नटविद्यातिनैपुणा ॥ १५ ॥ अज्ञातराजपुत्रेण मातुराकारणं कृतम् । रात्रौ वैश्यां सविज्ञाय शय्यायां स्थितवान् यदा ॥१६॥
स्तानाभ्यां दुग्धधाराभिः राजपुत्रमुखेऽपतत् । तदा तेनैव सा प्रोक्ता त्वं कासिनानृतं वद ॥१७॥ वृत्तान्तं जन्म आरभ्य तस्मै सर्वं निवेदितम् । स्वकीयमातरं ज्ञात्वा देहदाहे कृतोद्यमः ॥१८॥
बहुकाष्ठानि संगृह्य यदा नाशमचिन्तयत् । केनचित् ब्राह्मणे नैव पठितं भागवतं तदा ॥१९॥ देवालयस्य सामिप्ये नागरैः बहुभिः सहः । बहिःस्थराजपुत्रेण किञ्चित् किञ्चित् तं तदा ॥२०॥
नवमस्कन्धव्याख्यानं श्रुत्वा पापविनाशनम् । विमाने च समास्थाय गतो वैकुण्ठमालयम् ॥२१॥ इदं पवित्रमाख्यानं यः शृणोति पुमान् सदा । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥२२॥
इति भागवतमाहात्म्ये उत्तरखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ।

श्रीशुकउवाच–अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं दशमस्य च । यच्छ्रुत्वा बहवो सिद्धाः वैकुण्ठभुवनं गताः ॥ १ ॥ रेवातीरे भृगुक्षेत्रे सर्वपापप्रणाशनम् । नगरं सुन्दरं रम्यं गोप्राकारसवेष्टि-
तम् ॥ २ ॥ राजद्वारगजैर्युक्तं हेमकुम्भैर्विराजितम् । अश्वै रथै सुसंकीर्णं शोभितं हेमपालिभिः ॥ ३ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः धर्मेण संयुताः । सर्वे स्वधिककोशाढ्या विष्णुभक्ति-
परायणः ॥४॥ श्रीदेवो ब्राह्मणः शुद्धः तपसो पापकोपमः । श्रोते स्मार्ते च रतो वेदवेदाङ्गपारगः । ५॥ तस्य भार्यास्तिविख्याता पातिव्रत्यपरायणा । रूपयौवनसम्पन्ना सर्वावयसुन्दरी ॥६॥
पुत्रहेतोस्तपस्तेपे वर्षाणां पञ्चविंशतिम् । नीरमात्रशुभाहारो भूमिशय्याकुशोपरि ॥७॥ गगने गर्जिता वाणी पुत्रकामोसि ब्राह्मण । तस्माद् विप्रेषु मुख्यान् तान् श्रेष्ठाश्च क्षत्रियेष्वपि ॥८॥ दशम-
स्कन्धव्याख्यानं भक्तिभावेवन श्रावय । तेन पुण्येन भो विप्र तव पुत्रो भविष्यति ॥ ९ ॥ ब्राह्मणेमेति सङ्कल्प्य लोकानां शुभङ्करम् । इदं भागवते शास्त्रे श्रावयेऽहं निरन्तरम् ॥११॥ वाचितं
तेन विप्रेण नियमेन निरन्तरम् । वृक्षोपरि स्थितः कश्चिच्छुकश्चत्यन्तनिर्मलः ॥ ११ ॥ विमानेनैव संयुक्तो गमनाय कृतोद्यमः । दिवि दुन्दुभ्योर्नेदुः पुष्पवृष्टिभुत्तदा ॥ १२ ॥ श्रीदेव उवाच–
सिव्यदेहधरः कस्त्वं केन पुण्येन हेतुना । कस्मिंल्लोके निवासस्ते मेऽप्येतद्वद सुव्रत ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच—जन्मान्तरे कपोतोऽहं कपोतीभार्यया सह । वने वृक्षे तथा ग्रामे नगरे खेट-
खर्वटे ॥ १४ ॥ यत्र कुत्रापि वास्तव्यं पर्वते वृक्षकोटरे । भोजने शयने चैव विहारो नित्यकर्मणि ॥ १५ ॥ कपोतीगर्भिणी जाता कालेन महता यदा । नीडे नालासु सुसुवे तनयान् फल
भाषिणः ॥ १६ ॥ एकस्मिन् समये विप्र त्रिरात्रौ क्षुधितो भृशम् । अन्नार्थं च गतोऽरण्ये लुब्धको नीडमागतः ॥ १७ ॥ जालमातत्थतान् बालान् गृहीत्वा कुशलो नरः । अहं चाप्यागतस्तत्र
पततो भार्यया सह ॥ १८ ॥ लुब्धकः प्राप्य सर्वान् तान् नीतवान् राजमन्दिरे । तेन दुःखेन सन्तप्तो मया च किमिदं कृतम् ॥ १९ ॥ किञ्चिन्नोपार्जितं पुण्यं दुष्कृतिनात्कचित् । गृहा-
रम्भोऽतिदुःखाय पापसंरक्षणाय च ॥ २० ॥ कपोते देहमुत्सृत्य शुकेजन्मसमागतः । त्वत्प्रसादादहं विप्र वैकुण्ठभुवनं प्रति ॥ २१ ॥ गमिष्येनात्र सन्देहो भागवतश्रवणादपि । श्रीशुक उवाच–
इत्युक्त्वा त्रिपरिक्रम्य नमस्कृत्य स पुनः पुनः । काञ्चनैर्निमितो देहः तं धृत्वा विमलाशयः ॥२२॥ मावधैः स्तूयमानेऽपि विमानेनार्कवर्चसा । भक्त्या परमया मुक्तो हरेर्नाम जपन् बुध ॥२३॥
वैकुण्ठभुपनं प्राप्तः क्षणमात्रेण पक्षिराट् । श्रीदेवोऽपि द्विजश्रेष्ठः ब्राह्मणो धर्मवत्सलः ॥२४॥ अभवत् पुत्रवान् श्रीमान् वर्षमात्रेण मक्तितः । भुक्त्वा भोगान् समासाद्य वैकुण्ठभुवनं गतः॥२५॥
यः कश्चिद् श्रुणुयाद् विप्राः नरनारीसमन्वितः । भक्तियुक्तेन शुद्धात्मा मृते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवतमाहात्म्येपद्मपराणेउत्तरखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुक उवाच—अतः परं प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम् । एकादशस्य व्याख्यानं शृणुष्वैकमना द्विजा ॥ १ ॥ अथ चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विदेहनगरे कश्चित् गौतमो द्विजसत्तमः ॥ २ ॥ तस्य पुत्रोऽति तेजस्वी वैराग्येन वनं गतः । पञ्चाग्निसाधनं कृत्वा दिवारात्रं जपन् हरिम् ॥ ३ ॥ एवं कृत्वा व्यतीता च वर्षाणामेकविंशतिः । एकस्मिन्समये तत्र विप्राश्चोराः समागताः ॥ ४ ॥ चौर्यं कृत्वा तु नगरे रात्रौ ते राजवेश्मनि । ऋषेः समीपमागत्य साञ्जलयस्तु ते स्थिताः ॥ ५ ॥ पद्मासने समासीनाः सर्वे मिलितलोचनाः । तत्र राजभटा यात दृष्ट्वा चौरा धनैः सह ॥ ६ ॥ ते सर्वे निगडे बध्वा ताडिता मुनिभिः सह । रात्रौ निद्रावशं प्राप्ता सर्वे चौराः क्रियाधमाः ॥ ७ ॥ अनिद्रो मुनिशार्दूल जिताहारो जितेन्द्रियः । शिवशर्मा मुनिश्रेष्ठो मुहुर्तं ध्यानतत्परः ॥ ८ ॥ हरिर्हरेतिशब्देन जगाद सुधारां गिरम् । ते सर्वे सहसोत्थाय मुनिसान्निध्यमास्थिाः ॥ ९ ॥ आवितं विपुलं ज्ञानं लिङ्गभेदेन संज्ञितम् । मुनिना कृपया तेभ्यो दत्तं पूर्वमनुष्ठितम् ॥ १० ॥ श्रीमद्भगवतं प्रोक्तं श्रीकृष्णेनोद्धवं प्रयि । तत्सर्वं भक्तियुक्तं च वैराग्येन श्रुतं शुभम् ॥ ११ ॥ सूर्योदयवेलायां सर्वे शूले समर्पिताः । वैकुण्ठभुवनं प्राप्ताः सर्वेदिव्यशरीरकाः ॥ १२॥ सर्वे चतुर्भुजा जाता पतिकौशेयवाससाः । आख्यानं पठति शृणोति सततं श्रीवैष्णवानां परम् ॥ १३ ॥ श्रीमद्भागवतं विशुद्धकरणं ज्ञानं परं निर्मलम् । गङ्गस्नानसमस्ततीर्थफलदं पापक्षयं कारणम् । मुक्तिद्वारकपाटपाटनपरं वैकुण्ठगामी भवेत् ॥ १४॥ इति श्रीपद्मपुराणे भागवतमाहात्म्ये उत्तरखण्डे पञ्चदशोऽध्यायः ।

माहात्म्यं द्वादशस्याथ किं वक्तव्यं ममानघाः । अभिमन्युसुतो राजा विख्यातो भुवि मण्डले ॥ १ ॥ येन सर्वा इदं भूमिः समुद्रवलयाङ्किता । श्रितां त्वेकेन धनुषा पाण्डवेन प्रपालिताः ॥ २ ॥ कलिरूपं समुत्साद्य यस्य राष्ट्रे सुखावहाः । याजयित्वाश्वमेधान् त्रीन् गङ्गतीरे कलेवरम् ॥३॥ उत्सृज्य श्रवणेनैव श्रीमद्भागवतस्य च । ज्ञानवैराग्यसंयुक्तं मुक्तिं सायुज्यतां गतः ॥ ४ ॥ द्वादशस्कन्धमहात्म्यं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते । नरो वाऽथवा नारी मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५ ॥ जनःस्थाने द्विजः कृष्णः कुष्ठसर्वाङ्गदूषितः । गोदास्नानं कृतं तेन तीर्थपापहरं शिवम् ॥ ६ ॥ आचरिता बहवो पापास्तीर्थे भ्रमन्नपि । प्रयागे गतवान् विप्र भारद्वाजमुवाच ह ॥ ७ ॥ भो भो विप्र द्विजश्रेष्ठ विकालज्ञानवान् मुने । कर्मणा केन भो स्वामिन् कुष्ठमेतद् गामिष्यति ॥ ८ ॥ भारद्वाज उवाच—जन्मान्तरे त्वया कृष्ण चोररूपेण हिंसिता । जीवाजनपदाक्रूरा दुःखशोकभयातुराः ॥ ९ ॥ तेन पापेन कुष्ठोऽसौ विद्यते तव सुव्रतः । तस्मात्सर्वात्मना तात श्रीमद्भागवतं शृणु ॥ १० ॥ नियम्य सप्त दिवसं विष्णुभक्तिपरायणः । प्रथमे दिवसे स्नात्वा सर्वान्नागरिकान् जनान् ॥ ११ ॥ ज्ञातीन् बन्धून् द्विजान् वर्णान् आश्रमान् अथितीनपि । आकार्याऽऽश्रावयितव्य हि महात्म्येन समन्वितम् ॥१२॥ प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान् गुणज्ञान् वेदपारगान् । भोजयेद्प्रत्यहं गेहे अन्नैर्नानाविधैरपि ॥१३॥ प्रत्यहं विष्णुपूजा च यातिपूजा तथैव च द्विजपूजा धेनु पूजा विधिना वेदमन्त्रकैः ॥ १४ ॥ पुराणं पूजयेत् सम्यक् विप्रं पौराणिकं तथा । चन्दनैर्मन्तरहितैर्हि नवर्णान् प्रपूजयेत् ॥ १५ ॥ यावत् समाप्तिं ग्रन्थस्य नियमेन समापिते । पौराणिकाय देयानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ १६ ॥ द्रव्यं दानं यथा शक्त्या पृथ्वी गो मन्दिरं शुभम् । पुराणं वस्त्रसंयुक्तं हेमसिंहासनोपरि ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतं देयं विप्राय वैष्णवाय च । स्वान् श्रोता यथा शक्त्या नानागोत्रद्विजातये ॥ १८ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान् युग्मान् स्वस्यनुग्रहहेतवे । अनेन विधिना श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥ साधुभिर्वैष्णवैः सार्कं विष्णुलोके महीयते । श्रीशुक उवाच—अनेन विधिना तेन कृष्णेन द्विजरूपिणा ॥ २० ॥ श्रुतं भागवतं सप्तरात्रान्ते हरिमन्दिरे । सप्तवारं श्रुतं तेन महारोगी तथैव च ॥ २१ ॥ पुनराश्रित्य विप्रेन्द्र भारद्वाजमुनिं प्रति । कृष्ण उवाच—भारद्वाज नमस्तेऽस्तु शान्तायामिततेजसे ॥ २२ ॥ निर्गुणाय नमस्तुभ्यं वेदज्ञाय नमोऽस्तु ते । श्रुतं भागवतं स्वामिन् पारायणविधानतः ॥२३॥ तथैव दृश्यते कुष्ठं देहप्राणेन्द्रियेषु च । तत्र किं कारणं विप्र कृपया परया वद ॥ २४ ॥ भक्ताय चानुरक्ताय शिष्याय दीनचेतसे । भारद्वाज उवाच—जन्मान्तरे त्वया वत्स द्विजस्य मन्दिरं पुरे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २५ ॥ प्रज्वालितं वह्निना तेन पापेन कुष्ठतां गताः । परदारपरद्रव्यब्रह्महत्याप्रभावतः ॥२६॥ अपुत्रो ज्ञातिवैरेण द्रोहेण ब्राह्मणैः सह । करिष्यत इदं ते कौतुकं योगमायया ॥२७॥ जन्मान्तरस्य पापानि चितायां दह्यन्तेऽधुना । श्रीशुक उवाच–मुनिना तत्क्षणादेव योगमार्गेण चैव हि ॥२८॥ चितैका सत्वरं दृष्ट्वा दर्शिता प्रेतसंयुता । कुर्वन्ते रोदनं प्रेता हाहाकारेति वादिनः ॥२९॥ श्मशानात् शीघ्रं नीतास्ते सर्वपापसमुद्भवाः । एकवारं पुनः श्रुत्वा श्रीमद्भागवतोत्तमम् ॥३०॥ कुष्ठो विनष्टो देहस्य जातः कनकसन्निभः । एकः पुत्रः मुनिश्रेष्ठः जातो वै वैष्णवाग्रजः ॥३१॥ सद्यस्तु ममतां त्यक्त्वा भरद्वाजगुरुर्पयिवान् । कृष्ण उवाच–त्वत्प्रसादात् मुनिश्रेष्ठ गच्छामि विष्णुमन्दिरम् । ३२॥ पुत्रो वंशधरो गेहे वर्तते कुलपालकः । श्रीशुक उवाच–इत्युक्त्वा स परिक्रम्य विमानेनार्कवर्चसा ॥ ३३ ॥ आस्थाय स गतो विप्रो वैकुण्ठभुवनं प्रति । इदं रहस्यं परमं महात्म्यं भागवतोद्भवम् । ३४ ॥ दाम्भिकायातिक्रूराय तामसाय शठाय च । परद्रव्यहारिणे चैव विप्रनिन्दां प्रकुर्वते ॥ ३५ ॥ अभक्ताय बहुजल्पाय कठोरकूटसाक्षिणे । न देयं सर्वथा तस्मै गोघ्नाय वित्तहारिणे ॥ ३६ ॥ स्वशिष्टाय सदा देयं वैष्णवाय गुरुसेविने । अनिन्दकाय शान्ताय यथार्थभाषिणेऽपि च ॥३७॥ य इदं शृणुयान्नित्यं एकाग्रमनसा धिया । पातकं नाशमायाति पुत्रपौत्रफलं लभेत् ॥३८॥ रोगार्तो मुच्येत रोगात् बद्धो मुच्यते बन्धनात् । राज्यार्थी लभते राज्यं भार्यार्थी लभते स्त्रियम् ॥३९॥ रूपयौवनसम्पन्नां पतिभक्तिपरायणाम् । मोक्षार्थी लभते मोक्षं सान्निध्यं च सरूपता ॥ ४० ॥ सामीप्यं लभते चैव सायुज्यं च तथैव च । सूत उवाच–श्रीभागवतमाहात्म्यमुक्तवान् ज्ञानवान् शुकः । पूजितः वन्दितः सर्वैं ऋषिभिः निस्पृहो गतः ॥४१॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे भागवतमहात्म्ये शमीक श्रीशुक सम्वादे षोडशोऽध्यायः ।

(भगवान्को स्वर्ण की स्त्री का दान करना)

त्वं कृष्णरूपेण बह्वीर्नारीर्भोक्ष्यसि राघव । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य राघवोऽब्रवीत् ॥ बह्वीश्च कामिनीर्भोक्तुं कृष्णरूपधरोप्यहम् । द्वारकायां यदाग्रेहि द्वापरे मुनिसत्तम ॥ येन व्रतेन दानेन नियमेनाऽथवा मुने । बहुनारीनिश्चयेन प्राप्या मीति वदस्व माम् ॥ इति रामवचः श्रुत्वा व्यासो राघवमब्रवीत् । सम्यक् पृष्टं त्वया राम दानं ते प्रवदाम्यहम् ॥ एकपत्नीव्रतादेव यद्यपि त्वं च स्त्रीर्वहूः । लभिष्यसि तथाप्यद्य दानं तव वदाम्यहम् ॥ सीताभारसुवर्णेन मूर्तिमेकां रघूत्तम । एवं षोडपमूर्तीश्च कारय त्वं पृथक् पृथक् ॥ देहि त्वं सरयूनद्यास्तरे विप्रेभ्य आदरात् । वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्दक्षिणाभिश्च ताः शुभाः ॥ अनेन बहुनारीस्त्वं लभिष्यस्यन्यजन्मनि । यथेति राघवश्चापि मूर्तीः कृत्वा मनोरमाः ॥ ददौ ताः सररूनद्यां ब्राह्मणेभ्यस्तु षोडश । ततस्ते ब्राह्मणास्तुष्टा रामायाशीर्ददुर्मुदा ॥ दत्तमेकगुणं राजन् सहस्रगुणितं पुरा । तथास्त्वित्याह रामोपि ततो विप्रान् व्यसर्जयत् ॥ [आनन्दरामायण]

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ प्रथमोऽध्यायः ❋

[भगवद्ध्यानकी रीति और भगवान्के विराट्स्वरूपका वर्णन]

श्रीशुकदेवमुनिने कहा—हे राजन्, आपने मनुष्योंके सुनने योग्य आदि विषयोंमें जो प्रश्न किया है, सो आपका यह प्रश्न अति उत्तम सब लोकोंका हित करनेवाला तथा आत्मवित् पुरुषोंको भी मान्य है❋ ॥ १ ॥ हे राजन्, आत्मतत्त्वको न जाननेवाले गृहादि प्रपञ्चोंमें आसक्त एवं घरमें रहकर हिंसाकर्ममें निरत पुरुषोंके श्रवण करने योग्य आदि हजारों शास्त्र विद्यमान हैं ॥ २ ॥ हे राजन्, वे लोग रात तो निद्रा या मैथुनसे बिता डालते हैं और दिन धन संग्रह करनेमें या अपने बाल-बच्चोंके भरण-पोषणमें समाप्तकर देते हैं ॥ ३ ॥ देह, सन्तति और स्त्री आदि आत्मीय सैन्योंके मिथ्याभूत होनेपर उनमें आसक्त होकर उनकी मृत्युको देखता हुआ भी पुरुष कुछ नहीं देखता अर्थात् यह नहीं सोचता कि मेरी भी इन्हीं लोगों

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ॥ आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥१॥ श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ॥ अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥२॥ निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ॥ दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा ॥३॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ॥ तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥४॥ तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥५॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ॥ जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥६॥ प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः । नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥७॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥ परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया ॥ गृहीतचेता

की तरह एक दिन मृत्यु होगी ही । ४ ॥ इसलिये हे भारत, अभयपदकी प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाला प्रत्येक मनुष्य सर्वात्मा भगवान् ईश्वर श्रीहरिके गुणोंका श्रवण करें, उनके पवित्र चरित्रोंको कीर्तन करे और निरन्तर उन्हींका स्मरण करे । ५ ॥ सांख्य और योगशास्त्रने यही निश्चय किया है मनुष्यजन्म धारण करनेका फल एकमात्र इतना ही है कि वह अपने धर्ममें अत्यन्त निष्ठा रखे, जिससे अन्तकालमें भगवान् नारायणकी स्मृति हो ॥ ६ ॥ हे राजन्, विधि और निषेधसे निवृत्ति होकर यानी अलग रहकर निर्गुण ब्रह्ममें स्थित बहुतसे मुनि प्रायः श्रीहरिके गुणगान करनेमें ही आनन्द प्राप्त करते थे ॥ ७ ॥ हे राजन्, सब वेदोंके समान इस भागवत नामक पुराणका मैंने द्वापरके प्रारम्भमें अपने पिता श्रीवेदव्यासजीसे अध्ययन किया था ॥८॥ हे राजर्षे, यद्यपि मैं लगातार निर्गुण ब्रह्ममें ही स्थित रहता हूँ तथापि पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंसे चित्त आकर्षित होनेके कारण जो मैंने इस आख्यानका

❋ दृष्टांत—बड़े भाग्यसे मनुष्यतन प्राप्त होता है इसलिये प्राणीमात्रको उचित है कि जहाँतक हो ईश्वरमें मनको लगाकर देवपूजन आदिद्वारा समयको व्यतीत करे । इसीबातको राजापरीक्षित ने शुकदेवजीसे पूछा था । क्योंकि राजा की आयु सात दिन की ही अवशिष्ट थी ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्ययन किया है ॥९॥ उसका मैं आपसे वर्णन करता हूँ, क्योंकि आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं, जिस भागवतमें श्रद्धाकरनेवाले पुरुषोंको तत्कालही भगवान् मुकुन्दमें निष्काम भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ हे राजन्, श्री भगवान् हरिका नाम कीर्तनही—विषयभोगोंकी चाह रखनेवाले पुरुषोंके तत्-तत् फलोंका साधन, सांसारिक दुःखोंसे सन्तप्त अतएवं संसारसे विरक्त होकर सर्वथा निर्भय पद मोक्षकी चाह रखनेवाले पुरुषोंकी मोक्षप्राप्तिका साधन और ज्ञानी योगियोंकी भी ज्ञान प्राप्तिका साधन एवं फल है, यही सम्पूर्ण शास्त्रोंमें निर्णय कियागया है, इस विषयमें मुझे प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है ॥११॥ हे राजन्, मेरी थोड़ी आयु शेष रह गई है, इससे कैसे साधन बनेगा, यों सोचकर आप निराश न हों, क्योंकि इस पृथिवीके ऊपर प्रमादी पुरुषकी आयुके अनेक वर्ष अज्ञानमें व्यर्थ ही चले जाते हैं, उनसे फल ही क्या ? उन वर्षोंकी अपेक्षा तो 'मेरी आयु व्यर्थ ही चली जा रही है'—यह एक मुहूर्तका ज्ञानही अच्छा है कल्याणदायक है, जिस एक मूहूर्तके ज्ञानसे ही मनुष्य अपने कल्याणके लिये यत्न करता है ॥ १२ ॥ पूर्व कालमें एक खट्वाङ्ग नामक राजर्षि हो गये हैं। इस कर्मभूमिमें आकर उन्होंने

राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥९॥ तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ॥ यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती ॥१०॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ॥ योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥११॥ किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ॥ वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥१२॥ खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः ॥ मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥ १३ ॥ तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीविताविधिः ॥ उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम् ॥१४॥ अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥१५॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् ॥ मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १७ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभि-

अपनी आयुकी इयत्ता समझकर अर्थात् मेरी पूरी आयु समाप्त हो गई है अब सिर्फ एक मुहूर्त बाकी रह गया है यह जानकर उस एक मुहूर्तमें ही सबकुछ छोड़कर निर्भय भगवान् श्रीहरिके समीप जा पहुँचे ॥ १३ ॥ हे कौरव्य, आपकी तो आयुके अभी भी सात दिन बच गये हैं, इसलिये इस थोड़े समयमें हो जो कुछ पारलौकिक साधन हैं उन सबका आप सम्पादनकर लीजिये ॥ १४ ॥ प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि वह अन्तकाल आनेपर सबसे पहले मृत्युके भयसे शून्य हो जाय। उसके बाद अनाशक्तिरूपी शस्त्रसे देहमें सुखी इच्छाका छेदनकर दे। तदनन्तर उस देहके पीछे जो स्त्री, पुत्र आदि हैं उनमें भी इच्छाका छेदनकर दे। तात्पर्य यह कि स्त्री, पुत्र, धन आदि जितनी अभिलाषाएँ है उन सबको वैराग्यरूपी शस्त्रसे काट फेंके ॥ १५ ॥ और गृहसे निकलकर वह धीर पुरुष किसी पुण्य तीर्थमें स्नान करके एकान्त किसी पवित्र स्थानमें विधिवत् कुशादिसे निर्मित आसनपर आसीन होकर ॥ १६ ॥ अकार उकार और मकार—इन तीन अक्षरोंसे ग्रथित परम (सब मन्त्रोंमें श्रेष्ठ) शुद्ध प्रणवका मनसे अभ्यास करे और अपनी साँस रोककर यानी प्राणायाम द्वारा प्रणवको (ओंकारको) न भूलता हुआ मनको वशमें करे ॥ १७ ॥ निश्चयात्मिका बुद्धिको सारथी बनाकर मनके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर जानेसे रोके और फिर कर्मवासनाओंसे विषयोंकी ओर खींचे गये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनको बुद्धिसे भगवद्रूप शुभ अर्थमें लगावे ॥ १८ ॥ अनन्तर ध्यानमें लाये गये भगवान्‌के समग्ररूपसे अलग न हुए मनसे भगवान्‌के एक-एक अङ्गका ध्यान करे। यों विषयोंसे शून्य मनको भगवान्‌में लगाकर उसके बाद फिर किसी दूसरी चीजका स्मरण न करे। जहाँ पहुँचकर मन प्रसन्न होता है वही भगवान् विष्णुका परमधाम है ॥ १९ ॥ धीरपुरुष रजोगुणसे आक्षिप्त यानी विषयासक्त और तमोगुणसे विमूढ़ हुए अपने मनको धारणाके द्वारा भगवान्‌में लगावे, क्योंकि धारणा रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न हुए विषयवासनादि विकारोंका नाश करती है ॥ २० ॥ क्योंकि जिस धारणाके सिद्ध होनेपर सुखात्मक विषयको देख रहे यानी भगवान्‌को पूर्णसुखका आश्रय समझ रहे योगीका भक्तिरूपी योग शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है अर्थात् भगवान्‌में शीघ्रही प्रेम उत्पन्न हो जाता ॥ २१ ॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन्, जो धारणा पुरुषके मनोमलको यानी विषयवासनारूप मानसिक विकारको शीघ्र हर लेती है वह जहाँ जिस रीतिसे जैसीकी जाती हो और सुसंमत हो उसे कहनेकी कृपा कीजिए ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मनुष्य पहले जितासन बने यानी एक आसनपर बहुत

राक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥ १८ ॥ तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा ॥ मनो निर्विषयं युङ्क्त्वा ततः किञ्चन न स्मरेत ॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥ १९ ॥ रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः ॥ यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥ २० ॥ यतः सन्धार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः ॥ आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥२१॥ राजोवाच ॥ यथा सन्धार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता ॥ यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः ॥ स्थूले भगवतो रूपे मनः सन्धारयेद्धिया ॥ २३ ॥ विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ॥ यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत ॥ २४ ॥ आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन्सप्तावरणसंयुते ॥ वैराजः पुरुषो यो सौ भगवान्धारणाश्रयः ॥ २५ ॥ पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ॥ महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥ २६ ॥ द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ॥ महीतलं तज्जघनं

देरतक बैठे रहनेका दृढ़ अभ्यास करे, अनन्तर प्राणायाम द्वारा श्वासको जीत ले, फिर स्त्री, पुत्र आदि विषयक आसक्तिको—अहन्ता ममताको जीत ले अर्थात् अहन्ता ममताका त्यागकर दे। इसके बाद जितेन्द्रिय बने यानी इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर न जाने दे—इस तरहकी धारणा करके भगवान्‌के स्थूलरूपमें अपनी बुद्धिद्वारा मनको लगावे ॥ २३ ॥ उस भगवान्‌का यह विराट् देह (विराट् स्वरूप) अतिस्थूल वस्तुओंमें भी स्थूलतर है यानी सम्पूर्ण बड़ी वस्तुओंमें भी बड़ा है। जहाँ भूत, भविष्यत् और वर्तमान—इन तीनों कालमें रहनेवाला यह सम्पूर्ण विश्व दिखाई देता है ॥ २४ ॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्त्व—इन सात आवरणोंसे घिरे हुए इस ब्रह्माण्डरूपी शरीरके अन्दर वैराज नामक जो यह भगवान् परमपुरुष विराजमान रहते हैं, वही धारणाके आश्रय [विषय] हैं ॥ २५ ॥ इस विराट् भगवान्‌का पाताललोक पैरके नीचेका भाग है, पैरका अगला भाग [पंजा] और पिछला भाग [एडी] रसातललोक है, महातल दोनों गुल्फभाग हैं और तलातल इस विश्वस्रष्टा पुरुषके दोनों जाँघ हैं, ऐसा शास्त्रकार बतलाते हैं ॥२६॥ सुतललोक विश्वमूर्ति परमात्माकी दोनों जानु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और वितल तथा अतल ये दोनों लोक ऊरु हैं। हे महीपते, महीतल इसका जघन [नाभिके नीचेका भाग] है और आकाशतल नाभिरूप सरोवर है, ऐसा कहते हैं ॥ २७ ॥ ज्योतियोंका समूह यानी स्वर्गलोक वक्षःस्थल है, महर्लोक इसकी ग्रीवा है और जनलोक इसका मुख है। तपोलोक इस आदिपुरुषका ललाट है तथा सत्यलोक इस हजार मस्तकवाले परमात्माके अनन्त मस्तक हैं, ऐसा ऋषिलोग जानते हैं ॥ २८ ॥ इन्द्र आदि देवता इसकी भुजाएँ हैं, दिशाएँ कान और शब्द इसकी श्रोत्रेन्द्रिय हैं, अश्विनीकुमार इस परमपुरुष परमात्माके नासापुट हैं और गन्ध इसकी घ्राणेन्द्रिय तथा प्रज्वलित अग्नि ही मुख है ॥ २९ ॥ अन्तरिक्ष नेत्रगोलक, सूर्य आँख तथा रात-दिन ये दोनों भगवान् विष्णुके पलक हैं। ब्रह्मपद भौंका विस्तार, जल तालु और रस इस भगवान्की जिह्वा है, ॥ ३० ॥ वेदोंको अनन्त भगवान्का मस्तक यानी ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। यम दाढ़ है एवं स्त्री, पुत्रादि विषयक स्नेह ही इसके दाँत हैं जनोंको मोहमें

महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥ २७ ॥ उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ॥ तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २८ ॥ इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ॥ नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः ॥२९॥ द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ॥ तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥ ३० ॥ छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ॥ हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः ॥ ३१ ॥ व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ॥ कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घाः ॥३२॥ नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ॥ अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः ॥ ३३ ॥ ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान् वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ॥ अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥ ३४ ॥ विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ॥ अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशाः ॥३५॥ वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ॥

डाल देनेवाली माया ही भगवान्की हँसी है और जो यह अपार संसार है वह भगवान्के नेत्रोंका कटाक्ष है ॥ ३१ ॥ लज्जा ऊपरका होठ और लोभ ही अधर पल्लव है। धर्म भगवान्के स्तन हैं तथा अधर्ममार्ग इस भगवान्की पीठ है। प्रजापति भगवान्का शिश्न है तथा मित्रावरुण अण्डकोश हैं। समस्त सागर कुक्षि [कोख] है और सम्पूर्ण पर्वत हड्डियोंके समूह हैं ॥ ३२ ॥ सभी नदियाँ इसकी नाड़ियाँ हैं। हे राजन्, ये जितने वृक्ष हैं वे सबके सब विश्वरूप भगवान्के रोम हैं, अनन्त वीर्य वायु इसकी साँस है, काल इसकी गति है और प्राणियोंका संसार ही इस परमात्माका कर्म यानी क्रीडा है ॥ ३३ ॥ हे कुरुवर्य, बदलोंको ईश्वरके केश और सायंकालको भगवान् विभुका वस्त्र कहते हैं। अव्यक्त [प्रधान] को हृदय तथा सब तरहके विकारोंका आश्रयभूत प्रसिद्ध चन्द्रमाको भगवान्का मन कहते हैं ॥ ३४ ॥ महतत्त्वको सर्वात्मक परमात्माका चित्त और श्रीरुद्रको अन्तःकरण [अहंकार] कहते हैं। घोड़ा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अश्वतरी* ऊँट तथा हाथी—ये भगवान्‌के नख हैं एवं मृग आदि सब पशु भगवान्‌के श्रोणिदेशमें [कमरमें] उपास्य हैं यानी तत्त्वरूपसे अनुसन्धेय हैं ॥ ३५ ॥ जितने पक्षी हैं वे सब भगवान्‌की विचित्र शिल्पचातुरीके नमूने हैं† । मनु भगवान्‌की बुद्धि हैं और मनुष्य निवासस्थान हैं‡ । गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सरायें षड्जादि स्वरस्मृतियाँ हैं तथा असुरोंकी सेनाएँ भगवान्‌का बल हैं[] ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य जाँघ और शूद्र भगवान्‌के पैर हैं । नानाविध नामोंसे विभूषित देवताओंके समूहोंसे यानी वसु, रुद्र आदिसे युक्त द्रव्यात्मक यज्ञप्रयोग ही भगवान्‌का आवश्यक कार्य है ॥ ३७ ॥ हे राजन्, यह इतना जो भगवान्‌के शरीरके अवयव संस्थानोंका मैंने आपसे वर्णन किया है, इस सबसे बड़े भगवान्‌के

गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥३६॥ ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रुरुङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः ॥ नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥३७॥ इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते ॥ सन्धार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुध्या न यतोऽस्ति किञ्चित् ॥३८॥ स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥ तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥ ३९ ॥ इति श्रीम० भा० म० द्वि० महापुरुषसंस्थानुवर्णने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

स्वरूपमें अपनी बुद्धिसे मुमुक्षु पुरुषों द्वारा मनकी धारणा की जाती है, क्योंकि उस स्वरूपसे पृथक् कोई भी पदार्थ ठहर नहीं सकता ॥ ३८ ॥ हे राजन्, किस तरह स्वप्नमें एकही जीव अनेक देहोंकी कल्पना करके तत्-तत् इन्द्रियोंसे सबका अवलोकन करता है उसी तरह वह ईश्वर सबकी इन्द्रियस्वरूप धीवृत्तियोंसे देवेन्द्रत्व, नरेन्द्रत्व आदि सब विषयोंका अनुभव करता है । वह एक होता हुआ भी सबकी आत्मा है । आनन्दके सागर सत्यस्वरूप उसी ईश्वरका प्राणी भजन करे और किसी दूसरी जगह आसक्त न हो, क्योंकि दूसरी जगह आसक्ति रखनेसे आत्मपतन यानी जन्म-मरण आदिरूप संसार सागरमें जीवनका डूबना अनिवार्य है ॥ ३९ ॥

प्रथम अध्यायका सार—राजा परीक्षित्‌से श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस संसारमें सुनने कहनेकी तो बहुत-सी बातें हैं, लेकिन गृहस्थ आत्मतत्त्व ज्ञानी नहीं है उसका जीवन व्यर्थ ही व्यतीत होता है । विषयोंमें असक्त मनुष्य ऐसा अन्धा बन जाता है कि रात दिन लोगोंको मरते देखकर भी वह नहीं सोचता कि मैं भी एक दिन अवश्य मरूँगा । राजन्, अपनी आसन्न मृत्यु जानकर जिसने भगवान् नारायणका स्मरण कर लिया, उस बुद्धिमान्‌ने सम्पूर्ण अङ्गोंके साथ साधनोंकी सिद्धि कर ली । उस अधिक आयुसे कुछ भी फल नहीं है, जिससे भगवान्‌में भक्ति न उत्पन्न हुई । मैं तो आपसे उस एकही मुहूर्तकी प्रशंसा करूँगा जिस एक मुहूर्तमें खट्वाङ्ग राजा भगवान्‌के स्वरूपमें जा मिले । इसलिये हे राजन्, आप सोच न कीजिये, यह न सोचिये कि मेरी आयु समाप्त हो चुकी है अब मुझसे कुछ भी करते-धरते नहीं बनेगा । राजन्, अब भी आपकी आयुके सात दिन बच गये हैं । इतने ही में परमतत्त्व प्रकाशक इस

---

* घोड़ीमें गदहेसे उत्पन्न हुईका नाम अश्वतरी है । †देखिये—'येन शुक्लीकृता हंसा शुकाश्च हरितीकृताः । मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति ॥' ‡इसमें—'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा' यह श्रुति प्रमाण है । []'स्वरः स्मृतिरसुरानीकवीर्यः' इस पाठमें तो—'गन्धर्व आदि भगवान्‌का स्वर है तथा असुरसमूहोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादजी भगवान्‌की स्मृति हैं'—यह अर्थ है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भागवतका श्रवण कीजिये और अपना परलोक बना लीजिये। संसारके प्रत्येक प्राणीको चाहिये कि अन्तकाल उपस्थित जानकर वह स्त्री पुत्रादि विषयक आसक्ति छोड़करके किसी एकान्त पुण्यस्थानमें चलाजाय और वहीं स्नान करनेके बाद आसन जमाकर बैठ जाय। प्राणायाम द्वारा प्रणवको न भूलता हुआ मनको वशमें लावे। विषयोंकी ओर दौड़ रही इन्द्रियोंको बुद्धिकी सहायता से मनके द्वारा रोके और विषयोंकी ओर खींचे गये मनको भगवान्में लगावे। इसके बाद भगवान्के प्रत्येक अङ्गका ध्यान करे। धारणाके द्वारा मनको भगवान्में लगावे, क्योंकि धारणा मनके मलको दूर करती है। धारणासिद्धिके बिना समाधि सिद्ध नहीं होती, इसलिए मुमुक्षु पुरुषको चाहिये कि भगवान्के उस विराट् स्वरूप का ध्यान करें, जा सम्पूर्ण लोक लोकेश, देवसंघ और जीव समूह स्वरूप है। प्रथम अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

[सद्यो मुक्ति और क्रम मुक्तिका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, यों विराट्स्वरूपकी धारणासे सन्तुष्ट हुए भगवान्, श्रीहरिसे प्रलयसमयमें नष्ट हुई अपनी सृष्टि स्मृतिको प्राप्तकर मुझे ऐसी सृष्टि करनी चाहिए—इस निश्चयात्मिका बुद्धिसे युक्त होकरके अमोघ दृष्टिवाले ब्रह्माने प्रलयके पहले यह विश्व जैसा था वैसाही फिर इसे बनाया ❀ ॥१॥ शब्दमय वेदकी कर्मफल बोधक यह रीति है कि अर्थोंसे शून्य रहते हुए भी स्वर्गादि नाम–रूपोंसे साधककी बुद्धि तत्-तत् कर्मफलोंका ध्यान करती है, किन्तु मायामय पथमें यानी स्वर्गादिक लोकोंमें–सुखी वासनासे स्वप्न देख रहा-सा वह

श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुरा धारणयात्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात्॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धि ॥ १ ॥ शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ॥ परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥ २ ॥ अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥ सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥ ३ ॥ सत्यां क्षितौ किं कशिपोः

साधक परिभ्रमण करता हुआ अर्थोंको प्राप्त नहीं करता अर्थात् स्वर्गादि तत्-तत् लोकोंमें पहुँचकर भी साधक निरवद्य† सुखप्राप्त नहीं करता ॥ २ ॥ इसलिये हेयोपादेय विषयोंमें विवेकशील पुरुष नाममात्र सार स्वर्गादि भोगोंमें जितने अर्थसे देहका निर्वाह हो जाय, सिर्फ उतनेहीके लिये यत्न करे और उसमें भी आसक्ति न रखे तथा यह भी निश्चयकर लेवे कि यह सुख नहीं है।

† निरवद्य यानी एकान्तिक और आत्यन्तिक सुख। अवश्यभावी दुःखकी निवृत्तिको ऐकान्तिक सुख कहते हैं तथा निवृत्त हुए दुःखकी पुनः उत्पत्ति न होनेका नाम आत्यन्तिक सुख है।

❀ दृष्टान्त—किसी जगह भगवान्की कथा हो रही थी। उसमें देश देशान्तरके कथा सुननेवाले आये हुए थे। उसी बीचमें भगवान्का अनन्य प्रेमी भी बैठा था। इसी बीचमें कुदरतने अपना वो रूप दिखाया जिससे उसे छोड़कर सब इधर-उधर भागते ही नजर आये। इसलिए जो प्रेमसे भजन करेगा वही उनको प्राप्त कर सकेगा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि देहनिर्वाहके लिये भी उस अर्थके अन्यथा ही यानी विना किसी यत्नके ही सिद्ध हो जानेपर उस यत्नमें व्यर्थ परिश्रम समझकर उसकी प्राप्तिके लिये भी यत्न करना छोड़ दे। तात्पर्य यह है कि देह निर्वाहार्थ जितनी वस्तुकी आवश्यकता पड़ती हो यदि वह भी विना परिश्रमके मिल जाय, तो उसकी प्राप्तिके लिये व्यर्थ परिश्रम न करे ॥ ३ ॥ राजन्, पृथिवीके रहते शय्याके लिये अन्य प्रयासोंसे कौन-सा मतलब सिद्ध होगा ? स्वतः सिद्ध भुजाके रहते तकियेके लिये श्रम करनेकी कौनसी आवश्यकता है ? अञ्जलिके रहते अनेक तरहके भोजन पात्रोंकी क्या जरूरत ? दिशारूपी वल्कलोंके रहते या वृक्षोंकी छाल रहते वस्त्रोंको आवश्यकता ही क्या है ॥ ४ ॥ राजन्, क्या सड़कों पर कहीं फटे पुराने कपड़े नहीं हैं, क्या अपने छालादिके द्वारा दूसरोंका भरण-पोषण करनेवाले वृक्ष भीख नहीं देते ? क्या सभी नदियाँ सूख गई हैं, क्या पर्वतोंकी गुफाएँ बन्द हो गई हैं, क्या शरणमें आये हुए लोगोंकी भगवान् हरि रक्षा नहीं करते ? फिर बड़े विद्वान् लोग भी धनके मदसे मतवाले मूर्खोंकी सेवकाई किसलिये करते हैं ॥ ५ ॥ यों विरक्त पुरुष अपने अन्तः-

प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥ सत्यञ्जलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥ ४ ॥ चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ॥ रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान् कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥ ५ ॥ एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ॥ तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६ ॥ कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात् ॥ पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापञ्जुषाणम् ॥ ७ ॥ केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ॥ चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥ ८ ॥ प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ॥ लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥ ९ ॥ उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ॥ श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥ १० ॥ विभूषितं मेखलयाऽङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ॥

करणमेंस्वतः सिद्ध प्रिय आत्मा, सत्यस्वरूप अनन्त भगवान्का आनन्द परिपूर्ण मनसे भजन करे, जिसके होनेपर संसारके हेतु अज्ञानताका नाश होता है ॥ ६ ॥ भला इस संसारमें पशुओंको छोड़कर ऐसा कौन होगा, जो ऐसी भगवान् विष्णुकी धारणाको छोड़कर विषयोंका चिन्तन करेगा। जब कि वह स्वयं देख रहा है कि विषयसेवी पुरुष वैतरणी नदीमें पड़े नानाविध क्लेशरूप अपने कर्मोंका फल स्वयं भोग रहे हैं ॥ ७ ॥ कुछ लोग अपनी देहके अन्दर हृदयाकाशमें बस रहे प्रादेशमात्र रूपधारी शंख, चक्र, पद्म गदा धारण किये हुए चतुर्भुज पुरुषका धारणासे स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥ जिसका प्रसन्न वदन है, कमलके समान खिली हुई जिसकी बड़ी-बड़ी आँखे हैं, कदम्बके पुष्पके केसरके सदृश जिसका पीतवर्णका वस्त्र है, बहुमूल्य रत्नजटित सुवर्णके विजायठ जिसकी दोनों बाँहोंपर चमक रहे हैं, जिसके मस्तकपर महारत्न जटित सुन्दर किरीट और कानोंमें कुण्डल झलक रहे हैं ॥ ९ ॥ विकसित हृदय कमलके छत्रस्थानमें योगेश्वरों द्वारा जिसके चरणकमल स्थापित हुए हैं, जिसकी छातीपर श्रीवत्स है, गलेमें कौस्तुभमणि है और कभी भी म्लान न होनेवाली शोभासे युक्त वनमालासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिसका सारा शरीर ढका हुआ है ॥ १० ॥ कमरमें मेखला, अंगुलियोंमें कीमती अँगूठियों, चरणोंमें नूपुरों और हाथोंमें पडे, कंकण आदि अलंकारोंसे जो अलंकृत है। जिसके सिरपर चिकनी, साफ–सुथरी घुघराली भौंरों जैसी नीली अलकें मुखकी शोभा बढ़ा रही हैं और जो मन्द-मन्द मुसकानसे अत्यन्त ही सुन्दर दीख रहा है ॥ ११ ॥ जिसने उदार लीलासहित हँसीसे युक्त चितवनसे सुशोभित हो रहे भौंहोंके विक्षेपसे अपने भक्तोंके ऊपर अधिक अनुग्रह सूचित किया है, चिन्तनसे आविर्भूत हो रहे इस तरहके ईश्वरका प्राणी तबतक अवलोकन करता ही रहे जबतक कि धारणा द्वारा मन भगवान्में अवस्थित न हो जाय ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पैरसे लेकर मुसकुराहट युक्त मुँहतक भगवान्के एक-एक अङ्गका ध्यान करे और चरण आदि जिन-जिन अङ्गोंको ध्यानसे जीतता जाय, उन उन अङ्गोंको जोड़कर और और जंघा, जानु आदि अङ्गोंका उस रीतिसे ध्यान करे, जिस रीतिसे भगवान्में अपनी बुद्धि निश्चल रहे ॥१३॥ ब्रह्मादि देवता भी जिसकी अपेक्षा तुच्छ हैं ऐसे सर्वसाक्षी इस विश्वेश्वरमें जबतक भक्तियोग प्राप्त न हो जाय, तबतक हमेंशा अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों के अवसानमें परमपुरुषके इस विराट् स्वरूपका नियमसे ध्यान करता रहे ॥ १४ ॥ हे राजन्, जब योगी इस शरीरको छोड़ना चाहे, तब वह अपने मनको किसी पुण्यक्षेत्र तथा उत्तरायण आदि कालमें संसक्त न

स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥ ११ ॥ अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ॥ ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥१२॥ एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ॥ जितं जितंस्थानमपोह्य धारयेत् परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा ॥ १३ ॥ यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ॥ तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४ ॥ स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् ॥ काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥१५॥ मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ॥ आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥ १६ ॥ न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ॥ न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न

करे, क्योंकि देश और काल ये दोनों योगीकी योगसिद्धिके कारण नहीं हैं, किन्तु योगसाधनासे ही सिद्धि प्राप्त होती है, यों दृढ़ निश्चय करके पहले मनसे जितासु बने अर्थात् इन्द्रियोंको जीते और स्थिर तथा सुखकर आसनपर आसीन होकर अपने प्राणका नियमन करे ॥ १५ ॥ इसके बाद अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको वशमें करके उस बुद्धिको क्षेत्रज्ञमें मिला दे और उस क्षेत्रज्ञको शुद्ध आत्मामें यानी शुद्ध अन्तर्यामीमें या शोधित तत्पदार्थमें अवरुद्ध करके अर्थात् उस शुद्ध आत्माका शुद्धब्रह्ममें एकीकरण करके परम सुखको प्राप्त होकर धीरयोगी विधिनिषेध रूप कृत्यो से दूर हट जाय, क्योंकि उसके बाद दूसरी कोई प्राप्तव्य वस्तु शेष नहीं रहती ॥ १६ ॥ जिस आत्मस्वरूपमें देवताओं का परमप्रभु काल कुछ भी कमी-बेशी करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता, फिर वहाँ वे देवता ही कैसे कुछ करने-धरनेकी सामर्थ्य रख सकते हैं, जिन्होंने सारे जगत्को अपने कार्यमें प्रवृत्त किया है। हे राजन्, यदि आप मुझसे पूछें, कि देवता लोग भी समर्थ क्यों नहीं होते, तो मैं आपसे यही कहता हूँ कि जहाँपर सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण नहीं है, अहंकार नहीं है, महतत्त्व नहीं है तथा प्रकृति भी नहीं। वह आत्मस्वरूप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्पूर्ण उपाधियों से शून्य है ॥ १७ ॥ क्योंकि आत्मस्वरूपसे अतिरिक्त सम्पूर्ण पदार्थोंको, मिथ्या होनेके कारण, 'नेति-नेति' इस नामसे छोड़ देनेकी इच्छा रखनेवाले बड़े-बड़े योगीलोग देहादिमें आत्मत्वका त्यागकर यानी स्त्री, पुत्र, देहादिमें अहन्ता ममताका त्यागकर सर्वपूज्य भगवान् श्रीविष्णुके पदका ही क्षण क्षणमें अपने हृदयसे आलिङ्गनकर और किसी दूसरी वस्तुसे स्नेह न रखते हुए भगवान् विष्णुके उस पदको ही सबसे श्रेष्ठ मानते हैं ॥ १८ ॥ शास्त्रश्रवणसे उत्पन्न हुए ज्ञानके बलसे जिसकी विषयवासना बिलकुल नष्ट हो चुकी है, ऐसा ब्रह्मरूपसे व्यवस्थित हुआ मुनि यानी ब्रह्मनिष्ठ योगी इस रीतिसे उपरामको प्राप्त होवे यानी अपने शरीरका त्याग करे, अपने पैरकी एड़ी गुदा (मूलाधार) को दाबकर प्राणवायुको ऊपर ले जाय, फिर क्लेशको जीतकर नाभि आदि छः स्थानोंमें उसे चढ़ावे ॥ १९ ॥ नाभिमें [मणिपूरक नाड़ीमें] स्थित प्राणवायुको योगी अनाहतचक्रमें पहुँचाकर वहाँ से उदान वायुके द्वारा कण्ठके नीचे स्थित विशुद्धिचक्रमें उसे पहुँचावे । इसके बाद चित्तको वशमें करके योगी अपनी बुद्धिसे विशुद्धिचक्रसे वह वायु कहीं अलग न जा सके-इसका ध्यान रखकर धीरे-धीरे विशुद्धिचक्रके

महान्प्रधानम् ॥१७॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥१८॥ इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ॥ स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥१९॥ नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः॥ ततोऽनुसन्धाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद्भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ॥ स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥ २१ ॥ यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ॥ अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥ २२ ॥ योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ॥ न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥ वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ॥

अग्रभागरूप अपने तालुप्रदेशमें उस वायुको ले जाय ॥ २० ॥ अनन्तर अपने दोनों कान, दोनों नेत्र, नासिकाके दोनों छिद्र और मुख-इन सातों प्राणके मार्गोंको रोककर तालुप्रदेशमें पहुँचाये हुए वायुको भौंहोंके बीचमें विद्यमान आज्ञाचक्रमें ले जाय, वहाँ आधे मुहूर्ततक रहकर यदि उस योगीको किसीकी अपेक्षा न हो तो वह वहाँ अकुण्ठित ज्ञानदृष्टि से ब्रह्मस्वरूपमें मिलता हुआ ब्रह्मरन्ध्रका भेदनकर दे और इन्द्रियोंका त्यागकर दे ॥ २१ ॥ राजन्, यदि वह योगी ब्रह्मलोक स्थानमें जाना चाहता हो या सिद्धोंके विहारस्थानमें जाना चाहता हो, जहाँ अणिमादि आठों सिद्धियाँ सदा प्रस्तुत रहती हैं, अथवा गुणसमुदायरूप ब्रह्माण्डमें विहार करना चाहता हो, तो उसे उचित है कि वह शरीर छोड़ते समय अपने मन और इन्द्रियोंको न छोड़े, बल्कि शरीरका त्यागकर तत् तत् लोकोंका सुख भोगनेके लिये उनके साथ ही चला जाय ॥ २२ ॥ चूँकि योगेश्वरोंका लिंगशरीर वायुमय होता है अतः त्रिलोकीके बाहर और भीतर सब जगह उनकी गति रहती है, यह कहते हैं । राजन्, उपासना, तप, अष्टांगयोग और समाधिमें तत्पर रहनेवाले योगियोंकी जो गति है उसे कर्मपथके पथिक यज्ञादि कर्मों से कभी प्राप्त नहीं करते ॥ २३ ॥ आकाशमें ब्रह्मलोक पथसे ज्योतिर्मयी सुषुम्ना नाड़ीद्वारा जानेवाला वह योगी पहले अग्निके अभिमानी देवताके लोकमें पहुँचता है । राजन्, इसके बाद सर्वविध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मलोंसे शून्य होकर वह योगी कहींपर भी आसक्ति न रखता हुआ उस वैश्वानरके ऊपर वर्तमान भगवान् विष्णुके तारारूप शिशुमाराश्रय ज्योतिश्चक्रमें पहुँचता है अर्थात् उस चक्रमें स्थित सूर्यसे लेकर ध्रुव पर्यन्त सभी स्थानोंमें पहुँचता है ॥ २४ ॥ तदनन्तर सूर्य आदि देवताओंके आश्रय और सम्पूर्ण विश्वके नाभिस्वरूप उस भगवान् विष्णुके तारागण शिशुमारचक्रको पारकर वह अकेले अपने निर्मल लिंगशरीरसे ब्रह्मविदोंके निवासस्थान महर्लोकमें, जो अन्य लोगोंसे सदा नमस्कृत है, चला जाता है, जहाँपर एक-एक कल्पकी आयु भोगनेवाले ज्ञानवान् दीर्घजीवी भृगु आदि ऋषि आनन्द लेते रहते हैं ॥ २५ ॥ तदनन्तर कल्पके अन्तमें अनन्त भगवान्के मुखकी आगसे विश्वको अत्यन्त जलते हुए देखकर वह योगी दो परार्द्ध तक स्थिर

विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ॥ नमस्कृतं ब्रह्मवि-
दामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमन्ते ॥ २५ ॥ अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ॥ निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं
यद्द्वैपरार्ध्यं तद्‌ पारमेष्ठ्यम् ॥२६॥ न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ॥ यच्चित्ततोऽदः कृपयानिदंविदां दुरन्तदुःखप्रभवा-
नुदर्शनात् ॥ २७ ॥ ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोनलमूर्तिरत्वरन् ॥ ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्म-

रहनेवाला जो ब्रह्मलोक है उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मलोकके प्रति वहांसे निकल जाता है। जिस ब्रह्मलोकमें सिद्धेश्वरों द्वारा सेवित असंख्य विमान विद्यमान रहते हैं ॥ २६ ॥ जहाँ न किसीप्रकारका शोक है, न बुढ़ापा है, न मृत्यु है, न दुःख है और न भय है, किन्तु भगवान्के ध्यानको न जाननेवाले प्राणियोंकी दुरन्तदुःखोत्पत्तिके अवलोकनसे उनके ऊपर दया आ जानेके कारण उन सिद्धोंके चित्तसे जो एक दुःख उत्पन्न होता है सिवा उस एक दुःखके और किसी दूसरे दुःखकी उत्पत्ति ही कहांसे* ॥ २७ ॥ भगवद्भक्त ब्रह्माण्डका भेदन किस रीतिसे करता है, यह बतलाते हैं†—इसके अनन्तर वह योगी अपने लिङ्गशरीरसे पृथिवीमें मिलकर 'ब्रह्माण्डका भेदनकर मैं कैसे जाऊँगा' इत्यादि शंकासे शून्य होकरके पृथिवीरूपसे जलतत्त्वमें और उसके

*अथवा उन सिद्धेश्वरोंको जो एक मानसिक पीड़ा होती है उसे छोड़कर कहींसे भी जहाँ शोक आदिका नाम निशान नहीं है। यहाँपर यह समझ लेना चाहिए कि ब्रह्मलोकमें पहुँचे हुए प्राणियोंकी तीन प्रकार गति होती है—जो अपने पुण्यके उत्कर्षसे वहां पहुँचे रहते हैं वे दूसरे कल्पमें अपने पुण्यके तारतम्यसे अधिकारी बनते हैं। जो हिरण्यगर्भादिकी उपासनाके बलसे वहाँ चले जाते हैं वे ब्रह्माके साथही मुक्त हो जाते हैं और जो भगवान्के उपासक होते हैं वे अपनी इच्छासे ब्रह्माण्डका भेदनकर विष्णुपदको प्राप्त होते हैं। †ईश्वरसे अधिष्ठित प्रकृतिके किसी एक अंशसे महतत्त्व बनता है, उसके अंशसे अहङ्कार, अहङ्कारके अंशसे शब्दतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रा, अंशसे स्पर्शतन्मात्रा, उसके द्वारा वायु, उसके अंशसे रूपतन्मात्रा रूपतन्मात्राके द्वारा तेज, तेजके अंशसे रसतन्मात्रा, उसके द्वारा जल, जलके अंशसे गन्ध तन्मात्रा और गन्धतन्मात्रासे पृथिवी बनती है। एक साथ मिले हुए इन सबसे चतुर्दश भुवनात्मक विराट्शरीर बनता है। पचास करोड़ योजन तक फैले हुए विशाल उस शरीरके अंशका ही नाम पृथ्वी है, यह अण्ड और कटाह शब्दसे भी कही जाती है। पृथिवी का पहला आवरण एक करोड़ योजनतक फैला हुआ है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह भी पचास ही करोड़ योजनतक फैला हुआ है। जल आदिके जो परिपक्व अंश हैं वे ही पृथिवीके आवरणको दस गुना बढ़ा देते हैं। आठवाँ जो प्रकृति आवरण है वह तो व्यापक ही है। इन्हीं आवरणोंके भेदनकी रीति बतलाते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाद अग्नितत्त्वमें जा मिलता है। तदनन्तर शीघ्रता न करके किसी तरहके क्लेश, दाह आदिकी वहाँ शंका न होनेके कारण तत्तत् रूपसे अपनी इच्छाके अनुसार भोग भोगता हुआ ज्योतिर्मय हो वायुमें मिलकर भोगोंकी समाप्ति हो जानेपर वायुरूपसे फिर वृहत् आत्मलिङ्ग आकाशमें मिल जाता है ॥ २८ ॥ वह योगी अपनी नासिकासे गन्ध, जिह्वासे रस, आँखसे रूप त्वचासे स्पर्श, कानसे शब्द और तत्-तत् कर्मेन्द्रियोंसे तत्-तत् क्रियाको प्राप्त होता है ॥२९॥ वह भूतसूक्ष्मोंके लयस्थान तामस और इन्द्रियोंके लयस्थान राजस तथा मनोमय एवं देवमय सात्त्विक अहंकारको‡ प्राप्तकर यानी तीन प्रकारके अहङ्कारमें मिलकर उस अहङ्कारके साथही गति द्वारा महतत्त्वमें जा मिलता है। उसके अनन्तर सकल गुणोंके लयस्थान प्रधान [प्रकृति]में जा मिलता है ॥३०॥ उस प्रधानरूपसे आनन्दमय होकर सम्पूर्ण उपाधियोंके अवसानमें विकारशून्य, आनन्दस्वरूप परमात्माके स्वरूपको प्राप्तहो जाता है। हे राजन्, जो योग भगवान्की इस गतिको प्राप्त हो जाता है वह फिर लौटकर इस संसारमें नहीं आता, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ हे नृप, 'यच्छ्रोतव्यम्' इत्यादिसे जो आपने मुक्तिके दो मार्गोंके विषयमें

लिङ्गम् ॥ २८ ॥ घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ॥ श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥ २९ ॥ स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधम् ॥ ३० ॥ तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोऽवसाने ॥ एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ॥३१॥ एते सृती ते नृपवेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च ॥ ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः ॥ ३२ ॥ न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥३३॥ भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥३४॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ॥ दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ॥

प्रश्न किया था वे दोनों ये ही मार्ग हैं। एकका नाम सद्योमुक्ति है और दूसरेका नाम क्रममुक्ति है। वे दोनों मार्ग वेदद्वारा कहे गये हैं और अनादि हैं, मैंने अपने मनसे कोई कल्पना करके आपसे नहीं कहा है। प्राचीनकालमें ब्रह्माने भगवान् वासुदेवकी आराधना करके उनसे जिनके विषयमें प्रश्न किया था और उन्होंने जिनका निर्देश किया, वे येही दो मार्ग थे॥३२॥ इस संसारमें घूम रहे प्राणियोंकी मुक्तिके यद्यपि मुनियोंने तप, योग आदि अनेक मार्ग बताये हैं, तथापि इससे अन्य सुखदायक निर्विघ्न कोई मार्ग नहीं है, जिसके अनुष्ठानसे भगवान् वासुदेवमें भक्तियोग उत्पन्न होता हो ॥ ३३ ॥ क्योंकि भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर तीन बार अच्छी तरह वेदोंका पर्यालोचन करके उसी मार्गको अपनी बुद्धिसे सर्वोत्तम निश्चित किया, जिसके अनुष्ठानसे सर्वात्मक भगवान् श्रीहरिमें प्रेम उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ यदि आप यह कहें कि अनुभूत पदार्थोंमें ही प्रेम उत्पन्न होता है, भगवान् तो अनुभूत नहीं हैं उनमें

---

‡ अहङ्कार तीन प्रकारका होता है—(१) तामस, (२) राजस और (३) सात्त्विक। तामस अहङ्कारसे जडात्मक भूतसूक्ष्मोंकी उत्पत्ति होती है, राजससे बहिर्मुख दस इन्द्रियोंकी और सात्त्विक अहङ्कारसे मन तथा इन्द्रियके देवताओंकी उत्पत्ति होती है। इनका लय भी तामस, राजस और सात्त्विक अहङ्कारमें ही होता है यह समझ लेना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रेम कैसे होगा, तो इसका उत्तर यह है—दृश्य बुद्ध्यादि लक्षणों तथा अनुमानकी सामग्रीसे सर्वसाक्षी भगवान् श्रीहरि स्वात्मरूपसे सब भूतोंमें दृष्ट हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन्, इसलिये सर्वत्र

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६ ॥ पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ॥ पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

सर्वदा स्वात्मरूपसे भगवान् श्रीहरिका ही मनुष्योंको श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए ॥ ३६ ॥ सज्जनोंको आत्मरूपसे प्रकाशमान भगवान्के कथारूपी अमृतका जो लोग श्रवणपुटोंमें भरकर पान करते हैं वे लोग विषयोंसे मलिन किये गये अपने अन्तःकरणको पवित्रकर सकते हैं तथा भगवान्के चरणकमलके समीप पहुँच जाते है ॥ ३७ ॥

द्वितीय अध्यायका सार—हे राजन् प्रत्याहारके सिद्ध हो जानेपर धारणा सिद्ध होती है तथा वह प्रत्याहार भी वैराग्यके बलसे ही सिद्ध होता है। स्त्री, पुत्र आदि विषयोंमें दोषबुद्धि रखनेसे मनुष्यको उनसे विरक्ति हो जाती है। विचारकर देखनेसे यह सारा संसार निःसार प्रतीत होता है तथा सारवस्तुका अपने आप अनुभव होने लगता है—इत्यादि पूर्व अध्यायमें कही गई रीतिसे धारणा करता हुआ योगी धीरे-धीरे ब्रह्मस्वरूपमें मिल जाता है। यदि विराट्स्वरूपमें धारणा न रह सके, तो अपने हृदयके अन्दर विराजमान शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले भगवान् विष्णुमें धारणा करनी चाहिए। हे राजन्, जब योगी इस शरीरको छोड़ना चाहे तो स्थिर आसनपर बैठ जाय और अपनी एड़ीसे गुदाको दाबकर प्राणोंका संचारण करे। नाभि, हृदय, छाती, तालु, भ्रूमध्य तथा मस्तकमें क्रमशः पहुँचे हुए प्राणोंका त्याग कर दे। इसीको 'सद्यो मुक्ति, कहते हैं इसे किसी देश या कालकी अपेक्षा नहीं रहती। यह योग शास्त्रोंमें अच्छी तरह वर्णित है। हे राजन्, लिङ्ग शरीरसे पृथ्वी आदि तत्त्वोंमें मिलकर वहाँ किसी प्रकारके दुःखकी आशङ्का न होनेसे यथेच्छ विस्तार करके क्रमशः प्रत्येक आवरणको भेदन करता हुआ अन्तमें जो योगी परमानन्दके स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। वह फिर वहाँसे लौटकर इस संसारमें नहीं आता। इस मार्गके विषयमें जो मुझसे प्रश्न किया था, उसके विषयमें आपसे मेरा यह कहना है कि मोक्षके वे ही दो मार्ग हैं। एकका नाम सद्योमुक्ति है और दूसरेका नाम है क्रममुक्ति। द्विवीय अध्याय समाप्त॥

अथ त्रितीयोऽध्यायः

(तत्-तत् कामनाओंसे तत्-तत् देवताओंकी उपासना तथा उनमें भगवद्भक्तिकी प्रधानताका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कदाचित् दैवयोगसे मनुष्यशरीर पाये हुए जीवोंमें मृत्युको प्राप्त हो रहे विद्वान् मनुष्योंका जो कर्तव्य आपने मुझसे पूछा था, सो मैंने आपसे

श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥ नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्प-

यों यह हरिकथा श्रवणादिरूप कर्तव्य कह दिया ॥ १ ॥ अब आपसे सकाम मनुष्योंका कर्तव्य बतलाता हूँ, सुनिये—ब्रह्मतेजकी कामना रखनेवाला देवपति ब्रह्माकी, अपनी इन्द्रियोंको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निपुण बनानेकी चाह रखनेवाला इन्द्रकी और सन्तानकी इच्छा रखनेवाला दक्ष आदि प्रजापतियोंकी पूजा करे ॥ २ ॥ श्री [सौन्दर्य या सम्पत्ति] की इच्छा रखनेवाला देवी दुर्गाकी, तेजकी कामनावाला सूर्यकी, धन चाहनेवाला आठ वसुओंकी और वीर्यकी चाह रखनेवाला वीर्यवान् होकर ग्यारह रुद्रोंकी पूजा करे ॥ ३ ॥ अन्नादिकी इच्छावाला अदितिकी, स्वर्गकी कामनावाला अदितिके लड़कोंकी यानी बारह आदित्योंकी, राज्यकी इच्छा रखनेवाला विश्वेदेवोंकी और अपने देशकी प्रजाओंकी स्वाधीनता चाहनेवाला स्वतन्त्रता दिलानेवाले साध्योंकी पूजा करे ॥४॥ लम्बी आयु चाहनेवाला अश्विनीकुमार देवोंकी, पुष्टि चाहनेवाला पृथिवीकी और प्रतिष्ठा चाहनेवाला पुरुषलोकके माता पिता द्यावाभूमिके अभिमानी देवताकी पूजा करे ॥५॥ रूपकी कामना करनेवाला गन्धर्वोंकी, स्त्री चाहनेवाला उर्वशी अप्सराकी और सबके ऊपर आधिपत्य जमानेकी चाह रखनेवाला ब्रह्माकी पूजा करे ॥६॥ यश चाहनेवाला यज्ञोपाधि भगवान् विष्णुकी, धनसञ्चयकी इच्छा रखनेवाला वरुणकी, विद्या चाहनेवाला शंकरकी, और स्त्री पुरुषमें परस्पर प्रेम चाहनेवाला सती पार्वतीकी आराधना करे ॥ ७ ॥ धर्म चाहसेवाला उत्तमश्लोको

तिम् ॥ इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥ देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥ वसुकामो वसून्रुद्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३ ॥ अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥ ४ ॥ आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥ प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥ ५ ॥ रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सरउर्वशीम् ॥ आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥ यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ॥ विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थ उमां सतीम् ॥७॥ धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन्पितॄन्यजेत ॥ रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥८॥ राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् ॥ कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् । १० ॥ एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ॥ भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतः ॥ ११ ॥ ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ॥ कैवल्यसम्मतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् १२॥ शौनक उवाच ॥ इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य

पाधि भगवान् विष्णुकी, सन्तानवृद्धि चाहनेवाला पितरोंकी, बाधाओंकी निवृत्ति चाहनेवाला यक्षोंकी और बल चाहनेवाला पुरुष मरुद्गण देवोंकी पूजा करे ॥८॥ राज्य चाहनेवाला मन्वन्तरके पालक मनुओंकी, शत्रुओंको मारनेकी इच्छा रखनेवाला राक्षसकी, भोगकी चाह रखनेवाला चन्द्रमाकी और वैराग्य चाहनेवाला मनुष्य परमपुरुष मायातीत ईश्वरकी आराधना करे ॥९॥ किसीप्रकारके फलकी इच्छा न रखनेवाला या सर्वविध सुखोंकी इच्छा रखनेवाला या उदारबुद्धि होनेके कारण केवल मोक्ष चाहनेवाला पुरुष तीव्रभक्तियोगसे निरुपाधिकपूर्ण परब्रह्म परमेश्वर
५ की आराधना करे ॥ १० ॥ उपर्युक्त इन्द्र आदि देवताओंकी पूजा करनेवाले पुरुषोंको भी भगवद्भक्तोंकी सत्सङ्गतिमें भगवान्में जो अटल भक्ति उत्पन्न हो जाती है केवल इतनाही इस संसारमें परमपुरुषार्थका लाभ है और सब फल तो तुच्छ हैं ॥ ११ ॥ हे राजन्, भगवान्की जिन कथाओंका श्रवण करनेपर सत्त्व, रज और तमरूपी तरङ्गों तथा इनसे उत्पन्न होनेवाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राग आदिके समूहका नाश करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है, जिनका श्रवण करनेपर मन प्रसन्न होता है एवं विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न होता है और इसके अनन्तर मोक्षप्राप्तिमें साधक भक्तियोग उत्पन्न होता है, श्रवणसुखसे तृप्त हुआ भला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो भगवान् श्रीहरिकी उन कथाओंमें प्रेम न करेगा ॥ १२ ॥ श्रीशौनकजीने कहा—हे सूतजी, इसप्रकार श्रीशुकदेवमुनि द्वारा कही गई बातें सुनकर भरतकुल श्रेष्ठ राजा परीक्षित्ने श्री व्यासजीके पुत्र शब्दब्रह्ममें निष्णात परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार करनेवाले श्रीशुकदेवजीसे फिर कौनसा दूसरा प्रश्न पूछा॥ १३ ॥ हे विद्वान् सूतजी, सुननेकी इच्छा रखनेवाले हमलोगोंसे आप यह कह सकते हैं, क्योंकि हमलोगोंकी यह अटल धारणा है कि भगवद्भक्त सज्जनोंकी सभामें जो बातें होती हैं उनकी समाप्ति श्रीहरिकी कथामें ही होती है ॥ १४ ॥ फिर वह पाण्डववंशी महारथी राजा परीक्षित् तो भगवान्के परम भक्त थे ही, जिन्होंने बचपनके बच्चोंके खिलौनोंसे खिलवाड़ करते हुए भी कृष्णपूजादिरूप खेलको अपनाया था ॥ १५ ॥ और व्यासजीके पुत्र श्रीशुकदेवमुनि भी भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे ही। ऐसे सज्जनोंके समागममें भगवान्के

भरतर्षभः ॥ किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥ १३ ॥ एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ॥ कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४ ॥ स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः ॥ बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५ ॥ वैयासकिश्च भगवान् वासुदेवपरायणः ॥ उरुगायगणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६ ॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ॥ तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥ १७ ॥ तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ॥ न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८ ॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ॥ न यत्कर्णपथापेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ॥ जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ २० ॥ भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ॥ शावौ करौ नो कुरुतः

गुणोंसे परिपूर्ण अवश्य ही बड़ी-बड़ी कथाएँ हुई होंगी ॥ १६ ॥ जिस पुरुषने भगवद्विषयक वार्तासे एक क्षण भी बिताया है, उसकी आयु छोड़कर यह सूर्यदेव सबेरे उदित होते हुए तथा सायंकालको अस्त होते हुए प्रतिदिन प्राणियोंकी आयु निःसन्देह व्यर्थमें हरते जाते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवत्-चर्चाके सिवा जो समय और कामोंमें व्यतीत होता है वह व्यर्थ ही चला जाता है ॥ १७ ॥ यदि आप यह कहिये कि जीवन धारण करना ही उनकी आयुका फल है, तो क्या वृक्ष जीवित नहीं रहते, भाथी क्या स्वाँस नहीं लेती, क्या गाँवके दूसरे* पशु नहीं खाते और मैथुन नहीं करते ? ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिसके कर्णपथमें कभी नहीं आये वह पुरुषाकार पशु कुत्ते, विष्ठा खानेवाले सूअर, ऊँट तथा गदहेके समान कहा गया है ॥ १९ ॥ उरुक्रम भगवान्की लीलाओंका श्रवण न करनेवाले मनुष्यके जो कर्णपुट हैं वे व्यर्थके छिद्रमात्र हैं। हे श्रीसूतजी, यदि उसकी दुष्ट जीभ भगवान्की कथाओंका गान नहीं करती, तो वह मेढककी जीभके समान व्यर्थ टर्र-टर्र करनेवाली है ॥ २० ॥ रेशमी पगड़ी और किरीटसे सेवित हुआ भी जो मस्तक भगवान्के सामने नहीं झुकता वह शरीरके ऊपर केवल

* 'अपरे' यह नराकारको पशु मानकर कहते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक बोझा ही है। चमक रहे सुवर्णके कंकणोंसे अलंकृत हुए भी यदि दोनों हाथ भगवान्‌की पूजा नहीं करते तो मृतकके हाथके समान हैं ॥ २१ ॥ जो आँखें भगवान्‌की मूर्तियोंका निरीक्षण नहीं करतीं, वे मोरपंखकी आँखोंके समान हैं। मनुष्योंके दोनों पैर वृक्षमूलके तुल्य हैं, जो भगवान्‌के पुनीत तीर्थोंकी यात्राके लिये नहीं जाते ॥ २२ ॥ जो पुरुष भगवद्भक्तोंके चरणरजको अपने सिरपर कभी नहीं चढ़ाता, वह जीता हुआ भी मुर्देके समान है। जो मनुष्य भगवान्‌के चरणकमलोंमें समर्पितकी गई तुलसीकी सुगन्धि सूँघकर उसकी प्रशंसा नहीं करता वह सांस लेता हुआ भी मृतकतुल्य है ॥२३॥ उच्चरित हो रहे भगवान्‌के नामोंसे जो यह हृदय पिघल नहीं जाता, तो यह पत्थरके समान कठिन है। भगवान् श्रीकृष्णके नामोंके श्रवणके बाद जब आँखोंमें आँसू भर जायँ, सारा शरीर पुलकित हो जाय, तब ससझ लेना चाहिये कि हृदय द्रवीभूत हो गया है ॥ २४ ॥ इसलिये हे श्रीसूतजी, आत्मविद्या विशारद और

सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥२१॥ बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥ पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥ जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ॥ न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ २४ ॥ अथाभिधेह्यङ्ग मनोऽनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ॥ यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥ २५ ॥ इति श्रीम० म० द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भगवद्भक्तोंमें प्रधान व्यासजीके पुत्र श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌के सुन्दर प्रश्न करनेपर उस राजासे जो कुछ कहा था, वह सब कहिये, क्योंकि आप हमलोगोंके मनके अनुकूल ही सुन्दर भाषण कर रहे हैं ॥ २५ ॥

तीसरे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌से कहा—हे राजन्, मरणासन्न विद्वान् पुरुषोंके लिए जो आपने मुझसे पूछा था उसका उत्तर तो मैंने आपको सुना दिया, अब सकाम उपासना करनेवालोंके लिए भी सुन लीजिये। मनुष्यको चाहिये कि वह जो वस्तु चाहता हो, उस वस्तुके देवताकी उपासना करे। जैसे—ब्रह्मतेजकी कामनावाला इन्द्रकी तथा सन्तति चाहनेवाला पुरुष दक्ष प्रजापतियोंकी कामना अकामना किसी तरहसे भी भगवान् पुरुषोत्तमकी सेवा करनेसे प्राणोंको गति मिलती है और भगवान्‌में भक्ति दृढ़ हो जाती है। इस संसारमें भगवद्भक्ति ही सार है। श्रीशौनकजीने कहा—हे सूतजी, इस प्रकार श्रीशुकदेवमुनिकी बातें सुनकर राजा परीक्षित्‌ने फिर उनसे क्या पूछा? कृपाकर हमसे कहिये क्योंकि दोनों परम भगवद्भक्त थे। भगवद्भक्त सज्जनोंकी मण्डलीमें जो चर्चा चलती है उसकी परिसमाप्ति भगवान्‌की कथामें ही होती है। इसलिए मेरा अनुमान है कि ऐसे सज्जनोंकी सभामें भगवान्‌की बड़ी-बड़ी कथाएँ हुई होंगी। हमें सुननेकी बड़ी इच्छा है कृपा कर कहिए। जो मनुष्य भगवान्‌का भजन नहीं करते उनका जीवन व्यर्थ है। जो विषय लम्पट भगवान्‌का भजन नहीं करते वे पशुओंसे गये गुजरे हैं। जो हृदय भगवान्‌की कथा सुनकर द्रवीभूत नहीं हो जाता वह हृदय नहीं पत्थर है। इसलिए हे सूतजी, श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्‌ने जो पूछा था, वह हमसे कहिये। हम सुननेके लिए बहुत लालायित हैं। तीसरा अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❋

[सृष्टिके विषयमें राजा परीक्षित्‌का प्रश्न]

श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, व्यासजीके लड़के श्रीशुकदेवजीकी आत्मतत्त्वका निश्चय कर देनेवाली ऐसी बातें सुनकर राजा परीक्षित्‌ने अपनी निर्मलबुद्धि भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दी ॥१॥ उन्होंने शरीर स्त्री, पुत्र, घर हाथी-घोड़े आदि पशु, धन, भाई-बन्धु और सार्वभौम राज्यमें बढ़ी हुई अपनी ममताका त्याग कर दिया ॥२॥ हे सज्जनों, भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके श्रवणमें अत्यन्त श्रद्धालु महामना राजा परीक्षित्‌ने अपनी आसन्न मृत्यु जानकर धर्म, अर्थ और काम प्रधान जो कर्म हैं, उन्हें छोड़करके परमप्रेमसे भगवान् वासुदेवमें दृढ़ आत्मभावको प्राप्त होकर यही बात श्रीशुकदेवमुनिसे पूछा था, जो आज आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं ॥ ३, ४, ॥ राजाने कहा—हे पापशून्य ब्रह्मन्, आप सर्वज्ञ हैं, आपकी बात बहुत

सूत उवाच ॥ वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ॥ उपधार्य मतिं कृष्णे औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ॥ राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥ २ ॥ पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥ कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥ ३ ॥ संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ॥ वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ ॥ तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥ ५ ॥ भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ॥ यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥६॥ यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः ॥ यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ॥ आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन् करोति विकरोति च ॥ ७ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन् हरेरद्भुतकर्मणः ॥ दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८ ॥ यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा ॥ बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥ विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा ॥ शब्दे ब्रह्मणि

ही अच्छी है, क्योंकि ज्यों-ज्यों आप भगवान् की कथा कहते जाते हैं त्यों-त्यों मेरा अज्ञान नष्ट होता जाता है ॥ ५ ॥ सर्वव्यापक भगवान् अपनी मायासे ब्रह्मादि अधीश्वरोंसे भी अवितर्क्य इस विश्वकी जिस रीतिसे रचना करते हैं, जिस रीतिसे इसकी रक्षा करते हैं और जिस रीतिसे इसका फिर संहार कर डालते हैं तथा अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न वह परम पुरुष भगवान् जिस-जिस शक्तिका आश्रय लेकर क्रीडा करते हुए अपनेको ब्रह्मादि स्वरूपमें बनाते और ब्रह्मादि स्वरूपमें बने हुए अपनेको फिर राम, कृष्ण आदि नानाविध रूपोंमें परिणत करते हैं, वह कौनसी रीति है तथा वह कौन-कौन है शक्ति ? यह सब मैं आपसे फिर जानना चाहता हूँ ॥ ६, ७ ॥ हे ब्रह्मन्, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् विष्णुका चरित बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओंकी भी समझमें ठीक-ठीक नहीं आता ॥ ८ ॥ अनेक कार्योंका सम्पादन करते हुए अकेले भगवान् पुरुषरूपसे एक साथ या ब्रह्मादि अवतारों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्वारा क्रमशः जैसे प्रकृतिके गुणोंको अपनाते हैं ॥ ९ ॥ यह मुझसे कृपाकर यथार्थरूपसे कहिये, इसमें मुझे सन्देह है। ब्रह्मन्, आप विचारसे शब्दब्रह्म (वेद) में तथा अपने अनुभव से परब्रह्म स्वरूपमें निःसन्देह निष्णात हैं ॥ १० ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे ऋषियो, राजा परीक्षित्ने भगवान् श्रीहरिके अनुवाद करनेके लिये प्रार्थना करनेपर श्रीशुकदेवमुनिने भगवान् श्री हृषीकेशका मनही मन स्मरण करके प्रश्नोत्तर देना प्रारम्भकर दिया ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे—इस प्रपञ्चात्मक संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये लीलासे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशके रूपसे सत्त्व, रज और तम इन तीन शक्तियोंका ग्रहण करनेवाले, सम्पूर्ण देहधारियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित एवं अज्ञेय पन्थवाले अपार महिमाससे युक्त परमपुरुष परमात्माको नमस्कार है ॥ १२ ॥ धर्ममार्गके पथिक सज्जनोंके दुःख दूर करनेवाले, अधार्मिक दुष्ट पुरुषोंकी अनुत्पत्तिके हेतु, भिन्न-भिन्न देवताओंके भक्तोंको भिन्न-भिन्न

निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ॥ हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥११॥ श्रीशुक उवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ॥ गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२ ॥ भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाखिलसत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥१३॥ नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ॥ निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४ ॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ॥ लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चर-

देवताके रूपसे अभिलषित फल देनेवाले तथा परमहंसोंके आश्रममें स्थित पुरुषोंको बार-बार अन्वेषण करने योग्य आत्यतत्त्व प्रदान करनेवाले परमात्माको एक बार फिर नमस्कार है❀ ॥१३॥ भक्तोंके प्रतिपालक तथा भक्तिहीनोंके लिये दुर्ज्ञेय उस परमेश्वरको बार बार नमस्कार है, जिसके बराबर या जिसकी अपेक्षा श्रेष्ठ किसी दूसरेका ऐश्वर्य नहीं है ऐसे ऐश्वर्यसे स्वयंप्रकाश ब्रह्ममें रमण करनेवाले परमेश्वरको नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिसके नामोंका कीर्तन, जिसके रूपोंका स्मरण, जिसका दर्शन, जिसका वन्दन, जिसके गुणोंका श्रवण और जिसका पूजन लोकके पापोंको तत्काल नष्टकर देता है परममङ्गलमयी कीर्तिवाले उस भगवान्‌को मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ १५ ॥ विवेकशील सत्पुरुष जिसके चरणकमलोंकी सेवासे अन्तरात्माकी

❀ दृष्टांत— बदरीनारायण जाने के लिए किसी धर्मशाला में कलकत्ते का एक धनाढ्य वणिक् सपरिवार ठहरा हुआ था। वह महा आस्तिक और ब्राह्मण, अतिथि देवों में श्रद्धा करनेवाला था। उसकी पत्नी का नाम लक्ष्मी था। वह साक्षात् लक्ष्मी की तरह थी। जब वे वहाँ से चलने लगे तो दैव योग से चोरों ने उनका पीछा किया। जब वे शहर से दूर निकल गये तब चोरोंने साधुका वेष बनाकर उसकी पत्नी से पूछा अब तेरी और इनकी रक्षा कौन करेगा। क्योंकि हम लोग तो डाका मार कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पर यह कुकृत्य तुम्हारे साथ नहीं करेंगे क्योंकि हमारे और तुम्हारे समक्ष परमात्मा रहेंगे। पर उन दुष्टोंने विश्वासघात कर उसके पतिका प्राण निकाल लिया। और उसकी स्त्री से कहा तेरा पति मर चुका। अब पीछे २ क्या देख रही है जो कुछ हो अपने सहित दो। उसने कहा मैं उसीको देख रही हूं जो हमारे और तुम्हारे बीच में हैं। उसके कहते भगवान् प्रकट हो उसके पतिको जीवनदान और डाकुवों को मार कर चले गये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[अपने मनकी] इसलोक और परलोककी आसक्ति छोड़कर प्रयासरहित होते हुए ब्रह्मगतिको प्राप्तकर लेते हैं, उस मङ्गलमय यशवाले भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है ॥ १६ ॥ बड़े-बड़े दानी, तपस्वी, यशस्वी, मनस्वी [योगी] मन्त्रवेत्ता और सदाचारी-ये सबके सब अपने-अपने तप आदि कर्म जिसे समर्पण किये बिना क्षेम नहीं प्राप्त करते, उस पुण्य कीर्ति-वाले परमात्माको बार-बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ भील*हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस—इन जातियोंके जो पुरुष हैं वे तथा इनसे अतिरिक्त तथा जो पाप जातियोंके पुरुष हैं वे भी जिसके भक्तोंके आश्रयसे शुद्ध हो जाते हैं, उस प्रभवनशील [महामहिमाशाली] भगवान्‌को मेरा नमस्कार है ॥१८॥ आत्मज्ञानी जिनकी आत्मरूपसे उपासना करते हैं, जो त्रयीमय, धर्ममय, तपोमय हैं और जिनकी मूर्तिको निष्कपट भक्त ब्रह्मा, शिव आदि आश्चर्यसे देखते हैं, सम्पूर्ण प्राणियोंके अधीश्वर वे भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १९ ॥

णोपसादनात्सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ॥ विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥ तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ॥ क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १७ ॥ किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ॥ येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८ ॥ स एष आत्मात्मपतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ॥ गतव्यलीकैरजशङ्करादिभिर्वितर्क्यलिङ्गो भगवान्प्रसीदताम् ॥ १९ ॥ श्रियःपतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः ॥ पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥ २० ॥ यदङ्घ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ॥ वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ॥ स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२ ॥ भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरा विभुर्निर्माय शेते यदमूषु

लक्ष्मीपति, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धिपति, लोकपति, पृथिवीपति, अन्धक, वृष्णि और सात्वत यादवोंके पति तथा सम्पूर्ण आपत्तियोंसे बचानेवाले भक्तोंके प्रतिपालक भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥२०॥ जिनके चरणोंके ध्यानरूप समाधिसे विशुद्ध हुई बुद्धिसे ज्ञानी पुरुष आत्मतत्त्वको यथार्थरूपसे जान लेते हैं और अपनी रुचिके अनुसार जिनके माहात्म्यका भी वर्णन करते हैं, वह मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्माके हृदयमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान सृष्टि सम्बन्धिनी स्मृतिका विस्तार करनेवाले जिनके द्वारा प्रेरित होकर सरस्वती, अपने शिक्षा, व्याकरण आदि छः अंगोंके साथ, वेदके रूपमें ब्रह्माके मुखसे प्रादुर्भूत हुई, ज्ञानदाताओंमें सर्वश्रेष्ठ वह भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २२ ॥ जो व्यापक परम-

*शबरसे पर्णशबरीमें उत्पन्न है—किरात । ब्राह्मणीमें वैश्यके संसर्गसे उत्पन्न वैदेहक कहलाता है । वैदेहक पुरुषसे पुल्कसी स्त्रीमें उत्पन्न 'हूण' कहा जाता है । वैदक पुत्रका नाम 'आन्ध्र' है । निष्ठासे किरातीमें उत्पन्नका नाम 'पुलिन्द' है । चाण्डालके पुत्र को 'पुल्कस' कहते हैं । ब्राह्मण द्वारा वेश्यामें उत्पन्न हुएका नाम अम्बष्ठ है, अम्बष्ठकी कन्यामें ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न 'आभीर' कहा जाता है । कङ्क—कर्पर । राजासे वेश्यामें उत्पन्नको 'यवन' कहते हैं ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुरुष पृथिवी आदि पञ्च महाभूतोंके द्वारा जीवोंके इन बड़े-बड़े शरीरोंको बनाकर इनमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करते हैं, जो षोडशात्मा होकर यानी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ पृथिवी, जल, तेज, आकाश और वायु तथा मन—इन सोलह तत्त्वोंके प्रेरक होकर शब्द, स्पर्श आदि सोलह गुणोंका उपभोग करते हैं वह भगवान् मेरी वाणीको अलंकृतकर दें, जिसे श्रोता गण प्रेमके साथ सुनें ॥ २३ ॥ उस अमित तेजवाले भगवान् व्यासको भी मेरा नमस्कार है, जिसके मुखकमलसे निकले हुए ज्ञानमय आसवका वैशम्पायन आदि सौम्य भक्तोंने बड़े

पूरुषः ॥ भुङ्क्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः सोऽलङ्कृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥ २३ ॥ नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे ॥ पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥ वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

प्रेमके साथ पान किया था ॥ २४ ॥ हे राजन्, आपने जो मुझसे प्रश्न किया है यही पहले श्रीनारदजीने अपने पिता श्री ब्रह्माजीसे किया था। चारों वेदोंको हृदयंगत किये हुए ब्रह्माजीने यही श्रीमद्भागवतकी कथा श्रीनारदजीसे कही थी, जिसका वर्णन साक्षात् विष्णुभगवान्‌ने अपने प्रति किया था ॥ २५ ॥

चौथे अध्यायका सार—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कथामृतके पानकी लालसासे सृष्टि आदिके विषयमें परीक्षित्के पूछनेपर उत्तर देनेके लिये प्रसन्न चित्तसे श्रीशुकदेव मुनि मनही मन मङ्गलात्मक भगवान्‌की स्तुति करने लगे। इस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सत्त्व, रज तथा तम—इन तीन शक्तियोंका ग्रहण करनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित और अज्ञेय पन्थवाले अपार महिमासे युक्त परम पुरुष परमात्माको नमस्कार है—यों परमात्माकी स्तुतिकर लेनेके बाद श्री वेदव्यासजीकी स्तुति करके राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन् आपने जो मुझसे पूछा है, यही नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे पूछा था और ब्रह्माने नारदजीको यही श्रीमद्भागवतकी कथा कही थी, जिसको वर्णन भगवान् विष्णुने स्वयं अपने लिये किया था। चौथा अध्याय समाप्त ❀

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(भगवान् ब्रह्मा द्वारा भ्रममें पड़े नारदजीको तत्त्वज्ञानोपदेश)

हे राजन्, नारदमुनिने अपने पिता ब्रह्माजीसे कैसे प्रश्न किया था, यह भी सुन लीजिए। नारदजीने कहा—हे देवदेव, हे भूतभावन और सबके पूर्वज, आपको प्रणाम है।

नारद उवाच ॥ देवदेव नमस्तेऽतु भूतभावन पूर्वज ॥ तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥ यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्ट-

मुझे ज्ञानका वह साधन बतलाइये, जो आत्मतत्त्वका भलीभांति निर्देश करनेवाला हो❀ ॥ १ ॥ यह सम्पूर्ण संसार जिसके द्वारा प्रकाशित होता है, जो इसका आश्रय है, जिससे इसकी

❀ दृष्टान्त—पुत्र के बदचलन हो जानेपर पिताने पुत्रसे कहा—हे पुत्र, तुम अपने मित्रोंसे कहो कि—'मैं बड़ी विपत्तिमें घिरा हुआ हूँ' मेरी रक्षा करो। उसने वही किया पर किसीने साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्पत्ति होती है, जिसमें इसका लय होता है, यह जिसके अधीन रहता है और जिसका स्वरूप है, उसका वास्तविक स्वरूप क्या है ? हे प्रभो, तत्त्वतःमुझसे कहिये ॥२॥ यह सब आप जानते हैं, आप भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी हैं, अतः आपने अपने अलौकिक ज्ञानके प्रभावसे इस विश्वका स्वरूप निश्चितकर लिया । यह संसार आपको हाथमें रखे हुए आँवलेकी तरह दिखाई दे रहा है ॥३॥ हे प्रभो, सबसे पहले आप यही बतलाइए कि आपको ज्ञान देनेवाला कौन है, आपका आश्रय कौन है, आप किसके अधीन हैं, आपका कौन स्वरूप है, मेरी समझसे तो आपही स्वतन्त्र परमेश्वर हैं और आप अकेलेही अपनी मायासे भूतोंके द्वाराही भूतोंकी रचना करते हैं, अपनेमें ही उनका पालन करते हैं, उन्हें दूसरोंसे पराभवका अनुभव न कराते हुए स्वयं आप भी श्रमरहित होकर उस तरह अवस्थित रहते हैं जिस तरह मकड़ी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर जाला बनाती है, उसका अपनेमें ही पालन-पोषण करती है दूसरोंसे किसी तरहके उसके पराभावका अनुभव न कराती हुई अर्थात् दूसरोंसे अपनी शक्तिका अपलाप न कराती हुई स्वयं भी श्रमरहित होकर अवस्थित रहती है ॥ ४, ५ ॥ इसलिए हे विभो, आपसे अतिरिक्त किसी दूसरेको इस विश्वमें मैं उत्तम, मध्यम तथा अधम नहीं जानता । देव, मनुष्य आदि नामों, दो चरणवाली या चार चरणवाली आकृतियों और शक्ति आदि गुणोंसे

मिदं प्रभो ॥ यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्वं वद तत्वतः ॥ २ ॥ सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥३॥ यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ॥ एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४ ॥ आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयम् ॥ आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥ नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो ॥ नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किञ्चिदन्यतः ॥ ६ ॥ स भवानचरद्घोरं यत्तपः सुसमाहितः ॥ तेन खेदयसे नस्त्वं पराशङ्कां प्रयच्छसि ॥ ७ ॥ एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ विजानीहि तथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ॥ यदहं चोदितः सौम्य परधर्मप्रदर्शने ॥ ९ ॥

साध्य स्थूल तथा सूक्ष्म किसी भी वस्तुको मैं आपके सिवा किसी दूसरेसे उत्पन्न नहीं जानता । मैं तो केवल यही जानता हूँ कि संसारकी सभी चीजें आपसे ही उत्पन्न हुई हैं ॥ ६ ॥ इस तरह सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी आपने सुसमाहित होकर जो घोर तपस्या की, इससे हमें आप मोहितकर रहे हैं, क्योंकि आपके सिवा और कोई दूसरा ईश्वर अवश्य ही होगा, जिसकी आपने तपस्या की, ऐसी मेरे हृदयमें शंका होती है ॥७॥ हे सर्वज्ञ, हे सर्वेश्वर, यह जो कुछ मैं आपसे पूछ रहा हूँ, इसका उत्तर देते हुए आप हमें पूर्ण रीतिसे समझाइए, जिससेकि आपके समझानेपर मैं ठीक-ठीक समझ जाऊँ ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने कहा--हे वत्स, तुम्हारा सन्देहपूर्वक यह प्रश्न बहुत सुन्दर है, तुम बड़े दयालु हो, क्योंकि हे सौम्य, तुमने प्रश्न करके भगवान्के गुणोंका प्रकाशन करनेमें मुझे प्रवृत्त किया है, इसलिए मैं ऐसा समझता हूँ कि तत्त्वजिज्ञासु होते हुए भी तुमने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की ॥ ९ ॥ हे नारद, 'एकः सृजसि भूतानि' इत्यादिसे जो तुम यह कहते हो कि 'आपही भगवान् हैं' सो तुम्हारा यह कहना झूठ नहीं है, क्योंकि जैसा तुम मुझे कह रहे हो वैसा मेरा ऐश्वर्य तो है ही अर्थात् जितने ऐश्वर्य होनेका मुझमें तुम

उसका न दिया । इसलिये जो विपत्ति में काम आवे वही परोपकारी है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्णन करते हो, उतना ऐश्वर्य तो मुझमें है हो, परन्तु मुझसे भी बढ़कर जो ईश्वर है उसे न जानकर केवल भ्रान्तिसे तुम मुझेही ईश्वर कहते हो ॥ १० ॥ जिस तरह सूर्य, अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, तारे आदि इस जगत्‌में भगवान्‌के ही प्रकाशसे लोकोंको प्रकाशित करते हैं, उसी तरह मैं भी जिसने अपने प्रकाशसे इस विश्वको प्रकाशित किया है, उसीके प्रकाशसे इसे सृष्टि रूपमें अभिव्यक्त रहता हूँ ॥ ११ ॥ हे नारद, तुम्हारे जैसे बहुतसे लोग जिसकी दुर्जय मायासे विमोहित होकर मुझे जगत्‌का कारण कहते हैं मैं उस भगवान् वासुदेवको नमस्कार करता हूँ और उसी भगवान्‌का ध्यान करता हूँ ॥ १२ ॥ यह भगवान् मेरे कपटको जानते हैं, ऐसा सोचकर जिस भगवान्‌के दृष्टिपथमें खड़ा होनेमें भी लज्जित हो रही मायासे विमोहित हुए हमरे सदृश दुर्बुद्धि पुरुष ही—ये सब चीजें मेरी हैं, इनका कर्ता मैं हूँ—इस तरह झूठी केवल अपनी प्रशंसा किया करते हैं ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन्, पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत, जन्मके कारण-

नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भो ॥ अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ॥
यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥ तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥१२॥
विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ॥ विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥
वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥१४॥ नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः ॥ नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥१५॥
नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥१६॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ॥ सृज्यं सृजामि
सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८ ॥ कार्य-
कारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ॥ बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥ स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ॥ स्वलक्षित-
गतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥ २० ॥ कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ॥ आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥ २१ ॥

स्वरूप कर्म, इन्हें क्षोभित करनेवाला काल, उसके परिणामका हेतु स्वभाव और भोक्ता जीव—ये सभी पदार्थ तत्त्वतः भगवान् वासुदेवसे भिन्न नहीं हैं ॥ १४ ॥ सभी वेद नारायणपरक हैं, सब देवता नारायणके ही अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं, सभी स्वर्ग आदि लोक नारायणपरक हैं और ये सभी यज्ञनारायणकी प्राप्तिके साधन हैं ॥१५॥ प्राणायामादि योग, तप, ज्ञान और मोक्ष-रूप गति—ये सभी नारायणपरक हैं ॥१६॥ सर्वात्मक, सर्वसाक्षी, कूटस्थ ईश्वरके कटाक्षसे प्रेरित हुआ तथा उसीसे उत्पन्न हुआ मैं उसके रचने योग्य भी इस जगत्‌की रचना करता हूँ ॥१७॥ सर्वव्यापक निर्गुण परमेश्वरने संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिए मायाके द्वारा सत्, रज तथा तम इन तीन गुणोंका ग्रहण किया है ॥ १८ ॥ ये तीनों गुण पञ्चमहाभूत, देवता और इन्द्रियोंके कारण होकर वस्तुतः सर्वदा मुक्त हुए भी मायाको पकड़े हुए जीवको कार्य-कारण-कर्तृत्वमें तत्-तत् अभिमान द्वारा बाँध लिया करते हैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्, सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण जीवकी बुद्धिके ऊपर परदा डाल देनेवाले हैं, अतः इन तीनों गुणोंके कारण जिसके स्वरूपको जीव समझनेमें समर्थ नहीं है ऐसे भगवान् अधोक्षज सारे विश्वके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा मेरे भी ईश्वर हैं। इनके तत्त्वका अवलोकन पूरी तरह इनके भक्तोंने ही किया है ॥ २० ॥ मायाके ईश भगवान्ने अपनी मायासे अनेक रूप होनेकी इच्छा करते हुए अपने स्वरूपमें इच्छानुसार लीन हुए काल, जीवोंके अदृष्ट और स्वभावकी सृष्टि करनेके लिए स्वीकार किया ॥ २१ ॥ भगवान् द्वारा स्वीकृत हुए उस कालसे सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंमें भेदभाव उत्पन्न हुआ, ईश्वरसे स्वीकृत हुए स्वभावसे उन गुणोंमें रूपान्तरकी उत्पत्ति हुई तथा जीवके अदृष्ट कर्मोंसे महतत्त्वकी उत्पत्ति हुई ॥ २२ ॥ सत्त्वगुण और रजोगुणसे वृद्धिको प्राप्त हुए तथा विकृत रहे महतत्त्वसे तमोगुण प्रधान द्रव्य-ज्ञान-क्रियात्मक सृष्टि होती है ॥ २३ ॥ यही अहङ्कार कहा गया है, यह रूपान्तरमें जाकर तीन रूपोंमें बट गया। जिसके ये तीन भेद हैं—वैकारिक, तैजस और राजस। इन तीनोंमें तीन तरहकी शक्तियाँ अन्तर्हित हैं। हे नारदजी, पृथिवी आदि पाँच महाभूतोंको उत्पन्न करनेवाली द्रव्यशक्ति, इन्द्रियोंको उत्पन्न करनेवाली क्रियाशक्ति और अन्तःकरण तथा देवताओंको उत्पन्न करनेवाली ज्ञानशक्ति है ॥ २४ ॥ फिर विकारको प्राप्त हो रहे तामस अहंकारसे आकाशकी उत्पत्ति हुई। उसका सूक्ष्मरूप

कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः ॥ कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२ ॥ महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् ॥
तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ २३ ॥ सोऽहङ्कार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥ द्रव्य-
शक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥ तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ॥ तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥२५॥
नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥ २६ ॥ वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः ॥
उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥२७। तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् ॥ रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥
विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत ॥ परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥ वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश ॥ दिग्वा-

और गुण शब्द है। वह शब्द द्रष्टा तथा दृश्यका बोधक है❋ ॥ २५ ॥ अनन्तर विकारको प्राप्त हो रहे उस आकाशसे स्पर्शगुणयुक्त वायुकी उत्पत्ति हुई। वह आकाशके संयोगसे शब्दवान् भी हुआ। उस वायुका ही भेद शरीर धारण करनेवाला प्राण हुआ और वह वायु इन्द्रिय, मन और शरीरको निपुण बनानेमें कारण बना ॥ २६ ॥ तदनन्तर काल, और स्वभावसे विकारको प्राप्त हो रहे उस वायुसे भी स्वतः रूप गुणवाला तथा अपने कारणभूत वायु तथा आकाशके सम्बन्धसे स्पर्श और शब्दगुणवाला तेज उत्पन्न हुआ ॥२७॥ फिर विकारको प्राप्त हो रहे उस तेजसे रसात्मक जलकी उत्पत्ति हुई। उस जलमें अपना गुणरस तो था ही फिर भी वह तेज वायु एवं आकाशके सम्बन्धसे रूप, स्पर्श तथा शब्द गुणसे भी युक्त हुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर विकारको प्राप्त हो रहे उस जलसे गन्धगुणसे युक्त पृथिवीकी उत्पत्ति हुई। वह पृथिवी आकाश, वायु, तेज और जलके सम्बन्धसे शब्द, स्पर्श, रूप तथा रसगुणसे

❋जैसे भीतकी आड़में छिपकर किसी पुरुषके 'हाथी. हाथी' ऐसा कहनेपर उस 'हाथी' शब्दसे हाथी देखनेवाला जो पुरुष है तथा उस पुरुष द्वारा दिखाई पड़नेवाला जो हाथी है—उन दोनोंको बोध हो जाता है, इसलिये शब्द द्रष्टा (देखनेवाला) और दृश्य (दिखाई देनेवाला) इन दोनों का बोध करानेवाला है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युक्त हुई। ॥ २६ ॥ सात्त्विक अहंकारसे मन और उसका अधिष्ठाता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ तथा उसीसे ये दश देवता उत्पन्न हुए—दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण, दोनों अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति। इनमें प्रथम पाँच देवता श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जीह्वा तथा घ्राण—इन पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठाता हैं तथा अग्निसे लेकर प्रजापतितक ये पाँच वाणी, हाथ, पैर, गुदा और मूत्रेन्द्रिय—इन पाँच कर्मेन्द्रियोंके अधिष्ठाता हैं ॥ ३० ॥ चूँकि ज्ञानशक्ति, बुद्धि और क्रिया शक्ति-प्राण ये दोनों तैजस अहङ्कारके कार्य हैं, इसलिये विकारको प्राप्त हो रहे तैजस अहङ्कारसे कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण—ये पाँच ज्ञानविशेष रूप इन्द्रियाँ एवं वाणी, हाथ, पैर, गुदा और मूतेन्द्रिय-ये पाँच क्रियाविशेष रूप इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई ॥३१॥ हे ब्रह्मवित्तम, पाँचों महाभूत, दसों इन्द्रियाँ, मन और सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण ये सभी पदार्थ जब असङ्गत होकर यानी अलग-अलग रहकर शरीरके निर्माणमें समर्थ न हो सके ॥ ३२ ॥ तब भगवान्‌की शक्तिसे प्रेरित होकर इन्होंने एक दूसरेमें परस्पर मिलकर सत्त्व और असत्त्व यानी मुख्य तथा गौणभावको लेकर समष्टि एवं व्यष्टिरूप इस दो तरहके

तार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ३० ॥ तैजसात्तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन् ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ ॥
श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेढ्राङ्घ्रिपायवः ॥ ३१ ॥ यदैतेऽसङ्गता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः ॥ यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥३२॥
तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ॥ सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् ॥ कालकर्म-
स्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ॥ ३४ ॥ स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः ॥ सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५ ॥
यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः ॥ कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभि ॥ ३६ ॥ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ॥ ऊर्वो-
र्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजयत ॥ ३७ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोकोमहात्मनः

ब्रह्माण्डरूप पिण्डात्मक शरीरकी रचनाकर डाली ॥ ३३ ॥ हजारों वर्षोंके बाद जलमें सोये हुए अचेतन अण्डको काल, कर्म और स्वभावमें प्रविष्ट होकर परमात्माने सचेतन बनाया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर वही परमात्मा उस अण्डेको फोड़कर उससे बाहर निकल आया। उसके हजारों जाँघ, हजारों पैर, हजारों हाथ, हजारों आखें, हजारों मुख और हजारों सिर थे ॥३५॥ जिसके अङ्गोंसे विद्वान् लोग यहाँ अनेक लोगोंकी कल्पना करते हैं। कमरसे लेकर नीचे पैरतकके सात अङ्गोंसे अतल आदि सात लोकोंकी तथा जाँघसे ऊपरके सात अङ्गोंसे भू आदि सात लोकोंकी कल्पना करते हैं ॥ ३६ ॥ इस परमपुरुषका मुख है-ब्राह्मण, भुजाएँ हैं क्षत्रिय, भगवान्‌की जंघाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ इस महात्माके पैरोंसे

†पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश-इन पाँचोंसे से जिसकी जैसी उत्पत्ति होती गई, क्रमशः वे अपने पिछले कारणोंसे भी सम्बद्ध होनेके कारण उनके गुणोंसे युक्त होते गये। इसलिये उत्तरोत्तरमें गुण बढ़ते गये। जैसे कि आकाश केवल शब्द गुणवाला उत्पन्न हुआ, लेकिन उस आकाशसे उत्पन्न वायुमें अपने कारण आकाशका गुण शब्द भी आ गया, अतः वह स्पर्श तथा शब्द दो गुणवाला हो गया, इसी तरह तेज, वायु और पृथिवीमें भी गुण बढ़ते गये। एक तो उनका अपना गुण था ही बाकी वे अपने पूर्वजोंसे अपनाये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भूलोक, नाभिसे भुवर्लोक, हृदयसे स्वर्गलोक, और छातीसे महर्लोककी कल्पनाकी गई है ॥ ३८ ॥ ग्रीवामें जनलोक, दोनों स्तनोंसे तपोलोक और मस्तकोंसे सत्यलोककी कल्पना की गई है। और वैकुण्ठ नामक जो ब्रह्मलोक है वह सनातन है। सृज्य प्रपञ्चोंके भीतर नहीं है ॥ ३९ ॥ उस विभुकी कमरमें अतललोक, उरुओंसे वितललोक, घुटनोंसे शुद्ध सुतललोक और जाँघोंसे तलातललोक की कल्पनाकी गई है ॥ ४० ॥ गुल्फोंसे महातललोक, पैरके पञ्जोंसे रसातल तथा पैरके तलवासे पाताललोककी कल्पनाकी गई है, इस तरह वह पुरुष चौदह लोकरूप

॥ ३८ ॥ ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ॥ मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥३९॥ तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ॥ जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥४०॥ महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ॥ पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

है ॥ ४१ ॥ अथवा इसके चरणोंसे भूलोक, नाभिसे भुवःलोक और सिरसे स्वर्लोक—इस तरह तीन लोकोंकी ही कितने विद्वानोंने कल्पना की है ॥ ४२ ॥

पाँचवें अध्यायका सार—तपस्यामें तत्पर ब्रह्माजीसे आश्चर्य चकित होकर नारदजीने पूछा–हे प्रभो, आप कृपाकर बताइये कि आपके सिवा और दूसरा वह कौन ईश्वर है जिसकी आप भी उपासना करते हैं ? मैं तो आपहीको ईश्वर समझता हूँ, लेकिन आप भी किसीकी उपासना करते हैं, इसलिये मेरे मनमें यह सन्देह हो रहा है। कृपा कर मेरे सन्देहको दूर कीजिये। ब्रह्माजीने कहा—हे नारद, सर्वव्यापक, सर्वशक्ति सम्पन्न और सबका ईश्वर एक कोई अवश्य है, जिसकी हम भी उपासना करते हैं। जिसके प्रकाशसे प्रकाशित हुए सूर्य आदि इस सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करते हैं तथा जो स्वयं प्रकाश है, उसका नाम है वासुदेव ! मैं उसकी प्रेरणासे इस संसारकी रचना करता हूँ। जितने वेद हैं सब भगवान् नारायण परक हैं इसी तरह देव, याग, योग, ज्ञान, तप, गति, लोक आदि—ये सभी भगवान् नारायणपरक हैं अकेले उसने त्रिगुणात्मिका मायाको लेकर नाम-रूपोंका विस्तार करनेके लिए अनेक रूपधारी बन गया। काल-कर्म और स्वभावात्मक उस भगवान्ने सबसे पहले सत्त्वादि गुणोंमें वैषम्य, परिणाम और महतत्त्वसे तीन तरहके अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई। सात्त्विक ज्ञानशक्तिमय उस अहङ्कारसे मन तथा उसका अधिष्ठाता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ तथा उसीसे कान, त्वचा, आँख, जीभ और प्राण-इन पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठाता क्रमशः दिशा, वायु, सूर्य, वरुण और अश्विनीकुमार एवं वाणी, हाथ, पैर, गुदा और मूत्रेन्द्रिय–इन पाँच कर्मेन्द्रियोंके अधिष्ठाता क्रमशः अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति ये पाँच देवता उत्पन्न हुए। क्रियाशक्तिमय तैजस अहङ्कारसे उपर्युक्त पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं तथा उसी तैजस अहङ्कारसे बुद्धि और प्राण भी उत्पन्न हुआ। द्रव्यशक्तिमय तामस अहङ्कारसे गुणोंके साथ-साथ आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथिवीकी उत्पत्ति हुई। ये सभी अलग अलग रहकर जब शरीरकी रचनामें समर्थ न हो सके तब भगवान्से प्रेरित होकर सत्त्व और असत्त्व भावको लेकरके समष्टि और व्यष्टिरूप दो तरहके पिण्डात्मक ब्रह्माण्डस्वरूप शरीरकी रचनामें समर्थ हुए। उस शरीरके हजारों वर्षतक जलमें निर्जीव पड़े रहनेपर परमात्माने काल, कर्म और स्वाभवमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रविष्ट होकर सजीव बनाया। उसके बाद हजारों जाँघ, पैर, बाहु, नेत्र, मुख और मस्तकोंसे युक्त परमात्मा स्वयं उस अण्डेको फोड़कर उससे बाहर निकल आये। विद्वान् लोग भगवान्के कमरसे नीचेके सात अङ्गोंसे अतल आदि सात लोक तथा उसके ऊपरके जाँघ आदि सात अङ्गोंसे भू आदि सात लोकोंकी कल्पना करते हैं और यों कल्पना कर भगवान्को चतुर्दश भुवनात्मक बतलाते हैं। पाँचवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

[उस विराट् भगवान्की विभूतियों कासहस्रशीर्षा इत्यादि श्रुतिप्रमाण प्रदर्शनपूर्वक वर्णन]

ब्रह्माजीने कहा—हे नारदजी, हम सब लोगोंकी वाणियों उन अधिष्ठात्री देवताओं और अग्निका उत्पत्ति स्थान उस विराट् भगवान्का मुख है, गायत्री आदि सात छन्दोंके उत्पत्ति स्थान उसकी त्वचा आदि सात धातुएँ हैं। हव्य (देवताओंके अन्न), कव्य (पितरोंके अन्न) और अमृत (देवता और पितरोंको अर्पणके बाद शेष मनुष्योंके अन्न)—इन सब

ब्रह्मोवाच ॥ वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः ॥ हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ १ ॥ सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ॥ अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥ २ ॥ रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ॥ कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥ ३ ॥ तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥ त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥४॥ रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः ॥ केशश्मश्रुनखान्यस्य शिललोहाभ्रविद्युताम् ॥ ५ ॥ बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च

अन्नों तथा मधुर आदि सब रसोंका; हमलोगोंको रसनेन्द्रिय और वरुणका भी उत्पत्ति स्थान उस विराट् पुरुषकी जीभ है ॥१॥ हमलोगोंके प्राण और वायुके उत्तम उत्पत्ति स्थान उसकी नासिकाके दोनों छिद्र हैं; अश्विनीकुमार; सम्पूर्ण औषधियों एवं साधारण तथा विशेषगन्धका उत्पत्ति स्थान उस विराट् पुरुषकी घ्राणेन्द्रिय है ॥ २ ॥ रूप और प्रकाशका उत्पत्ति स्थान उसकी चक्षु इन्द्रिय है ज्योतिश्चक्र तथा सूर्यके उत्पत्ति स्थान उसके नेत्र गोलक हैं; सम्पूर्ण दिशाओं और तीर्थोंके उत्पत्ति स्थान उसके दोनों कान हैं तथा आकाश एवं शब्दका उत्पत्ति स्थान उसकी श्रोत्रेन्द्रिय है ॥३॥ सभी वस्तुओंके सारांश और सौन्दर्यका भाजन उसका शरीर है तथा उसकी त्वचा स्पर्श, वायु और यज्ञोंका उत्पत्ति स्थान है ॥४॥ सभी वृक्षोंके या जिनसे यज्ञके कार्य सम्पन्न होते हैं ऐसे वृक्षोंके उत्पत्ति स्थान उसके रोम हैं। मेघोंके उत्पत्तिस्थान उसके सिरके बाल, बिजलीके उत्पत्ति स्थान उसकी दाढ़ी-मूछ तथा शिलाके और लोहके उत्पत्ति स्थान उसके हाथ-पैरके नाखून हैं ॥ ५ ॥ बहुधा सबका कल्याण करनेवाले लोकपालोंके उत्पत्ति स्थान विराट् भगवान्के बाहु हैं। उसका पादविन्यास भूर्भुवः स्वः—इन तीन लोकोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा क्षेम (प्राप्त वस्तुकी रक्षा) और शरण [भयसे रक्षा] का आश्रय है ॥ ६ ॥ भगवान्‌के चरण सर्वविध कामनाओं और वरके आधार हैं। जल, वीर्य, मेघ, सृष्टि, प्रजापति तथा सन्तानोत्पत्तिके लिये किये गये स्त्री सम्भोगसे उत्पतित आनन्दका उत्पन्न स्थान भगवान्‌का शिश्न है। हे नारदजी, भगवान्‌की गुदा यम, मित्र और मलत्यागका उत्पति स्थान है ॥७,८। हिंसा, दरिद्रता, मृत्यु और नरकका भी उत्पत्ति स्थान भगवान्‌की गुदा ही स्मृत है। पराजय, अधर्म और अज्ञानका भी उत्पत्ति स्थान भगवान्‌की पीठ है ॥ ९ ॥ उनकी नाड़ियाँ नद और नदियोंका उत्पति स्थान हैं तथा भगवान्‌की हड्डियोंका समूह है—पर्वतोंका उत्पत्ति स्थान प्रधान यानी माया, अन्नादिमें रसों समुद्रों और सभी जीवोंके निधनका उत्पत्ति स्थान भगवान् का उदर है ॥ १० ॥ उस परमपुरुषका हृदय है—सभी जीवोंके मनका उत्पत्ति स्थान। हे नारद, उस परब्रह्म परमात्मा का चित्त है—धर्म, तुम्हारा, मेरा, सनक-सनन्दन आदि कुमारों,

क्षेमस्य शरणस्य च ॥ ६ ॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ॥ अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ ७ ॥ पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥ पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ॥ ८ ॥ हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ॥ ९ ॥ नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च ॥१०॥ उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ॥ ११ ॥ विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥ अहं भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः ॥ १२ ॥ सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ॥ १३ ॥ पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ॥ १४ ॥ ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ १५ ॥ तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥ स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ॥ १६ ॥ एवं विराजं

भगवान् रुद्र, तत्त्वज्ञान और सत्त्वगुणका उत्पत्ति स्थान*। मैं,† तुम, शिव, तुम्हारे बड़े भाई सनक आदि ये मुनि, सुर, असुर, मनुष्य, हाथी, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष राक्षस, भूतगण, अजगर, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष तथा और दूसरे विविध प्रकारके जल, स्थल तथा आकाशमें रहनेवाले जीव, ग्रह, नक्षत्र, बिजली और मेघ आदि—ये सबके सब भूत, भविष्यत् तथा वर्तमानकालके जो प्राणी हैं वे सबके सब परमपुरुष स्वरूप ही हैं, उससे पृथक् नहीं हैं ॥ ११–१५ ॥ यह सारा विश्व एक उसी विराट् पुरुषसे व्याप्त है, वह इस जगत्‌से बाहर दस अंगुल और अधिक है। जैसे अपने मण्डलको प्रकाशमय बना रहा यह सूर्य उस मण्डलके बाहरके जगत्‌को भी प्रकाशमय बनाता है वैसेही वह परमपुरुष भी अपनेको

*यों भगवान् परमेश्वरसे उत्पन्न हुआ यह विश्व, सुवर्णसे उत्पन्न हुए कुण्डलकी नाईं उससे पृथक् नहीं है और वह भगवान् सर्व नियन्ता, सर्वप्रकाशक तथा नित्यमुक्त हैं यह जो अर्थतः सिद्ध है। यही 'सहस्रशीर्षा' इस पुरुषसूक्तके अर्थकथन द्वारा दृढ़ किया गया है। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इत्यादि तीन ऋचाओंका तो अर्थ पूर्व अध्यायमें ही बतला दिया गया है।

†यहाँ से लेकर साढ़े तीन श्लोकतक 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इसका अर्थ दिखलाते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकाशमय बनाता हुआ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको भी प्रकाशमय बनाता है। वह* विराट्पुरुष मृत्यु और कर्मफलको लाँघ गया है, अतः वह केवल सर्वात्मक ही नहीं है, किन्तु वह अभय और अमृतत्त्व [निजानन्दस्वरूप] का भी स्वामी है ॥ १६, १७ ॥ हे ब्रह्मन्, यही कारण है कि उस विराट पुरुषकी महिमा अपार है†। ये जितने भूः आदि लोक हैं वे सब जिस पुरुषके अवयवस्वरूप यानो चरणस्वरूप हैं उस विराट्पुरुषके अवयवभूत लोकोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंको स्थिति विद्वान् लोग समझते हैं‡। कहनेका तात्पर्य यह कि भू आदि सभी लोक भगवान्के चरण हैं और भगवान्के चरणस्वरूप इन्हीं लाकोंमें सब जोव निवास करते हैं ॥ १८ ॥ तीनों लोकोंका महर्लोक मस्तक है, उस महर्लोकके भी मस्तक है—उसके ऊपर जन, तप और सत्यलोक। उन लोकोंमें क्रमशः अमृत, क्षेम और अभय रखा हुआ है []। पूर्वकल्पमें भी त्रिलोकीके बाहरके ये जो जन, तप और सत्य तीनलोक हैं वे ही क्रमशः नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यतियोंके आश्रम थे तथा इन तीनोंसे अतिरिक्त चोथा जो ब्रह्मचर्य,व्रतसे हीन गृहस्थ था, उसका आश्रम त्रिलोकीके भीतर विद्यमान था ॥ १९ ॥ विविध योनियोंमें खूब परिभ्रमण करनेवाला पुरुष [क्षेत्रज्ञ-जीव] भोग और अपवर्ग प्राप्तिके साधनभूत दक्षिण और उत्तर दो मार्गोंपर चलता था। चूँकि दोनोंमें एक मार्ग अविद्या स्वरूप [कर्मस्वरूप] और दूसरा

प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥ सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥१७ महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ॥१८॥ अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥ पादास्त्रयो बहिश्चासन्न प्रजानां य आश्रमाः ॥ अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥ १९ ॥ सृती विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ॥ यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥२०॥ यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः ॥ तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन्। २१ ॥ यदाऽस्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः। नाविदं यज्ञसंभारान्पुरुषावयवादृते ॥२२॥ तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ॥ इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २३ ॥ वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥ २४ ॥ नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ॥ देवतानुक्रमः कल्पः

मार्ग विद्यास्वरूप [उपासनारूप] था, अतः दोनोंका आश्रय लेकर पुरुष दो मार्गोंपर चलता था ॥ २० ॥ जिससे ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ और उस ब्रह्माण्डमें भूत, इन्द्रिय तथा गुणात्मक विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ, वह ईश्वर उस विराट् देह और ब्रह्माण्डको उस तरह लाँघ गया, जिस तरह मण्डलके बीचमें रहनेवाला सूर्य अपनी किरणोंसे सब जगह प्रकाश करता हुआ अपने मण्डल और सारे विश्वको लाँघ जाता है ॥ २१ ॥ जब मैं उस विराट् अन्तर्यामी महात्माकी नाभिसे उत्पन्न कमलसे पैदा हुआ तब मैं उस पुरुषके अवयवोंके सिवा यज्ञके साधनोंको नहीं देखा ॥ २२ ॥ अतः मैंने उन्हीं साधनोंके उपस्थित रहनेके कारण उस परमपुरुषके अवयवोंसे ही इन सब वस्तुओंकी रचनाकी—यज्ञके पशु, यज्ञके लिए खम्भे, कुश, यह यज्ञभूमि जिसपर

* 'उतामृतत्वस्येशानो' इसका अर्थ बतलाते हैं—'वह विराट् पुरुष' इत्यादिसे।

† यह 'एतावानस्य' इसका अर्थ है। ‡यह 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इसका अर्थ है। []यह 'त्रिपादस्यामृतं दिवि' इसका अर्थ है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मैं इस समय बैठा हूँ, विविध गुणोंसे युक्त काल विविध पात्र आदि वस्तुएँ, व्रीहि आदि ओषधियाँ, घृत आदि स्नेह, मधुर आदि रस, सुवर्ण आदि लोह, मिट्टी, जल, यजुर्वेद तथा सामवेदकी ऋचाएँ, चातुर्होत्र, ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके नाम, स्वाहाकार आदि मन्त्र, दक्षिणा, ब्रह्मचर्य आदि व्रत, देवताओंके उद्देश्य, बौधायन आदि कर्मपद्धतिके ग्रन्थ, संकल्प; अनुष्ठानकी रीति; विष्णुक्रम आदि गतियाँ; देवताओंके ध्यान; प्रायश्चित्त और किये गए सम्पूर्ण कर्म भगवान्‌को कैसे समर्पित किए जाते हैं; यह विधि ॥ २३–२६ ॥ इस तरह पुरुषके अवयवोंसे मैंने यज्ञीय साधनोंका सम्पादन करके उसी यज्ञस्वरूप परमपुरुष ईश्वरकी उसी यज्ञके द्वारा पूजा की ॥ २७ ॥ तदनन्तर तुम्हारे भाई मरीचि आदि नौ प्रजापतियोंने समाहित होकर अव्यक्त होते हुए भी इन्द्रादि रूपमें व्यक्त हुए उस विराट् पुरुषकी पूजा की ॥ २८ ॥ इसके बाद अपने-अपने समयमें मनुओं; दूसरे ऋषियों, पितरों देवताओं, दैत्यों और मनुष्योंने भी यज्ञोंके द्वारा सर्व व्यापक उस विराट् भगवान्‌की पूजा की ॥ २९ ॥ उस भगवान् नारायणमें ही यह विश्व अधिष्ठित है, जिसने स्वतः निर्गुण होकर भी सृष्टिके प्रारम्भमें मायाके द्वारा असंख्य

सङ्कल्पस्तन्त्रमेव च ॥ २५ ॥ गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् ॥ पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥ २६ ॥ इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम् ॥ तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥ २७ ॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ॥ अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥२८॥ ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ॥ पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥२९॥ नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ॥ गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ ३० ॥ सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥३१॥ इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि ॥ नान्यद्भगवतः किञ्चिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥ ३२ ॥ न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ॥ न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥ ३३ ॥ सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः ॥ आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥३४॥ नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं

गुणोंको अपनाया ॥ ३० ॥ उसीसे नियुक्त होकर [प्रेरित होकर] मैं विश्वकी रचना करता हूँ, उसीके वशमें होकर भगवान् शंकरजी संहार करते हैं और त्रिगुणात्मक मायाको धारण करनेवाला वही विष्णुरूपसे परिपालन करते हैं ॥ ३१ ॥ हे तात, ईश्वरके विषयमें तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर मैंने इस रीतिसे तुम्हें कह सुनाया। कार्यकारणरूप यह संसार अथवा आगे उत्पन्न होनेवाला जो संसार है वह भी उस भगवान्‌से तनिक भी अलग नहीं है ॥ ३२ ॥ हे नारद, मैंने भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान् विष्णुका ध्यान किया है अतः मेरी भारती कभी भी झूठ नहीं होती, मेरे मनकी गति कभी भी असत्य नहीं होती और मेरी इन्द्रियाँ भी असत्पथपर कभी नहीं चलतीं ॥ ३३ ॥ हे नारद, वेदस्वरूप, पूर्णतपोमय और प्रजापतियोंका पूज्य तथा स्वामी होते हुए भी मैंने योगमार्गका आश्रय लेकर बड़ी निपुणताके साथ एकाग्रचित्त होकरके उस परमपुरुषकी बहुत खोज की लेकिन उसको मैं जान न पाया, जिससे मेरी उत्पत्ति हुई है ॥ ३४ ॥ तब शरणागत जनोंका संसारबन्धन काटनेवाले; मंगलदायक और सुसेव्य उस भगवान्‌के चरणोंपर मैंने अपना मस्तक रखा। उसके बाद मुझे ज्ञान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुआ कि भगवान्‌की महिमा अचिन्त्य है। जैसे आकाश स्वयं अपने विस्तारका अन्त नहीं पाता वैसेही जो स्वयं अपनी मायाके विस्तारका जब अन्त नहीं पाता तब भला मेरे जैसे दूसरे भगवान्‌की मायाका वैभव कैसे जान सकते हैं ॥३५॥ जिसके परमार्थ स्वरूपको न मैं, न तुमलोग, न भूतनाथ भगवान् शंकर ही जान पाते हैं, तो भला और दूसरे देवता कैसे जान पायँगे? उनकी मायासे मोहित मति होकर हमलोग उनकी मायासे निर्मित इस संसारको भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही जानते हैं, न कि पूर्ण रीतिसे ॥ ३६ ॥ हे नारद, हमलोग जिनके अवतारोंकी गाथाएँ गाया करते हैं किन्तु तत्त्वतः जिन्हें हमलोग जान नहीं पाते उन भगवान्‌को मेरा प्रणाम है ॥ ३७ ॥ वह यह आदि, अज, पुराणपुरुष कल्प-कल्पमें आपहो कर्ता बनकर अपनेमें अपनेसे अपनेको ही उत्पन्न करता है, पालन करता है और संहार करता है ॥ ३८ ॥ वह ईश्वर विशुद्ध केवल ज्ञानस्वरूप, सबका अन्तर्यामी, सन्देह आदिसे शून्य, स्थिर, सत्य,

सुमङ्गलम् ॥ यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ॥ ३५ ॥ नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ॥ तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥ ३६ ॥ यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः ॥ न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥ ३७ ॥ स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ॥ आत्मात्मन्यात्मनात्मानं संयच्छति च पाति च ॥ ३८ ॥ विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् ॥ सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥३९॥ ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ॥ यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥ ४० ॥ आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ॥ द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥ ४१ ॥ अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ॥ स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोक-पालास्तललोकपालाः ॥४२॥ गन्धर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ॥ ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ॥

पूर्ण, आदि अन्तरहित, निर्गुण, नित्य और अद्वितीय है ॥ ३९ ॥ हे नारदऋषे, जब मुनिलोग अपने देह, इन्द्रिय और मनको प्रशान्त बना लेते हैं तब उसके स्वरूपको जानते हैं तथा जब वही प्रकाशमान् स्वरूप असत् पुरुषोंके कुतर्कोंसे व्याप्त हो जाता है तब तिरोहित हो जाता है ॥ ४० ॥ विराट् पुरुषका प्रथम अवतार प्रकृतिका प्रवर्तक पुरुषरूप हुआ*। काल, स्वभाव और कार्य कारणात्मक प्रकृति—ये भगवान्‌के शक्तिस्वरूप अवतार हैं। मन, पञ्चमहाभूत, अहङ्कार, सत्त्वादिगुण, समष्टि शरीर, वैराज, दसों इन्द्रियाँ, स्थावर और जंगम व्यष्टिशरीर—ये भगवान्‌के सामान्य अवतार हैं ॥ ४१ ॥ मैं, शंकर और विष्णु ये गुणावतार हैं। जो ये दक्ष और प्रजापति, जो तुम और तुम्हारे सदृश अनेक भक्तजन, स्वर्गलोकके रक्षक, खगलोकके रक्षक, मनुष्यलोकके रक्षक, पाताललोकके प्रतिपालक ॥ ४२ ॥ गन्धर्व, विद्याधर और चारणोंके नाथ तथा यक्ष, राक्षस, सर्प और नागोंके जो नाथ हैं वे एवं जो ऋषियों और पितरोंमें

---

*'सहस्रशीर्षा' इत्यादिसे जिसका लीला विग्रह कहा गया है वह आद्य अवतार है। आगे चलकर फिर कहेंगे—'भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्। स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदि देवः ॥'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रेष्ठ हैं वे तथा दैत्य, सिद्ध एवं दानवोंके जो स्वामी हैं वे तथा इनसे अतिरिक्त और जो भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, जलजन्तु, मृग तथा पक्षियोंके जो स्वामी हैं वे ॥ ४३ ॥ तथा इस लोकमें जो कोई वस्तु भगवान्‌की विभूतिसे युक्त, तेजसे युक्त, इन्द्रिय ओर मनकी शक्तिसे युक्त, बलवान्, सुन्दर, लज्जाशील, क्षमावान्, सम्पत्ति सम्पन्न, बुद्धिमान्, अद्भुत वर्णसे युक्त रूपवान् या अरूपवान् है, वह सब उस परमात्माकी विभूति हैं ॥ ४४ ॥ हे ऋषे, मैं प्रधानरूपसे उस सर्वव्यापक महान् पुरुषके लीलावतारोंका तुमसे क्रमशः वर्णन करूँगा, जिन्हें अनेक

अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥ ४३ ॥ यत्किञ्च लोके भगवन्महस्वदोजःसहस्वद्बलवत्क्षमावत् ॥ श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं पर रूपवदस्वरूपम् ॥ ४४ ॥ प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ॥ आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऋषि निरन्तर गाते हैं। तुम भगवान्‌के इन सुन्दर चरितोंका श्रवण करो, जो असत् कथावाचकोंकी कथाओंके श्रवणसे कानोंकी मलिनताको दूर कर देनेवाले हैं ॥ ४५ ॥

छठे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे नारद, उस विराट् पुरुषके तत्-तत् अङ्गोंसे सत्त्व, रज तथा तम ये तीन गुण पञ्चमहाभूत, अहङ्कार, देवताओंके साथ-साथ सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, मन और प्रधान आदिकी उत्पत्ति हुई। अधिक तुमसे मैं क्या कहूँ? स्थावर और जो कुछ सृष्टि आजतक हुई है, हो रही है एवंआगे चलकर होगी, उन सबका रचयिता, पालयिता तथा संहारकर्ता एक वही परम पुरुष है। हम लोग उसकी आज्ञाके अनुसार अपना-अपना काम करते हैं। उसकी महिमा अपार है, आजतक हम लोग उसे पूर्ण रीतिसे नहीं समझ पाये। हे नारद, मैं भगवान्‌के सुन्दर चरितोंका वर्णन करता हूँ, तुम सुनो! उसके सुननेसे गन्दी बातें सुनते-सुनते कानोंमें जो दोष आ गया रहता है वह बिलकुल नष्ट हो जाता है। छठवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ सप्तमोऽध्यायः ❀

[भगवान्‌के लीलावतारोंका कर्म और प्रयोजनके साथ साथ ब्रह्माद्वारा वर्णन]

ब्रह्माजीने कहा—हे नारद, जब अनन्त भगवान् सकलयज्ञमय वाराहशरीरधारण करके पृथ्वीतलका उद्धार करनेके लिए समुद्रमें डूबकर रसातलमें गई हुई पृथ्वीको अपने दाँतोंके

ब्रह्मोवाच ॥ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ॥ अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाद्रिमिव

ऊपर रखकर ऊपर आने लगे तब उस समुद्रके अन्दर सामने आये हुए आदि दैत्य उस हिरण्याक्षको अपने दाँतोंसे उन्होंने उस तरह चीरकर टुकड़े-टुकड़े कर डाला, जिस तरह इन्द्रने अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वज्जरे पर्वतोंको ॥ १ ॥ रुचिनामक प्रजापतिसे आकूति नामक स्त्रीके उदरमें सुयज्ञनामसे उत्पन्न होकर भगवान्ने अपनी दक्षिणा नामकी भार्यामें सुयम नामक देवताओंको पैदा किया। और आगे चलकर जब भगवान्ने इन्द्र बनकर तीनों लोकोंके बड़े-बड़े दुःखोंको दूर किया तब पहले उनका सुयज्ञ नाम रहनेपर भी पुनः स्वायम्भुव मनुने उनका 'हरि' नाम रख दिया ॥ २ ॥ हे द्विजनारद, कर्दमप्रजापतिके घर उनकी पत्नी देवहूतीके गर्भसे जब भगवान् अपने नौ बहिनोंके साथ उत्पन्न हुए, तब उनका कपिल नाम पड़ा। भगवान्ने अपनी माताको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया, जिस ब्रह्मविद्यासे देवहूतीने आत्माको मलिन बनानेवाले सत्त्वादि गुणोंमें आसक्तिरूपी कीचड़को उसी जन्ममें धोकर भगवान् कपिलकी मोक्षगतिको प्राप्त हो गई ॥ ३ ॥ पुत्रकी* अभिलाषाकर रहे महर्षि अत्रिसे प्रसन्न होकर भगवान्ने कहा—अस्तु, मैंने अपनेको ही आपको दिया, ऐसा जो भगवान्ने कहा (और स्वयं पुत्ररूपसे अत्रिके घर जन्म लिया) इसीसे उनका नाम 'दत्त' पड़ा। जिनके चरणकमलके परागोंसे पवित्र शरीर हुए यदु और हैहय आदि बहुतसे राजे इस लोक और परलोकमें भुक्ति-मुक्तिरूप ऐश्वर्यको

वज्रधरो ददार ॥ १ ॥ जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ॥ लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ २ ॥ जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥ ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥ अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो मयाऽहमिति यद्भगवान्स दत्तः ॥ यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥ ४ ॥ तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत ॥ प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥ दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥ ६ ॥ कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् ॥ सोऽयं यदन्त-

प्राप्त हो गये ॥ ४ ॥ विविध लोकोंकी रचनाकी इच्छासे मैंने पहले जो तपस्या की, उस मेरे अखण्डिततपसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु स्वयं चतुःसन हो गये यानी सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातन इन चार नामोंसे प्रकट हुए। कुमाररूपधारी भगवान् हरिने पूर्वकल्पके प्रलयमें विनष्ट हुए आत्मतत्त्वका इस कल्पमें भलीभांति वर्णन किया, जिसका मुनियोंने सुनतेही अपने हृदयमें साक्षात् अवलोकन किया ॥ ५ ॥ धर्मकी पत्नी दक्षकी 'मूर्ति' नामवाली लड़कीके गर्भसे भगवान्-असाधारण तपोबलसे युक्त नर और नारायण इन दो स्वरूपोंसे अवतरित हुए। उनकी तपस्या नष्ट करनेके लिये इन्द्रने कामदेवकी सेनारूप उर्वशी आदि अप्सराएँ भेजी थीं। उन अप्सराओंने भगवान्से उत्पन्न हुई अपने ही समान उर्वशी आदि

---

* अपगति दूर करनेवालेका नाम है अपत्य यानी दुर्गतिका निवारक। पुंनामक नरकमें जो दुर्गति होती है उसका निवारण करनेवाला पुत्र होता है या उसका निवारण करनेवाली होती है—पुत्री। अपत्यशब्दसे पुत्र और पुत्री दोनोंका ग्रहण होता है फिर भी महर्षि अत्रिने भगवान्से पुत्र ही माँगा और भगवान्ने भी उन्हें वैसा ही वर दिया। इसीलिये यहाँपर अपत्यकी व्याख्याकी जाती है—'पुत्र'।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दूसरी स्त्रियोंको देखकर उनका व्रतभङ्ग नष्ट न कर सकीं ॥ ६ ॥ भगवान् शंकरके सदृश बड़े-बड़े इन्द्रिय निग्रही पुण्यात्मा पुरुष अपनी क्रोधभरी दृष्टिसे कामदेवको तो भस्मकर देनेमें समर्थ हा जाते हैं। परन्तु अपनेको भस्मकर रहे भी क्रोधको वे भस्मीभूत बनानेमें समर्थ नहीं होते। ऐसा वह क्रोध भी जिस भगवान्‌के निर्मल मनमें प्रवेश करते समय अत्यन्त डरता है उस भगवान् नर नारायणके मनमें कामदेव फिर कैसे स्थान पा सकेगा ॥ ७ ॥ राजा उत्तानपादके निकट सौतेली माँके वाग्बाणसे विद्ध हुए ध्रुवजी बालक होते हुए भी तपस्या करनेके लिये घरसे भागकर जंगलमें चले गये। भगवान्‌का भजनकर रहे उस लड़केको प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने वह ध्रुवपद दिया, जिस ध्रुवपदकी उसके नीचे रहनेवाले दिव्य सप्तर्षि लोग स्तुति करते हैं अथवा जिस ध्रुवपदकी उसके ऊपर रहनेवाले भृगु आदि ऋषि और नीचे रहनेवाले सप्तर्षि लोग स्तुति करते हैं ॥८॥ राजा वेनके अत्याचारसे पीड़ित हुए ऋषियोंने जब भगवान्‌से अवतार लेनेकी प्रार्थना की तब ब्राह्मणोंके शापवाक्यरूपी वज्रसे नष्ट पौरुष और ऐश्वर्यवाले, कुपथगामी, नरकमें गिर रहे उस राजा वेनकी रक्षा करके संसारमें पुत्रपदको जिन भगवान्‌ने

रमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७ ॥ विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ॥
तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥ तद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये
पतन्तम् ॥ त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार
समदृग्जडयोगचर्याम् ॥ यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः ॥ १० ॥ सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो
साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ॥ छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बाभूवरुषतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११ ॥ मत्स्यो युगान्तसमये
मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ॥ विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ १२ ॥

सार्थक बनाया यानी राजा वेनके शरीरसे पृथुनामक अवतार लेकर (राजा वेनका पुत्र होकर) अपने पिता वेनको नरक जानेसे बचाकर अपना पुत्र नाम सार्थक बनाया तथा जिन्होंने जगत्‌के लिये इस पृथिवीसे नाना प्रकारके अन्नादि सकल वस्तुओंको दुहा ॥९॥ वही भगवान् नाभिनामक राजाकी मेरुदेवी नामकी पत्नीके गर्भसे ऋषभ नामक पुत्र हुए। इन्होंने अपनी दशा जड़वत् दिखलानेके लिये नित्य समाधिरूपी योगचर्याका आचरण किया। उस समय वे समदर्शी, स्वरूपमें अवस्थित प्रशान्त इन्द्रियोंसे समन्वित और सभी तरहके आशक्तिसे शून्य थे। जिसे बड़े-बड़े ऋषिलोग परमहंस पद कहते हैं ॥ १० ॥ अनन्तर साक्षात् यज्ञपुरुष स्वरूप भगवान्‌ने मेरे यज्ञमें हयग्रीवनामसे अवतार लिया। वे सुवर्णके सदृश प्रकाशमान थे। वे छन्दःस्वरूप, यज्ञस्वरूप और अखिलदेवतात्मक थे। उसी समय साँस ले रहे भगवान्‌की नासिकासे कमनीय वेदरूप वाणियाँ प्रकट हुईं ॥ ११ ॥ युगके अन्तकालमें होनेवाले वैवस्वत नामक मनुने मत्स्यावतारका अवलोकन किया। वह मत्स्य भगवान् पृथिवीका आश्रय होनेसे समस्त जीवनिकायोंके आश्रय थे। मेरे मुँहसे निकले हुए वेदमार्गों (सम्पूर्ण वेदों) को लेकर महा भयंकर प्रलयकालके जलमें वे सानन्द विहार करते थे ॥१२॥ अमृतकी प्राप्तिके लिये सुर और असुरोंके झुण्डोंकी रक्षा करनेवालोंके क्षीरसागरका उन्मथन करते समय, आदिदेवने कच्छपका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शरीर धारणकर मन्थनके लिये मन्दराचलको अपनी पीठपर थाम रखा था। उन्हें उस समय नींद लेनेका सुन्दर अवसर प्रतीत हो रहा था, क्योंकि विशाल मन्दराचलकी परिवर्तनरूप सुखप्रद रगड़से उनकी पीठकी खुजलाहट दूर हो रही थी ॥१३॥ देवोंके महाभयको दूर करनेवाले उन भगवान्ने नृसिंहरूपी ‡ धारण करके, जो घूम रही भ्रुकुटि और दाँतों महा भयङ्कर मुखवाला था अपने समीपमें ही फड़क रहे तथा गदा लेकर अपनी ओर झपट रहे दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुको अपनी जाँघोंपर पटककर अपने तीखे नखोंसे चीर डाला ॥ १४॥ एक तालाबके भीतर महाबलशाली ग्राहके द्वारा पैर पकड़कर घसीटा गया एक गजराज अत्यन्त दुःखी होकर अपनी सूँड़में उस तालाबका एक फूल लेकर करुणापूर्णवाणीमें यह कहने लगा—हे आदिपुरुष, हे अखिललोकोंके नाथ, हे पवित्रयशवाले, हे श्रवणमात्रसे मंगलदायकनामवाले प्रभो ॥ १५॥ उसकी यह आर्तवाणी सुनकर अतुल—बलशाली भगवान् श्रीहरि हाथमें अपना सुदर्शनचक्र

क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ॥ पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥ १३ ॥
त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रु कुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ॥ दैत्येन्द्रमाशु गदयाभिपतन्तमारादूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम्
॥ १४ ॥ अन्तःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः ॥ आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय
॥ १५ ॥ श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः। चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार
॥ १६ ॥ ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथाधियज्ञः ॥ क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्ञामृते पथि चरन्प्र-
भुभिर्न चाल्यः ॥ १७ ॥ नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखा घृतवो विबुधाधिपत्यम् ॥ यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमङ्ग
शिरसा हरयेऽभिमेने ॥१८॥ तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ॥ ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासु-

लेकर गरुड़जीकी पीठपर चढ़कर दौड़ आये और अपने चक्रसे ग्राहका मुख चीरकर शरणार्थी उस गजराजको उन्होंने उसकी सूँड़ पकड़र कृपापूर्वक उस ग्राहके मुखसे निकाल बाहर किया ॥ १६ ॥ आदितिके बारह लड़कोंके बीचमें यज्ञाधिष्ठाता भगवान् विष्णु अवस्थामें सबसे छोटे होते हुए भी गुणोंमें सबसे बड़े थे, क्योंकि उन्होंने अपने चरण विन्यासोंसे इन सम्पूर्ण लोकोंको व्याप्त कर दिया। धर्ममार्गपर चल रहा मनुष्य बड़े-बड़े समर्थशाली पुरुषों से भी माँगनेके सिवा और किसी उपायसे विचलित नहीं किया जा सकता, इसलिए उस वामन भगवान्ने तीन पैर भूमि मांगनेके बहाने राजा बलिसे सारी पृथ्वी❀ ले ली ॥ १७ ॥ वामन भगवान्का चरण धोकर उस जलको अपने सिरपर चढ़ानेवाले राजा बलिको जो देवताओंका आधिपत्य प्राप्त हुआ, सो उनका कोई बहुत बड़ा पुरुषार्थ नहीं है क्योंकि हे नारद, तीन डेग जमीन देनेकी प्रतिज्ञा करके उस अपनी प्रतिज्ञाको बिनापूर्ण किये अपने कुलगुरु शुक्राचार्यसे

‡ अथवा—देवताओंको भी जिस नृसिंहरूपके हाससे महाभय उत्पन्न हो जाता था, ऐसा नृसिंहरूप।

❀ यहाँपर पृथिवी शब्दसे तीनों लोकका ग्रहण है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शापग्रस्त होनेपर भी जिन्होंने अन्य कुछ करनेकी इच्छा नहीं की और तीसरे डेगकी पूर्तिके लिए माथा झुकाकर अपना शरीर ही भगवान्‌को अर्पणकर दिया। तात्पर्य यह कि इतने बड़े अलौकिक त्यागीको यदि देवताओंका अधिपत्य मिला, तो कोई बहुत बड़ा पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता ॥ १८ ॥ हे नारद, एक समय अत्यन्त सुदृढ़ भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भगवान्‌ने हंसके रूपमें तुम्हें भक्तियोगका सुन्दर उपदेश दिया तथा आत्मतत्त्वके प्रकाशक एवं ज्ञानके साधनभूत भागवत पुराणका तुमसे भलीभांति वर्णन किया, जिसे भगवान् वसुदेवके अनन्य भक्त ही बिना श्रमके ही जानते हैं और दूसरे नहीं ॥ १९ ॥ वह भगवान् प्रत्येक मन्वन्तरमें मनुवंशका पालक होकर दसों दिशाओंमें अप्रतिहत अपने प्रभावरूपी सुदर्शनचक्रको धारण करते हैं और तीनों लोकके ऊपर स्थित सत्यलोकमें भी अनेक चरित्रोंके द्वारा अपनी कमनीय कीर्तिका विस्तार करते हुए दुष्ट राजाओंको दण्ड देते हैं ॥ २० ॥ स्वयं कीर्ति स्वरूप भगवान् लोकमें धन्वन्तरि नामसे अवतीर्ण होकर बड़े-बड़े भयंकर रोगोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके रोगोंको अपने नाममात्रसे ही शीघ्र नष्टकर देते हैं। अमृत (मृत्युशून्य) आयु प्रदान करनेवाले जिन

देवशरणा विदुरञ्जसैव ॥ १९ ॥ चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ॥ दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वन्तरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ॥ यज्ञे च भागममृतायुर-वावरुन्ध आयुष्य वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥ क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ॥ उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ॥ तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छेत् ॥ २३ ॥ यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ॥ दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥ २४ ॥ वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ॥

भगवान् धन्वन्तरिने दैत्यों द्वारा पहले बन्दकर दिए गए अपने यज्ञभागको फिरसे प्राप्त किया, वे धन्वन्तरि भगवान् आज भी आयुर्वेदकी शिक्षा संसारको दे रहे हैं ॥ २१ ॥ जगत्‌के विनाशके लिए दैवसे संवर्द्धित हुए, ब्राह्मणोंके द्रोही, वेदमार्गका उल्लंघन करनेवाले अतएव नरककी पीड़ा भोगनेकी चाह रखनेवाले पृथिवीके कण्टक तुल्य क्षत्रियकुलका अपने तीखेधार-वाले यह उग्र पराक्रमसे उक्त महात्मा श्रीहरि परशुरामावतार लेकर इक्कीस बार विनाश करते हैं ॥२२॥ हमलोगोंके ऊपर दया करनेमें हमेशा तैयार भरतादिरूप अपने अंशोंके साथ मायाके अधीश यह भगवान् इक्ष्वाकुवंशमें श्रीरामचन्द्रजीका अवतार लेकर अपने पिताकी आज्ञामें तत्पर रहते हुए अपनी धर्मपत्नी श्री सीताजी और अपने भाई श्री लक्ष्मणजीके साथ जंगलमें प्रविष्ट होंगे, जहाँ इनके साथ विरोधकर लंकाधिपति रावण नाशको प्राप्त होगा ॥ २३ ॥ अपने आश्रमसे बहुत दूर वर्तमान यानी रावण द्वारा हरकर लङ्कामें पहुँचाई गई श्री सीताजीके वियोगके कारण अत्यन्त कुपित हुए श्रीरामचन्द्रजीकी लाल-लाल आँखोंसे अत्यन्त सन्तप्त हो रहे मकर, सर्प और नक्रोंके समूहसे युक्त मारे भयके थर-थर काँप रहा समुद्र, त्रिपुरारिको भस्म कर देनेकी इच्छाकर रहे भगवान् शङ्करकी नाईं, रावणकी नगरी लङ्काको भस्मकर देनेकी इच्छाकर रहे जिन श्रीरामचन्द्रको शीघ्रही वहाँ जानेके लिए मार्ग दे देगा ॥२४॥ श्री सीताजीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपहरण करनेवाले, सेनाओंके बीचमें बड़े उत्कर्षके साथ विचरण करनेवाले तथा अपने वक्षःस्थलके स्पर्शसे तोड़कर टुकड़े-टुकड़े बना दिए गये इधर उधर बिखरे हुए ऐरावतके दाँतोंसे उज्ज्वलकर दी गई दिशाओंका पालन करनेवाले रावणकी मेरे समान दूसरा कौन है' यों महागर्वसे प्राप्त हुई हँसीका उसके प्राणोंके साथ-साथ अपने धनुषके टंकार घोषोंसे ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विनाशकर देंगे ॥ २५ ॥ असुरोंके अंशस्वरूप राजाओंकी सेनाओंके भारसे पीड़ित हुई पृथिवीकी पीड़ा दूर करनेके लिए अपने अंशभूत बलरामके साथ वह भगवान् श्रीकृष्ण रूपसे आवतरित होंगे। इन दोनोंमें बलरामजी सफेद रंगके होंगे और श्रीकृष्णजी श्यामवर्णके होंगे। साधारण मनुष्योंसे अज्ञेय पथवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपनी महिमाके प्रकाशक अमानुष कर्मोंका सम्पादन करेंगे ॥ २६ ॥ [भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परमेश्वर हैं, इसके सूचक उनके आश्चर्यपूर्ण कर्मोंका वर्णन करते हैं—] बचपनमें 'पूतना' राक्षसीके जीवनका अपहरण करना, तीन महीनेका होकर पैरसे शकटासुरको कुचल देना और घुटनोंके बल रेंगते रेंगते वृक्षोंके बीचमें जाकर गगनस्पर्शी अर्जुन वृक्षोंको उखाड़ फेंकना—इत्यादि जो कार्य

सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥ २५ ॥ भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥ २६ ॥ तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ॥ यद्रिङ्गताऽन्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥ २७ ॥ यद्वै व्रजे व्रजपशून्विषतोयपीतान् पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ॥ तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्टदुरगं विहरन्हदिन्याम् ॥ २८ ॥ तत्कर्म दिव्य मिव यन्निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ॥ उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं नेत्रे पिधाप्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः २९ ॥ गृह्णीत यद्यदुपबन्धममुष्य माता शुल्बं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधितासीत

है वह यदि ईश्वर न हों, तो कभी नहीं हो सकता ॥ २७ ॥ यमुनाका विषैला जल पीकर मरे हुए वन के पशुओं और ग्वाल-बालोंको अपनी कृपादृष्टिरूपी अमृतकी वर्षासे वही भगवान् श्रीकृष्ण जीवितकर देंगे तथा जमुनाके विषमय जलको शुद्ध करनेके लिए महाभयंकर विषके प्रभावसे लपलपाती जीभोंवाले कालियनागको उसी यमुनामें कूदकर खेलवाड़ करते हुए नाथकर वहाँसे निकाल करके बाहर फेंक देंगे ॥ २८ ॥ भगवान्के वे सब कर्म अलौकिक होंगे। बादमें, उसी दिन रातमें यमुनाके तटपर समस्त व्रजवासियोंके निश्चिन्त होकर सो रहनेपर दावाग्नि से भस्मीभूत हो रहे उस ग्रीष्मऋतुमें मुञ्जाटवी नामक सूखे वनमें दावाग्निके कारण निश्चित अन्तकालवाले व्रजवासियोंका—बलरामके साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी सबकी आँखें मुँदवाकर क्षणभरमें संकट टालकर उद्धारकर देंगे ॥२९॥ एक दिन इनकी माँ यशोदाजी इन्हें बाँधनेके लिए बन्धनके साधनभूत जिन जिन रस्सियोंको अपने हाथमें लेंगी, वे सब रस्सियाँ भगवान्के

वर्णके विषयमें देखिए विष्णुपुराण—'उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने' इत्यादि। महाभारतमें (वैवाहिकपर्व) भी लिखा है—'सचाऽपि केशौ हरिरुज्जहार शुक्लमेकमपरं चाऽपि कृष्णम्। तौ चापि केशावाविशतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च। तयोरेको बलभद्रो बभूव योऽसौ श्वेतस्तस्य देवस्य केशः। कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उदरमें छोटी पड़ती जायँगी और जँभाई लेते समय इनके मुखमें तीनों लोक और चौदह भुवन देखकर सशंकित हो जायँगी। उसी समय वे अपनी महिमा दिखाकर माँ यशोदाजीको प्रबोधितकर देंगे—ज्ञानसे सम्पन्नकर देंगे ॥ ३० ॥ यह भगवान् श्रीकृष्ण वरुणके पाशसे प्राप्त हुए भयसे नन्दजीको छुड़ायेंगे तथा मयासुरके लड़के व्योमासुरके द्वारा पर्वतकी गुफामें बन्द रखे गये ग्वालवालोंको भी छुड़ायेंगे। दिनमें कठिन परिश्रम करके रातमें सोये हुए सभी गोकुलवासियोंको वैकुण्ठलोकमें पहुँचा देंगे। ये सब कार्य भगवान्‌के आश्चर्यसे भरे हुए होंगे ॥३१॥ इन्द्रका यज्ञ छोड़कर गोपों द्वारा गोवर्द्धनकी पूजा करनेपर सारे गोकुलको पानीमें डुबा देनेके लिये कुपित इन्द्रके घनघोर वृष्टि करनेपर कृपा करके उन ग्वालवालों तथा पशुओंकी रक्षा करनेकी चाह रखनेवाले सिर्फ सात सालकी अवस्थावाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजो बिना श्रमके एकही हाथपर सात दिनोंतक लीलासे छत्राककी [कठफुल्लेकी] तरह गोवर्द्धनपर्वतकोउठाये लिये रहेंगे ॥ ३२ ॥ अनन्तर चन्द्रमाकी उज्ज्वल किरणोंसे धवल रातोंमें वृन्दावनमें क्रीड़ा कर रहे भगवान् रासलीलामें उन्मुख होकर मञ्जुल पदविन्यास युक्त तथा ऊँचे स्वरके मधुर

॥ ३० ॥ नन्दं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुना च ॥ अह्न्यापृतं निशि शयानमतिश्रमेण लोकं विकुण्ठमुपनेष्यति गोकुलं स्म ॥ ३१ ॥ गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ॥ धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्तदिनानि सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ ३२ ॥ क्रीडन्वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ॥ उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३ ॥ ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः ॥ अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्रसप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ ३४ ॥ ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः यास्यन्त्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥ ३५ ॥ कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ॥ आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥३६॥ देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ॥

आलापोंसे युक्त गीत गायेंगे, जिसे सुनकर काममें विह्वल होकर सारी व्रजाङ्गनाएँ उनके पास दौड़ आयँगी। उसी समय कुबेरका सेवक शंखचूड़ उन गोपियोंको रास्तेमें चुरा ले जानेके विचारसे वहाँ आयेगा और भगवान् उसका सिर काटकर अलगकर देंगे ॥ ३३ ॥ और जो प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्ट (वृषभासुर), चणूर आदि कंसके पहलवान, कुवलयापीड नामक हाथी, कंस, यवन, नरकासुर और पौण्ड्रक आदि शाल्व, द्विविद बन्दर, वल्वल, दन्तवक्र, नग्नजित् राजाके सात वृषभ, शम्बरासुर, विदूरथ तथा रुक्मी आदि ॥३४॥ एवं जो काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, सृञ्जय आदि रणशूर राजे हाथमें धनुष लेकर संग्रामभूमिमें आयँगे वे सबके सब बलराम, भीम और अर्जुनके बहाने स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके द्वारा सदाके लिये इस संसारमें अदर्शनको प्राप्त होकर (भगवान्‌के द्वारा मृत्युको प्राप्तकर) भगवान् श्रीकृष्णके ही स्थान वैकुण्ठधाममें पहुँच जायेंगे ॥ ३५ ॥ बहुत समयके बाद युगके अनुसार मन्दमति और अल्पायु हुए मनुष्योंके लिये मेरे द्वारा रचे गये वेदोंका ज्ञान सम्पादन करना कठिन समझकर सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न होकर वही भगवान् श्रीविष्णु वेदव्यास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नामसे वेदरूपी वृत्तका शाखारूपसे विभागकर देंगे ॥ ३६ ॥ वेदमार्गमें अत्यन्त परिनिष्ठित रहते हुए भी 'मय' नामक असुरके द्वारा विरचित अदृश्य वेगवाले तीन नगरोंमें अवस्थित होकर लोकोंका नाशकर रहे देवताओंके शत्रु दैत्योंकी बुद्धिमें विमोह तथा अत्यन्त लोभ पैदाकर देनेवाला पाखण्ड वेष बनाकर अर्थात् बुद्धावतार धारणकर उन्हें बुद्धरूपसे बहुत पाखण्ड धर्मोंका उपदेश देंगे ॥३७॥ जब सज्जनोंके भी घरोंमें भगवान् श्रीहरिकी कथाएँ न होंगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों ही पाखण्डी बन जायँगे और सभी शूद्र राजे हो जायँगे तथा स्वाहा, स्वधा, वषट् ये शब्द कहींपर भी सुननेमें नहीं आयँगे, तब कलियुगके अन्तमें भगवान कल्किरूपमें अवतरित होकर कलिका शासन करेंगे ॥ ३८ ॥ तब मैं, मरीचि आदि नौ ऋषि और जो दक्षप्रजापति आदि हैं ये सब सृष्टिकार्यमें नियत किये गये हैं तथा अधर्म, भगवान् शङ्कर, सब तरहके साँप, असुर, भूत, प्रेत एवं पिशाचादि जो क्रूर प्रकृतिके जीव हैं वे सबके सब सृष्टिके संहारमें नियत किये गये हैं। ये सभी जीव बहुशक्तिशाली भगवान्की मायाकी विभूतियाँ हैं ॥ ३९ ॥ जिस विद्वान्ने पृथिवीकी धूलियोंकी भी यानी परमाणुओंकी भी गणनाकर

लोकान्घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७ ॥ यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ॥ स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगान्ते ॥ ३८ ॥ सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ॥ अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥३९॥ विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कम्भ यः स्वरंहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥ ४० ॥ नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ॥ ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥ ४२ ॥ वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हि

डाली है ऐसा वह कौन पुरुष है, जो भगवान् विष्णुके पराक्रमोंकी गणना करनेमें समर्थशाली होगा, क्योंकि जिन भगवान्ने तीन डेग लगाते समय अस्खलित अपने पैरके वेगसे सत्त्व, रज, और तम इन तीन गुणोंकी समतास्वरूप अधिष्ठानात्मक प्रधानसे भी यानी त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे भी अधिक काँप रहे सत्यलोकके साथ-साथ सम्पूर्ण लोकोंको धारण किया ॥ ४० - हे नारद, मैं और ये जो तुम्हारे बड़े भाई मरीचि आदि ऋषि हैं वे भी उस परमपुरुषकी मायाके बलका अन्त नहीं जानते, फिर दूसरे कैसे जान पायंगे। अधिक क्या कहें, हजार मुखवाले आदिदेव शेष महाराज इस परमपुरुषके गुणोंका लगातार गान करते हुए आज भी उनका पार नहीं पा रहे हैं ॥ ४१ ॥ वही अनन्त भगवान् जिनके ऊपर दयाकरदें और वे लोग भी यदि निष्कपट भावसे सर्वात्मना भगवान्के चरणोंका ही एकमात्र आश्रयकर लें, तो वे भगवान्की दुरतर मायाको पारकर जायँ और मायाके वैभवको जान जायँ तथा इन भगवद्भक्तोंकी 'अहं और 'मम' यह बुद्धि भी कुत्तों और सियारोंके भक्ष्य इस तुच्छ शरीरमें न रह जाय ॥४२॥ हे नारद, आन्तरिकज्ञान न होनेपर भी 'भगवान्की यह माया है' इस तरहका ज्ञान तो भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की कृपासे बहुतोंको है ही; जैसे कि मैं सनकादि तुम सभी, भगवान् शङ्कर, भक्त प्रहलाद, स्वायम्भुव मनु, उनकी पत्नी, शतरूपा, उनके बाल-बच्चे, प्राचीनवर्हि, बेनके पिता ऋभु, ध्रुव ॥४३॥ इक्ष्वाकु, ऐल, मुचुकुन्द, राजा जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, नहुषके लड़के ययाति मान्धाता, अलर्क शतधनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्तरय, दिलीप ॥ ४४ ॥ सौभरि, उत्तङ्क, शिवि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण और इनके अतिरिक्त जो विभीषण, हनुमान्, उपेन्द्रदत्त, पार्थ, ऋष्टिषेण तथा श्रुतदेव हैं वे सबलोग भगवान्की मायाको जानते हैं ॥ ४५ ॥ स्त्री, शूद्र, ताम्रमुख, भिल्ल आदि जो पापी जीव हैं तथा इनके अतिरिक्त जो तिर्यग् योनिके जीव हैं वे भी अद्भुत क्रम [पादविन्यास-गति] वाले भगवान् विष्णुके परम भक्तोंके स्वभावानुसार शिक्षा ग्रहण करनेवाले यदि हो जाते हैं तो अवश्य ही भगवान्की मायाको जान जाते हैं और तर जाते हैं फिर तो उन ब्राह्मणोंके विषयमें कहना ही क्या जो भगवान्के स्वरूपमें निरन्तर अपने मनको लगाए हुए रहते हैं ॥ ४६ ॥ हे नारद, परमपुरुष उस भगवान्का वही स्वरूप है जिसे मुनिलोग ब्रह्म कहते हैं। वह नित्य, सुखरूप, शोक

ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥४३॥ इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ॥ मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ॥ येऽन्ये विभिषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ ४५ ॥ ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ॥ यद्यद्भुतक्रमपरायण शीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥४६॥ शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ॥ शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ ४७ ॥ तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥ सध्र्यङ् नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥ ४८ ॥ स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ॥ देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥ ४९ ॥ सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः ॥ समासेन हरेर्ना-

शून्य, सदा प्रशान्त, भेदशून्य, अतः अभय ज्ञानैकरस, निर्मल तथा विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे शून्य आत्मतत्त्वभूत है जहाँ शब्द व्यापार नहीं है तथा अनेक कारकोंसे साध्य होनेवाला चार तरहका [उत्पाद्य, आप्य, विकार्य और संस्कार्यरूप] क्रियाका अर्थ [क्रियाका फल] नहीं है। सम्मुख खड़ा होनेमें विलज्जित हो रही-सी माया भी जहाँसे दूर खिसक जाती है ॥ ४७ ॥ अपने सहचर मनको जिस स्वरूपमें स्थिर यत्नशील योगीलोग भेदके निरासके लिए गृहीत साधनोंका उस तरह त्यागकर डालते हैं, जिस तरह स्वयं वृष्टिरूपसे विराजमान हो रहे इन्द्र कूप खोदनेके तैयार साधनों* को ॥ ४८ ॥ हे नारद, यों नित्य सुखस्वरूप भगवान्के स्वरूपको प्राप्त होजानेपर मनुष्योंके लिये कोई कृत्य अवशिष्ट नहीं रह जाता। हे नारद,

* अथवा जिस तरह दरिद्र पुरुष मजदूरी करनेके लिए गृहीत कुदाल आदि साधनोंका समृद्ध होनेपर त्यागकर देता है, उसी तरह योगी लोग पहले गृहीत साधनोंका भगवान्के स्वरूपमें मन लग जानेपर त्यागकर देते हैं, क्योंकि भगवान्में मन जम जानेके बाद उन साधनोंकी उन्हें कोई आवश्यकता नहीं रह जाती—यह तात्पर्य है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्राह्मणोंके शम, दम आदिसे विहित इस शुभ कर्मकी जिस भगवानसे प्रसिद्धि है वही भगवान् समस्त फलोंका प्रदाता और प्रवर्तक भी है। स्वारम्भक पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतोंका वियोग हो जानेपर उनके पीछे इस शरीरके भी नष्ट हो जानेसे देहमें रहनेवाला वह पुरुष आकाशकी नाईं विनष्ट नहीं होता, क्योंकि वह अज है ॥४९॥ हे तात, विश्वभावन उस भगवानूका यह संक्षेपतः तुमसे मैंने वर्णनकर दिया। कार्य और कारण जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह भगवान् श्री हरिसे भिन्न किसी दूसरेसे पृथक् नहीं है ॥ ५० ॥ हे नारद, यही वह भागवत है, जिसका वर्णन भगवान्ने मुझसे किया है। भगवानूकी विभूतियोंका यह संग्रह है, तुम इसका संसारमें खूब प्रचारकर इसे विस्तृत बनाओ ॥५१॥ सर्वात्मक और सबके आधार भगवान् श्रीविष्णुमें

न्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥ ५० ॥ इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ॥ सङ्ग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥ यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ॥ सर्वात्मन्यखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय ॥ ५२ ॥ मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुह्यति ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

लोगोंको जिससे दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो, ऐसा विचारकर भगवान् लीलाओंकी प्रधानता दे करके इस भागवतका खूब वर्णन करते चलो। तात्पर्य यह कि इस रीतिसे वर्णन करते चलो जिससे कि भक्तिरसमें किसी तरहका विघात न पहुँचे ॥ ५२ ॥ इस ईश्वरकी मायाका वर्णनकर रहे, उस वर्णनका अनुमोदनकर रहे तथा श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन श्रवणकर रहे पुरुषकी आत्मा [बुद्धि] मायासे विमोहित नहीं होती ॥ ५३ ॥

सातवें अध्यायका सार—ब्रह्माजीने कहा—हे नारद, अनन्त भगवान्ने पहले वाराह आदि अवतार धारणकर पृथ्वीका उद्धार किया है। सर्वव्यापक उस विराट् पुरुषने समय समयपर तत्-तत् अवतार धारणकर इस पृथ्वीके ऊपर अलौकिक कार्य किए हैं। भगवानूके प्रत्येक अवतारमें कुछ न कुछ विशेषता रहती है। उनका हरेक अवतार एक खास कार्यके सम्पादनके लिए हुआ है और आगे चलकर होगा। भगवानूके अद्भुत कार्योंको देखकर संसारको यह विश्वास हो जायगा कि ये भगवान् मनुष्य नहीं है किन्तु परमात्मा हैं। हे नारद, जिनसे ब्रह्मणादिकके शम, दम आदि साधनोंके द्वारा किए हुए शुभ कार्मोंकी सिद्धि होती है वही भगवान् जीवोंके सकल पुण्य कर्मोंके प्रेरक और फल दाता हैं। हे तात, विश्वपालक भगवान् श्रीहरिके गुणोंका मैंने संक्षेप रूपसे तुमसे वर्णन कर दिया हैं, क्योंकि प्रकृति आदि तत्त्व और उनसे उत्पन्न हुए ये सब लोक भगवान् श्रीहरिसे पृथक् नहीं हैं, किन्तु श्रीहरिके स्वरूप ही हैं। हाँ, वह परमात्मा अवश्य माया द्वारा विरचित पदार्थोंसे अलग है। हे नारद, जिस भागवतका वर्णन मुझसे भगवानूने किया था मैंने भी तुमसे संक्षेपरूपसे उसे सुना दिया। अब तुम लोकोंमें जाकर भगवानूकी संक्षिप्त विभूतिका विस्तारके साथ वर्णन करो, जिससे संसारके लोगोंके हृदयमें भगवानूकी दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो। सातवां अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ अष्टमोऽध्यायः ❋

[जीव और ईश्वर विषयक राजा परीक्षित्के अनेक प्रश्न]

राजा परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्, गुणातीत भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेके लिए ब्रह्मासे प्रेरित देवतुल्य दर्शनवाले नारदमुनिने जिस-जिसको जिस रीतिसे भगवान्के गुणोंका वर्णन किया इस तत्त्वको मैं जानना चाहता हूँ। क्योंकि हे वेदविदोंमें सर्वश्रेष्ठ शुकदेवजी, अद्भुत वीर्यवाले श्रीहरिकी कथाएँ सारे संसारका कल्याण करनेवाली हैं ॥ १, २ ॥ हे महाभाग, कहिए जिससे कि मैं अखिलात्मक भगवान् श्रीकृष्णमें आसक्तिशून्य अपने मनको लगाकर इस तुच्छ अपने कलेवरका त्यागकर सकूँ ॥३॥ श्रद्धासे प्रतिदिन अपनी [भगवान्की] लीलाओंका श्रवण और कीर्तनकर रहे पुरुषके हृदयमें थोड़ेही समयके बाद भगवान् प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥ सभी श्रोताओंके कर्णपथसे हृदयकमलमें प्रविष्ट होकर भगवान् श्रीकृष्ण सबका सम्पूर्ण पाप उस

राजोवाच ॥ ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च ॥ यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदांवर ॥ हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः ॥ २ ॥ कथयस्व महाभग यथाहमखिलात्मनि ॥ कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ ३ ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् ॥ कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥ ४ ॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भाव सरोरुहम् ॥ धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥ धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ॥ मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः ॥ यदृच्छया हेतुना वा भगवन्तो जानते यथा ॥ ७ ॥ आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ॥ यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ॥ ८ ॥ अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ॥ ददृशे येन यद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ ९ ॥ स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ मुक्त्वात्ममायां मायेशः शेते सर्वगु-

तरह पूर्णरूपसे धो डालते हैं, जिस तरह शरद् ऋतु जलका मैल ॥ ५ ॥ राग, द्वेष आदि सर्वविध परिक्लेशोंसे मुक्त, पापशून्य पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका चरणारविन्द उस तरह नहीं छोड़ता, जिस तरह प्रवाससे आया हुआ पथिक अपना घर नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन्, पञ्चमहाभूतोंके सम्बन्धसे शून्य इस लौकिक जीवका जो पञ्चमहाभूतोंसे देह निर्माण होता है वह क्या है। बिना किसी निमित्तसे होता है या किसी कर्म आदि निमित्तसे होता है? आप इसे तो खूब जानते हैं, मुझसे कहिये ॥ ७ ॥ जिस पुरुषके उदरसे त्रैलोक्यात्मक कमलकी उत्पत्ति हुई, वह पुरुष भी तो आपके द्वारा उतने ही अवयवोंसे युक्त और वैसीही रचना विशेष तथा अवयववाला-सा बतलाया गया है जैसा कि यह लौकिक जीव कुछ परिमित अवयवोंसे जितना बतलाया गया है, इसलिये इस जीवकी अपेक्षा उस ईश्वरमें कौनसी विशेषता है ॥ ८ ॥ विशेषता तो आपको बतलानी ही पड़ेगी, क्योंकि जिसके नाभिकमलसे समुत्पन्न ब्रह्माजी जिसके अनुग्रहसे भूतोंकी रचना करते हैं तथा भूतोंका नियन्ता बने हैं और जिसके अनुग्रहसे ही ब्रह्माने भी उसके रूपका अवलोकन किया है ॥ ९ ॥ ऐसे वह विश्वकी सृष्टि, स्थिति और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संहारकर्ता सबके हृदयमें विराजमान रहनेवाले मायाधीश भगवान् भी अपनी माया छोड़कर जिसरूपसे अवस्थित रहते हैं ॥ १० ॥ उसी परमपुरुषके अवयवोंसे सम्पूर्ण लोकपालोंके साथ-साथ लोकोंकी पूर्वमें रचना हुई है तथा उन्हीं लोकों और लोकपालोंसे उसके अवयव विरचित हैं—यह आपके मुखसे ही हमने सुना है ॥ ११ ॥ महाकल्प और उसके अवान्तर कल्प जिस तरह उत्पन्न होते हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमानके प्रवर्तक कालका जिस तरह अनुमान किया जाता है, यह सब बतलाइये तथा यह भी बतलाइये कि स्थूल देहधारी मनुष्य, पितर और देवताओंकी आयुका क्या प्रमाण है ? ॥ १२ ॥ हे द्विजसत्तम, हमें आप कालकी सूक्ष्म और बृहत् गति बतलाइये तथा यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये कि कर्मकी कितनी गतियाँ हैं एवं उनका क्या स्वरूप है ॥ १३ ॥ सत्त्वादिगुणोंके देव, मनुष्यादिरूप परिणामकी चाह करनेवाले गुणी जीवोंमें कौन जीव कितने पुण्यों या पापोंके फलसे, किसकर्मके समुदायसे कैसे देवादि भावको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ पृथिवी, पाताल, दसों दिशाओं, आकाश, स्वर्ग, नवग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र और द्वीप आदिकी उत्पत्ति कैसे हुई है तथा इनमें निवास करने-

हाशयः ॥ १० ॥ पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ॥ लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ ११ ॥ यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ॥ भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥ १२ ॥ कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ॥ यावत्यः कर्मगतयो यादृशी-र्द्विजसत्तम ॥ १३ ॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यथा येनोपगृह्यते ॥ गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १४ ॥ भूपातालककुब्व्योमग्रह-नक्षत्रभूभृताम् ॥ सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदोकसाम् ॥ १५ ॥ प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ महतां चानुचरितं वर्णाश्रम-विनिश्चयः ॥ १६ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥ युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥ १७ ॥ नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः ॥ श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १८ ॥ तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ॥ पुरुषाराधनविधिर्योगस्या-ध्यात्मिकस्य च ॥ १९ ॥ योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् ॥ वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥ २० ॥ संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः

वाले प्राणियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई है ? उत्पत्तिके पूर्व ये सब कहाँ थे ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डके भीतर और बाहरकी रचनाके प्रमाण, मारीचि, कर्दम आदि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंके आचार-व्यवहार, ब्राह्मण आदि वर्ण तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंके स्वभावोंका निर्धारण कैसे होता है ? ॥१६॥ अत्यन्त आश्चर्यजनक भगवान् श्रीहरिके अवतारोंके चरित्र, युग और युगोंके प्रमाणका वर्णन कीजिये तथा यह भी बतलाइये कि प्रत्येक युगमें किस धर्मका कैसे पालन होता है ॥१७॥ जन साधारणका साधारण और विशेषधर्म, नानाविध व्यवसाय करनेवालोंका धर्म, पृथु आदि राजर्षियोंका धर्म और विपत्तिमें पड़कर जीविका करनेवाले पुरुषोंका कौनसा धर्म है, सो कहिए ॥ १८ ॥ प्रकृति आदि सम्पूर्ण तत्त्वोंकी संख्या, उनका स्वरूप और कार्यकारण वश जो उनमें हेर-फेर होते हों, वह भी सब कहनेकी कृपा कीजिए । देवाराधनाकी कौनसी विधि है और आध्यात्मिक एवं अष्टांग योगकी क्या विधि है, सो कहिये ॥ १९ ॥ योगीश्वरोंकी अणिमादि सिद्धियोंके सहारे अर्चिः आदि लोकोंकी गति, योगियोंके लिङ्गशरीरका विनाश, ऋग्, यजुः आदि वेद, आयुर्वेद आदि उपवेद, इतिहास एवं पुराणोंका जो स्वरूप हो, वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कृपापूर्वक कहिये ॥ २० ॥ सम्पूर्णभूतोंका प्रलय, उनकी स्थिति, महाप्रलय, वैदिकयज्ञकर्म, पूर्त (कूप, तालाब, देवालय आदि बनवाना) अग्निहोत्र आदि काम्यकर्मोंकी रीति क्या है ? तथा धर्म अर्थ काम और मोक्षके लिये परस्पर अविरोधपूर्वक आचरण करनेकी विधि क्या है, यह सब कहिए ॥ २१ ॥ उपाधिशून्य जीवोंकी पुनः सृष्टि, पाखण्डियोंकी उत्पत्ति, जीवके बन्ध और मोक्ष तथा बन्ध और मोक्षसे पृथक् स्वरूपसे जीवकी स्थिति कैसे होती है ॥ २२ ॥ आत्मतन्त्र भगवान् सृष्टिके समय अपनी मायासे किस प्रकार खेलवाड़ करते हैं और प्रलयकालमें उस मायाको छोड़कर सर्वव्यापक भगवान् साक्षीकी नाईं उदासीन कैसे रहते हैं ॥२३॥ हे भगवन्, हे महामुने, ये जो सब बातें आपसे मैं पूछ रहा हूँ अथवा जो बातें आपसे मैंने नहीं पूछी हैं उन सबका आप भलीभांति क्रमशः मुझ शरणागतके लिए वर्णन कीजिए, क्योंकि अच्छी तरह इन सब बातोंको आपही समझा सकते हैं ॥ २४ ॥ इस विषयमें तो सिर्फ

प्रतिसंक्रमः ॥ इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥ २१ ॥ यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च संभवः ॥ आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २२ ॥ यथात्मतन्त्रो भगवान् विक्रीडत्यात्ममायया ॥ विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥ २३ ॥ सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ॥ तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥ २४ ॥ अत्र प्रमाणं हि भगवान् परमेष्ठी यथात्मभूः ॥ परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥ २५ ॥ न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी ॥ पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् ॥ २६ ॥ सूतउवाच ॥ स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ॥ ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥ २७ ॥ प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसमितम् ॥ ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८ ॥ यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ॥ आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० द्वितीय० प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आपही प्रमाण हैं यानी इस विषयके सम्यक् ज्ञाता आपही हैं, क्योंकि जिस तरह ब्रह्माजीको इन सब विषयोंका पूर्ण ज्ञान है उसी तरह आपको भी है । इसमें कारण यह है कि ब्रह्मा, नारद और भगवान् वेदव्यासके क्रमसे आपका समुदाय चला आ रहा है । आपके सिवा और दूसरे लोग तो अपने पूर्वपुरुषों तथा उनके भी पूर्वजोंके द्वारा किए गये का ही इस संसारमें अनुष्ठान करते हैं यानी गतानुगतिक ढंगसे अपने पूर्वजोंकी पुरानी पद्धतिपर ही चलते जा रहे हैं ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन्, इस अनशन और ब्राह्मणके शापके कारण भगवान्के गुणरूपी अमृतका पान करते रहनेसे मेरे प्राण व्याकुल नहीं हो सकते । हाँ, भगवान्की कीर्तिरूपी पीयूषका पान न करनेपर तो अवश्य व्याकुल हो सकते हैं ॥ २६ ॥ सूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, सभामें विष्णुभक्त राजा परीक्षित्के इस तरह भगवान्की कथाके विषयमें पूछनेपर श्रीशुकदेव मुनि खूब प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥ और सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान्ने जिस वेदतुल्य भागवतपुराणकी कथा ब्रह्माजीसे कही थी, उसीकी कथा कहनेमें वे लग गये ॥ २८ ॥ पाण्डवश्रेष्ठ महाराज परीक्षितने जो जो पूछा था, उन सब प्रश्नोंका उन्होंने क्रमशः उत्तर देना प्रारम्भकर दिया ॥ २९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आठवें अध्यायका सार—राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे ब्रह्मन्, जिस ईश्वरकी नाभिसे सम्पूर्ण लोकोंकी रचनारूप कमलकी उत्पत्ति हुई उस ईश्वर और इस जीवमें अन्तर क्या है? जिसके अनुग्रह से ब्रह्माजीने जिसके स्वरूपका अवलोकन किया वह सर्व नियन्ता मायाको छोड़कर किस स्वरूपमें अवस्थित रहता है—इत्यादि मेरे हृदयके सन्देहको आप दूरकर दीजिये। आप ब्रह्माके ही समान सवज्ञानी हैं। आपके सिवा दूसरा मेरे सन्देहोंको दूर नहीं कर सकता। अष्टम अध्याय समाप्त ❀

अथ नवमोऽध्यायः

(भगवान् विष्णु द्वारा ब्रह्मासे कहे गये श्रीमद्भागवतका पुनः वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जैसे स्वप्न देखनेवाले पुरुषको स्वाप्निकपदार्थों के साथ तनिक भी सम्बन्ध नहीं रहता वैसेही अनुभवात्मक जीवका भगवान् विष्णुकी मायाके सिवा दृश्य देहादि पदार्थों के साथ तत्त्वतः तनिक भी सम्बन्ध नहीं रहता। बहुरूपिणी मायाके कारण यह जीव बाल, युवा आदि अवस्थारूप तथा देव, मनुष्य आदि नररूप—अनेकरूपोंसे युक्त-हार अवभासित होता है। मायिकदेह, इन्द्रिय आदि गुणोंमें रमणकर रहा यानी देहादि विषयोंमें आसक्त हो रहा प्राणी झट यह समझने लगता है कि 'देहादि मैं ही हूँ' और 'ये

श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राजन् परस्यानुभवात्मनः ॥ न घटेतार्थसंबन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १ ॥ बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ॥ रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥२॥ यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाययोः ॥ रमेत गतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३ ॥ आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतम् ॥ ब्रह्मणे दर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४ ॥ स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ॥ तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र संमतां प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत् ॥ ५ ॥ स चिन्तयन्द्व्यक्षरमेकदाम्भस्युपाशृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः ॥ स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यद्धनं विदुः ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो विलोक्य तत्रान्य-

देहादि मेरे ही हैं' ॥ २ ॥ जब यह जीव मायाजनित मोहसे शून्य होकर प्रकृति और पुरुषसे अपनी ही महिमामें यानी अपने ही स्वरूपमें रमण करने लगता है तब 'मैं और मेरा' यह भाव छोड़कर अपने पूर्णस्वरूपसे अवस्थित हो जाता है ॥ ३ ॥ ब्रह्माकी निष्कपट तपस्यासे सेवित अतएव सन्तुष्ट होकर अपने सत्य चिद्धस्वरूपको दिखला रहे भगवान्‌ने तप आदिके द्वारा जिस भजनको ब्रह्मासे बतलाया था, वही जीवको तत्त्वज्ञान प्राप्तिका एकमात्र महान् साधन है ॥ ४ ॥ आदिदेव, जगत्‌के परम गुरु (भक्ति रहस्यके उपदेशक) उस ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे अपनी उत्पत्तिके आश्रय भगवान्‌के नाभिकमलके ऊपर बैठकर 'मैं किस तरह सृष्टि करूँ' इसका बहुत देरतक विचार किया, लेकिन इस विषयमें वह उस अव्यभिचारिणी प्रज्ञाको न प्राप्त कर सके, जिससे प्रपञ्चके निर्माणकी रीति सिद्ध हो ॥५॥ जलके भीतर बैठकर सृष्टिविषयक चिन्ताकर रहे एक समय सर्वव्यापक विधाताने अपने निकटमें ही दो अक्षरसे युक्त वचनका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रवण किया । क से लेकर म तकके अक्षरोंका नाम स्पर्श है । उन स्पर्श अक्षरोंमें जो सोलहवाँ अक्षर तकार और इक्कीसवाँ अक्षर जो पकार है, दो बार कहे गये उस वचनका अर्थात् 'तप तप' [तप करो, तप करो] इस सादर विधिरूप वचनका श्रवण किया । हे राजन्' जिसे निष्किञ्चन प्राणियोंका धन कहते हैं ॥ ६ ॥ यह सुनकर 'तप करो' तप करो' यह कहनेवाला कौन है ? उसे देखना चाहिए, इस इच्छासे विधाता वहांसे उठकर चल दिये । चारों ओर दिशाओंमें अच्छी तरह देखा लेकिन वहाँ और किसी दूसरेको न देख कर पुनः अपने आसनपर आकर बैठ गये और उन्होंने किसी पुरुषके द्वारा नियुक्त हुए-जैसे अपने हितका विचारकर तपस्यामें अपना मन लगा दिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर अमोघज्ञानसे युक्त वायु और मनको अपने अधीन कर ज्ञानात्मक और कर्मात्मक दोनों तरहकी इन्द्रियोंको जीतकर, तपस्याकर रहे लोगोंमें सबसे चढ़-बढ़कर तपस्वी उस ब्रह्माने एकाग्रचित्त से हजार वर्षोंतक अखिल लोकोंका प्रकाशक दिव्य तप किया ॥ ८ ॥ विधाताके द्वारा भलीभाँति आराधित हुए भगवान् विष्णुने उस ब्रह्माको अपना सर्वश्रेष्ठ वह वैकुण्ठलोक दिखलाया, जिससे बढ़कर दूसरा कोई लोक है ही नहीं, जहांसे

दपश्यमानः ॥ स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य तद्धितं तपस्युपादिष्ट इवादधे मनः ॥ ७ ॥ दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः ॥ अतप्यत स्माखिललोकतापनं तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥ ८ ॥ तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः सन्दर्शयामास परं न यत्परम् ॥ व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥ प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः ॥ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥ श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः ॥ सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ प्रवालवैदूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः ॥ ११ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्विमानावलिभिर्महात्मनाम् ॥ विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः ॥ १२ ॥ श्रीर्यत्र रूपिण्युरु-

संक्लेश, विमोह और भय बिलकुल हट गये हैं, जो आत्मज्ञानी सत्पुरुषों और देवताओंसे खूब स्तुत है ॥ ९ ॥ जहाँपर रजोगुण और तमोगुण या इन दोनोंसे मिला हुआ सत्त्वगुण नहीं रहता, किन्तु शुद्ध एकमात्र सत्त्वगुण ही रहता है । जहाँपर कालका विनाश नहीं होता । जहाँ माया ही नहीं रहती वहाँ राग, लोभ आदि नहीं रहते, इस विषयमें कहना ही क्या ? जहाँ पर भगवान् विष्णुके पार्षद सुर और असुरोंसे अर्चित रहते हैं ॥ १० ॥ भगवान्के वे पार्षद श्यामवर्ण और स्वच्छ हैं, उनकी आँखें कमलकी नाईं हैं, उनके पीले वस्त्र हैं, अति कमनीय हैं और हैं अत्यन्त सुकुमार । वे सबके सब चार भुजाओंसे युक्त हैं, जिनके पदक (एकतरहके कण्ठके आभूषण) तथा अन्यान्य अलङ्कारोंमें प्रभावान् चमचमा रहे सर्वोत्तम मणि जटित हैं, वे अति तेजस्वी हैं, प्रवाल, वैदूर्य और मृणालके समान वर्णवाले तथा चारों ओर खूब चमक रहे कुण्डल, किरीट और मालाओंसे वे सदा सुशोभित रहते हैं ॥ ११ ॥ जो लोक देदीप्यमान उत्तम महिलाओंकी कान्तियोंसे विद्योतमान तथा बड़े-बड़े महात्माओंके कान्तियुक्त विमानोंसे चारों ओर उस तरह सुशोभित रहता है, जिस तरह विद्युतोंसे युक्त मेघोंकी पंक्तियोंसे आकाश ॥ १२ ॥ जहाँ मूर्तिमती लक्ष्मी भगवान् विष्णुके चरणकमलोंका नानाविध विभूतियों से पूजा करती हैं और झूलेपर बैठी हुई वसन्तके साथी भौंरोंसे जो गायी जा रही लक्ष्मी स्वयं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने प्रिय पति भगवान्के नानाप्रकारकी लीलाओंका गान करती हुई-सी स्थिर रहती हैं ॥ १३ ॥ इस तरहकी विभूतियोंसे सुशोभित उस वैकुण्ठलोकमें ब्रह्माजीने अखिलभक्तोंके अधिपति, श्रीपति, यज्ञपति और जगत्पति सर्वसमर्थ नारायण भगवान्का दर्शन किया, जो भगवान् सुनन्द, नन्द, प्रबल तथा अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षदोंके द्वारा सुसेवित थे ॥ १४ ॥ जो भगवान् अपने भक्तोंके ऊपर दया करनेके लिए तैयार थे । जो देखनेवालोंको हर्ष उत्पन्न करनेवाली आँखोंसे युक्त, प्रसन्न हास्य और लाल-लाल नेत्रोंवाले मुखसे सुशोभित, वक्षःस्थलपर विलासकर रही लक्ष्मीसे अलकृत, मस्तकपर मुकुट और कानोंमें कुण्डलसे विभूषित, चार भुजाओंसे युक्त और पीले वस्त्रसे समन्वित थे ॥ १५ ॥ जो अत्युत्तम सिंहासनपर विराजित और पचीस तत्त्वरूप* शक्तियोंसे आवृत थे । स्वाभाविक ऐश्वर्यादिसे युक्त तथा अन्यत्र [योगियोंमें] साधारण ऐश्वर्योंसे युक्त होते हुए भी जो अपने स्वरूपमें ही रमणकर रहे थे अतएव ईश्वर थे ॥ १६ ॥ उनके दर्शन जनित आनन्दसे परिप्लुत [व्याप्त] अन्तःकरणवाले, रोमाञ्चित शरीरवाले और अत्यधिक प्रेमके कारण आँसुओसे भरे नेत्रोंवाले ब्रह्माजीने इनके चरण-

गायपादयोः करोति मानं बहुधाविभूतिभिः ॥ प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥ १३ ॥ ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम् ॥ १४ ॥ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम् ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १५ ॥ अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः ॥ युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम् ॥ १६ ॥ तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ॥ ननाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथा ऽधिगम्यते ॥ १७ ॥ तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ॥ बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयाहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया ॥ चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ १९ ॥ वरं वरय भद्रं ते वरेशं माभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥ २० ॥ मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् ॥ यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥ २१ ॥

कमलोंको प्रणाम किया, जो केवल परमहंसोंके पथसे यानी ज्ञानमार्गसे ही प्राप्त किए जाते हैं ॥ १७ ॥ तब अपने सामने खड़े होकर स्तुतिकर रहे प्रजा उत्पन्न करनेके कार्यमें अपना शासन स्वीकार करनेवाले प्रिय उस ब्रह्मासे प्रसन्नचित्त हुए प्रिय भगवान्ने उनका हाथ पकड़कर अपनी मन्द मुसकुराहटसे शोभ रही वाणीसे कहा ॥ १८ ॥ भगवान्ने कहा—हे वेदगर्भ, सृष्टि करनेकी इच्छासे तुमने चिरकालतक की गई अपनी कड़ी तपस्यासे मुझे खूब प्रसन्न किया है । कूटयोगी लोग मुझे यों सन्तुष्ट नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्, तुम्हारा कल्याण हो मुझ वरेशसे तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो, क्योंकि फलप्राप्तिके लिए पुरुषोंको मेरे दर्शनतक ही साधन प्रयास अपेक्षित रहता है, इसके बाद तो फिर कोई फल ही नहीं रहता

* प्रकृति, पुरुष, महत् और अहङ्कार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय, मन और पाँचमहाभूत एवं शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ—ये सब मिलाकर पचीस तत्त्व हैं ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २० ॥ मुझे तुम्हें कुछ देना चाहिए यह जो मुझे इच्छा हुई उसीका यह प्रभाव है कि जो तुम्हें मेरे लोकका दर्शन प्राप्त हुआ, क्योंकि एकान्तमें मेरे द्वारा कहे गये तप करो, तप करो, इस वचनको सुनकर ही तुमने ऐसी घोर तपस्याकी है ॥ २१ ॥ सृष्टिके प्रारम्भमें तुम्हारे अपने कार्यमें विमोहित हो जानेपर मैंने ही तुम्हें तप करो, तप करो–ऐसी शिक्षा दी थी। हे अनघ, तप मेरा हृदय है और मैं हूँ साक्षात् तपकी आत्मा ॥ २२ ॥ तपस्यासे ही मैं इस विश्वकी रचना करता हूँ और फिर तपस्यासे इसका संहार कर देता हूँ। तपस्याके द्वारा इसका पालन करता हूँ। दुश्चर तपस्या ही मेरी शक्ति है ॥ २३ ॥ ब्रह्माने कहा—हे भगवन्, आप सम्पूर्णजीवोंके अधिष्ठाता हैं। सबकी बुद्धिमें अवस्थित होकर अप्रतिरुद्ध अपने उत्कट ज्ञानसे सबके हार्दिक अभिप्रायको आप यद्यपि जानते हैं, तथापि हे नाथ आपसे याचनाकर रहे मुझको आप प्रार्थित वस्तु दे दीजिए, जिससे कि मैं रूपरहित आपके सूक्ष्म और स्थूल रूपोंको जान जाऊँ ॥ २५ ॥ जैसे मकड़ी तन्तुओंसे अपना शरीर ढक लेती है वैसेही हे माधव, हे अमोघसङ्कल्प, अपनी मायाके योगसे नानाविध शक्तियोंसे उपबृंहित विश्वका संहार

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते ॥ तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ ॥ २२ ॥ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः ॥ बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् ॥ वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥ २४ ॥ तथापि नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ॥ परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥ २५ ॥ यथात्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ॥ विलुम्पन्विसृजन् गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ क्रीडस्यमोघसङ्कल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते ॥ तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥ २७ ॥ भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतन्द्रितः ॥ नेहमानः प्रजासर्गं बध्येयं तदनुग्रहात् ॥ २८ ॥ यावत्सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम् ॥ अविक्लवस्ते परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥२९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ॥ सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥ ३० ॥ यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव तत्त्व-

कर रहे, रचनाकर रहे तथा पालनकर रहे आप अपनेसे ही अपनेको ब्रह्मादिरूपमें बनाकर जिसरीतिसे खेल खेलते हैं उस रीतिकी जानकारीके लिए मुझमें बुद्धि रख दीजिए ॥ २६, २७ ॥ [भगवन्, आप यह कभी न सोचें कि मैं इस सृष्टिकार्यसे उद्विग्न होकर आपसे तत्त्वज्ञानकी प्रार्थना कर रहा हूँ] आप जिसकी मुझे शिक्षा देंगे, मैं उसका आलस्यरहित होकर सम्पादन करूँगा, क्योंकि आपकी दया हो जानेसे प्रजाओंको उत्पन्नकर रहा भी मैं अहङ्कारादिसे बद्ध न होऊँगा ॥ २८ ॥ जैसे अपने मित्रका हाथ पकड़कर कोई मित्र अपनी ममत्वबुद्धिसे सम्मानित बनाता हुआ उचित सलाह देता है वैसेही हे परमेश्वर, करस्पर्श आदिरूपममत्वसे आपके द्वारा सम्मानित हो रहा मैं आपकी सेवामें स्थित होकर किसी तरहकी व्याकुलताका अनुभव न करके जबतक मैं उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे जीवोंकी रचना करूँ तबतक आपके द्वारा मिले हुए सम्मानसे 'मैं भी स्वतन्त्र हूँ' इस तरहका मुझ अभिमानीको उत्कट मद न हो जाय ॥२९॥ श्रीभगवान्ने कहा–मेरा जो शास्त्रीयज्ञान है वह परमगुह्य और अनुभवसे समन्वित है एवं उस ज्ञानका जो भक्ति युक्त साधन है उसे भी मैं कहता हूँ। उसका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्रहण करो ॥३०॥ मैं अपने स्वरूपसे जितना हूँ, जिस तरहकी सत्तासे मैं युक्त हूँ तथा जो मेरे रूप, गुण और कर्म हैं ठीक-ठीक वैसाही उनका तत्त्वज्ञान तुम्हें भी मेरी दयासे प्राप्त हो जाय ॥ ३१ ॥ मैं ही सृष्टिके पहले अवस्थित था और कोई दूसरी वस्तु न थी। स्थूल और सूक्ष्म तथा इन दोनोंकी कारण जो प्रकृति है वह भी मैं ही था, क्योंकि अन्तर्मुखरूपसे उस समय मुझमें ही वह प्रकृति लीन थी। मैं उस समय केवल चुपचाप अवस्थित था, कुछ भी करता धरता नहीं था। सृष्टिके अन्दर भी मैं ही अवस्थित हूँ, जो यह विश्व है, वह भी मैं ही हूँ तथा प्रलय होनेपर जो अवशिष्ट रह जाता है वह भी मैं ही हूँ। कहनेका तात्पर्य यह कि अनादि, अनन्त और अद्वितीय होनेके कारण मैं बिलकुल परिपूर्णस्वरूप हूँ ॥३२॥ जैसे दो चन्द्रके न रहते भी आँखोंमें विकार आ जानेसे दो चन्द्रमाकी प्रतीति होती है वैसेही अपने अधिष्ठानभूत आत्मामें वास्तविक अर्थोंके विना भी जिससे उनकी प्रतीति होती है तथा जैसे ग्रहोंके बीचमें विद्यमान भी राहु दिखाई नहीं देता वैसेही सद्रूपसे अवस्थित हुआ भी आत्मा जिससे किसीको दिखाई नहीं देता उसे मेरी मायाही समझ लो ॥ ३३ ॥ पदार्थोंमें महाभूत सृष्टिके अनन्तर

विज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ ३१ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ॥ पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥३२॥ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ॥ तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥ ३३ ॥ यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ३४ ॥ एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ३५ ॥ एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् ॥ पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः ॥ ३७ ॥ अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ॥ सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥३८॥ प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् ॥ भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥ ३९ ॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादा-

प्रविष्ट हैं, क्योंकि उनमें वे उपलब्ध हो रहे हैं अथवा पहलेहीसे उनमें विद्यमान रहनेके कारण प्रविष्ट नहीं भी होते वैसेही सांसारिक जीवोंमें मैं रहता हूँ और उनमें नहीं भी रहता ॥ ३४ ॥ आत्माके विषयमें तत्त्वकी जिज्ञासा रखनेवालेको इतना ही जानना आवश्यक है कि अन्वय और व्यतिरेकसे* सब जगह सर्वदा परमात्मा अवस्थित रहता है ॥३५॥ अपने चित्तको एकाग्र करके इस मतका भलीभांति अनुष्ठान करते चलो। इससे अनेककल्पोंमें नानाविध सृष्टियोंमें कभी विमोहित नहीं हो सकोगे यानी मैं ही सृष्टि करता हूँ—इस तरहका कर्तृत्वाभिमान तुम न कर सकोगे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महीपते, सकल प्राणियोंके परम आधिपत्यमें अवस्थित ब्रह्माको इस तरह उपदेशकर अजन्मा भगवान् श्रीहरिने ब्रह्माके देखते-देखते अपने उस रूपको तिरोहितकर लिया ॥३७॥ अपने प्रत्यक्ष रूपको छिपा रखनेवाले भगवान् श्रीहरिको हाथ जोड़कर प्रणाम करके सर्वभूतमय उस विधाताने पहले की नाईं ही इस विश्वकी रचना की ॥ ३८ ॥ प्रजाओं का कल्याण चाह रहे प्रजाओंके अधिपति विधाता एक समय स्वार्थकी कामनासे यम नियमोंका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३९ ॥ हे राजन्, उनके अनेक

* प्रथमस्कन्धके प्रथम अध्यायके प्रथम श्लोककी व्याख्या करते समय यह अच्छी तरह समझा दिया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुत्रोंमें प्रियतम, आज्ञाकारी, महामुनि और महाभागवत श्री नारदजीने अपने शील, विनय और इन्द्रियनिग्रहसे पिताकी सेवा करते हुए मायेश भगवान् विष्णुकी मायाको जाननेके लिये अपने पिताजीको भलीभांति प्रसन्न किया ॥ ४०,४१ ॥ तब लोकोंके प्रपितामह अपने पिताजीको परम सन्तुष्ट जानकर देवर्षि नारदने यही बात अपने पितासे पूछी थी, जो आज मुझसे आप पूछ रहे हैं ॥४२॥ हे राजन्, परम सन्तुष्ट हुए सर्वविध जीवोंकी रचना करनेवाले विधाताने अपने प्रियपुत्र नारदजीको यह भागवतपुराण विस्तारके साथ कह सुनाया, जो भगवान्से संक्षेपतः कहा गया और दशलक्षणोंसे समन्वित था ॥ ४३ ॥ हे राजन्, सरस्वतीनदीके तटपर परब्रह्मका ध्यानकर रहे अमित तेजस्वी व्यास मुनिको नारदजीने इसकी कथा सुनाई थी

नामनुव्रतः ॥ शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥ ४० ॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः ॥ महाभागवतो राजन्पितरं पर्यतो-षयत् ॥ ४१ ॥ तुष्टं निशाम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ॥ देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥ ४२ ॥ तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ॥ प्रोक्तं भगवता प्राहप्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥ ४३ ॥ नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ॥ ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥ ४४ ॥ यदुताहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥ यथासीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ ४४ ॥ हे राजन् विराट् पुरुषसे इस विश्वकी जिस रीतिसे रचना हुई थी वह मुझसे कहिये--यह जो आपने मुझसे पूछा था तथा अन्यान्य और भी जो आपके प्रश्न हैं उन सबका मैं पूर्णरीतिसे उत्तर कहता हूँ, उसे आप सावधान होकर सुनिये ॥ ४५ ॥

नवें अध्यायका सार--श्री शुकदेवजीने कहा--हे राजन्, आदिदेव ब्रह्माजी अपने उत्पत्तिस्थान कमलपर बैठकर 'मैं सृष्टि कैसे रचूँ' जब यों विचार करने लगे तब भगवान्ने उन्हें कहा--तप करो, तप करो । विधाताकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान्ने सर्वश्रेष्ठ वैकुण्ठधाम उनको दिखलाया, जहाँ सत्त्वादि गुण नहीं रहते, माया नहीं रहती और न रागदिविकार ही रहते हैं । वहाँ विधाताने सुनन्दादि प्रमुख पार्षदोंसे सेवित लक्ष्मीपति भगवान् नारायणका साक्षात् दर्शन किया । भगवन्, मैं सृष्टि किस तरह रचूँ कि मुझे अहंभावकी प्राप्ति न हो, ऐसा विधाताके पूछनेपर भगवान्ने कहा हे ब्रह्मदेव, आत्मतत्त्वके इच्छुक पुरुषोंको सिर्फ इतना ही जान लेना चाहिए कि अन्वय और व्यतिरेकसे एक आत्मस्वरूप ही सर्वत्र अनुस्यूत है । इस मेरे मतको एकाग्रचित्तसे धारणकर सृष्टि करते चलो, फिर मैं सृष्टि करता हूँ' इस अभिमानसे लिप्त न हो सकोगे । इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये । अनन्तर नारदजीकी सेवासे प्रसन्न हुए उनके पिता ब्रह्माने नारदको इसी भगवतकी संक्षेपरूपसे कथा सुनायी थी और बादमें नारदजीने सरस्वतीनदीके किनारे परब्रह्मका ध्यानकर रहे व्यासजीको कथा सुनायी थी । हे राजन्, विराट् पुरुषसे यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ, यह जो आपने मुझसे पूछा है तथा इसके अतिरिक्त जो आपके प्रश्न हैं उन सबका उत्तर मैं इस भागवतरूपसे आपको सुनाता हूँ, सुनिये । नवाँ अध्याय समाप्त ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ दशमोऽध्यायः ❀

(भागवतकी व्याख्या द्वारा ही राजा परीक्षित्के प्रश्नोंका स्पष्ट उत्तर)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, परमेशकी अनुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—ये ही दश भागवतके लक्षण (विषय) हैं ॥१॥ इनमें आश्रय नामक दसवें लक्षणकी विशुद्धिके लिये (तत्त्वज्ञानके लिये)† महात्मा लोग श्रुतिके द्वारा स्तुति आदि स्थानोंमें साक्षात् तथा तात्पर्यवृत्तिसे तत्-तत् आख्यानोंमें सर्ग आदि नवोंके स्वरूपका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ आकाशादि पञ्चमहाभूत, उनकी शब्दादि पञ्च तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ, महत् और अहङ्कार—ये सबके सब गुणोंके तारतम्यसे परमेश्वरसे उत्पन्न हैं। इनकी जो उत्पत्ति है वही सर्ग कहा गया है। तथा विराट पुरुषसे जो चराचर जगत्की सृष्टि हुई है वह विसर्ग कहा गया है ॥ ३ ॥ विरचितपदार्थोंकी मर्यादा पालन द्वारा जो

श्रीशुक उवाच ॥ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥ मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥ दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥ वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ॥ ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥ ३ ॥ स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ॥ मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥ ४ ॥ अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ॥ पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥५॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ॥ मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥६॥ आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते ॥ स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥७॥ योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ॥ यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥ ८ ॥ एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥ त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा

वैकुण्ठ भगवान्का उत्कर्ष है उसको स्थान कहते हैं, अपने भक्तोंके ऊपर भगवान्का जो अनुग्रह है वह पोषण कहा गया है, भगवान् द्वारा अनुगृहीत मन्वन्तरोंके अधीशोंका जो धर्म है उसे मन्वन्तर कहते हैं और कर्मोंकी वासनाओंको ऊति कहते हैं ॥ ४ ॥ भगवान् श्रीहरिके अवतारोंके चरित्र तथा उनके अनुगामी पुरुषोंकी नानाविध आख्यानोंसे उपबृंहित सत्कथाएँ ईशकी अनुकथाएँ कही गई हैं ॥५॥ भगवान् श्रीहरिकी योगनिद्राके पश्चात् उपाधियोंके साथ-साथ इन जीवोंका जो लय हो जाता है वह निरोध कहा गया है। अविद्यासे अध्यस्त कर्तृत्वादि भावको छोड़कर ब्रह्मस्वरूपसे जो जीवकी व्यवस्थिति है वह मुक्ति कही गई है ॥ ६ ॥ जिससे सृष्टि और लय होता है और जो स्वयं प्रकाशक है वही परब्रह्म परमात्मा इस नामसे प्रसिद्ध आश्रय कहा जाता है ॥ ७ ॥ जो यह चक्षु आदि इन्द्रियोंका अभिमानी द्रष्टा जीव है वही आधिदैविक पुरुष कहा जाता है यानी चक्षु आदि इन्द्रियोंका अधिष्ठाता सूर्य आदि देव भी

† अर्थात् सबके आश्रय परमपुरुषके तत्त्वज्ञानके लिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वही कहा जाता है। इन दोनोंके एकही स्वरूपमें दो तरहका जिससे विभाग सम्पन्न होता है वह अधिभौतिक पुरुष कहा जाता है अर्थात् नेत्रगोलक आदिसे उपलक्षित दृश्य देह जीवकी उपाधि कही जाती है ॥ ८ ॥ इन तीनोंमें❀ किसी एकके अभावमें किसी एकको जब हम नहीं जान सकते तब ऐसी परिस्थितिमें जो इन तीनोंको साक्षीरूपसे जानता है वही परमात्मा आश्रय कहा गया है। वह परमात्मा स्वयं अनन्याश्रय होता हुआ भी दूसरोंका आश्रय है अर्थात् उस परमात्माका कोई आश्रय नहीं है लेकिन वह दूसरोंका आश्रय अवश्य है ॥९॥ जब उस अण्डेको फोड़कर वह विराट् पुरुष बाहर निकल आया तब अपने निवासके लिये किसी जगहकी इच्छाकर रहे उस विराट् पुरुषने शुद्ध जलकी सृष्टिकी, क्योंकि वह स्वयं शुद्ध था ॥१०॥ अपने विरचित जलमें भगवान्‌ने हजारों वर्षतक निवास किया, इसलिये उनका नारायण() नाम पड़ा, क्योंकि जल नरसे उत्पन्न हुए हैं [नरसे उत्पन्न होनेवालेको नार कहते हैं, नार है अयन निवासस्थान जिसका वह है नारायण, यों नारायण शब्दकी व्युत्पत्ति है] ॥११॥ द्रव्य [उपादान] कर्म [निमित्त], काल, स्वभाव और जीव [भोक्ता] ये सब जिसके अनुग्रहसे कार्यक्षम होते हैं और जिसकी उपेक्षासे नहीं होते ॥ १२ ॥ नानारूप होनेकी इच्छाकर रहे उस एक प्रभुदेवने योगरूपी शय्यासे उठकर अपनी मायाके द्वारा अधिदैव, अध्यात्म और

स्वाश्रयाश्रयः ॥ ९ ॥ पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदासौ स विनिर्गतः ॥ आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः ॥ १० ॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ॥ तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥ ११ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ तदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया ॥ १२ ॥ एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्समुत्थितः ॥ वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजत् त्रिधा ॥ १३ ॥ अधिदैवमथाध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः ॥ अथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाऽभिद्यत तच्छृणु ॥ १४ ॥ अन्तःशरीर आकाशात्पुरुषस्य विचेष्टतः ॥ ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥१५॥ अनु प्राणन्ति यं प्राणाः प्राणन्तं सर्वजन्तुषु ॥ अपानन्तमपानन्ति नरदेवमिवानुगाः ॥१६॥ प्राणेन

अधिभूत—यों तीन तरहके हिरण्मय-जैसे प्रकाश बहुत गर्भरूप‡ शरीरको उत्पन्न किया। हे राजन् तदनन्तर एकही वह पुरुषका वीर्य तीन रूपोंमें कैसे विभक्त हो गया, यह मैं आपसे कहता हूँ, आप उसे सुनिये ॥ १३, १४ ॥ क्रियाशक्तिसे आकाशमें विविध चेष्टाएँ कर रहे उस पुरुषके शरीरके अन्दर जो विद्यमान आकाश है उस आकाशसे इन्द्रियोंकी शक्ति, मनकी शक्ति और देहकी शक्ति उत्पन्न हुई। अनन्तर शक्त्यात्मक उस सूक्ष्मरूपसे सबका मुख्य प्राण सूत्रात्मा उत्पन्न हुआ ॥१५॥ राजाके नौकरोंकी नाईं सम्पूर्ण जन्तुओंके भीतर चेष्टाकर रहे जिस मुख्य प्राणके पीछे-पीछे सब इन्द्रियाँ भी, राजाके नौकरोंकी नाईं चेष्टाएँ (क्रियाएँ) करती हैं और अपनी चेष्टा छोड़ रहे उस प्राणके पीछे-पीछे वे सब भी अपनी-अपनी क्रियाएँ

❀ अर्थात् आध्यात्मिक जीव द्रष्टा; आधिदैविक सूर्य आदि देव और आधिभौतिक देह— इन तीनोंमें।

() कहा भी है—आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ॥

‡ गर्भरूप यानी चतुर्दश भुवनात्मक समष्टिदेह, देखिए मनुस्मृतिः—'अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्। तदण्डमभवद्धैमं सहस्रार्कसमद्युति ॥'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छोड़ देती हैं ॥ १६ ॥ विराट् पुरुषके उदरके मध्यमें प्राणवायुके अपना व्यापार करनेसे यानी तेजीके साथ प्राणवायुके सञ्चलनसे क्षुधा और पिपासा (भूख-प्यास) उत्पन्न हुई। भूखे-प्यासकी इच्छाकर रहे उस पुरुषके शरीरसे मुँह सबसे पहले विभक्त हुआ ॥ १७ ॥ मुखसे तालु निकला, उसमें जीभ उत्पन्न हुई, तदनन्तर उस जीभसे नानाप्रकारके रस उत्पन्न हुए जो; जिह्वासे गृहीत होते हैं ॥ १८ ॥ बोलनेकी इच्छाकर रहे उस विराट् पुरुषके मुँहसे ही अग्निदेवता, वागिन्द्रिय तथा इन दोनोंका सम्भाषण उत्पन्न हुआ। चिरकालतक उस विराट् पुरुषका जलमें निरोध [प्राणवायु निरोध] अवस्थित रहा ॥१९॥ प्राणवायुके अत्यन्त सञ्चालित होनेपर उसकी दो नासिकाएँ उत्पन्न हुईं। उस नासिकामें गन्धका प्रसार करनेवाला वायु उत्पन्न हुआ। दुर्गन्ध ग्रहण करनेकी इच्छा कर रहे उस पुरुषकी नासिकामें घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥२०॥ जब ब्रह्माण्डमें तनिक भी आलोक नहीं था; तब अपना स्वरूप तथा अन्य वस्तुएँ देखनेकी इच्छा कर रहे उस पुरुषके मुखमें आँखें उत्पन्न हुईं। वहीं सूर्यदेव, चक्षु इन्द्रिय और रूप [विषय] उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥ वेदोंसे स्तुत हो रहे अतएव अपनी स्तुति सुननेकी

क्षिपता क्षुत्तृडन्तरा जायते प्रभोः ॥ पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥ १७ ॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायते ॥ ततो नानारसो यज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ विवक्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः ॥ जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥१९॥ नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति ॥ तत्र वायुर्गन्धवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ॥ निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥ बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्तज्जिघृक्षतः ॥ कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रहः ॥२२॥ वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताम् ॥ जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां लोम मही रुहाः ॥ तत्र चान्तर्बहिर्वातस्त्वचालब्धगुणो वृतः ॥ २३ ॥ हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया ॥ तयोस्तु बलमिन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥ २४ ॥ गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् ॥ पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥२५॥ निरभिद्यत शिश्नो वै प्रजानन्दामृतार्थिनः ॥ उपस्थ आसीत्कामानां प्रियं

इच्छाकर रहे भगवान्को दो कान उत्पन्न हुए। उससे दिशाएँ, श्रोत्रेन्द्रिय और शब्दग्रहण उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ वस्तुओंमें कोमलता, कठिनता, लघुता, गुरुता, थोड़ी-सी उष्णता और शीतलता जाननेकी चाहकर रहे परमात्माको त्वचा निकल आई अर्थात् त्वगिन्द्रियके अधिष्ठानभूत चमड़ा उत्पन्न हो आया। वहींपर रोम और उनके देवता वृक्ष उत्पन्न हुए। उसी त्वचामें बाहर और भीतर व्याप्त होकर वायु देवता अवस्थित है, जो त्वचासे स्पर्श-ग्रहण किए हुए हैं ॥२३॥ नानाविध कर्म करनेकी इच्छासे उसके दो हाथ उत्पन्न हुए। उनमें बल इन्द्रदेवता तथा उन दोनोंसे आदान-प्रदानरूप कर्म पैदा हुआ ॥ २४ ॥ अभीष्ट गतिकी इच्छाकर रहे उसके दो पैर उत्पन्न हुए, पैरोंके साथ उनके अधिष्ठाता देव भगवान् विष्णु स्वयं अवस्थित हो गये। पैरकी गमन क्रियाओंसे पुरुष यज्ञ करनेके लिए होम द्रव्य लाकर उपस्थित करते हैं ॥२५॥ प्रजा [अपत्य]; स्त्री समागमसुख तथा स्वर्गीय सुखकी चाहकर रहे उस पुरुषको शिश्न उत्पन्न हुआ। वहीं उपस्थ इन्द्रिय और प्रजापति देवता उत्पन्न हुए, जहाँ इन दोनोंके आश्रयसे कामसुख उपस्थित था ॥२६॥ भक्षित अन्न आदिके असार अंशको छोड़ने-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की इच्छाकर रहे उस पुरुषको गुदा उत्पन्न हुई। उसके बाद पायु इन्द्रिय और फिर मित्र देवता उत्पन्न हुए। उन दोनोंके आश्रयसे उत्सर्ग [मलत्याग] हुआ ॥२७॥ एक देहसे दूसरे देहोंमें जानेकी इच्छाकर रहे उस पुरुषको नाभिद्वार उत्पन्न हुआ तथा नीचेकी ओर जानेकी इच्छाकर रहे उसको वहींपर अपानवायु और उसीसे मृत्यु उत्पन्न हुई। प्राण और अपानवायुका नाभिसे सम्बन्ध टूट जाना ही मृत्यु है ॥ २८ ॥ अन्न-पानके संग्रहकी इच्छाकर रहे उस पुरुषको कुक्षि, अँतड़ियाँ और नाड़ियाँ उत्पन्न हुईं। इनमें नाड़ियोंकी नदियाँ और अँतड़ियोंके देवता समुद्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंके आश्रयसे तुष्टि और पुष्टि उत्पन्न हुई ॥२९॥ उसके बाद अपनी मायाके विषयमें विशेष चिन्तन करनेकी इच्छाकर रहे उसको हृदय उत्पन्न हुआ। उसीसे मन, चन्द्रमा, सङ्कल्प और काम उत्पन्न हुए ॥३०॥ त्वचा, चर्म, मांस, रक्त, मेद, मज्जा और हड्डियाँ—ये सात धातुएँ हैं, ये सबके सब पृथिवी, जल और तेजोमय हैं। प्राण तो आकाश, जल और वायुसे आरब्ध हुए हैं ॥ ३१ ॥ श्रोत्र आदि सब इन्द्रियाँ स्वभावतः विषयोंकी ओर झुकनेवाली हैं। शब्द आदि अहङ्कारसे उत्पन्न होते हैं। मनही सम्पूर्ण विकारोंकी

तदुभयाश्रयम् ॥२६॥ उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदम् ॥ ततः पायुस्ततो मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः॥२७॥ आसिसृप्सो पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः ॥ तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयम् ॥ २८ ॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यन्त्रनाडयः ॥ नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥ २९ ॥ निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ॥ ततो मनस्ततश्चन्द्रः सङ्कल्पः काम एव च ॥ ३० ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः ॥ भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमाम्बुवायुभिः ॥ ३१ ॥ गुणात्मकानीन्द्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ॥ मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥ ३२ ॥ एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ॥ मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥ ३३ ॥ अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ॥ अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥ ३४ ॥ अमुनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते। उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥ ३५ ॥ स वाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक् ॥ नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माऽकर्मकः परः ॥ ३६ ॥ प्रजपतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ॥ सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७ ॥ किन्नराप्सरसो नागान्सर्पान्किंपुरुषोरगान् ॥ मातृ रक्षःपिशा-

आत्मा है। यह मन बहुधा तामस विषयोंमें ही सङ्कल्प और विकल्प किया करता है। हेय और उपादेयका ज्ञान कभी नहीं करता, परन्तु बुद्धि ऐसी नहीं है वह विज्ञानसे युक्त है ॥३२॥ हे राजन्, मैंने आपसे भगवान्का यह स्थूलरूप कह दिया, जो पृथिवी आदि आठ आवरणोंसे आवृत है ॥३३॥ इसके बादका जो भगवान्का कारणभूत सूक्ष्मतम (अतीन्द्रिय) रूप है, वह निर्विशेष, उत्पत्ति, स्थिति और लयसे शून्य, सदैकरूप [अपक्षयादिशून्य] तथा वाणी और मनका अविषय है ॥३४॥ हे राजन्, मैंने भगवान्के इन दोनों रूपोंका आपसे वर्णनकर दिया। विद्वान् लोग इन दोनोंको भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि हे राजन्, ये दोनोंरूप उपासनाके लिए भगवान्में आरोपित हैं और माया द्वारा विरचित हैं ॥३५॥ वह भगवान् ब्रह्मरूप धारण करके वाच्य-वाचकरूपसे नाम, रूप और क्रियाओंकी रचना किया करते हैं। वह परब्रह्म परमेश्वर अकर्मक होते हुए भी मायासे सकर्मक बन जाते हैं ॥ ३६ ॥ हे नृप, दक्ष आदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रजापति, स्वायम्भुव आदि मनु, देवता, ऋषि, पितृगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, यक्ष, किन्नर, अप्सराएँ, हाथी, साँप, किंपुरुष, उरग, षोडश-माताएँ, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्मादकग्रह, बेताल, यातुधान, (एक तरहके राक्षस) पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, सरीसृप, [छोटे-छोटे डँसनेवाले जीव], स्थावर और जङ्गम दो तरहके जीव, जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज ये चार तरहके जीव तथा इनके सिवाय और जो जल, स्थल, एवं आकाशमें रहनेवाले प्राणी हैं उनके नाम, रूप तथा तत्-तत् कर्मोंको भगवान् स्वयं धारण करते हैं। हे राजन्, पुण्य और पाप तथा इन दोनोंसे मिश्रित कर्मोंके उत्तम, अधम एवं मध्यम ये फल होते हैं—सत्त्व, रज और तम ये तीन गतियाँ क्रमशः सुर, नर तथा नारकीय पुरुषोंकी होती हैं। हे राजन्, इनमें भी एक-एकके दूसरोंके गुणोंसे मिल जानेपर जब एक-एकका स्वभाव दूसरोंसे बदल दिया जाता है तब प्रत्येक गति तीन-तीन प्रकारसे विभक्त हो जाती है ॥ ३७–४१ ॥ वही जगत्के प्रतिपालक भगवान् तिर्यक्, नर और सुर आदि रूपसे इस विश्वका प्रतिपालन करते हुए धर्मरूपसे नानाविध भोगोंके द्वारा संवर्धित भी करते हैं

चांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥ ३८ ॥ कूष्माण्डोन्मादवेतालान्यातुधानान् ग्रहानपि ॥ खगान्मृगान्पशून्वृक्षान् गिरीन्नृप सरीसृपान् ॥ ३९ ॥ द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः ॥ कुशलाकुशला मिश्रा कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥ ४० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः ॥ तत्राप्येकैकशो राजन्भिद्यन्ते गतयस्त्रिधा ॥ यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥ ४१ ॥ स एवेदं जगद्धाता भगवान् धर्मरूपधृक् ॥ पुष्णाति स्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥ ४२ ॥ ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः ॥ सन्नियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः ॥ ४३ ॥ इत्थंभावेन कथितो भगवान् भगवत्तमः ॥ नेत्थंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हन्ति सूरयः ॥ ४४ ॥ नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते ॥ कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं हि तत् ॥ ४५ ॥ अयं तु ब्राह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः ॥ विधि साधारणो यत्र

॥ ४२ ॥ अनन्तर अपने शरीरसे जो इस विश्वकी रचना की है उसका—समयसे स्वयं काल, अग्नि और रुद्र बनकर उस प्रकार संहारकर डालते हैं, जिसप्रकार वायु मेघसमूहका ॥४३॥ परमात्मा ही इस जगत्के स्रष्टा हैं—इत्यादि रूपसे सबसे अधिक ऐश्वर्यसे सम्पन्न भगवान् ही श्रुतियोंके द्वारा* प्रतिपादित हैं। परन्तु तत्त्वज्ञानी लोग स्रष्टत्वादि रूपसे भगवान्को नहीं देखते ॥ ४४ ॥ क्योंकि इस विश्वके जन्मादि कर्ममें परमेश्वरका कर्तृत्व नहीं है। श्रुतियाँ भी भगवान्के कर्तृत्वका प्रतिपादन नहीं करतीं। भगवान् इस विश्वके रचयिता नहीं हैं, इसका खण्डन करनेके लिये भगवान्के कर्तृत्वका केवल अनुवाद करती हैं अर्थात् श्रुतियाँ भी भगवान्के कर्तृत्वका समर्थन नहीं करतीं—यह उनके तात्पर्यसे साफ-साफ मालूम पड़ता है, क्योंकि वह सब तो मायासे आरोपित [प्रकाशित] है† ॥ ४५ ॥ अवान्तर कल्पोंके साथ-साथ ब्रह्माके महाकल्पका उदाहरणके बतौर संक्षेपसे वर्णन हो गया, जिस महाकल्पमें महतत्त्व आदिकी तथा अवान्तरकल्पोंमें स्थावर आदिकी सृष्टि होती है, यह विधि अन्य महाकल्पोंकी अपेक्षा साधारण है ॥ ४६ ॥ हे भूपते, कालके स्थूल और सूक्ष्म प्रमाणकी, कल्पके स्वरूप तथा उसके

---

* 'तस्माद्वा एतस्मादाकाशः संभूतः' 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादि श्रुतियोंके द्वारा। † इसमें 'निष्फलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्' 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अवान्तरकल्प और मन्वान्तरादिरूप विभागकी—आगे चलकर तृतीयस्कन्धमें खूब विस्तारके साथ व्याख्या करूँगा, उनमें पहले पाद्मकल्पकी मैं विस्तारके साथ व्याख्याकर रहा हूँ, आप सुनिये ॥४७॥ शौनकमुनिने कहा—हे सूतजी, आपने जो हमसे यह कहा है कि भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ विदुरजी अपने बन्धुओंको छोड़कर, जिनको त्यागना अत्यन्त कठिन है, पृथिवीके सम्पूर्ण तीर्थोंमें विचरण करते फिरे ॥ ४८ ॥ उनका और मैत्रेयका अध्यात्मविषयक कहाँ सम्वाद हुआ ? अथवा भगवान् मैत्रेयसे पूछनेपर विदुरको भगवान् मैत्रेयजीने जो तत्त्वोपदेश दिया था, वह सब हेसौम्य, हमसे कहिये तथा विदुरजीके चरित्रका हमसे वर्णन कीजिये। हेसौम्य, विदुरजीको अपने बन्धुओंको छोड़देनेका कारण क्या था और वह पुनः अपने बन्धुओंके

सर्गाः प्राकृतवैकृताः ॥ ४६ ॥ परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् ॥ यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥ ४७ ॥ शौनक उवाच ॥ यदाह नो भवान्सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः ॥ चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बन्धून्सुदुस्त्यजान् ॥ ४८ ॥ कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ॥ यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्वमुवाच ह ॥ ४९ ॥ ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् ॥ बन्धुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥ तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोध्याय:॥ १०॥द्वितीयस्कन्ध समाप्तः।

पास लौट कैसे आये ? ॥ ४९, ५० ॥ सूतजीने कहा—हे मुनियो, राजा परीक्षित्के द्वारा पूछेजाने पर महामुनि श्रीशुकजीने जो कुछ उत्तर दिया था, वह सब मैं आप महानुभावोंसे कहता हूँ, आप लोग राजाके प्रश्नोंके अनुसार ही सुनते जाइये ॥ ५१ ॥

दसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा–महीपते, इस भागवतमें सर्ग, विसर्ग आदि दस विषय हैं। इनमें दसवाँ सबका आश्रय परमात्मा है। एक उस परमात्माके ज्ञानके लिये ही अवशिष्ट नव लक्षणोंका वर्णन किया गया है। हे राजन्, इस चराचर जगत्के कर्ता भगवान् वास्तवमें न होते हुए भी माया द्वारा परिकल्पित कर्ता अवश्य हैं। जो श्रुतियाँ भगवान्के कर्तृत्वका प्रतिपादन करती हैं उनका भी तात्पर्य भगवान्के कर्तृत्वके निषेधमें ही है। हे राजन्, कालके स्थूल और सूक्ष्म परिणाम तथा कल्पके लक्षण एवं अवान्तर कल्प और मन्वन्तरके विभागका सविस्तर वर्णन आगे चलकर करता हूँ, आप सुनते जाइये। दसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[गोपालोंके नाम, श्रीकृष्णका रूप और कृष्णकी स्त्रियोंके नामादिका कथन]

श्रीदामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च। सुबलश्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा॥ चन्द्रभानो वीरभानः सूर्यभानस्तथैव च। वसुभानो रत्नभानो गोपाला द्वादश स्मृताः॥ 'श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्॥ 'सप्तानां रमणीनां च पाणिग्राहं चकार ह। कालन्दीं सत्यभामां च सत्यां नाग्निजितीं सतीम्॥ जम्बवतीं लक्ष्मणां च समुद्वाहं चकार सः। ताभिः सार्द्धं क्रमेणैव पुत्रोत्पत्तिं चकार ह॥ एकस्यां दशपुत्राश्च कन्यकैका क्रमेण च।

[देवस्थापनका नियम, प्रतिमा ग्रहणमें नियम और कामनापरक स्रुवका निर्माणप्रकार]

देशे दुर्जनभूयिष्ठे विप्रकृष्टे जलेऽपि च। नानाव्याधिसमाकीर्णे न देवं स्थापयेद् बुधः॥ न रात्रौ स्थापयेद्देवं पापग्रहबले तथा। उग्रे च तिथिनक्षत्रे सूर्ये चादृष्टमण्डले॥ नागृहस्थो न चाविद्वान् नाविप्रो नोपजीविकः। न च न्यूनाङ्गरिक्ताङ्गः स्थापयेत्पुरुषोत्तमम्॥ कृतपर्युषितं जीर्णे मानहीनोपजीविकम्। कर्मान्तरेण भूयिष्ठे नागारे स्थापयेद्धरिम्॥ न गर्भयुक्तं जीर्णं वा स्थापयेद् विम्बमाचरेत्। एवमेतेषु दुष्टेषु देवस्य स्थापने कृते॥ यक्षरक्षः पिशाचानां सन्निवासो भविष्यति। द्रव्याणां संग्रहं कुर्यात्स्थापनार्थाय सर्वशः। आदौ शिल्पिसकाशात्तु गृहणीयात्प्रतिमां नवाम्॥ 'सौवर्णो राजतस्ताम्रो खादिरो वा स्रुवो भवेत्। आद्यमैश्वर्यसिध्यर्थं राजतं कीर्तिवर्धनम् ताम्रं शान्तिकरं प्रोक्तं खादिरं वसुवर्धनम्।

[षडङ्गन्यासका नियम, आचायकी आज्ञा आवश्यक होमार्थ अग्निके नाशका फल, मन्थनाग्निके नाशसे पुनः मन्थन और अष्टाक्षरादि जपका फल]

पूजारम्भे भयस्थाने कान्तारेषु नदीषु च। प्राणान्तिकेषु दुर्गेषु षडङ्गन्यासमाचरेत्। 'आचार्येणाननुज्ञातो यः पूजां कुरुते नरः। न तस्य पूजया किञ्चिद्देवदेवः प्रसीदति॥ यदि होमार्थमानीतो नश्येद्वह्निरकारणात्। विपदस्तस्य जायन्ते साधकस्य न संशयः॥ विसृज्येद्विष्णुलिङ्गं वा दुर्गन्धं वा हुताशनम्। निर्मथ्य चाग्निं होमार्थमविनाशेन धारयेत्। तस्मिन्विनष्टे भूयोऽपि मन्थनेनैव धारयेत्। अष्टाक्षरं जपेन्नित्यं द्वादशाक्षरमेव च। प्रमादे वाऽपराधे वा लङ्घने समय एव च॥ प्रायश्चित्तं जपं कुर्यात्सहस्रं शतमेव वा।

[स्वप्नमें किसी वस्तुको देखनेका फल]

स्वप्नं तु प्रथमे यामे कुर्यात्संवत्सरात्फलम्। अष्टमासात् द्वितीये तु तृतीये त्रिभिरेव च। मासेनैव भवेदन्त्ये प्रभाते त्वरया फलम्॥

[अपनी पत्नियों और यादवोंके गृहोंकी संख्या]

तत्र षोडश साहस्रं स्त्रीणां चैव शताधिकम्। भवनानि मनोज्ञानि तेषां मध्ये व्यकल्पयत्॥ पारिजाततरुं मध्ये तासां भोगाय कल्पयत्। यादवानां गृहास्तत्र षट् पञ्चाशात कोटयः॥ अन्येऽपि बहवो लोका वसन्ति विगत ज्वराः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[द्वितीय-स्कन्ध]

इति

श्रीमद्भागवतभाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६९ पुष्पलता

[तृतीय-स्कन्ध]

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय सरकारद्वारा सम्मानित विद्वान् आचार्य—श्रीदौलतराम गौड,
वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[स्व० म० म० विद्याधर गौड]

[सामग्रीके बिना भी यज्ञ करने का फल]

एकत, द्वित और त्रित ये तीन भाई थे, पिता गौतम इनसे प्रसन्न थे। गौतम के स्वर्ग चले जाने पर इनके जो यजमान राजा थे वे इनके पुत्रों को मानने लगे। परन्तु तीनों भाइयोंमें वेदाध्ययनशील तथा कर्मशील होने से त्रित में मुनि एवं यजमानों की विशेष श्रद्धा थी। एक समय एकत और द्वित को यह रुचि हुई कि यज्ञ कराना चाहिये। वे त्रितको साथ लेकर यज्ञ ग्रहणार्थ यजमानोंके घर गये। वहां उनको यज्ञ कराया। उन्हें यज्ञान्तमें पशु ही दक्षिणा मिला, जिन पशुओं का ग्रहण कर वे पूर्व दिशा की ओर चले। उनमें त्रित अत्यन्त प्रसन्न हो आगे आगे चलता था। एकत और द्वित पीछे पीछे पशुओं को हाँकते चले जाते थे। इधर इन दोनोंने आपस में राय की कि त्रित गुणी है, इसको पशु नहीं देना चाहिये। इसलिए इसका त्याग कर किसी दूसरे मार्गसे हम चल चलें। रात्रि में चलते चलते यों विचार कर ही रहे थे कि भेड़ियेने इनके पशुओं पर आक्रमण कर दिया। जिस भयसे त्रित सरस्वती नदीके किनारेके पासवाले कूप में गिर गया। वह कूप बड़ा भयंकर और अगाध था। वह भीतर से चिल्लाने लगा। पर उसकी चिल्लाहट को सुनते हुए भी एकत और द्वित लोभके कारण उसे छोड़कर चल दिये। त्रितने भी हताश हो शुष्क कूपमें पानी का चिन्तन एवं अग्नि का संकल्प किया। कूपमें लटकी लता को सोमलता मानकर उसने सोमयाग किया। जिससे स्वर्गस्थ देवताओंमें खलबली मच गई। देवोंने कहा कि त्रित मुनि यज्ञ कर रहा है, हम सबको वहां जाना चाहिये। अन्यथा वह कुपित होकर अन्य देवों की कल्पना ही कर लेगा। अतः सब इकट्ठे होकर जहां त्रित मुनि यज्ञ कर रहे थे, वहाँ पहुँचे। देवताओं ने यज्ञ में अपने अपने भाग का ग्रहण कर त्रितसे कहा 'वरं ब्रूहि' त्रितने कूपसे मेरी रक्षा करो, यह प्रथम वर माँगा। इसके बाद उसने कहा—इस कूपमें जो आचमन करे उसे सोमपान का पुण्य प्राप्त होवे। उसी समय लहराती हुई सरस्वती नदी उमड़ पड़ी, जिससे त्रित मुनि कूपसे देवताओं को धन्यवाद देते हुए बाहर निकल गये। देवता भी उसे वरदान देकर अपने स्थान को चले गए। इधर महामुनि भी अपने आश्रम को चल दिये।

[पात्रोंका निर्माण प्रकार]

(१) अन्तर्धानकट—वारणकाष्ठका अर्ध चन्द्रकार बारह अंगुलका आध अंगुल मोटा पात्र अन्तर्धानकट होता है। दर्शपूर्णमासादियागमें पत्नीसंयाजमें अपना अपना भाग लेनेके लिए देवपत्नियाँ आती हैं, उन्हें देवताओंसे लज्जा होती है। इसलिए आड़ करनेके लिए गार्हपत्य कुण्डके ऊपर पत्नीसंयाजके समय इसको रखा जाता है। बौधायन शाखामें यह पीपलका होता है। [२] पशुरशना—बारह हाथका तीन मुखवाली कुशाकी रस्सी पशु बाँधनेके लिए पशुरशना कही जाती है। अश्वमेधमें १२ या १३ हाथकी पशुरशना होती है। [३] मयूख—बारह अङ्गुलका एक अङ्गुल मोटा गूलरका वत्सबन्धनके लिए शङ्कु मयूख होता है। [४] वसाहवनी—मांसपाक भाण्डस्थित स्नेहकी वसा कहते हैं। उसका हवन जिसमें हो उस जुहुसदृशी विकङ्कत काष्टकी स्रुक्को वसाहवनी कहते हैं। (५) वेद—दर्शपूर्णमास आदि से पुरोडाशमें लगे हुए भस्मको दूर करनेके लिए ५१ कुशाओं से बना हुआ वेणीके आकार का गूंथा हुआ बैठे हुए बछड़ेके जानुके सदृश कुशमुष्टि वेद कहलाता है। [६] कर्पूर—मृत्तिकाका बड़े गर्तवाला अर्धपरिमाण पात्र कर्पूर [अथरी] होता है। चातुर्मास्य-आदि यज्ञमें इसमें धान भूँजा जाता है। [७] अनुष्टुब्धि-जुहुसदृशी आश्वत्थी स्रुक्, आपस्तम्बोंकीनामनुष्टुब्धि होती है। (८] पूर्णपात्र-दर्शादि इष्टिमें स्मार्त प्रोक्षणीयपात्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के सदृश यजमानका मुख धोनेके लिए जिसमें जल रखा जाता है, वह पूर्णपात्र कहलाता है। [९] विष्टुति—वारणकाष्ठकी दस-दस अङ्गुलकी एक अङ्गुल मोटी नीचेके हिस्सेमें कुछ चतुरस्त्र और मोटी—जैसी ऊपरके हिस्सेमें कुछ गोल और पतली—जैसी शलाका [सलाई] को विष्टुति कहते हैं। सोमयाग में उद्गाता ऋत्विक् गान करनेके समय साममन्त्रोंकी गिनती इसके द्वारा करता है। [१०] शराव—मृत्तिका का बड़े मुखका थोड़े गर्तवाला गृहमेधीयादि इष्टिमें पायस रखनेके लिए पात्र [परई] शराव कहलाता है। [११] शकट—वारणकाष्ठका अढाई हाथ लम्बा त्रिकोण डेढ़ हाथ चौड़ा दो हाथ ऊँचा बैठनेकी जगहमें एक हाथ लम्बी-चौड़ी काठकी जिसमें पटिया हो, ऊपर भी काठकी पटियासे शिखर बना हो एक-एक हाथ ऊँचे दो जिसमें चक्र हों, सोमको रखनेके लिए शकट होता है। दूसरा शकट पूर्वशकटकी अपेक्षासे कुछ छोटा होता है और इसमें शिखर नहीं होता। आश्वलायन शाखामें स्मार्तकर्ममें भी बारह अङ्गुल का शकट होता है। [१२] परिप्लवा—वरनाकाष्ठकी दस अङ्गुल लम्बी हंसमुखके सदृश नालीदार पाँच अङ्गुलकी गोलाईमें एक अङ्गुलवाली बिना दण्डकी स्रुक् द्रोणकलश आदिसे सोमरस ग्रहणके लिए होती है। [१३] पशुकुम्भी—पशुश्रवणके लिए तैजसपात्रको पशुकुम्भी कहते हैं। [१४] मुसल—खैरका दस अङ्गुल लम्बा अथवा इच्छाप्रमाण मध्यमें कुछ अधिक स्थूल एक अङ्गुल स्थूल दर्शपूर्णमासादिमें व्रीह्यादिकण्डनोपयोगी मुसल है। आपस्तम्बशाखावाले ३६ अङ्गुलका वारणकाष्ठका मुसल मानते हैं। [१५] ऋतुग्रहपात्र—काष्मरी काष्ठ के या पीपल के बने हुए प्रोक्षणीपात्र के सदृश, दोनों तरफ जिनमें हंसमुख नालिकाएँ होती हैं, सोमरस के ग्रहण और होम आदि के उपयोग में आनेवाले ऋतुयाज के साधन भूत दो पात्र ऋतुपात्र या ऋतुग्रह कहे जाते हैं [१६] आज्यस्थाली—अर्थपरिमाण धातुकी मृण्मयी हस्त हित हो ऊपर मुँह चौड़ा नीचेको क्रमसे छोटी होती जाय, घृतको गरम करनेके लिए कटोरा आज्यस्थाली होती है। [१७] उपवेष—वारणकाष्ठसे बना हुआ एक हाथका पाँच अङ्गुलवाले हाथके सदृश हाथके नीचे दो अङ्गुल मोटे गोल दण्डवाला तप्त अङ्गारोंको दूर करनेके लिए उपवेष पात्र होता है। आपस्तम्ब शाखामें उपवेष नहीं है, किन्तु धृष्टि है। [१८] स्थाली—उक्थ्यस्थाली, आग्रयणस्थाली, ध्रुवस्थाली, आदित्यस्थाली ये चार स्थालियाँ धातु या मृन्मयकी चरुस्थालीके सदृश होती है। इनमें सोमरस रखा जाता है, इनमें उक्थ्यस्थालीका ढकना भी होता है। जिसका मुख और मूल दोनों चौड़ा हो उसको स्थाली कहते हैं। [१९] इडापात्री—वारणकाष्ठकी एक हाथ लम्बी आठ अङ्गुल चौड़ी कुछ गोल आकारकी चार अङ्गुल दण्ड जिसमें हो, दो अङ्गुल ऊँची एक अंगुल विस्तृत और चौड़ी जिसकी परिधि किनारी हो, ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु अग्नीत् और यजमान—इनका भाग जिसमें रखा जाता हो, उसको इडापात्री कहते हैं। तित्तिरि शाखावालोंकी इडापात्री चौकोर प्रणीताके सदृश आकृतिवाली होती है। आपस्तम्ब शाखामें इस इडापात्रीके सदृश दारुपात्री होती है। [२०] मेक्षण—वैकङ्कतकाष्ठका दस अंगुल लम्बा आगेके हिस्सेमें दो अंगुलकी गोलाई कलछीकी तरह मुख हो और बचे हुए हिस्सेमें कनिष्ठा अंगुलीके अग्रभागके समान स्थूल दण्ड हो, चरुइष्टिमें चरुका ग्रहण और होम जिससे होता है उसको मेक्षण कहते हैं। आपस्तम्ब शाखामें श्रौत कर्ममें गूलरका धृष्टिके सदृश एक हाथका मेक्षण होता है और स्मार्त कर्ममें गूलरका दस अंगुलका मेक्षण होता है। [२१] पृषदाज्यग्रहणी—पृषदाज्यधानी दधिमिश्रित आज्यपृषदाज्य होता है वह जिस स्रुक्के द्वारा गृहीत हो, उपभृत्के सदृश पीपलकी स्रुक् पृषदाज्यग्रहणी अथवा पृषदाज्यधानी कही जाती है, आपस्तम्ब शाखामें है। माध्यदिन शाखामें पृषदाज्यग्रहण तैजसपात्र [कटोरे] में होता। [२२] प्रचरणी—वैकङ्कत काष्ठकी जुहूके सदृश होम करनेके लिए सोमयागमें स्रुक् प्रचरणी कही जाती है, आपस्तम्बशाखामें यह पलाशकी विहित है॥ [२३] परशु—बर्हिके छेदनके लिये एक हाथका दण्ड जिसमें हो, परशुके आकारका खदिर आदि काष्ठका कुठार परशु है, यह बौधायन शाखावालोंके लिये ही है। [२४] विकङ्कत काष्ठकी जुहूके सदृश

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाहुमात्र लम्बी स्रुक्को अग्निहोत्रहवणी कहते हैं, इसीसे श्रौत अग्निहोत्र होम होता है, आपस्तम्ब आदि शाखामें चौबीस अंगुल लम्बी अग्निहोत्रहवणी होती है। [२५] अभ्रि—वारण-काष्ठकी एक हाथकी अग्रभागसे तीखी मूलभागमें एक अंगुलकी गोलाईमें मोटी और मूलभागमें अग्रतक क्रमसे पतली दर्शपूर्णमासादियज्ञमें वेदिखनन–यूपादिगर्तपरिलेखनमें उपयुक्त अभ्रि होती है। महावीरसंभरणमें विकङ्कतकी अभ्रि होती है। सचयनसोमयागमें चित्रर्वि त्र वांसकी दोनों तरफसे तीखी मध्यमें छिद्रवाली अथवा सुवर्णकी अभ्रि होती है। [२६] दोहनपात्र—वैकङ्कतका प्रणालीरहित सदण्ड प्रोक्षणीपात्रसदृशपात्र दोहनपात्र होता है। सोमयागमें इसकी आवश्यकता होती है। [२७] दर्वी—विकङ्कत काष्ठकी चार अंगुलकी गोलाईमें एक अङ्गुल खातवाली बचे हुए हिस्सेमें एक अंगुठे मोटे दण्डसहित दर्वीहोमादिमें उपयुक्त [कलछी] दर्वी है आपस्तम्ब शाखामें स्मार्त कर्मसे बारह अंगुलकी दर्वी होती है। श्रौतमें तो एक हाथकी होती है। आपस्तम्ब शाखामें मेक्षण भी दर्वीसदृश होता है। [२८] अधिषवणफलक—वारणकाष्ठके एक एक हाथके बारह बारह अंगुल चौड़े एक एक अंगुल मोटे दो काष्ठ पीठ परस्पर काष्ठके शंकुसे सटे हुए अधिषवणफलक होते हैं। इनके ऊपर सोमलता कूटी जाती है। सूत्रान्तरमें गुलर और पलाशके भी विहित हैं। [२९] असिद-दस अंगुलका खैर या लोहका छुरा असिद होता है, इससे कुशा काटी जाती है। बौधायन शाखावाले इसका उपयोग करते हैं। (३०) अन्वाहार्यपात्र—दर्शपूर्णमासमें ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और अग्नीध्रको दक्षिणाके निमित्त दक्षिणाग्निमें पका हुआ ओदन दिया जाता है, उसको अन्वाहार्य कहते हैं। पकानेके लिए जो ताम्रादि अर्थपरिमाणपात्र है उसको अन्वाहार्यपात्र कहते हैं। (३१) ग्रावा–पाषाणके सोलह अंगुल या बारह अंगुलके मूलमें स्थूल ऊपरके हिस्सेमें कुछ पतले मुष्टिसे पकड़ने लायक ग्रावा होते हैं। इनसे सोमलता कूटी जाती है। (३२) उपभृत्–पीपलकी जुहूके सदृश स्रुक् उपभृत् होती है। दर्शपूर्णमासादि यज्ञमें अध्वर्यु दक्षिण हस्त से जुहू द्वारा होम करता है और होमके समय वामहस्तमें जुहूके समीप इसको रखता है। इसलिये इसका नाम उपभृत् है आपस्तम्ब शाखामें २४ अंगुल इसका प्रमाण है। आपस्तम्ब शाखावाले इसको अनुष्टुब्धि कहते हैं। ३३) उत्पवनपात्र—आपस्तम्ब शाखावालोंके यहाँ प्रोक्षणीपात्र सदृश एक उत्पवनपात्र होता है। (३४) उपांशुसवन—उपांशुनामक सोमरसके हवनके लिये जिस पाषाण (लोहे) से सोमलता कूटी जाती है उस प्रादेशपरिमित पाषाणको उपांशुसवन कहते हैं। [३५] उलूखल—पलाश या खैर अथवा वारणकाष्ठकी दस अंगुल या जानुप्रमाण अथवा इच्छाप्रमाण चार अंगुली गोलाईमें मोटा, ऊपर एक अंगुल खात मध्यमें कुछ संकुचित चरुपुरोडाशसंबंधि ब्रीहि आदिके कण्डनमें उपयोगी उलूखल होता है। आश्वलायन तथा आपस्तम्ब शाखावालोंके यहाँ स्मार्त कर्ममें उलूखल और छः अंगुलके होते हैं। आपस्तम्बके यहाँ खैरका होता है। (३६) एकधन—सोमरसको बढ़ानेवाले जल एकधन कहे जाता हैं। एकमात्र सोम ही है धन जिनका, यह इसका अर्थ है। वे जल जिन कलशोंसे किनाले जायँ, वे छोटे छोटे धातुके या मृत्तिकाके कलश भी एकधन कहे जाते हैं। सोमयागमें ३ से १५ तक विषमसंख्याके ये कलश होते हैं। (३७) मुसल—वारणकाष्ठ खैर या पलाशका दस अंगुल लम्बा एक अंगुल गोलाई में मोटा या इच्छाप्रमाण मध्यमें कुछ ज्यादा स्थूल दर्शपूर्णमासादि यज्ञमें ब्रीहि आदिके कण्डनमें उपयोगी मुसल होता है। आश्वलायनशाखामें स्मार्त कर्ममें खैरका छः अंगुल लम्बा यह होता है। (३८] जुहूः—पलाशकी बाहुप्रमाण लम्बी मूलभागमें एक अङ्गुल मोटी फिर वहाँसे अग्रभाग तक क्रमसे कुछ स्थूल दण्डयुक्त अग्रभागमें पाँच अङ्गुल वृत्त हथेलीप्रमाण मुखवाली त्र्यंगुलखात हंसमुखसदृश नालीसे युक्त श्रौतकर्ममें जिससे हवन किया जाय, ऐसी स्रुक्को जुहू कहते हैं। कृष्ण यजुर्वेदियोंके यहाँ कौवेके सदृश पुच्छवाली चौबीस अङ्गुल लम्बी या बयालीस अङ्गुल जुहू होती है। कात्यायनके अतिरिक्त २४ अंगुलकी जुहू होती है। (३९) चमस—विकङ्कतकाष्ठके बारह अङ्गुलके छ अङ्गुल चौड़े चार अङ्गुल ऊँचे तीन अङ्गुल गर्तवाले तीन अङ्गुल दण्डवाले चौकोर प्रणीतापात्रके सदृश सोमरसको रखने, होम करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और पानीके लिए चमस होते हैं। ये चमस दस होते हैं, इनके दण्डोंमें पृथक् पृथक् चिह्न होते हैं। जैसे—होताके चमसके दण्डमें गोल चिह्न, ब्रह्माके चतुरस्र, उद्गाताके त्रिकोण, यजमानके चमसके दण्ड अग्र में चौड़ा, प्रशास्ताके चमसके दण्डका नीचेका भाग टेढा, ब्राह्मणाच्छंसीके दण्डका ऊपरका भाग टेढ़ा, नेष्टाके चमसका दंड दो टुकड़ेका, अच्छावाक चमसका दंड आगेसे तीखा, पोताके चमसका दंड द्विशाख। आपस्तम्ब शाखामें नेष्टाका चमस दक्षिणाघृत और अच्छावाक चमस वामाघृत होता है। (४०) यजमानाभिषेकासन्दी—गुलरकी एक एक साथ पैरवाली चतुष्कोण एक हाथ लम्बी-चौड़ी मुञ्जकी रस्सीसे बिनी हुई वाजपेय यागमें यजमान अभिषेकके समय इसपर बैठता है इसीलिए यह यजमानाभिषेकासन्दी कही जाती है। [४१] यूपरशना—आठ हाथ लम्बी दूनी कुशाकी रस्सी यूपमें लपटनेके लिए यूपरशना होती है। [४२] शृतावदान—विकङ्कतकाष्ठका अग्र भाग में अंगूष्ठपर्वमात्र चौड़ा और लम्बा, तीखे अग्रवाला, दस अंगुल लम्बा, अग्रभागसे बचे हुए हिस्सेमें एक अंगुल गोल दण्डवाला पक्वपुरोडाशके तोड़नेमें उपर्युक्त होता है। यह शृतावदान आपस्तंब शाखामें नहीं है। पितृयज्ञमें अग्रभागमें अर्थात् अंगुष्ठपर्वमात्रमें गोकर्णके सदृश होता है। आपस्तम्ब शाखामें पितृयज्ञमें बारह अंगुलका शृतावदान होता है। उसमें भी मूलमें दो अंगुल दण्ड और दश अंगुल गौके कानके समान होता है। [४३] पूर्णपात्र—दर्शयागादिमें स्मार्त प्रोक्षणीपात्रके सदृश अर्थात् वारणकाष्ठका द्वादशांगुल दीर्घ एक अंगुल दण्ड मध्यमें हथेली बराबर गोल तीन अंगुल गोल गहरा किनारे किनारे एक अंगुल मोटा, अग्रभागमें हंसके मुख सदृश नालीदार पात्र होता है। [४३] पूतभृत्—सुवर्ण आदि धातुका अथवा मृण्मय पन्द्रह अंगुल चौड़ा, आठ अंगुलकी बैठकी सोलह अंगुल ऊँचा अथवा इच्छाप्रमाण पवित्र सोमको धारण करनेवाला कलश होता है। आधवनीय कलश—जिसमें सोमका अच्छी तरहसे प्रक्षालन हो उस कलशके सदृश बृहन्मुख कलशका नाम है। [४५] पुरोडाशपात्री—वारण काष्ठकी दस अंगुल चौकोर एक अंगुल मोटी मध्यभागमें छः अंगुल वृत्त यवमात्र खात वाली मूलमें दो अंगुल दण्ड पुरोडाशके स्थापनमें उपयुक्त होनेवाली पात्री है। [४६] पिन्वन—वारणकाष्ठका स्रुक्के मुखके आकारके सदृश दस अंगुलका बिना दण्डका पात्र। [४७] पान्नेजन कलश—पशुके अङ्गोंका जिन जलोंसे प्रक्षालन होता है उन जलोंको पान्नेजन कहते हैं। पान्नेजन जल जिस कलशमें रखे जाते हैं उस इच्छाप्रमाण तैजसपात्रको पान्नेजन कलश कहते हैं [४८] परीशासौ—दो हाथ लम्बे दो अंगुल मोटे दो अंगुल चौड़े गुलरके मध्यभागसे कलछी मुँहके सदृश महावीरपात्रको पकड़ने लायक परीशास कहे जाते हैं। आपस्तंवशाखा वाले इनको शफ कहते हैं। [४९] सन्तहन—लम्बी-लम्बी नव कुशाओंके वेण्याकार गूँथकर इध्म – और बर्हि बांधनेके लिए जो रज्जु बनायी जाती है उसको सन्तहन कहते हैं। [५०] होतृषदन—वरनाकाष्ठका एक हाथ लम्बा एक अंगुल मोटा चारों कोनेमें एक एक अंगुल ऊँचे पावें जिसमें हों ऐसा अठारह अंगुल चौड़ा मूल तीन अंगुल लम्बा एक अंगुल मोटा और चौड़ा दण्ड जिसमें हो वह दर्शपूर्णमासादियज्ञमें होताके बैठनेके लिए पीठको होतृषदन कहते हैं। [५१] सोमासन्दी—गुलरकी दो हाथ चौड़ी यजमान की नाभीप्रमाण ऊँची चार पावोंवाली मुञ्जकी रस्सीसे बीनी हुई सोमरखनेके लिए आसन्दी सोमासन्दी कही जाती है। सौत्रामणीयज्ञमें सोमासन्दी जानुमात्रप्रमाणकी होती है। [५२] सोमपर्याणहन—वस्त्रसे बँधे हुये सोमको ढाकनेके लिए जो वस्त्र, उसको सोमपर्याणहन कहते हैं। (५३] संभरणी—वारणकाष्ठकी बारह अंगुल वृत्तमुख चार अंगुल खात बिना दण्डका सोम रखनेका पात्र [कटोरा] संभरणी है। [५४] शङ्कुः—गुलर आदिका दस अंगुल लम्बा स्थूलमुख अग्निष्टोमादियज्ञमें दीक्षिता पत्नीके कण्डूयनादिमें उपयुक्त शङ्कु कहा जाता है। [५५] उदत्रवन—सोमयागमें अम्भृणपात्रोंसे जल निकालने लिए जो छोटा मृत्तिका का पात्र [पुरवा] होता है, उसको उदञ्चनपात्र उदत्रवनचमस कहते हैं। आपस्तम्बशाखामें यह उदत्रवनपात्र प्रणीतापात्रके सदृश वारणकाष्ठका होता है। [५६] उपयमनी—उदुम्बरकी दो हाथ लम्बी सचीके मुखसे दूने मुखकी जुहूसदृश स्रुक्को उपयमनी कहते हैं। आप-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्तम्बशाखामें यह बाहुप्रमाण होती है। [५७] इध्म—पलाशकी एक हाथ लम्बी एक अंगुल मोटी फटी हुई नहीं, घुनी हुई नहीं द्विधाभिन्न नहीं, दो शाखावाली नहीं, सोधी और त्वचाके सहित समिधाको इध्म कहते हैं। [५८] बर्हि—असंस्कृत और असंख्यात कुशाको बर्हि कहते हैं। [५६] सम्भरणपात्र—वाजपेययज्ञमें १७ प्रकारके अन्नका हवन होता है ये अन्न जिस पात्रमें रखे जाते हैं वह अर्थपरिमाणपात्र संभरणपात्र होता है। [६०] वाजिनभाण्ड—गरमदूधमें दधि के छोड़नेसे दूध फट जाता है उसमें कठिन भागको आमिक्षा और द्रव भागको वाजिन कहते हैं इनके रखनेके योग्य अर्थपरिमाण कांस्यादि तैजसपात्रका वाजिनभाण्ड कहते हैं। [गिंडुईवाला गिलास]। [६१] उपसर्जनीपात्र—दर्शपूर्णमासादियज्ञमें पुरोडाशके लिये चावलका यवके आटेमें मिलाये जानेवाले गार्हपात्र अग्निमें गरम किये हुये गरम जलको उपसर्जनी कहते हैं, उनको गरम करनेके लिये अर्थपरिमाण ताम्रादिपात्रको उपसर्जनीपात्र कहते हैं। सोमयागमें दीक्षित सपत्नीक यजमानको उदकसाध्य सब कर्म गरम जलसे करने चाहिये, ऐसा विधान है। यजमानके लिये गार्हपत्य अग्निमें और तन्निमित्त यजमानपत्नीके लिये दक्षिणाग्निमें जल गरम किये जाते हैं। उन गरम जलको मदन्ती कहते हैं। उन जलोंको गरम करनेके तैजसपात्र को उपसर्जनीपात्र कहते हैं। (६२) रौहिणकपाल—छः अंगुल वृत्त आधा अंगुल ऊँचा मृत्तिका से बनाकर पकाया हुवा रौहिणपुरोडाशके पकानेके लिये पात्रको रौहिणकपाल कहते हैं। (६३) योक्त्र—मुञ्जसे बना हुआ तीन लड़ी चार हाथकी वेण्याकार दर्शपूर्णमासादियज्ञ में यजमानपत्नीके कटिप्रदेशमें बांधनेके लिये रज्जु [मेखला] योक्त्र कहलाता है। (६४) उद्गात्रासन्दी—गूलरके प्रादेश मात्रको दस अंगुलके चार पावे वाली एक हाथ लम्बी चौड़ी मुञ्जकी रज्जुसे बिनी हुई गवामयन यज्ञमें उद्गाताके बैठनेके लिये पीठको उद्गात्रासन्दीकी कहते हैं। (६५) विघन—वरनाका या पोपलका एक हाथका शङ्कु (खूँटी) गाडनेके उपयोगी मुद्गरको विघन कहते हैं। कात्यायनसूत्रमें विघनशब्दसे मुद्गरका व्यवहार नहीं है। (६६) विकङ्कत शकल—विकङ्कतकाष्ठकी दस-दस अंगुलकी समिधा विकङ्कतशकल कही जाती हैं। (६७) दण्ड—गुलरकाष्ठकी यजमानके मुखके बराबर मुष्टिमात्र स्थूल सोमयागमें यजमान और मैत्रावरुणके धारण करनेके योग्य दण्ड होता है। (६८) दधिघर्म—प्रवर्ग्यमें होमोपयोगी दधिका जिस पात्रसे ग्रहण हो और हवन हो वह गूलरका प्रादेश मात्रका दस अंगुलका पात्र मूलसे लेकर अग्रतक चार चार अंगुल चौकोर ऊपर मध्यमें दो अंगुल वृत्त एक अंगुल खात दधिघर्म कहा जाता है। (६८) दारुपात्री—कात्यायनोंकी इडापात्रीको आपस्तम्ब दारुपात्री कहते हैं। (७०) धवित्र—मृगचर्मसे बने हुये पंखेको धवित्र कहते हैं। महावीरको हवा करनेमें यह काम आता है। (७१) धृष्टि—विकङ्कतकाष्ठकी एक हाथ लम्बी अग्रभागमें चार अंगुल चौड़ी तीक्ष्णाग्र, अग्रसे बचे हुये हिस्सेमें दो अंगुलके गोल स्थूल दण्डसे युत अङ्गार, भस्म आदिको हटानेके लिये पात्रविशेषको धृष्टि कहते हैं। इसका उपयोग आपस्तम्ब शाखावाले दर्शपूर्णमासमें करते हैं। कात्यायन शाखावाले सोमयागमें घर्ममें इसका उपयोग करते हैं, यहाँ केवल यह उदुम्बरकी होती है। (७२) कृष्णविषाणा—तीन या पाँच स्थानमें ऊँची दस अंगुलका अग्रभागके सहित कृष्णमृगके शृङ्गको कृष्णविषाणा कहते हैं। सोमयागमें दीक्षित यजमानके शरीरमें खाज होनेपर इसीसे खजुवाना चाहिये। (७३) वाजिन चमस—प्रणीतासदृश पात्र वाजिनचमस आपस्तम्ब शाखामें है, यह वाजिन रखनेके लिये है। गरम दूधको दहि छोड़कर फाड़ दिया जाता है, उसमें कठिन भागको अमिक्षा और द्रवभागको वाजिन कहते हैं। [७४] गलग्राही—तैजस ताँबा, पीतल आदिकी एक हाथकी सड़सी गलग्राही होती है। [७५ स्रुक्—विकङ्कतकाष्ठकी बाहुमात्र लम्बी मूल भागमें एक अंगूठेके बराबर मोटी फिर वहाँ से अग्रभागतक क्रमशः कुछ कुछ स्थूल दण्ड वाली अग्रभागमें पाँच अंगुलकी गोलाईका मुख और मुखमें तीन अंगुल खात हंसमुखके सदृश चोंचदार होम करनेका पात्र स्रुक् है। स्मार्तकर्ममें यह बारह अंगुलीकी बौधायन और आश्वलायन शाखामें होती है। बौधायन-आपस्तम्ब-हिरण्यकेशि शाखामें २४ अंगुलकी होती है। किसीके मतमें कौवेके सदृश पूंछवाली ४२ अंगुलकी होती है। (७६) यूप—सोम-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यागमें खैरका पांच हाथ लम्बा अष्टकोण बहुत मोटा न बहुत पतला किन्तु लम्बाईके माफिक मोटा अग्रभागके बीचमें एक अंगुल मोटा बारह अंगुल लम्बा शङ्कु जो चषालमें घुसने लायक चषालके सहित हो, उसको यूप कहते हैं। निरूढपशुमें पलाशका यूप होता है। अग्निष्टोमादियज्ञमें ग्यारह यूप बनाना यह भी पक्ष है इस पक्षमें ग्यारह यूप १६ हाथसे २६ गजतक के होते हैं एक उपशय यूप भी बारहवाँ बिना छीला-छाला होता है। वाजपेययागमें १७ यूप १७ हाथके होते हैं। अश्वमेधमें २१-२१ हाथ के २१ यूप होते हैं। नमें एक रज्जुदाल का दो देवदारुके छ बेलके छ खैरके छ पलाशके होते हैं। श्येनयागमें यूप चषालरहित होता है और साँपकी तरह तीखे अग्रवाला होता है। वह यूप हलका दण्ड होता है, इस यूपको खलेवाली कहते हैं। [७७] ग्रह-माध्यन्दिनोंके विकङ्कतके आपस्तम्बोंके गुलरके उलूखलके सदृश चार अंगुलकी गोलाईके मोटे ऊपरके हिस्सेमें एक अंगुल खातवाले मध्यमें कुछ संकुचित सोमरसको रखने और होमके उपयोगी पात्र ग्रह कहे जाते हैं। इसमें अश्विनग्रहमें ऊपरके हिस्सेमें ओष्ठके सदृश, मैत्रावरुणग्रहमें अजागलस्तनके सदृश, ऐन्द्रावायवग्रहमें मेखलाके सदृश चिह्न होता है। सौत्रामणीमें अश्विनग्रह पीपलका, सारस्वतीग्रह गुलरका, ऐन्द्रग्रहका बटका होता है। अश्वमेधमें सुवर्ण और रजतके एक एक ग्रह होते हैं। षोडशि-यागमें षोडशिग्राह खैरका होता है और यह ग्रह मूलसे अग्रतक चतुष्कोण होता है। शुक्रग्रह सर्वत्र बेलका होता है। आपस्तम्बशाखामें उपांशुग्रह, अन्तर्यामग्रह, ऐन्द्रावायवग्रह, मैत्रावरुण-ग्रह, आश्विन, शुक्र मन्थी, उक्थ्य, अतिग्राह्यग्रह तीन, दधिग्रह, अदाभ्य, आदित्य, षोडशग्रह, ऋतुपात्रग्रह दो, ये १७ ग्रह होते हैं। [७८] स्फ्य—खैरका एक हाथ लम्बा चार अंगुल चौड़ा खण्डके सदृश मूलमें चार अंगुलका दण्ड तीखा, अग्र वेदीको खोदना; रेखा करना आदि कार्यमें उपयोगी वज्र या स्फ्य कहा जाता है। यह स्फ्य माध्यन्दिन शाखामें सीधा होता है और शाखामें मध्यमें कुछ टेढ़ा होता है। आश्वलायनशाखामें स्मार्त कर्ममें बारह अंगुलका स्फ्य होता है। हिरण्यके शाखामें बरनाका भी स्फ्य होता है। भारद्वाज और आप-स्तम्बशाखामें बाहुके बराबर भी वज्र विहित है, यह पक्ष अब नहीं चलता है। आश्वलायन शाखामें स्मार्तकर्ममें स्फ्य नहीं है। [७९] स्रुव-खैरका एक हाथ लम्बा अंगूठेके पर्वकी मोटाईमें गोल बिलयुक्त मूलमें कनिष्ठिकाके अग्रके बराबर स्थूल फिर अग्रतक कुछ कुछ और मोटा होम करनेके लिये स्रुव होता है। अग्निहोत्रका स्रुव वैकङ्कतका होता है। राजसूयमें अपामार्ग-तण्डुल होमके लिये पलाशका स्रुव होता है। सचयनसोमयागमें गुलरका स्रुव चौकोर मुखवाला होता है। घर्ममें भी गुलरका स्रुव होता है और विनायकशान्तिमें भी पितृमेधमें वारणकाष्ठका स्रुव होता है। आश्वलायन शाखामें स्मार्तकर्म बारह अंगुलका स्रुव होता है। श्रौतकर्ममें आश्वलायनोंको भी एक हाथका स्रुव होता है। [८०] ऋतुपात्र-ग्रह-काश्मर्य (गंभारी) या पीपलके प्रोक्षणीपात्रके सदृश दोनों तरफ हंसमुखकी तरह नालीके सहित ऋतुओंके योगके लिये सोमरस ग्रहण और होमके उपयोगी दो पात्र ऋतुपात्र या ऋतुग्रह कहे जाते हैं, । आपस्तम्बशाखामें ऋतुग्रह भी उलूखलाकार होते हैं। (८१) प्रोक्षणधानी—जुहूके सदृश स्रुक् आपस्तम्ब शाखावालोंके यहाँ प्रोक्षणधानी होती है। (८२) शूल—वारणकाष्ठका अग्निके सदृश शूल होताहै। (८३) प्राशित्रहरण—वारणकाष्ठका चार अंगुल लम्बा चौड़ा चौकोर एक अंगुल मोटा मध्यमें तीन अंगुल गोलाईमें यवमात्र खात प्राशित्रहरण होता है। ब्रह्माको हुत शेष भाग दिया जाता है उसका नाम प्राशित्र है, वह जिस पात्रके द्वारा दिया जाय, वह प्राशित्रहरण कहलाता है। आपस्तम्ब शाखावाले खैरका दस अंगुलका गोकर्णाकृति श्रुतावदान मानते हैं। आजकल खैरका प्रोक्षणीपात्रके सदृश प्राशित्रहरण आपस्तम्ब शाखावाले बनाते हैं। (८४) निश्रेणी—वाजपेययज्ञमें सत्रह हाथका यूप होता है। सपत्नीक यजमान जिस सीढ़ीके द्वारा यूपसे ऊपर ऊँचा होता है, वारणकाष्ठकी उस सीढ़ीका नाम निश्रेणी है। (८५) नेत्र—सन और गौके पूंछके बालोंसे बनायी गई चार हाथकी तीन लरकी वेणीके समान गूँथी हुई अरणिमन्थनरज्जुको नेत्र कहते हैं। (८६) निदान—सोमयागमें गौको और बछड़ेको बाँधनेके लिये रज्जुको आपस्तम्ब शाखावाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निदान कहते हैं। [८७] चात्र—उपमन्थ—अरणिमन्थनके लिये आठ अंगुलका एक काष्ठशङ्कु जिस मन्थनदण्डमें तक्षाके द्वारा लगाया जाता है वह मन्थनदण्ड खैरका बारह अंगुल लम्बा दो अंगुल के लोह कीलके सहित तीन अंगुलकी गोलाईवाला रज्जुके लपेटने [घुमाने] के लिये अनेक वलययुत चात्र और उपमन्थ भी कहा जाता है। [८८] चषाल—सोमयागमें पलाशका दस अंगुल लम्बा आर-पार एक अंगुल गोल छिद्रवाला होताहै। मोटाई उसकी यूपके बराबर होती है। राजसूय यज्ञमें गेहूँके आटेका चषाल बनताहै। [८९] शम्या-वरणा लकड़ीकी मूलभागमें एक अंगूठे भर गोल दस अंगुल भर गोल दस अंगुल लम्बी फिर क्रमसे अग्रभागतक सूक्ष्म, तीक्ष्ण अग्रवाली दर्शपूर्णमास आदिमें सिललोढ़ी के कुट्टन आदिमें उपयुक्त होनेवाली पात्रविशेष है। चातुर्मास्य आदि यज्ञमें यही शम्या वारण काष्ठकी छत्तीस अंगुल लम्बी दो अंगुल चौड़ी एक अंगुल मोटी मूल और अन्तमें दो दो अंगुल छोड़कर मध्यमें बत्तीस अंगुलकी लम्बाईमें आधा अंगुल गर्तवाली चात्वालमान और उत्तरवेदिमान आदिमें उपयुक्त होनेवाली होती है। आपस्तम्बके मतमें शम्याका प्रमाण बाहुमात्र है। तित्तिरिशाखामें शम्या खैरकी छत्तीस अंगुलकी बिना गर्तकी श्रौतकर्ममें होती है और स्मार्तकर्ममें बारह अंगुलकी होती है। [९०] षड्वत्तपात्र—वारणकाष्ठका बारह अंगुल लम्बा चार अंगुल चौड़ा उसमें एक अंगुल दण्ड उसके बाद चार अंगुल चौकोर एक अंगुल ऊँचा मध्यमें दो अंगुलकी गोलाईमें जौके बराबर खात होता है। उसके बाद एक अंगुलका दण्ड फिर पूर्ववत् चार अंगुल चौकोर एक अंगुल ऊँचा, मध्यमें दो अंगुलकी गोलाईमें जौमात्र खात आग्नीध्र ऋत्विक्को भाग देनेके लिये होता है। आपस्तम्ब शाखा में षड्वत्त पात्र नहीं है। [९१) सगत पुरोडाशपात्री—वैकङ्कत काष्ठकी दस दस अंगुल चौकोर आठ अंगुल ऊँची छ अंगुलकी गोलाईमें छ अंगुल खात वाली मुलमें दो अंगुल लम्बा एक अंगुल मोटा दण्ड सर्वहुत पुरोडाशके स्थापन और होम आदिमें उपयुक्त होनेवाला पात्र होता है। ९२ स्वरु—यूप काटनेके समय जो प्रथम काष्ठ खण्ड गिरता है वह दस अंगुलका खड्गाकार पशुललास्पर्श और होमादिमें उपयुक्त होनेवाला पात्रविशेष है। किसी शाखामें पीपल और वरणकाष्ठ का भी यह होता है। ९३ स्थूणा—बारह अंगुल लम्बी गूखर को द्विशाख गौ बाँधने के लिए खूँटी होती है। (९४) सोमोपनहन—जिस वस्त्रमें सोमलता बाँधी जाती है वह दोहरा चौहरा वस्त्र कहा जाता है। [९५] दृषत् उपला-पाषाणकी दश अंगुल लम्बी आठ अंगुल चौड़ी दो अंगुल मोटी अथवा इच्छाप्रमाण पुरोडाशसम्बन्धी व्रीहि आदि के पेषण में उपयुक्त दृषत् और दृषत् के अनुरूप लोढ़ी को उपला कहते हैं। [९६] करम्भपात्री—दधि और दक्षिणाग्निपक्व सत्तु को करम्भ कहते हैं, (करम्भवो दधिसक्तव इतिकोशात्।) उस बने हुए कटोरी के सदृश छोटे छोटे गोल पात्र को करम्भपात्र कहतेहैं। इनको चातुर्मास्य यज्ञमें गार्हपत्यमें पकाकर प्रतिप्रस्थसे वेदिस्थ दक्षिणा आहवनीय अग्निमें शूर्पसे पत्नी हवन करती है। इन चार पात्रों को रखने के लिए बीस अंगुल लंबी एक अंगुल ऊँची चार अंगुल चौड़ी करम्भपात्री होती है। इसमें चार चार अंगुल के चार टुकड़े होते हैं इन चारों में दो अंगुल की गोलाई में एक एक यव के बराबर खात होता है। इसीमें करम्भपात्र रखे जाते हैं। हर एक टुकड़े के बाद एक एक अंगुल लम्बा चौड़ा मोटा दण्ड रहता है अर्थात् एक एक अंगुल जगह छूटी रहती है और मूलमें भी पकड़नेके लिये एक अंगुल का दण्ड होता है। यह करम्भपात्री आपस्तम्बशाखामें नहीं होती। [९७] पञ्चबिलापात्री—एक ओर सोलह अंगुल लंबी दश अंगुल चौड़ी दूसरी ओर आधे हिस्से में १५ अंगुल चौड़ी और पीछेके हिस्सेमें दश अंगुल चौड़ी पाँच पाँच अंगुल चौड़ी पाँच हिस्से जिसमें दो चार अंगुल मोटी चार हिस्से में दो अंगुल की गोलाई में एक एक यव गड्ढा हो, पाँच हिस्सेमें तीन अंगुल गर्त हो, ऐसे पात्रको पञ्च बिलापात्र कहते हैं। यह कृष्णयजुर्वेदियों के कार्यमें आती है। [९८] पिशीलक—बड़े मुख के बड़े गर्तवाला धातुका अर्धपरिमाण पायस आदिके रखनेके लिए पात्र (बहुगुण) पिशीलक होता है। चातुर्मास्ययागान्तर्गत गृहमेधी या इष्टि में इसका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपयोग होता है। [९९] परिषेचन घट—पूतभृत् और आधवनीय कलश के सदृश घटको परिषेचन घट कहते हैं। यह केवल आपस्तम्ब के लिए है। [१००] त्रिविलापात्री—वारणकाष्ठकी चार अंगुल ऊँची एक तरफ पूर्व पश्चिम बारह अंगुल लंबी दूसरी तरफ दक्षिण उत्तर [प्रथम टुकड़े के साथ] दश अंगुल लंबी उममें भी दूसरे भागमें तीन अंगुलका गढ़ा बनाना, दो अंगुल का दण्ड वाली, दण्डके बाद दश अंगुलके चौकोर हिस्सेमें पाँच—पाँच अंगुलके दो टुकड़े करके दोनों टुकड़ोंमें आठ आठ अंगुलकी गोलाईमें यवमात्र गढ़ा करना, इसको त्रिपला पात्री कहते हैं। [१०१] दशापवित्र—एक हाथ दश अंगुल चौड़ा जीवित भेड़के ऊनसे बना एक तरफ जिसमें दशा हो वह एक तो दशापवित्र कहा जाता है और दोनों ओर जिसमें दशा हो वह उभयतोदश दशापवित्र कहा जाता है। इसमें सोमलता का रस छाना जाता है। [१०२] कूर्च—बाहु के बराबर लम्बा चार अंगुल चौड़ा आधा अंगुल मोटा मूल और अग्रमें एक एक अंगुल मोटा पावा जिसमें लगा हो वह वारणकाष्ठका कूर्च होता है। सायं-प्रातः अग्निहोत्रके समय में इसके ऊपर स्रुक् रखी जाती है। [१०३] ओविली—अरणिमन्थन के लिए एक मन्थन दण्ड होता है, उस मन्थन दण्डके ऊपर दो अंगुलका लोहकील जड़ा हुआ होता है। उस लोहकील के ऊपर बारह अङ्गुल की दो अंगुल गोलाई की मोटी खैर की ओविली होती है। उसको उपमन्थ भी कहते हैं। यह ओविली मन्थनदण्ड को दबानेके लिए होती है। [१०४] समिध—पलास आदि की कनिष्ठा अंगुलीके अग्रभागके सदृश स्थूल त्वचा वाली दश अंगुलकी बिना घुनी बिना फटी अविशाखा लकड़ी को समित् कहते हैं। सचयन अग्निष्टोम में सुपारी, शमी, विकङ्कत और गूलर की समित् होती है। [१०५] महावीर—सोमयागमें घृत रखने के लिये मृत्तिकासे बना हुआ बारह अंगुल लम्बा ६ अंगुल गोल मध्यमें सङ्कुचित नव अंगुलके ऊपर एक मेखला जिसमें हो, मूलसे लेकर अग्रतक गर्त हो, इसको महावीर कहते हैं। [१०६] मेखला—मुञ्जसे बनाई गई वेणीके समान तीन लड़ी गूँथी हुई सोमयागमें यजमानके कटिप्रदेशमें बाँधी जानेवाली चार हाथ की रस्सीको मेखला कहते हैं। [१०७] सोमयागमें आतिथ्या इष्टिके अनन्तर यजमान और सोलह ऋत्विक् घृतस्पर्श करके शपथ करते हैं कि हम परस्पर आजसे द्रोह न करेंगे। उस घृतस्पर्श को तानूनप्त्र कहते हैं। यह घृत जिस पात्रमें रहता है उस प्रणीतासदृश पात्रको तानूनप्त्र चमस कहते हैं। यह पात्र केवल आपस्तम्बशाखियोंके लिये विहित है। माध्यन्दिनशाखावाले मृन्मयरहित धातुपात्रको तानूनप्त्रचमस कहते हैं। [१०८] घर्मासन्दी—यजमान के कन्धे के बराबर अर्थात् तीन हाथ ऊँची गूलरकी एक हाथ चौड़ी बल्वजकी तीन लड़ी रस्सी से बनी हुई [बल्वज त्रिगुणरज्जु व्यूता] चार पावे वाली घर्मासन्दी होती है। इसमें घर्मसम्बन्धी सब पात्र रखे जाते हैं। सोमयागमें एक कर्म विशेषको घर्म कहते हैं। [१०९] ध्रुवा—वारणकाष्ठ की देवयाज्ञिक के मत में विकङ्कत काष्ठ की जुहू के सदृश बाहुप्रमाण स्रुक् ध्रुवा होती है। इसमें चार स्रुव घृत छोड़कर समिष्ट यजुःनामक होम के लिए रखा जाता है और यज्ञसमाप्ति तक यह स्थिररूप से रखी रहती है, इसलिए इसका नाम ध्रुवा है। आपस्तम्बादिक शाखामें इसकी लम्बाई २४ अंगुल की है। चयनयाग में गंभारी (काष्मर्यमयी) बाहुप्रमाण जुहू के सदृश एक स्रुक् और गूलर की बारह अंगुल की दूसरी स्रुक् होती है। इष्टकाओं के साथ यह भी रखी जाती है। आपस्तंबादि शाखा में पहली स्रुक् का १४ अंगुल का प्रमाण है। [११०] परिधि—दर्शपौर्णमासादि याग में आहवनीय कुण्ड के दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तरफ पलाश की बाहुप्रमाण समित् रखी जाती है। इसको परिधि कहते हैं। [१११] द्रोणकलश—वारणकाष्ठ का अठारह अङ्गुल लम्बा बारह अङ्गुल चौड़ा आठ अङ्गुल ऊँचा सात अङ्गुल गहरा चार अङ्गुल दण्डवाला सोमयागादि में सोम रस रखने के लिये पात्र को द्रोणकलश कहते हैं। आपस्तम्ब शाखावाले कोई आचार्य द्रोणकलश को वृत्त मानते हैं। [११२] उखा—सचयन सोमयाग में मृत्तिका की दस अंगुल ऊँची दस दस अंगुल लम्बी चौड़ी चौकोर नीचे से आठ अङ्गुल के ऊपर चारो तरफ मेखला हो और चारों दिशाओं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में नोचे मेखला तक मृत्तिका से चार वत्ती बनी हो, बत्ती के अग्रभाग में स्तन के सदृश चिह्न बने हो, उसको कहते हैं। इसमें अग्नि रखी जाती है। अथवा ५० अंगुल लम्बी दस अङ्गल ऊँची और १० अङ्गुल चौड़ी चौकोर उखा होती है। दर्शपूर्णमासादि याग में जिस मृत्तिका या तैजसपात्र में दुग्ध गरम करते हैं, उसको भी उखा कहते हैं। [११३] प्रमन्थ—उत्तरारणि का आठ अङ्गुल का दो अङ्गुल चौड़ा और दो अङ्गुल ऊँचा काष्ठखण्ड प्रमन्थ कहलाता है। [११४] फलीकरण पात्र- वारण का एक अङ्गल मोटा चार अङ्गुल चौड़ा बारह अङ्गुल लम्बा यव मात्र खात चौकोर फलीकरण पात्र होता है। दर्शपूर्णमासादि यज्ञ में पुरोडाश सम्बन्धी व्रीहि आदि को उलूखल में मूसल से कूटकर शूर्प से पछाड़ते हैं, उससे जो तुषादि गिरते हैं, उनको फलीकरण कहते हैं, उन्हें रखने के लिए पात्र फलीकरण पात्र कहे जाते हैं। यह पात्र केवल आपस्तम्ब शाखा में विहित है। कोई आपस्तम्ब शाखावाले इस पात्र को मध्य से दो करके एक भाग में फलीकरण रखते हैं। दूसरे में पिष्टलेप रखते हैं पुरोडाश बनानेके समय जो अङ्गुलियों में आटा लगता है वह पिष्टलेप है, उसका यज्ञान्त में हवन होता है। [११५] उखासन्दी- गूलर की दश अङ्गुल के पाँव वाली एक हाथ लम्बी चौड़ी मूँज की रस्सी से बनी हुई चौकोर उखा को रखने के लिए मँचिया को उखासन्दी कहते हैं। [का० श्रौ० १६।५।५]। [११६] अम्भृण—वड़े मुखका मृत्तिका का घट अम्भृण [कंडा] होता है। इसको मणिक भी कहते हैं। [११७] अभिषेकपात्र—राजसूय यज्ञमें राजाके अभिषेक के लिए पलाश बट गूलर पीपल के अर्थप्रमाणपात्र को अभिषेकपात्र कहते हैं। [११८] संदश—धातु का बना हुआ तप्त चमसपात्र आदिको उतारने में उपयोगी एक हाथ का चिमटा या सडसी संदश है। यव या चावल के आटे का चोंचदार पेड़ा या लिट्टी के सदृश जो पिष्ट पिण्ड अग्न्यादि देवताओं के निमित्त होम करने के लिये बनाया जाता है उसको पुरोडाश कहते हैं। उस पुरोडाश का पाक भूमिमें अङ्गारों पर लिट्टी की तरह नहीं होता है, किन्तु गार्हपत्यकुण्ड में अङ्गारों के ऊपर मृत्खण्ड रख कर उसपर अङ्गार रख के उसके ऊपर पुरोडाश पकाया जाता है उस मृत्खण्ड को कपाल कहते हैं वह तेरह प्रकार का है—एक कपाल, द्विकपाल, त्रिकपाल, चतुःकपाल, पञ्चकपाल, षट्कपाल, सप्तकपाल, अष्टकपाल, नवकपाल, दशकपाल, एकादशकपाल, द्वादशकपाल और त्रयोदशकपाल। छ अङ्गुल की गोलाई में दो अङ्गुल ऊँचा मृत्खण्ड एककपाल होता है। छःअङ्गुल की गोलाई दो अङ्गुल की ऊँचाई बराबर के दो टुकड़े कर दिये जावें, तो द्विकपाल होता है। बराबर के तीन टुकड़े होने से त्रिकपाल, दक्षिण की तरफ के हिस्से में दो और ऊपर के दोनों हिस्से में एक एक होने से चतुष्कपाल होता है। दक्षिण के तरफ तीन और वाकी दो टुकड़े एक एक रहने से पञ्चकपाल। बराबर के छ टुकड़ों से षट्कपाल। दक्षिण के टुकड़े का तीन हिस्सा वाकी के दो टुकड़ों का दो दो हिस्सा होने से सप्तकपाल। दक्षिण और बीच के टुकड़ों का तीन तीन हिस्सा उत्तर के टुकड़े का दो खण्ड करने से अष्टाकपाल। तीनों टुकड़ों का तीन तीन हिस्सा करने से नवकपाल। दक्षिण भाग में पांच मध्यभाग में तीन उत्तर भाग २ हिस्सा करने से दशकपाल। दक्षिण में पांच मध्यम में तीन उत्तर में तीन हिस्सा करने से एकादशकपाल। दक्षिण में पांच मध्यम में तीन उत्तर में चार हिस्सा करने से द्वादशकपाल। दक्षिण में ५ मध्यमें ३ उत्तर में ५ हिस्सा करने से त्रयोदशकपाल होता है। अष्टाकपाल से त्रयोदशकपालतक बीच के तीन और दक्षिण में एक टुकड़ा बीच का ये चार टुकड़े एक नाप के होते हैं। यह शुक्लयजुर्वेद के लिये विधान है। [११९] रोहिणहवनी—सोमयाग में घर्मनामक एक कर्म है, उसमें गूलर काष्ठ की खावरहित जुहूके सदृश स्रुक्को रोहिणहवनी कहते हैं। इससे रोहिण पुरोडाशका हवन होता है। आपस्तम्बादिशाखामें यह २४ अंगुल की होती है। [१२०] आकर्षफलक—एक हाथ लम्बा विकङ्कत काष्ठ का अग्र भाग में सर्प के फण के सदृश और कुछ गर्तयुत मूलभाग में सर्पपुच्छसदृश सर्पाकार, अग्रभाग में अढ़ाई अंगुल चौड़ा और फिर मूल भाग तक क्रम से कुछ २ सङ्कुचित पात्र आकर्षफलक है। उपाकर्म में इसके द्वारा तिलहोम किया जाता है।—दौलतराम गौड़

॥५॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ दशमोऽध्याय ❀

[विदुर की तीर्थयात्रा और उद्धव से भेंट]

श्रीशुकदेवजी ने कहा——राजन्, इसी विषय में पहले समृद्धिशाली अपना घर छोड़कर वन में गये हुए विदुरने भगवान् मैत्रेय ऋषि से प्रश्न किया था । ॥ १ ॥ जिस विदुरके घर पाण्डवोंका दौत्य करने के लिए समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण पौरवराज-दुर्योधनका घर छोड़कर अपना घर समझकर गये थे ॥ २ ॥ राजा परीक्षित् ने कहा—प्रभो, भगवान् मैत्रेय के साथ विदुरका कहाँ कब समागम हुआ था कब उनका सम्वाद हुआ था, यह सब कृपया मुझसे कहिए । ॥ ३ ॥ निर्मल-आत्मा उस विदुर सर्वश्रेष्ठ मैत्रेयजी से पूछे गये प्रश्न से, जिसकी सभी लोगोंने प्रशंसा की, कम अर्थ नहीं निष्पन्न हुआ होगा । ॥ ४ ॥ सूतजी ने कहा——ऋषियो, राजा परीक्षित के इस तरह पूछनेपर बहुत जिनको जानकारी है,

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल ॥ क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥१॥ यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ॥ पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥२॥ राजोवाच ॥ कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयणाऽऽस सङ्गमः ॥ कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥ न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः ॥ तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ॥ प्रत्याह तं सुबहुवित्प्रतात्मा श्रूयतामिति ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ॥ भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥ यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ॥ न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरन्त्यः कुचकुङ्कमानि ॥ ७ ॥ द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनाग-

ऐसे शुकदेवजी ने सन्तुष्ट होकर 'सुनो' कह करके उत्तर दिया । ॥ ५ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा——जब अधर्मसे जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई थी, ऐसे धृतराष्ट्रने अपने दुष्ट पुत्रों का पोषण करते हुए छोटे भाई पाण्डुके पितृहीन——अनाथ पुत्रोंको लाक्षागृहमें ले जाकर जलाने का प्रयत्न किया । ॥ ६ ॥ जब सभामें कौरव-श्रेष्ठ की रानी अपनी स्नुषा द्रौपदी अपने आँसुओंसे स्तन के केशरलेप को धो रही थी और अपना पुत्र दुःशासन उसके केश खींच रहा था, उसने उस निन्द्य पुत्र के काम का निषेध नहीं किया । ॥ ७ ॥ जब द्यूत में कपट से जीते गए,

---

दृष्टान्त❀— एक सज्जन कलकत्ते से तीन या चार हजार रुपया कमा कर अपने घर जा रहे थे । रास्ते में उसकी श्वसुराल पड़ती थी वहीं उसकी पत्नी भी थी । उसने विचारा कि यहाँ से होते हुए अपने घर चला जाऊँगा । ऐसा विचार कर उस रास्ते चलने लगा । कुछ ही दूर पर उसके श्वसुर और साले मिले । उन्होंने कहा कि जो कुछ हो रख दो । उसने सब कुछ कहा यह क्या कर रहे हैं पर उन लोगोंने कुछ भी न मानी अन्त में उसने भय से सब कुछ दे दिया । एक अंगोछा पहिन कर वह अपनो श्वसुराल चला गया वहाँ उसने अपनी साली और अपनी पत्नी से सारी कथा कह सुनाई । अन्त में स्त्री द्वारा उसका सामान मिला । वे सब बड़े लज्जित हुए ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सत्यका आश्रयण कर बनमें आए हुए महात्मा धर्मराज के माँगनेपर भी मोह में पड़कर उनका हिस्सा धृतराष्ट्र ने उनको नहीं दिया॥ । ॥ ८ ॥ जब पाण्डवों द्वारा भेजे गये जगत् गुरु श्रीकृष्णसे सभा में कहे गये अमृतसमान वचनों की तरफ राजा धृतराष्ट्र ने पुण्यक्षय होनेके कारण कुछ भी ध्यान नहीं दिया। ॥ ९ ॥ जब श्रेष्ठ बन्धु धृतराष्ट्र ने घर में बुलाकर सलाह पूछी और नीतिज्ञों में श्रेष्ठ विदुर ने वह सलाह दी, जो विदुरनीति नाम से नीतिज्ञलोगोंमें प्रसिद्ध है। ॥ १० ॥ तब विदुर ने कहा—'तुम्हारे भयंकर अपराधों का सहन करने वाले धर्मराज को, जिसके साथ अनुज वर्तमान भीमसेनरूपी सर्प क्रोध से फुफकार मार रहा है, जिससे डर रहे हो, उसका हिस्सा वापस कर दो॥ ११ ॥ ब्राह्मणों और देवताओं के साथ मुकुन्द भगवान् ने पाण्डवों को आत्मीय समझकर स्वीकार किया है, यादवों के स्वामी सभी राजाओंको जीतनेवाले वे श्रीकृष्ण भी अपनी नगरीमें ही सुखसे हैं॥ १२ ॥ यह

तस्य ॥ न यावतोऽदात्समयेन दायं तमो जुषाणो यदजातशत्रोः ॥ ८ ॥ यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ॥ न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥९॥ यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ॥ अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥ १० ॥ अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ॥ सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ॥११॥ पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुन्दो गृहीतवान्सक्षितिदेवदेवः ॥ आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥१२॥ स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टो यमपत्यमत्या ॥ पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥ इत्यूचिवांसत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ॥ असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥१४॥ क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः तस्मिन्प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥१५॥ स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ॥ स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥ १६ ॥ स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ॥ अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां

दुर्योधन कृष्ण का द्वेष्टा साक्षात् मूर्तिमान् दोष घरमें घुसा है। कृष्ण से विमुख होकर तुम भी पुत्र समझकर पोषण कर रहे हो, इसके कारण तुम्हारी श्री चली गई है। इस अमंगलमय पुत्र को तुम कुल की भलाई के लिए छोड़ दो॥ १३ ॥ ऐसा कहने वाले सज्जन पुरुषों द्वारा प्रशंसित शीलयुक्त विदुर का—क्रोध से जिसके ओंठ काप रहे थे, तथा कर्ण, दुःशासन और शकुनि जिसके साथ थे ऐसे दुर्योधन ने—अपमान किया ॥ १४ ॥ किसने इस दासी पुत्रको यहाँ बुलाया? यह किसके अन्न से पुष्ट है उसी के विरुद्ध होकर दूसरे का कार्य साधन करता है। इसको तुरंत हमारे नगर से बाहर कर दो। इसका सिर्फ प्राणमात्र बाकी रह जाय॥ १५ ॥ इस तरह धृतराष्ट्र के सामने कान में बाण के समान लगने वाले दुर्योधन के वचनों से मर्मस्थलों में आघात पहुँचाने पर भी विदुरजी व्यथाशून्य हो भगवान् की माया को प्रबल कारण समझकर धनुष को उसी दरवाजे में रखकर खुद ही वहां से चल दिए॥ १६ ॥ कौरवों के पुण्य से मिले हुए वह विदुर उस हस्तिनापुर से निकल कर पुण्य करने की इच्छा से जहाँ ब्रह्म-रुद्रादि हजारों मूर्तियों में भगवान् सन्निहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं ऐसे भगवान् के स्थानों में—तीर्थों में घूमने लगे ॥ १७ ॥ नगरों में, पुण्यमय उपवनों में, पर्वतों में तथा वनादि गूढ़ स्थानों में, जहाँ के पानी में कीचड़ नहीं हैं ऐसे नदी-सरोवरों में, जहाँ जहाँ अनेक भगवन्मूर्तियों से सुशोभित तीर्थस्थान हैं उनमें एकाकी घूमने लगे ॥ १८ ॥ पृथ्वी पर इस तरह घूमते हुए पवित्र और असंकीर्ण वृत्ति से उपजीविका चलाकर प्रत्येक तीर्थ में स्नान करते हुए जमीन पर सोते हुए अवधूत के जैसा देह का कोई संस्कार न करते हुए जटावल्कलादि धारण करके अपने स्वजनों के नजर में न पड़ते हुये विदुर ने भगवान् विष्णु को सन्तुष्ट करने वाले अनेक व्रतों का आचरण किया ॥ १९ ॥ इसी तरह से भारत वर्ष में घूमते हुए जब समय से विदुरजी प्रयाग में पहुँचे, तब धर्मराज श्रीकृष्ण की सहायता से एकचक्र और एकछत्र पृथ्वी का शासन कर रहे थे ॥ २० ॥ वहां उन्होंने अपने सुहृदों का नाश सुना । वेणुवन की अग्नि के समान परस्पर स्पर्धा से जले हुए उस

स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥ पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु ॥ अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥ गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ॥ अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥ इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ॥ तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥ तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ॥ संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥ तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ॥ तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥ अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ॥ प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥२३॥ ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजाङ्गलांश्च॥ कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥२४॥ स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ॥ आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् २५॥ कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ॥ आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे॥२६॥ कच्चित्कुरूणां परमः

कुल के लिए अनुताप करते हुए चुपचाप सरस्वती नदी के उद्गम के अभिमुख चल दिये ॥ २१ ॥ वहां त्रित, उशनस, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गो, गुह, यमदेव, इनके नाम से प्रसिद्ध तीर्थों का उन्होंने सेवन किया ॥ २२ ॥ और भी ऋषियों और देवों के द्वारा निर्मित, आयुधश्रेष्ठ-चक्र का चिह्न जिन पर है ऐसे तथा कृष्ण का स्मरण कराने वाले मंदिर जहाँ पर हैं ऐसे विष्णु के नानाविधि क्षेत्रों में विदुरजी गये ॥ २३ ॥ उसके बाद समृद्ध सौराष्ट्रदेश, सौवीर, मत्स्य और कुरुजांगल देशों का उल्लंघन करके कुछ काल में यमुना तटपर आकर वहाँ उन्होंने महाभागवत उद्धवको देखा ॥ २४ ॥ विदुरने उस वासुदेवके अनुचर बृहस्पतिके प्रधान शिष्य में प्रसिद्ध नीतिशास्त्रमें पारंगत शान्त स्वभाव, उद्धवका प्रेमसे गाढ़ आलिंगन करके भगवान्‌की अपनी ज्ञातियों का कुशल पूछा ॥ २५ ॥ अपनी नाभिमेंके पद्ममें उत्पन्न हुए ब्रह्मदेव की प्रार्थना से इस भूतल में जिन्होंने अवतार लिया है वे पुराणपुरुष कृष्ण और बलराम भूमिका कल्याण करके सबको खुशी से रखते हुए शूरके घर में कुशल से रहते हैं न ? ॥ २६ ॥ हे उद्धव,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हम कुरुओं के परम सुहृद् हमारे बहनोई शौरि—वसुदेवजी, जो उदारता से पिता के समान ही अपने भगिनियों को तथा उनके पति को तृप्ति कर पदार्थ देकर सन्तुष्ट करते हैं, कुशल से हैं न ? ॥ २७ ॥ रुक्मिणीने ब्राह्मणोंकी आराधना करके भगवान् से जिसको पाया, जो पूर्वजन्ममें काम था, वह यादवों का सेनापति वीर प्रद्युम्न सुख से है न ! ॥ २८ ॥ भगवान् पुण्डरीकाक्षने खुद राजसिंहासनकी आशा दूरसे ही छोड़कर जिसका अभिषेक किया वे सात्वत-वृष्टि-भोज-अन्धक-दाशार्हों के राजा उग्रसेन सुख से हैं न ? ॥ २९ ॥ हे सौम्य, भगवान् श्रीकृष्णका उन्हीं के समान पुत्र रथियोंमें श्रेष्ठसाम्ब, जाम्बवती ने व्रत आदि करके जिसका जन्म दिया, जो भगवान् गुहका अवतार है जिसको पूर्वजन्ममें पार्वती ने अपने गर्भमें धारण किया था, वह कुशल से है न ! ॥ ३० ॥ जिसने अर्जुनसे धनुर्वेदका रहस्य जाना है, जिसने केवल भगवान्की सेवा से संन्यासियों के भी असाध्य स्थानको अनायासेन

सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ॥ यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वरतर्पणेन ॥२७॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ॥ यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥२८॥ कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ॥ यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद्धरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ॥ असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गुहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे ॥ ३० ॥ क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ॥ लेभेऽञ्जसाऽधोक्षज-सेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥३१॥ कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ॥ यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥३२॥ कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ॥ या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥ अपिस्विदास्ते भगवान् सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ॥ यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्या समनुव्रता ये ॥ हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥ ३५ ॥ अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ॥ दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥३६॥ किं वा कृताघेष्वघमत्य

प्राप्त किया है, वह युयुधान-सात्यकि क्षेमसे है न ? ॥३१॥ श्वफल्कपुत्र विद्वान् निष्पाप, भगवान् का अनुसरण करने वाला अक्रूर, जो प्रेमसे धैर्य धारण न कर सकनेके कारण कृष्ण चरणचिन्हसे पुनीत मार्गके धूलिमें लोट गया था, कुशल से है न ? ॥३२॥ देवक नामके भोजकी पुत्री देवकी, विष्णु जिसके पुत्र थे ऐसी देवमाता अदिति के समान, जिसने त्रयी जैसे यज्ञविस्ताररूप अर्थको धारण करती है वैसेही कृष्णको गर्भमें धारण किया था, कुशल पूर्वक है न ? ॥ ३३ ॥ जिन्हें वेदशब्दका कारण, मनका प्रवर्तक तथा अन्तःकरणका चतुर्थ अधिदैवत मानते हैं वह सात्वतों की इच्छाएं पूर्ण करने वाले भगवान् अनिरुद्ध सुखी हैं न ? ॥ ३४ ॥ और भी जो अपनी आत्माके देवता श्रीकृष्णकी अनन्यभक्तिसे उपासना करते हैं ऐसे हृदीक सत्यभामा के पुत्र, चारुदेष्ण, गद आदि सुखसे रहते हैं न ? ॥ ३५ ॥ अपने दोनों हाथों के समान कृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे धर्मराज धर्मसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मर्यादाकी रक्षाकर रहे हैं न ! जिनकी सभामें विजयद्वारा प्राप्त साम्राज्य लक्ष्मीसे दुर्योधन संतप्त हुआ था ॥ ३६ ॥ गदायुद्धके मण्डलोंमें विचित्र घूमते समय जिसके पादके आघात का रणभूमि सहन नहीं कर सकती थी, उस भीमसेन ने अपराधी शत्रुओंका अपराध न सहन करके साँपके समान अपना अत्यन्त दीर्घ क्रोध उनके ऊपर छोड़ा न ॥ ३७ ॥ न दिखाई देने पर भी जिनके बाणोंसे आच्छादित होकर माया से किरातरूपधारी भगवान् शंकर प्रसन्न हुए, वह रथ यूथपोंमें कीर्तिमान् गाण्डीव धन्वा अर्जुन शत्रुओंका नाशकर सुखसे है न ! ॥ ३८ ॥ जो माद्रीके पुत्र होने परभी कुन्तिके ही मानों पुत्र हैं, पनिडियोंसे आंखोंके समान, कुन्तिपुत्रोंसे जो सुरक्षित थे, वे नकुल सहदेव इन्द्रके मुखसे जैसे गरुड़ोंने अमृत छीन लिया था, उसी तरह युद्धमें दुष्ट दुर्योधनसे अपना राज्य छीनकर सुखसे रममाण हो रहे हं न ? ॥ ३९ ॥ अहो, पृथा भी उस राजर्षि श्रेष्ठके बिना पुत्रोंके लिए ही जीरही है। उस वीर राजर्षि पाण्डुने अकेले रथ पर चढ़कर केवल धनुष की सहायता से चारों दिशाओं को जीत लिया था ॥ ४० ॥ * सौम्य, जिसने मृत भाई के साथ द्रोह किया, अपने पुत्रोंके

मर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ॥ यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥३७॥ कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गाण्डीवधन्वो-परतारिरास्ते ॥ अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षिणीव ॥ रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥३९॥ अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनापि तेन । तस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥ ४० ॥ सौम्यानुशोचे तमधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ॥ निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपु-त्रान्समनुव्रतेन ॥ ४१ ॥ सोऽहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ॥ नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥ ४२ ॥ नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ॥ वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशोऽप्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥ ४३ अजस्य

फंदेमें पड़कर मुझे भी अपनी पुरीसे बाहर निकाल दिया, अधःपतनको जारहे भाई उस धृतराष्ट्रपर मुझे तरस आता है ॥ ४१ ॥ मैं मनुष्यकी लीला करनेवाले, मनुष्योंकी दृष्टिपर परदा डालनेवाला विधाता भगवान् श्रीहरिकी कृपासे उनके माहात्म्यका विचार करते हुए इन सब विषयोंका कुछ आश्चर्य न करके किसीकी दृष्टिमें न पड़ते हुए सुखसे विचरणकर रहा हूँ ॥४२॥ इसमें तनिक भी सन्देह नहीं भगवान् श्रीकृष्णने सर्वसमर्थ होते हुए भी विद्या, धन और अभिजनके १ मदसे उन्मत्त, अपने सैन्यसे पृथ्वीको कम्पित करनेवाले राजाओंके नाशके हेतुही शरणागतोंकी आर्तिका नाश करनेकी इच्छासे कौरवोंके अपराधोंकी अनेकबार क्षमाकी ॥ ४३ ॥ जन्म कर्म रहित भगवान्के ये जन्म-कर्म भी कुपथगामी दुष्टोंका नाशकर

*दृष्टान्त—पत्नी सहित राजा नल राज्यसे बहिष्कृत किये गये। उस समय वे वनमें मारे मारे फिरते रहे। अन्तमें एक दिन अपनी पत्नीको छोड़कर वे रातमें ही कहीं चले गये। पतिव्रताजी सुबह उठकर देखती है तो वे नहीं हैं। वह बहुत विलाप करती हुई इधर उधर भटकती रही। पर कहीं पता न चला। उसो मध्यमें उसपर एक कामातुर आसक्त हो गया। भगवान् ने उसीका विनाश कर दिया।

१—विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः। एते मदा महान्धानां त एव हि सतां दमाः॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्ममें लोगोंका प्रवृत्तिके लिए ही हैं, नहीं तो कौन ऐसा गुणातीत योगी है, जो फिरसे देह सम्बन्ध और कर्म विस्तारमें पड़ सकता है ॥ ४४ ॥ इसलिए हे सखे, शरणागत, अखिल

जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ॥ न न्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥ ४४ ॥ तस्य प्रपन्नाखिललोक-पानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥ अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

लोकपालों तथा अन्यान्य भक्तोंके, जो अपने अनुशासनमें स्थित हैं, प्रयोजनके लिए संसारसागरसे पार लगा देनेवाली कीर्ति वाले उस भगवान् श्रीकृष्णकी, जो अजन्मा होते हुए भी यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं, कथा कहिये ॥ ४५ ॥

पहले अध्यायका सार—श्री शुकदेवजीने कहा-राजन्, इस विषयमें पहले मैत्रेय ऋषिसे विदुरने प्रश्न किया था। परीक्षितने कहा—महाराज, महात्मा विदुरका मैत्रेयके साथ कहाँ और कब समागम हुआ उस प्रश्नका उन्होंने क्या उत्तर दिया इत्यादि सविस्तर कहिए। श्रीशुकदेवजीने कहा—हेमहीपते, राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंके मोहवश पाण्डवों को अनेक पीड़ाएँ दीं। उनको लाक्षागृहमें जलानेका यत्न किया। भरी सभामें अपनी स्नुषा द्रौपदीको जब दुःशासन केश पकड़कर खींच रहा था तब उसका निषेध नहीं किया। कपटद्यूतमें हारनेपर धर्मराज आदि पांडवोंने प्रतिज्ञाके अनुसार वनवासके बाद जब अपना राज वापस मांगा, तब उनका हिस्सा धृतराष्ट्रने नहीं दिया। कृष्ण जब पांडवोंके दूत बनकर आए तब उनके अमृततुल्य वचनोंपर ध्यान नहीं दिया। उस समय ज्येष्ठ बंधु धृतराष्ट्रके बुलानेपर विदुरजी उनके घरमें गए और धृतराष्ट्रको जो योग्य सलाह दी, वह विदुरनीति नामसे प्रसिद्ध है। विदुरने तब साफ कहा कि तुम्हारे अनेक अपराधोंको धर्मराज सहन कर चुके, उनका हिस्सा तुम उन्हें देदो। जिससे डरते हो वह भीमसेन रूपी सर्प और साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण उनके साथ हैं। अपने इस अमंगलमय पुत्रको अपने कुलकी भलाईके लिए छोड़ दो। विदुरका यह भाषण जब दुर्योधनने सुना, तब वह आगबबूला हो गया। उसने कहा-इस दासी-पुत्र को मेरे नगरीसे बाहर कर दो। यह जिसका अन्न खाता है उसीके विरुद्ध बातें करता है और शत्रुकी भलाई चाहता है। विदुरजी उन मर्मभेदी वचनोंको सुनकर भगवानकी इच्छाही प्रबल समझकर धनुषको वहीं रखकर तीर्थयात्राके लिए चल दिये। वे अनेक पुण्यक्षेत्रोंमें घूमते हुए देवमंदिरोंमें भगवान्का दर्शन करते हुए जब प्रभास में आए तो उनको वहाँ ज्ञात हुआ कि युद्ध समाप्त होकर धर्मराज एकछत्र पृथ्वीका शासन कर रहे हैं। उनको अपने सुहृदोंका नाश सुन कर दुःख हुआ। वे वहाँसे सरस्वतीके उद्गमकी तरफ अनेक तीर्थोंमें स्नान करते हुए चले। जब यमुनाके किनारे आये तो महात्मा उद्धव से उनकी भेट हुई। भगवान्के परमभक्त नीतिज्ञोंमें श्रेष्ठ उद्धवका उन्होंने गाढ़ आलिंगन किया और उद्धवसे ज्ञातियोंका कुशल पूछा। विदुरने कहा-विश्वकल्याणकेलिए ब्रह्मदेवकी प्रार्थनासे जिन्होंने भूमिमें अवतार लिया वे कृष्ण-बलराम कुशलसे हैं न ? हमारे बहनोई परम उदार वसुदेव आदि क्षेमसे हैं न ? उग्रसेन, सात्यकि, भगवद्भक्त अक्रूर, भगवान्की माता देवकी, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, एवं हृदीक, इत्यादि सब कुशलसे हैं न ? धर्मराज कृष्ण और अर्जुनके साथ धर्मसे प्रजाका पालन कर रहे हैं न ? गदायुद्धमें जिसके पदाघातोंको रणभूमि सहन नहीं कर सकती, उस भीमसेन ने अपना दीर्घ क्रोध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शत्रुओंपर छोड़ा न ? नकुल-सहदेव शत्रुओंसे राज्य छीनकर सुखसे हैं न ? पुत्रके कारण अधःपतनको जा रहे भाई धृतराष्ट्रके बारेमें मुझे दुःख होता है। मैं भगवान्की मायाको अचिन्त्य समझकर किसीकी दृष्टिमें न पड़ते हुए पृथ्वीपर घूम रहा हूँ। भगवान् श्रीकृष्णकी इस निमित्तसे, मदोद्धत राजाओंके ही नाशकी इच्छा थी, नहीं तो क्या वे कौरवोंके अनेक अपराध करनेपर वहीं उनका नाश नहीं कर सकते थे।

❋ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❋

(उद्धवके द्वारा श्रीकृष्णका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—परम भागवत उद्धवसे विदुरजीके इस तरह पूछनेपर अपने प्रिय लोगोंके विषयमें उन प्रश्नोंको सुनकर उत्कण्ठाके कारण कृष्णका स्मरणकर उद्धवजी उत्तर नहीं दे सके ॥ १ ॥ जो उद्धव पांच सालकी उमरमें बाललीलासे कृष्णपूजा करते समय माँके कलेवाके लिए बुलानेपर भी पूजा छोड़कर न जा सके ॥ २ ॥ वही उद्धव उसी भगवान्की पादसेवा करते करते जब वृद्ध हो गये, तब भला उस भगवान्के विषयमें पूछनेपर उनके यादका स्मरण कर कैसे बोल सकते हैं ॥ ३ ॥ वह कृतकृत्य साधु तीव्र भक्तियोगके कारण

श्रीशुक उवाच ॥ इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥ प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥ यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ॥ तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ २ ॥ स कथं सेवया तस्य काले न जरसं गतः ॥ पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥ स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम् ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ॥४॥ पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन्मीलद्दृशा शुचः ॥ पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥ ५ ॥ शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ॥ विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥६॥ उद्धव उवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ॥ किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥७॥ दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ॥ ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥ इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः ॥ सात्व-

कृष्णपादपद्मरूपीसुधामें एकदम डूबकर एक मूहूर्त तक बिलकुल चुप रह गये ॥ ४ ॥ उनके शरीरके रोंगटे खड़े हो गए। मूंदे हुए उनके नेत्रोंसे शोकके आंसू बहने लगे, इस तरह भगवान्के स्नेहके प्रवाहमें जब पूर्णतया निमग्न विदुरजीने उन्हे देखा, तो उन्होंने उद्धवको कृतकृत्य समझा ॥ ५ ॥ धीरे-धीरे मानो वह भगवल्लोकसे नरलोकमें आगये। उन्होंने आंखें पोछकर विदुरको आश्चर्य उत्पन्न करते हुए बोलना शुरू किया ॥ ६ ॥ उद्धवजी ने कहा—श्रीकृष्णरूपीसूर्यका जब अस्त हो गया और हमारे श्रीहीन घर जब कालरूपी अजगरसे ग्रस्तकर लिये गये, तब हम आपको किसका कुशल सुनावें ॥ ७ ॥ यह लोक, तत्रापि, यादव, सचमुच अभागे हैं जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके साथ रहते हुए भी जैसी मछलियाँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चन्द्रको नहीं जानती, उसी तरह उनको नहीं जान सके ॥ ८ ॥ इंगितज्ञ पौरवश्रेष्ठोंने और एकही स्थानमें जिनका चित्त रमता था ऐसे कुछ यादवोंने समस्तभूतोंके स्वामी श्रीकृष्णको सात्वतश्रेष्ठ जाना ॥ ९ ॥ जो यादव आदि भगवान्की मायासे व्याप्त थे, उनको वे अपना बंधु समझते थे, या जो शिशुपालादि वैर करते थे उनके वाक्योंसे भगवान्में एक बार जिनका चित्त लग गया है ऐसे हम लोगोंकी बुद्धि मोहको नहीं प्राप्त हो सकती और दूसरे तो मूढ हैं ही ॥ १० ॥ जिन्होंने कुछ भी तप नहीं किया था, अत एव जिनकी आंखें देखनेसे तृप्त नहीं हुई थीं माको ऐसे लोगोंके नेत्रोंके साथ अपना वह बिम्ब उन्होंने अन्तर्हित कर लिया ॥ ११ ॥ जो बिम्ब-शरीर मनुष्य लीलाके योग्य था अपनी योगमायाका बल दिखाते हुये उनसे जो गृहीत था, खुद उन्हें भी जो विस्मय उत्पन्न करता था, जो सौभाग्यातिशयकी पराकाष्ठा या और जिसके अंग भूषणोंके भी भूषण थे ॥ १२ ॥ धर्मराजके राजसूयमें नयनाह्लादकारी जिस रूप को देखकर तीनों जगत्के लोगोंने समझाकि इसीमें आज ब्रह्मदेवके मनुष्य निर्माणका सारा कौशल खतमहो गया है ॥१३॥ अनुरागयुक्त हास्यविनोद तथा लीलायुक्त

तामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥ देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रितः । भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ॥ आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥ यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ॥ विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥१२॥ यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ॥ कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ॥ व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ॥ परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्यथाऽग्निः ॥१५॥ मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ॥ व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥ १६ ॥ दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ॥ ताताम्ब कंसादुरुशङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥ १७ ॥ को वा अमुष्या-

अवलीनोंसे जो अपना मान दिखाती थीं ऐसी व्रजस्त्रियाँ अपना काम अधुरा छोड़कर उसीको देखती हुई उसोके पीछे अपनी आँखोंके साथ अपनी बुद्धि लगाकर खड़ी रह जाती थी ॥ १४ ॥ भगवान् के ही शान्त और अशान्त दो रूप हैं। उनमें अशान्तरूपोंसे—कंसादिकोंसे शान्तरूप-सज्जनलोग जब पीड़ित होते हैं, उनके ऊपर कृपा करनेके लिए अजन्मा होने पर भीं महत्तत्व जिसका अंडा है ऐसी प्रकृतिसे युक्त होकर जैसे काष्ठसे अग्नि आविर्भूत होती है उसी प्रकार छोटे-बड़े सबके स्वामी भगवान् प्रकट होते हैं ॥ १५ ॥ फिरभी उस जन्म रहितका वसुदेवके घरमें जन्मका नाटक करना, अनन्तशक्तिका मानो शत्रुके भयसे व्रजमें वास करना, तथा कालयवनसे डरनेका अभिनयकर मथुरासे भागना, इन सबका स्मरण करनेसे मेरे चित्तमें खेद होता है ॥ १६ ॥ अभी भी उस बातका स्मरण आता है तो मनमें दुःख उमड़ आता है, जब वसुदेव देवकोके पैरोंमें नमस्कारकर—तात, अम्ब कंसके भारी डरसे हम आपकी सेवा कर सके, अतः पितृऋण और मातृऋणसे उद्धार न पानेके कारण हमे क्षमा कीजिये, ऐसा जो भगवान् ने कहा था ॥ १७ ॥ जो अपनी फड़फड़ाती हुई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्रूरतारूपी कालसे भूमिका भार हरण करता है, उसके चरणसरोजके रेणुको एकबार सूंघनेके बाद फिर भला कौन पुरुष उसे भूल सकता है ॥ १८ ॥ आपने राजसूयमें अपनी आँखोंसे द्वेष करनेवाले शिशुपालकी सिद्धि तो अवश्यही देखी जिस सिद्धिको योगी लोग सम्यक् योगसे प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे भगवान्का विरह कौन सह सकता है? ॥ १९ ॥ उसी तरहसे युद्धमें नयनोंके आनन्ददायक कृष्णमुखारविन्दका नेत्रोंसे पानकर अनेक नरवीर पार्थके अस्त्रोंसे पवित्र होकर इनके परम पदको प्राप्त हो गये ॥ २० ॥ वह खुद तीनों लोकोंके स्वामी हैं। परमानन्दस्वरूप सम्पत्तिसे ही जिनको समस्त भोग प्राप्त होते हैं, जिनके बराबरीका या ज्यादा कोई नहीं है करभार देनेवाले चिरकालीन लोकपालोंके किरीटके अग्र-भागके संघर्षण जन्म शब्दसे जिनका पाठपीठ स्तुत होता है ॥ २१ ॥ हे विदुरजी, ऐसा होनेपर भी सिंहासन पर बैठे हुए उग्रसेनके सामने स्वयं खड़ा होकर 'महाराज सुनिए, ऐसा

ङ्घ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ॥ यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥१८॥ दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ॥ यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥ १९ ॥ तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ॥ नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥ २० ॥ स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ॥ बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥ २१ ॥ तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ॥ तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्येन्यबोधयद्देव निधारयेति ॥२२॥ अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ॥ लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३ ॥ मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ॥ ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसेसुनाभायुधमापतन्तम् ॥२४॥ वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने ॥ चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥ २५ ॥ ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता । एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥ परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन्व्यहरद्विभुः ॥ यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥२७ कौमारीं

कहकर जिन्होंने विज्ञापन दिया है, उनकी यह सेवकाई हम किंकरोंके अभी तक मनमें खटकती है ॥ २२ ॥ जिनको मारनेकी इच्छासे उस पूतनाने स्तनका विष पिलाया उस दुष्टाको भी धात्रीके योग्यही सद्गति दी। ऐसे दयालुको छोड़कर और किसकी हम शरण जाँय ॥ २३ ॥ तीनों लोकोंके स्वामी भगवान्में क्रोधावेशके कारण जिन्होंने अपना चित्त लगाया, ऐसे असुरोंको भी मैं भगवान्ही समझता हूँ। उन्होंने गरुड़पर बैठे हांथमें चक्र लिए भगवान्का युद्धभूमिमें प्रत्यक्ष दर्शन किया ॥ २४ ॥ वही भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथ्वीके सुखके लिए भगवान् ब्रह्मदेवकी प्रार्थना करनेसे कंसके कारागारमें वसुदेवके देवकीमें उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ अनन्तर, पिता वसुदेवने उन्हें कंसके डरसे व्रजमें नन्दके पास रख दिया, वहाँपर बलराम के साथ अपना तेज गुप्त रखकर ग्यारह साल तक रहे ॥ २६ ॥ चारो ओर बछड़ोंके रक्षण करने वाले ग्वालबालोंसे वेष्टित होकर कूजन करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त वृक्ष जहाँ थे ऐसे यमुनाके तीरके उपवनोंमें गौ चराते हुए भगवान्ने विहार किया ॥ २७ ॥ वहां मुग्धबाल सिंहके समान उनका अवलोकन था रोनेका झूठा अभिनय करते हुए जो हँसते थे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और व्रजवासी लोगोंको प्रेक्षणीय बाललीलाएँ दिखाते थे ॥ २८ ॥ जिसमें सफेद बैल रहते थे ऐसे शोभाके स्थानभूत गो धनको चराते हुए उन्होंने वंशी बजाके अपने साथी गोपालोंको आनन्दित किया ॥ २९ ॥ कंसने जिनकी मायासे अनेकरूप धारण करनेवाले मायावी दैत्योंको जिन्हें मारनेके लिए भेजा था उनको बालक जैसे खिलौने को तोड़-फोड़ देता है उसी तरह जिन्होंने नष्ट कर दिया ॥ ३० ॥ विषैले जल पीनेसे मूर्छित गौ और गोपालोंको उठाकर कालियनागका निग्रहकर उसी जगह फिर तत्क्षणही जिन्होंने निर्विष पानी सबको पिलाया ॥ ३१ ॥ बड़े भारी द्रव्यका सद्व्यय करनेकी इच्छासे भगवान्ने नन्दके हाथ ब्राह्मण द्वारा इन्द्रका घमण्ड चूर करनेके लिए उनकी पूजा बन्द कराकर गोवर्धन यज्ञ कराया

दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ॥ रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥२८॥ स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् ॥ चारयन्ननुगान्गोपान्रणद्वेणुररीरमत् ॥ २९ ॥ प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः ॥ लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥ ३० ॥ विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ॥ उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥ ३१ ॥ अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ॥ वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥ ३२ ॥ वर्षतीन्द्रे व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः ॥ गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् ॥ गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥ ३४ ॥ इति श्रीम० म० तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ ३२ ॥ भद्र, जब अपमान होनेके कारण क्रोधसे इन्द्र वृष्टि करने लगे, तब सारा व्रज अतिव्याकुलहो गया। यह देख भगवान्ने गोवर्धन पर्वतको छत्र बनाकर व्रजावासी लोगोंपर अनुग्रह करके उनका रक्षण किया ॥ ३३ ॥ शरत्कालीन चन्द्रकिरणोंसे उज्वल रजनी मुखका मान करते हुए स्त्रियोंके मण्डलीको सुशोभितकर मधुरपदोंसे युक्त गाना गाते हुए भगवान्ने उन स्त्रियोंके साथ खूब विहार किया ॥ ३४ ॥

दूसरे अध्याय का सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, भागवत श्रेष्ठ उद्धवसे अपने प्रिय लोगोंके बारेमें विदुरने जब कुशल प्रश्न किया, तो वह उसका उत्तर न दे सके। उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो आया। उनके मूर्तिका स्मरण होते ही उनका शरीर पुलकित हो गया। उनके नेत्रोंसे आंसू बहने लगे। थोड़ी देर इसी तरह स्तब्ध थे। बादमें धीरे-धीरे बोलना शुरू किया—भगवन्, कृष्ण सूर्यका जब अस्त हो गया और हमारे सबके घर जब कालरूपी अजगरसे ग्रस्त हो गये, तब किसका कुशल बतलाऊँ। सचमुच यह लोक उसमें भी यादव अभागे हैं। अपने घरमें रहनेवाले कृष्ण को उन्होंने नहीं पहचाना कुछ तीक्ष्ण बुद्धि लोगोंने पहचाना भी। कुछ तप न करते हुए भी भाग्यसे लोगोंको जिस छविका दर्शन हुआ था वह अन्तर्हित हो गई। जब धर्मराजके राजसूययज्ञमें उस नयन मनोहर रूपको देखा तो लोगोंने समझा कि इसीके निर्माणमें ब्रह्मदेवका सब कौशल खर्च हो गया है। व्रजमें तो काम धाम छोड़ उसको देखते ही सभी स्त्रियाँ मन्त्रमुग्ध जैसी हो जाती थीं। कंसादि दुष्ट लोग भी भगवान्के ही अशान्तरूप हैं, उनसे शान्तरूपी सज्जनों को जब पीड़ा होती है, तो वह अजन्मा प्रकट होते हैं। उस महामहिमाशाली अनन्तशक्तिका वसुदेवके घर जन्म ले, वहांसे भीतिसे भागनेका सब अभिनय हम भक्तोंके मनमें अभी भी खटकता है। स्वयं त्रैलोक्यके नाथ लोकपालोंके स्वामी होने पर भी महाराज उग्रसेनके सामने मर्यादासे बोलना अभी हमारे मनमें दुःख देता है। उनकी कृपासे द्वप करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाला शिशुपालने भी योगियोंके दुर्लभ स्थानकी प्राप्तिकी, यह तो आपने भी अपनी आँखों देखा। अर्जुनके रथपर इनको देखकर अर्जुनके बाणसे पवित्र होकर कितने ही वीर स्वर्ग सिधारे। मारनेकी इच्छासे स्तनका दूध पिलाने पर भी पूतनाने धात्रीके योग्य उत्तम गति पाई। क्रोधावेशसे भगवान्का ही ध्यान करनेवाले दैत्यभी भागवत ही है, उनको तो गरुड़-वाहन चक्रधारी भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन मिलता है। ऐसे दयालुको छोड़ कौन मूर्ख दूसरेकी शरण जायगा। पृथिवीकी भलाईके लिए ब्रह्मदेवके प्रार्थनासे कंसके कारागारोंमें वसुदेवसे देवकीमें अवतीर्ण हुए। अनन्तर मानों कंसके डरसे ग्यारह साल बलरामके साथ व्रजमें नन्दके घरमें रहे। छुटपनमें गायके बचोंकों चराते हुए अपने समवयस्क बालकोंके साथ यमुनातीरके सुन्दर उपवनोंमें विहार किया। तरह तरहकी बाललीलाएँ करके वहाँके लोगोंको मुग्ध किया। बादमें गोधन चराते हुए वेणुनिनादसे गोपालोंको आनन्दित किया। विषाक्त जल पीनेसे मूर्छित लोगोंको उठाकर उस जलमेंके सर्पका दमनकर फिर निर्विष जल लोगोंको पिलाया। कंसके भेजे गये कामरूपधारी दैत्योंको खिलौने के समान खतम किया। इन्द्रयाग बन्द कराकर गोवर्धन याग कराया। उससे क्रुद्ध इन्द्रने जलवृष्टि की तो पर्वतका छाता बनाकर सबका रक्षण किया। शरत्कालीन चांदनीमें गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा की। इति दूसरा अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

(श्रीकृष्णका चरित्र तथा यादवोंको शाप)

उद्धवने कहा---उसके बाद श्रीकृष्ण भगवान् अपने माता पिताका कल्याण करनेकी चाहसे बलरामके साथ मथुरा आये और वहाँ पर अपने शत्रु समूहोंके नाथ कंसको उसके ऊँचे राजसिंहासनपरसे गिराकर उसके प्राण निकल जानेपर भी उसको जमीनपर खूब जोरसे घसीटा ॥ १ ॥ सांदीपनि गुरुसे उन्होंने एक बार सिर्फ कहनेसे ही सब विद्याएँ

उद्धव उवाच ॥ ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ॥ निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥१॥ सान्दीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ॥ तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥ २ ॥ समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ॥ गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥ ३ ॥ ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयम्वरे नाग्नजितीमुवाह ॥ तद्भग्नमानानपि गृध्यतो-

सविस्तर सिखालीं और गुरुदक्षिणाके रूपमें पंचजनको मारकर उसके पेटमेंके मरे हुए सुन्दर गुरु पुत्रको वापस ला दिया ॥ २ ॥ भीष्मककन्या रुक्मिणीको लक्ष्मीके रूपसे बुलाये गये सभी राजाओंके सिरपर पैर रखते हुए उनके देखते-देखते पहलेके निश्चयानुसार गांधर्वविधिसे रुक्मिणीको, जैसे--गरुड़ अपने भागको ले जाता है वैसे ले गये ॥ ३ ॥ बड़े बड़े कन्धेवाले बैलोंको, जो नाथे नहीं गये थे, नाथकर स्वयंवरमें नाग्नजितकी लड़कीसे विवाह किया। यद्यपि उसीसे सभी राजाओंका मानभंग हो गया, फिर भी जो मूर्ख लड़ने आये, उन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शस्त्रधारियोंको स्वयं अक्षत रहकर अपने शस्त्रोंसे मारा ॥ ४ ॥ स्त्री परतन्त्र ग्राम्य आदमी जैसा स्त्रीके लिए सब कुछ करता है उसी तरह स्वतन्त्र रहते हुए भी कृष्णने सत्यभामाका प्रिय करनेके लिए स्वर्गका परिजात जब ला दिया तब वज्रधारी इन्द्र अपनी स्त्री से प्रेरित हो अत्यन्त रुष्ट होकर दलबलके साथ युद्ध करने आये। उससे इन्द्रका ही स्त्रीके हाथका खिलौना मात्र होना सिद्ध हुआ ॥ ५ ॥ अपने शरीरसे आकाशको भी ग्रसनेवाले नरकासुरका युद्धमें चक्रसे बध करनेके बाद भूमिने जब प्रार्थना की, तो उसके पुत्र भगदत्तको छीननेके बाद जो कुछ बचा हुआ था वह राज देकर उसके अन्तः पुरमें गये ॥ ६ ॥ वहाँपर भौमसे हरण करके लायी गयी जिन राजकन्याओंको कैदकर रखा था उन्होंने आर्त लोगोंके बन्धु श्रीकृष्णको देखकर तुरन्त उठकर हर्ष, लज्जा और अनुरागयुक्त अवलोकनसे ही भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति चुन लिया ॥ ७ ॥ इन युवतियोंका एक ही मुहुर्तमें

ऽज्ञाञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥ प्रियं प्रप्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छद्द्युतरुं यदर्थे ॥ वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषाऽन्धः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥ ५ ॥ सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ॥ आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदन्तः पुरमाविवेश ॥६॥ तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ॥ उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ॥ ७ ॥ आसां मुहूर्त एकस्मिन्ना-नागारेषु योषिताम् ॥ सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥८॥ तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ॥ एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागधशाल्वादीननीकै रुन्धतः पुरम् ॥ अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥ १० ॥ शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ॥ अन्यांश्च दन्तवक्त्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥ ११ ॥ अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् ॥ चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥ १२ ॥ स कर्णदुःशासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम् ॥ सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥ १३ ॥ कियान्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ॥ अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४ ; मिथो यदैषां भविता

विधिपूर्वक अनेकघरोंमें अपनी मायासे उनके अनुरूप नानारूप धरकर पाणिग्रहण किया ॥ ८ ॥ उन्होंने प्रकृतिके विस्तारकी इच्छासे उनमें प्रत्येकने दस-दस लड़के उत्पन्न किए ॥ ९ ॥ कालयवन, जरासन्ध शाल्व आदि,' जो अपने नगरका रोध करनेवाले थे, दुष्टोंको स्वयं ही भगवान्ने मारा। किन्तु केवल अपने भक्तोंकी कीर्ति और प्रभाव बढ़ानेके लिए उनको उसका श्रेय दिया ॥ १० ॥ शम्बर, द्विविद, बाण, मुर, वल्कल तथा अन्य दन्तवक्त्रादिकों को भी स्वयं या किसीको निमित्त बनाकर मारा ॥ ११ ॥ आपके भाइयोंके पुत्रोंके पक्षमें पड़े राजाओंको, जिनके कुरुक्षेत्र में आनेवाले सैन्यसे भूमि काँपती थी, भगवान्ने ही मारा ॥ १२ ॥ कर्ण, दुःशासन, शकुनिके मंत्रविचारके परिणामस्वरूप, जिसकी आयु और श्री नष्ट हो गई थी, अनुचरोंके साथ उस सुयोधनको, बिना जाँघके भूमिपर सोए देखकर भी भगवान्को सन्तोष नहीं हुआ ॥ १३ ॥ द्रोण, भीष्म, अर्जुन, भीम ये सब मेरे अंश हैं, इन्हें मूलकारण बनाकर मैंने भूमिका अठारह अक्षौहिणीका भार उतरा, यह तो बहुत ही कम है ! अभी तो यादवोंका असह्य बल बाकी ही है। ऐसा भगवान्ने सोचा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ १४ ॥ और निश्चय किया कि मधुपानसे उत्पन्न हुए मदके कारण रक्तनेत्र यादवोंमें जो आपसमें कलह होगा, वही इनका वधोपाय है, दूसरा नहीं। यद्यपि ये सब एकमत हैं, लेकिन मेरे प्रयत्न करनेके बाद ये सब विवाद मचाकर नष्ट हो सकते हैं ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराजको राज्यपर बैठाकर साधुओंका मार्ग दिखाते हुए अपने सुहृदोंको आनन्दित किया ॥ १६ ॥ उत्तराके गर्भमें स्थित अभिमन्युके, जिसने पुरुकी बड़ी रक्षा की थी, अश्वत्थामाके अस्त्रसे दग्ध होने पर भगवान् ने फिरसे उसे जीवित किया* ॥ १७ ॥ सर्वव्यापक भगवान्ने धर्मराजके हाथसे तीन अश्वमेध याग कराये। धर्मराजने भी भगवान्का अनुसरण कर अनुजोंके साथ पृथ्वीका पालन करते हुए रमण किया ॥ १८ ॥ विश्वके स्वामी भगवान्ने भी लोक और वेदमार्गका अनुसरण करते हुये द्वारका नगरीमें सांख्ययोगका आश्रयण कर अनासक्त रहकर अनेक तरहके भोगोंका उपभोग

विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ॥ नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥ १५॥ एवं सञ्चिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम् ॥ नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥ १६ ॥ उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ॥ स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥ १७ ॥ अयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः ॥ सोऽपि क्ष्मामनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः। १८ ॥ भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ॥ कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥ १९ ॥ स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ॥ चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥ २० ॥ इमं लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् ॥ रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥ तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् ॥ गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥ दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ॥ को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥२३॥ पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ॥ कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥ २४ ॥ ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः ॥ ययुः

किया ॥ १९ ॥ अपने स्निग्ध स्मित युक्त अवलोकनसे, अमृतके समान मधुरवाणीसे, निर्दोषचरित्रसे और शोभाके स्थानभूत शरीरसे इस और उस लोकको विशेषतः यादवोंको आनन्दित करते हुए स्त्रियोंमें क्षणके लिए जिनका सौहार्द रहता था ऐसे श्रीकृष्णने रात्रिमें उन स्त्रियोंके साथ रमण किया, और उन्हें भी आनन्दित किया ॥ २०, २१ ॥ अनेक वर्षों तक रमण कर रहे भगवान्को गृहधर्म का परिपालन और भोग करने के बाद फिर उनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया ॥ २२ ॥ जब मनुष्य स्वयं दैवाधीन है और सभी उसके उपभोग भी दैवाधीन हैं, तब योगसे योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका अनुसरण करनेवाला ऐसा कौन आदमी है, जो इनपर विश्वास रखेगा ॥ २३ ॥ द्वारकापुरीमें एकबार खेलते

---

* दृष्टान्त—एक सज्जन बदरिकाश्रम से लौट रहे थे रास्तेमें उनको चलते चलते थकान मालूम होने लगी। वे रमणीक स्थान पर कपड़ाबिछाकर सोगये। कुछ देरके बाद बड़ा शोर मचा। उन्होने लोगोंसे पूछा क्या हुआ। वे कहने लगे कि एक येकी मार्गपर उधरसे चट्टान गिर पड़ी। जिससे रास्ता चलने वालों को बड़ा कष्ट हो रहा है। पर किसी आदमी पर गहरी चोट आ गई है। उन्होंने अपने मन में विचारा, जो भगवान् करते हैं वह अच्छा करते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए यादव और भोजकुमारोंने मुनियोंको क्रुद्ध कर दिया। उन मुनियोंने भी भगवान्‌का अभिप्राय जानकर शाप दे दिया ॥ २४ ॥ उसके कुछ दिन बाद देवमायासे मोहित होकर बड़े आनन्दसे रथमें बैठकर सभी यादव भोज, अन्धक आदि प्रभासमें पहुँचे ॥ २५ ॥ वहाँ स्नानकर उन्होंने देव, ऋषि और पितरोंका उसके जलसे तर्पण किया और अनेक गुणवती

प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥२५॥ तत्र स्नात्वा पितॄन्देवानृषींश्चैव तदम्भसा ॥ तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥२६॥ हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान् ॥ यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥२७॥ अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम् ॥ गोविप्रार्था-सवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥ २८ ॥ इति श्रीम० भा० म० तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

गौओंका ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २६ ॥ एवं उन ब्राह्मणोंको सोना, चाँदी, शय्या, वस्त्र, अजिन, कम्बल, घोड़े, रथ, हाथी, कन्या, वृत्ति चलने लायक जमीन आदिका दान दिया ॥ २७ ॥ ब्राह्मणों और गौओंके लिए ही जिनका जीवन है ऐसे उन शूर यादवोंने ब्राह्मणोंको भगवदर्पणपूर्वक खूब रसोंसे परिपूर्ण अन्न भी देकर सिर रखते हुए प्रणाम किया ॥ २८ ॥

तीसरे अध्यायका सार—उद्धवने कहा—हे विदुरजी, उसके बाद श्रीकृष्णने मथुरामें आकर अपने माता पिताके सन्तोषके लिए प्रधान शत्रु कंसको मारा। सांदीपनी ऋषिके पास एकबार सुन सभी विद्याएँ सीख लीं और पंचजनको मार कर उनके पुत्रको वापस ला दिया। सभी राजाओंके सामने रुक्मिणीका हरण किया। मस्त बैलोंको नाथ कर नाग्नजित् की पुत्रीसे विवाह किया और युद्धके लिए आये राजाओंको मारा। सत्यभामाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए स्वर्गसे पारिजात लाये और उसके लिए युद्ध करनेके लिए आये इन्द्रका गर्व चूर्ण किया। नरकासुरका वधकर उसके राज्यपर उसके पुत्र भगदत्तको बैठाया। वहाँ उसके अन्तःपुरमें जो स्त्रियाँ कैद पड़ी थीं, उनको छुड़ाकर उनके इच्छानुसार उनका पाणिग्रहण किया उन सभीमें एक-एकमें दस-दस अपने तुल्य पुत्र उत्पन्न किये। अपने भक्तोंकी कीर्ति बढ़ानेके लिए कालयवन, जरासन्ध और शाल्वको स्वयं ही मारा, लेकिन भक्तोंको निमित्त बनाया। उसी तरह शम्बर बल्कल, मुर, इत्यादियोंको खुद मारा या किसीके हाथसे मरवाया। कौरव-पाण्डवोंके पक्षमें पड़े राजाओंको भी उनके सैन्य सहित मारा। उन्होंने सोचा—भीष्म, द्रोण, अर्जुन, भीम आदिको निमित्त बनाकर नष्ट किए गये इस सैन्यसे भूमिका कितना भार उतरा? अभी तो यादव बाकी ही हैं। उनमें मधुपान करके आपसमें कलह उत्पादन करके ही मारूँगा, यही ठीक उपाय है। फिर धर्मराजको सिंहासन पर बैठाकर लोगोंको आनन्दित किया। उनके हाथसे तीन अश्वमेध कराये। अपने भाइयोंके साथ फिर धर्मराज आनन्दसे रहे। भगवान्‌ने भी द्वारकामें अनासक्त रहकर ही अनेक उपभोग किए अपने स्निग्ध स्मित युक्त अवलोकनसे सभीको विशेषतः यादवोंको आनन्द दिया। अपनी स्त्रियोंको रात्रिमें आनन्द दिया। फिर भगवान् आगे चलकर विरक्त हो गये। फिर कौन ऐसा भगवद्भक्त है, जो सब ईश्वराधीन जानकर भी संसारपर विश्वास करेगा। एकबार यादवकुमारोंने ऋषियोंको नाराज कर दिया। उन्होंने भी यादव कुलको शाप दे दिया। कुछ दिन बाद दैववशात् सब यादव प्रभासमें गये। वहाँ उन्होंने स्नानकर देव-ऋषि-पितृ तर्पण कर ब्राह्मणोंको अनेक दान दिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❋

(यादवोंका संहार, श्रीकृष्णका स्वधाम-गमन और विदुरको सन्देश)

उद्धवने कहा—उसके बाद ब्राह्मणोंकी अनुज्ञा लेकर उन यादवोंने भोजन किया। अनन्तर वारुणी पान करके उससे अपना ज्ञान खो दिया। और मर्मभेदी वाक्य एक दूसरेको बोलना आरम्भ कर दिया ॥ १ ॥ ऐसा करते-करते उस मैरेयके मदसे जिनका-जिनका चित्त विकृत हो गया, ऐसे यादवोंमें सूर्यास्तके समय, बाँसोंमें जैसा संघर्ष होता है वैसा संघर्ष शुरू हो गया ॥ २ ॥ भगवान्‌ने यह अपनी मायाका परिणाम देखा और सरस्वतीके किनारे हाथ पैर धोकर एक वृक्षके नीचे बैठ गये ॥ ३ ॥ अपने कुलका संहार करने की इच्छा रख रहे शरणागतकी आर्तिको करने वाले भगवान्‌ने मुझसे कहा कि तुम बदरी जाओ। ॥ ४ ॥ हे अरिन्दम, फिरभी मैं भगवान्‌की इच्छा जानकर उनके चरणका

उद्धव उवाच ॥ अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥ तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥ तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ॥
निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥ २ ॥ भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ॥ सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहं चोक्तो
भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं सञ्जिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम ॥ पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पाद-
विश्लेषणाक्षमः ॥ ५ ॥ अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् ॥ श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥ ६ ॥ श्यामावदातं विरजं प्रशा-
न्तारुणलोचनम् ॥ दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥ ७ ॥ वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् ॥ अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्त-
पिप्पलम् ॥ ८ ॥ तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखा ॥ लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥ ९ ॥ तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभा-
वानतकन्धरस्य ॥ आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवा-
पमन्यैः ॥ सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥ ११ ॥ स एष साधो चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ॥ यन्मां

विरह न सह कर उनके पीछे-पीछे गया ॥ ५ ॥ खोजते-खोजते मैंने सरस्वतीके तीरपर अकेले स्थित लक्ष्मीके आश्रय स्थान, अपने अत्यन्त प्रिय स्वामी, श्यामवर्ण शुद्धसत्त्वमय,
५ प्रशान्त अरुण नेत्रवाले, पीतकौशेयधारी, चतुर्भुज कोमल अश्वत्थवृक्षके नीचे बाँयी जाँघपर दक्षिण पाद कमल रखकर स्थित बैठे हुए, कर्मफलको न भोगनेवाले, पुष्ट शरीर भग-
वान्‌की मूर्ति देखी ॥ ६ । ७ । ८ ॥ वहाँपर परम भागवत, वेदव्यासके सुहृद और मित्र सिद्ध मैत्रेयजी लोकमें आ पहुँचे ॥ ९ ॥ उस आनन्द और प्रेमावेशके कारण नतमस्तक अनुरक्त मैत्रेय ऋषिके सुनते हुए ही भगवान् मुकुन्द थे मुझे अपने अनुरागयुक्त हास और अवलोकनसे विश्रान्ति देते हुए कहने लगे ॥ १० ॥ भगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, तुम्हारे मनमें क्या है, जानता हूँ मैं तुम्हें अन्य लोगोंको जो दुर्लभ है, वह दूँगा। तुमने पूर्वकालमें प्रजापति और वसुओंके सम्मिलित सत्रमें मेरी आराधना की है, तुम वसु हो अतः हे वसो, तुम्हें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसका मैं फल दूँगा ॥११॥ यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है, क्योंकि तुमने नरलोक छोड़ते समय मुझे एकान्तमें एकान्तभक्तिसे देखा और मेरा अनुग्रह सम्पादन किया, यह तुम्हारा सौभाग्य है ॥१२॥ पूर्वकल्पमें सृष्टिके प्रारंभमें नाभिसे निकले हुए पद्मपर बैठे ब्रह्मदेवको मैंने आपकी महिमाका प्रकाशक श्रेष्ठ ज्ञान दिया था, जिसे विद्वान् लोग भागवत कहते हैं ॥१३॥ इस तरह मेरा आदर करके मुझे जब ऐसा कहा तब उस परमपुरुषकी कृपादृष्टिका अनुग्रहपात्र मैंने स्नेहसे पुलकित होकर शोकसे आँसू बहाते हुए हाथ जोड़कर टूटते हुए अक्षरोंसे कहना शुरू किया ॥१४॥ भगवन्, आपके चरणकमलोंका आश्रय करनेवालेको चारों पुरुषार्थमें भला कौनसा यहाँ दुर्लभ है, तथापि हे भगवन्, मैं उन्हें नहीं चाहता। मैं तो आपके चरणसरोजकी सेवा करनेके लिए ही उत्सुक हूँ। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए ॥ १५ ॥ निष्काम आपके कर्म, जन्म रहित होनेपर भी आपका जन्म, स्वयं काल स्वरूप होते हुए भी आपका शत्रु के भयसे पलायन या दुर्गका आश्रयता करना, अपने में ही रमण करनेवाले आपका सोलह हजार स्त्रियोंका ग्रहण ये सब इस संसारमें विद्वानोंके भी

नृलोकान्त्रहं उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ॥१२॥ पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ॥ ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ॥ १३ ॥ इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ॥ स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तं मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥ १४ ॥ को न्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ॥ तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन् भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥१५॥ कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ॥ कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥१६॥ मन्त्रेषुमां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ॥ पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥ १७ ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ॥ अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाञ्जसा यद्वृजिनं तरेम ॥ १८ ॥ इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः ॥ आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥ १९ ॥ स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ॥ प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥ २० ॥ सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभोः ॥ गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥२१॥ यत्र नारायणो

बुद्धिको चक्करमें डालते हैं ॥१६॥ हे प्रभो, स्वयं अकुण्ठित अखण्ड संशयादिरहित ज्ञानवान् तथा अप्रमत्त होनेपर भी अज्ञके समान मुझे बुलाकर मुझसे आपका मन्त्र विचार पूछना ये सब हे देव, मेरे मनको एक तरहसे मोहमें डालते हैं ॥१७॥ अपने आत्मतत्त्वका प्रकाशक जो श्रेष्ठ ज्ञान आपने ब्रह्मदेवको सब कहा था, वह यदि मेरे ग्रहण करने योग्य हो तो हे भगवन्, वह ज्ञान हमसे कहिए, जिससे हे स्वामिन्, हम आसानीसे संसारदुःखसे तर जायँ ॥१८॥ इसतरह अपना हृदय खोलकर मेरे बतानेपर अरविन्दाक्ष परमेश्वर भगवान्ने श्रेष्ठ आत्मस्थिति बतलायी ॥ १९ ॥ इसतरह मैं भगवान्के पादरूपी तीर्थकी आराधना कर उससे आत्मतत्त्वज्ञानका मार्ग जानकर उन्हें नमस्कार कर उन श्रीकृष्णदेवभगवानकी प्रदक्षिणा करके विरहसे आतुर होकर यहाँ आया ॥ २० ॥ उस प्रभुके दर्शनके आह्लादसे वंचित होनेके कारण दुःखी मैं उनके प्रिय बदरीकाश्रमको जारहा हूँ ॥ २१ ॥ जहाँपर भगवान् ऋषि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रेष्ठ देव नर और नारायण लोकानुग्रहके लिए किसीको तकलीफ न देते हुए उग्र तथा दीर्घकालीन तप कर रहे हैं ॥ २२ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसतरह उद्धवसे ज्ञातियोंका भयंकर वध सुनकर विदुरके हृदयमें शोक उमड़ आया, लेकिन उसको उस बुद्धिमानने अपने ज्ञानसे शान्त किया ॥ २३ ॥ उस कौरवश्रेष्ठने महाभागवत कृष्ण परिवारमें प्रमुख बदरीको जाते हुए उद्धवसे, विश्वास होनेकी वजहसे पूछा ॥ २४ ॥ विदुरजीने कहा—हे उद्धवजी, योगेश्वर जगदीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने जो आपको आत्मतत्त्व प्रकाशक ज्ञान बताया है, मुझे भी वह कहिये, क्योंकि विष्णुके भृत्य अपने भृत्यके कल्याणके लिएही घूमते हैं ॥ २५ ॥ उद्धवने कहा—आप तत्त्वजाननेके लिए मैत्रेयऋषिकी आराधना कीजिये। साक्षात् भगवान्ने मर्त्यलोक छोड़ते समय, उन्हें आपको उपदेश देनेको कहा है। वे यहाँ मेरे पास ही में हैं ॥ २६॥ सूतजीने कहा कि—इसतरह विदुरके साथ भगवत्क

देवो नरश्च भगवानृषिः ॥ मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुसहं वधम् ॥ ज्ञाने-
नाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥ २३ ॥ स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः ॥ विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥ २४ ॥ विदुर
उवाच ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ॥ वक्तुं भवन्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥ २५ ॥ उद्धव
उवाच ॥ ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्ति मे ॥ साक्षाद्भगवतादिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ इति सह विदुरेण
विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ॥ क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ निधन-
मुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ॥ स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्धरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवाञ्छितः ॥ संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्देहमचिन्तयत् ॥ २९ ॥ अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् ॥ अर्ह-
त्युद्धव एवाद्धा संप्रत्यात्मवतां वरः ॥ ३० ॥ नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ॥ अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥ ३१ ॥
एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना ॥ बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥ ३२॥ विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ क्रीड-

थाकी चर्चारूपीसुधासे उद्धवका सब ताप बह गया। उस यमुनाके किनारे एकक्षणके समान रात विताकर वह वहाँसे चले गये ॥ २७ ॥ राजाने कहा—हे मुने, जब सभी वृष्णि और भोज खतम हो गए, अधिरथ यूथपोंके यूथपोंमें मुख्य श्रीकृष्ण भगवान् त्रिलोकीनाथने भी शरीर छोड़ दिया, तब अकेले उद्धव जी कैसे रह गये? ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा——अमोघ-इच्छावाले भगवान्ने ब्राह्मणशापके निमित्तसे सब कुलका संहारकर निजदेहत्याग करनेके समय विचार किया——॥ २९ ॥ मेरे इसलोकसे चले जानेकेबाद मेरे ज्ञानको रखनेके योग्य आत्मनिष्ठोंमें इस समय श्रेष्ठ उद्धवही है ॥ ३० ॥ इस उद्धवका मन विषयोंसे क्षुब्ध नहीं होता, अतः मुझसे यह तनिक भी कम नहीं है, प्रभु है। इसलिए मेरे ज्ञानका लोगोंको उपदेश देता हुआ यह उद्धव यहीं विचारता रहे ॥ ३१ ॥ इसी तीनोंलोकके गुरु, वेदकर्ता भगवान्की आराधना करने लगे ॥ ३२ ॥ विदुरजीने उद्धवसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परमात्मा लीलावतारधारी श्रीकृष्णके श्लाघनीय कर्म सुने ॥ ३३ ॥ तथा जो दूसरे अधीरचित्त पशुतुल्य लोगोंके लिए अत्यन्त दुष्कर है, ऐसा भगवान्का देहत्याग भी सुना। उसके

योपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥ ३३ ॥ देहन्यासं च तस्यैवं धीराणां धैर्यवर्धनम् ॥ अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥ ३४ ॥
आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ॥ ध्यायन्गते भगवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥ ३५ ॥ कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ॥
प्रापद्यत स्वःसरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥ ३६ ॥ इति श्री० म० तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रवणसे धीरोंका धैर्य बढ़ता है ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, इस मृत्युलोकको छोड़ते समय श्रीकृष्णने मेरा अपने मनसे स्मरण किया था, यह सोचकर वह विदुरजी उद्धवके वहाँसे चले जानेके बाद प्रेम विह्वल होकर रोने लगे ॥ ३५ ॥ वह भरतश्रेष्ठ सिद्ध विदुरजी यमुनासे कुछही दिनोंमें गंगा के तटपर आगये जहाँ मित्रा पुत्र मुनि रहते थे ॥ ३६ ॥

चौथे अध्यायका सार—उद्धवजीने कहा—हे विदुरजी, ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर यादवोंने भोजनके बाद वारुणीका यथेच्छ पान किया। उससे उनका ज्ञान नष्ट हो गया और वे परस्पर मर्मभेदी वाक्य बोलने लगे। संध्याके समय उनमें संघर्ष आरंभ हो गया। भगवान्ने अपनी मायाका जब यह परिणाम देखा, तब सरस्वतीके तीर से कुछ दूर जाकर उसीके जलसे हस्तपाद प्रक्षालन करके एक छोटेसे पीपलके पेड़के नीचे बैठ गये। मुझे उन्होंने पहलेही बदरी चले जानेके लिए कहा था। लेकिन उनके चरणारविंदका वियोग न सह सकनेके कारण मैं उनके पीछे उनको ढूँढ़ते हुए गया। तब मैंने पीपलके नीचे बैठे हुए उन्हें देखा। वहाँ उस समय दैववशात् मैत्रेयमुनि भी आ गये थे। भगवान्ने मुनिसे कहा—तुम क्या चाहते हो, मैं जानता हूँ। तुम भाग्यवान् हो, क्योंकि इस अन्तिमसमयमें तुमने एकान्तमें मेरी भेंटकी और एकान्तभक्तिसे मेरा अनुग्रह सम्पादन किया। इसतरह प्यारकर जब मुझे भगवान्ने कहा, तब मैं प्रेमसे पुलकित हो गया। किसी तरह लड़खड़ाते बोला—भगवन्, जो आपके चरणोंका आश्रय करता है वह चारों पुरुषार्थ चाहे जो पा सकता है। लेकिन आपके चरणकी सेवाके सिवा मैं कुछ नहीं चाहता।' तब मुझे भगवान्ने आत्मतत्त्वज्ञान बताया। तब उनकी प्रदक्षिणा और नमस्कार कर मैं विरहातुर होकर यहाँ आया। अब मैं उनके प्रियस्थान बदरी को जाऊँगा, जहाँ उन्हींके अवतार नर-नारायण तपश्चर्या कर रहे हैं—उद्धवसे ज्ञातियोंका बध सुनकर विदुरजीके हृदयमें शोक उमड़ आया, लेकिन उन्होंने अपने ज्ञानसे ही उसको शान्त किया। फिर परम भागवत उद्धवसे कहा—भगवान्ने जो आपको तत्त्वज्ञान कहा, वह मुझे भी कहिये। उद्धवने कहा—आपको उसका उपदेश देनेके लिए भगवान्ने मैत्रेयको बताया है वे यहाँ पासही में रहते हैं। अन्तमें भगवान्ने मेरा भी स्मरण किया था, यह जानकर विदुरजी प्रेम विह्वल होकर रोने लगे। फिर वह यमुनासे भागीरथी के किनारे गये, जहाँ मैत्रेयमुनि रहते थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❋

[विदुरका मैत्रेयसे प्रश्न और उनका सृष्टिक्रम वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—गंगानदीके द्वार हरिद्वारमें सुखसे बैठे अगाधज्ञानवाले भगवान् मैत्रेयमुनिके पास जाकर, सौशील्य-आर्जवादि गुणोंसे तृप्त, भगवान्के प्रेमसे शुद्ध विदुर जीने पूछा ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा—लोग सुखके लिये सब कर्म करते हैं, लेकिन उनसे सुख या दुःख निवृत्ति नहीं पाते, किन्तु फिर दुःख ही दुख पाते हैं। अतः इस संसारमें क्या करना योग्य है, यह आप बताइए ॥ २ ॥ दुर्दैवसे जो कृष्ण विमुख हैं, अधर्मशील हैं, दुखित हैं ऐसे लोगोंपर अनुग्रहके लिये ही जनार्दन भगवान्के मंगलमय भक्त इस संसारमें घूमते हैं ॥ ३ ॥ इसलिए हे भगवन्, हमें ऐसे कल्याणकर मार्गका उपदेश दीजिये, जिससे हृदयमें रहने वाले परमात्मा भक्तिपूत मनुष्यको आत्माके अपरोक्षज्ञान सहित ज्ञान देते हैं

श्रीशुक उवाच ॥ द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् । क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा ॥ विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ॥२॥ जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ॥ अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥३॥ तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः संराधितो भगवान्येन पुंसाम् ॥ हृदिस्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥ करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥ ५ ॥ यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ॥ योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथासीत् ॥ ६ ॥ क्रीडन्विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ॥ मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥ ७ ॥ यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान् सहलोकपालान् ॥ अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥ ८ ॥ येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ॥ नारायणो विश्वसृडात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय

जिससे अनादि वेदही प्रमाण हैं ॥ ४ ॥ तीनों लोकके स्वामी स्वतन्त्र भगवान् अवतार लेकर कौन-से कार्य करते हैं। इस विश्वको पहले कैसा उत्पन्न किया तथा उस निरीह भगवान्ने इसको सुस्थित करके इसकी जीविका कैसे चलाते हैं ॥ ५ ॥ फिरसे अपने हृदयाकाशमें इसको लीनकर स्तब्ध होकर योगमाया में कैसे सोते हैं! योगेश्वरोंके भी स्वामी वह अद्वितीय भगवान् इसमें प्रवेशकर किस तरह ब्रह्मादिरूपसे अनेक होते हैं? ॥ ६ ॥ वह ब्राह्मण, गौ और देवताओंके कल्याणकेलिये नानाविध अवतार धारणकर क्रीडा करते हुये कर्म करते हैं। पुण्यमयकीर्ति शालियों में श्रेष्ठ भगवान्के चरितामृतका बार-बार पान करनेपर भी मन तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ किन भिन्न-भिन्न तत्त्वोंसे त्रिलोकीनाथने लोकालोकपर्वतके बहिर्भाव तथा लोकपालोंके सहित अन्दर अनेक लोकोंकी रचना की, जिन लोकोंमें सब तरहके प्राणियोंके भिन्न भिन्न समूहोंमें उनके कर्मोंके अधिकारी भगवान् प्रतीत होते हैं ॥ ८ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विश्वकी सृष्टि करनेवाले आत्मयोगि नारायणने किसतरह प्रजाओंके स्वभाव, उसके कार्यकर्म उसके कार्यरूप, उसके कार्य नाम तथा उनके भेदोंकी सृष्टि की। हे विप्रवर्य, यह मुझे आप वतलाइये ॥ ९ ॥ मैंने त्रैवर्णिकों तथा शूद्रोंके व्रत व्यासके मुखसे बार-बार सुने हैं। उनके श्रवणसे हम तृप्त हैं। वे कृष्ण कथामृतौघके सिवा क्षुद्रसुखोंके कारणीभूत हैं ॥ १० ॥ जिनके पादतीर्थके समान पुण्यमय हैं, सत्रोंमें नारद आदि विद्वान् लोग जिनकी स्तुति करते हैं आपके द्वारा वर्णन किये जा रहे उन श्रीकृष्ण भगवान्के कथामृतौघसे भला कौन तृप्त हो सकता है, जो पुरुषकी कर्णनाडीमें प्रवेश करते ही संसार देनेवाले घरके प्रेमको तोड़ देता है ॥ ११ ॥ भगवद्गुणोंका वर्णन करनेके लिए ही आपके मित्र कृष्णद्वैपायनमुनिने महाभारत कहा, जिसमें ग्राम्यसुखोंके वर्णन द्वारा मनुष्योंकी बुद्धि भगवान्की कथामें लगाई जाती है ॥ १२ ॥ वह हरिकथा श्रद्धावान् मनुष्यको ग्राम्यसुखोंमें विरक्ति उत्पन्न करती

विप्रवर्य ॥ ९ ॥ पाराःवरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ॥ अतृप्नुम क्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥ १० ॥
कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥ ११ ॥ मुनिर्विवक्षुर्भगव
द्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्णः ॥ यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥ सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्ति-
मन्यत्र करोति पुंसः ॥ हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥ १३ ॥ तान् शोच्यशोच्यानविदो नु शोचे हरेः कथायां विमु-
खानघेन॥ क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषामायुर्वृथावादगतिस्मृतीनाम् ॥१४॥ तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ॥ उद्धृत्य पुष्पेभ्य
इवार्तबन्धो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥ स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ॥ चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः
कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवं भगवान्पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः ॥ पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥१७॥ मैत्रेय
उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता ॥ कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥ नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायण-

है। और भगवान्के चरणसरोजकी स्मृतिसे कृतकृत्य हुए भक्तके समस्त दुःखोंका अन्त करती है ॥ १३ ॥ पापके कारण महाभारतका तात्पर्य न समझकर भगवत्कथामें जो विमुख होते हैं उन अत्यन्त शोचनीय लोगोंके लिए मुझे शोक है। ऐसे लोगोंकी वाणी, देह और मनके व्यापार व्यर्थ हैं। उनके आयुष्यको कालदेव क्षीण करता है ॥ १४ ॥ अतः हे मैत्रेयजी, पुण्यमय जिसकी कीर्ति है ऐसे शान्तिदाता भगवान्की ही कथा सभी कथाओंमें सार है। हे आर्तबन्धो, पुष्पोंसे मकरन्दके समान उसे निकालकर हमलोगोंके कल्याणके लिए आप कहिये ॥ १५ ॥ जिस ईश्वरने विश्वकी सृष्टि, स्थिति और लयके लिए पहले माया शक्तिका ग्रहण किया, उसीने पुरुषोंमें अवतार लेकर जो पुरुष सामर्थ्यके वाहर कर्म किये उन्हें हमें वतलाइये ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इस तरह विदुरजीके भगवान् मैत्रेयजीसे पूछने पर लोगोंके मोक्षके लिए विदुरजीकी प्रशंसा करते हुए मैत्रेयजीने कहना आरम्भ किया ॥ १७ ॥ मैत्रेयजीने कहा–हे साधो, आपने यह वहुत अच्छा प्रश्न किया, इससे आपने लोगोंपर बड़ाही अनुग्रह किया आपका मन भगवान्में लगा हुआ है। इस-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिए आप अपनी कीर्ति भी बढ़ायेंगे ॥ १८ ॥ आपने जो अनन्यभावसे परमेश्वर विष्णु भगवान्‌को ग्रहण किया है, वह बादरायणसे उत्पन्न आपके लिए आश्चर्यकर नहीं है ॥ १९ ॥ आप माण्डव्य-ऋषिके शापके कारण साक्षात् प्रजाके नियामक भगवान् यम ही सत्यवती पुत्र व्याससे उनके भाई क्षेत्र दासीमें उत्पन्न हैं ॥ २० ॥ अपने अनुयायियोंके साथ भगवान्‌को आप प्रिय हैं, इसलिए भगवान्‌ने जाते समय मुझे आपको ज्ञानोपदेश करनेके लिए आदेश दिया है ॥ २१ ॥ अब मैं आपसे योगमायासे उपबृंहित विश्वकी सृष्टि, स्थिति, पालन आदि जिसमें विषय हैं ऐसी भगवान्‌की लीलाका क्रमसे वर्णन करता हूँ ॥ २२ ॥ इस विश्वकी सृष्टिके पूर्व जब भगवदिच्छारूपी मायाका लय होगया था, तब सभी आत्माओंका स्वरूप और स्वामी भगवान् एक ही था। दृष्ट-दृश्यात्मक नाना बुद्धिसे वह लक्षित नहीं होता था ॥ २३ ॥ अथवा उस समय वह द्रष्टा मात्र था, उस एकराट्‌ने कुछ भी दृश्य

वीर्यजे ॥ गृहतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥१९॥ माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः । भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवती-सुतात् ॥ २० ॥ भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च ॥ यस्य ज्ञानोपदेशाय मादिशद्भगवान्व्रजन् ॥ २१ ॥ अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः । विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ भगवानेक आसेदमग्र आत्मात्मनां विभुः ॥ आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥ २३ ॥ स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ॥ मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥ सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ॥ माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥ २५ ॥ कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ॥ पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥२६॥ ततो भवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ॥ विज्ञानात्मात्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥२७॥ सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ॥ आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥२८॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ॥ कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥ २९ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत ॥ वैकारिकाश्च ये देवा

नहीं देखा। उसकी दृष्टि सुप्त नहीं थी, लेकिन शक्ति सुप्त थी उस समय वह अपनेको नहींके समान समझ रहा था ॥ २४ ॥ महाभाग, इस द्रष्टाकी वह शक्ति सदसदात्मक है जिस शक्तिसे उस विभुने इस प्रपञ्चकी सृष्टि की उसी शक्तिका नाम माया है ॥ २५ ॥ कालशक्तिसे क्षुभित गुणवाली मायामें वीर्यवान् परमात्माने अपने अंशभूत पुरुषरूपसे (प्रकृतिके अधिष्ठातारूपसे) वीर्य (चिदाभासरूप) धारण किया ॥ २६ ॥ उस कालप्रेरित मायारूपी १ अव्यक्तसे तब महत्तत्वका निर्माण हुआ। विज्ञानात्मा वह सत्त्वप्रधान होनेके कारण अपनेमें अन्तर्हित विश्वके प्रकाशनमें समर्थ था और अन्धकारका नाशक था ॥ २७ ॥ चिदाभास, गुण और कालके अधीन उस विज्ञानात्माने भी सर्वस्वामी भगवान्‌के दृष्टिगोचर होकर विश्वकी सृष्टिके लिए अपनेको रूपान्तरमें परिणत कर ॥ २८ ॥ उस विकार महतत्त्वसे कार्य-कारण-कर्तृरूप अहंतत्त्व उत्पन्न हुआ, जो भूत, इन्द्रिय तथा मनोमय है ॥ २९ ॥

१ देखिये सात्वततन्त्र—विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यानथो विदुः। प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्। तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

वह वैकारिक, तैजस और तामस—ऐसा तीन प्रकारका था। उसमें वैकारिकाहंकारसे मन हुआ तथा जिनसे अर्थोंका प्रकाशन होता है ऐसे इन्द्रियाभिमानी देवताका निर्माण हुआ ॥ ३० ॥ तैजसाहंकारसे ज्ञान-कर्मेन्द्रिय हुए। तामस, जो भूतसूक्ष्म शब्दका कारण है, उससे अपने गुणसे प्रकाशक आकाश उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ काल-माया-अंशके योगसे भगवद्दृष्टिपतित आकाशने अपनेसे अनुसृत स्पर्श तन्मत्त रूपान्तर लेकर वायुका निर्माण किया ॥ ३२ ॥ आकाशके साथ मिलकर स्वयं अत्यन्त बलवान् वायुके रूपतन्मात्रा और उससे लोगोंके नेत्र तेजकी सृष्टि की ॥ ३३ ॥ वायुके साथ तेजने भी कालमायांशयोगसे भगवद्दृष्टिगोचर होकर रस और जलकी सृष्टि की ॥ ३४ ॥ उसी तरह ज्योतिके साथ जलने ब्रह्म-दृष्ट होकर गन्धगुणयुक्त पृथ्वी उत्पन्न की ॥ ३५ ॥ हे विदुरजी, आकाश आदिभूतोंमें जो-जो बादके कार्य हैं, उनमें कारणोंके मिले रहनेसे उत्तरोत्तर अधिक गुण रहते हैं। जैसे

अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥ ३० ॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥ तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥ ३१ ॥ कालमायांश-योगेन भगवद्वीक्षितं नभः ॥ नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३२ ॥ अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ॥ ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३३ ॥ अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् ॥ आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥ ३४ ॥ ज्योतिषाम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् ॥ महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥ ३५ ॥ भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्याव-रावरम् ॥ तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान्विदुः ॥ ३६ ॥ एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ॥ नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ॥ यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरुसंसारदुःखं बहिरु-त्क्षिपन्ति ॥३८॥ धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ॥ आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥ मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छन्दःसुपर्णैरृषयो विविक्ते ॥ यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ४० ॥ यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च

पृथ्वीमें शब्दादि पाँचो, जलमें गन्धातिरिक्त चार इत्यादि ॥ ३६ ॥ विकार-विक्षेप-चेतनायुक्त, विष्णुके अंशभूत महत्तत्वाद्यभिमानी ये देवता अनेक और परस्परमें सम्बन्ध न रखने के कारण ब्रह्माण्डरचनामें असमर्थ थे। अतः उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति करना आरम्भ किया ॥ ३७ ॥ देवताओंने कहा—हे भगवन्, शरणागतोंके पापके उपशमके लिए छत्रस्वरूप आपके पादारविंदको हमलोग प्रणाम करते हैं, जिस पादारविंदका आश्रयण कर संन्यासी लोग अनायासही संसार दुःखको दूर फेंक देते हैं ॥ ३८ ॥ हे पितः, हे भगवन्! चूँकि इस संसारमें जीव त्रिविधतापोंसे पीडित रहते हैं, वे अपनेमें सुखको नहीं प्राप्त करते। इसलिए ज्ञान देनेवाली आपके पादारविन्दकी छायाका हम आश्रयण करते हैं ॥ ३९ ॥ ऋषिलोग आपके मुखकमलमें जिन्हें घोसला बनाया है ऐसे वेदरूपी पक्षियोंसे उन्हीं चरणोंको ढूँढ़ते हैं, क्योंकि वे ही उनका घोसला होनेके कारण वहाँ पहुँचा सकते हैं। पापनाशक जिसका पानी है ऐसे नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाका वह उद्गम स्थान है ऐसे आपके पदसरोजकी हम शरणमें पड़े हैं ॥ ४० ॥ श्रद्धासे और श्रवणपूर्वभक्तिसे शुद्ध हो रहे

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्तःकरणमें जिसका ध्यान करनेसे लोग ज्ञान और वैराग्यके बलसे धीर बनते हैं, उस आपके पादपद्मकी हम शरणमें जाते हैं ॥ ४१ ॥ विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिए अवतार लेनेवाले आपके पादपद्मकी हम सब शरण जाते हैं, जिसका स्मरण करनेसे वह अपने भक्त लोगोंको अभय देता है ॥ ४२ ॥ भगवन्, उपकरणोंके साथ तुच्छ देहरूपीघरमें 'मैं और मेरा' यह दुराग्रह जिनके मनमें रूढ़ है, उन पुरुषोंके लिये जो हृदयमें रहने पर भी दूर है ऐसे आपके चरणारविन्दका हम आश्रयण करते हैं ॥ ४३ ॥ बहिर्मुख इन्द्रियोंके द्वारा जिनका मन दूर चला गया है वे आपके पादन्यासके विलासकी चर्चाओंसे सुशोभित सज्जनोंको नहीं देख सकते ॥ ४४ ॥ हे देव, तुम्हारी कथारूपी अमृतसे जिनकी भक्ति बढ़ गई और अन्तःकरण शुद्ध हो गया वे लोग वैराग्य जिसका बल है ऐसे ज्ञानका लाभकर अन्तमें सरलतासे वैकुण्ठको जाते हैं ॥ ४५ ॥ उसी तरह दूसरे जो लोग आत्मामें

भक्त्या संसृज्यमाने हृदयेऽवधाय ॥ ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥ ४१ ॥ विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ॥ व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥ ४२ ॥ यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ॥ पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ॥ ४३ ॥ तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ॥ अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥४४॥ पानेन ते देव कथा सुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ॥ वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ ४५ ॥ तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥ ४६ ॥ तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ॥ सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥ ४७ ॥ यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ॥ यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥ ४८ ॥ त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ॥ त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥ ४९ ॥ ततो वयं

समाधि लगानेके बलसे प्रकृतिका जयकर तुममें लीन होते हैं उन धीर लोगोंको बहुत श्रम होता है, लेकिन तुम्हारी सेवासे श्रम नहीं होता ॥ ४६ ॥ तुमने लोकके सृष्टिकी इच्छासे हमलोगोंकी सृष्टि की किन्तु हमलोग सत्त्वादिगुणयुक्त विरुद्ध स्वभाववाले होनेके कारण तुम्हारे क्रीड़ाका उपकरण ऐसा ब्रह्माण्ड मृत्युपहारके रूपमें नहीं देसकते ॥ ४७ ॥ जिस तरह योग्य समयपर आपको हम भोग दे सके तथा हमलोग भी अन्नका भक्षण कर सके एवं ये जीवलोग भी देवताओंको बलि देकर वहाँ रहकर स्वयं भी अन्न भक्षण कर सके ऐसे लोकों के निर्माणका सामर्थ्य हमको दो ॥ ४८ ॥ तुमही हम देवताओंके वंशका आदि पुराण हो तुम कूटस्थ हो अनादि हो। तुमने ही सत्त्वादि गुण तथा जन्मादि कर्मोंके कारणीभूतसे मायामें प्रथम महत्तत्त्वरूपी बीजका स्थापन किया ॥ ४९ ॥ अतः हे भगवन्, महदाद्यभिमानी हमलोग जिसके लिए उत्पन्न हुए हैं वह कौन सा कार्य जो हम करें। तुम्हारे हो आग्रह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम् किं ते ॥ त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हमलोग वह कार्य कर सकते हैं अतः तुम वह कार्य करनेके लिए हमको अपना ज्ञान तथा शक्ति दो ॥ ५० ॥

पाँचवें अध्यायका सार—विदुरजी भागीरथीके किनारे हरिद्वारमें जाकर मैत्रेयजीसे पूछा। इस संसारमें सभी सुखके लिए प्रयत्न करते हैं लेकिन सुख तो पाते ही नहीं, उलटा दुःख ही पाते हैं। अतः संसारमें क्या करना चाहिए? अधर्मनिरत भगवद्विमुख लोगोंके कल्याणके लिए ही भगवान् भक्त संसारमें घुमा करते हैं। इसलिये आप मुझे वह मार्ग बतलाइये जिससे मुझे ज्ञान हो। भगवान् इस विश्वको कैसे उत्पन्न करते हैं? कैसे चलाते हैं? कैसे इसका संहार करते हैं? वह एक अद्वितीय भगवान् किस तरह इसमें प्रवेशकर अनेक सा हो जाते हैं? यह सब मुझसे कहिये। श्रीशुकदेवजीने कहा—विदुरजीके ऐसा पूछपने पर आनन्दित होकर भगवान् मैत्रेयजीने कहा—आपका मन भगवान्में लगा है। आपने अच्छा प्रश्न किया, इससे लोगोंका उपकार होगा। आप श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रिय हैं। अतः अन्तिम समयमें मुझे उन्होंने आपको ज्ञानोपदेश करनेके लिए आदेश दिया है। मैं वर्णन करता हूँ, आप सुनिये। जब सृष्टिके पूर्व भगवदिच्छारूपी माया का लय हो गया था, भगवान्ने द्रष्टा और दृश्य ऐसे भिन्न रूप नहीं लिए थे। उस समय भगवान्की शक्ति लुप्त थी, अतः भगवान् अपनेको नहींके समान समझते थे। उन्होंने अपनी सदसदात्मकशक्तिजागृत करके उससे प्रपंचकी सृष्टिकी। उसी शक्तिको माया कहते हैं। कालशक्तिसे क्षुभित उस मायामें भगवान्ने चिदाभासरूपी अपना वीर्य दे सत्त्वप्रधान महत्तत्त्वका निर्माण किया। वह अपनेमें अन्तर्हित विश्वके प्रकाशनमें समर्थ था। वह महत्तत्व भगवान्के दृष्टिगोचर होकर विकृत हो गया उससे अहंतत्त्व हुआ। वह वैकारिक-तैजस-तामस तीन प्रकारका, वैकारिकसे इन्द्रियाभिमानी देवता और मन उत्पन्न हुआ। तैजससे दशेन्द्रिय निकले। तामससे शब्द तथा आकाश निकले। भगवद्दृष्टिपतित आकाशमें स्पर्शका प्रादुर्भाव होनेसे वायु उत्पन्न हुआ, आकाशके साथ वायुमें रूपका आविर्भाव होकर तेज उत्पन्न हुआ। वायुयुक्त तेजमें रसाविर्भावसे जलकी सृष्टि हुई। तेजोयुक्त जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। जो जो तत्त्व बादमें उत्पन्न हुआ, उसमें पूर्व-पूर्वके गुण रहते हैं। विष्णुके अंश भूतदेव, जो महत्तत्त्वादिके अभिमानी थे, अपनेको सृष्टिमें असमर्थ पाकर भगवान्की स्तुति करने लगे। देवता कहने लगे—आपका चरणारविन्द छत्रके समान लोगोंके तापका हारक है, उसका आश्रयकर यति लोग संसार दुःखसे मुक्त होते हैं। ऐसे आपके पादारविन्दको हम प्रणाम करते हैं। ऋषि लोग वेदसे तुम्हारे पदका अन्वेषण करते हैं। पापनाशनियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा आपके पदसे निकली हैं। ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं। भगवन्, लोकोंके निर्माणके लिए हमें सामर्थ दीजिये। आपही देवताओंके आदि पुरुष हैं। आपके ही प्रथम मायामें महत्तत्त्वरूपी बीज स्थापन किया, जिससे आगे हमलोगोंकी उत्पत्ति हुई। हम कौनसा कार्य करें? उसके करनेके लिए हमें आप अपना ज्ञान और शक्ति दीजिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

[विराजकी उत्पत्ति और उसके आगे सृष्टि]

मैत्रेयजीने कहा—इस तरह अपनी शक्तियाँ जो असंगठित और जिन लोकरचना करनेकी शक्ति सुप्त थी उनकी अवस्था सुनकर कालनामक संज्ञा धारणकर प्रकृतिके साथ उन तेईस तत्त्वोंमें प्रवेश किया ॥१,२॥ इस तरह भगवान्‌ने क्रियाशक्तिरूपसे उन तत्त्वोंमें प्रवेशकर उन सुप्त क्रियाको उद्‌बुद्ध करते हुए असंगठित उनको एकत्रित किया ॥ ३ ॥ जिनकी क्रिया प्रबुद्ध हो गई ऐसे तत्त्वोंने दैवसे प्रेरित होकर अपने अंशोंसे विराट् देशकी सृष्टि की ॥ ४ ॥ जब ईश्वरने इन तत्त्वोंमें प्रवेश किया तब वे एक एकत्रित आकर परस्पर सम्बन्धके कारण क्षुब्ध हुए उसीसे वह विराट् देह उत्पन्न हुआ उसीमें चराचर लोक अधिष्ठित है ॥ ५ ॥ वही विराट् पुरुष जो हिरण्मय था वह हजार वर्ष ब्रह्माण्डकोष जलमें था, उसमें

ऋषिरुवाच ॥ इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ॥ प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥ १ ॥ कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ॥ त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥ २ ॥ सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् ॥ भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥ ३ ॥ प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः ॥ प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥ ४ ॥ परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृड्गणः ॥ चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥ ५ ॥ हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ आण्डकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ६ ॥ स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् ॥ विबभाजात्मनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥ ७ ॥ एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ॥ आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥ ८ ॥ साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ॥ विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥ ९ ॥ स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ॥ विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥ १०॥ अथ

सभी जीवोंके साथ रहा ॥ ६ ॥ वह विश्वोत्पादक तत्त्वोंका गर्भ-कार्य था उसने अपनेको तीन शक्तियोंके कारण एक, दस, और तीन प्रकारसे विभक्त किया। उसमें ज्ञानशक्तिसे विभक्त किया। उसमें ज्ञानशक्तिसे हृदयावच्छिन्न चैतन्य, क्रियाशक्तिसे दस प्रकारका प्राण (प्राणापानादि पाँच और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये प्रकार मिलकर दस) और भोक्तृशक्ति अध्यात्म, आधिदैविक और आधिभौतिक इस तरह तीन प्रकारका हुआ ॥ ७ ॥ यह सब प्राणियोंका आत्मा परमात्माका अंशभूत जीव पहला अवतार है, जिसपर ये सभी शरीर अवलम्बित दीखते हैं ॥ ८ ॥ विराट् पुरुष साधिदैव साध्यात्म तथा साधिभौतिक ऐसा तीन प्रकारका, प्राणरूपी दस प्रकारका तथा हृदयावच्छिन्न चैतन्यरूपी एक प्रकारका था ॥ ९ ॥ विश्वसृष्टि करनेवालोंके स्वामी ईश्वरने देवताओंके विज्ञापनका खयालकर इस महदादिकोंकी विविध वृत्ति साथके लिए विराट्को अपने तेजसे ऐसा बनाऊँगा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह सोचा ॥ १० ॥ इस तरह विचारके बाद ईश्वरके दृष्टिगोचरीभूत विराट् पुरुषसे तत्तत् देवता सम्बन्धी कौन-कौनसे अवयव निकले, मैं बतलाता हूँ, सुनिये ॥ ११ ॥ पहले मुख बाहर हुआ, उस अपने स्थानमें लोकपाल अग्निने अपने शक्तिवाणीके साथ प्रवेश किया, जिससे जीव बोलनेका अनुभव करता है ॥ १२ ॥ उस विराट्से तालु बाहर निकला, उससे लोकपाल वरुणने अपनी शक्ति जिह्वाके साथ प्रवेश किया, जिसके द्वारा जीव रसानुभव करता है ॥ १३ ॥ फिर उस विष्णुसे नाक निकले, उनमें अश्विनीकुमारोंने अपनी सूँघनेकी शक्तिके साथ प्रवेश किया, जिससे गन्धकी प्रतिपत्ति होती है—जीव सूँघता है ॥ १४ ॥ फिर विभुसे आँखें निकलीं, उनमें लोकपाल आदित्यने प्रवेश किया, जिसकी शक्ति चक्षुरिन्द्रिय के कारण रूपोंका ज्ञान होता है ॥ १५ ॥ निकले हुए इसके चर्ममें लोकपाल वायुने अपनी शक्ति त्वगिन्द्रियके साथ प्रवेश किया, जिससे स्पर्शानुभव होता है ॥ १६ ॥ अपने स्थान

तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह ॥ निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥ ११ ॥ तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम् ॥ वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ॥ जिह्वयांऽशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १३ ॥ निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम् ॥ घ्राणेनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १४ ॥ निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालो विशद्विभोः ॥ चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१५॥ निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालो निलोऽविशत् ॥ प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥ कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ॥ श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥ १७ ॥ त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः ॥ अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥ मेढ्ं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ॥ रेतसांऽशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥ गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् ॥ पायुनांऽशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥ २० ॥ हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वर्पतिराविशत् ॥ वार्तयांऽशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥ पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो

भूत निकले हुए कानोंमें दिग्देवताओंने अपनी शक्ति श्रोत्रके साथ प्रवेश किया, जिससे शब्दज्ञान होता है ॥ १७ ॥ इसके चर्मोंमें ही औषधियोंने अपनी शक्ति रोगोंके साथ प्रवेश किया, जिनसे कण्डूका अनुभव होता है ॥ १८ ॥ उसके निकले हुए अपने स्थानभूत गुह्येन्द्रियमें अपने अंशरेतस्के साथ प्रजापतिने प्रवेश किया, जिससे आनन्दका अनुभव होता है ॥ १९ ॥ निकले हुए उसके गुदमें पायुरूप शक्तिके साथ लोकेश मित्रने प्रवेश किया, जिससे जीव विसर्ग करता है ॥ २० ॥ इसके निकले हुए हाथोंमें स्वर्गके स्वामी इन्द्रने आदान प्रदान शक्तिके साथ प्रवेश किया, जिससे यह जीव जीविका करता है ॥ २१ ॥ निकले हुए पादोंमें विष्णुने प्रवेश किया, जिसकी शक्तिगतिसे पुरुष गन्तव्य स्थानको जाता है ॥ २२ ॥ अपने आश्रय बुद्धिमें ज्ञानके साथ ब्रह्माने प्रवेश किया, जिससे ज्ञातव्यका ज्ञान होता है ॥ २३ ॥* इसके निकले अपने स्थान हृदयमें चन्द्रमाने मनके साथ प्रवेश किया, जिससे जीव

* यह श्लोक श्रीधरस्वामि सम्मत नहीं है। क्योंकि २६ श्लोकसे यह गतार्थ है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विकारको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ निर्मित अहंकारमें रुद्रने अहंवृत्तिके साथ प्रवेश किया, जिससे जीवकी क्रिया होती है ॥ २५ ॥ बुद्धिमें चित्तके साथ ब्रह्माने प्रवेश किया, जिससे अनुसंधान होता है ॥ २६ ॥ विराट् पुरुषके मस्तकसे द्युलोक, पैरसे पृथ्वी और नाभिसे अन्तरिक्षलोक उत्पन्न हुए, जहाँपर देव, मनुष्य आदि गुणवृत्तियाँ देखी जाती हैं ॥ २७ ॥ सत्वाधिक्यके कारण देवताओंने द्युलोक पाया, रजोगुणके आधिक्यके कारण मनुष्योंने तथा उनके उपकरणभूत गौ आदिने भी भूलोककी प्राप्ति की ॥ २८ ॥ रुद्रके जो पार्षदभूत, प्रेत आदि हैं, उन्होंने तामसी स्वभावके होनेके कारण दोनोंके बीचका भगवान्‌की नाभिरूप अन्तरिक्षलोक पाया ॥ २९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, विराट् पुरुषके मुखसे वेद निकला। मुखसे ही ब्राह्मणभी उत्पन्न हुए, इसीलिए वे वर्णोंमें श्रेष्ठ और गुरु माने गये ॥ ३० ॥ पालनरूपी वृत्ति और उसके अनुसारी क्षत्रिय बाहुसे निकले, विष्णुके अंशरूपसे उत्पन्न हुए जो बाकी

विष्णुराविशत् ॥ गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥ (बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् ॥ बोधेनांशेन बोद्धव्यं प्रतिपत्तिर्यतो भवेत्) ॥२३॥ हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशित् ॥ मनशांऽशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥ २४ ॥ आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ॥ कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥ २५ ॥ सत्त्वं सस्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यमुपाविशत् ॥ चित्तेनांशेन येनाशौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥ शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ॥ गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥ आत्यन्तिकेन सत्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ॥ धरां रजःस्वभावेन पणयो ये चताननु ॥२८॥ तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ॥ उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥ २९ ॥ मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह ॥ यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद् ब्राह्मणो गुरुः ॥३०॥ बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियतदनुव्रतः ॥ यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥ ३१ ॥ विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ॥ वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥ ३२ ॥ पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये ॥ तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥ एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम् ॥ श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सहवृत्तिभिः ॥ ३४ ॥ एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्म-रूपिणः ॥ कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥ अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् ॥ कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरकन्याभि

वर्णोंकी चोरादिके द्वारा हुए उपद्रवोंसे रक्षा करते हैं ॥ ३१, ३२ ॥ भगवान् विराट् पुरुषके पादसे कर्मसिद्धिके लिए शुश्रूषा निकली। उसीके लिए पहले वहींसे शूद्र भी निकले, जिनकी वृत्तिसे परमेश्वर स्वयं तुष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥ ये सब वर्ण अपने साथ उत्पन्न वृत्तियोंसे जीवित रहकर आत्मशुद्धिके लिए श्रद्धासे अपने गुरु हरिका पूजन अपने वर्णधर्मसे करते हैं ॥ ३४ ॥ हे विदुरजी, यह सब काल-कर्म-स्वभाव शक्तिवाले भगवान्‌की विश्वोत्पादकशक्तिके बलसे उत्पन्न है, इससे सबको भलीभाँति निरूपण करनेकी कौन इच्छा करेगा ॥ ३५ ॥ हे विदुरजी, फिर भी मैंने जैसा सुना है वैसा ही भगवान्‌की कीर्तिका अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन, अन्य आलापोंसे अशुद्ध हुई वाणीकी शुद्धिके लिए, करता हूँ ॥ ३६ ॥ मनुष्यों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

की अपनी वाणीसे कीर्तिमानोंमें अग्रणी भगवान्‌का गुण वर्णन करनेसे निश्चितरूपसे महान् लाभ होता है। विद्वानों द्वारा कही गयी भगवान्‌के कथामृत पान करना भी कानके लिए महान् लाभ कहा जाता है ॥ ३७ ॥ हे वत्स, योगसे परिपक्व बुद्धि द्वारा ब्रह्माने भी, क्या हजारों वर्षोंमें भी भगवान्‌की महिमा जान पायी है ? ॥ ३८ ॥ इसलिए मायावी

धाऽसतीम् ॥ ३६ ॥ एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ॥ श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥ ३७ ॥
आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ॥ संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्वया ॥ ३८ ॥ अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहनी ॥
यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ॥ ३९ ॥ यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह ॥ अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥४०॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

लोगोंको भी मोहमें मल देनेवाली भगवान्‌की माया है। स्वयं भगवान्‌की अपनी मायाकी गति कितनी है, यह नहीं जानते, फिर दूसरोंकी बात ही क्या ॥ ३९ ॥ जहाँपर वाणी मन के साथ जाकर उसको न पा सकनेके कारण लौट आती है, वही मेरी और अन्य देवताओंकी अवस्था है, ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ४० ॥

छठें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा–जब अपने निर्मित तत्त्वोंकी भगवान्‌ने अवस्था देखी, तो उन तेइस–तत्त्वोंमें कालरूपसे प्रकृतिने प्रवेश किया। ऐसे क्रिया शक्तिरूप से प्रवेशने उनकी क्रियाको उद्बुद्ध किया। और उनको एकत्रित किया। ऐसे इन तत्वोंमें परस्पर सम्बन्धके कारण लोभ उत्पन्न हो गया, तब उनके अंशसे विराट् पुरुषकी देह उत्पन्न हुई। उसीमें चराचर विश्व अधिष्ठित है। उस विराट् पुरुषने जलमें स्थित ब्रह्माण्डकोषमें जीवोंके साथ प्रवेश किया और उसीमें हजारवर्षों तक रहा। फिर वह अपनी ज्ञानशक्तिसे हृदयावच्छिन्न चैतन्य, क्रियाशक्तिसे दशविधप्राण, और भोक्तृशक्तिसे, आध्यात्मादि तीन प्रकार का हो गया। प्राणियोंका आ आत्मा परमात्माका अंश यह जीव पहला अवतार है, जिसके ये सब भौतिक शरीर हैं। फिर उस विराट् पुरुषको भगवानने देवताओंकी प्रार्थना का ख्याल रखकर कुछ करनेको सोचा। फिर भगवद् दृष्टिगोचरीभूत विराट्के अवयव बाहर होने लगे। पहले मुख बाहर हुआ उसमें अग्निने वाणीके साथ प्रवेश किया, जिससे लोग बोलते हैं। इसी तरह तालुमें वरुणने, नाकमें अश्विनीकुमारोंने, आँखमें सूर्यने, चर्ममें वायु और औषधिने, कानोंमें दिग्देवताओंने, गुह्यमें प्रजापतियोंने, गुदमें मित्रने, हाथोंमें इन्द्रने, पादोंमें विष्णुने, हृदयमें चन्द्रमाने, अहङ्कारमें रुद्रने, बुद्धिमें ब्रह्माने अपने-अपने शक्तियोंके साथ प्रवेश किया। उस पुरुषके शिरसे द्युलोक, पादसे भूलोक और नाभिसे अन्तरिक्ष निकले। सत्वप्रधान होनेके कारण देवता द्युमें, रजःप्रधान होनेके कारण मनुष्य तथा उनके उपकरणभूत गौ, अश्व आदि प्राणी भूलोकमें एवं तमोगुण प्रधान भूत-पिशाच आदि अन्तरिक्षमें रहते हैं। मुखसे वेद और ब्राह्मण निकले, जो वर्ण गुरु हैं। बाहुसे क्षात्रवृत्ति और क्षत्रिय निकले जो रक्षण करते हैं। जाँघसे वाणिज्यादि व्यवसाय तथा वैश्य निकले, जो लोक व्यवहार तथा जीविका चलाते हैं। पादसे सेवा और शूद्र निकले, जो सेवा करते हैं उसी सेवासे स्वयं भगवान् प्रसन्न होते हैं। ये सभी अपने धर्मानुसार भगवान्‌का भजन करते हैं। भगवान्‌की अचिन्त्य शक्तिका कोई वर्णन नहीं कर सकता है। फिर भी मैं यथामति अपनी वाणीकी शुद्धिसे लिए भगवान्‌के चरित्रका वर्णन करता हूँ, क्योंकि भगवद्गुणोंका वर्णन करना, यह वाणीका और सुनना यह कानका लाभ है। भगवान्‌को मायाको तो भगवान्‌भी नहीं जानते, क्योंकि वह अनन्त है।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ सप्तमोऽध्यायः

[मायाका निरूपण और विदुरका सृष्टि विस्तारके विषयमें प्रश्न]

श्रीशुकदेवजीने कहा—मैत्रेयजीके इस तरह कहने पर द्वैपायनपुत्र विदुरजी अपनी वाणीसे उनको आनन्दित करते हुए कहने लगे ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा—हे ब्रह्मन्, निर्गुण अविकारी, चिद्रूप ब्रह्मको, लीलासे भी क्यों न हो, गुण और क्रियाओंका सम्बन्ध कैसा ? ॥ २ ॥ बालककी भी क्रीड़ामें प्रवृत्ति दूसरेके प्रवर्तन करनेसे या अन्य किसी कारणवश क्रीड़ाकी इच्छासे होती है यानी बालककी क्रीड़ामें प्रवृत्ति हेतु काम ही है। किन्तु स्वतः नित्यतृप्तको काम कैसे तथा कृतकृत्य असंग अद्वितीय हरिकी कैसे किसी दूसरेसे खेलनेकी

श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ॥ प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः ॥ लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥ २ ॥ क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः ॥ स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥ ३ ॥ अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्यात्ममायया । तथा संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥ ४ ॥ देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः ॥ अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥ ५ ॥ भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ॥ अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥ ६ । एतस्मिन्मे मनो विद्वन् खिद्यतेऽज्ञानसङ्कटे ॥ तन्नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥ ७ । श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ॥ प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ॥ ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥ ९ ॥ यदर्थेन विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः । प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥ १० ॥ यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः ॥ दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः ॥ ११ ॥ स वै

इच्छा ! ॥ ३ ॥ भगवान्ने गुणमयी अपनी मायासे विश्वकी सृष्टि की, उसीसे इसका धारण करते हैं तथा उसीसे फिर संहार करेंगे ॥ ४ ॥ ब्रह्मस्वरूप होनेके कारण देश, काल और अवस्थासे जीवका अपनेसे या किसी दूसरेसे आत्मज्ञान नष्ट नहीं होता, फिर वह अविद्यासे कैसे सम्बद्ध होता है ? ॥ ५ ॥ सभी शरीरोंमें रहनेवाला भोक्ता वस्तुतः भगवान् एक ही हैं फिर जीवको आनन्द नाश या कर्मके कारण क्लेश क्यों होते हैं ॥ ६ ॥ इन विषयोंमें मेरा मन अज्ञान संकटमें पड़कर खिन्न होता है, अतः हे विद्वन्, हे विभो, यह महान् मोह दूर कीजिये ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—तत्वजिज्ञासु विदुरके ऐसा पूछने पर भगवान्में जिसका चित्त लगा है, ऐसे मुनि आश्चर्यरहित होने पर भी आश्चर्य प्रकट करते हुए कहने लगे ॥ ८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—यह अचिन्यशक्ति ईश्वर की माया है, यह तर्कसे विलकुल विरुद्ध है कि विमुक्त जीवको दैन्य और बंधन ॥ ९ ॥ जैसे स्वप्नमें अपने सिरका कटना आदि अर्थके न रहने पर भी पुरुषको मेरा सिर कट गया, ऐसा आत्मविपर्यय केवल झूठमूठका प्रतीत होता है, वैसे ही इस जीवको ॥ १० ॥ जैसे जलमें प्रतिबिम्बित हुए ही चन्द्रमाका कम्प आदि धर्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जलरूप उपाधिके कारण दिखाई देता है, आकाशमें स्थित चन्द्रमाका नहीं। वैसेही देहादिका गुण धर्म न रहनेपर भी इसके अभिमानी द्रष्टा जीवका ही है, ईश्वरका नहीं ॥ ११ ॥ वह अनात्माका गुण (धर्म) निवृत्ति धर्मसे या वासुदेव भगवान्‌की कृपासे प्राप्त भक्तियोगसे यहाँ धीरे-धीरे अदृश्य होता है ॥१२॥ जब सभी इन्द्रियाँ परमात्मा हरिमें स्थिर होती हैं तब सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि नींदमें होता है ॥ १३ ॥ भगवान् मुरारीका गुणानुवाद श्रवण भी क्लेशोंका नाश करता है, फिर मनमें उसके चरणारविन्दके परागोंकी सेवाका यदि प्रेम उत्पन्न हो जाय तो क्या कहना है ॥१४॥ विदुरजीने कहा—हे विभो, हे भगवन्, आपके वाणीरूपी तलवारसे मेरे सब संशय छिन्न हो गये, मेरा मन बन्ध और मोक्ष दोनों तरफ दौड़ता है ॥१५॥ भगवन्, आपने यह ठीक कहा कि यह भगवान्‌के मायाकी गति है, यह सब विश्व स्वप्नके समान निर्मूल ही भासमान होता है, विश्वका मूल अज्ञानके सिवा और कुछ नहीं है ॥ १६ ॥

निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया ॥ भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥ १२ ॥ यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ। विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥ १३ ॥ अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ॥ कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥ १४ ॥ विदुर उवाच ॥ संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ॥ उभयत्रापि भगवन्मनो मे संप्रधावति ॥ १५ ॥ साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः ॥ आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥ १६ ॥ यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ॥ तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ १७ ॥ अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः ॥ तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥ १८ ॥ यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ॥ रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥ १९ ॥ दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ॥ यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥ २० ॥ सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ॥ तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशद्विभुः ॥ २१ ॥ यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्र्यूरुबाहुकम् ॥ यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥ २२ ॥ यस्मिन्दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् ॥ त्वयेरितो

संसारमें जो अत्यन्त मूर्ख हैं या जिसने प्रकृतिके परे ईश्वरको पा लिया है—ये ही दोनों सुखसे रहते हैं, बीचके लोग क्लेश पाते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रपञ्चकी प्रतीति होनेपर भी 'इसका मूल नहीं है' यह जानकर आपकी चरणसेवासे मैं उस प्रतीतिको भी दूर कर दूँगा ॥ १८ ॥ जिस आपके चरणकी सेवासे मधुहन्ता निर्विकार भगवान्‌के पादपद्ममें सभी दुःखोंका नाश करनेवाला तीव्र प्रेमोत्सव उत्पन्न होगा ॥ १९ ॥ जिसका तप अल्प है, ऐसे लोगोंको विष्णुलोकके मार्गभूत साधुओंकी सेवा नसीब नहीं होती। उस सेवामें सर्वदा देवदेव जनार्दनके गानका लाभ होता है ॥ २० ॥ भगवान्‌ने पहले इन्द्रियोंके सहित महदादि तत्त्वोंकी क्रमशः सृष्टि करके उनके अंशसे विराट्‌की सृष्टि करनेके बाद उसमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥ उस भगवान्‌के रूपने प्रवेश किया, वह सहस्रपाद, हस्त और जाँघ आदिसे युक्त आद्य पुरुष कहा जाता है, जिसमें यह सभी विश्व विना संकोचके स्थित है ॥ २२ ॥ जिसमें दशविध प्राण इन्द्रिय, अर्थ और देवताओंके साथ रहता है, जिसको आपने मुझे बताया है तथा जिससे वर्ण सब उत्पन्न हुए हैं, उस भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिस पुरुषमें पुत्र, पौत्र, नाती और गोत्र जो इनके साथ सभी विचित्राकृति प्रजाएँ रहती हैं, जिनसे यह विश्व व्याप्त है ॥ २४ ॥ हे मैत्रेयजी, प्रजापतियोंके पतिने कौनसे प्रजापति बनाये ? नवनिधि सृष्टि, उसके अवान्तर प्रभेद, मनु, मन्वन्तरोंके अधिप, उनके वंशज, उनके चरित तथा भूमिके ऊपर और नीचेके जो लोक हैं इन सबका सन्निवेश एवं भूर्लोक का प्रमाण इन सबका वर्णन कीजिये । तिर्यक्, मनुष्य, देव, सर्प, पक्षी इत्यादि गर्भज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज—इनकी सृष्टिका विभाग भी हमसे कहिये ॥ २५।२६।२७ ॥ गुणावतार ब्रह्मादिकों द्वारा विश्वकी सृष्टि-स्थिति-प्रलय तथा उनके आश्रयोंकी सृष्टि करनेवाले श्रीनिवासके उदार पराक्रमका वर्णन कीजिये ॥ २८ ॥ रूप-शील-स्वभावके अनुसार वर्णाश्रम विभाग, ऋषियोंके जन्म और कर्म, वेदका विभाग, यज्ञका विस्तार योगमार्ग, नैष्कर्म्य एवं सांख्यका मार्ग जो भगवान्के द्वारा कहा गया है, उनका तथा पञ्चरात्राध्यागम एवं पाख-

यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥ २३ ॥ यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ॥ प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥ २४ ॥
प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् ॥ सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥ २५ ॥ एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि च ॥
उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजाऽऽसते ॥ २६ ॥ तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय ॥ तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ॥ वद
नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥२७॥ गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् । सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥२८॥
वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः । ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥ २९ ॥ यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ॥
नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥३०॥ पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम् ॥ जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥३१॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः ॥ वार्ताया दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥ ३२ ॥ श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितॄणां सर्गमेव च ग्रहनक्षत्र-
ताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥३३॥ दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम् ॥ प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३४ येन वा भगवांस्तुष्ये-
द्धर्मयोनिर्जनार्दनः ॥ संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ ॥ ३५ ॥ अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ॥ अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो

ण्डियोंकी विषम प्रवृत्तियोंका हे प्रभो, वर्णन कीजिये । जीवकी गुणकर्मके अनुसार कौनसी और कितनी गतियाँ हैं, वह सब भी कहिये । एवं प्रतिलोमपसे सबके ब्रह्ममें प्रलयका भी प्रकार बतलाइये ॥ २९।३०।३१ ॥ धर्म-अर्थ काम- और मोक्षके परस्पर विरोधी उपाय, वार्ता, दण्डनीति तथा त्रयीकी पृथक् विधि कहिये ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन्, श्राद्धकी विधि, पितरोंकी उत्पत्ति तथा ग्रह, नक्षत्र एवं तारोंको कालचक्रमें संस्थिति बतलाइये ॥ ३३ ॥ दान, तप और इष्टापूर्तोंका क्या फल है ? प्रवासी मनुष्यका क्या धर्म है तथा आपत्तिमें पुरुषका क्या धर्म है, यह सब कहिये ॥ ४२ ॥ हेपापरहित, किससे धर्मके प्रवतक जनार्दन भगवान् सन्तुष्ट होते हैं ? किसपर सन्तुष्ट होते हैं, सब कहिये ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, अपना अनु-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सरण करनेवाले शिष्योंको तथा पुत्रोंको दीनवत्सल गुरु न पूछा गया विषय भी बतलाते हैं। अतः जो कुछ पूछना छूट गया हो, वह भी कहिये ॥ ३६ ॥ हे भगवन्, इन तत्वों के कितने प्रलय हैं ? उन प्रलयोंमें सो रहे भगवान्में कौन लीन होते हैं तथा कौन उपासना करते हैं ॥३७॥ जीवका तत्व, स्वरूप, परमात्माका भी स्वरूप—इत्यादि जो उपनिषद् का ज्ञान है, वह भी बताइए, क्योंकि बिना गुरुके बताए शिष्य उस ज्ञानको नहीं समझ पाता ॥३८॥ हे निष्पाप, ज्ञानका जो साधन विद्वानोंने कहे हैं, उनका वर्णन कीजिये तथा कुछ लोगोंको अपने हीसे ज्ञान, वैराग्य और भक्ति क्यों हो जाती है ? यह भी सब बतलाइए ॥३९॥ इन सब प्रश्नोंका उत्तर मुझे दीजिए। भगवान्के कर्मकी जिज्ञासासे मैंने यह

दीनवत्सलाः ॥ ३६ ॥ तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः ॥ तत्रेमं क उपासीरन् क उ स्विदनुशेरते ॥ ३७ ॥ पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ॥ ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥ ३८ ॥ निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभि ॥ स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥३९॥ एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥४० सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्चतपो दानानि चानघ ॥ जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कला मपि ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेनः मुनिप्रधानः ॥ प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां सञ्चोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥ ४२॥ इति श्रीमद्भा० महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पूछा है। मैं अज्ञ हूँ, प्रकृतिके आवरणसे मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है। मित्र आप मुझे सब बताइये ॥ ४० ॥ हे अनघ, सभी यज्ञ, तप, दान, वेद जीवको अभयप्रदानके एक अंशकी भी बराबरी नहीं कर सकते। ४१ ॥ शुकदेवजीने कहा—इस तरह कुरुप्रधान विदुरजीके पुराणकल्प मुनि प्रधान मैत्रेयजीके पूछनेपर, भगवान् श्रीकृष्णकी कथा कहनेके लिये प्रेरित किये जानेके कारण मैत्रेयजी बहुत प्रसन्न हुए और हँसते हुए कहने लगे ॥ ४२ ॥

सातवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—मैत्रेयजीका कथन सुनकर विदुरजी फिर कहा—ऋषे, निर्गुण चिद्रूप ब्रह्मको लीलासे भी विकार और गुणसम्बन्ध कैसे होता है ? मायासे जीवका भी ज्ञान ब्रह्मस्वरूप होनेके कारण नष्ट तो नहीं होना चाहिये, फिर उसको अविद्या सम्बन्ध कैसा ?' मैत्रेयजीने कहा—यह ईश्वरकी माया है, जो युक्तिसे परे है। उसीके कारण तर्क विरुद्ध होनेपर भी मुक्त जीवको बंध है। चन्द्रमामें कम्पन होनेपर भी जिस तरह पानीके कम्पनसे उसमें कम्पन दीखता है, उसी प्रकार आत्मा में बन्ध न रहनेपर भी देह गुणोंके मिथ्या आरोपसे उसमें बंध दीखता है। निवृत्तिधर्मसे भगवान्की भक्ति और कृपासे धीरे-धीरे यह भ्रम नष्ट होता है। भगवान्के गुणश्रवणसे क्लेश दूर होते हैं, फिर सेवामें अगर रति हो, तो क्या कहना है। विदुरजीने कहा—भगवन्, आपकी वाणीसे मेरे संशय दूर हो गये। मेरा मन बंध और मोक्ष दोनों तरफ दौड़ता है। आपने ठीक ही कहा कि यह माया है तथा अविद्या ही विश्वका मूल है। एक पूरा मूर्ख या गुणातीत दो ही संसारमें सुखी हैं, बीचके लोग दुःख पाते हैं। प्रपञ्च भासमान होनेपर निराधार है, यह मैं जानता हूँ। अब यह भास ही न हो, इसलिये आपकी सेवा करूँगा। आप जैसे सज्जनोंकी सेवासे दुःखभञ्जक भगवान्में भक्ति बढ़ती है। सत्सेवा कल्प तपस्वियों को नहीं मिलती। भगवान्ने महत्तत्त्वादि तत्वोंकी सृष्टिका उनके अंशसे विराट्की सृष्टिकी और उसमें प्रवेश किया वही सहस्राक्ष-सहस्रपाद, पुरुष कहा जाता है। उसीमें सब विश्व

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निःसंकोच स्थित हैं। जिसमें दशविध प्राण तथा इन्द्रिय रहते हैं ऐसे भगवान्की विभूतियोंका वर्णन कीजिए। कौन प्रजापति हुए? तथा नवविध सृष्टि उसके अवान्तर भेद मनु मन्वंतर, उनके वंश, उनके चरित्र, सभी लोकोंका सन्निवेश, भूर्लोकका प्रमाण, सभी प्राणियोंके सृष्टि प्रकार, वर्णाश्रमधर्म जीवकी कर्मानुसार गतियाँ वेदोंकी उत्पत्ति, तन्त्रोंकी तथा पाखण्डमतोंकी उत्पत्ति, श्राद्धविधि, पितरोंकी उत्पत्ति, ग्रह-नक्षत्र-तारोंकी कालचक्रमें स्थित, दान, तप आदिके फल मनुष्यके धर्म, आपद्धर्म, यह सब मुझसे कहिये, भगवान् किस उपायसे तथा किसपर सन्तुष्ट होते हैं, यह भी कहिए। और मैंने जो विषय नहीं पूछे हैं मेरे ऐसे जानने योग्य विषय भी कहिये। किसी-किसीको जन्मतः ही ज्ञान भक्ति या वैराग्य क्यों होता है? यह सब कहिये। मैं अज्ञ हूँ, प्रकृतिके आवरणसे मेरा ज्ञान नष्ट हो चुका है। आप मित्रभावसे मुझे उपदेश दिजिये।

❋ अथ अष्टमोऽध्यायः ❋

(सृष्टिक्रम और नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति)

मैत्रेयजीने कहा—अहो, पुरुवंश सज्जनोंके लिये सेवनीय है, क्योंकि भगवान् उनके मुख्य सेव्य हैं, और अपने आप लोकपालने इसमें जन्म लिया है, जो आप पद-पदपर प्रतिक्षण भगवान्का कीर्तिमालाकी नूतन बना रहे हैं ॥ १ ॥ मैं अब अल्पसुखके लिए महादुःख भोगने वाले लोगोंके उस दुःखकी शान्तिके लिये भागवत पुराण शुरू करता हूँ। साक्षात् भगवान्ने ऋषियोंसे कहा था ॥ २ ॥ पृथ्वीपर बैठे हुए अप्रतिहत ज्ञानी सभीके कारण भगवान् संकर्षणसे संकर्षणके भी परे वासुदेवका तत्त्व जाननेकी इच्छासे जिनमें

मैत्रेय उवाच ॥ सत्सेवनीयो बत पुरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ॥ बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्य भीक्ष्णम् ॥ १ ॥ सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ॥ प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २ ॥ आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं सङ्कर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ॥ विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥ स्वमेव धिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ॥ प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥ ४ ॥ स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ॥ पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः सप्रेमा नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥ मुहुर्गृणन्तो वचसानुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ॥ किरीटसाहस्र

सनत्कुमार प्रमुख हैं, ऐसे ऋषियोंने पूछा था ॥ ३ ॥ वे संकर्षण अपनेही आश्रयभूत तत्त्वकी जिसको वासुदेव कहते हैं उत्कृष्ट प्रकारसे पूजा कररहे थे! सनत्कुमारादि ऋषियोंके अभ्युदयके लिये अन्तर्मुखी कृत नेत्ररूपी कमलकोरकों को उन्होंने थोड़ा सा खोला ॥ ४ ॥ मुनियोंने अपने गंगाजलसे भींगे जटाकलापोंसे उनके चरणके आश्रयीभूत कमलका स्पर्श किया, जिस कमलका नगराजोंकी कन्याएँ वर प्राप्तिके लिये प्रेमसे अनेक उपहारों द्वारा पूजन करती हैं ॥ ५ ॥ मुनिलोग उनके कर्मोंका बार-बार वर्णन करते थे। उस समय उनके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनमें अत्यन्त अनुराग होनेके कारण कण्ठ गद्गद् हो गया था, इसलिए बीच बीचमें पदोंका स्पष्ट उच्चारण नहीं हो रहा था। हजार किरीटोंकी रत्नोंकी प्रभासे उनकी हजार विशाल कलाएँ दमकरही थीं ॥ ६ ॥ हे विदुरजी, उस संकर्षण भगवान्ने यह भागवत निवृत्तिमार्गमें निरत सनत्कुमारको बताया। सनत्कुमारने व्रतधारी सांख्यायनको, उनके पूछनेपर बताया ॥ ७ ॥ भगवान्की विभूतियोंका वर्णन करनेकी इच्छा कर रहे परमहंसोंमें मुख्य सांख्यायनने अपने शिष्य हमारे गुरु पराशर और बृहस्पतिसे कहा ॥ ८ ॥ राक्षस सत्रसे निवृत्त होनेके कारण अपनी सन्ततिके संरक्षकसे तुष्ट पुलस्त्यने पुराण प्रवक्ता होनेका पराशरको वर दिया। उसके अनुसार उस दयालुने मुझे यह आद्यपुराण कहा। हे वत्स, वही पुराण श्रद्धालु तथा भक्त आपसे मैं कहता हूँ ॥ ९ ॥ जब यह विश्व जलमें मग्न था, उस समय भगवान् नारायणने, कभी भी तिरोहित न होनेवाली अपनी ज्ञानशक्तिके रहते हुए भी, आँखें मूँदलीं। वह शेष पर्यंकपर अकेले निरिच्छ आत्मानन्दमें ही निमग्न सो रहे थे ॥ १० ॥ भगवान्के शरीरमें पञ्चमहाभूत सूक्ष्मरूपसे थे। काल नामकी शक्तिको फिर सृष्टि

मणिप्रवेशकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥ ६ ॥ प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ॥ सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ॥ ७ ॥ सांख्यायनः परमहंसमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ॥ जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥ ८ प्रोवाच मह्यं सदयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ॥ सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्सः श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ ९ ॥ उदाप्लुतं विश्वमिदं तदासीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ् न्यमीलयत् ॥ अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतो निरीहः ॥ १० ॥ सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ॥ उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥ ११ ॥ चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितयास्वशक्त्या ॥ कालाख्ययासादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥१२॥ तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ॥ गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥ १३ ॥ सपद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ॥ स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥ १४ ॥ तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ॥ तस्मिन्स्वयं

कालमें जगानेके लिए उन्होंने रखा था। भगवान् अपने अधिष्ठानभूत उस प्रलय सलिलमें अपनी बाह्य वृत्तियोंको अपने अन्दर ही लीन करके सो रहे थे, जैसा कि काष्ठमें अग्नि अन्दर लीन वीर्य रहती है ॥ ११ ॥ इस तरह हजार चतुर्युग तक भगवान् जलमें सोये रहे। तदनन्तर पहले ही जगा देनेके लिए नियुक्त अपनी कालशक्तिने भगवान्को जगाकर उसको क्रिया कलापसे युक्त किया। फिर भगवान्ने समस्त लोकोंको अपने अन्दर लीन देखा ॥ १२ ॥ लोक सृष्टिके लिये भगवान्की सूक्ष्म अर्थोंपर दृष्टि पड़नेके कारण वह अतिसूक्ष्म अर्थ* जो उनके भीतर निहित था, रजोगुणसे विद्ध होनेके कारण क्षुभित हो गया और प्रगट होना चाहा और तब वह भगवान्की नाभिप्रदेशसे प्रगट हो गया ॥ १३ ॥ कर्म प्रति बोधक

* अति सूक्ष्म अर्थ यानी भूतसूक्ष्म वर्ग।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कालसे वह भूतसूक्ष्म यमकोषके रूपसे निकला। उस समय वह परमात्मोत्पन्न यम अपने तेजसे सूर्य समान उस विशाल जलको प्रकाशित कर रहा था ।। १४ ।। इस सभी गुणोंके अवभासक लोकपद्ममें उस विष्णुने जिनसे वह पद्म उत्पन्न हुआ था, अन्तर्यामी रूपसे प्रवेश किया। फिर उसमें स्वयं वहीं वेदमय ब्रह्मारूपसे प्रकट हुए, जिसको पिताका ज्ञान न होने से स्वयंभू कहते हैं ।। १५ ।। उस पद्मके कोषमें बैठे हुए ब्रह्मदेवने किसी को न देखते हुए अपनी आँखें खोलकर उन्हें आकाशमें चारों ओर घुमाया, उससे उनके चार मुख हो गये ।। १६ ।। प्रलय वायुके कारण जलमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं, उनके कारण उसमें निकला हुआ पद्म काँप रहा था, उसपर बैठे ब्रह्माजीने उस पद्मका न लोकका और न स्वयं अपना ही कुछ तत्त्व जान सके ॥१७॥ मैं यहाँ कमलपर कौन हूँ, यहाँ मैं कैसे आया? यह एकही पद्म पानीमें कहाँ से पैदा हुआ? इसके नीचे कुछ जरूर होना जाहिए, जिसपर यह

वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥ १५ ॥ तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ॥ परिक्रमन्व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६ ॥ तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ॥ उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥ १७ ॥ क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाब्जमनन्यदप्सु ॥ अस्ति ह्यधस्तादिह किञ्चनैतदधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥ १८ ॥ स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ॥ नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥ १९ ॥ तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ॥ यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥ २ ॥ ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ॥ शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥२१॥ कालेन सोऽजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ॥ स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥ २२ ॥ मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ॥ फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥२३॥ प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ॥ रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो

अधिष्ठित है ।। १८ ।। ऐसा विचार कर उन्होंने पद्मके नालके छिद्रसे पानीके अंदर प्रवेश किया। नीचे जानेपर भी, उन ब्रह्मदेवको पद्मके नालका मूल बहुत खोजनेपर भी नहीं मिला ।।१९।। हे विदुरजी, उस अपार अंधकारमें अपनी उत्पत्तिका पता लगाते हुए उस ब्रह्माको, जो देहधारियों को भय उत्पन्न करता है और आयु क्षीण करता है ऐसा भगवान्का शस्त्र सुदर्शन चक्ररूपी बहुत काल हो गया यानी उनको पता लगाते सौ वर्ष हो गये ।। २० ।। ब्रह्मदेव अपनी इच्छा को पूरी न कर फिरसे लौटे और अपने स्थान पद्मके ऊपर आ गये। वहाँ वे धीरे-धीरे श्वाँसजीत करके चित्तको एकाग्रकर समाधि लगाकर बैठ गये ।। २१ ।। सौ साल तक ऐसी समाधि लगानेके बाद योगके निष्पन्न हो जाने से उनके अन्दर ज्ञानका आविर्भाव हुआ। जिसको उन्होंने पहले ढूँढ़कर भी नहीं देखा था, उसको स्वयं अपने अन्दर ही प्रकाशित देखा ।। २२ ।। मृणालके समान गोर शेष शरीर रूपी पर्यंकपर अकेले ही सो रहे पुरुष को उन्होंने देखा। उस शेषकी फणरूप जो छत्र थे, उनके ऊपरके रत्नोंको कान्तिसे उस प्रलयकालीन जलपर का अन्धकार नष्ट हो गया था ।। २३ ।। वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नीलकान्ति पुरुष अपनी शोभासे मरकत पर्वतकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। इसके पीताम्बरकी शोभासे पर्वतकी संध्याकालीन मेघरूपी वस्त्रकी शोभा तिरस्कृत हो रही थी। इसके अनेक किरीट स्वर्ग शिखासे शोभते थे। इसकी वनमाला, पर्वतके रत्न, जलधारा, ओषधि और पुष्प समूहके समान थी, पर्वतके वेणुके सदृश इसके हाथ थे तथा वृक्षके समान थे इसके पैर ॥ २४ ॥ वह अपनी दीर्घ, विस्तृत, निरूपम, देहसे, जिससे लोकत्रय अंतर्हित था, जिसने विचित्र दिव्य अलंकार और वस्त्र से अपनी शोभा बढ़ा रही थी, स्वयं अति सुन्दर होनेपर भी उसने अपने शरीरपर अनेक अलंकार धारण किए थे ॥ २५ ॥ अपने इच्छित फलोंके लिए वेदोक्तमार्गोंसे पूजा करनेवालोंको इच्छितार्थ देनेवाले-नखचन्द्रोंकी किरणोंसे युक्त अंगुलियाँ ही जिसके सुन्दर पत्र हैं ऐसे—पादकमलको मानों लोगोंपर कृपासे थोड़ा ऊपर उठाकर वह पुरुष दिखा रहा था ॥ २६ ॥ अपने लोगोंके आर्तिहारक स्मितसे युक्त, चमकदार कुण्डलोंसे मंडित, अधरबिम्बकी अरुण-कान्तिसे युक्त, सुन्दर नासिका और भ्रुवोंसे युक्त मुखसे मानों वह पूजकोंका सम्मान कर रहा था ॥ २७ ॥ कदम्बके

वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रे ॥२४॥ आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसङ्ग्रहेण ॥ विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम् ॥२५॥ पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम् ॥ प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दुमयूखभिन्नांगुलिचारुपत्रम् ॥ २६ ॥ मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ॥ शोणायितेनाधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा ॥ २७ ॥ कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा स्वलङ्कृतं मेखलया नितम्बे ॥ हारेण चानन्तधनेन वत्स श्रीवत्सवक्षःस्थलवल्लभेन ॥ २८ ॥ परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ॥ अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रमहीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥ २९॥ चराचरौको भगवन्महीध्रमहीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ॥ किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥ ३० ॥ निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ॥ सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दु-

परागके समान कांतिमान् वस्त्र तथा नितम्बके ऊपर पड़ी मेखला से अलंकृत था। हे वत्स, वस्त्र युक्त उसके वक्षःस्थलपर अमूल्य हार शोभायमान था ॥ २८ ॥ चन्दन वृक्षके समान शोभायमान था। कीमती केयूरके मणिश्रेष्ठोंसे व्याप्त उसके दोर्दण्ड ही हजारों शाखाके समान थे। केयूर उसमें फलपुष्पोंके समान शोभा दे रहे थे। प्रधान उसका अधोभागके समान था। चन्दन वृक्ष जैसा सापोंसे लिपटा हुआ रहता है उसी तरह उसके शरीरके अवयव भी भगवान् शेषके फणाओंसे वेष्टित थे वह भुवनात्मक अङ्घ्रिपेन्द्र था ॥ २९ ॥ वह पुरुष कोई दूसरा नहीं था, किन्तु साक्षात् भगवान् परमात्मा ही थे, वे भगवान् पानीमें आधे डूबे हुए पर्वतके समान दीखते थे। पर्वतोंके समान चराचरोंके वे आश्रय स्थान हैं, पर्वत जैसे रहनेका स्थान होनेके कारण सर्पोंको प्रिय रहता है, उसी तरह यह भी शेषनाग को प्रिय हैं, इनके हजारों किरीट ही सुवर्ण शृङ्ग हैं, प्रकट हो रहा कौस्तुभ ही गर्भके रत्नके समान है ॥ ३० ॥ हरिके कण्ठमें, वेदही भ्रमर बनकर जिसकी शोभा बढ़ाते थे ऐसी कीर्तिमय वनमाला पड़ी थी। उस भागका सूर्य-चन्द्र-वायु-अग्नि भी अपने व्यापारोंसे आकलन नहीं कर सकते। ॥२३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तीनों लोंकमें जिनका तेज है ऐसे रक्षाके लिए दौड़ने वाले सुदर्शनादि आयुधोंसे भी वे दुष्प्राप्य हैं ॥ ३१ ॥ ऐसे भगवान्को देखनेके साथही जगत्के रचयिता ब्रह्माको लोक सृष्टिकी दृष्टि मिली और उन्होंने उस समय भगवान्के नाभि-सरोवरसे उत्पन्न कमलको. अपनेको, जलको, वायुको तथा आकाशको ही देखा। इनको छोड़कर और कुछ नहीं देखा ॥ ३२ ॥

रासदम् ॥ ३१ ॥ तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वनं वियच्च ॥ ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥ ३२ ॥ स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजा सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ॥ अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

लोकसृष्टिके कारण—रजोयुक्त उस ब्रह्माने प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छा होनेपर भी जब—इतने ही पदार्थ देखे। तब अव्यक्त ब्रह्ममें बुद्धि लगाकर सृष्टिकी इच्छासे स्तुत्य उस भगवान्की स्तुति की ॥ ३३ ॥

आठवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—पुरु वंश सचमुच धन्य है, जिसका मुख्य सेव्य भगवान् हैं और आप लोकपालने जिसमें जन्म लिया है, जो भगवान्की कीर्तिमालाको दोहराता है। संसारदुःखभोगनेवाले लोगोंके दुःख निवारणके लिए मैं भागवत पुराण कहता हूँ। जब यह विश्व जलमग्न था, तब अकेले भगवान् नारायण शेष पर्यंकपर सोये थे। उनमें सब विश्व सूक्ष्मरूपसे लीन था। इसी तरह हजार चतुर्युगका समय बीता। तब भगवान् ही काल नामक शक्तिने उनको जगाकर क्रिया व्यक्त किया। भगवान्ने सबको अपनेमें लीन देखा। जब उन अर्थसूक्ष्मोंपर भगवान्की दृष्टि पड़ी, तब वे रजोगुण विश्व होकर क्षुभित हो गये और उनकी नाभिसे पद्मरूपसे वह प्रकट हुये। उस लोक पद्ममें भगवान्ने अन्तर्यामितया प्रवेश किया। तब वही वेदमय ब्रह्मा रूपसे प्रकट हुए। उन्होंने चारों ओर देखा, इससे उनको चार मुख हुये। तब वे सोचने लगे—मैं कौन हूँ. कहाँसे आया ? यह पद्म कैसे आया ? इसके मूलमें कुछ जरूर होगा। ऐसा सोचकर उसका पता लगानेके लिए वे नालसे नीचे जाने लगे। इस तरह सौ साल जानेके बाद भी अन्धकारके सिवा वे कुछ नहीं देख सके। तब उन्होंने फिरसे वापस आकर उस पद्मपर बैठकर श्वाँसको जीत कर समाधि लगाई। सौ साल समाधि लगानेके बाद उनके अन्दर ज्ञानका आविर्भाव हुआ। ढूढ़कर भी जिसको वे न देख सके, उसको उन्होंने अपनेही अन्दर देखा। वह पुरुष मृणाल गौर शेषके शरीरपर सोया था। शेषकी ही फणाओंने उसपर छत्र धरा था। उन फणाओंके मणियोंसे वहाँका अंधकार नष्ट हो रहा था। उस पुरुषका वर्ण सुन्दर नीला था। पिताम्बर धारण किए था। अनेक आभूषण वह पहिने था। सभी अवयव उसके सुन्दर थे। वह और कोई दूसरा नहीं था, किन्तु साक्षात् परमात्मा थे। उनका सूर्य-चन्द्रमा-अग्नि-वायु भी आकलन नहीं कर सकते। उस भगवन्मूर्तिको देखकर ब्रह्मदेवको सृष्टिकी दृष्टि मिली। उन्होंने नाभिसरोववरसे उत्पन्न अपनेको, पद्मको, जलको, वायु और आकाश को ही देखा। तब ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छा होनेपर भी जब इतनेही पदार्थ देखे, तो अव्यक्त ब्रह्ममें मन लगाकर भगवान्की स्तुति की।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ नवमोऽध्यायः

(ब्रह्मदेवकृत भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का आशीर्वाद)

ब्रह्मदेवने कहा—हे भगवन्, बहुत समयके बाद तुमको मैं आज जान पाया। देह धारियोंका यह बड़ा दोष है कि तुम्हारी गति उनकी समझमें नहीं आती। तुम्हारे सिवा ज्ञातव्य दूसरा है ही क्या? जो भी है वह सत्य नहीं। मायाके गुणोंके क्षोभके कारण तुम ही उन अनेकरूपोंमें भासमान होते हो ॥ १ ॥ अपनी चिच्छक्तिके आविर्भावसे सदा जिससे तम दूर रहता है ऐसा जो यह तुम्हारा रूप है, सज्जनोंपर अनुग्रहके लिए ही तुमने इसे धारण किया है सैकड़ों अवतारोंके बीजभूत इस रूपको तुमने सब से पहले ग्रहण किया, जिसकी नाभिसे उत्पन्न कमलसे मैं आविर्भूत हुआ ॥ २ ॥ हे परम, अनावृतप्रकाशयुक्त, भेदशून्य, आनन्दमय, जो तुम्हारा रूप वह यही रूप है, इससे भिन्न उस रूपको

ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ॥ नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥१॥ रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्तितमसः सदनुग्रहाय ॥ आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ २ ॥ नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ॥ पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ ३ ॥ तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ॥ तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ ४ ॥ ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ॥ भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥ तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ॥ तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥ दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ॥ कुर्वन्ति कामसुखलेश-

मैं नहीं समझता। इसीलिए हे आत्मन्, विश्वकी सृष्टि करनेवाले, विश्वसे भिन्न, भूतेन्द्रियोंके कारण एक अद्वितीय इसी रूपका मैंने आश्रय लिया है ॥ ३ ॥ हे भुवनमंगल, जो तुमने हम उपासकोंको हमारे कल्याणके लिये ध्यानमें दिखाया वही यह रूप है तुम कुतर्कनिष्ठ निरीश्वरवादियोंसे गृहीत नहीं होते। भगवन्, तुम्हें नमस्कार है। हम तुम्हारी शरणमें आते हैं ॥ ४ ॥ जो लोग वेदरूपी वायुसे लायी गयी तुम्हारी चरणसरोजकोषकी गन्धको कान से सूँघते हैं वे लोग अपनी परम भक्तिसे तुम्हारे पैर बाँधके रखते हैं। हे नाथ, तुम अपने उनके भक्तोंके हृदयपद्मसे नहीं जाते ॥ ५ ॥ तब तक ही धन-घर सुहृदादिके निमित्त भय या शोक है और तभीतक स्पृहा, उसके कारण अपमान, बहुत लोभ, दुःखका मूलकारण मेरा यह असत् भय रहता है जबतक कि तुम्हारे भयरहित चरणका लोग आश्रय नहीं लेते ॥ ६ ॥ दुर्दैवसे बुद्धि नष्ट होनेके कारण ही सम्पूर्ण अशुभोंकी नाशक तुम्हारी चर्चासे कुछ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोगोंकी इन्द्रियाँ विमुख रहती हैं। ये दीन लोग काम पूर्तिजन्य सुखकणके लिए लोभसे अभिभूत मन हो अकल्याण कारक कर्म करते हैं ॥ ७ ॥ हे भगवन्, इन लोगोंकी भूख-प्यास एवं वात-पित्त- कफरूपी तीन धातुओंसे, शीत, उष्ण, वायु, वृष्टि, इत्यादिसे, आपसमें एक दूसरेसे, दुःसह कामाग्निसे तथा अविच्छिन्न रोषसे, पीड़ित होते देख मेरा मन दुःखित होता है ॥ ८ ॥ हे ईश, जब तक आपकी इन्द्रियार्थरूपी मायाका आधिक्य होनेके कारण आत्मासे पृथक् इस देहादिभावको देखना है यानी देहादिभावमें अभिमान रखता है तब तक मिथ्या होने पर भी अनेक दुःखोंको प्रदान करनेवाली कर्मफलयुक्त यह संसृति उपरत नहीं होती ॥ ९ ॥ तुम्हारी चर्चासे पराङ्मुख ऋषि लोग भी––दिनभर इधर-उधर कामोंमें फँसे रहनेके कारण जिनकी इन्द्रियाँ थक जाती हैं, रातमें जब सोते हैं तब भी अनेक मनोरथोंके कारण क्षण-क्षणमें स्वप्नसे जिनकी नींद टूट जाती है और दैवसे जिनके सभी अर्थोंके उद्योग

लवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥ क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ॥ कामाग्निनाऽच्युत-रुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥ ८ ॥ यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ॥ तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥ ९ ॥ अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षण-भग्ननिद्राः ॥ दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥ १० ॥ त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ॥ यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ ११ ॥ नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारै-राराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ॥ यत्सर्वभूतदयया सदलभ्ययैको नाना जनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥ १२ ॥ पुंसामतो विविधकर्मभि-रध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ॥ आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥ १३ ॥ शश्वत्स्वरूपमह-सैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥ १४ ॥ यस्यावतारगुण-

भी असफल हो जाते हैं––इसी लोकमें घूमते रहते हैं ॥ १० ॥ हे नाथ, श्रवणसे तुम्हारा मार्ग जानकर भक्तियोगसे जिनका हृदयकमल शुद्ध हो चुका है उनके हृदयसरोजमें तुम रहते हो। हे अतुलयश, वे लोग अपनी बुद्धिसे तुम्हारे जिस--जिस रूपसे कल्पना करते हैं, सज्जनोंपर अनुग्रहके लिए तुम वह रूप धर लेते हो ॥ ११ ॥ मनमें कामना रहते हुए अनेक उपचारोंसे आराधना करनेवाले देवताओंपर भी तुम वैसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे दुष्टोंको अलभ्य ऐसी सभी भूतोंपरकी दयासे, क्योंकि एकही तुम नानाभूतोंमें सुहृद् और अन्तरात्मारूपसे प्रविष्ट हो ॥ १२ ॥ इसलिए यज्ञादिविविधकर्मोंसे, दानसे, उग्रतपसे, व्रतचर्यासे भगवान् तुम्हारा आराधन ही लोगोंको कर्मका श्रेष्ठफल है, क्योंकि तुममें अर्पित हुआ धर्म कभी नष्ट नहीं होता ॥ १३ ॥ सर्वदा रहनेवाले स्वरूप चैतन्यसे ही भेदभ्रम जिससे दूर रहता है ऐसे ज्ञानरूपी विद्याशक्ति वाले परम पुरुषको नमस्कार है। विश्वके सर्ग स्थिति-प्रलयमें उसकी निमित्त भूतमायासे रासलीला करनेवाले तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥ १४ ॥ जो लोग प्राण छोड़ते समय विवश होकर जिस तुम्हारे अवतार और गुण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

कर्मलीलासे सम्बद्ध नामोंका उच्चारण करते हैं वे अपने अनेक जन्मोंके पापोंको नष्टकर निरावरण, अनादि उस ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। ऐसे जन्मरहित तुम्हारी मैं शरणमें हूँ। १५ ॥ सर्ग--स्थिति–प्रलय करनेवाले मैं, शम्भु और स्वयं विष्णु जिसके तीन स्कन्ध हैं, मरिच्यादि मन्वादिरूप जिसकी शाखोपशाखाएँ हैं, स्वयं आत्मा जिसका मूलअधिष्ठान है तथा जो प्रधानको गुणमयरूपमें भेदकर निकला है, इस तरह बढ़नेवाले भुवनवृक्षरूपी उस भगवान्को नमस्कार है ॥ १६ ॥ जो लोग विरुद्धकर्ममें फसकर आप भगवान् द्वारा स्वयं कहे गये भगवद्दर्चनरुपी अपने कल्याणकर कर्ममें ख्याल नहीं करते, उनके जीवनाशाको इस संसारमें जो बलवान् शीघ्र तोड़ देता है उस कालरूपी आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ दो परार्ध रहनेवाले स्थानपर बैठा हुआ मैं भी सभी लोगोंसे नमस्कृत जिस आपसे डरता हूँ और आपको ही पानेके लिए मैंने अनेक वर्षतक तप किया, ऐसे यज्ञके अधिष्ठाता आपको नमस्कार

कर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ॥ ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥१५॥ यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ॥ भित्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ १६ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १७ ॥ यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ॥ तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥ १८ ॥ तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ॥ रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥ योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ॥ अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २० ॥ यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ॥ तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिन्द्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥ सोऽयंसमस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवन्भगेन ॥ तेनैव मे दृशमनुस्पृशता-

है ॥ १८ ॥ पांच जिसकी वृत्तियाँ हैं ऐसी अविद्यासे अभिभूत न होनेपर भी सभी लोक स्थितिको पेटमें रखकर भयंकर लहरोंसे युक्त जलमें, निद्रा ले रहे पुरुषका निद्रा सुख ऐसा ही होता है, यह दिखलाते हुए जिसने सर्पके शरीरका स्पर्श जिसमें अनुकूल था ऐसी योगनिद्रा धारणकी, उस भगवान्को नमस्कार है ॥ २० ॥ त्रैलोक्य जिसका भोग—साधन है ऐसा मैं जिसकी नाभिके पद्मसे जिसके अनुग्रहसे उत्पन्न हुआ, जिसके पेटमें सब संसार है, योगनिद्राके आखिरमें जिसके नेत्र विकसित नीलकमलके समान रहते हैं उस पुरुषको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ समस्त विश्वके सुहृद् तथा एकही आत्मा यह भगवान् जिस ज्ञान और ऐश्वर्यसे इस विश्वको सुख देते हैं। प्रणाम करनेवालोंको प्रिय वह भगवान् उसी ज्ञानसे मेरी भी दृष्टिको प्रज्ञायुक्त करें, जिससे कि पहलेकी तरह इस विश्वकी मैं सृष्टि कर सकूं ॥ २२ ॥ आत्मशक्ति रमाके साथ यह शरणागतों को वरदेनेवाले गुणोंसे अवतार

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेकर जो जो कर्म करते हैं, अपने [भगवान्‌के] प्रभावसे युक्त इस प्रपंचकी उन्हींकी आज्ञासे सृष्टि करते समय मेरे मनको वही हरि उन कर्मोंमें लगाएँ जिससे मेरी कर्मोंमें, आसक्ति और उनके द्वारा किया गया वैषम्यादि मेरा पाप छूट जाय ॥ २३ ॥ पानीमें रहनेवाले जिसके नाभि सरोवरसे ज्ञानशक्तियुक्त मैं यहाँ उत्पन्न हुआ, उस अनन्तशक्ति भगवान्‌के इस विचित्र रूपका वर्णन करते समय मेरी वेदावयभूतवाणीके उच्चारणका लोप न हो ॥ २४ ॥ वह पुराणपुरुष अनन्त करुणाशाली भगवान् प्रेमोद्रेकयुक्त स्मितके साथ अपने नयनकमलों को खोलते हुए विश्वकी विजयके लिए उठकर अपनी मधुरवाणीसे हमारा विषाद दूर करें ॥ २५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह ब्रह्मदेव तप-विद्या-समाधिसे अपने जनकको देखकर जहाँतक अपने मन और वाणीसे शक्य था स्तुति करके शान्त पुरुषके समान चुप बैठ गये ॥ २६ ॥ अपने लोकरचनाविषयक ज्ञानमें खेद कररहे ब्रह्मदेवके मनका भाव जानकर

द्यथाहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥ २२ ॥ एषप्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ॥ तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥ नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ॥ रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥ २४ ॥ सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान्विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ॥ उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसंभवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ॥ यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम सखिन्नवत् ॥२६॥ अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः ॥ विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥ २७ ॥ लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः ॥ तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह ॥ तन्मयापादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥ भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ॥ ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मँल्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥३०॥ तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ॥ द्रष्टाऽसि मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥३१॥ यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् ॥ प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥३२॥ यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः ॥ स्वरूपेण

भगवान् मधुसूदन कल्पान्तकालीन जलसे विषण्णचित्त हुए ब्रह्मदेवसे अपनी अगाधवाणी द्वारा उनका मोह दूर करते हुए बोले ॥ २७, २८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे वेद गर्भ, तुमने जो ज्ञानकी प्रार्थनाकी थी, वह वह मैंने तुमको पहलेही दे दिया है। अब आलस मत करो, सृष्टिसे उद्योग करो ॥ २९ ॥ ब्रह्मन्, तुम फिरसे तप को और मद्विषयक ज्ञान संपादन करो। उन दोनोंसे तुम अपने हृदयके अन्दर आवरणशून्य लोकों को देखोगे ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे ब्रह्मन्, तुम भक्तियुक्त और समाहित होकर अपने तथा उन लोकों के अन्दर व्याप्त मुझको एवं मेरे अन्दर इन लोकों तथा जीवोंको देखोगे ॥ ३१ ॥ जब सभी भूतोंमें, काष्ठमें स्थित अग्निके समान, रहनेवाले मुझे कोई देखेगा, तभी उसके मनका मोह दूर होगा ॥ ३२ ॥ भूत-इन्द्रिय-गुण-वासनाओंसे रहित जीवको (शुद्धत्वपदार्थको) अपने आत्मभूत तत्पदार्थ मुझसे अभिन्न जब समझेगा तब वह प्राणी मोक्ष पायेगा ॥ ३३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनेक कर्म विस्तारसे बहुत प्रजाओंकी सृष्टि करनेपर भी इस काममें तुम्हारा मन मोहको नहीं प्राप्त होगा, क्योंकि तुम्हारे ऊपर मेरा बहुत अनुग्रह है ॥ ३४ ॥ रजोगुणके आश्रयमें यह सब कहनेपर भी पापकारक रजोगुण आद्य ऋषी तुमको नहीं बद्ध कर सकता, क्योंकि प्रजा उत्पन्न करते हुए भी तुम्हारा मन मुझमें लगा रहेगा ॥ ३५ ॥ देहधारियोंके लिए दुर्ज्ञेय भी मुझे तुमने जानलिया, क्योंकि तुम उसे देह-इन्द्रिय-गुण-आत्माओंसे अलिप्त समझते हो ॥ ३६ ॥ तुमको जब मेरे विषयमें सन्देह उत्पन्न हुआ और तुम नालसे पानीमें कमलका मूल ढूँढने लगे, तब मैंने तुम्हारे हृदयमें ही तुम्हें दर्शन दिया ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन्, तुमने जो मेरी कथारूपी अभ्युदय युक्त मेरी स्तुति किया जो तपमें तुम्हारी श्रद्धा हुई यह सब भी मेरा अनुग्रह है ॥ ३८ ॥ तुमने जो लोकोंकी उत्पत्तिके लिए गुणमय रूपसे प्रतीत हो रहे भी मेरा निर्गुण रूपमें वर्णन करते हुए स्तुतिकी, उससे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा

मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ॥३३॥ नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः ॥ नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥३३॥ ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः ॥ यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ३५॥ ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ॥ यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं भूतेन्द्रियगुणात्मभिः ॥३६॥ तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः ॥ नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः॥३७॥ यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् ॥ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥३८॥ प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ॥ यद-स्तौषीगुणमयं निर्गुणं माऽनुवर्णयन् ३९॥ य एतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ॥ तस्याशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥४०॥ पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना ॥ राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥४१॥ अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन्प्रेयसामपि ॥ अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥ ४२ ॥ सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्माऽऽत्मयोनिना ॥ प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे विदुरमैत्रेयसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

कल्याण होगा ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य नित्य इस स्तोत्रसे स्तुति कर मेरा भजन करेगा, सभी इच्छितवरोंका स्वामी मैं उसपर जल्दी ही प्रसन्न होऊँगा ॥ ४० ॥ पूर्त, तप, यज्ञ, दान, योग समाधि—इनसे मिलने वाला जो निःश्रेयस है वह मेरी प्रीति ही है, ऐसा तत्त्वज्ञ लोग कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे धातः, मैं आत्माओंकी भी आत्मा होनेके कारण प्रियोंका भी प्रियतम हूँ, अतः मुझमें प्रेम करना चाहिए, देह इत्यादि जिसके लिए प्रिय हैं ॥ ४२ ॥ इसलिए सर्ववेदमय आत्मयोनि ऐसे तुम अपनेसे अन्य निरपेक्ष होकर पहलेके—जैसा ही इन प्रजाओंकी सृष्टि करो, जो मुझमें लीन हैं ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजीने कहा—उस जगतद्रष्टा ब्रह्मासे प्रकट रूपसे ऐसा कहा। सम्पूर्ण इश सृज्यका प्रकाशन करके फिर वह भगवान् पद्मनाभ अपने श्रीनारायणरूपसे अन्तर्हित हो गये ॥ ४४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नवम अध्यायका सार—ब्रह्मदेवने कहा—भगवन्, बहुत समयके बाद आपको मैं जान पाया जीवोंका यह दोष है, जो आप नहीं जानते। ज्ञानमय होनेके कारण तम आपसे दूर है। लोगोंपर अनुग्रहके लिए आपने यह सभी अवतारोंका बीजभूत-पद्मनाभरूप धारण किया है आपका जो ज्ञानानंदमय रूप है वह इससे भिन्न नहीं है, इसलिए सृष्टि करनेवाले इस रूपका मैंने आश्रय लिया। भगवन्, लोगोंको अनेक तपोंसे पीडित देख मेरा मन दुःखी होता है। जब तक देहादिमें अभिभाव है तब तक दुःखदायक माया मिथ्या होनेपर भी नहीं जाती। जो आप से विमुख रहते हैं ऐसे ऋषि भी दिनभर थकते हैं, चिन्ताके कारण रातमें वे सुखसे सो भी नहीं सकते। हरवक्त लोग हृदयमें जिस रूपकी कल्पना करते हैं। भगवन्, उनपर अनुग्रह करनेके लिए आप यही रूप धरलेते हैं। करुणामय भगवान् एकबार अपने नेत्रोत्पलोंको खोलकर अपना प्रेमयुक्त सुधामय वाणीसे हमारा विषाद दूर करें—ब्रह्मदेवने अपने ध्यानमें देखे गये भगवान्की इस तरह स्तुतिकी और वे चुप होगये फिर लोक-रचनाकी इच्छा करनेवाले ब्रह्मदेवसे उसका मोह दूर करते हुए भगवान्ने कहा—हे ब्रह्मन्, तुमने जो ज्ञान चाहा, वह मैंने तुम्हें दे दिया है। अब उठो, आलस न कर उद्योग करो। तुम फिरसे तप करके मेरा ज्ञान सम्पादन करो, बादमें तुम अपने अन्दरलीन लोकोंको देखोगे। मेरे अनुग्रहसे प्रजोत्पादनमें तुम थकोगे नहीं। उस समय भी तुम्हारा मन मुझमें रहनेके कारण रजोगुण तुम्हारा बाधक नहीं होगा तुमने दुर्ज्ञेय मुझे जानलिया, क्योंकि तुम्हारी स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा। ब्रह्मासे ऐसा कहकर वह भगवान् पद्मनाभ अपने श्रीनारायणरूपसे अन्तर्हित होगये।

❋ अथ दशमोऽध्यायः ❋

(नव सर्गोंका प्रकार वर्णन)

विदुर उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥१॥ ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ॥ तान्वदस्वनुपूर्वेण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥२॥ सूत उवाच ॥ एवं सञ्चोदितस्तेन क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः ॥ प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥४॥

विदुरजीने कहा—भगवानके अन्तर्हित हो जानेके बाद लोक-पितामह विभु ब्रह्माने देह और मनसे कितने प्रकारकी प्रजाओंका निर्माण किया ॥ १ ॥ और हे भगवन्, हे बहुवित्तम, मैंने जो प्रश्न आपसे पहले किए थे, क्रमशः उनका भी उत्तर देकर मेरा संशय दूर कीजिए ॥ २ ॥ सूतजीने कहा—हे भारत, विदुरजीके ऐसा प्रश्न करनेपर मैत्रेयजी सन्तुष्ट हुए और अपने मनमें जो पहलेके प्रश्न थे उनका उत्तर देने लगे ॥ ३ ॥ मैत्रेयजीने कहा—आज भगवान्ने जैसा कहा था, उसके अनुसार ब्रह्माने श्रीनारायण परमात्मामें मन लगाकर देवताओंके सौ वर्षों तक तप किया ॥ ४ ॥ फिर पद्मोद्भव ब्रह्माने, जिसपर वह बैठे थे, उस पद्म और जलको कालका जिसको जोर है ऐसे वायुसे कांपते हुए देखा ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बढ़े हुए तपसे तथा आत्मविषयकज्ञानसे उनके ज्ञान तथा बल बढ़े हुए थे, उन्होंने हवाके साथ जलको पी लिया ॥ ६ ॥ तब आकाशमें व्याप्त अपने अधिष्ठान कमलको देखकर इससे प्रलयमें लीन लोकोंकी पुनः रचना करूँगा' ऐसा उन्होंने विचार किया ॥ ७ ॥ भगवान्की प्रेरणासे कर्ममें प्रवृत्त उन्होंने उस कमलमें प्रवेश कर उसे एक ही में तीन भाग बनाये। जिसके आगे चलकर चौदह भाग किये क्योंकि वह भी अनेक प्रकारसे विभाग करने योग्य था ॥ ८ ॥ यह त्रिलोकी जीवोंके भोगस्थानकी रचना थी, जिसकी रोज सृष्टि होती है। वह ब्रह्मलोक तो निष्काम कर्मका फल है ॥ ९ ॥ विदुरजीने कहा—ब्रह्मन्, अद्भुत कर्म करनेवाले बहुरूपी हरिका जो काल नामका रूप आपने कहा है, उसका वर्णन कीजिये ॥ १० ॥ मैत्रेयजीने कहा—गुण परिणाम जो महदादि है, उसीसे जिसका आकार ज्ञात होता है, स्वतः जो अखण्ड है, अपर्यवसायी है यानी आदि-अन्तसे शून्य है, ऐसा

तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः ॥ पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥५॥ तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ॥ विवृद्धवि-ज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ॥६॥ तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ॥ अनेन लोकान्प्राग्लीनान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ॥ ७ ॥ पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः ॥ एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥ ८ ॥ एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ॥ धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥ ९ ॥ विदुर उवाच ॥ यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ॥ पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ॥ ११ ॥ विश्वं वै ब्रह्म-तन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ॥ ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥ १२ ॥ यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् ॥ सर्गो नवविध-स्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥ १३ ॥ कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ॥ आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वितीय-स्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ॥ भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥ चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ॥ वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥ १६ ॥ षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ॥ षडिमे प्राकृता सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥ १७ ॥ रजो-

काल जिसका उपादान है ऐसे अपनेको भगवान्ने लीलासे विश्वरूपमें उत्पन्न किया ॥ ११ ॥ विष्णुकी मायासे विश्वका संहार होने पर जब सारा विश्व ब्रह्ममात्र सद्रूप स्थित था, तब ईश्वरने अव्यक्त मूर्ति कालसे उसको अलग प्रकाशित किया ॥ १२ ॥ उसके द्वारा सृष्ट यह विश्व का प्रवाह जैसा अब है वैसा पहले था और बादमें रहेगा। उससे निर्मित हुआ प्राकृत एवं वैकृत सर्ग (सृष्टि) नव प्रकारका तथा प्रकृत-वैकृत मिश्रित एक प्रकारका है ॥ १३ ॥ काल, द्रव्य और गुणके कारण होनेवाले इनके प्रलय भी तीन प्रकारके हैं। प्रकृतिके गुण-वैषम्यसे जो भगवान्की पहली सृष्टि हुई वह महतत्त्व है ॥ १४ ॥ द्रव्य-ज्ञान-क्रियात्मक अहंकार दूसरा, महाभूतोंको उत्पन्न करनेवाले तन्मात्राओंका सर्ग तीसरा ॥ १५ ॥ ज्ञानक्रियात्मक इन्द्रियका चौथा सर्ग तथा इन्द्रियाभिमानी देवता और मनका वैकारिक सर्ग पांचवाँ है ॥ १६ ॥ हे प्रभो, जीवोंका आवरण और विक्षेप करनेवाली पञ्चपर्वात्मक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अविद्याका सर्ग छठा है। ये। छः प्राकृत सर्ग हुए, अब वैकृतसर्गोंका वर्णन भी सुनिये ॥ १७ ॥ हरिमें जिसकी बुद्धि है ऐसे रजोगुणका आश्रय करनेवाले ब्रह्माकी यह लीला है। सातवाँ मुख्य सर्ग है जो छः प्रकारके स्थावरोंकी सृष्टि है—॥ १८ ॥ वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार—बाँस आदि, वीरुध और फूल देकर फलके फलनेवाले पेड़ इनका आहार संचार ऊपर होता है। इनका चैतन्य अव्यक्त रहता है, अन्दरसे स्पर्शमात्रका इनको ज्ञान होता है। इनके अनेक भेद हैं ॥ १९ ॥ आठवाँ सर्ग तिर्यक् प्राणियोंका है, यह अट्ठाईस प्रकारका माना गया है। इनमें केवल आहारादिका ही ज्ञान होता है। ज्ञानशून्य ये होते हैं, सूंघनेसे चीजोंको पहचानते हैं, दीर्घ अनुसंधान इनको नहीं होता ॥ २० ॥ हे सत्तम,

भाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ॥ सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥ १८ ॥ वनस्पत्योषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ॥ उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥ १९ ॥ तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधो मतः ॥ अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ॥ द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २१ ॥ खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा ॥ एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान्पशून् ॥ २२ ॥ श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ॥ सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥ कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः ॥ हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥ २४ ॥ अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ॥ रजोधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥ २५ ॥ वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ॥ वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥ २६ ॥ देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ॥ गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥ २७ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च

गाय, भैंस, हरिण, सूअर, गवय, रुरु, बकरी और ऊँट ये दो खुरवाले पशु हैं ॥ २१ ॥ गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर शरभ और चमरी ये एक खूर वाले प्राणी हैं। हे विदुरजी, अब पाँच नखवाले प्राणियोंको सुनिये ॥ २२ ॥ वे ये हैं—कुत्ता, सियार, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरगोश, शल्लक (साही) सिंह, बन्दर, हाथी कछुआ, गोह तथा मगर इत्यादि ॥ २३ ॥ काक, गृध्र बटेर, भास, भालू, मोर हंस, सारस, चकवा, कौआ, एवं उल्लू इत्यादि पक्षी ॥ २४ ॥ हे विदुरजी, जिनका आहार ऊपरसे नीचे जाता है ऐसे मनुष्योंका सर्ग नवाँ है। इनमें रजोगुणका आधिक्य रहता है। ये कर्ममें तत्पर तथा दुःखमें ही सुख माननेवाले होते हैं* ॥ २५ ॥ हे सत्तम, ये तीनों सर्ग और देवसर्ग भी वैकृतही है। सनत्कुमारादिकोंका सर्ग उभयात्मक है ॥ २६ ॥ देवसर्ग आठ प्रकारका है—१ देवता, पितर, असुर, गन्धर्व अप्सरा, सिद्ध यक्ष—राक्षस चारण भूत-प्रेत—पिशाच, विद्याधरादि, किन्नरादि। हे विदुरजी, इस तरह

* दृष्टान्त—एक देश भारत में ऐसा था जिसमें भगवान् की असीम कृपा थी। वहाँ एक दरिद्र वणिक् रहता था। वह प्रतिदिन की कमाई से अपने कुटुम्ब की रक्षा करता था। इस तरह अपने समय को व्यतीत करता था। एक दिन उसे रात्रि में स्वप्न हुआ कि कल तुम मौन होकर भगवान् का पूजन करोगे तो उसी समय एक साधू भिक्षा मांगने आवेगा। उसको तुम पेट भर भोजन करा देना। इससे तुम्हारा दारिद्र्य दूर हो जायगा। वही हुआ। जो व्यक्ति भगवान् की शरण में जाता है उसको किसी चीज की कमी नहीं रहती।

१ देवतादितीन, गन्धर्वाप्सरा एक, यक्ष राक्षस एक, भूतप्रेतादि एक, विद्याधर-सिद्ध-चरण एक किन्नरादि एक ऐसे आठ होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्मदेव द्वारा विरचित सृष्टिके प्रकार मैंने आपसे कह दिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ अब इसके वंश और मन्वंतर कहेंगे । इस तरह कल्पादिमें रजोगुणका आश्रयकर अमोघसंकल्प स्वयम्भू भगवान् अपने से अपनी सृष्टि करता है ॥ २६ ॥ (इस गुणसे होनेवाले सर्गमें नदीमें घूमनेवाले भंवरेके समान सृष्टि-प्रलयका पूर्वापरभाव नहीं कह सकते, क्योंकि इसका अधीश मायावी है ॥ ३० ॥ हे विदुरजी, इस कल्पमें नाम-रूपादिसे युक्त जो देवासुरादि कहे गये हैं, उन नामरूपोंवाले ही अन्य मन्वन्तरोंमें भी थे ॥ ३१ ॥ ❀

विद्याध्राः किन्नरादयः ॥ दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥ २८ ॥ अतःपरं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च ॥ एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥ सृजत्यमोघसङ्कल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ (गुणव्यत्यय एतस्मिन्मायावित्वादधीशितुः ॥ न पौर्वापर्यं मिच्छन्ति नद्यां भ्राम्यद्भ्रमेरिव ॥ १ ॥ देवासुरादयः च्चत्तः कल्पेऽस्मिन्ये च कीर्तिताः ॥ त एव नामरूपाभ्यामासन्मन्वन्तरान्तरे ॥ २ ॥)

इति श्रीमद्भा० म० तृ० स्कं० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दसवें अध्यायका सार--विदुरजी ने पूछा--भगवान्के अन्तर्हित होनेके बाद ब्रह्माने मन और देहसे कितने प्रकारकी प्रजाओंका निर्माण किया तथा मैंने जो पहले आपसे पूछा था वह भी सब कहिये । मैत्रेयजीने कहा--भगवान्के आज्ञानुसार ब्रह्मदेवने तप किया । फिर उन्होंने देखा कि उसका पद्म और जल जोरकी हवासे काँप रहे हैं तब उन्होंने तपसे बढ़े हुए बलके कारण हवाके साथ जल पी लिया । फिर उस विशाल आकाशमें फैले हुए कमलको देखकर सोचा-इसीसे मैं लोकोंकी रचना करूँगा । फिर उन्होंने कमलमें प्रवेशकर उसमें तीन भागोंकी कल्पना की । यह त्रैलोक्य जीवोंके भोगस्थानके लिए रचित है । विदुरजीने पूछा—भगवान्का जो काल नामक रूप आपने कहा था, उसका वर्णन कीजिये । मैत्रेयजीने कहा—काल अखण्ड है, लेकिन गुणात्मक महदादि उपाधिसे इसका आकार प्रतीत होता है । उस कालको भगवान्ने लीलासे उत्पन्न किया । जब सब विश्व ब्रह्ममें लीन था तब उस कालसे ही भगवान्ने इसको अलग प्रकाशित किया । यह विश्वका प्रवाह ऐसा ही चलता रहता है । प्रकृतिके गुण वैषम्यसे जो महत्तत्त्व हुआ, वह पहला सर्ग, उससे उत्पन्न अहंकार तामसाहंकारसे उत्पन्न पंचतन्मात्राओंका सर्ग तीसरा, तैजसाहंकारसे उत्पन्न दशेन्द्रियोंका चौथा, वैकारिहंकारसे देव और मनका सर्ग पांचवां, पंच-पर्वात्मक अविद्याका सर्ग छठा—ये छः प्राकृत सर्ग हैं । वनस्पत्यादि सात स्थावरोंका सर्ग सातवाँ, अट्ठाइस प्रकारके पशु-पक्षी आदि तिर्यक् प्राणियोंका सर्ग आठवाँ, मनुष्योंका सर्ग नवाँ, इन्द्रियाभिमानी देवताको छोड़कर बाकी आठ प्रकारका देवसर्ग भी वैकृत है । सनकादि कुमारोंका सर्ग मिश्र है—यह दसवाँ है । अब तुम्हें यहाँ मन्वन्तर आदि कहेंगे । संसारकी सृष्टी-प्रलय भँवरके-जैसे चलते ही रहते हैं । इनमें कौन पहले और कौन बादमें हुआ ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

❀ ये दोनों श्लोक क्वाचित्क हैं, इसलिए [""] इस चिन्हसे भीतर कर दिये गये हैं ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ एकादशोऽध्यायः ❀

(कालका निरूपण)

मैत्रेयजो ने कहा—कार्य जगत्‌के जो अंश हैं उनका आखिरी अंश जो अवयवी नहीं है अर्थात् जो विभागके अयोग्य है जिनके समुदायसे लोगोंको अवयवीका भ्रम होता है, ऐसे पदार्थको परमाणु समझना चाहिए ॥ १ ॥ किसी अन्य परिणामको न प्राप्त हुए सत् पदार्थमें यानी एकमात्र कार्यमें जो केवल ऐक्य है तथा जिसमें विशेष पदार्थोंकी विवक्षा नहीं है या भेद विवक्षा नहीं है वह परम महान् है ॥ २ ॥ इसी तरह हे विदुरजी, स्थूल और सूक्ष्म कालका भी इससे अनुमान कर सकते हैं। भगवान्‌की शक्ति जो अव्यक्त है वह परमाणु आदि पदार्थोंमें व्याप्त होकर व्यक्त होती है ॥ ३ ॥ जो परमाणु अवस्थाको भोग करता है वह काल परमाणु उसीके साकल्यको जो भोग करता है वह परममहान् काल है

मैत्रेय उवाच ॥ चरम सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ॥ परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥ १ ॥ सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ॥ कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥ २ ॥ एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ॥ संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥ ३ ॥ स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ॥ ततोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥ अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ॥ जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥ ५ ॥ त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः ॥ शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥ ६ ॥ निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः ॥ क्षणान्पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥ ७ ॥ लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ॥ ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्यामः सप्त वा नृणाम् ॥ ८ ॥ द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ॥ स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥ यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ॥ पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥ १० ॥ ततोः

(मतलब यह है कि—सूर्य जितने समयमें एक परमाणु मात्र देशका अतिक्रमण करता है वह परमाणु काल। जितने समयमें द्वादश राश्यात्मकचक्रका अतिक्रमण करता है वह परम महान् संवत्सरात्मक काल है) ॥ ४ ॥ दो परमाणुका एक अणु, तीन अणुओंका त्रसरेणु उसका प्रत्यक्ष होता है। खिड़कीसे प्रविष्ट सूर्य किरणोंमें जो ऊपरकी तरफ जाते हुए कण दिखाई देते हैं वे ही ये हैं ॥ ५ ॥ जो तीन त्रसरेणु भोग करनेवालोंका काल है उसे त्रुटि कहते हैं। सौ त्रुटियोंका वेध, तीन वेधोंका लव, तीन लवोंका निमिष, तीन निमिषका क्षण, पाँच क्षणोंकी काष्ठा, दस काष्ठाओंका लघु, पन्द्रह लघुकी नाड़िका, छः या सात नाड़ियोंका प्रहर या याम होते हैं ॥ ६, ७, ८ ॥ छः पल तांबेका पात्र बनाकर चार माषोंकी चार अंगुल लम्बी शलाका बनाकर उसके बराबर पात्र मूलमें छिद्र करके उसमें एक प्रस्थ यानी जितने समयमें आजायगा वह काल नाड़िका है ॥ ९ ॥ चार चार यामोंके रात और दिन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होते हैं। ये दिन रात पन्द्रह मिलकर एक पक्ष । हे मानद, ऐसे पक्ष दो होते हैं— एक शुक्ल और एक कृष्ण ॥ १० ॥ दोनों पक्ष मिलकर एक मास होता है, वह पितरोंका एक दिन-रात है। ऐसे दो मासकी एक ऋतु होती है और छः मासका एक अयन होता है। ये अयन भी दक्षिण, उत्तर ऐसे दो होते हैं ॥ ११ ॥ ये दो अयन देवोंके रात-दिन हैं। बारह मासोंका एक वत्सर होता है सौ वत्सर-वर्ष मनुष्योंकी अन्तिम आयु कही गई है ॥ १२ ॥ ग्रह-नक्षत्र-ताराओंके चक्रमें स्थित अनिमिष विभु कालात्मा सूर्य परमाण्वादि क्रमसे द्वादश राश्यात्मक जगत्में घूमता है ॥ १३ ॥ सौर-चान्द्र-बार्हस्पत्य-सावन नक्षत्र मासभेद जो वर्ष होते हैं वे क्रमशः संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर-इन नामसे कहे जाते हैं ॥ १४ ॥ जो सृज्य अंकुरादि बीज आदिकी शक्तिको अनेक प्रकारसे कार्याभिमुख करते हुए अन्तरिक्षमें दौड़ता है वह भूतविशेष-तेजोंमें उसरूपी सूर्य आयु आदिके व्ययसे

समुच्चयो मासः पितृणां तदहर्निशम् ॥ द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥ ११ ॥ अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृत ॥ संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥ ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ॥ संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ॥ १३ ॥ संवत्सरः परिवत्सरः इडावत्सर एव च ॥ अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥ १४ ॥ यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्या पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ॥ कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् ॥ परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ १६ ॥ भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ॥ विश्वं विचक्षते धीरा योग-राद्धेन चक्षुषा ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥ १८ ॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् ॥ संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥ सन्ध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः ॥ तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥ २० ॥ धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते ॥ स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥ २१ ॥

लोगोंकी विषयाशक्तिको निवृत्त करते हुए पुरुषका मोह दूर करता है, सकाम लोगोंको नानाक्रतुओंसे स्वर्गादि फल देता है. उस पंचसंवत्सर प्रवर्तककी पूजा कीजिये ॥ १५ ॥ विदुरजी ने कहा—भगवन्, पितृ, देव और मनुष्योंकी अपने मानसे सौ वर्षकी पूर्ण आयु आपने बता दी अब इस दैनंदिन सृष्टिके बारह जो जन आदि लोकोंमें रहनेवाले हैं उनकी गतिके विषयमें कहिये ॥ १६ ॥ भगवान् कालकी गति भगवान् ही जानते हैं धीर लोग भी योगसिद्ध दृष्टिसे विश्वको देखते हैं ॥ १७ ॥ मैत्रेयजीने कहा—कृत, त्रेता, द्वापर, और कलि ये चार युग और इनकी सन्धि मिलकर देवताओंके बारह हजार वर्ष होते हैं ॥१८॥ कृतादि युगमें क्रमशः चार, तीन दो, एक हजार वर्ष होते हैं एवं उसके दुगुने सौ यानी आठसौ, छःसौ, चारसौ, दोसौ वर्ष—इनका क्रमशः सन्धिकाल होता है ॥ १९ ॥ अगला और पिछला संध्यंश लेकर जो विद्वानों द्वारा यह युग काल बताया गया है उसको युग कहते हैं जिसमें युग धर्म विहित हैं यानी गवालम्भादिधर्म विशेष्यका जहाँ विधान किया गया है। साधारणधर्म तो सन्धिके अंशोंमें भी रहते हैं ॥ २० ॥ कृतयुगमें धर्म चारपादसे मनुष्योंमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहता है, त्रेतादियुगोंमें अधमका एक-एक पाद बढ़नेसे धर्मका एक-एक पाद घटता जाता है ॥ २१ ॥ हे तात, त्रैलोक्यके बाहर ब्रह्मपर्यन्त लोगोंके लिए ऐसे हजार चतुर्युगोंका एक दिन और उतनी ही रात होती है, जिसमें ब्रह्मा सोते हैं ॥ २२ ॥ रात्रिके अन्तिम भागमें फिर त्रैलोक्यका निर्माण शुरू होता है। फिर दिनभरमें चौदह मनु होते हैं ॥ २३ ॥ एकहत्तर युगोंसे कुछ अधिक समय तक एक मनु भोग करता है। पूरे मन्वन्तरमें उसके वंशज पृथ्वीपालक होते हैं। देव, गन्धर्व, इन्द्रादि लोकपाल, सप्तर्षि आदि सब भी उसी समयमें होते हैं, किन्तु प्रत्येक मन्वन्तर में वे अलग होते हैं ॥ २४ ॥ यह ब्रह्माकी प्रतिदिनकी सृष्टि है, जो तीनोंलोकको विषम करती है। जहाँ पर पशु-पत्ती, मनुष्य, पितृ एवं देवताओंकी उनके कर्मोंके अनुसार सृष्टि होती है ॥ २५ ॥ मन्वन्तरोंमें भगवान् अपने मन्वादिरूपोंसे अवतार लेकर पुरुषत्व प्रकट करते हुए इस विश्वका पालन करते हैं ॥ २६ ॥ फिर रातमें

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ॥ तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥ २२ ॥ निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ॥ यावद्दिनं भगवतो मनून्भुञ्जंश्चतुर्दश ॥ २३ ॥ स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ॥ मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ॥ भवन्ति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥ २४ ॥ एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ॥ तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ॥२५॥ मन्वन्तरेषु भगवान्बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २६ । तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ॥ कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥ २७ ॥ तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः ॥ निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥ २८ ॥ त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना । यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥ २९ ॥ तावत्त्रिभुवनं सद्यःकल्पान्तैधितसिन्धवः ॥ प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ॥ ३० ॥ अन्तः स तस्मिन्सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः ॥ योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥ ३१ ॥ एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः । अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयः शतम् ॥ ३२ ॥ यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ॥ पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥३३॥ पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ॥ कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्द-

तमोगुणके एक अंशसे सब विक्रमका संहार कर अपनेमें सबको लीन करके चुप रहते हैं ॥ २७ ॥ भूवादि तीन लोक उसीमें लीन होते हैं और रातके अन्तमें जैसे चन्द्र और सूर्य फिरसे व्यक्त होते हैं वैसे ही फिरसे निकलते हैं ॥ २८ ॥ भगवच्छक्तिरूप संकर्षणकी मुखाग्निसे जब त्रैलोक्यका दाह होता है तब भृगु आदि पीड़ित होकर महर्लोकसे जनलोकमें जाते हैं ॥ २९ ॥ उतनेमें ही तुरन्त प्रलयमें बढ़े हुए समुद्र त्रिभुवनको जलमग्न कर देते हैं। उस समय भयङ्कर हवासे समुद्रोंमें भीषण लहरें उठती हैं ॥ ३० ॥ तब पानीके नीचे अनन्तासन भगवान् योगनिद्रामें सोते हैं और जन आदि लोकके निवासी उनकी स्तुति करते हैं ॥ ३१ ॥ कालगतिसे उपलक्षित इस तरहकी दिन-रातसे ब्रह्माकी सौ वर्षकी पूरी आयु प्रायः क्षीण हो जाती है ॥ ३२ ॥ उसकी आयुका जो आधा भाग है उसको परार्ध कहते हैं। एक परार्ध खतम हो गया, अब दूसरा है ॥ ३३ ॥ पूर्वपरार्धके प्रारम्भमें ब्राह्म नाम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का कल्प हुआ, जिसमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए उनको शब्दब्रह्म कहा जाता था ॥ ३४ ॥ उसी परार्धके आखिरमें पाद्म नामका कल्प हुआ, जिसमें भगवान्के नाभिसरोवरसे लोकपद्म निकला ॥ ३५ ॥ हे भारत, अब यह द्वितीय परार्धका वाराहकल्प चल रहा है, जिसके आरम्भमें भगवान्ने वाराहावतार लिया है ॥ ३६ ॥ यह दोपरार्धात्मक काल उस अपरिच्छिन्न, अनन्त, अनादि, जनार्दनका निमेष है, ऐसा उपचार होता है, वास्तवमें उससे उसकी आयुकी गणना नहीं हो सकती ॥ ३७ ॥ यह जो परमाण्वादि द्विपरार्धान्त काल है, समर्थ होने

ब्रह्मेति यं विदुः ॥ ३४ ॥ तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते ॥ यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥ ३५ ॥ अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ॥ वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥ ३६ ॥ कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ॥ अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥ ३७ ॥ कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः ॥ नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥ ३८ ॥ विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥ ३९ ॥ दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ॥ लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥ ४० ॥ तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

पर भी पूर्ण परब्रह्मपरमेश्वरके ऊपर उसका कुछ नहीं चलता, यह तो देहमें अभिमानवालोंका ही ईश्वर है ॥ ३८ ॥ सोलह विकारोंसे तथा अष्ट प्रकृतियोंसे युक्त ब्रह्माण्ड बाह्य आवरण से आवृत्त होकर पचासकोटि योजन तक विस्तीर्ण है ॥ ३९ ॥ इस प्रमाणसे दस-दस गुना उत्तरोत्तर अधिक भी, जिनमें परमाणुके समान प्रवेश कर सकता है ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्ड जिसके अन्तर्गत है उसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं। वह सब कारणोंका भी कारण है तथा वह साक्षात् पुराण पुरुष महात्मा विष्णुका श्रेष्ठ स्वरूप है ॥ ४०, ४१ ॥

ग्यारहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—जगतमें जो पदार्थ हैं उनमें सबसे छोटा अंश परमाणु है, उसमें अवयव नहीं होते पूरा ब्रह्माण्ड परम महान् है। राशिचक्रस्थित सूर्यके एक परमाणु बराबर देशका भोग करनेमें जितना काल लगता है वह परमाणु काल है पूरे चक्रको भोगनेमें जितना काल लगता है उसीको संवत्सर कहते हैं। दो परिमाणुओंका एक अणु दो अणुओंका एक त्रसरेणु यह प्रत्यक्ष है। तीन त्रसरेणु भोग करनेके लिए आवश्यक काल त्रुटि कहलाता है। ऐसे सौ त्रुटियोंका वेध तीन वेधोंका लव तीन लवोंका निमिष तीन निमिषोंका क्षण, पाँच क्षणोंकी काष्ठा दस काष्ठाओंका लघु, पन्द्रह लघुकी नाडिका छः या सात नाडिकाओंका प्रहर। चार चार यामके रात और दिन होते हैं। पन्द्रह दिनका पक्ष, शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष मिलकर एक मास, यह पितरोंका दिन-रात है। बारह मासका एक वर्ष उसमें दो अयन होते हैं। दक्षिणायण और उत्तरायण—ये देवताओंके रात-दिन हैं। इस तरह ग्रह नक्षत्र ताराओंके चक्रमें कालात्मा सूर्य भगवान् पूरे चक्रमें घूमते हैं। मैत्रेयजीने कहा—कृत, त्रेता, द्वापर, कलि ये चार युग और इनकी संधियाँ मिलाकर देवमानसे बारह हजार वर्ष होते हैं। उसमें चार हजार वर्षका कृतयुग और उसकी संधि आठसौ वर्षकी है। तीन हजार वर्ष त्रेता और उसी संधि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छःसौ वर्ष की। दो हजार वर्षका द्वापर तथा उसकी संधि चारसौ वर्ष की। कलियुग एकहजार वर्षका संधि दोसौ वर्षकी कृतयुगमें धर्म चतुष्पद रहता है, त्रेतादिमें एक एक पाद अधर्म बढ़नेसे धर्मका एक एक पाद घट जाता है त्रैलोक्यके बाहरके जन आदि लोकोंके लिए ऐसे हजार चतुर्युग एक दिन है उतनी ही रात भी है, जिसमें ब्रह्मा सोते हैं। रातके अंतिम भागमें त्रैलोक्यका निर्माण आरम्भ होता है ॥ एकदिन चौदह मनु होते हैं उसी तरह इन्द्रादि देवता, सप्तर्षि, इत्यादि। उस मन्वन्तरमें उनके वंशज पृथ्वीका पालन करते हैं। मन्वन्तरों में भगवान् मन्वादि रूपसे पृथ्वीका पालन करते हैं। फिर तमोगुणसे सबका संहार पेटमें कर लेते हैं जैसे चन्द्र सूर्य आदि रातमें लीन होकर दिनमें व्यक्त होते हैं उसी तरह फिर लोक व्यक्त होते हैं। जब शेषके मुखाग्निसे त्रैलोक्य जलने लगता है तब भृग्वादि लोग मह आदिलोकसे जनलोकमें जाते हैं। उतनेमें भीषण समुद्र सब जलमय कर देते हैं। तब भगवान् अनन्तासन पर योगनिन्द्रामें सोते हैं। जन आदि लोकनिवासी उनकी स्तुति करते हैं। ऐसे सौ वर्षोंमें ब्रह्माकी भी आयु खतम हो जाती है।

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

[ब्रह्मदेवके शरीर और मनसे सृष्टि]

मैत्रेयजीने कहा—विदुरजीने आपको काल नामक परमात्माकी महिमा बतलाई, अब ब्रह्माने किस तरह सृष्टि की सुनिये ॥ १ ॥ तम-स्वरूप, प्रकाश, मोह-देहमें अहंभाव, महामोह भोगेच्छा, १ तामिस्र-भोगेच्छाके प्रतिघातसे क्रोध, अन्धतामिस्र–उसके नाशसे 'मैं ही मरा' यह भ्रम–ये अज्ञानकी पाँच वृत्तियाँ हैं, उसने सबसे पहले इन वृत्तियोंका निर्माण

मैत्रेय उवाच ॥ इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ॥ महिमा वेदगर्भोऽथ यथाऽस्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ ॥ ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत ॥ महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत । भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत ॥ ३ ॥ सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ॥ शनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः॥ ४ ॥ तान्बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः ॥ तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥ सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ॥ क्रोधं दुर्विषहं

किया ॥ २ ॥ इस पापमय सृष्टिको देखकर वह अपने पर प्रसन्न नहीं हुआ। फिर उसने भगवद्ध्यानसे पवित्र मनसे दूसरी सृष्टि की ॥ ३ ॥ वे सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार हुए। ये लोग नैष्कर्मनिष्ठ तथा ऊर्ध्वरेता थे ॥ ४ ॥ ब्रह्माने उनसे प्रजओंका निर्माण करनेके लिए कहा, लेकिन भगवान् में निरत मोक्षमार्गी उन लोगोंने अस्वीकार कर

१—तमो विवेको मोहः स्यादन्तःकरणविभ्रमः। महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगसुखैषया ॥ मरणं ह्यन्धतामिस्रं तामिस्रं क्रोध उच्यते। अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिया ॥ ५ ॥ पुत्रोंके द्वारा इस तरह अपनी आज्ञाका भंग होते देखकर ब्रह्माको भारी क्रोध आगया। उसको उन्होंने रोकनेका यत्न किया * ॥ ६ ॥ बुद्धिसे क्रोधका निग्रह करनेपर भी उनके भ्रूमध्यसे क्रोध निकल पड़ा वह नीललोहित कुमार हुआ ॥ ७ ॥ वह देवताओंका पूर्वज भगवान् भव रोने लगा और उनसे कहा—जगद्गुरो महान्, हमको नाम तथा स्थान दीजिये ॥ ८ ॥ उसका यह बचन सुनकर उसका पालन करते हुए ब्रह्माने शान्त वाणीसे कहा—रोओ मत, तुमको वही दूँगा ॥ ९ ॥ हे देवश्रेष्ठ, तुम सोद्वेग बालकके समान रोये हो, इसलिये रुद्र इस नामसे ही तुम्हें लोग पुकारेंगे ॥ १० ॥ हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तप—ये सब तुम्हारे लिए पहले ही स्थान बनाके रखे हैं। ११ ॥ मन्यु, मनु, महेशान महान्, शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव तथा धृतव्रत—ये नाम और लो। हे रुद्र, धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत,

जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुविर्मध्यात्प्रजापतेः ॥ सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥ स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान्भवः ॥ नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥८॥ इति तस्य वचः पाद्मो भगवान्परिपालयन् ॥ अभ्यधाद्भद्रया वाचा मारोदीस्तत्करोमि ते ॥ ९ ॥ यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ॥ ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्रो इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ॥ सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥ मन्युर्मनुर्महेशानो महान् शिव ऋतुध्वजः ॥ उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १२ ॥ धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका ॥ इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥ १३ ॥ गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः ॥ एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥ १४ ॥ इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः ॥ सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥ १५ ॥ रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद्ग्रसतां जगत् ॥ निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ॥ १६ ॥ अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ॥ मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥ १७ ॥ तप

सर्पिरिला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा एवं रुद्राणी—ये तुम्हारी स्त्रियाँ हैं ॥ १२, १३ ॥ ये नाम, स्थान और स्त्रियाँ लेकर तुम अनेक प्रजाओं की सृष्टि करो क्योंकि तुम प्रजाओंके पति हो ॥ १४ ॥ भगवान् ब्रह्मदेवकी आज्ञा पाकर नीललोहित भगवान् (शंभु) ने बल, आकार और स्वभावसे अपने समान प्रजाओंकी सृष्टि की ॥ १५ ॥ रुद्रके द्वारा सृष्टि हुई भयंकर प्रजाओंको चारो ओरसे जगत्का ग्रास करते हुए देखकर ब्रह्मदेवने रुद्रसे कहा——॥ १६ ॥ हे सुरश्रेष्ठ, इस तरहकी प्रजा उत्पन्न करना बन्द करो। ये तो अपनी भयंकर आँखोंसे मेरे साथ सब प्रजाओंको जला रहे हैं ॥ १७ ॥ हे भद्र, अतः तुम सभी भूतोंको सुख देनेवाला तप करो, तुम्हारा कल्याण होगा। उसीसे तुम पूर्वके समान

* दृष्टान्त - काशीमें एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। वे यज्ञ यागादि कार्योंमें जाया करते थे। एक समय उन्हें बीकानेर जाना पड़ा। वहाँ एक धूर्त विद्वान् से उनकी मुठभेड़ होगयी। धूर्तने उनका पाण्डित्य बिगाड़कर अपनी विद्वता की धाक जमा दी। इसलिए क्रोध करना पापका मूल है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस विश्वकी सृष्टि कर सकोगे ॥ १८ ॥ तपसे ही मनुष्य सभीके हृदयमें रहने वाले श्रेष्ठ ज्योतिर्मय भगवान् अधोक्षजको शीघ्र निश्चय पा सकता है ॥ १९ ॥ मैत्रेयजीने कहा——ब्रह्मदेवके इस तरह आज्ञा देने पर, ठीक है, ऐसा कहकर उनकी परिक्रमा करके रुद्र वनमें तपके लिए चले गये ॥ २० ॥ फिर लोकसन्तानके मूल, भगवान्की शक्तिसे युक्त ब्रह्मदेवके सृष्टिका विचार करने पर उनको दस पुत्र हुए ॥ २१ ॥ उनमें मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दसम नारदजी हुए ॥ २२ ॥ ब्रह्माकी जाँघसे नारद, अंगूठेसे दक्ष, प्राणसे वसिष्ठ, चमड़ेसे भृगु, हाथसे क्रतु, नाभिसे पुलह, कानोंसे पुलस्त्य, मुखसे अंगिरा, आँखोंसे अत्रि और मनसे मरीचि उत्पन्न हुए ॥ २३ २४ ॥ फिर दाहिने स्तनसे स्वयं नारायण जिससे प्राप्त होते हैं ऐसा धर्म उत्पन्न हुआ। जिससे लोकमें भयंकर मृत्यु होती है ऐसा अधर्म पीठसे उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ हृदयसे काम, भौंवोंसे क्रोध, नीचे

आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ॥ तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥ १८ ॥ तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतगुहावास-
मञ्जसा विन्दते पुमान् ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमात्मभुवादिष्टः परिक्रम्य गिरांपतिम् ॥ बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥ २० ॥
अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥ भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥ २१ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥ उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः ॥ प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः
॥ २३ ॥ पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ॥ अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २४ ॥ धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र
नारायणः स्वयम् ॥ अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥२५॥ हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ॥ आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्नि-
र्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥२६॥ छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ॥ मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥२७॥ वाचं दुहितरं स्वयंभु-
र्हरतीं मनः ॥ अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥ तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ॥ मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्य-
बोधयन् ॥ २९॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ॥ यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥ तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जग-

के ओठसे लोभ, मुखसे वाणी, गुह्यसे समुद्र, गुदद्वारसे पापके आश्रय यम, छायासे सर्वसमर्थ कर्दम प्रजापति, जो देवहूतिके पति थे, उत्पन्न हुए। इस तरह ब्रह्माके मन और देहसे विश्वकी यह सृष्टि हुई ॥ २६, २७ ॥ हे विदुरजी, मनको हरण करनेवाली अपनी पुत्री सुन्दरी वाणीको देखकर सकाम दृष्टिसे ब्रह्माने उसकी कामना की, यद्यपि वाणीके मनमें काम नहीं था यह हमने सुना है ॥ २८ ॥ इस तरह अपने पिता ब्रह्माको अधर्ममें प्रवृत्त होते देख विश्वासके कारण मुनि मरीच्यादि पुत्रोंने कहा—॥ २९ ॥ हे प्रभो, तुम कामका निग्रह करो, जो अपनी पुत्रीके साथ संभोग करनेको तैयार हुए हो। इस तरहका अनुचित कार्य आजसे पहले न किसीने किया है और न कोई दूसरे आगे करेंगे ॥ ३० ॥ हे जगद्गुरो,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिन तेजस्वी लोगोंके चरित्रका अनुकरण करता हुआ संसार कल्याण प्राप्त करता है, उनलोगोंके लिए भी यह कीर्तिकर नहीं है ॥ ३१ ॥ जिन्होंने अपने तेजसे अपनेमें ही स्थित इस सम्पूर्ण विश्वको प्रकट किया, उन भगवान्को नमस्कार है। वे ही धर्मकी रक्षा कर सकते हैं ॥ ३२ ॥ इस तरह पुत्रोंके प्रार्थना करने पर प्रजापतियोंके मुख्य ब्रह्मदेव उन प्रजापतियों को सामने खड़ा देखकर लज्जित हुए और उन्होंने वह शरीर छोड़ दिया ॥ ३३ ॥ उस भयंकर नीहारको, जिसे तम भी कहते हैं, दिशाओंने ले लिया। एकबार इस विश्वकी पूर्ववत् सुसंगत सृष्टि कैसे करूँ, ऐसा विचार करते-करते ब्रह्माके चारो मुख से चार वेद निकले ॥ ३४ ॥ उसी वेदमें यज्ञोंके विस्तार तथा अध्वर्यु, होता, उद्‌गाता और ब्रह्मा—इन चारोंके कर्म थे। उपवेद न्याय भी वेदोंके साथ थे। धर्मके चार पाद एवं आश्रम धर्म भी उनके साथ ही उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥ विदुरजीने कहा—हे तपोधन, विश्वस्रष्टाओंके स्वामी ब्रह्माने

दुशे ॥ यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥ तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ॥ आत्मस्थं व्यञ्जयमास स धर्मं पातुमर्हति ॥३२

स इत्थं गृणतः पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ॥ प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥ ३३ ॥ तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः

कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ॥ कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथापुरा ॥ ३४ ॥ चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह ॥ धर्मस्य

पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥ ३५ ॥ विदुर उवाच ॥ स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् ॥ यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन

॥ ३६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥ ३७ ॥ आयुर्वेदं

धनुर्वेदं गन्धर्वं वेदमात्मनः ॥ स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३८ ॥ इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ॥ सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः

ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ३९ । षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ ॥ आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् । ४० ॥ विद्या दानं तपः

धर्मस्येति पदानि च ॥ आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥ ४१ ॥ सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ॥ वार्ता सञ्चयशालीनशि-

वेदादिकोंको मुखसे उत्पन्न किया तथा किस अवयवसे किसकी सृष्टि की, यह मुझसे कहिये ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजीने कहा—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन दिशाओंके मुखोंसे क्रमशः ऋक्, यजु, साम तथा अथर्ववेदकी सृष्टि की। उन्हींसे शास्त्र—गीत रहित मंत्र, स्तोत्र—होताके मंत्र, इज्या—अध्वर्युकर्म तथा प्रायश्चित्त क्रमशः उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ फिर उसी क्रमसे आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व तथा शिल्पको पूर्वादि मुखोंसे क्रमशः उन्होंने उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ सर्वज्ञ सबके ईश्वर ब्रह्माने अपने सभी मुखोंसे पञ्चम वेद इतिहास और पुराणोंकी सृष्टि की ॥ ३९ ॥ पूर्वमुखसे षोडशी और उक्थ, दक्षिणसे चयन और अग्निष्टोम, पश्चिमसे आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा उत्तरमुखसे गो सवके साथ वाजपेयको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥ उसी क्रमसे विद्या, दान, तप और सत्य—ये धर्मके चार पाद उत्पन्न किये। एवं अपने वृत्तियोंके साथ आश्रम उत्पन्न किये ॥ ४१ ॥ ब्रह्मचर्य चार प्रकारका है—सावित्र, प्राजापत्य, ब्राह्म और बृहत्। गृहस्थवृत्ति भी चार प्रकारकी है—अनिषिद्ध कृष्यादि, याजनादि अयाचित और शिलोञ्छ ॥ ४२ ॥ वैखानस, वालखिल्य, औदुम्बर और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

फेनप—ऐसे वानप्रस्थ भी चार प्रकारके हैं । कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—ऐसे संन्यासी भी चार प्रकारके हैं ॥ ४३ ॥ आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड नीति—ये चार मोक्ष, धर्म, काम तथा अर्थकी विद्याएँ क्रमशः पूर्वादि मुखोंसे निकलीं उसके हृदयाकाशसे व्याहृति और प्रणव निकले ॥ ४४ ॥ उस विभु प्रजापतिके लोमोंसे उष्णिक्, चर्मसे गायत्री, मांससे त्रिष्टुभ्, स्नायुसे अनुष्टुप् अस्थिसे जगति—ये शब्द निकले ॥ ४५ ॥ मज्जासे पंक्ति, प्राणसे बृहतीछन्द निकले । उसका जीव ही स्पर्शवर्ण और देह स्वर वर्ण है ॥ ४६ ॥ उस प्रजापतिकी इन्द्रियोंसे ऊष्मवर्ण, वलसे अन्तस्थवर्ण और क्रीडासे सप्त स्वर निकले ॥ ४७ ॥ व्यक्त-वैखरी और अव्यक्त-प्रणव जिसका स्वरूप है ऐसे शब्द ब्रह्मशरीरी ब्रह्मा को इन्द्रादि नाना शक्तियोंसे युक्त सर्वव्यापक पूर्ण ब्रह्मरूपी परमेश्वरका प्रत्यक्ष होता है ॥ ४८ ॥ फिर ब्रह्माने अनविद्ध कामसे आसक्त दूसरा शरीर धारण कर सृष्टि की इच्छा

लोञ्छ इति वै गृहे ॥ ४२ ॥ वैखानसा वालखिल्यौदुम्बराः फेनपा वने ॥ न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥ ४३ ॥ आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च ॥ एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥४४॥ तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ॥ त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ॥ स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥४६॥ ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तस्था बलमात्मनः ॥ स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥ शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ॥ ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥ ४८ ॥ ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ॥ ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥ ४९॥ ज्ञात्वा तद्वृद्धये भूयश्चिन्तयामास कौरव ॥ अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥५०॥ न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् ॥ एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥ ५१ ॥ कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ ५२ ॥ यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥ स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ ५३ ॥ तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे ॥ स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥ ५४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥५५॥

की । हे कौरव, अत्यन्त वीर्यशाली ऋषियोंकी अल्प सृष्टि देखकर उसकी वृद्धिका उसने फिर विचार किया । उसने सोचा—अहो, यह बड़ा आश्चर्य है कि मेरे सतत इसी कार्यमें लगे रहने पर भी इन प्रजाओंकी वृद्धि नहीं हो पाती । इसमें दैव ही कारण है । इस तरह दैवका विचार कर उचित काम करनेवाले ब्रह्माने अपने दो रूप बनाये, जो 'काम' कहा जाता है । उन रूपोंके विभागोंसे मिथुन—एक जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥ ४९—५२ ॥ उसमें जो पुरुष था वह स्वायंभू स्वराट् मनु और जो स्त्री थी वह शतरूपा—उस मनुकी रानी थी ॥ ५३ ॥ फिर मैथुनी प्रजाकी वृद्धि शुरू हुई । उस मनुने शतरूपामें पाँच सन्तान उत्पन्न किये ॥ ५४ ॥ हे भारत, उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो लड़के तथा हे सत्तम, आकूति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ॥ दक्षायाऽदात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२॥

॥३३॥ देवहूती और प्रसूती ये तीन लड़कियाँ थीं ॥ ५५ ॥ हे विदुरजी, उस मनुने रुचिको आकूती, कर्दमको देवहूती तथा दक्षको प्रसूतिका दान किया। उन्हींकी सन्ततिसे यह जगत् भर गया है ॥ ५६ ॥

बारहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, ब्रह्माने किस प्रकार सृष्टि की, सुनिये। पहले अज्ञानकी पाँच वृत्तियोंकी सृष्टि की। तदनन्तर भगवान्का ध्यान कर दूसरी सृष्टि की। वे चार सनकादि कुमार हुए। निवृत्तिमार्गी उनकी सृष्टि विस्तारकी अस्वीकृतिमें ब्रह्मदेवको क्रोध आगया। उनके क्रोधसे निललोहित रुद्र हुए। उनकी भयङ्कर सृष्ट प्रजासे संसारको जलते देख ब्रह्मदेवने तप करनेको भेज दिया। बाद—ब्रह्माने मरीचि आदि नौ ऋषि उत्पन्न किये। तदनन्तर धर्म, अधर्म, काम, क्रोध, लोभ, वाणी, समुद्र, यम और कर्दम प्रजापति, उत्पन्न हुए। वाणीको देखकर ब्रह्माके मनमें कामका उद्भव हुआ उस पिताको अधर्ममें प्रवृत्त होते देख मरीच्यादि पुत्रोंने कहा—ब्रह्मन्, पुत्रीमें गमन करनेकी प्रवृत्ति ठीक नहीं है, ऐसा कर्म पहले किसीने नहीं किया है, न कोई करेगा। जिनके चरित्रका लोग अनुकरण करेंगे ऐसे लोगोंके लिए यह कदापि कीर्तिकर नहीं हो सकता। पुत्रोंकी प्रार्थना सुनकर उनके सामने ब्रह्माजी लज्जित हुए और उस भावको छोड़ दिया। उससे निहाररूपी तम निकला। फिर सृष्टिके बारेमें विचार करते हुए ब्रह्माके चारों मुखोंसे चारों वेद निकले। उन्हीं मुखोंसे उद्गाता आदि ब्रह्माके चार कर्म निकले। आयुर्वेद, धनुर्वेद गान्धर्व तथा शिल्प भी उसी क्रमसे उत्पन्न हुए। षोडशी और उक्थ्य आदि संस्थायें निकलीं। विद्या, दान, तप, सत्य, ये धर्मके पाद निकले और वृत्तियों सहित चार आश्रम भी उत्पन्न हुए। एवं ब्रह्मचर्यके प्रकार, गृहस्थ वृत्तियाँ, वानप्रस्थ के प्रकार और संन्यासभेद भी उत्पन्न हुए। चार पुरुषार्थकी चार विद्याएँ भी निकलीं। फिर प्रणवके साथ व्याहृति, उष्णिगादिछन्द, ऊष्मवर्ण, अन्तस्थवर्ण और स्वर निकले। इतना होनेपर ब्रह्माने सोचा—मैं लगातार यह काम कर रहा हूँ, फिर भी सृष्टि बढ़ती नहीं, उसका कारण दैव ही है। उन्होंने अनिषिद्ध कामाशक्त शरीर धारण कर उसके दो भाग किये—वह स्त्री पुरुषका एक जोड़ा बना। उसमें पुरुष स्वायंभूमनु और स्त्री शतरूपा थी। उससे फिर मैथुन प्रजा की वृद्धि शुरू हुई। मनुको शतरूपामें प्रियव्रत और उत्तानपाद ये पुत्र और आकूति, देवहूति तथा प्रसूती—ये कन्याएँ हुईं। मनुने आकूती रुचिको, देवहूती कर्दमको और प्रसूती दक्षको दे दी। उन्हींकी सन्ततिसे यह जगत् भर गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❋

(वाराहावतारसे पृथ्वीका उद्धार)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, महर्षि मैत्रेयकी पुण्यमय वाणी सुनकर कौरवश्रेष्ठ विदुरने भगवान्‌की कथामें आदर रखनेके कारण फिर पूछा—॥ १ ॥ विदुरजीने कहा—हे मुने, स्वयंभू भगवान्‌के प्रिय सम्राट् स्वायंभु मनुने प्रिय पत्नीको पाकर क्या किया ? ॥ २ ॥ उस आदि राजा स्वायंभूका चरित्र श्रद्धावान् मुझसे कहिये, हे सत्तम, वह भगवान्‌का बड़ा भक्त था ॥ ३ ॥ भगवान् मुकुन्दका पादारविन्द जिनके हृदयमें है ऐसे लोगोंके गुणोंका श्रवण ही अनेक श्रमसे किये गये शास्त्र श्रवणमें मुख्यरूपसे विद्वानों द्वारा प्रशंसित है ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्ण जिसके उत्संग पर अपने चरण प्रेमसे पसारते हैं ऐसे विदुरका विनीत वचन सुनकर मुनि मैत्रेयजी आनन्दित हुए,

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ॥ भयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥
स वै स्वायंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः ॥ प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥ २ ॥ चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ॥
ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥ ३ ॥ श्रुतस्य पुंसां सुचिर श्रमस्य नन्वञ्जसासूरिभिरीडितोऽर्थः यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं
हृदयेषु येषाम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ॥ प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो
मुनिरभ्यचष्ट ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः ॥ प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥ ६ ॥ त्वमेकः
सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता । अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥ ७ ॥ तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ॥ यत्कृत्वेह
यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर ॥ यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनाऽ
र्पितम् ॥ ९ ॥ एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ॥ शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥ १० ॥ स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो

उनके शरीर पर रोंगटे खड़े हो गये भगवत्कथासे आनन्दित होकर वे बोले ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—जब स्वायंभू मनु अपनी भार्याके साथ उत्पन्न हुए तब नमस्कार कर दोनों हाथ जोड़ वे ब्रह्मदेवसे बोले ॥ ६ ॥ आप ही हम सब भूतोंके जन्मदाता तथा वृत्तिदाता पिता हैं, अतः आपकी शुश्रूषा हम प्रजाएँ किस कामसे करें ॥ ७ ॥ आपको हम नमस्कार करते हैं। आप हमें हमारे योग्य कामकी आज्ञा दें जिससे हम इस लोक और परलोकमें गतिलाभ कर सकें ॥ ८ ॥ ब्रह्मदेवने कहा—तात, तुमपर मैं प्रसन्न हूँ। हे पृथिवीपालक, तुमने जो निष्कपटभावसे अपनेको अर्पित कर आज्ञा माँगी, इसलिए तुम्हारा भला हो ॥ ९ ॥ हे वीर, मत्सर छोड़कर अपने गुरुजनोंकी आज्ञाका यथाशक्ति पालन करना पुत्रोंके लिये सबसे बढ़कर अपने गुरुजनोंकी पूजा है। बस, यही करना चाहिये ॥ १० ॥ अतः तुम इस अपनी पत्नीमें अपने समान गुणोंसे युक्त प्रजा उत्पन्न करो और धर्मसे पृथ्वीका पालनकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यज्ञों द्वारा भगवान्की पूजा करो ॥ ११ ॥ प्रजाकी रक्षासे मेरी उत्तम शुश्रूषा होगी। उससे तुम्हारे ऊपर भगवान् हृषीकेश भी प्रसन्न होंगे ॥ १२ ॥ जिनपर यज्ञमूर्ति भगवान् सन्तुष्ट नहीं हुए उनके श्रम व्यर्थ हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी आत्माका आदर नहीं किया ॥ १३ ॥ मनुने कहा—हे पापनाशन भगवान्, आपकी आज्ञाका मैं पालन करूँगा, आप मुझे और प्रजाओंको स्थान दीजिये ॥ १४ ॥ सभीका आश्रयस्थान पृथ्वी पानीमें डूबी है, भगवन्, उसके उद्धारका यत्न कीजिये ॥ १५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—विदुरजी, ब्रह्माने पृथ्वीको पानीमें मग्न देखकर 'इसका कैसे उद्धार करूँ' ऐसा देरतक अपनी बुद्धिसे विचार किया ॥ १६ ॥ इधर सृष्टि करते यह भूमि फिर जलमग्न होकर रसातलमें चली गई। अब सर्गमें नियुक्त हमलोगोंको क्या करना चाहिये, जिसके हृदयसे मैं उत्पन्न हुआ वे भगवान् ही उस मेरे कार्यको सम्पादित करें ॥ १७ ॥ इस तरह विचार करते हुए उनके नासारन्ध्रसे छोटा

गुणैः ॥ उत्पाद्य शासधर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥ परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप ॥ भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशो नु तुष्यति ॥१२॥ येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ॥ तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥१३॥ मनुरुवाच ॥ आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ॥ स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४ यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि ॥ अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥ मैत्रेय उवाच ॥ परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् ॥ कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥ १६ ॥ सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता ॥ अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥ यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ १७ ॥ इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ ॥ वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥ तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत॥ गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥१९॥ मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ॥ दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥ किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ॥ अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः॥ अपिस्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥२२॥ इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः ॥ भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥ २३ ॥ ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च

सा वराह निकला, जो अंगूठेके बराबर था ॥ १८ ॥ हे भारत, ब्रह्माके देखते-ही-देखते क्षणभरमें वह वराह हाथीके बराबर हो गया, वह एक आश्चर्य ही था ॥ १९ ॥ मरीच्यादि ब्राह्मणों के, सनकादि मुनियों के तथा मनुके साथ ब्रह्माने उस वराहरूप को देखकर अनेक प्रकारसे विचार किया ॥ २० ॥ यह सूअरके समान प्राणी क्या होगा ? बड़ा आश्चर्य है, यह मेरी नाकसे निकला है पहले यह अंगूठे के बराबर दिखा, फिर क्षणभरमें बड़े भारी चट्टानके समान हो गया। यह नाकसे निकला है ॥ २१ ॥ यह भगवान् विष्णु तो नहीं हैं, जो अपना रूप छिपाकर मेरे मनको खिन्न कर रहे हैं ॥ २२ ॥ इस तरह अपने पुत्रोंके साथ ब्रह्मदेव विचार कर ही रहे थे, इतनेमें वराहरूपधारी पर्वत सदृश विष्णु भगवान्ने गर्जना की ॥ २३ ॥ अपने गर्जनसे दिशाएँ प्रतिध्वनित करते हुए सर्व व्यापक भगवान्ने ब्रह्मा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और उनके पुत्रोंको आनन्दित किया ॥ २४ ॥ अपने खेदको दूर करने वाले मायामय सूकरका गर्जन सुनकर जन-तप-सत्य लोकके निवासी मुनिलोगोंने तीनों वेदसे उनकी स्तुति की ॥ २५ ॥ वेदमें स्तुत भगवान्‌ने उन लोगोंसे किये गये अपने गुणोंका अनुवाद जानकर फिरसे गर्जना की और देवताओंकी भलाईके लिए गजराजके समान क्रीडा करते हुए जलमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ अपनी पोंछ ऊपर उठाते हुए, कन्धेके बालोंको झटकारते हुए, खुरोंसे मेघोंको नष्ट करते हुए वे कठोर आकाशचारी रोमयुक्त चमड़ेवाले, सफेद दाँतों वाले पृथ्वीके उद्धारक भगवान् वराह अपने नेत्रसे ज्योति प्रकाशित करते हुए शोभ रहे थे ॥ २७ ॥ वराहरूपधारी वह स्वयं यज्ञरूपी विष्णु पशुके समान नाकसे सूँघकर पृथ्वीका पता लगाते हुए, कराल दंष्ट्रासे युक्त होनेपर भी अपनी शान्त दृष्टिसे स्तुतिकर रहें ब्राह्मणोंको देखकर जलमें प्रविष्ट हुए ॥ २८ ॥ वज्रमय पर्वतके समान जिसका शरीर है ऐसे वराहके

द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥२४॥ निशम्यतेर्घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ॥ जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ॥२५॥ तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ॥ विनद्य भूयो विबुधदयाय गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥२६॥ उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् । खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्ज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ॥२७॥ घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ॥ करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ॥२८ ॥ स वज्रकूटाङ्गनिपातवेग-विशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ॥ उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वरः पाहि मेति ॥२९॥ खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप उत्पारपारं त्रिपरू रसा-याम् ॥ ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥ स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ॥ तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं सुनाभसन्दीपिततीव्रमन्युः ॥३१॥ जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं सलीलयेभं मृगराडिवाम्भसि ॥ तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥ तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाऽङ्ग ॥ प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकैर्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम्

गिरनेके वेगसे मानो समुद्रका पेट फट गया और गर्जनके रूपसे मानो वह दीर्घ लहररूपी हाथोंको ऊपर उठाकर यज्ञेश्वर मेरा रक्षण करो, ऐसा आर्त होकर चिल्लाने लगा ॥ २९ ॥ बाणके समान तीक्ष्ण अपने खुरोंसे 'अपार समुद्र जलका पार मिले' इस विचारसे जलको चीरते हुए यज्ञरूपी भगवान्‌ने रसातलमें स्थित पृथ्वी देखी जीवाधार भूत जिस पृथ्वीको उस जलमें सोनेकी इच्छासे स्वयं भगवान्‌ने अपने पेटमें धारण किया था ॥ ३० ॥ अपने दंष्ट्राओंसे डूबी हुई पृथ्वीका उद्धारकर रसातलसे उठे हुए वह भगवान् वराह शोभने लगे। उस जलमें भी गदा लेकर दौड़े आये, असह्य पराक्रमी, रोकनेवाले दैत्यका सुदर्शनके समान तीव्र रोषसे सहजमें ही लीलापूर्वक, जैसे सिंह हाथीको मारता है, वैसे ही मार डाला। उस समय उसके रक्तसे लाल जिनका मुख हो गया है ऐसे भगवान् पृथ्वीका भेदन करने वाले गजराजके समान शोभ रहे थे ॥ ३१, ३२ ॥ हे विदुरजी, गजेन्द्रके समान शुभ्र दाँतों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से पृथ्वीको ऊपर फेंकते हुए तमालके समान नीलवर्ण भगवान् वराहकी ब्रह्मादि लोग हाथ जोड़कर अनुवाकोंसे स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ ऋषियोंने कहा—हे अजेय, तुमने जीत लिया, जीत लिया। हे यज्ञपते, वेदमय शरीरधारी तुमको नमस्कार है। जिसके रोमछिद्रोंमें यज्ञलीन होते हैं, पृथ्वीके उद्धारके लिए जो वराह बने ऐसे आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे देव, तुम्हारा यह यज्ञात्मकरूप पापियोंको नहीं दीखता, जिसके चर्ममें छन्द, रोमोंमें दर्भ, दृष्टिमें आज्य, चारो पदोंमें होत्रादि चार ऋत्विगोंके कर्म हैं ॥ ३५ ॥ जिसके मुखाग्रमें स्रुक्, नासाओंमें स्रुवा, उदरमें इडापात्र, कर्णरन्ध्रमें चमस, मुखमें प्राशित्र और गलेमें ग्रह है भगवान् तुम्हारा चर्वणही अग्निहोत्र है ॥ ३६ ॥ तुम्हारी बार-बार अभिव्यक्तिही दीक्षणीयेष्टि, ग्रीवाही उपसद, दो दंष्ट्राएँ प्रायणीय-उदयनीय इष्टियाँ हैं। जिह्वा प्रवर्ग्य है, शिरोभाग ही सभ्य और औपासनाग्नि है, प्राणही चमस है ॥ ३७ ॥ सोम तुम्हारा रेत है,

।३३। ऋषयः ऊचुः ॥ जितं जितं तेऽजित यज्ञ भावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ॥ यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ ३४ ॥ रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ॥ छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥ स्रुक् तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ॥ प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३६॥ दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ॥ जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥३७॥ सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ॥ सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥३८॥ नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ॥ वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभाविज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥३९॥ दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ॥ यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥४० ॥ त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ॥ चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥४१॥ संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ॥ विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥ कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ॥ न विस्मयोऽसौ

सवन आसन है, अग्निष्टोमादि संस्थाएँ धातु हैं, सत्र शरीरसन्धियां हैं तथा ससोम और असोम यजन संधान है ॥ ३८ ॥ मंत्र-देवता तथा द्रव्यरूप, क्रतु और क्रियास्वरूप एवं वैराग्य भक्ति तथा इन्द्रिय जय द्वारा, जिनका साक्षात्कार होता है ऐसे विद्यागुरु आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे भूधर, आपके द्वारा दंष्ट्राओंकी नोकपर धारण की गई यह पर्वतों सहित पृथ्वी ऐसी शोभा दे रही है, जैसी वनसे निकल रहे मतवाले गजेन्द्रकी दाँतसे धारणकी गई पत्रोंके साथ पद्मिनी ॥ ४० ॥ अपने शिखरोंसे पकड़ रक्खे गये महान् मेघसे जैसे कुलाचलेन्द्रकी अतिशय शोभा होती है—वह जैसे खूब शोभता है, वैसे ही हे भगवान्, दाँतसे पकड़ रक्खे गये इस भूमण्डलसे आपका यह वेदमय सूकरका रूप खूब शोभ गया है ॥ ४१ ॥ स्थावर-जंगम सृष्टिके वासस्थानके लिए आपकी पत्नी और सम्पूर्ण जगत्‌की माता इस पृथ्वीको रख दीजिये। भगवन्, आप सभीके पिता हैं। फिर तो इसके ऊपर स्थित होकर हम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सबके सब आप पिताके साथ माताको हृदयसे प्रणाम करेंगे, जिस पृथ्वीमें आपने, अरणीमें अग्निके समान, अपना तेज रखा है ॥ ४२ ॥ प्रभो, आपके सिवा भक्त दूसरा कौन है, जो रसातलको प्राप्त पृथिवीका आपने उद्धार किया है वह करनेकी अपनेमें स्पृहा करेगा ? लेकिन विश्वके लिए आश्चर्यभत आपके लिए यह बिलकुल विस्मयकर नहीं है । आप तो अपनी मायासे इस अद्भुत जगत्की सृष्टि करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन्, यह वेदमय शरीर झटकारते हुए आपने उसके रोमाग्रसे उड़े हुए जलके छीटोंसे जन-तप-सत्यलोक निवासी हम लोगोंको सींचते हुए अत्यन्त शरीर पवित्र कर दिया है ॥ ४४ ॥ अनन्तकर्म करनेवाले आपके कर्मोंका पार जो देखना चाहता हो वह मूर्ख है उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । जिसकी योग मायाके गुणोंके योगसे यह सारा विश्वमोहित है ऐसे आप हे भगवन्, इस समस्त जगत्का कल्याण कीजिये ॥ ४५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह उन ब्रह्मवाद मुनियोंसे स्तुति होकर

त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४३ ॥ विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपः सत्यनिवासिनो वयम् ॥ सटाशिखोद्धूत-शिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥४४॥ स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ॥ यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥ ४५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥४६॥ स इत्थं भगवानुर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः ॥ रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥ य एव मेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ॥ शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥ ४८ ॥ तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ॥ अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥ ४९ ॥ को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुरा-कथानां भगवत्कथासुधाम् ॥ आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे वाराह-प्रादुर्भावानुवर्णने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

रक्षक भगवान्ने अपने खुरसे आक्रांत जलमें पृथ्वी रखदी ॥ ४६ ॥ इस प्रकार विष्वक्सेन प्रजापति भगवान् हरिलीला पूर्वक रसातलसे उद्धृत पृथ्वीको जलमें रखकर स्वयं चल दिये ॥ ४७ ॥ जो लोकदुःखहर संकल्पवाले वर्णनीय मायामय चरित भगवान्की कल्याणकर कथाको भक्तिसे सुनेगा या सुन्दर कथाको सुनायेगा उसके हृदयमें जनार्दन भगवान् शीघ्र प्रसन्न होंगे ॥ ४८ ॥ सभी आशाओंके स्वामी भगवान्के प्रसन्न होनेपर क्या दुर्लभ है ? लेकिन तुच्छ उन आशाओंसे कोई प्रयोजन सिद्ध होनेका नहीं । परब्रह्म परमात्मा भगवान् तो अनन्यभावसे भजन करनेवालोंको उनके हृदयमें रहकर खुद ही अपना उन्हें पद देते हैं ॥ ४९ ॥ अहो, पशुको छोड़कर ऐसा कौन जगत्में पुरुषार्थके तत्त्वको जाननेवाला है, जो पूर्ववृत्तोंके मध्यमें किसी तरह भवरोग नाशक भगवत्कथामृतका अपने कर्णपुटोंसे पानकर उनसे विरत हो सके ॥ ५० ॥

तेरहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—स्वायंभू मनुने उत्पन्न होते ही अपनी भार्याके ब्रह्मदेवको प्रणाम कर कहा—आप हमलोगोंके पिता हैं हमें आप ऐसा कर्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करनेकी आज्ञा दें, जिससे हम दोनों लोकोंमें योग्य गतिका लाभ करें। ब्रह्मदेवने कहा—तात, तुमपर मैं प्रसन्न हूँ। तुम अपनी भार्यामें प्रजा उत्पन्न करके धर्मसे पृथ्वीका पालन करो, यही मेरी सेवा है। इसीसे तुमपर भगवान् प्रसन्न होंगे। मनुने कहा—भगवन्, आपकी आज्ञाका पालन करूँगा, लेकिन मुझे और प्रजाओंको स्थान दीजिए। सभीका आश्रय स्थान पृथ्वी पानीमें डूबी है। यह सुनकर ब्रह्मदेव पानीमें डूबी पृथ्वीके उद्धारका विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—मैं इधर सृष्टि कर रहा था, इतनेमें पृथ्वी जलमें डूब गई। अब स्वर्गमें नियुक्त हमलोग क्या करें। हमारे जन्मदाता भगवान् ही योग्य कार्य सम्पादित करें। ऐसा विचार कर रहे ब्रह्माके नाकसे एक वराहाकार जन्तु निकला। निकलते ही क्षणभरमें वह हाथीके बराबर हो गया। उसे देखकर ब्रह्मा तथा उनके पुत्र मरीच्यादिने विचार किया—यह वराहाकार प्राणी क्या होगा। यह तो देखते ही देखते चट्टानके बराबर हो गया। यह यज्ञरूपी विष्णु तो नहीं हैं। इतनेमें वराहरूपधारी विष्णुकी गर्जना सुनकर जन-तप-सत्य निवासी सभी वेदोंमे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुतिको सुन भगवान् फिर गर्जना करते हुए जलमें प्रविष्ट हो गये। उन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठायी और कन्धेके बाल झटकारे। रोमयुक्त चमड़ेवाला सफेद-दाँत युक्त वह वराह भगवान् आकाशमें चमकने लगे। फिर पशुके समान नाकसे सूंघकर उन्होंने पृथ्वीका पता लगाया और शान्तदृष्टिसे लोगोंको देखते हुए जलमें कूद पड़े। फिर उस अपार जलको चीरते हुए रसातलमें जा पहुँचे। वहाँसे पृथ्वीको अपने दंष्ट्रासे उठाकर वे ऊपर ले आये। और अपने ऊपर गदा लेकर और दौड़े हुए दैत्यको लीलापूर्वक उन्होंने मार भगाया। उन तब भगवान्‌की ब्रह्मादिदेव स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—हे यज्ञपते, आपको नमस्कार है। आपके रोमछिद्रोंमें यज्ञलीन होते हैं। पृथ्वीके उद्धारके लिए आपने यह अवतार लिया है। आपका यह यज्ञात्मक रूप पापियोंको नहीं दीखता। जिसके चर्ममें छन्द, रोमोंमें दर्भ तथा इस तरह सर्वावयवमें यज्ञांग हैं ऐसे मंत्र-देवता द्रव्यरूपी आपको नमस्कार है। आप सबके विद्यागुरु हैं। आप सभीके पिता हैं तथा पृथ्वी माता है। आप इसको रखिये, तब हमलोग इसके ऊपर स्थित हो माताको प्रमाण करेंगे। आपके गुणोंका जो पार देखना चाहता है वह मूर्ख है। आपकी मायासे ऐसी स्तुति सुनकर भगवान् पृथ्वीको समुद्रमें रख वहाँसे अन्तर्हित हो गये।

❀ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❀

[दितिका गर्भ धारण]

श्रीशुकदेवजीने कहा—मैत्रेयऋषिसे वर्णित वराह रूपधारी भगवान् हरिकी कथा सुनकर व्रती विदुरजीको तृप्ति न हुई। उन्होंने भगवान् मैत्रेयजीसे हाथ जोड़कर फिर

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ॥ पुनः स पप्रच्छ तामुद्यताञ्जलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥१॥ विदुर उवाच ॥ तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ॥ आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥ २ ॥ तस्य चोद्धरतः क्षोणीं

पूछा ॥ १ ॥ विदुरने प्रश्न किया—हे मुनिश्रेष्ठ, उसी यज्ञमूर्ति वराह रूपधारी विष्णु भगवान्‌ने आदिदैत्य हिरण्याक्षको मारा, ऐसा हमने आपके ही मुखसे सुना है ॥ २ ॥ जब वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वराह भगवान् अपने दंष्ट्राग्रसे लीलापूर्वक पृथ्वीको ऊपर उठा रहे थे, तब हे ब्रह्मन्, उनका दैत्यराजसे क्यों युद्ध हुआ ? ॥ ३ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे वीर, आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया जो आप मर्त्योंके मृत्युपाशको तोड़नेवाली भगवान्की अवतारकथाके विषयमें पूछ रहे हैं ॥ ४ ॥ जिस हरि-कथाको कहरहे नारदसे बाल्यकालमें सुनकर उत्तानपादके पुत्र ध्रुवजी मृत्युके सिरपर पैर रखके भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ इस विषयमें बहुत दिन पहले देवोंसे पूछे जानेपर देवदेव ब्रह्माके द्वारा कहा गया यह इतिहास मैंने सुना है ॥ ६ ॥ हे विदुरजी, दक्षकी पुत्री दितिने एकबार अपने पति मरीचि पुत्र कश्यपसे सन्ध्याके समय ही कामपीडित हो पुत्रेच्छासे प्रार्थनाकी ॥ ७ ॥ भगवान् अग्नि जिस यज्ञपति पुरुषका पयसे हवनकर सूर्यास्तके समय अग्निहोत्रशालामें समाहितचित्तसे बैठे कश्यपके पास आकर दितिने कहा ॥ ८ ॥ दितिने कहा—हे ब्रह्मन्, आपके लिये यह काम धनुष लेकर अपना

स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ॥ दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥३॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ॥ यत्त्वं पृच्छसि-मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥ ४ ॥ ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः ॥ मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥ ५ ॥ अथात्रापीतिहासोऽयंश्रुतो मे वर्णितः पुरा ॥ ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥ ६ ॥ दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् ॥ अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥७॥ इष्ट्वाऽग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ॥ निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यगारे समाहितम् ॥८॥ दितिरुवाच ॥ एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशरासनः ॥ दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥ ९ ॥ तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहम् ॥ १० ॥ भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः ॥ पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥ ११ ॥ पुरा पिता नो भगवान् दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥ १२ ॥ स विदित्वात्मजानां नो भावं सन्तानभावनः ॥ त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥ १३ ॥ अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन ॥ आर्तोपसर्पणं भूमन्न मोघं हि महीयसि ॥ १४ ॥ इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ॥ प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥ १५ ॥ एष तेऽहं

शौर्य प्रकट करके मुझ दीनाको ऐसे पीडित कर रहा है, जैसे कि कदलीको हाथी पीडित करता है ॥ ९ ॥ अतः प्रजावान् सौतोंकी समृद्धिसे जलरही मुझपर आप पूर्ण अनुग्रह कीजिये आपका भला हो ॥ १० ॥ अपने पतिसे बहुमान पानेवाली उन स्त्रियोंका यश विश्वमें प्राप्त होजाता है जिनको आप—जैसा पति ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥ पहले ही हमारे पिता दक्षने कन्याओंके अधिकस्नेह होनेके कारण सभी पुत्रियोंको बुलाकर उनसे अलग-अलग पूछा था कि बेटी तुम किस वरको चाहती हो ॥ १२ ॥ तब हम लोगोंका भाव जानकर सन्तान वत्सल पिताने उनमेंसे तेरहको आपके शीलका अनुसरण करनेके कारण आपको दान किया ॥ १३ ॥ हे कमलाक्ष, हे कल्याणकर, मेरी कामना पूर्ण कीजिए। हे भूमन् आर्तका आप—सरीखे महान्के पास आना कभी व्यर्थ नहीं हो सकता ॥ १४ ॥ हे वीर, इस तरह बहुभाषिणी, प्रवृद्ध कामसे पीडित उस दीनाको अपनी मीठी वाणीसे प्यार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते हुए भगवान् कश्यप बोले ॥ १५ ॥ हे भीरु, मैं तुम्हारा यह प्रिय करता हूँ। जिससे त्रिवर्गकी प्राप्ति होती है। उसकी इच्छाको कौन पूर्ण नहीं करेगा ? ॥ १६ ॥ गृहस्थ अपने आश्रम धर्मसे सभी आश्रमोंको सन्तुष्टकर आप भी दुःखसमुद्रको पार करता है, जैसे कि जलयानसे समुद्र पार किया जाता है ॥ १७ ॥ जिसको मंगल चाहनेवाले शरीरका आधा अंग कहते हैं। हे भाविनि, जिसपर अपना सब भार रखकर पुरुष निश्चिन्त विचरता है, जिसका आश्रयकर हमलोग, इधर आश्रमियोंके द्वारा अजेय इन्द्रियरूपी शत्रुओंको लीलासे जीतते हैं, जैसा कि दुर्गपति दस्युओंको। हे मेरे घरकी स्वामिनि, भला तुमपर अनुग्रह करनेमें हम समर्थ नहीं हैं। मैं ही क्या, जो और गुणग्राही लोग हैं, वे भी अपनी पूरी आयुमें भी तुम लोगोंका प्रत्युपकार नहीं करसकते ॥ १८–२० ॥ फिर भी तुम्हारी इस इच्छाको मैं प्रजाके लिए पूर्ण करता हूँ, लेकिन एक मुहूर्त ठहरो, ताकि मेरी लोग निन्दा न करे ॥ २१ ॥ यह

विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ॥ तस्याः कामं न कः कुर्यात्सद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥ १६ ॥ सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ॥ व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ॥ १७ ॥ यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ॥ यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥१८॥ यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ॥ वयं जयम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ १९ ॥ न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ॥ अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥ २० ॥ अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् । यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥२१॥ एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ॥ चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥ २२ ॥ एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान्भूतभावनः ॥ परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥ श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ॥ भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥२४॥ न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्याद्दतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ॥ वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥ यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ॥ निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः

अत्यन्त घोरतम वेला भयङ्कर भूत-प्रेतादिकोंकी है, यह स्वयं भयावनी दीखती है। इस समय भूतेश शंकरके अनुचर संचार करते हैं इसमें तनिक भी सन्देह न करना ॥ २२ ॥ हे साध्वि, इस संध्यामें भगवान् भूतराट् रुद्र अपने भूत पार्षदोंके साथ वृषपर आरुढहो इधर-उधर संचार कहते हैं ॥ २३ ॥ श्मशानके बवडंरकी धूलिसे धूसर और उन्मुक्त जिनका द्युतिमान जटा-कलाप है, भस्मसे जिनका सुवर्णसमान देह ढका हुआ है ऐसे तुम्हारे देवर रुद्र भगवान् अपने चन्द्र-सूर्य अग्निरूपी तीनों नेत्रोंसे देखरहे हैं ॥ २४ ॥ जिनका इस लोकमें न कोई स्वजन है, न पराया न कोई स्नेहास्पद है, न निन्दास्पद। अहो, हम लोग अनेक व्रतों द्वारा जिनकी आराधना कर जिनके चरणसे निर्माल्यवत् दूरकर दी गई, भुक्तभोगा मायामयी विभूतिको 'महाप्रसाद' समझकर चाहते हैं ॥ २५ ॥ अविद्या पटलको जो फोड़ना चाहते हैं ऐसे बुद्धिमान् लोग जिसके निर्दोष चरित्रकी स्तुति करते हैं। जिनके समान या श्रेष्ठ कोई नहीं है, जो सज्जनोंकी गति हैं, फिर भी पिशाचके-जैसा आचरण करते हैं ॥ २६ ॥ वस्त्र-माल्य-आभरण-चन्दन इत्यादिकोंसे इस कुत्तेके खाद्य शरीरको स्वात्म रूपसे लालन करने वाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन आत्मतृप्तकी प्रवृत्ति न जाननेवाले दुर्भागी लोग उनके चरितको हँसते हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मादि देव जिनकी मर्यादाके रक्षक मात्र हैं, जिनसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है, माया जिनकी आज्ञाकारिणी है वह पिशाचके जैसा रहते हैं। अहो, सचमुच परमेश्वरकी लीला विचित्र है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह भर्ताके कहने पर भी उस दितिने मन्मथसे पीडित अपनी इन्द्रियोंके कारण लज्जा छोड़कर वेश्याके समान ब्रह्मर्षि कश्यपका वस्त्र पकड़लिया ॥ २९ ॥ उन्होंने अपनी भार्याका उस निषिद्ध कर्ममें वैसा निर्बंध देखकर दैवको प्रणाम किया और एकान्तमें जा उस दितिके साथ मैथुन क्रीडा की ॥ ३० ॥ फिर स्नानकर प्राणायाम कर मौन होकरके शुद्ध सनातनतेजका ध्यान करते हुए गायत्रीका जप किया ॥ ३१ ॥ हे भारत, उस निन्द्यकर्मसे लज्जित होकर दिति उन विप्रर्षिके पास आकर नीचे मुँह करके बोली ॥ ३२ ॥ दितिने कहा ब्रह्मन्, भूतोंके स्वामी रुद्र मेरे इस गर्भको न मारे। रुद्र भूतोंके

सताम् ॥२६॥ हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्रतस्याविदुषः समीहितम्। यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥२७॥ ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया। आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया ॥ जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥ २९ ॥ स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि ॥ नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥३०॥ अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥ दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ॥ उपसङ्गम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥३२॥ दितिरुवाच ॥ मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन् भूतानामृषभोऽवधीत् ॥ रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥ ३३ ॥ नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ॥ शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥ ३४ ॥ स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ॥ व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ॥ निवृत्तसन्ध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥ ३६ ॥ कश्यप उवाच ॥ अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ॥ मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥ ३७ ॥ भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ॥ लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयि-

पति हैं, जिनका मैंने अपराध किया है ॥ ३३ ॥ महादेव, उग्र, इष्टफलदाता, रुद्रमूर्ति, दण्ड त्यागकरनेपर भी संहारके लिए दण्डधारक, क्रोधयुक्त शिवको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ वह हमारी भगिनीके पति, निदयके भी दयाके पात्र स्वरूप स्त्रियोंके देव, सतीपति, महान् जिनका अनुग्रह है ऐसे भगवान् शंभु हमपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—अपने अपत्यका लोकद्वयमें कल्याण चाहनेवाली काँपती हुई भार्यासे संध्याकालीन नियम समाप्त होनेपर प्रजापति कश्यप बोले ॥ ३६ ॥ कश्यपजीने कहा—तुम्हारे चित्तके विक्षिप्त होजानेके कारण तथा मुहूर्तदोषके कारण, मेरे आदेशका उलंघन करनेके कारण तथा देवताओंकी अवहेलना करनेके कारण तुम्हें अधम दो पुत्र होंगे और होंगे वे महान् अभद्रकारी। हे अभद्रे चण्डि, जब उनके अत्याचारसे लोकपालोंके साथ तीनों लोक खूब आक्रन्दन करने लग जायँगे, निरपराधी दीन प्राणी मारे जायँगे, स्त्रियाँ पकड़ी जायँगी, महात्मा लोग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुपित होंगे, तब लोकरक्षक विश्वेश्वर भगवान् क्रुद्ध होकर अवतार लेंगे और इन्द्र जैसे वज्रसे पर्वतोंको मारते हैं, वैसे ही उनको मारेंगे ॥ ३७-४० ॥ दितिने कहा—हे विभो, मेरे पुत्रोंका वध साक्षात् चक्रपाणि भगवान् से हो, क्रुद्ध ब्राह्मणोंसे न हो, यह मैं चाहती हूँ ॥ ४१ ॥ ब्रह्मदण्डसे दग्ध तथा सभीको भयदेनेवाले पर, जिस-जिस योनिमें वह जाता है, वहाँके नारकीय लोग भी अनुग्रह नहीं करते ॥ ४२ ॥ कश्यपजीने कहा—तुमको अपने अपराधका पश्चात्ताप होनेके कारण, शीघ्र युक्तायुक्त विचार आजानेके कारण, रुद्रका सम्मान करनेके कारण तथा मेरे ऊपर भी आदर रखनेके कारण तुम्हारे पुत्रके पुत्रोंमें एक सज्जनसम्मत होगा, जिसका शुद्ध यश भगवान्के यशके साथ गाया जायगा ॥ ४३, ४४ ॥ जैसे खराब सुवर्णको शुद्ध करनेके लिए अनेक उपायोंसे उसे शोधते हैं, उसी तरह तुम्हारे उस पौत्रके चरितका अनुकरण करनेके लिए साधुलोग निर्वैरादि योगोंसे अपनेको शुद्ध करेंगे

ष्यतः ॥ ३८ ॥ प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम ॥ स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषुमहात्मसु ॥ ३९ ॥ तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः ॥ हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन् शतपर्वधृक् ॥ ४० ॥ दितिरुवाच ॥ वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ॥ आशासे पुत्र पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥ ४१ ॥ ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च ॥ नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥ ४२ ॥ कश्यप उवाच ॥ कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ॥ भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥ ४३ ॥ पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ॥ गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥ ४४ ॥ योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः ॥ निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥ ४५ ॥ यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ॥ स स्वदृग्भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥ ४६ ॥ स वै महाभगवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ॥ प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ॥ ४७ ॥ अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ॥ अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाधिकं तापमिवोडुराजः ॥ ४८ ॥ अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ॥ पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥ मैत्रेय उवाच ॥ श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ॥ पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामनाः ॥ ५० ॥ इति श्रीम० भ० तृ० दितिकश्यपसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ ४५ ॥ जिसके अधीन यह विश्व है और जिसके प्रसादसे प्रसन्न होता है ऐसे स्वप्रकाश भगवान् उसकी अनन्य भक्तिसे सन्तुष्ट होंगे ॥ ४६ ॥ महाभागवत, महानुभाव महात्माओंमें श्रेष्ठ वह महात्मा बढ़ीहुई भक्तिसे शुद्ध हृदयमें भगवान्को धारणकर-निःसन्देह देहाभिमान छोड़ देगा ॥ ४७ ॥ वह अलम्पट, शीलवान् गुणी, दूसरेकी समृद्धिसे हृष्ट तथा दुःखसे दुःखित, शत्रुरहित होकर, ग्रीष्मकालीन तापका जैसे चन्द्रमा हरण करता है, उसी तरह जगत्के शोकका हरण करेगा ॥ ४८ ॥ तुम्हारा वह पौत्र कमलनेत्र, अपने भक्तोंकी इच्छासे बार-बार शरीर धारण करनेवाले चमकदार कुण्डलासे शोभित मुखवाले लक्ष्मीरूपी ललनाके ललाम यानी मण्डन, निर्मल भगवान् को अन्दर और बाहर देखेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजीने कहा—अपना पौत्र परम भागवत होगा और पुत्र भगवान्से मारे जायंगे, यह जानकर दिति अत्यन्त सन्तुष्ट हुई, उसका हृदय उस समय उत्साहसे भर गया ॥ ५० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चौदहवें अध्यायका सार---विदुरजीने प्रश्न किया—हे मुनिश्रेष्ठ, वराह भगवान्‌ने हिरण्याक्षको मारा, ऐसा हम सुनते हैं, तो पृथ्वीका उद्धार करनेवाले भगवान् का उस दैत्यके साथ क्यों और कैसे युद्ध हुआ ? । मैत्रेयजीने कहा--हे विदुरजी, देवोंके इस विषयमें पूछने पर ब्रह्माने जो इतिहास कहा था, वह मैं कहता हूँ, सुनिये--दक्षपुत्र दितिने एक बार संध्यासमयमें अग्निहोत्र होम कर अग्न्यागारमें बैठे अपने पति कश्यपके पास जाकर कामपीडित होनेके कारण पुत्रेच्छासे प्रार्थना की। उसने कहा—ब्रह्मन्, पुत्रवती सौतोंकी समृद्धि देख मुझे ईर्ष्या होती है, अतः आप मुझपर भी अनुग्रह कीजिये। दितिका भाषण सुन कश्यपने कहा–हे भीरु, मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करता हूँ। किन्तु यह समय घोर है। भूत-प्रेतादिकोंके साथ भगवान् शंकर इस समय संचार करते हैं। अतः कुछ देरतक ठहर जाओ। वह श्मशान भस्मसे चर्चित तुम्हारा देवर रुद्र अपने तीनों नेत्रोंसे देखरहे हैं। वह समबुद्धि विचित्र-चरित्र हैं। मैत्रेयजीने कहा---हे विदुरजी, अपने पतिके ऐसा समझानेपर भी कामार्त दिति वेश्याके समान मुनिवरका वस्त्र खींचने लगी। तब दैवको श्रेष्ठ समझकर उसे प्रणाम करके कश्यपने उसके साथ क्रीडा की। फिर स्नान करके प्राणायामादि करनेके बाद वे गायत्रीका जप करने लगे। तब दितिको अपने कियेपर पश्चाताप होगया। वह लज्जित होगई। भगवान् रुद्रसे भी डरगयी। वह फिर कश्यपके पास आकर नीचे मुंह करके बोली---ब्रह्मन्, मैंने भूतपति रुद्रका अपराध किया है, अतः रुद्र मेरे इस गर्भको न मारें। महादेव रुद्रमूर्ति संहार के लिए दण्ड धारक शिवको मेरा नमस्कार है। दयनीय स्त्रियों के देव सती पति हैं, लोगोंपर अनुग्रह करने वाले हैं, मेरे ऊपर प्रसन्न हों। इस तरह अपने अपत्यका कल्याण चाहने वाली कांपती हुई दितिसे कश्यपने कहा--तुम्हारा मन शुद्ध न होने के कारण मेरा तथा रुद्रका उल्लङ्घन करने के कारण तथा मुहूर्त दोषसे तुमको दो अधम पुत्र होंगे, जिनके अत्याचारसे सब लोक पीडित होंगे, महात्मा कुपित होंगे। आखिर में भगवान् अवतार लेकर उनका नाश कर देंगे। दितिने कहा--मेरे पुत्रोंका वध भगवान् चक्रपाणिके हाथसे हो यह अच्छा है, लेकिन ब्राह्मणोंसे न हो। ब्रह्मदण्डसे दग्धलोकोंको कहीं गति नहीं मिलती। तब कश्यपने पुनः कहा—तुमको अपने अपराधका पश्चाताप होनेके कारण, शीघ्र सद्‌बुद्धि आजाने के कारण तथा मुझसे एवं भगवान् शिवसे क्षमा चाहनेके कारण तुम्हारे पौत्रोंमें एक परम भागवत होगा, जिसके यशका गान सज्जन लोग भगवान् यशके साथ करेंगे बड़े-बड़े साधु उसके शक्तिका अनुकरण करेंगे। 'अपना पौत्र परम भागवत होगा' यह जानकर दितिको हर्ष हुआ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(कुमारों का जय-विजय को शाप)

मैत्रेयजीने कहा--दूसरे तेजोंको अभिभूत करने वाले प्रजापति कश्यपके उस तेजको दितिने देवताओं द्वारा पीड़ा पहुँचानेकी आशंकासे सौ साल तक धारण किया। उस

मैत्रेय उवाच ॥ प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः ॥ दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥ १ ॥ लोके तेन हतालोके लोकपाला

गर्भके तेजसे सूर्य आदिका प्रकाश मंद पड़ गया लोकपालों का प्रभाव जाता रहा। तब देवताओं ने ब्रह्मदेवके पास जाकर अंधेरेके कारण दिशाओंका संकट उन्हें बताया ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवोंने कहा--हे विभो, जिससे हम अत्यन्त उद्विग्न हैं, इस तमका कारण आप जानते ही हैं। कालसे जिनके ज्ञानपर असर नहीं होता ऐसे भगवान् आपको कुछ भी अविदित नहीं है ॥ ३ ॥ हे देवदेव, हे जगत्के धारक, हे लोकनाथोंके नाथ, पर और अपर भूतोंके अभिप्रायको आप जानते हैं ॥ ४ ॥ विज्ञानही जिनका बल है ऐसे मायासे ब्रह्मशरीर धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। जिन्होंने रजोगुणका ग्रहण किया है ऐसे व्यक्त प्रपंचके कारण आपको नमस्कार है ॥५॥ जिनमें कार्यकारणात्मकभुवन ओत-प्रोत है जो अपनेमें सम्पूर्ण भुवनोंको ग्रथित किये हुय भी अपनी स्वरूप शक्तिसे वस्तुतः कार्यकारणरूप उनसे परे हैं, ऐसे आपका जो अनन्यभावसे ध्यान करते हैं, जिनका योग परिपक्व होचुका है, जिन्होंने श्वास और इन्द्रियोंको जीत लिया है, आपके प्रसादको पाकर उन लोगोंका किसीसे पराभव नहीं होता ॥६,७॥ रस्सीसे बँधी गौओंके समान, सभी प्रजाएँ जिनकी वाणीके अधीन होकर उन्हें बलि देतीं हैं, उन मुख्य

हतौजसः ॥ न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ॥ न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥ ३ ॥ देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे ॥ परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥ ४ ॥ नमो विज्ञानवीर्याय माययेद-मुपेयुषे ॥ गृहीतगुणभेदाय नमस्ते व्यक्तयोनये ॥ ५ ॥ ये त्वाऽनन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनम् ॥ आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्म-कम् ॥ ६ ॥ तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् ॥ लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥७॥ यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः ॥ हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥ ८ ॥ स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् ॥ अदभ्रदयया दृष्ट्या आप-न्नानर्हसीक्षितुम् ॥ ९ ॥ एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् ॥ दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः ॥ प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः ॥ चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥ १२ ॥ त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः ॥ ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकन-मस्कृतम् ॥ १३ ॥ वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः ॥ येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन् हरिम् ॥ १४ ॥ यत्र चाद्यः पुमानास्ते

आपको नमस्कार है ॥८॥ हे भूमन्, तमके कारण जिनके कर्मोंका लोप होगया है ऐसे हमलोगोंका आप कल्याण कीजिए। अपनी अखण्डदयायुक्तदृष्टिसे आप हम विपत्ति-पतितोंको देखें ॥९॥ हे देव, कश्यपद्वारा दिया गया दितिका गर्भरूप यह तेज समस्त दिशाओंमें अन्धकार फैलाते हुए इंधनमें अग्निके समान बढ़रहा है ॥ १० ॥ मैत्रेयजीने कहा--हे महाबाहो, इस तरह स्तुत होकर भगवान् ब्रह्मदेव अपनी मधुरवाणीसे देवताओंको आनन्दित करते हुए बोले ॥ ११ ॥ ब्रह्माने कहा--किसी समय मेरे मानसपुत्र सनकादि, जो आपलोगोंसे पहले उत्पन्न हुए, निरिच्छ होकर एकलोकसे दूसरे लोकमें योंही आकाश मार्गसे संचार कररहे थे ॥१२॥ वे घूमते-घूमते एकबार शुद्धस्वभाव, भगवान् विष्णुके वासस्थान सर्वलोक नमस्कृत वैकुण्ठको गये ॥१३॥ निष्कामधर्मसे जिन्होंने भगवदाराधना की है ऐसे सभी पुरुष भगवान्के समान देहधारण करके जिस वैकुण्ठमें निवास करते हैं ॥ १४ ॥ जहाँपर वेदैकवेद्य भगवान्का आदिपुरुष रजोरहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सत्त्वरूप धारणकर हम स्वजनोंका रक्षण करते हुए विराजमान रहते हैं ॥१५॥ जहाँ पर कामदवृक्षोंसे शोभित नैःश्रेयस नामका वन है, जिन वृक्षोंमें सर्वदा सभी ऋतुओंकी शोभा बनी रहती है। उन वृक्षोंकेकारण वह वन मूर्तिमान् कैवल्य सा है ॥१६॥ वहाँ पर स्त्रियोंके साथ विमानोंमें बैठकर घूमनेवाले भगवान्के पार्षद लोग जलके भीतर विकसित होरही मधुसे युक्त माधवी लताओंके फूलोंके गन्धसे बुद्धिमें विघ्न आनेपर भी उस शीतलमन्द सुगन्धवायुका तिरस्कार करके लोगोंके पाप नाशक अपने प्रभु भगवान्के चरित्रोंका गायन करते हैं ॥१७॥ जब वहाँके भृङ्गराज मानों हरिकथाका गान करते हुए गुञ्जारकर उठते हैं तब कबूतर, कोकिल, सारस, चक्रवाक, चातक, हंस, शुक, तित्तिर, और मोरोंका कोलाहल भी थोड़ीदेरके लिये शान्त होजाता है ॥ १८ ॥ जिस वनमें मन्दार, कुन्द, कुरव, उत्पल, चम्पक, ऊर्ण, पुन्नाग, नाग, वकुल कमल, और पारिजातके फूल-तुलसी जिनका आभरण है ऐसे भगवान् द्वारा तुलसीकी

भगवान् शब्दगोचरः ॥ सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन् वृषः ॥ १५ ॥ यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ॥ सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥ १६ ॥ वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ॥ अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥ १७ ॥ पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ॥ कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥ १८ ॥ मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्णपुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ॥ गन्धेर्चिते तुलसीकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥ १९ ॥ यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टै र्वैदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ॥ येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥ २० ॥ श्री रूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ॥ संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥ २१ ॥ वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ॥ अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥ २२ ॥ यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादा-

सम्मानित गन्धकेहोनेपर जिस वनमें उसीके तपकी बहुत सराहना करते हैं ॥ १९॥ केवल भगवान्के चरणोंकी सेवासे प्राप्त वैदूर्य, मरकत तथा सुवर्णमय विमानोंसे जो व्याप्त रहता है। जहाँपर कृष्णमयचित्त लोगोंके मनमें भारी नितम्बवाली मुसकुराहटसे शोभित मुखयुक्त स्त्रियाँ अपने परिहासादिसे काम नहीं उत्पन्न करतीं । २० ॥ जिस लक्ष्मीके अनुग्रहके लिए ब्रह्मादि यत्न करते हैं वह मनोहरमूर्ति धारणकर वैकुण्ठमें भगवान्के मन्दिरमें जहाँ सुवर्ण खचित स्फटिकमय दीवाले हैं अपना चांचल्यदोष छोड़कर नूपुरयुक्त चरण-कमलको संस्कृत करते हुए अपने लीलाकमलसे झाड़ू लगाती हुई-सी दीखती हैं ॥ २१ ॥ हे देवताओ, वहाँ लक्ष्मी अपनी परिचारिकाओं साथके प्रवालतटोंसे युक्त तथा स्वच्छ-अमृततुल्य जलयुक्त वापियोंमें कमलवनसे भीतर जब भगवान्की तुलसीसे पूजा करता है, तब वह जलमें प्रतिबिम्बित सुंदर केश तथा नासिकासे युक्त अपने मुखको देखकर 'यह भगवान्के चुम्बनका प्रभाव है ऐसा समझती हैं ॥ २२ ॥ जो पाप-नाशक भगवान्की लीला कथाओंको छोड़कर अन्यविषयकी बुद्धिनष्ट करनेवाली कुत्सित, कथाएँ सुनते हैं, खेद है कि उन अभागे पुरुषोंद्वारा सुनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गई वे कथाएँ उनके पुण्योंको लेकर उन सबको आश्रयहीन नरकोंमें ढकेल देती हैं ॥ २३ ॥ हम भी जिसको चाहते हैं, जिसमें धर्मके साथ तत्त्वज्ञान होता है, ऐसे मनुष्य जन्मको पाकर जो लोग भगवान्‌की विस्तृत मायासे सम्मोहित होकर भगवान्‌का आराधन नहीं करते, वे भी उस लोकमें नहीं पहुँच सकते यह कम खेदकी बात नहीं है ॥ २४ ॥ देवश्रेष्ठ भगवान्‌का अनुसरण करनेके कारण जिनसे यम दूर रहते हैं, जिनका शील स्पृहणीय है, जो आपसमें भगवान्‌के यशके कथनके समय अनुराग वाष्पकलाके साथ पुलकित हो उठते हैं ऐसे लोग ही हमसे ऊपर उस वैकुण्ठधाममें पहुँचते हैं ॥ २५ ॥ ऐसे विश्वगुरु भगवान्‌से अधिष्ठित भुवनैकवंद्य, देवश्रेष्ठोंके विचित्र विमानोंसे शोभायमान, दिव्य, अपूर्व उस वैकुण्ठमें अष्टांग योगके प्रभावसे आकर उस समय सनकादिमुनि परम आनन्दित हुए ॥ २६ ॥ वहाँ पर वे भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठाके कारण अनेक अद्भुत वस्तुओंकी तरफ ध्यान न देकर छः चौक

च्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ॥ यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्तान्क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥२३॥ येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ॥ नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥ २४ ॥ यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ॥ भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥ २५ ॥ तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ॥ आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥२६॥ तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ॥ देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥ २७ ॥ मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तयाऽसितचतुष्टयबाहुमध्ये ॥ वक्त्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥२८॥ द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ॥ सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये सञ्चरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ॥२९॥ तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ॥ वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥ ३० ॥ ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ॥ ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभङ्ग ईषत्कामानुजेन

लांघ गये। सातवीं कक्षामें उन्होंने समानवयस्क गदाधारी अमूल्य केयूरकुण्डल-किरीटसे सुन्दर वेषधारी, मत्तमधुकरोंसे शोभितवनमाला पहने हुए दिव्यमूर्ति द्वारपालोंको देखा, चार नील उनके हाथ थे, उनके ही बीचमें वह वनमाला लटकरही थी, उनका कुटिल भ्रुकुटिसे, उत्फुल्ल श्वासमार्ग युक्त नासापुटसे लालआँखोंसे युक्त—मुख किञ्चित् क्षुब्ध दीखता था ॥ २७-२८ ॥ उनके देखते ही उनसे बिना पूछे सनकादि मुनि द्वारमें घुस गये, जिस तरह इसके पूर्व सुशोभित वज्रमय कपाटोंसे युक्त छः कक्षाओंमें आ गये थे। वे मुनि अपनी सर्वत्र समदृष्टिसे सर्वत्र निःशंकभावसे बेरोक टोक स्वच्छन्द विचरण किया करते हैं ॥ २९ ॥ उन नग्न, वृद्ध होते हुए भी पाँच वर्ष के बच्चेकी तरह प्रतीत हो रहे आत्मतत्त्वज्ञ चार मुनियोंको देखकर भगवान्‌के प्रतिकूल स्वभाव वाले उन द्वारपालोंने उनके तेजको हँस दिया और अपने वेतोंसे उन्हें जानेसे रोक दिया जिन्हें नहीं रोकना चाहिये था ॥ ३० ॥ इस तरह सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवताओंके देखते हुए उन द्वारपालोंने जब पूज्यतम उन मुनियोंको रोक दिया तब भगवान् श्रीहरिको देखनेकी इच्छामें विघ्न आजानेसे उनकी आँखें कुछ क्रोधसे सहसा क्षुब्ध हो गईं, वे बोल उठे उन्होंने कहा—भगवान्‌की उच्च सेवा करके यहाँ आकर भगवान्‌के समान समदर्शी लोगोंमें तुमलोगोंका यह कैसा विषम स्वभाव है। विग्रह रहित प्रशान्त पुरुष भगवान्‌में किसके विरोधकी तुमलोग शंका करते हो। यहाँ तो भगवद्भक्तके सिवा कोई दूसरा आ ही नहीं सकता, फिर यहाँ अपने समान धूर्तलोगोंके प्रवेशकी तुमलोगोंको कैसे शंका हुई ॥ ३२ ॥ धीर लोग—जिसके पेटमें, सारा ब्रह्माण्ड है ऐसे परमात्मा और आत्मामें कुछ भेद नहीं देखते, वे तो महाकाशके अन्तर्गत घटाकाशके समान अपनो आत्माको इनके अन्तर्गत समझते हैं। जब भय आदिका कारण भेददृष्टि है ही नहीं, तब अन्य राजादिकोंके समान हृदयको कंपित करनेवाले भयकी सुरवेषधारी तुमलोगोंने भगवान् में कहाँसे शंका की—जिस वजहसे तुम लोगोंने भयकी आशंका की, वह है क्या ? वस्तुतः कुछ नहीं है ॥ ३३ ॥ इसलिए इन वैकुण्ठपति भगवान् परब्रह्म परमात्माके भृत्य मन्दबुद्धि तुमलोगों

सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥ ३१ ॥ मुनय ऊचुः ॥ को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ॥ तस्मिन्प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां को वात्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥ ३२ ॥ न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ॥ पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥ ३३ ॥ तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम्। लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥ ३४ ॥ तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ॥ सद्यो हरेरनुचरावुरु बिभ्यतस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥ ३५ ॥ भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ॥ मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोधः ॥ ३६ ॥ एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ॥ तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ॥ ३७ ॥ तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताः

की भलाईके लिए ही इस अपराधमें कुछ दण्ड हम सोचते हैं। तुमलोग इस भेददृष्टिके कारण यहाँसे नीचेके लोकोंमें चले जाओ, जहाँ पर भेद दृष्टि रखनेवालोंके काम, क्रोध और लोभ—ये तीन शत्रु रहते हैं ॥ ३४ ॥ ब्रह्मदेवने कहा—उनके भाषणको महाभयंकर जानकर एवं उसे ब्रह्मशाप समझकर तथा उसे अस्त्रोंसे अप्रतीकार्य निश्चय करके भगवान्‌के अनुचरोंने डरते हुए झट उनके चरणोंको पकड़ साष्टांग प्रणाम किया और कातर स्वरसे कहा—॥ ३५ ॥ पापकारी हमलोगोंको आपने जो दण्ड दिया, वह ठीक ही है। ईश्वराज्ञाके अतिक्रमके सम्पूर्ण पापको भी यह नष्ट कर सकता है। लेकिन हे भगवन्, आपके कृपालेशसे हमलोगोंको नीचे जानेपर भी भगवत्स्मृतिका प्रतिघातक मोह न हो बस यही एक आपसे हमारी प्रार्थना है ॥ ३६ ॥ रुन्धनोंके मनको हरनेवाले पद्मनाभ भगवान् शीघ्र ही अपने भृत्योंका यह सज्जनोंमें अतिक्रम देखकर, परमहंस महामुनि जिनको खोजते हैं ऐसे चरणोंमें चलते हुए लक्ष्मीके साथ वहाँ आये ॥ ३७ ॥ भगवान् जब आने लगे तो अनुचरोंने झटपट छत्र, पादुका आदि गमनोचित उपकरण वहाँ ला दिये। उनकी दोनों तरफ हंसके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समान शुभ्र चँवर डोल रहे थे, उनके अनुकूल हवासे चन्द्रके समान शुभ्रछत्रमें लटक रहे हारोंसे जलके छींटे उड़ रहे थे। सभीपर प्रसाद करनेवाला उनका सुन्दर मुखकमल था, स्पृहणीय गुणोंके वे स्थान थे, अपने स्नेहमय कटाक्षसे हृदयको सुख दे रहे थे, स्वर्गके चूडामणिके समान वैकुण्ठलोकको अपनी श्यामविशाल छाती पर शोभित लक्ष्मीसे शोभित कर रहे थे, उन्होंने अपने पुष्ट नितम्ब पर पिताम्बरके ऊपर चमकदार करधनी पहनी थी। गलेमें भ्रमरोंसे प्रखरित वनमाला पड़ी थी उनकी सुन्दर कलाइयोंमें वलय विराजमान थे। एक हाथ गरुड़के कन्धेपर रखा था और दूसरेसे कमल हिला रहे थे। बिजलीसी कान्तिवाले मकरकुंडलोंसे उनके दोनों गण्डस्थल सुशोभित थे। सुन्दर उनकी नासिका थी। हाथों के बीचमें मनोहर हार और गलेमें अमूल्य कौस्तुभ था। उस रूपको देखकर उनके भक्तोंने सोचा कि यहाँ लक्ष्मीके सौन्दर्यका गर्व चूर्ण हो गया। ऐसे अत्यन्त सुन्दर मेरे लिए,

त्वविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ॥ हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरसीकराम्बुम् ॥ ३८ ॥ कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ॥ श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥ ३९ ॥ पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ॥ वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥ ४० ॥ विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ॥ दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्घ्यहारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥ अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम् ॥ मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्गं नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशो मुदा कैः ॥ ४२ ॥ तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्दकिञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ॥ अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥ ४३ ॥ ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ॥ लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रिद्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥ ४४ ॥ पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ॥ पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः

ईश्वरके लिए और आपलोगोंके लिए अवतार लेनेवाले भगवान्‌को, जिनका वे समाधिमें भजन करते थे, अपनी आँखोंके सामने खड़े सनकादि मुनियोंने देखा। बहुत देर तक देखने पर भी उनके नेत्र तृप्त नहीं हुए फिर उन्होंने बड़े आनन्दके साथ सिर नवाकर भगवान्‌को प्रणाम किया॥ ३८–४२॥ कमलनयन भगवान्‌के पादारविंदके परागोंसे मिश्रित तुलसी के मकरन्दकी वायुने उन मुनियोंके नासाछिद्रमें जाकर ब्रह्मानन्दानुभवी उनके भी चित्तको अतिहर्षसे क्षुब्ध कर दिया और उनके शरीरपर भी रोमांच हो आया॥ ४३॥ उन्होंने पहले अत्यन्त सुन्दर अरुण ओष्ठवाले, कुन्दके समान हँसीसे युक्त नीलकमलके गर्भके समान उनके मुखको ऊपर देखा, उसीसे उनके निःसन्देह सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। फिर नीचे अरुणनखमणियोंसे युक्त उनके पादपद्म युगलको देखकर ध्यान करने लगे॥ ४४॥ योगमार्गमें आत्मतत्त्वकी खोज करनेवाले योगियोंके ध्यानके विषयभूत, नयनानन्ददायक अत्यन्त आदरके आस्पद, अनन्यसिद्ध नित्य अणिमाद्यष्टैश्वर्यसे युक्त, उस पुरुष शरीरको दिखा रहे भगवान्‌की स्तुति करना उन्होंने आरम्भ कर दिया॥ ४५॥ कुमारोंने कहा—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे अनन्त, आप हृदयमें रहने पर भी दुरात्माओंको दिखाई नहीं पड़ते। किन्तु आपसे उत्पन्न हमारे पिता ब्रह्माने जब आपके रहस्यका उपदेश किया, तभीसे आपने कर्णके मार्गसे हमारी बुद्धिमें जो प्रवेश किया, सो उसके बाद वहाँसे कभी ओझल नहीं हुए। लेकिन हमारी आँखोंके सामने आज ही आप प्राप्त हुए हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन्, सर्वश्रेष्ठ आपको ही हम आत्मतत्त्व समझते हैं। जो लोग आपकी कृपासे दृढ़भक्तियोग जानकर उनके अनुष्ठानसे निरभिमान हो अतएव विरक्त बनकर अपने हृदयमें जिस रूपका ध्यान करते हैं, वह यह आपका रूप है। इसी सत्त्वमूर्तिसे आप उन्हें प्रतिक्षण आनन्द देते हैं ॥ ४७ ॥ हे भगवन्, आपके चरणकमलको आश्रय लेनेवाले चतुर सज्जन पुरुष लोग कीर्तनीय-पवित्र यशवाले आपकी कथाका रसज्ञ बनकर आपके आत्यन्तिक प्रसादरूप मोक्षका भी आदर नहीं करते—वे मोक्ष भी नहीं चाहते। फिर आपकी एकमात्र भौं टेढ़ी करने से ही भययुक्त

समगृणन्युतमष्टभोगैः ॥ ४५ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः ॥ यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥ ४६ ॥ तं त्वा विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ॥ यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥ ४७ ॥ नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किंत्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ॥ येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥ ४८ ॥ कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्तान्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ॥ वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥ ४९ ॥ प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ॥ तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान्प्रतीतः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इन्द्रादि पदोंको कौन पूछता है ? ॥ ४८ ॥ हे भगवन्, इसके पहले तो हमने कोई पाप नहीं किया था, लेकिन अब तो सब कुछ हो गया, क्योंकि हमने आपके दो भक्तोंको शापयुक्त बना दिया। इसलिए हे परमेश्वर, हमारे पापके कारण भले ही नरकमें हमारा जन्म हो, लेकिन वहाँ भी यदि हमारा चित्त भ्रमरके समान आपके पदककलमें रमण करता रहे, वाणी तुलसीके समान आपके चरणसम्बन्धसे शोभित हो और कान आपके गुणगणोंसे पूर्ण हों, तो हमें वहाँ भी कुछ खराब नहीं लगेगा ॥ ४९ ॥ हे विपुलकीर्ते यह जो रूप आपने हमारे सामने प्रकट किया है, उससे हमारी आँखें बिल्कुल कृतकृत्य हो गईं। हे ईश, अजितेन्द्रिय लोगोंके सामने प्रकट न होनेवाले भगवान् आपने आज इस तरह हमें दर्शन दिया, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—दितिने देवताओंकी पीड़ाकी आशंकासे उस गर्भको सौ सालतक वैसे ही पेटमें धारण किया। लेकिन उस गर्भके तेजके कारण सूर्य चन्द्र आदिका प्रकाश मन्द पड़ गया और सर्वत्र अँधेरा छा गया। तब घबराये हुए देव ब्रह्माजीके पास गये। उन्होंने ब्रह्माजीसे सारी बात बतलायी। देवताओंका वचन सुन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्माजीने उनसे कहा––मेरे मानसपुत्र सनकादि जब निरिच्छ होकर संचार कर रहे थे, तो वे एक समय वैकुण्ठमें पहुँचे। उस वैकुण्ठमें पहुँचकर वे सनकादि मुनि परम आनन्दित हुए। वे वहाँ की सभी अद्भुत वस्तुओंकी तरफ ख्याल न कर छःड्योढ़ियाँ लाँघ गये। वहाँ सातवीं ड्योढ़ी पर समवयस्क गदाधारी चतुर्भुज, केयूर कुण्डल इत्यादिसे अलंकृत वनमाला पहने हुए बिलकुल भगवान्के समान थे। लाल आँखोंसे युक्त उनका मुख किंचित् क्षुब्ध सा दीखता था। उनसे बिना पूछे ही सनकादि मुनि अन्दर जाने लगे। वे मुनि सर्वत्र स्वच्छन्द विचरण करने वाले वृद्ध होने पर भी पाँच वर्षकेसे दीखते थे। वे चारों आत्मतत्त्वज्ञ थे। उनको अन्दर जाते देख उन पुरुषोंने रोक लिया। देवताओंके सामने इस तरह रोकनेपर मुनियोंकी आँखें क्रोधसे क्षुब्ध हो गईं। उन्होंने कहा––जहाँपर अनेक तरहकी निष्काम उपासन कर सभी पहुँचते हैं और भगवान्के समान ही समदर्शी ही होते हैं, वहाँ तुम्हारा ही ऐसा विषम स्वभाव क्यों है? यहाँ तो किसी के रोकने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यहाँ तो भक्तों के सिवाय कोई आता ही नहीं। भगवान् को किसका डर है। अरे भय तो उन लोगों को होता है जो भेद दर्शी हैं, लेकिन भगवद्भक्त और स्वयं भगवान् तो सर्वत्र अभेद ही देखते हैं। फिर तुम्हें यह डरकी शंका कहाँ से आई? तुम लोगोंके इस उद्दण्डताके लिए तुम्हारी भलाईके लिए ही हमें कुछ दण्ड देना चाहिए। अच्छा, तुम नीचलोकमें जन्म लो, जहाँ काम-क्रोध-लोभ ये तीन शत्रु रहते हैं। शाप सुनकर घबराये हुए द्वारपालोंने मुनियोंको साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना की–ब्राह्मणो, आपके शापके कारण हमारे सब अपराधियोंके पाप नष्ट होगये, लेकिन आप इतना ही अनुग्रह कीजिये कि हमको भगवत्स्मृतिविघातक मोह न हो। इस काण्डकी खबर पाकर भगवान् तुरन्त वहाँ पधारे। भगवान्का सर्वाङ्गसुन्दरसर्वातिशायीरूप देखकर मुनियोंके नयन तृप्त नहीं हुए। वे एकबार मुखको निहारते थे और फिर पैरकी तरफ देखकर थोड़ी देर ध्यान करते थे। फिर उन्होंने भगवान्को प्रणाम कर उनकी स्तुति की। उन्होंने कहा–भगवन्, आप हृदयमें रहते हुए भी दुष्टोंके लिए अदृश्य हैं। हमारे पिता ब्रह्माजीने जब आपके रहस्यका उपदेश किया, तभी से कर्णरंध्र द्वारा प्रवेशकर आप हमारे हृदयमें बैठे थे, लेकिन आँखोंके सामने आज ही आये। आपकी कृपासे दृढ़ भक्तियोगसे जिस रूपका लोग ध्यान करते हैं, वही आपका यह रूप है। आपके चरणगहे हुए आपके कथारसका पान करनेवाले रसिक सज्जन मुक्ति भी नहीं चाहते, लेकिन फिर नश्वर इन्द्रादि पदोंको कौन पूछता है? हमने आपके अनुचरोंको शाप देकर पाप किया, इससे अगर हम संसारमें भी जाय, तो भी वहाँ हमारा चित्त आपहीमें लगा रहे। कानसे आपहीकी कथा सुनें और वाणीसे आपका गायन करें। भगवान् आपने जो हमें यह रूप दिखाया, उससे हमारे नेत्र कृत-कृत्य हो गये। आपको हम नमस्कार करते हैं।

❋ अथ षोडशोऽध्यायः ❋

(सनकादि मुनियोंका जय और विजयको शाप)

ब्रह्मोवाच ॥ इति तद्गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् ॥ प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुंठनिलयो विभुः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ तौ

ब्रह्मदेवने कहा––इस तरह स्तुति कर रहे योगमार्गी उन मुनियोंको उस वाक्यका प्रत्यभिनन्दन करके वैकुण्ठवासी भगवान् यह बोले ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा–मुनियो,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन मेरे जय-विजय नामके पार्षदोंने मुझे तुच्छ करके जो आपका अत्यधिक अतिक्रमण किया और उसके लिए मेरे भक्त आप लोगोंने जो इन्हें शाप दिया है, उसका हम अनुमोदन करते हैं, क्योंकि मेरे परमदैवत ब्राह्मणोंका इन्होंने अपमान किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ चूँकि ब्राह्मणही मेरे परम देवता हैं, इसलिए इनके अपराधके लिए अब मैं आप लोगोंसे क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि जो मेरे आदमियोंने अपराध किया, वह खुद मैंनेही किया ऐसा मैं समझता हूँ ॥ ४ ॥ भृत्यके अपराध करनेपर जो उसके स्वामीका लोग नाम लेते हैं वह असाधुवाद स्वामीकी कीर्तिको ऐसे कलंकित करता है जैसे कि श्वेतकुष्ठ चमड़े को ॥ ५ ॥ जिस मेरे अमृतसमान निर्मल यश श्रवणद्वारा अवगाहन (प्रवेश) अतिनीच श्वपच-चाण्डाल से लेकर समस्त जगत्को पवित्र करदेता है वह मैं विकुण्ठ, आपलोगोंके प्रतिकूल आचरण करनेवाले अपने हाथोंको भी काट सकता हूँ, क्योंकि आपलोगोंके ही कारण मैंने सुन्दर

पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ॥ कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥२॥ यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ॥ स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥ ३ ॥ तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे ॥ तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः ॥ ४ ॥ यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ॥ सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥ ५ ॥ यस्यामृतामलयशःश्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ॥ सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥ ६ ॥ यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ॥ न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहन्ति ॥७॥ नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन॥यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥ येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ॥ विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् ॥ ६ ॥ ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ॥ द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥ १० ॥ ये ब्राह्मणा-

और पवित्र कीर्ति पाई है ॥ ६ ॥ जिनकी सेवाके कारण—मेरे पादपद्मका रज पवित्रमाना जाता है। और उसके सम्पर्कसे मैं समस्त लोकका किल्बिष शीघ्र दूर कर देता हूँ। तथा मुझे सुस्वभाव प्राप्त हुआ है, जिसकी कृपादृष्टिके लिए ब्रह्मादिदेव तप करते हैं ऐसी लक्ष्मी आसक्त न होने पर भी मुझे नहीं छोड़ती, वह मैं—आप लोगोंके प्रतिकूल आचरण करने वालेको कभी नहीं सह सकता ॥ ७ ॥ मैं यज्ञमें यजमानके हविको अग्निरूपीमुखसे खाते हुए वैसा नहीं खाता, जैसा चू रहे घीसे शराबोर पायस आदिका प्रत्येक कौर रसास्वादपूर्वक खा रहे ज्ञानी ब्राह्मणके मुखसे खाता हूँ, जो मुझे समर्पित कर्मफलोंसे सन्तुष्ट है ॥ ८ ॥ जिसके पादोदकसे चन्द्रशेखर शिवके साथ समस्तलोक शीघ्र पवित्र होते हैं, अखण्ड अप्रतिहत योगमाया जिसकी विभूति है ऐसा मैं जिनके पवित्र पादकमलोंकी धूलि अपने किरीटोंसे धारण करता हूँ, अपकार कर रहे भी उन ब्राह्मणोंको भला कौन नहीं बर्दास्त करेगा ? ॥ ६ ॥ जो पापसे नष्टबुद्धि मेरे अधिष्ठान गौ और ब्राह्मणोंको भेदबुद्धिके कारण रक्षकहीन अनाथप्राणी समझकर उन्हें मेरा अधिष्ठान नहीं देखते, उनको मेरे यमसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साँपके समान क्रोधी गृध्राकारधारी दूत क्रोधसे अपनी चोंचोंसे ठोकर मार-मारकर टुकड़े-टुकड़े करते हैं ❀ ॥ १० ॥ जो लोग ब्राह्मणोंके कटुभाषण करने पर भी उनमें मुझे देखकर उनकी पूजा करके सन्तुष्ट चित्त रहते हैं, स्मितसुधासे अपना मुखकमल सिंचित रखते हैं और पुत्र जैसे कुपित पिताकी स्तुति करता है उसी तरह अनुरागपूर्ण वाणीसे उनकी स्तुति करते हैं जिस तरह मैंने आपलोगोंकी की हैं, उन्होंने मुझे अपने वशमें कर लिया है ॥ ११ ॥ अतः अपने मालिकरूप मेरे अभिप्रायको न जानकर इन्होंने जो आपका अतिक्रमण किया है इसके लिये योग्यगति प्राप्तकर ये मेरे भृत्य मेरे पास शीघ्र आजायँ, यह भी मेरे ऊपर आपका अनुग्रह ही है, जो कि मेरे इन भृत्योंका निर्वासन शीघ्रही समाप्त हो जायगा ॥ १२ । ब्रह्मदेवने कहा—भगवान्की कमनीय तेजस्वी, मंत्रप्रवाहरूपवाणीका आस्वादन कर क्रोधरूपी सर्पसे डसे गये भी उन मुनियोंकी आत्मा खूब तृप्त नहीं हुई ॥ १३ ॥

न्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ॥ वाण्यानुरागकलयात्मजवद्गृणन्तः संबोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥
तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ॥ भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥१२॥
ब्रह्मोवाच ॥ अथ तस्योशतीं देवीमृषीकुल्यां सरस्वतीम् ॥ नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माप्यतृप्यत ॥ १३ ॥ सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लघ्वीं
गुर्वर्थगह्वराम् ॥ विगाह्यागाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ ते योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् ॥ प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः
क्षुभितत्वचः ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ न वयं भगवन्विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ॥ कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥ १६ ॥ ब्रह्मण्यस्य
परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो ॥ ॥ विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥ १७ ॥ त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव ॥ धर्मस्य परमो
गुह्यो निर्विकारो भवान्मतः ॥ १८ ॥ तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात ॥ योगिनः स भवान्किंस्विदनुगृह्येत यत्परैः ॥ १९ ॥ यं वै

अल्पाक्षर होनेपर भी गम्भीरार्थसे युक्त उस श्रेष्ठ वाणीको कान देकर श्रवण करते हुए मुनिलोग उस अगाध-गम्भीर वाणीको बार-बार विचार करके भी भगवान्का ठीक अभिप्राय नहीं समझ सके ॥ १४ ॥ तब वे मुनि लोग आनन्दसे पुलकित त्वचायुक्त होकर हाथ जोड़ करके योगमायासे अपने ऐश्वर्यका उत्कर्ष प्रकट करनेवाले भगवान्से बोले ॥ १५ ॥ ऋषियोंने कहा—हे भगवन्, आपका अभिप्राय हमलोग नहीं समझ सकते, क्योंकि हे देव, आप सर्वेश्वर होनेपर भी यह मेरा अपराध है, यह भी मुझपर आपका अनुग्रह है ‡ ऐसा कहते हैं ॥ १६ ॥ ब्राह्मणोंमें आदर रखनेवाले आपके हमही परम दैवत हैं और हे प्रभो, देवदेव ब्राह्मणोंके भी आप दैवत तथा आत्मा हैं ॥१७॥ आपसे ही सनातनधर्मकी प्रवृत्ति है तथा आप ही अपने अवतारोंसे उसका रक्षण करते हैं। धर्मका फलरूपपरमगुह्य भी आपही हैं ॥ १८ ॥ विरक्त योगी लोग जिसके अनुग्रहसे अनायास मृत्युके पार होजाते हैं वह आप दूसरेसे अनुगृहीत होते हैं, यह तो कहनाही व्यर्थ है ॥ १९ ॥ अर्थ चाहनेवाले अन्य लोग जिसके पादरेणुको अपने सिरपर धारण करते हैं वह लक्ष्मीजी--पुण्यवान्

❀ दृष्टान्त—भगवान् नारायणके अंश हैं। संसार फिर भी मनुष्य मात्रको चाहिये खूब समझ बूझ कर चले। जिससे कि अन्य प्राणी उसके चलते हुए मार्ग को न रोक सके।
‡ तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये, इसी अध्यायके श्लोकसे–४० तथा 'तदनुग्रहो में इस १२ वें में।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोगोंसे चरणमें अर्पित तुलसीकी नवीन मालाही जिसका स्थान है ऐसे मधुकरपतिके लोककी अर्थात् आपके चरण की–मानो इच्छा करके आपकी बार-बार समय-समयपर सेवा करती है ॥ २० ॥ ऐसी विशुद्ध परिचर्यासे सेवा करनेपर भी आप लक्ष्मीका आदर नहीं करते और परम भागवतोंमें प्रेम रखते हैं आप खुद भजनीय गुणोंके आश्रय परमशुद्ध हैं, फिर भी आप ब्राह्मणोंके मार्गमें पड़ी हुई धूलिसे या श्रीवत्ससे अपनेको क्यों विभूषित करते हैं, उनसे आपको कौन-सी पवित्रता या क़ौन सा ऐश्वर्य मिलनेवाला है ? ॥ २१ ॥ हे त्रियुग, धर्मरूपी आप भगवान्‌के अपने असाधारण तप, शौच और दया–इन तीन पादोंसे यह सारा चराचर ब्रह्मणों तथा देवताओंके लिए ही–अपनी वरदसक्तमूर्तिसे हम लोगोंके हृदयके रज और तमका, जो आपके उन पादोंके अभिघातक हैं नाश करके– पालित है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह है कि हे तीनों युगोंमें अवतार लेनेवाले धर्मरूप भगवन्, आप हमलोगोंके हृदयके अन्दर विद्यमान सत्य और रजोगुणका, जो आपके तप, शौच और दया–इन धर्मके तीन पादोंके विघातक हैं, नाश करके

विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ॥ धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥ २० ॥
यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः ॥ स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥२१॥
धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ॥ नूनं भृतं तदभिघाति रजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥ २२ ॥ न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदि हात्म गोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ॥ तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तवदेव पन्था लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य तत्प्रमाणम् ॥ २३ ॥ तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारेः ॥ नैतावता त्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ॥२४॥ यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनु मन्महि निर्व्यलीकम् ॥ अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण ॥२५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ॥ भूयः

उपर्युक्त इन्हीं अपने तीन पादोंसे इस चराचरका पालन करते हैं। यह आपका धर्माचरण हमारे और देवताओंके लिए ही है ॥ २२ ॥ हे भगवन्, आपसे ही रक्षित ब्राह्मण श्रेष्ठोंके समूहकी अगर आप रक्षा न करें और सम्मान तथा आदर न करें, तो आपका कल्याणकर वेदमार्ग लुप्त हो जायगा, सारी दुनियाँ इन ब्राह्मणोंका अनादर और असम्मान करने लग जायगी, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषका ही लोग अनुकरण करते हैं—सभी लोग बड़ोंके आचरणको ही प्रमाणरूपसे मानते हैं ॥ २३ ॥ और यह लोकोक्ति है कि वेदमार्गका लोप होना आपको इष्ट नहीं है, क्योंकि आप सत्त्वनिधान हैं, अत एव लोगोंका कल्याण चाहते हैं। आप अपनी शक्तियोंसे शत्रुओंका नाश करते हैं। हे त्रिलोकाधीश, हमारे सामने नत होनेसे विश्वपालक आपका तेज कम न होता। वह तो आपका विनोद है ॥ २४ ॥ इनको आप अगर कोई दूसरा दण्ड देंगे या इनको अधिक पुरस्कार देंगे उसका हम अनुमोदन करेंगे, वह निर्दोष ही होगा। अथवा हमलोगोंने इन निरपराधियोंको जो शापयुक्त बनाया है, इसके लिए हमें जो उचित हो वह दण्ड दीजिए ॥ २५ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—ये सद्यः असुर—योनि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में जाकर क्रोधावेशसे मुझमें ही एकाग्रचित्त होकर शीघ्रही फिर मेरे पास आयेंगे। हे ब्राह्मणो, इन्हें आप लोगोंने जो यह शाप दिया है वह मैंने ही दिया है, ऐसा आपलोग समझ लीजिये ॥ २६ ॥ ब्रह्मदेवने कहा—फिर सनकादिमुनियोंने आँखोंको आनन्द प्रदान करनेवाले वैकुण्ठलोक और स्वयं प्रकाश तदधिष्ठाता विकुण्ठ भगवान्‌को देखकर उनकी प्रदक्षिणा कर उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर उनकी अनुज्ञा लेकर विष्णु भगवान्‌के वैभवकी प्रशंसा करते हुए आनन्दित होकर वे वापस चले गये ॥ २७, २८ ॥ तदनन्तर भगवान्‌ने अपने अनुचरोंसे कहा डरो मत। तुम्हारा कल्याण होगा। ब्राह्मणके शापको नष्ट करनेका सामर्थ्य होनेपर भी उसे मैं बदलूँगा नहीं, वह तो मुझे सम्मत है ॥ २९ ॥ मैं जब योगनिद्रामें सोया हुआ था तब दरवाजेके भीतर प्रवेश कर रही लक्ष्मीको भीतर जानेसे तुमलोगोंने रोक दिया था, अतः उस लक्ष्मीने क्रोधसे जो पहले तुम्हें कहा था, वही तो फिर

सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥ २६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् ॥ वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम् ॥ २७ ॥ भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ॥ प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥ २८ ॥ भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् । ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥ २९ ॥ एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा ॥ पुराऽपवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥ ३० ॥ मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ॥ प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥ ३१ ॥ द्वास्थावादिश्य भगवान्विमानश्रेणिभूषणम् ॥ सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥ ३२ ॥ तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः ॥ हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥ ३३ ॥ तदा विकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ॥ हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥ ३४ ॥ तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ॥ दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥ ३५ ॥ तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ॥ आक्षिप्तंतेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥३६॥ विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ॥ क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तात्रस्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भ० भा० तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

इन लोगोंने अब कहा है ॥३०॥ तुमलोग मेरे ऊपर क्रोधाभासरूपीयोगसे ब्रह्मशापसे मुक्त होकर थोड़े ही समयमें फिर मेरे पास आ जाओगे ॥ ३१ ॥ द्वारपालोंको ऐसा आदेश देकर भगवान् विमान-श्रेणिसे भूषित सर्वोत्कृष्ट शोभायुक्त अपने स्थानमें प्रविष्ट हो गये ॥ ३२ ॥ वे देवश्रेष्ठ अनुल्लंघ्य ब्रह्मशापसे हतप्रभ और गलितगर्व होकर भगवंल्लोकसे नीचे गिरने लगे ॥ ३३ ॥ हे देवो, वैकुण्ठस्थानसे वे जब गिरने लगे तो उन श्रेष्ठ विमानोंमें बड़ा हाहाकार हुआ ॥ ३४ ॥ वे ही श्रेष्ठ भगवद्भक्त इस समय कश्यपके वीर्यसे दितिके उदरमें प्रविष्ठ हुए हैं, उसी तेजका यह उत्कृष्ट प्रभाव है ॥३५॥ उन्हीं यमल (जोड़े) असुरोंके तेजसे तुमलोगोंका तेज तिरस्कृत हो गया है, इस विषयमें जो करना है भगवन् खुद करेंगे ॥ ३६ ॥ जो विश्वकी सृष्टि, स्थित और लयके कारण हैं, जिनकी योगमायाको योगेश्वर भी नहीं जान सकते वही आद्य भगवान त्रिलोकीनाथ हमारा कल्याण करेंगे। यहाँ हमारे विचारसे कितना अर्थ सिद्ध होगा—कुछ भी—क्या होनेवाला है ॥ ३७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सोलहवें अध्यायका सार—इस तरह स्तुति कर रहे मुनियोंसे भगवान्‌ने कहा—इन मेरे पार्षदोंने मुझे तुच्छ कर जो आपका अपमान किया। उसके लिए आपने जो शाप दिया उसका मैं अनुमोदन करता हूँ। इन्होंने मेरे भी देव ब्राह्मणोंका अपमान किया है। उनके अपराधके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि भृत्य द्वारा हुए अपराध का दोषी स्वामी ही है। आपलोगोंके कारण ही मेरी कीर्ति है। मैं ब्राह्मणोंका अतिक्रमण कभी नहीं सह सकता। भगवान्‌की ऐसी अमृत मधुरवाणी सुनकर मुनियोंकी तृप्ति नहीं हुई। उनके विचार करने पर भी भगवान्‌का भाव उनकी समझमें नहीं आया। आनन्दसे पुलकित हो उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की—भगवन्, आपका अभिप्राय हम नहीं समझ सकते, आप सर्वेश्वर होकर भी हमसे क्षमा चाहते हैं। हमारे सामने नत होनेसे आपका तेज कम नहीं होता। वह तो आपका विनोद है। आप चाहें तो इनको दूसरा दण्ड या पुरस्कार दे सकते हैं या हमींको दण्ड दे सकते हैं। भगवान्‌ने कहा—ब्राह्मणो, आपका यह शाप मेरी इच्छासे ही हुआ है। उसके अनुसार जन्म लेकर ये विरोध भक्तिसे मुझमेंचित्त लगाकर फिर यहाँ आजायँगे, इसके लिए आप लोग खेद न करें। तदनन्तर मुनियोंने भगवान्‌की प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया और उनकी अनुज्ञा लेकर वे वहाँसे निकल आये। फिर भगवान्‌ने अपने पार्षदोंसे कहा—डरो मत, तुम्हारा कल्याण होगा। इस शापको अन्यथा करनेका सामर्थ्य होनेपर भी मैं वैसा नहीं करता। पहले एक बार लक्ष्मीको रोक देनेके कारण उसीने यह शाप हमें दिया था, उसीको इन्होंने दुहरा दिया है। ऐसा कह भगवान् अन्दर चले गये। फिर हतप्रभ जय और विजय नीचे गिरे, वे ही कश्यपसे दितिके गर्भमें प्रविष्ट हैं। उन्हींके तेजका यह प्रभाव है। उन्हींके तेजसे तुम्हारा तेज तिरस्कृत हुआ है, इस विषयमें जो करना है, भगवान् स्वयं करेंगे, हमारे विचारसे कुछ लाभ नहीं है।

❋ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❋

[हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षकी उत्पत्ति तथा हिरण्याक्षकी दिग्विजय]

मैत्रेयजीने कहा—ब्रह्मदेवका कारण सुनकर सभी देवता निःशंक होकर वहाँसे स्वर्गको चले गये॥ १॥ भर्ताके आदेशके अनुसार अपने पुत्रोंसे उपद्रवकी शंका कर रही दितिने सौ वर्ष पूर्ण होने के बाद एक जोड़ा पुत्रों को पैदा किया॥ २॥ उनके जन्म समय सभी लोकोंको महान् भयदायक अनेक उत्पाद स्वर्ग, भूमि और अंतरिक्ष में हुए॥ ३॥

मैत्रेय उवाच॥ निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः॥ ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः॥ १॥ दितिस्तु भर्तुरादेशा-दपत्यपरिशङ्किनी॥ पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ॥ २॥ उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरु-भयावहाः॥ ३॥ सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः॥ सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः॥ ४॥ ववौ वायुः सुदुःस्पर्शः

पर्वतोंके साथ भूमि काँपने लगी। सभी दिशाएँ प्रज्वलित होगईं। उल्काओंके साथ वज्र गिरने लगे। पीड़ाके हेतु धूम्रकेतु दिखाई देने लगे॥ ४॥ बार-बार फुफकार छोड़रही हवा बहने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगी, जिसका स्पर्श बर्दास्त करना बड़ा कठिन हो रहा था। बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ती हुई धूलिको आकाशमें बिखेर रही भयङ्कर आँधी आगई॥ ५॥ उच्च अट्टहास कर रहीसी बिजलियोंसे युक्त घटाओंके समूहसे आकाशमेंके सूर्यादिग्रह अदृश्य होगये। सर्वत्र घनघोर अन्धकारके प्रवेशके कारण थोड़ी भी जगह कहीं न दीखने लगी॥ ६॥ समुद्रमें भयङ्कर लहरें उठने लगीं, उसके कारण उसके अंदरके जन्तु क्षुब्ध हो उठे। मानो विमनस्क हो समुद्र आक्रोश करने लगा। वापी, कूप आदिके सहित नदियाँ क्षुब्ध हो गईं एवं उनमेंके कमल सूख गये॥ ७॥ राहुसे ग्रस्त सूर्य और चन्द्र चारों ओर बार-बार मण्डल पड़ने लगे। मेघोंके न होने पर भी रथकी ध्वनिके समान शब्द गिरि गुहाओंसे निकलने लगे॥ ८॥ गाँवोंके बीचमें मुखसे आग उगलते हुए सियार, उलू, और सियारियाँ—ये सब भयङ्कर अमंगलमय चीत्कार करने लगे जोर-जोरसे फेंकरने लगे॥ ९॥ कुत्ते ऊपर मुख उठाकर इधर-उधर संगीतके समान या रोनेके समान अनेक तरहकी आवाज करने लगे*॥ १०॥ हे विदुरजी, गदहे अपने कर्कश खुरोंसे पृथ्वीको कोड़ते हुए जोर-जोरसे रेंकते हुए झुण्ड बना-

फूत्कारानीरयन्मुहुः॥ उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः॥ ५॥ उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे॥ व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम्॥६॥ चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः॥ सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः॥७॥ मुहुः परिधयोऽभुवन् सराह्वोः शशिसूर्ययोः॥ निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे॥ ८॥ अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम्॥ सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः॥ ९॥ सङ्गीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम्॥ व्यमुञ्चन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः॥ १०॥ खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम्॥ खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः॥ ११॥ रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगाः॥ घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत॥ १२॥ गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः॥ व्यरुदन्देव लिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम्॥ १३॥ ग्रहान्पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः॥ अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परं॥ १४॥ दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पतानतत्तत्त्वविदः प्रजाः ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम्॥ १५॥ तावादिदैत्यो सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ॥ ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव॥ १६॥ दिविस्पृशौ हेमकिरीटको-

बनाकर मत्त हो दौड़ने लगे॥ ११॥ उन गदहोंके शब्दसे त्रस्त होकर पक्षीगण रोते हुए अपने घोसलोंसे ऊपर उड़ने लगे। घोषमें तथा अरण्यमें गाय, भैंस आदि पशु मल-मूत्र विसर्जन करने लगे॥ १२॥ गौएँ त्रस्त हो गईं और खून दुहाने लगीं। मेघ पीवकी वर्षा करने लगे। देव प्रतिमाएँ रोने लगीं। बिना आँधीके पेड़ गिरने लगे॥ १३॥ पुण्यग्रहों को दूसरे पापग्रह अतिक्रमण कर गये और वक्रगतिसे आकर परस्पर टकराने लगे। वे सब मानों जलने लगे॥ १४॥ इसी तरह अन्य महोत्पातोंको भी देखकर उनका हेतु न जाननेके कारण ब्रह्मपुत्रोंको छोड़कर बाकी प्रजाएँ डर गईं और 'प्रलयकाल उपस्थित हो गया' ऐसा समझने लगीं॥ १५॥ वे आदिदैत्य आत्मपौरुषको सहसा व्यक्त करते हुए

*दृष्टान्त—दुर्बलो दैवघातकः। इसीलिये मनुष्य मात्र अपने शत्रु रूप काम, क्रोध, लोभादिको न उभरने दें। और सांसारिक शत्रुओं की भी उपेक्षा न करें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपनी वज्रके समान कठिन देहसे बड़े भारी दो पर्वतपतिके समान बढ़ने लगे ॥ १६ ॥ वे अपने सुवर्णकिरीटसिखरोंसे आकाशका स्पर्श कर रहे थे चमकदार बाजुबन्दोंसे युक्त बाहुवाले वे दिशाओंको व्याप्त कर रहे थे। वे अपने पग-पगमें चरणोंसे धरतीको कंपित कर रहे थे और कमरकी करधनीकी कान्तिसे सूर्यसे भी बढ़कर चमक रहे थे ॥ १७ ॥ प्रजापति कश्यपने उन दोनों में जो प्रथम उत्पन्न हुआ उसका हिरण्यकशिपु, और दितिसे जो प्रथम उत्पन्न हुआ उसका 'हिरण्याक्ष' रखा उन्हीं नामोंसे वे प्रजाओंमें प्रसिद्ध हुए ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपुने अपनी बाहुओंसे उद्धत तथा ब्रह्मदेवके वरके प्रभावसे मृत्यु रहित होकर लोकपालोंके साथ तीनों लोकोंको वशमें किया ॥ १९ ॥ उसका सदा प्रिय करने वाला प्रिय भाई हिरण्याक्ष गदा लेकर युद्धकी इच्छासे युद्ध यानी प्रतिपक्षीको ढूंढ़ते हुए स्वर्गमें गया ॥ २० ॥ दुःसह वेगवान्, अपने पैरके सोनेके नूपुरका शब्द करते हुए चलने वाले, विजय

टिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ॥ गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकाञ्च्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥ १७ ॥ प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत ॥ तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥ १८ ॥ चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ॥ वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥ हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ॥ गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥ २० ॥ तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् ॥ वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥ २१ ॥ मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ॥ भीता निलिल्यिरे देवास्तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥ २२ ॥ स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ॥ सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥ २३ ॥ ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिःस्वनम् ॥ विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥ २४ ॥ तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ॥ अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥ स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीन् श्वसनेरितान्मुहुः ॥ मौर्व्याभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥ २६ ॥ तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ॥ स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥ २७ ॥ त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो

मालासे युक्त, प्रचण्ड गदाधारी, शौर्य, वीर्य और वरसे उन्मत्त, निरंकुश, निर्भय उसे देखकर, गरुडसे डरे सांपोंके समान, देवतालोग छिप गये ॥ २१,२२ ॥ उस दैत्येश्वरने अपने तेजसे तिरोहित जानकर मत्त इन्द्रादिके सहित सब देवगणोंको न देखते हुए अत्यन्त जोरसे गर्जना की ॥ २३ ॥ वहाँसे लौटकर गम्भीर आवाजसे क्रीडा करते हुए महा-बलवान् वह दैत्य, मत्त गजके समान, समुद्रमें उतरा ॥ २४ ॥ उसके समुद्रमें प्रवेश करनेपर न मारनेपर भी उसके तेजसे चौंधियाकर वरुणके सैनिक जलजंतु हत बुद्धि होकर डरसे बहुत दूर भागने लगे ॥ २५ ॥ हे तात, महाबली वर्षों समुद्रमें विहारकरते हुए वायुसे उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरोंको अपनी लोहेकी गदासे तोड़ता रहा। तदनन्तर वरुणकी पुरी विभावरीमें वह आया ॥ २६ ॥ वहाँ जलचरोंके अधिपति असुरलोक—पातालके पालक वरुणको देखकर हँसते हुए उपहास करनेके लिए नीचके, समान नमस्कार कर उसने कहा—'महाराज' मुझे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युद्ध भिक्षा दीजिए ॥ २७ । आप लोकपालोंके कीर्तिकान् अधिपति हैं उन्मत्त तथा अपनेको वीर समझनेवालोंके गर्वका अपहरण करनेवाले हैं क्योंकि हे प्रभो, आपने पहले सभी दैत्य दानवोंको जीतकर राजसूय-यज्ञ किया है ॥ २८ ॥ उस निरंकुशगर्व शत्रु के इस तरह भारी उपहास करनेपर भी अपने बढ़े हुए क्रोधको बुद्धिसे शान्त करते हुए भगवान् वरुणने कहा—भाई, युद्धादिकौतुकसे हम विराम ले चुके हैं हमारा युद्धादिमें उत्साह अब शान्त हो गया है ॥ २९ ॥ रणकौशलमें निपुण तुमको जो युद्धमें सन्तुष्ट कर सके ऐसे-पुराणपुरुष-

दुर्मदवीरमानिनाम् ॥ विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽयजत्प्रभो ॥ २८ ॥ स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपांपतिः ॥ रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥ २९ ॥ पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ॥ आराधयिस्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः॥३०॥तं वीरमाराभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ॥ यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥ इति श्रीम० म० तृ० हिरण्याक्षदिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

भगवान्को छोड़कर दूसरे किसीको तो मैं नहीं देखता। हे असुरश्रेष्ठ, तुम उनके पास भी जाओ ॥ ३० ॥ उन वीरको तुम जल्दी ही पाकर नष्टगर्व होकर कुत्तोंसे घिरे हुए युद्ध भूमिमें जमीनपर सोओगे। जो सज्जनोंपर अनुग्रह करनेके लिए तथा तुम्हारे-जैसे दुर्जनोंको शान्त करनेके लिए रूपधारण करते हैं—वराहादि अवतार धारण करते हैं ॥ ३१ ॥

सत्रहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, सौ वर्षोंके बाद दितिको यमलपुत्र उत्पन्न हुए। उनके जन्मके समय अनेक उत्पात हुए। भूमि कांपने लगी, उल्कापात होने लगा, जोरसे आंधी आई, आकाशमें मेघ जमनेलगे, उनसे पीवकी वृष्टि होनेलगी, सभी जलाशय क्षुब्ध होगये। इसतरहके उत्पातोंको देखकर साधारण प्रजाओंने समझा कि प्रलय आगया। वे दोनों तेजीके साथ बढ़नेलगे। उनका शरीर पहाड़के समान विशाल और कठिन हो गया। पिताने उनका--हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम रखा। हिरण्यकशिपुने तपश्चर्याकर ब्रह्मदेवसे एक तरहका अवध्यत्व वर मांग लिया। उस वरके प्रभावसे तथा अपने बाहुबलसे उसने तीनोंलोक जीत लिए। हिरण्याक्ष अपनी भारी गदा कंधेपर उठाकर युद्धकी इच्छासे प्रतिपक्षीको खोजते हुए देवलोकमें गया। वहाँ उसको आते देखकर डरसे देवता लोग छिपगये। इस तरह देवताओंको डरपोक देखकर वह वहाँसे गर्जना करते हुए लौटा। फिर उसने समुद्रमें प्रवेश किया। अपनी गदासे लहरों पर चोट करते हुए वह वरुणकी पुरीमें पहुँचा। वहाँ वरुणका उपहास करते हुए उनसे प्रणाम किया और कहा—'महाराज' आपने दैत्यदानवों को जीतकर राजसूय याग किया है। आप लोकपालोंके अधिपति हैं, गर्वी-पुरुषोंका गर्व हरण करनेवाले हैं, आप मुझे युद्धभिक्षा दीजिए।' वरुणने बुद्धिमानीसे अपना क्रोध रोककर उससे कहा—भाई, अब मेरा इस विषयमें उत्साह नहीं है, मैं तो यही समझताहूँ कि भगवान् आदि पुरुषको छोड़कर तुमसे कोई दूसरा युद्ध नहीं कर सकता। वे शीघ्र प्रकट होकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे तथा तुम्हारा गर्व हरण करेंगे। वे सज्जनोंका रक्षण और तुम्हारे-ऐसे दुर्जनोंका नाश करनेके लिए अवतार लेते हैं॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ अष्टादशोऽध्यायः ❀

(भगवान् वराह और हिरण्याक्षका युद्ध)

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, हिरण्याक्षने वरुणका भाषण सुनकर अभिमानके साथ वरुणसे वर्णित भगवान्की शक्तिकी पर्वाह न करते हुए नारदसे भगवान् विष्णुका पता पाकर जल्दीही रसातलमें प्रविष्ट होगया ॥ १ ॥ वहाँ अपने दंष्ट्राग्रभागसे धरणीको ऊपर उठा रहे जयशील वराह भगवान्को उसने देखा। उनके नेत्रके अरुण तेजके सामने हिरण्याक्ष का तेज फीका पड़ गया। उनको देखकर हिरण्याक्षने हँसकर कहा—आश्चर्य! पानीमें विचरनेवाला यह सूअर है ॥ २ ॥ फिर उसने गरजकर कहा—अरे मूर्ख, इधर आओ इस पृथ्वीको छोड़ दो। हम रसातल-वासियोंके लिए यह ब्रह्माने दी है। अरे सूअरका रूप धारणकरनेवाले देवाधम, मेरे देखते देखते, इसके साथ तुम सुखसे नहीं जा सकते ॥ ३ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ॥ हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥ ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ॥ मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥ २ ॥ आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता ॥ न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥ त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् ॥ त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढप्र मृजे सुहृच्छुचः ॥ ४ ॥ त्वयि संस्थिते गदयाऽऽशीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ॥ बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥ ५ ॥ स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ॥ तोदं मृषन्निरगादम्बुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥ ६ ॥ तं निःसरन्तं सलिलादनुद्रुतो हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ॥ करालदंष्ट्रोऽशनिनिःस्वनोऽब्रवीद्गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥ स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य

हमारे शत्रुओंने हमारे नाशके लिए तुम्हें पोसा है क्या? तुम मायासे छिपकर असुरोंको मारते-फिरते हो। तुममें योग मायाका ही जोर है। वास्तविक तुममें पौरुष है नहीं। मूर्ख, तुम्हें मारकर मैं अपने सुहृदोंकी आँसू पोछूंगा ॥ ४ ॥ मेरे हाथसे छूटी गदासे तुम्हारा सिर जब चूर्ण-चूर्ण हो जायगा, तब तुम्हारी पूजा करनेवाले ऋषि और देव निराश्रय होकर अपने ही नष्ट होजायेंगे ॥ ५ ॥ इस तरह वह अपने दुर्वचनरूपी तोमरोंसे भगवान्को खोंच रहा था, लेकिन भगवान् अपने दंष्ट्राग्रपरकी पृथ्वीका भीत देखकर उसको बर्दास्त करते हुए, ग्राहसे आहत हुए, हथिनीके साथ हाथीके समान जलके भीतरसे ऊपर निकल आये ॥ ६ ॥ जलसे निकल रहे भगवान्के पीछे हिरण्याक्ष वैसा दौड़ा, जैसा हाथीके ऊपर मगर दौड़ता है और करालदंष्ट्र वह वज्र तुल्य शब्द करते हुए बोला—निर्लज्ज असज्जनोंके लिए कुछ भी निन्दित नहीं है ॥ ७ ॥ भगवान्के ऊपर देवता पुष्प-वृष्टि करने लगे, ब्रह्मदेव उनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने शत्रु के देखते-देखते पृथ्वीको जलके ऊपर रख दिया और उसमें अपनी आधार-शक्तिको भी रख दिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर पीछे लगे हुए सुवर्णके आभरणको पहने हुए सुवर्णके कवच धारण किए हुए तथा बड़ीभारी गदा एक धारण किये हुए बार-बार निकृष्ट वचनोंसे हृदयको पीड़ित करहे उस दैत्यसे प्रचण्ड-क्रोधयुक्त हो हँसकर भगवान् बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—यह सच है कि हम वनवासी मृग हैं और तुम्हारे जैसे ग्राम सिंहोंको (कुत्तोंको) खोजते फिरते हैं। अरे दुष्ट, मृत्युपाशसे बद्ध तुम्हारे जैसेके डींग हाकने पर वीर लोग ख्याल नहीं करते ॥ १० ॥ ये हम रसातल निवासियोंके धरोहरको ले जानेवाले हैं, तुमने हमे गदा लेकर दौड़ाया है, हम निर्लज्ज हैं, फिर भी हम युद्धमें तो किसी न किसी तरह खड़े रहेंगे ही—हमें खड़ा रहना ही पड़ेगा। बलीसे वैर करके हम कहाँ जायँगे ॥ ११ ॥ तुम पदातियोंके यूथपोंमें निःसन्देह श्रेष्ठ हो, फिर

तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ॥ अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥ ८ ॥ परानुषक्तं स तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ॥ मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ॥ न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥१०॥ एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्राविताः स्ते ॥ तिष्ठामहेऽथापि कथञ्चिदाजौ स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥ ११ ॥ त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नाऽस्वस्तय आशु नूहः ॥ संस्थाप्य चास्मान्प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥ १२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ॥ आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥ सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः ॥ आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥ भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ॥ अवञ्चयत्तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥ १५ ॥ पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः ॥ अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥१६॥ ततश्च गदयाऽरातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः ॥ आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥१७॥ एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ॥ जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८ ॥ तयोः स्पृधोस्तिग्मगदा-

इधर उधर कुछ न विचार कर जल्दी ही हमरे नाशका यत्न करो और हमें मारकर स्वजनोंके आँसू पोछो। जो अपनी प्रतिज्ञा नहीं पालता, वह असम्भव है ॥ १२ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह भगवान्के क्रोधसे खूब चिढ़ाने और उपहास करने पर उसको भयङ्कर क्रोध चढ़ आया, जैसे कि साँपको खेलानेपर आता ॥ १३ ॥ अमर्षके कारण वह श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसकी सभी इन्द्रियाँ क्रोधसे क्षुभित हो गईं। उस दैत्यने वेगसे आकर गदासे भगवान्के ऊपर प्रहार किया ॥ १४ ॥ भगवान्ने छातीका लक्ष्य कर फेंकी गई शत्रु की गदाको घूमकर ऐसे छकाया, जैसे कि योगारूढ़ मृत्युको छकाता है ॥ १५ ॥ मारे क्रोधके ओठ काटकर फिर अपनी गदा ले बार-बार इधर उधर घुमा रहे उस दैत्यके ऊपर क्रुद्ध होकर भगवान् दौड़े ॥ १६ ॥ फिर भगवान्ने शत्रु को दाहिनी भौं पर गदासे प्रहार किया, उस गदाको उस दैत्यने गदासे ही रोक दिया, हे विदुरजी, वह गदायुद्धका महान् पण्डित था ॥ १७ ॥ इस तरह भारी गदाओंसे हरि और हिरण्याक्ष परस्पर वधकी इच्छासे क्रोधपूर्वक मारने लगे ॥ १८ ॥ परस्पर स्पर्धा कर रहे उन दोनोंके तीक्ष्ण गदाओंसे शरीर क्षत-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विक्षत हो गये। घावसे बह रहे रक्तको सूँघनेसे उनका क्रोध और भी बढ़ गया। विचित्र दाँव पेंच लगाकर लड़ रहे उन दोनोंका युद्ध एक गायके लिए लड़ रहे दो मस्त साँड़ोंके जैसा था ॥ १९ ॥ हे कौरव्य, उस दैत्यका और यज्ञावयव, मायासे वराहरूपधारण किए महात्मा भगवान्का पृथ्वीके लिए चल रहा वह भी युद्ध देखनेके लिए ऋषियोंके साथ ब्रह्मदेव उपस्थित हुए ॥ २० ॥ उस दैत्यको शौर्ययुद्ध, निर्भीक, प्रतीकार करते हुए तथा उसके पराक्रमका वैसा प्रतीकार न होते देख सहस्र ऋषियोंके नेता ब्रह्माजी बोले ॥ २१ ॥ ब्रह्मदेवने कहा—भगवन्, आपके चरण-कमलके पास पहुँचे हुए ब्राह्मण, गौ तथा निरपराधी प्राणियोंका अपराधी भय देनेवाला, दुष्टकर्म करनेवाला यह असुर है। यह हमारे वरसे उन्मत्त है। यह लोक कण्टक अपने प्रतीरथको ढूढ़ते हुए घूमता है यह प्रतिपक्षसे शून्य है ॥ २२, २३ ॥ इस मायावी मद निरंकुश अधमसे ऐसा मत खेलो, जैसा कि

हताङ्घ्रयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ॥ विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥ दैत्यस्य यज्ञावयवस्य माया-गृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ॥ कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥ आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतिकार-महार्यविक्रमम् ॥ विलक्ष्य दैत्यं भगवान्सहस्रणीर्जगाम् नारायणमादिसूकरम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एष ते देवानामङ्घ्रिमूलमुपेयुषाम् ॥ विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥ २२ ॥ आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ॥ अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥ २३ ॥ मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् ॥ आक्रीड बालवद्देव यदाशीविषमुत्थितम् ॥ २४ ॥ न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः । स्वां देव मायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥ २५ ॥ एषा घोरतमा सन्ध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो ॥ उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयमावह ॥२६ अधु-नैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ॥ शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तरदुस्तरम् ॥ २७॥ दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ॥ विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानां धेहि शर्मणि ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

बालक क्षुभित साँपसे खेलता है ॥ २४ ॥ हे देव अच्युत, जब तक यह दारुण दैत्य अपना आसुरी समय पाकर बढ़ता नहीं तब तक इस भयङ्कर पापको अपनी मायाका आश्रय लेकर मार डालो ॥ २५ ॥ हे सर्वात्मन्, हे प्रभो, यह लोगोंका नाशकार घोर संध्याका समय उपस्थित हो रहा है, अतः जल्दी देवोंकी विजय दो ॥ २६ ॥ इस समय अभिजित् नाम का शुभयोगप्रायः बीत रहा है, अतः तुम्हारे सुहृद् हमलोगोंके कल्याणके लिए इस दुस्साध्य दैत्यको शीघ्र खतम करो ॥ २७ ॥ दैवसे यह तुम्हारे द्वारा पूर्व निश्चित मृत्युके पास स्वयं आ गया है। पराक्रम करके इसको शीघ्र युद्धमें मारो और इसे मारकर समस्त लोकोंको सुखमें स्थापित करो ॥ २८ ॥

अठारहवें अध्यायका सार—हे विदुरजी, हिरण्याक्ष वरुणका भाषण सुनकर भगवान्की खोज करने लगा। फिर नारदके कथनानुसार वह रसातलमें पहुँचा। वहाँ भगवान अपनी दंष्ट्राओंसे पृथ्वीको ऊपर उठा रहे थे। उन्हें देखते ही दैत्यने गरजकर कहा हे वनवासीमृग, ब्रह्माने यह पृथ्वी हम लोगोंको दी है। तुम इसे कहाँ ले जा रहे हो। अरे सुराधम,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेरे रहते तुम इसे नहीं ले जा सकते। तुमने हर समय छिपकर कपटसे असुरोंको मारा है। तुममें पौरुष है ही कहाँ। आज मैं तुम्हें मारकर अपने स्वजनोंकी आँख पोछूंगा। मेरी गदासे जब तुम्हारा मस्तक चूर्ण-चूर्ण होगा, तब तुम्हारे आश्रयसे रहनेवाले देव और ऋषि अपने ही नष्ट होंगें। उसके इसतरह भगवान्को दुर्वचन कहनेपर भी भगवान्ने पृथ्वीको डरी हुई देख उसको सह लिया और पृथ्वीको पानी को ठीक रख दिया तथा उसमें अपनी आधारक्ति रख दी। तब भगवान्के पीछे वह गदा लेकर दौड़ा और कहने लगा—भागते हुए तुम्हें लाज नहीं लगती? फिर भगवान् मर्मच्छेदी वाक्य कह रहे उस दैत्यसे बोले—हाँ, हाँ, हम लोग वनमृग हैं ही। और तुम्हारे जैसे ग्रामसिंहोंको खोजते-फिरते हैं। हम तुम्हारी पृथ्वीको ले जाते हैं, अतः हमें युद्धमें खड़े रहना ही पड़ेगा, क्योंकि तुम्हारे—छैसे बलवान्से वैरकर हम कहाँ भागेंगे। भगवान्के इसतरह उपहास करनेपर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने अपनी गदा उनकी छातीपर चलायी। भगवाने घूमकर उस मारको खाली जाने दिया। फिर भगवान्ने गदासे प्रहार किया। इस प्रकार उनका आपसमें स्पर्धासे घोर गदायुद्ध चलने लगा। दोनोंके शरीरमें घाव हो गये। युद्ध देखनेके लिए ब्रह्माजी ऋषियों सहित वहाँ उपस्थित हुए। उहोंने उस दैत्यको तब भी निर्भीक तथा शोर्ययुक्त देखकर भगवान्से प्रार्थना की—भगवन्, यह तुम्हारे भक्त गो, ब्राह्मण तथा अनेक निरपराधियोंका पीड़क दुष्ट है। मेरे वरसे उन्मत्त है। इस अधमसे ज्यादा खेल मत करो, क्योंकि भयंकर संध्या होरही है। उसमें इन दैत्योंका बल बढ़ता है। उसके पहले ही इसका अन्त कर दो। शुभयोग अभिजित् खतम् हो रहा है, उसके पहले ही इस पापका नाशकर हम हम लोगोंका आनन्दित करो।

अथैकोनविंशतितमोऽध्यायः

[हिरण्याक्षका बध]

मैत्रेयजीने कहा—इस तरह ब्रह्मदेवका सत्य और मधुर वचनकर भगवान्ने मुसकुरा दिया और प्रेमगर्भ दृष्टिसे उसको स्वीकार किया॥ १॥ फिर अपने सामने निर्भीक हो विचरण कर रहे उस शत्रु असुरके ऊपर भगवान् अब्जज वराहने कूदकर गदासे उसके कपोलके नीचे दे मारा॥ २॥ उस दैत्यने वह अपनी गदासे रोक ली तब वह गन्दा

मैत्रेय उवाच॥ अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः॥ प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत्॥ १॥ ततः सपत्नं मुखतश्चरन्त-मकुतोभयम्॥ जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमब्जजः॥ सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात्॥ विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत्॥३॥ स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम॥ मानयन्स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं कोपयन्॥ ४॥ गदयामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते॥

भगवान्के हाथसे छूटकर घूमती हुई पृथ्वीपर गिरपड़ी और वहाँ शोभने लगो। वह एक आश्चर्य-सा हो हुआ॥ ३॥ उस समय अवसर मिलने पर भी दैत्यने निरायुध भगवान् पर प्रहार नहीं किया। और धर्मका इस तरह युद्धमें पालन करते हुये भगवान्को क्रुद्ध दिया॥ ४॥ जब गदा गिरी और हाहाकार मच गया, तब उसके धर्मको भगवान्ने भी माना, फिर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सर्वसमर्थ उस वराह भगवान्‌ने सुदर्शनका स्मरण किया ॥ ५ ॥ शीघ्रतासे चक्र लिये हुए स्वपार्षदोंमें मुख्य दितिपुत्राधमसे संग्राम कर रहे भगवान्‌को देखकर उसके प्रभावको न जाननेवाले आकाश चारियोंकी विचित्र वाणियाँ निकलीं। उन्होंने कहा—तुम्हारा भला हो, तुम इसे मारो ॥ ६ ॥ पद्मपत्रके समान लोचनवाले शत्रुको हाथमें चक्र लिये सामने खड़ा देखकर उस दैत्यकी सब इन्द्रियाँ क्रोधसे जलने लगीं। उसने निश्वास छोड़ते हुए अपने ओठ चबाये ॥ ७ ॥ कराल दंष्ट्रायुक्त वह अपनी आँखोंसे मानों जलाते हुए देखकर अब मरे, ऐसा कह कूदकर गदा भगवान् पर दे मारी ॥ ८ ॥ हे साधो, वायुके समान वेगशाली वह गदा शत्रुके देखते हुए यज्ञसूकर भगवान्‌ने लीलापूर्वक अपने बाएं पैरसे रोक दी ॥ ९ ॥ फिर दैत्यसे कहा—तुम जीतना चाहते हो न, आयुध ठीक पकड़ लो और ठीक प्रयत्न करो। ऐसा कहनेपर हिरण्याक्षने फिर प्रहारकर जोरसे गर्जना की ॥ १० ॥ ठीक पैंतरेमें खड़े

मानयामास तद्धर्म सुनाभं चाऽस्मरद्विभुः ॥ ५ ॥ तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् । चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्मासन्स्वस्ति तेऽमुखं जहीति॥६ स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम्॥ विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥ ७ ॥ करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां सञ्चक्षाणो दहन्निव ॥ अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥ ८ ॥ पदा सव्येन तां साधो भगवान्यज्ञसूकरः ॥ लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥ ९ ॥ आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि ॥ इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन्व्यनदद्भृशम् ॥ १० ॥ तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः ॥ जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषे प्रतिहतेहतमानो महासुरः ॥ नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥१२॥ जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् ॥ यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥१३॥ तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदन्तः ख उदीर्णदीधिति ॥ चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्रमुज्झितम् ॥१४॥ वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ॥ प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥१५॥

भगवान्‌ने उस आती हुई गदाको देखकर उसे लीलापूर्वक ऐसे पकड़ लिया जैसे अपने समीप आयी हुई सांपिनको गरुड़ ॥ ११ ॥ इस तरह अपने पौरुषके ऊपर आघात पड़नेपर उस महान् असुरका गर्व जाता रहा, उसका तेज फीका पड़ने लगा। उसने भगवान्‌के द्वारा दी जारही गदा वहाँ न लेनी चाही ॥ १२ ॥ पुनः उसने जलती हुई अग्निके समान लपलपाते हुए सूकर रूपधारी भगवान् विष्णुको लक्ष्यकर हाथमें त्रिशूलको ऐसे ले लिया जैसे कि ब्राह्मणको उद्देश्य बनाकर अभिचारकर रहा कोई पुरुष ले लेता है ॥ १३ ॥ उस महाबलवान् दैत्यके हाथमें पकड़ा हुआ वह दीप्तिमान् त्रिशूल आकाशमें अपने तेजसे चमकने लगा। उसको भगवान्‌ने अपने तीक्ष्णधारयुक्त चक्रसे ऐसे तोड़ डाला, जैसे कि इन्द्रने गरुड़के द्वारा वज्रको मानके लिए छोड़ गये उनके पंखको तोड़ डाला था ॥ १४ ॥ जब भगवान्‌के चक्रसे उसका शूल अनेक रूपमें टूट गया, तब उसने भगवान्‌के सामने आकर क्रोधसे उनकी विभूति सम्पन्न विशाल छातीमें एक जोरका मुष्टि प्रहार किया और उसके बाद वह असुर गरजते हुए अदृश्य हो गया ॥ १५ ॥ हे विदुरजी, उसके इस तरह मारने पर भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वह आदि-सूकर भगवान् थोड़े भी विचलित ऐसे नहीं हुए, जैसे कि पुष्पमालासे आहत हाथी विचलित नहीं होता ॥ १६ ॥ फिर उस दैत्यने योगमायासे ईश्वर भगवान्के ऊपर विविध भयङ्कर मायाओंका प्रयोग शुरू किया, जिसको देखकर त्रस्त हुई प्रजाओंने समझा कि इस जगत्का अब प्रलय आगया है ॥ १७ ॥ जोरसे आँधी आई । उसके कारण जो धूल उड़ी उससे सर्वत्र अन्धेरा छा गया । दिशाओंसे पत्थर ऐसे आने लगे, मानो यन्त्रोंसे वे फेंके जा रहे हों ॥ १८ ॥ आकाशमें घोर घटा छा गई । उसके कारण सूर्यादि आकाशके ग्रह अदृश्य हो गये । बिजलियाँ चमकने लगीं । मेघ गरजने लगे, उसने पीव, केश, खून, मूत्र, पुरीष और अस्थियोंकी निरन्तर—मूसलधार वर्षा होने लगी ॥ १९ ॥ नानाविध आयुध छोड़ रहे—से पर्वत दीखने लगे । हाथमें नाना-आयुध लिए राक्षसियां भी नग्न होकर तथा बालबिखेर कर शूलसे मारने दोड़ीं ॥ २० ॥ बहुतसे पदाति, अश्वारोही, गजारोही

तेनेत्थमाहत क्षत्तर्भगवानादिसूकरः ॥ नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥ १६ ॥ अथोरुधासृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ ॥ यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥ १७ ॥ प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् ॥ दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥ १८ ॥ द्यौर्नष्टभगणाभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥ १९ ॥ गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचोऽनघ ॥ दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥२०॥ बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥२१॥ प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् ॥ सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥ २२ ॥ तदा दितेः समभवत्सहसा हृदि वेपथुः ॥ स्मरन्त्या भर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे ॥२३॥ विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशव ॥ रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥२४॥ तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं वज्रसारैरधोक्षजः ॥ करेण कर्णमूलेऽहन्यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥ २५ ॥ स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ॥ विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥ २६ ॥ क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्ट-

और रथी यक्ष-राक्षसोंकी वे आततायियोंके समान कठोर मारो, मारो वचन बोलना आरम्भ कर दिया ॥ २१ ॥ तीन सवन जिसके पाद हैं ऐसे यज्ञमूर्ति नारायण भगवान्ने उन प्रकटित आसुरी मायाओंके विनाशक अपने प्रिय सुदर्शनास्त्रका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ उस समयमें भर्ताके आदेशका स्मरणकर रही दितिके हृदयमें सहसा कंप उत्पन्न होगया, उसके स्तनसे एकदम खून बहने लगा ॥ २३ ॥ अपनी मायाओंका नाश होजाने पर फिर प्रकट होकरके बाहर खड़े केशव भगवान्के सामने आकर क्रोधसे उनको अपनी बाहुओंमें जकड़े वही दीख पड़ा ॥ २४ ॥ वज्रके समान कठिन मुष्टियोंसे प्रहार कर रहे उसको अधोक्षज भगवान्ने कनपट्टीमें एक पड़ाका ऐसा लगाया, जैसे कि इन्द्रने वृत्रासुरको लगाया था ॥ २५ ॥ विश्वविजयी भगवान्के उसे अवज्ञापूर्वक इसतरह मारने पर उसका शरीर घूमने लगा, आँखे बाहर निकलआयीं । हाथ, पैर और सिर सब ढीले पड़ गये वह भूमिपर ऐसे गिरा जैसे कि आँधीमे उखड़ा हुआ महान् पेड़ गिरता है ॥ २६ ॥ इस तरह अकुण्ठ तेजस्वी करालदंष्ट्र दाँतोंसे ओठ काटने वाले उस दैत्यको भूमिपर सोरहा देख समागत ब्रह्मादिकोंने स्तुति की और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा—अहो, कौन ऐसी मृत्यु पासकता है ॥ २७ ॥ जिस भगवान्का—लिंगदेहसे मुक्त होनेकी इच्छासे योगीलोग एकान्तमें योगसमाधिसे—ध्यान करते हैं, उनके पदसे आहत होकर यह दैत्य उसका मुख देखता हुआ प्राण त्यागकर रहा है ॥ २८ ॥ ये दोनों भगवान्के पार्षद शापके कारण असुर-योनि पाये थे, फिर यहाँ कुछ जन्मोंके बाद अपने स्थानपर चले जायँगे ॥ २९ ॥ देवता लोगोंने कहा—भगवन्, सभी यज्ञोंके कारण लोकस्थितिके लिए निर्मल सत्त्वमूर्ति धारण करनेवाले आपको बार बार नमस्कार है। समस्त विश्वको पीडा देनेवाले इस दैत्यका आपने नाश किया यह मेरा कम सौभाग्य नहीं है। हे ईश, आपकी पादसेवासे ही हम लोग कृतकृत्य हो चुके हैं ॥ ३० ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह असह्य पराक्रमी उस हिरण्याक्षको मारकर वह आदि वराह भगवान् विष्णु ब्रह्मा-आदि देवताओंसे स्तुत होकर अपने नित्योत्सवमयलोकमें चले गये ॥ ३१ ॥ हे सुमित्र, मैंने आपसे

दच्छदम् ॥ अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां कोऽनुलभेत संस्थितिम् ॥ २७ ॥ यं योगिनोयोगसमाधिना रहो ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ॥ तस्यैष दैत्यऋषभः पदा हतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥ २८ ॥ एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् ॥ पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येतेह जन्मभिः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ॥ दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुंतुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः जगाम लोकं स्वमखण्डितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥ ३१ ॥ मया यथाऽनूक्तमवादि ते हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ॥ यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् ॥ क्षत्तानन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥ ३३ ॥ अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ॥ उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥ ३४ ॥ यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् ॥ क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद्द्रुतम् ॥ ३५ ॥ तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ॥ कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥ ३६ ॥ यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ॥ शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि

पहले जो नहीं कहा था ऐसे भगवान्के वराहावतारका चरित्र जैसे हुआ और उदारविक्रम हिरण्याक्ष दैत्यका युद्धमें जैसे भगवान्ने खेलमें वध किया, वह सब कह सुनाया ॥ ३२ ॥ सूतजीने कहा—हे द्विज, इस तरह मैत्रेयसे कही गई भगवत्कथा सुनकर महाभागवत विदुरको परमानन्द हुआ ॥ ३३ ॥ फिर श्री वत्सांक भगवान्की यशोमय पुण्यकीर्ति सुनकर उद्दामयश, पुण्यश्लोक दूसरे सज्जनोंको भी आनन्द होगा, यह क्या कहना है ? ॥ ३४ ॥ जिन्होंने ग्राहके द्वारा पकड़े गये गजेन्द्रको आक्रोशकर रही है करेणुओंके सामने शीघ्र छुड़ाया अनन्यशरण, सरल लोगोंके सुखाराध्य उन भगवान्की कौन कृतज्ञ आराधना नहीं करेगा। दुष्टलोग ही उनकी आराधना नहीं कर सकते ॥ ३५ । ३६ ॥ हे ब्राह्मणो, जो कोई पृथ्वीके उद्धारके लिए वराहावतारधारी भगवान्का यह हिण्याक्षवधरूपी महा अद्भुत क्रीडा सुनता है। गाता है, अनुमोदन करता है, वह ब्रह्महत्यासे भी अनायास मुक्त हो जाता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ ३७ ॥ हे विदुरजी, यह कथानन्द महापुण्यमय निर्मल पवित्र धनदायक, कीर्तिकर, आयु और इन्द्रियशक्ति प्रदान करनेवाला, युद्धमें प्राण-इन्द्रियोंका बल-वर्धन करनेवाला शौर्य

द्विजाः ॥ ३७ ॥ एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ॥ प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीम० म० तृ० हिरण्याक्षवधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वर्धक है । इसे सुननेवालेकी अन्तमें भगवान् नारायण ही गति हैं— यह सुननेवालेको अन्तमें भगवान्के पास लेजाने वाला है ॥ ३८ ॥

उन्नीसवें अध्यायका सार—हे विदुरजी, जब भगवान्जी ब्रह्मदेवने प्रार्थना की, तब भगवान्ने अपने प्रेमगर्भस्थितसे उसकी स्वीकृति दर्शायी । फिर दोनोंमें युद्ध चला । भगवान्ने अपनी गदा घुमाकर दैत्यको मारी, लेकिन उसने अपनी गदासे ही उसको रोक दिया और भगवान्के हाथसे वह गिरगई । उसके इस पराक्रमकी भगवान्ने भी प्रशंसा की । निशस्त्र भगवान् पर वार नहीं किया । इतनेमें भगवान्ने सुदर्शनका स्मरण किया, तुरन्त उनके हाथमें चक्र आगया । चक्रधारीको देख हिरण्याक्षका क्रोध भड़क उठा । उसने दाँतसे ओठ दबाकर अब मरे ऐसा चिल्लाकर अपनी गदा भगवान् पर मारी और गर्जना की । भगवान्ने वह गदा अपने बायें हाथसे पकड़कर छीन ली । तब असुरका गर्व जाता रहा, वह फीका पड़ गया, भगवान्के देनेपर भी उसने अभिमानसे गदा वापस न ली । उसने एक त्रिशूल उठा भगवान् पर दौड़ा । भगवान्ने चक्रसे त्रिशूल तोड़ डाला । तब क्रोधसे भगवान्की छातीपर एक मुष्टि प्रहारकर वह अदृश्य हो गया । उसने अब आसुरी मायाका प्रयोग शुरू किया । तब जोरसे आंधी आई । धूलिसे सर्वत्र अंधेरा छा गया । पत्थरोंकी वर्षा होने लगी । आकाशमें घोर घटा छागई । इस मायाको देख यज्ञ भगवान्ने सुदर्शनास्त्रका प्रयोग किया । उससमय अपने स्वामीके वचनका स्मरण होनेपर दितिका हृदय काँपने लगा । मायानष्ट होनेपर फिर हिरण्याक्ष सामने आया और क्रोधसे उसने भगवान्को बाहुओंमें जकड़ लिया । भगवान्ने उसे एक पड़ाका लगाया उससे चक्कर खाकर वह गिर पड़ा । तदनन्तर देवोंसे स्तुत होते हुए भगवान् वैकुण्ठमें चले गये ।

❋ अथ विंशतितमोऽध्यायः ❋

[ब्रह्माके शरीरसे देवतादिकोंकी सृष्टि]

शौनक उवाच ॥ महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः ॥ कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥ १ ॥ क्षत्ता महाभागवतः

शौनकजीने कहा—सौते, पृथ्वीको प्रतिष्ठित पाकर स्वायंभुवमनुने अर्वाचीन प्राणियोंकी दृष्टिके लिए किन उपायोंका प्रयोग किया ॥ १ ॥ यहा भागवत विदुर कृष्णके एकान्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भक्त थे। जिन्होने अपने बड़े भाईको उसके पुत्रोंके साथ कृष्णका अपराध करने वाला समझकर छोड़ दिया ॥ २ ॥ वह वेदव्यासके पुत्र होनेपर भी महिमामें उससे कम नहीं थे। वह सब रीतिसे कृष्णका आश्रयण करने वाले थे और उनके भक्तोंका भी अनुसरण कर-फिरते थे ॥ ३ ॥ उन्होंने तीर्थयात्रासे पवित्र होकर कुशावर्तमें आकर वहाँ बैठे हुए तत्त्वज्ञ मैत्रेजीयसे क्या पूछा ? ॥ ४ ॥ सूतजी महाराज, उनके संवादमें तो गंगाके जलके समान पापोंको नष्टकरदेने वाली भगवत्पादपद्म-विषयक अनेक कथाएँ निकली होंगी ॥ ५ ॥ कीर्तनार्ह उदारकर्म वाले विष्णु भगवान्की उन कथाओंको हमसे कहिये, आपका भला होगा। हरिके लीलामृतका पानकर रहा कौन रसज्ञ पुरुष तृप्त हो सकता है ॥ ६ ॥ नैमिषारण्यके ऋषियोंके इस तरह प्रश्न करनेपर भगवान्में मन लगाए हुए उग्रश्रवाने उनसे कहा—सुनिए ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा—वराहरूपधारी हरिने अपनी मायासे रसातलसे पृथ्वीका उद्धरण किया

कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् ॥ यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥ द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः ॥ सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥ ३ ॥ किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया ॥ उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥ ४ ॥ तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः ॥ आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥ ५ ॥ ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ॥ रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥ ६ ॥ एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः ॥ भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ॥ लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं सञ्जातहर्षो मुनिमाह भारत ॥ ८ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ॥ किमारभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥ ९ ॥ ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवो मनुः ॥ ते वै ब्रह्मन् आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥ १० ॥ सद्वितीयाः किमसृजन् स्वतन्त्रा उत कर्मसु ॥ आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च ॥ जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥ १२ ॥ रजः प्रधानान्महतस्त्रिलिङ्गो दैवचोदितात् ॥ जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥ १३ ॥ तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ॥ संहत्य

और हिरण्याक्षको अवज्ञासे ही मारा। भगवान्की लीला सुनकर हर्षित होकर विदुरजीने मैत्रेयजीसे कहा ॥ ८ ॥ विदुरजीने कहा—ब्रह्मदेवने प्रजापतियोंकी सृष्टिकर फिर प्रजाओंकी सृष्टिके विषयमें क्या किया, हे ब्रह्मन्, यह मुझसे कहिए। आप अव्यक्तकी गति जानने वाले हैं ॥ ९ ॥ मरीच्यादि जो ब्राह्मणोंके तथा जो स्वायंभुवमनुके ब्रह्माके आदेशसे इसकी कैसे सृष्टिकी ॥ १० ॥ उन्होंने अपनी भार्याओंके साथ सृष्टि की या कर्मों में स्वतन्त्र होकर यानी अकेलेही किया, या सभीने मिलकर इसकी सृष्टि की ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा—प्रवितर्क्य जीवादृष्ट तथा प्रकृत्यधिष्ठाताकाल रूपनिमित्तसे निर्विकार भगवान्से गुणत्रयक्षुब्ध हुए और उनसे महान्की सृष्टि हुई ॥ १२ ॥ दैवप्रेरित रजोगुणप्रधान महान् त्रिरूप अहंकार उत्पन्न हुआ और उससे पंचतन्मात्राएं पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं ॥ १३ ॥ उन्होंने अकेले भौतिकसृष्टिमें असमर्थ होनेके कारण भग-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वान्की शक्तिकी प्रेरणासे एक साथ मिलकर सुवर्णमय अण्डका निर्माण किया ॥ १४ ॥ वह अण्डकोश आत्मारहित हो पूरे हजार वर्षोंतक जलमें पड़ा रहा, फिर उसमें भगवान्ने प्रवेश किया ॥ १५ ॥ उसकी नाभिसे सहस्रसूर्योंके समान महान् तेजस्वी सभी जीवसमूहोंका स्थानभूत पद्म उत्पन्न हुआ। उसमें स्वयं ब्रह्मा अवतीर्ण हुए ॥ १६ ॥ जो जलमें सोरहे-थे, उस भगवान् नारायणसे अधिष्ठित हो कर उन ब्रह्माने अपने नामरूपादि क्रमसे पूर्वकल्पके समान लोकोंकी रचना की ॥ १७ ॥ उन्होंने पहले तामिस्र, अन्ध तामिस्र, तम, मोह और महामोह—इस पाँच पर्वोंसे युक्त अविद्याकी अपनी छायासे सृष्टिकी ॥ १८ ॥ उसको ठीक न समझकर ब्रह्माने उस भावको छोड़ दिया। वही छोड़ा गया शरीर रात्रिरूप हुआ, जिसमें क्षुधा और तृषाका उद्भव होता है। उसको उसीसे उत्पन्न यक्ष—राक्षसोंने ले लिया ॥ १९ ॥ भूख और प्याससे पीड़ित वे लोग उनको खाने दौड़े। उनमें, जिन्होंने यह कहा कि 'इसकी

दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥ १४ ॥ सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः ॥ साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥ १५ ॥
तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ॥ सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥ १६ ॥ सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ॥
लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥ १७ ॥ ससर्ज च्छाययाऽविद्यां पञ्चपर्वाणमग्रतः ॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥१८॥
विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् ॥ जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृड्भवामुपसृष्टास्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः। मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः
क्षुत्तृडर्दिताः ॥ २० ॥ देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ॥ अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥ २१ ॥ देवताः प्रभया या या
दीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् ॥ ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥ देवोऽदेवान् जघनतः सृजतिः स्मातिलोलुपान् ॥ त एनं लोलुपतया
मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥ ततो हसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ॥ अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥२४॥ स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं
हरिम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥ २५ ॥ पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ॥ इमा यभितुं पापा उपाक्रामन्ति मां प्रभो

रक्षा मत करो, क्योंकि हम भूखे हैं, भले ही यह पिता हो, वे राक्षस हुए और जिन्होंने कहा—खाओ (जक्षध्वम्) वे यक्ष हुए ॥ २० ॥ ब्रह्माने संविग्न होकर उनसे कहा—मुझे मत खा डालो, मेरी रक्षा करो। हे यक्ष और राक्षसों, तुमलोग मेरी यक्ष और राक्षस नामकी प्रजा हो चुके हो ॥ २१ ॥ प्रभासे दीप्त उन्होंने जिन-जिन कान्तिमान् देवाताओंकी मुख्यतः सृष्टि की, उन सभी देवताओंने उनके द्वारा छोड़ी गई उस प्रभाको खेलवाड़ करते हुए ले लिए। वही प्रभा दिन है ॥ २२ ॥ ब्रह्माने जघनसे अत्यन्त स्त्री-लम्पट असुरोंकी सृष्टि की। वे उस लम्पटताके कारण इनके पास मैथुनके लिए आये ॥ २३ ॥ उससे पहले तो ब्रह्माजी हँसे, परन्तु जब निर्लज्ज असुर उनके पीछे दौड़ने लगे, तब ब्रह्माजी क्रुद्ध और भीत होकर बड़े जोरसे भागने लगे ॥ २४ ॥ भागते-भागते वे प्रपन्नार्तिहर, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए अनुरूप आत्मदर्शन देनेवाले वरद हरिके पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—परमात्मन्, मेरी रक्षा कीजिए। आपकी आज्ञासे मैंने इन प्रजाओंकी सृष्टि की, किन्तु हे प्रभो, ये पापी मेरे ही ऊपर मैथुनके लिए आक्रमण कर रहे हैं ॥ २५, २६ ॥ आप ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्लेशको प्राप्त किए हुए लोगोंके क्लेशका निःसन्देह नाश करनेवाले हैं। जिन्होंने आपके चरणोंका आश्रयण नहीं किया, उनको आप ही क्लेश देनेवाले हैं ॥२७॥ दूसरेके चित्तको साफ-साफ जानने वाले भगवान्ने ब्रह्माकी दीनता देखकर उनसे कहा—आप अपने इस घोर शरीरका त्याग कर दीजिए। उसके अनुसार ब्रह्माने उस शरीरका त्याग कर दिया ॥ २८ ॥ वह देह अपने चरणकमलोंमें नूपुरोंकी झनकार करनेवाली मदविह्वल लोचनवाली, अपने कटितटपर सुन्दर वस्त्र और कांची पहनी हुई, परस्पर घर्षण करनेवाले उन्नत स्तनवाली, सुन्दर जिसके नाक और दाँत हैं. जिसका हास्य और लीलावलोकन स्निग्ध है ऐसी स्त्री रूपी सन्ध्या हुई। वह लज्जाके कारण वस्त्रांचलसे अपनेको ढक रही थीं। सुन्दर उसका केश कलाप था। हे विदुरजी, उसे देखकर सभी असुर मुग्ध हो गये ॥ २९–३१ ॥ ओह! इसका कैसा रूप है, क्या धैर्य है, इसका तारुण्य बिलकुल नया है—हायरी इसकी चढ़ती

॥ २६ ॥ त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः ॥ त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥ २७ ॥ सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ॥ विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥ तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥२९॥ अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्गनिरन्तरपयोधराम् ॥ सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ॥३०॥ गूहन्तीं व्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम् ॥ उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥ अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः ॥ मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥३२॥ वितर्कयन्तो बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदाकृतिम् ॥ अभिसंभाव्य विश्रम्भात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥३३॥ कासि कस्यासि रम्भोरु को वार्थस्तेऽत्र भामिनि ॥ रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥३४॥ या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या सन्दर्शनं तव ॥ उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ॥३५॥ नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ॥ मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ॥३६॥ इति सायन्तनीं सन्ध्यामसुराः प्रमदायतीम् ॥ प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥ ३७ ॥ प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना ॥

जवानी। यह हम सब कामियोंके बीचमें कामरहितके समान जा रही है ॥ ३२ ॥ उन दुर्बुद्धियोंने उस स्त्रीरूपी सन्ध्याके विषयमें अनेक तर्क किए। फिर प्रेमसे उसका सत्कार करके पूछने लगे—॥ ३३ ॥ हे भामिनि, तुम कौन हो, किसकी बेटी हो, तुम्हारा यहाँ क्या काम है। तुम्हारी जाँघ केलेके स्तम्भके समान हैं। तुम्हारे पास यह अमूल्यरूप विक्रयके लिए है, लेकिन हमारे पास इसका मूल्य न होनेके कारण तुम हम अभागोंको इससे पड़ित कर रही हो ॥ ३४ ॥ चाहे तुम जो भी कोई हो, इससे हमें क्या मतलब, लेकिन सुदैवसे तुम्हारा आज हमें दर्शन हुआ है। तुम अपनी कन्दुककी क्रीड़ासे हम देखनेवालोंके मनको मथ रही हो ॥ ३५ ॥ हे श्लाघनीये, तुम बार-बार उछल रहे गेंदको ऊपरसे मारती हो, अतः तुम्हारे पादपद्म एक जगह नहीं ठहरते। भारी स्तनोंसे भारसे डरा हुआ मध्यश्रान्त होता है। तुम्हारी शान्त-सी दृष्टि है, केशकलाप सुन्दर हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार स्त्रीके समान आचरण कर रही, मुग्ध कर रही सायंकालीन सन्ध्याको स्त्री समझकर उन मूर्खोंने पकड़ा ॥ ३७ ॥ फिर गम्भीरभावसे हँसकर अपने ही आपको अवघ्राण कर रहे सौन्दर्यसे ब्रह्मा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ने गन्धर्व और अप्सराओंकी सृष्टि की । ३८ ॥ फिर ब्रह्माने वह शरीर छोड़ दिया, जो कान्तिमती प्रिय ज्योत्स्ना हुई । उसको विश्वावसु आदि गन्धर्व और अप्सराओंने लिया ॥ ३९ ॥ फिर अपने आलस्यसे ब्रह्माने भूत-पिशाचोंकी सृष्टि की । नग्न और मुक्तकेश उनको देख ब्रह्माने आँखें मूंद लीं ॥ ४० ॥ ब्रह्मने वह जो शरीर छोड़ा, वह जृम्भण हुआ । उसे भूतोंने लिया । जिससे इन्द्रियोंका स्राव होता है उसे निद्रा कहते हैं और जिस इन्द्रियविक्लेदरूपहेतुसे उच्छिष्टोंको भ्रान्त करते हैं उसे उन्माद कहते हैं । उसीके कारण तन्द्रा जँभाई, निद्रा और उन्मादके कारण भूतादि भी चार प्रकारके कहे गये हैं ॥ ४१ ॥ भगवान् प्रभु ब्रह्माने अपनेको बलवान् समझते हुए अदृश्यरूपसे साध्यगण और पितृगणोंकी सृष्टि की ॥ ४२ ॥ उस छोड़े गये शरीरसे हव्य-कव्य हुए, जो विद्वान् लोग साध्य और पितरोंको देते हैं । उसको पितरोंने लिया ॥ ४३ ॥ अन्तर्धान शक्तिसे ब्रह्माने सिद्ध और

कान्त्या ससर्ज भगवान्गन्धर्वाप्सरसां गणान् ॥३८॥ विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियाम् ॥ त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥३९॥ सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रिणा ॥ दिग्वाससो मुक्तकेशान्वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥४०॥ जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ॥ येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति समुन्मादं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः ॥ साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणसृजत्प्रभुः ॥४२॥ त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे ॥ साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥४३॥ सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधानेन सोऽसृजत् ॥ तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥४४॥ सन्निरान्किंपुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ॥ मानयन्नात्मनात्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥ ४५ ॥ ते तु तज्जगृहू रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ॥ मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥४६॥ देहेन वै भोगवता शयानोबहुचिन्तया ॥ सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ॥४७॥ येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे ॥ सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥४८॥ स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ॥ तदा मनून्ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥४९॥ तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् ॥ तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥ ५० ॥ अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते

विद्याधरोंकी सृष्टि की । वह अन्तर्धानरूपी उत्सृष्ट शरीर उन्हींको दे दिया ॥ ४४ ॥ अपने प्रतिविम्बके सौन्दर्यके दर्शनसे अपनेको सुन्दर समझते हुए उन प्रभु ब्रह्माने किन्नर और किंपुरुषोंको उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ जिस रूपको परमेष्ठिने छोड़ दिया, उस रूपको उन्होंने लिया । उषाकालमें मिलकर उसीका वे उनके पराक्रम आदिके वर्णन द्वारा गान करते हैं ॥ ४६ ॥ अत्यन्त चिन्तासे जब ब्रह्मा हाथ पैर न पसार कर संकुचति थे और सृष्टि न बढ़नेके कारण उन्हें क्रोध हो आया, तब जो इनकी देहसे केश गिरे, उससे अहि उत्पन्न हुए । हे विदुरजी, वे ही रेंगने वाले सर्प क्रूर बड़े फनवाले नाग हैं । उनके द्वारा उस छोड़े गये शरीरको सर्पोंने लिया ॥ ४७, ४८ ॥ जब ब्रह्माने अपनेको कृतकृत्य-सा समझा तब मनसे उन्होंने लोकपालक मनुओंको उत्पन्न किया ॥ ४९ ॥ उनको सर्वाश्रय ब्रह्माने अपनी पुरुषाकार देह छोड़कर दे दी । उनको देखकर पहले जिनका जन्म हुआ था, उन्होंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्माकी यों प्रशंसा की—हे जगत्स्रष्टा, आपने यह बहुत ठीक किया। जिन मनुष्योंकी सृष्टिमें आपने अग्निहोत्रादि क्रियाएँ प्रतिष्ठित कीं। अतः हे ब्रह्मन्, अब हम सबके सब एक

कृतम् । प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदाम हे ॥ ५१ ॥ तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ॥ ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥ ५२ ॥ तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ॥ यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥ इति श्रीम० म० तृ० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

साथ हविर्भाग आदिका भक्षण करेंगे ॥ ५०, ५१ ॥ इसके बाद तप और विद्यासे युक्त हो आसनादि योगसे समाहित होकर इन्द्रियजयी ब्रह्माने ऋषियोंकी सृष्टि की, जो उनके अभिमत प्रजा हुई ॥ ५२ ॥ उनको समाधि, योग, तप, विद्या और विरक्तिसे युक्त अपने शरीरका एक-एक अंश दिया ॥ ५३ ॥

बीसवें अध्यायका सार—सूतजीने कहा—विदुरजी वराहावतारकी कथा सुनकर आनन्दित होकर फिर पूछने लगे—ब्रह्माजीने प्रजापतियोंकी सृष्टि करनेके बाद क्या किया ? उनके आदेशसे मरीच्यादि ऋषियोंने तथा मनुओंने किसतरह सृष्टि की। मैथुनसे की या अकेले या सभीने मिलकर ? मैत्रेयजीने कहा— पहले जैसा कहा गुणत्रयक्षोभसे महान्, उससे अहंकार, उससे महाभूत, एकादशेन्द्रियाँ और तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं। उन्होंने अकेले भौतिकसर्गमें असमर्थ होनेके कारण सभीने मिलकर हैम अण्डकी सृष्टिकी। वह हजार साल पानीमें पड़ा रहा। फिर उसमें भगवान्ने प्रवेश किया। उनके नाभिकमलसे सभीका स्थान पद्म निकला, उसमें ब्रह्माजी हुए। ब्रह्माने जलशायी नारायणसे अधिष्ठित होकर पूर्वके समान सृष्टिकी। पहले उनसे अपनी छायासे पंचपर्वात्मक अविद्याकी सृष्टिकी और उसीसे यक्ष-राक्षसोंकी सृष्टिकी फिर उसको ठीक न समझकर उस शरीरको छोड़ दिया वह रात हुई। उसको यक्ष-राक्षसोंने लिया। फिर प्रभासे दीप्त उन्होंने देवताओंकी सृष्टिकी। उन्होंने जो उस भावको छोड़ा, वही प्रभारूपी दिन हुआ। वह देवताओंने लिया। फिर उन्होंने जघनसे स्त्रीलम्पट असुरोंको उत्पन्न किया, वे लम्पट मैथुनके लिए ब्रह्मापर दौड़े। तब ब्रह्मा उनसे डरकर भागे और भगवान्की शरण गये। तब भगवान्ने वह शरीर छोड़देनेको कहा। वह वैसा करने पर वह स्त्रीरूपी सायं संध्या हुई। वह अत्यन्त सुन्दरभी गेंदेसे खेलरही थी। दैत्य उसीके पीछे लगे। फिर हँसकर ब्रह्माने अपने सौन्दर्यसे गन्धर्व और अप्सराओंकी सृष्टिकी। वह छोड़ा गया शरीर चाँदनी हुई उसको उन्होंने लिया। फिर अपने आलस्यसे उन्होंने भूत-प्रेतोंको उत्पन्न किया ब्रह्माने अदृश्य रूपसे साध्यगण और पितृगणोंकी सृष्टिकी, वह शरीर हव्य-कव्य हुआ, उसको पितर और साध्योंने लिया। अंतर्धान शक्तिसे ब्रह्माने सिद्ध और विद्याधरोंको उत्पन्न किया। वह अन्तर्धान उन्हींको दिया। आपके प्रतिविम्बका सौन्दर्य देखकर उन्होंने किन्नर और किंपुरुषोंको उत्पन्न किया। फिर अपनेको ब्रह्माने आकुंचित करके चिन्ताकी, और सृष्टि अभी बढ़ती नहीं, इसलिए उनको क्रोध हो आया। तब उससे सर्प उत्पन्न हुए। उन्होंने उस क्रोधको लिया। ब्रह्माने अपनेको कृतकृत्य मानकर लोकपालक मनुओंकी सृष्टि की। उनको देख पहले उत्पन्न सभी लोगोंने उसकी प्रशंसा की— ये लोग यज्ञ यागादि करके हमको हविर्भाग देंगे। फिर तप, विद्या सम्पन्न होकर योग युक्त समाहितभावसे ऋषियोंकी सृष्टि की और इस शरीरके अंश तप विद्या इत्यादि उनको दिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ एकविंशतितमोऽध्यायः ❀

[कर्दमको भगवान्‌का वर और स्वयंभुव मनुसे उनकी भेंट]

विदुरजीने कहा—भगवन्, स्वायंभुवमनुका परम सम्मत वंश कहिए, जिसमें मैथुनसे प्रजाएँ बढ़ीं ॥ १ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद इन स्वायंभुवके पुत्रोंने धर्मसे सप्तद्वीपवती पृथ्वीका पालन किया ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्, उनकी पुत्री देवहूति नामसे प्रसिद्ध हुई, जिसके हे अनघ, आपने कर्दम प्रजापतिकी पत्नी बतलायी है ॥ ३ ॥ योग लक्षणोंसे युक्त उसमें उस महायोगीने कितने सन्तान पैदा किए, यह मुझसे कहिए, मैं यह सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन्, एवं भगवान् रुचि और ब्रह्मपुत्रदक्ष प्रजापतिने मनुपुत्रियोंको भार्यारूपसे पाकर जैसे भूतोंकी सृष्टि की, वह भी मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—'प्रजाओंकी सृष्टि करो' यों ब्रह्माके आज्ञा देनेपर भगवान् कर्दम प्रजापतिने सरस्वतीके तीर पर दसहजार

विदुर उवाच ॥ स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः ॥ कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥ १ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायंभुवस्य वै ॥ यथा धर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ २ । तस्य वै दुहिता ब्रह्मन् देवहूतीति विश्रुता ॥ पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ ॥ ३ ॥ तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ॥ ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥ ४ ॥ रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन् दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ॥ यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः ॥ सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥ ६ ॥ ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः ॥ संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥ ७ ॥ तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे ॥ दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥ ८ ॥ स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् । स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ॥९॥ किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ श्वेतोत्पलक्रीडनकंमनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥ विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः ॥ दृष्ट्वाखेऽवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥ ११ ॥ जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः ॥

वर्षोंतक तप किया ॥ ६ ॥ फिर उन्होंने समाधि युक्त क्रिया योगसे बड़ी भक्तिके साथ प्रपन्नवरदायक भगवान्‌की सेवा की ॥ ७ ॥ तब हे विदुरजी, प्रसन्न हुए पुण्डरीकाक्ष भगवान्‌के—शब्दैकवेद्य जो ब्रह्म है तन्मय शरीर उनको प्रत्यक्ष दिखलाया ॥ ८ ॥ वह रूप निर्दोष, सूर्यके समान कान्तिमान्, श्वेत और नीलपद्मकी मालाधारी था। स्निग्ध-नील केशोंसे सुशोभित उसका मुखकमल था उसका सफेद वस्त्र था ॥ ९ ॥ उन्होंने किरीट कुण्डल शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किया था। मनमें आनन्द देनेवाले उनके स्मित और अवलोकन थे ॥ १० ॥ अपने चरणकमलको उन्होंने गरुडके कन्धेपर रखा था, उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और गलेमें कौस्तुभ था। इसतरहकी भगवन्मूर्तिको आकाशमें देखकर कर्दम प्रजापति मनोरथ पूर्ण होनेके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारण आनन्दित होकर जमीन पर सिर रखकर गिर पड़े और प्रीतिरूपी स्वतःसिद्ध धर्मयुक्त मनसे हाथ जोड़कर नानाविध वाणियोंसे स्तुति करने लगे ॥ ११, १२ ॥ कर्दमऋषिने कहा—हे ईड्य, बड़े हर्षकी बात है, समस्त जीवोंकी निधि आपके दर्शनसे आज हमारी आँखें सफल हो गईं, जिस आपके दर्शनकी—योगी लोग उत्तरोत्तर सर्वोत्तम अनेक जन्मोंसे अपने योगाभ्यासको परिपुष्ट बनाकर—आशा करते हैं ॥ १३ ॥ हे ईश, आपकी मायासे हत बुद्धि होकर जो लोग, नरकमें भी जो मिल सकता है ऐसी क्षुद्र कामनाके लिए आपके भवसागरपार करानेवाले पादपद्मोंकी उपासना करते हैं, उनको आप वह भी देते हैं ॥ १४ ॥ वैसा ही मैं भी गृहस्थाश्रममें कामधेनुके समान त्रिवर्गदात्री अनुरूप शीलवती भार्यासे विवाह करना चाहता हूँ। उसीके लिए यह दुराशा मनमें रखकर सभीके मूल अभीष्टदायक कल्पद्रुम आपके चरणके पास आया हूँ ॥ १५ ॥ हे धीश, प्रजापतिरूप आपके वचन के तारसे निःसन्देह यह कामसे अभिभूत लोक बँधे हैं। मैं भी लोगोंका अनुगमन करनेवाला हूँ। अतः कर्ममय आपकी आज्ञाका पालनकर कालात्मा आपकी पूजा करूँगा ॥ १६ ॥

गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ॥ यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥ १३ ॥ ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ॥ उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥ १४ ॥ तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् । उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥ १५ ॥ प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ॥ अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लाऽनिमिषाय तुभ्यम् ॥ १६ ॥ लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ॥ परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ १७ ॥ न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व । षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ १८ ॥ एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययात्मन्नधियोगमायया ॥ सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवन्स्वशक्तिभिः ॥ १९ ॥ नैतद्बताधीश

कामसे अभिभूत हुए समस्त लोगों तथा उनके पीछे दौड़नेवाले विवेकहीन पशुओंको छोड़कर जो आपके चरणरूपी छत्रका आश्रयण करते हैं वे लोग परस्पर आपके गुणानुवादरूपी मादक मदिरा या अमृतके पानसे मस्त हो जाते हैं—क्षुधा और प्यास आदि अपने देह धर्मोंको भूल जाते हैं ॥ १७ ॥ समस्त जगत्को आकृष्ट कर दौड़ रहा कामचक्र भी आपके भक्तोंकी आयु लेकर नहीं दौड़ता। तीव्र वेगवाला यह कालचक्र अजर ब्रह्मरूपी अक्षके चारो ओर घूमता है, मलमासको लेकर तेरह मास इसके आरा हैं, तीनसौ साठ अहोरात्र इसके पर्व हैं, छः ऋतुएँ इसकी नेमियाँ हैं—क्षण-लवादि अनन्त इसकी पत्राकार धाराएँ हैं, तथा तीन चौमासे इसके आधारभूत वलय हैं ॥ १८ ॥ हे भगवन्, आप जब अकेले रहते हैं, तब आपको जगतकी उत्पत्ति करनेकी इच्छा होती है, इसलिए आप स्वात्मनिष्ठ अपनी दूसरी योगमायासे जगत्की सृष्टि करते हैं। फिर उसका रक्षण भी करते हैं और आखिरमें अपनी शक्तिसे उसका ऐसे संहार भी कर देते हैं, जिस तरह उर्णनाभि (मकड़ा) अपने जालकी सृष्टिकर उसको फिर निगल जाता है ॥ १९ ॥ हे अधीश, आप यद्यपि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हम आपके भक्त विषयसुखमें पड़े, यह नहीं चाहते फिर भी अनुग्रह करके यह मायासे देते ही हैं। मुझे भी वही अनुग्रह करके दीजिये, क्योंकि मायासे परिच्छिन्न बने हुए जैसे, शोभायमान तुलसीसे युक्त आपको एक बार मैंने देख लिया है–अर्थात् इस तरहके आपका जो दर्शन है वह अवश्य ही भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ २० ॥ भुक्ति-मुक्ति देनेवाले आपको हम बार-बार नमस्कार करते हैं। आपमें स्वभावभूत ज्ञानके कारण क्रियाफलका भोग नहीं है। आपने अपनी मायासे यह विश्वरूपी उपकरण सम्पादित किया है। इसीलिए सकाम और निष्काम–दोनों तरहके लोग आपके पादसरोजको भजन करते हैं। उनमें जो सकाम हैं उनकी आप कामना भी पूरी करते हैं ॥ २१ ॥ मैत्रेयजीने कहा–इस प्रकार निष्कपट–भावसे स्तुति करने पर सोनेके पंखवाले गरुड़पर शोभायमान, प्रेम और स्मितसे युक्त दृष्टिसे जिनकी भ्रुकुटि घूम रही थी, ऐसे पद्मनाभ भगवान् अपनी अमृतमय

पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ॥ अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या भगवान्विलक्षितः ॥ २० ॥ तं त्वाऽनुभूत्योपरत-
क्रियार्थं स्वमाययावर्तितलोकतन्त्रम् ॥ नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥ २१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्यव्यलीकं प्रणुतोऽब्ज-
नाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ॥ सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विदित्वा तव चैत्यं
मे पुरैव समयोजि तत् ॥ यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥ २३ ॥ न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् ॥ भवद्विधेष्वतितरां
मयि सङ्गृभितात्मनाम् ॥ २४ ॥ प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः ॥ ब्रह्मावर्तं योऽधिवसञ्शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥ २५ ॥ स चेह
विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया ॥ आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥२६॥ आत्मजामसितापाङ्गीं वयःशीलगुणान्विताम् ॥ मृगयन्तीं
पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥२७॥ समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् । सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति २८॥ या त आत्मा-
भृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ॥ वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यञ्जसात्मनः ॥२९॥ त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः ॥ मयि तीर्थीकृता-

वाणीसे कर्दमऋषिसे बोले ॥२२॥ ॥ भगवान्ने कहा–तुम्हारा भाव जानकर मैंने पहले ही उसकी योजना कर दी है, जिसके लिए तुमने इन्द्रिय निग्रह करके मेरी आराधना की ॥ २३ ॥ हे प्रजापते मेरा पूजन कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। तत्रापि विशेषतः तुम्हारे जैसे मुझमें एकाग्रचित्तवालेका पूजन तो कदापि व्यर्थ नहीं होता ॥ २४ ॥ प्रजापति ब्रह्माका पुत्र मनु नामका सम्राट् है, जिसका सदाचरादि रूप उत्कर्ष प्रसिद्ध है और जो ब्रह्मावर्तमें रहकर सप्तद्वीपवती पृथ्वीका शासन करता है ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मण, वह धर्मज्ञ राजर्षि अपनी भार्या शतरूपाके साथ परसों तुम्हें देखने यहाँ आयेगा ॥ २६ ॥ और हे प्रभो, सुन्दर नीली आँखोंवाली, वयशील-गुणोंसे युक्त, पति चाह रही अपनी कन्याको अनुरूप तुम्हें प्रदान करेगा ॥ २७ ॥ इतने वर्षोंतक तुम्हारा मन जिस भार्यामें स्थिर था, वह राजकन्या शीघ्र, तुम्हारा यथेच्छ भजन करेगी ॥ २८ ॥ वह तुमसे नव कन्याओंका जन्म देगी, जिन कन्याओंमें ऋषि लोग बड़ी सुगमतासे सन्तान उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ तुम मेरा आदेश पालन करके शुद्धसत्त्व होकर मुझमें सभी कर्मफल अर्पितकर अन्तमें मेरे पास आओगे ॥ ३० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सभी जीवोंपर दयाकरके उन्हें अभय देकर मुझमें अपनेको और विश्वको तथा अपनेमें जगत्को और मुझे देखोगे ॥ ३१ ॥ मैं खुद अपना अंशकलासे तुम्हारे वीर्यसे तुम्हारे क्षेत्र देवहूतिमें प्रकट होकर तत्त्वसंहिताका निर्माण करूंगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह कह कर प्रत्यगक्षज भगवान् सरस्वती नदीसे परिवेष्टित विंदुसरोवरसे चले गये ॥ ३३ ॥ कर्दममुनिके देखते-देखते सभी सिद्धोंके ईश्वरोंसे स्तुत वैकुण्ठके मार्गसे भगवान् चले गये। जाते समय गरुडके पक्षसे अभिव्यक्त सामगायनको तथा उसके आधारभूत ऋचाओंको भगवान् सुन रहेथे ॥३४॥ जब भगवान् चले गये तब महर्षि कर्दम उनके कहनेके अनुसार उस समयकी प्रतीक्षा करते हुए विंदुसरोवरके तीरपर स्थित रहे ॥ ३५ ॥ हे विदुरजी, स्वायंभुव मनु सुवर्णके परिच्छदोंसे युक्त रथमें बैठकर अपनी कन्या और पत्नीके साथ पृथ्वीपर घूमते हुए भगवान्के कहे दिनपर व्रत समाप्त किये हुए कर्दमके आश्रममें आये ॥ ३६,३७ ॥

शेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥ कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् ॥ मय्यात्मानं सह जगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥३१॥ सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने ॥ तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥३२॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः ॥ जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रिताव् ॥३३॥ निरीक्षतस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ॥ आकर्णयन्पत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम ॥३४॥ अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः ॥ आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥ मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् ॥ आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥३६॥ तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् ॥ उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥ यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः ॥ कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम ॥३८॥ तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ॥ पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥ पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ॥ ४० ॥ मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥४१॥ कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलासनैः ॥ कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलङ्कृतम् ॥ ४२ ॥ कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः ॥ सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥ ४३ ॥ तथैव हरिणैः

वहां पर मिले कर्दमको कन्यादान करनेसे अत्यन्त कृपायुक्त स्वायंभुव-मनुकी आंखोंसे अश्रुबिंदु जिस सरोवरमें पड़े ॥ ३८ ॥ वही विंदु नामका सरोवर सरस्वतीसे वेष्टित है। वह पुण्यमय है। उसका अमृतके समान जल पवित्र है। महर्षि लोग उसका सेवन करते हैं ॥ ३९ ॥ वह पुण्यवान् लता-वृक्षोंके समूहसे, कूजन कर रहे पुण्यमय मृग और पक्षियोंसे तथा वनराजिकी शोभासे युक्त है। एवं वह वन सभी ऋतुओंके फल-पुष्पोंसे पूर्ण है। ॥ ४० ॥ वहाँ पर मत्त पक्षिगण निवास करते रहते हैं। भ्रमर मधुमत्त होकर विलास करते रहते हैं। मत्त मयूररूपी नटोंके नृत्यका वहाँ सभ्रम रहता है। मत्त कोकिलाएं मधुर ध्वनिसे परस्पर एक दूसरेका आह्वान करती रहती हैं ॥ ४१ ॥ कदम्ब, चम्पक, अशोक, मौलसरी, करंज, असन, कुन्द, मंदार, कुटज और आमके वृक्षोंमे वह अलंकृत है ॥ ४२ ॥ कारण्डव, वत्तक, हंस, कुरर जल कुक्कुट, सारस, चक्रवाक, और चकोर आदि पक्षी वहाँ मधुर कूजन करते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहते हैं ॥ ४३ ॥ उसी तरह हरिण, वराह, शल्लक, नीलगाय, हाथी, बंदर, लंगूर, सिंह, कस्तूरोमृग और नकुल वहाँ विहार करते रहते हैं, उनसे वह खूब भरा रहता है ॥ ४४ ॥ उस तीर्थमें आदि राजा स्वायंभुवने अपनी कन्याके साथ प्रवेश करके अग्निमें होम करके बैठे हुए मुनिको देखा ॥ ४५ ॥ चिरकालतक तपस्यामें उग्रयोग वाले अपने शरीरसे वे चमक रहे थे। भगवान् की स्निग्ध दृष्टि उनपर पड़नेके कारण तथा उनके वचनरूपी चंद्रकलामय अमृतका पान करनेके कारण वे ज्यादा दुबले नहीं थे ॥ ४६॥ वे ऊंचे थे। पद्मपत्रके समान उनके नेत्र थे। जटा और वल्कल धारण किये हुए थे। उनके समीप जाकर राजाने उन्हें एसे देखा जैसे कि कोई कीमती संस्कार हीन महारत्न हो ॥ ४७ ॥ झोपड़ीमें आकर चरणके समीप प्रणाम किये हुये राजाका प्रत्यभिनन्दन करके कर्दमने योग्य पूजासे सत्कार किया ॥ ४८ ॥ पूजा ग्रहण करके स्तब्ध बैठे हुए राजाको सन्तुष्ट करते हुए भगवान्के आदेशको

क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः ॥ गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम्॥ ४४॥ प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजःसहात्मजः ॥ ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥४५॥ विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् ॥ नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गावलोकनात् ॥ तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥ ४६ ॥ प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ॥ उपसंसृत्य मलिनं यथार्हणमसंस्कृतम् ॥ ४७ ॥ अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः ॥ सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥ ४८ ॥ गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ॥ स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥ ४९ ॥ नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते ॥ वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥ ५० ॥ योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् ॥ रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥ न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् ॥ विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥ ५२ ॥ स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः ॥ विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥ ५३ ॥ तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः ॥ भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन्बात दस्युभिः ॥ ५४ ॥ अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः ॥ शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो

स्मरणकर कर्दममुनि शुद्ध मधुरवाणीसे बोले ॥ ४९ ॥ देव, आपका घूमना निःसन्देह सज्जनोंके संरक्षणके लिये तथा दुष्टोंके नाशके लिये ही है, क्योंकि आप भगवान्की पालक शक्ति हैं ॥ ५० ॥ कार्यानुसार समय-समय पर सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यमधर्म और वरुणका रूप धारण करने वाले उस विष्णुरूप आपको प्रणाम है ॥ ५१ ॥ हे राजन्, अगर आप जयशील, मणियोंसे खचित रथ पर बैठकर टंकार करनेवाले प्रचण्ड धनुषको लेके पापियोंको रथकी ध्वनिसे त्रस्त करते हुए, अपने सैन्यके चरणोंसे मर्दित हुई पृथ्वीके मण्डलको कँपाते हुए, बड़ी भारी सेनाको अपने साथ खींचते हुए सूर्य भगवान्के समान यदि पर्यटन न करते, तो तभी भगवान् रचित वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाएँ दस्युओं द्वारा तोड़ दी गई होतीं और निरंकुश लोलुप लोगों के द्वारा अधर्म बहुत बढ़ गया होता। आपके सो जानेपर यह लोक दस्युओंसे ग्रस्त होकर नष्ट हो जायगा ॥ ५२—५५ ॥ हे वीर फिर भी क्या हम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपसे पूछ सकते हैं कि आप यहाँ कैसे पधारे हैं ? चाहे आप जिस किसी प्रयोजनसे आये हों, हम सहर्ष हृदयसे उसको स्वीकार करनेके लिये तैयार हैं ॥ ५६ ॥

विनंक्ष्यति ॥ ५५ ॥ अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ॥ तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इक्कीसवें अध्यायका सार—विदुरजीने कहा—महर्षे, मनुकी पुत्री देवहूतिको पाकर कर्दमने कौनसी प्रजा उत्पन्न किए। एवं रुचि और दक्ष इन मनुके दामादोंने क्या सृष्टि की, मुझसे कहिये। मैत्रेयजीने कहा—ब्रह्मासे सृष्टिकी आज्ञा पाकर कर्दमने सरस्वतीके किनारे दस हजार वर्षों तक तप किया। उसके कारण भगवान् विष्णुने गरुड़पर आकर उनको दर्शन दिया। भगवान्को प्रत्यक्ष देख कर्दम आनंदित हुए। उन्होंने साष्टांग प्रणाम कर हाथ जोड़ करके भगवान् की प्रार्थना की। प्रार्थना कर्दममुनिकी सुनकर भगवान्ने अपने अमृतमय वाणीसे कहा—तुम्हारे मनका भाव मानकर मैंने ही इसका निश्चय किया है। उसके अनुसार परसों यहाँ स्वायंभुव-मनु आकर अपनी योग्य कन्या देवहूतिको तुम्हें प्रदान करेंगे। तुमसे उसमें नव कन्याएं होंगी और उन कन्याओंमें ऋषि लोग सन्तान उत्पन्न करेंगे। फिर तुम मेरी आज्ञाका पालन कर सभी कर्मोंको मुझे अर्पित कर मेरे पास आओगे। ऐसा कहकर भगवान् वैकुण्ठमें चले गए। कर्दम भी उनकी आज्ञानुसार वहीं बिन्दुसरोवर पर प्रतीक्षा करने लगे। भगवान् स्वायंभुवमनु सुवर्णमय रथ पर अपनी पुत्री और स्त्रीके साथ बैठकर पृथ्वीका पर्यटन करने निकले। और भगवान्के कहे हुए दिन बिंदुसरोवर पर जहाँ व्रत समाप्त कर कर्दम बैठे थे, आए। कर्दमने उनका योग्य सत्कार करके कहा—आप दुष्टोंका नाश और शिष्टोंके पालनके लिए पृथ्वी पर घूमते हैं। आप भगवान्की पालक शक्ति हैं। समस्त दिक्पालोंका और साक्षात् विष्णुका आपसे सान्निध्य है। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप अगर अपने सैन्यके साथ इस तरह नहीं घूमेंगे, तो धर्म मर्यादा नष्ट हो जायगी और अधर्म बढ़ने लग जायगा। दस्यु लोग अधर्म बढ़ाकर भूमिको नष्ट कर डालेंगे। फिर किसी खास प्रयोजनसे यदि आप यहाँ आए हों, तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा।

❋ अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ❋

[देवहूतिसे कर्दमऋषि का विवाह]

मैत्रेय उवाच ॥ एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ॥ सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥ १ ॥ मनुरुवाच ॥ ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो

मैत्रेयजीने कहा—इस तरह अपने समस्त गुण और कर्मोंकी स्तुति सुनकर लज्जित सम्राट् मनु निवृत्तिनिरत मुनिसे बोले ॥ १ ॥ मनुने कहा—ब्रह्माने छन्दोमय अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पालनकी (वेदप्रवर्तनकी) इच्छासे तप-विद्या-योग युक्त, अलम्पट आप ब्राह्मणोंको मुखसे उत्पन्न किया ॥ २ ॥ और सहस्र पाद उन्होंने आप ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिए हजारों हाथोंसे हम लोगोंको उत्पन्न किया। ब्राह्मण उनका हृदय और क्षत्रिय अंग हैं ॥ ३ ॥ इसलिये ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर अपनी रक्षा करते हैं तथा निर्विकार सदसदात्मक जो भगवान् हैं वह दोनोंकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ आपके दर्शनसे ही मेरे सब मनोरथ पूर्ण हो गये, क्योंकि आपने बिना पूछे ही स्वयं बड़े प्रेमसे क्षत्रियके धर्म बतलाए ॥ ५ ॥ आज सुदैवसे आपका दर्शन हुआ, जिनका चित्त वशमें नहीं है ऐसे को आपका दर्शन नहीं होता। आज सुदैवसे आपकी पवित्र मंगलमय पदधूलि मेरे माथेमें लग सकी ॥ ६ ॥ सौभाग्यसे आज आपने मुझे उपदेश दिया और महान् अनुग्रह किया। जो आप खुले कर्णरन्ध्रोंसे मुझे आपकी पवित्रवाणी सुनने का अवसर मिला, यह भी मेरा परम सौभाग्य है ॥ ७ ॥ हे मुने, कन्यास्नेहसे

युष्मानात्मपरीप्सया : छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥२॥ तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात्॥ हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥३॥ अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ॥ रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ ४ ॥ तव सन्दर्शनादेवच्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ॥ यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरीक्षोः ॥ ५ ॥ दिष्ट्या मे भगवान्दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ॥ दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥ दिष्ट्या त्वयानुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् ॥ अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥ ७ ॥ स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ॥ श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥ प्रियव्रतोत्तानपादोः स्वसेयं दुहिता मम ॥ अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥९॥ यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् ॥ अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥१०॥ तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया ॥ सर्वात्मनाऽनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥११॥ उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ॥ अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥१२॥ य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते ॥ क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥१३॥ अहं त्वाऽशृणवं विद्वन्विवाहार्थं समुद्यतम् ॥ अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा ॥ आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥ १५ ॥ कामः

क्लिष्ट जिसका चित्त है ऐसे दीन मेरा कुछ निवेदन आप कृपया सुनिए ॥ ८ ॥ यह प्रियव्रत-उत्तानपादकी बहन मेरी यह कन्या वय-शील-गुणोंसे युक्त पति चाह रही है ॥ ९ ॥ जब नारदसे इसने आपके शील, ज्ञान, रूप और गुण सुने, तो आपके विषयमें इसने निश्चय कर लिया ॥ १० ॥ इसलिए हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, गृहस्थाश्रमके कर्मोंमें आपके सर्वथा अनुरूप मुझसे श्रद्धापूर्वक दी गई इस कन्याको आप स्वीकार कीजिए ॥ ११ ॥ जो विषयोपार्जनमें आसक्त नहीं ऐसे को स्वयं प्राप्त अर्थका इनकार करना ठीक नहीं है। फिर चाहने वालेके विषयमें क्या कहना है ॥ १२ ॥ जो प्राप्त अर्थको छोड़कर कृपणसे याचना करता है, उसका निर्मल विस्तृत यश तो नष्ट होती ही है और अवज्ञाके कारण मान भी चला जाता है ॥ १३ ॥ हे विद्वन्, मैंने सुना है कि आप विवाहका प्रयत्न कर रहे हैं। अतः कुछ नियत कालतक ब्रह्मचर्य धारण करनेके बाद विवाहेच्छुक आप मेरे द्वारा दी गई इसका स्वीकार कीजिए ॥ १४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्दमऋषिने कहा—ठीक है, मैं सचमुच विवाह करना चाहता हूँ और आपकी पुत्रीका भी अभी विवाह नहीं हुआ है, अतः हमलोगोंका अनुरूप यह प्रथम विवाह विधि हो ॥ १५ ॥ हे राजन्, आपकी पुत्रीका वेदमें कहा गया काम पूर्ण हो। जो अपनी कान्तिसे लक्ष्मीका एक तरहसे तिरस्कार करती है, उस आपकी कन्या को भला कौन स्वीकार नहीं करेगा ? ॥ १६ ॥ नूपुरोंके अंकहारसे युक्त मनोहर चरणोंकी शोभावाली जिसको अपने प्रसाद पर कन्दुक क्रीड़ा करते देख विश्वावसु गन्धर्व मारे मोहके मुग्ध चित्त होकर अपने विमानसे गिर पड़ा था। १७ ॥ जिन्होंने लक्ष्मीकी सेवा नहीं की है, उनके लिए आदर्शनीय, लालनोंकी ललामभूत, प्रार्थना करने वाली मनुकी पुत्री और उत्तानपादकी भगिनीको स्वयं प्राप्त होने पर भला कौन बुद्धिमान् नहीं स्वीकार करेगा ? ॥ १८ ॥ अतः जब तक यह मेरा वीर्य धारण करेगी तब तक इसे नियमके अनुसार स्वीकार करता हूँ। तदनन्तर साक्षात् विष्णुके

स भूयान्नरदेव तेऽस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः॥ क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥१६. यां हर्म्यपृष्ठे क्वण दङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम्॥ विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥१७॥ तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाममसेवित-श्रीचरणैरदृष्टाम् ॥ वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥१८। अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ॥ अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान्बहुमन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥ यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाव तिष्ठते ॥ प्रजा-पतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ॥ धियोपगृह्ण-न्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥२१॥ सोऽनु ज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ॥ तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रह-र्षितः ॥२२॥ शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ॥ दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥२३॥ प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ॥ उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥२४॥ अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चन्बाष्पकलां मुहुः ॥ आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः

कहे हिंसारहित परमहंसके धर्मोंका पालन करूँगा। उन्हींको मैं ठीक समझता हूँ ॥ १९ ॥ जिससे यह विचित्र विश्व उत्पन्न हुआ, जिसमें स्थित है और जिसमें लीन भी होगा वह प्रजा-पतियोंका पति भगवान् अनन्त ही मेरे लिए सर्व श्रेष्ठ प्रमाण है ॥ २० ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, वह कमलमुख कर्दमऋषि इतना कह कर भगवान्का ध्यान करते हुए मौन हो गये। उनके चित्तसे शोभित मुखसे देवहूतिका चित्त लुब्ध हो गया ॥ २१ ॥ मनुने कन्याका और महिषीका स्पष्ट निश्चय जानकर गुणाढ्य उस कर्दमजीको अनुरूप कन्या सहर्ष समर्पित कर दी ॥ २२ ॥ महाराज्ञी शतरूपाने भूषण, वस्त्र और गृहोपकरण इत्यादि विवाहकालमें देने योग्य मूल्यवान् बहुतसे द्रव्य उन्हें प्रीतिसे अर्पित किए ॥ २३ ॥ योग्य वरको कन्या दान करनेके कारण मनुकी चिन्ता दूर हो गई। उस कन्याका अपनी भुजाओंसे आलिंगन कर उत्कण्ठासे उनका मन क्षुब्ध हो गया ॥ २४ ॥ उसका विरह न सह कर नेत्राश्रु बहाते हुए हे अम्ब, हे वत्से—ऐसा कहकर नेत्र जलसे उन्होंने उसके केश भिगो दिए ॥ २५ ॥ फिर वह राजा उन मुनिवरसे विदा लेकर अपने अनुचरोंके सहित भार्याके साथ रथमें बैठकर अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नगरको गये ॥ २६ ॥ रास्तेमें उन्होंने ऋषियोंकी नदी सरस्वतीके दोनों किनारे पर उपशान्त ऋषियोंके अनेक आश्रम देखे ॥ २७ ॥ उनको आते हुए देखकर ब्रह्मावर्तकी प्रजाएँ गीत-संस्तुति और वादित्रोंके साथ हर्षित हो उनकी अगुवानी करने आईं ॥ २८ ॥ उनकी वह बर्हिष्मति नामकी नगरी थी, जहाँ यज्ञवराहके अंग झटकारनेके कारण रोम गिरे थे ॥ २९ ॥ वही हरे रंगके कुश और काश हुए, जिनसे ऋषियोंने यज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षसोंका पराभव कर यज्ञ किए ॥ ३० ॥ उस भूमिको यज्ञके योग्य स्थान पाकर भगवान् मनुने उन कुश-काशोंके आसन पर बैठकर यज्ञपुरुषके प्रीत्यर्थ यज्ञ किया ॥ ३१ ॥ वहाँ पर् वर्हिष्मति नामकी जो मनुने बसाई थी, उसमेंके अपने तापत्रय नाशक घरमें प्रवेशकर वहाँ पर प्रजा और भार्याके साथ धर्मार्थविरोधी कामका सेवन किया। अप्सराओंके साथ गन्धर्व उनकी कीर्ति गाते थे। और वह रोज सवेरे मन लगाकर भगवत्कथा सुनते थे ॥३२,३३॥ योगमायामें विपुण

शिखाः ॥ २५ ॥ आमन्त्र्यातं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः ॥ प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥ २६ ॥ उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ॥ ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥२७॥ तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् ॥ गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥ बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्समन्विता ॥ न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥ कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः ॥ ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे॥३०॥ कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान्मनुः ॥अयजद्यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥ बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निविश्य समावसत् ॥ तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥ ३२ ॥ सभार्यः सप्रजः कामान्बुभुजेऽन्याविरोधतः ॥ सङ्गीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥ प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥ ३३ ॥ निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् ॥ यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥ ३४ ॥ अयातयामास्तस्यासन्यामाः स्वान्तरयापनाः ॥ शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥ ३५ ॥ स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् ॥ वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥ ३६ ॥ शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ॥ भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥ ३७ ॥ यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधान् शुभान् ॥ नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥ ३८ ॥ एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ॥ वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

भगवत्परायण स्वायंभुवमनुको चूँकि-योग तनिक भी भ्रष्ट नहीं कर सके। अतः विष्णुकी कथाएं सुनते हुए, ध्यान करते हुए, कहते हुए, उनके मन्वंतरको समाप्त करनेवाले प्रत्येक क्षण सारहीन नहीं बने थे ॥३४॥ इस भगवत्प्रसंगसे सत्वादि तीन गुणोंकी गतिको जीतकर उन्होंने अपने मन्वंतरके एकहत्तर चतुर्युग बिता दिये ॥ ३५ ॥ हे विदुरजी, जिसने भगवान्‌को आश्रयण किया है उसको शारीरिक, मानसिक, दैविक, मानुषिक, भौतिक क्लेश कैसे सता सकते हैं ॥ ३६ ॥ उन्होंने ऋषियोंके पूछनेपर मनुष्योंके नानाविध वर्णाश्रमधर्म कहे। वह सभी भूतोंके हितमें तत्पर रहते थे ॥३७॥ हे विदुरजी, यह मैंने आपसे आदिराज मनुके अद्भुत वर्णनीय चरित्रका वर्णन किया अब उनके अपत्य देवहूतीका प्रसव सुनिये ॥ ३८ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाइसवें अध्यायका सार—अपनी स्तुति सुन मनु लज्जित हुए और ऋषि कर्दमसे बोले—ब्रह्माने वेदमय अपने रूपके रक्षणकी इच्छासे मुखसे ब्राह्मणोंको और हाथोंमे क्षत्रियोंको उत्पन्न किया। ब्राह्मण उसका हृदय है और क्षत्रिय शरीर। अतः ये दोनों परस्पर रक्षा करते हैं और भगवान् दोनोंकी रक्षा करते हैं। आज सुदैवसे आपका दर्शन हुआ। यह मेरा सौभाग्य है कि आपसे मुझे उपदेश सुननेको मिला। मेरी एक प्रार्थना आप सुनिए। मेरी कन्या उत्तानपाद और पियव्रतकी भगिनी सभी गुणों से सम्पन्न है और योग्य पति चाहती है। नारदसे आपके विषयमें सुनकर उसने आपहीको अपना हृदय अर्पित कर दिया है। आप गृहस्थधर्म सम्पादनके लिये इसको स्वीकार कीजिये। कर्दममुनिने कहा—आपका कहना ठीक है। हमलोगोंका यह अनुरूप प्रथम विवाहविधि हो। आपकी यह कन्या परमरूपवती ललनाओंमें श्रेष्ठ है। विश्वावसु गन्धर्व इसको देखकर मुग्ध हुआ था। आपकी पुत्री और उत्तानपादकी भगिनीका भला कौन अस्वीकार कर सकता है। जब तक यह मेरेसे गर्भको धारण करेगी, तभीतक मैं इसके साथ रहूँगा इस नियमसे मैं इसको स्वीकार करता हूँ। उसके बाद भगवान् के कहे संन्यासमार्गका अनुसरण करूंगा। इतना कहकर कर्दम भगवान्का ध्यान करते हुए स्तब्ध बैठ गये। उनका मुखकमल देखकर देवहूति मुग्ध हो गई थी। मनुने कन्या और पत्नीका निश्चय जानकर कर्दमको कन्यादान दिया। रानी शतरूपाने दामादको अनेक मूल्यवान द्रव्य दिये फिर कर्दमऋषिसे विदा लेकर मनु अपनी नगरी बर्हिष्मति को लौट आये। मार्गमें उन्होंने सरस्वतीके किनारे अनेक ऋषियोंके आश्रम देखे। मनुको आते देख प्रजाओंने उनकी अगुवानी की। यज्ञवराहके अंग झटकारनेसे उनके रोम वहाँ पड़े थे। वही हरे रंगके कुश-काश हुए। उन्हींसे ऋषियोंने यज्ञ विघ्नकारियोंका नाशकर यज्ञ किया। मनुने उन्हीं कुश-काशके आसनपर बैठकर अनेक यज्ञ किए। वहीं पर बर्हिष्मति नगरी थी। उसमें प्रवेशकर मनुने धर्मार्थाविरोधी अनेक उपभोग किए। गन्धर्व और अप्सराएं उनकी कीर्तिका गान करती थीं। रोज प्रातः वह हरिकथा सुनते थे। उन भगवद्भक्तको योगभ्रष्ट नहीं करसके। भगवत्प्रसंगसे उनका प्रत्येक क्षण ताजा ही बना रहता था। इसी तरह उन्होंने अपना मन्वंतर विताया। उन्होंने ही मुनियोंको मानव-धर्म बताया।

❀ अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ❀

(कर्दम और देवहूतिका विहार तथा देवहूतिकी अंतिम प्रार्थना)

मैत्रेयजीने कहा—माता-पिताके प्रस्थान करनेके बाद इशारा समझनेवाली साध्वी देवहूति अपने स्वामीकी नित्य प्रेमसे इस तरह परिचर्या करने लगी, जिस तरह

मैत्रेय उवाच ॥ पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥ विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ॥ शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भो ॥ २ ॥ विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ॥ अप्रमत्तोद्यता नित्यं

 भवानी अपने स्वामी भगवान् शङ्करकी करती हैं ॥ १ ॥ अपने स्वामीके वचनोंमें विश्वास कर अपनी स्वच्छतासे, आदरसे, इन्द्रिय निग्रहसे, सुश्रूषासे, सौहार्द्रसे और मधुर वाणीसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

काम, दम्भ, द्वेष, लोभ, मद और पाप छोड़कर निरलस होकरके नित्य उस तेजस्वी अपने पतिको वह सन्तुष्ट करने लगी ॥ २,३ ॥ इस प्रकार भलीभाँति अपने कर्तव्यमें तत्पर दैवसे भी श्रेष्ठ अपने पतिसे महाशीर्वाद चाहनेवाली उस मनुपुत्रीको बहुत कालके बाद व्रताचरणसे अत्यन्त कृश देखकर वह देवर्षिवर्य कर्दम दुःखित होकर प्रेम गद्गद् वाणीसे बोले ॥ ४,५ ॥ कर्दमजीने कहा—हे मानवि, तुम्हारी इस परमभक्ति और सर्वोत्कृष्ट शुश्रूषासे मैं आज सन्तुष्ट हो गया। तुमने अपने शरीरको भी मेरे लिए घुलते हुए नहीं देखा, जो समस्त प्राणियोंका परम सुहृत् है तथा अत्यन्त श्लाघनीय है ॥ ६ ॥ तथा समाधि और उपासना—इनमें जो चित्तैकाग्रता होती है उसके कारण भगवत्प्रसादसे जो दिव्य भोग स्वधर्म निरत मुझे प्राप्त हुए हैं, उन भय और शोकरहित भोगोंको तुमने भी अपनी सेवासे वशमें कर लिया है। तुमको मैं दिव्यदृष्टि देता हूँ, जिससे तुम उनको देखोगी ॥ ७ ॥

तेजीयांसमतोषयत् ॥ ३ ॥ स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ॥ दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥ ४ ॥ कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ॥ प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत् ॥५॥ कर्दम उवाच ॥ तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया च भक्त्या ॥ यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥ ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ॥ तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ ७ ॥ अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ॥ सिद्धासि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥८॥ एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ॥ संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाह ॥९॥ देवहूतिरुवाच ॥ राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ॥ यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो भूयाद् गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥ १०॥ तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयात्मा ॥ सिध्येत मे कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रियायाः

इनसे दूसरे जो भोग हैं—भगवान् उस क्रमकी भ्रुकुटिके वक्री भावमात्रसे उनमें के मनोरथ नष्ट हो सकते हैं, अतः—वे अतितुच्छ हैं। तुम सिद्ध हो गई हो। तुम अपने पातिव्रत्य धर्मसे प्राप्त किए हुए 'हम राजा हैं' ऐसा अभिमान धारण करनेवाले मनुष्योंके लिए दुर्लभ उन दिव्य भोगोंको भोगो ॥ ७ ॥ समस्त योगमाया और उपासनाओंमें निपुण अपने पतिको इस तरह बोलते हुए देख देवहूतिके सब क्लेश दूर हो गए। वह आदर और प्रेमसे विह्वल वाणी बोली। बोलते समय उसका मुख किञ्चित् लज्जायुक्त अवलोकन और स्मित शोभा पा रहा था ॥ ९ ॥ देवहूतिने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, स्वामिन्, अमोघ योगमायाके अधिपति आपमें यह सब सिद्ध है यह मैं खूब जानती हूँ लेकिन हे विभो, तुमने उसके लिए जो समय बताया है, वह आने दो। सबसे पहले तुम्हारा एकबार अंग संग तो हो ले, क्योंकि श्रेष्ठ भर्तासे पुत्र प्राप्त करना यह स्त्रियोंके लिए बड़ा लाभ है। [पहले वह मुझे मिले] ॥ १० ॥ हे ईश, अंगसंगार्थ कामशास्त्रोपदिष्टयोग्यसाधनोंको प्राप्त करो, जिनसे यह मेरा रतिकी इच्छासे अत्यंत कृश और दीन देह सम्भोगके लिए समर्थ हो। तुम्हींने जो मेरे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कामको क्षुब्ध किया, उसके कारण मैं पीड़ित हूँ उसके योग्यकर्तव्यका विचार करो ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा—अपनी प्रियाका प्रिय करनेकी इच्छासे कर्दमने योगसामर्थ्यसे तुरंत, इच्छानुसार सर्वत्र जानेवाला विमान तैयार किया ॥ १२ ॥ उस विमानमें सर्व इच्छितवस्तु प्राप्त हो सकती थी। वह सर्वरत्नजटित दिव्य था। सब सम्पत्तियोंकी उसमें उत्तरोत्तर अभिवृद्धि थी। मणिमय स्तम्भोंसे वह युक्त था ॥ १३ ॥ उसमें सब दिव्य साधन थे, सभी समय वह सुखकर था। चित्र-विचित्र छोटी बड़ी पताकाओंसे वह सुशोभित था ॥ १४ ॥ उसमें मधुर गुञ्जन करनेवाले मधुकरोंसे सेवित विचित्र फूलोंकी मालाएँ तथा पहनने-ओढ़नेके रेशमी, ऊनी, सूती अनेक वस्त्र थे ॥ १५ ॥ ऊपर-ऊपरके मंजिलोंमें अलग-अलग रखे हुए शय्या, पलंग, पंखे और आसनसे वह सुशोभित था ॥ १६ ॥ उसमें जगह-जगह पर सुन्दर कारीगरी की गई थी। उसकी फर्श महकती थी और प्रवालकी वेदियाँ उसपर बनी

प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः ॥ विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत ॥ १२ ॥ सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥१३॥ दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ॥ पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलङ्कृतम् ॥१४॥ स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुसिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ॥ दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥१५॥ उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् ॥ क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥१६॥ तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ॥ महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥ द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ॥ शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥१८॥ चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ॥ जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥१९॥ हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् ॥ कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥२०॥ विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः ॥ यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥२१॥ ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा ॥ सर्वभूताशयाऽभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥२२॥ निमज्ज्यास्मिन्ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ॥ इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥ सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ॥ सरजं बिभ्रती वासो वे-

थीं ॥ १७ ॥ उसमें मूँगेकी चौखट तथा हीरेके किवाड़ थे। उसके इन्द्रनीलमय शिखरोंपर सुवर्ण कलश थे ॥ १८ ॥ पद्मराग मणि उसमें जड़े हुए रहनेके कारण वह नेत्रयुक्त जान पड़ता था। हीरेके दीवालोंमें वहाँपर सोनेके तोरण लटकते थे। कीमती विचित्र चँदवे वहाँ तने थे ॥ १९ ॥ जगह-जगह पर उसमें हंस और कबूतरोंके समूह कूजन करते थे और कृत्रिम पक्षियोंपर चढ़-चढ़कर अपने सजातीय समझ अपनी बोली बोलते थे ॥ २० ॥ उसमें क्रीड़ास्थान, शयनगृह, बैठका आंगन और मैदान सब अलग-अलग बने हुए थे। खुद मायावीके लिए भी वह विस्मयकर था ॥ २१ ॥ ऐसे इस गृहको अपने गन्दे शरीरके कारण अत्यधिक प्रसन्नताको न प्राप्त हुए चित्तसे देख रही देवहूतिसे सभी भूतोंका अभिप्राय जाननेवाले कर्दममुनि बोले—॥ २२ ॥ हे भीरु, इस सरोवरमें स्नानकर तुम इस विमानपर चढ़ आओ यह विष्णुका बनाया सभी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला तीर्थ है ॥ २३ ॥ उसने वह अपने पतिका वचन मान लिया। वह मलिन वस्त्र पहनी थी। उसके केश जटा बन गये थे। मलके कीचड़से उसका अंग ढका था और स्तन विवर्ण हो गये थे। उसने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पवित्र जलवाले, सरस्वतीका जल जिसमें प्रवेश करता था ऐसे उस तीर्थमें प्रवेश किया ॥ २४, २५ ॥ उसने पानीमें ही घरमें रहनेवाली हजार कन्याएँ देखी। उन सबका किशोर वय था और उनके शरीरसे कमलका सुवास निकलता था ॥ २६ ॥ देवहूतिको देखते ही वे ऊपर आईं और हाथ जोड़कर बोलीं—हम आपकी परिचारिका हैं। हमें आप आज्ञा दीजिए, हम क्या करें ॥ २७ ॥ उन लोगोंने उसके कहनेके अनुसार उसको कीमती तेल, उवटन आदि लगाकर नहलाया और स्वच्छ नये वस्त्र परिधान करनेको दिये, वे सब सम्मान करना खुब जानती थीं ॥ २८ ॥ फिर उन्होंने कीमती श्रेष्ठ और चमकदार भूषण उसे दिए। फिर सर्वरसयुक्त अन्न और स्वादिष्ट एवं मादक पेय लाकर घर दिए ॥ २९ ॥ तदनन्तर उसने अपनारूप शीशेमें देखा। तब उसने देखा कि उसके गलेमें सुगन्धित फूलोंकी माला पड़ी है। वह स्वच्छ वस्त्र पहनी हुई है। चारो ओर कन्याएँ उसका मान

एीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥ अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम् ॥ आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥२५॥ सान्तःसरसि वेश्मस्थाः शतानि दशकन्यकाः ॥ सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः २६॥ तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः ॥ वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२६॥ स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ॥ दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥ भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च ॥ अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥२६॥ अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् ॥ विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥३०॥ स्नातं कृतशिरःस्नानं सर्वाभरणभूषितम् ॥ निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥ ॥३१॥ श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरत्नया ॥ हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥ सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा ॥ पद्मकोशस्पृधा नीलैः रलकैश्च लसन्मुखम् ॥३३॥ यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् । तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥३४॥ भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ॥ निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥ स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् । आत्मनो बिभ्रतीं रूपं

कर रही हैं। शरीर सभी मंगल संस्कारोंसे युक्त अतः स्वच्छ उवटन लगाकर शरीर धो देनेके वाद अभ्यंग स्नान उसने किया है। शरीरपर सब तरहके आभरण हैं। गलेमें पदक है। हाथमें कंगन है पैरमें सोनेके नूपुर झंकार कररहे हैं। कमरमें अनेकरत्नखचित सोनेकी करधनी पड़ी है। गलेमें सुन्दर कीमती हार है। कुंकुम, सिंदूर इत्यादि मंगल द्रव्योंसे वह सुशोभित है। सुन्दर दाँत, भौं मनोहर और स्नेहमय दृष्टियुक्त आँखें तथा नील केश- इनसे युक्त उसका सुन्दर मुख पद्मकोशकी स्पर्धा कर रहा है ॥ ३०—३३ ॥ फिर उसने अपने प्रियपति ऋषिवर्य कर्दमका जब स्मरण किया, तब स्मरण करते ही उसने अपनेको हजार स्त्रियोंके साथ वहाँ पाया जहाँ कर्दमऋषि बैठे हुए थे ॥ ३४ ॥ हे विदुरजी, हजारों स्त्रियोंसे घिरी हुई अपने को अपने स्वामीके सामने खड़ी देख तथा उस ऋषिके योगका प्रभाव देखकर वह देवहूति उस समय संशयको प्राप्त हो गई। हे जितकाम, कर्दमने फिर तो स्नानकी हुई अपूर्व शोभासे शोभनेवाली, मानो उसने अपना सच्चा रूप धारण किया हो, ढके हुए सुन्दर स्तनोंवाली हजार विद्याधरियोंसे सेवित, सुन्दर वस्त्र पहनी हुई देवहूतिको बड़े

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रेमसे उस विमानपर चढ़ा लिया ॥ ३५-३७ ॥ उस दिव्य विमानमें अलुप्त महिमावाले, अपनी प्रियापर अनुरक्त कर्दमऋषि बैठे हुए थे और विद्याधरियाँ उनकी सेवा कर रही थीं। उस समय वह वैसा शोभित हो रहे थे, जैसे कि तारासमूहोंसे घिरे हुए, कुमुद समूहयुक्त चन्द्रमा आकाशमें शोभित होते हैं ॥ ३८ ॥ उन्होंने उस स्त्री समूहके बीचमें अष्टलोकपालोंके विहार स्थान मेरूपर्वतकी दरियोंमें कुबेरके समान बहुत समयतक विहार किया। वहाँ पर कामका सखा शीतल मन्द-सुगन्ध अनिल वह रहा था, गंगाके गिरनेकी मंजुल ध्वनि हो रही थी और सिद्धगण इसकी स्तुति कर रहे थे ॥ ३९ ॥ उन्होंने अपनी पत्नीमें रत होकर वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्रक तथा चैत्ररथ—इन देवताओंके वनोंमें और मानसरोवरमें अनेक विहार किए ॥ ४० ॥ अपने चमकदार यथेच्छगामी विमानके कारण वह आकाशमें संचरण करते हुये सभी वैमानिकोंसे आगे बढ़ गये जैसा कि पवन सभीका

संवीतरुचिरस्तनीम् ॥ ३६ ॥ विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ॥ जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ॥ बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभःस्थः ॥ ३८ ॥ तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ॥ सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥ ३९ ॥ वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके ॥ मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥ ४० ॥ भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ॥ वैमानिकानत्यशेत चरन् लोकान्यथाऽनिलः ॥ ४१ ॥ किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् ॥ यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥ ४२ ॥ प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान्स्वसंस्थया ॥ बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥ ४३ ॥ विभज्य नवधात्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ॥ न चाबुध्यत तं कालं पत्याऽपीच्येन सङ्गता ॥ ४५ ॥ एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः ॥ शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ॥४६॥ तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनात्मवित् ॥ नोधा विधाय रूपं

अतिक्रमणसे आगे बढ़ जाता है ॥ ४१ ॥ जिन पुरुषोंने सभी व्यसनोंके नाशक भगवान्‌के चरणारविन्दका आश्रयण किया है, उन धीरोंको क्या दुर्लभ है ॥ ४२ ॥ अनेक आश्चर्य युक्त भूमंडलकी पूर्ण रचना अपनी पत्नीको दिखाकर फिर वह मायायोगी अपने आश्रमको लौट आये ॥ ४३ ॥ फिर उन्होंने अपनेको नव शरीरमें विभक्त कर सम्भोगके लिए उत्सुक मनुपुत्री देवहूतिको आनन्द देते हुए अनेक वर्षोंतक मुहूर्तके समान उसके साथ रमण किया ॥ ४४ ॥ उस विमानमें आनन्ददायक उत्कृष्ट शय्यापर अपने सर्वाङ्ग सुन्दर पतिके साथ विहार कर रही देवहूतिका कितना बड़ा लम्बा काल बीत गया, वह भी वह न जान सकी ॥ ४५ ॥ इस तरह योगके प्रभावसे नाना-भोग भोग रहे कामलालस उस दम्पतिने अपने जीवनके सौ वर्ष थोड़े समयके समान बिता दिए ॥ ४६ ॥ आत्मज्ञ उन कर्दमऋषिने सर्वसङ्कल्पवित् विभु अपने देहार्धके समान अतिप्रीतिसे भार्याको देखते हुए उसका अभिप्राय जानकर अपना नव रूप लेकर उनमें वीर्यस्थापन किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर सद्यः देवहूतिको नव कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे सब शरीरसे सुन्दर थीं। उनके शरीरसे पद्मका गन्ध आता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

था ॥ ४८ ॥ फिर उसने अपने पतिको संन्यास लेके जाते हुए देखा, तब वह एकदम विस्मित हो गई। व्याकुलतासे उसका हृदय तप्त हो गया ॥ ४९ ॥ नीचे देखकर मणिके समान नखयुक्त पैरसे भूमि खोदती हुई आँसुओंके प्रवाहको रोककर धीरेसे वह मधुरवाणीसे बोली ॥ ५० ॥ देवहूतिने कहा—आपने जो प्रतिज्ञाकी थी, उसके अनुसार सब आपने दे दिया। फिर भी शरणागत मुझे आश्रय दीजिए ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन्, तुम्हारी पुत्रियोंको खुदही अपना योग्य पति ढूंढ़ लेना पड़ेगा। आपके वनमें जानेके बाद अगर मेरा कोई शोक नाशक [अर्थात् पुत्र] होता ! ॥ ५२ ॥ हे पुत्रो, परमात्माको भूलकर इन्द्रियों द्वारा विषयोपभोग करते हुए जो मेरे समय गुजर गये, सो गुजर गये। अब इतना ही पर्याप्त है। आगे

स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ॥ ४७ ॥ अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ॥ सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥ ४८ ॥ पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदालक्ष्योशती सती ॥ स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥ ४९ ॥ लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥ ५० ॥ देवहूतिरुवाच ॥ सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ॥ अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥ ५१ ॥ ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ॥ कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ ५२ ॥ एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ॥ इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥ ५३ ॥ इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ॥ अजानन्त्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे ॥ ५४ ॥ सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ॥ स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥ ५५ ॥ नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ॥ न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ५६ ॥ साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् । यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

बढ़नेकी जरूरत नहीं ॥ ५३ ॥ मैंने इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होकर आपसे संग तो किया, लेकिन आपका श्रेष्ठ भाव मैं न जान सकी। फिर भी मुझे आप आश्रय दीजिये ॥ ५४ ॥ अज्ञानपूर्वक असज्जनोंमें हुआ जो संग है वह संसारका कारण है, लेकिन वही साधुओंमें किया गया संग मोक्षका कारण होता है ॥ ५५ ॥ इस लोकमें जिसका देह कर्म धर्म और वैराग्यका साधन नहीं है, जो भगवान्के पादारविंदकी सेवा नहीं करता, वह निःसन्देह जिन्दा होनेपर भी मुर्दा है ॥ ५६ ॥ मैं भगवान्की मायासे सचमुच वंचित हो गई—खूब ठगी गई, जो मैं मुक्ति देनेवाले आपको पाकर भी बंधनसे छूटनेका प्रयत्न न कर सकी ॥ ५७ ॥

तेईसवें अध्यायका सार—हे विदुरजी, माता-पिताके चले जाने बाद देवहूतिने निरलस होकर पतिकी सेवाकी और अपनी सेवा तथा स्वभावसे पतिको सन्तुष्ट किया। एकबार सेवाके कारण अत्यन्त दुर्बल हुई अपनी पत्नीको देखकर कर्दमको दया आई, वे प्रेमसे गद्गद् होकर बोले—मनुपुत्रि, तुम्हारी सेवासे मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ। तुम तपस्याके कारण भगवत्प्रसादात्मक भय शोक रहित दिव्ययोग जो मुझे मिले उसको तुमने भी अपनी सेवासे प्राप्तकर लिया है। मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि देता हूँ, जिससे तुम उन्हें देख सको।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पतिके प्रेमपूर्ण वचन सुन देवहूतिके सब कष्ट दूर हो गये। वह प्रेमसे बोली—स्वामिन्, अपने पतिसे पुत्र लाभ करना, यह बड़ा भाग्य है। आप सिद्ध हैं, अतः यह आपने जो बताया, वह सब प्राप्तही है। आपने जो वचन दिया था, उसके अनुसार होनेके बाद यह मुझे मिले। पहले मुझे पुत्र लाभ हो। आपके अंग-संगके लिए मैं योग्य बनू ऐसे साधन प्राप्त कीजिये। तुम्हारे कारण मेरा काम क्षुब्ध हुआ है उसे शान्त करनेका उपाय करो। अपनी प्रियाका वचन सुनकर कर्दमने तुरन्त एक विमान तैयार किया। वह विमान चाहे जहाँ जा सकता था। अनेकरत्नोंसे वह युक्त था, उसमें सभी भोग सामग्री विद्यमान थी। देवहूतिने उस विमानको देखा, लेकिन उसको कुछ अप्रसन्नता हुई। कर्दममुनिने उसके मनका भाव ताड़ लिया। उन्होंने कहा—प्रिये, तुम इस सरोवरमें स्नान करो। यह सभी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला विष्णुका बनाया हुआ सरोवर है। देवहूतिका शरीर और वस्त्र दोनों अत्यंत मलिन थे। केश मानो जटा बने थे। पतिका वचन मानकर वह नहानेके लिए जलमें उतरी। वहाँ उसने आश्चर्य देखा। वहाँ हजार सुन्दर और अलंकृत दासियाँ खड़ी थीं। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—हम आपकी दासियाँ हैं। आप आज्ञा दीजिये, हम क्या करें? देवहूतिके आज्ञानुसार उन्होंने उसको उबटन सुगन्धित तेल आदि लगाकर नहलाया। उत्तम वस्त्र पहननेको दिए अनेक आभूषणोंसे उसको सजाया। चंदन तथा कुंकुम सिंदूर आदि मंगल द्रव्योंसे उसे अलंकृत किया। फिर उसको शीशा दिखाया। ऐनेमें अपना रूप देखकर देवहूति सन्तुष्ट हुई। उसने पतिका ज्योंही स्मरण किया कि तुरन्त उनको अपने पास पाया। तब कर्दमने प्रेमसे उसको विमानमें चढ़ाया। उन्होंने देवहूतिके साथ अनेक रम्य स्थानोंमें बहुत दिनों तक विहार किया। बादमें कर्दममुनि अपने आश्रममें आए। वहाँ उन्होंने अपने नव शरीर बनाये तथा देवहूतिके उतने ही शरीर बनाकर उसके साथ उपभोग किया। उस विमानमें उत्कृष्ट शय्यापर आनन्द भोग करते कितने दिन बीत गये, इसका इनको पता भी न चला। सौ साल इस तरह भोग करनेके बाद कर्दमने नव रूपोंसे देवहूतिमें वीर्य स्थापन किया। उससे तुन्तर नव कुमारियाँ उत्पन्न हुई। सभी अत्यंत सुन्दर थी। तब कर्दम संन्यास लेकर जानेको तैयार हुए देवहूतिने बड़े आंसुओंको कातर स्वरमें पतिसे कहा—ब्रह्मन्, आपने अपने वचनका पालन तो किया, किन्तु मुझे शोक नाशका उपाय नहीं बताया। मैंने परमात्माको भूलकर इतने समय विषयोपभोगमें बिताये। मैंने केवल इन्द्रियाओंमें आसक्त होकर आपसे संग किया, लेकिन आपके श्रेष्ठ भावको मैं न जान सकी।

अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

[कपिलका आविर्भाव और कर्दमका प्रस्थान]

मैत्रेय उवाच ॥ निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ॥ दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ॥ भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते ॥ २ ॥ धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च ॥ तपोद्रविणदानैश्च

२१ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह निर्वेदयुक्त बोलनेवाली श्लाघनीय मनुकी कन्यासे वे दयालु मुनि भगवान्‌का वाक्य स्मरण करते हुए बोले कर्दमजीने कहा—हे अनिन्दित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजपुत्री, तुम अपने विषयमें यों खेद मत करो। साक्षात् अविकारी भगवान् जल्दी ही तुम्हारे गर्भमें आनेवाले हैं ॥ २ ॥ तुमने व्रतधारण किया है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम इन्द्रिय निग्रह, स्वधर्म, तप, द्रव्यदान और श्रद्धासे ईश्वरका भजन करो ॥ ३ ॥ ऐसी आराधना करनेपर वह भगवान् तुम्हारे उदरमें प्रकट होकर मेरा यश फैलाते हुए तुम्हारे सब हृदयके संशयोंको तोड़ देंगे और ब्रह्मोपदेश करेंगे ॥ ४ ॥ मैत्रेयजीने कहा—देवहूति भी कर्दम प्रजापतिके कहनेपर विश्वासकर निर्विकार सबके गुरु भगवान्‌की खूब आराधना करने लगी ॥ ५ ॥ बहुत काल बीतनेके बाद भगवान् मधुसूदन कर्दमके वीर्यसे देवहूतिमें, जिस तरह दारूमें अग्नि प्रकट होती है, वैसे प्रकट हुये ॥ ६ ॥ उस समय स्वर्गमें बाजे बजने लगे। घनेबादल गरजने लगे। गन्धर्व आनन्दसे गायन करने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ७ ॥ आकाशचारियोंके द्वारा छोड़े गये दिव्य फूल गिरने लगे। सभी दिशाएँ जल और मन

श्रद्धया चेश्वरं भज ॥ ३ ॥ स त्वयाराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः ॥ छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ देवहूत्यपि सन्देशं गौरवेण प्रजापतेः ॥ सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥ ५ ॥ तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ॥ कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥ ६ ॥ अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ॥ गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥ ७ ॥ पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः ॥ प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च ॥ ८ ॥ तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् ॥ स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥९॥ भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ॥ तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥१०॥ सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ॥ प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच । त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ॥ यन्मे सञ्जगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥ १२ ॥ एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः । बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥ १३ ॥ इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः ॥ सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥ १४ ॥ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि ॥ आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ १५ ॥ वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ॥ भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं

प्रसन्न हो गये ॥ ८ ॥ सरस्वतीसे वेष्टित कर्दममुनिके उस आश्रममें मरिच्यादि ऋषियोंके साथ ब्रह्माजी आए ॥ ९ ॥ भगवान् परब्रह्मको सत्त्वांशसे तत्त्वसंख्या कहनेके लिए अवतीर्ण हुए जानकर स्वतः सिद्धज्ञान भगवान् शत्रुनाशक ब्रह्माजी अपने विशुद्ध अन्तःकरणसे उनके इच्छित कार्यकी प्रशंसा करते हुए प्रहृष्ट इन्द्रियों से कर्दमसे बोले ॥ १०, ११ ॥ ब्रह्मदेवने कहा—हे तात, हे मानव, तुमने निष्कपट भावसे मेरी पूजा की, जो तुमने मुझे मान देकर मेरे वचनका पालन किया ॥ १२ । पुत्रोंको अपने माता-पिताकी यही शुश्रूषा करनी चाहिए। उनके वचनको आदरके साथ 'हाँ' कहकर मान लेना चाहिए, यही लड़कोंका परमधर्म है ॥ १३ ॥ हे सभ्य, हे वत्स, ये तुम्हारी सुमध्यमा पुत्रियाँ इस विश्वको अपनी सन्ततिसे अनेक प्रकारसे बढ़ायेंगी ॥ १४ ॥ इसलिए तुम शील और रुचिके अनुसार ऋषिमुख्योंको अपनी कन्याओंका आज दान करो तथा अपने यशका पृथ्वीपर विस्तार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करो ॥ १५ ॥ हे मुने, अपनी मायासे कपिल देह लेकर सबको सर्वाभीष्टदाता आद्य पुरुष अवतीर्ण हुए हैं, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ १६ ॥ हे मानवि, ज्ञान और विज्ञान योगसे कर्म मूल वासनाओंका उद्धार करनेके लिए पद्ममुद्रायुक्त चरण वाले कमलाक्ष हिरण्यकेश भगवान् यह तुम्हारे गर्भमें प्रविष्ट हुए हैं। इन्होंने कैटभका संहार किया। यह अज्ञान और संशयरूपी ग्रन्थियोंको तोड़कर पृथ्वीमें विचरण करेंगे ॥ १७, १८ ॥ ये सिद्धोंमें मुख्य, सांख्याचार्योंसे पूजित होकर संसारमें तुम्हारी कीर्ति बढ़ाते हुए 'कपिल' इस नामको प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी दोनोंको आश्वासन दिया और उसके बाद कुमार एवं नारदके साथ हंस पर बैठकर सत्यलोकमें चले गये ॥ २० ॥ हे विदुरजी, ब्रह्माजीके चले जानेपर उनकी आज्ञाके अनुसार कर्दम ऋषिने विश्वकी सृष्टि करनेवालोंको अपनी कन्याओंका दान किया ॥ २१ ॥ उन्होंने कला मरीचीको दी, अनुरूपा

मुने ॥ १६ ॥ ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरञ्जटाः ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥ १७ ॥ एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ।, अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥ १८ ॥ अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः ॥ लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥ मैत्रेय उवाच ॥ तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सहनारदः ॥ हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥ गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ॥ यथोदितं स्वदुहितॄः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥२१॥ मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ॥ श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥ पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ॥ ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥ २३ ॥ अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते ॥ विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान् सदारान्समलालयत् ॥२४॥ ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् ॥ प्रातिष्ठन्नन्दिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥२५॥ स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ॥ विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्यसमभाषत ॥२६॥ अहो पापच्यमानां निरये स्वैरमङ्गलैः ॥ कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥ २७ । बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ॥ द्रष्टुं यतन्ते यतय शून्यागारेषु यत्पदम् ॥ २८ ॥ स एव भगवानद्य हेलनं नगणय्य नः ॥ गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥ २९ ॥ स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमव-

अत्रिको, श्रद्धा अंगिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, यांग्यगति पुलहको, सती क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, और अरुन्धती वसिष्ठको दी ॥ २२, २३ ॥ अथर्वणाको शान्ति दी, जिससे यज्ञका विस्तार होता है। विवाहित इन ब्रह्मर्षियोंको पत्नियोंके साथ कर्दममुनिने सन्तुष्ट किया ॥ २४ ॥ हे विदुरजी, अनन्तर वे ऋषि पत्नीके साथ उनसे विदा लेकर आनन्दित हो अपने-अपने आश्रमको चले गये ॥ २५ ॥ कर्दम मुनिके विष्णु भगवान् अवतीर्ण हुए, ऐसा समझकर उस देवश्रेष्ठसे एकान्तमें मिलकर प्रणाम करके कहा—॥ २६ ॥ अहो, अपने ही पापोंके कारण संसारमें तप्त हो रहे लोगोंपर बहुतकालके बाद देवता प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ अनेक जन्मतक एकान्तमें बैठकर परिपक्व समाधियोगसे जिनका स्वरूप देखनेके लिए यति लोग प्रयत्न करते हैं ॥ २८ ॥ वही भक्तोंके पक्षका पोषण करनेवाले आप भगवान् हमारी अवज्ञाको न देखकर हम ग्राम्यों हमारे घ में प्रकट हुए ॥ २९ ॥ ज्ञान साधन सांख्य-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शास्त्रके निर्माणके लिए और मुझसे कहे अपने वाक्यको सत्य करनेके लिए आप मेरे घरमें प्रकट हुए। आप अपने भक्तोंका मान बढ़ानेवाले हैं ॥ ३० ॥ हे भगवन्, प्राकृतरूप रहित जो आपके चतुर्भुजादि अनुरूपरूप हैं वे और जो स्वजनोंके प्रिय मनुष्य सदृश रूप हैं वे भी आपको प्रिय हैं ॥ ३१ ॥ विद्वान् लोगोंसे आपका पादपीठ सदा नमस्कारके योग्य है, आप ऐश्वर्य-वैराग्य-यश-ज्ञान-बल-लक्ष्मी इत्यादिसे पूर्ण हैं। मैं तत्त्वज्ञानकी इच्छासे आपकी शरणमें प्राप्त हूँ ॥ ३२ ॥ परमेश्वर, प्रकृतरूप प्रधान, उस प्रकृतिके अधिष्ठाता पुरुष, महत्तत्त्वरूपकाल इनके क्षोभक अहंकाररूप और लोक एवं लोकपाल रूप, अपनी चिच्छक्तिसे प्रपञ्चको अपनेमें लीन करनेवाले, स्वच्छन्द शक्तियुक्त आप कपिलको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥ आपके अवतीर्ण होनेसे मैं सब ऋणोंसे मुक्त हो गया। मेरी सभी इच्छाएँ पूर्ण हुईं। अब हम आपसे आज्ञा माँगते हैं। अब मैं संन्यासमार्गका आश्रयणकर हृदयमें

तीर्णोऽसि मे गृहे ॥ चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥ ३० तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ॥ यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥३१॥ त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ॥ ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां पूर्तमहं प्रपद्ये ॥३२॥ परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ॥ आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥ आस्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णर्ण उताप्तकाम ॥ परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन्विशोकः ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ॥ अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥ ३५ ॥ एतन्मे जन्मलोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् ॥ प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥३६॥ एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ॥ तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥३७॥ गच्छ कामं मयापृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ॥ जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥ ३८ ॥ मामात्मानं स्वयञ्ज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ॥ आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥ ३९ ॥ मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ॥ वितरिष्ये यया चासौ भयं चातित-

आपका स्मरण करते हुए शोकरहित होकर विचरण करूँगा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा--लौकिक और वैदिक कृत्योंमें मेरा वचन समस्त संसारके लिए प्रमाणभूत होता है। अतः अपने कथनको सत्य करनेके लिए तुमसे जो मैंने कहा था, उसके अनुसार प्रकट हुआ हूँ ॥ ३५ ॥ इस लोकमें यह मेरा जन्म लिंग शरीरसे मुक्ति चाहने वालोंको आत्मदर्शनके लिए सम्मत तत्त्वोंकी संख्या ठीक बतानेके लिए है ॥ ३६ ॥ यह आत्मज्ञानका मार्ग सूक्ष्म है। यह बहुत कालसे नष्ट हो गया है। उसको पुनः प्रवृत्त करनेके लिए ही मैंने देह धारण किया, ऐसा समझो ॥ ३७ ॥ मेरी अनुज्ञा लेकर तुम चाहे जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चले जाओ और मुझमें कर्मोंका संन्यासकर दुर्जय मृत्युको जीतकर अमृतत्वके लिए मेरा भजन करो ॥ ३८ ॥ स्वयं प्रकाश, सभी भूतोंके हृदयमें रहनेवाले मुझे अपनेमें अपने से ही देखकर तुम शोकरहित हो मोक्ष पाओगे ॥ ३९ ॥ माताको भी मैं सभी कर्मोंको शान्त करनेवाली अध्यात्मविद्या दूँगा, उससे वह भयको पार कर जायगी ॥ ४० ॥ मैत्रेयजीने कहा--कपिलके ऐसा कहनेपर प्रजापति कर्दममुनि आनन्दित होकर उनको प्रदक्षिणाकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बनमें चले गये ॥ ४१ ॥ एकमात्र उस परमात्माकी शरण गये हुए मुनिने मौन व्रतका आश्रय किया और वह निस्संग अग्नि तथा गृहहीन होकर पृथ्वीपर विचरण करने लगे ॥ ४२ ॥ जो सत् और असत्‌के परे हैं, जो निर्गुण हैं और अव्यभिचारिणी भक्तिसे प्रत्यक्ष होता है ऐसे ब्रह्ममें मन लगाकर, ममत्व तथा अहङ्कार रहित हो, द्वन्द्वरहित, समदृष्टिसे आत्ममात्रको

रिष्यति ॥४०॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ॥ दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥ ४१ ॥ व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ॥ निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥ ४२ ॥ मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् ॥ गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥ ४३ ॥ निरहङ्कृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तधीर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥ ४४ ॥ वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ॥ परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥ ४५ ॥ आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् ॥ अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥ ४६ ॥ इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ॥ भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० तृ० कापिलेयाख्याने चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

देखनेवाले हुए। उनकी बुद्धि विक्षेपरहित थी। प्रत्यगात्मा सर्वज्ञ भगवान् वासुदेवमें श्रेष्ठ भक्ति भावसे मन लगाकर वह बंधनमुक्त हुए ॥ ४४, ४५ ॥ अपनेको तथा भगवान्‌को सभी भूतोंमें और सभी भूतोंको भगवान्‌में तथा खुदमें उन्होंने देखा ॥ ४६ ॥ इच्छा द्वेष हीन सर्वत्र समचित्त, वासुदेवमें भक्तियुक्त कर्दमुनि अन्तमें वैकुण्ठको प्राप्त हो गये ॥ ४७ ॥

चौबीसवें अध्यायका सार——मैत्रेयजीने कहा——अपनी पत्नीका भाषण सुनकर कर्दममुनि भगवान्‌के वचनका स्मरण किया और उससे कहा——राजपुत्रि, तुम दुःख मत करो, साक्षात् भगवान तुम्हारे गर्भमें प्रकट होनेवाले हैं। तुम व्रतसे रहो तथा दान धर्मादि करते हुए भगवान्‌की उपासना करो। देवहूतिने पतिका कहना मानकर भगवान्‌की आराधनाकी और कुछ काल बीतनेके बाद भगवान् उसके उदरमें प्रकट हुए। भगवान्‌के अवतारसे सर्वत्र आनन्द छा गया। तब मरीच्यादि मुनियों सहित ब्रह्माजी कर्दममुनिके आश्रमपर पधारे। साक्षात् भगवान् सांख्यशास्त्रके उपदेशके लिए अवतीर्ण हुए, ऐसा जानकर ब्रह्माजीने उनकी प्रशंसाकी और फिर उन्होंने कर्दमसे कहा—तुमने मेरे वचनका पालनकर मुझे सन्तुष्ट किया यही पुत्रोंका कर्तव्य है। तुम अपनी इन पुत्रियोंको ऋषि मुख्योंको दे दो, जिससे ये प्रजावृद्धि करें। मुने, तुम्हारे यहाँ साक्षात् आदि पुरुष कपिलरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। फिर देवहूतिसे कहा–मानवि, कर्ममूल वासनाओंका नाश करनेके लिए ज्ञान प्रसार करनेकी इच्छासे साक्षात् हिरण्यकेश भगवान् तुमसे अवतीर्ण हुए हैं। ये अज्ञानका नाशकर पृथ्वीमें रहेंगे। ये सिद्धोंमें प्रमुख होकर तुम्हारी कीर्ति बढ़ायेंगे, कपिल कहलायेंगे, इस तरह आश्वासन देकर ब्रह्माजी नारदादिकोंके साथ हंसपर बैठ अपने लोकको चले गये। फिर ब्रह्माजीके आज्ञानुसार कर्दममुनिने मरीच्यादि मुनियोंको अपनी कन्याओंका दान दिया। तदनन्तर एक दिन कपिलसे एकान्तमें मिलकर उनको भगवान् समझकर प्रणाम कर कहा——अनेक जन्मयोगसाधनाकर योगी लोग आपके दर्शनका यत्न करते हैं। लेकिन भक्तोंको बढ़ावा देनेवाले आप मेरे जैसे ग्राम्यके घरमें अवतीर्ण हुए। सांख्यशास्त्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निर्माणके लिये तथा मुझे दिये वचनके पालनके लिए आप प्रकट हुए। आपकी शक्ति और प्रभाव अचिन्त्य आपका हम क्या वर्णन करें। तत्त्वज्ञानके लिये हम आपकी शरण आते हैं। परमेश्वर प्रधान, पुरुष, महत्तत्त्वादि विचार या सभी जगत् आपका ही रूप है। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आपके अवतारसे मैं सब ऋणोंसे मुक्त हुआ। मेरी सब इच्छाएँ पूरी हुईं। अब हम आपसे आज्ञा चाहते हैं। अब मैं संन्यासका आश्रयकर हृदयमें आपका स्मरण करते हुए शोक-भय रहित होकर विचरूँगा। कर्दमकी प्रार्थना सुनकर कपिल भगवान् ने कहा—मेरा यह जन्म मुक्ति चाहनेवालोंको आवश्यक आत्मज्ञानके लिए उपयुक्त तत्त्वोंकी संख्या बतलानेके लिए है। आत्मज्ञानका मार्ग सूक्ष्म है। यह बहुत कालसे नष्ट हुआ है। मैं उसे फिर प्रवृत्त करूँगा। मेरी अनुज्ञा लेकर तुम अपनी इच्छाके अनुसार चाहे जहाँ चाहो, जाओ। मुझमें कर्म संन्यासकर मृत्युको जीतो और मोक्षके लिए मेरा भजन करो। मैं माताको भी कर्मोंको शांत करनेवाली आत्मविद्या दूँगा। कपिलका भाषण सुनकर आनन्दित कर्दममुनि उसकी प्रदक्षिणा कर वनमें चले गये। अन्तमें वासुदेव भगवान्में भक्तिसे मन लगाकर बंधन मुक्त हो गये।

❀ अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ❀

(देवहूतिका प्रश्न और कपिलका भक्ति लक्षण कहना)

शौनकजीने कहा—साक्षात् जन्मरहित भगवान् अपना ज्ञान लोगोंको हो, इसलिए तत्त्वसंख्या करनेवाले कपिलरूपसे आत्ममायासे अवतीर्ण हुये ॥ १ ॥ इस वृद्धोत्तम सर्व-योगीश्रेष्ठ श्रवणसे ज्ञात होनेवाले भगवान्की कीर्तिसे मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं ॥ २ ॥ उन्होंने अपनी मायासे स्वेच्छापूर्वक जो-जो किया, उन सब कीर्तनार्ह कर्मोंको श्रद्धावान् मुझसे

शौनक उवाच ॥ कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया । जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥१॥ न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ॥ विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥ २ ॥ यद्यद्विधत्ते भगवान्स्वच्छन्दात्मात्ममायया ॥ तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा ॥ प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्यां प्रचोदितः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया ॥ तस्मिन्बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥ ५ ॥ तमासीनमकर्माणं तत्त्व-

कहिये ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा—इसी तरह आत्मविद्याके विषयमें पूछनेपर वेदव्यासके सखा भगवान् मैत्रेयजी सन्तुष्ट होकर विदुरजीसे कहने लगे ॥ ४ ॥ मैत्रेयजीने कहा—पिताके वनमें जानेके बाद माताका प्रिय करनेके लिए भगवान् कपिल उसी बिन्दुसरोवरपर बसे रहे ॥ ५ ॥ स्तब्ध आसनपर बैठे तत्त्वमार्गदर्शकोंमें अग्रणी अपने पुत्रसे ब्रह्माके वचनका स्मरणकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवहूति कहने लगी। देवहूतिने कहा—हे भूमन्, असत्य इन्द्रियोंके विषयाभिलाषसे मैं नित्य निर्विण्ण हूँ। प्रभो! उसके पूरणसे मैं घोर अज्ञानरूपी अन्धकारमें फँसती ही जारही हूँ ॥ ७ ॥ उस दुष्पार अन्धतमके पारगये हुए आपही श्रेष्ठ चक्षुके समान मुझे मिले हैं। आपके अनुग्रहसे मेरे जन्मका अन्त होनेवाला है ॥ ८ ॥ आप सभीके ईश्वर आदिपुरुष हैं। आप अज्ञानांधकारमें डूबे लोगोंके लिए सूर्यके समान नेत्ररूपसे उदित हुए हैं ॥९॥ भगवन्, अब आप मेरे सन्देहोंको दूर कीजिये। इस देहमें जो आपने 'मैं और मेरा' यह आग्रह लगा दिया है, उसे तोड़ दीजिए ॥१०॥ अपने कृत्योंके संसारवृक्षके कुठारस्वरूप शरण्य आपकी मैं शरण आई हूँ। प्रकृति और पुरुषके ज्ञानकी इच्छासे मैं धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ आपको नमस्कार करती हूँ ॥११॥ मैत्रेयजीने कहा—लोगोंको मोक्षकी ओर बढ़ानेवाले, माताके इस निरवद्य इच्छितको जानकर इन्द्रियजयी, सज्जनोंके स्थान वह कपिलजी अपनी मुसकानसे मुखको

मार्गाग्रदर्शनम् ॥ स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥६॥ देवहूतिरुवाच ॥ निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् येन संभाव्यमानेन प्रपन्नाऽन्धं तमः प्रभो ॥ ७ ॥ तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ॥ सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥८॥ य आद्यो भगवान्पुंसामीश्वरो वै भवान्किल ॥ लोकस्य तमसान्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥ ९ ॥ अथ मे देव संमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ॥ योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन्योजितस्त्वया ॥ १० ॥ तं त्वा गताऽहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ॥ जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ॥ धियाऽभिनन्द्यात्मवतां सतां गतिर्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योग आध्यात्मिकः पुंसामतो निःश्रेयसाय मे ॥ अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥१३॥ तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुराऽनघे ॥ ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्गनैपुणम् ॥ १४ ॥ चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ॥ गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥१५॥ अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ॥ वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥१६॥ तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ॥ निरन्तरं स्वयंज्योतिरणिमानमखण्डितम् ॥१७॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन चात्मना ॥ परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं

ज्यादा सुशोभित करते हुए बुद्धिसे आनन्दितकर बोले ॥ १२ ॥ श्रीभगवानने कहा—मेरा आध्यात्मिकयोग है, वह लोगोंको इस संसारसे मुक्त होनेके लिए है जहाँपर सुख और दुःखसे एकदम उपरति होजाती है ॥ १३ ॥ उसीको मैं तुमसे कहूँगा। हे पापरहिते, इस सर्वांगपूर्ण योगको मैंने पहले श्रवणकी इच्छा करनेवाले ऋषियोंसे कहा था ॥ १४ ॥ मनही इस आत्माके [जीवके] बन्धन या मुक्तिके लिए कारण है। वह त्रिगुणात्मक वस्तुओंमें आसक्त होनेसे बंधक होना है। परमात्मामें सक्त होनेसे संसारका मोचक होता है ॥ १५ ॥ जब 'मैं और मेरा' इस अभिमानके कारण होनेवाले काल लोभादि मलोंसे मन अलिप्त रहता है, तब शुद्ध वह मन सुख-दुःखरहित सम रहता है ॥ १६ ॥ तब मनुष्य केवलज्ञानवैराग्य तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भक्तियुक्त अन्तःकरणसे आत्माको प्रकृतिके परे स्वयंप्रकाश सूक्ष्म अपरिच्छिन्न और उदासीन एवं प्रकृतिको हीनबल देखता है ॥ १७, १८ । सभीके आत्मा भगवान्में दृढ़भक्तिके सिवा पवित्र इसके जैसा दूसरा मार्ग योगियोंको ब्रह्मसिद्धिके लिए नहीं है ॥ १९ ॥ अत्यन्त आसक्ति आत्माका अजर अच्छेद्य पाश है, ऐसा विद्वान् लोग समझते हैं । वही आसक्ति अगर सज्जनोंमें की गई, तो फिर मोक्षका द्वार खुलजाता है ❀ ॥ २० ॥ सहिष्णु करुणामय सभीके सुहृद्, शत्रुरहित और शान्त साधुलोग सधुलोगोंके भी भूषण हैं ॥ २१ ॥ जो लोग मुझमें अनन्य दृढ़भक्ति करते हैं, मेरे लिए कर्मोंका तथा स्वजन एवं बांधवोंका त्याग करते हैं, मेरी कथाएँ सुनते और कहते हैं, मेरा ही आश्रय करते हैं, मुझमें चित्त लगाये हुए लोगों को विविध ताप पीडित नहीं करते ॥ २२, २३ ॥ हे साध्वि, ये साधु लोग सर्वसंगरहित होते हैं । तुम उन्हींकी संगतिकी इच्छा करो, क्योंकि वे संगके दोषको नष्ट करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ सज्जनोंके संगसे मेरी सामर्थ्यका जिससे ज्ञान होता है ऐसी हृदय और कानको रसायनके समान कथाएँ होती हैं । उन कथाओंके सेवनसे अविद्या निवृत्ति यानी ज्ञान जिसका मार्ग

च इतौजसम्॥१८॥न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि । सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥१९॥प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ॥स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम्॥२०॥ तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्॥ अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥ मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ॥ मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥२२॥ मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ॥ तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥ २३ ॥ त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्ग विवर्जिताः ॥ सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥२४॥ सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथा ॥ तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥२५॥ भक्त्या पुमान् जातविराग ऐन्द्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ २६ ॥ असे-वयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ॥ योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे ॥ २७ ॥ देवहूतिरुवाच ॥

है ऐसे हरिमें श्रद्धा, भक्ति और अनुरक्ति क्रमसे होती है ॥ २५ ॥ मेरी लीलाके बार-बार चिंतनसे जो भक्ति उत्पन्न होती है उसके कारण इन्द्रियोंसे दृष्ट या शास्त्रोंमें कहे गये फलोंसे वैराग्य होजाता है । उसके बाद योगयुक्त होकर सरल योगमार्गोंसे चित्तको वशमें लानेका मनुष्य प्रयत्न करता है ॥ २६ ॥ प्रकृतिके गुणोंका सेवन न करनेसे, वैराग्यसे बढ़े हुए ज्ञानसे ध्यानयोगसे और मुझमे भक्तिसे इसी देहमें प्रत्यगात्मरूपी मुझे प्राप्त करता है ॥ २७ ॥ देवहूतिने कहा—तुममें और मेरे-जैसी स्त्रीके लिए भी योग्य भक्ति कैसी होगी, जिससे तुम्हारे

❀ दृष्टान्त—मिसरिखतीर्थ जो सीता पुर और नैमिषारण्य के बीच है । वहाँ दधीचि ऋषिकी समाधि—बनी हुई है । वहाँ पर एक बहुत बड़ा तालाब है जो काशाके लक्ष्मी कुण्ड से चौगुना होगा । उन दधीचि ऋषिने लोक कल्याण के लिए अपनी हड्डी अस्त्र बनाने के लिये इन्द्र को दे दी । ऐसे आत्मत्यागी की आज भी संसार वहाँ जाकर भक्तिभाव से पूजा करता है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मोक्षात्मक स्थानको मैं सरलतासे प्राप्त कर सकूँ ॥ २८ ॥ भगवान्‌को लक्ष्यकरके बाणके समान जो योग निर्वाणरूपी तुमने कहा है, वह तत्त्वज्ञानका साधनीभूतयोग किस प्रकारका है, उसके कितने अंग हैं, कौन सा उसका साधन है। हे हरे, वह सब मुझे ठीकतौरसे बताओ जिससे मैं दुर्बोध उसको तुम्हारे अनुग्रहसे सरलतासे समझ सकूँ। मैं मन्दबुद्धि स्त्री हूँ ॥ २९, ३० ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह अपनी माताका प्रयोजन जानकर उनोके शरीरसे उत्पन्न होनेके कारण कपिलजी स्नेह परवश हो गये और उन्होंने भक्तिका विस्तार तथा योग बताया, जिस तत्त्वज्ञानको सांख्य कहा जाता है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—जिनका मन स्थिर अविकृत है ऐसे लोगोंकी एकमात्र वेद विदित कर्मकरने वाली विषय-ज्ञापक इन्द्रियोंकी सत्वरूपी भगवान्‌में जो स्वभाविक निष्काम वृत्ति है, वहाँ भक्ति है। वह भगवान्‌की भक्ति मुक्तिसे भी श्रेष्ठ है। जाठराग्निभक्षित अन्नको जैसे जीर्ण करती है, उसीके समान

काचित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ॥ यया पदं ते निर्वाणमञ्जसान्वाश्नवा अहम् ॥ २८ ॥ यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ॥ कीदृशः कति चाङ्गानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ २९ ॥ तदेतन्मे विजानीहि यथाहं मन्दधीरहरे ॥ सुखं बुध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विदित्वार्थं कपिलो मातुरित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाभिजातः ॥ तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥३१॥ श्री भगवानुवाच ॥ देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ॥ सत्त्व एवैकमानसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या॥३२॥ अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥ जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ३३ । नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ॥ येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥ ३४ ॥ पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ॥ रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति ॥ ३५ ॥ तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः ॥ हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥ ३६ ॥ अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ॥ श्रियं भागवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥ ३७ ॥ न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मे निमिषो लेढि हेतिः ॥ येषामहं

वह लिंगशरीरको क्षीण करती है ॥ ३२–३३ ॥ केवल मत्प्रीत्यर्थ कर्म करनेवाले इस तरहके लोग केवल चार चरणोंकी भक्ति ही चाहते हैं, सायुज्यमुक्ति भी नहीं चाहते। वे भगवान् बड़ी आसक्तिसे परस्पर मेरे पौरुषका ही वर्णन करते हैं ॥ ३४ ॥ हे मातः, वे लोग मेरे प्रसन्नवदन और अरुणनेत्र युक्त, सुन्दर वरप्रद दिव्य रूपोंको देखते हैं तथा साथ-साथ मधुर वाणीसे स्तुति करते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शनीय मुख नासिकादि अवयव युक्त, उदार विलास हास, दृष्टि और मनोहर भाषणसे युक्त उन रूपोंसे उन भागवतोंके चित्त और प्राण आकृष्ट हो जाते हैं। उनके न चाहनेपर भी उनकी भक्ति उन्हें मुक्ति पहुँचा देती है ॥ ३६ ॥ अविद्या निवृत्तिके बाद मुझ मायावीकी जो सत्यलोकादिगत भोग सम्पत्ति है वह और अणिमादि अष्टसिद्धि एवं वैकुण्ठस्थ सम्पत्ति सब भक्तिके पीछे स्वतः प्राप्त होते हैं। यद्यपि उन्हें वे नहीं चाहते, लेकिन वह उनको मिलती ही है ॥ ३७ ॥ हे शान्तरूपे, जो लोग पुत्रके समान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्नेहपात्र, मित्रके समान विश्वासास्पद गुरुके समान उपदेष्टा; सुहृदके समान हितकारी, इष्ट दैवतके समान पूज्य मुझको सब तरहसे भजते हैं, उन सत्त्वमूर्तिमच्चिष्ट लोकोंको वैकुण्ठमें न भ्रष्ट होनेका डर है न उनके भोग नष्ट होते हैं न मेरा कालचक्र ही उनको स्पर्श कर सकता है ॥ ३८ ॥ जो इस लोकको, परलोकको तथा दोनों जगह गमन करनेवाले आत्माको तथा उसके अनुसारी पुत्र-स्त्री, पशु, घर, धन—इन सब अन्य वस्तुओंको छोड़कर अनन्यभक्तिसे विश्वमूर्ति मुझको भजते हैं, उनको मैं संसारसे पार कराता हूँ ॥ ३९-४० ॥ प्रधान

प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ ३८ ॥ इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ॥ आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥३९॥ विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ॥ भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥ ४० ॥ नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ॥ आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥ ४१ ॥ मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ॥ वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥ ४२ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ॥ क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥ ४३ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निःश्रेयसोदयः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

पुरुषके ईश्वर सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा मुझ भगवान्के बिना अन्यत्र लोगोंका तीव्र मृत्युभय दूर नहीं हो सकता ॥ ४१ ॥ मेरेही डरसे वायु बहती है, सूर्य प्रकाश देता है इन्द्र वृष्टि करता है, अग्नि जलाती है और मृत्यु भी दौड़ती है ॥ ४२ ॥ योगी लोग ज्ञान-वैराग्य युक्तभक्ति योगसे कल्याणके लिए भयरहित मेरे पादमूलका आश्रय करते हैं ॥ ४३ ॥ तीव्रभक्ति योगसे मुझमें मन अर्पित करके उसे स्थिर करना, बस यही लोगोंका इस लोकमें मोक्ष है ॥ ४४ ॥

पचीसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—पिताके वनमें चले जानेके बाद माताके लिए कपिल बिन्दुसरोवरपरही रहे। फिर एक बार ब्रह्मदेवका वचन स्मरणकर देवहूतिने अपने पुत्रसे कहा—इन्द्रियोंकी विषय-वासनासे मैं निर्विण्ण हूँ। उसके पूर्ण करनेसे मैं अज्ञानमें फँस रही हूँ। इस अन्धतमसे पार होनेके लिए मानो तुम मुझे आँखें मिले हो। तुम मेरे अज्ञानको दूरकर देहमें जो मैं और मेरा यह अभिमान है, इसको तोड़ो। प्रकृतिपुरुष विवेकज्ञानके लिए मैं आपको प्रणाम करती हूँ। अपने माताका वाक्य सुन स्नेहवश भगवान् हास्य करके बोले—मेरे आध्यात्मिकयोगसे लोग संसारसे मुक्त होते हैं। उससे सुख और दुःख दोनोंका अन्त है। वह योग मैं तुम्हें कहता हूँ। मनही मनुष्यके बंध और मोक्षका कारण है। वही त्रिगुणात्मक वस्तुओंमें आसक्त रहनेसे बंधका और परमात्मामें आसक्त होनेसे मोक्षका कारण होता है। ममत्वाभिमान तथा उसके कारण होनेवाले काम लोभादिसे अलिप्त मन सम रहता है। तब मनुष्य केवल स्वप्रकाश अपरिच्छिन्न आत्माको देखता है। प्रकृति तब बलहीन हो जाती है। भक्तिके सिवा योगियोंको ब्रह्मसिद्धिके लिए मार्ग नहीं है। संग पाश है, लेकिन वही सज्जनोंसे होनेपर मोक्षका द्वार बन जाता है। देवहूतिने प्रश्न किया—मैं भी करसकूं, ऐसी सरल भक्ति कैसी होती है, जिससे मैं सरलता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से मुक्त होसकूँ। तुमने जो योग कहा वह कितने प्रकारका है। उसके कितने अंग हैं? यह सब मुझसे इस तरहसे कहो, जिससे मैं मन्दबुद्धि उसे सरलतासे समझ सकूँ। श्रीभगवान्ने कहा—स्थिर चित्त लोगोंके इन्द्रियोंकी परमात्मामें जो स्वाभाविक निष्काम वृत्ति है, वही भक्ति है। उससे लिंगशरीरका क्षय होता है। ऐसे मेरे प्रीत्यर्थ कर्म करनेवाले लोग भक्तिके सिवा मेरा सायुज्य भी नहीं चाहते। वे लोग बड़े चावसे मेरे चित्रका वर्णन करते हैं। वे लोग मेरे दिव्यरूपोंको देखते हैं और स्तुति करते हैं। पुत्र, सुहृद, गुरु सब कुछ मुझे ही माननेवाले उन अनन्य भक्तोंका मोक्षसे भ्रंश नहीं होता, न मेरा कालचक्र उनको स्पर्श करता है। जो इस तरह सब छोड़ अनन्यभावसे मेरा भजन करता है उसको मैं संसारसे पार करता हूँ। मेरे सिवा कोई मृत्युभयको नहीं दूर कर सकता।

❁ अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः ❁

[महदादि तत्त्वोंकी उत्पत्ति तथा लक्षण एवं विराटकी उत्पत्ति]

श्रीभगवान्ने कहा—मैं अब तुम्हें तत्त्वोंका अलग-अलग लक्षण बतलाता हूँ, जिसको जानकर मनुष्य प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ जीवके मोक्षरूपी प्रयोजनके लिए जो आत्मदर्शनरूपी ज्ञान कहा जाता है, अहंकार नाशक उस ज्ञानका मैं तुम्हें वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ प्रकृतिसे परे जो निर्गुण अनादि आत्मा है, वही पुरुष है। प्रत्येक लोभमें उसकी स्फूर्ति होती है। वह स्वप्रकाश है और उससे यह समस्त विश्व व्याप्त है ॥ ३ ॥ वह विभु पुरुष यदिच्छासे प्राप्त सूक्ष्म दैवी गुणयुक्त प्रकृतिमें लीलासे मिल गया ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ये संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥ यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥ ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ॥ यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम् ॥२॥ अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ प्रत्यग्धामा स्वयञ्ज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥ स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ॥ यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥ गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥ विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥ एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पूमान् ॥ कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते ॥ ६ ॥ तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् ॥ भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं

अपने गुणोंसे अपने समान नाना प्रजाओंकी सृष्टि करनेवाली प्रकृतिको देखकर वह पुरुष (जीव) ज्ञानको ढकनेवाली उस प्रकृतिसे झट मुग्ध हो गया—अपना स्वरूप भूल गया ॥ ५ ॥ इस तरह प्रकृतिके अभेदभयसे प्रकृतिके गुणोंसे किए जा रहे कर्मोंका कर्तृत्व अपनेमें समझता है ॥ ६ ॥ वस्तुतः अकर्ता, ईश्वर, साक्षी और सुखात्मक इस जीवको उसी कर्तृत्वाभिमानसे जन्म-मरण प्रवाहरूपबन्ध तथा उसीके कारण पारतंत्र्य है ॥ ७ ॥ जीवके कार्य कारण-कर्तृत्वमें यानी तद्भावापत्तिमें प्रकृतिको कारण बतलाते हैं तथा सुख-दुःख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदिके भोक्तृत्वमें प्रकृतिसे परे पुरुषको कारण समझते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सब कुछ करती धरती प्रकृती है, किन्तु उसका सुख-दुःख भोगता है वह जीव, जो उस प्रकृति से परे है ॥ ८ ॥ देवहूतिने कहा—हे पुरुषोत्तम, समस्त विश्वके कारण इस प्रकृति और पुरुषका लक्षण कहिये। यह स्थूल तथा सूक्ष्म कार्य उन्हीं दोनोंसे व्याप्त है ॥ ९ ॥ श्रीभगवानने कहा-जो त्रिगुण, अव्यक्त, नित्य, सदसदात्मक प्रधान है उसीको प्रकृति कहते हैं। वह विशेष शून्य होनेपर भी सविशेष्य है यानी अपने अंश कार्यरूप महदादिकोंका आश्रय है ॥ १० ॥ पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा, चार मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त एवं दशेन्द्रियाँ ये सब मिलकर प्रकृतिके चौबीस विकार हैं। ये प्रकृतिके चौबीस विकार जिस गणमें विद्यमान रहते हैं उस गणको प्रधान कार्यात्मक ब्रह्म कहते हैं यानी इस प्राकृतिक गणकी ब्रह्मत्वेन उपासना होती है ॥ ११ ॥ भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पंच-

प्रकृतिं विदुः ॥ भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम ॥ ८ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ॥ ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥१०॥ पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ॥ एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥ महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ॥ तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे ॥१२॥ इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ॥ वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥१३॥ मनोबुद्धि-रहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् ॥ चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥ १४ ॥ एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ॥ सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ॥१५॥ प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् ॥ अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥१६॥ प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ॥ चेष्टा यतः स भगवान्काल इत्युपलक्षितः ॥१७॥ अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ॥ समन्वेत्येष सत्त्वानां

महाभूत हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच तन्मात्राएँ हैं, यह मेरा मत है ॥ १२ ॥ श्रोत्र, त्वग्, चक्षु, जिह्वा और नासिका तथा वाक्, हाथ पैर, जननेन्द्रिय तथा गुद—ये दस इन्द्रियाँ कही जाती हैं ॥ १३ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त—ये चार अन्तःकरण अलग हैं, क्योंकि परस्पर व्यावर्तकधर्मसे इनमें भेद लक्षित होता है ॥ १४ ॥ मैंने जो कहा है वही सगुण ब्रह्मकी रचना है, ऐसा ही संख्यानिपुण लोग कहते हैं। और जो काल है वह पचीसवां तत्त्व है* ॥ १५ ॥ कुछ लोग पुरुषके भावको ही काल कहते हैं। उसी कालसे प्रकृतियुक्त अहंकारसे मूढ़ कर्ता पुरुषको भय है ॥ १६ ॥ हे मानवि, विशेषरहित गुणसाम्य युक्त प्रकृतिकी जिसके कारण चेष्टा होती है उस भगवान् ईश्वरको काल कहा जाता है ॥ १७ ॥ वही भगवान् अपनी मायासे पुरुषरूपसे सभीके अन्दर काल रूपसे बाहर व्याप्त हैं† ॥ १८ ॥ जीवादृष्टसे प्रकृतिके गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न होनेपर अपनी अभि-

* अर्थात् कालके विषयमें मतभेद है। यह प्रकृतिकाही एक अवस्था विशेष है। †पुरुषके प्रभावको काल माननेवालोंके मतमेंभी जीव और ईश्वरमें एकत्वकी विवक्षासे पचीसही तत्त्व होतेहैं, किन्तु ईश्वर तथा जीवमें भेद मान लेनेपर तो छब्बीस तत्त्व हो जाते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्यक्तिके स्थानरूप उस प्रकृतिमें परमपुरुष भगवान्‌ने चिच्छक्तिकी स्थापना की, जिससे प्रकाशयुक्त महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ जगत्‌के मूल कारण निर्विकार भगवान् अपनेमें सूक्ष्म रूपसे स्थित विश्वको [अहंकारादि प्रपञ्चको] प्रगट करते हुए आत्माका आच्छादक जो तीव्रतम था उसको अपने तेजसे पीगये। यानी जिस महत्तत्त्वका प्रलयकालमें प्रकृतिमें लय किये स्थित थे उसीको उन्होंने प्रकट किया ॥ २० ॥ सर्वोगम प्रसिद्ध रागदिरहित विशद सत्त्वगुणोंपेत भगवान्‌की उपलब्धिका स्थान वासुदेव नामक जो चित्त कहा गया है उसे तुम महदात्मक ही समझो ॥ २१ ॥ स्वच्छत्व, अविकारित्व और शान्तत्व-यह वृत्तियोंके अनुसार चित्तका लक्षण कहा गया है जैसे कि भूसंसर्गसे पूर्व जलका स्वभाव मधुर, स्वच्छ और शान्त रहता है ॥२२॥ भगवान्‌की चिच्छक्तिके कारण उत्पन्न हुए महत्तत्त्वसे क्रियाशक्तियुक्त त्रिविध अहंकार उत्पन्न हुआ ॥२३॥ वह अहंकार वैकारिक तेजस और तामस ऐसा तीन प्रकार

भगवानात्ममायया ॥१८॥ दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ॥ आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥१६. विश्वमात्मगतं व्यञ्जन्कूटस्थो जगदङ्कुरः ॥ स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥ २० ॥ यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् ॥ यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥ २१ ॥ स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेतसः ॥ वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा ॥२२॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् ॥ क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ २३ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ॥ मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते ॥ सङ्कर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥ कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ॥ शान्तघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहङ्कृते ॥ २६ ॥ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत ॥ यत्सङ्कल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः ॥२७॥ यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ॥ शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८ तैजसात्तु विकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति ॥ द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥ २६ ॥ संशयोऽथविपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च । स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः

का है। उससे क्रमशः मन, इन्द्रिय और महाभूतोंकी सृष्टि हुई ॥ २४ ॥ हजार मस्तकवाले साक्षात् संकर्षणनामक अनन्त भूतेन्द्रियमनोमय पुरुषकी उसमें उपसना बतलाते हैं ॥ २५ ॥ कर्तृत्व करणत्व और कार्यत्व या शान्त, घोर तथा विमूढत्व अहंकारका लक्षण है ॥ २६ ॥ विकारको प्राप्त होरहे वैकारिकसे मनस्तत्व उत्पन्न हुआ। जिसके संकल्प और विकल्परूप वृत्तियोंसे काम उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ उसमें शरत्कालीन इन्दीवरके सदृश श्याम इन्द्रियोंके अधीश्वर अनिरुद्धनामक परमात्मरूपकी उपासनाकी जाती है। योगिलोग इसको धीरे धीरे ग्रहण करते हैं, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ २८ ॥ हे सति, विकारको प्राप्त होरहे तैजससे अर्थात् तैजसके विकारसे बुद्धितत्त्व हुआ। द्रव्यका स्फुरणरूपी विज्ञान तथा सविकल्पक ज्ञानमें इन्द्रियोंकी सहायता— यह उसका लक्षण है ॥ २६ ॥ संशय, मिथ्याज्ञान निश्चय और स्मृत ये स्फुरणके प्रकार तथा निन्द्रा ये वृत्तिभेदसे पृथक् पृथक् बुद्धिके लक्षण हैं ॥ ३० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेजस इन्द्रियाँ ही ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके विभागसे दो प्रकारके हैं, क्योंकि प्राणकी क्रियाशक्ति एवं बुद्धिकी ज्ञानशक्ति है तथा दोनों तेजस हैं ॥ ३१ ॥ भगवद् वीर्य प्रेरित तामसाहंकारके विकारसे शब्दतन्मात्रा और उससे आकाश उत्पन्न हुआ श्रोत्रेन्द्रियने शब्दको लिया ॥ ३२ ॥ अर्थवाचकत्व, और भीत आदिके बीच में रहने पर वक्ताका ज्ञापकत्व—ये शब्दके लक्षण हैं। विद्वान् लोग आकाशका सूक्ष्मत्व भी उसका लक्षण कहते हैं ॥ ३३ ॥ भूतोंको अवकाश देना, अन्दर और बाहर व्याप्त रहना, प्राण, इन्द्रिय तथा आत्माका आश्रयत्व—ये आकाशके कार्यरूपी लक्षण हैं ॥ ३४ ॥ कालगतिसे शब्दयुक्तगुण आकाशके विकारसे स्पर्शतन्मात्राका और उससे वायुका उद्भव हुआ त्वगिन्द्रियने स्पर्शका ग्रहण किया, त्वगिन्द्रियसे ही स्पर्शका ग्रहण होता हैं ॥ ३५ ॥ मृदुत्व, काठिन्य, शीतत्व, उष्णत्व और वायुका तन्मात्रत्व—ये स्पर्शके लक्षण हैं ॥ ३६ ॥ द्रव्योंको दिलवाना या एक

पृथक् ॥३०॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः ॥ प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥ ३१ ॥ तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्य-चोदितात् ॥ शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं तु शब्दगम् ॥ ३२ ॥ अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च ॥ तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥३३॥ भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च ॥ प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥३४॥ नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः ॥ स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक् स्पर्शस्य च संग्रहः ॥ ३५॥ मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च ॥ एतत्सपर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥३६॥ चालनं व्यूहनंप्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यमब्दयोः ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥ वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरिताद्भूत् ॥ समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ॥३८॥ द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च ॥ तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः ॥३९॥ द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ॥ तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुतृडेव च ॥ ४० ॥ रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ॥ रसमात्रमभूत्तस्मादम्भो जिह्वा रसग्रहः ॥ ४१ ॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा ॥ भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥ ४२ ॥ क्लेदनं

जगह जुटाना, गंधयुक्त द्रव्य घ्राणसे संयोग कराना, एवं शैत्यादियुक्त द्रव्यका स्पर्शसे संयोग कराना, शब्दको श्रोत्रेन्द्रिय तक ले जाना तथा सभी इन्द्रियोंको बढ़ावा देना—यह वायु कार्य रूप लक्षण है ॥ ३७ ॥ दैवप्रेरित स्पर्शयुक्त वायुसे रूपतन्मात्रा और उससे तेज उत्पन्न हुआ । चक्षुने रूपका ग्रहण किया, चक्षु ही रूपोंको उपलब्ध करता है ॥ ३८ ॥ हे साध्वि, द्रव्यको आकार समर्पित करना, उसमें स्वयं गुणतया प्रतीत होना, द्रव्यके समान ही स्वयं रचनायुक्त दिखाई देना, और तेजका असाधारण गुण होना—ये रूपकी वृत्तियाँ हैं यानी रूपके कार्यरूपी लक्षण हैं ॥ ३९ ॥ प्रकाश करना, पकाना, क्षुधा और तृषा उत्पन्न होना तथा उसके कारण खाना तथा पीना, जाड़ेको दूर करना और सुखाना—ये तेजकी वृत्तियाँ हैं ॥ ४० ॥ दैव प्रेरित रूपयुक्त तेजके विकारसे रस तन्मात्राएँ और उससे जल उत्पन्न हुआ। इसको रसनेन्द्रियने—जीभने ग्रहण किया, जीभसे ही रसका ग्रहण होता है ॥४१॥ कषाय, मीठा, तीता, कड़वा, खट्टा, नमकीन—इन छः प्रकारोंसे एक ही रस सम्बन्धिद्रव्योंके विकारसे अनेक तरहका ज्ञात होता है ॥ ४२ ॥ भिंगाना, पिंड बनाना, तृप्ति, जीवन,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तृषा निवृत्ति, मृदूकरण, तापकी शान्ति करना तथा कूपादिसे निकाल लेनेपर भी पुनः पुनः उत्पन्न हो जाना, ये जलकी वृत्तियाँ हैं ।। ४३ ।। रसयुक्त दैवप्रेरित जलके विकार से गन्धतन्मात्रा और उससे पृथ्वीका उद्भव हुआ। गन्धको घ्राणने ग्रहण किया, घ्राणेन्द्रियसे ही गन्धका प्रत्यक्ष होता है ।। ४४ ।। मिश्रगन्ध, दुर्गन्ध, सुगन्ध, कमलादिकी शान्त-गन्ध, उग्रगन्ध और आम्लगन्ध—यों पृथक्—पृथक् द्रव्यविशेषके संसर्गसे जो भेदको प्राप्त होता है वह गन्ध है ।। ४५ ।। ईश्वरकी प्रतिमा आदिके रूपसे आकार धारण करना, आश्रयान्तरके बिना ही रहना जलादिका आधार बनना, आकाशादिका अवच्छेदक होना, प्राणियों और उनके गुणोंको प्रकट करना—ये पृथ्वीके कार्यरूपी लक्षण हैं ।। ४६ ।। आकाश-गुण शब्द जिसका विषय है उसे श्रोत्र और वायुगुण स्पर्श जिसका विषय है उसे त्वगिन्द्रिय कहते हैं। तेजगुणरूप जिसका विषय है वह चक्षु कहा गया है, जलगुण रस जिसका

पिण्डनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोन्दनम् ।। तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ।।४३।। रसमात्राद्विकुर्वाणादम्भसो दैवचोदितात् ।। गन्धमात्र-मभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः ।। ४४ ।। करम्भपूतिसौरभ्यशान्तोग्राम्लादिभिः पृथक् ।। द्रव्यावयववैषम्याद् गन्ध एको विभिद्यते ।। ४५ ।। भावनं ब्राह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ।। सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ।। ४६ ।। नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ।। वायोर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ।। ४७ ।। तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ।। अम्भोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः ।। भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ।। ४८ ।। परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् ।। अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ।।४९।। एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ।। कालकर्मगुणोपेतो जगदादिरुपाविशत् ।। ५० ।। ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् ।। उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ।। ५१ ।। एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ।। तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ।। यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ।। ५२ ।। हिरण्मयादण्डकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ।। तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ।। ५३ ।।

विषय है उसे रसन कहते हैं। और पृथ्वीगुणगन्ध जिसका विषय है वह घ्राण कहा गया है ।। ४७,४८ ।। पूर्व-पूर्व कारणका धर्म उत्तरोत्तर कार्यमें कारणके सम्बन्धसे देखा जाता है, इसलिए आकाशदि सम्पूर्ण भावोंका शब्दादि सम्पूर्ण गुण पृथ्वीमें ही उपलब्ध होता है, क्योंकि चारोंका पृथ्वीमें सम्बन्ध है, लेकिन आकाशमें सिर्फ शब्द ही एक गुण रहता है ।। ४९ ।। जब ये प्रत्येक असंहत अवस्थाओंमें थे, तब प्रधानतः महदादि सातोंमें जगत्के आदिकारण ईश्वरने काल, कर्म और गुणोंके साथ प्रवेश किया ।। ५० ।। तदनन्तर उसके क्षुभित हुए संमिलित उन विकारोंसे अचेतन अण्ड उत्पन्न हुआ। जिस अण्डसे हिरण्यगर्भात्मक सूक्ष्म समष्टि जीव (विराट्) उठा (सचेत न हुआ) ।। ५१ ।। यह विशेष नामका अण्ड क्रमशः बढ़े हुए दसगुने अधिक जलादिसे आवृत है, अन्तमें बाहर प्रधान प्रकृतिका आवरण है, उसमें चतुर्दश भुवनात्मक यह भगवान्का रूप है ।। ५२ ।। जलमें सोरहे हिरण्मय अण्डकोशसे औदासीन्य छोड़कर महादेव भगवान्ने उसमें प्रवेश किया। और उसमें अनेक तरहके छिद्र होगये ।। ५३ ।। बादमें, उसका जो प्रथम मुख बाहर हुआ, उसमें वाणीने तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उस वाणीके साथ-साथ अग्निने प्रवेश किया। फिर नासा छिद्र हुए, उसमें प्राणके साथ घ्राणने प्रवेश किया ॥ ५४ ॥ घ्राणके अनन्तर वायुने भी प्रवेश किया। फिर आँखें हुईं, उनमें चक्षु और सूर्यने प्रवेश किया। फिर कर्ण निकले, उनमें श्रोत्र और दिशाओंने प्रवेश किया ॥ ५५ ॥ फिर विराटको चमड़ा, रोम और मूंछ दाढ़ी आदि आ निकली। उनमें त्वगिन्द्रिय तथा औषधियोंने प्रवेश किया। फिर शिश्न निकला, उसमें वीर्य और आप् देवताने प्रवेश किया। फिर गुद निकला, उसमें अपान और लोकभयंकर मृत्युने प्रवेश किया ॥ ५६, ५७ ॥ फिर हस्त निकले, उनमें बल और इन्द्रने प्रवेश किया। पैर निकले उनमें विष्णु तथा गतिने प्रवेश किया ॥ ५८ ॥ नाडियां नकलीं उनमें रक्त और नदियोंने प्रवेश किया। फिर उदर निकला, उसमें क्षुत्-पिपासा तथा समुद्रने प्रवेश किया। इसके बाद हृदय हुआ उसमें मनके साथ चन्द्रमाने प्रवेश किया और फिर उसीमें बुद्धि तथा ब्रह्माने

निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ॥ वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोऽतो घ्राण एतयोः ॥ ५४ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरे-
तयोः ॥ तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रं ततो दिशः ॥ ५५ ॥ निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः । तत ओषधयश्चासन् शिश्नं
निर्बिभिदे ततः ॥ ५६ ॥ रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ॥ गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥ ५७ ॥ हस्तौ च निरभिद्येतां
बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ॥ पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥५८॥ नाड्योऽस्य निरभिद्यन्त ताभ्यो लोहितमाभृतम् ॥ नद्यस्ततः सम-
भवन्नुदरं निरभिद्यत ॥ ५९ ॥ क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ॥ अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥६०॥ मनसश्चन्द्रमा
जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः ॥ अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततोऽभवत् ॥ ६१ ॥ एते ह्यभ्युत्थिता देवा नैवास्योत्थापनेऽशकन् ॥ पुनराववि-
विशुः खानि तमुत्थापयितुं क्रमात् ॥ ६२ ॥ वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६३ ॥
अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ श्रोत्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६४ ॥ त्वचं रोमभिरोषध्यो नोदतिष्ठत्तदा
विराट् ॥ रेतसा शिश्नमापस्तु नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६५ ॥ गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ हस्ताविन्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा

प्रवेश किया। अहंकारके साथ रुद्रने और चित्तके साथ क्षेत्रज्ञने भी उसीमें प्रवेश किया ॥ ५९, ६०, ६१ ॥ इन देवताओंके प्रवेश करनेपर भी जब ये सब मिलकर विराट्को नहीं उठा सके। तब इनमें फिर एक-एकने उसे उठानेके लिए इन्द्रियोंमें प्रवेश करना शुरू किया ॥ ६२ ॥ अग्नि वाणीके साथ मुखमें गयी, लेकिन विराट् नहीं उठा। नासिकामें घ्राणके साथ वायुने प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा ॥ ६३ ॥ आँखोंमें सूर्यने चक्षुके साथ प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा। कानोंमें श्रोत्रके साथ दिशाओंने प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा ॥ ६४ ॥ चमड़ेमें रोमोंके साथ औषधियोंने प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा। शिश्नमें वीर्यके साथ जलदेवताने प्रवेश किया, विराट् न उठा ॥ ६५ ॥ गुदमें अपानके साथ मृत्युने प्रवेश किया विराट् नहीं उठा। हाथोंमें बलके साथ इन्द्रने प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा ॥ ६६ ॥ विष्णुने गतिके साथ चरणमें प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा। रक्तके साथ नदियोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाड़ियोंमें प्रवेश करनेपर भी विराट् नहीं उठा ॥ ६७ ॥ पेटमें क्षुधा और तृषाके साथ समुद्रने प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा । हृदयमें मनके साथ चन्द्रने प्रवेश किया, विराट् नहीं उठा ॥ ६८ ॥ बुद्धिके साथ ब्रह्माने और अभिभावके साथ रुद्रने भी हृदयमें प्रवेश किया, लेकिन तो भी विराट् न उठा ॥ ६९ ॥ जिस समय चित्तके साथ क्षेत्रज्ञने हृदयमें प्रवेश किया उसी समय विराट् जलसे उठ पड़ा ॥ ७० ॥ इसतरह सुप्त पुरुषको प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि जिस क्षेत्रज्ञके विना अपने प्रभावसे नहीं उठा सकती, उसी तरह वे पूर्वोक्त देवता भी

विराट् ॥ ६६ ॥ विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६७ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुदरं सिन्धुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ हृदयं मनसा चन्द्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६८ ॥ बुद्ध्या ब्रह्मापि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६९ ॥ चित्तेन हृदयं चैत्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ॥ विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥ ७० ॥ यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रियमनोधियः ॥ प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥ ७१ । तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥ भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥७२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

उस क्षेत्रज्ञके विना अपने प्रभावसे उस विराट्को उठानेमें असमर्थ रहे । उसी प्रत्यगात्माका यानी क्षेत्रज्ञका योगसे उत्पन्न बुद्धि, भक्ति, विरक्ति और ज्ञानसे इस कार्यकारण समूह में विवेककरके चिन्तन करना चाहिए ॥ ७१, ७२ ॥

छब्बीसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—माँ, अब तुम्हें मैं तत्त्वोंका लक्षण बतलाता हूँ, उनको जानकर मनुष्य प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो जाता है । प्रकृतिसे परे जो निर्गुण आत्मा है वही पुरुष है । वह स्वप्रकाश और विश्वव्याप्त है । वह दैवी गुणयुक्त प्रकृतिसे युक्त होता है । प्रकृतिका निवास देखकर पुरुष मुग्ध होता है । और अभेद-भ्रमसे प्रकृतिके किए हुए कर्मों में अपना किया हुआ समझता है । वस्तुतः वह अकर्ता साक्षी है । कर्तृत्वाभिमानके कारण उसे बंध है । देवहूतिने प्रश्न किया—समस्त विश्वका कारण प्रकृति पुरुषका लक्षण कहिये । श्रीभगवान्ने कहा—त्रिगुणसदसदात्मक प्रधानको अव्यक्त कहते हैं । वह सविशेष महदादिकोंका आश्रय । गन्धादि पांच तन्मात्र, पृथिव्यादि पांच महाभूत, श्रोत्र-त्वग्-जिह्वा-नासिका-ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय और वाक्, हस्त, पाद जननेन्द्रिय तथा गुदा ये पांच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त-ये चार अन्तः-करण है, यह सब मिलकर प्रकृतिविकार तत्त्व चौबीस हैं । यही सगुण ब्रह्मकी रचना है । कुछ लोग कालको पंचीसवाँ तत्त्व कहते हैं और कुछ लोग पुरुषके प्रधानको ही काल कहते हैं । उसीसे अहंकार मूढ़ पुरुषको भय है । प्रकृतिमें जीवादृष्टसे गुण क्षोभ होनेपर भगवान्ने अपनी अभिव्यक्तिकी इच्छासे उसमें अपनी चिच्छक्तिकी स्थापना की । तब महतत्त्वका उद्भव हुआ । उस महत्तत्त्वसे क्रिया शक्तियुक्त वैकारिक, तैजस और तामस तीन प्रकारकार अहंकार हुआ । उन तीन प्रकारोंसे क्रमशः मन, इन्द्रिय और महाभूतोंकी सृष्टि हुई । इस सभीमें हजार मस्तक वाले संकर्षण नामक भगवान्की उपासना होती है । कर्तृत्व, कारणत्व और कार्यत्व—ये अहंकरके लक्षण हैं । तामसाहंकारसे शब्दतन्मात्र हुआ । उससे आकाश हुआ । शब्दयुक्त आकाशके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विकारसे स्पर्श तन्मात्र और उससे वायु हुआ। वायुके विकारसे रूपतन्मात्र तथा उससे तेज हुआ। रूपयुक्त तेजके विकारसे रसतन्मात्रा और उससे जल उत्पन्न हुआ। रसयुक्त जलसे गन्ध तन्मात्र और उससे पृथ्वी हुई। कारणके गुणकार्यमें हैं अतः पृथ्वीमें शब्दादि पांचों गुण हैं। क्रमशः जलादिमें एक एक यों घटते घटते आकाशमें सिर्फ शब्दमात्र गुण है। जब ये सब असंहत अवस्थाओंमें थे, तब ईश्वरने काल कर्म गुणोंके साथ इसमें प्रवेश किया। तब इन सब विकारोंकी समष्टिसे अचेतन अण्ड उत्पन्न हुआ। उससे हिरण्यगर्भात्मक सूक्ष्मसमष्टि जीव (विराट्) उठा यह विशेष नामका अण्ड क्रमशः दस गुने अधिक जलादि तत्त्वोंसे आवृत्त है। अन्तमें प्रकृतिका आवरण है। इसमें प्रशस्त ब्रह्माण्ड है यह भगवान्का ही रूप है। फिर भगवान्ने उसमें प्रवेश किया। फिर उसमें मुख, नाक, कान आदि अनेक अवयव हुए। उनमें अग्नि, वायु, और सूर्य आदि देवताओंने प्रवेश किया। इन सबके सम्मिलित प्रवेश करनेपर भी जब विराट् न उठा, तब इनमें प्रत्येकने एक-एक करके प्रवेश किया। अन्तमें चत्रज्ञके प्रवेश करते ही वह उठ गया।

अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः

[योगके अनुष्ठानका वर्णन]

श्रीभगवान् कहा—प्रकृतिमें रहनेपर भी पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि वह अविकारी, अकर्ता और निर्गुण है। जैसे कि जलमें प्रतिबिम्बित भी सूर्य उससे सम्बद्ध नहीं होता ॥ १ ॥ 'यह सब मैं ही करता हूँ' ऐसा समझकर अहंकारसे मूढ़ होकर पुरुष जब अभिमान करने लगता है तब वह प्रकृतिके गुणोंके संसक्त हो जाता

श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥ अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥१॥ स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ॥ अहंक्रियाविमूढात्मा कर्ताऽस्मीत्यभिमन्यते ॥ २ ॥ तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्यनिर्वृतः ॥ प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ ३ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥४॥ अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ॥ भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥ ५ ॥ यमादिभिर्योगपथैरभ्यसन् श्रद्धयान्वितः ॥ मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन

है यानी उसके गुणोंका अपनेमें सम्बन्ध मानने लगजाता है ॥ २ ॥ उसके कारण अनिर्वृत होते हुए अवश हो वह प्रासंगिक कर्मोंके दोषोंसे देव-तिर्यक् आदि अच्छे बुरे योनियोंमें जन्म-मरण-परम्परा पाता है ॥ ३ ॥ वास्तविक अर्थके न रहनेपर भी विषयोंका ध्यानकर रहे इस जीवकी संसृति (भय) ऐसे नहीं जाती, जैसे कि स्वप्नमें अनर्थ प्राप्ति ॥ ४ ॥ अतः खराब मार्गपर जानेवाले चित्तको धीरे-धीरे खींचकर तीव्र भक्तियोग और विरक्तिसे वशमें लाना चाहिए ॥ ५ ॥ यम आदि योगमार्गोंसे चित्त स्थिर करनेका अभ्यास करते हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रद्धायुक्त होकर मुझमें निष्कपट भावसे, मेरे कथाश्रवणसे, सर्वतभूतोंमें समत्वभावसे, वैर छोड़ देनेसे, आसक्ति छोड़ देनेसे, ब्रह्मचर्य-मौनसे तथा बलवान् स्वधर्म पालनसे, यदृच्छासे प्राप्त अन्नको खाकर, मिताहारी रहते हुए मुनि-व्रत धारणकर, एकान्तका आश्रयणकर इन्द्रियनिग्रही, सौहार्द्र तथा कारुण्य युक्त होकर, आत्मबल सम्पन्न हो, प्रकृति-पुरुषका जिससे तत्त्वज्ञान होता है ऐसे ज्ञानसे उसके सम्बन्धियोंके साथ इस मिथ्या देहपर अहंत्व या ममत्वका अभिमान न रखकर, जाग्रदादि बुद्धिकी अवस्थाओंसे दूर होकर, अन्य विषयोंसे दूर रहकर चक्षुरवच्छिन्न सूर्यसे गगनस्थ सूर्यकी नाईं, अहंकारावच्छिन्न आत्मासे शुद्ध आत्माको जानकरके पुरुष मिथ्याभूत अहंकारमें सद्रूपसे भासमान निरूपाधिक ब्रह्मको प्राप्त होता है वही कारणीभूत प्रधानका अधिष्ठान है। कार्यका नेत्रके समान प्रकाश भी वही है। वह कार्यकारण दोनोंमें व्याप्त है और परिपूर्ण है ॥ ६—११ ॥ जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यका प्रतिबिम्ब जब दीवाल आदिपर पड़ता है तब उस प्रतिबिम्बसे जलस्थ प्रतिबिम्बकी जैसी कल्पनाकी जाती है उस तरह या जलस्थ सूर्य प्रतिबिम्बसे जैसे आकाशस्थ सूर्यका ज्ञान

च ॥ ६ ॥ सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसङ्गतः ॥ ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥ यदृच्छयोपलब्धेन सन्तुष्टो मितभुङ्मुनिः ॥ विविक्तशरणः शान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ८ ॥ सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ९ ॥ निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ॥ उपलभ्यात्मनात्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक् ॥ १० ॥ मुक्तिलिङ्गं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ॥ ततो बन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥११॥ यथा जलस्थ आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ॥ स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥१२॥ एवं त्रिवृदहङ्कारो भूतेन्द्रियमनोमयैः ॥ स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥ १३ ॥ भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ॥ लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहंक्रियः ॥१४॥ मन्यमानस्तदात्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ॥ नष्टेहंकरणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥१५॥ एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते ॥ साहङ्कारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥१६॥ देवहूतिरुवाच ॥ पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुञ्चति कर्हिचित् ॥ अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च

होता है, उसी तरह देहेन्द्रियमनरूपी अपने प्रतिबिम्बोंसे त्रिगुणात्मक अहंकार सत् ब्रह्मका जिसमें आभास मिलता है ऐसे रूपसे लक्षित होता है और इस अहंकारसे परमार्थ ज्ञानरूप आत्माका ज्ञान होता है ॥ १२, १३ ॥ निद्रासे महाभूत-तन्मात्र इन्द्रिय मन-बुद्धि इत्यादि जब असत् तुल्य अव्याकृतमें लीन हो जाते हैं तब उस समय जो निद्रा और अहंकारसे रहित रहता है, उस आत्माको पाता है। अहंकारके विषय, भूतादिके लीन हो जानेके कारण तद्विषयक अहंकारके भी नष्ट हो जानेसे खुद नष्ट न होनेपर भी, नष्ट द्रव्य हुए दीनके समान, व्यर्थ ही खुदको नष्ट समझता है ॥ १५ ॥ मैं सुखसे सोया, कुछ भी न जान सका, इस तरह किसी विशेष ज्ञानके बिना केवल आत्माका ही अनुसन्धान होनेके कारण उस समय केवल आत्मा ही रहता है। उस आत्माको वह प्राप्त होता है, जो अहङ्काररहित कार्यकारणसंघातरूपद्रव्यका प्रकाशक और अधिष्ठान है ॥ १६ ॥ देवहूतिने कहा—हे ब्रह्मन्, हे प्रभो, पुरुषको प्रकृति कभी नहीं छोड़ सकती, क्योंकि पुरुषके बिना प्रकृतिको स्वरूका लाभ नहीं है और उसकेबिना पुरुषकी अभिव्यक्ति नहीं है, ऐसा परस्पर वे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक दूसरेके आश्रय हैं यह तथा ये दोनों नित्य भी हैं ॥ १७ ॥ जिस तरह गन्ध और पृथ्वीकी व्यतिरेकसे यानी अलग रूपसे सत्ता नहीं है या रस तथा जलकी पृथक् रूपसे सत्ता नहीं है, उसी तरह पुरुष और प्रकृति है ॥ १८ ॥ जिनके कारण अकर्त्ता पुरुषको यह कर्मबन्ध है, उन प्रकृति के गुणोंके रहते हुए उनसे पुरुषका कैवल्य कैसा ? ॥ १९ ॥ इसलिए कचित् तत्त्वविमर्श द्वारा निवृत्त हुआ भी भयङ्कर संसारका भय कारणकी निवृत्ति न होने से पुनः उत्पन्न हो जाता है ॥ २० ॥ श्रीभगवान्ने कहा—इस संसारमें निष्काम स्वधर्माचरणसे, निर्मल मनसे, चिरकालके श्रवण से पुष्ट हुई मुझसे तीव्र भक्तिसे, तत्त्वविषयक ज्ञानसे, प्रबल वैराग्यसे, तपोयुक्त, तीव्रयोगसे और निर्विकल्पक आत्मसमाधि से पुरुष की रातदिन जल रही प्रकृति, उससे धीरे-धीरे अदृश्य होती है, जैसे कि उसीसे निकली हुई अग्निसे जलरही अरणि नष्ट होती है ॥ २१, २२, २३ ॥ भोगलेनेके बाद सदा दोष दिखाई देने से

नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥ १७ ॥ यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ॥ अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥ १८ ॥ अकर्तुः कर्मबन्धोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ॥ गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥ १९ ॥ कचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ॥ अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ॥ तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरम् ॥ २१ ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ॥ तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना ॥ २२ ॥ प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् ॥ तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥ २३ ॥ भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ॥ नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥ २४ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ २५ ॥ एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ॥ युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥ २६ ॥ यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ॥ सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनिः ॥ २७ ॥ मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ॥ निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥ २८ ॥ प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरः स्वदृशा छिन्नसंशयः ॥ यद्गत्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गाद्विनिर्गमे ॥ २९ ॥ यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग ॥

छोड़ दी गई प्रकृति आत्मानन्दको प्राप्त हुए स्वतन्त्र पुरुषका कुछ भी अशुभ नहीं कर सकती ॥ २४ ॥ जिस तरह न उठे हुए मनुष्यका सोना अनेक अनर्थोंका कारण होता है, लेकिन वही स्वाप उठे हुए पुरुषके मोहके लिए नहीं होता ॥ २५ ॥ उसी तरह मुझमें मन लगानेवाले आत्मानन्दमें मग्न तत्वज्ञानी पुरुषका प्रकृति कुछ भी अपकार नहीं करती ॥ २६ ॥ जब अनेक जन्मोंके समय से इस तरह आध्यात्मरत हो जाता है और ब्रह्मलोकतक सबमें वैराग्ययुक्त होता है तब वह मेरा भक्त मुनि आत्मतत्त्व जानकर मेरे विपुल-प्रसाद से कैवल्य नामका मेरा आश्रयी भूत, निरतिशयानन्द, देहादिव्यतिरिक्त जिनस्वरूप पाता है ॥ २७, २८ ॥ आत्मज्ञान से संशयरहित होकर धीर पुरुष यहीं पर सरलता से वह स्थान पाता है जहाँ लिङ्ग शरीरका नाश होनेपर योगी लोग जाकर फिर नहीं वहाँसे लौट कर आते ॥ २९ ॥ योगसे समृद्ध होनेपर भी जिनका कारण योगसे भिन्न नहीं है ऐसी मायाओंमें सिद्ध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का चित्त जब नहीं फँसता, तब वह मेरी सबसे श्रेष्ठ गतिको पाता है जहाँ मृत्युको हँसी नहीं आती—सिद्धको भी मैंने अपने वशमें कर लिया है—यों जहाँ मृत्युका गर्व नहीं होता ॥ ३० ॥

अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥३०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२७॥

सत्ताईसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा—आत्मा प्रकृतिस्थ होनेपर भी उसके गुणोंसे सम्बद्ध नहीं होता, क्योंकि वह निर्गुण अविकारी, अकर्ता है। अहंकारके कारण वह अपनेको कर्ता समझकर गुणोंसे सम्बन्ध लगाता है। फिर उस संगसे प्राप्त कर्मदोषसे अच्छे-बुरे योनियोंको पाता है। ये विषय वास्तवमें नहीं हैं, फिर भी ध्यान करनेके कारण स्वप्नमें अनर्थ प्राप्तिके समान संसारमें डालते हैं। अतः चित्तको अन्य जगहसे खींचकर भक्ति और विरक्तिसे वशमें लाना चाहिए। देवहूतिने प्रश्न किया—हे प्रभो, प्रकृति पुरुष दोनों अलग कैसे हो सकते हैं, क्योंकि ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं और नित्य हैं। फिर उस प्रकृतिके गुणोंके कारण पुरुषको जो कर्मबन्ध है, वह उसके रहते कैसे छूट सकता है। इसीलिए कुछ जगह निवृत्तप्राय संसारभयका फिर उद्भव दीखता है। श्रीभगवानने कहा - निष्कामकर्म, तत्त्वज्ञान, भक्ति, वैराग्य, तप, योग और समाधि—इत्यादिसे धीरे-धीरे जलती हुई प्रकृति अपने ही अदृश्य हो जाती है। भोगलेनेके बाद उसमें दोष देखकर छोड़ दी गई प्रकृति उस स्वतन्त्र पुरुषका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। जब अनेक जन्मके आत्मविचारसे ब्रह्मलोकतककी वस्तुओंमें वैराग्ययुक्त होकर आत्मतत्त्वको ठीक-ठीक जान लेता है तब वह मेरा भक्त मेरे प्रसादसे आत्मानन्दयुक्त निजस्वरूप प्राप्त करता है। योगी लोग शरीरपातके बाद जहाँ जाते हैं आत्मज्ञानसे वहींपर वह प्राप्त होता है। योगसे जो सिद्धियाँ बीचमें मिलती हैं, उनमें साधकको नहीं फँसना चाहिये, अन्यथा मेरी श्रेष्ठगति नहीं प्राप्त होती।

❀ अथ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ❀

(भगवान्‌का ध्यान)

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे राजपुत्रि, जिस प्रकारसे मन प्रसन्न होकर सन्मार्गपर चलता है ऐसे योगका उसके आलम्बनके साथ लक्षण कहता हूँ ॥ १ ॥ यथाशक्ति स्वधर्म

श्रीभगवानुवाच ॥ योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥ मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥ १ ॥ स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ॥ दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥ ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा । मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्त-

का आचरण, अधर्मसे निवर्तन दैवसे जो मिले, उसमें सन्तोष, आत्मज्ञानी भगवान्‌के भक्तोंके चरणकी पूजा त्रैवर्गिकधर्मसे (सकाम धर्मसे) निवृत्ति, मोक्षोपयोगीधर्ममें आसक्ति, शुद्ध और मित आहार, सदा उपद्रवरहित एकान्तस्थानका सेवन, अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, जीतनेकी जरूरत उतने ही चीजें रखना, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, वेदाध्ययन, भगवान्‌की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूजा, मौन, सत्, आसनको जयसे स्थैर्य, प्राणजय, धीरे-धीरे मनसे सब इन्द्रियोंको बाहरके विषयसे खींचकर हृदयमें लगाना, प्राण स्थान—मूलाधारादिमें एक जगह मनके साथ प्राणको रोकरखना भगवान्की लीलाओंका ध्यान करना और मनको आत्माकार बनाना—इन उपायोंसे तथा इनके अलावा अन्य भी उपायोंसे दुष्ट मार्गपर जानेवाले मनको—प्राणको जीतकरके निरलस होकर बुद्धिसे—धीरे-धीरे स्थिर करना चाहिए ॥ २-७ ॥ आसन जयी योगीको शुद्ध जगहपर आसन बिछाकर उस स्वस्तिक आसनके ऊपर सरल शरीररखकर बैठकरके प्राणायामका अभ्यास करना चाहिए ॥ ८ ॥ फिर पूरक-कुम्भक-रेचकसे या विपरीतरूपसे यानी रेचक, कुम्भक-पूरकसे प्राणमार्गको शुद्ध करना चाहिए, जिससे चित्त स्थिर हो जानेपर पुनः चञ्चल न होजाय ॥ ९ ॥ श्वासजयी योगीका मन शीघ्र कल्मषरहित हो जाता है, जैसे कि वायु और अग्निसे सन्तप्त हुआ धातु अपना मल

क्षेमसेवनम् ॥ ३ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥ मौनं सदासनजयस्थैर्यं प्राणजयः शनैः ॥ प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥५॥ स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ॥ वैकुण्ठलीलाभिध्यानं समाधानं तथात्मनः ॥६॥ एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम्। बुद्ध्या युञ्जीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥७॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ॥ तस्मिन्स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥८॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम् ॥९॥ मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥ वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥१०॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥११॥ यदा मनः स्वविरजं योगेन सुसमाहितम् ॥ काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥१२॥ प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१३॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥१४॥ मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥ परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥१५॥ काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ १६ ॥ अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ सन्तं वयसि कैशोरे

शीघ्रही छोड़ देता है अर्थात् शुद्ध हो जाता है ॥ १० ॥ प्राणायामसे देहके वात्त-पित्तादि दोष, धारणासे पाप, प्रत्याहारसे विषयसंसर्ग और समाधिसे रागादिगुण नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥ प्राणायामादि उपायोंसे मन जब स्थिर और शुद्ध हो जाय, तब नासिकाग्रमें दृष्टि रखकर भगवान्की मूर्तिका ध्यान करना चाहिये ॥ १२ ॥ जिनका मुख कमलके समान प्रसन्न हैं, नेत्र पद्मगर्भके समान अरुण हैं, नीलकमलदलके समान श्याम जिनका वर्ण है, जो शंख-चक्र-गदा धारण किए हुए हैं, पद्मपरागके शोभायमान पीत रेशमी वस्त्र जो पहिने हुऐ हैं, । जिनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिन्ह है, गलेमें कौस्तुभमणि है और मत्तमधुरोंके मधुर गुञ्जनसे युक्तवनमाला है जोकीमतीहार-नूपुर-कटक-किरीट-बाजु-बन्द पहिने हुए हैं, करधनीके गुणसे जिनको कमरकी शोभा बिखर रही है, भक्तोंका हृदय कमल जिनका आसन है ऐसे अत्यन्त दर्शनीय, शान्त, मन और नयनको आनन्द देनेवाले देखने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में अत्यन्तही सुन्दर, सभी लोगोंसे सदा नमस्कृत, किशोर वयस्क, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए व्यग्र, कीर्तनीय-पवित्र यशवाले तथा पुण्यश्लोक भक्तोंका यश बढ़ानेवाले सभी अवयवों से युक्त भगवान्का तबतक एक दम ध्यान करते रहना चाहिए, जब तक कि मन वहाँसे हट न जाय ॥ १३–१८ ॥ खड़े, बैठे चलते या सोते हुए भगवान्का शुद्ध भावयुक्त चित्तसे ध्यान करना चाहिए। भगवानकी सभी लीलाएँ प्रेक्षणीय हैं ॥ १९ ॥ जब भगवान्के सभी अवयवोंमें चित्त स्थिर हो जाय, तब योगीको एक-एक अंगको विशेषरूपसे लक्ष्य बनाकर उसीमें अपना चित्त लगाना चाहिए ॥ २० ॥ पहले भगवानके चरणारविंदका ध्यान करना चाहिए जो वज्र, अंकुश ध्वज और पद्मोंके चिन्होंसे सुशोभित है, जो अपने ऊँचे लालनख मण्डलकी चाँदनीसे ध्यान करने वालों के हृदयमें के अन्धकारको नष्ट कर देता है। जिसके प्रक्षालनसे निकली नदियोंमें सर्वश्रेष्ठ गंगाजीके उदकको मस्तकपर धारणकर शिव

भृत्यानग्रहकातरम् ॥ १७ ॥ कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ॥ ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥ १८ ॥ स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ॥ प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥ १९ ॥ तस्मिँल्लब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ॥ विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥ २० ॥ सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ॥ उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥ २१ ॥ यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ २२ ॥ जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याऽखिलस्यसुरवन्दितया विधातुः ॥ ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्सँल्लालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥ २३ ॥ ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ॥ व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमानकाञ्चीकलापपरिरम्भिनितम्बबिम्बम् ॥ २४ ॥ नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ॥ व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥ २५ ॥ वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ॥ कण्ठं च कौस्तु-

भी शिव हो गये यानी भगवान् शङ्कर भी अधिक सुखको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ ध्यानकरनेवालेके मनके किल्वषरूपी पर्वतके ऊपर अपने चिह्न वज्रसे प्रहारकरनेवाले भगवान्के चरणारविंदका बहुत देरतक ध्यान करना चाहिए ॥ २२ ॥ फिर कमलनयना, सभी प्राणियोंकी और ब्रह्माकी भी माता सुरवन्दित लक्ष्मीजी अपनी जाँघपर रखकर जिनकी दोनों जाँघकी अपने करपल्लवोंसे सेवा करती हैं और उसके करण उनके करकी अरुण कान्तिसे जो युक्त हैं, उन संसार रहित भगवान्की दोनों जाँघों तकके अवयवोंका हृदयमें ध्यान करना चाहिये ॥ २३ ॥ फिर गरुड़के कन्धेपर शोभायमान, बलके निवास स्थान तीसीके फूलके समान नील जांघोंका ध्यान करना चाहिए, तदनन्तर नीचेतक लटकरहे पीले-श्रेष्ठवस्त्र के ऊपर विराज रही करधनीसे आलिंगित उनके नितम्बविम्बका चिन्तन करना चाहिए ॥ २४ ॥ अनन्तर भुवनकोशके आश्रय स्थान उदरपर विराजमान नाभिसरोवरका, जहाँपर ब्रह्माके निवासस्थान समस्तलोकात्मक पद्म उत्थित है, और मरकतमणिके समान क्रान्तिमान्, विशदहारकी किरणोंसे शुभ स्तनद्वयका ध्यान करना चाहिए ॥ २५ ॥ फिर महालक्ष्मी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के वासस्थान, ध्यान करनेवाले पुरुषोंके नयन और मनको सावधान देनेवाले विशाल वक्षःस्थलको और सर्वलोक नमस्कृत भगवान्के कौस्तुभमणिकी शोभाके स्थान कण्ठको मनमें लाना चाहिए ॥ २६ ॥ अनन्तर मन्दरपर्वतके मन्थनके कारण रगड़ खाकर और अधिक उज्ज्वल बने हुए बाजुबंद जिसमें विराजमान है, लोकपाल जिनका आश्रय करते हैं ऐसी भगवान्की भुजाओंका और एक हाथमें हजार आरावाले असह्य तेजस्वी चक्रका तथा दूसरे करकमलमें राजहंसके समान शोभायमान शंखका ध्यान करना चाहिए ॥ २७ ॥ अनन्तर शत्रु वीरोंकी रक्तके कीचड़से भरी हुई भगवान्की प्रिय कौमोदकी गदाका स्मरण करना चाहिए। उसके बाद उनके कण्ठमें पड़ी मधुकर समूहके गुंजारवसे गुंजित मालाको और जीवके तत्त्वभूत कौस्तुभमणिको मनमें लाना चाहिये ॥ २८ ॥ तदनन्तर भक्तोंपर दया करनेकी इच्छासे यहाँ अवतार लेनेवाले भगवान्के—चमकदार मत्स्याकार कुण्डलोंके डुलने गाल भी जिसके चमक रहे हैं ऐसे सुन्दर नासिकायुक्त, अपनी कान्तिके कारण भ्रमरोंसे सेव्यमान, घुघुराले बालोंसे सुशोभित कमलके समान नयनसे विराजित दो मत्स्योंके

भमणेर्धिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ २६ ॥ बाहूंश्च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्तबाहुबलयानधिलोकपालान् ॥ सञ्चिन्त-येद्दशशतारमसह्यतेजः शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥ २७ ॥ कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन । माल मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥२८॥ भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः सञ्चिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम् ॥ यद्विस्फु रन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ २९ ॥ यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्टम् ॥ मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रित उल्लसद्भ्रु ॥ ३० ॥ तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोरतापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ॥ स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम् ॥३१॥ हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ॥ संमोहनाय रचितं निजमाययाऽस्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥३२॥ ध्यानायनं प्रहसितंबहुलाधरोष्ठभासारुणायिततनुद्विजकुन्दपङ्क्ति ॥

आश्रय कमलका अपनी शोभासे तिरस्कार करनेवाले शोभायमान भौंहोंसे युक्त—मुख मण्डलका तन्द्रा छोड़कर ध्यान करना चाहिये ॥ २९, ३० ॥ फिर अपने हृदयमें बहुत देरतका भक्तियुक्त अन्तःकरणसे उन भगवान्के—तीनों तापोंको नष्ट करनेके लिए भक्तोंपर आँखोंसे प्रयुक्त, अनुग्रहभावसे पूर्ण स्निग्ध हास्य युक्त—विपुलप्रसादका अर्थात् कृपादृष्टिका ध्यान करना चाहिए ॥ ३१ ॥ तत्पश्चात् भगवान् विष्णुके प्रणत जनोंके शोकाश्रुके सागरको शुष्क कर देनेवाले अत्यन्त मनोहर हास्यका तथा भगवान्ने ऋषियोंके तपमें विघ्न करनेवाले कामको मोहित करनेके लिए ही अपनी मायासे उसे प्रकट किया हो ऐसी उनकी भ्रुकुटिका ध्यान करना चाहिए ॥ ३२ ॥ फिर अधरोष्ठकी अत्यधिक कान्तिके कारण सूक्ष्म कुन्दसमान दन्तपंक्ति भी जिसके कारण अरुण होती है ऐसे अति सुन्दर होनेसे प्रयत्न बिना ही ध्यानको विषयभूत भगवान्विष्णुके उच्चहासका भी ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते समय अपने हृदयविवरमें ज्ञात हुए भगवान्विष्णुकी प्रेमरससे आर्द्रभक्तिसे उन्हींमें अपना मन अर्पित करते हुए उसको छोड़ दूसरे किसी वस्तुको देखनेकी इच्छा न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करनी चाहिए ॥ ३३ ॥ इस तरह ध्यानमार्गसे भगवान् में प्रेम बढ़नेसे भक्ति से जिसका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, आनन्दसे रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं, वह भक्त उत्कण्ठाके कारण झर रहे अश्रु प्रवाहसे बार-बार आनन्दसागरमें गोते लगाते हुए दुर्ग्रह भगवान्को पकड़नेमें मत्स्यवेधक काँटेके समान (वंशीके समान) करने वाले चित्तको भी ध्येयसे धीरेसे वियुक्त कर देता है अर्थात् उसके धारणमें शिथिल प्रयत्न हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जब चित्त विषयको छोड़ अवलम्बयपित हो जाता है, तब केवल आत्मानन्दके अनुभवमें हीर होनेके कारण लीन वह सबसे विरक्त हो जाता है। अतः अपनी वृत्तिरूपताका सहसा परित्यागकर ब्रह्माकारसे ऐसे परिणत हो जाता है, जैसे कि आधारभूतकाष्ठ खतम हो जाने पर अग्नि महाज्योतिरूपसे परिणत हो जाती है। उस दशामें ध्यातृ ध्येय-विभाग शून्य केवल अखण्ड आत्माका वह अनुभव करता है, क्योंकि उसकी देहादि उपाधि उस समय निवृत्त हो जाती है ॥ ३५ ॥ ऐसा पुरुष योगाभ्याससे अविद्यारहित मनकी अवस्थासे सुख-दुःखके बहिर्भूत—शुद्ध निर्विकार परब्रह्ममें लीन होनेके कारण पहले जो सुख-दुःखका

ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्यार्द्रयार्पितमना न पृथग्दिदृक्षेत् ॥ ३३ एवं हरौ भगवती प्रतिलब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥ ३४ ॥ मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः ॥ आत्मानमत्र पुरुषो व्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥ ३५ ॥ सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ॥ हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥ देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३७ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३८ ॥ यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथङ्मर्त्यः प्रतीयते ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा ॥ ३९ ॥ यथोल्मुकाद्विस्फुलिङ्गाद्धूमाद्वापि स्वसंभवात् ॥

कारणत्व अपनेमें समझता था, वह भी अविद्याकृत अहंकारमें देखता है, क्योंकि उसे अब आत्मतत्वका प्रत्यक्ष हो चुका है ॥ ३६ ॥ इस तरहका सिद्ध अपना देह भी नहीं देखता। शरीर वहाँ आसन पर बैठा है या दैवात् कहीं चला गया है अथवा जाकर फिर आगया है, यह कुछ भी उसको नहीं सूझता, क्योंकि वह आत्मस्वरूपको प्राप्त हो गया रहता है। जैसे कि शराबके मदमें मस्त पुरुष अपना वस्त्र है या चला गया, यह नहीं जान पाता ॥ ३७ ॥ दैववश उसका शरीर भी अपना आरम्भक कर्म जबतक है तबतक प्राणके साथ प्रतीक्षा करता ही है, किन्तु सिद्ध परिवारके साथ उस स्वप्न-तुल्य देह पर फिर 'मैं' और 'मेरा' यह अभिमान नहीं रखता। समाधिपर्यन्त योगमें आरूढ़ होनेके कारण उसको आत्मतत्वका

२५ साक्षात्कार हुआ रहता है ॥ ३८ ॥ पुत्र और वित्तसे जैसे मनुष्य अलग प्रतीत होता है, उसी तरह जिसको आत्मा समझता है, उस देहसे भी अपनेको वह पुरुष पृथक् समझता है ॥ ३९ ॥ जिस तरह अभी जल रही लकड़ी, चिनगारी, धूवाँ या अग्निसे ही उत्पन्न हुई अधजली उस पहले की लकड़ी (लुआठी से) अग्निव्यवहार होनेसे भी अग्नि पदार्थ उससे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अलग हैं, उसी तरह देह-इन्द्रिय-अन्तःकरणोंमें आत्मव्यवहार होने पर भी उनका द्रष्टा उनसे पृथक् है, उस जीव नामक आत्मासे भी शुद्ध ब्रह्म नामक आत्मा अलग है ॥ ४०, ४१ ॥ सभी भूतोंको अपनेमें तथा अपनेको सभी भूतोंमें देखना चाहिये । एवं अनन्यभावसे सभी भूतोंको ब्रह्मरूप देखना चाहिये ॥ ४२ ॥ अग्नि जैसे काष्ठोंके सम्पर्कसे उनमें अनेकधा दीखती

आप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥ ४० ॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ॥ आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान्ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ४१ ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥ ४२ ॥ स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ॥ योनीनां गुणवैषम्यात्तथात्मा प्रकृतौ स्थितः ॥ ४३ ॥ तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥ दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥४४॥ इति श्रीम० म० तृ० कापिलेयोपाख्याने साधनानुष्ठानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८॥

है, उसी तरह शरीरके ह्रस्वत्व, दीर्घत्वादि गुणवैषम्यसे प्रकृतस्थ आत्मा भी नाना तरहका दीखता है ॥ ४३ ॥ अतः यह जो भगवान्की शक्ति कार्य कारणात्मक प्रकृति है, जिसका ज्ञान होना कठिन है उस अपने बन्धनकी हेतुभूत प्रकृतिको भगवान्के प्रसादसे जीतकर जीव शुद्ध ब्रह्मस्वरूपसे स्थित रहता है ॥ ४४ ॥

अट्ठाइसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—जिससे मन प्रसन्न होकर संन्यासमार्ग पर जाता है, उस योगका लक्षण कहता हूँ । स्वधर्माचरण, अधर्मत्याग, दैवलब्धमें सन्तोष, भगवान् और उनके भक्तोंकी पूजा आदि उपायों द्वारा मनको स्थिर करना चाहिए । शुद्ध जगहमें आसन जमाकर प्राणायामसे चित्त स्थिर करना चाहिए । प्राणायामादि उपायोंसे मनके स्थिर हो जानेपर नासिकाग्रमें दृष्टि लगाकर भगवान् भगवन्मूर्तिका ध्यान करना चाहिए । पहले भगवान्के चरणारविन्दका ध्यान करना चाहिये । फिर घुटने तकके अवयवोंका ध्यान करने बाद नीलवर्ण गरुडके पीठपर शोभायमान ओजस्वी जाँघोंका ध्यान करना चाहिए । फिर ब्रह्माजी और भुवनपद्म जिससे निकलता है ऐसे नाभि-सरोवरका ध्यान करना चाहिए । फिर मरकतमणिके समान स्तनपर पड़ी हुई शुभ्रकान्तिसे युक्त हारका स्मरण करना चाहिए । फिर लक्ष्मीके वासस्थान विशाल छातीका, फिर कौस्तुभ मणियुक्त कण्ठका, फिर बाजुबन्दोंसे शोभित बाहुओंका, फिर एक हाथमें हजार आरावाले तेजस्वी चक्रका, दूसरे हाथमें शंखका, तीसरे हाथमें दैत्योंके रक्तसे रंजित गदाका और चौथेमें पद्मका ध्यान करना चाहिए । फिर भ्रमरके समान घुंघराले बाल, मत्स्यके समान नेत्र मकरकुण्डलोंकी कान्तिसे प्रकाशित गाल और सुन्दर भ्रुकुटियुक्त मनोहर मुखकमलका ध्यान करना चाहिए । फिर तापनाशक भक्तोंपर पड़नेवाली अनुग्रहपूर्ण हासयुक्त कृपादृष्टिका ध्यान करना चाहिए । फिर अत्यन्त मनोहर हास्य और कामको भी मोहित करनेवाले भ्रूमण्डलको मनमें लाना चाहिये । फिर जिसमें सफेद दन्त पंक्ति ओष्ठकान्तिसे अरुण दीखती है ऐसे उच्च हास्यका भी ध्यान करना चाहिए । ध्यान करते समय प्रेमार्द्रमन भगवान्में ही रहे । दूसरी कोई चीज न देखनी चाहिये । ऐसा ध्यान करनेसे प्रेमसे हृदय द्रवित होता है, शरीर पुलकित होता है, अश्रु झरने लगते हैं । और साधक आनन्द-समुद्रमें गोते लगाता है । बादमें तो चित्त उस मूर्तिके धारणामें शिथिल होजाता है । ऐसा निर्विषय आत्मानंदके अनुभवमें लीन हुआ चित्त ब्रह्माकार होजाता है, और ध्यातृ-ध्येय विभाग रहित अखण्ड आत्मानुभवसे देहादि उपाधि निवृत्त हो जाती है । वह सुख-दुःख अहंकारमें देखता है । तब उसको यह देह है या नहीं है कुछ नहीं सूझता । प्रारब्धकर्मके अन्ततक, देहकी प्रतीक्षा करता है, लेकिन उसको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देहमें अभिमान नहीं उत्पन्न होता। वह मनुष्य जैसे अपनेको स्त्री-पुत्रादिसे अलग समझता है, वैसे ही आत्माको देहसे अलग समझता है जैसे धूवाँ, लकड़ी, चिनगारी—इनको लोग अग्नि समझते हैं, लेकिन अग्नि इनसे अलग है। सभी भूतोंको अपनेमें और अपनेको सभीमें देखना चाहिए। भगवान्‌के प्रसादसे प्रकृतिको जीतकर जीव शुद्ध अपना ब्रह्मरूप पाता है।

अथ एकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः

(भक्तिके साधन, ब्रह्मदर्शनकी महत्ता तथा कालका स्वरूप)

देवहूतिने कहा—महत्तत्त्व आदिका, प्रकृतिका तथा पुरुषका सांख्यमें जिस तरहका लक्षण बतलाया है, जिससे उनका पृथक स्वरूप-ज्ञान होता है और भक्तियोग जिसका प्रयोजन है ऐसा लक्षण आपने बतलाया, अब हे प्रभो, भक्तियोगका मार्ग आप विस्तारके साथ मुझे बतलाइये ॥ १, २ ॥ हे भगवन्, इस जीवलोककी जो अनेक गतियाँ हैं उनका भी आप मुझसे वर्णन कीजिए, जिससे पुरुष सबसे रागशून्य होजाय ॥ ३ ॥ ब्रह्मादिके भी नियन्ता ईश्वररूप कालका, जो आपका, स्वरूप है, जिसके भयसे लोग पुण्य करते हैं। आप स्वरूप बताइये ॥ ४ ॥ मिथ्याभिमानके कारण कर्मोंमें आसक्तबुद्धिसे श्रान्त और अपार संसारमें चिरकालसे प्रसुप्त अज्ञ लोगोंके प्रबोधके लिए आप निः सन्देह भक्तिज्ञान

देवहूतिरुवाच ॥ लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां येन तत्पारमार्थिकम् ॥ १ ॥ यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ॥ भक्तियोगस्य मे मार्गं ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥ २ ॥ विरागो येन पुरुषो भगवन्सर्वतो भवेत् ॥ आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा मम संसृतीः ॥ ३ ॥ कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ॥ स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥ ४ ॥ लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ॥ श्रान्तस्य कर्मस्वनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः ॥ आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणार्दितः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ॥ स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ ७ ॥ अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ॥ संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ ८ ॥ विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा ॥ अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥ ९ ॥ कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन्वा

योगरूप कमलके प्रकाशक सूर्य उदित हुए हैं ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे कुलश्रेष्ठ, यों माताका सुन्दर वचन सुनकर उससे प्रीत हो उसकी प्रसंशा करके करुणाभरे चित्तसे महामुनि कपिल बोले ॥ ६ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे भामिनि, प्रकार विशेषोंके कारण भक्तियोग अनेक प्रकारका समझा जाता है। स्वभावभूत गुणोंके कारण लोगोंके अभिप्राय अलग-अलग होते हैं ॥ ७ ॥ हिंसाकी इच्छाकर या दम्भ और मात्सर्यसे क्रोधी भेददर्शी मनुष्य जो मुझमें भाव रखता है—भक्ति करता है वह तीनों ही तामस हैं ॥ ८ ॥ विषयोंकी इच्छा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करके या यश और ऐश्वर्यके लिए विषयादिकोंमें जिसकी ज्यादा इच्छा है ऐसा मनुष्य प्रतिमादिकोंमें जो मेरी पूजा करता है वह भेददर्शी राजस है ॥ पापक्षयके उद्देशसे या भगवदर्पण बुद्धिसे या भगवान्की अवश्य पूजा करनी चाहिये, इस विधि-सिद्धका उद्देशकर अर्थात् अपना कर्तव्य समझकर भेददृष्टि रखकर प्रतिमादिकोंमें जो मेरी पूजा करता है वह सात्त्विक है * ॥१०॥ सभीके हृदयनिवासी मुझमें मेरे गुणके श्रवणमात्रसे मनकी जो निरन्तर गति होती है, जैसे गंगाकी समुद्रमें वह निर्गुण भक्तियोगका लक्षण उदाहृत है, फलानुसंधानरहित होकर जो पुरुषोत्तममें भक्तिकी जाती है। वही आत्यन्तिकभक्ति योग कहा जाता है। जिस भक्तियोगके कारण गुणत्रयके कार्यभूत इस संसारको लांघकर मनुष्य मद्रूपताको यानी ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। निष्काम मेरी भक्ति करनेवाले ऐसे मेरे भक्ततो मेरी सेवाको छोड़कर मेरेद्वारा दीगई सालोक्य, सारूप्य, समीप्य और सायुज्य

तदर्पणम् ॥ यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥१०॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥ मनोगतिरविच्छिन्ना तथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥ ११ ॥ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ॥ अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥ सलोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥ दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ १३ ॥ स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ॥ येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते ॥ १४ ॥ निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा ॥ क्रियायोगेन शस्तेत नातिहिंस्रेण नित्यशः ॥१५॥ मद्धिष्ण्यदर्शनपूजास्तुत्यभिवन्दनैः ॥ भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च ॥ १६ ॥ महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ॥ मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥ १७ ॥ आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे ॥ आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥ १८ ॥ मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ॥ पुरुषस्याञ्जसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥ १९ ॥ यथा वातरथो घ्राणमावृङ्क्ते गन्ध आशयात् ॥ एवं योगरतं चेत

मुक्ति भी नहीं चाहते ॥ ११–१४ ॥ फलेच्छा छोड़कर श्रद्धापूर्वक स्वधर्माचरणसे, हिंसारहित प्रशस्त पंचरात्राद्युक्त पूजा प्रकारसे, मेरी प्रतिमाके नित्यप्रति दर्शन-स्पर्शन-पूजा-स्तुति अभिवादनादिकोंसे सभी भूतोंमें मेरी भावनासे, धैर्यसे वैराग्यसे महात्माओंको बहुमात्र प्रदानसे, दीनोंपर दया से समानोंपर मैत्रीसे, यम और नियमोंसे, अध्यात्मशास्त्र श्रवणसे, मेरे नाम संकीर्तनसे, सरलस्वभावसे, सज्जनोंके सहवाससे, निरहंकारितासे, तथा इनके अतिरिक्त और भी इसतरहके अनेक गुणोंसे मेरे धर्मका अनुष्ठान करनेवालेका चित्त शुद्ध हो जाता है। उसका चित्त मेरे गुणश्रवणसे ही मुझमें लग जाता है ॥ १५–१९ ॥ वायुके द्वारा अपने स्थानसे आयी हुई गन्ध नाकको व्याप्त करलेती है, ऐसे ही भक्तियोग करनेवाले

* इस तरह तामस; राजस और सात्त्विक—इन भक्तियोंमें प्रत्येक के तीन तीन भेद हुए। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। एवं श्रवण कीर्तन, आदि जो भक्तिके नव भेद हैं उनमें प्रत्येकके फिर नव नव भेद हैं। यों सब मिलाकर सगुण भक्ति ८१ प्रकारकी होती है। जैसे कि एक श्रवण ही तीन प्रकारके तामस, तीन प्रकारके राजस और तीन प्रकारके सात्त्विकके गुणनसे नव प्रकार है। वैसेही कीर्तन आदि को भी समझना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का अविकारी चित्त परमात्माको आत्मसात् करलेता है ॥ २० ॥ मैं सभी भूतोंमें सर्वदा आत्मरूपसे रहता हूँ, इसलिए दूसरेके शरीरमें स्थित हुए अवज्ञा करके जो मेरी पूजा करता है तो उसका वह पूजन हुआ विडम्बन मात्र है ॥ २१ ॥ जो सभी भूतोंमें रहनेवाले आत्मभूत ईश्वररूप मुझे छोड़कर मूर्खतासे केवल प्रतिमाका पूजन करता है, वह भस्ममें होम करता है ॥ २२ ॥ दूसरेके शरीरमें स्थित हुए मुझसे द्वेषकरनेवाले, अभिमानी, भेददर्शी तथा भूतोंमें वैरभाव रखनेवालेके मनमें शान्ति नहीं मिलती ॥ २३ ॥ हे अनवद्ये, भूतोंका अपमान करनेवालेकी—प्रतिमामें हुई अच्छे-अच्छे द्रव्योंके द्वारा पूजासे मैं सन्तुष्ट नहीं होता ॥ २४ ॥ स्वकर्मकृत भक्त पुरुष प्रतिमा आदिमें तब तक मेरी पूजा करता रहे, जबतक वह समस्त भूतोंमें स्वतः मुझ परमात्माको अपने हृदयमें नहीं जान जाता ॥ २५ ॥ अपनेमें और दूसरेमें जो थोड़ा भी भेद देखता है। ऐसे भेददर्शी मनुष्यको मृत्युरूपी मैं भयभीत

आत्मानमविकारि यत् ॥ २० ॥ अहं सर्वेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ॥ तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविम्डबनम् ॥ २१ ॥ यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ॥ हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥ २२ ॥॥ द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ॥ भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥ २३ ॥ अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे ॥ नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥ २४ ॥ अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ॥ यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ २५ ॥ आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ॥ तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥ २६ ॥ अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ॥ अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥ जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ॥ ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥ २८ ॥ तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ॥ तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥ २९ ॥ रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः । तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततोद्विपात् ॥३०॥ ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषा ब्राह्मण उत्तमः ॥ ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ३१ ॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता तत श्रेयान्स्वकर्मकृत् ॥ मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥ ३२ ॥ तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः ॥ मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥ न

बना देता हूँ अर्थात् भेददर्शी पुरुष मृत्युके भयसे हमेशा कांपते रहता है ॥ २६ ॥ सभी भूतोंके अन्तर्यामी सभीमें रहनेवाले मेरी दान, मान, मैत्री, इत्यादिसे अभेदबुद्धिसे पूजा करनी चाहिए ॥ २७ ॥ हे शुभे, अचेतनोंसे चेतन श्रेष्ठ है उनमें भी श्रेष्ठ प्राणवृत्तिवाले हैं उनमें भी ज्ञानवान श्रेष्ठ हैं उनमें इन्द्रियवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनमें भी स्पर्शज्ञानरखनेवाले श्रेष्ठ वृक्षादिकोंसे रसज्ञानयुक्त मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं। उनसे गन्धज्ञ भ्रमर आदि श्रेष्ठ हैं, उनसे शब्दज्ञ सर्पादि, उनमें भी रूपभेद जाननेवाले कौआ आदि, उनसे भी दोनों तरफ दाँतवाले मर्कटादि, उनमें भी पादहीनोंसे बहुपाद श्रेष्ठ हैं। उनसे भी चतुष्पाद श्रेष्ठ हैं, उनसे द्विपाद मनुष्य श्रेष्ठ हैं, उनमें भी चार वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी वेदज्ञ और उनमें अर्थज्ञ श्रेष्ठ है। अर्थज्ञसे भी संशयका निराकरण करनेवाला श्रेष्ठ है, उससे भी स्वकर्म करनेवाला श्रेष्ठ है, उससे स्वधर्मजन्य फल न चाहनेवाला यानी निष्काम कर्म करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाला श्रेष्ठ है, उससे भी मुझे जिसने क्रिया फल और अपनी आत्मा भी समर्पित कर दी है वह अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि वह अव्यवहित है। इस तरह मुझे आत्मार्पण करनेवाले कर्मार्पण करनेवाले समदर्शी और कर्तृत्वाभिमान शून्यप्राणीसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥ २८–३३ ॥ ईश्वर भगवान् सभीमें जीवरूपसे प्रविष्ट हैं ऐसा समझकर मनसे सभी भूतोंको बहुमान देते हुए प्रणाम करना चाहिए ॥ ३४ ॥ हे मनुपुत्रि, मैंने भक्तियोग और योग दोनों बतादिए। उनमेंसे एकसे भी आत्मा भगवान्‌को पा सकता है ॥ ३५ ॥ सबका नियमन करनेवाला जो भगवान् परब्रह्म परमात्माका प्रधान पुरुषात्मक तथा उससे व्यतिरिक्त जो रूप है वही दैव कहा जाता है उससे नाना संसृतिरूप कर्मका विलास होता है हे मानवि, मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि दैवप्रेरित कर्मकृत संसृतियाँ विचित्र हैं अर्थात् दैवप्रेरित कर्मके विलासभूत ये विचित्र योनियाँ हैं ॥ ३६ ॥ रूपभेदका कारण वह दिव्यरूप

पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥ ३३ ॥ मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥ ३४ ॥ भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ॥ ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्मविचेष्टितम् ॥ ३६ ॥ रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ॥ भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥ ३७ ॥ योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्यखिलाश्रयः ॥ स विष्णवाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥ ३८ ॥ न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः ॥ आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥ ३९ ॥ यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥ ४० ॥ यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ॥ स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥ ४१ ॥ स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ॥ अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥ ४२ ॥ नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ॥ लोकं स्वदेहं तनुते महान्सप्तभिरावृतम् ॥ ४३ ॥ गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ॥ वर्तन्तेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥ ४४ ॥ सोऽ-

ही काल कहा जाता है, जिससे महदादिकोंमें अभिमान रखनेवाले भेददर्शी लोगोंको भय है ॥ ३७ ॥ जो भूतोंके अन्दर प्रविष्ट होकर भूतोंसे ही भूतोंका संहार करता है सबका आश्रय वह विष्णु नामक यज्ञ फलदाता काल है। वह वशकरने वालोंका स्वामी है ॥ ३८ ॥ इसका न तो कोई प्रिय है, न तो द्वेषी है और न कोई बान्धव ही है। यह रोगरूपसे सावधान होकर असावधान लोगोंमें अन्त करनेके लिए प्रवेश करता है ॥ ३९ ॥ जिसके डरसे हवा बहती है, सूर्य प्रकाश देता है, इन्द्र वृष्टि करता है। तारागण चमकते हैं, जिसके भयसे औषधियोंसहित लताएँ और वनस्पतियाँ योगकालमें फल-फूल धारण करती हैं, जिसके भयसे नदियाँ बहती हैं, समुद्र मर्यादा नहीं छोड़ता, अग्नि जलती है, पर्वतोंसहित भूमि डूबती नहीं है, जिसके डरसे आकाश श्वासके लिए स्थान देता है, महत्तत्त्व सातोंसे आवृत हुई अंकुरात्मक स्वदेहको लोकरूपसे विस्तारित करता है, जिसके भयसे गुणाभिमानी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्मादि देवता भी इस विश्वके सर्गमें बार-बार प्रवृत्त होते हैं, जिनके वशमें यह चराचर विश्व रहता है, वह काल है। चूँकि वह पितासे पुत्रकी सृष्टि करता है इसलिए वह आदिकृत

नन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

है तथा मृत्युसे अन्तकको भी मारता है, इसलिए वह अन्तकर है, फिर भी वह स्वयं अनादि, अनन्त और अव्यय है ॥ ४०–४५ ॥

उनतीसवें अध्यायका सार—देवहूतिने कहा—हे प्रभो, सांख्यशास्त्रोक्तप्रकृतिपुरुष आदिका लक्षण आपने बताया। अब भक्ति योगका वर्णन कीजिए। जीवोंकी अनेक गतियोंका भी वर्णन कीजिए, जिससे उनमें वैराग्य और कालका भी स्वरूप कहिए। मिथ्याभिमानी चिरकालसे अज्ञानमें पड़े लोगोंके लिए आप प्रकाशदायक सूर्य हैं। श्रीभगवान‍ने कहा—भक्ति करनेवाले लोगोंके स्वभावके अनुसार भक्ति अनेक प्रकारकी है हिंसाकी इच्छासे जो मत्सरी क्रोधी मनुष्य मेरी उपासना करता है, वह तामस है भोग ऐश्वर्य इत्यादि प्राप्तिके लिए जो भेददर्शी प्रतिमामें मेरा पूजन करता है वह राजस और कर्तव्य समझकर परमात्मार्पण करके या पापक्षयार्थ जो भेददृष्टिसे मेरी प्रतिमादिकोंमें पूजा करता है वह सात्विक है। सर्वभूत निवासी मुझमें गुणश्रवणमात्रसे जो निरन्तर मन लगाता है वह भक्ति निर्गुण है, मेरे फलेच्छारहित आत्यन्तिक भक्त मुक्ति भी नहीं चाहते। सभी भूतोंमें मैं हूँ, ऐसा समझकर किसीसे द्वेष या किसीका अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह मेरा ही अपमान है। प्रतिमापूजा तो उसके लिए है, जो सर्वभूतान्तर्यामी मुझे अपने हृदयमें नहीं देखता। सभी जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं उनमें भी ब्राह्मण, उनमें भी मुझे सब कुछ अर्पण करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ कोई नहीं है। कर्मके कारण जो जीवकी अनेक योनियाँ है वह भगवान्‌का प्रधान-पुरुषात्मकरूप है, उनको काल कहते हैं। उसीके डरसे सूर्य चन्द्र वायु इत्यादि अपना अपना काम करते हैं ब्रह्मादि इसीके डरसे सृष्टि करते हैं। यह अनादि सभीका उत्पादक है। यह पितासे पुत्र इस तरहसे भूतोंसे भूतोंको उत्पन्न करता है और मृत्युसे अन्तकको भी नष्ट करदेता है।

❀ अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(संसारी जीवके इसलोकमें प्राप्त होनेवाली यातनाओंका वर्णन)

कपिलने कहा—उस बलवान् कालके शिकार होनेपर भी लोग उसका प्रचण्ड प्रभाव ऐसे नहीं जानते, जैसे कि वायु से उध्वस्त मेघ उसका प्रभाव नहीं जानते ॥ १ ॥

कपिल उवाच ॥ तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ॥ काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥ यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ॥ तं तं धुनोति भगवान्पुमान् शोचति यत्कृते ॥ २ ॥ यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ॥ ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृ-

मनुष्य अतिप्रयाससे जिस जिस वस्तुको सुखके लिए जुटाता है, भगवान काल उसको नष्ट कर देते हैं और मनुष्य उसके लिए शोक करता रहता है ॥ २ ॥ मूर्ख मनुष्य मोहके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारण अनित्य कलत्रादि सहित देहके सम्बन्धी गृह-क्षेत्र-द्रव्य आदिको नित्य मानता है ॥ ३ ॥ जीव इस संसारमें जिस-जिस योनिमें जाता है उसीमें निर्वृति (सुख) लाभ करता है, विरक्त नहीं होता ॥ ४ ॥ नरकमें भी नारकीय आहारादिसे सुख मिलने पर यह जीव उस नारकीय देहको भी देवमायासे मोहित होकर नहीं छोड़ना चाहता ॥ ५ ॥ देह, पत्नी, पुत्र, घर, पशु, द्रव्य और बन्धुओंमें इसके हृदयका मानो मूल गड़ जाता है और उसीमें यह अपनेको कृतार्थ मानता है ॥ ६ ॥ इनके पोषणकी चिन्तासे रातदिन सब शरीर जलन पर भी यह मूर्ख सतत दुष्कर्म ही करता है ॥ ७ ॥ असाध्वी स्त्रियोंकी एकान्त भाषण आदि द्वारा रचित मायासे तथा मधुर-भाषी बच्चोंके भाषणोंसे मन और इन्द्रियोंके आकृष्ट हो जानेके कारण यह गृही पुरुष दुःख-प्रधान कुटिलतापूर्ण गृहस्थधर्मोंमें प्राप्त हुए दुःखोंका बड़े प्रयत्नसे आलस्यरहित होकर प्रतिकार करते हुए अपनेको सुखी-सा समझता है ॥ ८,९ ॥

हृत्क्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥ जन्तुर्वै भव एतस्मिन्यां यां योनिमनुव्रजेत् ॥ तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥ ४ ॥ नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ॥ नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु ॥ निरूढमूलहृदय आत्मानं बहुमन्यते ॥ ६ ॥ सन्दह्यमानसर्वाङ्ग एषामुद्वहनाधिना ॥ करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥ ७ ॥ आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ॥ रहोरचितयालापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ॥ कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥ ९ ॥ अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥ ॥ पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥ १० ॥ वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ॥ लोभाभिभूतो निः सत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥ ११॥ कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः ॥ श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायन् श्वसिति मूढधीः ॥ १२ ॥ एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ॥ नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ १३ ॥ तत्राप्यजातनिर्वेदो भ्रियमाणः स्वयंभृतैः ॥ जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥ आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ॥ आमयाव्यप्रदीप्ता-

भयंकर हिंसासे इधर-उधरसे जुटाये गये द्रव्यसे इनका पोषणकर बचे हुएसे अपना पेट भरते हुए यह अधोगति पाता है ॥ १० ॥ जब जीविकाका साधन लुप्त होजाता है, तो पुनः-पुनः उसको शुरू करता है, फिर अशक्त होकर लोभाभिभूत वह दूसरेके द्रव्यकी इच्छा करता है ॥ ११ ॥ सब उद्योग जब व्यर्थ हो जाते हैं, तब कुटुम्ब-भरणमें असमर्थ होकर यह मन्दभाग्य श्रीहीन होकर दीन हो जाता है केवल मूर्खतासे चिन्ता करते हुए श्वास लेता है ॥ १२ ॥ इसतरह भरणमें असमर्थ मनुष्यका स्त्री-आदि पूर्ववत् आदर नहीं करते, जैसे कि कृपण खेतिहर वृद्ध बैलका ख्याल नहीं करता ॥ १३ ॥ फिर भी उनमें इसको निर्वेद नहीं होता । जिनका इसने पोषण किया, उन्हींसे फिर यह पोषित होता है । जरासे वृद्धावस्थासे इसका रूप विकृत हो जाता है, घरमें नरकके द्वारपर पड़ा रहता है ॥ १४ ॥ जैसे कुत्तेको डालते हैं, वैसे ही अवज्ञासे डाल दिये गये टुकड़ेको खाते हुए रहता है । रोगके कारण इसका अग्नि मन्द हुई रहती है, अल्प इसका आहार हो जाता है ज्यादा हिलडुल भी नहीं सकता ॥ १५ ॥ वातके कारण नेत्रकी तारा बाहर निकल जाती है कफसे नाड़ियाँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रुक जाती है। श्वास और खाँसीसे इसको कष्ट होता, गलेमें घरघर करता है ॥ १६ ॥ सोया हुआ यह शोक कर रहे अपने बंधुओंसे घिरा रहता है, जब कालपाशवश होजाता है। तब बुलानेपर भी नहीं बोलता ॥ १७ ॥ इस तरह कुटुम्बके पोषणमें सदा व्याप्त रहनेवाला अजितेन्द्रिय मनुष्य नष्ट बुद्धि होकर अत्यन्त वेदनासे मरता है और इसके स्त्रीय केवल रोते रहते हैं ॥ १८ ॥ तब भयङ्कर घोरदृष्टिवाले यमदूत आते हैं। उनको देखकर यह मारे डरके मलमूत्र विसर्जन करता है ॥ १९ ॥ वे यमदूत यातनादेहमें इसको ढाककर जबर्दस्ती गलेमें रस्सी बाँधकर जैसे पुलिस अपराधीको ले जाती है, उसी तरह वे लम्बे-रास्तेसे इसको ले जाते हैं ॥ २० ॥ उनके धमकानेसे इसका मानो हृदय फट जाता है, बदन काँपने लगता है। रास्तेमें जब इसको कुत्ते खाने लगते हैं, तो यह अपने पापोंका स्मरण करता है ॥ २१ ॥ भूख-प्याससे यह पीड़ित होता है, गरमरेतीमें सूर्य-दावानल-आंधीसे तप्त होकर

भिरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥ वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ॥ कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥ १६ ॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः ॥ वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ १७ ॥ एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः ॥ म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयाऽस्तधीः ॥ १८ ॥ यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ॥ स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥ १९ ॥ यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ॥ नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राज भटा यथा ॥ २० ॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ॥ पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः सन्तप्यमानः पथि तप्तवालुके ॥ कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥ २२ ॥ तत्र तत्र पतन् श्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ॥ पथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥ २३ ॥ योजनानां सहस्राणिनवतिं नव चाध्वनः ॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥ २४ ॥ आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ॥ आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥ २५ ॥ जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ॥ सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥ कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् ॥ पातनं गिरिशृङ्गेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥ २७ ॥ यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च

आश्रयस्थान और जलहीन रास्तेमें ताकत न होनेपर भी पीठपर जब कोड़े पड़ते हैं, तो अत्यन्तकष्टसे चलता है ॥ २२ ॥ थककर यह जगह-जगहपर मूर्छित होकर गिरता है, फिर उठता है। इस तरह पापमय अन्धकार प्रचुरसे यमसदनमें पहुँचता है ॥ २३ ॥ निन्यानवें हजार योजनका रास्ता दो या तीन मुहूर्तमें तय कराके वहाँ इसको यातनाओंका योग कराया जाता है ॥ २४ ॥ शरीरमें कपड़े वगैरह लपेटकर मशालसे इसको जलाया जाता है। खुद या दूसरेसे काटे गये अपना ही मांस खिलाया जाता है ॥ २५ ॥ यमसदनमें जिन्दे ही इसके शरीरकी अँतड़ियाँ कुत्ते और गीध नोचके निकालते हैं। साँप-विच्छुओंके दंशसे देह पीड़ाका वह अनुभव करता है ॥ २६ ॥ अवयव तोड़े जाते हैं, हाथीसे चिरवाया जाता है, पहाड़ोंपरसे गिराया जाता है, पानीमें या गड्ढेमें बन्द रखा जाता है। २७ ॥ पुरुष हो या स्त्री हो, परस्परके संगसे निर्मित तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव यातनाएँ भोगते हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २८ ॥ हे माँ, यहीं पर स्वर्ग नरक भी है, ऐसा कहते हैं, क्योंकि जो नारकीय यातनाएँ हैं, वे यहांपर भी देखी जाती हैं ॥ २९ ॥ केवल कुटुम्बका पोषण करनेवाला या अपना पेटभर पालनेवाला इस शरीरको और कुटुम्बको यहीं छोड़कर मरनेके बाद यह जीव उसकी इस तरहका फल भोगता है ॥ ३० ॥ देहको यहीं छोड़कर यह अकेले भूतद्रोह करके

यातनाः ॥ भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥ २८ ॥ अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ॥ या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥ २९ ॥ एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदर भर एव वा ॥ विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥ ३० ॥ एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम् ॥ कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद् भृतम् ॥ ३१ ॥ दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ॥ भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हतवित्त इवातुरः ॥ ३२ ॥ केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ॥ याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥ ३३ ॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ॥ क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भा० महा० तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने कर्मविपाको नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जिस पापका संचय किये रहता है उसको भोगता है ॥ ३१ ॥ उस कुटुम्बपोषण करनेका पाप वह पुरुष ईश्वरप्रेरणासे नरकमें ऐसे भोगता है, जैसे कि द्रव्यनष्ट हो जानेसे आतुर हुआ प्राणी दुःख भोगता है ॥ ३२ ॥ केवल अधर्मसे ही कुटुम्बभरण करनेवाला जीव नरका अन्तिम स्थान अन्धतामिस्र को जाता है ॥ ३३ ॥ नरदेहप्राप्तिके पूर्व जितनी यातनाएँ और हीन योनियाँ हैं उनको भोगकर पापक्षयके बाद शुद्ध होकर फिर मनुष्य होता है ॥ ३४ ॥

तीसवें अध्यायका सार—कपिलमुनिने कहा—लोग कालके शिकार होनेपर भी उसका प्रभाव नहीं जानते। मनुष्य परिश्रमसे अनेक वस्तु सुखके लिए जुटाता है, लेकिन काल उसका ध्वंस करदेता और यह शोककर बैठ जाता है। मनुष्य देहसम्बन्धी पशु-पुत्रादिको नित्य मानता है। जीव जिस योनिमें जाता है, उसीमें सुख मानता है, यहांतक कि नारकीय शरीर भी छोड़नेको तैयार नहीं होता। स्त्री-पुत्रादिके पोषणके लिए रात-दिन चिंताकर उसके लिए दुष्कर्म करता है। स्त्रियोंकी मायामें फँसकर दुःखोंसे झगड़ते हुए उसीमें सुख मानता है। हिंसासे द्रव्य जुटाते हुए उससे पोष्योंका पोषणकर अपने खाते हुए अधोगति पाता हैं। जब जीविका-साधन नष्ट होता है और वह अशक्त बनजाता है तब दूसरेके द्रव्यकी आशा करता है। तब असमर्थ इसकी कोई नहीं पर्वा करता। कुत्तेके समान डाला हुआ टुकड़ा खाकर पड़ा रहता है। वृद्धताके कारण सब रोग इसको घेर लेते हैं, रूपविकृत होजाता है, कुछ कर नहीं सकता। तब मरण समीप आनेपर सुहृद् लोग इसको घेरलेते हैं, रोते हैं, इससे बोलते हैं लेकिन यह बोल नहीं सकता और वेदनासे मरजाता है। फिर भयङ्कर यमदूत इसको यातनादेह देकर जबरदस्ती बांधकर घसीटते ले जाते हैं रास्तेमें इसको कुत्ते नोच खाते हैं, भूख प्याससे व्याकुल होता हुआ जब यह गरम रेतीमें चल नहीं सकता, तब इसकी पीठपर कोड़े पड़ते हैं, मुश्किलसे चलता है। इस तरह कष्ट भोगते हुये यमसदनको जाता है। वहां फिर अनेक यातनाओंसे इसको पीड़ा दी जाती

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। खुदका मांसकाटकर खिलाया जाता है जिन्हे ही कुत्ते आदि अँतड़ियाँ नोचते हैं। इस प्रकार अन्धतामिस्र रौरव आदि नरकोंमें यातना भोगता है। स्वर्ग-नरक यहाँपर भी है क्योंकि नरकीय यातनाएँ यहाँपर भी देखी जाती हैं।' केवल कुटुम्ब या खुदका पोषण करनेवाला मरनेके बाद अकेले ही पापोंका फल भोगता है। फिर जितनी यातनाएँ और नीचयोनियाँ हैं उनको भोगकर पापक्षय होनेसे फिर मनुष्य शरीर पाता है।

❀ अथ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

[जीवके गर्भवासका वर्णन]

श्रीभगवान्ने कहा—दैवप्रवर्तककर्मसे देह पानेके लिए जीव पुरुषके रेतः कणद्वारा स्त्रीके शरीरमें प्रवेश करता है ॥ १ ॥ एक रातमें शुक्रशोणित मिश्रित होता है। पांच रातोंमें वर्तुलाकार होता है। दस दिनमें बेरके इतना बड़ा और कड़ा होता है, उसके बाद योनियोंके भीतर मांस पिण्डाकार या अण्डाकार होता है ॥ २ ॥ एक महीनेमें सिर और दो महीनोंमें हाथ पैर आदि अवयवोंका विभाग होता। तीसरे महीनेमें नख लोम-अस्थि-चर्म, लिङ्ग और छिद्र होते हैं ॥ ३ ॥ चौथे महीनेमें सात धातुओंका और पाँचवें महीनेमें

श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये ॥ स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ १ ॥ कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ॥ दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥ २ ॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः ॥ नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ३ ॥ चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभि क्षुत्तृडुद्भवः ॥ षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥ ४ ॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते ॥ शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसंभवे ॥ ५ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ॥ मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः । ६ ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ॥ मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ॥ ७ ॥ उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ ८ । अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ॥ तत्र

भूख-प्यासका उद्भव होता है, छठेमें जरायुकी झील्लीमें लपेटा जाता है और दाहिने कोखमें घूमने लगता है। फिर माताके खाये-पीये अन्न पानीसे धातुको वृद्धि होते हुए अनेक जन्तु जहाँ रहते हें ऐसे विष्टा-मूत्रोंके गन्दे गर्तमें शयन करता है ॥ ५ ॥ उस समय शरीरके अत्यन्त कोमल होनेके कारण सम्पूर्ण शरीरको प्रतिक्षण वहाँके अनेक क्षुधितकृमि सब क्षत-विक्षत करते हैं और पीड़ासे बार-बार वह मूर्छित होता है ॥ ६ ॥ कड़वी, तीत, गरम, नमकीन, रुक्ष, और खट्टी मातासे खाई गई चीजोंके कारण इसके सर्वाङ्गमें वेदना होती है ॥ ७ ॥ जरायु-झिल्लीसे लपेटा तो रहता ही है बाहरसे अँतड़ियोंका आवरण रहता है। पीठ और मुड़ी टेढ़ी रहती है और शिर पेटमें घुसा रहता है ॥ ८ ॥ पिंजड़ेके पक्षीके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समान अपने शरीरको घुमानेमें भी असमर्थ रहता है। वहाँ कभी-कभी दैवात् सैकड़ों जन्मों का स्मरण हो आता है और तब वह दीर्घनिश्वास छोड़ने लगता है। वहाँ उसको सुख कहाँ मिलता है ॥ ९ ॥ सातवें माससे इसे ज्ञान आजानेपर भी प्रसूतिवायुसे ऐसे काँपते रहता है जैसे कि उसी उदरमें रहनेवाले अन्यकृमि, यह एक जगह कहीं नहीं रहने पाता ॥ १० ॥ देहात्मदर्शी यह प्राणी सातवें माससे बन्धनभूत सप्त धातुओंसे युक्त हो मारे गर्भवासके डरके, जिसने इसे गर्भमें डाला है उस भगवान्‌को हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है—व्याकुल वाणीसे भगवान्‌का स्तवन करता है ॥ ११ ॥ वह जन्तु कहता है—जिस पापी मुझे इस तरहकी योग्यगति दी है उस जगद्रक्षणके लिए नाना अवतार धारण करनेवाले भगवान्‌के भयरहित चलनेवाले, चरणारविन्दकी मैं शरणमें जाता हूँ ॥ १२ ॥ यहीं माताकी देहमें भूत, इन्द्रिय और मनोमय मायाका आश्रयणकर कर्मोंसे आवृत होकर बद्ध होकर

लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥ स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥ ९ ॥ आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धोऽपि वेपितः ॥ नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥१०॥ नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः ॥ स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥११॥ जन्तुरुवाच ॥ तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ॥ सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्य सतोऽनुरूपा ॥ १२ ॥ यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ॥ आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोधमातप्य-मानहृदयेऽवसितं नमामि ॥ १३ ॥ यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरे छन्नोऽयथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ॥ तेनाविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥ १४ ॥ यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन्सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ॥ नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥ १५ ॥ ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ॥ तं जीवकर्मपदवीमनुवर्त-मानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥ १६ ॥ देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ॥ इच्छन्नितो विवसितुं गण-यन्स्वमासान्निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन्कदा नु ॥ १७ ॥ येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश सङ्ग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन । स्वेनैव

जो रह रहा है वह मैं विशुद्ध, अखण्ड ज्ञानरूप, सप्तहृदयमें रहनेपर भी अविकारी भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥ वास्तविक शरीररहित होनेपर भी इस पंचमहाभूतात्मक रचित शरीरमें मिथ्याभूत, इन्द्रिय-गुण-अर्थ-चिदाभासात्मक मैं शरीरसे जिसकी महिमा कुंठित नहीं होती, सर्वज्ञ प्रकृति पुरुषके नियन्ता इस परमपुरुष भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ जिसकी मायाके कारण गुणनिमित्तक गुरुतर कर्मरूपी बंधनयुक्त इस संसार-मार्गमें घूमते हुए अतिश्रयसे स्मृतिहीन हो जाता है उस महान् ईश्वरके अनुग्रहके विना भला किसयुक्तिसे यह जीव फिर अपने ज्ञानरूप स्वरूपको पा सकता है ॥ १५ ॥ स्थावर-जंगम सबमें अन्तर्यामीरूपसे जिसका अंश है ऐसे भगवान्‌के सिवा भला कौन दूसरा मुझे, यह जो तीनों कालका ज्ञान है, दे सकता है। जीवरूपकर्मपथके पथिक हमलोग तापत्रयकी शान्तिके लिए उसीका भजन करें ॥ १६ ॥ भगवन्, दूसरेके शरीरमें विष्ठा-मूत्रके कूपमें पड़े हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जठराग्निसे जलरहो देहवाले, यहांसे निकलनेकी इच्छासे महीने गिन रहे इस दीनको आप भला कब बाहर करेंगे ॥ १७ ॥ हे ईश, इस दसवें मासमें यह ज्ञान आपका दिया हुआ है। आप निरुपम हैं, दयासागर हैं। हे दीनानाथ, आप अपने उपकारसे ही सन्तुष्ट रहें, सिवा नमस्कार करनेके कौन पुरुष आपका प्रत्युपकार करसकता है ॥ १८ ॥ जिसको पश्वादि शरीर मिले हैं ऐसा सप्तावरणयुक्त यह जीव अपने शरीरमें केवल सुख-दुःखही देख सकता है, किन्तु जिसकी कृपासे प्राप्त विवेक ज्ञानसे मेरा शरीर शम-दमादि योग्य बना है, उस पुराण पुरुषको मैं बाहर और हृदयमें प्रत्यक्ष मूर्तिके समान या यों कहिए कि प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहे अहङ्कारके आस्पद भोक्ताके समान देखता हूँ ॥ १९ ॥ हे प्रभो, अत्यन्त दुःखमय इस गर्भवासमें रहने पर भी मैं इस गर्भसे अन्धकूपप्राय बाह्य जगत्में नहीं जाना चाहता, क्योंकि यहाँसे गये हुए सबको वहाँ आपकी माया व्याप्तकर लेती है और उसके

तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनाऽञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥ १८ ॥ पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्य-परः स्वदेहे ॥ यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम् ॥ १९ ॥ सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ॥ यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत ॥ २० ॥ तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ॥ भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २१ ॥ कपिल उवाच ॥ एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥ सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २२ ॥ तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्शिर आतुरः ॥ विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २३ ॥ पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥ रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २४ ॥ परच्छन्दं नविदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥ अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातु मनीश्वरः ॥ २५ ॥ शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते ॥ नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥ २६ ॥ तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥ रुदन्तं विगतज्ञानं क्रिमयः

पीछे देहमें मिथ्या अहङ्कारबुद्धि और उसके पीछे संसारचक्र झट आजाता है ॥ २० ॥ अतः भगवान्‌के चरणकमलोंका आश्रयणकर यहां रहनेपर भी मैं व्याकुल न होकर सुहृदके समान बुद्धिसे आत्माका संसारसे उद्धार करूँगा, जिससे कि नानागर्भवासरूप यह दुःख फिरसे नहीं होगा ॥ २१ ॥ कपिलजीने कहा—इस तरह गर्भमें दस मासका वह जीव जब तक विचार करते रहता है, तबतक नीचेकी ओर मुख किये हुए उस जीवको प्रसूति वायु तत्क्षण ही ढकेल देती है ॥ २२ ॥ उसके नीचे ढकेल देनेपर यह श्वास बन्द होजानेके कारण बड़े कष्टसे संज्ञाशून्य होकर नीचे सिर करके बाहर गिरजाता है ॥ २३ ॥ भूमिपर मूत्र-रक्तमें गिरा यह विष्ठाके कृमिके समान चेष्टा करता है। इस विपरित गतिको प्राप्त होकर ज्ञान नष्ट हो जानेसे रोता है ॥ २४ ॥ इसका अभिप्राय न जाननेवाले लोगोंसे यह उसके बाद पोषित होता है। लोग इसको जिसकी इच्छा नहीं रहती वह देते हैं, लेकिन वह प्रतीकार नहीं कर सकता ॥ अपवित्र गन्धयुक्त खटियापर स्वेदज कीड़े जिसमें रहते हैं ऐसी शय्यापर इसे सुलाते हैं। यह अपना बदन नहीं खुजला सकता या उठ-बैठ भी नहीं सकता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

।। २६ ।। गर्भमें उत्पन्न हुआ इसका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है। यह रोते रहता है कोमल चमड़ेवाले इसको मच्छड़ आदि काटते हैं, जैसे एक छोटे कृमिको बड़े कृमि काटते हैं ।। २७ ।। इस तरह शैशवको पाकर दुःखदायक पौगण्डावस्थाको भोगता है। जो यह चाहता है वह नहीं मिलता, तब अज्ञानके कारण वह क्रुद्ध होता है, आखिरमें शोक करता है ।। २८ ।। देहके साथही बढ़े हुए अभिमान और क्रोधके कारण यह कामी आत्मानाशके लिए इसी तरहके कामियोंसे झगड़ा मोल लेता है ।। २६ ।। पांचभूतोंसे निर्मित इस देहमें असद् आग्रह रखनेवाला अज्ञानी मूर्ख यह जीव 'मैं' और मेरा' यह बराबर मिथ्या अभिमान करता है ।। ३० ।। उसी देहके लिए कर्म करता है, जिससे फिर बद्धहोकर संसारमें पड़ता है और बार-बार अविद्या और कर्मसे बद्धहोकर क्लेशकारक देह पाते रहता है ।। ३१ ।। यदि शिश्नोदरपरायण असज्जनोंकी संगतिसे उन्हींके रास्तेपर चलता, है, तो यह जन्तु पहलेके समान ही यातना देहमें प्रवेशकर दुःखपरम्पराका अनुभव करता है ।। ३२ ।। जिनके संगसे सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, श्री, लज्जा, यश, क्षमा, दम और उन्नति

क्रिमिकं यथा ।। २७ ।। इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च ।। अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्यः शुचर्पितः ।। २८ ।। सहदेहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ।। करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ।। २६ ।। भूतैः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ।। अहंममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ।। ३० ।। तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ।। योऽनुयाति ददत्क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ।।३१।। यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ।। आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ।। ३२ ।। सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ।। शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम् ।। ३३ ।। तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु ।। सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ।। ३४ ।। न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।। योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ।। ३५ ।। प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ।। रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ।।३६।। तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु को न्वखण्डितधीः पुमान् ।। ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया ।। ३७ ।। बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ।। या करोति पदाक्रान्तान्भ्रूविजृम्भेण केवलम् ।।३८।। सङ्गं न

नष्ट होजाती है ऐसे अशान्त मूर्ख, देहमें आत्मबुद्धि रखनेवाले, शोचनीय और स्त्रियोंके खिलौने दुष्ट लोगोंका कभी संग नहीं करना चाहिए ।। ३३, ३४ ।। दूसरे किसीके भी संगसे इसको वैसा मोह या बन्धन नहीं हो सकता, जैसा कि स्त्रियोंके या स्त्रैणोंके संगसे होता है ।। ३५ ।। साक्षात् ब्रह्मा भी अपनी पुत्रीके रूपसे मुग्ध होकर मृगीरूप धारण करनेवाली उसके पीछे वैसा ही—मृगका रूप लेकर निर्लज्ज होकर दौड़े ।। ३६ ।। ब्रह्माकी जो मरीचि, कश्यप, मनुष्यादि सन्ततिपरम्परा है उसमें भगवान् नारायणको छोड़कर कौन ऐसा पुरुष है, जो स्त्रीकी मायासे आकृष्टमन नहीं होता ।। ३७ ।। मेरी स्त्रीरूपी मायाका प्रभाव तो देखो, वह केवल अपनी एकमात्र विलाससे ही दिग्विजयी शूरोंको भी पादाक्रान्त करती है, ।। ३८ ।। जो योगके परम पार जाना चाहता है, उसको स्त्रियोंका संग कभी नहीं करना चाहिए। मेरी सेवासे जिन्होंने आत्मस्वरूपका लाभ किया है इसके लिए योगी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोग स्त्रीको संसारका द्वार कहते हैं ॥ ३९ ॥ देवनिर्मित यह स्त्रीरूपी माया शुश्रूषादि निमित्तसे धीरेसे पास आती है। घाससे ढके कूपके समान इस मायाको अपनी मृत्युरूप देखना चाहिए ॥ ४० ॥ पूर्वजन्ममें अन्तकालमें स्त्रीके ध्यानसे मनुष्य स्त्रीजन्म पाया है। उसमें जिसको यह पैसा, पुत्र और घर देनेवालो पति समझती है वह पुरुषके समान आचरण करनेवाली माया है ॥ ४१ ॥ उसको पति-पुत्र-गृहरूप दैवसे प्राप्त अपनी मृत्यु ही समझनी चाहिए, जैसे कि व्याधका गायन हरिणको मृत्युरूप होता है ॥ ४२ ॥ जीवकी उपाधिरूप देहसे एकलोकसे दूसरे लोकमें जाते हुए भोग भोगते हुए जीव फिर निरन्तर कर्म करते हैं ॥ ४३ ॥ आत्माकी अनुवर्ती जीवोपाधि लिंग देह और भूत-इन्द्रिय-मनोमय भोगकी देह-इन दोनोंकी कार्य करनेकी जो अयोग्यता है वह जीवका मरण कहलाता है तथा इनका जो अविर्भाव है वह जन्म कहलाता है ॥ ४४ ॥ द्रव्योपलब्धिका जो स्थान है वह जब रूपादि

कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ॥ मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य ॥३९॥ योपयाति शनैर्माया योषिद्देव-विनिर्मिता ॥ तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥ ४० ॥ यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम् ॥ स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्गतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥ ४१ ॥ तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम् ॥ दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥ ४२ ॥ देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन् ॥ भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ ४३ ॥ जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ॥ तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु संभवः ॥ ४४ ॥ द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा ॥ तत्पञ्चत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ ४५ ॥ यथाक्ष्णो-र्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा ॥ तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः ॥ ४६ ॥ तस्मान्न कार्यः सन्त्रासो न कार्पण्यं न संभ्रमः ॥ बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसङ्गश्चरेदिह ॥ ४७ ॥ सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया ॥ मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने जीवगतिर्नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

दर्शनमें अयोग्य होजाता है, तभी चक्षुरिन्द्रिय भी उसमें असमर्थ होजाती है और उन दोनोंमें जब अयोग्यता आ जाती है तभी जीवकी भी द्रष्टृत्वा योग्यता होजाती है। इसी तरह स्थूल देहके विकल होनेसे लिंगदेह भी असमर्थ हो जाती है, वही जीवका मरण है ॥ ४५ ॥ चूँकि जीवका वस्तुतः जन्म और मरण नहीं होता इसलिए मनुष्यको न तो जन्ममरणसे भय करना चाहिए, न जीवनमें दैन्य लाना चाहिए और न जीवनके लिए संयम ही करना चाहिए। धीर पुरुषको चहिए कि यह जीवकी गति जानकर संगरहित होकर इस संसार में विचरण किया करे ॥ ४६ ॥ ज्ञान-वैराग्ययुक्त यथार्थ दर्शनबुद्धिसे इस मायामय लोकमें देहकी आसक्ति छोड़कर सर्वत्र विचरता फिरे ॥ ४७ ॥

इकतीसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा—कर्मसे देह पानेके लिए जीव पुरुषके रेतकण द्वारा स्त्रीके गर्भमें जाता है। एक रातमें शुक्र और शोणित मिश्र होता है। पाँच रातोंमें वर्तुलाकार होता है। दश दिनमें बेरके समान होता है। अनन्तर पिण्ड या अण्डके आकारको पाता है। एक ही महीनेमें सिर होता है, दो महीनेमें हस्त पादाद्यवयव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विभाग होता है तीसरे महीनेमें नख, लोम और लिङ्ग-छिद्र इत्यादि होते हैं। चौथेमें सात धातु होते हैं। पाँचवेंमें भूख-प्यास लगती है। छठेंमें जरायुके झिल्लोंसे लपेटा जाता है और माताके दाहिने कोखमें घूमता है। फिर माताके खाये गये अन्न-जलसे बढ़ते हुए अनेक जन्तुओंके साथ यह भी उस विष्ठामूत्रके गर्तमें रहता है। वे जन्तु जब डसते हैं, तो कोमल होनेके कारण इसको पीड़ा होती है। उससे बारम्बार मूर्छित होता है ॥ माता जो खट्टा-तीता खाती है उसके कारण इसका शरीर जलता है। उस झिल्लीके और ऊपरसे अंतड़ियोंके आवरणसे यह बँधा रहता है। पीठ और गर्दन टेढ़ी तथा सिर पेटमें घुसा हुआ रहता है। वहाँ कभी इसको सैकड़ों जन्मोंका स्मरण आता है, तब दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए दुःख भोगता है। सातवें महीनेमें इसको ज्ञान हो आता है, लेकिन प्रसूति वातसे कांपते रहता है। तब व्याकुल वाणीसे भगवान्‌की नानाविध प्रार्थना करता है। जब वह गर्भमें विचार करते ही रहता है कि दसवें मासमें प्रसूतिवायु उसको नीचे ढकेलती है। उसके कारण बड़े कष्टसे यह नीचे सिर करके बाहर आता है। बाहर आनेपर उसका वह ज्ञान नष्ट होता है। फिर यह क्या चाहता है यह लोग नहीं समझते। इसका ज्यों-ज्यों शरीर बढ़ता है क्रोध और अभिमान भी साथमें बढ़ते हैं। देहमें ममत्वाभिमानसे उसके लिए कर्म करता है और फिर बद्ध होकर संसारमें पड़ता है तथा क्लेशकारक देह पाता है। स्त्री और स्त्रैणोंका संग नहीं करना चाहिए। इनसे सत्य, शौच, दया, लज्जा, ज्ञान दम इत्यादि सब गुण नष्ट हो जाते हैं। जीवनके लिए दैन्य तथा अधिक चिन्ताग्रस्त नहीं होना चाहिए वस्तुतः जीवन और मरण कोई चीज नहीं है। तत्त्वज्ञान तथा वैराग्यसे मायामय लोकमें देहाशक्ति छोड़कर विचरण करते रहना चाहिए।

❋ अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ❋

(कर्ममार्गियोंकी गति तथा ब्रह्मतत्वज्ञानका उपसंहार)

कपिलजीने कहा—जो गृहस्थाश्रममें रहकर आश्रमधर्मोंका अनुष्ठान कर उनसे काम और अर्थका साधन करता है तथा फिर अनुष्ठानसे धर्मको पूर्ण करता है वह भी

कपिल उवाच ॥ अथ यो गृहमेधीयान्धर्मानेवावसन् गृहे ॥ काममर्थं च धर्मान् स्वान्दोग्धि भूयः पिपर्ति तान् ॥ १ ॥ स चापि भगवद्ध-
र्मात्काममूढः पराङ्मुखः ॥ यजते क्रतुभिर्देवान्पितॄंश्च श्रद्धयान्वितः ॥ २ ॥ तच्छ्रद्धयाऽऽक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ॥ गत्वा चान्द्रमसं
लोकं सोमपाः पुनरेष्यति ॥ ३ ॥ यदा चाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनन्तासनो हरिः ॥ तदा लोका लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥ ये

भगवान्‌के धर्म पराङ्मुख, कामसे मुग्ध, श्रद्धासे युक्त होकर देवता और पितरोंका यज्ञों द्वारा पूजन करता है। उन्हींपर श्रद्धा युक्त बुद्धिवाला होनेके कारण सोमपान करनेवाला वह उन अनुष्ठानोंसे चन्द्रलोकमें जाकर फिर वापस आता है ॥ १, २, ३ ॥ गृहमेदी लोगोंके वे लोक जब अनन्तासन भगवान् विष्णु शेषशय्यापर सोते हैं तब लय हो जाते हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ४ ॥ जो लोग काम तथा अर्थके लिए स्वधर्माचरण नहीं करते ऐसे धीर, आसक्ति रहित, ईश्वरार्पण बुद्धिसे कर्म करने वाले, शान्त, शुद्धचित्त, निवृत्ति धर्मपरायण, ममत्व और अहंकारसे रहित लोग स्वधर्म नामक सत्त्वसे शुद्धचित्त होकर सूर्यमार्गसे परिपूर्ण पुरुषके पास पहुँचते हैं। वह पुरुष कार्यकारणात्मक विश्वका स्वामी एवं उपादान कारण तथा निमित्त कारण है—वही इस विश्वकी उत्पत्ति और लय करनेवाला है ॥ ५–७ ॥ ये लोग दो परार्धके बाद जब ब्रह्माका प्रलय होता है तबतक ब्रह्मलोकमें हिरण्यगर्भ ब्रह्माकी परमेश्वर दृष्टिसे उपासना करते हुए विद्यमान रहते हैं ॥ ८ ॥ द्विपरार्धात्मिककालका उपयोगकर पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश तथा मन-इन्द्रिय-शब्दाद्यर्थ-अहंकारादिसे युक्त विश्वका परमोत्कृष्ट ब्रह्माजी जब संहार करना चाहते हैं और ईश्वरमें प्रवेश करते हैं तभी उनके साथ श्वास तथा मनको जीतकर जो वीतराग योगी दूर जाकर उनके लोक में रहते हैं, वे भी

स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे ॥ निःसङ्गा न्यस्तकर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः ॥५॥ निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहङ्कृताः ॥ स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥६॥ सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् ॥ परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥ ७ ॥ द्विपरार्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ॥ तावदध्यासते लोकं परस्य परचिन्तकाः ॥ ८ ॥ क्ष्माम्भोनलानिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूतादिभिः परिवृतं प्रतिसञ्जिहीर्षुः ॥ अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयंभूः ॥ ९ ॥ एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ॥ तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥१०॥ अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ॥ श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥ आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ॥ योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥१२॥ भेददृष्ट्याऽभिमानेन निःसङ्गेनापि कर्मणा ॥ कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥ १४ ॥ ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च ते पि धर्मविनिर्मितम् ॥ निषेव्य पुनरायान्ति गुणव्यतिकरे सति ॥ १५ ॥ ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयान्विताः ॥ कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥१६॥ रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः ॥

परमानन्दरूप अनादि प्रधान पुरुष परब्रह्मके पास जाते हैं। उसके पूर्व उनका अभिमान गया नहीं रहता है ॥ ९, १० ॥ अतः हे भामिनि, सभी भूतोंके हृदयकमलमें रहनेवाले भगवान्‌के गुणोंका श्रवणकर उन्हींकी शरण जाओ ॥ ११ ॥ स्थावर तथा जंगम सभी भूतोंमें आद्य जो वेदगर्भ ब्रह्मदेव हैं वह भी 'परमेश्वरसे भिन्न हिरण्यगर्भ मैं ही सब कुछ करनेवाला हूँ' ऐसा समझकर योग प्रवर्तक योगेश्वर सनत्कुमार आदि सिद्धों तथा मरीचि आदि ऋषियोंके साथ निष्कर्म कर्म करनेसे पहले पारमेष्ठ्य ऐश्वर्यका भोगकर पीछे प्रलयमें गुणोंके अधिष्ठाता प्रथमावताररूप पुरुष श्रेष्ठ पुरुषमें लीन होकर फिर ईश्वरमूर्ति कालसे गुणोंमें क्षोभ होनेपर पूर्ववत् अपने अधिकारपर आजाते हैं। वे प्रमुख ऋषिलोग भी अपने धर्मनिर्मित ऐश्वर्यका भोगकर पुरुषमें लीन होकर गुणोंमें क्षोभ होनेपर पुनः अपने स्थानपर पूर्ववत् आजाते हैं ॥ १२–१५ ॥ जो पुरुष यहाँ कर्मोंमें आसक्त हैं वे श्रद्धायुक्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होकर काम्य और नित्य कर्मोंको पूर्णरीतिसे करते हैं ॥ १६ ॥ रजोगुणसे जिनका मन अधिभूत होगया है ऐसे जो अजितेन्द्रिय कामात्मा लोग हैं वे यहाँ गृहस्थधर्ममें श्रद्धायुक्त होकर नित्य ही पितरोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥ वे त्रिवर्गमें आसक्त लोग वर्णनीय जिसका पराक्रम है ऐसे मधुदैत्य संहारकर्ता पापनाशक भगवान्‌की कथासे पराङ्मुख रहते हैं। ॥ १८ ॥ सचमुच उनकी बुद्धि दैवसे मारी गई है, जो भगवान्‌के कथामृतको छोड़कर गन्दी कथाएँ सुनते हैं, जैसे कि ग्राम्य सूकर विष्ठा भक्षण करता है ॥ १९ ॥ वे दक्षिण मार्गसे अर्यमाके पितृलोकमें जाते हैं और गर्भाधानादिसे लेकर श्मशानान्त क्रिया करने वाले ये लोग अपने पुत्रादिकोंमें फिर उत्पन्न होते हैं पितृलोकमें जब इनका पुण्य भोगसे क्षीण हो जाता है तब हे सति, देवता लोग इनके योगसाधन नष्ट कर डालते हैं और ये विवश होकर फिर इस लोकमें शीघ्रही गिरते हैं ॥ २०, २१ ॥ इस लिए तुम भजनीय जिनका चरण

पितॄन्यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥ १७ ॥ त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः ॥ कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥१८॥ नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ॥ हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥ १९ ॥ दक्षिणेन पथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते ॥ प्रजामनु प्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥ २० ॥ ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमंसति ॥ पतन्ति विवशा देवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः॥२१॥ तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ॥ तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम् ॥ २२ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः। जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ २३ ॥ यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ॥ न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥२४॥ स तदैवात्मनात्मानं निःसङ्गं समदर्शनम् ॥ हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥२५॥ ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ॥ दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥ २६ ॥ एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः ॥ युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः ॥ २७ ॥ ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ॥ अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा ॥ २८ ॥ यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पञ्चविधः स्वराट् ॥ एकादशविधस्तस्य

कमल है ऐसे भगवान् परमेश्वरकी उनके गुणोंके श्रवणसे उत्पन्न भक्तिसे गाढ़ प्रेम पूर्वक उपासना करो ॥ २२ ॥ वासुदेव भगवान्‌में जो भक्ति करता है उसको वैराग्य और ब्रह्मविषयक ज्ञान होता है ॥ २३ ॥ जब भक्तयोगीका चित्त भगवद्गुणानुरागसे उसीमें निश्चल होजाता है, तब यह इन्द्रियोंसे सभी अर्थोंमें विषमता नहीं देखता, किसीको न तो प्रिय समझता है और न अप्रिय ही ॥ २४ ॥ तब वह शुद्ध चित्तमें संगरहित त्याज्य-ग्राह्यभावरहित, स्वप्रकाश आत्माको अपने ही पाता है और मैं परमानन्द हूँ—ऐसे निश्चयपर पहुँचता है ॥ २५ ॥ परब्रह्म ज्ञानरूप है, वही परमात्मापुरुष या ईश्वर कहलाता है। वह भगवान् एक होनेपर भी द्रष्टा इत्यादि अनेक रूपोंसे भासमान होता है ॥ २६ ॥ समग्रयोगसे योगीको यहाँ उसका इष्ट सर्वत्र अनासक्तिरूप जो अर्थ है वह मिलता है। यही उसके योगका फल है ॥ २७ ॥ ज्ञानस्वरूप एकही परब्रह्म पराङ्मुख इन्द्रियोंसे भ्रान्तिके कारण शब्दादिधर्मी आकाशादि अर्थ रूपसे भासमान होता है ॥ २८ ॥ देखो—वही ब्रह्म महत्तत्त्व त्रिविध अहंकार, पंचभूत, एकादशेन्द्रिय और जीवरूप है, उसी जीवका शरीर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अखण्ड तथा जगत् है, जिनसे वह तत्-तत् रूपसे भासमान होता है ॥ २९ ॥ इस ब्रह्मको शुद्धरूपसे श्रद्धा, भक्ति, नित्य योगाभ्यास और विरक्ति—इन उपायोंसे स्थिरचित्त योगी भजेमें देख सकता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ हे पूज्यमातः, वह ब्रह्मविषयकज्ञान मैंने तुमसे कहा, जिससे कि प्रकृति और पुरुषका भी तत्त्वज्ञान होजाता है ॥ ३१ ॥ निर्गुण ज्ञानयोग और मन्निष्ठ भक्तिरूप योग—दोनोंका फल एकही है। वह भगवत्-शब्दसे ज्ञात होता है ॥ ३२ ॥ जिसतरह अनेक गुणयुक्त एकही पदार्थ अनेक इन्द्रियों द्वारा अनेक प्रकारसे ज्ञात होता है (जैसे नेत्रसे शुक्ल, जिह्वासे मधुर इत्यादि)। उसी तरह एकही भगवान् अनेक शास्त्रोंद्वारा अनेकविध ज्ञात होते हैं ॥ ३३ ॥ अनेक कर्मोंसे, यज्ञोंसे, दानोंसे, तपसे, स्वाध्यायसे, तत्त्वविचारसे, मन और इन्द्रियोंकी जयसे, कर्मसंन्याससे, अष्टांगयोगसे, भक्तियोगसे, प्रवृत्तिका और निवृत्तिलक्षणधर्मोंसे, आत्मतत्त्व ज्ञानसे, दृढ़ वैराग्यसे, इन सभीसे सगुण या निर्गुण स्वप्रकाश भगवान् ही को साधक पाता है ॥ ३४–३६ ॥ मैंने तुमको चतुर्विध भक्तियोगका तथा अव्यक्तगति, जन्तुओंके अन्दर दौड़नेवाले कालका स्वरूप बतादिया ॥ ३७ ॥ हे माँ, अविद्याके कारण कर्मोंसे निर्मित जीवकी अनेक योनियाँ हैं, जिनमें प्रवेश करके आत्मा (जीव) अपना स्वरूप नहीं जानता—भूल

वपुरखण्डं जगद्यतः ॥२९ ॥ एतद्वै श्रद्धया भक्त्या योगाभ्यासेन नित्यशः ॥ समाहितात्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपश्यति ॥३०॥ इत्येतत्कथितं गुर्वि ज्ञानं तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ये नानुबध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ॥ द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥३२॥ यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रय ॥ एको नानेयते तद्वद्भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः ॥३३॥ क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपः स्वाध्यायमर्शनैः ॥ आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥३४॥ योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि ॥ धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्ति-निवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ॥ ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक् ॥ ३६ ॥ प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ॥ कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥३७॥ जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥ यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥ ३८ ॥ नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ॥ न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥ ३९ ॥ न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥ नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥४०॥ श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायाऽनसूयवे ॥ भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥ ४१ ॥ बहिर्जातविरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् । निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥ ४२ ॥ य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् । यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कपिलेयोपाख्याने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

जाता है ॥ ३८ ॥ यह जो ज्ञान मैंने तुमसे कहा, इसका उपदेश दुष्ट-अविनीत, दुराचारी, घमण्डी, पाखण्डी, लोभी, घरमें आसक्त, मेरे या मेरे भक्तोंके द्वेषी लोगोंको कभी मत दो ॥ ३९–४० ॥ श्रद्धालु असूयारहित, प्राणियोंका सुहृद, सेवाकरनेवाला, बाह्य जगत्से विरक्त, शान्तचित्त मात्सर्यरहित, शुद्ध मुझे सबसे प्रिय माननेवाला जो मेरा भक्त हो, उसको यह ज्ञान दो ॥ ४१–४२ ॥ हे माँ, जो मनुष्य इस ज्ञानको एकबार भी श्रद्धासे सुनेगा या कहेगा, वह अवश्य मेरे पदको प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बत्तीसवें अध्यायका सार—कपिलजीने कहा—जो गृहस्थाश्रममें रहकर आश्रमधर्मोंका अर्थ और कामके लिए अनुष्ठान करते हैं तथा भगवान्‌से विमुख हो यज्ञोंसे देवता एवं पितरोंका भजन करते हैं, वे लोग चन्द्रलोकमें जाकर फिर वापस आजाते हैं। जो आसक्तिरहित ईश्वरार्पणबुद्धिसे कर्म करनेवाले हैं वे सूर्यमार्गसे भगवान्‌के पास पहुँचते हैं। हिरण्यगर्भको जो परमात्मा समझकर उपासना करते हैं, वे ब्रह्माकी आयुतक लोकमें रहकर विश्वका संहार होनेपर भगवान्‌में प्रवेश करजाते हैं। हे भामिनि, इसलिए तुम भगवान्‌के गुणोंका श्रवणकर उन्हींकी शरण जाओ। जो भगवान्‌की पवित्र कथाको छोड़ अन्य कथाओंमें आसक्त होते हैं उनका यह कार्य वैसा ही है, जैसा ग्राम्य सूकर अच्छी चीजों को छोड़कर विष्ठा खाता है। माँ तुमसे मैंने ब्रह्मज्ञान कहा, इसीमें प्रकृति, और पुरुषका भी तत्त्व आगया। ज्ञानयोग तथा भक्तियोगका अनासक्तिरूप एकही फल है। जैसे एकही पदार्थ अनेक गुणोंके कारण अनेक इन्द्रियोंसे अनेक प्रकारसे ज्ञात होता है, उसी तरह एक ही भगवान् अनेक शास्त्रोंसे अनेक तरहका भाता है। यज्ञ, दान, तप, कर्म, इन्द्रियजय, तत्त्व विचार, सन्न्यासभक्ति इत्यादि उपायोंसे साधक भगवान्‌को ही पाता है। मैंने तुमको भक्तियोग तथा कालका स्वरूप बताया। अविद्याके कारण प्राप्त योनियोंमें आत्मा अपना स्वरूप नहीं जान पाता। माँ, इस ज्ञानको जो एकबार भी श्रद्धासे सुनेगा या सुनायेगा वह मोक्ष पायेगा।

❀ अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

[कपिलका प्रयाण और देवहूतिका योगसाधनसे मोक्ष]

मैत्रेयजीने कहा—कर्दमकी पत्नी माता देवहूतिने कपिलका जब वचन सुना, तब उसका मोहपटल नष्ट हो गया। वह उस समय तुरत साँख्यज्ञानप्रवर्तक कपिलको प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगी ॥ १ ॥ देवहूतिने कहा—भगवन्, आपके नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्मदेव भी आपके जलशायी, भूत-इन्द्रिय-अर्थ आत्ममय, गुणप्रथदयुक्त गभी कार्य कारणके बीजभूत व्यक्तरूपको केवल धारणमात्र कर सके किन्तु देख न सके ॥ २ ॥ वही आप गुणप्रवाहरूपसे अपनी शक्तिको विभक्तकर स्वयं निरीह होनेपर भी जीवोंके ईश्वर

मैत्रेय उवाच ॥ एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ॥ विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥ १ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ॥ गुणप्रवाहं सदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥२॥ स एव विश्वस्य भवान्विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ सर्गाद्यनीहो वितथाभिसन्धिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥ स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ॥ विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥ ४ ॥

होनेके कारण उनके भोगके लिए विश्वकी सृष्टि आदि करते हैं, आप सत्यसंकल्प हैं, आपकी हजारों शक्तियाँ हैं ॥ ३ ॥ हे नाथ, जिसके उदरमें यह ब्रह्माण्ड रहता है, वह आप मेरे उदरमें कैसे रहे ? प्रलयकालमें आप मायासे शिशुरूप लेकर पैरके अँगूठेको चूसते हुए वटपत्रपर सोये रहते हैं ॥ ४ ॥ हे विभो, आप पापियोंके नाशके लिए तथा आज्ञा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पालक भूतोंके कल्याणके लिए अवतार लेते हैं। जैसे आपके वराहादि अवतार हैं वैसा ही यह भी आपका आत्मज्ञान प्रदर्शनके लिए एक अवतार है ॥ ५ ॥ आपके नामश्रवणके बाद कीर्तनसे, प्रह्वणसे या केवल आपका कभी भूलकर स्मरण करनेसे भी श्वपच (चांडाल) भी सोमयागका अधिकारी हो जाता है, फिर आपके दर्शनकी महिमाका मैं क्या वर्णन करूँ ॥ ६ ॥ भगवन्, आश्चर्य है कि आपका नाम अगर जिह्वाग्रहमें है, तो वह श्वपत्र भी इसी कारणसे बड़ा है जिन्होंने आपका नाम ले लिया, वस्तुतः उन्होंनेही तप किया, उन्होंने ही होम किया और उन्होंने ही तीर्थोंमें स्नान किया। सचमुच वे ही सदाचार सम्पन्न हैं और उन्होंने ही यथार्थमें वेदाध्ययन किया है ॥ ७ ॥ इस तरहके परब्रह्म पुरुष, अन्तर्मुख मनमें चिन्तनीय, अपने तेजसे त्रिगुणोंके प्रवाहको नष्टकरनेवाले, वेदगर्भ कपिलरूपी विष्णुके अवतार आपको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—परमपुरुष भगवान् कपिलकी उनकी माताके इस तरह स्तुति करनेपर मातृवत्सल कपिलजी प्रेमविह्वलवाणीसे मातासे बोले ॥ ९ ॥ कपिलजीने कहा—माता, इस मेरे कहे हुए—तुम्हारे लिए सुखसे सेवनीय-मार्गका आश्रयण कर तुम उससे शीघ्रही जीवन्मुक्ति पाजाओगी ॥ १० ॥ मेरे कहे हुए इस मतपर श्रद्धा रखो, जो ब्रह्मवादियोंसे सेवित है। जिससे तुम जन्म रहित मुझे पाओगी।

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये ॥ यथावतारास्तव सूकरादयस्तथाऽयमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ५ ॥ यन्नामधेय-श्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ॥ श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥ अहो बत श्वपोचऽतो गरीयान्यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ॥ तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ ७ ॥ तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ वाचाऽविक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥ ९ ॥ कपिल उवाच ॥ मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ॥ आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥ १० ॥ श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद्ब्रह्मवादिभिः ॥ येन मामभवं याया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रदर्श्य भगवान्सतीं तामात्मनो गतिम् ॥ स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ ॥ १२ ॥ सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ॥ तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्या समाहिता ॥ १३ ॥ अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान्कुटिलालकान् ॥ आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥ १४ ॥ प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् ॥ स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥ पयःफेननिभा शय्या दान्ता रुक्मप-

जो इस तत्त्वको नहीं जानते वे मृत्यु पाते हैं ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस तरह भगवान् कपिल अपनी साध्वी माताको आत्मज्ञानका मार्ग बताकर खुद ब्रह्मवादिनी अपनी माताकी अनुमति लेकर चल दिये ॥ १२ ॥ देवहूति भी सरस्वतीके पुष्पमुकुटतुल्य उस आश्रममें पुत्रके द्वारा कहे गये योगादेशरूपमार्गसे योग युक्त हो समाहित हो गई ॥ १३ ॥ वह तीन बार नहाती थी, अतः उसके कुटिल केश पिंगल और जटिल हो गये थे। वह चीर पहनती थी, उग्र तपसे उसका शरीर कृश हो गया था ॥ १४ ॥ प्रजापति कर्दमका गार्हस्थ्यका ऐश्वर्य तप और योगबलके कारण खूब समृद्ध एवं निरुपम था, विमानचारी देवता भी उसकी स्पृहा करते थे ॥ १५ ॥ उसमें दूधके फेनके समान शुभ्र शय्याएँ थीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सोनेकी कारीगरी जिनमें की गई थी ऐसे हाथीदाँतके पलंग थे। मुलायम गद्दीदार बिछौने एवं सोनेके बने पीठादि वहाँ आसन थे ॥ १६ ॥ मरकत और स्फटिकोंकी दीवालोंपर रत्नदीपधारी रत्नमय पुतलियोंके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे ॥ १७ ॥ घरके उद्यानमें फूलोंसे लदे अनेक पारिजातके वृक्ष थे, पक्षियोंके जोड़े और भँवरे कूजन कर रहे थे ॥ १८ ॥ उस उद्यानमें प्रवेश करनेसे देवताओंके अनुचर देवहूतिकी स्तुति करते थे। छोटे-छोटे-सरोवरोंमें कमल खिले रहते थे। उस ऐश्वर्यको इन्द्रकी स्त्रियाँ भी याद रखती थीं। ऐसे उस कर्दमऋषिके द्वारा उपलालित ऐश्वर्यका देवहूतिने त्यागकर दिया। पुत्रके विरहसे उसका मुख किञ्चित खिन्न हो गया ॥ १९, २० ॥ पति तो चले ही गये थे, फिर पुत्रके भी जानेके बाद वह तत्त्वज्ञ होने पर भी उसके विरहसे दुःखी हुई। वत्सके नष्ट हो जानेसे वत्सल गौके समान उसकी अवस्था हो गई ॥ २१ ॥ उसी अपने पुत्र कपिलरूपी भगवानका ध्यान करती हुई जल्दी ही उस घरके बारेमें वह निस्पृह हो गई ॥ २२ ॥ कपिलने जैसे भगवद्रूपका ध्यान करनेको कहा था, उस प्रसन्नमुख भगवद्रूपका समग्र और अवयवशः वह ध्यान करती थी ॥ २३ ॥

रिच्छदाः ॥ आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥१६॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नप्रदीपा आभान्ति ललना रत्नसंयुताः ॥ १७ ॥ गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यं बह्वमरद्रुमैः। कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥ यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ॥ वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां कर्दमेनोपलालितम् ॥१९॥ हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम् ॥ किञ्चिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥२०॥ वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ॥ ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥२१॥ तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ॥ बभूवाचिरतो वत्स निस्पृहा तादृशे गृहे ॥२२॥ ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ॥ सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया २३॥ भक्तिप्रवाहयोगेन वैराग्येण बलीयसा ॥ युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥२४॥ विशुद्धेन तदात्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ॥ स्वानुभूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥२५॥ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ॥ निवृत्तजीवापत्तित्वात्क्षीणक्लेशाप्तनिर्वृतिः ॥२६॥ नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा ॥ न सस्मार तदात्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥२७॥ तद्देहः परतः पोषोऽप्यकृशश्चाध्यसंभवात् ॥ बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥२८॥ स्वाङ्गं तपोयोगमयं मुक्त-

भक्तिप्रवाहरूपीभोगसे, प्रबल वैराग्यसे, और युक्ताहार विहारादिसे उत्पन्न ब्रह्मज्ञानसे शुद्धचित्तसे वह अपने स्वरूपकाशसे तिरोभूत, मायागुणोंसे परिच्छिन्न, विश्वव्यापी उस परमात्माका ध्यान करती थी ॥ २४, २५ ॥ फिर जीवोंके आश्रय भगवान् ब्रह्ममें उसकी बुद्धि स्थिर हो गई। उसके जीवभावके चले जानेके कारण उसके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके थे। अतः वह निर्वृत्तिको प्राप्त होगई थी। सदा समाधिमें रहनेके कारण उसका गुणभ्रम शान्त हो चुका था वह अपने देहको भूल गई थी, जैसे जागनेपर स्वप्नमें देखे गये पदार्थको मनुष्य भूल जाता है ॥ २६, २७ ॥ कर्दमसृष्ट विद्याधरियाँ उसकी देहका पोषण करती थीं। तो भी कोई दुःख न होनेके कारण उसकी देह कृश नहीं थी। मलमें ढका हुआ उसका शरीर धूमसे ढके अग्निके समान था ॥ २८ ॥ भगवान्में बुद्धिस्थिर हो जाने केकारण अपने तपोयोगमय केश बिखरे हुए, विगतवस्त्र, केवल प्रारब्धकर्मके कारण स्थित हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शरीरको वह जानती ही नहीं थी ॥ २९ ॥ इस तरह उसने कपिलोक्तमार्गसे शीघ्रही नित्ययुक्त परब्रह्म परमात्मा भगवान्को पाया ॥ ३० ॥ हे विदुरजी, उसने जहाँपर सिद्धि पाई, वह क्षेत्र सिद्धपद नामसे त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध हुआ और अत्यन्त पुण्यमय माना गया ॥ ३१ ॥ हे सौम्य, योगके कारण शरीरके धातु और मलके विलीन होजानेसे उसकी वह देह नदियोंमें श्रेष्ठ, सिद्धि देनेवाली, सिद्धोंसे सेवित नदी बन गई ॥ ३२ ॥ महायोगी भगवान् कपिलमुनि भी पिताके आश्रमसे माताकी अनुज्ञा लेकर पश्चिमदिशाकी ओर चले गये ॥ ३३ ॥ समुद्रने उनको अर्घ्य देकर रहनेका स्थान दिया। वहाँ वे तीनों लोकोंके कल्याणके लिये समाहित होकर योगका आश्रयण करके रहते हैं। सिद्धचारण-गन्धर्व-मुनि-अप्सराएँ तथा सांख्याचार्य उनकी स्तुति करते हैं ॥ ३४, ३५ ॥ हे मातः, हे अनघ, आपने जो पूछा था, वह कपिल और देवहूतिका पवित्र संवाद मैंने आपको बतादिया ॥ ३६ ॥ जो

केशं गताम्बरम् ॥॥ दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः ॥२९॥ एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम् ॥ आत्मानं ब्रह्मनिर्वाणं भगवन्तमवाप ह ॥३०॥ तद्वीरासीत्पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी ॥ ३१ ॥ तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ॥ स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥३२॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान्पितुराश्रमात् ॥ मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥ ३३॥ सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥३४॥ आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ॥ त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः ।३५॥ एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं तवानघ ॥ कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥३६॥ य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ॥ भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३॥ समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः ।

कोई आत्मयोगका रहस्यरूप यह कपिलमुनिका मत सुनता या कहता है वह गरुड़ध्वज नारायणमें बुद्धि लगाकर भगवत्पदारविंद पाता है ॥ ३७ ॥

तैंतीसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—कपिलका वचन सुनकर देवहूतिका मोह पटल नष्ट होगया। उसने कपिलको प्रणामकर उनकी स्तुति की। स्तुति सुनकर कपिलमुनि प्रेमविह्वल स्वरसे बोले—मेरे द्वारा कहे गये मार्गका आश्रयकरण तुम जीवनमुक्त होवोगी। इस मार्गपर तुम श्रद्धा रखो, इसीसे तुम निर्विकार मुझे पाओगी। ऐसा कहकर माताकी अनुमति लेकर कपिलजी वहाँसे चले गये। पहले ही पति चला गया था, फिर पुत्रके भी जानेपर तत्त्वज्ञ होनेपर भी वह उसके विरहसे व्याकुल हो गई। फिर उसी कपिल रूपका ध्यान करती हुई वह कर्दमके सम्पादित अमूल्य ऐश्वर्यसे निस्पृह हो गई। सरस्वतीके किनारे उसी आश्रममें वह योगमार्गसे समाहित हुई। वह देहको भूल गयी। कर्दमकी सृष्ट विद्याधरियां उसके शरीरका पोषण करती थीं। केवल प्रारब्धकर्मसे उसका शरीर था। इस प्रकार कपिलोक्तमार्ग से उसने शीघ्र भगवान्को पाया। उसने जहाँ सिद्धि पाई वह सिद्ध यह नामसे प्रसिद्ध पवित्रक्षेत्र हुआ। कपिल भी वहाँसे पश्चिमकी ओर चल दिये। समुद्रने उनको स्थान दिया। वहाँ लोककल्याणके लिए वे योग करते-रहते हैं। सिद्धचारण गन्धर्व और सांख्याचार्य उनकी स्तुति करते रहते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[श्रीधरजीके विषयमें एक कथा]

सूत उवाच—श्रीधरो नाम विख्यातो ब्राह्मणः शिवपूजकः । पत्तने नगरे रम्ये तस्य सप्ताहमुत्तमम् ॥ राज्ञा भागवतं तत्र कारितं सधनं बहु । गृहीत्वा श्रीधरो विप्रो जगाम श्वशुरालये ॥ तत्रोष्य मासमात्रं च स्वपत्न्या सह वै द्विजः । स्वगेहमगमन् मार्गे चोराः सप्त तु तं प्रति ॥ शपथं रामदेवस्य कृत्वा सार्द्धमुपाययुः । समासे विपिने रम्ये हत्वा ते श्रीधरं द्विजम् ॥ गोरथं सधनं तत्र सभार्यं जगृहुस्तदा । एतस्मिन्नन्तरे रामः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ सप्त तांश्च शरैर्हत्वा पुनरुज्जीव्य तं द्विजम् । प्रेषयामास भगवांस्तदा वृन्दावने प्रभुः ॥ तदा प्रभृति वै विप्रः श्रीधरो वैष्णवोऽभवत् । सप्ताब्दे चैव यज्ञांशे गत्वा शान्तिपुरी शुभाम् ॥ ब्रह्मज्ञानमुपागम्य यज्ञांशाच्छिरस्यतां गतः । टीका भागवतस्यैव कृता तेन महात्मना ॥ (भविष्यपुराण)

[अष्टादशपुरावन्तर्गत श्रीमद्भागत बोपदेवकृत नहीं है]

सूत उवाच—तोतादर्यां द्विजः कश्चिद् बोपदेव इति श्रुतः । बभूव कृष्णभक्तश्च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ गत्वा वृन्दावनं रम्यं गोपगोपीनिषेवितम् । मनसा पूजयामास देवदेवं जनार्दनम् ॥ वर्षान्ते च हरिः साक्षाद्ददौ ज्ञानमनुत्तमम् । तेन ज्ञानेन संप्राप्ता हृदि भागवती कथा ॥ शुकेन वर्जिता या वै विष्णुराताय धीमते । तां कथां वर्णयामास मत्तोमूर्ति सनातनीम् ॥ कथान्ते भगवान्विष्णुः प्रादुरासीज्जनार्दनः । उवाच स्निग्धया वाचा वरं ब्रूहि महामते ॥ बोपदेव उवाच—नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक । त्वया ततमिदं विश्वं देवतिर्यङ्नरादिकम् ॥ त्वन्नाम्ना नरकार्ताश्च ते कृतार्था कलौ युगे । त्वया दत्तं भागवतं श्रीमद्व्यासेन निर्मितम् ॥ माहात्म्यं तस्य मे ब्रूहि यदि दत्तो वरस्त्वया । श्रीभगवानुवाच—एकदा भगवान्रुद्रो भवान्या सह शङ्कर । बौद्धराज्ये जगत्प्राप्ते दम्भपाखण्डनिर्मिते ॥ दृष्ट्वा काश्यां भूमितुङ्गं प्रणनाम मुदा युतः । जय सच्चिदानन्द विभो जगदानन्दकारक ॥ इति श्रुत्वा शिवा प्राह को देवोऽस्ति तवोत्तमः । स होवाच महादेवि यज्ञः सप्ताहमत्र वै ॥ तस्माद्भूमि पवित्रत्वमिह प्राप्तं वरानने ॥ सर्वतीर्थाधिकत्वं च स्वयं ब्रह्म सनातनम् ॥ इति श्रुत्वा शिवा देवी प्राप्तासीद्गुह्यकालयम् । रुद्रेण सहिता तत्र भूमिशुद्धिमकारयत् ॥ चण्डीशश्च गणेशश्च नन्दिनो गुह एव च । रक्षार्थे स्थापितास्तत्र देवदेवेन भो द्विज ॥ शृणु देवि रम्यां मम मानससंस्थिताम् । इत्युक्त्वा ध्यानमास्थाय सप्ताहेन स्ववर्णयत् ॥ अष्टाहे नेत्र उन्मील्य दृष्ट्वा निद्रागतां शिवाम् । बोधयामास भगवान् कथान्ते लोकशङ्करः । कियती ते श्रुता गाथा श्रुत्वाह जगदम्बिका । सुधामन्थनपर्यन्तं चरित्रं शिवयेरियतम् । कोटरस्थ शुकः श्रुत्वा चिरजीवत्वमागतः । पार्वत्या रक्षितोऽसौ वै शुकः परमसुन्दरः । स्थित्वा शिवस्य सदने मम ध्यानपरोऽभवत् । ममाज्ञया शुकः साक्षात्त्वदीयहृदयस्थितः ॥ तेन प्राप्तं भागवतं माहात्म्यं चास्य दुर्लभम् । त्वं वै गन्धर्वसेनाय पित्रे विक्रमभूपतेः ॥ नर्मदाकूलमासाद्य श्रावयस्वं कथा शुभाम् । हरिमाहात्म्यदानं हि सर्वदानपरं स्मृतम् ॥ सत्पात्राय प्रदातव्यं विष्णुभक्ताय धीमते । बुभुक्षितान्नदानं च तद्दानस्य समं हि । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो बोपदेवः प्रसन्नधीः (भविष्यपुराण)

[वनों के नाम]

(१) बारह प्रतिवन—रंगवन, वार्तावन, करहेलावन, काम्यवन, अञ्जनवन, कामवन, कृष्णाक्षेपणवन, नन्दक्षेपणवन, इन्द्रवन, शिक्षावन, चन्द्रवतीवन, लोहवानवन ।
(२) बारह अधिवन—मथुरावन, राधाकुण्डवन, नन्दग्रामवन, गतस्थानवन, ललिताग्रामवन, वृषभानुपुरवन, गोकुलवन, बलदेववन, गोवर्धनवन, गांववन, वृन्दावन, कङ्केतवन,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[धर्मवन, सेव्यवन, तपोवन, मोक्षवन, कामवन, अर्थवन, सिद्धिवन] । (३) बारह महावन—काम्यवन, कोकिलवन, तालवन, कुमुदवन, भाण्डीरवन, छत्रवन, कुमुदवन, (छाता नगर) खदिरवन, भद्रवन, बहुलावन, बिल्ववन, वावेलवन, । (४) बारह उपवन—ब्रह्मवन, अप्सरावन, विह्वलवन, कदम्बवन, स्वर्णवन, प्रेमवन, सुरभिवन, मयूरवन, मननगीतिवन, शेषशायीवन, नारदवन परमानंदवन ।

[प्रायश्चित्त कथन]

(१) जहाँ तत्तत्वर्णके लिये कोई प्रायश्चित्त विशेष न कहा हो वहाँ ब्राह्मणको पूर्ण, क्षत्रियको एक पाद न्यून, वैश्यको अर्ध और शूद्राको एकपाद प्रायश्चित्त होता है। (२) तत्तद्वर्णकी स्त्रियोंको ८० वर्षके वृद्धोंको, रोगियोंको तत्तद्वर्णोक्त प्रायश्चित्तका अर्द्ध प्रायश्चित्त करना चाहिये । (३) बालकको पाँचवर्ष तक कोई प्रायश्चित्त नहीं है, तदनन्तर उपनयनके पूर्व पादमात्र प्रायश्चित्त है । उपनयनानन्तर १६ वर्ष तक अर्द्ध प्रायश्चित्त है। (४) दरिद्र और प्रवासिको सतिसंभवमें पूर्ण आसक्तिमें अर्द्ध प्रायश्चित्त है। (५) १६ वर्ष के उपरान्त ब्रह्मचारिको द्विगुण, वानप्रस्थको त्रिगुण और यति को चतुर्गुण प्रायश्चित्त है। (६) ज्ञानीको कोई प्रायश्चित्त नहीं है। (७) जो प्रायश्चित्त जिसको जिसको लिखा है वह एकबार अज्ञानसे पाप करनेपर है। ज्ञानपूर्वक एकबार पाप करे तो द्विगुण प्रायश्चित्त है। अभ्यासमें चतुर्गुण, अत्यभ्यासमें अष्टगुण तथा अत्यन्ताभ्यासमें षोडशगुण होता है। चिरकाल अभ्याससे पातित्य होता है. उस अवस्थामें पतित प्रायश्चित्त करना चाहिए। (८) पापकर्ताको पश्चात्तापानन्तर प्रायश्चित्त करना चाहिये। बिना पश्चात्तापके प्रायश्चित्तसे भी शुद्धि नहीं होती है। (९) ग्यारहवर्षतकके बालकका प्रायश्चित्त पिता आदिको करना चाहिए। बालककी शुद्धि पश्चात्तापके बिना भी होती है। (१०) चाण्डाल, पतित, म्लेच्छ, अन्त्यज, रजस्वला, सूतिका, शवस्पृष्टी, चितिका, चितिकाष्ठ, यूप, आशौचि महापातकि पतित आदिके स्पर्शमें सचैल स्नान होता है। कामतः इनके स्पर्शमें अग्निस्पर्श और घृतपाशन भी स्नानान्तर करना चाहिये। यज्ञके यूपस्पर्शका दोष नहीं है, और यज्ञमें चितिस्पर्शका भी दोष नहीं है। (११) परम्परया चाण्डालादिस्पर्शमें स्पृष्टिसे लेकर तृतीयस्पृष्टि तक सचैलस्नान। चतुर्थको आचमन पञ्चमादिकी प्रोक्षणसे शुद्धि होती है। (१२) वस्त्रान्तरित स्पर्शमें भी साक्षात् स्पर्शवत् स्नानादि विहित है। काष्ठादि द्वारा चाण्डालस्पर्शमें जिस अङ्गका स्पर्श हो उसी अङ्गका प्रक्षालन और आचमन होता है। दण्डादि अन्तरित स्पर्शमें स्पृष्टिको स्नान, द्वितीयको आचमन, तृतीयादिकी प्रोक्षणसे शुद्धि है। (१३) देवलक (पुजारी) का स्पर्श भी देवस्थानातिरिक्त नहीं करना चाहिए। (१४) सर्वाङ्गीण चाण्डाल स्पर्शमें सचैलस्नान और त्रिरात्र उपवास है। (१५) दूसरे पुरुषके वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, मल, कर्णमल, नखमल, नासिकामल, नेत्रमल, नेत्रजल और स्वेदका स्पर्श जिस अङ्गका हो उस अङ्गको मृत्तिका और जलसे शुद्धकरके स्नान करे। (१६) रजक, चर्मकार, नट, बुरुड़, मलाह, वेणुकार, भिल्ल, स्वर्णकार, नापित, तेली, मांसविक्रयी, कुलाल, मद्यविक्रयी, दरजी, लोहार शिल्पी ये ग्राम चाण्डाल कहे जाते हैं। इनका स्पर्श भी अकारण निषिद्ध है। स्पर्शमें स्नान है। (१७) दुर्जनस्पर्शमें भी स्नान विहित है। (१८) उष्ट्र, ग्रामशूकर, गर्दभ, श्वान, कुक्कुट आदिसे शिरके स्पर्शमे स्नान और इतर अङ्गके स्पर्शमें उस अङ्गका प्रक्षालन और आचमन विहित है। (१९) मद्यादि स्पर्शमें स्नान और पञ्चगव्यप्राशन विहित है। (२०) कर्मकालमें सच्छूद्रस्पर्शमें भी स्नान है। (२१) कर्मकालमें मार्जार पुच्छस्पर्शमें स्नान, अपाङ्गस्पर्शमें आचमन है। कर्मातिरिक्तकालमें मार्जारपुच्छस्पर्शमें आचमन अन्याङ्गस्पर्शमें दोषाभाव है। (२२) बौद्धादि स्पर्शमें स्नान है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(२३) कर्मकालमें मूषक, बिल्ली, वायसादिके स्पर्शमें श्वान और दर्शनमें आचमन करना चाहिए। (२४) चाण्डाल, रजस्वला आदिके साथ एकत्र शाखा पाषाणादिके उपवेशनमें स्नान है। उच्छिष्ट विप्रका स्पर्श भी निषिद्ध है। यदि करे हस्तपाद प्रक्षालन कर आचमन करे। (२५) चाण्डाल, रजस्वला आदिके संभाषणमे १०८ गायत्री जप है। जपादिकर्म कालमे संभाषणमे स्नान है। (२६) चाण्डालादि दर्शनमें सूर्यदर्शन करना चाहिए। (२७) अनिष्टगन्धके आघ्राणमें सूर्यदर्शन और अशुद्धद्रव्यके दर्शनमें गायत्री जप है। (२८) जलमें अपना प्रतिबिंब देखे तो "मयि तेज इन्द्रयं वीर्यमायुः कीर्तिर्वर्चो यशोबलम्" इस मन्त्रका सकृत् जप करे। (२९) इन्द्रधनु और शवाग्नि दूसरेको यदि दिखावे अथवा स्वयं देखे तो उपवास करे और उदय-अस्तमें सूर्यको देखकर भी उपवास करे। (३०) दुःस्वप्नदर्शनमें ससुवर्ण घृतदान विहित है। (३१) सुराघ्राणमें और सुरागन्धघ्राणमें स्नान तथा अघमर्षण प्राणायामत्रय एवं घृतप्राशन है। (३२) मार्गादिमें दैवात्सुगघ्राणमे विष्णुस्मरण है। (३३) चाण्डालादिके नृत्यदर्शनमें दो उपवास हैं। (३४) यदि यतिको छेदन, पेषण, पाक करते देख लेवे तो सचैलस्नान करे। (३५) स्नानके विना भोजनमें उपवास, और १००८ गायत्रीजप है, अज्ञानसे उपवीतके विना भोजनमें नक्तव्रत तथा ज्ञानतः यज्ञोपवीतके विना भोजनमें स्नान उपवास और १०८ गायत्री जप है। (३६) अपोशानके विना भोजनमें और पञ्चप्राणाहुति समयमे, मौन त्यागमें १०८ गायत्री जप है। (३७) उत्तरापोशन करे तो १००८ गायत्री जप है। (३८) भोजनकालमें स्वीकृत मौनका त्याग होजाय तो शेष अन्न छोड़ देवे। (३९) एक पंक्तिमें विषमदानमें प्राजापत्य, अशक्तिमें एक गोदान है। (४०) संक्रान्ति ग्रहणादि निमित्त स्नानके विना भोजनमें १००८ गायत्री जप और १० प्राणायाम है। (४१) असत् शूद्रादि स्पर्शमें स्नानके विना भोजनमें प्राजापत्य अशक्तिमें एक गोदान है। अशुद्धवायुके स्पर्श होनेपर स्नानके विना भोजनमें त्रिरात्र उपवास है। (४२) श्वा, काक, स्पृष्टान्नभोजनमें त्रिरात्र उपवास है। (४३) भोजनकालमें मार्जोत्युच्छस्पर्शमें स्नान और अन्याङ्गस्पर्शमें आचमन है। (४४) सहोदरके साथ एकमात्र भोजनमें उपवास है और ज्ञातिके साथ एकमात्र भोजनमें त्रिरात्र उपवास है। [४५] यज्ञभूमिमें भोजन करे तो उपवास है। [४६] भोजनसमयमें चाण्डालादि दर्शनमें स्नान है। [४७] भोजनकालमें अन्नमें यदि मक्षिका, केश, नखादि गिरें तो तत्स्पृष्ट अन्नको निकालकर शिष्ट अन्नमें जल भस्म मृत्तिका छोड़कर भोजन करे। रक्त अस्थादिदूषित अन्नका त्याग है। [४८] केश मक्षिका आदि दूषितान्न भोजनमें ब्राह्मीरस पीना चाहिए। न मिले तो नक्तव्रत करे। [४९] भोजन समयमें शूद्रस्पर्शमें भी उपवास है। [५०] एकपंक्तिमें एक ब्राह्मणके उठ जाने पर पार्श्वद्भोजनमें नक्तव्रत है। एकपंक्तिमें भोजनमें एक ब्राह्मणके उत्तरापोशन करने पर उसको चान्द्रायण और इतरोंको भोजन करने पर १०८ गायत्री जप है—अर्थात् उत्तरापोशन सबको एक साथ करना चाहिए एकके करने पर इतर भोजन न करें। [५१] मार्जार, काक, मूषक, नकुल, गो आदिके उच्छिष्ट भक्षणमें उपवास है। [५२] श्वानके उच्छिष्ट भोजनमें चान्द्रायण है। [५३] स्त्री, शूद्र आदिके भोजनानन्तर पाकपात्रमें अवशिष्टान्नके भोजनमें त्रिरात्र उपवास है। [५४] भिन्न कांस्यपात्र और भिन्न मृन्मयपात्र भोजनमें त्रिरात्र उपवास है। तुष पाषाणयुक्त अन्न, वैश्वदेव रहित अन्न उल्लङ्घित, आघ्रात, विडालाखुमर्दित अन्नके भक्षणमें पराक प्रायश्चित होता है। रथ्याहृत, तैलसंसृष्ट अन्नभोजनमें त्रिरात्र उपवास है। रथ्याहृतसंसृष्टान्न भोजनमें दोष नहीं है यह मयूख मत है। [५५] यदि भोजनसमयमें तैलयन्त्र, इक्षुयन्त्र, उलूखल, पाषाणादिका शब्द होता रहे तो उतनेकाल भोजन न करे, यदि करे तो १०८ गायत्रीजप है। [५६] अज्ञानसे मनुष्य विडालादि मूत्र और पूरीष संसृष्ट द्रव्य भक्षणमें चान्द्रायण व्रत है। [५७] रजस्वला, सूतिकादि स्पृष्ट भाण्ड भोजनमें एकरात्र उपवास है। [५८] चाण्डालादिस्पृष्टान्न है। भोजनमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

षड्रात्र और चाण्डालदत्त आमान्न भक्षणमें त्रिरात्र उपवास है। [५९] जलपानसमयमें मुखनिःसृतजल यदि भोजनपात्रमें गिरे तो उस अन्नका भोजन निषिद्ध है, तदन्नभोजनमें प्राजापत्य है। [६०] गण्डूषसमयमें तर्जनीसे मुखशोधनमें प्राजापत्य है। [६१] ग्रहणसमयमें भोजनमें प्राजापात्य है। [६२] ग्रहणवेधसमयमें भोजनमें त्रिरात्र उपवास है। [६३] कुष्ठि कुनख्यादि स्पृष्टान्न भोजनमें अर्द्धकृच्छ्र है। [६४] शूद्र और वेश्यागृहमें उनका अन्न लेकर स्वयं पाकादि बनाकर भोजन करनेमें उपवास प्रायश्चित्त है [६५] ब्रह्मचारी और यतिके अन्नका भोजन या प्रतिग्रह करे तो चन्द्रायण है और एकादशी भोजनमें भी चन्द्रायण है। [६६] श्वेतवृन्ताक, वृत्तालाबु, आदिके भक्षणमें चान्द्र प्रायश्चित्त है। [६७] अज्ञानसे ब्राह्मणोच्छिष्टभोजनमें महाव्याहृतिसे अभिमन्त्रित जलको पीवे, ज्ञानतः एक उपवास करे। अभ्यासमें प्राजापत्य करे [६८] क्षत्रियोच्छिष्टभोजनमें अज्ञानतः त्रिरात्र ब्राह्मीरसयुक्त दुग्धपान और ज्ञानतः त्रिरात्र उपवास होता है। अभ्यासमें तप्तकृच्छ्र है। [चितिकाष्ठ, चितिधूम, चाण्डाल, रजस्वला, शवस्पर्श, सूतिकास्पर्शमें स्नान करके यज्ञोपवीत लगाकर करे कण्ठावलंबनादि न करके मल-मूत्रोत्सर्गमें जनन और मरणाशौचमें और चार चार मासपर भी यज्ञोपवीत त्याग है। कण्ठसे अलग होनेपर भी त्याग है। नूतन धारणकरे। [६९] वैश्योच्छिष्टभोजनमें अज्ञानतः त्रिरात्र और ज्ञानतः पञ्चरात्र उपवास है, अभ्याससे अतिकृच्छ्र है। शूद्र, पतित, चण्डालाद्युच्छिष्टभक्षणमें चन्द्रायण है। [७०] खड़े होकर, चलते२, सोते हुए, और खट्वापर बैठकर भोजनमें त्रिरात्र उपवास है और दिनमें या रात्रिमें दोवार भोजकरे तो १०० प्राणायाम प्रायश्चित्त है। [७१] अन्य श्राद्धशिष्टान्नभोजनमें प्राजापत्य प्रायश्चित्त है। श्वसुर, गुरु, मातुल, ज्येष्ठभ्राताके श्राद्ध शेषान्न भोजनमें दोष नहीं है अन्यत्र दोष है। [७२] श्राद्धभोजनानन्तर गायत्री दशवार पढ़कर जल पीवे तब सायं संध्या करनी चाहिए। [७३] यज्ञोपवीतके विना जल पीनेमें ३ प्राणायाम, पीतावशिष्टजलपानमें, श्वहस्तजलपानमें, वामहस्तजलपानमें, प्रपाजलपानमें, कूपादिसे जलचर्मपुटक निःसरितजलपानमें, रजकादिभाण्डस्थ जलादिपानमें, मूत्रपुरीषाद्युत्सर्गान्तर शुद्धिके विना जलपानमें, अर्धभुक्त अन्नपात्रसे जलपानमें, सूतकिके जलपानमें, चाण्डाल अन्त्यजादिखात तडाग कूपादिके जलपानमें, जानुपरिमाणसे अल्पपरिणाम जलाशयके जलपानमें, उपवास प्रायश्चित्त है। [७४] जलपानसमयमें चाण्डाल, रजस्वलादि दर्शनमें प्राणायाम और स्पर्शमें चार उपवास है। चाण्डालादिस्पृष्ट जलपानमें सान्तपन है। भिन्नकांस्य और मृत्तिकापात्रसे जलपानमें पादकृच्छ्र है। [७५] हवनार्थ संस्कृत आज्य, पय आदिके हवनके विना पानमें उपवास है। [७६] घृत, दधि, तैल, पय, इक्षुरस, गुड़ तक्र और मधु शूद्रभाण्डस्थ दूषित नहीं होते हैं। [७७] जलादिपानकालमें श्वा, शूकरादिस्पर्शमें त्रिरात्र उपवास है। [७८] शवयुक्त कूपादि जलपानमें ६, और विट् मूत्रा-अस्थ्यादियुत कूपादिजलपानमें ३, और वैसे कूपमें स्नानमात्र करनेसे १ उपवास है। तादृक् ताडागादिके जलपानमें अर्द्ध प्रायश्चित्त है। [७९] अभक्ष्यभक्षण, लवणके साथ दुग्धभक्षणमें गुडके साथ, दधिभक्षणमें, ताम्रपात्रस्थ दुग्ध, दधि, गोमूत्र, तक्र, मधु, नारिकेलजलके भक्षणमें और कांस्यपात्रस्थ नारिकेलजलभक्षणमें, पशु, पक्षि सरीसृप, मण्डूक आदिके विष्ठाभक्षणमें चान्द्रायण प्रायश्चित है। लशुन, गृञ्जन, पलाण्डु और छत्रादिके भक्षणमें सान्तपन, ज्ञानतः चान्द्रायण है, अत्यन्ताभ्यासमें पातित्य है। भक्ष्य और अभक्ष्यत्वेन सन्दिग्धवस्तुके भक्षणमें एक उपवास है। आर्त्विज्यके विनायज्ञियचरु पुरोडाशादिके भक्षणमें एक उपवास है। (८०) प्रसूत गो, महिषी, और नूतननिर्मित जलाशय इनके दशाहपर्यन्त जलपानमें, जिसदिन गुर्विणी हो उसदिन उसके पयःपानमें मृतवत्सा गोके पयःपानमें उपवास है। स्त्रीके पयःपानमें पुनः संस्कार और प्रजापत्य है। (८१) अज्ञानसे सुरासंसृष्ट द्रव्यभक्षणमें, चान्द्रायण और पुनरुपनयन है। औषधार्थ सुरापानमें तप्तकृच्छ्र और पुनः संस्कार है। [८२] यज्ञोपवीतके विना मूत्रादि करनेमें और मूत्रपुरीषके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वेगके रोकनेमें १०८ गायत्री जप है। मूत्राद्युत्सर्गकालमें कर्णस्थापित यज्ञोपवीतका अधःपात हो जाय तो नूतन यज्ञोपवीत धारण करे। मूत्रपुरीषोत्सर्गके पूर्व शौचार्थ मृत्तिका और जलको रखे अनन्तर रखनेमें सचैलस्नान है। [८२] निषिद्धदेशमें और सोपानत्क मूत्रपुरीष करनेमें तथा अन्यविहित नियमके अतिक्रमणमें १०८ गायत्रीजप है। [८३] मूत्र-पुरीषोत्सर्ग के समयमें भक्षण और पानमें सचैलस्नान है। [८४] मृत्तिकाके विना शौचकरणमें प्राजापत्य और पंचगव्य प्राशन है। [८५] गृहीत व्रतका भंग यदि प्रमादसे होजाय तो दिन त्रय उपवास और सहस्रगायत्रीजप प्रायश्चित्त है, उपवास न कर सके प्रत्येक उपवास निमित्त एक एक ब्राह्मण भोजन अथवा तन्निष्क्रय =) प्रत्येकको दे। [८६] व्रतके नियमका भङ्ग हो तो 'ॐ नमो नारायण' इस मन्त्रका अष्टोत्तरशत जप करे। जैसे—दिवास्वाप, ताम्बूलभक्षण, असकृज्जलपान खट्वाशयन, मिथ्याभाषणादि। अनन्तदोरकनाशमें १ प्राजापत्य कर द्वादशाक्षरमन्त्रसे १०८ आहुति और केशवादि २४ नामसे २४ आहुति देकर नूतन दोरकका पूजनादि करके बाध ले। [८८] अनातुर होकर ७ दिन सन्ध्या न करे तो पुनः संस्कारके योग्य है। आतुरको सन्ध्या विच्छेदसे दोष नहीं होता। तथापि सन्ध्यालोपमें कुछ प्रायश्चित्त करना चाहिए। एक सप्ताह स्नान न करनेसे शूद्रसम होता है और शक्त होकर एक सप्ताह यदि कूपोदक अथवा उष्णोदकसे स्नान करे तो प्राजापत्य है। [७९] उपाकर्म और उत्सर्ग न करे तो १ प्राजापत्य करे। [९०] सप्तपाकसंस्था स्व-स्व कालमें न कर सके तो एक एक प्राजापत्य करे। कालान्तरमें इनका अनुष्ठान नहीं है सप्तपाकसंस्था पत्नीके ऋतुमती होनेपर भी होता है, प्रथमारम्भ नहीं होता है। [९१] कर्मलोपप्रायश्चित्त– सन्ध्याका काल यदि कुछ अल्प व्यतीत होजाय तो सन्ध्योपासनकालमें चतुर्थ अर्घ प्रायश्चित्त निमित्त देवे। ६ घड़ी बीत जाय तो ३ प्राणायाम, १२ घड़ी बीत जावे तो १२ और मध्याह्न हो जावे तो ३६ प्राणायाम करे। एकमत यह है कि प्रातः और सायं उदय अस्तके अनन्तर तीन तीन घड़ी सन्ध्याकाल है। और मध्यान्हमें सूर्योदयसे १८ घड़ीतक सन्ध्या काल है। यदि इतने कालमें सन्ध्याकर सके तो १०८ गायत्री जप करे। संकटमें रात्रिके प्रथम प्रहर तक भी प्रातः सन्ध्यादि क्रमसे कर सकता है। सविधि नित्यस्नान, ब्रह्मयज्ञ रात्रिमें नहीं होते हैं। रात्रिको एक प्रहरके बाद डेढ़ प्रहर तक रात्रि विहित कृत्य हो सकते हैं एक प्रहरके रात्रिमें दिवाविहित कृत्य निषिद्ध है किन्तु लोप है। सर्वथा सन्ध्यालोपमें प्रतिसन्ध्य एक उपवास अथवा १००८ गायत्री जप है। अत्यशक्तिमें शतगायत्री जप है, द्व्यह, त्र्यह-लोपमें तदावृत्ति है, ततः पर कृच्छ्रादि है। एक दिन सन्ध्या या कोई भी वेदोक्त नित्यकर्मका लोप हो जावे तो १००८ गायत्री जप है। दिनाभ्यासमें प्रायश्चित्ताभ्यास है। अनादिष्ट नित्य कर्मलोपमें उपवास है उपवासाशक्तिमें ६ उपवाससे एक प्रजापत्यकी कल्पना करनी चाहिए। अथवा प्रत्येक उपवासका एक ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। अनेक नित्यकर्म लोपमें तन्त्रसे प्रायश्चित्तकी सिद्धि है। (९२) स्नानकालातिक्रममें १०८ गायत्रीजप है नित्यस्नान, सन्ध्योपासन, स्मार्ताग्निहोम, श्रौताग्निहोत्रहोमके एक दिन लोप होनेसे १००८ गायत्रीजप है। (९३) पंचमहायज्ञमें एकका लोप हो तो और सप्तपाकसंस्थाके लोपमें भी एक उपवास है, सर्वलोपमें कृच्छ्रार्द्ध अथवा चन्द्रायण है आतुरको प्रायश्चित्त नहीं है। स्मार्तहोममे लोपमें १००८ गायत्रीजप है। मुख्य कालके अतिक्रमणमें अनादिष्ट प्रायश्चित्त है। (९४) रेतःसेकसंबन्धितप्रायश्चित्त—दिवा और पर्वमें मैथुनमें सचैलस्नान है। श्राद्धादिवर्ज्यतिथिमात्रमें स्त्रीगमनमें उपवास है। स्वस्थ और सन्निहित होते हुए ऋतुके आगमनमें अर्द्ध कृच्छ्र है। [९५] रजस्वलागमनमें, षण्मासोत्तरगर्भिणीगमनमें प्राजापत्य और सूतिकागमनमें प्राजापत्यद्वय है। रजोदर्शनसे प्रथम और गतरजस्काद्वृद्धागमनमें भी १००० गायत्रीजप है। [९६] क्रोधसे स्त्री मेरी नहीं है ऐसा कहकर पुनः उपभोगेच्छामें भी ऋषिचान्द्रायण कर उपभोग करे। [९७] तूँ मेरी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माताके सदृश अगम्या है ऐसा कहकर पुनः उपभोगेच्छा हो तो एक उपवास एक गोदान और १० ब्राह्मण भोजन करावे तब उपभोग करे। [रजस्वलागमनादि उक्त प्रायश्चित्त यदि परदारामें हो तो परदारागमन प्रायश्चित्त और उस प्रायश्चित्तका समुच्चय होता है। [९८] विवाहके पहले कन्या ऋतुमती होजाय तो ऋतुसंख्यया गोदान और कन्या उपवासत्रय पञ्चगव्यपान तथा विप्रकुमारीको भूषण दे और वर भी कूष्माण्डीहोम करे। [९९] वापीकूपतड़ागादियज्जलं स्यादसंस्कृतम्। न प्रष्टव्यं न पेयं च पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ [१००] प्रेतपिण्डदानान्तर विना स्नानके भोजन करे तो एक उपवास है। [१०१] स्वप्नमें रेतः स्खलन हो तो सूर्य नमस्कार जप है। दुराचारसे रेतःस्खलनमें १००० गायत्रीजप है। [१०२] पुंमैथुनमें दोनोंको प्राजापत्य है। गौके साथ सकृद्गमनमें त्रिरात्र उपवास गोदान है। महिषी और हरिणीमें प्रजापत्यद्वय है, गर्दभी तथा उष्ट्रीमें चान्द्रायण है, वडवामें पराक है, अजा और मेषीमें तप्तकृच्छ्र है, शुनीमें अतिकृच्छ्र है, अन्यपशुजातिमें पादकृच्छ्र है। [१०३] वृक्ष, मालत्यादिगुल्म, गुच्छा, करवीरादि, लता, गुडूच्यादि, व्रीह्यादि इनके और तृणादिके काटनेमें इन्धनार्थ द्रुमच्छेदमें प्राजापत्य है। देवालय, मार्ग, जलाशय, पुण्यस्थानादिस्थित वृक्षादिच्छेदनमें द्विगुण प्रायश्चित्त है। महाफलप्रदनारिकेल, कटहल, आम्रादिवृक्षच्छेदनमें संवत्सरव्रत है। वनच्छेदमें नवाब्द है तृणार्थ और इन्धनार्थ यज्ञियवृक्षच्छेदमें पराक है। गवार्थ, होमार्थ, यज्ञार्थ वृक्षादिच्छेदमें दोष नहीं है। अश्वत्थ, विल्व, अशोक, आमलक, तिन्तिणी, जंबु, आम्रादिवृक्षच्छेदमें चान्द्रायण है। पुष्पारामच्छेदनमें लक्षगायत्रीजप है। निंब, शमी, देवदास आदिके छेदमें तप्तकृच्छ्र है, नीचेके वृक्षोंके छेदनमें प्राजापत्य है। ऊँचे वृक्षोंके छेदनमें द्विगुण और अत्युच्च-वृक्षच्छेदनमें त्रिगुण प्रायश्चित्त है। [१०४] मातृगमन, कन्यागमन और स्नुषागमन अतिपातक हैं इसको ज्ञानतः या अज्ञानतः सकृत् करे तो मरण ही प्रायश्चित्त है, प्रायश्चित्तान्तर नहीं है। [१०५] सूर्यग्रहणमें जिस प्रहरमें ग्रहण लगे उससे प्रथम चारप्रहर और चन्द्रग्रहण तीनप्रहर प्रथम भोजन निषिद्ध है। यदि इस वेधकालमें भोजन करे तो समर्थको त्रिदिन उपवास है। और ग्रहणकालमें भोजन करे प्राजापत्य है। पूर्वपक्व-अन्न ग्रहणोत्तर त्याज्य है एवं ग्रहणकाल स्थितजल भी ग्रहणोत्तर त्याज्य है, उस अन्नके भक्षणमें अर्द्धकृच्छ्र और जलपानमें पादकृच्छ्र है। केवल घृतपाचित अन्न तक्र, क्षीर आदि पूर्वसिद्ध भी ग्रहणोत्तर ग्राह्य है परन्तु ग्रहण-कालमें इनमें कुशका अन्तराय करना चाहिए। [१०६] पूर्वसंकल्पितद्रव्यको ग्रहणके पूर्व दे देवे न देवे तो द्विगुणद्रव्य दान करे। [१०७] पूर्णिमाको पौर्णमासेष्टि न किया हो तो पादकृच्छ्र, प्रायश्चित करके अमातक पृथक् या दोनोंको एक साथ तन्त्रसे करे। एवं दर्शेष्टि भी पूर्णिमातक कर सकता है। इष्टिद्वय लोप हो जावे पथिकृत् इष्टि अथवा अर्द्धकृच्छ्र प्राय-श्चित्त करे। इष्टित्रय लोपमें पुनराधान प्रायश्चित्त है। पिण्डपितृयज्ञलोपमें और पशु सोम न कर सके तो वैश्वानरी इष्टि करे। स्मार्ताधानीको भी पिण्डपितृयज्ञके लोपमें वैश्वानर चरु है। इष्टि न कर सके उसके स्थानमें इष्टिदेवताओंके चतुर्गृहीत आज्यसे आज्याहुति भी करसकता है। अथवा सप्तहोतार मन्त्रसे एक पूर्णाहुति भी कर सकता है। व्रीह्याग्रयणका यवाग्रयण तक और यवाग्रयणका व्रीह्याग्रयण तक गौणकाल है। अनापत्तिमें मुख्यकालमें न किया हो प्राजापत्य करके गौणकालमें करे। आपत्तिमें प्रायश्चित नहीं है। गौणकाल भी अति-क्रान्त हो जाय तो वैश्वानरीष्टि करे। स्मार्ताग्रयणसे वैश्वानर चरु करे, अथवा पूर्णाहुति करे अथवा "समिन्द्राय" इस मन्त्रको १०० बार जपे। अथवा नवीन अन्नसे अग्निहोत्रहोम करे या ब्राह्मण भोजन करादे। (१०८] ज्ञानतः ब्राह्मणकी गौको ब्राह्मणादि कोई वर्ण यदि शस्त्र, मुष्टि, लोष्ट-लाठी, विष, अग्नि आदिसे मारे तो उसको त्रैमासिकव्रत प्रायश्चित्त है। अशक्तिमें १७ धेनु दे। तदशक्तिमें सप्तदशधेनु मूल्यदान करे। धेनु मूल्य ।॥) प्रायश्चित्तविवेककार मानते हैं। पूर्वदिनमें वपन, उपवास, घृतप्राशन है। सायंकाल प्रायश्चित्त संकल्प है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परदिनमें त्रैमासिकव्रत प्रत्याम्नाय धेनुमूल्यदान करे। दूसरेकी गौको ग्रास देवे शुद्ध्यर्थ पार्वणश्राद्ध करे यह भी गौड संप्रदाय है। जिसकी गौको मारा हो उसको गोमूल्य देकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। स्त्रीको श्राद्धाधिकार नहीं है। दस-ब्राह्मण भोजन करावे। एक वृषभ और १० गौ इसकी दक्षिणा दे। अथवा मूल्यदान करे गोमूल्य ।) और वृषमूल्य १।) साधारण है। अज्ञानतः ब्राह्मणस्वामिके गोवधमें सार्द्ध मासिकव्रत हैं, तदशक्तिमें ६ धेनु तन्मूल्य दान करे। मूल्यदानपक्षमें सार्द्धाष्टधेनुमुल्यदान सार्द्धपञ्चविंशतिकार्षापण ।) होता है। दक्षिणा एक गौ है। पूर्वदिनकृत्य और उत्तरदिनकृत्य पूर्ववत् समान है। [१०६] ज्ञानतः क्षत्रियकी गोवधमें पाधमासिकव्रत है, तदशक्तिमें १२ धेनु हैं। ३६ कार्षापण। दक्षिणा यथाशक्ति देना चाहिए। अज्ञानतः तदर्ध प्रायश्चित्त है, शेषकृत्य दिनद्वयका पूर्ववत् है। [११०] ज्ञानतः वैश्यकी गौके वधमें गोमतीविद्याजपसहितमासैकपञ्चगव्यपानरूपव्रत करना चाहिए। अशक्तिमें दसधेनु दान है और एक गौ दक्षिणा है, अज्ञानतः एतदर्ध है। शेषकृत्य दिनद्वयका पूर्ववत् है। धेनुमूल्य ।॥) गोमूल्य ।) है। [१११] शूद्रकी गौके वधमें चार प्राजापत्य या धेनुचतुष्टय दान है। दक्षिणा एक गौ है। अज्ञानतः एतदर्ध है। दिनद्वयकृत्य पूर्ववत् है। [११२] गर्भिणी, कपिला, दोग्धी, और होमधेनुके वधमें जो प्रायश्चित तत्तत्स्वामिकगौके वधमें लिखा है उसका द्विगुण प्रायश्चित्त करना चाहिए। ज्ञानतः जो प्रायश्चित्त है कहा है उसका द्विगुण ज्ञानतः और अज्ञान का द्विगुण दक्षिणा भी द्विगुण देनी चाहिए। दिनद्वयकृत्य पूर्ववत् है। [११३] अतिवृद्धा, अतिबाला, अतिकृशा, और रोगिणी गौके वधमें पूर्वोक्त प्रायश्चित्तका, आधा करना चाहिए दक्षिणा भी अर्द्ध है दिनद्वयकृत्य पूर्ववत् है। [११४] एक प्रयत्नसे यदि अनेक गौका वध हुआ हो तो जो प्रायश्चित्त पीछे कहा है उसका द्विगुणित करना चाहिए। [११५] यदि बहुत लोग मिलकर एक गौको मारें तो सबको एक एक पाद प्रायश्चित्त करना चाहिए। यदि दो व्यक्ति एक गौको मारें तो दोनोंको पूर्ण पूर्ण प्रायश्चित्त करना चाहिए। अधम शूद्र [अन्त्यजादि] गौके वधमें और म्लेच्छकी गौके वधमें अज्ञानतः प्राजापत्य और ज्ञानतः दो प्राजापत्य है एक गौ दक्षिणा है शेष-दिनद्वयकृत्त पूर्ववत् है। [११६] ब्राह्मणादिकी गौके वधमें जो प्रायश्चित्त लिख आये हैं एकवर्षकी गौके वधमें उसका एक पाद, द्विवर्षीयामें द्विपाद, त्रिवर्षीयामें त्रिपाद, चतुर्थमें सम्पूर्ण प्रायश्चित्त होता है। ज्ञानतः वधमें ज्ञानका पाद और अज्ञानतः में अज्ञानतः का पाद द्विपाद इत्यादि। दिनद्वयकृत्य पूर्ववत् है एक गौ दक्षिणा भी है। [११७] गौको रोककर मारनेमें एकपाद, बांधकर मारनेमें द्विपाद, हल या गाड़ीमें जोड़कर मारनेमें त्रिपाद, और लाठीसे मारनेमें पूर्ण प्रायश्चित्त होता है। जो प्रायश्चित्त ज्ञानतः और अज्ञानतः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और अधमशूद्रकी गौके मारनेमें कहा है उसीका पादादि प्रायश्चित्त समझना चाहिये। [११८] जिसकी गौको रोका हो, बांधा हो, हल और गाड़ीमें जोड़ा हो, लाठीसे मारा हो, उसके मालिकको भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको अपालननिमित्तसेतिकर्तव्यताकप्राजापत्य या एक गोनिष्क्रय करना चाहिए। इति कर्तव्यता न करे तो एकधेनु इसके बदले भी देवे। और एक वृषसहित एक गौ दक्षिणा देवे। स्वामीको वपन सशिख करना चाहिए। [११९] शूद्रको गौके अपालन निमित्त कुछ दक्षिणा सहित प्राजापत्यद्वय, तदशक्तिमें ६ कार्षापण देना चाहिये। अधमशूद्रको गौ अपालननिमित्त एक प्राजापत्य है। [१२०] यदि गौ हटाते हटाते गर्तकूपादिमें गिरे तो स्वामीको अयोग्यपालकनिमित्त पदोन प्रायश्चित स्वजात्युक्त करना चाहिए। पालकको प्रायश्चित्त नहीं है, यदि पालकने गौको कूपादिमें गिरते न हटाया हो तो पालकको कृच्छ्र करना चाहिये, तब स्वामीको कुछ भी प्रायश्चित नहीं है गौका शृङ्ग-भङ्ग, अस्थिभङ्ग होजाय तो वज्र नामक व्रत करे। यदि शृङ्गादि भङ्गके अनन्तर गौ मृत हो जाय तो मरण प्रायश्चित करना चाहिये। अशक्तिमें धेनुचतुष्टय दान भी है। गौके नेत्रघातमें अर्द्ध, लाङ्गल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छेदनमें पाद, कर्णच्छेदमें कटिभंग पादत्रय प्रायश्चित्त है। [१२३] गोमांस भक्षकके हस्ते विक्रयमें और कूप वाप्यादि निम्नस्थानमें जलपानार्थ भेजनेसे और दुर्गमस्थानमें भक्षणार्थ भेजनेमें गोकी यदि मृत्यु हो तो गोवध प्रायश्चित्त है। [१२४] राजसंवन्धि उत्तमगजके वधमें पांचनील वृषदान है। सामान्य गजवधमें अहोरात्र उपवास और घृतप्राशन है। उत्तमगजवधमें ज्ञानतः चान्द्रायण, अज्ञानतः तदर्ध है। अज, मेष और खरके वधमें एकवर्षीय वृषदान है, मृग-महिष-तरक्षु (व्याघ्रविशेष) ऋक्ष-वानर-सिंह-व्याघ्र पृषत चमरी-रुरुके वधमें अहोरात्र उपवास है, द्वितीयदिन घृतप्राशन अज्ञानतः है। ज्ञानतः वधमें सप्तरात्र उपवास है उपवास न कर सके एक उपवासमें ८ ताम्रपण देवे। [१२५] धार्मिक ब्राह्मण यदि अज और मेषका वध करे तो त्रिरात्र उपवास है। [१२६] अज्ञानतः ग्राम्यपशुवधमें प्राजापत्य है सुवर्ण दक्षिणा है, ज्ञानतः द्वैगुण है। मृगवधमें एकतिलद्रोण और सुवर्णदक्षिणा है। [१२७] अज्ञानसे मार्जार-गोधा-नकुल-मण्डूक-श्व और पक्षिके वधमें दुग्धमात्रपान करके त्रिरात्र उपवास करे। [दुग्धपानयुतत्रिरात्र उपवास उपवासद्वय तुल्य होता है एक उपवासका ८ पैसा प्रतिनिधिदान है] ज्ञानतः द्विगुण प्रायश्चित्त है। [१२८] मूषिक-सर्प-डुंडुभ-अजगरके वधमें उपवास और १ लोह दण्ड देना चाहिए। [१२९] अज्ञानतः सामान्यतः पक्षि वधमें नक्त व्रत करे, अज्ञानतः द्विगुण है। कुक्कुटवधमें अहोरात्र उपवास है। सामान्यतः वृथा पशुमात्र वधमें ज्ञानतः प्राजापत्य और अज्ञानतः तदर्ध है। [१३०] अश्ववधमें उत्तम वस्त्र दान करे। [१३१] जलचर मत्स्यादि वधमें अज्ञानतः सप्तरात्र अभोजन है अज्ञानतः द्विगुण है, अभ्याससे प्रायश्चित्तावृत्ति है। [१३२] अस्थिरहित जन्तुके वधमें और अनस्थिगत शकटपरिमित जन्तुके वधमें तथा सहस्रजन्तुके वधमें शूद्रहत्याव्रत है। [१३३] एक अस्थिमान जन्तुके वधमें कुछ ब्राह्मणको देना चाहिए और अस्थिरहित जन्तुवधमें प्राणायाम है। अन्नसे, रससे, फलसे, पुष्पसे उत्पन्न होनेवाले जन्तुके वधमें घृतप्राशन शुद्धिका कारण है। [१३४] प्रतिदिन गृहस्थको पंचसूनादोष होता है उसका पंचमहायज्ञ प्रायश्चित्त है। [१३५] ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णस्तेय, गुरुपत्नीगमन और इन पापको करनेवालोके साथ सम्पर्क ये पांच महापातक हैं। ये महापातक अज्ञानतः किए हों तो द्वादशवार्षिक तथा ज्ञानतः किए हों तो चतुर्विंशतिवार्षिकव्रत होता है। अशक्तिमें ३६० और ६२० धेनुदान क्रमशः होता है १०० गौ दक्षिणा दी जाती हैं। प्रायश्चित्तविवेककार एकवार्षिकव्रतमें १५ धेनु मानते हैं उनके मतमें १८० और ३६० धेनुदान क्रमशः होते हैं। सामान्यनियम भी करने चाहिए—उपवास, सशिखवपन, घृतप्राशन, दसब्राह्मण भोजन, गोग्रास, १०० गौ दक्षिणा। चतुर्विंशतिवार्षिकव्रतमें दक्षिणा द्विगुण अर्थात्—२०० गौ होती है। [१३६] अज्ञानतः ब्राह्मणवधमें द्वादशवार्षिकव्रत और ज्ञानतः ब्राह्मण वधमें चतुर्विंशति वार्षिक व्रत है। यागस्थानब्राह्मणके ज्ञानतः वधमें ज्ञानकृत प्रायश्चित्तका द्वैगुण्य अर्थात्—अष्टचत्वारिंशद्वार्षिक व्रत होता है और अज्ञानतः यागस्थानब्राह्मणवधमें अज्ञानकृत प्रायश्चित्तको द्विगुण करना चाहिए अर्थात्—चतुर्विंशतिवार्षिकव्रत करना चाहिए। इसीप्रकार बाल वृद्ध गुरु ब्रह्मण पिता-माता सहोदरभ्राता—श्रोत्रियब्राह्मण और अग्निहोत्री ब्राह्मणके वधमें द्विगुण प्रायश्चित होता है। तत्रापि ज्ञानपूर्वकवधमें ज्ञानकृत प्रायश्चित्तका द्वैगुण्य तथा अज्ञानकृतवधमें अज्ञानकृत प्रायश्चित्तका द्विगुण होता है द्विगुण प्रायश्चित्तमें भी दक्षिणा भी द्विगुण होती है। अग्रहारिक [प्रेतश्राद्धान्नभोजि] ब्राह्मणवधमें अज्ञानतः वार्षिक और ज्ञानतः द्विवार्षिक प्रायश्चित्त होता है। एक वर्षकी ३० धेनु होती हैं, दो वर्षकी ६०, तीन की ९०, ४ की १२०, छवर्षकी १८०, नव वर्षकी २७०, द्वादशवर्षकी ३६०, २४ वर्षकी ७२० गोदान होते हैं इत्यादि जानना चाहिए। उपवास, सशिखवपन, घृतप्राशन, दसब्राह्मण भोजन, गोग्रास, शत गौ दक्षिणा, अथवा तन्निष्क्रयदान ये ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः ब्राह्मणवधमात्रमें सामान्य नियम हैं। ज्ञानतः महापातक अनुपातक और अतिपातक करनेवालेका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रायश्चित्त होनेपर भी व्यवहार योग्य नहीं होते यह शूलपाणि और रघुनन्दनभट्टाचार्यका मत है। ज्ञानतः महापातकादि करनेवाले प्रायश्चित्त करनेसे व्यवहार्य होते हैं किन्तु उनका पापक्षय नहीं होता है यह मिताक्षराकारका मत है। [१३७] क्षत्रिय यदि ज्ञानपूर्वक ब्राह्मणवध करे तो ज्ञानपूर्वक ब्राह्मणकर्तृक ब्राह्मणवधका जो प्रायश्चित्त कहा है उसका द्विगुणित प्रायश्चित्त करे। और अज्ञानकृत ब्राह्मणवधमें अज्ञानकृत ब्राह्मणवधका जो प्रायश्चित्त कहा है उसका द्विगुणित प्रायश्चित्त क्षत्रिय करे। इसीप्रकार वैश्यकर्तृक ब्राह्मणवधमें त्रिगुणित प्रायश्चित होता है। और शूद्रकृत ब्राह्मणवधमें चतुर्गुणित प्रायश्चित होता है। और अधमशूद्रकृत ब्राह्मणवधमें भी चतुर्गुणित प्रायश्चित्त होता है। एकप्रयत्नसे बहुत ब्राह्मणोंके ज्ञानपूर्वकवधमें गोठेकी अग्निसे जलके मृत्युको प्राप्त होजाना प्रायश्चित्त है। अज्ञानपूर्वकवधमें जबतक जीवित रहे तबतक द्वादशाब्द प्रायश्चित्त करता रहे। (१३८) मारनेवाले पांच प्रकारके होते हैं कर्ता, अनुमन्ता, प्रयोजक, अनुग्राहक और निमित्त। स्वयं मारनेवालेको कर्ता कहते हैं। उसका प्रायश्चित्त बतला दिया है। मरनेमें अनुमति दाताको अनुमन्ता कहते हैं इसको मारनेवालेकी अपेक्षा आधा प्रायश्चित्त होता है। मारनेवालेको धनादिसे सहाय्य देनेवाला प्रयोजक कहलाता है इसको मारनेवालेसे चतुर्थांशहीन प्रायश्चित्त होता है। वध्यको पलायनादिसे रोकनेवाला अनुग्राहक होता है इसको चतुर्थांशहीन प्रायश्चित्त है, मारनेवालेको क्रोध दिलानेवाला निमित्त कहा जाता है उसको भी एकपाद प्रायश्चित्त है। [१३९] अन्यायसे तिरस्कृत होकर कोई मरे तो उसके तिरस्कार करनेवाले निमित्तिको प्रायश्चित्त होता है। [१४०] सुरापानप्रायश्चित्तम्—उन्मादजनक जो अन्नविकारविशेष है उसको सुरा कहते हैं। वह सुरा तीन प्रकारकी है—पैष्टी, गौडी और माध्वी। ब्राह्मणको त्रिविध सुरापान करनेसे महापातक लगता है। क्षत्रिय और वैश्यको पैष्टी सुरापानसे ही महापातक लगता है। गौडी और माध्वी सुरापानका दोष नहीं है। क्षत्रियोंको पैष्टी सुरापानका पादोन और वैश्यको अर्द्ध प्रायश्चित्त है, शूद्रको त्रिविध सुरापानका प्रायश्चित्त नहीं है। शूद्रको सुरापान स्थानमें ब्राह्मणीगमन महापातक है महापातकमें सशिखवपनादि सब होते हैं। ब्राह्मणी भी यदि सुरापान करे तो उसको भी त्रिविध सुरापानमें महापातक होता है। अज्ञानतः ब्राह्मणको सुरापानमें द्वादशवार्षिकव्रत और ज्ञानतः सुरापानमें मरण तदशक्तिमें चतुर्विंशतिवार्षिक व्रत होता है। सशिखवपन, गोग्रास, दसब्राह्मणभोजन प्रायश्चित्त समग्रेति कर्तव्यता, शतगोदक्षिणा उपवासादि पूर्वमहापातकोक्त सब विधि यहाँ भी होती हैं। चतुर्विंशतिवार्षिकव्रतमें दक्षिणा द्विगुण अर्थात् २०० गौ होती हैं। सगुण ब्राह्मण यदि मद्यपान ज्ञानसे करे तो चतुर्वार्षिक और अज्ञानसे करे तो अष्टवार्षिक प्रायश्चित्त है। सशिखवपनादि महापातकत्वात् होता है। प्रयोजकादि ब्रह्मवधप्रायश्चित्तोक्तरीतिसे पापादिहानि करके सुरापानमें भी प्रायश्चित्ती होते हैं। सुरापानावृत्तिमें प्रायश्चित्तावृत्ति होती है। जो रोग सुरापानसे ही दूर हो सकता है उस रोगके नाशार्थ सुरापानमें कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत और पुनः संस्कार है पुनः संस्कारकी अशक्तिमें चान्द्रायण कर सकता है, सशिखवपनादि इसमें भी है। [१४१] अपर्युषित सद्योजात पनस अंगूर आदिकी मद्यपान करनेसे ब्राह्मणको अज्ञानतः त्रिरात्र और ज्ञानतः प्राजापत्य है। क्षत्रियादिको दोष नहीं है। अज्ञानसे सुरासंसृष्ट—द्रव्यभक्षणमें पुनरुपयन, अशक्तिमें चान्द्रायण है। कुनख और कृष्णदन्त ये पूर्वजन्मकृत महापातकसे होते हैं इनमें नरक भोग कुछ अवशिष्ट है अतः स्वल्प प्रायश्चित्त अर्थात्–स्मृत्युक्त द्वादशरात्रव्रत करे—महापातक होनेके कारण सशिखवपनादि होता है यह भी मत है। प्रायश्चित्तानन्तर नख और दन्तको निकाल दे यह भी विधि है। [१४२] ब्राह्मणके अस्सी रत्ती और उससे अधिक सुवर्ण की चोरी को ब्राह्मण ज्ञानपूर्वक करे तो द्वादशवर्षका व्रत करनेसे मुक्त होता है। क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र राजकीयवधसे मुक्त होता है। अस्सी रत्तीकी चोरी महापातकमें कही गई है। इससे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अल्पकी महापातक नहीं कहीं गई है। इस महापातकको ब्राह्मण यदि राजाके पास निवेदन करने पर वहाँसे दण्ड न पावे तो द्वादशवर्ष प्रायश्चित्तसे ही मुक्त होता है। दण्ड पाने पर राजकीयदण्ड से ही शुद्ध हो जाता है। परन्तु स्वयं निवेदन नहीं किया बलात्कारसे कर्मचारी द्वारा राजाके पास गया तो राजकीय दण्ड और प्रायश्चित्त जो द्वादशवर्षका कहा गया है, दोनोंसे मुक्त होता है। पाँच निष्क सुवर्णके स्तेयमें मरणसे शुद्धि होती है। यदि प्राण न त्याग करसके तो चौबीसवर्षके प्रायश्चित्तसे शुद्ध होता है। मूर्ख ब्राह्मण यदि जानते हुए विद्वान् ब्राह्मणका चुराले तो प्राणवधसे तथा अशक्तिमें चौबीसवर्षका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होता है। यदि बिना जाने हुए ले ले तो आधा पाप बतलाया गया है। मूर्खका यदि विद्वान् ब्राह्मण जानते हुए चोरीसे ले ले तो तीनवर्षका प्रायश्चित्त करनेसे तथा अज्ञानसे इसके आधे प्रायश्चित्तसे शुद्ध होता है। क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रके सोनाको कोई भी यदि ज्ञानपूर्वक चोरी करके ले तो ६ वर्षके प्रायश्चित्तसे तथा बिना ज्ञानसे तीनवर्षके प्रायश्चित्तसे शुद्ध होता है। महापातकसे सशिखवपन उपवासादि नियत हैं। (१४३) पिता ही गुरु है उसकी अङ्गना सवर्णाविमाता होती है उसका गमन महापातक है ज्ञानपूर्वक विमातागमनमें मरण प्रायश्चित्त है। अशक्तिमें चतुर्विंशतिवार्षिक प्रायश्चित्त है, अज्ञानपूर्वकगमनमें द्वादशवार्षिक है—सशिखवपनादिकृत्य पूर्ववत् है। ज्ञानतः सगुण यदि उक्त पातक करे तो त्रैवार्षिक व्रत करे, अज्ञानतः तदर्ध करे प्रायश्चित्त ह्रास होने पर भी यह महापातक है अतः सशिखवपनादि सब होता है। व्यभिचारिणी विमाताके गमनमें अज्ञानतः वार्षिक और ज्ञानतः द्विवार्षिक प्रायश्चित्त है सशिखवपनादि पूर्ववत् है। [१४४] माधवाचार्यके मतमें कलिमें संसर्गदोष नहीं है। "संसर्गदोषः पापेषु" इत्यादि वाक्यसे संसर्गदोष कलिवर्ज्यमें पठित है। रघुनन्दनभट्टाचार्यके मतमें संभाषण-स्पर्शधन-ग्रहणसे इतर गुरुसंसर्ग दोष कलिमें है "संसर्गदोषः पापेषु" यहाँपर संसर्गपद गुरुसंसर्गपरक उनके मतमें है। याजन, अध्यापन, योनि और सहभोजन ये चार गुरुसंसर्ग हैं। एकशय्या, एकासन, एकपंक्ति, एकभाण्ड और पक्वान्नमिश्रण ये पाँच लघुसंसर्ग हैं ये नव प्रकारके संसर्ग हैं इनको अधम के साथ न करे। गुरुसंसर्ग दो प्रकारका है गुरु और गुरुतर। उसमें भी याजनमें श्रौतयज्ञ और गार्ह्य कर्मका याजन गुरुतर संसर्ग है पौराणिक और तान्त्रिक देवीपूजादिका याजक गुरुसंसर्ग है। अध्यापनमें उपनयन-पूर्वक त नियमादि विशिष्ट वेदाध्यायन गुरुतर और व्याकरणाद्यध्ययन तथा उपनयनके बिना वेदाध्यायन गुरुसंसर्ग है। योनिसम्बन्धमें—पतित अन्य स्त्रीका गमन गुरुतर और पतित स्वस्त्रीगमन गुरुसंसर्ग है। सहभोजनसे—पतितान्नका पतिके साथ पात्रमें भोजन और पतितका उच्छिष्ट भोजन गुरुतर पतितस्पृष्टान्नादि भोजन गुरुसंसर्ग है। गुरुतर याजनादि सम्बन्ध महापातकीके साथ एकबार ज्ञानपूर्वक करे तत्तुल्य पापभाक् हो जाता है, अज्ञानतः दो बार करनेसे तत्तुल्य होता है। मूलापापकर्ताको जो प्रायश्चित्त है उसको पादन्यून करके संसर्गीको प्रायश्चित्त विहित है। गुरु याजनादि सम्बन्ध ज्ञानतः करै तो एकवर्षमें तत्तुल्य होता है और अज्ञानतः दो वर्षमें तत्तुल्य होता है मूलपापकर्ताको जो प्रायश्चित्त है उसीको पादन्यून करके संसर्गी करे। यदि दो तीन चार दिन महीना सम्पर्क किया हो संवत्सर प्रायश्चित्तको उसी क्रमसे न्यून करके कल्पना करे। मूलपापकर्ताके प्रथम संसर्गीका प्रायश्चित्त पादन्यून होता है और उसका संसर्गी जो द्वितीय है उसको मूलपापकर्ताका अर्द्ध और उसका संसर्गी जो तृतीय है उसको पादमात्र प्रायश्चित्त है। चतुर्थ संसर्गीको कलिमें प्रायश्चित्त नहीं है। द्वितीय संसर्गीको द्विगुण कालसे और तृतीय संसर्गीको चतुर्गुणित कालसे पातित्य भी होता है। ब्राह्मणसे बलात्कारसे भुक्त स्त्रीको प्रजापात्य, दोनोंकी सम्मतिसे हो तो षाण्मासिक, अभ्यासमें अब्द, गर्भोत्पत्तिसे प्रसवोत्तर द्विवार्षिक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। अज्ञानतः ब्राह्मणके सकृद्गमनसे गर्भोत्पत्तिमें हो पराक, क्षत्रियसे सकृद्गमनमें गर्भोत्पत्तिमें चान्द्रायण, वैश्यसे वैसा होनेसे षडब्द, शूद्रसे गर्भ रहने पर स्त्रीका त्याग है। [१४६] शूद्र यदि अपनेको ब्राह्मण कहे और यज्ञोपवीत धारण करे, क्षत्रिय तथा वैश्य भी यदि अपनेको ब्राह्मण कहें, किसी विद्वान् ब्राह्मण जातिको एवं विद्यादिसे उत्कृष्ट होते हुए यह कहना कि यह विद्वान् नहीं है ब्राह्मण नहीं है इत्यादि, निर्दोष पुरुषको राजाके आगे सदोष कहना, गुरु और पिताका राजसक्षम मिथ्या व्यवहार, वेदाङ्गके विना अन्य शास्त्राध्ययनसे वेदविस्मरण, देवनिन्दा, ब्राह्मणातिरिक्त मित्रवध. अन्त्यजान्नभक्षण, लशुनादि भक्षण, ब्राह्मणके निक्षेप [धरोहर] का हरण, नर-अश्व-रजत-भूमि-वज्र-मणिहरण, मैं इसको न खाऊँगा ऐसा संकल्प करके पुनः उसका भोजन, सपिण्डा-पितृभगनी, मातृभगनी, ब्राह्मण कुमारी, अन्त्यजा, सवर्णामित्रस्त्री, असवर्णपुत्रस्त्री, और सेतर पुत्रस्त्री, असवर्णपितृभार्या, पितृव्यभार्या, मातुलभार्या, मातामहभार्या, श्वसुरभार्या, नृपभार्या, श्रोत्रियभार्या, ऋत्विग्भार्या, उपध्यायभार्या, पुरोहितभार्या, भगिनी, सखी, सगोत्रा, उत्तमवर्णा, शरणागता, प्रव्रजिता, निक्षिप्ता. असवर्णसुता, शिष्यस्त्री, आचार्यभार्या, भ्रातृजाया, धात्री, वर्णोत्तमसाध्वी और आचार्यतनयागमन, यह गर्भ-पुरुष या स्त्री है ऐसा विकाश जिसका न हुआ हो ऐसे गर्भका वध, यागस्थक्षत्रिय और वैश्यवध ब्राह्मणातिरिक्त अत्रिगोत्रा रजस्वला एवं गर्भिणीवध, साक्ष्यमें अनृतभाषण, तथा ब्राह्मणातिरिक्त शरणागतवध अनुपातक है। ज्ञानपूर्वक अगम्यागमनातिरिक्त अनुपातकमें द्वादशवार्षिक और अज्ञानतः षड्वार्षिक प्रायश्चित है। ज्ञानतः अगम्यागमनमें मरण, अशक्तिमें चतुर्विंशति वार्षिक, अभ्यासमें भी एक ही प्रायश्चित्त है। [१४७] क्षत्रियागमनमें त्रैवार्षिक, वैश्यागमनमें वार्षिक, शूद्रागमनमें षाण्मासिक, अनुपभुक्ता-क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रागमनमें द्विगुण प्रायश्चित्त है। व्यभिचारिणी ब्राह्मण्यादिगमनमें त्रिरात्र उपवास और कुछ दान है। व्यभिचारिणीके साथ अत्यन्ताभ्यास और गर्भोत्पत्तिमें पातित्य है। रजकादि स्त्रीगमनमें अज्ञानात्सकृद्गमन में प्राजापत्य ज्ञानतः चान्द्रायण है। द्विस्त्रिर्गमनाभ्यासमें षाण्मासिक है, गर्भोत्पत्तिमें नवाब्द है। सकृत् विधवागमनमें प्राजापत्य, अभ्यासमें और गर्भधारणमें द्वादशाब्द, है गर्भधारण में पुरुषको पातित्य है और विधवाका त्याग है। अज्ञानसे स्वकृत् कनिष्टभ्रातृभार्यागमनमें प्राजापत्य और सान्तपन है अभ्यासमें पातित्य है। दासीगमन, वेश्यागमनबौद्धस्त्रीगमन, पतितस्त्रीगमनमें सकृद्गमनमें यावक, मासमें प्राजापत्य, षण्मासमें चान्द्रायण, वर्षमें पातित्य है, गर्भोत्पत्तिमें अप्रायश्चित्त है। अज्ञानतः अन्त्यजान्न और म्लेच्छान्न भक्षण यदि ४८ वार किया हो तो और ज्ञानतः यदि २४ वार किया हो तो वह अनुपातक है अज्ञानतः द्वादशवार्षिक तथा ज्ञानतः चतुर्विंशतिवार्षिकव्रत करना चाहिये। ज्ञानसे भोजनमें प्रायश्चित्त करने पर भी व्यवहार्य नहीं होता है। मिताक्षराकारके मतमें व्यवहार्य होता है परन्तु पापक्षय नहीं होता है। अज्ञानतः चाण्डाली गर्भोत्पादन अनुपातक है वह तत्सम होजाता है वहाँ भी चतुर्विंशतिवार्षिक प्रायश्चित्त है और प्रायश्चित्त करने भी अव्यवहार्य है। अज्ञानतः अनुपातकप्रकरणोक्त व्यभिचारिणी पंचाधिकपुरुषगामिनी स्त्रियोंके गमनमें चान्द्रायण और ज्ञानतः गमनमें चान्द्रायणद्वय है चान्द्रायणमें ८ गोदान होते हैं। [१४८] अनुपातकमें भी महापातकवत् सशिखवपनादि सब कृत्य होते हैं। ज्ञानपूर्वक ब्राह्मण या क्षत्रिय यदि क्षत्रियवध करे तो त्रैवार्षिकव्रत, वैश्य द्विगुण, शूद्र त्रिगुण करे। अज्ञानतः अर्द्ध प्रायश्चित्त होता है। वैर दूरकरनेकी अभिलाषासे क्षत्रियवध करने वालेको १००० गोदान प्रायश्चित्त करना चाहिए। ज्ञानतः वैश्यवधमें द्विजको सार्द्ध वार्षिक और अज्ञानतः तदर्द्ध करना चाहिए। शूद्रको वैश्यवधमें ज्ञानतः त्रैवार्षिक तथा अज्ञानतः सार्द्ध वार्षिक करना चाहिये। ब्राह्मण और क्षत्रिय यदि यागस्थ क्षत्रियका वध करे तो उनको ब्रह्महत्याव्रत करना चाहिए। यागस्थ क्षत्रियका वैश्य यदि वधकरे तो द्विगुण तथा शूद्र त्रिगुण प्रायश्चित्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करे। नृपति क्षत्रियवधमें ब्रह्महत्याका द्विगुणव्रत क्षत्रिय और वैश्यका है। वैश्यको द्विगुण और शूद्रको जन्महत्याका त्रिगुण है। अन्त्यज और म्लेच्छ आदिका ज्ञानपूर्वक वधमें चान्द्रायण तथा अज्ञानतः पराकव्रत है। ज्ञानतः ब्राह्मणीवधमें षड्वार्षिक, अज्ञानतः त्रैवार्षिक, क्षत्रियावधमें कामतः त्रैवार्षिक अकामतः तदर्ध, वैश्यावधमें और शूद्रावधमें कामतः वार्षिक और अकामतः तदर्द्ध, अहिताग्निस्त्रीके वधमें और गर्भिणी, रजस्वला, अत्रिगोत्राके वधमें ब्रह्महत्याव्रत यागस्थक्षत्रिया तथा वैश्यावधमें षड्वार्षिक व्रत है। पूर्वोक्त प्रायश्चित्त उत्तमवर्ण और समवर्णके वधमें करना चाहिये। उत्तमवर्णस्त्रीका वध अधमवर्ण वाला करे तो उसको द्विगुण प्रायश्चित्त करना चाहिए। ज्ञानतः सकृत् सवर्णसे व्यभिचरित ब्राह्मणवधमें शूद्रहत्याव्रत और अज्ञानसे अज्ञानकृत शूद्रवध प्रायश्चित्त होता है। ज्ञानतः क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा सकृत् व्यभिचारिता हों तो उनके वधमें ज्ञानतः शूद्रहत्याव्रतका और अज्ञानसे अज्ञानतः शूद्रहत्याव्रतके प्रायश्चित्तकी क्रमशः पाद पादकी हानिकरके प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनेकवार सवर्णसे व्यभिचरित और अधमवर्णसे व्यभिचरित स्त्रीके वधमें छाग, सकार्मुकधनु मेष क्रमसे ब्राह्मणादिवधमें देवे अकामतः। कामतः में द्विगुण दान है। चाण्डालादि व्यभिचारितस्त्रीके वधमें प्रायश्चित्ताभाव है। क्षत्रिय और वैश्यसे व्यभिचरित ब्राह्मणीवध समवर्ण स्त्रीवध प्रायश्चित्तकी पादहानि करे। स्त्रीवध करनेवाला प्रायश्चित्त करने पर भी व्यवहार्य नहीं होता है। पुंस्त्वेन ज्ञातगर्भमें पुंवध प्रायश्चित्त, स्त्रीत्वेन ज्ञानवधमें स्त्रीवधप्रायश्चित्त, अविज्ञातगर्भवधमे पुंवध प्रायश्चित होता है। यदि ज्ञानसे वध हुआ तो ज्ञानकृत पुरुष या स्त्रीवधमें जो प्रायश्चित्त होता है। वह और अज्ञानतः वध हुवा हो तो अज्ञानसे पुरुष या स्त्रीके वधमें जो प्रायश्चित्त होता है वह करना चाहिये। ज्ञानकृत ब्राह्मणगर्भवधमें द्वादशवार्षिक, क्षत्रियवधमें त्रैवार्षिक, वैश्यगर्भवधमें सार्द्धवार्षिक और शूद्र गर्भवधमें नवमासिक तथा अज्ञानतः तदर्ध प्रायश्चित्त होता है।

—दौलतरामगौड।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(तृतीय-स्कन्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६६ पुष्पलता

(चतुर्थ-स्कन्ध)

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा संमानित विद्वान्—आचार्य-श्रीदौलतरामगौड,
वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(भागवतके पठनका नियम)

श्रीमद्भागवतं यस्तु पठते कृष्णसन्निधौ। कुलकोटिशतैर्युक्तः क्रीडते योगिभिः सदा ॥

(भागवतशास्त्रके सान्निध्यमें कृष्णका अनमोल निवास)

'यत्र भागवतं शास्त्रं यत्र जागरणं हरेः। शालिग्रामशिला यत्र तत्र गच्छेद्धरिः स्वयम् ॥

(कलियुगमें भागवत पुराणकी कथा अत्यावश्यक)

नैव भागवतं यत्र पुराणं गीयते कलौ । अन्धकूपेषु क्षिप्यन्ते ज्वलितेषु हुताशने ॥

(भागवतकी निन्दासे यमदूतोंका ताड़न)

द्विषन्ति ये भागवतं न कुर्वन्ति दिनं हरे । यमदूतैश्च नीयन्ते तथा भूमौ भवन्ति ते ॥

(बैसाखमासमें भागवत श्रवणसे ब्रह्मत्वकी प्राप्ति)

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्। वैशाखे च पठन्मर्त्यो ब्रह्मत्वमुपपद्यते ॥ यो वै भागवतं शास्त्रं शृणोत्येतद्दिनत्रये। न पापैर्लिप्यते क्वापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ देवत्वं मनुजैः प्राप्तं कैश्चित्संसिद्धमेव च। कैश्चित्प्राप्तो ब्रह्मभावो दिनत्रयनिषेवणात् ॥

(सब पुराणोंमें भागवतका ही श्रेष्ठत्व कथन)

पुराणं वैष्णवं मात्स्यं कौर्म्यं भागवतं तथा। आदित्यं गारुडं स्कान्दं मार्कण्डेयतथाष्टमम् ॥ ब्रह्मब्रह्माण्डलिङ्गं च ब्रह्मवैवर्तमेव च। भविष्योत्तरमाग्नेयं पाद्मं वामनमेव च ॥ सप्तदशं तु वायव्यमिदमष्टादशं स्मृतम् । सर्वेष्वपि पुराणेषु श्रेष्ठं भागवतं स्मृतम् ॥

(शरीरके अनेकावस्थामें पुराण श्रवणसे स्वमनोरथ सिद्धिका लाभ)

मातृहा मद्यपी कुष्ठी स्तेयी विश्वासघातक । ते सर्वे प्रतिमुच्यन्ते पुराणश्रवणात्कलौ ॥ पुराणश्रवणं कार्यं बालवृद्धातुरैरपि । निष्कामैश्च सकामैश्च उत्तमाधममध्यमैः ॥ पुराणश्रवणं कार्यं स्त्रीशूद्रैः पतितैरपि । तत्फलमवाप्नोति यथा मनसि सुनिश्चितम् ॥ अकामेन सकामेन आस्थया वाप्यनास्थया । स्पर्धया कपटेनापि निस्पृहेन स्पृहावता ॥ पुराणश्रवणेनैव प्राप्नुवन्ति मनोरथान् ।

(पुस्तकादि प्रतिग्रह प्रायश्चित्तम्)

शास्त्रं पुराणं काव्यञ्च स्मृतिं नाटकमेव वा । दद्याद्वै पुण्यकालेषु व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ द्विजायाऽध्यात्मविदुषे फलकं वाह्यलेखकम् । सप्तजन्मसु विद्वान् स्यात्सर्वशास्त्रार्थ-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तत्त्वावत् ॥ पुराणं धर्मशास्त्रञ्च स्मृतिं काव्यं सनाटकम् । पुण्यकालेषु संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ यो दद्याद् विप्रवर्याय स भवेत् सर्वशास्त्रवित् । द्विजोयः प्रतिगृह्णाति द्रव्यलोभात्सरस्वतीम् ॥ सोऽपि जन्मान्तरे राजन् ! विद्यावान् संप्रजायते । प्रतिग्रहधनाढ्यं तु विक्रयित्वाऽऽत्मजीवनम् ॥ कुर्याद्यदि स पापात्मा प्राजापत्यत्रयं चरेत् । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्यं पिबेच्छुचिः ॥ अन्यथा दोषमाप्नोति व्रात्यो भवति भूतले ।

(श्रीशुकोक्त भागवतके पाठसे भगवान्को वशीकरण करना)

'पूजानिच्छिद्रतावाप्त्यै विष्णोर्भागवतं मुने । पुराणं श्रीशुकेनोक्तं गङ्गायां यत्परीक्षिते ॥ तन्नित्यं वाचयेत्किञ्चित्तेन प्रीतो जनार्दनः । द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते नात्र संशयः ॥ श्रीकृष्णपूजासंपूर्तिर्विना भागवतं न हि । विनापि श्रीहरेः पूजां श्रीभागवतपाठतः ॥ साङ्गपूजाफलं नित्यं जायते नात्र संशयः । कृष्णस्य वाङ्मयी मूर्तिः श्रीमद्भागवते मुने ॥ पाठोऽस्य पूजनं साङ्गं देवदेवस्य शार्ङ्गिणः । 'पूजासमाप्तिर्नैव स्याच्छ्रीमद्भागवतीं कथाम् । विना भार्गव विप्रेन्द्र श्रीगोपालपतेर्विभोः । न्यूनापि पूर्तिमाप्नोतिः श्रीमद्भागवतध्वनेः । पूर्णापि पूजा हीना स्याद्विना पारीक्षितीं कथाम् ॥

(भगवान् श्रीकृष्णके आठ पटरानियोंके उदरसे उत्पन्न हुए पुत्रोंके नाम)

(१) प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चन्द्रचारु, विचारु और चारु ये दसपुत्र रुक्मिणी पटरानीसे पैदा हुए ।
(२) साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित, विजय चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु ये दसपुत्र जाम्बवती पटरानीसे उत्पन्न हुए ।
(३) भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु, श्रीभानु, और प्रतिभानु ये दश पुत्र सत्यभामासे उत्पन्न हुए ।
(४) श्रुत कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक ये दस पुत्र कालिन्दीसे हुए ।
(५) वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु और कुन्ति ये दस पुत्र नाग्नजितीसे हुए ।
(६) वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन अन्नाद, महाश, पवन, वह्नि और क्षुधि ये दस पुत्र मित्रविन्दासे हुए ।
(७) संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक ये भद्रासे उत्पन्न हुए ।
(८) प्रघोष, गोत्रवान, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित् ये दश पुत्र लक्ष्मणासे पैदा हुए । —दोलतरामगौड,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ प्रथमोऽध्यायः ❋

(मनुकी कन्याओंके वंशका वर्णन)

मैत्रेयजीने कहा—प्रजापति मनुने अपनी शतरूपा नामकी भार्यामें आकूति, देवहूति तथा प्रसूति नामसे प्रसिद्ध तीन कन्याएँ तथा दो पुत्र उत्पन्न किये❋ ॥ १ ॥ राजा मनुने शतरूपासे अनुमोदित होकर भाईसे युक्त अपनी कन्या आकूतिको पुत्रिकाधर्मका आश्रयण लेकर प्रजापति रुचिको देदी ॥ २ ॥ तब परम तेजस्वी उन प्रजापति भगवान् रुचिने उस आकूतिमें भगवान् के ध्यानसे एक स्त्री पुरुषका जोड़ा उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ जोड़ेमें जो पुरुष था, वह साक्षात् यज्ञके स्वरूपको धारण करनेवाले विष्णु थे। और जो स्त्री थी वह भगवान्से कभी पृथक् न होने वाली लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई दक्षिणा थी ॥ ४ ॥ तब स्वायं भुव मनु अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपनी कन्याके उस कान्तिमान् पुत्रको अपने घर लाये। तथा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥ आकूतिं रुचये प्रदादपि भ्रातृमतीं नृपः ॥ पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥ प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥ यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ॥ या स्त्री सा दक्षिणा भुतेरंशभूताऽनपायिनी ॥४॥ आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् ॥ स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥ तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ॥ तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥ तोषः प्रतोष सन्तोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः ॥ इध्मः कविर्विभु स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥ ७ ॥ तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायंभुवान्तरे ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ९ ॥ देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ॥ तत्संबन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो

प्रजापति रुचिने दक्षिणाको ले लिया ॥ ५ ॥ यज्ञोंके पति भगवान् विष्णुने पतिकी इच्छा करनेवाली उसके साथ विवाह किया सन्तोषको प्राप्त हुई उस दक्षिणामें सन्तुष्ट होकर भगवान्ने बारह पुत्र उत्पन्न किये ॥६॥ उनके ये नाम थे—तोष, संतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न सुदेव, रोचन ॥७॥ वे ही स्वायम्भुव मन्वन्तरसे तुषिता नामके देवता थे, मरीच प्रमुख सप्तर्षी तथा मनुदौहित्र यज्ञ इन्द्र थे ॥ ८ ॥ मनुके अत्यन्त पराक्रमी प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे उनने पुत्र, पौत्र तथा नातियोंके वंशसे वह मन्वन्तर व्याप्त हुआ ॥ ९ ॥ हे तात, मनुने अपनी कन्या देवहूति प्रजापति कर्दमको दे दी। आपने उसके सम्बन्धीको मुझसे प्रायः सुन ही लिया है ॥१०॥ ब्रह्माके पुत्र दक्षको भगवान् मनुने 'प्रसूति'

❋दृष्टान्त—अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम्। यस्यां यो जायते पुत्रः मे पुत्रो भविष्यति ॥ इस कन्या में जो प्रथम पुत्र होगा वह हमारा होगा ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दे दी । जिसके द्वारा की गई महती सृष्टि तीनों लोकोंमें बहुत दूरतक फैली हुई है ॥ ११ ॥ जो मैंने कर्दमकी कन्याएँ नौ ब्रह्मर्षियोंकी पत्नी कही है, उनकी सन्ततिकी सन्ततिका वंश विस्तार मैं कहता हूँ आप सुनिये ॥ १२ ॥ मरीचि ऋषिकी भार्या कर्दमकी कन्या कलाने कश्यप, तथा पूर्णिमान्को उत्पन्न किया । जिनके वंश से सारा संसार पूर्ण हो गया ॥ १३ ॥ हे परन्तप, पूर्णिमाने विरज तथा विश्वग नामके दो पुत्र एवं देवकुल्या नामकी एक कन्या उत्पन्न की, जो भगवान्के चरण धोनेसे जन्मान्तरमें आकाशगङ्गा हुई ॥ १४ ॥ अत्रि ऋषिकी पत्नी अनसूयाने विष्णु, शिव तथा ब्रह्माके अंशसे होनेवाले दत्त, दुर्वासा तथा सोमनामके अत्यन्त यशस्वी तीन पुत्र पैदा किये ॥ १५ ॥ विदुरजीने कहा—कि हे गुरो, इस संसारकी रक्षा उत्पत्ति तथा प्रलय करनेवाले देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा आदि अत्रि के घर क्या करनेकी इच्छासे गये ? यह सब मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी ने कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अत्रिको जब

मम ॥ १० ॥ ददाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः ॥ प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥ ११ ॥ याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ॥ तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ १२ ॥ पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ॥ कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥ पूर्णिमासूत विरजं विश्वगं च परन्तप ॥ देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥ १४ ॥ अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ॥ दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान् ॥ १५ ॥ विदुर उवाच ॥ अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ किञ्चिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः । सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥ तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ॥ वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥ १८ ॥ प्राणायामेन संयम्य मनोः वर्षशतं मुनिः ॥ अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥ शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ॥ प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥२०॥ तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाग्निना । निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥ २१ ॥ अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥२२॥ तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ॥ उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्ष-

ब्रह्माने सृष्टि करनेकी आज्ञा दी तब वे अपनी स्त्रीको साथ लेकर ऋक्ष नामके कुलपर्वत पर पहुँचे तथा तपस्या करने लगे ॥ १७ ॥ उस पर्वतके ऊपर पलाश तथा अशोकके वृक्षोंमें पुष्पोंके गुच्छे लगे हुए थे तथा निर्विन्ध्या नदीके झर-झर गिर रहे जलसे चारों तरफ शब्द हो रहा था ॥ १८ ॥ उस पर्वतके ऊपर अत्रिमुनिने प्राणायामसे अपने मनको निश्चय बनाया और सुख-दुःखसे रहित हो वायु पी करके सौ वर्षों तक एक पाँवसे खड़े रहे ॥ १९ ॥ तथा यह चिन्ता करते रहे कि जो भी कोई इस सँसारका ईश्वर हो, उसकी हम शरणमें हैं । वह हमें अपने समान ही पुत्र दे ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव प्राणायामरूपी काष्ठसे जलाई गई, मुनिके मस्तकसे निकली हुई अग्निसे तीनों लोकोंको सन्तप्त देखकर ॥ २१ ॥ अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा सर्पों द्वारा विस्तारित हो रहे यशवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों अत्रिमुनिके आश्रमपर पहुँचे ॥२२॥ भगवान्के प्रादुर्भावकी सन्निधिसे मुनि प्रसन्नचित्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए। एक पाँवसे बड़े उत्कर्षके साथ स्थित उन्होंने श्रेष्ठ देवताओंको देखा ॥ २३ ॥ त्रिशूल, कमण्डलु तथा चक्रको धारण करके वृष, हँस तथा गरुड़पर बैठे हुए अपने अप चिह्नोंसे चिह्नित उनको पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथमें पुष्प आदि लेकर उनकी पूजा की ॥ २४ ॥ कृपापूर्वक अवलोकन तथा मुसकुरा रहे मुखसे वे तीनों प्रसन्न प्रतीत हो रहे थे। उनकी कान्तिसे प्रतिहत भगवान् अत्रिमुनि अपने नेत्रोंको बन्द करके अपने चित्तको उन्हींमें लगाते हुए हाथ जोड़कर सर्वलोकश्रेष्ठ उनकी गम्भीरार्थ युक्त मधुर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५, २६ ॥ अत्रिजीने कहा—संसारके जन्म, स्थिति तथा प्रलयके निमित्त विभक्त हो रहे मायाके गुणोंसे प्रत्येक कल्पमें विभागपूर्वक शरीर ग्रहण करनेवाले आपलोग ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर हैं, आपलोगोंको मैं प्रणाम करता हूँ। परन्तु आप तीनोंमेंसे मैंने एकहीको बुलाया है। कहिये, वह आपलोगोंमें कौन है ॥२७॥

भान् ॥ २३ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ॥ वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैः स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥ २४ ॥ कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् ॥ तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥ चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः ॥ श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ॥ ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥ २७ ॥ एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ॥ अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरा ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ॥ प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ॥ सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥ अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः ॥ भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥ ३१ ॥ एवं कामवरं दत्वा

मैंने एकही भगवान्‌को नानाप्रकारके उपचारोंसे पुत्रके लिये चित्तमें धारण किया था, फिर मनुष्योंके मनके भी अगोचर आप तीनोंही यहाँ क्यों आये? प्रसन्न होइये, मुझसे कहिये, क्योंकि मुझे इस विषयमें बड़ा विस्मय है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे प्रभो, इसप्रकार अत्रिके वचन सुनकर वे तीनों देवश्रेष्ठ हँसकर उस ऋषिसे मधुरवाणीमें कहने लगे ॥ २९ ॥ देवताओंने कहा—हे ब्रह्मन्, जैसा आपने सङ्कल्प किया था वैसाही होना चाहिए, अन्यथा नहीं, क्योंकि आपका सङ्कल्प सत्य है। इसलिये जिसका आप ध्यान करते हैं, वही हम तीनों हैं यानी तत्त्वतः हम तीनोंमें नहीं है ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन्, इससे हमलोगोंके अंशसे उत्पन्न हुए आपके संसारमें प्रसिद्ध पुत्र होंगे और वे आपका यश बढ़ावेंगे। आपका कल्याण हो ॥ ३१ ॥ इसप्रकार वे देवश्रेष्ठ उन्हें मनोवाञ्छित वर देकर उन पति-पत्नी दोनोंसे अच्छी तरह पूजित हुए और उनके देखते-देखते वहाँ से चल दिये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर ब्रह्माके

*दृष्टान्त—ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ॐकार रूपसे उपासना करने से वे तीनों ही आज मुनिके घर पुत्र रूप से पैदा हुए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अंशसे सोम, तथा विष्णुके अंशसे योग जाननेवाले दत्त और शंकरके अंशसे दुर्वासा हुए। अब अङ्गिराकी सन्तान सुनिये ॥ ३३ ॥ अङ्गिराकी श्रद्धा नामकी पत्नीसे सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति नामकी चार कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥ ३४ ॥ अङ्गिराके भगवान् उतथ्य तथा ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति नामके दो पुत्र और थे, जो स्वारोचिष मन्वन्तरमें प्रसिद्ध थे ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यने हविर्भू नामकी पत्नीमें अगस्त्यको उत्पन्न किया। वे दूसरे जन्ममें जाठराग्नि हुए तथा अत्यन्त प्रतापी महातपी विश्रवा भी पुलस्त्यसे हुए ॥ ३६ ॥ विश्रवासे इडविडामें यक्षोंके पति कुबेर हुए तथा केशनिमें रावण, कुम्भकरण और विभीषण हुए ॥ ३७ ॥ हे महीमते, पुलहकी गतिनामकी सती पत्नीने कर्मश्रेष्ठ वरीयान् तथा सहिष्णु नामके तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३८ ॥ क्रतुकी क्रियानामकी पत्नीने ब्रह्मतेज से प्रकाशित हो रहे साठ हजार बालखिल्य नामके ऋषियों को उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥ हे परन्तप, वसिष्ठका ऊर्जा नामकी पत्नी में

प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ॥ सभाजितास्तयोः सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥ ३२ ॥ सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ॥ दुर्वासाः शङ्करस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥ ३३ ॥ श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः ॥ सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥३४॥ तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥३५॥ पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ॥ सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥ ३६ ॥ तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः ॥ ३७ ॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ॥ कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ३८ ॥ क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ॥ ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३९ ॥ ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ॥ चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥४०॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ॥ उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥ चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ॥ दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥ ४२ ॥ भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ॥ धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥ ४३ ॥ आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ॥ ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयो

चित्रकेतु प्रधान सात पुत्र उत्पन्न हुए और वे निर्मल सप्तर्षी हो गये ॥ ४० ॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरज, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान और द्युमान्—ये सात ऊर्जाके पुत्र थे तथा अन्य शक्यादिक दूसरी स्त्रीके थे ॥ ४१ ॥ अथर्वाकी चित्ति नामकी स्त्रीमें धृतव्रत नामका पुत्र हुआ तथा दध्यश्च और अश्वशिग भी हुए। अब भृगुका वंश सुनिये ॥ ४२ ॥ परम भाग्यशाली भृगुजीने ख्याति नामकी पत्नीमें धाता और विधाता नामके दो पुत्रों और भगवान्में तत्पर रहने वाली लक्ष्मीको भी उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ तब मेरुने आयति तथा नियति नामकी अपनी दोनों कन्याएँ धाता और विधाताको दे दीं, जिनसे उनके मृकण्ड तथा प्राण नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय हुए तथा प्राणके वेदशिरा मुनि हुए भृगुके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कवि पुत्र हुए और कविके पुत्र हुए शुक्राचार्य ॥ ४५ ॥ हे विदुरजी, इन सब मुनियोंने अपनी सन्तानोंसे सारे संसारकी उत्पत्तिकी है । मैंने आपसे यह कर्दमकी कन्याओंके वंशका विस्तार कह सुनाया ॥ ४६ ॥ इसके श्रद्धापूर्वक सुननेसे शीघ्र ही समस्त पाप दूर हो जाते हैं । ब्रह्माके पुत्र दक्षने मनुकी प्रसूति नामकी कन्याके साथ विवाह किया ॥ ४७ ॥ और उसमें सुन्दर नेत्रोंवाली सोलह कन्याएँ उत्पन्न कीं । जिनमेंसे धर्मको तेरह कन्याएँ दीं और अग्निको एक ॥ ४८ ॥ तथा सम्मिलित पितरोंको एक दी एवं संसारसे निवृत करनेवाले भगवान् शंकरको एक दे दी । श्रद्धा, मैत्री, दया, तुष्टि, शान्ति, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री तथा मूर्ति—ये तेरह धर्मकी पत्नियाँ थीं । श्रद्धाने शुभ नामके पुत्रको उत्पन्न किया, मैत्रीने प्रसादको और दयाने अभयको उत्पन्न किया ॥ ४९, ५० ॥ शान्तिने सुखको, तुष्टिने मुदको तथा पुष्टिने स्मयनाम के पुत्रको उत्पन्न किया । क्रियाने योगको, उन्नतिने दर्पको तथा बुद्धिने

मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ॥ कविश्च भार्गवोयस्य भगवानुशना सुतः ॥ ४५ । त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन् ॥
एष कर्दमदौहित्रसन्तानः कथितस्तव शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥ ४६ ॥ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥ ४७ ॥
तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥ त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ ४८ ॥ पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥
श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ ४९ ॥ बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥ श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं
दया ॥ ५० ॥ शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥ योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥ ५१ ॥ मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं
ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥ मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ५२ ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ॥ मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः
सरितोऽद्रयः ॥ ५३ ॥ दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य
आसीत्परममङ्गलम् ॥ देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥५५॥ देवा ऊचुः ॥ यो मायया विरचितंनिजयात्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ॥

अर्थ नामके पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ मेधाने स्मृतिको, तितिक्षाने क्षेमको तथा ह्रीने प्रश्रय नामके पुत्रको उत्पन्न किया । और समस्त गुणोंको उत्पन्न करनेवाली मूर्तिने नर तथा नारायण नामके दो ऋषियों को उत्पन्न किया ॥ ५२ ॥ जिनके जन्मके समय समस्त संसार अत्यन्त सुखको प्राप्त हुआ । साधुओंके मन, दिशाएँ, वायु, नदियाँ तथा पर्वत प्रसन्न हो गये ॥ ५३ ॥ स्वर्गमें तूरी बाजे बजने लगे पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी, मुनिलोग प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे और गन्धर्व तथा किन्नर गान करने लगे ॥ ५४ ॥ अप्सराएँ नाच करने लगीं । उस समय अत्यन्त मङ्गल हो रहा था । ब्रह्मा आदि समस्त देवता स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ५५ ॥ देवताओंने कहा—जिन भगवान्ने आकाशमें गन्धर्व नगरकी तरह, जिस, आत्मामें अपनी मायासे यह संसार रचा है उस आत्माके प्रकाशनके लिये आज इस ऋषि मूर्तिरूपसे धर्मके घरमें उसे प्रकट किया, उन परमपुरुष भगवानको नमस्कार है ॥ ५६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शास्त्रसे विचारने योग्य तत्त्ववाले वे ही भगवान् संसारके उपद्रवोंको शान्त करनेके लिये सत्त्वगुणसे पैदा किये हुए हम देवताओंको अत्यन्त करुणायुक्त नेत्रोंसे देखें जो नेत्र लक्ष्मीके निवासभूत निर्मल कमलको भी तिरस्कृत करते हैं ॥ ५७ ॥ हे तात, तब भगवान् नरनारायणने उन्हें कृपापूर्ण दृष्टिसे देखा। तदनन्तर उन देवताओंने उनकी स्तुति तथा पूजा की। उसके बाद वे दोनों गन्धमादनको चले गये ॥ ५८ ॥ वे ही दोनों भगवान्के अंशभूत श्रीकृष्ण तथा अर्जुन यदुकुल तथा कुरुकुलमें जन्म लेकर पृथ्वीका भार हल्का करनेके लिये यहाँपर आये हुए हैं ॥ ५९ ॥ अग्निकी स्वाहानामकी भार्याने अग्निका अभिमान् करनेवाले तथा हवन किये हुएका भोजन करनेवाले पावक, पवमान तथा शुचि नामके तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६० ॥ उन तीनोंसे पैंतालीस अग्नियाँ हुईं। वे ही पिता तथा पितामहके साथ उनचास हो गईं ॥ ६१ ॥ वैदिककर्म यज्ञादिकमें वेदपाठी लोग जिनकेन नामसे अग्नि देवताकी

एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाऽद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५६ ॥ सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः । दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविन्दम् । ५७ ॥ एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ ॥ लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥ ५८ ॥ ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ॥ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥ ५९ ॥ स्वाहाऽभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ॥ पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥ ६० ॥ तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ त एवैकोनपञ्चाशत्साकं पितृपितामहैः ॥ ६१ ॥ वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥ ६२ ॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ॥ साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥ ६३ ॥ तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ॥ उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ६४ ॥ भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ॥ आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६५ ॥ पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ॥ अप्रौढैवात्मनाऽऽत्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इष्टिकाएँ किया करते हैं, वे ही ये अग्नियाँ हैं, न कि लौकिक। इसलिये ये उनचास कौन हैं? इसकी शंका करना व्यर्थ है ॥ ६२ ॥ इनकी अग्निष्वात्त, बर्हिषद, सौम्य, पितर, आज्यप, साग्नि, अनग्नि—ये संज्ञाएँ हैं। इनकी दक्षकी कन्या स्वधा पत्नी हुई थी ॥ ६३ ॥ उस स्वधाने उनसे वयुना तथा धारिणी नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे दोनों ज्ञान तथा विज्ञानके पार जानेवाली ब्रह्मवादिनी हुईं ॥ ६४ ॥ शंकरकी पत्नी सती गुण तथा शीलसे अपने सदृश पतिदेव शंकरका अनुसरण करती हुई भी पुत्र प्राप्त न कर सकी ॥ ६५ ॥ निरपराध अपने पति शंकरके विषयमें अपने पिताके प्रतिकूल होनेपर बालिकाही उसने क्रोधसे योगका आश्रयण लेकर स्वयं अपना शरीर छोड़ दिया ॥ ६६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रथम अध्यायका सार—हे महामते, यज्ञ भगवान्‌ने दक्षिणामें बारह पुत्र उत्पन्न किये। वे स्वायम्भुव मन्वन्तरमें तुषिता नामक देवता और यज्ञ इन्द्र थे। देवहूतिकी नव कन्याएँ थीं जो ब्रह्मपुत्रोंकी पत्नियाँ थीं। उनकी सन्तानोंकी सन्तानसे सारा जगत् व्याप्त हो गया॥ दक्षकी भार्या प्रसूतिकी सोलह कन्याएँ थीं। जिनमें तेरहका विवाह धर्मके साथ हुआ। उनसे शुभ आदि तेरह पुत्र पैदा हुए। एकका अग्निके साथ विवाह हुआ था। स्वाहा नामक पत्नीमें अग्निके तीन पुत्र उत्पन्न हुए और उन तीनोंसे उनचास अग्नियाँ हो गईं। अग्निकी दूसरी पत्नी स्वधाने दो कन्याएँ पैदा कीं। दक्षने अपनी एक लड़की पितरोंको दे दी और एक भगवान् शङ्करकी भार्या सतीने अपने पिताके पतिसे नाराज होनेपर क्रोधके मारे अप्रौढ़ा अवस्थामें ही अपना शरीर छोड़ दिया।

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

[प्रजापतियोंके यज्ञमें शंकर तथा दक्षके विद्वेषमें हेतु]

विदुरजीने कहा—सदाचारियोंमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरसे कन्यावत्सल इस दक्षने अपनी कन्या सतीका अनादर करके द्वेष क्यों किया ? ॥ १ ॥ ❀ क्योंकि वे समस्त संसारके गुरु तथा बड़े देवाता हैं। उनका स्वरूप शान्त है, वे किसीसे वैर नहीं रखते तथा अपनी आत्मामें ही रमण करते हैं ऐसे महान् देवतासे कौन वैर करेगा ? ॥२॥ हे ब्रह्मन, यह जो श्वसुर और दामादका वैर है, सो हमसे कहिये, जिस वैरसे सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंको भी छोड़ दिया। ३ ॥ मैत्रेयजीने कहा—पहले प्रजापतियोंके यज्ञमें वसिष्ठादि ऋषि, सेवकोंके साथ

॥ विदुर उवाच ॥ भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥ १ ॥ ❀कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ॥ आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मञ्जामातुः श्वशुरस्य च ॥ विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती॥३॥ मैत्रेय उवाच ॥ पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः ॥ तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥४॥ तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वाऽर्कमिव रोचिषा ॥ भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥ ५ ॥ उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ॥ ऋते विरिञ्चं शर्वं च तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधुसत्कृतः ॥ अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥ प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा

समस्त देवता, मुनि तथा अग्नियाँ—ये सब एकत्रित हुए थे ॥४॥ बात बहुत पुरानी है, एक समय प्रजापतियोंके यज्ञ में प्रविष्ट होते दक्ष प्रजापतिको ऋषियोंने देखा। वे सूर्यके समान देदीप्यमान थे और अपने तेजसे उस सम्पूर्ण महती सभाको अधिकार रहितकर रहे थे ॥५॥ तब अग्नियोंके साथ वे सदस्य लोग उनकी कान्तिसे आक्षिप्तचित्त होकर अपने-अपने आसनसे उठकर खड़े हो गये। केवल शंकर और ब्रह्माजी नहीं उठे ॥६॥ सभापतियोंने भगवान् दक्षका अच्छी तरहसे स्वागत किया। तदनन्तर लोकोंके गुरु भगवान् ब्रह्माको प्रणाम करके दक्ष प्रजापति

❀ दृष्टान्त—श्रीशिवजी ने अपने श्वसुर श्री दक्षजी को देखकर अभ्युत्थान आदि न किया यह बड़े आश्चर्य की बात है उत्तर—बडी संपत्तिप्राप्त कर वे उन्मत्त हो महा पुरुषोंकी निन्दा करने सेदेव गणों ने श्री शंकर जी से प्रार्थना की महाराज, जैस भी हो इनका मद दूर की जिये। इनकी प्रार्थना स्वीकार कर उन्होंने उसका नाश ही कर दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनकी आज्ञासे बैठ गये ॥७॥ परन्तु अपने बैठनेके पहलेही बैठे हुए शंकरको देखकर उनके द्वारा अभ्युत्थान आदिसे आदर न पाते हुए उनसे सहा नहीं गया। वे अपनी भ्रुकुटि चढ़ाकर आँखोंसे जलाते हुएकी नाईं देखकर कहने लगे ॥८॥ हे ब्रह्मर्षियों तथा अग्निके सहित समस्त देवताओं, मैं साधुओंका आचरण बतलाता हूँ। अज्ञान तथा ईर्ष्यासे कुछ नहीं कहता। आपलोग मेरे उस वचनको सुनें ॥ ९ ॥ यह लोकपालोंके यशको नष्ट करनेवाला बड़ा निर्लज्ज है। सज्जनोंसे आचरित मार्गको उचित क्रियाशून्य इस मूर्खने दूषितकर दिया ॥ १० ॥ यह मेरे शिष्य भावको प्राप्त हुआ है, क्योंकि इसने सावित्रीके तुल्य मेरी कन्याके साथ ब्राह्मण तथा अग्निके समक्ष सज्जन पुरुषकी नाईं विवाह किया है ॥ ११ ॥ बन्दरके समान नेत्रवाले इसने हरिण बालकके समान नेत्रवाली मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके प्रत्युत्थान तथा प्रणामके योग्य मेरा वाणीसे भी सत्कार नहीं किया ॥ १२ ॥ सन्ध्यादि क्रियाओंसे रहित मर्यादाको नष्ट

नामृष्यत्तदनादृतः ॥ उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥८॥ श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ॥ साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥ ९ ॥ अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ॥ सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥ १० ॥ एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ॥ पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥ गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाप्यकृत नोचितम् ॥ १२ ॥ लुप्तक्रियायाशुचये मानिने भिन्नसेतवे ॥ अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ १३ ॥ प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ॥ अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥ १४ ॥ चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्न्रस्थिभूषणः ॥ शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ॥ पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥ १५ ॥ तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ॥ दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥ मैत्रेय उवाच ॥ विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ॥ दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥१७॥ अयं तु देवयजनं इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ॥ सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥ निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य

करनेवाले, अभिमानी और अपवित्र इसको इच्छा न रहने पर भी मैंने अपनी कन्या ऐसे दे दी, जैसे कि कोई लोभके कारण शूद्रको वेदलक्षणा वाणी दे देता है ॥ १३ ॥ यह भयानक श्मशानोंमें भूत तथा प्रेतोंसे युक्त हो बालोंको खोलकर उन्मत्तकी तरह कभी हँसता और कभी रोता हुआ घूमता-फिरता है ॥ १४ ॥ यह चिताकी भस्मसे स्नान करता है तथा प्रेतोंके मुण्डोंकी मालाएँ और मनुष्योंकी हड्डियोंके आभूषण पहनता है। इसका शिव ये नाममात्र है, वस्तुतः यह अकल्याणकारी है। यह मत्तके समान रहता है और मत्त मनुष्यही इसे प्रिय लगते हैं। केवल तामसी स्वभाववाले प्रमथ तथा भूतोंका यह पति है ॥ १५ ॥ मुझे अत्यन्त खेद है कि मैंने भूतोंके पति दुष्टचित्त तथा शौचाचारशून्य इसे ब्रह्माके कहनेसे अपनी साध्वी कन्या दे दी ॥ १६ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे महीपते, दक्षने अनुकूल बैठे हुए भी भगवान् शंकरकी इसप्रकार निन्दा की और क्रोधके कारण आचमनकर शाप दे दिया ॥१७॥ यह शंकर देवताओंके पूजनके समय इन्द्र तथा वामनादि देवताओंके साथ अपना भाग ग्रहण करे, क्योंकि यह देवताओंमें अधम है ॥ १८ ॥ हे विदुरजी, सदस्यमुख्योंके रोकनेपर भी वह दक्ष

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शंकरको शाप देकर क्रोधके कारण उस सभासे निकलकर अपने घर चले गये ॥ १९ ॥ तब उस शापको सुनकर शंकरके सेवकोमें मुख्य नन्दीश्वरके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उसने दक्षको कठोर शाप दे दिया तथा शंकरकी निन्दाका जिन्होंने अनुमोदन किया था, उनको भी शाप दे दिया ॥ २० ॥ जो दक्ष मनुष्य शरीरको श्रेष्ठ मानकर द्रोह न करनेवाले भगवान्से द्रोह करता है वह भेदबुद्धि मूर्ख परमार्थ वस्तुसे विमुख रहे ॥ २१ ॥ विषयसुखोंकी इच्छासे कूटधर्मों से भरे घरोमें आशक्त होकर, वेदोंमें प्रतिपादित अर्थवादोंसे नष्टबुद्धि हुआ वह कर्मोंका ही विस्तार करे ॥ २२ ॥ तथा देहमें ही आत्मारूपसे ध्यान करनेवाली बुद्धिसे आत्माका स्वरूप विस्मृत हो जानेके कारण पशुतुल्य वह अत्यन्त स्त्रीलम्पट हो जाय और शीघ्रही दक्षका बकरेका मुख हो जावे ॥ २३ ॥ कर्ममयी अविद्यामें इसकी विद्याबुद्धि है, इसलिये यह मूर्ख है। जो भगवान् शंकरका अपमान करनेवाले इसके अनुयायी हैं, वे भी इस संसारमें

शापम् ॥ तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥ १९ ॥ विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ॥ दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥ २० ॥ य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ॥ द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ २१ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥ २२ ॥ बुद्धया पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ॥ स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ २३ ॥ विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ॥ संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥ २४ ॥ गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ॥ मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तु हरद्विषः ॥ २५ ॥ सर्वभक्षा द्विजा वृत्यै धृतविद्यातपोव्रताः ॥ वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥ २६ ॥ तस्यैवं वदतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ॥ भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥ २७ ॥ भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः ॥ पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥ २८ ॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ॥ विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥ २९ ॥ ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ ॥ सेतुं

जन्म-मरणका अनुभव करते रहें ॥ २४ ॥ अर्थवादरूपी पुष्पोंवाली वेदवाणीके, मनको क्षुभित करनेवाले अत्यन्त मधुर गन्धतुल्य रुचिजनक धर्मविशेषसे उन्मथित मनवाले शंकरके द्वेषी कर्मों में आसक्त रहें ॥२५॥ ब्राह्मण भक्ष्याभक्ष्य विचारशून्य हों तथा जीविकाके लिये विद्या, तप और व्रतका धारण करें। धन, देह, इन्द्रियोंमें ही प्रेम रहे एवं याचक बनकर इस संसारमें इधर-उधर भ्रमण करें ॥ २६ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंको शाप देते हुए उसके वचनोंको सुनकर भृगुने शापरूपी अमोघ ब्रह्मदण्ड छोड़ दिया ॥ २७ ॥ जो शंकरका व्रत करनेवाले हैं तथा जो उनका अनुसरण करते हैं, वे सब पाखण्डी हो जावे। वे सत् शास्त्रोंके प्रतिकूल आचरण करते फिरें ॥ २८ ॥ अपवित्र तथा मूर्ख वे लोग जटा, भस्म और हड्डियोंको धारण करके शंकरकी दीक्षामें प्रवेश करें। जिस दीक्षामें मदिरा तथा आसवको देवताके समान आदरसे मानते हैं ॥ २९ ॥ चूँकि तुम लोग वर्णाश्रम सदाचार सम्पन्न मनुष्योंको धारण करनेवाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मर्यादारूप वेद तथा ब्राह्मणों की निन्दा करते हो, इसलिये सबके सब तुम पाखण्डी हो जाओ ॥३०॥ यह वेदही मनुष्योंका कल्याणकारी सनातन मार्ग है, जिसका पहले पहल ऋषियोंने आश्रय लिया और जिसमें जनार्दन भगवान् ही मूलप्रमाण हैं ॥ ३१ ॥ इसलिये तुमलोग सज्जनोंके सनातन मार्ग उस परम शुद्ध ब्रह्मकी निन्दा करके पाखण्डको प्राप्त होओ, जिस

विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥ एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ॥ यं पूर्वे चानुसन्तस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥ तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ॥ विगर्ह्य यात पाषण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच !! तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ॥ निश्चक्राम ततः किञ्चिद्विमना इव सानुगः ॥ ३३ ॥ तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् ॥ संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥ ३४ ॥ आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता ॥ विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पाखण्डमें भूतों के पति शंकर तुम लोगोंके देवता हैं ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार भृगुके शाप देनेपर भगवान् शंकर अपने सेवकोंके साथ कुछ उदास-से होकर वहाँसे निकल आये ॥ ३३ ॥ हे विदुरजी, उन प्रजापतियोंने भी हजार वर्षों में उस यज्ञको पूराकिया, जिसमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् ही पूज्य थे ॥३४॥ और जहाँपर यमुना नदीसे युक्त गंगा हैं वहाँपर यज्ञान्त स्नान करके निर्मल होकर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३५ ॥

दूसरे अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, बहुत पहलेकी बात है। प्रजापतियोंके यज्ञमें सब देवता एकत्रित थे। वहाँपर आते हुए दक्षको देखकर सब देवता तो खड़े हो गये, परन्तु भगवान् शंकर न उठे। यह देखकर दक्षने सबको सम्बोधित करते हुए कहा—हे सदस्यमुख्यों, यह शंकर वर्णाश्रमधर्माचारसे शून्य, सन्ध्या आदि निम्नक्रियाओंसे रहित मर्यादाका उल्लंघन करनेवाला है। इच्छा न रहते भी मैंने इसको अपनी लड़की दी। हे विदुरजी, इस तरह भगवान् शंकरकी निन्दा करते हुए उन्हें दक्षने शाप दे दिया—यह शंकर देवताओंके पूजनके समय इन्द्रादि देवताओं के साथ भाग न ग्रहणकरे और हे विदुरजी, यों शाप देकर वहाँसे चल दिये। तदनन्तर शंकर के भक्त नन्दिकेश्वरने भी दक्षको शाप यों दे दिया—यह भेदबुद्धि मूर्ख दक्ष परमार्थ वस्तु से विमुख रहे। यह सुनकर भृगुने नन्दिकेश्वरको भी ऐसा शाप दे दिया—जो शङ्करका व्रत करते हैं तथा जो उनका अनुसरण करते हैं वे सब पाखण्डी हो जायँ। हे विदुरजी, यों भृगुके शाप देनेपर भगवान् शङ्कर भी वहाँ से उठकर चले गये। प्रजापतियोंने भी उस यज्ञको हजार वर्षों में पूरा करके प्रयागमें गंगा यमुनाके संगमपर यज्ञान्त स्नान किया। दूसरा अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ तृतीयोऽध्यायः ❋

[पिताके यज्ञमें जानेकी इच्छा कर रही सतीको नीति और युक्तियोंसे शङ्करजीका मना करना]

मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार द्वेष पूर्वक रहते हुए, उन दोनों श्वसुर तथा दामादका बहुत बड़ा काल निकल गया ॥ १ ॥ जब परमेष्ठी ब्रह्माने दक्षको समस्त प्रजापतियोंके अधिपतित्वमें अभिषिक्त किया। तब उन्हें अत्यन्त घमण्ड हो गया ॥२॥ उन्होंने 'वाजपेयनामक' यज्ञके द्वारा शङ्कर तथा उनके अनुयायियोंका तिरस्कार करके बृहस्पतिसव नाम एक महान् यज्ञ आरम्भ किया ॥ ३ ॥ उस यज्ञमें समस्त ब्रह्मर्षि, पितर तथा देवता लोग मङ्गल स्वस्त्ययन आदि गान करके स्थित थे तथा उनकी स्त्रियाँ भी पतियोंके साथमें पूजित होकर स्थित थीं ॥४॥ उस समय दक्षकी कन्या देवी सतीने आकाशमें बातचीतकर रहे खेचरोंसे पिताके घर महान् यज्ञका उत्सव सुना ॥५॥ और उस यज्ञमें चारों दिशाओंसे जानेवाली गन्धर्वोंकी स्त्रियोंको

मैत्रेय उवाच ॥ सदा विद्विषतोरेवं कालो वै म्रियमाणयोः ॥ जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥ यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥२॥ इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥ तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ आसन्कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥ ४ ॥ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ॥ सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ ५ ॥ व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ॥ विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ॥ पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥ ७ ॥ सत्युवाच ॥ प्रजापतेस्ते श्वसुरस्य सांप्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ॥ वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी विबुधा व्रजन्ति हि ॥ ८ ॥ तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ॥ अहं च तस्मिन्भवताभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥ ९ ॥ तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियं

चञ्चल आँखवाली गलेमें निष्क धारण किये तथा उज्वल कुण्डल और सुन्दर वस्त्र पहिने अपने पतियोंके साथ विमानमें बैठकर अपने आश्रमके समीपसे जाते देखा। देखकर वह अत्यन्त उत्सुक होकर भूतपति भगवान् शङ्करसे कहने लगी ॥ ६, ७ ॥ सतीने कहा—आपके श्वसुर प्रजापति दक्षके यहाँ इस समय बड़ा भारी यज्ञका उत्सव हो रहा है। इसलिए हे सुन्दर, यदि आपकी इच्छा हो, तो हम लोग भी वहाँपर चलें। देखिये—ये देवता लोग अभी जा रहे हैं ॥ ८ ॥ उस यज्ञमहोत्सवमें हमारी बहिनें निश्चय ही अपने-अपने पतियोंके साथ बन्धुओंको देखनेकी इच्छासे जायँगी। इसलिये मैं भी आपके साथ पितासे दिये गये अलङ्कारादिकोंको लेना चाहती हूँ ॥ ९ ॥ तथा वहाँपर अपने पतियोंके योग्य बहनों को और स्नेहयुक्त माताको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखना चाहती हूँ मैं उन्हें देखनेके लिए बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित हूँ। हे मृड महर्षियोंसे उत्तोलित हो रही यज्ञकी ध्वजाको भी मैं देखूँगी ॥१०॥ हे अज, आपकी अपनी मयासे विरचित यह संसार आपमें प्रकाशित होता है, इसलिए आपके लिये कोई आश्चर्य की बात नहीं है परन्तु मैं स्त्री हूँ और आपके तत्त्वको नहीं जानती, इसलिये दीन हूँ। अतः हे भव, मैं अपनी जन्मभूमि देखना चाहती हूँ ॥ ११ ॥ हे नीलकण्ठ, और भी हजारों स्त्रियाँ आभूषणोंसे सज-धजकर अपने पतियोंके साथ जा रही हैं। इन्हें देखिये न, जिनके जाते हुए कलहंसके समान सफेद विमानोंसे आकाश मण्डित हो रहा है ॥ १२ ॥ हे देवश्रेष्ठ, पिताके घर उत्सव सुनकर भला ऐसी कौन कन्या होगी, जिसका शरीर देखनेके लिये चलायमान न होगा? मित्र, पति, गुरु, तथा पिताके घर बिना बुलाये भी सन्त महानुभाव जाते ही हैं ॥ १३ ॥ इसलिए हे देव, आप प्रसन्न हो जाइये और मेरी यह इच्छा पूर्ण कीजिये, क्योंकि आप बड़े दयालु हैं

च मातरम् ॥ द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥१०॥ त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ॥
तथाप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥ ११ ॥ पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽप्यलङ्कृताः कान्तसखा वरूथशः ॥
यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥ १२ ॥ कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ॥
अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥ तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वाञ्छितं कर्तुं भवान्कारुणिको बतार्हति ॥ त्वयात्म-
नोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ॥१४॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ॥
संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून्यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभि-
यन्ति बन्धुषु ॥ ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥१६॥ विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ॥
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥ १७ ॥ नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ॥

सर्व ज्ञान सम्पन्न होते हुए भी आपने बड़ी कृपाकर मुझे अपने आधे अङ्गमें स्थापित किया है। अतः मैं प्रार्थना करती हूँ, आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें ॥ १४ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस प्रकार जब सतीने शङ्करसे कहा, तब सुहृत्प्रिय शङ्कर भगवान् कुछ हँसकर दक्षने मर्मभेद करनेवाले जिन वचनोंको प्रजापतियोंके समक्ष कहा था उनका स्मरण करते हुए कहने लगे ॥ १५ ॥ भगवान् शङ्करने कहा—हे शोभने, जो तुमने कहा है कि बन्धुओंके घर बिना बुलाये भी जाय जाता है, सो ठीक है, परन्तु यदि वे बन्धु शरीरमें अहंकार के कारण हुए मद और क्रोधसे दोषदृष्टि युक्त न हुए हों, तो उनके यहाँ बिना बुलाये जाना ठीक है ॥ १६ ॥ विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था, और कुल सज्जनोंके इन छः गुणोंसे तथा असज्जनोंके अवगुणोंसे स्मृतिके (विवेकज्ञानके) नष्ट हो जाने पर ग्रहण किये गये अहङ्कारसे नष्टदृष्टिवाले मूर्ख प्राणी तेजस्वियोंके तेज को नहीं देखते ॥ १७ ॥ इसप्रकारके अव्यवस्थित चित्तवाले प्राणियोंके घर बन्धुकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दृष्टिसे न जावे, जो आये हुए मनुष्योंको कुटिलवुद्धिके कारण, भ्रकुटिको चढ़ाकर क्रोधयुक्त नेत्रोंसे देखते हैं ॥ १८ ॥ मनुष्य शत्रुओंके द्वारा छोड़े गये वाणोंसे विदीर्ण गात्र होकर भी वैसा दुःखी नहीं होता, जैसाकि कुटिलवुद्धिवाले अपने बन्धुओंके दुष्टवचनोंसे मर्म पीडित होकर दुःखित चित्तसे रात-दिन संतप्त होता है। क्योंकि वाणोंसे घायल हुआ वह तो कभी सो भी रहता है ॥ १९ ॥ हे सुभ्रु, निश्चय ही तुम उच्च स्थितिवाले प्रजापति दक्षकी कन्याओंमें सबसे प्रिय हो। तो भी पितासे सत्कार प्राप्त नहीं करोगी, क्योंकि दक्ष हमारे सम्बन्धसे सन्तप्त होता है उसे मेरा सम्बन्ध पसन्द नहीं है ॥ २० ॥ अहङ्काररहित मनुष्यों की सम्पत्तिसे, जलते हुए मनसे दुःखित इन्द्रियों वाला मनुष्य उस ऐश्वर्यको प्राव करनेमें असमर्थ होकर केवल द्वेषमात्र करता है, जैसे कि असुर लोग विष्णुसे द्वेष करते हैं ॥२१॥ हे सुमध्यमे, जो मनुष्य प्रत्युत्थान, नम्रता तथा नमस्कार परस्पर करते हैं, वे विद्वान् पुरुष अच्छा ही करते

येऽभ्यागतान्वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभि ॥ १८ ॥ तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ॥ स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥ व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता ॥ अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥२०॥ पापच्यमानेन हृदातुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ॥ अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिम् ॥ २१ ॥ प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ॥ प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥२२ सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥ सत्त्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते॥२३॥ तत्ते निरीक्ष्यो न पितापि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ॥ यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥ २४ ॥ यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥ संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हैं, क्योंकि वे वासुदेवको ही नमस्कार आदि करते हैं। चूँकि वे अन्तर्यामी हैं, इसलिए उन्हें चित्तसे ही किया जाता है न कि देहाभिनानी को ॥ २२ ॥ विशुद्धसत्त्वही वसुदेव शब्दसे कहा जाता है। क्योंकि उसी सत्त्वमें भगवान् वासुदेव प्रकाशित होते हैं जिनसे आवरण हट जाता है और उस सत्त्वमें मैं भगवान् वासुदेवका मनसे चिन्तन करता हूँ ॥ २३ ॥ इसलिए तुम्हारा शरीर उत्पन्न करने वाला भी तुम्हारा पिता दक्ष तथा उसका अनुसरण करनेवाले भी तुम्हारे द्वारा देखने योग्य नहीं हैं, क्योंकि वह मुझसे द्वेष करता है। हे वरोरु, उस दक्षने प्रजापतियोंके यज्ञमें गये निरपराध मेरा दुर्वचनों से तिरस्कार किया ॥ २४ ॥ इसलिए यदि तुम मेरे वचनों का उल्लङ्घन करके जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा, क्योंकि प्रतिष्ठित मनुष्यका जब अपने स्वजनों से पराभव होता है, तब वह शीघ्र मरनेके लिए ही तत्पर हो जाता है ॥ २५ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तीसरे अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इसप्रकार द्वेषपूर्वक रहते हुए शङ्कर तथा दक्षका बहुत समय निकल गया। तब दक्ष प्रजापतियोंके अधिपति हुए, तब अहङ्कारके कारण शङ्करका अनादर करके 'बृहस्पतिसवनामक' यज्ञ करने लगे। उसमें उन्होंने समस्त देवताओंको बुलाया था। सतीने अपने आश्रमके समीपसे जाते हुए देवताओंके विमानोंको देखा तथा पिताके जय घर उत्सव सुना, तब जानेकी इच्छासे शङ्करसे प्रार्थना करने लगी। भगवान् शङ्करने उसमें दोष दिखाते हुए उनको रोका और कहा कि यदि हमारे वचनों को न मानकर जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। तीसरा अध्यात समाप्त ❋

❋ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❋

मैत्रेय उवाच ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शङ्करः पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ॥ सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥ १ ॥ सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलाऽतिविह्वला ॥ भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥ २ ॥ ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ॥ पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥ ३ ॥ तामन्वगच्छन्द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ॥ सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरो वृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥४॥ तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ॥ गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ॥ ५ ॥ आब्रह्मघोषोर्जित-

[शङ्करको छोड़कर सतीका पिताके घर जाना तथा अपमानित होकर शरीर छोड़ देना]

मैत्रेयजीने कहा—भगवान् शङ्कर जानेकी आज्ञा देने तथा रोकने, दोनोंमें सतीके प्राण नाशकी चिन्ता करते हुए इसप्रकार कहकर शान्त हो गये। इधर बन्धुओंको देखनेकी इच्छा से बाहर निकलती हुई और शङ्करके भयसे पुनः प्रवेश करती हुई सती दुविधामें पड़ गई ॥१॥ बन्धुओंको देखनेकी इच्छा रुक जानेसे दुखित तथा स्नेहसे रोती हुई आँसुओंसे व्याकुल होकर रोष से काँपती हुई अनुपम भगवान् शङ्करको मानो भस्म करती हुई सी देखने लगी ॥ चूंकि स्त्री स्वभावके कारण उसकी बुद्धि नष्ट हो गई थी, इसलिए वह सती शोक तथा रोषके कारण दुःखित चित्तसे साँस लेकर उन शङ्करको छोड़कर पिताके घर चली गई, जिन भक्तोंके प्रिय शिवने प्रेमसे उसे अपनी आधी देह दी थी ॥ ३ ॥ और अत्यन्त तेजीसे जा रही उस अकेली सतीके पीछे शङ्करके पार्षद और यक्षोंके सहित मणिमान्, मद प्रमुख हजारों सेवक नन्दीश्वरको आगे करके वेगसे निर्भय होकर चल पड़े ॥ ४ ॥ उस सतीको नन्दीश्वरपर बैठाकर, मैना, गेंद, शीशा, कमल, श्वेतछत्र, चँवर तथा मालासे और गीतके आश्रय दुन्दुभि, शङ्ख, तथा वेणुसे शोभित होकर वे सब चल पड़े ॥ ५ ॥ वह सती चारों तरफ वेदके शब्दसे परस्पर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अत्यन्त स्पर्धासे युक्त तथा चारों तरफ देवता और विप्रर्षियोंसे सेवित उस यज्ञमें प्रविष्ट हुई, जिसमें मिट्टी, लकड़ी, लोहा, सुवर्ण, कुश, तथा चर्मसे पात्र बनाये गये थे ॥६॥ उस यज्ञमें उपस्थित उस सतीका दक्षके भयसे किसीने आदर नहीं किया, क्योंकि वह दक्षसे अपमानित थीं। केवल माता और बहिनोंने प्रेमसे गद्गद कण्ठ होकर आदरके साथ आलिङ्गन किया ॥ ७ ॥ पितासे अपमानित हुई उस सतीने माता तथा उसकी बहिनोंकी आदर पूर्वक दी हुई पूजा और सुन्दर आसनको स्वीकार नहीं किया तथा अपनी सहोदर बहिनों एवं माताके प्रश्न तथा उसके योग्य बातें भी न सुनीं ॥ ८ ॥ जब सतीने शङ्करके भागसे रहित उस यज्ञको देखा और पिताके द्वारा किये गये सर्वसमर्थ अपने पति भगवान शिवके तथा अपने अनादरको देखा, तब वह अधीश्वरी यज्ञ सभामें अपने क्रोधसे लोकोंको भस्म करती हुई सी कुपित हो गई ॥ ९ ॥ वह देवी सबके सुनते-सुनते कर्ममार्गमें अभ्यासके अव्यक्त वाणीसे निन्दा करने

यज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ॥ मृद्दार्वयः काञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत ॥ ६ ॥ तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ॥ ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥ ७ ॥ सौदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ॥ दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ॥ ८ ॥ अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ॥ अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥ ९ ॥ जगर्ह साऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ॥ स्वतेजसा भूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥ १० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ॥ तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥ ११ ॥ दोषान्परेषां हि गुणेषु साधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ॥ गुणांश्च फल्गून्बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥ १२ ॥ नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दाकुणपात्मवादिषु ॥

लगी तथा दक्षको मारनेके लिए उद्यत हुए भूतगणोंको तेजसे रोक दिया ॥ १० ॥ श्रीदेवीने कहा—जिन भगवान् शङ्करका इस संसारमें कोई अतिशयित नहीं है तथा प्रिय और अप्रिय नहीं है एवं जो प्राणियोंके प्रिय आत्मा हैं उन निर्वैर तथा सबके आत्मारूप शङ्करमें आपके विना भला और कौन दूसरा प्रतिकूल आचरण करेगा ॥ ११ ॥ हे द्विज, आपके सरीखे कोई डाही दूसरोंके गुणोंमें दोषोंका ही ग्रहण करते हैं, उनके गुणोंका नहीं। कोई मध्यम मार्गका अवलम्बन करनेवाले महानुभाव दूसरोंके गुणोंमें दोषोंका ग्रहण नहीं करते, किन्तु यथास्थित गुण और दोषोंका विवेकज्ञानसे विचार ग्रहण करते हैं वे इस संसार में महान् कहे जाते हैं। परन्तु जो साधु पुरुष हैं वे तो केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, दोषों को नहीं, वे महत्तर कहे जाते हैं और जो महत्तम हैं, वे तो दोषोंको तो कभी ग्रहण करते ही नहीं, बल्कि दूसरोंके तुच्छ भी गुणोंको बहुत चढ़ा-बढ़ा देनेवाले होते हैं। उनमें अपने दोषोंकी कल्पना की है ॥ १२ ॥ जड़शरीरको ही आत्मा समझनेवाले असत्पुरुषोंमें सर्वदा महात्माओंकी निन्दाका होना आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि महात्माओंकी चरणधूलि रज ईर्ष्यासे उनके प्रभावको नष्ट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर देती है। इसलिए उन्हें वही उचित है ॥ १३ ॥ जिनका दो अक्षरका शिव यह नाम प्रसङ्गवश एकबार भी वाणीसे कहनेपर मनुष्योंके समस्त पापोंको शीघ्र नष्ट कर देता है, उन पवित्रकीर्ति तथा अलंध्य आज्ञावाले शिवसे आप द्वेष करते हैं, अहो, आप अमङ्गलरूप हैं ॥ १४ ॥ ब्रह्मानन्दकी इच्छा रखनेवाले महात्माओंके मनरूपी भ्रमरसे सेवित जिनके चरणकमल हैं और सकामी मनुष्योंको उनकी इच्छा वस्तुएँ देते हैं, उन संसारके बन्धु भगवान्से आप द्वेष करते हैं ? ॥ १५ ॥ जो श्मशानमें जटा फैलाकर उसीकी श्मशानमाला, भस्म, तथा मनुष्योंके कपालोंको धारण करता है- तथा पिशाचोंके साथ श्मशानमें निवास करता है उस शंकरको आपसे अन्य ब्रह्मादिक क्या अशिव नहीं जानते ? जो उनके चरणों से गिरे हुए निर्माल्यको अपने शिरपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ धर्मकी रक्षा करनेवाले स्वामीके ऊपर उद्दण्ड मनुष्योंके द्वारा अक्षेप होनेपर यदि असमर्थ हो, तो कान बन्दकर वहाँ से दूर चला जाय

सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ॥ १३ ॥ यद्द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ॥ पवित्रकीर्तिं तमलंघ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥ १४ ॥ यत्पादपद्मं महतां मनोलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ॥ लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान्द्रुह्यति विश्वबन्धवे ॥ १५ ॥ किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाः श्मशाने ॥ तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥१६॥ कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्माविर्तर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ॥ छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥१७॥ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ॥ जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥ न वेदवादाननुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतो महामुनेः ॥ यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥ १९ ॥ कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिङ्गमाश्रितम् ॥ विरोधि तद्यौगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥२०॥ मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ॥ तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिङ्गा अव-

और यदि समर्थ हो, तो अकल्याणक बातें बोलनेवाली उसी जिह्वाको हठ पूर्वक काट ले। अगर वह भी न हो सके, तो स्वयं प्राण छोड़ दे यही धर्म है ॥ १७ ॥ इसलिए नीलकण्ठ भगवान् शंकरकी निन्दा करनेवाले आप के द्वारा उत्पादित यह शरीर मैं धारण नहीं करूँगी, अज्ञानसे खाये गये निन्दित अन्नको वमन करनेसे ही मनुष्यकी शुद्धि कही गई है ॥ १८ ॥ अपने आत्मामें रमण करनेवाले विरक्त मनुष्योंकी बुद्धि विधि-निषेधोंका अनुवर्तन नहीं करती। जैसे कि मनुष्य और देवताओंकी गति पृथक् है। इसलिये अपने ही धर्ममें
४ स्थित होकर दूसरेके धर्ममें स्थित पुरुषका आक्षेप न करे ॥१९॥ प्रवृत्त तथा निवृत दोनों कर्म सत्य हैं, क्योंकि वेदमें विभाग करके दोनों कहे हैं। परन्तु वे दोनों एक समय एक कर्तामें विरोधी हैं तथा ब्रह्ममें तो कोई भी कर्म नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥ हे पिताजी, जो अणिमादि सिद्धियाँ हमलोगोंने आश्रित की हैं वे तुम्हारे यहाँ नहीं हैं, क्योंकि जो तुम्हारी सिद्धियाँ हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वे यज्ञशालाहीमें हैं और उसीके अन्नसे तृप्त होनेवाले प्राणी ही उनकी प्रशंसा किया करते हैं तथा वे कर्म मार्गवालोंसे ही भोगी जाती है। परन्तु हमलोगोंकी सिद्धियोंका हेतु प्रकट नहीं होता तथा ब्रह्मवेत्ता लोग उनका सेवन किया करते हैं ॥ २१ ॥ भगवान् शंकरके अपराधी तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न हुए इस कुजन्मा शरीरसे मुझे कोई अब प्रयोजन नहीं है। कुत्सित विचारसम्पन्न तुम्हारे सम्बन्धसे मुझे लज्जा हुई है। इसलिए जो बड़ोंका अप्रिय करनेवाला है, उससे होनेवाले जन्मको भी धिक्कार है ॥ २२ ॥ जब भगवान् शंकर 'हे दाक्षायणि इसप्रकार सम्बोधन करके तुम्हारे गोत्रका उच्चारण करेंगे, तब मैं नम्र तथा हास्यसे रहित होकर दुःखितचित्त हो जाऊँगी। इसलिये मैं अब तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न इस शवप्राय शरीर का शीघ्रही त्यागकर रही हूँ ॥ २३ ॥ मैत्रेयजीने कहा —हे विदुरजी, इसप्रकार सती दक्षके वाक्योंका प्रत्याख्यान करके उस यज्ञमें उत्तर दिशाकी ओर पृथ्वीपर मौन होकर बैठ गई और पीले वस्त्रसे शरीरको ढाँककर आचमन करनेके बाद नेत्र बन्द करके योगपथमें प्रविष्ट हो गई ॥२४॥ उसने आसनको जीतकर प्राण तथा अपान वायुको समान करके नाभिमें स्थापित किया।

धूतसेविताः ॥२१॥ नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ॥ व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसङ्गतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥ २२ ॥ गोत्रं त्वदीयं भगवान्वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ॥ व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजम् ॥ २३ ॥ मैत्रेय-उवाच ॥ इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ॥ स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥२४॥ कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ॥ शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ॥२५॥ एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमङ्कमादरात् ॥ जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥ २६ ॥ ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ॥ ददर्श देहो हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥२७॥ तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धाहेति वादः सुमहानजायत ॥ हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥ २८॥ अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत

तदनन्तर वहाँसे धीरे-धीरे उठाकर बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया। उसके बाद हृदयसे उठाकर वह अनिन्दिता कण्ठमार्गसे भृकुटियोंके मध्यमें उसे ले गई ॥ २५ ॥ इसप्रकार अत्यन्त पूजनीय भगवान् शंकरके द्वारा बार-बार गोदमें स्थापित किये गये अपने शरीरको दक्षके क्रोधसे छोड़ती हुई उस मनस्विनीने अपने शरीरमें वायुसहित अग्निका ध्यान किया ॥ २६ ॥ तदनन्तर सह सती अपने पति जगद्गुरु भगवान् शंकर के चरणकमलोंका एकमात्र ध्यान करती हुई और कुछ न देखती हुई तथा क्षीण पाप होकर समाधिकी अग्निसे अपने शरीरको शीघ्र जलाने लगी ॥ २७ ॥ उसे देखनेवाले आकाश तथा पृथ्वीमें अत्यन्त हाहाकार करने लगे और कहने लगे कि भगवान् शंकरकी पत्नी सतीने दक्षसे कुपित होकर अपना शरीर छोड़ दिया, यह अत्यन्त दुःखकी बात है ॥ २८ ॥ जिस प्रजापति दक्षकी समस्त स्थावर तथा जंगम प्रजाएँ हैं, अहो, उसकी यह दुर्जनता तो जरा देखो। जो मनस्विनी सती सदा मानके योग्य थी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसको इसने तिरस्कार किया, जिससे कि अपमानित उसने अपने प्राणोंको भी छोड़ दिया ॥ २९ ॥ इसलिये निश्चयही ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला कठोर यह दक्ष मनुष्योंमें अपयश तथा मरनेपर नरक प्राप्त करेगा, जिसने अपने अपराधसे मरनेको उद्यत हुई अपनी कन्याको शङ्करसे द्वेष रखनेके कारण मना नहीं किया ॥ ३० ॥ इसप्रकार जब मनुष्य कह ही रहे थे, तबतक सतीके उस अद्भुत प्राणत्यागको देखकर उसके अनुचर हथियार उठाकर दक्षको मारनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ३१ ॥ तब भगवान् भृगुने आक्रमणकर रहे उनके वेगको देखकर यज्ञके

प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ॥ जहावसून्यद्विमतात्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥ २९ ॥ सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ॥ यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥३०॥ वदत्स्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ॥ दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ ३१ ॥ तेषामापततां वेगं निशाम्य भगवान्भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ॥ ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥ ३३ ॥ तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सह गुह्यकाः ॥ हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

विघ्नोंका नाश करनेवाली ऋचासे अग्निमें हवन किया ॥ ३२ ॥ भृगुके हवन करनेपर ऋभु नामके हजारों देवता उस कुण्डसे बड़े वेगके साथ उठ खड़े हुए, जिन्होने तपस्यासे सोमलता-का पान किया था ॥ ३३ ॥ ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे वे सब आधी जली हुई लकड़ियोंसे उन सब प्रमथ तथा गुह्यकोंको मारने लगे, जिससे कि वे सब दिशाओंमें भाग गये ॥ ३४ ॥

चौथे अध्यायका सार—श्रीमैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इसप्रकार कहकर शङ्कर भगवान् चुप हो गये। तदनन्तर शङ्करको छोड़कर सती अपने पिताके घर जाने लगी उन्हे अकेले जाते देखकर शङ्करके अनुचर पीछे चल पड़े। जब वह वहाँ पहुँची तब उनका पिताने आदर नहीं किया। उन्होंने पिताके यज्ञमें भगवान् शङ्करका अपमान देखा। उससे कुपित होकर दक्षकी निन्दा करती हुई उहोंने योग मार्गका आश्रयणकर शरीर छोड़दिया। तदनन्तर दक्षको मारनेके लिए उद्यत हुए भगवान् शङ्करके अनुचरोंको भृगुके हवनसे उत्पन्न हुए ऋभु नामके देवताओं ने मारा जिससे कि ये सब दिशाओंमें भाग गये। चौथा अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ पंचमोऽध्यायः ❋

[सतीका नाश सुनकर शंकरका वीरभद्रको उत्पन्न करना तथा उसके द्वारा दक्षका मारा जाना]

मैत्रेयजीने कहा–भगवान् शंकरने जब नारदके द्वारा दक्षसे अपमानित हुई सती का प्राणत्याग सुना तथा अपने अनुचरोंकी सेनाको उनके यज्ञमें होनेवाले ऋभुनामके देवताओंसे विद्रावित सुना, तब तो उन्होंने अत्यन्त क्रोधको धारणकर लिया ॥ १ ॥ क्रोधके कारण अपना ओठ चबाते हुए भगवान् शंकर बिजली तथा अग्निके समान कान्तिवाली अपनी जटाको उखाड़कर खड़े हो गये और गम्भीरशब्द करनेके बाद हँसते हुए उन्होंने उसे पृथ्वीपर छोड़ दिया॥२॥ तब उस जटासे महान् शरीरधारी वीरभद्र उत्पन्न हुआ। उसका शरीर आकाशतक लम्बा था तथा उसकी हजरों बाहुएँ थीं और तीन सूर्यके समान उसके नेत्र थे। वह काले वर्णका था। भयानक उसकी दाँतें थीं तथा जलती हुई अग्निके समान उसके केश थे। वह

मैत्रेय उवाच ॥ भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥ स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥ क्रुद्धः सुदष्टोष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ॥ उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥२॥ ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् । करालदंष्ट्रो ज्वलदग्नि मूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥ ३ ॥ तं किं करोमीति गृणन्तमाह बद्धाञ्जलिं भगवान्भूतनाथः ॥ दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे । ४ ॥ आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ॥ मेने तदात्मानमसङ्गरंहसा महीयसां तात सहःसहिष्णुम् ॥ ५ ॥ अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ॥ उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं स प्राद्रवद्घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य

कपालोंकी माला पहने हुए था एवं नानाप्रकारके शस्त्रोंसे वह सुसज्जित था॥३॥ वह हाथ जोड़कर भगवान् शंकरसे कहने लगा—भगवान, मैं क्या करूँ। तब भूतनाथ भगवान् शंकरने कहा–हे रुद्र, हे युद्धकुशल, तुम मेरे अनुचरोंमें अग्रसर होकर यज्ञके सहित दक्षको नष्टकर दो। चूँकि तुम मेरे अंशहो, इसलिये कोई डर नहीं है ॥ ४ ॥ इसप्रकार जब क्रोधित भगवान् शंकरने उससे कहा, तब हे तात, उसने सर्वसमर्थ देवदेव भगवान् शंकरकी परिक्रमा की और अत्यन्त वेगसे बलवानोंके भी बलको सहन करनेमें अपनेको वह समर्थ मानने लगा ॥५॥ तब वह घुंघरु पहिनकर मृत्युको भी मारनेवाले त्रिशूलको उठाकर भयानक शब्द करता हुआ दौड़ा तथा उसके पीछे अत्यन्त शब्द करते हुए शंकरके पार्षद भी दौड़नेलगे ॥ ६ ॥ तदनन्तर उत्तर दिशाकी ओर उड़ रही धूलिको देखकर, ऋत्विक, यजमान, सदस्य, ब्राह्मण तथा उनकी पत्नियाँ चिन्ता करने लगीं कि क्या यह अन्धकार है या धूल? कहाँसे यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उद्भूत हुई है ॥ ७ ॥ क्योंकि इस समय वायु नहीं चल रही है और चोर भी नहीं है। कारण कि कठिन दण्ड देनेवाला प्राचीनवर्हि राजा अभी जीता है। एवं इस समय गायें भी नहीं जा रही हैं, तब भी यह धूल कहांसे उड़ी है। क्या इस समय संसारका प्रलय तो नहीं होता ॥ ८ ॥ तदनन्तर प्रसूति प्रमुख स्त्रियाँ उद्विग्नचित्त होकर कहने लगीं—यह उस पापी दक्षके पापका फल है, जिसने अपनी निरपराधिनी कन्या सतीका अन्य कन्याओंके देखते-देखते अनादर किया ॥ ९ ॥ जो शंकर प्रलयके समय जटाओंको फैलाकर तथा अपने त्रिशूलके अग्रभागमें दिग्गजोंको गूंथकर शस्त्रग्रहण किये हुई भुजारूपी ध्वजाएँ फैलाकर हर्षसे नाच करते हैं और जो अपने भयानक कठोर अट्टहाससे दिशाओंको विदीर्णकर देते हैं ॥ १० ॥ तथा अपनी भयानक दंष्ट्राओंसे नक्षत्रोंको विक्षिप्तकर देनेवाले, भ्रुकुटिसे असह्य, क्रोधयुक्त, अत्यन्त तेजस्वी उन शंकरको कुपित करके असहनशील बनाते हुए क्या ब्रह्माका भी कल्याण हो

रेणुम् ॥ तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥ ७ ॥ वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ॥ गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥ प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ॥ यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥९॥ यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ॥ वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ॥ करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥ ११ ॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः ॥ उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥ तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ॥ पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥ १३ ॥ केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथा परे ॥ सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥ १४ ॥ रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुण्डेष्वमूत्रयन्केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥ १५ ॥ अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् ॥ अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६ ॥ भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम् ॥ चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ सर्व एवर्त्विजो

सकता है ? ॥ ११ ॥ इसप्रकार उद्विग्निचित्त मनुष्योंके कहतेही महात्मा दक्षको भी बार-बार भयभीत करनेवाले आकाश, पृथ्वी तथा चारों तरफ हजारों उत्पात हो उठे ॥१२॥ हे विदुरजी, तबतक उस महान् यज्ञको चारों तरफसे दौड़े आ रहे मकरके समान उदर तथा मुखवाले, पीले, कपिल तथा छोटे-छोटे शंकरके अनुचरोंने नाना प्रकारके शस्त्र उठाकर रोक लिया ॥१३॥ किसीने प्राग्वंश तोड़ दिया, किसीने स्त्रियोंकी शाला मिटा दी, किसीने सभा' किसीने अग्निशाला, किसीने यजमानगृह तथा किसीने भोजनालय नष्टकर दिया ॥ १४ ॥ किसीने यज्ञके पात्र तोड़ डाले, किसीने अग्नि नष्टकर दी, किसीने हवनकुण्डोंमें मूत दिया तथा किसीने सीमासूत्र तोड़ दिये ॥ १५ ॥ कोई मुनियोंको दुःख देने लगे, कोई स्त्रियोंको डाँटने लगे तथा किन्हींने समीपसे भागनेवाले देवताओंको पकड़ लिया ॥ १६ ॥ मणिमानने भृगुजीको बाँध लिया, वीरभद्रने प्रजापति दक्षको, चण्डीशने पूषा सूर्यको तथा भगनामक सूर्यको नन्दीश्वरने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पकड़ लिया ॥ १७ ॥ तब देवता तथा सदस्योंके सहित समस्त ऋत्विग् देखकर उनके पत्थरोंसे अत्यन्त पीड़ित होते हुए अनेक प्रकारसे भागे ॥१८॥ तब भगवान् वीरभद्रने हाथमें स्रुवा लेकर हवन करानेवाले उस भृगुकी दाढ़ी उखाड़ ली, जो सभामें दाढ़ी दिखाता हुआ हँस रहा था ॥१९॥ तथा भगवान् वीरभद्रने क्रोधके कारण भगनामक सूर्यको पृथ्वीपर पटकर उनकी आँखें निकालीं, जो सभामें बैठकर शंकरको शाप देनेवाले दक्षको आँखोंके इशारेसे प्रेरितकर रहा था ॥ २० ॥ तथा पूषाकी दाँतें इसप्रकार तोड़ डालीं, जिसप्रकार कलिङ्गदेशके राजाकी दाँतें बलदेवजीने तोड़ डाली थीं, जो सम्पूर्ण लोकके महान् गुरु भगवान् शंकरकी निन्दा करनेपर दाँते निपोरकर लोगों को दिखाता हुआ हँस रहा था ॥२१॥ जब वीरभद्र दक्षके हृदयपर

दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ॥ तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः ॥ भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन ॥ १९ ॥ भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि ॥ उज्जहार सदस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥ २० ॥ पूष्णश्चापातयद्दन्तान्कालिङ्गस्य यथा बलः ॥ शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ २१ ॥ आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ॥ छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यम्बकस्तदा ॥ २२ ॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ॥ विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ॥ यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥ २४ ॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥ तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आक्रमण करके तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे उसका सिर काटता हुआ भी उसे पृथक् करनेमें समर्थ न हो सका ॥ २२ ॥ तथा शस्त्र और अस्त्रोंसे भी उसकी जब त्वचा उससे न कट सकी, तब वह पशुपति हर वीरभद्र अत्यन्त विस्मित होकर चिरकालतक ध्यान करने लगा ॥ २३ ॥ पशुओंके पति उस वीरभद्रने उस यज्ञमें संज्ञपनयोगको यानी कण्ठनिष्पीडनादिरूप मारणोपायको देखकर यजमानपशु दक्षका सिर उसी योगके द्वारा शरीरसे अलगकर दिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर उसके उस कर्मकी प्रशंसा करनेवाले भूत, प्रेत तथा पिशाचोंका साधुवाद हुआ तथा अन्य ब्राह्मणादिकोंका असाधुवाद हुआ ॥ २५ ॥ उसके बाद वीरभद्रने क्रोधित होकर उस सिरको अग्निमें हवनकर दिया और उस यज्ञमण्डपको जलाकर कैलासको चला गया ॥ २६ ॥

पाँचवें अध्यायका सार—श्रीमैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, भगवान् शङ्करने सतीका निधन सुनकर क्रोधसे एक जटा उखाड़कर पृथ्वीपर डालदी, जिससे वीरभद्र उत्पन्न हुआ। उसे शङ्करने यज्ञ सहित दक्षको मारनेकी आज्ञा दे दी। वह वहाँ पर गया और यज्ञ विध्वंस करके सबको यथोचित फल दिया तथा दक्षका सिर संज्ञपन योगसे काटकर अग्निमें हवनकर दिया एवं यज्ञमण्डपको जलाकर कैलासको चला गया। पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❁ अथ षष्ठोऽध्यायः ❁

[देवताओंके साथ ब्रह्माजीका शंकरके समीप जाना और दक्षको जीवित करनेके लिये प्रार्थना करना]

मैत्रेयजीने कहा—समस्त देवताओंने शंकरकी सेनासे पराजित हो त्रिशूल, पट्टिश, तलवार, गदा, परिघ और मुद्गरोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले सदस्य तथा ऋत्विजोंके साथ अत्यन्त भयभीत होकर, ब्रह्माको नमस्कार करके समस्त वृत्तान्त कह दिये ॥१,२॥ पद्मयोनि श्रीब्रह्माजी तथा विश्वात्मा भगवान् नारायण पहलेसे ही यह समझकर दक्षके यज्ञमें नहीं गये ॥ ३ ॥ उस वृत्तान्तको सुनकर ब्रह्माजीने कहा—अत्यन्त तेजस्वी पुरुषके विषयमें अपराधकर देनेपर उसका प्रत्यपराध करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यकी इच्छा उसके कल्याणके लिये नहीं होती, यह बहुधा लोकमें देखा गया है ॥ ४ ॥ इसलिये यद्यपि आपलोग यज्ञका भाग खण्डित करनेके कारण अपराधी हो चुके हैं, तथापि शीघ्र प्रसन्न होनेवाले भगवान् शंकरके

मैत्रेय उवाच ॥ अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥ शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥१॥ संछिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ॥ स्वयंभुवे नमस्कृत्य कात्स्न्येंनैतन्न्यवेदयन् ॥ २ ॥ उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः ॥ नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥ ३ ॥ तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ॥ क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ॥ प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपितेन यस्मिन् ॥ तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ । नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥ ७ ॥ स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ॥ ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥८॥ जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः । जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥९॥

चरणकमल पड़कर उनसे जाकर क्षमा प्रार्थना कीजिये ॥ ५ ॥ यदि आप लोग यज्ञका पुनः संधान चाहते हैं, तो जिन शंकरके कुपित होजानेपर लोकपालोंके सहित सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, कुवाक्योंके हृदयमें विद्ध तथा सतीसे रहित उन्हीं भगवान् शंकरको शीघ्र प्रसन्न कीजिये ॥ ६ ॥ जिन स्वतन्त्र भगवान् शंकरके तत्त्व, बल और वीर्यके प्रमाणको मैं, इन्द्र, आपलोग तथा अन्य भी देहधारी मुनिलोग नहीं जानते, उन्हें प्रसन्न करनेका उपाय भला कौन बतलावेगा ? ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी इसप्रकार देवताओंको आदेश देकर प्रजापतियोंके सहित पितरों तथा उन देवताओंसे युक्त होकर अपने स्थानसे शंकरके प्रिय एवं निवासभूत पर्वतोंमें श्रेष्ठ कैलासको गये ।८॥ वह कैलास जन्म, औषधि, तप, मन्त्र तथा योगसे सिद्ध मनुष्यों और देवताओंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सेवित था। वहाँ किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सराएँ सदा रहती थीं ॥९॥ नानाप्रकारके मणिमय तथा नाना तरहके धातुओं से चित्रित शिखरों, अनेक प्रकारके वृक्ष, लता तथा गुल्मों, अनेक मृगगणों, निर्मल झरनों, अनेक कन्दराओं और सानुओं के द्वारा वह पतियों के साथ विहार करनेवाली सिद्धों को स्त्रियों रतिप्रद था ॥ १०,११ ॥ वह मयूरके शब्दसे नादिता था, मदसे अन्धीभूत भ्रमरों के गुञ्जारों से व्याप्त था, कोकिल के मनोहर सुरीले स्वरों से तथा अन्य पक्षियों के कलरवों से अति रमणीय था। कामनाओं को पूर्ण करनेवाले वृक्ष अपनी ऊँची उठी हुई शाखाओं रूपी बाहुओं से मानो पक्षियों को बुला रहा था, पर्वतीय हाथियों के चलनेसे स्वयं मानो चल रहा-सा जान पड़ता था तथा झरनों के शब्दों से बातचीतकर रहा-सा प्रतीत होता था ॥ १२, १३ ॥ मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताल, कचनार, असन, अर्जुन, आम, कदम, नीप, नागकेसर, पुन्नाग, चम्पा, पाटल, अशोक, बकुली, कुन्द, कुरवक, बरा, एला

नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः । नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥१०॥ नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः । रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ । मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् ॥ प्लाविते रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥ आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः ॥ व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥१३॥ मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ॥ तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥१४॥ चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः ॥ पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥ १५ ॥ स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः ॥ कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥ १६ ॥ पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः ॥ भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥ १७ ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः ॥ द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥१८॥ कुमुदोत्पलकाह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः ॥ नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥१९॥ मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः ॥ गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥२०॥ कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनादिभिः ॥ कदलीषण्डरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥२१॥ पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ॥

मालती, कुब्ज, मल्लिका, माधवी तथा स्वर्णके समानवर्णवाले शतपत्रोंसे वह पर्वत मण्डित था ॥ १४–१६ ॥ कटहल, गूलर, पीपल, पाकड़, वट, हिंगु, भोजपत्र, औषधि, सुपारी राजसुपारी जामुन, खजूर, आम, आम्रातक, अनार, महुआ, इंगुद तथा अन्य वृक्षोंसे एवं बाँसके वृक्षोंसे वह शोभित था ॥ १७, १८ ॥ वह केला कुमुद, उत्पल, कल्हार तथा शतपत्रोंके वनकी शोभाके कारण सरोवरमें मधुर कलरव कर रहे पक्षियोंके समूहसे शोभित था ॥ १९ ॥ मृग, बन्दर, सूकर सिंह, भालू, शल्यक, गवय, शरभ, (अष्टापद), व्याघ्र, रुरुमृग, भैंसा, कर्णान्त्र, एकपद, घोड़ेके समान मुखवाले तथा कस्तूरी मृगोंसे वह पर्वत सेवित था तथा केलोंसे घिरे हुए सरोवरके किनारोंसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ २०, २१ ॥ सतीके स्नानसे अत्यन्त सुगन्धित जलवाली नन्दा नदीसे परिवेष्टित कैलाशको देखकर देवता लोग विस्मयको प्राप्त हो गये ॥ २२ ॥ तथा उन लोगोंने अलका नामकी पुरी देखी एवं सौगन्धिक वन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखा, जिसमें सौगन्धिक नामके कमल थे ॥ २३ ॥ भगवान्‌के चरणकमलकी धूलिसे अत्यन्त पवित्र नन्दा तथा अलकनन्दा नामकी दो नदियाँ उस पुरीके बाहर बह रही थीं ॥ २४ ॥ हे विदुरजी, रतिसे कर्षित देवताओंकी स्त्रियाँ अपने स्थानसे उतरकर जिन नदियोंमें प्रवेश करके अपने पुरुषोंको सोचती हुई क्रीडा किया करती हैं ॥ २५ ॥ तथा जिन नदियोंके उन देवाङ्गनाओंके स्नानसे छूटी हुई नवीन कुंकुमसे पीले जलको प्यास न रहनेपर भी हाथी हथिनियोंको पिलाते हुए स्वयं पीते हैं ॥ २६ ॥ जैसे बिजली और मेघसे आकाशकी शोभा होती है, वैसे ही चाँदी, सोने और महारत्नोंसे बने हुए सैकड़ों विमानों और पुण्यजनोंकी स्त्रियोंकी सेवित यज्ञेश्वरकी उस अलकापुरीको पाकर ॥ २७ ॥ जो वन नाना प्रकारके माल्य, फल तथा पत्रोंसे युक्त समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वृक्षोंसे सुख देनेवाला था ॥ २८ ॥ जिसमें कोकिल तथा अन्यान्य पक्षियोंके कलरवोंसे भौंरोंका गुञ्जार मंडित हो रहा

विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥ २२ ॥ ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् ॥ वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥ २३ ॥ नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः । तीर्थपादपदाम्भोजरजसाऽतीव पावने ॥ २४ ॥ ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ॥ क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२५॥ ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुंकुमपिञ्जरम् ॥ वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ॥२६॥ तारहेममहारत्नविमानशतसंकुलाम् ॥ जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥ २७ ॥ हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ॥ द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २८ ॥ रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ॥ कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदण्डजलाशयम् ॥ २९ ॥ वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना ॥ अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥३०॥ वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३१ ॥ स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्महायोगमते मुमुक्षुशरणे सुराः ॥ ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥३३॥ सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ॥ उपास्यमानं सख्या च

था, जो कलहंसोंको प्रिय था, जहाँ पद्मोंसे युक्त अनेक जलाशय थे ॥ २९ ॥ जिसमें वनके हाथियों द्वारा घिसे गये चन्दनकी वायुसे पुण्यजनोंकी स्त्रियोंका मन बार-बार अत्यन्त क्षुभित हो रहा था ॥ ३० ॥ जिसमें वैदूर्यमणिके सोपान और कमलकी मालाओंवाली वापियाँ थीं तथा जो किंपुरुषोंसे प्राप्त था । उस वनको देखकर दूरसे ही उस वटको देखा ॥ ३१ ॥ वह वट सौ योजन ऊँचा था तथा पचहत्तर योजन तक उसकी शाखाओंका विस्तार था । उसके चारों तरफ अचल छाया होती थी तथा उसमें पक्षियोंके घर नहीं बने थे । जिससे वह किसी तरह उपद्रवजन्य तापसे रहित था ॥ ३२ ॥ मुमुक्षुओंके आश्रयभूत तथा भगवानकी उपासना करनेके योग्य उस वटके नीचे बैठे हुए भगवान् शंकरको देवताओंने ऐसे देखा, जैसे कि क्रोधको त्यागकर साक्षात् अन्तक बैठा हो ॥ ३३ ॥ वे स्पन्दनादि शान्त महासिद्धों, गुह्यकों तथा राक्षसोंके पति मित्र कुबेरसे उपासित थे एवं उनका शरीर शान्त था

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २४ ॥ संसारके सुहृद, अधिपति भगवान् शंकर विद्या, तप तथा योगमार्गमें स्थित थे और स्नेहके कारण मनुष्यों का हित करने वाला तप कर रहे थे ॥३५॥ संन्ध्याकालीन मेघके समान कान्तिवाले अपने शरीरसे तपस्वियों के अभिष्ट भस्म, दण्ड, जटा तथा मृगचर्म, इन चिह्नों को और चन्द्रलेखाको भी धारण किये हुए थे ॥ ३६ ॥ वे शंकर कुशाओंके आसनपर बैठे हुए थे तथा सबके सुनते-सुनते नारदमुनिके प्रश्न करनेपर उन्हें सनातन ब्रह्मका उपदेश दे रहे थे ॥ ३७ ॥ दाहिनी जाँघपर सेव्यचरण रखकर तथा सव्यजानुपर बाहु रखकर, मणिबन्ध स्थानमें अक्षयमालको धारणकर तर्कमुद्रासे बैठे हुए थे ॥३८॥ तब ब्रह्मानन्दमें निश्चल मन लगाकर योगपट्टका आश्रय लेकर बैठे हुये मनुओं में मुख्य उन भगवान् शंकरको लोकपालों के सहित मुनियों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ तब देव तथा राक्षसों से पूज्यपाद भगवान् शङ्कर आये हुए ब्रह्माजीको जानकर उठ गये और उनका इसप्रकार सिरसे प्रणाम किया

भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥३४॥ विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ॥ चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥ ३५ ॥ लिङ्गं च तपसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ॥ अङ्गेन सन्ध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ३६ ॥ उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् ॥ नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ॥ बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥ ३८ ॥ तं ब्रह्मनिर्वाण-समाधिमाश्रितं गिरीशं योगकक्षाम् ॥ सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनु प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥ ३९ ॥ स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ॥ उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥ ४० ॥ तथापरे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ॥ नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥४१॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ॥ शक्तेः शिवस्य च पर यत्तद्ब्रह्मानिरन्तरम् ॥४२॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥४३॥ त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् . त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥ ४४ ॥ त्वं कर्मणां

जिसप्रकार पूज्यतम भगवान् वामनने कश्यपको किया था ॥ ४० ॥ तथा महर्षियोंके सहित जो अन्य सिद्धगण शङ्करके चारों तरफ बैठे हुए थे, उन्हों ने भी ब्रह्माको प्रणाम किया । तदनन्तर ब्रह्माजी सबसे नमस्कृत होकर प्रणाम करनेवाले भगवान् शंकरसे हँसते हुए कहने लगे ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीने कहा—इस संसारके कारण योनि, बीजरूप जो प्रकृति तथा पुरुष हैं उनके भी नियन्ता मैं आपको जानता हूँ तथा जो भेदरहित प्रकृति और पुरुषके परे निर्विकार परब्रह्म हैं, वही आप हैं ॥ ४२ ॥ हे भगवन्, आपही अभिन्नप्रकृति तथा पुरुषके साथ क्रीडा करते हुए इस संसारकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार इसप्रकार करते हैं, जिसप्रकार मकड़ी अपने मुखसे जालकी उत्पत्ति आदि करती है ॥ ४३ ॥ आपने ही धर्म और अर्थको यथेष्टरूपसे देनेवाली वेदत्रयीकी रक्षा करनेके लिये दक्षको निमित्त बनाकर यज्ञोंका निर्माण किया था तथा आपने ही इस संसारमें वर्ण और आश्रमोंकी मर्यादाओंका निर्णय किया है, जिनका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्रतधारी ब्राह्मण लोग श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करते रहते हैं ॥ ४४ ॥ हे मङ्गल, आपही शुभकर्म करनेवाले मनुष्योंको स्वर्ग तथा मोक्ष देते हैं और जो अशुभकर्म करता है उसे भयानक नरक देते हैं। तो फिर उसीमें किस कारणसे किसीको विपरीत होता है ॥ ४५ ॥ तथा जो आपके चरणोंमें मन लगाये रहते हैं, समस्त प्राणियोंमें आपको देखते हैं समस्त प्राणियों-को आत्मामें अभेद दृष्टिसे देखते हैं, उन्हें मूर्ख मनुष्योंके समान क्रोध अपमानित नहीं करता ॥ ४६ ॥ जो भेदबुद्धिके कारण कर्ममें दृष्टि रखनेवाले हैं, जिनका मन दुष्ट है, जो दूसरों-की सम्पत्तिको देखकर सदा दुःखी होते हैं तथा दूसरोंको दुर्वचनोंसे पीड़ित करते हैं, वे दैवसे ही मरे हुएकी तरह हैं। उन्हें आपके समान महात्मा पुरुष न मारें ॥ ४७ ॥ हे पुष्करनाभ, जब भगवान्‌की दुरन्त मायासे मोहितचित्त होकर मनुष्य साधुओंका अपराध करते हैं तब साधु पुरुष उस अपराधमें अनुकम्पाके कारण कृपा करते हैं। और यह अपराध हमारे दैवसे हुआ

मङ्गल मङ्गलानां कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा ॥ अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥ ४५ ॥ न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ॥ भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥ ४६ ॥ पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ॥ परान्दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्मावधीद्दैववधान्भवद्विधः ॥ ४७ ॥ यस्मिन्यदा पुष्करनाभ मायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ॥ कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥ ४८ ॥ भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ॥ तया हतात्मस्वनुकर्मचेतः स्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४९ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ॥ न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥ ५० ॥ जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ॥ भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥ देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥५२॥ एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ॥ यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

है, ऐसा विचारकर पराक्रम नहीं करते ॥ ४८ ॥ आप तो परमपुरुष भगवान्‌की दुरन्त मायासे स्पृष्टमति न होनेके कारण सर्वज्ञ हैं, अतः हे प्रभो, जो उस मायासे अभिभूत होकर कर्ममें अपने चित्तको लगाये हैं, उनके अपराधको आप क्षमा करने योग्य हैं ॥ ४९ ॥ हे भगवन्, आपके द्वारा नष्टकर दिये जानेके कारण समाप्त न हुए प्रजापति दक्षके यज्ञका उद्धार कीजिये, जिस यज्ञमें भागके अधिकारी भी आपको कुत्सित याज्ञिकोंने भाग नहीं दिया, जिन आपसे ही यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ यह यजमान जीवित हो जाय, भग अपने नेत्र प्राप्त करें, भृगुकी दाढ़ी पैदा हो जाय और पूषाके दाँत पूर्वकी तरह उग जायँ ॥ ५१ ॥ हे शिव, आयुध तथा पत्थरोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले देवता तथा ऋत्विक् लोग आपके अनुग्रहसे स्वस्थ हो जायँ ॥ ५२ ॥ हे रुद्र, यज्ञ समाप्त होनेपर जितना अवशिष्ट रहे, उतना यह आपका भाग रहे और हे यज्ञहन्, आज आपके भागसे यज्ञ समाप्त किया जाय ॥ ५३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छठें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, भगवान् शङ्करकी सेनासे पराजित होकर देवताओंने ब्रह्माजीके पास जाकर समस्त वृत्तान्त कहा। उनकी सब बातें सुन लेनेके बाद ब्रह्माजी उनके साथ भगवान् शंकरके प्रिय धाम कैलाशको गये। वहाँपर वट वृक्षके नीचे तर्क मुद्रासे बैठे हुए भगवान् शंकरको देखकर लोकपालोंके सहित मुनियोंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया तथा ब्रह्माजीको आये हुए जानकर भगवान् शंकरने उठकर सिरसे अभिवादन किया। तदनन्तर ब्रह्माजी हँसते हुए दक्षके जीने तथा अन्य सबोंके स्वस्थ होनेकी प्रार्थना उन भूतपति भगवान् शंकरजीसे करने लगे।

❋ अथ सप्तमोऽध्यायः ❋

[दक्षके यज्ञका पुनः प्रवर्तित होना तथा वहाँपर प्रकट हुए भगवान्की स्तुति करना]

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इसप्रकार जब ब्रह्माजीने प्रार्थना की, तब भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और हँसकर कहने लगे—सुनो ॥ १ ॥ श्री महादेवजीने कहा—हे प्रजेश, भगवान्की मायाके वशीभूत हुए मूर्ख प्राणियोंके अपराधकी मैं चिन्ता नहीं करता तथा वर्णन भी नहीं करता। केवल मैंने शिक्षाके लिये दण्डविधान किया है ॥२॥ प्रजापति दक्षका सिर जल गया है। इसलिये उसको बकरेका मुख हो जावे तथा भग यज्ञके अपने भागको मित्रनामके सूर्यके नेत्रसे देखे ॥ ३ ॥ और पूषा यजमानकी दाँतोंसे भोजन करे अथवा पिष्टान्न

मैत्रेय उवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥ अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये ॥ देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥ २ ॥ प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥ ३ ॥ पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ॥ देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥ ४ ॥ बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ॥ भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ॥ परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ॥ भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो

भोजन करे और जिन्होंने मुझे यज्ञ का अवशिष्टभाग दिया है, वे समस्त देवगण पूर्वकी तरह समस्त अङ्गोंवाले हो जावें ॥ ४ ॥ जिनके अङ्ग नष्ट हो गये हों वे अश्विनीकुमारोंकी बाहुओंसे बाहुवाले तथा पूषाके हाथोंसे हाथोंवाले हो जावें। एवं अध्वर्यु, ऋत्विक् आदि भी स्वस्थ हो जावें और भृगुको बकरेके समान दाढ़ी हो जावे ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—उस समय समस्त प्राणी भगवान् शंकरके वचनोंको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और आपने बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया, इसप्रकार साधुवाद कहने लगे ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे भगवन्, आप चलकर ॥१५॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सब कर देवें, यों शंकरकी प्रार्थना करके समस्त देवगण ऋषि, ब्रह्मा तथा शंकरके साथ पुनः उस यज्ञस्थलको गये ॥ ७ ॥ तथा जैसा भगवान् शंकरने पहले कहा था, वैसाही सब पूर्णरूपसे करके, बकरेके सिरको प्रजापति दक्षके शरीरसे जोड़ दिया ॥ ८ ॥ उस सिरके जुटते ही भगवान् शंकरके कृपा पूर्वक देखनेसे दक्ष इसप्रकार उठ बैठे जिसप्रकार कोई सोकर उठता है। और उठनेके बाद उन्होंने अपने आगे खड़े भगवान शंकर को देखा ॥९॥ उस समय पहले शंकरके द्वेषसे कलुषित चित्त वह प्रजापति दक्ष शंकरके देखनेसे शरत् कालके सरोवरके समान निर्मल हो गया ॥१०॥ तदनन्तर दक्ष भगवान् शंकरकी स्तुति करनेके लिये उद्यत हुए, परन्तु अपनी मृत कन्याका स्मरण हो जानेसे स्नेह तथा उत्कण्ठासे उनका कण्ठ गद्गद् हो गया। जिससे वे स्तुति करनेमें समर्थ न हो सके ॥ ११ ॥ तत्पश्चात् दक्षने बड़े कष्टके साथ अपने मनको ढाढ़स दिया और शुद्धभावसे भगवान् शंकरकी स्तुति की ॥ १२ ॥ दक्ष कहने लगे—

ययुः ॥ ७ ॥ विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान्भवः ॥ सन्दधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥ ८ ॥ सन्धीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः ॥ सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥ ९ ॥ तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ॥ शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ॥ औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां स्मरन् ॥११॥ कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः ॥ शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥१२॥ दक्ष उवाच ॥ भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यद्यपि प्रलब्धः ॥ न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥ १३ ॥ विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ॥ तद्ब्राह्मणान्परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ॥ १४ ॥ योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ॥ अर्वाक्पतन्तमर्हत्तमनिन्दयाऽपाद्दृष्ट्यार्द्रया स भगवान्स्वकृतेन तुष्येत् ॥१५॥ मैत्रेय उवाच ॥ क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ॥ कर्म सन्तानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥१६॥ वैष्णवं यज्ञसन्तत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ॥

हे भगवन्, यद्यपि मैंने आपका अनादर किया है, फिर भी आपने मेरे ऊपर यह दण्डरूप अनुग्रह ही किया है—आपने मुझे शिक्षाही दी है, उपेक्षा नहीं की, क्योंकि आप तथा भगवान् विष्णु ब्राह्मणाधर्मोंकी भी उपेक्षा नहीं करते, पुनः व्रतधारियोंकी कैसे करेंगे ? ॥ १३ ॥ हे प्रभो, पहले आपने ही ब्रह्माका रूपधारण करके आत्मतत्त्वकी रक्षा करनेके लिये विद्या, तप तथा व्रत धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको मुखसे उत्पन्न किया था। इसलिये हे भगवन्, उन ब्राह्मणोंकी आप समस्त आपत्तियोंमें इस प्रकार रक्षा करते हैं जिसप्रकार हाथमें डंडालेकर पशुपालक पशुओंकी रक्षा करता है ॥ १४ ॥ मैंने आपका तत्त्व न जाननेके कारण सभामें दुर्वचनोंसे आपकी निन्दा की, फिर भी नरकमें गिरते हुए मेरे उस अपराधपर ध्यान न देकर आपने कृपा दृष्टि द्वारा मेरी रक्षा की। इसलिये आप अपने उस परोपकाररूपी कर्मसे ही प्रसन्न हों ॥ १५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—दक्षने इसप्रकार शंकरसे अपना अपराध क्षमाकराकर ब्रह्माजीकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आज्ञासे उपाध्याय, ऋत्विक् तथा अग्निके द्वारा पुनः यज्ञारम्भ किया ॥ १६ ॥ तब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने यज्ञके विस्तारके लिये विष्णुदेवता सम्बन्धी दिक्पाल तथा शंकरके गुणोंके संसर्गसे दूषित यज्ञकी शुद्धिके लिये पुरोडाशका हवन किया ॥ १७ ॥ हे विदुरजी, हविको ग्रहण किये हुए अध्वर्युके साथ दक्षने श्रेष्ठबुद्धिसे भगवान् का ध्यान किया। तदनन्तर शीघ्रही भगवान् प्रकट हो गये ॥ १८ ॥ दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली अपनी कान्तिमें उन सबके तेजको तिरस्कृत करते हुए भगवान् गरुड़पर बैठकर वहाँ आये। जिन गरुड़के बृहद्रथन्तर (तत्संज्ञक सामभाग) ही पक्ष हैं ॥ १८ ॥ उन भगवान्का श्यामवर्ण था, सोनेकी करधनी पहने हुए थे, सिरपर सूर्यके समान प्रकाश करनेवाला मुकुट था तथा भौरोंके समान नीले केशों और कुण्डलोंसे उनकी मुखकी खूब शोभा हो रही थी। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, बाण, तलवार तथा ढाल—ये शस्त्र थे। भगवान् भृत्यकी रक्षाके लिये व्यग्र हिरण्यमय

पुरोडाशं निरवपन्वीरसंसर्गशुद्धये ॥१७॥ अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशांपते ॥ धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरि ॥१८॥ तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश ॥ मुष्णांस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥ १९ ॥ श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलाल-कभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ॥ कम्ब्वब्जचक्रशरचापगदासिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥ २० ॥ वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासाव-लोककलया रमयंश्च विश्वम् ॥ पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥ २१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः॥ प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥ २२ ॥ तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ॥ मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥२३॥ अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महि त्वात्मभुवादयः ॥ यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥ २४ ॥ दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं यज्ञेश्वरं विश्व-सृजां परं गुरुम् ॥ सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन्प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥२५॥ दक्ष उवाच ॥ शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मा

अपनी भुजाओंसे ऐसे शोभित हो रहे थे, जैसे कि कचनार अपनी डालियोंसे शोभित होता है ॥ २० ॥ भगवान्के वक्षःस्थलमें लक्ष्मी तथा वनमाला विराज रही थी, वे अपने उत्कृष्ट हासपूर्वक निरीक्षणसे विश्वको मोहितकर रहे थे तथा उनके पार्श्वमें हंसोंके समान श्वेत चँवर डोल रहे थे एवं ऊपर चन्द्रमाके समान निर्मल श्वेतछत्रसे वे शोभातिशयको प्राप्त हो रहे थे ॥ २१ ॥ उन भगवानको आए हुए देखकर ब्रह्मा, इन्द्र तथा शंकर प्रमुख समस्त देवगणोंने सहसा उठकर प्रणाम किया ॥ २२ ॥ भगवान्के तेजसे उन लोगोंकी कान्ति फीकी हो गई। उनकी महिमासे वे क्षुभितचित्त हो गए तथा उनकी वाणी गद्गद हो गई। तब सबोंने मस्तकपर हाथ जोड़कर भगवान्की स्तुति की ॥ २३ ॥ जिन भगवान्की महिमाके समीप न जाने-वाली बुद्धियुक्त ब्रह्मादिक भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए मूर्ति धारण करनेवाले भगवान्की स्तुति अपनी बुद्धिके अनुसार किया करते हैं ॥ २४ ॥ दक्ष अपने हाथमें पूजनसामग्रीके सहित पात्र लेकर प्रजापतियोंके परमगुरु सुनन्द, नन्द आदि अनुचरोंसे युक्त यज्ञेश्वर भगवानकी मारे आनन्दके हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए शरणमें गये ॥ २५ ॥ दक्षने कहा—हे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् आप अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए शुद्ध चैतन्यघन हैं, क्योंकि आपमें कभी भी बुद्धिकी अवस्था राग द्वेषादि नहीं रहती। इसलिए भेदशून्य रहनेके कारण आप भयसे रहित हैं। आप माया को तिरस्कृत करके स्वतन्त्र हुए भी कभी उसीका आश्रय लेकर पुरुष शरीरको धारण करके उसीमें अवस्थित रहते रागीके समान प्रतीत होते हैं ॥ २६। । ऋत्विजोंने कहा—हे उपाधिमल रहित प्रभो, हमलोग नन्दीश्वरके शापके कारण आपके स्वरूपको नहीं जानते, केवल कर्ममें ही लगे रहते हैं। एकमात्र धर्मोंके उपलक्षणभूत वेदोंसे प्रतिपादित आपके इस यज्ञनामक रूपको ही जानते हैं। जिसको सिद्ध करनेके लिए देवताधिकारसे यह व्यवस्था है ॥ २७ ॥ सदस्योंने कहा—हे शरणद, अहंकारके आस्पद शरीर तथा ममताके आस्पदगृहरूपी भारसे दबा हुआ, कामसे पीड़ित इन मूर्ख जीवोंका समूह इस संसार मार्गमें रहता हुआ आपके चरणकमलरूप निवासमें कब प्राप्त होगा ? जिस मार्गमें विश्राम नहीं है तथा अत्यन्त क्लेश

त्वमेकमभयं प्रतिपिध्य मायाम् ॥ तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥ २६ ॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात्कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः ॥ धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः ॥ २७ ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ॥ द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थःपादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥ २८ ॥ रुद्र उवाच ॥ तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ॥ यदि रचितधियं माविद्यलोकोपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥ २९ ॥ भृगुरुवाच ॥ यन्मायया गहनयापहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ॥ नात्मन् श्रितं तव विदन्त्यधुनापि तत्त्वं सोऽयं प्रसीदतु भवान्प्रणतात्मबन्धुः ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थ भेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ॥ ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद्व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥३१॥ इन्द्र उवाच ॥ इदमप्यच्युत विश्वभावनं

ही दुर्गम स्थान हैं, भयानक मृत्युरूपी सर्पसे वह मार्ग युक्त है, जिसमें विषयरूपी मृगतृष्णा तथा सुख-दुःखरूपी गड्ढे हैं, जिसमें दुष्ट मनुष्यरूपी व्याघ्र आदिसे महान् भय है तथा शोकरूपी दावाग्निसे जो निरन्तर जल रहा है ॥ २८ ॥ शंकरजीने कहा—हे वरद, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तथा कामोंमें आसक्त न रहनेवाले मुनियोंसे सादर पूजनीय आपके मनोहर चरणोंमें चित्त लगानेवाले मुझे मूर्ख मनुष्य आचारभ्रष्ट कहा करते हैं, परन्तु आपके परम अनुग्रहसे मैं उसकी कुछ भी गणना नहीं करता ॥ २९ ॥ भृगुजीने कहा—हे भगवन्, देहधारी ब्रह्मादिकके आत्मज्ञानको भी जिनकी गहन माया नष्टकर देती है, जिससे वे लोग अज्ञानमें पड़े सोये रहते हैं और आत्मामें स्थित आपके तत्त्वको आजतक नहीं जानते, वह भक्त के आत्मा तथा बन्धु आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीने कहा—मनुष्य अपनी इन्द्रियोंसे जो कुछ देखता है वह आपका रूप नहीं है। आप ज्ञान तथा उसके विषय अर्थ और इन्द्रियोंके आश्रय हैं। इसलिए आप मायामय वस्तुसे पृथक् हैं ॥ ३१ ॥ इन्द्रने कहा—हे अच्युत, देव-शत्रुओंको नाश करनेके लिये शस्त्र उठाए हुए इन आठ भुजाओंसे युक्त मन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा नेत्रों को आनन्दित करनेवाला आपका यह रूप भी प्रमाणित है, जो जगत्‌की रक्षा करता है ॥ ३२ ॥ पत्नियोंने कहा—हे यज्ञरूप, पहले आपका यजन करनेके लिए इस यज्ञका ब्रह्माने आरम्भ किया था, उसी यज्ञको आज दक्षके कोपसे शंकरने नष्टकर दिया। इसलिए आप हमलोगोंके उस श्मशानतुल्य उत्सवशून्य यज्ञको कमलके समान कान्तिवाले नेत्रसे पवित्र कीजिए ॥ ३३ ॥ ऋषियोंने कहा—हे भगवन्, आपका विचेष्टित बहुत ही विचित्र है, क्योंकि आप स्वयं कर्म करते हैं, परन्तु उसमें लिप्त नहीं होते और अन्य पुरुष अपनी वृद्धिके लिये लक्ष्मीकी सेवा करते हैं, परन्तु आपका स्वयं अनुवर्तनकर रही उस लक्ष्मीका आप सत्कार नहीं करते ॥ ३४ ॥ सिद्धगणोंने कहा—यह हमारा मनरूपी हाथी क्लेशरूपी दावानलसे दग्ध होकर तृष्णाके कारण आपकी कथारूपी निर्मल अमृतकी नदीमें प्रविष्ट हो गया है, जिससे कि उस संसारतापका स्मरण नहीं करता तथा ब्रह्ममें लीन हो गयेकी नाई वहाँसे निकलता

वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ॥ सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥ ३२ ॥ पत्न्य ऊचः ॥ यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाऽद्य दक्षकोपात् ॥ तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मनाऽऽचरसि हि कर्म नाज्यसे ॥ विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ॥ तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥ ३५ ॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ॥ त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥३६॥ लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ॥ माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥ ३७ ॥ योगेश्वरा ऊचुः ॥ प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ॥ अथापि भक्त्येश तयोपधावतामन-

भी नहीं है ॥ ३५ ॥ दक्षपत्नीने कहा—हे प्रभो, आपका स्वागत हो, आप प्रसन्न हों, आपके लिए नमस्कार है। हे अधीश, जैसे हाथ, पैर आदि अङ्गोंके रहते हुए भी सिर के बिना कबन्धकी शोभा नहीं होती, वैसेही अन्य सबके रहनेपर भी आपके बिना इस यज्ञकी शोभा नहीं होती। अतः हे श्रीनिवास, अपनी पत्नी लक्ष्मीके सहित हमलागोंकी रक्षा कीजिए ॥ ३६ ॥ लोकपालोंने कहा—हे भगवान, असद् वस्तुओंमें आग्रह रखनेवाली इन इन्द्रियोंसे प्रत्यग् द्रष्टारूप आपको हमलोगोंने क्या देखा है ? नहीं। इस दृश्यके आप द्रष्टा हैं, आपही इसको देखते हैं। हे भूमन, शुद्ध चित्तवालोंको आप शुद्ध सत्त्वमूर्ति भासते हैं, बहिर्मुख इन्द्रियोंवाले हमलोगोंको तो आप पञ्चभूतोपलक्षित जीव विशेष ही भासते हैं। हमारे इस जीवनको धिक्कार है। यह आपकी ही माया है जो आप पाँच भूतोंसे अतिरिक्त षष्ठ सच्चिदानन्दस्वरूप भासित होते हैं ॥ ३७ ॥ योगेश्वरोंने कहा—हे प्रभो, जो मनुष्य संसारके आत्मा परब्रह्म आपमें अपनेसे पृथक् कुछ भी न देखे, उससे अन्य आपका कोई प्रिय नहीं है। फिर भी हे भक्तजनप्रिय, हे ईश, अनन्यवृत्ति भक्तिसे आपका भजन करनेवालोंके ऊपर आप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुग्रह कीजिए ॥ ३८ ॥ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके निमित्त जीवोंके अदृष्टवश बहुधा भेदको प्राप्त हो रहे गुणोंवाली अपनी मायासे अपने स्वरूपमें ही अपने ब्रह्मादिरूप भेदबुद्धिकी रचना करते हैं तथा केवल अपने स्वरूपमें स्थित रहनेके कारण अपने भेदयुक्त, गुणों तथा उनके कारणोंका अपनेमें ही फिर निरास भी कर देते हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजीने कहा—सत्त्वगुणका आश्रयण करनेवाले तथा धर्मादि फल देनेवाले निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। जिनकी अवधिको मैं नहीं जानता तथा अन्य भी नहीं जानते ॥ ४० ॥ अग्निने कहा—जिन भगवान्‌के तेजसे अत्यन्त प्रदीप्त होकर मैं प्रशस्त यज्ञोंमें घृतसे सिक्त हविका वहन करता हूँ, उन यजुर्वेदके पांच मन्त्रोंसे पूजित पांचप्रकारके यज्ञके रक्षक यज्ञमूर्ति भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ४१ ॥ देवताओंने कहा—पहले प्रलयके समय अपनेसे विरचित इस संसारको अपने उदरमें करके आदिपुरुष आपही शेषकी उत्कृष्ट

न्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ॥३८॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममायया ॥ रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥३९॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ॥ निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च ॥४०॥ अग्निरुवाच ॥ यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ॥ तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥४१॥ देवा ऊचुः ॥ पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन्सलिल उरगेन्द्राधिशयने ॥ पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ॥ क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमंस्तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥४३॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ॥ क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ॥ त्वं सदस्यर्त्विजो दंपती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥४५॥ त्वं पुरा गां रसाया महा-

शय्यापर उस जलमें सोते हैं, जिनके ज्ञानमार्गको सिद्धलोग विचारते हैं। वही आप आज हमलोगोंके नेत्रोंके सन्मुख विराजमान हैं और हम सेवकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ४२ ॥ गन्धर्वोंने कहा—हे देव, मारीचि आदि ऋषि, ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्र प्रभृति देवगण आपके अंश तथा अंशांश हैं तथा हे विभूमन्, यह संसार आपकी क्रीड़ाका पात्र है। हे नाथ, आपको नित्यही हम नमस्कार करते हैं ॥४३॥ विद्याधरोंने कहा—समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले इस शरीरको पाकर मनुष्य आपकी मायासे इसीमें शरीरमें मैं और मेरा' यह अभिमान करता है तथा कुमार्गगाकी अपने पुत्रों आदिके तिरस्कार करनेपर भी इस दुर्मति मनुष्यकी विषयोंमें अपद्रूप तृष्णा बनी रहती है, परन्तु आपकी कथारूप अमृतका सेवन करनेसे वह अपने मोहको शीघ्र दूरकर देता है ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणोंने कहा—हे प्रभो, आप यज्ञस्वरूप हैं तथा हवि, अग्नि, मन्त्र, समिधा, कुशा, पात्र, सदस्य, ऋत्विक्, स्त्री, पुरुष, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमलता,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

घृत एवं पशुस्वरूप आपही हैं ॥ ४५ ॥ हे देवमूर्तें, जैसे हाथी कमलनी को जलमेंसे निकालता है, वैसेही पहले आप शूकरका अवतार धारणकर अपनी दाँतोंसे इस पृथ्वीको रसातलसे जब लोलापूर्वक ऊपर उठा लाए तब योगीलोग अपकी स्तुति करने लगे। वही आप यज्ञ तथा क्रतुरूप हैं ॥ ४६ ॥ हे यज्ञेश, आपके दर्शन करनेकी हमलोगोंको बड़ी अभिलाषा है। इसलिये आप भ्रष्ट हुए सत्कर्मवाले हमलोगोंके ऊपर प्रसन्न हो जाइए तथा इस यज्ञको सफल बनाइये। मनुष्यों द्वारा जिनके नाम संकीर्तनसे ही समरत यज्ञोंके विघ्न क्षीण हो जाते हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे भद्र विदुरजी, इसप्रकार यज्ञोंके पालक भगवान् हृषीकेशकी जब सबोंने स्तुतिकी, तब कवि उस दक्षने वीरभद्रसे नष्ट-भ्रष्ट किए गये उस यज्ञको पुनः प्रारम्भ किया ॥ ४८ ॥ हे अनघ विदुरजी, सबकी आत्मा होनेके कारण सबके भागको ग्रहण करनेवाले होनेपर भी भगवान् अपने भागसे प्रसन्न हो रहेकी तरह दक्षको सम्बोधित

सूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रदो यथा ॥ स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥ स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ॥ कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥४७॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्र रुद्राभिमर्शितम् ॥ कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ॥ ४८ ॥ भगवान्स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ॥ दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ॥ आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥ ५० ॥ आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ॥ सृजन्रक्षन्हरन्विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ॥ ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनु पश्यति ॥ ५२ ॥ यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरः पाण्यादिषु क्वचित् ॥ पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥ ५३ ॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ॥ सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन्स शान्तिमधिगच्छति ॥५४॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् ॥ अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः ॥ कर्मणोदवसानेन

करके कहने लगे ॥ ४९ ॥ श्री भगवान्‌ने कहा—जो मैं इस संसारका प्रधान कारण, आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयं प्रकाश तथा उपाधिसे रहित हूँ वही ब्रह्मा तथा शंकर हैं ॥५०॥ हे द्विज, वही मैं अपनी गुणमयी मायाका आश्रय लेकर, इस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करता हुआ क्रियाके अनुरूप नाम धारण करता हूँ ॥ ५१ ॥ समानासमान जातीय भेदरहित केवल उस परब्रह्मरूप मुझमें तथा ब्रह्मा, रुद्र आदिमें जो प्राणियोंको भेदपूर्वक पृथक् पृथक् देखता है, वह मूर्ख हैं ॥ ५२ ॥ जैसे मनुष्य अपने शरीरके अङ्गभूत सिर, हाथ, पैर आदिमें शरीरसे पृथक् बुद्धि नहीं करता वैसेही जो मेरा भक्त है वह भी समस्त प्राणियोंमें एक भाव रखता है ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन्, जो समस्त प्राणियोंके आत्मारूप हम तीनोंमें भेद नहीं देखता, वह शांति प्राप्त करता है ॥५४॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार भगवान्‌से आदिष्ट होकर प्रजापतियोंके पति दक्षने अपने यज्ञसे भगवान्‌का पूजन किया और देवताओंकी भी अङ्ग तथा प्रधान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यज्ञसे पूजाकी ॥ ५५ ॥ तथा बड़ी सावधानीके साथ यज्ञसे अवशिष्ट भागसे शंकरकी पूजा की तथा जिससे यज्ञ समाप्त होता है, उस उदवासाम कर्मसे सोमलताका पान करनेवाले देवताओं और दूसरोंका भी पूजन किया। तदन्तर यज्ञको समाप्त करके ऋत्विजोंके साथ अवभृथ स्नान किया ॥५६॥ यद्यपि दक्ष अपनेही प्रभावसे सिद्धियोंको प्राप्त किए हुए थे, तथापि वे देवता लोग उनकी बुद्धिको धर्ममें लगाकर अपने निवासस्थान स्वर्ग चले गये ॥ ५७ ॥ इसप्रकार दक्षपुत्री सती अपने पूर्व शरीरको छोड़कर हिमालयकी स्त्री मैनाके गर्भसे उत्पन्न हुई, ऐसा हम-

सोमपानितरानपि ॥ उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥ ५६ ॥ तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ॥ धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥ ५७ ॥ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ॥ यज्ञेहिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ५८ ॥ तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका ॥ अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥ ५९ ॥ एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ॥ श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥ ६० ॥ इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥ यो नित्यदाकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञसंधानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

लोग सुनते हैं ॥ ५८ ॥ अम्बिकाने भक्तोंके प्रधान आश्रय अपने उसी प्रियपति भगवान् शंकरको ही भजा, जैसे प्रलयके समय सोई हुई शक्ति प्रकृति भगवान्को भजती है ॥ ५९ ॥ दक्षके यज्ञका ध्वंस करनेवाले भगवान् शंकरका यह चरित्र मैंने बृहस्पतिके शिष्य भगवद्भक्त उद्धवसे सुना था ॥ ६० ॥ हे विदुरजी, यह परमपुरुष भगवान्का पवित्र चरित्र यश तथा आयुको बढ़ानेवाला और पापोंको नष्ट करनेवाला है, जो इसे भक्तिभावसे नित्य सुनकर कीर्तन करता है उसके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

सातवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इस प्रकार ब्रह्मासे प्रार्थित होकर भगवान् शंकरने सबको स्वस्थ होनेका वरदान दिया। तदनन्तर देवतालोगोंने शङ्करके साथ यज्ञमें जाकर दक्षको बकरेका सिर लगाया। उसकेबाद ब्रह्माकी आज्ञासे यज्ञ आरम्भ किया और शुद्धभावसे भगवान्का ध्यान करने पर भगवान् प्रकट हुए। दक्षादि समस्त देवोंने उनकी स्तुतिकी भगवान्ने अपने भागसे प्रसन्न होकर दक्षसे कहा कि हम तीनों एक ही हैं। इनमें मनुष्योंको भेद नहीं देखना चाहिए। भेददृष्टि रखने वाले मूर्ख हैं तदनन्तर भगवान्-की आज्ञासे दक्षने सबका पूजन किया और अपने यज्ञको समाप्त करके अवभृथ स्नान किया। सातवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ अष्टमोऽध्यायः ❋

[ध्रुवका वन गमन तथा तपस्यासे भगवान्‌को प्रसन्न करना]

मैत्रेयजीने कहा—ब्रह्माके सनक, सनन्दन, सनातन, सन्तकुमार, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि तथा यति—ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। इसलिए घरमें नहीं रहे ॥१॥ हे शत्रुनाशकविदुरजी, अधर्मकी मृषा नामकी स्त्री थी। उसने दम्भ तथा माया, इन दो स्त्री-पुरुषका एक जोड़ा उत्पन्न किया। उस जोड़ेको निर्ऋतिने अपने यहाँ पुत्र न होनेके कारण ग्रहण कर लिया ॥ २ ॥ हे महामते, उन दोनोंसे लोभ तथा निकृति उत्पन्न हुए और उन दोनोंसे क्रोध तथा हिंसा उत्पन्न हुए। उनसे कलि नामका लड़का और दुरुक्ति नामकी कन्या पैदा हुई ॥ ३ ॥ हे सत्तम, कलिने अपनी स्त्री दुरुक्तिमें भय तथा मृत्युको उत्पन्न किया और उनसे यातना तथा नरक, इन दोनोंका जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ हे अनघ विदुर, मैंने संक्षेपसे यह अधर्मका

मैत्रेय उवाच ॥ सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ॥ नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥ १ ॥ मृषाऽधर्मस्य भार्यासीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् ॥ असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥ २ ॥ तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ॥ ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥ ३ ॥ दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ॥ तयोश्च मिथुनं जज्ञेयातना निरयस्तथा ॥ ४ ॥ संग्रहेण मयाख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ॥ त्रिः श्रुत्वैतत्पुमान्पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥ ५ ॥ अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ॥ स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥ ६ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ॥ वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥७॥ जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ॥ सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥ ८ ॥ एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ॥ उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाऽभ्य-

वंश आपसे कहा है। इस पवित्र वंशको जो मनुष्य तीन बार सुनता है, वह अपने मनके मलको दूर कर देता है ॥ ५ ॥ हे विदुर, अब मैं भगवान्‌के अंश ब्रह्मासे उत्पन्न हुए पवित्र कीर्ति स्वायम्भुव मनुका वंश कहता हूँ ॥ ६ ॥ मनुने अपनी शतरूपा नामकी भार्यामें भगवान्‌की कलासे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद—ये दो पुत्र उत्पन्न किए और ये जगत्‌की रक्षा करनेमें स्थिर हुए ॥ ७ ॥ उत्तानपादकी सुनीति तथा सुरुचि नामकी दो रानियाँ थीं। उनमेंसे राजाको सुरुचि तो प्रिय थी, परन्तु जिसका लड़का ध्रुव था, वह सुनीति प्रिय नहीं थी❋ ॥ ८ ॥

दृष्टान्त—❋ किसी नगर में एक धनी जमीदार रहता था। उसकी स्त्री का नाम प्रभा था उससे एक को कन्या छोड़ कोई पुत्र न हुआ। उसने उसकी सलाह से दूसरा विवाह किया उससे दो कन्या और एक पुत्र हुआ। कुछ दिन तो उसने समता रखी फिर धीरे धीरे उसका प्रेम छोटी से अधिक हो गया बड़ी को यह बात सह्य न हुई। उसने उसके प्रति विष आदि का प्रयोग किया। अतः बुद्धिमान् का कर्तव्य है कि दूसरा विवाह न करे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक दिन राजा सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें लेकर लालन कर रहे थे। उसी समय ध्रुव भी गोदमें चढ़ने लगा, परन्तु राजाने उसे नहीं उठाया ॥ ९ ॥ सुरुचिने सपत्नीके पुत्र ध्रुवको राजाकी गोदमें चढ़ते देखकर राजाको सुनाते हुए ईर्ष्याके कारण इस प्रकार गर्वयुक्त वचन कहा ॥ १० ॥ हे वत्स, यद्यपि तुम राजाके पुत्र हो, तो भी राजाके आसनपर चढ़नेके योग्य नहीं हो क्योंकि तुमको मैंने अपनी कुक्षिमें ग्रहण नहीं किया है ॥ ११ ॥ तुम बालक हो, इसलिए दूसरी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न अपनेको नहीं जानते। इसीसे इस दुर्लभ स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छा कर रहे हो ॥ १२ ॥ यदि तुमको राजसिंहासनकी इच्छा हो, तो भगवान्‌की तपस्या करके प्रसन्न करो और उनसे हमारे उदरसे जन्म लेनेकी प्रार्थना करो ॥ १३ ॥ मैत्रेय जीने कहा—इसप्रकार अपनी सौतेली माताके दुर्वचनोंसे पीड़ित होकर ध्रुव क्रोधके कारण इसप्रकार साँस लेने लगा, जिस प्रकार सर्पको दण्डेसे मारनेपर वह लेता है। और कुण्ठितवाणी

नन्दत ॥ ९ ॥ तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ॥ सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥ १० ॥ न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवनारोढुमर्हति ॥ न गृहीतो मया यत्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥ ११ ॥ बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् ॥ नूनं वेद भवान्यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥ १२ ॥ तपसाराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे। गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥ १३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाऽहिः ॥ हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम् । १४ ॥ तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदुह्य बालम् ॥ निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्याः ॥ १५ ॥ सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावलतेव बाला वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥१६॥ दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ॥ माऽमङ्गलं तात परेष्वमंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥ १७ ॥ सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दु-र्भगाया उदरे गृहीतः ॥ स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥ आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं समात्रापि

देखते हुए अपने पिताको छोड़कर रोता हुआ अपनी माताके पास चला गया ॥ १४ ॥ माता सुनीति श्वांस खींचे तथा क्रोधसे फड़कते हुए ओंठवाले उस बालकको गोदमें ले लिया तदनन्तर अन्तःपुरमें रहनेवालोंके मुखसे सुरुचिके उन गर्वयुक्त वचनोंको सुनकर अत्यन्त व्यथित हुई ॥ १५ ॥ और धैर्य छोड़कर विलाप करती हुई वह इसप्रकार स्थित हुई, जैसे दावाग्निके बीचमें लता हो, तथा अपनी सौतके वचनोंका स्मरण करके उसके कमलके सदृश आँखोंमें आँसू भर आये ॥ १६ ॥ अपने दुःखका अन्त न देखकर साँस लेते हुए बालक ध्रुवसे उसने कहा—हे तात, दूसरोंमें अमङ्गलकी आशङ्का मत करो, क्योंकि जो दूसरेको दुःख देता है वह उसका फल भोगता है ॥ १७ ॥ सुरुचिने ठीक ही क ा है, क्योंकि मेरे उदरसे तुम्हारा जन्म है तथा मेरे ही दूधसे तुम इतने बड़े हुए हो। जो मुझे राजा स्त्री कहनेमें लज्जा करता है। मैं अभागिनी हूँ ॥ १८ ॥ हे तात, जो तुम्हारी सौतेली माँने कहा है, वह सब ठीक ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। इसलिए यदि तुम उत्तमके समान श्रेष्ठ आसन चाहते हो, तो ईर्ष्यासे रहित हो जाओ और अधोक्षज भगवान्के चरणकमलोंकी आराधना करो ॥ १९ ॥ ससारका पालन करनेके लिए सत्त्वगुणको स्वीकार करनेवाले जिन भगवानके चरणकमलोंकी सेवा करके ब्रह्माजीने ब्रह्मपदको प्राप्त किया। जो मन और प्राणोंको जीत रखने वाले योगियोंसे भी वन्दित होते हैं ॥२०॥ तुम्हारे पितामह भगवान् मनुने अत्यन्त दक्षिणायुक्त यज्ञोंसे जिनका यजन करके पृथ्वी तथा स्वर्गके सुख प्राप्त किए, जो दूसरोंसे दुर्लभ थे और अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त किया ॥ २१ ॥ इसलिए हे पुत्र, भक्तोंपर प्रेम करनेवाले उन्हीं भगवान्का तुम आश्रय लो जिनके चरणकमलोंके मार्गका मुमुक्षु लोग अन्वेषण किया करते हैं तथा अपने धर्मसे शुद्ध मनमें भगवान्को स्थित करके अनन्य भक्तिसे उनका भजन करो ॥ २२ ॥ हे पुत्र, कमलनेत्र भगवान्के सिवा दूसरा कोई तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला है, ऐसा मैं विचार करनेपर भी नहीं पाती। हे

यदव्यलीकम् ॥ आराधयाधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥ १९ ॥ यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्वविभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ॥ अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥ २० ॥ तथा मनुर्वो भगवान्पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ॥ इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥ २१ ॥ तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ॥ अनन्यभावे निजधर्मभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥ २२ ॥ नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कञ्चन ॥ यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३। मैत्रेय उवाच ॥ एवं सञ्जल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ॥ सन्नियम्यात्मनात्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥२४॥ नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥ २५ ॥ अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् ॥ बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाप्यवमानं ते संमानं वापि पुत्रक ॥ लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥ २७ ॥ विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसन्तोषहेतवः ॥ पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥ २८ ॥ परितुष्ये-

वत्स, जिस लक्ष्मीको ब्रह्मादिक खोजते हैं वह लक्ष्मी जिन भगवान्को हाथमें कमल लेकर खोजती हैं ॥ २३ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार अर्थपूर्ण माताके विलाप वचनोंको सुनकर अपने आप मनका नियम न करके ध्रुव पिताके नगरसे निकल पड़े ॥ २४ ॥ देवर्षि नारदजी इस धृतान्तको सुनकर तथा ध्रुवका मनोरथ जानकर वहाँ आये और पापोंको नष्ट करनेवाले अपने हाथसे ध्रुवके सिरपर स्पर्श किया। तदनन्तर विस्मित होते हुए उन्होंने कहा ॥ २५ ॥ अहो, अनादरको सहन न करनेवाले क्षत्रियोंका प्रभाव आश्चर्यजनक है। यह बालक भी सौतेली माँके दुर्वचनोंको अपने हृदयमें धारण किए हुए है, भूलता नहीं ॥ २६ ॥ नारदजीने कहा—हे पुत्र, इस समय तुम्हारा आदर या निरादर भी मैं नहीं देखता, क्योंकि अभी तुम बालक हो और खेल-कूदमें व्यग्र रहते हो ॥ २७ ॥ और यदि मानापमानका तुमको ज्ञान है, तो भी दूसराकोई असन्तोषका कारण नहीं है केवल एक मोहकरे छोड़कर, क्योंकि मोहसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही मनुष्य अपने कर्मोंका फल सुख दुःखादिक पाता है ॥ २८ ॥ हे तात, इससे विद्वान् मनुष्य ईश्वरकी गतिका विचार करके जो कुछ दैवसे सुख-दुख प्राप्त हो उसे टालनेका विशेष प्रयत्न न करते हुए अपने मनमें संतोष करे ॥ २९ ॥ जिन भगवान्की तुम माताके द्वारा कहे गये योगसे प्रसन्न करना चाहते हो वह भगवान् मनुष्योंसे कठिनमें प्रसन्न होते हैं, ऐसा मेरा मत है ॥ ३० ॥ तथा मुनि भी अनेक जन्मों तक समस्त सङ्गोंका त्यागकर योगसे समाधिस्थ होकर जिनके मार्गका अन्वेषण करते हुए आजतक भी प्राप्त नहीं कर सके ॥ ३१ ॥ यह तुम्हारा हठ निष्फल है इसलिए तुम निवृत्त हो जाओ और जब तुम्हारी वृद्धवस्था आवे तब इसके लिए यत्न करना ॥ ३२ ॥ सुख और दुःखके बीचमें जो जिसको दैवसे प्राप्त हो जाय, उसीसे आत्माको सन्तुष्ट रखता हुआ मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है ॥ ३३ ॥ मनुष्यको जो अपनेसे गुणमें अधिक हो उससे प्रसन्न रहना चाहिए और जो छोटा हो, उसपर कृपा

चतस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ॥ दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥ २९ ॥ अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि ॥ यत्प्रसादं स वै पुन्सां दुराराध्यो मतो मम ॥ ३० ॥ मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः ॥ न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥ ३१ ॥ अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः ॥ यतिष्यति भवान्काले श्रेयसां समुपस्थिते ॥ ३२ ॥ यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ॥ आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ॥ ३३ ॥ गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ॥ मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते । ३४॥ ध्रुव उवाच ॥ सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ॥ दर्शितः कृपया पुन्सां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥ ३५ ॥ अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः ॥ सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥ ३६ ॥ पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे ॥ ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥ ३७ ॥ नूनं भवान्भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ॥ वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा ॥ प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया । ३९ ॥ नारद उवाच ॥ जनन्याऽभिहितः पन्थाः स वै

करनी चाहिए, उसका अनादर नहीं करना चाहिए एवं जो समान हो, उससे मित्रता करनी चाहिए। इसप्रकार मनुष्य दुःख प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३४ ॥ तब ध्रुवने कहा—हे मुने, आप सुख-दुःखके वशीभूत आत्मावाले पुरुषोंकी जो यह शान्ति मार्ग बड़ी कृपाकर दिखलाई है, हमारे सरीखे मूर्ख तो उसे देख नहीं सकते ॥ ३५ ॥ मैं कठिन क्षत्रियधर्मके आश्रित हूँ, इससे अनम्र हूँ तथा सुरुचिके दुर्वचनरूपी बाणोंसे विदीर्ण हुए मेरे हृदयमें आपके ये शान्ति वचन नहीं ठहरते ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन्, मैं तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ स्थान चाहता हूँ। इसलिए जो हमारे पितरों औरोंने भी कभी प्राप्त न किया हो, उस पदको प्राप्त करनेका सुन्दर मार्ग आप मुझे बतलाइये ॥ ३७ ॥ क्योंकि आप भगवान् ब्रह्माके पुत्र हैं और संसारके हितके लिए अपनी वीणा बजाते हुए सूर्यके समान घूमते रहते हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—भगवान् नारद इसप्रकारके उस बालकके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दयाके कारण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उससे सुन्दर वचन कहने लगे ॥ ३९ ॥ नारदजीने कहा—जो मार्ग तुमको माताने बतलाया है वही तुम्हारा कल्याणकारक है। भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाकर उन्हींका भजन करो ॥ ४० ॥ जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप अपना हित चाहता है। उसे एकमात्र भगवान् हरिके चरणकमलोंकी सेवा करनी चाहिए ॥ ४१ ॥ हे तात, इसलिए तुम यमुना के पवित्र तटपर पुण्यभूमि मथुरामें चले जाओ, जहाँपर भगवान सदा वर्तमान रहते हैं ॥ ४२ ॥ तुम उस मधुवनमें निवास करते हुए यमुनाके पवित्र जलमें तीनों काल स्नान करना और देवता नमस्कारादि उचित कार्योंको कर आसन लगाकर बैठ जाना ॥ ४३ ॥ और पूरक, कुम्भक तथा रेचकात्मक प्राणायामसे प्राण, इन्द्रिय तथा मनके मलको दूर करके निश्चल मनसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान करना ॥ ४४ ॥ वे भगवान् समस्त देवताओंमें सुन्दर हैं, उनका मुख तथा उनके नेत्र सदा प्रसन्न रहते हैं एवं उनकी नासिका, भ्रुकुटि तथा कपोल सुन्दर हैं

निःश्रेयसस्य ते ॥ भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥ ४१ ॥ तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि ॥ पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ४२ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिन्द्याः सलिले शिवे ॥ कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥ ४३ ॥ प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् ॥ शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥ ४४ ॥ प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥ सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥ ४५ ॥ तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥४६॥ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७ ॥ कीरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ॥ कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ ॥ काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ ४९ ॥ पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ॥ हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥ ५० ॥ स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम् ॥ नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥ ५१ ॥ एवं भगवतो

॥ ४५ ॥ उनकी अवस्था तरुण है, अङ्ग मनोहर हैं, नेत्र तथा ओठ लाल हैं। वे भक्तोंके आश्रय, शरणमें आये हुएके रक्षक, करुणाके सागर तथा सुख देनेवाले हैं ॥ ४६ ॥ वक्षः स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न तथा वनमालाको धारण किये हुए हैं, उनका मेघके समान श्यामवर्ण है तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म इन आयुधोंसे उनकी चारों भुजाएँ शोभित रहती हैं ॥ ४७ ॥ जिसपर किरीट तथा कानोंमें कुण्डल धारण किये रहते हैं। केयूर और वलयसे युक्त हैं। ग्रीवामें कौस्तुभमणि तथा पीताम्बरको पहने हुए रहते हैं ॥ ४८ ॥ वे सुवर्णकी करधनीसे वेष्टित रहते तथा उनके चरणोंमें सोनके नूपुर खूब शोभते हैं। अत्यन्त दर्शनीय जिनके शान्तस्वरूपको देखकर मन तथा नेत्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४९ ॥ जो नखरूप मणिकी पंक्तिसे शोभित होनेवाले चरणोंसे—भजन करनेवाले मनुष्योंके हृदयकमलके बीचमें—आक्रमण करके आत्मामें स्थित होते है ॥ ५० ॥ समस्त वरदाताओंमें श्रेष्ठ भगवान्के अनुरागभरे मुस्कुराहट युक्त अव-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोकनवाले मुखका सुस्थिर हो एकाग्र मनसे ध्यान करे ॥ ५१ ॥ इसप्रकार भगवान्‌के मङ्गलमय रूपका ध्यानकर रहे मनुष्यका मन अत्यन्त सुख मिलनेके कारण शीघ्रही वहाँ लीन हो जाता है और वहाँसे लौटकर नहीं आता ॥ ५२ ॥ हे राजकुमार, तुम अपने योग्य मन्त्र भी मुझसे सुन लो, जिसे सातरात तक जपनेसे मनुष्य आकाशमें विचरनेवालोंको देख सकता है ॥ ५३ ॥ 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रसे देश तथा कालके विभागको जाननेवाला विद्वान् नानाप्रकारके द्रव्यों द्वारा भगवान्‌की द्रव्यमयी सपर्या करे ॥५४॥ भगवान्‌की पवित्र जलसे, माला तथा वनमें होनेवाले फलफूल आदिसे, प्रशस्त दूर्वाके अंकुरोंसे, भोजपत्र आदिसे तथा उनकी प्रिय तुलसीसे भी पूजा करे ॥ ५५ ॥ परमित जंगली फलाहार करता हुआ मुनि भगवान्‌की शिलादि निर्मित प्रतिमा प्राप्तकर उसमें पृथ्वी अथवा जलमें पूजा करे और चित्तमें धैर्य धारणकर शान्त स्वभाव तथा मौन रहे ॥ भगवान् अपनी अचिन्त्य मायासे इच्छाके

रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ॥ निवृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ॥५२॥ जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ॥ यं सप्तरात्रं प्रपठन्पुमान्पश्यति खेचरान् ॥५३॥ ॐनमो भगवते वासुदेवाय॥ मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद्द्रव्यमयीं बुधः॥ सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥५४॥ सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ शस्तांकुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रिया प्रभुम् ॥ ५५ ॥ लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वाऽर्चयेत् ॥ आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ्मितवन्यभुक् ॥ ५६ ॥ स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया ॥ करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयङ्गमम् ॥५७॥ परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः ॥ ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मंत्रमूर्तये ॥५८॥ एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ॥ परिचर्यमाणो भगवान्भक्तिमत्परिचर्यया ॥५९॥ पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ॥ श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम्॥ ६० ॥ विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ॥ तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥ ६१ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ॥ ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥ तप.वनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ॥ अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥ ६३ ॥ नारद

अनुसार जो-जो अवतार लेकर चरित्र करेंगे, हृदयको आकर्षित करनेवाले उन चरित्रोंका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ भगवान्‌की जितनी परिचर्या पहले कही है, वह सब मन्त्रमूर्ति भगवान्‌को द्वादशाक्षरमन्त्रसे ही अर्पित करनी चाहिए ॥ ५८ ॥ इसप्रकार मनमें प्राप्त भगवान्‌की मन, वाणी तथा शरीरके द्वारा भक्तिभावसे भरी सेवासे जो परिचर्या करता है। निष्कपट भावसे अच्छी तरह भजन करनेवाले उन सव मनुष्योंका भाव बढ़ानेवाले भगवान् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षमेंसे जिसकी उसे इच्छा रहती, उसको वह कल्याणकारक वस्त देते हैं ॥ ५९, ६० ॥ जो मनुष्य मुक्ति चाहता हो, वह विषयोंको त्यागकर निरन्तर भगवान्‌में मन लगाकरके दृढ़ भक्तियोगसे उनका भजन करे ॥ ६१ ॥ इसप्रकार जब नारदजीने राजकुमार ध्रुवसे कहा, तब वह उनकी परिक्रमा तथा प्रणाम कर भगवान्‌के चरणोंसे शोभित पवित्र मधुवनको चला गया ॥ ६२ ॥ ध्रुवके उस तपोवनमें चले जानेके बाद नारदजी राजाके अन्तःपुरमें गये। उन्हें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखकर राजाने सत्कार किया और आशन देकर बैठाया। आसनपर सुखसे बैठ जानेके बाद नारदजी राजसे कहने लगे ।। ६३ ।। नारदजीने कहा—हे राजन्, आप किस वस्तुका अत्यन्त ध्यानकर रहे हैं, आपका मुख सूखा मालूम पड़ता है। क्या आपका धर्म, अर्थ काम तो नहीं नष्ट हो गया ।। ६४ ।। राजाने कहा—हे ब्रह्मन्, स्त्रीके वशमें रहनेके कारण अत्यन्त कठोर मैंने अपने पाँच वर्षके बालकको माताके सहित निकाल दिया, वह बालक बड़ाही चतुर था॥ ।।६५।। हे ब्रह्मन्, भूखके कारण उसका मुख सूख जायगा तथा थकावटके कारण जब वह सो जायगा, तब अनाथ उस बालकको 'भेड़िये' आदि कहीं खा तो नहीं जायँगे ।। ६६ ।। स्त्रीके वशीभूत हुए मेरी आप दुर्जनता तो देखिये—नीचे मैंने प्रेमके कारण गोदमें चढ़ते हुए उसका आदर नहीं किया ।। ६७ ।। नारदजीने कहा—हे राजन्, तुम्हारे पुत्रकी भगवान् रक्षा करते हैं। इसलिए तुम उसका प्रभाव न जानकर कोई सोच मत करो। वह अपने यशसे

उवाच ।। राजन्किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ।। किंवा न रिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ।। ६४ ।। राजोवाच ।। सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनरुकरुणात्मना ।। निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान्कविः ।।६५।। अप्यनाथं वने ब्रह्मन् मास्मादनत्यर्भकं वृकाः ।। श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ।। ६६ ।। अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ।। योऽङ्कं प्रेम्णारुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ।। ६७ ।। नारद उवाच ।। मा माशुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते ।। तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ।।६८।। सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ।। एष्यत्यचिरितो राजन्यशोविपुलयंस्तव ।।६९।। मैत्रेय उवाच ।। इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ।। राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ।।७० ।। तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ।। समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ।।७१ ।। त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः ।। आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ।।७२।। द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने।। तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयन्विभुम् ।।७३।। तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ।। अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ।। ७४ ।। चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वाद-

जगत्को व्याप्तकर देगा ।। ६८ ।। जिस कार्यको लोकपाल भी नहींकर सकते, उस कठिन कार्यको करके शीघ्रही वह आ जायगा और तुम्हारे यशको बढ़ायेगा ।। ६९ ।। मैत्रेयजी ने कहा—इस प्रकार नारदके वचनोंको सुनकर राजाने राज्यलक्ष्मीका अनादरकर किया और वह सदा पुत्रकी ही चिन्ता करने लगा ।।७०।। ध्रुवने मधुवनमें जाकर स्नान किया तथा उस रात्रिको व्रत करके जैसा नारदजीने कहा था, उसीके अनुसार सावधान होकर वह भगावनका पूजन करने लना ।। ७१ ।। ध्रुवने देह स्थित रखनेके लिये तीन तीन रातके पश्चात् केवल कैंथ तथा बेर खाकर एक महीना भगवान्की सेवा करते हुए बिताया ।। ७२ ।। तथा दूसरे महीनेमें वृक्षसे सूखकर गिरे हुए पत्ते और तृणही छः छः दिनके पश्चात् खाने लग गया। इस तरह भगवान्का उसने पूजन किया ।। ७३ ।। तीसरे महीनेमें नौ-नौ दिनके बाद केवल उसने जल ग्रहण किया तथा समाधिस्थ होकर उत्तमश्लोक भगवान्का उसने ध्यान किया, इस तरह तीसरे

॥ दृष्टान्त—जो प्राणी अपनी स्त्री के वशीभूत हो जाता है उसका आदर संसारकी दृष्टिसे रह नहीं जाता। जैसे स्त्री के वशीभूत राजाने प्रहलाद को घरसे निकाल दिया। इस प्रकार की अनेकों कथा हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महीनेको उसने विताया ॥ ७४ ॥ चतुर्थ मासमें बारह दिनके बाद केवल वायुका भक्षणकर तथा श्वाँसको जीत करके उसने भगवान्का ध्यान किया और चौथे मासको गवां दिया ॥७५॥ और जब पाँचवाँ मास प्राप्त हुआ, तब उस राजपुत्रने सांसको बंदकर लिया और ब्रह्मका ध्यान करने लगा तथा एक पाँवसे स्थाणुकी भांति निश्चय होकर स्थित हो गया ॥ ७६ ॥ और उस समय शब्दादि विषय तथा इन्द्रियाँ जिसमें शयन करती हैं ऐसे अपने मनको चारों ओरसे खींचकर अपने हृदयमें भगवान्‌के रूपका का ध्यान करते हुए उसने भगवान्‌के रूपके सिवा और कुछनहीं देखा ॥ ७७ ॥ महतत्त्व आदिकका आधार तथा प्रकृति पुरुषके ईश्वर ब्रह्मका जब उसने ध्यान किया, तब उसका तेज न सहनेके कारण तीनों लोक काँपने लगे ॥ ७८ ॥ जब राजकुमार ध्रुव एक पाँवसे पृथ्वीपर स्थित हुआ तब उसके अँगूठेसे पीड़ित होकर आधी पृथ्वी इसप्रकार नम्र हो गई, जिसप्रकार नौकापर हाथीके चढ़नेसे पद-पदपर दाहिने बायें

शेहऽनि ॥ वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत ॥ ७५ ॥ पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ॥ ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥ सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ॥ ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किञ्चनापरम् ॥ ७७ ॥ आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥ ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥७८॥ यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही ॥ ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥७९॥ तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ॥ लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ॥ ८० ॥ देवा ऊचुः ॥ नैवं विदामो भगवान्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥ ८१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ॥ यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि सङ्गतात्मा ॥ ८२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इधर-उधर वह नौका नम्र होती है ॥ ७९ ॥ जब ध्रुवने विश्वस्वरूप भगवान्को अपनी आत्मासे अभिन्न मानते हुए प्राण तथा उसके द्वारको रोककर उनका ध्यान किया तब समस्त जीवों की प्राणवायु रुक गई। जिससे अत्यन्त पीड़ित होकर लोकपालोंके सहित समस्त लोक भगवान् की शरण में पहुँचे ॥८०॥ और उस समय देवता लोग कहने लगे—हे भगवन्, यह जो चराचरात्मक समस्त प्राणियोंके शरीरका प्राण रुक गया है, सो इस तरहका प्राणावरोध तो हमलोगोंने आजतक कभी नहीं जाना। इसलिये आप हमलोगोंको इस कष्टसे छुड़ाइये क्योंकि आप शरणागतपर प्रेम करते हैं और हमलोग आपकी शरणमें आये हुए हैं ॥ ८१ ॥ भगवान्ने कहा—तुम लोग डरो मत, अपने-अपने स्थानको चले जाओ। मैं जिससे तुम लोगोंका प्राण रुका है उस उत्तानपादके बालकको तपस्या करनेसे लौटाता हूँ, वह विश्वरूप मुझमें ऐक्यको प्राप्तकर चुका है ॥ ८२ ॥

आठवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, राजा उत्तानपादकी सुरुचि तथा सुनीति नामकी दो स्त्रियाँ थीं उनके उत्तम तथा ध्रुव नामके पुत्र थे। एकदिन उत्तमका लालन करते हुए राजाने गोदमें चढ़ते हुए ध्रुवका आदर नहीं किया। तथा सुरुचिने भी अनादर किया। तब वह रोताहुआ अपनी माताके पास। उसकी माताने भगवान्का तप करनेकेलिए उसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आज्ञा दी। जिसे सुनकर ध्रुव नगरसे निकल पड़ा। उसे मार्गमें नारदजी मिले और उन्होंने भगवान्का आराधन प्रकार बतला दिया। जिससे कि उसने मधुवनमें जाकर घोर तपस्याकी। उसकी तपस्यासे तीनों लोक कांपने लगे समस्त प्राणियोंकी वायु रुक गई, भगवान्की शरणमें गये और भगवान्ने उनको धैर्य बंधाया। आठवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ नवमोऽध्यायः ❀

(ध्रुवका भगवान्से वर प्राप्तकर नगरको लौटना तथा पिता द्वारा मिले हुए राज्यको भोगना)

मैत्रेयजीने कहा—उरुक्रम भगवान्के इसप्रकार कहनेसे देवतालोग निर्भय होकर उन्हें प्रणाम करके स्वर्गको चले गये। तदनन्दर भगवान् भी ध्रुवको देखनेकी इच्छासे गरुड़पर बैठकर मधुवनको गये ॥ १ ॥ ध्रुवने दृढ़योगके द्वारा निश्चल हुई बुद्धिसे हृदयकमलमें बिजलीके समान कान्तिवाले भगवान्का ध्यान किया और जब भगवान्का वह रूप सहसा अलक्षित

मैत्रेय उवाच ॥ त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रयुस्त्रिविष्टपम् ॥ सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥१॥ स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ॥ तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिः स्थितं तदवस्थं ददर्श ॥ २ ॥ तद्दर्शनेनागत-साध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥३॥ स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरि-र्ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ॥ कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥ ४ ॥ स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परि-ज्ञातपरात्मनिर्णयः ॥ तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥ ध्रुव उवाच ॥ योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां

हो गया तब उसने नेत्र खोलकर वैसेही भगवान्को बाहर भी खड़े देखा ॥ २ ॥ उनके दर्शनसे उसे संभ्रम हो गया। देखनेके बादही पृथ्वीपर दण्डवत् अपने शरीरको नवाकर नेत्रोंसे पीते हुए, मुखसे चूमते हुए तथा भुजाओंसे आलिङ्गन करते हुए-सा उसने प्रणाम किया ॥ ३ ॥ हाथ जोड़कर वह स्तुति करना चाह रहा था, किन्तु स्तुति करना वह जानता नहीं था। अतः उसके हृदयमें अवस्थित होनेके कारण भगवान्ने उस ध्रुवके मनोगत सब भावको समझकर उस बालकके कपोलमें वेदमय शंखसे स्पर्श किया। स्पर्श करतेही उस ध्रुवने उसी समय भगवान्के द्वारा दी गई उस वाणीको प्राप्त करके जीव तथा ईश्वरका निर्णय जान लिया और भावि ध्रुवस्थानवाला वह ध्रुव विख्यातकीर्ति भगवान्की शीघ्र भक्तिभावसे प्रार्थना करने लगा ॥ ४, ५ ॥ ध्रुवने कहा—समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति धारण करनेवाले जो भगवान् मेरे अन्तःकरणमें प्रविष्ट होकर अपनी चिति-शक्तिसे सोई हुई मेरी इस वाणीको तथा हाथ पाँव, कान,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्वचा आदि अन्य इन्द्रियोंको जीवितकर रहे हैं, उन आप अन्तर्यामी भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे भगवन्, अकेले आपही अपनी तीन गुणवाली मायाशक्तिसे इस महदादिकी रचना करते हैं और उसीके असत् गुण इन्द्रियादिकोंमें प्रविष्ट होकर तत्-तत् देवतारूप अनेक प्रतीत होते हैं इसलिए अर्थात् आपसे अतिरिक्त ज्ञानक्रिया शक्तिधारी अन्य कोई नहीं है, जैसे एकही अग्नि अनेक लकड़ियोंमें अनेक-सी प्रतीत होती है ॥ ७ ॥ हे नाथ, जैसे सोया हुआ पुरुष उठकर देखता है, वैसेही सृष्टिके आदिमें आपकी शरणमें आकर ब्रह्माजीने भी आपके दिये हुए ज्ञानसे ही इस संसारको देखा। हे आर्तबन्धो, मुक्त प्राणियोंको भी आश्रय देनेवाले आपके चरणोंको कृतज्ञ प्राणी भला कैसे भूल सकते हैं ॥ ८ ॥ जो जन्म-मरणसे विमुक्त करनेवाले आपको विषय सुखोंके लिये पूजते हैं। निश्चय ही आपकी मायासे वंचितचित्त हो गये हैं क्योंकि कल्पवृक्षरूप आपकी तो वे अर्चना करते हैं और इस शवतुल्य शरीरसे भोगने योग्य विषय-

सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ॥ अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेव भगवन्निदमा-
त्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ॥ सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥ त्वद्दत्तया वयुनयेद-
मचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ॥ तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥ ८ ॥ नूनं विमुष्टमतयस्तव
मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ॥ अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥ ९ ॥ या निर्वृ-
तिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्किंत्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥१०॥
भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ॥ येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥११॥
ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ॥ ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्दसौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥१२॥
तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ॥ रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परमन्वेद्मि न यत्र वादः ॥१३॥ कल्पान्त

सुखोंको चाहते हैं। जो विषय सम्बन्धजन्य सुख है वह तो मनुष्योंको नरकमें भी प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ हे नाथ, मनुष्योंको जो सुख आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेसे तथा आपके भक्तोंकी कथा सुननेसे मिलता है वह निजानन्दरूप परब्रह्ममें भी नहीं मिलता। फिर अन्तककी तलवाररूपकालसे खण्डित किये गये विमानोंसे गिरते हुए लोगोंको वह सुख नहीं मिलता, इसमें क्या कहना ॥ १० ॥ हे अनन्त, आपमें निरन्तर भक्तिकर रहे निष्काम महात्माओंके साथ मेरा संग हो। जिससे मैं आपके गुण कथारूप अमृतपीनेसे मत्त होकर अनेक दुःखोंसे भरे इस संसारसागरको सहजहीमें पारकर जाऊँगा ॥ ११ ॥ हे अब्जनाभ, जो मनुष्य आपके चरणकमलकी सुगन्धिसे आकर्षितचित्त महात्माओंका सङ्ग करते हैं वे अत्यन्त प्रिय भी इस देहका स्मरण नहीं करते तथा इसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले, पुत्र, मित्र, गृह, धन तथा स्त्री आदि जो हैं उनका भी स्मरण नहीं करते ॥ १२ ॥ हे अज, मैं आपके पशु, पक्षी, पर्वत सरीसृप, दैत्य एवं मनुष्योंसे व्याप्त, सदसद् विशेष तथा महदादि अनेक कारणोंवाले केवल इस विराट्‌रूपको ही जानता हूँ इससे अन्य जो ईश्वररूप है उसे तथा जहाँ शब्द व्यापार नहीं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है उस ब्रह्मरूपको भी मैं नहीं जानता ॥ १३ ॥ जो भगवान् प्रलयकालके समय इन समस्त तीनों लोकोंको अपने उदरमें रखकर योगनिद्रामें निरूढ़ होनेके कारण अपनेमें अपनी दृष्टि करके शेषकी सहायतासे उन्हींकी गोदरूपी शय्यापर सोते हैं तथा जिनके नाभिरूप सरोवरसे उत्पन्न होनेवाले लोकात्मक स्वर्ण कमलके गर्भमें तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा स्थित होते हैं, उन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ हे भगवन्, आप जीवसे पृथक् हैं, क्योंकि आप नित्य मुक्त हैं, जीव तो आपसे मुक्त होता है। आप शुद्ध हैं, वह तो मलिन है। आप विशुद्ध हैं, वह तो अज्ञ है। आप आत्मा हैं, वह तो जड़ है। आप कूटस्थ विकाररहित हैं, वह तो विकारी है। आप आदिपुरुष हैं, वह आदिमान है। आप तो ऐश्वर्यशाली हैं, वह ऐश्वर्यहीन है आप तीनों गुणोंके अधिपति हैं, परन्तु वह परतन्त्र है। चूँकि आप बुद्धिकी तत्-तत् अवस्थाओंको अपनी अखण्डित चैतन्यशक्तिसे देखते हैं इसलिये आप स्थितिके समय यज्ञाधिष्ठाता विष्णु हैं ॥ १५ ॥ जिसमें विरुद्ध गतिवाली विद्या आदि नाना शक्तियाँ निरन्तर अकस्मात् उत्पन्न हुआ करती हैं, संसारको उत्पन्न करनेवाले एक, अनन्त, आदि, आनन्द-

एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ॥ यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥१४॥ त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भवांस्त्र्यधीशः ॥ यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥ १५ ॥ यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ॥ तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥१६॥ सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ॥ अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथाभिष्टुत एवं वै सत्सङ्कल्पेन धीमता ॥ भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १८ ॥ श्री भगवानुवाच ॥ वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ॥ तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९ ॥ नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ॥ यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम्॥२०॥ मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम् ॥ धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो

स्वरूप तथा विकाररहित उस ब्रह्मकी मैं शरणमें आया हूँ ॥ १६ ॥ हे भगवन्, जो मनुष्य परमानन्दमूर्ति आपके चरणकमलोंको निष्कामरूपसे भजते हैं, उनको मोक्षरूप फल मिलता है, यह निश्चित है, तथापि हे आर्य, आप सकाम हमलोगोंकी भी हिताचरणमें परवश होकर रक्षा करते ही हैं, जैसे नव प्रसूता गौ अपने वत्सकी रक्षा करती है ॥ १७ ॥ मैत्रेयजीने कहा— सत्य सङ्कल्प बुद्धिमान् ध्रुवने जब भगवान्की इसप्रकार स्तुति की तब भगवान् अपने भक्तकी भक्तिसे अनुरक्त होकर उसका अभिनन्दन करते हुए कहने लगे ॥१८॥ भगवान्ने कहा— हे राजपुत्र, तुमने जो अपने हृदयमें सङ्कल्प किया है, उसे मैं जानता हूँ। इसलिये हे सुव्रत, यद्यपि वह दूसरे मनुष्योंको दुर्लभ है, तथापि मैं तुम्हें देता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो ॥ १९ ॥ हे भद्र, अभीतक जिसे किसीने प्राप्त नहीं की, उस 'ध्रुव' स्थानको मैं तुम्हे देता हूँ, जिसमें ग्रह, नक्षत्र, तारागण तथा ज्योतिषचक्र मेढ़ीमें बैलोंकी समूहकी नाइं स्थित हैं। वह तीनोंलोकोंका नाश हो जानेपर भी स्थिर रहता है। धर्म, अग्नि, कश्यप, शुक्र तथा वनमें रहनेवाले मुनिलोग तारागणोंके साथ उसकी घूम-घूमकर प्रदक्षिणा किया करते हैं ॥ २०, २१ ॥ जब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तुम्हारे पिता तुमको राज्य देकर वनको चले जायँगे तब तुम धर्मका पालन करते हुए अनासक्तेन्द्रिय होकर छत्तीस हजार वर्षोंतक पृथ्वीकी रक्षा करोगे ॥ २२ ॥ तथा तुम्हारा भाई उत्तम शिकार खेलते समय मारा जायगा। उसमें आसक्तचित्त उसकी माता उसे खोजती हुई दावाग्निमें प्रविष्ट हो जायगी—जलकर मर जायगी ॥ २३ ॥ बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञोंसे तुम यज्ञमूर्ति मेरा यजन करोगे और यहाँपर राज्य-सुख भोगकर अन्तमें मुझे स्मरण करोगे–प्राप्त करोगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर समस्त लोकोंसे नमस्कृत–श्रेष्ठ सप्तर्षियोंके ऊपर मेरे उस स्थानको प्राप्त करोगे, जहाँपर पहुँचकर वहाँसे फिर प्राणी वापिस नहीं आता ॥ २५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार भगवान्‌ने ध्रुवको अपना पद दिया। तदनन्तर उस बालक ध्रुवने भगवान्‌का पूजन किया और उसके देखते-देखते ही गरुड़ध्वज भगवान् अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥ ध्रुव भी अपने मनोरथको, जिसकी प्राप्तिसे सङ्कल्पकी समाप्ति हो गई, भगवान् विष्णु-

ये वनौकसः ॥ चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥ २१ ॥ प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिताऽव्याहतेन्द्रियः ॥ २२ ॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ॥ अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥ २३ ॥ इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ॥ भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥ २४ ॥ ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ॥ बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥ २६ ॥ सोऽपि सङ्कल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ॥ प्राप्य सङ्कल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥ २७ ॥ विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनाजितम् ॥ लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् ॥ नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ २९ ॥ ध्रुव उवाच ॥ समाधिना नैकभवेन यत्पदं विदुः सुनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ॥ मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥ ३० ॥ अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत॥

के चरणोंकी सेवासे प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न न होते हुए अपने नगरमें आये ॥ २७ ॥ विदुरजीने कहा—पुरुषार्थ जाननेवाले उस ध्रुवने मायावियों (सकामपुरुषों) से दुर्लभ भगवान्‌के उस परमपदको उनके चरणोंकी सेवा करके एक जन्ममें ही प्राप्त करके भी अपने मनमें अप्राप्त मनोरथके समान क्यों माना ? ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—सौतेली माताके वचनरूपी बाणोंसे विद्ध हो जानेके कारण उनका स्मरण करता हुआ मुक्तिपति भगवान्‌से उसने मुक्ति नहीं मांगी। इसीसे वह सन्तापको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ ध्रुवने कहा—सुनन्दादि नैष्ठिक जिन ब्रह्मचारियोंने अनेक जन्मोंतक समाधि लगाकर जिस पदकी जानकारी प्राप्त की। मैंने छः महीनेमें उन चरणोंकी छाया प्राप्त करके भी उसे छोड़ दी। इसलिये भेदबुद्धि मैं मूर्ख हूँ ॥ ३० ॥ अहो, मन्दभाग मेरी अज्ञानता तो देखो, जो मैंने संसारके बन्धनसे छुड़ानेवाले भगवान्‌के पादमूलको प्रणाम करके उनसे जो अविनाशी वस्तु है उसकी प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ मेरे पदसे नीचे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पदको प्राप्त होनेवाले असहनशील देवताओंने मेरी मति दूषितकर दी, जिससे मैंने नारदजीके तथ्य भी वचन स्वीकार नहीं किये ॥ ३२ ॥ भगवान्की मायासे मैंने दूसरेके रहनेपर भी स्वप्नकी तरह अपने भाईको ही शत्रु समझकर हार्दिक, सन्तापका अनुभव किया ॥ ३३ ॥ जैसे मनुष्यके मर जानेपर उसकी चिकित्सा व्यर्थ है, वैसेही मैंने जो यह माँगा है वह सब व्यर्थ है; क्योंकि कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले भगवान्को मैंने तपस्यासे प्रसन्न किया। और उन्हें प्रसन्नकर मैंने जो संसारको निवृत्त करनेवाले हैं उनसे वही संसार माँगा, मैं बड़ा अभागा हूँ ॥ ३४ ॥ अपने आनन्दको देनेवाले भगवान्से पुण्यरहित मैंने अपनी मूढ़ताके कारण अभिमानका हेतु राज्य माँगा, जैसे कोई भिक्षुक राजाके यहाँ जाकर चावलका कण माँगे ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, भगवान्के चरणकमलोंकी धूलिका सेवन करनेवाले आप सरीखे भक्त भगवान्के दास्यके सिवा और कुछ अपने लिये अर्थ नहीं चाहते,क्योंकि दैवसेजो कुछ

भवच्छिदः पादमूलं नत्वाऽयाचे यदन्तवत् ॥३१॥ मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ॥ यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥ ३२ ॥ दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ॥ तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३३ ॥ मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि॥प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥ भवच्छिमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥ ३४ ॥ स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ॥ ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ॥ वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः ॥ ३६ ॥ आकर्ण्यात्मजमायान्तं संपरेत्य यथागतम् ॥ राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥ ३७ ॥ श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ॥ वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥ ३८ ॥ सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥ ३९ ॥ शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ॥ निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥४०॥ सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ॥ आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४१ ॥ तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् ॥

मिल जाता है उसीसे उनका मन प्रसन्न रहता है॥३६॥ जब राजाने मृत्युसे लौटकर आये हुएकी तरह आते हुए अपने पुत्रको सुना, तो उसे विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि वह सोचने लगा कि मैं तो अभागा हूँ, मेरा कल्याण कहाँ ॥ ३७ ॥ तब नारदके वचनोंका विश्वास करके वह अत्यन्त हर्षित हुआ, मारे हर्षके अत्यन्त प्रसन्न होकर उसने समाचार लानेवालेको अत्यन्त मूल्यवान् हार दे दिया ॥३८॥ तब वह राजा मन्त्री, बान्धव, कुलवृद्ध तथा ब्राह्मणोंसे युक्त होकर सोनेसे मढ़े हुए सुन्दर घोड़ों युक्त रथमें बैठकर पुत्रको देखनेकी उत्कण्ठासे अपने पुरसे निकला। उसके साथ ब्राह्मण लोग वेद पाठकर रहे थे तथा शंख, वेणु और दुन्दुभिका शब्द हो रहा था ॥ ३९,४० ॥ तथा राजाकी सुनीति और सुरुचि ये दोनों रानियाँ स्वर्णके आभूषणोंसे भूषित, उत्तमके साथ शिबिका (पालकी) में बैठकर गईं ॥ ४१ ॥ राजाने ध्रुवको बगीचेके समीप आते देखा। तो वेगसे रथसे उतरकर प्रेमसे विह्वल उसके पास शीघ्र वह पहुँच

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गया ॥ ४२ ॥ और बहुत समयके बाद देखनेके कारण उत्कण्ठित साँस लेते हुए राजाने उस पुत्रको बाहुओंसे आलिङ्गन किया, जिसके भगवान्‌के चरणस्पर्शसे समस्त पाप तथा बन्धन नष्ट हो चुके थे ॥ ४३ ॥ पुत्रका बार-बार मस्तक सूँघकर ठण्डे आनन्दके आँसुओंसे स्नान करा दिया उसका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गया ॥ ४४ ॥ तब ध्रुवने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके आशीर्वाद ग्रहण किया तथा सज्जनोंमें श्रेष्ठ और सत्कृत उसने माताओंको भी सिरसे नमस्कार किया ॥ ४५ ॥ पाँवमें पड़े हुए उसको सुरुचिने उठाकर आलिङ्गन किया और गद्गद वाणीसे कहा–बेटा, चिरकालतक जीते रहो ॥ ४६ ॥ जिसके मैत्री आदि गुणोंसे स्वयं भगवान् हरि प्रसन्न हो गये, उसे सभी प्राणी अपने-आप स्वयं नमस्कार करेंगे ही, जैसे नदियोंका जल स्वयं नीचेकी तरफ जाता है ॥ ४७ ॥ उत्तम तथा ध्रुव दोनों प्रेमसे विह्वल होकर आपसमें आलिङ्गन करने लगे और रोमांचयुक्त होकर प्रेमके आँसू बहाने लगे ॥ ४८ ॥

अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥ ४२ ॥ परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् ॥ विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥४३॥
अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ॥ स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥४४॥ अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः ॥ ननाम
मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ४५ ॥ सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ॥ परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४६ ॥
यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ॥ तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥ ४७ ॥ उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योन्यं प्रेमविह्वलौ ॥
अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः ॥ ४८ ॥ सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ॥ उपगुह्य जहावाधिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥ ४९ ॥
पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः ॥ तदाभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥ ५० ॥ तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र
आर्तिहा ॥ प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥ ५१ ॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः
सुदुर्जयम् ॥५२॥ लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ॥ आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥५३॥ तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ॥

ध्रुवकी माता सुनीतिने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अपने पुत्रसे आलिङ्गन किया और उसके अङ्गोंके स्पर्शसे सुखी होकर मानसिक व्यथा दूर की ॥ ४९ ॥ हे विदुरजी, उस समय ध्रुवकी माताके नेत्रोंसे प्रेमके खूब आँसू झरने लगे, जिन आँसुओंसे भीग रहे उसके स्तनोंसे दूध चूने लगा था ॥ ५० ॥ तत्पश्चात् हे विदुरजी, मनुष्य उसकी प्रशंसा करने लगे—तेरा बड़ा भाग्य है, तेरा पुत्र दुःख दूर करनेवाला है। यह नष्टके समान हो गया था, परन्तु बहुत दिनके बाद आज पुनः प्राप्त हुआ। यह पृथ्वीमण्डलकी रक्षा करेगा ॥ ५१ ॥ तुमने भक्तोंके दुःखको दूर करनेवाले भगवान्‌का निश्चयही पूजन किया है, जिनका पूजन करनेवाले धीर वीरपुरुष दुर्जय मृत्युको भी जीत लेते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार वहाँकी उपस्थित जनता द्वारा लालित हो रहे ध्रुव को राजाने उत्तमके साथ प्रसन्न होकर हथिनिपर बैठाया और नगरमें आनन्दित होकर प्रवेश किया ॥ ५३ ॥ उस पुरमें प्रत्येक दरवाजेपर मकरकी आकृतिके तोरण बनाये गये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

थे । वे फल और मञ्जरीसे युक्त केला तथा सुपारीके वृक्षोंसे शोभित थे । आमके पत्ते, वस्त्र, माला तथा मोतियोंकी मालाओंसे अलंकृत दीपकोंके साथ जलसे भरे हुए घट रखे गये थे ॥ ५४, ५५ ॥ विमानोंके शिखरोंके सदृश कान्तियुक्त सुवर्णमय परिच्छेदों वाले परकोट, दरवाजे और अनेक महलोंसे वह नगर चारों तरफसे खूब अलंकृत हो रहा था॥५६॥ उस नगरके आंगन, राजमार्ग, मार्ग झाड़कर चन्दनके जलसे सीचे गये थे तथा लावा, अक्षत, पुष्प, फल, तण्डुल और बलियोंसे युक्त थे ॥ ५७ ॥ मार्गमें जाते हुए ध्रुवको नगरकी सती स्त्रियाँ वात्सल्यके कारण आशीर्वाद देती हुई श्वेत सर्षप, यव, दही, जल, दूर्वा पुष्प तथा फल बरसाने लगीं । ध्रुव उनके मनोहर गानोंको सुनते हुए पिताके भवनमें प्रविष्ट हुए ॥ ५८,५६ ॥ अनेक प्रकारकी मणियोंके समूहसे युक्त उस उत्तम भवनमें पितासे अत्यन्त लालित होकर इसप्रकार रहने लगे, जैसे स्वर्गमें देवता रहते हैं ॥ ६० ॥ उस भवनमें दूधके फेनके समान

सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥५४॥ चूतपल्लववासः स्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥ प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः ॥ सर्वतोऽलङ्कृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥५६॥ मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् ॥ लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥५७॥ ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ॥ सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥५८॥ उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ॥ शृण्वंस्तद्वल्गु गीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥५६॥ महामणिव्रातमये स तस्मिन्भवनोत्तमे ॥ लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥ ६० ॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥ ६१॥ यत्र स्फटिककुड्येषु माहमारकतेषु च ॥ मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥६२॥ उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६३ ॥ वाप्यो वैदूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ॥ हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टश्चक्राह्वसारसैः ॥ ६४ ॥ उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥ ६५ ॥ वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतम् ॥ अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः

निर्मल शय्या थी, हाथीदाँतके पलंग थे, सोनेका अत्यन्त कीमती आसन तथा अन्य सामग्रियाँ भी सोनेकी थीं ॥ ६१ ॥ उसमें स्फटिकमणियों तथा महामरकत मणिकी दीवारें थीं, मणियोंके दीपक तथा स्त्रीरत्नोंसे वह भवन शोभित था ॥ ६२ ॥ नानाप्रकारके देववृक्षोंसे युक्त बगीचे थे, जिनमें पक्षियोंकी जोड़ी तथा मतवाले भौंरे गुञ्जार रहे थे ॥ ६३ ॥ तथा वहाँपर सुन्दर वापियाँ थीं, जिनमें वैदूर्य मणिके सोपान बने थे, वे सब पद्म, उत्पल तथा कुमुदोंसे युक्त थीं । हंस, कारण्डव, चक्रवाक तथा सारस उनमें वर्तमान थे॥६४॥ राजर्षि उत्तानपाद अपने पुत्रके उस प्रभावको सुनकर तथा अत्यन्त अद्भुत देखकर परम विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ राजाने ध्रुवको युवक देखकर तथा प्रजाका अनुराग जानकर उन लोगोंके मन-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के अनुसार उसे पृथ्वीका राजा बना दिया ॥ ६६ ॥ और स्वयं अपनेको वृद्ध समझ विषयोंसे विरक्त हो वह राजा अपनी गतिका विचारकर वनको चला गया ॥ ६७ ॥

पतिम् ॥ ६६ ॥ आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशां पतिः ॥ वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीम० म० चतुर्थ-स्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इसप्रकार भगवान्के कहनेसे देवतालोग निर्भय होकर स्वर्गको चले गये और भगवान् ध्रुवको देखने की इच्छासे मधुवनको पधारे। वहाँ पर ध्रुवने अपने हृदयमेंसे भगवान्को अलक्षित हुए देखकर अपनी आँखें ज्योंही खोली त्योंही वे तो उन्हें बाहर खड़े देखे। देखतेही वे उनकी स्तुति करना चाह रहे थे, किन्तु स्तुति करने उन्हें अभी आता नहीं था। भगवान्ने ब्रह्ममय शङ्खसे उनके कपोल में स्पर्श किया। उनके स्पर्शसे वे स्तुति करने लगे। उनकी स्तुतिसे भगवान् प्रसन्न होकर उसे ध्रुवपद दिया। तदनन्तर वह अपने नगरमें आये और सबसे मिलकर पितासे पालित हो समस्त सम्पत्तियोंसे युक्त भवनमें रहने लगे। राजाने जब ध्रुवको यौवनसे सम्पन्न देखा, तब उन्हें राज्य देकर स्वयं वनको चला गया। नवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ दशमोऽध्यायः ❋

[ध्रुवका अलकापुरीमें जाकर यक्षोंका वध करना]

मैत्रेयजीने कहा—ध्रुवने शिशुमार प्रजापतिकी कन्या भ्रमिके साथ विवाह किया। उससे कल्प तथा वत्सर नामके दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ अत्यन्त बलशाली ध्रुवने अपनी स्त्री, वायुकी कन्या इलामें भी उत्कल नामका पुत्र और स्त्रियोंमें रत्नके समान एक कन्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ उत्तमका विवाह नहीं हुआ था, तभी पर्वतपर शिकार खेलनेको गये हुए उसे एक

मैत्रेय उवाच ॥ प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ॥ उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥ इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ॥ पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥ उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ॥ हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ॥ ३ ॥ ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः ॥ जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥४॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम् ॥ ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥ ५ ॥ दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ॥ येनोद्विग्नदृशः

बलवान् यक्षने मार डाला। तब उसकी माता भी मर गई ॥३॥ अपने भाईका वध सुनकर ध्रुवको अत्यन्त क्रोध तथा शोक हुआ। वह रथमें बैठकर अलकापुरी पहुँचा ॥४॥ राजा ध्रुवने उत्तर दिशामें जाकर हिमालयके शिखरपर यक्षोंसे युक्त तथा शंकरके अनुचरोंसे रक्षित वह पुरी देखी ॥५॥ हे विदुरजी, तब विशाल भुजावाले उसने शंख बजाया। जिसके शब्दसे दिशाएँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गूंजे उठीं और चंचल नेत्रोंवाली यक्षोंकी स्त्रियाँ अत्यन्त भयभीत हो गईं ॥ ६ ॥ उस शब्दका सहन न करते हुए बलवान् यक्ष महाभट शस्त्र उठाकर उस पुरीसे निकल पड़े ॥ ७ ॥ आक्रमण करनेवाले उन्हें देखकर उग्र धनुषधारी उस महारथी वीरने एकही समय एक-एकको तीन-तीन बाणोंसे वेध दिया ॥ ८ ॥ तब वे सब ललाटमें लगे हुए उन बाणोंसे अपनेको पराजित समझकर ध्रुवके उस कर्मकी प्रशंसा करने लगे।।९।। वे लोग भी, जैसे पाँवका स्पर्श सर्प नहीं सहता वैसेही, न सहते हुए ध्रुवको प्रतिकार करनेकी इच्छासे एकही समय छः छः बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ १० ॥ तदनन्तर तेरह अयुत वे लोग प्रतिकार करनेकी इच्छासे कुपित होकर रथ तथा सारथीके सहित ध्रुवके ऊपर परिघ, तलवार, प्रास, त्रिशूल, फरसा, शक्ति, ऋष्टि तथा भुशुण्डीसे और नानाप्रकारके पक्षवाले बाणोंसे वर्षा करने लगे ॥ ११, १२ ॥ तब उस भयानक शस्त्र वर्षासे ध्रुव आच्छादित हो गया और जिसप्रकार धारापात वृष्टिसे

क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥ ६ ॥ ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ॥ असहन्तस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥ ७ ॥ स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः ॥ एकैकं युगपत्सर्वानहन्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥८॥ तेवै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ॥ मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥ तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ॥ शरैरविध्यन्युगपद्द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ १० ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूल-परश्वधैः ॥ शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ ११ ॥ अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ॥ इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ॥ न उपादृश्यत च्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ १३ ॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ॥ हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥ १४ ॥ नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ॥ उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ॥ अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ॥ कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७ ॥ भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ॥ ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दो-

आच्छादित पर्वत नहीं दीखता, उसीप्रकार वह भी दीख न पड़ा ॥१३॥ तब उस युद्धको देखनेके लिये आकाशमें स्थित सिद्धलोग हाहाकार करने लगे कि यह मनुवंशमें सूर्यके समान ध्रुव पुण्यजनरूपी समुद्रमें डूबकर मर गया ॥ १४ ॥ उस संग्राममें जब राक्षस 'जीत लिया, जीत लिया' ऐसा शब्द करने लगे, तब ध्रुवका रथ उस बाणवृष्टिमेंसे ऐसे उठा, जैसे कुहरेमेंसे सूर्य ॥ १५ ॥ तथा अपने दिव्यधनुषकी टंकार की, जिससे शत्रुओंको बड़ा खेद हुआ और अपने बाणोंसे उस शस्त्रसमूहको इसप्रकार छिन्न-भिन्नकर डाला, जैसे बादलोंके समूहोंको वायु ॥ १६ ॥ उसके धनुषसे छोड़े गये तीक्ष्ण बाण राक्षसोंके कवचोंको बेधकर शरीरमें ऐसे प्रवेशकर गये, जैसे वज्र पर्वतोंमें प्रवेशकर जाता है ॥ १७ ॥ भल्लोंसे काटे जा रहे सुन्दर कुन्डल युक्त सिरोंसे, हेमतालके समान उरुओंसे, वलयवेष्टित सुन्दर बाहुओंसे, हार, केयूर तथा मुकुटोंसे और अत्यन्त कीमती पगड़ियोंसे व्याप्त वीरोंके लिये मनोहर वह युद्धभूमि खूब शोभने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगी ॥ १८, १६ ॥ क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ ध्रुवके बाणोंसे जो मरनेसे बचे अन्य राक्षस थे, वे भी प्रायः हाथ-पाँव कट जानेसे घायल हो चुके थे। जिससे कि उस युद्धभूमिसे इसप्रकार भागे, जिसप्रकार सिंहके आक्रमणसे हाथी भागते हैं ॥२०॥ उस समय ध्रुवने उस रणभूमिमें जब किसी शत्रुको नहीं देखा तब उस पुरीको देखनेकी इच्छा की, परन्तु उसमें वह घुसा नहीं। वह अपने सारथीसे कहने लगा—मायावियोंके मनकी बात कोई नहीं जानता। इसप्रकार कहकर शत्रुओंके उद्योगसे शंकित हो वह यत्न करने लगा। तबतक उसने समुद्रके जैसा शब्द सुना और वायुके कारण दिशाओंमें धूल देखी ॥ २१, २२ ॥ चारों तरफ एक क्षणभरमें मेघोंसे आकाश आच्छादित हो गया तथा दिशाओंमें भय देनेवाले मेघोंके शब्दके साथ

भिवलयवल्गुभिः ॥ १८ ॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ॥ आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥ १६ ॥ हतावशिष्टा इतरे रणाजि राद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ॥ प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥ २० ॥ अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं महामृधे कञ्चन मानवोत्तमः ॥ पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥ २१ ॥ इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रति-योगशङ्कितः ॥ शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥२२॥ क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ॥ विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना ॥ २३ ॥ ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ॥ निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥ ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥२५॥ अहयोऽशनिनिः श्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाऽक्षिभिः ॥ अभ्यधाव-न्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥ २६ ॥ समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् ॥ आससाद महाह्रादः कल्पान्त इव भीषणः ॥ २७ ॥ एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ॥ ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥ २८ ॥ ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ॥ निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥२९॥ मुनय ऊचुः ॥ औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ॥

बिजली चमकने लगी ॥ २३ ॥ हे निष्पाप विदुरजी, रक्त, मांस, पीव, विष्टा, मूत्र तथा मेदोंकी वर्षा होने लगी और आकाशसे ध्रुवके आगे कबन्ध गिरने लगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर आकाशमें उसने पर्वत देखा, जिसके चारों तरफसे गदा, परिघ, तलवार, मूसल तथा पत्थरोंकी वर्षा होने लगी ॥ २५ ॥ वज्रके समान कठोर साँसवाले सर्प क्रोधसे आँखोंसे अग्नि उगलते हुए सामने दौड़ने लगे तथा मतवाले हाथी, सिंह, व्याघ्रादिक भी झुण्डके झुण्ड दौड़ने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर प्रलयकालके भीषण महाहृदके समान समुद्र अपनी लहरोंसे पृथ्वीको चारों तरफसे प्लावित करता हुआ प्राप्त हो गया ॥ २७ ॥ क्रूर प्रकृतिवाले उन असुरोंने साहस न रखनेवाले मनुष्योंको भय देनेवाले इसप्रकारके अनेक पदार्थ अपनी आसुरी मायासे उत्पन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किये ॥ २८ ॥ असुरोंके द्वारा ध्रुवके ऊपर प्रयुक्त हुई उस अति दुस्तरमायाको सुनकर मुनिलोग वहाँपर आये और उसके कल्याणकी प्रार्थना करने लगे ॥ २९ ॥ मुनियोंने कहा—हे

यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥३०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ध्रुव, शरणागतके दुःख दूर करनेवाले शार्ङ्गधन्वा भगवान् तुम्हारे शत्रुओंका नष्ट करें, जिनका नाम जपकर अथवा सुनकर मनुष्य सुखपूर्वक दुस्तर मृत्युको पारकर जाता है ॥ ३० ॥

दसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, ध्रुवने अपनी स्त्री भ्रमिमें कल्प और वत्सर नामके दो पुत्र उत्पन्न किये तथा इलामें उत्कल पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की। उत्तम शिकार खेलने वनमें गया था उसे किसी यक्षने मार डाला, यह सुनकर ध्रुवको बड़ा क्रोध आया और रथपर बैठकर वह अलकापुरीमें पहुँचा। वहाँ जाकर उसने शङ्ख बजाया, जिससे यक्ष लोग शस्त्र लेकर लड़ने आ गये। तब ध्रुवने उन्हें वाणोंसे विद्ध कर दिया। तदनन्तर उन्होंने भी दुगने वाणोंसे बेधकर सारथी और रथके साथ ध्रुवको ढँक दिया, जिससे हाहाकार मचगया। तब ध्रुवने अपने वाणोंसे उन शस्त्रोंको नष्टकर यक्षोंको मारा। तथा जो रणमें मरनेसे बचे थे वे भाग निकले। तदनन्तर उन लोगोंने अपनी माया फैलाई, यह देखकर मुनि लोगोंने आकर ध्रुवके कल्याणकी भगवान्से प्रार्थना की। दसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ एकादशोऽध्यायः ❀

(यक्षोंका वध करनेवाले ध्रुवको मनुका उपदेश देकर रोकना)

मैत्रेयजीने कहा—ध्रुवने इसप्रकार ऋषियोंके वचन सुनकर आचमन किया और अपने धनुषपर नारायणास्त्रका सन्धान किया ॥ १ ॥ हे विदुरजी, इस अस्त्रके सन्धान करतेही यक्षोंकी वह माया इसप्रकार नष्ट हो गई, जिसप्रकार ज्ञानका उदय होनेपर समस्त रागादि नष्ट हो जाते हैं ॥२॥ ध्रुवके उस शस्त्रको धनुषपर सन्धान करतेही उसमेंसे सुवर्णमय पूँछवाले

मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः ॥ सन्दधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥ १ ॥ सन्धीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः ॥ क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥ २ ॥ तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुंखाः कलहंसवाससः ॥ विनिसृता आविविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥ तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः ॥ तमभ्यधाव-

तथा कलहंसोंके पंखवाले वाण निकले और वे शत्रुओंकी सेनामें इसप्रकार प्रविष्ट हो गये, जिसप्रका वनमें भयानक शब्द करनेवाले मोर प्रवेश करते हैं ॥ ३ ॥ संग्राममें उस तीक्ष्ण-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धारवाले बाणोंसे यक्षलोग इधर उधर भागने लगे और कुपित होकर शस्त्र उठाकर उसके ऊपर ऐसे दौड़े, जैसे फण उठाकर सर्प गरुड़के ऊपर दौड़ता है ॥ ४ ॥ तब ध्रुवने सन्मुख दौड़े आ रहे उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे बाहु, उरु, ग्रीवा तथा उदर काटकर उस परलोकमें पहुँचा दिया, जहाँपर नैष्ठिक ब्रह्मचारी सूर्यमण्डलको भेदकर जाते हैं ॥ ५ ॥ तब ध्रुवके द्वारा निरपराधी उन यक्षोंको बहुत संख्यामें मरा देखकर, ऋषियोंके साथ पितामह मनु वहाँपर आये और ध्रुवसे कृपापूर्वक कहने लगे ॥ ६ ॥ मनुने कहा—हे वत्स, नरकका द्वार पापरूप यह क्रोध है, जिससे तुमने इन निरपराधी यक्षोंका वध किया है। अतः इसे तुम शान्त करो ॥ ७ ॥ हे तात, तुमने यह जो निरपराधी यक्षोंका वध करना शुरू किया, यह हमारे कुलके योग्य नहीं है, क्योंकि इस कर्मकी सत्पुरुष निन्दा करते हैं ॥ ८ ॥ हे भ्रातृवत्सल, अपने भाईके वधसे सन्तप्त होकर तुमने मारनेवाले एकके अपराधसे साथमें अनेकोंको मार डाला ॥ ९ ॥ देहको

न्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः ॥ ४ ॥ सतान्पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ॥ निनाय लोकं परमर्कमण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥५॥ तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ॥ औत्तानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥६॥ मनुरुवाच ॥ अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ॥ येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ७ ॥ नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ॥ वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८ ॥ नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद्बहवो हताः ॥ भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाङ्ग भ्रातृवत्सल ॥ ९ ॥ नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् । यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥ १० ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ॥ आराध्याप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ११ ॥ स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः ॥ कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥ १२ ॥ तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ॥ समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ १३ ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥ १४ ॥ भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ॥ तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ॥ गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ॥१६॥ निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुष-

आत्मा समझकर पशुओंकी (अज्ञानियों की) तरह प्राणियोंकी हिंसा करना, यह भगवान्का अनुसरण करनेवाले साधुओं का मार्ग नहीं है ॥ १० ॥ तुमने समस्त प्राणियोंमें आत्मदृष्टि करके सबके हृदयमें रहनेवाले दुराराध्य भगवान विष्णुकी आराधना करके उनका परमपद ध्रुवलोक प्राप्त किया ॥ ११ ॥ वही तुम भगवानका ध्यान करनेवाले तथा उनके भक्तों से सम्मत सत्पुरुषोंकी व्रतकी शिक्षा पाकर भला इस निन्दितकर्ममें प्रवृत्त कैसे हुए ? ॥१२॥ सहनशीलता, दया, मित्रता तथा समस्त प्राणियोंमें समदृष्टि रखनेसे सबकी आत्मारूप भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ और भगवान्के प्रसन्न होजाने पर मनुष्य प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो जाता है तथा फिर शरीरसे मुक्त होकर सुखस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ पृथ्वी आदि पाँच महाभूतोंसे बने इस शरीरको स्त्री तथा पुरुष कहते हैं। और उन दोनोंके मैथुन करनेसे इस संसारमें अन्य स्त्री पुरुषकी उत्पत्ति होती है ॥ १५ ॥ हे राजन्, इसप्रकार यह सृष्टि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्पन्न होती है, पालक माँ-बापके अकारसे परिणत भूतों द्वारा इसकी स्थिति होती है और नाशक सर्प, चोर, व्याघ्र आदिके आकारसे परिणत भूतोंके द्वारा इसका संहार होता है। यह सब भगवान् परमात्माकी माया द्वारा गुणोंके सम्बन्धसे होता है, स्वतः नहीं ॥ १६ ॥ इसमें निर्गुण परम पुरुषोत्तम निमित्तमात्र रहते हैं, जिस निमित्तके रहने पर यह कार्यकरणस्वरूप जगत् इसप्रकार परिवर्तित हो जाता है, जिसप्रकर अयस्कान्तमणि निमित्तके रहनेपर लोहा घूमने लगता है ॥ १७ ॥ वही भगवान् क्रमसे गुणोंमें क्षोभ होनेके कारण अपनी शक्तिका विभाग करते हैं और उसीसे इस संसारकी उत्पत्ति तथा प्रलय करते हैं एवं स्वयं अकर्ता तथा अहंता होनेपर भी कर्ता और हन्ता होते हैं, क्योंकि विभु उनकी कालशक्ति अचिन्त्य है ॥१८॥ भगवान् ही पिता आदि रूपसे पुत्रादिकी उत्पत्ति करते हुए भी आदिकृत् नहीं हैं और चोरादिकोंको उनकी मृत्युरूप हेतु द्वारा मारते हुए भी अन्तकर नहीं हैं एवं स्वयं भगवान् अनादि,

र्षभः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥ १७ ॥ स खल्विदं भगवान्कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥ १८ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥ १९ ॥ न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ॥ तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसङ्घाः ॥ २० ॥ आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ॥ उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥ २१ ॥ केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप ॥ एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च ॥ न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसंभवम् ॥ २३ ॥ न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः ॥ विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च ॥ अथापि ह्यनहङ्कारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥ २५ ॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ॥ स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च

अनन्त तथा अव्यय ही हैं ॥ १९ इस परमेश्वर भगवान्का कोई मित्र अथवा शत्रु नहीं है। वे मृत्युरूपसे मनुष्योंमें सदा समदृष्टि रखकर प्रवेश करते हैं। जीव अपने कर्मके अनुसार इसप्रकार उनके पीछे दौड़ते हैं, जिसप्रकार वायुके पीछे धूलि दौड़ती है ॥ २० ॥ सर्वव्यापक भगवान् स्वयं स्वस्थ होजानेके कारण आयुकी वृद्धिह्राससे रहित हैं तथापि कर्माधीन प्राणियों की आयु वृद्धि तथा ह्रास वही करते हैं ॥ २१ ॥ हे राजन्, उन्हीं भगवान्को कोई कर्म, कोई स्वभाव, कोई काल, कोई दैव, कोई मनुष्यका 'काम' कहते हैं ॥ २२ ॥ हे तात अव्यक्त, अप्रमेय तथा नाना शक्तियोंका उदय करनेवाले भगवान्की शक्तिका जब कोई चिकीर्षित नहीं जान पाता, तब जहाँसे अपनी उत्पत्ति है उस ईश्वरको भला कौन जान पायगा ॥ २३ ॥ हे पुत्र, ये यक्ष तुम्हारे, भाईको मारनेवाले नहीं हैं, क्योंकि मनुष्यके जन्म-मरणका कारण दैव है ॥ २४ ॥ वही ईश्वर इस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करता है। परन्तु अहंकार होजाने के कारण वह गुण तथा कर्मों से लिप्त नहीं होता ॥ २५ ॥ वही भूतात्मा भूतेश तथा भूतभावन ईश्वर अपनी मायाशक्तिसे युक्त होकर प्राणियोंका जन्म, पालन तथा नाश करत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ २६ ॥ हे तात, इस संसारके आश्रय मृत्यु तथा अमृतरूप उन्हीं दैव भगवान्सर्वात्माकी शरणमें जाओ। जिनको प्रजापति लोग रज्जुसे नासिकामें बँधे हुए बैलोंकी तरह बलि समर्पित करते हैं अर्थात् उनके द्वारा कराये गये कर्मका शीघ्र सम्पादन करते हैं ॥ २७ ॥ सौतेली माताके वचनोंसे व्यथित हृदय होकर जिसे तुमने पाँच वर्षकी ही अवस्थामें अपनी माताको छोड़कर वनमें गये और तपस्यासे जिस भगवान् को प्रसन्न करके तीनों लोकोंके ऊपर स्थान प्राप्त किया ॥ २८ ॥ हे अङ्ग, विरोध छोड़कर अपने मनमें स्थित उन्हीं एक, निर्गुण तथा अव्यय भगवान् परमात्माका परमात्मैकदृष्टि होकर अन्वेषण किया। जिनमें यह भेदरूप संसार असत् प्रतीत होता है ॥ २९ ॥ तुम उसी समय भगवान् प्रत्यगात्मामें, जो अनन्त, आनन्दरूप तथा समस्त शक्तियोंसे युक्त हैं, परमभक्ति करके, 'मम अहम्' (मैं और मेरा) इत्याकारक प्ररूढ़ हुई अज्ञानरूपी ग्रन्थिको धीरे धीरे नष्टकर दोगे॥३०॥ हे राजन्, कल्याणके

पाति च ॥ २६ ॥ तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ॥ यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥ यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ॥ वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥२८॥ तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् । आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृग्यस्मिन्निदं भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ॥ भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं बिभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ॥ श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथामयम् ॥ ३१ ॥ येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ॥ न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥ हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ॥ यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥ तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः ॥ न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् ॥ तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्याय ॥ ११ ॥

अत्यन्त विपरीत इस क्रोधको इस तरह मेरे इस महान् उपदेशसे शान्तकर दो, जिस तरह औषधीसे रोग शान्तकर दिया जाता है। तब तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ जिस क्रोधसे युक्त पुरुषसे मनुष्य अत्यन्त भयभीत होते हैं, विद्वान् अपना यदि कल्याण चाहे, तो उस क्रोधके वशीभूत न हो॥ ३२ ॥ जो तुमने 'ये हमारे भाईको मारनेवाले हैं, ऐसा क्रोधकर यक्षोंको मारा है। इससे शंकरके भाई कुबेरका भी तुमने अनादर किया ॥ ३३ ॥ इसलिये हे वत्स, जबतक महात्माओंका तेज हमारे कुलका अनिष्ट नहीं करता, उसके पहले ही तुम शीघ्र प्रणाम तथा अपने नम्र वचनोंसे उसे प्रसन्न करो ॥ ३४ ॥ इसप्रकार मनु अपने पौत्र ध्रुवको उपदेश देकर तथा उससे पूजित होकर ऋषियोंके साथ अपने पुरको चले गये ॥ ३५ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्यारहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, ध्रुवने इसप्रकार ऋषिओंके वचनें सुनकर धनुषपर नारायणास्त्रका संधान किया, जिससे यक्षोंकी वह समस्त माया नष्ट हो गई और उसमेंसे निकले हुए बाणोंसे यक्ष लोग मारे गये। तत्पश्चात् यक्षोंको मरा देखकर ऋषियोंके साथ मनुजी आये और उन्होंने ध्रुवको उपदेश दिया। तदनन्तर उससे पूजित हो कर अपने पुरको चले गये। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

[भगवान्का यजन करके ध्रुवका परमपदको जाना]

भगवान् कुबेर ध्रुवको यक्षोंके वधसे निवृत्त तथा क्रोधरहित जानकर वहाँपर आये और हाथ जोड़े हुए ध्रुवसे कहने लगे ॥१॥ कुबेरने कहा—हे अनघ क्षत्रियपुत्र, तुमने जो पितामहके उपदेशसे दुस्त्यज भी वैर छोड़ दिया है। इसलिये मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥ २ ॥ न आपने यक्षोंको मारा है और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको ही मारा है। प्राणियेंके मारने तथा उत्पन्न करनेमें केवल एक कालही समर्थ हैं ॥ ३ ॥ मनुष्यकी 'मैं तथा तुम' यह जो भेदबुद्धि होती है, वह अज्ञानसे होती और वह स्वप्नके समान मिथ्या उत्पन्न होती है। इस देह में अहङ्कार करनेसे होती है और उसीसे बन्ध तथा दुःखादि हुआ करते हैं ॥ ४ ॥ इसलिये हे ध्रुव, तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। जाकर भजनीयचरणवाले तथा समस्त

मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ॥ तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥ १ ॥ धनद उवाच ॥ भो भो क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥ न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ॥ काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥ ३ ॥ अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ॥ स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यथा बन्धविपर्ययौ ॥ ४ ॥ तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥ भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम् ॥ युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥ ६ ॥ वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ॥ वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयोरनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स राजराजेन वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ॥ हरौ स

प्राणियोंके बन्धनको नष्ट करनेवाले अधोक्षज भगवान्का समस्त प्राणियोंमें आत्मदृष्टि रखकर भजन करो। सर्वभूतात्मशरीर वे गुणमयी अपनी मायाशक्तिसे युक्त तथा रहित भी हैं॥५, ६॥ हे ध्रुव, तुम औत्तानपदमें निर्भय होकर रहो, जो तुम्हारी इच्छा हो यथेच्छ मुझसे वह वर माँग लो, क्योंकि तुम वर पाने योग्य हो। हे अङ्ग, मैंने तुमको भगवान्के चरणकमलों के अत्यन्त निकट सुना है ॥ ७ ॥ मैत्रेयजीने कहा—जब कुबेरने भगवद्भक्त ध्रुवको इसप्रकार वर माँगनेको प्रेरित किया, तब महाभागवत महामति उसने भगवान्में अचल स्मृति माँगी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिस स्मृतिसे सहजहीमें इस संसाररूपी दुर्लंघ्य अन्धकारको मनुष्य पारकर जाता है ॥ ८ ॥ तव कुबेरने प्रसन्नचित्त से उसे वः वर दिया और उसके देखते-देखते अन्तर्हित हो गये। तब ध्रुव भी वहाँसे अपने नगरको आ गया ॥ ६ ॥ और अपने नगरमें आनेपर बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे उसने द्रव्य, किया तथा देवता—इनके कर्म साध्य फलरूप एवं यज्ञका फल देनेवाले भगवान् का यजन किया ॥ १० ॥ सबकी आत्मा सम्पूर्ण उपाधियोंसे वर्जित अच्युत भगवानमें ज्ञानकर्मादिसे अनावृत प्रवाहवाली दृढ़भक्ति करता हुआ वह अपनी आत्मा तथा समस्त प्राणियोंमें उन्हीं भगवान्को स्थित देखने लगा ॥ ११ ॥ तदनन्तर सदाचार सम्पन्न ब्राह्मण तथा दोनोंके प्रतिपालक और धर्म। मर्यादाओंके रक्षक उसे प्रजाएँ अपना पिता मानने लगीं ॥ १२ ॥ उसने ऐश्वर्यादि भोगोंसे पुण्य तथा यज्ञादिके अनुष्ठानोंसे पापको नष्ट करते हुए छत्तीस हजार वर्षोंतक पृथ्वीमण्डलका शासन किया ॥ १३ ॥ इसप्रकार जितेन्द्रिय उस

वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्वैडविडस्ततः ॥ पश्यतोऽन्तर्दधे सोपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ६ ॥ अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥१०॥ सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ॥ ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥ तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ॥ गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥ १२ ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ॥ भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥ १३ ॥ एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेन्द्रियः ॥ त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १४ ॥ मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ॥ अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥ आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ॥ भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥ तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्धासनं जितमरुन्मनसाहृताक्षः ॥ स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥ १७ ॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ॥ विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो नात्मानमस्मरदसाविति

महात्माने धर्म, अर्थ तथा काम प्राप्त करानेवाला बहुत-सा लम्बा समय, जिसमें अनेकों वर्ष गुजर गये, निकालकर अपने पुत्रको नृपासन दे दिया ॥ १४ ॥ अविद्याद्वारा विरचित स्वप्न एवं गन्धर्वनगरके तुल्य इस संसारको भगवान्की मायासे आत्मामें रचित मानता हुआ ध्रुव शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, खजाना, अन्तःपुर, क्रीड़ाकी भूमि तथा समुद्ररूपी मेखलायुक्त पृथ्वीमण्डल इन सबको मायिक होते हुए भी काल द्वारा अनित्य समझकर तप करनेके लिये विशाल बदरिकाश्रमको चला गया ॥ १६ ॥ वहाँपर पवित्रजलमें स्नान करके विशुद्धान्तःकरण उसने आसन लगाकर प्राणवायुको जीत करके मनसे इन्द्रियोंको वशमें किया और भगवान्के प्रतिनिधिभूत विराट्रूपमें मन लगाया तथा उसका ध्यान करता हुआ वह एकरूप हो गया और समाधिमें स्थित होकर स्थूल शरीरको छोड़ दिया ॥१७॥ इसप्रकार निरन्तर भगवान्में भक्ति करनेसे उसका शरीर आनन्दबाष्पके बिन्दुप्रवाहसे सिक्त हो गया तथा उसका हृदय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पिघलने लग गया, शरीरमें रोमाञ्च हो गया एवं अपना स्मरण न रहा, यह मुक्त प्राणीका चिह्न है ॥१८॥ तब उस ध्रुवने आकाशसे उतरते हुए एक श्रेष्ठ विमानको देखा, उसकी कान्तिसे दशों दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं तथा वह उदित हुए चन्द्रमाके समान था ॥१९॥ तदनन्तर उसमें बैठे हुए दो श्रेष्ठ देवताओंको देखा। वे श्यामवर्ण तथा किशोर अवस्थाके थे। उसकी चार-चारभुजाएँ तथा लाल कमलके समान नेत्र थे, वे सुन्दर वस्त्र, किरीट, हार, बाहुभूषण तथा कुण्डल पहनकर गदा ग्रहणकिये बैठे थे ॥ २० ॥ उनको भगवान्का सेवक जानकर उठा और सम्भ्रमसे पूजा-क्रम भूल जानेके कारण हाथ जोड़कर भगवान्का नाम लेता हुआ नमस्कार करने लगा ॥२१॥ तब भगवान्के प्रिय पार्षद सुनन्द और नन्द उसके पास जाकर भगवान्के चरणोंमें चित्त लगाये हुए, विनयसे नम्र ग्रीवा तथा हाथ जोड़े हुए ध्रुवसे हँसते हुए कहने लगे ॥२२॥ सुनन्दर और नन्दने कहा—हे राजन्, आपका कल्याण हो, आप सावधान होकर

मुक्तलिङ्गः ॥ १८ ॥ स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरध्रुवः ॥ विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥ तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ ॥ स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥ २० ॥ विज्ञाय तावुत्तमगायकिङ्करावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ॥ ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥ २१ ॥ तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ॥ सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ॥२२॥ सुनन्दनन्दावूचतुः भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ॥ यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥ २३ ॥ तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ॥ आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षताराः परियन्ति दक्षिणम् ॥ २५ ॥ अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् ॥ आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥ एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ॥ उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमप्रियः ॥ कृताभिषेकः कृतनित्य-

हमारे वचनोंको सुनो। तुमने पाँच वर्षकी अवस्थामें तपस्यासे जिन भगवान्को प्रसन्न किया, उन्हीं समस्त संसारके पालक भगवान्के हमलोग पार्षद हैं और तुमको ध्रुवपदमें ले जानेके लिये आये हैं ॥ २३, २४ ॥ तुमने अजेय विष्णुपदको प्राप्त किया है, जिसे सप्तर्षि प्राप्त न करके केवल नीचे खड़े होकर देखा करते हैं तथा जिसको सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारागण प्रदक्षिणा किया करते हैं, उस स्थानपर तुम स्थित होओ ॥ २५ ॥ जिस स्थानको तुम्हारे पितर तथा अन्य किसीने कभी भी प्राप्त नहीं किया, उस जगत्पूज्य विष्णुके परमपदपर तुम स्थित होओ ॥ २६ ॥ हे आयुष्मन्, यह श्रेष्ठ विमान उत्तमश्लोक भगवान्ने पहुँचाया है। इसपर तुम बैठने योग्य हो ॥ २७ ॥ मैत्रेयजीने कहा—उरुक्रम भगवान्के प्रिय ध्रुवने जब पार्षदोंकी यह मधुर वाणी सुनी, तब उसने स्नानादि नित्यकर्म करके अलकारोंको धारण किया और मुनियोंको प्रणाम करके स्वस्तिवाचन कराया ॥ २८ ॥ उसने उस श्रेष्ठ विमानकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रदक्षिणा तथा पूजा की और पार्षदोंको प्रणाम करके सोनेके समान प्रकाशवाले रूपको धारणकर उस विमानमें बैठनेकी इच्छा की ॥२९॥ उसी समय उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने आये हुए वहाँ मृत्युको देखा। उसके मस्तकपर वह अपना पैर रखकर उस अद्भुत विमानमें चढ़ गया ॥ ३० ॥ तब दुन्दुभि, मृदङ्ग, पणव आदि बाजे बजने लगे, श्रेष्ठ गन्धर्व गान करने लगे तथाफूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥ ध्रुव उस विष्णुपदको जाता हुआ अपनी माता सुनीतिका स्मरण करने लगा। विचारने लगा कि मैं उस दीनको छोड़कर अगम्य स्वर्गलोकको कैसे जाऊँगा ? ॥ ३२ ॥ इसप्रकारके ध्रुवके अभिप्रायको जानकर पार्षदोंने उस देवीको आगे विमानसे जाते हुए दिखाया ॥ ३३ ॥ विमानोंमें बैठे हुए देवता ध्रुवकी प्रशंसा तथा पुष्पोंकी वर्षाकर रहे थे। ध्रुवने रास्तेमें जाते हुए क्रमसे ग्रहोंको देखा ॥३४॥ ध्रुवगत वह ध्रुव विमानसे तीनों लोक तथा सप्तर्षियोंका अतिक्रमण करके उनके आगे जो विष्णुका परमपद स्थान

मङ्गलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥ परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च ॥ इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ॥ २९ ॥ तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ॥ मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥ ३० ॥ तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः ॥ गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥ स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिं जननीं ध्रुवः ॥ अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ३२॥ इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ॥ दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥ ३३ ॥ तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः ॥ अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४ ॥ त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ॥ परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥ ३५ ॥ यद्भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनुविभ्राजन्त एते ॥ यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति ये ऽनिशम् ॥ ३६ ॥ शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः ॥ यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥ ३७ ॥ इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥ अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥ ३८ ॥ गम्भीरवेगो निमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥ महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ॥ आतोद्यं वितुदञ्श्लोकान् सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥४०॥ नारद

है वहाँपर पहुँचा ॥ ३५ ॥ जो विष्णुपद चारों तरफसे अपनीही कान्तिसे प्रकाशित है तथा उसीके प्रकाशसे ये तीनों लोक प्रकाशित होते हैं। उस लोकमें जो मनुष्य प्राणियोंमें दया नहीं करते, वे नहीं जाते और जो सदा शुभाचरण करते हैं, वे जाते हैं ॥ ३६ ॥ शान्त स्वभाव, समदृष्टि, शुद्ध अन्तः करण तथा समस्त प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले, जिनके भगवान्ही प्रिय तथा बन्धु हैं वे ही अच्युत भगवान्के उपासक हो जाते हैं ॥ ३७ ॥ इसप्रकार उत्तानपादका पुत्र ध्रुव भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमें तत्पर होनेके कारण तीनों लोकोंमें चूड़ामणिके तुल्य श्रेष्ठ हुआ ॥ ३८ ॥ हे विदुरजी, जिसमें स्थित नक्षत्रसमूह आलस्यरहित होकर, मेढ़ीमें गम्भीर वेगवाले बैलोंके समूहकी नाई घूमता है ॥३९॥ भगवान् नारद ऋषिने ध्रुवकी महिमा देखकर वीणा बजाते हुए प्रचेताओंके यज्ञमें ध्रुव महिमा प्रतिपादनपरक तीन श्लोक गाये ॥ ४० ॥ नारदजीने कहा—पतिको ही देवता माननेवाली सुनीतिके पुत्रके तपके प्रभावके फलको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वेदोंको जाननेवाले ब्रह्मर्षिगण भगवान्के धर्मोंको देखकर भी प्राप्त नहीं कर सकते, फिर राजालोग कैसे प्राप्तकर सकते हैं ? ॥४१॥ जो पाँच वर्षका ध्रुव सौतेली मातके वचनरूपी बाणोंसे विदीर्ण अतएव दुःखित चित्तसे वनको चला गया और मेरे आदेशको स्वीकार करके अजित होनेपर भी भक्तोंके गुणोंसे पराजित होनवाले भगवान्को जिसने अपने वशमें कर लिया ॥४२ ॥ पाँच छः वर्षकी अवस्थावाले ध्रुवने थोड़े ही दिनोंमें भगवान्को प्रसन्न करके जो पद प्रात किया, उस पदको इस पृथ्वीमें जो क्षत्रिय होंगे, वे क्या अनेक वर्षों में भी उस पदपर चढ़नेकी इच्छा करेंगे ? ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजीने कहा—जो तुमने उत्कृष्ट यशवाले ध्रुवका सज्जनोंसे सम्मत चरित्र मुझसे पूछा था, वह मैंने तुमसे समस्त कह दिया ॥ ४४ ॥ यह चरित्र धन, यश आयु, पुण्य, अत्यन्त कल्याण, स्वर्ग तथा ध्रुव स्थान देनेवाला है। मनको सुन्दर करता है एवं पापको नष्ट करता है। इससे वह श्रेष्ठ है ॥४५॥ जो ध्रुवके इस चरित्रको बार-

उवाच ॥ नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ॥ दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥ ४१ ॥ यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्शरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ॥ वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥ ४२ ॥ यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढमन्व रुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ॥ षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ॥ ४४ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत ॥ स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् ॥ भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥४६॥ महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ॥ यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥ ४७ ॥ प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ॥ सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत ॥ ४८ ॥ पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथ वा ॥ दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽ-

बार सुनता है, उसकी भगवानमें भक्तिहोती है, जिस भक्तिसे क्लेश दूर हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ इस चरित्रके सुननेवालेको शील आदि गुण स्वयं हो जाते हैं। जो महत्त्वकी इच्छा करते हैं, वे महत्त्व प्राप्तिके स्थान तीर्थको प्राप्त करते हैं। जो तेज चाहते हैं, उन्हें तेज मिलता है और जो मनस्वी हैं, उन्हें मान मिलता है ॥ ४७ ॥ सावधान होकर पुण्य श्लोक ध्रुवके इस महान् चरित्रको प्रातः तथा सायंकाल ब्राह्मणोंकी सभा में कहना चाहिए ॥४८॥ तथा पूर्णमासी या सिनीवाली अमावास्या को अथवा द्वादशी वा श्रवण नक्षत्रमें या दिन क्षयमें अथवा व्यतीपात योगमें या संक्रातिमें अथवा रविवारके दिन इस चरित्रको कहना चाहिए ॥ ४९ ॥ श्रद्धालु पुरुषोंको इसका श्रवण करना चाहिये। क्योंकि भगवान्के चरणकमलोंका आश्रयग-

❀ जो लोग श्रद्धासे कथा भगवान्की श्रवण करते हैं उन्हें फल मिलता है जो कथामें वातचीत धूम्रपान आदि करते हैं उनको फल नहीं मिलता जैसे धुन्धुकारीने भागवतका मनसे श्रवण कर प्रेतयोनि से छुटकारा पा स्वर्ग का रास्ता लिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ज्ञानरूप अमृत देता है, उस कृपालुके ऊपर देव अनुग्रह करते हैं ॥ ५१ ॥ हे विदुरजी, मैंने विख्यात शुभ कर्मवाले ध्रुवका चरित्र आपसे कहा, जो ध्रुव खिलौने तथा माताके घरको छोड़

र्कदिनेऽपि वा ॥ ४९ ॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ॥ नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं सन्तुष्ट इति सिध्यति ॥ ५० ॥ ज्ञानमज्ञाततत्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ॥ कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ॥ हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥५२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

करनेवाला निष्काम भक्त इसे सुन लेनेपर अपने ही अपने प्रति सन्तुष्ट हो जानेसे सिद्धिको प्राप्त कर लेता है ॥५०॥ जो मनुष्य तत्त्व न जाननेवाले प्राणीको भगवान् मार्ग दिखानेवाला कर बाल्यावस्थामें ही भगवान्की शरणमें चला गया । ५२ ॥

बारहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, ध्रुवको यक्षोंके वधसे निवृत्त जानकर कुबेर वहाँ आये । और प्रशंसा करते हुए उन्होंने वर माँगनेको कहा । तब ध्रुवने भगवान्में दृढ स्मृति माँगी और अपने पुरमें आकर यज्ञोंसे भगवान्का यजन किया । तदनन्तर सब छोड़ छाड़कर बदरिकाश्रम तप करने चले गये । वहाँपर भगवान्का भेजा हुआ विमान आया, जिसमें बैठकर ध्रुवलोकको पधारे । बारहवाँ अध्याय समाप्त❀

❀ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

[राजा अङ्गके पुत्रकी दुष्टताके कारण घरसे निकल जाना]

सूतजीने कहा—हे महर्षियो, इसप्रकार मैत्रेयजीसे कहे गये ध्रुवके वैकुण्ठपद गमनको सुनकर विदुरकी अधोक्षज भगवान्में अत्यन्त भक्ति बढ़ गई, वे पुनः पूछने लगे ॥१॥ विदुरजीने कहा—हे सुव्रत, आपने जो प्रचेता कहे हैं । वे कौन हैं, किसके पुत्र हैं तथा किसके वंशमें विख्यात हैं और वे कहाँपर यज्ञ करते थे ? ॥२॥ भगवान्के दर्शन करनेवाले नारदको

सूत उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ॥ प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ॥ कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासते ॥ २ ॥ मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ॥ येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥ ३ ॥ स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः

मैं भगवान्का सबसे बड़ा भक्त समझता हूँ, जिन्होंने भगवान्की परिचर्याका प्रकार क्रियायोग पञ्चरात्रमें कहा है ॥ ३ ॥ अपने धर्मका आचरण करनेवाले प्रचेताओंसे पूजित भगवान् यज्ञ-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुरुषका भक्तिमान् नारदने वर्णन, किया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन्, देवर्षि नारदने प्रचेताओंके यज्ञमें जो भगवान्‌की कथाएँ कही हैं, उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ, इसलिये आप समस्त कथाएँ मुझसे अच्छी तरह कहिये ॥ ५ ॥ मैत्रेयजीने कहा ध्रुवका उत्कल नामका पुत्र था। उसने ध्रुवके बन जानेपर राज्यलक्ष्मी तथा राजसिंहासन नहीं चाहा ॥ ६ ॥ वह जन्मसे ही शान्तात्मा तथा संगसे रहित होकर सबको समदृष्टिसे देखता था। उसने संसारको आत्मामें तथा आत्माको संसारमें व्याप्त देखा ॥ ७ ॥ उसने निरन्तर योगाग्निसे समस्त कर्ममलों तथा वासनाओंको नष्ट करके ज्ञानसे भगवान्‌में मिलकर तन्मय हो अपने आत्माको शान्त तथा भेद रहित एवं सर्वत्र अनुस्यूत स्वरूपभूत आनन्दरूप ब्रह्म जानते हुए उस समय अपनेसे अन्य और कुछ न देखा ॥ ८, ९ ॥ मूर्खों द्वारा वह जड़ अन्ध, वधिर, उन्मत्त तथा मूकके समान दिखाई पड़ता था, किन्तु सर्वज्ञ होनेके कारण वह मूर्खों के समान बुद्धिवाला नहीं था,

किल ॥ ४ ॥ यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ॥ मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कार्त्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ॥ ५॥ मैत्रेय उवाच ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ॥ सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥ ६ ॥ स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शनः ॥ ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥ ७ ॥ आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ॥ अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसन्ततम् ॥ ८ ॥ अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः ॥ स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥ जडान्धबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ॥ लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ॥ वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥ स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् ॥ पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥ १२ ॥ पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ॥ प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥ प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ॥ व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥ स चक्षुः सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ॥ मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥१५॥ पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तमृतं व्रतम् ॥ अग्निष्टोमम-

वह तो प्रशान्त ज्वाला अग्निकी नाईं था ॥ १० ॥ तब मन्त्रियोंके सहित कुलके वृद्धोंने उसे जड़ तथा उन्मत्त समझकर भ्रमिके उत्कलसे छोटे पुत्र वत्सर को राजा बनाया ॥ ११ ॥ वत्सरकी स्वर्वीथि नामकी प्रिय भार्या थी। उसने पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, ऊर्ज, वसु, तथा जय नामके छः पुत्र उत्पन्न किये ॥ १२ ॥ पुष्पार्णकी प्रभा तथा दोषा नामकी दो स्त्रियाँ थीं। उनमेंसे प्रभाके प्रातः, मध्यन्दिन तथा सायं ये पुत्र हुए ॥ १३ ॥ तथा दोषाके प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट नामके तीन पुत्र हुए। व्युष्टने पुष्करिणि नामकी स्त्रीमें सर्वतेजा नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ सर्वतेजाने आकूति भार्यामें चक्षु नामका मनु पुत्र उत्पन्न किया। मनुको स्त्री नडवलाने निर्मल बारह पुत्र किये ॥ १५ ॥ उनके पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम, अतीरात्र, प्रद्युम्न, शिवि तथा उल्मुक—ये नाम हैं ॥ १६ ॥ उल्मुकने पुष्करिणि नामकी स्त्रीमें अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा तथा गय नामके छः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किये ॥ १७ ॥ अङ्गकी सुनीथा नामकी स्त्रीने क्रूर स्वभाववाले वेनको पैदा किया । जिसके निकृष्ट स्वभावसे दुःखित होकर राजर्षि अङ्ग अपने नगरसे निकल गये॥१८॥ हे विदुरजी, जिस वेनको वज्रके समान वाणीवाले मुनियोंने शाप दे दिया और मरे हुए उसके दाहिने हाथका खूब मन्थन किया ॥ १९ ॥ उस समय संसारमें अराजकताके कारण प्रजाएँ चोरोंसे पीड़ित हो रही थीं । तदनन्तर राजाओंमें प्रथम पृथु भगवान् नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए ॥ २० ॥ विदुरजीने कहा—हे भगवन्, सदाचारी, ब्राह्मणभक्त, सज्जन, महात्मा उस राजा अङ्गके यहाँ दुष्ट प्रजाएँ क्यों हुईं ? जिसके कारण वह दुःखी होकर घरसे चला गया ॥२१॥ तथा धर्म जाननेवाले मुनियोंने शासनरूप व्रत धारण करनेवाले राजा वेनका कौन-सा अपराध देखकर शाप दिया ? ॥ २२ ॥ यदि पापी भी राजा हो, तो भी प्रजाओंको उसका अनादर नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह अपने तेजसे लोकपालोंका तेज धारण करता है ॥२३॥

नीरात्रंप्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥ १६ ॥ उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ॥ अङ्गं सुमनसं ख्यातिं ऋतुमङ्गिरसं गयम् । १७॥ सुनीथाऽङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ॥ यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥१८। यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ॥ गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥१९॥ अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ॥ जीतो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ॥ राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥ २१ ॥ किंवांऽहो वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् ॥ दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥ नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ॥ यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥ २३ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ॥ नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥ २५ ॥ तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयासादितानि ते ॥ छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥२७॥ न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ॥ यन्न गृह्णन्ति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥२८॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः

हे ब्रह्मन्, आप सुनीथा के पुत्र वेनके इस चरित्रको मुझ श्रद्धालु भक्तसे कहिये, क्योंकि आप परावर वेत्ताओंमें अतिश्रेष्ठ हैं ॥ २४॥ मैत्रेयजीने कहा--- राजर्षि अङ्गने एक महान् अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ किया । उसमें ब्रह्मवादियोंके बुलानेपर भी देवता लोग नहीं आये ॥ २५ ॥ तब वहाँपर विस्मित होकर ऋत्विज् लोगोंने यजमान अङ्गसे कहा—हे राजन्, तुम्हारे हवन किये हुए इस हविको देवता लोग नहीं ग्रहण करते ॥ २६ ॥ हे राजन्, यह हवि शुद्ध है तथा आपने श्रद्धापूर्वक इसे प्राप्त किया है । मन्त्र भी वीर्यमहित हैं और व्रतधारियोंके द्वारा प्रयुक्त हुए हैं ॥ २७ ॥ हमलोग इस जन्ममें किया हुआ देवताओंका थोड़ा भी आपेका अपराध नहीं जानते, जिसमे कर्मके साक्षी जो देवता हैं वे अपना भाग ग्रहण नहीं करते ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा—यजमान अङ्ग राजा ब्राह्मणोंकी वाणी सुनकर अत्यन्त दुःखित हुआ और समस्योंकी आज्ञा लेकर उसके कारण पूछनेके लिये सदस्यांसे उसने कहा ॥ २९ ॥ हे सभापतियो, यहाँ बुलानेपर भी देवता नहीं आते और न अपने भागको ही ग्रहण करते इसलिये आपलोग कहिये कि मैंने कौन-सा पाप किया है ॥ ३० ॥ सभापतियोंने कहा—हे राजन्, आपका इस जन्म में थोड़ा भी पाप स्थित नहीं है। केवल पूर्वजन्मका एक पाप है, जिससे आप पुत्र रहित हैं ❀ ॥ ३१ । हे राजन्, आपका कल्याण हो, आप जिसप्रकार पुत्रसे युक्त हों वैसाही उपाय कीजिये। तब देवता लोग भाग लेंगे। यज्ञसे प्रसन्न होकर भगवान् आपको पुत्र देगें ॥ ३२ ॥ और जब आप पुत्रके लिये साक्षात् भगवान्का वरण करेंगे, तब देवतालोग भी स्वयं आकर अपना भाग ग्रहण करने लग जायँगे ॥ ३३ ॥ मनुष्य जिन-जिन कामनाओंकी इच्छा करता है, भगवान् उसकी उन-उन कामनाओंको पूर्ण करते हैं। जिस भावसे भगवान् पूजित

सुदुर्मनाः ॥ तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥ २९ ॥ नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह ॥ सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यंमया कृ.तम् ॥ ३० ॥ सदसस्पतय ऊचुः ॥ नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् ॥ अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥ ३१ ॥ तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ॥ इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥ ३२ ॥ तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः ॥ यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ३३ ॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः ॥ आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥ इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ॥ पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ३५ ॥ तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ । स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिनौदनम् ॥ अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥ ३७ ॥ सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे ॥ गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥ स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ॥ अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥ स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ॥ हन्त्यसाधुर्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥ ४० ॥

होते हैं उसी भावका फल भी देते हैं ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणोंने इस प्रकार निश्चयकर राजाको पुत्रप्राप्तिके निमित्त पशुओंमें यज्ञरूपसे प्रविष्ट भगवान् विष्णुको पुरोडाशका हवन किया ॥ ३५ ॥ तब अग्निसे सोनेकी माला तथा निर्मल वस्त्र पहने सोनेके पात्रमें सिद्ध खीर लेकर एक पुरुष निकला ॥ ३६ ॥ राजाने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उस खीरको अपने हाथमें ले लिया और उदारबुद्धि उसने प्रसन्नतापूर्वक सूँघकर अपनी स्त्रीको दे दी ॥ ३७ ॥ तब पुत्ररहित उस स्त्रीने पुत्र उत्पन्न करनेवाली वह खीर खाकर पतिसे गर्भधारण किया और समय आनेपर पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ उसने बाल्य-अवस्थासे ही अपने नानामृत्युका अनुसरण किया। मृत्यु अधर्मका अंश है, इसलिये वह अधार्मिक हुआ। ३९ ॥ वह दुष्ट .न हाथमें धनुष लेकर वनमें जाता था और लुब्धककी भाँति दीन मृगोंको मारता था। उसे देखकर मनुष्य यह वेन आ रहा है ऐसा चिल्ला उठते थे ॥ ४० ॥ अत्यन्त दुष्ट वह वेन क्रीड़ाके स्थानमें खेलते हुए

❀ पूर्व जन्मके पापसे जिनको पुत्र नहीं होता है वे विष्णुकी सविधि पूजा करें तो वंश चल सकता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने साथियोंको बलपूर्वक दयासे रहित हो पशुओंकी तरह मारता था ॥ ४१ ॥राजा अङ्गने अपने दुष्ट पुत्रको देखकर नाना प्रकारका शासन किया। परन्तु जब वह शासन में न आया, तब राजा अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ ४२ ॥ जो गृहस्थ मनुष्य पुत्रसे रहित हैं, उन्होंने प्रायः भगवान्‌की सेवाकी है, क्योंकि वे लोग दुष्ट पुत्रसे होनेवाले कठिन दुःखको प्राप्त नहीं करते ॥ ४३ ॥ जिससे अपयश तथा मनुष्योंका अत्यन्त अधर्म होता है तथा समस्त प्राणियोंसे विरोधी और मानसिक व्यथा होती है ॥ ४४ ॥ पुत्र नाममात्र भी आत्माको मोहसे बन्धनमें डालनेवाला है, उसे कौन पण्डित पुत्र मानेगा, जिसके कारण घर भी क्लेशदायी होते हैं ॥ ४५ ॥ मैं शोकके स्थान सुपुत्रसे कुपुत्रको श्रेष्ठ समझता हूँ, क्योंकि कुपुत्रके कारण मनुष्य घर-से विरक्त हो जाताहै। जो घर क्लेशदायी हैं ॥४६॥ इस प्रकार वह राजा दुःखितचित्त होकर रात्रिमें सोया नहीं और आधी रातके समय समस्त महान् ऐश्वर्योंके उदयस्थान उस घरसे

आक्रीडे क्रुडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः ॥ प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥ ४१ ॥ तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ॥ यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥४२॥ प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ॥ कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥४३॥ यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ॥ यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥ ४४ ॥ कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ॥ पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ४५ ॥ कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ॥ निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥ ४६ ॥ एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ॥ अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥ विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ॥ विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥ अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ॥ ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवम् ॥४९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वेनकी माता सुनीथा को सोती हुई छोड़कर चला गया। उसे किसी मनुष्यने देखा भी नहीं ॥ ४७ ॥ प्रजा, पुरोहित, मन्त्री तथा मित्रगण दुःखित हो गये हुए राजाको जानकर अत्यन्त शोकसे दुःखी हुए और पृथ्वीमें इसप्रकार खोजने लगे, जिस प्रकार मायासे छिपे हुए भगवान्‌को कुयोगी लोग खोजते हैं ॥ ४८ ॥ हे विदुरजी, जब वे लोग राजाको खोजते हुए उसके मार्गको प्राप्त न कर सके, तब हतोत्साह होकर नगरमें लौट आये और एकत्रित हुए ऋषियोंको प्रणाम करके रोते हुए राजाके चले जानेका उन्होंने वृतान्त निवेदन किया ॥ ४९ ॥

तेरहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, ध्रुवके वंशमें अङ्ग नामके राजा हुए। उन्होंने यज्ञ करके वेन नामका पुत्र प्राप्त किया। वह पुत्र मृत्युका नाती होनेके कारण अधार्मिक था। वह बाणसे मृगादिकको मारता था। राजा अङ्गने अनेक शासन किये, परन्तु जब वह न माना तब राजा दुःखी होकर आधी रातमें घरसे चुपचाप चले गये। तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❋

[कुपुत्रके भयसे राजा अङ्गके चले जानेपर राजा वेनका क्रोधित होकर ब्राह्मणोंने वध किया]

मैत्रेयजीने कहा—संसारका कल्याण चाहनेवाले उन ब्रह्मवादी भृग्वादि मुनियोंने राजाके न रहनेपर मनुष्योंमें पशुभाव देखते हुए वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर प्रजाकी इच्छा न रहनेपर भी वेनको पृथ्वीका राजा बनाया ॥ १,२ ॥ अत्यन्त कठिन शासन करनेवाले वेनको राजा हुआ सुनकर सम्पूर्ण चोर, जैसे सर्पके भयसे मूषक छिप जाते हैं वैसे छिप गये ॥३॥ वेन राजसिंहासनको प्राप्तकर अष्टलोकपालोंके ऐश्वर्यसे उच्छृङ्खल हो अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करता हुआ पूज्योंका अनादर करने लगा ॥४॥ और अंकुशसे रहित मतवाले हाथीकी तरह घमण्डी वह रथमें बैठकर पृथ्वी तथा आकाशको कँपाता हुआ घूमने लगा ॥५॥ और कहने लगा-हे ब्राह्मणो, आप लोग न कहीं यज्ञ करें, न दान दें, न हवन करें। इस प्रकार भेरी

मैत्रेय उवाच ॥ भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ॥ गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥१॥ वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ॥ प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिञ्चन्पतिं भुवः ॥ २ ॥ श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ॥ निलिल्युर्दस्यवः सद्यः सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥ स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ॥ अवमेने महाभागास्तब्धः संभावितः स्वतः ॥ ४ ॥ एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः ॥ पर्यटन् रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥५॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ॥ इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ ६ ॥ वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् । विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥ ७ ॥ अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ॥ दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥ अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः ॥ ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥ अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ॥ वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसंभवः ॥ १० ॥ निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति

शब्दके साथ चारों तरफ धर्म करनेसे रोक दिया ॥ ६ ॥ तब मुनिलोग दुष्ट वेनके इस अत्याचारको देख इकट्ठे होकर संसारके दुःखका विचार करते हुए कृपापूर्वक कहने लगे ॥ ७ ॥ इस समय संसारको राजा तथा चोर दोनों तरफसे, जैसे दोनों तरफसे जलती हुई लकड़ींके बीचमें स्थित चींटीको कष्ट हो वैसेहो, बड़ा संकट प्राप्त हुआ है। अराजकताके भयसे अयोग्य रहनेपर भी इसे राजा बनाया, परन्तु आज उससे भी भय उत्पन्न हुआ। अब मनुष्योंका कल्याण कैसे होगा ॥ ९ ॥ जैसे दूध पिलाकर सर्पका पालन करना पालन करनेवालेको भी अनर्थदायक होता है वैसेही सुनीथाका पुत्र वेन स्वभावसे ही दुष्ट है आज वह अनर्थदायक हो रहा है ॥ १० ॥ क्योंकि प्रजापालनमें हमीं लोगोंसे प्रजापालक नियुक्त किया गया वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रजाओंका संहारकर डालेगा फिर भी इसे हमलोग शान्त करेंगे। जिससे कि हमलोगोंको इसका पाप स्पर्श न करे ॥ ११ ॥ राजा वेन दुराचारी है, ऐसा जाननेवाले हमलोगोंने उसे राजा बनाया। यदि अधर्म करनेवाला वह समझानेपर भी हमलोगोंके वचनोंको ग्रहण नहीं करेगा, तो मनुष्योंके तिरस्कारसे दग्धप्राय उसे हमलोग अपने तेजसे नष्टकर डालेंगे। इस प्रकार निश्चयकर मुनिलोग अपने क्रोधको छिपाकर वेनके पास जाकर शान्तिपूर्वक वचनों से समझाकर उससे कहने लगे ॥ १२, १३ ॥ मुनियोंने कहा—हे राजन्, हमलोग तुम्हारी आयुलक्ष्मी बल तथा कीर्तिको बढ़ानेवाले जिन वचनों को कहते हैं, उन्हें तुम सुनो ॥१४॥ वाणी, मन, शरीर तथा बुद्धिसे किया हुआ धर्म मनुष्यों को शोकसे रहित ब्रह्मादि लोकोंको देता है तथा जो मनुष्य निष्काम होकर धर्म करते हैं, उन्हें मोक्ष भी प्रदानकर देता है ॥ १५ ॥ इसलिये हे वीर, मनुष्योंका कल्याणरूप वह तुम्हारा धर्म नष्ट न हो। जिसके नष्ट

वै प्रजाः ॥ तथापि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ॥ सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥१२॥ लोकधिक्कारसन्दग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ॥ एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ॥ उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥ १३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ॥ आयुःश्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥ १४ धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः ॥ लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ॥ १५ ॥ स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ॥ यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १६ ॥ राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्य प्रजा नृपः ॥ रक्षन् यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥ १७ ॥ यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥१८॥ तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ॥ परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥ १९ ॥ तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ॥ लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥ २० ॥ तं सर्वलोकामरयज्ञसङ्ग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ॥ यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥ २१ ॥ यज्ञेन युष्मद्विषये

होनेपर राजा अपने ऐश्वर्यसे गिर जाता है ॥ १६ ॥ हे राजन्, असत् मन्त्री तथा चोरोंसे प्रजाकी रक्षा करना एवं समयपर शास्त्रानुसार कर लेता हुआ इसलोकमें सुख प्राप्त करता है और मरनेके पश्चात् स्वर्गमें भी प्रसन्नतापूर्वक रहता है ॥ १७ ॥ जिस राजाके राष्ट्र तथा नगरमें वर्ण और आश्रमके धर्मों से युक्त मनुष्य अपने-अपने धर्मसे यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका यजन करते हैं ॥ १८ ॥ हे महाभाग, अपने धर्मयुक्त शासनमें स्थित रहनेवाले उस राजाके ऊपर प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले विश्वात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जगतके ईश्वर जो ब्रह्मा उनके भी ईश्वर उन भगवान्‌के प्रसन्न हो जानेपर मनुष्यको कौन-सी वस्तु दुर्लभ है, जिन भगवान्‌को लोकपालोंके सहित सम्पूर्ण लोक बड़े आदरके साथ बलि समर्पित करते हैं—उनकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ २० ॥ इसलिये हे राजन्, आप अपने कल्याणके लिये सम्पूर्ण लोकों, उनके पालक देवताओं तथा यज्ञोंका नियन्त्रण करनेवाले, वेदत्रयीरूप, द्रव्यमय तथा तपोमय उस भगवान्‌का नानाप्रकारके यज्ञोंसे यजन करनेवाले अपने देशके निवासी मनुष्योंका अनुसरण करनेके योग्य हो ॥ २१ ॥ हे वीर, तुम्हारे देशमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्राह्मणोंके द्वारा किये गये यज्ञसे पूजित भगवान्‌के अंशसे होनेवाले देवता प्रसन्न होकर तुम्हारे मनोरथको सिद्ध करेंगे। इससे तुम्हें उनका तिरस्कार करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥ वेनने कहा—अधर्ममें धर्म माननेवाले तुमलोग बड़े मूर्ख हो, जो वृत्ति देनेवाले ईश्वर हमें छोड़कर दूसरे पतिकी सेवा करते हो ॥ २३ ॥ जो मूर्ख मनुष्य राजारूपी ईश्वरका अनादर करते हैं, वे इस लोकमें तथा स्वर्गलोकमें कल्याण प्राप्त नहीं करते ॥ २४ ॥ जैसे पतिके प्रेमसे रहित कुलटा स्त्रियोंकी उपपतिमें भक्ति होती है वैसीही आपलोगोंकी जिसमें भक्ति है वह यज्ञपुरुष नामवाला कौन है ? ॥ २५ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुबेर, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि, वरुण ॥ २६ ॥—ये तथा वरदान और शाप देनेमें समर्थ और भी जो देवता हैं। वे सब भी राजाके शरीरमें रहते हैं। इसलिये राजा सम्पूर्ण देवतामय रहता है ॥ २७ ॥ अतः हे ब्राह्मणो, आपलोग ईर्ष्या छोड़कर अपने-अपने कर्मोंसे हमारा यजन करें और हमेंही

द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कला हरेः ॥ स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥ २२ ॥ वेन उवाच ॥ बालिशा तब यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ॥ ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥ २३ ॥ अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् ॥ नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥२४॥ को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ॥ भर्तृस्नेहविदूराणां तथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥ विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ॥ पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपांपतिः ॥ २६ ॥ एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ॥ देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २७ ॥ तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ॥ बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ॥ अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥ २८ ॥ इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ॥ भग्नायां भव्ययाच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३० ॥ हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ॥ जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम् ॥ ३१ ॥ नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ॥ योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥ ३२ ॥ को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् ॥ प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥ ३३ ॥ इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ॥ निजघ्नुर्हुङ्कृतैर्वेनं हतमच्युत-

बलि समर्पित करें, क्योंकि मुझसे अन्य दूसरा कौन पुरुष आराध्य है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार उल्टी बुद्धि कुमार्गगामी अत्यन्त पापी उसने समझानेपर भी उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, क्योंकि उसका पुण्य नष्ट हो चुका था ॥ २९ ॥ तब अपनेको पण्डित माननेवाले वेनसे अपमानित हुए उन ब्राह्मणोंने अपनी श्रेष्ठ प्रार्थनाके भग्न हो जानेपर सब उसके ऊपर क्रोध करते हुए कहा—स्वभावसे ही कठोर इस पापीको मार डालो, मार डालो। जीता हुआ यह शीघ्र सारा संसार नष्टकर डालेगा ॥ ३१ ॥ निर्लज्ज दुराचारी यह यज्ञके प्रवर्तक तथा रक्षक भगवान् विष्णुकी निन्दा करता है। अतः यह श्रेष्ठ राजसिंहासनके योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ जिन भगवान्‌की कृपासे ऐसे राज्यरूप ऐश्वर्यको इसने प्राप्त किया, उन भगवान्‌की पापी केवल वेनको छोड़कर और दूसरा कौन निन्दा करेगा ? ॥ ३३ ॥ इसप्रकार उसे मारने का निश्चयकर ऋषिलोग अपने छिपे हुए क्रोधको प्रकट करते हुए पहले ही भगवान्‌की निन्दा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करनेसे मृतप्राय उस वेनको अपनेही हुङ्कारोंसे मार डाला ॥ ३४ ॥ तदनन्तर मुनियोंके अपने-अपने आश्रममें चले जानेपर उसका शोक करनेवाली सुनीथाने अपने पुत्रके उस शरीरकी विद्यायोगसे रक्षा की ॥ ३५ ॥ एक समय वे मुनिलोग सरस्वती नदीके जलमें स्नानकर तथा अग्निमें हवन करके उसी नदीके किनारे बैठे हुए भगवान् विष्णुकी कथा कहने लगे ॥३६॥ उस समय मनुष्योंको भय देनेवाले बड़े-बड़े उत्पातोंको देखकर कहने लगे—अनाथ इस पृथ्वीका चोरोंसे अकल्याण न होगा क्या ? ॥ ३७ ॥ इस प्रकार ऋषिलोग विचार करते हुए स्थित थे । तभी मनुष्योंका धन लूटकर इधर-उधर दौड़ रहे चोरोंके कारण चारों तरफ धूल उड़ने लगी ॥ ३८ ॥ उस समय राजाके न रहनेसे मनुष्योंका धन चुरानेवाले तथा आपसमें एक दूसरेको मारनेकी इच्छा करनेवाले उन मनुष्योंके उपद्रवको जानकर एवं चोर प्राय राजा और बलसे रहित देशको समझकर उन्हें रोकनेकी सामर्थ्य रहनेपर भी रोकनेमें दोष देखकर

निन्दया ॥ ३४ ॥ ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ॥ सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५ ॥ एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः ॥ हुत्वाग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥ ३६ ॥ वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभयङ्करान् ॥ अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥ ३७ ॥ एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् ॥ पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामभिलुम्पताम् ॥ ३८ ॥ तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् ॥ भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥ ३९ ॥ चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ॥ लोकान्नावारयन् शक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥ ४० ॥ ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः ॥ स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥ ४१ ॥ नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ॥ अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४२ ॥ विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ॥ ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४३ ॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ॥ ह्रस्वपान्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥ ४४ ॥ तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ॥ निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥ ४५ ॥ तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ॥ येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४६ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

उन्होंने नहीं रोका ॥ ४० ॥ शान्त तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको एक दृष्टिसे देखनेवाला ब्राह्मण भी यदि दीन मनुष्योंकी उपेक्षा करता है, तो जैसे फूटे हुए बर्तनमेंसे जल चू जाता है वैसेही उसकी तपस्या चू जाती है ॥ ४१ ॥ राजर्षि अङ्गका यह वंश नष्ट होने योग्य नहीं है क्योंकि इस वंशमें भगवानका सहारा लेनेवाले अत्यन्त पराक्रमी राजा होंगे ॥ ४२ ॥ इसप्रकार निश्चयकर ऋषियोंने मरे हुए राजा वेनके ऊरुका बड़े वेगके साथ मन्थन किया तब उस ऊरुसे एक छोटा-सा मनुष्य प्रकट हुआ ॥४३॥ वह काकके समान काले रङ्गका था, उसके हाथ, पाँव आदि और सब अङ्ग छोटे-छोटे थे, ठोढ़ी लम्बी थी तथा नासिकाका अग्रभाग नीचेको दबा हुआ था । उसके नेत्र रक्तके सदृश लाल-लाल थे और केश ताँबेके समान थे ॥ ४४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अत्यन्त दीन वह ऋषियोंके सामने मस्तक झुकाकर कहने लगा—मैं क्या करूँ ? तब उन्होंने कहा—बैठ जाओ। इससे हे तात, वह निषाद नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ४६ ॥ और उनका वंश पर्वतों का आश्रय करके रहनेवाला हुआ, क्योंकि उसके उत्पन्न होनेसे वेनका जो अत्यन्त भयानक पाप था, वह उसने जन्म लेतेही नष्ट किया ॥ ४३ ॥

चौदहवें अध्यायका सार–मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, कुपुत्रके शोकसे राजा अङ्गके चले जानेपर भृग्वादि मुनियोंने मनुष्योंमें पशुतुल्य व्यवहार देखकर अयोग्य रहनेपर भी वेनको राजा बनाया। वेनके राजा हो जानेसे चोर तो शान्त हो गये, परन्तु राज्य पाकर अत्यन्त घमण्डी उसने सम्पूर्ण मनुष्योंको धर्म करनेसे रोक दिया। तब मुनि लोग वेनके इस अत्याचारको देखकर विचार करने लगे कि, इस समय संसारको दोनों तरफसे दुःख प्राप्त हुआ है। इसलिए हमलोग जाकर उसे समझावें। और यदि समझाने पर नहीं मानेगा तो उसे हम लोग अपने तेजसे मार डालेंगे। इस प्रकार निश्चयकर उसके पास जाकर कहने लगे कि, हे राजन्, जो मनुष्य धर्म करता है, उसे स्वर्गादि लकोंकी प्राप्ति होती है। इसलिए तुम धर्म को नष्ट न करो, क्योंकि धर्मसे नष्ट होनेसे मनुष्य अपने पदसे च्युत हो जाता है। राजा चोरादिकोंसे प्रजाका रक्षा करता हुआ इस लोक तथा परलोकमें सुखी रहता है। अतः जिन भगवानको ब्राह्मणलोग अनेक प्रकारके यज्ञोंसे यजन करते हैं, उनका अपमान मत करो। इस प्रकार ऋषियोंके वचन सुनकर वेन कहने लगा तुम लोग बड़े मूर्ख हो, जो वृत्ति दाता हमें छोड़ कर दूसरेका भजन करते हो। इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता राजाके शरीरमें रहते हैं। इससे तुमलोग हमारा भजन करो। मुझसे पूज्य दूसरा कोई नहीं है। इस प्रकार उसके वचनोंको सुनकर मुनियोंने अत्यन्त कुपित होकर वेनको हुँकारसे मार डाला। तदनन्तर अपने-अपने आश्रमको चले गये। तब सुनीथाने उस शरीरकी रक्षा की तदनन्तर एक समय सरस्वती नदी के किनारे बैठे हुए उन्होंने चोरोंके कारण उठी हुई धूल देखी और संसारके कष्टका विचार करके मरे हुए वेनके ऊरुका मन्थन किया जिससे निषाद की उत्पत्ति हुई उसका वंश जङ्गलोंमें रहता है। उसके जन्म लेतेही वेनका सब पाप नष्ट हो गया। चौदहवाँ अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❋

[ब्राह्मणों द्वारा वेनके मथित हुए बाहुसे उत्पन्न पृथुका अभिषेक वर्णं]

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, तदनन्तर ब्राह्मणोंने पुत्रसे रहित उस राजाके बाहुओंका मन्थन किया, जिससे स्त्री तथा पुरुषका एक जोड़ा प्रकट हुआ ॥ १ ॥ तब ब्रह्मवादी

मैत्रेय उवाच ॥ अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्यमहीपतेः ॥ बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ऊचुः परमसन्तुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालनी ॥ इयं च लक्ष्म्याः

वे ऋषिलोग पैदा हुए उस मिथुनको भगवान्‌की कला जानकर अत्यन्त हर्षित हुए और परस्पर कहने लगे ॥ २ ॥ ऋषियोंने कहा—इसमें जो पुरुष है वह संसारका पालन करनेवाली

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् विष्णुकी कला है और जो स्त्री है वह भगवान् विष्णुसे कभी भी पृथक् न रहनेवाली लक्ष्मीकी कला है ॥ ३ ॥ यह राजाओंमें प्रथम अपने यशका विस्तार करनेवाला अत्यन्त कीर्तिवाली महाराज पृथु इस नामसे प्रसिद्ध राजा होगा ॥ ४ ॥ और यह सुन्दर जंघा तथा दाँवोवाली सम्पूर्ण सान्दर्यादि गुण तथा भूषणोंके भी भूषणरूपा देवी अर्चि नामसे प्रसिद्ध होगी और पृथुको ही पतिरूपसे भजेगी ॥५॥ इस संसार की रक्षा करनेकी इच्छासे साक्षात् भगवान्का अंश ही यह उत्पन्न हुआ है और स्त्री भगवान्से कभी भी पृथक् न होनेवाली सर्वदा उनकी सेवामें तत्पर रहनेवाली अविनाशिनी लक्ष्मी ही पैदा हुआ है ॥६॥ मैत्रेयजीने कहा—उन भगवान्की ब्राह्मण लो प्रशंसा करने लगे तथा श्रेष्ठ जो गंधर्व थे वे लोग गान करने लगे और सिद्धलोग पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे एवं अप्सराएँ नाच करने लगीं ॥ ७ ॥ पृथ्वीसे शंख, तुरई तथा मृदङ्गादि बाजे बजने लगे और आकाशमें देवताओंने दुन्दुभि बाजोंका शब्द किया।

संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥३॥ अत्र तु प्रथमो राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः ॥ पृथुर्नाम महाराजो भविष्यतिपृथुश्रवाः ॥ ४ ॥ इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ॥ अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥ ५ ॥ एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ॥ इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥ ७ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितृणां गणाः ॥ ८॥ ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः ॥ वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥ ९ ॥ पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् ॥ यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ यस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आभिषेचनिकान्यस्या आजहुः सर्वतो जनाः ॥ ११ ॥ सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ॥ द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजहुरुपायनम् ॥ १२ ॥ सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलङ्कृतः ॥ पत्न्याऽर्चिषाऽलङ्कृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥ १३ ॥ तस्मै जहार धनदो हैमं वीर वरासनम् ॥ वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥ १४ ॥ वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं

तदनन्तर देव, ऋषि तथा पितरोंके समूह वहाँपर उपस्थित हो गये ॥ ८ ॥ संसारके गुरु ब्रह्माजीने वहाँपर इन्द्रादि देवताओंके साथ आकर पृथुके दक्षिण हाथमें चक्रका चिह्न देखकर ॥९॥ तथा चरणोंमें कमलका चिह्न देख उन्हें भगवान्की कला मानी, क्योंकि जिसका चक्रका चिह्न अखण्डित हो वह परमेश्वर भगवान्का अंश होता है ॥ १० ॥ तब ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने पृथुका राज्याभिषेक आरम्भ किया। अभिषेकमें काम आनेवाली वस्तुएँ मनुष्योंने चारों तरफसे लाकर उन्हें समर्पित की ॥ ११ ॥ तथा नदियाँ, समुद्र, पर्वत, हाथी, गो, पक्षी, मृग, आकाश, पृथ्वी और सम्पूर्ण प्राणियोंने भेंट लाकर उन्हें प्रदान की ॥ १२ ॥ इसप्रकार अभिषिक्त हुए महाराज पृथु सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा गहनोंको पहिनकर अच्छी तरहसे अलंकृत हुई पत्नी अर्चिके साथ स्थित दूसरे अग्निके समान शोभित होने लगे ॥ १३ ॥ हे वीर, महाराज पृथुको कुबेरने अत्यन्त रमणीय सोनेका सिंहासन दिया तथा वरुणने चन्द्रमाके सदृश कान्ति-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाला छत्र, जिससे हमेशा जलका स्राव हुआ करता है ॥१४॥ वायुने दो कालव्यजन दिये तथा धर्मने कीर्तिरूपी माला दी। इन्द्रने अत्यन्त मूल्यवान् सर्वोत्कृष्ट मुकुट दिया और यमराजने शासन करनेका दण्ड दिया ॥ १५ ॥ ब्रह्माने वेदरूपी कवच दिया, सरस्वतीने सुन्दर हार दिया, भगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्र दिया और लक्ष्मीने कभी भी नष्ट न होनेवाली सम्पत्ति दी ॥१६॥ शंकरने एक तलवार दी, जिसके ऊपर चन्द्रमाके आकारके दस चिन्ह बने हुए थे। पार्वतीने ढाल दी, चन्द्रमाने अमृतमय घोड़े दिये तथा विश्वकर्माने अत्यन्त रमणीय रथ दिया ॥ १७ ॥ अग्निने धनुष दिया और सूर्यने किरणरूपी बाण दिये। पृथ्वीने योगसे युक्त पादुकाएँ दीं और स्वर्गने निरन्तर एक-सी रहनेवाली पुष्पावलि प्रदान की ॥ १८ ॥ गन्धर्वों ने नाटक, गाना और बजाना तथा अन्तर्हित होनेकी कुशलता प्रदान की। ऋषियोंने सफल आशीर्वाद दिये और समुद्रने शंख दिया ॥ १९ ॥ महात्मा पृथुको समुद्र, पर्वत तथा

स्रजम् ॥ इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥ १५ ॥ ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ॥ हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥ १६ ॥ दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाम्बिका ॥ सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥ १७ ॥ अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥ भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥ १८ ॥ नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥ ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥ १९ ॥ सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥ सूतोऽथ मागधो वन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥ २० ॥ स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ भो सूत हे मागध सौम्य बन्दिँल्लोकेऽधुनास्पष्टगुणस्य मे स्यात ॥ किमाश्रयोऽमे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः तस्मात् ॥ २२ ॥ परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथि स्तोत्रमपीच्यवाचः ॥ सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥ २३ ॥ महद्गुणानात्मनिकर्तुमीशः क स्तावकैः स्तावयतेऽसतोपि ॥ तेऽस्या भविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥ प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः ॥ ह्रीमन्तः परमोदारा पौरुषं वा

नदियोंने रथ जानेका मार्ग दिया। तदनन्तर सूत, मागध और वन्दी उनकी स्तुति करनेको उपस्थित हुए ॥ २० ॥ वेनपुत्र अत्यन्त प्रतापी राजा पृथु ने स्तुति करनेमें उद्यत उन्हें देखकर हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे यह कहा ॥ २१ ॥ पृथुने कहा—हे सूत हे मागध, हे बन्दिन्, संसारमें इस समय मेरे गुण प्रकट नहीं हुए हैं। इसरो आपके द्वारा की हुई स्तुति किस विषयको प्रकट करेगी ? इस समय स्तुति करनेमें कहीं आपकी वाणी मिथ्या न हो जावे। इससे आप मुझसे अन्य किसी प्रकट गुणवाले मनुष्यकी स्तुति कीजिये ॥ २२ ॥ इससे हे सुन्दरवाणीवाली, कुछ समयके पश्चात् जब मेरे गुण संसारमें प्रकट हो जावें तब आपलोग हमारे यशका वर्णन करना, क्योंकि श्रेष्ठ मनुष्य उत्तम कीर्तिवाले मनुष्योंके रहते हुए गुणोंसे न्यून अर्वाचीन पुरुषोंकी स्तुति नहीं कराते ॥ २३ ॥ अपनेमें महात्माओंके गुणोंका सम्पादन करनेमें समर्थ भी ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो गुणोंके न रहनेपर भी स्तवकों द्वारा उनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकमात्र सम्भावना करके अपनी स्तुति करायेगा। यदि वह मनुष्य शास्त्रादिका अभ्यास करेगा, तो उसको विद्या आदि गुण अवश्य हो जायँगे, यों विविध क्रियाओंकी अनिस्पत्तिसे वञ्चित वह कुबुद्धि सभी लोग यह नहीं जानते कि जनता उसका उपहास करेगी ॥ २४ ॥ स्तुति करानेमें समर्थ भी तथा संसारमें प्रसिद्ध भी लज्जाशील मनुष्य अपनी स्तुति

विहितम् ॥२५॥ वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ॥ कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥२६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

नहीं सहता, जैसे किसी मनुष्यके निन्दित पौरुषकी प्रशंसा करनेसे वह नहीं सहता ॥ २५ ॥ हे सूतजी, इस समय हमलोग श्रेष्ठ कर्मोंसे संसारमें अप्रसिद्ध हैं, इससे मूर्खके समान हम अपनी स्तुति कैसे करावें ॥ २६ ॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, तदनन्तर ब्राह्मणोंने उस राजाके बाहुओंका मन्थन किया, जिससे एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ऋषिलोग परम सन्तुष्ट हुए और कहने लगे—यह जो पुरुष है वह भगवान् विष्णुका अंश है, यह पृथु नामसे प्रसिद्ध होगा एवं यह जो स्त्री है वह लक्ष्मी है, यह अर्चि नामसे प्रसिद्ध पृथुकी पत्नी होगी। ऐसा सुनकर सब लोग प्रशंसा करने लगे तथा आकाशमें बाजे बजने लगे। वहाँपर सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माजी आये और भगवान्के अङ्गोंमें चक्रादिके चिह्न देखकर उन्होंने भगवान्की कला मानी। तदनन्तर ब्राह्मणोंने अभिषेक आरम्भ किया। सरित्, समुद्रादिने भेंट अर्पण की और देवताओंने आभूषण तथा शस्त्र दिये। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया। तब सूत, मागध तथा बन्दी उसकी स्तुति करनेको उद्यत हुए। उन्हें देखकर राजाने कहा-इस समय संसारमें हमारे गुण प्रकट नहीं हुए हैं। इसलिये गुणोंके प्रकट होनेपर आपलोग स्तुति कीजियेगा। पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ षोडशोऽध्यायः ❋

[समस्त देवताओंसे सम्मानित तथा पत्नीसे युक्त पृथुकी सूतादिकने स्तुति की—यह वर्णन]

मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार राजाके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त सूतादिक मुनियोंसे प्रेरित होकर उक्त वचन कहनेवाले राजा पृथुकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ हे राजन्,

मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ॥ तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥ १ ॥ नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया ॥ वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥ २ ॥ अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कला वतारस्य

समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ आपने अपनी मायासे वेनके अङ्गसे जन्म लिया है। आपकी महिमाके वर्णन करनेमें हमलोग समर्थ नहीं हैं, क्योंकि आपके पुरुषार्थका वर्णन करनेमें ब्रह्मादिकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी बुद्धि भ्रममें पड़ जाती है ॥ २ ॥ इससे वर्णन करनेमें असमर्थ होते हुए भी आपकी कथारूप अमृतमें आदर करनेवाले हमलोग मुनियोंसे प्रेरित होकर उत्कृष्ट यशवाले भगवान् हरिकी कलासे अवतार लेनेवाले पृथु आपके प्रशंसनीय कर्मोंका उपदेशके अनुसार विस्तार करेंगे ॥ ३ ॥ यह राजा पृथु धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ होंगे और मनुष्योंको भी धर्ममें प्रवर्तित करेंगे। धर्म मर्यादाओंके रक्षक तथा धर्मको न माननेवाले प्राणियोंपर शासन करेंगे ॥४॥ यह एकही पृथु समय समयपर पृथ्वी तथा स्वर्गलोकके हितकी इच्छासे कार्यके अनुसार अपने शरीरमें लोकपालोंकी मूर्ति धारण करेंगे ॥ ५ ॥ जैसे तपता हुआ सूर्य आठ माह पृथ्वीसे जल ग्रहण करता है और वर्षा आनेपर छोड़ देता है, वैसेही यह समय आनेपर कर ग्रहण करेंगे और दुर्भिक्षादि पड़नेपर प्रजाको बाँट देंगे तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें समदृष्टि रखेंगे ॥ ६ ॥ पृथ्वीकी वृत्तिका यानो सर्वसहनशीलता आश्रय करनेवाले दयालु पृथु अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले अत्यन्त

कथामृतादृताः ॥ यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥ ३ ॥ एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥ ४ ॥ एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः ॥ काले काल यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥ ५ ॥ वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥६॥ तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि ॥ भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥ ७ ॥ दवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः ॥ कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जतेन्द्रवत ॥ ८ ॥ आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ॥ सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥ ९ ॥ अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ॥ अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥ १० ॥ दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ॥ नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥ ११ ॥ अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः ॥ उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥ १२ ॥ नादण्ड्यं दण्डयत्येष

दुःखी प्राणियोंके अपराधका भी सहन करेंगे ॥ ७ ॥ राजाका शरीर धारण करनेवाले स्वयं भगवान् पृथु इन्द्रके वर्षा न करनेपर कष्टको प्राप्त प्राणवाली प्रजाकी साक्षात् इन्द्रके समान रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ सुन्दर हाससे सुशोभित तथा अनुरागपूर्वक अवलोकनवाले अपने मुखरूपी चन्द्रमासे मनुष्योंको आप्लावित करेंगे ॥ ९ ॥ यह राजा पृथु वरुण के समान गुप्त मार्गवाले होंगे तथा इनका कार्य भी कोई मनुष्य सिद्धिके पूव नहीं जान सकेगा। जो कार्य करेंगे वह गूढ़ अभिप्रायसे युक्त होगा। इनका धन संरक्षित रहेगा तथा अनन्त माहात्म्ययुक्त गुणोंके ये एकमात्र आश्रय होंगे। इनकी मूर्ति शान्त होगी ॥ १० ॥ बेनरूपी अरुणीसे प्रकट हुए अग्नितुल्य प्रतापी राजा पृथुको शत्रुलोग तिरस्कृत नहींकर सकेंगे तथा समीपमें रहते हुए भी अपने प्रभावसे दूरस्थितकी तरह प्रतीत होंगे। इनके पराक्रमका शत्रुलोग सहन नहींकर सकेंगे तथा इन्हें मनसे भी प्राप्त नहींकर सकेंगे ॥११॥ यह राजा पृथु अपने गुप्तचरों से मनुष्योंके बाहरी तथा भीतरी कर्मोंको देखते हुए भी प्राणियोंके अध्यक्ष, विकारसे रहित, आत्मभूत सूत्रात्माके समान अपनी निन्दा और स्तुतिमें उदासीन भावसे बर्ताव करेंगे॥ १२ ॥ धर्ममार्गमें स्थित ये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निरपराधी अपने शत्रुके भी पुत्रको दण्ड नहीं देंगे और अपराधो अपने पुत्रको भी दण्ड देंगे ॥ १३ ॥ किसी भी मनुष्यसे न रोकी जानेवाली राजा पृथुकी आज्ञा मानसाचटपर्यन्त तथा भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे जहाँतक प्रकाश करते हैं वहाँतक प्रवर्तित होती है ॥ १४ ॥ ये मनको प्रसन्न करनेवाली अपनी चेष्टाओंसे मनुष्योंके मनको प्रसन्न करेंगे। इसलिये मनुष्य इन्हें राजा कहेंगे ॥ १५ ॥ यह निश्चितव्रत तथा सत्यप्रतिज्ञ होंगे। ब्राह्मण तथा वृद्ध मनुष्योंकी सेवा करनेवाले होंगे। सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेवाले, दीनापर दया करनेवाले और पूज्योंको मान देनेवाले होंगे ॥१६॥ दूसरेकी स्त्रियोंमें माताका भाव रखेंगे और अपनी स्त्रीमें शरीरके आधे भागके समान प्रेम करेंगे। प्रजामें पिताके समान स्नेह करेंगे तथा ब्राह्मणोंके सेवक बने रहेंगे ॥ १७ ॥ मनुष्योंको आत्माके समान प्रिय तथा मित्रोंके सुखको बढ़ानेवाले होंगे। ये मुक्त पुरुषोंके साथ संग करेंगे और असत् पुरुषोंमें यमराजके समान दण्ड विधान

सुतमात्मद्विषामपि ॥ दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥ १३ ॥ अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ॥ वर्तते भगवानर्कों यावत्तपति गोगणैः ॥१४॥ रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ॥ अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥ १५ ॥ दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ॥ शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ॥ प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७ ॥ देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः ॥ मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥ १८ ॥ अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः ॥ यस्मिन्नविद्याचरितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥ १९ ॥ अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः ॥ आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ॥२०॥ अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुध तद्यश उद्धरन्त्यः ॥२१॥ अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ॥ यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥ २२ ॥ विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाऽचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ॥ तदा निलिल्युर्दिशि

करेंगे ॥ १८ ॥ यह स्वयं तीनों गुणोंके स्वामी विकारसे रहित साक्षात् परमेश्वर भगवान् अपनी शक्तिसे अवतीर्ण हुए हैं। जिन भगवान्‌में मायासे विरचित अतएव सत्य प्रतीत होनेवाले भेदको तत्त्वज्ञानी निरर्थक (अर्थशून्य) देखते हैं ॥ १९ ॥ अत्यन्त प्रतापी ये नरदेवनाथ पृथ्वीमण्डलकी उदयाचल पर्यन्त रक्षा करनेके लिए, सूर्यके समान, जयनशील रथमें बैठकर धनुषको ले दक्षिणा करेंगे ॥ २० ॥ तब लोकपालोंके सहित समस्त राजा इन्हें स्थान-स्थानपर कर प्रदान करेंगे और इनकी कीर्तिका गान करनेवाली राजाओंकी स्त्रियाँ भी इन्हें चक्रायुध आदि राजा समझेंगी ॥ २१ ॥ मनुष्योंकी वृत्ति करनेवाले प्रजापति महाराज पृथुने गौरूप धारण करनेवाली पृथ्वीका दोहन और जिस तरह इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतोंको तोड़ता है वैसेही यह अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंको तोड़कर पृथ्वीको सम करेंगे ॥ २२ ॥ जैसे पूँछ उठाकर शेर चलता है, वैसेही अत्यन्त कठोर अपने आजगव धनुषको शब्दयुक्त करते हुए जब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृथ्वीमें विचरेंगे तब असज्जन मनुष्य दिशाओंमें छिप जायँगे ॥ २३ ॥ जहाँपर सरस्वती नदी प्रकट हुई है वहाँपर यह सौ अश्वमेधयज्ञ करेंगे और जब इनका अन्तिम यज्ञ आरम्भ होगा तब शतक्रतु इन्द्र इनका घोड़ा हरकर ले जायगा ॥ २४ ॥ तदनन्तर यह अपने घरके उपवनमें भगवान् सन्तकुमारको प्राप्तकर तथा उन्हें भक्तिभावसे पूजकर निर्मल ज्ञान प्राप्त करेंगे, जिस

दिश्यसन्तो लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥२३॥ एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ॥ अहारषीद्यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥ २४ ॥ एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ॥ आराध्य भक्त्यालभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥ २५ ॥ तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ॥ श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥ दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ॥ सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

ज्ञानसे मनुष्य परब्रह्मको जान लेते हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार विख्यातकीर्ति अत्यन्त प्रतापी राजा पृथु स्थान-स्थानपर अपनी प्रसिद्ध कथाओंका श्रवण करेंगे ॥२६॥ अपने प्रभावसे संसारके कण्टकरूप अन्य राजाओंको नष्टकर तथा चारों दिशाओंको जीत करके पृथ्वीपति होंगे। इनकी आज्ञा कहीं नहीं रुकेगी तथा इनके अत्यन्त पराक्रमका देव तथा राक्षस गान करेंगे ॥२७॥

सोलहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इसप्रकार कह रहे राजाकी गायक लोगयों स्तुति करने लगे—हे राजन्, यद्यपि हम लोग आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ नहींहैं, तो भी आपके पवित्र कर्मोंका विस्तार करेंगे। राजापृथु धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ होंगे। धर्ममर्यादाओंकी रक्षा करतेहुए सम्पूर्ण लोकपालोंकी मूर्ति धारणकरेंगे। इनकी आज्ञा कहीं भी नहीं रुकेगी। जहाँतक भगवान् सूर्य तपते हैं वहाँ तक इनकी आज्ञा चलेगी। यह पृथ्वीमण्डलकी उदयाचल तक रक्षा करेंगे। यह गौ रूप पृथ्वीका दोहन करेंगे और पर्वतोंको तोड़कर सम भी बनायेंगे तथा सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे, जिसमें इन्द्र घोड़ा चुरा ले जायँगे। अन्तमें सनत्कुमारसे ज्ञान प्राप्त करेंगे, जिस ज्ञानसे परब्रह्मको लोग जानते हैं। सोलहवाँअध्याय समाप्त❀

❀ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❀

[मनुष्योंकी क्षुधा शान्तिके निमित्त बीजोंको छिपा रखनेवाली पृथ्वीको मारनेके लिये राजा पृथुका उद्यत होना तथा भयभीत होकर पृथ्वीका उनकी स्तुति करना—यह वर्णन]

मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार गुण तथा कर्मोंसे स्तुत हुए भगवान् पृथुने उनका पूजन तथा अभिनन्दनकर उन्हें अपने-अपने इच्छित पदार्थों के दानसे प्रसन्न किया ॥१॥ ब्राह्मण

मैत्रेय उवाच ॥ एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ॥ छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १ ॥ ब्राह्मणप्रमुखान्व-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रमुख चारों वर्णों, सेवक, मन्त्री तथा पुरोहितों, पुर और देशमें रहनेवाले मनुष्यों, नागरिक व्यापारियों एवं प्रजाओंको अच्छी तरह सत्कृत किया ॥२॥ विदुरजीने कहा—अनेक रूप धारण करनेवाली पृथ्वीने गौका रूप धारण क्यों किया ? जिस गौरूपी पृथ्वीको राजा पृथुने दुहा और दुहनेमें वत्स कौन था तथा दुहनेका पात्र क्या था ॥ ३ ॥ और स्वभावसे ही नीची-ऊँची उस पृथ्वीको सम कैसे किया तथा उनके यज्ञके पवित्र घोड़ेको इन्द्रने किस कारण चुराया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन्, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमारसे विज्ञानके सहित ज्ञान प्राप्त करके राजर्षि पृथु किस गतिको प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ हे प्रभो, अत्यन्त कीर्तिशाली भगवान् कृष्णका और भी पूर्वजन्मकी कथाओंका आश्रय रखनेवाला जो पवित्र यश हो ॥ ६ ॥ वह यश आप मुझसे कहिये । मैं आप तथा भगवान् श्रीकृष्णका अनुकूल भक्त हूँ । जिस भगवान्ने पृथुरूपसे इस पृथ्वीका दोहन किया था ॥७॥ सूतजीने कहा—विदुरने जब भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्व,

णान्भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ पौराञ्जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥ २ ॥ विदुर उवाच ॥ कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ॥ यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥ ३ ॥ प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ॥ तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत ॥ ४ ॥ सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् ॥ लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥ यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः ॥ श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥ भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ॥ वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ॥ प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदाऽभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रैरामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ॥ प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥ ९ ॥ वयं राजन् जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ॥ त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥ १० ॥ तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेवदेव ॥ यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पृथुः प्रजानां करुणं

जन्मकी कथा सुनानेके लिये मैत्रेयजीको इसप्रकार प्रेरित किया । तब अत्यन्त प्रसन्न होकर मैत्रेयजीने विदुरकी प्रशंसाकर कथा कहना प्रारम्भ किया ॥ ८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे मित्र जब ब्राह्मणोंने राजा पृथुका अभिषेक किया और प्रजाके पालनमें नियुक्त किया, तब पृथ्वीमें अन्न न रहनेके कारण भूखसे क्षीण शरीरवाले मनुष्य आकर राजा पृथुसे कहने लगे ॥ ९ ॥ हे राजन्, जैसे वृक्ष कोटरमें स्थित अग्निसे वृक्ष दुःखी होता है, वैसेही हमलोग जठराग्निसे अत्यन्त तप्त होकर आज शरणागतके रक्षक आपकी शरणमें आए हैं, जिन आपको ब्राह्मणोंने जीविका देनेवाला हमलोगोंका राजा सम्पादित किया है ॥ १० ॥ इसलिये हे राजन्, अन्नके विना भूखसे दुःखी होकर जबतक हमलोग प्राण नहीं छोड़ते, तबतक आप हमलोगोंको अन्न देनेका प्रयत्न कीजिए, क्योंकि आप हमलोगोंकी जीविकाके पति हैं ॥ ११ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, राजा पृथु अपनी प्रजाके इस करुणायुक्त विलापको सुनकर अत्यन्त चिन्ता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करने लगे और प्रजाओंके दुःखोंका कारण समझने लगे ॥ १२ ॥ तब बुद्धिसे निश्चयकर उन्होंने अपने हाथमें धनुष उठाया और जिस तरह शंकरने त्रिपुरासुरको मारनेके लिये बाण चढ़ाया था, वैसेही इन्होंने क्रोधित होकर पृथ्वीको मारनेके लिये बाण चढ़ाया ॥ १३ ॥ तब मारनेके लिये शस्त्र उठाये पृथुको देखकर भयसे काँपती हुई पृथवी गौका रूप धारणकर, जैसे लुब्धकसे पीछाकी हुई मृगी भागती है, वैसेहो भागने लगी ॥ १४ ॥ अत्यन्त क्रोधके कारण लाल-लाल नेत्रोंवाले राजा पृथु अपने धनुषपर चढ़ाकर जिस-जिस ओर वह भागती जा रही थी, उधर ही उसके पीछे दौड़ने लगे ॥ १५ ॥ वह दिशाओं तथा विदिशाओंमें, पृथ्वी तथा आकाशमें और उनके मध्य अन्तरिक्षमें दौड़ती हुई राजा पृथुको शस्त्र उठाकर पीछेसे आते हुए देखा करती थी ॥ १६ ॥ जैसे मनुष्य मृत्युसे अपनी रक्षा नहींकर पाते, वैसेही जब पृथ्वीने पृथुसे बचनेका संसारमें कोई उपाय प्राप्त नहीं किया, तब अत्यन्त भयभीत होकर

निशम्य परिदेवितम् ॥ दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥१२॥ इति व्यवसितो बुद्धया प्रगृहीतशरासनः ॥ सन्दधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥१३॥ प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् ॥ गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥ १४ ॥ तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ॥ शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ॥ १५ ॥ सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥ १६ ॥ लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः ॥ त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥ १७ ॥ उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल ॥ त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥ १८ ॥ स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् ॥ अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥ १९ ॥ प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागस्स्वपि जन्तवः ॥ किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीनवत्सलाः ॥ २० ॥ मां विपाव्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धास्यसि ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥ २२ ॥ यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ॥ तस्यामेवं हि दुष्टायां

दुःखित मनसे लौट पड़ी ॥१७॥ और पृथुसे कहने लगी—हे धर्मज्ञ तथा हे शरणमें आये हुओंकी रक्षा करनेवाले, प्राणियोंकी रक्षा करनेमें स्थित आप मेरी भी रक्षा कीजिये ॥१७॥ आप अत्यन्त दीन तथा निरपराधिनी मुझ स्त्रीको कैसे मारेंगे, क्योंकि मनुष्य आपको धर्मात्मा मानते हैं ॥ १९ ॥ हे राजन्, साधारण मनुष्य भी अपराधकर देनेवाली भी स्त्रियोंके ऊपर हाथ नहीं छोड़ते फिर आप सरीखे दयालु पुरुष, जो धर्मज्ञ समझे जाते हैं मुझ निरपराधिनीको कैसे मारेंगे ॥ २० ॥ जिस मुझमें यह सम्पूर्ण संसार स्थित है, उस अत्यन्त दृढ़ नौकारूप मुझे नष्ट करके आप स्वयं तथा इस प्रजाको जलमें किसप्रकार धारण करेंगे ॥ २१ ॥ तब राजा पृथुने कहा—हे वसुधे, मेरी आज्ञाके विमुख रहनेवाली तुम्हें मारूँगा, जो तुम यज्ञमें अपने भाग तो ग्रहण करती हो, परन्तु हमलोगों को अन्न नहीं देती ॥ २२ ॥ तुम गौके रूपसे प्रतिदिन घास तो खाती हो, परन्तु अपने स्तनोंसे दूध नहीं चुआती। इस प्रकार तुम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अत्यन्त दुष्ट हो, तुम्हें दण्ड देना उचित नहीं है, सो बात नहीं है ॥ २३ ॥ मन्दबुद्धि तुम पूर्वमें ब्रह्माके द्वारा सृष्ट औषधियोंके बीजोंको छिपाये हो और मेरा अनादर करके उन बीजों को छोड़ नहीं रही हो ॥ २४ ॥ अतः भूखसे पीड़ित अत्यन्त दुःखी मनुष्योंका विलाप अपने बाणोंसे तुम्हें मारकर तुम्हारी मेदासे शान्त करूँगा ॥ २५ ॥ पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक जो भी अधम प्राणी अपनी प्रशंसा करनेवाला हो तथा अन्य प्राणियोंमें कठोरताका व्यवहार करे, उस प्राणीको मारना राजाको न मारनेके समान है। २६ ॥ कपटसे गौका रूप धारण करने वाली मूर्ख तथा दुष्टा तुमको बाणोंसे तिलके समान टुकड़े-टुकड़े बनाकर मैं अपने योगबलसे इन प्रजाओंको धारण करूँगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार यमराजके समान क्रोधयुक्त मूर्ति धारण किये हुए पृथुको प्रणाम करके काँपती हुई पृथ्वी हाथ जोड़कर उनसे कहने लगी ॥२८॥ पृथ्वीने कहा—अपनी माया शक्तिसे नानाप्रकारके शरीर धारण करनेवाले, गुणमय प्रतीत हो

दण्डो नात्र न शस्यते ॥ २३ ॥ त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक्सृष्टानि स्वयंभुवा ॥ न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥ २४ ॥ अमूषां
क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ॥ शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥ २५ ॥ पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः ॥ भूतेषु
निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोवधः ॥२६॥ त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ॥ आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥२७॥
एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् ॥ प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही सञ्जातवेपथुः ॥ २८ ॥ धरोवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय मायया वि-
न्यस्तनानातनवेऽगुणात्मने ॥ नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥ येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गु-
णसर्गसङ्ग्रहः ॥ स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥३०॥ य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययात्माश्रययाऽवितर्क्यया ॥
तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥३१॥ नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभिः ॥ न लक्ष्यते
यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥३२॥ सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः । तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये

रहे परमपुरुष आपको नमस्कार है। वस्तुतः अपने स्वरूपके ज्ञानसे द्रव्य, क्रिया और कारक यानी शरीर, इन्द्रिय तथा देवताओंमें अहंकार न करनेसे उस अहङ्कारसे उत्पन्न होनेवाले राग, द्वेषादिसे शून्य आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ जिस ब्रह्माने समस्त जीवोंका आश्रयरूप मुझे बनाया, जिस मुझमें चार प्रकारके प्राणियोंकी स्थिति है, सर्वस्वतन्त्र वही भगवान् मुझे मारनेके लिये शस्त्र लेकर उपस्थित हुए, तो फिर मैं दूसरे किसकी शरणमें जाऊँ ॥ ३० ॥ जिस भगवान्ने आदिमें, जीवोंमें स्थित, अचिन्त्य अपनी अनन्त शक्ति सम्पन्न मायासे इस स्थिर तथा जंगम संसारको पैदा किया था, उसी मायासे इसकी रक्षा करनेके लिये उद्यत धर्मात्मा वे मुझे कैसे मारेंगे ॥ ३१ ॥ निश्चयही चञ्चलचित्तवाले मनुष्य अपनी अपराजित मायासे करने योग्य भगवानके कार्यको नहीं समझते। स्वतन्त्र जिस भगवान्ने ब्रह्माको उत्पन्न करके उनसे इस चराचर जगत्की सृष्टि करायी वे स्वयं एक रहते हुए भी मायासे अनेक प्रतीत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होते हैं ।।३२।। जो पञ्च-महाभूत, दस इन्द्रिय, देवता, बुद्धि तथा अहंकाररूप अपनी शक्तियोंसे इस संसारका जन्म, पालन तथा संहार करते हैं और उन्हीं शक्तियोंसे वर्धित सृष्टि करने-वाली शक्तियाँ जिनके आधीन रहती हैं, उन ज्ञानस्वरूप परमपुरुष भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे विभो, हे अज, जिस आपने सृष्टिकी उसी आपने स्वयं रचित महाभूत, इन्द्रिय तथा अन्तः करणात्मक इस चराचर जगत्‌को स्थित करनेकी इच्छासे आदि सूकरका रूप धारण करके मुझे रसातलसे जलके ऊपर लाकर रख दिया ॥ ३४ ॥ वही सूकर आप जलके ऊपर

नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥ स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ॥ संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥ ३४ ॥ अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ॥ स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५ ॥ नूनं जनैरीहितमीश्वराणामस्तमद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया । न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्य ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

नावरूप मुझमें स्थित इन प्रजाओंकी रक्षा करनेके लिये पृथुरूप हुए हैं, वही आप दूधके लिये ※ मुझे मारोगे ॥३५ ॥ भगवान्‌के गुणोंकी सृष्टिरूप मायासे मोहित चित्तवाले हमारे सदृश मनुष्य जब हरिभक्तोंके ही अभिलषितको नहीं जान पाते तो फिर वे उन परमेश्वरकी चेष्टाएँ कैसे जान सकते हैं, इसलिये वीरोंका यश बढ़ानेवाले इन भगवद्भक्तोंकी भी परमेश्वरके समान ही केवल नमस्कार है ॥ ३६ ॥

सत्रहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा–हे विदुरजी, इस प्रकार स्तुति करनेपर राजा पृथुने सबके मनोरथ पूर्ण करके प्रसन्न किया । जब पृथु राजा हुए, तब अन्न न रहनेके कारण भूखसे दुःखी होकर मनुष्य पृथुके पास आये और अन्नके लिये प्रार्थना करने लगे । तब पृथुने पृथ्वीको मारनेके लिए धनुष उठाया, जिससे वह भयभीत होकर तीनों लोकोंमें दौड़ती फिरी परन्तु जब कहीं भी उसकी रक्षा न हो सकी, तब दुःखित होकर वहाँसे लौटी और प्रणाम करके राजा पृथुकी स्तुति करने लगी । सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ※

※ अथ अष्टादशोऽध्यायः ※

[पृथ्वीके वचनसे पृथु आदिने अपने-अपने वत्स तथा अपने-अपने पात्रमें उससे अपना-अपना दूध दुहा—यह वर्णन]

इसप्रकार अत्यन्त कुपित राजा पृथुकी स्तुति करके, अत्यन्त भयभीत पृथ्वी बुद्धिसे अपने मनको सावधान करके पुनः कहने लगी–हे प्रभो, क्रोधको शान्त कीजिये, ताकि

मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ॥ पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥१॥ सन्नियच्छाभिभो मन्युं निबोध

※ 'पयः' शब्दसे यहाँ अन्नादिका ग्रहण है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभयदो। जो मैं कहती हूँ उसे सुनिये। जैसे भौंरा पुष्पोंसे रस ग्रहण करता है, वैसेही बुधजन सब जगहसे सार ग्रहण करते हैं ॥ १, २॥ तत्त्व जाननेवाले मुनियोंने इसलोक तथा परलोक में पुरुषार्थकी प्रसिद्धिके लिये अनेक प्रकारक उपाय देखे तथा उनके प्रयोग भी किये हैं ॥ ३ ॥ अर्वाचीन मनुष्य भी यदि श्रद्धाभावसे पूर्वजों द्वारा दिखाये गये उन उपायोंका भलीभाँति अनुष्ठान करता है, तो सहजहीमें उसके फलको प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ जो मूर्ख उन उपायोंका अनादर करके स्वयं कार्य आरम्भ करता है, उसके वे कार्य बार-बार आरम्भ करनेपर भी सिद्ध नहीं होते ॥ ५ ॥ हे राजन्, पहले जो ब्रह्माजीने औषधियाँ रची थीं, वे मैंने व्रतधारी न हुए असत् पुरुषोंसे उपभुक्त देखी ॥ ६ ॥ तथा संसारकी रक्षा करनेवाले आपलोगोंसे अरक्षित और अनाहत हुई मैंने यज्ञके निमित्त वे औषधियाँ छिपाकर रखी हैं ॥७॥ निश्चय ही वे औषधियाँ बहुत समय हो जानेसे मुझमें जीर्ण हो गई हैं। अतः आप उपाय देखकर उन्हें ग्रहणकर लीजिये

आवितं च मे ॥ सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥ २ ॥ अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयःप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् ॥ अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान्विन्दतेऽञ्जसा ॥ ४ ॥ताननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम् ॥ तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥ ५ ॥ पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते ॥ भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥ ६ ॥ अपालितानादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः ॥ चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥ ७ ॥ नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा ॥ तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥ वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ॥ धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥ दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ॥ अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥ १० ॥ समां च कुरु मां राजन् देववृष्टं यथा पयः ॥ अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥ इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ॥ वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥ १२ ॥ तथा परे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः ॥ ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ १३ ॥ ऋषयो

॥ ८ ॥ हे वीर, मुझे दुहनेके लिये आप योग्य वत्सकी रचना कीजिये, जिससे उसपर प्रेम करनेवाली मैं आपके मनोरथोंको दूधरूपसे पूर्ण कर दूँगी वह दूध जिसमें दुहा जावे, वैसे एक पात्रकी भी कल्पना कीजिये ॥ ९ ॥ हे महाबाहो, प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले आप यदि मनुष्योंसे इच्छित बल बढ़ानेवाला अन्न चाहते हों, तो दुहनेवालेकी भी रचना कीजिए ॥ १०॥ हे राजन्, आप मुझे सम भी कीजिये, जिससे कि इन्द्रका बरसाया हुआ जल वर्षाऋतु न रहनेपर भी मुझमें सब जगह वर्तमान रहे। आप यह कार्य करनेमें समर्थ हैं। आपका कल्याण हो ॥ ११ ॥ इसप्रकार प्रिय तथा हितकर पृथ्वीके वचनोंको स्वीकारकर राजा पृथुने स्वायम्भुव मनुको वत्स बनाकर अपने हाथमें समस्त दूधरूप धान्यादि औषधियाँ दुह लीं ॥ १२ ॥ तब 'विद्वान् लोग सारको ही ग्रहण करते हैं' इस वाक्यमें आदर करनेवाले अन्य ऋष्यादिने भी पृथुके द्वारा वशमें की गई पृथ्वीसे अपनी इच्छाके अनुसार पदार्थ दुहे ॥१३॥ हे सत्तम, ऋषियों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ने अपनी इन्द्रियरूप पात्रमें बृहस्पतिको वत्स बनाकर पवित्र वेदरूपी दूधका दोहन किया ॥१४॥ देवताओंने इन्द्रको वत्स बनाकर सोनेके पात्रमें अमृतका दोहन किया, जिसके पीनेसे मन, इन्द्रिय तथा देहकी शक्ति बढ़ती है ॥ १५ ॥ दितिके पुत्र दानवोंने असुरोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादको वत्स बनाकर लोहेके पात्रमें मत्त करनेवाली सुरा और आसवरूपी दूधका दोहन किया ॥ १६ ॥ गन्धर्व तथा अप्सराओंने विश्वावसु गन्धर्वको वत्स बनाकर कमलपत्ररूपी पात्रमें सौन्दर्यसहित वाङ्माधुर्यका दोहन किया ॥ १७ ॥ पितरोंने अर्यमाको वत्स बनाकर कच्चे मिट्टीके बर्तनमें अपने अन्नका दोहन बड़ी श्रद्धासे किया, जो पितर श्राद्धके देवता माने जाते हैं ॥ १८ ॥ सिद्धपुरुषोंने कपिलको वत्स बनाकर आकाशरूप पात्रमें अणिमादि सिद्धियोंको दुहा और विद्याधरोंने भी कपिलको वत्स बनाकर आकाशरूपी पात्रमें आकाशमें चलनेकी विद्याका दोहन किया ॥ १९ ॥ किंपुरुषादिकोंने मयको वत्स बनाकर इच्छामात्रसे प्रकट होनेवाली अन्तर्धानरूप

दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम ॥ वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि । १४ ॥ कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् ॥ हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥ १५ ॥ दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ॥ विधायादूदुहन्क्षीरमयःपात्रे सुरासवम् ॥ १६ ॥ गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः ॥ वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥ १७ ॥ वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत ॥ आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥१८॥ प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः सङ्कल्पनामयीम् ॥ सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥ १९ ॥ अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनाम् ॥ मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥ २० ॥ यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ॥ भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥ २१ ॥ तथाऽहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ॥ विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥ २२ ॥ पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् ॥ अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥ २३ ॥ क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे ॥ सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥ २४ ॥ वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ॥ गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून्स्व-

मायाको आकाशरूपी पात्रमें दुहा ॥ २० ॥ रुधिरपानकरनेवाले यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाचोंने भगवान् शंकरको वत्स बनाकर कपालमें रुधिररूप आसवका दोहन किया ॥ २१ ॥ तथा वृश्चिक, सर्प और नागोंने तक्षकको वत्स बनाकर मुखरूपी पात्रमें विषरूपी दूधका दोहन किया ॥२२॥ पशुओंने नन्दीको वत्स बनाकर जंगलरूपी पात्रमें तृणरूपी दूध दुहा तथा सिंहको वत्स बनाकर मांस खानेवाले हिंसक जन्तुओंने अपने-अपने खाने योग्य जन्तुके शरीरमें मांसरूप दूधका दोहन किया। पक्षियोंने गरुड़को वत्स बनाकर अपने शरीररूपी पात्रमें फल तथा कीटरूप दूध दुहा ॥ २३, २४ ॥ वृक्षोंने वटको वत्स बनाकर अपने शरीररूपी पात्रमें रसरूपी दूध अलग-अलग दुहा तथा पर्वतोंने हिमालयको वत्स बनाकर अपनी शिखररूप पात्रमें धातुरूप दूध दुहा ॥ २५ ॥ इसप्रकार सबोंने अपनी जातिमें जो श्रेष्ठ था, उसे वत्स बनाकर अपने-अपने पात्रमें पृथुके द्वारा वशमें लाई गई तथा समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाली

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृथ्वीसे अपना अलग-अलग मनोरथरूप दूध दुहा ॥ २६ ॥ हे राजन्, इसप्रकार पृथु तथा मन्वादिकोंने इस पृथ्वीसे अपना-अपना अभीष्ट अन्न पृथक् पृथक् पात्र तथा वत्सकी कल्पनाकर दूधरूपसे अलग-अलग जब दुह लिया ॥ २७ ॥ तब अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा पृथुने समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली इस पृथ्वीको प्रेमसे अपनी पुत्रीके रूपमें कर लिया, क्योंकि ये पुत्रीवत्सल थे ॥ २८ ॥ राजाओंके भी राजा तथा वेनके पुत्र पृथुने अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंके शिखरोंको तोड़कर इस पृथ्वीमण्डलको प्रायः सम बना दिया है ॥ २९ ॥ प्रजाकी

सानुषु ॥ २५ ॥ सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः ॥ सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥ एवं पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥ एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः ॥ दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥२७॥ ततो महापतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ॥ दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥ २८ ॥ चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ॥ भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥ २९ ॥ अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ॥ निवासान्कल्पयाञ्चक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥३०॥ ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च ॥ घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान् ॥३१॥ प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना ॥ यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥३२॥

इति श्रीमद्भा० म० च० पृथुविजयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जीविका देनेके कारण पिताके सदृश भगवान् पृथुने इस पृथ्वीमण्डलमें स्थान-स्थानपर यथायोग्य ग्रामादि निवासस्थान बनाये ॥ ३० ॥ राजा पृथुके पहले ग्राम, पुर, नगर तथा नाना-प्रकारके किले, अहीरोंके रहनेके स्थान, गौओंके स्थान, सेनाओंके स्थान, खान, कृषकोंके स्थान तथा पर्वतके समीपके ग्राम नहीं थे। परन्तु अब इनके बन जानेसे मनुष्य निर्भय होकर उनमें वासकर रहे हैं ॥ ३१, ३२ ॥

अठारहवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इसप्रकार अत्यन्त कुपित राजा पृथुकी स्तुति करके पृथ्वी पुनः कहने लगी—हे राजन्, विद्वान् मनुष्य सारवस्तुका ग्रहण करते हैं पूर्वमें ब्रह्मा द्वारा विरचित औषधियोंको मैंने असत् पुरुषोंसे जब उपभुक्त होते देखा तब मैंने वे औषधियाँ यज्ञके लिए रखलीं। इसलिए आप उपायसे उन्हें ग्रहण कीजिए। यह सुनकर राजा पृथुने प्रसन्न होकर मनुको वत्स बनाकर अपने हाथमें दूध रूपी औषधियों का दोहन किया। तदनन्तर सबने अपना-अपना अन्न दुहा। तत्पश्चात् प्रसन्न होकर पृथुने पृथ्वीको अपनी पुत्रीरूपसे माना और धनुषसे पर्वतोंको तोड़कर सम बनाया एवं मनुष्योंके निवासके लिए ग्रामादि स्थान भी बनाये। अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः ❋

[अश्वमेधयज्ञके अङ्गभूत घोड़ेका अपहरण करनेसे इन्द्रको मारनेके लिये उद्यत पृथुको ब्रह्माने रोक दिया—यह वर्णन]

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, तदनन्तर राजा पृथुने मनुके क्षेत्र ब्रह्मावर्तमें सौ अश्वमेधयज्ञ करनेकी दीक्षा ली, जहाँपर सरस्वती नदी पूर्वकी ओर बहती है ॥१॥ तब भगवान् इन्द्र अपने कर्मोंका उल्लंघन होते जानकर पृथुके उस यज्ञ महोत्सवका सहन न कर सके ॥२॥ जिस यज्ञमें यज्ञोंके पति, षडैश्वर्योंसे पूर्ण, करने तथा न करनेमें समर्थ, समस्त मनुष्योंके गुरु सर्वात्मा भगवान्विष्णु प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हुए ॥३॥ उन भगवान्के साथ ब्रह्मा तथा शंकर भी थे। सेवकोंके साथ लोकपाल, गन्धर्व, मुनि तथा अप्सराओंके समूह उनका गान कररहे थे ॥४॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, गुह्यक और भगवान्के पार्षदोंमें प्रधान सुनन्द-नन्दादि भगवान्के पीछे चले ॥५॥ तथा कपिल, नारद, दत्तात्रेय और योगके ईश्वर सनकादिक भी

मैत्रेय उवाच ॥ अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः ॥ ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥ तदभिप्रेत्य भगवान्कर्माति-
शयमात्मनः ॥ शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥२॥ यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ॥३॥
अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ॥ उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ ४ ॥ सिद्धविद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः ॥ सुनन्दनन्द-
प्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥५॥ कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ॥ तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥६॥ यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वका-
मदुघा सती ॥ दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥७॥ ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् ॥ तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः
॥८ सिन्धवो रत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ॥ उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥ इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् । असूय-
न्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥१०॥ चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ॥ वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥११॥ तमत्रिर्भगवानैक्षद्व

चले। तथा और भी जो भगवान्की सेवा करनेमें उत्सुक भगवद्भक्त थे, वे भी भगवान्के पीछे-पीछे चल पड़े ॥ ६॥ हे भारत, जिस यज्ञमें भूमि गौका रूप धारण करके शांकल्य तथा यजमानकी इच्छित वस्तुएँ प्रदानकर रही थी ॥७॥ नदियाँ दूध, दधि, अन्न, घी तथा इक्षुके रसको खूब बहा रही थीं तथा मधुका स्राव करनेवाले वृक्ष अपने विस्तृत शरीरसे फलोंको उत्पन्नकर रहे थे ॥८॥ राजा पृथुको समुद्रोंने रत्न, पर्वतोंने चार तरहके अन्न तथा लोकपालोंके सहित समस्त मनुष्योंने अनेक प्रकारकी वस्तुएँ भेटमें दीं ॥९॥ इस प्रकार अधोक्षज भगवान् ही जिसके एकमात्र नाथ हैं, ऐसे राजा पृथुके अत्यन्त समृद्धशाली उस यज्ञरूप कार्यको न सहते हुए भगवान् इन्द्र विघ्न करने लगे ॥१०॥ जब राजा पृथु यज्ञोंके पति भगवान्का अन्तिम यज्ञसे यजन करने लगे, तब स्पर्धा करनेवाले इन्द्र छिपकर यज्ञके घोड़ेको चुरा ले गये ॥११॥ तब आकाशमार्गसे शीघ्रतापूर्वक दौड़े जाते हुए उन्हें भगवान् अत्रिने देखा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वे पाखण्ड वेषको कवचकी तरह धारण किए हुए थे, जिसके कारण अधार्मिक रहनेपर भी धर्मधारीकी उनमें प्रतीति हो रही थी ॥ १२ ॥ अत्रिने उन्हें मारनेके लिए पृथुके पुत्रको आज्ञा दी। तब महारथ वह क्रुद्ध होकर उनके पीछे दौड़ा और खड़े रहो, खड़े रहो, इस प्रकार पुकारने लगा ॥ १३ ॥ परन्तु जटा तथा भस्मसे युक्त पाखण्डरूपको धारण किये हुए धर्मात्मा समझकर मारनेके लिये बाण नहीं छोड़ा ॥ १४ ॥ तब लौटे हुए उसे अत्रिने पुनः आज्ञा दी कि, हे तात, यज्ञको नष्ट करनेवाले देवताओं में नीच इन्द्रको मार डालो ॥१५॥ इसप्रकार कहने पर पृथुका पुत्र अत्यन्त कुपित होकर आकाशमार्गसे तेजीके साथ भागते हुए इन्द्रके पीछे ऐसे दौड़ा, जैसे रावणके पीछे जटायु दौड़ा था ॥ १६ ॥ तब इन्द्र उस घोड़े तथा रूपको छोड़कर छिप गये और वीर वह अपने घोड़ेको लेकर पिताके यज्ञमें आ गया ॥ १७ ॥ हे प्रभो, तब परम ऋषियोंने उसके उस अद्भुत कार्यको देखकर उसका विजिताश्व यह नाम रख

रमाणं विहायसा ॥ आमुक्तमिव पाखण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥१२॥ अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथुपुत्रो महारथः ॥ अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१३॥ तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणम्। जटिलं भस्मना च्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥ वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत्॥ जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुधाधमम् ॥१५॥ एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा ॥ अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥१६॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् ॥ वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥ १७॥ तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः ॥ नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥ उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ॥ चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥१९॥ अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा ॥ कपालखट्वाङ्गधरं वीरो नैनमबाधत ॥ २० ॥ अत्रिणा चोदितस्तस्मै सन्दधे विशिखं रुषा ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट् ॥२१॥ वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ॥ तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥२२॥ यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया ॥ तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥२३ एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया ॥ तद्गृहीत विसृष्टेषु पाखण्डेषु

दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर इन्द्रने तीव्र अन्धकार उत्पन्न किया और उसमें छिपकर स्वर्णकी शृंखलासे चषालसहित यूपमें बँधे हुए घोड़ेको उनके साथ पुनः हरकर ले गये ॥ १९ ॥ तब अत्रिने कपाल तथा मनुष्योंकी मञ्जरीको धारण किये हुए आकाशमार्गसे भागे जा रहे इन्द्रको दिखाया। परन्तु उस वीरने उन्हें मारा नहीं ॥ २० ॥ तब अत्रिने पुनः जब प्रेरित किया तब क्रोधसे उसने बाण चढ़ाया। पर इन्द्र अश्व तथा वह रूप छोड़कर छिप करके खड़े हो गये ॥ २१ ॥ तब विजिताश्व घोड़ेको लेकर पिताके यज्ञमें पहुंचा तथा इन्द्रके उस निन्दित रूपको अज्ञानियों से ग्रहणकर लिया ॥ २२ ॥ इन्द्रने घोड़ा हरण करनेकी इच्छासे जितने रूप ग्रहण किये, वे सब पापके चिन्ह हैं, । यहाँ खण्डको लिङ्ग कहते हैं ॥२३॥ पृथुका यज्ञ नष्ट करनेकी इच्छासे घोड़ा चुरानेके लिये पहले इन्द्रने जो पाखण्डरूप धारण किये और पीछे छोड़ दिए उन्हीं कपटरूपोंमें मनुष्योंकी बुद्धि फँसती है ॥२४॥ तथा आरम्भमें मनोहर चातुर्य-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूर्ण वचन बोलनेवाले जैन और बौद्धादिकोंके उपधर्मों में धर्मकी भ्रांतिसे मनुष्य बहुधा आसक्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ ऐसा समझकर अत्यन्त पराक्रमी भगवान् पृथुने कुपित होकर इन्द्रको मारनेके लिए धनुष चढ़ाकर बाण ग्रहणकर लिया ॥२६॥ तब ऋत्विजोंने इन्द्रको मारनेकी इच्छा करनेवाले दुष्प्रेक्ष्य तथा असह्य वेगयुक्त पृथुको देखकर रोक दिया कि हे राजन, इस यज्ञ में विहित पशुको छोड़कर दूसरेका वध करना उचित नहीं है ॥ २७ ॥ हे राजन्, यज्ञ नष्ट करनेवाले तथा तुम्हारी कीर्तिसे क्षीणकान्ति इन्द्रको हमलोग सारयुक्त आवाहन मन्त्रों यहाँपर बुलाते हैं। उसके बाद हमलोग तुम्हारे उस शत्रुको हवनकर देगें ॥ २८ ॥ हे विदुरजी, ऋत्विग् इसप्रकार पृथुसे पूछकर क्रोधपूर्वक हवन करने लगे। तब हाथमें स्रुवा लेकर हवनकर रहे उन्हें ब्रह्माजीने आकर रोक दिया ॥ २९ ॥ ब्रह्माजीने कहा—जिस इन्द्रको तुमलोग यज्ञसे मारना चाहते हो तथा यज्ञसे पूजित समस्त देवता जिसके शरीर हैं। वह इन्द्र आपलोगोंसे

मतिर्नृणाम् ॥ २४ ॥ धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ॥ प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥ २५ ॥ तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥ २६ ॥ तमृत्विजः शक्रवधाभिसन्धितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ॥ निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥ २७ ॥ वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ॥ अयातयामोपहवैरनन्तरं प्रसह्य राजन् जुहवाम तेऽहितम् ॥२८॥ इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ॥ स्रुग्घस्तान् जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत ॥ २९ ॥ न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ॥ यंजिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥३०॥ तादिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ॥ इन्द्रेणानुष्ठितंराज्ञःकर्मैतद्विजिघांसता ॥३१॥ पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ॥ अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥३२॥ नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ॥ उभावपि हि भद्रन्त उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥ ३३ ॥ मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामयास्मद्वच आदृतात्मा ॥ यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥३४॥ क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ॥ धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥ एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाख-

वध्य नहीं है, क्योंकि वह साक्षात् भगवान्का ही अवतार है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो, राजा पृथुका यज्ञ नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाले इस इन्द्रसे किये गये इस पाखण्डमार्गको देखो ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो, अत्यन्त यशस्वी पृथु निन्यानबे हो यज्ञ रहें तथा हे पृथो, अब तुम्हें और यज्ञ करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम मोक्षधर्मके ज्ञाता हो चुके हो ॥ ३२ ॥ ज्ञानस्वरूप इन्द्रके ऊपर कोप करने योग्य तुम नहीं हो, क्योंकि दोनोंही उत्तमश्लोक भगवान्के शरीर हो। इसलिये तुम दोनोंका कन्याण हो ॥ ३३ ॥ हे महाराज, आप इस यज्ञके विषयमें चिन्ता मत करो तथा आदरपूर्वक मेरे वचनोंको सुनो। जो मनुष्य दैवसे नष्ट किया गया कार्य करना चाहता है, उसका मन अत्यन्त रुष्ट होकर मोहको प्राप्त होता है ॥३४॥ इसलिये तुम इस यज्ञको बन्दकरदो। जिस यज्ञमें इन्द्रके द्वारा रचित पाखण्डोंसे धर्मका नाश हुआ है और इन देवताओंमें तो दुराग्रह रहता ही है ॥ ३५ ॥ जो इन्द्र तुम्हारा घोड़ा चुराता है तथा यज्ञसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्रोह करता है, उस इन्द्र द्वारा रचित मनुष्योंका मन हरनेवाले पाखण्डोंसे हृत हो रहे मनुष्योंको देखो ॥ ३६ ॥ हे पृथो, वेनके अत्याचारसे अवलुप्त हुए मनुष्योंके समयानुरूप धर्मकी रक्षा करनेके लिये उसके शरीरसे साक्षात् विष्णुकी कलाही तुम अवतीर्ण हुए हो ॥ ३७ ॥ हे राजन, तुम इस संसारकी उत्पत्तिका विचार करके उन प्रजापतियोंका सङ्कल्प पूरा करो तथा पाखण्डकी जननी इन्द्रकी माया, जो भयानक पाखण्डमार्ग है, नष्टकर दो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—ब्रह्माजीने जब इसप्रकार कहा, तब पृथुने वैसाही किया और इन्द्रके साथ बड़ी प्रसन्नतासे सन्धिकर ली ॥ ३९ ॥ तदनन्तर जो देवता उसके यज्ञमें पूजे गये थे, उन्होंने राजाके यज्ञान्त स्नानकर लेनेपर वरदान दिये ॥ ४० ॥ हे विदुरजी, सत्य आशीर्वाद देनेवाले

ण्डैर्हारिभिर्जनम् ॥ ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥३६॥ भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ॥ वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलासि वैन्य ॥ ३७॥ स त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते सङ्कल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ॥ ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचण्डपाखण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः ॥ तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च सन्दधे ॥ ३९॥ कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे ॥ वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥ ४० ॥ विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः ॥ आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥४१॥ त्वयाहूता महाबाहो सर्व एव समागताः ॥ पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥ ४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजय एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दक्षिणा पाकर सन्तुष्ट हुए और पृथुको खूब आशीर्वाद दिये ॥ ४१ ॥ हे महाबाहो, तुम्हारे बुलानेपर हम सभी आये और पितर, देव, ऋषि तथा मानव हम सबकी दान एवं मानसे तुमने पूजा की ॥ ४२ ॥

उन्नीसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, तदनन्तर राजा पृथुने सौ अश्वमेध यज्ञ करनेका सङ्कल्प किया, जिसे सुनकर इन्द्रको बड़ी स्पर्धा हुई। जब पृथु अन्तिम यज्ञ करने लगे। तब इन्द्रने छिपकर घोड़ा चुरा लिया। तदनन्तर अत्रिने पृथुके पुत्रको घोड़ा चुरा लिये जा रहे इन्द्रको मारनेकी आज्ञा दी, परन्तु इन्द्रके पाखण्डको देखकर उसे धर्मात्मा समझ कर मारा नहीं। जब पुनः कहनेपर उसे मारनेको उद्यत हुआ, तब इन्द्र घोड़ा तथा उस रूपको छोड़कर छिप गया। इसप्रकार इन्द्रके पाखण्डको देखकर पृथु उसे मारनेको जब उद्यत हुये। तब ऋत्विज् उसे रोककर मन्त्रोंसे इन्द्रका हवन करने लगे, तब ब्रह्माजीने आकर उन्हें रोका और दोनोंमें सन्धि करा दी। उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ विंशातितमोऽध्यायः ❀

(पृथुके यज्ञमें भगवान्का अनुशासन तथा वरदान देना)

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, यज्ञोंके पति विभु यज्ञभुक वैकुण्ठ भगवान् भी इन्द्रके साथ यज्ञोंसे सन्तुष्ट होकर राजा पृथुसे कहने लगे ॥१॥ भगवान्ने कहा—इस इन्द्रने तुम्हारा अन्तिम यज्ञ भंग किया है। इसलिये यह तुमसे चमाप्रार्थी है इसका अपराध तुम भी चमाकर सकते हो ॥२॥ हे राजन्, इस संसारमें मनुष्योंमें श्रेष्ठ विद्वान् महात्मा पुरुष प्राणियोंसे द्रोह नहीं करते, क्योंकि शरीर आत्मा नहीं है ॥३॥ यदि भगवान्की मायासे तुम्हारे सदृश पुरुष भी मोहित हो जावें, तो बहुत समय तक की गई वृद्धपुरुषोंकी सेवासे केवल श्रमही हुआ उन वृद्धोंकी सेवासे कुछ भी लाभ नहीं हुआ ॥ ४ ॥ इसलिये विद्वान्को यह शरीर अज्ञानजनित इच्छासे उत्पन्न हुए कर्मों के द्वारा आरब्ध हुआ है, ऐसा समझकर आत्माका विचार करते हुए

मैत्रेय उवाच ॥ भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ॥ यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एष तेऽकार षीद्भङ्गं हयमेधशतस्य ह ॥ चमापयत आत्मानममुष्य चन्तुमर्हसि ॥ २ ॥ सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ॥ नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥ ३ ॥ पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया ॥ श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥ ४ ॥ अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥ ५ ॥ असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादि गृहे ॥ अपत्ये द्रविणे वापि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥६॥ एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ॥ सर्वगोऽनावृतः साची निरात्मात्मात्मनः परः ॥७॥ य एवं सन्तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः ॥ नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥ यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः ॥ भजते शनकैस्तस्य मनो राजन्प्रसीदति ॥ ९ ॥ परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ॥ शान्ति मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यमश्नुते ॥ १० उदासीन-

इस शरीरमें आसक्त नहीं होना चाहिये ॥ ५ ॥ और इस शरीरमें यदि आसक्त न होगा, वो फिर इसी शरीरसे उत्पन्न हुए पुत्र, गृह तथा धनमें कौन विद्वान् पुरुष आसक्त होगा ? ॥६॥ क्योंकि यह आत्मा देहसे पृथक् है। आत्मा एक है, देह अनेक है, आत्मा शुद्ध है, देह मलिन है, आत्मा स्वयंप्रकाश है, शरीर जड़ है, आत्मा निर्गुण है, शरीर सगुण है, आत्मा गुणोंका आश्रय है, शरीर आश्रित है, अत्मा सब जगह जानेवाला है, शरीर परिछिन्न है, आत्मा आवरणशून्य है, शरीर आवृत है आत्मा देखनेवाला है, शरीर दृश्य है और शरीर आत्माके साथ रहता है। इससे अन्य है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य अपनेमें इसप्रकार स्थित आत्माको जानता है, वह शरीरमें स्थित रहता हुआ भी मुझमें स्थित है। इसलिए वह शरीरके गुणोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ८ ॥ हे राजन्, जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक अपने धर्मसे निष्काम होकर मेरा भजन करता है, उसका मन धीरे-धीरे प्रसन्नताको प्राप्त होने लग जाता है ॥ ९ ॥ और जब मन प्रसन्न हो जाता है, तब समस्त कर्मोंको छोड़कर सम्यक् दर्शन हो वह, मेरी जो उदासीन भावसे स्थिति है, उसी ब्रह्मरूप मोचको प्राप्त करता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य देह, ज्ञान, कर्मेन्द्रिय तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनके अध्यक्षके समान स्थित निर्विकार इस आत्माको उदासीन भावसे जानता है, वह कल्याण प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ पाँच महाभूत, इन्द्रिय, देवता तथा चिदाभासरूप इस शरीरका जन्म-मरण होता है। इसलिये जो मेरे भक्त हैं, वे विद्वान् मनुष्य सम्पत्ति तथा विपत्तिके प्राप्त होनेपर सुख-दुःखसे विकारको प्राप्त नहीं होते ॥ १२ ॥ इसलिये हे वीर, सुख तथा दुःख में समानभावसे रहते हुए उत्तम, मध्यम तथा नीच पुरुषोंसे भी समान वर्ताव करना तथा इन्द्रियों और मनको जीतकर मेरे द्वारा सम्पादित मन्त्रियोंसे युक्त हो सारे प्रजाओंकी रक्षा करते रहो ॥ १३ ॥ जिसकी रक्षा करनेसे राजाका कल्याण होता है तथा परलोकमें प्रजाओंके द्वारा किये गये पुण्योंका षष्ठांश प्राप्त करता है और जो प्रजाकी रक्षा नहीं करता तथा कर ग्रहण करता है, उसका पुण्य नष्ट हो जाता है और वह पापका फल भोगता है ॥ १४ ॥ इसलिये ब्राह्मणोंसे संमत तथा अनुष्ठित धर्मादिकमें अनासक्त होकर प्रजाकी रक्षा करते चलो, इससे

मिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् ॥ कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ॥ दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥ १२ ॥ समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे च जितेन्द्रियाशयः ॥ मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व वीराखिललोकरक्षणम् ॥ १३ ॥ श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात्षष्ठमंशम् ॥ हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥ १४ ॥ एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः ॥ ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान् द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥ १५ ॥ वरं च मत्कञ्चन मानवेन्द्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ॥ नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ॥ अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥ १७ ॥ स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ॥ शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥ १८ ॥ भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः ॥ समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः ॥ १९ ॥ प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः ॥ पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्स-

मनुष्य प्रसन्न होंगे और थोड़ेही कालमें घरपर आये हुए सिद्धोंका तुम दर्शनकर पाओगे ॥ १५ ॥ हे राजन्, तुम मुझसे कुछ वरदान माँगो, क्योंकि मैं तुम्हारे गुण तथा स्वभावसे तुम्हारे वशमें हो गया हूँ। इन गुणोंसे रहित मनुष्य मुझे यज्ञ, तपस्या आदि योग साधनसे प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि मैं समचित्त मनुष्योंमें ही विराजमान रहता हूँ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस प्रकार संसारके गुरु भगवान्‌ने पृथुको शिक्षा दी और उसने भगवान्‌की आज्ञाको सिरसे ग्रहण किया ॥ १७ ॥ अपने कर्मसे लज्जित् अतएव अपराध क्षमा करानेके लिये चरण स्पर्शकर रहे इन्द्रसे प्रेमपूर्वक मिलकर विद्वेष छोड़ दिया ॥ १८ ॥ विश्वात्मा भगवान् भी पृथुसे पूजित होकर जानेकी इच्छा करते हुए भी पृथुके ऊपर कृपा करके विलम्ब गये तथा बढ़ती हुई भक्तिसे पृथुने चरण-कमल ग्रहण किये और उसे अपने नेत्रोंसे देखते हुए वे खड़े रहे ॥१९, २०॥ तब हाथ जोड़कर खड़ा हुआ राजा पृथ नेत्रोंमें आँसू आ जानेके कारण भगवान्‌को

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखने में समर्थ नहीं हुआ तथा आँसुओं से विकल होनेके कारण मौन खड़ा हुआ भगवान्का हृदयसे आलिङ्गन किया ॥२१॥ तदनन्तर आँसू पोंछकर पैरसे पृथ्वीका स्पर्शकर रहे, गरुड़के कन्धेपर हाथ धरकर सम्मुख खड़े, अतृप्त आँखोंके विषयभूत भगवान्को देखते हुए पृथुने कहना आरम्भ किया ॥ २२ ॥ पृथुने कहा—हे प्रभो, वर देनेवाले ब्रह्मादिकोंके भी ईश्वर आपसे विद्वान् लोग देहाभिमानियों भोग्य वरदानोंको क्यों माँगते हैं ? जो वर नरकमें रहनेवाले प्राणियोंको भी प्राप्त होते हैं। इसलिये हे प्रभो, हे कैवल्यपते, उन्हें मैं नहीं मांगता ॥ २३ ॥ हे नाथ, जहाँपर महात्माओंके हृदयसे मुखके द्वारा निकला हुआ आपका चरणकमल मकरन्द नहीं है यानी यश आदिका श्रवण सुख नहीं है, वेसे मोक्षको भी कहीं कभी नहीं चाहता। केवल आपके यशको सुननेके लिये दस हजार हमारे कान बना दो, यही वरदान चाहता हूँ ॥२४॥ हे पुण्यकीर्ते भगवान्, महात्माओंके निर्मल मुखसे निकले हुए आपके चरणकमलरूप

ताम् ॥२०॥ स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ॥ न किञ्चनोवाच स बाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥२१॥
अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ॥ पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥ २२ ॥ पृथुरुवाच ॥
वरान्विभो त्वद्वरदेश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ॥ ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥ २३ ॥
न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ॥ महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥ २४ ॥ स उत्तम-
श्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ॥ स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥ २५ ॥ यशः शिवं सुश्रव
आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ॥ कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसङ्ग्रहेच्छया ॥ २६ । अथाभजे त्वाऽखिलपू-
रुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ॥ अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥ २७ ॥ जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं
स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ॥ करोति फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥ २८ ॥ भजन्त्यथ त्वामत एव

अमृतलेशका आश्रय करनेवाली वायु मार्गका विस्मरणकर बैठे हुए कुयोगियोंको भी पुनः आत्मज्ञान प्रदान करती है। इसलिये हमें अन्य वरोंसे कोई प्रयोजन नहीं है ॥२५॥ हे मङ्गल-कीर्ते प्रभो, सज्जनोंके संगसे जो मनुष्य एक बार भी आपका यश सुन लेता है, यदि वह गुणज्ञ होता है तो कभी भी विराम नहीं लेता और जो विराम लेता है, वह पशुतुल्य ही है, जिन आपके यशका ही सम्पूर्ण गुणोंका संग्रह करनेकी इच्छासे लक्ष्मीने—वरण किया ॥ २६ ॥ इसलिये मैं भी अत्यन्त उत्सुकताके साथ समस्त गुणोंके स्थान अखिल पुरुषोत्तम आपको लक्ष्मी की तरह भजूँगा। परन्तु एकही आप स्वामीको चाह रहे, एकमात्र आपके चरणोंमें ही मनोविस्तारवाले हम दोनोंमें क्या कलह नहीं होगा ॥ २७ ॥ हे जगदीश, जिस लक्ष्मीके काममें मेरी इच्छा होती है उस जगज्जननी लक्ष्मीमें मेरे साथ विरोध तो होगा ही, परन्तु आपका मेरे विषयमें ही पक्षपात होगा, क्योंकि दीनवत्सल आत्माराम आपको उस लक्ष्मीसे क्या प्रयोजन ? आप लक्ष्मीको भले ठुकरा दें, किन्तु मुझे नहीं ठुकरा सकते। भगवन्, आप तो तुच्छको भी बहुत बड़ा जानते हैं ॥ २८ ॥ इसीलिये साधुलोग माया गुणोंके विलास कार्यको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यानी संसारको नष्टकर देनेवाले आपका भजन करते हैं। हे भगवन्, आपके चरणकमलोंके स्मरणके सिवा उनका और दूसरा कोई फल मैं नहीं समझता॥२९॥ भजन करनेवाले मनुष्यसे जो आप वरदान माँगनेको कहते हैं, यह आपकी वाणी सारे संसारको मोहित करनेवाली है। यदि आपकी वाणीरूपी तन्तीसे बँधा न होता, तो फलोंसे मोहित होकर वार-वार कर्म क्यों करता॥ ३०॥ हे प्रभो, आपकी मायासे सत्यस्वरूप आपसे पृथक् क्रिया यह ज्ञानी मनुष्य पुत्रादिक चाहता है। इसलिये जैसे पिता स्वयंही बालकका हित करता है वैसेही आप भी मेरा हित सम्पादन कीजिये॥ ३१॥ मैत्रेयजीने कहा— इसप्रकार पृथुसे स्तुत होकर भगवान् उससे कहने लगे—हे राजन्, तुम्हारी मुझमें भक्ति हो। तुमने भाग्यवश जो मुझमें बुद्धिकी है, इससे तुम्हारा बड़ा कल्याण हुआ। जिस बुद्धिसे हमारी इस दुस्त्यज मायाको मनुष्य पारकर जाते हैं॥ ३२॥ हे प्रजापते, इसलिये तुम सावधान होकर मेरी आज्ञाका पालन करो

साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ॥ भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥ २९ ॥ मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ॥ वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥ ३० ॥ त्वन्माययाऽद्धा जन ईश खण्डितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनो बुधः ॥ यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन्मयि भक्तिरस्तु ते ॥ दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां दमीयां तरति स्म दुस्तराम् ॥ ३२ ॥ तत्त्वं कुरु मयादिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ॥ मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ॥ ३३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः ॥ पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥ ३४ ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः ॥ किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः ॥ ३५ ॥ यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः ॥ सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥ ३६ ॥ भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ॥ हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ३७ ॥ अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः सन्दर्शितात्मने ॥ अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

क्योंकि मेरा आदेश स्वीकार करनेवाला मनुष्य सर्वत्र कल्याण प्राप्त करता है॥३३॥ मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, तदनन्तर अच्युत भगवान्ने पृथुके अर्थयुक्त वचनोंका अभिनन्दनकर उससे पूजित हो उसके ऊपर अनुग्रह करके जानेकी इच्छा की॥ ३४॥ तदनन्तर राजा पृथुने देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, सर्प, किन्नर, अप्सराएँ, मनुष्य, पक्षी तथा अनेक प्रकारके प्राणियोंका वचन तथा धनसे हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक यज्ञेश्वर भगवान्की बुद्धिसे सत्कार किया एवं भगवान्के पार्षदोंका भी पूजन किया। तब वे सब सम्मानित हो अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ३५, ३६॥ अच्युत भगवान् भी पुरोहितके सहित राजा पृथुके मनको हरते हुए-से अपने स्थानको चल दिये॥ ३७॥ तब राजा भी देवताओंके भी देव अपना दर्शन देनेवाले अदृष्ट भगवान् वासुदेवको नमस्कार करके अपने नगरमें आ गया॥ ३८॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बीसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, यज्ञसे सन्तुष्ट होकर भगवान्‌ने पृथुसे कहा—राजन्, तुम्हारे यज्ञमें विघ्न करनेवाले इस इन्द्रका अपराध क्षमा करो, क्योंकि साधु मनुष्य प्राणियोंसे द्रोह नहीं करते। तुम मंत्रियोंसे युक्त होकर प्रजाका पालन करो और मुझसे कुछ वरदान माँगलो। तब पृथुने इन्द्रके साथ सन्धिकर ली और सम्मुख स्थित भगवान्‌से कहा—हे भगवन्, नरकमें प्राप्त होनेवाले विषयोंको मैं नहीं चाहता, केवलआपका यश सुननेके लिए मेरे दश सहस्र श्रवण देदीजिये तथा मुझे अपनीभक्ति दीजिये। तब भगवान् वैसाही उसे वर देकर उससे पूजित हो अपने स्थानको चल दिये। तदनन्तर देवतादि सभी राजासे पूजित हो अपने-अपने स्थानको चले गये बादमें राजा भी अपने नगर आ गया। बीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ एकविंशतितमोऽध्यायः ❀

[महायज्ञमें राजापृथुका प्रजाओंको उपदेश देना यह वर्णन]

राजा पृथु मोतियों तथा पुष्पोंकी मालाओंसे, दुकूलोंसे, स्वर्णके बन्दनवारोंसे तथा अत्यन्त सुगन्धित धूपोंसे स्थान-स्थानपर शोभित, चन्दन और अगर युक्त जलसे सींची गयी गलियों चौराहों और सड़को से युक्त, पुष्प, चावल, फल, यवांकुर, लावा तथा दीपोंसे अर्चित एवं पुष्प और फलों से युक्त केलेके खम्भों तथा सुपारीके वृक्षों से भलीभाँति अलंकृत अपने नगरको गया॥ १-३॥ तब सम्पूर्ण दधि आदि माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर तथा दीप और बलिसे युक्त हो सभी प्रजाएँ एवं कन्याएँ भी उज्ज्वल कुण्डलोंसे अलंकृत हो राजाको लेने गईं॥ ४॥ शंख और दुन्दुभिके घोषों तथा ब्राह्मणों के वेद शब्दोंसे स्तुत होनेपर भी निरहंकारी उस वीरने भवनमें प्रवेश किया॥ ५॥ अत्यन्त यशस्वी तथा प्रिय वर प्रदान

मैत्रेय उवाच॥ मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः। महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै॥१॥ चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्या-चत्वरमार्गवत्॥ पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिभिरर्चितम्॥२॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम्॥ तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलङ्कृतम्॥३॥ प्रजास्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमङ्गलैः॥ अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः॥४॥ शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम्॥ विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः॥ ५॥ पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः॥ पौरान् जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः॥६॥ सएवमादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः॥ कुर्वन् शशासावनिमण्डलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम्॥७॥ सूत उवाच॥

करनेवाला वह स्थान-स्थानपर प्रजासे पूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और नगर तथा देशमें रहनेवाले सबकी उसने पूजा की॥ ६॥ पुण्यकी चेष्टा करनेवाला गुणोंसे महान् अतएव पूज्यतम वह अनेक कार्य करता हुआ पृथ्वीका शासन करने लगा तथा इसलोकमें निर्मल यश फैलाकर उसने परमपद प्राप्त किया॥ ७॥ सूतजीने कहा—हे शौनकजी, उस समय सम्पूर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गुणोंसे चढ़े बढ़े तथा गुणवान् पुरुषोंसे सत्कृत पृथुके यशको कहनेवाले मैत्रेयजीका पूजन करके परम भगवद्भक्त विदुरजी कहने लगे ॥ ८ ॥ विदुरजीने कहा—ब्राह्मणोंसे अभिषिक्तहो तथा समस्त देवताओं की पूजाको प्राप्त करके उसने बाहुओंसे विष्णुका तेज ग्रहण किया, जिन बाहुओंसे पृथ्वीको दुहा था। तदनन्तर क्या किया ? ॥९॥ जिन पृथुके पराक्रमके उच्छिष्ट तुल्य समस्त राजालोग तथा लोकपालोंके सहित सममस्त लोग आज भी उसी उच्छिष्टसे अपनी जीविका चलाते हैं, उनके शुद्ध यशको कहिये, क्योंकि जो गुणग्राही होगा, वह कौन मनुष्य उनका यश न सुनेगा ॥१०॥ मैत्रेयजीने कहा—राजा पृथु गंगा तथा यमुना नदीके मध्य भागमें रहता हुआ पुण्य नष्ट करनेकी इच्छासे प्रारब्ध प्राप्त भोगोंका भोग करने लगा ॥ ११ ॥ इसकी आज्ञा कहीं भी रुकती नहीं थी। वैष्णव तथा ब्राह्मणोंको छोड़कर सातों द्वीपोंमें यही एक शासन करनेवाला था ॥ १२ ॥ हे विदुरजी, एक समय उसकी बड़े यज्ञकी दीक्षा थी। उस

तदादिराजस्य यशो विजृम्भितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ॥ क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥ ८ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेषसुरार्हणः। बिभ्रत्स वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥ ९ ॥ कोन्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ॥ लोकाः सपाला उपजीवन्ति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तरा क्षेत्रमावसन् ॥ आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ॥ ११ ॥ सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ॥ अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युत-गोत्रतः ॥ १२ ॥ एकदासीन्महासत्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् ॥ समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चि-तेषु यथार्हतः ॥ उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥१४॥ प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः ॥ सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः। १५ ॥ व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः ॥ आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनोरुरुदग्रपात् ॥ १६ ॥ सूक्ष्मवक्रासितस्निग्ध-मूर्धजः कम्बुकन्धरः ॥ महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥ १७ ॥ व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ॥ कृष्णाजिनधरः श्रीमान्कु-शपाणिः कृतोचितः ॥ १८ ॥ शिशिरस्निग्धताराक्षः समैक्षत समन्ततः ॥ ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥ १९ ॥ चारु चित्रपदं

यज्ञमें देवता महर्षि तथा राजर्षियोंका समाज एकत्रित हुआ ॥१३॥ सब पूज्योंके यथायोग्य पूजित हो जानेपर सभाके मध्यमें तारागणके मध्यमें चन्द्रमाके समान उठा ॥१४॥ वह अत्यन्त ऊँचा था मोटे और लम्बे भुजावाला था उसका गौरवर्ण था कमलके समान लाल नेत्र थे, सुन्दर नासिका तथा मुख था। शान्त, उन्नतांश और सुन्दर दन्त तथा हास्य था ॥ १५ ॥ उसका विस्तृत वक्षःस्थल, महान् कटिप्रदेश तथा त्रिवलिसे पीपलके पत्रके समान उसका सुन्दर उदर था, आवर्तके सदृश नीची नाभि थी, पराक्रमी तथा स्वर्णके समान उज्ज्वल उसकी जाँघ थी एवं ऊँचा उठा हुआ पादाग्र भाग था ॥१६॥ उसके सूक्ष्म, टेढ़े, काले तथा चिकने मस्तकके केश थे। शंखके समान ग्रीवा थी। वह अत्यन्त मूल्यवान् वस्त्र पहिने हुए था ॥१७॥ व्रतसे आभूषण धारण न करनेपर भी समस्त अङ्गोंकी शोभा छिटक रही थी। वह कृष्ण मृगचर्मको धारण किये था। हाथमें कुश लिए था तथा उचित कर्म कर चुका था ॥१८॥ सन्ताप-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

को दूर करनेवाली स्निग्ध ताराओंसे युक्त उसकी आँखें थीं। चारों तरफ देखकर सभासदोंको प्रसन्न करते हुए उसने यह वाणी कही ॥१६॥ जो वाणी सुननेमें प्रिय तथा विचित्र पदोंसे युक्त थी, प्रशस्त तथा शुद्ध थी, गम्भीर अर्थसे युक्त तथा शीघ्रतासे रहित थी एवं वह समस्त प्राणियोंके उपकारके लिए स्वयं अनुभूत बातोंका अनुवाद करते हुए-सा कहने लगा ॥२०॥ राजाने कहा— हे सभासदो, सुनो, जो सज्जन यहाँपर आये हैं उनका कल्याण हो। धर्म जाननेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको महात्माओंसे अपना विचार प्रकट करना चाहिए ॥ २१ ॥ मैं प्रजाका रक्षक, वृत्तिदाता तथा अपनी-अपनी मर्यादामें स्थित करनेवाला दण्डधारी राजा नियुक्त किया गया हूँ ॥ २२ ॥ इससे पूर्व कर्मका साक्षी ईश्वर जिसके ऊपर प्रसन्न होता है, उसके लिये ब्रह्मवादी लोग जिन लोकोंको बताते हैं, प्रजाकी रक्षा करनेवाले समस्त आशाओंको पूर्ण करनेवाले वे लोक मेरे हो जायँगे ॥ २३ ॥ जो राजा मनुष्योंको धर्ममें प्रवृत्त नहीं

श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् ॥ सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः ॥ सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥ २१ ॥ अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः ॥ रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥२२॥ तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ लोकाः स्युः कामसन्दोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥ २३ ॥ य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ॥ प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥ २४ ॥ तत्प्रजा भर्तृपिण्डार्थं स्वार्थमेवानसूयवः ॥ कुरुताधोक्षजधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २५ ॥ यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोऽमलाः ॥ कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम् ॥ २६ ॥ अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषाञ्चिदर्हसत्तमाः ॥ इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ॥ २७ ॥ मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः ॥ प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुः ॥ २८ ॥ ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ॥ प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥ २९ ॥ दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्मविमोहितान् ॥ वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकाम्यहेतुना ॥ ३० ॥ यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ॥ सद्यः

करता तथा कर ग्रहण करता है, वह मनुष्योंका पाप भोगता है तथा अपना ऐश्वर्य नष्ट करता है ॥ २४ ॥ इसलिए हे प्रजाओ, आपलोग मेरा परलोकमें हित करनेके लिए वासुदेवार्पण दृष्टिसे अपने धर्मका अनुष्ठान कीजिये। वही मेरे ऊपर आपलोगों द्वारा किया गया अनुग्रह होगा ॥ २५ ॥ तथा आप निर्मल, पितर, देव और ऋषि लोग भी इसका अनुमोदन करें, क्योंकि करनेवाले आदेश देनेवाले तथा अनुमोदन करनेवालेका परलोकमें जो फल होता है वह तुल्य होता है ॥ २६ ॥ हे पूज्यो, किसीके मतमें यज्ञपति नामक परमेश्वर भगवान् अवश्य हैं, क्योंकि उनसे रचित कान्तियुक्त भोगभूमियाँ तथा शरीर इसलोक और परलोकमें दृष्टिगोचर होते हैं ॥ २७ ॥ इस विषयमें मनुके पुत्र उत्तानपाद तथा राजा ध्रुव, राजर्षि प्रियव्रत एवं हमारे पितामह अङ्गका मत है ॥ २८ ॥ ब्रह्मा, शंकर, प्रह्लाद, बलि तथा अन्य मनुष्योंका भी कर्मफल देनेवाले भगवान् हैं, ऐसा मत है ॥२९॥ केवल धर्ममें विमोहित, अतः शोचनीय वेनको छोड़कर अन्य सबोंका मत है। इसलिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा स्वर्ग देनेमें अनन्यसहाय ईश्वर अवश्य है ॥३०॥ जिसके चरणकमलोंकी सेवाकी अभिरुची संसारसे दुःखित

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.
CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राणियोंके अनेक जन्मोंसे एकत्रित हुए बुद्धिके मलको, जैसे भगवान्के अँगूठेसे निकल हुई गंगाजी पापोंको नष्ट करती हैं, वैसेही शीघ्र नष्टकर देती है ॥ ३१ ॥ और जब पुरुषके मनके समस्त मल दूर हो जाते हैं तब वैराग्य द्वारा उसको विज्ञानका साक्षात्काररूपी बल प्राप्त होता है, जिससे समर्थ होकर वह भगवान्के चरणकमलोंका आश्रयण करता है। तब दुःखदाई इस संसारको पुनः प्राप्त नहीं करता ॥ ३२ ॥ इसलिये आपलोग निष्कपट होकर अध्यापन आदि अपने-अपने कर्मसे मन, वचन और शरीरके गुण, ध्यान, स्तुति तथा सेवा करके समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले भगवान्के चरणकमलोंका भजन करें, क्योंकि अधिकार के अनुकूल कार्य करनेसे निश्चित अर्थ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ ३३ ॥ स्वरूतः विशुद्ध विज्ञानघन होते हुए भी निर्गुण यही भगवान् कर्ममार्गमें नानाप्रकारके, व्रीह्यादि धान्य, शुक्लादि गुण, पशु मारण आदि क्रिया, मन्त्र, अर्थ, संकल्प, शक्ति तथा ज्योतिष्टोम आदि नामोंके

क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित् ॥ ३१ ॥ विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ॥ यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ॥ अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ ३३ ॥ असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ॥ संपद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥ ३४ ॥ प्रधानकालाशयधर्मसङ्ग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ॥ क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥ ३५ ॥ अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ॥ स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥ ३६ ॥ मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षया तपसा विद्यया च ॥ देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ॥ अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥३८॥ यत्सेवयाशेषगुहाशयः स्वराड्विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ॥ तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥ ३९ ॥

द्वारा यज्ञके रूपसे सम्पन्न होते हैं ॥ ३४ ॥ यह सर्वव्यापक भगवान् प्रकृति, काल, वासना तथा पूर्वकर्मसे उत्पादित इस शरीरमें चैतन्यरूपसे प्रविष्ट होकर लकड़ीमें स्थित अग्निकी तरह शरीरके गुणोंके अनुसार क्रियाके फलरूपसे प्रतीत होते हैं ॥ ३५ ॥ अहो, इस संसारमें जो हमारी प्रजा अपने-अपने धर्मके अनुष्ठानसे देवताओंके भी स्वामी तथा गुरु भगवान् हरिका पूजन करती है, वह मेरे ऊपर अत्यन्त अनुसरण करती है ॥ ३६ ॥ बहुत सम्पत्तियोंसे होजानेवाले राजाओंका तेज सम्पत्तिके विना ही विद्या, तपस्या तथा सहनशीलतासे अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मण और वैष्णवोंके कुलसें कभी भी अपना प्रभाव न जमावे ॥ ३७ ॥ जिन ब्राह्मणोंके चरणोंकी नित्य बन्दना करनेसे ब्राह्मणभक्त पुरुषोत्तम भगवान्ने कभी पृथक् न होनेवाली लक्ष्मी तथा पवित्र यशप्राप्त किया और महान् पुरुषोंमें अग्रगण्य हुए ॥३८॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवासे समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें वास करनेवाले, ब्राह्मणोंके प्रिय, स्वयंप्रकाश भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होजाते हैं, भगवान् के लोक प्राप्त करनेकी इच्छावाले मनुष्योंको नम्र होकर अनन्य भावसे उन ब्राह्मणोंकी सेवा करनी चाहिये ॥३९॥ जिन ब्राह्मणोंको नित्य सेवा करनेसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनुष्यका चित्त स्वयं शीघ्र प्रसन्न हो जाता है, जिससे कि नानाभ्यासादिके बिना ही मोक्ष प्राप्त करता है। उन ब्राह्मणोंसे दूसरा देवताओंका श्रेष्ठ मुख क्या है॥ ४० ॥ तत्त्व जाननेवालोंके द्वारा इन्द्रादिकके नामसे जिन ब्राह्मणोंके मुखमें श्रद्धापूर्वक दिये गये हविको अन्तर्यामी भगवान् जैसे खाते हैं, वैसे चेतनाशून्य अग्निमें दिया हुआ नहीं खाते ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण अनादि शुद्ध वेदको श्रद्धा, तपस्या, मंगलाचरण, मौन तथा इन्द्रियोंका निग्रहकर शान्तचित्तसे धारण करते हैं तथा उसके अर्थको भी विचारते हैं, जिस वेदमें यह संसार, दर्पणमें मुखके समान प्रकाशित होता है ॥ ४२ ॥ हे आर्यों, उन ब्राह्मणोंके चरणकमलोंकी धूल जन्म पर्यन्त मैं अपने मुकुटके ऊपर धारण करूँ। जिसके धारण करनेसे मनुष्यके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और समस्त गुण इसका आश्रयण करते हैं ॥ ४३ ॥ गुणवान्, शीलरूपी, धनसे सम्पन्न सदाचारी कृतज्ञ, तथा वृद्धोंकी सेवा करनेवाले मनुष्यके पास सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ आ जाती हैं।

पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयं॥ यं नित्यसंबन्धनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥४०॥ अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः॥ न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥४१॥ यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ॥ समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥ ४२ ॥ तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ॥ यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं नश्यत्यमुं सर्वगणा भजन्ति ॥ ४३ ॥ गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु संपदः ॥ प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥ ४४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥ ४४ ॥ पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः ॥ ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥ ४६ । हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया तमः ॥ विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥ ४७ ॥ वीरवर्यपितः पृथ्व्याः समाः सञ्जीव शाश्वतीः ॥ यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥ ४८ ॥ अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः । य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥ ४९ ॥ नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् ॥ प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ॥ ५० ॥ अद्य नस्तमसः पारस्त्वयो-

इसलिये ब्राह्मण तथा गौओंका कुल मेरे ऊपर प्रसन्न हो तथा सेवकोंके साथ भगवान् भी प्रसन्न हों ॥ ४४ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इस प्रकार राजा पृथुके कहनेपर समस्त पितर, देव तथा ब्राह्मणलोग प्रसन्न हुए और साधुवादसे उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ 'पुत्रसे लोकोंको जीत लेता है' यह श्रुती सत्य है, क्योंकि ब्राह्मणों द्वारा नष्ट किया गया पापी वेन भी नरकको पारकर गया ॥ ४६ ॥ भगवान्की निन्दासे नरकमें गिराता हुआ हिरण्यकशिपु भी अपने पुत्र प्रह्लादके प्रभावसे पार हो गया ॥ ४७ ॥ हे पृथ्वीके पिता, वीरवर्य राजन, तुम बहुत वर्षोंतक जीते रहो, क्योंकि समस्त मनुष्योंके पति अच्युत भगवान्में तुम्हारी इस तरह अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी भक्ति है ॥ ४८ ॥ हे पुण्यकीर्ते, आज तुम्हारे राजा होनेसे हमलोग मुकुन्दनाथ हो गये यानी भगवान ही मानो हमलोगोंके नाथ हो गये। जो उत्तमकीर्ति ब्राह्मणभक्त भगवान्की कथाओंको तुम प्रकाशित करते हो ॥ ४९॥ हे नाथ, तुम्हारा सेवकोंका शासन करना यह कोई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आश्चर्यजनक नहीं है; क्योंकि दयालु महात्माओंकी प्रजामें प्रेम करनेकी प्रकृतिही रहती है ॥ ५० ॥ हे प्रभो, अपने कर्मोंसे हमलोगोंकी दृष्टि नष्ट हो गई है। इसलिए इसी संसारमें

पासादितः प्रभो ॥ भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥ ५१ ॥ नमो विवृद्धसत्वाय पुरुषाय महीयसे यो ब्रह्म क्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दैवसंज्ञककर्मोंसे भटक रहे हमलोगोंको आज आपने इस संसारसे पाककर दिया ॥ ५१ ॥ जो ब्राह्मण तथा क्षत्रियोंमें प्रवेश करके अपने तेजसे इस संसारका पालन करता है, उस प्रभावशाली पूज्यतम पुरुषोत्तमको नमस्कार है ॥ ५२ ॥

इक्कीसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, राजा पृथु समस्त सम्पत्तिसे युक्त अपने नगरमें गया। और सबसे पूजित होकर उसने भी सबका पूजन किया। तदनन्तर उसने एक महान् यज्ञकी दीक्षाली। उसमें देवादिक समस्त आये हुओंका पूजन करके सभाके बीचमें खड़ा होकर चारों तरफ देखकर कहने लगा—हे सभासदो, आप लोगोंने मुझे रक्षा करनेवाला राजा बनाया है इसलिए आपलोग मेरे हितके लिये अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मका अनुष्ठान करें जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं, जिनके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसप्रकार पृथुके कहनेपर सबलोग प्रसन्न हुए और कहने लगे कि आपके राजा होनेसे हमलोग ऐसा अनुभव करते हैं कि मानो साक्षात् भगवान् हरिनाथ हो गये तथा आपने हमलोगोंको संसारसे पार कर दिया।

❀ अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ❀

[राजा पृथुको सनत्कुमारका ज्ञानोपदेश]

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, महान् पराक्रमी राजा पृथुसे मनुष्योंके इसप्रकार कहनेपर वहाँ सूर्यके समान कान्तिवाले सनत्कुमारादि चार मुनि आ गये ॥ १ ॥ राजाने उन सिद्धेश्वरोंको आकाशसे उतरते हुए देखकर उनकी कान्तिसे लक्षित उन्हें सनकादिक समझा, जो अपनी कान्तिसे लोकोंको निष्पाप बना रहे थे ॥२॥ उनके दर्शनसे सदस्य तथा सेवकोंके

मैत्रेय उवाच ॥ जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ॥ तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥ १ ॥ तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ॥ लोकानपापान्कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥ २ ॥ तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान्प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ॥ ससदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ॥ ३ ॥ गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः ॥ विधिवत्पूजयाञ्चक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ४ ॥ तत्पादशौचस-

साथ वह राजा पृथु उन्हें देखकर गये हुए अपने प्राणोंको पुनः ग्रहण करता हुआ-सा उठ खड़ा हुआ जैसे कि जीव विषयोंके प्रति उत्सुकताके साथ उठ जाता है ॥ ३ ॥ तब गौरवसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भर्शीकृत उस सभ्यने विनयसे नम्र होकर आसनोंपर बैठे हुए उनका अर्घादिकसे विधिवत् पूजन किया ॥ ४ ॥ सदाचारियोंके आचरणको स्वयं मानता तथा आचरण करता हुआ-सा वह उनके पाँव धोकर उस जलसे अपने केश बन्धनको धोया ॥ ५ ॥ तब हवनकुण्डमें स्थित अग्निके समान सोनेके आसनोंपर बैठे हुए भवके भी अग्रजरूपसे मान्यमुनियोंसे वह प्रसन्न होकर श्रद्धा एवं संयमके साथ कहने लगा ॥ ६ ॥ पृथुने कहा—मंगलके धाम हें मुनियो अहो, मैंने कौन-सा पुण्य किया है, जिससे कि योगियोंसे भी दुर्लभ आप लोगोंका दर्शन मुझे प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ जिसके ऊपर ब्राह्मण, शिव तथा अपने अनुगामियोंके साथ भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, उसे इसलोक तथा परलोकमें कौन-सी वस्तु अत्यन्त दुर्लभ रहती है ? ॥ ८ ॥ इस संसारमें विचरते हुए भी आपलोगोंको मनुष्य ऐसे नहीं देखते, जैसे सबको देखनेवाले आत्माको इस संसारकी रचना करनेवाले मन्वादिक नहीं देखते ॥ ९ ॥ वे निर्धनही सज्जन गृहस्थ

लिलैर्मार्जितालकबन्धनः ॥ तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥ ५ ॥ हाटकासन आसीनान्स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ॥ श्रद्धासंयमसंयुक्तःप्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥६॥ पृथुरुवाच ॥ अहो आचरितंकिं मे मङ्गलमङ्गलायनाः ॥ यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥७॥ किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च ॥ यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥८॥ नैव लक्षयते लोको लोकान्पर्यटतोऽपि यान् ॥ यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥९॥ अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ॥ यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावराः ॥१०॥ व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः ॥ यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥ ११ ॥ स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः ॥ चरन्ति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥१२॥ कच्चिन्नः कुशलं नाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् ॥ व्यसनावाप एतस्मिन्पतितानां स्वकर्मभिः ॥ १३ ॥ भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ॥ कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥ १४ ॥ तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम् ॥ संपृच्छे भव एतस्मिन्क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥१५॥ व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ॥ स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥१६॥

लोग धन्य हैं, जिन सज्जनोंके घरके जल, आसन, पृथ्वी, सेवक तथा गृहपतिको पूज्य महात्मा लोग स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥ और जो गृह भगवान्के भक्तोंके चरणोदकसे रहित हैं, वे यदि समस्त सम्पत्तिसे पूर्ण भी हों, तो भी सर्पके स्थानभूत वृक्षके समान हैं ॥ ११ ॥ हे मुनियो, आपलोगोंका आगमन सुन्दर हुआ है, जो बालक ही आपलोग मोक्षकी इच्छासे बड़े-बड़े व्रतोंका श्रद्धापूर्वक आचरण करते हैं ॥ १२ ॥ हे नाथ, अपने कर्मोंसे इस दुःखरूप संसारमें पड़े हुए विषयोंको ही अर्थ समझनेवाले हमलोगोंकी कुशलता कहाँ है ? ॥ १३ ॥ आत्माके साथ रमण करनेवाले आपलोगोंके विषयमें कुशलता तथा अकुशलताका प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि आपलोगोंमें कुशल तथा अकुशल बुद्धिका व्यापार नहीं होता ॥ १४ ॥ इससे मैं विश्वास करके संसारसे दुःखी मनुष्योंके हितकारी आपसे पूछता हूँ कि इस संसारमें किस वस्तुसे शीघ्र कल्याण होगा ? ॥ १५ ॥ निश्चयही धीर पुरुषोंके आत्मा तथा अपनेको प्रकाशित करनेवाले अजन्मा भगवान् नारायण भक्तोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे सिद्धरूपको धारण करके इस पृथ्वीमें विचरते हैं ॥ १६ ॥ मैत्रेयजीने कहा—पृथुके सुन्दर, सार तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गम्भीरतासे युक्त परिमित मधुर शब्दोंको सुनकर हँसते हुए कुमार प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ १७ ॥ सनत्कुमारने कहा—हे महाराज, समस्त प्राणियोंके हितकी इच्छासे जानते हुए भी आपने अच्छा प्रश्न किया है, क्योंकि साधुओंका परोपकार करनेका स्वभाव ही होता है ॥ १८ ॥ साधुओंका संग करने तथा सुननेवाले दोनोंको सम्मत है, क्योंकि उनका प्रश्न तथा उत्तर समस्त प्राणियोंको सुख देता है ॥ १६ ॥ हे राजन्, आपकी भगवान् मधुसूदन के चरणकमलोंके गुणानुवाद सुननेमें अत्यन्त श्रद्धा है, जो दुर्लभ नैष्ठिक श्रद्धा मनमें स्थित कषायरंगके कामरूपी मलको नष्टकर देती है ॥ २० ॥ सम्यक् विचारवाले शास्त्रोंमें मनुष्योंके कल्याणका कारण एकमात्र केवल शरीरादिकमें अनासक्ति तथा निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आत्मामें दृढ़ प्रेम करना ही निश्चित किया है ॥ २१ ॥ और वह ब्रह्ममें रति श्रद्धासे, भगवान्के धर्मोंका आचरण करनेसे, जाननेकी इच्छासे, आत्मामें योगनिष्ठासे, योगेश्वरोंकी उपासना

मैत्रेय उवाच ॥ पृथोस्तत्सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु ॥ स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना ॥ भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥१८॥ सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः ॥ यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥ १६ ॥ अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुणानुवादने ॥ रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ॥२०॥ शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः ॥ असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥२१॥ सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाध्यात्मिकयोगनिष्ठया ॥ योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवःकथया पुण्यया च ॥२२॥ अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया तत्संमतानामपरिग्रहेण च ॥ विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥ २३ ॥ अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ॥ यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ २४ ॥ हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ॥ भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥ २५ ॥ यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ॥ दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥ २६ ॥ दग्धाशयो मुक्तसमस्ततद्गुणो

करनेसे तथा नित्यही पुण्यकीर्ति भगवान्की पुण्यकथाओंको सुननेसे होती है ॥ २२ ॥ अर्थपरायण एवं कामपरायण राजस और तामस स्वभाववाले मनुष्योंका साथ नहीं करना चाहिए तथा उनके सम्मत अर्थ और कामका भी संग्रह नहीं करना चाहिए। यदि आत्मामें सन्तोष हो, तो एकान्तमें रहना चाहिए, परन्तु भगवान् विष्णुका गुणानुवाद होता हो, तो उस गुण पीयूषपानको छोड़कर नहीं ॥२३॥ अहिंसासे, परमहंसोंकी वृत्तिसे, अपने हितके स्मरणसे, भगवान्के चरित्र स्मृति सुखसे, यम, नियम तथा अकामसे, दूसरेकी अनिन्दासे, चेष्टा न करनेसे

तथा शीतोष्णादि सहनेसे रति प्राप्त होती है ॥ २४ ॥ हरिभक्तोंके कर्णोंको भूषित करनेवाले भगवान्के गुणानुवादसे बढ़ती जा रही भक्तिसे कार्यकारणरूप अनात्मक, असङ्ग ब्रह्ममें रति उत्पन्न होती है ॥ २५ ॥ और जब ब्रह्ममें नैष्ठिक रति उत्पन्न होती है, तब गुरुकी कृपासे, ज्ञान तथा विरागके वेगसे मनुष्य वासनाओंसे रहित जीवको आवृत करनेवाले पञ्चात्मक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

॥५२॥

अहंकारको ऐसे नष्टकर देता है, जैसे प्रज्वलित हुई अग्नि अरणीको नष्टकर देती है ॥ २६ ॥ और जब उसका हृदयरूप उपाधि दग्ध हो जाती है तब उसके कर्तृत्वादि समस्त गुणोंसे मनुष्य मुक्त होकर आत्माके बाहर घटादि पदार्थोंके भीतर, द्रष्टा और दृश्यमें जो पहले भेद था, उसके नष्ट हो जानेसे कुछ भी नहीं देखता। जैसे कि स्वप्नमें देखे हुए पदार्थोंको नष्ट हो जानेके बाद मनुष्य नहीं देखता ॥ २७ ॥ द्रष्टा, दृश्य तथा इन दोनोंके सम्बन्धके हेतु अहङ्कारको उपाधिभूत अन्तःकरणके रहते ही मनुष्य जाग्रत और स्वप्नावस्थामें देखता है, सुषुप्तिमें नहीं देखता ॥ २८ ॥ मनुष्य सब जगह जलादि भेद निमित्तके रहनेपर ही बिम्बभूत अपना तथा प्रतिबिम्बभूत दूसरेका भेद देखता है। जलादिके अभावमें नहीं देखता ॥ २९ ॥ विषयोंका ध्यान करनेवाले मनुष्योंकी इन्द्रियाँ विषयोंसे आकृष्ट हो जाती हैं और उन इन्द्रियोंसे मन विषयमें आसक्त हो जाता है। तदनन्तर मन बुद्धिकी विचारशक्तिको ऐसे हर लेता

नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ॥ परात्मनोर्यद्व्यवधानं पुरस्तात्स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥ २७ ॥ आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ॥
सत्याशय उपाधौ वै पुमान्पश्यति नान्यदा ॥२८॥ निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ॥ आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥२९॥
इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ॥ चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥ ३० ॥ भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ॥
तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥३१॥ नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ॥ यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥३२॥
अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ॥ भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥३३॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥३४॥ तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते ॥ त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥३५॥
परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ॥ न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥ ३६ ॥ तत्त्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च देहेन्द्रियासुधि-
षणात्मभिरावृतानाम् ॥ यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विष्वगाविः प्रत्यक्चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥ ३७ ॥ यस्मिन्निदं सदसदात्मतया

है, जैसे कि किनारेपर उत्पन्न हुआ कुशादिस्तम्ब नदीसे जलको हर लेता है ॥ ३० ॥ चेतनाके नष्ट होनेसे स्मृति नष्ट होती है और स्मृतिके क्षय होनेसे ज्ञानका नाश होता है। विद्वान् लोग ज्ञाननाशको ही अपनेसे ही अपना नाश होना कहते हैं ॥ ३१ ॥ जिस आत्मासे ही विषय प्रिय होते हैं। उस आत्माका अपनेही नाश करनेसे जो स्वार्थ नाश होता है, उससे अधिक दूसरा कोई इस लोकमें पुरुषका स्वार्थ नाश नहीं है ॥ ३२ ॥ मनुष्यका धन तथा कामका ध्यान करनेसे समस्त अर्थ नष्ट हो जाता है और उसी ध्यानसे ज्ञान तथा विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वह स्थावर योनियोंको प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥ दुस्तर इस संसारको पार करनेकी इच्छावाला मनुष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको नष्ट करनेवाली वस्तुओंमें कभी भी सङ्ग न करे ॥ ३४ ॥ तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षमेंसे मोक्षरूपी पुरुषार्थ ही नित्यरूप होनेसे सर्वश्रेष्ठ वाञ्छित है, क्योंकि धर्म, अर्थ तथा काम तो नित्यही कालके भयसे युक्त रहते हैं ॥ ३५ ॥ हमलोग तथा ब्रह्मा आदि सत्त्वादि गुणोंमें क्षोभ होनेके पश्चात् होते हैं। इसलिये उनका कल्याण नहीं है, क्योंकि काल उनके धर्म आदिको नष्टकर देता है ॥ ३६ ॥ इसलिये हे राजन् तुम देह,

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि तथा अहंकारसे आवृत स्थावर तथा जंगम प्राणियोंके हृदयमें जो भगवान् अन्तर्यामी तथा सर्वत्र व्याप्तरूपसे प्रत्यक्ष प्रतिलोमरूप प्रकाशितहोतेहैं। वही 'मैं हूँ' ऐसा समझो ॥३७॥ जिन भगवान्में यह संसार कार्यकारणभावसे विवेकसे निवृत्त होजानेवाली मायाही ऐसे प्रकाशित होती है, जैसे मालामें सर्पबुद्धि होती है उन कर्मोंसे मलीन प्रकृतिका ही तिरस्कार करनेवाले नित्य, मुक्त, परिशुद्ध, विबुद्ध एवं सत्यस्वरूप भगवान्की शरणमें मैं प्राप्त हूँ ॥ ३८ ॥ जिन भगवान्के चरणकमलोंकी पत्तोंरूपी अंगुलियोंके नखोंकी कान्तिका स्मरण करनेसे सन्तलोग जैसे कर्मोंसे बँधी हुई अहंकाररूपी हृदयग्रन्थिको खोल देते हैं, वैसे इन्द्रियवर्गको जीतकर विषयरहित मतिवाले योगीलोग भी नहीं खोलते। उन शरणरूप भगवान्का भजनकरो ॥ ३९ ॥ जिन मनुष्योंको तैरनेका साधन नौकारूप भगवान् नहीं हैं, उन्हें तैरनेमें बड़ा कष्ट होता है। वे इन्द्रियरूपी ग्राहसे दुस्तर इस संसारको दुःखसे तैरते हैं।

विभाति माया विवेकविधुति स्रजि वाऽहिबुद्धिः ॥ तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्वं प्रत्यूढकर्मकलिलप्रति प्रपद्ये ॥३८॥ यत्पादपङ्कजपलाशविला-
सभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ॥ तद्वन्नरिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतागणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥ ३९ ॥ कृच्छ्रो महानिह
भवार्णवमप्लवेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति ॥ तत्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥ ४० ॥ मैत्रेय
उवाच ॥ स एवं ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा ॥ दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं नृपः ॥४१॥ राजोवाच ॥ कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणार्तानु-
कम्पिना ॥ तमापादयितुं ब्रह्मन्भगवन् यूयमागताः ॥४२॥ निष्पादितश्च कार्त्स्न्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः ॥ साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥४३॥
प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ॥ राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥ ४४ ॥ सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव
च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५ ॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रिया-
दयः ॥ ४६ ॥ यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवाद एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ॥ तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं को नाम

इसलिये तुम भगवान्के भजन करने योग्य चरणोंको नौका बनाकर दुस्तर संसार सागररूपी विपत्तिको पार करो ॥ ४० ॥ मैत्रेयजीने कहा—ब्रह्माके पुत्र ब्रह्मज्ञानी सनत्कुमारने राजाको परमतत्वका जब भलीभाँति उपदेश दे दिया तब राजा उनकी प्रशंसा करके उनसे कहने लगा ॥ ४१ ॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन, हे भगवन्, आर्तप्राणियोंपर दया करनेवाले भगवान्ने मेरे ऊपर पहले ही अत्यन्त अनुग्रह किया है। उसीको पूर्ण करनेके लिये आपलोग आये हुए हैं ॥ ४२ ॥ और दयालु आपलोगोंने उस अनुग्रहको भलीभांति पूर्ण भी किया। शरीरके सहित मेरा समस्त राज्यादिक साधुओं द्वारा प्रसादरूपसे मुझे मिला है। अतः अपना इनमें कुछ भी स्वत्व न होनेके कारण, गुरुदक्षिणाके लिये मैं आपको क्या दूँ ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् मैंने प्राण, स्त्री, पुत्र, सामग्रीके साथ गृह, राज्य, सेना पृथ्वी खजाना इत्यादि सभी वस्तुएँ आपको अर्पितकर दी ॥ ४४ ॥ वेदशास्त्रको अच्छी तरह जाननेवाला ब्राह्मण भी सेनापतित्व, राज्य, दण्ड देने तथा सबका अधिपतित्व करने योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपना ही खाता है, पहिनता है तथा दान देता है और उसीकी कृपासे क्षत्रिय आदि केवल भोजन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते हैं ॥ ४६ ॥ आत्मविचारमें वेद जाननेवालोंसे प्रतिपादित भगवान्की यह गति जिन आपलोगोंने हमसे निश्चय करके कही है। अत्यन्त कृपासे पूर्ण वे अपने इस उपकाररूपी कर्मसे ही प्रसन्न हों, क्योंकि हाथ जोड़नेके अतिरिक्त और उनका प्रत्युपकार कौन कर सकता है ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजीने कहा—राजा पृथुसे पूजित होकर वे लोग राजाके स्वभावकी प्रशंसा करते हुए आकाशमार्गसे चले गये ॥४८॥ श्रेष्ठ पुरुषोंमें मुख्य राजा पृथु आत्मशिक्षा द्वारा मनकी एकाग्रतासे आत्मामें स्थित ही अपनेको पूर्णकाम समझता था ॥४९॥ तथा समयके अनुसार शास्त्रमें बतलाये गये कार्योंको बल तथा धनके मुताबिक उचित रीति द्वारा उन्हें वह ब्रह्ममें अर्पितकर देता था ॥ ५० ॥ कर्मों के फलको ब्रह्ममें अर्पित करके कर्मों में अनासक्त स्थिर चित्तवाला वह कर्मके साक्षी आत्माको प्रकृतिसे परे मानता हुआ कार्य करता था ॥ ५१ ॥ राज्यलक्ष्मीसे युक्त निरहंकारी वह घरमें रहता हुआ भी, जैसे सूर्य आकाशमें विचरते हुए भी

तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ त आत्मयोगपतयः आदिराजेन पूजिताः ॥ शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवन्मिषतां नृणाम् ॥ ४८ ॥ वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याध्यात्मशिक्षया ॥ आप्तकाममिवात्मानं मेन आत्मन्यवस्थितः ॥ ४९ ॥ कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम् ॥ यथोचितं यथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ॥ ५० ॥ फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः ॥ कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥ ५१ ॥ गृहेषु वर्तमानेऽपि स साम्राज्यश्रियान्वितः ॥ नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥ ५२ ॥ एवमध्यात्म-योगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ॥ पुत्रानुत्पादयामास पञ्चार्चिष्यात्मसंमतान् ॥५३॥ विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥ ५४ ॥ गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ॥ मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन्प्रजाः ॥ ५५ ॥ राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ॥ सूर्यवद्विसृजन्गृह्णन्प्रतपंश्च भुवो वसु ॥५६॥ दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः । तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥ ५७ ॥ वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ॥ समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥ ५८ ॥ धर्मराडिव

कहीं आसक्त नहीं होते वैसेही विषयोंमें आसक्त नहीं होता था ॥ ५२ ॥ इसप्रकार आत्मयोगसे कर्म करता हुआ वह अर्चि नामकी स्त्रीमें अपने अनुकूल पाँच पुत्र पैदा किये ॥ ५३ ॥ विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण तथा वृक—ये उनके नाम हैं। एकही पृथुने समस्त लोकपालोंके गुणोंको धारण किया ॥ ५४ ॥ अपने-अपने समयपर संसारकी रक्षाके लिये मन तथा वाणीकी वृत्तियों और सुन्दर गुणोंसे प्रजाका मनोरञ्जन करता हुआ द्वितीय सोमराजकी नाईं 'राजा, इस नामको प्राप्त करता हुआ एवं पृथ्वीका धन ग्रहण करता और उसका वितरण करता हुआ तथा आज्ञासे तपाता हुआ अच्युतात्मक वह सूर्यके समान था ॥ ५५, ५६ ॥ अपने तेजसे अग्निके समान दुर्धर्ष था, इन्द्रके समान जीतनेमें अशक्य था, सहनशीलतामें पृथ्वीके समान था और मनुष्योंके मनोरथ पूर्ण करनेमें वह स्वर्गके समान था ॥ ५७ ॥ मेघके समान सबको प्रसन्न करता हुआ अभीष्ट वस्तुकी वर्षा करता था, समुद्रके समान गम्भीर था तथा सामर्थ्यमें मेरुके समान था ॥ ५८ ॥ दण्ड देनेमें धर्मराजके समान, आश्चर्यमें हिमालयके समान था, कुबेरके समान धनसे पूर्ण और वरुणके समान गुप्तार्थ था ॥ ५९ ॥ शरीर,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मन तथा इन्द्रियोंके बलमें सर्वात्मा वायुके समान तथा अविषह्य होनेके कारण भगवान् शंकरके समान था। ॥ ६० ॥ सुन्दरतामें कामदेवके समान तथा सिंहके समान धीर और निर्भय था। मनुष्योंमें मनुके समान प्रेम करता था ॥ ब्रह्माके समान इसका प्रभुत्व था ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिके समान वेद जानता था तथा जितेन्द्रियोंमें भगवान् हरिके समान था एवं भगवान्का

शिक्षायामाश्रये हिमवानिव ॥ कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥ ५९ ॥ मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा ॥ अविषह्यतया देवो भगवान्भूतराडिव ॥ ६० ॥ कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराडिव ॥ वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः ॥ भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥ ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥ ६२ ॥ कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अनुशरण करनेवाले गौ, गुरु तथा ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेमें इसके समान दूसरा कोई नहीं था। लज्जा, विनय तथा शीलसे परोपकार करनेमें इसकी उपमा खोजे कहीं नहीं मिलती थी ॥ ६२ ॥ तीनों लोकोंमें सत्पुरुषों द्वारा जहाँ-तहाँ अत्यन्त गाई गई कीर्तिसे सज्जनोंके कानोंमें रामके समान, वह स्त्रियोंके कानोंमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६३ ॥

बाईसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, इसप्रकार मनुष्योंके कहनेपर वहाँ सनत्कुमारआदि चारो मुनि आये। उन्हें देखकर राजाने उठकर उनका सत्कार किया और कहा—इस संसारमें मनुष्यका कल्याण किस वस्तुसे होता है। राजाके यों पूछनेपर सनत्कुमारने कहा—हे राजन्, आत्मासे अन्य वस्तुओंमें असङ्ग तथा ब्रह्ममें प्रेम करनेसे ही कल्याण होता है। तब राजासे कहा—आपने बड़ा अनुग्रह किया, इसलिये आप इसीसे प्रसन्न हो जाइये। मैं आपको केवल हाथ जोड़ता हूँ। तब उसकी प्रशंसा करते हुए सनत्कुमार चले गये। तदनन्तर राजाने अर्चिभार्यामें पाँच पुत्र विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यश्व, द्रविण और वृक ये उत्पन्न किये तथा प्रजाओंका अनुरञ्जन किया। बाईसवाँ अध्याय समाप्त ❁

❁ अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ❁

(स्त्री के सहित राजा पृथु का वैकुण्ठ जाना)

मैत्रेयजीने कहा—तदनन्तर एक समय आत्मज्ञानी प्रजापति अपनी वृद्धावस्था देखता हुआ ॥ १ ॥ जिस कार्यके लिये यहाँपर जन्म लिया था, उस प्रजापालन आदिरूप

मैत्रेय उवाच ॥ दृष्ट्वात्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान् ॥ आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥ १ ॥ जगतस्तस्थुषश्चापि

ईश्वरके आदेशको पूर्ण करके स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंकी जीविका चलानेवाला आत्मज्ञानी-प्रजापालक अन्न आदिका वृद्धिकरनेवाला धर्मात्मा वह विरहसे रोती हुई पृथ्वी, पुत्रोंको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सौंपकर स्त्रीके साथ तपोवनको चला गया। तब प्रजा बहुत दुःखी हुई ॥ २, ३ ॥ उस तपोवनमें भी विघ्नोंसे नष्ट न होनेवाले नियमोंका पालन करता हुआ वानप्रस्थ आश्रमके अनुकूल उस तपस्यामें ऐसे प्रवृत्त हुआ, जैसे पहले पृथ्वीके विजयमें प्रवृत्त हुआ था ॥ ४ ॥ कभी कन्द, मूल, तथा फलोंका आहार करता था, कभी शुष्क पत्ते चबाता था, कई पक्षोंतक वह जल पी कर ही रह जाता था। आखिरमें वह केवल वायु पान कर रहने लगा था ॥ ५ ॥ वीर गर्मीके दिनोंमें वह पाँच अग्नियोंसे तपता था तथा वर्षामें धारासे बरसनेवाले जलको सहता था। शिशिरऋतुमें कण्ठतक जलमें डूबा रहता था एवं सर्वदा नीचे सोता था ॥ ६ ॥ इसप्रकार अनेक कष्टोंको सहता हुआ जितेन्द्रिय वह प्रणायामसे मनको रोककर ब्रह्मचर्य धारण करके भगवान्‌को प्रसन्न करनेकी इच्छासे उत्तम तपस्या करने लगा ॥ ७ ॥ इसप्रकार धीरे-धीरे प्राप्त उस तपस्यासे इसके समस्त कर्म जब नष्ट हो गए, तब इसका अन्तःकरण पवित्र हो

वृत्तिदो धर्मभृत्सताम् ॥ निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥ २ ॥ आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव ॥ प्रजासु विमनस्स्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥३॥ तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते ॥ आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥ ४ ॥ कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ॥ अब्भक्षः कतिचित्पक्षान्वायुभक्षस्ततः परम् ॥ ५ ॥ ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ॥ आकण्ठमग्नः शिशिर उदके स्थण्डिलेशयः ॥ ६ ॥ तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता जितानिलः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥ ७ ॥ तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्मामलाशयः ॥ प्राणायामैः सन्निरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारो भगवान्यदाहाध्यात्मिकं परम् ॥ योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ॥ भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत् ॥ १० ॥ तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्वात्मनस्तदनु संस्मरणानुपूर्त्या ॥ ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम् ॥ ११ ॥ छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ॥ तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥

गया। जिससे कि समस्त वासनाएँ नष्ट हो गईं। तथा प्राणायामसे कामादि षड्वर्गोंको जीत लिया। तदनन्तर उसके बन्धन कट गए ॥ ८ ॥ भगवान् सनत्कुमारने जिस परम अध्यात्मयोगका उपदेश दिया था, पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा पृथु उसीसे भगवान्‌का भजन करने लगा ॥ ९ ॥ श्रद्धापूर्वक सदा भगवान्‌की भक्तिमें यत्न करनेवाले सदाचारी उस महात्माकी भगवान् परब्रह्ममें अनन्यभक्ति उत्पन्न हो गया ॥ १० ॥ भगवान्‌की परिचर्यासे उसका मन शुद्ध हो गया और उसे विराग देनेवाला ज्ञान उत्पन्न हुआ। तथा भगवान्‌का स्मरण करनेसे पूर्ण होनेवाली उस परिचर्यासे तीक्ष्ण उस ज्ञानसे संशयादिककी आश्रयभूत अपनी उपाधिरूप हृदयग्रन्थिको नष्ट कर दिया ॥ ११ ॥ तब इसकी देहादिमें आत्मबुद्धि नष्ट हो गई और उसे ज्ञान हो गया, जिससे कि प्राप्त हुई सिद्धियोंमें निःस्पृह हो गया। और जिस ज्ञानसे हृदयग्रन्थिको नष्ट किया था, उस ज्ञानको भी उसने छोड़दिया, क्योंकि जब तक मनुष्य भगवान्‌की कथाओंमें प्रेम नहीं करता, तबतक वह सिद्धियोंसे प्रमत्त ही रहता है ॥ १२ ॥ इसप्रकार वीरवर पृथुने अपनी आत्माको ब्रह्ममें लगाकर स्वयं ब्रह्मरूप हो समय आनेपर शरीर छोड़ दिया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ १३ ॥ उसने गुदाको पार्ष्णिसे रोक कर धीरे-धीरे वायुको ऊपर उठाया और उसे नाभिमें स्थापित किया, फिर वहाँसे उठाकर कोष्ठमें स्थापित किया। तदनन्तर हृदयमें, उसके बाद उरमें, पुनः कण्ठमें और तब फिर उसे भ्रुकुटिके मध्यमें स्थापित किया ॥ १४ ॥ और उस वायुको क्रमशः ऊपर उठाता हुआ ब्रह्मरन्ध्रमें ले गया। तब शरीरगत वायुको वायुमें लयकर दिया। कठिनांशको पृथ्वीमें और तेजको तेजमें विलीनकर दिया ॥ १५ ॥ छिद्रोंको आकाशमें और द्रव्यको जलमें इसप्रकार शरीरका यथास्थानोंमें लय किया। यों देहको विलीन करके बादमें अद्वितीय आत्माकी प्रतिपत्तिके लिए महाभूतोंको भी विलीनकर दिया—पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें लीन किया ॥ १६ ॥ इन्द्रियोंमें मनको और इन्द्रियोंको शब्दादि विषयोंमें लीन कर दिया। तदन्तर विषयोंको अहङ्कारमें और अहङ्कारको भी महतत्त्वमें लीन किया ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण कार्यकी जिसमें स्थिति है ऐसे महतत्त्वको

एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥ १३ ॥ संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयन् शनैः ॥ नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरःकण्ठशीर्षणि ॥ १४ ॥ उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निस्पृह ॥ वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥ १५ ॥ खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः ॥ क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ १६ ॥ इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ॥ भूतादिनाऽमून्युत्कृष्य महत्यात्मनि सन्दधे ॥ १७ ॥ तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ॥ तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः ॥ १८ ॥ अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् ॥ सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥ १९ ॥ अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषया चार्षदेहयात्रया ॥ नाविन्दतार्तिं परिकर्शितापि सा प्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ॥ २० ॥ देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ॥ आलक्ष्य किञ्चिच्च विलप्य सा सती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥ २१ ॥ विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ॥ नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य विवेश वह्निं ध्यायती

मायामय जीवमें लीन किया और आत्मामें स्थित उस उपाधिको, जो पहले उपाधियुक्त जीव था उसने ज्ञान तथा वैराग्यके प्रभावसे अपने स्वरूपमें स्थित होकर छोड़ दिया ॥ १८ ॥ अब उसकी स्त्रीकी दशा सुनिए—पृथुकी पत्नी महारानी अर्चि अत्यन्त सुकुमारी थी, वह पैरोंस पृथ्वीका स्पर्श करने योग्य यद्यपि नहीं थी, तथापि उसके साथ वनमें चली गई ॥१९॥ और वहाँपर अपने पतिके भूमिमें शयन आदिरूप व्रत, धर्ममें निष्ठा रखती हुई वह उनकी सेवा करने लगीं। वहाँ कन्द, मूल आदिके आहारसे अत्यन्त कृश होजानेपर भी उसने दुःख प्राप्त नहीं किया, क्योंकि पतिके हाथके स्पर्शसे तथा मानसे उसे सुख होता था ॥ २० ॥ पृथ्वी तथा अपने पति पृथुके चेतनादिकसे रहित शरीरको देखकर कुछ विलाप करके पर्वतके शिखरपर चिता बनाकर उसके ऊपर स्थापित किया ॥ २१ ॥ और उस समयके उचित कर्म करके तथा स्नानकर अपने पतिको जला दिया और अन्तरिक्षमें स्थित देवताओंको नमस्कार करके अग्निकी तीन प्रदक्षिणा की एवं अपने पतिके चरणोंका ध्यान करती हुई वह अग्निमें प्रविष्ट हो गई ॥ २२ ॥ तब अपने पति वीरवर पृथुके पीछे जाती हुई उसे देखकर देवताओंकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हजारों स्त्रियाँ उनके साथ उसकी स्तुति करने लगीं ॥ २३ ॥ तथा देवताओंके बाजे बजने लगे ओरउस मन्दराचल पर्वतके शिखरपर पुष्पोंकी वृष्टि करती हुई परस्पर कहने लगीं ॥२४॥ देवियोंने कहा—अहो, यह अर्चि धन्य है, इसने राजा पृथुकी सम्पूर्ण भावोंसे ऐसी सेवा की, जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी सेवा करती हैं ॥२५॥ निश्चयही यह सती अर्चि असती स्त्रियोंके न करने लायक अपने कर्मसे हमलोगोंको लाँघकर अपने पति पृथुके पीछे वैकुण्ठको जा रही है। यह देखो ॥ २६ ॥ इस पृथ्वीके ऊपर चंचल आयुवाले भी जो मनुष्य भगवान्का पद दिलानेवाले ज्ञानका सम्पादन करते हैं। उन्हें कौन-सी अन्य वस्तु दुर्लभ है ? ॥ २७ ॥ और जो बड़ी कठिनतासे इस पृथ्वीपर मोक्षका साधन यह मनुष्यशरीर पाकर भी विषयोंमें आसक्त होता है, वह आत्मघाती है मायासे वह वञ्चित किया गया है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार देवाङ्गनाएँ जब कह रही थीं, उसी समय वह पतिके लोकको गई, जहाँपर

भर्तृपादौ ॥ २२ ॥ विलोक्यानुगतां सध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् ॥ तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥ २३ ॥ कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मन्दरसानुनि ॥ नदत्स्वमरतूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परम् ॥ २४ ॥ देव्य ऊचुः ॥ अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिम् ॥ सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥ २५ ॥ सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती ॥ पश्यतास्मनतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥ २६ ॥ तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् ॥ भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥ २७ ॥ स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ॥ लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्तुवतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः ॥ यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥ २९ ॥ इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः ॥ कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥ ३० ॥ य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् ॥ श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात ॥३१॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ॥ वैश्यः पठन्विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥ ३२ ॥ त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवादृता ॥ अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ ३३ ॥ इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥ ३४ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां

ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पृथु भगवान्की भक्ति करके गया था ॥ २९ ॥ भगवान्के भक्त उस पृथुका इस प्रकारका प्रभाव था। सुन्दर उस पृथका चरित्र मैंने आपसे कहा ॥ ३० ॥ जो मनुष्य परम पवित्र इसे श्रद्धासे सावधान होकर पढ़ता है, सुनाता है और सुनता है, वह पृथुके स्थानको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ इसके पढ़नेसे ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे युक्त होता है, क्षत्रिय पृथ्वीका राजा होता है, वैश्य पशु तथा वैश्योंका पति होता है और शूद्र सुननेसे ही श्रेष्ठताको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥ पुरुष तथा स्त्री आदरपूर्वक तीन बार इसे सुनकर यदि पुत्र से रहित हो, तो पुत्र प्राप्त करता है तथा निर्धन पुरुष धन प्राप्त करता है। जिसकी कीर्ति न हो, उसकी कीर्ति दूर-दूरतक फैल जाती है तथा जो मूर्ख रहता है वह भी पण्डित हो जाता है ॥ ३३ ॥ यह चरित्र कल्याणका देनेवाला तथा मनुष्योंके पापको दूर करनेवाला है धन, यश, आयु तथा स्वर्ग देनेवाला है और कलियुगके मलोंको दूर करता है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य धर्म, अर्थ,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

काम, तथा मोक्ष चाहता है, वह श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करे, क्योंकि इन चारोंका यही परमश्रेष्ठ कारण है ॥ ३५ ॥ विजय चाहनेवाला राजा इसे सुनकर जिन राजाओंके सम्मुख सहुँचता है, वे राजे उसे भेंट देते हैं, जैसे कि पहले राजालोग पृथुको देते थे ॥ ३६ ॥ समस्त आपत्तियोंको छोड़कर भगवानहीमें शुद्ध भक्ति करता हुआ पृथुका चरित्र सुने तथा दूसरों

सम्यक्सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥ ३५ ॥ विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदभियाति यान् ॥ बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥ ३६ ॥ मुक्तान्यसङ्गो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ॥ वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥ ३७ ॥ वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् ॥ अस्मिन्कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्विमुक्तसङ्गः ॥ भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ॥ ३९ ॥ इति श्रीम० म० चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

को सुनावे और स्वयं पढ़े ॥ ३७ ॥ हे वैचित्रवीर्य, मैंने भगवान्‌का यश सूचित करनेवाले पृथुका चरित्र सुनाया जो मनुष्य इसमें मन लगाता है, वह पृथुकी गति प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य समस्त आसक्ति छोड़कर प्रतिनिन आदरसे इस पृथुके चरित्रको सुनता है तथा इसका कीर्तन करता है, वह भगवान् में दृढ़ प्रेम प्राप्त करता है। जिन भगवान्‌का चरण कमल भवरूपी सागरको पार करनेमें नौकारूप है ॥ ३९ ॥

तेइसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, एक समय पृथु अपनेको वृद्ध समझ पुत्रोंको राज्य देकर स्त्रीके साथ वनको चले गये। वहाँपर नियमपूर्वक रहकर कठिन तपस्या करने लगे, जिससे इन्हें ज्ञानलाभ हुआ उसी ज्ञानसे अहंकारको नष्ट करके योगके द्वारा अपने शरीरको छोड़ दिया। तब उनकी पत्नी अर्चिने समस्त कृत्य करके उनके शरीर को चितापर रखा और स्वयं भी अग्निमें प्रविष्ट होकर पतिके लोकको चली गई। उस समय स्वर्गमें बाजे बजने लगे, आकाशसे पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और देवताओंकी स्त्रियाँ इनकी प्रशंसा करने लगीं। तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ❀

[प्राचीनबर्हिसे प्रचेताओंकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारारुद्र गीतका वर्णन]

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, विशालकीर्ति सम्पन्न पृथुका विजिताश्व नामक पुत्र राजा हुआ। उसने अपने छोटे भाइयोंको दिशाएँ दे दीं, क्योंकि वह उनपर बहुत प्रेम करता था ॥१॥

मैत्रेय उवाच ॥ विजिताश्वोऽधिराजासीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ॥ यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥ १ ॥ हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् ॥ प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥ २ ॥ अन्तर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वान्तर्धानसंज्ञितः ॥ अपत्यत्रयमाधत्त शिख-

उसने हर्यक्षको पूर्वदिशा, धूम्रकेशको दक्षिणदिशा, वृकको पश्चिमदिशा तथा द्रविणको उत्तरदिशा दी ॥ २ ॥ इन्द्रसे अन्तर्धानगति सीखकर वह विजिताश्व अन्तर्धान नामसे प्रसिद्ध हुआ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसने शिखण्डिनी भार्यामें तीन योग्य पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३ ॥ पावक, पवमान तथा शुचि ये उनके नाम हैं। पहले ये अग्नि थे, परन्तु वशिष्ठजीके शापसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और पुनः अग्निरूपको प्राप्त हो गये ॥ ४ ॥ अन्तर्धानने नभस्वती नामकी भार्यामें हविर्धानको उत्पन्न किया, जिस अन्तर्धानने घोड़ा चुरानेवाले इन्द्रको जानते हुए भी मारा नहीं ॥ ५ ॥ उसने राजाओंकी वृत्तिको कर तथा शुल्क ग्रहण करने और दण्ड देनेसे दूसरोंको दुःखदाई समझकर बड़े यज्ञके बहाने छोड़ दी, यह कम आश्चर्यकी बात न थी ॥ ६ ॥ और उस यज्ञ में पूर्णपुरुष परमात्मा पुण्यरूपसमाधिसे यजन करता हुआ वह उनके लोकको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ हे विदुरजी, हविर्धानपतिसे हविर्धानी नामकी उसकी स्त्रीने बर्हिषद् गय, शुक्ल कृष्ण, सत्य तथा जितव्रत नामके छः पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ हे कुरुद्वह हविर्धानका पुत्र प्रजापति महाभाग बर्हिषद् क्रियाकाण्ड तथा प्राणायामआदि योगमें भी निपुण था ॥ ९ ॥ इस

ण्डिन्यां सुसंमतम् ॥ ३ ॥ पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा ॥ वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ॥ ४ ॥ अन्तर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत ॥ य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥ ५ ॥ राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादिदारुणाम् ॥ मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥ ६ ॥ तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ॥ यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥ ७ ॥ हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् ॥ बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥ ८ ॥ बर्हिषत्सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः ॥ क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥९॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः ॥ प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥१०॥ सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम्॥ यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठ्वलङ्कृताम्॥ परिक्रमन्तीमुद्वाहे चमकेऽग्निः शुकीमिव॥११॥ विबुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ॥ विजिताः सूर्यया दिशुक्वणयन्त्यैव नूपुरैः ॥१२॥ प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ॥ तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥१३॥ पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ॥ दशवर्षसहस्राणि तपसाऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥१४॥ यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ॥ तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च

सम्पूर्ण वसुधातलको देवयजनरूपसे विस्तार कर रहे जिसके एक यज्ञके अनन्तर उसीके समीपमें दूसरा यज्ञ करनेसे यह सारी पृथ्वीपूर्व की ओर अग्रभागवाले कुशाओंसे व्याप्त थी ॥१०॥ ब्रह्मा से उपदिष्ट समुद्रकी शतद्रुति नामकी कन्याके साथ उसने विवाह किया। सर्वाङ्गसुन्दरी, अलंकृत जिस किशोरीका विवाहमें परिक्रमा करते समय देखकर अग्नि कामासक्त हो गये, जैसे कि शुकीको देखकर हुए थे ॥११॥ दिशाओं में नूपुरोंकी झंकार कररही नवोढ़ा उसने देवता, राक्षस, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य तथा सर्पोंको भी उस मनोहर ध्वनिसे जीत लिया ॥ १२ ॥ प्राचीनबर्हिके शतद्रुति नामकी स्त्रीमें दस पुत्र हुए। जिनका नाम प्रचेता था। वे सबके सब धर्म पारंगत थे। इन सबोंका नाम तथा व्रत (आचरण) तुल्य था ॥१३॥ उन्हें पिताने जब पुत्र उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब वे तपस्या करनेके लिए समुद्रमें प्रविष्ट हो गए और वहाँपर दस हजार वर्षोंतक तपस्यासे भगवान् हरिका पूजन करते रहे ॥ १४ ॥ मार्गमें मिले हुए भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर जो कुछ कहा उसको सावधान होकर उन्होंने ध्यान, जप तथा पूजन किया ॥१५॥ विदुरजीने कहा—प्रचेताओंका शंकरके साथ मार्गमें जैसा संग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुआ तथा प्रसन्न होकर उन्होंने जो कुछ कहा, सो हे ब्रह्मन्, आप मुझसे अर्थपूर्ण ढंगसे कहिए ॥ १६ ॥ हे विप्रर्षे, इस लोकमें मनुष्योंका भगवान् शंकरके साथ संग होना दुर्लभ है, क्योंकि मुनिलोग समस्त संग त्यागकर अपने इष्ट उन शंकरका केवल ध्यान ही करते हैं ॥ १७ ॥ आत्माराम भी भगवान् शंकर लोकोंकी रचनाकी रक्षाके लिये अपनी घोर शक्तिसे युक्त होकर विचरते हैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, पिताके वचनोंको अपने मस्तकसे स्वीकारकर महात्मा प्रचेता सब तपस्या करनेके विचारसे पश्चिम दिशामें चले गये ॥ १९ ॥ वहाँपर उन्होंने समुद्रसे कुछ कम विस्तीर्ण एक महान् सरोवर देखा। महात्मा पुरुषोंके मनके समान वह स्वच्छ था तथा उसमें रहनेवाले मत्स्यादिक सब प्रसन्न थे ॥ २० ॥ उसमें रात्रि-दिन और सन्ध्याके समय विकसित होनेवाले नीले एवं लाल रंगके कमल, उत्पल, अम्भोज, कह्लार तथा अनेक नीलोत्पन्न थे। वह सरोवर हंस, सारस, चक्रवाक तथा जलमुर्गों के

पूजयन्तश्च संयताः ॥१५॥ विदुर उवाच। प्रचेतसां गिरित्रेण यथासीत्पथि सङ्गमः ॥ यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत ॥ १६ ॥ सङ्गमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् ॥ दुर्लभो मुनयो दध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥ १७॥ आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ॥ शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः ॥ १८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसादाय साधवः ॥ दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्याहृतचेतसः ॥ १९ ॥ समुद्रमुप विस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः ॥ महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥ २० ॥ नीलरक्तोत्पलाम्भोजकह्लारेन्दीवराकरम् ॥ हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ॥ २१ ॥ मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताङ्घ्रिपम् ॥ पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥ २२ ॥ तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ॥ विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥ २३ ॥ तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् ॥ उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥ २४ ॥ तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥ २५ ॥ स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः ॥ धर्मज्ञान्शीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥२६॥ श्रीरुद्र उवाच। यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ॥

शब्दोंसे युक्त था ॥२१॥ उसके वृक्षों तथा लताओंमें मतवाले भ्रमरोंके सुन्दर गुञ्जार सुननेसे लोगोंके हृदयमें मारे आनन्दके रोंगटे खड़े हो जाते थे तथा कमलके पुष्पोंकी धूलि दिशाओंमें फैला रही वायुसे उसकी सुन्दरता और अधिक हो रही थी ॥ २२ ॥ वहाँ पर मृदङ्ग तथा पणव आदि बाजोंके पश्चात् नानाप्रकारके दिव्य मार्गों से मनोहर गान सुनकर वे राजपुत्र प्रचेता सब विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ उसी समय उस सरोवरसे अपने सेवकोंके साथ निकलते हुए भगवान् शंकरको उन्होंने देखा, देवता तथा सेवक जिनकी स्तुतिकर रहे थे ॥ २४ ॥ तपे हुए सुवर्णके समान कान्तियुक्त त्रिनेत्र देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ नीलकण्ठ भगवान्को प्रसन्न वदन देखकर उन लोगोंने आश्चर्यसे चकित होकर प्रणाम किया ॥२५॥ तब शरणागतके दुःख दूर करनेवाले धर्मवत्सल भगवान् शंकर प्रसन्न होकर धर्मज्ञ तथा सदाचार सम्पन्न प्रसन्न हुए उन प्रचेताओंसे कहने लगे ॥ २६ ॥ श्रीरुद्रने कहा—तुमलोग प्राचीनबर्हिके पुत्र हो, मैं तुम लोगोंका भगवदाराधनरूप कर्तव्य जानता हूँ। मैंने तुमलोगोंके ऊपर अनुग्रहके लिये अपना दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ जो सूक्ष्मतीनों गुणोंसे युक्त जीवसंज्ञक पुरुषसे परे साक्षात् भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वासुदेवको जिसने प्राप्त किया है वह मेरा प्रिय है ॥ २८ ॥ अपने धर्ममें स्थित मनुष्य बहुत जन्मोंमें ब्रह्मको प्राप्त करता है और जब उससे अधिक पुण्य करता है तब कहीं जाकर मुझे प्राप्त करता है परन्तु जो भगवान्का भक्त है वह इस देहके अन्तमें प्रपञ्चोंसे अतीत विष्णुके पदको प्राप्त करता है, जैसे कि मैं और देवता सब अधिकार नष्ट होनेपर प्राप्त करेंगे ॥ २९ ॥ आपलोग भगवान्के भक्त हो, इसलिये जैसे भगवान् प्रिय हैं वैसेही आप भी हैं। जो भगवान् के भक्त हैं उनके सिवा अन्य मुझे प्रिय कोई नहीं है ॥ ३० ॥ यह परम मङ्गल, पवित्र, समस्त कल्याणको देनेवाला जपनेयोग्य मन्त्र है। वह मन्त्र मैं तुमलोगोंसे कहता हूँ, तुमलोग सुनो, इसका खूब व्यापकरूप से जप करना ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार दयालु श्रीभगवान् शंकर हाथ जोड़कर खड़े हुए प्रचेताओंसे भगवत्सम्बन्धी बचन कहने लगे ॥ ३२ ॥ श्री शङ्करजीने कहा—हे भगवन्, आत्मज्ञानी श्रेष्ठ मनुष्योंके अपने आनन्द लाभके

ऽनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥ २७ ॥ यः परं रंहसः साक्षात्-त्रिगुणज्जीवसंज्ञितात ॥ भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥२८॥ स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् ॥ अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं पदं यथाहं विबुधाः कलात्यये ॥ २० ॥ अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान्यथा ॥ न मद्भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित ॥ ३० ॥ इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परम् निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाहतान् शिवः ॥ बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्नरायणपरो वचः ॥३२॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ जितं त आत्मविद्धर्य स्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे ॥ भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥३३॥ नमःपङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्तमने ॥ वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥३४॥ सङ्कर्षणाथ सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च ॥ नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्ना यान्तरात्मने ॥३५॥ नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने ॥ नम परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥३६॥ स्वर्गापवर्गद्वराय नित्यं शुचिषदे नमः ॥ नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥३७॥ नम उर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ॥ तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥३८॥

लिये तुम्हें उत्कष प्राप्त हो चुका है, अतः मुझे भी स्वानन्द सत्ता प्राप्त हो। तुम तो अपने आनन्दरूपसे ही सिद्ध हो, यही कारण है कि तुम परमानन्दरूपसे स्थित हो, अतः सर्वरूप परमात्मा आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ कमलनाभ भगवान्को नमस्कार है। पृथिव्यादि पाँच महाभूत, शब्दादि तन्मात्रा तथा इन्द्रियोंका नियन्त्रण करनेवाले भगवान्को नमस्कार है तथा निर्विकार, शान्त, स्वयंप्रकाश, चित्तके अधिष्टाता वासुदेव भगवान्को नमस्कार है ॥ ३४ ॥ सूक्ष्म, अपनी और अपने मुखकी अग्निसे संसारको भस्म करनेवाले अहंकारके अधिष्ठाता संकर्षण भगवान्को नमस्कार है तथा संसारको बोध करानेवाले बुद्धिके अधिष्ठाता प्रद्युम्न भगवान्को नमस्कार है ॥ ३५ ॥ विषयोंके स्वामी इन्द्रियें तथा मनके अधिष्ठाता भगवान् अनिरुद्धको बार-बार नमस्कार है, अपने तेजसे पूर्ण यानी विश्वव्यापी क्षय और वृद्धिसे रहित भगवान् सूर्य को नमस्कार है ॥३६ ॥ स्वर्ग तथा मोक्षके द्वारभूत, चातुर्होत्र कर्मके साधन तथा उसका विस्तार करनेवाले नित्य, पवित्र, हिरण्यवीर्य, अग्निरूप भगवान्को नमस्कार है ॥ ३७ ॥ पितर तथा देवताओंके अन्नरूप तीनों वेदोंके पति भगवान् चन्द्रमाको नमस्कार है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा समस्त जीवोंको तृप्त करनेवाले जलरूप तुम्हें नमस्कार है ॥ ३८ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर भूत विराट् पृथ्वीको नमस्कार है। तीनों लोकोंका पालन करनेवाले मनुष्यकी मन, इन्द्रिय तथा शरीरकी शक्तिरूप वायुको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ बाहर-भीतर किसी तरहके व्योवहारको सहारा न करनेवाले तथा अर्थके ज्ञापक आपको नमस्कार है। एवं अत्यन्त तेजयुक्त इस पुण्यमय स्वर्गलोकको नमस्कार है ॥ ४० ॥ प्रवृत्त तथा निवृत्त कर्मरूप तुम्हें नमस्कार है। जिनकर्मोंसे पितृलोक तथा स्वर्गलोक मिलता है तथा अधर्मका फल दुःख देनेवाले मृत्युरूप तुम्हें नमस्कार है ।।४१।। हे इश, सम्पूर्ण कर्म फल देनेवाले मनुको नमस्कार है। तथा परम धर्मस्वरूप तीक्ष्ण बुद्धिवाले पुराणपुरुष सांख्य, योगके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ तीनों शक्तियोंसे युक्त अहङ्काररूप भगवान् रूपको नमस्कार है। नाना प्रकारकी वाणी उत्पन्न करनेवाले ज्ञान तथा क्रियारूप ब्रह्मको नमस्कार है ।।४३।। हे प्रभो, आपके रूपका दर्शन करनेको हमलोग अत्यन्त उत्कण्ठित हैं इसलिए आप अपने उस सुन्दर रूपका दर्शन कराइए। जिसका आपके भक्त पूजन करते हैं और जो समस्त विषयोंका

सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ॥ नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलाय च ।।३९।। अर्थलिङ्गाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ॥ नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४० ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ॥ नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥ नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने ॥ नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥ ४२ ॥ शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहं कृतात्मने ॥ चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥ ४३ ॥ दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ॥ रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥४४॥ स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसङ्ग्रहम् ॥ चार्वायतचतुर्बाहु सुजातरुचिराननम् ॥४५॥ पद्मकोशपलाशाक्ष सुन्दरभ्रु सुनासिकम् ॥ सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥४६॥ प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरुपशोभितम् ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥४७॥ स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४८ ॥ सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् ॥

व्यञ्जक (प्रकाशक) है ॥ ४४ ॥ जो आपका रूप वर्षाकालके स्निग्ध मेघके समान श्याम है, जो समस्त सुन्दरतासे युक्त है, जिसमें सुन्दर तथा लम्बी चार भुजाएँ है और जो उचित अवयवोंसे सुन्दर मुखसे सुशोभित है ॥ ४५ ॥ जो कमलपत्रके समान नेत्र, सुन्दर भौंह तथा सुन्दर नासिकासे शोभित हैं और दाँत, कपोल तथा जिसमें तुल्यकर्णरूपी अलङ्कार है ॥ ४६ ॥ प्रेमपूर्वक हास्य युक्त जैसे नेत्र कटाक्षोंसे शोभित बालोंसे अलंकृत, उज्वल कुण्डलोंसे युक्त मुखसे अत्यन्त शोभायमान तथा जो कमलके परागके समान सुन्दरवस्त्रोंसे मनोहर है ॥ ४७ ॥ तथा चमकते हुए मुकुट, बाहुभूषण, हार, नूपुरों और करधनीसे जो युक्त है। जिसकी शोभा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, माला तथा मणिसे खूब चढ़ी-बढ़ी है ॥ ४८ ॥ सिंहके समान स्कन्धोंकी कान्ति धारण किए हुए जो कुण्डलादिककी शोभासे पूर्ण है। कौस्तुभमणि जिसकी ग्रीवामें शोभित हो रही है जो अपनी तथा शोभासे स्वर्णरेखाङ्कित निकषपाषाण को तिरस्कृत करदेनेवाले वक्षःस्थलसे उल्लसित है ॥ ४९ ॥ साँस लेनेके कारण चञ्चल त्रिवलियोंसे अत्यन्त सुन्दर पीपलके पत्रके सदृश, उदरसे युक्त उत्पन्न हुए इस विश्वको पुनः उसीमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रवेश कराती हुई सी आवर्त सदृश गहरी नाभीसे जो समन्वित है ॥ ५० ॥ जिसमें श्याम श्रोणिकी कान्तिसे सुन्दर वस्त्रपर सुवर्णमयी मेखला है, जो बराबर जङ्घा, ऊरु और चरणोंसे समन्वित तथा नीची जानुसे दर्शनीय है ॥ ५१ ॥ शरत्कालमें होनेवाले कमलके समान कान्तिवाले तथा नखकी कान्तिसे हम लोगोंके अज्ञानको नष्ट करनेवाले अपने चरणसे आप अपना रूप दिखलाइए, जिसके देखनेसे समस्त भय दूर हो जाते हैं। हे गुरो, आप अज्ञानी हम लोगोंके मार्ग प्रदर्शक गुरु हैं ॥ ५२ ॥ अपनी आत्माकी शुद्धि चाहनेवाले तथा अपने धर्मका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके ध्यान करने योग्य यह रूप है। जिससे अभय प्रदान करनेवाला भक्तियोग प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ यद्यपि आप सर्वसाधारण मनुष्योंको दुर्लभ हैं, तथापि भक्तिमान् मनुष्य से तो आपको प्राप्तव्य हैं ही। अप स्वगमें रहनेवाले भी चाहते हैं तथा एकमात्र आत्मतत्त्व ज्ञानी मनुष्यकी भी आप गति हैं ॥ ५४ ॥ साधुओंके भी दुर्लभ,

श्रियानपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ ४९ ॥ पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ॥ प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्यावर्तगभीरया ॥५०॥ श्याम-श्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ॥ समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥५१॥ पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ॥ प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥५२॥ एतद्रूपमनध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम् ॥ यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५३ ॥ भवान्भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥ स्वराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥ ५४ ॥ तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ॥ एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५५॥ यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ॥ विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥५६॥ क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥५७॥ अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिःस्नानविधूतपाप्मनाम् ॥ भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥५८॥ न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ॥ यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥५९॥ यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ॥ तत्त्वं ब्रह्म

दुराराध्य आपकी अनन्यभक्तिसे आराधना करके आपके चरणकमलोंके अतिरिक्त अन्य स्वर्गादि सुख कौन चाहेगा ? ॥ ५५ ॥ जिन आपके चरणोंकी शरणमें प्रविष्ट हुए पुरुषके विषय में अपने प्रभाव और उत्साहसे भौं टेढ़ी करके संसारका नाश करनेवाला काल भी अभिमान नहीं करता कि यह मेरे वशमें है ॥ ५६ ॥ आपके भक्तोंके एक क्षणके सङ्ग बराबर मैं जब स्वर्गको नहीं समझता और न मोक्षको ही गिनता हूँ तब भला मनुष्योंके राज्यादिक सुखको उसके बराबर मैं कैसे मान लूँ ॥ ५७ ॥ इसलिए पापोंको नष्ट करनेवाले चरणकमलों वाले आपके यश तथा गङ्गामें भीतर-बाहर स्नान करनेसे जिनका पाप धो गया हो और जो प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेवाले तथा सरल स्वभावके मनुष्य हों उनसे मेरा सङ्ग हो, यही आपका मैं अनुग्रह चाहता हूँ ॥ ५८ ॥ जिन सज्जनोंके भक्ति योगसे शुद्ध हुआ चित्त न तो बाहरी विषयोंसे विक्षिप्त होता है और न विक्षिप्त होकर अज्ञानरूपी गुहामें लीन ही होता है। उस समय मुनि एक मात्र आपके स्वरूपकी स्थितिको शीघ्र देखने लगता है ॥ ५९ ॥ जिस तत्त्वमें यह जगत् प्रकाशित होता है, और इस जगत्में जो प्रकाशित होता है, वही अत्यन्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकाश स्वरूप आकाशके समान विस्तृत परतत्त्व ब्रह्म है ॥ ६० ॥ जिससे दूसरेको भेद बुद्धि उत्पन्न होती है, जो अनेक रूपोंको धारण करनेवाली है तथा जो आपमें अपना कार्य करनेमें असमर्थ है, ऐसी अपनी मायासे जी स्वयं विकार शून्य होकर भी इस संसारको सत्यके समान पैदा करता है, पालन करता है और फिर अन्तमें संहार करता है, हे भगवन्, उन्हीं भेदशून्य आपको जानता हूँ ॥ ६१ ॥ जो कर्म योगी क्रियाकलापों से यानी यज्ञादिसे अपनी सिद्धिके लिए श्रद्धापूर्वक पांच महाभूत, इन्द्रिय तथा अन्तःकरणसे उपलक्षित इसका भली-भाँति यजन करते हैं, वे ही वेद तथा शास्त्रमें पण्डित हैं ॥ ६२ ॥ एक आप ही आदि पुरुष हैं। पहले आपकी माया शक्ति सोई हुई थी, पीछे उसने उठकर सत्त्व, रज तथा तमोगुणका विभाग किया। जिनसे महत्तत्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज, जल, देवता ऋषि तथा भूतगण आदि यह सारा संसार उत्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥ आपने अपनी शक्तिसे विरचित चार प्रकार के पुरोंमें अपने ही अंशसे प्रवेश किया, इसलिए दूसरेके भीतर विद्यमान चिदाभासको पुरुष कहते हैं। जो मधुमक्खियोंके द्वारा सृष्ट मधुकी नाईं इन्द्रियोंसे विषयसुखों का भोग करता

परंज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६० ॥ यो माययेदं पुरुरूपयासृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ॥ यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि॥ ६१॥ क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६२॥ त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ॥ महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥ ६३ ॥ सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ॥ अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥ ६४ ॥ स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ॥ भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥ ६५ ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ६६ ॥ कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ॥ विशङ्कयास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥ ६७ ॥ अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् ॥ विश्वं रुद्रभयध्व-

है उसे जीव कहते हैं ॥ ६४ ॥ जिसने अपनी शक्तिसे इस जगत्की सृष्टि की है वही अति प्रचण्ड वेगयुक्त आप निःसन्देह भूतोंके द्वारा भूतोंको विचलित कराते हुए लोकोंकाऐसे संहार करते हैं, जैसे असह्य वायु मेघपंक्तिको इधर-उधर विचलित करती हुई उन्हें नष्ट करती है, लेकिन हे भगवन्, आपका स्वरूप किसीको ज्ञात नहीं होता ॥ ६५ ॥ यह कृत्य मुझे इस तरह करना चाहिये, यह मेरा कर्तव्य है, यों कर्मोंकी चिन्तासे अत्यन्त प्रमत्त विषयों में लोलुप्त अतएव विषयों के प्राप्त होने पर भी प्रवृद्ध लोभवाले मनुष्योंके ऊपर मृत्यु स्वरूप आप सहसा ऐसे आक्रमण करते हैं, जैसे भूखसे ओठ चाटनेवाला सर्प मूषक पर आक्रमण करता है ॥ ६६ ॥ अतः आपके अपमानसे नाशको प्राप्त हुए—जैसे शरीरवाला भला ऐसा कौन पंडित होगा, जो आपके चरणकमलको छोड़ देगा ? जिसे नाशकी शङ्का हमारे गुरु ब्रह्माजी तथा चौदह मनु भी बिना किसी हिचकिचाहटके दृढ़ विश्वाससे पूजते हैं।।६७।।हे ब्रह्मन्, विद्वानों के आप परम आत्मस्वरूप हैं तथा यह समस्त संसार शङ्कर के भयसे ध्वस्त यानी ग्रस्त है। इसलिए कहींसे जिसमें भय न हो ऐसे अकेले आपही हम लोगों की शरण हैं ॥ ६८ ॥ हें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजपुत्रो, तुम लोग अपने धर्मका अनुष्ठान करते हुए भगवान्में मन लगाकर विशुद्ध भावसे इसका जप करो। इससे तुम लोगोंका कल्याण होगा ॥ ६९ ॥ बार-बार उन्हींका ध्यान तथा जप करते हुए तुम लोग अपनी आत्मा तथा समस्त प्राणियोंमें अवस्थित आत्मस्वरूप उन्हीं श्रीहरिका पूजन करते रहो ॥ ७० ॥ मुनिव्रत धारण करते हुए एकाग्रचित्त हो आप सबके सब योगादेशनामक इस स्तोत्रको पाठके द्वारा प्राप्त करके मनसे ध्यान करते हुए बड़े आदरके साथ अभ्यास करते चलिये ॥ ७१ ॥ बहुत दिन पहले सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माने उसीकी इच्छा करनेवाले अपने पुत्र भृगु आदिके सम्मुख यह स्तोत्र हम लोगोंसे कहा था ॥ ७२ ॥ उन्हीं समस्त प्रजापति हमलोगोंने प्रजाओंकी सृष्टि करनेके लिए ब्रह्मासे प्रेरित होकर इसका जप किया। इससे अपना अज्ञान नष्ट करके हमलोगोंने नाना प्रकारकी प्रजाएँ उत्पन्न कीं ॥ ७३ ॥ अतः इस मन्त्रको मनुष्य सावधान होकर एकाग्रचित्तसे नित्य जपता हुआ

स्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥६८॥ इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ॥ स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥६९॥ तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥ ७० ॥ योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः ॥ समाहितधियः सर्व एतदभ्यसताहृताः ॥ ७१ ॥ इदमाह पुरास्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः ॥ भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥ ७२ ॥ ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ॥ अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥ ७३ ॥ अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् ॥ अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७४ ॥ श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ॥ सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७५ ॥ य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ॥ अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ॥ ७६ ॥ विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम् ॥ मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ॥ ७७ ॥ इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः ॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥७८॥ गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ॥ जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ॥ ७९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

शीघ्र ही कल्याण प्राप्त करता तथा वासुदेव परायण हो जाता है ॥ ७४ ॥ इस संसारमें समस्त कल्याणकारी वस्तुओंमें ज्ञान अत्यन्त श्रेष्ठ है क्योंकि अन्य उपायोंसे दुस्तर भी दुःखरूपी समुद्रको ज्ञानरूपी इस नौकासे सुखपूर्वक मनुष्य पार कर लेता है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य मेरे कहे हुए इस स्तोत्रको एकाग्रचित्त होकर श्रद्धासे पढ़ता है, वह दूसरोंसे दुर्लभ भी भगवान्को प्राप्त करता है ॥ ७६ ॥ और मनुष्य स्थिर होकर जो-जो चाहता है वह सब मेरे इस स्तोत्रसे स्तुत हुए, परम प्रसन्न, समस्त कल्याणोंके एकमात्र आश्रय भगवान्से प्राप्त कर लेता है ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्रको श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर सुनता या सुनाता है, वह कर्मके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७८ ॥ हे राजपुत्रो, मैंने यह परम पुरुष भगवान् परमात्माका स्तोत्र कहा है। एकाग्रचित्तसे इसका जप करते हुए तुम लोग उत्तम तपस्या करो। इससे आगे चलकर इच्छित वस्तु तुम लोग प्राप्त करोगे ॥ ७९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चौबीसवें अध्यायका सार—हे विदुरजी, पृथुका पुत्र विजिताश्व राजा हुआ। उसने अपने छोटे भाइयोंको दिशाओंका राज्य बाँट दिया तथा शिखण्डिनी स्त्रीमें पावक, पवमान और शुचि—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये एवं नभस्वतीमें हविर्धानको उत्पन्न किया। बर्हिषद् आदि छः पुत्र हुए। बर्हिषद्ने यज्ञ करके पृथ्वीको कुशोंसे व्याप्तकर दिया। उसके प्रचेता नामके दस पुत्र हुए। वे पिताकी आज्ञा पाकर तपस्याको चल पड़े। मार्गमें भगवान् शङ्करका दर्शन हुआ। भगवान् शिवने उन्हें रुद्रगीतका उपदेश दिया। चौबीसवाँ अध्याय समाप्त

❀ अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ❀

(नारदका प्राचीनबर्हीको पुरञ्जनकी कथा सुनाना)

मैत्रेयजीने कहा—जब शङ्करने प्रचेताओंको इस प्रकारका उपदेश दिया तब उन्होंने उनकी पूजा की और भगवान् शङ्कर उनके देखते-देखते अलक्षित हो गये ॥१॥ तब सब प्रचेताओंने शङ्कर द्वारा कहे गये स्तोत्रका जप करते हुए दसहजार वर्षों तक जलमें तपस्या की ॥२॥ हे विदुरजी, आत्मतत्त्व जाननेवाले कृपालु नारदमुनिने प्राचीनबर्हीको जब कर्मोंमें आसक्त चित्त देखा तब उसके पास आकर उसे ज्ञानका उपदेश दिया ॥ ३ ॥ हे राजन्, तुम कर्मोंसे आत्माका कौनसा फल चाहते हो ? यदि दुःखकी निवृत्ति तथा सुखकी प्राप्ति चाहते हो, तो

मैत्रेय उवाच ॥ इति सन्दिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः ॥ पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ १ ॥ रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ॥ जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥ २ ॥ प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ॥ नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥ श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणात्मन ईहसे ॥ दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ॥ ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥५॥ गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदाराधनार्थधीः ॥ न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ भो भो प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे ॥ संज्ञापितान् जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७ ॥ एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव ॥ संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥ अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् ॥ पुरञ्जनस्य चरितं

इस कर्ममें ये दोनों नहीं हैं ॥ ४ ॥ राजाने कहा—हे महाभाग, कर्मोंसे मेरी बुद्धि चञ्चल हो गई है, इसलिए मैं श्रेय नहीं जानता। आप मुझसे निर्मल ज्ञानका उपदेश दीजिए, ताकि मैं कर्मोंसे मुक्त हो जाऊँ ॥ ५ ॥ मैं मूर्ख स्त्री, पुत्र तथा धनको ही पुरुषार्थ समझकर कूटधर्मवाले घरों में स्थिति हो इस संसारमें भटकता हुआ अकल्याण को प्राप्त कर रहा हूँ ॥ ६ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन, तुमने अपने यज्ञमें कठोरता पूर्वक जिन हजारों जीव समूहोंकी हत्या की है उन पशुओंको देखो ॥ ७ ॥ ये तुम्हारे द्वारा दी गई पीड़ाका स्मरण करते हुए तुम्हारे मरनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और जब तुम मरोगे, तब तुम्हें लोहेके सींगोंसे क्रोध करके खूब खेदेंगे ॥ ८ ॥ इस विषयमें तुमसे मैं पुरंजनका चरित्ररूप पुराना यह इतिहास कहता हूँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तुम ध्यान लगाकर श्रवण करो ॥ ६ ॥ हे राजन्, पुरंजन (जीव) नामका एक अत्यन्त कीर्तिशाली राजाथा। उसका अविज्ञात नामका मित्र था। वह क्या करनेवाला है यह कोई नहीं जानता था ॥ १० ॥ वह राजा शरण* ढूढता हुआ पृथ्वीमें या यों कहिये कि सारे ब्रह्माण्डमें घूमने लगा और जब उसने अपने योग्य गृह प्राप्त नहीं किया तब अत्यन्त उदास हो गया ॥ ११ ॥ कामोंको चाहनेवाले उसने इच्छित कामोंकी प्राप्तिके लिए इस पृथ्वीमें जितने गृह थे उन्हें ठीक नहीं समझा ॥ १२ ॥ एक समय उसने हिमालयके दक्षिण शिखरपर नौ दरवाजों तथा समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण एक पुर† देखा ॥ १३ ॥ वह पुरी पर कोठा बगीचा, अटारी, खाई, खिड़की, तोरण तथा सोने, चाँदी और लोहेके शिखरोंसे युक्त गृहोंसे व्याप्त थी ॥ १४ ॥ उसमें गृहोंकी जमीन १ नील २ स्फटिक, वैदूर्य, मुक्ता, मरकत मणि तथा माणिक्यसे बनी हुई थी। जिनकी कान्तिसे नागोंकी पुरीके समान प्रकाशित हो रही थी

निबोध गदतो मम ॥ ६ ॥ आसीत्पुरञ्जनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः ॥ तस्याविज्ञातनामासीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥ १० ॥ सोऽन्वेषमाण शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ॥ नानुरूपं यदाऽविन्ददभूत्स विमना इव ॥ ११ ॥ न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ॥ कामन्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥ १२ ॥ स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु । ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणाम् । १३ । प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः ॥ स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः सङ्कुलां सर्वतो गृहैः ॥ १४ ॥ नीलस्फटिकवैदूर्यमुक्तामरकतारुणैः ॥ क्लृप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ॥ नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥ हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना ॥ चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥ १८ ॥ नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ॥ आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः ॥ १९ ॥ यदृच्छयागतां तत्र ददर्श

॥ १५ ॥ वह पुरी, सभा, चौराहे, सड़क, क्रीडा स्थान, बाजार, विश्रामस्थान तथा ध्वजा पताका और विद्रुममणिकी वेदियोंसे युक्त थी ॥ १६ ॥ उस पुरीके बाहर एक बगीचा था। उसमें चन्दनादिके वृक्ष तथा लतायें थीं। एक शब्द करते हुए पक्षियों और भौरोंके शब्दसे युक्त अनेक जलाशय थे ॥ १७ ॥ उस बगीचेमें तटोंपर स्थित वृक्षोंसे शोभा खूब हो रही थी। उन वृक्षोंके पत्ते तथा डालियाँ हिमनिर्झरोंके विन्दुओंसे युक्त सुगन्धित वसन्ती वायुसे चञ्चल हो रही थीं ॥ १८ ॥ जिनमें नाना प्रकारके जङ्गली मृगोंके समूह शान्त होकर रहते थे। मुनियोंका व्रत धारणकर यानी उनसे किसीको किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती थी तथा कोकिल अपना शब्द करते थे, जिससे रास्तेमें जानेवाले मनुष्य समझते थे कि हमको कोई बुला रहा है ॥ १९ ॥ उस बगीचेमें पुरञ्जनने अपनी इच्छासे आई हुई एक सुन्दर स्त्री (विवेकवती बुद्धि) देखी। आते समय वह स्त्री दश नौकरोंके (ज्ञान कर्मेन्द्रियोंके साथ थी। जिनकी

*भोगायतन शरीर। † मनुष्य शरीर। ‡ प्रकार आदि नामोंसे शरीरके अवयव त्वगादिका ही निरूपण किया जा रहा है। १ हृदय स्थान। २ नील आदिके रूपक नाडियों या विषय वासनाओंका वर्णन निरूपण हो रहा है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक-एक की सौ सौ स्त्रियाँ (वृत्तियाँ) थीं ॥ २० ॥ उसकी चारों ओरसे पांच सिरवाला सर्प यानी पञ्च वृत्तियुक्त प्राण रक्षा करता था। वह सोलह वर्षकी थी। और अपनी इच्छानुसार घूमकर पतिका अन्वेषण करती थी ॥ २१ ॥ उसकी सुन्दर नासिका, दाँत, कपोल, तथा मुख था। बराबर कानोंमें कुण्डल धारण किये थी ॥ २२ ॥ उसकी पीले वर्णकी नीवी थी और श्रोणी पर सोनेकी करधनी पहने थी तथा पाँवमें नूपुरोंको धारण करके चलती थी ॥ २३ ॥ वह किशोरावस्थाको प्रकट करनेवाले सम तथा गोल अन्तर रहित स्तनोंको लज्जाके कारण वस्त्रसे आच्छादित करती हुई हाथीके समान मन्दगतिसे चल रही थी ॥ २४ ॥ वह वीर पुरञ्जन उसके स्निग्ध अपाङ्गरूपी मुखसे युक्त कटाक्षवाणसे घायल होकर लज्जापूर्वक मुसकुराहटसे सुन्दर उससे प्रेमसे विह्वल हो अपने भौं घुमाते हुए मधुर वचन बोलने लगा—॥ २५ ॥ हे कमलके समान नेत्रवाली तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो और यहाँ पर कहाँसे आई हो।

प्रमदोत्तमाम् ॥ भृत्यैर्दशभिरायन्तीमेकैकशतनायकैः ॥ २० ॥ पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः ॥ अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥ २१ ॥ सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ॥ समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम् ॥ २२ ॥ पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ॥ पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव ॥ २३ ॥ स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ ॥ वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥ २४ ॥ तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ॥ स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा ॥ २५ ॥ का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ॥ इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥ २६ ॥ क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः ॥ एता वा ललनाः सुभ्रु कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥ २७ ॥ त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ॥ त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥ २८ ॥ नासां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ॥ अर्हस्यलङ्कर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥ २९ ॥ यदेष माऽपाङ्गविखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ॥ त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण

हे सति, हमारे पुर की पृथ्वीको देखकर क्या करना चाहती हो? यह सब मुझसे कहो ॥ २६ ॥ हे सुभ्रु, ये तुम्हारे पीछे चलनेवाले ग्यारह अत्यन्त बली कौन हैं? तथा ये सुन्दर भृकुटिवाली सुन्दर स्त्रियाँ कौन हैं? और तुम्हारे आगे चलनेवाला यह सर्प कौन है? ॥ २७ ॥ क्या तुम लज्जा हो, जो अपने पतिको यानी धर्मको इस वनमें मुनिके समान शान्त होकर एकान्तमें खोज रही हो जिसकी तुम्हारी कृपासे ही समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं, अथवा क्या तुम भवानी हो, जो अपने पति शंकरको खोज रही हो अथवा तुम सरस्वती हो, जो अपने पति ब्रह्माको खोज रही हो, अथवा क्या तुम लक्ष्मी हो, जो अपने पति विष्णुको खोज रही हो। परन्तु यह तो बताओ, तुम्हारा कमल हाथमेंसे कहाँ गिर गया ॥ २८ ॥ हे वरोरु, इसमेंसे हम तुमको एक भी नहीं समझते, क्योंकि तुम पृथ्वीका स्पर्श कर रही हो। इसलिए तुम अत्यन्त पराक्रमी मेरे साथ इस पुरीको ऐसे शोभित करो। जैसे भगवान् विष्णुके साथ लक्ष्मी वैकुण्ठको शोभित करती हैं ॥ २९ ॥ तुम्हारे कटाक्षसे क्षुभितमन मुझे तुम्हारे लज्जापूर्ण हास्यसे घूमनेवाली भ्रुकुटिसे प्रेरित यह काम मुझे पीड़ा पहुँचा रहा है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसलिए हे शोभने, अनुग्रह करो ॥ ३० ॥ हे शुचिस्मिते, तुम अपना मुख ऊपर उठाकर हमें दिखाओ। जो सुन्दर भ्रुकुटि तथा तारोंवाले नेत्रोंसे युक्त है और लटकरहे काले-काले घुंघराले बालोंके समूहसे भी व्याप्त है। उसमें मनोहर वचन भरे हैं, लज्जाके मारे सम्मुख नहीं होता ॥ ३१ ॥ नारदजीने कहा—हे वीर, इस प्रकार अधीरकी तरह याचना कर रहे पुरञ्जनको देखकर हँसती हुई उस स्त्रीने मोहित हो उस वीरको स्वीकार कर लिया और कहा—॥ ३२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, मेरा और तुम्हारा भी कौन कर्ता है, यह मैं अच्छी तरह नहीं जानती हूँ। तथा जो नाम और गोत्रका निर्माण करता है उसे भी मैं भलीभाँति नहीं जानती हूँ ॥ ३३ ॥ हे वीर, जिसने मेरी यह आश्चर्यभूत यह पुरी बनाई है उसे भी मैं नहीं जानती केवल इस पुरीमें रहनेवाली मैं अपनेको ही जानती हूँ ॥ ३४ ॥ हे मानद, ये पुरुष मेरे मित्र हैं तथा ये स्त्रियाँ मेरी सखियाँ हैं। और जब मैं सो जाती हूँ तब यह सर्प इस पुरीकी रक्षा

शोभने ॥ ३० ॥ तदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ॥ उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं पुरञ्जनं नारी याचमानमधीरवत् ॥ अभ्यनन्दत तं वीरं हसन्ती वीर मोहिता ॥ ३२ ॥ न विदाम वयं सम्यक्कर्तारं पुरुषर्षभ ॥ आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥ ३३ ॥ इहाद्य सन्तमात्मानं विदाम न ततः परम् ॥ येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥ ३४ एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ॥ सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ॥३५॥ दिष्ट्यागतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे ॥ उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिन्दम ॥३६॥ इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो ॥ मयोपनीतान्गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥३७॥ कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम् ॥ असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम् ॥ ३८। धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः ॥ लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥ ३९ ॥ पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ॥ क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥ ४० ॥ का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् । न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम्

करता हुआ जागता रहता है ॥ ३५ ॥ यह बड़े भाग्यकी बात है कि तुम यहाँपर आ गये हो, इससे अत्यन्त कल्याण हुआ। हे शत्रुमर्दन, जिन ग्राम्यसुखोंको तुम चाह रहे हो, उनका मैं अपने मित्र तथा सखियोंके साथ तुम्हारे लिए सम्मान करूँगी ॥ ३६ ॥ हे प्रभो, तुम सैकड़ों वर्षों तक इस नौ दरवाजों वाली पुरीमें स्थित रहो। और मेरे द्वारा प्राप्त कराये गये भोगोंका खूब उपभोग करो ॥ ३७ ॥ इस लोक तथा परलोकको चिन्तासे शून्य एवं समस्त अनिषिद्ध सुखोंका त्याग करनेवाले नैष्ठिक पशुतुल्य तुमसे अन्य किस मनुष्यके साथ मैं रमण करूँगी ॥ ३८ ॥ इस गृहस्थ आश्रममें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुत्र-सुख, यश तथा शोकसे रहित निर्मल स्वर्गादि लोक मिलते हैं, जिनका अनुभव संन्यासी लोग नहीं करते ॥ ३९ ॥ इस संसारमें जो गृहस्थाश्रम है उसे पितर, देव, ऋषि, मनुष्य, भूत तथा अपनेको सुख देनेवाला आश्रय विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ४० ॥ हे वीर, इस संसारमें विख्यात पुत्रादि अभीष्ट वस्तु देनेवाले प्रियदर्शन, अपने आप प्राप्त हुए सर्वाङ्ग सुन्दर आये हुए तुमको मुझसरीखी भला कौन स्त्री पतिरूपसे वरण न करेगी ? ॥ ४१ ॥ हे महाभुज, इस संसारमें सर्प देहाकार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तुम्हारी भुजाओंमें किस स्त्रीका मन आसक्त न होगा, जो तुम स्वयं दीनोंका दुःख कृपापूर्वकदृष्टिसे दूर करनेके लिए सर्वत्र घूमते हो ॥ ४२ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन्, इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष परस्पर संकेत करके उस पुरीमें प्रविष्ट हुए और सौ वर्षों तक बड़े आनन्दसे रहे ॥ ४३ ॥ उस जगह जगह पर गायम लोग यश गान करते थे। वह अनेक स्त्रियों से युक्त होकर क्रीडा करता हुआ गर्मीमें नदीमें प्रविष्ट हुआ ॥ ४४ ॥ उस पुरमें सात दरवाजे ऊपर और दो नीचे हैं। उस पुरमें जो कोई एक ईश्वर हे वह इन दरवाजोंसे पृथक् पृथक् कार्यों का सम्पादन करनेके लिए जाता है। यानी विषयोंकी ओर दौड़ता था ॥ ४५ ॥ उन दरवाजोंमें पाँच दरवाजे पूर्व दिशाकी ओर हैं, एक दक्षिणदिशाकी ओर, एक उत्तर तरफ और दो दरवाजे पश्चिम तरफ है। हे राजन्, इनके नामोंका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ ४६ ॥ पूर्व दिशामें खद्योत तथा आविर्मुखी नामके दो दरवाजे एक जगह बने हुए हैं। उनसे वह द्युमत्

॥ ४१ ॥ कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ॥ योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धतस्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम्। ४२॥ नारद उवाच ॥ इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः ॥ तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥४३॥ उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ॥ क्रीडन्परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥ ४४ सप्तोपरि कृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ॥ पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥ ४५ ॥ पञ्चद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ॥ पश्चिमे द्वे अमुषां ते नामानि नृप वर्णये। ४६॥ खद्योताविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥ ४७ ॥ नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥ ४८ ॥ मुख्यानाम पुरस्ताद्द्वास्तयापणबहूदनौ ॥ विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥ ४९ ॥ पितृहूर्नृपपुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरञ्जनः। राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५० ॥ देवहूर्नाम पुर्याद्वा उत्तरेण पुरञ्जनः ॥ राष्ट्रमुत्तरपञ्चालं याति

मित्रके साथ यानी चक्षुके साथ विभ्राजित देशको रूप विषयको जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्व दिशामें नलिनी तथा नालिनी नामके दो दरवाजे हैं। उनसे अवधूतमित्रके साथ यानी वायु मित्रके साथ सौरभ देशको (गन्धको) जाता है ॥४८॥ पूर्व दिशामें मुख नामक प्रधान दरवाजा है। उससे पुरका राजा रसज्ञ (रसेन्द्रिय) तथा विपण वागिन्द्रिय मित्रोंके साथ आपण [भापण] और बहूदन (नाना तरहके अन्न) नामके देशकी जाता ॥ ४९ ॥ हे राजन्, उस पुरीको दक्षिण दिशामें पितृहू (दक्षिणकर्ण) नामका दरवाजा है। उससे पुरञ्जन श्रुतधर (श्रवणेन्द्रिय) मित्रसे युक्त होकर दक्षिण पञ्चाल नामके* देशको जाता है ॥ ५० ॥ पुरीके उत्तरमें देवहू नामका दरवाजा है। उससे पुरञ्जन श्रुतधर मित्रके साथ उत्तर पञ्चाल देशको जाता है ॥५१॥

* दूसरोंसे अनवगत पाँच विषयोंके प्रकाशके लिए जो जलभृ है उसका नाम है—पञ्चाल यानी शास्त्र। दक्षिण शब्दसे दहिने कानका यहाँ ग्रहण है। सुननेके समय अधिक बल होने के कारण दाहिना कान पहले प्रवृत्त होता है। शास्त्रमें भी श्रोतव्य कर्मकाण्डम्,, केवल एकमात्र इतने ही साम्य होनेसे कर्मकाण्डका, जिसमें श्रवणकी संज्ञा प्राप्त हो गयी है, दहिने कानसे रही सभी श्रवण करना चाहते हैं। चूँकि पितरोंका आवहन इसीसे होता है इसलिए इसका (पितृहू) नाम पड़ गया है। पितृहूका अर्थ है दक्षिणकर्ण। इसके विपरीत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा पश्चिममें आसुरी नामक दरवाजा है उसे पुरञ्जन दुर्मदतामक मित्र के साथ ग्रामक नामके देशको जाता है ॥ ५२ ॥ पश्चिम दिशामें निऋंति नामक द्वार है। उससे पुरञ्जन लुब्धक मित्रके साथ वैशस नामके देशको जाता है ॥ ५३ ॥ इन पुरीके बीचमें निर्वाक तथा पेशस्कृत नामके दो अन्धे रहते हैं। उनसे देहाधिपति पुरञ्जन जाता और कार्य करता है ॥ ५४ ॥ तब स्त्री तथा पुत्रोंसे होनेवाले [बुद्धि और इन्द्रियोंके परिणामसे होनेवाले] मोह, प्रसाद तथा हर्षको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ ❀ इस प्रकार वह मूर्ख कामोंमें आसक्त होकर खूब ठग गया। उसकी स्त्री जो जो चाहती थी, वही वह करता था ॥ ५६ ॥ कभी स्त्रीके मदिरा पीने पर स्वयं मदसे विह्वल होकर मदिरा पीता था और भोजन करने पर भोजन करता था । एवं उसके

श्रुतधरान्वितः ॥ ५१ ॥ आसुरी नाम पश्चाद्द्वास्तया याति पुरञ्जनः ॥ ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥५२॥ निऋंतिर्नाम पश्चाद्द्वास्तया याति पुरञ्जनः । वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥ ५३ ॥ अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावभौ ॥ अचक्षवतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥ ५४ ॥ स यर्ह्यन्तः पुरगतो विषूचीन समन्वितः ॥ मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥५५॥ एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः ॥ महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥ ५६ ॥ क्वचित्पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः । अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति । ५७ ॥ क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् ॥ क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनुजल्पति ॥५८॥ क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति ॥ अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥ ५९ ॥ क्वचिच्छृणोति शृण्वत्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति ॥ क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥६०॥ क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ॥ अनुहृष्यति हृष्यन्त्यां

खाने पर स्वयं उसके साथ खाता था ॥ ५७ ॥ जब कभी वह गाती थी तब स्वयं गान करता था और जब कभी वह रोती थी, तब वह रोने लग जाता था। जब वह हँसती थी तब वह हँसता था तथा जब बातें करती थी, तब वह भी बातें करने लग जाता था ॥ ५८ ॥ जब वह कभी दौड़ती थी, तब स्वयं दौड़ता था और जब कभी खड़ी होती थी तब खड़ा हो जाता था। उसके सोनेपर स्वयं सोता था और जब कभी वह बैठ जाती थी तब स्वयं बैठ जाता थ ॥ ५९ ॥ कभी जब वह सुनती थी, तब वह स्वयं सुनता था और जब कभी देखती थी, तब देखता था। कभी जब वह सूँघती थी तब, सूँघता था और फब कभी स्पर्श करती थी, तब वह भी स्पर्श करने लगता था ॥ ६० ॥ जब कभी वह स्त्री शोच करती थी तब वह दीन की

होनेसे उत्तर कर्णका नाम है--देवहू। सुनिगे इस विषयमें क्या कहा गया है—"पितृहूदक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः। प्रवृत्तं च निवृत्तं च सास्त्रं पश्चालसंज्ञितम् ॥ पितृयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद् व्रजेत् ॥" इति।

❀ दृष्टान्त—अपने सेवकों के साथ राजा वनमें शिकारमें संलग्न हो वन वनान्तरोंमें घूम रहा था कि उसने सामने ही एक तपस्वी साधुको घोर तपस्या करते हुए देखा। वह साधु मृगचर्म पर बैठा आँख मूँदे भगवान का ध्यान कर रहा था : इससे उनपर श्रद्धा हुई। मन्त्री से कहा—वह साधु पहुँचा हुआ है मन्त्रीने कहा—जब तक इसे स्त्रीके दर्शन नहीं होते हैं तब तक यह तपस्या में लगा रहेगा। वही हुआ--एक वेश्या से प्रेम हो जानेसे सन्तति पैदा हुई। जिससे राजाको उसमें उतनी ही घृणा हुई जितनी श्रद्धा थी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरह शौच करने लगता था। और जब कभी वह हृष्ट होती तब स्वयं वह भी हर्षित होता था तथा उसके मुदित होने पर स्वयं वह भी आनन्दित हो उठता था॥ ६१॥ इसप्रकार स्त्रीसे

मुदितामनुमोदते ॥ ६१ ॥ विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः ॥ नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

ठगाया वह अपने समस्त स्वभावसे वञ्चित हो गया और वह मूर्ख इच्छा न रहने पर भी परवश होनेके कारण ऐसे सब कुछ करता था, जैसे मदारीके वशमें होकर बन्दर करता है॥ ६२॥

पचीसवें अध्यायका सार—मैत्रेयजीने कहा— हे विदुरजी, इसप्रकार प्रचेताओंको आदेश देकर शंकरजी वहीं अन्तरहित हो गये। तब प्रचेता जलमें तपस्या करने लगे। तदनन्तर नारदजी प्राचीन वर्हीको कर्ममें आसक्त समझकर उसके पाये और कहने लगे कि, जिन पशुओंको तुमने मारा है वे तुम्हारी मरनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और जब तुम करोगे तब तुझको वे सींगोंसे बेधेंगे। इस विषयमें एक इतिहास सुनो—एक पुरञ्जन नामका राजा था। स्थान खोजने हुए उसने हिमालयके दक्षिणमें एक नौ दरवाजोंका पुर देखा उसके बाहरके बगीचेमें एक स्त्रीको देखकर उसने कहने लगा कि तुम हमें स्वीकार कर लो। उस स्त्रीने उसे स्वीकार कर लिया। तब दोनों उस पुरमें रहने लगे। तब उस पुरमें पृथक् पृथक् देशोंको जानेके लिए पृथक् पृथक् मार्ग थे। उसकी स्त्री जो-जो चाहती थी, वह मूर्ख विवश होकर सब कुछ करता था। पचीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः ❋

[पुरञ्जनका शिकार खेलना]

एक समय महान् धनुर्धारी पुरञ्जन रथपर बैठकर वनको गया। उस रथमें पाँच शीघ्र चलनेवाले घोड़े१ थे। दो दण्ड२, दो चक्र३ एक अक्ष४ तीन ध्वजा५, तथा पाँच बन्धन६

नारद उवाच ॥ स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ॥ द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥ १ ॥ एकरश्म्येकदमनमेकनीडं

थे॥१॥ एक ७लगाम, एक सारथी८, एक रथीके बैठनेका स्थान९ दो १०जुआ बाँधनेके स्थान, पाँच बाण११ सात वरूथ यानी चर्मादि आवरण१२ तथा पाँच प्रकारकी१३ गतियाँ थी

१ पाँच ज्ञानेन्द्रिय, २अहन्ता और ममता, ३पुण्य और पाप, ४ एक—प्रधान, ५ सत्त्वादि गुण, ६ पञ्चप्राण, ७ मन, ८ बुद्धिरूपी सारथी, ९ हृदय, १० शोक और मोह, ११ शब्दादि पाँच विषय, १२ मज्जा आदि सात धातु, १३ पाँच कर्मेन्द्रिय, १४ मनोरूप सेनापति, १५ शब्दादि पाँच विषयवाले। ❋ विषयरूपी मृगोंमें भोगासक्ति रखनेके कारण अत्यन्त उत्कण्ठित अतएव त्यागके अयोग्य अपनी विवेकवती बुद्धिरूपी जायाको छोड़कर रागादि विषयरूपी बाण एवं भोगोंमें अभिनिवेशरूपी धनुष लेकर उस जंगलमें शिकार खेलने लगा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥२॥ वह पुरञ्जन सोनेका कवच पहनकर यानी रजोगुणसे आवृत होकर अक्षय तरकस लेकर यानी अनन्त वासनाओंसे युक्त होकर सोनेके आभूषणसे युक्त रथपर ग्यारहवें सेनापति१४ के साथ बैठकरके पाँच शिखरवाले१५ वनको गया ॥ ३ ॥ वह मृगयामें अत्यन्त उत्कण्ठित होकर न छोड़ने योग्य स्त्रीको छोड़कर हाथमें धनुष बाण लेकर उस वनमें मस्तीके साथ मृगया खेलने लगा॥ ॥४॥ निष्ठुर उसने असुरी वृत्तिका आश्रय लेकर निर्दयता पूर्वक तीक्ष्ण बाणोंसे वनमें पशुओंको मारा ॥ ५ ॥ यदि रागी होकर मारे, तो राजा पवित्र पशुओंको बड़े-बड़े श्रद्धादिकमें जितनी आवश्यकता हो उतनी ही बध करे, यह शास्त्रोंका नियम है ॥ ६ ॥ हे राजन, इस प्रकार अपने निश्चित कर्मको जानकर जो मनुष्य कर्म करता है। उसके प्राप्त ज्ञान के कारण वह उसमें लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ और यदि नियमके विपरीत कार्य करता है, तो कर्तृत्वाभिमानसे युक्त होकर वह कर्मोंसे अवश्य बन्धनको प्राप्त होता है और उसके बाद

द्विकूबरम् ॥ पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥ २ ॥ हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षयेषुधिः ॥ एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद्वनम् ॥ ३ ॥ चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ॥ विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥ आसरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ॥ न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥ तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने । यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥ ६ ॥ य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः ॥ कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥ ७ ॥ अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ॥ गुणप्रवाहपतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥८॥ तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ॥ विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥९॥ शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् ॥ मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन्श्रममध्यगात ॥१०। ततः क्षुत्तृट्परिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् ॥ कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥ ११ ॥ आत्मानमर्हयाञ्चक्रे धूपालेपस्रगादिभिः ॥ साध्वलङ्कृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ॥ १२ ॥ तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः । न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥ १३ ॥ अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव

गुण प्रवाहसे पतित होकर बुद्धिसे रहित हो संसारमें आकर नीचे गिरता है ॥ ८ ॥ वहाँपर विचित्र प्रकारके पशुयुक्त बाणोंसे विदीर्ण शरीर हुए दुःखित पशुओंका दयाग्रचित्त मनुष्योंके न होने योग्य नाश हुआ ॥ ९ ॥ वर पुरंजन खरगोश, सूकर, भैंसा, गवय, मृग, रुरु, शाल्यक वगैह नाना प्रकारके पवित्र तथा अपवित्र पशुओंको मारते-मारते श्रमको प्राप्त हो गया ॥ १० ॥ तब भूख तथा प्याससे श्रमित वह लौटकर घर आया। और स्नान तथा उचित भोजन करके विस्तर पर लेट गया, वहाँ उसकी थकावट दूर हो गई ॥ ११ ॥ तदनन्तर चन्दन, माला और धूपसे अपनेको उसने सजाया और समस्त अङ्गोंके अच्छी तरह सज जानेपर स्त्रीमें उसने अपना मन लगा दिया ॥ १२ ॥ तृप्त, हृष्ट एवं मस्त उसने कामसे आकृष्ट चित्त होने के कारण अपनी सुन्दर गृहमेधिनी गृहिणी को न देखा ॥ १३ ॥ हे प्राचीनवर्हिं, तब वह पुरंजन कुछ दुःखित होकर अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे पूछने लगा—हे स्त्रियो, स्वामिनिके सहित तुम लोग कुशलसे हो न ॥ १४ ॥ इस घरकी सम्पत्ति जैसी पहले अच्छी लगती थी। वैसी अभी नहीं लगती। यदि घरमें माता या पतिको देवतातुल्य माननेवाली स्त्री न हो, तो उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

घरमें कौन बुद्धिमान् दीनकी नाईं बैठे रहेगा ? जैसे चक्रादिसे रहित रथके ऊपर कोई नहीं बैठता ॥ १५ ॥ वह स्त्री कहाँ है ? जो दुःखरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरी बुद्धिको पद-पदपर बढ़ाती हुई, उद्धार करती है ॥ १६ ॥ तब उन स्त्रियोंने कहा—हे नरनाथ, तुम्हारी प्रिया जो निश्चय करती है वह हमलोग नहीं जानते। हे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, वह विस्तरसे रहित पृथ्वीपर सो रही है, उसे देखो ॥ १७ ॥ नारदजीने कहा—पुरंजन अपनी स्त्रीको देहका अनादर करके पृथ्वीमें पड़ी देखकर उसके सङ्गसे व्याकुल ज्ञानवाला होकर अत्यन्त विकलताको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ दुःखित चित्त होकर उसने मधुरवाणीसे उसे समझाते हुए उसके प्रणयकोप सूचक कुटिलदृष्टि आदिको अपने ऊपर प्राप्त नहीं किया ॥ १९ ॥ तब स्त्रियोंको मनाने में चतुर उसने धीरे-धीरे उसे मनाया। उसके दोनों चरणोंका स्पर्श किया और गोदमें बैठाकर प्यार करते हुए उससे कहने लगा ॥२०॥ पुरंजनने कहा—हे शुभे, जिन अपराधी सेवकों

वेदिषत् ॥ अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥ १४ ॥ न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसंपदः ॥ यदि न स्याद्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥ व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीनवत् ॥ १५ ॥ क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥ या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥ १६ ॥ रामा ऊचुः ॥ नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति ॥ भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ पुरञ्जनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ॥ तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १८ ॥ सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता ॥ प्रेयस्यः स्नेहसंरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ॥ १९ ॥ अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ॥ २० ॥ पुरञ्जन उवाच ॥ नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ॥ कृतागः स्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ॥ २१ ॥ परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः ॥ बालो न वेद तत्तन्वि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥ २२ ॥ सा त्वं मुखं सुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम् ॥ नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥ २३ ॥ तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ॥ पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥ २४ ॥ वक्त्रं न ते वितिलकं

को मालिक अपना समझकर शिक्षा देनेके लिए दण्ड नहीं देते, वे लोग अभागे हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ मालिक जिस सेवकको दण्ड देता है, वह उसके लिए परम उपकाररूप है। तो भी हे तन्वि, अत्यन्त क्रोधी बालक उस बन्धु कृत्यको शिक्षादान नहीं समझता ॥ २२ ॥ हे सुदति, हे सुभ्रु, हे मनस्विनि, तुम हमारी स्वामिनी हो, अतः अपना वह मुख हमें दिखाओ, जिसमें प्रेमभरी लज्जासे आलस्यके कारण विलास कर रहे मधुर मुसकान हैं तथा काले-काले बालोंरूपी भौंरेसे जो भूषित हैं। जिसकी ऊँची नासिका तथा जिसमें सुन्दर वाक्य हैं ॥ २३ ॥ हे वीरपत्नि, जो तुम्हारा अपराध करेगा, ब्राह्मण तथा भगवान्के भक्तको छोड़कर मैं उसे अवश्य दण्ड दूँगा। तथा भयसे रहित अत्यन्त प्रसन्न हुए

* राजसी बुद्धिमें वर्तमान उसने अपनी सात्त्विकी बुद्धि न देखी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसे मैं तीनों लोकोंके बाहर भी कहीं नहीं देख सकूँगा यानी मेरे भयसे ही वह मर जायगा ॥ २४ ॥ मैंने तुम्हारे मुखको पहले कभी तिलक तथा हर्षसे रहित, मलिन, कोपसे भयानक स्नेहसे रहित तथा उज्ज्वलतासे शून्य नहीं देखा तथा तुम्हारे सुन्दर स्तन भी शोकाश्रुओं से युक्त मैंने कभी नहीं देखे और न कुंकुम पङ्क तुल्य ताम्बूल रागसे रहित तुम्हारे बिम्बफलाकार

मलिनं विहर्षं संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ॥ पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्करागम् ॥ २५ ॥ तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥ का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अधरको ही कभी देखा ॥ २५ ॥ इसलिए व्यसनके कारण मैं तुमसे न पूछकर शिकार खेलने गया था। मैं अपराधी हूँ। मेरे ऊपर प्रसन्न होओ। कामके वेगसे नष्ट धैर्य अपने वशमें आये हुए पतिको भला ऐसी कौन कामिनी होगी ? जो लायक कार्यमें स्वीकार न करेगी ? ॥ २६ ॥

छब्बीसवें अध्यायका सार—एक समय पुरञ्जन धनुष लेकर रथमें बैठकर शिकार खेलने पप्रस्थ नामके वनको गया। वहाँ पर उसने बहुत से पशुओंको मारा। तदनन्तर घर आया और स्नान तथा भोजन करने के बाद स्त्री की इच्छा की। परन्तु उसे न देखकर अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे पूछने लगा उन्होंने कहा—वह पृथवी में सो रही है देखिये। तब उसे उस हालत में देखकर वह अत्यन्त दुःखी हुआ और उससे प्रार्थना करने लगा। छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ सप्तविंशातितमोऽध्यायः ❀

(स्त्री—पुत्रादिमें आसक्त होने से पुरञ्जन की वृद्धावस्था तथा रोगादिका वर्णन)

नारदजी ने कहा—हे महाराज, इसप्रकार पुरंजनी अपने सुन्दर विलासोंसें पुरञ्जन को वशमें करके उसे प्रसन्न करती हुई रमण करने लगी ॥ १ ॥ हे राजन, उस पुरंजनने

नारद उवाच ॥ इत्थं पुरञ्जनं सम्यग्वशमानीय विभ्रमैः ॥ पुरञ्जनी महाराज रेमे रमयता पतिम् ॥१॥ स राजा महिषीं राजन्सुस्नातां रुचिराननाम् ॥ कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥ २ ॥ तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ॥ न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥ शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ॥ तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोभिभूतो

स्नान करके कुकुम-सिन्दूरादि लगाकर आई हुई तृप्त सुखी उस पुरजनीका स्वागत किया ॥२॥ पुरंजनका उसने अलिङ्गन किया तथा पुरंजनने उसके गलेमें बाँह डालकर एकान्तमें बात-चीत करनेमें जुट गया। गुह्य भाषणोंसे उसका विवेक नष्ट हो गया, प्रमदासे बिलकुल परिगृहीत हो वह आयुके व्ययको भूलगया ॥३॥ महान् घमण्डी वह अत्यन्त कीमती शय्यापर स्त्री की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भुजाको अपना तकिया बनाकर सोने लगा तथा उसीको परमपुरुषार्थ समझने लगा और जो अपना असलीरूप परब्रह्म था, उसे नहीं जान सका क्योंकि अज्ञानसे वह आवृत्त था ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र, इसप्रकार उसके साथ रमण करते हुए कामसे मलिनचित्त उसकी नई अवस्था आधे क्षणकी नाईं निकल गई ॥ ५ ॥ उस पुरञ्जनने पुरञ्जनीमें ग्यारह सौ पुत्र उत्पन्न किये । उसके बाद उसकी आधी अवस्था खतम हो गई ॥ ६ ॥ हे प्रजापते, सम्राट उस पुरञ्जनने पिता तथा माताके यशको बढ़ानेवाली सदाचारादि गुणोंसे युक्त एक सौ दस लड़कियाँ पैदा कीं ॥ ७ ॥ उसने पिताके वंशको बढ़ानेवाले पुत्रोंका योग्य स्त्रियोंके साथ और कन्याओंका योग्य वरोंके साथ विवाहकर दिया ॥ ८ ॥ उसके एक एक पुत्रके सौ सौ पुत्र पैदा हुए, जिनसे पुरञ्जनका वंश पञ्चाल देशमें फैल गया ॥ ९ ॥ गृहकोशानुजीवी उन पुत्रोंमें तथा पुत्रोंमें भी जो रिक्थहारी पुत्र थे उनमें भी अधिक अपनी ममता रखनेके कारण वह विषयोंमें फँस

न निजं परं च यत ॥ ४ ॥ तथैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ॥ क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥ ५ ॥ तस्यामजनयत्पुत्रान्पुरञ्जन्यां पुरञ्जनः ॥ शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥ ६ ॥ दुहितॄर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ॥ शीलौदार्यगुणोपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥ ७ ॥ स पञ्चालपतिः पुत्रान्पितृवंशविवर्धनान् ॥ दारैः संयोजयामास दुहितॄः सदृशैर्वरैः ॥८॥ पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ॥ यैर्वै पौरञ्जनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥ ९ ॥ तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ॥ निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥१०॥ ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ॥ देवान्पितॄन्भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥११॥ युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः ॥ आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥ १२ ॥ चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ॥ गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ १३ ॥ गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः ॥ परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥ १४ ॥ ते चण्डवेगानुचराः पुरञ्जनपुरं यदा । हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः । स सप्तभि शतैरेको विंशत्या च शतं समाः ॥ पुरञ्जनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥ १६ ॥ क्षीयमाणे

गया ॥ १० ॥ उसने यज्ञकी दीक्षा लेकर पशुवधवाले भयानक यज्ञोंसे अपनी अनेक कामनाएँ पूर्ण करनेके लिये देव, पितर तथा भूतपतियोंका, आपके ही समान यजन किया ॥ ११ ॥ कुटुम्बमें आसक्त होकर अपने हितमें लगे हुए प्रमत्त उसकी वृद्धावस्था आ गई, जो वृद्धावस्था स्त्रीप्रिय लोगोंको प्रिय अप्रिय लगती है ॥ १२ ॥ हे राजन्, गन्धर्वोंका अधिपति चण्डवेग नामसे* प्रसिद्ध एक गन्धर्व था । उसके तीन सौ साठ बलवान् गन्धर्व [१] थे ॥ १३ ॥ तथा उतनी ही काली तथा गौर वर्णकी उनकी स्त्रियाँ [२] उनके साथ दिनमें सदा रहती थीं । वे परिभ्रमण करके समस्त भोगोंसे पूर्ण उस पुरीको [३] नष्ट करती थीं ॥ १४ ॥ जब चण्डवेगके सैनिक [दिन] पुरञ्जनके [जीवके] पुरको [देहको] हरण करने लगे, तब सर्पने [प्राणने] उन्हें रोका ॥ १५ ॥ वह पुरञ्जनके पुरका अध्यक्ष बलवान् सर्प अकेलेही सातसौ बीस गन्धर्वों से [४] सौ वर्षोंतक लड़ता रहा ॥ १६ ॥ अकेले उसके बहुतोंके साथ लड़नेसे जब वह क्षीण

*संवत्सर । [१] दिन । [२] शुक्ल तथा कृष्णपक्षकी रात्रियाँ । [३] देहको । [४] रात-दिन मिलाकर ७२० संख्या होती है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होने लगा, तब राष्ट्र-पुर तथा बान्धवोंके साथ वह घोर चिन्ता करने लगा ॥ १७ ॥ परन्तु स्त्रीके वशीभूत हुआ वह पञ्चाल देशमें अपनी पुरीमें ही क्षुद्र सुखोंका उपभोग करते हुए स्थित था और अपने सेवकों द्वारा लाये गये बलिका ग्रहण करता था। किन्तु आनेवाले भयका उसे तनिक भी विचार नहीं था॥ १८ ॥ हे प्राचीनबर्हि, कालकी कोई एक लड़की थी, वह पति खोजती हुई तीनों लोकोंमें घूमती-फिरी, परन्तु उसे किसीने स्वीकार नहीं किया ॥ १९ ॥ वह अपने दुर्भाग्यके कारण संसारमें 'दुर्भगा' इस नामसे प्रसिद्ध थी। बहुत दिनोंके बाद राजर्षि पुरुष स्वीकृत होनेपर जिसने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया था ॥ २० ॥ संसारमें घूमती हुई वह एक समय ब्रह्मलोकसे पृथ्वीमें आये हुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी मुझे जानकर कामसे मोहित हो मुझे अपना वर चुनने लगी ॥ २१ ॥ परन्तु जब मैंने उसे स्वीकार नहीं किया, तब उसने मेरे ऊपर क्रोध करके हे मुने, तुम मेरी प्रार्थनासे विमुख हो, इसलिये 'तुम एक स्थानपर नहीं रह सकते' यह दुःसह शाप मुझे दे दिया ॥२२॥ तब भग्नसङ्कल्पा उस कन्याको मैंने भय नामक यवनेश्वरके* पास जानेका आदेश दिया और वह उसके पास जाकर उसे पतिरूपसे

स्वसंबन्धे एकस्मिन्बहुभिर्युधा ॥ चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥ १७ ॥ स एव पुर्यां मधुभुक्पञ्चालेषु स्वपार्षदैः ॥ उपनीतं बलिं गृह्णन्स्त्रीजितो नाविदद्भयम् ॥ १८ ॥ कालस्य दुहिता काचित् त्रिलोकीं वरमिच्छती ॥ पर्यटन्ती न बर्हिष्मन्प्रत्यनन्दत कश्चन ॥ १९ ॥ दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा ॥ या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात्पूरवे वरम् ॥२ ॥ कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ॥ वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥२१ ॥ मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् ॥ स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥२२॥ ततो विहतसङ्कल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ॥ मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥ २३ ॥ ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् ॥ सङ्कल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति॥२४॥ द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ ॥ यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥२५॥ अथो भजस्व मां भद्र भजतीं मे दयां कुरु ॥ एतावान्पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते ॥ २६ ॥ कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः ॥

स्वीकार करती हुई ॥ २३ ॥ कहने लगी कि हे वीर, यवनोंमें श्रेष्ठ आपको मैं इच्छित पतिरूपसे स्वीकार करना चाहती हूँ। क्योंकि प्राणियोंके द्वारा किया गया संकल्प आपके विषयमें कभी नष्ट नहीं होता ॥ २४ ॥ लोक और वेद दोनों तरहसे जो देय और ग्राह्यरूपसे प्राप्त वस्तु है उसे प्रार्थना करनेपर जो नहीं देता और न तो दी जा रहीको ग्रहण करता है, असद् अवग्रहसे युक्त ये दोनों मूर्ख हैं। इनके विषयमें सन्तलोग शोच किया करते हैं ॥ २५ ॥ इसलिए हे भद्र, आपको स्वीकार कर रही मुझे भी आप स्वीकार कीजिए और मेरे ऊपर दया कीजिए, क्योंकि दुःखियोंके ऊपर जो दया करता है, बस इतनाही तो मनुष्यका धर्म है ॥ २६ ॥ इसप्रकारके कालकन्याके वचनोंको सुनकर भयनामक उस यवनेश्वरने प्राणियोंके मरणकी इच्छासे उससे मुसकुराते हुए कहा ॥२७॥ ये मनुष्य प्रार्थना करनेपर भी दुर्भगा अयोग्य तुमको स्वीकार नहीं करते, इससे मैंने ज्ञानदृष्टिसे बहुत देख करके तुम्हारे लिये एक पति निश्चित

*आधि और व्याधिरूपी यवनोंके ईश्वर।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्रिया है ॥ २८ ॥ तुम अलक्षित गतिसे कर्मों द्वारा निर्मित लोकोंका भोग करो, यों तुम्हारे सभी लोक पति हो जायँगे। इसकी तुम कभी आशंका न करना कि मुझे संसार मार डालेगा,

चिकीर्षु देवगुह्यं स सस्मितं तामभाषत ॥२७॥ मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ॥ नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम् ॥२८॥ त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ॥ याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥ २९ ॥ प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥ चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥३०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

क्योंकि तुम्हीं तो जो मेरी सेना है उससे युक्त होकर प्रजाओंका नाश करोगी ॥ २९ ॥ मेरा यह प्रज्वार नामका भाई है और तुम मेरी वहिन हो जाओ। तब मैं वहुत-सी सेना लेकर तुम दोनोंके साथ इस संसार में अलक्षित होकर विचरण करूँगा ॥ ३० ॥

सत्ताइसवें अध्याय का सार—मैत्रेयजीने कहा इस प्रकार पुरञ्जनी अपने विलासोंसे पुरञ्जनको वशमें करके उसके साथ रमण करने लगी। रमण करते हुए उस पुरञ्जनकी नवीन अवस्था आधेक्षणके समान निकल गई। पुरञ्जनने उसमें ग्यारह सौ पुत्र तथा एकसौ दस कन्याएँ पैदा कीं और उनका विवाह किया। तथा वड़े-वड़े यज्ञोंसे भगवानका यजन किया। इस प्रकार कुटुम्बमें आसक्त उसकी वृद्धावस्था आ गई। चण्डवेग नामक गन्धर्वोंका पति अपनी सेनाके साथ पुरञ्जनके पुरको लूटने लगा। तब वह अत्यन्त चिन्तित हुआ। तदनन्तर कालकी कन्या अपने लिए पति ढूढ़ती हुई भय नामक यवनेश्वर के पास पहुँची। उससे पति बननेकी प्रार्थना करने पर उसने कहा—तुम अभागिन हो, यह संसार प्रार्थना करनेपर भी तुम्हें पत्नीरूपसे स्वीकार नहीं करता। मैंने तुम्हारे लिए पति चुन रक्खा है। तुम अलक्षितगतिसे कर्म निर्मित लोकोंका भोग करो यह संसार तुम्हारा अनायास ही पति हो जायगा। मेरा यह प्रज्वार नामक भाई है तुम मेरी वहिन हो जाओ। फिर तो मैं वहुत-सी सेना लेकर तुम दोनोंके साथ इस संसार में अलक्षित होकर विचरण करता रहूँगा। सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ❀

[स्त्रीकी चिन्तासे पुरञ्जनका स्त्री होना तथा दैववशात् मुक्ति प्राप्त करना]

नारदजीने कहा—हे प्राचीनवर्हि, भयकी आज्ञा माननेवाले तथा दैवको अपने अधीनमें रखनेवाले वे सैनिक [१] प्रज्वार तथा कालकन्याके साथ इस पृथ्वीमें विचरने

नारद उवाच ॥ सैनिका भयनाम्नो ये वर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ॥ प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥ त एकदा तु रभसा पुरञ्जनपुरीं नृप ॥ रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥ २ ॥ कालकन्यापि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् ॥ ययाभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसा

लगे ॥१॥ हे राजन्, एक समय उन सैनिकोंने पृथ्वीके समस्त सुखोंसे युक्त तथा वृद्ध सर्पसे रक्षित उस पुरञ्जनकी पुरीको चारों तरफसे शीघ्र घेर लिया ॥२॥ जिससे आक्रान्त होनेपर मनुष्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शीघ्रही सारसे रहित हो जाता है, उस कालकन्याने भी हठपूर्वक पुरञ्जनपुरका भोग किया ॥ ३ ॥ कालकन्यासे उपभुक्त उस पुरीमें सैनिक दरवाजोंसे चारों तरफ घुसकर समस्त पुरीको अत्यन्त पीड़ित करने लगे ॥४॥ और जब वह पुरी अत्यन्त पीड़ित हो चुकी तब कुटुम्बमें ममता रखनेवाला अभिमानी वह पुरञ्जन नानाप्रकारके दुःखोंको प्राप्त करने लगा ॥५॥ विषयासक्त कृपण पुरञ्जनने जब उस कन्याका आलिङ्गन किया, तब वह श्रीविहीन हो गया। गन्धर्व और यवनोंने उसका ऐश्वर्य जबर्दस्ती हर लिया और तब उसकी बुद्धि भी नष्ट हो गई ॥६॥ और बादमें उसकी पुरी भी नष्ट हो गई। पुत्र, पौत्र, सेवक, मन्त्री अनादर तथा प्रतिकूल करने लगे। स्त्रीने प्रेम करना छोड़ दिया यह सब देखकर ॥ ७ ॥ एवं अपनेको कालकन्यासे ग्रस्त तथा पाञ्चाल देशोंको भी शत्रुओंसे दूषित किया गया देखकर वह अत्यन्त चिन्ता करने लगा। परन्तु उसका प्रतीकार करनेका वह कोई उपाय प्राप्त न कर सका ॥ ८ ॥ तब वह दीन

रतामियात् ॥ ३ ॥ तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतोदिशम् ॥ द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन्सकलां पुरीम् ॥ ४ ॥ तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरञ्जनः ॥ अवापोरुविधांस्तापान्कुटम्बी ममताकुलः ॥ ५ ॥ कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ॥ नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥ विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ॥ पुत्रान्पौत्रानुगामात्यान् जायां च गतसौहृदाम् ॥ ७ ॥ आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् ॥ दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥ कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया ॥ विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥ गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् ॥ हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥ १० ॥ भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ॥ ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥ ११ ॥ तस्यां सन्दह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः॥ कौटुम्बिकः कुटम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥ १२ ॥ यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया॥ पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥ न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ॥ गन्तुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥ १४ ॥ शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः॥ यवनैररिभी राजन्नु

कालकन्यासे निस्सार बना दिये गये भी विषयोंकी इच्छा करने लगा, जिससे उसकी परलोककी सारी गति नष्ट हो गई और इस लोकमें पुत्रादिका स्नेह न रहनेपर भी उसका लालन करता रहा ॥ ९ ॥ राजा पुरञ्जन उस पुरीको गन्धर्व तथा यवनोंसे आक्रान्त और कालकन्यासे उपमर्दित देखकर इच्छा न रहने पर भी छोड़नेको तैयार हो गया ॥ १० ॥ तब भयका बड़ा भाई प्रज्वार वहाँपर आया और अपने भाई भयका प्रिय करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण उस पुरीको जलाने लगा ॥ ११ ॥ जब वह पुरी जलने लगी तब वह कौटुम्बिक पुरञ्जन पुरवासी, सेवकवर्ग स्त्री तथा पुत्रादिके सहित अत्यन्त दुःख करने लगा ॥ १२ ॥ कालकन्यासे ग्रस्त उस पुरीमें यवनोंसे घेर लिये गये घरोंवाला तथा प्रज्वारसे पीड़ित उस पुरका रक्षक अत्यन्त सन्तप्त होने लगा ॥ १३ ॥ उस पुरीमें अत्यन्त कष्टके कारण खूब काँप रहा वह सर्प जब उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो गया, तब उस पुरीसे वह ऐसे निकलना चाहा, जैसे अग्निसहित वृक्षके कोटरसे सर्प निकलना चाहता है ॥ १४ ॥ जब उसका बल गन्धर्वोंने नष्ट करदिया, तब उसके समस्त अङ्ग शिथिल हो गये। हे राजन्, उसके शत्रु यवनोंने जब उसका कण्ठ पकड़ लिया,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तब वह रोने लगा—घुरघुर शब्द करने लगा ॥ १५ ॥ तथा जब स्त्रीसे वियोग होनेका समय आया, तब वह कुबुद्धिदीन गृहस्थ घरोंमें कन्या, पुत्र, पौत्र, दामाद तथा सेवकोंका ध्यान करने लगा। एवं जो भी उसकी वस्तुएँ घरोंमें बची थीं, उनमें भी वह ममता करने लगा ॥१६, १७॥ मेरेदूसरे लोकमें चले जानेपर भी अनाथ यह मेरी स्त्री बालकोंके लिए शोक करती हुई कैसे अपनी जीविका चलायेगी? ॥ १८ ॥ यह मेरे भोजनकर लेनेपर ही भोजन करती थी तथा स्नान कर लेनेपर ही स्नान करती थी और जब मैं रुष्ट हो जाता था, तब अत्यन्त भयभीत हो जाती थी। एवं जब डाँटता था, तब भयके मारे बिलकुल चुपचाप खड़ी रह जाती थी॥ १९ ॥ मुझ अविवेकीको यह बराबर समझाती थी और जब मैं परदेश चला जाता था, तब शोकके कारण दुर्बल हो जाती थी। मेरे न रहनेपर क्या यह इस गृहस्थधर्मका भी परिपालन न करेगी? युक्त तो यही है, क्योंकि यह पुत्रवती है ॥ २० ॥ मेरे चले जानेपर

परुद्धो रुरोद ह ॥ १५॥ दुहितृः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् ॥ स्वत्वावशिष्टं यत्किञ्चिद्गृहकोशपरिच्छदम् ॥ १६ ॥ अहंममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही ॥ दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ॥१७॥ लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी ॥ वर्त्तिष्यते कथं त्वेषा बालका-ननुशोचती ॥ १८॥ न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा ॥ मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ॥१९॥ प्रबोधयति माऽविज्ञं व्युषिते शोककर्शिता ॥ वर्त्मैतद्गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥२०॥ कथं नु दारका दीना दारकीर्वाऽपरायणाः ॥ वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥ २१ ॥ एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम् ॥ ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत ॥ २२ ॥ पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥२३॥ पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजङ्गमः ॥ यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥२४॥ विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ॥ नाविन्दत्तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥ २५ ॥ तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना ॥ कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ॥ २६ ॥ अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ॥ शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ॥ २७ ॥

दूसरेके आश्रित रहनेवाले ये अनाथ मेरे लड़के तथा लड़कियाँ कैसे अपना बर्ताव करेंगी। जैसे समुद्रमें नाव फट जानेसे मनुष्य दुःखी होते हैं, वैसेही ये सब असहाय होकर दुःखी होंगे ॥ २१ ॥ इसप्रकार दीनबुद्धिसे शोचकर रहे पुरञ्जनको, जो वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप होनेसे उसके योग्य नहीं था, पकड़नेके लिये अपनी बुद्धि स्थिर करके भय उपस्थित हुआ ॥ २२ ॥ तथा जब यह यवन इसे अपने स्थानको ले जाने लगे, तब इसके अनुचर[] शोक करते हुए अत्यन्त दुःखी होकर पीछे दौड़े ॥ २३ ॥ यवनोंसे उपरुद्ध हुआ सर्प प्राण जब उस पुरीको छोड़ कर गया, तब उसके पीछे वह पुरी नष्ट होकर पञ्चमहाभूतात्मक अपनी प्रकृतिमें मिल गई ॥ २४ ॥ बलवान् यवनने जब उसे हठपूर्वक खींचा तब अज्ञानाविष्ट उसने अपने पूर्व मित्रका स्मरण नहीं किया ॥ २५ ॥ निर्दयी इसने जिन पशुओंको यज्ञमें मारा था, वे इसके उस पापका स्मरण करते हुए कुठारोंसे क्रुद्ध होकर छेदने लगे ॥२६॥ वह अनन्त अपार अन्धकारमें

[]प्राण और इन्द्रियाँ। देखिये यह श्रुति—'तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रमति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति।'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पड़ा हुआ वर्षोंतक पीड़ाओंका अनुभव करता रहा। स्त्रीमें अधिक आसक्ति रखनेके कारण वह दूषित हो चुका था और उसकी बुद्धि भी नष्ट हो चुकी थी ॥२७॥ वह पुरञ्जन अन्तकालमें उसी स्त्रीका मनसे ध्यान करता रहा, इससे मरनेके पश्चात् वह राजाओंमें श्रेष्ठ विदर्भके घरमें उत्तम स्त्री हुआ ॥ २८ ॥ शत्रुओंके पुरोंको जीतनेवाले बुद्धिमान् राजा मलयध्वजने संग्राममें राजाओंको जीतकर, पराक्रम ही जिसके लिए मुख्य रखा गया था, ऐसी उस वैदर्भीके साथ विवाह किया ॥ २९ ॥ उस वैदर्भीमें राजा मलयध्वजने नीली आँखोंवाली† एक कन्या पैदा की तथा छोटे सात पुत्र†† उत्पन्न किये। वे द्रविड़ देशके‡‡ राजा हुए। ३० ॥ हे राजन्, उनमें एक-एकके अर्बुद पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके वंशधरोंसे यह सारी पृथ्वी मन्वन्तर-पर्यन्त तथा उसके बादतक भी रक्षित रहेगी ॥ ३१ ॥ अगस्त्यने [मनने] पहले उत्पन्न होनेवाली उस धृतव्रता कन्याके साथ विवाह किया, जिसमें दृढ़च्युत (सत्यलोकादि भोगोंसे रहित) नामका पुत्र हुआ। वह मुनि हुआ। उसका इध्मवाह❀ नामका पुत्र हुआ ॥ ३२ राजर्षि मलयध्वजने अपने पुत्रोंको पृथ्वीका भाग करके दे दिया और स्वयं कृष्णका आराधन करनेकी

तामेव मनसा गृह्णन्बभूव प्रमदोत्तमा ॥ अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥ २८॥ उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भी मलयध्वजः ॥ युधि निर्जित्य राजन्यान्पाण्ड्यः परपुरञ्जयः ॥२९॥ तस्यां स जनयाञ्चक्र आत्मजामसितेक्षणाम् ॥ यवीयसः सप्त सुतान्सप्त द्रविडभूभृतः ॥ ३० ॥ ‡एकैकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् । भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ॥३१॥ अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ॥ यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ॥३२॥ विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥३३॥ हित्वा गृहान्सुतान्भोगान्वैदर्भी मदिरेक्षणा ॥ अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥३४॥ तत्र चन्द्रवसा ताम्रपर्णी वटोदका ॥ तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ॥३५॥ कन्दाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ॥ वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥३६॥ शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे

इच्छासे कुलाचल पर्वत पर चला गया ॥ ३३ ॥ तब मतवाला बना देनेवाले ईक्षणवाली वह वैदर्भी घर, पुत्र तथा समस्त भोगोंको छोड़कर मलयध्वज के पीछे चली गई, जैसे चन्द्रमाकी कान्ति उसके पीछे चली जाती है ॥ ३४ ॥ वहाँपर चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी तथा वटोदका नदियाँ विद्यमान हैं, उनके पवित्र जलोंसे नित्य ही अपने बाह्य तथा अभ्यन्तर मलोंको धोता हुआ ॥ ३५ ॥ कन्द, मूल, बीज, फल, पुष्प, पत्र, तृण तथा जलसे वृत्ति चलाता हुआ धीरे-धीरे शरीरको दुर्बल बना देनेवाली तपस्यामें संलग्न हो गया ॥ ३६ ॥ सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले

---

†श्रीकृष्णका जिससे अवलोकन होता है ऐसी, यह वास्तविक अर्थ है। ‡आत्मजा श्रीकृष्णसेवाभिरुचि। ††श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन और दास्य—ये सात भक्तिके प्रकार यहाँ पुत्ररूपसे विवक्षित हैं। ‡‡श्रवण आदिके द्वारा ही द्रविड़देशकी भूति सुरक्षित है, ऐसी लोकमें प्रसिद्धि है।

❀ समीधा हाथमें लेकर विज्ञानके लिये गुरुके पास वैराग्य होनेके बाद पहुँचनेका नाम यहाँ इध्मवाह है। बिना वैराग्योत्पन्न हुए गुरुके पास पहुँचना असम्भव है और जगहों पर लोपामुद्राके गर्भसे उत्पन्न अगस्त्यऋषिके पुत्रका नाम 'इध्मवाह' मिलता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसने शीत तथा गर्मी, वायु तथा वर्षा, भूख एवं प्यास, प्रिय तथा अप्रिय, सुख और दुःख—इन जोड़ोंको जीत लिया ॥ ३७ ॥ उपासनारूप तपस्यासे कामादि वासनाएँ नष्ट करके तथा यम-आदि नियमोंसे इन्द्रिय, प्राण और वायुको जीतकर अपनी आत्माको ब्रह्ममें लगा दिया ॥३८॥ वह स्थिर होकर एकही जगह स्थाणुके समान देवताओंके सौ वर्षोंतक खड़ा रहा तथा भगवान् वासुदेवमें भक्ति करता हुआ देहादि सब कुछ भूल गया ॥ ३९ ॥ वह अन्तःकरणकी वृत्तिके साक्षी आत्माको व्यापक होनेके कारण देहमें रहनेपर भी उससे पृथक् समझता हुआ विरामको प्राप्त हुआ। जैसे मनुष्य स्वप्नमें 'मेरा सिर कट गया' इत्यादि प्रतीति होनेपर भी उससे पृथक् आत्माको समझता है ॥ ४० ॥ हे राजन्, गुरुरूपसे स्वयं भगवान् हरिके द्वारा कहे गये चारों तरफ प्रकाशित हो रहे। विशुद्ध ज्ञानरूप दीपकसे उसे जानकर तथा परब्रह्मको अपने आत्मामें और आत्माको परब्रह्ममें देखता हुआ उस अवलोकनको भी छोड़कर

प्रियाप्रिये ॥ सुखदुःखे इति द्वन्द्वान्यजयत्समदर्शनः ॥३७॥ तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ॥ युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥३८॥ आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ॥ वासुदेवे भगवतिनान्यद्वेदोद्वहन् रतिम्॥३९॥ स व्यापकतयात्मानं व्यतिरिक्ततयात्मनि ॥ विद्वान्स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥ ४० ॥ साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप ॥ विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥ ४१ ॥ परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथात्मनि ॥ वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥ ४२ ॥ पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ॥ प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान्सा पतिदेवता ॥४३॥ चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ॥ बभावुपपतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम्॥४४॥ अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना ॥ सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत ॥४५॥ यदा नोपालभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती ॥ आसीत्संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ।४६॥ आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाश्रुभिः ॥ स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥४७॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम् ॥ दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥४८॥ एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् ॥ पतिता पाद-

इस संसारसे शान्त हो गया ॥ ४१, ४२ ॥ पतिको ही देवता माननेवाली वह वैदर्भी समस्त भोग छोड़कर परमधर्मको जाननेवाले अपने मलध्वजकी प्रेमपूर्वक सेवा करने लगी ॥ ४३ ॥ वल्कल धारण किये हुई वह व्रतके कारण अत्यन्त कृश हो गई थी तथा उसके बालोंके जटा बन गए थे। वह अपने पतिके समीपमें, शान्त शिखावाली अग्निके समान, शोभित हो रही थी ॥ ४ ॥ स्थिर आसनसे बैठी हुई उसने जबतक अपने पतिको मरा हुआ नहीं समझा, तबतक पूर्वकी तरह सेवा करती रही ॥ ४५ ॥ और जब पतिके चरणोंकी सेवाकर रही उसने उन चरणोंमें जब उष्णता न देखी, तब इस तरह वह उद्विग्न हो गई जिस तरह समूहमेंसे मृगी भ्रष्ट होकर उद्विग्न होती है ॥ ४६ ॥ वह उस जंगलमें अपनेको पतिसे रहित अतएव अनाथ देखकर सोच करती हुई दुःखके आँसुओंसे स्तनोंको सिक्तकर पुका फाड़कर रोने लगी ॥ ४७ ॥ और कहने लगी—हे राजर्षे, उठो, उठो। तुम अधार्मिक क्षत्रिय तथा चोरोंसे भयभीत इस समुद्र पर्यन्त पृथ्वीकी रक्षा करनेके योग्य हो ॥ ४८ ॥ वनमें पतिका अनुसरण करनेवाली वह बाला इसप्रकार विलाप करती हुई पतिके चरणोंमें गिर पड़ी तथा रोती हुई आँसू बहाने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगी ॥ ४६ ॥ तथा लकड़ियोंकी चिता सजाकर उसपर पतिके शरीरको रखकर तदनन्तर अग्नि लगा करके विलाप करती हुई उसके पीछे मरनेको उद्यत हो गयी ॥ ५० ॥ तदनन्तर वहाँ-पर उसका कोई पहलेका जितेन्द्रिय ब्राह्मण मित्र था। हे प्रभो, उसने रो रही उसे शान्तियुक्त सुन्दर वचनोंसे समझाते हुए कहा ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणने कहा—तुम कौन हो और किसकी स्त्री हो तथा यह सोया हुआ कौन है, जिसके लिये तुम सोचकर रही हो ? क्या तुम अपने मित्र मुझे जानती हो ? जिसके साथ पहले तुम मैत्रीसुखका अनुभवकर चुके हो* ॥ ५२ ॥ हे मित्र, क्या तुम हमारा कोई पहले अविज्ञात नामका मित्र था ऐसा अपनेको स्मरण करते हो। जो तुम स्थानकी इच्छासे मुझे छोड़कर पृथ्वीके भोगोंमें आसक्त होकर चले गये ॥५३॥ हे आर्य, मैं तथा तुम दोनों घरके बिनाही हजारों वर्षोंतक मानसरोवरमें रहनेवाले हंस हैं ॥ ५४ ॥ हे बन्धो, वही तुम मुझे छोड़कर सुखकी इच्छासे पृथ्वीपर गये और वहाँपर घूमते हुए

योर्भर्तू रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥४६॥ चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ॥ आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥ ५० ॥ तत्र पूर्व-तरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् ॥ सान्त्वयन्वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि ॥ जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥ अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे । हित्वा मां पदमन्विच्छन्भौमभोगरतो गतः ॥ ५३ ॥ हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ॥ अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ ५४ ॥ स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ॥ विचरन्पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥५५॥ पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ॥ षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ॥ ५६ ॥ पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ॥ तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिन्द्रियसङ्ग्रहः ॥ ५७ ॥ विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ॥ शक्त्यधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥ ५८ ॥ तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ॥ तत्सङ्गा-दीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥ ५९ ॥ न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव ॥ न पतिस्त्वं पुरञ्जन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥ ६० ॥

तुमने किसी स्त्रीके (मायाके) द्वारा विरचित एक स्थान देखा ॥ ५५ ॥ उस स्थानमें पाँच बगीचे, नौ दरवाजे, एक रक्षक, तीन प्राकार, छः वणिक, पाँच बाजार, पाँच उपादान कारण तथा एक स्त्री स्वामिनी थी ॥ ५६ ॥ हे प्रभो, पाँच इन्द्रियोंके विषय शब्दादिक ही बगीचे हैं, नव छिद्र द्वार हैं, तेज, जल तथा अन्न परिखा हैं तथा इन्द्रियाँ वणिक् हैं ॥ ५७ ॥ कार्यकी शक्ति ही बाजार है, पाणी ही उपादानकारण हैं और शक्तिही स्वामिनि है। इसमें प्रविष्ट जीव मोहित हो जाता है, अपना यथार्थस्वरूप नहीं जान पाता ॥ ५८ ॥ हे प्रभो, उसमें तुम मायासे आक्रान्त होकर उस स्त्रीके साथ रमण करते हुए शास्त्रकी स्मृतिसे रहित हो गये और उसीके संगसे इस नीच दशाको प्राप्त हुए हो ॥ ५९ ॥ तुम विदर्भकी कन्या नहीं हो तथा यह वीर तुम्हारा पति नहीं है। तुम जिस पुरञ्जनीसे इस नौ दरवाजेके पुरमें रोके गये हो ॥ ६० ॥ वह मेरे द्वारा विरचित माया है। जिससे तुम पुरुष होनेपर भी अपनेको श्रेष्ठ स्त्री समझते हो।

* पूर्वजन्मके पुंस्त्वका अनुसन्धानकर यह व्याख्या है। इसके आगे भी 'सखे !' इत्यादि पुरुष सम्बोधन ही मिलते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वस्तुतः हम दोनों हंस हैं। हम दोनोंका असली स्वरूप तुम देखो ॥६१॥ हे मित्र, देखो, मैं तथा तुम अन्य नहीं हैं। जो तुम हो वही मैं हूँ। हम दोनोंमें विद्वान् लोग थोड़ा भी अन्तर नहीं देखते ॥ ६२ ॥ जैसे मनुष्य अपने एक शरीरको दर्पण तथा नेत्रोंमें नानाप्रकार देखता है, वैसेही हम दोनोंमें अन्तर है ॥ ६३ ॥ इसप्रकार मानसरोवरका वह हंस हंससे प्रबोधित

माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीम्। मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥ ६१ ॥ अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भो ॥ न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥६२॥ यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ॥ द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः॥६३॥ एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ॥ स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतम् ॥ ६४ ॥ बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥ यत्परोक्षप्रियो देवो भगवन्विश्वभावनः ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरञ्जनोपाख्यानेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

होनेपर स्वस्थ हुआ और उस अपने मित्ररूपी ईश्वरके वियोगसे नष्ट हुई स्मृति उसने पुनः प्राप्त की ॥६४॥ हे प्राचीनबर्हि, यह मैंने आत्मज्ञान राजाकी कथाके रूपकसे तुमको समझाया है, क्योंकि विश्वभावन भगवान् नारायण परोक्षप्रिय हैं ॥ ६५ ॥

अट्ठाईसवें अध्यायका सार—हे प्राचीनबर्हि, एक समय भयके सैनिकोंने पृथ्वीमें विचरते हुए पुरञ्जन पुरीपर आक्रमण किया। तब विशीर्ण हो रही अपनी पुरीको देखकर वह राजा उसे छोड़ना चाहा। तबतक प्रज्वारने आकर वह पुरी जला दी, जिससे उसका रक्षक सर्प निकल गया तथा पुरञ्जन अन्तकालमें स्त्रीकी चिन्ता करने लगा, जिससे मरनेपर विदर्भके यहाँ कन्यारूपसे जन्म लिया। उसके साथ मलयध्वजने विवाह किया और उसमें उसने एक कन्या तथा सात पुत्र उत्पन्न किए। तदनन्तर पुत्रोंको राज्य देकर वनको चला गया और वहाँपर तपस्या करके शरीर छोड़ दिया। तब उसकी स्त्री वैदर्भी उसके पीछे मरनेको जब उद्यत हुई तब उसके पूर्वके मित्रने आकर उसे समझाया। जिसके समझानेपर अपनी नष्ट स्मृति उसने पुनः प्राप्त की। अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त❀

❀ अथैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(उक्त कथाका परोक्षार्थ व्याख्यान करना)

प्राचीनबर्हिने कहा—हे भगवन्, आपके वचन मैंने अच्छी तरहसे नहीं समझे, उन वचनोंको ज्ञानीलोग ही जानते हैं, कर्मसे मोहित हमलोग नहीं ॥१॥ नारदजीने कहा—जीवको

प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ॥ कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥

पुरञ्जन समझो, जो एक, दो, तीन, चार बहुत तथा बिना पैरोंके अपनेपुर [शरीर] को प्रकाशित करता है ॥ २ ॥ जो अविज्ञात नामक पुरुषका मित्र कहा है वह ईश्वर है। जिसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनुष्य नाम, क्रिया तथा गुणोंसे नहीं जानते ॥ ३ ॥ जब पुरुषको प्रकृतिके समस्त गुणोंको पूर्णरूपसे भोगनेकी चाह हुई, तब उसने समस्त शरीरमें नव इन्द्रिय छिद्ररूपी द्वार तथा दो-दो हाथ-पाँवसे युक्त मनुष्य शरीरको ही श्रेष्ठ समझा ॥४॥ बुद्धिको स्त्री समझनी चाहिये, जिससे 'यह मेरा है' और 'यह मैं हूँ' यह अहंकार उत्पन्न किया जाता है। एवं जिसका आश्रय लेकर मनुष्य इस शरीर में इन्द्रियोंसे विषयोंको भोगता है ॥५॥ इन्द्रिय समूहको मित्र जानना चाहिये, जो ज्ञानको उत्पन्न तथा कर्मोंका सम्पादन करते हैं। एवं प्राणकी वृत्तियोंको सखियाँ समझना चाहिये तथा पञ्चवृत्तिवाले प्राणको पाँच सिरका सर्प जानना चाहिये ॥ ६ ॥ ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियोंके नायक बृहद्बलकी मन समझना चाहिये। तथा पाँचो विषयोंको पञ्चाल, जिनके बीच नौ छिद्ररूपी द्वारसे युक्त यह पुररूपी शरीर है ॥ ७ ॥ दो नेत्र, दो नासिकाएँ, दो कान, मुख, लिङ्ग तथा गुदा—ये नव दरवाजे हैं। इनमें दो-दो दरवाजोंसे आत्मा तत्-तत्

पुरुषं पुरञ्जनं विद्याद्यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम् ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपाकम् ॥ २ ॥ योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ॥ यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥ यदा जिघृक्षन्पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् ॥ नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥ ४ ॥ बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ॥ यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥ ५ ॥ सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम्। सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पंचवृत्तिर्यथोरगः ॥६॥ बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् ॥ पंचालाः पंचविषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥७॥ अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति ॥ द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ॥ ८ ॥ अक्षिणी नासिके आस्यमिति पंच पुरः कृताः ॥ दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥९॥ पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ॥ खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ॥ रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥ १० ॥ नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते ॥ घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥११॥ आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् ॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥१२॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् ॥ पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद् व्रजेत् ॥ १३ ॥ आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ॥ उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निरृति

इन्द्रियोंसे युक्त होकर बाहर जाता है ॥ ८ ॥ दो नेत्र, दो नासिकाएँ तथा मुख, ये पूर्वदिशामें हैं। दाहिना कान दक्षिण दिशामें और बायाँ कान उत्तर दिशामें कहा गया है ॥९॥ पश्चिम दिशामें नीचेके दो दरवाजे गुदा तथा लिङ्ग यहाँ कहे जाते हैं। इस शरीरमें खद्योत तथा आविर्मुखी नामक ये दोनों नेत्र एक जगह बने हुए हैं। उनसे मनुष्यचक्षु इन्द्रियके साथ रूपको देखता है ॥ १० ॥ नलिनी और नालिनी—ये दोनों नासिकाएँ हैं। गन्धको सौरभ कहते हैं। नासिकाको अवधूत कहते हैं, मुख्यको मुख कहते हैं, विपणको वाणी तथा रसज्ञको रस यानी रसेन्द्रिय कहते हैं ॥११॥ भाषणको आपण तथा नानाप्रकारके अन्नको बहूदन कहते हैं। दाहिने कानको पितृहू तथा वाम कानको देवहू कहते हैं ॥१२॥ प्रवृत्त तथा निवृत्त शास्त्रको पञ्चाल कहते हैं। श्रोत्रेन्द्रियका सहारा लेकर कानसे पितृ तथा देवयानको जाता है ॥ १३ ॥ लिङ्गको आसुरी तथा पश्चात्को अर्वाक् और ग्रामीणोंकी रतिको व्यवाय कहते हैं। लिङ्गको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुर्मद तथा गुदको निर्ऋति कहते हैं ॥ १४ ॥ नरकको वैशस तथा पायुको लुब्धक कहते हैं। हाथ पाँव—ये दोनों अन्धे हैं। मनुष्य इनसे युक्त होकर इधर-उधर चलता-फिरता तथा कार्य करता है ॥ १५ ॥ हृदयको अन्तःपुर और मनको विषूचि कहते हैं। उस हृदयमें मनुष्य मनके गुणोंसे मोह, प्रसाद तथा हर्ष प्राप्त करता है ॥१६॥ ज्यों-ज्यों बुद्धि स्वप्नमें विकारको प्राप्त होती है या जाग्रदवस्थामें इन्द्रियोंको परिणत करती है, त्यों-त्यों यह जीवात्मा उसके गुणोंमें लिप्त हो जाता है तथा वास्तवमें उपद्रष्टा रहने पर भी बुद्धिकी वृत्तियोंका अनुकरण करता है ॥ १७ ॥ शरीरको रथ और इन्द्रियोंको घोड़ा कहते हैं। संवत्सरके समान इनकी निरन्तर गति है, परन्तु सच पूछो, तो इनमें गति नहीं है। पुण्य तथा पाप ये दो चक्र हैं, तीनों गुण ध्वजा हैं तथा पाँच प्राण बाँधनेके स्थान हैं ॥ १८ ॥ मनही लगाम है, बुद्धि सारथी है और हृदय रथीके बैठने का स्थान है। शोक-मोह द्वन्द्व युगबन्धन के स्थान हैं, शब्दादि

गुदं उच्यते ॥ १४ ॥ वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु ॥ हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥ १५ ॥ अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते ॥ तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥ १६ ॥ यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ॥ तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥ १७ ॥ देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयोऽगतिः ॥ द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पंचासुबन्धुरः ॥ १८ ॥ मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः ॥ पंचेन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥ १९ ॥ आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ॥ एकादशेन्द्रियचमूः पंचसूना-विनोदकृत ॥ संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥ २० ॥ तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः ॥ हरन्त्यायुः परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ २१ ॥ कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति ॥ स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥ २२ ॥ आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः ॥ भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥२३॥ एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः ॥ क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥ २४ ॥ प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ॥ शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥ २५ ॥ यदात्मानमविज्ञाय भग-

पाँच इन्द्रियोंके विषय पाँच बाण हैं और सात धातुएँ आवरण हैं ॥ १९ ॥ बाहरका पराक्रम आकूति है, मृगतृष्णारूप तुच्छ विषयभोग ही शिकार है, दश इन्द्रियाँ सेना तथा ग्यारहवाँ मन सेनापति है। ये पाँच विषयोंका शिकार करते हैं ॥ २० ॥ उस संवत्सरके दिन गन्धर्व हैं तथा रात्रियोंको गन्धर्वी कहते हैं। तीनसौ साठ ये दोनों घूमकर मनुष्योंकी आयुका हरण करती हैं ॥ २१ ॥ जराको कालकन्या कहते हैं। उसे मनुष्य स्वीकार नहीं करते! यवनेश्वरने मनुष्योंका नाश करनेके विचारसे उसे बहिनरूपसे स्वीकार किया ॥ २२ ॥ मानसिक चिन्ताएँ तथा व्यधियाँ उस यवनके साथ चलनेवाले सैनिक हैं और मनुष्योंको पीड़ित करनेमें अत्यन्त वेगशाली प्रज्वार नामक दो प्रकारका ज्वर ही उसका भाई है ॥ २३ ॥ यों आधिदैविक, आधि भौतिक तथा आध्यात्मिक नानाप्रकारके दुःखोंसे दुःखित होता हुआ जीव इस शरीरमें अज्ञानसे आवृत होकर सौ वर्षोंतक रहता है ॥ २४ ॥ निर्गुण रहनेपर भी वह प्राण, इन्द्रिय तथा मनके धर्मोंको अपनेमें आरोप करके थोड़े थोड़े विषयसुखोंका ध्यान करता हुआ काम करते रहता है ॥ २५ ॥ स्वयंप्रकाश स्वभाव होनेपर भी वह पुरुष आत्मा तथा परमगुरु भग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वान्को न जानकर प्रकृतिके गुणोंसे आसक्त होता है ॥ २६ ॥ इससे गुणोंमें अभिमान करनेवाला वह सात्त्विक, राजस तथा तामस कार्योंको परवश होकर करता है और उन्हीं कर्मोंके अनुसार उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ कभी वह सात्त्विककर्मसे अत्यन्त प्रकाशयुक्त लोकोंको प्राप्त करता है। राजससे कार्यमें परिश्रम तथा अन्तमें कभी दुःख भी प्राप्त करता है। तामससे उसको अज्ञान तथा अत्यन्त शोक होता है ॥ २८ ॥ नष्टबुद्धि वह मनुष्य अपने कर्म तथा गुणोंके अनुसार कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी नपुंसक, कभी देवता, कभी मनुष्य तथा कभी पशु बनता है ॥२९॥ जैसे भूखके कारण अत्यन्त दीन कुत्ता घर-घर घूमता हुआ दण्ड या भात प्राप्त करता है, जो उसके भाग्य में बदा रहता है ॥ ३० ॥ वैसेही कामसे युक्त अन्तःकरण वाला जीव छोटे-बड़े मार्ग से घूमता हुआ, जो उसके भाग्य में प्रिय तथा अप्रिय बदा रहता है, उसे भोगने के लिये ऊपर-नीचे तथा मध्य में जाता है ॥ ३१ ॥ आधिदैविक, आधिभौतिक

वन्तं परं गुरुम् ॥ पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥ २६ ॥ गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः । शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्माभिजायते ॥ २७ ॥ शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ॥ दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमः शोकोत्कटान्क्वचित् ॥ २८ ॥ क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नो भयमन्धधीः ॥ देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ॥ २९ ॥ क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ॥ चरन्विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥ ३० ॥ तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् ॥ उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥ ३१ ॥ दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ॥ जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥ ३२ ॥ यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् ॥ तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥ ३३ ॥ नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् ॥ द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥ ३४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥ ३५ ॥ अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा ॥ संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥ ३६ ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः ॥ सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥ ३७ ॥ सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥ ३८ ॥ यत्र भागवता

तथा आध्यात्मिक दुःखोंमें से जीवका एकसे भी वियोग नहीं होता और यदि होता भी है, तो उसकी प्रतिक्रिया हो जाती है ॥ ३२ ॥ जैसे मनुष्य सिरसे अधिक बोझा ले जाता हुआ उसे कन्धेपर रखता है, वैसेही समस्त प्रतिक्रियाएँ होती हैं ॥ ३३ ॥ हे अनघ, जैसे स्वप्न में देखा गया स्वप्न बिना प्रबोध के आत्यन्तिक प्रतीकार नहीं कर पाता वैसे ही ज्ञानरहित कर्मद्वारा कर्मोंका आत्यन्तिक प्रतीकार नहीं हो पाता, क्योंकि ये दोनों अविद्यासे प्राप्त हैं ॥३४॥ अर्थके न रहने पर भी मनुष्य का संसार निवृत्त ऐसे नहीं होता, जैसे कि उपाधिभूत मनसे स्वप्नमें विचरणकर रहे पुरुषका उस स्वप्नमें देखे गये व्याघ्र आदिके द्वारा, जो वस्तुतः विद्यमान नहीं हैं, उत्पन्न हुआ भय आदि निवृत्त नहीं होता ॥ ३५ ॥ पुरुषार्थभूत आत्माका जिस अज्ञानसे अनर्थ परम्परारूप संसार होता है, उसका नाश तो एकमात्र गुरुरूप भगवान् वासुदेव में परमभक्ति से ही होता है ॥ ३६ ॥ भगवान् वासुदेवमें किया गया ऐकान्तिक भक्तियोग अच्छी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रीतिसे वैराग्य तथा ज्ञानको उत्पन्न करना है ॥३७॥ हे राजर्षे, वह भक्तियोग भगवान्‌की कथा का आश्रयण करने से शीघ्र होता है तथा नित्यही श्रद्धापूर्वक सुनने और पढ़नेवालेको होता है ॥ ३८ ॥ हे राजन्, जहाँपर भगवान्‌के गुण कहने-सुनने में व्यग्रचित्तवाले तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले उनके भक्त साधुलोग रहते हैं ॥ ३९ ॥ उस स्थानमें महात्माओं द्वारा कहे गये भगवान्‌के चरित्ररूपी अमृतसे पूर्ण नदियाँ चारों तरफसे बहती हैं। हे राजन्, उन्हें जो मनुष्य अतृप्त होकर सावधान कानोंसे सुनते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक, तथा मोह स्पर्श नहीं करते ॥ ४० ॥ स्वभासे ही उत्पन्न होनेवाले इन कामादिसे युक्त मनुष्य भगवान्‌की कथारूपी अमृत समुद्रमें प्रेम नहीं करता, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ प्रजापतियोंके पति ब्रह्मा, स्वयं भगवान् शंकर, मनु, दक्षादि प्रजापति, नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादि, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ तथा मैं, ये जितने ब्रह्मवादी हैं वे सबके सब आज भी तपस्या, विद्या और समाधिसे खोजते हुए भी सबके साक्षी भगवान् को नहीं खोज पाते ॥ ४२-४४ ॥ अत्यन्त विस्तृत तथा दुष्पार वेदमें विचरते हुए मन्त्रोंसे व्यवच्छिन्न इन्द्रादिरूप-

राजन् साधवो विशदाशयाः ॥ भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥३९॥ तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ॥ ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥४०॥ एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ॥ न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥ ४१ ॥ प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान्गिरिशो मनुः ॥ दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥ ४२ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥ अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः ॥ पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥ शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे ॥ मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥ ४५ ॥ यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ॥ स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥ ४६ ॥ तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ॥ मार्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥ ४७ ॥ स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः । आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥ ४८ ॥ आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमण्डलम् ॥ स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥ तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥ ४९ ॥

को भजते हुए किसीने परब्रह्मको नहीं जाना ॥ ४५ ॥ मनमें स्थिर किये गये भगवान् जब जिसके ऊपर कृपा करते हैं तब वह लोकव्यवहार तथा वेदमें परिनिष्ठित बुद्धि छोड़ देता है ॥ ४६ ॥ इसलिये हे प्राचानबर्हि, तुम अज्ञानसे सत्यकी तरह प्रतीत हो रहे इन कर्मों में परमार्थ बुद्धि मत करो, क्योंकि ये केवल कानको मनोहर लगनेवाले हैं। वस्तुतः इनसे ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ४७ ॥ जो मलिनबुद्धि वेदको कर्मपरक बतलाते हैं, वे उसके रहस्यको नहीं जानते तथा अपने स्वरूपको भी नहीं जानते, जहाँपर भगवान् रहते हैं ॥ ४८ ॥ पूर्वकी ओर अग्रभागवाले कुशाओंसे समस्त पृथ्वीको व्याप्त करके तथा बहुत पशुओंके वधसे यज्ञका अहङ्कारी, अतः दुर्विनीत बने हुए तुम कर्मको नहीं जानते। जिससे भगवान् प्रसन्न हों वही कर्म है और उनमें जिससे मति हो वही विद्या है ॥ ४९ ॥ इस संसारमें देहधारियोंकी आत्मा तथा स्वामी भगवान् ही हैं, क्योंकि वही सबको उत्पन्न करनेवाले हैं। इसलिए भगवान्‌के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

चरणकमल ही प्राणियोंके आश्रय हैं, क्योंकि उन्हींसे मनुष्योंका इस संसारमें कल्याण होता ॥ ५० ॥ तथा जहाँ से थोड़ा भी भय न हो वही अत्यन्त प्रिय तथा आत्मा है ऐसा जो मनुष्य जानता है, वहीं विद्वान् है और वही गुरु तथा हरि है ॥ ५१ ॥ नारदजी ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, इस तरह मैंने आपके प्रश्नका समाधान दे दिया अब अत्यन्त गोपनीय बिलकुल निश्चित रहस्य तुम्हें बतला हूँ । तुम मेरे वचनोंको सावधान होकर सुनो ॥ ५२ ॥ खिले हुए फूलोंकी सुन्दर वाटिकामें परस्पर स्त्रीसे मिलकर उसीमें आसक्त हुए, भौंरोंके गानमें लुब्ध कर्णवाले, आगे हिंसा करनेवाले भेड़ियोंका अनादर करके पीछेसे व्याधके वाणसे विदीर्ण शरीर आते हुए मृगका अन्वेषण करो ॥ ५३ ॥ हे राजन् पुष्पके समान धर्मवाली स्त्रियोंके आश्रयमें पुष्पमधुकी गन्धके तुल्य, अत्यन्त अल्प, काम्यकर्मोंके फलस्वरूप, जिह्वा तथा उपस्थ आदि इन्द्रियोंके तुच्छ सुखोंको खोजते हुए तथा स्त्रियोंके साथ एकान्तमें मिलकर उसीमें

हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ॥ तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥ ५० ॥ स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ॥ इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥ ५१ ॥ नारद उवाच ॥ प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ॥ अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥ ५२ ॥ क्षुद्रंचरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ॥ अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥ ५३ ॥ सुमनः समधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्व्यौपस्थ्यादिविचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तःशरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥ ५४ ॥ स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्तश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ॥ जह्यङ्गनाश्रममसत्तमयूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥ ५५ ॥ राजोवाच ॥ श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत ॥ नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥५६॥ संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् ॥ ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥५७॥

मनलगाये हुए, भौंरोंकी गतिके समान स्त्रियोंके अलापमें अत्यन्त प्रलोभित कर्णवाले, आगे भेड़ियोंके समूहकी तरह अपनी आयु हरण करनेवाले, दिन-रातरूपी कालका विचार न करके घरमें विहार करनेवाले, तथा पीछेसे प्रवृत्त लुब्धकरूपी मृत्यु जिसे अन्तकरूप वाणसे वेधती है उस विदीर्णहृदय इस आत्माका तुम अवलोकन करने योग्य हो ॥ ५४ ॥ इसलिए तुम मृगकी चेष्टाओंको विचारकर चित्तको अपने हृदयमें तथा कानोंकी धुनीको चित्तमें लीन कर दो तथा अत्यन्त कामी मनुष्योंकी जिसमें वार्ता होती है उस गृहस्थाश्रमको छोड़कर प्राणियों की शरणभूत ईश्वरको प्रसन्न करो । इसप्रकार धीरे-धीरे सब जगहसे विरक्त हो जाओ ॥ ५५ ॥ प्राचीनबर्हिने कहा—हे ब्रह्मन्, जो आपने कहा है वह मैंने सुना है तथा उसका विचार भी किया है । परन्तु हमारे ये उपाध्याय लोग यानी कर्मोपदेष्टा आचार्यलोग यह नहीं जानते । यदि जानते होते, तो क्यों नहीं कहते ॥ ५६ ॥ हे विप्र, उन उपाध्यायोंसे किया गया

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो मेरा आत्मतत्त्वके विषयमें महान् संशय था, वह आपने दूर कर दिया। परन्तु एक यहाँ दूसरा संशय है, जिसमें इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ तथा ऋषि लोग भी मोहको प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ मनुष्य जिस शरीरसे कर्म करता है उसे यहींपर छोड़कर दूसरे लोकमें कर्मोपस्थापित दूसरे शरीर से उपयुक्त हुए कर्मोंको प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥ यह ज्ञानियोंका स्थान-स्थानपर विवाद होता है। और भी एक दूसरा सन्देह यह है कि—वेदोक्तकर्म किया जाता है वह एकक्षणके पश्चात् ही परोक्ष होनेके कारण प्रकाशित नहीं होता ॥ ५९ ॥ नारदजीने कहा—मनुष्य जिस शरीसे कर्म करता है, परलोकमें मनके सहित उसी लिङ्ग शरीरसे उसका विना किसी व्यवधानके स्वयं उपभोग करता है ॥ ६० ॥ जैसे सो रहे इस जाग्रत शरीरको जीवनमुक्त छोड़ कर आत्मामें (मनमें) संस्काररूपसे स्थित कर्मोंका शयन कर रहे देह सदृश कर्मोपस्थापित शरीरसे अथवा पश्चादिशरीरसे पुरुष भोग करता है, वैसे ही लोकान्तरमें भी भोग करता है

कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् ॥ अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥ ५८ ॥ इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ॥ कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥ ५९ ॥ नारद उवाच ॥ येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ॥ भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥ ६० ॥ शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा॥ कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥६१॥ ममैते मनसा यद्यदासावहमिति ब्रुवन् ॥ गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥ ६२ ॥ यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः ॥ एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥ ६३ ॥ नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् ॥ कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥६४॥ तेनास्य तादृशं राजन् लिङ्गिनो देहसंभवम् ॥ श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनःस्प्रष्टुमर्हति ॥ ६५ ॥ मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ॥ भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥६६॥ अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते ॥ यथा तथानुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥६७॥ सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः ॥ आयान्ति

॥६१॥ मनुष्य 'यह मैं हूँ' ये मेरे पुत्र आदि हैं' इसप्रकार कहता हुआ मनसे जिन-जिन शरीरोंको ग्रहण करता है, उन-उन शरीरोंके द्वारा सिद्ध हुए कर्मोंको ग्रहण करता है। अहङ्कार गृहीत जिन कर्मोंसे मनुष्यका दूसरा जन्म होता है ॥ ६२ ॥ जैसे ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियोंकी चेष्टाओंसे चित्तका अनुमान किया जाता है वैसे ही चित्तकी वृत्तियोंसे पूर्वजन्मके कर्मोंका अनुमान किया जाता है ॥ ६३ ॥ इस शरीरसे कहीं भी जो अनुभूत नहीं हुआ, कहीं भी देखा नहीं गया और न कहीं सुना ही गया, वह जिस तरहका रूप रहता है वह शायद कभी स्वप्नादिमें मनमें उपलब्ध होता है ॥ ६४ ॥ इसलिए हे राजन्, वासनाके आश्रय इस जीवका तत् तत् अनुभवादि से युक्त पूर्व देहकी उत्पत्ति निश्चितरूपसे मानो, क्योंकि जिसका कभी अनुभव नहीं किया गया, वह वस्तु मनमें स्फुरित नहीं हो सकती ॥ ६५ ॥ मनुष्यका मन ही पूर्वके रूपोंको कहता है, इसलिए हे राजन्, उन्नति अथवा अवनतिको प्राप्त करनेवाले तुम्हारा कल्याण हो ॥ ६६ ॥ वस्तु बिना देखी तथा सुनी गई भी वस्तु जैसे कभी स्वप्नमें दिखाई देती है वैसे ही उसे अनुकूल स्थान, समय तथा क्रियाके आश्रय समझना चाहिए ॥ ६७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संभरते विषय मनमें क्रमके अनुरोधसे भोग्य रूपसे आते हैं और भोगके पश्चात् चले जाते हैं, क्योंकि समस्त प्राणी मनके साथ रहते हैं ॥ ६८ ॥ सत्त्वगुण प्रधान भगवान्के ध्यानमें तत्पर इस मनमें यह संसार बिलकुल एकमें मिलाजुला-सा अवभासित होता है, जैसे कि चन्द्रमामें मिलकर राहु ॥ ६९ ॥ पुरुषमें जबतक बुद्धि, मन, इन्द्रिय, विषय तथा गुणोंका समूह अनादि होकर रहता है, तबतक उसमें 'अहं, मम' यह भाव यानी स्थूल देहका सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता ॥ ७० ॥ सुप्ति, मूर्च्छा और बन्धुओंके वियोगके दुःखमें तथा मृत्यु और ज्वर में भी इन्द्रियोंका विधान होनेसे मनुष्यका अहङ्कार प्रकाशित नहीं होता ॥ ७१ ॥ युवा मनुष्यकी ग्यारह इन्द्रियोंका जो अहङ्कार रहता है वह गर्भके बालकमें परिपूर्ण न होनेके कारण उस समय प्रकाशित नहीं होता, जैसे अमावस्याके दिन चन्द्रमाके रहते हुए भी उसका रूप नहीं दीखता ॥ ७२ ॥ पदार्थके न रहने पर भी विषयोंका ध्यान करनेवाले इस जीवका संसार

वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ॥६८॥ सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ॥ तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥ ६९ ॥ नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते ॥ यावद्बुद्धिमनोक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥ ७० ॥ सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ॥ नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥ ७१ ॥ गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ॥ लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥७२॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा॥७३॥एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत्षोडशविस्तृतम् ॥ एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥ अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ॥ हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥७५॥ यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ॥ न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः॥७६॥ यावदन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् ॥ मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम् ॥७७॥ यदाक्षैश्चरितान्ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ॥ सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥७८॥ अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् । पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ॥७९॥ मैत्रेय उवाच ॥ भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् ॥ प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य

निवृत्त नहीं होता, जैसे कि स्वप्नमें देखा गया अनर्थ बिना जागे निवृत्त नहीं होता ॥ ॥ ७३ ॥ यों यह लिङ्गशरीर पाँच तन्मात्रा, तीन गुण, सोलह विकारोंसे विस्तृत है तथा जीव नामक चिति शक्तिसे युक्त यह जीव कहा जाता है ॥ ७४ ॥ पुरुष इसीसे शरीरको ग्रहण करता और छोड़ता है तथा हर्ष, शोक, भय सुख और दुःख इसीसे प्राप्त करता है ॥ ७५ ॥ जैसे यह तृणजलूका पहलेके तृणको छोड़कर नहीं जाती और दूसरे तृणको ग्रहण करने पर चली जाती है, वैसे ही मरनेवाला भी मनुष्य पहले शरीरकी स्मृतिको नहीं छोड़ता ॥ ७६ ॥ जबतक मनुष्यके पूर्व देहके कर्मोंका नाश नहीं होता, तबतक वह दूसरा शरीर प्राप्त नहीं करता। हे राजन्, मनुष्योंका मन ही संसारका कारण है ॥ ७७ ॥ जब इन्द्रियोंसे उपभुक्त विषयों का ध्यान करता हुआ एकबार भी कर्मोंका चयन करता है, तब उस कर्मके रहनेपर उसको अज्ञानसे देह आदिका बन्धन होता है ॥ ७८ ॥ अतः उसे रोकने के लिए भगवद्रूप समस्त संसारको देखते हुए सर्वभावसे उन हरिका भजन करो, जिनसे इस संसारका जन्म, पालन तथा संहार होता है ॥ ७९ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, भगवान्के भक्तोंमें मुख्य नारदजी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राचीनवर्हिको जीव तथा ईश्वरकी गति बतलाकर और उससे सलाहकर वहाँसे सिद्धलोकको चले गये ॥ ८० ॥ वह राजर्षि प्राचीनवर्हि भी प्रजाकी रक्षाका पुत्रोंको आदेश देकर तपस्या करनेके लिए कपिलाश्रमको निकल गया ॥ ८१ ॥ वहाँ पर वह वीर समस्त आसक्ति छोड़कर निश्चल मनसे भगवान् के चरणकमलोंका भजन करने लगा। तदनन्तर अनन्य भक्तिसे भगवान्का भजन कर रहा वह अन्तमें उनको प्राप्त हो गया ॥ ८२ ॥ हे अनघ, यह अध्यात्मज्ञान कथारूपसे नारदमुनिने कहा है। इसे जो सुनाता है तथा सुनता है वह लिङ्गशरीर

सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥ ८० ॥ प्राचीनबर्हीं राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे ॥ आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥ ८१ ॥ तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् ॥ विमुक्तसङ्गोऽनुभजन्भक्त्या तत्साम्यतामगात् ॥८२॥ एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणाऽनघ ॥ यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥ ८३। एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ॥ यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥ ८४ ॥ अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥ एवं स्त्रियाश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र संशयः ॥ ८५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० च० विदुरमैत्रेयसम्वादे प्राचीनबर्हिर्नारदसंवादो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

छोड़कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ८३ ॥ भगवान्की महिमासे तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारदजीके मुखसे निकले हुए, मनको शुद्ध करनेवाले, तथा उत्कृष्ट फल देनेवाले इस चरित्रको जो सुनता है वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है तथा इस संसारमें नहीं भटकता फिरता ॥ ८४ ॥ मैंने कथाके व्याजसे यह अद्भुत अध्यात्मज्ञान प्राप्त किया है जिससे मनुष्यका बुद्धिके सहित अहङ्कार नष्ट हो जाता है और संशय भी दूर हो जाते हैं ॥ ८५ ॥

उन्तीसवें अध्यायका सार—श्रीनारदजीने कहा—हे प्राचीवर्हि, पुत्रादिमें दृढ़ आशक्ति रखने से ही प्राणियोंको संसार बन्धन प्राप्त होता है और आसक्ति छोड़ देने से मुक्ति मिलती है। इसलिये हे राजन्, सुन्दर विकसित पुत्र आदि रूप फूलोंसे व्याप्त स्त्री आदिसे भरे हुए गृहरूपी उद्यानमें भोगोंकी लिप्सासे भ्रमण कर रहे तथा क्षण, घड़ी, पहर आदि कालके अवयवरूपीवृकोंसे पीछा किये जा रहे विहार रसिक जीवरूपी मृग को कृतान्तरूपी व्याध मारनेके लिए पीछे पीछे दौड़े आ रहा है। इसलिए उसकी खोज करो, बादमें सिद्धि प्राप्त करोगे। श्रीमैत्रेयजीने कहा—हे विदुरजी, यों नारदजीने प्राचीनबर्हिको आदेश देकर स्वयं सिद्धलोकको चले गये तथा वह राजा भी पृथिवीका परिपालन भार अपने पुत्रोंको सौंपकर मुनिके आश्रम में चला गया। उन्तीसवाँ अध्याय समाप्तः ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ त्रिंशतितमोऽध्यायः ❋

(प्रसन्न हुए भगवान्‌से वर लेकर आये हुए प्रचेताओंका वृक्षोंकी कन्याओंके साथ विवाह तथा राज्य करना)

विदुरजीने कहा—हे ब्रह्मन्, जो आपने प्राचीनवर्हिके पुत्र कहे हैं, वे रुद्रगीतसे भगवान्‌को प्रसन्न करके किस सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ हे मैत्रेयजी, प्रचेताओंने भाग्यवश से शङ्करको प्राप्त करके तथा उन्हीं कैवल्यनाथ प्रिय शङ्करके पार्श्ववर्ती होकर मोक्ष तो निश्चय ही प्राप्त किया होगा। परन्तु उसके पहले यहाँ अथवा परलोकमें उन्होंने क्या प्राप्त किया ॥ २ ॥ मैत्रेयजीने कहा—पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले प्रचेताओंने समुद्रके अन्दर जपयज्ञरूपी तपस्यासे भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न किया ॥ ३ ॥ तब सनातन भगवान् दस हजार वर्षोंके अन्तमें

विदुरउवाच ॥ ये त्वयाभिहता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनवर्हिषः ॥ ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥१॥ किं बार्हस्पत्येह परत्र वाथ कैवल्यनाथ प्रियपार्श्ववर्तिनः ॥ आसाद्य देवं गिरीशं यदृच्छयाप्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ।.२॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः ॥ जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ॥ ३ ॥ दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः ॥ तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन् रुचा ॥४॥ सुपर्णस्कन्धमारुढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः ॥ पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥५॥ काशिष्णुना कनकवर्णाविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ॥ अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥६॥ पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्यः ॥ बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥७॥ श्रीभगवानुवाच॥ वरं वृणीष्वं भद्रं वो यूयं ने नृपनन्दनाः । सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥८॥ योऽनुस्मरति सन्ध्यायां युष्माननुदिनं नरः ॥ तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥९॥ ते तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः ॥ स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥१०॥ यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः ॥

उनके तपसे होनेवाले कष्टको अपनी कान्तिसे शान्त करते हुए शान्त शरीरसे प्रकट हुए ॥ ४ ॥ वे गरुड़के कन्धेपर बैठे हुए थे, पीले वस्त्र और गलेमें मणिको धारण किये हुए थे तथा अपनी कान्तिसे दिशाओंके अन्धकारको नष्ट कर रहे थे ॥ ५ ॥ नाना वर्णों से विचित्र प्रकाश करनेवाले कुण्डलादिभूषणोंसे उनके कपोल तथा मुखकी शोभा हो रही थी, शिरपर मुकुट शोभित हो रहा था, आठों भुजाओंमें आठ आयुध लिये हुए थे और सेवक, मुनि तथा देवता सेवा कर रहे थे। एवं गरुड़रूपी किन्नर उनकी कीर्तिका गान कर रहा था ॥ ६ ॥ लम्बे तथा स्थूल आठ भुजाओंके मध्यमें रहनेवाली लक्ष्मीकी शोभासे स्पर्धा करनेवाली वनमालाको पहने हुए थे। वे भगवान् दयादृष्टिसे देखते हुए गम्भीर स्वरसे भक्त प्रचेताओंसे कहने लगे ॥७॥ भगवान्‌ने कहा—हे राजपुत्रो, तुम हमसे वरदान माँगो, तुम्हारा कल्याण हो। प्रेमपूर्वक एक साथ रहनेवाले तुम लोगोंके सौहार्दसे मैं प्रसन्न हूँ ॥८॥ जो मनुष्य प्रतिदिन सन्ध्याके समय तुम्हारा स्मरण करेगा। उसका भाइयोंमें अपनी आत्माके समान प्रेम तथा प्राणियोंमें मित्रता होगी ॥ ९ ॥ जो मनुष्य सावधान होकर प्रातः तथा सायंकाल मेरी रुद्रगीतसे स्तुति करेगा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसकी समस्त कामनाएँ मैं पूर्ण करूँगा तथा सुन्दर बुद्धि दूँगा ॥ १० ॥ जो तुम लोगोंने पिताकी आज्ञा प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार की है, इससे तुम्हारी उत्तमकीर्ति लोकोंमें होगी ॥११॥ तथा ब्रह्माके गुणोंसे परिपूर्ण संसारमें विख्यात तुम्हारा एक पुत्र होगा, जो अपनी सन्तानसे तीनों लोकोंको पूर्ण कर देगा ॥१२॥ हे राजपुत्रो, प्रम्लोचा नामकी अप्सराने कण्डु ऋषिके सङ्गसे एक कमलके समान नेत्रोंवाली कन्या प्राप्त की। उससे त्यक्त हुई उस कन्याको वृक्षोंने ग्रहण कर लिया ॥१३॥ उस समय भूखसे क्षीण अतएव रोरही उस कन्याके मुखमें दयासे युक्त होकर चन्द्रमाने अपनी अमृत वर्षानेवाली तर्जनी अंगुली दे दी ॥ १४ ॥ (आज तो वह युवती हो चुकी है, इसलिए) मेरा अनुसरण करनेवाले अपने पितासे आदिष्ट हुए तुम लोग प्रजा उत्पादनके निमित्त शीघ्रही उस कन्याके साथ जाकर विवाह कर लो ॥ १५ ॥ एक धर्मका आचरण करनेवाले तुम सबकी एक धर्ममें स्वभाववाली यह पत्नी होगी। उसने

अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥११॥ भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः ॥ य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥१२॥ कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना ॥ तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥१३॥ क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ॥ देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ॥१४॥ प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता ॥ तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत माचिरम् ॥१५॥ अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ॥ अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ॥ भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥१७॥ अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः ॥ उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥ १८ ॥ गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ॥ मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥ नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः ॥ न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः ॥ तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥२१॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ नमो नमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ॥ मनोवचो-

अपना चित्त तुम्हीं लोगोंमें अर्पित कर दिया है ॥ १६ ॥ देवताओंके लाखों वर्षों तक शक्तिसे युक्त रहते हुए पृथ्वीके भोग भोगोगे तथा मेरी कृपासे स्वर्गके भी भोग भोगोगे ॥ १७ ॥ तदनन्तर मुझमें निरन्तर भक्तिसे अपने हृदयमें स्थित कामादि मलोंको दूर करके इन नरक तुल्य दोनों लोकोंके भोगोंसे विरक्त होकर मेरे स्थानको प्राप्त करोगे ॥ १८ ॥ जो मनुष्य घर में रहकर भी कर्म करते हैं और उन कर्मोंके मुझमें अर्पित करते हैं तथा मेरी ही वार्तासे अपना समय गवाँते हैं, उन्हें घर बन्धनमें नहीं डालता ॥ १९ ॥ जिस कथाके श्रवणसे सर्वज्ञ होता हुआ भी मैं ब्रह्मवादियों द्वारा कही गई कथा सुननेवाले श्रोताओंके हृदयमें नूतनके समान प्रविष्ट होता हूँ। तात्पर्य यह है कि इससे उन्हें ब्रह्मका साक्षात्कार होता है, क्योंकिजो मैं हूँ वही ब्रह्म है, जिसको प्राप्त करके मनुष्य न मोहको प्राप्त होते हैं, न शोक करते हैं और न प्रसन्न ही होते हैं ॥ २० ॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार कह रहे, पुरुषार्थ प्राप्त करानेवाले सुहृत्तम भगवान्‌की उनके दर्शनसे नष्ट हो गया है रजोगुण-तमोगुणरूपी मल जिनका ऐसे प्रचेता हाथ जोड़कर—गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ प्रचेताओंने कहा—समस्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्लेशोंको करनेवाले, वेदविहित उदारगुण नामवाले, मन तथा वाणीसे भी अधिक वेगवाले, समस्त इन्द्रियोंसे अविज्ञान मार्गवाले आपको वार-वार नमस्कार है ॥ २२ ॥ अपने स्वरूपमें स्थित रहनेसे शुद्ध अतएव शान्त, मनके निमित्त रहते व्यर्थमें प्रकाशित होनेवाले द्वैतसे युक्त, जगत्की स्थिति, लय तथा उत्पत्तिके लिए मायाके गुणोंसे पृथक् पृथक् मूर्तियोंको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥ संसारका हरण करनेवाली जिनकी बुद्धि है ऐसे तथा विशुद्ध सत्त्वस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है। एवं समस्त यदुवंशियोंके प्रभु वासुदेव कृष्ण भगवान्को नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे कमलेक्षण, हे कमलके समान पाँव तथा कमलोंकी मालाको धारण करनेवाले कमलनाभ, आपको वार-वार नमस्कार है ॥ २५ ॥ कमलके परागके समान पीले उज्वल वस्त्र धारण करनेवाले, समस्त प्राणियोंके निवासस्थानरूप सबके साक्षी आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२६॥ आपने समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाला यह रूप हम

वेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥२२॥ शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ॥ नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमा-
यागुणविग्रहाय ॥२३॥ नमो विशुद्धसत्वायहरये हरिमेधसे ॥ वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥२४॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥
नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥२५॥ नमः कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे ॥ सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥ रूपं भगवता
त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ॥ आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥२७॥ एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ॥ यदनुस्मर्यते काले
स्वबुद्ध्याऽभद्ररन्धन ॥२८॥ येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ॥ अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥२९॥ असावेव वरोऽ-
स्माकमीप्सितो जगतःपते ॥ प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥३०॥ वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ॥ नह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सो-
ऽनन्त इति गीयसे ॥३१॥ पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते ॥ त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ॥३२॥ यावत्ते
मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ॥ तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥३३॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्ग

लोगोंके सामने प्रकट कर दिया है। इससे बढ़कर और हम लोगोंके ऊपर आपकी कौन-सी अनुकम्पा होगी ॥ २७ ॥ हे अमङ्गलनाशन, दीनों पर दया करनेवाले प्रभुओंको इतना ही करना चाहिए कि समय-समय पर 'यह हमारा है' इस बुद्धिसे स्मरण किया करें ॥ २८ ॥ जिस स्मरणसे प्राणियोंको सुख मिलता है। जब छोटे-छोटे प्राणियोंके भी हृदयमें आप अन्तर्यामी रूपसे स्थित रहते हो तब भला आपकी उपासना करनेवाले हम भक्तोंके सुखको आप क्यों नहीं जान सकते ॥ २९ ॥ हे जगत्पते, आप हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न हो गये, बस यही हम लोगोंका इच्छित वर था, क्योंकि आपतो मोक्षके मार्गको दिखानेवाले स्वयं पुरुषार्थस्वरूप हैं ॥ ३० ॥ हे नाथ, तो भी कारणसे भी परे आपसे हमलोग एक वरदान मांगते हैं। चूँकि आपकी विभूतियोंका अन्त नहीं है, इसीसे आप अनन्त कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे सुखसे पारिजातके प्राप्त हो जानेपर भौंरा सुलभ भी दूसरे वृक्षकी सेवा नहीं करता, वैसे ही साक्षात् आपके चरणकमलोंको प्राप्त करके हम लोग क्या-क्या वर माँगे ॥ ३२ ॥ जब तक आपकी मायासे व्याप्त होकर अपने कर्मों से इस संसारमें भटकते रहे तब तक प्रत्येक जन्ममें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपके सर्वोत्तम भक्तोंका सङ्ग हो ॥ ३३ ॥ जब आपमें सङ्ग करनेवाले भक्तके एक क्षणके सङ्गके बराबर मोक्ष तथा स्वर्गको हम नहीं समझते जब भला मनुष्योंके राज्यभोगादि सुखोंको कैसे उसके साथ तुलना करें ॥ ३४ ॥ जिस सत्सङ्गमें पापको नाश करनेवाली कथाएँ होती हैं, जिसके सुननेसे तृष्णाकी शान्ति होती है तथा जहाँ प्राणियोंमें किसी तरहका वैर-भाव नहीं रहता है और न किसी तरहका उद्वेग ही रहता है ॥ ३५ ॥ जिस सत्सङ्गमें होनेवाली सत्कथाओंमें सङ्गसे अलग रहनेवाले प्राणी संन्यासियोंके आश्रय साक्षात् भगवान् नारायणकी बार-बार स्तुति किया करते हैं ॥ ३६ ॥ अपने चरणोंद्वारा तीर्थोंको पवित्र करनेकी इच्छासे पृथ्वीमें विचर रहे आपके भक्तोंका समागम संसारसे भयभीत मनुष्यको क्या अच्छा न लगेगा ? ॥ ३७ ॥ हे भगवन्, हम लोग तो आपके साक्षात् प्रियमित्र शङ्करके एक क्षणके सङ्गसे अत्यन्त दुश्चिकित्स जन्म तथा मृत्युके सद्वैद्य आपकी आज शरणमें प्राप्त हो चुके हैं ॥ ३८ ॥

स्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥३४। यत्रेड्यन्ते कथामृष्टास्तृष्णायाः प्रशमोयतः ॥ निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥३५॥ यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ॥ संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः-पुनः ॥३६॥ तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ॥ भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥३७॥ वयं तु साक्षाद्भगवन्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन । सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्म ॥३८॥ यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या॥आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ३९।यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ॥ सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते पारितोषणाय ॥४०॥ मनुः स्वयंभूर्भगवान्भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ॥ अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवन्त्यथो त्वात्मसमं गृणीमः ॥ ४० ॥ नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च ॥ वासुदेवाय सत्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ ४२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ॥ अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥ ४३ ॥ अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः ॥ वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥ ४४ ॥ ततोऽग्निमारुतौ राजन्-

जो कुछ हम लोगोंसे पढ़ा गया हो, हमारे अनुकूल आचरणसे गुरु, ब्राह्मण तथा वृद्ध प्रसन्न किए गए हों। श्रेष्ठ पुरुषोंको हम लोगोंने प्रणाम किया हो। सुहृद, भाई तथा समस्त प्राणियोंको हमलोगोंने दृष्टिसे न देखा हो ॥ ३९ ॥ हे ईश, अन्नसे रहित हमलोगोंने बहुत काल तक जो जलमें तपस्या की हो वह सब व्यापक पुरुष आपकी प्रसन्नताके लिए हो। यही हम आपसे माँगते हैं ॥ ४० ॥ मनु, ब्रह्मा, भगवान् शङ्कर तथा और भी जो ज्ञानसे विशुद्ध अन्तःकरणवाले हैं, वे जिन आपकी महिमाके पारको न देखकर अपनी बुद्धिके अनुरूप जैसे स्तुति करते हैं वैसे हम लोग भी स्तुति करते हैं ॥ ४१ ॥ सम, शुद्ध, परम पुरुष तथा छः ऐश्वर्योंसे युक्त आप सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेवको नमस्कार है ॥४२॥ मैत्रेयजीने कहा—इसप्रकार प्रचेताओंसे स्तुत हुए शरणागतपर प्रेम करनेवाले भगवान् हरिने प्रसन्न होकर "वैसाही होगा" ऐसा वर दे दिया। तथा अकुण्ठित प्रभाव भगवान् अतृप्त नेत्रोंवाले उन प्रचेताओंकी जानेकी इच्छा न रहने पर भी अपने स्थानको चले गये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर प्रचेता समुद्रके जलसे निकले और स्वर्गको रोकने के लिए मानों बढ़े हों ऐसे वृक्षों से व्याप्त पृथ्वीको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखकर अत्यन्त कुपित हुए ॥४४॥ हे राजन्, तब प्रचेता लोग क्रोधके कारण लतादिसे रहित पृथ्वीको करनेके लिए मुखसे अग्नि तथा वायुको ऐसे छोड़ने लगे, जैसे प्रलयकालमें भगवान् रुद्र अपने मुखसे छोड़ते हैं ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उन वृक्षोंको भस्म होते देखकर पितामह ब्रह्माजी वहाँपर आये और प्राचीनबर्हिके पुत्रोंको उन्होंने शान्तियुक्त वचनोंसे समझाया ॥४६॥ वहाँपर जो वृक्ष जलनेसे बचे थे, उन लोगोंने भयभीत होकर ब्रह्माकी आज्ञासे अपनी कन्या प्रचेताओंको अर्पित कर दी ॥ ४७ ॥ प्रचेताओंने भी ब्रह्माकी आज्ञासे मारिषा नामकी उस-

मुञ्चन्मुखतो रुषा ॥ महीं निर्विरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्ययये ॥ ४५ ॥ भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पितामहः ॥ आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥ ४६ ॥ तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा ॥ उज्जहस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥ ४७ ॥ ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे ॥ यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥ ४८ ॥ चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते ॥ यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥ ४९ ॥ यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ॥ स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥ ५० ॥ तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च ॥ युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० पु० च० त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३०

कन्याके साथ विवाह किया, जिसमें शङ्करके अपमानसे ब्रह्माके पुत्र दक्षका जन्म हुआ ॥ ४८ ॥ चाक्षुष मनवन्तर आनेपर पूर्व शरीरके काल द्वारा नष्ट हो जानेके बाद ईश्वरसे प्रेरित होकर जिसने इष्ट प्रजाओंकी उत्पत्तिकी थी, वह दक्ष उत्पन्न हुआ ॥ ४९ ॥ उत्पन्न होते ही उसने समस्त तेजस्वियोंके तेजको अपनी कान्तिसे ढक दिया कर्ममें कुशल होनेके कारण इसे महर्षि लोग दक्ष कहते थे ॥ ५० ॥ ब्रह्माने उसका अभिषेक करके प्रजाके सर्ग तथा रक्षामें उसे नियुक्त किया। तदनन्तर दक्षने भी मरीचि आदि अन्यान्य प्रजापतियोंको नियुक्त किया ॥५१॥

तीसवें अध्यायका सार—विदुरजीने कहा—हे मैत्रेयजी, प्रचेताओंने तपस्या करके कौन-सी सिद्धि प्राप्त की। मैत्रेयजीने कहा—प्रचेता लोग समुद्रके जलमें दस हजार वर्षों तक तपस्या करते रहे। बादमें भगवान् प्रसन्न होकर उनके पास आये और कहने लगे—वर माँगो। हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। तब प्रचेता लोग हाथ जोड़कर भगवान्की स्तुति करने लगे। तदनन्तर उन्होंने भगवान्के भक्तोंका सङ्ग हो, सिर्फ यही वरदान माँगा। भगवान् भी वह वर देकर वहाँसे चले गये तथा प्रचेता लोग भी जलसे निकले और पृथ्वी पर अनेक वृक्षोंको उत्पन्न हुए देखकर उन्हें जलाने लगे। तब ब्रह्माने आकर उन्हें समझाया और वृक्षोंकी कन्या मारिषाके साथ उनका विवाह करा दिया, जिससे दक्षका जन्म हुआ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

[दक्षको राज्य देकर प्रचेताओंका वनमें जाना तथा मुक्तिको प्राप्त करना]

मैत्रेयजीने कहा—राज्य सुख भोगनेके पश्चात् प्रचेताओंको ज्ञान उत्पन्न हुआ और वे भगवान्के वचनोंका स्मरण करते हुए अपने पुत्रको अपनी स्त्री सौंप शीघ्र ही घरसे निकल पड़े ॥ १ ॥ और पश्चिमदिशामें समुद्रके किनारे, जहाँ पर जाजलि नामके सिद्ध ऋषि हो चुके हैं, वहाँ समस्त प्राणियोंमें आत्मबुद्धि करके आत्मविचाररूपी यज्ञका उन्होंने सङ्कल्प किया ॥ २ ॥ तब प्राण, मन, वाणी, नेत्र तथा आसनको जीतकर शान्त और सीधे शरीरसे बैठे एवं परब्रह्ममें आत्माको लगाये हुए उन प्रचेताओंको देव तथा राक्षसों के पूज्य नारदजीने देखा ॥ ३ ॥ तदनन्तर वहाँ आये हुए नारदजीको देखकर वे लोग उठकर खड़े हो गये और उन्हें प्रणाम किया। उनका अभिनन्दन करके विधिवत् पूजन करने के बाद सुखपूर्वक बैठे

मैत्रेय उवाच । तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ॥ स्मरन्त आत्मजने भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् । १ ॥ दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा ॥ प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥ २ ॥ तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो जितासनान् शान्तसमानविग्रहान् ॥ परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥ ३ ॥ तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च । पूजयित्वा यथा देशं सुखासीनमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः तव चङ्क्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥ ५ ॥ यदा दिष्टं भगवता शिवेनाधोक्षजेन च ॥ तद्गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥ ६ ॥ तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्वार्थदर्शनम् ॥ येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः । भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ॥ नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः ॥ कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥ १० ॥ श्रुतेन

हुए उनसे कहने लगे ॥ ४ ॥ प्रचेताओं ने कहा—हे सुरर्षे, आपका स्वागत है, आज बड़े भाग्यसे हमलोगोंको आपका दर्शन हुआ है, हे ब्रह्मन्, आपका घूमना मनुष्योंको अभय देनेवाला होता है जैसा कि सूर्यका ॥ ५ ॥ हे प्रभो, जो ज्ञान आपने, शिवने तथा भगवान्ने कहा था, वह घरमें आसक्त रहनेवाले हमलोगोंका प्रायः विस्मृत हो गया है ॥ ६ ॥ इसलिए आप तत्त्वार्थदर्शन करानेवाले उस आत्मज्ञानको प्रज्वलित कीजिए, जिससे हमलोग इस दुस्तर संसार-सागरको सरलतासे पार कर सकें ॥ ७ ॥ मैत्रेयजीने कहा—जब प्रचेताओंने नारदजीसे इसप्रकार पूछा तो भगवान् नारदजी भगवान्में मन लगाकर प्रचेताओंसे कहने लगे ॥ ८ ॥ नारदजीने कहा—मनुष्योंका वही जन्म, वे ही कर्म, वही आयु वही मन तथा वही वाणी सफल है, जिससे यहाँ संसारकी आत्मा भगवान् हरिकी सेवा की जाय ॥ ९ ॥ जिनमें आत्मप्रद भगवान् नहीं हैं, उन शुद्ध माता पिताके द्वारा उत्पत्ति, उपनयन तथा दीक्षासे होनेवाले तीनों जन्मोंसे क्या फायदा ? तथा वेदमें कहे गये कर्मोंसे कौन-सा मतलब सिद्ध है और मनुष्यकी देवताओंके समान बड़ी आयुमे ही क्या लाभ है ॥ १० ॥ शास्त्र, तपस्या, वचनोंकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चतुरता, नानाप्रकारके विचारोंका सामर्थ्य, तीक्ष्ण बुद्धि, बल तथा इन्द्रियोंकी पटुतासे क्या फायदा है ॥ ११ ॥ योग, ज्ञान, संन्यास, स्वाध्याय तथा अन्य भी अनेक प्रकारके कल्याण करनेवाले कार्योंसे क्या लाभ है ॥ १२ ॥ वस्तुतः सम्पूर्ण फलोंकी अवधि आत्मलाभ ही है और सम्पूर्ण प्राणियोंकी आत्मा तथा आत्मप्रद प्रिय भगवान् ही हैं ॥ १३ ॥ जैसे वृक्षकी जड़का सिञ्चन करनेसे उसके स्कन्ध, भुजा, शाखा तथा पत्र पुष्पादि तृप्त होते हैं और भोजन करनेसे इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं, वैसे ही भगवान्की पूजा करनेसे समस्त पूजित होते हैं ॥१४॥ जैसे वर्षाकालमें जल सूर्यसे ही गिरता है तथा गर्मीमें उसीमें प्रविष्ट होता है एवं चल और अचल जितने प्राणी हैं वे पृथ्वीसे होकर उसीमें पुनः लीन हो जाते हैं, वैसे ही यह चेतन तथा अचेतन सारा संसार भगवान्में ही लीन होता तथा उन्हींसे उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ यह संसार भगवान्का सबसे श्रेष्ठ स्थान है। यह सूर्यकी कान्तिके समान कभी प्रकाशित होता है और

तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ॥ बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥ ११ ॥ किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि ॥ किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः १२ ॥ श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मात्मदः प्रियः ॥१३॥ यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ॥ प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ १४ ॥ यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशन्ति काले ॥ भूतानि भूमौ स्थिरजङ्गमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥१५॥ एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ॥ यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥१६॥ यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा भवन्ति भूपा न भवन्त्यनु-क्रमात ॥ एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू रजस्तमः सत्वमिति प्रवाहः॥१७॥ तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ॥ १८ ॥ दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टया येनकेन वा ॥ सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥ १९ ॥ अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ॥ निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥ न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ॥ श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥२१॥ श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च

कभी लीन। जैसे जागने पर इन्द्रियाँ प्रकाशित होती हैं और सोजानेपर इनकी शक्तियाँ भी सुप्त हो जाती है। इन्हीं भगवान्से इन्द्रियों द्वारा द्रव्य, क्रिया और ज्ञान एतदात्मक तीन तरहके अहङ्कारके कार्यों तथा उनके निमित्तभूत भेद भ्रमका नाश होता है ॥ १६ ॥ हे प्रचेताओं, जैसे आकाशमें कभी मेघोंसे अन्धकार तथा कभी प्रकाश होता है वैसे ही ये समस्त शक्तियाँ क्रमसे परब्रह्ममें उत्पन्न होती हैं और पुनः उसीमें लीन हो जाती हैं। यही सत्त्व, रज एवं तम रूप इस संसारका प्रवाह हैं ॥ १७ ॥ इसलिए समस्त प्राणियोंकी आत्मा काल, प्रकृति और पुरुषरूप परमेश्वरको अभेददृष्टिसे साक्षात् भजो। जिन्होंने अपने तेजसे संसारके गुण प्रवाहको नष्ट कर दिया है ॥ १८ ॥ समस्त प्राणियोंमें दया करनेसे, जो कुछ प्रारब्धवश प्राप्त हो एकमात्र उसीसे सन्तोष करनेसे, तथा समस्त इन्द्रियोंको शान्त रखनेसे भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १९ ॥ सकल कामनाओंके नष्ट हो जानेसे शुद्ध चित्त सज्जनोंके मनमें निरन्तर बढ़ी हुई भक्तिसे बुलाये गये भगवान् अपने भक्तकी अधीनताको प्रकट करते हुए आकाशके समान उसके हृदयसे पृथक् नहीं होते ॥ २० ॥ निर्धन तथा भगवान् ही मन धन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माननेवालोंके प्रिय भक्तिसुख जाननेवाले भगवान् असत्मति सम्पन्न मनुष्योंकी पूजा ग्रहण नहीं करते । जो शास्त्र, धन, कुल तथा कर्मों के मदसे निर्धन सज्जनोंका तिरस्कार किया करते हैं ॥ २१ ॥ स्वयं पूर्ण भगवान् अपना अनुसरण करनेवाली लक्ष्मी सकाम भक्त, राजा और देवताओंको भी अपने सेवकोंके वशमें होकर स्वीकार नहीं करते । फिर जो मनुष्य कृतज्ञ होगा, वह भक्त इन भगवान्‌को कैसे छोड़ सकेगा ? ॥ २२ ॥ मैत्रेयजीने कहा—हे राजन्, ब्रह्माके पुत्र मुनिनारदजी इसप्रकारकी और भी भगवान्‌की कथाएँ सुनाकर ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २३ ॥ तथा प्रचेता भी नारदके मुखसे निकले हुए, संसारके मैलको दूर करनेवाले भगवानके यशको सुनकर उन्हींके चरणोंका ध्यान करते हुए विष्णुलोकको पहुँच गये ॥ २४ ॥ हे विदुरजी, जो आपने नारद तथा प्रचेताओंका हरिकीर्तनरूप संवाद मुझसे पूछा था, यह मैंने आपसे कह दिया ॥ २५ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे नृपश्रेष्ठ, मनुके पुत्र उत्तानपादका मैंने यह वंश वर्णन किया है । अब प्रियव्रतके वंशका वर्णन करता हूँ । उसे आप सुनिये ॥ २६ ॥ जो प्रियव्रत नारदसे आत्मविद्या प्राप्त करके पुनःपृथ्वीका राज्य भोगकर फिर उसे पुत्रोंको

द्रुपदपतीन् विबुधश्च यत्स्वपूर्णः ॥ न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः ॥ २२ ॥ मैत्रेय उवाच । इति प्रचेतसो राजन्याश्च भगवत्कथाः ॥ श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवो मुनि ॥ २३ ॥ तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ॥ हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥ २४ ॥ एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ प्रतेचतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य एष उत्तानपादो मानवस्यानुवर्णितः । वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोधनृपसत्तम ॥ २६ । यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् ॥ भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् । २७ । इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ॥ प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥२८। विदुर उवाच ॥ सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना ॥ दर्शितस्तमसःपारो यत्राकिञ्चनगो हरिः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ॥ स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥ ३० ॥ एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ॥ आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्राचेतसोपाख्यानं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयं चतुर्थस्कन्धः ॥ ४ ॥

बाँट करके भगवान्‌के पदको प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ विदुरजीने मैत्रेयजीसे वर्णित भगवान्‌की इस सत्कथाको सुनकर अत्यन्त भक्तिभावसे आँसुओंसे युक्त होकर मैत्रेयके चरणोंको सिरसे तथा भगवान्‌के चरणोंको हृदयसे धारण किया ॥ २८ ॥ तथा विदुरजीने कहा—हे महायोगिन्, आज दयालु आपने यह अन्धकाररूपी संसारका पार मुझे दिखा दिया है, जहाँपर इच्छारहित मनुष्य भगवान्‌का गान करते हैं ॥ २९ ॥ शुकदेवजीने कहा—इसप्रकार उनको प्रणाम करके तथा उनसे आज्ञा लेकर विदुरजी अपने बन्धुओंको देखनेकी इच्छासे हस्तिनापुरको चले गये ॥ ३० ॥ हे राजन्, भगवान्‌में मन लगानेवाले राजाओंके इस चरित्रको जो सुनता है, वह आयु, धन, यश, कल्याण, गति तथा ऐश्वर्यको प्राप्त करता है ॥ ३१ ॥

इकतीसवें अध्यायका सार—तदनन्तर प्रचेत भगवानके वचनोका स्मरण करते हुए घरसे निकले और समुद्रके किनारे जाकर आत्मविचार करने लगे । उसी अवस्थामें उन्हें नारदजीने देखा और उनके समीपमें आए तथा उनकी प्रार्थनापर पुनः उन्हें आत्मज्ञाका उपदेश देनेके बाद ब्रह्मालोको चले गये तथा प्रचेता भी भगवान्‌का स्मरणकरते हुये सद्गतिको प्राप्त हो गये । इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॐ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(भगवान् का दासी को श्रेष्ठ वरदान)

एकदा रघुनाथस्तु पञ्चकोपरि संस्थितः । मुखात्ताम्बूलस्य रसं प्रथमं दोषकारकम् ॥ त्यक्तुकामो न ददर्श पात्रं निष्ठीवनरस्य सः । तस्यान्तिकस्थिता दासी नाम्नी वै सगुणेति च ॥ तादृशं राममालोक्य पात्रं दूरं विलोक्य च । कृत्वा पात्रं स्वहस्ताभ्यामञ्जलावेव तद्रसम् ॥ रामेण भुक्तमास्थाच्च जग्राह वेगवत्तरा । ततः सा प्राशनं रामोच्छिष्टं दासि चकार तत् ॥ महाप्रसादं तं मत्वा दैवाल्लब्धं विचिन्त्य च । तदाऽतितुष्टः श्रीरामस्तस्यैतत्कर्मणाऽब्रवीत् ॥ वरयस्व वरं दासि यत्ते मनसि वर्तते । तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूत्तमम् ॥ एकपत्नीव्रतं तेऽस्ति साम्प्रतं त्विह जन्मनि । जन्मान्तरे त्वया सङ्गं वाञ्छामि रघुनायक ॥ तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । यदाग्रे कृष्णरूपेण गोकुलेऽवतराम्यहम् ॥ तदा राधेतिनाम्नी त्वं गोपपत्नी भविष्यसि । तदा मयाचिरं क्रीडां त्वं मोक्ष्यसि न संशयः । तदा ममाऽति प्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि ॥ (आनन्दरामायण)

(दान से कृष्णरूपमें पुनः प्राप्त)

यज्ञान्ते स्वर्णजां सीतां ददौ स्वगुरवे प्रभुः । एं यज्ञशतेष्वत्र गुरवे शतमूर्तयः ॥ याः समर्पिता रामेण तासां दानफलेन हि । षोडशस्त्रीसहस्रेभ्यश्चोर्ध्वं स्त्रीणां शतं पुनः ॥ द्वारकायां कृष्णरूपो विवाहेनोद्वहिष्यति ।

(भगवान्ने कृष्णावतार में उन कामातुर स्त्रियोंकी इच्छाओंको पूर्ति करना स्वीकार किया)

अथैकदा देवपत्न्यो ज्ञात्वाऽस्पृश्यां विदेहजाम् । परस्परं ताः संमन्त्र्य निशीथे राघवं प्रति ॥ समाजग्मुर्दिव्यवस्त्ररत्नाभरणभूषिताः । रामसौन्दर्यसंभ्रान्ताः कामबाणप्रपीडिताः ॥ दृष्ट्वा रामदूतास्ते पप्रच्छ रक्षणस्थिता । यूयं किमर्थं संप्राप्ता निशीथेऽत्र भयावहे । कथयध्वं हि नः सर्वं मा शंकां कुरुताऽत्र हि । ता ऊचु राघवं द्रष्टुं समायाता वयं स्त्रियः ॥ अधुना चेद्राघवस्य दर्शनं न भविष्यति । जातो वधस्तदाऽस्माकं जीवीतस्य नदीजले ॥ इति तासां वचः श्रुत्वा दूतास्ते राघवं जगात् । दास्या निवेदयामासुः स्त्रीवृत्तं तत्सविस्तरम् ॥ श्रुत्वा दासीमुखाद्रामः सैकते मञ्चके स्थितः । समाहूय स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायकः ॥ ताश्चापि दृष्ट्वा श्रीरामं मेनिरे कृतकृत्यताम् । ततस्ता राघवं नत्वा लज्जयाऽधोमुखाः स्त्रियः ॥ पीडिताः कामबाणैश्च तस्थुः श्रीरामसन्निधौ । तः पप्रच्छ राघवोऽप्यागमनस्याऽथ कारणम् ॥ ता राघवं तदा प्रोचुः सर्वं वेत्ति त्वमीश्वरम् । ज्ञात्वा तासां रामचन्द्रो हृद्गतं प्राह ताः पुनः ॥ एकपत्नीव्रतं ऽभेस्ति चैतज्जन्मनि भो स्त्रियः । न ज्ञेयं मे मृषावाक्यं गम्यतां स्वस्थलं जवात् ॥ मा भूदधर्मो मद्राज्ये राज्ञां वै निरयप्रदः । इति राघववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलाः स्त्रियः ॥ ययुर्मूर्छां क्षणादेव सिकतायां सहस्रशः । ता मूर्छा विह्वलं दृष्ट्वा रामो विह्वलमानसः ॥ नारीः सन्तोपयन्प्राह हेनार्यः श्रूयतां मम । वाक्यं खेदापहं वोऽथ द्वापरे कृष्णरूपधृक् ॥ अहं व्रजे भविष्यामि नन्दगोपेशपालिते । तदा देवास्तु गोपाला भावि मद्वरदानतः ॥ भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दस्तत्र भविष्यति । भविष्यथ तदायूयं गोपिकाः सकलाव्रजे ॥ युष्माकं पूरयिष्यामि यथेच्छं वाञ्छितं तदा । रासक्रीडां हि युष्माभिः करिष्यामि न संशयः । वृन्दावने तु कालिन्द्यां सैकते निशि वै चिरम् । भवध्वं स्वस्थचित्ताश्च गच्छध्वं स्वस्थलं यदा ॥ इति रामवचोरूप सुधया जीविताः स्त्रियः । किञ्चित्तुष्टहृदो रामं नत्वा जग्मुर्निजं स्थलम् ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विष्णुरुवाच—शृणु त्वं भो ! सुरवर स्कन्धं चैव चतुर्थकम्। तच्च मे ह्यदरं प्रोक्तं सकुत्तीकं महामते ॥ चतुर्थश्रवणे नैव कृतघ्नो मुक्तिमाप्नुयात्। इतिहासं मम मुखोच्छृणु त्वमघनाशकृत् ॥ मथुरायां पुरा कश्चिन्नाम्ना राजा परन्तपः। धर्मशास्त्रानुसारेण प्रजापालनतत्परः॥स कदाचिन्मृगयासक्तो वनं गत्वा मृगानहनत्। रात्रि तस्मिन्मृगासक्ते सन्ध्याकालोऽभवत्तदा॥ततः परतरं राजा द्विजाश्रममुपेयिवान्। सुदेवस्याश्रमे राजा सप्तरात्रं व्यवस्थितः ॥ आतिथ्यमकरोद् राज्ञो यथाविधि महामुनिः। पञ्चमे दिवसे रात्रौ राजा दष्टोऽहिनामृतः ॥ प्रभाते तं मृतं दृष्ट्वा सैन्यं दुःखसमन्वितम्। ऋषिर्जलं मन्त्रयित्वा ह्यभिषेकं चकार ह ॥ समुत्थितोऽभून्नृपतिर्निद्रापाये यथा पुमान्। सैन्यं दृष्टोत्थितं भूयं हर्षमाप तथा मुनिः ॥ मुनिकर्म तु सैन्येन प्रोक्तं नृपतये तदा। राजा तमर्हयामास ततो गन्तु प्रचक्रमे ॥ आगत्य मथुरापुर्य्यां कालिन्दीनिकटे मखम्। चकार विधिना तत्र सुदेवोऽपि समागतः ॥ सुदेवमागतं दृष्ट्वा न बभाषे यदा नृपः। तदा मुनिर्गत स्थानं निःश्वसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥ तेन दोषेण तद्यागो निष्फलत्वमगात्तदा। देवैरुक्ता नृपतये यज्ञे विफलतां विधे ॥ चिन्तासक्तः समाहूये विप्रापप्रच्छ तन्नृपः। केन पापेन भो विप्रा नष्टं यज्ञफलं मम ॥ इति श्रुत्वा विचार्याशु विप्रैरुक्तमिदं हि तम्। महापापस्य करणाद्दोषो जायते नृणाम् ॥ स एव हि कृतघ्नस्य सञ्जातस्ते नृपात्मजे। एवमुक्त्वा गता विप्रा राजा चाण्डालतां गतः ॥ कुष्ठक्रान्तस्तु तद्देहो बहुकीटादिभिर्युतः। बभूव शृणु भो ब्रह्मंस्ततश्चक्रे नृपोऽटनम् ॥ कदाचिद्दैवयोगेन कुरुक्षेत्रमुपेयिवान्। तत्र भागवती गाथा चतुर्थस्कन्धसंभवा ॥ तेन श्रुता देवलाच्च ततः पापचयो गतः। विमानमारुह्य गतो वैकुण्ठं तनुमुज्जहत् ॥ अतो भागवतीयां वै कीर्तिं को वक्तुमर्हति ॥

(मत मतान्तरोंसे भगवान् श्रीकृष्णजीकी जन्म-पत्रियाँ)

[यन्त्रनाश—प्रायश्चित्तम्]

नवरत्नेश्वरे—यदि प्रतिष्ठितं यन्त्रं दैवाद्देवि विनश्यति। उपोषणमहोरात्रमादरेण समाचरेत् ॥ येन स्वर्णादिना यन्त्रं द्रव्येण परिनिर्मितम्। विलिख्य यन्त्रं तत्पात्रे देवतां परिपूजयेत् ॥ उपचारैः षोडशभिः शक्तितः सुसमाहितः। अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं पूजयित्वा यथाविधिः ॥ विलोड्य तत्तोयं मन्त्री पीत्वा भक्षणमाचरेत्। तावत्कालं ब्रह्मचर्ययावद्यन्त्रं समाहरेत् ॥ पुनर्यन्त्रं नवं चान्यदाहरेत् श्रद्धयान्वितः। आहृत्य तु पुनर्यन्त्रं प्रतिष्ठां च समाचरेत्।

[पूजाकाले यन्त्रादिपतनप्रायश्चित्तम्]

यन्त्रं यदि पतेद्देवि पूजाकाले कदाचन। लिङ्गं वापि शिलां वापि तत्फलं शृणु पार्वति ॥ आयुर्हानिर्धनंहानिर्बन्धुनाशस्तथैव च। भवतीति विनिश्चित्य प्रायश्चित्तमथाचरेत् ॥ त्रिरात्रमेकरात्रं वा उपवासमथाचरेत्। मूलमन्त्रं जपेद्देवि सहस्रं साष्टकं तथा। जवापुष्पैर्जुहुयाच्च शतमष्टोत्तरं तथा। ब्राह्मणान्भोजयेच्छत्त्या भक्तिनम्रसमाहितः ॥

[मालानाश—प्रायश्चित्तम्]

माला यदि पतेद् हस्तात्तथा चैव विनश्यति। सहस्रं तत्र सञ्जप्यं ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ भोजनं ब्राह्मणानान्तु सर्वानिष्टस्य नाशनम्। गायत्रीं वा जपेत्साष्टशतं भक्त्या समाहितः ॥ ततोऽपरां नवां मालां तज्जातीयां वरानने। गृह्णीयात्तु कृते चैवं न विघ्नरभिभूयते ॥ इत्यादि।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(चतुर्थ-स्कन्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय–महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—

भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६९ पुष्पलता

(पञ्चम-स्कन्ध)

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

['सरस्वती' भाषाटीका और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—श्रीरामदयालचुन्नीलालसंस्कृतमहाविद्यालय वेद-कर्मकाण्डप्रधानाध्यापक श्रीदौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

प्रसङ्गवश रामायण सुन्दरकण्डके परायणका विधान—

उमोवाच—कण्डस्य सुन्दराख्यस्य महात्म्यं तु महेश्वर । श्रोतुमिच्छामि ते वक्त्रात् विस्तरच्च विशेषतः ॥ श्रीमहेश्वर उवाच—श्रीमत्सुन्दरकाण्डस्य महात्म्यमतिगोपितम् । वक्ष्यामि शृणु ते प्रीत्या संग्रहेण गिरीन्द्रजे॥ विस्तारद्वक्तुमीशस्त‌स एव रघुनन्दनः । यथा सर्वेषु देवेषु श्रीरामः परमोमतः॥ यथा सर्वेयु वृक्षेषु कल्पवृक्षोह्यनुत्तमः। यथा सर्वेपु रत्नेषु कौस्तुभः श्लाघ्यते वरः ॥ तथा रामायणे श्रीमान्सुदरःकाण्ड उत्तमः । पठनाच्छ्रावणादस्य भक्त्या प्रवचनादपि ॥ सिध्यन्ति सिद्धयस्सर्वाः अनर्थश्च विंश्यति । पूर्यन्ते सम्पदस्सर्वाः नश्यन्ति सकला गदाः ॥ विशेषतो महारोग भीतानां परमौषधम् । यक्ष्मापस्मारकुष्ठाद्या अनिवार्या महौषधैः ॥ अमुष्य पठनादष्टषष्टिकृत्वो विधानतः । प्रणश्यन्ते न सन्देहः श्रीरामकरुणावशात् ॥ 'योगी—शृणु वक्ष्यामि राजेन्द्र यथोक्तं संविधत्व च । निर्माय मण्डपं दिव्यं कदलीनारिकेलकैः ॥ मुक्ताद्यैश्च वितानेनाप्यलंकृत्य यथाविधि । निर्माय वेदिकां तत्र चतुरस्त्रां मनोरमाम् ॥ अहतेन च पट्टेन शुक्लेनाच्छाद्य तां पुनः । व्रीहीन् षट्प्रस्थमात्रान्वै तत्रादौ सन्निवेश्य च ॥ तदर्धान् तण्डुलान् शुभ्रान् क्षिप्त्वा तदुपरिक्रमात् । अष्टादशपलस्वर्ण निर्मिते विस्तृतास्यके ॥ मौक्तिकानि समापूर्य पात्रे तत्स्वर्णपट्टतः । अच्छाद्य तत्र च पलस्वर्णनिर्मितपट्टके ॥ लिखित्वा श्रीराममन्त्रं नवावरणसंयुतम् । यथाविधि प्रतिष्ठाप्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ हैमीं कृत्वाऽत्र प्रतिमां सीतारामाञ्जनेयकाम् । अर्चयित्वा रामनामसहस्रेणाम्बुजैर्वरैः ॥ तुलस्या मल्लिकाभिर्वा चम्पकैः केतकीदलः । तत्सन्निधौ प्रयतहृत् श्रीमद्रामायणोदितम् ॥ काण्डं श्रीसुन्दराभिख्यं पठेदव्य-ग्रमानसः । प्रातर्मुहूर्तात्परतः समारभ्य प्रसन्नधीः ॥ सूर्ये गते व्योममध्यं विरमेत्पाठतोऽमुतः । पठेदनुदिनं चाष्टषष्टिकृत्वो यथा भवेत् ॥ अखण्डदीपं प्रज्वाल्य घृतवर्तिसमन्वितम् ॥ श्रोतारं कल्पयित्वा च भक्तं श्रीरामपादयोः ॥ पूजयेच्च पुनारामं पाठान्तेऽपूयपायसैः । समाप्य प्रथमावृत्तिं विप्रान् द्वादश पूजयेत् ॥ अथ द्वितीयावृत्त्यादि समाप्तौ श्रद्धया द्विजान् । एकैकाधिक सङ्ख्याकान्भोजयेन्मधुपायसैः ॥ अष्टषष्टिदिनैरष्ट षष्ठिरावृत्तयो यदि । श्रीमत्सुन्दरकाण्डस्य समाप्येरन् तदुत्तमम् ॥ यदि मासैश्चतुर्भिस्तु समाप्येताथ मध्यमम् । षड्भिर्मासैस्समाप्यते यदि स्यादधमं स्मृतम् ॥ उत्तमं तत्स्मृतं यत्तु यजमानः स्वयं पठेत् । विप्राद्वारा मध्यमं स्यात्पठेयुर्बहवो यदि ॥ अधमं तत्त सम्प्रोक्तं पाठस्य क्रम ईरितः । अष्टषष्टितमावृत्तौ समाप्तायां यथाक्रमम् । पठित्वा युद्धकाण्डञ्च पञ्चभिष्षड्भिरेव वा । दिनैः पट्टाभिषेकाख्यं रामस्योत्सवमाचरेत् ॥ अष्टषष्टितमावृत्तौ आरब्धायां यथाक्रमम् ॥ आयुद्धकाण्डसम्पूर्तिं सायङ्काले दिने दिने पूर्वाह्ण पठितान्सर्गान्भक्तिपूर्वं प्रवाचयेत् । वक्तारं कल्पयित्वाऽथ सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥ श्रीरामभक्तिनिरतं पूजयित्वा द्विजोत्तमम् । शृणुयाद्रामचरितस्यार्थान् रस्यानुत्तमान् ॥ एवमस्मिन् व्रते चीर्णे प्रसीदति रघूत्तमः । अशिवभ्यामपि ये रोगा असाध्यास्स्युर्निवारणे । ते सद्यो नाशमेष्यन्ति दीर्घमायुश्च विन्दते । विरोधः पुत्रमित्राद्यैरानुकूल्येन शाम्यति ॥ कुटुम्बकलहोजीर्यत्य-पमृत्युश्च नश्यति ॥ ऋणबाधा प्रशाम्येच्च शत्रूणां च जयो भवेत् । बहुना किमिहोक्तेन सर्वास्सिध्यन्ति सिद्धयः ॥ व्रतमेतच्चाष्टषष्टिकृत्वो यस्त्वा चरिष्यति । भवेयुर्वशगास्तस्य अणिमाद्य-ष्टसिद्धयः ।' वैराग्यवान् व्रतमिदं भत्या यद्याचरिष्यति । तं सुग्रीवमिव प्रीत्या राघवस्संलपिष्यति ॥ वक्तृत्वे पठितृत्वे च द्विज एवाधिकारवान् । श्रवणेऽधिकृतास्सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च ॥ शूद्रैर्देवालये कार्यमन्यैर्द्विजगृहेऽपि वा । देवालये वा संकल्प्य चरितव्यमिदं व्रतम ॥ किमुक्तेनेह बहुना व्रतमेतत्कालौ नृणाम् । अर्पणे सर्वकामानां कल्पवृक्षायते ध्रुवम् ॥ पुनर्वक्ष्यामि गिरिजे शृणुत्वमवधानतः । एवं कर्तु मशक्तानां विधानानि बहूनि च ॥ सान्ति तान्यत्र वक्ष्मामि लोकानां हितकाम्यया । पठेत् द्वात्रिंशदावृत्ति काण्डं श्रीसुन्दराभिधम् । चूडामणिप्रदानान्तं प्रथमे दिवसे पठेत् । काण्डसंपूर्तिपर्यन्तं द्वितीये दिवसे पठेत् ॥ एवं द्वात्रिंशदावृत्ति चतुष्षष्टया दिनैः पठेत् । चतुर्विंशति कृत्वो वा द्वासप्ततिदिनैः पठेत् ॥ सीतादर्शनसर्गान्तं प्रथमे दिवसे पठेत् । द्वितीयेऽशोकवनिकाभङ्गान्तं प्रयतः पठेत् ॥ तृतीये दिवसे काण्डं पठित्वा पूरयेत्सुधीः । एवं द्वासप्ततिदिनैः व्रतमेतत्समापयेत् ॥ अष्टाचत्वारिंशदह्ना द्वादशावृत्ति वा पठेत् । सीतादर्शनसर्गान्तं प्रथमे दिवसे पठेत् ॥ सोऽवतीर्येति सर्गात्प्राक् द्वितीये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विरमेद्दिने हनूमदुपदेशान्तं रावणाय तृतीयके ॥ शेषं चतुर्थे काण्डस्य दिवसे संपठेत्सुधीः । अष्टाविंशतैवं दिनव्र्रतमिदं चरेत् ॥ सप्तकृत्वोऽथवा काण्डमष्टचा दिनैः पठेत् । दिनेदिने पठेत्सर्गान्सप्तैव विधिपूर्वकम् ॥ अष्टषष्टितमे काण्ड पूर्णं स्यात्सप्तसर्गतः । चतुरावृत्ति वा पाठ्यमष्टाविंशतिवासरैः ॥ प्र यहं पठितव्यास्स्युर्दशसर्गा विधानतः । अष्टत्रिंशे दिने काण्डं पूरयेत् शिष्टसर्गतः ॥ अथवा तु द्विरावृत्ति पठेत्काण्डं प्रयत्नतः । दिनैश्च सप्तदशभिः प्रत्यहं चाष्टसर्गतः ॥ एषु कल्पेषु सर्वेषु समाप्तिदिवसे प्रभो । राज्यपट्टाभिषेकाख्यं पठेत्सर्ग प्रयत्नतः ॥ यथाविभवमयादं कारयेदुत्सवं तथा । प्रत्यहं पठनात्पूर्वं परं च विनिवेदयेत् ॥ पयस्सशर्करं तप्तं ताम्बूलं च फलानि च । भोज्या विप्रा यथाशक्ति समाप्तौ द्विगुणं भवेत् ॥ सर्वथा यस्त्वशक्तस्स्यादेषु कल्पेषु भूसुरः । सकृत्सुन्दरकाण्डं तु पठेत्प्रयतमानसः ॥ एकाह्ना यः पठेत्प्रातस्समारभ्यापराह्णतः । प्रागेव पूरयेत्काण्डमव्यग्रपदमुच्यकैः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं नैव शेषोऽपि शक्नुयात् ॥ तत्राप्यशक्तो द्विदिनं पठेत्काण्डं चितसिद्धये ॥ अंगुलीयकदानात्प्रागाद्येऽहनि विरामयेत् । समापयेत् द्वितीयेह्नि फलं तस्याप्यनन्तकम् ॥ अथवाऽऽद्यो तु दिवसे पठेदास्वप्नदर्शनम् । द्वितीयेऽशोकवनिका भङ्गात्प्राग्विरमेत्सुधीः ॥ तृतीये पूरयेत्काण्डं विधिरेष ह्यनुत्तमः । एवं त्रिषु दिनेष्वेत्र महात्पारायणे फलम् ॥ अथवाऽऽद्ये हनुमताऽऽसीतादर्शनतः पठेत् । द्वितीये त्रिजटस्वप्नकथना तं पठेद्दिने ॥ चूडामणिप्रदानान्तं तृतीये दिवसे पठेत् । लङ्कादाहान्तमेव स्याच्चतुर्थे पठनं दिने ॥ पञ्चमे पूरयेत्काण्डमिति पञ्चदिनैर्विधिः । पठेद्वा प्रत्यहं सर्गान्समारभ्य भृगोर्दिने । ननैव पुनरावृत्तो भृगोर्वारेऽवशेषितान् । पञ्चसर्गान्पठित्वैव पठेत्पट्टाभिषेचनम् ॥ एवमष्टदिनैरेष विधिः श्रीकामिनां वरः । प्रथमे वञ्चपाठ्यास्स्युर्द्वितीये सर्गका दश ॥ तृतीये पञ्चषट्तुर्ये सप्तसर्गास्तु पञ्चमे । षष्ठे तु सप्तसर्गास्स्युस्सप्तमे द्वादशैव तु ॥ अष्टमेऽष्टदिने पाठ्याः नवमे चाष्टसर्गकाः । विधिरेष महान्प्रोक्तो नवभिर्दिवसैः कृतः ॥ निवेदयेत् शर्करान्नं घृताक्तं प्रथमे दिने । अपूपान्पायसं चापि द्वितीये विनिवेदयेत् ॥ तृतीये तु तिलान्नं स्याच्चतुर्थे शष्कुलीद्वयम् । दध्यन्नं पञ्चमे दद्यात्षष्टे दद्यात्तु मोदकान् ॥ नानाविधफलान्येव दद्यात् षष्ठे तु सप्तमे । सूपान्नमष्टमे दद्यान्नवमे ससितं पयः ॥ अस्मिन् व्रते प्रवचनं कृतं चेद्वृत्त मोत्तमम् । व्रतमन्यत्प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति कामदम् ॥ दिनेदिने तु षट्सर्गाः दिनैकादशकं पठेत् । द्वादशे शिष्टसर्गौ द्वौ पठित्वा भक्तिपूर्वकम् ॥ विभीषणाभयकरं तत्सर्गद्वयं सपठेत् । रावणेः कुम्भकर्णस्य रावणस्य वधाश्रयम् ॥ ततस्सर्गत्रयं पाठ्यं ततो रामाभिषेचनम् । दिनैरेवं द्वादशभिर्व्रतमेतदनुत्तमम् ॥ आचरन्नर्चयेद्रामं नाम्नां सहस्रतोऽन्वहम् । रात्रौ तु प्रथमे यामे कृतं प्रवचनं यदि ॥ महाफलं व्रतमिदं ह्यनुमन्येत राघवः । द्व्यहं द्वौ पठेत्सर्गौ द्वाविंशत्या तु वासरैः ॥ त्रयोविंशे पञ्चसर्गान् चतुर्विंशे तु त्रीन्पठेत् । पञ्चविंशे तु षट्पाठ्याः षड्विंशे त्रय एव च ॥ सप्तविंशे तु चत्वारः प्राप्तेऽष्टाविंशके दिने । अवशिष्टान्पठित्वा स्त्रीन्दशाननवधं ततः । पट्टाभिषेकं कुर्यात्तु यथाविभवविस्तरम् । एषु सर्वेषु कल्पेषु यद्यशक्तो यथासुखम् ॥ पठित्वा रचयेद्रामपट्टाभिषवमुत्सवम् । मुमुक्षुर्भवपाथोधिं तरितुं यदि वाञ्छति ॥ पठेत्तु प्रथमं सर्गं प्रातरेव ऋतुत्रयम् । भूतवेतालकूष्माण्डपिशाचादिग्रहैः कृताम् ॥ पीडामपानुदन् लङ्काविजयं सर्गमापठेत् । बुद्धिमान्द्यपाकर्तुं हनुमच्चिन्तनं पठेत् ॥ पारदारिकतादोषशान्तये हनुमत्कृतम् । रावणान्तःपुरे सीताऽन्वेषणं प्रयतः पठेत् ॥ सीतादर्शनसर्गन्तु वायुपुत्रेण यः पठेत् । कुबेर इव नित्यश्रीर्भूत्वा मोदेत भूलतले ॥ पठेत्तु त्रिजटास्वप्नं दुःस्वप्नापन्निवृत्तये । सत्वाभिवृद्धिकामस्तु सीतया रावणस्य च ॥ पठेत्सर्गद्वयं वादं भारं न्यस्य रघूत्तमे । विश्लिष्टबन्धुभिस्सद्य पुनस्संयोगमिच्छता ॥ सीताहनुमतोस्सर्गः पाठ्यास्संवादकात्मकाः । अंगुलीयार्पणं सर्गं पठेदापत्प्रशान्तये ॥ मत्याऽमत्या च रामस्य कृतानां विविधागसाम् । प्रशान्तये पठेत्सर्गं काकानुग्रहकारकम् ॥ आनन्दरूपब्रह्मान्वप्रेप्सुता यदि चेन्नृणाम् । चूडामणिप्रदानाख्यः पाठ्यस्सर्गो हनूमते ॥ शत्रूणां जयकामस्तु रक्षसां हनुमत्कृतम् । निधनं किङ्करादीनां प्रयतः प्रपठेत् प्रगे । धर्माभिवृद्धिकामास्तु रावणाय हनूमता । सन्देशकथनं धर्म्यं पठेयुर्भक्तिपूर्वकम् ॥ गृहरामादिवृद्ध्यर्थं लङ्कादाहं पठेद्यतः । पठेन्मधुवनध्वंसं वानरैः कृतमादरात् ॥ क्षुत्पिपासात गोब्रह्मलोकेशान्तस्सुखं वसेत् । रामात्य हनुमत्प्रोक्तं सीतासन्देशमद्दतः ॥ पठन्नामरणं भुक्तिमुक्ती रामात्प्रपद्यते । अशोक-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वनिकाभङ्ग पठित्वा चिन्तितार्थभाक् ॥ सीतावर्णनसर्गेण पठितेन विरागिणः । ज्ञान ब्रह्म ति निखिलं बीभत्सा च भवे भवेत् ॥ किं बहूक्तेनगिरिजे यां सिद्धिं पठनान्नरः । श्रीमत्सुन्दरकाण्डय न लभेत न साऽस्ति हि । पुत्रार्थी लभते पुत्रं सप्तकृत्वः प्रपाठनात् । लभेत निधिमव्यग्रः सकृदष्टदिनैः पठन् ॥ सकृन्नवदिनैः पाठात्कन्येयात्सदृशं वरम् । उक्तै रेभिरसर्वकल्पै रामश्रीतिरल्पिका ॥ मोक्षान्तसिद्धिदा जाता किं न कुर्यात्सुखं भुवि । सकृदेकदिने पाठास्तारयेत्तु महापदः ॥ यं यं कामं हृदाऽऽचिन्त्य पाठव्रतमुपाचरेत् । तं तं हस्तस्थितमिव गणयेद्व्रतवान् पुमान् ॥ सर्वे रोगाः प्रशाम्यन्ति नश्येत्सकलदुष्कृतम् । पूर्वं पश्चाच्च पठनान्नैवेद्यं न करोति यः ॥ तस्य सिद्धिं जायमानां प्रतिबध्नाति मारुतिः । स्त्रियश्शूद्राश्च शृणुयुः पाठयित्वा द्विजर्षभैः ॥ सर्गेष्वेतेषु कल्पेषु रामं सीतां च मारुतिम् । नाम्नां सहस्रतोऽभ्यर्चेत् उत्तमं स्यात्तदा व्रतम् ॥ अशक्तो ऽष्टोत्तरशतेनार्चयेत्तु मध्यमम् । गव्यं क्षीरं शर्कराद्यं सुसतं च सुखोष्णकम् ॥ निवेदयेद्राघवाय सर्वप्रतिनिधिस्त्विदम् । इत्यादि । देखिये—उमासंहिता और श्रीरामभक्तिकल्पलता के द्वितीय भाग में ।

[रामायणका सङ्कल्प, और उसके पाठका ऋषि-छन्द-देवताओंका ज्ञान—यह वर्णन]

देशकालौ सङ्कीर्त्य—सर्वलोकशरण्यस्य साकेतनगर्यां साम्राज्यसिंहासनमधितिष्ठतः वामभागस्थितवैदेहीकटाक्षनिकरात्मकनीलाम्बुजमालासमासङ्गद्विगुणीकृतकालिमविजितकादम्बिनीकस्य दक्षिणे भागे सविधस्थितसशिरोऽञ्जलिबन्धसौमित्रिनयनारविन्दपरम्परासमर्चितचरणकमलस्य कदाचिद्रहसिस्थितस्य श्रीरामचन्द्रपरब्रह्मणः सद्योमुक्तिभुक्तिप्रदभगवदाराधनप्रश्नोत्तरत्वेन प्रतिविहितया आज्ञया सर्वज्ञमतेन श्रीमता हनुमता प्रथमं स्वयमनुष्ठाय स्वाश्रितेभ्यस्सनकादिभ्यः भक्तिपूर्वकं भगवदाराधनकालेषु उत्तमोत्तमत्वेन उपदिष्टे अजन्मनोऽपि भगवतो जन्मदानतस्सद्भिस्सदा महनीये अस्मिन् श्रीरामनवमीपुण्यकाले निर्गुणस्यापि परब्रह्मण उपासकानां कृते सगुणतां तया च विग्रहादिमत्त्वं संपादयन्त्या कटाक्षस्यन्दिकरुणावशात्कठोरागसं काकमपि कमपि भगवतः परिरक्षितवत्या स्वभर्तुरासनसमये वामभागतः स्थितिसमये दक्षिणभागतश्च परिलसन्त्या देव्या जानक्या समुपास्यमानस्य भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य दिव्यावतारमुख्यकालभूते स्मिन्कटकलग्ने सकृदेव प्रपन्नाय सकलविधैहिकामुष्मिकसुखवितरणनिरतस्याम श्रीरामाख्यपरब्रह्मणः प्रसादेन मम चिन्तितसकलमनोरथसिध्यर्थं [अमुककामना] अगस्त्यसंहितायां अगस्त्येन जनकायोपदिष्टां रीतिमनुसृज्य यथाशक्ति श्रीरामायणस्थितश्रीरामजननसर्गपारायणतदर्थप्रवचनब्राह्मणोद्देश्यकव्रीहिफलादिनात्मकाङ्गत्रययुतां श्रीरामचन्द्रपूजां करिष्ये ।...अस्य श्रीमद्वाल्मीकिरामायणमहामन्त्रस्य नारदो भगवानृषिः, अनुष्टुप्छन्दः सीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेतः श्रीरामचन्द्रो देवता ॐ बीजं, धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदीति शक्तिः, पौरुषेचाप्रतिद्वन्द्वश्शरैन जहि रावणिमिति कीलकम्, श्रीसीतारामचन्द्रप्रसादसिध्यर्थे जपे विनियोगः । धर्मात्मा—अंगुष्ठाभ्या० १ सत्यसन्धश्च तर्जनीभ्यां० २ रामः- मध्यमाभ्यां० ३ दाशरथिर्यदि—अनामिकाभ्यां० ४ पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः—कनिष्ठिकाभ्यां० ५ शरैनं जहि रावणम्-करतलकरपृष्ठाभ्यां० ६ । धर्मात्मा-हृदयाय० १ सत्यसन्धश्च-शिरसे स्वाहा २ रामः शिखायै वषट् ३ दाशरथिर्यदि कवचाय हुम् ४ पौरुषेचाप्रतिद्वन्द्व—नेत्रत्रयाय वौषट ५ शरैनं जहि रावणम्—अस्त्राय फट् ६ भूर्भुवः—स्वरोमृदिग्बन्धः । ध्यानम् सहस्रादित्य सङ्काशं सर्वशत्रूनिवर्हणम् । रामशक्तिमयं ध्यायेदमोघं रामसायकम् । लं पृथिव्यात्मने गन्धान् समर्पयामि । हंआकाशात्मने पुष्पाणि सम० । यं वाय्वात्मने धूपमाघ्राप० । रम् अग्न्यात्मने दीपं दश० । वम् अमृतात्मने अमृतोपाहरं महानवेद्यं कल्पयामि । सं सर्वात्मने सर्वोपचारान् समर्प० । अथ मूलमन्त्रः—धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि । पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्व शरैनं जहि रावणम् ॥ एनं मन्त्रमष्टोत्तरशतावृत्ति, तदर्धावृत्ति, दशावृत्ति, त्रिर्वा जपेत् । ततः—सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो दादम्येतद्व्रतं मम ॥ इति भगवद्व्रतप्रतिपादकं मन्त्रं मूलरीत्या पठेत् । तथा चोक्तं पाराशर्ये—यदा यदा हि रामस्य वृत्तं दिपठिषेद्बुधः । तदा तदा तु धर्मात्मेत्येतं मूलमनुं जपेत् ॥ श्रीरामचरणाम्भोजद्वन्द्वं ध्यायन्प्रसन्नधीः । सकृदेवेति रामस्य व्रतं शुभदं जपेदिति ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बालकाण्डम्— अस्य श्रीबालकाण्डमहामन्त्रस्य ऋष्यशृङ्गऋषिः अनुष्टुप्छन्द, श्रीरामो देवता, कां बीजम्, नमश्शक्तिः, रामायेति, कीलकम् दशरथसहित श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। सुप्रसन्नः—अंगुष्ठा० १ शान्तमनाः—तर्जनी० २ सत्यसन्धः—मध्यमा० ३ जितेन्द्रियः—अनामि० ४ धर्मज्ञो नयसारज्ञः—कनिष्ठिका० ५ राजा दाशरथो जयी—करतलकरपृ० ६ एवं हृदयादिन्यासः। दिग्बन्धः। ध्यानम्—इन्दीवरदलश्यामः पुण्डरीकनिभेक्षणः। धृतकोदण्डतूणीरो राम एव गतिर्मम॥ लमित्यादि पञ्च पूजा। मूलमन्त्रः—सुप्रसन्नश्शान्तमनास्सत्यसन्धो जितेन्द्रियः। धर्मज्ञो नयसारज्ञो राजा दाशरथो जयी॥ यथाशक्ति जपित्वा पुनर्न्यासादिकं कुर्यात्।

अयोध्याकाण्डम्— अस्य श्रीमदयोध्याकाण्डमहामन्त्रस्य वसिष्ठऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीभरती देवता, भं बीजं, नमश्शक्तिः, भारतायेति कीलकम् भरतसहित श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। भरताय नमस्तस्मै-अंगुष्ठा० १ सारङ्गाय—तर्ज० २ महात्मने—मध्यमा०३ तापयास-अनामिका० ४ अतिशान्ताय-कनिष्ठिकाभ्या० ५ शत्रुघ्नसहिताय-करतलकरपृ०। एवं हृदयादिन्यासः। दिग्बन्धः। ध्यानम्—श्रीरामपादकलद्वयपादुकान्तरासक्तचित्तकमलं कमलायताक्षम्। ब्राह्मयाप्रसन्नवदनं सुरुचा वदान्यं शत्रुघ्नसेवितमहं भरतंनमामि॥ लमित्यादि पञ्चपूजा। मन्त्रः—भरताय नमस्तस्मै सारङ्गाय महात्मने। तापसायाति शान्ताय शत्रुघ्नसहिताय च॥ यथाशक्ति जपान्तरं पुनः हृदयादिन्यासः।

आरण्यकाण्डम्— अस्य श्रीमदारण्यकाण्डमहामन्त्रस्य शरभऋषिः, अ० इन्दो दे०, बीजम्, नमश्शक्तिः, महेन्द्रायेति कीलकम्, महेन्द्रसहित श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। सहस्रनयनम्—अंगु०१ देवम्—तर्ज० २ सर्वदेवनमस्कृतम्-मध्यमा० ३ दिव्यवज्रायुधधरम्—अनामि० ४ वन्देऽहम्—कनिष्ठिका० ५ तं शचिपतिम्—करतलप० ६ एवं हृदयादिन्यासः। दिग्बन्धः। ध्यानम्—शचीपतिं सर्वसुपर्ववन्द्यं रक्षोनिहन्तारमसह्यवेगम्। श्रीरामसेवानिरतं महान्तं वन्दे महेन्द्रं धृतवज्रमीड्यम्॥ लमित्यादि पञ्चपूजा। मन्त्रः—सहस्रनयनं देवं सर्वदेवनमस्कृतम्। दिव्यवज्रायुधधरं वन्देऽहं तं शचीपतिम्॥ यथाशक्ति जपः पुनः न्यासादिकञ्च।

किष्किन्धाकाण्डम्—अस्य श्रीकिष्किन्धाकाण्डमहामन्त्रस्य अगस्त्यऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, सुग्रीवो देवता. सु बीजम्, नमश्शक्तिः, सुग्रीवायेति कीलकम्, सुग्रीवसहित श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थे जते विनियोगः। सुग्रीवः—अंगु०१सूर्यतनयः—तर्ज० २सर्ववानरपुङ्गवः—मध्यमा० ३वलवान्—अन.मि०४ राघवसखः कनिष्ठि०५ मां पायात्करुणानिधिः-करतलकरपृ०६। एवं हृदयादिन्यासः।दिग्बन्धः। ध्यानम्—सुग्रीवमर्कतनयं कपिवर्यवन्द्य नाराधिताच्युतपदाम्बुजमादरेण। दैत्यप्रहारकुशलं बलपौरुषाढ्यमैश्वर्यदानानिपुणं हृदि भावयामि॥ लमित्यादि पञ्चपूजा। मन्त्र—सुग्रीवस्सूर्यतनयस्सर्ववानरपुङ्गवः। वलवान् राघवसखो मां पायात्करुणानिधिः। पुनः हृदयादिन्यासः।

सुन्दरकाण्डम्—अस्य श्रीसुन्दरकाण्डमहामन्त्रस्य हनुमान् ऋषिः, अनु०, श्रीजगन्माता सीता देवता, श्री बीजं, स्वाहा-शक्तिः, सीतायै कीलकम्० श्रीसीतारामचन्द्रप्रसादसिध्यर्थे जपे विनियोगः। सीताम्-अंगु० १ विदेहतनयाम्-तर्जनी० २ रामस्य दयिताऽनघाम्-मध्यमा० ३ हनूमता समाश्वस्ताम् अनामि० ४ भूमिजाम्-कनिष्ठिका० ५ शरणं भजे करतलकरपृ० ६ एवं हृदयादिन्यासः। दिग्बन्धः। ध्यानम्-सीतामुदारचरितां विधिमुख्यवन्द्यां देवीं त्रिलोकजननीं श्रितकल्पवल्लीम्। हेमासनस्थितिजुषं मणिहारमौलिऽवलामनुदिनं ललितां नमामि॥ लमित्यादि पञ्चपूजा। मन्त्रः-सीतां विदेहतनयां रामस्य दयिताऽनघाम्। हनूमता समाश्वस्तां भूमिजां शरणं भजे॥ जपानन्तरं पुनः हृदयादिन्यासः।

सप्तकाण्डपारायणान्तर्गतनित्यसंपूर्णरामायणान्तर्गतसुन्दरकाण्डस्य प्रयोग—

अस्य श्रीसुन्दरकाण्डमहामन्त्रस्य हनुमान् ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः महाप्रभाव श्रीरामोदेवता। ऐं बीजम्, नमश्शक्तिः रामायेति कीलकम्। श्रीरामचन्द्रप्रसादसिद्धिद्वाराप्राप्त्यर्थे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[अमुक] निवृत्यर्थे जपे विनियोगः । उत्साहः-अंगुष्ठाभ्यां नमः १ पौरुषम्—तर्जनीभ्यां न० २ धैर्यम-मध्यमाभ्या० ३ आनुशंस्य कृतज्ञता-अनामिकाभ्यां० ४ विक्रमश्च प्रभावश्च-कनिष्ठिकाभ्यां० ५ सन्ति वानरराघवे—करतलकरपृष्ठाभ्यां ६ एवं हृदयादिन्यासः । दिग्बन्धः । ध्यानम्—स्रक्चन्दनाभरणभूषितभास्वराङ्गं वामोरुसंस्थितमहीतनयोपगूढम् । उत्फुल्लपद्मनयनं स्मित सुन्दरास्यं रामं कृपा जलनिधिं मनसा स्मरामि ॥ लमित्यादि पञ्चपूजा । अथ मूलमन्त्रः—उत्साहः पौरुषं धैर्यमानृशंस्यं कृतज्ञता । विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे । पुनर्हृदयादिन्यासः ।

[ये बन्धमोक्षमात्राभिलाषिणो विरक्तास्तेषां पृथक् सुन्दरकाण्डपारायणोपयोगिऋषिच्छन्दो देवता लिख्यते—

अस्य श्रीसुन्दरकाण्डाख्यमहोपनिषन्महान्त्रस्य, जामदग्न्यऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीरामाख्यं तारकं ब्रह्मदेवता, ॐ बीजं, मायाशक्तिः, ईश्वरः—इति कीलकम्, श्रीराख्यापरब्रह्मणः प्रसादसिद्धिद्वारा मम बन्धमोक्षसिध्यर्थे जपे विनियोगः । अन्तर्यामिणे—अंगुष्ठा० १ अधिष्ठानाय० तर्जनी० ३ नित्यमुक्ताय-मध्यमा० ३ सर्वगताय—अनामिका० ४ अनन्तरूपाय कनिष्ठिका० ५ तारकाय—करतलकरपृष्ठाभ्यां ६ एवं हृदयादिन्यासः ।

ॐ भूर्भुवस्वरोम्—इति दिग्बन्धः । ध्यानम—वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् । अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्वं मुनिभ्यः परं व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥ लमित्यादिपञ्चपूजा । अथ मूलमन्त्रः--सर्वान् लोकान्सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् । पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥ यथाशक्ति जपित्वा हृदयादिन्यासान्कृत्वा 'सीतारामौ तन्म यावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त । स्थितानि च प्रहितान्येव तेषु ततो रामो मानवो मायया ऽधात् ॥ जगत्प्राणायात्मनेऽस्मै नमस्यां नकस्त्वैक्यं प्रवदेत्प्राग्गुणेन इति साञ्जलिबन्धं पठित्वा [रामतापिन्यां तृतीयोपनिषत्] ततः पारायणं चरेत् ।

युद्धकाण्डम्—अस्य श्रीयुद्धकाण्डमहायन्त्रस्य विभीषणऋषिः, अनु०, विधाता देवता, विंबीजम्, नमश्शक्तिः, विधात्रे इति कीलकम, विधातृसेवित श्रीरामचन्द्रप्रसादसिध्यर्थे जपे विनियोगः । विधाता-अंगु० १ समहादेवः-तर्ज० २ भक्तानामभयप्रदः मध्यमा० ३ सर्वदेवप्रीतिकरः-अनामि० ४ भगवान्-कनिष्ठि० ५ भगवत्प्रियः करतलक० ६ एवं हृदयादिन्यासः । ध्यानम- विधिं विधातारमहं स्तुवन्तं दशास्यहन्तारमतीव भत्या । सर्वामरप्रीतिकरं सुशान्तं वन्दे सदा भूतनयेशभक्तम् ॥ लामित्यादि पूजा । मन्त्रः-विधाता स महादेवो भक्तानामभयप्रदः । सर्वदेवप्रीतिकरो भगवान्भगवत्प्रियः । एवं पूर्वोक्तहृदयादिन्यासः ।

उत्तर-काण्डम्—अस्य श्रीमदुत्तर श्रीरामायणमहामन्त्रस्य चतुर्मुखो भगवानृषिः, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीरामचन्द्रः परमात्मा देवता, रां बीजम्, नमश्शक्तिः, रामायेति कीलकम्, श्रीरामचन्द्रप्रसादसिध्यर्थे जपे विनि० । दाशरथये-अंगु० १ सीताकान्ताय-तर्ज० धर्मात्मने-मध्य० ३ खरहन्ते अना० ४ सुग्रीवमित्राय कनिष्ठि० ५ दशास्यहन्त्रे—करतलक० ६ एवं हृदयादिन्यासः। दिग्बन्धः । ध्यानम्—सुताभ्यां सेव्यमानाङ्घ्रिं मुनिसङ्घै रभिष्टुतम् । यज्ञवेदिगत राम ब्रह्मादस्तुतमाश्रये ॥ लमित्यादि पूजा । मन्त्रः—आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । नह्यन्योऽर्हति वाव्यानां यशोभाग्राघवादृते शेषं पूर्ववत् ।

ततः प्रार्थनाश्लोकाः—रामायणमहामन्त्रपठनेन सनातनः । परिशिशवस्सदा रामः प्रीत्या दद्यान्ममेप्सितम् ॥ ब्रह्मविष्णवीश्वरा नित्य गृहे तिष्ठन्तु मे सदा आकृष्टा राममन्त्रेण कारुण्यं मद्दास्थिताः ॥ घुटिकापादुकाद्यष्टसिद्धयो निधयो नव । पार्वती च रमा वाणी मातरस्सन्तु मे गृहे ॥ इति प्रार्थ्य तत्तन्मतानुसारेण श्रीरामायणपारायणं कृत्वा यथासंप्रदायं समाप्त्यामपि मङ्गलाश्लोकाः पठनीयाः ।

—दौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ प्रथमोऽध्यायः ❀

[ब्रह्माकी आज्ञासे प्रियव्रतका राज्य-पालन करना-यह वर्णन]

राजाने कहा—हे महर्षे, परमभागवत आत्मनिरत प्रियव्रत घरमें कैसे रमण करने लगे, क्योंकि उसीके कारण तो कर्मका बन्धन और स्वरूपका अज्ञान होता है॥१॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, उस तरहके मुक्तसंग पुरुषोंकी घरबारमें यह आसक्तिही नहीं हो सकती॥२॥ हे विप्रर्षे, उत्तम कीर्तिशाली भगवानके चरणकमलोंकी छायासे शान्तचित्त महात्मा लोगोंकी बुद्धि कुटुम्बमें आसक्ति नहीं होती॥३॥ हे ब्रह्मन्, यही मुझे संशय है कि स्त्री, पुत्र, घर इत्यादिमें आसक्त होकर भी उनको कृष्णमें अटल निष्ठा और सिद्धि कैसे मिली॥४॥ श्रीशुकदेवजीने

ॐनमो भगवते वासुदेवाय॥ राजोवाच॥ प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने॥ गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः॥१॥ न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ॥ गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति॥२॥ महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः॥ छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः॥३॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु॥ सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता॥४॥ श्रीशुक उवाच॥ बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किञ्चिदन्तरायविहतां स्वां शिवतमांपदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति॥५॥ यर्हि वाव ह राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः॥६॥ अथ ह

कहा—हे राजन्, आपने ठीक कहा, उत्तमश्लोक भगवान्के वैभवशाली चरणसरोजके मकरन्दमें जिनका चित्त आसक्त है ऐसे लोग मार्गमें विघ्न आनेपर भी अपने अत्यन्त पवित्र मार्गको नहीं छोड़ते और भगवद्भक्त परमहंसोंके प्रिय भगवान्की कथा ही उनका वह मार्ग है॥५॥ हे राजन्, जब परमभागवत राजपुत्र प्रियव्रतने नारदमुनिके चरणोंकी सेवा करके आत्माका यथार्थ तत्त्व जान लिया, तब यद्यपि भूतलके परिपालनके लिये शास्त्रमें कहे गये श्रेष्ठ गुणोंका एकमात्र आश्रयस्थान होनेके कारण उनके पिताने उसे राज्य करनेकी आज्ञा दी थी, फिर भी निरन्तर चित्तकी एकाग्रताके साथ-साथ उन्होंने पहलेसे ही वासुदेवमें समस्त इन्द्रियोंका क्रियाकलाप समर्पण करते रहनेके कारण उस मिथ्याभूत राज्यसे भी आत्मरूपका तिरस्कार समझकर राज्यको अच्छा नहीं समझा॥६॥ इस गुणमय सृष्टिसमृद्धिकी आलोचनासे समस्त जगत्का अभिप्राय जाननेवाले आदिदेव भगवान् आत्मयोनि ब्रह्माजी मूर्तिमान् वेदोंके तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने गण मरीच्यादिके साथ अपने लोकसे उत्तरे ॥७॥ वह गगनमार्गमें विमनोंकी पंक्तियोंमें बैठे देवेन्द्रादिकोंसे पूजित होते हुए चन्द्रके समान गन्धमादनपर्वतकी दरीको प्रकाशित करते हुए उतरे। बीच-बीचमें सिद्ध, गन्धर्व चारण, साध्य और मुनिगण उनकी स्तुति करते थे ॥ ८ ॥ उस तरह हंसवाहनसे अपना पिता इन हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मदेवको उतरते देख मनु और प्रियव्रतके साथ नारदजी झट उठकर हाथमें पूजनकी सामग्री ले हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥९॥ हे भारत, समुचित वाक्योंसे अपने गुण, अवतार, और उत्कर्षोंका अतिशय वर्णन सुनकर नारदकी पूजाको लेकर आदिदेव भगवान् ब्रह्माजी दया और हास्ययुक्त दृष्टिसे देखकर प्रियव्रतसे कहने लगे ॥१०॥ श्रीभगवान् ब्रह्मदेवने कहा—बच्चा ऐसा मत समझो कि असूयाके कारण मैं ऐसा कह रहा हूँ, मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ। मेरे मुखसे भगवान् ही यह कहवा रहे हैं। अप्रमेय भगवान्को दोषदृष्टिसे तो तुम देखही नहीं

भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ॥ ७ ॥ स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ ८ ॥ तत्र हवा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥ ९ ॥ भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इतिं होवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ॥ वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥ ११ ॥ न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा ॥ नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥ १२ ॥ भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय ॥ सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्ग धत्ते ॥ १३ ॥ यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ॥ सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥ ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात् ॥ आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्तनाथश्चक्षुष्मताऽन्धा इव नीयमानाः ॥१५॥

सकते। मैं, रुद्र, तुम्हारे ये पिता, ये गुरु नारद सभी विवश होकर उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। ११॥ उसने जो किया है या निश्चय किया है उसको कोई भी तप, विद्या, योगबल, ज्ञान, अर्थ, धर्म इत्यादिसे अपने या दूसरेके बलसे बदल नहीं सकता ॥१२॥ हे प्रियव्रत, समस्त जीव जन्म, मरण, कर्म, शोक, मोह, भय, सुख और दुःख—इनके लिये उस अव्यक्त भगवान्से दिये गये शरीरको धारण करते हैं ॥१३॥ उसके वेदवाणीरूप दामनमें सत्त्वादि गुण और उसके कारण होनेवाले कर्मरूपी बन्धनोंसे हम सबलोग बँधे हैं और जैसे नाथे गये बैल मनुष्यके इच्छानुसार काम करते हैं वैसेही हमलोग उसकी इच्छासे काम करते हैं ॥१४॥ बच्चा प्रियव्रत, सुख हो या दुःख हो, भगवान्के द्वारा दिया गयाही हमलोग स्वीकार करते हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्योंकि अन्धे जैसे आँखवाला कोई जहाँ ले जाय वहाँ जाते हैं वैसेही गुण-कर्मसंगसे भगवान् जो ही देव या तिर्यक गति दें, वही स्वीकार करनी पड़ती है ॥१५॥ स्वप्नमें अनुभव किये गयेका जागनेके बाद मनुष्य अभिमानशून्य होकर जैसे स्मरण करता है, वैसेही कर्मबन्धसे मुक्त मनुष्य भी अभिमान छोड़कर प्रारब्धकर्मका भोग करते हुए अपनी देहको धारण करता है। किन्तु दूसरी देहके कारणीभूत कर्म और वासना उसमें नहीं रहते ॥ १६ ॥ असावधान, अजितेन्द्रिय मनुष्यका वन वनमें घूमनेपर भी यह भययुक्त संसार नहीं छूट सकता, क्योंकि उसके काम, क्रोधादि छः शत्रु रहते ही हैं। किन्तु छः शत्रुओंके साथ इन्द्रियोंको भी जिसने जीत लिया है ऐसे आत्मनिष्ठ विद्वानका गृहस्थाश्रम क्या बिगाड़ सकता है ॥ १७ ॥ जो षड्रिपुओंको जीतना चाहता है उसे उनको ज्यादा न रोकते हुए घरमें रहकर ही पहले जीतनेकी कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि उमड़े हुए शत्रुओंको दुर्गका आश्रय करके ही रोक सकते या जीत

मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ॥ यथानुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥१६॥ भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ॥ जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥१७॥ यः षट्सपत्नान्विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ॥ अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥१८॥ त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ॥ भुङ्क्ष्वेह भोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयावनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह ॥ २० ॥ भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत ॥ २१ ॥ मनुरपि परेणैवं प्रतिसन्धितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥ २२ ॥ इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाधिनि-

सकते हैं। फिर जब शत्रु क्षीण हो गये, तब चाहे जहाँ घूम सकते हैं ॥१८॥ तुमने भगवान् पद्मनाभके चरणसरोजरूपी दुर्गका आश्रयकर षड्रिपुओंको जीत लिया है, अतः भगवान्के द्वारा दिये गये भोग को अनासक्त होकर भोगो और अन्तमें अपने स्वरूपको प्राप्त करो ॥१९॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—महाभागवत प्रियव्रतने ऐसे ब्रह्माके वचनको सुनकर स्वयं छोटा होनेके कारण त्रिभुवन गुरु भगवान् ब्रह्माकी आज्ञाको 'ठीक है' कहकर सिर नवाकर बहुमानके साथ स्वीकार किया ॥२०॥ तब मनुने सन्तुष्ट होकर ब्रह्मदेवकी पूजा की। उसको स्वीकारकर प्रियव्रत तथा नारदके सरल दृष्टिसे देखते-ही-देखते व्यवहारातीत रूपका चिन्तन करते हुए ब्रह्मदेव अपने मन और वाणीके अविषय ऐसे स्थानको चले गये ॥ २१ ॥ इस तरह मनुका मनोरथ दूसरेसे ही पूर्ण हो गया। फिर नारद ऋषिकी अनुमतिसे समस्त भूमण्डलके रक्षणके लिये अपने पुत्र प्रियव्रतको स्थापितकर स्वयं अत्यन्त विषम विषयोंके विषमय जलाशयकी जो वासना है उससे वे विरत हो गये ॥२२॥ इस तरह उस भूपतिने ईश्वरेच्छासे धर्ममें प्रवृत्त होकर जिसके प्रभावसे समस्त संसारके बन्धन ध्वस्त होते हैं ऐसे भगवान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदि पुरुषके पादयुगलके सतत ध्यानके प्रभावसे रागादि मलको ध्वस्तकर शुद्ध होनेपर भी बड़ोंकी आज्ञाके पालनसे उनका मान बढ़ाते हुए पृथिवीका शासन किया ॥२३॥ प्रियव्रतने प्रजापति विश्वकर्माकी बर्हिष्मति नामकी कन्याके साथ विवाह किया। उस पत्नीमें उसने अपने समान शील, गुण, कर्म, रूप वीर्य, औदार्य गुणवाले दस पुत्रोंको तथा उनसे छोटी ऊर्जस्वती नामकी कन्याको उत्पन्न किया ॥ २४ ॥ आग्नीध्र, इध्म, जिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि ये जो अग्निके नाम हैं ये ही उन पुत्रोंके नाम थे ॥२५॥ इनमेंसे कवि, महावीर और सवन ये तीनों उर्ध्वरेता होकर बाल्यकालसे ही आत्मविद्यामें प्रवीण होकर सन्यासाश्रमी हो गये ॥२६॥ उस आश्रममें समस्त जीवसमूहोंके आश्रय, भीतोंके शरणस्थान, भगवान वासुदेवके श्रीमच्चरणकमलके निरन्तर स्मरणसे उत्पन्न अखण्ड भक्तियोगके प्रभावसे पवित्र हृदयमें भगवान्को पाकर उसी सर्वभूतोंकी आत्मा

वेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥ २३ ॥ अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामु ह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयांबभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥२४॥ आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामानः ॥२५॥ एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥ २७ ॥ अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥ २८ ॥ एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमित धर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक

प्रत्यगात्मा भगवान्में अपना अभेद देखते हुए शम-दमादिसे सम्पन्न वे तीनों ऋषि देहादि उपाधियोंको दूरकर उसी भगवान्में विलीन हो गये ॥२७। प्रियव्रतको ही दूसरी स्त्रीमें तीन पुत्र और हुए–उत्तम, तामस और रैवत। ये तीनों मन्वन्तराधिपति हुए ॥२८॥ जब इस तरह पुत्र उपरामका आश्रयण कर रहे थे, तब मनस्वी राजा प्रियव्रतने सब तरहके पौरुषके लिये पर्याप्त बलपूर्ण बाहुदण्डोंसे खींचे गये धनुषके टंकारसे ही शत्रुओंको शान्त करके बर्हिष्मतिके प्रतिदिन बढ़नेवाले हर्ष, अभ्युत्थान आदि लीलाओं तथा स्त्रीस्वाभाविक शृंगारभावोंसे एवं लज्जासे संकुचित हास्ययुक्त कटाक्षोंसे तथा मनोहर परिहासादिसे मानो विवेक खोकर आत्मविस्मृतके समान ग्यारह अरब वर्ष पृथ्वीका उपभोग किया। तात्पर्य यहकि दूसरोंकी दृष्टिमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विलासी होते हुए भी वास्तवमें वह ज्ञानी था ॥२९॥ जब भगवान् सूर्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए आधे वसुधातलको प्रकाशितकर आधेको अन्धकाराच्छादित करते-करते समस्त पृथ्वी को लोकालोक पर्यन्त चमकाते हैं, तब भगवान्की उपासनासे जिनके पुरुषत्वका प्रभाव बढ़ा है ऐसे प्रियव्रतने उससे सन्तुष्ट न होकर 'रात को दिन करूँगा' ऐसा निश्चयकर सूर्यके समवेगी ज्योतिर्मय रथपर चढ़कर दूसरे सूर्यके समान सात बार सूर्यके पीछे-पीछे ही पृथिवीकी प्रदक्षिणा की ॥ ३० ॥ उसके रथके चक्केसे जो गढ़े पड़े, वेही सात सागर हो गये, जिनसे यह पृथिवी सात द्वीपोंमें विभक्त होगई ॥ ३१ ॥ उन सातो द्वीपोंके ये नाम हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। उनकी लम्बाई चौड़ाईका माप एक दूसरेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूना अधिक है। यों वे एक दूसरे की अपेक्षा द्विगुणमानसे समुद्रोंके बाहर विरचित हुए हैं ॥ ३२ ॥ सातों द्वीप क्रमशः क्षार, इक्षु रस, सुरा, घी, दूध, दही और शुद्धजलके

इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥ यावदवभासयति सुरगिरिमनु परिक्रामन्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धे नैव प्रतपत्यर्धे नावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनु पर्यक्रामद्द्वितीय इव पतङ्गः ॥ ३०॥ ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन्यत एव कृताः सप्तभुवो द्वीपाः ॥३१॥ जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्त उपक्लृप्ताः ॥३२॥ क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान्यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३ ॥ दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥ नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ॥ चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥ ३५ ॥ स एवमपरिमि-

समुद्रोंसे खन्दकके समान घिरे हुए विस्तारमें समान थे। उनके भीतरके द्वीप भी लम्बाई चौड़ाईमें उन्हींके समान थे। एक-एक करके उन सातोंमेंसे हरेकके बाहर उन जम्बु आदिसातों द्वीपोंमें क्रमशः अग्नीध्र, इध्मा, जिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र संज्ञक अपने आज्ञाकारी पुत्रोंको बर्हिष्मतिपतिने स्वामी बनाया ॥ ३३ ॥ उसने ऊर्जस्वति नामक अपनी लड़की शुक्राचार्यको दी। उसको काव्यसे देवयानी नामकी कन्या हुई ॥ ३४ ॥ हे राजन्, भगवान् पराक्रमशाली विष्णुके चरणधूलिसे जिन्होंने षड्रिपुओंको जीत लिया है ऐसे लोगोंके लिये इस तरहकी पौरुष कुछ आश्चर्यकारक नहीं है क्योंकि उनके नामग्रहणमात्रसे चण्डाल भी तुरत मुक्त हो जाता है ॥ ३५ ॥ इस तरह अपरिमित बल-पराक्रमी वह राजा एक समय नारद ऋषिके चरणकी सेवासे ज्ञानप्राप्त हो जानेके बाद राज्यादिप्रपंचके संसर्गसे अपनेको मानों दुखी मानते हुए मनमें निर्वेदयुक्त होकर इस तरह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहने लगा ॥३६॥ अरे ! मैंने यह अच्छा नहीं किया कि इन्द्रियाके पीछे पड़कर अविद्याचरित विषम विषयोंके अन्धकूपमें मैं आजतक पड़ा रहा। अब यह स्त्री इत्यादि वश हैं। इस स्त्रीके हाथके खिलौने मुझको धिक्कार है। ऐसा उसने अपनेको धिक्कारा ॥ ३७ ॥ आज्ञाकारी पुत्रोंमें ठीक ठीक राज्य बाँटकर बहुत भोग किये गये साम्राज्य सम्पत्ति और रानीको मृतक शरीरके समान छोड़कर भगवान्‌के प्रसादसे प्राप्त आत्म विवेकसे नारदके द्वारा कहे गये मार्गका ही उसने फिरसे अनुसरण किया ॥ ३८ ॥ उसकी महिमाके विषयमें

तबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥३६॥ अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयाञ्चकार ॥३७॥ परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सह महाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥३८॥ तस्य ह वा एते श्लोकाः ॥ प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ॥ यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्तवारिधीन् ॥३९॥ भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ॥ सीमा च भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥ ४० ॥ भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ॥ यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥४१॥ इति श्रीम० म० पञ्च० प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

ये श्लोक बहुत दिनोंके हैं—ईश्वरके बिना प्रियव्रतके द्वारा किये कर्मोंको कौन कर सकता है, जिसने सूर्यके कारण आधे जगतकी छायाको नष्ट करते हुए रथके पहियोंके गड्ढेसे सात समुद्र बनाये ॥ ३९ ॥ नदी, पर्वत और वनोंसे उसने पृथ्वीकी सीमाका निर्धारण करके प्रत्येक द्वीपमें भूतोंके सुखके लिये विभागपूर्वक भूमिकी व्यवस्था की ॥ ४० ॥ उसने पाताल भूमि तथा स्वर्गीय कर्मजन्य वैभवको नरकतुल्य समझा। विष्णुभक्त ही उसको प्रिय थे ॥ ४१ ॥

पहले अध्यायका सार—राजाने कहा—हे ऋषे, परम भागवत प्रियव्रत कर्मबन्धके कारणीभूत घरमें कैसे रहने लगे। भगवान्‌के चरणोंमें निरत लोग कुटुम्बमें आसक्त नहीं होते। और फिर भी उसको सिद्धि मिली, यह तो आश्चर्य है। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, तुमने ठीक कहा। भगवान्‌के चरणसरोजके मकरन्दसे मस्त लोग अनेक भी विघ्न आनेपर भी उसको नहीं छोड़ते। प्रियव्रतने नारदमुनिकी कृपासे यथार्थ तत्त्व जान लिया था। पिताने उसको राज्य करनेको यद्यपि आज्ञा दी थी, फिर भी वह भगवान् निरत होनेके कारण उसने उसको त्यागकर दिया। तदनन्तर ब्रह्माजी अपने गणके साथ अपने लोकसे उतरे। उनको आते देख मनु और प्रियव्रतके साथ नारदजी अगुआनी करने गए। वे उनकी स्तुति करने लगे। स्तुतिसे प्रसन्न होकर दयामय दृष्टिसे प्रियव्रतको देखते हुए उन्होंने कहा—बच्चा, हम सभी भगवान्‌की आज्ञाको विवश होकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मानते हैं। किसी भी उपायसे उनका निश्चय कोई नहीं बदल सकता। अभिमानशून्य मनुष्य प्रारब्ध कर्मसे भोग करता है, किन्तु देहान्तरकी कारण वासना उसमें नहीं रहती। अजितेन्द्रिय चाहे जहाँ जाय, उसका संसार नहीं छूटता, किन्तु जितेन्द्रियका गृहस्थाश्रम भी कुछ नहीं बिगाड़ता। पहले घरमें रहकर धीरे-धीरे इन्द्रियोंको स्वाधीन करना चाहिए। ब्रह्मदेवकी बात प्रियव्रतने आदरसे मान ली। तब वे अपने स्थानपर चले गए। इसप्रकार दूसरेसे ही अपना कार्य हुआ जानकर मनु पुत्रपर राज्यभार सौंपकर स्वयं संसारसे निवृत्ति हो गये। प्रियव्रतने भगवान्में निरत बुद्धिसे ही योग्य रीतिसे ही पृथ्वीका शासन किया। उसने विश्वकर्माकी पुत्री वर्हिष्मतिसे विवाह कर उसमें आग्नाध्रादि दस पुत्रों और ऊर्जस्वती नामक कन्या की। उनमें कवि महावीर और सवन ये आत्मज्ञ ऊर्ध्वरेता संन्यासी हो गये। प्रियव्रतको दूसरी पत्नीमें उत्तम, तामस, और रैवत नामक पुत्र हुए। ये मन्वन्तराधिपति हुए। उसने धनुषके टङ्कारसे ही शत्रुओंको शान्तकर बर्हिष्मतिके साथ अनेक वर्षोतक पृथ्वीका भोग किया। उसने सूर्यके समान रथपर बैठकर सात बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा की। उसके रथके चलनेसे चक्रके जो गढे पड़े, वे सात समुद्र हो गये। उनके कारण पृथ्वी सात द्वीपोंमें विभक्त हुई। ये समुद्र उनके खन्दकके समान हैं। उन सातोंमें उसने वर्हिष्मतिके बाकी सात पुत्रोंको स्वामी बनाया। उसीने अपनी लड़की शुक्राचार्यसे ब्याह दी। उनसे उनको देवयानी नामक पुत्री हुई। तदनन्दर प्रियव्रतको निर्वेद उत्पन्न हो गया। उसने विषयोंमें आसक्त अपनेको धिक्कारा। फिर सभीका त्यागकर नारदके कहे मार्गका ही अनुसरण किया। उस प्रियव्रतकी लोग इस तरह कीर्ति गाते हैं। सूर्यके समान पृथ्वीकी परिक्रमा करनेवाले प्रियव्रतकी कौन बराबरी कर सकता है। उसने पृथ्वीकी सीमा निर्धारितकी और अन्तमें सबको तुच्छ समझकर भगवान् का आश्रयण किया। पहला अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❋

श्रीशुक उवाच ॥ एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥१॥
स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्व्याराधयांबभूव

[आग्नीन्ध्रका चरित्र]

श्रीशुकदेवजीने कहा—इसप्रकार जब भगवद्भजनमें प्रवृत्त हो गये, तब उनकी आज्ञामें रहनेवाले आग्नीध्रने जम्बूद्वीप निवासी प्रजाओंका धर्मसे औरस पुत्रके समान पालन किया ॥१॥ उसने पुत्रकी इच्छासे देवस्त्रियोंके क्रीडास्थान मेरुपर्वतकी दरामें चित्तको एकाग्रकर प्रजापतियोंके स्वामी भगवान ब्रह्मदेवकी सभी पूजाके उपकरणोंका सम्पादनकर तपसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आराधना की ॥२॥ उसको जानकर भगवान् ब्रह्मदेवने अपनी सभामें गान करनेवाली पूर्वचित्ति नामकी अप्सराको उसके पास सम्भोगार्थ भेजा ॥३॥ वह अप्सरा राजाके आश्रमके अति रमणीय उपवनमें घूमने लगी। उस उपवनमें नाना तरहके घने पेड़ोंकी डालियोंके समूहोंमें आलिङ्गित सुवर्णलताओंपर मोर आदि पक्षियोंके जोड़े अपने स्वरोंसे जलके मुर्गे, कलहंस, कारण्डव आदि पक्षियोंको जगाते थे और वे अपने कूजनसे अनेक कमल जहाँ खिले हैं ऐसे सरोवरोंको निनोदित करते थे ॥ ४ ॥ उस अप्सराके मनोहर गमनमें पग रखनेसे एक विलास मालूम होता था। चलते समय पग पगपर छम-छम बाज रही उसके पैरोकी पाजेबोंकी झनकार सुनकर राजकुमारने समाधियोगमें मुँदी हुई नेत्ररूपी नील-कमलकी दो कलियोंको किञ्चिद्विकसित करके देखा ॥ ५ ॥ वह अप्सरा पासहीमें भ्रमरीके समान फूलोंको सूँघ रही थी। उसके देवता और मनुष्योंके नयन और मनको आह्लाद-

॥ २ ॥ तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ॥ ३ ॥ सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविध-निबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्र-मुपकूजितामलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ ४ ॥ तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरण-स्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥ ५ ॥ तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निज-मुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ ६ ॥ का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायाऽसि कापि भगव-त्परदेवतायाः ॥ विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥ ७ ॥ बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्ता-

दायक गति, विहार, लज्जा, कटाक्षपात, सुन्दर, अक्ष तथा अवयवोंसे लोगोंके मनमें कामके लिये प्रवेश द्वार हो जाता था। उसके मुखसे निकलनेवाले अमृतके समान मधुर और आसवके समान मादक हास्ययुक्त भावके कारण प्रसूत होनेवाले श्वासकी सुगन्धसे मदान्ध मधुकरोंके समूह उसे घेरकर रोक रहे थे। उनके डरसे जल्दी पैर बढ़ानेके कारण उसके स्तनकलश, कबरी भार तथा करधनी ये किञ्चित् हिल रहे थे। उसे देखकर राजकुमार जड़के समान भगवान् कामदेवके अधीन हो गये और उससे कहने लगे ॥ ६ ॥ हे प्रिय, तुम कौन हो? क्या करना चाहती हो? इस मुनिश्रेष्ठोंके पर्वतपर देवश्रेष्ठ भगवान्की माया हो। डोरीरहित धनुष तुम धारण करती हो, हे सुहृद, यह तुम्हारे अपने लिये है या वनमें विचर-नेवाले हम जैसे असावधान (अजितेन्द्रिय) मृगोंको इससे वशमें लाना चाहती हो ॥ ७ ॥ कमलपत्र (नेत्र) जिनका फल है, पुंख न होनेपर भी जो सुन्दर है ऐसे इन शान्त बाणोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(वनमें घूमते हुए कटाक्षोंका) किसपर प्रयोग करना चाहती हो ? यह हमारे समझमें नहीं आता । कुछ भी हो, किन्तु तुम्हारा यह पराक्रम हमारे कल्याण के लिये हो ॥ ८ ॥ ये आपके शिष्य (भ्रमर) आपके चारों ओर पठन और सामगायन करते हैं तथा आपके केशकलापसे गलित फूलोंका सेवन करते हैं, जैसे कि ऋषिगण वेदशाखाओंका सेवन करते हैं ॥९॥ हे ब्रह्मन्, आपके चरण-पञ्जरोंमें (नूपुरोंमें) जो तित्तिर हैं (अन्तर्गत रत्न) उनकी स्पष्टवाणी तो सुनाई देती है, लेकिन बोलनेवाले नहीं दिखाई देते । आपके नितम्बके सुन्दर मण्डलपर कदम्बके फूलोंकी कान्ति कहांसे आई है और उसपर करधनीका चक्कर दीखता है, आपका वल्कल कहाँ है ॥ १० ॥ हे द्विज, आपके इन सुन्दर शृंगोंमें क्या भरा है, जो उतने बड़ेको आपने मध्यमें कृश होनेपर भी धारणकर रक्खा है इनमें गुथी हुई मेरी दृष्टि अन्यत्र नहीं जाती । हे सुन्दर, आपने यह अरुण पङ्क-सा क्या लगाया है, जिससे मेरे आश्रमको आप

वपुष्कुरुचिरावतितिग्मदन्तौ ॥ कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥ ८ ॥ शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ॥ युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥९॥ वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ॥ लब्धा कदम्बरुचिरङ्कविटङ्कबिम्बे यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥ १० ॥ किं संभृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ॥ पङ्कोऽरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥ ११ ॥ लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ ॥ अस्मद्विधस्य मनउन्नयनौ बिभर्ति बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥ १२ ॥ का वाऽऽत्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ । उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचिरासन्नभृङ्गनिकरं सरइन्मुखं ते ॥१३॥ योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो दिक्षु भ्रमन्भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ॥ मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥ रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ॥ चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं

सुगन्धितकर रहे हैं ॥ ११ ॥ हे मित्रवर, आपके उस लोकको मुझे दिखाइये, जहाँ लोगोंकी छातीपर ऐसे अवयव होते हैं । इनसे हमारे मनमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न होता है । आप मुखमें मधुरालाप, विलास, अमृत, (अधरामृत) स्मित धारण करते हैं यह बड़ा आश्चर्य है ॥ १२ ॥ आपके देशमें कौनसा आहार है, जिसके चर्वणसे उसकी सुगन्ध फैलती है और उसका रंग बाहर दिखाई देता है । आश्चर्य है कि आप तो विष्णुकी कला मालूम पड़ती हैं, क्योंकि स्थिरनेत्रसे मकरकुण्डल आपके कानोंमें हैं । लेकिन विष्णु तो कुछ खाते नहीं । और आपका मुख तो सरोवर के समान है । इसमें दो चञ्चल मीन (नेत्र) हैं, दन्तरूपी राजहंसोंकी शोभा है, तथा केशरूपी भृङ्गसमूह भी पासमें ही है ॥ १३ ॥ आपके करकमलसे ताड़ित यह गेंद खुद घूमता हुआ भ्रान्तचित्त मेरे नेत्रोंको चञ्चल बनारहा है । अरे, आपका यह जटाकलाप छूट गया । इसका तो आपको ख्याल ही नहीं रहा । बड़ा मुश्किल, है यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

लम्पट वायु भी वस्त्रको खींच रहा है ॥ १४ ॥ तपस्वियोंके तपमें विघ्न डालनेवाले इस रूपको आपने किस तपसे पाया। मित्र, तुम मेरे साथ तपकर सकते हो, वह संसृति विस्तारक ब्रह्मा मेरे ऊपर सन्तुष्ट होगा ॥ १५ ॥ ब्राह्मण और देवताओं द्वारा दिये गये प्रिय तुमको अब मैं न छोड़ूँगा। तुममे लगा हुआ मन और नेत्र वापस लौटते ही नहीं। हे चारुशृंगि, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, मुझे ले जा सकती हो, जिससे मेरी बनवास सखियाँ (हरिणियाँ) मेरे अनुकूल गमन करें ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इसप्रकार बुद्धिमान्, स्त्रीके अनुनयमें निपुण राजाने ग्राम्य और विदार्थ वचनोंसे उस अप्सराको अपने अनुकूल बनाया ॥ १७ ॥ उस अप्सराने उस यूथपति राजाकी बुद्धि, शील, रूप वय, वैभव और औदार्य इनसे आकृष्ट होकर उस जम्बुद्वीपके राजाके साथ दस करोड़ वर्षोंतक भूमि तथा स्वर्गके भोग भोगे ॥ १८ ॥ उस राजश्रेष्ठ आग्नीध्रने उसमें नाभि, किंपुरुष, हरि, इलावृत, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु,

वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥१५॥ न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ॥ मां चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधि सभाजयामास ॥१७॥ सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयःश्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान्बुभुजे ॥ १८॥ तस्यामु ह वा आत्मजान्स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥१९॥ सा सूत्वाऽथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥ २० ॥ आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥२१॥ आग्नीध्रो राजातृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते ॥२२॥ संपरेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमिति संज्ञा नवोदवहन् ॥ २३ ॥ इति श्रीम० म० प० आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

भद्राश्व और केतुमाल नामके नव पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥१९॥ एक-एक वर्षमें एक२ पुत्रको जन्म देकर उन्हें घरहीमें छोड़कर पूर्वचित्ति फिर ब्रह्माके पास चली गई ॥२०॥ वे आग्नीध्रके पुत्र माताके अनुग्रहसे जन्मतः ही दृढ़ता और बलसे युक्त थे। उनको पिताने उन्हींके नामके जम्बूदीपके वर्षोंको विभक्त किया। उन्होंने अपने वर्षोंका भोग किया ॥ २१ ॥ राजा आग्नीध्रने कामभोगसे अतृप्त होनेके कारण उस अप्सराको दिन-दिन याद करते हुए श्रुत्युक्त मार्गसे उसके लोकको पाया, जहाँ पितर आनन्द करते हैं ॥ २२ ॥ पिताके अन्तके बाद उन नव भाइयोंने क्रमशः मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नामकी मेरुकन्याओंका पाणिग्रहण किया ॥ २३ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.
CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्वितीय अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—पिताके भगवद्भजनमें प्रवृत्त होनेके बाद आग्नीध्रने जम्बूद्वीपवासी प्रजाओंका पुत्रके समान पालन किया। उसने पुत्र-प्राप्तिके लिए ब्रह्मदेवकी तपश्चर्या की। तब ब्रह्माजीने पूर्वचित्ति अप्सराको सम्भोगार्थ उसके पास भेजा वह आकर राजाके आश्रमके पास टहलने लगी। वहाँके उपवनकी शोभा तो देखते ही बनती थी। उसमें वह अप्सरा नूपुरोंका शब्द करते हुए विलासयुक्त पग रखने लगी। उसकी आवाजको सुनकर राजाने समाधिमें मुँदे हुए अपने नेत्र खोलकर देखा, तो वह अप्सरा सामने फूलोंको सूँघ रही थी। उसकी रूप सम्पत्ति और हास-विलासादि देखकर राजा मुग्ध हो गये। वे कहने लगे—मुग्धे! तुम कौन हो, क्या मुनि श्रेष्ठके पर्वतपर भगवान्‌की माया हो? तुम अपने भ्रूधनुषसे हम-जैसे असावधान मृगोंको वशमें लाना चाहती हो। हे महर्षे, आपने यह विचित्र रूप कहाँसे और किस तपसे पाया। आप कृपया मेरे साथ तप करके मेरा मित्र बनिये। उससे ब्रह्माजी हम दोनोंपर प्रसन्न होंगे। हे चारुस्तनि तुममें लगा हुआ मेरा मन लौटता नहीं। तुम जहाँ ले जाओगी, वहाँ मैं जाऊँगा। इस प्रकार राजाने अपने चतुर बचनोंसे अप्सराको अनुकूल बनाया। फिर उसने राजाके गुणोंपर मुग्ध होकर अनेक वर्षोंतक उपभोग किया। उसमें नाभि, किंपुरुष आदि नव पुत्र उत्पन्न हुए। उसके बाद पूर्वचित्ति ब्रह्माके पास चली गई। आग्नीध्रके सब पुत्र माताके कृपासे जन्मतः बलवान् थे। उसके पिताने उन्हींके नाम करके सात् वर्षोंमें जम्बू द्वीपको बाँटकर स्वयं अप्सराके भोगसे अतृप्त होनेके कारण उसीकी याद करते हुए भुत्युक्त कर्मानुसारसे उसी लोकको चले गये जहाँ पिता आनन्द करते हैं। पिताकी मृत्युके बाद पुत्रोंने विवाह कर लिया। द्वितीय अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥१॥ तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानम-

[नाभिके यज्ञसे प्रसन्न होकर ऋषभरूपसे भगवान्‌का अवतार]

श्रीशुकदेवजीने कहा—मेरुदेवीको पुत्र न होनेके कारण नाभिने पुत्रकी इच्छासे दत्तचित्त होकर भगवान् यज्ञपुरुषके प्रीत्यर्थ यज्ञ किया॥ १॥ जब वह विशुद्ध भावसे यागकर रहा था और प्रवर्ग्य कर्म चल रहा था, तब द्रव्य, ईश, काल, मन्त्र, ऋत्विक्, दक्षिणा और विधान इन उपायोंकी सम्पत्तियाँसे दुष्प्राप्य होनेपर भी भक्तके ऊपर वात्सल्यके कारण भक्तोंकी

❀ दृष्टान्त—राजा नाभिके यज्ञमें प्रादुर्भूत श्री भगवान् को उसने प्रणाम आदि कुशल क्यों न पूछा! चूंकि वह उनके चतुर्भुज रूप को देख मेरा यज्ञ आदि कियाएँ पूर्ण हुई यों समझते हुए अपने कर्तव्याकर्तव्यका स्मरण न रहा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इच्छा पूर्ण करनेकी इच्छासे सुन्दरावयव भगवान्‌ने अत्यन्त मनोहर, मन तथा नयनोंको आनन्ददायक, सुन्दरावयव, स्वतन्त्र अपने रूपको प्रकट किया ॥ २ ॥ तदनन्तर उस चतुर्भुज, हिरण्मय, कपिशवर्णके रेशमी वस्त्र पहिने हुए, वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिह्नधारी, शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा रत्नोंसे खचित कौस्तुभसे विभूषित, किरणोंको बिखरनेवाले मुकुट, कुण्डल, कटक, करधनी, हार, केयूर और नूपरादि भूषणोंसे भूषित पुरुषको देखकर बहुधनको निर्धनके समान सभी सदस्य, यजमान और ऋत्विक् अतिबहुमानसे सिर नवाकर स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥ ऋत्विजोंनेकहा—हे पूज्यश्रेष्ठ, आप परिपूर्ण हैं। आप स्वयं हम भृत्योंकी पूजा बार-बार स्वीकार कीजिये। हम आपकी स्तुति क्या कर सकते हैं। आपको बार-बार नमस्कार ही हमने सज्जनोंसे सीखा है। प्रकृतिके गुणोंके खेलरूप इस प्रपञ्चमें जो आसक्त हैं ऐसा कौन पुरुष प्रकृति-पुरुषके हरे आपका प्रपंचांतर्गत नामरूप आकृतिसे निरूपणकर सकता ॥४॥ मनुष्य

पराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयङ्गमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥२॥ अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥ ३ ॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान्प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥ ४ ॥ सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥ ५ ॥ परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥ ६ ॥ अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥ ७ ॥ आत्मन एवानुसवनमञ्जसाऽव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किन्तु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ तद्यथा बालिशनां स्वयमात्मनः श्रेयः

केवल सकल लोगोंके समूहके पापके नाशक आपके पवित्र श्रेष्ठ गुणसमूहोंके एकदेशमात्रके कथनके सिवा क्याकर सकता है ॥५॥ हे भगवन्, किन्तु भक्तोंके द्वारा गद्गदाक्षरयुक्त स्तुति, जल, शुद्ध पल्लव, तुलसी और दुर्वाकुरोंसे की गई पूजासे ही आप सन्तुष्ट होते हैं ॥ ६ ॥ वैसे तो अनेक संभारोंसे समृद्ध इस यज्ञसे हमलोग आपका कोई समुचित प्रयोजन नहीं देखते ॥ ७ ॥ आपमें अपने ही समस्त पुरुषार्थ परस्परविरोधसे नित्य निरन्तर आविर्भूत होते रहते हैं, क्योंकि वे आपके स्वरूपभूत हैं, । किन्तु विविध फलोंकी इच्छा करनेवाले लोगोंका यह यज्ञयागादि केवल आराधनमात्र है, उससे आपको कुछ भी फायदा नहीं है ॥ ८ ॥ हे श्रेष्ठतम पुरुष, जो अज्ञलोग अपना परमपुरुषार्थ नहीं जानते उनकी स्वरूपभूत मुक्ति और इच्छित फल सम्पादित करते हुए खुद निरपेक्ष होनेसे इन सब उपासनाओंसे पूजित न होते हुए भी अपनी निरतिशय करुणासे सापेक्षकी तरह आप प्रकट हुए हैं ॥ ९ ॥ हे पूज्यतम, यही बड़ा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर है कि वरदोमें श्रेष्ठ आपने इस राजर्षिके यज्ञमें अपने भक्तोंको दर्शन दिया ॥ १० ॥ वैराग्यसे तीक्ष्ण हुई ज्ञानरूप अग्निके द्वारा जिनका समस्त मल नष्ट हो गया है, जिनका आप-जैसा स्वभाव है ऐसे आत्माराम मुनिलोग बार-बार आपके गुणगणोंको दोहराते हैं। लेकिन वे भी आपके परममंगलकर गुणगणोंका वर्णनमात्र करते हैं, उनको भी आपका दर्शन नहीं है ॥ ११ ॥ ठुकराना, छींकना, गिरना, जंभाई लेना, दुरवस्थामें रहना इत्यादि दशाओंमें हम जब विवश हो जाते हैं, ज्वर या मरणकी अवस्थामें रहते हैं तब आपका स्मरण हो, इसलिये आपके समस्त पापनाशक गुणाभिव्यंजक जो नाम हैं उनका हमसे सदा उच्चारण होता रहे ॥ १२ ॥ यह राजा प्रजाको ही पुरुषार्थ समझकर आपके समान सन्ततिकी इच्छासे समस्त फलके तथा स्वर्ग और मोक्षके भी स्वामी आपकी शरणमें आया है, जैसा कि दरिद्र कुबेरके पास जाकर उनसे भूसा माँगता है ॥ १३ ॥ जिसने महात्माओंकी सेवा नहीं की, ऐसा कौन

परमविदुषां परम परमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन्स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥ ९ ॥ अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥१०॥ असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगणपरममङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥ ११ ॥ अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥ १२ ॥ किं चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥ १३ ॥ को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥१४॥ यदुह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान्प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो यदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्या दथापि ब्रह्मवादो

मनुष्य आपकी अपराजित अज्ञातगति मायासे पराजित नहीं हुआ या उसकी बुद्धि मारी नहीं गई या विषयरूपी विषके वेगसे उसका स्वरूप ढका नहीं गया ॥ १४ ॥ भगवन् महान्कार्य करनेवाले आपको हम मूर्खलोगोंने क्षुद्रकामके लिये बुलाकर आपका जो अपमान किया, उसके लिये समदृष्टि आप इन मूर्खोंको क्षमा करेंगे ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इस तरह भारतवर्षके अधिपति के अभिवन्दित ऋत्विजोंने स्तुति करके भगवान्के चरणोंमें नमस्कार किया। तब देवश्रेष्ठ भगवान् दयासे कहने लगे ॥ १६ ॥ श्री भगवान्ने कहा-महर्षियों, सत्यवादी

 आपलोगोंने मेरे सदृश इसको पुत्र हो, यह बड़ा दुर्लभ वर माँगा है, क्योंकि मैं अद्वितीय होनेके कारण अपने जैसा मैं ही हूँ। फिर भी ब्राह्मणोंका वाक्य झूठ नहीं हो सकता, क्योंकि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवसदृश ब्राह्मणकुल यह मेरा ही मुख है ॥ १७ ॥ अतः अपने तुल्य दूसरेको न देखनेके कारण मैं खुद अंशकलासे नाभिमें उत्पन्न होऊँगा ॥१८॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–इस तरह मेरुदेवीके सुनते हु उसके पतिको कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥ १९ ॥ हे राजन्, उस यज्ञमें परमर्षियोंसे प्रमादित होकर भगवान् नाभिका प्रिय करनेके लिये दिग्वसन तपस्वी ज्ञानियोंके धर्मका उपदेश करनेकी इच्छासे शुक्लरूपसे उसकी रानी मेरुदेवीमें अवतीर्ण हुए ॥ २० ॥

न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद्द्विजदेवकुलम् ॥ १७ ॥ तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयाऽवतरिष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥ १९ ॥ बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान्परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाऽवततार ॥ २० ॥ इति श्रीम० म० पञ्च० नाभिचरित्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तीसरे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—नाभिने मेरुदेवीको पुत्र न होनेके कारण यज्ञपुरुषके प्रीत्यर्थ यज्ञ किया। जब विशुद्ध भावसे याग कर रहा था और प्रवर्ग्य चल रहा था, तब भगवान्ने भक्तवात्सल्यसे अपने सुन्दर रूपको प्रकट किया। उस सुन्दर अनेक भूषणोंसे भूषित मूर्तिको देखकर सभी बहुमानसे नत मस्तक हो स्तुति करने लगे। ऋत्विजोंने कहा—भगवन्, आप परिपूर्ण हैं, फिर भी आप हमारी पूजा स्वीकार करें। आपके रूपका कौन निरूपण कर सकता है। हम मनुष्य आपके पवित्र गुणाकदेशके वर्णनके सिवा क्या कर सकते हैं? आप भक्तोंके द्वारा दिये गये भक्तियुक्त पल्लव या जलसे गद्गदाक्षर युक्त स्तुतिसे सन्तुष्ट होते हैं। आपको इस महायज्ञसे भी क्या प्रयोजन? आपमें सभी पुरुषार्थ अविरोधसे रहते हैं, क्योंकि वे आपके स्वरूप हैं। यह यज्ञयागादि केवल आपका आराधन मात्र है, इससे कुछ भी आपको प्रयोजन नहीं है। फिर भी मानो आपको कोई प्रयोजन हो, इसतरह लोगोंके उपासना करनेपर आप प्रकट होते हैं भगवन, यह यज्ञ आश्चर्य है कि आपने इस राजर्षिके यज्ञमें भक्तोंको दर्शन दिया। आत्माराम मुनि लोग आपके गुणोंका वर्णन मात्र करते हैं, किन्तु दर्शन नहीं करते। विवश होकर भी आपके नाम स्मरण करनेसे समस्त पापसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। यह राजा प्रजाको ही परमपुरुषार्थ मानकर आपके समान प्रजा चाहता है। यह इसकी कामना तो आपके पास दरिद्रका कुबेरके पास भूसा मांगना है। भगवान्, महान कार्य करनेवाले आपको क्षुद्र कार्यके लिए बुलाकर आपका हम लोगोंने जो अपमान किया, उसके लिए समदृष्टि आप क्षमा करेंगे। ऐसा कहकर सभीने जब नमस्कार किया, तब भगवान ने कहा—'महर्षियों, सत्यवादी आप लोगोंने मेरे सदृश पुत्र हो, यह दुर्लभ वर मांगा है। क्योंकि अपने समान तो मैं ही हूँ। फिर भी आपका वचन झूठा नहीं हो सकता क्योंकि ब्राह्मण मेरा ही मुख हैं। अतः मैं ही अपने अंशसे नाभिसे उत्पन्न होऊँगा। मेरुदेवीके सामने ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। फिर नाभिसे मेरुदेवीमें तपस्वियोंको धर्मका उपदेश करनेके लिए शुक्लरूपसे भगवान् अवतीर्ण हुए। तीसरा अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—उस शिशुकी उत्पत्तिसे ही भगवान्के लक्षण प्रकट होते थे। उसकेसाथ-साथ ही साम्य, शान्ति, वैराग्य, ऐश्वर्य इत्यादि सब सम्पत्तियाँ और उसका प्रभाव भी दिनदिन बढ़ता गया। अमात्यादि प्रकृति, प्रजा, ब्राह्मण, देवता सभी 'वह पृथिवी पालन करे' ऐसा अत्यन्त चाहते थे ॥ १ ॥ उसके श्रेष्ठतम शरीर, उदारकीर्ति, तेज, प्रभाव, बल, श्री, यश और शौर्य इत्यादिकोंको देखकर पिताने 'ऋषभ' यह उसका योग्य नाम रखा ॥२॥ उसके गुणोंकी स्पर्धासे इन्द्रने उसके वर्षमें वृष्टि नहीं की। उसको जानकर योगेश्वर भगवान् ऋषभदेव

❋ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❋

श्रीशुक उवाच ॥ अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥ १ ॥ तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ २ ॥ तस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान्वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥ ३ ॥ नाभिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजास्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः ॥ ४ ॥ विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥ ५ ॥ यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति ॥ को नु तत्कर्म

हँसे और उन्होंने अपनी मायासे अपने अजनाभ वर्षमें वृष्टि की ॥ ३ ॥ नाभि अपने इच्छानुसार प्रजा होनेके कारण आनन्दभावसे विह्वल होकर अपनी इच्छासे नररूपधारी पुराणपुरुष भगवान्को मायामोहित बुद्धिसे वत्स ! तात ! ऐसा कहकर प्रेमसे प्यार-दुलार करता था। उससे उसको परम शान्ति मिली ॥ ४ ॥ सभी पौर जानपद और प्रकृतिका इसपर अनुराग है, ऐसा समझकर राजा नाभि पुत्रको धर्ममर्यादके लिये अभिषिक्त करके उसको ब्राह्मणोंके हाथमें सौंपकर मेरुदेवीके साथ बदरीमें चला गया। वहाँ शान्त और तीव्र रूपसे और समाधियोगसे नरनारायण नामक भगवान् वासुदेवकी उपासनाकर कुछ कालके बाद नाभिने उसीकी महिमा यानी जीवन्मुक्ति प्राप्त की ॥ ५ ॥ हे पाण्डुवेय, नाभिकी इस तरह कीर्ति गाई जाती है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजर्षि नाभिके द्वारा किये गये कार्यको कौन पुरुषकर सकता है, जिसके शुद्ध कर्मसे भगवान् उसके पुत्र बने ॥ ६ ॥ नाभिसे बढ़कर कौन ब्राह्मणभक्त हो सकता है, जिसके यज्ञमें दक्षिणासे पूजित ब्राह्मणोंने मन्त्रप्रभावसे साक्षात् भगवान्का दर्शन कराया ॥ ७ ॥ फिर भगवान् ऋषभदेव अपने वर्षको कर्मक्षेत्र बनाकर लोगोंको दिखलाने लिये गुरुकुलवास करके गुरुओंको वर देकर उनकी आज्ञा लेकर फिर गृहस्थधर्मकी लोगोंको शिक्षा देनेके लिये इन्द्रद्वारा दी गई जयन्ति नामकी भार्याका ग्रहण किया और श्रुति स्मृत्युक्तकर्मका आचरण करते हुए उसमें अपने समान सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ उनमें महायोगी भरत सभीमें गुणोंसे श्रेष्ठ और ज्येष्ठ था, जिसके कारण इस वर्षका भारतवर्ष नाम पड़ा ॥ ९ ॥ उसके बाद कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट ये नव नब्बे पुत्रोंसे प्रधान थे ॥ १० ॥ फिर कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और

राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ॥ अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः ॥ यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥ ७ ॥ अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्मसमाम्नायाम्नातमभि युञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥ ८ ॥ येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ ९ ॥ तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥ १० ॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ ११ ॥ इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥ १२ ॥ यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥१३॥ भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशःप्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥ १४ ॥ यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते

करभाजन ये नव पुत्र महाभागगत भागवतधर्मप्रदर्शक हुए। उनका भगवन्महिमासे युक्त सुचरित्र, जो वसुदेव नारद संवादात्मक और मोक्षका मार्गभूत है, आगे कहेंगे ॥ ११,१२ ॥ बचे हुए इक्यासी जयन्तिके पुत्र पिताके आज्ञापालक, अत्यन्त विनीत, महाश्रोत्रिय, यज्ञकरनेवाले, कर्मसे विशुद्ध ब्राह्मण हुए ॥ १३ ॥ भगवान् ऋषभ स्वतन्त्र स्वभावतः सदा अनर्थ परम्परासे रहित साक्षात् केवल आनन्दानुभव ईश्वर ही थे, लेकिन विपरीत कर्मकर रहे यानी साधारण जीवोंकी नाई कर्मकर रहे उनको न जाननेवाले लोगोंके लिये कालसे उत्पन्न धर्मकी अपने आचरणसे लोगोंको शिक्षा देते हुए शान्त, समदृष्टि, सुहृत्, दयामय होकर धर्म, अर्थ, यश, प्रजा, आनन्द और मोक्षके सम्पादनसे लोगोंका नियमन किया, क्योंकि लोग श्रेष्ठ लोगोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आचरणका अनुकरण करते हैं ॥ १४, १५ ॥ सभी धर्म जिसमें हैं ऐसे वेदके रहस्यकी यद्यपि वे खुद जानते थे, फिर भी ब्राह्मणोंके दारा दिखाये गये मार्गसे सामादि उपायांसे जनताका शासन किया ॥ १६ ॥ द्रव्य, देश, काल, वय, श्रद्धा, ऋत्विक्, यथा नाना देवताओंसे पूर्ण समृद्ध सभी तरहके सौ यज्ञ यथाविधि किये ॥ १७ ॥ भगवान् ऋषभ जब इस वर्षका पालन करते थे, तब कोई भी पुरुष अपने स्वामी ऋषभमें निरन्तर स्नेहोद्रेकके सिवा दूसरा कुछ भी कभी गगनकुसुमकी नाईं लोभनीय अविद्यमान फल किसी दूसरेसे नहीं चाहता था ॥ १८ ॥ एक बार घूमते हुए भगवान् ऋषभ ब्रह्मावर्तमें ब्रह्मर्षिश्रेष्ठोंकी सभामें गये । वहाँ सभी प्रजाओंके सुनते हुए प्रेम और विनयसे युक्त मनोनिग्रहीत पुत्रोंको शिक्षा देते हुए कहने लगे ॥१९॥

लोकः ॥१५॥ यद्यपि स्वविदितं सकलधम ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥१६॥ द्रव्यदेशकालवयःश्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥ १७ ॥ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥ १८ ॥ स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापु० पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

चौथे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—उस शिशुकी उत्पत्तिके साथ भगवान्के लक्षण प्रकट हुए थे । वह अपने ऐश्वर्यसे दिन-दिन बढ़ने लगा । उसके बल ओज आदिके अनुरूप पिताने उसका ऋषभ नाम रखा । सभी प्रजाएँ उसके गुणोंसे मुग्ध होकर' वह राज्य करे, ऐसा चाहती थीं । उसकी स्पर्धासे इन्द्रने उसके वर्षमें जब वृष्टि नहीं की, तब अपनी मायासे उसने वृष्टि कराई । नाभि अपने मनोनुकूल पुत्र प्राप्तिसे सन्तुष्ट होकर मायासे मोहित होकर उसका अत्यन्त प्रीतिसे प्यार-दुलार करता था । फिर उसपर पृथवीपालन सौंपकर खुद मेरुदेवीके साथ वदरीमें चला गया । वहाँ तपसे भगवान् नरनारायणकी उपासना करके उसने उन्हींकी गति प्राप्तकी इस तरह नाभिकी कीर्ति गाई जाती है जिसके यज्ञमें प्रसन्न होकर भगवान् अवतीर्ण हुए और पीछे पुत्र रूपसे अवतीर्ण हुए उस नाभिकी समता कौन करसकता है। फिर भगवान् ऋषभने लोक शिक्षणके लिए गुरुकुल पास आदि करके इन्द्रके द्वारा दीगई जयन्ती नामक कन्यासे विवाह किया । श्रुति-स्मृत्युक्त कर्मका आचरण करते हुए उन्होंने उसमें सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें भरत ज्येष्ठ था, जिसके नामसे यह वर्ष प्रसिद्ध है। कवि हरि आदि नव पुत्रोंने आत्मज्ञानी होकर संसारका त्याग कर दिया बाकी इक्यासी पुत्र यज्ञकरनेवाले श्रोत्रिय ब्राह्मण होगये । भगवान् ऋषभने साक्षात् भगवान् होनेपर भी लोक शिक्षणके लिए समस्त पुरुषार्थोंका साधन करते हुए प्रजाका नियमन किया । यद्यपि वे सर्वज्ञ थे, फिर भी ब्राह्मणोंके द्वारा दिखाये गये मार्गसे चलते थे। उन्होंने यथाविधि सांग सौ यज्ञ किए । वे जब वर्षका शासन करते थे, तब लोग उनके स्नेहके सिवा किसी दूसरे लोभनीय फलका किसी दूसरेसे कामना नहीं करते थे । एकबार घूमते हुए ऋषभ ब्रह्मावर्तमें महर्पियोंको सभामें गये । वहां सभीके सामने वे अपने श्रेष्ठ पुत्रोंको उपदेश देने लगे । चौथा अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऋषभदेवने कहा—पुत्रों, इस मृत्युलोकमें प्राणियोंका यह मनुष्यदेह विष्ठाभोजी वराह भी जिनको चाहते हैं ऐसे दुःखदायक विषयोंके लिये योग्य नहीं है, अतः तुमलोग इस तरहका उत्कृष्ट तप करो, जिससे आत्मा शुद्ध होकर अनन्त ब्रह्मसौख्य पायेगा ॥ १ ॥ महान् लोगोंकी सेवा मुक्तिका द्वार है और स्त्री या स्त्रैणोंका संग संसारका द्वार है। जो समचित्त हैं, शमयुक्त हैं, क्रोधरहित हैं, जिनका हृदय शुद्ध है, या जो परमात्मरूपी मुझमें सुहृद्भाव रखते हैं उदरंभर विषयासक्त लोगोंमें, घरमें, स्त्री, पुत्रादिमें, आसक्तिरहित हैं और देह निर्वाह-मात्र के लिये जो अर्थ रखते हैं, उनको महात्मा कहना चाहिए ॥ २, ३ ॥ जब मनुष्य इन्द्रियप्रीतिके लिये व्यस्त होता है, तब विवेकशून्य होकर पाप करता है। किन्तु जिस पापसे आत्माको यह मिथ्या होनेपर भी दुःखद देह मिलता है, उसको करना मैं कभी अच्छा नहीं समझता ॥ ४ ॥ जबतक जीव आत्मतत्त्वका विचार नहीं करता, तबतक अज्ञानसे देहादिके कारण आत्म-

ऋषभ उवाच ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये ॥ तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥ १ ॥ महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ॥ महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥ २ ॥ ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकेषु ॥ गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ ३ ॥ नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ॥ न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥ ४ ॥ पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ॥ यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥५॥ एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने ॥ प्रीतिर्न यावन्मयी वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥ ६ ॥ यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ॥ गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥ ७ ॥ पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ॥ अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहंममेति ॥ ८ ॥ यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ॥ तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥ ९ ॥

स्वरूप ढका रहता है। जबतक मनुष्य कर्म करता है, तबतक यह मन भी कर्मात्मक रहता है, जिसके कारण यह देह बन्धन है ॥ ५ ॥ जब आत्मा अविद्यासे आच्छादित रहता है तब मन मनुष्यको मर्ममें प्रवृत्त करता है। जबतक वासुदेवरूपी मुझमें प्रीति नहीं करता, तबतक देह बन्धनसे मुक्त नहीं होता ॥ ६ ॥ जब इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको विवेकज्ञानसे मिथ्या नहीं समझता, तब तक मैथुनसुख प्रधान घरको पाकर अनेक पीड़ाओंका अनुभव करता है ॥७॥ स्त्री-पुरुषके इस परस्पर सम्बन्धको परस्पर हृदयकी ग्रन्थि समझते हैं। इसीके कारण घर, क्षेत्र, पुत्र, आप्त, द्रव्य इत्यादिमें मैं और मेरा यह मोह होता है ॥ ८ ॥ जब कर्मसे बद्ध मनरूपी गाँठ ढीली हो जाती है तब गृह आदिसे निवृत्ति होकर मनुष्य संसारके कारणभूत अहंकारके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नष्ट हो जानेके कारण मुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥ हंसरूपी मुझमें भक्तिसे, तत्परतासे, विरक्तिसे शीतोष्णादि द्वन्द्वोंका सहन करनेसे, इसलोक और परलोकमें सभी जगह जीवको दुःख है ऐसा समझनेसे आत्मविचारसे, तपसे, काम्यकर्म त्यागसे ॥ १० ॥ मेरे प्रीत्यर्थ कर्म करनेसे, मेरी कथाके श्रवणसे, मेरे भक्तोंके संगमसे गुणकोर्तनसे, वैर त्यागसे, साम्यभावसे, उपशमसे, देह और धरमें 'अहं' 'मम' भावके त्यागसे ॥ ११ ॥ अध्यात्मशास्त्रके सम्यक अभ्याससे, एकान्तवास ठीक तरहसे प्राण, इन्द्रिय और मनको जोतनेसे, शुद्ध श्रद्धासे, ब्रह्मचर्यसे, सदा कर्तव्यकर्म न छोड़नेसे, वाणी संयमसे ॥ १२ ॥ सर्वत्र मेरा भाव रखनेकी निपुणतासे, अपरोक्षानुभव पर्यवसायी ज्ञानसे और समाधिसे धैर्य, प्रयत्न, विवेकयुक्त कुशल मनुष्य अहंकार नामक देवोपाधि छोड़ता है ॥ १३ ॥ इस तरह सावधान मनुष्य अविद्यासे प्राप्त कर्मवासनारूप हृदयकी गाँठके बन्धनको मेरे कहे गये इस योगके आचरणसे ठीक तोड़ सकता है और

हंसे गुरौ मयि भक्त्याऽनुवृत्या वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसेहानिवृत्या ॥ १० ॥ मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसङ्गाद्गुणकीर्तनान्मे ॥ निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥ ११ ॥ अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन सध्यक् सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसंप्रमादेन यमेन वाचम् ॥ १२ ॥ सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ॥ योगेन धृत्युद्यमसत्वयुक्तो लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥ १३ ॥ कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्धमविद्यक्षासादितमप्रमत्तः ॥ अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥ १४ ॥ पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ॥ इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ॥ कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥ १५ ॥ लोक स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ॥ अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतोरनन्तदुःखं च न वेद मूढः ॥ १६ ॥ कस्तं स्वयं दयभिज्ञो विपश्चिदविद्यायामन्तरे वर्तमानम् । दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथाऽन्धम् ॥ १७ ॥ गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ॥ दैवं न

उसीके अभ्याससे सभीसे मुक्त हो सकता है ॥ १४ ॥ राजा हो या गुरु हो, जिसको मेरे अनुग्रहकी और मेरे लोककी इच्छा है, उसको क्रोधरहित होकर इस विषयमें यज्ञ तथा कर्मविमूढ़ पुत्रों या शिष्योंको इसकी शिक्षा देनी चाहिए। उसको कर्ममें नियुक्त नहीं करना चाहिए। जो किसीको काम्यकर्मों में नियुक्तकर अन्धा बनाकर संसारगर्तमें गिराता है, उसको कौन-सा पुरुषार्थ मिल सकता है ॥ १५ ॥ जो मूर्ख मनुष्य खुदही विषयोंकी अत्यन्त अभिलाषासे अपने कल्याणकी तरफ अन्धा होकर नहीं देखता, आपसमें वैर करता है, क्षुद्र सुखके लिये अनन्त दुःखको नही देखता, ऐसे अविद्यामें पड़े, कुबुद्धि, दुर्मागपर अन्धे जैसा चलनेवाले मनुष्यको देखकर दया आनेके बाद खुद जानकर विद्वान् ऐसा कौन मनुष्य है, जो फिर उसीसे प्रवृत्त करेगा ॥ १६, १७ ॥ जो मृत्युसे ग्रस्त मनुष्यको मुक्त नहीं करता, वह न गुरु है, न सज्जन, न पिता, न माता, देवता और न पति है ॥ १८ ॥ मेरा यह मनुष्य शरीर अतर्क्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। जिसमें धर्म है ऐसा शुद्ध सत्त्व ही मेरा हृदय है, मैंने अधर्मको पीछे दूर छोड़ा है, अतः मुझे आर्यलोग ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥ १९ ॥ तुमलोग सबके सब शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो, अतः मत्सर छोड़कर सबसे बड़े सहोदर इस महान् भरतका अनुसरण करो। हे पुत्रो, यही प्रजाओंका पालन और शुश्रूषा है ॥ २० ॥ चेतनाचलनोंमें चेतन श्रेष्ठ हैं, उसमें भी वृक्षोंसे (स्थावरोंसे) जंगम श्रेष्ठ है, उसीमें भी पश्वादिश्रेष्ठ हैं, उसमें भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं, उनसे भूतप्रेतादि श्रेष्ठ, उनसे गन्धर्व, उनसे सिद्ध, उनमें किन्नरादि, उनसे असुर, उनसे इन्द्रादिदेव, उनसे दक्ष आदि ब्रह्मपुत्र, उनसे शिव, उससे ब्रह्मदेव और उससे ब्राह्मण जिसके पूज्य हैं ऐसा मैं श्रेष्ठ हूँ ॥२१, २२॥ ब्राह्मणोंके समान मैं किसी को नहीं देखता, फिर उनसे श्रेष्ठकी तो बातही क्या ? उन ब्राह्मणोंमें दिये गयेको जिसतरह मैं प्रीतिपूर्वक स्वीकार करता हूँ वैसा अग्निहोत्रमें हवन किये गयेको भी स्वीकार नहीं करता ॥ २३ ॥ इन ब्राह्मणोंने ही मेरी

तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ १८ ॥ इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ॥ पृष्ठे मे यदधर्म आरा- दतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥ १९ ॥ तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ॥ अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥ २० ॥ भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ॥ ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥२१॥ देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ॥ भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥ २२ ॥ न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ॥ यस्मन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाहमश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥ २३ ॥ धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्वं परमं पवित्रम् ॥ शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षानुभवश्च यत्र ॥ २४ ॥ मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ॥ येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥२५॥ सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ॥ संभावितव्यानि पदे पदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणं मे ॥ २६ ॥ मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ॥ विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥ २७ ॥ श्री शुक उवाच ॥ एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः

वेदरूप मूर्तिको धारण किया है। उनमें पवित्र सत्त्व, शम, दम, सत्य, अनुग्रह, तप, तितिक्षा और अपरोक्षज्ञान रहते हैं ॥ २४ ॥ स्वर्ग और मोक्षके स्वामी, सर्वश्रेष्ठ मुझसे भी वे कुछ नहीं चाहते, फिर उन निरिच्छ मेरे भक्तोंको दूसरे किसीसे क्या प्रयोजन ॥ २५ ॥ पुत्रो, स्थावर, तथा जंगम सभी भूतोंको मेरा अधिष्ठान समझकर पवित्र दृष्टिसे उनका क्षण क्षणमें सम्मान करो, वही मेरा पूजन है ॥ २६ ॥ मन, वाणी, शरीर, दृष्टि और अन्य इन्द्रियोंसे किये जानेवाले सभी कर्मोंको मुझको अर्पित करना ही उनका साक्षात्फल है, क्योंकि उनके विना इस महामोहात्मक मृत्युपाशसे मनुष्य नहीं छूट सकता ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहा—यद्यपि ऋषभके पुत्र शिक्षित ही थे, तथापि उनके निमित्तिसे महानुभाव, सभीके परमसुहृद्, ऋषभ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌ने लोकोंको शिक्षा देनेके लिये इस तरह उपदेश किया। फिर कर्मत्यागी संन्यासियोंके भक्ति ज्ञान, वैराग्यरूप परमहंस धर्मकी शिक्षा देनेके लिये अपने पुत्रोंमें श्रेष्ठ, भगवद्भक्तों का आदर करनेवाले परमभागवत भरत को पृथिवी पालनके लिए अभिषिक्त करके खुद घरहीमें यद्यपि उनका सब परिग्रह एक तरहसे परित्यक्त था, फिर भी उन्मत्तके समान दिगम्बर होकर, केश मुक्त करसे, आत्मामें अग्नि समारोपकर शरीरमात्रको लेकर ब्रह्मावर्तसे बाहर निकले ॥ २८ ॥ लोगोंमें रहनेपर भी जड़, अन्ध, गूंगे बहरे, पिशाच या उन्मत्तके समान अवधूत वेष धारणकर लोगोंके बोलनेपर भी मौन धारणकर स्तब्ध रहते थे ॥ २९ ॥ वे शहर, गाँव, आकर, किसानोंके गांव, पुष्पोद्यान, पहाड़ी गाँव शिविर, व्रज, ग्वालोंके स्थान, सौदागरोंके काफिले, वन और आश्रम आदिमें घूमते थे। जंगली हाथीके पास मक्खियाँ जिस तरह घिनघिनाती हैं, उसी तरह जगह-जगहपर उनको दुष्टलोग घेर लेते थे। कोई उनको डराते थे, कोई

परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥ २८ ॥ जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥ २९ ॥ तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥ ३० ॥ अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासोविगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमान कुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधू-

मारते थे, कोई उनपर मूत्र करते थे, कोई थूकते थे, कोई पत्थर, विष्ठा या धूल फेंकते थे, कोई अपानवायु छोड़ते थे और कोई उनको गालियाँ देते थे। किन्तु ऋषभको उसकी कुछ भी परवाह नहीं थी, क्योंकि यथार्थके समान दीखनेवाले इस मिथ्या देहपर उनकी 'अहं' और 'मम' भाव नहीं था। उसको परोक्ष और अपरोक्ष दोनों प्रकारका ज्ञान था। वे अपने माहात्म्यसे ही अवस्थित थे उनका मन अखण्ड था। वे अकेले इस पृथ्वीपर परिभ्रमण करते थे ॥ ३० ॥ उनका चरण और वक्षःस्थल अत्यन्त सुकुमार था, बाहु, कन्धा, गला तथा मुख इत्यादि अवयव पुष्ट ये तथा उनकी रचना सुन्दर थी। उनके स्वाभाविक सुन्दर हास्य और स्वभावके कारण मुखकी शोभा प्रशंसनीय थी। किंचिद् अरुण और शीतल विशाल नयन नवीन कमलके समान शोभते थे। उनके सुन्दर गाल, कान, कण्ठ, नासा और ईषद् स्मितसे युक्त मुखके विलाससे पुरस्त्रियोंके मनमें मदन का संचार होता था। घुंघुरा पिंगश और जटिल केशोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भार पीछेकी तरफ झूलता था। वे अपने अवधूत वेषधारी मलिन शरीरके कारण पिशाच-ग्रस्तसे दीखते थे ॥ ३१ ॥ जब उन्होंने देखा कि-लोग योगके विरुद्ध कर्ममें फँसे हुए हैं, इसकी प्रतिक्रियारूप कर्म आजकल निन्दित होगा यानी इसको दूर करनेका उपाय करना निन्दनीयकर्म समझा जायगा—तब उन्होंने अजगरव्रतका आश्रयण किया। वे सोते-सोतेही खाते थे, मूत्र करते थे, मलत्याग करते थे। वे विष्ठामें लोटते थे, जिससे उनके अवयव उसीसे लिप्त होते थे ॥ ३२ ॥ उनके सुगन्धित मलसे जो सुगन्धित हवा बहीती थी, उससे चारों ओरका चालीस कोस प्रदेश सुगन्धित होता था ॥ ३३ ॥ इसप्रकार गाय, मृग या कौवेके समान घूमते हुये, बैठते हुये उन्हींके समान खाना, पीना, मूत्र और मलोत्सर्ग इत्यादि कर्म करते थे

मलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥ ३१ ॥ यर्हि वाव स भगवाँल्लोकमिमंयोगस्याद्धा प्रतीपमिवाचचाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्मबीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥ ३२ ॥ तस्य ह यः पुरीषसुरभि सौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात्सुरभिं चकार ॥ ३३ ॥ एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकमृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥३४॥ इति नानायोगचार्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ५ ॥

॥ ३४ ॥ इसप्रकार मुक्तिके स्वामी सर्वदा महान् आनन्दका अनुभव करनेवाले भगवान् ऋषभ अनेक प्रकारके योगका आचरण करते थे। उनको अनायाससे ही आकाशगमन, मनोवेग, अन्तर्धान, परकाय प्रवेश और दूरदर्शन इत्यादि प्राप्त हुए थे, किन्तु हे राजन्, उन्होंने सर्वदा सिद्ध और पूर्ण होनेके कारण उन्हें अपने हृदयसे कभी नहीं स्वीकार किया। वे उनकी कुछ भी परवाह नहीं करते थे ॥ ३५ ॥

पाँचवें अध्यायका सार—ऋषभ भगवान्ने कहा—पुत्रो, यह मानवदेह क्षुद्र कामके लिए नहीं है। अतः तुमलोग उत्तम तप करो। सज्जनोंका संग मुक्तिका और स्त्री तथा स्त्रैणोंका संग संसारका द्वार है। जो समचित्त सर्वभूत सुहृत, अनासक्त हैं वे ही महात्मा हैं, अविद्यासे आच्छादित आत्मा कर्ममें प्रवृत्त होकर भगवान्में प्रीति नहीं करता और बचनमें फँसा रहता है मेरे भक्त स्वर्गापवर्गके स्वामी उससे भी कुछ नहीं चाहते, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या, पुत्रो, स्थावर-जंगम भूतोंमें मेरा अधिष्ठान समझकर उनका सम्मान करो। सभी कर्मोंको मुझे अर्पित करना सच्चा फल है क्यों कि उसके बिना मनुष्य इस मृत्युपाशसे नहीं छूट सकता। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह उपदेश देनेके बाद वे अपने ज्येष्ठ पुत्र परमभागवत भरतको राज्यभार सौंपकर संन्यास धर्मकी शिक्षा देनेके लिए शरीरमात्र धारण करके ब्रह्मावर्तके बाहर चले गये। वे जड़-उन्मत्त-पिशाचके समान रहते थे। वे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृथ्वीमें सब जगह घूमते थे, किसीके बोलनेपर भी नहीं बोलते थे। उनको लोग हँसते, गाली देते, मारते थूकते किन्तु उनको इसकी कुछ भी परहवाह नहीं थी, क्योंकि इस देहपर उनको अभिमान ही नहीं था। उनका ज्ञान पूर्ण और अखण्ड था। वे अवधूत वेषमलिन शरीरसे पिशाचग्रस्तसे दीखते थे। आखिर लोगोंको कर्ममें फँसे देखकर उन्होंने उसकी प्रतिक्रिया रूप अजगर व्रतका आचरण किया। वे सोते-सोते खाना, पीना, मलमूत्र विसर्जन इत्यादि करते। उनके मलसे जो सुगन्ध फैलती थी उसके कारण चारो ओरका प्रदेश सुगंधित होता था। वे जब इस तरह अनेक योगोंका आचरण करते थे, तो अणिमादि सभी सिद्धियाँ उनके पास अनायासेन सेवाके लिए उपस्थित होती थी, किन्तु सर्वदा पूर्ण ऋषभ भगवान्को उनकी क्या परवाह। पाँचवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ षष्टोऽध्यायः ❀

[ऋषभ भगवान्का अवधूत आचरण]

राजा परीक्षित्ने कहा—हे भगवन्, योगसे उद्दीपित ज्ञानाग्निसे जिनके कर्मबीज (वासना) दग्ध हो गये ऐसे आत्माराम मुनियोंके लिये अनायासप्राप्त यौगिक ऐश्वर्य क्लेशदायक तो नहीं हो सकते, फिर भगवान् ऋषभने उनका आदर क्यों नहीं किया ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—आपने ठीक कहा, किन्तु बुद्धिमान् लोग चंचल मनका विश्वास नही करते, जैसा दुष्ट

राजोवाच ॥ न नूनं भगव आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ सत्यमुक्तं किं त्विह वा एकेन मनसोऽद्धा विश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरात इव सङ्गच्छन्ते ॥ २ ॥ तथा चोक्तम् ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ॥ यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥ ३ । नित्यं ददाति कामस्य चिद्रं तमनु येऽरयः ॥ योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥ ४ ॥ कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ॥ कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु

किरात मृगके पकड़े जानेपर भी उसका विश्वास नहीं करता ॥ २ ॥ कहा भी है—चंचल मनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। मनपर विश्वास करनेके कारण भगवान् शंकरका भी मोहिनी दर्शनसे तप गलित हुआ ॥ ३ ॥ जिस तरह ज्यादा विश्वास करनेसे व्यभिचारिणी स्त्री जारको पहले आश्रय देती है और बादमें पतिको भी मार देती है उसी तरह मनको थोड़ा भी ढीला छोड़नेसे वह पहले कामको और बादमें बाकी क्रोधादि रिपुओं को स्थान देकर योगीका नाश करता है ॥ ४ ॥ जिनके कारण कर्मबन्ध है ऐसे काम, क्रोध, लोभ मद, शोक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मोह और भय इत्यादिका कौन बुद्धिमान् मनुष्य स्वीकारकर सकता है ॥५॥ इसी तरह लोक विलक्षण जड़के समान अवधूतके वेष, भाषा और आचरण आदिके कारण समस्त लोकपालोंके स्वामी ऋषभ भगवान्का प्रभाव लोगोंसे छिपा ही रहा। फिर उन्होंने योगियोंको देहत्याग विधिकी शिक्षा देनेके लिये अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छा की तथा आत्मामें ही अभेदसे शरीर देखते हुए सभी वृत्तियोंको शान्तकर शान्त हो गये ॥ ६ ॥ इस तरह ऋषभ भगवान्के देहाभिमानको पूर्णतया छोड़ देनेपर भी योगमायाकी वासनासे अभिमानाभाससे युक्त उनकी देह मुखमें पत्थर पकड़कर, मुक्तकेश और नग्न अवस्थामें यदृच्छासे कोङ्क, वेङ्क, कुटक आदि दक्षिण कर्णाटकके देशोंमें घूमते हुए कुटक पर्वतके उपवनमें उन्मत्तके समान विचरण करने लगे ॥७॥ वहाँपर हवाके वेगसे बाँसोंके घर्षणसे वनमें भयंकर दावानल प्रदीप्त हो गया, उसने वनके साथही उस देहको भी जला डाला ॥८॥ हे राजन्, उनका लोकविलक्षण चरित

तद् बुधः ॥ ५ ॥ अथैवमखिललोकपालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां सांपरायविधिमनुशिक्ष-
यन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥ ६ ॥ तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत
ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान् दक्षिणकर्नाटकान् देशान्यदृच्छयोपगतः कुटका-
चलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एवं विचचार ॥ ७ ॥ अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रादावानलस्तद्वन-
मालेलिहानः सह तेन ददाह ॥ ८ ॥ यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्ककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन
विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः संप्रवर्तयिष्यते ॥ ९ ॥ येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देव-
मायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजनिजेच्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलि-
नाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥ १० ॥ ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयान्धपरम्परयाश्वस्ता
स्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ॥ ११ ॥ अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥ तस्यानुगुणान् श्लोकान्गायन्ति ॥ १२ ॥ अहो

अपने देशवासियोंसे सुनकर कोङ्क, वेङ्क, कुटक देशका अर्हण नामका राजा कलिमें अधर्मका जब उत्कर्ष होगा तब भवितव्यसे मोहित होकर निर्भय अपने धर्मपथको छोड़कर अपनी बुद्धिसे अयुक्त पाखण्डी कुमार्गका (जैनधर्मका) प्रचार करेगा ॥ ९ ॥ उसके कारण कलियुगमें कुछ मनुष्याधम देवमायासे मोहित होकर अपने धर्ममें विहित शौच और चरित्रसे हीन होकर देवताकी अवज्ञारूप कुव्रतोंको अपनी इच्छासे ग्रहण करेंगे। वे लोग स्नान तथा शौचसे रहित होकर केशलुञ्छनादि करेंगे, अधर्म बहुत कलियुगसे उनकी बुद्धि मारी जायगी और ब्रह्मा, ब्राह्मण तथा यज्ञपुरुषके दूषक वे हो जायँगे ॥ १० ॥ वे लोग मूलरहित अर्वाचीन स्वेच्छा प्रवृत्तिमें विश्वास करके खुदही अन्धतममें गिरेंगे ॥ ११ ॥ भगवान्का यह अवतार रजोगुणसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्याप्त लोगोंके लिये मोक्षमार्गके शिक्षणके लिये है। उसके अनुरूप कीर्तिका इस तरह गान करते हैं ॥ १२ ॥ अहो ! सप्तसमुद्रयुक्त और सप्तद्वीपवती पृथिवीमें सभी वर्षोंमें यह भारतवर्ष श्रेष्ठ पुण्यवान् है, क्योंकि यहाँके लोग मुरदैत्यके नाशक भगवान्के अवतारोंके कल्याणकर कर्मोंका गान करते हैं ॥ १३ ॥ सचमुच प्रियव्रतका वंश यशसे उज्वल हुआ, उसके उसमें आदि पुरुष भगवान्ने अवतार लेकर मोक्षधर्मका आचरण किया ॥ १४ ॥ कौन ऐसा दूसरा योगी है, जो जन्मरहित भगवान् ऋषभकी दिशाका मनमे भी अनुसरण प्रयत्न करनेपर भी कर सकता है ? क्यों कि दूसरे योगी, उन्होंने जिन सिद्धियों को असत्य समझकर तिरस्कृतकर दिया, उसको चाहते हैं ॥ १५ ॥ इसप्रकार समस्त वेद, लोक, देव, ब्राह्मण, गौओंका परमगुरु भगवान् ऋषभका विशुद्ध चरित्र मैंने आपसे कहा। पुरुषोंके समस्त पापोंके नाशक परम मंगलकारक इस चरित्रका जो श्रद्धासे श्रवण या कथन करते हैं वे दोनों अपनी बुद्धिको

भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ॥ गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥ १३ अहो नु वंशो यशसावदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ॥ कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥ १४ ॥ को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ॥ यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥ १५ ॥ इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणम् परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥ १६ ॥ यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १७ राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः ॥ अस्त्वेवमङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥ १८ ॥ नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ॥ लोकस्य यः करुणयाऽभयमात्मलोकमाख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० पञ्च० ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भगवान्में स्थिरकर भगवान्के एकान्तभक्त होते हैं ॥ १६ ॥ इसी भगवान्के चरित्रमें ज्ञानीलोग अनेक दुःखयुक्त संसारसे तप्त होकर सर्वदा स्नान करते हैं और उसीसे परमसुखका अनुभवकर स्वयं प्राप्त परमपुरुषार्थ मोक्षको भी नहीं चाहते, क्योंकि वे सब पुरुषार्थोंको भगवान्का रूपही समझते हैं, इसलिये ही उनकी सब इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं ॥ १७ ॥ हे राजन्, ये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी आपलोगों तथा यादवोंके पालक, उपदेशक, कुलपति, उपास्य और मित्र रह चुके हैं तथा अधिक क्या कहें, कभी आपलोगोंके सेवकतक बन चुके हैं। यह सब रहने दीजिये, उस भगवान् मुकुन्दका ही भजन कीजिये। वह मुक्ति तो भजन करनेवालेको सहजमें देते हैं, किन्तु एकान्त भक्ति नहीं देते ॥ १८ ॥ देहादिके लिये मनोरथोंके कारण परमकल्याणमें जिनकी बुद्धि सुप्त है ऐसे लोगोंको निर्भय निजस्वरूपको बतानेवाले, नित्य आत्मानन्दके अनुभवसे तृष्णारहित हुए उस भगवान् ऋषभको नमस्कार करते हैं ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छठे अध्यायका सार—राजा परीक्षित्‌ने कहा मुने, ज्ञानाग्निसे जिनकी वासनाएँ दग्ध हो गई हैं उनका अनायासेन प्राप्त योगैश्वर्य कुछ नहीं बिगाड़ सकते, फिर ऋषभने उनका आदर क्यों नहीं किया ? श्रीशुकदेवजीने कहा—आपने ठीक कहा, किन्तु बुद्धिमान् लोग चञ्चल मनका विश्वास नहीं करते। मनपर विश्वास करनेके कारण भगवान् शंकर मोहनी-दर्शनसे च्युत हुए। जैसे ज्यादा विश्वास करनेपर व्याभिचारिणी स्त्री जारको आश्रय देकर पतिका नाश करती है उसी तरह विश्वस्त मनभी योगी का नाश करती है। जिनके कारण कर्मबंध हैं ऐसे काम-क्रोधादिको कौन स्वीकार करेगा। ऋषभ भगवान्‌के विचित्र आचरणसे उनका प्रभाव लोगोंसे छिपा ही रहा। फिर वे योगियोंको देहत्याग विधिकी शिक्षा देनेके लिये सभी वृत्तियोंको शान्ति करके शान्त हो गए। इस प्रकार पूर्णतया देहाभिमान छोड़नेपर योगमायाकी वासनासे फिरनेवाली उनकी देह मुहमें पत्थर पकड़कर दक्षिण कर्णाटकके देशोंमें कुटक पर्ततके उपवनमें उन्मत्तके समान घूमने लगी। उस वनमें दावानल प्रदीप्त हो गया, उसके कारण वह देह भी जल गया। ऋषभका लोक विलक्षण चरित्र सुनकर उसी देशका अर्हन् नामक राजा कलियुगमें जब अधर्मका उत्कर्ष होगा, तब अपने मार्गको छोड़कर अपनी बुद्धिसे अयुक्त पाषण्डी दुर्मार्गको चलायेगा। उसके कारण कुछ अधर्ममनुष्य अपने धर्ममें विहित शौचादि छोड़कर देवताओंके अवज्ञारूप कुव्रतोंको अपनी इच्छासे ग्रहण करेंगे। केशलुञ्छन उनकी धर्म होगा। वे ब्रह्म और ब्राह्मणके दूषक बनेंगे। वे लोग निर्मूल प्रवृत्तिमें विश्वासकर अन्धतममें गिरेंगे। इस तरह यह भी मोक्षमार्गके ही क्षणके लिए भगवान्‌का अवतार हुआ। उनके गुणोंका लोग इस तरह गायन करते हैं—पृथ्वीमें यह भारतवर्ष अति पुण्यवान् है, क्यों कि यहांके लोग भगवान्‌के अवतारोंका गान करते हैं। प्रियव्रत का वंश धन्य हुआ, उसमें भगवान्‌ने अवतार लेकर मोक्ष धर्मका उपदेश किया। कौन ऐसा योगी है, जो ऋषभकी दिशाको भी मनमें ला सकता है, जिसने सिद्धियोंको तुच्छ समझा। राजन्, इस प्रकार भगवान् ऋषभ का चरित्र आपसे कहा। इसका श्रवण मनन करनेके बाद भगवान्‌में भक्ति होती है। ऐसे भगवान्‌के चरित्रके जपमें स्नानकर भक्त लोक मुक्ति भी नहीं चाहते। राजन् भगवान् आपके यहां सेवक तक बन चुके हैं। आप भी उस भगवान्‌का भजन कीजिये। वह मुक्ति तो भजन करने वालेको देते ही हैं, किन्तु एकान्त भक्ति आसानीसे नहीं देते। लोगोंको मोक्ष मार्ग बनाने वाले भी कृष्ण, आत्मानन्दमग्न ऋषभ भगवान्‌को नमस्कार है ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ सप्तमोऽध्यायः ❋

[भरतका चरित्र]

श्रीशुदेवजीने कहा—परमभागवत भरतको जब भगवान्‌ने पृथिवी पालनमें नियुक्त किया, तब उनकी आज्ञाके अनुसार उसने विश्वरूपकी पुत्री पञ्चजनीसे विवाह किया ॥१॥ अहंकार जैसे सूक्ष्मभूतोंको उत्पन्न करता है उसी तरह उसने उस पत्नीमें सब प्रकारसे अपने अनुरूप पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २ ॥ सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण औरधूमूकेतु ये उनके नाम थे। यह अजनाभ नामका वर्ष भरतसे ही भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥३॥ बहुज्ञ उस राजाने अपने पितृ-पितामहके समान अपने धर्मसे स्वधर्मका आचरण करनेवाले प्रजाका पालन किया ॥ ४॥ उसने श्रद्धासे अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु, सोम इत्यादि प्रकृति-विकृति यागोंसे भगवान् यज्ञपुरुषका वेदोक्तविधिसे पूजन किया ॥ ५ ॥ इसतरह अनेक

श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥ १ ॥ तस्यामु ह वा आत्मजान्कार्त्स्न्येनानुरूपानात्मनः पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥ २ ॥ सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति ॥ अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥ ३॥ स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥ ४॥ ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥ ५ ॥ संप्रचरत्सु ननायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवास्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥६॥ एवं कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण

अंगानुष्ठानयुक्त नाना यागोंमें उनका फल जो धर्मनामक अपूर्व है वह परब्रह्म यज्ञपुरुष साक्षात्कर्ता श्रेष्ठ देवता वासुदेवही हैं ऐसा भरत समझता था, क्योंकि अनेक देवतालिंगक जो सभी मन्त्र हैं उनका अर्थ नियामक वही हैं और अन्तर्यामी होनेके कारण प्रेरक साक्षात् कर्ता भी वही हैं। उसके इस तरहके कर्म कौशल्यसे रागादि दोष नष्ट हो गये थे और वह यजमान जब अध्वर्यु हविर्द्रव्य हाथमें लेते थे तब उस भागको लेनेवाले देवताओंको भगवान्‌के अवयवरूपसे ही ध्यान करता था ॥ ६ ॥ इस तरहके विशुद्धकर्मसे उसका अन्तःकरण भी विशुद्ध हो गया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

था। उसके मनमें परब्रह्म, महापुरुषाकारयुक्त, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, नारदादि निज भक्तजन हृदयवासी, पुरुषरूपसे शोभायमान, भगवान् हृत्कमल मध्य निवासी वासुदेवमें दिन-दिन बढ़ते वेगसे उत्कट भक्ति उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ इस तरह एक करोड़ वर्षतक राज्यभोग करके फिर उससे संन्यास लेनेका निश्चयकर इतने दिनसे भोग किये गये पितृ-पितामहसे प्राप्त राज्यको हकके अनुसार पुत्रोंमें बाँटकर सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके आकर अपने घरसे निकलकर वह पुलहाश्रममें चला गया ॥ ८ ॥ जिस आश्रममें भगवान् हरि अभी भी वहाँपर रहनेवाले अपने भक्तोंमें वात्सल्य रखनेके कारण उनके अभीष्टरूपसे सन्निहित रहते हैं ॥ ९ ॥ वहाँपर जिसमें उभयतः नाभियुक्त चक्रवाले पत्थर (शालग्राम) हैं ऐसी नदियोंमें श्रेष्ठ चक्रनदी (गण्डकी) आश्रम स्थानोंको सब तरहसे पवित्र करती हैं ॥ १० ॥ उस पुलहाश्रमके उपवनमें अकेले ही वह शुद्ध हृदयसे विषयाभिलाष छोड़कर, शमदमादि सम्पन्न होकर

विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाऽजायत ॥ ७ ॥ एवं वर्षायुतसहस्रपर्यन्तावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसंपन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥८॥ यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन सन्निधाप्यत इच्छारूपेण ॥ ९ ॥ यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥ १० ॥ तस्मिन्वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥ ११ ॥ तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥ १२ ॥ इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच ॥१३॥

नाना तरहके फूल, पल्लव, तुलसी, जलसे तथा कन्द, मूल, फलोपहारोंसे भगवान्की आराधना करता था। उसीसे उसको परमशान्ति मिलती थी ॥ ११ ॥ वह जब इस तरहसे निरन्तर भगवान्की पूजा करता था, तब बढ़ते हुए अनुराग-भारके कारण उसका हृदय शिथिल हो जाता था, हर्षवेगसे शरीरपर रोमांच खड़े हो जाते थे, उत्कण्ठाके कारण झरनेवाले प्रेमाश्रुसे आँखें डबडबा जाती थीं और अपने स्वामी भगवान्के अरुण चरणकमलके ध्यानसे समृद्ध भक्तियोगसे सर्वत्र व्याप्त परमानन्दसे युक्त गम्भीर हृदयसरोवरमें बुद्धि डूबनेके कारण वह अपनी की जानेवाली उस पूजाको भी भूल जाता था ॥ १२ ॥ इस तरह भगवद्व्रत धारण करके, कृष्णाजिन पहनकर, त्रिकालस्नानसे गीले पिंगश घुंघराले जटाकलापसे चमकते हुए उदीयमान सूर्यमण्डलमें सूर्यऋचासे हिरण्मयपुरुष भगवान्की स्तुति करते भरत ऐसा कहता था ॥ १३ ॥ प्रकृतिके परे शुद्ध सत्त्वात्मक भगवान् सूर्यदेवका तेज मनसे ही इस विश्वकी सृष्टि करके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्मका फल देता है, फिर उस विश्वमें अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके चाहनेवाले जीवको चिच्छक्तिसे रक्षण करता है। ऐसे बुद्धिको गति देनेवाले तेजकी हम शरण जाते हैं ॥ १४ ॥

परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥ सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥ १४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतचरित्रे भगवत्परिचर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सातवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—पृथ्वी पालनमें नियुक्त भरतने विश्वरूपकी पुत्री पञ्चजनीसे विवाह किया। उस पत्नीमें उसने पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया। भरतसे ही यह अजनाभ नामक वर्ष भारत नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने धर्मसे प्रजाका पालन किया। उसने वेदोक्त विधिसे अनेक यज्ञ किए। वह सभी कर्म भगवान्को ही अर्पित करता था। इस कर्मकौशलसे उसके रागादिदोष नष्ट हुए। व. यज्ञमें देवताओंको भगवान्के अवयवरूपसे ध्यान करता था। इस कर्मसे उसका अन्तकरण शुद्ध हो गया। उसके मनमें भगवान् वासुदेवमें दिन-दिन भक्ति बढ़ती गई। उसने अनेक वर्ष राज्योपभोग लेकर फिर पुत्रोंमें राज्य बाँठकर घर छोड़कर पुलहाश्रममें गमन किया। वहाँ भगवान् अभी भी भक्तोंके अभीष्ट रूपसे सन्निहित रहते हैं। वहाँ चक्रांकितयुक्त पत्थरवाली गण्डकी नदी आश्रमोंको पवित्र करती है। उस आश्रममें भरत अकेले विषयाभिलाष रहित होकर तथा शम-दम आदिसे सम्पन्न होकर पत्र–पुष्प–जल इत्यादिसे भगवान्की आराधना करने लगा। उसीमें उसको सुख मिलता था। भगवान्की आराधना करते समय अनुरागसे उसका हृदय शिथिल हो जाता था, वह उदीयमान भगवान्सूर्यकी आराधना करता था और इसप्रकार स्तुति करता था प्रकृतिके परे जो भगवान् सूर्यदेवका तेज है वह इस विश्वकी सृष्टि करता है तथा कर्मफल देता है। विश्वमें अन्तर्यामीरूपसे प्रवेशकर जीवका चिच्छक्तिसे रक्षण करता है। ऐसे बुद्धिको गति देने वाले तेजकी हम शरण जाते हैं। सातवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ अष्टमोऽध्यायः ❀

[अन्तमें भरतकी मृगमें आसक्ति और मृगजन्म]

श्रीशुकदेवजीने कहा—एक बार भरत उस महानदीमें स्नान करके नित्य आवश्यककर्म करके प्रणवका जप करते हुए तीन मुहूर्ततक जलमें ही स्थित रहे ॥१॥❀ वहाँ उस

श्रीशुक उवाच ॥ ❀ एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश ॥ १ ॥ तत्र तदा

❀ दृष्टान्त—राजा भरत ने सारी दुनिया राज पाट अर्थात् संसार के सब सुखों को त्याग कर वन चले गये। फिर भी उन्हें गृहस्थों के धर्म-प्रेम आदि क्रियाओं में क्यों कर आसक्ति होगये। उत्तर-उनका मरण इसकी यादगारीमें ही होगया। इसीलिए पण्डित ज्ञानियों का उपदेश है कि—अन्त में श्रीभगवान् में ही मन लगाना चाहिये। इसमें प्रमाण श्री कृष्ण चन्द्र जी की भगवद्गीता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समय हे राजन्, एक हरिणी प्याससे जलाशयके पासमें आई ॥ २ ॥ वह जब जल पी रही थी, तभी नजदीकमें ही नाद करनेवाले सिंहकी लोकभयङ्कर गर्जना सुनाई दी ॥ ३ ॥ उसको सुनकर पहलेसे ही वह स्वभावतः व्याकुल चकित दृष्टिसे देखनेवाली वह हरिणी सिंहके भयसे और भी हृदयमें व्यग्र हो उठी । उसकी दृष्टि भ्रान्त हो गई । उसकी प्यास अभी शान्त नहीं हुई थी कि भयसे वह जल्दी ऊपर कूद पड़ी ॥४॥ उछलते समय ज्यादे डरके कारण गर्भवती उसके योनिसे निकला हुआ गर्भ प्रवाहमें गिर पड़ा ॥५॥ इसतरह गर्भपात, उछलना तथा डर इनसे पीड़ित वह हरिणी अपने झुण्डसे छूटकर किसी गिरिगुहामें जाकर गिर गई और वहीं मर गई ॥६॥ प्रवाहमें पड़े उस असहाय हिरण बच्चेको देखकर भरतके मनमें बन्धुके समान दया उत्पन्न हो गई, जिससे कि वह मातृविहीन बच्चेको अपने आश्रममें ले गये ॥ ७ ॥ इस हरिणके बच्चेमें ममत्व उत्पन्न होनेके कारण रोज उसीके पोषण, पालन लालन, सुलहाना इत्यादिके

राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥ २ ॥ तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयङ्कर उदपतत् ॥ ३ ॥ तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥ ४ ॥ तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥ ५ ॥ तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्याञ्चिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार ॥ ६ ॥ तं त्वेणकुणक कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥७॥ तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमाना किल सर्व एवोदवसन् ॥८॥ अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कञ्चन वेद मय्यतिविस्रब्धश्चात एव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ॥ ९ ॥ नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतराननुपेक्षन्ते ॥ १० ॥ इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थाना

कारण तथा उसीमें अधिक आसक्ति हो जाने से भरतके यम, नियम, भगवत्पूजा इत्यादि धीरे-धीरे छूटते-छूटते कुछ इने-गिने दिनमें ही सभी बन्द हो गये ॥ ८ ॥ अहो ! यह हरिणका बच्चा दीन है भगवान्के रथके चक्रके वेगसे (कालगतिसे) अपने झुण्डके सुहृद् और बन्धुओंसे छुटाकर मेरी शरण में आया । यह मुझे ही माता, पिता, भाई, ज्ञाति यूथबन्धु समझता है, दूसरे किसीको नहीं जानता । मेरे ऊपर यह अत्यन्त विश्वस्त, है अतः शरणागतकी उपेक्षाका दोष जाननेवाले मुझे मुझपर निर्भर रहनेवाले इस बच्चेका लालन, पालन, पोषण, दुलार आदि असूयारहित होकर करना चाहिए ॥ ९ ॥ इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि आर्य उपशमयुक्त सज्जनलोग दीनोंके बन्धु होते हैं, और उसके लिये अपने महान् स्वार्थोंको भी छोड़

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देते हैं॥ १० ॥ इसप्रकार भरतकी उसमें आसक्ति बढ़ती गई और उसके साथही बैठने, उठने, खाने, पीने तथा सोनेसे उसी बच्चेमें उसका हृदय स्नेहसे आबद्ध हो गया ॥ ११ ॥ जब कुश, समिधा, पत्ता, फल, मूल, जलआदि लनेके लिये उस बच्चेको साथ लेकर निकलते थे, तब कुत्तों और भेड़ियोंसे डरते हुए वनमें प्रवेश करते थे ॥ १२ ॥ रास्तेमें आसक्तिके कारण प्रेमभरसे मुग्ध होकर वह उस बच्चेको कभी गोदमें कभी कन्धेपर लेते हुए कभी छातीसे लगाते हुए उसके प्यार-दुलारसे परम आनन्दित होते थे ॥ १३ ॥ देवपूजादि कर्मों के बीचमें उठ-उठकर इसे देखते थे तथा उस समय वह वर्षपति उस बच्चेका कल्याण चाहते थे और कहते थे—वत्स, तुम्हारा सब तरहसे भला हो ॥ १४ ॥ एक बार जब उन्होंने हरिणका बच्चा नहीं दीखा, तब द्रव्य नष्ट हुए कृपणके समान उनका मन उद्विग्न हो गया। हरिणके बच्चेके विरहसे विह्वलहोकर उनका हृदय सन्तप्त हो गया. अत्यन्त मोहसे अभिभूत होकर

शनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥ ११ ॥ कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥ १२ ॥ पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥१३॥ क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ॥ १४ ॥ अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसन्तापस्तमेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ॥१५॥ अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुतोऽहो ममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवागमिष्यति ॥ १६ ॥ अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥ १७॥ अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥ १८ ॥ निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥ १९॥ अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसन्तोषं स्वानामपनुदन् ॥ २० ॥ क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनामीलितदृशं प्रेमसं·

अत्यन्त उत्कण्ठा करुणासे वह ऐसा कहने लगे ॥ १५ ॥ वह मृत हरिणीका दीन बालक शठ और किरातके समान क्रूरबुद्धि, अभागे, अनार्य मेरे ऊपर विश्वास करके मेरी दुष्टताका विचार न करके सज्जनके समान वापस आयगा न ? ॥१६॥ उस दैवसे रक्षित बच्चेको इस आश्रमके पास क्षेमसे घास खाते हुए फिर मैं देखूँगा न ? ॥ १७॥ अकेले या झुण्डमें घूमने वाले कुत्ते या भेड़िया तो उसको नहीं खायेंगे ? ॥ १८ ॥ समस्त जगत्का क्षेम और उदय जिनके कारण होता है ऐसे वेदमय भगवान् सूर्य अस्त हो रहे हैं, अभी मृगीका वह धरोहर बालक वापस नी आया ॥ १९ ॥ वह हरिण राजकुमार अत्यन्त दर्शनीय अपने हरिणबालक लीलासे अपने लोगोंका दुःख दूर करनेवाला फिरसे आकर अभागे मुझको क्या आनन्दित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करेगा ? ॥ २० ॥ मिथ्या समाधिसे जब मैं आँख मूँद लेता हूँ तब यह धीरे धीरे आकर क्रीड़ामें प्रेमयुक्त कोपसे जलबिन्दुके समान मृदु सींगके अग्र से मुझे खुजलाता था ॥ २१ ॥ जिसपर हविर्द्रव्य सजाया रहता था ऐसे दर्भोंको दन्तसे खींचकर जब दूषित करता था और तब उसको डाँटता था तब डरसे अपनी क्रीडा छोड़कर ऋषिकुमारके समान सावधानीसे क्रियाकलाप देखता था ॥ २२ ॥ अरे, इस भाग्यवती पृथिवीने क्या सुकृत किया है कि यह पृथिवी उस विनीत हरिणके छोटे-छोटे सुन्दर पवित्रतम खुरके चिह्नोंकी पंक्तिसे मृगरूपी सर्वस्व गँवारा हुए कृपण मुझ आतुरको मानों मृगरूपी धनका मार्ग दिखा रही यह भूमि उन उन चिह्नोंसे चारों ओर अलंकृत हुए अपने शरीरको भी स्वर्गापवर्ग चाहनेवाले ब्राह्मणोंके लिये यज्ञभूमि बना रही है क्या ? ॥ २३ ॥ दीन-वत्सल भगवान् चन्द्र सिंहके डरसे जिसकी माता मर गई है ऐसे अपने आश्रमसे दूर गये मृग बालकका करुणासे रक्षण करेंगे ॥ २४ ॥ क्या,

रम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥ २१ ॥ आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥ २२ ॥ किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्यानया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभग-शिवतमाखरखुरपदपङ्क्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ॥ २३ ॥ अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परि-पाति ॥ २४ ॥ किं वात्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुरागगुणितनिजवदन-सलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयीति च ॥ २५ ॥ एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक आसङ्गः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभि-जातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥ २६ ॥ तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना

पुत्रके विरहतापरूपी दावानलकी ज्वालासे जिसकी हृदयरूपी स्थलनलिनी दग्ध हो रही है ऐसे मृगबालकका अनुसरण करनेवाले मुझको शीतल, शान्त और अनुरागयुक्त लगातार टपक रही अपने मुख जलरूपी अमृतमय किरणोंसे शान्त करेंगे ॥ २५ ॥ इस तरह मनोरथोंकी कल्पनासे मृगबालकरूपी प्रारब्धकर्मसे ही भगवान् बालकरूपी योगमार्गसे वे योगी भ्रष्ट हो गये, नहीं तो मोक्षमार्गमें विघ्नकारक समझकर जिन्होने पहले अपने औरस पुत्रोंको भी छोड़ दिया, वे एक विजातीय ऐसे मृगबालकमें कैसे आसक्त हो सकते हैं। इस प्रकार योगमार्गसे भ्रष्ट मृगबालकके पोषणपालन, तोषण, लालनोंकी आसक्तिसे आत्मचिन्ता न कर रहे उन राजर्षिका करालकाल अतिवेगसे आया जैसे कि चूहेके बिलमें साँप आता है ॥ २६ ॥ उस समय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी वे पासमें बैठे उस बच्चेके विषयमे ही विचार करते थे, उसी को देखते थे और आखिर उसीमें मन लगाकर उन्होंने देह तथा उस मृगको भी छोड़ दिया ॥ किन्तु मरनेपर भी उनकी उस जन्मकी स्मृति और लोगोंके समान नष्ट नहीं हुई। मरनेके बाद उनको मृगशरीर मिला ॥ २७ ॥ उस जन्ममें भी भगवदाराधनकी सामर्थ्य अपने मृगत्वका कारण जानकर मनमें अत्यन्त खेद करते हुए वह यों कहने लगे ॥ २८ ॥ अहो, बड़े कष्टकी बात है कि आत्मज्ञानी पुरुषोंके पथसे मैं भ्रष्ट हो गया, क्योंकि मैंने सम्पूर्ण संगों का त्याग किया था। एकान्तमें निवास करने की इच्छासे मैंने पवित्र जंगलकी शरण ली थी, मैंने आत्मज्ञान प्राप्त किया था, भगवान्के बार-बार श्रवण, मनन, संकीर्तन और स्मरणको आसक्तिसे जिसके सब पहर समाप्त हुए हैं ऐसे कालके द्वारा मेरा मन सब भूतोंकी आत्मा भगवान् वासुदेवमें अच्छी तरह स्थित और निश्चल भी हो गया था, लेकिन फिर उसी मुझ अधम मूर्खका मन भगवत्स्वरूपको

विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥ २७ ॥ तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥ २८ ॥ अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसङ्कीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुस्राव ॥ २९ ॥ इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीं मातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालञ्जरात्प्रत्याजगाम ॥ ३० ॥ तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधावर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कं० भरतचरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

छोड़कर एक मृगके बच्चेमें आसक्त हो गया ॥ २९ ॥ हे राजन्, इस तरह निर्वेदको प्राप्त हुआ वह हरिण अपनी माँ हरिणीको छोड़कर फिर उसी उपशील मुनिगणोंके प्रिय भगवान्के निवासस्थान तथा शालके वृक्षोंसे समन्वित ग्रामरूप उस पुलस्त्य पुलह ऋषिके आश्रममें कालञ्जरनामक पर्वतसे (जहाँ पर वह पैदा हुआ था वहाँसे) लौट आया ॥ १० ॥ वहाँ भी वह हरिण अपनी मृत्युकी प्रतीक्षा करते हुए सङ्गसे बिलकुल उद्विग्न होकर अकेले घूमता था, सूखे पत्तों, तृणों और लताओंके भक्षणसे अपना जीवन चला रहा था तथा इसकी प्रतीक्षाकर रहा था कि मेरे मृगजन्मकी प्राप्तिके कारणकी समाप्ति कब होगी। तदनन्तर अपना मृत्युकाल उपस्थित जानकर गण्डकी नदीमें स्नान किये हुए अपने शरीरका एक दिन त्याग कर दिया ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—एक बार भरत उस नदीमें स्नान करके कुछ समय तक प्रणव जप करते हुए जलमें ही स्थित रहे। तभी एक हरिणी जल पीनेके लिए वहाँ आई। उतनेमें सिंहकी गर्जना हुई। उसे सुनकर घबड़ाकर वह ऊपर उछलनेसे और डरनेसे उसका गर्भ गिर गया। इन सब घटनाओंसे घबड़ाकर वह हरिणी किसी पर्वतकी गुहामें जाकर गिर गई और मर गई। प्रवाहमें पड़े उस बच्चेको देखकर भरतको दया आई वह उसको आश्रममें ले गये। उस बच्चे के पालन पोषणमें लगनेके कारण भरतकी भगवत्पूजा और यम नियम आदि कम होते होते लुप्त हो गए। वह मनमें कहते थे यह दीन बचा दैवसे मेरे पास आया है। यह अनाथ है। मुझपर विश्वस्त होकर मुझे ही सब कुछ समझता है। अतः इसका योग्य पालन करना यह मेरा कर्तव्य है। सचमुच सज्जन लोग दीनबन्धु होते हैं वे दूसरेके लिए अपने महान् स्वार्थोंको भी छोड़ देते हैं। धीरे धीरे उस बच्चेमें भरतकी आसक्ति बढ़ती ही गई और बैठनेमें उनका हृदय उसमें स्नेहसे आबद्ध हो गया। पूजादि करते समय भी उनका ध्यान उस बच्चेमेंही रहता था और बीच बीचमें उठकर उसको देखते और उसका भला मनाते थे एक बार वह हरिण का बचा न दीखनेके कारण उनका मन उद्विग्न हो गया। वे उसके विरहसे विह्वल हो उठे। अत्यन्त उत्कण्ठासे कहने लगे—वह दीन बचा क्रूर बुद्धि अभागे मेरे पर विश्वास कर मेरी दुष्टता को न सोचकर फिर वापस आगया न? कब मैं उसे आश्रमके पास घास खाते फिर देखूँगा? कोई जङ्गली जानवर तो उसे नहीं खायेगा? सूर्यास्त हो रहा है, किन्तु अभी तक वह वापस नहीं आये। क्या वह फिरसे आकर अपने मुग्ध लीलाओंसे मुझे आनन्दित करेगा? इस पृथ्वीने क्या पुण्य किया कि उस बच्चेके पदचिन्होंसे यह मुझे उसका रास्ता दिखा रहा है। क्या दीन वत्सल चन्द्रमा उसकी रक्षा करेंगे। क्या मेरे विरह तापको अपने शीतल किरणसे शान्त करेंगे। इस तरह मनोरथोंसे उस मृगबालक रूप प्रारब्ध कर्मसे वे योगमार्गसे भ्रष्ट हो गये। नहीं तो अपने औरस पुत्र और राज्यको छोड़ने वालेको आसक्ति कैसे उत्पन्न हो सकती है। हे राजन्, योगमार्गभ्रष्ट राजर्षिका काल उसीके लालन-पालनमें शीघ्र बीतने लगा। काल समीप आनेपर भी वे मृगबालकके विषयमें ही विचार करते थे। आखिर उसीमें मन लगाकर उन्होंने देहको छोड़ा। मरनेपर उनको मृग शरीर मिला। उस देहमें भी उसको पूर्वजन्मकी स्मृति बनी थी। वे अपने मृगत्वका कारण जानकर मनमें अत्यन्त खेद करते हुए यों कहने लगे—अहो, अत्यन्त दुःखकी बात है कि आत्मज्ञानियोंके पथसे मैं भ्रष्ट हो गया मैंने सम्पूर्ण सङ्गोंका त्याग किया था, एकान्त वासकी इच्छासे जङ्गलकी शरण ली थी। भगवान् वासुदेवमें मेरी बुद्धि जम गई थी। हे राजन्, यों निर्वेदको प्राप्त वह मृग अपनी माँको छोड़कर फिर उसी पुलस्त्यपुलहके आश्रम पर आ गया। वहाँ वह अपनी मृत्युकी बाट जोहते हुए अकेले घूमता था। अन्तमें अपना मृत्युकाल आया जानकर गण्डकी नदी में स्नान किए हुए शरीरका त्याग कर दिया। आठवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❁ अथ नवमोऽध्यायः ❁

❁ भरतका ब्राह्मण जन्म और जड़वत् वृत्ति ❁

श्रीशुकदेवजीने कहा—उसके बाद अंगिरसगोत्रोत्पन्नोंमें श्रेष्ठ शम, दम, तप, स्वाध्याय, अध्ययन, त्याग, सन्तोष, तितिक्षा, विनय, विद्या, अनसूया, आत्मज्ञान, आनन्दसे युक्त किसी ब्राह्मणको ज्येष्ठ पत्नीमें अपने अनुरूप श्रुत, आचार, औदार्यादि गुणयुक्त नव पुत्र हुए और कनिष्ठ पत्नीमें यमल पुत्र-पुत्री पैदा हुए ॥१॥ उसमें जो पुत्र था वही राजर्षि श्रेष्ठ भरत मृगशरीर छोड़कर ब्राह्मण जन्ममें पैदा हुए थे ॥ २ ॥ उस जन्ममें भी स्वजनोंके संगसे अत्यन्त उद्विग्न होकर श्रवण, स्मरण, गुणगायन इत्यादिसे कर्मबन्धका विध्वंस करनेवाले भगवान्के चरणारविन्दयुगलका मनसे ध्यान करते हुए उसमें विघ्नकी आशंका करके भगवान्की कृपासे पूर्व जन्मोंका स्मरण होनेके कारण वह लोकमें अपनेको जड़बुद्धि, गूंगा,

श्रीशुक उवाच॥ अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याङ्गिरः प्रवरस्य शमदमतपः स्वाध्यायाध्ययनत्यागसन्तोषतितिक्षाप्रश्रयविद्यानसूयात्मज्ञानानन्द-युक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥ १ ॥ यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥ २ ॥ तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसन श्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडा-न्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥ तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विद-धान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥ ४ ॥ स चापि तदु ह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यस-

बहरा इस रूपमें दिखाते थे ॥३॥ उस आंगिरस ब्राह्मणने इस पुत्रके भी पुत्रस्नेहसे समावर्तनपर्यन्त सभी संस्कार किये। उसका उपनयन करनेके बाद पुत्रके न चाहनेपर भी 'पिताका पुत्रको सिखाना कर्तव्य है, यह समझकर शौच आचमनादि कर्मनियमोंकी उस ब्राह्मणने शिक्षा दी ॥ ४ ॥ वह पुत्र भी पिताके सामने जरा ठीक तरहसे करता था। जब पिता वेद सिखाने लगे तब चैत्रादि चारमासोंतक व्याहृति-प्रणवके साथ गायत्री भी ठीक तरहसे नहीं याद करसका ॥ ५ ॥ पिताका पुत्रके ऊपर प्रेम होनेके कारण उसने सावधि ब्रह्मचारीके लिये आवश्यक शौच

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्ययनं, व्रत, नियम-गुरु और अग्निकी सुश्रूषा इत्यादि कर्म सीखने चाहिएँ, ऐसे झूठे आग्रहसे जबर्दस्ती उसको शिक्षण दिया, किन्तु उसका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ तथा अपने काममें दक्षकालने असावधान अवस्थामें गृहस्थाश्रममें ही उसका संहार किया ॥ ६ ॥ तब उसकी कनिष्ठ भार्याने अपने यमल पुत्रोंको सौतके ऊपर सौंपकर पतिका स्मरण करती हुई सहगमन किया। वह पतिलोकमें चली गई ॥ ७ ॥ पिताके मरणके बाद त्रयीविद्यामें ही निरत परविद्याके अनभिज्ञ इसका प्रभाव न जाननेवाले भाइयोंने जड़मति समझकर अनुशासन, निर्बन्धादि रखना छोड़ दिया ॥ ८ ॥ जब उसको प्राकृत द्विपदपशु उन्मत्त, जड़, बधिर कहते थे तब वह भी उसी तरह बोलना चाहता था। वह दूसरेकी इच्छासे ही कर्म करता था। कभी कोई उसको पैसे देकर काम करवाते थे, कभी बेगार लेते थे, कभी प्रार्थना करके काम लेते थे। उसको यदृच्छासे जो थोड़ा बहुत मीठा या कदन्न मिलता था, उसीको खा लेता था, इन्द्रियोंकी

मवेतरूपं ग्राहया मास ॥५॥ एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥ ६ ॥ अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥ ७ ॥ पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बन्धान्न्यवृत्सन्त ॥ ८ ॥ स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञ्या यदृच्छया वापसादितमल्पं बहु मिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम्। नित्यनिवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥९॥ शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्ग पीनः संहननाङ्ग स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञयाऽतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥१०॥ यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीक-

प्रीतिके लिये नहीं। सर्वदा उत्पादक और अभिव्यञ्जकशून्य ज्ञानानन्दात्मक आत्माका उसे लाभ हुआ था। सुख-दुःखादिके कारणीभूत मानापमानादि द्वन्द्वोंमें शरीराभिमान उसको नहीं था ॥ ९ ॥ जाड़ा, गरमी, हवा, वृष्टिमें साँड़के समान खुले बदन, मोटा सुगठित शरीरवाला था। जमीनपर सोता था, शरीरका मर्दन नहीं करता था, न नहाता था। महामणिके समान उसका ब्रह्मतेज अभिव्यक्त नहीं था। मैला चिथड़ा पहनता था। मैला यज्ञोपवीत गलेमें रहनेके कारण उसको ब्राह्मण या ब्रह्मबन्धु कहकर उसका स्वरूप न जाननेवाले अपमान करते थे। इसी तरह वह रहता था ॥ १० ॥ जब भाइयोंने देखा कि दूसरेका काम करके यह भोजन पाता है, तब उन्होंने इसको धानके खेतमें काममें लगाया। तब वही करने लगा, किन्तु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऊँचा-नीचा कुछ नहीं जानता था। भाई लोग जो खुद्दी, खली, चोकर, कीड़ा लगे उड़द या नीचेका जला हुआ भात जो भी देते थे, उसीको अमृतके समान मानते हुए खा लेता था ॥ ११ ॥ एकबार एक शूद्रराजा पुत्रप्राप्तिके लिये भद्रकाली-प्रीत्यर्थ पुरुषपशु* करनमें प्रवृत्त हुआ ॥ १२ ॥ उसने एक पशु (पुरुष) पकड़वाकर खूँटेमें बाँध दिया था, उसका दैववशात् वह पशु रस्सी तोड़कर भाग गया। तब उसके अनुचर अन्धेरी रातमें मध्यरात्रिके समय उसको ढूंढते हुए दौड़ने लगे, किन्तु उनको वह न मिला। तब अकस्मात् खेतके पास हरिण भगाते हुए वीरासनसे बैठे आंगिरसपुत्र इस जड़भरतको देखा ॥ १३ निर्दोष लक्षणयुक्त इसे देखकर इससे अपने स्वामीके कर्मकी पूर्ति होगी ऐसा समझकर रस्सीसे बाँधकर वे खुशीसे चण्डिकागृहमें इसे ले गये ॥ १४ ॥ चोरोंने उसको अपनी विधिसे नहलाया, नये वस्त्रसे ढककर, भूषण, चन्दन माला और तिलक इत्यादिसे अलंकृत किया, खिलाया तथा धूप, दीप,

रणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥ अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२॥ तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसावृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरः प्रवरसुतमपश्यन् ॥ १३ ॥ अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥ १४ ॥ अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥ १५ ॥ अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥ १६ ॥

इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दमानेनवपुषा सहसो-

फूल, लावा, पल्लव, अंकुर, फलोपहार इत्यादिसे युक्त हिंसाविधानसे गीत, स्तुति, मृदङ्ग, पणवोंके महान् घोषके साथ उस पुरुषपशुको भद्रकालीके आगे बैठाया ॥ १५ ॥ तदनन्तर वृषभराजके पुरोहित चोरने पुरुषपशुके रक्तसे भद्रकालीदेवीका यज्ञ करनेके लिये कालीमन्त्रसे अभिमन्त्रित अति भयानक खड्ग लिया ॥ १६ ॥ इस तरह रज और तमो गुणयुक्त, धनमद रूपी रजसे उच्छृंखल मनवाले, भगवान्की कलासे युक्त ब्राह्मणोंको तुच्छ मानकर कुमार्गसे स्वैर आचार करनेवाले, हिंसासे खेल करनेवाले, उन चोरोंका साक्षात् ब्रह्मर्षिपुत्र, निर्वैर, सभी भूतोंका मित्र, ब्रह्मभूत, आपत्कालीनहिंसामें भी जिसका वध निषिद्ध है ऐसे ब्राह्मणका वधोद्योगरूपी भयंकरकर्म देखकर असह्य ब्रह्मतेजसे, जलते हुए शरीरसे वही देवी भद्रकाली सहसा

* यदि मुझे पुत्र होगा, तो आपको पुरुषपशुका बलि दूँगा, यह सङ्कल्प किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रतिमासे बाहर आविर्भूत हुई ॥ १७ ॥ पुरोहित तलवारका प्रहार करनाही चाहता था कि अत्यन्त असह्य होनेके कारण क्रोधावेशके वेगसे जिसकी भ्रुकुटिरूपी वृक्ष टेढा हो गया, शाखाके समान कुटिल दंष्ट्रा और लाल आँखोंके बनावसे जिसका मुख भयङ्कर हो गया है ऐसी कालीने उसके हाथसे खड्ग झटसे छीनकर उछलकर उन पापी दुष्टोंका उसी खड्गसे शिरच्छेद करके उनके गलेसे बह रहे रक्तरूपी अत्युष्ण आसवको अपने गणोंके साथ यथेच्छ पीकर, पानसे मत्त होकर पार्षदोंके साथ जोरसे चिल्लाने लगी, नाचने लगी और उनके मुण्डरूपी गेंदोंसे

ञ्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥ १७ ॥ भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णांगलात्स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुकलीलया ॥ १८ ॥ एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति ॥१९॥ न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवताऽनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जडभरतचरितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

खेलने लगी ॥ १८ ॥ इसतरह महात्माओंका अभिचाररूपी अतिक्रम करनेसे उसका पूरा उलटा फल अपनेको ही भोगना पड़ता है। १९ ॥ हे परीक्षित, अपने शिरच्छेदका प्रसंग आनेपर भी शान्त रहना यह आपको बड़ा आश्चर्यजनक मालूम होगा, किन्तु देहमें आत्मभावरूपी हृदयकी गाँठ जिनकी टूट गई है, साक्षात् चक्रपाणि भगवान् अनेक रूपोंसे जिनकी सावधानीसे सर्वदा रक्षा करते हैं, ऐसे भगवान्‌के निर्भय पादारविन्दका आश्रयण करनेवाले, सभी प्राणियोंके सुहृद् निर्वैर, परमभागवतोंके लिये यह कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है ॥२०॥

नवेंअध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न एक ब्राह्मणको दो स्त्रियाँ थी। उसको पहली स्त्रीसे नव पुत्र और दूसरीसे एक यमल पुत्र और पुत्री हुए। पुत्र छोटा था, वही भरत थे। हरिण जन्मके बाद यह जन्म उनको मिला था। भगवान्‌की कृपासे उनको पूर्वजन्मका स्मरण था। इसलिए वह लोकमें खुद जड़-गूँगा बहरा ऐसा दिखते थे। पिताने उपनयन कर कर्तव्य समझकर उनको शौचादि नियमोंकी शिक्षा दी। पिताने उनको वेद पढ़ानेका प्रयत्न किया, किन्तु चार महीनोंमें व्याहृति सहित गायत्री भी वह नहीं सीख सके। पिताने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वह विफल ही रहा और आखिर उसका अन्त हो गया। उसकी कनिष्ठ भार्या भी पुत्र-पुत्रीको सौतको सौंपकर सती हो गई। तब भाइयोंने मूर्ख समझकर उसका ख्याल ही छोड़ दिया सब लोग उनको द्विपद पशु समझते थे। वह भी वैसा ही करते थे। वह अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं करते थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोग उनोको पैसे देकर या बेगारमें जो भी काम कराते थ, उसीको करते और जो मिलता उसको खाते थे। फिर भी मोटे बन रहते थे। उनका शरीर भी सुगठित था। मैला-कुचैला चिथड़ा पहनते थे। मैले जनेऊसे 'यह ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न है' ऐसा ज्ञात होता था। भाइयोंने जब देखा कि यह दूसरोंका कामकरके पेट भरता है तब उन्होंने अपने खेत पर काम करने को कहा वह वही करने लगे। भाई लोग जो भी देते उसीको अमृत समान खाते थे। एक बार एक चोरोंका सरदार पुत्र प्राप्तिके लिए नरपशुका भद्रकालीको बलि देनेमें प्रवृत्ति हुआ। दैववशात् कहींसे पकड़ लाया गया वह पशु उसके बलिके दिनही भाग गया। तब उसके साथी रातमें उसको ढूँढने लगे, किन्तु वह नहीं मिला। तब उन्होंने इन ब्राह्मण पुत्रको देखा। इन्हें ही योग्य समझ कर वे ले गये। योग्य समयपर भद्रकालीके सामने इन्हें ले गये। जैसे पशुको सजाना चाहिए वैसे इनको सजाया। आखिर मंत्र पढ़कर उनका पुरोहित चोर खड्ग निकालकर मारने दौड़ा, फिर भी यह निर्विकार ही थे। इतनेमें भद्रकालीको ही यह असह्य हुआ। उसने एकदम प्रकट होकर उस खड्गको छीन लिया और उन चोरोंको ही मारकर उनके रक्तको अपने गणोंके साथ यथेच्छ पीकर नाचकर मुण्डोंसे गेंद खेलकर वह चली गई। हे परीक्षित्, शिरच्छेदका प्रसङ्ग आनेपर भी चुप रहना इसमें आपको आश्चर्य मालूम होता होगा, किन्तु निर्वैर परम भागवत लोगोंके लिए, जिनकी रक्षा भगवान्‌का चक्र करता है, यह कोई आश्चर्य नहीं है। नवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ दशमोऽध्यायः ❀

[आंगिरस पुत्रकी रहूगण राजासे भेंट]

श्रीशुकदेवजीने कहा—एक बार सिंधु-सौवीरदेशका राजा रहूगण तत्त्वविचार पूछनेके लिये कपिलाश्रममें जा रहा था। तब इक्षुमती नदीके तटपर उसकी पालकी ढोनेवालेका नायक पालकी ढोनेके लिये बेगारमें लोगोंको ढूँढने लगा। तब उसको यह ब्राह्मण मिला उसने यह पुष्ट सुगठित शरीरवाला युवा बैल या गधे के समान ढोनेके लिये अच्छा है। समझ-

श्रीशुक उवाच ॥ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥ १ ॥ यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह हे

कर और बेगारोंके साथ उसको भी पकड़ लिया। उस महानुभावने भी उस कामके लिये योग्य न होनेपर भी पालकी ढोई॥ १॥ वह ब्राह्मणमात्र जगह देखता था और पैरके नीचे कुछ प्राणी न कुचला जाय, इस तरह चलता था उसके कारण बाकीलोग भी ठीक तरहसे नहीं चल सकते थे। अतः पालकी हिलने-डोलने लगी, तब रहूगणने ढोनेवालोंसे कहा—हे पालकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ढोनेवालों, ठीक-ठीक चलो, पालकी डुलाकर क्यों चल रहे हो ॥ २ ॥ उन्होंने स्वामीकी डाँट सुनकर चतुर्थोपायके (मारके) डरसे शंकित मनसे उसकी प्रार्थना की ॥ ३ ॥ महाराज, आपके हुकुम के ताबेदार हमलोग ठीक ही चल रहे हैं, असावधान नहीं हैं, किन्तु यह जो अभी आया है ठीक जल्दी नहीं चलता, इसके साथ हमलोग नहीं ढो सकते ॥ ४ ॥ सांसर्गिक दोष ही एकका भी सबको लगता है ऐसा समझकर उन दीनोंके वचनका ख्याल कर राजा रहूगणने वृद्धोंकी उपासना करनेपर भी स्वभावके वशीभूत होकर किंचित् क्रोधसे भस्मसे ढके अग्निके समान अस्फुट ब्रह्मतेजवाले उस ब्राह्मणसे कहा ॥ ५ ॥ अरे भाई सचमुच तुम बड़े थक गये हो तुम भी विचारे क्या करोगे तुम न मोटे हो न तुम्हारा शरीर ही मजबूत है, बुढ़ौतीसे गल गये हो और तुमने अकेले ही दूरतक ढोया है। इस तरह अनेक वक्रोक्तियोंसे उसको बोलने पर भी वह पहलेके समान ही चुपके पालकी ढोने लगा, क्योंकि अविद्यासे रचित

वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥ २ ॥ अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कितमनसस्तं विज्ञापयांबभूवः ॥ ३ ॥ न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः। अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥ ४ ॥ सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसावृतमतिराह ॥ ५ ॥ अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान्सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान्सखे नो एवापर एते संघट्टिन इति बहुविप्रलब्धोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहंममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥ ६ ॥ अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥ ७ ॥ एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स भगवान्ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं

द्रव्यगुण, कर्मवासनायुक्त अपनी अवस्तुभूत, अवयव, संस्थान विशेषरूप जड़देहमें 'मैं और मेरा यह मिथ्याभिमान उसको नहीं था। वह तो ब्रह्मभावको प्राप्त हुआ था ॥ ६ ॥ फिरसे जब पालकी हिलने लगी तब क्रुद्धरहूगणने कहा—क्योरे जिन्दा-मुर्द, मुझ तुच्छ कहके स्वामीकी आज्ञाके पालनमें देर करतेहो। दण्डपाणि यम जैसे लोगोंका शासनकरते हैं वैसेही मैंभी तुम्हारी चिकित्सा कर दूँगा, जिससे अपने ठीक रास्तेपर आ जाओगे ॥ ७ ॥ इस तरह सनमाना बकनेवाले, रज और तमोगुणसे युक्त मदसे भगवान्‌के प्रिय पूर्णभक्त भरतका तिरस्कार करनेवाले अपनेको पण्डित समझनेवाले अपने नरदेवत्वका अभिमान रखनेवाले योगेश्वरोंके आचरणको न समझनेवाले उस राजाको सर्वभूत सुहृत्, गर्वरहित, ब्रह्मभूत, भगवान् ब्राह्मण हँसते हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहने लगा ॥ ८ ॥ ब्राह्मणने कहा—तुमने जो कहा वह ठीक ही है, उसमें व्यंग्य नहीं है । हे वीर, ढोनेवाले देहको जो भार है वह अगर मुझे होता, तो तुम्हारी बातें मुझे वक्र मालूम पड़तीं या गमन करनेवाले देहका प्राप्य या मार्ग मुझको होता । 'पुष्ट' यह व्यवहार भी आत्मामें मूर्खलोगही करते हैं, क्योंकि यह शरीरका गुण है ॥ ९ ॥ मोटापन, दुबलापन, शारीरिक, मानसिक रोग, भूख, प्यास, भय, कलह, इच्छा, जरा, निद्रा, प्रेम, क्रोध और अहंकारसे मद ये सभी देहके धर्म हैं, देहके साथ उसरू अभिमानसे जो उत्पन्न होता है उसके लिये है, न कि मेरे लिये ॥ १० ॥ जीवन्मृतत्व भी केवल मेरे देहको नहीं है, किन्तु सभी परिणामी पदार्थोंको है, क्योंकि वे प्रतिक्षणमें उत्पत्ति-विनाशशील हैं । जहाँपर अधीन स्वामित्वका भाव निश्चित है वहींपर आज्ञा और उसका पालन भी योग्य है, किन्तु तुम्हारा तथा मेरा तो यह भाव अनित्य है ॥ ११ ॥ स्वामी और सेवक इस विशेष बुद्धिका भी व्यवहारके सिवा दूसरा

स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥ ८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ॥ गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥ ९ ॥ स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च ॥ निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मेन सन्ति ॥ १० ॥ जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ॥ स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥ ११ ॥ विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत ॥ क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते ॥ १२ ॥ उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ॥ अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि तथोवाह ॥ १४ ॥ स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रन्थसंमतं त्वरयावरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन्विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥ १५ ॥ कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजनां बिभर्षि सूत्रं

कारण कुछ नहीं दीखता, फिर कौन अधिकारी तथा कैसा उसका अधिकार ? फिर भी हे राजन्, तुम्हारा आग्रह ही है, तो तुम्हारा क्या काम करें, कहो ॥ १२ ॥ उन्मत्त जड़भरतकी जब मेरी प्रकृति है, तब मेरे उपायसे तुमको क्या फायदा । तुम्हारे सिखानेके बाद भी मैं स्तब्ध और मत्तही अगर रहा, तो फिर तुम्हारा शिक्षण पिष्टपेषण ही है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—देहात्मभावका कारण अविद्या जिसकी निवृत्त हो गई है ऐसे उपशमशील मुनिवरने इस तरह अनुवादरूप परिभाषासे उत्तर देकर उपभोगसे आरब्धकर्म क्षीण करते हुए राजाकी पालकी उसी तरह ढोयी ॥ १४ ॥ हे परीक्षित, वह सिन्धु-सौवीरराज भी तत्वजिज्ञासामें श्रद्धाके कारण योग्य अधिकारी था । उसने वह हृदयग्रन्थिको तोड़नेवाला द्विजका अनेक योगग्रन्थोंका सम्मत भाषण सुनकर झटसे नीचे उतरकर ब्राह्मणके पैरमें सिर टेककर उसकी क्षमा चाहते हुए राजापनका अभिमान छोड़कर कहा ॥ १५ ॥ महात्मन्, आप कौन हैं ? आपके गलेमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यज्ञोपवीत दीखता है, क्या आप मरीच्यादि ऋषियोंमें कोई हैं ? था दत्तात्रेयादि अवधूतोंमें कोई है ? आप किसके पुत्र हैं ? कहांसे आर किसके लिये यहाँ आये हैं ? या साक्षात् कपिल
हमारे कल्याणके लिये आये हैं ॥ १६ ॥ मैं न इन्द्रके वज्रसे डरता हूँ, न महादेवके त्रिशूलसे, न अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, कुबेरके अस्त्रोंसे, न सक्षात् यमके दण्डसे, किन्तु मैं ब्रह्मकुलके
अपमानसे अत्यन्त डरता हूँ ॥ १२ ॥ अतः हे साधो, अपने विज्ञानरूपी तेजको ढांककर जड़के समान निस्संग होकर विचरते हो । तुम्हारी महिमा अनन्त है, तुमको कोई नहीं समझ
सकता । तुम्हारे योगयुक्त वचनोंमें हमारा मन भी प्रवेश नहींकर सकता ॥ १८ ॥ मैं आत्मतत्वज्ञ मुनियोंमें श्रेष्ठ गुरु, योगेश्वर, साक्षात् ज्ञानशक्तिसे अवतीर्ण कपिलभगवान्के पास 'इस
संसारमें किसकी शरण जाना चाहिए' यह पूछनेके लिये चला था ॥ १६ ॥ शायद वही भगवान् आप हैं, जो अपने चिह्नोंको न दिखाते लोक निरीक्षण करनेके लिये निकले हैं । घरमें

कतमोऽवधूतः ॥ कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥१६॥ नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ॥
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥१७॥ तद्ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ॥ वचांसि योगग्रथितानि साधो
न नः क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ॥ १८ ॥ अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ॥ प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्साक्षाद्धरिं ज्ञान-
कलावतीर्णम् ॥ १६ ॥ स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपिस्वित् ॥ योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः
॥ २० ॥ दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ॥ यथाऽसतोदानयनाद्यभावात्समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥ २१ ॥ स्थाल्यग्नि-
तापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ॥ देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात्तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥ २२ ॥ शास्ताभिगोप्ता नृपतिः
प्रजानां यः किङ्करो वै न पिनष्टि पिष्टम् ॥ स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥२३॥ तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छी-

आसक्त मन्दबुद्धि लोग योगेश्वरोंकी गति क्या जानें ॥ २० ॥ काम करनेसे आत्मामें जो परिश्रम देखा है, आप भी चले हैं, अतः आपके श्रमका भी मैं जरूर अनुमानकर सकता हूँ ।
और इस तरहके व्यवहारको आप निर्मूल भी नहीं कह सकते, क्योंकि असत् वस्तुसे व्यवहार नहीं चल सकता, यदि घटको असत् माना जाय, तो फिर घटादिसे जल लाना नहीं होगा
॥ २१ ॥ अग्निके कारण वर्तनमें उसके कारण जलमें और उसीके कारण चावलके बाहर और अन्दरके भागमें ताप होकर चावल पकता है, उसी तरह देह, इन्द्रिय, प्राण मन इनके
अनुरोधसे धूपसे देहादिके तापसे क्रमशः आत्माको भी ताप होता है ॥ २२ ॥ स्व-स्वधर्माचरण द्वारा भगवदाराधनसे ही पापराशिका नाश होता है और भगवान्के आज्ञानुसार प्रजाओंका
शासन तथा रक्षण राजाका काम है, अतः किसीने अगर उसकी आज्ञा न भी मानी, तो भी भगवान्के सेवक उसका आज्ञा करना पिष्टपेषण नहीं है ॥२३॥ इसी तरह मेरा ज्ञान है, अतः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजापनके मदसे बड़ोंको तुच्छ करनेवाले मुझपर आप स्नेहयुक्त दृष्टि रखिये, जिससे मैं सज्जनोंके उल्लंघनके पापसे मुक्त होऊँ। आप आर्तबन्धु हैं ॥२४॥ मेरे आचरणसे विश्वमें

कृतसत्तमस्य ॥ कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥ २४ ॥ न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमस्तवापि ॥ महद्विमानात्स्वकृताद्धि माहङ्नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥ २५ ॥ इति श्रीम० म० पु० पं० स्कं० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सुहृदभाव रखनेवाले साम्यके कारण अभिमानरहित आपको कुछ भी विकार नहीं है, फिर भी शूलपाणिके समान समर्थ होनेपर भी मेरे—जैसेका महात्माओंके अपमानसे नाश शीघ्र हो सकता है ॥ २५ ॥

दसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक वार सिन्धुसौवीर देशका राजा रहूगण तत्वविचारके लिये कपिलमुनिके पास जानेको निकला। उसके लोग पालकी ढोनेके लिए बेगार ढूँढ़ने लगे। इस पुष्ट ब्राह्मणको देखकर पालकी ढोनेमें योग्य समझकर उसको भी ले गये। वह पैरके नीचे कुछ कुचला न जाय, इससे धीरे-धीरे चलता था, अतः पालकीमें झटके वैठने लगे। तब राजाने सबको डाँटा। बाकी लोग डरसे कहने लगे—महाराज, हम ठीक चल रहे हैं, किन्तु यह धीरे-धीरे चलता है। इसके साथ हम पाकली नहीं ढो सकते। तव राजाने उसको व्यङ्गसे कहा—भाई, तुमतो दुवले पतले वहुत थके होगे और तुम वृद्ध भी तो हो गये। फिर भी वह चुपके वैसे ही चलने लगा। तव फिरसे क्रोधसे राजाने कहा—अरे मुर्दे, क्यों ऐसा करते हो, यमके समान मैं तुम्हारा उपाय करूँगा। तव तुम ठीक आ जाओगे। इस तरह बकने वाले मत्त पण्डितमन्य राजासे ब्रह्मभूत वह ब्राह्मण हँसकर कहने लगा—तुमने जो व्यङ्ग करके कहा, वह सच ही है। उसमें व्यङ्ग मुझे नहीं दीखता। मुझे सचमुच भार नहीं, वह तो देहका धैर्य है, अतः गमन और प्राप्त भी उसीका है मेरा नहीं। पुष्ट यह व्यवहार भी आत्मामें मूर्ख ही करते हैं, वह शरीरका ही गुण है। तुमने कहा जीवन्मृत पर तो सभी परिणामी पदार्थोंका धर्म है, केवल मेरी देहका नहीं। मैं न तुम्हारा सेवक हूँ और न तुम सेव्य हो, यह भाव अनित्य है। यह वुद्धि मिथ्या है केवल व्यवहार है फिर भी तुम्हारा आग्रहही हो, तो क्या करें, कहो। तुम कहते हो मेरा उपाय करके ठीक करोगे। किन्तु जड़ता ही अगर मेरा स्वभाव है, तो तुम क्या ठीक करोगे और तुम्हारे सिखानेके वाद भी अगर मैंने ऐसाही किया, तो तुम्हारा यह पिष्टपेषणके सिवाय क्या होगा। ऐसा कहकर वह फिर चलने लगा, किन्तु राजाने इस भाषणको जब सुना तब वह झट नीचे उतर आया और उसको नमस्कार करते हुए उसने क्षमा की प्रार्थना की—महात्मन् आप कौन हैं आप कोई ऋषि हैं या अवधूत दत्तात्रेय हैं, आप कहाँसे आये हैं, मैं न इन्द्रवज्रसे डरता हूँ न यमदण्डसे या अन्य किसी देवताके अस्त्रसे किन्तु ब्राह्मणके अपमानसे बहुत डरता हूँ। आप निस्सङ्ग होकर विचरण कर रहे हैं। मैं कपिल भगवान्‌के पास तत्व जाननेके लिए चला था। शायद वही आप हैं, भगवान्‌की गति कौन जाने। आपने कहा कि मुझे श्रम नहीं, किन्तु अनुभवसे मैंने आत्मामें तो श्रम देखा है। आप चले हैं अतः आपमें उसका अनुमान् न करना कठिन नहीं। इस तरहके व्यवहारको आप निर्मुक्त मिथ्या भी नहीं कह सकते, फिर घटादिसे जल लाना इत्यादि व्यवहार ही न होंगे। जैसे अग्निके कारण वर्तन, जल, चावल इसपरम्परासे चावलके अन्दरके अवयवमें पाक होता है उसी तरह देह इन्द्रियादि परम्परासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आत्माको भी ताप होता है। और अपने धर्माचरणसे भगवदाराधन यह प्रत्येकका कर्तव्य है उसके अनुसार शासन और रक्षण यह राजाका कर्तव्य है, फिर मेरी आज्ञा करना पिष्टपेषण कैसा ? इस तरह मेरा भ्रान्त ज्ञान है। मदसे दूसरोंको तुच्छ करनेवाले मुझपर कृपा कीजिए, जिससे मैं महात्माओंके उलंघनके पापसे मुक्त होऊँ। आप अति बन्धु हैं। यद्यपि मेरे रूखे आचरणसे समदृष्टि आपको कुछ भी विकार नहीं, फिर भी महात्माओंके अपमानसे मेरा नाश हो सकता है। दसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ एकादशोऽध्यायः ❀

[रहूगणको उपदेश]

ब्राह्मणने कहा—विद्वान् न होनेपर भी तुम विद्वान्के-जैसी बातें करते हो, किन्तु इससे तुम सच्चे विद्वानोंमें श्रेष्ठ नहीं हो सकते। स्वामी भृत्यादि इस व्यवहारको विद्वान् लोग तत्वविचारके साथ नहीं मानते ॥ १ ॥ इस लौकिक व्यवहारके समान बड़े-बड़े जो गृहस्थके यज्ञ हैं उनकी विद्याओंके उभड़े हुए विलासरूपी वेदवादोंमें भी प्रायः शुद्ध तत्वज्ञान ठीक तरहसे प्रकाशित नहीं होता ॥ २ ॥ जो स्वप्नके दृष्टान्तसे गृहधर्मसे प्राप्त सौख्यको स्वयं त्याज्य नहीं समझ सकता, उसको वेदान्तवाक्य भी तत्त्वज्ञान करा देनेमें असमर्थ है ॥ ३ ॥ जबतक मनुष्यका मन

ब्राह्मण उवाच ॥ अकोविदः कोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ॥ नसूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥१॥ तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृम्भितेषु ॥ न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥ २ ॥ न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन् ॥ स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥ ३ ॥ यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम् ॥ चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥ ४ ॥ स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ॥ बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥ ५॥ दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ॥ आलिङ्ग्य

सत्व, रज या तम इन गुणोंसे वशीकृत है तबतक वह निरंकुश मन ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रियोंसे अनिर्बंध रीतिसे कल्याणकर या हानिकर कर्म करता है ॥४॥ वह वासनायुक्त, विषयासक्त, गुणोंसे चंचल, कामादि विकारी, भूतेन्द्रियादिरूप षोडश विकारोंमें मुख्य मन अनेक नामोंसे देव-तिर्यक् आदि रूपोंको धारणकर उन्हीं देहोंके कारण उत्कृष्ट या निकृष्ट अवस्था देता है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ५ ॥ संसारचक्र में छल करनेवाला मायारचित जीवोपाधि भूत मन अपने जीवको आलिंगन करके कालसे प्राप्त, दुर्निवार सुख-दुख या मोहरूपी फलको व्यक्त करता है ॥६॥ यह सब मनके कारण होनेवाला व्यवहार क्षेत्रज्ञ आत्माके साक्षित्वमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिरूपमें प्रकाशित होता है। अतः यही मन गुणावगुणोंका श्रेष्ठत्व, कनिष्ठत्वका कारण माना जाता है ॥७॥ गुणोंमें अनुरक्त मन प्राणियोंके दुःखका और उनमें अनासक्त मन कल्याणका कारण है जिस तरह घी और बत्तीके संयोगसे अग्निकी ज्योति धूमयुक्त निकलती है, किन्तु घृत समाप्त होनेसे अपने शुद्ध भास्वरशुक्लरूपसे प्रकाशित होता है, उसी तरह गुणकर्मों के सम्बन्धसे मन अन्यान्य वृत्तियुक्त होता है, किन्तु अन्य समयमें शुद्ध तत्त्वको ग्रहण करता है ॥ ८ ॥ मनकी ग्यारह वृत्तियाँ हैं, उसमें पाँच कर्मात्मक, पाँच ज्ञानात्मक और एक अभिमान है। हे वीर, इन ग्यारह वृत्तियोंके वचनादि पाँच कर्म, शब्दादि पाँच गुण तथा एक अहङ्कार ये विषय हैं

मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥ ६ ॥ तावानयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ॥ तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥ ७ ॥ गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ॥ यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ॥ पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥ ८ ॥ एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ॥ मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ॥ ९ ॥ गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ॥ एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥१०॥ द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः। सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥ ११ ॥ क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ॥ आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ॥ नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययात्मन्यव-धीयमानः ॥ १३ ॥ यथाऽनिलः स्थावरजङ्गमानामात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ॥ एवं परो भगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १४ ॥

॥ ९ ॥ गन्ध, रूप, स्पर्श, रस, शब्दादि ये मात्रा, विसर्ग, आनन्द, गति, वचन, शिल्प ये कर्म और शरीरको मेरा यह स्वीकार करना अहंकार है। कुछ लोग मूढ़ दृष्टिसे अहंकार यह बारहवीं वृत्ति मानकर शरीरको उसका विषय मानते हैं ॥ १० ॥ द्रव्य, स्वभाव, वासना, कर्म, काल इनके भेदसे ये ग्यारह मनोविकार भी हजारों, सैकड़ों करोड़ों हो जाते हैं। ये सब क्षेत्रज्ञकी सत्तासे ही होते हैं, स्वतः या परस्परसे नहीं होते ॥ ११ ॥ मायारचित जीवके उपाधिभूत तथा अशुद्ध यानी संसारके बन्धनके कारणभूत कर्म करनेवाले मनके प्रवाहरूपसे अविच्छिन्न कभी जाग्रत और स्वप्नावस्थामें प्रकट एवं सुषुप्तिमें अप्रकट इन वृत्तियोंको जो शुद्ध आत्मा देखता है वही तीनों अवस्थाओंके साक्षी क्षेत्रज्ञ है ॥ १२ ॥ सर्वत्र व्याप्त, जगत्कारणीभूत, पूर्ण, साक्षात् अपरोक्ष, स्वयंप्रकाश, जन्मरहित, ब्रह्मादिकोंका ईश्वर नारायण, भगवान् वासुदेव अपनी मायासे जीवमें नियन्तृरूपसे रहते हैं ॥ १३ ॥ जिस तरह वायु स्थावर,-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जंगमोंमें प्राणरूपसे प्रवेशकर उनका नियमन करता है, उसी तरह परपुरुष भगवान् वासुदेवरूपी क्षेत्रज्ञ आत्मा इस विश्वमें प्रवेश करता है।।१४।। जबतक आत्माका उपाधिभूत मनही संसार मायाको छोड़कर आसक्तिरहित, कामादि, अरिषड्वर्गजयी होकर आत्मतत्त्व नहीं जानता, तबतक संसारमें भ्रमण करता रहता है ॥ १५ ॥ जबतक आत्माका उपाधिभूत मनही संसार

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र विधूय मायां वयुनोदयेन ॥ विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥१५॥ न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं संसारतापावपनं जनस्य ॥ यच्छोकमोहामयरागलोभवैरानुबन्धं ममतां विधत्ते ॥ १६ ॥ भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः ॥ गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥ १७ ॥ इति श्रीम० म० पु० पञ्चमस्कं रहूगणसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ।

पीड़ाओंका क्षेत्र, शोक मोह, भय, रोग, राग, लोभ, वैरोंका कारण, आसक्ति उत्पन्न करनेवाला है ऐसा नहीं जानता, तबतक घूमता रहता है ॥ १६ ॥ अतः इस प्रबल और बढ़े हुए शत्रु मनको सावधानीसे गुरु तथा हरिके चरणोपासनारूपी अस्त्रसे नष्ट करो। यह मिथ्या होनेपर भी आत्माका घात करनेवाला है ॥ १७ ॥

ग्यारहवें अध्यायका सार—ब्राह्मणने कहा—तुम बातें तो विद्वान्के जैसा करते हो, किन्तु सच्चे विद्वान् नहीं हो। पण्डित स्वामी भृत्यादि व्यवहारको सत्य नहीं मानते। इसी तरह याज्ञिक विद्यामें भी प्रायः शुद्ध तत्त्वज्ञान ठीक प्रकट नहीं होता। स्वप्नके दृष्टान्तसे जो गृहधर्मसे प्राप्त सुखको त्याज्य नहीं समझता, उसको समझानेमें वेदान्त भी असमर्थ है। जबतक मनुष्यका मन गुणोंके वशमें है तबतक वह इन्द्रियोंसे कर्म करता ही है। भूतेन्द्रियादि जो वह विकारोंमें मुख्य मन ही अनेक नाम और रूपोंको धारणकर अच्छी या बुरी अवस्था देता है। यह मनही जीवके सम्बन्धसे सुख दुःख-मोहरूपी फलको व्यक्त करता है। आत्माके साक्षित्वमें मनका जाग्रदादि अवस्थाओंमें व्यवहार प्रकाशित होता है। गुणोंमें आशक्त मन दुःखका और अनासक कल्याणका कारण है। गुणोंके संयोगसे मन अन्य वृत्तियोंसे युक्त होनेपर भी अन्य समयमें शुद्ध तत्वको ग्रहण करता है पञ्च कर्मात्मक और अभिमान ये मनकी ग्यारह वृत्तियाँ हैं। द्रव्यस्वभाव वासना आदिके भेदसे ये मनोविकार अनन्त होते हैं। किन्तु ये क्षेत्रज्ञकी सत्तासे हो होते हैं। इन विकारोंको सर्वदा देखनेवाला आत्माहीक्षेत्रज्ञ है। सर्वत्र व्याप्त भगवान् जीवमें भी नियम रूपसे रहते हैं। प्राणवायु जैसा रूपमें प्रवेश करता है, उसी तरह भगवान् क्षेत्रज्ञ आत्मा सभीमें प्रविष्ट हैं। राजन्, जबतक ज्ञान प्राप्तकर निस्संग होकर कामादिः छः शत्रुओंको नहीं जीतता, तबतक जीव संसारमें भ्रमण करता रहता है। जबतक, मन ही सबका कारण है, ऐसा ज्ञान नहीं होता, तबतक जीव घूमता रहता है। अतः इस प्रबल मन रूपी शत्रुको हरिगुरुचरणोपासनारूपी अस्त्रसे नष्ट करो। यह मन मिथ्या होनेपर भी आत्माका नाशक है। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

[रहूगणके प्रश्नका समाधान]

रहूगणने कहा—लोक संरक्षणके लिये शरीरधारण करनेवाले, परमज्ञानानन्दात्मक निजस्वरूपसे शरीरको तुच्छ करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। हे अवधूत, इस ब्रह्मबन्धुके समान वेषमें अपने नित्यज्ञानको ढाकनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्, ज्वर और रोगसे आर्त मनुष्यके लिये जैसे औषधि, ग्रीष्मऋतुमें धूपसे तप्त आदमीके लिये जैसे ठंढा जल, उसी तरह देहाभिमानरूपी साँपसे डँसे गये मेरे लिये आपका वचन अमृततुल्य औषधि है ॥ २ ॥ इसलिये मुझे जिस विषयमें संशय है ऐसे प्रश्नको आपसे बादमें पूछूँगा, अभी तो अध्यात्मयोगसे युक्त आपने जो कहा है उसीको फिर सुबोध रीतिसे मुझे कहिये। मेरे मनमें बड़ा कुतूहल है ॥ ३ ॥ आपने जो कहा है कि क्रिया और उसका दृश्यमान फल केवल व्यवहारमूलक

रहूगण उवाच ॥ नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ॥ नमोऽवधूत द्विजबन्धु लिङ्गनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥ ज्वरामयार्तस्य यथाऽगदं सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ॥ कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥ २ ॥ तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ॥ अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥ ३ ॥ यदाह योगेश्वरदृश्यमानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ॥ न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥ ४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अयं जनो नाम चलन्पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ॥ तस्यापि चाङ्घ्र्योरधिगुल्फजङ्घाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥ अंसेऽधिदार्वी शिबिका च यस्यां सौवरराजेत्यपदेश आस्ते ॥ यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥ ६ । शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्या निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ॥ जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥ ७ ॥ यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ॥ तन्नामतोऽन्यद्व्य-

मिथ्या है उससे तत्वज्ञान नहीं हो सकता, इस विषयमें मेरा मन भ्रममें पड़ा है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे राजन्, यह जो पृथिवीका विकार किसी कारणसे पृथिवीपर चलता है वही भारवाहक मनुष्य नामसे लोकमें प्रसिद्ध है। किन्तु जो पार्थिव विकार पाषाण आदि जड़ होनेके कारण नहीं चलता उसको भार नहीं होता। जड़को भी अगर भार माने, तो भी वह अवयव छोड़कर कहाँ है ? और उस पार्थिव देहके भी पैर, घुटने, जाँघ, कमर, छाती, गर्दन तथा कन्धे ये अवयव हैं ॥ ५ ॥ कन्धेपर जो काठकी बनी हुई पालकी है वह भी वस्तुतः नहीं है और न तुम उसमें वास्तविक हो, किन्तु जो सौवीर राजा नामक पार्थिव विकारमात्र है, उसमें अभिमान रखकर 'मैं सिन्धुदेशका राजा हूँ' यों तुम मदान्ध होते हो ॥ ६ ॥ अत्यन्त कष्ट झेलनेवाले शोचनीय इन दीनोंको बेगारमें पकड़नेवाले तुम वस्तुतः निर्दयी हो। झूठही लोगोंका संरक्षक करके डींग हाँकनेवाले तुम ढीठ हो, विद्वानोंके समाजमें शोभित नहीं हो सकते ॥७॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जब हम यह देखते हैं कि स्थावर और जंगम सबकी उत्पत्ति और नाश पृथिवीमें ही होती है अर्थात् यह सब पृथिवीका विकार यानी पृथिवीही हैं, तब उससे भिन्न विकार जो व्यवहारका मूल है, जिसकी सत्ताका तुम अर्थक्रियामें अनुमान करते हो, कौनसा है, बताओ ॥ ८ ॥ यों कहा गया वास्तवमें पृथिवी नामका भी कोई पदार्थ नहीं है, वह भी मिथ्या परमाणुओंका नामपात्र है, क्योंकि सूक्ष्मस्वरूप अपने कारणभूत परमाणुओंमें उनका लय होता है। जिनके समूहसे पृथिवी व्यवहार होता है वे परमाणुकी अविद्याके कारण मनकी कल्पनामात्र हैं ॥९॥ इसीप्रकार जो दूसरे भी स्थूल, कृश, छोटे-बड़े, कारण कार्य, सजीव या निर्जीव पदार्थ हैं वे द्वैतरूप सब द्रव्य, स्वभाव, वासना, कर्म काल, नामोंसे उपलक्षित मायासे विरचित हैं, ऐसा समझो ॥ १० ॥ ज्ञानमय, विशुद्ध, परमार्थ सत्य, एक, बाह्य और आभ्यन्तरशून्य, परिपूर्ण, प्रत्यक्. प्रशान्त, निर्विकार, ऐसा भगवच्छब्द वाच्य है, जिसको ज्ञानीलोग वासुदेव कहते हैं

वहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रियमानुमेयम् ॥ ८ ॥ एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात्परमाणवो ये ॥ अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥ ९॥ एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ॥ द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्नाऽजयाऽवेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥ ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ ११ ॥ रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ॥ न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥ १२ ॥ यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ॥ निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥ १३ ॥ अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ॥ आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥ १४ ॥ सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति । अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥ १५ । तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ॥ हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः । १६ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगणसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ ११ ॥ हे रहूगण, महात्माओंके पादरजके अभिषेकके विना उस वासुदेवकी प्राप्ति न तपसे होती है, न यज्ञसे, न अन्नदानसे, न गृहधर्मसे, न वेदाध्ययनसे और न जल, अग्नि एवं सूर्यकी उपासनासे ही होती है ॥ १२ ॥ जिससे ग्राम्यकथाएँ बन्द होती हैं ऐसी उत्तमश्लोक भगवान्का गुणानुवाद जहाँ चलता है वहाँ उसके नित्य सेवनसे मुमुक्षुको वासुदेवमें स्वच्छ बुद्धि लगती है ॥ १३ ॥ मैं पहले जन्ममें भरत नामका राजा था। दृष्ट और श्रुत स्वर्गादिकी आसक्ति छोड़कर भगवान्का आराधन करता था। किन्तु अन्तमें मृगमें आसक्त होनेके कारण सारा साधन मेरा नष्ट हो गया तथा मुझे मृगजन्म प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ हे वीर कृष्णार्चनके कारण वह मेरी स्मृति कभी नष्ट नहीं हुई। अभी जनसंगसे शंकित होकर मैं अनासक्त होकर अप्रकटरूपसे रहता हूँ ॥ १५ ॥ अतः मनुष्य असंग और सत्संगसे उत्पन्न ज्ञानरूप खड्गसे मोहका विच्छेद कर भगवान्के गुणानुवादके श्रवण और कथनसे स्मृति प्राप्तकर संसार-मार्गके अत्यन्त श्रेष्ठ पारस्वरूप भगवान् हरिको प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बारहवें अध्यायका सार—रहूगणने कहा—लोक रक्षाके लिये अवतार लेनेवाले भगवान्को नमस्कार ह। हे अवधूत, गुप्त अप्रकट ज्ञानवाले, आपको नमस्कार है। रोगीके लिये जैसा औषध वैसाही अभिमान् सर्पसे डँसे मेरे लिए आपका वचन है। आपने जो यह कहा कि क्रिया और उसका दृश्यमान फल मिथ्या है इसमें मुझे भ्रम है। ब्राह्मणने कहा—यह पृथ्वीका विकार जो पृथ्वीपर चलता है, वही भारवाहक मनुष्य कहा जाता है। जो नहीं चलता जड़ होनेके कारण उसको भार नहीं होता। अगर माने भी तो अवयव को छोड़कर वह पदार्थ भी कहाँ है ? और जिसका भार वह भी कहाँ है ? इन दोनोंको बेगारमें पकड़कर तुम अपनेको रक्षक होनेकी डींग हाकते हो। यह सब पृथिवीका विकार यानी पृथिवी ही है। इससे पृथक् व्यवहारका मूल बताओ ? वास्तवमें पृथिवी भी परमाणुसे भिन्न कुछ भी नहीं है, परमाणु भी अविद्याके कारण मनकी कल्पना मात्र हैं। इसी तरह जो भी स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं वह सब द्रव्य-स्वभाव-कर्मकाल नामोंसे उपलक्षित मायासे निर्मित हैं। ज्ञानमय, परमार्थ सत्य, सर्वत्र-व्याप्त, निर्विकार भगवान हैं, जिसको ज्ञानी वासुदेव कहते हैं। राजन्, उसकी प्राप्ति महात्माओंकी सेवाके बिना किसी उपायसे नहीं होती। उत्तमश्लोक भगवान् का गुणानुवाद जहाँ चलता है, वहाँ उसके नित्यसेवनसे भगवान्में बुद्धि लगती है। मैं पूर्वजन्ममें भरत नामक राजा था सभीकी आसक्ति छोड़कर भगवदाराधन करता था। किन्तु अन्तमें मृगमें आसक्ति पैदा होनेके कारण मुझे मृग जन्म मिला और फिर यह जन्म मिला भगवान्की सेवाके फलसे मुझे अभी भी सब याद है। अतः सङ्गसे शङ्कित होकर मैं अप्रकट रहता हूँ। अतः मनुष्य असङ्ग और सत्सङ्गसे प्राप्त ज्ञानसे मोहको त्यागकर भगवान्के श्रवण तथा कथनसे भगवान्को पाता है। बारहवाँ अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❋

[संसाररूपी अरण्यका वर्णन]

ब्राह्मणने कहा—द्रव्योपार्जनके लिये भटकनेवाले सौदागरोंका काफिला जैसे अरण्यमें प्रवेश करता है, उसी तरह दुस्तर प्रवृत्तिमार्गमें प्रकृतिके कारण प्रवृत्त होकर सत्त्व, रजस्तमसे विभक्त कर्मोंको कर्तव्य समझनेवाले जीवोंका यह समूह सुखके लिये भटकते हुए फिर संसाररूपी अरण्यमें ही फँसता है, लेकिन सुख नहीं पाता ॥ १ ॥ हे नरदेव, उस संसारारण्यमें कुत्सित

ब्राह्मण उवाच ॥ दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमः सत्त्वविभक्तकर्मदृक् ॥ स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥ यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ॥ गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं

बुद्धिनामक जिसका नायक है ऐसे इस समूहको काम, क्रोधादि छः चोर जबरदस्ती लूटते हैं। उसमें स्त्री-अपत्यरूपी सियार काफिलेमें घुसकर उसमेंके लोगोंको पकड़कर ले जाते हैं, जैसे भेड़िया भेड़-बकरियोंको ले जाते हैं ॥ २ ॥ उसमें काम कर्मादिरूपी लता तृणादिके कारण दुर्गम गृहस्थाश्रमरूपी क्षेत्रमें दुर्जनरूपी मच्छर, मक्खियोंसे पीड़ित होता है। क्वचित् सत्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दीखनेवाले मिथ्यारूप देहादिरूपी गन्धर्वनगरीको देखता है तो कहीं वेगसे दौड़नेवाले सुवर्णरूपी पिशाचोंको देखता है ॥ ३ ॥ हे राजन्, जगह-जगहपर निवास, जल और धनके भ्रमसे इधर-उधर दौड़ता है। कहीं स्त्रीरूपी आँधीसे उठे रागादिरूपी धूलसे इसकी आँखें रजसे व्याप्त हो जाती हैं, जिससे इसको दिशाओंका (दिग्देवताओंका) ज्ञान नहीं रहता ॥ ४ ॥ पीछे निन्दा करनेवाले अदृश्य झिल्लियोंके शब्दसे कानमें इसके शूल उठता है और कर्कश शब्दसे वाले उल्लुओंके शब्दसे इसका हृदय फटता है। क्वचित् क्षुधा-तृष्णासे पीड़ित होकर यह अधार्मिकरूपी विष वृक्षोंका आश्रयण करता है, कभी मृगमरीचिकाके पीछे पड़ता है ॥ ५ ॥ ज्ञानचक्षुसे रहित होनेके कारण यह क्वचित् पाखण्डरूपी शुष्कनदियोंमें जा गिरता है, वहाँ ठोकर खाता है और दायादोंसे अन्न चाहता है। क्वचित् दुःखद गृहरूपी दावाग्निको पाकर उससे अत्यन्त सन्तप्त होता है, क्वचित् राजारूपी यक्षोंसे इसके धनरूपी प्राणका हरण हो जानेके

वृकाः ॥ २ ॥ प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ॥ क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥ ३ ॥ निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम् ॥ क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥ ४ ॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ॥ अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरन्धः ॥ आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥ ६ ॥ शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ॥ क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥ ७ ॥ चलन् क्वचित्कण्टकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते ॥ पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनार्दितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥ ८ ॥ क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किञ्चिद्विपिनेऽपविद्धः ॥ दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥ ९ ॥ कर्हिस्म चित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ॥ तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ॥ १० ॥ क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ॥

कारण यह निर्विण्ण होता है ॥ ६ ॥ अन्य शूरलोग भी जब इसके वित्त छीन लेते हैं तब शोक और निर्वेदसे यह मूर्च्छित हो जाता है तथा कदाचित् मुहूर्तमात्र गन्धर्वनगरीमें प्रवेशकर निश्चिन्तके समान आनन्द करता है ॥ ७ ॥ चलते हुए कदाचित् उसके पैरमें विघ्नरूपी काँटे और कंकड गड़ जाते हैं, इसलिये कर्म पर्वतके ऊपर चढ़नेकी इच्छा होते हुए भी विमनस्क होकर वह बैठ जाता है। कुटुम्बका पालन-पोषण करनेवाला वह पग-पगमें पेटकी ज्वालासे पीड़ित होकर लोगोंपर क्रोध करता है ॥ ८ ॥ कभी निद्रारूपी अजगरसे निगीर्ण होकर इस अरण्यमें कुछ नहीं जानता। क्वचित् जंगलमें लोग इसे मुर्देकी नाई फेंक देते हैं तब वहाँ यह हिंस्रजन्तुओंसे पीड़ित होनेके कारण अन्ध होकर अन्धकूपमें (मोहमें) पड़कर अन्धकारमें (दुःखमें) लीन होता है ॥ ९ ॥ कभी परस्त्री आदि क्षुद्ररसोंको लेनेके लिये जानेपर उनके पति आदि मक्षिकाओंसे ताड़ित होकर व्यथा पाता है और यदि उन छीननेवालोंको भी जीत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेता है तो उनके अतिरिक्त अन्य दूसरे आकर छीन लेते हैं। कदाचित् उनमें अत्यन्त क्लेशके साथ सफल होनेपर भी जबरदस्ती कोई उनको छीन लेता है ॥ १० ॥ क्वचित् जाड़ा, धूप, हवा और वर्षा इत्यादिसे पीड़ित होनेपर भी उसका प्रतिकार नहीं कर सकता। कहींपर परस्पर विनिमय करते हुए कंजूसीके कारण कुछ द्वेष पैदाकर लेता है ॥११॥ कभी कहीं धन नष्ट हो जानेपर शय्या, आसन, वाहन इत्यादिसे हीन होकर दूसरोंसे माँगता है और दूसरोंसे न मिलनेके कारण दूसरोंका मुँहताज बन जाता है तथा उनसे अपमानित होता है ॥१२॥ परस्पर वित्तव्यवहारके कारण भारी वैर होनेपर भी विवाहादि सम्बन्ध परस्पर करता है। फिर इस मार्गमें भयङ्कर श्रम, वित्त इत्यादि उपसर्गोंसे और द्वेषादिकोंसे मृतप्राय हो जाता है ॥ १३ ॥ इस समूहमें, मार्गमें, विपत्तिमें पड़े हुए तत्-तत् पुरुषोंको तत्-तत् स्थानोंपर छोड़ते हुए जन्म लेनेवालेको लेते हुए यह समूह घूमता-फिरता है, आजतक लौटकर नहीं आया। हे वीर,

क्वचिन्मिथो विपणन्यच्च किञ्चिद्विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥ ११ ॥ क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः ॥ याचन्परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥ १२ ॥ अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः ॥ १३ ॥ तांस्तान्विपन्नान्स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ॥ आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥ १४ ॥ मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ॥ मृधे शयीरन्नतु तद्व्रजन्ति यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥ १५ ॥ प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाऽव्यक्तपदद्विजस्पृहः ॥ क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ॥ १६ ॥ तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविशन्नरोचयन् शीलमुपैति वानरान् ॥ तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥१७॥ द्रुमेषु रंस्यन्सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने ॥ क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन्वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥ १८ ॥ अतः कथञ्चित्स

कोई भी इसमेंसे अतिसमर्थ होते हुए भी इस मार्गके परे जो योग है वहाँ नहीं पहुँच पाता ॥ १४ ॥ दिग्गजोंको जीतनेवाले शूर इस भूमिको मेरी-मेरी कहकर आपसमें वैरसे युद्धमें सोते हैं, उनमेंसे कोई भी वहां नहीं जाता, जहाँ संन्यासी निर्वैरी जाता है ॥ १५ ॥ क्वचित् स्त्रियोंकी बाहुपाशरूपी लताओंमें फँसता है और उसके आश्रित अपत्यादिरूप पक्षियोंके अव्यक्त कलध्वनिसे मुग्ध होता है। कभी कालचक्ररूपी सिंहसमूहसे त्रस्त होकर क्षुद्र क्रूर बगुले, कंक और गीधोंसे मैत्री करता है ॥ १६ ॥ उनसे वंचित होनेपर ब्राह्मणरूपी हंससमूहमें प्रवेश करता है। वहाँ भी उनका शील न रुचनेके कारण भ्रष्टाचारी शूद्रप्रायरूपी बन्दकरोंके पास जाता है। तज्जातीय बन्दरीसे क्रीड़ाकर इन्द्रियोंसे भोग लेते हुए परस्पर मुख देखते हुए अपनी मृत्यु समयको भूल जाता है ॥ १७ ॥ पुत्र और स्त्रीके प्रेमसे वृक्षवत् घरोंमें रमण करते हुए सुरतके लिये दीन मनुष्य विवश होकर अपने बन्धनमें पड़ता है। कभी प्रमादसे रोगादिरूप पर्वतकी दरियोंमें पड़कर मृत्युरूपी गजके डरसे प्राकृत व कर्मरूपी वल्लीका आश्रयण करता है ॥ १८ ॥ हे शत्रुमदन, यहांसे किसी तरह आपत्तिसे मुक्त होनेपर फिर अपने काफिलेमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाता है माया से इस मार्गमें लगाया गया यह मनुष्य केवल भटकता-फिरता है, लेकिन कोई भी आजतक परम पुरुषार्थको नहीं जानता ॥ १६ ॥ हे रहूगण, तुम सभी भूतोंसे मैत्री करके संन्यास लेकर, विषयोंमें अनासक्त होकर भगवान्की सेवासे तीक्ष्ण किये गये ज्ञानरूपी खड्गको लेकर इस रास्ते पर चले जाओ ॥ २० ॥ राजाने कहा—अहो! यह मनुष्यजन्म सभी जन्मोंमें श्रेष्ठ है। इससे ऊँचे स्वर्गादिमें जो देवता जन्मे हैं उन्हें भी लेकर क्या करना है? जहाँ भगवान्के यशसे शुद्धचित्त हुए आपके समान महात्माओंका प्रचुर समागम नहीं मिलता ॥ २१ ॥ इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आपके चरणसरोजकी धूलिसे निष्पाप हुए मनुष्यको भगवान्में निर्मल भक्ति हो। आपके मुहूर्तके समागमसे ही दुष्ट तर्कमूलक मेरा अविवेक नष्ट हो गया ॥ २२ ॥ बड़ोंको, छोटोंको, बच्चोंको बटुकोंको, युवकोंको सबको मेरा नमस्कार है। जो अवधूत वेषधारी ब्राह्मण पृथिवीपर घूमते हैं उनसे राजाओंका भला हो

विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिन्दम ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमन् जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥ १६ ॥ रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ॥ असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिमादाय तराति पारम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ॥ न यद्धृषीकेशयशः कृतात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥ २१ ॥ न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ॥ मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥ २२ ॥ नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आवटुभ्यः ॥ ये ब्राह्मणागामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥ २४ ॥ सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ यो ह वा इह बहुविदो महाभागवत त्वयाभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोक-

॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे परीक्षित, इस तरह अपना अपमान करनेवाले उस सिन्धुपतिको अत्यन्त कारुणिक होनेके कारण उस ब्रह्मर्षिने आत्मतत्त्वका उपदेश दिया। फिर रहूगणने चरणमें नमस्कार किया। तदनन्तर अपूर्ण समुद्रकी तरह जिसकी इन्द्रियोंकी लहरीरूपी वासनाएँ शान्त हो चुकी हैं ऐसे अन्तःकरणवाला वह ब्राह्मण पृथिवीपर घूमने लगा ॥ २४ ॥ सौवीरपतिने भी उस महानुभावसे परमात्मतत्त्वको जानकर देहमें जो अज्ञानजनित आत्माभिमान था, उसे छोड़ दिया। राजन्, इसप्रकार भगवद्भक्तका आश्रय करनेवालेका सद्यः अहंकार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का त्याग हो गया ॥ २५ ॥ परीक्षितने कहा—हे महाभागवत, बहुज्ञ आपने अप्रत्यक्षरूपसे जो जीवोंके संसारमार्गका वर्णन किया, वह ज्ञानीलोगों द्वारा अपनी बुद्धिसे कल्पित विषय है

भवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाव्युत्पन्नलोकसमधिगमः अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥

इति पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उसको अव्युत्पन्न लोग नहीं समझ सकते, अतः दुर्बोध उस विषयको अनुरूप अर्थकथनसे स्पष्ट कीजिये ॥ २६ ॥

तेरहवें अध्यायका सार—ब्राह्मणने कहा—हे वीर, द्रव्योपार्जनके लिये भटकते हुए सौदागरोंका काफिला जैसे जंगलमें प्रवेश करता है। वैसेही सुखके लिये भटक रहा यह जीवसमूह संसाररूपी जंगलमें फँसता है। संसाररूपी जंगलमें प्रविष्ट इस जीवसमूहको काम, क्रोध आदि छः शत्रु जबरदस्ती लूटते हैं। कुत्सित बुद्धि ही इस जीवसमूहको बहकाती है। नानाविध दुःखोंको सहते हुए भी यह उनका प्रतिकार नहीं कर सकता। दुष्ट बुद्धि जिधर चाहती है उधर ही इसे खींच ले जाती है। कभी सुख देखकर यह दौड़ता है, कभी क्या करें यह इसकी समझमें नहीं आता, कभी बड़ी आशासे काम करके निष्फल होता है, कभी दुष्टलोग या राजा इसको लूट लेते हैं, कभी कुछ आनन्द भी मिल जाता है। किन्तु परम पुरुषार्थको नहीं जानता। रहूगण, तुम सभी भूतोंके मित्र बनकर भगवत्सेवासे ज्ञानखड्ग लेकर इस रास्तेके परे चले जाओ। राजाने कहा—मेरा जन्म धन्य है, जो आपके जैसे महात्माओंका समागमसे परमात्मामें भक्ति होना आश्चर्य नहीं है, क्योंकि आपने थोड़े समयमें ही मेरे अविवेकको नष्टकर दिया। बड़ों, छोटों, युवकोंको सभीको मेरा नमस्कार है। आपके जैसे अवधूत भेषसे घूमनेवाले ब्राह्मणोंसे राजाओंका भला हो। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपना अपमान करनेवाले उस राजाको भी उस दयालुने आत्मज्ञानका उपदेश दिया। उस राजाने भी परमतत्त्व जानकर देहमें आत्माभिमान छोड़ दिया। राजन्, इसी तरह भगवद्भक्तोंका आश्रयण करनेवाले का अहंकार छूटता है। तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❀

[अरण्यरूपकका स्पष्टीकरण]

श्रीशुकदेवजीने कहा—जो यह जीवसमूह है वह परमेश्वर भगवान्विष्णुकी वशवर्तिनी मायाके कारण देहात्ममानियोंके सत्त्वादिगुण विशेषोंके कारण विभक्त अच्छे, बुरे या

स होवाच ॥ य एष देहात्ममानिनां सत्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारा-

मिश्रकर्मों से निर्मित विविध देहसमूहोंके संयोगवियोग आदिअनादि संसारानुभवके द्वारभूत छः इन्द्रियोंके द्वारा, द्रव्योपार्जनके लिये बाहर गयेहुए सौदागरोंके समूहके समान, किलेके मार्गके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समान दुर्गम संसाररूपी कुमार्गपर आकर, अपनी देहसे निष्पादित कर्मका अनुभव करते हुए, श्मशानके समान अमंगलतम जहाँ छः इन्द्रियनामक चोर हैं ऐसे संसारारण्यमें जाकर वह अपने सभी प्रयत्नोंके विफल होने तथा अनेक विघ्नोंसे अपनी चेष्टाके नष्ट होनेपर भी सांसारिक तापकी शामक हरि गुरु चरणसरोजके भृंगोंके मार्गका आज भी अनुसरण नहीं करता ॥१॥ साक्षात् परमपुरुष भगवान्का आराधनात्मक जो धर्म है, वह परलोकमें सहायक है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। ऐसे धर्ममें खर्च करनेके लिये पुरुषको जो कुछ धन अत्यन्त कष्टसे प्राप्त हुआ रहता है, अजितेन्द्रिय कुबुद्धियोंके उस धर्मोपयोगी धनको दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, आघ्राण, सङ्कल्प तथा व्यवसाय एवं गृहके उपभोगोंसे ये इन्द्रियाँ लूट लेती हैं, जैसे कमजोर संरक्षकवाले असावधान काफिलोंको चोर लूट लेते हैं ॥ २ ॥ इस अरण्यमें कौटुम्बिक लोग नामसे स्त्री पुत्र आदि हैं, किन्तु कामसे तो सियार और भेड़िया ही हैं। ये न चाहने

नुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥१॥ तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किञ्चिद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु सांपराय उदाहरन्ति तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसङ्कल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुम्पन्ति ॥ २ ॥ अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ॥ ३ ॥ यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्नहि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ॥४॥ तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिः प्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥ ५ ॥ तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पान भोजन-

पर भी लोभी मनुष्यके धनको भेड़ पालन करनेवालेकी नाईं संरक्षण रहते हुए भी देखते-देखते छीन लेते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् जैसे प्रतिवर्ष हल चलानेपर भी जिसका बीज नहीं जला है ऐसा खेत फिरसे बोनेके समय घास, पौधोंसे पर्वत की गुफाके समान दुर्गम हो जाता है उसीप्रकार कर्मोंका काण्ड यह गृहस्थाश्रम कर्मक्षेत्र है, जिसमें वासनाओंके नष्ट न होनेके कारण कर्म होना बन्द नहीं होता ॥ ४ इसमें जीवके पहुँचनेपर मच्छड़, खटमलोंके समान या शलभ, शकुन्त, चूहा, चोरोंके समान दुष्ट मनुष्यके बाहरी प्राण जैसे धनपर झपटते हैं। फिर इसी मार्गमें घूमते हुए अविद्या, काम, कर्मके युक्त मनसे इस नरलोकको गन्धर्वनगरके समान मिथ्या होनेपर भी भ्रान्त दृष्टिसे सत्य समझता है ॥ ५ ॥ उसमें भी कहीं पान, भोजन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और मैथुन आदिके व्यसनोंमें लुब्ध होकर मृगजलके समान विषयों की ओर दौड़ता है ॥ ६ ॥ जैसे शीतसे त्रस्त मनुष्य अग्नि समझकर अग्नि-पिशाचके पीछे दौड़ता है उसी तरह कहीं समस्त दोषोंके आकर अग्निकी विष्ठा जैसे सोनेको उसके वर्णसे मोहित होकर यह लेना चाहता है ॥ ७ ॥ कदाचित् निवास, जल, द्रव्य इत्यादि अनेक अपने उपजीव्य पदार्थों में आग्रहके कारण इस संसारारण्यमें इधर-उधर घूमता है ॥ ८ ॥ कदाचित् आँधीके समान स्त्रीकी गोदमें बैठकर तत्कालीन रजोगुणसे बुद्धि अन्धि होनेके कारण मर्यादा छोड़कर आँखोंमें धूल गिरे मनुष्यके जैसा यह जीव रातमें घूम रहे पिशाचोंके समान कर्मसाक्षीभूत दिग्देवताओं को नहीं जानता ॥ ९ ॥ कभी इसको एक बार विषयोंका विफलत्व ज्ञात भी होता है, किन्तु देहमें आग्रहके कारण इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और उसके कारण मृगजलके समान उन्हीं विषयोंके पीछे-पीछे दौड़ता है ॥ १० ॥ कदाचित् झिल्ली और उल्लूके शब्दके समान अत्यन्त

व्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥ ६ ॥ क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥ अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥ ८ ॥ क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयारोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूता इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥ ९ ॥ क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥ १० ॥ क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥ ११ ॥ स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान्स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ॥ १२ ॥ एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतः स्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥ १३ ॥ यदा तु परबाधयान्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान्वा स खलु भक्षयति ॥ १४ ॥ क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥ १५ ॥ क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसापहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥ १६ ॥ कदाचिन्मनोरथोप-

कठोर शब्दोंमें भारी क्रोधके साथ शत्रुओंके या राजकुलके द्वारा प्रत्यक्ष या पीछेकी गई निर्भर्त्सनासे कान और हृदयमें व्यथा पाता है ॥ ११ ॥ जब अपना पूर्वपुण्य यह भोग लेता है तब विपतिन्दु और काकतुण्डी आदि विषवृक्षलताओं तथा विषकूपोंके समान दृष्टादृष्ट प्रयोजन शून्य धनवाले जीवन्मृत लोगोंकी तरफ जीवित होकर भी मरते हुए दौड़ता है ॥ १२ ॥ कभी असज्जनोंकी संगति इसकी बुद्धिको खा जाती है तब जलहीन नदीके गर्तमें गिरनेके समान दोनों तरहसे दुःखदायक पाखण्डोंके पथपर चलने लगता है ॥ १३ ॥ जब दूसरोंसे पीड़ित होनेपर अन्धा हो जाता है और जब इसको अन्न नहीं मिलता, तब पिता या पुत्रोंके पास जो घास-पत्ता रहता है उसीको या उन्हींको खाता है ॥ १४ ॥ कदाचित् दावाग्निके समान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रिय अर्थसे हीन पारलौकिक सुखहीन घरमें प्रवेशकर शोकाग्निसे अत्यन्त दग्ध होकर निर्वेदको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ कदाचित् कालसे प्रतिकूल राक्षसोंके समान राजकुल जब इसके प्रियतम धनरूपी प्राणका हरण करते हैं तब यह मरे हुएके समान हो जाता है मानो इसका जिन्दापन चला गया है ॥ १६ ॥ कदाचित् मनोरथोंसे प्राप्त पितृ-पितामहादि मिथ्यापदार्थों को सत्य समझकर स्वप्नके समान सुखानुभव करता है ॥ १७ ॥ कभी गृहस्थाश्रममें कर्मविधियोंके अति विस्ताररूप पहाड़पर चढ़ना चाहता है तब लोकमें जो दुःख हैं उनसे त्रस्त होकर मानो कांटे और कंकड़ोंके खेतमें प्रवेश करते हुए दुःखी होता है ॥ १८ ॥ कभी-कभी दुःसह पेटकी ज्वालासे जब इसका धैर्य टूट जाता है तब कुटुम्बियोंपर क्रुध होता है ॥ १९ ॥ वही फिर कभी निद्रारूपी अजगरसे ग्रस्त होकर अज्ञानरूप गाढ़ अन्धकारमें निमग्न होकर शून्य जंगलमें, अपने बन्धुओं से फेंके गये शवकी नाईं सो जाता है। उस समय यह और कुछ भी नहीं

गतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥१७॥ क्वचिद्गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्षितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥ १८ ॥ क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥ १९ ॥ स एव पुनर्निद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत्किञ्चन वेद शव इवापविद्धः ॥ २० ॥ कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत्पतति ॥ २१ ॥ कर्हिस्मचित्काममधुलवान्विचिन्वन्यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥२२॥ अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥२३॥ मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥ २४ ॥ क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥ २५ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किञ्चिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिका-

जानता ॥ २० ॥ कभी दंष्ट्राके समान इसका मान भंग होकर सांपके समान दुष्टों की पीड़ासे नींद न पाकर हृदयव्यथाके कारण ज्ञान नष्ट होकर अन्धेकी नाईं अन्धकूपमें यानी मोहमें पड़ता है ॥ २१ ॥ कभी कामरूपी मधुबिन्दुओं को चाटनेकी इच्छासे परद्रव्य और परदाराको चाहते हुए राजा या उसके स्वामियों से मारे जानेपर घोर नरकमें पड़ता है ॥ २२ ॥ हे राजन्, चूँकि ऐसी दशा होती है, इसलिये प्रवृत्तिमार्गमें किये गये कर्मको ही इसलोक और परलोकमें संसारका उत्पादक कहते हैं ॥ २३ ॥ यदि राजा आदिक बन्धनसे कभी यह छूट भी गया तो फिर जिसके लिये यह बन्धनमें पड़ा था उसी चीजको कोई दूसरा ही छीन लेता है और उसके हाथसे भी कोई तीसरा (विष्णुमित्र आदि) छीन लेता है, यों यह उसका भोग नहीं करने पाता ॥ २४ ॥ कभी शीत-वातादि अनेक आधिदैविक आदि जो दुःखदायक दशाएँ हैं उनके निवारणमें असमर्थ होकर भयङ्कर चिन्तासे विषण्ण हो जाता है ॥ २५ ॥ कभी परस्पर व्यवहार करते हुए थोड़सा ही धन या एक पैसा या कौड़ी ही क्यों न हो, दूसरेका जब अपहरणकर लेता है या कुंजुसीके कारण इससे भी कम किसीका धन रख लेता है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तब धोखा देनेके कारण उससे द्वेष पैदाकर लेता है ॥ २६ ॥ इस मार्गमें सुख, दुःख, राग, द्वेष, भय अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, जरा, मरण इत्यादि उपसर्ग हैं ॥ २७ ॥ कभी देवमायाके समान स्त्रीके भुजलतामें आलिंगित होकर विवेक, ज्ञान खोकर उसके साथ विहारके लिये घरकी चिन्तामें व्याकुल होकर उसके आश्रित पुत्र, पुत्री, स्त्रियोंके भाषण, अवलोकन इत्यादि चेष्टाओंसे आकृष्टहृदय होकर इन्द्रियोंके अधीन बनकर अजितेन्द्रिय यह अपनी आत्माको अपार अन्धतममें भेजता है ॥ २८ ॥ कभी भगवान् ईश्वर विष्णुके परमाणवादि द्विपरार्धात्मक कालरूपी चक्रके शीघ्रभ्रमणसे परिवर्तित वयक्रमसे ब्रह्मासे लेकर तृणस्तम्बतक सभी भक्तोंकी आयुका क्षणमात्रमें देखते-देखते जब हरण होता है, तब उससे त्रस्त होकर कालचक्रायुधधारी उसी ईश्वर साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुषको छोड़कर आर्यशास्त्रसे निषिद्ध, निर्मूल, काक, गिद्ध, बगुला,

मात्रमप्यपहरन्यत्किञ्चिद्वा विद्वषमेति वित्तशाठ्यात् ॥ २६ ॥ अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥ २७ ॥ क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेक-विज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥२८॥ कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानाम-निमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ॥ २६ ॥ यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याराधनमेव तदरोचयन् शूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावकुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥ तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु

बरगद इत्यादि पाखण्डियोंके देवताओंका प्रमाणहीन उनके शास्त्रोंको मानकर आश्रयण करता है ॥ २६ ॥ जब अपनेको ही धोखा देनेवाले उन सब पाखण्डियोंसे धोखा पाता है तब फिर ब्राह्मणोंका आश्रयण करता है। किन्तु उपनयनादि स्मार्त श्रौत कर्मानुष्ठानसे भगवान् यज्ञपुरुषका आराधनरूपी उनके शीलको न पसन्दकर बानर जातिके समान कुटुम्बभरण और स्त्री समागमही जिनका काम है ऐसे शास्त्रोंमें कथित अशुद्धाचारासे युक्त शूद्रोंके पीछे पड़ता है ॥ ३० ॥ वहाँ भी अनिर्बंध रीतिसे स्वेच्छासे क्रीड़ा करते हुए इसकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त होकर कृपण बन जाती है और तदनन्तर यह परस्पर मुखनिरीक्षण आदि ग्राम्यकर्मसे ही अपनी मृत्युकी अवधि भूल जाता है ॥ ३१ ॥ कभी बानर जैसे पेड़पर रमण करते हैं वैसेही ऐहिक सुखोंसे भरे हुए घरोंमें आनन्द माननेवाला यह स्त्री-पुत्रोंमें रत होकर मैथुनपरायण रहता है ॥ ३२ ॥ इस तरह इस संसारमार्गमें सुख दुःखोंका अनुभव करते हुए यह जीव-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समूह किसी गिरिकन्दराके समान रोगादि भयंकर आपत्तियोंमें पड़कर मृत्युरूपी हाथीके भयसे कांपता है ॥ ३३ ॥ कभी शीत, वात आदि अनेक दैविक या भौतिक दुःखोंके प्रतिकारमें असमर्थ होकर दुरन्त विषयोंकी चिन्तासे व्याकुल होता है ॥ ३४ ॥ कभी परस्पर व्यवहार करते-करते वित्तशाठ्यसे यानी दूसरोंको धोखा देकर कुछ धन पा जाता है ॥ ३५ ॥ कभी नष्ट धनवाला होकर शय्यासनादि उपभोगोंसे हीन होनेसे जब इसका मनोरथ पूर्ण नहीं होता तब अन्यान्य मनोरथ पूर्ण करनेके लिये बुद्धिसे निश्चय करके तदनुसार व्यवहार करन लग जाता है और बुद्धि खोकर इधर-उधर लोगोंसे अपमान आदि पाता हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार पैसेके कारण वैरादि होनेपर भी पूर्ववासनासे आपसमें विवाद करता है और फिर उस सम्बन्धको तोड़ देता है ॥ ३७ ॥ इस संसारमार्गमें नानाविध क्लेशों तथा उपद्रवोंसे पीड़ित होकर जहाँ जो कोई आपत्तिमें फँसा हुआ रहता है या मृत्युको प्राप्तकर चुका रहता है उसे उसका सम्बन्धी

रंस्यन्यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥ ३२ ॥ एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥ ३३ ॥ क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥ ३४ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किञ्चिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥ ३५ ॥ क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ॥ ३६ ॥ एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन्बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन्संहृष्यन्गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥ ३८ ॥ यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपसमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥ ३९ ॥ यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किन्तु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धायां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ॥ ४० ॥ कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलो-

वहीं छोड़कर नये-नये उत्पन्न हुए पुत्रादिकों को लेकर शोक, मोह, भय, विवाद, निन्दा, हर्ष और गान करते हुए भगवान्‌की मायामें बँधकर भगवद्भक्तके सिवा दूसरा कोई भी आजतक जीव नरलोकके उत्पन्न होनेके स्थान तथा सारे संसारके समाप्ति स्थान उस भगवान्‌के नजदीक लौटकर नहीं आता, जिस भगवान्‌को मार्गकी परम अवधि कहते हैं ॥ ३८ ॥ संन्यासी उपशमशील, शान्तमनस्क मुनिलोग जिस भगवान्‌के योगानुष्ठानको पालते हैं उसको ये संसारपतित लोग नहीं पाते ॥ ३९ ॥ जो राजर्षि इसका आश्रय नहीं करते वे भले वे ही दिग्गजोंपर विजय करें यज्ञ करें किन्तु इस देहमें ममत्वाभिमान रखकर वैर करनेवाले ये उसको छोड़कर स्वयं भी मरकर युद्धमें सोते है ॥ ४० ॥ कर्मवल्लीका आश्रयकर किसी तरह नरकरूपी आपत्तिसे मुक्त होता है, किन्तु फिर भी संसारमार्गमें पड़कर जीवसमूहके साथ हो लेता है। ऊपर स्वर्गमें जाकर भी फिर वहाँसे लौटकर मनुष्यलोकका ही अनुगामी होता है ॥ ४१ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उस भरतका कीर्तिका ऐसा गायन करते हैं। ऋषभपुत्र उस राजर्षिके मार्गका मनसे भी कोई राजा अनुसरण नहींकर सकता, जैसे कि मक्खी गरुड़का अनुसरण नहींकर सकती ॥ ४२ ॥ जो हृदयस्पर्शी, छोड़नेमें असम्भव ऐसे स्त्री, पुत्र, सुहृद और राज्यकी युवावस्थामें ही मलके समान छोड़कर भगवद्भजनमें लग गया ॥ ४३ ॥ उस राजाने दुस्त्यज पृथवी, पुत्र, स्वजन, पैसा, स्त्रियाँ और देवश्रेष्ठ भी जिसको चाहते थे ऐसे दयासे देखनेवाली लक्ष्मी भी छोड़ दी, इसमें आश्चर्य नहीं। मधुद्वेषीकी सेवामें अनुरक्त महात्माओंके लिये मुक्ति भी तुच्छ है ॥४४॥

कसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ॥४१॥ तस्येदमुपगायन्ति ॥ आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मनः ॥ नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥ ४२ ॥ यो दुस्त्यजान्दारसुतान्सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ॥ जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ ४३ ॥ यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ॥ नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥४४॥ यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ॥ नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥ ४५ ॥ य इदं भागवत सभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने परोक्ष्य विवरणं नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥

जिस भरतने अपने मृगशरीरका त्याग करते हुए भी यज्ञरूपी, धर्मपति, विधिनिपुण, ज्ञान जिसका फल है ऐसे योगके स्वामी, प्रकृतिके नियामक नारायणहरिको मेरा नमस्कार है, इस तरह खूब ऊँचे स्वरसे कहा उस भरतके मार्गका अनुसरण करनेवाला कौन होगा ॥ ४५ ॥ जो परमभागवत, प्रशंसनीय, शुद्धगुण कर्मशाली, राजर्षि भरतका कल्याणकर, आयुष्कर, यशस्कर, धन्य, स्वर्ग-मोक्षदायक चरित्रको सुनता है, कहता है या अभिनन्दन करता है वह भगवान्से सब स्वतः पाता है, दूसरेसे कुछ नहीं चाहता ॥ ४६ ॥

चौदहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, यह जो जीव समूह है वह भगवान्की मायाके कारण देहात्म वादियोंके सत्त्वादिक गुण विशेषोंके कारण विभक्त हुए भले, बुरे या मिश्रित कर्मोंसे निर्मित देह समूहोंके संयोग, वियोग आदि अनादि संसारानुभवके द्वार भूत छः इन्द्रियोंके द्वारा कुमार्गपर आकर अपनी देहसे निस्पादित कर्मका अनुभव करते हुए संसाररूपी जङ्गलमें जाकर अपने सभी प्रयत्नोंके विफल होनेपर भी सांसारिक तापका शामक भगवान्के चरण कमलके भृङ्गोंके मार्गका आज भी अनुसरण नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करता। हे राजन्, उपशम शील मुनि लोग जिसे प्राप्त कर सकते हैं। संसार पतित लोग उसे नहीं कर सकते। हे महीपते, उस राजर्षि भरतके मार्गका कोई राजा मनसे भी अनुसरण नहीं कर सकता। उसकी महिमा आज भी गायी जाती है। भरतके कल्याण मय चरितको जो सुनता या कहता है भगवान्से वह सब कुछ स्वतः पाता है दूसरे से वह कुछ नहीं चाहता। चौदहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❀

[भरतके वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—भरतको सुमति नामक पुत्र हुआ। भगवान् ऋषभके जीवन्मुक्त मार्गका अनुसरण करनेवाले उसकी कलियुगमें कुछ पाखण्डी अनार्यलोग वेदमें उल्लेख न होनेपर भी अपनी पापीयसी कलियुगी बुद्धिसे देवता समझेंगे ॥ १ ॥ सुमतिसे वृद्धसेवा नामक पत्नीमें देवताजित् नामक पुत्र हुआ ॥ २ ॥ देवताजित्को असुरीमें देवद्युम्न नामक पुत्र हुआ। उसका धेनुमतिमें परमेष्ठी नामक पुत्र हुआ। उससे सुवर्चलामें प्रतीह उत्पन्न हुआ ॥३॥ उस प्रतीहने लोगोंको आत्मविद्याका उपदेश दिया और स्वयं भी उससे शुद्ध होकर महापुरुष

श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव *चित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥ १ ॥ तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २ ॥ अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्न-स्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥ ३ ॥ य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥ ४ ॥ प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥ ५ ॥ भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गी-

भगवान्का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त किया ॥४॥ प्रतीहसे सुवर्चला नामक पत्नीमें प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता नामक तीन यज्ञनिपुण पुत्र हुए। प्रतिहर्ताको स्तुतिमें अज और भूम नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ भूमका पुत्र ऋषिकुल्यामें उद्गीथ हुआ। उससे देवकुल्यामें प्रस्ताव हुआ। प्रस्तावसे नियुत्सामें पुत्रविभु हुआ। विभुकी रतिमें पृथुषेण हुआ। उससे आकुतिमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नक्त उत्पन्न हुआ। नक्तसे द्रुतिमें गयनामक पुत्र हुआ। यह गय राजर्षि प्रवर और उदारकीर्ति था। जगद्रक्षणके लिये सत्त्वगुणधारी साक्षात् विष्णुभगवान्का यह कलांश अवतार था। वशित्वादिगुणोंसे वह महापुरुष हुआ ॥ ६ ॥ उसने अपने प्रजाका पालन-पोषण, लालन-प्रीणन, अनुशासनरूप और यज्ञरूपधर्मसे तथा महापुरुष परब्रह्ममें सब तरहसे अर्पित करते हुए ब्रह्मज्ञानियोंकी चरणसेवासे प्राप्त परमार्थ भगवद्भक्ति योगसे शुद्ध एवं संस्कृत बुद्धि होकर 'देहादि मैं नहीं हूँ' इस अहंभावसे रहित शुद्धचित्तमें ब्रह्मस्वरूप आत्माका स्वयं अनुभव प्राप्त करके भी अभिमानरहित होकर ही पृथिवीका पालन किया ॥ ७ ॥ पाण्डेय, पुराविद् सज्जनोंके द्वारा इसकी इस तरहसे कीर्ति गाई जाती है ॥८॥ कौन ऐसा यज्ञका अभिमानी धर्मरक्षक बहुज्ञ राजा है जो गयका अनुकरणकर सकता है। भगवान्के अंश गयको छोड़कर कौन दूसरा वैसा श्रीमान्, सज्जनोंकी सभाका पति और सज्जनोंका सेवक है ॥ ९ ॥ जिनका आशीर्वाद

थस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥ ६ ॥ स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयापादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥ ७ ॥ तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद उपगायन्ति ॥८॥ गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ॥ समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥ ९ ॥ यमभ्यषिञ्चन्परया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ॥ यस्य प्रजानां दुदुहे धराशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥ १० ॥ छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्दुदूहुराजह्रुर्बलिं नृपाः ॥ प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥ ११ ॥ यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ॥ श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥ १२ ॥ यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात् ॥ प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्ग-

सत्य है ऐसी श्रद्धा, मैत्री, दया इत्यादि सती दक्षकन्याओंने परम आनन्दपूर्वक नदियोंके जलसे उसका अभिषेक किया। निष्काम उसके गुणरूपी वत्सके कारण, जिसके थनमेंसे दूध चू रहा है ऐसी गोरूपी पृथिवीने निष्काम प्रजाओंके अनेक अभीष्ट पूर्ण किये ॥ १० ॥ न चाहनेपर भी वेदविहित कर्मों ने उपभोग, युद्धमें बाणसे पूजित राजाओंने बलि, और धर्मसे (पालन और दक्षिणादिसे) पूजित ब्राह्मणोंने परलोकमें काम आनेवाले धर्मका छठा अंश उसको दिया ॥ ११ ॥ उसके अतिसोम पानयुक्त यज्ञमें इन्द्रके मतवाला होनेपर यज्ञपुरुष भगवान्ने स्वयं श्रद्धा और विशुद्धभक्तिसे समर्पित यज्ञका फल ग्रहण किया ॥ १२ ॥ जिसके प्रसन्न होनेसे देव, तिर्यक्, मनुष्य, लता, तृण, इत्यादि ब्रह्मदेवतक सभी प्रसन्न होते हैं, सर्वान्तर्यामी स्वयं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आनन्दरूप उस भगवान्ने गयके यज्ञमें मैं अत्यन्त तृप्त हूँ, यों अपनी प्रसन्नता प्रकट की ॥ १३ ॥ गयसे गयन्तिमें चित्ररथ, सुगति और अवरोधन नामक तीन पुत्र हुए। चित्ररथसे ऊर्णामें सम्राट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४॥ उससे उत्कलामें मरीचि हुआ। उससे विन्दुमतिमें विन्दुमान् उत्पन्न हुआ। उससे सरघामें मधुनामक पुत्र हुआ। मधुका सुमनसमें वीरव्रत हुआ। उसके भोजमें मन्थु और प्रमन्थ दो पुत्र उत्पन्न हुए। मन्थुका सत्यामें भौवन, उसका दूषणामें त्वष्टा और उसका विरोचनामें विरज पुत्र हुआ। विरजके विशूचीमें शत-

यस्य ॥ १३ ॥ गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥ १४ ॥ तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुनामाऽभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां त्वष्टाऽजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥ १५ ॥ तत्रायं श्लोकः। प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ॥ अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

जित्प्रमुख सौ पुत्र हुए तथा एक कन्या हुई ॥ १५ ॥ इस विषयमें यह श्लोक है कि इस प्रियव्रतके वंशके अन्तमें उत्पन्न विरजने, विष्णु जैसे देवसमूहोंको अलंकृत करते हैं, वैसेही अपनी कीर्तिसे अलंकृत किया ॥ १६ ॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भरतकी चौदहवीं पीढ़ीमें गय उत्पन्न हुआ। वह गय भगवान्का अंशावतार था। उसने धर्मसे प्रजाओंका पालन-पोषण किया और अनेक यज्ञ किये। हे महीपते, गयकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें विरज उत्पन्न हुआ। उस राजर्षि विरजने प्रियव्रतके वंशको भलीभाँति अलंकृत किया। पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ षोडशोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥ १ ॥ तत्रापि

[भूगोलमें इलावृत खण्डका वर्णन]

राजाने कहा—हे भगवन्, आपने जहाँतक आदित्य तपता है या नक्षत्रगणोंके साथ यह चन्द्रमा दीखता है उस भूमण्डलकी लम्बाई-चौड़ाईका विशेषरूपसे वर्णन किया ॥१॥ उसमें भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे भगवन्, प्रियव्रतके रथके पहियेसे खुदे खन्दकोंके सात समुद्र हुए, जिनके कारण आपने इस भूमिके सातद्वीप विशेषरूपी भाग संक्षेपमें बतलाये। इन सबको ही मैं प्रमाण और लक्षणके साथ पूर्णतः जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥ भगवान्के गुणमय स्थूलरूपमें मन स्थिर होनेके बाद आसानीसे निर्गुण सूक्ष्मतम, स्वयंप्रकाश परब्रह्म वासुदेवमें सुलभतासे स्थिर हो सकता है, अतः हे गुरो, इसका वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ शुकदेवजीने कहा-महाराज, मनुष्य, देवताओंके आयुष्यमें भी मनसे या वाणीसे भगवान्की माया गुणविभूतिके वर्णनमें पार नहीं पा सकता। अतः मुख्यतः भूगोल विशेषका नाम, रूप, प्रमाण और लक्षण बतलाकर व्याख्या करता हूँ ॥ ४ ॥ जो यह भूमण्डलरूपी कमलको सप्तद्वीपरूपी कोषोंके मध्यमें कोषरूपी प्रथम जम्बूद्वीप है वह लक्षयोजन विस्तीर्ण और कमलके पत्तेके समान समगोल है ॥ ५ ॥ उसमें नव हजार योजन विस्तीर्ण नववर्ष हैं, जो आठ सीमा पर्वतोंसे विभक्त हो रहे हैं ॥ ६ ॥ उनके मध्यमें

प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ताः यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन्खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥ २ ॥ भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥ यो वाऽयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥ ६ ॥ एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावताऽन्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥ ७ ॥ उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥ ८ ॥ एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा

इलावृत नामक वर्ष है, जिसके बीचमें सब तरफसे सुवर्णमय, कुलपर्वतोंका राजा मेरु है। वह लक्षयोजन ऊँचा भूमण्डलरूपी कमलमें कर्णिकाके समान है। वह मस्तकपर बत्तीस हजार योजन विस्तीर्ण और मूलमें सोलह हजार योजन विस्तीर्ण है तथा उतनेही योजन पृथिवीमें धँसा हुआ है ॥ ७ ॥ इलावृतके उत्तर-उत्तरमें नील, श्वेत, और शृंगवान् नामक ये तीन-रम्यक, हिरण्मय और कुरुनामक वर्षोंके मर्यादा पर्वत हैं। वे सब पूर्वकी तरफ विस्तृत होते हुए दोनों ओर क्षार समुद्रतक फैले हुए हैं। वे दो दो हजार योजन विस्तीर्ण हैं। वे एक-एक पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा आगे-आगेके क्रमशः दशांशसे कुछ एक अधिक लम्बाईमें ही कम हैं, ऊँचाई और चौड़ाई तो सबकी एक-सी है ॥ ८ ॥ इसी तरह इलावृतके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

हिमालय ये पूर्व पश्चिमतक फले हुए तीन पर्वत हैं। ये क्रमशः हरिवर्ष, किंपुरुष और भारतके मर्यादा पर्वत हैं। ये सभी नील आदिके समान ही दस हजार योजन ऊँचे हैं॥ ९ ॥ उसी तरह इलावृतके पूर्व और पश्चिममें माल्यवान् और गन्धमादन नामक पर्वत अनिल और निषधतक फैले हुए दो हजार योजन विस्तीर्ण हैं। वे केतुमाल और भद्राश्व वर्षकी सीमा बताते हैं॥ १० ॥ मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद ये दसहजार योजन विस्तृत तथा ऊँचे मेरुके चारों तरफ आधारभूत पर्वत विरचित हैं ॥ ११ ॥ इन चारोंपर आम, जामुन, कदम्ब और बरगद ये चार वृक्ष श्रेष्ठ हैं। ये पर्वतके ऊपर ध्वजाके समान हैं। ये ग्यारह सौ योजन ऊँचे और उतनी ही इनका शाखाविस्तार है, इनके तनेका विस्तार सौ योजन है॥ १२ ॥ एवं उनपर दूध, मधु, ऊखका रस, और स्वच्छ जलके चार ह्रद हैं, जिनके सेवनसे हे भरतश्रेष्ठ, उपदेवतागण स्वाभाविक योगैश्वर्य धारण करते हैं॥ १३ ॥ क्रमशः चारोंपर नन्दन, चैत्ररथ,

नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥ ९॥ तथैवेलावृतमवरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥ १० ॥ मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चातुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः ॥ ११ ॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥ १२ ॥ ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥ १४ ॥ येष्वमरपरिवृढाः सहसुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥ १५ ॥ मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥ १६ ॥ तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥ १७ ॥ यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥१८॥ एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बूनाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती

वैभ्राजक और सर्वतोभद्रनामक देवताओंके उद्यान हैं॥ १४ ॥ इन उद्यानोंमें देवश्रेष्ठ देवस्त्रियोंमें ललामभूत सुन्दरियोंके समूहके साथ विहार करते हैं और उपदेवतागण उनकी स्तुति करते रहते हैं॥ १५ ॥ मन्दरपर्वतपर देवताओंके ग्यारह सौ योजन ऊँचे आमके वृक्षसे पर्वत शिखरके समान बड़े-बड़े अमृततुल्य फल गिरते हैं॥ १६ ॥ उन फलोंके फूटनेसे उनमेंसे अत्यन्त मधुर, सुगन्धित, बहुतसा जो लाल-लाल रस चूता है उससे अरुणोदा नामक नदी मन्दिर पर्वतके शिखरसे गिरकर इलावृत खण्डके पूर्वभागको सींचती है॥ १७ ॥ उसके रसके सेवनके कारण भवानीकी दासियोंके जो पुण्यजनों की स्त्रियाँ हैं, अवयवोंके स्पर्शसे जो सुगंधि हवा बहती है वह चारो ओर दस योजनोंको सुगन्धि करती है॥ १८ ॥ एवं अत्यन्त ऊँचेसे

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गिरकर फूटे हुए हाथीके शरीरके समान और अत्यन्त छोटे बीजोंवाले जामुनोंके फलोंके रससे जम्बूनामकी नदी बहती है। वह मेरुमन्दरके शिखरपरसे दस हाजार योजन ऊपरसे पृथिवीपर गिरकर अपने दक्षिणके इलाघृतके भागको सींचती है ॥ १६ ॥ उसके दोनों तटकी जो मिट्टी है वह उसके रससे भीगती है और वह हवा तथा सूर्यकी किरणोंके संयोग से सूखनेपर सदा देवलोकके आभरणों का साधन जाम्बुनद नामक सोना बन जाती है ॥ २० ॥ उसको देवता आदि स्वर्गीयलोग अपनी स्त्रियोंके साथ किरीठ, कटक, करधनी इत्यादि आभरणोंके रूपमें धारण करते हैं ॥ २१ ॥ सुपार्श्व पर्वतपर जो उगा हुआ महाकदम्बका वृक्ष है उसके कोटरों से पाँच आदमीकी वाहोंमें सटे इतनी बड़ी पाँच मधु-धाराएँ निकलती हैं। वे सुपार्श्वके शिखरसे नीचेकी ओर गिरकर अपने पश्चिमकी ओर इलाघृतको शोभित करती हैं ॥ २२ ॥ उन्हें पीनेवालोंके मुखसे निकले हुए वायुसे चारो ओरका सौ योजन प्रदेश सुगन्धित होता

दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥ १६ ॥ तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमर-लोकाभरणं जाम्बूनदं नामसुवर्णं भवति ॥ २० ॥ यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥ २१ ॥ यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो बिनिः सृताः पञ्चायामपरिणाहा पञ्च मधुधाराः सुपार्वशिखरात्पतन्त्योऽपरे-णात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥ २२ ॥ या ह्युपयुञ्जानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजतमनुवासयति ॥ २३ ॥ एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीना: पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्त-स्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥ २४ ॥ यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गा-कनिपधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ता ॥ २६ ॥ जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ

है ॥ २३ ॥ इसीप्रकार कुमुद पर्वतपर उगा हुआ जो शतवल्श नामका बरगद है उसके स्कन्धों से नीचेकी ओर दूध, दही, मधु, घी, गुड़ान्न, वस्त्र, शय्या, आसन, आभरण इत्यादि चाहे जो पदार्थ देनेवाले नंद गिरते हैं। वे कुमुदपर्वतके शिखरपरसे गिरते हुए इलाघृतके उत्तर भागको सींचते हैं ॥ २४ ॥ इनका सेवन करनेवालोंको झुर्रियाँ पड़ना, केश सफेद होना ग्लानि, पसीना, दुर्गन्धि, बुढ़ौती, रोग, मृत्यु, शीतता उष्णता और शरीरका वर्ण बुरा हो जाना इत्यादि विशेष पीड़ाएँ कभी नहीं होतीं। उनको यावज्जीवन निरतिशय सुखही होता है ॥ २५ ॥ कर्णिकामें केसरके समान मेरुके मूलदेशमें चारो ओर कुरंग, कुरर, कुसुम्य, वैकंक, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शंख, वैदूर्य जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर, नारद आदि नामके बीस पर्वत विरचित हैं ॥ २६ ॥ मेरुकी पूर्वदिशामें अठारह हजार योजन लम्बे दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे, दक्षिणोत्तर फैले हुए जठर और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवकूट नामके दो पर्वत हैं। इसीप्रकार पश्चिमकी ओर पवन और परियात्र, दक्षिणमें कैलास और करवीर तथा उत्तरकी ओर त्रिशृंग और मकर ये पर्वत हैं। इन आठों पर्वतोंसे चारो ओर परिस्तृत अग्निके समान सुवर्णपर्वत मेरु शोभता है ॥ २७ ॥ मेरुपर्वतके शिखरपर मध्यभागमें भगवान् ब्रह्मदेवकी पुरी विरचित है। वह एक अयुत योजन विस्तृत, चौकोनी सम और

प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैःपरिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥ २७ ॥ मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥ २८ ॥ तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥ २९ ॥ इति श्रीम० म० पु० पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सुवर्णमय है, ऐसा लोग कहते हैं ॥ २८ ॥ उसको घेरकर आठों दिशाओंमें उसके चतुर्थांश प्रमाणवासी आठ लोकपालोंकी उनके वर्णके अनुसार विरचित आठ नगरी हैं ॥ २९ ॥

सोलहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्की विभूतिका वर्णन करना बड़ा कठिन है, फिर भी संक्षेपसे मैं भूगोलका वर्णन करता हूँ, सुनिये। सातों द्वीपोंके बीचमें जम्बूनामक महाद्वीप है। इसके भीतर नव वर्ष हैं। इस द्वीपके मध्यमें इलावृत नामक वर्ष है। उसके बीचमें सुमेरुपर्वत है, जो आठ कर्णिका पर्वतोंसे घिरा है। जम्बूद्वीपके बीचमें स्थित इलावृत वर्षके दक्षिणमें हरिवर्ष, किंपुरुषवर्ष, और भारतवर्ष है। इन तीनोंकी सीमा निर्धारण करनेवाले निषध, हेमकूट और हिमालय हैं। इलावृतके उत्तरमें रम्यकवर्ष हिरण्मयवर्ष और कुरुवर्ष है। इनकी सीमा निर्धारण करनेवाले नील, श्वेत् और शृङ्गवान् पर्वत हैं। इलावृतके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष है, जिसकी सीमाका निर्धारण गन्धमादनपर्वत करता है और इस इलावृतके पश्चिममें केतुमाल नामक वर्ष है, जिसकी सीमा निर्धारण करनेवाला माल्यवान् पर्वत है। हे महीपते, ऐसी तो इस जम्बूद्वीपकी परिस्थिति है। सोलहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❀

श्रीशुकउवाच ॥ तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तः प्रविष्टा या बाह्यज-

[जम्बूद्वीपकी नदियों तथा इलावृतवर्षका वर्णन]

श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, बलिके यज्ञमें साक्षात् त्रिविक्रममूर्ती विष्णुभगवान्ने दाहिने पैरसे पृथिवी आक्रान्त करके जब बायां पैर उठाया तब उनके अंगूठेके नखसे ब्रह्माण्ड ॥३६॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कटाहका ऊपरका भाग फूट गया । तदनन्तर उसके छिद्रसे बाहरके जलकी धारा अन्दर आ गई । उससे भगवान्‌के चरणकमल ब्रह्माजीने धोये । उसके कारण वह लाल कुंकुमरूपी किंजल्क से रंजितहो गई । वह भगवत्पदी नामसे पुकारी जाने लगी हजारों युगोंमें समाप्त होनेवाले बड़े भारी कालमें स्वर्गके मस्तकपर उतरी, जिस स्वर्गके मस्तकको विष्णुपदी कहते हैं । यह पवित्रधारा सम्पूर्ण जगत्‌के पापरूपी मलोंको दूर करती हुई भी स्वयं उन मलोंसे शून्य रहती है ॥ १ ॥ उस विष्णुपदमें उत्तानपादपुत्र, वीरव्रत, परमभागवत ध्रुव उस धाराको अपने कुलदेवताके चरणारविन्दका उदक समझकर आज भी सर्वदा परम-आदरसे सिरपर धारण करते हैं । उसको धारण करते हुए प्रतिक्षण बढ़ती हुई भक्तिके योगसे उनका हृदय अत्यन्त आर्द्र हो जाता है । उत्कण्ठासे विवश होकर उनकी आँखें मुँद जाती हैं और उन कमलकोरकोंके समान आँखोंसे निर्मल अश्रुप्रवाह निकलता रहता है । उनके शरीरपर रोमाञ्च आते रहते हैं ॥२॥ उसके

लधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोभिधीयमानातिमहताकालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥ यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥ २ ॥ ततः सप्तऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवती सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥ ३ ॥ ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसङ्कुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥ ४ ॥ तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीताऽलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥ ५ ॥ सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥ ६ ॥ एवं

बाद सर्वात्मक भगवान् वासुदेवमें सतत भक्तियोग लाभसे ही सभी अर्थोंको तुच्छ माननेवाले आत्मज्ञानी सप्तर्षिलोग उस गंगाके प्रभावको जानकर तपकी यही मानो आत्यन्तिक सिद्धि मिली है ऐसा मानते हुए बड़े आदरके साथ अपने जटाकलापमें आज भी उसे धारण करते हैं, जैसे मोक्ष चाहनेवाले प्राणी अपने आप आई हुई मुक्तिको धारण करते हैं ॥३॥ तदनन्तर अनेकसहस्रकोटि विमानों के समूहों से संकुल आकाशमार्गसे उतरती हुई चन्द्रमण्डलको प्लावित करके ब्रह्मसदन मेरुके शिखरपर गिरती है ॥ ४ ॥ वहांसे चार भागोंमें विभक्त होकर चार दिशाओं में बहती हुई सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इन नामोंसे समुद्र में गिरती है ॥ ५ ॥ सीता ब्रह्मसदनसे केसर पर्वतों के शिखरोंसे नीचे बहती हुई जाते-जाते गन्धमादनके मस्तकपर गिरकर भद्राश्ववर्षके बीचमें होकर बहती हुई पूर्व दिशामें जाकर क्षार समुद्रमें गिरती है॥ ६ ॥ एवं माल्यवान्‌के शिखरसे गिरकर अप्रतिहत वेगसे केतुमालवर्षमें बहती हुई चक्षु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पश्चिम दिशामें समुद्रमें गिरती है ॥ ७ ॥ भद्रा उत्तर दिशामें मेरु शिखरसे गिरकर एक शिखरसे दूसरे शिखरपर गिरती हुई श्रृंगवान् पर्वतके शिखरपरसे गिरकर उत्तर कुरुमें बहती हुई उत्तर समुद्रमें गिरती है ॥ ८ ॥ उसी तरह अलकनन्दा मेरुसे अनेक शिखरों का अतिक्रमणकर अत्यन्त वेगसे हेमकूटसे हिमकूटपर गिरती हुई भारतवर्षमें बहती हुई दक्षिण दिशामें समुद्रमें गिरती है, वहां स्नानके लिये आनेवाले पुरुषों को पग-पगपर अश्वमेध, राजसूयों का फल दुर्लभ नहीं है ॥ ९ ॥ मेरु आदि पर्वतों से निकली हुई अनेक वर्षोंमें बहनेवाली अन्य सैकड़ों नद और नदियाँ भी हैं ॥१०॥ इन वर्षों में भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है बाकी आठ वर्ष स्वर्गीय लोगोंके पुण्यशेषका उपभोग करनेके स्थान हैं। उन्हें भौम स्वर्गका स्थान कहते हैं ॥ ११ ॥ इन वर्षों में मनुष्य मानसे दसहजार वर्ष आयुवाले देवसमान, दस हजार हाथियोंके बलवाले, वज्रके समान दृढ़ शरीरवाले, लोग रहते हैं। वे बल और वयके आनन्दसे युक्त दीर्घकालीन

माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥ भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥८॥ तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥ ९ ॥ अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो देवकल्पानांमेर्वागिरिदुहितरः शतशः ॥ १० ॥ तत्रापि भारतमेववर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥ ११ ॥ एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥ १२ ॥ यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तवकफलकिसलयश्रियानम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरन्द-

सुरतमें मग्न रहते हैं। इस तरहके सुरतके अनन्तर एक वर्ष जब आयु शेष रहती है तब उनकी स्त्रियाँ सिर्फ एक गर्भ धारण करती हैं। वहाँ त्रेतायुगके समान समय रहता है ॥ १२ ॥ उन प्रदेशोंमें सभी ऋतुओंमें होनेवाले फूलोंके गुच्छे, पल्लव, फलोंकी शोभासे नम्र शाखावाली लताओं और वृक्षोंसे शोभित रुचिर वन तथा आश्रम जहाँ हैं ऐसे वर्षपर्वतोंके दरियोंमें एवं नानाविध विकसित नवीन कमलोंके आमोदसे आनन्दित राजहंस, जलमुर्ग, कारण्डव, सारस और चक्रवाक आदि पक्षियोंके तथा नाना जातीय भौरोंके समूहके कूजनसे युक्त निर्मल जलाशयोंमें देवश्रेष्ठ लोग सुन्दर ललनाओंके कामयुक्त विलास, हास, लीलावलोकन इत्यादिसे आकृष्टमान दृष्टिवाले होते हुए जल क्रीडादि विचित्र विनोदोंसे स्वैर विहार करते हैं। वहाँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके सेवकोंके नायक उनकी सहायता करते हैं ॥ १३ ॥ इन नवो वर्षों में भगवान् महापुरुष नारायण वहाँ के भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये अभी भी अपनी मूर्तियोंसे सन्निहित रहते हैं ॥ १४ ॥ इलावृतमें तो भगवान् शंकर ही अकेले पुरुष रहते हैं, दूसरा कोई पुरुष वहाँ भवानीका शाप जानकर प्रवेश नहीं करता। वहाँ जानेसे सभी स्त्री हो जाते हैं इत्यादि सब आगे कहेंगे ॥ १५ ॥ भवानीकी परिचारिका-सी असंख्य स्त्रियोंसे सेवित होकर शंकर भगवान् चतुमूर्ति महापुरुषकी चतुर्थ संकर्षण नामक अपनी प्रकृतिभूत तामसीमूर्तिको समाधिके द्वारा चित्त में ध्यानकर यह मन्त्र जपते हुए स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥ शंकर कहते हैं—सभी गुणोंके प्रकाशक, अनन्त, अव्यक्त महापुरुष भगवान्को बार-बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे भजनीय आपका पादपङ्कज ही शरण है। समस्त ऐश्वर्यके परम स्थान, भक्तोंको अच्छी तरह अपना भूतभावनरूप दिखानेवाले तथा उनका संसार छुड़ानेवाले और अभक्तोंको संसार देनेवाले आप

रीणां कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥ १३ ॥ नवस्वपि वर्षेषु भगवन्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्वव्यूहेनात्मनाद्यापि सन्निधीयते ॥ १४ ॥ इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्नह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥ १५ ॥ भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥श्रीभगवानुवाच॥ ॐनमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥ भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलंभावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥१८॥ न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १९ ॥ असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रियाव यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥ २० ॥ यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ॥ न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥ २१ ॥ यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ॥ यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा

परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ ॥ १८ ॥ नियमनके लिये समस्त विश्वका निरीक्षण करनेपर भी मायागुणोंसे या चित्तवृत्तियोंसे आपकी दृष्टि तनिक भी लिप्त नहीं होती। जैसे क्रोधावेगको न जीतनेवाले हमलोगों की होती है। फिर इन्द्रियों को जीतनेकी इच्छा करनेवाला कौन मुमुक्षु आपका भला आदर नहीं करेगा ॥ १९ ॥ मिथ्या दृष्टिवालेको आप अपनी मायासे मत्तके समान, मधु-मद्यसे अरुणादयनवालेके समान भयङ्कर दीखते हैं। आपके अर्चनमें पादारविन्दके स्पर्शसे ही नाग-वधुओं की इन्द्रियाँ और मन मोहित हो जाते हैं और फिर वे लज्जाके कारण मुखादि अवयवों की पूजा नहींकर सकतीं ॥ २० ॥ अनन्त आपको ऋषिलोग सृष्टि, स्थिति, लयका कारण तथा उन तीनोंसे रहितमानते हैं। आपके हजार मस्तकोंके उपर यह भूमण्डल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राईके समान कहाँ स्थित है, आपको उसका कुछ पता ही नहीं ॥ २१ ॥ आपने ही पहले गुणों से महान् नामक शरीर धारण किया। वही ज्ञानाश्रय भगवान् ब्रह्मा आप हैं। उसीसे मैं उत्पन्न हुआ और त्रिगुणात्मक निज तेजसे (अहंकारसे) वैकारिक (देवताओं), तामस (भूतवर्गों) और राजस (इन्द्रियवर्गों) को उत्पन्न करता हूँ ॥ २२ ॥ महात्मा आपके ही

वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥ २२ ॥ एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः ॥ महानहंवैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥ २३ ॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ॥ न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

वशमें ये हमलोग सूत्र में बँधे पक्षीके समान स्थित हैं। आपके ही अनुग्रहसे हम सबलोग महान्, अहंकार, वैकारिक, तामस और इन्द्रिय इत्यादिरूप यह सृष्टि करते हैं ॥ २३ ॥ गुणोंकी सृष्टिसे मोहित लोग आपके द्वारा निर्मित कर्मरूप ग्रन्थियुक्त मायाको ही सहजमें देखते हैं, किन्तु उससे शीघ्र निकलनेके उपायको कभी न हीं देखते। आपहीमें विश्वका उदय अस्त होता है ऐसे आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥

सत्रहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, बलिके यज्ञमें भगवान्के पैर के नखके धक्केसे ब्रह्माण्ड कटाहके ऊपरका भाग फूटकर अन्दर जो बाहरके जलका प्रवाह आया उसीसे ब्रह्माजीने भगवान्के चरण धोये। वह धारा कुछ समयमें, जिसको विष्णुपद कहते है उस स्वर्गमें आकर गिरी। फिर वहाँसे वह चन्द्रमण्डलको प्लावित करती हुई आकाशमार्गसे मेरुके शिखरपर, वहाँसे वह चार भागोंमें फूटकर सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामोंसे चारो ओरके समुद्रमें गिरती है। सीता पूर्वदिशामें गन्धमादन पर्वतपर गिरकर भद्राश्ववर्षको सींचती हुई समुद्रमें गिरती है। चक्षुनामक धारा माल्यवान्के शिखरसे गिरकर केतुमाल वर्षको सींचकर पश्चिम समुद्रमें गिरती है। भद्रा एकसे दूसरे पर्वतशिखरपर गिरती हुई शृङ्गवान्से गिरकर उत्तर कुरुमें बहती हुई समुद्रमें गिरती है। अलकनन्दा मेरुसे निकलकर हेमकूट पर्वतोंपरसे होती हुई भारतवर्षमें बहकर दक्षिण समुद्रमें गिरती है। उसमें स्नान करनेके लिये जानेवालोंको पग पगपर अश्वमेधादि यज्ञोंका पुण्य मिलता है। इनमें भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है और बाकी पुण्यशेषके उपभोगके स्थान हैं। इलावृतमें भगवान् शंकर अकेले ही रहते हैं पार्वतीके शापके कारण वहाँ दूसरा पुरुष नहीं जाता। भवानीकी असंख्य दासियाँ शंकरकी सेवा करती हैं। भगवान् शंकर अपनी कारणीभूत भगवान्की संकर्षण मूर्तिका आराधन करते रहते हैं। सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ❈

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ अष्टादशोऽध्यायः ❋

[जम्बूद्वीपके भद्राश्वादि वर्षोंका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भद्राश्व वर्षमें धर्मका पुत्र भद्रश्रवा नामक वर्षपति अपने सेवकों में मुख्य पुरुषोंके साथ साक्षात् भगवान् वासुदेवकी प्रियधर्ममय हयग्रीव मूर्तिका परमसमाधिमें ध्यानमग्न होकर प्रत्यक्ष करके इसप्रकार जप करते हुए उसकी स्तुति करते हैं ॥१॥ भद्रश्रवा प्रमुख कहते हैं—चित्तको शुद्ध करनेवाले धर्मात्मक भगवान्को नमस्कार है ॥२॥ अहो ! भगवान्की माया विचित्र है, जो लोग देखते हुए भी प्राणियों का संहारकर रही मृत्युको नहीं देखते और तुच्छ विषयसुखके सेवनके लिये पापका ही ध्यान करते हुए मरे हए पुत्र तथा पिता दोनों को जलाकर दोनोंके धनसे खुद जिन्दा रहना चाहते हैं ॥ ३ ॥ विद्वान् लोग शास्त्रोंके द्वारा विश्वको नश्वर कहते हैं और अध्यात्मज्ञानी समाधिमें वैसाही देखते भी हैं।

श्रीशुकउवाच ॥ तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः तुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनूं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥ १ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥ ३ ॥ वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥ वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ॥ प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥ ६ ॥ हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरण-

फिर भी लोग हे अज, तुम्हारी मायासे मुग्ध हो जाते हैं, तुम्हारा कृत्य विचित्र है, अतः मैं शास्त्रादिमें श्रम न कर जन्मरहित तुम्हारी शरण जाता हूँ, तुम्हें नमस्कार है ॥ ४ ॥ अकर्ता और आवरण रहित होनेपर भी विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयरूपी कर्म तुममें ही वेदोंने अंगीकार किया है। किन्तु इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि मायासे सर्वात्मक और कार्यको उत्पन्न करनेवाले तथा वस्तुतः इनसे अलग रहनेवाले हो, अतः तुममें यह ठीकही है ॥५॥ युगान्तमें दैत्य जब वेदोंको रसातलमें उठा ले गया, तब हयग्रीवरूप धारण करके जिसने वेदोंको वापस लाया और चाहनेवाले ब्रह्माको दिया उस सत्यसङ्कल्प भगवान्को नमस्कार है ॥ ॥ ६ ॥ हरिवर्षमें भगवान् नरसिंह रूपसे रहते हैं। उस रूपके ग्रहणका कारण आगे चलकर कहेंगे। महापुरुषोंके गुणोंसे युक्त परमभागवत, दैत्य-दानव कुलको पवित्र करनेवाला जिसका आचरण और शील है ऐसा प्रह्लाद निष्काम तथा व्यवधानशून्य अनन्य भक्तियोगसे उस वर्षमें रहने-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाले पुरुषोंके साथ वहाँपर नरसिंहरूपकी उपासना करते हैं और इसप्रकार स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ तेजोंके भी तेज भगवान् नरसिंहको 'ॐ कारपूर्वक नमस्कार है हे वज्रनख, हे वज्रदंष्ट्र, तुम अतिप्रकट होकर कर्मवासनाओंको नष्ट करो, नष्ट करो। 'ॐ स्वाहा' कहकर अज्ञानान्धकारका ग्रास करो, ग्रास करो। तथा 'ॐ ज्ञौम्' कहकर हमारे हृदयमें रहकर वहाँ अभय निर्माण करो, अभय निर्माण करो ॥ ८ ॥ समस्त विश्वका कल्याण हो। दुष्टलोग क्रौर्य छोड़कर प्रसन्न हों, सभी प्राणी अपनी बुद्धिसे परस्पर कल्याणकी कामना करें। उनका मन उपशमादिका सेवन करें और हम सबकी बुद्धि भी निष्काम होकर अधोक्षज भगवान्में निविष्ट हो ॥ ९ ॥ हमारा संग घर, स्त्री, पुत्र, धन, बन्धु इत्यादिकोंमें न हो, यदि हो भी तो केवल भगवान्के प्रियभक्तोंमें ही हो। जो केवल प्राणवृत्ति से सन्तुष्ट मनोनिग्रही है उसको जैसी शीघ्र सिद्धि मिलती है, इन्द्रियप्रिय मनुष्यको वैसी नहीं मिलती ॥ १० ॥ जिन भगवद्भक्तोंके सङ्गसे प्राप्त

शीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥ ७ ॥ ॐनमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐस्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐक्ष्रौम्॥८॥ स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजं आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥ माऽगारदारात्मज-वित्तबन्धुषु सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥ १० ॥ यत्सङ्गलब्धं निजवीर्य-वैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥ ११ ॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्य-किञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ १२ ॥ हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा-मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम् ॥ १३ ॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृ-हाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताऽकुतोभयमिति ॥ १४ ॥ केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः

अतिशय प्रभाववाल मुकुन्दका महात्म्य श्रवणादिसे ही सेवा करनेवालोंके अन्तरगत मनका मल हरण करता है ऐसे भगवद्भक्तोंकी भला कौन नहीं सेवा करेगा ? गंगादितर्थ तो बार-बार अवगाहन करनेवालोंके शारीरिक मलको ही केवल दूर करते हैं ॥ ११ ॥ जिसकी भगवान्में निष्काम भक्ति है उसमें धर्म ज्ञानादि गुणोंके साथ सभी देवता वास करते हैं व्यर्थ मनोराज्यसे विषयसुखोंके लिए बाहर दौड़नेवाले भगवान्के अभक्त वहाँसे गुण आयँगे ॥ १२ ॥ मछलियोंके लिये जैसे अभिलषित जल आत्मा है वैसेही जीवोंके लिये साक्षात् भगवान् हैं। ऐसे भगवान्को छोड़कर महान् भी जो घरमें यदि असक्त रहता है तो दम्पतियोंका वयसे ही शूद्रादिमें भी प्रसिद्ध जो बड़प्पन है, वही उसका भी है, न कि ज्ञानादिसे ॥ १३ ॥ अतः तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, मान, इच्छा, भय, दैन्य इत्यादिके मूल, जन्म-मरणरूप संसारके मण्डल घरको छोड़कर भगवान् नृसिंहके निर्भय चरणका भजन करो ॥१४॥ केतुमालमें भी संवत्सरके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुत्र जो दिनाभिमानी देवता और पुत्रियाँ जो रात्र्यभिमानिनी देवता छत्तिस हजार हैं उन वर्षपतियोंका तथा लक्ष्मीका प्रिय करनेके लिये भगवान् कामदेवके रूपसे रहते हैं उनके गर्भ भगवान्के चक्र (काल) के तेजसे उद्विग्न होकर गतप्राण विश्वस्त होकरके संवत्सरके अन्तमें गिरते हैं ॥ १५ ॥ भगवान् अपने अत्यन्त सुललितगति-विलाससे शोभित मन्दस्मित सहित अवलोकनकी लीलासे और किंचित् ऊँची सुंदर भौंवोंसे सुंदर वदन कमलकी शोभासे लक्ष्मीको तथा अपनी इन्द्रियोंको आनन्द देते हैं ॥ १६ ॥ रमादेवी संवत्सररूपी प्रजापतिके पुत्रियोंके साथ रातमें एवं पुत्रोंके साथ दिनमें भगवान्के उस मायामय रूपकी परम समाधियोगसे यानी स्थिरचित्तसे उपासना करती हैं और ऐसी स्तुति करती हैं ॥ १७ ॥ सभी श्रेष्ठ वस्तुओंके लक्ष्मीभूत, क्रिया, ज्ञान, संकल्प, अध्यवसाय आदि तथा तत् तत् विषयोंके स्वामी, एकादशेन्द्रिय और पंचविषय जिसके अंश हैं, ऐसे वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्य, अन्नमय, अमृतमय

प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥ १५ ॥ अतीवसुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रू मण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥ १६ ॥ तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमादेवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥ १७ ॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं ओं नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥ स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥ १९ ॥ स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥ २० ॥ या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ॥ तदेव रासोप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भ-

सर्वमय, सहस्, ओजस्, बल सुंदर तथा कामरूप हृषीकेश भगवान्को 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं' इस बीजोच्चारणपूर्वक नमस्कार है। वह हमारे अन्दर और बाहर रहें ॥ १८ ॥ स्त्रियाँ व्रत करके इन्द्रियोंके स्वामी आपकी स्वतः आराधना करके लोकमें दूसरे पतिको चाहती हैं। किन्तु उनके वे पति अपत्य, प्रिय, धन और आयुष्यका संरक्षण नहींकर सकते, क्योंकि वे अस्वतन्त्र हैं ॥ १९ ॥ वही सच्चा पति है जो स्वयं निर्भय होकर पासके भीत लोगों का संरक्षण करता है, वैसे आपही हैं, जो आत्म सन्तुष्ट हैं। आप आत्मलाभसे अधिक दूसरे किसीको नहीं मानते, अन्यथा अगर आप दूसरेके आधीन होते तो आपको अस्वतन्त्रोंके जैसा परस्पर भय रहता ॥ २० ॥ जो कोई केवल आपके पादसरोजकी पूजामात्र चाहती है वह सचमुच सभी कामों में लम्पट है, क्योंकि उसको आप सभी इष्ट देते हैं। जों सकाम होकर यानी किसी दूसरे फलके लिये आपकी पूजा करती है उसको वह भी मिलता है किन्तु हे भगवन्, उसका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपभोग करनेके बाद उसके नष्ट होनेके कारण वह दुःखित होती है ॥ २१ ॥ इन्द्रियसुख चाहनेवाले ब्रह्मा, रुद्र, देव, असुर इत्यादि मेरी प्राप्तिके लिये उग्र तप करते हैं किन्तु हे अजित, आपके पादपरायणको छोड़कर मुझे कोई नहीं पा सकता, क्योंकि आपही मेरा हृदय हैं ॥ २२ ॥ हे अच्युत, आपने भक्तोंके सिरपर जिस हाथको रखा है, वह वन्दित करकमल मेरे सिरपर भी रखिये। वे वरेण्य, आप अपनी मायासे मुझे चिह्नरूपसे अपने हृदयपर धारण करते हैं। आप ईश्वरका इच्छित कौन जान सकता है ॥२३॥ रम्यक वर्षमें उसका स्वामी वैवस्वत मनु, जिसको पहले भगवान्‌ने अपना मत्स्यरूप दिखाया था, भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय उस मत्स्यरूपको अभी भी अत्यन्त भक्तियोगसे आराधन करता है और इस तरह स्तुति करता है ॥२४॥ भगवान् मुख्यतम सत्त्व, प्राण, ओज, सह, बलरूपी महामत्स्यको ओं पूर्वक बार-बार नमस्कार है ॥२५॥ वेदात्मक जिसका नाद है ऐसे तुम समस्त लोकपालोंसे अदृष्टरूपसे अन्दर और

भयाद्वा भगवन्प्रतप्यते ॥ २१ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियोधियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ २२ ॥ स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ॥ बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः—इति ॥ २३ ॥ रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥ २४ ॥ ॐनमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः—इति ॥२५॥ अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ २६ ॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २७ ॥ भवान्युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमः—इति ॥ २८ ॥ हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥ २९ ॥ ॐनमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाया नुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते

बाहर रहते हो। इस विश्वको, जैसे मनुष्य कठपुतलीको नचाता है वैसेही विधि-निषेधादिके अवलम्बनरूप ब्राह्मणादि नामोंसे अपने वशमें लानेवाले ईश्वर तुम हो ॥२६॥ मत्सररूपी ज्वरसे पीड़ित लोकपाल अकेले या मिलकर तुम्हें छोड़कर द्विपाद, चतुष्पाद, जंगम या स्थावर जो कुछ यहाँ दिखाई देता है उसकी रक्षा न कर सके ॥ २७ ॥ प्रलयकालीन, लहरोंसे युक्त समुद्रमें औषधि वनस्पतियोंके निधिभूत इस पृथिवीको मेरे साथ धारण करके हे अज, तुम अपने बलसे चिरकालतक विचरते रहे ऐसे इस जगत्के प्राणियोंके नियन्ता तुम्हें नमस्कार है ॥ २८ ॥ हिरण्मय वर्षमें कूर्मरूपी भगवान निवास करते हैं। उस भगवान्‌की प्रियमूर्तिकी पितृगणके अधिपत अर्यमा वर्ष पुरुषोंके साथ आराधना करते हैं और यह मन्त्र जपते हैं ॥२९॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्पूर्ण सत्त्वगुणमय विशेषणयुक्त, जलचर, कालानवछिन्न, सर्वगत और आधाररूप कूर्मभगवान्को बार-बार नमस्कार है ॥ ३० ॥ जो अनेकरूपोंसे निरूपित हैं, निज मायासे प्रकाशित यह अर्थस्वरूप जिसका रूप जिससे पृथक् जिसके रूपोंकी कोई संख्या नहीं है, क्योंकि सभी पदार्थों की प्राप्ति तो मिथ्यारूपसे ही होती है ऐसे अनिरुक्त प्रपंचाकार उस भगवान्को नमस्कार है ॥ ३१ ॥ जरायुज गर्भ में उत्पन्न हो जाने वाले स्वेदज पसीने से उत्पन्न अण्डज अण्डे से उत्पन्न उद्भिज, चर, ऽचर, देव ऋषि, पितृभूत, इन्द्रिय-सम्बन्धि, द्यौ, आकाश, पृथिवी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि नामाका वाच्य वह एकही है ॥ ३२ ॥ॐअनन्त विशेष नाम, रूप, आकृतिवाले तुममें विद्वानोंसे ये चौवीस संख्याएँ कल्पितकी गई हैं वे भी जिस तत्त्वज्ञानसे निवृत्त होता है ऐसे सांख्य सिद्धान्तरूपी तुम्हें नमस्कार है ॥ ३३ ॥ उत्तर कुरुमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहरूपसे रहते हैं। यह भू देवी

॥ ३० ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ ३१ ॥ जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३२ ॥ यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ॥ संख्या यया तत्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते—इति ॥ ३३ ॥ उत्तरेषु च कुरुषु भगवान्यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषाः भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥३४॥ ॐनमो भगवते मन्त्रतत्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ३५ ॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ॥ मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागणैर्वस्तुनिरिक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३७॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं

कुरुवासियोंके साथ निरन्तर भक्तियोगसे उनका भजन करती हैं और इस परम उपनिषद्को बार-बार कहती हैं ॥ ३४ ॥ मन्त्रोंके प्रतिपाद्य, यज्ञ-क्रतुरूपी, महायज्ञ जिसके अवयव हैं ऐसे महापुरुष, कर्मसे शुद्ध, त्रियुगमें प्रकट होनेवाले भगवानको ॐ पूर्वक नमस्कार है ॥ ३५ ॥ विद्वान् लोग लकड़ीमें अग्निके समान उसका कर्म और फलोंसे अप्रकाशित रूप गुणोंमें देखनेके लिये मनोरूपी मथनीसे मथते हैं ऐसे प्रकटितस्वरूप भगवान्को नमस्कार है ॥ ३६ ॥ विषय, इन्द्रिय व्यापार, देवता देह, काल, अहंकार इन माया गुणोंसे जो वस्तुरूपसे निरीक्षित

दृष्टान्त—किसी पवित्रपुरी में आर्य-समाजी विद्वान् धूर्त रहता वह लोगों को शिक्षा दे कि ईश्वर है ही नहीं इस तरह मरनेपर किसी करता, ब्राह्मण भोजनादि करना व्यर्थ है। व्याख्यानको सुनते २ एक धूर्त ने विचारा कि इसे कैसे परास्त किया जाय यों सोंचकर उन्होंने कहा तुम अपने गुरुजी की फोटो मानते हो कि नहीं—उसने कहा—नहीं मानता हूं। यदि मानते तो इसे फाड़कर पैरोंके तले में कर जूते से मलदो वह यह सुनते ही चुप हो गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होता है, विचारसे और यम नियमादिकोंसे जिनकी निश्चयात्मिका बुद्धि है उन्होंने मायाके कारण आकृतियोंका जिसमें निषेध किया है ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है ॥३७॥ जिस ईक्षिता-का जीवोंके लिये न कि अपने लिये अभिलषित विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार कार्य माया सत्त्वादि गुणोंसे करती है तथा जो माया अयस्कान्तके समान जिसके आश्रयसे लोहके

नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥ प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुम्–इति ॥ ३९ ॥ श्रीम० महापुराणे पञ्चस्कन्ध भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

समान घूमती है, उस गुणकर्म साक्षीको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ प्रतिपक्षी दैत्यको युद्धमें मारकर मुझे दाँतोंके अग्र भागपर धारणकर गजेन्द्रके समान क्रीड़ा करते हुए-से जो भगवान् जलके ऊपर आये, उस विभु जगत्‌के आदि कारण सूकर भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥

अठारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भद्राश्व वर्षमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामक वर्षपति हयग्रीव भगवान्‌की आराधना करते हैं। वे कहते हैं—धर्मात्मक भगवान्‌को नमस्कार है। विद्वान् लोग विश्वको नश्वर कहते हैं, । फिर भी लोग मायासे युक्त हैं। हे भगवन् आपका विचित्र कार्य है। हरिवर्षमें भगवान् नरसिंह रूपसे रहते हैं। भक्तवर प्रहलाद वहाँ उनकी आराधना करते हैं। वे कहते हैं—अति तेजस्वी भगवान् नरसिंहको नमस्कार है। हेवज्रनख, तुम वासनाओंको नष्ट करो, अज्ञानको नष्ट करो और अभय दो। विश्वका कल्याण हो। दुष्ट अपना क्रौर्य छोड़ें। हमारा संग गृह-पुत्रादिमें छूटकर भगवान्‌में और भक्तोंमें हो। केतुमालमें दिन और रात्रिके अभिमानी देवता तथा लक्ष्मीके प्रिय करनेके लिये कामके रूपसे वहाँ भगवान् रहते हैं। वे लोग वहाँ उनकी आराधना करते हैं। लक्ष्मीजी कहती हैं—क्रिया, ज्ञान, विष आदिके स्वामी, अन्नमय, अमृतमय, कामरूपी भगवान्‌को नमस्कार है। भगवन्, स्त्रियाँ व्रतादि करके आपको छोड़ दूसरेको पति चाहती हैं। किन्तु वे परतन्त्र पति क्या कर सकते हैं। ब्रह्मादि देव मेरी प्राप्तिके लिये मेरा तप करते हैं, किन्तु आपके भक्तोंके सिवा मैं किसीको प्राप्त नहीं होती। रम्यकवर्षमें उसके स्वामी मत्स्य भगवान्‌की आराधना करते हैं। वे इस तरह स्तुति करते हैं—सत्वादिरूपी भगवान्‌को नमस्कार है। मनुष्य जैसे कठ-पुतलीको नचाता है वैसेही तुम ब्रह्मादिकोंको नचाते हो। प्रलयकालमें औषधि-वनस्पतियोंके साथ मेरा रक्षण करनेवाले आपको नमस्कार है। हिरण्मय वर्षमें कूर्म भगवान् रहते हैं। वहाँ वर्षपति पितरोंके अधिपति आर्यमा उनकी आराधना करते हैं और इसप्रकार स्तुति करते हैं—सत्वमय, आधार ऐसे कूर्म भगवान्‌को नमस्कार है। भगवन्, आपके रूपोंकी संख्या नहीं है, विश्वमें समस्त नामोंके आपही वाच्य हैं। अनन्त रूपाकृतवाले आपकी चौबीस संख्या विद्वानोंने की है, वह भी जिससे निवृत्त होती है उस सांख्यज्ञानरूपी आपको नमस्कार है। उत्तर कुरुमें यज्ञवराहमूर्ति रहते हैं। वहाँ भूदेवी उनकी यों आराधना करती है। यज्ञात्मक भगवान्‌को नमस्कार है। गुणोंमें मनसे मथने पर, तुम काष्ठमें अग्निके समान प्रकट होते हो। जिसके आश्रमसे माया यह सृष्टि करती है ऐसे तुमको नमस्कार है। शत्रु दैत्यको मारकर मेरा उद्धार करनेवाले आपको नमस्कार है। अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथैकोनविंशतितमोऽध्यायः

(किंपुरुषादि वर्षोंका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—किंपुरुषवर्षमेंभगवान् आदिपुरुष लक्ष्मणाग्रज सीतापति श्रीरामचन्द्रकी उनके चरणसान्निध्यमें निरत परमभागवत हनुमानजी किंपुरुषोंके साथ निरन्तर भक्तिसे उपासना करते हैं ॥ १ ॥ गन्धर्वोंके साथ आर्ष्टिषेण जो कथा गाते हैं उस परम कल्याणकर भगवत्कथाको हनुमान् सुनते हैं और खुद भी इस तरह गायन करते हैं ॥ २ ॥ उत्तम कीतिशाली भगवान्को ओं पूर्वक नमस्कार है। आर्योंके लक्षण, शील, व्रतयुक्तको नमस्कार है। संयतचित्त, लोकका अनुसरण करनेवालेको नमस्कार है। साधुवादके कसौटी, ब्रह्मण्यदेव महापुरुष महाराजको नमस्कार है ॥ ३ ॥ शुद्ध ज्ञानात्मक, अपने तेजसे गुणोंकी जाग्रदादि अवस्थाओंको ध्वस्त करनवाले, दृश्य विलक्षण, प्रशान्त, ज्ञानियोंको प्राप्य, नामरूप विहीन, अहंकारहीन

श्रीशुक उवाच ॥ किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥२॥ ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपाशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः—इति ॥ ३ ॥ यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ॥ कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि ॥ ५ ॥ न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥६॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥ सुरोऽ-

भगवान्को नमस्कार है ॥ ४ ॥ इस संसारमें आपका मनुष्यावतार मनुष्योंके शिक्षणके लिये था, न कि केवल राक्षसोंको मारनेके लिये। नहीं तो अपनेमें ही रमण करनेवाले ईश्वरको सीताविरहसे दुःख कैसे होता ॥ ५ ॥ मनोनिग्रही लोगोंकी आत्मा तथा श्रेष्ठ सुहृत् भगवान् वासुदेव त्रिलोकीमें आसक्त नहीं होते। वह न स्त्री विरहसे दुःख पाते और न लक्ष्मणका त्यागकर सकते हैं ॥६॥ महाकुलमें जन्म, सौन्दर्य, वाणी, मन, बुद्धि, आकृति ये सब उनके सन्तोषके कारण नहीं है, किन्तु भक्ति ही कारण है। नहीं तो इन सब गुणोंसे ही बनवासी वानरोंसे लक्ष्मणाग्रजने मैत्री कैसे की होती ॥ ७ ॥ देव, असुर, नर, वानर कोई भी क्यों न हो, अतिकृतज्ञ, मनुष्यरूपी, जो उत्तर कोशलोंको स्वर्गमें ले गया, उस भगवान् रामचन्द्रका ही सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकारसे भजन करना चाहिए ॥८॥ भारतवर्षमें भी नरनारायण नामक, प्रलय पर्यन्त वर्धमान धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, उपशमयुक्त, भगवान् परमात्माकी प्राप्ति करा देनेवाला तप मनोनिग्रही लोगोंपर अनुकम्पाके लिये अव्यक्त गतिसे करते हैं ॥ ९ ॥ भगवान् नारदजी वर्णाश्रमवती भारतीय प्रजाओंके साथ भगवान्के द्वारा कहे गये सांख्ययोग रूपी मार्गसे भगवान्के प्रभावके वर्णनका सावर्णि मनुको उपदेश करते हुए परम भक्तिभावसे आराधना करते हैं और इस तरह स्तुति करते हैं ॥ १० ॥ उपशमशील, निरहंकारी, दरिद्रोंके धन, ऋषिश्रेष्ठ, परमहंसोंके परमगुरु, आत्माराम, मुनियोंके अधिपति भगवान् नरनारायणको ॐ कारपूर्वक नमस्कार है ॥ ११ ॥ और ऐसा गायन करते हैं। इस सृष्टि आदिका कर्ता होनेपर भी जो बद्ध नहीं होता, देहमें रहनेपर भी क्षुत्पिपासादि देहधर्मोंसे जो पीड़ित नहीं होता, देखनेपर भी जिसकी दृष्टि गुणोंसे दूषित नहीं होती ऐसे असक्त, विविक्त साक्षी भगवान्को नमस्कार है ॥ १२ ॥

सुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोशलान्दिवम्—इति ॥८॥ भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥ ९ ॥ तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥१०॥ ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः—इति ॥ ११ ॥ गायति चेदम्। कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥ १२ ॥ इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ॥ यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्याादधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥ यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् शङ्केत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ १४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्माययाऽहंममतामधोक्षज ॥ भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावम्—इति ॥ १५ ॥ भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट

हे योगेश्वर अन्तकालमें शरीराभिमानको छोड़कर निर्गुण तुममें भक्तिसे मन लगाना चाहिए, यही योग कौशल भगवान् ब्रह्माजीने बताया है ॥ १३ ॥ ऐहिक और पारलौकिक कामोंमें लम्पट पुरुष पुत्र, स्त्री तथा धनके विषयमें विचार करते हुए कुत्सित शरीरकी मृत्युसे जैसे डरता है वैसेही विद्वान् भी अगर डरता है, तो फिर उसका शास्त्र श्रवणादि प्रयत्न व्यर्थ ही है ॥ १४ ॥ अतः हे प्रभो, तुम्हारी मायके कारण इस कुत्सित देहमें जो दुर्भेद्य 'अहं' 'मम' भाव है, उसको हे अधोक्षज, जिससे हम शीघ्र तोड़ सकें ऐसी अपनेमें स्वाभाविक भक्ति दो ॥ १५ ॥ भारतवर्षमें भी अनेक पर्वत और नदियाँ हैं। मलय, मंगलप्रस्त मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरी तथा अन्य भी सैकड़ों हजारों पर्वत हैं। उनसे निकले हुए नद और नदियाँ भी असंख्य हैं ॥ १६ ॥ नामोंसे ही पवित्र करनेवाली इन नदियोंके जलको यहांके लोग देहसे स्पर्श करते हैं ॥ १७ ॥ चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी पयस्विनी, शर्करावती, तुंगभद्रा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा चर्मण्वती, सिन्धुनद, शोणनद, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वाये महानदियाँ हैं ॥१८॥

ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः ॥ १६ ॥ एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥ १६ ॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥१८॥ अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषांविधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥ १६ ॥ योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥ २० ॥ एतदेव हि देवा गायन्ती । अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २१ ॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र

इसी वर्षमें जन्म लिये पुरुष सात्त्विक, राजस, तामस प्रारब्धकर्मों से दिव्य, मानुष, नारकीय गतियाँ पाते हैं। सभी गतियाँ कर्मानुसार सभीको मिलती हैं। अपने वर्णके धर्मको ईश्वरार्पण बुद्धिसे करनेसे मोक्ष भी मिलता है ॥ १६ ॥ भगवान्के भक्तोंसे जब संग होता है तब सर्वभूतोंकी आत्मा, रागादिरहित, वाणीके अविषय, निराधार भगवान्में निष्काम भक्ति होती है। उससे नाना जन्मोंकी कारणीभूत अविद्यारूपी गांठके नाश द्वारा मोक्ष मिलता है ॥ २० ॥ यही देवलोग गाते हैं—अहो, इन लोगोंने क्या सुकृत किया था, भगवान् खुदही इनपर प्रसन्न हुए कि इन लोगोंने भारतवर्षमें मुकुन्द भगवान्की सेवाके उपयोगी मनुष्य जन्म प्राप्त किया जिसको हम बहुत चाहते हैं ॥ २१ ॥ हमारे दुष्कर यज्ञोंसे, तपोंसे, व्रतोंसे या तुच्छ स्वर्ग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जयसे क्या फायदा, जहाँ अतिशय इन्द्रियोपभोगके कारण भगवच्चरणारविन्दकी स्मृति नहीं होती या जो है वह भी मिट जाती है ॥ २२ ॥ कल्प आयुवालोंके स्थानको जीतनेकी अपेक्षा क्षणायु इन लोगोंकी भारतभूमिपर विजय श्रेष्ठ है। यहाँ मनस्वी लोग क्षणभरमें मनुष्य देहसे किये गये कर्मको भगवान्को अर्पण करके भगवान्के भयरहित स्थानको पाते हैं ॥ २३ ॥ जहाँ भगवत्कथा सुधाकी नदियाँ नहीं हैं, जहाँ उसका आश्रय करनेवाले सज्जन भागवत नहीं हैं, नृत्यादि उत्सवयुक्त भगवान्की महापूजा जहाँ नहीं होती ऐसे स्वर्गका भी सेवन नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥ यहाँ जो लोग ज्ञान, क्रिया, द्रव्यसमूहसे समृद्ध मनुष्यजन्मको पाकर भी मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं करते, वे जालसे मुक्त होनेपर भी उसी पेड़पर जाकर विहार करनेवाले पक्षियोंके सदृश फिर जालमें फँसता है—फिरसे बन्धनमें ही पड़ते हैं ॥ २५ ॥ विधि, मन्त्र और वस्तु भेदोंसे हविको विभक्तकर जिन लोगोंके द्वारा यज्ञमें एक भगवान्को अनेक

नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात ॥ २२ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥२३॥ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २४ ॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ॥ न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २६ ॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २७ ॥ यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥ २८ ॥ [अतोऽपि देवा इच्छन्ति जन्म भारतभूतले ॥ सञ्चितुं सुमहत्पुण्यमक्षय्यममलं शुभम् ॥ १ ॥ कदा वयं हि लप्स्यामो जन्म भारतभूतले ॥ कदा पुण्येन महता प्राप्स्यामः परमं पदम् ॥ २ ॥ दानैर्वा विविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वाब्धिशायिनम् ॥ पूजयित्वा कदा यामो यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥३॥ हरिकीर्तनशीलो वा तद्भक्तानां प्रियोऽपि वा ॥ शुश्रूषुर्वापि महतां स वन्द्योऽस्माभिरुत्तमः

नामोंसे बुलाकर श्रद्धापूर्वक हवन किये गये उस हविको स्वयं पूर्ण भगवान् आनन्दसे स्वीकार करते हैं ॥ २६ ॥ यह सच है कि कामनासे भजन करनेपर भगवान् उन मनुष्योंको प्रार्थित वस्तु देते हैं, किन्तु फिर परम पुरूषार्थ नहीं देते, क्योंकि देनेके बाद फलभोगके अनन्तर उन्हें पुनः मांगनेकी इच्छा होती है। निरिच्छ होकर जो भजन करते हैं उनको वह खुद इच्छाओंका आच्छादक अपना पादपल्लव देते हैं ॥ २७ ॥ स्वर्ग सुखका भोग करके अगर हमारा कुछ भी यज्ञका, प्रवचनका या अन्य सुकृतका पुण्य कुछ बचा है, तो उससे भारतवर्षमें हमारा ऐसा जन्म हो, जिसमें 'भगवन् हरि सेव्य हैं' इस तरहकी हमारी स्मृति बनी रहे, जहाँ भजन करनेवालोंका भगवान् कल्याण करते हैं ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् सगरके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुत्रों द्वारा घोड़ेको ढूँढ़नेके लिये चारों ओरे खोदनेके कारण जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप बने, ऐसा कुछ लोग कहते हैं ॥ २९ ॥ वे स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण,

॥ ४ ॥ वेदार्थश्रवणे बुद्धिः पुराणश्रवणे तथा ॥ सत्सङ्गेऽपि हि यस्यास्ति स वन्द्योऽस्माभिरुत्तमः ॥ ५ ॥ संप्राप्य भारते जन्म सत्कर्मसु पराङ्मुखः ॥ पीयूषकलशं हित्वा विषभाण्डं स इच्छति ॥ ६ ॥ वासुदेवार्चनं हित्वा दुष्कर्माणि करोति यः ॥ कामधेनुमतिक्रम्य अर्कक्षीरं स इच्छति ॥ ७ ॥ एवं भारतभूभागं प्रशंसन्ति दिवौकसः ॥ तं प्राप्य विषयासक्तास्ते मुष्टा मायया हरेः ॥ ८ ॥] श्रीशुक उवाच ॥ जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥ ३० ॥ एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं नाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

पाँचजन्य, सिंहल और लंका हैं ॥ ३० ॥ हे भारतोत्तम, इस तरह मैंने आपसे जम्बूद्वीपका वर्ष विभाग, जैसा कहा जाता है वैसा कह दिया ॥ ३१ ॥

उन्नीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, किंपुरुषवर्षमें हनुमानजी किंपुरुषोंके साथ रामचन्द्रकी उपासना करते हैं तथा गन्धर्वोंके साथ गानेवाले आर्ष्टिषेणकी कथा सुनकर गाते हैं। वे कहते हैं—कीर्तिशाली उत्तमश्लोक भगवान्को नमस्कार है। भगवन्, आपने मनुष्यावतारमें सब काम लोकशिक्षाके लिए किये हैं, नहीं तो आत्माराम आपको सीताविरहादि दुःख कहाँसे? आप केवल भक्तिसे वशमें होते हैं, नहीं तो सब गुण हीन वानरोंसे आपकी मैत्री कैसे होती? भारतवर्षमें नरनारायण रूपसे भगवान् तप करते रहते हैं यहाँ नारदजी भगवान्के प्रभावका सावर्णि मनुको उपदेश करते रहते हैं। भारत वर्षमें मलय, मैनाक, महेन्द्र, विन्ध्य इत्यादि सैकड़ों पर्वत हैं। उनसे निकली हुई नदियाँ असंख्य हैं। चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, कृष्णा, गोदावरी, सरस्वती इत्यादि यह नदियाँ हैं। इसी वर्षमें जन्म लेनेवाले कर्मानुसार स्वर्ग नरक आदि गति पाते हैं। भगवद्भक्तोंके सङ्गसे भगवान्में भक्ति उत्पन्न कर अविद्या नाशद्वारा मोक्ष भी यहीं पाया जा सकता है। देवलोग भी इसका गान करते हैं वे कहते हैं—हमारा स्वर्ग व्यर्थ है। यहाँ तो भोगोंके कारण भगवान्की स्मृति मिट जाती है हमारे यहाँसे भारत अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि यहाँसे भारत अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि यहाँ भगवान्को कृतकर्म अर्पित करके लोग निर्भय स्थान पाते हैं। जहाँ भगवत्कथा नहीं, भक्ति नहीं, भगवान्के उत्सव नहीं ऐसे स्वर्गमें न रहना चाहिये। जो लोग मनुष्य जन्म पाकर भी मोक्षके लिए यत्न नहीं करते, वे उस पक्षीके समान बन्धनमें ही फँसे रहते हैं, जो एक बार जालसे किसी तरह मुक्त होकर भी फिर पेड़पर जाता है। भगवान् सकाम भक्ति करनेवालोंको उनकी कामना पूर्ण कर देते हैं किन्तु निष्कामों को अपने चरण पल्लव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देते हैं। यहाँ भोग करके यदि हमारा कुछभी पुण्य बचा हो, तो हमारा भारतमें जन्म हो। हे राजन्, कुछ लोगोंके मतसे सगर पुत्रोंके खोदनेसे जम्बूद्वीपके स्वर्ग प्रस्थ आदि आठ उपद्वीप बने हैं। हे भारत, इस प्रकार मैंने आपसे जम्बूद्वीपका वर्णन किया। उन्नीसवाँ अध्याय❀

❀ अथ विंशतितमोऽध्यायः ❀

[प्लक्षादि छः द्वीपोंका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—इसके बाद प्लक्षादि द्वीपोंका वर्ष विभाग, लक्षण, प्रमाण और रचनाके साथ बतायेंगे ॥१॥ जम्बूद्वीपसे जैसे मेरु घिरा है वैसेही जम्बूद्वीप भी उसीके उतने बड़े लवण से घिरा है। वह भी उससे दुगुने विशाल प्लक्ष-द्वीपसे घिरा है, जैसा कि खंदक बाह्य उपवनोंसे घिरा रहता है। उस द्वीपके नामक कारण प्लक्ष (पाकड़) नामक वृक्ष जम्बू-वृक्षके बराबर ही है, वह सुवर्णमय है। वहाँ सप्तजिह्व अग्नि रहता है। उसके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्वने अपने सात पुत्रोंको उन्हींके नामवाले सात वर्ष बाँट दिये और खुद वह

श्रीशुक उवाच ॥ अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखाबाह्योपवनेन प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥२॥ शिवं यवयसं सुभद्रं शान्तं क्षेममममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥ मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः ॥ अरुणानृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यं·

आत्मयोगसे शान्त हो गया ॥ २ ॥ शिव, यवस, सभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय ये उन पुत्रोंके तथा द्वीपोंके नाम हैं। उनमें पर्वत और नदियाँ भी सात ही हैं ॥३॥ मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान् सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाला ये मर्यादापर्वत हैं। अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा, सत्यम्भरा ये महा नदियाँ हैं जिनके जल-स्पर्शसे रज और तमसे मुक्त होकर हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यायन नामक चार वर्ण सहस्रवर्ष आयुवाले देवताओं के समान रूप तथा प्रजावले लोग स्वर्गके द्वार त्रयीमय सूर्यरूपी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् परमात्माकी त्रयी विद्यासे उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ पुराणपुरुष, सत्य, ऋत, अमृत और मृत्युरूपी परब्रह्म विष्णुका जो रूप सूर्य है उसकी हम शरण जाते हैं । ऐसी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ प्लक्ष और बाकी पाँच द्वीपोंमें आयु, इन्द्रिय, ओज, सहनशीलता, बल, विक्रम तथा बुद्धि सभी लोगोंको सामान्यतः स्वाभाविक होती है ॥ ६ ॥ प्लक्षद्वीप अपने समपरिमाण ऊखके रसके समुद्र से जैसे घिरा है एवं वह समुद्र भी अपनेसे दुगुने शाल्मलद्वीपसे घिरा है । वह द्वीप भी सम विस्तृत सुराके समुद्रसे घिरा है ॥ ७ ॥ प्लक्षके बराबर ही वहाँ शाल्मली वृक्ष है । वहीं गरुड़का स्थान है । वहीं अपने अवयवभूत छन्दोंसे गरुड़जी भगवान्की स्तुति करते हैं । इसी शाल्मलीसे द्वीपका नाम पड़ा है ॥ ८ ॥ उस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र यज्ञबाहुने अपने सात पुत्रोंको उन्हींके नामवाले सात वर्ष बाँट दिये । सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष. पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये उनके नाम हैं ॥९॥ उनमें सीमा पर्वत

भरा इति महानद्यः ॥ यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसन्दर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥ ४ ॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ॥ अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥ प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥ ६ ॥ प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥ ७ ॥ यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयनमाहुर्भगवतश्छन्दः स्तुतः पतत्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥ तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥ ९ ॥ तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतश‍ृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥१०॥ तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ॥ प्रजानां सर्वासां राजाऽन्धः सोमो न आस्त्विति ॥१२॥ एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणः समाने-

और नदियाँ भी सात ही हैं । स्वरस, शतश‍ृंग, वामदेव, कुंद, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति ये पर्वत हैं । अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा तथा राका ये नदियाँ हैं ॥ १० ॥ श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषन्धर संज्ञावाले उस वर्षके पुरुष देवमय सोमरूपी भगवान्का वेदसे यजन करते हैं ॥ ११ ॥ शुक्ल और कृष्णपक्षमें अपनी किरणोंसे पितर तथा देवोंको एवं सभी प्रजाओंकी जो विभाग करके अन्न देते हैं वह सोम हम सबोंके राजा हों, ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥१२॥ सुरा समुद्रके बाहर उससे दुगुना पहले द्वीपके समान घृतसमुद्रसे घिरा कुशद्वीप है । उसके नामका कारण देवनिर्मित कुशस्तम्ब है वह दूसरे अग्निके समान अपनी कोमल शिखाओंकी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥ हे राजन्, प्रियव्रत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हिरण्यरेता उस द्वीपके अधिपतिने नामके अनुसार सात पुत्रोंको सात वर्ष बाँटकर खुद तप किया। वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव ये उनके नाम हैं ॥ १४ ॥ नदी और मर्यादा पर्वत भी सातही हैं। चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा तथा द्रविण ये पर्वत हैं। रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला ये नदियाँ हैं ॥ १५ ॥ जिनके जलसे कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक संज्ञावाले उस द्वीपके निवासी अग्निरूपी भगवान्‌का कर्मकौशलसे यजन करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने, तुम साक्षात् परब्रह्म विष्णुको हव्य पहूँचानेवाले हो, अतः देवताओंके नामसे भगवान्‌का ही यजन करो अर्थात् अङ्गोंके नामसे दिया हुआ अङ्गीको दो, ऐसी प्रार्थना

नावृतो घृतोदेन यथा पूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन्कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥ १३ ॥ तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन्हिरण्यरेतो नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥१४॥ तेषां वर्षेषु सीमा गिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुश्शृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतिविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति ॥ १५ ॥ यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥ १६ ॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्। देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज इति ॥१७॥ तथा घृतोदाद्बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥ १८ ॥ योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥ १९ ॥ तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान्वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान्भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥ २० ॥ आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो नन्दनः

करते हैं ॥ १७ ॥ घृत समुद्रके बाहर उससे द्विगुण क्षीरसमुद्रसे घिरा क्रौञ्चद्वीप है, जैसा कि कुशद्वीप घृतसमुद्रसे घिरा है। उसमें उसके नामका कारण क्रौञ्च नामक पर्वतराज है ॥ १८ ॥ उस पर्वतके नितम्ब और कुञ्ज कार्तिकेयके शस्त्रसे उन्मथित है। क्षीरसमुद्रके अपने भीतर स्थान दे क्षीरसे सींचनेपर तथा भगवान् वरुणके रक्षा करनेपर वह निर्भय हुआ है ॥ १९ ॥ उसमें भी प्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ अधिपति था। उसने अपने सात पुत्रोंको उनके समान सात वर्ष बाँटकर स्वयं परमकल्याणमय जिसका यश है ऐसे परमात्मा भगवान्‌के चरणारविन्दका आश्रयण किया ॥ २० ॥ आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति ये उनके नाम हैं। शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र ये मर्यादापर्वत हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला ये नदियाँ ॥२१॥ उनका पवित्र, स्वच्छजल उपयोग करनेवाले पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक संज्ञावाले वर्षपुरुष आपोमय वरुणरूपी भगवान्‌की पूर्णाञ्जलिसे उपासना करते हैं ॥ २२ ॥ हे जलदेव, आपने भगवान्‌से सामर्थ्य पाया है। आप भू, भुवः और स्वः लोकको पवित्र करते हैं। स्वरूपतः पापनाशक आप स्पर्शसे हमें पवित्र कीजिये, ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ २३ ॥ इसी तरह आगे क्षीरसागरके बाहर चारो ओर शाकद्वीप है वह बत्तीस लाख योजन लम्बा है और उतनेही विस्तृत दहीके मीठेके सागरसे चारो ओरसे घिरा है उसमें उसके नामप्रयोजक शाक नामक वृक्ष है, जो समस्त द्वीपको सुवासित करता है ॥ २४ ॥ उसका भी अधिपति मेधातिथि नामक प्रियव्रत पुत्रही था। उसने भी सात वर्ष बाँटे और खुद अनन्त भगवानमें मन लगाकर तपोवनमें चला गया। पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप,

सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥ २१ ॥ यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जनाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥ आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः ॥ ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः—इति ॥ २३ ॥ एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥ २४ ॥ तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथि सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान्पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाप्याधिपतीन्स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥ २५ ॥ एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघायुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥ २६ ॥ तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधुतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥ २७ ॥ अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २८ ॥ एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत

और विश्वाधर ये उनके नाम हैं ॥ २५ ॥ ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस ये पर्वत हैं। अनघा, आयुर्दा, उभय स्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति ये नदियाँ हैं ॥ २६ ॥ वहांके ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक लोग प्राणायामसे रजस्तमोरहित होकर वायुरूपी भगवान्‌की परम समाधि लगाकर उपासना करते हैं ॥ २७ ॥ जो भूतोंके शरीरमें प्रवेशकर प्राणादि वृत्तियोंसे उनका धारण करते हैं, सभी जिसके वशमें हैं ऐसा अन्तर्यामी ईश्वर वायु हमारा रक्षण करे, ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ २८ ॥ उसी तरह दधि समुद्रके बाद उससे दुगुना विस्तृत पुष्करद्वीप है वह अपने समान मीठे पानीके समुद्रसे बाहर घिरा है। उसमें बड़ा भारी कमल है, वह अग्निशिखाके समान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उज्वल दस हजार सोनेके पत्रोंसे युक्त है। भगवान् ब्रह्मदेवने उसको आसन बनाया है ॥ २९ ॥ उस द्वीपमें मानसोत्तर नामक एकही पूव पश्चिम वर्षोंके बीचमें मर्यादा पर्वत है। वह अयुत योजन ऊँचा और उतना ही विस्तृत है। उसपर चार दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंकी चार पुरियाँ हैं उसके ऊपर मेरुकी परिक्रमा करनेवाले सूर्यरथका संवत्सरात्मक चक्र देवताओं के दिन-रात विभागके लिये घूमता है ॥३०॥ उस द्वीपके स्वामी वीतिहोत्र नामक प्रियव्रतका पुत्र अपने रमणक और धातकि नामके पुत्रोंको दोनों वर्ष देकर खुद पूर्वजोंके समान भगवदाराधन करने लगा ॥३१॥ वहांके लोग ब्रह्मसालोक्य साधक कर्मसे ब्रह्मदेवकी आराधना करते हैं और ऐसी स्तुतिकरते हैं ॥ ३२ ॥ कर्मफलरूप, ब्रह्मदायक एकान्त अद्वितीय, शान्त,

उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥ २९ ॥ तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालनामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥ ३० ॥ तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥ ३१॥ तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन सकर्मकेन कर्मणाराधयन्तीदं चोदाहरन्ति ॥ ३२ ॥ यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ॥ एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः—इति ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥ यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथञ्चित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥ लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥ ३६ ॥ स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रींल्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥ ३७ ॥ एतावांल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटि गणितस्य भूगोलस्य

जिस मूर्तिको लोग पूजते हैं, उस भगवान्को नमस्कार है ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—उसके वाद लोक और आलोकके बीचमें लोकालोक नामक पर्वत चारो ओरसे घिरा है ॥३४॥ उसकेबाद मानस और उत्तर मेरूका जो अन्तर है उतनीही यानी एक करोड़ साढ़े सत्तावन लाख योजन भूमि ऐनक तलके समान चमकदार है। उसमें गया पदार्थ फिर किसी तरह वापस नहीं मिलता, अतः वह सभी प्राणियोंसे छोड़ दी गई है ॥ ३५ ॥ लोक और आलोकके बीचमें होनेके कारण इस पर्वतका लोकालोक नाम पड़ा है ॥ ३६ ॥ उस पर्वतको ईश्वरने लोकत्रयके चारो ओर बनाया है। उसके कारण सूर्यादि ध्रुवपर्यन्त ज्योतिर्गणोंकी किरणें अन्दरके तीनों लोकोंको चारों ओरसे प्रकाशित करती हैं। वे कभी बाहर नहीं जा सकतीं, उतना यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बड़ा और ऊँचा है ।। ३७ ।। यह जो लोक रचना, प्रमाण लक्षण और रचनाके साथ विद्वानोंने कही है वह पचास कोटि योजन है। भूगोल प्रमाणके चतुर्थांश लोकालोक पर्वत है ।। ३८ ।। उसके बाद जगद्गुरु ब्रह्मदेवसे विरचित हुए ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित नामके गजपति सकल लोकस्थिति के कारण हैं।।३९।। अपनी विभूतिरूप उन लोकपालोंके बल-वीर्यकी वृद्धिके लिये परम महापुरुष, महाविभूतियोंके स्वामी, अन्तर्यामी भगवान् श्रीहरि धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यादि अष्ट महासिद्धिरूप अपने विशुद्ध सत्वको धारण करके, अपने विष्वक्सेनादि पार्षदोंसे युक्तहोकर अपने श्रेष्ठ आयुधोंसे युक्त भुजदण्डोंसे शोभित होते हुए चारो ओरके समस्त लोकोंके कल्याणकेलिये उस पर्वतपर रहते हैं ।।४०।। अपनी योगमायासे विरचित विविध लोकयात्राके रक्षणके लिये भगवान् इस तरहका वेष लीलासे धारण करते हैं, यह इसका मतलब है।।४१।। जो अन्दर लोकविस्तार बताया गया है, उससे लोकालोकाचलके

तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ।। ३८ ।। तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ।। ३९ ।। तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः संधारयमाणस्तस्मिन्गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते ।। ४० ।। आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीथायेत्यर्थः ।।४१।। योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् ।। ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ।।४२।। अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ।। सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ४३। मृतेऽण्ड एष एतस्मिन्यदभूत्ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ।।४४।। सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ।। स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ।। ४५ ।। देवतीर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ।। सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ।।४६।। इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपवर्षन्निवेशपरिमाणलक्षणो नाम विंशतितमोऽध्यायः ।। २० ।।

बाहर जा आलोक है उसके परिमाणकाभी व्याख्यान हो ही गया, उसके बाद योगेश्वर भगवान्की विशुद्ध गति है, ऐसा कहते हैं ।।४२।। द्यौ और भूमिके ठीक बीचमें ब्रह्माण्डके मध्यमें सूर्य है। सूर्य और अण्डकपालके बीचमें पचीस कोटि योजन अन्तर है ।। ४३ ।। चूँकि अचेतन इस अण्डमें सूर्यने वैराजरूपसे प्रवेश किया, अतः उसका मार्तण्ड नाम पड़ा। चूंकि हिरण्यमय अण्डमें यह हुआ, इसलिये उसका हिरण्यगर्भ नाम हुआ ।। ४४ ।। सूर्यसे ही दिशा, आकाश, अन्तरिक्ष, पृथिवी, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक, पाताल इनका भेद होता है ।। ४५ ।। देव, तिर्यक्, मनुष्य, साँप लता, इन सभी जीवसमूहोंकी आत्मा और नेत्राधिष्ठाता सूर्य ही हैं ।। ४६ ।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—अब द्वीपोंका विभाग आदि बतायेंगे। जम्बूद्वीप अपने सम प्रमाण चारसमुद्रसे घिरा है। उसके बाद उसके दुगुना प्लच द्वीपका घेरा है। वहाँ जम्बूद्वीपमें जैसा जामुनका पेड़ है उतना ही बड़ा प्लचका पेड़ है। प्रियव्रतका इध्मजिह्व नामक पुत्र वहाँका शासक था। उसने अपने शिव-यवस आदि पुत्रोंमें उन्हींके सनाम उस द्वीपके सातखण्ड बाँटकर आत्मयोगका आश्रयण किया। उसके बाद दुगुना शाल्मली द्वीप घिरा है। वह भी समप्रमाण सुरा समुद्रसे घिरा है। वहाँके अधिपति यज्ञबाहु अपने सुरोचन आदि पुत्रोंको सात खण्ड बाँटकर स्वयं शान्तिको प्राप्त हो गए। उसके बाद शाल्मलीसे दुगुना कुशद्वीप है। वह घृत समुद्रसे घिरा है। वहाँके अधिपति हिरण्य-रेताने वसु आदि सात पुत्रोंको समान सात खण्डकर भगवान्‌की शरणमें चले गये। उसके अनन्तर दुगुना क्षीर समुद्रसे घिरा दुगुना क्रौंच द्वीप है। धृतपृष्ठ वहाँका अधिपति था। उसने अपने सात पुत्रोंको खण्ड बाँटकर भगवान्‌का आश्रयण किया। उसके आगे शाकद्वीप है, जो क्षीरसागरसे दूगुना है। वह समप्रमाण दधिके सागरसे घिरा है। मेधातिथि वहाँके अधिपति थे। उन्होंने भी पुरोजय आदि सात पुत्रोंमें बाँटकर वनका आश्रयण किया। उसके बाद दुगुना पुष्कर द्वीप है। वहाँ हजार सुवर्ण पत्रोंका बड़ा भारी कमल है। उसको ब्रह्माजीने अपना आसन बनाया है। प्रियव्रतका पुत्र वीतिहोत्र वहाँका स्वामी था। उसने अपने रमणक और घातकी नामक पुत्रोंको खण्ड बाटकर भगवान्‌का आश्रयण किया। वहाँके लोग ब्रह्मदेवकी उपासना करते हैं। उसकेबाद लोक और अलोकके बीच लोकालोक पर्वत है। उसके बाद साढ़ेसतावन लाख योजन क्रौंचकाभमि है। वहइतनी ऊँची है कि किसी ज्योतिर्गणका प्रकाश उसके बाहर नहीं जा सकता। बीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ एकविंशतितमोऽध्यायः ❀

[सूर्यका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—यही भूमण्डलकी रचना प्रमाण और लक्षणसे मैंने बतलाई ॥ १ ॥ यहाँ ध्रुलोकमण्डलका भी प्रमाण है। जैसे मटर आदिके दो दलोंमें एकका प्रमाण बतलानेपर दूसरे दलका भी प्रमाण मालूम हो जाता है वैसेही ये दो दल हैं ऐसा इसके जाननेवाले कहते हैं। भूगोल और खगोल इन दोनोंके बीचका जो भाग दोनोंसे सटा हुआ

श्रीशुक उवाच ॥ एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥१॥ एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादिनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसन्धितम् ॥ २ ॥ यन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यव-

है वही अन्तरिक्ष है ॥ २ ॥ इस अंतरिक्षके बीचमें तेजोंके स्वामी भगवान् सूर्यदेव अपने तापसे त्रिलोकीको तपाते हैं और अपनी कान्तिसे प्रकाशित करते हैं। ये उत्तरायण, दक्षिणायन तथा विषुवत् नामक मन्द, शीघ्र एवं सम गतियोंसे योग्य समयपर आरोहण, अवरोहण और समान स्थानोंमें समयानुसार अवरोहणादि करते हुए मकरादि राशियोंपर आकर दीर्घ, ह्रस्व तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समान दिन-रात करते हैं ॥ ३ ॥ जब सूर्य मेषतुलापर रहते हैं तब दिन-रात समान होते हैं। जब वृषभादि पांच राशियोंपर होते हैं तब दिन ही बढ़ते हैं और एक एक महीनेमें एक-एक घड़ी रात घटती है ॥ ४ ॥ जब वृश्चिकादि पाँचपर रहते हैं तब उसके उलटे होते हैं यानी दिन घटते जाते हैं ॥ ५ ॥ दक्षिणायनतक दिन बढ़ते हैं और उत्तरायण पर्यन्त रात बढ़ती है ॥ ६ ॥ मानसके उत्तरमें पर्वतोंका घेरा नवकरोड़ एकावन लाख योजन है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। उसपर मेरुके पूर्वमें देवधानी नामक इन्द्रकी पुरी है, दक्षिणमें संयमनी नामक यमकी पुरी है। पश्चिममें निम्लोचनी नामक वरुणकी पुरी है और उत्तरमें विभावरी नामक सोमकी पुरी है। इनमें समय विशेषसे मेरुके चारों तरफ रहनेवाले लोगोंको प्रवृत्ति-निवृत्तिके

भासत्यात्मभासा स एष उदयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषुयथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥ यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाऽहन्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥ ४ ॥ यदा वृश्चिकादिषु पंचसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥ यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यादुदगयनं रात्रः ॥ ६ ॥ एवं नवकोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशिम् ॥ ७ ॥ तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥ यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥९॥ यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥१०॥ एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमदयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रेसमभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥ ११ ॥ एवं मुहूर्तेन

लिए इनमें जो उदय, मध्यान्ह, अस्त और रात हो, वही समझना चाहिये ॥ ७ ॥ वहाँके लोगोंके लिए सदा दिनके मध्यभागमें ही रहकर आदित्य तपता है और बाईं ओरसे चलते हुए मेरुको दाहिनी ओर करते जाता है ॥ ८ ॥ जहाँ उदय होगा, ठीक उसके सामने अस्त होगा। जहाँ उदयसे प्रकट होता है, ठीक उसके समान विरुद्ध भागमें रात होती है। वे लोग उसको नहीं देखपाते जिन्होंने पहले उस अवस्थामें प्राप्त उसे देखा है ॥ ९ ॥ जब इन्द्रपुरीसे निकलतासे तब यमपुरी तक वह दो करोड़ साढ़े सैंतीस लाख योजनसे अधिक पाँच घण्टामें जाता है ॥ १० ॥ उसी तरह वहाँसे - वारुणी, वहाँसे सौम्या और वहाँसे ऐन्द्रीमें जाता है। उसीप्रकार चन्द्र आदि ग्रह भी नक्षत्रोंके साथ ज्योतिष चक्रमें उदित तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अस्त होते हैं ॥ ११ ॥ इसप्रकार एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख अट्ठारह सौ योजन यह त्रयोमय सूर्यका रथ पुरियोंमें घूमता है ॥ १२ ॥ जिसका एक चक्र बारह आरेका, छः नेमिवाला और तीन नाभिवाला संवत्सरात्मक है यह विद्वान् लोग कहते हैं। उसकी आँख धुरीका एक सिरा, मेरुके मध्यमें और दूसरी सिरा मानसोत्तरमें की गई है। इस रीतिसे वहाँ बैठा हुआ यह रविरथका चक्र तेलकी घानीके समान मानसोत्तर पर्वतमें घूमता है ॥ १३ ॥ उसी धुरामें जिसका मूलभाग फँसा है ऐसा एक दूसरे चक्रका धुरा उनचालीस लाख साढ़े सैंतीस हजार योजन लम्बा है। तेलघानी धुरेके समान उसके ऊपरका भाग ध्रुवमें फँसा है ॥ १४ ॥ रथपर बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा है और उसका चोथाई चौड़ा है, ऐसा यह रविका रथ है। उसमें अरुण छन्दनामक सात घोड़ोंको जोतता है। वे घोड़े भगवान् आदित्यको ढोते हैं ॥ १५ ॥ सारथिके काममें नियुक्त अरुण पूर्वकी ओर मुंह करके बैठे हुए सूर्यके

चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥ १२ ॥ यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥ तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन संमितस्तैलयन्त्राक्षवद्ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥ १४ ॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रवियुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥ १५ ॥ पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥ १६ ॥ तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥ १७ ॥ तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥ १८ ॥ लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० पञ्चस्कन्धे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

आगे पीछे मुँह करके यानी सूर्यकी ओर मुँह करके बैठता है ॥ १६ ॥ उसी तरह स्तुति करनेके लिये नियुक्त अँगूठेके पर्वके समान साठ हजार वालखिल्य ऋषि सूर्यके सामने होकर स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥ एवं दूसरे भी ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, ग्रामण्य, यातुधान, देव ये सात गण एक-एक करके प्रत्येकमें चौदह जिसमें हैं ऐसे प्रत्येक मासमें भगवान् सूर्यरूपी अनेक कर्मों से अनेक रूप और अनेक नाम धारण करनेवाले परमेश्वरकी उपासना करते ॥ १८ ॥ साढ़े नव करोड़ एक लाख योजन भूमण्डलकी एक क्षणमें दो हजार योजन दो कोसके हिसाबसे भगवान् सूर्य घूमते हैं ॥ १९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इक्कीसवें अध्यायका सार— श्रीशुकदेवजीने कहा—जो भूलोकका प्रमाण बताया है, वही द्युलोकका भी है। इन दोनोंके बीचमें अन्तरिक्ष लोक है। उसमें तेजामय भगवान् सूर्य त्रैलोकीको प्रकाशित करते हैं। वे अपनी गतियोंसे चलते हुए जब मेष और तुलापर रहते हैं, तो दिन-रात समान होते हैं। वृषभादि पांच राशियोंपर रहनेसे दिन बढ़ते हैं और प्रतिमास एक घटिका क्रमसे रात बढ़ती है। जब वृश्चिकादि पाँचपर रहते हैं, तब ठीक इसी तरह दिन घटते हैं। सूर्यके त्रयीमय रथका एक संवत्सरात्मक चक्र है। उसका अक्षमन्द्रके मध्यमें और बाकी भाग मानसोत्तरमें है। यह चक्र तेलकी घानीके समान घूमता है। रथपर बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा और चौथाई चौड़ा है। अरुण सारथी छन्दनामक सात घोड़े उसमें लगाता है। इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॐ

ॐ अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॐ

[ग्रह नक्षत्रोंका वर्णन]

राजाने कहा—आपने मेरु और ध्रुवको प्रदक्षिण घूमनेवाला सूर्य राशियोंकी तरफ अप्रदक्षिण जाता है, इसका हम कैसे अनुमान करें ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—जैसे कुम्भारके चाकसे घूमनेवाली उसपर बैठी हुई चीटियों आदिकी गति उसकी गतिसे भिन्न हो सकती है क्योंकि दूसरी जगहपर उसकी अन्य गति देखी है उसी तरह मेरुऔर ध्रुवके चारों ओर प्रदक्षिण घूमनेवाले कालचक्रके साथ घूमनेवाले सूयकी ओर अन्य ग्रहोंकी गति अन्य है, क्योंकि अन्य नक्षत्र और राशियोंमें वैसी देखी गई है ॥ २ ॥ वह भगवान् आदिपुरुष

राजोवाच ॥ यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीहीति ॥ १ ॥ स हो वाच ॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥२॥ स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान्विदधाति ॥ ३ ॥ तमेतमिह पुरुषा-

नारायणही, जिसका विचार वेदसे ब्राह्मण करते हैं, समस्त लोकके कल्याणके लिये त्रयीमय, कर्मशुद्धिके कारणीभूत अपनेको बारह रूपोंमें विभक्तकर वसन्तादि ऋतुओंमें कर्मभोगके अनुसार ऋतुगुण उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमाचारका अनुसरण करनेवाले लोग वेदोंमें कथित छोटे-बड़े कर्मों से और योगप्रकारोंसे श्रद्धासे इस भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा श्रेयपाते हैं ॥ ४ ॥ यहभूमण्डलके आत्मा द्यावा पृथिवीके बीचमें आकाशमें रहकर कालचक्रसे संवत्सरके अवयवभूत राशियोंके नामवाले बारह मासोंको भोगते हैं एक मास चान्द्रमानसे दो पक्षका होता है या सौवरमानसे सवादो नक्षत्रका या पितृमानसे एक दिन-रातका होता है। जितने समयमें संवत्सरका छठाँ हिस्सा घूमता है उसको ऋतुनामक संवत्सरका अवयव कहते हैं ॥ ५ ॥ आधे आकाश मार्गमें जितने समयमें सूर्य चलता है उतने समयको अयन कहते हैं ॥ ६ ॥ द्यावा पृथिवी मण्डलात्मक जो नमीमण्डल है उसको पूरा जितने समयमें भोगता है उस कालको संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर या वत्सर मन्द, शीघ्र, सम आदि गतियोंके कारण कहते हैं ॥ ७ ॥ इसीप्रकार चन्द्रमा अर्धकिरणोंके ऊपर सूर्यसे लक्षयोजन दूर पाया जाता है। वह सूर्यके वर्षभरमें होनेवाले राशिभोगको दो पक्षोंमें, मासके, भागको सवा दो नक्षत्रोंमें और पक्षभरके भोगको एक दिनमें इस तरह से जल्दी चलकर

त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥ ४ ॥ अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादशमासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥ ५ ॥ अथ च यावताऽर्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥ ६ ॥ अथ च यावन्न भोमण्डलं स ह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥ ७ ॥ एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्यः उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥ ८ ॥ अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणांक्षीयमाणभिश्च कलाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥ ९ ॥ य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥ १० ॥ तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानिसहाभिजिताऽष्टा-

आगे जाकर भोग करता है ॥ ८ ॥ इस तरह बढ़नेवाली और घटनेवाली अपनी कलाओंसे शुक्ल और कृष्ण पक्षात्मक देव और पितरोंके दिन रात करते हुए सभी जीवसमूहोंका प्राण तथा जीव चंद्र एक नक्षत्रका तीस मुहूर्तमें भोग करता है ॥९॥ जो यह षोडश कलात्मक, मनोमय, अन्नमय, अमृतमय, भगवान् है इसको देव, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, साँप और पेड़ आदि सभीको प्राणदायक होनेसे सर्वमय कहते हैं ॥१०॥ उसके ऊपर तीन लाख योजन मेरुको प्रदक्षिण ही घूमनेवाले कालचक्रमें ईश्वरसे योजित अभिजित्से लेकर अट्ठाईस नक्षत्र हैं ॥११॥ उसके दो लाख योजन ऊपर शुक्र है। वह अपने शीघ्र मन्द आदि गतियोंके कारण सूर्यके आगे-पीछे या बराबर उसीके समान चलता है। नक्षत्रादि चालसे इसकी इस तरह गतिका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुमान होता है। प्रायः यह लोगोंके अनुकूल ही रहता है। यह वृष्टिदाता है और वृष्टि प्रतिबंधक ग्रहोंको शान्त करता है ॥ शुक्रसे बुध भी व्याख्यातप्राय है। उसके दो लाख योजन ऊपर बुध है। वह सोमका पुत्र प्रायः शुभकर है। वह जब सूर्यका अतिक्रमण करता है तब आँधीयुक्त बादल और अनावृष्टिका डर उत्पन्न होता है ॥१३॥ उसके दो लाख योजन ऊपर मंगल है, जो तीन पक्षमें एक राशि इस तरह बारह राशियोंको भोगता है। अगर वक्रगतिसे नहीं चला तो यह प्रायः दुःखसूचक अशुभ ग्रह है ॥ १४ ॥ उससे दो लाख योजन ऊपर भगवान्

विंशतिः ॥ ११ ॥ तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वाऽर्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते सवृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥ १२ ॥ उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदार्काद्व्यतिरिच्येत तदातिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते । १३ ॥ अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥ १४ ॥ तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान्बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥ १५ ॥ तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान्विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥ तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥ १७ ॥ इति श्रीम० म० पु० पं० ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

गुरु हैं, जो एक-एक सालमें एक-एक राशिपर चलते हैं। ये प्रायः ब्राह्मणके अनुकूल पुण्यग्रह हैं ॥ १५ ॥ उसके दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर सबसे धीरे चलनेवाला है। तीस मासोंमें एक राशिको भोगता है। प्रायः सभीको पीड़ा देनेवाला है ॥ १६ ॥ उसके ऊपर एक लाख योजनपर सप्तऋषि रहते हैं, जो लोगोंकी शान्ति चाहते हुए भगवान् विष्णुके परमपदकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ १७ ॥

बाईसवें अध्यायका सार—परीक्षितने कहा—महर्षे, मेरु और ध्रुवको प्रदक्षिणा करनेवाला सूर्य राशियोंकी तरफ अप्रदक्षिण गतिसे कैसे जाता है। श्रीशुकदेवजीने कहा—जिस तरह चक्रपर बैठी चींटी आदिकी गति चक्रकी गतिसे अलग रहती है उसीप्रकार प्रदक्षिण घूमनेवाले कालचक्रसे सूर्य आदि ग्रहोंकी गति भिन्न है। जैसे नक्षत्र राशियोंकी गति है। सूर्य भगवान् बारहरूप बनाकर बसन्तादि ऋतुगुण उत्पन्न करते हैं। सूर्यके ऊपर लक्ष योजनपर चन्द्रमण्डल है। वह दो पक्षोंमें मास, सवा दो दिनमें राशि इस गतिसे जल्दी भोग करता है। इसकी कलाओंके घटने और बढ़नेसे कृष्ण तथा शुक्लपक्ष होते हैं। उसके ऊपर तीन लाख योजनपर अट्ठाईस नक्षत्र हैं। उसके दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र है। वह अपने शीघ्र मन्द

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदि गतिसे सूर्यके आगे या पीछे चलता है। उसके दो लाख योजन ऊपर बुध है। उसके दो लाख योजन ऊपर मंगल है। यह तीन पक्षमें एक राशिको भोगता है। उसके दो लाख योजनपर गुरु हैं, ये सालमें एक राशि घूम हैं। उसके दो लाख योजनपर शनि है, जो ढाई सालमें एक राशिपर चलता है उसके दो लाख योजनपर सप्तर्षि हैं। वे सबका कल्याण चाहते हुए मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं। बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॐ

❀ अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ❀

[शिशुमार भगवान्का वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—सप्तऋषियोंके ऊपर तेरहलक्ष योजनपर जो विष्णुका श्रेष्ठ स्थान है, वहाँ परमभागवत उत्तानपादके पुत्र ध्रुवजी रहते हैं, उनकी नक्षत्ररूपसे कल्पित इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म ये बड़े मानके साथ प्रदक्षिणा करते हैं। वे एक कल्पजीवियोंका आश्रयभूत होकर आज भी भगवान्की उपासना करते हुए विराजमान हैं। उनका प्रभाव यहाँ पहले ही कहा जा चुका है ॥१॥ लगातार चलते रहनेवाले भगवान् अव्यक्तवेगी कालसे घुमाये जा रहे समस्त ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिर्गणोंका ईश्वर द्वारा बनाया गया अवलम्बन स्थाणुके समान सर्वदा अचलरूपसे भासमान रहता है ॥ २ ॥ जिस तरह मेढ़में बँधे हुए पशु तीन-तीन घण्टे वहींपर घूमते रहते हैं, उसी तरह आकाशमें जो ग्रहादि ज्योतिर्गण हैं इस कालचक्रमें अन्दर

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानोमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥ स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ २ ॥ यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचंक्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥३॥ केचनैतज्ज्यो-

और बाहर ईश्वरके द्वारा नियुक्त हुए वायुसे घुमाये जाकर ध्रुवको अवलम्बन करके ही आकल्पान्त घूमते हैं। जैसे वायुके कारण मेघ और कर्मवश श्येनादि पक्षी गिरते नहीं घूमते रहते हैं उसी तरह प्रकृति पुरुषके संयोगके कारण कर्मवश गतिसे ये ज्योतिर्गण भी घूमते रहते हैं पृथ्वीपर गिरते नहीं ॥ ३ ॥ इस ज्योतिषचक्रको शिशुमारकी रचनासे भगवान् वसुदेवके योग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धारणामें यह स्थित है, ऐसा कोई कहतेहैं ॥ ४ ॥ उस नीचे सिर किये हुए कुण्डलीकृत जिसका देह है ऐसे पुरुषके पुच्छाग्रमें ध्रुव, पुच्छमें इन्द्र और प्रजापति, पुच्छमूलमें धाता और विधाता एवं कमरमें सप्तर्षि हैं। दक्षिणावर्त कुण्डलाकार उस शरीरके दाहिने भागमें उत्तरायण नक्षत्र और बायें भागमें दक्षिणायनके नक्षत्र हैं। इस तरह दाहिने और बायें दोनों ओरके शरीरांगमें वे समसंख्यासे स्थित हैं। पीठमें अजवीथि तथा उदरमें आकाशगंगा है ॥५॥ शिशुमार पुरुषके दक्षिण वाम श्रोणियोंमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र है, दक्षिण वाम पादके पश्चिम भागमें आर्द्रा एवं अश्लेषा, दहिने-बायें नाकोंमें अभिजित्, उत्तराषाढ़ा है, दहिनी-बाईं आंखोंमें श्रवण, पूर्वाषाढ़ा। दहि बायें कानमें धनिष्ठा और मूल है। मघादि आठ दक्षिणायन नक्षत्र

तिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥ ४ ॥ यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ॥ ५ ॥ पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्य श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववंक्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥ उत्तराहनावगस्तिरधराहनो यमो मुखेषु चाङ्गारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥ एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये

बायें बगलकी हड्डियों तथा मृगशीर्षादि उत्तरायणके आठ दाहिनी हड्डियों में हैं। दाहिने-बायें कन्धेमें शतभिषा और ज्येष्ठा स्थापित हैं ॥ ६ ॥ उस रूपके उत्तरहनुमें अगस्ति, अधर हनुमें यम, मुखमें भौम, उपस्थमें शनि, बृहस्पति गर्दनपर, वक्षःस्थलमें आदित्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनमें अश्विनी, प्राणापानमें बुध, गलेमें राहु, सर्वांगमें केतु और सभी रोमोंमें तारागण हैं ॥ ७ ॥ इस भगवान् विष्णुके सर्व देवतामय रूपको रोज सन्ध्यामें स्थिरचित्त मौनी होकर देखते हुए 'ज्योतिर्लोकके आश्रयीभूत देवताओंके स्वामी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महापुरुष कालकी शरण जाते हैं, उसे नमस्कार है' यह कहकर उसकी उपासना करनी चाहिये ॥ ८ ॥ ग्रह, नक्षत्र, तारामय, आधिदैवरूपी पूर्वोक्त मन्त्रका जप करनेवालोंके त्रैकालिक

महापुरुषायाभिधीमहीति ॥८॥ ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ ९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे शिशुमारसंस्थानवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३

पापको नष्ट करनेवाले भगवान्को नमस्कार करने या स्मरण करनेवालेके तत्कालही सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

तेईसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—सप्तर्षियोंके तेरह लाख योजन पर ध्रुव है। इन्द्रप्रजापति, कश्यप और धर्म उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। उसका प्रभाव पहले ही कहा जा चुका है वह समस्त ज्योतिर्गणोंका स्थिर अवलम्बन है। वायुके कारण मेघ और कर्मगतिसे जैसे श्येनादि पक्षी आकाशमें उड़ते हैं उसी तरह प्रकृति पुरुष संयोगके कारण कर्मगति ज्योतिर्गण भी घूमते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि शिशुमार भगवान्में यह सब स्थित है। उसके पुच्छाग्रमें ध्रुव, पुच्छमें प्रजापति और इन्द्र, पुच्छमूलमें धाता-विधाता, कमरमें सप्तर्षि, शरीरके दाहिने भागमें उत्तरायण नक्षत्र और बायें भागमें दक्षिणायन नक्षत्र हैं। उसके उत्तरायण हनुमें अगस्ति, अधर हनुमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थलमें शनि, गर्दनपर बृहस्पति, वक्षःस्थलपर आदित्य, हृदयमें नारायण मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनमें अश्विनी, प्राणायाममें बुध, गलेमें राहु, सर्वांगमें केतु और रोमोंमें तारागण हैं। इस नारायणरूपकी प्रति दिन संध्याकालमें उपासना करनेवालोंके तत्कालही सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ❋

[पातालका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्की कृपासे जिसने ग्रहत्व और अमरत्व पाया, यद्यपि वह उसके योग्य नहीं था, ऐसा स्वयं असुरापसद सिंहिकाका पुत्र राहु सूर्यके दस हजार योजन

श्रीशुक उवाच ॥ अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः तस्य तात जन्मकर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १ ॥ यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं

नीचे नक्षत्रके समान घूमता है ऐसा कुछ लोग कहते हैं। हे तात, उसका जन्म और कर्म आगे कहेंगे ॥१॥ तप रहे सूर्यका यह मण्डल १० हजार योजन विस्तृत है, चन्द्रका बारह हजार है, और राहुका तेरह हजार योजन है ऐसा कहते हैं। पहले अमृतपान करते समय सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें बैठकर राहुने व्यवधान किया। अतः उन्होंने अमृत देते समय भगवान्से

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह बात कह दी। भगवान्‌ने राहुका सिर काट दिया। उस वैरको राहु आज भी अपने मनमें लिए हुए है। वह प्रत्येक पक्षमें सूर्य और चन्द्रमाके ऊपर आक्रमण करता है॥ २॥ राहुके इस आक्रमणको देखकर भगवान्‌ने रक्षणके लिए दोनों जगह सुदर्शन नामक अपना दिव्य अस्त्र नियुक्तकर दिया है उस घूमनेवाले तेजस्वी चक्रके सामने मुहूर्तमात्र रहकर उद्विग्न होकर डरके मारे दूरसे ही लौट जाता है उसीको लोग ग्रहण कहते हैं॥ ३॥ उसके नीचे दस हजार योनपर सिद्ध, चारण और विद्याधरोंके वासस्थान हैं॥ ४॥ उसके नीचे यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंके विहार प्रांगणरूप अन्तरिक्ष हैं। जहाँतक वायु बहती है या मेघ पाये जाते हैं वहाँतक उसकी सीमा है॥ उसके नीचे सौ योजनतक यह पृथिवी ही है। जहाँपर हंस, भास, श्येना और गरुड़ादि पक्षिश्रेष्ठ उड़ते हैं॥ ६॥ इस तरह पृथिवीकी रचना और स्थितिका मैंने उपवर्णन किया। इसके नीचे सात भूबिवर (पाताल) हैं। वे प्रत्येक दस

सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तदव्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति॥ २॥ तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषह मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थिता मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः॥ ३॥ ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव॥४॥ ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते॥ ५॥ ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथ्वी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्त्रिप्रवरा उत्पतन्तीति॥ ६॥ उपवर्णितं भूमेर्यथासन्निवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्तभूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति॥७॥ एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति॥ ८॥ येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकशारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलङ्कृताश्चकासति॥९॥ उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रिया-

हजार योजनकी दूरीपर उतनेही लम्बे-चौड़े हैं। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ये उनके नाम हैं॥ ७॥ इन बिल-स्वर्गोंमें स्वर्गसे भी अधिक काम, भोग, ऐश्वर्य, सम्पत्तियोंसे समृद्धि भवन, उद्यान, क्रीडाविहार स्थानोंमें दैत्य, दानव और सर्प सर्वदा आनन्दित, अनुरक्त, स्त्री, पुत्र, बन्धु, सुहृद तथा अनुचरोंके साथ गृहपतिके समान रहते हैं। उनकी इच्छाएँ ईश्वरसे भी अप्रतिहपत रहती हैं। माया ही उनका मनोरञ्जन है॥८॥ महाराज, इन पातालोंमें मायावी मयासुरसे निर्मित अनेक मुख्य रत्नोत्तमोंसे रचित विचित्र भवन, प्राकार, गोपुर, सभा, चैत्य, चौक और आयतनोंसे युक्त; नाग, असुर, कबूतर तथा शुक सारिकाके जोड़े जिसमें व्याप्त हैं, ऐसे कृत्रिम भूमिसे युक्त पाताल स्वामियोंके श्रेष्ठ गृहोंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अलंकृत नगर वहाँ शोभा देते हैं ॥ ६ ॥ वहांके उद्यान भी मन और इन्द्रियोंको अत्यन्त आह्लाद दायक फूल-फलोंके गुच्छों तथा सुन्दर पल्लवोंसे झुकी हुई डालियोंवाले लताओंसे आलिंगित वृक्षोंकी शोभासे विविध पक्षियोंके जोड़ोंसे युक्त, निर्मल जलसे पूर्ण, जलाशयोंके मीन समूहके उल्लंघनके कारण क्षुभित जलमेंके कमल, कुवल, कह्लार, नीलोत्पल, रक्त, शतपत्र आदिके वनमें रहनेवाले पक्षियोंके अखण्ड विहारसे व्याप्त मधुर विविध स्वरोंसे होनेवाले इन्द्रियानन्दसे अमरलोककी शोभाको भी तुच्छ करनेवाले मालूम होते हैं ॥ १० ॥ वहाँ दिन-रातके कालविभागसे जोभय रहता है, वह विल्कुल नहीं है ॥ ११ ॥ वहाँ बड़े-बड़े साँपोंके मस्तकपरके मणि सभी अन्धकारका नाश करते हैं ॥ १२ ॥ वहाँ रहनेवालोंको दिव्य औषधि-रसायनोंके स्नान-पान भोजनोंके कारण मनोव्यथा, व्याधि, झुर्रियां पड़ना, बुढ़ौती, रंग फीका पड़ना, दुर्गन्धि, पसीना, श्रम और ग्लानि इत्यादि वयकी, अवस्थाएँ नहीं प्राप्त

नन्दिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥ १० ॥ यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥ १२ ॥ न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोवस्थाश्च भवन्ति ॥ १३ ॥ न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥ १४ ॥ यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥ १५ ॥ अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंल्लापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥ १६ ॥ ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवा-

होती हैं ॥ १३ ॥ मंगलस्वरूप उनके पास चक्रनामक भगवानके तेजके विना किसी अन्य कारणसे मृत्यु नहीं आ सकती ॥ १४ ॥ उस भगवत्तेजके प्रवेशमात्रसे प्रायः असुर स्त्रियोंके गर्भोंका स्राव या पतन हो जाता है ॥ १५ ॥ अतलमें वल नामका मय-पुत्र असुर रहता है, जिसके द्वारा उत्पन्नकी गई नब्बे मायाओं में से कुछ अभी भी मायावियोंके पास हैं। उसके जंभाई लेते समय मुखसे तीन प्रकारकी निकलीं—स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली। ये स्त्रियां अपने विलस्थानमें प्रविष्ट हुए पुरुषको सीना नामक रससे संभोगसमर्थ वनाके अपने विलास अनुरागयुक्त स्मित, आलाप और आलिङ्गन आदिसे यथेच्छ रमण कराती हैं और स्वयं उसके साथ रमण कराती हैं। उनके साथ रहकर पुरुष 'मैं ही ईश्वर और सिद्ध हूँ' ऐसा समझते हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मानो उसमें दश हजार हाथियोंका बल आ गया है इस तरह मदान्ध होकर डींग हांकता है ॥ १६ ॥ उसके नीचे वितलमें अपने पार्षदोंके साथ भगवान् हाटकेश्वर शंकरजी प्रजापतिकी सृष्टिको बढ़ानेके लिये भवानीके साथ क्रीडा करते हुए रहते हैं। उन दोनोंके वीर्यसे वहांसे निकली हुई हाटकी नामक नदी है। वहां वायुसे प्रज्वलित अग्नि अपने बलसे उस वीर्यका पान करती है और पानके अनन्तर थूके हुए वीर्यका हाटक सोना तैयार होता है। उसका भूषण बनाकर असुरश्रेष्ठोंके अन्तःपुरोंकी स्त्रियाँ तथा पुरुष पहना करते हैं ॥ ७ ॥ उसके नीचे सुतलमें उदारकीर्ति पुण्यश्लोक विरोचनपुत्र बलि रहता है। महेन्द्रका प्रिय करनेके लिये अदितिसे जन्म लेकर बटुवामनरूपी भगवानने उससे लोकत्रय छीनकर फिर कृपा करके वहीं उसको स्थापितकर इन्द्रादिकोंकी लक्ष्मीसे भी समृद्ध लक्ष्मीसे युक्त उसे बना दिया। वह स्वधर्मसे उसी भगवान्की आराधना करते हुए भयरहित हो आज भी वर्तमान है ॥ १८ ॥ समस्त

न्हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्त सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेन सुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥ १७ ॥ ततोऽधस्तात्सुतलं उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा वटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥ १८ ॥ नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमेपात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम् ॥ १६ ॥ यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विविशः सकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥ २० ॥ तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥ २१ ॥ न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥ २२ ॥ यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याञ्चाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो

जीवसमूहोंके नियन्ता आत्माराम परमात्मा सत्पात्रतम वासुदेव भगवान्को परम श्रद्धासे, समाहित अन्तः करण से किये गये भूमिदानका केवल पातालका ऐश्वर्य प्राप्तही फल कभी नहीं हो सकता, वह तो मोक्षका द्वार है ॥ १६ ॥ छींकने, ठोकर खाने या गिरनेसे विविश होकर भी मनुष्य जिसका नाम एक बार लेनेसे कर्मबन्धन को—जिसके नाशके लिये मुमुक्षु योगीलोग योग सांख्य आदि अनेक क्लेशोंका अनुभव करते हैं—सहजहीमें नष्टकर देता है ॥ २० ॥ अपने सम्पूर्ण भक्तोंको खुद जो अपनेको या ज्ञानको देता है उस भगवान्में साक्षात् भूमिदानका उतना सा ही फल कभी नहीं हो सकता ॥ २१ ॥ अगर भगवान्ने उसको यही फल दिया, तो वह बिलकुल अनुग्रह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह मायामय भोगैश्वर्य भगवान्की स्मृतिमें विघ्न डालनेवाला है; इसीलिये एकान्त भक्तोंके लिये यह विघ्नमात्र है ॥ २२ ॥ भगवान्ने कोई अन्य उपाय न देखकर भिक्षाके छलसे उसके लोकत्रयका अपहरणकर उसका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शरीरमात्र छोड़कर वरुणपाश से उसे बाँधकर गिरिकंदरामें फेंक दिया, तो भी उसने कहा ॥२३॥ स्वयं विद्वान् और बृहस्पति जिसकी मंत्रणाके लिये सचिव हैं ऐसा इन्द्र पुरुषार्थोंमें निपुण नहीं है, क्योंकि उसने उपेन्द्रको छोड़कर उसके द्वारा मुझसे लोकत्रय मँगवाया, उसका दास्य नहीं माँगा। अनन्त अवस्थावाले काल मन्वन्तरमात्रसे विपर्यस्त रहनेवाला यह लोकत्रय तो अति तुच्छ है ॥ २४ ॥ हमारे पितामह प्रह्लादने पिताकी मृत्युके बाद भगवान्के देनेपर भी अपने पिताके निर्भय राज्यपदको भगवान्से अलग करके नहीं चाहा ॥ २५ ॥ उस महानुभाव प्रह्लादके चरित्रका रागादि मल जिसके क्षीण नहीं हुए हैं और भगवानका अनुग्रह जिसको प्राप्त नहीं है ऐसा कौन हमारे जैसा व्यक्ति अनुसरण कर सकता है ॥ २६ ॥ जिसके द्वारपर भगवान् अखिल जगद्गुरु नारायण भक्तके ऊपर अनुकम्पासे हाथमें गदा लेकर रहते हैं, जिन्होंने द्वारपर प्रवेश करते हुए दिग्विजयके लिये निकले हुए रावणको पैरके अँगूठेके ठोकरसे

वरुणपाशैश्च संप्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥ २३ ॥ नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥ २४ ॥ यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे नतु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥ २५ ॥ तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥२६॥ तस्यानुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान्स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥ ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥ २८ ॥ ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्त्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥ २९ ॥ ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया

दस हजार योजन दूर फेंक दिया। उस बलिका चरित्र विस्तारसे आगे कहेंगे ॥ २७ ॥ उसके नीचे तलातलमें रहनेवाले मयनामक दानवेन्द्रके भगवान् पुरारिने त्रिलोकीशकी भलाई करनेकी इच्छासे तीनों पुर जला दिये। परन्तु फिर उन्हींके प्रसादसे स्थान पाकर मायावियोंका आचार्य वह महादेवसे रक्षित होकर सुदर्शनचक्रके भयसे भी रहित होकर रहता है ॥ २८ ॥ उसके नीचे महातलमें अनेक फणवाले कद्रुपुत्र नागोंका क्रोधवशनामक गण, जिसमें महाशरीरी कुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण आदि प्रधान हैं, भगवानके वाहन गरुड़से डरते हुए अपने स्त्री, पुत्र, सहृद्, कुटुम्बके साथ प्रमत्त होकर विहार करते हैं ॥ २९ ॥ उसके नीचे रसातलमें दिति और मनुके पुत्र परिनामक निवात कवच, कालेय, हिरण्यपुरमें रहनेवाले और देवोंके शत्रु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं। वे जन्मतः वीर्यशाली महासाहसी हैं। सकललोकके पालक भगवान् हरिके ही तेजसे उनका वीर्यमद नष्ट होता है। साँपके समान वे रहते हैं। वे इन्द्रसे प्रयुक्त सरमा नामक दूतिकी मन्त्रवर्ण युक्त वाणीका श्रवणकर इन्द्रसे डरते हैं ॥ ३० ॥ उसके नीचे पातालमें वासुकि जिसमें प्रमुख है ऐसे शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल,

दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥ ३० ॥ ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे राह्वादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अश्वतर, देवदत्तादि बड़े-बड़े फणवाले महाक्रोधी नागलोकके स्वामी रहते हैं। उनके पाँच, सात, दस, हजार मस्तकवाले फणोंमें रहनेवाले चमकदार मणि पातालमेंके अन्धकारको दूर करते हैं ॥ ३१ ॥

चौबीसवें अध्याय का सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—सूर्यके दस हजार योजन नीचे राहु घूमता है। सूर्यका मडल दस हजार योजन विस्तृत है, चन्द्रमा बारह हजार और राहुका तेरह हजार योजन है। राहुके, आक्रमणसे रक्षाके लिए दोनोंके पास भगवान्ने सुदर्शन चक्र रखा है। उसके नीचे दस हजार योजनपर सिद्धि, चारण आदिका वास स्थान है। उसके नीचे यक्ष-राक्षस आदि अन्तरिक्षमें रहते हैं और उसके नीचे सौ योजन जहाँ हंस-गरुड़ादि पक्षिश्रेष्ठ उड़ते हैं पृथ्वी ही है। अतल, वितल, सुतल आदि इस पृथ्वीके नीचे सात पाताल हैं। वे सब एक दूसरेसे दस हजार योजन दूरीपर, उतनेही लम्बे चौंड़े हैं। वहाँ स्वर्गसे समृद्ध ऐश्वर्य है वहाँके विहार स्थानोंमें दैत्यदानव सर्प सर्वदा स्त्री पुत्रादिके साथ क्रीड़ा करते हैं। उन लोगोंको भगवान्के चक्रके तेजके विना किसीसे मृत्यु नहीं होती। उस तेज प्रवेश मात्रसे असुर स्त्रियोंका गर्भस्राव होता है। अतलमें मयपुत्र वकदानव रहता है उसकी नब्बे मायाओंमेंसे कुछ अभी भी मायावियोंके पास हैं। उसके नीचे वितल हारकेश्वर शिव भवानीके साथ क्रीड़ा करते हैं। उसके नीचे तलातलमें मायावियोंका स्वामी मय दानव रहता है। उसके नीचे महातलमें नागोंका क्रोधवश नामक गण रहता है, उसमें कुहक-तक्षक आदि प्रधान हैं। वे गरुड़से डरत हुए अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ वहाँ विहार करते हैं उसके नीचे रसातलमें पणिनामक दनुपुत्र है। निवातकवच और कालेय उनके गण हैं। उसके नीचे पातालमें वासुकि प्रमुख शंख कुलिक आदि नागलोकके स्वामी रहते हैं। उनके अनेक फणोंमें रहनेवाले चमकदार मणियोंसे पातालका अन्धकार दूर होता है। चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ❀

(शेषका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—उसके मूलमें तीस हजार योजन अन्तरपर जिसको अनन्त कहते हैं, ऐसी भगवान्‌की तामसी कला है। चतुर्व्यूहोपासक लोग द्रष्ट दृश्योंका शंकर जिसमें हैं ऐसे अहंकाराधिष्ठानरूप इसको संकर्षण कहते हैं ॥ १ ॥ उस सहस्र मस्तक अनन्तमूर्ति भगवान्‌के एकही मस्तकपर यह पृथ्वीमण्डल राईके समान दीखता है ॥ २ ॥ प्रलयकालमें इसके संहारकी इच्छासे क्रोधके कारण टेढ़ी भौंवोंके बीचसे सांकर्षण नामक रुद्र भगवान् ग्यारह मूर्तिधारी तीन नेत्रवाले शूल उठाकर निकले ॥ ३ ॥ उनके पदकमल युगलके लाल विशद नखमणिसमूहके मण्डलमें नागश्रेष्ठ लोग भक्तश्रेष्ठोंके साथ एकान्त भक्तियोगसे अवनत होकर अपने चमकदार कुण्डल प्रभासे शोभित गालवाले अति मनोहर मुखकमलोंको आनन्दित होकर देखते हैं ॥४॥ अनेक कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाली नागराज कुमारियाँ सुन्दर अंग, वलयमें शोभित विशद, विपुल, धवल और सुन्दर भुजरूपी चाँदीके स्तम्भोंमें लगाये गये केशर

श्रीशुक उवाच ॥ तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥१॥ यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवताऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥ यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥३॥ यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति ॥ ४ ॥ यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥ ५ ॥ स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥ ६ ॥ ध्यायमानः सुरासुरोरग-

और अगरुके चन्दनसे चर्चित होकर भगवान् शेषके अंगस्पर्शसे क्षुभित हृदयमें कामके सञ्चारसे कान्तिमान् ललित स्मित करती हुई अनुरागके मद से आनन्दित होकर मदसे घूरनेवाले अरुण तथा करुण अवलोकनयुक्त नयन जिसमें शोभते हैं ऐसे उनके मुखकमलको लज्जासे देखती हैं ॥ ५ ॥ वह भगवान् अनन्त गुणोंका सागर भगवान् आदिदेव अनन्त क्रोधावेशका उपसंहारकर लोगोंके कल्याणके लिये वहाँ स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥ सतत मदके कारण आनन्दित वे रहते हैं। उनके लोचन विह्वल रहते हैं। वे अपने वचनामृतसे अपने पार्षद तथा देवश्रेष्ठों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को आनन्द देते हैं। जिसकी कान्ति कभी म्लान नहीं होती ऐसी नवतुलसीके आमोदरूपी सुगन्धित मधुरससे मत्त मधुकरोंका समूह जिसपर मधुर गायनकर रहा है ऐसी अपनी वैजयन्ती वनमालाको वे इन्द्रका ऐरावत जैसे सोनेकी मालाको धारण करता है वैसे ही धारण करते हैं। वे नील वस्त्र पहिने रहते हैं। हलके पीठपर उनकी एक सुन्दर भुजा रखी रहती है। एकही उनका कुण्डल रहता है तथा सुर, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनिगण उनका ध्यान करते रहते हैं ॥ ७ ॥ इस तरह इनका श्रवणकर ध्यान करनेसे वे अनन्त भगवान् मुमुक्षु लोगोंके अनादि कालसे प्राप्त कामवासनासे ग्रथित अविद्यामय हृदय-ग्रन्थिको जो सत्त्वरजस्तमोमय है, हृदयमें प्रविष्ट होकर जल्दी तोड़ देते हैं। उनके महात्म्यका स्वयम्भूपुत्र नारदने तुम्बुरुके साथ ब्रह्माकी सभामें वर्णन किया ॥ ८ ॥ उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का जो कारण है, सत्त्वादि प्रकृतिगुण जिसके अवलोकनसे कार्यमें समर्थ होते हैं, जिसका रूप अनादि

सिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥७ य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थिं सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान्भगवान्स्वायंभुवो नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥ ८ ॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥ ९ ॥ मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ १० ॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ॥ हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥ मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥१२॥ एवंप्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति

तथा अनन्त है एवं जिसने अकेले ही नाना प्रपञ्चोंको धारणकर रखा है, इस ब्रह्मरूप भगवान्का तत्त्व लोग कैसे जानें ॥ ९ ॥ जिसमें यह सदसत् प्रपंच भासमान होता है उसने हम भक्तोंपर अत्यन्त कृपाके कारण शुद्ध सत्त्वमय मूर्ति धारणकी है। अपने भक्त लोगोंके मनोंके वशमें लानेके लिए की गई उसकी निर्दोष लीला सिंहने सीखी है। वह भगवान् उदारपराक्रमी हैं ॥ १० ॥ जिसके नामके श्रवणसे या परिहासमें भी उच्चारण करनेसे पतित हो या आर्त हो अपने पापसे मुक्त हो जाता है उस भगवान् शेषके सिवा मुमुक्षु दूसरे किसका आश्रयण करेंगे ॥ ११ ॥ जिस हजार मस्तकवालेके सिरपर पर्वत, नदी, समुद्र और प्राणियोंके साथ अणुकी नाईं भूगोल रखा हुआ है, उस अपरिछिन्न अमितपराक्रमी भगवान्के अनन्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वीर्योंको भला कौन हजारमुखवाला भी गिन सकता है ॥ १२ ॥ इस तरह प्रभावशाली दुरन्त बलशाली, श्रेष्ठगुण और प्रभाववाले भगवान् अनन्त पृथिवीके मूलमें स्वतन्त्र स्थित हैं। वे लीलासे पृथिवीको उसकी स्थितके लिये धारण किये हुये हैं ॥ १३ ॥ अनेक इच्छा रखकर कर्म करनेवाले लोगोंकी प्राप्य ये ही गतियाँ हैं, वे जिस तरह सुनी गई हैं, ठीक तुम्हें बतला

॥ १३ ॥ एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्मं विनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान्कामयमानैः ॥ १४ ॥ एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ॥ १५ ॥ इति श्रीम० म० पु० पं० भूविवरविध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दी है ॥ १४ ॥ हे राजन्, मनुष्यके प्रवृत्तिरूपी धर्मके फलभूत इतनीही उच्च-नीच विषम गतियाँ हैं। ये प्रश्नके अनुसार तुम्हें कह दी गई हैं और क्या कहें कहिये ॥ १५ ॥

पचीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—पातालके मूलमें तीस हजार योजनपर शेष भगवान् रहते हैं, जिनको संकर्षण कहते हैं। हजार मस्तकवाले उनके सिरपर पृथिवीमण्डल राईके समान है। उसके चरणनख मणियोंमें भक्तिसे अवनत नाग लोग अपने मुख कमलका प्रतिबिम्ब देखकर आनन्दित होते हैं। अनेक कामनाओंकी पूर्तिके लिये चन्दन चर्चित नागराजकुमारियाँ उनको जब नमस्कार करती हैं तब उनके स्पर्शसे कामविष्ट होकर उनके नेत्रयुक्त मुखकमलको लज्जासे देखती हैं। अनन्त भगवान् क्रोधका संहारकर लोककल्याणके लिये वहाँ स्थित रहते हैं। वे सदा आनन्दित रहते हैं। उनके नेत्र विह्वल रहते हैं। अपने वचनामृतसे वे सभीको आनन्द देते रहते हैं। गलेमें नवतुलसी युक्त वनमाल शोभती है। नील वस्त्र पहने रहते हैं उनका एक हाथ पीठपर रखा रहता है। सुरासुरादि उनका ध्यान करते हैं। वे ध्यानसे हृदयमें प्रविष्ट होकर हृदय ग्रन्थिको तोड़ देते हैं। उनके महात्म्यका वर्णन नारदमुनि ब्रह्म सभामें करते हैं। उनकी प्रेरणासे सत्त्वादिगुण सृष्टिमें समर्थ होते हैं उन्होंने भक्तोंपर कृपा करके शुद्ध सत्त्वमय मूर्ति धारण की है। गिरनेसे या आर्त अवस्थामें विवश होकर जिनका नाम लेनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है उन भगवान् सङ्कर्षणको छोड़कर मुमुक्षु लोग किसका आश्रयण करें। जिन्होंने मस्तकपर समस्त भूगोल लीलासे धारण किया है उस भगवान् अनन्तके अनन्त वीर्योंका कौन वर्णन कर सकता है। इस तरह भगवान अनन्त पृथ्वीको धारण किये रहते हैं। राजन् सकाम कर्म करनेवालोंकी गतियोंका मैंने वर्णन कर दिया। प्रवृत्तिरूप धर्मकी फलभूत इतनीही गतियाँ हैं। सभीको कर्मानुसार मिलती हैं अब और क्या कहें बतलाइये। पचीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ षट्विंशतितमोऽध्यायः ❋

(नरकोंका वर्णन)

राजाने कहा—हे महर्षे, लोकोंका यह वैचित्र्य क्यों है ? ॥१॥ श्रीशुकदेवजीने कहा— कर्ता त्रिगुणात्मक होनेके कारण श्रद्धाके अनुसार कर्मकी गतियाँ विविध प्रकारकी हैं। सभी-सभीको तारतम्यसे होती हैं ॥ २ ॥ अब निषेधके विषय अधर्म करनेवालेकी श्रद्धाके वैचित्र्यसे कर्मफल भी विचित्र तरहका होता है। अनादि अविद्यासे किये गये कामोंके परिणामस्वरूप नरक भी हजारों प्राप्त होते हैं। उनका विस्तारसे वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन्, नरक कोई देशविशेष है या त्रिलोकीके बाहर कोई जगह है या अन्तरालमें कोई स्थान है ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—त्रैलोकीके अन्तरालमें ही दक्षिण दिशामें भूमिके नीचे भागमें गर्भजलके ऊपरमें नरक है। उसी दिशामें अग्निष्वात्तादि पितृगण अपने वंशजोंका भला

राजोवाच ॥ महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥१॥ ऋषिरुवाच ॥ त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥ २ ॥ अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥ ५ ॥ यत्र ह वाव भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥६॥ तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः

चाहते हुए एकाग्रचित्तसे भगवान् का ध्यान करते रहते हैं ॥५॥ उसी दिशामें भगवान् पितृराज वैवस्वत—प्राणियोंके मरनेके बाद जब उनके दूत अपने देशमें लाते हैं तब कृतनिषिद्ध कर्मके अनुसार भगवान्के शासनका उलंघन न करते हुए अपने गणके साथ यातनारूप दण्ड देते हैं ॥६॥ कोई नरकोंकी गिनती इक्कीस करते हैं। हे राजन्, उसका नाम, रूप और लक्षणोंके साथ मैं आगे चलकर वर्णन करूँगा। तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असीपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सदंदश, तप्तसूर्मि वज्रकण्टक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सरमेयादन, अवीचि, अयःपान ये इक्कीस और मतान्तरसे क्षारकदम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोध पर्यावर्तन, सूची-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुख ये अट्ठाईस नरक विविध यातनाओंके स्थान हैं ॥ ७ ॥ जो दूसरेके द्रव्य, वित्त या स्त्रीका अपहरण करता है उसको अति भयानक यमपुरुष कालपाशसे बाँधकर जबर्दस्ती नरकमें गिराते हैं और खाना-पीना बन्द करके मारना, पीटना, धमकाना इत्यादि नानाविध यातनाओंसे पीड़ा देते हैं। जिस नरकमें गिरनेसे एकदम मूर्छा आ जाति है, वह नरक तामिस्र है। वहाँ अन्धकार ही रहता है ॥ ८ ॥ जो दूसरे की वंचना आदि करके स्त्री आदिका उपभोग करते हैं, वे अन्धतामिस्रमें गिराये जाते हैं। वहाँपर गिराने से यातनाओंमें पड़े हुए प्राणीका वेदनाके मारे ज्ञान ऐसे नष्ट हो जाता है और दृष्टि भी ऐसे नष्ट हो जाती है, जैसे काटे जा रहे मूलवाले वनस्पति की। इसलिये वह अन्धतामिस्र कहा जाता है ॥ ९ ॥ जो इस शरीर और धनपर 'मैं' 'मेरा' इस अभिमानसे लोगोंका द्रोह करके केवल अपने कुटुम्बको ही रोज पुष्ट करता रहता है वह इन चीजोंको यहीं छोड़कर अपने उस पापसे रौरवमें पड़ता है ॥ १० ॥

सारमेयादनमवीचिरयः पानमिति॥ किंच क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिनरका विविधयातनाभूमयः ॥ ७ ॥ तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रेनरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥ ८ ॥ एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥ ९ ॥ यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥ ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एवरुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहूः रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥ ११ ॥ एवमेव महारौरवो तत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहंभरः ॥ १२ ॥ यस्त्विह वा उग्रः पशून्पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥ १३ ॥ यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक्स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले

जिन जन्तुओंकी यहाँ जिसके द्वारा जिस तरह हिंसाकी हुई रहती है, वे जन्तु यमयातना प्राप्त उनको रुरु होकर उसीप्रकारसे पीड़ा देते हैं। अतः उस नरकको रौरव कहते हैं। रुरु यह सर्पसे भी क्रूरजन्तुका नाम है ॥ ११ ॥ इसी तरह जहाँ पड़े हुए मनुष्य को क्रव्यादनामके रुरु केवल अपना देह भरण करनेवालेको मांसके लिये मारते हैं वह महारौरव है ॥ १२ ॥ इसलोकमें जो उग्र मनुष्य पशु या पक्षियोंको जानसे मारता है उस निर्दयी पुरुषभोजियोंसे भी निन्दित मनुष्यको उस लोकमें यमानुचर कुम्भीपाक नरकमें गरम तेलमें पकाते हैं ॥ १३ ॥ जो यहाँ पिता, ब्राह्मण और देवसे द्रोह करता है वह कालसूत्र नामक नरकमें तांबेके दश हजार योजन गोल में बैठाया जाता है। वह नीचे अग्निसे और ऊपर सूर्यसे तपते रहता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भूख प्याससे उसका शरीर भीतर तथा बाहर जलते रहता है। वहाँ वह प्राणी कभी बैठता है, कभी सोता है, कभी चेष्टा करता है, कभी खड़ा रहता है और कभी दौड़ता है। जितने उस पशुके रोम होंगे उतने हजार वर्षोंतक वह वहाँ रहता है ॥ १४ ॥ जो आपत्ति न आने पर भी अपने वेदमार्गसे दूर चला जाता है और पाखण्डोंका आश्रयण करता है उसको यमदूत असीपत्र वनमें ले जाकर कोड़ेसे मारते हैं। जब वह इधर-उधर दौड़ने लगता है तब तालवनके तलवारके समान पत्तोंसे दोनों तरफसे छिन्न होकर 'हा मैं मर गया' मैं मर गया' यों चिल्लाते हुए पग-पगपर मूर्छित होता है तथा तब वह स्वधर्म त्यागी पाखण्डके अनुसरण का फल भोगता है ॥ १५ ॥ जो राजा या राजपुरुष निरपराधीको दण्ड देते हैं या ब्राह्मणको शरीरदण्ड देते हैं वे वहाँ सूकरमुख नरकमें गिरते हैं। जैसे यहाँ ऊखको निचाड़ते हैं उसी तरह वहाँ उसके अति बलवान् यमदूतोंसे निचोड़े जाते हैं। तब वह आर्तस्वर करता है।

ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिःशरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥ १४ ॥ यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥ १५ ॥ यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥ १६ ॥ यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥ १७ ॥ यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किञ्चनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने

कभी ऐसे मूर्छित होता, जैसे यहाँ अदृष्ट दोषसे दण्डित निरपराधी मूर्छित होता है ॥ १६ ॥ यहाँ भगवानने रक्तपानादि ही जिनकी जीविका लगादी है ऐसे दूसरोंका पीड़ा न जाननेवाले खटमल आदिको जो स्वयं ईश्वरसे वृत्ति पाकर दूसरेका दुःख जानकर भी व्यथा देता है, वह परलोकमें उसके द्रोहके कारण अन्धकूपमें पड़ता है। वह वहाँपर उन्हीं पशु, मृग, पक्षी, सर्प आदि या मच्छड़, यूका, खटमल, मक्खी आदि जन्तुओंसे जिसके साथ द्रोह किया है, सभी तरफसे पीड़ित होकर निद्रा और शान्तिसुख न पाकर बैठ भी नहीं पाता, केवल घूमते रहता है, जैसे कि कुयोनिमें जीव घूमता है उसे कहींपर स्थायी जगह नहीं मिलती ॥ १७ ॥ जो यहाँ किसीको न देते हुए पञ्चयज्ञ न करके जो भी मिल जाय, वही खा लेता है वह कौआ है। वह यमलोकमें कृमिभोजन नामक नरकाधममें पड़ता है। वहाँ वह सौ हजार योजनके कृमिकुण्डमें कृमि होकर गिरता है। कीड़े ही उसको खाने पड़ते हैं और उसको कीड़े

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खाते हैं। इस तरह अकेले खानेवाला उसका प्रायश्चित्त न करनेसे भोगता है ॥ १८ ॥ हे राजन्, जो यहाँ आपत्ति न रहते हुए भी ब्राह्मण या अन्य किसीके सोना, रत्नादिका अपहरण करता है, उसको वहाँ यमदूत तपे हुए लोहेके चिमटोंसे छेदते हैं ॥ १९ ॥ जो पुरुष यहाँ अगम्य स्त्रीके पास जाते हैं, या स्त्री अगम्य पुरुषके पास जाती हैं, वहाँ उनको यमदूत कोड़ेसे मारकर तपे हुए पुरुष या स्त्रीकी प्रतिमाका आलिङ्गन कराते हैं ॥ २० ॥ जो यहाँ विचार न करके सभी के साथ गमन करता है उसको वहाँ यमदूत वज्रकण्टकोंसे युक्त शाल्मली वृक्षपर चढ़ाकर खींचते हैं ॥ २१ ॥ जो राजा या राजपुरुष पाखण्डी न होकर भी मर्यादाओंका उल्लंघन करते हैं वे मरकर वैतरणी नदीमें पड़ते हैं नरकोंके खंदकके समान उस नदीमें

कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥ १८ ॥ यस्त्विह वै स्तेयेन
बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन्यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥
यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च
पुरुषरूपया सूर्म्या ॥ २० ॥ यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीरोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥ ये त्विह वै राजन्या
राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून्भिन्दन्ति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो
भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपत-
प्यन्ते ॥ २२ ॥ ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निप-
तन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥ २३ ॥ ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि संपरेतांल्ल-
क्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥ ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून्विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यात-
यित्वा विशसन्ति ॥२५॥ यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतःकुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययन्ति

इधर-उधर जलचर प्राणी खाते हैं, फिर भी जीव जाता नहीं, किन्तु अपने पापसे कर्मका परिणाम जानते हुए विष्टा, मूत्र, पीव, रक्त, केश, नख, अस्थि, चर्बी, मांस, वसा जिसमें बहते हैं उसीमें पड़ा रहता है ॥ २२ ॥ यहाँ जो वृषलीपति निर्लज्ज होकर शौचाचारादि नियम नहीं पालते और पशुके समान रहते हैं वे भी मरकर पीव, विष्टा, मूत्र, नाना कृत्यादि मलोंसे पूर्ण समुद्रमें गिरते हैं और उन्हीं अति बीभत्स पदार्थोंको खाते हैं ॥२३॥ जो ब्राह्मणादि कुत्ते, गधे पालकर विहितकर्म छोड़कर भी हिंसा करते हैं, मृगया करते हैं, वे यमलोकमें नरकमें गिरते हैं। वहाँ उनको लक्ष्य बनाकर यमदूत बाणसे मारते हैं ॥२४॥ यहाँ जो दाम्भिक लोग केवल दम्भमय यज्ञ करके पशुओंको मारते हैं, उनको वहाँ वैशस नरकमें गिराकर यातना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देकर नरकोंके स्वामी चीरते हैं ॥ ॥ २५ ॥ जो द्विज यहाँ सवर्ण भार्याके सिवा अन्यत्र वीर्यपात करता है उस कामी पापीको वहाँ रेत कुल्यामें गिराकर वही रेत पिलाया जाता है ॥२६॥ यहाँ जो लुटेरे आग लगाकर या विष देकर ग्रामोंको या काफिलोंको लूट लेते हैं ऐसे राजा या पुलिसोंको वज्रके समान दंष्ट्रावाले यमदूत सातसौ बीस कुत्ते एकदम खाते हैं ॥२७॥ जो यहाँ साक्षीमें लेनदेनमें या दानमें झूठ बोलता है उसको मरनेके बाद अवीचिमान् नरक मिलता है। यहाँ सौ योजन ऊँचे पहाड़की चोटीसे एकदम नीचे सिरकरके वह गिराया जाता है। वहां पत्थरकी जमीन एकदम पानी-जैसी दीखती है। उस तरह गिरानेपर वह तिलकी नाईं टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, किन्तु मरता नहीं। बार-बार इसी तरह ऊपर चढ़ा-चढ़ाकर वह पटका जाता है ॥ २८ ॥ जो सोम पीनेवाले यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य या उसकी स्त्री व्रतमें स्थित हुए भी सुरा पीते हैं उनको यमदूत नरकमें लेजाकर उनकी छाती पर पैर रखकर

॥ २६ ॥ ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥२७॥ यस्त्विह वा अनृतं वदधिः साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥ २८ ॥ यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥ २६ ॥ अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥ ३० ॥ ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून्खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेय पुरुषादाः ॥ ३१ ॥ ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्र-

उनके मुखमें जबर्दस्ती अग्निसे गला लोहेका द्रव डालते हैं ॥ २६ ॥ जो यहाँ अपनेको ही बड़ा समझकर स्वयं अधम होते हुए जन्म, तप, विद्या, वर्ण, आश्रम, विद्या, आचार इत्यादिसे युक्त बड़ेको भी बहुमान नहीं देता वह मरकर क्षारकर्दम नामक नरकमें नीचे सिर करके गिराया जाता है और वह भीषण यातना पाता है ॥ ३० ॥ जो पुरुष यहां पुरुषमेध करते हैं या स्त्री पुरुष पशुको खाती है उनको वेही पशुके समान मारे गये यमसदनमें राक्षस बनकर सौनिकके समान इनके शरीरको चिमटेसे तोड़कर रक्त पीते हैं, आनन्दित होकर नाचते गाते हैं जैसे कि यहांपर पुरुष भोजी करते हैं ॥ ३१ ॥ जो यहाँ किसी निरपराधीको गाँव या अरण्यमें विश्वासके उपायसे विश्वास कराकर उसकी जीनेकी चाहने पर भी केवल खेलमें शूलपर चढ़ाकर या फाँसी देकर पीड़ा देते हैं वे भी मरकर शूल या फाँसीपर चढ़ाये जाकर भूख-प्याससे पीड़ित रहते हैं और तीक्ष्ण चोंचवाले कंक, वटकादि पक्षियोंसे चोट खाकर अपने पापका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्मरण करते हैं ॥ ३२ ॥ जो यहाँ साँपके समान उग्र स्वभाववाले होते हैं वे मरनेके बाद दन्दशूक नामक नरकमें गिरते हैं, वहाँ पाँच मुखवाले, सात मुखवाले साँप आकर, जैसे चूहेको खाते हैं, वैसेही खाते हैं ॥ ३३ ॥ जो इसलोकमें प्राणियोंको बाँधकर या कोठेमें अथवा गुहामें बन्द करके रखते हैं उनको वहाँ उसीमें बन्द करके विषैले धूवेंसे रोकते हैं ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थ यहाँ अतिथि अभ्यागतोंको बार-बार 'मानो जला डालेगा' इस तरह क्रोधकर पापी निगाहोंसे देखता है उसकी आँखें नरकमें वज्रके समान चोंचवाले गृध्र जबर्दस्ती नोचकर निकालते हैं ॥ ३५ ॥ जो यहाँ खुदको आढ्य समझता हुआ सदा टेढ़ी नजरसे देखता है, सभीसे शंकित रहता है, अर्थव्यय नाशकी चिन्तासे हृदयवदन सूखा हुआ रहता है और शान्तिको न

म्भकैरुपसृतानुपविश्रम्भस्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यांचाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥ ३२ ॥ ये त्विहं वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥ ३३ ॥ ये त्विह वा अन्धा वटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥ ३४ ॥ यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥ ३५ ॥ यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहङ्कृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥ ३६ ॥ एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चवनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥ ३७ ॥ निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते

पाकर पिशाचके समान केवल पैसेकी रक्षा करते रहता है, वह मरकर उस पैसेके उत्पादन, वर्धन, रक्षणके पापसे सूचीमुख नरकमें पड़ता है। जहाँ इस वित्तग्रह पापपुरुषको यमदूत जुलाहोंके समान सभी अंगोंमें सूतोंसे सीते हैं ॥ ३६ ॥ इस तरहके सैकड़ों हजारों नरक यमालयमें हैं उन सबमें यहाँ प्रकट या अप्रकटरूपसे जो अधार्मानुवर्ती हैं वेही गिरते हैं। एवं धर्मानुवर्ती स्वर्गमें जाते हैं। दोनोंके भी अवशेषसे यहाँ पुनर्जन्म पाते हैं ॥ ३७ ॥ निवृत्तिलक्षण मार्ग तो पहले ही कह दिया है। यह अण्डकोष चौदह भागोंमें पुराणोंमें वर्णित है। साक्षात् महापुरुष नारायणके माया गुणमय वृहत्तमरूपका वर्णन जो आदरसे पढ़ता है या सुनता है, वह परमात्माका जो अग्राह्य औपनिषदिक रूप है, उसको श्रद्धाभक्तिसे विशुद्धबुद्धि होकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जानता है ॥ ३८ ॥ सूक्ष्मके समान भगवान्‌के स्थूलरूपको भी सुनकर यति स्थूलमें स्थित अपने मनको बुद्धिद्वारा धीरेसे सूक्ष्ममें ले जा सकता है ॥ ३९ ॥ हे राजन्, भूमि, द्वीप,

यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥ श्रुत्वा स्थूलं यथां सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः । स्थूले निर्जितमात्मानशनैःसूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥ ३९ ॥ भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसस्था ॥ गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारधेहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

वर्ष, सरित्, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिगर्ण और लोक इनकी रचना मैंने आपसे कह दी। यह समस्त जीवसमूहोंका आश्रयभूत परमात्माका स्थूलशरीर है ॥४०॥

छब्बीसवें अध्यायका सार—राजाने पूछा—हे ऋषे, नरक कहाँ है, जमीनपर तीनों लोकके बाहर या कहीं अन्तरालमें ? श्रीशुकदेवजीने कहा—दक्षिणदिशामें भूमिके नीचेके भागमें अन्तरालमें ही नरक है। उसी दिशामें यमराज राज करते हैं और दूतोंके द्वारा लाये गये प्रेत जीवोंको कर्मानुसार दण्ड देते हैं। तामिस्र-अन्धतामिस्र इत्यादि नरकोंकी संख्या अट्ठाईस है जो यहाँ परद्रव्य तथा स्त्रीका अपहरण करता है वह तामिस्रमें डाला जाता है। जो परस्त्रीका भोग करता है उसे अन्धतामिस्र मिलता है वहाँ गिरते ही यातनाकी वेदनासे उसकी ज्ञान दृष्टि नष्ट हो जाती है। जो भूतद्रोहसे केवल कुटुम्ब भरण करता है उसको रौरव मिलता है। जिनसे यहाँ जिनको पीड़ा मिलती है वे वहाँ रुरु रूपसे आकर उन्हें पीड़ा देते हैं। केवल अपना पेट भरने वालेको महा रौरवमें क्रव्याद नामके रुरु मांसके लिए मारते हैं। जो यहाँ पशुपक्षियोंको पीड़ा देता है उसको यमदूत कुम्भीपाकमें तप्त तेलमें डालते हैं। जो ब्राह्मण गुरुके साथ द्रोह करता है वह कालसूत्र नरकमें तपे तावेपर बैठाया जाता है। वहाँ कभी दौड़ता है, कभी लोटता है। आपत्ति न होनेपर भी वेदमार्गको छोड़नेवालेको असिपत्र वनमें कोड़े यमदूत मारकर दौड़ाते हैं। जो राजा या राज पुरुष निरपराधियोंको दण्ड देता है उसका सूकरमुखनरकमें देह ऊँखके जैसा निचोड़ा जाता है। जो यहाँ खटमल आदिको मारता है वह अन्धकूपमें गिरता है। वहाँ ये सब जन्तु इसको शान्तिसे नहीं रहने देते। जो पञ्चयज्ञादि न करके जो मिले उसीको खाता है उसको कृमि बनकर वही खाने पड़ते हैं और उसको भी कृमि खाते हैं। इसी प्रकार अनेक नरक हैं। इनकी संख्या सैकड़ों या हजारों हो सकती है। अधर्मानुवर्ती लोग उसमें जाते हैं। एवं धर्मानुवर्ती स्वर्गमें दोनों भोगनेके बाद यहाँ फिर जन्म मिलता है। निवृत्ति-मार्गको पहलेही बतला दिया है। छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माहात्म्यम्--विष्णुरुवाच--पञ्चमस्कन्धसम्भूतं फलंश्रृणु चतुर्मुख। तदेव हृदयं मह्यं बालहत्याविमोचकम् ॥ ब्रह्मोवाच। बालहत्या कृता केन को मुक्तः श्रुतिमात्रतः। तन्मे वद सुर श्रेष्ठलोकानां हितकारकः ॥ हरिरुवाच। पुरा कृतयुगे तात राजासीद्विमलो महान्। कान्यकुब्जाधिपः श्रीमान्भार्याशितयुतो विधे ॥ अनपत्येन दुःखेन पीडितो गुरुमन्दिरम्। जगाम रथमारुह्य सन्तानप्राप्तये नृप ॥ तत्र गत्वा गुरुं स्तुत्वा प्रार्थयामास सन्ततिम्। गुरोराज्ञां समाप्राप्य पुत्रेष्टिं स चकार ह ॥ ततः पुत्रशतं लेभ एकोनं नृपतिस्तदा। ज्येष्ठा भार्या पुत्रहीना दुःखिताभून्नृपस्य हि ॥ सपत्नीनां पुत्रनाशं चिन्तयामास सर्वदा। एकदा सहितः पत्न्या स्नानार्थं ससमाययौ ॥ अमाचन्द्रमसोर्योगे तीर्थराजं सुखप्रदम्। मारितं बालकशतं भार्यया पुत्रहीनया ॥ नृपतेर्विमलस्याथ श्रुत्वा राजातिदुःखितः। चतुरशीतिर्लक्षाणां नरकाणां तथा पुनः ॥ भुक्त्वा पापप्रभावेण चाण्डाली सा भवन्मुहुः। दुर्भगत्वं समासाद्य विचरन्त्या वने वने ॥ कदाचिद् भाग्यतो वार्ता पञ्चमस्कन्ध संभवा। हतपाप ततो जाता श्रवणस्य प्रभावतः ॥ वैकुण्ठलोकमगमदहो भागवतं महत् ॥

पुराणके फलका स्वरूप—पुराणान्ते व्यासगृहं गत्वा व्यासार्पितं च यत्। निवेद्य स्वगृहं गच्छेत्पुराणोक्तफलं लभेत् ॥ पुराणके निन्दाका फल—यः पुराणं निन्दयदि इतिहासं कथानकम्। स एव रौरवं याति कुष्ठी भवति जन्मनि ॥ पुराणार्थेपीठस्थित व्याससे कलहका फल—कथ्यमाने पुराणार्थे विवादं कुरुते नरः। श्रद्धया ईर्ष्या वापि स दुःखं लभतेऽचिरम् ॥ विद्यया ईर्ष्या द्वेषात्सोत्कर्षाद्वानराधमः। यो विवादयते मूढो व्यासपीठस्थितं द्विजम् ॥ व्यासस्थानस्थितो विप्रस्तावद्विष्णुर्न संशयः। तत्पूजनात्परं श्रेय इहलोके परत्र च ॥ पुराण श्रवणसे सबको उत्तम लोककी प्राप्ति—पुराणश्रवणं कृत्वा स्त्रियो वा ब्राह्मणादयः। वैकुण्ठं भुवनं यान्ति स्वशक्त्या व्यासपूजनात् ॥ अयशो महदाप्नोति व्यासस्यानर्चनाद्ध्रुवम्। तिर्यग्योनिमनुप्राप्य शोचतेसौ शराङ्कुवत् ॥

(कलियुग पुराण श्रवणका विशिष्ट कथन)

कलौ नास्त्येव नास्त्येव पुराणश्रवणं विना। अष्टादशपुराणानां मोक्षः स्याच्छ्रवणेन वै ॥ अष्टादशमित्यावृत्या एकस्यापि हि मोक्षता। एकस्य श्रवणं नैव कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ अतस्यापि पुराणस्य श्लोकं श्लोकार्धमेव च। श्रोतव्यं तत्र चेद्भक्तिरतदन्यं च हरिप्रियम् ॥ एकेन हरतो दोषो द्वितीयेन हि द्वैतकम्। तृतीयं हरते दुःखं चतुर्थेन स्थिरा च मा ॥ पञ्चषष्ठादि श्रवणात्पुत्रपौत्रप्रपौत्रवान्। ८शून संपत्तिमाप्नोति वसुवारश्रवाचरः। सर्वरोगविनिर्मुक्तो रुद्रादित्य त्रयोदश ॥ मनुपञ्चदशद्व्यष्ट श्रवणाच्चक्र वर्तिना। देवत्वं लभते मर्त्यः श्रवणात्सप्तदशस्य च ॥ अष्टादशपुराणैस्तु विष्णुः प्रियतरो भवेत्। श्रवणाल्लभते मोक्षं पुराणोपपुराणतः ॥

(पुराण श्रवणसे विष्णुलोक गमन)

साग्रमर्धं तदर्धं वा पुराणस्य श्रुतं फलम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं च गच्छति ॥ एकतः सर्वदानानि तीर्थान्यायतनानि च। पुराणश्रवणेनास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥

(पुराण श्रवणान्तर सपत्नीक व्यासको अमूल्य रत्न वस्त्रादि दानसे पुराणका फल चाहे)

श्रुत्वा पुराणं राजेन्द्र पूजयेच्च सरस्वतीम्। वस्त्रालङ्कारणैश्चैवकञ्चुक्याद्यैश्चशक्तितः। सपत्नीकं द्विज पूज्यं व्यासरूपिमीश्वरम् ॥ पादप्रक्षालनं कार्यं वस्त्रालङ्कार भूषितम्। पुष्पमालासुगन्धाद्यैर्द्रव्यैर्व्यासं प्रपूजयेत् ॥ माङ्गल्यैर्विविधैर्नैवेद्यैर्मुखवासकैः। स्वशक्त्या दक्षिणां दद्यात्पुराणोक्तफलं लभेत् ॥

(व्यासकी प्रदक्षिणासे पृथ्वी दक्षिणाका फल)

सरस्वतीं च व्यासं च यः करोति प्रदक्षिणाम्। पृथ्वीप्रदक्षिणायाश्च फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥

(भागवतके श्रवणसे उत्तमोत्तम फल)

श्रीमद्भागवतस्यापि श्रवणं यः समाचरेत्। स तु पापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(भागवतद्विजोंके सन्मुख न जानेपर भगवान्का विशेष प्रकोप)

दृष्ट्वा भागवतान् विप्रान्संमुखं यो न याति हि । न गृह्णाति हरिस्तस्य पूजां द्वादशवार्षिकीम् ॥

(कार्तिकमासमें पुराण श्रवणसे फल कथन)

कार्तिकमासि विप्रेन्द्र प्रातः स्नानपरायणः । पुराणश्रवणं कुर्यादन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् । कार्तिकेयः पठेन्मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्मसनातनम् ।

[भगवान् विष्णुद्वारा भागवतका विशिष्टतम रूप]

वैष्णवानां व्रतानां च कुर्यात्स्वीकरणं बुधः । मत्प्रियं शृणुयाच्छश्वच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥ श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम् । शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारकम् ॥ नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः । प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥ श्लोकं श्लोकार्धपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् । पठेच्छृणोति वा भक्त्या गोसहस्रफलं भवेत् ॥ य पठेत्प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत । अष्टादशपुराणानां फलं प्राप्नोति मानवः । नित्यं मम कथा यत्र यत्र तिष्ठति वैष्णवः । कलिबाह्यानरास्ते वै येऽर्चयन्ति सदा मम॥ ये अर्चन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ । आस्फोटयन्त्यचलं तेषां प्रीतो भवाम्यहम् ॥ यावद्दिनानि हे पत्र शास्त्रं भागवतं गृहे । तावत्पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ यच्छन्ति वैष्णवं शास्त्रं भक्त्या भागवतं हि ये । कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते ॥ येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः ॥ प्रीणितास्तैश्च विबुधायावदाभूतसंप्लवम् ॥ श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे । शतशोथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ॥ न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ । न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात्कथश्चन ॥ कथं वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ । गृहे न तिष्ठते येषां श्वपचादधिका हि ते ॥ 'श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशो धर्मजयार्थिना । पापक्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना ॥' 'त शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम् । नित्यं नित्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥ न गच्छन्ति सदा मर्त्या श्रोतुं भागवतं सुत । एकादश्यां विशेषेण नास्ति पापक्षयस्तथा ॥ श्लोकं भागवतं चापि श्लोकार्धं पादमेव च । लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ॥ सर्वाश्रमाभि गमनं सर्वतीर्थावगाहनम् । न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं तथा ॥ यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत् । गच्छामि तत्र तत्राहं गौर्यथा सुतवत्सल ॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः । संवत्सरात्मकं पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥ श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थानाभिवादनैः । सन्मानयेत्तु तं दृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्ममातुला ॥ दृष्ट्वा भागवतं दूरात्प्रक्रमेत्संमुखो हि यः । पदे पदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ उत्थाय प्रणमेद्यो वै श्रीमद्भागवतं नरः । धनं पुत्रांस्तथा दारान् भक्तिं च प्रकरोम्यहम् ॥ महाराजोपचारैश्च श्रीमद्भागवतं सुत । शृण्वन्ति ये नराभक्त्या तेषां भर्ता भवाम्यहम् । ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम् ॥ समर्चयन्ति भत्या ये ममाभेदेन सुव्रत ।

[सप्ताहपारायणका क्रम]

अध्यायैस्तुरगाब्धिभिः द्विगिपुभिः ५८च्चा च वेदाब्धिभिः । खं बाणैरग्निवेदैः ग्रहगुणगणितैः सप्ताहयज्ञक्रमः ॥ पाठेन श्रवणे चार्थकथनैर्जीवः परं यातु शम् ।

—दौलतराम गौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(पञ्चम–स्कन्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भरतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६६ पुष्पलता

(षष्ठ–स्कन्ध)

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलङ्कृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय [संयुक्तप्रान्तीय] सरकार द्वारा संमानित विद्वान्–आचार्य श्रीदौलतरामगौड वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आचार्य श्रीधरस्वामीके पाण्डित्यके विषयमें ऐसी किंवदन्ती है कि बाहरसे चार विद्यार्थी श्रीमद्भागवत पढ़नेके लिए काशी आये। अनेक पण्डितोंके पास गये, लेकिन सबने उन्हें पढ़ाने से अस्वीकार कर दिया। वे बेचारे भटकते-भटकते मणिकर्णिका घाट पर पहुँचे। वहां श्रीनृसिंह भगवान् का मन्दिर आज भी वर्तमान है। इसी मन्दिरके पुजारी थे आचार्य श्रीधर-स्वामी। मणिकर्णिका घाटके निवासियोंसे उन विद्यार्थियों ने पूछा—भाई यदि यहां पर कोई भागवत पढ़नेवाला अच्छा पण्डित हो, तो आप लोग हमें बतलाइये। उससमयतक आचार्य श्रीधरकी कोई प्रसिद्ध न थी, लोगोंने उन छात्रोंसे कहा—आप लोग उसी मन्दिर में चले जाइये, वहां एक पण्डित रहते हैं आप लोगोंको अवश्य पढ़ा देंगे। वे छात्र मन्दिरमें जाकर आचार्यको नमस्कार पूर्वक विनययुक्त वाणीसे कहा—भगवन्, हम लोग बहुत दूरसे भागवत पढ़नेके लिए यहां आये हैं। कोई उपयुक्त पण्डित हमें नहीं मिलता। कृपाकर आप भागवत पढ़ाइये। आचार्यके अस्वीकार करने पर वे वहीं अनसन करने लगे। उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि इन्हें भागवत नहीं आती वे बहानामात्र कर रहे हैं। आचार्य बड़े असमञ्जस में पड़ गये। उन्होंने रातमें भगवान्से बड़े कातर स्वरसे कहा—भगवान, मुझमें जो पण्डित्य है वह आपसे छिपा नहीं है, आप आत्मयोगी हैं, मैं इन्हें कैसे भागवत पढ़ाऊँ, मेरी लाज आपके हाथमें है। रातको भगवान्ने स्वप्नमें कहा—श्रीधर, निडर होकर कल सवेरेसे इन्हें भागवत पढ़ाना आरम्भ कर दो, तुम्हें सब पदार्थ अपने आप एकत्रित होने लगेंगे। रात खतम हुई। सवेरे आचार्यने भागवत पढ़ाना आरम्भ कर दिया। तभीसे काशीमें उनके पाण्डित्यकी धाक जम गई। यही कारण है कि उन्होंने भागवतमें जहाँ तहाँ लिख दिया है कि—

"व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा। श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः॥"

श्रीधरी टीकाकी विशेषताके विषयमें दूसरी किंवदन्ती ऐसी है—उस समय अनेक विद्वानोंके द्वारा भागवतके ऊपर अनेक टीकाएँ लिखी गई थीं। अपनी अपनी टीकाको सभी श्रेष्ठ बतलाते थे। अन्तमें सबने निश्चय किया कि सबलोग अपनी अपनी टीका लेकर आज रातको विश्वनाथ मन्दिरमें रख दें। काशीपति बाबा विश्वनाथ स्वयं बतला देंगे कि किसकी टीका सर्वश्रेष्ठ है। सवेरेके पूजनके समय लोगोंने जाकर देखा कि श्रीधरकी टीकाके ऊपर यह लिखा हुआ है—

अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति वा न वा। श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः॥

अब उनके विषयमें विशिष्ट वचनोंको मुद्रित भक्तमालसे करते हैं—

अथातः श्रीधरस्वामीभक्तिमाहात्म्यमुत्तमम्। विष्णुभक्तिप्रदं नृणां कथयामि यथा श्रुतम्॥१॥ आसीद्विप्रो महातेजा वेदवेदाङ्गपारगः। शान्तो दान्तो दयायुक्तः सर्वशास्त्रार्थकोविदः॥२॥ विधिना स द्विजः श्रेष्ठः कृत्वा दारपरिग्रहम्। अग्निमादाय विधिवदग्निहोत्रपरायणः॥३॥ उत्पादयामास सुतानात्मतुल्यगुणानथ। बभूव भोगाद्विरतो वृद्धः काशीमवाप्य सः॥४॥ संन्यासं विधिवद्दण्डं शान्तो जग्राह स द्विजः। स एव श्रीधरस्वामीत्येवं लोकेऽतिविश्रुतः॥५॥ तत्राप्यध्यापनरतो विष्णुभक्तिपरायणः। भयाचिताशीरन्तुष्टः पश्यन्विष्णुमयं जगत्॥६॥ श्रीमद्भा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गवतं स्वामी ददर्शैकदिने शुभाम्। दृष्ट्वा तद्विष्णुमाहात्म्यमद्भुतं व्यासभासितम्॥ सर्वशास्त्रमयं क्लिष्टं दुर्बोधं पण्डितैरपि। संसारसागरोत्तारे पोतोऽयं दृश्यते किल॥८॥ दुर्बोधत्वाच्च विद्वद्भिः
सेव्यते न यदृच्छया। अतो व्याख्यां करिष्येऽस्य प्रसीदेच्चेद् हरिर्मम॥ ९॥ इत्येवं चिन्तयानः स नान्यत्किञ्चित्प्रपश्यति। तन्मनास्तद्गतप्राणो न लेभे तु सुखं क्वचित्॥ १० एकदा
रात्रिशेषे तु स्वप्ने श्रीविन्दुमाधवम्। ददर्श भाषमाणं तु कुरु व्याख्यानमस्य मे ११ माहात्म्यमस्ति तत्सत्यं प्रकटीकुरु यत्नतः। त्वदुक्तं नानृतं किञ्चिद्भविष्यति कदाचन १२
यावन्मन्नाम लोकेऽस्मिंस्तावत्स्थास्यति ते यशः। दृष्ट्वा स श्रीधरस्वामी प्रबुद्धोऽतिजहर्ष च १३ तस्मिन्नेव क्षणे स्वामी निबबन्ध च मङ्गलम्। तदादि प्रातरारभ्य कृत्वा नित्यविधिं पुनः १४
अहर्निशं निर्ममैतां व्याख्यां भागवतीं शुभाम्। निर्विघ्नमभवत्पूर्णं व्याख्यानं चास्य वै तदा १५ तदा काशीनिवासिभ्यो विद्वद्भ्योऽपि विलिख्य सः। पुस्तकं प्रेषयामास कीदृग्जातमिति ब्रुवन् १६
ते प्राशशंसुः कतिचिद् दृष्ट्वा तत्पुस्तकं जनाः। केचिदीर्ष्यापरास्तत्र निनिन्दुर्दुर्जनाः पुनः १७ स्वयमारेभिरे टीकां कर्तुं भागवतस्य च। निर्माय सकलां टीकां ते सर्वे दुष्टमानसाः १८
प्रख्यापयन्तो निन्दन्तः श्रीधरस्वामि निर्मिताम्। एकस्मिन्दिवसे तत्र विन्दुमाधवसन्निधौ १९ सभायां पण्डिताः सर्वे गृहीत्वा स्वस्वपुस्तकम्। संस्थाप्योचुरहो सर्वे स्वस्वनिर्मितपुस्तकम् २०
विन्दुमाधवपादाब्जादधस्तात्स्थाप्यतां किल। बहिरेत्य क्षणं स्थित्वा प्रार्थयित्वा च माधवम् २१ पुनर्गत्वा च पश्यामो यां टीकां तत्पदाम्बुजे। संस्थापितां प्रपश्यामस्तां सत्कुर्मो न संशयः २२
इत्येवं मन्त्रयामासुः श्रीधरस्वामिसन्निधौ। जगाम चैकस्तन्मध्ये प्राह तस्मै चिकीर्षितम् २३ तच्छ्रुत्वा श्रीधरस्वामी ददौ स्वकृतपुस्तकम्। गृहाणेदं मम कृतं न गन्तव्यं मया द्विज २४
भवतां कृतिरेवास्तु समीचीनेति मे मतिः। ममैव सम्यगित्येवं नाग्रहो मयि वर्तते २५ इति श्रुत्वा तदा विप्रो गृहीत्वा स्वामिनिर्मिताम्। टीकां सभायामायातः प्राह स्वामिवचश्च तान् २६
ततस्ते पुस्तकं सर्वे विन्दुमाधवपादतः। अधस्तात्स्थापयामासुः संप्रार्थ्यैवं परस्परम् २७ विन्दुमाधव देवेश भक्तानुग्रहविग्रह। एतेषां पुस्तकानां तु मध्ये यत्ते प्रियं विभो २८
सद् व्याख्यानमभूत्तत्त्वं स्वपादे स्थापय प्रभो। सर्वेषामुपरिष्टाच्च स्थापितं स्यान्न संशयः २९ एवं संप्रार्थ्य पादाधोऽस्थापयन्सर्वपुस्तकम्। बहिरेत्य क्षणं स्थित्वा पुनर्गत्वाथ मन्दिरम् ३०
ददृशुः श्रीधरस्वामि निर्मितां तत्पदाब्जयोः। उपरि स्थापितं सर्वे प्रशशंसुः परस्परम् ३१ शिरसा स्वामिरचितां टीकां न त्वाथ ते जनाः। स्तुवन्तः स्वामिभवनं गत्वोचुः सर्वमादितः ३२
श्रुत्वा स्वामी तु तद्वाक्यं मात्सर्यरहितोऽब्रवीत्। यथेष्टं भवतामस्तु नाग्रहो मेऽत्र वर्तते ३३ इति श्रुत्वा तु ते सर्वे गत्वा स्वं स्वं च मन्दिरम्। श्रीधरस्वामि भक्तिं ते चक्रुर्वै मनसा गिरा ३४
एवं भक्तवशोऽद्यापि भगवान्भक्तवत्सलः। प्रख्यापयति लोकेऽस्मिन्भक्तिमाहात्म्य यन्त्रितः ३५ अथापरं तु तस्यैव श्रीधरस्वामिनः शुभम्। महात्म्यं शृणु वक्ष्यामि महाश्चर्यं तदुत्तमम् ३६
एकदा श्रीधरस्वामि ज्वररोगेण पीडितः। उपवासपरो भूत्वा क्षुत्पिपासा विवर्जितः ३७ विद्याशिष्यस्तु तस्यैको ब्राह्मणो माधवाह्वयः। परिचर्या परो नित्यं गुरुभक्तिपरायणः ३८ सम्यक्सेवां
चकारास्य पादसंवाहनादिभिः। अहोरात्रं तु तत्रैव निवसन्गुरुसन्निधौ ३९ तदाज्ञां शिरसा धृत्वा चकार सुमहात्मनः। पञ्चरात्रं गतं तस्य निराहारस्य स्वामिनः ४० पष्ठेऽहनि निशाभागे माधव-
स्यापि स द्विजः। वृद्धो ज्वरातुरः सोऽपि निराहारः कृशस्तदा ४१ मूर्छामवाप महतीं ज्वरदाहेन दारुणाम्। तं दृष्ट्वा मूर्छितं माता माधवस्य तपस्विनी ४२ रुरोदोच्चैर्जुहावाथ पुत्रं तं माधवं
सती। श्रुत्वा तज्जननीवाक्यं माधवोऽतीवदुःखितः ४३ श्रीधरस्वामिनं भक्त्या प्रणिपत्येदमब्रवीत्। स्वामिन्पिता मे रोगार्तो मूर्च्छां प्राप्नोति सांप्रतम् ४४ माता मे रुदती दीना मामाह्वयति दुःखिता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वामप्यैतं स्र ! हृदयं प्रस्थ स्यन्यो ऽथवामवे ४५ स्थातुं गन्तुं न शक्नोमि तदाज्ञापय मे प्रभो । श्रुत्वा वचस्तस्य माधवस्याति दुःखिनः ४६ उवाच श्रीधरस्वामि वत्स गच्छाधुनैव भोः । मदपेक्षया ते किल पिता ते मूर्च्छितो गृहे ४७ रुदती तत्र माता सा त्वामाह्वयति सुव्रत । गच्छेति वहुधा तेन प्रेषितो माधवो ययौ ४८ दृष्ट्वातु पितरं गेहे मूर्च्छितं गतचेतनम् । रुदन्तु पत्रचाराथ त त्र सामाजिका जनाः ४९ समागत्यैव वचेरुस्ते जहौ मूर्च्छां ततो द्विजः । अथ तत्रैव समये भग्नः स्वामिज्वरो महान् ५० बुभुक्षातीवसंलग्ना वलहानिकरी परा । शशाक गन्तुं नोत्थाय क्षुधा पातीववीडितः ५१ मनसा चिन्तयामास लभे पात्रं कथं त्वहम् । एवं चिन्तयमानस्य स्वामिनो मन्दिरे तदा ५२ माधवस्यैव रूपेण बिन्दुमाधव आययौ । तं दृष्ट्वा श्रीधरस्वामि प्राह कोऽसी ति चासवत् ५३ तच्छ्रुत्वा स्वामिनो वाक्यं प्राह माधवरूपधृक् । शिष्यस्ते माधवोऽहं भो ! अद्य ते कुशली पिता ५४ इत्युवाच तदा स्वामी स ततो माधवोऽब्रवीत् ॥ कुशलो मे पिता स्वामिंस्त्वत्प्रसादान्न संशयः ५५ भवान्ब्रवीतु किञ्चात्र कर्तव्यं प्रकरोम्यहम् । श्रुत्वा तु श्रीधरस्वामी प्रोवाचाहं क्षुधातुरः ५६ वत्सान्नं देहि मे नो चेत्प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् । श्रुत्वै तत्स्वामिवचनं शीघ्रं कृत्रिममाधवः ५७ इच्छयाऽन्नं क्षुधातुल्यं संपाद्यामलभोजनम् । स्वामिसन्निधिमागत्य भोजयामास प्रतरः ५८ यथेष्टं भोजयित्वा तं तथोच्छिष्टादिकं पुनः । संमार्ज्य स्वामिनिकटे तस्थौ कृत्रिममाधवः ५९ अथ तस्मिन् क्षणे शिष्यो माधवः समुपाययौ । जपागारे तदा स्वामी नमस्कृत्य स माधवः ६० उवाच स्वामिनं रात्रौ शरीरं कीदृशं स्थितम् । तच्छ्रुत्वा श्रीधरस्वामि प्राहेदं भाषासे किमु ६१ रात्रावन्नादिदानेन जीवितोहं त्वया पुनः । किमिद प्रोच्यते सर्वमज्ञातमिव सर्वथा ६२ इत्युक्तो माधवः प्राह स्वामिन्नाहं त्वदन्तिके । रात्रावागतवानत्र सत्यमेतन्न संशयः ६३ इति श्रुत्वा ततः स्वामि निश्चिकाय स्वमानसे । बिन्दुमाधव एवासौ मम रक्षार्थमागतः ६४ अन्यथा मृतिरेव स्याद्रात्रावन्नं भवेन्न चेत् । तदारभ्य ततः स्वामी शरीरेण बलेन च ६५ पुष्टोऽभू रोगनिर्मुक्तो विनापथ्यौषधैरपि । माधवो रात्रिवृत्तान्तं काशीवासिजनेषु च ६६ संश्राव्य स्वामिसेवायां निरतोभूदहर्निशम् । इत्येवं बन्दितं लोके श्रीधरस्वामिचेष्टितम् ६७ श्रुत्वैतत्परमाख्यानं कृष्णे भक्तिं लभेन्नरः ॥ ६८ ॥

❀ विभिन्न कामनाओंसे भिन्न भिन्न दिनोंमें भागवत पारायणकी विधि ❀

यदि एक दिनमें सम्पूर्ण भागवतका पारायण करना हो, तो श्रीशुक्राचार्यके मतसे श्रावणकृष्णपक्षमें भागवतप्रेमियोंको प्रारम्भसे समाप्तितक करना चाहिये । इसमें तिथि अपेक्षित नहीं है । आचार्य त्र्यम्बकके मतसे २ दिनका पारायण करनेवाले मनुष्यको श्रावणशुक्लपक्षमें पहले दिन प्रथमस्कन्धमें प्रथम अध्यायके १ म श्लोकसे ९म स्कन्धके १३ अध्यायके अन्ततक कुल १९० अध्यायतक पारायण करना चाहिये तथा दूसरे दिन ९म स्कन्धके १४ वें अध्यायके १म श्लोकसे १२ वें स्कन्धके १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल १४५ अध्याय पारायण करना चाहिये । आचार्य हारीतके मतसे तीन दिनमें पारायण करनेवाले मुक्तिके इच्छुक पुरुषोंको आश्विनशुक्लपक्षमें पहले दिन १ म स्कन्धके १ अध्यायके १ म श्लोकसे ७ म स्कन्धके १५ वें अध्यायके अन्ततक कुल १५३ अध्याय, दूसरे दिन ७ म स्कन्धके १६ वें अध्यायके १ म श्लोकसे १० म स्कन्धके ९ म अध्यायके १ म अध्यायके अन्ततक कुल १३८ अध्याय तथा तीसरे दिन १० म स्कन्धके १० म अध्यायके १ म श्लोकसे १२ वे स्कन्धके १३ वे अध्यायके अन्ततक कुल ९४ अध्याय पारायण करना चाहिये । सम्पूर्ण कामनाओंकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सिद्धिकेलिए आचार्य शौनकके मतसे चार दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषको भाद्रपद शुक्ल पक्षमें पहले दिन १ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ४ चतुर्थस्कन्धके २३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ८१ अध्याय, दूसरे दिन ४ र्थ स्कन्धके २४ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ८ म स्कन्धके १७ वें अध्यायके अन्ततक कुल ८९ अध्याय, तीसरे दिन ८ म स्कन्धके १८ वें अध्यायके १ म श्लोकसे १० म स्कन्धके ५२ वें अध्यायके अन्ततक कुल ८३ अध्याय और चौथे दिन १० म स्कन्धके ५३ वें अध्यायके १ म श्लोकसे १२ वें स्कन्धके १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ८२ अध्याय परायण करना चाहिये। सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धिके लिए आचार्य अकृतव्रणके मतसे पाँच दिनमें पारायण करनेवाळे पुरुषोंको भाद्रपद शुक्लपक्षमें पहळे दिन १ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ४र्थ स्कन्धके ४वें अध्यायके अन्ततक कुल ६९ अध्याय, दूसरे दिन ४र्थ स्कन्धके ८ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ६ ष्ठ स्कन्धके १९ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६९ अध्याय, तीसरे दिन ६ ष्ठ स्कन्धके २० वे अध्यायके १ म श्लोकसे ९ म स्कन्धके २४ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६३ अध्याय, चौथे दिन ९ म स्कन्धके २५ वें अध्यायके १ म श्लोकसे १० म स्कन्धके ६९ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६ अध्याय तथा पाँचवे दिन १० म स्कन्धके ७० वे अध्यायके १ म श्लोकसे १२ वें स्कन्धके १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६५ अध्याय परायण करना चाहिये। धनप्राप्तिके लिए आचार्य शांशपायनके मतसे छः दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—भाद्रपद कृष्णपक्षमें पहले दिन १ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ३ य स्कन्धके ३२ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६१ अध्याय, दूसरे दिन ३ य स्कन्धके ३३ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ५ स्कन्धके १४ वे अध्यायके अन्ततक कुल ६६ अध्याय, तीसरे दिन ५ म स्कन्धके १५ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ८ म के २४ वें अध्यायके अन्ततक कुल ७० अध्याय, चौथे दिन ९ म के १ म अध्यायके १ म श्लोकसे १० म स्कन्धके ३९ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६३ अध्याय, पाँचवें दिन १० म स्कन्धके ४० वें अध्यायके १ म श्लोकसे ११ वें स्कन्धके १९ वें अध्यायके अन्ततक कुल ७० अध्याय तथा छठे दिन ११ वें स्कन्धके २० वें अध्यायके १ म श्लोकसे १२ वें स्कन्धके १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल २५ अध्याय—पारायण करना चाहिये। (१) धन प्राप्तिके लिए आचार्य शांशपायनके मतसे सात दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—भाद्रपद कृष्णपक्षमें पहले दिन १ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ४र्थ स्कन्धके ९ म अध्यायके अन्ततक कुल ७१ अध्याय, दूसरे दिन ४ र्थ स्कन्धके १० म अध्यायके १ म श्लोकसे ६ ष्ठ स्कन्धके १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६१ अध्याय, तीसरे दिन ६ ठे स्कन्धके १४ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ९ म स्कन्धके ७ वें अध्यायके अन्ततक कुल ५२ अध्याय, चौथे दिन ९ म स्कन्धके ८ वें अध्यायके १ म श्लोकसे १० म स्कन्धके ३४ वें अध्यायके अन्ततक कुल ५१ अध्याय, पाँचवें दिन १० स्कन्धके ३५ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ७३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ३९ अध्याय, छठे दिन १० म स्कन्धके ७४ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ९० अध्यायके अन्ततक कुल १७ अध्याय तथा ७ वें दिन ११ वें स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे १२ स्कन्धके १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ४४ अध्याय—पारायण करना चाहिये। (२) पुत्र प्राप्तिकी कामनासे श्रीवसिष्ठ मुनिके मतसे ७ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—वैशाखमासमें पहळे दिन १ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ३ य स्कन्धके २४ वें अध्यायके अन्ततक कुल ५३ अध्याय, दूसरे दिन ३ य स्कन्धके २५ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ५ म स्कन्धके ३ रे अध्यायके अन्ततक कुल ४३ अध्याय, तीसरे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिन ५ म स्कन्धके ४र्थ अध्यायके १ म श्लोकसे ७ म स्कन्धके ८वें अध्यायके अन्ततक कुल ५० अध्याय, ४ र्थ दिन ७ म स्कन्ध ९ म अध्यायके १ म श्लोकसे १० म स्कन्धके ४ र्थ अध्यायके अन्ततक कुल ५६ अध्याय, ५ वें दिन १० म स्कन्धके ५ म अध्यायके १ म श्लोकसे १० म के ५५ वें अध्यायके अन्ततक कुल ५१ अध्याय, ६ठे दिन १० स्कन्ध के ५६ वें अध्यायके १म श्लोकसे ११ स्कन्धके ६ ठे अध्यायके अन्ततक कुल ४१दें अध्याय और ७ वें दिन ११ वें स्कन्धके ७ वें अध्यायके १ म श्लोकसे १२ वें स्कन्ध १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ३८ अध्याय—पारायण करना चाहिये। (३) श्रीसूतजीके मतसे निष्काम ७ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—कार्तिक शुक्ल पक्षमें पहले दिन ९ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ३ म स्कन्धके १० वें अध्यायके अन्ततक कुल ४९ अध्याय, २ रे दिन ३ म स्कन्धके ११ अध्यायके १ म श्लोकसे ५ म स्कन्धके २३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६७ अध्याय, ३ रे दिन ५ म स्कन्धके २४ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ७ म स्कन्धके १५ वें अध्यायके अन्ततक कुल ३७ अध्याय, ४ र्थ दिन ८ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ९ म स्कन्धके २४ वें अध्यायके अन्ततक कुल ४८ अध्याय, ५ वें दिन १० म के प्रारम्भसे ४२ वें अध्यायके अन्ततक कुल ४२ अध्याय, ६ ठे दिन १० म स्कन्धके ४३ वें अध्यायके १ म श्लोकसे १० म के ९० अध्यायके अन्ततक कुल ४८ अध्याय और सातवें दिन ११ स्कन्धके १म अध्यायके १ म श्लोकसे १२ वें स्कन्धके १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल ४४ अध्याय—पारायण करना चाहिए। (५) श्रीविश्वामित्रके मतसे सङ्कटमोचनार्थ ७ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—मार्गशीर्ष मासमें पहले दिन १ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे २ म स्कन्धके १० अध्यायके अन्ततक कुल २९ अध्याय, दूसरे दिन ३ य स्कन्धके १म अध्यायके १ म श्लोकसे ४ र्थ स्कन्धके ३१ अध्याय के अन्ततक कुल ६४ अध्याय, तीसरे दिन ५ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे ६ स्कन्धके १९ वें अध्यायतक कुल ४५ अध्याय, ४ र्थ दिन ७ म स्कन्धके १ म अध्याय के १ म श्लोकसे ८ म के २४ वें अध्याय तक कुल ३९ अध्याय, ५ वें दिन ९ म स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोक १० म स्कन्धके ४९ वें अध्यायके अन्ततक कुल ७३ अध्याय, ६ ठे दिन १० म स्कन्धके ५० वें अध्यायके १ म श्लोकसे ११ वें स्कन्धके ३१ वें अध्यायके अन्ततक कुल ७२ अध्याय और ७ वें दिन १२ वें स्कन्धके प्रारम्भसे अन्ततक कुल १३ अध्याय पारायण करना चाहिये। (५) श्रीजामदग्निके मतसे विषको नष्ट करनेकी कामनासे ७ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—पौषमासमें पहले दिन १ स्कन्धके प्रारम्भसे ३ म स्कन्धके १९ अध्यायके अन्ततक कुल ४८ अध्याय, दूसरे दिन ३म स्कन्धके २० अध्यायके १ म श्लोकसे ५ म स्कन्धके ६ ठे अध्यायके अन्ततक कुल ५१ अध्या, ३ रे दिन ५ म स्कन्ध ७ वें अध्यायके १ म श्लोकसे ७ म स्कन्धके १० वें अध्यायके अन्ततक कुल ३९ अध्याय, ४ र्थ दिन ७ म स्कन्धके ११ वें अध्यायके प्रारम्भसे ९म के २४ वें अध्यायके अन्ततक कुल ५३ अध्याय, ५ वें दिन १० म के प्रारम्भसे ४९ वें अध्यायके अन्ततक कुल ४९ अध्याय, छठे दिन १० म स्कन्धके ५० वें अध्यायके प्रारम्भसे ९० अध्यायके कुल ४१ अध्याय और ७ वें दिन ११ स्कन्धके १ म अध्यायके १ म श्लोकसे १२ वें स्कन्धके १३ अध्याय तक कुल ४४ अध्याय—पारायण करना चाहिये! (६) बन्धनसे छूटनेकी इच्छासे भारद्वाज मुनिके मतसे ७ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—माघ मासमें पहले दिन १म स्कन्धके प्रारम्भसे ३ य स्कन्धके ३३वें अध्यायके अन्ततक कुल६२ अध्याय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दसरे दिन ४र्थ स्कन्धके प्रारम्भसे ५म स्कन्धके २६ अध्यायके अन्ततक कुल ५७ अध्याय, तीसरे दिन ६पृष्ठ स्कन्धके प्रारम्भसे ७म स्कन्धके १५वें अध्यायके अन्ततक कुल ३४ अध्याय ४र्थ दिन ८म स्कन्धके प्रारम्भसे ९म के २४वें अध्यायके अन्ततक कुल ४८अध्याय, ५वें दिन १०म स्कन्धके प्रारम्भसे ९० अध्यायके अन्ततक कुल ९० अध्याय, ६ठे दिन १० वें स्कन्धके प्रारम्भसे अन्ततक कुल ३१ अध्याय, ७वें दिन १२वें स्कन्धके प्रारम्भसे १३वें अध्यायके अन्ततक कुल १३ अध्याय—पारायण करना चाहिए। (७) शत्रुको पराजित करनेके लिए गौतममुनिके मतसे ७ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—फाल्गुन मासमें पहले दिन १ म स्कन्धके प्रारम्भसे ३ य स्कन्धके १९ वें अध्यायके अन्ततक कुल ४८ अध्याय, दसरे दिन ३ य स्कन्धके २०वें अध्यायके प्रारम्भसे ५ म स्कन्धके १५ वें अध्यायके अन्ततक कुल ६० अध्याय, तीसरे दिन ५म स्कन्धके १६वें अध्यायके प्रारम्भसे ७म स्कन्धके १६वें अध्यायके अन्ततक कुल ४५ अध्याय, ४र्थ दिन ८ म स्कन्धके प्रारम्भसे १० स्कन्धके १२ अध्यायके अन्ततक कुल ६० अध्याय, ५वें दिन १० म स्कन्धके १३ अध्यायके प्रारम्भसे १० न के ८४ अध्यायके अन्ततक कुल ७२ अध्याय, ६ठे दिज १० म स्कन्धके ८५ अध्यायके प्रारम्भसे ११ वें स्कन्धके ३१ अध्यायके अन्ततक कुल३७ अध्याय और ७वें दिन १२वें स्कन्धके प्रारम्भसे १३ वें अध्यायके अन्ततक कुल १३ अध्याय—पारायण करना चाहिये। (८) रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये अत्रिमुनिके मतसे ७ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको चैत्रमासमें पहले दिन १ म स्कन्धके प्रारम्भसे ३ य स्कन्धके २० अध्यायके अन्ततक कुल ४९ अध्याय, दूसरे दिन ३ म स्कन्धके २१ अध्यायके प्रारम्भसे ५ म स्कन्धके ६ ष्ठ अध्यायके अन्ततक कुल ५० अध्याय, तीसरे दिन ५ म स्कन्धके ७म अध्यायके प्रारम्भसे ६ ष्ठके १९ अध्यायके अन्ततक कुल ३९ अध्याय, ४थे दिन ७म स्कन्धके प्रारम्भसे ९ म स्कन्धके २० वें अध्यायके अन्तनक कुल ५९ अध्याय, ५ वें दिन ९ स्कन्धके २१ वें अध्यायके प्रारम्भसे १० स्कन्धके ३५ अध्यायके अन्ततक कुल ३९अध्याय, ६ठे दिन १०म स्कन्धके ३९वें अध्यायके प्रारम्भसे १०वें स्कन्धक ६ठे अध्यायके अन्ततककुल ६१ अध्याय और ७वें दिन ११वें स्कन्धके ७वें अध्यायके प्रारम्भसे १२वें स्कन्धके १५अध्यायके अन्ततक कुल ३८ अध्याय–पारायण करना चाहिये। राज्यप्राप्तिकी कामनासे श्रीकश्यप मुनिके कतानुसार १०दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको–आषाढ़ शुक्लपक्षमें पहले दिन १म स्कन्धके प्रारम्भसे ५म स्कन्धके६ष्ठ अध्यायके अन्ततक कुल ३५अध्याय दूसरे दिन ३म स्कन्धके ७म अध्यायके प्रारम्भसे ४र्थ स्कन्धके ७वें अध्यायके अन्ततक कुल ३४ अध्याय,तीसरे दिन ४र्थ स्कन्धके ८म के आरम्भसे ५म स्कन्धके ९ म तक कुल ३३, ४ र्थ दिन ५म स्कन्धके १०म के प्रारम्भसे ६ष्ठ स्कन्धके १९ अध्यायके अन्ततक कुल ३६ अध्याय, ५वें दिन ७ म स्कन्धके आरम्भसे ८ म स्कन्धके २४ अध्यायके अन्ततक कुल ३९ अध्याय, ६ठे दिन ९म स्कन्धके आरम्भसे १० स्कन्धके११वें अध्यायके अन्ततक कुल ३५ अध्याय, ७वें दिन १०मके १२वें अध्यायके आरम्भसे १०मके ४५वें अध्याय के अन्ततक कुल ३४ अध्याय, ८वें दिन १०म स्कन्धके ४६ वें अध्यायके आरम्भसे १०के ७९वें अध्यायके अन्ततक कुल ३४ अध्याज, ९ वें रोज १० म के ८ अध्यायके आरम्भसे ११वें स्कन्धके २३वें अध्यायके अन्ततक कुल ३४ अध्याय तथा १०वें दिन ११वें स्कन्धके आरम्भसे १२ स्कन्धके १३वें अध्यायके अन्ततक कुल ३४ अध्याय—पारायण करना चाहिये। सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्तिके लिये बृहस्पतिके मतसे १५ दिनमें पारायण करनेवाले पुरुषोंको—ज्येष्ठ शुक्ल पक्षमें या अषाढ़में पहले दिन १क स्कन्धके प्रारम्भसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

२ म स्कन्धके २ रे अध्यायके अन्ततक कुल २१ अध्याय, दूसरे दिन २ म स्कन्धके ३ रे अ० के प्रारम्भसे ३ म स्कन्धके १५ वें अ० के अन्ततक कुल २३ अ०, तीसरे दिन ३ म स्कन्धके १६ वें अ० के प्रारम्भसे ४ र्थ स्कन्धके ४ र्थ अ० के अन्ततक कुल २२ अ०, चौथे दिन ४ र्थ स्कन्धके ५ वें अ० के प्रारम्भसे २७ वें अ० के अन्ततक कुल २३ अ०, ५ वें दिन २८ वें अ० के प्रारम्भसे ५ म स्कन्धके १८ वें अ० के अन्ततक कुल २२ अ० ६ ठे दिन ५ म स्कन्धके १९ वें अ० के आरम्भसे ६ ष्ठके १५ वें अ० के अन्ततक २३ अ०, ७ वें दिन षष्ठके १६ वें अ० के प्रारम्भसे ८ म स्कन्धके ५ म अ० के अन्ततक कुल २४ अ०, ८ वें दिन ८ म स्कन्धके ६ ठे अ० के आरम्भसे ९ म के ६ष्ठ अ० के अन्ततक कुल २५ अ०, ९ वें दिन ९ म स्कन्धके ७ वें अ० के प्रारम्भसे १० म स्कन्धके ४ र्थ अ० के अन्ततक कुल २२ अ, १० वें दिन १० म स्कन्धके ५ वें अ० के प्रारम्भसे २६ वें अ० के अन्ततक कुल २२ अ०, ११ वें दिन २७ वें अ० के प्रारम्भसे ४९ वें अ० के अन्ततक कुल २३ अ०, १२ वें दिन ५० वें अ० के आरम्भसे ७० वें अ० के अन्ततक कुल २१ अ०, १३ वें दिन ७१ वें अ० के आरम्भ से ११ वें स्कन्धके २ रे अ० के अन्ततक कुल २२ अ०, १४ वें दिन ३ म अ० के आरम्भसे २५ वें अ० के अन्ततक कुल २३ अ० और १५ वें दिन २६ वें अ० के प्रारम्भसे १२ वें स्कन्धके १३ वें अ० के अन्ततक कुल १९ अ०—पारायण करना चाहिए। प्रजापालनादि सर्वविध कामनाओंकी सिद्धिके लिये बृहस्पतिके मतसे मासपारायण करनेवाले पुरुषोंको—पहले दिन १ म स्कन्धके प्रारम्भसे ११ वें अ० के अन्ततक कुल ११ अ०, दूसरे दिन १२ वें अ० के आरम्भसे २ म स्कन्धके २ म रे अ० के अन्ततक कुल १० अ०, तीसरे दिन ३ म अ० के प्रारम्भसे ३ म स्कन्धके २ रे अ० के अन्ततक कुल १० अ०, ४ थ दिन तीसरे अध्यायके आरम्भसे १२ वें अध्यायके अन्ततक कुल १० अ०, ५ वें दिन १३ वें अ० के प्रारम्भसे २३ वें के अन्ततक कुल ११ अ०, ६ ठे दिन २४ वें अ० के प्रारम्भसे ४ र्थ स्कन्धके १ म अ० के अन्ततक कुल १९ अ०, ७ वें दिन २ म अध्यायके प्रारम्भसे १० वें अध्यायके अन्ततक कुल ९ अध्याय, ८ वें दिन ११ वें अध्यायके प्रारम्भसे २२ वें अध्यायके अन्ततक कुल १२ अध्याय, ९ वें दिन २३ वें अ० के आरम्भसे ५ म स्कन्धके १ म अ० के अन्ततक कुल १० अ०, १० वें दिन २ म अ० के प्रारम्भसे ११ वें अ० के अन्ततक कुल ९ अ०, ११ वें दिन १२ वें अ० के प्रारम्भसे २१ वें अन्ततक कुल १०, १२ वें दिन २३ वें अ० के प्रारम्भसे ६ ष्ठ स्कन्धके ६ष्ठ अ० के अन्ततक कुल ११ अ०, १३ वें दिन ७ म अ० के प्रारम्भसे १६ वेंके अन्ततक ११ अ०, १४ वें दिन १७ वें अ० के प्रारम्भसे ७ म स्कन्धके ७ म अ० के अन्ततक कुल १० अ०, १५ वें दिन ७ म अ० के प्रारम्भसे ८ म स्कन्धके १ म अ० के अन्ततक कुल ९ अ०, १६ वें दिन २ म अ० के प्रारम्भसे १५ वें अ० के अन्ततक कुल १४ अ, १७ वें दिन १६ वें अ० के आरम्भसे ९ म स्कन्धके ४ र्थ अ० के अन्ततक कुल १३ अ०, ८ वें दिन ५ म अ० के प्रारम्भसे ९ म स्कन्धके १८ वें अ० के अन्तक कुल १४ अ०, १९ वें दिन १९ वें अ० के प्रारम्भसे १० म स्कन्धके ६ ष्ठ अ० के अन्ततक कुल १२ अ०, २० वें दिन ७ म अ० के प्रारम्भसे १७ वें अ० के अन्ततक कुल ११ अ०, २१ वें दिन १८ वें अ० के प्रारम्भसे ३० वें अ० के अन्ततक कुल १३ अ०, २२ वें दिन ३१ वें अ० के प्रारम्भसे ४२ वेंके अन्ततक कुल १२ अ०, २३ वें दिन ४३ वें अ० के प्रारम्भसे ५४ वें अ० के अन्ततक कुल १२ अ०, २४ वें दिन ५५ वें अ० के प्रारम्भसे ६५ वें अ० के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्ततक कुल ११ अ०, २५ वें दिन ६६ वें अ० के प्रारम्भसे ७८ वें अ० के अन्ततक कुल १३ अ०, २६ वें दिन ७९ वें अ० के प्रारम्भसे ८७ अ० के अन्ततक कुल ९ अ०, २७ वें दिन ८८ अ० के आरम्भसे ११ वें स्कन्धके ९ म अ० के अन्ततक कुल १२ अ०, २८ वें दिन १० वें अ० के प्रारम्भसे २१ वें अ० के अन्ततक कुल १२ अ०, २९ वें दिन २२ वें अ० के आरम्भसे १२ वें स्कन्धके २ रे अ० तक कुल १२ अ० तथा ३० वें दिन ३ रे अ० के आरम्भसे १३ वें अ० के अन्ततक कुल १३ अ०—पारायण करना चाहिए। कृष्णपक्षके आदिमें आरम्भ और शुक्ल दसके अन्तमें समाप्त करना चाहिये अथवा शुक्लपक्षके अन्तमें आरम्भ और कृष्णमें समाप्त करना चाहिये। इसीतरह दो महीने, छः महिने और साल भरमें समाप्त होनेवाला भी पारायण करना चाहिये। दूसरे आचार्योंके मतसे मासपारायण करनेवालेको वैशाखशुक्लपञ्चमीको प्रारम्भ और ज्येष्ठशुक्ल पञ्चमीको समाप्त करना करना चाहिये।

पारायणके और भेद—(क) पन्द्रहदिनके पाठ करनेवाले प्रति दिन २२ अध्यायका पाठ करें। इसप्रकार १४ दिनतक कर पन्द्रहवें दिन २७ अध्यायका पाठ करें। (ख) अठारह दिनमें—१-१९, २-१८, ३-१५, ४-१६, ५-१९, ६-११, ७-२०, ८-२२, ९-१७, १०-२०, ११-२१, १२-१५, १३-२४, १४-१५, १५-१७, १६-२२, १७-१९, १८-२३ इसतरह कुल ३३५ अध्यायका पाठ करे। (ग) इक्कीस दिनमें-प्रति दिन १६ अध्यायका पाठ करे। समाप्तिके रोज १५ अध्यायका पाठ करें। या इच्छानुसार ही करे। इसमें स्कन्धके आदि और अन्तके श्लोक द्विरावृत्तिसे पढ़े-भागवतप्रदीप

श्रीमद्भागवत महापुराणका अनुष्ठान प्रकार

अथ प्रयोगान् वक्ष्यामि भागवतान् शिवभाषितान्। येषां विज्ञानमात्रेण साधवः सिद्धिमाप्नुयात्॥ [१] मासपारायण और पक्षपारायण करनेवाले गायत्रीमन्त्रसे (ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ क्षत्रियके लिये-ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु व्वाचस्पतिर्व्वाचं नः स्वदतु॥ [शु० य० ११।७] वैश्यके लिये—ॐ विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। व्विनाकमख्यत्सविता व्वरेण्योऽनु प्प्रयाणमुषसो व्विराजति॥ [शु० य० १२।३] से सम्पुट करनेसे सब कामनायें सिद्ध होती हैं और अन्तमें उन्हें मोक्ष भी मिलता है। [२] आरोग्यकामनावाले मृत्युञ्जयमन्त्रके मृत्युञ्जयस्त्रिधा प्रोक्तः आद्यो मृत्युञ्जयस्मृतः। मृतसञ्जीवनी चैव महामृत्युञ्जयस्तथा। मृत्युञ्जयः केवलः स्यात्पुटितो व्याहृतित्रयैः) अनुष्ठानप्रकाश। १—ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ त्र्यम्बकं० ॐ स्वः ॐ भुवः ॐ भूः इत्यष्टाचत्वारिंशद्वर्णात्मकः केवलमृत्युञ्जयमन्त्रः। २—ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं य० ॐ स्वः भुवः भू ॐ सः हौं ॐ इति ५२ द्विपञ्चाशद्वर्णात्मको मृतसञ्जीवनीमन्त्रः। ॐ हौं ॐ जूं ॐ सः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ त्र्यम्बकं० ॐ स्वः ॐ भुवः ॐ भूः ॐ सः ॐ जूं ॐ हौं ॐ स्वाहा इति द्विषष्टि ६२—वर्णात्मको महामृत्युञ्जयः शुक्राराधितः। अभिचारे ज्वरे तीव्रे घोरेन्मादे शिरोगदे। असाध्यरोगक्ष्वेडादौ महादाहे महाभये। अपमृत्युजिदेषः स्यादायुरारोग्यवर्धनः॥ 'ग्रहपीडासु सर्वासु महागदनिपीडने। वियोगे बान्धवानां च जनमार उपस्थिते॥ राज्यभंगे धनग्लानौ क्षिप्रमृत्युविनाशने। अभियोगे समुत्पन्ने मनोधर्मविपर्यये॥ मृत्युञ्जयस्य देवस्य विधानं क्रियते बुधैः। राष्ट्रभङ्गे जनक्लेशे महारोगनिपीडने॥ कोटिसङ्ख्यो जपः प्रोक्तो मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः! अनुष्ठान प्र०। सामान्यगदपीडायां दुष्टस्वप्नस्य दर्शने। मृत्युञ्जयमन्त्रस्य जपो लक्षमितः शुभः॥ अपमृत्युविनाशाय जपोऽयुतमितः स्मृतः। दुर्वार्ता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रवणे जाप्यं सुहृदामन्तते क्षुते। यात्रायामयुतं कार्यं सहस्रं वा समाहितैः ॥ विधानमाला। ॐ ह्रौं जूंसः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं० ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं ह्रौं ॐ इति षट्प्रणव मृत्युञ्जयमन्त्रः। ॐ ह्रौं जूं ॐ सः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ त्र्यम्बकं० यजामहे ॐ स्वः ॐ भुवः ॐ भूः ॐ सः ॐ जूं ॐ ह्रौं ॐ चतुर्दशप्रणवयुक्तः। [अज्ञकर्मसमुच्चय] प्रयोगसे सिद्धि होती है। और जो ॐ ह्रौं जूंसः—इस व्याहृतिसे सम्पुट करता है उसको भी मन्त्रकी सिद्धि मिलती है। [३] पुत्रकामनावाले—सन्तानगोपाल [ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः।] मन्त्रसे भागवतके प्रत्येक श्लोकसे सम्पुट करे या कृष्णजन्मसे दशमस्कन्ध प्रथम अध्याय, द्वितीय अध्याय या तृतीयाध्यायसे प्रारम्भकर नवमस्कन्ध पर्यन्त पाठ करे। [४] शत्रुकामनावाले—ॐ जातवेदसे सुनवामसोममरातीयतोनीदहाति वेदः। सनः पर्षदात दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुदुरितात्यग्निः॥ इस मन्त्रसे भागवतके प्रत्येक श्लोकसे संपुट करें। [५] मासपारायणवाले—ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥' इस मन्त्रसे सम्पुट करें तो भगवान् कृष्णमें प्रेम बढ़ता है और उन्हें ज्ञान भी होता है। [६] १—सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम [प्रथमस्कन्धसे द्वादशस्कन्धपर्यन्त क्रमका नाम सृष्टिक्रम है। कृष्णजन्मसे प्रारम्भकर अन्तमें नवमस्कन्धका पाठ करे उसको स्थितिक्रम कहते हैं और अध्यायके विलोम—[अर्थात् द्वादशस्कन्धके अन्तिम अध्यायसे पाठ करना संहार है] से पाठ करनेवाले सब उत्कट आपत्तियोंसे मुक्त हो जाते हैं। [७] ॐ गोविन्दद्वारका वासिन् कृष्णदामोदर प्रियः। कौरवार्णवमग्नानां किं न जानाति केशव—इस मन्त्रसे सम्पुट करनेवाले शत्रुबाधारूप विपत्तियोंसे छूट जाते हैं। (८) एतस्य श्रवणे प्रोक्तं चतुर्धामुनिसत्तमैः। सात्विकं राजसं चैव तामसं निर्गुणं तथा॥ सप्ताहं राजसं प्रोक्तं तामसं सालसन्तु यत्। सात्विकं चैकविंशाहं तथैवाष्टादशाहकम्॥ तथा पञ्चादशाहं च नियतं निर्गुणं स्मृतम्। राजसे त्वर्थसङ्कोचस्तामसे स्मृतिविभ्रमः॥ सात्विकं सुखबोधाय निर्गुणं सर्वतो वरम्। सात्विकश्रवणेनैव बहवो लेभिरे गतिम्॥ 'सप्ताहं राजसं प्रोक्तं शक्तित्वाद् बहुपूजनैः। मासतुना वा विंशाहैरेकाढ्यैः सात्विकं शुभम्॥ सालसानन्ददेहत्वादथ तामसमुच्यते। वर्षेण तामसं प्रोक्तमालस्यात्स्मृतिरोधकृत्। निर्गुणं तु यथेच्छं स्यात्कलौ सप्ताहकं वरम्॥ या बारह बत्तीवाला एक दीपक प्रज्वलितकर उस दीपकमें सावर्णिक कृष्णका पूजनकर उस घृतयुक्त दीपकके सामने प्रथमस्कन्धसे प्रारम्भकर द्वादशस्कन्ध पर्यन्त पाठ करनेसे सब गुप्त बातें सिद्ध होती है, या प्रत्येक अध्याय (३३५) के आदि और अन्तमें (ॐ दुर्गा देवि शरणमहं प्रपद्ये प्रतिकूलं मे नश्यतु अनुकूलं मे प्रयच्छतु स्वाहा) इस मन्त्रका सम्पुट करनेसे सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। या वनदुर्गाके मन्त्रसे सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। या प्रथमस्कन्धके ही पाठसे सब पाप दूर हो जाते हैं। मातृगमन या तत्सश पापोंसे भी मुक्त हो जाता है और इसके पाठसे गर्भस्तम्भन होता है उसका क्रम यह है कि कुमारीकन्यासे कते सूतको लेकर [ॐ पाहि पाहि महायोगिन देवदेव जगत्पते। नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्॥ अभिद्रवति भामीश शरस्तप्तायसो विभो॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम्॥ (प्रथम स्कन्ध अ० ८ श्लोक ९, १०) इन दो मन्त्रोंसे पादाङ्गुष्ठसे

१—स्थितिक्रमो भुक्तिकामे मुक्तिकामे च संहृतिः। श्रीकामे पुष्टिकामे च सृष्टिक्रम उदाहृतः॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रारम्भकर केशपर्यन्त पाँचवार सूत्रको लेकर 'ॐ पाहि पाहि' इस मन्त्रसे नव गाँठ देते समय 'अमुकका गर्भ स्तम्भन करो। यह कह उसको कटि देशमें धारण करा दे। इससे गर्भस्तम्भन होता है—यह अनुभव सिद्ध है। गर्भवती स्त्री और उसका पति श्रद्धासे सनियमवान् होकर भागवत प्रथमस्कन्धका पाठ श्रवण करें। [६] द्वितीयस्कन्धके श्रवणमें दीपककी साक्षी देकर उसका पाठ करनेसे विराटका दर्शन हो जाता है और हृदयमें उसके स्वरूपका ज्ञान ही रह जाता है। [८] तृतीयस्कन्धके पाठसे शत्रुओंको जीत लेता है और संग्राममें उसकी विजय होती है। [१०] चतुर्थस्कन्धके श्रवणसे धनी होता है और वंशकी परम्परा बनी रहती है, और विवाह भी [विवाहार्थी प्राप्नुयात्कन्यां सत्यं सत्यं वरानने] हो जाता है। [११] पञ्चमस्कन्धके श्रवणसे चौदहलोकोंका ज्ञान हो जा सकता है। और पञ्चमस्कन्धके पाठसे द्वीपोंका अधिपति हो जाता है तथा शिशुमारचक्रका दर्शन भी हो जाता है। [१२] षष्ठ और सप्तम स्कन्धके अनुष्ठानसे भगवान्में स्थिर भक्ति [दृढा भक्तिर्भगवति रसस्कन्धस्य पाठतः। स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्मार्थपरिकीर्तयेत्] बनी रहती है। [१३] अष्टमस्कन्धके-असदविषयमङ्घ्रि भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम्। कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारींस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि (भागवत् स्कन्ध ८ अ० १२ श्लोक ४७) मन्त्रसे संपुट करनेपर सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। या गजेन्द्रमोक्षस्तोत्रके पाठसे सब आपत्तियाँ हट जाती है यह अनुभव सिद्ध है। [१४] नवमस्कन्धके पाठसे वंशकी [नवमस्कन्धपाठेन वंशवृद्धिर्हि जायते। वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतापत्या च याङ्गना॥ श्रुत्वा स्कन्धमिमं सर्वं लभते चिरजीविनम्।] वृद्धि होती है। और आदि अन्तमें 'ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः' इसका जप १०००१, १००१, १०८, १० या यथासंख्य करे। दशमस्कन्ध—दशमस्य विशुध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्। वर्णयन्ति महात्मान इति दशमे दशमो हरिः॥ वृध्यैकोत्तरजाप्यमष्टादशदिनावधि। सिध्यन्ति सर्वकार्याणि नात्रकार्या विचारणा॥ कृष्णयन्त्रं विधाय शालिग्रामादिसमीपे दशमस्कन्धस्य वृद्धिपाठः कर्तव्यः। अन्ते द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रेण हवनं तर्पणं मार्जनं ब्राह्मणभोजनं च कार्यम्। ततः युगलगीतम्, गोपिकागीतम्, भ्रमरादिगीतं च पृथक् पृथक् कार्यम्। एतेन गायनविद्यादिकादीनि भगन्तीत्यनुभूतमिति ज्ञेयम्। यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजः स्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै। यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून व्रतकृशाञ्छत जन्मभिः स्यात्॥ (स्कन्ध १० उत्त० अ० ५२ श्लोक ४३) इति मन्त्रेण सम्पुटितेन कन्या प्राप्तिः। दीपाग्रे केवलनमस्कारेणापि पूर्वमेव फलं भवति। तमेवपरमात्मानं जारबुध्यापि सङ्गताः। जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बन्धनाः॥ (भा० स्क० पू० अ० २९ श्लोक ११) इतिमन्त्रसम्पुटितेन निकृष्टप्रारब्धकर्मनाशो भवति। भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः। वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ (भागवत स्क० १० अ २९ श्लोक १) इतिमन्त्रसम्पुटितेन कन्दर्पदर्पविजयो भवेत्। रयन्येषा घोररूपा घोरसत्वनिषेविता। प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यताः। (भा० स्क० १० पू० अ० २६ श्लोक १९) इति मन्त्रेण सम्पुटितेन बन्धनान्मुक्तो भवति। नेहस्थेयमित्यत्र कार्ययोजना। निशम्यगीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः। आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः। (भा० स्क० २९ श्लोक ४) इति मन्त्रसम्पुटेनाकर्षणो भवति। तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः। पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥ (भा० द० पू० अ० ३२ श्लोक २) इसमन्त्रके सम्पुटसे कृष्णका दर्शन हो सकता है। भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्। नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस मन्त्रके सम्पुटसे भविष्यका ज्ञानहोता है। बाणलिङ्गे इदं—

२७	२०	२५
२२	२४	२६
२३	२८	२१

—यन्त्रं अष्टगन्धेन कुंकुमेन भोजपत्रादिपत्रे विलिख्य षोड़शाद्युपचारैः सम्पूज्य तदग्रे पूर्वोक्तामन्त्रस्यायुतसंख्याकं जपं कुर्यात्। अनेन स्वप्ने शुभाशुभस्य समाचारं कथयति।

एकादशस्कन्ध पाठारम्भे यन्त्रं विधाय एकादशवर्त्तिसंयुक्तं दीपं प्रज्वाल्य द्वादशाक्षरमन्त्रस्य (ॐ नमो भागवते वासुदेवाय) आदौ अष्टोत्तरशतजपं विधाय एकादशस्कन्धस्य पाठः कर्तव्यः। पाठान्ते पुनरष्टोत्तरशतं जपं कुर्यात्। एवमवशिष्टदशदिनपर्यन्तं कृत्वा अन्तिमदिने उत्तरपूजनादिकं कृत्वा ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्। भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥ [भाग० स्क० ११, अ० ५ श्लोक ३३,] इत्यादि मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं विधाय ब्राह्मणं दक्षिणादिना सन्तोष्य यथा परिमितान् ब्राह्मणान् भोजयेत्। तेन ज्ञानवान् भवति, यदि एकादशस्कन्धस्य 'ॐ यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव। पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥ इति मन्त्रेण सम्पुटितेन शुकस्य साक्षात्कारो भवति। दर्शनमात्रं वा भवति। 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ (रामायण बालकाण्ड सर्ग २ श्लो० १५) इस मन्त्रसे सम्पुट करनेपर महापण्डित होता है। उसकी संसारमें कीर्ति फैलती है। द्वादशस्कन्धस्य पाठारम्भे द्वादशारं षोडशारं यन्त्रं वा विधाय द्वादशवर्त्तिकादीपं प्रज्वाल्य पूर्वोक्तयन्त्रस्यावरणादिकस्य पूजां विधाय अष्टोत्तरशतसंख्याकं द्वादशाक्षरस्यादावन्ते च जपं विधाय द्वादशपाठं द्वादशदिनपर्यन्तं कुर्यात्। पुनरन्ते उत्तरपूजनं विधाय पञ्चदश ब्राह्मणान् भोजयेत् अशक्तौ द्वादश वा। तेन मानसिककार्यसिद्धिर्भवति। अथवा द्वादशस्कन्धस्थित [अ० ८ श्लोक ४०-४९] मार्कण्डेयस्तुतिमारभ्य स्तुत्यन्तं पाठकरणेन कलौ सद्धर्मत्वात् चिरजीवी भवति। अन्ते विष्णुलोकं गच्छति। (क) प्रत्येक स्कन्धके आरम्भ और समाप्तिपर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदि पञ्चोपचार या सति सामर्थ्यमें अन्य उपचारों द्वारा भागवतका पूजनादि (कथारम्भे कथोत्थाने नित्यं नीराजने चरेत्) करे। [ख] शुक उवाच। नन्दस्त्वा०—रमाक्रीडमभून्नृप) स्कन्ध १० पूर्वार्ध अ० ५ श्लोक १-१८) तक सोलह सौ वार तुलसीवृक्ष और शालग्रामकी मूर्तिके सान्निध्यमें पाठ करनेसे धन, सन्तान आदिमें विशेष परिवर्तन हो जाता है और 'का त्वा मुकुन्द महती कुल [श्लोक-३८ से ४४ दशमस्कन्ध उत्तरार्ध अध्याय ५२] १२ आवृत्ति रोज बारह, चौबिस या अड़तालिस दिन हरेक कामनाके लिये करे। अन्तमें यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावे। [ग] नारायणकवच तथा रुद्रगीत—शत्रुशमनार्थ, पयोव्रत-सन्तान चाहनेवाले, (इसमें मट्टी जंगली सूवरके जगहकी ले) गजेन्द्रमोक्ष पति आदिको संकटसे बचने बचानेके तथा ऋणको दूर करनेके लिये, पृथुचरित्र-मोक्षकामनाकेलिये, ब्रह्मस्तुति-आकर्षणके लिये, पाठ करे। इसप्रकार भागवतस्थित स्तुति आदिका पाठ कामनापरक करे। जो विशेष दरिद्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

या अन्यकामनाओंको हृदयसे चाहते हैं वे लोग शालिग्राम तथा तुलसीके सान्निध्यमें भागवतके प्रत्येक श्लोकका पाठ, नमस्कार और प्रदक्षिणा करें। इससे उसकी कीर्तिदेश देशान्तरमें फैलती है एवं वह संसारका सम्राट् वंश परंपरागत कह जाता है। यह काशीकी प्रसिद्ध कथा है।

(घ) ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥ अस्य श्रीकृष्णायेत्यादि मन्त्रस्य श्रीकृष्णो देवता, व्यास ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः कामो बीजम्, सर्वाभिषितलाभावाप्तये जपे विनियोगः। ॐ कृष्णाय-अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ वासुदेवाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ हरये-मध्यमाभ्यां नमः। ॐ परमात्मने-अनामिकाभ्यां नमः। ॐ प्रणतक्लेशनाशाय-कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ गोविन्दाय नमो नमः-इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासः। [यद्वा-ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम्। श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम्। चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम्। पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपलक्षितम्। कीरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाचितम्। आजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया]। भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्ध अ० ७३ श्लोक १६) इससे सब मनोकानायें परिपूर्ण होती हैं। कामबीजके सम्पुट करनेसे तुरन्त इष्टसिद्धि लाभ होता है और इसके लक्ष जपनेसे बन्दीका मोक्षण होता है।

(च) बालग्रह [पूतना-आक्रमण] दूर करनेमें-अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः। हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम्॥ चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च। कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात्॥ इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु। श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु॥ पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः। क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः॥ व्रजन्तमव्याद् वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः। भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः। भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः॥ कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः। उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये! सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः [भागवत दशमस्कन्ध पू० अ० ६ श्लो० २२-२९]। और कामनापरक दुर्गासप्तशतीके*प्रचलित मन्त्रोंसे सम्पुट करनेसे सद्यः फल मिलता है।

---

*पञ्चभिः सप्तभिर्वाऽपि नवैकादशभिस्तथा। अदीर्घदिवसे क्षिप्रं विदध्याच्चण्डिकामखम्॥ अयुग्मब्राह्मणैः कार्यं शतावृत्तं सुसिद्धये। त्रिपञ्चसप्तनवभिर्दिनैः पक्षेण वा पुनः॥ देवीमाहात्म्यपाठं तु युगैर्विप्रैः कृतं च यत्। निष्फलं च भवेत् सर्वं भूतिनाशं च प्राप्नुयात्॥ इति यद्वचनत्रयं क्रोडतन्त्रनाम्ना पठ्यते तत् तु निर्मूलम्। तन्त्रानुपलम्भादनेकतन्त्रविरोधाच्च।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बारह स्कन्धोंमें भगवान्‌के शरीरका समन्वय —

पादादिजानुपर्यन्तं प्रथमस्कन्ध ईरितः। तदूर्ध्वं कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्ध उच्यते ॥
तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदरं मतम्। पञ्चमो हृदयं प्रोक्तं षष्ठः कण्ठं सबाहुकम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमो मुखमुच्यते। अष्टमश्चक्षुषी विष्णोः कपोलौ भृकुटी परः ॥
दशमो ब्रह्मरन्ध्रञ्च मन एकादशः स्मृतः। आत्मा तु द्वादशः स्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः ॥

(दोपक्षके अनुष्ठान न करने का स्वरूप)

पद्मपुराणमें लिखा है कि—आकृष्णनिर्गमात् त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ।
नवमीतो नभस्ये च कथाऽऽरम्भं शुकोऽकरोत् ॥

भाद्रपदशुक्लनवमीसे प्रारम्भकर पूर्णिमाको ही भागवतसप्ताह पारायण समाप्तकर देना चाहिये। इसी आशयसे इसका अनुष्ठान एकपक्षमें ही सम्प्रदाय होनेसे चलता है।

अथ श्रीमद्भागवतसप्ताहपारायणम्—

आद्ये हिरण्याक्षवधं द्वितीये भरतावधि। तृतीये त्वब्धिमथनं चतुर्थे कृष्णजन्म च ॥
पञ्चमे रुक्मिणी ग्राहं षष्ठे चोद्धवसंज्ञकम्। सप्तमेऽह्नि तमाप्तिःस्यात्सप्ताहं मनुरब्रवीत् ॥
दिन संख्या—१—४०, २—६०, ३—५४, ४—४२, ५—५०, ६—४४, ७—३७।

अथ स्कन्धानुसारेण कस्मिन् दिने कियदवधि पाठविरामः—

१—दिने—आदितः तृतीयस्कन्धस्य १९ अध्यायावधि पाठः।
२—दिने—पञ्चमस्कन्धस्य १५ अध्यायान्तंपाठः।
३—दिने—अष्टमस्कन्धस्य नवमाध्यायान्तं पाठः।
४—दिने—दशमस्कन्धस्य पूर्वार्धे तृतीयाध्यायान्तं पाठः।
५—दिने—दशमस्कन्धस्य त्रिपञ्चाशदध्यायान्तं पाठः।
६—दिने—एकादशस्कन्धस्य सप्तमाध्यायान्तं पाठः।
७—दिने—द्वादशस्कन्धस्य त्रयोदशाध्यायापर्यन्तं पाठः। (कृत्यसारसमुच्चय से उद्धृत)

सप्ताहपारायणविधान—

कृतनित्यक्रियः प्रातः कुशहस्तः कृताशनः। देवद्विजगुरून्नत्वा ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् ॥
द्वैपायनं नमस्कृत्य शुकदेवञ्च भक्तितः। हिरण्याक्षवधं यावत् प्रथमेऽहनि कीर्तयेत् ॥
चरितं भरतस्यापि द्वितीयेऽथ तृतीयके। मथनञ्चामृतस्यापि यत्र कूर्मः स्वयं हरिः ॥
चतुर्थदिवसे चैव दशमे हरिजन्म च। पञ्चमे तु पठेद् विद्वान् रुक्मिण्या हरणावधि ॥
षष्ठे चोद्धवसंवादो सप्तमे तु समापयेत्।

भागवत अध्यायके पाठका नियम—

अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन। कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादिं पठेत् पुनः ॥
अध्याये स्वर्णमासैकं तथा दद्याच्च दक्षिणाम्। समाप्तौ च ततो धेनुं स्वर्णश्रृङ्गीं निवेदयेत् ॥
कुर्याच्च वैष्णवं होमं सात्वतान् भोजयेत्ततः।
(वाचस्पत्यकोषसे उद्धृत)

कौशिकसंहितोक्तपारायणविधानम्—

सप्ताहे पाठ नियमं श्रृणु शौनकसंयतः। मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽन्हि ॥
ऋषभाख्यानपर्यन्तं द्वितीये दिवसे वदेत। तृतीये दिवसे कुर्यात्सप्तमस्कन्धपूरम् ॥
कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थेहनि वाचयेत्। रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेह्नि वदेत्सुधीः ॥
श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेह्नि वाचयेद् ध्रुवम्। सप्तमे दिवसे कुर्याच्छ्रीभागवतपूरणम् ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इतनी कथा श्रवणकरनेके बाद राजा परीक्षित्‌ने कहा–हे भगवान्, जिस मार्ग द्वारा योगी क्रमशः ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माके साथ मोक्ष प्राप्त कर लेता है, उस निवृत्तिमार्गको आप द्वितीय स्कन्धमें कह चुके हैं ॥ १ ॥ हे मुने, जिस द्वारा प्राणीको त्रिगुणमय स्वर्गादिक लोक प्राप्त होते हैं जिसके कारण प्रकृतिसे बँधे हुए पुरुषोंको बारबार जन्म-मरणके फेरमें आना पड़ता है, आपने उस प्रवृत्तिमार्गका भी तृतीयस्कन्धमें अच्छी तरह वर्णन किया ॥ २ ॥ आपने अधर्मरूप नाना प्रकारके नरकोंका तथा जिसके आदिमें स्वायम्भुव मनु हुए उस प्रथम मन्वन्तरकी भी कथा कही ॥ ३ ॥ प्रियव्रत, उत्तानपादके वंश, उनके चरित्र और द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी, वगीचा और वृक्षादिका भी वर्णन किया ॥४॥ जिस प्रकार भगवान्‌ने विभाग, लक्षण,

❀ अथ प्रथमोध्यायः ❀

श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच ॥ निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ॥ क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥ १॥ प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ॥ योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥ २ ॥ अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः ॥ मन्वन्तरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥ ३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ॥ द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४ ॥ धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ॥ ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥ ५ ॥ अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ॥ नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ न चेदिहैवापचितिं यथांहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ॥ ध्रुवं स वै प्रेत्यनरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥ ७ ॥ तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यतात्मना ॥ दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक्चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥ राजोवाच ॥ दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ॥ करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥९॥ क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः ॥ प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते ॥

परिमाण सहित सब भूमण्डकी स्थिति, नक्षत्रगण, अतलादि की उत्पत्ति किया था, आपने वह सब भी मुझको सुनाया ॥५॥ हे महाभाग, अब मुझको आप वह प्रकार बतावें जिससे अनेक तरहकी अत्युत्कट यातनाओंसे पूर्ण नरकोंमें प्राणीको न जाना पड़े ॥६॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा–हे राजन, जो प्राणी मन, वचन, देहसे किये हुए पापोंका इसी जन्ममें प्रायश्चित्त नहीं करता उसको मरनेके उपरान्त भयंकर मेरे कहे हुए यातनापरिपूर्ण नरकोंमें निश्चय जाना होगा ॥७॥ रोगोंका निदान ज्ञाता वैद्य दोषोंका गौरव और लाघवको जानकर ही चिकित्सा करता है, वैसे ही प्राण मृत्युमुखमें जानेके पूर्व ही जबतक उसका देह क्षीण न हो तबतक पापोंसे छुटकारा पानेका उपाय कर सकता है ॥८॥ राजा ने कहा–हे मुने, प्रत्यक्ष देखा तथा शास्त्र द्वारा सुने हुए दुःखोंसे पापको अपना परम शत्रु जानकर जो पुरुष विवश हो बारम्बार उसीमें लिप्त होता हैं, उस पापोंका प्रायश्चित्त कैसे होगा ॥९॥ यदि वह प्रायश्चित्तादि द्वारा कभी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पापसे मुक्ति प्राप्त कर भी ले तो पुनः पाप करने लग जाता है, इसलिए उस प्रायश्चित्तको हाथी स्नानकी तरह मैं व्यर्थ ही जानता हूँ ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, प्रायश्चित्तोंके करने मात्रसे सर्वदा पापकर्मोंका नाश नहीं हो सकता, क्योंकि उसका अधिकारी अज्ञानी ही होता है, अविद्याका नाश न होनेसे उससे फिर पापकर्म होंगे। इसलिये भगवत्स्वरूपका ज्ञान ही सच्चा प्रायश्चित्त है ॥ ११ ॥ जो सदा पथ्यान्न ही खाता है उसपर रोगोंका आक्रमण नहीं होता है, हे राजन्, इसी प्रकार नियमानुकूल आचरण करनेवाला शनैः शनैः काम प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है ॥१२॥ जैसे बाँसोंके वनमें प्रगट अग्नि जलाकर उन बाँसोंका राख कर देता है वैसेही धर्मज्ञ, श्रद्धावान् धीरपुरुष तप, ब्रह्मचर्य, शम, दम, दान, सत्य, शौच, यम, नियम इन नव साधनोंसे अपने मन, वाणी, शरीर द्वारा किये हुए महान् पापोंको भी नष्ट कर देते हैं ॥१३, १४ ॥ कोई भगवत्परायण एकमात्र भक्तिके द्वारा अपने पापोंको उसी

अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ ११ ॥ नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ॥ एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥ १२ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ॥ त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥ १३ ॥ देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः ॥ क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥ १४ ॥ केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ॥ अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥ १५ ॥ न तथा ह्यघवान् राजन्पूयेत तपआदिभिः ॥ यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पुरुषनिषेवया ॥ १६ ॥ सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ॥ सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥१७॥ प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ॥ न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥१८॥ सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ॥ न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥ अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥२०॥ कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ॥ नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥ २१ ॥ बन्ध्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः ॥ बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास

प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे–जैसे सूर्य ओसको नष्ट कर डालता है ॥१५॥ हे राजन्, पापी प्राणी सब इन्द्रियोंको भगवान्में लगा उनके भक्तोंका साथ कर जिस तरह पवित्र होता है वैसा अन्य तप आदि उपायोंसे पवित्र नहीं हो सकता ॥१६॥ भक्तिमार्गही संसारमें अत्युत्तम श्रेष्ठ और भयरहित है, उसपर नारायणपरायण-सुशील सज्जन चलते हैं ॥१७॥ हे राजेश्वर, जैसे नदियाँ मद्य घड़ेको पूत नहीं कर सकती, तैसे भगवानसे विमुख प्राणिको कभी भी प्रायश्चित्त पवित्र नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ जिसने भगद्गुणानुवादमें एक बार भी अपने आसक्त मनको श्रीकृष्णचन्द्र-चरणकमलमें लगा दिया वह यमराज तथा पाशयुक्त हाथोंवाले यमदूतोंको स्वप्नमें भी नहीं देखता, क्योंकि ऐसा करनेमात्रसे हो सब उनके पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है ॥१९॥ हे राजन्, इस उदाहरणमें भगवान्विष्णु और यमराज दूतोंका एक प्राचीन इतिहास लोग कहा करते हैं वह मुझसे सुनिए ॥२०॥ अजामिल नामका एक दासीपति ब्राह्मण कान्यकुब्जनगरमें रहता था, वह दासीके संसर्गसे दूषित हो जानेके बाद उसका सब सदाचार नष्ट हो चुका था ॥२१॥ सब प्रकारसे वह अपवित्र था तथा निन्दनीय कर्मका आश्रय ले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पथिकजनोंको बाँधना, द्यूत खेलना, धोखा देना, चोरी करना, आदि निन्दित कार्यों द्वारा अपने कुटुम्बजनकी रक्षा करता हुआ दूसरे प्राणियोंको कष्ट देता था ॥२२॥ हे राजन्, इस प्रकार वहाँ निवास कर उस दासी-पुत्रोंका लालन-पालन करते हुए उसकी आयुका अस्सी वर्षका समय चला गया ॥२३॥ उस वृद्ध पापी अजामिलके दस पुत्र थे, उनमें जो सबसे छोटा नारायण नामका पुत्र था, वह अपने माता-पिताका बहुत लाडला था ॥२४॥ वृद्ध अजामिल मृदुभाषी पुत्रमें आसक्त हो उसके खेल-खाल देख बार बार बहुत प्रसन्न होता था ॥२५॥ पुत्र नारायणमें अत्यन्त स्नेहबद्ध होनेके कारण ऐसा तन्मनस्क हो गया जब वह कभी कुछ खाता-पीता उसको भी निश्चिन्त खिलाता-पिलाता, इसप्रकार अपनी मृत्युको समीप देख बिलकुल भूल गया ॥२६॥ इसतरह अज्ञानीने मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अपने नारायण नामक बालकमें स्नेह किया ॥२७॥ इतनेमें उसने देखा उसको लेजानेके लिये हाथमें पाश लिये

देहिनः ॥ २२ ॥ एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ॥ कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥ २३ ॥ तस्य प्रवयसः पुत्रा
दश तेषां तु योऽवमः ॥ बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥ २४ ॥ स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ॥ निरीक्षमाणस्तल्लीलां
मुमुदे जरठो भृशम् ॥ २५ ॥ भुञ्जानः प्रपिबन्खादन्बालकस्नेहयन्त्रितः ॥ भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥ २६ ॥ स एवं वर्तमानोऽज्ञो
मृत्युकाल उपस्थिते ॥ मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥ २७ ॥ स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान्भृशदारुणान् ॥ वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण
आत्मानं नेतुमागतान् ॥२८॥ दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ॥ प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥ २९ ॥ निशम्य म्रियमा-
णस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ॥ भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽपतन् ॥ ३० ॥ विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् ॥ यमप्रेष्यान्विष्णुदूता
वारयामासुरोजसा ॥३१॥ ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरःसराः ॥ के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥ ३२ ॥ कस्य वा कुत आयाताः
कस्मादस्य निषेधथ ॥ किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥ ३३ ॥ सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो
लसत्पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥ सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥ धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥ ३५ ॥ दिशो वितिमिरालोकाः

वहाँ तीन बड़े भयंकर प्राणी आये हैं, उनके मुख टेढ़े-मेढ़े हैं तथा रोयें खड़े हैं, उनको देख उसने अत्यन्त घबड़ाहटसे खेलमें लगे हुए अपने बेटे नारायणको बड़े उच्चस्वरसे पुकारा ॥२८, २९॥ हे राजन्, इसप्रकार अपने मालिकका नाम सुन तथा मरते समय उसको हरिकीर्तन करता जान वहाँ शीघ्र भगवान्विष्णुके पार्षद आ गये ॥ ३० ॥ उसी समय उन विष्णुपार्षदोंने दासी-पति अजामिलके अन्तःकरणसे प्राण निकालनेवाले यमदूतोंको रोक दिया ॥३१॥ रोकनेपर यमदूतोंने कहा—'अरे, धर्मराजकी, आज्ञाको हटानेवाले तुम कौन हो ॥३२॥ किसके दूत हो ? कहाँसे आ रहे हो ? और इसको ले जानेसे हमलोगोंको क्यों मना करते हो ? क्या तुम कोई देव, उपदेव, या सिद्धश्रेष्ठ हो ॥३३॥ क्योंकि तुम्हारे नेत्र कमलपत्र-तुल्य हैं, सब रेशमी पीताम्बर, मुकुट, कुण्डल, कमलकुसुमहारोंसे सुशोभित हो ॥ ३४ ॥ तुम सब युवावस्थासे सम्पन्न हो, तुम सबके चार-चार भुजा हैं तथा सबके करकमलोंमें धनुष, तरकश, खड्ग, गदा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शंख, चक्र, पद्म आदि सुशोभित है ॥३५॥ तुमलोगोंने अपनी शोभासे दिशाओंका अन्धकार नाश कर उनको प्रदीप्तकर दिया, धर्मराजके हम नौकर हैं हमको क्यों तुमलोग मनाकर रहे हो ॥३६॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, यमदूतोंके कहने पर आज्ञाकारी वासुदेवके विष्णुपार्षदोंने हँसकर मेघके सदृश अपनी गम्भीर वाणीसे कहा ॥३७॥ विष्णुदूतोंने कहा—हे यमदूत, यदि तुमलोग धर्मराजके आज्ञाकारी हो तो हमको धर्म-लक्षण तथा उसका तत्त्व बतलाइए ॥३८॥ दण्ड किस प्रकार दिया जाता है ? उसका पात्र योग्य कौन है ? क्या प्राणियोंमें पापाचारी और दण्डनीय सब लोग हैं या कुछ लोग उनमेंसे ही ऐसे हैं ? ॥ ३९ ॥ यमदूतोंने कहा—वेदसे प्रतिपादित कर्म ही धर्म है और उससे उलटा कर्म अधर्म कहा जाता है हमने सुना है, क्योंकि भगवान्के श्वाँससे स्वयं उत्पन्न हुआ वेद साक्षात् नारायण ही है ॥ ४० ॥ भगवान्के स्वरूपमें स्थित उस वेदसे ही सत्त्व, रज, तमोमय मनुष्योंका उनके गुण, नाम, कर्म तथा रूपादिके

कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ॥ किमर्थं धर्मपालस्य किङ्करान्नो निषेधथ ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ॥ तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ॥ ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥ ३८ ॥ कथंस्विद् ध्रियते दण्डः किं वास्य स्थानमीप्सितम् ॥ दण्ड्याः किङ्कारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥ ३९ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥ ४० ॥ येन स्वधाम्न्यमी भावा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥ सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः ॥ कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥४२॥ एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ॥ सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥४३॥ संभवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ॥ कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान्न ह्यकर्मकृत् ॥४४॥ येन यावान्यथाऽधर्मो धर्मो वेह समीहितः ॥ स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ॥४५॥ यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ॥ भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथान्यत्रानुमीयते ॥ ४६ ॥ वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ॥ एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४७॥ मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ॥ अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥ ४८ ॥ यथाऽज्ञस्तमसा युक्त

क्रमसे यथोचित विभाग होता है ॥ ४१ ॥ सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, देवता, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात्रि-दिन, दिशाएँ, जल, पृथिवी, काल तथा धर्म—ये देहके साक्षीभूत हैं ॥४२॥ इनसे जाना हुआ अधर्मको प्राणी अपने कर्मानुसार बुरा-भला फल प्राप्त करता है ॥४३॥ हे अनघ, सब कार्य करनेवाले प्राणी गुणोंसे युक्त रहते हैं इसलिये शुभ और अशुभ कर्म सबसे होते हैं, कोई शरीरधारी कर्म किये बिना नहीं रह सकता ॥ ४४ ॥ इस युगमें जो जितना धर्म या अधर्म करता है उसका उस लोकमें उतना और वैसाही फल मिलता है। ॥ ४५ ॥ हे देवश्रेष्ठगण, गुणकी विचित्रतासे जैसे इसलोकमें प्राणियोंके तीन प्रकार उपलब्ध हैं वैसेही उनके अस्तित्वका उसलोकमें भी अनुमान हो जाता है ॥४६॥ जैसे वर्तमान समय ही भूत, भविष्य इन दोनों गुणोंका ज्ञापक होता है तद्वत् वर्तमानजन्म भी जन्मोंके बुरेभलेका ज्ञान करा देता है ॥४७॥ यमराज सबके अन्तःकरणमें विराजमान रहते हैं, इसकारण अपने मनसे ही उसका पूर्वरूप देख लेते हैं इसलिए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसके अपूर्वका भी अजन्मा भगवान् मनसे ही विचार करते हैं ॥ ४८ ॥ जैसे निद्राके वशीभूत अज्ञानी स्वप्नमें कल्पित शरीरको देख निश्चित देख जान लेता है तद्वत् जीवके पूर्वजन्मकी यादगार नष्ट हो जानेसे इस शरीरके अतिरिक्त किसी भी जन्म-विषयमें कुछ ज्ञान नहीं है❀ ॥४९॥ वह अपनी पाँच कर्मेन्द्रियों द्वारा ग्रहणत्यागरूपी अलग-अलग तरहके कर्मको करता, ज्ञानेन्द्रियोंसे पाँच विषयोंकी जानकारी करता सोलहवें मनके संग आप मिल मन, ज्ञानेन्द्रि,य कर्मेन्द्रिय विषयोंका उपभोग करता है ॥५०॥ इस तरह सोलह कला तथा सत्त्वादि तीन गुणवाला भयङ्कर लिंगदेह ही उसको बारबार हर्ष, शोक, भय, दुःख जन्म-मरणरूपी जालमें फेकता है ॥ ५१ ॥ जो काम आदि छः वैरियोंको नहीं जीता वह अज्ञानी प्राणी इच्छा न रहते हुए भी अपने लिंग शरीरसे अनेक कार्यों में संलग्न किया जाता है, ऐसी अवस्थामें वह रेशमके कीटाणकी तरह स्वयं कर्मरूपी जालमें लिपटकर उसी जालमें मोहित हो जाता है ॥५२॥ कोई

उपास्ते व्यक्तमेव हि ॥ न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥४९॥ पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान्पञ्च वेदाथ पञ्चभिः ॥ एकस्तु षोडशेन त्रीन्स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥५०॥ तदेतत्षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् ॥ धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥५१॥ देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते ॥ कोशकार इवात्मानं कर्मणाच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥ नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥ कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥५३॥ लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ॥ यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥ ५४ ॥ एष प्रकृतिसङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः ॥ आसीत्स एव नचिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥५५॥ अयं हि श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः ॥ धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥५६॥ गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहङ्कृतः ॥ सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥५७॥ एकदाऽसौ वनं यातः पितृसन्देशकृद्द्विजः ॥ आदाय ततः आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५८॥ ददर्श कामिनं कञ्चिच्छूद्रं सह भुजिष्यया ॥ पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥ ५९ ॥ मत्तया

प्राणी बिना कम किये एक मिनट भी नहीं रह सकता, प्रत्येक प्राणीके स्वाभाविक गुणही उसके द्वारा कर्मको कराते हैं ॥५३॥ अदृष्टरूप कार्यको प्राप्तकर प्रबल कर्मवासनारूपी स्वभाव द्वारा माता और पिताके अनुरूप स्थूल सूक्ष्म देह उत्पन्न होता है ॥ ५४ ॥ इस प्रकृतिके संगसे पुरुषको उलटी भावना होती है, यह भावना भगवान्के भजनसे जल्दी नष्ट हो जाती है ॥५५॥ देखो—शास्त्रज्ञ अजामिल शील, सदाचार, गुणका खजाना, व्रत रक्षक, कोमलस्वभाव, जितेन्द्रिय, सत्यपरायण, मन्त्रवेत्ता, शुद्धाचरणवाला, गुरु, अग्नि, अतिथि अभिमानशून्य वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला, सबका हित चाहनेवाला, साधुस्वभाव, मितभाषी, दूसरोंके गुणोंमें दोषदृष्टि नहीं चाहता था ॥५६,५७॥ यह ब्राह्मण पिताकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाला एक दिन वनमें गया वहाँसे फल, पुष्प, समिधा, कुशा लेकर घरकी तरफ लौटा ॥ ५८ ॥ इसने मार्गमें एक कामी लज्जा रहित आचारहीन शूद्राको देखा जो एक व्यभिचारिणी दासीके सङ्ग मदिरा

❀ दृष्टान्त—किसी विद्यार्थीने सोते हुए क्या देखा कि मेरी पुस्तकें कोई चुराकर ले जा रहा है—वह बड़ी जोरसे चिल्लाकर कहने लगा कि पकड़ो पकड़ो उसकी यह आवाज सुनकर आस-पासके रहनेवाले छात्रोंने उसे धर दबाया यह व्यापार देख वह बड़ा लज्जित हुआ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पानकर उसीके साथ रह हँसता गाता हुआ क्रीड़ा करता था, मदिरा पीनेसे उस वेश्यासे नेत्र चञ्चल तथा उन्मत्त होनेसे उसका वस्त्र (साड़ी) कुछ हट गया था ॥५९, ६०॥ इसप्रकार उस शूद्राके कामोद्दीपन होनेसे ब्राह्मण द्वारा हाथोंसे उस शूद्राको आलिंगित देख वह ब्राह्मण मोहवश तुरन्त कामदेवके वशीभूत हो गया ॥६१॥ इसने धैर्य तथा ज्ञानसे युक्त अपने चञ्चल मनको कामवेग द्वारा बहुत कुछ हटाना चाहा परन्तु उसको शान्त नहीं कर सका ॥ ६२ ॥ उस स्त्रीके कारणसे हो कामरूपीग्रहसे ग्रस्त तथा स्मृतशून्य हो मन-ही-मन उसका मनन करता हुआ अपना धर्म नष्ट कर दिया ॥६३॥ जैसे वह वेश्या ग्राम्य मनोरम विषयोंसे प्रसन्न हो सकती थी वैसे ही उसने सम्पूर्ण अपने पिताका धन समर्पणकर उसको प्रसन्न करनेकी इच्छा किया ॥ ६४ ॥ स्वैरिणी वेश्याके कटाक्षसे नष्टबुद्धि हो उस पापात्माने अपनी श्रेष्ठकुलोत्पन्न विवाहिता तरुणी पत्नीको शीघ्र छोड़ दिया ॥ ६५ ॥ उस मन्दमतिने इधर-उधर न्याय अन्यायका विचार न कर धन इकट्ठा लाकर उस कुटुम्बिनी वेश्याके कुटुम्बकी रक्षा करता था ॥६६॥ हे विष्णुपार्षद, इस पापीने शास्त्राज्ञाको उल्लंघनकर अच्छेजनों द्वारा गर्हित स्वेच्छा-

विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ॥ क्रीडन्तमनु गायन्तं हसन्तमनयाऽन्तिके ॥६०॥ दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम्॥ जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥ ६१ ॥ स्तम्भयन्नात्मनात्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् ॥ न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥ ६२ ॥ तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ॥ तामेव मनसा ध्यायन्स्वधर्माद्विरराम ह ॥६३॥ तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ॥ ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥ ६४ ॥ विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् ॥ विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः ॥ ६५ ॥ यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ॥ बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीरयम् ॥ ६६ ॥ यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यर्यगर्हितः ॥ अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥ ६७ ॥ तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ॥ नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुध्यति ॥६८॥ इति श्रीमद्भागवते म० पु० षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

चारका आश्रय किया अपना सब जीवन पापपूर्ण इतने बहुत क... क उस वेश्याका अन्नरूपीमलका भक्षण करता हुआ अपवित्र रहा ॥६७॥ इसने स्वपापोंका प्रायश्चित्त नहीं किया, इसलिये दण्डपाणि समीप हमलोग ले जायँगे, वहाँ यमराज दण्डको भोगनेसे पवित्र हो जायगा ॥ ६८ ॥

अध्यायसार—राजा परीक्षित्ने कहा—हे राजन्, आपने निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्गो तथा अधर्मके लक्षण रूप नाना प्रकारके नरकोंका वर्णन किया। प्रथम स्वायम्भुवमनु तथा उससे भी पहले मन्वन्तरका आप वर्णन कर चुके। प्रियव्रत और उत्तानपादके वंश और चरित्रका वर्णन करनेके बाद आपने द्वीप आदिके साथ-साथ भूमण्डलके ज्योतिर्गणों और सातों पातालोंकी रचनाका भी वर्णन किया। अब हे महाभाग, नानाविध यातनाओंसे भरे हुए नरकोंमें न पड़नेका उपाय मुझे बतलाइये। राजा परीक्षित्की ऐसी बातें सुनकर श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मनसा, वाचा और कर्मणा किये हुए पापोंका यदि, मनुष्य इसी जन्ममें प्रायश्चित्त नहीं करता तो वह नरकमें पड़ेगा ही, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। राजाने कहा—हे ब्रह्मवित्,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक प्रायश्चित्त करनेके बाद भी वासनाओंके वशीभूत होकर मनुष्य दूसरा पाप करेगा ही फिर प्रायश्चित्त करनेसे क्या लाभ ? श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है ज्ञान की प्रीप्ति। ज्ञान मनुष्यके सारे पापोंको नष्ट कर डालता है। लेकिन हे राजन्, ज्ञान-प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, इसलिए भक्तिमार्गका आश्रय करना ही सबसे उत्तम है। हे राजन्, जिसका मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें लग गया उसके सारे पापोंका प्रायश्चित्त हो गया, यह आप समझ लीजिये। भगवान्के भक्तोंके पास यमराजके दूत स्वप्नमें भी नहीं आते। इसमें एक प्राचीन इतिहास है, उसे सुनिये। कान्य-कुब्ज नामक नगरमें एक दासीपति ब्राह्मण रहता था। पहले वह सदाचारी था, लेकिन पीछे दासीके संसर्गसे वह सदाचार भ्रष्ट हो गया। बटोहियोंको जानसे मारकर उनका धन छीन लेना, चोरी करना, आदि नानाविधि निन्दनीय वृत्तियोंका आश्रयण करके अजामिल कुटुम्बका पोषण करता था। हे राजन्, दुराचारपूर्ण वृत्तियोंका आश्रयण करनेवाले तथा दासीके पुत्रोंका लाड़-प्यार करनेवाले अजामिलकी आयुका अस्सी वर्ष गुजर गया। उस वृद्धके दासीके गर्भसे दस लड़के हुए। उनमें सबसे छोटे बच्चेका उसने नारायण नाम रखा था। तोतली मधुर वाणी बोलनेवाले उस दो वर्षके बच्चेमें उस वृद्धकी आशक्ति बढ़ गई थी, उसीके लालन-पालनमें हमेशा लगा रहता था। उस मूर्खको यह नहीं मालूम था कि अब मेरी मृत्यु सिरपर सवार है। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर भी उसकी बुद्धि उस नारायण नामक छोटे बालक पर ही जमी थी। इतनेहीमें हाथमें पाश लेकर यमराजके दूत पहुँचे, उन्हें देखकर मारे भयके घबड़ाकर उसने ऊँचे स्वरसे पुकारा—नारायण, नारायण। हे महाराज, मृत्युकी गोदमें पड़ा हुआ अजामिल भगवान्का कीर्तनकर रहा है, यह जानकर भगवान् विष्णुके पार्षद दौड़ आये और दूतोंको वहाँसे दूर हटाया। दूर हटाये जा रहे यमराजके दूत कहने लगे – धर्मराजकी आज्ञाका निषेध करनेवाले तुम कौन हो। हम धर्मपालके दासोंको निषेध क्यों कहते हो ? हे राजन्, यों यमदूतोंके कहने पर भगवान्की आज्ञाका पालन करनेवाले विष्णुदूतोंने कहा—यदि तुम लोग सचमुच धर्मराजकी आज्ञा के अनुसार वर्ताव करते हो, तो धर्मका तत्व और धर्मके जो लक्षण हों, उन्हें हमसे कहो ? यमदूतोंने कहा—हे विष्णुदूतों, धर्म और अधर्म ये दोनों श्रुति और स्मृतिसे सिद्ध है। जीवके धर्म और अधर्ममें साक्षी हैं—सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु चन्द्रमा आदि। प्रकृतिके संसर्गसे जीवोंका व्यवहार चलता है और उसके संसर्गसे शून्य हो जानेपर सारा व्यवहार निवृत्त हो जाता है। प्रकृतिके सङ्गसे मनुष्यको जो विपरीत भावकी प्राप्ति होती है वह परमेश्वरके भजनसे शीघ्र नष्ट हो जाती है। यह सब कुछ जानता हुआ भी जड प्राणी जो निषिद्ध कर्म करता है, इसीलिए हमलोग उसे यातना देते हैं। इस अजामिलका पहले बहुत सुन्दर चरित था। लेकिन एक समय जङ्गलमें वेश्याके साथ क्रीडा कर रहे एक शूद्रको देखकर यह भी कामातुर हो गया। इसकी सारी बुद्धि नष्ट हो गई, यह निरन्तर अधर्म करने लगा। इसने अपने पिताकी सम्पत्तिसे वेश्याको प्रसन्न किया। उस व्यभिचारिणीके नेत्र कटाक्षोंसे घायल होकर अपनी पतिव्रता कुलीन स्त्रीको छोड़ दिया। बापकी सम्पत्ति खतम हो जाने पर न्याय, अन्यायका कुछ भी परवाह न कर कहीं न कहींसे धन लाकर उस वेश्याके कुटुम्बका परिपालन करने लगा। शास्त्र विरुद्ध आचरण करनेवाले इस पापीको आज हम यमराजके समीप लिये जा रहे हैं इसके पापका प्रायश्चित्त अब नहीं होगा। प्रथम अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ॥ उपाधार्याथ तान् राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥ १ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ अहो कष्टं

❀ भगवान् विष्णुके दूतों द्वारा उनके गुणोंका निरूपण तथा अजामिलकी विष्णुस्वरूप प्राप्ति वर्णन ❀

सूतजी कहते हैं—हे राजन्, इसप्रकार दूतोंकी वाणी सुन न्यायकोविद विष्णुपार्षद इसतरह उनसे बोले ॥ १ ॥ विष्णुदूतोंने कहा—अहो, बड़ा कष्ट है कि धर्मात्माओंके समाजमें अधर्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्पर्शकर रहा है, यही कारण है कि अदण्ड्य और निष्पाप प्राणियोंको भी व्यर्थ दण्ड प्राप्त होता है ॥२॥ प्रजाओंके पिता, शिक्षक तथा समदर्शी जो सज्जन हैं, यदि उनमें भी ऐसी विषम-बुद्धि हो तो प्रजा किसकी शरणमें रहेगी !! ३ ॥ जैसा अच्छे प्राणी व्यहार करते हैं, वैसा दूसरे जन भी उन्हींका अनुकरण करते हैं, जो आदर्श जनसाधारणके समीप स्थापना करते हैं, उसीका सब प्राणी अनुकरण करते हैं ॥ ४ ॥ जैसे अपने मालिक पर पशु विश्वास करता है वैसा ही संपूर्ण संसार धर्माधर्मको स्वयं कुछ भी न जान जिसकी गोदीमें सिर स्थापनकर विना भयसे सोता है, वह दूसरे प्राणियोंको विश्वासपात्र दयालु होकर भी मित्रतासे अपनेपर विश्वासकर आत्म-अर्पण करनेवाले उन अजानकार-मनुष्योंको नष्ट कैसे कर सकेगा ? ॥५, ६॥ हे यम-दूतगण, विवशतासे इनसे जो मङ्गलमय नारायणका नाम लिया, उस सेही इसने अपने कोटि जन्म पापका प्रायश्चित्त कर दिया ॥ ७ ॥ इसने नारायण— चार अक्षरोंवाला नाम लिया तभी

धर्मद्दशामधर्मः स्पृशते सभाम् ॥ यत्रादण्डयेष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥ २ ॥ प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ॥ यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥ ३ ॥ यद्यदाचरनि श्रेयानितरस्तत्तदीहते ॥ स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४ ॥ यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ॥ स्वयं धर्ममधर्मं वा नहि वेद यथा पशुः ॥ ५ ॥ स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ॥ विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥ ६ ॥ अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोटयंहसामपि ॥ यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥ ७ ॥ एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ॥ यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥ ८ ॥ स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥ सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ॥ नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥ न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ॥ यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥ ११ ॥ नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ॥ तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥ अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ॥ यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥ १३ ॥ साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ॥ वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः

इस पापीके संपूर्ण पापोंका प्रायश्चित्त हो चुका ॥ ८ ॥ चोर, मद्यपी, ब्रह्महत्यारा, गुरुस्त्रीगामी, स्त्री, राजा, माता-पिता, तथा गौका हत्यारा, और भी जो पापी हैं उन सबोंके लिये भगवान्‌विष्णुका उच्चारण करना हा सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है क्योंकि इससे उनकी भगवान्‌के गुण, लीला, स्वरूपविषयक बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ ९, १० ॥ वेदवादी मनु आदिके बतलाये हुए व्रतके प्रायश्चित्तोंसे पापी मनुष्य उतना पवित्र नहीं होता जितना कि भगवान्‌के नामका उच्चारण करने मात्रसे होता है। हरिनाम यादगार पुण्यकीर्ति भगवान्‌के गुणोंका ज्ञान करता है ॥११॥ प्रायश्चित्त करने मात्रसे मन विपरीत रास्तेकी तरफ गए हुए चित्तको अच्छी प्रकार पवित्र करनेवाला प्रायश्चित्त नहीं हो सकता इसलिए सुन्दर प्रकारसे पापकर्मोंको हटाने वाले जीवोंको भगवद्गुणानुवाद उच्चारण करनेसे यह अवश्य मन पवित्र करता है ॥ १२ ॥ इसलिए तुम इस अजामिलको अपने साथ मत ले जाओ। क्योंकि मरते समय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसने 'नारायण' का नाम उच्चारण किया। इससे इसके सब पापोंका प्रायश्चित्त हो चुका ॥ १३ ॥ इसको महापुरुष लोग जानते हैं जो संकेत, हँसी, गानका अलाप परिपूर्ण करते या अव-हेलनापूर्वक लिया हुआ भगवन्नाम जीवोंके सब पापोंको दूर कर देता है ॥ १४ ॥ उँचेसे गिरना, रास्तेमें फिसलना, अङ्ग-भङ्ग हो जाना, सर्पादिके डँस लेनेसे, ज्वरान्तिसे सन्तप्त होने या डण्डे आदिके मारे जानेके समय दुःखी होकर भी हरि ऐसा उच्चारण करता है तो वह दण्डका अधिकारी नहीं रह जाता ॥ १५ ॥ महर्षियोंने पापोंकी कम-अधिकता जान बड़े तथा अल्प पापोंके लिये बड़े छोटे तरहके प्रायश्चित भी कहे ॥ १६ ॥ तप, दान, जप, आदि प्रायश्चित्तोंद्वारा पाप ही केवल नाश हो जाते हैं, पापीका पापसे विपरीत चित्त पवित्र होने नहीं पाता और भगवान्के चरणोंकी सेवसे चित्त भी पवित्र होजाता है ॥१७॥ जैसे—अग्नि, ईंधनको जला डालता है तद्वत् उत्तमश्लोक भगवान् नामका कीर्तन जान पुरुषके सब पापोंको नष्ट कर देता है ॥ १८ ॥ जिस प्रकार बलवति औषधका गुण बिना जाने भी सेवन करनेपर लाभ होता ही है वैसे ही हरिमन्त्र उच्चारण करनेसे नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा

॥१४॥ पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः ॥ हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥१५॥ गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघुनि च ॥ प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥ १६ ॥ तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ॥ नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥ १७ ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ॥ सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥ १८ ॥ यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ॥ अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः* ॥ १९ ॥ (पतिं वः पृच्छत भटा धर्मेऽस्मिन्यदि संशयः ॥ स वेद परमं गुह्यं धर्मस्य भगवान् यमः ॥ १ ॥) श्रीशुक उवाच ॥ त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ॥ तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥ २० ॥ इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके ॥ यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिन्दम ॥ २१ ॥ द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ॥ ववन्दे शिरसा

हे राजन्, इसप्रकार विष्णुपार्षदोंने सुन्दररूपसे भागवतधर्मको कह कर उस ब्राह्मणको यमदूत पाशसे मुक्तकर मृत्यु-मुखसे निकाला ॥ २० ॥ हे शत्रुदमन, विष्णुपार्षदोंके इसप्रकार कहनेपर यमदूतोंने यमराजके समीप जाकर सम्पूर्ण कथाको कहा ॥ २१ ॥ यमदूत पाशसे मुक्त होकर अजामिल निर्भय तथा सावधान हो भगवान्के दर्शनसे आनन्दितहो उनको सिर झुकाकर

*दृष्टान्त—कोई आधुनिक विद्वान् दुर्गा सप्तशतीका पाठ प्रतिदिन किया करते थे। इस तरह पाठ करते २ पाँचवर्ष व्यतीत हो गये। इसी बीचमें उनकी स्त्रीका देहान्त भी हो गया। भगवतीकी कृपासे उन्होंने दूसरा विवाह किया कि थोड़े ही दिनमें उस स्त्रीकी पूर्ववत् दशा देखकर उन्होंने कहा यदि यह मर जायगी तो हे भगवति, मैं तेरा पाठ नहीं करूँगा। अर्थात् पुस्तक आदि सब वस्तुएँ गङ्गाजीमें बहा दूंगा। ऐसा विचार करनेपर भी वह स्त्री भी स्वर्ग सिधारी। उसने अपनी पुस्तकें गङ्गाजी लेजानेका विचार ही किया कि—तारस्त्रीका रूप बनकर भगवतीने कहा अरे मूर्ख, तूँ प्रति दिन दुर्गा सप्तशती के पाठमें कहा करता था 'भार्या भक्षतु भैरवी' इसीसे यह दशाको प्राप्त हो रहा है। अब 'भार्या रक्षतु भैरवी' ऐसा कहना। इससे सब प्रकारका आनन्द होगा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रणाम किया ॥ २२ ॥ हे अनघ, जब उन विष्णुदूतोंने देखा कि वह कुछ कहना चाहता है तो देखते-देखते उसके वे जल्दी वहाँ अदृश्य हो गये ॥ २३ ॥ इस प्रकार विष्णुपार्षदोंद्वारा निर्गुण, भागवतधर्म और यमदूतोंके मुखसे वेदत्रयद्वारा कथित सगुण धर्मव्याख्या श्रवणकर भगवान्का माहात्म्य सुननेसे अजामिलके मनमें भी भक्ति उत्पन्न हो पूर्वकृत दुष्कर्मोंको याद कर महान् दुःखको प्राप्त हुआ ॥२४,२५॥ अहो, विजितात्मा मैं हूँ यह बड़े दुःखकी वार्ता है मैंने दासीगर्भसे बालक उत्पन्नकर अपना ब्राह्मणत्व नाश कर दिया ॥२६॥ अच्छे प्राणियों द्वारा निन्दित, कुलकलङ्क, पापी मुझको धिक्कार है जिसने बाला-सती अपनी स्त्रीका त्यागकर मद्यपी एक पुंश्चलीका सङ्ग किया॥२७॥ कृतघ्न नीच मनुष्योंके तुल्य अपने अनाथ वृद्ध तपस्वी माता-पिताको मुझ कृतघ्नने जो निश्चित असहाय थे, उस समय छोड़ दिया॥२८॥ मैं अपने कर्मों द्वारा निश्चित जहाँ धर्मघाती पापी पुरुषोंका अनेक प्रकारकी यातनायें भोगनी है वह उस भयंकर

विष्णोः किङ्करान्दर्शनोत्सवः ॥ २२ ॥ तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्कराः ॥ सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥ २३ ॥ अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥ २४ ॥ भक्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ॥ अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥ २५ ॥ अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ॥ येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायतात्मना ॥ २६ ॥ धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ॥ हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥ २७ ॥ वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ॥ अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥ २८ ॥ सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ॥ धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥ २९ ॥ किमिदं स्वप्न आहोस्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ॥ ३० ॥ अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ॥ व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥ ३१ ॥ अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ॥ भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥ ३२ ॥ अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ॥ वैकुण्ठनाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥ ३३ ॥ क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ॥ क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥ ३४ ॥ सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः ॥ यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि

नरकमें जा गिरूँगा ॥ २९ ॥ अभी मैंने जो एक विचित्र स्वप्न देखा यह स्वप्न या जाग्रतावस्थाकी कथा की, जो आज मुझको हाथमें पाश लिये खींचे जा रहे थे, वे कहाँ गुम हो गये ॥ ३० ॥ वे लोग पाशोंमें पकड़ कोई भूमिके नीचे मुझको ले जाते थे उस समय जिन्होंने उनलोगोंसे मुक्त कराया वे चार सिद्धगण देखनेमें बड़े भव्य कहाँ गये ॥३१॥ मैं महापापी हूँ किन्तु किसी जन्मका महान् पुण्य कोई अवशिष्ट था जिससे उन देवश्रेष्ठोंका दर्शन मेरेको मिला, इसीसे उनको यादकर मेरा चित्त अब गद्गद् होरहा है ॥३२॥ यह वार्ता यदि न होती तो अपवित्र शूद्रापतिकी जिह्वा मरणसमयमें किस प्रकार श्रीभगवान्विष्णुका नामोच्चारण नहीं कर सकती ॥ ३३ ॥ कपटी, पापी, निर्लज्ज तथा ब्रह्मतेजको नष्ट करनेवाला कहाँ मैं कहाँ भगवान्का मङ्गलमय यह 'नारायण' नाम ? ॥३४॥ मैं अब ऐसा उपाय करूँगा मन, इन्द्रिय, प्राणोंको अपने वशीभूतकर अन्धतमनरकमें जानेसे अपनेको बचा सकूँ ॥३५॥ मैं अविद्या, कामना और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्मादिसे उत्पन्न इस बन्धनको छोड़कर प्राणियोंका सुहृद्, शान्त, मित्र, दयालु तथा संयतेन्द्रिय होकर अबतक जिसने मुझ अधमको क्रीड़ामृगके सदृश मनचाहा चलाया उस स्त्रीस्वरूपिणी भगवान्‌की माया द्वारा अपने आपको हटाऊँगा ॥३६,३७॥ मैं अपने शरीरादिमें 'मैं' मेरा ही व्यर्थ बुद्धि त्याग भगवान्-नामकीर्तनादि द्वारा सुन्दर हुई बुद्धि उन्हींके चरणोंमें लगाऊँगा ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार क्षणिक साधुओंके साथसे अपवित्र वैराग्य उत्पन्न होजानेपर सब मोहजाल छोड़कर वह हरिद्वार चला गया ॥३९॥ उस देवस्थान स्थिर आसनसे योगमार्गका आश्रय उसने लिया तथा उनके विषयोंसे मुक्तकर सब अपनो इन्द्रियोंको मनमें अपने मनको बुद्धिमें विलीन कर दिया ॥ ४० ॥ और अपने आत्माको देहादि दृश्यवर्गसे अलग कर उसको ज्ञानयुक्त भगवत्स्वरूप परब्रह्ममें विलीनकर दिया ॥ ४१ ॥ इसप्रकार उसकी बुद्धि जब भगवान्‌के पावन रूपमें स्थिर हो चुकी तो उसने फिर विष्णुदूतोंको देखा उनको

मज्जये ॥ ३५ ॥ विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ३६ ॥ मोचये ग्रस्तमात्मानं योषि-
न्मय्यात्ममायया ॥ विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥ ३७ ॥ ममाहमिती देहादौ हित्वाऽमिथ्यार्थधीर्मतिम् ॥ धास्ये मनो भगवति
शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ॥ गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥ ३९ ॥ ॥ स
तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ॥ प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥ ४० ॥ ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ॥
युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४१ ॥ यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः ॥ उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ४२ ॥
हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ॥ सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥ साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः ॥ हैमं विमा-
नमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥ ४४ ॥ एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ॥ निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो
विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥ ४५ ॥ नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ॥ न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां
कलिलं ततोऽन्यथा ॥४६॥ य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥ न वै स नरकं याति

जानकर नतमस्तक हो प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ दर्शन प्राप्त हो नेके उपरान्त उसने उसी तीर्थमें पवित्र गङ्गातटपर अपना शरीर छोड़ उसीकाल भगवान्‌के पार्षदोंके सदृश हो गया ॥४३॥ और वह ब्राह्मण उन विष्णुपार्षदोंके साथ सोनेके विमानपर स्थित हो आकाश रास्तेसे जहाँ श्रीलक्ष्मीपति साक्षात् विराजित थे उस वैकुण्ठधामको चला गया ॥ ४४ ॥ हे राजन्, इसप्रकार जिसने दासीपति होकर अपने सब धर्म कर्मको छोड़ और अपने कुत्सित कर्मोंके कारण पतित, व्रतहीन नरकमें जानेका अधिकारी भगवान्‌का नाम लेनेके हेतुसे उसी क्षण मुक्त हो गया ॥ ४५ ॥ इससे जाना जाता है मुमुक्षु प्राणियोंका कर्मबन्धन नष्ट करनेवाला तीर्थपाद भगवान्‌के नामकीर्तनसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है, क्योंकि भगवन्नाम सङ्कीर्तनसे प्राणिका चित्त कर्मोंमें पुनः संलग्न नहीं होता, इसके पृथक् अन्य प्रायश्चित्तोंको करनेसे भी रजोगुण, तमोगुणसे वस युक्त ही रह जाता है ॥४६॥ जो मनुष्य इस पापको नष्ट करनेवाला अत्यन्त श्रद्धापूर्वक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इतिहासको गुप्त सुनता या भक्तिसे कहता है, वह नरकमें कभी नहीं जाता और न कभी यमदूत उसको दिखाई देते, वह महापापी होकर भी वैकुण्ठलोकमें महिमा प्राप्त करता है ॥४७, ४८॥ मरण समयमें पुत्रके बहाने भी भगवान्नामका लेनेवाला अजामिल भगवान्के परमधामको चला गया, तो जो जन श्रद्धापूर्वक भगवान्नाम कीर्तन करते हैं उनके लिये क्या कहना ॥४९॥

नेक्षितो यमकिङ्करैः ॥ यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४८ ॥ म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ॥ अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

द्वितीय अध्यायका सार—हे राजन्, यमदूतों द्वारा दिये गये भाषण को सुनकर विष्णुदूतोंने कहा—हे यमदूतो, भगवान्के नामोंका उच्चारण करना ही सभी पापियोंका सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है, क्योंकि भगवन्नाम लेनेवाले पुरुषके प्रति 'यह मेरा है, इसकी हमें रक्षा करनी चाहिए' ऐसी भगवान्की बुद्धि होती है। हे यमदूतो, छोटे और बड़े पातकोंके छोटे और बड़े प्रायश्चित्त न्यूनाधिक भावको जानकर मनु आदि महर्षियोंने कहे हैं। इसलिए तप, दान आदि भिन्न-भिन्न प्रायश्चित्तोंसे तत् तत् पातक नष्ट होते हैं, किन्तु अधर्मके आचरणसे मलिन हुए पातकीका अन्तःकरण तो ईश्वरके चरणकी सेवा करनेसे ही शुद्ध होता है। यद्यपि, यह मेरे पापका प्रायश्चित्त है, इस बुद्धिसे इसने भगवान्के नामका उच्चारण नहीं किया है तथापि इसने भगवान्के नामका तो उच्चारण किया ही है, इसलिए अब इसके सब पाप नष्ट हो गये। हे यमदूतो, जैसे जाने या बिना जाने ही अग्निमें छोड़े गये काष्ठको अग्नि जला देती है वैसेही जान या अनजानमें उच्चारण किया गया भगवान्का नाम सम्पूर्ण पापोंको भस्म कर देता है। चाहे यह जिस किसी विचारसे भगवान्का नाम लिया है लेकिन नाम तो लिया ही है इसलिए अब यह बिलकुल पापशून्य हो गया है। हे राजन्, विष्णुदूतोंकी ऐसी बातें सुनकर यमदूत अजामिलको छोड़कर चले गये। मृत्युसे छुटकारा पाकर अजामिल बहुत प्रसन्न हुआ वह भगवान् विष्णुके दूतोंके दर्शनसे आनन्दयुक्त होकर ज्योंहि उन्हें प्रणाम करनेके लिए चला, त्योंही वे अन्तर्हित हो गये। इसके बाद उनलोगोंका संवाद सुनकर अजामिलको भगवान्में भक्ति उत्पन्न हो गई। वह गङ्गाके किनारे पहुँचा। वहाँ सर्वविध असक्तिसे शून्य होकर गङ्गाजलके निरन्तर पानसे पवित्रकाय होकरके भगवद्भजन करता हुआ अन्तमें इस शरीरका त्याग-कर भगवान्के पार्षदोंके रूपोंमें जा मिला। हे राजन्, अजामिलके समान पातकी मरते-मरते पुत्रके बहाने भगवान्नामका उच्चारण करके श्रीहरिके स्थानको जब प्राप्त हो गया तब श्रद्धा भक्ति-पूर्वक भगवन्नामका उच्चारण करनेवाले पुरुषको भगवान्के स्थान-प्राप्तिमें कौन सन्देह है। द्वितीय अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ त्रितीयोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः ॥ एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥ यमस्य देवस्य न

❀ यमराज और उनके दूतोंकी परस्पर बात-चीत वर्णन ❀

यह कथा सुन राजाने कहा—हे भगवन्, जिकी आज्ञाका इस तरह उल्लंघन हुआ, तथा सम्पूर्ण संसार जिनके आधीन रहता है उन देवताओंमें श्रेष्ठ धर्मराजने अपने दूतोंके मुखसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जब वृत्तान्त श्रवण किया तो विष्णुदूतोंके द्वारा पलायन हुए उन वीर यमदूतोंसे क्या कहा ? ॥ १ ॥ हे ऋषे, किसी भी प्रकार अब तक यमदेव-आज्ञा नष्ट होनेकी वार्ता कभी भी नहीं सुनी, हे मुने, मेरेको विश्वास है कि आपको छोड़ लोगोंकी इस आशंकाको और कोई नहीं हटा सकता ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जिन प्राणियोंका भगवत् पार्षदोंने काम नष्ट कर दिया उन यमदूतोंने अपने मालिक तथा संयमनी पुरीके पति भगवान्ने यमसे जाकर कहा ।३॥ यमदूतोंने कहा—हे प्रभो, पुण्य, पाप और पाप-पुण्य ये तीन प्रकारके कर्म करने प्राणियोंके कर्मोंका फल देनेवाले शासक निश्चयरूपसे संसारमें कितने हैं ? ॥ ४ ॥ संसारमें यदि नानाविधि शासक हों तो किनको सुख-दुःख मिले या किनको नहीं मिलेंगे ॥ ५ ॥ कर्मियोंकी अनेकताके अनुसार यदि उनके शासक भी अनेक माने जायँ तो माण्डलिक राजाओंके तुल्य उनका शासक होना केवल उपचारमात्र है। क्योंकि वे सर्वदा परतन्त्रही रहेंगे ॥६॥

दण्डभङ्गः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ॥ एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं नहि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ॥ पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमिनीपतिम् ॥ ३ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ कति सन्तोह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ॥ त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥ ४ ॥ यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ॥ कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥ ५ ॥ किन्तु शास्तृबहुत्वे स्याद् बहूनामिह कर्मिणाम् ॥ शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ ६ ॥ अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ॥ शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥ ७ ॥ तस्य ते विहतो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ॥ चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धै राज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥ ८ ॥ नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ॥ व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥ ९ ॥ तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ॥ नारायणेत्यभिहिते माभैरित्याययुर्द्रुतम् ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ॥ प्रीतः स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ॥ यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥ १२ ॥ यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ॥ यस्मै बलिं त इमे

इसलिए मेरे विचारके नियमसे तो एकमात्र आपही शासकोंके सहित सब जीवोंके शासक दण्डदाता हैं, और आपही सब प्राणियोंके शुभ-अशुभका निर्णय करते हैं ॥ ८ ॥ आपका विहित होनेपर भी इससमय दण्ड लोकमें नहीं चलता तथा चार विचित्र सिद्धोंने अपकी आज्ञाको नष्टकर दिया ॥८॥ हें नाथ, आपकी आज्ञासे हमलोग एक पतितको पकड़कर यातनागृहमें ले जारहे थे कि इसी समय बलपूर्वक उन चारोंने हमारे पाशोंको नष्टकर उसका बन्धनमुक्तकर दिया ॥ ९ ॥ आप यदि बतानेमें आपत्ति न जाने तो कहिये कि वे कौन थे, हम उन सिद्धोंके विषयमें जानना चाहते हैं 'नारायण' यह कहते ही उस पापीसे 'डरो मत डरो मत' ऐसा कहते हुए उसी क्षण इस प्रकार वे आ पहुँचे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उनके ऐसा ज्ञान लेनेपर प्रजाशासक भगवान् बहुत प्रसन्न हो यमराजने श्रीहरिचरणकमलका ध्यान करते हुए अपने दूतोंसे कहा ॥११॥ यमराजने कहा—हे दूत, एक अन्य भी मेरेसे अलग संपूर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थावर-जङ्गम जगत्के प्रधान प्रभु हैं, जिनमें यह सारा संसार तन्तुमें पटके सदृश संलग्न है, जिनके अंगस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव से इसके जन्म, स्थिति, नाश होते हैं और सब प्राणी नथे हुए बैलके सदृश जिनके आधीन हैं ॥१२॥ किसान जैसे बैलोंको डोरियोंमें बाँधते हैं, उसी प्रकार जो प्राणियोंको ब्राह्मण-आदि नामोंसे देदवाणीरूपी रस्सोमें बाँधे हुए हैं जिन्हें नामकर्मरूपी बन्धनमें बँधे हुए सब प्राणी कम्पायमान भावसे बलि अर्पण करते हैं ॥ १३ ॥ दूतो, मैं जिनकी मायाके वशीभूत हो इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, चन्द्र, अग्नि, महादेव, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, द्वादशादित्य, विश्वेदेव, वसुगण, साध्यगण, मरुद्गण, सिद्धोंके सहित रुद्रगण तथा जिनको रज, तपका स्पर्श भी नहीं हो सकता ऐसे सत्त्वप्रधान होकर भृगु आदि अन्य प्रजपति देवता कुछ भी जिनकी विद्यमानका मर्म नहीं जान सकते ॥ १४,१५ ॥ जैसे घट आदि रूपवाले पदार्थ अपने देखनेवाले नेत्रको नहीं देख सकते, तद्वत ही अपने अन्तःकरणमें प्राणिके

नामकर्मनिबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥ १३ ॥ अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः ॥ आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥ १४ ॥ अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ॥ यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥ १५ ॥ यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वासुभृतो विचक्षते ॥ आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥ १६ ॥ तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ॥ प्रायेण दूता इह वै मनोतराश्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥ १७ ॥ भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ॥ रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥ १८ ॥ धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ॥ न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥ १९ ॥ स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ॥ प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ॥ गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥ २१ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः ॥ भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ॥ अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३ ॥ एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां

साक्षिस्वरूपसे स्थित जिन ईश्वरको मनुष्य, इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय, वाणी आदि किसी भी द्वारा नहीं जान सकते हैं ॥१६॥ उन जगदीश्वर आत्मतन्त्र मायापति महात्मा हरिदूत जो दिखनेमें बड़े रमणीय उन्हींके तुल्य रूप, गुण, स्वभाववाले हैं, वे सदा इसलोकसे विचरण करते रहते हैं ॥ १७ ॥ देवजनपूजित दुर्दर्शलिङ्गस्वरूप अत्यद्भुत विष्णुदूत भगवद्भक्त प्राणियोंको उनके अरियोंसे, मेरेसे तथा सब बाधाओंसे सर्वदा सुरक्षित रखते हैं ॥१८॥ साक्षात् श्रीभगवान् कथित इस धर्मविषयमें ऋषि, देवता, मुख्य प्रधान सिद्धगण भी कुछ नहीं जान सकते तो फिर असुर, प्राणि, विद्याधर, चारण आदि कैसे जानेंगे ॥ १९ ॥ हे दूतो, ब्रह्मा, नारद, महादेव, सनत्कुमार, कपिलदेव, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि शुकदेव तथा मैं—ये बारह उस अत्यन्त गुप्त, पवित्र दुर्बोध भागवतधर्मविषयमें कुछ-कुछ जानकारी रखते हैं, जिसके जानकारीसे मनुष्य मुक्ति प्राप्तकर लेता है ॥२०,२१॥ इसलोकमें भगवन्नामोच्चारणादि सहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भक्तियोग ही सबसे प्रधान जीवका धर्म है ॥२२॥ हे पुत्रो, देखो इसप्रकार भगवन्नामोच्चारण लीला है जिसके प्रभावसे अजामिल भी मृत्युबन्धनसे मुक्त हो गया ॥२३॥ इसलिए सब जीवोंके समूल पापोंके नष्ट करनेके लिए गुणकर्मसे सम्बन्ध रखनेवालोंके लिये भगवन्नामकीर्तन करना ही बहुत बड़ा साधन है, क्योंकि उस महापापी अस्वस्थ मनसे अजामिलने मरनेके समय 'नारायण' ऐसा अपने पुत्रको कहकर पुकारनेमात्रसे ही मुक्ति पा लिया ॥२४॥ प्रायश्चित्तोंका विधान निर्णय करनेवाले महाजीवोंकी बुद्धि भी भगवान् मायासे मोहित हो गई इससे हो सकता है कि भगवान्नामकीर्तन माहात्म्य वे न जान सके हों, तभी तो स्वर्गादि नष्ट फलोंकी प्रशंशा करनेवाले सुन्दर बड़े-चौड़े वेद वाक्योंमें मनफँसलाकर वे यज्ञ-यागादि महान् कार्योंमें ही जीवन पर्यन्त लगे रहे ॥ २५ ॥ यह सोचकर हे भृत्यो, जो बुद्धिमान् जीव सब प्रकारसे अनन्त भगवान्में ही भक्ति करते हैं, वे मेरे दण्डके पात्र कभी नहीं होते, क्योंकि पूर्व उनसे पाप होता

सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्म नाम्नाम् ॥ विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥ २४ ॥ प्रायेण वेद तदिदं
न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ॥ त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥ २५ ॥ एवं
विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ॥ ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः
॥२६॥ ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ॥ तान्नोपसीदतहरेर्गदयाभिगुप्तान् नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे
॥२७॥ तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ॥ निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान्
॥ २८ ॥ जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ॥ कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽ-
कृतविष्णुकृत्यान् ॥ २९ ॥ तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुषः पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ॥ स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥ ३० ॥ तस्मात्सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ॥ महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतम् ॥३१॥

ही नहीं यदि कुछ हुआ भी है तो उसका भगवद्गुणगान उसी क्षण नष्ट कर देता है ॥ २६ ॥ भगवान्के शरणागत समदर्शी साधुपुरुषोंके पवित्र चरित्रका देवता तथा सिद्धगण गान करते रहते है, वे भगवान् गदासे पालित रहते हैं, तुम कभी उनके समीप मत जाना, उनको दण्ड देनेके लिए मैं और साक्षात् काल भी समर्थ नहीं हो सकता ॥२७॥ यहाँ तुम तो उन्हीं पापियोंको ले आना जो सवसङ्ग-त्यागी, रसज्ञ, परमहंसोंसे सर्वदा संसेवित श्रीहरिचरणकमलमकरन्दके रस तथा अपने घरोंमें नरकद्वाररूपी आसक्त हैं ॥ २८ ॥ जिनकी जिह्वा भगवान्के गुण और नामोंका कीतन नहीं कर सकतीं जिनका मन नारायण चरणकमलोंको याद नहीं करता, जिनका सिर एकबार भी भगवान् कृष्णके समक्ष नहीं नमता, ऐसो भगवत्परिचर्या आदि कर्मोंसे विमुख अधम जीवोंको ही मेरे समीप तुम ले आना ॥ २९ ॥ अपने भृत्यों द्वारा जो अपराध मैंने किया, उसको पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण क्षमा करें हम हाथ जोड़े सर्वदा उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं, इसलिए हम अज्ञानी जीवोंका अपराध क्षमा करना ही उन श्रेष्ठतम-ईश्वरको उचित है, सर्वव्यापक उनको मेरा अनेक बार प्रणाम है ॥३०॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुरुश्रेष्ठ, अत्युत्कट पापको भगवान्‌विष्णु जगन्मङ्गलमय नामकीर्तन ही जड़ नाश करनेवाला प्रायश्चित्त है यह जानिये ॥३१॥ क्योंकि भगवान्‌के उदार चरित्रोंका बार-बार श्रवण, कीर्तन करनेवाले जीवोंका मन अनायास जिस प्रकार उत्पन्न भगवद्भक्तिसे पवित्र होता है, तद्वत् अन्य व्रत आदिसे पवित्र नहीं होता ॥ ३२ ॥ जो जीव भगवान्‌के चरणारविन्दका रसास्वाद करनेवाले भ्रमरके तुल्य हैं, वह एकबार व्यर्थ जानकर त्याग किये हुए पापको उत्पन्नकर मायागुणमें पुनः नहीं फँस सकता, पर अन्य विषयासक्त मनुष्य अपने दोषोंका परिमार्जन करनेके लिए प्रायश्चित्तरूप कर्मोंमें ही लग जाता है, जिससे दोषोंकी उत्पत्ति पुनः होती जाती है ॥ ३३ ॥ हे राजन्, अपने मालिककी कही हुई इस भगवान्‌की महिमाको यादकर यमदूतोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और स्वामीके वाक्यपर विश्वासकर वे अपने नाशकी आशङ्काकर तबसे भगवान्‌के आश्रित प्राणियोंके समीप नहीं जाते, न उनको देखनेसे ही भय करते हैं ॥३४॥ हे राजन्, भगवान् अगस्त्यने मलयाचलपर बैठे इस गुप्त इतिहासको मुझसे अर्चनाके समय कहा था ॥ ३५ ॥

शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ॥ यथा सुजातया भक्त्या शुध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥३२॥ कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण्न पुनर्विसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ॥ अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥३३॥ इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिङ्करास्ते ॥ नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥३४॥ इतिहासमिमं गुह्यं भगवान्कुम्भसंभवः ॥ कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥३५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तृतीय अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, विष्णुदूतोंके द्वारा नष्टकर दिये गये उद्योगोंवाले वे यमराजके दूत संयमिनी नगरीके पालक अपने प्रभुके निकट आकर इस तरह कहने लगे—हे प्रभो, इस संसारमें यदि अनेक शासक होने लगेंगे तो फिर इस विश्वकी व्यवस्था ठीक-ठीक नहीं चल सकेगी। परस्पर विरोध होनेके कारण एकही प्राणीको उसमें कोई सुखी बनना चाहेगा तो कोई दूसरा उसे दुःखी बनाना चाहेगा। इसलिए हे प्रभो, अनेक नायक होनेके कारण पापियोंको ही दुःख और धर्मात्माओंको हो सुख मिले, ऐसी व्यवस्था फिर तो ठीक न हो सकेगी। हे प्रभो, यद्यपि अनेक पुरुषोंके अनेक शासक हो सकते हैं, तथापि चक्रवर्ती राजा तो फिर एक ही हो सकता है। इसलिए हमलोगोंके मतसे प्रधान शासक आपही है, लेकिन हमें बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि अब आपका शासन और आगे न चल सकेगा, आपकी गाड़ी यहीं रुक गई, क्योंकि आपकी आज्ञाके अनुसार पातकी अजामिलको हमलोग यातना स्थानको लिए जा रहे थे कि इतनेहीमें चार सिद्धोंने आकर जबरदस्ती हमारे पाशोंको तोड़कर उसे छुड़ा लिया। हे प्रभो, वे महाप्रभावशाली कौन थे, हमें बतलाइये। इस प्रकार दूतोंके द्वारा पूछे जानेपर भगवान् नारायणके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए यमराजने कहा—हे दूतो, सुनो, सर्वतन्त्र, सर्वकारक, सर्वेश्वर मायापति भगवान् श्रीहरिके दूत इस त्रिलोकीमें विचरण किया करते हैं। वे सब रूप और गुणमें भगवान् विष्णुके ही समान हैं। भगवद्भक्त मनुष्योंकी मुझसे, शत्रुओंसे तथा अग्नि आदिसे सदा रक्षा किया करते हैं। हे दूतो, साक्षात् भगवान्‌के कहे हुए धर्मको पूरा-पूरा कोई नहीं जानता। हाँ, ब्रह्मा, नारद, सनन्तकुमार आदि कुछ इने-गिने लोग हैं जो भगवान्‌के धर्मको जानते हैं। भगवान्‌के धर्मका ऐसा प्रभाव है कि जिसे जानते ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, फिर उसके आचरणसे मोक्षकी प्राप्ति होगी, इसमें कौन आश्चर्य है। भगवन्नामोच्चारणपूर्वक भगवान्‌की भक्ति करना ही इसलोकमें सबसे बढ़कर धर्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। हे दूतो, जिस पुत्रके रखे हुए नामका सिर्फ एकबार उच्चारण करनेसे अजामिल भी मृत्युके पाशसे छूट गया, उस हरिनामके माहात्म्यको तो देखो। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसतरह अपने प्रभुके द्वारा कहे गये भगवन्माहात्म्यका स्मरण करके वे यमराजके दूत 'यह आपका कहना बिल्कुल सत्य है' यों मानने लगे और तबसे यमदूत अपने नाशकी आशङ्कासे भगवान्के भक्तको देखनेमें भय खाने लगे। हे राजन्, इस गुप्त इतिहासको पहिले एकाग्रचित्तसे मलयपर्वतपर बैठकर श्रीहरिका पूजन करते हुए अगस्त्यजीने मुझसे कहा था। तृतीय अध्याय समाप्त❀

❀ हंसगुह्यस्तोत्रका वर्णन ❀

इतनी कथा श्रवणकर राजाने कहा—हे भगवन्, स्वायम्भुवमन्वन्तरमें तुमने जिन देव, असुर, मनुष्य, सर्प, मृग तथा पक्षियोंको सृष्टिका संक्षिप्त इतिहास कहा मैं अब सविस्तार उसका कार्य

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ॥ सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ १ ॥ तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवान् यथा ॥ अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान्परः ॥२॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः॥ प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ॥ अन्तः समुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥ ४ ॥ द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ॥ मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥ ५ ॥ ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ॥ राजोवाच महान्सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥ ६ ॥ मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ॥ विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥ ७ ॥ अहो प्रजापतिपतिर्भगवान्हरिरव्ययः ॥ वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥ ८ ॥ अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारि-

जाननेकी इच्छा करता हूँ, अपनी शक्तिसे भगवान्ने जिसप्रकार अग्रिम सृष्टि निर्माण किया हो वह जाननेकी मेरी इच्छा है ॥ १, २ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हेमुनिसत्तम, परीक्षित् राजर्षिका अत्युत्तम प्रश्न सुनकर उसकी प्रशंसा करते हुए महायोगी शुकदेव बोले ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, प्राचीनबर्हिष प्रचेता नामके दस बालकोंने समुद्रसे पृथक् हो सम्पूर्ण पृथ्वीको वृक्षोंसे परिपूर्ण देखा तो अपने तपोयोग द्वारा क्रोध बढ़ जानेसे उन प्रचेताओंने उन पेड़ोंपर अत्यन्त क्रोधित हो उनको भष्म करनेकी अभिलाषासे अपने मुखसे वायु और अग्नि छोड़ दिया ॥४,५॥ हे कुरुनन्दन, उन प्रचेताओं द्वारा वायु और अग्निसे नष्ट होते देख महाराज सोमने उनका क्रोध शान्त करते हुए इस प्रकार कहा ॥ ६ ॥ हे महाभाग, वृद्धजनके लिये तुमलोग इच्छुक रहनेके निमित्तही प्रजापति कहे जाते हो इसलिए तुमको इन अनाथ वृक्षोंसे शत्रुता करना श्रेयस्कर नहीं है ॥७॥ अहो प्रजापतियोंके मालिक अविनाशवान् भगवान् श्रीहरिने बनस्पतियों और दवाओंको प्रजाओंके भक्ष्य, अन्नरूपसे उत्पन्न किया ॥८॥ जंगम प्राणियोंके भोजन स्थावर हैं, बिना पैरवालोंके पैरवाले भक्ष्य हैं, बिना हाथवालोंके हाथवाले और दो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पैरवालोंके चार पैरवाले भोजन हैं ॥ ६ ॥ हे अनघ, तुमको तो मेरे पिता राजा प्राचीनबर्हि और देवाधिदेव श्रीविष्णुने प्रजाके उत्पत्यर्थ संसारमें आज्ञा दी है, पुनः यह किस प्रकार तथ्य हो सकता है कि सब पेड़ोंको तुम भस्म कर दो ॥ १० ॥ अतः आप उत्तेजित अपना क्रोध शान्त करो। अपने पिता, पितामह, प्रपितामह आदिसे संसेवित अच्छे जीवोंके मार्गका अनुकरण करो ॥११॥ जिस तरह लड़कोंके अच्छी कामना चाहनेवाले माता-पिता नेत्रोंके सहित चाहनेवाले पलकें, स्त्रीका मित्र पति, भिक्षुओंका पोषण करनेवाला गृहस्थ, अज्ञानियोंका शुभचिन्तक ज्ञानी होता है, उसी प्रकार राजा प्रजाओंका मित्र होता है ॥ १२ ॥ प्राणीमात्रके चित्तमें आत्मारूपसे भगवान् विष्णुही विराजमान रहते हैं, इसलिये सबको उनहींका निवासस्थान समझिये ऐसा करने मात्रसेही तुम भगवान्‌को प्रसन्न करसकोगे ॥ १३ ॥ जो जीव अपने शरीरके हृदयाकाशमें उत्पन्न अत्यन्त क्रोधको आत्मविचारद्वारा शान्तकर लेता है

णाम् ॥ अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥ ९ ॥ यूयं च पित्राऽन्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ॥ प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ
॥ १० ॥ आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ॥ पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रापितामहैः ॥ ११ ॥ तोकानां पितरौ बन्धुर्दृशां
पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ॥ पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥ १२ ॥ अन्तर्देहेषु भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः ॥ सर्वं सद्धिष्ण्यमीक्षध्व-
मेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥ यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ॥ आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥ १४ ॥ अलं
दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ॥ वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥ इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ॥
सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥ १६ ॥ तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल ॥ यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः
॥ १७ ॥ यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥ १८ ॥ मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः
प्रजाः ॥ देवासुरमनुष्यादीन्नभस्थलजलौकसः ॥ १९ ॥ तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ॥ विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः
॥ २० ॥ तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ॥ उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिम् ॥ २१ ॥ अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् ॥ तुभ्यं

वही तीनों गुणोंको जय कर सकता है ॥ १४ ॥ तुम अब इन दुःखियोंपर क्रोध न कर तुम्हारा श्रेय हो तुमलोग पेड़ों द्वारा रक्षित इस श्रेष्ठ लड़कीको पत्नीस्वरूपसे ग्रहण करिये ॥ १५ ॥ हे राजन्, इसतरह प्रचेताको समझा-बुझाकर सोम राजाने प्रम्लोचा नामक अप्सरासे उत्पन्नमान सुन्दर कटिवाली कन्या उनको देकर चले गये, तदनन्तर प्रचेताओंने उस कन्यासे धर्मानुकूल विवाह किया ॥ १६ ॥ मनुष्योंका कथन है कि उससे उनसे प्राचेतस नामसे प्रसिद्धतम दक्ष नामका बालक जन्मा जिसकी जनवृद्धिसे तीन लोक परिपूर्ण हो गये ॥ १७ ॥ तुम सावधान मनसे सुनिए पुत्रीवत्सल दक्षने अपने वीर्य, मन द्वारा जिन प्राणियोंकी उत्पन्न किया मैं वह कहता हूँ ॥ १८ प्रथम प्रजापति दक्षने आकाश, स्थल, जलपर रहनेवाले देव असुर, जीवरूपिणी प्रजाको अपने मनसे उत्पन्न किया ॥१९॥ उस प्रजासर्गकी वृद्धिको न होते देख प्रजापति दक्ष विन्ध्याचलकी गुफामें जाकर भयङ्कर तपस्या करने लगा ॥२०॥ वहाँ रहते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए सब पापोंके नाशक अघमर्षण तीर्थमें प्रातः तथा तीनों समय स्नान करते हुए उन्होंने उत्कट तपसे भगवान्‌को मनाया ॥ २१ ॥ तदनन्तर हे राजन्, दक्षने हंसगुह्यस्तोत्र द्वारा अधोक्षज भगवान्‌की स्तुति की जिससे भगवान् उनपर प्रसन्न हुए वह तुमसे मैं कहता हूँ ॥ २२ ॥ दक्षप्रजापतिने कहा—चेतनाशक्ति जिसकी महान् है, जो जीव मायाके मालिक हैं, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकी पहुँच न होनेसे जिनके सत्यरूपके विषयमें परमार्थकी कल्पना करनेवाले जीव भी जिसको नहीं जान पाते उन प्रकाशशील स्वयं ईश्वरको नमस्कार है ॥ २३ ॥ जैसे अपनेको प्रकाश करनेवाले रूपादिविषय नेत्र आदि इन्द्रियोंके प्रकाशत्वरूपी गुणोंको नहीं जान सकते तद्वत् ही इस देहमें मित्रतुल्य निवास करनेवाला प्राणी मित्रतासे सर्वदा सङ्ग रहनेवाला जिस ईश्वरकी मनोहर भावनाको नहीं जान सकता, मैं उस परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ अपनेको देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण, पञ्चभूत, उनको मात्राएँ

तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः ॥ २२ ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ नमः परयावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ॥ अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे ॥ २३ ॥ न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन्संवसतः पुरेऽस्मिन् ॥ गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥ २४ ॥ देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ॥ सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥ २५ ॥ यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ॥ य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥ २६ ॥ मनीषिणोऽन्तर्हृदि सन्निवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ॥ वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥ २७ ॥ स वै ममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥ यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाऽक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ॥ मा भूत्स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तस वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥२९॥ यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ॥ परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥ ३० ॥ यच्छक्तयो वदतां वादिनां

अपनेसे अलग इन्द्रियों तथा उन देवताओंके अधिष्ठातृरूपको भी नहीं जान पा सकता परन्तु प्राणी इन सबको इनके निमित्तरूप गुणोंसे परिचित है, इनकी जानकारी होने पर भी जिस सर्वज्ञ ईश्वरके विषयमें कुछ भी नहीं जान सकता मैं उस अनन्तकी स्तुति करता हूँ ॥ २५ ॥ दर्शन, स्मरणशक्ति नष्ट होनेपर नामरूपके परिचायक चित्त समाधि लग गई तो एकमात्र अपने रूपस्थितसे ही जाना जा सकता है और पवित्रमन ही जिसका उपलब्धिस्थान हैं उस शुद्धरूप परमात्माको नमस्कार है ॥ २६ ॥ जिस प्रकार याजकसमूह सामिधेनी पन्द्रह मन्त्रोंसे उत्पन्न छिपी अग्निको काष्ठमें प्रकट करते हैं उसी प्रकार सत्ताईस तत्त्वरूपिणी उपाधियोंसे गुप्त रख अन्तःकरणमें गुप्त भावसे स्थित जिस ईश्वरको ज्ञानशील जीव अपनी बुद्धिके द्वारा देखते हैं, वे मायाके सब भेदोंको छोड़ देनेपर मोक्षसुखानुभवासिद्ध सर्वनाम, विश्वरूप, अनिर्वचनीय तेज युक्त भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २७, २८ ॥ वाणीसे जो कह दिया जाता है, बुद्धि, इन्द्रिय या चित्तसे जो सुना जाता है वही रूप उनका नहीं हैं वह गुणोंका केवल कार्यमात्र है, परमात्मा तो गुणकी उपत्ति और प्रलयरूपी कार्यसे जाना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाता है ॥ २९ ॥ जिससे, जहाँसे, जिससे, जिसका जिसके लिये, जिसकायको, जो, जिस प्रकार करता है या कहनेसे कार्यमें लग जाता है, वह एकमात्र सब ब्रह्म ही है, क्योंकि कार्य-कारणसे वह सब प्रथम सिद्ध अपना और पराया भेद-मात्रसे अलग सबका एकमात्र कारण है ॥ ३१ ॥ जिनकी शक्तियाँ उत्तर-प्रत्युत्तर करनेवाले वादियोंके विवाद और उत्तरकी पृथ्वी बन गई उनके चित्तको बारम्बार मोहजालमें कर देती हैं उन सर्वव्यापी अनन्तगुणयुक्त ईश्वरको नमस्कार है ॥ ३१ ॥ एक चीजके ही ज्ञानमें अस्ति नास्ति ये दो अलग धर्म प्रतिपादक योग, तथा संख्यामें अपने तर्कोंके रूप जो एक ही श्रेष्ठ चीज है वह परब्रह्म है ॥ ३२ ॥ जो प्राकृत ज्ञानरूपसे अलग होते हुए भी जिन भगवान्ने अनन्त अपने चरणोंकी सेवा करनेवाले प्राणियोंपर दया करनेके लिए जन्म तथा कर्मों द्वारा पारी पारी नाम और नानारूप, धारण करनेवाले वे भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ जैसे भूमिके गन्धके सहारेसे

वै विवादसंवादभुवो भवन्ति ॥ कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥ ३१ ॥ अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरेकस्थ-योर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः ॥ अवेक्षितं किञ्चन योगसांख्ययोः समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥ ३२ ॥ योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवा-ननन्तः ॥ नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥ यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ॥ यथाऽनिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे ॥ आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥ कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ॥ चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ ३६ ॥ पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ वनमाला निवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७ ॥ महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ काञ्च्यङ्गुलीयव-लयनूपुराङ्गदभूषितः ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः ॥ वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥ ३९ ॥ स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥ ४० ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ॥ न किञ्चनोदीरयितुमशक-

उसीके तुल्य प्रतीत होता है, तद्वत् अन्तर्यामी परमात्मा प्राकृत ज्ञानमार्गसे प्राणियोंके भावनानुसार अलग-अलग देवताओंके रूपमें प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, वे भगवान् मेरा कार्य परिपूर्ण करें ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, इसप्रकार उस अघमर्षणतीर्थमें स्तुति करने बाद भक्तवत्सल भगवान् उन स्तुति करनेवालेके प्रत्यक्ष उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥ उससमय उनका पाँव गरुड़के कन्धेपर था, लम्बी-लम्बी उनकी आठ भुजाएँ थीं, उनमें चक्र, शङ्ख, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, गदा, पाश धारण किये हुए थे ॥ ३६ ॥ उनकी देह जलपरिपूर्ण मेघके तुल्य श्याम थी, उसपर पीताम्बर शोभित हो रहा था, उनके मुख और नेत्र प्रसन्न थे, उनकी सारी देह वनमालासे छिपी हुई थी, श्रीवत्स एवं कौस्तुभमणिसे वे बहुतही मनोहर जानी जाती थी ॥ ३७ ॥ मुकुट, कटक, झूलते हुए मकरकुण्डल, करधनी, अंगूठी, कङ्कण, नूपुर, अङ्गद आदि गहनोंसे विभूषित थे ॥ ३८ ॥ इसप्रकार त्रैलोक्याधिपति भगवान् त्रिलोकीको मोहमें करनेवाले रूपको धारणकर उत्पन्न हो नारद, नन्दादि, पार्षदों, तथा नानाविध देवेश्वरोंसे विभूषित थे ॥ ३९ ॥ पीछे पीछे उनकी सिद्ध, गन्धर्व, चारण आदि स्तुतिकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चलते थे, भगवान्‌का विचित्र रूपको देख प्रजापति दक्ष, कुछ किञ्चित् अधीरसे हो अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे उन्होंने दण्डवत् भूमिपर उनको नमस्कार किया, जैसे बहुत प्रकारके झरनोंका जल प्राप्तकर नदियाँ परिपूर्ण होती हैं, तद्वत् ही परम-आनन्दकी त्वरासे मन और इन्द्रियोंके रुक जानेसे वे कुछ भी नहीं कह सके ॥ ४०,४१॥ और सब जीवोंके चित्तकी बात जाननेवाले भगवान् इसप्रकार विनयान्वित हो प्रणाम करनेवाले, प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छावाले दक्षप्रजापतिसे बोले ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे महाभाग प्रचेताके बालक दक्षजी, तुमको तपस्यासे अच्छी सिद्धि मिली, क्योंकि मेरेपर श्रद्धा करनेमात्रसे तुमरा मुझपर अगाढ प्रेम हो गया ॥ ४३ ॥ हे प्रजापते, इस संसारको तेरी तपस्या वृद्धि करेगी, अतः मैं तुमपर अत्यन्त राजी हूँ, क्योंकि जीवोंकी वृद्धि हो यह मेरी इच्छा है ॥ ४४ ॥ ये सब मेरी ही ब्रह्मा, महादेव, तुम, मनु, इन्द्र विभूतियाँ हैं, ये ही जीवोंकी उत्पत्तिके निमित्त हैं ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्मन्, मेरा

तीव्रया मुदा ॥ आपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥ ४१ ॥ तं तथाऽवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ॥ चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ॥ यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥ ४३ ॥ प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ॥ ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः ॥ विभूतयो मम ह्येता भूतिहेतवः ॥ ४५ ॥ तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाकृतिः ॥ अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्मासवः सुराः ॥ ४६ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किञ्चान्तरं बहिः ॥ संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥ ४७ ॥ मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ॥ यदासीत्तत एवाद्यः स्वयंभूः समभूदजः ॥ ४८ ॥ स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ॥ मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥ ४९ ॥ अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ॥ नव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥ ५० ॥ एषा पञ्चजनस्याङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः ॥ असिक्नी नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥ ५१ ॥ मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ॥ मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ५२ ॥ त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ॥ मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य

तप, हृदय, विद्या, शरीर, कर्म, आकृति, यज्ञ, अङ्ग, धर्म, मन, देवता, प्राण हैं ॥४६॥ सृष्टिके प्रारम्भमें चिन्मात्र, अव्यक्त सर्वतोभावसे एक मैं हो शयन किए के सदृश था, मेरे अलग और कुछ भी बाहर या भीतर न था ॥ ४७ ॥ अनन्तगुणशाली अनन्त मुझमें गुणमय ब्रह्माण्डदेह उत्पन्न हुआ तो अयोनिज आदिपुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ देवताओंमें ब्रह्माजीने मेरे वीर्यसे वृद्धि हुए सृष्टि करनेकी इच्छा किया तो उसमें उन्होंने अपनेको असमर्थ पाया ॥ ४९ ॥ तब मेरे कहे अनुसार ब्रह्माने कठिन तपकर उसके बलसे सर्वप्रथम तुम्हारे सहित नव प्रजापतिकी उत्पत्ति की। हे तात, पञ्चजन नामके प्रजापतिकी यह पुत्री है और असिक्नी इ०का नाम है। हे प्रजापते, तुम इसको अपनी स्त्रीरूपमें ग्रहण करो ॥ ५०, ५१ ॥ स्त्रीपुरुष सम्बन्ध रतिधर्मको तुम ग्रहणकर मैथुनधर्मवाली स्त्रीसे अधिकसन्तान उत्पन्न कर सकोगे ॥ ५२ ॥ तुम्हारे बादकी सब प्रजा मेरी मायासे मैथुनधर्म मार्गसे प्रादुर्भूत हो सदा मेरी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सेवामें लगी रहेगी ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, प्रजापति दक्षसे इस तरह कहकर भगवान् विश्वभावन देखते-देखते जैसे— जाग्रत अवस्थाका स्वप्न पदार्थ नष्ट हो जाता है इस प्रकार अन्तर्ध्यान हो गये ॥ ५४ ॥

भगवान्विश्वभावनः ॥ स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

चतुथ अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, प्राचीनबर्हि राजाके प्रचेता नामक दस पुत्रोंने समुद्रसे बाहर निकलकर वृक्षोंसे भरी पृथिवीको देखकर सन्तापके कारण कोपको प्राप्त होकर वृक्षोंके ऊपर क्रुद्ध होते हुए उन्हें जला देनेके लिए अपने मुखसे वायु और अग्निको पैदा किया। हे कुरुश्रेष्ठ, अग्निसे भस्म हो रहे वृक्षोंको देखकर सोम नामक महाराजा उनका क्रोध शान्त करते हुए कहने लगे—हेमहाभाग, तुमलोग प्रजाधिपति होनेके कारण विशेष करके प्रजाओंकी वृद्धि करनेकी चाह रखनेवाले हो, इसलिये इन दीन वृक्षोंसे विद्रोह करना तुम्हें उचित नहीं है। हे प्रचेताओं, हृदयमें उत्पन्न हुए भयंकर क्रोधको जो आत्मविचारसे रोकता है वही तीनों लोकोंको पारकर भगवत्स्वरूपको प्राप्त होता है, इसलिये इनके ऊपर दया करो, तुम्हारा और इनका भी कल्याण हो। इनके द्वारा पालित इस कन्याको तुम पत्नीरूपसे स्वीकार करो। हे राजन्, यों राजा सोम उन प्रचेताओंको शान्तकर उन्हें वह अप्सराकी कन्या समर्पित करके वहाँसे चल दिये। उन लोगोंने उस कन्याके साथ विवाह कर लिया और सबने मिलकर दक्षको उत्पन्न किया। अकेले एक दक्षने अपने चित्तसे नाना विध प्राणियोंकी सृष्टिकी लेकिन उस मानसिक सृष्टिसे जब प्रजाओंकी वृद्धि न हुई तब वे विन्ध्याचलके समीप अघमर्षण नामक तीर्थमें जाकर भगवान् श्रीहरिकी तपस्या करने लगे। हे राजन्, दक्ष प्रजापतिने हंसगुह्यक नामक स्तोत्रसे भगवान्की स्तुति की। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् उनके निकट प्रकट हुए। भगवान्को देखकर दक्षजी हर्षसे उल्लासित हो उठे। भगवान्के चरण-कमलोंपर लोट गये। उनकी वाणी बिलकुल रुक गई। अपने आप वत्सल दक्षसे भगवान्ने यों कहा—हे वत्स, तुम्हारी सर्वोत्कृष्ट तपस्यासे मैं खूब प्रसन्न हूँ। हे वत्स, यह जानलो कि तप मेरा हृदय है, जिसमें सृष्टि रखी हुई है। तुम तपके द्वारा सिद्ध हो चुके हो, तुम्हें मेरी भक्ति प्राप्ति हो गई है। तुम्हारी तपस्या करनेका मतलब मुझे मालूम है। तुम प्रजाओंकी वृद्धि चाहते तो, इसलिए पञ्चजन नामक प्रजापतिकी असिक्नी नामकी लड़कीको तुम अपनी स्त्री बना लो और गृहस्थ बनकर नाना विध प्रजाओंको उत्पन्नकर सृष्टिका विस्तार करो। हे राजन्, विश्वकी वृद्धि करनेवाले भगवान् श्रीहरि यों कहकर उस दक्ष प्रजापतिके सम्मुख स्वप्नमें देखी गई वस्तुके समान वहींसे अन्तर्हित हो गये। चतुर्थ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ॥ हर्यश्वसंज्ञानयुतं तुत्रानजनयद्विभुः ॥ १ ॥ अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा

❀ हर्यश्व और शबलाश्व नामवाले दस पुत्रोंका विरक्ति वर्णन और दक्षका नारदको शाप देना ❀

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्, विष्णु मायासे बढ़ा हुआ तथा सामर्थी दक्षने पञ्चजनकी लड़कीसे हर्यश्वनामके दस हजार लड़के उत्पन्न किये ॥ १ ॥ हे भूपाल, वे सब दक्षपुत्र तुल्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धर्म, एकसे स्वभाववाळे थे । उनके पिता प्रजापति दक्षने जब प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा प्रदान दी तो वे सब तपके लिए पश्चिम दिशाकी तरफ चल दिये ॥२॥ जहाँ सिन्धुनदी समुद्रसे जाकर मिली है, वहाँ बहुत बड़ा एक नारायणसरोवर-नामका तीर्थ है वहाँ नानाविध मुनि और सिद्धगण निवास करते हैं ॥ ३ ॥ उस तीर्थमें नहाते ही हृदयका मल उनका नष्ट हो गया, तथा उसकी बुद्धि परमहंस्यधर्ममें संलग्न हो जानेपर भी अपने पिताकी आज्ञामें वे बँधे रहनेके कारण कठिन तप करने लग गये, अतः प्रजावृध्यर्थ उद्योगशील उन दक्ष लड़कोंको नारदने देखा ॥ ४, ५ ॥ उनके समीप जाकर उन्होंने कहा—हे हर्यश्वगण, तुम प्रजाके रक्षक होकर भी बड़े लपठ हो, तुमने इस भूमिका बिना अन्त देखे प्रजाको उत्पन्न किसप्रकार करोगे ॥ ६ ॥ एकही मनुष्यवाले राष्ट्रको हटनेका रास्ता न मिलनेवाळे बिलको बहुरूपवाली स्त्रीको, पुंश्चली स्त्रीके स्वामीको, दोनों किनारोंसे सलग्न कहनेवाली नदीको, पचीस वस्तुओंके

नृप ॥ पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥२॥ तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः ॥ सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ ३ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥ तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः ॥ प्रजाविवृद्धये यत्तान् देवर्षिस्तान्ददर्श ह ॥ ५ ॥ उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ अदृष्ट्वाऽन्तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥ ६ ॥ तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ॥ बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥ नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् ॥ क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम् ॥८॥ कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ॥ अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ॥ वाचःकूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥१०॥ भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादिनिजबन्धनम् ॥ अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥११॥ एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान्स्वाश्रयः परः ॥ तमदृष्ट्वाऽभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१२॥ पुमान्नैवैति यद्गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ॥ प्रत्यग्धामाऽविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् । १३॥ नानारूपात्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता ॥ तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत्

संयोगसे निर्मित विचित्र गृहको, विचित्र पङ्खवाले किसी हंसको छुरे तथा वज्रसे निर्मित स्वयं ही भ्रमण करनेवाले चक्रको बिना देखे तुम अपने सर्वव्यापी पिताकी तथ्य आज्ञाको बिना जाने ही उसके स्वरूप किस प्रकार सृष्टि करोगे ॥७, ९॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, नारदके नीति वचनको श्रवणकर हर्यश्वगण अनायास अपने विचार सम्पन्न बुद्धिसे आप विचार करने लगे ॥ १० ॥ जीव नामक लिङ्गदेहही नारदकी कथित पृथ्वी है, जो आत्माका अनादि बन्धनरूप है, उसका बिना अन्त देखे व्यर्थ किसी कार्योंमें लगे रहनेमात्रसे क्या फल होगा ॥ ११ ॥ अपने ही आश्रयमें रहनेवाला सब अवस्थाओंका साक्षी मन, प्रकृति आदिसे अलग एक ही ईश्‍र है उसको बिना देखे जीवको दूसरे कार्योंसे क्या फल होगा ॥ १२ ॥ जिसको प्राप्तकर जीव पाताललोकनिवासी पुरुषके तुल्य पुनः उलटा नहीं आता उसको बिना जाने परमात्माको लोकमें दूसरे व्यर्थ कर्मोंसे क्या होगा ॥ १३ ॥

*दृष्टान्त—किसी महापुरुषकी स्त्री बड़ी दुष्टा थी-यहाँ तक कि जो बात कहे उससे विप‌ीतही करना उसने अपना कर्तव्य बना लिया था। संयोगवश उसके पिताका श्राद्ध दिन आगया ।†

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नानाप्रकारके रूपको ग्रहण करनेवाली गुणमयी बुद्धि पुंश्चली स्त्रीके-सदृश है, उसका अन्त बिना जान इन व्यर्थ कर्मों से क्या फल होगा ॥ १४ ॥ जिस प्रकार कोई व्यभिचारिणी स्त्रीके सङ्गमें रहकर पतित हो जाता है उसके तुल्य उस बहुरूपवाली बुद्धिके संगसे ऐश्वर्य नष्टकर उस सुख दुःखरूपवाली गतियोंको प्राप्त प्राणीको न जाननेवाले जीवका इसलोकमें ज्ञानशून्य कर्म-कलापसे क्या फल होगा ॥१५॥ लोकको उत्पत्ति और संहार करनेवाली, इसलोक, परलोकरूपा दोनों किनारों तक व्याप्त तथा त्वरासे गमनवाली इस मायारूपिणी नदीको जो नहीं पहचानता उस उन्मत्त जीवको अन्य दूसरे व्यर्थके कार्यों से क्या फल होगा ॥ १६ ॥ पचीस तत्त्वोंका अन्तर्यामो परम पुरुष विचित्र स्थल है, कार्यकारण, समुदायके अधिष्ठातृरूप उस जीवका

॥१४॥ तत्सङ्गभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् ॥ तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥ सृष्ट्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम् ॥ मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१६॥ पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ॥ अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१७॥ ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् ॥ विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १८ ॥ कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ॥ स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १९ ॥ शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ॥ कथं तदनुरूपाय गुणविश्रम्भ्युपक्रमेत् ॥२०॥ इति व्यवसिता राजन्

स्वरूप जाने बिना व्यर्थ कर्मों से व्यक्तिको क्या फल होगा ॥ १७ ॥ बन्ध तथा मोक्षके ज्ञानसे परिपूर्ण परमेश्वर कथित शास्त्रका त्यागकर जड़-चेतनाका ज्ञान प्राप्त न होकर दूसरे कार्यों से क्या फल हो सकेगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण संसारको अपनी तरफ मोहित करनेवाले स्वतन्त्र और कालचक्रके तीखे मोहको न जानकारी रखनेवाले जीवको व्यर्थ दूसरे कार्योंसे क्या फल हो सकेगा ॥ १९ ॥ जो पिताके तुल्य शस्त्रनिवृत्ति आज्ञाको नहीं मानता वह गुणोंमें श्रद्धावान् पुरुष किस प्रकार निवृत्तिमें सलग्न हो सकेगा ॥२०॥ हे राजन्,

---

१कल उसे श्राद्ध करना है किस प्रकार करें यों विचारकरते हुए उसने अपने मित्रसे पूछा क्या करूँ उसने कहा तुम अपनी स्त्रीसे कहो मैं अपने पिताका न श्राद्ध करता न भोजन ही कराता। यह सुन उस दुष्टाने कहा करना ही होगा। यह सुन वह बड़ा प्रसन्न हुआ। स्त्रीने सारी तय्यारी करदी उसने श्राद्ध को बड़े विधि विधान से किया। अन्तमें उसके मुखसे निकलही गया इसे गंगाजी या गौको दे दो। उसने उसे पैखानेमें गिरा दिया। दुष्ट स्त्रियों से भगवान्ही रक्षाकर सकते हैं।

दूसरा उदाहरण— एक गाँवमें एक विद्वान् रहता था। उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली था। वह स्वभावकी बड़ी नीच थी। यहाँ तक उसका पति जिस किसी शुभकार्यमें व्यय करता था उसे अच्छा नहीं मालूम होता था। एक दिन उसके यहाँ साधुओंका आगमन हुआ। वह उनके लिए भोजनादि के लिए व्यवस्था करने गया। इसी बीचमें उसकी स्त्रीने साधुवोंसे कहा—तुम सब जल्दी चले जाओ नहीं तो मेरा पति गाँववालोंको बुलाकर तुम्हारा सामान भी ले लेगा और मूसलोंसे मरम्मत करेगा। यों सुन वे सब चले गये। इतने ही में उसने उन लोगोंको न देख अपनी पत्नीसे पूछा वे लोग चले गये क्या करें मैंने उनसे कहा तुम एक मूसल लेकर चटनी आदिका सामान लेकर बनाओ। बाकी सामान वे देंगे। वह पण्डित बुद्धि हीन मूसल लेकर दौड़ते हुए अन्वेषण करने लगा कि उन साधुओंने उसे मूसल लेते हुए बड़े उत्कट रूपसे पलायन तत्पर हुए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह निश्चितकर उन एकाग्रमनवाले हर्यश्वोंने नारदकी प्रदक्षिणा कर वह रास्ता ग्रहण किया जहाँसे जीवोंको पुनः नहीं आना होता ॥ २१ ॥ श्रीनारद भी स्वरब्रह्ममें दीप्तमान् भगवान्कृष्णके चरणयुगलोंमें अखण्डितरूपसे अपना मन स्थिरकर अन्यलोकोंमें घूमने लगे ॥ २२ ॥ नारदजीका उपदेश प्राप्तकर अपने स्वभावयुक्त लड़कोंका कर्तव्यविमुख हुआ सुन प्रजापति दक्षको अधिक दुःख हुआ-कदाचित् अच्छी सन्तान भी दुःखका निमित्त बन जाती है ॥२३॥ ब्रह्माके बहुत कहने सुनने पर दक्षने अपनी स्त्री पाञ्चजनीसे एक हजार लड़के सबलाश्वनामके और उत्पन्न किये ॥ २४ ॥ जहाँ उनके पूर्वजोंने पूर्व सिद्धि प्राप्तकी थी वे सब भी पिताकी आज्ञाको प्राप्तकर सन्तानोत्पत्तिका व्रत धारणकर नारायणसरोवरपर चले गये ॥२५॥ उस तालाबमें नहानेबाद उनके चित्तका सब मल अलग हो गया और वे ॐकारका जप करते हुए कठिन तप करने लगे ॥२६॥ उन सबने कुछ मास जल, तत्पश्चात् वायु पानकर इस लिखित

हर्यश्वा एकचेतसः ॥ प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥ २१ ॥ स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदाम्बुजे ॥ अखण्डं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥ २२ ॥ नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ॥ अन्वतप्यत कः शोचन् सुप्रजास्त्वं शुचां पदम् ॥२३॥ स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः ॥ पुत्रानजनयद्दक्षः शबलाश्वान्सहस्रशः ॥ २४ ॥ तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः ॥ नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥ २५ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ जपन्तो ब्रह्म परमं तेपुस्तेऽत्र महत्तपः ॥२६॥ अब्भक्षाः कतिचिन्मासान्कतिचिद्वायुभोजनाः ॥ आराधयन्मन्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥ २७ ॥ ओं नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ॥ विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥ २८ ॥ इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ॥ उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥ २९ ॥ दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम ॥ अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥ भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ॥ स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥ ३१ ॥ एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ॥ तेऽपि चान्वगमन्मार्गं भ्रातॄणामेव मारिष ॥३२॥ सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ॥ नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥३३॥ एतस्मिन्काल उत्पातान्बहून्पश्यन्प्रजापतिः ॥ पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत्

मन्त्रका जपकर भगवान्विष्णुकी पूजा की ॥ २७ ॥ परम पुरुष तथा महान् आत्मस्वरूपवाले नारायणको नमस्कार है, उन पवित्र सत्त्वगुणाधार महाहंसरूप ईश्वरका मनन हम करते हैं ॥२८॥ हे राजेन्द्र, वंश वृद्धिको चाहनेवाले एकदिन नारदने उन शबलाश्वोंके समीप जाकर पूर्वके सदृश कूटनीतियोंमें कहा-॥ २९ ॥ हे दक्षपुत्रो, जो मैं कहता हूँ सुनो—हे भ्रातृवत्सलो, तुम लोगोंको अपने भ्राताओंकी पदवीकी इच्छा करो ॥३०॥ धर्मविद् जो भाई अपने भ्राताओंका रास्ता ग्रहण करता है वह धर्मात्माजीव मरुद्गणोंके परलोकमें साथ आनन्दका अनुभव करता है ॥ ३१ ॥ हे राजन्, ऐसा कह अमोघदर्शन दे वहाँसे चले गये तथा उन दक्षपुत्रोंने भी अपने भ्राताओंका रीतिमें चले ॥ ३२ ॥ अपनी अन्तर्मुखी वृत्तिद्वारा प्राप्त योग्यतम ईश्वरको प्राप्त करनेवाले रास्तेपर चलने लगे जिससे पश्चिमयामिनीके तुल्य वापस नहीं आये ॥ ३३ ॥ उस समयपर प्रजापतिने बहुत उत्पात होते देख नारदकी पूर्व तुल्य युक्तिसे अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्य लड़कोंको भी इतिकर्तव्यतासे नष्ट हुआ सुन पुत्रदुःखसे मूर्छित हो नारदपर बहुत क्रुद्ध हुए जब वे मिले दक्षने कहा—उसकालमें क्रोधसे उनका ओठ कम्पायमान हो रहा था ॥ ३४, ३५ ॥ दक्षने कहा—अरे असाधो, साधुओं जैसी आकृति बनाकर मेरे साथ तुमने उह बहुत नीचताका आचरण किया जो असाधुकार्यपरायण मेरे लड़कोंको भिक्षामार्गका आदेश दिया ॥३६॥ ओ पापी, जो देव, ऋषि, पितृऋण-आदिसे मुक्त नहीं हुए कर्मसम्बन्धमें जिन्होंने कुछ भी नहीं विचारा उन मेरे बालकोंका इसलोक और परलोक दोनों ही लोकमें मिलने वाले तुमने श्रयका विधान किया ॥ ३७ ॥ पुत्रोंकी बुद्धिको नष्ट करनेवाला बहुत बड़ा भयंकर निर्दयी, नीच भागवत यशको करनेवाला लज्जारहित भगवानके पार्षदोंमें रहता है ॥३८॥ तुमको छोड़ सब भगवद्भक्त जीव निरन्तर जीवोंपर दया करनेकी इच्छा करते हैं, तुमतो सौहृदघ्न और न वैर न चाहनेवालेको शत्रु हो ॥३९॥ तुम क्या यह जानते हो उनके सन्यासधारण करने

॥३४॥ चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः ॥ देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥३५॥ दक्ष उवाच ॥ अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन नस्त्वया ॥ असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥ ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ॥ विघातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयो कृतः ॥३७॥ एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ॥ पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥ ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ॥ ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरंकरमवैरिणाम् ॥३९॥ नेत्थं पुंसां विरागः स्यात्त्वया केवलिना मृषा ॥ मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥ ४० ॥ नानुभूय न जानाति पुमान्विषयतीक्ष्णताम् निर्विद्येत स्वयं तस्यान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥ ४१ ॥ यन्नस्त्वं कर्मसन्धानां साधूनां गृहमेधिनाम् ॥ कृतवानसि दुर्मर्ष विप्रियं तव मर्षितम् ॥ ४२ ॥ तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ॥ तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम् ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधुसंमतः ॥ एतावान्साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीम० म० पु० प० स्कन्धे नारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

मात्रसे ही उनका प्रेम सम्बन्ध नष्टहो जानेवाली शान्ति प्राप्तहो सकेगी, यह तेरा विचारना तथ्य नहीं है, क्योंकि ज्ञानी बिना हुए तुम्हारे केवल कह देनेमात्रसेही उनको वैराग्य नहीं मिल सकेगा ॥४०॥ अनुभव बिना कोई भी विषयमें उनकी तीक्षणता नहीं जानी जा सकती, उनका दुःखरूप स्वयं अनुभव करने बाद जिस तरहका वैराग्य उनको होता है वह अन्योंके कहनेसे वैसा वैराग्य उत्पन्न नहीं होता ॥४१॥ हम जैसे धर्ममर्यादा संरक्षक गृहमेधियोंका पूर्व तुमने अप्रिय किया था—हमने उसे सह लिया था ॥४२॥ पर मेरे पुत्रोंका नाश करनेवाला फिर भी तुमने मेरा बुरा किया, इसलिए हे मूढ़, लोकोंमें घूमते हुए तेरी रहनेकी निश्चित जगह न रहेगी ॥४३॥ श्रीशुकदेवजीने का—हे राजन्, तब साधुसंमत नारदने ठीक यह कहकर दक्षका शाप ग्रहणकर लिया, क्योंकि संसार युगमें सम साधु वही है जो शक्तिशाली होकर भी अन्यके अपराधोंको सह सकें ॥ ४४ ॥

पाचवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, भगवान् विष्णुकी मायासे वृद्धिको प्राप्त हुए दक्षने पञ्चजननामक प्रजापतिकी लड़कीसे हर्यश्व नामवाले दस हजार पुत्र उत्पन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किये। उन सबका आचार और स्वभाव एक-सा था। प्रजाओंकी सृष्टि करनेके लिये पिताकी आज्ञा पाकर वे सब पश्चिमी दिशाकी ओर चल दिये। सिन्धुनदी और समुद्रके सङ्गमपर अनेक मुनियों और सिद्धोंसे सेवित अत्यन्त विस्तृत नारायणसरोवर नामक तीर्थपर वे सबके सब पहुंचे। उस तीर्थमें स्नानमात्र करनेसे शुद्ध अन्तः करणवाले, राग-द्वेषशून्य, परमहंसधर्ममें निरत, पिताजीकी आज्ञाके अनुसार प्रजाकी वृद्धिके लिए घोर तप कर रहे उन हर्यश्वोंको देखकर देवर्षि नारदजीने कहा—हे हर्यश्वो, जिसमें एक ही पुरुष है ऐसे राज्य और पृथिवीका अन्त देखे बिना तुम लोग प्रजापालक होते हुए भी अज्ञानी होनेके कारण प्रजाओंको रचना कैसे कर सकोगे? जहाँ बाहर निकालनेका रास्ता नहीं दीखता ऐसा बिल, बहुरूपिणी स्त्री, पुंश्चली स्त्रीका प्रेमी पति, दोनों ओरको बहनेवाली नदी, पचीस तत्वोंका एक अजीब घर, विचित्र कथाओंवाला एक हंस, छुरे तथा वज्रोंसे बना हुआ तीक्ष्ण धारवाला सदा घूम रहा एक चक्र—इन सबका ज्ञान न रखनेवाले तथा अपने सर्वज्ञ पिताकी अपने योग्य आज्ञाको न माननेवाले तुम लोग सृष्टि कैसे करोगे? पहले इन्हें अच्छी तरह समझ लो गिर सृष्टिमें तत्पर हो जाना। हे राजन्, एक विचारवाले उन हर्यश्वोंने नारदजीके गूढ़ अभिप्रायसे युक्त वाक्यको अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचारकर देवर्षि नारदकी प्रदक्षिणाको और उसके बाद वे मोक्ष मार्गको चले गये। जब ये बातें दक्षको मालूम हुई तब उन्होंने फिर शबलाश्व नामक हजारों पुत्रोंको उत्पन्न करके उन्हे भी वहीं भगवान् की तपस्यामें नियुक्तकर दिया। हे राजेन्द्र, इसप्रकार सृष्टिकी इच्छा कर रहे उन शबलाश्वोंको भी नारदजी पहलेकी नाईं अपनी गूढ़ाभिप्राय युक्त वाणी सुनाकर वहाँसे चल दिये और वे शबलाश्व भी उनकी वाणीका यथार्थ अभिप्राय समझकर अपने ज्येष्ठ भ्राताओंके समान मोक्षमार्गके पथिक बन गये। बीती हुई रातकी नाईं अन्तर्मुख वृत्तिसे प्राप्त होनेवाले परमेश्वरके उत्तम मार्गको गये हुए वे आज भी लौटकर नहीं आते। हे राजेन्द्र, नारदके द्वारा धर्मभ्रष्ट किये गये लड़कोंको सुनकर दक्षप्रजापतिको अत्यन्त क्रोध चढ़ गया। उन्होंने क्रुद्ध होकर नारदको शाप दे दिया—हे नारद, हमारा तुमने बड़ा अकल्याण किया है इसलिए जाओ लोकोमें भ्रमण करनेवाले तुमको कहीं भी एक जगह निवास करनेको न मिलेगा। हे राजन्, नारदने उस शापको 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर लिया। पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयम्भुवा ॥ षष्टिं सञ्जनयामास दुहितृः पितृवत्सलाः ॥ १ ॥ दश धर्माय कायेन्दोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान् ॥ भूताङ्गिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥ २ ॥ नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु॥ यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥ ३ ॥ भानुर्लम्बा ककुब्जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वती ॥ वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुतान् शृणु ॥ ४ ॥ भानोस्तु देवऋ-

❀ प्रजापति दक्षसे जायमान सन्तान संख्या और उनके कुलका विस्तार वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उनके बाद श्रीब्रह्माके कहनेसे प्रजापति दक्षने अपनी स्त्री असिक्नीसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं॥ १ ॥ जो बड़ी पितृवत्सला थीं, उनमेंसे दस कन्यायें धर्मको, तेरह पुत्री कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो-दो भूत, अङ्गिरा, कृशाश्वको, अवशिष्ट चार कन्याएँ तार्क्ष्यको दे दी गईं ॥२॥ हे राजन्, उन दक्षकन्या तथा उनके पुत्रोंके नाम सुनिये—उन्हीं सुतोंकी सन्तानोंसे तीन लोक परिपूर्ण हो गये ॥ ३ ॥ भानु, लम्बा, ककुभ, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता, सङ्कल्पा—ये दस धर्मकी पत्नियें थीं, उनके लड़कोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाक सुनो ॥ ४ ॥ हे नृप, भानुका पुत्र देवऋषभ, उसका पुत्र इन्द्रसेन, लम्बाका पुत्र विद्योत, उसका स्तनयित्नु पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ ककुभका पुत्र सङ्कट, उसका कीकट, कीकटके पुत्र दुर्गाभिमानी देवता हुए, इसी प्रकार जामिसे स्वर्ग और उससे नन्दि हुआ ॥ ६ ॥ विश्वाको विश्वेदेव हुए, परन्तु उनके कोई सन्तति नहीं थी, ऐसा प्राचीनोंका कहना है। साध्यासे साध्यगण, उनसे अर्थसिद्धि जन्मा ॥ ७ ॥ मरुत्वतीसे मरुत्वान् तथा जयन्तके दो पुत्र हुए, जयन्त वासुदेवका अंश है, उपेन्द्र इस नामसे भी उसको लोग जानते हैं ॥ ८ ॥ मौहूर्तिकके देवगण, जो प्राणियोंको समय-समयपर उनके कर्मानुसार शुभ-अशुभ फल देते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पासे संकल्पका जन्म हुआ, इसका पुत्र काम यह प्रसिद्ध है, वसुके पुत्र अष्टवसु, मैं उनके नाम कहता हूँ सुनिये ॥ ११ ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्निदोष, वसु, विभावसु। उससे द्रोणकी अभिमतो नामकी स्त्रीसे हर्ष, शोक, भय, आदिका जन्म हुआ ॥११॥ प्राणकी भार्यासे

षभ इन्द्रसेनस्ततो नृप ॥ विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥ ५ ॥ ककुभः सङ्कटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ॥ भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥ ६ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान् प्रचक्षते ॥ साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥ ७ ॥ मरुत्वांश्च जयन्तश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः ॥ जयन्तो वासुदेवांश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥ ८ ॥ मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ॥ ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥ ९ ॥ सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः ॥ वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ॥ द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥ ११ ॥ प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ॥ ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥ १२ ॥ अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ॥ अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥ १३ ॥ स्कन्दश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ॥ दोषस्य शर्वरी पुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥ १४ ॥ वसोराङ्गिरसी पुत्रो विश्वकर्माऽऽकृतीपतिः ॥ ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद्विश्वे साध्या मनोः सुताः ॥ १५ ॥ विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ॥ पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥ १६ ॥ सरूपाऽसूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥ १७ ॥

ऊर्जस्वतीसे सह, आयु, पुरोजव, इन तीन बालकोंका जन्म हुआ, ध्रुवकी भार्या धरणीने नानाविध नगरोंको जन्म दिया ॥१२॥ अर्ककी भार्या वासनासे तर्ष आदि पुत्र उत्पन्न किया, अग्नि नामक वसु भार्या धारासे द्रविणक आदि पुत्रोंका जन्म दिया, अग्निसे कृत्तिकापुत्र स्कन्ध भी उत्पन्न हुए, उन स्कन्धके विशाख आदि पुत्र हुए, दोषकी स्त्री शर्वरीसे हरिका अंशस्वरूप शिशु-मार उत्पन्न हुआ ॥ १३,१४ ॥ वसुकी स्त्री आङ्गिरसी शिल्पिके मालिक विश्वकर्मा जन्मे, उनके पुत्र चाक्षुषमनु, मनुके विश्वेदेव और साध्यगण उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ विभावसुकी पत्नी उषासे व्युष्ट, रोचिष, आतप, ये तीन पुत्र हुए, इनमेंसे आतपके पुत्रस्वरूपसे पाँच पहरका दिन उत्पन्न हुआ, इससे जीव कार्योंमें लगे रहते हैं ॥१६॥ दक्षकी कन्याओंसे भूतकी स्त्री सरूपासे अनेक रुद्र जायमान हुए, उसमेंसे रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महान्, ये ग्यारह प्रधान, रुद्र माने जाते हैं। दक्षकी अन्य भार्यासे अत्युत्कट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भूत और विनायक आदिका जन्म हुआ, जो रुद्रके पार्षद हुए ॥ १७, ८ ॥ अङ्गिरा प्रजापतिके पूर्व पत्नी स्वधाने पितृगणको, अन्य भार्या सतीने अथर्वांगिरस नामक एक वेदको पुत्ररूपसे माना ॥ १९ ॥ कृशाश्वने अपनी स्त्री अर्चिसे धूम्रकेश, धिषणासे वेदशिरा, देवल, वयुन, मनु, ये लड़के उत्पन्न किये ॥२०॥ तार्क्ष्यकी विनता, कद्रू, पतंगी, यामिनी नामक चार पत्नियें थीं, पतङ्गीने पत्ती, तामिनीने शलभोंको जन्माया ॥ २१ ॥ सुपर्णा साक्षात् यज्ञेश वाहन गरुड़ सूर्यके सारथी अरुण कद्रूसे अनेक नागोंका जन्म हुआ ॥ २२ ॥ हे भरतनन्दन, कृत्तिका आदि नक्षत्र चन्द्रमाकी पत्नियां हैं, दक्ष शापसे चन्द्रमाको क्षयरोग हो गया था इसलिए स्त्रियोंसे कोई भी सन्तति उत्पन्न नहीं हुई ॥२३॥ फिर दक्ष प्रजापतिको मनानेपर कृष्ण-

अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ॥ रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः ॥ १८ ॥ प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ ॥ अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत्सती ॥ १९ ॥ कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ॥ धिषणायां वेदशिरो देवलं वयुनं मनुम् ॥ २० ॥ तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामनी इति ॥ पतङ्ग्यसूत पतगान् यामिनी शलभानथ ॥ २१ ॥ सुपर्णासूत गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम् ॥ सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥ २२ ॥ कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ॥ दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥२३॥ पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षये दिताः ॥ शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च ॥ २४ ॥ अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥ २५ ॥ मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥ तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥ २६ ॥ सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ॥ ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥ २७ ॥ दन्दशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ॥ इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥ २८ ॥ अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ॥ सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु ॥ २९ ॥ द्विमूर्धा शम्बरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ॥ अयोमुखः शङ्कुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः ॥ ३० ॥ पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ॥ धूम्रकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥ ३१ ॥ स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः

पक्षमें कलाओंके नाश शुक्लपक्षमें परिपूर्ण हो जानेका वर मिला, इनके द्वारा सब संसार उत्पन्न हुआ। उन कश्यपपत्नियोंके नाम सुनिये—अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा, तिमि। उनमेंसे तिमिके पुत्र जलचरगण, सरमाके व्याघ्रादि श्वापदगण हुए ॥ २४–२६ ॥ हे नृप, सुरभिसे महिष, गौ, और दो खुरके पशु उत्पन्न हुए, ताम्रासे श्येन, गृध्र आदि हुए, दक्षकी मुनि भार्यासे अप्सराओंके समूह जायमान हुआ ॥ २७ ॥ हे राजन्, क्रोधवशासे दन्दशूक आदि सर्पगण, उसी प्रकार सब वृक्ष इलासे, सुरसासे राक्षस उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ अरिष्टासे गन्धर्वगण, काष्ठासे एक खुरवाले अश्व आदि पशु उत्पन्न हुए, कश्यपकी भार्या दनु गर्भसे इकसठ लड़के उत्पन्न हुए, उनमेंसे प्रधान दानवोंके नाम सुनिये ॥ २९ ॥ द्विमूर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शंकुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोम, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुर्जय ॥ ३०, ३१ ॥ स्वर्भानु सुप्रभाके साथ नमुचिने तथा वृषपर्वाकी शर्मिष्ठाके साथ बली नहुष ययातिका उद्वाह हुआ ॥ ३२ ॥ वैश्वानर दानवकी चार मनोहर लड़कियाँ उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा, कालका नामसे प्रसिद्ध थीं, उनमेंसे उपदानवीके साथ हिरण्याक्षका, हयशिराके साथ क्रतुका, पुलोमा और कालका इन दोनों वैश्वानर-कन्याओंका भगवान् ब्रह्मकी आज्ञासे कश्यपके संग विवाह भया। उनके द्वारा पौलोम, कालकेय नामक साठ हजार युद्धवीर दानव उपजे ॥ ३३—३५ ॥ वे दानव अब यज्ञोंमें विघ्न करते रहते थे, हे राजन, इसलिये इन्द्रका प्रिय करनेवाले तेरे पितामह अर्जुनने जब वे स्वर्गलोकमें निवास करते थे एकाकी ही उसी समय जाकर उनको मारा ॥३६॥ दानवविप्रचित्तने हिंसिकाकेद्वारा एकसौएक लड़के उत्पन्न किये, जिनमें सबसे बड़ा राहु, अवशिष्ट सौ लड़के केतु कहे जाते थे, ये सब ग्रहत्वको प्राप्त हो गये ॥३७॥ मैं अदितिके वंशका पूर्व वर्णन करता हूँ सुनो—जिस

किल ॥ वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥ ३२ ॥ वैश्वानरसुतायाश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ॥ उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा
उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ॥ पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥ ३४ ॥ उपयेमेऽथ भगवान्कश्यपो ब्रह्मचोदितः ॥
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥ ३५ ॥ तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांदस्ते पितुः पिता ॥ जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियङ्करः
॥ ३६ ॥ विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ॥ राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागताः ॥ ३७ ॥ अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः ॥ यत्र नाराणो देवः स्वांशेनावतरद्विभुः ॥ ३८ ॥ विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सविता भगः ॥ धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र
उरुक्रमः ॥ ३९ ॥ विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञाऽसूयत वै मनुम् ॥ मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ॥ सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे
भुवि ॥ ४० ॥ छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णिं च मनुं ततः ॥ कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥ ४१ ॥ अर्यम्णो मातृका पत्नी
तयोश्चर्षणयः सुताः ॥ यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥ ४२ ॥ पूषानपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तोऽभवत्पुरा ॥ योऽसौ दक्षाय कुपितं
जहास विवृतद्विजः ॥ ४३ ॥ त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचनानाम कन्यका ॥ सन्निवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥ ४४ ॥ तं वव्रिरे सुरगणा

वंशमें व्यापक श्रीनारायण अपने अंशसे उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र, ये द्वादश आदित्य अदितिके ही लड़के थे ॥ ३९ ॥ विवस्वान्ने उनकी पत्नी संज्ञासे श्राद्धदेव, मनु, यम और यमी ये दोनों उत्पन्न हुए, पुनः उसी संज्ञाने घोड़ीका स्वरूप ग्रहणकर दो अश्विनीकुमारोंका जन्म दिया ॥ ४० ॥ विवस्वान्की अन्य पत्नी छायाके शनैश्चर, शावर्णिमनु दो सुत और तपती नामवाली एक लड़की उत्पन्न की, विवस्वान्की पुत्री तपतीने अपना पति संवरणको मान लिया ॥ ४१ ॥ अर्यमा तथा उनकी पत्नी मातृकाके पुत्र चर्षणी मनुष्य हुए, जिनके द्वारा ब्रह्माने मनुष्यजाति ब्राह्मणादि चार वर्णकी कल्पना किया ॥४२॥ अनपत्य पूषा दाँत रहित थे इसलिए वे पिसा अन्न भक्षण करते रहे, पहले समयमें वे दक्षपर क्रोधित हो महादेवकी तरफ हँस रहे थे, अतः उनके दाँत तोड़ दिये गये ॥ ४३ ॥ दैत्योंकी छोटी बहिन कुमारी रचना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

त्वष्टाकी स्त्री थी, उनके द्वारा संनिवेश और वीर्यशाली विश्वरूप उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ विश्वरूप देवताओंके शत्रुओंके दौहित्र थे, फिर भी इन्द्रके द्वारा तिरस्कृत हो देवगुरु बृहस्पतिने देवताओंका पौरोहित्यकर्म छोड़ दिया देवोंने अपना पुरोहित विश्वरूपको नियतकर लिया ॥ ४५ ॥

दौहित्रं द्विषतामपि ॥ विमतेन परित्यक्ता गुरुणाङ्गिरसेन यत् ॥ ४५ ॥ श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

षष्ठ अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उसके बाद ब्रह्माजीके समझानेपर दक्षने साठ हजार कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हींसे उनका सङ्कल्प पूरा हुआ। उनमेंसे धर्मको दस, कश्यपको तेरह, चन्द्रमाको सत्ताइस, भूत, अङ्गिरा और कृशाश्वको दो और शेष बची हुई चार कन्याएँ तार्क्ष्य नामक कश्यपको उन्होंने समर्पित कर दीं। हे राजन्, कृत्तिका आदि सत्ताइस नक्षत्र चन्द्रमाकी स्त्रियाँ थीं, किन्तु इनमें सबसे ज्यादा रोहणीको ही चन्द्रमा प्यार करते थे, और स्त्रियोंकी उपेक्षा करते थे, इसलिये एक दिन क्रुद्ध होकर दक्षने शाप दे दिया—जाओ, तुम्हें राजयक्ष्मा हो जायगा। राजयक्ष्मासे ग्रसित होनेके कारण उनकी कोई सन्तान नहीं हुई। चन्द्रमाकी स्त्रियोंको छोड़कर और लोगोंकी स्त्रियोंके पुत्र-पौत्रादिसे ये तीनों लोक भर गये। हे राजन्, कश्यप ऋषिसे बारह आदित्य उत्पन्न हुए। उसमें त्वष्टाके सन्निवेश और विश्वरूप नामक दो पुत्र हुए। विश्वरूप महापराक्रमी था, इसलिए उसकी ख्याति सारे लोकमें फैल गई थी। देवताओं द्वारा तिरस्कृत हुए गुरु बृहस्पतिने जब देवताओंका परित्याग कर दिया, तब उन देवताओंने शत्रुकी कन्याका पुत्र होनेपर भी उस विश्वरूपको ही अपना गुरु मान लिया। षष्ठ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ सप्तमोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ॥ एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घित सत्पथः ॥ मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥२॥ विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ ॥ विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ॥ निषेव्यमाणो मघवान्स्तूयमानश्च भारत ॥ ४ ॥ उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः ॥ पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥ ५ ॥ युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ॥ विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया

❀ देवताओं द्वारा बृहस्पतिका तिरस्कार करनेसे ऐश्वर्यहीन होना तथा विश्वरूपको पुरोहित चुनना—आदि वर्णन ❀

राजा परीक्षित्ने कहा-हे भगवन्, आचार्य बृहस्पतिने अपने प्रिय देवताओंको किस लिये त्याग दिया उनसे क्या विपरीत कार्य गुरुका हुआ, वह आप कहो ॥ १॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, एक समय त्रिलोकीके ऐश्वर्यमन्दोमत्त होकर अच्छे मार्गको त्यागनेवाला इन्द्र अर्धासनपर स्थित इन्द्राणीके साथ अपनी सभामें ऊँचे राजसिंहासनपर स्थित था। उसकी मरुत्, वसु, रुद्र आदित्य, ऋभु, विश्वेदेव, साध्यगण, अश्विनी कुमार सेवा करते थे, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, नानाविध ब्रह्मवादी मुनि, विद्याधर, अप्सरा, किन्नर, पक्षी, नाग सेवा और स्तुति करते थे सब

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरफ मधुरस्वरसे उसका गुणगान किया जा रहा था, उसके ऊपर चन्द्रमण्डलके सदृश शोभायमान तथा श्वेतछत्र लगा था, सुन्दर श्रेष्ठ चामर-पंखे राजोचित चिह्न आदि वहाँ विराजमान थे ॥ २–६ ॥ उसी समय आने, देवताओंके परमगुरु मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिको सभामें आये देखकर भी इन्द्रने उनका आसनसे उठकर प्रत्युत्थान आसनादि देकर सम्मान नहीं किया, न इन्द्र अपने आसनसे हिला, अत्युत्कट समर्थ त्रिकालदर्शी विद्वान् बृहस्पति उसी क्षण सभासे वापस लौट गये। उन्होंने जान लिया यह ऐश्वर्यमदविकार है, अत: मौन होकर अपने घरको चले गये ॥ ७–९ ॥ जब इन्द्रको ज्ञान हुआ उसको यह बात प्रतीत हुई कि गुरुका अपमान मैंने किया तो वह सभामें स्वयं अपने आपकी निन्दा करने लगा ॥ १० ॥ अहो, यह बहुत भयङ्कर नष्ट बुद्धि द्वारा अपराध हो गया, जो ऐश्वर्यमदसे अन्ध होकर इस देव सभामें प्राप्त हुए गुरुकी आज्ञाकी ॥ ११ ॥ मोहग्रस्त होकर देवोंके मालिक अधिपति होनेपर भी मेरे चित्तमें

भृशम् ॥ ६ ॥ स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ॥ नाभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥ वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥ ८ ॥ ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ॥ आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥ तर्ह्येव प्रतिबुध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ॥ गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥ अहो बत ममासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ॥ यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥ ११ ॥ को गृध्येत्पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ॥ ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥ ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कञ्चन ॥ प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥ १३ ॥ तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः ॥ ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥ १४ ॥ अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ॥ प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥ १५ ॥ एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान्गृहात् ॥ बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥ गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन्भगवान्स्वराट् ॥ ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् ॥ देवान्प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥ १८ ॥ तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रानतकन्धराः ॥ १९ ॥ तांस्तथाभ्यर्दितान्वीक्ष्य

यह आसुरी भाव उत्पन्न हो गया, उस लक्ष्मीकी इच्छा कौन ज्ञानवान् जीव करेगा ॥ १२ ॥ जिसको यह ज्ञान है चक्रवर्ती राजा सिंहासनपर स्थित हो तो किसीके भी आजानेपर न उठना वे उत्तमधर्म मर्यादाको नहीं जानते ॥ १३ ॥ कुरास्तेके ऐसे उपदेशक तथा भयकंर नरकगामी उन अपढ़से बचनोंपर जो विश्वास करते हैं वे पाषाण निर्मित नौकापर सवार जीवोंके सदृश मध्यमें डूब जाते हैं ॥ १४ ॥ मैं अब मूर्खता छोड़कर अगाधबुद्धिवाले देवगुरुके चरणोंका स्पर्शकर प्रसन्न करूँगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते थे कि इसी मध्यमें भगवान् बृहस्पति अपनी मायाबलसे अलक्ष्य हो गये ॥ १६ ॥ बहुत अन्वेषण करनेपरभी जब गुरुका पता कुछ नहीं चला तो अन्य देवताओंके सङ्ग भगवान्, इन्द्र दूसरा रास्ता विचारने लगे पर बुद्धिसवे कुछ निश्चित न कर सके न उनका मन शान्त हुआ ॥ १७ ॥ यह सुन मदोन्मत्त आततायी असुर शुक्राचार्य गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर अस्त्र-शस्त्रसे रक्षित हो देवोंपर चढ़ाई की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ १८ ॥ दैत्योंके तीक्ष्ण बाणोंसे अङ्ग, जंघा, बाहु आदि नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर इन्द्र सहित सब देवता सिर नत किये हुए ब्रह्माकी शरणमें गए ॥ १९ ॥ देवोंका अत्यधिक दुःखित देख स्वयं भगवान् ब्रह्माने बहुत दयाकर उनको धैर्यता कराते हुए कहा ॥२०॥ ब्रह्माने कहा—अहो देवताओ, बड़े दुःखकी बात है कि तुमलोगोंने बहुत कुत्सितकार्य किया जो ऐश्वर्यमदोन्मत हो जितेन्द्रिय और ब्रह्मज्ञानी उस ब्राह्मणका सत्कार नहीं किया ॥२१॥ यह उसीका फल है तुम समृद्धशाली होकर भी अपनेसे बलहीन शत्रुओंसे पराभवको प्राप्त हुए॥२२॥ हे इन्द्र, गुरुका तिरस्कार करनेसे हीन बलवाले अरिओंको ही देखो जो वे भक्तिसे अर्चना अपने गुरु शुक्राचार्यकी करनेसे आज कितने उन्नतशील हो गये, ये गुरु-भक्त दैत्य कुछ रोजमें मेरा लोक भी ग्रहणकर लेंगे ॥ २३ ॥ गुरु शुक्राचार्यसे अर्थसिद्धि की शिक्षा प्राप्त हुए अमेद्य मन्त्रवाले दैत्य स्वर्गको वस्तु समझेंगे। जिनके सहायक गौ, ब्राह्मण भगवान् हैं, उन

भगवानात्मभूरजः ॥ कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ॥ ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥२१॥ तस्यायमदयस्यासीत्परेभ्यो वः पराभवः ॥ प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥२२॥ मघवन्द्विषतः पश्य प्रक्षीणान्गुर्वतिक्रमात् ॥ संप्रत्युपचितान्भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ॥ आददीरन्निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ २३ ॥ त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्यमन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ॥ न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वरूपं भजताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ॥ सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ॥ ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥ २६ ॥ देवा उचुः ॥ वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ॥ कामः संपाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥२७॥ पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ॥ अपि पुत्रवतां ब्रह्मन्किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ॥ भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात्क्षितेस्तनुः ॥ २९ ॥ दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम् ॥ अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३० ॥ तस्मात्पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवम् ॥ तपसाऽपनयंस्तात सन्देशं कर्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

सुयोग्य प्राणियोंका निन्दित कार्य नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ इसलिए तुम त्वरासे त्वष्टाके लड़के विश्वरूपके समीप जाओ, वह तपस्वी ब्राह्मण आत्मज्ञानी है, उसके कार्यको सहन कर सकोगे तो तुम लोगोंसे प्रसन्न हो सब इच्छित कार्य परिपूर्ण कर देंगे ॥२५॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ब्रह्माके कहनेपर देवताओंका दुःख नष्ट हो उसीक्षण विश्वरूपऋषिके समीप जा उनको आलिंगनकर यों कहने लगे ॥२६॥ देवताओंने कहा—हे तात, तेरा कल्याण हो, अपने आप आपके आश्रमपर हम आए अतिथि हैं अतः अपने पितरोंकी कालोचित इच्छा परिपूर्ण करिये ॥ २७ ॥ पुत्रोंका सबसे महान् धर्म है कि अपने पितरोंकी निरन्तर सेवा करना, तो ब्रह्मचारियोंका कहना क्या है ॥ २८ ॥ आचार्य वेदमूर्ति, पिता प्रजापति, भाई मरुत्पति इन्द्रको, माता साक्षात् पृथिवीकी मूर्ति मानी गई है ॥ २९ ॥ बहिन दयाकी, अतिथि धर्मकी, अभ्यागत अग्निका, सब प्राणी अपने आत्माकी मूर्ति माने जाते हैं ॥ ३० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे तात, तुम्हारे हम पितर हैं, अपने अरियोंसे पराजित होनेसे बहुत दुःखमें हैं, यदि योगबलसे अत्युत्कट कष्टको हटाते हुए हमारी आज्ञा मानिए ॥ ३१ ॥ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण होनेके निमित्त हमारे गुरु हो, हम अपना आचार्य आपको बनाना चाहते हैं, अतः ऐसा कीजिये जिसके तेजसे शत्रुओंपर हम दिग्विजय कर लेवें ॥ ३२ ॥ यह आवश्यकता बतलानेकी नहीं कि मैं आपका पुत्र हूँ गुरु किस तरह बनूँगा ? बात यह है कि कार्य सिध्यर्थ अपनेसे छोटेका पूजन करनेसे कोई निन्दा नहीं होती। हे ब्रह्मन्, उमर ही बड़प्पनका हेतु नहीं होती वह वेदके ज्ञानसे होती है ॥३३॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, उन देवताओंके द्वारा प्रार्थित पौरोहित कार्यके लिए महातपस्वी विश्वरूप राजी हो मधुरवाणीमें देवोंसे कहा ॥३४॥ विश्वरूप ने कहा—पौरोहित्यकर्मसे ब्रह्मत्व नष्ट होता है इसलिये धर्मात्मा प्राणी उन कर्मकी आलोचना करते आते हैं। हे प्रभुओ, आप सब लोकपति मेरेको चाहनेकी प्रार्थना कर रहे हैं तो

वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ॥ यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥ ३२ ॥ न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम् ॥ छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ॥ स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णयागिरा ॥ ३४ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्चउपव्ययम् ॥ कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ॥ प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥ ३५ ॥ अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ॥ कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥ ३६ ॥ तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ॥ भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ॥ पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥ ३८ ॥ सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ॥ आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥ ३९ ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ॥ तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते म० पु० षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आपका शिष्य मेरे सदृश यह जीव उसका तिरस्कार किस तरह कर सकता है, सबसे बड़ा मतलब शिष्योंका यही हो सकता है गुरुओंके आज्ञाकी रक्षा करता रहे ॥ ३५ ॥ हे देवताओ, अकिञ्चनोंका धन शिलोञ्छन कर्म ही है, उसके द्वारा अच्छे व्यक्तियोंका सब कर्मोंकी रचा करनेवाला बहुत कुत्सित पौरोहित्यकर्म मैं करूँगा जिससे नष्ट बुद्धिवाले ही केवल प्रसन्न होगे ॥ ३६ ॥ कुछ नहीं अब मैं और कहूँगा, कारण गुरुजनोंने इच्छा ही क्या की, सब आपकी आज्ञाओंको अपने प्राण, धन गँवाकर भी साधन करूँगा ॥३७॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, देवोंसे प्रतिज्ञाकर महातपस्वी विश्वरूप बड़े संलग्नतासे उनका पौरोहितकर्म करने लग गये ॥ ३८ ॥ सामर्थी विश्वरूपने शुक्राचार्यके विद्याबलसे रक्षित होनेपर भी दैत्योंकी राज्यश्री अपनी वैष्णवीविद्याके योगसे उनसे ग्रहणकर इन्द्रको दे दिया ॥ ३९ ॥ इन्द्रने उस विद्याबलसे पालित दैत्यसेना जीत ली, वह उदारधी, विश्वरूपने इन्द्रको ही बतलाया था ॥ ४० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सप्तम अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, त्रिलोकीकी सम्पदाके मदसे मतवाले इन्द्र द्वारा सभामें आये हुए बृहस्पति महाराज जब अनाहत होकर चुपचाप चले गये तब इन्द्र अपने आप अपनी निन्दा करने लगा। इधर बृहस्पति अपनी सर्वोत्तम मायाके द्वारा अपने घरसे अन्तर्हित हो गये। बादमें इन्द्रने उनकी खूब खोज की लेकिन कहीं पता न लगा। अतः इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई कि असुरोंसे अब हमारी रक्षा कैसे होगी? इतनेही यह वृत्तान्त सुनते ही असुर शुक्राचार्यकी सम्मति लेकर और शस्त्र धारणकर देवताओंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। उनके पैने बाणोंसे घायल देवता लोग इन्द्रके पास पहुंचे। वहाँ जाकर ब्रह्मासे अपनी सारी आप-बीती कह सुनाई। देवताओंकी बातें सुन लेनेपर ब्रह्माको दया आ गई। उन्होंने देवताओंसे कहा—तुमलोग विश्वरूपके पास चले जाओ और उसीसे अपनी कथा कह सुनाओ, तुम लोगोंकी अवश्य वह मदद करेगा। ठकुरसुहाती करनेमें अत्यन्त पटु देवताओंने विश्वरूपसे अपनी दशाका विनेदन किया। विश्वरूपने कहा—हे देवताओ, यद्यपि घृणित पौरोहित्यकर्म करना मुझे स्वीकार नहीं है तथापि तुमलोगोंकी प्रार्थना मैं टाल भी नहीं सकता। चलो, चाहे जो कुछ भी हो, लेकिन तुम्हारी प्रार्थना मैं स्वीकार करता हूँ। हे राजन्, तदनन्तर बड़े प्रयत्नसे विश्वरूपने उनका पौरोहित्यकर्म कराया। महातपस्वी विश्वरूपने शुक्राचार्यके द्वारा सुरक्षित देवताओंके दुश्मन असुरोंकी जो सम्पत्ति थी उसे नारायण कवचरूप वैष्णव विद्याके द्वारा जबरदस्ती छीनकर इन्द्रको दे दी जिसके द्वारा अच्छी तरह सुरक्षित होकर इन्द्रने दैत्योंकी सेनाको पराजित किया। उदार प्रकृति विश्वरूपने वह नारायणकवचरूपी वैष्णवीविद्या इन्द्रसे कह दी। सप्तम अध्याय समाप्त ॐ

❀ अथ अष्टमोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ॥ क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥ भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ॥ यथाततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ॥ नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ॥ कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥ नारायणमयं वर्म सन्नह्येद्भय आगते ॥ पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥ मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादो-

❀ नारायणकवच विषयक वर्णन ❀

फिर राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवमुनिसे बोले—हे भगवन्, जिससे पालित हो इन्द्रने हाथी-घोड़े आदि वाहनों सहित अरियोंकी सब सेनाको विजय प्राप्तकर जीत त्रिलोकीके राज्यश्रीका भोग किया, उस नारायणकवचरूपिणीवैष्णवीविद्याको मुझसे आप कहिये और उसके द्वारा संरक्षित हो इन्द्रने अपने अरियोंको युद्धमें हराया, वह भी कथा आप मुझको सुनावें ॥ १, २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब पुरोहित विश्वरूप हो गये तो इन्द्रके कहनेपर उन्होंने जिसका उपदेश किया वह नारायणकवचको एकमन होकर सुनिये। ३॥ विश्वरूपने कहा—हे इन्द्र, कभी-कभी किसी तरहका दुःख हो तो अपने देहपर नारायणकवचको धारण करे। पहले हाथ पैर पवित्रकर आचमन करे तब कुशकी पवित्री दोनों अनामिकामें ग्रहणकर उत्तर मुँह बैठे वाणीको रोककर शुद्धतासे अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे। ॐनमो नारायण—इस प्रथम अष्टाक्षरमन्त्रसे ॐकार आदि आठ अक्षरोंका क्रमसे चरण, जानु, ऊरु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उदर, हृदय, वक्षःस्थल, मुख शिरमें न्यास करे। यकारसे लेकर ॐकार पर्यन्त उलटे क्रमसे भी सिर आदिमें न्यास करे ॥ ४-६ ॥ फिर द्वादशाक्षरमन्त्रके ॐकार आदि बारह अक्षरोंका क्रमसे अंगुलियों तथा दोनों अंगूठोंके पर्वोंसे न्यास करे ॥ ७ ॥ ॐविष्णवे नमः–इसमन्त्रके ॐकारको हृदयमें, वि–मस्तकमें, ष–भौंहोंके मध्यमें, ण–शिखामें, वे–नेत्रोंमें न–सबसन्धियोंमें स्थापित करे। इसीप्रकार म-अस्त्ररूपसे उद्देश्य करता हुआ स्वयं मन्त्ररूप हो तो फडन्त विसर्गके संग 'मः अस्त्राय फट' यह कहकर दिग्बन्धनकी विधि करे ॥ ८–१०॥ अपने षट्शक्तियुक्त ईश्वरका ध्यानकर विद्या, तेज, तपःस्वरूप, इस मन्त्रको जपे ॥ ११ ॥ ॐ-अपना चरणपद्म गरुड़की पीठपर रखते हैं जिसने शंख, चक्र, चर्म, खग, गदा, बाण, धनुष, पाश इन आठ आयुधोंको ग्रहण किया वे आठ अणिमा आदि ऐश्वर्य और आठ भुजाओंसे शोभित भगवान् सब तरहसे रक्षा मेरी करें ॥ १२ ॥ मत्स्यमूर्ति भगवान् जलमें जल-

ङ्कारादीनि विन्यसेत् ॥ ओं नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥ करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥ प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥७॥ न्यसेद्धृदय ओङ्कारं विकारमनु मूर्धनि ॥ षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखयादिशेत् ॥८॥ वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ॥ मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद्बुधः ॥ ९ ॥ सविसर्गं फडन्तं तत्सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥ ॐ विष्णवे नम इति ॥ १० ॥ आत्मानं परमं ध्यायेद्ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ॥ विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥ ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ॥ दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान्दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥ जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ॥ स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥ १३ ॥ दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ॥ विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥ रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ॥ रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ॥१५॥ मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात् ॥ दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥ १६ ॥ सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ॥ देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्कूर्मो हरिर्मां निरयादशे-

जन्तुरूप मेरी रक्षा वरुणपाशोंसे करें, स्थलपर बालकवामनरूप ग्रहणकर हरि अपने योग तेजसे रक्षा मेरी करें आकाशमें विश्वरूपधारी भगवान् त्रिविक्रम मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥ दुर्ग, वन, रणस्थल आदिमें भगवान् नृसिंह मेरी रक्षा करें, जो हिरण्यकशिपु आदि असुरयूथके अरि हैं जिनके भयंकर अट्टहाससे सब दिशाएँ गूँज जाती थीं और गर्भवती दैत्य-वधुओंके गर्भ गिर गये थे ॥ १४ ॥ जिन्होंने भूमिको अपनी दाढ़पर ग्रहण किया वे यज्ञमूर्ति भगवान् वाराह रास्तेमें मेरेको बचावें सबप्रकारसे पर्वत शिखरोंपर परशुराम और विदेशमें लक्ष्मण सहित भरताग्रज भगवान् रामचन्द्र रक्षा मेरी करें ॥१५॥ नारायण उग्रधर्म और प्रमादसे, नरभगवान् अभिमानसे, योगनाथ दत्तात्रेय कुत्सित योगसे:सब प्रकारके कर्मबन्धनसे गुणाधिपति कपिलमुनि मेरी रक्षा करें ॥१६॥ सनत्कुमार कामदेवसे, रास्तेमें गमनसमय देवताओंके तिरस्कारापराधसे भगवान् हयग्रीव, देवर्षि नारद भगवान्के अर्चनमें अचानक हुए दोषोंसे और सब नरकोंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् कच्छप रक्षा मेरी करें ॥१७॥ कुपथ्यसे धनवन्तरि भगवान्, महान् जितेन्द्रिय ऋषभदेव कष्ट-आनन्दसमूहद्वन्द्वोंसे, यज्ञभगवान् लोकनिन्दासे बलभद्र जीवोंसे प्राप्त दुःखोंसे श्रीभगवान्शेष अधिकक्रोध नर्गोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥ अज्ञानतावश भगवान् व्यासदेव पाखण्ड और प्रमादसे बुद्धदेव तथा धर्मके लिए अवतार ग्रहणकरनेवाले भगवान्कल्कि कलि समयके सब प्रायश्चित्तोंसे दूर रक्खें ॥१९॥ प्रातः सूर्योदय होनेके समय अपनी गदासे भगवान्केशव मेरी रक्षा करें। सूर्योदयान्तर वेणुधर गोविन्द, पूर्वाह्णसमय उदात्तशक्तिधारी नारायण, मध्याह्न समय चक्रपाणि विष्णुभगवान्, अपराह्णमें उग्रधनुर्धारी मधुसूदन, सायङ्कालमें ब्रह्मादि त्रिमूर्तिधारण करनेवाले माधव, प्रदोषकालमें हृषीकेश, अर्धरात्रिको या निशीथसमयमें पद्मनाभ भगवान् रात्रिके पिछले पहरमें श्रीवत्सलाञ्छनहरि, उषाकालसे खड्गधारी भगवान् जनार्दन, प्रातःकाल दामोदर, सन्ध्याओंमें भगवान् कालमूर्ति विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥२०-२२॥ हे सुदर्शनचक्र

षात् ॥ १७ ॥ धन्वन्तरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्द्वन्द्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा ॥ यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद्बलो गणात्क्रोधवशादहीन्द्रः ॥ १८ ॥ द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्बुद्धस्तु पाखण्डगणात्प्रमादात ॥ कल्किः कलेः कालमलात्प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥१९॥ मां केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ॥ नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्तिर्मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥ देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायं त्रिधामाऽवतु माधवो माम् ॥ दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥ २१ ॥ श्रीवत्सधामाऽपररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ॥ दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान्कालमूर्तिः ॥ २२ ॥ चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि भ्रमत्समन्ताद्भगवत्प्रयुक्तम् ॥ दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥ २३ ॥ गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियाऽसि ॥ कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥ २४ ॥ त्वं यातुधानप्रथमप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ॥ दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥ २५ ॥ त्वं तिग्मधाराऽसिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ॥ चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥ २६ ॥ यन्नोभयं ग्रहेभ्योऽभूत्केतुभ्यो नृभ्य एव च ॥ सरीसृपेभ्योदंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥ २७ ॥

तेरा आकार चक्रके तुल्यहै, नेमि प्रलयकालरूपी अग्निके सदृश्य अत्यधिक तीखी है। तुम भगवान्के ईशारेसे सर्वदा सब तरफ भ्रमण करते हो। वायुके सखाके द्वारा उत्कट प्रज्वलित जैसे अग्नि सूखे घासको भस्मकर देता है, हमारे अरियोंका समुदाय वैसे ही आप भस्मकर दीजिये ॥ २३ ॥ हे गदे, तेरे देहकी चिनगारियोंका स्पर्श वज्रवत् होता है, अजित भगवान्के तुम प्यारे हो मैं भी उस नारायणका नौकर हूँ, अतः कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत ग्रहोंको नष्ट कर दो। तुम मेरे अरियोंको नाश करो नाश करो २ ॥ २४ ॥ हे शङ्खश्रेष्ठ, तुम भगवान्के फूँकारसे अत्युत्कट शब्द करते हुए मेरे अरियोंके चित्तोंको कंपायमान करते हुए यातुधान, प्रथम, प्रेत, मातृका, पिशाच, ब्रह्मराक्षस आदि भयङ्कर दर्शनवाले प्राणियोंको मार भगाइये ॥२५॥ हे तीक्ष्ण धारवाले खड्गश्रेष्ठ, भगवान्के द्वारा तुम प्रेरित हो मेरे शत्रुओंको मार छिन्न-भिन्न कर दो। हे शतचन्द्र चर्म, मेरे भयंकरदृष्टिवाले पापी अरियोंकी आँख मूँद दो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

या नष्ट ही कर दो ॥ २६ ॥ सूर्यादि ग्रह, उल्कापात आदि केतु, मनुष्य, सरीसृप दाढ़ीवाले जीव, भूत-प्रेत पापी जीवोंसे मुझको जो-जो डर हो जो हमारे मनोहर रास्तेके प्रतिबन्धक हों वे सब पाप भगवान्के नाम, और आयुधोंका स्मरण करने मात्रसे उसीक्षण नष्ट हो जायँ ॥ २७, २८ ॥ बृहद्रथन्तर आदि सामस्तोत्रोंसे स्तुतिमान वेदमूर्ति भगवान् गरुड़ और अपने नामोच्चारण तेजसे विष्वक्सेन हमारी सब विपत्तियोंसे रक्षा करें ॥ २९ ॥ भगवान्के नाम, रूप, आयुध, उनके श्रेष्ठ पार्षदगण हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राणोंको कष्टोंसे सब बचावें ॥ ३० ॥ जितना भी स्थूल तथा असत्य आडम्बर विराजमान है वह वस्तुतः ईश्वर ही है इससे हमारी सब आपत्तियाँ दूर हो ॥ ३१ ॥ सर्वत्र एकही आत्माको भावनावालोंकी दृष्टिमें बिल्कुल शून्य होनेपर भी भगवान् अपनी मायासे भूषण, आयुध, रूपनामकी अपनी अलग अलग शक्तियोंको ग्रहण करते हैं–यह सत्य, सर्वज्ञ, व्यापक भगवान् हरि सब रूपोंसे अपने

सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ॥ प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥ २८ ॥ गरुडो भगवान्स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ॥ रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥ २९ ॥ सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ॥ बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान्पान्तु पार्षदभूषणाः ॥ ३० ॥ यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च तत् ॥ सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥ ३१ ॥ यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ॥ भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥ ३२ ॥ तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ॥ पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३३ ॥ विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ॥ प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३४ ॥ मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ॥ विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ३५ ॥ एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ॥ पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥ ३६ ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ॥ राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥ ३७ ॥ इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन् द्विजः ॥ योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥ ३८ ॥ तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ॥ ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३९ ॥ गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ॥ स वालखिल्यवचनादस्थीन्या-

सदा तथा मेरी रक्षा सर्वत्र किया करें ॥ ३२, ३३ ॥ अपनी अत्युत्कट हँसीसे सब लोकोंके भय हटाने और अपने तेजसे सबके तेजको मन्दा करनेवाले भगवान् नृसिंह दिशा-विदिशा नीचे ऊपर, बाहर भीतर चारो तरफ रक्षा हमारी करते रहें ॥ ३४ ॥ हे इन्द्र, मैंने इस नारायणकवचको कहा जिसके द्वारा बिना परिश्रम सब असुर यूथपतियोंसे विजयी होंगे ॥ ३५ ॥ यह कवच पहनेवाला जीव जिस-जिसको अपनी आँखसे देखता या पैरसे स्पर्श करता है, वह भी शीघ्र भय रहित हो जाता है ॥ ३६ ॥ यह विद्याको ग्रहण करनेवाले जीवको राजा, चोर, ग्रह-आदियोंसे व्याघ्र-आदि द्वारा भी कुछ डर नहीं रह सकता ॥ ३७ ॥ हे देवराज, कौशिकगोत्रवाले एक द्विजने पूर्वसमयमें इस विद्याको ग्रहणकर योगबलसे मरुस्थलपर अपना देह छोड़ा था ॥ ३८ ॥ एक समय उसके ऊपरसे होकर अपने विमानपर चित्ररथ गन्धर्व बैठकर निकला ॥ ३९ ॥ वहाँ पहुँचते ही विमान सहित वह नीचेको मस्तक किये हुए आकाशसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भूमिपर गिरा तो बालखिल्यादि मुनीश्वरोंके वचनसे उस ब्राह्मणकी अस्थियोंको ले जाकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदीमें प्रवाह किया स्वयं स्नानकर विस्मयको अपने देशको चल दिया ॥४०॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जो पुरुष इस नारायणकवचको सुनता या आदरसे पढ़ता है उसको सब जीव नमस्कार करते हैं और वह सब आपत्तियोंसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥ यह विद्या विश्वरूपसे प्राप्तकर इन्द्रने युद्धस्थलमें असुरोंको हराकर त्रैलोक्यराज्यलक्ष्मीका आनन्द लिया ॥ ४२ ॥

दाय विस्मितः ॥ प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ॥ तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतोभयात् ॥ ४१ ॥ एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे नारायणवर्मनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आठवें अध्यायका सार-श्रीशुकदेवमुनिसे बड़े आश्चर्यके साथ राजा परीक्षित्के नारायणकवच विषयमें पूछनेपर श्रीशुकदेवमुनिने उसे बतला दिया। तदनन्तर श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इन्द्रको विश्वरूपने यह कवच बतलाकर कहा—हे इन्द्र, इस कवचको धारण करनेवाला मनुष्य जिस-जिसको अपनी आंखोंसे देखता है वह प्राणी तुरन्त भयसे छूट जाता है। इसका धारण करनेवाले पुरुषको राजा चोर तथा ग्रह आदिसे या व्याघ्र आदि हिंसक जीवोंसे कहीं भी किसी तरहका भय नहीं प्राप्त होता। हे इन्द्र, प्राचीनकालमें कौशिक नामक ब्राह्मणने इस कवचको धारण किया था। उसने योगबलसे निर्जल देशमें अपने शरीरको धारण किया था। एक समयकी बात है कि जिस स्थानपर उस ब्राह्मणने अपने शरीरका त्याग किया था उसी स्थानके ऊपर आकाशमें विमानमें बैठकर स्त्रियोंसे घिरे हुए गन्धर्वोंका स्वामी चित्ररथ जा रहा था कि इतनेहीमें वहींपर वह गिर गया। तदनन्तर बालखिल्य ऋषियोंके कहनेपर उस चित्ररथने कौशिककी हड्डियां उठाकर पूर्ववाहिनी सरस्वतीमें फेंक दीं। वहीं स्नानकर कौशिकके प्रभावके विषयमें आश्चर्य करता हुआ गन्धर्वलोकको वह चला गया। हे राजन्, जो पुरुष आदरके साथ इसका श्रवण करता है उसे जगत्के सभी प्राणी पूजनीय मानते हैं वह सर्वप्रिय भयोंसे छुट जाता है। अष्टम अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ नवमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ॥ सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥ १ ॥ स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ॥ अवदद्यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥ २ ॥ स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान् प्रति ॥ यजमानोऽवहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥ ३ ॥ तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ॥ आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥ ४ ॥ सोमपीं तु यत्तस्य शिर आसी-

❀ वृत्रासुरके जन्मकी कथा ❀

हे भारत, मैंने सुना कि देवगुरु विश्वरूपके सोमपीथ, सुरापीथ अन्नाद नामवाले तीन सिर थे ॥ १ ॥ हे राजन्, वे मस्तक यज्ञकालमें प्रत्यक्षरूपसे उच्चस्वरसे बोलते हुए बड़े नम्रतासे देवोंको भाग देते थे क्योंकि उनके देवता पितर थे ॥ २ ॥ वे अप्रगटरूपसे माताके प्यारसे यज्ञसमय दैत्योंको भी हविर्भाग देते थे ॥ ३ ॥ इस कारण देवराज इन्द्रने उनके किये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए देवताओंकी गलती और धर्ममर्यादाका व्यतिक्रम देख भयभीत हो बड़े क्रोधसे तीनों सिर उनके काटकर पृथक् कर दिये ॥ ४ ॥ तो विश्वरूपका सोमपीथ सिर कपिञ्जल, सुरापीय मस्तक कलविङ्क और अन्नाद नामका सिर तीतर हो गया ॥५॥ उसको दूर करनेमें सामर्थ्यशाली भी विश्वरूपका हनन करनेसे जायमान ब्रह्महत्याको इन्द्रने अपनी अञ्जलिमें लिया और एक वर्ष बाद जीवोंमें अपनी पवित्रताके लिए उस पापके चार हिस्सेकर पृथिवी, जल, वृक्ष, इनमें बटबारा किया ॥ ६ ॥ अपनी पीठपर हुए गडहोंको अपने आप परिपूर्ण हो जानेके बदले उस ब्रह्महत्याका एक चतुर्थ भाग भूमिने ले लिया; भूमिमें ऊसर स्वरूपमें ब्रह्महत्याकास्वरूप कहीं-कहीं दिखाई देता है ॥ ७ ॥ एकबार कटकर फिर तद्वनरूप वर प्राप्तकर वृक्षोंने एक चौथाई लिया, वह ब्रह्महत्या उनमें गोंद रूपमें दिखती है ॥ ८ ॥ विषय वासनामें सदा शक्ति रहे यह वर स्त्रियोंने प्राप्तकर एक चतुर्थांश भाग ग्रहण किया, स्त्रियोंमें वह ब्रह्म-

त्कपिञ्जलः ॥ कलविङ्कः सुरापीथमन्नादं यस्स तित्तिरिः ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः ॥ संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ॥ ६ ॥ भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥ भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ॥ ७ ॥ ईरणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥ तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहद्रुमाः ॥ ८ ॥ तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥ शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः ॥ ९ ॥ रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥ द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ॥ १० ॥ तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥ हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे ॥ ११ ॥ इन्द्रशत्रो विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषम् ॥ अथान्वाहार्यवचनादुत्थितो घोरदर्शनः ॥ १२ ॥ कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥ विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ॥ १३ ॥ दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥ तप्तताम्रशिखा-श्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥ १४ ॥ देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ॥ नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥ १५ ॥ दरीगम्भीरवक्त्रेण पिवता च नभस्तलम् ॥ लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः ॥ वित्रस्ता

हत्या रजोधर्म रूपसे हरेक महीनेमें दिखती है ॥ ९ ॥ कूप आदिसे जल खर्च होनेपर भी अहर्निश वृद्धिंगत होनेका वर प्राप्तकर जलने उसका एक चतुर्थ भाग ग्रहणकर लिया वह ब्रह्महत्या फेन और बुदबुदोंके रूपमें सामने दिखाई देती है, इसकारण जीव फेन आदि त्यागकर जल ग्रहण करते हैं ॥१०॥ इस तरह बालक विश्वरूपके बध हो जानेके बाद त्वष्टाने हेइन्द्रशत्रो, तुम्हारी वृद्धिहो तथा शीघ्र अरिको मार डालो, ऐसा कह इन्द्रशत्रु उत्पन्न करनेकी इच्छापर उन्होंने अग्निमें हवन किया ॥११॥ हवन करते ही एक अन्वाहार्यपचनाग्निसे महान् अत्युत्कट दैत्य उत्पन्न हुआ, वह प्रलयकाल सामीप्य होनेपर सबका नाश करनेवाला कालके तुल्य दिखाई देता था ॥१२॥ हे राजन्, वह प्रतिदिन चतुरस्रसे इतना बढ़ने लगा कि जितनी दूर बाँण जाता है, वह प्रज्जलित पर्वतके सदृश काला तथा महान् शरीरवाला था, सन्ध्यासमयकी मेघमालाके सदृश कान्तिमान् उसकी शोभा थी, उसकी दाढ़ी तथा मूछ तपाये हुए तांबेके तुल्य लाल और आँख मध्याह्न सूर्यके तुल्य उग्र थीं, अपने तीनलोकोंके वह बहुत चमकवाले त्रिशूलपर जैसे भूमि और आकाशको उठाकर नृत्य करता हुआ भयङ्कर गर्जन करता अपने पैरोंके प्रहारसे भूमिको कंपायमानकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहा था, उसका गिरिकन्दराके सदृश गम्भीर मुख था, उससे मानो वह आकाश पान कर लेता था, अपनी मानो जिह्वासे नक्षत्रोंका स्वाद लेता था तथा अपने विस्तृत विकरालदाढ़ोंसे तीनों लोकोंको हजमकर रहा था, वह पुनः पुनः अपना बड़ा मुखका विस्तारकर जम्हाई लेता था उसके भयंकरस्वरूपको देखकर सबलोगोंको बहुत भय हो गया जिससे दसों दिशाओंमें पलायन करने लगे ॥१३-१७॥ हे राजन्, अत्यन्त आश्चर्यसे तमोगुणी त्वष्टासुतने सब लोगोंको घेर लिया, जिससे पापी परमकठिन असुर वृत्र इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥१८॥ अपने संगी साथियोंके साथ सब देवता एका-एक उसपर लपक अपने दिव्य शस्त्रास्त्रोंसे हनन करने लगे, किन्तु वह वीर असुर एक साथ उन शस्त्रोंको निगल गया ॥१९॥ इससे देवता तेजोहीन तथा उदास हो अपने अन्तःकरणमें स्थित एकाग्रमनसे आदिपुरुष भगवान्‌की आराधना करने लगे ॥२०॥ देवताओंने कहा—वायु, आकश अग्नि, जल, पृथिवी, ये पाँच भूत, तीन लोक हम ब्रह्मादि देवता भयातुरहो

दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ॥ स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥ १८ ॥तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ॥ स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ॥ प्रत्यञ्चमादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ॥ हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥ २१ ॥ अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ॥ विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥ २२ ॥ यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाबध्य ततार दुर्गम् ॥ स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद्दुरन्तात्त्राताश्रितान्वारिचरोऽपि नूनम् ॥ २३ ॥ पुरा स्वयंभूरपि संयमाम्भस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ॥ एकोऽरविन्दात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येन स नोऽस्तु पारः ॥ २४ ॥ य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानु सृजाम विश्वम् ॥ वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः ॥२५॥ यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ॥ कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वात्मसात्पाति युगे युगे च ॥ २६ ॥ तमेव देवं

जिसको बलि समर्पण करते हैं वह काल भी जिनसे डरता है हमको वे परमात्मा इस आपत्तिकालसे निकालें ॥२१॥ वे मेरे अभिमानशून्य नारायण आत्मलाभसे पूर्ण, चारो तरफ बराबर तथा राग-द्वेषसे शून्य हैं, जो कुत्सतबुद्धि जीव उनको छोड़ किसी अन्यका सहारा रखता है तो मानो वह कुत्तोंकी पूँछ धरकर समुद्र पार करनेका परिश्रम करता है ॥२२॥ सत्य-व्रत मनु जिसने विशालशृङ्गमें भूमिरूपिणी नाव बाँधकर भयङ्कर दुःखसे तर गये वे मत्स्यभगवान् वृत्रासुरके बड़े भयसे अपने आश्रितवाले दुःखितोंको निश्चित रक्षा करेंगे ॥२३॥ पूर्वकालमें भयंकर वायुके प्रहारोंसे उठती लहरोंकी गर्जनासे बड़े भयंकर प्रलयकालके पानीमें भगवान्‌विष्णुके नाभिकमलसे अकेले ब्रह्म उत्पद्यमान होते हुए भी जिनकी दयासे उस महान् कष्टसेपार पहुँचे वे ईश्वर इस आपत्तिसे हमको भी पार करें ॥ २४ ॥ एकमात्र जिन महाप्रभुने अपनी महाबलसे हमारा निर्माण किया जिनकी दयासे हम रचना लोककी करते तथा अपनेको स्वतन्त्र परमात्मा मान अभिमान्‌को करनेके निमित्त जीवोंके अन्तः करणमें स्थापित हो प्रथमसे ही प्रेरणावाले जिन परमात्मरूपको नहीं जान सकते ॥२५॥ जो ईश्वर हमको अरियोंसे दुःखित देख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यथार्थ निर्विकार होते हुए भी अपनी मायाके बलद्वारा देवता, ऋषि, तिर्यक् मनुष्यादियोनियोंमें अवतार ले हम लोगोंपर अपनेका स्वभाव करते हुए हर एक युगमें मेरी रक्षा करते हैं ॥२६॥ जो ईश्वर सबके आत्मा और परमइष्ट हैं, जो प्रकृति और जीवस्वरूपसे संपूर्ण विश्वके निमित्त हैं जो इससंसारसे अलग होकर भी विश्वरूपहैं, हम उन शरणागतवत्सल-नारायणकी शरणमें हैं, वे महात्मा हम जैसे अपने भक्तजनोंका निश्चय मङ्गल करेंगे ॥२७॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महाराज, इस तरह देवोंके प्रशंसा करनेपर शङ्ख, चक्र, गदाको धारण करनेवाले भगवान् पश्चिमदिशामें उत्पन्न हुए ॥२८॥ हेराजन्, उसकाल उनके चारो ओर श्रीवत्सलाञ्छन और कौस्तुभमणिके सिवाय शेष सब भगवल्लक्षण सम्पन्न सुनन्द आदि सोलह पार्षद उपस्थित थे। उनकी आँख शरत्कालके लीन विकसित कमलसदृश सुन्दर थीं। उन हरिको देख उनके दर्शनके आनन्दसे विह्वल होकर सब देवोंने जमीनपर दण्डके तुल्य प्रणाम कर

वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ॥ व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ॥ प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥२८॥ आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ॥ पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तमवदौ सर्व ईक्षणाह्लादविक्लवाः ॥ दण्डवत्पतिता राजन् शनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥ ३० ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ॥ नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥ ३१ ॥ यत्ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ॥ नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥ ३२ ॥ ॐनमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावित परिस्फुटपामहंस्यधर्मेणोद्धाटिततमः कपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥३३॥१॥ दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥ ३४ ॥ २ ॥ अथ तत्रभवान्किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः

शनैः शनैः खड़ेहो उनकी स्तुति करते हुए बोले ॥ २९, ३० ॥ देवताओंने कहा—हे प्रभो, जिन भगवान्का यज्ञ ही वीर्य है, जो फलार्थी हो कालरूप हैं, उन ईश्वरको नमस्कार हैं, जो अपना चक्र असुरोंपर चलाते और जिनके अनगिनती नाम है, उन आपको प्रणाम है ॥ ३१ ॥ हेधातः, आप राजस, तामस, सात्त्विक इनके स्वामी हैं, आपके गुण सहित परमपदको कार्यस्वरूपी संसारका कोई नर्वाचीन भी प्राणी अच्छी तरह नहीं पहचान सकता ॥ ३२ ॥ हे भगवान्, हे नारायण, हेवासुदेव, हेआदिपुरुष, हे महापुरुष, हे महानुभाव हे परममंगल, हे परमकल्याण, हे परमकारुणिक, हे केवलजगदाधार, हे त्रैलोकैकनाथ, हे सर्वेश्वर, हे लक्ष्मीपते, हे परमहंस, हे परिव्राजकगण, आत्मसंयमस्वरूप अत्युत्कट समाधिसे अच्छी प्रकार अनुशीलन किये जाने मात्रसे प्रत्यक्ष पारमहंस्यधर्मसे अपने चित्तके अज्ञानरूप किवाड़ोंको खोल आवरण बिना आत्मलोकमें प्राप्त अपने आनन्दरूपसे जिनके अपना अनुभव विषय मानते हैं वह आप एकमात्र ही हैं, उन महापुरुष आपको प्रणाम है ॥३३॥ हेनाथ, आपका यह पृथक् करण वियोग बड़ीहो कठिनतासे जाना जाता है, आप निराधार, शरीररहित किसीकी सहायतामात्रसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहित, निर्गुण होकर विकार सहित हुए बिना ही इस सगुण संसारका निर्माण, पालन, नाश किया करते हैं ॥३४॥ हे नाथ, इससंसारमें गुणोंके कामरूप उत्पन्नहो देवदत्तनामक जीवके तुल्य अपने चरितोंका कुशल अकुशल कार्योंका फल परतन्त्रभावसे आप भोगते हैं या अपनी चैतन्यशक्तिसे नष्ट न हो आत्मा राम उपशमशील होकर उदासीनतासे रहते हैं यह बात हमारी दृष्टिमें नहीं आती ॥३५॥ हम जानते हैं कि आपमें इन दोनोंके रहते हुए भी शत्रुता कोई नहीं है, साक्षात् आप भगवान् हैं आपके गुणसमूह अगणित हैं. आपकी स्तुति कठिनतासे जानी जाती है, उन पुरातन विकल्प, वितर्क, विचार, प्रमाणाभास, कुतर्कोंसे सम्पन्न जिनका आपसे स्पर्श नहीं होता, उन शास्त्रोंके निमित्त व्याकुल जिसका आधार अन्तःकरण ही है, उस व्यर्थ आग्रहके वशीभूत विवादमान जीवोंके विवादकी जहाँ कुछ भी पहुँच नहीं है, तथा जो सब मायामय प्रपञ्चोंसे अलग हैं, उन आपके कैवल्यस्वरूपमें अपनी मायाका परदा दूरकर लेनेपर कर्तृत्व-भोक्तृत्व

पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्मारा उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥३५॥ ३ ॥ न हि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तः करणाश्रयदुरवग्रह-वादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय कोन्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥३६॥४॥ समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जु खण्डः सर्पादिधियाम् ॥ ३७ ॥ ५ ॥ स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥ ३८ ॥ ६ ॥ अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥ ३९ ॥ ७ ॥ त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसम-

आदि कौनसी रीति सम्भव नहीं हैं, क्योंकि प्राय:आपमें दोनों रूपोंका ही नहीं रहना विराजमान है॥३६॥ जैसे एक ही रज्जू ज्ञानी जीवको रस्सी और वैपरीत्य बुद्धिवालेको साँप आदि रूपमें दिखाई देती है, तद्वत् ही आप भी ज्ञानी तथा अज्ञानी प्राणियोंकी बुद्धिका अनुकरण करते रहते हैं ॥३७॥ परन्तु आपही सब चीजोंका तत्व, सर्वेश्वर, इससंसारके कारणरूप महत्त-त्वादिके निमित्त भी हैं, अन्तर्यामी होनेसे सब विषयोंकी इच्छासे लक्षित आप ही होते हैं, आपको ही श्रुति भी सबके अधिष्ठानरूपसे शेष मानती है ॥ ३८ ॥ हे मधुमथन, आपकी महिमा-अमृतरूपी रसपरिपूर्ण समुद्रकी एक बूँदका एकबार स्वाद लेनेसे अपने चित्तमें सदा बहता हुआ लगातार आनन्द प्रवाहसे जिनका दृष्ट श्रुत विषयसे जाननेवाला लेशमात्र सुखाभास विस्मरण हो गया, जिनका चित्त सब जीवोंके प्रिय मित्र, अच्छी तरह सर्वात्मा आपहीमें स्थित रहता है, वे साधुगण अपने कार्य साधनमें चतुर अपने प्रिय मित्र होकर भी किस तरह आपके चरणकमलोंकी सेवाको छोड़ सकते हैं, इसकारण उनको इस जगतरूपी चक्रमें गिरनेका फिर डर नहीं रह जाता ॥ ३९ ॥ हे त्रिलोकीके आत्मा, आधार, हे त्रिभुवनका चित्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जुरानेवाले महानुभाव, आप ही की ये सब असुर-दानव आदि ऐश्वर्य हैं, तब भी इनका उत्कर्षका काल नहीं है, अतः हे दण्डधर, अपनी मायासे आप देवता, मनुष्य, मृग, मिश्रितजल चर-आदिका स्वरूप ग्रहणकर इनको इनके दण्डनीयके तुल्य पूर्वफल देते हैं तद्वत् ही हे भगवन्, यदि तथ्य जाने तो इस त्वष्टापुत्र वृत्रासुरका भी हनन करिये ॥४०॥ हे पितः, हे पितामह, आपके हम नौकर हैं सदा आपके सामने नतशिर रहते हैं, चरणयुगलध्यानसे मेराचित्त आपकी प्रेमरज्जुमें बाँधा गया, हमारे समीप अपनी गुणवाली मूर्तिसे उत्पन्न हो हमको आपने अपना लिया। इसलिए हे अनघ, अपनी कृपासे विशद, सुन्दर, शीतल, हँसीयुक्त अपने मुखसे प्रवाहित सुन्दर वाँणीरूप अमृतकलासे हमारे चित्तके सन्तापको शान्त करो ॥ ४१ ॥ सब संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, लयका निमित्तरूप दिव्य मायाके सङ्ग क्रीड़ा करनेवाल आप सब जीवसमूहके मनमें ब्रह्म और अन्तर्यामीस्वरूपसे तथा बाहर प्रधानरूपसे विराजमानरह उनके

योऽयमिति स्वात्ममायमासुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रसुत यदि मन्यसे ॥४०॥८॥ अस्माकं तावकानां तव नतानां तत तातमह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जित-विशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥ ४१ ॥ ९ ॥ अथ भगवंस्तवास्माभिरखिल-जगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानु भवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥४२॥१०॥ अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतप-लाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥ ४३ ॥ ११ ॥ अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ॥ ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥ ४४ ॥ हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ॥ सत्सङ्ग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्तावन्ते परीष्टगतये हरये ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैवमीडितो राजन् सादरं त्रिदशैर्हरिः ॥ स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह

उपादान प्रकाशरूपसे देश, काल, देहावस्थानुसार उनका परिशीलन करनेवाले सब प्रतीतियोंके साक्षी आकाश शरीर साक्षात् परब्रह्म ईश्वर ही हैं हे भगवन्, चिनगारियाँ जैसी अग्नि को देदीप्यमान नहीं कर सकतीं, वैसे ही हम आपको किस अर्थविशेषका विज्ञापन कर सकेंगे ॥ ४२ ॥ हे प्रभो, आप अचिन्त्य-ऐश्वर्य सम्पन्न जगत्के उत्कटगुरु हैं, जिस इच्छासे हम इनगिनती पापोंके ध्येयरूप जगत्श्रमको हटानेवाले आपके चरणकमलोंकी छत्र छायामें आए हैं हम शरणागतोंकी आप इच्छा परिपूर्ण करिये ॥४३॥ हे ईश, हे कृष्ण, भुवनत्रयको ग्रसते हुए इस वृत्रासुरको जिसने हमारे तेज और सब अस्त्र-आयुधोंको ग्रहणकर लिया, उसको आप जल्दी हनन कीजिये ॥ ४४ ॥ जो पवित्ररूप, हृदयाकाशचारी, निरीक्षक, कृष्ण, सुन्दरकीर्ति अनादि, और अच्छे पुरुषोंसे सेवित जगत् पान्थको अपने निजाश्रममें आनेपर उसको श्रेष्ठगति करते हैं, उन हरिको नमस्कार है ॥४५॥ श्रीशुकदेव जीने कहा–हे राजन्, आदरसे देवताओंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ध्यान करनेपर अपना स्तोत्र श्रवणकर भगवान् प्रसन्न हो उनसे बोले ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे श्रेष्ठ देवताओ, तुमलोगोंका मेरी स्तुतिसे परिपूर्ण जो यह ज्ञान है मैं उससे तुम लोगोंपर अत्यधिक राजी हूँ इसके द्वारा आत्मा-प्रभावकी स्मृति और मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥४७॥ हे विबुधर्षभ, राजी होनेपर क्या मेरेको कठिनता रह जाती है फिर भी अनन्य तत्त्वज्ञानी भक्त मेरे सिवाय कुछ नहीं चाहता ॥ ४८ ॥ जो मन्दबुद्धिवाला जीव वासनाओंको ही सब कुछ जानता है उसको अपने तथ्यका ज्ञान नहीं होता, कोई यदि उसको इच्छित वस्तु दे तब भी उसके तुल्य मूढ है ॥४९॥ जो जीव मुक्तिपथका जानकार है वह किसी अज्ञजीवको भी प्रवृत्तिमार्गपथका आदेश देता नहीं। जैसे–रोगीकी इच्छापर भी कोई उत्तम वैद्य उसको कुपथ्य चीज नहीं देता है ॥ ५० ॥ हे इन्द्र, तेरा मङ्गल हो तुम मुनिवर दधीचिके समीप जाकर विद्या व्रत तथा योगसे उनका अत्यधिक दृढ़ देहको जलदी माँग लाओ ॥ ५१ ॥ ऋषिसत्तम दधीचिको अश्वशिरनामक पवित्र ब्रह्मज्ञानी है उन्होंने ही अश्विनीकुमारोंको इसका ब्रह्मोपदेश दिया था, उस तेजसे उनको अमरत्वपद प्राप्त हुआ ॥५२॥ दध्याङ्गाथर्ववेत्ता महर्षि

तानभिनन्दितः ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ॥ आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥ ४७ ॥ किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः ॥ मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥ ४८ ॥ न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ॥ तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥ ४९ ॥ स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ॥ न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥ ५० ॥ मघवन्यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम् ॥ विद्याव्रततपः सारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥ ५१ ॥ स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ॥ यद्वा अश्वशिरोनाम तयोरमरतां व्यधात् ॥५२॥ दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम् ॥ विश्वरूपाय यत्प्रादात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥ ५३ ॥ युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ॥ ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥ ५४ ॥ येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥ तस्मिन्विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुजसम्पदः ॥ भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥ ५५ ॥ इति श्रीम० भ० पु० ष० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दधीचिने ही आदिमें ही मेरे साक्षात् रूप त्वष्टाको नारायणकवच कहा, वही त्वष्टाने विश्वरूपको समर्पण किया, वह तुमको विश्वरूपसे मिला ॥ ५३ ॥ महर्षि दधीचि बड़े धर्मज्ञ हैं, तुमलोगोंको तथा अधिक अश्विनीकुमारोंके चाहनेपर अपना शरीर वे निश्चित देंगे। उन अंगोंसे विश्वकर्माका निर्माण किया हुआ श्रेष्ठ आयुध तैयार होगा, उस आयुधद्वारा इन्द्र मेरे तेजसे सम्पन्न हो वृत्रासुरका सिर हनन करेंगे ॥ ५४ ॥ उसके मृतहो जानेपर तुम अपने नष्ट हुए तेज, अस्त्र आयुध सम्पत्तिको, पुनः प्राप्त करोगे और मेरेसे तत्पर भक्तोंको कोई दुःख नहीं दे दे सकता इसलिये अवश्य कुशल होगा ॥ ५५ ॥

छदृष्टान्त—इन्द्रने दधीचिऋषिसे कहा—तुम अश्विनी कुमारोंको ब्रह्मविद्या न सिखाना। यदि दोगे तो सरको शरीरसे अलगकर दूँगा। यह कहकर वह चला गया। इतने ही में अश्विनीकुमारोंने आकर दधीचिऋषिसे कहा हम ब्रह्मविद्या सीखने आपके आश्रममें आये हैं। उन्होने इन्द्रकी कथा कह सुनाई। उन कुमारोंने कहा हम अपना सिर अलगकर घोड़ेका सिर लगा लेते हैं इसीसे ब्रह्मविद्या प्रदान करो यदि वे सिर काटनेको आवेंगे तो हम आपके पूर्व सिर को जोड़ देंगे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नवम अध्यायका सार—हे राजन् , वह विश्वरूप यज्ञमें देवताओंको विनम्र होकर हविका भाग देता था, क्योंकि देवता उसके पितर थे, लेकिन चूँकि उसकी माता असुरकन्या थी, इसलिए असुरोंमें पक्षपात होनेके कारण देवताओंके निमित्त किये गये यज्ञमें छिपछिपकर चोरीसे हविका भाग पहुँचा देता था। तब इन्द्रको इसके इस कपटव्यहारका पता चला तो इन्द्रने अपने मनमें सोचा—यदि यह ऐसा करता रहा, तो आगे चलकर असुर बढ़ जायँगे और हमारा अवश्य नाशकर डालेंगे। यों सोचकर बड़े क्रोधके साथ विश्वरूपके जो तीन मस्तक थे, वे तीनों मस्तक इन्द्रने काट दिये। विश्वरूपके मार दिये जानेपर इन्द्रकी लोकमें निन्दा होने लगी, सारा संसार उसे ब्रह्मघाती कहने लगा। उस लोकनिन्दाको दूर करनेके लिये इन्द्रने वह ब्रह्महत्या चार जगह बाँट दी। इसके बाद अपने पुत्रके इन्द्र द्वारा मार दिये जानेके कारण अत्यन्त क्रुद्ध त्वष्टाने इन्द्रके वधके लिये वृत्रासुरको प्रकट किया। वह रात दिन खूब बढ़ रहा था, देखनेमें काला पर्व जैसा था। उसका तेज मेघमण्डलकी नाईं काला था। उसकी चोटी और दाढ़ी मूँछें लाल लाल थी और उसके नेत्र सूर्यके समान उग्र थे। उसकी बढ़ती शक्तिको देखकर देवताओंने उसपर चढ़ाई कर दी, लेकिन उसने देवताओंके सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र निगल लिये। तदनन्तर अत्यन्त खिन्न होकर देवताओंने कातर स्वरसे आदि पुरुष भगवान्‌की प्रार्थना की। उनकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने कहा—हे इन्द्र, तुम दधीचिके समीप जाओ और विद्या, बल एवं तपस्या सुदृढ़ हुए उनके शरीरकी हड्डियोंके लिये प्रार्थना करो उनकी हड्डियोंसे विश्वकर्मा द्वारा वज्र बनवाकर समय पाकर तुमलोग उसी वज्रसे वृत्रासुरको मार सकोगे। नवम अध्याय समाप्त❀

❀ अथ दशमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः ॥ पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ १ ॥ तथाऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ॥ मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥ अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ॥ संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥ जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः ॥ क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ किन्नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकम्पिनाम् ॥ भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥ ५ ॥ ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसङ्कटम् ॥ यदि वेद न याचेत नेति नाह

❀ वीतराग महातपस्वी दधीचिऋषिके पास देवताओंने जाकर उनकी अस्थियाँ माँगनेकी प्रार्थना करना, ऋषिके स्वीकार करनेपर उस वज्र द्वारा वृत्रासुरके साथ युद्ध करना ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, इन्द्रको आज्ञा इसप्रकार देकर विश्वभावन भगवान् विष्णु देवताओंके देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो गये। १॥ हे भारत, उन देवोंने जब भगवान्‌के आदेशानुसार दधिचिऋषिसे माँगी तो उन्होंने बहुत राजी हो हँसते हुए कहा ॥ २ ॥ हे देवताओ, क्या उसको तुमलोग नहीं जानते देहधारियोंको जो ज्ञानको नाशकर देनेवाले अपनी देह छोड़नेमें अत्यन्त कष्ट होता था ॥ ३ ॥ इसलोकमें जानेकी इच्छा रखनेवाले जीवोंको देह बहुत मनोहर लगती है, यदि उसको विष्णु भी भिक्षा जाकर माँगे तो कौन देनेकी इच्छा करेगा ॥ ४ ॥ देवताओंने कहा–हे ब्रह्मन्, पुण्यकीर्तिवाले अच्छे जीव भी जिनके कार्योंकी स्तुति करते रहते हैं सब जीवोंपर दयालु आप जैसे महा-पुरुष कौनसी चीज नहीं छोड़ सकते ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे भगवन्, जगत् स्वार्थके वशीभूत है, यह दूसरेके दुःखको नहीं जानता यदि अन्य कष्टको यह जान जायतो न याचना करनेवाला अन्योंसे चाहता, न देनेमें सामर्थी होकर भी कोई जीव नहीं करता ॥६॥ ऋषियोंने कहा—आपलोगोंके मुखसे धर्मवार्ता श्रवणके लियेही मैंने यह प्रत्युत्तर दिया, यह प्रिय मेरी देह आपही एक दिन मेरेको त्यागेगी हो, तब इसको आज ही मैं त्याग देता हूँ ॥७॥ हेस्वामियो, जो जीव अपने स्थित देहसे सब प्राणियोंपर कृपा करते हुए धर्म और यशोपार्जनका परिश्रम नहीं करता वह वृक्षादिकोंकी दृष्टिमें भी चिन्तनीय हो जाता है, ॥ ८ ॥ जो प्राणी अन्योंके कष्टमें दुःखी और सुखमें आनन्दित होता है तो उस पुण्यकीर्तिशाली जीवोंद्वारा सेवित यही विनाशरहित धर्म है ॥९॥ अहो, शरीरधारीजातिकी कैसी यह दरिद्रता है, कितने कष्टकी वार्ता है जिनके द्वारा जीवका कुछ भी तथ्य स्वार्थ नहीं होता, जो अन्योंके ही भोगने योग्य क्षणभंगुर है, उन धन, जन आदिसे अन्योंका कुछ भी उपकार नहीं करता है ॥१०॥

यदीश्वरः ॥ ६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ॥ एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तं सन्त्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥ योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ॥ ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥ ८ ॥ एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ॥ यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥ ९ ॥ अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभङ्गुरैः ॥ यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ॥ परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥ ११ ॥ यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग्ध्वस्तबन्धनः ॥ आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥ १२ ॥ अथेन्द्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ मुनेः शुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसान्वितः ॥ १३ ॥ वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत ॥ स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥ १४ ॥ वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः ॥ पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ॥ १५ ॥ ततः सुराणामसुरैः रणः परमदारुणः ॥ त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥ १६ ॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ॥ मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया ॥ नामृष्यन्नासुरा

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह निश्चित कर अथर्ववेदी दधीचिऋषिने अपना चित्त परब्रह्म भगवान्में लयकर अपना शरीर त्यागा ॥ ११ ॥ महर्षिके इन्द्रिय, मन प्राण संयत थे तथा दृष्टि तत्वकी देखनेवाली थी । इस प्रकार देह छोड़ वे सब बन्धनोंसे छुटकारा पा गये । अतः जब परमयोगमें उन्होंने स्थित होकर अपना प्राण छोड़ा तो उनको इस देहका कुछ भी ज्ञान न था ॥ १२ ॥ भगवान्के तेजसे समन्वित होनेमात्रसे उनका बल बढ़ गया जो देवोंसे चारो ओर घिरे हुए तथा मुनिगण जिनकी प्रशंसा कर रहे थे, वे देवराज इन्द्र सबलोंको आनन्दित करते हुए दधीचिमुनिकी हड्डियोंसे विश्वकर्माद्वारा निर्मित वज्रको लिये गजराज ऐरावतपर तेजयुक्त दिखाई दिये ॥ १३, १४ ॥ हे राजन्, पूर्व समयमें भगवान् रुद्रने जैसे सब लोकोंका नाश करने वाले त्रिपुरासुरपर क्रोधसे बढ़े, वैसे ही असुर-सेनापतियोंसे ढके हुए वृत्रासुरका हननार्थ उसके तरफ बड़ी जल्दी चले ॥ १५ ॥ तदनन्तर पहले चतुर्युगके त्रेतायुगारम्भमें नर्मदानदीके तटपर असुरोंके साथ देवोंका अत्युत्कट युद्ध होने लगा ॥ १६ ॥ हे राजन्, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पितृगण, अग्नि, मद्गण, ऋभु, साध्य, विश्वेदेव आदिके साथ अपनीकान्तिसे दीप्यमान वज्रधर इन्द्रको रणस्थलमें सम्मुख देख वृत्रासुर आदि असुरोंको अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१७,१८॥ नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ अम्बर, हयग्रीव, शङ्कुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल आदि दैत्य, दानव, यक्ष, सुमाली, माली आदि सोनेके गहनोंसे अलंकृत हजारों दैत्य मरणार्थ भी कठिनतासे इन्द्रसेनाको हटा अत्यन्त उन्मत्त हो क्रोधसे सिंहनाद करते हुए उन देवोंपर सब तरफसे गदा, परिघ, बाण, प्रास, मुद्गर तोमर, शूल, परशु, खड्ग, शतघ्नी, भुशुण्डी आदि अस्त्र-आयुधकी वृष्टि करने लगे ॥ १९–२३ ॥ इसप्रकार पुङ्खानुपुङ्खसे गिरे हुए बाणद्वारा सब तरफसे ढके हुए होकर देवता मेघराशिसे आच्छादित नक्षत्र समूहके सदृश अलक्ष्य हो गये ॥२४॥ पर असुरोंके अस्त्र-आयुधोंकी वर्षा देवसेनाओंके स्पर्श भी न कर सकी, अस्त्रको चलानेमें निपुण देवोंने उनके हजारों खण्डकर

राजन्मृधे वृत्रपुरःसराः ॥ १८ ॥ नमुचिः शम्बरोऽनर्वाद्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः ॥ हयग्रीवः शङ्कुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ॥ दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥ २० ॥ सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ॥ प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदम् ॥ २१ ॥ अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः ॥ गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥ २२ ॥ शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ॥ सर्वतोऽवाकिरन् शस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः ॥ पुङ्खानुपुङ्खपतितैर्ज्योतींषीव नभोघनैः ॥ २४ ॥ न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ॥ छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥ २५ ॥ अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्रुमोपलैः ॥ अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥ २६ ॥ तानक्षतान्स्वस्तिमतो निशाम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ॥ द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृङ्गैरविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥ २७ ॥ सर्वे प्रयासा अभवन्विमोघा कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः ॥ कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रूक्षवाचः ॥ २८ ॥ ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ॥ पलायनायाजिमुखे विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥ २९ ॥ वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ॥ पलायितं प्रेक्ष्य बलं च

उसको आकाशहीमें नष्टभ्रष्ट किया ॥ २५ ॥ इसप्रकार अस्त्रशस्त्रोंके खतम होनेपर असुर देवताओंपर पर्वत, शिखर, वृक्ष, पाषाण आदिकी वर्षा करने लगे, परन्तु प्रथमहीके तुल्य देवोंने उनका नाश कर दिया ॥ २६ ॥ हे राजन्, अपने शस्त्रोंसे इन्द्रसेनाको अक्षत, वृक्ष, पाषाण तथा अनगिनती पर्वतोंके मारसे भी वैसेही कुशल खड़े देख अनुगमशील वृत्रासुरके दैत्यसमूह बहुत कंपायमान हुए ॥२७॥ जैसे छोटी नियतवाले जीवोंके द्वारा महापुरुषोंके प्रति कहे गये कठिन तथा कल्याणरहित उनका कुछ नहीं कर सकते तद्वत् भगवत् दया प्राप्त देवोंपर उनके नाशके बराबर किये गये असुरोंके सब लक्ष्य नष्ट हो गये ॥२८॥ ऐसी परिस्थितिमें भगवद्भक्तिसे अलग उन असुरोंका सब युद्धोत्साह क्षीण हो गया देवोंने उनकी धीरता हरणकर लिया, वे उद्योगको अपना बेकार होता जान अपने स्वामी वृत्रासुरको युद्धस्थलमें ही दसों दिशाओंमें पलायन करनेलगे ॥२९॥ तो अपने अनुगत असुरोंको पलायन करते और असुर सेनाको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भयंकर डरसे इधर-उधर देव वीर वृत्रासुर कहने लगा ॥ ३० ॥ उस वीर वृत्रासुरने मनस्वियोंके सुयोग्य, समयानुसार वाणीसे कहा—हेविप्रचित्ते, हेनमुचे, हेपुलोमन, हेमय, हेअनर्वन्, हेशम्बर, मेरी वार्ता सुनिये ॥ ३१ ॥ जगत्‌में जो उत्पन्न हुआ है उसका मरना निश्चित है उसको हटानेके लिये ब्रह्माने कुछ उपाय नहीं बनाया, यदि मृत्युसे उस लोकमें परमगति और इहलोकमें कीर्ति मिले तो ऐसी श्रेष्ठ मृत्युको कौन नहीं चाहेगा ॥ ३२ ॥ संसारमें दो प्रकारकी मृत्यु बड़ी कठिन तथा उत्तम मानी गई हैं–एक तो ब्रह्मचिन्तनमें लगकर प्राणोंको जीत देहका त्यागना, अन्य-युद्धभूमिमें सेनाके सम्मुख खड़े हो पीछे पैर नहीं करते हुए प्राण छोड़ना, ये दोनों अप्राप्य मरण हैं ॥ ३३ ॥

भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥ ३० ॥ कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ॥ हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वन् शम्बर मे शृणुध्वम् ॥ ३१ ॥ जातस्य मृत्युध्रुव एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ॥ लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं को नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥ ३२ ॥ द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ यद्ब्रह्मसन्धारणया जितासुः ॥ कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥ ३३ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दशम अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, यों कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। इधर देवताओंने उनके कहनेके अनुसार दधीचिके निकट जाकर उनसे याचन की। देवताओंकी याचना पूरी करनेके लिये वीतराग महातपस्वी दधीचिने अपनी हड्डियाँ देवताओंको दे दीं। विश्वकर्माने उन हड्डियोंको लेकर वज्रका निर्माण किया। उस वज्रको धारणकर इन्द्र बहुत खुश हुए। वे अपनी सेनाओंके साथ युद्धके लिए तैयार हो गये। दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। देवताओंकी प्रबल शक्तिको देखकर जब असुर भागने लगे तो महाधैर्यधारी वृत्रासुर हँसकर धैर्य प्रदान करनेवाले शब्दोंसे उन्हें प्रोत्साहित करने लगा—अरे वीरो, जो पुरुष उत्पन्न हुआ है वह निःसन्देह मरेगा ही क्योंकि इस संसारमें ईश्वरने मृत्युको दूर करनेका कोई उपाय नहीं रचा है। इसलिये इस शरीरसे यदि इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्ग अनायास मिल सके, तो हे वीरो, ऐसी मृत्युको भला कौन नहीं पसन्द करेगा? शास्त्रकारोंने ब्रह्म चिन्तन पूर्वक शरीरका त्याग और रणभूमिमें शरीरका त्याग—इन दोनोंको ही श्रेष्ठ बतलाया है। इसलिये हे वीरो, यह समय फिर न आयेगा। दशम अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ एकादशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ॥ नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥ विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ॥ कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वाऽतप्यत सङ्क्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ॥ तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥

❀ देव विरोधी वृत्रासुरका संग्राममें देवताओं द्वारा अपनी छिन्नभिन्न की गई दैत्य सेनाओंको वीरोचित उपदेश ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा–हे नृप, असुरपति वृत्रासुरके धर्मयुक्त उत्तम वाणी कहनेपर भी कम्पायमान भावसे पलायनकरते दैत्योंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥१॥ हे राजन्, जिनको यथोचित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समय था उन देवोंद्वारा भगाई हुई असुरसेनाको अनाथके सदृश छिन्न-भिन्न होती देख इन्द्रशत्रु वृत्रासुरको क्रोध बढ़ा और अत्यन्त दुःखित हुआ, देवसेनाको उसने अपने पराक्रमबलसे हटाकर तिरस्कृत वाणीमें कहा ॥२,३॥ अरे, माताके पुरीषतुल्य निकले तथा युद्धस्थलके पलायनवाले इन असुरोंकी पीठपर मार देनेसे तुमको क्या फल होगा, अपनेको पराक्रमी जाननेवाले जीवोंके लिये कम्पायमानोंकर वध करना प्रशंसनीय, स्वर्गप्रद न होगा ॥ ४ ॥ अतः हे क्षुद्रो, तुम्हारे मनमें यदि युद्ध करनेकी इच्छा तथा साहस हो और विषयभोगकी इच्छा न हो केवल मेरे समीप एकक्षण स्थित रहो ॥५॥ अपने शत्रु देवोंको इसप्रकार अपने भीषण देहसे भयभीत करते हुए उस महाबलवान् असुर अत्युत्कट गर्जा जिससे सब जीवोंकी चेतना शक्ति नाश हो गई ॥६॥ वृत्रासुरके भयंकर सिंहनादसे सब देवता वज्राहतके तुल्य चेतन रहित भूमिपर गिर गये, जैसे मदोन्मत्त यूथपति गजराज नरकटके वनको कुचलता है तद्वत मतवाला रणरंगका

किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ॥ न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥ यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ॥ अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥ एवं सुरगणान् क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून् ॥ व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥ तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ॥ निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥ ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ॥ गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥ विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ॥ चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥ ९ ॥ स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेन्द्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ॥ जघान कुम्भस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥ १० ॥ ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ॥ अपासरद्भिन्नमुखः सहेन्द्रो मुञ्चन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥ ११ ॥ न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुङ्क्त भूयः स गदां महात्मा ॥ इन्द्रोऽमृतस्यन्दिकराभिमर्शवीतव्यथः क्षतवाहोऽवतस्थे ॥ १२ ॥ स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ॥ स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः शोकेन मोहेन

वृत्रासुर हाथमें त्रिशूल ग्रहण लिये अपने पराक्रमसे भूमिको कँपायमान करता हुआ भयसे आँख मूदे गिरी देवसेनाको पैरोंसे कुचलने लगा ॥ ७,८॥ यह धृष्टता उसकी देख इन्द्रने बहुत क्रोधयुक्त हो अपनी तरफ आते हुए अरि वृत्रासुरपर भयंकर गदाका प्रहार किया, उस भारी गदाको वृत्रासुरने अपने ऊपर आती देख उसको खेल लीलासे बायें हाथसे पकड़ लिया ॥९॥ हे राजन्, उस महाबली इन्द्रशत्रुने रणमें अत्यन्त क्रोधित हो अत्युत्कट चिघाड़ करते हुए उस गदासे इन्द्रके वाहन ऐरावतके सिरपर प्रहार किया, सब लोगोंने उसके इसकामकी प्रशंसा की ॥१०॥ वृत्रासुरकी गदासे तथा ऐरावतवज्रसे आहत पर्वत समान व्याकुल हो गया और मुखफट जाने मात्रसे अत्यधिक व्याकुल हो खूनकी उलटी करता हुआ इन्द्रको साथ ग्रहण किये सात धनुप पीछे को हटा ॥११॥ इसप्रकार अपने वाहनके वेहोश हो जानेपर व्याकुल इन्द्रपर तेजस्वी वृत्रासुरने प्रहार न किया, उसी समयमें अपने अमृतवर्षी हाथके छूदनेसे चोटलग जानेपर ऐरावतकी व्यथा शान्तकर देवराज इन्द्र पुनः समरभूमिमें गये ॥१२॥ हे नृप, भ्राता विश्वरूपका हनन करनेवाले असुरशत्रु इन्द्रको युद्धकी रणेच्छासे वज्र लेकर अपने सम्मुख उपस्थित देख उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नीचे पापको स्मरणकर वृत्रासुर दुःख तथा मोहके वशीभूत हो उनसे हँसते हुए बोला ॥१३॥ वृत्रासुरने कहा-अहो, यह बड़े आनन्दकी वार्ता है जो तू ब्रह्महत्यारा, गुरुद्रोही, मेरे भ्राताका हत्याकरनेवाला मेरा शत्रु मेरे समक्ष आज उपस्थित है। ओ महा-अधम, अभी तेरे पाषाण-चित्तको अपने त्रिशूलसे फाड़कर मैं भाईके ऋणसे सर्वदाके लिये ऋणहीन हो जाऊँगा ॥१४॥ स्वर्गकी कामना करनेवाले जन, जैसे याज्ञिक पशुका मस्तक काटते हैं तद्वत् तुमने विश्वासघात कर विप्रवंशमें उत्पन्न, गुरु, आत्मज्ञानो, निर्दोष और यज्ञकर्ममें दीक्षित हमारे बड़े भ्राताके सिर काट लिये हैं ॥ १५ ॥ तेरेको लज्जा, लक्ष्मी, दया, कीर्ति, आदि त्याग चुकी, इस दुष्टकार्यको देख जीवभक्षी राक्षस भी तुम्हारी निन्दा, कर रहे हैं, अब मेरे त्रिशूलद्वारा बड़े कष्टसे इधर उधर हुए तेरे शरीरको गिद्ध भक्षण करेंगे इसका अग्निको स्पर्श भी न होगा ॥१६॥ जो मूढ देवता तेरे ऐसे महाक्रूरका साथ देते हुए मेरेपर नाना प्रकारके शस्त्रायुधको ग्रहणकर

हसन् जगाद ॥ १३ ॥ वृत्र उवाच ॥ दिष्टया भवान्मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ॥ दिष्टयाऽनृणोऽद्याहमसत्तम त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाऽचिरात् ॥ १४ ॥ यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ॥ विश्रम्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत्पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः ॥ १५ ॥ ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ॥ कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥ १६ ॥ अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ॥ तैर्भूतनाथान्सगणान्निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥ १७ ॥ अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ॥ तत्रानृणो भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥ १८ ॥ सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ॥ मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥ १९ ॥ न ह्येष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ॥ तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥ २० ॥ अहं समाधाय मनो यथाह सङ्कर्षणस्तच्चरणारविन्दे ॥ त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥ २१ ॥ पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां याः संपदो दिवि

मरते हैं, उन पशुओंके गले अपने पैने त्रिशूलसे नष्टकर उनसे भैरवादि गणोंके सहित भगवान् भूतनाथका अर्चन करूँगा ॥ १७ ॥ इससे उलटी इस रणभूमिमें यदि मेरे दलको हराकर तुमनेही अपने वज्रसे मेरा मस्तक काटा तो मैं कर्मपाशसे मुक्त हो जाऊँगा, तथा सब जीवोंको अपने शरीरकी बलि समर्पणकर धैर्यशालीजीवोंका पद प्राप्त करूँगा ॥ १८ ॥ हे देवराज, अपने पास डटे हुए मुझ शत्रुपर तुम अपना अव्यर्थ वज्र क्यों नहीं चलाते, तुम यह नहीं विचारना कि दरिद्र जीवके समक्ष हाथ फैलाकर की हुई याचनाके तुल्य तुम्हारे गदाके तुल्य वज्र भी कहीं व्यर्थ न हो ॥ १९ ॥ हे इन्द्र, यह वज्र भगवान्के तेज और महर्षि दधीचिके तपोयोगका तेजपुञ्ज है, भगवान् विष्णुने ही तेरेको वह कार्य सुपुर्द किया, इससे अपने अरिको मारिये। जिधर विष्णु हैं, उधरही विजय, लक्ष्मी और सब गुण विराजमान रहते हैं ॥ २० ॥ जैसा मुझको भगवान् सङ्कर्षणने आदेश दिया, तद्वत् श्री चरणकमलोंमें उनके चित्तको लगा तेरे वज्रत्वरासे अपना कार्यबन्धन नष्ट हो जानेसे देह छोड़नेपर योगियोंकी गति प्राप्त करूँगा ॥२१॥ जो जीव ईश्वरमें अनन्य भक्तिसे प्रेम करते हैं वे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके भक्त कहे जाते हैं, उनको स्वर्ग, भूमि, रसातल, कहींसे भी ऐश्वर्य कोई नहीं देता। क्योंकि भक्तजनोंको ऐश्वर्यसे द्वेष, उद्वेग, मानसिक व्यथा, अभिमान, कलह, व्यसन, श्रम आदि ही प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ हे शक्र, अपने सेवकसे मेरे स्वामी त्रैवर्गिकसम्बन्धीयोग नहीं कराते हैं यह भगवानकी ही दया है। परन्तु अपहाय भक्तजनोंको हो मिलने योग्य यह भगवत्कृपा दूसरे जीवोंको बहुत कठिन है ॥ २३ ॥ वृत्रासुर अब भगवान्से निवेदन करता हुआ बोला—हे हरे, जो आपके चरणोंके हो संलग्न बसते हैं मैं उन आपके दासानुदास निरन्तर बन सकूँ। मेरा चित्त, आपके गुणोंका ही चिन्तन करे, आपहीका मेरी वाणी गुण गावे तथा देह भी काम करे ॥ २४ ॥ हे नाथ, आपसे अलग होकर स्वर्ग, ब्रह्मपद, सार्वभौमराज्य, रसाधिपत्य सत्ता, योगसिद्धि, मोक्षादि किसीकी भी इच्छा नहीं है ॥ २५ ॥ अरविन्दाक्ष, जिनके पांख नहीं होते वे पक्षिबालक अपनी माताका जैसे आसरा देखते हैं, वैसे क्षुधासे व्यथित माताका दूध पानकरनेको लालायित रहते हैं, जैसे कोई विरहसे दुःखित प्रियासी अपने परदेशी प्रियका राह देखती है, वैसेही मेरा चित्त आपको

भूमौ रसायाम् ॥ न रानि यद्द्वेष उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥ २२ ॥ त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ॥ ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः ॥ २३ ॥ अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ॥ मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥ २४ ॥ २४ ॥ न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥ २५ ॥ अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ॥ प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ २६ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥ त्वन्माययात्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

देखना चाहता है ॥ २६ ॥ हे भगवन्, स्वकर्मवश मुझे यदि संसारचक्रमें भ्रमण करना पड़े तो सदा शुद्ध कीर्तियुक्त आप ईश्वरके भक्तोंमें ही मेरा प्रेम बना रहे। विश्वको मोह करनेवाले आपकी मायासे मुग्ध हो पुत्र, स्त्री, गृह, आदिमें संलग्न रहनेवाले संसारस्थ जीवोंमें मेरा कभी भी प्रेम न हो ॥ २७ ॥

ग्यारहवें अध्यायका सार—हे राजन्, उस वीर अपने स्वामी का कथन दैत्योंने नहीं सुना देवताओं द्वारा भगाई जा रही अपनी सेना को देखकर उस वीरने कहा—हे क्षुद्रो, संग्रामसे भागे हुए दैत्योंके पीछे दौड़कर उन्हें मारनेसे ही तुम्हें कौनसा फल मिलेगा? अपनेको वीर समझने वाले हे देवताओ, यदि तुम्हारे हृदयमें धीरज हो, तुम्हारी भुजाओंमें ताकत हो, तो क्षणभर केलिए मेरे सामने आकर डट जाओ। तदनन्तर मदोन्मत वीर वह वृत्रासुर अकेलेही देवताओंकी सेनाको कुचलने लगा। अपनी कुचली जारही सेनाको देखकर इन्द्रने अपनी भारी गदा फेंकी, लेकिन उसवीरने वह गदा अपने बायें हाथमें पकड़ ली। हे राजन्, उसके बाद उस वीर वृत्रासुरने उसी गदासे ऐरावतके गण्डस्थलपर प्रहार किया, उसके इसके इस कार्यकी सारी दुनियाँ ने प्रशंसा की इन्द्रके ऊपर प्रहार न कर रहा वह पराक्रमियोंसे निडर होकर कहने लगा—हे ब्रह्मघातिन्, हे मघवन्, बड़े संयोग से आज मेरे सामने आगये हो। अब अपनी बाकी करतूतोंका फल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शीघ्र पालो अथवा मुझेही इस रणभूमिमें मारडालो। हे सुरेश्वर, मैं तुम्हारा शत्रु सामने खड़ा हूँ, फिर तुम अपने अमोघ वज्रको मेरे ऊपर क्यों नहीं छोड़ते? अरे मूर्ख, देरी क्यों करते हो? तुम्हारे समान कृपण सायदही कोई इस संसारमें मिलेगा, अरे छोड़ो तो सही, अब इसको कब छोड़ोगे, किस दिनके लिये बचा रखा है। अरे इन्द्र, मेरे लिये सोच न करो, मैं अपने स्वामीके कथनानुसार उनके चरणमें अपना मन लगा कर तुम्हारे वज्रसे विषयभोग रूपी फाँसी के कट जाने पर यह पार्थिव शरीर छोड़कर योगियों द्वारा फिर मोक्ष पदवी को प्राप्त हो जाऊँगा। यों इन्द्र से अपना अभिप्राय कहकर उसने भगवान्की, इस तरह प्रार्थनाकी —हे भक्तवत्सल, हेरमारमण, मेरे इस असुर शरीर को शीघ्र हटा दो, हे गोविन्द, हे अरविन्दाक्ष, भगवन्, भक्ति से ओतप्रोत मेरा मन प्रत्येक जन्म में तुह्माराही भजन करे। रमानाथ, अब कृपा करो, देरी मत लगावो। ग्यारहवां अध्याय समाप्त ❀

❀ दैत्यपति वृत्रासुरका स्वर्गाधिपति इन्द्रद्वारा हनन—यह वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन, मृत्युकोही विजयकी अपेक्षा श्रेष्ठ माननेवाला वृत्रासुर युद्धमें अपने देहको त्यागनेकी अभिलाषासे त्रिशूलको ग्रहणकर इसतरह इन्द्रकी तरफ दौड़ा-जैसे-प्रलयसमयमें

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

ऋषिरुवाच ॥ एवं चिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ॥ शूलं प्रगृह्याभ्यपतत्सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥ ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसासुरेन्द्रः ॥ क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥ ख आपतत्तद्विचलद्ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ॥ वज्रेण वज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥३॥ छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ॥ हनौ तताडेन्द्रमथामरेभं वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥ वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्सुरासुराश्चारणसिद्धसङ्घाः ॥ अपूजयंस्तत्पुरुहूतसङ्कटं निरीक्ष्य हाहेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥५॥ इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ॥ तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥ युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां जयस्तदैकत्र न वै परात्मनाम् ॥ विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं

पानीमें भगवान्की तरफ कैटभासुर दौड़ा था ॥ १ ॥ उस वीर दैत्यने प्रलयाग्निके तुल्य अपनी पैनी नोंकोंवाला त्रिशूल अत्युत्कट त्वराके साथ इन्द्रपर गिरा बड़े क्रोधसे गर्जता हुआ बोला—ओ पापी, अब तुम मरे ॥ २ ॥ भ्रमण करते हुए ग्रह और उल्काके सदृश उस दुर्दर्श त्रिशूलको आकाशसे अपनी तरफ आता जान इन्द्रने धैर्यसे उसको तथा उसके साथ नागराजके तुल्य वृत्रासुरकी लम्बी भुजाको शतपर्वा अपने वज्रसे नष्टकर पृथक् की ॥ ३ ॥ एक बाहुके नष्टहो जानेसे वृत्रासुर भयंकर क्रोधित हो वज्रधर इन्द्रकी ठोड़ीमें और गजराज ऐरावतपर परिघसे हनन किया जिससे इन्द्रके हाथसे वह वज्र भी गिरा ॥ ४ ॥ उस वीर वृत्रासुरके अत्यद्भुतकामकी देवता, असुर, चारण, सिद्धगण आदिने स्तुतिकर इन्द्रके ऊपर महान् कष्टको आता देख वे सब खूब हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ पर अपने हाथसे गिरकर शत्रुके समीप गिरे हुए उस वज्रको इन्द्रने मारे शर्मसे पुनः नहीं उठाया–वृत्रासुरने उसको कहा—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे इन्द्र, अपना वज्र उठाकर तुम अपने अरिको मारो यह दुःखका काल नहीं है ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, लय, काम कुशल, सर्वज्ञ, सनातन आदि पुरुषके विना दूसरा देहाभिमानी, युद्धोत्सुक, निर्दयियोंको सर्वदा विजय नहीं ही मिलती, वे कभी विजयी होते हैं, कभी पराजित भी होते हैं ॥ ७ ॥ सब लोकपालोंके साथ ये सब लोकफाँसमें फँसे जीवोंके तुल्य परवशतासे जिनके आधीन रहकर काम करते हैं, वह समयही वास्तवमें इस संसारमें विजय तथा हारका मूल हेतु है ॥ ८ ॥ समयही जीवके मनोबल, इन्द्रिय-देहबल प्राण, जीवन, मृत्यु स्वरूपमें स्थित रहता है। उसको न समझनेसे ही जीव अपने जड़देहको जीत-हार आदिका हेतु जानता है ॥ ९ ॥ हेइन्द्र, लकड़ीका पुतली और यन्त्र-प्रेरित हरिणतुल्य तुम सब जीवोंको भगवान्के अधीन जानिये ॥ १० ॥ उसके बिना पुरुष, प्रकृति, महतत्व, अहंकार, पञ्चभूत, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण, इनमेंसे अन्य इस संसारकी उत्पत्ति

सनातनम् ॥ ७ ॥ लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे ॥ द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥ ८ ॥ ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ॥ तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥ ९ ॥ यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ॥ एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥ १० ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः ॥ शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात् ॥ ११ ॥ अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ॥ भूतैः सृजति भूतानि ग्रसत तानि तैः स्वयम् ॥ १२ ॥ आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुस्य याः ॥ भवन्त्येव हि तत्काले यथाऽनिच्छोर्विपर्ययाः ॥ १३ ॥ तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ॥ समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥१४॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥१५॥ पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे ॥ घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥१६॥ प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ॥ अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ॥ गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥१८॥ इन्द्र उवाच ॥ अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरी-

आदिके काममें योग्य नहीं हो जाते ॥ ११ ॥ जो भगवान्के नियामकत्वगुणको नहीं पहचानता, वह जीव इस आधीन प्राणीको स्वतन्त्र मानता है। सत्य तो भगवान्ही सब जीवोंके द्वारा प्राणियोंकी उत्पत्ति करते तथा उनके द्वारा जीवोंका नाश करते ॥ १२ ॥ हे इन्द्र, अभिलाषा न होने पर भी जैसे कालके उलटी चालसे प्राणको मृत्यु, दोष आदि मिलते हैं, वैसेही अनुकूलयता उसकी होनेपर आयु, लक्ष्मी, यश, सम्पत्ति आदि भोग भी उसको सरल होते हैं ॥ १२ ॥ अतः यश, निन्दा, विजय, हार, शुभ, दुःख जीवन-मरणमें भी एकतासे सर्वदा रहना मनोहर है ॥१४॥ सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण आत्माके न मानकर प्रकृतिके माने जाते हैं, अतः जो जीव उनका साक्षी अपनीही आत्माको जानता है वह उनके गुणदोषसे नहीं पकड़ा जाता ॥ १५ ॥ हे इन्द्र, मुझकोही देखिये तुमने मेरा हाथ और शस्त्र नष्टकर हराया फिरभी मैं यथाशक्ति तुम्हारे प्राण लेनेका उद्योग कर रहा हूँ ॥१६॥ द्युतका युद्ध क्रोडा है, इसमें बाजी प्राणकी लगती है बाण, सावाहन आदि होते हैं। इस युद्धमें अमुककी जीत अमुककी हार होगी यह निश्चय नहीं जाना जा सकता ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

हे राजन्, वृत्रासुरके वञ्चनारहित वाक्योंको सुन इन्द्रने चित्त हीमें उसकी इज्जतकर अपना वज्र उठाकर मोहरहित हो इसप्रकार स्तुति करते हुए कहा ॥१८॥ इन्द्रने कहा–हे दानव, तुम कोई निश्चित सिद्ध हो, तबही ऐसी बुद्धि हुई। तुमने अपने पूर्वजन्ममें सब प्राणियोंके आत्मा और सुहृद जगदीश्वरकी उपासना की है ॥ १९ ॥ तुम निश्चित भगवान् विष्णुको विश्वको मोहरूपी माया पारकर लिया। अतः तुम आसुरी रूप छोड़ उत्तम प्राणियोंके सुन्दर रूपको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ बड़े विस्मयकी वार्ता यह है रजोगुण प्रकृति होकर भी सत्त्वरूप भगवान् वासुदेवमें तेरी बुद्धि स्थिरतासे जम गई ॥ २१ ॥ जिसका प्रेम भगवान्में है, अमृतरूपी समुद्रमें आनन्द करनेवाले उस महापुरुषको कामनोपस्वरूपी अल्प गर्तोंके पानीका क्या प्रयोजन होगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हेराजन, इसतरह धर्मजिज्ञासासे बातचीत करते हुए समरभूमिके मालिक परमवीर इन्द्र और वृत्रासुरका आपसमें युद्ध होने लगा ॥२३॥

दृशी ॥ भक्तः सर्वात्मनात्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥ १९ ॥ भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ॥ यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां
गतः ॥ २० ॥ खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजः प्रकृतेस्तव ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥ २१ ॥ यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसे
श्वरे ॥ विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ॥ युयुधाते महावीर्या-
विन्द्रवृत्रौ युधां पती ॥ २३ ॥ आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिन्दमः ॥ इन्द्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष ॥ २४ ॥ स तु वृत्रस्य
परिघं करं च करभोपमम् ॥ चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥ दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः ॥ छिन्नपक्षो यथा गोत्रः
खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥ २६ ॥ कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ॥ नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥ २७ ॥ दंष्ट्राभिः
कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत् त्रयम् ॥ अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥ २८ ॥ गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन्महीम् ॥
जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सह वाहनम् ॥ २९ ॥ महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ॥ वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ॥३०॥

हे राजन्, वृत्रासुरने एक भयंकर लोहेके परिघको अपने बाँयें हाथसे चक्कर देते हुए इन्द्रपर चलाया ॥ २४ ॥ किन्तु उसके स्पर्शके पूर्वही देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका वह परिघ तथा हाथीके सूँड़की तुल्य उसकी स्थूल भुजा शतपर्वा वज्रसे एक संगही नष्ट किया ॥२५॥ इसप्रकार जड़से नष्ट दोनों भुजाओंके मूलसे खून बहता हुआ जिससे वह असुर ऐसा प्रतीत होता था जैसे इन्द्र वज्रप्रहारसे पर्वत भूमिपर गिर गया हो ॥ २६ ॥ पैरोंसे गमन करनेवाले पर्वतराजके सदृश उस भयङ्कर दीर्घशरीरवाले असुरने अपनी ठोड़ीको भूमिसे और ऊपरके ओंठको स्वर्गसे मिला आकाशके तुल्य गम्भीर मुख, नागके तुल्य भयंकर जिह्वा तथा कालके तुल्य विकराल दाढ़ोंसे त्रिलोकीको जैसे ग्रसता हुआ अपने पैरकी मारसे भूमिको कँपायमान करता और भयंकर त्वरासे पर्वतोंको इतस्ततः करता हुआ इन्द्रके समीप जा उनके वाहन ऐरावतके सहित इसप्रकार निगल गया, जैसे कोई बड़ा बली और अत्युत्कट पराक्रमी अजगर हाथीको निगले, इसप्रकार इन्द्रको वृत्रासुरके मुखमें गिरा देख प्रजापति तथा महर्षियोंके सहित सब देवता अत्यन्त पीड़ित हो हा कष्ट ! ऐसा कहकर दुःखित हो चिल्लाने लगे ॥ २७-३० ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परन्तु विष्णुकी योगमायाके बलसे रक्षित असुरपति वृत्रासुरके निगलजानेपर उसके उदरमें जाकर भी नहीं मरे ॥ ३१ ॥ सामर्थ्यशाली इन्द्र वज्रसे उसका उदर चीरकर बाहर निकल आए बड़े तेजसे उन्होंने अपने अरिका पर्वतशिखरतुल्य ऊँचा सिर नष्टकर दिया ॥ ३२ ॥ सूर्य ग्रहणोंका दक्षिणायन उत्तरायण रूपचालमें जितना काल लग जाता है, उतने दिन यानी छः महीनेमें असुरका हनन योग प्राप्त होनेपर उन भयंकर वेगवाले वज्रने उसके सिरको सब तरफ भ्रमणकर हनन करते हुए पृथ्वीपर गिराया ॥ ३३ ॥ तो आकाशमें नगारे बजने लगे तथा महर्षिजनोंके साथ सिद्ध गन्धर्व, वृत्रासुरको मारनेवाला इन्द्रबलप्रकाशकमन्त्रोंसे ध्यानकर प्रसन्न हो उनपर पुष्पकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रुदमन राजन्, वृत्रासुरके देहसे प्रादुर्भूत आत्मज्योति सब जनोंके सामने सर्वलोकातीत भगवान्‌रूपमें जाकर मिली ॥ ३५ ॥

हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥ निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥ ३१ ॥ भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः ॥ उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥ ३२ ॥ वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः कृन्तन्समन्तात्परिवर्तमानः ॥ न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥ ३३ ॥ तदा च खे दुन्दुभयो विनेदुर्गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसङ्घाः ॥ वार्त्रघ्नलिङ्गैस्तमभिष्टुवाना मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥ ३४ ॥ वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम ॥ पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

बारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, यों कहकर उस वीर वृत्रासुरने अपने तीक्ष्ण त्रिशूलसे इन्द्रके ऊपर प्रहार किया। धैर्यधारी इन्द्रने उसके त्रिशूलको छिन्न-भिन्न करते हुए भगवान् शेषनागकी तरह भयंकर उसकी एक भुजा काट डाली। इसके बाद क्रोधमें भरे हुए वृत्रासुरने इन्द्रके निकट जाकर अपना परिघ नामक अस्त्र छोड़ा, जिससे इन्द्रके साथसे वज्र छूटकर जमीनपर गिरपड़ा। उस समय देव, असुर, सिद्ध आदि सबके सब उस वीरकी प्रशंसा करने लगे। लज्जाके कारण जब इन्द्र अपने वज्रको उठाने में संकोच करने लगे तब फिर उस वीरने अपनी सारी व्यथा भूलकर हँसते हुए इन्द्रको प्रोत्साहित किया। तदनन्तर परिघनामक अस्त्रसे युक्त उस वृत्रासुरकी बायीं भुजा इन्द्रने अपने उस सौपर्ववाले वज्रसे काट डाली। अपने पैरसे पृथ्वीको कम्पितकर रहे वृत्रासुरने अपने सामने खड़े हुए इन्द्रको उनके वाहन ऐरावतके साथ-साथ निगल गया। सारे संसारमें हाहाकार मच गया। लेकिन श्रीनारायणकवचसे सुरक्षित इन्द्र उसका पेट फाड़कर बाहर निकल आये। तदनन्तर अपने अमोघ वज्रसे इन्द्रने अपने शत्रु वृत्रासुरका सिर काट दिया। हे राजन्, उस समय स्वर्गमें दुन्दुभी बजने लगी। देवताओंने इन्द्रकी स्तुति करते हुए फूलोंकी वर्षा की। हे राजन्, वृत्रासुरके शरीरसे निकला हुआ वह तेज सबके देखते-देखते भगवान्‌के स्वरूपमें जाकर मिल गया।

बारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा-हे दानशिरोमणि राजा परीक्षित्, वृत्रासुरके हननहो जानेसे इन्द्रके विना लोकपाल सहित तीनों लोक दुःख शून्य हुए सानन्द मग्नहो गये ॥ १ ॥ वह रण समाप्त होनेसे देवता, ऋषि, पितृगण, असुर देवोंके नौकर, ब्रह्म, महादेव, इन्द्रादि लोकपाल, अपने अपने नगर गये ॥ २ ॥ यह वार्ता सुन राजा परीक्षित्ने पूछा—हे महामुने, इन्द्रके असन्तुष्टताका निमित्त जाननेकी बड़ी उत्कट मेरी इच्छा है, जिस वृत्रासुर के हननसे देवगण आनन्दित हुए पर उससे इन्द्र क्यों दुःखित हुए ॥३॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-हेराजन्, वृत्रासुरके बलकी पीड़ाको प्राप्त देवता, महर्षिगणोंने उसको मारनेके लिए प्रार्थनाकी तब ब्रह्महत्याके डरसे इन्द्रको उसके वध करनेकी अभिलाषा न हुई ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा-हे देवताओ, उस

❀ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ॥ सपाला ह्यभवन्सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियाः ॥ १ ॥ देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ॥ प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ येनासन्सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ॥ विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व मार्ज्म्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ॥ याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥ हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ॥ इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥ ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाघवान् ॥ श्वादः पुल्कसको वापि शुध्येरन्यस्य कीर्तनात् ॥ ८ ॥ तमश्वमेधेन महामखेन श्रद्धान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ॥ हत्वापि स ब्रह्म चराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सञ्चोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ॥ ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥ १० ॥ तयेन्द्रः स्मासहत्तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ॥ ह्रीमन्तं वाच्यतां

समय विश्वरूपका हनन करनेसे मेरेको जो ब्रह्महत्या लगी वह तो स्त्री, भूमि, जल, वृक्षोंने दयाकर ग्रहण किया । अब वृत्रासुरहत्यासे किस प्रकार मैं मुक्त होऊँगा ॥५॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-यह वार्ता श्रवणकर इन्द्रसे महर्षियोंने कहा—हे देवराज, इससे तुम मत डर तेरा सब प्रकारसे मङ्गल होगा हम तेरे द्वारा भगवान्का अश्वमेधयज्ञसे पूजन करेंगे ॥६॥ उस अश्वमेधयज्ञसे ईश्वर नारायणदेवकी स्तुति करनेमात्रसे सम्पूर्ण विश्वकी भी हत्यापापसे तुम मुक्त हो जाओगे ॥७॥ जिनके नामकीर्तनको करनेसे ब्राह्मण, पिता, गौ, माता, आचार्यके मारनेवाले उत्कट उत्कट पापी तथा श्वानोंका मांस भक्षण करनेवाले चाण्डाल या पुल्कस आदि दुष्ट भी शीघ्र पवित्र हो जाते हैं ॥८॥ हमारे द्वारा महायज्ञानुष्ठानसे श्रद्धा द्वारा भगवान्का यज्ञकर ब्रह्मा सहित तुम सब चर अचर संसारको हननकर भी पापसे संलग्न नहीं हो सकते तो क्यों इस नीचका हनन करनेमात्रसे लिप्त होंगे ॥९॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-इस तरह उन ब्राह्मणोंके प्रोत्साहित करने मात्रसे इन्द्रने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवोंके शत्रु वृत्रासुरको मारा। उसके मृत होनेसे इन्द्रपर ब्रह्महत्या चढ़ी ॥ १० ॥ उस निमित्त इन्द्र बहुत दुःखी हुए। तबसे उनको कुछ भी आराम न मिला, क्योंकि यदि किसी लज्जाशील व्यक्तिका अपयश हो जाय तो धैर्य-आदि गुण भी उसके साथ नहीं रहते ॥ ११ ॥ जब इन्द्रने देखा कि ब्रह्महत्या साक्षात् चाण्डालिनीके तुल्य पीछे-पीछे आ रही है। उसका क्षयग्रस्त देह वृद्धावस्थाके कारण कँपायमान हो रहा है उसके कपड़े रुधिरसंन्नद्ध हो गये हैं ॥१२॥ अपने मस्तकके पके तथा फैले हुए बालवाली वह ठहर ठहर कह चिल्ला रही है उसके श्वांससे मत्स्यके तुल्य दुर्गन्ध आ रही है जिस कारण वह मार्ग भ्रष्ट हो रहा है ॥ १३ ॥ हे राजन्, उसके दुःखसे इन्द्रने आकाश, दसों दिशाओंमें पलायन करते थककर स्थित मानससरोवर पूर्व तथा उत्तरके कोनेमें प्रवेश किया ॥ १४ ॥ वहाँपर उस डरावनी ब्रह्महत्यासे मुक्त होनेका विचार करते करते वे एक हजारवर्षतक कमलकी डंडीके तन्तुओंमें गुप्त रहे। इतने दिनतक उनको कुछ भी चैन न प्राप्त हुआ, क्यों कि सुखके साधन को अग्नि जलमें पहुँचानेवाला दूत जा ही नहीं सकता ॥१५॥ जबतक इन्द्र उस मानसरोवरमें गुप्तरूपसे रहे तबतक विद्या

प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥ ११ ॥ तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ॥ जरया वेपमानाङ्गीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥ १२ ॥
विकीर्य पलितान्केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ॥ मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥१३॥ नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशांपते ॥
प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥ १४ ॥ स आवसत्पुष्करनालतन्तूनलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ॥ वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः
स चिन्तयन् ब्रह्मवधाद्विमोक्षम् ॥ १५ ॥ तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास विद्यातपोयोगबलानुभावः ॥ स संपदैश्वर्यमदान्धबुद्धिर्नीतस्तिरश्चां
गतिमिन्द्रपत्न्या* ॥१६॥ ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतंभरध्याननिवारिताघः ॥ पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

तप, योग, बल, तेजसे सम्पन्न राजा नहुषने स्वर्गका शासन किया, पर धन और मदोन्मत्तासे बुद्धि नष्ट होनेसे वे इन्द्राणी द्वारा नीच योनिमें जा पहुँचा। इसपर इन्द्राणीने देवगुरु बृहस्पतिकी सलाह से कह दिया कि यदि तुम द्विजोंसे संसेवित पालकी पर चढ़कर आओगे तो मैं तुमको ग्रहण कर सकती हूँ। उस मन्दमतिने वैसाही किया, जलदी चलनेको कहते हुए पालकीमें लगे अगस्त्य ऋषिको लात से स्पर्शकर शीघ्र सर्प-सर्प—ऐसी आज्ञा प्रदान की। ऋषिने इसपर क्रोधित हो उसको शाप दिया कि तुम सर्प हो जाओ। उसी समय वह सांपहो स्वर्गसे भूमिमें आ गया ॥१६॥ तदनन्तर जब सत्यरक्षक हरिकी स्तुति करनेसे सब पाप इन्द्रका नाश हो गया। वे द्विजोंके वाक्यसे आह्वान हो जानेपर पुनः स्वर्गलोक गये। मानसरोवरमें रहनेवाली श्रीलक्ष्मी इन्द्रका पालन करती थीं इसलिये प्रथम भी उस दिशाके देव रुद्रकी दृष्टिसे तेजहीन होकर वह पाप उनकी अवहेलना नहीं करता था ॥१७॥ हे भारत, उन ब्रह्मर्षियोने जाकर

* दृष्टान्त—इन्द्र के पलायन हो जाने बाद राजा नहुष ने इन्द्रणी से कहा 'आज से तुम मेरी पत्नी हो' यों सुन उसने विचारा मेरा पतिव्रतधर्म रहना नहीं दिखता। यह विचार बृहस्पति को बुलाकर उसने सारी कहानी सुना दी। उन्होंने कहा—राजा नहुष से कहो आप अपनी पालकी ऋषिमुनियों से उठवाकर मेरे पास जब आवोगे तब ही मैं आपकी पत्नी होना स्वीकार करूँगी। यों सुन उस नीच ने वही किया जिससे अगस्त्य ऋषि द्वारा सर्पयोनिमें रहना पड़ा। और इन्द्राणी की रक्षा भी हुई ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन्द्रको भगवान् पुरुषोत्तमकी आराधनासे अश्वमेधयज्ञकी दीक्षा दी ॥ १८ ॥ हे राजन्, उन वेदवादी मुनियोंसे अश्वमेधयज्ञानुष्ठानसे इन्द्रने सर्ववेदमय ईश्वर पुरुषोत्तमका यजन किया तो उससे वृत्रहननसे उत्पत्स्यमान इसप्रकार बड़ी पापराशि नष्ट हो गई। जैसे-सूर्योदय होतेही ओस नष्ट हो जाती है ॥१९,२०॥ इसप्रकार मरीचि आदि मुनीश्वरोंसे इसमें विधिवत् हुए अश्वमेधयज्ञद्वारा पुराणपुरुष श्रीभगवान् यज्ञका यजनकर पापरहित हो इन्द्र प्रथम हीके तुल्य अर्चनीय हो गये ॥२१॥ हे राजन्, यह महाख्यान सब पापोंको नाश करता है। तीर्थवाद हरिका कीर्तन तथा भक्तगणोंकी भक्तिको बढ़ानेवाला चरित कीर्तन किया है और इन्द्रविजय तथा ब्रह्महत्यासे मुक्त होनेकी कथा भी कही गयी है ॥२२॥ बुद्धिशाली जनोंको उचित है कि सदा इन्द्र सम्बन्धी कथा कहें विशेषकर पर्व पर्वमें इसको निश्चित ही श्रवण करें। क्योंकि यह धन, यशको बढ़ाता, सब पापोंको दूरकर अरियोंपर विजयको कराता, परम कल्याणको देता तथा आयुकी वृद्धि करता है ॥ २३ ॥

तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ॥ यथावदीक्षयाञ्चक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥ १८ ॥ अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ॥ अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥ १९ ॥ स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ॥ नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥ २० ॥ स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ॥ इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराणमिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥ २१ ॥ इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ॥ भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥ २२ ॥ पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ॥ धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथायुषम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

तेरहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, वृत्रासुरके वधसे सारे संसारको सुख मिला। देवताओं द्वारा दुःखका कारण पूछे जानेपर इन्द्रने कहा—हे देवताओ, विश्वरूप के वधसे उत्पन्न हुए अपने पातकको तो स्त्री, भूमि, जल और वृक्षोंमें बाँट दिया, किन्तु तुमलोग बतलाओ तो भला अब इस वृत्रासुरके वधसे उत्पन्न हुए पातकको कहाँ पहुँचाऊँ ? देवताओंने कहा—हे इन्द्र, डरनेकी बात नहीं; अश्वमेधयज्ञके द्वारा नारायणका पूजनकर तुम सारे विश्वके वधसे उत्पन्न हुए पातकको नष्टकर दोगे। हे राजन, इतनेहीमें वृत्रासुरके वधसे उत्पन्न हुई ब्रह्महत्या मूर्तिमती बनकर इन्द्रके पास पहुँची। वृद्धावस्थाके कारण वह काँप रही थी। उसके कपड़े रक्तसे आर्द्र थे। उसके सिरके बाल खुले थे। उसके शरीरसे दुर्गन्ध आ रही थी। इन्द्रके पीछे-पीछे दौड़ी आ रही उसने कहा—खड़े रहो खड़े रहो, खड़े रहो। इन्द्रको भागते-भागते जब कहीं शरण न मिली, तब वह मानसरोवरके ईशानकोणमें जाकर छिप गया। वहाँ उसे हजारों वर्ष बीत गये। देवताओंने इन्द्रके सिंहासनपर राजा नहुषको अभिषेक कर दिया। स्वर्गका राज्य कर रहे नहुषकी बुद्धि नष्ट हो गई। उसकी विवेकशून्यता देखकर बृहस्पतिकी सलाहसे उपाय करके उसे सर्पकी योनिमें भेज दिया। तदनन्तर महर्षियोंने इन्द्रको मानसरोवरसे बुलाकर अश्वमेधयज्ञ कराया उससे इन्द्रको जो वृत्रासुरके वधसे उत्पन्न पातक लगा था, सो नष्ट हो गया। वे इन्द्रयज्ञपति भगवान् नारायणकी अश्वमेधके द्वारा आराधना करके पापसे निर्मुक्त हो गये। तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजीसे पूछा—हे ब्रह्मन्, उस रजोगुणी, तमोगुणी और स्वभाववाले बड़े पापी वृत्रासुरकी नारायणमें इसप्रकार निश्चित बुद्धि क्यों हुई ॥ १ ॥ उन प्रायशः भगवान् मुकुन्द चरणोंमें तो पवित्र सतोगुणी देवता और शुद्ध मनवाले मुनिगणोंका भी प्रेम शीघ्र नहीं होने पाता ॥ २ ॥ इसलोकमें जितने भूमिके रजकण हैं उतने ही प्राणियोंकी संख्या है, उनमेंसे भी जीव आदि कुछ प्राणी ही अपने मंगलार्थ परिश्रम करते हैं ॥ ३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ, उन जीवोंमें भी लोकसे छुटकारा पानेके इच्छुक तो कुछ ही जन होते हैं, तथा विरले ही मनुष्य उन हजारों मुमुक्षुओंमें भी मोक्ष या सिद्धिफल पाते हैं ॥४॥ हे महामुने, उन करोड़ों सिद्ध और मुक्त जीवोंमें भगवत्परायण तथा शान्तमन महापुरुषका प्राप्त होना

❀ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❀

परीक्षिदुवाच ॥ रजस्तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ॥ नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥ १ ॥ देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ॥ भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥ २ ॥ रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ॥ तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥ प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ॥ मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥ ४ ॥ मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ॥ सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ॥ ५ ॥ इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत्सङ्ग्राम उल्बणे ॥ ६ ॥ अत्र नः संशयो भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो ॥ यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत्❀ ॥७॥ सूत उवाच॥ परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान् बादरायणिः ॥ निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा॥ श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥ ९ ॥ आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ॥ चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत्कामधुङ्मही ॥ १० ॥

तो बहुत ही दुर्लभ है ॥ ५ ॥ संसारको दुःखित करनेवाले महापापी वृत्रासुरकी ऐसे भयंकर संग्रामके भगवान् कृष्णमें ऐसी बुद्धि क्यों हुई ॥ ६ ॥ हे प्रभो, इस विषयमें हमको बड़ा विस्मय होता है तथा आपके मुखकमलसे उस वीरके चरित्र श्रवणकी बड़ी इच्छा है, जिसने अपने उद्योगसे युद्धभूमिमें स्थित देवराज इन्द्रको भी राजी किया ॥ ७ ॥ सूतजी शौनक आदिसे बोले—हे मुने, दयालु राजा परीक्षित्‌का उत्तम यह प्रश्न श्रवणकर भगवान् शुकदेवने उसका अभिवादन कर कहा ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, महर्षि द्वैपायन, देवर्षि नारद, देवल-मुखसे श्रवण किया हुआ इस विषयका इतिहास आप तन्मनस्क होकर सुनें ॥९॥ हे राजन्, शूरसेन देशमें सार्वभौम एक राजा रहता था। उनका नाम चित्रकेतु

❀दृष्टान्त—कष्ट में लोग भगवान् को याद करते हैं। इसमें एक इतिहास है कि एक कंजूस धनाढ्य का पुत्र सुबह से गायब हो गया था। वह बड़ा चिन्तित हुआ। इसीबीचमें उसने मनौती मानी। भगवन्, यदि वह घर आ गया तो हम आपकी विशेष पूजा करेगें संयोग वश वह घर में मिल गया। उसने कहा यदि बाहर जाता तो भगवान् की पूजा करना आवश्यकता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

था, उसके राज्यमें जीवमात्रकी सब इच्छायें परिपूर्ण भूमि करती थी ॥१०॥ उसके एक करोड़ पत्नियाँ थीं, वे पुत्र उत्पन्न करनेमें सामर्थ्यवान् थीं, पर उससे उनके कोई पुत्र नहीं हुआ ॥११॥ इसलिये रूप, उदार, आयु, विद्या, ऐश्वर्य, सम्पत्ति आदि सब गुणोंसे सम्पन्न होनेपर भी बन्ध्यापत्नियोंके पति होने से उसको महान् विचार हुआ ॥१२॥ इसकारण सम्पत्ति, स्त्रियाँ सब भूमण्डल राज्य भी उन चित्रकेतुको आनन्दित न कर सका ॥१३॥ एक समयकी वार्ता है अङ्गिरा ऋषि सब लोकोंमें घूमते हुए अपनी इच्छासे उनके यहाँ चले गये ॥१४॥ राजा चित्रकेतुने अभिवादन, अर्घ्य-आदि देकर सविधि उनका अर्चन किया। आतिथ्यसेवा हो जाने पर जब वे आनन्दसे आसनपर विराजमान हुए तो महाराजा चित्रकेतु भी शान्तस्वभावसे उनके पास बैठे ॥१५॥ हे नरपते, इस तरह विशिष्ट विनयसे अपने पास भूमिपर स्थित राजा चित्रकेतुका कथनादि द्वारा सम्मानितकर मुनिराज अङ्गिराने कहा ॥ १६ ॥ मुनि ने कहा—

तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ॥ सान्तानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥ रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः ॥
संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता वन्ध्यापतेरभूत् ॥ १२ ॥ न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ॥ सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन्प्रीतिहेतवः
॥ १३ ॥ तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः ॥ लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥ १४ ॥ तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ॥
कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥ १५ ॥ महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ॥ प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ १६ ॥
अङ्गिरा उवाच ॥ अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथात्मनः ॥ यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ॥ १७ ॥ आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा
निधाय श्रेय आप्नुयात् ॥ राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥ १८ ॥ अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः ॥ पौरा जान-
पदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥ १९ ॥ यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे ॥ लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥ २० ॥
आत्मना प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ॥ लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥ २१ ॥ एवं विकल्पितो राजन्विदुषा मुनिनापि
सः ॥ प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥ २२ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ भगवन्किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ॥ योगिनां ध्वस्तपा-

हे राजन्, जैसे प्राणी महत्तत्व आदि सात प्रकृतिरूप आवरणोंसे ढका रहता है, तथा राजा भी मालिक, मन्त्री, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्ररूपी सात प्रकृतियोंसे घिरा रहता है, सो तुम अपनी प्रकृतियोंके साथ आनन्दसे तो हो ॥ १७ ॥ हे नरदेव, जैसे राजा अपनी प्रकृतियोंके ठीक होने पर ही राज्यानन्द प्राप्त कर सकता है वैसेही प्रकृतियाँ भी अपना सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राजा पर छोड़ सुख और सम्पत्तिका लाभ करती हैं ॥ १८ ॥ हे राजन्, तेरी पत्नियाँ, प्रजा अमात्य, सेवक, व्यापारीजन, मन्त्रिगण, पुरमें रहनेवाले, देशवासी, सामन्तगण, लड़के तेरे आधीन रहते हैं ॥१९॥ वैसे तो अपने वशमें जिसका चित्त होता है उसके वशीभूत सब जन हो जाते हैं, और लोकपाल सहित सबलोग बड़ी सावधानीसे उसको बलि समर्पण करते हैं ॥२०॥ हे महाराज, तुम न जाने क्यों मेरेको स्वयं प्रसन्न नहीं दिखाई देते। तेरा मन चिन्ताके वशीभूत अद्भुतरूप धारण कर रहा है, इससे जाना जाता है कि तेरी कोई इच्छा अपूर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रह गई है ॥२१॥ हे राजन्, इसप्रकार उस मुनिके प्रश्न करने पर अपनी चिन्ताका निमित्त जानते हुए भी पुत्रके चाहनेवाले राजा चित्रकेतुने उनसे विनम्रतासे कहा ॥ २ ॥ चित्रकेतुने कहा—हे भगवन्, जिन योगियोंको सब पापरूपी वासना नाश हो गई, उनका शरीरधारी जीवोंके अन्दर या बाहर की कौन ऐसी चीज अवशिष्ट रह जाती है जो तप, ज्ञान, समाधिद्वारा जानी न जान सके ॥ २३ ॥ क्योंकि आप सब कुछ समझकर मेरेसे जानना चाहते हैं। अतः आपसे प्रेरित होकर आपहीकी आज्ञासे अपने मनकी चिन्ता आपके सामने मैं कहता हूँ ॥ २४ ॥ हे नाथ, जैसे किसी भूख प्यास एवं व्याकुल जीवको अन्न-जलके बिना दूसरे ऐश्वर्य प्रसन्न नहीं कर सकते, वैसेही सन्तानहीन मुझको ये साम्राज्य, ऐश्वर्य, सम्पत्ति जिसको सब लोकपाल भी चाहना करते हैं, वे कुछ भी आनन्द नहीं देते ॥ २५ ॥ हे महाभाग, अपने पूर्वजों सहित अत्युत्कट कष्टमें स्थित मुझ नौकरकी पालना करते हुए ऐसा कोई रास्ता करें जिससे मैं भविष्यतकालमें प्राप्त होनेवाले पुत्रद्वारा उत्तीर्ण कर सकूँ। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ऐसा चित्रकेतुके कथनपर ब्रह्माके लड़के दयाशील भगवान् अङ्गिराने

पानां बहिरन्तःशरीरिषु ॥ २३ ॥ तथापि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिन्तितम् ॥ भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥ २४ ॥ लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसंपदः ॥ न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्काममिवापरे ॥ २५ ॥ ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः ॥ तथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद्विधेहि नः ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ॥ श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥२७॥ ज्येष्ठा ज्येष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ॥ नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद् द्विजः ॥२८॥ अथाह नृपतिं राजन्भवितैकस्तवात्मजः ॥ हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥ २९ ॥ सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ॥ गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्मजम् ॥ ३० ॥ तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥ ३१ अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ॥ जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३२॥ हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥ वाचयित्वाशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥ तेभ्यो

त्वाष्ट्र चरु रांधकर उससे त्वष्टादेवका पूजन कराया ॥२६,२७॥ हे भारत, ऐसा कर उन द्विजराजोंने जो सबसे श्रेष्ठ गुणोंमें भी अत्युत्तम राजा की पत्नियोंमें कृतद्युति नामवाली राजमहिषी थीं, उसने यज्ञावशिष्ट चरु भक्षण कराया ॥ २८ ॥ तत्पश्चात् उन्होंने राजा चित्रकेतुसे कहा—हे राजन्, इससे एक लड़का होगा, जिससे हर्ष और दुःख दोनों ही तुमको प्राप्त होगा। ऐसा कह ब्रह्मपुत्र अङ्गिरा वहाँ से चल दिये ॥२९॥ कृतद्युति रानीने भी वह चरुभक्षण करतेही चित्रकेतुके संगमसे गर्भको इसप्रकार ग्रहण किया जैसे-कृत्तिकाने अग्निपुत्रको गर्भमें ग्रहण किया ॥३०॥ हे राजन्, शूरसेन देशके मालिक राजा चित्रकेतुकी कान्तिसे स्थित कृतद्युतिका गर्भ प्रतिदिन धीरे धीरे शुक्लपक्षके चन्द्रमाके तुल्य वृद्धि होने लगा ॥३१॥ वह समय जब आया तो एक पुत्र प्रादुर्भूत हुआ। जिसके उत्पन्नकी कथा सुनकर सम्पूर्ण शूरसेनदेशनिवासियोंको महान् प्रसन्नता हुई ॥ ३२ ॥ महाराज चित्रकेतु भी लड़के होनेकी खबर पाकर बहुत खुश हुए। उन्होंने स्नान आदिसे शुद्ध हो सुन्दर वस्त्र-गहना पहन ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ग्रहण कर स्वस्तिवाचनकर पुत्रका जातकर्मसंस्कार कराया ॥ ३३ ॥ उन्होंने उन ब्राह्मणों-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, गहना, गाँव, घोड़ा, हाथी, साठ करोड़ गाएँ दान दीं ॥ ३४ ॥ राजा चित्रकेतु उस लड़केकी धन, यश और आयु-वृद्धिके लिये सब जीवोंकी इसतरह कामनाको भी परिपूर्ण कर दिया जैसे बादल पानी बरसाकर सब जीवोंकी कामना परिपूर्ण कर देता है ॥३५॥ हे राजन्, किसी दरिद्रको जैसे बड़े कठिनतासे धन प्राप्त हो तथा उसमें संलग्नताको प्राप्त हो, तद्वत् बड़े दुःखसे प्राप्त उस पुत्रमें राजर्षि चित्रकेतुके प्रेमकी वृद्धि होने लगी ॥३६॥ पुत्रकी माता कृतद्युतिका थी अपने लड़केपर बहुत मोहरूप प्रेम था, उसकी दूसरी सौतेलियोंके चित्तमें पुत्रकी प्राप्तिकी कामनाका कष्ट दिनोंदिन उदयहाने लगा ॥३७॥ उस पुत्रका प्रति दिन लाड-प्यार करते रहनेसे राजा चित्रकेतुका भी प्यार जितना उस पुत्रवाली पत्नीपर था, वैसा दूसरी रानियों-पर नहीं रह सका ॥३८॥ इस प्रकार बिना सन्तान जन्य दुःख और राजाके अपमानसे बहुत दुःखित हो वे रानियाँ ईर्ष्यासे अपने आप भर्सना करती हुई आत्मामें अधिक कष्ट मानने

हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ॥ ग्रामान्हयान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥ ३४ ॥ ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ॥ धन्यं
यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥ ३५ ॥ कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ॥ यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥३६॥
मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ॥ कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥३७॥ चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ॥ न तथाऽन्येषु
संजज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥ ३८ ॥ ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ॥ आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरणेन च ॥३९॥ धिगप्रजां
स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसंमताम् ॥ सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥ ४० ॥ दासीनां कोऽनुसन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ॥ अभीक्ष्णं
लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥ ४१ ॥ एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसंपदा ॥ राज्ञोऽसंमतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥ ४२ ॥
विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ॥ गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥ कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ॥ सुप्त एवेति सञ्चिन्त्य
निरीक्ष्य व्यचरद् गृहे ॥ ४४ ॥ शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ॥ पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥ सा शयानमुपव्रज्य

लगीं। ॥३९॥ आपसमें कहने लगीं—हाय, पुत्रवाली सौत नौकरानीकी तरह जिनका अपमान करती हो तथा स्वामी भी जिनको अपनी पत्नी न मानता हो उन पापिनी हीन सन्तान पत्नियोंको धिक्कार है ॥४०॥ दासियोंको और क्या कष्ट होगा वे तो अपने पतिकी सेवाकर सर्वदा सुख प्राप्त करती हैं, परन्तु हम अभागिन को इस वक्त नौकरानियोंकी भी दासियें हो रही हैं ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अपनी सौतके पुत्रसम्पत्तिसे दुःखित और जो राजाको भी प्यारी न रहीं उनको रानी कृतद्युतिसे बड़ी ईर्ष्या हुई ॥ ४२ ॥ शत्रुतासे उन क्रूरमनवाली पत्नियोंकी बुद्धि नष्ट हो गयी, उनको राजाका पुत्र-वात्सल्य सहन न हो सका तथा उन्होंने उस शिशुको विष दे दिया ॥ ४३ ॥ अपनी इस पापरूपी सौतोंकी चालका कुछ भी ज्ञान न होनेसे रानी कृतद्युतिने यह विचारा कि पुत्र सोया है उसका निरीक्षणकर गृह में भ्रमण कर रही थी ॥ ४४ ॥ उस बुद्धिमतीने विचारा पुत्रको शयन करते बड़ा बिलम्ब हो गया। तब उसकी धाय से कहा—भद्रे, मेरे समीप बालकको ले आओ ॥४५॥ जब धायने शयन हुए पुत्रके समीप जाकर उसके आँखोंकी पलकें चढ़ी हुई और देहके प्राण, इन्द्रिय तथा जीवात्मासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अलग देखा तो हाय ? 'मैं मरी' ऐसा कह भूमि पर गिर पड़ी ॥ ४६ ॥ रानी कृतद्युतिने जब दोनों हाथों से अत्युत्कट वेगसे छाती पीटकर धाका करुणाजनक शब्द श्रवण किया तो वह तेजीसे लड़के समीप आकर उसने शिशुको मृत हुआ देखा ॥३७॥ यह देख वह अत्यन्त दुःखसे मूर्छित हो भूमि पर गिर गई तो उसके बाल और वस्त्र इधर-उधरहो गये ॥४८॥ रानी कृतद्युतिका रुदन श्रवणकर रनिवासके स्त्री-पुरुष सब दौड़ आये तथा उसके तुल्य दुःखित हो रोने लगे। जिन्होंने यह महा नीच कर्म किया था, वे राजपत्नियाँ भी सब लोगोंके सदृश व्यर्थ रुदन करने लगीं ॥ ४९ ॥ राजा चित्रकेतु भी अकारण पुत्र मरण सूचना पाकर स्नेह बन्धनरूपी भयंकर दुःखसे मूर्छित हो अपने प्राणियों मन्त्रयोंके साथ द्विजोंसे घिरा हुआ रास्तेसे गिरता राजमन्दिरमें आता मरे पुत्रके पैरोंके समीप गिरा। उस कालमें उसको नेत्रोंके सामने अन्धेरा छा गया, उसके बाल और वस्त्र खुल गये तथा बड़े निःश्वास

दृष्ट्वा चोचारलोचनम् ॥ प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ॥ ४६ ॥ तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ॥
प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजान्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥ ४७ ॥ पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥ ४८ ॥
ततो नृपान्तः पुरवर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ॥ आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥ ४९ ॥
श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन्पथि ॥ स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥५०॥ पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ॥ दीर्घं श्वसन्बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥ ५१ ॥ पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिम् ॥ जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥५२॥ स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ॥ विकीर्य केशान्विगलत्स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥५३॥ अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ॥ परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥५४॥ नहि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ॥ यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥५५॥ त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ॥

अश्रुधाराके वेगसे गला रुक जानेसे वह वह कुछ भी नहीं बोल सका ॥ ५०, ५१ ॥ अपने स्वामीको बहुत शोकसे सन्तप्त एक मात्र अपने बालकको मरा देख रानी कृतद्युति प्रजा, मन्त्रिमण्डलको दुःखितकर चिल्लाती हुई रुदन करने लगी ॥५२॥ कुङ्कुम मिश्रित चन्दनसे मण्डित अपने स्तनयुगल काजलकी कालिमासे आँसुओंकी बाष्प बिन्दुवोंसे सिंचन करती, जिसमेंसे पुष्पोंकी माला नष्ट होकर गिर रही थी, उन घेवँ बालोंको अलग करती हुई अपने पुत्रके लिये कुररीके सदृश स्वरसे रोने लगी ॥५३॥ उसने कहा—अरे विधातः, तू बड़ा लण्ठ जो स्वनिर्मित सृष्टिके उलटा कार्य करता है। कितने विस्मयकी बात है कि वृद्ध तो जीते हैं और बालक मरें ? यदि सत्यही तेरे रूपमें ऐसा हेर-फेर है तो तुम सब प्राणियोंके शत्रु हो ॥५४॥ है यदि लोकमें शरीर धारियोंका जीवन मरणका क्रमही कोई नहीं है तो वे अपने कर्मानुसार होते रहेंगे। अरे निष्ठुर, सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुम जो स्नेहबन्धनको बना दिया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसको तुमनेही नष्ट किया ॥ ५५ ॥ लड़केकी तरफ देख कहने लगी—मेरे पुत्र, मेरे ऐसीको अनाथकर यहीं त्याग तुमको जाना श्रेय नहीं है तुम कुछ अपने सन्तप्त पिताकी तरफ तो देख, बिना सन्तान जीव जिसको बड़ी कठिनतासे पार कर पाते हैं, उस भयंकर नरकको हम तेरे द्वारा अनायास पार कर सकेंगे। इस नीच यमराजके साथ तुम मेरे समक्ष मत जाओ ॥५६॥ हे मेरे पुत्र, उठ, देख-तेरी ऊमरके सब लड़के तुमको खेलनेके निमित्त बुला रहे हैं। बहुत बिलम्बसे पड़ा सो रहा है । अब तो तेरेको बहुत क्षुधा भी लग रही होगी। अब खड़े हो कुछ खा, स्तन पानकर हम अपने प्राणियोंका दुःख दूर करो ॥५७॥ हे तनुज, आज मुझ अमङ्गलाको तेरा आननकमल मधुरकी मुसकान और प्रसन्नतासे परिपूर्ण संपन्न नहीं दिखाई देता। तेरी अबतक मधुर और तुतलाती वाणी सुनाई नहीं देती। क्या सच तुम निर्दई यमराजके कहनेसे उस लोकको चले गये हो जहाँसे वापस कोई नहीं फिर आता ॥५८॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा–हे राजन्, इसतरह महारानी कृतद्युतिको अपने मरे हुए लड़केके लिये नानाप्रकारके रोमाञ्चकारी रुदन करती देख राजा चित्रकेतु भी अत्यधिक

अञ्जस्तरेम भवताऽप्रजदुस्तरं यद्ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥ ५६ ॥ उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ॥ सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान्परीतो भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर न स्वकानाम् ॥५७॥ नाहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ॥ किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥ ५८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ॥ चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥५९॥ तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः ॥ रुरुदुः स्म नरा नार्य सर्वमासीदचेतनम् ॥ ६० ॥ एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ॥ ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥६१॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥

शोकमग्न हो मुक्तकंठसे रोने लगा ॥५९॥ उन राजदम्पत्तियोंके रोदन करनेसे उनके अनुयायी और स्त्री-पुरुष भी दुःखित हो रोने लगे। इसप्रकार सब नगर दुःखसे व्याप्त हो गया ॥६०॥ राजाको दुःखी तथा संज्ञाशून्य देख इसको ज्ञानकरानेवाला वहाँ और कोई नहीं है इसलिये नारदके साथ महर्षि अङ्गिरा पहुँचे ॥ ६१ ॥

चौदहवें अध्यायका सार—राजा परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्! आप कृपाकर मुझे बतलाइये कि तामस प्रकृति उस वृत्रासुरको परमात्मा की भक्ति कैसे सूझी? श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस विषयमें एक सुन्दर उपख्यान है उसे सुनिये। शूरसेनदेशमें एक चित्रकेतु नामक राजा था। उसकी एककरोड़ स्त्रियाँ थीं। दैवयोगसे वे सबकी सब बन्ध्या थीं इससे राजाको बड़ी चिन्ता हुई। एक दिन नारदजीके साथ अङ्गरा वहाँ पहुँचे और राजासे उन्होंने कुशलप्रश्न किया। राजाने कहा —हे भगवन्, मुझे इस संसारमें यों तो कोई कष्ट नहीं है। हाँ, मुझे कोई सन्तान नहीं है एक इसका मुझे भारी दुःख अवश्य है। रातदिन एक इसी चिन्तामें झुलस रहा हूँ। चित्रकेतुकी दुःख पूर्ण बात सुनकर अङ्गिराको बड़ी दया आ गई। उन्होंने पुत्रके लिये राजा को त्वष्टाके यजन करनेकी सलाह दी। भगवान् अङ्गिराके आज्ञानुसार चित्रकेतुने त्वष्टा नामक आदित्यके उद्देश्यसे चरु पकाकर त्वष्टाका यजन किया। यज्ञमें अवशिष्ट चरुको रानियोंमें सबसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बड़ी कृतद्युतिको देकर अङ्गिरा वहाँसे चल दिये। समय पाकर राजाको सुन्दर पुत्र हुआ। राज्यमें खूब महोत्सव मनाया गया। कृतद्युतिकी गोदमें खेल रहे बच्चेको देखकर और सखियोंको डाह होने लगी। उन सबने मिलकर उस राजकुमारको विष देकर मरवा दिया। चित्रकेतु और कृतद्युति दोनों पुत्र शोकसे सन्तप्त हो गये। सारी प्रजाएँ विलाप करने लगीं। इतनेहीमें नारदजी के साथ भगवान् अङ्गिरा वहाँ आ पहुंचे। चौदहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ पुत्रशोकसे सन्तप्त राजा तथा राजमण्डलको अङ्गिरा ऋषि और देवर्षि नारदका उपदेश वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, वहाँ जाकर उन ऋषियोंने मरे लड़केके समीप दुःखातुरावस्थामें मृतकके तुल्य स्थित राजा चित्रकेतुको मनोहर वाक्योंसे बोधन कराते हुए कहा ॥१॥ हे राजेन्द्र, तुम इसतरह जिसके लिये शोक करते हो यह शिशु इससमय इसके पूर्व तथा इसके अनन्तर आगे जन्मोंमें तेरा कौन था ? तुम इसके कौन हो ॥२॥ जैसे पानीके प्रवाह वेगसे

❀ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ ऊचतुर्मृमृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥ कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान्यमनुशोचति ॥ त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥ २ ॥ यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः ॥ संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥ ३ ॥ तथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥ एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥ ४ ॥ वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ॥ जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनापि भो ॥ ५ ॥ भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥६॥ देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ॥ बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥ ७ ॥ देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥ ॥ जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥

कभी बालू इकट्ठी होती है कभी स्वतन्त्र हो जाती है ऐसेही प्राणी कालक्रमसे कभी मिलते हैं कभी अलग हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जैसे धनोंके बीजमें धान उत्पन्न होते हैं और नहीं भी होते हैं उसीप्रकार भगवान् की मायासे जीवोंसे दूसरे जीव प्रादुर्भूत होकर मर जाते हैं ॥ ४ ॥ हे राजन्, इससमय हम, तुम और ये जितने चर-अचर प्राणी हैं, जैसे अपने जन्मसे पहले और मरणोत्तर वे सब स्थिर रहते हैं, वैसे ही इससमय भी नहीं हैं ॥ ५ ॥ कामना न होनेपर भी कोई अजन्मा ईश्वर शिशुके तुल्य केवल खेलके निमित्त अपने रचित परतन्त्र प्राणियोंसे दूसरे प्राणियोंकी उत्पत्ति, पालन, तथा संहार करता है ॥ ६ ॥ हे राजन्, एक बीजसे जैसे अन्य बीज उत्पन्न होता है वैसे ही पिताके शरीरद्वारा माताके शरीरसे हो बालका देह उत्पन्न होता है। उन सबमें शरीर घट-आदि कार्मोंमें भूमि आदिके तुल्य नित्य है ॥ ७ ॥ हे राजन्, जैसे एकही चीजमें घट आदि जाति और घटादिका विभाग कल्पनामात्र केवल है, तद्वत् ही यह शरीरका विभाग भी अनादि तथा अविचाररूप कल्पित जानिए ॥८॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, ब्राह्मणके वचनोंसे कुछ सहारा न प्राप्त होनेपर राजा, चित्रकेतु मानसिक पीड़ा निमित्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने मालिन्ययुखके आँसूको हाथसे हटाकर बोले ॥ ९ ॥ राजाने कहा–आप दोनों कौन हैं, आप तो उत्कट ज्ञानशील एवं महान् जाने जाते हैं, अवधूतभेषसे अपनेको गुप्तकर आए हैं ॥१०॥ भगवानके प्रिय ब्राह्मणोंसे बहुत मेरे जैसे कामासक्त बुद्धिवाले जीवोंको उपदेशार्थ उन्मत्तकी तरह वेषभूषा किये भूमिपर स्वतन्त्रतासे भ्रमण करते हैं॥११॥ कुमार, नारद, ऋभु, अङ्गिरा, देवल, आसित, जिनके चित्तका अज्ञानस्वरूप अन्धकार विलीन हो चुका वे व्यास, मार्कण्डेय, गौतम, वसिष्ठ, भगवान् परशुराम, कपिल, शुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि, रोमश, च्यवन दत्तात्रेय, आसुरी, पातञ्जलि, ऋषि वेदशिरा, बोध्यमुनि, पञ्चशिरा, हिरण्यनाभ, कौसल्या, श्रुतिदेव, ऋतुध्वज–ये सब और बहुतसे ज्ञानको देनेवाले सिद्धेश्वर भूमिपर भ्रमण करते रहते हैं ॥ १२–१५ ॥ इसलिए हे प्रभो, ग्राम्यविषयमें लीन मुझ मन्दबुद्धिके पशुको जो महान् तीव्र अज्ञानरूपी अन्धकारमें मग्न है, उसको आप ज्ञानज्योति दिखावें

प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ को युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ॥ अवधुतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥ १० ॥ चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ॥ मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥ ११ ॥ कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोऽसितः ॥ अपांतरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥ १२ ॥ वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः ॥ दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथारुणिः ॥ १३ ॥ रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः ॥ ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा ॥ १४ ॥ हिरण्यनाभः कौसल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ॥ एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥ १५ ॥ तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ॥ अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥ १६ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरा नृप ॥ एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥ १७ ॥ इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ॥ अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥ १८ ॥ अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ॥ ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावासीदितुमर्हति ॥ १९ ॥ तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः ॥ ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥ २० ॥ अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ॥ एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः ॥२१॥ शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ॥ मही राज्यं

॥ १६ ॥ अङ्गिरा ऋषिने कहा–हे राजन्, तुम जब सन्तान प्राप्तिके निमित्त आतुर थे, तब जिसने तुमको लड़का प्रदान किया, वही मैं अङ्गिरा ऋषि हूँ तथा ये साक्षात् ब्रह्माके लड़के भगवान् ऋषि नारद हैं ॥ १७ ॥ हे प्रभो, सन्तान दुःखके निमित्त तुम भयंकर अन्धकारमें मग्न हुए हो। तुम तो भगवद्भक्त हो इसलिये दुःखके योग्य न थे—यह जानकर तेरे ऊपर दयाकर ही हम आये हैं। ब्राह्मणभक्त और भगवद्भक्त हो तुमको इस प्रकार दुःख नहीं करना चाहिए ॥१८, १९॥ हे राजन्, जब मैं पूर्व आया, होता तो तुमको ज्ञानका उपदेश करता पर उस समय तेरे चित्तमें बालककी इच्छा देख तुमको मैंने पुत्रही प्रदान किया ॥ २० ॥ अब तुमने स्वयं सुतवालोंके कष्टका अनुभव किया। स्त्री, धन, नानाप्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्ति, शब्दादि विषय, राज्य-वैभव, पृथिवी, राज्य, सेना, कोष, भृत्य, अमात्य, सुहृद्गण ये सब अस्थिर हैं ॥ २१, २२ ॥ शूरसेन देशके प्रभु-ये सब गन्धर्वनगर, स्वप्न, माया कल्पतःमनि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वस्तुवोंके तुल्य असत्य और शोक, मोह, भय, दुःखको देनेवाला है ॥ २३ ॥ वस्तुचित्तमे ये सब दृश्य असत्य हैं, क्योंकि तथ्य ज्ञान बिना ही देदीप्यमान हो रहे हैं, अतः ये एक क्षणमें दिखाई देते हैं अन्य क्षणमें नष्ट हो जाते हैं। जो जन कर्मवासनासे प्रेरित होकर विषयोंका मनन करते हैं, उन्हींके चित्तमें अनेक तरहके काम उपजते हैं ॥ २४ ॥ जीवात्माका यह शरीर जो कि पञ्चभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियोंकी एकाराशि है, यही उसको अनेक दुःख और कष्टदायक कहा है ॥ २५ ॥ तुम शान्तमनसे आत्मस्वरूपका मननकर इस द्वैतभ्रममें स्थिरत्वबुद्धि छोड़ शान्ति प्राप्त करो ॥२६॥ नारदजी ने कहा–हे राजन्, तुम मनको स्थिरकर मेरेसे मन्त्रोपनिषदका ग्रहण करो इसको ग्रहणकर सात दिनमेंही संकर्षणको देखोगे ॥२७॥ हे नरेन्द्र, जिन प्रभुके पैरके मूलका आसरा ग्रहणकर पूर्वसमयमें भगवान् शंकर आदि भेदभ्रमके द्वितयका त्यागकर तुरन्त उनकी अतुलनाधिक महिमा प्राप्त किये, तुम भी उसके पुण्यसे तुरन्त परमपद प्राप्त कर सकोगे ॥ २८ ॥

बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥ २२ ॥ सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ॥ गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥२३॥ दृश्यमाना विनाऽर्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः ॥ कर्मभिर्ध्यायतो नाना कर्माणि मनसोऽभवन् ॥ २४ ॥ अयं हि देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ देहिनो विविधक्लेशसन्तापकृदुदाहृतः ॥ २५ ॥ तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ॥ द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ॥ यां धारयन्सप्तरात्राद् द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥ २७ ॥ यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्व शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ॥ सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥२८॥ इति श्रीम० म० षष्ठ० पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, पुत्रशोकसे सन्तप्त हुए राजा चित्रकेतुको नारदमुनि और अङ्गिरा भगवान् यों समझाने लगे—हे राजन्, जिसके लिये तुम शोक कर रहे हो, वह तुम्हारा कोई नहीं है। हे राजन्, संसारकी सभी वस्तुएँ नश्वर हैं। बुद्धिमान्को चाहिए कि इसमें ममत्वबुद्धि न रखें। क्षणभरके लिए स्फुरित हो रहे जीवोंके निधनके विषयमें ज्ञानीपुरुष चिन्ता नहीं करते। हे राजन्, इस संसारमें पानीके बुलबुलोंकी नाईं जीव उत्पन्न होते और फिर विनष्ट होते रहते हैं। हे राजन्, अपने मनको एकाग्रकर विचारकर देख लीजिये। पिता, पुत्र आदिका जो सम्बन्ध व्यवहार है वह बिलकुल अज्ञान प्रयुक्त है यों उन दोनों द्वारा प्रबोधित हुए राजा चित्रकेतुने आँसू पोंछते हुए धीरेसे पूछा—महाराज, आपदोनों कौन हैं? अङ्गिरा ऋषिने कहा—राजन्, यह हैं नारदजी और यह दूसरे हैं अङ्गिरा, जिसने तुम्हें पुत्र दिया था। विपत्तिमें फँसे तुम्हें देखकर हमलोग तुम्हें ज्ञानी बनानेके लिये यहाँ आये हुए हैं। राजन्, अपने लड़केकी नाशकी नाईं संसारकी समस्त वस्तुओंको नश्वर जान लो। शाश्वत शान्तिका आश्रयणकर विषयोंसे ममता हटा दो। इसके बाद नारदजीने कहा—हे राजन्, मैं तुम्हें दिव्य मन्त्रोपनिषद् देता हूँ, इसके सात रोज जपनेके बाद सङ्कर्षण भगवान् तुम्हें दर्शन देंगे। पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॰

दृष्टान्त—किसी साहूकार का एक मिट्टी के बर्तन में तेल लेकर मजदूर यह सोचता जा रहा था कि इससे जो पैसा मिलेगा उसकी बकरी लूंगा उससे विवाह करूंगा। स्त्री के लड़के बच्चे होंगे। वे जब मेरे पास आकर कहेंगे कि हमें हमारी मां ने मारा तब मैं सिर झटक कर कहूँगा आजसे पुत्रों को मत मारना यों विचारते ही उनके सिर का बर्तन गिर गया उसके भावी कार्यों में पानी फिर गया और उलटे ही साहूकार की बातें सुननी पड़ी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसके उपरान्त देवर्षि नारदने उस मृत राजपुत्रको उसके दुःखातुर अपने बान्धवके समीप आह्वानकर उससे कहा ॥ १ ॥ नारदजीने कहा—हे जीवात्मन्, तेरा कल्याण हो। इधर देख, तेरे माता, पिता, सुहृद, सब बान्धव बड़े दुःखातुर हो रहे हैं ॥२॥ अतः तुम त्वरासे अपनी देहमें प्रवेशकर बची आयुमें अपने इन स्वजनोंके साथ पितासे प्राप्त ऐश्वर्यभोग तथा नृपासनको अलंकृत कर ॥ ३ ॥ जीवने कहा—अपने कर्मके वशीभूत मैं नाना देव, मनुष्य तिर्यगादि योनियोंमें भ्रमण करता रहा, उनमेंसे किस जन्ममें मेरे माता-पिता ये हुए ॥४॥ जीवके अलग अलग जन्मोंमें भी सबके सब आपसमें बन्धु, ज्ञाति, शत्रु, मध्यस्थ, मित्र, उदासीन, अरि होते हैं ॥ ५ ॥ जैसे सोना-आदि खरीदना-बेचना व्यवहार निपुण जीवोंमें

※ अथ षोडशोऽध्यायः ※

॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ देवऋषी राजन् संपरेतं नृपात्मजम् ॥ दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ॥ सुहृदो बान्धवास्तप्ताः शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥ कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ॥ भुङ्क्ष्व भोगान्पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥३॥ जीव उवाच ॥कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ ४ ॥ बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ॥ सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥ यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥ नित्यस्यार्थस्य संबन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ॥ यावद्यस्य हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥ ७ ॥ एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहङ्कृतः ॥ यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥ एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक् ॥ आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥ ९ ॥ नह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तॄणां गुणदोषयोः ॥ १० ॥ नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ॥ उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीर्य गतो

जिस जिसके समीप आता-जाता है, वैसेही प्राणी भी अलग अलग योनियोंमें जन्मा करता है॥ ६ ॥ इसप्रकार सोना आदि नित्य चीजोंका सम्बन्ध भी जीवोंमें अस्थिर ही देखा गया है, तथा जबतक जिसका सम्बन्ध होता है, तबतक उनमें उसका ममत्व होता है ॥ ७ ॥ इसप्रकार वह नित्य और अभिमानशून्य प्राणी गर्भमें आकर जबतक देहमें निवास करता है, तबतक उस प्राणीका उस देहमें ममत्व रहता है ॥ ८ ॥ यह प्राणी नित्यविनाशरहित और जन्मादिसे रहित है, तथा स्वयं कांतिमान होनसे सबका कारण है। यह अपनी सर्वमुत्पन्न माया गुणोंसे स्वयं विश्वस्वरूपसे जन्मा करता है ॥ ९ ॥ कोई इसका प्यारा या अमित्र नहीं है तथा अपना न पराया है क्योंकि अपना हित और बुरा करनेवाले प्रिय या अप्रिय आदिकी बुद्धियोंका यही एक साक्षीभूत है ॥ १० ॥ आत्मा कार्यकारणका साक्षी और परतन्त्र नहीं है। अतः यह गुण, दोष या क्रियाफलको धारण नहीं करता है तथा सर्वदा उदासीनस्वरूपसे कायम रहता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेव बोले—ऐसा कह वहाँसे वह प्राणी गया, तो उसके जाति-भाइयोंने बहुत आश्चर्यहो अपना प्रेमरज्जुको नष्टकर उसके दुःखको छोड़ा ॥ १२ ॥ उन सगोतियोंने अपने जातिभूत उस मरे पुत्रके शरीरका समयोचित संस्कारकर होने योग्य और्ध्वदैहिक क्रियाएँ समाप्त कीं । फिर शोक, मोह, भय, दीनताको उत्पन्न करनेवाला भयंकर प्रेतको त्यागा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! बालहत्यासे नष्टकान्ति तथा लज्जित उन बालघातिनी राजपत्नियोंने अङ्गिराके वचनका याद करते हुए यमुनाकिनारे ब्राह्मणोंके आदेशानुसार बालहत्याका प्रायश्चित्त किया ॥ १४ ॥ इसप्रकार अङ्गिरा- और नारदके अदेशसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होनेपर चित्रकेतु—जैसे कीचड़से हाथी अलग हो जाता है तद्वत् गृहान्धरूपी कूपसे निकला ॥ १५ ॥ उसने यमुनामें सविधि स्नान तर्पण आदि जलक्रियाकर मौन ग्रहणकर नारद तथा अङ्गिराको नमस्कार किया ॥ १६ ॥ तो भगवान् नारदने आनन्द चित्तसे उस शरणागत संयत

जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ॥ विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वात्मस्नेहशृंखलाम् ॥ १२ ॥ निर्हृत्य ज्ञातयोज्ञातेर्देहं कृत्वोचिताः क्रियाः ॥ तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं लोकमोहभयार्तिदम् ॥ १३ ॥ बालघ्न्यो व्रीडिता स्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ॥ बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ॥ यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितम् ॥ १४ ॥ स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरः पङ्कादिव द्विपः ॥१५॥ कालिन्द्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ॥ मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववन्दत ॥ १६ ॥ अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ॥ भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥ १७ ॥ ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ १८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ॥ आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ १९ ॥ आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ॥ हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥ २० ॥ वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥ २१ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ॥ मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ २२ ॥ यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ॥

भक्तको इस विद्याका आदेश किया ॥ १७ ॥ भगवान् वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ, और प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, संकर्षण आदिको नमस्कार है ॥१८॥ पवित्र ज्ञानमात्र, परम-आनन्दरूप, आत्माराम, द्वैतकी दृष्टिसे अलग, शान्तरूप, आप ईश्वरको नमस्कार है ॥ १९ ॥ स्वरूपानन्द अनुभवसे मायाका राग-द्वेषादि लहरोंको शान्त करनेवाले इन्द्रियोंके मालिक बहुत महान् विश्वरूप मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥ अहो ! जिनको प्राप्त न होकर चित्तसहित वाणी वापस नहीं आती वे नामस्वरूपसे अलग, एक चिन्मात्र और कार्यकारणसे अतीत हमारी आप पालना करें ॥ २१ ॥ सब संसार जिनमें जिनसे उत्पन्न, स्थित और विलीन होता है तथा जो मृत्तिके चीजोंमें व्याप्त मट्टीके सदृश सबमें स्थित हैं, उन आप ब्रह्मको नमस्कार है ॥ २२ ॥ आकाशके तुल्य अन्दर-बाहर भीतर सम्पन्न होनेसे भी जिनको मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ प्राण न छू सकते न जाने जाते ही हैं, उन आपको मैं नम-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ जिनके चैतन्यांशसे सम्पन्न हो ये शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन बुद्धि आदि अपने-अपने कामोंमें संलग्न होते हैं, जिनको छोड़ अग्निमें विना तपन किए लोहेके तुल्य ये कुछ भी नहीं कर सकते, उस आत्माको जाग्रादि अवस्थाके साक्षीरूपसे जीव संज्ञा हो जाती है ॥ २४ ॥ हे भगवन्, महाविभूतिपति भगवान् महापुरुषको नमस्कार है, जिनके दोनों चरण सब भक्तश्रेष्ठ राशिकी करकमलकलिकाओंसे संसेवित हैं, उन परममेष्ठीको वारम्बार नमस्कार है ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेव बोले—हे राजन्! इसप्रकार अपने शरणागत भक्त राजा चित्रकेतुको विद्योपदेश दे अङ्गिरा मुनिके संग नारद अपने ब्रह्मलोक गये ॥ २६ ॥ राजा चित्रकेतुने नारदकी बतलाई उस विद्याका उनके कथनानुसार सात रोजतक केवल जलका पान करते संयतमनसे अनुष्ठान किया ॥ २७ ॥ उस विद्याके अनुष्ठानसे सातरात्रिके भीतर राजा चित्रकुतुको विद्याधरोंका अप्रतिहत स्वामित्व मिला ॥ २८ ॥ कुछ रोज वाद उस विद्या तेजसे चित्त गतिकी और वृद्धि होनेपर देवोंके देव भगवान् शेषके चरणकमलोंके पास जा पहुँचे ॥ २९ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शेष नानाविध

अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ॥ नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद्द्रष्ट्रपदेशमेति ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकर-कमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ॥ ययावङ्गिरसा साकं धाम स्वायंभुवं प्रभो ॥ २६ ॥ चित्रकेतुश्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ॥ धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुमाहितः ॥ २७ ॥ ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया ॥ विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप ॥ २८ ॥ ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगति ॥ जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥ २९ ॥ मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम् ॥ प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ॥ प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषम् ॥३१॥ स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥

सिद्धेश्वरोंसे व्याप्त हैं। उनकी देह कमलडण्डीके तुल्य गौरवर्णकी है, उसपर नीलाम्बर रमणीय सा किरीट, केयूर, कटिसूत्र, कङ्कण आदि गहनोंसे विभूषित एवं उनका मुख प्रसन्न है तथा आँखें लालवर्णकी हैं ॥ ३० ॥ उनका दर्शन इसप्रकार करतेही राजा चित्रकेतुके सब पाप नाश हुए, उनका अन्तःकरण पवित्र तथा स्वच्छ हो गया उन्होंने अपनी भक्तिभावसे आँखोंमें प्रेमकी आँसू भरकर कम्पित देहसे भगवान् आदिपुरुषको नमस्कार किया ॥ ३१ ॥ अपने प्रेमाश्रुधाराओंसे शुद्धकीर्ति भगवान् शेषके पादपीठको वे पुनः २ सींचने लगे, उस समय प्रेमके वशीभूत हो गया रुकनेसे वे देरतक उनका ध्यान न कर सके ॥ ३२ ॥ जब उनको कहनेकी शक्ति प्राप्त हुई, तो बुद्धिसे चित्तको एकाग्रकर, सब इन्द्रियोंके वाहरकी वृत्ति रोक जिनके रूपका भक्तिशास्त्रोंमें वर्णन किया है, इसप्रकार उन जगद्गुरुकी स्तुति की। चित्रकेतु बोले—हे अजित! आप सबके यद्यपि अजेय हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परन्तु समदर्शी और आपको जितेन्द्रिय सज्जनोंने जीत आपने भी उनको अपने वशीभूत किया। बड़े आप दयाशील हैं तथा अपना रूप अपने निष्काम भक्तोंको देते हैं ॥३३-३४॥ हे भगवन् आपहीकी लीला इस लोककी उत्पत्ति, स्थित, लय आदि करती है संसारको रचनेवाले ब्रह्मादि देव आपके अंशके भी अंश हैं, फिर भी हम ही जगत्को करनेवाले हैं ऐसी भेदभरी बुद्धिके वशीभूत बिना कारण आपसमें ईर्ष्या करते हैं।॥३५॥परमाणुसे आरम्भकर बड़े महतत्त्वके समाप्तितक आपही सब चीजोंके आदि अन्त और मध्यमें शोभित रहते हैं। तब भी तीनों अवस्थाओंसे पृथक् हैं, क्योंकि सत्यरूपसे प्राप्त होनेवाली इन सब चीजोंके आदि और अन्तमें जो निश्चल तत्त्व है, वही मध्यमें भी रहता है ॥ ३६ ॥ जोएक एकसे दसगुना बड़े भूमि आदि सात आवरणोंसे आच्छादित है, वह ब्रह्माण्डकोश अपनेही सदृश करोड़ों ब्रह्माण्डोंके संग परमाणुके सदृश भ्रमण करता है, सत्यमें तो आप अनन्त हैं ॥ ३७ ॥ जो

ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ॥ नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्त्वतशास्त्रविग्रहम् ॥ ३३ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ॥ विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽति करुणः॥३४॥ तव विभवः खलु भगवन् जगदुदयस्थितिलयादीनि ॥ विश्वसृजस्तेंऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥ परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ॥ आदावन्तेऽपि च सत्वानां यद्ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥ ३६ ॥ क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ॥ यत्र पतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥ ३७ ॥ विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ॥ तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥ ३८ ॥ कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ॥ ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥ ३९ ॥ जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ॥ निष्किञ्चना ये मुनय आत्माराम यमुपासतेऽपवर्गाय ॥ ४० ॥ विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम च तवेति यदन्यत्र ॥ विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः

प्राणीरूपी पशु विषयोंकाही केवल इच्छा रखते हैं वे परमात्माको त्यागकर आपके ऐश्वर्यस्वरूपी दूसरे इन्द्र आदि देवोंकी ही आराधना करते हैं, जैसे राजकुल नष्ट हो जानेपर उसके आश्रितोंकी वृत्ति भी नष्ट हो जाती है, वैसेही छोटे उपास्यदेवोंके क्षीण होनेपर उस संप्राप्त ऐश्वर्य भी ह्रास हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ हे परमात्मन् ! आप ज्ञानस्वरूप और निर्गुण हैं, आपके सहारेकी गई कामवासनाएँ वैसेही कार्यफलको देनेवाली नहीं होती, जैसे घून जानेवाले बीजोंसे अंकुर नहीं उपजता। क्योंकि प्राणीको सुख दुःख आदि समूह सत्त्वादि गुणोंसे मिलते हैं, पर आपनिर्गुण हैं तो किस रूपसे मिलें॥३९॥ हे अजित ! आपने जब शुकको पवित्रतम भागवतधर्मोपदेश दिया तब सबसे विजयप्राप्त किया। क्योंकि निष्किञ्चन आत्माराम सनक आदि मुनि मोक्ष-कामनाके लिये उसी भागवत-धर्मकी सेवा करते हैं॥४०॥उस धर्मकी रक्षा करनेमात्रसे सकामनावाले धर्मोंके तुल्य जीवोंका मैं, तुम, मेरा, तेरा यह भेदवाली बुद्धि नहीं रहजासकती।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो धर्म उलटे भेदबुद्धिसे निर्माण होता है वह अपवित्र नाशवाला धर्मरहित होता है ॥ ४१ ॥ इसप्रकार अपना तथा दूसरेका बुरा करनेवाले धर्मसे अपना और अन्यका क्या कार्य हो सकता है, किन्तु मन दुःखित होनेसे भगवान् क्रोधित हो जाते हैं तथा परजनोंको दुःख होनेसे धर्म नहीं होता ॥ ४२ ॥ जिसकी कृपासे भागवतधर्मको आपने कहा, वह दृष्टि कभी नहीं दूर होती, अतः जिनका सब चर अचर प्राणीसमूहपर बराबर दृष्टि होती है, वे आर्यजनही उस धर्मका मार्ग अनुकरण करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आपके दर्शनसेही जीवोंके सब पाप दूर हो जाते हैं यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि आपका नाम एकबार श्रवणकरलेनेसेही नीच भी जगतबन्धनसे मुक्त होता है ॥४४॥ हे भगवन् ! आपके दर्शनमात्रसेही हमारे मनका सब मल स्वच्छ हो गया। क्योंकि जो कुछ आपके भक्त देवर्षि नारदने कहा, वह कैसे असत्य होगा ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! सब संसारके आप आत्मा हैं, जो लोग जगत्में कुछ

॥ ४१ ॥ कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ॥ स्वद्रोहात्तव कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः ॥ ४२ ॥ न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ॥ स्थिरचरसत्वकदम्बेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥४३॥ नहि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ॥ यन्नामसकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥ ४४ ॥ अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ॥ सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥ विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥ विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ॥ दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥ यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति ॥ भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ॥ विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानउवाच ॥ यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥ संसिद्धोऽसि तया राजन्विद्यया दर्शनाच्च मे ॥ ५० ॥ अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ॥

करते हैं वह आपको प्रतीत ही है। जैसे सूर्यदेवको जुगनू देदीप्यमान नहीं कर सकता, वैसेही उत्तमतम आप गुरुको भला हम क्या कह सकते हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! सब संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेमें आप समर्थशाली हैं, कुयोगीजन अपनी भेदभरी दृष्टिसे आपके तथ्य तत्त्वको नहीं पहचानते। ऐसे पवित्ररूपवाले भगवान्को नमस्कार है ॥ ४७ ॥ आपकी इच्छा करनेपर ब्रह्मा आदि सब संसारकर्ता इच्छा करते हैं, जिनकी दृष्टि प्राप्त होनेपर ही ज्ञानेन्द्रियाँ अपने कार्योंको ग्रहण करती हैं तथा जिनके सिरपर स्थित पृथ्वीमण्डल सरसोंके दानेकी तरह मालूम होता है, उन भगवान् सहस्रमूर्धाको मेरा नमस्कार है ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेव बोले—हे कुरुनन्दन ! इसप्रकार स्तुति होजानेपर भगवान् अनन्त प्रसन्न हो विद्यधर-अधिपति राजा चित्रकेतुसे बोले ॥ ४९ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे राजन् ! नारद और अङ्गिरा मुनिने मेरे कार्यका जो आदेश दिया उस विद्याके तेजसे और मेरे दर्शनसेही परिपूर्ण सिद्ध तुम हो गये ॥ ५० ॥ एकमात्र मैं ही सब भूत, उनका अन्तरात्मा, रक्षा करनेवाला हूँ। शब्दब्रह्म, परब्रह्म ये ही मेरी सनातनमूर्ति हैं ॥ ५१ ॥ प्रपञ्च सबमें आत्मा है, आत्मामें प्रपञ्च लगा है, मैं इन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दोनोंमें हेतु व्याप्त रहता हूँ मेरेमें ही ये कल्पित हुए ॥ ५२ ॥ जैसे—नींदमें सोया जीव अपनेहीमें सब संसारको देखता है तथा जागृत होनेपर किसी एक देशमें अपनी परिस्थिति समझता हूँ, वैसेही प्राणीको जाग्रत् आदि अवस्थाएँ ईश्वरकी मायाही हैं, यह समझकर उन सबके साक्षी मायातीत परमात्माका याद करना श्रेय है ॥ ५३–५४ ॥ जिसके सहारेसे सोया प्राणी अपनी निद्रा सुखका आनन्द लेता है [वह आत्मस्वरूप सबका ब्रह्म एकमात्र मैं ही हूँ–ऐसा जानिये ॥ ५५ ॥ निंद्रा, जागृति दोनोंही प्रकारोंके याद करनेवाले जीव उनमें साक्षीस्वरूपसे विराजमान हैं तथा तथ्यमें जो उनसे अलग हैं, वह ज्ञानही परब्रह्म है ॥ ५६ ॥ मेरे परब्रह्मरूपको प्राणी विस्मरणकर जानता है, वह अपने आत्मरूपसे अलग हो जाता है, यही हेतु है उसको बारम्बार संसार मिल जाता है तथा उसके जन्मके अनन्तर जन्म पुनः मरण फिर जन्म मरण प्राप्त होता ही रहता है ॥ ५७ ॥ इस संसारके जो जीव ज्ञान

शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥ ५१ ॥ लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि सन्ततम् ॥ उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥ ५२ ॥ यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ॥ आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥ ५३ ॥ एवं जागरणादिनि जीवस्थानानि चात्मनः ॥ मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥५४॥ येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ॥ सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥ ५५ ॥ उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः ॥ अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्म तत्परम् ॥ ५६ । यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ॥ ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥५७॥ लब्ध्वेहि मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसंभवाम् ॥ आत्मानं यो न बुध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम् ॥ अभयं चाप्यनीहायां सङ्कल्पाद्विरमेत्कविः ॥ ५९ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः ॥ ततोऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥ ६० ॥ एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ॥ आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥ ६१ ॥ दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ॥ ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥ एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः ॥ स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥ ६३ ॥ त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ॥

विज्ञान प्राप्त्यर्थ रूप मानुषी योनिको प्राप्तकर भी सबके आत्मारूपी ईश्वरको नहीं पहचानता, उसको कदापि शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ५८ ॥ पूर्व तो जगत्के आनन्दके लिए होनेवाली इच्छामें ही दुःख है उससे उलटा फल प्राप्त होनेका भी रूप रहता है । परन्तु कोई भय निवृत्तिमार्गमें नहीं है ऐसा विचारकर ज्ञानी जीवको उचित है कि वह फलकी इच्छासे बिलकुल स्वतन्त्र हो जाय ॥ ५९ ॥ इस लोकमें सब स्त्री-पुरुष आनन्दप्राप्ति तथा दुःखके दूर करनेके लिये उद्योगशील रहते हैं. परन्तु उन कर्मोंद्वारा न तो उनका क्लेश हटता तथा न उनको सुख ही होता ॥ ६० ॥ अपनेको जो महान् ज्ञानवान् जानते हैं, उनको उलटा फल ऐसा प्राप्त होता है, यह जान आत्माकी गति बड़ी सूक्ष्म और जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंसे अलग है ऐसा समझ जीव अपने ज्ञानके द्वारा लौकिक, पारलौकिक ऐश्वर्य मुक्त और ज्ञानविज्ञानसे तृप्त हो सर्वदा मेरा भक्त हो जाय ॥ ६१, ६२ ॥ इसप्रकार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन्द्रियोंसे ईश्वरका दर्शन प्राप्तकर योगमार्गमें श्रेयताको प्राप्त बुद्धिके जीवोंको अपना अत्युत्तम महान् पुरुषार्थ जानना चाहिए ॥ ६३ ॥ हे राजन् तुम यदि मेरा यह उपदेश एकाग्रचित्तसे

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ॥ पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥६५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

आस्तिक्य द्वारा ग्रहण करोगे तो ज्ञानविज्ञानसे सम्पन्न हो तुरन्त सिद्ध हो जा सकोगे ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इस तरह जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् चित्रकेतुको उपदेशादि देकर वहाँ से देखते ही अलक्ष्य हो गये ॥ ६५ ॥

सोलहवें अध्याय का सार—उसके बाद नारदजीने मृत्युको प्राप्त हुए उस राजकुमारको योगविद्यासे उठाकर उसके बन्धुओंको दिखाकर कहा—अरे जीवात्मन् ! तेरा मङ्गल हो, तेरे शोक कर रहे अपने इन माँ, बाप आदि बन्धुओंको तू देख। अकालमृत्यु होनेके कारण अभी तेरी आयु बची है अतः अपने शरीरमें प्रविष्ट होकर नाना विध उपभोगोंको भोग कर जा, राज सिंहासनपर बैठ जा। यों नारद मुनिके कहने पर उस जीवात्माने कहा—हे मुने ! कर्मोंके द्वारा नाना विध योनियोंमें परि भ्रमण कर रहे थे लोग मेरे किस जन्ममें माँ बाप हुए थे ? यदि आज ये लोग मुझे अपना पुत्र मानकर शोककर रहे हैं तो फिर शत्रु मानकर हर्षही क्यों नहीं करते ? इस संसारचक्रमें घूम रहे जीवने झूठमूठमें मित्र, शत्रु, भाई और माँ-बाप आदि नाना प्रकारके सम्बन्धोंकी कल्पना कर रखी है। इस परिवर्तन शील संसारमें कभी पुत्र पिता और कभी पिता पुत्र बनाही करता है। ये सब नाम रूपोंकी कल्पनाएँ असत्य हैं। अजर-अमर यह जीव अपने कर्मोंके अनुसार अनेक योनियोंमें भ्रमण किया करता है। बुद्धिमान् मनुष्यको इस माया जालमें नहीं फँसना चाहिये। यों कहकर वह जीव फिर उस देहसे निकल गया। वहाँकी उपस्थित सारी जनता स्नेह बन्धनसे मुक्त हो गई। अनन्तर, शौचादिसे निवृत्त हुए चित्रकेतुको नारदजीने मन्त्रोपनिषदकी शिक्षा दी। उसके बाद वे दोनों वहाँसे चल दिये। चित्रकेतुने उस विद्याका सात दिनतक नारदजीके कथनानुसार विधिवत् जप किया जिसके प्रभावसे चित्रकेतुको आनुषङ्गिक विद्याधरका अधिकार मिला। विद्याके प्रभावसे उल्लसित हृदयसे वह राजा देवाधिदेव शेषके पास पहुँचा। वहाँ जाकर भगवान्की खूब स्तुति करने लगा। भगवान् उसकी स्तुतिसे प्रसन्न हो गये और बोले—राजन् ! तू कृतकृत्य हो गया। अनन्तर चित्रकेतुको धैर्य देकर स्वयं भगवान् अन्तर्हित हो गये। सोलहवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❋

[भगवान् द्वारा प्राप्त विमानमें स्थिर हुए चित्रकेतुको पार्वतीका शाप देना यह वर्णन]

श्रीशुकदेव बोले हे राजन् ! जिस ओर अनन्त भगवान् अन्तर्हित हुए उस दिशाको प्रणाम कर विद्याधर चित्रकेतु आकाशगामी होकर भ्रमण करने लगे ॥ १ ॥ योगीराज चित्रकेतु लाखों सालतक देह और इन्द्रियोंकी अप्रतिहत शक्तिसे युक्त हो मुनियों, सिद्धों तथा चारणादिकोंसे संस्तूयमान हुए नानाप्रकारके कार्योंको परिपूर्ण करनेवाली कुचाचलपर्वतकी गुफाओंमें विद्याधर-स्त्रियोंसे हरिका उनके साथ गुणगान कराते हुए क्रीड़ा करने लगे ॥ २, ३ ॥ एक समयकी वार्ता है वे विष्णुसे प्राप्त तेजपुञ्जविमानपर सवार हो भ्रमण कर कहे थे। सिद्ध-चारणोंसे ढँके हुए मुनिमण्डलीके मध्यमें भगवान् शङ्करको गोदमें लिए एक बाँहसे भगवती पार्वतीका आलिङ्गन किये एकाएक उन्होंने बैठे देखा। यह देख वे उनके पास

श्रीशुक उवाच ॥ यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ॥ विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥ स लक्षं वर्षलक्षाणा-मव्याहतबलेन्द्रियः ॥ स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥ कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासङ्कल्पसिद्धिषु ॥ रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापय-न्हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥ एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ॥ गिरिशं ददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥ आलिङ्ग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि ॥ उवाच देव्याः शृण्वत्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥ ५ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ॥ आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥ जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादिसभापतिः ॥ अङ्कीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्री प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥ प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ॥ अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप ॥ तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥ इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् ॥ रुषाऽऽह देवी धृष्टाय निर्जि-तात्माभिमानिने ॥ १० ॥ पार्वत्युवाच ॥ अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः ॥ अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥ ११ ॥

जाकर बड़े वेगसे हँसकर कहने लगे, भवानी उनकी वाणी सुन रही थीं ॥ ४,५ चित्रकेतुने कहा—अहो ! ये संसारके गुरु हैं तथा धर्ममार्गका उपदेश सबको करते हैं, फिर भी इसतरह मध्य सभामें अपनी पत्नीसहित संलग्न हो स्थित हैं ॥ ६ ॥ ये जटाधर, अतितपस्वी, तथा ब्रह्मवादियोंमें अग्रगणी हैं, फिर भी जैसे साधारण कामुक जीवोंके तुल्य लज्जाशून्य हो पत्नीको गोदमें लिए स्थित हैं ॥ ७ ॥ प्रायशः जगत्के कामुक जीव भी एकान्तमें ही पत्नीको गोदमें लेते हैं, ये महा-व्रतधारी होकर भी सभामें पत्नीको लिये कैसे स्थित हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेव बोले—हे राजन् ! अपरम्पार बुद्धिवाले भगवान् हँसकर चुप हो गये, उन्हींकी तरह और उस सभामें बैठे हुए सदस्य भी मौन होकर स्थित रहे ॥ ९ ॥ चित्रकेतुके बहुत अकार्य कथनके कहनेपर 'मैं जितेन्द्रियवादी हूँ'—ऐसा अभिमान द्वारा अति धृष्टतावाले उस राजासे पार्वती देवीने इसप्रकार क्रोधमें कहा ॥१०॥ पार्वती बोलीं—अहो ! हमारे सदृश नीच और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लज्जारहितको उपदेश द्वारा शिक्षादेनेवाला इससमय दण्डधर प्रभु क्या केवल यही लोकोंमें स्थित है ॥ ११ ॥ पद्मयोनि ब्रह्मा, भृगु, ब्रह्माके लड़के नारद, देवर्षि सनकादि, कपिलदेव, मनु, क्या इनलोगोंमेंसे कोई भी धर्मतत्त्व ज्ञाता नहीं है जो शास्त्रका उल्लंघन करनेवाले शंकरको नहीं मना करते ॥१२॥ इस नीच क्षत्रियने पण्डितसमाजका तिरस्कारकर ब्रह्मादिकोंके भी मनन करनेलायक पदाब्जयुग्म और मंगलमूर्ति जगत्गुरु शिवका बड़ी चपलतासे शासन किया। अतः यह दण्डनीय है ॥ १३ ॥ अपनेको यह उत्तम समझनेवाला महा-अभिमानी है, यह नीच भगवान् विष्णुके अच्छे पुरुषोंसे रक्षित चरणकमलोंके पास निवास करनेका अधिकारी नहीं है ॥ १४ ॥ हे दुर्मते! तुम बड़े निकृष्ट आसुरीयोनीमें चले जावो, पुत्र! ऐसा करनेसे फिर बड़ोंका ऐसा कभी तिरस्कार नहीं करोगे ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेव बोले—हे भारत! इसप्रकार माताके शाप देनेपर चित्रकेतु विमानसे उतर बड़े करुणतासे सिर नतकर पार्वती

न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा भृगुनारदाद्याः ॥ न वै कुमारः कपिलो मनुश्च ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥ १२ ॥ एषामनुध्येय-पदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ॥ यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन्प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥ १३ ॥ नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् ॥ सम्भावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥ १४ ॥ अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ॥ यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥ १५ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः। प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥१६॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाम्बिके ॥ देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥ १७ ॥ संसारचक्रं एतस्मिन् जन्तुरज्ञानमोहितः ॥ भ्राम्यन्सुखं च दुखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥ नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुखदुःखयोः ॥ कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥ १९ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्कः शापः कोन्वनुग्रहः ॥ कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥ २० ॥ एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया ॥ एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ॥ समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य सुखेन रागः कुत एव रोषः ॥ २२ ॥ तथापि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुःखाय दुःखाय हिताहिताय ॥

देवीकी स्तुति करने लगा ॥ १६ ॥ चित्रकेतुने कहा—हे अम्बिके! तुम्हारा शाप मैं अञ्जलिमें लेता हूँ, क्योंकि देवजन प्राणियोंके निमित्त जो बोलते हैं, वे सब उनके पूर्वजन्मके कर्मका ही फल है ॥१७॥ दीनतासे अज्ञान मुग्ध प्राणी जगत्चक्रमें भ्रमण करता हुआ सदा सुख दुःखका अनुभव करता ही रहता है ॥ १८ ॥ उस सुख-दुःखको देनेवाले अपने आप या और कोई नहीं यह ज्ञानशून्य मनुष्यही स्वयं या किसी अन्यको कर्ता मान लेते हैं ॥ १९ ॥ लोक सत्त्वादि गुण प्रवाह है, इसमें शाप, अनुग्रह, स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख चीज क्या है ॥२०॥ ईश्वर ही एकमात्र अपनी मायाबलसे सब जीवोंको उत्पन्न करते हैं एवं उनके बन्धन मोक्ष या सुख दुःखका भी, पर वे इनसे पृथक् हैं ॥२१॥ हे मातः! भगवान् सदा एकसा निर्दोषी हैं, उनका प्रिय, अप्रिय, ज्ञातिभाई, अपना न पराया है! जब आनन्दमें राग ही उनका नहीं तो क्योंकर क्रोध हो ॥ २२ ॥ परन्तु मायारूप उनकी शक्तिसे प्रादुर्भूत पाप पुण्य ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जीवोंके सुख दुःख अच्छा, बुरा, बन्धन मोक्ष, जन्म, मरण जगत् हेतु ही होता है ॥ २३ ॥ हे भामिनि ! इस शापसे मुक्त होनेके लिए मैं तुमको प्रसन्न नहीं करता। हे सती ! केवल आपसे मेरा यह निवेदन है कि मैंने जो असाधु वचन कहा है वह आपको बुरा मालूम हुआ हो सो क्षमा करें ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेव बोले—हे शत्रुसूदन ! इसप्रकार शंकर और पार्वतीको प्रसन्नकर उनके समक्ष ही चित्रकेतु सबको आश्चर्ययुक्त करता हुआ अपने विमानपर सवार हो वहाँसे चला गया ॥२५॥ जब देवता, ऋषि, दैत्य, सिद्ध पार्षद सब उनकी वाणी श्रवणकर रहे थे तब भगवान् रुद्रने रुद्राणीसे कहा ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र बोले—हे सुन्दरि ! तुमने विचित्र कार्य करनेवाले भगवान्के निःस्पृह भृत्य दासोंका महात्म्य देखा ॥ २७ ॥ किसी समयका भगवत्परायण जनोंको डर नहीं होता, क्योंकि उनका स्वर्ग, मोक्ष, नरक आदिमें भी समान भाव रहता है ॥ २८ ॥ ईश्वरकी लीला द्वारा शरीर संयोगसे जीवोंको सुख, दुःख, जन्म,

बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥ २३ ॥ अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि । यन्मन्यसे ह्यसाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिन्दम ॥ जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥ २५ ॥ ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ॥ देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निस्पृहाणां महात्मनाम् ॥ २७ ॥ नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥ २८ ॥ देहिनां देहसंयोगाद्द्वन्द्वानीश्वरलीलया ॥ सुखं दुःखं मृतिजन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥ २९ ॥ अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ॥ गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥ ३० ॥ वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः ॥ ३१ ॥ नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशा ॥ विदाम यस्येहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥ ३२ ॥ नह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥ ३३ ॥ तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ॥ सर्वत्र समदृक् शान्तो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥ ३४ ॥ तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ॥

मरण, शाप, अनुग्रह आदि द्वन्द्व सहने पड़ते हैं ॥ २९ ॥ जैसे—अविवेक कृत जीवोंमें अर्थभ्रमसे आत्मामें गुण, दोष, विकल्प, का विचार रहता है तद्वत् अस्वप्नावस्थामें मालामें सर्पका सन्देह होता है ॥ ३० ॥ जो ज्ञान-वैराग्य तेजसे संपन्न भगवान् वासुदेवमें श्रद्धा करते हैं, उनको लोकमें अपनी बुद्धिका कोई स्थान नहीं दिखाई देता ॥ ३१ ॥ जिनकी लीलाको मैं, ब्रह्मा, सनकादि, नारदमुनि, ब्रह्माके लड़के भृगु आदि महान् देव भी नहीं पहचानते, तो जगत् के साधारण मनुष्य उनका रूप कैसे जान सकेंगे जो उनके अंशाशरूप होकर भी स्वयं बहुत समर्थशाली मानते हैं ॥ ३२ ॥ उनको प्रिय, अप्रिय, अपना, न कोई पराया है, वे हरि भगवान् सब जीवोंके अन्तरात्मारूप हैं, इसकारण वे सबके प्रिय हैं ॥ ३३ ॥ महाभाग चित्रकेतु उन्हींका प्रिय सेवक शान्त और सर्वत्र समदर्शी है, मैं भी अच्युतका कृपापात्र हूँ ॥ ३४ ॥ इस कारणसे परमपुरुष ईश्वरके शान्त, समदर्शी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महात्मा भक्तजनोंके बारेमें कुछ भी आश्चर्य करना श्रेय नहीं ॥३५॥ श्रीशुकदेव बोले—हे राजन्! शिवकी वाणीको श्रवणकर पर्वतीदेवीका संन्देह नष्ट हो जानेसे वे शान्त हो गयीं ॥३६॥ भगवती पार्वतीको उत्कट भगवद्भक्त चित्रकेतु शापके प्रत्युत्तर देनेमें सामर्थ्यींथे, फिर भी उन्होंने शापको शिरोधार्य कर लिया—यही साधुलक्षण कहा है ॥ ३७ ॥ ज्ञान-विज्ञानसे

महापुरुषभक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाभिभाषितम् ॥ बभूव शान्तधी राजन्देवी विगतविस्मया ॥ ३६ ॥ इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलन्तमः ॥ मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥ ३७ ॥ जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ॥ वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥ ३९ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ॥ माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥ य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ॥ इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमाङ्गतिम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीम० म० पु० षष्ठस्कन्धे सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

सम्पन्न होकर राजा चित्रकेतु दानवयोनिमें जाकर त्वष्टा देवताके दक्षिणाग्निसे प्रादुर्भूत हो वृत्रासुर नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ३८ ॥ तुमने जो इसप्रकार दैत्ययोनिमें वृत्रासुरके उत्पन्न होनेपर भी भगवत्संलग्न होनेका निमित्त पूछा, वह मैंने सब तुमको कहा ॥ ३९ ॥ हे राजन्! विष्णुभक्तोंके साक्षात् महात्म्यरूप महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र इतिहास श्रवण करने मात्रसे जीव सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ जो प्राणी प्रातः उठ भगवान्की यादकर मौनतासे इसका पाठ करता है उसको उनका अत्युत्तम पद मिलता है ॥ ४१ ॥

सत्रहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जिस दिशामें अनन्त भगवान् अन्तर्हित हो गये। उस दिशाको प्रणाम करके चित्रकेतु भगवान् ईश्वरका गान करता हुआ मेरु पर्वतकी गुफामें विद्याधरोंकी स्त्रियोंके साथ विहार करने लगा। विष्णुभगवान्के द्वारा प्राप्त विमानमें बैठकर घूमते समय एक दिन उसने ऋषियोंकी सभामें भगवान् शंकरकी गोदमें बैठी हुई पार्वतीको देखकर हँसते हुए यों कहा—यहाँ, सम्पूर्ण लोकोंके गुरु और देहधारियोंमें सर्वप्रधान शंकरजी निर्लज्ज होकर इन वृद्ध ऋषियोंकी सभामें अपनी स्त्रीको गोदमें लिए हुए बैठे हैं। चित्रकेतुकी ऐसी बातें सुनकर पार्वतीने कहा—हे दुर्मते, बड़े उच्छृङ्खल हो, मालूम पड़ता है कि इस लोकमें अब हमलोगोंके ऊपर शासन करनेवाला कोई दूसरा है ही नहीं। हे सभासदो, ब्रह्मादिके रहते भी यह अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझता है, बड़ा भारी उद्दण्ड है। यह भगवान् विष्णुके चरणके निकट स्थान पाने योग्य नहीं है। हे दुर्बुद्धे तू असुरयोनिमें जा। अनन्तर अपने उस शापके लिये किसी तरहकी पार्वतीसे प्रार्थना न कर वह चित्रकेतु बड़े प्रेमके साथ नमस्कार कर वहाँसे चल दिया। जाते समय वह यों पार्वतीसे कहते गया—हे अम्बिके, इस संसार चक्रमें जीवको प्राप्त होनेवाला, शाप, वरदान, स्वर्ग, नरक, सुख और दुःख आदि कुछ भी नहीं है। अकेले भगवान् परमेश्वर ही मायाके द्वारा प्राणियोंको रचते और बन्धनमें डालते हैं। उसको प्रिय, अप्रिय, कोई नहीं है। मातः, इसमें न आपका दोष है और न मेरा। हे पतिव्रते, मैं इस शापमोचनके लिये आपसे प्रार्थना नहीं करता हूँ। हाँ, आपने जो मुझे अयोग्यताका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रमाणपत्र दिया है, सिर्फ उसीके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। उसके चले जानेपर आश्चर्यमें भरी हुई उस पार्वतीसे भगवान् शंकरने मुसकराते हुए कहा---देवि, भगवान् वासुदेवमें समर्पित अन्तःकरणवालेको किसीसे भय नहीं रहता। हे राजन्, वही चित्रकेतु असुरयोनिको प्राप्त होकर शास्त्रोक्त अपरीचज्ञानके साथ वृत्रासुर नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसकी असुरयोनिमें उत्पत्तिका कारण आपने मुझसे पूछा था मैंने आपको बतला दिया। सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❁ अथ अष्टादशोऽध्यायः ❁

(दिति-अदिति वंश कथा और मरुत् नामक लड़कों का वर्णन)

श्रीशुकदेव बोले—हे राजन्! भगवान् सविताकी पृश्निनामकी पत्नीने सावित्री, व्याहृति त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य और पञ्चमहायज्ञ–इन बलकोंको उत्पन्न किया। हे प्रिय भगकी स्त्री सिद्धिने महिमा, विभु, प्रभु नामक तीन लड़के और एक सुव्रता आशी नामकी लड़कीका जन्म दिया ॥ १,२ ॥ धाताकी कुहू, सिनीवाली, राका, अनुमति नामकी स्त्रियोंने अलग २ सायं, दर्श, प्रातः तथा पूर्णमास नामवाले बालकोंको जन्म दिया ॥ ३ ॥ विधाताने अपनी स्त्री क्रियासे पुरीष्य नामके पाँच अग्नि उत्पन्न किये, वरुणकी पत्नी

श्रीशुकउवाच ॥ पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ॥ अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥ सिद्धिर्भगस्य भार्याऽङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् ॥ आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥ धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ॥ सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात ॥ ३ ॥ अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां सममन्तरः ॥ चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ ४ ॥ वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ॥ अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ ५ ॥ रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ॥ रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥ पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम् ॥ जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥ ७ ॥ उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ॥ कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन्सौभगादयः ॥ ८ ॥ तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य

चर्षणीके उदरसे फिर भृगुने जन्म लिया। इसके पूर्व ब्रह्मासे उनकी उत्पत्ति हुई थी ॥ ४ ॥ संसारके प्राणियोंका कथन है कि वल्मीकसे प्रादुर्भूत महायोगी वाल्मीकी भी वरुण-पुत्र ही थे। मित्र और वरुण इन दोनोंका ही वीर्य जब उर्वशीको देख स्खलित हो गया तो उसको उन्होंने जल्दीसे ले जाकर घड़ेमें रख दिया, जिससे अगस्त्य तथा वशिष्ठका जन्म हुआ। मित्रने अपनी पत्नी रेवतीसे उत्सर्ग, अरिष्ट, पिप्पल नामक तीन पुत्रोंका जन्म दिया ॥ ५, ६ ॥ हे राजन्! इन्द्रने अपनी पत्नी पौलोमीसे जयन्त, ऋषभ, मीढुष नामक तीन लड़कोंको उत्पन्न किया, हम हमने लोगोंसे ऐसा सुना है ॥ ७ ॥ मायावामनरूपी भगवान् उरुक्रमने अपनी पत्नी कीर्तिसे बृहच्छ्लोक नामक पुत्रका जन्म दिया तथा उसके सौभग आदि नानाविध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सन्तानें हुईं ॥ ८ ॥ कश्यपपुत्र भगवान् त्रिविक्रमके कर्म, गुण, वीर्योंका तथा जैसे उन्होंने माता अदिति गर्भसे जन्म ग्रहण किया था, उसकी उत्पत्तिका वर्णन आगे हम करेंगे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! अब महात्मा कश्यपसे मैं दितिगर्भसे प्रादुर्भूत उन लड़कोंका इतिहास कहता हूँ जिनके कुलसे उत्कट भगवद्भक्त श्रीमान् प्रह्लाद तथा राजा बलि जन्मे थे ॥ १० ॥ दितिके गर्भसे दैत्य और दानवों द्वारा पूजित हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष नामक दो सुत जन्मे जिनका हम पूर्व वर्णनकर चुके ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुकी स्त्री कयाधूनामवाली दानवी जो जम्भ दानवकी लड़की थी, उसके पिताने जिसका हिरण्यकशिपुके संग विवाहा था, उसने चार लड़कोंको जन्म दिया ॥ १२ ॥ संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद ये इनके नाम थे तथा उनकी बहिन सिंहिका थी—जिसने अपने पति विप्रचिति दानवसे राहु नामक बालकका जन्म दिया ॥ १३ ॥ समुद्रमन्थनके अनन्तर अमृतपानके समय जिसके मस्तकको भगवान्ने अपने

महात्मनः ॥ पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवावततार ह ॥९॥ अथ कश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामि ते ॥ यत्र भागवतः श्रीमान्प्रह्लादो बलिरेव च ॥ १० ॥ दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ॥ जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥ १२ ॥ संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च ॥ तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत ॥ १३ ॥ शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ॥ संह्लादस्य कृतिर्भार्याऽसूत पञ्चजनं ततः ॥ १४ ॥ ह्लादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् ॥ योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलम् ॥ १५ ॥ अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥ १६ ॥ बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ॥ तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥ बाण आराध्यगिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ॥ तत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥ मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ॥ त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ॥ इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं

चक्रसे नष्टकर दिया था । संह्लादकी पत्नी कृतिने पञ्चजन नामक सुतका जन्म दिया ॥ १४ ॥ जिसने अगस्त्यको आतिथ्यके समय वातापीको पकाया था उस इल्वलको तथा वातापीको प्रह्लादकी भार्या धमनिने उत्पन्न किया था । ॥१५॥ अनुह्लादकी पत्नी सूर्म्याके उदरसे बाष्कल, महिषाकी उत्पत्ति हुई । प्रह्लादके पुत्रका नाम विरोचन था तथा उसकी पत्नीसे बलीका जन्म हुआ ॥ १६ ॥ राजा बलिने अपनी पत्नी अशनाके उदरसे शत बालकोंका जन्म दिया, इनमें सबसे बड़ा बाणासुर पुत्र था–इसकी श्रवण योग्य कीर्तिका आगे इतिहास कहूँगा ॥ १७ ॥ बलिसुत बाणासुरने शंकरकी आराधना कर पार्षदोंमें अग्रसरता प्राप्त किया । अब भी शिव उसके नगररक्षक बनकर सर्वदा उसीके समीप रहते हैं ॥१८॥ दिति गर्भ मरुत नामक और उनचास पुत्रका जन्म हुआ ! वे सब सन्तानहीन थे । उन सबको इन्द्रने अपनेही तुल्य देवत्व दिया ॥ १९ ॥ इतनी कथा श्रवणकर राजा परीक्षितने पूछा—हे गुरो ! ऐसा क्या उन मरुतोंने साधुकार्य किया, उनलोगोंने जिससे अपने असुरत्वको छोड़ वे इन्द्रद्वारा देव कर लिये गये ॥ २० ॥ हे भगवन् ! मैं, ये सब ऋषिगण इस वार्ताकी जाननेको इच्छा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते हैं वह सब वृतान्त हमको सविस्तार सुनाव ॥ २१ ॥ श्रीसूत बोले—हे शौनक ! परीक्षित महाराजके सादर, स्वल्प, सारगर्भित वाणीको श्रवणकर सर्वज्ञ व्यासनन्दनने बड़े प्रसन्न मनसे उनकी स्तुति करते हुए कहा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेव बोले—हे राजन् ! इन्द्रका पक्ष ग्रहण करनेवाले विष्णुके हाथसे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नामक अपने सुतोंको मरा देख दिति शोकाग्निसे देदीप्यमान क्रोधसे सन्तप्त हो चिन्ता करने लगी ॥ २३ ॥ हाय, ऐसा किस दिन होगा जब अपने भ्राताओं का हनन करनेवाले कामलोलुप, क्रूर, अक्लिन्न निर्दयी पापी इन्द्रको हननकर मैं आनन्दसे सोऊँ ॥ २४ ॥ राजा आदि ईश कहे जाते हैं वे भी अन्तमें सड़नेपर कृमि, किसीके भक्षण योग्य पुरीष, तथा जला देनेपर भस्म हो जाते हैं ! ऐसे कुत्सित देहके हेतु जो जीव दूसरे जीवोंसे वैर रखता है तो क्या वह अपने साधनको नहीं जानता । उसको जीवोंसे शत्रुता करनेमात्रसे नरकगामी होना होता है ॥ २५ ॥ तथा

तत्साधु कृतं हि तैः ॥ २० ॥ इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ॥ परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ तद्विष्णुरातस्य स बादरायणिर्वचो निशम्यादृतमल्पमर्थवत् ॥ सभाजयन्सन्निभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ॥ मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत ॥ २३ ॥ कदा नु भ्रातृन्हतारमिन्द्रियाराममुल्बणम् ॥ अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥ आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ॥ मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥ २६ इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् ॥ शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ २७ ॥ भक्त्या परमया राजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ॥ मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापाङ्गवीक्षणैः ॥ २८ ॥ एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ॥ बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥ २९ ॥ विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ॥ स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥३० एवं शुश्रुषितस्तात भगवान् कश्यपः स्त्रिया ॥ प्रहस्य परमप्रीतो दितामाहाभिनन्द्य च ॥३१॥

देहको नित्य ज्ञान जिनका चित्त सदा मदोन्मत रहता है उस इन्द्रका मद नष्ट करनेवाला पुत्र मेरे जैसा प्रादुर्भूत हो—ऐसा कोई ठीक उपाय करे ॥ २६ ॥ ऐसा अपने चित्तमें विचार दिति सेवा, अनुराग, विनय और इन्द्रियसंयम आदिद्वारा अपने स्वामीको सदा प्रसन्न रखने लगी ॥ २७ ॥ हे राजन्, पतिके भावको पहचाननेवाली दितिने अपने अत्यन्त भक्तिभाव, मनोहर, मधुरभाषण, परिपूर्ण सुस्मित ईक्षणसे कश्यपका चित्त अपने वशीभूत किया ॥ २८ ॥ कश्यप बड़े पण्डित और विचारशील थे, उस बुद्धिमती पत्नीकी सेवासे मुग्ध तथा लाचार हो उन्होंने उसकी वांछा परिपूर्ण करेंगे यह स्वीकार किया । पुरुषका स्त्रीके वशीभूत हो कहना कोई आश्चर्यकी वार्ता नहीं है ॥ २९ ॥ क्योंकि प्रथम आप प्रजापति ब्रह्माने ही सब प्राणियोंकी स्वच्छन्द देख अपने अर्ध देहसे स्त्रीजातिको उत्पन्न किया, जिसने पुरुषोंकी बुद्धि हरी ॥ ३० ॥ अपनी पत्नी दितिके इसप्रकार बहुत सेवा करनेसे भगवान् कश्यप बहुत प्रसन्न हो उनकी स्तुति करतेहुए हँसकर बोले ॥३१॥ कश्यपने कहा—हे वरोरु, हे अनिन्दिते, तुमपर मैं प्रसन्न हूँ मेरेसे जो इच्छा हो वह वर माँगो । अपने स्वामीके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रसन्न होनेपर इसलोक या परलोक में कौनसी वस्तु स्त्रीके लिये कठिन हो सकती है ॥ ३२ ॥ स्त्रियोंके लिये उत्कृष्ट अर्चनीय देवता पतिही माने गये हैं । सब जीवोंके हृदयोंमें स्थित लक्ष्मीपति भगवान् ही नाम-रूप भेदसे कल्पित अलग २ देवत्वस्वरूपमें जीवों तथा पतिरूपमें स्त्रियोंसे अर्चित होते हैं । अतः हे सुमध्यमे, प्रायः कल्याणको चाहनेवाली तथा पतिव्रता स्त्रियें अपने स्वामीको अनन्यता से सर्वात्मा ईश्वररूपमें ही पूजन करती हैं ॥ ३३. ३५ ॥ हे भद्रे, तुमने भी बड़ी श्रद्धासे मुझ अपने स्वामीका इस भावसे पूजन किया है । अतः मैं तेरी सब कामनाएँ पूर्ण करूँगा, जो असती स्त्रियोंके लिये बहुत कठिन है ॥ ३६ ॥ दिति कहने लगी—हे ब्रह्मन्, यदि आप सत्यतासे मुझे वर देना चाहें तो आपसे मैं एक ऐसा अमर सुत चाहताहूँ, जो उस इन्द्रका हनन करे । जिसने मेरे दोनों लड़कोंको नष्ट किया है ॥ ३७ ॥ दितिकी वाणी सुन महर्षि कश्यप विमन हो इसप्रकार पश्चातप करने

कश्यप उवाच ॥ वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते ॥ स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥३२॥ पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ॥ मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रितः पतिः ॥३३॥ स एव देवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः ॥ इज्यते भगवान्पुम्भिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ॥ ३४ ॥ तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ॥ यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥३५॥ सोऽहं त्वयार्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ॥ तत्ते संपादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥ दिति रुवाच ॥ वरदो यदि मे ब्रह्मन् पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ॥ अमृत्युं मृतपुत्राहं येन मे घातितौ सुतौ ॥ ३७ ॥ निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ॥ अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥ अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ॥ गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥३९॥ कोतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ॥ धिङ्मां बताबुधंस्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥ ४० ॥ शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥४१॥ न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ॥ पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥ प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ॥ वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥४३॥ इति सञ्चिन्त्य भगवान् मारीचः कुरुनन्दन ॥ उवाच किञ्चित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ४४॥ कश्यप उवाच ॥

लगे अहो, यह महान् अधर्म मेरे सामने उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ अहो; आज मुझ इन्द्रियलंपट मनवाले जीवको इस स्त्रीरूपी मायाने जड़ बनाया, इससे मुझ दीनको निश्चित ही नरक जाना होगा ॥ ३९ ॥ इस स्त्रीने अपनी जातिस्वभावका आचरण किया इसमें इसका क्या दोष है, मुझको धिकार है मैं ही बहुत जितेन्द्रिय हीन और अपने तथ्य स्वार्थसे अलग हूँ, ॥ ४० ॥ शरदृऋतुके कमल तुल्य स्त्रियोंका मुख मनोहर तथा वाणी तो अमृतवत् है' किन्तु इनका जिस अधिकारके तुल्य पैना होता है । तो इन स्त्रियोंकी चेष्टाओंको कौन जान पाता है ॥ ४१ ॥ अपनी कामनाकी पूर्णताके लिये ही ये अपने आत्माके तुल्य प्यारा नहीं जाना जाता, सत्य तो यह है कि स्त्रीका कोई भी प्यारा नहीं होता । अपने कार्यमें विघ्न देख ये पति, पुत्र भाईको भी आप मार दती हैं या अन्यसे मरवा देती हैं ॥ ४२ ॥ प्रतिश्रुतको देदूँ उसमें वाणी मिथ्या न हो और इन्द्र भी न मर सके ॥ ४३ ॥ हे राजन् ?

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह सोचकर भगवान् मरीचिकुलनन्दन कश्यपने अपनी निन्दा करते हुये कुछ क्रोधके वशीभूत हो बोले ॥ ४४ ॥ कश्यप कहने लगे–हे भद्रे, यदि एक वर्ष इस व्रतको सविधिकर सकोगी तो तुम्हारे उदरसे इन्द्रबध करनेवाला लड़का जन्मेगा, पर उसमें किसी तरह विघ्न होनेसे वह उन देवताओं का भाई हो जायगा ॥ ४५ ॥ दिति कहने लगी–हे ब्रह्मन, वह व्रत मैं ग्रहण करूँगी, जो जो इसमें कार्य हों, जिनका त्यागना श्रेय हो तथा जिसके करनेसे व्रत नष्टकी सम्भावना न हो वह सब आप मेरेको बताइये ॥ ४६ ॥ कश्यपने कहा—व्रत पालनके समय किसीप्रकार कभी किसी जीवका हनन न करे, किसीको कुत्सित वाणी न कहे, मिथ्या न बोले, नखून तथा रोयें काकर्तन न करे, कोई अशुद्ध चीजका स्पर्श न करे ॥४७॥ जलके भीतर स्नान, क्रोध, दुर्जनोंसे बातचीत आदि न करे, विना प्रक्षालन हुए वस्त्र न पहिने तथा किसीकी पहरी हुई मालाको ग्रहण न करे ॥४८॥ जूठा, भद्रकालीको समर्पित, मांससम्पन्न, शूद्रोंसे अनीत या

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः ॥ संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥४५॥ दितिरुवाच ॥ धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्यणि यानि मे ॥ यानि चेह निषद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥ ४६ ॥ कश्यप उवाच ॥ न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ॥ न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥४७॥ नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः ॥ न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥ ४८ ॥ नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ॥ भुञ्जीतोदक्यया दृष्टं पिबेदञ्जलिना त्वपः ॥४९॥ नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला सन्ध्यायां मुक्तमूर्धजा ॥ अनर्चिताऽसंयतवाङ्नासंवीता बहिश्चरेत् ॥ ५० ॥ नाधौतपादाऽप्रयता नार्द्रपान्नो उदक्शिरः ॥ शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥ धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्रान् श्रियमच्युतम् ॥५२॥ स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥ पतिं चार्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥५३॥ सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ॥ धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥ बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिती राजन्महामनाः ॥ काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥ ५५ ॥ मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ॥ शुश्रूषणेना-

रजस्वला स्त्रीका देखा हुआ अन्न भक्षण न करे, अञ्जलीसे पानी न पीये ॥४९॥ जूठे मुख, विना कुल्ला किये, सन्ध्याके समय, बाल बिखरे, शृंगार विना किए, वाणीको बिना वशमें किये तथा वस्त्र विना पहरे घरके बाहर न निकले ॥ ५० ॥ पैर विना प्रक्षालन किए, अपवित्रावस्थामें, गीले पैरोंसे, उत्तर दिशा तथा पश्चिम दिशाकी तरफ सिरकर, अन्यके संग नग्न दशामें या सुबह और शामको शयन न करे ॥ ५१ ॥ इन निषिद्ध कार्योंका त्यागकर सर्वदा शुद्ध हो तथा प्रक्षालित वस्त्र धारणकर सर्वमंगल सम्पन्न प्रातः भोजन बिना गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी और विष्णुका अर्चन करे ॥ ५२ ॥ माला, गन्ज, नैवेद्य, गहने आदिसे सौभाग्यवती स्त्रियोंका अर्चनकरे, पतिका अर्चनकरे उसीकी सेवामें संलग्न रहे यह विचारे मेरी कुक्षिमें उसका तेज आकर प्राप्त हो गया ॥ ५३ ॥ हे दिति ! तुम यदि एक सालतक इस पुंसवनव्रतका अखण्डितरूपसे रक्षा करोगी तो तेरे उदरसे इन्द्र-बध करनेवाला बालक उत्पन्न होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! महामना कश्यपकी पत्नी दितिने स्वीकृत कहकर कश्यपका तेजपरिपूर्ण गर्भ ग्रहणकर कथित व्रतकी दीक्षा भी ली ॥ ५५ ॥ हे मानद ! चतुरमें निपुण इन्द्रको जब अपनी माताकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वहिन दितिका स्वरूप परिचय हो गया तो वे आश्रममें निवास करनेवाली दितिकी सेवा करने लगा ॥ ५६ ॥ उससमय वे प्रतिदिन दितिको वनसे फल, फूल, समिधा, कुशा, पत्र, मट्टी, जल आदि समय २ पर ले आकर देते थे ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! जिस तरह व्याध मृगका हनार्थ आकृतिका निर्माण करता है उसप्रकार इन्द्र अपना छली वेप बना व्रतमें संलग्न दितिका व्रत नष्ट करनेका अवसर देखता हुआ उसकी सेवा करनेमें उद्यत रहा ॥ ५८ ॥ हे महीपते ! सदा इस प्रकार दोपान्वेषणमें संलग्न होनेपर भी कोई उसको अवसर हाथ न लगनेसे दुःखी हुआ अब मैं क्या करूँ मेरा जिससे मंगल हो ॥५९॥ एक समयकी वार्ता है—ब्रह्माकी विधसे मोहित दितिने व्रतसे अत्यन्त क्षीण होनेसे सामको उच्छिष्टावस्थामें आचमन विना किए और पैर विना धोए ही शयन किया ॥ ६० ॥ यह समय देख योगेश इन्द्र उसीक्षण अपने योगसे निद्राके वशीभूत दितिके पेटमें घुस गये ॥ ६१ ॥ अपने

श्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥५६॥ नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ॥ पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥ ५७ ॥ एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ॥ प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥५८॥ नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ॥ चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥ ५९ ॥ एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ॥ अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥ ६० ॥ लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहृतचेतसः ॥ दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥ चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ॥ रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः ॥ ६२ ॥ ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप ॥ नो जिघांससि किमिन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥६३॥ मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ॥ अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥ ६४ ॥ न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ॥ बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥ ६५ ॥ सकृदिष्ट्वादिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ॥ संवत्सरं किञ्चिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥ ६६ ॥ सजूरिन्द्रेण पञ्चाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ॥ व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥६७॥ दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान् ॥ इन्द्रेण

वज्रसे उस सुवर्णतुल्य प्रकाशयमान गर्भके सात खण्ड कर दिये। हननावस्थामें जब वह रुदन करने लगा तो मत रो यह कह उन्होंने उस एक-एकके सात-सात फिर विभाग कर दिये ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार नष्ट हो जानेपर उन्होंने नमस्कारकर विनम्रतासे कहा—हे इन्द्र ! क्यों तुम हमको मारते हो, तुम्हारे ही हम भ्राता हैं ॥ ६३ ॥ इस कथनपर इन्द्रने अपने अनन्य पार्षद उन मरुतोंसे कहा—ठीक, यदि तुम मेरे भ्राता हो तो डरो मत ॥६४॥ उस समय हे राजन् ! जैसे अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्र से तेरा कोई नुकशान नहीं हुआ वैसेही श्रीनिवासकी दयासे दितिका वह गर्भ खण्ड २ प्राप्त होकर भी नहीं मर सका ॥ ६५ ॥ कोई जीव एकसमय आदिपुरुषका अर्चनकर ही उनकी तुल्यताको प्राप्तकर लेता है, तो दितिने तो किञ्चित्ही न्यून पूरे एक वर्षतक सेवा भगवान्की की थी ॥ ६६ ॥ अनन्तर मरुद्गण इन्द्रसे मिल पचास देव हो तथा इन्द्र भी दूसरी विमाताके सम्बन्धसे संलग्न होनेवाले दोषसे मुक्तकर सोमपायी देवता उन्हें बनाया ॥ ६७ ॥ दिति जब उठी तो उसने उन अग्नि तुल्य तेजस्वी पुत्रोंको इन्द्रसहित प्रत्यक्ष देखा, इससे वह उत्तम आचारविचारवाली दिति बहुत सुखी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुई ॥ ६८ ॥ इन्द्रसे उसने कहा—पुत्र मैं अदितिके बालकोंको डर उत्पन्न करनेवाले सुत प्राप्तकर अभिलापासे ही इस कठिन व्रतकी रक्षा कर रही थी। केवल एक लड़केके लिये मेरा यह संकल्प था, पर हे पुत्र, ये उनचास बालक किसप्रकार हुए। यदि इसमें तुम जानते हो तो मिथ्या न कहते हुए सत्य कहो ॥ ६९, ७० ॥ इन्द्रने कहा—हे मातः, तेरा कुत्सित् मनोभिलाषी कार्य समझही मैं स्वार्थपरायण बुद्धिसे तेरे समीप जाकर निवास करने लगा, कोई विचार धर्मका न हुआ काल प्राप्तकर तेरे गर्भके मैंने टुकड़े कर दिये ॥ ७१ ॥ जो मैंने सात खण्ड किये गये थे, वे सात पुत्र हो गये। उनमेंसे भी हरेकके सात-सात विभाग किए, किन्तु वे मरे नहीं उन सातके उनचास पुत्र हुए ॥ ७२ ॥ परमाश्चर्य देख यह मैंने

सहितान्देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता॥६८॥ अथेन्द्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ॥ अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम्॥६९॥ एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन्कथम् ॥ यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥ ७० ॥ इन्द्र उवाच ॥ अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् ॥ लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥ ७१ ॥ कृतो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः ॥ तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥ ७२ ॥ ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ॥ महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषङ्गिणी ॥७३॥ आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः॥७४॥आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ॥ को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥ ७५ ॥ तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ॥ क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तयाभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ॥ मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ ७७ ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

विचारा कि महापुरुष नारायणकी आराधनासे कोई सिद्धि मिलनेवाली है ॥७३॥ सकाम रहित भावनासे भगवान्‌की आराधना करते हुए जो जीव मोक्ष नहीं चाहते, वेही स्वार्थनिपुण सच्चे हैं ॥ ७४ ॥ जो अपनी आत्मा और अपने आत्मस्वरूप ज्ञानको प्राप्त करानेवाले जगदीश्वरकी स्तुतिकर बुद्धिमान् जीव उनसे क्या उन वस्तुओंकी भिक्षा माँगेगा, जो नरकमें भी मिल सकती हैं ॥ ७५ ॥ हे मातः, तुम महान् हो, जो मुझ मूर्खने खलता की है, उसको क्षमा कीजिए। बड़ी विचित्र वार्ता है कि तेरा गर्भ मृत होकर भी पुनः जीवित हो गया ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवने कहा—इन्द्रके पवित्रभावसे प्रसन्न हो दितिके कहनेमात्रसे इन्द्रने उसे नमस्कारकर मरुद्गणोंको सङ्ग लेकर अपनी इन्द्रपुरीको गये ॥ ७७ ॥ इसप्रकार तुमने जो पूछा—वह मैंने मङ्गलरूप मरुद्गणकी उत्पत्तिकी सब कथा कही, अब और क्या कहूँ ॥ ७८ ॥

१८ अठारहवें अध्यायका सार—श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कैलाशपति शङ्करकी आराधना करके जैसे बाणासुरने उनके गुणोंमें मुखवा पायी और भी वे भगवान् भूतनाथके निकट रहते तथा उनके नगरकी रक्षा करते हैं वैसेही दितिके मरुत् नामके उनचास लड़के हुए। वे सबके सब सन्ततिसे शून्य थे। इन्द्रने उनको देव बना लिया था। राजा परीक्षित्‌ने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा हे गुरो, असुरत्वका त्याग कराकर इन्द्रने उनको देव कैसे बनाया ? श्रीशुकदेवजीने कहा राजन्, इन्द्रकी सहायता करनेवाले भगवान् विष्णुके द्वारा दितिके पुत्रोंके मार दिये जानेपर पुत्र शोक सन्तप्ता दिति यों कहने लगी–अहो, विषयोंमें रात-दिन आसक्त, क्रूर और अपने भाइयोंकी हत्या करनेवाले इस पापी इन्द्रका नाश कर मैं अब सुखी बनूँगी। इस क्षुद्र शरीरके लिए जो नानाविध पाप करते हैं क्या उन्हें यह पता नहीं है कि मृत्युके बाद मेरी क्या दशा होगी ? शरीर आदिको नित्य मनमानाकरनेवाले इस इन्द्रका विनाश करनेवाला पुत्र मेरे किस उपायसे पैदा होगा। मैं समझती हूँ–पतिसेवाके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है। यों सोचकर वह दिति अपने स्वामीकी सेवामें रातदिन निरत हो गई। अपनी अच्युत सेवासे कश्यपको अपनेवशमें कर दिया। कश्यपजीने स्त्रीके आधीन होकर कहा—तेरा मनोरथ मैं पूर्ण करूँगा। दितिने कहा—ब्रह्मन्, यदि आप मुझे वर देते हैं तो मैं आपसे इन्द्रका वध करनेवाला मृत्युरहित पुत्र माँगती हूँ। कश्यपजीने खिन्नमनसे बहुत देर तक अनेक बातें सोचकर कहा—भद्रे, मैं एक व्रत तुम्हें बतलाता हूँ। एक वर्ष निरन्तर करनेके बाद तुम्हें इन्द्रको मारनेवाला एक पुत्र पैदा होगा। यदि उस व्रतमें कुछ भी त्रुटि आ जायगी तो वह देवताओंका मित्र बन जायगा अनन्तर वह गर्भवती हो गई और व्रत भी करने लगी। हे राजन्, उसका व्रत भंग करनेके लिये कश्यपजीके आश्रममें पहुँचकर इन्द्र उस दितिका शुश्रूषा करने लगा। गाढ़ निद्रासे सोई हुई उसे जानकर योगमायासे उसके पेटके भीतर जाकर इन्द्रने उसके गर्भके सात-सात टुकड़े कर डाले। काटते समय उन लोगोंने इन्द्रसे कहा—हमें मत मारो, हम तुम्हारे भाई हैं। इसप्रकार उनके कहनेपर इन्द्रने कहा—हे मरुद्गणों, भय मत करो तुम सब मेरे भाई हो। व्रतके प्रभावसे वे सब जीवित बाहर निकले। इन्द्रने उनका असुरत्व दूरकर यज्ञमें सोमपान कराया। उन बच्चोंको देखकर दितिने पूछा—इतने लड़के मुझे कैसे हुए। भयसे कम्पित होरहे इन्द्रने अपनी करी करतूत सुना दी। हे राजन्, इन्द्रके हृदयको शुद्ध जानकर दिति प्रसन्न हो गई। उसने इन्द्रको स्वर्ग जानेके लिये आज्ञा दे दी। राजन्, मरुतोंके देव बननेके विषयमें पूछा था मैंने कह दिया ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथैकोनविंशतितमोऽध्यायः ❀

(असन्ततिवालोंके लिये पुंसवन नामक व्रत विषयक वर्णन)

राजाने कहा—हे ब्रह्मन्, जो अपने पुंसवन व्रतको कहा जिससे भगवान् विष्णु राजी होते हैं उसको मैं जाननेकी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवने कहा–हे राजन्, आपने

राजोवाच ॥ व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम् ॥ तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ॥ आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥ निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च ॥ स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालङ्कृताम्बरे ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥ अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ॥ महावि-

मालिककी आज्ञा शिरोधार्य कर सब इच्छाओंको सिद्ध करनेवाले इस व्रतको मार्गशीर्ष शुक्लपक्षप्रतिपदासे प्रारम्भ करे ॥२॥ मरुद्गण जन्मकथा श्रवणकर द्विजोंसे आज्ञा स्वीकारकर दैनन्दिन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुबह स्नान श्वेत वस्त्र, गहने पहन, भोजनके पूर्व लक्ष्मी सहित नारायणकी अर्चना बारम्बार करे ॥ ३ ॥ हे पूर्णकाम; सब कुछ आपको मिलता है, अतः किसीसे कुछ नहीं चाहते ऐसे आपको नमस्कार है। हे महाविभूतिपते, सर्वसिद्धिमय, आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे देव, कृपा, विभूति, तेज, महिमा, वीर्य आदि सभी प्रभुताके गुणोंसे परिपूर्ण आप हैं। और आप साक्षात् भगवान् हैं ॥ ५ ॥ भगवान्‌की इसप्रकार स्तुतिकर लोकमाता भगवतीकी आराधनाकर कहे—हे विष्णुपत्नि, हे महामाये, हे महापुरुषलक्षणे, हे महाभागे, मुझपर तुम प्रसन्न हो तुमको नमस्कार है ॥ ६ ॥ फिर संयत चित्त होकर महापुरुषमहाविभूतिपति महानुभाव महाविभूतिवाले भगवान्‌को नमस्कार है। उनको पूजोपहार अर्पण मैं करती हूँ—इस मन्त्रका उच्चारणकर श्रीविष्णुभगवान्‌का प्रतिदिन आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध पुष्प, धूप, दीप उपहार आदि समर्पण करे ॥ ७ ॥ हविः

भूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥ यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा ॥ जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान्प्रभुः ॥ ५ ॥ विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ॥ प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सहमहाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति ॥ अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्धपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत् ॥ ७ ॥ हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥ ८ ॥ श्रितं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ॥ भक्त्या सम्पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पदः ॥९॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ १० ॥ युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ॥ इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥ ११ ॥ तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः ॥ त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥ १२ ॥ गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् ॥ त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ॥ नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥ १३ ॥ यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ॥ तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥१४॥ इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ॥ तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनम-

शेषसे दीप्ताग्निमें बारह 'ॐनमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहासे आहुति देवे ॥ ८ ॥ जिसको ऐश्वर्यकी कामना हो वह सब इच्छायें परिपूर्णार्थ वरको देनेवाले श्रीलक्ष्मी तथा भगवान्‌का भक्तिद्वारा अर्चन करे ॥ ९ ॥ भक्तिसे भूमिपर दण्डवत् प्रणामकर दस बार उपरोक्त मन्त्रका जपकर स्तोत्र पाठ करे ॥ १० ॥ आप दोनों सर्वव्यापक तथा सब संसारके परम हैं, और दुःखसे जानने योग्य मायाशक्तिरूपी सूक्ष्म यह प्रकृति हैं ॥ ११ ॥ इसके आप अधीश्वर साक्षात् परमपुरुष हैं, तुम ही सब यज्ञ हो, ये इज्या हैं, आप फलभोक्ता तथा ये क्रिया हैं ॥ १२ ॥ यह देवी गुणोंकी व्यक्ति हैं आप गुणोंके भोक्ता उनके व्यञ्जक हैं, शरीरधारियोंके आप आत्मा हैं तथा लक्ष्मी शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरण हैं, भगवती लक्ष्मी नाम, रूप हैं, आप उसके प्रकाशक तथा आश्रय हैं ॥ १३ ॥ त्रिलोकीके आप दोनों श्रेय देनेवाले ईश्वर हैं, अतः मेरी सब महान् इच्छाएँ आपकी दयासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परिपूर्ण हों ॥ १४ ॥ इसप्रकार श्रीके साथ वरद श्रीनिवासकी स्तुतिकर वहांसे नैवेद्यको पृथक् कर आचमनकरे तथा भगवान्का अर्चन करे ॥ १५ ॥ और विनम्र भक्ति चित्तसे भगवान्की स्तोत्रसे स्तुतिकर यज्ञोच्छिष्टको सूँघकर भगवान्का फिर अर्चन करे ॥१६॥ इसीप्रकार अपने स्वामीको भी सब प्रिय चीजें समर्पणकर अत्यन्त भक्तिसे महापुरुषके मनसे पूजन करे। तथा पति भी अपनी स्त्रीके सब कार्योंको प्रेमसे परिपूर्ण करे ॥ १७ ॥ पत्नि-पतिमेंसे एकसे भी किया कार्य स्त्री-पुरुषोंको फल देनेवाला है, इसलिये यदि स्त्री व्रतको करने योग्य न हो तब पति ही एकचित्तसे इसका सम्पादन करे ॥ १८ ॥ यह वैष्णवव्रत ग्रहणकर कभी भी न त्यागे इस व्रतको नियमसे ग्रहण करनेवाला पुरुष या स्त्री प्रतिदिन देवपूजनोत्तर माला, चन्दन, नैवेद्य, गहना आदिसे ब्राह्मणों और साध्वी स्त्रियोंका भक्तिसे पूजन करें ॥ १९ ॥ भगवान्को अपने धाम जाने की भावना, उनका विसर्जनकर मनकी

र्चयेत् ॥ १५ ॥ ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥ १६ ॥ पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ॥ प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ॥ बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ १७ ॥ कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि ॥ पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ १८ ॥ विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथञ्चन ॥ विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥ अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥१९॥ उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ॥ अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥ २० ॥ एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादश हायनम् ॥ नीत्वाऽथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥ २१ ॥ श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ पयःशृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥ पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥२२॥ [ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या साध्वन्नैर्द्वादशात्मवित्। तेभ्यो दद्यात्तिलान्राजन्न सोदपात्रान्गुडान्वितान्] ॥ आशिषः शिरसादाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ॥ प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥ २३ ॥ आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ॥ दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभगम् ॥२४॥ एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ॥ स्त्री त्वेतदास्थाय लभते सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥ २५ ॥ कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं वरं

पवित्रता तथा मनोभिलषितकी समृद्धिके लिये प्रथम भगवान्का प्रसाद भक्षण करे ॥ २० ॥ बारह मास इस व्रतका साध्वी स्त्री आचरण कर कार्तिकमासके समाप्ति रोज उद्यापन-उपवास पूजनादि करे ॥ २१ ॥ सुबह ही उद्यापनके रोज स्नान, कृष्णका पूजनकर उस पत्नीका पति पाकयज्ञविधिसे अग्निमें दूधसे परिपक्व घृतमिश्रित-चरुसे बारह आहुति दे ॥ २२ ॥ और ब्राह्मणोंके प्रसन्नतासे दिये गये आशीर्वादोंको मस्तकपर ग्रहणकर उनको शिर नतकर भक्तिसे नमस्कार करे, उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर प्रथम आचार्यको भोजन करावे। तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ मौनतासे आप भोजन करे। जो सुन्दर सन्तति सौभाग्यको देनेवाला चरु अवशिष्ट हो उसको अपनी स्त्रीको दे देवे ॥ २३, २४ ॥ इस भगवान् विष्णुके प्रिय व्रतका सविधि करनेसे पुरुषकी सब मनोभिलषित वस्तुएँ मिल जाती हैं। इसपर आस्था करने से पत्नीको सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, अवैधव्य, यश, गृह आदिके आनन्द मिलते हैं ॥२५॥ यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्रत ग्रहण करनेसे कन्या सर्वलक्षणयुक्तपति प्राप्त करती हैं, पापरहित हो विधवाको अच्छी गति मिलता है जिसके पुत्र मर जाता है ऐसी स्त्रीको आयुवाला पुत्र प्राप्त होता है, ऐश्वर्यवती अभागिन स्त्रीको सौभाग्य, कुरूपाको सौन्दर्यता मिलती है, रोगी यदि इसका विधान करता है तो वह रोगसे छूट सुडौल देह प्राप्त करता है, यज्ञ-श्राद्ध आदिके समयपर इसके पाठसे

त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ॥ मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ॥ २६ ॥ विन्देद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ॥ एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्मण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥ २७ ॥ तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान् होमावसाने हुतभुक् श्रीहरिश्च ॥ राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

देव और पितर बहुत तृप्त होते हैं ॥ २६, २७ ॥ इससे देवता, पितर प्रसन्न हो उसकी सब इच्छाएँ परिपूर्ण करते हैं। इसीप्रकार होमान्तमें हवन संभारको अग्निके द्वारा भोगनेवाले लक्ष्मीनारायण प्रसन्न हों उसकी सब कामानाएँ परिपूर्ण करते हैं। हे राजन्, यह पुण्यको देनेवाला मरुद्गणका चरित्र तथा कश्यपप्रिय दितिके महाव्रतकी कथा तुमको मैंने कह सुनायी।

उन्नीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपनी स्वामीकी आज्ञा लेकर स्त्री अगहन मासकी प्रतिपदाके दिन सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले पुंसवन नामक व्रतका प्रारम्भ करे। मरुद्गणोंकी जन्म कथाएँ सुनकर व्रतके विषयमें ब्राह्मणसे पूछे। श्वेत वस्त्र, आभूषण आदिको धारणकर भोजन करनेके पहले लक्ष्मीनारायणकी पूजा करे। भलीभाँति पूजनके बाद नमस्कार करे। अन्तःकरणको भक्तिसे नम्र बनाकर भगवान्की स्तुति करे तदनन्तर ईश्वरबुद्धिसे परमभक्तिके साथ पतिको जो पदार्थ प्रिय हों, उनसे पतिकी सेवा करे। और पति भी स्त्रीके सब कार्योंको सिद्ध करे। यदि स्त्री रजस्वला होनेके कारण पूजनमें अयोग्य हो, तो पति ही अपने अन्तःकरणसे सब काम कर दे। चाहे जो कुछ भी हो, लेकिन व्रतभंग न करे। एक सालके बाद कार्तिकमासकी पूर्णिमाको स्त्री उपवास करे। सबेरे स्नानकर भगवान्का पूजन करे पतिसे हवन करावे। हे राजन्, विधिपूर्वक इस व्रतके करनेसे सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। इति उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रवण-माहात्म्यम्—

श्रवण-माहात्म्य—हरिरुवाच—ब्राह्मणीगमने पापं षष्ठस्य श्रवणे न हि। द्विबाहुकण्ठरूपस्य मम नश्यति यद् भवेत् ॥१॥ शृणु ब्रह्मन्नितीहासं कल्याणस्य प्रदायकम्। कदाचिद्देवराजो हि धृत्वा रूपमथौतुकम् ॥ २ ॥ अहल्यां गौतममुनेर्भार्यां प्राप विमोहितः। विलोक्य तं मुनिवरो महेन्द्रं शप्तवांस्तदा ॥ ३ ॥ येन त्वं जाररूपेण ह्यागतो मम मन्दिरम्। अतः शक्रशरीरे ते भगानां च सहस्रकम् ॥ ४ ॥ सदनं प्राथ शक्रः स्वं मुमोह च रुदोद च। ततो जगाम तपसे वनं वर्षसहस्रकम् ॥ ५ ॥ ततो वृत्रसमाक्रान्ता देवा मां शरणं ययुः। मया प्रोक्ता हि देवा यत्रेन्द्रस्तत्र गच्छत ॥ ६ ॥ मया सह महाभागाः स च वृत्रं वधिष्यत। तत्र गत्वाहमवचं बरं ब्रूहि पुरन्दर ॥७॥ पुरन्दर उवाच—ब्राह्मणीकृतसङ्गाच्च प्रपन्नोऽहं जनार्दन। तत्पापं मे यथा यातु तथा त्वं स माधव। तथा भगसहस्रं मे शरीरस्थं विनाशय ॥ ८ ॥ विष्णुरुवाच—नेत्रतां भगसाहस्रं यातु मत्कृपया हरे। यदा त्वं विश्वरूपाद्वै कवचं षष्ठसम्भवम् ॥ ९ ॥ पठिष्यसि तदा पापं सर्वं ब्राह्मणिसङ्गजम्। विनश्यति न सन्देह इतिहासमतः शृणु ॥ १० ॥ सिन्धुदेशेऽभवाद्विप्रोऽध्येतुं स गुरुमन्दिरम्। जगाम तत्र विद्यायामभ्यासं प्रचकार सः ॥ ११ ॥ ब्राह्मण्या गमनं तत्र स चकार धृतव्रतः। निःसारितः स गुरुणा कुष्ठक्रान्तस्तदाऽभवत् ॥ १२ ॥ गर्हयन्नात्मनः कर्म मुमोहाथ धृतव्रतः। देशे देशे भ्रमन्विप्रो वनमध्ये सरोवरम् ॥ १३ ॥ ददर्श तत्तटे तस्थौ जलपानार्थमुद्यतः। तत्र भागतीयं हि पुस्तकं षष्ठसंभवम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तद्वाचयामास स विप्रो दूरसंस्थितः। अर्द्ध श्लोकोच्चारणाच्च कीटास्तद्देहतो गताः। दिव्यदेहमनुप्राप्य ययौ वैकुण्ठमन्दिरम् ॥ १५ ॥

❀ अष्टादशपुराणपारायण-विधान ❀

शुक्लपक्षे दिने शुद्धे वारनक्षत्रयोगतः। करणे चापि लग्ने च ग्रहताराबलान्विते ॥ अमूढ़े न ग्रहे वाले न च वृद्धौ गुरौ स्थिते। न कृष्णपक्षे ग्रहणे न च नास्तिकः सन्निधौ ॥ शुद्धगेहेऽथवा शुद्धवेदिकायां मठेऽथवा। नदीतीरे देवगेहे सभामण्डप एव च ॥ रथ्यामठेऽथवा रम्ये पुण्यशालासु राघव। पूर्वोक्तलक्षणोपेतं पुराणं शृणुयादिति ॥ स्वयं नमस्य विप्रेन्द्रान् पुराणज्ञं विशेषतः। आसनं कल्पितं कुर्यादूर्ध्वं सर्वविशेषितम् ॥ एहि धर्मासनमिति वक्तव्यं स्यादनिष्ठुरम्। पुराणप्रक्रमदिने यत्कार्यं तदुदीरयेत् ॥ व्याख्यातारं पुराणस्य वस्त्राद्यैः परिपूजयेत्। शुभानि दत्वा वस्त्राणि सूक्ष्माणि च नवानि च ॥ करकण्ठविभूषादि पात्रमासनमेव च। गन्धपुष्पाक्षतैः पूज्य ताम्बूलं विनिवेद्य च ॥ शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ सभासदश्च संपूज्य गणेशं पूजयेत्ततः। ॐ नमेत्यादि मन्त्रेण पूजनं भारती नुतिः ॥ प्रातःकाले पुराणस्य प्रक्रमं प्रारभेदिति। उपक्रमदिने रामत्रिपं च दश वा पुनः ॥ श्लोको द्वितीये दिवसे ततो द्विगुणिताः शुभाः। तृतीये दिवसे राम ततश्चाधिकमिष्यते॥दिनानामव्यच्छेदाद्व्यारव्यतत्पुराणं नं श्रवणं तथा। व्यवस्थितिर्यदा जाता तदा पौराणिकं गुरुम्॥ ताम्बूलानि प्रदायाथ परेद्युः शृणयादति। पुराणमेव श्रोतव्यं दैनन्दिनमितिः श्रुतिः ॥ व्रतरूपेण यः कश्चित्पुराणं शृणुयान्नरः। यदैवं तु तत्र याति न संशयः ॥ पुराणं श्रोतुकामेन श्लोकश्चैकोऽपि चेच्छ्रुतः। तद्दिने तु कृतं पापं नाशयेत्तु न संशयः ॥ एवं पुराणं शृणयाच्च यस्तु स ब्रह्महत्याकृतपापबन्धनात्। सुरापीतिः स्वर्णहृश्च रामगुर्वङ्गनागश्च विमुक्तिमेति ॥ भारतश्रवणे चापि नियमा ये मयेरिताः। आदिपर्वसमाप्तौ च सूक्ष्मवस्त्रत्रयं ददेत् ॥ सुवर्णं च यथाशक्ति सभापर्वणि वाससी। अनुशासनि कारण्यस्वर्गारोहेषु पर्वसु ॥ आदि पर्वणि पूजा या सा पूजा नृपपुङ्गव। कर्णाश्वमेधवैराटशल्यद्रोणेषु पर्वसु ॥ सूक्ष्मवस्त्रत्रयं शुद्धं निष्कद्वयमथापि वा। क्षुद्रपर्वस्वथान्येषु निष्कावथ समानयेत् ॥ हरिवंशे सनिष्कं तु वस्त्रत्रितयमेव च। भारतस्याखिलस्यैव समाप्तौ क्षेत्रदा भवेत् ॥ रामायणस्य श्रवणे काण्डे-काण्डे प्रपूजयेत्। क्षेत्रं पर्याप्तमथवा सुवर्णमपि दापयेत् ॥ अन्यान्यपि पुराणानि मुनि प्रोक्तानि तान्यपि। श्रोतणां पापनाशाय वक्तुश्चापि विशेषतः ॥ यश्च सर्वपुराणानि षट्त्रिंशत्तु प्रकीर्तयेत्। शृणोति वा न तस्यास्ति चित्तच्छेदः कदाचन। अनुष्ठानप्रकाश पृ० २८९—२९० से उद्धृत।

(पारायण-विधान)

३५ ८ १० १० ११   १८ ६   ६ २ २ ५२   ५

त्रिपञ्चाष्ट दशादशेशास्कन्धानामनुपूर्वशः। पुराणारिरसद्विद्विपञ्चाशत पञ्चसुस्थितिः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ कौशिकसंहितोक्तं श्रीभागवतमाहात्म्यम् ❀

शौनक उवाच–सप्ताहे तु महान्विद्वन्नायासोवर्णितोऽधुना । अल्पायासां कथां ब्रूहि श्रीमद्भागवतीं पुनः ॥ १ ॥ सूत उवाच–नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि गुरुं वैयासिकिं मुनिम् । मध्यमायासिकीं गाथां श्रीनारायणवर्णिताम्॥२॥यं प्रव्रजन्तमनुपेतमतेपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव । पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥३॥ शौनक उवाच–संसारेऽस्मिन्न प्रजतानां नृणां त्वं वदताम्वर । अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानचक्षुः प्रदायकः ॥ ४ ॥ ऐहिकामुष्मिकसुखं येन स्यात्तद्वदस्व मे । केऽस्मिन्वृथा जन्मभाजः साफल्यं जनुषः कथम् ॥ ५ ॥ सूत उवाच–यैर्नश्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो यैः पुरुषःपुराणः । हुतं मुखेनैव धराऽमराणां तेषां वृथाजन्मगतं नराणाम् ॥ ६ ॥ शृण्वन्ति ये भागवतं पुराणं तथार्चयन्ते पुरुषं पुराणम् । सदैव विप्राग्रप्रदा नरा ये तेषां जनुः स्यात्सफलं ❀समग्रम् ॥७॥ ऐहिकामुष्मिकसुखं श्रीमद्भागवतश्रुतेः । सात्विक्याश्च भवेद्विप्रा भक्तिश्रद्धापुरस्सरम् ॥ ८ ॥ शौनक उवाच–श्रीमद्भागवतं कीदृक्कथं कस्मात्त्वभूव ह ॥ किं प्रमाणं किं ~ रितं सात्विकं श्रवणं कथम् । एतद् ब्रूहि दयासिन्धो सूत सौम्य सुनिश्चितम् ॥ ९ ॥ सूत उवाच–उदधेः संप्लवे पूर्वं यदा शेते जनार्दनः ॥ तदा तन्नाभिकलादात्मभूः संवभूव ह ॥ १० ॥ स एकः शोकमापेदे कथं स्रक्ष्याम्यहं प्रजाः ॥ तदा भगवता तस्मै नियोगस्तपसे कृतः ॥ ११ ॥ ततप स बहुसमास्तेन तुष्टो हरिर्ददौ ॥ श्रीमद्भागवतं तस्मै वेदश्लोकात्मकं शुभम् ॥ १२ ॥ तद्विचारात्स चावाप सर्गसामर्थ्यमात्मनि । ब्रह्माकचिन्नदाय स्वसुताय महात्मने ॥ १३ ॥ तद्वृद्धये जगादाथ स च व्यासाय सन्ददौ । विखिन्नचेतसे तीरे सरस्वत्या द्विजोत्तम । १४ ॥ व्यासः पुत्राय प्रोवाच विस्तार्य श्रीशुकाय वै । निवृत्तिनिरतो राज्ञे स जगाद परीक्षिते ॥ १५ ॥ श्रीमद्भागवतं लोके इत्थमाविर्बभूव ह । लक्षणं शृणु विप्रर्षे पुरा भगवतोदितम् ॥ १६ ॥ गरुडाय स्वाहाय पृच्छते प्रणताय च । गायत्रीभाष्यभूतोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः ॥ १७ ॥ अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः । पुराणानां सामरूपः साक्षाद् भगवतोदितः । ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः ॥ १८ ॥ सद्बीजः प्रणवाङ्कुरो रविमितस्कन्धैर्युतः कल्पवृट् पञ्चत्रिंत्रिमिताः खखाग्रवसुभूः शाखाप्रशाखास्तथा ॥ शून्याकाशखषङ्गिरीपु समिताः पत्राणि यस्य स्फुटं स श्रीभागवताह्व इष्टफलदो भक्त्युत्थितो राजते ॥ १९ ॥ स्कन्धेषु सर्वेषु गतां त्रुवेऽहमध्यासंख्यां शृणुत द्विजेन्द्राः । एकोनविंशदशरामरामास्तयैवत्रिंशद्सनेत्रसंख्याः ॥ २० ॥ नन्देन्दुसंख्याशरचन्द्रसम्मिताश्चतुद्वयं चाग्रिमके तथैव । खनन्दसंख्याविधुवह्निसंख्या अध्यायसंख्याः क्रमतस्त्रिरूपाः ॥ २१ ॥ एतस्य श्रवणं प्रोक्तं चतुर्द्धा मुनिसत्तमैः ॥ सात्विकं राजसं चैव तामसं निर्गुणं तथा ॥ २२ ॥ सप्ताहं राजसं प्रोक्तं तामसं सालसं तु यत् । सात्विकं त्वेकविंशाहं तयैवाष्टादशाहकम् ॥ २३ ॥ तथा पञ्चदशाहं चानियतं निर्गुणं स्मृतम् । राजसे त्वर्थसङ्कोचस्तामसे स्मृतिविभ्रमः ॥ २४ ॥ सात्विकं सुखबोधाय निर्गुणं सर्वतो वरम् । सात्विकश्रवणेनैव बहवो लेभिरे सुखम् ॥ २५ ॥ इत्युक्तवन्तं सूतं तु प्रोवाच मुनिसत्तमः । के के सुखं परं प्रापुः सात्विकश्रुतितो वद ॥२६॥ सूत उवाच–कदाचिन्नारदो योगी पर्वतं गन्धमादनम् । द्विजवेदरवैर्घुष्टं बहुनिर्झरशोभितम् ॥२७॥ गङ्गाप्रपातनिनदं सुरासुरसमर्चितम् । जगाम मुनिशार्दूलो द्रष्टुं नारायणं मुनिम् ॥ २८ ॥ तत्र गत्वा ददर्शाय नरं नारायणं तथा । नमस्कृत्य विवेशाग्रे विनीतः प्रियदर्शनः ॥ २९ ॥ तं दृष्ट्वा भगवान्प्राह कथनोत्सुकमानसम् । ब्रूहि नारदवृत्तान्तं लोकानां खलु सर्वतः ॥ ३० ॥ किं वृत्तयः किमाचाराः किं धर्मा मानवा भुवि । यथा दृष्टं तथा ब्रूहि कथामागमनं तव ॥ ३१ ॥ नारद उवाच–लोका विधर्मनिरताः शुष्कवैराः सुदुर्मदा। शिश्नोदरपरा जाताः सर्वे वर्णाः सुरोत्तम ॥ ३२ ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसा वृत्तयोः धर्मदूषकाः । मांसाशिनो मद्यरता वेदहीना द्विजातयः ॥३३॥ कलहेन वै यापयन्तिपर्वोत्सवदिनं वृथा । स्त्रैणाश्च निन्दकाः सन्ति सर्वधर्मबहिष्कृता ॥ ३४ ॥ दृष्ट्वा तान्मलिनान्सर्वांश्चिन्तैषामे समागता । कथमेषामयत्नेन भवेदुभयतः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुखम् ॥३५॥ तत्प्रष्टुमागतो देवं तवान्ति सुखदायक । तद् ब्रूहि सुगमोपायं सर्वपापविनाशनम् । सुसाध्यं मानवैर्देव धर्मवृद्धिर्यतोऽनिशम् ॥३६॥ इति श्रीकौशिकसंहितायां भा०म०प्र०अ० ।

नारायण उवाच—शृणु नारद यत्नेन वदामि हितकारकम् । सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां विशेषतः ॥१॥ आसीत्पूर्वयुगे वैश्या नेपालनगरे सुधीः । वृत्तिहीनोः बन्धुहीनः सस्त्रीकः सुतवर्जितः ॥२॥ यमुद्यमं संकुरुते स सुधा जायतेऽखिलः ॥ तत्पत्नी हरितादेवी पेषणाद्यं चकार ह ॥ ३ ॥ तल्लब्धैनैव चान्नेन वृत्तिं चक्रतुरात्मनः । दम्पतीस्नेहरहितौ गर्हमाणौ स्वमुद्भवम् ॥ ४ ॥ व्याधिभिर्विविधैश्चोभौ पीड्यमानौ स्वकर्मतः । आस्तां नगरमध्ये तु कदाचिन्निर्गतः सुधीः ॥ ५ ॥ विहाय हरितां भार्यां जगाम विषमं वनम् । विचरन्स वने वैश्यो ददर्श सर उत्तमम् ॥ ६ ॥ तत्समीपे बहुविधानाश्रमान्मुनिसेवितान् । तन्मध्ये सर्वतः श्रेष्ठं कुटयां सांख्यायनं मुनिम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मतेजः समायुक्तं बहुशिष्योपशोभितम् । साक्षात्पद्मासनमिवदृष्ट्वापूर्वपुण्यतः ॥ ८ ॥ तं प्रणम्य तत्समीपे विवेश च तदाज्ञया । सपृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेत्र कः ॥ ९ ॥ सर्वं ब्रूहि यथातत्वं का जातिस्तव सुव्रत । इत्युक्तो मुनिना वैश्यः स्वाभिप्रायं जगाद ह ॥ १० ॥ भगवन् किं न विदितं तपोज्ञानसमधिना । वैश्योऽहं शृणु भो ब्रह्मन्, विज्ञप्तिं मे कृपानिधे ॥११॥ धनसन्ततिहीनोऽहं बहुरोगप्रपीडितः । तप्तोस्मि बहुधा विप्रभर्तुमागमनं मम ॥१२॥ न जीवने सुखं पश्याम्यत्र सर्वविगर्हितः । किं मया सञ्चितं पूर्वं येनैषा मे दरिद्रता ॥१३॥ भगवन्कृपया ब्रूहि दीनं शरणागतम् । यत्फलं दीनदययानतत्क्रतुभिराप्यते ॥१४॥ इत्यावेदितहार्दाय सांख्यायन उवाच ह । शृणु वैश्यपुरावृत्तं स्वकीयं दुःखहेतुकम् ॥१५॥ शूद्रजातिमुद्भूयो वेदाभ्यास पुराकरोत् । विप्रायित्वा त्वमात्मानं काश्यां नाम्ना ससूलकः ॥ १६ ॥ अभ्यस्य भहुशास्त्राणि भिक्षुवेषं चकार ह । विध्याश्चकारं बहुशो विप्रान्नानाविधान्द्विज ॥१७॥ उच्छिष्टं भक्षयामास सर्वान् शिष्यान्मदोद्धतः । उच्छिष्टमार्जनं चापि पादसंवाहनं तथा ॥१८॥ विप्रैस्त्वं कारयामास शिष्योभूतैर्हठाद् बहु । कदाचिद्दैवतो मृत्युरागतो विट्पतेस्तव ॥ १९ ॥ गतो भूर्धर्मराजस्य पुरं दुःखेन पीडितः । सशिष्यस्त्वं ततो वैश्य बहुधा दुःखमाप्य ॥ २० ॥ उच्छिष्टं प्राशयेद्विप्रं मोहात्स्नेहात् हठाच्चयः । सर्वाग्रभोजिन मूढो लालाभक्षं प्रयाति सः ॥२१॥ शारीरिकमलान्भुङ्क्ते यावदाभूतसंप्लवम् । यो हीनश्चोत्तमं वर्णं शिष्यत्वे विनियोजयेत् ॥२२॥ स शूकरमुखं याति ताड्यमानो यमानुगैः । वर्षवर्षसहस्राणि भुक्त्वा नरकयातनाः ॥२३॥ शौकरीं गार्दभीं योनिं बहुशोवाप वैश्यज । चाण्डालजातौ बहुधा जातस्त्वं निजकर्मणा ॥ २४ ॥ केनचित्पुण्यशेषेण जातो वैश्यगृहे सुधीः । धनधान्यसुतैर्हीनो व्याधिभिः कृतवेश्मभूः ॥ २५ ॥ अधुना कुरु भो वैश्य ! निष्कृतिं पूर्वकर्मणः । तेन त्वं चैहिकान्भोगान्भुक्त्वान्ते प्राप्स्यसे सुखम् ॥ २६ ॥ इत्युक्तोऽवनतो वैश्य उवाच मुनिसत्तम । यथाहमाप्नुयां विप्र सुखं तव प्रसादतः । प्रायश्चित्तोमतो ब्रूहि कर्तुं शक्यं च यन्मया ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच—प्रायश्चित्तं न पश्यामि ज्ञात्वा वृजिनकारिणः । ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ २८ ॥ आत्मोद्धारकताशक्तिः परोद्धारकता तथा । शक्ती द्वे ईश रचिते स्वोद्धारो सर्वसंस्थिता ॥ २९ ॥ परोद्धारा न सर्वत्र वैश्य हे ब्राह्मणं विना । विप्रन्द्वे एव वर्त्तेत तस्माद्विप्रो गुरुर्भवेत् ॥३०॥ अतः सर्वं कृतं विप्रैर्जपहोमार्चनादिकम् । लभते सर्वलोकोऽयं नात्यजाति कृतं क्वचित् ॥३१॥ अलाभे विदुषो विप्र जातिमात्रपरिग्रहः । अतो विप्रः सर्वपूज्यः सर्वदा सुखहेतवे ॥ ३२ ॥ नाविप्रो विप्रपूज्यस्त्वं प्राप्नोति वैश्यकर्हिचित् । इदं त्वया ज्ञातमेव शास्त्रे वेदे तथैव च ॥ ३३ ॥ किञ्चेदमपि जानासि न विप्रः शूद्रपूजकः । विप्रस्यैव प्रव्रज्यास्ति नान्यवर्णस्य कर्हिचित् ॥३४ आचार्यत्वं ब्राह्मणस्य स्थापितं पद्मयोनिना । नान्यवर्णस्य जायेत तव आदिभिरव्रतत् ॥३५॥ नहि जातिपरावृत्तिश्चिह्नमात्रपरिग्रहात् । न नापितो ब्राह्मणतां याति सूत्रादिसङ्ग्रहात् ॥ ३६ ॥ कलौ ब्राह्मणता वीर्यात्तवश्चर्या दिना न हि । शुद्धं त्वशुद्धतामेत्य शोधनाच्छुध्यते पुनः ॥३७॥ यच्च स्वभावतोऽशुद्धं तन्न शुध्यति शोधनात् । यथा भस्मादिसंसर्गादशुद्धं तैजसं शुचि ॥ ३८ ॥ शुद्ध्यं न शुद्धिमाप्नोति गङ्गाम्भः स्नावनादपि । न दम्भसदृशं पापं न पुण्यं सत्यसंमि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तम् ॥३९॥ अतस्त्वया महत्पापं कृतं दम्भधृतेः पुरा । ते शिष्या निखिला जग्मुरज्ञानाद् गुणधारणात् ॥ ४० ॥ नरकान्क्रमशो वैश्य कुम्भीपाकमुखान्बहून् । एकमेव प्रपश्यामि तव पापविशोधनम् ॥ ४१ ॥ एकविंशदिनेवैश्य श्रीभागवतसेवनम् । तत्कुरुष्व समाजेन तीर्थे वाथ वने गृहे । साधूनां विनतो भूत्वा ततः प्राप्स्यपि चेप्सितम् ॥४२॥ वैश्य उवाच—भगवन्मे दरिद्रस्य वक्ता कोऽपि न जायते । परोपकृतये यूयं ब्राह्मणा निर्मिता द्विजाः ॥ ४३ ॥ पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः खादन्ति न स्वादुफलानि वृक्षाः । अम्भोधरोवर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा दयायुक्तो बभूव मुनिसत्तमः । उवाच खलु गङ्गायास्तीर्थे कुब्जाम्रकेऽधुना ॥ ४५ ॥ गाथां प्रवर्तयिष्यामो मुनिवृन्दं समाह्वये । इत्युक्तो प्रेषयामास ह्यानेतुं मुनिपुङ्गवान् ॥ ४६ ॥ शिष्यान्सर्वान्समाहूयाऽनेवाव ऋषिसत्तमाः । श्रीमद्भागवतस्यैकविंशतिदिनैर्मुदा ॥ ४७ ॥ सात्विकं सेवनं विप्रा गङ्गातीरे भविष्यति । तत्कथामृतपानाय गच्छ त्वं मुनिपुंगवाः ॥ ४८ ॥ ततो मुनीन्समादाय शिष्या आपेतुराश्रमम् । ततो जगाम मुनिभिर्मुनिः सांख्यायनो वरम् ॥ ४९ ॥ कुब्जाम्रकं महाक्षेत्रं तत्र गाथास्थलं महत् । कारयामास विप्रेन्द्र श्रोतृन्सर्वान्यथोचितम् ॥ ५० ॥ निवेश्य कथयामास श्रीमद्भागवतं परम् । द्वादशस्कन्धसंयुक्तमष्टादशसहस्रकम् ॥ ५१ ॥ तं वैश्यं संमुखीकृत्य स्थिरचित्तो द्विजाज्ञया । रूपाच्चिदिवसैरेव मुनिमण्डलमध्यगः ॥ ५२ ॥ कथासमाप्तावपतत्पुष्पवृष्टिर्दिवश्च्युता । ततो जय जयाराव ऋषिवृन्दैः समीरितः ॥ ५३ ॥ स च वैश्यो बभाराशु परमां श्रियमानतः । ऋषिभिः प्रेषितः प्रागाद् गृहमात्मन एव तत् ॥ ५४ ॥ स्ववृत्तं कथयामास भार्यायै पूजितो मुदा । सापि दर्भं दधाराशु मुदिता प्रियसंश्रयात् ॥ ५५ ॥ सन्तापेन गृहं तस्य पपात निखिलं ततः । स शुशोच ततो वैश्यो मृदश्चालनवत्परः ॥ ५६ ॥ कुड्यमूलावपातार्थं चखानश्रमताडितः । ततो दीनारनिचयैः संभृतान्बहुसंख्यकान् ॥ ५७ ॥ निपानवापविप्रेन्द्र तान्निशाम्य मुमोद ह । तेन द्रव्येण बहुधा रचयामास मन्दिरम् ॥ ५८ ॥ कुसीद ग्रहणार्थं स ददौ बहीर्हिरण्यजाः इष्टपूर्तादिकं धर्मं स चकार द्विजाज्ञया ॥ ५९ ॥ एकसमान्तराले तु पुत्रं प्राप सुशोभनम् । देशान्तरे गीतकीर्तिर्जातो भागवतश्रवात् ॥ ६० ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तश्चिरजीवित्वमाप सः । देहान्ते वैष्णवं धाम सुरासुरनमस्कृतम् । जगाम सविमानेनानीतेन वैष्णवैर्मुदा ॥ ६१ ॥ इति श्रीकौशिकसंहितायां भागवतमाहात्म्य एकविंशतिदिनकथाश्रवणफलनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

शौनक उवाच—परमामृतपानेन तृप्तिर्जायेत मे न वै । अतोऽष्टादशगं यागं ब्रूहि मे वदतां वर ॥१॥ सूत उवाच—क्षत्रियो मध्यदेशेऽभूद्राजसिंहोपनामकः । मातापित्रोर्मृतिं प्राप बाल्य एव स आत्मनः ॥ २ ॥ दययामालितो बालो यमितिपार्श्ववर्तिभिः ॥ यौवने कुष्ठरोगेण पीडितो निर्गतो गृहात् ॥ ३ ॥ अष्टादशविधेनैव रोगी देशान्तरे गतः । विन्ध्याद्रिनिकटेऽरण्यं ददर्श बहुपादपैः ॥४॥ मत्तषट्पदसङ्गीतैर्मत्तकोकिलनिस्वनैः । मृगैर्वराहैः श्वाविद्भिर्गवयैः सैरिभैरिभैः ॥५॥ जुष्टं तस्मिन्बहुविधानाश्रमान्यत्र संवृतान् । तत्रैव याचनावृत्तिमाश्रित्योवास बाहुजः ॥ ६ ॥ भारद्वाजाश्रमं यातः कदाचिद्वनोदितः । तं गलद्वपुषं दृष्ट्वा पप्रच्छ कृपया मुनिः ॥ ७ ॥ कोऽसि कुतः समायातः कथमागमनं त्विह । इत्युक्तः स जगादेदं क्षत्रियोऽस्मि द्विजोत्तम ॥ ८ ॥ बन्धुहीनो रुजाग्रस्तो विचरामि यतस्ततः ॥ न मां सम्भाषते कश्चित्सर्वो वक्तेति गम्यताम् ॥९॥ न जाने किं कृत पूर्वं येनेयमागता दशा । मे मृत्युर्न समायातिधिग्रुगार्तस्य जीवनम् ॥१०॥ ईदृशो नहि मे रोगो जनगोष्ठ्यां यथा विशे । ब्राह्मणा भूमिदेवाः स्थ जानीथ निखिलं कृतम् ॥११॥ तपसा शास्त्रदृष्ट्या वा ब्राह्मणा जगदीश्वराः । इयं ब्राह्मणनौर्विप्र विपरीता भवार्णवे ॥१२॥ तरन्त्यधोगता यस्यामञ्जन्त्युपरिवर्तिनः । सर्वे देवाश्च पितरो ब्राह्मणैर्दर्शिता भुवि ॥ १३ ॥ न ब्राह्मणस्य समतां कश्चिदायाति मानवः । ब्राह्मणार्थं स्वयं विष्णुरवतारान्बिभर्ति वै ॥ १४ ॥ जिष्णुर्वर्णेति विप्रार्थं विप्रार्थं तपसे रविः । विप्रावमन्तृत्रविजो बहुधा दण्डताडनैः ॥ १५ ॥ नियच्छतीह सर्वेषां विप्र एव गुरुर्मतः ॥ विप्रः पूज्योस्त्यनाचारो न च शूद्रो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुष्टापि गौर्यथा दोह्या न गंगास्नायिनी खरी । सर्वतीर्थपरिस्नातः सर्वदेवकृतार्चनः । पूताचारप्रवृत्तोऽपि नाविप्रो विप्रतां लभेत् ॥ १७ ॥ विप्राशितमिहाश्नन्ति देवताः पितरस्तथा । अतः सर्वाग्र भोक्तारो विप्रा एव न चेतरे ॥ १८ ॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च । तस्यैवानुग्रहेणान्ये भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥ १९ ॥ विप्रदत्तेषु लोकेषु गताः पूर्वे नरोत्तमाः । अतो मामुद्धर मुने दुस्तराद्रोगवारिधेः ॥ २० ॥ श्रुत्वार्तवचनं विप्रः प्रणिदध्यौ ततोऽब्रवीत् । त्वं बभूविथ भो रोगिन् विप्र एवाथनीवृति । मद्राह्वये कुसङ्गेषु संसक्तं मानसं च ते ॥ २१ ॥ पाखण्डानुगतो भूत्वा वेदनिन्दां चकार ह । सेतिहासपुराणानां तथाऽभूः कुत्सने रतः ॥ २२ ॥ पाखण्डिकल्पितैस्तर्कैर्न स्वर्गोऽस्ति न देवताः । विप्रैर्वरचिता ग्रन्थाः स्त्रीयपूजादिहेतवे ॥ २३ ॥ तैः सर्वे वञ्चिता लोका मूढा इत्येवमादिभिः । मनुष्यवाचारचितान्मन्वौ ग्रन्थांश्च नित्यशः ॥२४॥ तेन दोषप्रभावेण जातकुष्ठो गलद्वपुः । वेदोनिःश्वसितं विष्णोर्निःश्वासं प्राण उच्यते ॥२५॥ स्मृतयश्च पुराणानि सेतिहासानि तद्वपुः । वेदनिन्दसमं तापं न भूतं न भविष्यति । न तेन सङ्गतिं कुर्यान्न संभाषेत तेन वा ॥ २६ ॥ पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः । याम्यपाशान्निवृत्तिस्तु तेषां नैव कदाचन ॥ २७ ॥ ज्ञातं मया त्वया भुक्ता यातना यमकारिताः । काकाद्यनेकनिंद्यस्ते देहा आसंस्ततः परम् । २८ ॥ इदं त्वलब्धवान्देहं कुष्टैष्टादशान्वितैः । मनसा कर्मणा वाचा पापं नैव समाचरेत् ॥ २९ ॥ पापाचरणवेलायां न जानाति मदाकुलः । भोगकाले ततो वक्तिधिङ्माम्पापप्रकारिणम् ॥ ३० ॥ अतस्त्वमष्टादशभिदिवसैः स्थिरमानसः । शृणु भागवतं शास्त्रं वैयासिकिसमीरितम् । ३१ ॥ विपापो भविता तेन तथोल्लाघो भविष्यति । श्रुत्वा मुनिवचः प्राह को मे वक्ता भविष्यति ॥ ३२ ॥ दूरं गच्छेति मनुजः सर्वे मां प्रवदन्ति हि । अतस्त्वमेव दयया शास्त्रं भागवतं मुने । श्रावयस्व दिनैरष्टदिक्संख्यासंयुतैर्द्विज ॥३३॥ दानेन पाणिर्न कङ्कणेन श्रोत्रं श्रुते नैव न कुण्डलेन । विभाति कायः करुणापराणां परोपकारेण न चन्दनेन ॥ ३४ ॥ तच्छ्रुत्वा श्रोत्रियान्विप्रा नानाय्य श्रवणाय सः । तं पापं दूरतः स्थाप्य कथां भागवतीं जगौ ॥ ३५ ॥ बभूव दिव्यदेहोऽसौ क्षत्रियोऽष्टादशे दिने । अहोशास्त्रमहोशास्त्रमहोगुरुरहो गुरुः ॥ ३६ ॥ येनेदृशः पापतमो मोचितेति शशंस ह । कथाश्रवान्तेऽरूपा वाग्बभूव शृण्वतां सताम् ॥ ३७ ॥ यः श्रोष्यते भागवतीमष्टादशदिनैः कथम् । स ब्रह्म यास्यति प्रेत्य भुक्त्वा भोगांस्तथैहिकान् ॥ ३८ ॥ इति श्रुत्वा प्रमुदिता ये च तत्र समागताः । श्लाघयन्तो गतास्सर्वे क्षत्रियोऽपि द्विजाज्ञया ॥३९॥ स्वग्राममगमद्रात्रौ सुष्वाप बहिरेव सः । तस्यां रात्रौ पुराधीशो मृतिमापानपत्यक ॥ ४० ॥ तन्मन्त्रिणां विमर्शोऽभून्नृपः कोऽत्र भविष्यति । यः प्रातः प्रथमं द्वारमायाति स नृपो भवेत् ॥ ४१ ॥ इत्थं जाते च समये स प्राप्तो मन्त्रिभिस्तदा । राज्यासने निवेशासौ प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ४२ ॥ स स्वदेशो भागवतीं कारयामास वै कथाम् । अन्ते प्राप परं धाम श्रीमद्भागवतं स्मरन् ॥ ४३ ॥ श्रीकौशिकसंहितायां भागवतमाहात्म्येऽष्टादशदिनश्रवणफलवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

शौनक उवाच—सूत सूत कथां ब्रूहि श्रीमद्भागवतीं पुनः । पञ्चभिर्दिवसैः केन श्रुता दशयुतैर्वद ॥ १ ॥ सूत उवाच—पुरा बभूव नृपतिः कान्यकुब्जे द्विजोत्तमः । नीतिमार्गपरित्यागी बहुधा कामचारिभिः ॥ २ ॥ अमात्यैः संयुतो राज्यं शशास बहुवार्षिकम् । बभूव तस्य राजानो वैरिणोन्ये मुने पुरा ॥ ३ ॥ तैस्तस्य चाभूत्प्रधानं तुमुलं लोमहर्षणम् । पराजितो गतोऽरण्यं द्विजोत्तम नराधिपः ॥ ४ ॥ सभार्यो दुःखितोऽरण्ये क्षुधया पीडितो भृशम् । सुप्ता राज्ञीं परीत्यज्य गतो राजा यशोवतीम् ॥ ५ ॥ वनान्तरं विवेशासौ सिंहव्याघ्रद्विपैर्युतम् । प्रातः प्रबुद्धा सा राज्ञी न पश्यन्ति प्रियं ततः ॥ ६ ॥ आरण्यकैर्निषादाद्यैर्लब्धा विपिनमध्यगा । निषादाजगृहूराज्ञीमानिन्युश्च निजं गृहम् ॥ ७ ॥ तत्र सा चानयत्कालं विधुरा दुःखजीविता । अहो विधातः किमिदं यत्कदापि न चिन्तितम् ॥ ८ ॥ कथं मे जीवनं चात्र निर्दयेषु प्रियं विना । कथं स्यान्पतिसंयोगो दुर्लभः प्रतिभाति मे ॥ ९ ॥ इत्थं विचारमापन्नास्मरन्ती पौर्विकं कृतम् । न्यवसद्धि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ल्लगेहेषु राजपत्न्य वशावलात् ॥ १० राजापि त्रिदिनं गच्छन्न लेभेऽन्नजलं वने । ततो रम्यनदीतीरे ददर्श सनकं मुनिम् ॥ ११ ॥ शिष्यवृन्दपरीवारं चतुर्मुखमिव स्थितम् । सप्रश्रयावनो राजा दण्डवत्प्रणनाम ह ॥ १२ ॥ पप्रच्छ मुनिशार्दूलः सनकः को भवानिति । निवेदयामास तदा नृपोऽहं राज्यविश्रुतः ॥ १३ ॥ व्यसनासक्तचित्तत्वात्पौरैर्निर्वासितः पुरात् । भार्या मे क्व गता विप्र न जाने सा मृता वने ॥ १४ ॥ क्षुत्पिपासादितोऽरण्ये विचरामि स्वकर्मणा । दिनत्रयं चाद्य जातं निरन्नस्य मुने मम ॥ १५ ॥ वद त्वं कृपया साधो किं मया सञ्चितं पुरा । भूतं भविष्यमृपयो वर्तमानं विदुर्गुरो ॥ १६ ॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः । विप्राधीना मन्त्रगणा देवदेवास्ततो द्विजाः ॥ १७ ॥ मृदुलं किमु वस्तु हेमुने नवनीतादपि सज्जनस्य हृत् । तदिदं द्रवते स्वतापनात्परतापाद्द्रवते सतां मनः ॥ १८ ॥ इत्युक्तः सनको विप्र उवाच—ज्ञाततत्कृतः ॥ १९ ॥ ऋषिरुवाच–आसीद्राजा धर्मानधिर्विराजनगरे पुरा । सर्वदेवगणानां स मन्दिराणि व्यधापयत् ॥ २० ॥ तद्वृत्तिं कारयामास क्षेत्रग्रामापणैर्दृढाम् । त्वमपि न्यवसस्तत्र ब्राह्मणः पूर्वजन्मनि ॥ २१ ॥ विद्वान्मन्त्रगणं सर्वं स्वाध्यायाध्ययनेरतः । नृपेण धर्मनिधिना दत्तं तुभ्यमशेषतः ॥ मठापत्यत्वमित्युक्त्वा देवद्रव्यं द्विजोत्तमः ॥ २२ ॥ दीनानाथमयार्तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ २३ ॥ देवद्रव्यं प्रमादेन यो नाशयति मानवः । स याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥२४॥ यो नरो देवताद्रव्ये सत्वमारोपयेद् हठात् । स चौर एव विज्ञेयो दण्डः स्याच्चौरवद् भृशम् ॥२५॥ इत्थं प्रबोध्य सनृपस्त्वां देवगृहमानयत् । त्वया प्रमादमासाद्य स्वं वपुः परिपोषितम् ॥ २६ ॥ न दत्तं विप्रमुख्येभ्यो नातिथिभ्यश्च धर्मतः । व्यसनैर्नाशयामास देवद्रव्यं भुजोद्भवः ॥ २७ ॥ कदाचिदपि देवस्य विधिना नाऽकृतार्चनम् । आयुषान्ते यमः प्राह त्वामेनं नयतद्रुतम् ॥ २८ ॥ कुम्भीपाके तथा लालाभक्षे शोणितकर्दमे । वैतरण्यां वहुचिरं देवद्रव्यविरोधिनम् ॥ २९ ॥ ब्राह्मण्यहारिणं पापं दूताः सन्ताड्यतां तथा। तदन्ते विड्भुजां देहं प्रापयोर्ध्वंसहस्रशः ॥३०॥ ऋषिरुवाच–त्वयेत्थंबहुशो भुक्ता नरकस्थेन यातनाः । श्वशृगालखरोष्ट्राणां वराहाणां तथैव च ॥३१॥ जन्मानि प्राप्य क्षत्रत्वं नृपतित्वं च बाहुज । प्राप्तं यदधुना तच्च रोगार्त्तद्विजसेवनात् ॥ ३२ ॥ ततः पूर्वतरे देहे कृतादेव न संशयः । त्वया प्रणाशितमहो ब्राह्मण्यं देवदुर्लभम् । विप्रत्वं बहुपुण्येन साम्राज्यं त्वल्पपुण्यतः ॥ ३३ ॥ नृप उवाच– कथं ब्राह्मणता नष्टाभवेन्मे वद सुव्रत । शास्त्रेषु श्रूयते लोके ब्राह्मणेभ्यो न चोत्तमाः ॥ ३४ ॥ कोऽपि देही कथं तिष्ठेद् ब्राह्मणो मुनिसत्तमः । इत्युक्तः कथयामास शृणु बाहुजसत्तम ॥ ३५ ॥ वेदानभ्यसनाद् द्रोहात्परेषां गुरुनिन्दया । मद्यमांसाशनैश्चपि शूद्रसेवनतस्तथा ॥ ३६ ॥ वाणिज्येन कुसीदेन धूम्रपानेन वा तथा । यममुद्रा धारणेन यवनीमैथुनेन च ॥ ३७ ॥ अद्विजातपठने नैव परपाकस्य भोजनात् । पाखण्डमार्गोपादानान्निन्दनाद्द्विप्रशास्त्रयोः ॥ ३८ ॥ रेतःसेकाद् गुदायां च पतितानां च सङ्गमात् । मातापित्रोः कुलं त्यक्त्वा चास्न्थां तीर्थेषु यापनात् ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण्यं नाशमायाति सीरकर्षणतस्तथा । ऊर्ध्ववस्त्रादधोवस्त्रात्पतितेभ्यः परिग्रहात् ॥ ४० ॥ ब्रह्मविष्ण्वीशदेवेषु भेदबुद्धेः प्रकल्पनात् । शूद्राध्यापनतस्तर्काच्छास्त्रीयेषु च वस्तुषु ॥ ४१ ॥ सन्ध्याकर्मपरित्यागाच्छूद्रान्न भुजितस्तथा । मष्याजीवनतश्चैव सङ्कृत्तेः परिग्रहात् ॥ ४२ ॥ देवलत्वेन च तथा याचकत्वेन वा तथा ग्रामयाचनवृत्तेश्च धावकत्वपरिग्रहात् । ४३ ॥ चिकित्सागणिताभ्यां वा जीवनाद्वा वृथाहठात् । मनुष्यवाङ्निर्मितस्य ग्रन्थस्याध्ययनश्रुतेः ॥ ४४ ॥ प्रतिग्रहमुपादाय न जपेद्वेदमातरम् । स चेदैव ब्राह्मणत्वं विहाय शूद्रतामियात् ॥ ४५ ॥ संस्काराणां परित्यागादसन्तोषान्मृषोक्तितः । अथाज्ययाजनाच्चैव वेदविक्रयणात्तथा । ४६ ॥ पौरोहित्यान्नृपान्नाच्च तथा घोरप्रतिग्रहात् । ब्राह्मण्यं नश्यति यथा साधुभावः कुसङ्गमात् ॥ ४७ ॥ शमी दमी तितिक्षुश्च गायत्रीजपतत्परः । ब्राह्मणो देवपूज्यः स्यान्मनुष्याणां च का कथा ॥ ४८ ॥ नृप उवाच–कथं मे स्यात्सुखमिह कृपया वद सांप्रतम् । सतां साप्तपदी मैत्री भवत्येव द्विजोत्तम ॥ ४९ ॥ ऋषिरुवाच–शृणु भागवतं यत्तो भूत्वा पक्षेण बाहुज । श्रद्धया परया राजंस्ततरते दुःखसंचयः ॥ ५० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भवेदेव न सन्देहः प्रायश्चित्तं न तत्परम् । कृत्वा सभाजं विदुषां शृणु सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ५१ ॥ इति श्रुत्वा नृपः प्राह कथमेतद् भविष्यति । न चास्ति मे धनं किञ्चिन्तथा मे नहि साधकः ।
त्वमेव कल्पो मे देव तारणे दुःखवारिधेः ॥ ५२ ॥ श्रीनारायण उवाच—स चापि कृपया विप्रः कृत्वा संघं सतां तदा । दिनैश्च पञ्चदशभिः प्राह भागवतं मुदा ॥ ५३ ॥ श्रुत्वा भागवतं राजा
प्राप दत्तं महाबलम् । हरिणा देवदत्तेन गतो विप्रनियोगतः ॥ ५४ ॥ भिल्लान्सन्ताड्य संप्राप निजां भार्यां यशोवतीम् । यैर्गृहीतं पुरं तस्य तेषां स्वप्नो ह्यभून्निशि ॥ ५५ ॥ इतः प्रातः पला-
यध्वमायातीह द्विजोत्तमः । वरविक्रमसंयुक्तः सर्वान् वो मारयिष्यति । परमेश्वरानुगृहीतं तं न जेष्यथ संहता ॥ ५६ ॥ रमाकान्तप्रसादेन निर्गतो बलवत्तमः । भवेदेव न सन्देहो रावणात्त्र-
रजो यथा ॥ ५७ ॥ तस्यामेव निशिस्वप्ने तात निःसरणं पुरात् । निजाच्छत्रुगणानां शुश्राव श्रीविष्णुनोदितः ॥ ५८ ॥ द्विजोत्तम नृपश्रेष्ठ गच्छ तात निजं पुरम् । अहं तव प्रसन्नोऽस्मि
श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ५९ ॥ गतास्ते शत्रवः सर्वे भुंक्ष्व राज्यं यथाविधि । प्रातरुत्थाय ते सर्वे द्विजोत्तमविरोधिनः ॥ ६० ॥ स्वं स्वं स्थानमुपाजग्मु भीताः स्वप्नप्रदर्शनात् । द्विजोत्तमं चापि
ययुः श्रुत्वा मन्त्रिपुरोहिताः ॥ ६१ ॥ सर्वे भृत्यगणाः पौरा आनयामासुरानताः । राज्ये तं स्थापयामासुः सपत्नीकं समागतम् ॥६२॥ स्ववृत्तं कथयामास श्रीमद्भागवतोद्भवम् । श्रुत्वा विसि-
स्मियुः सर्वे वृत्तं नृप सुखोद्भवम् ॥६३॥ ग्रामे ग्रामे महाराजः श्रीमद्भागवतीं कथाम् । कारयामास सततं श्रीकृष्णप्रीतिकारिणीम् ॥६४॥ यावज्जीवं सशुश्राव स्थिरचित्तो द्विवजोत्तमः । श्रीम-
द्भागवतं राजा सर्वमन्त्रिगणावृतः । देहान्ते वैष्णवं धाम प्राप भागवतस्मृतैः ॥ ६५ ॥ इति श्रीकौशिकसंहितायां भागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ।

नारद उवाच—नारायणमहेशान कथितं परमाद्भुतम् । श्रीभागवतमाहात्म्यं श्रीमता पुरुषोत्तम ॥ १ ॥ कथं भागवतं लोके प्रवृत्तं तद्वदस्व मे ॥२॥ नारायण उवाच—शृणु नारद यत्नेन
यत्पृष्टं त्वयाऽनघ । रहस्यं ते प्रवक्ष्यामि तव भक्त्यासुयन्त्रितः ॥ ३ ॥ पार्वत्यै कथयामास पुरा काश्मीरमण्डले । महेशोऽमरगाथां याममृतत्वप्रदायिनीम् ॥ ४ ॥ तामेवं ते प्रकर्षेण सुरर्षे
कथयाम्यहम् ॥ श्रद्धाऽमृतकथायां मे श्रीकृष्णोक्तिप्रमाणतः ॥ ५ ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रममराख्या कथा स्मृता । रुद्रस्कन्धोनविंशे चाध्याये कृष्णेन भाषितम् ॥ उद्धवाय सुहृदे नात्र कार्या
विचारणा ॥ ६ ॥ एकदा गिरिजा शम्भुं स्तुत्वा बहुविधे मुने । उवाचावनताचैव देव देव जगत्पते ॥ ७ ॥ त्वद्वियुक्ता यथा न स्यामात्मप्राप्तिश्च मे यथा । तथा कथय देवेश कृपया भक्त
वत्सल ॥ ८ ॥ इति श्रुत्वा महादेवः प्राह पत्नीमिदं वचः । गुप्तो न शृणुयात्कश्चिद्बहिर्गत्वा विलोक्यताम् ॥ ९ ॥ इत्युक्ता बहिरागत्य किञ्चिन्नात्र न पश्यति । स्थावरं जङ्गमं वापि कीराण्डं
गलितं विना । उवाचावनतागत्य बहिः किंचिन्न विद्यते ॥ १० ॥ ततोऽमरकथां शम्भुः श्रीमद्भागवताभिधाम् । महेशान्यै विधायादौ समयं च जगाद ह ॥ ११ ॥ क्षणे क्षणे त्वमीशानि-
ओमित्युच्चारणं यदि । करिष्यति तदा वक्ष्ये कथाममृतरूपिणीम् ॥ १२ ॥ तथेति स्वीकृतं देव्या शम्भूक्तं वचनं तदा । प्रथमस्कन्धतः शम्भुः कथयामास पूरितः ॥ १३ ॥ प्रेम्णा शैलसुतायै
स्ववल्लभायै परां कथाम् । दशमस्कन्धपर्यन्तमोमोंशब्दं जगाद ह ॥ १४ ॥ एकादशारम्भकाले निद्रयोपद्रुता सती । सुष्वाप च तदा कीरस्तं ध्वनिं च तथाऽकरोत् ॥ १५ ॥ श्रीभागवतपीयू-
षसंयोगाज्जीवितस्तदा । द्वादशान्ते प्रबुद्धा सा पुनः प्रोवाच सङ्करम् ॥१६॥ किमुताचोद्धवं कृष्णो भगवन्न मया श्रुतम् । निद्रायोगात्पुनर्ब्रूहि कृपा कृत्वा ममोपरि॥१७॥ कोऽत्रोङ्कार प्रवक्तास्ति न
कोऽपि प्राह पार्वती । उत्थाय च महादेवोऽपश्यत्परमसुन्दरम् ॥१८॥ शुकशावं तदा क्रुद्धः प्राह शैलसुतां हरः। कथं त्वया न दृष्टोऽयं शुकभावो वदाऽशुभे॥१९॥ भगवन्गलितं चाण्डं जीवहीन
मिहास्ति वै । पूर्वदृष्टं मयाज्ञातं मृतस्तु काष्ठलोष्टवत् ॥२०॥ श्रीभागवतपीयूषसेकाज्जीवमवाप्तवान । अधुना देवदेवेश माक्रोधं कुरु शङ्करः ॥२१॥ शुकं गृहीतुं भगवान्दुद्राव बहुवेगतः। उड्डीय
च शुकोध्वविद्गतो व्यासाश्रमं ततः ॥ २२ ॥ द्वैपायनस्य च मुखे जृम्भमाणस्य वेगतः । शुकोविवेशः सम्भीतो द्रावितः शङ्करेण हि ॥ २३ । आगत्य धूर्जटिः प्राह क्व गतस्तीक्ष्णनासिकः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इहैव दृश्यतां देव मुनिः प्राह शिवं तदा ॥ २४ ॥ अदृष्ट्वा पुनराघृत्तो हरः स्वाथमनेच हि ॥ २५ ॥ कदाचिन्मथतो वीर्यमरण्यामपतन्मुने । बालस्तदैव सञ्जातो ह्यभूत्षोडशवार्षिकः ॥ २६ ॥
तदैवोत्थायविपिनं जगामैकल एव सः । उच्चार्य पुत्र पुत्रेति व्यासोरप्यनु जगाम ह ॥२७॥ निवर्तस्वेहि पुत्र त्वं कुरु मे सुमनोरथम् । गृह्यमावश मे तात भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितम् ॥२८॥
ततस्त्याज्यं गेहयोगं प्रवदन्ति मनीषिणः । निशम्य पितुर्वाक्यं वृक्षसंघे निलीय च ॥ २९ ॥ उवाच पितरं तात शृणु कश्चिन्नराधिपः । वैश्यासक्तमना वेश्यागेहमायाति प्रत्यहम् ॥ ३० ॥
मया विना कश्चिदन्यो न सेव्यः पुरुषोऽपरः । पुरुषान्तरं सेवसे चेत्तदा सत्यं मरिष्यसि ॥ ३१ ॥ तं चापि मारयिष्यामि यश्च मां त्वां रमयिष्यति । एव मुक्त्वा समायाति स राजा निज-
मन्दिरम् ॥ ३२ ॥ केनापि श्रेष्ठिपुत्रेण सा वेश्या ह्यतिसुन्दरी । दत्वा बहुधनं तस्यै प्रार्थिता रतिकर्मणि ॥ ३३ ॥ लोभासक्तमना वेश्या रेमे वैश्यसुतेन सा । रतिकाले नृपः प्रातो द्वार-
मुद्घाट्यतां शुभे ॥ ३४ ॥ त्रस्ता सा प्राह तं वैश्यं किं कुर्वे भयमागतम् । त्वां मां चैव नृपोऽवश्यं मारयिष्यसि साम्प्रतम् ॥ ३५ ॥ मलोत्सर्गगृहं हित्वाऽधुना गुप्ति गृहं न हि । अधोमुखं
चास्य रन्ध्रे रज्ज्वा बद्ध्वा निपातये ॥ ३६ ॥ प्रयास्यति यदा राजोद्धरिष्योऽहं ततः परम् । च स मृत्यु भयात्यत्रोरो चकार तथा कृतम् ॥ २७ ॥ यावन्निशं नृपो रेमे जगामोषसि वेश्मनि ।
स च वैश्य सुतो रात्रिं यापयामास दुःखितः ॥ ३८ ॥ अधोमुखः गलासक्तशिराः प्रोत्फुल्ललोचनः । तयोद्धृतो निजगृहमागत्योवाच पावनम् ॥ ३९ ॥ धिङ् मां विगर्हितं सद्भिर्न न कुर्वे
मुनगीदृशान् । वेश्यया दूतिकास्येन समाहूतः पुनः पुनः ॥ ४० ॥ धनिपुत्रो यथा वेश्यागेहं नैव प्रयासि सः त्वया रमिष्ये निर्मूल्यमेहि त्वं मे गृहं मनः ॥४१॥ गर्भवासे तथा दुःखं दशमासं
यथानिशि । एकस्यामेव ददृशे वेश्यागेहे त्रिशांपतिः ॥ ४२ ॥ अतो गृहं नैव यास्ये गर्भवासफलम् । इति श्रुत्वा मुनिः कृष्णो विरहाकुलमानसः ॥ ४३ ॥ कथं निवर्तये पुत्रं विरक्तं
सुन्दराकृतिम् । ततो योगबलेनैव दृष्ट्वा भागवतस्मृतिम् ॥ ४४ ॥ पुत्रस्यपूर्वसंस्कारान्व्यासः श्लोकानपपाठ ह । श्रीमद्भागवतस्यैव दशस्तकन्धसम्भवान् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वा पूर्वं श्रुतांश्लोकांस्त्य-
क्तकीरवपुर्गतिः । हरेर्गुणा त्विप्तमतिर्वादरायणनन्दनः ॥ ४६ ॥ तमोवानुजगामाथ हर्षितः कृष्णलीलया । आगत्य श्रीभागवसमध्यैष्ट पितुरात्मनः ॥ ४७ ॥ छायाशुकं विनिर्माय चित्रे दत्वा
ततोऽभ्यगात् । अनग्निश्चानिकेतश्च पूर्वनाम्ना चकार ह ॥ ४८ ॥ शुकाख्येन मुने लोके स्मरन्भागवतं मुदा यदा शमीकतनयः शापं शृङ्गी ददौ रुषा ॥ ४९ ॥ राज्ञे परीक्षिते विप्रस्तदायायो-
गिनाम्वर । गङ्गातीरेपविष्टाय त्यक्तराज्याय सत्तमः ॥ ५० ॥ वक्तुं भागवतं शास्त्रं सद्यश्चित्तप्रसादकम् । यच्छ्रुत्वा कृष्ण सायुज्यमभिमन्यु सुतो नृपः । ऋषीणां पश्यातामेव लेभे व्यासुता
न्मुने ॥ ५१ ॥ सूत उवाच—अहं तत्र निविष्टश्च श्रुतवान्मुनिसत्तमः । श्रीमद्भागवतं प्रियाः सर्वत्रफलदायकम् । तत्प्रभृत्येव लोकेस्मिन्नविभूतं न संशयः ॥ ५२ ॥ भाशब्दः कीर्तिवचनो
गशब्दो ज्ञानवाकः । सर्वेष्टवचनो वश्च तो विस्तारस्य वाचकः ॥ ५३ ॥ कोर्तेर्ज्ञानस्य सर्वेष्टस्य च विस्तारणादिदम् । अस्य भागवतं नाम श्रीव्यासेनेति कीर्तितम् ॥ ४५ ॥ धर्मार्थकाममो-
क्षांश्च वक्तिवर्णचतुष्टयी । ते प्राप्यन्ते यतोऽनेन तस्माद्भागवतं स्मृतम् ॥ ५५ ॥ कृष्णस्य वाङ्मयीमूर्तिः श्रीमद्भागवतं मुने उपदिश्योद्धवं कृष्णः प्रविष्टोऽभिन्नसंख्यायः ॥ ५६ ॥ पदादिजा-
नुपर्यन्तप्रथमस्कन्ध ईरितः । तदूर्ध्वं कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्ध उच्यते ॥ ५७ ॥ तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदरं मतम् पंमो हृदयं प्रोक्तं षष्ठः कण्ठं सवाहुकम् ॥ ५८ ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं
सप्तमो मुखमुच्यते । अष्टमश्चक्षुषी कृष्णोः कपोलौ भृकुटिः परः ॥ ५९ ॥ दशमो ब्रह्मरन्ध्रं च मन एकादशः स्मृतः । आत्मा तु द्वादशस्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः ॥ ६० ॥ जीवन्मुक्तो न
सन्देहो जायते श्रुतिमात्रतः तस्मादेषा सदा श्राव्या श्रीभगवती कथा ॥ ६१ ॥ इति श्रीशौनक संहितायां भागवतमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ।

शौनक उवाच—सूत महाप्राज्ञ वह्निकुण्डसमुद्भव । श्रीमद्भागवतश्रावविधिं ब्रूहि दयानिधे ॥ १ ॥ सूत उवाच—भारते लब्धजनुषां नृणां भागवतश्रवे । विधिं वक्ष्याम्यहं विप्रा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

येन स्यात्सुखसन्ततिः ।। २ ।। राजसं सात्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा । सेवतं चास्य कर्त्तव्यं जनिसाफल्यहेतवे ।। ३ ।। परीच्छुकसम्वादो योऽसौ व्यासेन वर्णितः । ग्रन्थोऽष्टादशसा-
हस्रो द्वादशस्कन्धसम्मतः ।। ४ ।। हयग्रीवब्रह्मविद्यायुक्तो ब्रह्मप्रबोधकः । उपक्रमावसाने स्तो गायत्र्या यस्य सत्तम ।। ५ ।। संसारतापहरणः सोऽयं भागवताभिधः । पृष्ट्वा मुहूर्तं दैवज्ञाद्यदा
श्रद्धा प्रजायते ।।६।। ❀ कार्तिकादिषु मासेषु तदा श्राव्या समाहितैः । मलमासं च शुक्रास्तं तथास्तं गुरुचन्द्रयोः ।।७।। गुर्वादित्यं त्त्यतिथि सर्वथा परिवर्जयेत् । विरक्ता वैष्णवास्तत्र तथा ये
कीर्तनोत्सुकाः ।। ८ ।। पत्रादिना समानेयास्तथान्ये श्रवणोत्सुकाः स्थलं । तु विस्तृतं कार्यं गाथार्थं रुचिरं नृभिः ।। ९ ।। नान्दीश्राद्धं विधायादौ मण्डपं कारयेच्छुभम् । कदलीखण्डरचितं
सवितानां महामते ।। १० ।। स्थापनीयाश्चतुर्दिक्षु कुम्भाः श्रीफलसंयुताः । गणेशाग्रहमातृश्चाचार्यान्परौराणिकांस्तथा ।। ११ ।। प्रत्यहं पूजयेद्भक्त्या श्रोता चापि यथाविधि । शालग्रामशिलावश्य-
मानेया तत्र संसदि ।। १२ ।। पलसौवर्णरचितं विष्णुं कुम्भोपरि न्यसेत् । पञ्च सप्त त्रयो विप्रा जपेयुर्वेदमातरम् ।। १३ ।। गयत्रीं वा गणेशस्याथवा द्वादशवर्णिकम् । कयाविघ्नविघातार्थं
यद्वा मृत्युञ्जयं जपेत् ।।१४।। उपक्रमेऽवसाने च कुर्यान्नीराजनं मुदा । महोत्सवः प्रकर्त्तव्यो पथोद्वाहादिकर्मणि ।।१५।। निष्कत्रयसुवर्णेनप्रत्येकस्कन्धपूजनम् । महापूजा समाप्तौ स्याद्वित्तशाठ्यं
न कारयेत् ।। १६ ।। अरुणोदय उत्थाय शौचं स्नानानिकं चरेत् । वक्ता चात्र प्रकर्त्तव्यो विप्रः शास्त्रविशारदम् ।। १७ ।। रागद्वेषविनिर्मुक्तो सर्वाङ्गपरिपूरितः । दृष्टान्तकुशलो धीरो न पाख-
ण्डी न हेतुकः ।। १८ ।। अवैष्णवमुखाद्गाथा न श्रोतव्या कदाचन । शुकशास्त्रं विशेषेण न श्रोतव्यमवैष्णवात् ।।१९।। वैष्णवोऽत्र स विज्ञेयो विष्णोर्मुखमिष्यते । ब्राह्मणोस्य मुखमिति
श्रुतेर्ब्राह्मण एव सः ।। २० ।। विप्रेतरमुखाच्छास्त्रं श्रुतं हि नरकप्रदम् । शूद्रस्तु सर्वथा त्याज्यः शास्त्रालापे नरोत्तमैः ।।२१।। श्वचर्मणि यथा गव्यमपेयं स्याद्विजातिभिः । तथा शूद्रमुखाद्वा-
क्यं न श्रोतव्यं कदाचन ।।२२।। कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन वा । शालग्रामशिलास्पर्शाद्वेदस्योच्चारणात्तथा । व्यासासनोपवेशाच्च शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ।। २३ ।। ये शूद्रमुखतः
शास्त्रं शृणवन्ति हि नराधमः तेषां कर्णे त्रपुः सिक्त्वा वक्तुर्जिह्वां प्रकर्त्तयेत् ।। २४ ।। विज्ञो राजा स्वराजस्य तथा वंशस्य चात्मनः । समृद्धयेऽन्यथा याति नरकान्भृशदारुणान् ।।२५।।
विप्रस्यैवाधिकारोऽस्ति धर्ममात्रोपदेशन । व्यासासनसमावेशे नान्यवर्णस्य भार्गव ।। २६ ।। विप्रा विप्रेतरगुरुरविप्रो जायते ध्रुवम् । न स विप्रेषु पूजार्हस्तस्माद्विप्रं गुरुं चरेत् ।।२७।। गोत्रप्र-
वरत्यागेऽपि विप्रत्वं नश्यति ध्रुवम् । विप्रेतरगुरोर्जातिः क्षत्रादेरपि नश्यति ।। २८ ।। मज्जंश्च सर्वतीर्थेषु तथार्चन्सर्वदेवताः । हृषीकानिनिगृह्णश्च नाविप्रः पूज्यतां व्रजेत् ।। २९ ।। अतो विप्रं हि
वक्तारं कुर्याच्छास्त्रस्य बुद्धिमान् । द्विजान्यो मन्त्रत्यागो चाम्लेच्छः परिणाया सदा ।।३०।। द्विजभक्तो भवेच्छूद्र स्तदन्यश्चांत्यजादिकः । गणकं भिषजं चैव तथा वार्द्धुषिकं द्विजम् ।। ३१ ।।
राजमुद्राङ्कितं देवमुद्राचिह्नितविग्रहम् ।❀ मातृतः पितृतश्चाथाऽशुद्धं देवलकं तथा ।।३२।। राजभृत्यं च पतितं तथा कटुकभाषिणम् । तथोर्ध्वपुण्ड्ररहितं वक्तारं न प्रकल्पयेत् । अद्विजाधीत-
शास्त्रं च परपाकरतं तथा ।।३३।। वरणे व्यासपूजायां श्राद्धे राज्यासने तथा । उद्धर्वपुण्ड्रं प्रकुर्वीत न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् ।।३४।। आज्ञामादाय विप्रेभ्यो वृद्धेभ्योऽन्येभ्य एवं च । उप-
विश्यासने विद्वान्पाठोच्चारणमारभेत् । पाठैः शनैः शनैः कुर्याच्छ्रोतृहर्षविवर्द्धनम् ।।३५।। गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथालिखितपाठकाः । अनर्थज्ञोल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाऽधमाः ।। ३६ ।।
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धैर्यं लयसमर्थश्च षडेते पाठकोत्तमाः ।।३७।। पाठं कुर्वन्न विरमेद्यावदध्यायपूरणम् । विरामे च तदध्यायं पुनरादित आरभेत् ।।३८।। स्कन्धस्या-
द्यन्तश्लोकौ हि द्विरावृत्या सदा पठेत् ।।३९।। शौनक उवाच—कस्मिन्दिने कियान्कार्यः पाठस्य नियमं वद । सप्ताहादिषु सर्वेषु कल्पेषु बुद्धिसत्तम ।। ४० ।। सूत उवाच—सप्ताहे पाठनि-
यमं शृणु शौनकसंयतः । मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि।।४१।।ऋषभाख्यानपर्यन्तं द्वितीये दिवसे वदेत्। तृतीये दिवसे कुर्यात्सप्तमस्कन्धपूरणम्।।४२।।कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थेहनि वाचयेत्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रुक्मिएयुद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेह्निवदेत्सुधीः॥४३॥श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठे ह्निऽवाचयेद्ध्रुवम् । सप्तमे दिवसे कुर्याच्छ्रीभागवतपूरणम्॥४४॥ पूजनं विविधैर्द्रव्यैः कुर्याद्वक्तुर्यथोदितम् । यात्रायां शुक्रदेवस्य समाप्तौ शास्त्रपूजनम्॥४५॥मासश्रवणपक्षे तु नित्यमध्यायधूर्जटिम् । पञ्चाध्यायीं पठेद्विप्रान्समाप्तिदिवसेन्तिमाम्॥४६॥एकविंशाहकल्पे तु नित्यं षोडश षोडश । अध्यायान्संपठेद्धीमानन्तिमे पञ्चरूपकान्॥४७॥ अष्टादशाहयज्ञे तु सहस्रश्लोकवाचनम्। दिवसे दिवसे कुर्यादिति शास्ति स्वयं बुधः॥४८॥नन्देनन्दूत्वष्टचन्द्रौ गिरिशचलनौ शास्त्रभूर्नन्दचन्द्रौरुद्राश्वाग्रे नखाश्व श्रुतिनयनमिताः शैलभूः शून्यनेत्रे । भूनेत्रे वाणचन्द्रौ श्रुतिदृशि समिताः काण्डभूभूर्वरक्ष्मे । दृक्पादौ गोऽजसंख्याः सहजचरणकाः सर्गसंख्याद्यग्रस्रात् ॥४९॥ पाठेश्लोकसहस्रस्य संख्येषु जायते द्विज । अध्यायेष्वन्वहं पक्षे ह्यष्टादशदिनात्मके ॥५०॥ यद्वा दिक्तिथिवाणाश्व भूदिनेऽध्यायविंशतिम् । अष्टादशान्दिनेऽन्यत्र चैकविंशान्वदेपरे ॥५१॥ पक्षश्रवणत्पक्षे हि द्वाविंशाध्यायपाठनम् । नित्यमेव प्रकुर्वीत सप्तमे सप्तविंशतिः ॥५२॥ यद्वा सर्वेषु कल्पेषु यथा वक्तुः सुखं भवेत् । तथैववाचनं मन्ये प्रशस्तं श्रोतुरेव वा ॥५३॥ नित्यश्रवे मुहूर्तं तु श्रवणं सुखदायकम् । विषादश्चेन्न जायेत शोभनं श्रवणं हि तत् ॥५४॥ अभक्ष्यभक्षणं त्याज्यमसंभाष्येण भाषणम् । अस्पृश्यस्पर्शनं चैव ब्रह्मचर्यपरो भवेत् ॥ ५५ ॥ क्रोध लोभं च निन्दा च क्रीडामत्तादिभिः सह । श्रोता चैव तथा वक्ता सन्त्यजेत्स्थिरमानसः ॥५६॥ ततस्तु श्रवणारम्भे पुस्तकार्चनमारभेत् । पुष्पैर्धूपैश्च नैवद्यैस्तथा नीराजनादिभिः ॥ ५७ ॥ ततः श्रीफलमादाय नमस्कारं समाचरेत् । श्रीमद्भागवताख्यत्वं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥५८॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे । मनोरथो मदीयोऽयं पूरणीयत्वया प्रभो ॥ ५९ ॥ गृहीत्वा पुष्पमालादि वक्तारं पूजयेत्ततः । सर्वज्ञ सर्वधर्मज्ञ शुकरूप नमोऽस्तु ते ॥६०॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय । श्रद्धान्वितः सर्वकृत्यं विहाय श्रवणं चरेत् ॥ ६१ ॥ श्रद्धां विना कर्मफलं न जायेत कदाचन । विना वह्निं यथापाकस्ततः श्रद्धान्वितो भवेत् ॥ ६२ ॥ अश्रद्धया कृतं पुण्यं निष्फलं स्यान्नसंशयः । प्रसादतुलसीमाला दीयतां श्रवणार्थिनाम् ॥६३॥ कथान्ते हवनं कार्यं गायत्र्या स्वयुतं बुधैः । न्यूनत्वपरिहारार्थं पठेन्नामसहस्रकम् ॥ ६४ ॥ तेन स्यात्सफलं सर्वं नात्र कार्या विचारणा । ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या परमान्नेन शक्तितः ॥६५॥ शक्तोऽस्य दानं कुर्वीत महादानविधानतः । सहस्रहेमनिष्केण तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥ ६६ ॥ चतुर्विंशतिनिष्कैर्वाथ वा द्वादशभिः पलैः । यद्वा पलत्रयेणापि कृत्वा सिंहासनं वरम् ॥६७॥ तन्मध्ये स्थापयेच्छास्त्रं रौप्यपट्टिकमध्यगम् । क्षौमाम्बरसमाच्छन्नमर्चितं चन्दनादिभिः ॥ ६८ ॥ सम्पूज्य विप्रं विधिवद्वेदवेदाङ्गपारगम् । तद्व्याख्यानरतं शान्तं विष्णुभक्तिपरायणम् ॥ ६९ ॥ स्थालीपाकविधानेन होमं कुर्वीत यत्नतः । दद्याद्भागवतं तस्मै पूजयित्वा कुटुम्बिने ॥ ७० ॥ गोदानफलमाप्नोति श्रोता प्रत्यक्षरं नरः । अध्यायेनाश्वमेधस्य स्कन्धेनानन्तयागजम् ॥ ७१ ॥ समग्रश्रवणेनैव जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । श्रवणे यत्फलं प्रोक्तं दाने तद्द्विगुणं भवेत् ॥ ७२ ॥ लिखित्वा लेखयित्वा वा दद्यात्भागवतं नरः । प्रोष्ठपद्यां पौर्णमास्यां कार्तिक्यादिषु वा पुनः ॥ ७३ ॥दाता फलमवाप्नोति सर्वपौराणदानजम् । ग्रहीता लभते मोक्षं पाठादिनिरतो यदि ॥ ७४ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति दाता भागवतस्य च । पुस्तकं वृत्तिहेतुत्वाद्देयं विप्राय मानवैः ॥ ७५ ॥ विप्रस्य वृत्तिकरणात्कोटिगोदानजं फलम् । विप्रस्य वृत्तिहननात्पापं गोकोटिघातजम् ॥ ७६ ॥ कृष्णरूपमिदं शास्त्रं संशयो न हि विद्यते । अत आदरतः सव्यं श्रीमद्भागवत नरैः ॥ ७७ ॥ वक्तारं तोषयद्भक्त्या वस्त्राभरणधेनुभिः । हेमै रौप्यैस्तथा यानैरत्नैः शय्यागृहादिभिः ॥ ७८ ॥ फलं वक्तरि तुष्टे स्यात्तथा प्रीतिर्हरेर्द्विजे । प्रीते हरौ किमप्राप्य जगतामीश्वर परे ॥ ७९ ॥ वक्तारं च पुराणाददेया वृत्तिस्तु कौलिकी । वक्तुर्जीवितपर्यन्ताऽथ वा वात्सरिकी बुधैः ॥ ८० ॥ गाथाकालमिताऽवश्यं वस्त्रान्नावासरूपिणी । पूर्वाभाव पराकार्या श्रवणं तां विना मुधा ॥ ८१ ॥ पारायणे जपं तीर्थे निजान्त फलदं मतम् । असामर्थ्येपि संभूय वस्त्रान्नादिदिशेत्सुधीः ॥ ८२ ॥ पेयं पूयं मलं भक्ष्यं भूपास्थिकृत्तिचाम्बरम् । तस्यानप्र्येंह यो वक्त्रे पुराणादनिजान्तिकं ॥ ८३ ॥ सदा भुंक्ते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नरो विप्र वक्ता विष्णुर्यतः स्वयम् । मुख्यो गुरुर्बोधयिता धर्माणां सर्वतो ह्ययम् ॥८४॥ दुर्वाक्यं न वदेत्क्वापि व्यासं विष्णुस्वरूपिणम् । शयानाः पार्श्वएवन्तो भवन्त्य जगराननाः ॥८५॥
असप्रणम्य शृण्वन्तो वृत्तत्वं यान्ति मानवाः। शास्त्रवक्तरि चायाते उत्थातव्यं पुरः स्थितैः ॥८६॥ वक्ता समं न चैवोच्चं श्रोतृणामासनं वरम् । समासनात्पुण्यहानिरुच्चाच्च निरयं व्रजेत् ॥८७॥
श्रोतव्यं मौनमाश्रित्य नरैर्नियतमानसैः । वाग्वादकरणाद्गाथा नीरसा जायतेतराम् ॥८८॥ कथा रसविघातेन पशुयोनिमवाप्नुयात् । कथायां संवृत्तायामितिसहापुराणयोः ॥ ८९ ॥ योऽन्यः
किञ्चिदपि ब्रूते विना वक्तारमत्र हि । स वाग्वाद इति प्रोक्तः कथारसविघातकः ॥९०॥ वाग्वादात्स्यात्कथाभङ्गो ब्रह्महत्या समा हि सः । पृच्छेत्कथान्ते सन्देहं न कथायां कदाचन ॥ ९१ ॥
श्रोता जनः कथा भङ्ग भयान्मौनं समाश्रयेत् । पाद्मे पुराणे संप्रोक्तं शङ्करेण स्वयं द्विजाः ॥ ९२ ॥ वाग्देवता भवेत्क्रुद्धाकथाया भङ्गमात्रतः । तेन जन्मान्तरे मूकः पुनर्मूढस्त्रिजन्मसु ॥९३॥
वायसो वा भवेदन्यो वक्तुर्वक्ता ततो वदेत् । श्रोतुर्दानिमनन्त्याय वक्तुर्नैव प्रतिग्रहः ॥९४॥ श्लोकैकश्रवणे यस्य रत्नकोटि न निष्क्रिया । सर्वस्यतस्य या वक्ता प्रतिग्राही कथं हि सः ॥९५॥
आर्षं शास्त्रं सदा श्राव्यं यदि वेदानुगंभवेत् । अनार्षं तु बुधैर्नैव श्राव्यं वेदानुगं यदि ॥ ९६ ॥ आर्षं यदृषिभिः प्रोक्तमनार्षं स्यात्ततोऽन्यथा । कलौ तदेव शंसन्ति ऋषिभिभाषितं तु यत् ।
येषां वेदं कथाः प्रोक्तास्ते विप्रा ऋषय स्मृताः ॥ ९७ ॥ श्रीव्यासश्रीसंप्रोक्तं द्वादशादित्यसन्निभम् । श्रीमद्भागवतं लोके तमो हन्ति स्वसेविनाम् ॥ ९८ ॥ नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं
पठते नरः । प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम् ॥ ९९ ॥ यः पठेत्प्रयतो नित्यं श्लोकं श्लोकार्द्ध मेव वा । शृणोति वा नरो भक्त्या गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १०० ॥ येऽर्चयन्ति गृहं
नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ । स्वर्गं प्रयान्ति पितरस्तेषां नैवात्र संशयः ॥ १०१ ॥ न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ । स कथं वैष्णवो ज्ञेय इत्थं प्राह स्वयं शिवः । सन्ध्यावन्दन-
वन्नित्यं श्रोतव्यं वैष्णवैरिदम् ॥ १०२ ॥ सन्ध्याहीनो यथा विप्रो ह्यनर्हस्सर्वकर्मसु । वैष्णवोऽपि तथानर्हः श्रीमद्भागवतं विना ॥ १०३ ॥ विना दानैर्विना यागैर्विना विद्यार्चनादिभिः ।
श्रीमद्भागवतात्सर्वं वाञ्छितं लभते नरः ॥ १०४ ॥ कलौ नास्ति कलौ नास्ति श्रीमद्भागवतं विना । श्रेयसां निगमः श्रेष्ठो विद्यते जगतीतले ॥ १०५ ॥ सर्वान्धर्मान्परित्यज्य श्रीमद्भागवतं
नरैः । सेवनीयं प्रयत्नेन न धर्मोऽस्ति ततः परः ॥ १०६ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । सर्वदानानि दत्तानि सुराः सर्वे समर्चिताः ॥ १०७ ॥ श्रुतानि सर्वशास्त्राणि येन भाग-
वतं श्रुतम् । ग्रहपीडा महामारी या पीडा प्रेतसम्भवा ॥ १०८ ॥ महारोगभवापीडा राजशत्रुभवा तथा । श्रीमद्भागवतश्रावान्नश्यत्येव न संशयः ॥ १०९ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो
विजयी भवेत् । वैश्योनिधिशतां याति शूद्रः शुध्यति पातकात् ॥ ११० ॥ अध्येतव्यं ब्राह्मणेन वैश्येन क्षत्रियेण च । श्रोतव्यमेव शूद्राणां नाध्येतव्यं कदाचन ॥ १११ ॥ श्रौतं स्मार्तं च वै
धर्मं प्रोक्तमस्मिन्द्विजोत्तमम् । तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रं न श्रोतव्यं कदाचन ॥ ११२ ॥ द्विजान्योऽमन्त्रयागी चाम्लेच्छपरिणयां सदा । द्विजभक्तो भवेच्छूद्रस्तदन्यश्चांत्यजादिकः ॥ ११३ ॥
श्रीमद्भागवतेनैव यस्य कालो नु गच्छति । जीवन्मुक्त स विज्ञेयो देहान्ते कृष्णरूपधृक् ॥ ११४ ॥ दाता श्रोता च वक्ता चाऽस्येताध्यापयिता च यः । गोलोकलीलां निर्विश्य ब्रह्मसायुज्य-
माप्नुयात् ॥ ११५ ॥ तिरश्चामपि दृश्यन्ते मानुषाणां च केवलम् । भोगा भागवतप्राप्तिर्मानुषेभ्यो न चान्यतः ॥११६॥ श्रीमद्भागवतप्राप्तिर्महतां सङ्गतो भवेत् । महान्तो वैष्णवा एव यतो
विष्णुपरायणाः ॥ ११७ ॥ महत्वं कारणे वक्ष्ये संवाहं गुरुशुक्रयोः । सर्वस्मिन्नह कोज्यायान्गुरो पृथ्वीति चेच्छृणु ॥ ११८ ॥ पृथ्वीशेषधृता सशम्भुमुकुटे कैलासवासोऽप्यसौ कैलासोऽपि
दशाननेन तुलितो बद्धोप्यसौ वालिना । वाली राघवविष्णुना युधिजितो विष्णुः सतं मानसे तस्माद्विष्णुपरायणादगुरुतरो नान्योऽस्ति लोकत्रये ॥ ११९ ॥ विधेयः सर्वदा सङ्गो वैष्णवेष्वेव
नारद । श्रीभागवतप्राप्त्यर्थं सततं बुद्धिमत्तरैः ॥ १२० ॥ श्रीमद्भागवताद्भक्तिर्भक्तेर्ज्ञानं प्रजायते । ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति नेति वेदान्तडिण्डिमः ॥ १२१ ॥ सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यश्चेत्यक्तुं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शक्यते न हि । सत्स्वेव सविधातव्यः सन्तस्सङ्गस्य भेषजम् ॥ १२२ ॥ आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते । तद् वृथा नीयते मर्त्यैः श्रीमद्भागवतं विना ॥ १२३ ॥ शक्तस्तच्छृणुयादेकः संभूय चेतरे जनाः । यथा कथञ्चिच्छ्रवणं कर्त्तव्यं भुवि मानवैः ॥ १२४ ॥ चतुर्वर्गप्रदं शास्त्रं श्रीमद्भागवतं कलौ । शुश्रूषयापि लभते श्रीभागवतसेविनाम् । यद्यद्वाञ्छति लोकेऽस्मिन्तत्तदेव न संशयः ॥ १२५ ॥ चतुःश्लोकी चतुर्वेदबीजभूता चतुर्मुखात् । वेदास्त एवाजायन्तां विष्णुनोक्ताः पुराहृदि ॥ १२६ ॥ विधातुरिति सञ्चिन्त्य सदाध्येयं द्विजातिभिः । श्रीमद्भागवतं शास्त्रविहायान्यद्भ्रमवहम् ॥ १२७ ॥ ब्रह्मवर्चस्विताऽवाप्त्यै गायत्री जप्यते यथा । तथेदमपि जप्तव्यं तद्रूपत्वाद् द्विजोत्तमैः ॥१२८॥ नारद उवाच–धन्योऽस्मि भगवन् विष्णो श्रावितं सुखकारणम् । सर्वेषां मानवानां च सुखसाध्यं त्वया यतः ॥१२९॥ नारायण उवाच–कृष्णप्रियं सकलकल्मषनाशनं च ज्ञानायनं परमहंसमुनिप्रियं च । श्रुत्वा प्रयाति सुरवृन्दनुतो मनुष्यो वैकुण्ठधाम शुकशास्त्र सुशीलनेन ॥ १३० ॥ नातः परं कृतिजबन्धविनाशकारि शास्त्रं यतो हरिरपि स्वयमेवचिन्ते । ध्यातुः प्रविश्य स्थिरतामुदयाति शीघ्रं तेनेदमेव सततं परिशीलनीयम् ॥ १३१ ॥ पुनः प्रोवाच भगवांश्शृणु नारद सुव्रत । यत्र भागवती गाथा सा भूमिस्तीर्थरूपिणी ॥ १३२ ॥ गङ्गा च सरस्वती रेवा यमुना च विपाशिका । शतद्रुः कृष्णवेणी च कौशिकी च दृषद्वती ॥ १३३ ॥ चन्द्रभागा वितस्ताद्या या नद्यस्सिन्धु सङ्गताः । नदाः सर्वे कुरुक्षेत्रप्रयागः पुलहाश्रमः ॥ १३४ ॥ सर्वे कुलाचलाः पुण्यः काशीद्वारवती तथा ॥ १३५ ॥ पुष्करं भार्गवक्षेत्रं सीतारामाश्रमास्तथा । पम्पासरो विन्दुसरस्तथा वृन्दावनं वनम् ॥ १३६ ॥ एतन्वन्यानि तीर्थानि सन्ति तत्र न संशयः । यत्र नित्यं भागवतं पुराणं वाच्यते मुने । तत्र नित्यं प्रयातुणामेवत्तीर्थफलं लभेत् ॥ १३७ ॥ पूजानिश्छिद्रताऽवाप्त्य विष्णोर्भागवतं मुने । पुराणं वाचयेन्नित्यं तेन प्रीतो जनार्दनः ॥१३८॥ द्वात्रिंशदपराधांश्च क्षमते नात्र संशयः । श्रीकृष्णपूजापूर्तिस्तु विना भागवतं न हि ॥ १३९ ॥ विनापि श्रीहरेः पूजां श्रीभागवतपाठतः । साङ्गपूजाफलं नित्यं जायते नात्र संशयः ॥ १४० ॥ व्यासासनोपविष्टस्तु विप्रो व्यासो न संशयः । गुरुविप्रनृपैश्चापि वृद्धैः पितृपितामहैः । पूजनीया प्रयत्नेन तथा धर्मो न हीयते ॥ १४१ ॥ नो नमेच्चाऽशिवं चोद्यान्नाभ्युत्थानं तदासनात् । कुर्वीत च महाप्राज्ञ सर्वपूज्यस्तदा भवेत् ॥ १४२ ॥ शरीयात्रा कर्त्तव्या हविष्यान्ने न नारद । श्रोतृभिश्च तथा वक्ता वारमेकं दिने दिने ॥१४३॥ नित्यं भागवतश्रावो ब्रह्मयज्ञः प्रकीर्तितः । सर्वेषामेव यज्ञानां ब्रह्मयज्ञो मतोधिकः ॥ १४४ ॥ अस्थिराणि शरीराणि धनमायुस्तथाऽस्थिरम् । इति सञ्चिन्त्यसततं कर्त्तव्यो धर्मसञ्चयः॥१४५॥स्वर्गादि फलदा धर्माः सर्वे प्रोक्ता पुरानघ । स्वसर्वेष्टप्रदो धर्मः श्रीमद्भागवतं श्रुतिः ॥१४६॥ कथाश्रावात्परो धर्मो न भूतो न भविष्यति ॥ १४७ ॥ श्रीकौशिकसंहितायां भागवतमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ इति ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[षष्ठ-स्कन्ध]

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय-महामहोपाध्याय-अस्मत्पितृचरण पं० विद्याधरशास्त्रिगौडस्मारक—
भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ७५ पुष्पलता

(सप्तमस्कन्ध)

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

['सरस्वती' भाषाटीका, दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

सम्पादक—उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा संमानित विद्वान् आचार्य मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न श्रीदौलतरामगौड वेदाचार्य

बम्बईप्रेस, राजादरवाजा, बनारस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्मकाण्डोपयोगी बातें—

१—प्रतिमां पिण्डिकां वापि कुण्डं मण्डपमेव च। तोरणं च ध्वजं चैव गुणाढ्यं पात्रमेव च ॥ मानहीनं न कर्तव्यं फलप्राप्त्यर्थिभिः सदा ॥ २—कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्। एतानि पञ्चरत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः ॥ ३—कुशेन रहिता पूजा विफला कथिता मया। उदकेन विना पूजा विना दर्भेण या क्रिया। आज्येन च विना होमः फलं दास्यन्ति नैव ते ॥ ४–सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत्। सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा॥ ५–कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये--इति हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे दूर्वाया उपदिष्टत्वेनातिदिष्टानामृजुदर्भाणां बाध्यो माभूदित्येतदर्थमेवं दूर्वाया च ऋजुदर्भैर्विकल्पः, सोऽपि मङ्गलात्मकविवाहाद्यारम्भे क्रियमाणवृद्धिश्राद्धे कुशस्थाने दूर्वाविधिर्यज्ञाद्यारम्भे तु क्रियमाणेऽमूलऋजुदर्भविधिरित्येवं व्यवस्थापितम् ॥ ६—नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्राकुलोऽपि वा ॥ ७—शालिग्रामे सर्वेऽपि देवाः पूज्या इति शिष्टाः।प्रतिमादौ षडावृत्त्या पूजिते यत्फलं लभेत्। शालिग्रामेऽर्चिते देवेष्वेकावृत्त्यापि तल्लभेत् ॥ ८—हूयमाने हुताशे च यदि ज्वाला समुद्भवः। सिद्धिदो यजमानस्य ज्ञेयः प्रीतो मनीषिभिः ॥ सा ज्वाला यदि रक्ता स्यात्कृष्णा चैव विशेषतः। उदिता शत्रुभयदा ऋत्विजां नात्र संशयः॥ वह्निः प्रदक्षिणावर्तः शशिखो धूम्रवर्जितः।स्निग्धः सुगन्धिर्गम्भीराश्चिरायुर्होतुरादिशेत् ॥९–देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्राकृतेषु च। काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विवर्जयेत् ॥ वस्त्रधान्यादिराशीनामेकदेशस्य दूषणे। तावन्मात्रसमुद्धृत्य शेषं प्रोक्षणमर्हति॥ घृतानां प्लावनाच्छुद्धिः—इत्यादि॥१०—यवार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्द्धं तिलास्तथा। तिलार्धं शर्करा प्रोक्ता आज्यं भागचतुष्टयम् ॥ वेदभागतिलानां स्युर्भागोनास्तु यवाः स्मृताः। द्विभागं च घृतं प्रोक्तं भागमेकं तु तण्डुलाः॥' यवाधिक्ये प्रजानाशः आज्याधिक्ये धनक्षयः।' तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा। अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धाः गुग्गुलाद्या यवैस्समाः। सर्वकामसमृध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि॥ ११—धर्मकार्यं महत्कार्यं यदीच्छेद् शभिर्दिनैः। प्रायश्चित्तं यथावित्तं प्राक्कार्यं तेन शुद्धये॥ 'गोहिरण्यादिदानं वा कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥१२—विद्यावृद्धान्वयोवृद्धान् गृहस्थान्संयतेन्द्रियान्। स्वकर्मनिरतान् शुद्धान् ज्ञानशीलान्प्रयत्नतः ॥ क्रोधलोभादयो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥१३—यस्मात् ग्रन्थाच्चातुरस्रादिकं कृतं तस्मादेव पद्मादिकर्तव्यमिति नियमः। अथवा–यस्मात्पद्मादिकं तस्मादेव चतुरस्रादिकं कार्यमित्यपि, किन्तु नामाकारसदृशस्य क्षेत्रफलस्य च नियमादेकस्मादेकमपरस्मादेकं कृतमपि दोषो नास्तीति सिद्धम्। अत एव कुण्डसिद्धध्यादेरष्टास्रादिकं कुण्डार्कादेः पद्मादिकं याज्ञिकाः कुर्वन्ति ॥ १४—स्वयं कर्तुमशक्तश्चेत् ऋत्विग्भिः कर्मकारयेत् ॥१५—वरणानन्तरं ऋत्विजे ज्वरादियुक्ते मृते वा तदा यजमानस्तत्स्थाने अन्यं वृत्वा कर्मणि योजयेत् ॥ १६—प्रागग्रमुदगग्रं वा धौतं वासः प्रसारयेत्। पश्चिमाग्रं दक्षिणाग्रं पुनः प्रक्षालनाच्छुचिः॥ १७—प्रवासे पथि वा मार्गे स्थानप्राप्तौ जलेऽपि वा। कारागारनिबद्धो वा प्रायो वेशगतोपि वा॥ मनोभवे समुत्पन्ने सिंहव्याघ्रसमाकुले। परचक्रागमे चैव कुर्यान्मानसपूजनम्।' अशुचिर्वा महामाया पूजां कुर्याच्च मानसीम्॥ १८–विष्णुक्रान्ता सहदेवी तुलसी तु सतावरी। मूलानीमानि गृह्णीयाच्छतालाभे विशेषतः॥ १९—न जातु दर्शयेन्मुद्रां महाजनसमागमे। देवास्तस्य न पश्यन्ति विफलं च कृतं भवेत् ॥२०—अक्षतानर्कधत्तूरौ विष्णोर्नैवार्पयेत्सुधीः। अक्षतनिषेधः शालग्राम पर एव न तु मूर्त्याविति। २१–रोगेष्वापत्सु दोषेषु दुस्सङ्गे दुर्निमित्तके। यथाकालो यथाश्रद्धा यथाद्रव्यं यथोचितम्। यथाबलं यथादेशस्तथापूजां समाचरेत् ॥ २२–प्रतिमासु शिलां बुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्। २३—होमकार्ये तथा दोहे पाके च परिवेषणे। पञ्चगव्याशने चैव ताम्रे गव्यं न दुष्यति-इति स्मृतिवचनं तल्लौकिकदोहविषय एव सङ्कटमात्राभ्यनुज्ञाविषयम्। एवं पाकपरिवेषणयोरपि। होमेऽत्र पञ्चगव्यस्यैव। अथवा सङ्कटविषयत्वमेव ॥ २४—आदौ वेदादितैर्मन्त्रैरग्न्युत्तारणमाचरेत्। धातुनिर्मितचक्राणां मूर्तीनां च विशेषतः ॥ २५—शालिग्रामशिलायान्तु प्रतिष्ठा नैव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारयेत् ॥ २६–पुष्पैः पर्युषितैर्देवि नार्चयेत्स्वर्णजैरपि । परारोपितवृक्षेभ्यः पुष्पाण्यानीय चार्चयेत् । अविज्ञाय च तैर्यन्तु निष्फलं तस्य पूजनम् ॥ २७–अष्टोत्तरसहस्रं तु तदर्धं त्रिशतं तु ॥
वा । अष्टोत्तरशतं चापि जपेन्नित्यमतन्द्रितः ।२८—मोहाद्वा कामतः शूद्रः पुराणं संहितां स्मृतिम् । पठन्नरकमाप्नोति पितृभिः सह पापकृत्॥२९–अरण्ये स्वल्पकामानां सिध्यर्थे पूजनं हितम् ।
निष्कामानां मुमुक्षूणां गृहे शस्तां गृहार्चनम् ॥३०–यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि । तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्॥३१—स्वरूपं मन्त्र यन्त्राणां देवतानां विशेषतः । अज्ञात्वा भजते मूढो नो
सिद्धिं प्राप्नुयात्क्वचित् ॥३२—एकरात्रं त्रिरात्रं च पञ्चरात्रं तु सप्त वा । नवरात्रं तथा पक्षं मासं पूर्णादिकं तु वा ॥ वर्षं वा फाल्गुनानां वा समस्तार्तिविनाशनम् । ग्रहाणां प्रातिकूल्येषु
दीर्घरोगेषु वैकृते ॥ देवतानामथोत्पाते त्रिविधे त्वभिचारके । दारिद्र्यो विजयप्राप्त्यां दुर्भिक्षे शत्रुपीडने ॥ कृच्छ्रेष्वन्येषु घोरेषु पूजैषा सर्वकामदा ॥३३—अर्घ्यपात्रं तु वायव्ये नैरृत्यां पाद्य-
पात्रकम् । आग्नेय्यां स्नानकलशं ईशे त्वाचमनीयकम् ॥ मध्ये तु मधुपर्कं स्यादित्येतत्पात्रलक्षणम् ॥ ३४—बीजहीनो भवेन्मन्त्रः सिद्धिऽहानिकरः शिवे ॥ ३५—पर्वताग्रे नदीतीरे देवता-
यतने तथा । एकान्ते च शुचौ देशे जपेन्नियतमानसः ॥ ब्रह्मचर्यधरो वीरो मिताहारो जितेन्द्रियः । अनृतं मत्सरं दम्भं त्यजेत्प्रतिग्रहं तथा ॥ ३६—विना दशांशहोमेन न तत्फलमवाप्नुयात् ॥
३७–चन्द्रसूर्यग्रहे वापि ग्रासावधिविमुक्तितः । यावत्संख्यामनुर्जप्तस्तावद्धोमादिकं चरेत् ॥ ३८—अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि जप्यते । तदैव महती सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥३९–
न कार्यं सर्वथा विप्रैः गृहे स्नानाङ्गतर्पणम् ॥४०—दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥ ४१—तिलाक्षताविष्णवे तु षोडशोपचारपूजने ॥४२–दीपोपप्लवने दीपं दद्याद्विप्रगृहे
सुधीः । मनोजूतिर्जुषतामिति दीपप्रणाशने । दानं च हवनं प्रोक्तं यथाशक्तिमहर्षिभिः ॥ एवं कृते विधानेन विघ्नः कश्चिन्न जायते ॥ ४३—आज्यभिन्नं यदा होमद्रव्यं स्याद्विधिबोधितम् ।
महाव्याहृतिहोमात्प्राक् तदा स्विष्टकृदाचरेत् ॥ ततो व्याहृतिहोमादिसर्वं होमे समापयेत् । 'आज्यमेव यदा होमद्रव्यं स्याद्विधिबोधितम् । तथा सकलहोमान्ते स्विष्टकृद्होममाचरेत्॥ होमान्ते
संस्रवं प्राश्याचम्य संमार्जयेत्तनुम् । यथाचारं पवित्राभ्यां वन्हौ ते प्रक्षिपेत्ततः॥ ४४—हेमाद्रिणा तु यदि कालानुरोधेन समाप्तिः शीघ्रमिष्टा तदा विंशतिचतुर्विंशतिद्वात्रिंशच्चतुःषष्टिशतं वा
होमकान् वृणुयात् ॥४५—कपोतोलूकसरटविकारोत्पादनेषु च । पल्लीसरटकादीनां स्पर्शने रुद्रपूजनम् ॥ स्पस्पृष्वाश्वत्थं यजेद्यस्तु रुद्रैकादशिनीं शुचिः । रोगज्वरातिसारादीन्नाशयेदुल्बगा-
नपि ॥ ४६—पलमेकं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते । घृतं च पलमात्रन्तु गोमयं तोलकद्वयम् ॥ दधिप्रसृतिमात्रं स्यात्पञ्चगव्यमिदं स्मृतम् । अथवा पञ्चभागानां समानो भाग इष्यते ॥
घर्णलाभे न दोषोऽस्ति मात्राहीनं तु वर्जयेत् ॥ ४७—अष्टोत्तरशतं नित्यमष्टाविंशतिरेव च । विधिना दशकं वापि त्रिकालेषु जपेद्द्विजः ॥ ४८—अशक्तौ निर्जने देशे मृतौ जाते च
सूतके । जपेच्च मानसीं सन्ध्यां कुशवारिविवर्जिताम् ॥ ४९—आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं जगत्तृप्यत्विति ब्रुवन् । जलाञ्जलित्रयं दद्यात्कुर्वन्संक्षेपतर्पणम् ॥ ५०—वज्रहीनमिदं देवि ! प्राप्नुयात्
वाञ्छितं फलम् । स वज्रं म्रियते न्यूनं वज्राघातेन पार्वती । तस्माच्च साधकेन्द्रेण वज्रहीनं प्रदीयते ॥ ५१—ब्राह्मणानां च नृपाणां च भस्ममिश्रं च चन्दनम् ॥ ५२–मूर्तिं न चालयेज्जातु
यत्नात्सुस्थिरतां नयेत् । तस्यां प्रचलिता च कुर्यात्स्वस्त्ययनादिकम् ॥५३—दृष्ट्वा भागवतं विप्र नमस्कारेण नार्चयेत् । देहिनस्तस्य पापस्य न च वै क्षमते हरिः ॥ ५४—सुवर्णं रजतं
ताम्रकारकूटं तथैव च । लोहं त्रपु तथा सीसं धातवः सप्त प्रकीर्तिताः ॥ ५५—स्वर्णं रूप्यं च ताम्रं च रङ्गं यशदमेव च । सीसं लोहं रसश्चेति धातवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः । रसं वर्जयित्वा तु
सप्त धातवो भवन्ति । धातुमयप्रतिमानिर्माणे तु रसं विहाय तत्स्थाने पित्तलं ग्राह्यम्॥ ५६—पवित्रे पतिते ज्ञाते तथा जपमणावपि । प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नात्वा विप्रोऽघमर्षणम् ॥५७–माषाणां ॥ २॥
षोडशादूर्ध्वं कुर्याद्द हेमपवित्रकम् । तेभ्यः स्वल्पतरं न्यूनं न कुर्वीत कदाचन ॥५८—सुमुखाय शमीपत्रं गणाधीशाय भृङ्गजम् । उमापुत्राय बैल्वन्तु दूर्वा गणमुखाय च ॥ लम्बोदराय बदरीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धत्तूरं हरसूनवे । ग्रहाग्रजायापामार्गमेकदन्ताय बार्हस्पम् ॥ हेमलम्बाय च सिन्दूरं चतुर्होत्रे तु पत्रजम् । सर्वेश्वरायागस्त्यस्य पत्रं प्रीति विवर्धनम्॥५९—शिवं गवयशृङ्गेण केशवं शंखवारिणा। विघ्नार्कौ ताम्रपात्रेण स्वर्णेन जगदम्बिकाम् । योऽभिषिञ्चति देवेशं गोशृङ्गार्पितधारया ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते ॥ ६०—भानौ भार्गवभौमे च व्यतीपाते च वैधृतौ । सङ्क्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां निशिसन्ध्ययोः । तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः । 'भानुवारं विना दूर्वा तुलसीं द्वादशीं विना ॥६१—मुक्ता पञ्चयवं तुल्यं प्राचीवज्रयवद्वयम्। चतुर्यवं पुष्परागं वैदूर्यं च यवद्वयम् ॥ गोमेदं वेदसंख्याकं नीलकं यवपंचकम् । प्रवालं त्रियवं तुल्यं माणिक्यं यवपंचकम् । रत्नानां धारणे मानं कथितं पूर्वसूरिभिः । एतन्मानं तु सर्वेषां नृपतीनां चतुर्गुणम् ॥ ६२—अनुक्तकल्पे यन्त्रन्तु लिखेत्पद्ममदलाष्टकम् । षट्कोणकर्णिकं तत्र वेदद्वारोपशोभितम् ॥ ६३—नित्यार्चनं दिवा कुर्यात् रात्रौ नैमित्तिकार्चनम् । ६४—प्रातः सन्ध्यां परित्यज्य देवतापूजनं चरेत् । अशुद्धः स दुराचारः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ६५—विना पात्रेण यः कुर्यात्प्रतिष्ठां याज्ञिकी क्रिया । विफला जायते सर्वावाहनादि धनापहा । बलिहीने तु दुर्भिक्षं गन्धहीने त्वभाग्यता । धूपहीने तथोद्वेगं वस्त्रहीने धनक्षयम् ॥ छत्रहीने हरेच्छत्रं वितानेन बको भवेत् । वेदिहीने प्रजानाशः स्यान्नगरस्य पुरस्य च॥ कलशं बन्धुनाशश्च भवेद्वै गिरिकन्यके । तोरणानामभावे तु हन्याज्जातीन्सबान्धवान् । दक्षिणारहिते सर्वं व्यर्थं स्यान्न संशयः । मन्त्रविद्याविहीने तु सम्पूर्णमपि नश्यति । पात्रमन्त्रसमायुक्तं सर्वदोषापहं भवेत् ॥ ६६—अर्धरात्रात्परं यच्च मुहूर्तद्वयमेव च । सा महारात्रिरुद्दिष्टा तद्धृतं चाक्षयं भवेत् ॥ ६७—सुवर्णे रचितं यन्त्रं सर्वराजवशं करम् । रजतेन कृतं यन्त्रमायुरारोग्यकामदम् ॥ ताम्रे तु रचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम् । क्लृप्तं मरकते यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम् । लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं महत् ॥ ६८—पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा जपेद् यः साधकाधमः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुः कीर्तिर्यशः श्रियम् ॥ ६९—अयने विषुवे चैव ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः । अष्टम्यां पूर्णिमायां च तेषु नैमित्तिको जपः ॥७०—अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते । ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वाशुचिः पूर्वमपोषितः ॥ नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रे जले स्थितः । स्पर्शाद्विमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥ तावत्कालं जपे त्वेत्थं ततो होमादिकं चरेत् । कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम् । कुलं कुलपतिं चैव कुलमालां कुलाकुलम् ॥ कुलचन्द्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत् । प्रकाशात्कार्यहानिः स्यात्प्रकाशान्निधनादिकम् । प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात्प्रकाशात्कुलहिंसनम् । प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन ॥ ७१—पलाशपत्रे निच्छिद्रे रुचिरौ स्रुवस्रुचौ मुने । विदध्याद्वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥७२—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धये । पुष्पं समग्रं जुहुयाच्छतसंख्यातिलांस्तथा । लाजामुष्टिप्रमाणाः स्युर्घृतं कर्षप्रमाणकम् । चुल्लुकार्धं मधुक्षीरमन्त्रं ग्रासमितं भवेत्। समग्रैश्च सखण्डैश्च फलानां च यथेच्छया॥ रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं नहि । नारिकेलस्य खण्डन्तु स्थूलं कुर्यान्मनः प्रियम् ॥ पवस्थाने चेक्षुदण्डं मनः सन्तोषकारकम् । द्राक्षाफलं समग्रं स्याद्गुञ्जामानं ततो भवेत् । कर्पूरकौशि (मृगमदः) कादीनां मनः सन्तोषकारकम् ॥ ७३—आयुर्वृद्धौ तथा शान्त्यै कोटिहोमं चरेन्नृप । कोटिहोमात्परं नास्ति कर्मारिष्टविनाशने । न तत्तुल्यं तथा राज्ञां महोत्पातविनाशनम् । कोटिहोमे यथाशक्तिर्लक्षे वाऽप्ययुते तथा । प्रतिवर्षं प्रकर्तव्यं हवनं पुष्टिवर्धनम् ॥ —७४ततः प्राङ्मुख आसीनश्चक्रोद्धारं समाचरेत् । हेमरूप्यादिताम्राणां पट्टे चातिमनोहरे॥चतुरस्रे समे शुद्धे मध्योच्छूनविभूषते । युग्माङ्गमिलितं देवी पट्टस्येहसमीरितम् ॥ अथवा परमेशानि चक्रं तत्समालिखेत् । हस्तमात्रमिते शुद्धे गोमयेनोपलेपिते। सिन्दूररजसा तत्र कुङ्कुमेनाथवा प्रिये। आलिखेच्चक्रराजं च लेखन्या हेमया तथा । अथवा कुशमूलेन दर्भपाणिः समाहितः ॥ नेत्ररम्यं यथा चक्रं तथा कुर्याद्विचक्षणः॥७५—हस्तमात्रं चतुरस्रं गोमयेनोपलेपितम् । अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं वालुकामण्डलं तथा ॥ तत्रापि लेपनं कृत्वा तत्र होमः फलप्रदः ॥ ७६—पूर्वाह्णविहितां पूजां गृह्णाति परदेवताम् । मध्याह्नविहितां देवि गृह्णन्ति योगिनीगणाः ॥ अपराह्णकृता-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूजा नीयते यक्षराक्षसैः । पूर्वाह्णे दीयते यत्तदमृतं समुदीरितम् ॥ मध्याह्ने तत्तु देवेशि शोणितं च परं स्मृतम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बाह्यपूजां महेश्वरी ॥ प्रातरेव सदा कुर्यात् गृहस्थो गृहणीयुतः ॥ ७७--प्रलपन् वा जपेद्व यावद्व तावन्निष्फलमुच्यते । सकृदुच्चरिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत् ॥ प्रोक्ते पामरशब्दे तु प्राणायामं सकृदुच्चरेत् । बहुप्रजापे चाचम्य न स्याज्ञानि ततो जपेत् ॥ पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते । क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥ कृत्वाचम्य जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् ॥ ७८—होता चेन्मन्त्रहीनः स्यादशुचिर्भवते सदा । तस्मात्त्वं संस्कृते वह्नौ न होतव्यमवैदिकैः ॥ मन्त्रसवैदिकहोतारः आप्यायन्ति देवताः । अवैदिकास्तु होतारो नैव प्रीणन्ति वै सुरान् ॥ ७९—पूर्वेऽग्निर्देवता विष्णुर्दक्षिणेन हरः-स्थितः । पश्चिमेन स्थितो ब्रह्मा एता वै अग्निदेवता ॥ ८०—ज्वरे रुद्रजपं कुर्यात्महारुद्रं महाज्वरे । प्रणामाः सर्वदेवेषु पञ्चसप्तत्रयोऽपि वा ॥ ८१—यथारुचिप्रमाणेन प्रतिमाः कल्पयेत्सुधीः ॥ ८२—प्रातः स्नातुमशक्तस्य रोगाद्यैर्वा भयेन वा । पूर्ववस्त्रं परित्यज्य गौणस्नानेन शुध्यति ॥८३ —ऋणं भौमे न कुर्वीत न देयं बुधवासरे । ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्सञ्चयं सोमनन्दने ॥ ८४—व्रात्यो देवलकश्चैव दुःशीलो गणपस्तथा । शूद्रापतिः कर्महीनो लोके कुत्सितवृत्तिमान् । महापातकिनः षण्ढो क्षयीरोगी भगन्दरी । शूद्रसेवी च भिषक् शूद्रान्नभक्षकः । वृथा तुलादिसङ्ग्राही मर्यादाघातकस्तथा । ग्रामदाही ग्रामणीश्च यो दुःसंसर्गवान् द्विजः । एते अनर्हा विज्ञेया अयाज्या परिकीर्तिताः । अनर्हाणामध्वरेषु ये ब्रह्माद्याश्च ऋत्विजः । तेषां पापविशुध्यर्थं षडब्दं व्रतमीरितम् ॥ ८५—भूरादिनवसु स्विष्टकृत्याज्यभागयोः । आघारयोश्च विहितः सोऽन्वारम्भः कुशेन वै ॥ ८६--अहन्यहनि कर्मार्थं कुशच्छेदः प्रशस्यते॥८७—अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम् ॥ ८८—चक्षुरोगी शिरोरोगी कर्णरोगी कफाधिकः । कण्ठस्नानं प्रकुर्वीत शिरस्नानसमं हि तत् ॥ ८९—आच्छाद्याऽऽर्द्रवस्त्रेण करं यस्तु जपेद्यदि । निष्फलः स्यात्तस्य जपे देवता न प्रसीदति ॥ ९०—कपालनाशने चैव ऋत्विग्द्रव्यविपर्यये । पवित्रनाशने चैव यत्किञ्चित्पात्रभेदने। आज्याहुतिस्तु होतव्या व्याहृत्या प्रणवेन वा॥ ९१—प्रतिमापट्टवस्त्राणां नित्यस्नानं न कारयेत् । कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥ ९२ —क्षीरे तु लवणं दत्वा उच्छिष्टेऽपि च यद्घृतम् । स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम्। नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रस्थिते मधु । गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना । 'आज्यपात्रे स्थितं तक्रं मधुमिश्रं तु यद्घृतम् । ताम्रपात्रस्थितं क्षीरं त्रपुस्सर्पिः सुरासमम् ९३—रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकर्माणि कारयेत् । अगाहं च सौरं च ब्रह्मयज्ञं च वर्जयेत् ॥ ९४—द्वौ विप्रौ ब्राह्मणाग्नी वा दम्पतीगोद्विजोत्तमौ । अन्तरेण यदा गच्छेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्। होमकाले तथा दोह्ये स्वाध्याये दारसङ्ग्रहे । अन्तरेण यदा गच्छेद्व द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ९५--कुर्याद्विधवाकर्म यवेनाथ च दूर्वया । न स्पृशेत्तिलदर्भांश्च यावद्भर्तृसमन्विता ॥ ९६--समाप्ते यदि जानीयात् मयैतदन्यथा कृतम् । तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥ ९७--हस्तमात्रं चतुष्कोणं बाहुमात्रमथापि वा । चतुरङ्गुलमुच्छ्रायं स्थण्डिलं सर्वकर्मस्तु॥९८-गन्धपुष्पादिभिर्वह्निं होमान्ते परिपूजयेत् ॥ ९९—अनुक्ते तु हविर्द्रव्ये तिलाज्यं हविरुच्यते । आज्यद्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते । मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ १००—बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं तारयन्ति हि । एका एव प्रदातव्या न बहुभ्यः कदाचन ॥ १०१-रात्रौ दानं न कर्तव्यं कदाचिदपि केन चित् । हरन्ति राक्षसा यस्मात्तस्माद्दातुर्भयावहम् ॥ 'रात्रौ स्नानं न कर्तव्यं दानं चैव विशेषतः । नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥ १०२--ब्रह्मशुद्धौ गृहारम्भे सूतके मृतसूतके । यज्ञारम्भे धनप्राप्तौ प्रायश्चित्ते विशेषतः । रोगमुक्तौ च सम्पर्के क्षुद्रपापापनुत्तिषु । विदध्याद्व ब्रह्मकूर्चं च मासि मास्यपि वा द्विजः ॥ १०३-मूर्खा दुष्टाः प्रलुब्धाश्च वेदज्ञानविवर्जिताः । अलसामलसंयुक्ता नित्यं कलहकारिणः । अन्येऽपि सर्वे दुष्टाश्च परच्छिद्रैषिणोऽशुभोः । क्रूरा दुष्टचरित्राश्च नित्यं वादरताश्च ये। शास्त्रहीना द्रव्यलुब्धाः पुराणार्थविवर्जिताः । परच्छिद्राणि यो ब्रूते ब्रह्महा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कथ्यते बुधैः। ब्रह्मघ्नेषु च सर्वेषु प्रायश्चित्तं सदा मुने। कथितं मुनिशार्दूलैर्न तत्स्यान्मर्मभेदिनः। परिच्छिद्रेषु यः पापो निमग्नो मोहतत्परः। वर्जनीयः शुभे कार्ये होमे चैव विशेषतः।
श्राद्धेषु यज्ञार्थेषु विवाहसमये तथा। परमर्मरतं नित्यं वर्जयेच्च प्रयत्नतः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सदोषान्वर्जयेत्सदा। निर्दोषाः फलदा विप्राः सर्वकर्मसु शोभनाः॥ १०४—फलमूलयवौ
श्रेष्ठा मुद्रा च शिखिवल्लभा। कुक्कुटी पत्रपुष्पाणां शालिहोमे तु शू-री। यवानां च तिलानां च हंसी प्रोक्ता मनीषिभिः॥ १०५—असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते तु समुपस्थिते। कारयेत्
धर्मपत्नी वा पुत्रं वा विनयान्वितम्। भगिनीं भ्रातरं वापि व्रतमस्य न लुप्यते॥ १०६—न्यूनाधिकस्तनी यातु या चान्याभक्ष्यहारिणी। तयोर्दुग्धं न पातव्यं न होतव्यं कदाचन।
दुर्बला व्याधिसंयुक्ता पुष्पिता..., सा साधुभिर्न होतव्या...॥१०७—कुशैः काशैः सदा कार्यं पवित्रं ब्रह्मचारिणाम्। बनस्थानां शरभवं त्रक्षरीसभवं च वा। यतीनां गैरिकाक्तं च सर्ववर्णं
गृही चरेत्। राज्ञां सुवर्णसूत्रोत्थं क्षत्रियाणां च रौप्यजम्। द्विजानां क्षूत्रसम्भूतं क्रमेण परिकीर्तितम्॥ १०८—जपस्यैवं दशांशेन होमं कुर्याद्दिने दिने। अथवा लक्षपर्यन्तं जप्त्वा होमसमा-
चरेत्॥ १०९—न च स्मरेत् ऋषिं छन्दः श्राद्धे वैतानिके मखे। ब्रह्मयज्ञे च वै तद्वत्तथोङ्कारं विवर्जयेत्॥ ११०—नित्यस्य कर्मणो हानिः केवलं मृत्युजन्मनोः। न तु नैमित्तिकोच्छेदः
कर्तव्यो हि कथञ्चन॥ १११—मृगचर्मप्रयत्नेन वर्जयेत्पुत्रवान्गृही॥ ११२-अग्निहीनमनावृष्टिः मन्त्रहीनं तु ऋत्विजः। आज्यहीनं कुलं हन्ति स्वरहीनं तु पत्नयः। यजमानं दक्षिणाहीनं
मन्त्रहीनं तु राष्ट्रकम्। सर्वहीनं सदस्यानि नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥११३—यद्यपि ऋत्विक् दक्षिणा पृथक् न विहिता, तथापि आचार्याय देयत्वेन विहितायां दक्षिणायां अर्धमृत्विग्भ्योऽपि
देया। सर्वत्र ऋत्विक् दक्षिणापेक्षया आचार्यदक्षिणाया द्वैगुण्यविधानात्। यद्वा विशेषश्रवणात्समा वा देया। ऋत्विजेभ्यो गुरोरर्धं तदर्धं द्वारजापिषु। शस्त्रजापिषु दैवज्ञे तत्समा शिल्पिने मता।
वेदाध्ययनकारिभ्यस्तत्समावतदर्धतः। दीनान्धकृपणादिभ्यो भूरिदानं यथोचितम्। गुरवे दक्षिणाह्युत्तमामध्या चाधमेति त्रिधा मता। तथापि-शक्तितारतम्येन व्यवस्था बोध्या। विभवे सति यो
मोहान्न कुर्याद्विधिविस्तरम्। नैव तत्फलमवाप्नोति प्रलोभाक्रान्तमानसः ११४—बलिस्तु त्रिविधो ज्ञेयस्तान्त्रिकः स्मार्त एव च। वैदिकश्चेति तत्रादौ तान्त्रिकोऽष्टविधः स्मृतः। नरश्च महिषः
कोलश्छागोऽविः सारसस्तथा। कपोतः कुक्कुटश्चेति सामान्योः पूर्वपूर्वतः। कूष्माण्डं नारिकेलं वा श्रीफलं चेक्षुमेव च। वस्त्रवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिभिः। एवं स्मार्तो बलिः प्रोक्तो
धर्मशास्त्रानुगामिनाम्। वैदिकं तु बलिं दद्यादोदनं स्विन्नमाषवत्। सरोचनमतिक्रूरदैवते वटकान्वितम्॥ ११९—सम्यक् कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते। गन्धपुष्पं च धूपं दीपं
नैवेद्यमेव च। अभावे तोयपुष्पाभ्यां तदभावे तु भक्तितः॥ ११६—न न्यासो योषितां चात्र न ध्यानं न च पूजनम्। केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिध्यन्ति योषिताम्॥११७—कलश-
स्थापनाशक्ते यन्त्रादौ पूजनं चरेत्॥११८—हस्ते धृतानि पुष्पाणि ताम्रपात्रे च चन्दनम्। गङ्गोदकं च चर्मपात्रे निषिद्धं सर्वकर्मसु॥ सर्वत्र पावनी गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुष्यति। म्लेच्छस्पर्शे
सुराभाण्डे कूपादिजलमिश्रणे॥ ११९—तिलकं पादशौचं च न कुर्याद्दर्भपाणिना॥ १२०—दूर्वा सप्तपत्रयुता पञ्चपत्रयुता वाऽच्छिन्ना ग्राह्येति रत्नमालायाम्। सा च प्रादेशमात्रा
षडङ्गुला वेति जयसिंहकल्पद्रुमे तृचभास्करे। न तुलस्यागणाधीशमेकविंशतिकं विना। एकविंशतिपत्रान्तर्गत्वात्तुलस्यास्तावतामर्पणे न तुलसीनिषेधः। पार्थक्ये नार्पयेदित्यर्थः। ज्ञानमा
लायान्तु बिल्वपत्रैर्दिवाकरं नार्पयेदिति निषेधः उक्तोऽतो विहितप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पः॥ १२१—स्नानमध्ये त्वाचमनं तर्पणं वस्त्रपीडनम्। करपात्रगतं तोयं गृहे चैतानि वर्जयेत्॥ स्नानमध्ये-
नाऽऽचमनं मार्जनं तर्पणं न च। वस्त्रस्य पीडनं नैव सङ्कल्परहितं तथा। सङ्कल्परहितं स्नानमध्ये सङ्कल्परहितं न तु सर्वथा सङ्कल्परहितमित्यर्थः। 'गृहे गृहमुखं स्नानं मध्ये सङ्कल्पवर्जि-
तम्—इति बृहद्यमोक्तेः। यत्वाचारचन्द्रोदये-वापीकूपगृहस्नाने सूतके मृतके तथा। मासोच्चारं न कुर्वीत तत्तोयं रुधिरं भवेत्—इति वचस्तत्र मूलं मृग्यमित्याचारप्रकाशे। इति।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ श्रीदेवर्षि नारदजी और सत्यवादी युधिष्ठिरकी बात-चीत यह वर्णन ❀

पूर्व अध्यायमें भगवान् विष्णुको इन्द्रपक्षपाती सुनकर महाराज परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्, भगवान् तो सब जीवोंके समान प्रिय मित्र हैं। तब उन्होंने पक्षपाती जीवोंके तुल्य इन्द्रके लिये असुरोंका क्यों हनन किया ॥ १ ॥ वे तो साक्षात् परमानन्दस्वरूप हैं न उनको देवोंसे प्रयोजन है तथा निर्गुण होनेसे असुरोंसे कोई शत्रुता ही है ॥ २ ॥ इसलिए हे महाभाग, हमें नारायणके अनुग्रह-निग्रहादि गुणोंके प्रति महान् संशय हो गया आप इसको निवृत्त करें ॥३॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा— महाराज, तुमने भगवान्के अद्भुत चरित्रके सम्बन्धमें सुन्दर प्रश्न पूछा । जिसमें भगवदनुरागका वृद्धिकरनेवाला एक भक्तका माहात्म्य है ॥४॥ इसपरम पुण्य इतिहासका नारद आदि ऋषिगण गान करते रहते हैं। महामुनि श्रीवेदव्यासको नमस्कारकर

श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच ॥ समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन्भूतानां भगवान्स्वयम् ॥ इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥ नह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः ॥ नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥ २ ॥ इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान्प्रति ॥ संशयः सुमहाञ्जातस्तद्भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥ गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ॥ नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥५॥ (जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् ॥ लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः ॥ १ ॥ तस्माद्गोविन्दमाहात्म्यमानन्दरससुन्दरम् ॥ शृणुयात्कीर्तयेन्नित्यं स कृतार्थो न संशयः ॥ २ ॥ तस्माद्धीमन्कथां पुण्यां गोविन्दचरिताश्रिताम् ॥ महापुण्यप्रदां यस्माच्छृणुष्व नृपसत्तम ॥ ३ ॥) निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृतेः परः ॥ स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥ ६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥ ७ ॥ जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ॥ तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ८ ॥ ज्योतिरादिरिवाभाति संघातान्न विविच्यते ॥ विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥९ यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो रजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया ॥ सत्त्वं विचित्रासु

वह भगवत् कथा कहता हूँ ॥ ५ ॥ यद्यपि भगवान् तो निर्गुण, अज, अव्यक्त और प्रकृतिसे परे हैं, अपनी मायाके गुणोंके अविलम्बसे वे दुष्टोंके नाशक हो जाते हैं ॥६॥ सत्त्व, रज, तम ये तीनों मायाके ही गुण हैं आत्माके नहीं । हे राजन्, उन गुणोंका एक संग क्षय या वृद्धि नहीं होता ॥ ७ ॥ भगवान् सत्त्वगुणकी वृद्धिके अवसरपर देवों तथा ऋषियोंको रजोगुणकी प्रधानताके समय दैत्योंको एवं तमोगुणकी प्रधानता होनेपर यक्षों तथा राक्षसादिकोंको उस उस समयके गुणानुसार बढ़ाते हैं ॥ ८ ॥ इसमें दृष्टान्त देते हैं कि आत्मा तो अग्नि आदिकी तरह विभिन्न देहोंमें विभिन्न रूपसे प्रकट हुआ करता है । सुरादि देहसे अलग वह प्रकट नहीं होता। विद्वान् लोग विचारों द्वारा अन्तमें उसे शरीरसे पृथक् समझलेते हैं, काष्ठमें रहनेवाली आग लकड़ीसे अलग नहीं मालूम होती, पर विचारसे अलग सिद्ध होती है ।.९॥ जब परमात्मा जीवके सुख-दुःख भोगके लिये शरीरोंके निर्माणको इच्छा करते हैं तब वे समानरूपसे रहने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाले रजोगुणको अलग उत्पन्न करते हैं तथा उन्हें जब उन विभिन्न सुख-दुःख देहोंमें क्रीड़ा करनेकी इच्छा होती है, तब वे सत्त्वगुणको पृथक् उत्पन्न करते तथा जब वे संहार करना चाहते हैं तब तमोगुणको अधिककर देते हैं ॥ १० ॥ इस कथनसे परमात्मा काल तथा पुरुषके अधीन प्रतीत होनेसे परतन्त्र मालूम होने लगे इस शंकाको दूर करते हैं। हे नरदेव, इस संसारके निमित्त-भूत प्रकृति एवं जीवके सहकारी होनेसे आश्रयभूत कालको सकलकर्ता श्रीभगवान् ही निर्माण करते हैं। अतः वे कालके आधीन नहीं हैं। हे राजन्, यह काल सत्त्वगुणकी वृद्धि करे तो इस विषयमें सुरप्रिय ईश्वर भी सत्त्वप्रधान देवोंका उत्कर्ष एवं उनके प्रतिद्वन्द्वी रज-तम प्रधान दैत्योंका नाश करते है, एवं च कालशक्तिसे तारतम्यको प्राप्त सत्त्वादि गुणगत वैषम्य उनके अध्यक्ष तथा संचालक ईश्वरमें प्रतीत होता है ॥११॥ हे राजन्. प्राचीनकालमें राजसूयमहायज्ञके अवसरपर महाराज युधिष्ठिरके प्रश्न ज्ञातकरनेपर देवर्षि नारदने आनन्दित हो उनको

रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥ १० ॥ कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुंभ्यां नरदेव सत्यकृत्॥ य एष राजन्नपि काल ईशिता सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः ॥ तत्प्रत्यनीकानसुरान्सुरप्रियो रजस्तमस्कान्प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥ ११ ॥ अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा ॥ प्रीत्या महाक्रतौ राजन्पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ॥ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥ १३ ॥ तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ ॥ पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥१४॥ युधिष्ठिर उवाच॥ अहो अत्यद्भुतं ह्येतद् दुर्लभैकान्तिनामपि ॥ वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥ १५ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ॥ भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥ १६ ॥ दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् ॥ संप्रत्यमर्षी गोविन्दे दन्तवक्त्रश्च दुर्मतिः ॥ १७ ॥ शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम् ॥ श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः ॥ १८ ॥ कथं तस्मिन्भगवति दुरवग्राह्यधामनि ॥ पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा ॥ १९ ॥ एतद्भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ॥ ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥२०॥ श्रीशुक उवाच॥ राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य

एक कथा सुनाया थी ॥ १२ ॥ राजसूय महायज्ञमें शिशुपालकी भगवान् वासुदेवमें सायुज्य प्राप्ति करते देख महाराजने आश्चर्यसे यज्ञशालामें बैठे देवर्षि नारदसे समस्त मुनियोंके सन्मुख इस भाति पूछा ॥१३,१४॥ युधिष्ठिर पूछने लगे—अहो, यह विचित्र वार्ता है कि विद्वेषी शिशुपालको परतत्त्व परमात्मा श्रीकृष्णकी सायुज्यमुक्ति मिली, जो कि उनके एकान्त भक्तोंके लिये भी कठिन थी ॥ १५ ॥ हे महामुने, हम सभी यह जानना चाहते हैं कि श्रीभगवान्की निन्दा करनेसे ब्राह्मणोंसे राजा वेन नरकमें फेंक दिया गया था ॥१६॥ पर पापी दमघोषसुत-शिशुपाल और दुर्बुद्धि दन्तवक्रने तो बचपनमें जबसे तुतलाकर कहना प्रारम्भ किया तबसे आजतक उसने भगवान्से शत्रुता ही की ॥१७॥ ये अव्यय और परब्रह्म भगवान् श्रीविष्णुको बहुत बार गाली दिया करते थे तो भी इनकी जीभमें न कुष्ट ही हुआ न ये भयंकर नरकमें ही जा गिरे ॥ १८ ॥ ये अत्यन्त दुष्प्राप्यरूपवाले भगवान्में सब जीवोंके देखते-देखते किस तरह विना प्रयास ही विलीन हो गये ॥१९॥ हे भगवन्, यह बात बड़ी अद्भुत है इससे मेरी बुद्धि हवाके झोंकसे कम्पायमान होती हुई दीपशिखाके तरह चक्करमें पड़ी है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसलिये आप इसका भेद बताइये ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे—राजाके प्रश्नको श्रवणकर देवर्षि नारद आनन्दित हो उन समस्त सभासदोंको सुनाते हुए राजाको सम्बोधन कर इस तरह बोले ॥ २१ ॥ नारदने कहा—हे राजन्, प्रकृति पुरुषके अविवेकसे अर्थात् पुरुष प्रकृतिसे अलग है तथा निर्लेप है इस बातको न जाननेसे ही निन्दा, स्तुति, आदर तथा अपमानके आधाररूप इस देहकी कल्पना हुई ॥ २२ ॥ हे राजन, देहाभिमानसे ही प्राणियोंमें अहन्ता तथा ममत्वरूपिणी विषमता है और उसी विषमतासे ही ताडन निन्दा आदि दुःख होता है ॥ २३ ॥ जब देहको ही 'अहम्' या मैं समझ बैठता है तब उसके वधसे अपना हनन मान लेता है, परन्तु यह अभिमान सर्वात्मा भगवान्‌में नहीं है, क्योंकि वे आनन्दस्वरूप अद्वितीय हैं। दुष्टोंके मंगलार्थ उनको दण्ड देनेवाले ईश्वरको भला कैसे हिंसा छू सकती है ॥ २४ ॥ इसलिए दृढ़ वैर, निर्वैरी भक्तियोग, डर, ममता, कामना, हो सही उनमें इसप्रकार मनको

नारदो भगवानृषिः ॥ तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वत्यास्तत्सदः कथाः ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् ॥ प्रधान-
परयो राजन्नविवेकेन कल्पितम् ॥ २२ ॥ हिंसा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा ॥ वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥ २३ ॥ यन्निबद्धो-
ऽभिमानोऽयं तद्वधात्प्राणिनां वधः ॥ तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ॥ परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥ २४ ॥ तस्मा-
द्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा ॥ स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात्कथञ्चिन्नेक्षते पृथक् ॥ २५ ॥ यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ॥ न तथा
भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ २६ ॥ कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ॥ संरम्भभययोगेन विन्दते तत्सरूपताम् ॥ २७ ॥
एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ॥ वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया ॥ २८ ॥ कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ॥ आवेश्य
तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥ २९ ॥ गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ॥ संबन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥ ३० ॥
कतमोऽपि न वेनः स्यात्पञ्चानां पुरुषं प्रति ॥ तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥ ३१ ॥ मातृष्वस्रेयो वश्चैद्यो दन्तवक्त्रश्च पाण्डव ॥

लगा उनको छोड़ कुछ भी दिखाई न दे ॥ २५ ॥ मेरा निश्चय है कि जीव जितना वैरानुबन्धसे परमात्मामें तन्मनस्क हो सकता है, तद्वत् भक्तियोग द्वारा नहीं हो सकता ॥२६॥ भ्रमरसे दीवालपर अपने छेदमें बन्द किया हुआ कीटाणु द्वेष और भयसे उसकी याद करते-करते भ्रमरके आकारका बन जाता है ॥२७॥ उसीप्रकार मायामानवस्वरूपधारी भगवान् कृष्णमें निरन्तर शत्रुता भावसे सदा उन्हींका विचार करनेसे पापरहित होकर इन्होंने उन्हींको प्राप्त किया ॥ २८ ॥ हे राजन, काम, द्वेष, भय, स्नेह, भक्ति आदि उपायोंसे ईश्वरमें चित्तको लगाकर बहुतसे जन कामादिसे उत्पन्न पापसे मुक्ति प्राप्तकर उनमें सायुज्यमुक्ति प्राप्तकर चुके हैं ॥२९॥ हे राजन्, गोपियाँ कामसे, कंस डरसे, शिशुपाल आदि राजे द्वेषसे, यादव रिश्तेदारीसे, आपलोग स्नेहसे, और सब हम मुनि उनको प्राप्त किये ॥ ३० ॥ इन पाँच प्रकारके ईश्वरचिन्तकोंमें वेन किसीमें न था, क्योंकि वह निरन्तर किसी भावसे भी ईश्वर चिन्ता नहीं करता था, इसलिये वह नहीं मुक्त हुआ। अतः चित्तको किसीप्रकार भगवान् कृष्णमें लगा रहना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे पाण्डव, आपके मौसेरे भ्राता शिशुपाल और दन्तवक्र भगवान् विष्णुके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुख्य अनुचर थे। विप्रशापसे ही ये दोनों उस स्थानसे नष्ट हो गये थे ॥ ३२ ॥ यह वार्ता श्रवणकर युधिष्ठिरने कहा—हे महामुने, भगवान्के भक्तोंको भी छूनेवाला वह शाप किसका और कैसा था। भगवान्के अनन्यभक्तोंका संसारमें गिर जाना तो विश्वासके पात्र नहीं जाना जाता ॥३३॥ प्रकृत शरीर और इन्द्रिय आदिसे विहीन उन वैकुण्ठमें रहनेवाले देह सम्बन्धका वह सम्बन्ध आप सुनाइय ॥ ३४ ॥ श्रीनारदने कहा—हे राजन्, एक समय ब्रह्माके लड़के सनन्दन आदि चार ऋषि तीनों लोकोंमें इच्छानुसार भ्रमण करते हुए वैकुण्ठमें जा पहुँचे ॥ ३४ ॥ वे पूर्वजोंके भी पूर्वज होते हुए पाँच छः वर्षके लड़कोंके तुल्य मालूम होते थे। उनको साधारण पुत्र जानकर द्वारपालोंने अन्दर जानेसे रोका ॥ ३६ ॥ इस बातपर क्रोधित हो उन लोगोंने द्वारपालोंको शाप देते हुए कहा—अरे दुष्टो, तुम दोनों श्रीभगवान् नारायणके रजोगुण और तमोगुणरहित श्रीचरणकमलोंकी सेवाके लायक नहीं हो, इसलिए तुम

पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ॥३२॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ॥ अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः ॥ ३३ ॥ देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ॥ देहसम्बन्धसम्बद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ॥ सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ॥ ३५ ॥ पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ दिग्वाससः शिशून्मत्वा द्वास्थौ तान्प्रत्यषेधताम् ॥ ३६ ॥ अशपन्कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथ । रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥ पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः । ३७ ॥ एवं शप्तौ स्वभवनात्पतन्तौ तैः कृपालुभिः ॥ प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥ ३८ । जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ । हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ३९ ॥ हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ॥ हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥४०॥ हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ॥ जिघांसुरकरोन्नाना यातना मृत्युहेतवे ॥४१ ॥ सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनम् ॥ भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः ॥ ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च

स्वर्गसे पापिष्ठ दैत्य योनियोंमें जन्म लो ॥ ३७ ॥ इसप्रकार उनके शाप सुनते ही जब वे अपनी जगहसे भ्रष्ट होने लगे, तो उन दयाशील मुनियोंने पुनः कहा—तुम उस पाप योनिमें तीन बार जन्म लेकर फिरसे इसलोकमें आ जाओगे ॥३८॥ इसके अनन्तर वे दोनों द्वारपाल असुर और दानवोंसे सम्मानित दितिके लड़के हुए। उनमें हिरण्यकशिपु बड़ा तथा हिरण्याक्ष छोटा था ॥३९॥ उनमेंसे हिरण्यकशिपुको भगवान्ने नृसिंहका रूप लेकर वध किया तथा भूमिका उद्धार करते समय वराहरूप ग्रहणकर हिरण्याक्षका नाश किया ॥४०॥ हिरण्यकशिपुने तो अपने लड़के भगवद्भक्त प्रह्लादका हनन करनेकी अभिलाषासे उन्हें तरह तरहसे सताया ॥ ४१ ॥ परन्तु अनेक यत्नोंसे भी वह सब जीवोंके, आत्मरूप, अत्यन्त शान्त, प्रिय, समदर्शी और भगवान्के तेजसे प्रह्लादको न मार सका ॥ ४२ ॥ इसके बाद वे दोनो दूसरे जन्ममें विश्रवासे केशिनीके उदरसे रावण तथा कुम्भकर्ण हो उत्पन्न हुए। इन्होंने समस्त प्राणियोंको पीडित किया ॥ ४३ ॥ उस जन्ममें भी भगवान्ने रामावतार ग्रहणकर उनका हनन किया था। हे राजन्, आगे चलकर श्रीरामचन्द्रका चरित मार्कण्डेयमुनिसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तुम श्रवण करोगे ॥ ४४ ॥ अब तीसरे जन्ममें वे दोनों ही क्षत्रियस्वरूपमें तेरी मौसीके लड़के होकर उत्पन्न हुए और कृष्णचन्द्रके चक्र-प्रहारसे पापशून्य हो शापसे निर्मुक्त हुए हैं ॥ ४ ॥ वे विष्णुपार्षद विरद्वेषके निमित्त बहुत ध्यानसे निरन्तर विष्णुके समान रूपको प्राप्त हो पुनः उन्हींके पास चले गये ॥ ४६ ॥ राजा युधिष्ठिरने पूछा—हे भगवन्, हिरण्यकशिपुने अपने प्यारे लड़के महात्मा प्रह्लादसे शत्रुता क्यों की तथा दैत्य वंशमें जन्म ग्रहणकर प्रह्लादने परमात्मामें अपना चित्त कैसे रमाया वह कहिये ॥ ४७ ।

सर्वलोकोपतापनौ ॥४३॥ तत्रापि राघवौ भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ॥ रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात्प्रभो ॥४४ ॥ तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव । अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ । ४५ । वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ॥ नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ । ४६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ॥ ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥४७।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रथम अध्यायका सार—श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्, काम, द्वेष, भय, स्नेह अथवा भक्ति इन साधनोंसे ईश्वरमें मन लगाकर और उस काम आदिसे होनेवाले पापोंको करके बहुत-से मनुष्य भगवान्की सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हो चुके हैं। हे राजन्, उपर्युक्त पाँचों हेतुओंमेंसे राजा वेनमें कोई नहीं था। इसलिए उसको वह गति प्राप्त नहीं हुई। अतः चाहे जिस किसी तरहसे भी भगवान्में प्रीति बढ़ानी ही चाहिये। हे राजन्, शिशुपाल और दन्तवक्र—ये दोनों भगवान् विष्णुके प्रधान पार्षद थे तथा ब्राह्मणोंके शापसे बैकुण्ठसे च्युत हो गये थे। तीनों लोकमें घूमते-घूमते एक दिन सनत्कुमार आदि चारों भाई भगवान्के दर्शनकी लालसासे बैकुण्ठमें पहुंचे। वे चारो नग्न थे और पाँच छः वर्षकी अवस्थाके थे। इन्हें भगवान्के दो दरवानोंने भीतर जानेसे रोक दिया। तब इन लोगोंने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया कि तुम दोनों भगवान्के समीप रहने योग्य नहीं हो। अरे मूर्खो, शीघ्र असुर योनिमें चले जाओ। अनन्तर वे दोनों हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामसे दितिके वंशमें उत्पन्न हुए। नृसिंहरूप धारणकर भगवान्ने हिरण्यकशिपुका और वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया। दूसरे जन्ममें वे रावण कुम्भकर्णके नामसे प्रसिद्ध हुए तथा भगवान्ने रामावतार धारणकर उनका वध किया। हे राजन्, वे ही रावण और कुम्भकर्ण तीसरे जन्ममें क्षत्रिय होकर आपके मौसेरे भाई शिशुपाल तथा दन्तवक्र हुए हैं और श्रीकृष्णके चक्रसे पापशून्य होकर अभी ब्राह्मशापसे छूटे हैं। युधिष्ठिरने पूछा—महामुने, अपने प्रिय पुत्र प्रह्लादसे हिरण्यकशिपुकी शत्रुता क्यों हुई तथा भगवान्में प्रह्लादका चित्त कैसे जम गया ? यह मुझसे कहिये। प्रथम अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीनारदजीने पूछा—हे राजन्, सूकररूपधारी भगवान्से अपने भ्राताके हनन हो जानेपर हिरण्यकशिपु क्रोध और दुःखसे व्याकुल हो उठा ॥१॥ बड़े क्रोधके कम्पायमान हो दाँतोंसे अपने ओठोंको काटता हुआ जलती हुई आँखसे क्रोधाग्निके धुएँसे धूम्रवर्ण आकाशकी तरफ घूरता हुआ बोला ॥२॥ कराल दाढ़ोंसे युक्त क्रूर दृष्टि तथा बक्र भृकुटियोंसे उसका चेहरा इतना भयङ्कर हो गया कोई उसकी तरफ देख नहीं सकता था। ऐसी स्थितिमें उसने अपनी सभाके मध्यमें त्रिशूलको सम्भालकर कहा ॥ ३ ॥ हे द्विमूर्द्ध, त्र्यक्ष, शम्बर, शतबाहु, हयग्रीव, नमुचि, पाक, इल्वल विप्रचित्ति, पुलोमा, शकुनि आदि असुरों तथा दानवों, मेरी वार्ताको सुनिये और मेरे कहनेके अनुसार तत्क्षण ही कामको करो ॥४,५॥ समदर्शिता प्राप्त होनेपर

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

नारद उवाच ॥ भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना। हिरण्यकशिपू राजन्पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥ आह चेदं रुषाऽऽघूर्णः सन्दष्टदशनच्छदः ॥ कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन्धूम्रमम्बरम् ॥२॥ करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ॥ शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥३॥ भो भो दानवदैतेया द्विमूर्धंस्त्र्यक्ष शम्बर ॥ शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥ ४ ॥ विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः ॥ शृणुताऽनन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥ ५ ॥ सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ॥ पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥६॥ तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः ॥ भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः ॥७॥ मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै ॥ रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥८॥ तस्मिन्कूटेहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ ॥ विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥६॥ तावद्यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम् ॥ सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥ १० ॥ विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् ॥ देवर्षिपि-

भी भजनादि सेवासे अपने पक्षमें प्राप्त हुए विष्णुसे हमारे तुच्छ अरि देवोंने मेरे प्रियमित्र भ्राताको मरवा दिया ॥६॥ जिसने अपना समदर्शी स्वभावको छोड़ उस छलसे शूकरस्वरूपधारी पुत्रोंके तुल्य चंचलचित्त और अपने उपासकोंके हितैषी विष्णुका गला अपने त्रिशूलसे नष्टकर उस रक्तसे जब मैं अपने रक्तप्रेमी भ्राताका तर्पण करूँगा तो मेरे चित्ताकी पीड़ा दूर होगी ॥ ७,८ ॥ देवोंका प्राण वही विष्णु है उस छली वैरीके अभावपर ये सब ऐसे शक्तिहीन हो जायँगे, जैसे जड़ नष्ट हो जानेपर वृक्ष ॥ ६ ॥ इसलिये आपलोग अभी ब्राह्मण तथा क्षत्रियोंसे परिपूर्ण धरतीपर जाकर तप, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, दान आदि पुण्यकर्म करनेवालोंका हनन करो ॥ १० ॥ क्योंकि द्विजोंसे किए हुए यज्ञादि कर्म ही विष्णुकी जड़ हैं। वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुराणपुरुष यज्ञ और धर्मकास्वरूप है एवं सब देव, ऋषि, पितर, भूत, धर्मका आश्रय है ॥११॥ जहाँ जहाँ ब्राह्मण, गौ, वेद हों तथा वर्णाश्रमविहित क्रियाएँ चल रही हों, वहाँ वहाँ जाकर उन उन नगरोंको जला दो और उनके आश्रयभूत पेड़ोंको काट डालो ॥१२॥ अपने मालिककी इस आज्ञाको सनम्र स्वीकारकर वे हिंसाप्रिय असुर प्रजाका इसतरह संहार करने लगे ॥१३॥ पुर, ग्राम, गोशाला, उद्यान, खेत, बगीचे, आश्रम, खान, खेतिहरोंका स्थान, खर्वटघोष, राजधानियोंमें अग्नी लगा दी ॥१४॥ कुछ लोगोंने कुद्दालोंसे पुल, परकोटों तथा नगरद्वारोंको नष्टकर डाला तथा कुल्हाड़ियोंसे फल फूलोंसे भरे वृक्ष काटे और कुछोंने जलती लकड़ियोंसे प्रजाओंके घर फूँके ॥१५॥ इसप्रकार असुरराज हिरण्यकशिपुके अनुयायियोंने जब प्रजाको बहुत दुःख दिया तो देवलोग स्वर्गका त्यागकर गुप्तस्वरूपसे भूमिपर विचरने लगे ॥१६॥ उधर भ्रातृवियोगरूपी दुःखसे दुःखित एवं देश कालके जानकार हिरण्यकशिपुने अपने

तृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥ यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः ॥ तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत ॥१२॥ इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसादृताः ॥ तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ १३ ॥ पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ॥ खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥ १४ ॥ केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् ॥ आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान्केचित्परशुपाणयः ॥ प्रादहन् शरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥ १५ ॥ एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः ॥ दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः ॥ कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥ १७ ॥ शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसन्तापनं वृकम् ॥ कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥ १८ ॥ तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ॥ श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं मार्हथ शोचितम् ॥ रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥ २० ॥ भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ॥ दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥२१॥ नित्य आत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः ॥ धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन्गुणान् ॥ २२ ॥ यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥ २३ ॥ एवं

भूत सगे भ्राताको तिलतर्पण आदि देकर शकुनि, शम्बर, धृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु, उत्कच, आदि भतीजोंको सान्त्वना दी। हे महाराज, फिर उनकी माता रुषाभानु और अपनी माता दितिसे प्रिय वाणीसे उसने कहा ॥ १७–१९ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा—हे अम्ब, हे वधूः, हे पुत्रो, तुमलोग उस वीरके निमित्त दुःख न करो। शूरगण तो अपने अरिके सन्मुख ही युद्ध करते मरना अभीष्ट एवं प्रशंसायोग्य समझते हैं ॥२०॥ हे सुव्रते, जगत्में प्राणियोंका एक जगहपर प्राप्त होना था ऊपर एकत्रित यात्रियोंके तुल्य क्षणिक ही होता है, वे अपने अपने कर्मानुसार दैवसे एकत्रित तथा पुनः पृथक् किये जाते हैं ॥२१॥ वास्तवमें तो आत्मा नित्य, विनाशरहित, निर्दोष, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और शरीर-इन्द्रिय आदिसे भिन्न हैं। वह अपनी अविद्यासे हो सुख-दुःखादिगुणोंको ग्रहणकर लिंगशरीर ग्रहण करता है ॥२२॥ जैसे—पानीके हिलनेसे उसके समीपवर्ती पेड़ भी हिलतेसे दीख पड़ते हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और आँखोंमें चक्कर आनेसे भूमि चक्कर काटती जैसी प्रतीत होती है ॥२३॥ तद्वत् ही गुणोंके द्वारा चित्तके भ्रान्त होनेपर तथ्यमें परिपूर्ण हो जानेपर भी आत्मा मनके तुल्य भ्रान्त हो जाता तथा देह आदि लिंगसे शून्य होता हुआ भी उनसे सम्पन्न मालूम देता है ॥२४॥ शरीरादिसे भिन्न आत्मामें देहाभिमान होना ही आत्माका अन्यथा जाना कहाता है। इसीसे उसे प्रियोंसे वियोग और अप्रियोंसे संयोग होता है, कर्म एवं नाना गर्भमें प्रवेश होता है, उत्पत्ति, विनाश तथा तरह तरहका दुःख, अज्ञान, चिन्ता, विवेककी याद आदि होते हैं ॥२५, २६॥ इस विषयमें ज्ञानीलोग एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं, जिसमें मरे जीवके जीवोंके प्राय यमराजकी वार्तालाप है, उसे सुनिये ॥२७॥ उशीनरदेशमें एक सुयज्ञ नामका सुप्रसिद्ध राजा राज्य करता था। वह एक युद्धमें अरियोंके हाथों मारा गया। तब उसके जातिभाई उसे चारो तरफसे घेरकर बैठ गये ॥२८॥ उस समय उसका रत्नजटित कवच

गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविक्लवः पुमान् ॥ याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव ॥ २४ ॥ एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गो लिङ्गभावना ॥ एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥ २५ ॥ संभवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः ॥ अविवेकश्च चिन्ता च विवेकास्मृतिरेव च ॥ २६ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥ २७ ॥ उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ॥ सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥ २८ ॥ विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् ॥ शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥ २९ ॥ प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ॥ रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥ ३० ॥ उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ॥ हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥ ३१ ॥ रुदन्त्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रिपङ्कजं सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुङ्कुमारुणैः ॥ विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥३२॥ अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान्प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ॥ उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥ ३३ ॥ त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ॥

नष्टभ्रष्ट हो गया। सभी गहने और माला जहाँ तहाँ फैली थी। उसका हृदय बाणोंसे बिंधा और सब देह खूनसे लथपथ थी। उसके केश इधर-उधर थे और आँख नष्ट हो गई थी क्रोधके मारे उसने दाँतोंसे अपना ओंठ दबा रक्खा था। उसके चेहरेका कमल-धूलिधूसरित हो गया था तथा आयुध और भुजाएँ नष्टभ्रष्ट पड़ी थीं ॥२९, ३०॥ ब्रह्मासे इस विपरीत परिस्थितिको पहुँचाया गया अपने पतिको देख उसकी पटरानियोंको बहुत कष्ट हुआ तथा वे हा नाथ, हम मरीं कहकर हाथोंसे बारम्बार छाती पीटती हुई उसके पैरोंमें जा गिरीं ॥३१॥ वे जोरसे रोती हुई अपने कुचकुंकुमसे अरुण अश्रुजलसे स्वामीके चरणकमल धोने लगीं, उनके केश और गहने इधर-उधर हो गये। देखनेवालोंके चित्तमें भी दुःख उत्पन्न करती इसतरह विलाप करने लगी ॥३२॥ अहो, दयाहीन विधाताने हमारे नेत्रोंसे आज आपको अलगकर दिया। स्वामी, नाथ, आप प्रथम उशीनर प्रजाओंको जीविका देते थे, परन्तु आज क्रूर विधाताने उनका शोकदाता आपको बनाया ॥३३॥ हे भूपते, आप जैसे कृतज्ञ प्रीतम बिना हम कैसे रहेंगी, इसलिये हे वीर, जहाँ आप जाते हैं, वहाँ आपकी चरणसेविका इन दासियोंके आनेके लिये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आज्ञा दीजिये ॥३४॥ इसप्रकार अपने मरे स्वामीको आलिंगनकर रुदन करते-करते सूर्यास्त होनेपर भी उन्होंने उसको दाहसंस्कारके लिये हटाने नहीं दिया ॥३५॥ मृत राजाके बान्धवोंका रुदन श्रवणकर स्वयं यमराजने पुत्ररूपसे उत्पन्न हो उनसे इसप्रकार कहा ॥३६॥ यमराजने कहा—अहो, ये लोग मुझसे वयोवृद्ध हैं तथा दिन-रात जन्म-मरणस्वरूप जगत्‌की गतिको देखते रहनेपर भी इनको कैसा मोह उत्पन्न हो रहा है, यह जीव प्रकृतिसे आया और प्रकृतिमेंही लीन हो गया। ये स्वयं इसीके तुल्य जन्म मरणवाले हैं, फिर भी व्यर्थही शोककर रहे हैं ॥३७॥ अहो, हमही परम धन्य हैं, जो इस संसारमें अपने माता-पिताद्वारा त्यागे जानेपर भी चिन्ता कोई नहीं करते, हम निर्बल होते हुए भी भेड़िये आदिसे नहीं खाये जाते क्योंकि जिसने गर्भमें मेरा पालन किया, वह यहाँ भी रक्षा करता है ॥३८॥ हे अबलाओ, जो विनाशरहित परमात्मा अपनी अभिलाषा से इस जगत्‌की सृष्टि, रक्षण तथा नाश करता है,

तत्रानुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥ ३४ ॥ एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ॥ अनिच्छन्तीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥ ३५ ॥ तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितम् ॥ आह तान्बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥ ३६ ॥ यम उवाच ॥ अहो अमीषां वयसाऽधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ॥ यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥ ३७ ॥ अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः ॥ अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥ ३८ ॥ य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ॥ तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥ ३९ । पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हते न जीवति ॥ ४० ॥ भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः ॥ न तत्र हात्मा प्रकृतावपि स्थितस्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ॥ ४१ ॥ इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहम् ॥ यथोदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः कालेन जातो विकृतो विनश्यति

इस चराचरात्मक संसारको पण्डित लोग उस परमात्माका खिलौना कहते हैं। इसलिये वही इसके रक्षक और नाशमें सब प्रकारसे समर्थशाली है ॥३९॥ परमात्मासे संरक्षित वस्तु रास्तेमें स्थित होनेपर भी सुरक्षित रहती है और उससे उपेक्षित पदार्थ गृहमें रहनेपर भी नाश हो जाते हैं। ईश्वरकी कृपासे अनाथ एवं जङ्गलमें बसनेवाला भी जीवित रहता तथा परमेश्वरकी दया न होनेसे गृहमें पालित रहनेवाला भी जीवित नहीं रह सकता ॥४०॥ हे रानियो, ये देहसे अपने निमित्तरूप लिङ्गशरीरके कर्मोंसे समय-समयपर उत्पन्न और नाश होते हैं, किन्तु आत्म देहमें वास करनेपर भी उससे सदा अलग होनेके कारण उसके गुणोंसे संलग्न नहीं होता ॥४१॥ मनुष्यको यह देह मोह ही अपनेसे अभिन्न प्रतीत होती है, अर्थात् अपनेको ही शरीर समझ बैठता है। जैसे गृह आदि उसमें रहनेवालेसे सर्वथा अलग है वैसेही आत्मा शरीरसे एकदम भिन्न है। जैसे पानीसे प्रादुर्भूत बुदबुदादि, भूमिसे उत्पन्न घटादि और तेजसे उत्पन्न कुण्डल आदि कालक्रम से नाश हो जाते हैं, वैसे ही पृथ्वी, जल तथा तेजके परमाणुओं से प्रादुर्भूत देह भी समय समय पर विकारजन्य होकर नाश हो जाता है न आत्मा ॥ ४२ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जैसे लड़कीमें अग्नि रहनेपर भी उससे अलग है, वायु देहमें निवासकरनेपर भी उससे सदा अलग है और सर्वत्र आकाश व्याप्त होकर भी साथ बिना है तद्वत् ही आत्मा सब देहमें निवास करता हुआ भी उससे पृथक् ही है ॥४३॥ हे अबोधस्त्रियो, जिसके निमित्त तुम रो रही हो, वह तुम्हारे सुयज्ञपति तुम्हारे समक्ष ही तो हैं। यदि कहो कि सुनने तथा बोलनेवाला अब नहीं दीखता, तो वह कभी किसीको भी नहीं दीखता। इसलिये उसके लिये शोक मत करो ॥४४॥ यह प्राण सब इन्द्रियोंमें प्रवर्तक होनेपर भी सुनने और बोलनेवाला नहीं है, जो आत्मा इस देहमें सबका साक्षी है वह तो प्राण और शरीरसे सदा अलग है ॥४५॥ भूत, इन्द्रिय तथा मनसे प्रतापमान उत्तम और अधम देहोंको उनसे भिन्न आत्मा 'मैं देह हूँ' ऐसा अभिमान करता है एवं मैं चेतन हूँ, शरीर जड़ है' ऐसा विवेकबलसे मुक्त भी हो जाता है ॥ ४६ ॥ जबतक आत्मा लिङ्गशरीरसे युक्त है तबतक उसे कर्मका बन्धन है। उसीसे उसे मोह और

॥ ४२ ॥ यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः ॥ यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान्सर्वगुणाश्रयः परः ॥ ४३ ॥ सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ ॥ यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥ ४४ । न श्रोता नानुवक्तायं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ॥ यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥ ४५ ॥ भूतेन्द्रियमनोलिङ्गान्देहानुच्चावचान्विभुः ॥ भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥ ४६ । यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तवात्कर्म निबन्धनम् ॥ तमो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥ ४७॥ वितथाभिनिवेशोऽयं मद्गुणेष्वर्थदृग्वचः ॥ यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥ ४८ ॥ अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः । नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥ ४९ ॥ लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः ॥ वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥ ५० ॥ कुलिङ्गमिथुनं तत्र विचरत्समदृश्यत ॥ तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥ ५१ ॥ साऽसज्जत शिचस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता ॥ कुलिङ्गस्तां तथापन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ॥ स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥ ५२ ॥ अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया

तरह तरहके क्लेश फिर मिलते रहते हैं। उसका अस्तित्व मायाके ही निमित्त है परन्तु वास्तवमें नहीं ॥४७। गुणोंका तथा उनके कार्य सुख-दुःख आदिको परमार्थ मानना तथा परमार्थ कहना निरर्थक आग्रह है। मनोरथ और स्वप्नके वस्तुओंके तुल्य इन्द्रियोंके सभी विषय झूठे हैं ॥ ४८ ॥ इसलिये पण्डित विद्वज्जन नित्य आत्मा, नाशवान् देह, इन दोनोंके निमित्त भी शोक नहीं करते। दृढ़ज्ञान न होनेसे उपदेश देनेवाले भी शोक करते हैं, यह स्वभाव बदल नहीं सकता ॥४९॥ इस विषयमें एक इतिहास है—एक जंगलमें एक बहेलिया निवास करता था। वह ब्रह्मा द्वारा पक्षियोंका काल ही निमित हुआ था। वह चावलोंके टुकड़े आदिसे पक्षियोंके लिये जाल बिछाता था ॥५०॥ एक दिन उसे कुलिङ्ग पक्षीका एक जोड़ा जंगलमें भ्रमण करता दिखाई दिया। उनमेंसे उसने तत्क्षण ही कुलिङ्गीको लालच दी ॥५१॥ जिससे कुलिङ्गी कालगति उसके जालमें जा फँसी। उसे इसप्रकार विपत्ति संलग्न देखकर कुलिङ्ग बड़ा दुःखी हुआ, तथा उसे मुक्त करानेमें अपनेको सामर्थ्यहीन पाकर अधिक प्रेमसे इसप्रकार दुःखी होने लगा ॥५२॥ हाय, सामर्थ्यशाली होकर भी ब्रह्मा बड़ा ही निष्ठुर है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुझ दुःखीके लिये रोनेवाली और सब प्रकारसे दयनीय मेरी इस दीन स्त्रीको लेकर वह क्या करेगा ॥५३॥ पत्नीके बिना कष्टसे जीवित रहनेवाले इस अधिक दीन आधे देहसे मेरा क्या होगा, अब ब्रह्मा मेरेको भले ही उठा ले ॥५४॥ जिनके पंख भी उगे नहीं हैं, उन मातृहीन बालकोंका मैं कैसे पालन-पोषण करूँगा। हाय, मेरे वे मन्दभाग्य लड़के घोंसले में स्थित अपनी माताका आसरा देखते होंगे॥५५॥ इसप्रकार अपनी प्रिया स्त्रीके विरहसे दुःखित तथा गद्‌गद्‌कण्ठसे बिलखनेवाले कुलिंगको भी उसी पक्षी पकड़नेवालेने कालकी प्रेरणासे पेड़ोंकी आड़में छिपकर बाणसे मारा। जिससे वह उसी जगह मर गया ॥५६॥ हे बुद्धिहीन रानियो, इसीप्रकार एक दिन अवश्यम्भाविनी अपनी मृत्युको तुम नहीं देखती। अब तो सौ सालतक पश्चात्ताप करनेसे भी यह स्वामी नहीं मिल सकेगा ॥५७॥ हिरण्यकशिपुने कहा—उस लड़केके ऐसा समझानेपर वे सभी जातिबान्धव बहुत आश्चर्ययुक्त हुए तथा सब जगतको

विभुः ॥ कृपणं माऽनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥ ५३ ॥ कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ॥ दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥ ५४ ॥ कथं त्वजातपक्षांस्तान्मातृहीनान्बिभर्म्यहम् ॥ मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥ ५५ ॥ एवं कुलिङ्गं विलपन्तमाराात्प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ॥ स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥ ५६ ॥ एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः ॥ नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥५७॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ॥ ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥५८॥ यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत। ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्सांपरायिकम् ॥५९॥ ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ॥ क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा ॥ स्वपराभिनिवेशेन विनाऽज्ञानेन देहिनाम् ॥ ६० ॥ नारद उवाच ॥ इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा। पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

उन्होंने अनित्य एवं झूठा जाना ॥५८॥ इतनी बातें कह वहीं यमराज अदृश्य हो गये। इधर सुयज्ञके भाइयोंने उसके देहका दाह आदि संस्कार किया ॥ ५९ ॥ इसलिये तुमलोग भी अपने या दूसरेके निमित्त कुछ भी दुःख मत करो। क्योंकि इस जगत्‌में आत्मा कौन, दूसरा कौन, कौन अपने और पराये हैं ? अपना या पराया अज्ञानको छोड़ सत्यमें जीवोंका अपना तथा पराया ही क्या है ॥६०॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्, असुरराज हिरण्यकशिपुकी इन बातोंको सुनकर अपनी बहुके साथ दितिने उसी क्षणही पुत्र दुःखको छोड़कर अपना चित्त आत्म-चिन्तनमें लगाया ॥ ६१ ॥

द्वितीय अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, अपने भाईके मार दिये जानेपर हिरण्यकशिपुको बहुत शोक हुआ। उसने क्रोधके मारे लाल लाल आँखें कर दैत्योंसे कहा—हे हयग्रीव, हे नमुचे, हे पाक, तुम सब लोग मेरी बातें सुनो और उसके अनुसार कार्य करो। जबतक मैं अपने त्रिशूलसे श्रीहरिके कण्ठका छेदन कर उसके रुधिरसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने भाईका तर्पण नहीं करूँगा तबतक मेरे हृदयकी पीड़ा दूर न होगी। इसलिये ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे भरी हुई पृथिवीपर जाओ तथा जो यज्ञादि पूजा-पाठ करनेवाले मिलें उन्हें मार मारकर यमलोकमें पहुंचाते जाओ। अपने स्वामीकी आज्ञा मानकर सब दैत्य प्रजाओंकी हिंसा करने लगे। हे राजन्, अपने भाईकी मृत्युसे दुःखित हिरण्यकशिपुने अपने भाई हिरण्याक्षको तिलाञ्जलि देकर उसके लड़कोंको खूब समझाया। तदनन्तर उनकी माताओंको वह यों समझाने लगा—हे मातः, हे बहनो, हिरण्याक्षके लिये शोक करना ठीक नहीं। उसने वीर गति पायी है। हे माता, आत्मा अजर और अमर है, यह देह आदि आत्मासे भिन्न है, इसलिये यह मर गया यों समझकर शोक करना ठीक नहीं है। हे मातः, इस विषयमें एक कहानी सुनाता हूं, उशीर देशमें 'सुयज्ञ' नामका एक राजा था। जब युद्धमें शत्रुओंने उसे मार दिया तब स्त्री आदि उसके सभी सम्बन्धी घेरकर बैठ गये और शोक करने लगे। नानाविध सम्बोधनोंसे विलाप करने लगे। यमराजने अपनी नगरीमें बैठे हुए ही उनका रुदन सुना। बालकका रूप धारणकर झट वहाँ पहुंच गये और उनसे यों कहने लगे—हे स्त्रियो, इन्द्रियोंके द्वारा उनके विषयोंको जाननेवाला आत्मा तो प्राण तथा शरीर दोनोंसे पृथक् सचेतन है। हे अबलाओ, जबतक आत्माको लिङ्ग शरीरका अभिमान् हट जानेपर, उसकी दशा बदल जाती है। हे स्त्रियो, सुख, दुःख आदि गुणोंके कार्यको सत्य मानना व्यर्थका अभिमान है। अबलाओं, आत्मा नित्य है और देह अनित्य है, ऐसा जाननेवाले पुरुष इस संसारमें मृत प्राणीके लिये शोक नहीं करते। हे स्त्रियो, शोक सन्तप्त प्राणीके स्वभावको दूर करना अत्यन्त कठिन है, उसके लिए दृढ़ ज्ञानकी आवश्यकता है। हे अबलाओं, यदि हजारों वर्षों तक इस मृतकको गोदमें चिपकाये हुए तुम लोग विलाप करती रहोगी तब भी यह तुम्हारा पति फिर वापिस नहीं आ सकता। हिरण्यकशिपुने कहा—हे मातः, यों बालककी बात सुनकर सुयज्ञ राजाके सभी सम्बन्धी आश्चर्य चकित हो गये और यह सब जगत् मिथ्या है, ऐसा मानने लगे। धर्मराज तुरन्त वहीं अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर उसक नातेदारोंने दाहसंस्कार किया। इसलिये हे मातः, अपने या दूसरेके लिए तुम शोक न करो। यह मेरा है और यह उसका है। इस तरह का अभिमान ही इस संसारका मूल कारण है। नारदजीने कहा हे राजन्, हिरण्यकशिपुकी बातें सुनकर दितिने पुत्रशोक छोड़ दिया तथा अपना मन तत्वस्वरूपमें लगा दिया। द्वितीय अध्याय समाप्त *

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ दैत्यराज हिरण्यकश्यपुके तपसे सन्तप्त देवताओंके आग्रहमात्रसे ब्रह्माजीने किसीसे न मरनेका उसको वर देना—यह वर्णन ❀

श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्, इस प्रकार दानवोंको साधुओंकी हिंसाके लिये आज्ञा देकर तथा बन्धुवोंको तत्त्वोपदेश देकर हिरण्यकशिपुने अपनेको अजेय, अजर-अमर और अद्वितीय सम्राट बननेका निश्चय किया ॥ १ ॥ उसने मन्दराचलकी गुफामें ऊपरकी तरफ हाथ उठाये, आकाशकी तरफ दृष्टि लगाये और पृथिवीपर केवल पैरके अँगूठेके बलसे स्थित होकर अत्यन्त उग्र तप शुरू किया ॥ २ ॥ वह अपने जटाकलापके किरणजालसे प्रलयकालके सूर्यके तुल्य तपता था । इसप्रकार उसके तपमें लीन होनेपर देवता पुनः अपनी जगहोंमें जाकर निवास करने लगे ॥ ३ ॥ उसके कपालसे धूमसे सम्पन्न तपोमय अग्नि चारों तरफ फैलकर ऊपर और नीचेके लोकोंको झुलसने लगी ॥ ४ ॥ उसके तापसे नदियाँ

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

नारद उवाच ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ॥ आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥ स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ॥ ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥ जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ॥ तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥ ३ ॥ तस्य मूर्ध्नः समुद्भुतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥ चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ॥ निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥ तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ॥ धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥ दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ॥ तस्य चोपशमं भूमन्विधेहि यदि मन्यसे ॥ लोका न यावन्नङ्क्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभिभूः ॥ ७ ॥ तस्यायं किल सङ्कल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ॥ श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितः ॥८॥ सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ॥ अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥ ९ ॥ तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ॥ कालात्मनोश्च नित्यत्वा-

और समुद्र खौलने लगे, द्वीप एवं पर्वतोंके सहित भूमी काँपने लगी । ग्रह तथा तारागण छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे और दसों दिशायें तपने लगीं ॥ ५ ॥ उससे संतप्त देवता स्वर्ग त्यागकर ब्रह्मलोक जाकर ब्रह्मासे कहने लगे—हे देवदेव, हे जगत्पते, हमलोग हिरण्यकशिपुके तपसे जल रहे हैं और अब स्वर्गमें रह नहीं सकते, हे सर्वाधिपते, हे स्वामी, इसलिये जबतक आपकी पूजा-उपासना करनेवाले जगत्का नाश न हो उसके पूर्व ही आप उसको शान्त करें ॥ ६, ७ ॥ यह आप जानते ही हैं कि वह किस मनोरथ सिद्धिके लिये इसप्रकारका उग्रतप कर रहा है, तब भी हम निवेदन करते हैं उसे सुनिए ॥ ८ ॥ वह इच्छा करता है कि जैसे ब्रह्माजी तप और योगकी महिमासे इस चराचर संसारको बनाकर सब लोकोंसे श्रेष्ठ सत्यलोकमें विराजित हैं, तद्वत् ही मैं भी अपने वृद्धिगत हुए तप एवं योगसमाधिसे इस जगत्को प्राप्त करूँगा क्योंकि काल तथा आत्मा नित्य हैं अतः मैं भी दीर्घ-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कालतक तपस्या कर सकूँगा, एकजन्ममें नहीं तो अनेक जन्ममें सही ॥ ९, १० ॥ तो भी पुण्य-पाप आदिकी गति बदलकर मैं इस संसारका हेर-फेर कर दूँगा । इस ब्रह्मपदके विना कल्पके अन्त में नष्ट होनेवाले अन्य वैष्णवादि स्थानोंसे मुझे क्या प्रयोजन ॥ ११ ॥ इसप्रकार हमने इसका विचार श्रवण किया है, यही निमित्त है कि यह इस कठिन तपमें लगा है । हे त्रिभुवनेश्वर, इस विषयमें आपको जो तथ्य मालूम हो वह तुरन्त करें ॥ १२ ॥ हे जगत्पते, आपकी यह सर्वश्रेष्ठ जगह गो-ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, मङ्गल, ऐश्वर्य, कुशल और उत्कर्षका निमित्त है ॥ १३ ॥ हे राजन्, इस तरह देवोंके निवेदन करनेपर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा भृगु और दक्ष आदि प्रजापतियोंके साथ हिरण्यकशिपुके आश्रमपर गये ॥ १४ ॥ वल्मीकतृण तथा बाँसोंसे ढके रहनेके कारण प्रथम तो वे उसे देखा नहीं बाद में देखा तो चीटियाँ उसका मेद, त्वचा, मांस और रक्त आदिका

त्साधयिष्ये तथात्मनः ॥ १० ॥ अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा ॥ किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥ इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः ॥ विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥ १२ ॥ तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ॥ भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥ इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ॥ परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४ ॥ न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ॥ पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥ १५ ॥ तपन्तं तपसा लोकान्यथाभ्रापिहितं रविम् ॥ विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन्हंसवाहनः ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धोऽसि कश्यप ॥ वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥ १७ ॥ अद्राक्षमहमेतत्ते हृतसारं महदद्भुतम् ॥ दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥ १८ ॥ नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ निरम्बुर्धारयेत्प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम् ॥ १९ ॥ व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ॥ तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन ॥ २० ॥ ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुङ्गव ॥ मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वादिभवो देवो भक्षिताङ्गं

आस्वादन कर रहीं थीं ॥ १५ ॥ मेघसे ढके हुए सूर्यके समान अत्युत्कट तेजस्वी तथा अपने तप से त्रिलोकीको जलानेवाले उस असुरको देखकर हंसवाहन श्रीब्रह्मा बहुत आश्चर्ययुक्त हँसते हुए कहने लगे ॥ १६ ॥ श्रीब्रह्माने कहा—हे कश्यपतनय, उठो-उठो, तुम्हारा तप सफल हो गया, तुम्हारा भला हो । तुम्हें मैं वरको देनेके लिये आया हूँ । तुम अभीष्ट वर माँगो ॥ १७ ॥ मैंने तुम्हारा यह विचित्र आत्मबल देखा, जो जंगली मच्छड़ोंसे देहके काट लिये जानेपर तुम्हारे प्राण केवल अस्थियोंमें आश्रित हैं ॥ १८ ॥ ऐसा उग्र तप न प्राचीन महर्षियोंने किया न कोई भविष्यमें ही करेगा । जगत्में ऐसा कौन मनुष्य है, जो विना पानीके भी दिव्य सौ वर्ष जीवित रह सके ॥ १९ ॥ हे दितिपुत्र, बड़े धैर्यशालियोंके लिये भी दुष्कर तुम्हारे इस कठिन व्रतने तथा सुदृढ़ तपस्याने मुझे वशमें किया ॥ २०, २१ ॥ श्रीनारदजी ने कहा—हे धर्मराज, आदिदेव श्रीब्रह्माने ऐसा कहकर चींटियोंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भक्षित शरीर, उस हिरण्यकशिपुपर अपने कमण्डलुका तेजशाली पानी छोड़ दिया ॥ २२ ॥ दिव्य जलस्पर्शसे वह लकड़ीसे उत्पन्न अग्निकी तरह तेजस्वी तथा बल-शक्तिसे सम्पन्न, सर्वाङ्ग परिपूर्ण एवं वज्रसमान बलवान् तथा प्रदीप्त सोनेके तुल्य कान्तिमान युवा हो बाँस तथा वल्मीकके मध्यसे प्रादुर्भूत हो खड़ा हो गया ॥ २३ ॥ वह आकाशमें विराजमान हंसवाहन भगवान् ब्रह्माको देख उनके दर्शनसे अत्यन्त प्रसन्नतासे भूमिपर सिर रखकर उन्हे नमस्कार किया ॥ २४ ॥ तब वह असुरराज उठकर आँखोंमें प्रसन्नताके आँसू भरे, पुलकित देहसे भगवान्की तरफ नम्रतासे देखते हुए प्रणामकर गद्गद्‌ कण्ठसे ध्यान करने लगा ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा—कल्पान्तमें कालके गुण प्रेरित एवं घन तमोगुणसे आच्छादित इस संसारको जिन स्वयंप्रकाश ईश्वर ने अपने प्रभावसे पुनः प्रादुर्भूत किया तथा जो अपने त्रिगुणात्मक शरीरसे इसकी उत्पत्ति, रक्षा, संहार किया करते हैं उन सत्त्व,

पिपीलिकैः ॥ कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥ २२ ॥ स तत्कीचकवल्मीकात्सह ओजोबलान्वितः ॥ सर्वावयवसंपन्नो वज्रसंहननो युवा ॥ उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥ २३ ॥ स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम् ॥ ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ २४ ॥ उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ॥ हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयाऽगृणात् ॥२५॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृतम् ॥ अभिव्यनक् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा ॥ २६ ॥ आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ॥ रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २७ ॥ नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ॥ प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥२८॥ त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ॥ चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः ॥ २९ ॥ त्वं सप्ततन्तून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ॥ त्वमेव आत्माऽऽत्मवतामनादिरनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥ ३० ॥ त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्याव-यवैः क्षिणोषि ॥ कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥ ३१ ॥ त्वत्तः परं नापरमप्यनेजदेजच्च

रज, तमोगुणोंके आश्रय ईश्वरको नमस्कार ॥ २६,२७ ॥ जो सबसे आदि है तथा संसार के बीज हैं, ज्ञान-विज्ञानरूप हैं जो प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि विकारोंसे कार्यरूप धारण करते हैं ॥ २८ ॥ हे पितामह, स्वयं ही सूत्रात्मरूपसे इस स्थावर जंगमात्मक संसारका संचालन करते हैं। इसलिये आप प्रजाके तथा उनकी चेतना, मन, इन्द्रियोंके मालिक हैं। इसलिये आप महान् हैं आपही आकाशादि पंचभूत, तथा उनके गुण शब्दादि विषय और उनकी वासनाओंके भी मालिक हैं ॥ २९ ॥ आपही होता, उद्गाता, अध्वर्यु तथा ब्रह्मा इन चार ऋत्विजोंवाले यज्ञकाण्डके प्रतिपादक, वेदरूप अपने देहसे अग्निष्टोम आदि सात यज्ञोंका प्रचार करते हैं तथा स्वयं ही सब जीवोंके आत्मा हैं और अन्तर्यामी भी हैं क्योंकि आप अनादि, अनन्त, अपार तथा सर्वज्ञ हैं ॥ ३० ॥ हे भगवन्, आपही कालस्वरूप हैं। अतः आप अनिमेषस्वरूपसे क्षण-लव आदि हिस्सों द्वारा समस्त प्राणियोंकी आयु कम करते हुए भी तटस्थ निर्विकार रहते हैं। क्योंकि आप ज्ञानरूप, ईश्वर, अजन्मा, महान् एवं सबके नियामक हैं ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्माजी, आपसे पृथक् स्थावर जंगमात्मक कार्य या

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारण है नहीं। आपका प्रतिपादन करना वेदादि विद्या तथा उसकी अङ्गकलायें भी आपहीका शरीर है। आप अपनी मायासे परे साक्षात् परब्रह्म हैं, क्योंकि यह सुवर्णरूप ब्रह्माण्ड आपके उदरमें ही रहता है ॥ ३२ ॥ हे विभो, यह समस्त ब्रह्माण्ड आपका ही स्थूल देह है, आप अपने ईश्वर रूपमें स्थित होकर ही इन्द्रिय, प्राण और चित्तके विषयोंका भोग करते हैं। तथ्यमें तो आप अप्रकट, पुराणपुरुष एवं उपाधिरहित ब्रह्मरूप हैं ॥ ३३ ॥ हे अनन्त, अव्यक्तरूपसे आप सब संसारमें व्याप्त हैं, चेतन और अचेतन शक्तिसे सम्पन्न

किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥ विद्याकलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥ ३२ ॥ व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ॥ भुङ्क्ते स्थितो धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३३ ॥ अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ॥ चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ३४ ॥ यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मे वरदोत्तम ॥ भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥३५॥ नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ॥ न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥ ३६ ॥ व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ॥ अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥ ३७ ॥ सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः ॥ तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते म० पु० सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे वरदेनेवालोंमें श्रेष्ठ प्रभो, यदि आप मुझे मनचाहा वर देना चाहें तो वह वर दीजिये मेरे को आपसे निर्मित किसी भी जीवसे मेरी मृत्यु न हो ॥ ३५ ॥ अन्दर, बाहर, दिनमें, रातमें; दक्षप्रजापति आदिसे सृष्ट तथा प्राणीसे, हथियारोंसे, भूमि और आकाशमें जीवों या मृगोंसे एवं जड़ोंसे भी मेरी मृत्यु न हो। देवता, असुर नागादिमेंसे कोई भी मुझे न मारे। युद्धमें कोई भी मेरे समक्ष न डट सके, मैं ही सबका एकाकी स्वामी बनूँ ॥ ३६–३७ ॥ सभी लोकपालोंमें जैसा प्रभाव आपका है, वैसा प्रभाव मेरा भी हो तथा तप योगादि तेज से सम्पन्न योगियोंको जो अविनाशी अणिमादि ऐश्वर्य प्राप्त हुआ, वही मुझे भी हो ॥ ३८ ॥

तीसरे अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, 'मैं अजेय बन जाऊँ' इस विचारसे हिरण्यकशिपु तप करने लगा। उसकी तपस्यासे सन्तप्त होकर देवता लोग स्वर्ग छोड़कर ब्रह्मलोकमें पहुँचे वहाँ जाकर ब्रह्माकी नानाविध स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति सुनकर ब्रह्मदेव हिरण्यकशिपुके आश्रममें पहुँचे। उसकी घोर तपस्या देख आश्चर्यचकित हो हँसते हुए कहने लगे—बेटा, तेरा कल्याण हो तू तपसे कृतार्थ हो गया। अब उठ जा, मैं तुझे वर देने आया हूँ। तू जो चाहे मुझसे माँग ले। बेटा, तुम्हारे समान तप करते तो पूर्वकालमें ऋषियोंको भी 'मैंने नहीं' देखा। हे राजन्, ऐसा कहकर ब्रह्मदेवने अपने कमण्डलुका जल हिरण्यकशिपुके शरीरपर छोड़ दिया। जल छिड़कते ही उसकी इन्द्रियोंमें शक्ति आ गई। वह सम्पूर्ण अङ्गोंसे सम्पन्न तप्त सुवर्णके समान कान्तिसे युक्त बाँसोंकी झाड़ीसे बाहर निकला। सामने खड़े हुए ब्रह्मदेवको उसने प्रणाम किया और कहा—हे वरदाओंमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मदेव, यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि तुम्हारे द्वारा उत्पन्न प्राणियों से मेरी मृत्यु न हो, घर के भीतर या बाहर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिन या रात, पृथ्वी या आकाशमें मनुष्य, असुर, पशु, देवता, नाग या और कोई भी दूसरे प्राणी चाहे वह सचेतन हो या अचेतन उनसे मेरी मृत्यु न हो। तुम्हारी जैसी महिमा है वैसी ही मेरी भी रहे। कहने का तात्पर्य यह कि मैं अमर बना रहूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंका आधिपत्य मुझे प्राप्त हो। अणिमादि सिद्धियाँ सब सदा मेरे पास रहें—यही मुझे वर दीजिए। तीसरा अध्याय समाप्त।*

—(०*०)—

[वरप्राप्त उस दैत्यपतिने नानाविध ऐश्वर्य संपन्न हो स्वयं ही मदोन्मत्त हो देवोंको कष्ट पहुंचानेसे उनके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति आदि आकाशवाणी—यह वर्णन]

श्रीनारदजी कहने लगे—हे राजन्, ब्रह्माजी हिरण्यकशिपुपर उनकी तपस्यासे बहुत राजी थे, अतः उन्होंने अत्यन्त दुर्लभसे प्राप्त होनेपर भी वे सब वर उसे दिये ॥ १ ॥ श्रीब्रह्माने कहा—हे वत्स, जो तुमने वर चाहे वे मनुष्योंके लिये सर्वथा कठिन हैं, फिर भी मैं तुम्हें वे सब वर देता हूँ ॥ २ ॥ तदनन्तर सफल अनुग्रह करनेवाले वे ब्रह्मा असुरराज

* अथ चतुर्थोऽध्यायः *

नारद उवाच ॥ एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ॥ प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान्वृणीषे वरान्मम ॥ तथापि वितराम्यङ्ग वारान्यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥ ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः ॥ पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥ एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः ॥ भगवत्यकरोद्द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ३ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः ॥ देवासुरमनुष्येन्द्रान्गन्धर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥ सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन्पितृपतीन्मनून् ॥ यक्षरक्षः पिशाचेशान्प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥ सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित् ॥ जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥ देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते

हिरण्यकशिपुसे पूजा लेकर मरीचि आदियोंसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए वहाँसे चले ॥ ३ ॥ इसप्रकार सोनेके समान चमकनेवाले देहसे कान्तिमान् असुरराज हिरण्यकशिपु वर प्राप्तकर अपने भ्राताके हत्याको यादकर नारायणसे शत्रुता करने लगा ॥ ४ ॥ उसने सब दिशाओं, तीनों लोकों और देवता, दैत्य, राजगण, गन्धर्व, गरुड, नाग, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितरोंके मालिक, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाचपति, भूत, प्रेतोंके स्वामी एवं सब प्राणियोंके ईश्वरोंको जीतकर अपने वशमें कर संसार विजयी दैत्यने समस्त लोकपालोंके पद तथा तेजको छीन लिया ॥ ५–७ ॥ वह महाबली हिरण्यकशिपु नन्दनवनकी कान्तिसे प्रकाशमान स्वर्गलोकमें जाकर साक्षात् देवशिल्पी विश्वकर्मासे रचे तथा त्रिलोकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की कान्तिके आश्रय और सब ऐश्वर्य युक्त इन्द्रभवनमें बसने लगा ॥ ८ ॥ जिस इन्द्रप्रासादकी सीढ़ियाँ मूंगोंका फर्श बड़े-बड़े मरकतमणिकी दीवार स्फटिक मणिकी तथा खम्भे वैडूर्यमणिसे निर्मित थीं ॥ ६ ॥ जिसमें नानावर्ण मण्डप, पद्मराग मणिके आसन दुग्धफेनके समान शोभायमान शय्या और मोतीकी लड़ीयोंसे जड़े ओढ़नेके कपड़े थे ॥ १० ॥ उस दिव्य प्रासादमें मनोहर दाँतोंवाली अप्सराएँ अपने नूपरोंकी झनकारको करती हुई इधर-उधरसे भ्रमण करती हुई वहाँका रत्नस्थलियोंमे रमणीय मुख निहारती रहती थीं ॥ ११ ॥ वह महावली तथा उदार असुरराज उस महेन्द्र भवनमें त्रिलोकीका एक छत्राधिपति होकर रमण करने लगा । वह बड़ा तेजस्वी एवं कठोर शासक था । उसकी कान्तिसे सन्तप्त देवता आदी उसके चरणोंकी अर्चना करते थे ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र, वह तीव्र गन्धकी मदिरा पानकर मस्त रहता था । उसकी आँखें लाल लाल तथा मदसे घूमती रहती

स्म त्रिविष्टपम् ॥ महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा । त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥ ८ । यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ॥ यत्र स्फाटिककुड्यानि वैदूर्यस्तम्भपंक्तयः ॥६॥ यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च ॥ पयःफेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥ १० ॥ कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्य इतस्ततः ॥ रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्महेन्द्रभवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् ।. रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥१२॥ तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ॥ उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥ १३ ॥ जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ॥ गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्डव ॥ १४ ॥ स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत्स्वेन तेजसा ॥ १५ ॥ अकृष्टपच्या तस्यासीत्सप्तद्वीपवती मही ॥ तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥ १६ ॥ रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ॥ क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १७ ॥ शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः ॥

थीं । वह तप, योग, शारीरिक, मानसिक, बलका आश्रय था । ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरके विना और समस्त लोकपाल हाथोंमें उपहार लिये उसकी शुश्रूषामें उपस्थित रहते थे ॥१३॥ हे पाण्डुनन्दन, अपनी सामर्थ्यसे इन्द्रासनपर विराजमान उस हिरण्यकशिपुका विश्वावसु, तुम्बरू तथा हमलोग इत्यादि गुण गाते थे और सिद्ध, गन्धर्व, ऋषि, विद्याधर, अप्सरा उसकी स्तुति करती थीं ॥ १४ ॥ हे राजन्, वर्णाश्रमधर्मके अनुयायियोंके यागोंमें जिनमें कि बड़ी-बड़ी दक्षिणा थी, वह असुरराज ही अपने प्रचण्ड बल तेजसे सब यज्ञभाग स्वयं लेने लगा ॥ १५ ॥ उसके राज्य शासनमें सातों द्वीपवाली भूमि बिना जोते-बोये अन्न उपजाती थी, स्वर्ग लोगोंकी सभी इच्छाएँ परिपूर्ण करता था तथा आकाश विविध आश्चर्योंका आश्रय था ॥ १६ ॥ खारा जल, मदिरा, घी, ईखरस, दूध, दही, तथा मीठा जलवाले समुद्र और उनकी स्त्रियाँ अर्थात् नदियों समेत उसके समीप तरङ्गोंद्वारा रत्न स ह पहुँचाया करते थे ॥ १७ ॥ पर्वत अपनी गुफाओंको विहार योग्य रखने लगे, पेड़ सभी ऋतुओंमें पुष्प फल ग्रहण करने लगे । हिरण्यकशिपु ही सब लोकपालोंके विभिन्न शक्तियोंको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्रहण किये था जिससे कि एकही समय इच्छानुसार छहों ऋतुओंका काम हो जाता था ॥ १८ ॥ इसप्रकार वह दिग्विजयी तथा एकछत्राधिपति होकर अपने प्रिय ऐश्वर्यों को अपनी इच्छानुसार भोगता था तब भी विषयलम्पट होनेसे उसे सन्तोष नहीं होता था ॥ १९ ॥ इसप्रकार विप्रशापको प्राप्त ऐश्वर्यसे उन्मत्त, घमण्डी एवं शास्त्रके विरुद्ध काम करनेवाले नीच असुरका बहुतसा काल योंही व्यतीत हुआ ॥ २० ॥ ❋ उसके कठिन शासनसे लोपालों एवं समस्त लोक व्याकुल हो गये तथा जब उन्हें अन्यत्र कहीं शरण न मिली तो वे भगवान् विष्णुकी शरणमें गये ॥ २१ ॥ वहाँ जाकर वे स्तुति करने लगे—उस दिशाको नमस्कार है जिसमें सर्वान्तर्यामी भगवान ईश्वर रहते हैं, जिसे प्राप्त होकर विरक्त एवं निर्दोष संन्यासीजन फिर संसारमें नहीं आते ॥ २२ ॥ इसप्रकार इन्द्रियोंका संयम करते हुए उन्होंने मनको एकाग्र बनाकर निद्राको त्यागते हुए केवल वायुका

दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥ १८ ॥ स इत्थं निर्जितककुवेकराड्विषयान्प्रियान् ॥ यथोपजोषं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ १९ ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ कालो महान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥ २० ॥❋ तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥ अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥ २१ ॥ तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ २२ ॥ इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ॥ उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥ २३ ॥ तेषामाविर्भूद्वाणी अरूपा मेघनिःस्वना ॥ संनादयन्ती ककुभः साधूनामभयंकरी ॥ २४ ॥ मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥ मद्दर्शनं हि

आहारकर पवित्र बुद्धिसे भगवान् हृषीकेशकी उपासना की ॥ २३ ॥ इसपर उन्हें मेघगर्जनके तुल्य गम्भीर तथा साधुगणोंको अभय देनेवाली आकाशवाणी सुनी, जिस गम्भीर ध्वनिसे सभी दिशायें गूँज उठीं ॥ २४ ॥ वह आकाशवाणी इसप्रकार थी—हे देवश्रेष्ठ, तुमलोग न डरो तुम्हारा मंगल हो, मेरा दर्शन जीवोंके लिये सब तरहसे कल्याणप्रद

❋ यमुनाजीके किनारे श्रीभागवतकी कथा हो रही थी। उस कथाको सुनने नर और नारियोंका समूह आता था और एक म्लेच्छ भी सुना करता था। एकदिन व्यासजी ने कहा—हे राजन्, तुम क्यों नहीं आते। उसने कहा महाराज, इसके शरीर द्वारा दुर्गन्धसे मेरा आना नहीं होता यों सुन व्यासजी ने उसे उत्तम स्त्री का रूप दे दिया। इधर राजा आने लगा। उसके रूप पर मोहित हो दिन रात वहाँ चक्कर काटने लगा। यह देख व्यासजी ने पूछा, हे राजन् तुम्हारी यह दशा क्यों। राजाने कहा, हे महाराज, इससे मैं विवाह करना चाहता हूं। व्यासजी ने स्वीकृति दे दी। वह महल में चली गयी। संयोग वश राजा शयन में थे कि उसने अपना वही घटित रूप बना लिया। राजा की अचानक आंख खुली। उन्होंने हुकुम दिया इसे अभी यहां से निकाल दो। सारांश यह है कि संसार में मनुष्योंकी प्रकृति का परिवर्तन नहीं हो सकता। जो नीच कुमार्गी होता है, वह अपनी वृद्धावस्था में भी स्त्री शूद्राओं के साथ भी कुकर्म में बाज नहीं आता। चाहे उस अधमकी सारी दुर्दशा हो चुकी हो या हो रही हो।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ २५ ॥ मैं उस अधम असुरकी सब नीचता जानता हूँ, अवसर पाकर मैं उसे शान्त करूँगा। तुमलोग उस समयकी प्रतीक्षा करो ॥ २६ ॥ जब कोई देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म एवं मुझसे शत्रुता करने लगता है, तो उसका तुरन्त नाश हो जाता है ॥ २७ ॥ जब वह अपने समदर्शी शान्त महात्मा लड़के प्रह्लादके साथ शत्रुता करेगा, उसी समय ब्रह्माके वरसे प्रतापी होनेपर भी उस असुरका मैं अवश्य हनन करूँगा ॥ २८ ॥ नारदजीने कहा—सब जगत्‌के सञ्चालक भगवान्‌के ऐसे कथनपर सब देवोंने उन्हें प्रणाम किया तथा निश्चिन्त होकर वापिस आए क्योंकि उन्होंने उस दैत्यको मृत जाना ॥ २९ ॥ हे राजन, असुरराज हिरण्यकशिपुके चार पुत्र थे—उसमें प्रह्लाद अपने सद्गुणों से सबसे बड़ा था। वह ब्राह्मण और महात्माओं का भक्त, सुशील सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, सब जीवोंका प्राणप्रिय एवं परममित्र, महापुरुषोंके चरणोंमें दासकी तरह विनम्र, पिताके

भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥ २५ ॥ ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च ॥ तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥ २६ ॥ यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ॥ धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥ २७ ॥ निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने । प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥ २८ ॥ नारद उवाच । इत्युक्तालोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ॥ न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥ २९ ॥ तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ॥ प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥ ३० ॥ ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥ आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥ ३१ ॥ दासवत्सन्नतार्यांघ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ॥ भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वर-भावनः ॥ विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥ ३२ ॥ नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ॥ दान्तेन्द्रिय-प्राणशरीरधीः सदा प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥३३॥ यस्मिन्महद्गुणा राजन्गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः ॥ न तेऽधुनापि धीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ॥ ३४ ॥ यं साधुगाथासदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ॥ प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः ॥ ३५ ॥ गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य

तुल्य दीनोंपर दयालु, समकक्षवालोंसे भ्राताके तुल्य स्नेह करनेवाला तथा गुरुओंको परमात्माके तुल्य मानता था। वह विद्या, धन, रूप और कुलसे सम्पन्न होजानेपर भी अभिमान तथा गर्वसे शून्य था ॥३०–३२ ॥ वह विपत्ति आनेपर नहीं हिचकिताता था। वह देखे तथा सुने सब विषयोंको मिथ्या जानकर विरक्त रहता था। उसकी सब इन्द्रियाँ, प्राण, देह बुद्धि सभी वशमें थीं और उसकी इच्छा शान्त थी। इसप्रकार दैत्यवंशमें जन्म लेनेपर भी दैत्यस्वभावसे वह एकदम अलग सा था ॥ ३३ ॥ हे राजन्, उनके गुणोंको ज्ञानीजन बारबार अपनाते हैं और परमात्माके तुल्य उनके गुण अब भी नाश नहीं होने पाये ॥ ३४ ॥ हे धर्मराज, देवता उनके (असुर होनेके कारण) शत्रु होकर भी सज्जन महापुरुषोंकी बात-चीत चलनेपर जिनकी मसाल देते थे, उन भगवद्भक्त प्रह्लाद आप जैसे अन्य भगवद्भक्त तो अवश्य आदर्श मानेंगे। ३५ ॥ भगवान वासुदेवमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिसकी सहज भक्ति थी उन श्रीप्रह्लादके अनन्त गुणोंका वर्णन किस तरह करें। हम तो केवल उनका महात्म्यकी सूचनामात्र दे रहे हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन्, बचपनमें ही वे खेल-कूदका त्यागकर भगवान्से जड़की तरह तनमनस्क हो जाते थे। भगवान् कृष्णरूपी ग्रहने मानो उनपर आवेशकर लिया है इसलिये उन्हें यह भी नहीं प्रतीत था कि जगत् कैसा है ॥ ३७ ॥ श्रीगोविन्दमें संलग्न होनेसे उन्हें बैठते, घूमते, भोजन करते, शयन करते, पान करते, बोलते-चालते समय बैठने-घूमने आदिका कुछ ज्ञान ही नहीं रहता था ॥ ३८ ॥ श्रीवैकुण्ठनाथके ध्यानसे चित्त व्याकुल होनेसे कभी रुदन करने लगते, कभी भगवत्स्मृतिसे आनन्दित होकर हँसने लगते तथा कभी ऊँची आवाजसे भगवान्के गुण गाने लगते थे ॥ ३९ ॥ इसीप्रकार वे कभी उत्कण्ठित होकर गुनगुनाने लगते, कभी लज्जा त्यागकर नाचने लगते, कभी भगवद्भावनामें तन्मय होकर उनकी लीलाओंकी नकल करने लगते ॥ ४० ॥ वे कभी ध्यानप्रभावसे भगवद्भावको प्राप्त होकर परमानन्दसे पुलकित होकर मौन बैठे रहते और उस समय उसकी आँखें स्थिर अनुरागसे उमड़े हुए प्रेमाश्रुओंसे व्याप्त

सूच्यते ॥ वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥ ३६ ॥ न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया ॥ कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदी-दृशम् ॥ ३७ ॥ आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन्ब्रुवन् ॥ नानुसंधत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ता-शबलचेतनः ॥ क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥ ३९ ॥ नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ॥ क्वचित्तद्भावना-युक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥ ४० ॥ क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ॥ अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥ ४१ ॥ स उत्तमश्लोकपदारविन्दयोर्निषेवयाऽकिञ्चनसङ्गलब्धया ॥ तन्वन्परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसङ्गदीनान्यमनः शमं व्यधात् ॥ ४२ ॥ तस्मिन्महा भागवते महाभागे महात्मनि ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदमघात्मजे ॥ ४३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ॥ यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघम् ॥ ४४ ॥ पुत्रान्विप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः ॥ उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥ ४५ ॥ किमुतानुवशान्साधूंस्तादृशान्गुरुदेवतान् ॥ एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥ पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

होनेसे कुछ-कुछ बन्दी-सी हो जाती थीं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार प्रह्लाद दीन भगवद्भक्तोंके साथसे प्राप्त पुण्यकीर्ति भगवान्के चरणारविन्दोंकी सेवासे अपनी आत्माको परमानन्दित करते हुए दूसरे कुसंगतिसे पापीके चित्तको भी बारबार शान्त करने लगे ॥ ४२ ॥ हे राजन्, ऐसे महान् भगवद्भक्त, परमभाग्यशाली महात्मा लड़केसे भी हिरण्यकशिपु शत्रुता करने लगा ॥ ४३ ॥ राजा युधिष्ठिरने कहा— हे देवर्षे, हे ब्रह्मचारीजी, अब हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि पिता होकर उसने ऐसे पुण्यात्मा सज्जन लड़केसे शत्रुता क्यों की ॥ ४४ ॥ पुत्र प्रेमी पिता अपने प्रतिकूल लड़केको सिखानेके लिये उसका अनादर तो करते हैं, पर वैसा जैसा व्यवहार पुत्रसे नहीं किया करते ॥ ४५ ॥ उसमें भी प्रह्लाद जैसे अनुकूल, सच्चरित्र और गुरुजनोंको देवताकी भाँति आदर करनेवाले लड़कोंके बारेमें क्या कहना ही है। हे भगवन्, हमें तो यह सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है कि पिताने द्वेषसे लड़केकी हत्या तक करना चाहा। हे ब्रह्मन्, हमारे इस आश्चर्यको आप दूर करें ॥ ४६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चौथे अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, उसके ऐसा वर माँगनेपर विधाताने कहा--एवमस्तु। अनन्तर, इस तरहके वरदानसे युक्त वह दैत्य भगवान्से द्वेष करने लगा। सारे जगत्को जीतकर वह स्वर्गमें पहुंचा। वहाँ इन्द्रके महलमें नानाविध सुखोंका अनुभव करने लगा। सभी देवता उसकी कठोर आज्ञाके कारण दुःखित होकर उसके चरणकी बन्दना करने लगे। दिग्विजयी वह हिरण्यकशिपु सर्वविध सुखोंको भोगता हुआ भी तृप्त न हो सका, यों उसके इकहत्तर युगोंसे भी अधिक समय निकल गया। उसके कठोर दण्डसे काँपते हुए लोकपालोंके साथ सभी लोग भगवानके पास पहुंचे। वहाँ सबने भगवान्की खूब स्तुति की। भगवान्की स्तुतिके बाद ऐसी आकाशवाणी हुई—हे देवताओ, देवताओंके साथ किये गये द्वेषको मैं सहन करता हूँ लेकिन मैं अपने भक्तोंके साथ किये गये द्वेषको नहीं सह सकता इसलिये शान्तचित्त महात्मा मेरे भक्त अपने पुत्र प्रह्लादके साथ जब यह द्वेष करने लगेगा तब ब्रह्मवरदानसे प्रबल हुए भी इसे अवश्य मार डालूँगा। चौथा अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❋

❋ असुरराज हिरण्यकशिपु पुत्र प्रह्लादसे क्रोधित हो अपने सेवकोंसे उसके बधका उपदेश ❋

श्रीनारदजी ने कहा—हे राजन्, दैत्योंने श्रीशुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाया था। उनके लड़के शण्ड और अकर्म असुरराज हिरण्यकशिपुके राजमहलके समीप ही रहते थे ॥१॥ वे राजाके भेजे नीति चतुर बालक प्रह्लाद और दूसरे दैत्य लड़कोंको भी दण्डनीति आदि शास्त्रोंको पढ़ाते थे ॥२॥ जो गुरुदेव विषय पढ़ाते उसे प्रह्लाद तद्वत् पढ़ते और सुना देते थे,

नारद उवाच ॥ पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः ॥ शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥१॥ तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ॥ पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्च सुरबालकान् ॥ २ ॥ यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठ च ॥ न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥३॥ एकदाऽसुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव ॥ पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥ ४ प्रह्लाद उवाच ॥ तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ॥ हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥

परन्तु यह अपना यह पराया है ऐसे मिथ्या हठसे दूषित होनेसे उनके चित्तमें वह पाठ नहीं जमता था ॥ ३ ॥ हे पाण्डव, एक रोज असुरपति हिरण्यकशिपुने अपने लड़के प्रह्लादको गोदीमें बैठाकर पूछा—"पुत्र बताओ तो सही तुमको कौनसी बात ठीक है" ऐसा समझता है ॥ ४ ॥ प्रह्लादने कहा—हे असुरश्रेष्ठ, 'मैं और मेरा' इस दुरहङ्कारसे उद्विग्न जीवोंके लिए तो मैं यह अच्छी रीति जानता हूँ कि अपनी अवनतिके कारणरूप गृहरूप अन्धकूपोंको छोड़कर वनमें जाकर हरिकी शरण लेवें ॥ ५ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने लड़केका अपने शत्रुपर श्रद्धासे पूर्ण वाणी सुनकर असुरपति पहिले तो हँसा तथा बादमें कहने लगा—बालकोंकी मति अन्योंके बहकानेमें इसी प्रकार बिगड़ जाती है ॥ ६ ॥ इसलिये इसे गुरुकुलमें उन ब्राह्मणोंसे इसका सम्भाल कराओ जिससे कि गुप्तवेषसे विचरनेवाले विष्णुपक्षके लोग इसकी बुद्धि न बिगाड़ सकें ॥७॥ प्रह्लादको अपने घर आनेके बाद असुरपुरोहितोंने उसे अपने पास बुलाकर मीठे वचनोंमें उसकी प्रशंसा करते हुए शान्तिसे पूछा ॥ ८ ॥ वत्स प्रह्लाद, तेरा कल्याण हो तू सत्य कहो—देख मिथ्या न बोलना तेरी बुद्धिमें इन साथी बालकोंके सोच समझसे निराला ही विचार कहाँसे आगया ॥६॥ हे कुलनन्दन, तुम्हारी बुद्धिमें किसीने परिवर्तन किया है या आप ही पैदा हुआ है। हम तुम्हारे आचार्य हैं। हम यह जानना चाहते हैं तुम ठीक ठीक सुना दो ॥ १० । प्रह्लादजीने कहा—आप लोगोंकी बुद्धि जिस भगवानकी मायासे मोहित होकर यह मेरा यह पराया समझती है उस मायाके स्वामी भगवान्को नमस्कार है ॥ ११ ॥ जब श्रीपरमात्मा अपने भक्त जीवोंके अनुकूल हो जाते हैं तब उनको यह मेरा और यह दूसरे का ऐसी झूठी

श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ॥ जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥ सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः ॥ विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥७॥ गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः ॥ प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः ॥८॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ॥ बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥६॥ बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ॥ भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन ॥१०॥ प्रह्लाद उवाच ॥ स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ॥ विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥ ११ ॥ स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ॥ अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगताऽसती ॥ १२ ॥ स एष आत्मस्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ॥ मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ॥१३॥ यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ ॥ तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥१४॥ नारद उवाच ॥ एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ॥ तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥ १५ ॥ आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः ॥ कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥ १६ ॥ दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः ॥ यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥१७॥ इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ॥ प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्यो-

भेदबुद्धि नष्ट हो जाती है ॥ १२ ॥ बुद्धिहीन लोग उस परमात्माको ही अपना और पराया ऐसा समझते हैं परमात्माका चरित अचिन्त्य होनेके कारण ब्रह्मादि वेदज्ञानी लोग भी उनको ठीक-ठीक नहीं समझ पाते, उस ईश्वरने ही मेरी बुद्धिमें ऐसा परिवर्तन किया है ॥१३॥ हे ब्रह्मन्, जैसे लोहा आपही चुम्बकके समीप खिच जाता है, वैसे ही मैं अकारण ही चक्रपाणि भगवान्की ओर खिच जाता हूँ ॥१४॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन्, ब्राह्मणगुरुसे इतना कहकर महामति प्रह्लाद मौन हो गये, इस बातपर उस दीन राजसेवकने क्रोधसे प्रह्लादको धमकाते हुए कहा ॥१५॥ अरे, कोई बेंत तो लाओ, यह हमें बदनाम करनेवाला नीच बालक है, इस नीचबुद्धि कुलके लिये दण्ड ही ठीक है ॥१६॥ यह लड़का असुररूपी चन्दनके वनमें काँटोंका पेड़-सा प्रादुर्भूत हुआ तथा उस चन्दनवनकी जड़ काटनेवाले विष्णुरूपी परशुके लिये डण्डीका काम दिया ॥१७॥ इसप्रकार भर्त्सना आदि विविध प्रकारसे प्रह्लादको ॥१५॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

डराते हुए वे उन्हें धर्म, अर्थ और कामको समझानेवाले शास्त्र पढ़ाने लगे ॥१८॥ कुछ समय बीतनेपर गुरुने जब देखा कि प्रह्लाद साम, दाम, भेद तथा दण्ड इन चारों विषयोंको अच्छी
तरह जान गया, तब उनकी मातासे अभ्यञ्जन स्नान और गहने आदिसे अलंकृत कराकर हिरण्यकशिपुके समीप ले गये ॥१९॥ अपने बालकको प्रणाम करता देखकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु
ने उसका आशीर्वादसे अभिनन्दन किया और अपनी भुजाओंसे दीर्घकालतक आलिङ्गन कर बहुत आनन्दित हुआ ॥२०॥ हे युधिष्ठिर, इसके अनन्तर हिरण्यकशिपुने उस प्रसन्न लड़के
को गोदीमें बिठाकर उसका मस्तक सूँघा और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए यह कहने लगा ॥२१॥ हिरण्यकशिपुने कहा—हे चिरञ्जीवी वत्स प्रह्लाद, इतने समय तक तुमने गुरुजी
से जो कुछ सीखा हो, उसमेंसे कोई रमणीयसी बात मुझे सुनाओ तो सही ॥ २२॥ प्रह्लाद कहने लगे—हे पिताजी, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा

पपादनम् ॥ १८ ॥ तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् ॥ दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलङ्कृतम् ॥ १९ ॥ पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्या-
शिषाऽसुरः ॥ परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥ २० ॥ आरोप्याङ्कमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः ॥ आसिञ्चन्विकसद्वक्त्रमिदमाह
युधिष्ठिर ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किञ्चिदुत्तमम्॥ कालेनैतावतायुष्मन्यदशिक्षद् गुरोर्भवान् ॥२२॥ प्रह्लाद
उवाच ॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥ इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्ति-
श्चेन्नवलक्षणा ॥ क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥ निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिता-
धरः ॥२५॥ ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयताऽसता ॥ असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥ २६ । सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छ-
द्मवेषिणः ॥ तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र उवाच ॥ न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ॥ नैसर्गि-
कीयं मतिरस्य राजन्नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः ॥२८॥ नारद उवाच ॥ गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम् ॥ न चेद्गुरुमुखीयं ते

आत्मनिवेदनरूपी भगवान्की नवधा भक्ति शास्त्रोंमें कही गयी है, यदि मनुष्य भगवान् पर उस नवधा भक्तिको दृढ़ रखे तो मैं उसीको सबसे अच्छा अध्ययन समझता हूँ ॥२३,२४॥
अपने लड़केकी अच्छी वाणी सुनकर अत्यधिक क्रोधाग्निसे हिरण्यकशिपुका अधरोष्ठ फड़कते हुए क्रोधसे उसने अपने गुरुके पुत्रसे कहा ॥२५॥ ओ पतित ब्राह्मण ! अरे दुर्बुद्धि ! तूने
मेरा अनादर कर अरिका पक्ष लेकर इस पुत्रको अत्यन्त तुच्छ शिक्षा दी है ॥२६॥ ठीक है, लोकमें बहुतेरे ऐसे नीचगण हैं, जो कपटसे ऊपर ही ऊपर मित्र बने रहते हैं, पर समय
प्राप्त होनेपर उनका छल भी किसी न किसी दिन ब्रह्महत्यादि महापातक करनेवालोंको नरक भोगनेके बाद प्रत्यक्ष हो जाता है ॥२६॥ गुरुपुत्रने कहा—हे इन्द्रशत्रो ! आपका बालक
जो कुछ कह रहा है वह मेरा या किसी अन्य का नहीं पढ़ाया है। हे राजन् ! यह इसकी अनायास बुद्धि है। आप क्रोध न करें और हमें व्यर्थ दोष न दें ॥२८॥ श्रीनारदजीने कहा—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे युधिष्ठिर, इसतरह गुरुके कथनपर हिरण्यकशिपुने अपने लड़केसे पूछा—क्यों रे नालायक, यदि तुझे ऐसी विपरीत बुद्धि इन गुरुओंसे नहीं प्राप्त हुई तो और प्राप्त कहाँसे हुई ॥ २९ ॥ प्रह्लाद ने कहा—जो मनुष्य इन्द्रियोंके हेतु चर्वितचर्वणन्यायसे भोगे हुए विषयोंको पुनः भोगनेके लिये बार बार जगत्में जन्म लेते हैं, उन गृहासक्त प्राणियोंकी अपने आप या गुरुकी शिक्षासे या आपसके सम्बन्धसे भी भगवान्में मति नहीं लगती ॥३०॥ जो लोग विषयोंमें ही गुरु बुद्धि रखते और दुष्ट विचारवाले हैं वे तो परमार्थरूपी विष्णुको नहीं जान सकते और अन्धोंके पीछे चलनेवाले अन्धों की भाँति ठीक मार्ग न समझकर काम्य कर्मोंमें ही फँसे रहते हैं ॥ ३१ ॥ जब तक ये प्राणी अपनेको विरक्त महात्माओंकी चरणरजसे अभिषिक्त नहीं करपाते, तबतक इनकी मति भगवान्के चरणोंको छू तक नहीं पाती—जिस बुद्धिसे भगवत् सम्बन्धिनी जगत्रूपीअनर्थका बिल्कुल नाश हो जाता है ॥ ३२ ॥ ऐसा

कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥२९॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ॥ अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥३०॥ न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ॥ अन्धा यथाऽन्धैरुपनीयमाना वाचीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥३१॥ नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ॥ महीयसां पादरजोभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥३२॥ इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ॥ अन्धीकृतात्मा स्वोत्सङ्गान्निरस्यत महीतले ॥ ३३ ॥ आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ॥ वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैरृताः ॥ ३४ ॥ अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान्सुहृदोऽधमः । पितृव्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥ ३५ ॥ विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमञ्जसः ॥ सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पञ्चहायनः ॥३६॥ परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ॥ छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥ ३७ ॥ सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः संभोजशयनासनैः ॥

कहकर चुप हुये प्रह्लादको देख हिरण्यकशिपु क्रोधोन्मत्त होकर अपने पुत्रको गोदीसे जमीन पर फेंक दिया ॥ ३३ ॥ तब असहन और क्रोधसे लाल आँखें बनाकर वह कहने लगा—अरे राक्षसों ! यह मार डालने लायक है इसे शीघ्र ही मारडालो या यहाँसे बाहर निकालो ॥३४॥ यह पापी ही हमारे भाइयोंको मारनेवाला है क्योंकि यह अपने बन्धुओंको छोड़कर अपने चचाको हननेके लिए ही विष्णु चरणका दासकी तरह अर्चन करता है ॥ ३५ ॥ यह विचारा विष्णुका क्या हित करेगा जिसने कि पाँच सालकी उम्रमें अपने माता-पिताका छुड़ालेसे भी न छूटने वाला प्यार खो लिया ॥ ३६ ॥ यदि दूसरेका पुत्र दवाकी तरह अपना हितैषी हो तो उसे ही पुत्र माने यदि अपनी देहसे प्रादुर्भूत भी पुत्र कष्ट देनेवाला हो तो रोगके तुल्य ही उसे छोड़ देना चाहिये । अपने देह के उस अङ्गका भी नाश कर डाले जिससे कि दुःख होता है । क्योंकि उसके त्यागनेपर अवशिष्ट सब अंग तो आनन्दसे जीवित रह सकेगा ॥३७॥ इसलिये इसे भोजन, शयन, आदिके समय किसी भी युक्तिसे इसे मार डालो । क्योंकि जैसे मुनिगणोंकी दुष्ट इन्द्रियाँ उनके लिये शत्रु हैं तद्वत् ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मैं इसे मित्ररूपधारी शत्रु मानता हूँ ॥ ३८ ॥ इस तरह स्वामीकी आज्ञा होनेपर वे तीखी दाढ़, भयंकर मुख तथा लाल-लाल दाढ़ी-मूँछ तथा केशोंवाले त्रिशूलधारी भयानक राक्षस मारो, काटो, ऐसा कहते हुए अत्युत्कट रूपसे गर्जते हुए वहाँ बैठे प्रह्लादके सभी मर्मस्थानोंमें त्रिशूल मारने लगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ अनिर्वाच्य और सर्वात्मा भगवान् परब्रह्ममें लीन उस प्रह्लादपर ये सब प्रहार भाग्यहीन पुरुषके महान् उद्योगकी भाँति व्यर्थ हो गये ॥ ४१ ॥ हे युधिष्ठिर ! उस प्रयासके व्यर्थ होनेपर असुरपतिका मन और भी शंकित हुआ तथा उसके हननके लिये उसने जिदसे नानाविधि प्रकार किये ॥ ४२ ॥ उसने जब प्रह्लादको दिग्गजोंके पैरोंतले कुचलकर, विषैले नागोंसे दशनकर, मारण-मोहन आदि मन्त्र कराकर, पर्वतआदिसे गिराकर, नानाप्रकारकी मायाओंका प्रयोग कराके कारागार जेल आदिमें बन्द कराके, विष पिलाके, उपवास कराके, बर्फ, वायु, अग्नि एवं पानीमें स्थितकर

सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम् ॥ ३८ ॥ नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ॥ तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥३९॥
नदन्तो भैरवान्नादांश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः ॥ आसीनं चाहनञ्छूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥ ४० ॥ परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ॥
युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥ ४१ ॥ प्रयासेऽपहते तस्मिन्दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः ॥ चकार तद्वधोपायान्निर्बन्धेन युधिष्ठिर
॥ ४२॥ दिग्गजै र्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ॥ मायाभिः सन्निरोधैश्च गरदानैरभोजनैः॥ ४३ ॥ हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ॥
न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ॥ चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥ ४४ ॥ एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ॥
तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥ ४५ ॥ वर्तमानोऽविदूरे वै बालोऽप्यजडधीरयम् ॥ न विस्मरति मेऽनार्यं शुनः शेप इव प्रभुः ॥४६॥
अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः ॥ नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥ ४७ ॥ इति तं चिन्तया किञ्चिन्म्लानश्रियमधोमुखम् ॥
शण्डामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ॥ ४८ ॥ जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ॥ न तस्य चिन्त्यं तव नाथ

तथा पर्वतोंको उनके ऊपर फेंकवाकर मारनेकी इच्छा करनेपर भी वह उस निरपराध बालककी किसी प्रकारसे हत्या न कर सका, तो असुरराजको महान् चिन्ता हुई, और किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वह अपने चित्तमें चिन्ता करने लगा—हाय, मैंने इसे कितने ही क्रूर वाक्य कहे हत्या करनेके लिए बहुतसे प्रकार किए, फिर भी उन द्रोह तथा निन्दित अपकारोंसे यह अपने उन तेजसे ही अपनेको बचा लिया ॥ ४५ ॥ यह बालक होनेपर भी मेरे समीप निर्भयतासे बैठा हुआ है। और मेरे उन नीच व्यवहारोंको समर्थ यह बालक नहीं भूल सकता। अजीगर्तकके पुत्र शुनः शेपकी तरह बदला लेगा। अथवा कुत्तेके पूँछकी तरह इसका स्वभाव नहीं बदल सकता ॥ ४६ ॥ इसके महिमाकी तो कोई सीमा नहीं मालूम पड़ती है। यह निर्भीक और अमर है। ऐसा मालूम पड़ता है कि विरोध करनेसे मेरी मृत्यु तथा विरोध न करनेसे मृत्यु न होगी ॥ ४७ ॥ इस प्रकार चिन्तासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ मुरझाये उस हिरण्यकशिपुको मुख नीचे करके बैठे देखकर एकान्त में शुक्रपुत्र शण्ड एवं अमर्कने, ऐसा कहा ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! आपके भृकुटिमात्रसे जहाँके सभी लोकपाल मारे डरसे काँपते हैं उन तीनों लोकोंको आपने स्वयं ही जीत लिया। आप जैसे प्रतापीके लिये तो कोई चिन्ताकी बात हमें नहीं दीखती। हे नाथ ! बच्चोंका व्यवहार कोई गुण-दोषका विषय नहीं होता ॥ ४६ ॥ फिर भी गुरु शुक्राचार्यके आनेके समय तक आप इसे वरुणदेवके पाशमें बाँधकर रख लीजिये। जिससे कि यह पलायन न करे। मनुष्यकी बुद्धि तथा आयुकी वृद्धि योग्य आर्य्यजनोंका सेवासे ठीक हो जाया करती है ॥ ५० ॥ तब ठीक है कहकर हिरण्यकशिपुने अपने गुरुपुत्रोंकी आज्ञा स्वीकार कर कहा—इसे गृहस्थ राजाओंके योग्य धर्मकी ही शिक्षा होनी चाहिए ॥ ५१ ॥ हे युधिष्ठिर ! तो उन गुरुबालकोंने बहुत विनम्र एवं नम्र प्रह्लादको क्रमसे धर्म अर्थ और कामकी शिक्षा दी ॥ ५२ ॥ किन्तु उस शिक्षाको

चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥ ४६ ॥ इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतो न पलायते यथा ॥ बुद्धिश्च पुंसो वयसार्य-सेवया यावद्गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥ ५० ॥ तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ॥ धर्मो ह्यस्योपदेष्टव्यो राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ॥ ५१ ॥ धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ॥ प्रह्लादायोचतू राजन्प्रश्रितावनताय च ॥ ५२ ॥ यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ॥ न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् ॥ ५३ ॥ यदाचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ॥ वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥ ५४ ॥ अथ ताञ्श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ॥ उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥ ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ॥ बाला नदूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥ ५६ ॥ पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ॥ तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्रह्लादने त्याज्य समझा और वह उन्हें अच्छी नहीं जँची, क्योंकि वे राग-द्वेष आदि भावोंसे विषयोपभोग लीन पुरुषोंसे वर्णित है ॥ ५३ ॥ एक रोज जब गुरु अपने गृहकृत्योंमें संलग्न थे तब उनके पुत्रोंने खेल-कूदका अवसर प्राप्तकर प्रह्लादको खेलनेके लिये आह्वान किया ॥ ५४ ॥ उसपर उनके जन्म-मरणके ज्ञाता तथा महाज्ञानी प्रहलादने प्रिय वाणीसे उन्हें अपने ही पास बुलाया और उनपर दयासे कुछ मुसकराते हुए कहने लगे ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! वे सब बालक थे, उनकी बुद्धि राग-द्वेषादिमें आसक्त विषयी लोगोंके उपदेशों और उनके चाल चलनोंसे दूषित न थी। और प्रहलादके गौरवसे उनके आह्वान करनेपर अपने खेलके सामान जहाँ तहाँ त्यागकर उनके समीप दौड़े आए और उन्हींमें अपना मन तथा आंख लगाकर उनके चारों तरफ बैठ गये। तो दयालु तथा अत्यन्त प्रिय परमभक्त दैत्यराज प्रहलाद यों कहने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पाँचवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको अध्ययन करनेके लिये अपने मकानके निकट अध्यापन करानेवाले शुण्डामर्क नामक दो गुरुओंके पास भेज दिया। एक दिन गोदमें बैठे हुए पुत्र प्रह्लादसे हिरण्यकशिपुने पूछा—बेटा, तुम्हें क्या अच्छा लगता है? प्रहलादजीने कहा—पिताजी, 'मैं' और 'मेरा' इस अभिमानके कारणस्वरूप इस घरको छोड़कर बनमें जाकर श्रीहरिका मैं भजन करूँ, यही मुझे इच्छा होती है। अपने पुत्रका कथन सुनकर दैत्यराजने गुरुओंको बुलाकर कहा—तुम लोग इसे ऐसी शिक्षा दो कि जिससे इसकी बुद्धि मेरे दुश्मन श्रीहरिकी ओर न झुके। गुरुओंको बुलाकर कहा—पुत्र, बतलाओ तो सही, तुम्हारी इस तरह उलटी बुद्धि कैसे हो गई? प्रहलादजीने कहा—अहो, जिस भगवानकी माया द्वारा विरचित 'मैं और यह' इस तरहका मिथ्या अभिमान जो आपके सद्दृशलोगोंमें दीख पड़ता है उस भगवान्को अनेक नमस्कार है। प्रहलादकी ऐसी बात सुनकर गुरुओंने उसे डरा धमकाकर धर्म, अर्थ और कामकी अच्छी शिक्षा दी। अनन्तर वे दत्य राज हिरण्यकशिपुके निकट ले गये। हिरण्यकशिपुने पूछा—बेटा, तुमने क्या पढ़ा है? प्रह्लादने कहा—पिताजी, मैंने भगवान्की नव तरहकी भक्तिकी भली भाँति शिक्षा पायी है। यह सुनते ही क्रोधसे लाल-लाल आँखें कर हिरण्यकशिपुने कहा—अरे दुष्ट ब्राह्मणों, तुम लोगोंने इस लड़केको क्या सिखाया है? अरे पापियों, तुम लोग मेरे मित्र होते हुए भी दुश्मन का काम किया है। दैत्यराजकी ऐसी बातें सुनते ही काँपते हुए स्वरसे उन गुरुओंने कहा—हे प्रभो, हम लोगोंने इसे शिक्षा नहीं दी है, इसकी यह बुद्धि स्वाभाविकी है। गुरुओंकी ऐसी बातें सुनकर हिरण्यकशिपुने प्रहलादसे फिर पूछा—अरे दुष्ट, इन बालकोंसे निराली बुद्धि तुममें कहाँसे आ गई है? प्रहलादजीने कहा—पिताजी, नाराज न होइये। भगवान्के भक्तोंको ऐसी बुद्धि योंही उत्पन्न हो जाती है। पिताजी, सांसारिक विषय-वासनाओंमें फँसे रहनेवाले पुरुषोंको ऐसी बुद्धि कभी नहीं उत्पन्न होती। प्रहलादकी यह बात सुनकर दैत्यराज अत्यन्त खिन्न हो गया। क्रोधके मारे गरम साँस खींचते हुए उसने अपने सेवकोंसे कहा—अरे राक्षसों, चाहे तुम लोगोंसे जैसे हो सके इसे यहाँसे ले जाकर जानसे मार दो। नानाविध उपायोंसे भी जब प्रहलादकी मृत्यु न हो सकी तब असुरोंने वरुणकी पाशोंसे बाँधकर गुरुओंके समीप ले जाकर रख दिया। एक दिन समान वयस्क लड़कोंने प्रहलादजीको अपने साथ खेलनेके लिये पुकारा। प्रह्लादजीने उन्हें अपने समीप बुलाकर भगवद्भक्तिकी उन्हें खूब शिक्षा दी। हे राजन्, वे सब बालक प्रहलादजीकी मधुर बाणी सुननेके लिये उनके चारों ओर आकर बैठ गये और भगवद्भक्त प्रहलादजी भी उन्हें प्रेमसे भगवान्का उपदेश देने लगे।

❀ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

षष्ठमोऽध्यायः

(भगवान्में विश्वास रखनेवाले प्रह्लादका दैत्य बालकोंको सनातनधर्मानुकूल उपदेश)

प्रह्लादने कहा—हे साथियों, बुद्धिमान प्राणीका कर्तव्य है कि वह बचपनमें ही भगवान्की उपासना करे। यह मनुष्य जन्म बहुत ही दुर्लभ है तथा अनित्य होनेपर भी सभी पुरुषार्थोंका साधक है ॥ १ ॥ इस जन्ममें भगवान्विष्णुके चरणोंकी उपासना करना ही सबसे प्रधान काम है। क्योंकि वे ही सब प्राणियोंके आत्मा, प्रिय, स्वामी और मित्र हैं ॥ २ ॥ हे दैत्यों, शरीरका सम्बन्ध होनेसे सब जीवोंको इन्द्रियसुख तो दुःखकी तरह दैवसंयोगसे सभी योनियोंमें प्राप्त होता ही रहता है ॥३॥ अतः इस सुखके लिये प्रयास करना बेकार है, क्योंकि इसमें आयुको व्यर्थ नष्ट करना है। जो सुख भगवान्के चरणकमलोंकी उपासनासे प्राप्त होता है वह सुख-शान्ति, भोगविलाससे नहीं मिल सकता ॥ ४ ॥ अतः

प्रह्लाद उवाच ॥ कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ १ ॥ यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ॥ यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥ २ ॥ सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम ॥ सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥ ३ ॥ तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ॥ न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४ ॥ ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ॥ शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥५॥ पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः ॥ निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥ ६ ॥ मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ॥ जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥ ७ ॥ दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ ८ ॥ को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ॥ स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥ ९ ॥ कोन्व-

यह सर्वाङ्गपूर्ण मानवदेह जबतक आपत्तिसे संलग्न न हो उसके पूर्व ही मृत्युभयसे छुटकारा पानेके लिये शीघ्र उद्योग कर लेना आवश्यक है ॥ ५ ॥ जीवकी पूरी उम्र शतसालकी होती है, उसमें भी इन्द्रिय-लोलुप जीवोंकी आधी आयु तो रात्रिमें तमोगुणके अधीन होकर सोते रहनेसे बेकार ही व्यतीत हो जाती है ॥ ६ ॥ उस आधेमेंसे भी बालकपनमें मोहसे तथा कौमारावस्थामें खेल-कूदसे बीस साल बेकार ही कट जाते हैं। उसीप्रकार बीस साल बुढ़ापेका काल देहमें शक्ति न होनेसे बीत जाता है ॥ ७ ॥ अवशिष्ट आयु कष्टसे परिपूर्ण होनेवाले काम और प्रबल मोहसे गृहमें लिपटे रहनेसे प्रमादमें ही बीत जाती है ॥ ८ ॥ बालकों, कौन अजितेन्द्रिय जीव अत्यन्त दृढ़स्नेह रस्सीसे बँधे गृहासक्त अपनेको उससे मुक्त करता ॥ ९ ॥ चोर, सेवक एवं व्यापारीगण अपने अतिप्रिय प्राणोंके बदले जिसको खरीदते हैं, उस प्राणाधिक धनकी तृष्णाको कौन भला छोड़ सकता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य अपनी प्रिया के संग एकान्तवास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और चित्ताकर्षण करनेवाले वार्तालापमें, मित्रोंके स्नेह एवं बालकोंकी मधुर तोतली वाणीमें फँसा पड़ा है, जिसे उस प्राणप्रिय लड़की, लड़का, भ्राता, बहिन, दीन माता-पिता या सुन्दर तथा अत्यधिक सामग्रियोंसे परिपूर्ण घर, कुलपरंपरागत जीविका, गाय, सेवक आदि भी याद रहते हैं। वह उन्हें कैसे भला छोड़ सके जो लोलुप होनेके कारण विषयोंसे तृप्त नहीं होता तथा जननेन्द्रिय और जीभके आनन्दको ही श्रेष्ठ मानता तथा रेशमके निर्माण करनेवाले कीड़ेकी तरह जो अपने फँसनेके ही तुल्य इकट्ठा करता रहता है, वह अपार मोहग्रस्त जीव भला इस जगत्से कैसे उदासीनहोसकता है॥ ११–१३॥ जो जीव अपने परिवारमें मस्त है और सदा प्रमादसे अपने बान्धवके पोषणमें ही संलग्न रहनेके कारण तापत्रय पीड़ित होकर अपना सच्चा पुरुषार्थ खोदेता है. फिर भी उसे इस संसारसे विरक्ति नहीं होती ।.१४॥ कुटुम्बी जीवका चित्त सर्वदा धनमें डूबा रहता है। इसलिये परद्रव्य हरनेवालेको इसलोक और परलोकमें जो कष्टका अनुभव करना पड़ता है

र्थतृष्णां विसृजेत्प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः ॥ यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ १० ॥ कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् । सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥ ११ ॥ पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या भ्रातॄन्स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ॥ गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तीश्च कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥ १२ ॥ त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ॥ औपस्थ्यजैह्व्यं बहुमन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥ १३ । कुटुम्बपोषाय वियन्निजायुर्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ।। सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः । १४ ॥ वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः । प्रेत्येह चाथाप्यजितेन्द्रियस्तदशान्तकामो हरते कुटुम्बी ॥ १५ । विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ॥ यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमःप्रपद्येत यथा विमूढः॥१६॥यतो न कश्चित्क्व च कुत्रचिद्वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ॥ विमोचितुं कामदृशां विहारक्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः ॥ १७ ॥ ततो विदूरात्परिहृत्य दैत्या दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु ॥ उपेत नारायणमादिदेवं स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ॥ १८ ॥ नह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वा-

उसे जानकर भी वह इन्द्रियलम्पटतथा पूर्णकाम न होनेसे दूसरोंका द्रव्य चुराता है ॥१५॥ हे मित्रों, जो जीव इसप्रकारके लालन-पालनबान्धवमें आसक्त रहता है। वह पण्डित होकर भी किसीप्रकार आत्मपद नहीं पाता क्योंकि, स्वकीय-परकीयरूपी भेदभावनासे वह ज्ञानहीनों के ही तुल्य मोहग्रस्त हो जाता है ॥ १६ ॥ हे असुर बालको, इसप्रकार कामिनियोंके विहारके लिए क्रीडामृग और सन्तानरूपिणी बेड़ियोंसे जकड़े हुए कोई भी विषय-लम्पट जीव अपने आत्माका कहीं से कभी किसीप्रकार उद्धार नहीं कर सकता। इसलिये तुमलोग भी विषयलोलुप असुरोंका साथ दूरसे ही छोड़कर उन पुराणपुरुष नारायणकी शरण लो। क्योंकि केवल वे ही त्यक्तसंग महात्माओंके अभीष्ट मोक्ष हैं ॥ १७,–१८ ॥ हे असुरबालको, भगवान् नारायणको प्रसन्न करनेमें विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता क्योंकि, वे सभी प्राणियोंके आत्मा हैं एवं जगत्में सर्वत्र विद्यमान् हैं ॥ १९ ॥ ब्रह्मापर्यन्त समस्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थावरसे छोटे-बड़े जीव और पृथिव्यादि महा-भूतोंसे प्रादुर्भूत घटपटादि जड़ पदार्थों, आकाशादि पञ्चमहाभूतों, सत्त्वादि तीन गुणों, गुणोंकी साम्यावस्थारूपिणी प्रकृति एवं गुणवैषम्यरूप महत्तत्त्वादिमें वे अकेले परमात्मा तथा अक्षर भगवान् ही विद्यमान् है ॥ २०, २१ ॥ वे परमात्मा स्वयं तो अनिर्वचनीय और अनिर्देश्य हैं। फिर भी मायाके कारण भोक्ता तथा द्रष्टास्वरूपसे व्यापक, देहादि दृश्यरूपसे व्याप्य होकर निरूपित किये गये हैं ॥ २२ ॥ केवल अनुभवानन्दरूप उस परमात्माका समस्त ऐश्वर्य त्रिगुणात्मक सृष्टि करनेवाली मायासे आवृत्त रहता है। इसलिये उस मायाकी निवृत्ति हो जाने पर ही भगवान्का दर्शन मिलता है ॥ २३ ॥ अतः तुमलोग असुरविचार छोड़कर जगत्के समस्त जीवोंपर दया और प्रेम करो, जिससे श्रीभगवान् नारायण तुमपर प्रसन्न हो जांय ॥ २४ ॥ भगवान् अनन्तके सन्तुष्ट होनेपर फिर कौनसी वस्तु दुर्लभ है, अतः दैवयोगसे अनायास प्राप्त होजानेवाले

यासोऽसुरात्मजाः ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥ १९ ॥ परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु ॥ भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥ २० ॥ गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा ॥ एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ २१ ॥ प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम् ॥ व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥ २२ ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः ॥ माययान्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् ॥ आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥ २४ ॥ तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ॥ धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥ २५ ॥ धर्मार्थकाम इति यो भिहितस्त्रिवर्ग ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ॥ मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥ २६ ॥ ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नरसखः किल नारदाय ॥ एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां पादारविन्दरजसाप्लुतदेहिनां स्यात् ॥२७॥ श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्रा ऊचुः ॥ प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं

धर्मादिसे हमें क्या प्रयोजन, भगवान्का गुणगान तथा उनके चरणामृतका सेवन करनेवाले हमलोगोंको तो मुक्तिकी भी इच्छा नहीं होती ॥ २५ ॥ हे बालको, धर्म, अर्थ, कामरूप ये त्रिवर्ग और उसकी प्राप्तिके लिये वर्णित आत्मविद्या, कर्मकाण्ड, न्याय, दण्डनीति, तथा नाना प्रकारकी जीविकाके साधन, ये सब यदि अपने परम बन्धु भगवान् पुरुषोत्तमको आत्मार्पण करनेमें सहारा दें तो ये सब वेदोपदेश सत्य है अन्यथा तो वे सबके सब मिथ्या ही हैं ॥ २६ ॥ इस कठिनतर निर्दोष ज्ञानका आदेश नर-सुहृद नारायणने नारदको दिया था तथा यह ज्ञानोपदेश सभी जीवोंके मिल सकता है जो भगवान्के साधारण और दीन भक्तों के चरणकमलों की पवित्र धूलिमें स्नान किये रहते हैं ॥ २७ ॥ यह अनुभूत ज्ञान और पवित्र भागवतधर्म मैंने पूर्वकालमें देवऋषि नारदजीके मुखसे ही श्रवण किया था ॥ २८ ॥ उन असुरबालकोंने कहा—हे प्रह्लाद! हम तथा तुम इन दोनों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गुरुपुत्र शब्द अमर्कको छोड़ अन्य किसीको गुरु नहीं जानते, ये गुरुपुत्र बचपनसे ही हमारे निरीक्षक और शिक्षक रहे हैं ॥ २९ ॥ बाल्य समयमें सदा राजप्रासादके अन्तःपुरमें

विद्महे गुरुम् ॥ एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ।२९॥ बालस्यान्तः पुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः ॥ छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणम् ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० स० प्रह्लादानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रहनेसे तुम्हारा किसी महापुरुषसे मिलना असम्भव था तो फिर तुम्हारा नारदसे मिलन कैसे हुआ, हे भद्र ? हमलोगोंको इस सम्बन्धमें विश्वास कराने वाली कोई यदि बात हो तो उसे कहकर संशय को दूर करो ॥ ३० ॥

छठें अध्यायका सार—हे बालको, ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि वह बचपनमें ही भगवान्की भक्ति बड़े प्रेमके साथ करे। हे बालको, यह मनुष्यजन्म दुर्लभ है और पुरुषार्थका दाता है लेकिन अधिक दिनोंतक रहनेवाला नहीं है। हे बालको, मनुष्यकी पूरी आयु सौ वर्ष की है। सौमें आधी तो अजितेन्द्रिय पुरुषोंकी व्यर्थमें चली जाती है। प्रारम्भके २० वर्ष तो खेल-कूदमें ही बीत जाते हैं। बाकी आयु युवावस्थामें प्रबल मोहसे कामादिकी पूर्तिके लिये नानाविध वस्तु जुटानेमें बीत जाती है। हे बालको, ऐसा भला कौन पुरुष है कि गृहमें आसक्त रहते हुए बाल-बच्चोंके स्नेहसे अपनेको छुड़ा सके। हे बालको, संसारी प्रमत्त पुरुष रात-दिन कुटुम्बके पालन-पोषणमें लगे रहनेके कारण यह, कभी नहीं सोचता कि मेरी आयु व्यतीत हो रही है, मैं पुरुषार्थसे वञ्चित हो रहा हूँ। हे बालको, कुटुम्बके पालनमें आसक्त विद्वान् पुरुष भी आत्मज्ञानसे सम्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि गृह आदिमें आसक्ति रखनेके कारण 'यह मैं और यह अन्य' इस तरहका भेदभाव तो उसमें बना ही रहता है। हे दैत्यो, स्त्रियोंके नेत्रकटाक्षोंसे घायल हुआ कामासक्त पुरुष कभी भी संसारबन्धनसे छुटकारा नहीं पा सकता। इसलिये हे बालको, इन स्त्रियोंका संग दूरसे ही छोड़कर भगवान् नारायणकी शरण जाओ, क्योंकि विवेकियोंने मोक्षरूपसे उन्हें ही स्वीकार किया है। हे बालको, अच्युत भगवान्के सन्तुष्ट होनेपर कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों में परम पुरुषार्थ मोक्ष भी भगवान्के चरणकमलके सेवाके बिना प्राप्त नहीं होता और भगवद्भक्तोंको तो उसकी भी आकांक्षा नहीं होती। हे दैत्यो, इस निर्मल ज्ञानका उपदेश मुझे नारदजीने दिया था। प्रह्लादकी ऐसी बात सुनकर दैत्य बालकोंने पूछा—हे प्रह्लाद, हमें विश्वास नहीं होता कि तुम्हें नारदजीने उपदेश दिया है, हमें इसका विश्वास दिलाओ। छठवाँ अध्याय समाप्त❀

❀ छठवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ सप्तमोऽध्यायः ❀

[अपनी माता कयाधुके गर्भमें स्थित प्रह्लादको देवर्षि नारदजीका सदुपदेश स्वतः प्राप्त होना]

श्रीनारदजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, उन असुर लड़कोंके इसप्रकार पूछनेपर महाभागवत प्रहलादजी मेरे उस उपदेशोंको याद करते हुए आश्चर्यमें पड़े हुए उन लड़कोंसे कहने लगे ॥ १ ॥ प्रहलादने कहा—हे भ्राताओ, जब हमारे पिता तपस्या करनेके लिये मन्दराचलपर्वतपर गये तब स्वर्गमें निवास करनेवाले इन्द्रादि देवोंने असुरों के सम्बन्धमें इस प्रकार कहा—जैसे चीटियाँ सर्पको चाट जाती हैं, वैसेही सौभाग्यसे समस्त संसारको पीड़ित करनेवाले पापी हिरण्यकशिपुको उसके पापोंने ही भक्षण किया। बस उसी समय देवताओंने दानवोंसे युद्धकी भारी तैयारी की ॥ २, ३ ॥ देवोंकी इस प्रबल तैयारीकी खबर प्राप्तकर असुरोंके नेतागण देवताओंकी मार खाते हुए बड़े डरसे स्त्री, बाल-बच्चे,

नारद उवाच ॥ एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ॥ उवाच स्मयमानांस्तान् स्मरन्मदनुभाषितम् ॥१॥ प्रह्लाद उवाच॥ पितरि प्रस्थितेऽस्माक तपसे मन्दराचलम्॥ युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति॥२॥पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः ॥ पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः ॥३॥ तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ॥ वध्यमाना सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥४॥ कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान्॥ नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वेप्राणपरीप्सवः॥५॥ व्यलुम्पन् राशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः ॥ इन्द्रस्तु राजमहिषींमातरं ममचाग्रहीत् ॥ ६ ॥ नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ॥ यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥७॥ प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम्॥ मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥८॥ इन्द्र उवाच ॥ आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ॥ आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः॥९॥ नारद उवाच ॥ अयं

मित्र, बन्धु, गृह, पशु तथा भोग साधनोंका भी कुछ ध्यान न कर अपने प्राण बचानेके लिये सब तरफसे भाग निकले॥ ४, ५ ॥ विजयोत्सुक देवतागण राजमहलको लूट-पाटकर नष्ट कर दिया और इन्द्रने मेरी माता राजमहिषी कयाधुको भी पकड़ा ॥ ६ ॥ जब देवतालोग डरसे उद्विग्न हो कुररी पक्षीके तुल्य रोनेवाली मेरी माताको स्वर्ग ले जा रहे थे, तब वहाँपर भाग्यसे देवर्षि नारद आये। वे इन्द्रसे कहने लगे—हे देवराज, तुम्हें इस निरपराध स्त्रीको ले जाना श्रेय नहीं है। हे महाभाग, तुम इस साध्वी परस्त्रीको छोड़ दो ॥ ८ ॥ इन्द्रने कहा—भगवन्, इसके पेटमें देवशत्रु हिरण्यकशिपुका दुःसह वीर्य विराजमान् है। इसलिये यह प्रसवकालतक मेरे समीप रहे। इसके सन्तानको हनन करनेके बाद मैं इसे छोड़ूँगा ॥ ९ ॥ नारदजीने कहा—हे इन्द्र, इसके गर्भमें जो बालक है वह सब प्रकारसे निर्दोष, महान् भगवद्भक्त और अपने सद्गुणोंके कारण उत्कट, भगवान्का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनन्य सेवक एवं बलवान् है, उसको तुम मार नहीं सकोगे ॥१०॥ ❋यह सुनकर इन्द्रने देवर्षि नारदके वाक्यका सम्मान करके उसको मुक्तकर दिया तथा उसके पेटमें विराजमान् भगवद्भक्तकी बड़ी श्रद्धासे परिक्रमाकर देवलोक चला गया ॥ ११ ॥ तदनन्तर नारदजी मेरी माताको अपने आश्रम ले जाकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा—पुत्रि, जबतक तुम्हारा स्वामी तपस्यासे न आवे, तबतक तुम मेरे आश्रममें ही रहो ॥ १२ ॥ देवर्षि नारदजीके ऐसे कथनपर वह जो आज्ञा यह कहकर जबतक असुरपति अपनी घोर तपस्यासे नहीं आ जाय, तबतक निर्भीकतासे उन्हींके आश्रमपर रही ॥ १३ ॥ वह गर्भवती पतिव्रता अपने गर्भकी मंगलकामनासे और पतिदेवके वापस आनेपर ही प्रसव हो—इस उद्देश्यसे भी नारदमुनिकी अत्यन्त भक्तिसे सेवा-शुश्रूषा करने लगी ॥ १४ ॥ तो दयालु और समर्थ देवर्षिने मेरे लिए मेरी माताको भक्तिरूप धर्मरहस्य तथा आत्मविवेकरूप

निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ॥ त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥१०॥❋इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ॥ अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥ ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ॥ आश्वास्येहोष्यतां वत्सेयावत्ते भर्तुरागमः ॥ १२ ॥ तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरन्ति साऽप्यकुतोभया ॥ यावद्दैत्यपतिर्घोरात्तपसो न न्यवर्तत ॥१३॥ ऋषिं पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमयासती ॥ अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥१४॥ ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ॥ धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥१५॥ तत्तु कालस्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ॥ ऋषिणाऽनुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात्स्मृतिः ॥ १६ ॥ भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ॥ वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥ १७ ॥ जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ॥ फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ १८ ॥ आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ॥ अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ॥१९॥ एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ॥

ज्ञान इन दोनोंका उपदेश किया ॥ १५ ॥ परन्तु बहुत समय व्यतीत हो जानेसे एवं स्त्री स्वभावके कारण मेरी माताके चित्तसे तो वह उपदेश नष्ट हो गया, परन्तु उन ऋषिवरके विशेष अनुग्रहसे मुझे अबतक उसका स्मरण बना है ॥ १६ ॥ हे मित्रों, यदि आप मेरी बातपर विश्वास करें तो आपलोगोंको भी वह कठिन ज्ञान मिल सकता है और श्रद्धाके प्रभावसे मेरे तुल्य ही दूसरे बालक और स्त्रियोंकी बुद्धि निर्मल हो जा सकती है ॥ १७ ॥ उस विकारसमर्थ कालके प्रभावसे जैसे पेड़के फलोंमें उत्पत्ति, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, जीर्णता और नाश ये छः विकार देखे गये हैं, वैसे ही देहके भी जन्मादि छः विकार देखे जाते हैं। इन विकारोंसे आत्माका वृक्षकी तरह कुछ व्यवहार नहीं रहता ॥ १८ ॥ आत्मा तो नित्य, अपरिणामी, पवित्र, अद्वितीय, क्षेत्रज्ञ, आधार निर्विकार, स्वतःप्रकाश, विश्वका निमित्त, व्यापक, असङ्ग और पूर्ण रहता है ॥ १९ ॥ इसलिए विवेकी प्राणीका

❋ दृष्टान्त—किसी सभा में किसी धूर्त ने एक महात्मा का अपनी वाणी द्वारा कुवाच्य शब्दोंसे अपमान कर रहा था। पर महात्माजी मौन हो भगवान् का भजन करने लगे। इससे आशुतोष भगवान् उसे यथोचित शिक्षा दी जिससे वह अत्यन्त लज्जित हुआ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्तव्य है कि वह आत्माके इन परम श्रेष्ठ द्वादश लक्षणोंकी सहायतासे शरीरादिमें मोहके हेतु उत्पन्न होजानेवाले मैं तथा मेरापन इस असद्‌ भाव निश्रय छोड़ दे ।। २० ।। जैसे सोनेकी खानोंमें पाषाणलीन सोनेको उसके बाहर करनेकी युक्ति जाननेवाला सोनार उसे कुशलताके साथ पृथककर लेता है, वैसे ही आत्मरूपको जाननेवाला अध्यात्मज्ञानी आत्मयोग साधन से देहरूपी क्षेत्र में ही ब्रम्हत्व प्राप्त कर लेता है ।। २१ ।। प्राचीन कपिलादि आचार्योंने मूलप्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार और पञ्चातन्मात्राएँ ये आठ प्रकृति, उनके सत्व रज, तम, ये तीन गुण, मनके साथ एकादश इन्द्रियाँ तथा इन्द्रियोंके शब्दादि पाँच विषय सब मिलाकर सोलह विकृति, उन सबमें साक्षीरूपसे अनुगत एक ही जीवका होना बतलया है ।। २२ ।। सबका समवाय यह देह है—जो जङ्गम तथा स्थावररूपसे दो तरहका होता हैं । इस शरीर में अन्तःकरण तथा इन्द्रिय आदि जड़ पदार्थों का यह आत्मा नहीं है—यह आत्मा नहीं है इस तरह निषेध करते हुए सतत आत्मानुसन्धान करना चाहिये ।। २३ ।। जैसे मणिमालामें सभी मणियों में डोरी अनुगतरूप से है पर मणियोंसे डोरी एकदम भिन्न वस्तु है इस

अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ।।२०।। स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ।। क्षेत्रेषु देहेषु तथात्मयोगैरध्यात्मविद्ब्रह्मगतिं लभेत ।। २१ ।। अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ।। विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ।। २२ ।। देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्तुरिति द्विधा ।। अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ।। २३ ।। अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशतात्मना ।। सर्गस्थानसाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ।। २४ ।। बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तितिरि वृत्तयः ।। ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ।।२५।। एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ।। स्वरूपमात्मनो बुध्येद्गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ।। २६ ।। एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः ।। अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ।। २७ ।। तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ।। बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ।। २८ ।। तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ।। यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ।। २९ ।। गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ।। सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च

तरहके विवेक से युक्त निर्मल मनसे संसारकी सृष्टि स्थित आदिका विचार करते हुए धीरजके साथ आत्मविमर्श करना चाहिये ।। २४ ।। जागृति, स्वप्न तथा सुषुप्तरूपी ये तीनों वृत्तियाँ बुद्धिकी है, इनका जो अनुभव करता है वही स्वामी तथा सर्वसाक्षी आत्मा है ।। २५ ।। जैसे पुष्पकी गन्धसे उसके आधार वायु का ज्ञान होता है । वैसे ही त्रिगुणात्मक बुद्धिकी कर्मजनित तथा परिणत होनेवाली तीन अवस्थाओंसे इनके साक्षीभूत आत्मस्वरूपका ज्ञान प्राप्त करे ।।२६।। बुद्धिमूल ही संसार है क्योंकि बुद्धिके सब आतिगुणत था कर्मों से ही संसारकी प्रतीति होती है, इसलिए यह संसार स्वप्नवत् झूठा है ।। २७ ।। इसलिए तुम लोग त्रिगुणात्मक कर्मोंका बीजरूप अज्ञानको नाश करनेवाले और जाग्रदादि समस्त बुद्धिवृत्तियोंको समाप्त करनेवाले योगको साधन करिये ।। २८ ।। आत्मानुभवके लिये प्रतिपादित हजारों उपाय जिन साधनोंसे भगवान् विष्णुमें विना प्रयास भक्ति उत्पन्न हो उनका योग्यरीतिसे अनुष्ठान करें । यह उपाय साक्षात् भगवान्‌ने ही बतलाया है ।।२९।। अपने गुरुदेवकी सेवा करे । अपनेको प्राप्त सभी वस्तुएँ भगवान्‌की भक्तिसे अर्पण करे। साधु भक्तोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साथ करे,परमात्माकी उपासना करे, भगवत्कथामें श्रद्धा रक्खे, भगवान्‌के गुण एवं कर्मोंका कीर्तन करे, उनके दिव्य चरणकमलोंका ध्यान करते रहना तथा भगवन्मूर्तियोंका दर्शन और पूजन आदि करना इन साधनोंसे भगवान्‌में दृढ़ अनुराग उत्पन्न हो जाता है ॥ ३०,३१ ॥ भगवान् ईश्वर सभी प्राणियोंमें विद्यमान् रहते हैं ऐसी भावना समस्त जीवोंके मनमें आदरभावसे करें और उनकी इच्छाओंको भलीभांति पूर्ण करें ॥३२॥ जिन जीवोंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन छः शत्रुओंको तथा इन्द्रियोंको जीता है, वे लोग परमात्मा में ऐसी ही भक्ति करते हैं, इसीसे भगवान् वासुदेवमें उनका असाधारण प्रेम हो जाता है ॥३३॥ जब मनुष्य भगवान्‌के लीला-शरीरोंके द्वारा किये हुए दुष्ट दमन, शिष्ट-पालन आदि कार्य, भक्तवात्सल्यादि गुण और पराक्रमको श्रवणकर परमानन्दके आधिक्यसे रोमाञ्चित तथा आँसुओंसे गदगद कण्ठ हो मारे उत्कण्ठाके जोर-जोरसे गाने, रोने और नृत्य करने लगता है ॥ ३४ ॥ जब वह ग्रहग्रस्तकी भाँति कभी हँसता, कभी रोता, कभी चिन्तन करता, कभी लोगोंकी वन्दना करता, और भगवान्‌में तन्मनस्क हो जाने से लज्जाको त्यागकर

॥ ३० ॥ श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ॥ तत्पादाम्बुरुहध्यानात्तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ॥ इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत ॥३२॥ एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ॥ वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥ ३३ ॥ निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ॥ यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ ३४॥ यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ॥ मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥ ३५ ॥ तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ॥ निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥ ३६ ॥ अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ॥ तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥ ३७ ॥ कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत्सतः ॥ स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥३८ ॥ रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा

बारबार श्वास खींचता हुआ हेहरे, हेजगत्पते, हेनारायण, ऐसा रटता है ॥ ३५ ॥ तब उत्कट भक्तिकी महिमासे वासनाबीजोंके दग्ध होने तथा मन एवं देहके भगवद्भावमें तन्मय हो जानेसे वह जीव समस्त कुनियमोंसे मुक्त होकर परमात्मा विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ ३६ ॥ इस जगत्‌में भगवान्‌का चिन्तन ही पाप मनवाले जीवोंको जगत्चक्र से छूटनेवाला है। ज्ञानी लोग उसे ही ब्रह्मनिर्वाणरूप परमानन्द बतलाते हैं। इसलिए तुम लोग अपने चित्तमें उन परमेश्वरको भजो ॥ ३७ ॥ दैत्यबालकों, जो परमात्मा अपने हृदय में आकाशकी भाँति सर्वदा स्थिर विराजते हैं, उनकी उपासनामें क्या विशेष प्रयास करना होता है वे सामान्यतः सभी मनुष्योंके सुहृद् और आत्मा हैं उन्हे त्यागकर अन्य सांसारिक विषयोंके संग्रह करनेसे क्या लाभ होगा ॥ ३८ ॥ द्रव्य, स्त्री पशु, पुत्रादिबन्धुवर्ग, घर, भूमि, हाथी, खजाना, नाना प्रकारका ऐश्वर्य भोग सभी क्षणिक जीनेवाले आमीकी क्या भला कर सकते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं; वे तो स्वतः चञ्चल हैं ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार यज्ञादि के पुण्य प्रताप से प्राप्य स्वर्गादि लोक भी नाशवान् हैं और तारतम्य होने के कारण दुःख देता है ! इसलिये वे दोष रहित नहीं माने जा सकते। अतः जिनमें कोई दोष न देखा गया न सुना ही गया है उन ईश्वरको आत्म प्राप्तिके लिये निष्काम भक्तिके साथ भजो ॥ ४० ॥ अपनेको महान् पण्डित लगानेवाला मनुष्य इस संसारमें जिस उद्धेश्यसे बार बार कर्म करता है, उसे निश्चय ही उसके उलटा फल मिलता है ॥ ४१ ॥ जगत्में सभी कर्म तत्पर जीवोंके सङ्कल्प सुखको और दुःखकी हानिके लिये होता है। परन्तु कामनासे प्रेरित होकर कर्म करनेसे उसे सदा दुःख केवळ उठाना रहता है। मनुष्य कामनाशून्य अवस्थामें सुखी रहता है अब कामनाओंसे वह दुःख ही पाता है ॥ ४२ ॥ जिस शरीरके लिये मनुष्य जगत्में काम्य कर्मोंके द्वारा नाना तरहके विषय भोगोंकी कामना करता है, वह शरीर तो कुकुर आदिके खाने लायक और

महीकुञ्जरकोशभूतयः ॥ सर्वेऽर्थकामाः क्षणभङ्गरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः ॥३९॥ एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ॥ तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥ ४० ॥ यदर्थ्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः ॥ करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ॥ ४१ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः ॥ सदाप्नोतीहया दुःखमनीहायासुखावृतः ॥ ४२ ॥ कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पुरूषः ॥ स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ॥ ४३ ॥ किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः ॥ राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥ ४४ ॥ किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सहदेहेन नश्वरैः ॥ अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानन्दसहादधेः ॥ ४५ ॥ निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान्देहभृतोऽसुराः ॥ निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥ ४६ ॥ कर्माण्ययारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना ॥ कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥ ४७ ॥ तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः ॥ भजतानीहयाऽऽत्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥ ४८ ॥ सर्वेषामपि भूताना हरिरात्मेश्वरः प्रियः ॥ भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥ ४९ ॥ देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च ॥

शीघ्र नष्ट होनेवाला भी है। शरीर बारबार मिलता तथा अलग होता रहता है ॥ ४३ ॥ फिर तो शरीरसे दूर रहनेवाले मोहके अधार पुत्र, धन, घर, राज्य, खजाना, हाथी, अमात्य सेवक एवं विश्वासपात्र मित्रोंके बारेमें क्या कहना है वे तो सर्वथा पराये हैं ॥४४॥ इस निस्सार विषयोंसे आत्माको क्या प्रयोजन ये सब तो इस शरीरके साथ ही नाश हो जानेवाले और पुरुषार्थ मालूम होनेपर भी नित्यानन्दमय आत्माके लिये अनर्थकर ही होते हैं ॥४५॥ हे दैत्यबालको, थोड़ा विचार करो तो अपने कर्मवश गर्भाधान आदि अवस्थाओंमें कष्ट भोगनेवाले जीवको इस जगत्में कितना सुख मिलता है ॥ ४६ ॥ जीव आत्माके साथ रहनेवाले लिङ्गदेहसे तरह तरहके कर्म करता तथा उन कर्मों के निमित्त बार बार देह ग्रहण करता है—ये कर्म और शरीर दोनों ही अज्ञान मूलक हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये अर्थ, धर्म और काम जिसके आश्रित हैं उस आत्मा ईश्वर हरिका निष्काम भावसे भजो ॥ ४८ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्योंकि वे परमात्मा ही अपने निर्मित पञ्चभूत एवं महत्तत्वादिसे प्रादुर्भूत सब जीवोंके आत्मा, प्रिय स्वामी और अन्तर्यामी हैं ॥ ४९ ॥ हे बालको, देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, चाहे कोई भी हो श्रीमुकुन्दके चरणोंका भजन करनेसे वह हमारे जैसा ही सुखलाभ कर सकता है ॥ ५० ॥ हे असुरपुत्रो उन मुकुन्दको सन्तुष्ट करनेमें ब्राह्मण होना देवता होना, ऋषि होना, सदाचार, बहुतजानना या दान, तप, यज्ञ, शौच, व्रत, ये कोई भी समर्थशाली नहीं होते। वे तो निर्मल भक्तिभाव से ही सन्तुष्ट होते हैं। उसको छोड़ सब

भजन्मुकुन्दचरणं स्वस्ति मान्स्याद्यथा वयम् ॥५०॥ नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽसुरात्मजाः ॥ प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५१॥ न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च। प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥५२॥ ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥५३॥ दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ॥ खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥५४॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ॥ एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥५५॥ इति श्रीम० म०पु०स० दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

बातें ढोंगमात्र हैं ॥ ५१, ५२ ॥ इसलिए हे असुरगण, तुम लोग समस्त प्राणियोंको अन्यसमान जानकर सर्वभूतात्मा ईश्वर भगवान् हरिकी ही उपासना करो ॥ ५३ ॥ उन भगवान्में भक्ति करनेसे कितने ही असुर, यज्ञ, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, व्रजवासी, पक्षी, पशु एवं अनेक पापी प्राणी भी भगवद्भावको प्राप्तकर चुके हैं ॥ ५४ ॥ जगत्में हरेक मनुष्यका सबसे बड़ा यही स्वार्थ है कि वह सर्वत्र भगवान् ही का दर्शन करे और गोविन्दमें निरन्तर अनन्य भक्ति करता रहे ॥ ५५ ॥

सातवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, दैत्य बालकोंके पूछनेपर प्रहलादने कहा—हे दैत्यपुत्रो, एक समयकी बात है कि मेरे पिताजी तपस्या करनेके लिये मन्दराचल पर्वतपर चले गये। इधर देवताओंने उचित समय देखकर असुरोंके ऊपर चढ़ाई कर दी। लड़ाईमें असुरोंकी सारी सम्पत्ति देवताओंने लूट ली। अन्तमें राजाकी पटरानी मेरी माता कयाधुको जब पकड़कर इन्द्र ले चलने लगे तब अकस्मात् नारदजी वहाँ पहुँचकर इन्द्रसे कहने लगे—हे इन्द्र, इस अबलाको ले जाना तुम्हें शोभा नहीं देता। हे देवेन्द्र, तुम इसे छोड़दो, यह पतिव्रता और परस्त्री है। सबसे बढ़कर तुम्हारी प्रसन्नता की तो बात यह है कि इसके पेटमें ऐसा बच्चा है जो भगवान्का परम सेवक है, वह इतना बलवान् है कि तुम्हारे मारे मर नहीं सकता। नारदजीकी बात सुनकर इन्द्रने उसे छोड़ दिया और उसके पेटमें विद्यमान् मुझ भगवद्भक्तकी प्रदक्षिणा करके चले गये। तदनन्तर मेरी माँको नारदजी अपने आश्रममें ले गये उसको वहाँ धीरज दिया। उन्होंने कहा—पुत्रि, जबतक तेरा स्वामी वापिस नहीं आता तबतक तू यहीं रह। मेरी मांने अपने गर्भकी रक्षाके लिये नारदजीकी परम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भक्तिके साथ सेवा की। नारदजीने मेरी माँका शोक दूर करनेके लिये मेरे लिये धर्मका असली तत्व तथा आत्मानात्मरूप निर्मल ज्ञानका मेरी माँको उपदेश दिया। हे दैत्यपुत्रो, तपस्या पूरी करके पिताजीके लौटनेपर मेरी माँ तो उस उपदेशको भूल गई, लेकिन मुझे वह ज्योंका त्यों याद है। हे मित्रो, आसक्ति छोड़कर भगवान् नारायणकी दृढ़ भक्ति प्राप्त होना ही इस लोकमें मनुष्यका उत्तम स्वार्थ है। सातवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अष्टमोऽध्यायः ❀

[नृसिंहरूप धारीने असुरराज हिरण्यकशिपुका हनन करना और देवोंने स्तुति किया था यह वर्णन]

श्रीनारदजी ने कहा—हे युधिष्ठिर, प्रहलादकी बात सुनकर उस समयसे सभी असुर पुत्रोंने निर्दोष होनेके कारण उसे ही स्वीकार किया तथा अपने गुरुजीकी पढ़ाईकी तरफ ध्यान देना एक दम त्यागा ॥ १ ॥ तब आचार्यपुत्रने उन सबकी बुद्धि केवल भगवानकी ही तरफ लगी देखकर कम्पायमान भावसे तत्क्षण सब समाचार असुरपतिको जाकर कह सुनाया ॥ २ ॥

नारद उवाच ॥ अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ॥ जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥१॥ अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् ॥ आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥ २ ॥ श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम् ॥ कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे ॥ ३ ॥ क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् ॥ आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥ ४ ॥ प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम् । सर्पः पदाहत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलभेदकराधम ॥ स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाऽद्य

लड़केके इस अप्रिय और असह्य अविनयको श्रवणकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी सब देह मारे क्रोधके काँपने लगी तथा उसने मनमें प्रहलादका हनन करनेका निश्चय किया ॥ ३ ॥ इसके बाद अपने समक्ष बहुत विनम्रतासे हाथ जोड़े खड़े और अनादरके अयोग्य तथा जितेन्द्रिय प्रहलादका निष्ठुर वाणीसे अपमान कर वह क्रूर स्वभाववाला असुर लात खाए सर्पकी तरह लम्बी सांस त्यागता हुआ उनकी तरफ अतिक्रूर और टेढ़ी दृष्टिसे देखकर बोला ॥ ४, ५ ॥ हे दुष्ट, मन्दमते, कुलभेदी अधम, तुम बड़े निडर और मेरी आज्ञाका न माननेवाला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पापी है तुमको मैं आज यम-घर भेजता हूँ ॥ ६ ॥ अरे मूर्ख, मेरे क्रोधित हो जानेपर लोकपाल सहित सारे लोक कम्पायमान होते हैं, किसके सहारे भय रहित हो मेरे कथनका अपमान किया ॥ ७ ॥ प्रहलादने कहा—हे राजन्, जिन ईश्वरने ब्रह्मा आदिसे बड़े छोटे स्थावर-जंगम जीवोंको अपने आधीन किया, वे भगवान् मेरा ही केवल नहीं आप और दूसरे सब बलियोंके भी बल हैं ॥ ८ ॥ वह शक्तिशाली भगवान् ही काल हैं, वे ही इन्द्रिय, मन, धैर्य, शरीर बल और इन्द्रिय रूप हैं, वे ही तीनों गुणोंसे सब संसारको अपने पराक्रमसे नियन्त्रण करनेवाले ईश्वर निर्माण रचा करते हैं ॥ ९ ॥ हेपिता, अपना आप यह आसुरीरूप छोड़ दें। अपने चित्तको सम बनाइये, इस लोकमें संयमहीन और कुत्सित रास्तेका सहारा ग्रहण करनेवालोंके मन को छोड़ तथा शत्रुता पात्र नहीं, इसलिए समत्व रहना ही भगवान् अनन्तकी सबसे महान् आराधना है ॥ १० ॥ कुछ जीव अपना सब चुरानेवाले छः इन्द्रिरूप अरियोंका विना विजय स्वयं

यमक्षयम् ।. ६ ॥ क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ।. तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किंबलोऽत्यगाः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ न केवलं मे भवतश्च राजन्स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ॥. परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रनीताः ॥ ८ ॥ स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजः सहः सत्त्वबलेन्द्रियात्मा ॥ स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥९॥ जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ॥ ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि ह्यनन्तस्य महत्समर्हणम् ॥ १० ॥ दस्यून्पुरा षण्णविजित्य लुम्पतो मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश ॥ जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच । व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे ॥ मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन्ननु स्युर्विक्लवा गिरः ॥ १२ ॥ यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ॥ क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ।। १३ ॥ सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ॥ गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमी-

ही दश दिशाओंको जीत लिया यह जानते हैं। किन्तु जो सज्जन जीव जितेन्द्रिय, ज्ञानी तथा सब जीवोंमें एकहीरूप मानते हैं उनके तो ज्ञानहीनतासे उत्पन्न काम क्रोध आदि शत्रु भीन हीं रह पाते तो दूसरे अरि किस तरह रह जाते ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा—अरे मन्दमते, तुम इसप्रकार जो बहुत बात करते हो उससे जाना जाता है कि तेरा मरण आ गया क्योंकि जो जीवका मरणकाल आता है उससे ऐसी कथाएँ होती रहती हैं ॥ १२ ॥ अरे मन्दभाग्य, मेरेको छोड़कर जिस किसी दूसरे जगदीश्वरकी बातको कह रहा है कहो तो वह कहाँ है प्रहलादने कहा—वह सब जगह है। इस बातपर हिरण्यकशिपुने कहा—वह यदि सब जगह है तो इस स्तम्भमें क्यों नहीं दिखाई देता, उधर प्रहलादने देखकर कहा—दिखता तो है ॥ १३ ॥ उस तरफ देखनेपर भी कुछ नहीं उसको दिखा तो वह महान् क्रोधसे बोला—अरे बहुत तुम प्रशंसा करते हो अतः मैं तुम्हारा मस्तक अभी शरीरसे पृथक् कर देता हूँ। जिसको तुम अपना मित्र समझते हो देखूँ आज वह हरि कैसे तुम्हारी रक्षा करता है ॥१४॥ इसप्रकार क्रोधसे अपने भगवान्भक्त लड़केके बार-बार हृदयको कष्ट पहुँचाकर वह महा-असुर आप तलवारको तान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने राजसिंहासनसे अलग कूद उसने बड़े वेग से उस स्तम्भमें घूँसेको मारा ॥ १५ ॥ इसलिए उसी क्षण उस स्तम्भमें अत्युत्कट महान् शब्द हुआ जिससे यह प्रतीत होता था कि मानो सब ब्रह्मांडांडकटाह फट गया, उस भयंकर शब्दको अपने-अपने नगरोंमें श्रवणकर ब्रह्मा आदि लोकपालोंने अपने लोकोंका नाश ही होना जाना ॥ १६ ॥ स्वयं पुत्रके हननार्थ बड़े प्रसन्नतासे संलग्न हो हिरण्यकशिपुने अपूर्व विचित्र शब्द •सुन लिया, जिससे सब दैत्ययूथपति कम्पायमान हो गए। पर उस सभामें उस शब्दको करनेवाला कोई जीव नहीं दिखा ॥ १ ॥ उस वक्त भगवान् अपने प्रहलाद तथा ब्रह्माके वाक्योंको सत्यरूपता एवं सब जीवोंपर अपने व्यापकत्वके दिग्दर्शनके लिए सभाके अन्दर उसी खम्भेमेंसे महान् अद्भुत स्वरूप ग्रहणकर उत्पन्न हुए जो स्वरूप न मृग न मनुष्यका था ॥१८॥ हिरण्यकशिपुने भी चारो तरफ देखते हुए उस अद्भुत प्राणीको खम्भेसे निकलते हुए देख हिरण्यकशिपुने कहा—अहो

प्सितम् ॥१४॥ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ॥ खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्स्तम्भं तताडातिबलः स्वमुष्टिना। १५॥
तदैव तस्मिन्नदोऽतिभीषणो बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ॥ यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामाप्ययमङ्ग मेनिरे ॥ १६ ॥ स
विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ॥ अन्तःसभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १७ ॥ सत्वं विधातुं
निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ॥ अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ १८ ॥ स सत्त्वमेवं परि-
ताऽपि पश्यन्स्तम्भस्य मध्यादनु निर्जिहानम् ॥ नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥१९॥ मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो
नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ॥ प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥ २० ॥ करालदंष्ट्रं करवालचञ्चलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटी-
मुखोल्बणम् ॥ स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥ २१ ॥ दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यमम् ॥
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥ २२ ॥ दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ॥ प्रायेण मेऽयं हरि-

न तो यह मनुष्य है तथा न पशु ही है पर यह नृसिंहस्वरूपको ग्रहण करनेवाला कौन पुरुष है ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपु इसी विचार में था तभी भगवान् उसके सामने नृसिंहरूपमें उत्पन्न हुए। उनका स्वरूप बड़ा डरावना था। उनकी आँख तपेहुए सोनेके तुल्य प्रदीप्त तथा डरावनी थी। मुखसे जंभाई लेनेसे उन्हींके मुखका रोम इधर-उधर हिलता था ॥ २० ॥ उनकी दाढ़ें बड़ी तीखीं तथा जीभ तलवार सदृश चञ्चल एवं छूरे के तरह तीक्ष्ण थीं। वक्र भृकुटिसे सम्पन्न होनेसे वह मुख बहुत भयंकर मालूम होता था। उनके कान स्तब्ध हो ऊपरकी तरफ खड़े थे, उनका विस्तृत मुख तथा नासिका गुफाओं के तुल्य विचित्र दिखाई देती थीं, उनके फटे हुए होठसे बड़ो दारुणी मालूम होती थी ॥ २१ ॥ उन प्राणीका विस्तृत देह जैसे स्वर्ग से संलग्न थी, उनकी गर्दन नाटी तथा स्थूल थी। उनकी छाती लम्बी थी, पर उदर बहुत दुर्बल था, उनके विस्तृत देहपर चन्द्रकिरणके तुल्य सफेद रोमावली फैली थी। सब तरफ से

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सैकड़ों भुजाएँ मनोहर थीं, उनके नाखून ही आयुध थे ॥ २२ ॥ भगवान् नृसिंहकी वह आकृति बड़ीही दर्दनाक थी उसके समीप कोई भी जानेका उद्योग करता नहीं था। जिसने अपने अन्य नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रोंसे दैत्य तथा दानवोंको पलायन कराया था, उन श्रीभगवान् नृसिंहके बारेमें हिरण्यकशिपुने विचारा, हो सकता है कि महामायावी भगवान्ने ही मेरे हनन के लिये इस ढोंगका निर्माण किया पर उसके इस साहससे क्या मेरा विगड़ता है ॥२३॥ ऐसी वाणी कह वह दैत्यराज आश्चर्यजनक सिंहनाद करता हुआ हाथ में गदा लिये भगवान् नृसिंह की तरफ आया। पर जैसे—पतङ्ग पक्षी अग्निमें गिरकर अलक्षित होता है तद्वत् ही नृसिंहकी कान्तिमें पड़कर वह लुप्त हो गया ॥ २४ ॥ उन उत्कृष्ट सात्विककान्तिमय भगवान्के लिये कोई यह आश्चर्यकी बात न थी, क्योंकि उन्होंने प्रथम सृष्टिके आरम्भमें अपनी कान्तिसे प्रलय समयके अन्धकारका भी पान किया था। तो उस महादैत्यने झपट तथा बहुत क्रोधित हो नृसिंहको महान् त्वरासेगदासे मारा ॥ २५ ॥ इसप्रकार आक्रमण करने पर भगवान् गदाधरने उसको गदाके साथ इसरीतिसे पकड़ा जैसे महानागको गरुड़ पकड़ खेलखाल करते हुए

णोरुमायिना वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥ एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ॥ अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमा यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥ २४ ॥ न तद्विचित्रं खलु सत्त्वधामनि स्वतेजसा यो नु पुरापिबत्तमः ॥ ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥ २५ ॥ तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाऽग्रहीत् ॥ स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥ २६ ॥ असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ॥ तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ॥ पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥ २७ ॥ तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ॥ कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥ २८ ॥ विष्वक्स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ॥ द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥ २९ ॥ संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकरालोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया ॥ असृ-

गरुड़के पंजेसे मुक्त हुए सर्पके तुल्य उनके हाथसे वह असुर भाग गया ॥२६॥ हे भारत, हिरण्यकशिपुने जिनका निवासस्थान हरण किया था, वे सब बादलोंमें छिपे हुए लोकपाल, देवगण, यह सब कथा देखते थे। उन्होंने भगवान्के हाथसे उसका मुक्त होना उचित न समझा। महादैत्य हिरण्यकशिपुने भी भगवान्के हाथसे मुक्त हो जानेपर उनको अपने बलसे कम्पायमान जाना। अतः वह संग्राममें श्रमरहित हाथमें खड्ग-ढाल ग्रहणकर बड़े त्वरासे उनकी तरफ दौड़ा ॥ २७ ॥ बाज-पक्षीके सदृस वेगशाली ढाल तलवारके पैतरोंको रखते ऊपर-नीचे उछलते-कूदते हुए उस दैत्यको बड़े वेगधारी भगवान्ने ऊँचे स्वरसे बड़े जोर से दर्दनाक अट्टहास कर उसको पकड़ा। उनके सिंहगर्जनसे उसकी आँख बन्द हो गई ॥२८॥ जैसे साँप मूसेको पकड़ता है तद्वत् ही उसको भगवान्ने पकड़कर अत्यन्त आतुरतासे उनकी जालसे मुक्त होनेके लिये सब तरफसे शरीरके अङ्गको फटकारते हुए हिरण्यकशिपुको को जिसकी त्वचा इन्द्रवज्रसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी नहीं छिल सकी थी, सभाद्वारमें अपनी जाँघोपर गिराकर अपने नखोंसे खेल कूदहीमें फाड़ दिया। जैसे पक्षी गरुड़ महान् विषधारी सर्पको टुकड़े २ करदेता है ॥ २९ ॥ क्रोधसे जिनके डरावनी आँखें बहुत दुष्प्रेक्ष्य हो रही थीं जो बाये हुए मुखके प्रान्तभागोंको अपनी जीभसे स्वाद ले रहे थे, रक्तके बूँद गिर जानेसे जिनके मुख और गरदनके केश लाल हो गये थे, गजराजका हननकर गलेमें आंतों की पुष्पमाला धारण किए सिंहके तुल्य मालूम हो रहे थे। उस भगवान् नृसिंह अपने नखके अंकुरोंसे जिसके हृदयको विदीर्णकर भूमिपर हिरण्यकशिपुको गिरा शस्त्रको तान अपनी तरफ आते हुए उसके नौकरों और सहस्रों अनुचरों का अपने भुजदण्डरूपी सेनाओंके बलसे नखरूप शस्त्रोंसे सब तरफसे मार दिया ॥ ३०,३१ ॥ हे राजन्, उससमय उन भगवान् नृसिंहके सटावधूतके हननसे आकाशके बादल छितर बितर होने लगे। उनके आँखोंकी प्रदीप्ततम तेजसे सब तेजहीन ग्रहगण हो गये। उनके श्वासकी लहरोंसे समुद्र

ग्लवाक्तारुणकेसराननो यथाऽन्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥ ३० ॥ नखाङ्कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ॥ अहन्समन्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान्सहस्रशः ॥ ३१ ॥ सटावधूता जलदाः परापतन् ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ॥ अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभुर्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥ ३२ ॥ द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदाऽतिपीडिता ॥ शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥ ३३ ॥ ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे नृपासने संभृततेजसं विभुम् ॥ अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥ ३४ ॥ निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥ ३५ ॥ तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां संकुलमास नाकिनाम् ॥ सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः

में तूफान उत्पन्न हुआ और उनके सिंहनादसे कम्पायमान सब दिग्गज चिल्लाने लगे ॥ ३२ ॥ उन भगवान्के बालोंसे भिड़न्त कर ऊँचे उड़ते हुए विमानोंसे परिपूर्ण स्वर्ग जैसे अपनी जगहसे दूर हो गया, और उनके पैरकी ताडनसे भूमि बहुत दुखित हुई। उनके प्रबल वेगसे सब पर्वत कूद २ कर गिरने लगे तथा उनकी कान्तिसे आकाश और दशों दिशायें कान्तिहीन हो गयीं ॥ ३३ ॥ उस वक्त भगवान्का कोई भी विरोधी उनके सामने नहीं दिखाता था, तब भी वे बहुत क्रुद्ध थे। अतः अपने भक्तके ऐश्वर्यको जानकर जब आश्चर्यसे वे उस सभामें राजसिंहासनपर बैठे तो परिपूर्णतेजस्वी और विकरालशरीरधारी उन नृसिंहकी सेवा शुश्रूषामें भयसे कोई भी नहीं आया ॥ ३४ ॥ हे राजन्, शिरोवेदनाके तुल्य तीनों लोकोंको कष्ट देनेवाला वह आदिदैत्य हिरण्यकशिपु भगवान्के हाथसे मारा गया यह श्रवणकर बड़ी प्रसन्नतासे विकसित मुखमण्डलवाली वे सुरपत्नियें बारबार उनपर फूलकी वर्षा करने लगीं ॥ ३५ ॥ उससमय उन भगवान् नृसिंहके दर्शनकी इच्छावाले देवोंके विमानोंसे आकाशमण्डल सब परिपूर्ण हो गया। और देवोंके सुरानक तथा दुन्दुभी बाजे आदि बजने लगे, प्रधान गन्धर्वोंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनका गुणानुवाद किया तथा अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ३६ ॥ * उसीसमय हे तात, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, सर्प, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष किंपुरुष, वेताल, सिद्ध, किन्नर, सुन्दर, कुमुद आदि विष्णुपार्षद वहाँपर आए तथा सिरपर अञ्जलि जोड़ उनके समीप ही खड़े होकर सिंहासनपर स्थित हुए तीव्रतेजस्वी भगवान् नृसिंहकी पृथक् २ स्तुति करने लग गए ॥ ३७–३९ ॥ ब्रह्माने कहा—जिनकी शक्तिका कुछ भी पारावार नहीं है, जो अद्भुत वीर्यशाली और पवित्र कार्यको करनेवाले हैं, जो अपनी मायासे ही सत्वादि गुणोंसे सब संसारकी उत्पत्ति, स्थिति लय करता है, उस अव्ययात्मा अनन्तको प्रणाम है ॥ ४० ॥ श्रीरुद्रने कहा—हे भक्तवत्सल, आपके क्रोधका काल तो प्रलयका समय होता है, आपने अभी तो साधारणतासे दैत्यका ही हनन किया इसका लड़का आपकी शरणमें है, इस प्रियभक्त की रक्षा करें ॥ ४१ ॥ इन्द्रने कहा—हेपरमपुरुष, मेरी पालनाकर

स्त्रियः ॥ ३६ ॥ ❀ तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः ॥ ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥ ३७ ॥ मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः ॥ यक्षाः किंपुरुषास्तात वेतलाः सिद्धकिन्नराः ॥ ३८ ॥ ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः ॥ मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ॥ ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥ विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥ ४० ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ॥ तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ॥ कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं नस्तपः परम-

यज्ञ भाग अपना फिर लिया आपके रहनेकी जगह हमारे हृदयकमल इस दैत्यके आक्रान्तसे सूखसे गये, उनका आपने फिर भक्षण कराया । हे नाथ, जो आपकी शुश्रूषताको चाहनेवाले हैं, उनकी दृष्टिमें इन कालग्रस्त संगीन विषयका क्या दाम है, हे नृसिंहदेव, वे मुक्तिको भी बहुत अधिक नहीं जानते, तो दूसरे ऐश्वर्योंके बारेमें कथन क्या है ॥ ४२ ॥ ऋषियोंने कहा—हे

* दृष्टान्त—एक राजा अपनी सेना और मन्त्रिगणोंके साथ दिग्विजय के लिये जारहा था। रास्ते में उसकी सेना पीछे रह गयी। मन्त्री और राजा तेजी से घोड़े पर चढ़े जारहे थे। संयोगवश उस घोड़े का पैर फिसल गया जिससे उनके शिर में चोट आगई। यह देख मन्त्रीने कहा—'जो ईश्वर करता है वह उचित हो करता है। यों सुन राजाने क्रोधके वशीभूत हो मन्त्री से कहा-तुम्हारा हमारे राज्य से अबसे सम्बन्ध विच्छेद हो गया। यों सुन सविनय हो प्रणाम कर चला गया। ज्योंही वह आगे चला कि उसी जंगल में काली के मन्दिर में बड़े समारोह से पूजन आदि हो रहा था इनको देख वहाँ के लोगोंने कहा कि भगवतीने इसे भेजा है अतः इसे ही बलिदान करो। वे सब उनको लेकर उस मन्दिरमें लेगये। ज्यों ही खड्ग से उसकी गर्दन अलग करने लगे कि एक ने कहा यह बलियोग्य नहीं है इसके सिरमें चोट है। इससे उनकी जान बची। इधर मन्त्रीको बुलवाकर उसी पदपर नियुक्त किया। राजाने भी जान लिया ईश्वर बिना संसारका पता नहीं मिल सकता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदिपुरुष, जिससे आपने अपने लीन इस संसारका फिरसे निर्माण किया, उस अपने तेजरूप उत्कृष्ट तपकी ही हमको आपने शिक्षा दी। शरण्यपाल, इस नीच दैत्यने उस तपका नाश किया। उसके विपालनके लिये यह नृसिंह देह ग्रहणकर फिर उस तपकी आपने स्थापना की ॥४३॥ पितृगण बोले—हे प्रभो, इस नीच दैत्यने हमारे लड़कों द्वारा किये श्राद्धोंको बलपूर्वक आप भोग करता था तथा तीर्थोंमें दिये हुये तिलोदकका भी पान करता था, इसलिए आज जिन्होंने अपने नखोंद्वारा उसके उदररूपी वपाको विदीर्णकर हमारे पिण्डादिकोंको मानो उसके उदरसे पृथककर हमको पुनः वापस दिया, उन अखिल धर्मपालक भगवान् नृसिंहको नमस्कार है ॥ ४४ ॥ सिद्धगण बोले—हे नृसिंह, जिस खलने अपनेयोग और तपोबल से हम लोगोंकी हमसे योगसिद्ध गतिका भी हरण किया, अनेक तरहके अभिमानोंसे परिपूर्ण उसको जिन्होंने अपने नखोंसे विदीर्ण कर दिया, ऐसे उन नृसिंहके लिए प्रणाम है ॥ ४५ ॥ विद्या

मात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ॥ तद्विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४३ ॥ पितर ऊचुः
श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ॥ तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्म-
गोप्त्रे ॥ ४४ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ॥ नानादर्पं तं नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो
नृसिंह ॥ ४५ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ॥ स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः
स्म नित्यम् ॥ ४६ ॥ नागा ऊचुः ॥ येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥ तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोस्तु ते ॥ ४७ ॥ मनव
ऊचुः ॥ मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधिकिङ्करान् ॥४८॥
प्रजापतय ऊचुः । प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ॥ स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्ते-
ऽवतारः ॥ ४९ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ॥ स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्प-

धरोंने कहा—जिस मूर्खने बल-वीर्यके घमण्डमें प्राप्त हो नाना प्रकारकी धारणाओंसे प्राप्त हमारी विद्याको बेकाम किया था, उससे जिन्होंने इस रणभूमिमें यज्ञपशुके तुल्य नाश किया, उन मायानृसिंहको प्रतिदिन प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥ नागगणने कहा—जिस पापीने रत्नों और स्त्री रत्नतकको चुराया, उसकी छाती फाड़कर जिन्होंने हमारी इन पत्नियोंको राजी किया उन आपका प्रणाम है ॥ ४७ ॥ मनुने कहा—हे देव, हम आपकी आज्ञाके रक्षक मनु हैं, इस दैत्यने सब धर्मकी मर्यादा उलट फेर कर दी, हे प्रभो, आपने उस नीचका आज खातमा कर दिया। अब कहिये क्या हम आपकी सेवा करें। हम नौकरोंको आप आज्ञा प्रदान करें ॥ ४८ ॥ प्रजापतियोंने कहा—हे परमेश्वर आपके हम बनाये निर्मित प्रजापतिगण हैं, जिस नीच दैत्यके निमित्त हम प्रजा सृष्टि नहीं कर पाते थे, वह आपके द्वारा नष्ट भ्रष्ट छातीके बल भूमिपर पड़ा है। हे सत्वमूर्ते, यह आपका अवतार जगत्के मङ्गलार्थ ही है ॥ ४९ ॥ गन्धर्वों ने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा—हे विभो आपके हम नट और आपके समीप नाचने गानेवाले हैं। जिस नीचने अपने बल वीर्य पराक्रमसे हम लोगोंको अपने आधीन किया था, आज आपने उसे इस दशातक पहुँचाया सत्य है कुमार्गीका कभी कल्याण क्या हो सकता है॥ ५० ॥ चारणोंने कहा—हे हरे, हम लोगोंने आपके भवभयको हरण करनेवाले चरणकमलोंका आश्रय ले लिया है क्योंकि आपने सज्जनों के चित्तमें सदा अस्थिरत्ववाले असुरका हनन किया है॥ ५१ ॥ यक्षने कहा—हे ईश, अनेक प्रकारके सुन्दर कार्यके निमित्त हम सब आपके दासोंमें अग्रणी माने गए हैं पर इस असुरने हमलोगोंको भार ढोनेवाला बनाया था। हेनृसिंह, चौबीसतत्वोंके आप नियन्त्रण कर्ता थे ही; अब आप पुराणपुरुष पचीसवें तत्वके स्वरूपमें अवतार ग्रहण किया, उसी दैत्यसे प्राप्त जीवोंकी व्यथाओंके जानकार आज आपने उसका हनन किया॥ ५२ ॥ किंपुरुषोंने कहा—हम किंपुरुष हैं आप महापुरुष ईश्वर हैं। जब यह कुपुरुष साधु सज्जनोंसे अपमानित था,

थस्तः कुशलाय कल्पते ॥ ५० ॥ चारणा ऊचुः ॥ हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ॥ यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥५१॥ यक्षा ऊचुः ॥ वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ॥ स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥ अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥५३॥ वैतालिका ऊचुः ॥ सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गित्वा सपर्यां महतीं लभामहे ॥ यस्तां व्यनैषीद्भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥ ५४ ॥ किन्नरा ऊचुः ॥ वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ॥ भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥ विष्णुपार्षदा ऊचुः । अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ॥ सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यराजवधे नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अतः इसका नाश हुआ॥ ५३ ॥ वैतालिकोंने कहा—सब सभाओं और यज्ञशालाओंमें आपका यशोगानकर बड़ी पूजाको प्राप्त करते थे। हे भगवन्, जिसने हम लोगोंकी उस वृत्तिका नाश किया, आज बड़े सौभाग्यसे वह रोगके तुल्य दुर्जन मारा गया॥ ५४ ॥ किन्नरोंने कहा—हे स्वामिन्, आपके हम नौकर किन्नर हैं वह असुर हमसे बेगारी कराता था। हे नृसिंहदेव, आज उसका आपने नाशकिया। हेनाथ, इसीप्रकार हमारी आप सदा उन्नति करते रहें॥५५॥विष्णुपार्षदोंने कहा—हम भक्तके आश्रयदाता प्रभो, सबलोगोंको शान्ति देनेवाले यह आपका अद्भुत नृसिंहरूप आजही हम लोगोंने देखा। हे ईश, तथ्य तो यह है यह असुर आपकी आज्ञाका रक्षक दास था ही पर यह तो उन ब्राह्मणोंके शापसे इसकी यह स्थिति हुई। इसलिये जो आपने इसका नाश किया, इसको हम आपका अनुग्रह ही जानते हैं॥ ५६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आठवें अध्यायका सार—नारदजी ने कहा—हे राजन्, इस तरह प्रहलादके भाषणको सुनकर उसे सब दैत्यपुत्रोंने स्वीकारकर लिया। सभी दैत्यपुत्रोंके भगवद्भक्त बन जानेपर गुरुओंने आकर राजासे सारी बातें कह सुनाईं। अपने पुत्रके ऐसे आचरणको सुन वह क्रोधसे काँपते हुए कहने लगा—अरे अधम, अरे कुल नाशक, मेरी आज्ञा न मान रहे तुझे आज ही यमराजके घर भेज देता हूँ, तुझे किसका बल है! यों अत्यन्त तिरस्कृत हुए प्रहलादजीने कहा—पिताजी, ब्रह्मासे लेकर छोटे-बड़े सभी प्राणी जिसके वश हैं, वही भगवान् एकमात्र मेरा बल है और मेरा ही नहीं आपका भी वही बल है। वह भगवान् ही अपनी शक्तियोंके द्वारा इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार किया करते हैं। पिताजी, मनुष्यके प्रबल शत्रु हैं—काम, क्रोध आदि छः विकार। आपके जैसे कुछ मूर्ख अवश्य इस दुनियाँ में हैं, जो अपनी इन्द्रियोंको न जीतकर इधर-उधर कहते-फिरता है कि मैंने दशों दिशाएँ जीत लीं। राजन्, यदि सचमुच आप विजयी बनना चाहते हैं तो पहले जितेन्द्रिय बनिये, अपने चित्तपर विजय प्राप्त कीजिये। पुत्रकी ऐसी बातें सुनकर हिरण्यकशिपुने कहा—अरे दुष्ट बतला तो सही, इस खम्भे में तुम्हारा सर्वसाक्षी परमात्मा कहाँ है! हे धर्मराज, उसी समय अपने भक्तकी वाणी सत्य साबित करने तथा भक्तकी रक्षा करनेके लिये नृसिंहरूप धारणकर भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये। भगवान्ने अपनी जाँघपर उसकी छाती अपनी नखोंसे चीर डाली। उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, देवता लोग स्तुति करने लगे और गन्धर्व अप्सरा आदि आनन्दसे उछलने लगे। आठवें अध्याय समाप्त *

❀ नवमोऽध्यायः ❀

[अनेक देवताओंको भयोत्पन्न होनेसे प्रहलादने ही नृसिंहरूपधारी भगवान्की स्तुतिकर प्रसन्न किया और उनका उसको वर देनेको उद्यत होना—यह वर्णन]

नारदने कहा—हे राजा युधिष्ठिर, इसप्रकार ब्रह्मा तथा महादेवसे प्रारम्भकर सब देवता आदि क्रोधके आवेशमें स्थित हुए उन दुर्द्धर्ष नरसिंहभगवान्के समीप नहीं जा सके ॥ १ ॥

॥ नारद उवाच ॥ एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः ॥ नोपैतुमशकन्मन्युसंरम्भं सुदुरासदम् ॥ १ ॥ साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम्। अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्सा नोपेयाय शङ्किता ॥ २ ॥ प्रह्रादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके ॥ तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं

देवताओंने उनके शान्त्यर्थ साक्षात् लक्ष्मीको भेजा, पर जिसने पूर्व यहरूप देखा न इस विषयकी कथा सुनी, बहुत भयंकर रूपदेख मारे डरसे वे भी उनके पास न जासकीं॥२॥ब्रह्माने अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समीप स्थित प्रह्लादको भेजा उसने कहा—हे तात, तेरे पितापर क्रोधित भगवान्‌के समीप तुमही जाकर उनको शान्त करो ॥ ३ ॥ हे राजन्, भगवद्‌भक्त पुत्र प्रह्लाद जो 'आज्ञा' ऐसा कह शनैः २ भगवान् नृसिंहके पास जा हाथ जोड़ भूमिमें लोटकर शरीरसे प्रणाम किया ॥४॥ उस छोटेसे लड़केको भयरहित अपने चरणोंके पास गिरा देख भगवान्‌ने दयासे पूर्ण हो गोदीमें उठा लिया तथा उसके सिरपर अपना वह हाथ रख दिया जो कालसर्पसे कम्पायमान हुए जीवोंको भी भयरहित करता है ॥ ५ ॥ भगवान्‌के हाथका स्पर्श होते ही सब अशुभोंका नाश हो गया तथा उसको उसी क्षण ईश्वरके तथ्यरूपका साक्षात्कार हो गया। उन्होंने उत्कृष्टानन्दसे पूर्ण हो भगवान्‌के चरणकमलोंको अपने चित्तमें लगाया। उसी क्षण उसके सब देहमें रोमाञ्च हो आया। उसका चित्त प्रेमसे आर्द्र हो उसकी आँखोंसे आनन्दके बिन्दु बहने लगे ॥ ६ ॥ वे अपने एकाग्रमनसे अच्छीप्रकार सावधान हो चित्त तथा नेत्रोंको भगवान्‌में लीनकर

प्रभुम् ॥ ३ ॥ तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽर्भकः। उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ॥ उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात्कराम्बुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ ५ ॥ स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ॥ तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६ ॥ अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ॥ प्रेमगद्‌गदया वाचा तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥ ७ ॥ प्रह्राद उवाच ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसा प्रवाहैः ॥ नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ ८ ॥ मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौजस्तेजः प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ॥ नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥९॥ विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्॥मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं नतु भूरिमानः ॥ १० ॥ नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ॥

प्रेमसे गद्‌गद वाणीसे उन भगवान् नृसिंहका ध्यान करने लगे ॥ ७ ॥ प्रह्लादने कहा—जिन जीवोंकी बुद्‌धि सर्वदा एकमात्र सतोगुणमें ही संलग्न रहती है, वे ब्रह्मादि देवता, मुनि, सिद्‌धगण अपने वाक्योंकी धारा बहुत गुणाधिक्यसे भी अबतक जिनकी स्तुतिसे राजी न कर सके, वे भगवान् उग्रजातिमें जन्म मुझ असुरपर किसतरह राजी होंगे ॥ ८ ॥ किन्तु मेरा तो ऐसा कथन है धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्‌धि, योग —वे सब गुण उन परमपुरुष हरिकी स्तुतिके साधन नहीं हो सकते, परन्तु भक्तिसे तो वे भगवान् उस गजेन्द्रसे भी प्रसन्न हो गये थे ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण द्वादश गुणों से युक्त है, पर उन भगवान् कमलनाभके चरणकमलोंसे विमुख है तो उससे उस चाण्डालको अधिक अच्छा जानता हूँ जो अपने मन, वचन, कर्म, धन, प्राण हरिमें लगाये है। वह जीव अपने वंशको पवित्र करता है, पर अपने बड़ेपनका अभिमान चाहनेवाला गर्वी ब्राह्मण वैसा नहीं कर सकता ॥ १० ॥ कारण यह कि भगवान् तो निजात्मलाभसे ही पूर्ण रहते हैं, वे क्षुद्र जीवोंसे अर्चनाकी इच्छा नहीं रखते। वे करुणा मात्रसे ही अपने भक्तोंसे की हुई पूजाको ग्रहण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते हैं। क्योंकि जैसे अपने मुखकी कांति अपने प्रतिबिम्बकी शोभा करती है तद्वत् ही भक्त भगवान्के लिये जो कुछ करता है वह उस भक्त को ही मिलता है ॥ ११ ॥ परन्तु मैं कुपात्र हूँ तो भी निडर हो अपनो बुद्धिके अनुसार सब प्रकारसे उस ईश्वरकी महिमा कहता हूँ जिसकी कीर्तिसे अविद्यारूपी जगत्के चक्रमें स्थित हुआ जीव उसीक्षण पुनीत होता है ॥ १२ ॥ हे ईश, ये ब्रह्मादि देवता सत्त्वरूप आपकी आज्ञाका पालन करते हैं, वे हम असुरोंके तुल्य शत्रुता आपसे नहीं करते। हे भगवन्, अपने सुन्दर अवतारोंसे जो जो चरित्र आप करते हैं वे सब संसारके मंगलार्थ, और आत्मासुखके लिये ही होते हैं ॥ १३ ॥ अपना क्रोध शान्त करिये, क्योंकि अब उस दैत्यका वध आप कर चुके हैं। हे देव, साँप विच्छू आदि जीवोंके हनन हो जाने पर साधुगण आनन्दित होते हैं, इस दैत्यके नाशसे प्रसन्न हो सब संसार आपका क्रोध शमन होनेका समय देख रहा है। हे नृसिंह, भयरहित होनेके लिये ही आपके

यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ ११ ॥ तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ॥ नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ १२ ॥ सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ॥ क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥ १३ ॥ तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ॥ लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥ १४ ॥ नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभ्रकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ॥ आन्त्रस्रजः क्षतजकेशरशङ्कुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ १५ ॥ त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः ॥ बद्धस्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥१६॥ यस्मात्प्रियाप्रियवियोगसंयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ॥ दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥१७॥ सोऽहं

इस विचित्र स्वरूपका सब जीव याद करेंगे ॥ १४ ॥ हे अजित, जिसका बहुत भयङ्कर मुख, जिह्वा, सूर्यके तुल्य प्रदीप्त नेत्र, भृकुटिकी त्वरा और उग्ररूपी दाढ़ें हैं जो आँतोंकी माला खूनसे गीली और सरल कानोंसे सम्पन्न हैं, जिसके सिंहनादसे दिग्गज भी डर गये और जिसके नाखूनके आगेका हिसा अरिका नाश करता है, उस आपके अत्युत्कट रूपसे कुछ भी मेरेको डर नहीं है ॥ १५ ॥ हे दीनवत्सल प्रभो, मैं तो महान् भयङ्कर दुःसह जगत्चक्रके दुःखसे कम्पायमान हूँ, जहाँ मेरे कार्योंसे बाँध हिंसक प्राणियोंके मध्यमें फेंक दिया। हे श्रेष्ठतम, आप अब राजी हों मेरेको अपने मोक्षको देनेवाले शरणदायक चरणोंके पास कब आह्वानकरेंगे ॥ १६ ॥ हे भूमन्, सब योनियोंमें अपने प्रियके कष्टसे और अप्रियके समागमसे उत्पन्न होनेवाले शोकाग्निसे जलकर आया हूँ, उस कष्टकी जो दवा है, वह भी कष्टरूप ही है। अतः मैं शरीरादि अनात्मामें आत्मत्वभावको न कर चिर समयसे भ्रमता रहता हूँ, मेरेको आप अपने सत्वका उपदेश देवें ॥ १७ ॥ हे नृसिंह, सबके हितैषी, मित्र और उत्तम देवरूप आप हैं, आपके दास्यताको प्राप्त हो आपके चरणमें रहनेवाले ज्ञानियोंका सम्मेलन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुआ करता तथा रागआदि गुणोंके बन्धनसे छूट ब्रह्माके द्वारा कही आपक लीला-कथाका गानकर बड़ी सरलतासे इस जगत्सागरका किनारा लूँगा ॥१८॥ हे नृसिंह, जगत्में दुःखित जीवोंके कष्टको हटानेका जो रूप माना गया है आपके ध्यान न देनेपर वह एक क्षणके लिये ही हो जाता है। पुत्रके लिये माता, पिता, रोगीके लिये दवा, समुद्रमें डूबते हुए जीवके लिये नाव, सर्वदा ये सब सहारा नहीं देते, इन असुरोंसे कभी-कभी उलटा कार्य भी होता देखा गया है ॥ १९ ॥ हे भगवन्, अलग अलग स्वभावके पहले या इस समयके कर्ता प्रेरित हो जिसमें, जब, जिसके द्वारा, जिसका, जिससे, जिसके लिये, जैसे, जो कुछ उपजे विपरीततया करते हैं, एकमात्र वह सब आपहीका रूप है ॥ २० ॥ हे प्रभो, जिसके गुणोंमें कालके द्वारा दुःख उपजा, आपकी वह माया अंशभूत जीवकी दृष्टिसे प्रेरित हो मनःप्रधान लिंगशरीरका निर्माण करता है, जो बहुत बली, कर्ममय, वैदिक कर्म-कलापमें संलग्न और विद्याहीनके द्वारा समर्पित मन, दस इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा, इन सोलह विकृतस्वरूप अक्षरोंसे संपन्न जगत्चक्र है। हे अजन्मा प्रभो, आपसे अलग बसनेवाला ऐसा कौन जीव है, जो उस मनरूप जगत्

प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरञ्चिगीताः ॥ अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥ १८ ॥
बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ॥ तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षिता-
नाम् ॥ १९ ॥ यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ॥ भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः सञ्चोदितस्त-
दखिलं भवतः स्वरूपम् ॥ २० ॥ माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ॥ छन्दोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं
संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥ २१ ॥ स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः चक्रे विसृष्टमजयेश्वर
षोडशारे निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रसन्नम् ॥ २२ ॥ दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति यां जनोऽयम् ॥
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥२३॥ तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रिय-

चक्रको उत्तीर्ण करेगा ॥ २१ ॥ हे प्रभो, हे अजयेश्वर, अपनी चैतन्यशक्ति द्वारा बुद्धिस्थ सब गुणोंपर सर्वदा जय प्राप्त करनेवाले कालस्वरूपसे सब साध्य और साधनको अपने वशीभूत स्थापन करनेवाले मुझे शरणमें आये हुए आपको, जो मायाद्वारा इस सोलह अरोंवाले जगत्चक्रमें फेंककर ईखकी लकड़ीके तुल्य पीडन किया जा रहा है, उसको अपने पास सरका लीजिये ॥ २२ ॥ हे विभो, जिस स्वर्गके निमित्त जगत्के जीव बहुत इच्छा करते रहते हैं, उस लोकमें प्राप्त होनेवाली लोकरक्षकोंकी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य तो अच्छी प्रकारसे मैंने देखा। वह ऐश्वर्य तो हमारे पिताके क्रोधसे, हास्यसे, भृकुटिविलाससे ही नाश हो गया, अब उनका आपने हनन कर दिया ॥२३॥ अत: शरीरधारीके इन ऐश्वर्योंके नतीजोंकी जानकारी में ब्रह्मतककी आयु, ऐश्वर्य इन्द्रियसम्बन्ध सब हता। क्योंकि वे सब जन अत्युत्तम बली कालस्वरूपी ईश्वरसे ग्रसे गए हैं। अतः आप अपने दासोंके समीप मेरेको ले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चलिए ॥२४॥ अहो, कहाँ, एकमात्र श्रवणमें सुखका देनेवाला मृगतृष्णास्वरूप भोग-विषय तथा कहाँ सब रोगोंका गृह यह देह, पर जीव इन सबकी असारता और नाशताको समझकर भी बड़े कठिन्यसे मिलनेवाले ऐश्वर्यरूप मधुकणोंसे अपनी भोग चाहनारूप अग्गिको शमन करता हुआ कभी इनसे अलग नहीं होता ॥२५॥ हे ईश, कहाँ इस अन्धकारप्रधान—असुरवंशमें रजोगुणसे जायमान मैं, कहाँ आपकी कृपा, अहो, जो सब दुःखके नाशहारी अपना करकमल आपने ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मीके सिरपर भी कभी नहीं रखा, वही हाथ आज मेरे सिरपर रखा ॥ २६ ॥ दूसरे जगत् प्राणियोंके तुल्य आपकी अधम-उत्तम बुद्धि नहीं है, क्योंकि आप सब संसारके आत्मा और मित्र हैं। तो भी कल्पवृक्षके तुल्य आपका प्रसाद भी बडी सेवाद्वारा मिलता है। आपकी शुश्रूषासे ही प्राणीमें धर्मादि भावोंका अभ्युदय होता है। यहाँपर जातिगत उच्चता और नीचत्वका हेतु नहीं है ॥ २७ ॥ हे नाथ, ऐसे कालस्वरूपी साँपसे सम्पन्न और

माविरिञ्चात् ॥ नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥ २४ ॥ कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ॥ निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्कामनलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥ २५ ॥ क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ॥ न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥२६॥ नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि ॥ संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥ २७ ॥ एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात् ॥ कृत्वात्मसात्सुरर्षिणा भगवन्गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥ २८॥ मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ॥ खड्गप्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥२९। एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ॥ सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्ट ॥ ३० ॥ त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ॥ यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वैः तदेव वसुकालव-

जगत् कूपमें गिरे हुए दूसरे कामाभिलाषी प्राणीके पीछे मैं भी उनके साथ दोषवश गिर रहा था कि देवर्षि नारदने मेरेको अपना लिया तथा उन्हींकी कृपासे आज आप मेरेको प्राप्त हुए। मैं दास शुश्रूषाको कैसे छोड़ सकता हूँ ॥ २८ ॥ हे अनन्त, मेरे पिताने जब अन्याय द्वारा हाथमें खड्ग लेकर यह कहा मुझको छोड़कर यदि कोई परमेश्वर भी हो तो वह आकर तेरी पालना करे मैं अभी तेरे सिरको अलग कर देता हूँ। तो आपने मेरे गुणोंकी पालनाकर जो मेरे पिताका हनन किया, वह अपने सेवक देवर्षि नारदके वाक्योंको सत्य करनेहीके लिये किया ॥ २९ ॥ हे नाथ, आपही एकमात्र हैं क्योंकि, आप आदि, मध्य, अन्त, इसको अपनी मायासे गुणोंके नतीजेरूप इस जगत्का निर्माणकर इसमें प्रवेशकर उन गुणोंके व्यापारोंसे संसारके स्रष्टा, रक्षक, संहारक आदि स्वरूपोंमें नानारूप मालूम होते रहते हैं ॥ ३० ॥ हे ईश, आपहीमें सत् तथा असत्रूप सब संसार हैं। इससे अलग एकमात्र आप ही परपुरुष भी हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसलिये अपना यह है, यह दूसरेका है, ऐसी भेदरूप बुद्धि विपरीत माया ही है। क्योंकि जिसका जिससे जन्म, स्थित, लय, प्रकाश होता है, वह उसके रूप हो जाता है। जैसे कार्यरूप वृक्ष तथा निमितरूप वीज दोनों ही गन्धतन्मात्रारूप हैं। वैसे ही यह सब जगत् आपहीका रूप है ॥ ३१ ॥ हे प्रभो, सब प्रपञ्चको अन्तमें आपही अपनेमें इकट्ठाकर आत्मसुखका आनन्द लेते हुए निरीहतासे जाकर प्रलयकालके पानीमें शयन करते हैं तब योगसे वाहरकी दृष्टि वन्दकर आत्मरूपके तेजसे निद्राको लीनकर आप तुरीयावस्थामें रहते हैं--आप न तो उस समय तमसे सम्पन्न ही होते हैं न विषयवासनाओंके भोग करनेवाले ही होते हैं ॥ ३२ ॥ यह ब्रह्माण्ड अपनी कालशक्तिसे प्रकृतिके सत्त्वादि गुणोंको चलनेवाले आप ईश्वरका ही देह हैं। यह ब्रह्माण्ड प्रथम आपमें ही स्थित था, प्रलयकालमें शेषशय्यापर जलमें शयन करनेवाले योगनिद्रारूप समाधिको आपने छोड़ा तो वटवीजसे प्रादुर्भाव महावृक्षके तुल्य आपकी नाभिसे वहुत विस्तृत यह ब्रह्माण्ड पद्म उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ उससे जायमान सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माको उस कमलके सिवाय कुछ भी नहीं दीखा तो अपनेमें व्याप्त वीजरूप आपको अपनेसे वाहर जानकर

दृष्टिर्वो: ॥ ३१ ॥ न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ॥ योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ॥ ३२ ॥ तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ॥ अम्भस्यनन्तशयना-द्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत्स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥ ३३ ॥ तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ॥ नाविन्द-दब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥ ३४ ॥ स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्ध-भावः ॥ त्वात्मात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥ ३५ ॥ एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरुनासास्यकर्णनयना-भरणायुधाढ्यम् ॥ मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥ ३६ ॥ तस्मै भवान्हय शिरस्तनुवं च बिभ्रद्वेदद्रहाव-तिबलौ मधुकैटभाख्यौ ॥ हत्वाऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमानन्ति ॥ ३७ ॥ इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लो-

वे सौ वर्षतक उसी पानीके अन्दर प्रवेशकर खोजते रहे। परन्तु उनको कुछ भी न मिला क्योंकि, अंकुरके उत्पन्न होनेपर कोई जीव वीजको अलग रूपमें किसतरह देख सकता है ॥ ३४ ॥ अतः आत्मयोनि श्रीब्रह्मा वहुत आश्चर्ययुक्त होकर उस पद्मपर बैठ गये। हे ईश, बहुत कालतक अपने भयंकर तपके द्वारा अन्तःकरण पवित्र होनेपर उनको भूमि व्याप्त वहुत सूक्ष्म गन्धतन्मात्राके तुल्य भूत, इन्द्रिय, अन्तःकरणरूप अपनी देहमें व्याप्त आपके सूक्ष्मस्वरूपको देखा ॥ ३५ ॥ इसप्रकार हजारों मुख, चरण, सिर, हाथ, उरु, नासिका, मुख, कर्ण, नयन, आभूषण, आयुधोंसे सम्पन्न चौदहलोक स्वरूपी अवयवोंसे युक्त आप मायामय विराटपुरुषका दर्शन प्राप्तकर ब्रह्मा बड़े आनन्दित हुए ॥ ३६ ॥ उस समय आपने हयग्रीवरूप ग्रहणकर वहुत प्रबल वेदद्रोही रजोगुण तथा तमोगुणरूपी मधु और कैटभनामके दो असुरोंका हननकर उन ब्रह्माको सत्वगुणरूपी सब वेद अर्पण किए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अतः आपका सत्त्वगुण प्रियतम स्वरूप कहा जाता है ॥ ३७ ॥ हे परमपुरुष, इसप्रकार आप मनुष्य, तियक्, ऋषि, देवता, मत्स्य आदि अवतार ग्रहणकर सब लोकोंको और संसारके द्रोहियोंका नाश करते हैं। उन अवतारोंसे आप हरेक युगके धर्मोंकी रक्षा करते हैं, पर कलियुगमें अवतार ग्रहण न कर चुप चाप ही रहते हैं। अतः आप त्रियुग-नामसे भी प्रसिद्ध हैं ॥ ३८ ॥ * हे वैकुण्ठनाथ, मन मेरा बड़ा नीच दोषोंसे भरा हुआ कामातुर, हर्ष, शोक, भय, त्रिविध लोकेषणाओंसे चिन्तित है आपके इतिहासोंमें इसका प्रेम ही नहीं रहता। ऐसे कुत्सित मनवाला मैं दीन किस तरह आपके रूपका ध्यान करूँ ॥ ३९ ॥ हे अच्युत, जिस प्रकार बहुत सपत्नस्त्रियाँ अपने मालिकको अपनी-अपनी तरफ मिलाती हैं। उसी प्रकार ही एक तरफ अतृप्त रसना, दूसरी तरफ उपस्थ, त्वचा, तीसरी तरफ उदर और कर्ण, किसी अन्य ओर घ्राण, चञ्चल आँख, अन्य मार्गपर कर्मेन्द्रियाँ

कान्विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ॥ धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३८॥ ❀ नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ॥ कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तास्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ ३९ ॥ जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्वयः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ ४० एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्यामन्योनयजन्ममरणाशनभीतभीतम् ॥ पश्यन् जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥ ४१ ॥ को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसंभवलोपहेतोः ॥ मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥ ४२ ॥ नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ॥ शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमायासुखाय

आकर्षित कर रही हैं ॥४०॥ जगत्‌रूपी वैतरणीनदीमें स्वकर्मानुसार आपसमें प्राप्त जन्म-मरण और खान-पान आदिसे अत्यधिक भयसे व्याप्त तथा अपने दूसरे जीवोंसे सखा और शत्रुता करते हुए इस मूर्ख जनवर्गको देख दयाद्रभावसे दुःखित होते हुए अब आप मेरेको इस वैतरणीके किनारे लगाकर जनसमुदायकी पालना करें ॥ ४१ ॥ हे अखिलगुरो, आप सब संसारके उत्पत्ति, स्थिति, पालन कर्ता हैं। हे भगवन्, क्या इन सबोंको किनारे लगानेमें आपको कुछ परिश्रम करना होगा, हे दीनबन्धो, आप ऐसे महाजनोंकी सेवा तो मूर्खोंपर ही होनी चाहिये ॥ ४२ ॥ हे प्रभो, जिसका किनारा प्राप्त होना अन्यके लिये बहुत दुस्तर है, उस मेरेको जगत्‌रूपी वैतरणीसे कुछ भी डर रह नहीं गया क्योंकि, मेरा मन तो आपकी कीर्तिरूपी

❀ दृष्टान्त—एक महात्यागी पण्डित थे। उनकी प्रतिष्ठा सारे देश में प्रख्यात थी। वहाँ का राजा महामूर्ख था। वह पण्डितोंसे 'शुक्लांबरधरं विष्णु' का अर्थ पूछा करता था। इससे साधारण और असाधारणों के पाण्डित्य में न्यूनता आ जाने से उनलोगों ने उन महात्यागी पण्डितजी से जाकर कहा महाराज, आपके रहते हुए हम सबकी वह मूर्ख राजा बड़ी बेइज्जती कर रहा है। उन्होंने मन्त्र बलसे उसे उद्भुत् कार्य दिखाया। जिससे उसने उनको गुरु बनाकर पढ़ा जिससे उस श्लोक का अर्थ मालुम हुआ तथा बड़ा लज्जित हुआ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महामृत पानकर आनन्दमें लीन रहता है। मुझे तो उनहींकी केवल चिन्ता बनी रहती है, जो मूर्ख उससे विपरीत रहते हुए इन्द्रिय विषयोंसे प्राप्त होनेवाले मायिक आनन्दके लिये परिवारका पोषण आदिका बोझा उठाते रहते हैं ॥ ४३ ॥ हे देव, सब मुनिगण प्रायः अपनी ही मुक्तिकी इच्छासे एकान्तमें रह मोनव्रत लेते हैं, वे दूसरेके उपकारमें संलग्न नहीं रहते। मेरेको लेकिन इन दीनोंको छोड़कर स्वतन्त्र ही मुक्त होनेकी इच्छा नहीं है। जगत्‌रूपी चक्रमें फिरनेवाले इन प्राणियोंके लिये बिना आपके सिवा कोई और मेरा कल्याण कर देनेवाला भी नहीं दिखाई देता ॥ ४४ ॥ हे प्रभो, गृहमेधियोंका मैथुन आदि आनन्द खुजलीके तुल्य होता है। प्रथम खुजलीमें कुछ आनन्द आता है फिर उससे अत्याधिकाधिक दुःख ही मिलता है, तद्वत् ही ये भोग हैं। लेकिन अनेक कष्ट प्राप्त होनेपर कभी भी ये दीनजन इनसे तृप्त नहीं होते, परन्तु ऐश्वर्यशाली जीव उस खुजलीके तुल्य ही काम आदि वेगोंको बिना प्रयास सहन कर लेते हैं ॥४५॥ हे अन्तर्यामिन्, मौन व्रत, शास्त्रश्रवण, तप, वेदाध्ययन, स्वधर्मपालन, शास्त्रोंकी व्याख्या करना, एकान्तसेवन, जप, समाधि–ये मोक्षके साधन प्रसिद्ध हैं। पर वे भी

भरमुद्वहतो विमूढान्॥ ४३ ॥ प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ॥ नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥ ४४ ॥ यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ॥ तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥ ४५ ॥ मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ॥ प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥ ४६ ॥ रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ॥ युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥ ४७ ॥ त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ॥ सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्नान्यत्त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥ ४८ ॥ नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः॥ आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥ ४९ ॥ तत्तेऽर्हत्तम नमः

प्रायशः जितेन्द्रिय हीन प्राणियोंकी जीविकाके रूप बन जाते हैं। अभिमानियोंके वास्ते तो वे कभी जीविकाके साधन हुए भी हैं, कभी उनका अभिमान् प्रगट हो जानेपर नहीं भी होते ॥ ४६ ॥ वेदने बीज और अंकुरके तुल्य आपके ये दो रूप काय-कारण कहे हैं। पर रूपरहित आप हैं, इनके अतिरिक्त आपके ज्ञानका अन्य कोई प्रकार नहीं दिखाता। योगीगण लकड़ीमें
११ गुप्त अग्निके समान भक्तियोगद्वारा कार्य तथा कारण इन दोनोंमें आपको देखते हैं, क्योंकि आपसे अलग इनका अस्तित्व ही नहीं है ॥४७॥ हे भूमन्, वायु, अग्नि, पृथिवी, आकाश, जल, पञ्चतन्मात्रा, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त, अहङ्काररूपी सब संसार सगुण, निगुण एकमात्र सब आप ही हैं। कहाँतक कहाजाय मन या वाणीके जितने भी पदार्थ हैं, उन पदार्थमें कोई भी आपसे अलग नहीं है ॥ ४८ ॥ हे महाकीर्ते, ये सत्वादि गुण गुणोंका निचोड़रूप महत्तत्त्वादि देवता, मनुष्यों सहित मन-बुद्धि आदि आपको कोई भी नहीं जान सकते। क्योंकि ये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सब आदि तथा अन्तसे सम्पन्न हैं। आपके तथ्य रूपको जानकर पण्डितगण शास्त्राध्ययन आदिसे अलग हो जाते हैं ॥ ४९ ॥ हे पूज्यतम, आपको प्रणाम, स्तुति सर्वकर्मार्पण, उपासना चरणोंका ध्यान, आपकी कथाओंको सुनना इन छः अङ्गोंसे संपन्न आपकी सेवा बिना केवल परमहंसोंको ही मिलने योग्य आपमें जीवकी भक्ति किस तरह हो सकती है ॥५०॥ श्रीनारदने कहा—हे राजन्, इस प्रकार उन परम भक्त प्रहलादसे भक्ति द्वारा भगवत्सम्बन्धी गुणानुवाद हो जानेपर गुणरहित भगवान्का क्रोध शान्त हो गया और वे प्रसन्न होकर अत्यन्त नम्रतासे प्रहलादसे कहा ॥ ५१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे भद्र प्रहलाद, तेरा मंगल हो। हे असुरश्रेष्ठ, तेरेपर मैं बहुत राजी हूँ। तुम मेरसे इच्छित वरको माँगो, मैं लोगोंकी सब इच्छाएँ परिपूर्ण

स्तुतिकर्मपूजाः कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥ संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ ५० ॥ नारद उवाच ॥ एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ॥ प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रह्लाद भद्रभद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम ॥ वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥ ५२ ॥ मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे ॥ दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥ ५३ ॥ प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ॥ श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥ ५४ ॥ एवं लोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ॥ एकान्तित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तम ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० स० प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

करता हूँ ॥ ५२ ॥ हे आयुष्मन्, जो जीव मेरेको राजी नहीं करता, उसको मेरा दर्शन प्राप्त होना अत्यधिक कठिन है। पर मेरा दर्शन होनेपर उसको कष्टानुभव नहीं होता ॥ ५३ ॥ मैं सब जीवोंके सब अभिलाषितको परिपूर्ण करता हूँ। इसलिए जितेन्द्रियं तथा आत्म मंगलकी इच्छा चाहनेवाले सब भाग्यशाली साधुगण सबप्रकारसे मुझको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ ५४ ॥ सब लोकोंको प्रलोभनके फेरमें कर देनेवाले ऐसे-ऐसे वरोंका प्रलोभन दिखानेपर भी असुरोत्तम प्रहलादने उनको चाहा नहीं। क्योंकि वे तो भगवान्के अनन्य भक्त थे ॥ ५५ ॥

नवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, भगवान्के भयङ्कर नृसिंह रूपको देखकर ब्रह्मादि देवता सब दूरही खड़े रहे। उन्हें साहस नहीं हुआ कि वे भगवान्के समीप जा सकें सबने मिलकर भगवान्का कोप शान्त करनेके लिये लक्ष्मीको भी भेजा लेकिन वह भी भयभीत हो गई। तदनन्तर भक्त प्रहलादसे उन लोगोंने कहा—हेपुत्र प्रहलाद, भगवान्के आगे जाओ और अपने पिताके ऊपर क्रुद्ध हुए भगवान्को शान्त करो। हे राजन्, प्रहलादजीने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर धीरे-धीरे भगवान्के निकट पहुँचकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपने चरणकमलपर पड़े हुए भक्तवर प्रहलादको भगवान्ने उठाया और उनके मस्तकपर हाथ रख दिया। भगवान्के करस्पर्शसे प्रहलादजीके सम्पूर्ण वासना मय पाप नष्ट हो गये। भक्तप्रवर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रह्लादजी भगवान्‌की स्तुति करने लगे। हे धर्मराज, प्रहलादके भक्ति पूर्वक निर्गुण परमात्माके गुणोंका वर्णन करनेपर भगवान् परम प्रसन्न हुए और अपना क्रोध रोककर कहने लगे— हे असुरश्रेष्ठ प्रहलाद, तुम्हारा मंगल हो मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम अभिलषित वर माँगलो। हे आयुष्मन्, मैं सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हूँ। हेधर्मराज, भगवान्‌के द्वारा अनेक प्रलोभन दिये जाने पर भर भी असुरश्रेष्ठ प्रहलादजीने भगवान्‌का एकान्त भक्त होनेके कारण किसी तरहके भी वरकी चाह नहीं की। नवाँ अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ दशमोऽध्यायः ❋

[नृसिंह भगवान् इसे मनचाहा वर देना, सांसारिक कार्योंमें संलग्नकरना अन्तर्ध्यान होते समय ब्रह्माको भी यथोचित शिक्षा आदि वर्णन]

श्रीनारदने कहा—हे राजा युधिष्ठिर, भक्तियोगमें सब वरदानोंको बाधक जानकर उस बालक प्रहलादने कुछ हँसकर श्रीहृषीकेशसे कहा ॥ १ ॥ प्रहलादजी ने कहा—हे प्रभो, मैं स्वभावसे भोग में संलग्न प्राणी हूँ, मेरेको उन वरोंके द्वारा आप अधिक प्रलोभनमें मत करिये। मैं उन भोगोंकी आसक्तिसे भय-कर उनसे विपरीत होकर मोक्षप्राप्त्यर्थ आपके समीप आया हूँ ॥ २ ॥ हे प्रभो, मेरेको तो ऐसा मालूम होता है आपने इस सेवककी आपने परीक्षार्थ ही इसे चित्तका बन्धनरूप और जगत्‌के बीजरूप संसारमें होनेवाले ऐश्वर्योंकी तरफ खींचा ॥ ३ ॥ हे अखिल

नारद उवाच ॥ भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयार्भकः। मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥ १ ॥ प्रह्राद उवाच ॥ मा मां प्रलोभयोत्पत्त्यासक्तं कामेषु तैर्वरैः ॥ तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥ भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत ॥ भवान्संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥ नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ॥ यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥४॥ आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥ न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्यो राति चाशिषः ॥ ५ ॥ अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च

गुरो, इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार आप करुणात्माके लिये ऐसा करना उचित था नहीं। हे नाथ, जो आपसे सेवक कोई इच्छा परिपूर्ण करानेकी कामना रखता है, वह सेवक आपका नहीं है बल्कि व्यापारी है ॥४॥ ऐसा कथन है कि मालिककी इच्छापूर्तिकी अभिलाषा चाहनेवाला भृत्यका सेवक नहीं हो सकता, भृत्यका मालिक बननेकी इच्छा रखनेवाला प्रभु उसको धन, ऐश्वर्यादि देनेवाला मालिक नहीं रह जाता ॥ ५ ॥ हे प्रभो, मैं तो निष्कामनावाला आपका भक्त हूँ, इसप्रकार मेरे आप निरपेक्ष मालिक हैं। इससे अलग राजा और सेवकके तुल्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपका तथा मेरा कोई दूसरा कारण नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ हे वरदर्षभ, यदि अभिलापित वर हीं मेरेको देना आप चाहते हों तो मैं यही आपसे वर चाहूँगा कि मेरे चित्तमें इच्छाओंका बीज न उगे ॥ ७ ॥ क्योंकि इच्छाका बीज उत्पन्न होते ही इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि लज्जा, श्री, तेज, स्मृति, सत्य आदि ये सब नाशताको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष, जब जीव अपने चित्तकी अभिलाषाओंको त्याग देता है, तब ही वह भगवान्‌की भक्तिमार्गके प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है ॥ ६ ॥ हे नाथ, सबके अन्तर्यामी महात्मा और विचित्र नृसिंहरूपको धारण करनेवाले आप परब्रह्म ईश्वर विष्णुको मेरा नमस्कार है ॥ १० ॥ नृसिंहने कहा—हेप्रहलाद, जो तेरे तुल्य मेरे परम भक्त हैं, वे लोग ऐहलौकिक, पारलौकिक, किसी भी ऐश्वर्यकी कामना नहीं करते, फिर भी मेरी आज्ञाके कथनानुसार इस मन्वन्तरकी समाप्तितक इसलोकमें तुम दैत्येश्वरोंके सब भोगोंका आनन्द भोगो ॥ ११ ॥ जीवमात्रमें

स्वाम्यनपाश्रयः ॥ नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥ यदि रासीश मे कामान्वरांस्त्वं वरदर्षभ ॥ कामानां हृद्यसंरोहं भवस्ततु वृणे वरम् ॥ ७ ॥ इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ॥ ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥ ८ ॥ विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ॥ तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ॥ हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ १० ॥ नृसिंह उवाच ॥ नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ॥ अथापि मन्वन्तरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुङ्‍क्ष्व भोगान् ॥ ११ ॥ कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्वयावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम् ॥ सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥ १२ ॥ भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ॥ कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धनः ॥ १३ ॥ य एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः ॥ त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर ॥ यदनिन्दत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥ १५ ॥ विद्धामर्षाशयः साक्षात्सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ॥ भ्रातृहेति

स्थिति मेरे एकमात्र यज्ञेश्वरको अपने चित्तमें ग्रहणकर मेरी प्रिय वार्ताओंको श्रवण तथा सब काम मेरे ही समर्पण करते हुए तुम योगसे भक्तिसे मेरी स्तुति करते रहो ॥ १२ ॥ इसप्रकार सुखभोग द्वारा पुण्य तथा पुण्यकर्मों द्वारा पापको छोड़ कालक्रमसे जब देह छूट जायगी, तो तुम देवलोकमें अपनी गाये जानेवाली पवित्र यशको इसलोकमें विस्तृतकर सब बन्धनोंसे मुक्त हो अन्तमें मेरे ही में मिलोगे ॥ १३ ॥ जो नर मेरा और तेरा याद करता हुआ तेरे द्वारा कहे गए मेरे इस स्तोत्रका स्मरण करेगा वह भी समय पाकर सब कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥१४॥ प्रहलादने कहा—हेमहेश्वर, सब वरदातृयोंके भी आप मालिक हैं। इसलिए मैं एक वर और चाहता हूँ, वह यह है मेरे पिताने आपके ईश्वरीय तेजसे अनजान हो यह मेरे भ्राता का घातक है यह झूठी दृष्टि रख असहनशीलता होकर आप सब संसारके गुरु ईश्वरकी बार-बार निन्दा करते हुए आपके भक्तसे मेरेसे वैमनस्य किया। इस दुरन्त और दुस्तर पापसे मेरे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पिता पवित्र हो जायँ। हेदीनवत्सल, वैसे तो उनपर जब आपकी दृष्टि हुई तब वे पवित्र हो गये ॥ १५-१७ ॥ भगवान्‌ने कहा—हे अनघ, हे साधो, तेरा वह पिता तो अपनी इक्कीश पीढ़ियोंके पितरों सहित पुनीत हो गया क्योंकि, उसके यहाँ तेरे ऐसा वंशपूत लड़का जन्मा ॥ १८ ॥ जहाँ जहाँ भी मेरे भक्त, प्रशान्त, समदर्शी, सच्चरित्र, साधुगण निवास करते हैं, तो वे कीटक जैसे पवित्रहीन नगर पूत भी हो जाते हैं ॥ १९ ॥ हे दैत्यपते, मेरी भक्तिसे जिनको कोई इच्छा नहीं रहती वे भक्तगण आत्मदृष्टि सबपर रखते हुए बड़े छोटे सब प्रकारके जीवोंको कुछ भी दुःख नहीं देते ॥ २० ॥ जो लोग जगत्‌में तेरे मार्गका अनुकरण करेंगे वे भी मेरे उत्कट भक्त होंगे मेरे सब भक्तोंमें तुम तो आदर्शरूप भक्त हो ॥ २१ ॥ हे वत्स, मेरे अङ्गका स्पर्श होते ही तेरे पिता सब प्रकारसे पवित्र हो गये, फिर भी तुम जाकर उनका और्ध्वदैहिक कर्मको करो, तेरे तुल्य सुपुत्रका पिता होनेसे वह निश्चित उत्तम लोकोंको प्राप्त

मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥ १६ ॥ तस्मात्पिता मे पूयेत दुरन्ताद्दुस्तरादघात् ॥ पूतस्तेऽपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १७ ॥ भगवानुवाच ॥ त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ॥ यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ १८ ॥ यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ॥ साधवः समुदांचास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः ॥ १९ ॥ सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन ॥ उच्चावचेषु दैत्येन्द्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥ २० ॥ भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ॥ भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥ २१ ॥ कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः ॥ मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥ २२ ॥ ❀ पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्साम्परायिकम् ॥ यथाह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥ २४ ॥

करेगा ॥ २२ ॥ * हे तात, अपने पिताके राजसिंहासनपर तुम बैठ जाओ और सब वेदवादी मुनियोंके आज्ञाकी रक्षा करते हुए मेरेमें मनको संलग्न (लगा) मेरी ही पूजामें तत्पर रह सब काम सम्पन्न करो ॥ २३ ॥ नारदने कहा—हे युधिष्ठिर, भगवान्‌की आज्ञासे प्रहलादने अपने पिताकी और्ध्वदैहिक क्रिया विधिसे की, और उनका द्विजोत्तम ब्राह्मणोंने राज्याभिषेकको

❀ किसी जमाने में व्यापार करने के लिए नौका द्वारा ही जाना पड़ता था ! उस समय एक व्यापारी जिनका नाम लक्ष्मीचन्द्र था। व्यापारके लिए नौका में सामान लाद कर जा रहा था। संयोग वश आंधी तूफान के भय से नावके चलाने वालोंने उस भरी हुई नौका को एक रमणीय जगह पर रोक दिया। पर अन्धड़ हवाके जोर से नाव के हिलने आदिके कारण वहाँके पत्थरों को उसपर रख दिया जिससे नाव स्थिर हो गयी और भविष्य की चिन्ता भी कम हो गयी। नाव वहाँ से दो घण्टे बाद चली। अपने यथा स्थान पर चीज बेचकर पुनः नाव वापस अपने देशमें आगई। उसपर जो पत्थर थे वे सब उस व्यापारी के घर के एक कोने में फेंक दिये गये। उसका एक टुकड़ा सदर दरवाजे पर लगा दिया गया। कुछ समय बाद एक जौहरी-ने आकर उनसे उस पत्थर को पचीस हजार रुपयों पर खरीदना चाहा उन्होंने कहा यह बताओ। यह है क्या ! हम आपको यह वैसे ही दे देगें। उसने कहा पन्ना नामक रत्न है। उन्होंने एक मुश्त में बाकी बचे हुए से 'नगर सेठ की' पदवी ली। इसलिए जो पास में हो उससे अपनी उन्नतिका रास्ता बना ले। जो न हो उसकी चिन्ता न करे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया ॥ २४ ॥ देवोंसे घिरे हुए ब्रह्माने भगवान् नृसिंहको आनन्दित और सौम्यवदन देख अपने पवित्र वाक्योंसे उनकी स्तुति करते हुए कहा ॥२५॥ ब्रह्माने कहा—हे देवदेव, हे अखिलाध्यक्ष, हेभूतभावन, हेपूर्वज, मेरे भाग्यसे यह बड़ी वार्ता हुई कि आपने सब जगत्को दुःख देनेवाले इस नीच दैत्यका हनन किया ॥ २६ ॥ मेरेसे वर प्राप्तकर यह बड़ा उद्दण्ड हो गया था, क्योंकि मेरेसे निर्मित हुए जगतके किसी भी जीवके द्वारा इसका मरण सम्भव नहीं था, यही कारण था अपने तप, योग, बल आदिसे मदोन्मत्त हो इसने सब वेदविधियोंका नाश किया था ॥२७॥ आपने साधु परमभगवद्भक्त लड़के प्रहलादको आपने मृत्युमुखसे बचाया। यह बड़े सौभाग्यकी वार्ता है कि आपके शरणमें आया यह और भी कल्याणकारक है ॥२८॥ हेभगवन्, जो जीव एकाग्रमनसे आपके इस नृसिंहरूपका ध्यान करेगा उसकी यह सब तरहके डर, हननार्थ उद्यत् मृत्युसे भी बचावेगा ॥ २९ ॥ नृसिंहने कहा—हेकमलयोने, इन असुरोंको

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ॥ स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावनपूर्वज ॥ दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसन्तापनोऽसुरः ॥ २६ ॥ योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ॥ तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥ २७ ॥ दिष्ट्यास्त तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ॥ त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥ २८ ॥ एतद्वपुस्ते भगवध्यायतः प्रयतात्मनः ॥ सर्वतो गोप्तृ सन्त्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ २९ ॥ नृसिंह उवाच ॥ मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव ॥ वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान् राजंस्तत्रैवान्तदधे हरिः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥ ततः संपूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ॥ भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥ ३२ ॥ ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादकमरोत्पतिम् ॥ ३३ ॥ प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ॥ स्वधामानि ययू

कभी भी वर तुमको नहीं देना चाहिये। स्वभावसे ही नीच पुरुषोंको दिया हुआ वर सर्पोंको पान कराए हुए दूधका कार्य करता हुआ कुत्सितकारक ही हो जाता है ॥ ३० ॥ ❀ नारदने—कहा हेराजन्, ऐसा कह भगवान् नृसिंह ब्रह्मासे अर्चित हो वहीं गायब हो गये। तदनन्तर किसी भी जीवने उनको नहीं देखा ॥ ३१ ॥ भक्तवर प्रहलादने सुन्दर रीतिसे भगवान्के अंशरूप ब्रह्मा, शिव, प्रजापति, देवताओंका अर्चनकर उनको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर शुक्राचार्य आदि मुनियोंके सङ्ग ब्रह्माने प्रहलादको असुरों तथा दानवोंका मालिक बनाया ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा आदि देवता प्रहलादके द्वारा तदनन्तर अर्चित हो उनकी स्तुतिकर उनको आशीर्वाद दे अपने-अपने लोकोंको गये ॥ ३४ ॥ हेराजन्, इसप्रकार वे दो

❀ दृष्टान्त—ब्रह्माजीने विचारा की चलो किसी से पूछताछ करें कि वैकुण्ठ में चलने से सब सुख मिलता है, यों विचार कर वे एक करोड़पति के यहाँ जाकर कहा तुम यदि वैकुण्ठ चलो तो तुमको सारा सुख प्राप्त होगा। पर उसने कहा मुझे यहाँ हीं सब सुख है महाराज! घर और बाहर के लोगों में मेरी खूब प्रतिष्ठा है। और जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी, यों सुन वे चुप चाप चले गये। अर्थात् जो जिस योनिमें उत्पन्न है उसे उसीमें सुख है—जैसे सूकर का भोजन निकृष्टता है वह उसीमें मस्त है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विष्णुपार्षद जो सनकादि मुनियोंके पूर्वजन्ममें दितिके लड़के हुए, वे अपने चित्तमें स्थित विष्णुसे वैरभाव रखनेसे मारे गये ॥ ३५ ॥ परन्तु विप्रशापके द्वारा वे फिर भी रावण और कुम्भकर्ण नामक दो राक्षस हुए, वे भगवान् रामके पराक्रमसे मारे गये ॥ ३६ ॥ रावण तथा कुम्भकर्णने भी रामके बाणोंसे निर्भिन्नहृदय हो युद्धभूमिमें गिरे प्रथमजन्मके तुल्य अब भी उनकी याद करते हुए अपना शरीर छोड़ा ॥ ३७ ॥ इसजन्ममें वे दोनों ही शिशुपाल और करूषसुवन दन्तवक्र होकर भूमिमें आए थे, जो हरिमें वैरानुबन्धसे तुम्हारे देखते-देखते उनमें ही लवलीन होगये ॥३८॥ हेराजन्, जैसे एक प्रकारके भौंरेका ध्यान करनेसे उसका पकड़ा हुआ कीड़ा उसीके आकारका हो जाता है वैसे ही ये कृष्णद्रोही राजे शत्रुतासे उन्हींका निरन्तर ध्यानकरनेसे पूर्वजन्मके किये पापोंसे छुटकारा प्राप्तकर अन्तमें उसीरूपमें हो गये ॥३९॥ हेयुधिष्ठिर, जैसे भगवान्के भक्त भगवान्की उत्कृष्ट तथा अनन्यभक्तिसे उनहींमें विलीन होजाते हैं वैसे

राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३४ ॥ एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रपितौ दितेः ॥ हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥ ३५ ॥ पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ॥ कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥ ३६ ॥ शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ॥ तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥ ३७ ॥ ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ॥ हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समायतुः ३८॥ एनः पूर्वकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः ॥ जहुस्त्वन्ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा॥३९॥ यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाऽभिदा ॥ नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥४०॥ आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मा त्वं परिपृष्टवान् ॥ दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥४१॥ एषां ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ॥ अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्योः ॥४२॥ प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ॥ भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च यथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥ ४३ ॥ सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ॥ परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥ ४४ ॥ धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ॥ आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥ ४५ ॥ य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ॥ कीर्तयेच्छ्रद्धया

ही उनसे शत्रुताकर उनहींका चिन्तन करते रहनेमात्रसे शिशुपाल आदि राजे हरिके सारूप्यताको प्राप्त हो चुके ॥ ४० ॥ हेराजन्, जो यह तेरा प्रश्न था कि शिशुपाल आदि भगवन् शत्रुवोंको भी भगवान्को सायुज्यमुक्ति कैसे मिली वह मैंने कथा तुमको कह सुनायी ॥ ४१ ॥ ब्रह्मण्यदेव परमात्मा श्रीकृष्णकी यह अत्यन्त पवित्र अवतारकथा कही जिसमें आदि असुर हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके हननका वृत्तान्त कहा था मैंने तुमसे कह सुनाया ॥ ४२ ॥ इस इतिहासमें महाभागवत् प्रहलादका चरित, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, जगतोत्पत्ति, स्थिति प्रलय, भगवान्का तथ्य, तत्व, उनके गुण, कर्मोंकी कथा, देवता और असुरोंके जगहोंका कालद्वारा बड़ा परिवर्तन जिनसे भगवत् प्राप्ति मिलती है, उनके धर्म, आध्यात्मिक आदि विषयोंका अच्छी तरह निरूपण किया ॥ ४३-४५ ॥ जो जीव विष्णुके पराक्रमोंसे परिपूर्ण इस पुनीत आख्यानको श्रद्धासे कीर्तनको करता या सुनता है वह कर्मपाशोंसे छूट जाता है ॥ ४६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदिपुरुष भगवान् के नृसिंहावतारमें किये हुए हिरण्यकशिपु और दूसरे असुर यूथपोंको हननरूपी इस पुनीत इतिहासको और दैत्यपुत्र सज्जनोत्तम प्रहलादके पवित्र तेजको जो प्राणी सुनेगा, वह भयरहित हो वैकुण्ठलोक जायगा ॥ ४७ ॥ हेराजन्, इसकलियुगमें तुम बड़े भाग्यशाली हो क्योंकि नररूपमें गुप्त हुए सत्तात् परब्रह्म तुम्हारे गृहमें निवास करते हैं, इसलिए उनका दर्शनार्थ अपने दर्शनोंसे परिपूर्ण लोकोंको पुनीत करनेवाले मुनिगण तुम्हारे यहाँ आते हैं ॥ ४८ ॥ जगत्के सब प्राणी जिनको बराबर अन्वेषण करते रहते हैं वे उपाधिशून्य कैवल्यनिर्वाणसुखानुभव परब्रह्म ही तुम्हारे प्रिय मित्र मामाके लड़के आत्मर्हणीय आज्ञाको माननेवाले गुरु श्रीकृष्ण हैं ॥ ४९ ॥ जिसके तथ्य रूपका कीर्तन सत्तात् महादेव तथा ब्रह्मा अपनी बुद्धिसे भी न जान सके मेरे, द्वारा मौन भक्ति और इन्द्रियदमनसे अर्पित वे भक्तोंके रक्षक भगवान् हम लोगोंपर राजी हों ॥ ५० ॥ हेराजन् पूर्वकालमें महामायावी मयासुर भगवान् रुद्रदेवकी

श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥ ४६ ॥ एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत् ॥ दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वाऽनुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥ ४७ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥ ४८ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यकैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ४९ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ५० ॥ स एष भगवान् राजन् व्यतनोद्विहतं यशः ॥ पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहन् जगदीशितुः ॥ यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ निर्जिता असुरा देवैर्युध्येनेनोपबृंहितैः ॥ मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥ ५३ ॥ स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्ययसीर्विभुः ॥ दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥ ५४ ॥ ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन्सेश्वरान्नृप ॥ स्मरन्तो नाशयांचक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५५ ॥ ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो ॥ त्राहि

कीर्तिका नाश करता था कि भगवान् ने फिर उनकी कीर्तिका विस्तार किया ॥ ५१ ॥ यह श्रवणकर राजा युधिष्ठिरने पूछा—हे महामुने, मयासुरने जगत्के ईश्वर महादेवकी कीर्तिको किस प्रकार नाश करता था, कृष्णने उस कीर्तिकी किस तरह रक्षा की वह कहिये ॥ ५२ ॥ नारदने कहा—हेराजन्, एक दिनकी कथा है कि ईर्ष्याको प्राप्त देवोंने असुरोंको युद्धमें हराया था तो दैत्योंने मायाके परमाचार्य मयासुरकी शरणमें गए ॥ ५३ ॥ उस मयासुरने सुवर्ण, चाँदी, लोहेके तीन नगरोंका निर्माणकर उनको दे दिया, वे ऐसे थे कि जिनका गमनागमन नहीं प्रतीत होता था, तथा उनमें गिनति रहित संसारसे परिपूर्ण रहते थे ॥ ५४ ॥ हेराजन्, उन्हीं पुरियोंमें गुप्तरूपसे दैत्य सेनापति प्रथम शत्रुताको यादकर लोकपालों सहित तीनों लोकोंको नष्ट करने लगे ॥ ५५ ॥ इन्द्रादि लोकपालों केसाथ सब मनुष्य भगवान् शङ्करके समीप जाकर कहा—हे देव देव, त्रिपुरमें रहनेवाले सब दैत्य हमलोगोंका नाश कर रहे हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे प्रभो, हम तो आपके हैं, आप हमलोगोंका पालन करें ॥ ५६ ॥ तदनन्तर भगवान् रुद्रने देवोंपर कृपाकर उनसे भय मत करो यह कह अपने धनुषपर पाशुपतास्त्रसे अभिमन्त्रित बाणको कस, उस बाणको उन पुरियोंपर गिराया ॥ ५७ ॥ सूर्यमण्डलसे निकली किरणोंके तुल्य उस बाणसे अग्निके सदृश प्रकाशमान नानाविध बाण प्रादुर्भूत हुए, जिनसे वे तीनों पुरोंका नाश हो गया ॥ ५८ ॥ उन बाणोंके छूटते ही तीनों पुरियोंके रहनेवाले मृत हो इधर-उधर गिरने लगे तो उस महामायावी मयने उन असुरोंको ले आकर स्वनिर्मित अमृत कूपमें फेंका ॥ ५९ ॥ उस सिद्धामृतके छूनेसे ही वे असुर वज्रतुल्य स्थिर देह और महान् तेजस्वी होकर कालको भी इधर-उधर करनेवाली बिजलीरूपी अग्नियों के तुल्य एक सङ्ग उठ गए ॥ ६० उस वक्त वृषभध्वजका भंग सङ्कल्प हुआ देखा भगवान् विष्णुने उसके नाशके लिए उपायकी कल्पना की ॥ ६१ ॥ ब्रह्मा वत्स, स्वयं विष्णु गौ बने तथा विमनस्क मध्याह्नके

नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥ ५६ ॥ अथनुगृह्य भगवान्मा भैष्टेति सुरान्विभुः ॥ शरं धनुषि सन्धाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत ॥ ५७ ॥ ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ॥ यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥ ५८ ॥ तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ॥ तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥ ५९ ॥ सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रससारा महौजसः ॥ उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ६० ॥ विलोक्य भग्नसङ्कल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ॥ तदायं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥ ६१ ॥ वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ॥ प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामामृतं पपौ ॥ ६२ ॥ तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः ॥ तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥ ६३ ॥ स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ॥ देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥ ६४ ॥ आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥ आथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधानिकं व्यधात् ॥ ६५ ॥ धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ॥ रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत् ॥ ६६ ॥ सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ॥ शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥ ६७ ॥ ददाह

समय त्रिपुरीमें प्रवेशकर अमृत पीया ॥ ६२ ॥ कूप संरक्षक दैत्यों ने भी मायासे संलग्न हो गौको अमृतपान करते देखकर मना भी नहीं किया, सब दुःखों से शून्य उस महायोगी मयने सब बात समझकर ईश्वरके तत्वको याद करते हुए उन दुःखातुर सेवकों के प्रति कहा—अपना दूसरों और दोनोंके लिये ब्रह्माने जो क्रम बनाया उनको हटानेमें देवता, दैत्य, मनुष्य आदि कोई जीव भी सार्थशाली नहीं हो जा सकता, तदनन्तर भगवान् विष्णुने शिवके लिये धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऋद्धि तप, विद्या, क्रिया-आदियों से रथ, सूत, ध्वजा अश्व धनुष कवच शर आदि रथका संभार ठीक किया ॥६३-६६॥ सन्नद्ध हो ईश्वरने शर तथा बाण हाथमें ग्रहणकर रथमें बैठ बाणको धनुषपर चढ़ा अभिजित् मुहूर्तमें उससे दुर्भेद्य त्रिपुरों का भस्मी करण किया। इससे स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजीं तथा सैकड़ो विमानों में बैठे हुए देवता, ऋषि, पितर, सब सिद्धेश्वर राजी होकर जय करते हुए उन पर फूलकी वृष्टि करने लगे तथा अप्सराएँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाचने लगीं ॥ ६७-६६ ॥ हे राजन्, इसप्रकार तीनों पुरोंको भस्मकर भगवान् त्रिपुरारिने ब्रह्मादिदेवोंसे स्तूयमान हो अपने नगरमें गए ॥ ७० ॥ हे धर्मराज, अपनी मायासे ऋषियोंने

तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ॥ ६८ ॥ देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ॥ अवाकिरन् जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६९ ॥ एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ७० ॥ एवं विधान्यस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ॥ वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

आप मानव देहकी नकल करने वाले जगत्गुरु विष्णुके ही इसीप्रकार नानाविधके पवित्र वर्णन किये गए हैं। मैं क्या और कहूँ ? वह कहिये ॥ ७१ ॥

दसवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, भगवान्के सम्पूर्ण कथनको भक्तिमें विघ्नकारक मान रहे प्रहलादजी ने कहा—हे परमेश्वर, स्वभावतः विषयोंमें आसक्त मुझ अज्ञानीको वर देकर लोभी न बनाओ। क्योंकि हे प्रभो, उनकी आसक्तिसे भीत होकर अब मैं उनसे विरक्त हो चुका हूँ। हे दीनबन्धो, हे कृपालो, इस तुच्छ अपने सेवकको अब और अधिक विषयोंमें न फँसाओ। हे वरदाताओंमें श्रेष्ठ परमेश्वर, यदि मुझे वर देना ही चाहते हो, तो कृपाकर मुझे यह वर दे दो कि मेरे हृदयमें कामवासनाओंका अंकुर न जमे। प्रहलादकी विनम्र वाणी सुनकर भगवान्ने कहा—तेरे समान जो मेरे परमभक्त हैं वे इस लोक या परलोकके विषयोंकी कभी इच्छा नहीं करते, फिर भी इस मन्वन्तरकी समाप्तितक तू दैत्योंका अधिपति बनकर इसलोकके विषयोंका उपभोग किया कर, मेरी कथाओंका सदा श्रवण कियाकर और सम्पूर्ण लोकोंके अधिष्ठाता मुझ परमेश्वरका ध्यान करके सम्पूर्ण कार्योंको करता हुआ तू उन्हें मुझे समर्पित करते चल। मेरे कथनानुसार कार्य करता हुआ तू कर्मबन्धनसे मुक्त होता हुआ अन्तमें मेरे स्वरूपमें मिल जायगा। भगवन् एक वर मैं और मांगता हूँ, वह यह कि मेरे पिताको सद्गति प्राप्तहो। भगवान्ने कहा—हेसाधो, तू इसकुलमें उत्पन्न हुआ है, अतः तेरा पिता इक्कीस पूर्वजोंके साथ-साथ स्वयं पवित्र हो चुका है। अब तू केवल अपने पिताकी दाह-क्रियाकर दे, तुझसे पुत्रके कारण वह श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त हो जायगा। हे राजन्, यों अपने भक्तको प्रसन्नकर चुके भगवान्को देखकर ब्रह्माजी भगवान्से कहने लगे—भगवन्, आपने बहुत सुन्दर कार्य किया। मेरे द्वारा दिये गये वरसे यह सबको त्रस्त किये हुए था। भगवान्ने ब्रह्मासे कहा—हे ब्रह्मदेव, आजसे फिर कभी ऐसा वर न देना। हे राजन, यों कहकर ब्रह्मदेवसे पूजित होते हुए भगवान् सभी देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्हित हो गये। दसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ एकादशोऽध्यायः ❋

[ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इनके कर्मका प्रतिपादन और पतिव्रता स्त्रियोंके धर्मका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जो बड़ोंमें अग्रणी तथा असाधारण भगवान्‌के भक्त थे, उन असुरराज प्रह्लादका श्रेष्ठसमाजमें आदरणीय यह पुनीत चरित्र वर्णन श्रवणकर युधिष्ठिरने बहुत प्रसन्न हो स्वयंभूके लड़के नारदसे इसतरह पूछा ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे भगवन्, मैं प्राणियोंका वर्णाश्रमाचारसे सम्पन्न सनातनधर्मको सुननेकी इच्छा करता हूँ, जिससे पुरुषोंको ज्ञानका लाभ हो ॥ २ ॥ हे परमेष्ठिन्, आप साक्षात् प्रजापतिके आत्मज हैं, तथा तप, योग, समाधियोंसे सब लड़कोंमें पूजित हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभो, आपके तुल्य भगव-

श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ॥ युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ॥ वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान् विन्दते परम् ॥ २ ॥ भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ॥ सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥ ३ ॥ नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ॥ करुणः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ॥४॥ नारद उवाच ॥ नत्वा भगवतेजाय लोकानां धर्महेतवे ॥ वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ५॥ योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः ॥ लोकानां स्वस्तऽयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ॥ ६ ॥ धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः ॥ स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥ सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमोः दमः ॥ अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥ ८ ॥ सन्तोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥ अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ॥ तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥ १० ॥ श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ॥ सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्म-

द्भक्त, कृपालु, सच्चरित्र, शान्तस्वभाववाले विप्रजन गुप्त और उत्तम जैसा धर्मको ये जानते हैं, वैसा अपरजन नहीं जान सकते हैं ॥ ४ ॥ नारदने कहा—हे राजन्, लोकोंके हितार्थ धर्मसे दक्षकी लड़की मूर्तिके गर्भसे अपने अंशसे अवतार ग्रहणकर बदरिकाश्रममें तप करते हैं सब धर्मों के निमित्तरूप उन अजन्माको नमस्कार कर उन नारायणके मुखसे सनातनधर्मको सुना हुआ मैं कहता हूँ ॥ ५, ६ ॥ हे राजन्, सर्ववेदमय भगवान् हरि धर्ममूल वेत्ता स्मृति और जिससे आत्मा राजी हों वे ही धर्म है ॥ ७ ॥ हेराजन्, सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा इच्छा, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचय, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शियोंके सेवाभ्याससे संसारिक ऐश्वर्योंकी रुचिसे हटना मनुष्योंको उनसे उलटा ही फल प्राप्त होता है—ऐसा विचा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रना, मौन रहना, आत्म विचार करना सब जीवोंको अन्नादिका तथ्य हिस्सा देना, उनमें आत्मवेदना बुद्धि रखे और धाश्रयरूप महात्माओंके हरिका श्रवण कीर्तन स्मरण करे। उनसा सख्यता आत्मसमर्पण करना ये मनुष्योंके उत्कृष्ट धर्म तीस रूपवाले कहे हैं। इसकी रक्षासे सर्वात्मा प्रसन्न होजाते हैं ॥ ८-१२ ॥ हे धमराज, संस्कारादि जहाँ अविच्छिन्नतासे हुए हैं जिनसे ब्रह्माने भी उन संस्कारोंके योग्य कहा, वे ही द्विज कहे जाते हैं उन द्विजोंके लिये यज्ञ, अध्ययन, दान आदि विहित कहे गये हैं, उनके लिये यज्ञ अध्ययनादि कर्मोंका आश्रमोचित विधान किया ॥ १३ ॥ पढ़ना छः कार्य कहे गये पर प्रजा संरक्षक ब्राह्मणोंके लिये उचित है कि अध्ययनादि ब्राह्मणको छोड़ सब प्रजागणसे करआदि लेकर वृत्ति चलावे ॥ १४ ॥ वैश्य तो नित्य ब्राह्मणानुगामी हो वाणिज्यआदिसे वृत्ति करे। शूद्र द्विजातियोंकी शुश्रूषा करे और वृत्तिके लिए मालिकोंसे प्राप्त करे ॥ १५ ॥ वार्ता—यज्ञआदिसे धन मिलना, शालीन-विना

समर्पणम् ॥ ११ ॥ नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ॥ त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२ ॥ संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम् ॥ इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ॥ जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥१३॥ विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याऽप्रतिग्रहः ॥ राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वा करादिभिः ॥ १४ ॥ वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥ १५ ॥ वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ॥ विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥ १६ ॥ जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः ॥ ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥ १७ ॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन वा ॥ सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ १८ ॥ ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ॥ मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥१९॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ॥ वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २० ॥ शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ॥ ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥ २१ ॥ शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्म-

कुछ कहे मिले उसीमें सन्तोष करना, यायावर—रोज अन्न आदि मांगना, इन चारोमेंसे उत्तरोत्तर उत्तम ब्राह्मण वृत्ति है ॥ १६ ॥ हेराजन्, अनापत्तिमें क्षत्रियके विना दूसरे पुरुष उत्तम वृत्तिका सहारा न करे। क्षत्रिय परिग्रहको छोड़ द्विज वृत्तियों को ही ग्रहण करे, परन्तु आपत्तिकालमें सब वृत्तिओं का ग्रहण करे ॥१७॥ हे राजन् ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत, सत्य अनृत-इनमेंसे किसी वृत्तिको ग्रहण करे। परन्तु श्ववृत्तिको न करे ॥१८॥ शिलोञ्छनको ऋत, अयाचितको अमृत, नित्य याचना कर लानेको मृत, कृषिको प्रमृत वृत्ति कहा ॥१९॥ व्यापारमें सत्य-असत्य और नीच जातिकी सेवाको श्ववृत्ति कहा है, उस वृत्तिको सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय त्यागें। क्योंकि सर्ववेदमय ब्राह्मण, है तथा सर्वदेवमय राजा है ॥ २० ॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, दया, भगवत्परायणता, सत्य—ये ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ शूरवीर, वीर्यवान, धैर्य, तेजस्वी, त्याग, आत्मजय, क्षमा, ब्रह्मण्यता, प्रताप, रक्षावपन ये क्षत्रियके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लक्षण हैं ॥ २२ ॥ देवता, गुरु, अच्युतमें निश्चल भक्ति करना, चिन्ताकी पुष्टि करना, आस्तिक्यता, उद्यमो, व्यवहारमें चतुरता ये वैश्योंके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ विनम्रव रहना, शौच, मालिककी सेवा, अमन्त्रसे यज्ञ करना, चोरी न करना सत्य बोलना गो ब्राह्मणका पालन करना —ये शूद्रके धर्म हैं ॥ २४ ॥ पतिकी शुश्रूषा करना उसके कहनेपर चलना उसके बन्धुवोंमें में अनुवृत्ति करना पतिके व्यवहारोंको ग्रहण करना ये सब स्त्रियोंके समयानुसार धर्म कहे हैं ॥ २५ ॥ संमार्जन और लेपनसे घरके चौकको पूर मनोहर वस्त्र-गहनोंको धारणकर अपनी देहको सदा अलंकृत रखे ॥२६॥ समयानुसार अपने स्वामीके छोटे-बड़े सब कार्यको सम्पन्न करे । विनय इन्द्रियका सांयम, सत्य और प्रिय वाक्योंसे प्रेमसे समयपर पतिकी सेवा ॥२७॥ सन्तुष्ट अलोलुप दक्ष धर्मज्ञ सत्य प्रिय पवित्र प्रेम मयी ऐसी स्वयं हो पतिकी सेवा करे ॥२८॥ जो स्त्री लक्ष्मीके तुल्य होकर हरि भावसे पतिकी सेवा करती है वह हरिलोक में

जयः क्षमा ॥ ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥ २२ ॥ देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ॥ आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ॥ २३ ॥ शूद्रस्य सन्नतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ॥ अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता ॥ तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥ २५ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः ॥ स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥ २६ ॥ कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ॥ वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम् ॥ २७ ॥ सन्तुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ॥ अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत ॥ २८ ॥ या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ॥ हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥ २९ ॥ वृत्तिः सङ्करजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ॥ अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेवसायिनाम् ॥ ३० ॥ प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ॥ वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ॥ ३१ ॥ वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ॥ हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥ ३२ ॥ उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ॥ न कल्पते पुनः सूत्या उप्तं बीजं च नश्यति ॥ ३३ ॥ एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ॥ विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत्कामबिन्दुभिः ॥ ३४ ॥

हरिकासा रूप प्राप्तकर पतिके जैसे विष्णुके सङ्ग लक्ष्मीके तुल्य आनन्दानुभव करती है, वैसे ही तुम भी भोगेगी ॥ २९ ॥ हेराजन्, जो अचोरी और अपापमें रहित उन संकरजातियोंकी वे ही वृत्तियाँ हैं, जो उनकी कुलाचारसे होती आई हैं ॥ ३० ॥ हे राजन्, वेदके जानकार ऋषियोंने प्रत्येक युगमें जीवोंके स्वभावसे विहित प्रायः जो धर्म कहे हैं, वे इसलोक और परलोकमें हितकारी होते हैं ॥ ३१ ॥ जो जीव अपनी स्वभावकृत वृत्तिका वर्तमान स्वकर्मकृतका आश्रय लेकर वह शनैः शनै उस स्वभावकृत कर्मका हननकर निर्गुणताको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ जैसे बारबार बोनेवाला खेत स्वयं निर्वीर्य हो जाता है, उसमें अङ्कुर नहीं होता और बोया हुआ बीज भी नाश हो जाता है ॥ ३३ ॥ इसप्रकार वासनाओंसे मन भोगोंकी अधिकताके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सेवनसे आपही विरागताको प्राप्त होता है, जैसे एक बूँद घृत छोड़नेसे अग्नि शान्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ * हे राजन्, जिस पुरुषके वर्णको उत्पन्न करनेवाला जो लक्षण कहा है, यदि वह

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ॥ यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अन्यत्र भी दिखे तो उसको उसे ही वर्णका जाने ॥ ३५ ॥

ग्यारहवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, वर्ण और आश्रम धर्मोंके विषयमें जो आपने जाननेकी इच्छा प्रकटकी है, सो अब आप सुनिये, मैं उनका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। हे राजन्, अध्ययन करना और कराना, यज्ञ करना और कराना, दान लेना और देना–ये छः ब्राह्मणके लिये कर्म विहित हैं। इनमें अध्ययन कराना, यज्ञ कराना तथा दान लेना––ये तीन कर्म ब्राह्मणकी आजीविकाके लिये नियत हैं। आपत्तिकालमें प्रतिग्रहको छोड़कर बाकी सब कर्म क्षत्रियके लिये भी विहित हैं। हे राजन्, ब्राह्मणको छोड़कर और वर्णोंसे कर लेना, सभीका पालन करना––ये क्षत्रियके कर्म हैं। खेती करना, व्यापार करना, पशुओंको पालना और सूद लेकर आजीविका चलाना—ये वैश्योंके कर्म नियत हैं। उपर्युक्त तीनों वर्णोंकी सेवा करना ही शूद्रोंकी जीविकाका एकमात्र साधन कहा गया है। हे राजन्,पतिकी सेवा करना ही पतिव्रता स्त्रीका लक्षण और धर्म है। प्रत्येक युगमें सत्त्वादि गुणोंके अनुसार जिन पुरुषोंका जो धर्म विहित है वही इस लोक तथा परलोकमें सुखदायक होता है। हे राजन्, स्वाभाविक वृत्तिसे अपना कर्म करता हुआ पुरुष धीरे-धीरे कर्मको छोड़कर निर्गुण अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

* दृष्टान्त—बुद्धिमान् उसी को कहा जाता है जो समय समय पर उचित या अनुचितरूप से अपने प्राणों की रक्षा करे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

[गुरुकुलवासी ब्रह्मचारीका कर्तव्य और वानप्रस्थाश्रमीका नित्यकर्म प्रकार]

नारदने कहा—हे धर्मराज, ब्रह्मचारी गुरुकुलमें निवास करता हुआ इन्द्रियोंको दमनकर दासवत् नीच जान सदा गुरुदेवका परोपकार करे तथा उनमें सुदृढ़ प्रेम रखे ॥ १ ॥ सायं और प्रातः समय गुरु, अग्नि, सूर्य, सुरोत्तमाकी पूजा करे, एकाग्रमनसे गायत्रीके जपको करता हुआ दोनों काल मौनतासे सन्ध्या करे ॥ २ ॥ जब गुरुके आह्वान होनेपर विनम्रसे वेदोंका अध्ययन करे, तथा पाठ प्रारम्भ और समाप्तिपर गुरुके चरणोंमें शिर रख नमस्कार करे ॥ ३ ॥ मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत, दर्भपाणि होकर रहे ॥ ४ ॥ सायं और प्रातःकालकी भिक्षा लाकर गुरुको दे दे। यदि गुरुकी आज्ञा हो तो भक्षण करे अन्यथा उपवासरूपी व्रत रहे ॥ ५ ॥ सुशील, स्वल्पभोजी, दक्ष, श्रद्धालु

नारद उवाच ॥ ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ॥ आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥ १॥ सायम्प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ॥ उभे सन्ध्ये च यतवाग्जपन्ब्रह्म समाहितः ॥ २ ॥ छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयन्त्रितः ॥ उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥ ३ ॥ मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून् ॥ बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥ ४ ॥ सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ॥ भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत्क्वचित् ॥ ५ ॥ सुशीलो मितभुग्दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥ ६ ॥ वर्जयेत्प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः ॥ इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपि यतेर्मनः ॥ ७॥ केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम् ॥ गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा ॥ ८ ॥ नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान् ॥ सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥ ९ ॥

और जितेन्द्रिय रहे। कार्यानुसार ही प्रमदाओं और स्त्रीनिर्जित प्राणियोंके संग सम्बन्ध करे ॥ ६ ॥ अगृहस्थ प्रमदागाथासे मुक्त रहे, क्योंकि उद्वेगोत्पन्नको करलेनेवाली इन्द्रियोंको तथा यतियोंके चित्तको भी हर लेती हैं ॥ ७ ॥ केश, देह, स्नान, अभ्यञ्जनादि कार्य युवां पुरुष अपनी युवा गुरुस्त्रीसे न करावे ॥ ८ ॥ क्योंकि स्त्री प्रमत्त अग्निके सदृश, तथा पुरुष घृतकुम्भके तुल्य हैं, उसको अपनी सुता के संग भी एकान्तमें न रहे या कार्यानुसार ही उनके समीप रहे ॥ ९ ॥ ❀ हे राजन्, तत्त्वज्ञानमें सामर्थी जीव इनके आभासरूपकी ही

दृष्टान्त—एक महात्मा भगवत्भजन करते हुए समय विता रहे थे। उनकी प्रसिद्धि सुन कर किसी धूर्त ने उनको एक रेशमी वस्त्र में लपेट कर 'श्रीभगवद्गीता' नामक पुस्तक दी। इससे उनका प्रेम उस पुस्तक में होगया। उसकी रक्षा में मूसों के भय से बिल्ली पाली बिल्ली को दूध के लिये गौ की सेवा में ग्रामीण कन्या को नियुक्त किया। उसके रूप में मोहित महात्मा जी ने अपनी सारी तपस्या नष्ट करदी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कल्पना मनमें करता है, तबतक उसकी द्वैतबुद्धिका विराम नहीं होता। इसलिये उसका विपर्यय निश्चित है ॥ १० ॥ वह सब नियम गृहस्थ और यतिके लिये भी कहे हैं, परन्तु गृहस्थ के लिये ऋतुगामी गुरुवृत्ति विकल्पसे कहा है ॥ ११ ॥ अञ्जन, तेल मर्दन करना, उबटन लगाना, स्त्रियोंकी तसवीर बनाना, मांसाहार, मद्याहार, माला, चन्दन, गहने आदिसे व्रत-धारी मुक्त रहे ॥ १२ ॥ इसप्रकार गुरुकुलमें निवास कर अपने बलानुसार शिक्षा आदि त्रयी तथा उपनिषद सहित वेद पढ़ मनन करे ॥ १३ ॥ यदि सामर्थ्य हो तो गुरुजीको दक्षिणा दे दे उनसे आज्ञा लेकर गृहस्थ, वानप्रथ, संन्यास आश्रममें प्रविष्ट करे यदि ब्रह्मचारी होना हो तो गुरुके पास रहे ॥ १४ ॥ भगवान् अधोक्षजरूपसे किसी भी वस्तुमें प्रवेश नहीं हो जाते तो भी अग्नि, गुरु, आत्मा और सब जीवोंमें उनको अपने आश्रित प्राणियोंके संग संलग्न देखे ॥ १५ ॥ इसप्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, यति और गृहस्थ प्राणी ज्ञात चीजको प्रत्यक्षा-

कल्पयित्वात्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ॥ द्वैतं तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥ १० ॥ एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ॥ गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥ ११ ॥ अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु ॥ स्रग्गन्धलेपालङ्कारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥ १२ ॥ उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च ॥ त्रयीं साङ्गोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥ १३ ॥ दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ॥ गृहं वनं वा प्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥ १४ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ॥ भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥ १५ ॥ एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ॥ चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥ वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंमतान् ॥ यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥ १७ ॥ न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः । अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत ॥ १८ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत्कालचोदितान् ॥ लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत ॥ १९ ॥ अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाद्रिकन्दराम् ॥ श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥ २० ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत् ॥ कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥ २१ ॥

कारकर ब्रह्मलोकको प्राप्तकर लेता ॥ १६ ॥ तुमको मैं मुनिसम्मत वानप्रस्थके नियमोंको कहता हूँ, जिस नियमोंका व्यवहारकर अप्रयास मुनि ऋषिलोक जाता है ॥१७॥ जोती पृथ्वीसे उपजा अन्न तथा विना उपजी पृथ्वीमें प्रादुर्भूत भी जो नियमानुसारके पूर्व पक चुका भी हो, तो न भक्षण करे। अग्निके द्वारा पक्व हो या अपरिपक्व हो उसको भी भक्षण न करे। परन्तु सूर्यके तपन द्वारा पक्वकर भक्षण करे ॥ १८ ॥ वनमें धान्योंसे समय विहित चरु और पुरोडाशका निर्वाप करे। नूतन अन्नके प्राप्त होनेपर पूर्व संग्रहीत अन्नका त्यागकर दे ॥१९॥ यज्ञीय-अग्न्यर्थ रक्षाके लिये ही पर्णकुटी और पर्वतकन्दराका सहारा ले तथा आप शीत, वायु, अग्नि, वर्षा, ग्रीष्मका तपनादिकी शक्ति ग्रहणकर सहन करे ॥ २० ॥ अपने मस्तकपर जटा धारणकर केश, रोम, नख, दाढ़ी, मूँछ मल, कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कलवस्त्र, अग्निहोत्रके स्रुक् स्रुव आदि पास रखे ॥ २१ ॥ चातुर्यशाली मुनिको उचित है कि तपस्या के कष्टसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बुद्धिका विपर्यय न हो उसप्रकार बारह वर्ष, आठ वर्ष, चार वर्ष, दो वर्ष, एक वर्षतक वानप्रस्थाश्रमकी सभी आज्ञाओंकी रक्षा करे ॥ २२ ॥ हे राजन्, जब वानप्रस्थी मुनि किसी तरहके व्याधी या वृद्धावस्थाके द्वारा अपना कार्य और आन्वीक्षिकी विद्यामें मनन करनेमें सामर्थ्यहीन हो तो वह अनशन आदि व्रत करे ॥ २३ ॥ परन्तु अनशनारम्भके पूर्व आत्मामें अग्नियोंका आरोपण करे तथा प्रेमादि त्याग उत्पत्ति कारणसे पञ्चतत्वोंमें अच्छी तरह विलीन करे ॥ २४ ॥ मननशील प्राणीको उचित है कि अपने उत्पत्ति-स्थानानुसार अपने इन्द्रियगोलकको आकाश, प्राणको वायुमें, उष्णताको अग्निमें, कफ तथा पूय आदिको जलमें और शेष अस्थि आदि चीजोंको भूमिमें लय करे ॥ २५ ॥ वाणी तथा सत्कर्म वक्तव्यको अग्निमें, शिल्प और हाथको इन्द्रमें, गतिसहित चरणोंको विष्णुमें, रतिसंग उपस्थ प्रजापतिमें, पायु तथा विसर्गको यथासाध्य मृत्युमें निर्देश करे। हे राजन्, नाद श्रोत्रको दिशाओंमें, स्पर्श और त्वचाको

चरेद्वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ॥ द्वावेकं वा यथाबुद्धिर्नविपद्येत कृच्छ्रतः ॥ २२ ॥ यदाऽकल्पःस्वक्रियायांव्याधिभिर्जरयाऽथ वा ॥ आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम् ॥ २३ ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् ॥ कारणेषुन्यसेत्सम्यक् संघातं तु यथार्हतः ॥ २४ ॥ खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ॥ अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥ २५ ॥ वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि ॥पादानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥ मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत ॥ दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥२७॥ रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिष्यभि निवेशयेत ॥ अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौन्यसेत् ॥२८॥ मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे ॥ कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममताक्रिया ॥ सत्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥ २९ ॥ अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ॥३०॥ इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ॥ ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० पु० स० द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वायुमें, नेत्रस्वर सहित रूपको ज्योतिमें निर्देश करे। रससहित जिह्वाको जलमें, गंधसहित घ्राणेन्द्रियको भूमिमें विलीन करे ॥ २६, २८ ॥ स्वाभिलषित चित्तको चन्द्रमामें, ज्ञातवस्तुओंके साथ बुद्धिको ब्रह्मामें, अहंकार सहित तत्कार्योंको रुद्रमें लय करे जिनसे अहन्ता ममता क्रिया पूर्ण होती है। चेतनायुक्त मनको प्राणीमें, और गुणोंके निमित्त वैकारिकोत्पन्न प्राणीको परब्रह्ममें लयकर दे ॥ २९ ॥ भूमिको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहङ्कारमें, अहङ्कारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको अव्यक्तमें, अव्यक्तको ईश्वरमें लय करे ॥ ३० ॥ इसप्रकार लयचिन्तनानन्तर अवशिष्ट चिन्मात्र ईश्वरको अक्षरतासे आत्मामें जान आप अद्वितीयरूपसे स्थित हो अपने आश्रयरूप लकड़ी आदिके राख होनेपर शान्त अग्नितुल्य सर्वदा विराम करे ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बारहवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, गुरुकुलवासी ब्रह्मचारीका यह धर्म है कि वह गुरुकी सेवा करे, सुबह और शामको प्रतिदिन भिक्षा लाकर गुरुको समर्पित करे तथा गुरुकी आज्ञा लेकर अपने भोजन करे। स्त्री सम्पर्कसे दूर रहे, गुरु, अग्नि और सूर्यमें भक्ति करे। गायत्रीमन्त्रका जप करे तथा शास्त्राध्ययनमें सर्वदा तत्पर रहे। हे राजन्, वानप्रस्थाश्रमीको चाहिये कि वह किसी वनमें या पर्वतपर जाकर निवास करे, सुख-दुखके सहनमें तत्पर रहे, नित्य कर्मोंको करता हुआ आत्मतत्वके अनुसन्धानमें लगा रहे, सन्तोषी बने, सबमें एक दृष्टि रखे, चावल आदिका भक्षण न करे और केवल पके हुए फलोंको ही भक्षण किया करे। बारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

(वानप्रस्थ धर्मनिरूपण प्रह्लाद तथा सह्यपर्वतपर स्थित मुनिसे बातचीत—यह वर्णन)

श्रीनारदजी ने कहा—हे धर्मराज, कथित वानप्रस्थी प्राणी ब्रह्मचिन्तनमें यदि सामर्थ्य हो तो संन्यास ग्रहणकर देहके बिना सब चीजोंको छोड़े, परन्तु गाँवमें एक रातही निवास करनेका नियम ग्रहणकर कुछ न चाहता हुआ आनन्दसे भूमिपर भ्रमण करे ॥ १ ॥ कपड़ा धारण करना चाहता हो तो कौपीनमात्र पहिने। जितने कालतक विपत्तिका सामना न

नारद उवाच ॥ कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ॥ ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥ १ ॥ बिभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत्किञ्चिदनापदि ॥ २ ॥ एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥ ३ ॥ पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये ॥ आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥ ४ ॥ सुप्तप्रबोधयोः सन्धावात्मनो

हो तबतक दण्ड और आश्रमचिह्नके बिना अन्य त्याज्य चीज ग्रहण न करे ॥ भिक्षुको उचित है कि वह सब जीवोंका हित करनेवाला, शान्त और नारायण-परायण रहता हुआ भी किसीका सहारा न ले आत्मारामभावसे सर्वत्र भ्रमण करे ॥ ३ ॥ जो जीव कार्य और कारण दोनोंसे अलग है, उस विनाशरहित आत्मामें प्रपञ्च जाने तथा कार्यकारणस्वरूपी सब जगत्में परब्रह्मरूप आत्माको संलग्न जाने ॥ ४ ॥ आत्मदर्शी यति सुषुप्ति, जागृतसन्धिमें आत्मरूपका साक्षात्कार कर बन्धन और मोक्ष मायामात्र है पर कुछ भी उनका वास्तविकरूप नहीं है, यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जान चतुरस्त्र परब्रह्मरूप आत्माका ही दर्शन करे ॥५॥ इस देहको निश्चित प्राप्त होनेवाली मृत्युका या उसके निश्चित रहित जीवनका अभिनन्दन न कर सब जीवोंकी उत्पत्ति और नाशका निमित्तरूप केवल कालका समय देखता रहे ॥ ६ ॥ असत् शास्त्रोंमें प्रेम न करे, किसी आजीविकाका सहारा ग्रहण न करे, विवादार्थ तर्कोंको सर्वथा छोड़ किसी पत्तका ग्रहण न करे ॥ ७ ॥ शिष्यमण्डलीको न जुटावे, बहुतसे ग्रन्थोंका अभ्यास न करे, शास्त्रोंकी व्याख्या न करे, मठ स्थापना आदि कार्य्य आरम्भ न करे ॥ ८ ॥ शान्त और समदर्शी महात्मा यतिका आश्रम प्रायशः धर्मके आचरणार्थ नहीं है, अतः वह अपने आश्रमस्थ चिन्होंको उचित हो तो ग्रहण करे या छोड़ दे ॥ ९ ॥ बाह्यचिन्हसे अलग हो आत्मानुसन्धानमें लगा हुआ ज्ञानी-बुद्धिमान् होकर भी दूसरे जीवोंके प्रति उन्मत्त एवं बालकवत् पण्डित होकर भी मूकके तुल्य अपनेको दिखावे ॥१०॥ हेराजन्, इस विषयमें विद्वान्जन अजगरवृत्तिसे रहनवाले मुनि और

गतिमात्मदृक् ॥ पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥५॥ नाभिनन्देद्ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवितम् ॥ कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥६॥ नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ॥ वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कञ्च न संश्रयेत् ॥७॥ न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून् ॥ न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत्क्वचित् ॥८॥ न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः ॥ शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ॥ ९ ॥ अव्यक्तलिङ्गो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ॥ कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥ १० ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ ११ ॥ तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ॥ रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥ १२ ॥ ददर्श लोकान्विचरँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥१३॥ कर्मणाकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाश्रमादिभिः ॥ न विदन्ति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥ १४ ॥ तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवत्पादयोः शिरसा स्पृशन् ॥ विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥ १५ ॥ बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान् यथा ॥ वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ॥ भोगिनां खलु

प्रह्लादका संवादरूपी प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं ॥ ११ ॥ एक समयकी वार्ता है कि लोकतत्वकी अभिलाषासे भगवद्भक्त प्रह्लादने कुछ मन्त्रियोंके सङ्ग संसारमें घूमते हुए सह्यपर्वत के शिखरपर तथा कावेरीनदीके किनारे एक मुनीश्वरको भूमिपर विश्राम करते देखा, उससमय उनका विमलतेज धूलि अंगोंसे ढँका हुआ था ॥१२, १३॥ उनके कर्म, आकार, वाणी, वर्णाश्रम आदिके चिन्होंसे जीव यह नहीं जान सकते थे कि सिद्ध हैं या अन्य कोई, वहाँ जाकर महाभागवत असुरोत्तम प्रह्लादने उनके चरणोंपर शिररख नमस्कारकर सविधि-अर्चनोत्तर जिज्ञासा की ॥ १४, १५ ॥ हे भगवन्, आप उद्योगशील और जीवोंके तुल्य पुष्ट शरीर धारण किये हैं। प्रायशः जगत्में उद्यमशील प्राणियोंको ही धन प्राप्त होता है, जो धनी हो जाते हैं उन्हींको ऐश्वर्य मिलते हैं, भोगमेंकी देह मोटी ताजी होतीहै अन्यकी नहीं ॥१६॥ लेकिन इसप्रकार उद्यमहीन हुए आपके समीप कुछ भी धन नहीं है, जिससे आपको ऐश्वर्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मिल सके, हे भगवन्, आपकी देह इतनी पुष्ट क्यों है, यह बतलाने योग्य हो तो बतलाइये ॥ १७ ॥ आप विद्वान्, सामर्थ्यी तथा चतुर हैं लोगोंको राजी करनेवाली नाना तरहकी बातें भी आप जानते हैं। ऐसी परिस्थितिमें सबको काम करते देख भी आप उदासीनवत् क्यों रहते हैं ॥ १८ ॥ श्रीनारद कहते हैं—हे धर्मराज, दैत्यपति प्रहलादके इसप्रकार पूछनेपर उनके वचनामृतसे आकृष्ट वे महामुनि हँसते हुए कहने लगे ॥१६॥ ब्राह्मणने कहा—हे असुरश्रेष्ठ, साधुसमाजमें सम्मानित तुम हो, इसलिए जीवोंको प्रवृत्ति और निवृत्तिसे क्या फल मिलता है इन सबको अपनी ज्ञानदृष्टि द्वारा ही देख तुम जान जाते हो ॥ २० ॥ शुद्धभक्तिसे साक्षात् भगवान् सदा तुम्हारे चित्तमें निवास करते हैं, जिसप्रकार अन्धकारको सूर्य नाश करता है, तद्वत् ही वे तुम्हारे अज्ञानका नाश करते हैं ॥२१॥ तब भी हे राजन्, जैसा मैंने श्रवण किया है उसके अनुसार तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देरहा हूँ। क्योंकि जो जीव अपना अन्तःकरण

देहोऽयं पीवा- भवति नान्यथा ॥ १६ ॥ न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नु हार्थो यत एव भोगः ॥ अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यत-स्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥१७॥ कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ॥लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वित्तितापि वा ॥ १८ ॥ नारदउवाच ॥ स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ॥ स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥१६॥ ब्राह्मण उवाच ॥ वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान्नन्वार्यसंमतः ॥ ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥२०॥ यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा ॥ भक्त्या केवलयाऽज्ञानं धुनोति ध्वान्तमर्कवत् ॥२१॥ अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतम् ॥ संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥ २२ ॥ तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ॥ कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥२३॥ यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥२४॥ अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ॥ कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥२५॥ सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ॥ मनः

पवित्र करनेकी इच्छा रखते हों, उन्हें तुम्हारा सत्कार करना ही चाहिए ॥ २२ ॥ ❀ हे प्रहलाद, इच्छित ऐश्वर्योंसे भी जो दुस्तरतासे तृप्त होता जा सकती है तथा जो जन्ममरणस्वरूपी जगत्चक्रको चला रही है, वह तृष्णा मेरेसे नाना तरहके कर्मको कराकर सात तरहकी योनियोंमें मुझे भ्रमण दिला चुकी है ॥ २३ ॥ कर्मोंकी प्रेरणासे नाना योनियोंमें भ्रमण करते हुए भाग्यसे मुझे यह मनुष्य जन्म मिला है—जो स्वर्ग, तिर्यगयोनि, मोक्ष फिर इस मनुष्य योनिकी ही प्राप्तिका द्वार है ॥ २४ ॥ इसमें भी दम्पतिको आनन्दानुभव और कष्टको दूर करनेके लिये निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी उलटा फल मिलता देख मैं सर्वथा कर्मोंसे अलग हो गया ॥ २५ ॥ हे राजन्, आत्माका रूप आनन्द है तथा सब इच्छाओंके दूर होनेपर स्वयं

❀ दृष्टान्त—किसी बन में लकड़हारा प्रतिदिन जंगली सूखी लकड़ी बीन कर या पेड़ से काट कर अपने कुटुम्ब का पालन पोषण किया करता था एक समय उसी मार्ग से ऋषियों का समूह गुजर रहा था। उनको देख कर उसने उनको दण्डवत प्रणाम किया उसका अवशिष्ट जीवन सुखमय व्यतीत होने लगा। इसलिये कर्म की गति बड़ी विचित्र है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वह उत्पन्न हो जाता है। अतः सब ऐश्वर्योंको मनोरथमात्र जान प्रारब्ध-भोग करता हुआ यहाँ निवास करता हूँ ॥ २६ ॥ जगत्‌का हरएक जीव इसीप्रकार अपने तथ्य स्वार्थको विस्मरणकर द्वैतप्रपञ्चके असद् होनेपर भी जन्म मरणरूप विचित्र और घोर जगत्‌चक्रमें पड़ा रहता है ॥ २७ ॥ जैसे—अज्ञानरहित जीव पानीसे ही प्रादुर्भूत तिनके तथा सेवार आदिसे ढके हुए जलको त्याग एकमात्र पानीकी इच्छासे मृगतृष्णाकी तरफ दौड़ता रहता है तद्वत् ही आत्मासे अलग पुरुषार्थका माननेवाला जीव आत्मानुसन्धानसे पराङ्मुख होकर विषयोंकी तरफ दौड़ता है ॥ २८ ॥ परन्तु जो जीव दैवतन्त्र देहादिकोंसे आनन्द प्राप्ति और दुःखको दूर करनेकी इच्छा करता है तो उस दैवविहीन जीवकी बारम्बार की हुई सब क्रियाएँ विपरीत हो जाती हैं ॥ २९ ॥ ऐसी परिस्थितिमें कुछ सफलता प्राप्त हो तब भी अध्यात्मिक आदि कष्टोंसे कभी भी मुक्त न प्राप्त होनेवाले मरणशील प्राणीकोदुःखसाध्य अर्थ और ऐश्वर्योंद्वारा क्या

संस्पर्शजान्दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥ २६ ॥ इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् ॥ विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥ २७ ॥ जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया ॥ मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक्स्वतः ॥ २८ ॥ देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः ॥ दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥ २९ ॥ आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित् ॥ मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥ ३० ॥ पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ॥ भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥ ३१ ॥ राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः ॥ अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥ ३२ ॥ शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात्तत्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥ ३३ ॥ मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ ॥ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥ ३४ ॥ विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ॥ कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥ ३५ ॥ अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ॥ नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ॥ क्वचिद्भूरि-

आनन्द प्राप्त हो जा सकता है ॥ ३० ॥ धनलोलुप तथा जितेन्द्रियहीन धनियोंका दुःख तो देखता ही रहता हूँ। उन्हें सर्वत्र संशय रहता है बड़े भयसे नीद तक नहीं आती ॥ ३१ ॥ प्राण और धन सम्पन्न जीवोंको राजा, चोर, शत्रु, बन्धु, पशु, पक्षी, भिक्षुक, काल, आप अपनेसे भी सदा डर रहा करता है ॥ ३२ ॥ इसलिये बुद्धिमान् जीव शोक, मोह, भय, क्रोध राग, क्लीवता, श्रम आदिके फेरमें गिरानेवाले धन तथा प्राणोंकी अभिलाषाको छोड़ देवे ॥ ३३ ॥ हे प्रहलाद, जगतमें मधुमक्षिका और अजगर ये हमारे परमगुरु हैं, इन्हींसे शिक्षा ग्रहणकर हमने वैराग्य तथा सन्तोष प्राप्त किया है ॥ ३४ ॥ मधुके सदृश परिश्रमसे एकत्रित किये धनको भी अन्य प्राणी उसके स्वमीका हननकर बलसे छीन लेते हैं, इसप्रकार मैंने मधुमक्षिकासे ऐश्वर्योंसे सर्वदा विरक्त होना सीखा है। और अजगरके तुल्य चेष्टारहित हो दैवके आधीन जो कुछ प्राप्त हो जाता है, उसीमें प्रसन्न रहता हूँ, यदि कुछ भी कमी नहीं प्राप्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होता तो भी धैर्यतासे बहुत काल तक निराहार रहता हूँ ॥ ३५, ३६ ॥ मैं कभी अल्पाहार करता हूँ कभी अधिकाहारी हो जाता हूँ, इसप्रकार अमधुर नानाप्रकारके गुणोंसे सम्पन्न, कभी गुणहीन, कभी श्रद्धासे प्राप्त, कभी अपमानसे प्राप्त अन्न ही भक्षण करता हूँ कभी एक समय भोजनकर दिन या रातको पुनः भोजकर लेता हूँ ॥ ३७, ३८ ॥ मुझे रेशमी या सूती वस्त्र, मृगचर्म, चीर, वल्कल जैसा मेरेको प्राप्त हो, उसको ही कार्यमें ले आता हूँ। क्योंकि प्रारब्धभोगी तथा सन्तोषी जीव हूँ ॥ ३९ ॥ कभी भूमि, तृण, पत्तों, पाषाणों और राखके समूहपर रहता हूँ कभी अन्योंके इच्छानुसार महलोंमें पलङ्गों और गद्दियोंपर शयन करता हूँ ॥ ४० ॥ हे समर्थ, मैं कभी स्नानकर देहमें चन्दनसे अलङ्कृत हो वस्त्र, माला आदिसे सुशोभित हो रथ. हाथी, घोड़ेपर सवार हो चलता हूँ, कभी पिशाचके सदृश भ्रमण करता हूँ ॥ ४१ ॥ मैं नानारूप प्रकृतिवाले जीवोंसे किसोकी निन्दा या प्रशंसा नहीं करता हूँ किन्तु

गुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥ ३७ ॥ श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ॥ भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद्दिवा नक्तं यदृच्छया ॥ ३८ ॥ क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा ॥ वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ॥ ३९ ॥ क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ॥ क्वचित्प्रासादापर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥ ४० ॥ क्वचित्स्नातोऽनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृत ॥ रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो ॥ ४१ ॥ नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ॥ एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥ ४२ ॥ विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ॥ मनो वैकारिके हुत्वा तं मायायां जुहोत्यनु ॥ ४३ ॥ आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ्मुनिः ॥ ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः ॥ ४४ ॥ स्वात्मावृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ॥ व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्परः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः ॥ पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसम्वादे यतिधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सदा इन जीवोंके लिये कल्याणकी इच्छा करता हूँ ॥ ४२ ॥ सत्यके अन्वेषण चाहनेवालोंका कार्य है कि अनेक तरहके विकल्पोंको अपनी भेदको ग्रहणकरनेवाली चित्तवृत्तिमें और उसको पदार्थोंमें, वस्तुओंको भ्रम उत्पन्न करनेवाले चित्तमें हवन करे तथा मनको सात्विक अहंकारमें, अहंकारको महत्त्वसे क्रमशः मायामें होम करे, मायाको आत्मानुभवमें हवन करे, इसप्रकार अपने आत्मज्ञानसे आत्मारूपमें स्थित हो सब कार्योंसे मुक्त हो बिलकुल दूर हटे ॥ ४३, ४४ ॥ हे असुरश्रेष्ठ, इसप्रकार देखनेमें संसार और शास्त्र विपरीत प्रतीत हो जानेवाली अपनी सब कथा अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी तुमको मैंने कही, क्योंकि भगवान्के उत्कट भक्त तुम हो ॥ ४५ ॥ नारदजी कहते हैं—हेराजन्, उन मुनिराजके मुखसे परमहंसधर्म श्रवणकर सुरेश्वर प्रह्लादने उनकी अर्चनाकर उनसे आज्ञा स्वीकारकर वे प्रसन्न चित्तसे अपने गृहको चले गये ॥ ४६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेरहवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे राजन्, वानप्रस्थाश्रमके धर्मोंके पालनमें असमर्थ पुरुषको चाहिये कि वह सबका परित्यागकर कौपीनधारी होकर इस भूतलपर कीटवत् विचरण करता फिरे, कहीं एक जगह स्थिर न रहे। भगवान् नारायणको एकमात्र अपना आश्रय समझकर सकल प्राणियोंके हित चिन्तनमें तत्पर रहे, सबको अपने स्वरूपमें तथा अपनेको सबमें देखता हुआ वह भिक्षु अकेले विचरण किया करे। आत्मतत्वका अवलोकन करनेवाला यति बन्ध और मोक्ष दोनोंको अविद्याकल्पित जानकर परब्रह्मका ही एकमात्र अवलोकन करता रहे। हे राजन्, सह्यपर्वतके ऊपर एक समय भगवद्भक्त प्रहलादजीने किसी एक मुनिको देखा, जो देखनेमें अधिक मोटे ताजे थे। प्रहलादजीने उनको प्रणाम किया और तत्व जाननेकी इच्छासे पूछा—भगवन्, उद्योगी और उत्तम भोजन करनेवाले पुरुषके सदृश आप इतने मोटे-ताजे कैसे बने हुए हैं, क्योंकि आप तो रात-दिन अपनी तपस्यामें ही लगे हुए हैं? यों भक्तवर प्रहलादजीकी बातें सुनकर मुनीश्वरने कहा—हे दैत्येन्द्र, तुम ज्ञानी हो अन्तर्दृष्टिसे सब कुछ जानते हो, फिर भी मैं कहता हूँ, सुनो, मैं अपने कर्मोंके द्वारा नाना विध योनियोंमें भटकता हुआ आज मनुष्य योनिमें आ गया हूँ। अब भला क्या मैं फिर कर्मोंके चक्करमें पड़ूँगा। हे असुरश्रेष्ठ, सुख ही जीवका स्वरूप है और सम्पूर्ण कर्मोंके त्यागसे वह अपने आप प्राप्त होता है, मानसिक भोगोंको मैं नश्वर समझकर प्रारब्ध कर्मोंका उपभोग करता हुआ अनुद्योगी बनकर यहाँ अवस्थित हूँ। दैत्येन्द्र, इस लोकमें मधुमक्खी और अजगर—ये ही हमारे गुरु हैं। इन्हींकी शिक्षासे मुझे वैराग्य और सन्तोष प्राप्त हुआ है। हे असुरश्रेष्ठ, जो कुछ मिल जाता है उसे ही सन्तोष पूर्वक खा कर रह जाता हूँ। इस संसारमें अजितेन्द्रिय पुरुष कभी चैनसे नहीं रहते, सदा हाय हाय किया करते हैं। हे असुरश्रेष्ठ, त्यागी और अदीन बने हुए महात्मा सदा मोटे-ताजे दीख पड़ेगें। भोगोंके द्वारा कदापि शान्ति नहीं मिल सकती। प्रारब्ध कर्म भोगनेवाला सदा सन्तुष्ट चित्त रहता है। मैं भेद-भाव रखनेवाले निन्दा या स्तुति नहीं करता, किन्तु भगवान् से उसकी मुक्तिके लिये प्रार्थना किया करता हूँ। धर्मराज, मुनिकी ऐसी बात सुनकर प्रहलादजी उन्हें प्रणाम कर वहाँ से अपने घरको लौट गये। तेरहवाँ अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❋

[गृस्थाश्रमी पुरुषोंके लिए गृहस्थाश्रम कर्मोंका निरूपण]

युधिष्ठिरने कहा—हेदेवऋषे, गृहमें संलग्न मूढधीवाले गृहस्थ भी प्रयास विना यह पद प्राप्त करें वह आप मुझे कहिये ॥ १ ॥ नारदजीने कहा—हेराजन्, गृहस्थाश्रमी जीव

युधिष्ठिर उवाच ॥ गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ॥ याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ गृहे-

सब गृहस्थोचित कामोंको वासुदेवार्पण करता सदा धैर्यशाली प्राणियोंके सङ्ग भगवान्के अमृत अवतार कथाको श्रद्धासे सुन साक्षात् महामुनियोंकी सेवा करे ॥२,३॥ सत्सङ्गसे धीरे २

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निश्चिंत मुक्त होनेवाले जाया-आत्मजोंकी संलग्नता आप ही छोड़े । जैसे-स्वप्नसे जाग्रत प्राणी स्वप्न निर्मित वस्तुओंमें संलग्न नहीं होता ॥४॥ पण्डित पुरुषका कार्य है कि वह केवल प्रयोजनार्थ गृह और देहसे व्यवहारिक अन्दरसे विरक्त हो ऊपरसे रागीके सदृश करता हुआ इस लोकमें पुरुषार्थ अपना करे ॥५॥ जातिवाले, पिता-माता पुत्र, भ्राता सुहृद अपर जो कुछ कह दें या इच्छा करें तो ममता रहित हो अनुमोदन करे ॥६॥ बुद्धिमान्को उचित है कि दिव्य भौम अन्तरिक्ष आदि से निर्मित अकारण मिलनेवाले द्रव्य आदि और दैवी वस्तुओंका आनन्द लेता हुआ अवशिष्ट सत्कार्यमें ही ललावे ॥७॥ शरीरधारियोंका सत्व जितने द्रव्यसे उनकी उदर पूर्ति हो उतने द्रव्यसे ममत्व रक्खे उससे अधिकपर जो अपना सत्व समझता है वह चोर और दंडच है ॥८॥ मृग, ऊँट, गर्दभ, बन्दर, चूहा, सर्प, पक्षी, मक्षिका आदिको भी स्वपुत्रवत् जाने क्योंकि उनमें और अपनेसे अन्तर क्या ॥९॥ गृहस्थ निर्माणके साधनमें अधिक संलग्न न

व्यवस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् गृहोचिताः ॥ वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥ २ ॥ शृण्वन्भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथामृतम् ॥ श्रद्दधानोयथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥ ३ ॥ सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु ॥ विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥ यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः ॥ विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५ ॥ ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ॥ यद्वदन्ति य दिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥ ६ ॥ दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ॥ तत्सर्वमुपभुञ्जान एतत्कुर्यात्स्वतो बुधः ॥ ७ ॥ यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् ॥ अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥८॥ मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ॥ आत्मनः पुत्रवत्पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत् ॥ ९ ॥ त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ॥ यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥ १० ॥ आश्वाघान्तेवसायिभ्यः कामान्संविभजेद्यथा ॥ अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥ ११ ॥ जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद्वा पितरं गुरुम् ॥ तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद्यस्तेन ह्यजितोजितः ॥ १२ ॥ कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम् ॥ क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभ-

हो परन्तु देश और कालके अनुकूल दैवबलसे जो प्राप्त हो उतनेमें ही प्रसन्न रहे ॥ १० ॥ अपने ऐश्वर्य वस्तुओंकोकुत्ते पति चांडाल आदि सभी जीवोंको यथोचित बटवारा कर भोग करे और अपनी पत्नीको अपनी जानता है-उसे अतिथि आदिकी सुश्रूषामें संलग्न करता रहे ॥ ११ ॥ हे राजन्, जिस पत्नीके लिए अपने प्राण तक भी मनुष्य दे देता है । पिता-माता और गुरुका भी हनन कर देता है उसमें जो ममत्वका अभिमान नहीं रखता वह अजेय ईश्वरको भी जीत लेता है ॥१२॥ जो अन्त समयमें कृमि विष्टा या राख बन जाती है कहाँ वह तुच्छ कलेवर उसीके लिये जिसमें प्रेम हो जाता है वह पत्नी कहाँ आकाशका भी आवरण करनेवाला आत्मा स्वतः आत्मचिन्तन करे ॥१३॥ गृहस्थ प्राणी दैवके योगबलसे प्राप्त और पञ्चमहायज्ञादिसे बचे हुए अन्नसे ही अपना निर्वाह करे, जो ज्ञानी मनुष्य उस बचे हुए अन्नके विना दूसरी वस्तु में ममत्व नहीं रखता वह महात्माओंका पद प्राप्त कर लेता है ॥ १४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हेराजन्, गृहस्थी जीव विहित आजीविकासे प्राप्त द्रव्यसे प्रतिदित देव, ऋषि, मनुष्य, भूत, पितरों तथा अपने आत्माका अचन करे, इससे अलग ईश्वरका यजन हो जाता है ॥ १५ ॥ परन्तु अपनेको अधिकार आदि सब यज्ञसम्पति मिल जाय तो यज्ञकी विधिसे अग्निहोत्रादि द्वारा यजन करे ॥ १६ ॥ हेराजन्, द्विजोंके मुखमें समर्पण किये हुए अन्नादिसे जिसतरह सर्वयज्ञभुक भगवान्की पूजा होती है, उसतरह अग्निमुखमें हवन हुए हविसे भी नहीं प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ अतः ब्राह्मण, देवता, मनुष्यादिमें उचित ऐश्वर्यसे नारायणका अर्चन करो, दूसरोंका ब्राह्मणोंके बाद जानिये ॥ १८ ॥ अपने ऐश्वर्यानुसार भाद्रपदमासके अपरपक्षमें अपने माता-पिताका वित्तानुसार श्राद्ध करे, यदि वित्तशाली हो तो उनके बन्धुओंका भी श्राद्ध कर दे ॥ १९ ॥ अयन विषुव, व्यतीपात, दिनक्षय, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहणपर, द्वादशीको श्रवणादि तीन नक्षत्रोंमें, वैशाखशुक्लपक्षकी तृतीया, कार्तिकशुक्लपक्षकी नवमी, हेमन्त और

श्छदिः॥ १३ ॥ सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः ॥ शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥ १४ ॥ देवानृषीन्नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ॥ स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥ १५ ॥ यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसंपदः ॥ वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥ १६ ॥ नह्यग्नि मुखतोऽयं वै भगवान्सर्वज्ञभुक् ॥ इज्येत हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः ॥ १७ ॥ तस्माद्ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः ॥ तैस्तैः कामैर्भजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥ १८ ॥ कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः ॥ श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान् ॥ १९ ॥ अयने विषुवे कुर्याद्व्यतीपाते दिनक्षये ॥ चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च ॥ २० ॥ तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके ॥ चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥ २१ ॥ माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ॥ राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥ २२ ॥ द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः ॥ तिसृष्वेकादशी वासु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥ २३ ॥ त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ॥ कुर्यात्सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥ २४ ॥ एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम् ॥ पितृदेवनृभूतेभ्यो यद्दत्तं तद्ध्यनश्वरम् ॥२५॥ संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ॥ प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥ २६ ॥

शिशिरकी चार अष्टका, माघशुक्लपक्षकी सप्तमीको, मघानक्षत्र, पूर्णचन्द्र पूर्णिमाके योग हो जानेसे, पूर्णचन्द्र या एक कलासे न्यून चन्द्रमावाली पूर्णिमाके सङ्ग चित्रा, ज्येष्ठा, आषाढ़
१५ मासनक्षत्रोंके योगपर, द्वादशीतिथिको, अनुराधा, श्रवण, तीनों उत्तरा नक्षत्र, या उत्तरा नक्षत्रोंमें एकादशीके संयोगपर जन्मनक्षत्र, श्रवणनक्षत्र, आदिमें पितरोंका श्राद्ध करे ॥२०-२३ ॥ हेराजन्, मङ्गलकामनाके योग्य ये सब समय जीवोंके मंगल वृद्धि करते हैं। इन कार्योंपर यत्नसे शुभकार्य सब करे क्योंकि इसीमें जीवन सार्थक है॥ २४ ॥ इन कार्योंपर स्नान, जप, होम, व्रत, देवता और द्विजोंकी जो अर्चना होती है या देवता, पितर,मनुष्य, भूतोंको जो कुछ भी दिया जाताहै, वह अनश्वर होता है ॥२५॥ हेनृप, स्त्रीके पुंसवन आदि, सन्तानके जात-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्मादि अपने यज्ञदीक्षादिसंस्कार समयपर, प्रेतके दहनादि और वार्षिक श्राद्धपर आभ्युदयिककर्मोंमें किये गए स्नानादि कर्म अक्षय पुण्योंकों देते हैं ॥ २६ ॥ हेराजन्, धर्मादि श्रेयको प्राप्त करानेवाले देशोंको कहता हूँ। जिसमें सप्पात्र मनुष्य प्राप्त होते हों वही सबसे अत्यधिक पवित्र देश कहाता है ॥ २७ ॥ जिन भगवान्में यह सब चर अचर संसार विराजमान है, उनका प्रतिबिम्ब जहाँ हो वहाँ तप, विद्या और दया आदि गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण वंश हो ॥ २८ ॥ जहाँ भगवान्का अर्चन होता हो वे देश कल्याणको देनेवाले होते हैं। पुराणोंमें जहाँ सिद्धोंसे सेवित क्षेत्र हैं। जैसे—कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम, नैमिषारण्य, फाल्गुनक्षत्र, सेतुबन्ध, प्रभास, काशी, मथुरा, पम्पासर, बिन्दुसरोवर, बदरिकाश्रम, नन्दा, सीता, रामचन्द्रके आश्रमादि, महेन्द्र, मलयाचलादि सब कुलपर्वत, जहाँ भगवान् की मूर्तियाँ हों ये सब देश परम पवित्र कहे जाते हैं, जिन्हें अपने श्रेयकामकी इच्छा हो वे इन देशोंका निरन्तर

अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान् ॥ वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥ २७ ॥ बिम्बं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ॥ यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥ २८ ॥ यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ॥ यत्रगङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥ २९ ॥ सरांसि पुस्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ॥ कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥ ३० ॥ नैमिषं फल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ॥ वाराणसी मधुपुरी पम्पाबिन्दुसरस्तथा ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ॥ सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादय ॥३२ ॥ एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये ॥ एतान्देशान्निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥ धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥ ३३ ॥ पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ॥ हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥ ३४ ॥ देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ॥ राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाऽच्युतः ॥ ३५ ॥ जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् ॥ तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥ पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ॥ शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥ ३७ ॥ तेष्वेषु भगवान् राजंस्तारतम्येन

सेवन करे। क्योंकि इन जगहोंपर किया हुआ पुण्यकार्य प्राणियोंको हजार गुणाधिक फलको देता है ॥ २९–३३ ॥ हे पृथिवीपते, पात्रके गुणोंकी परीक्षाकर मननशील प्राणियोंने श्रीहरिको ही सत्पात्र कहा क्योंकि, सब चर-अचर संसार उन्हींका रूप है ॥ ३४ ॥ तुम्हारे यज्ञमें देवता, ऋषि, सिद्धि, ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंके रहने पर भी प्रथम अर्चनाधिकारी श्रीअच्युत ही जाने गये थे ॥ ३५ ॥ सब मनुष्य समुदायसे परिपूर्ण ब्रह्माण्ड स्वरूप महावृक्षके मूल भी वे भगवान् ही हैं, इसलिए हरिके अर्चनसे सबको तृप्ति हो जाती है ॥ ३६ ॥ उन्हींने मनुष्य, तिर्यक्, ऋषि, देवता आदिके देहरूप पुरोंकी कल्पना की। वे ही इन पुरोंमें जीव स्वरूपसे सोते हैं, इसलिए लोग उन्हें पुरुष भी कह देते हैं ॥ ३७॥ हे राजन्, इन जीवादि देहोंमें कम वेशी भावसे चारोतरफ ईश्वर ही विद्यमान रहते हैं, ये ही सर्वश्रेष्ठ हैं, परन्तु जिसमें भगवान्का अंश जितना ही ज्यादा मिलता है, उतना ही अधिक वह उत्तम होता है ॥३८॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे राजन् उन सब जीवोंमें आपसमें तिरस्कारादिकी अभिरुचि देख पण्डितोंने त्रेता आदि युगोंमें उपासनार्थ भगवत्प्रतिमाकी रचना की ॥ ३९ ॥ तबसे बहुतसे प्राणी बड़ी श्रद्धा और संभारसे प्रतिमामें ही ईश्वरकी अर्चना करने लगे किन्तु उस उत्कृष्ट जीव में शत्रुता करनेवालोंकी प्रतिमा पूजनसे भी पुरुषार्थसिद्धि नहीं हो सकती ॥ ४० ॥ हे राजेन्द्र, उन सब जीवोंमें

वर्तते ॥ तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ॥ त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥ ३९ ॥ ततोऽर्चायां हरिं केचित्संश्रद्धाय सपर्यया ॥ उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥ ४० ॥ पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥ ४१ ॥ नन्वस्य ब्राह्मणा राजन् कृष्णस्य जगदात्मनः ॥ पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥४२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णयो नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

भी ब्राह्मणको ही सुपात्र जाना गया वह अपने तप विद्या सन्तोष आदि गुणोंसे साक्षात् नारायण देवरूप देहको ग्रहण करतो है ॥ ४१ ॥ हे राजन्, अपनी चरणधूलिसे त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले ब्राह्मण जगत्के आत्मा भगवान् कृष्णके भी पूज्य इष्टदेव होते आए हैं ॥ ४२ ॥

चौदहवें अध्यायका सार—नारदजीने कहा—हे धर्मराज, गृहस्थाश्रमी पुरुष गृहस्थाश्रमके योग्य कर्मोंका सम्पादनकर उन्हें भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित करता हुआ महर्षियों की सेवामें सदा तत्पर रहे। आवश्यककर्मोंकी शीघ्र समाप्तिके बाद भगवान्के भजनके लिये कुछ थोड़ासा समय अवश्य बच लिया करे। सत्सङ्ग न छोड़े। ममताशून्य होकर घरमें निवास करे। स्त्री, पुत्र, धन आदि विषयोंमें अति आसक्ति न रक्खे। नित्य नैमित्तिक, श्राद्ध, देवपूजन आदि कर्मोंका सदा सम्पादन करता रहे। हे राजन्, गृहस्थाश्रमी अपने वर्गोचित क्रियाओंको कभी न छोड़े। हे राजन्, अधिक मैं आपसे क्या कहूँ, थोड़ेमें आपको बतला देता हूँ कि प्रत्येक गृहस्थको उचित है वह श्राद्धोंमें श्रद्धा भगवान् विष्णुमें भक्ति और विषयोंमें वितृष्णता रक्खे। चौदहवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❀

[प्राणियोंको भगवान्‌से प्रेम भक्ति बढ़ानेके लिये नारदजीके इति कर्तव्यताका स्मरण रखना चाहिये यह वर्णन]

नारदजीने कहा—हे राजन्, कुछ ब्राह्मण कर्मनिष्ठ कुछ तपोनिष्ठ होते हैं, कुछ वेदाध्ययनमें संलग्न कुछ शास्त्रोंका प्रवचन करते हैं, कुछ ज्ञान तथा योगाभ्यासी होते हैं ॥१॥ गृहस्थी प्राणी को उचित है कि अपने कार्यके अत्यधिक फल प्राप्तिके लिये उनमेंसे ज्ञानीको ही पितर और देवोंके निमित्त दिये हुए कव्य तथा हव्य प्रदान करे, यदि ऐसा ब्राह्मण न मिल सके तो अन्योंको योग्यतासे देवे ॥ २ ॥ देव कामोंमें दो, पितृकर्ममें तीन या दोनों कर्मोंमें एक एक ब्राह्मणको भोजन करा दे । विस्तृत धनी होनेपर भी अधिक विस्तार श्राद्ध में न करे ॥ ३ ॥ क्योंकि बहुतसे बान्धवोंका आवाहनकर सविस्तार करनेपर देश कालोचित श्रद्धा, पदार्थ, पात्र, अर्चनादिका यथोचित कार्य नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ परन्तु देश-काल

नारद उवाच ॥ कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठा नृपापरे ॥ स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥१॥ ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता ॥ दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथार्हतः ॥२॥ द्वौ दैवेपितृकार्ये त्रीनेकैमसुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥३॥ देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च॥सम्यग्भवन्ति नैनाति विस्तरात्स्वजनार्पणात् ॥४॥ देशे काले च संप्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ॥ श्रद्धया विधिवत्पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥५॥ देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ॥ अन्नं संविभजन्पश्येत्सर्वं तत्पुरुषात्मकम् ॥ न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्ववित् ॥ मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥७॥ नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ॥ न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥ ८ ॥ एके कर्ममयान्यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ॥ आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ९ ॥ द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति॥ एष माऽकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृब्ध्रुवम् ॥१०॥ तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ॥सन्तुष्टोऽह-

प्राप्त हो जानेपर मुनिजनके भक्षण योग्य अन्न भगवान्‌को समर्पणकर श्रद्धासे योग्य सुपात्रको भोजन करा दे तो वह सब इच्छाओंको परिपूर्ण करता हुआ अक्षयफल देता है ॥ ५ ॥ हे राजन्, देवता, ऋषि, पितर, भूत अपने अपने कुटुम्बियोंको अन्नका तथ्य विभाग करे तथा परमात्मारूपसे सबको देखें ॥ ६ ॥ धर्मज्ञ मनुष्य श्राद्धमें मांस न दे तथा भक्षण भी न करे, क्योंकि पितरोंको मुन्यन्नोंसे प्राप्ति जैसी होती है, वैसी हिंसासे नहीं होती ॥ ७ ॥ जगत्‌के जीवोंका मन, वाणी, देहसे, कोई दण्ड न दे सद्धर्मकी इच्छावालोंके लिये इससे उत्तम कोई धर्म नहीं है ॥ ८ ॥ यज्ञवित् कितने ही निष्काम और ज्ञानाग्निसे प्रदीप्त मनोनिग्रहस्वरूप यज्ञमें कर्ममय इन यज्ञोंका होम कर देते हैं ॥ ९ ॥ क्योंकि द्रव्यमय यज्ञसे भगवान्‌का पूजन करनेवाले मनुष्यको देख सब लोग मन ही मनमें यह विचारकर भय करते हैं कि अपने ही प्राणोंका पोषक यह निर्दयी तथा ज्ञानरहित पुरुष मुझे निश्चित हनन करेगा ॥ १० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसलिये धमज्ञ प्राणीको उचित है कि वह नित्य प्रारब्धसे प्राप्त मुनि-अन्नसे ही सन्तोषकर नित्य नैमित्तिक कार्य परिपूर्ण करे ॥ ११ ॥ हे राजन्, धर्मात्माको उचित है कि विधर्म, परधर्म आभास, उपमा, छल, इन पाँच अधर्म शाखाओंको अधर्मके तुल्य जान सर्वथा छोड़ दे ॥ १२ ॥ जो कर्म धर्म बुद्धिसे करनेपर भी धर्ममें विघ्न हो तो वह विधर्म कहाता है। किसी अन्य द्वारा दूसरे मनुष्यके लिये कहा हुवा धर्म परधर्म होता है। पाखण्ड और दम्भको उपधर्म कहते हैं। अर्थान्तररूपसे व्याख्याका अन्य अर्थ करना छल है ॥ १३ ॥ अपने आश्रमसे पृथक जनोंका मनचाहा धर्म आभास है। हेराजन्, अपनी इच्छासे किसको शास्त्र प्रतिपादित धर्म शान्त नहीं करता है ॥ १४ ॥ हेराजन्, लक्ष्मीविहीन जीव धर्म या देहयात्राके निमित्त भी धनकी इच्छा न करे क्योंकि, उद्योगहीन अजगरके तुल्य वृत्तिपरायण प्राणीका निर्वाह उसकी निवृत्ति ही कर देती है ॥ १५ ॥ सन्तोषी, निवृत्तिपरायण, आत्माराम प्राणीको जो सुख

रहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥११॥ विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ॥ अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्यजेत् ॥१२॥ धर्मबाधो विधर्मः स्यात्परधर्मोऽन्यचोदितः ॥ उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥१३॥ यस्त्विच्छया कृतः पुम्भिराभासो ह्याश्रमात्पृथक् ॥ स्वभाव-विहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये ॥१४॥ धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाऽधनो धनम् ॥ अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥१५ सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम् ॥ कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥१६ सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ शर्कराकंटका-दिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥ १७ ॥ सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा ॥ औपस्थ्यजैह्वयकार्पण्याद्गृहपालायते जनः ॥ १८ ॥ असन्तुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ॥ स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥१९॥ कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ॥ जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥ २० ॥ पण्डिता बहवो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः ॥ सदसस्पतयोऽप्येके असन्तोषात्प-तन्त्यधः ॥ २१ ॥ असङ्कल्पाज्जयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात ॥ अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात ॥ २२ ॥ आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ

मिल जाता है वह इच्छा और लालचवश धनके निमित्त चतुरतासे श्रवण करनेवाले पुरुषको कहाँ मिल सकता है ॥ १६ ॥ शान्तिमनवालेके निमित्त दिशाएँ सर्वदा आनन्द देती हैं। जैसे पैरोंमें जूता पहने हुए प्राणी कंकड़ तथा काँटे आदिसे कष्ट नहीं पाता ॥ १७ ॥ जो उपस्थ और जीभके वासनाओंकी इच्छासे अधीर रहता है, वह लोभी होकर घरकी चौकसी करनेवाले कुत्तेके सदृश होता है। हेराजन्, यह सब प्राप्त होते हुए भी प्राणी दैवबलसे प्राप्त जलमात्रसे ही प्रसन्न नहीं क्यों होता ॥ १८ ॥ जो द्विज सन्तोष नहीं रखता उसका तेज, विद्या, तप, यश, इन्द्रियकी लोलुपता आदि नष्ट हो जाती है तथा विचारशीलता भी सर्वदा नाश हो जाती है ॥ १९ ॥ क्षुधा, प्यास शान्त होनेपर अन्न तथा जल की इच्छा नाश हो जाती है। हिंसा आदि होनेपर वह भी शान्ति प्राप्त कर ले, परन्तु दसों दिशाओं विजयकर उनका उपभोग करने वाद भी मनुष्यके लोलुपत्वका खात्मा नहीं होता ॥ २० ॥ हे राजन्, अनेक प्रकारकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विद्याओंके जानकर अन्य नाना संशयोंको दूर करनेवाले, नाना सभाओंके सभापतित्वको ग्रहण करनेवाले अगणित विद्वान् हैं जो सन्तोष हीनताके निमित्त ही पतित हो ग॰ ॥ २१ ॥ हे धर्मराज (संकल्पत्याग से कामको इच्छाओंके त्यागसे, क्रोधको, अर्थमें अनर्थबुद्धि रखनेसे लोभको, तत्वके मनसे डरको जीतना चाहिए ॥ २२ ॥ इसीप्रकार अध्यात्मविद्यासे दुःख तथा मोहको, महापुरुषोंकी सुश्रूषासे अभिमान्को, मौनसे योगके विघ्नोंको, देहकी निश्चेष्टतासे हिंसाको दयासे आधिभौतिक दुःखको, समाधिसे आधिदैविक वेदनाको, योगबलसे अध्यात्मिक दुःखको, सात्विक आहारादि सेवनसे निन्द्राको, सत्त्वगुणसे रजोगुण एवं तमोगुणको तथा उपरति सत्त्वगुणको जीत लेवे हरेक प्राणी इन सबको गुरुभक्तिसे विना प्रयास विजय पा लेता है ॥ २३–२५ ॥ हेराजन्, अपने ज्ञानतेजसे प्रकाश करनेवाले साक्षात् भगवान्स्वरूप गुरुदेवमें जिन मनुष्योंका यह प्राणी है ऐसी दुर्बुद्धि हो जाती है, उनका सब शास्त्र सुनना गजके नहानेके तुल्य बेकार है ॥ २६ ॥ महान् योगेश्वर जिनके चरण-कमलोंका अन्वेषण करते हैं, जो प्रधान और पुरुषके मालिक हैं, वे साक्षात् ईश्वर हो तो गरुदेव हैं। जो इन्हें जीव कहते

दम्भं महदुपासया ॥ योगान्तरायान्मौनेन हिंसां कायद्यनीहया ॥२३॥ कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात्समाधिना ॥ आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥२४॥ रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ॥ एतत्सर्वं गुरौ भक्त्यापुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥ २५ ॥ यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञान-दीपप्रदे गुरौ ॥ मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥२६॥ एष वै भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः । योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम् ॥ २७ ॥ षड्वर्गसयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः ॥ तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥२८॥ यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ॥ अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथाऽसतः । २९॥ यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः ॥ एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥ ३० ॥ देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति ॥ ३१ ॥ प्राणापानौ सन्निरुन्ध्यात्पूरकुम्भकरेचकैः ॥ यावन्मनस्त्यजेत्कामान्स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२ ॥ यतो यतो निःसरती मनः कामहतं भ्रमत् ॥ ततस्तत उपाहृत्य हृदि

हैं, वे चूकते हैं ॥ २७ ॥ हेराजन्, सब नियमविधिका एक ही लक्ष्य है वह मन, पाँच ज्ञानेइन्द्रियोंको जीत लेना, यह सब प्राप्त होते हुए भी यदि वे नियमादि-योग आदि साधक न हो सकें तो परिश्रममात्र हैं ॥ २८ ॥ जैसे–खेती आदिके काम मोक्ष देनेवाले न होकर विपरीत स्वरूप जगत् ही वृद्धि करते हैं, वैसेही बहिर्मुखके इष्ट-पूर्त आदि सब कार्य बन्धन ही निमित्त होते हैं ॥ २९ ॥ हे धर्मराज, जो जीव चित्तपर विजय प्राप्त करना चाहता हो वह परिग्रह और सब संग छोड़ संन्यासको ग्रहणकर किसी एकान्त जगहमें स्वतन्त्र ही निवास करता हुआ भिक्षावृत्ति द्वारा अल्प भोजन करे ॥३०॥ हेराजन्, वह प्राणी किसी एकान्त और एकसी भूमिपर आसनको लगाकर देहको सीधा तथा स्थिर रखते हुए आनन्दसे बैठ ओंकारका उच्चारण करे ॥ ३१ ॥ उसका चित्त जबतक संकल्प विकल्पोंको न छोड़े तबतक वह नासिकाके आगेवाले भागपर दृष्टि लगाकर पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायाम द्वारा प्राण और अपानकी गतिके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रोके रहे ॥ ३२ ॥ नानाविध इच्छाओंके वशीभूत हो इधर-उधर भ्रमता हुआ मन जहाँ भी जाय वह बुद्धिमान पुरुष वहाँ-वहाँसे पुनरावृत्तिकर शनैः-शनैः अपने मनमें रोक दे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार बराबर अभ्यास करनेवाले यतिका मन अल्प समय बाद इन्धनहीन अग्निके सदृश्य स्थिर हो जाता है ॥३४॥ इसप्रकार कामादि इच्छाओंके दुःखसे शून्य योगीका मन फिर कभी भी चञ्चल नहीं होता क्योंकि ब्रह्मानन्दका अनुभव करनेपर जीवकी सब वृत्तियां बिल्कुल शमन हो जाती हैं ॥ ३५ ॥ जो जीव भिक्षुक होकर भी धर्म, अर्थ, कामकी इच्छा करानेवाले गृहस्थाश्रमको छोड़कर धर्मादिका ही सेवन करता है, वह अपने ही उगले हुएको खाता है तथा बड़ा लज्जारहित जीव है ॥ ३६ ॥ ऐसा भी कभी देखा गया है कि अपने शरीरका अनात्मा मरणशील और परिणाममें विष्टा, कीड़े एवं भस्मस्वरूप माननेवाले ही मूर्ख फिर उसे आत्मा मानकर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं ॥ ३७ ॥ हेराजन्, गृहस्थका कर्म छोड़ना,

रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥ ३३ ॥ एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ॥ अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥३४॥ कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् ॥ चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥ ३५ ॥ यः प्रव्रज्य गृहात्पूर्वं त्रिवर्गावपनात्पुनः ॥ यदि सेवेत तान् भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥ ३६ ॥ यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् ॥ त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ॥३७॥ गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि ॥ तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलौल्यता ॥ ३८ ॥ आश्रमापसदा ह्येतेखल्वाश्रमविडम्बकाः ॥ देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया॥३९॥ आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञानधुताशयः ॥ किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥४०॥ आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून्मनः इन्द्रियेशम् ॥ वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्वं वृहद्‌बन्धुरमीशसृष्टम् ॥ ४१ ॥ अक्षं दश-प्राणमधर्मधर्मौ चक्रेभिमानं रथिनं च जीवम् ॥ धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥ ४२ ॥ रागो द्वेषश्च लोभश्च शोक-

ब्रह्मचारीका व्रत त्यागना, तपस्वीका ग्राममें निवास करना, संन्यासीका इन्द्रियलोलुप होना, इसमें ये चारों ही कुत्सित कहे गए हैं, ये अपने आश्रमोंकी विडम्बना करते हैं। ईश्वरकृत माया से विमोहित मूर्खोंपर दयाकर सदा उनकी अवहेलना ही करना उचित है ॥ ३८, ३९ ॥ अपनी आत्माको जो ब्रह्मरूप माना है। उस आत्मज्ञानसे जिसकी सब इच्छाएँ नष्ट हो चुकी रहती हैं वह जीव किस प्रकार इच्छा एवं किस नामसे इन्द्रियसंलग्न हो अपने देहको पुष्ट करेगा ॥ ४० ॥ उत्कट विद्वानोंका कहना है कि यह देह रथ है, इन्द्रिय घोड़े, उनका मालिक मन लगाम है, उसके शब्दादि मार्ग हैं बुद्धि सारथी है, चित्त ईश्वर निर्मित विशाल बन्धन है दशों प्राण इसकी धुरी है धर्म और अधर्म ये दोनों पहिये हैं अभिमानी जीव इसका रथी है उसका धनुष ओंकार, बाण जीव, लक्ष्य परब्रह्म है अतः जैसे धनुषपर बाण कसकर लक्ष्यमें प्रयोग किया जाता है, तद्वत् ही ओंकार जप अपने अन्तरात्माको ईश्वरमें विलीन करे ॥४१-४२॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, निन्दा करना, छल, हिंसा, ईर्ष्या प्रमाद क्षुधा निद्रा ये और भी प्राणीके नानाविधि अनेक शत्रु हैं। कभी रजोगुणी एवं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तमोगणी प्रकृति वाले जीव परोपकार-आदि सात्त्विकत्वसे भी उत्पन्न देखे हुए हैं ॥ ४३ ४४ ॥ अतः जबतक प्राणी इन्द्रिय-आदि सब संभारसे संपन्न अपने आधीन रहने योग्य यह मनुष्य शरीरस्वरूप रथ ग्रहण किये हैं तभी गुरुजनोंकी चरण अर्चना तीक्ष्ण ज्ञानरूप तलवारको ग्रहणकर भगवान् अच्युत चरणोंका आश्रय ग्रहण करे इन अरियोंका नाशकर सदा शान्त हो आत्मानन्दमें रमता रहता हुआ इस देहरूपी रथीकी भी अवहेलना करे ॥४५॥ कुछ भी त्रुटि होनेपर असत् इन्द्रियस्वरूपी अश्व तथा बुद्धिरूप सारथी उस रथके मालिकरूप जीवको कुत्सित रास्तेपर ले जाकर विषयरूपी लुटेरोंको सौंप देंगे तथा वे सारथी घोड़ोंके संग २ इसे मृत्युरूपी अत्युत्कट भयसे संपन्न अन्धकाररूप जगत्कूपमें गिरा देंगे ॥४६॥ हेराजन्, दो प्रकारके वैदिक कर्म हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। उनमें प्रवृत्ति कर्मसे जीवको जन्म-मरणरूप जगत् मिलता है निवृत्तिसे अमृत्व प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ शास्त्रोक्त श्येन विधिसे यागादिहिंसा

मोहो भयं मदः ॥ मानोऽवमानोऽसूया च मायाहिंसा च मत्सर ॥ ४३ ॥ रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः ॥ रजस्तमःप्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥ ४४ ॥ यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ॥ ज्ञानादिच्युतबलो दधदस्यशत्रुः स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजयह्यात ॥ ४५ ॥ नो चेत्प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति ॥ ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽन्धे संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥ ४६ ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥ ४७ ॥ हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम् ॥ दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः॥४८ ॥ एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ॥ पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम् ॥ ४९ ॥ द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ॥ अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥ ५० ॥ अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः ॥ एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥ ५१ ॥ निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ॥ इन्द्रियेषु क्रियायज्ञाञ्ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥ ५२ ॥ इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः ॥ वाचं वर्णसमाम्नाये तमोङ्कारे स्वरे न्यसेत ॥ ओङ्कारं

सम्पन्न कर्म माने जाते हैं। अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास चातुर्मास्य पशुयाग वैश्वदेव बलिहरण आदि सब द्रव्यमय कर्म इष्ट कहे जाते हैं, देवालय बगीचा कुआँ पौसरा आदि लगाना पूर्त कर्म कहे जाते हैं, ये सभी कर्म प्रवृत्तिरूप होते हैं परन्तु ये कामनासे किये जायँ तो अधिकतर अशान्तता प्रगट करते हैं ॥ ४८, ४९ ॥ हेराजन्, सभी प्रवृत्तिपरायण जीव चरुपुरोडाशादिद्रव्यके सूक्ष्म भागसे निर्मित देह ग्रहणकर धूमाभिमानी देवोंके समीप जाते हैं। तो क्रमशः रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके अभिमानी देवोंके समीप जाकर वे चन्द्रलोकमें पहुँच जाते हैं। भोगके समाप्त हो जानेपर वहाँसे अमावस्याको चन्द्रमाके सदृश क्षीण होकर वे पितृयानमार्गसे क्रमशः ओषधि, लता, अन्न, वीर्य रूपमें संलग्न हो, इसी लोकमें जन्म प्राप्त करते हैं ॥ ५० ५१ ॥ हेराजन्, गर्भाधान संस्कारसे श्मशान तक सब संस्कारोंसे युक्त ब्राह्मण ही प्रवृत्तिमार्गका अधिकारी हो जाता है। निवृत्तिमार्गमें संलग्न जीव इष्टपूर्तादिकर्मोंका ज्ञानसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देदीप्यमान इन्द्रियोंमें होमकरता है।।५२।।उनको दर्शना आदि सङ्कल्परूप मनमें, विकृति मनको वाणीमें, वाणीको वर्णसमूहमें,वर्णसमूहको स्वरमें, ओंकारको बिन्दुमें, बिन्दुको नादमें नादको सूत्रात्मारूप प्राणमें, प्राणको ब्रह्ममें विलीन कर देता है ।। ५३ ।। निवृत्तिपरायण ज्ञानी शनैः २ अग्नि, सूर्य, दिन, सायंकाल, शुक्लपक्ष, पूर्णमासी, उत्तरायणके अभिमानी देवोंके पास जाकर ब्रह्मलोकमें पहुँच जाता तथा भोगकी समाप्ति होनेपर स्थूलोपाधिक विश्व अपनी स्थूल उपाधिको विलीनकर सूक्ष्मोपाधिक तैजसरूप होता है । सूक्ष्म उपाधिको हेतुमें लयकर प्राज्ञ-रूपसे स्थित होता अन्तमें कारणोपाधिके भी लय होनेपर वह सर्वसाक्षी तुरीयावस्थासे संपन्न हो जाता है । इसप्रकार वह क्रमशः मोक्षपद प्राप्त करता है ।। ५४ ।। इसीको देवयानमार्गः कहा जाता है । इससे गमनकरनेवाला आत्माका उपासक शान्तात्मा जीव अनेक अग्नि आदिके अभिमानी देवोंके समीप होता हुआ आत्मरूपमें जाकर मिल जाता है । वह जीव इस जगत्में

बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ।। ५३ ।। अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ।। विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ।। ५४ ।। देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः ।। आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ।। ५५ ।। य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ।। शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ।। ५६ ।। आदावन्ते जनानां सद्बहिरन्तः परावरम् ।। ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ।। ५७ ।। आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ।। दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ।।५८।। क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि ।। न सङ्घातो विकारोऽपि न पृथङ्नान्वितो मृषा ।। ५९ ।। धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ।। न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ।। ६० ।। स्यात्सादृश्यभ्रमस्तावद्विकल्पे सति वस्तुनः ।। जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ।।६१।। भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथात्मनः ।। वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः ।।६२।। कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटन्तुवत् ।। अव-

फिर नहीं आता ।। ५५ ।। हेराजन्, जो प्राणी शास्त्रस्वरूप नेत्रोंसे वेदोक्त पितृयान और देवयान मार्गको जानता है, वह मनुष्यसमूहमें निवासकर भी संलग्न नहीं होता ।।५६।। क्योंकि कारण और अवधिरूपसे देहके आदि एवं अन्तमें, उनके अन्दर तथा बाहर ऊँच-नीच, ज्ञान-ज्ञेय वचन-वाच्य, अन्धकार, प्रकाशरूप, आदि जो चीजें हैं, वह तो यह ज्ञानी स्वतः है ।।५७।। जैसे—आभास आवाधित हो जानेपर भी वास्तविक प्रतीत होते हैं, वैसे ही इन्द्रियोंके सम्भव, रहित होते हुए भी सत्यके तुल्य दिखते हैं ।। ५८ ।। भूमि आदि पञ्चभूतोंकी छायारूप यह शरीर उन भूतोंका संघात, विकार, परिणाम कुछ भी नहीं है क्योंकि. यह अपने अवयवोंसे अलग नहीं है न उनमें संलग्न ही है, इसलिए यह झूठा है ।। ५९ ।। देहके निमित्तरूप पञ्चभूत भी अवयवी हो जानेसे तद्वत्रूप ही हैं । इसप्रकार अवयवीके असत् हो जानेपर अवयव भी मिथ्या ही है ।। ६० ।। जबतक प्राणीमें चीजोंका अविद्यासे कल्पित विकल्प बना है, तभीतक तत्सदृश भ्रम ही रह सकता है। जैसे-स्वप्नमें कभी जागृतरूपत्वकी कभी स्वप्नकी प्रतीति होती है वैसेही शास्त्रके विधि निषेध भी स्वप्नवत् मालूम होते हैं ।।६१।। हेराजन्, भावाद्वैत,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्रियाद्वैत, द्रव्याद्वैतका विचार करनेवाला मुनि अपने आत्मानुभवसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिरूप तीनों अवस्थाओंको छोड़ता है ॥६२॥ कार्य-कारणरूपहुँवस्तु पट तन्तु सदृश ही सर्वत्र एक ही रहता है क्योंकि, भेद असत्य है ऐसा मनन करना भावाद्वैत कहा जाता है ॥ ६३ ॥ हे पार्थ, मन, वाणी, देह द्वारा किये गये सब कर्मोंको साक्षात् ब्रह्ममें समर्पण करना ही क्रियाद्वैत कहलाता है ॥ ६४ ॥ सुतादि, सभी दूसरे जीवोंके स्वार्थ और ऐश्वर्योंका एकत्व करना ही द्रव्याद्वैत है ॥ ६५ ॥ हे राजन्, जिस जीवको जो द्रव्य, जिस समय जिस उपायसे जिससे स्वीकार करना शास्त्र विपरीत न हो उसो कोई विपत्तिसमय न हो जानेपर उसीसे अपने सब काम स्वयं ही सम्पन्न करे ॥६६॥ हे राजन्, इस माधुर्यताके कथनानुसार कार्य करनेसे जीव भगवान्की भक्ति प्राप्तकर गृहस्थधर्ममें रहते हुए भी उनके रूपको प्राप्तकर लेता है। हेनरेन्द्र, अपने भगवान् प्रभु कृष्णकी दयासे कठिनतर आप जैसे तुम उत्तीर्ण हुए तथा उन्हींके चरणकमलोंकी सेवासे तुमने दिग्गजों तक विजय प्राप्तकर राजसूय आदि बड़े-बड़े यज्ञ किए तद्वत् ही उन ईश्वरकी दयासे इस जगत् समुद्र भी तुम उत्तीर्ण हो जाओगे ॥ ६७,६८ ॥

स्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥६३॥ यद्ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकर्मसमर्पणम् ॥ मनोवाक्तनुनिभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६४ ॥ आत्मजायासुतादीना मन्येषां सर्वदेहिनाम् ॥ यत्स्वाथकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥ ६५ ॥ यद्यस्य वाऽनिषिद्धं स्याद्येन यत्र यतो नृप ॥ स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥६६॥ एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ॥ गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः ॥६७॥ यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजादापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ॥ यत्पादपङ्केरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥ ६८ ॥ अहं पुराऽभवं कश्चिद्गन्धर्व उपबर्हणः ॥ नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसंमतः ॥ ६९ ॥ रूपपेशलमाधुर्यसौगन्धप्रियदर्शनः। स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥ ७० ॥ एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणः ॥ उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥ ७१ ॥ अहं च गायंस्तद्विद्वान्स्त्रीभिः परिवृतो गतः ॥ ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ॥ याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥ ७२ ॥ तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ॥ शुश्रूषयाऽनुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥ ७३ ॥ धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ॥ गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा

हे राजन्, मैं गत महाकल्पमें दूसरे सभी गन्धर्वोंसे पूजित उपवर्हण नामका गन्धर्व था ॥ ६९ ॥ अपने सौन्दर्य, रूप, कुमारता, मनोहर सुगन्धसे सब जीवोंको मेरा दर्शन बहुत प्यारा था, परन्तु स्त्रियोंको तो मैं बहुत ही प्रिय था। यही कारण है मैं भी उनमें प्रेमातुर हो उन्मत्त था ॥ ७० ॥ एक दिनकी वार्ता है प्रजापतियोंने भगवान्का चरित गानेके लिए देवोंकी यज्ञशालामें नाना गन्धर्व और अप्सराओंका आह्वान किया ॥ ७१ ॥ मैं भी मालूम हो जाने पर स्त्रियोंसे घिरा हुआ उनके संग उन्मत्ततासे गाता हुआ वहाँ पहुँचा। मेरा यह अपमान परिपूर्ण कार्य देख अपने तपोबलसे उन प्रजापतियोंने मुझे शापको देते हुए कहा तूने हमलोगोंकी अवहेलना की है अतः तू इसी क्षण श्रीहीन होकर शूद्रयोनिमें जा ॥ ७२ ॥ असत् कथनानुसार दासीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया, परन्तु वहाँ भी ब्रह्मवादियोंकी सुश्रूषा और उनकी संगति करनेसे मैं ब्रह्माका पुत्र हुआ ॥ ७३ ॥ हेराजन्, तुमको मैंने वह पापनाशक गृहस्थ धर्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा जिसके आचरणसे गृहस्थी मनुष्य भी अनायास संन्यासियोंकी अगाप्य गति प्राप्त कर लेता है ॥ ७४ ॥ हेराजा युधिष्ठिर, जगत्‌में निश्चित तुमलोग बड़े भाग्यशाली हो क्योंकि, तुम्हारे घरोंमें मनुष्यत्वरूपमें गुप्त हुए साक्षात् परब्रह्म निवास करते हैं, यह विचारकर अपने दर्शनोंसे ही लोकोंको पुनीत करनेवाले मुनिगण सब तरफसे तुम्हारे यहाँ आते रहते हैं ॥७५॥ हेराजन्, जिनको महात्मागण अन्वेषण करते हैं वे अद्वितीय और निरुपाधिक कैवल्यानुभवस्वरूप ब्रह्म ही तुम्हारे प्रिय, सुहृद्, मामाके पुत्र, आत्मीय, माननीय आज्ञाको माननेवाले, गुरु भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं ॥ ७६ ॥ अहो, साक्षात् महादेव तथा ब्रह्मा आदि भी तथ्य २ जिनके आकृतिका परिचय नहीं दे सके, मेरे द्वारा भक्ति, मौन और मनःसंयमसे अर्चित वे भक्तवत्सल भगवान् हमपर प्रसन्नहों ॥ ७७ ॥ श्रीशुकदेवने कहा—हेराजन्, नारदकी यह वार्ता श्रवणकर भरतश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरने प्रेमाधिक्यसे विह्वल हो बड़ी प्रसन्नतासे उनकी

न्यासिनामियात् ॥ ७४ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥ ७५ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ७६ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सत्वतां पतिः ॥ ७७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः ॥ पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥ ७८ ॥ कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ॥ श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥ ७९ ॥ इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ॥ देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आर्चना की ॥ ७८ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरसे आज्ञाको लेकर उनके द्वारा पूजित हो श्रीनारदजी चले गये। श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्म ईश्वर हैं—यह समझकर राजा युधिष्ठिर बहुत आश्चर्ययुक्त हुए ॥ ७९ ॥ हे राजन् इसप्रकार मैंने तुम्हें दक्षकन्याओंके अलग २ कुलोंकी कथा सुनायी। जिनमें देवता, असुर, जीवादि सब चर-अचर प्राणी उत्पन्न हुए हैं ॥ ८० ॥

॥ समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पन्द्रहवें अध्यायका सार—हे राजन्, मनसा, वाचा और कर्मणा किसी प्राणीको पीड़ा न देनी चाहिए, नित्य और नैमित्तिक कर्मोंके अनुष्ठानमें मनुष्यको प्रमाद नहीं करना चाहिए। अपने शरीरके अन्दर सदा रहनेवाले काम, क्रोध आदि छः शत्रुओंको जीतनेकी प्रत्येक प्राणीको कोशिश करनी चाहिए। अपने चित्तको काबूमें रखना तथा भगवान्‌का सदा चिन्तन करते रहना प्रत्येक मनुष्यके लिये अत्यन्त कल्याणकारी है हे राजन्, भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे सम्पूर्ण विपत्तियोंको पारकर जाओगे। हे धर्मराज, महात्माओंका कभी अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन्हें अपमानित करनेसे भगवान्‌की भक्ति नष्ट हो जाती है। इस विषयकी मेरी आत्मकहानी बड़ी रोचक है। सुनो, महाकल्पके पहले मैं गन्धर्वों में श्रेष्ठ उपबर्हण नामक गन्धर्व था। सुन्दरता, सुकुमारता और मधुरतामें मेरी बराबरी करनेवाला कोई नहीं था। यही एक विशेष कारण था कि स्त्रियाँ भी मुझे बहुत चाहती थीं, अतः मैं स्त्रीलम्पट महामतवाला बन गया था। एक दिन देवताओंके सत्रमें भगवान्‌के गुणोंका गान करनेके लिये बहुतसी अप्सराएँ दक्षप्रजापतियोंके द्वारा बुलाई गई थीं, यह जानकर मैं भी वहाँ चला गया। मेरेद्वारा की गई अवज्ञा जानकर प्रजापतियोंने मुझे शाप दे दिया—तुमने जो हमारी अवज्ञा की है, इसलिये तेजहीन होकर शूद्रयोनिमें चले जाओ। तदनन्तर मैं एक दासीके उदर से जन्म लिया, परन्तु उस शूद्रयोनिमें भी मुझे ब्रह्मज्ञानियोंका समागम हुआ और उनकी सेवा करनेका मुझे अच्छा अवसर मिला, अतः मैं आगे चलकर ब्रह्माजीका पुत्र हो गया। हे राजन्, मेरे कहनेका तात्पर्य यही है कि सत्संगति न छोड़नी चाहिए क्योंकि वह भगवान्‌की भक्तिमें सहायक है। हे राजन् मैं तो भगवान का अनुचरमात्र होनेसे ही कृतार्थ हो गया हूँ और तुम्हारे तो भगवान् ममेरे भाई हैं। हे राजन्, तुमसे बढ़कर महाभाग्यशाली कोई नहीं है, क्योंकि आजकल तुम्हारे घरमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण नामसे निवास कर रहे हैं। हे राजन्, अधिक क्या कहूँ। भगवान श्रीकृष्णमें अचल भक्ति रखनेवाले तुम धन्य हो। पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रवणविधान—

हरिरुवाच—श्रीमद्भागवते स्कन्धः सप्तमो मे मुखं स्मृतम् । श्रवणात्तस्य स्त्रीघातपापान्मुच्येन्नरो ध्रुवम् ॥ अत्रेतिहास शृणु भो महापापप्रणाशनम् । सौवीरदेशे नृपतिः प्रतीप इति विश्रुतः ॥ तस्य भार्याद्वयं चासीदङ्गकालिङ्गदेशजम् । अङ्गजाभूद्भानुमती नाम्ना पतिपरायणा ॥ कलिङ्गजा चन्द्रवती नाम्ना चन्द्रसमानना । प्रतीपो गणिकासक्तो मद्यपो मांसभुक् तथा ॥ बभूव दैवतो वैश्योच्छिष्टतोयान्नभुक् तदा । कामार्तश्चैकदा राजा चोत्थायार्द्धे निशं गतः ॥ उत्तिष्ठ मे प्राणसमेसद्वारोद्घाटनं कुरु । नृपतेर्वाक्यमाकर्ण्य शयनस्थाऽब्रवीदिदम् ॥ स्वगेहं गच्छ नृपते स्वस्त्रीभीरतिमाचर । मम सङ्गे रतिश्चेत्ते स्वपल्योः शिरस्त्री नय ॥ इति श्रुत्वा पापमतिर्गृहीत्वा मस्तके द्वयोः । खड्गेन छित्वा कामार्तो दर्शयामास तां पुनः ॥ ते दृष्ट्वा सा दृष्टमना राज्ञी नरपतेरभूत् ॥ कोलाहलः प्रभातेऽभूत्स्वपत्न्यौ मारिते इति ॥ नृपेण गणिकासत्या तं धिक्तां धिक् च सर्वथा । श्रुत्वा राजा गर्हयित्वा चात्मानं निर्गतः पुरात् ॥ तत्पुत्रस्तु कृतो राजा मन्त्रिभिः स मृतो यदा । गणिकाऽपि मृतो तावद् उभौ तौ नरकं गतौ ॥ नरकान्ते तु गणिका किरातीत्वं समागसत् । तद्द्वारे हि प्रतीपोभून्मार्जारः पापकर्मणः ॥ गोपीचन्दनसंस्पर्शात्तया ज्ञातो ह्ययं पतिः । गृहीत्वा तं च मार्जारं काशीपुर्यां जगाम सा ॥ तत्र भागवती गाथा श्रुता सप्तसंभवा । ताभ्यां, तत्पुण्यतो या तौ त्यक्त्वा देहं हरेः परम् ॥

(भागवतका—स्वरूप)

तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः । व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ॥ पारीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ॥ परीशिच्छुकसंवादे सृतिद्वयनिरूपणम् । ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम् ॥ पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसम्भवः । द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ॥ चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य सङ्गमः । सृष्टिप्रकरणं पश्चाद् ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कपिलं साङ्ख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः । सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ॥ पृथोः पुण्यतमाख्यानं तथा प्राचीनबर्हिषः । इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गस्कन्ध उत्तमः ॥ प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानाञ्च पुण्यदम् । ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ॥ नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमो गतः । अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणाम् ॥ वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्मपुण्यदम् । षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे ॥ प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् । सप्तमोगदितो वत्स वासनाकर्मकीर्त्तने । गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् । समुद्रमथनं चैव बलिवैभवबन्धनम् ॥ मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः । सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ॥ वंशानुचरिते प्रोक्तो नवमो ऽयं महामते । कृष्णस्य बालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः ॥ कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थिपितः । भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः । नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः । यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥ यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः । भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ॥ वेदशाखाप्रणयणं मार्कण्डेयतपः स्मृतम् । सौरी विभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम् ॥ पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम् । इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ॥

(भागवतदानका—पुरातनस्वरूप)

कृष्णेन यतोद्धवाय दत्तं भागवतं शुभम् । तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवत्पृष्ट्वा श्रीबोधपिप्पलम् ॥ शृणोति यो भागवतं पुराणं ब्रह्मसमन्वितम् । श्लोकार्धं श्लोकपादं वा मौनी नियतमानसः । तस्य पाणौ भवेद्राजन वैष्णवं परमं पदम् ॥ प्रौष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमन्वितम् ! ददाति यो भागवतं स याति परमाङ्गतिम् ॥ पुराणं न श्रुतं यैस्तु श्रीमद्भागवतं क्वचित् । तेषां वृथा जन्मगतं नराणां भूमिवासिनाम् ॥ यैर्नश्रुतं भागवतं पुराणं नाराधिता यैः पुरुषः पुराणः । हुतं मुखे नैव धरामराणां तेषां वृथा जन्मगतं नराणाम् ।—मुद्रित-गर्गसंहिता द्वारकाखण्ड ।—दौलतराम गौड़,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(श्राद्धपर—विचार)

१–श्राद्धदेश पवित्र और दक्षिण दिशामें निम्न होनाचाहिए। २–परिगृहमें स्वामीकी आज्ञासे श्राद्धादि न करनाचाहिए। ३–श्राद्धदिनमें श्राद्धके प्रथम बालकोंको भोजन तथा अतिथिको भिक्षा न देनी चाहिये। ४–श्राद्धदिनमें गृहमें रङ्गावली, चक्की चलाना, कण्ठमें माला धारण, रोदन, दन्तधावन, चौर, तैलाभङ्ग, हास्य, अकारण भाषण, क्षारसे वस्त्रप्रक्षालन आदि निषिद्ध है। ५–गन्धमें—चन्दन श्वेत, अगर, केसर, कस्तूरी, दालचीनी, कपूर, पद्माक, खस, कौरेया, गिरि जटामासी, मेवुड़ी, प्रशस्त हैं, अरण्यतुलसी लोहवान निषिद्ध हैं। ६–पत्रमें—तुलसी, भृङ्गराज, दूर्वा, पवाङ्कुर, आदि प्रशस्त हैं। परन्तु विल्वपत्र निषिद्ध है। ७–धूपमें—गुग्गुल, चन्दन, अगर, खस, पद्मकाष्ठ, कपूर, मलयागिर, देवदास, सलाई आदि प्रशस्त हैं। हस्त-वाताहन धूप, उग्रगन्ध, और प्राण्यङ्गज धूप, निषिद्ध हैं। ८–दीपमें—घृत, तिलतैल, अभावमें सर्षपतैल भी विहीत है। ९–वस्त्रमें—कृष्ण मलिन, उपयुक्त, सच्छिद्र, अदश, रजकधौत वस्त्र श्राद्धमें त्याज्य हैं। १०-पान, चूना, कत्था, सुपारी, इलायची, सीतलचीनी, लवङ्ग, कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी, ये ताम्बूलके उपकरण द्रव्य श्राद्धमें प्रशस्त हैं ११-श्राद्धमें-पाकपात्र लोहका निषिद्ध है छुरी चाकू हँसुआ आदि छेदनपात्र विहित हैं। १२-पक्वान्न रखनेके लिये और कडछी आदिके लिये काष्ठपात्र उत्तम है पाषाण और रांगेका पात्र प्रशस्त नहीं है। १३-भोजनपात्र सुवर्ण, रजत, कांस्य, और पलाशादि पत्र भी प्रशस्त है कदलीपत्र निषिद्ध और विहित है अतः देशाचारसे व्यवस्था करनी चाहिये। १४-ताम्र, पितल, लोहेके भोजन पात्र श्राद्धमें निषिद्ध हैं कोई आचार्य कांस्यपात्रको भी निषिद्ध मानते हैं। १५-श्राद्धमें कुलालचक्रसे निष्पन्न मृत्तिकापात्र सर्वथा निषिद्ध है। १५-श्राद्धीयब्राह्मण विद्वान् असगोत्र हों, पिता पुत्र और दो भाईको एक श्राद्धमें भोजन न करना चाहिये। १६-दन्तधावन, ताम्बूल, तैलाभङ्ग, अभोजन, पूर्वदिन और श्राद्ध दिनमें अब्रह्मचर्य, औषध, परान्नभोजन, द्वितीयवार भोजन, रात्रिभोजन, मार्गमें चलना, भारवहन, और कहल, क्रोध, त्वरा, अनृत, श्राद्ध कर्ताको वर्जित है। १७-कर्तु र्भोक्तु श्च आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च। व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत्। १८-द्वितीयवार भोजन, मार्गमें चलना, स्वाध्याय, भारोद्वहन श्राद्धदिवस और श्राद्धपूर्वदिवसमें मैथुन, प्रतिग्रह, क्रोध करना, ये श्रद्धभोक्ताको वर्जित हैं। १९-श्राद्धभोक्ता सायंकालीन सन्ध्या और सायंहवन दशवार गायत्री पढ़कर दशवार आचमन करके करे। २०-दिनके १५ मूहूर्त होते हैं एक मूहूर्त दो घड़ीका होता है अष्टममुहूर्तमें श्राद्धारंभ होना चाहिये। और वारहवें मूहूर्त तक समाप्त होना चाहिये। २१-जिस तिथिको पार्वणश्राद्ध करना है वह तिथि दो दिन हो तो जिस दिन संपूर्ण अपराह्नमें वह तिथि हो उस दिन श्राद्ध करना चाहिये। दिनका पाँच विभाग करनेसे चतुर्थ भागको अपराह्न कहते हैं। दोनों दिन सपूर्ण-अपराह्नव्यापिनी हो तो पूर्वदिन करना चाहिए। दोनों दिन संपूर्ण अप-राह्नमें सम्बन्ध न हो तो जिस दिन अस्तमयसे पूर्व तीन मुहूर्त हो उस दिन करना ऐसा न हो तो परदिन करना चाहिए। दोनों दिन भी अपराह्नके एक देशमें श्राद्धतिथि हो तो जिस दिन अधिक कालतक श्राद्धतिथि हो वही श्राद्धीय तिथि है। यह पार्वणश्राद्ध तिथिनिर्णय है। २२-प्रेतपिण्डदान पूर्वाह्नमें होता है "स्थण्डिले प्रेतभागं तु दद्यात् पूर्वाह्ण एव तु। कृत्वा पिता सङ्कल्पं नामगोत्रेण सुन्दरि" निर्णय०। २३-एकोद्दिष्टमें मध्याह्न व्यापिनी तिथि ग्राह्य है। मध्याह्न शब्दसे अष्टम और नवम दो मुहूर्त चारघड़ी ग्राह्य है, दिनके १५ मुहूर्त होते हैं यदि दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी तिथि हो तो पूर्व दिन श्राद्ध होता है। दोनों दिन मध्याह्न सम्बन्ध न हो तो अस्तके पूर्व जिस दिन तीन मुहूर्त श्राद्ध तिथि हो वह ग्राह्य है। दोनों दिन मध्याह्नके एकदेश व्यापिनी हो तो जिस दिन अधिक व्यापिनी हो उस दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है। पूर्वदिन होता है यह कमलाकर मत है। २४-आमश्राद्धमें पूर्वाह्नव्यापिनीतिथि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्राह्य है। 'आमश्राद्ध तु पूर्वाह्णे' यह विशेष है। २५–अष्टकाश्राद्ध भी पूर्वाह्ण व्यापिनी तिथिमें होता है। २६–संकल्पमें पिता, नाम, गोत्र, वसुरूप, इस क्रमसे उच्चारण होता है। (पितुः अमुकशर्मणः गोत्रस्य वसुरूपस्य) २७-गोत्रके अज्ञानमें कश्यपगोत्र कहना चाहिये। २८–गोत्र सगोत्र यह पर्यायवाची शब्द है। श्राद्धमें गोत्रके स्थानमें सगोत्र पढ़नेका अधिक प्राशस्त्य है यथा-काश्यपस गोत्र–इति। २९–श्राद्धमें अक्षय्य और आसनदान वाक्यमें षष्ठी, आवाहनमें द्वितीया, अन्नदानमें चतुर्थी और शेष अर्घदानादि वाक्यमें संबुद्धि विभक्तिका प्रयोग होता है। ३०–श्राद्धीयब्राह्मण मौनी होकर भोजन करे। अपेक्षितं याचितव्यम्—इस वचनसे अन्नादि याचना कर सकते हैं। वाङ्नियम लोपमें विष्णु स्मरण करके पुनः वाग्यमन करें। ३१-श्राद्धपंक्तिमें भोजनके समय एक ब्राह्मण द्वितीय ब्राह्मणको स्पर्श न करे। ३२–श्राद्धाङ्गतर्पण क्षयाह दिनमें और सकृन्महालय श्राद्धपक्षमें परदिन होता है—परदिन प्रातः स्नान सन्ध्या करके श्रद्धाङ्ग तर्पण करे तदनन्तर मध्याह्नसन्ध्या और नित्य तर्पणादि करे। सकृन्महालयपक्षमें यदि सब पितृओंका श्राद्ध करे तो सबको तर्पण करे। सकृन्महालय पक्षमें सम्पूर्ण पितृओं को एकही दिन पिण्ड प्रदान शास्त्र विहित है और दाक्षिणात्योंमें प्रचलित भी है। ३३-महालयमें प्रतिदिन पक्षभर श्राद्ध करे तो षडदैवत्यही करे इसमें जिनका श्राद्ध उनहीका तर्पण होना चाहिए। श्राद्धाङ्गतर्पण नित्य तर्पणसे पृथक् है और इसमें जिनका श्राद्ध उनही का तर्पण होता है। ३४-आब्दिक श्राद्धादि दिनमें जो नित्यतर्पणका निषेध है वह निर्मूल है, अथवा तिल तर्पण निषेधक है यह निर्णयसिन्धु कारकामत है। मन्वादि, युगादि, दर्श, संक्रान्ति, पूर्णिमा, व्यतीपात, वैधृति, नक्षत्रादि श्राद्ध, तीर्थ श्राद्ध, ग्रहण श्राद्ध, गोष्ठ्यादिश्राद्धमें श्राद्धकेपूर्व श्राद्धाङ्ग तर्पण होता है। इसमें मध्याह्न सन्ध्या ब्रह्मयज्ञ करके नित्य तर्पणके साथ दर्शश्राद्धाङ्ग तर्पणका तन्त्रसे अनुष्ठान होता है या नित्य श्राद्धसे ही श्राद्धाङ्ग तर्पणकी सिद्धि है तर्पणानन्तर श्राद्ध करना चाहिये। पक्षश्राद्ध, अर्द्धोदय, गजच्छाया, भरणी, मघा, अष्टका, अन्वष्टका, श्राद्धमें श्राद्धान्तमें तर्पण होता है। ३५–आर्द्र वस्त्रसे जलमें और शुष्क वस्त्रसे स्थलमें कुशाके ऊपर तर्पण करे। अथवा जलमें भी शुष्क वस्त्रसे करे (श्राद्धमञ्जरी) पात्रमें तर्पण करे तो पात्र सुवर्ण, रजत, ताम्र और कांस्यका हो। ३६-जिस पात्रसे तर्पण करे वह पात्र सुवर्ण रजत ताम्र और गैंडाके सींगका हो। ३७-ग्रहण, सङ्क्रान्ति, दर्श, पक्षमहालयादिमें श्राद्ध न कर सके तो उसके स्थानापन्न सतिल तर्पण करे। ३८-श्राद्धोच्छिष्टको भूमिमें गाड़ देना चाहिये। शूद्रको नहीं देना चाहिये। ३९-बलिवैश्वदेव साग्निको निर्णेजनान्त श्राद्धके प्रथम और निरग्निकको श्राद्धान्तमें करना चाहिये। नान्दीश्राद्धमें श्राद्धारंभमें पाकान्तरसे निर्णेजनान्त वैश्वदेव साग्निक और निरग्निकको करना चाहिए। ४०-श्राद्ध दिन एकादशीव्रत काम्योपवासव्रत शिवरात्रि जन्माष्टमी आदि हों तो श्राद्ध शेषान्नका आघ्राण करे। फलाहार आदि करना हो तो फलाहारसे करे। ४१-श्राद्धशेषान्न भोजन स्वयं अवश्य करना चाहिए। श्राद्ध शेषान्न शूद्रको नहीं देना और शूद्रको उसदिन घरमें भोजन भी नहीं करना चाहिये। ४२–श्राद्धशेषान्न भोजन हरएक मनुष्य नहीं कर सकता है विना कोई विशेष संबन्धके। ४३–जानुके ऊपर व्रणादि हों या जानुके नीचेभी रक्तस्राव होता हो तो श्राद्धादि तर्पण नित्य नैमित्त कोई कार्य न करे यह रघुनन्दनका लेख है। ४४–वृद्धिश्राद्धमें सपिण्डनमें प्रेतश्राद्धमें अनुमासिकमें प्रथम सांवत्सरिकमें श्राद्धाङ्ग तर्पण नहीं होता है। ४५–पित्र्यकर्म अपसव्यसे और दैवकर्म सव्यसे होता है, उसमें भी पित्र्यसूक्तजप, और पित्र्यपरिवेषण, पित्र्य ब्राह्मण प्रदक्षिणा, गोत्रं नो वर्द्धताम् इत्यादि आशीः प्रार्थना, यह सव्यसे ही होते हैं। अग्नौकरण होम अपसव्यसे ही होता है। ४६-श्राद्धीय ब्राह्मणोंका पादप्रक्षालन स्वयं बैठकर बैठे हुए ब्राह्मणोंका करना चाहिये। ४७–श्राद्धारंभमें श्राद्धकर्ता तिल और तीन कुशको दक्षिणकटि देशमें बांधे इसको नीविबन्धन कहते हैं। वृद्धि श्राद्धमें वाम तरफ बांधे। ४८–अन्नादि परिवेषण यथा संभव पात्रसे हो हस्तसे नहीं। भोजनकर्ता भोज्य वस्तुकी प्रशंसा न करे किन्तु दाता करे। भोजनके समय पैरके ऊपर पैर रखकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बैठना, क्रोध, आश्चर्य, हास्य, भाषण, जानुसे बाहर हस्त करना, आधा लड्डू फल आदिको मुखसे काटकर फिर आधा खाना, मुखसे वायु उष्ण वस्तुका धमन, वाम हस्तसे अन्नस्पर्श, शिर और नीचेके अङ्गोंका स्पर्श, भोजन पात्रका पैरसे स्पर्श, निःशेष भोजन, पीतावशिष्ट जलपान निषिद्ध हैं । ४९–विवाहके अनन्तर एक वर्षतक उपनयनानन्तर छ मास तक चूड़ाके अनन्तर तीन मास तक नित्य तर्पण तिलसे न करे केवल जलसे करे । तथा दर्शश्राद्ध, महालयश्राद्ध, गयाश्राद्ध, वार्षिकश्राद्ध, सपिण्ड न करे । विवाहादिके अनन्तर 'कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत' इस वचनसे यदि श्राद्ध करे तो नित्य तर्पण तिलसे न करे, किन्तु श्राद्धाङ्गतर्पण सतिल अवश्य करे । महालयश्राद्ध और वार्षिक सपिण्ड ही विवाहाद्यनन्तर भी करे और तिल तर्पण भी करे यह अधिक निबन्ध सम्मत है । उपाकर्ममें विवाहोत्तर भी तिल तर्पण विहित है यह निषेध त्रिपुरुष सपिण्ड तक है तदनन्तर नहीं है । जन्मदिन, सप्तमी, रवि, भौम, त्रयोदशी, नन्दा, शुक्र, मघा, कृत्तिका, भरणी, गजच्छाया, कर्क, मकर, सङ्क्रमण, मन्वादि, युगादि, मातृ-पितृमरण तिथि, और घरमें नित्य तिलतर्पण निषिद्ध है । तीर्थ, गया, प्रेतपक्ष, ग्रहण, पितृश्राद्ध, अमा, सङ्क्रान्ति, व्यतीपातको, जन्मदिनादि पड़ जावें तो भी नित्य तर्पण होता है । ५०–तिथि १५, वार ७, नक्षत्र, २८, योग ७, करण, ७, श्राद्ध तत्तत् कामनासे विहित हैं । इनमें पार्वण श्राद्ध होता है उसमें भी तिथि श्राद्धमें प्रतिपद, षष्ठी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी, पूर्णमासी, वारमें-रवि, भौम, शुक्र, नक्षत्रश्राद्धमें कृत्तिका, भरणी, मघा, योगमे—गण्ड, व्यतीपात, वैधृति श्राद्ध साङ्कल्पिक होते हैं, इनमें पिण्डदान निषिद्ध है । मघा और भरणी श्राद्ध में श्राद्धके अनन्तर इतर श्राद्धमें श्राद्धके पूर्व तर्पण होता है । ५१-महालय चतुर्दशीको शास्त्रहतकाही एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है इतरका नहीं । ५२-नान्दीश्राद्धमें माता जीवित हो और सपत्न माता भी मृत हों तो भी मातृपार्वण नहीं है, और मातामही जीवित हों तो मातामहादिको सपत्नीकत्व नहीं है एवं तीर्थ, महालय, दर्श, गया, आदिमें भी माताके जीवित रहने पर किसीको भी सपत्नीक कहकर पिण्डदानादि न करना चाहिये और न स्वतन्त्ररूपसे भी स्त्रियोंको पिण्ड देना चाहिये । ५३–जीवित्पितृक मातृमातामह पार्वण, और मृतपितृ-मातृक केवल मातामह पार्वण करे । उभय जीवित हों तो केवल मातामह पार्वण करे । वर्गत्रयाद्यतीनों जीवित हों तो नान्दीश्राद्धका लोप है । ५४–द्वितीयविवाह—आधान, पित्र्येष्टि, सोमयागादिस्वसंस्कारमें और पुत्रजन्ममें जीवित्पितृक मृतमातृ-मातामहका भी पिताके मात्रादि, पिताके पित्रादि, और पिताके मातामहादि त्रयका श्राद्ध करे अपने माता और मातामहका न करे । पिता और पितामह जीवित हों तो पितामहके मात्रादिको पिण्डादि आभ्युदयिक दे । ५५–नान्दीश्राद्ध, गर्भाधानादिसंस्कार, श्रवणादिसप्तस्मार्त संस्था, देवताप्रतिष्ठा, कूपाद्युत्सर्ग, वानप्रस्थाश्रम, संन्यास स्वीकार, तुलादानादिगृहप्रवेश, उद्यापनादि, राज्याभिषेक, देवव्रत, प्रथमोपाकर्मोत्सर्जन, शान्तिक-पौष्टिक सकलकर्म, अग्न्याधानादि श्रौतकर्ममें होता, है, इसमें मातृपार्वण पितृपार्वण सपत्नीक मातामहपार्वण होते हैं । पुत्रजन्म निमित्त और जातकर्माङ्ग वृद्धिश्राद्ध तन्त्रसे होता है । ५६–साङ्कल्पिक आभ्युदयिकश्राद्धमें नाम, गोत्र, वसुरूप, अस्मत्, शब्दका प्रयोग नहीं होता सपिण्डमें होता है । इसमें रक्तवस्त्र रक्तमाला रक्तगन्धादिका निषेध भी नहीं है । ५७–जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्" यह वचन आभ्युदयिकमें नहीं लगता है, अन्यत्र सर्वत्र गयाश्राद्धमें लगता है । अर्थात् जो वर्ग जीवित हों उसको छोड़कर शेष वर्गद्वयका श्राद्ध करे, वर्गद्वय जीवित हों तो एक पार्वण करे । वर्गत्रय जीवित हों तो पिताके वर्गत्रयका श्राद्ध करे । कोई आचार्य जीवेत्तु इस वाक्य-को नान्दीश्राद्में भी मानते हैं । ५८–शालग्रामशिलाको पीठादिपर सन्निहितकर श्राद्ध करना चाहिये । ५९–अग्नौकरण साग्निक दर्शश्राद्धमें दक्षिणाग्निमें और दर्शादि सकल-श्राद्धमें गृहाग्निमें करे । निरग्निक लौकिकाग्निमें अथवा जलादिमें करे । ६०–महालयमें प्रतिवार्षिक श्राद्धकी प्राप्ति हो मृततिथिमें वार्षिककरके तिथ्यन्तरमें सकृन्महालय करे । ६१–पक्षश्राद्ध करना हो तो मृततिथिमें वार्षिककर पाकान्तरसे महालय करे । ६२-अमावास्याको वार्षिक हो तो प्रथम वार्षिक करमें पिण्डपितृयज्ञ और दर्शश्राद्ध साग्निक करे । निरग्निक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को पिण्डपितृयज्ञ नहीं है। कमलाकरके मतमें पिण्डपितृयज्ञानन्तर वार्षिक तदनन्तर दर्शश्राद्ध यह क्रम है यह मत वाजसनेयीके अतिरिक्त शाखाको है। ६३-श्राद्धमें विघ्न हो या क्षयाहतिथि अज्ञात हो उस मासकी कृष्ण या शुक्लपक्षकी एकादशी या अमाको श्राद्ध करे। तिथि ज्ञात हो मास अविज्ञात हो तो मार्गशीर्ष भाद्र या आषाढ़में उस तिथिको श्राद्ध होता है। तिथि मास दोनों अज्ञात हों तो माघ या मार्गशीर्षकी अमाको श्राद्ध करे। अथवा प्रस्थान मास और दिवस प्रवास मृतका लेना चाहिये। प्रस्थान दिवस ज्ञात न हो तो प्रस्थानमासकी अमाको श्राद्ध करे। अथवा मृतवार्ता श्रवणकालिक तिथि और मासमें प्रवासमृतका श्राद्ध होता है। ६४-आब्दिकश्राद्ध कर्ताकी स्त्री ऋतुमती होनेपर भी सपिण्ड अन्नसे होता है। इसीप्रकार गर्भिणी स्त्रीके होनेपर भी आब्दिक अन्नसे होता है। ६५-मृत पुरुषकी भार्या रजस्वला होने पर भी श्राद्ध सपिण्ड अन्नसे ही करना चाहिये यदि स्वयं स्त्री श्राद्धकर्त्री ऋतुमती हो तो पञ्चमदिनमें श्राद्ध करे। ६६-आशौचहोनेपर आशौचनिवृत्त होनेपर उसी दिन श्राद्धको न कर सके तो एकादशी अथवा अमाको करे। ६७-क्षयाहतिथिमें ग्रहण हो तो भोक्ता ब्राह्मणके मिलनेपर पक्वान्नसे श्राद्ध करे। अभावमें आमान्नसे अथवा सुवर्णसे करे। ग्रस्तोदय और ग्रस्तास्तमें भी ब्राह्मण मिलें तो पक्वान्नसे करे न मिले तो आमश्राद्ध या हिरण्यश्राद्ध करे। ६८-सद्यःशौचमे त्र्यहाशौच में दशाहाशौचमे पञ्चदाशाहाशौचमें सर्वत्र आद्यश्राद्ध ग्यारहवें दिन होता है यह निर्णयसिन्धुकारादि मत है। वाचस्पत्यादिका मत है कि अशौचान्त जिस दिन हो उसी दिन आद्यश्राद्ध करना। तादृश वचन अनाकर है आद्य श्राद्धमशुद्धोऽपि-इत्यादि वचन क्षत्रियादिको सम्पूर्णाशौच परक हैं देशाचारसे व्यवस्था है। ६९-यदि अनवकाश, रोग, आपत्यादिना स्वयं श्राद्ध न कर सके तो शिष्य, पुत्र, अथवा ब्राह्मणद्वारा श्राद्ध करा देवे। ब्रह्मचर्यादि नियम यजमान और प्रतिनिधि दोनोंको करना चाहिये। ७०-आपत्तिमें पाक योग्याग्न्यभावमें तीर्थमें प्रवासमें पुत्रजन्ममें, भार्याके ऋतुमती होनेमें, ग्रहणादिमें, आमश्राद्ध और तदभावमें हिरण्यश्राद्ध होता है। पिण्डदान सक्तु आदिसे होता है। ७१-वार्षिक, सपिण्डन, गयाश्राद्ध महालयमें आम श्राद्ध नहीं होता है। अशक्तिमें महालयादि सांकल्पिक भी होते हैं। ७२-अधिकमासमें मृतका प्रथम वार्षिक श्राद्ध तेरहवें महीनेमे होता है। मध्यमें अधिक मास पड़जावे तो भी प्रथम वार्षिक श्राद्ध तेरहवें महीनेमें होता है। यदि बारहवें महीनेमें अधिक मास पड़े तो उसी महीनेमें अर्थात् बारहवें महीनेमें ही प्रथम वार्षिक होता है द्वितीयादि वार्षिक शुद्धमें ही होते हैं। जो जिस अधिकमासमें मृत हो यदि वही अधिकमास दैवयोगसे कदाचित् पुनः आजाय तो वह वार्षिक अधिकमास ही में होता है शुद्धमें नहीं। ७३-दर्शश्राद्ध, अनुपनीत, विधुर और और प्रवासीको भी करना चाहिये। आमश्राद्ध न कर सके तो 'न्यूषु वाचम्' इस मन्त्रका जप १०० बार करे। ७४-वार्षिकश्राद्धमें माता पिताका पार्वण और एकोद्दिष्ट विधायक वचन मिलते हैं इसमें आचारसे व्यवस्था है दाक्षिणात्योंमे पार्वण और पञ्चगौडोमें एकोद्दिष्ट यह व्यवस्था शास्त्रसंमत है। साग्निक क्षयाहमें मातापिताका पार्वण करें एकोद्दिष्ट नहीं। पितृव्य सपत्नमाता और ज्येष्ठभ्राताका भी पार्वण दाक्षिणात्य सम्प्रदायसिद्ध है, पञ्चगौड संप्रदायमें मातापितासे अतिरिक्तका सर्वत्र एकोद्दिष्ट ही होता है। ७५-पिताके संन्यासी होनेपर जिनको पिता देता है उनको स्वयं पुत्र तीर्थमें, महालयमें, अपिण्ड श्राद्ध करे क्योंकि जीवत्पितृकको पिण्डदान निषिद्ध है। ७६-पुत्ररहित सपत्नमाता, मातामह, भ्राता, पितृव्य आदिका क्षयाहश्राद्ध जीवित्पितृकको भी करना चाहिए। श्राद्धाङ्गतर्पण इनका परदिनमें होता है। मातृनवमीको मातृश्राद्ध भी जीवत्पितृकको करना चाहिए। ७७-संन्यासीका आब्दिकश्राद्ध सपिण्ड परिवेषणान्त होता है। संन्यासिका महालयमें द्वादशीका ही एक पार्वण भी सपिण्ड होता है उसमें ब्रह्मीभूतपितृपिता-महप्रपितामहानाम्-यह ब्रह्मीभूत पदका उच्चारण अधिक है शेष पार्वणवत् होता है। ७८-विधवा दर्शादिमें, वृद्धिश्राद्धमें, पत्यादित्रय और पित्रादित्रयका पार्वण करे। तीर्थ और महालयादि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में पत्यादित्रय, मात्रादित्रय, पित्रादित्रय और मातामहादित्रय सपत्नीकका श्राद्ध करे। पतिका आब्दिकश्राद्ध एकोद्दिष्टविधिसे होता है। ७९–भाद्रकृष्णपूर्णिमातृका श्राद्ध आश्विन कृष्ण द्वादशी या अमाको करना चाहिए। ८०–महालयमें श्राद्ध न कर सके तो कार्तिककृष्ण अमा या आश्विनशुक्लपञ्चमी अथवा वृश्चिक संक्रांतिके प्रवेशके प्रथम किसी तिथिमें करे। ८१–पिताके मरनेपर प्रथमवर्षमें महालयश्राद्ध कृताकृत है यह निर्णयसिन्धुकारादि मत है। ८२–महालयमें पाकारम्भके पूर्वतक पत्नी रजस्वला होजाय तो सकृन्महालय उस दिन न करसके तो अमातक कर देवे यदि अमातक रजोदोष हो तो आश्विनशुक्ल पञ्चमीतक करे। ८३–पाकारम्भोत्तर ऋतुमती हो तो उनको गृहान्तरमें रखकर श्राद्ध करे। विधवाको महालयमें भर्त्रादित्रय, भर्तुर्मात्रादित्रय, स्वपित्रादित्रय, स्वमात्रादित्रय, स्वमातामहादित्रय, स्वमातामह्यादित्रयका, अशक्तिमें–भर्त्रादित्रय, स्वपित्रादित्रय, स्वमात्रादित्रय स्वमातामहादित्रयसपत्नीक, अत्यशक्तिमें-स्व-भर्त्रादित्रय, स्वमात्रादित्रय करना चाहिए। ८४-अपुत्रा विधवा प्रतिदिन भर्त्रादित्रयका तर्पण किया करे। ८५–पिताके मरनेपर प्रथमवर्षमें दर्श, महालय, गयादिश्राद्ध, और नित्यतर्पण नहीं होते हैं। द्वादशाहमें सपिण्डन होनेपर भी पितृत्वप्राप्ति वर्षान्तमें ही है, यदि वृद्धिनिमित्त द्वादशाहमें सपिण्डन किया हो तो पितृत्वप्राप्ति सपिण्डनानन्तर होती है। अतः संकटमें वृद्धिनिमित्त आभ्युदयिक स्वापत्य संस्कारादि हैं असंकटमें नहीं यह व्यवस्था नित्यतर्पणकी धर्मसिन्धुमें स्पष्ट है संप्रदाय भी नित्यतर्पणका प्रथमाब्दमें नहीं है जैसा श्राद्ध वैसा तर्पण। ८६–अशौचानन्तर ग्यारहवें दिन श्राद्धकर्ताको सन्ध्या पंचमहायज्ञादि नित्यकर्ममें अधिकार है। सपिण्डोंको दर्श, वार्षिकादिमें भी अधिकार है। सपिण्डके प्रथम चतुःपुरुषसपिण्डको नान्दीश्राद्ध न करना चाहिए। ८७–सकृन्महालयपक्षमें षट्पार्वणश्राद्ध पञ्चगौडोंमें प्रचलित है, दाक्षिणात्यमें समस्त पितृओंको पिण्डदान प्रचलित है। उसमें क्रम इसप्रकार है—पितृपार्वण, मातृपार्वण, सपत्नमाताका एकोद्दिष्ट, मातामहपार्वण, मातामहीपार्वण, पत्नीका एकोद्दिष्ट, उपनीत पुत्रका एकोद्दिष्ट, विवाहिता कन्याका एकोद्दिष्ट, पितृव्य, मातुल, भ्राताका सपत्नीक और सपुत्रका एकोद्दिष्ट, पितृभगिनी, मातृभगिनी, आत्मभगिना, सपतिका और सुपुत्रका एकोद्दिष्ट, सपत्नीक गुरुका एकोद्दिष्ट, शिष्य और आप्त, सतिसामर्थमें स्वामी, ऋत्विक्, पोषक, आचार्य, जामाता और द्रव्यदका भी एकोद्दिष्ट होता है ये महालय, तर्पण गया और तीर्थमें पूज्य हैं। ८८–नित्यश्राद्ध पार्वणविधिसे होता है, इसमें विश्वेदेवा पिण्डदानानि, ब्रह्मचर्यादि नियम आवाहन अर्घदानादि नहीं होते हैं। जिस दिन षड्दैवत श्राद्धान्तर पार्वणादि प्राप्त हों उस दिन प्रसङ्गात् इसकी भी सिद्धि है भिन्नदेवताक एकोद्दिष्टादिकी प्राप्ति हो तो एकोद्दिष्टादि करके उसके शेष अन्नसे इसको भी कर देना चाहिए। समर्थ हो तो दक्षिणा दे असमर्थ हो तो न देवे। श्राद्धाङ्ग तर्पण नित्यश्राद्धमें नहीं होता है। ८९–नित्यश्राद्ध ये हैं–अमावास्या १२, माघी अमा, भाद्रकृष्णत्रयोदशी, वैशाखशुक्लतृतीया, कार्तिकशुक्लनवमी ये युगादि, चैत्रशुक्लतृतीया और पूर्णिमा, ज्येष्टपूर्णिमा, आषाढ़शुक्लदशमी और पूर्णिमा श्रावणकृष्णाष्टमी, भाद्रशुक्लतृतीया, आश्विनशुक्लनवमी, कार्तिकशुक्लद्वादशी और पूर्णिमा, पौषशुक्लैकादशी, माघशुक्लसप्तमी, फाल्गुनकी पूर्णिमा और अमा ये मन्वादि १४, सङ्क्रान्ति १२, वैधृति १३, व्यतीपात १३, महालय १६, अष्टका ४, अन्वष्टका ४, पूर्वेद्युः ४, इसप्रकार एक वर्षमें ९६ श्राद्ध नित्य हैं। पौष माघ फाल्गुन और चैत्र कृष्णाष्टमीकी अष्टका इनके अनन्तर नवमीको अन्वष्टका या और इनके पूर्व सप्तमीको पूर्वेद्युः कहते हैं। इनमें युग, मनु, संक्रान्ति, वैधृति, व्यतीपात, ये श्राद्ध साङ्कल्पिक अपिण्ड होते हैं। मलमासमें भी अमा, युग, मनु, वैधृति, व्यतीपात श्राद्ध होते हैं। अष्टकाश्राद्ध मलमासमें नहीं होता है। ९० तीर्थमें निषिद्धदिनमें भी पत्नीके गर्भिणी होनेपर भी विवाहादिके अनन्तर भी जीवत्पितृकको भी मुण्डन कराना चाहिए। प्रयागेतरतीर्थ दशमासके अनन्तर तीर्थप्राप्ति हो तो मुण्डन होता है और प्रयागमें दशमासके पूर्व भी प्रतियात्रामें मुण्डन होता है। अकृत चूड़का भी प्रयागमें मुण्डन विहित है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यतिको तीर्थ सन्धिके बिना प्रयागमें भी मुण्डन विहित नहीं है। आहिताग्निको पर्वातिरिक्त कालमें भी तीर्थप्राप्ति निमित्तक मुण्डन विहित है। विधवाको भी विहित है मुण्डन गङ्गामें खड़े होकर कराना जिसमें केशादि स्वयं गङ्गामें गिरें तीर्थान्तरमें छिन्न केशादिको तीर्थतीरमें गर्त खोदकर गाड़ देना चाहिए। तीर्थ प्राप्त होनेपर प्रथम मुशल स्नान करके पश्चात् मुण्डन तब समन्त्रकस्नान होता है तदन्तर तर्पण श्राद्धादि होते हैं। ❀– नान्दीश्राद्ध पूर्वाह्नमें होता है। अग्न्याधानसम्बन्धी नान्दीश्राद्ध अपराह्नमें होता है। पुत्रजन्म निमित्त नान्दीश्राद्ध जिससमय पुत्र जन्म हो उसी समय होता है। ९१-महालय आश्विन कृष्ण प्रतिपदासे आश्विन शुक्ल प्रतिपदातक १६ होते है शुक्ल प्रतिपदाको मातामहका श्राद्ध होता है तिथिवृद्धि हो तो अमापर्यन्त ही होते हैं, भाद्रपद पूर्णिमासे अमातक होते हैं यह हेमाद्रिमत है। इसमें षड्दैवत्य नवदैत्य द्वादशदैवत्य पक्ष हैं सकृन्महालय पक्षमें सम्पूर्ण पितृओंको दिया जाता है। षड्दैवत्यपक्ष पश्च गौडमें प्रचलित है, अन्तिम पक्ष दाक्षिणात्यमें। पक्षश्राद्धमें श्राद्धान्तमें तर्पण और सकृन्महालय पक्षमें द्वितीय दिन तर्पण होता है, महालयश्राद्ध मलमासमें नहीं होता है। ९२-गर्भिणी पतिको सप्तममासके अनन्तर सपिण्ड श्राद्ध, वपन, तीर्थयात्रा, और मैथुन वर्जित है। आब्दिक श्राद्ध तो सपिण्ड भी करे यह अधिक निबन्ध सम्मत है। दर्श महालयादि श्रद्धको तो कदापि सपिण्ड न करें। ९३-भाद्रपद पूर्णिमाका भी प्रपितामहके पितृ पितामह प्रपितामहका श्राद्ध सपिण्ड सदैव विहित है इसमें मातामह नहीं होते हैं यह सब निबन्धकार मानते हैं, कमलाकरमतमें मातामह भी हैं। इसमें श्राद्धाङ्ग तर्पण परदिनमें होता है। ९४-भाद्रकृष्णपक्षमें जिस दिन भरणी नक्षत्र हो उस दिन षड्दैवत्य अपिण्ड-श्राद्ध विहित है। ९५-भाद्रकृष्ण तृतीयाको कृत्तिकानक्षत्र हो तो षड्दैवत्य अपिण्डश्राद्ध विहित है। ९६-भाद्रकृष्णषष्ठीको व्यतीपात और भौम हो तो उसको कपिलाषष्ठी कहते हैं उस दिन भी षड्दैवत अपिण्ड सदैव श्राद्ध विहित है। ९७-मन्वादिश्राद्धलोपमें त्वं भुवः प्रतिमानम्-इस मन्त्रका १०० बार जप करे। दर्शश्राद्ध लोपमें न्यूषु वाचम्-इस मन्त्रको १०० बार जपे। ९८-युगादिश्राद्ध न कर सके तो नित्य तर्पण ही करे। इसके लोपमें न यसद्यावा-इस मन्त्रको १०० बार जपे। ९९-अन्वष्टकाके लोपमें एभिर्द्युभिः-इस मन्त्रको १०० यदि महालयमें अमातक भी श्राद्ध न कर सके तो आश्विनशुक्लपक्षकी नवमीतक किसी तिथिमें अथवा वृश्चिक संक्रान्तितक व्यतीपातादि पर्वमें करे। महालयश्राद्ध पक्वान्न ही होता है आमान्नसे नहीं। और पिण्डदान इसमें अवश्य होता है कदापि निषिद्ध नहीं है विवाहादि होनेपर भी। १०१-आश्विन कृष्णाष्टमीको माध्यावर्षसंज्ञकश्राद्ध आश्वलायनने लिखा है। पारस्करने इसीको चतुर्थी अष्टका माना है। १०२-आश्विनकृष्ण नवमीको अन्वष्टका श्राद्ध होता है इसमें जीवत्पितृकको एक मातृपार्वण सदैव सपिण्ड होता है, सपत्नया माताका भी उस दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता ह स्त्रीका भी एकोद्दिष्ट होता है। यह श्राद्ध अनुपनीत जीवत्पितृक और गर्भिणीपति भी कर सकता है जिसके माता प्रथम मृत हो पश्चात् पितामृत हो ऐसे मृत मातृ पितृकको पितृ, मातृ, मातामह, ये तीन पार्वण करने चाहिए। १०३-नवमीश्राद्ध नवमीको न कर सके तो वृश्चिक संक्रान्तितक कर सकता है। १०४-आश्विनकृष्ण त्रयोदशी केवल या मघानक्षत्रयुत हो तो सदैव अपिण्ड षड्दैवत श्राद्ध होता है यह श्राद्ध नित्य है सपुत्रको निषिद्ध है। केवल मघा श्राद्ध भी प्रशस्त है परन्तु काम्य सांकल्पिक है। श्राद्धान्तमें वर्गद्वयका तर्पण होता है। जिसकी त्रयोदशी मृताहतिथि है उसको महालयश्राद्ध करनेमें कोई दोष नहीं है चाहे वह सपुत्र भी हो। आश्विन-कृष्णचतुर्दशीको हस्तनक्षत्रमें सूर्य हो अथवा मघानक्षत्रमें चन्द्रमा हो तथा आश्विनकृष्ण अमामे भी यदि हस्तनक्षत्रमें सूर्य हो तो गजच्छाया योग होता है इसमे भी षड्दैवत अपिण्डश्राद्ध करना चाहिए। १०५-आश्विनकृष्णचतुर्दशीको शस्त्रहत पित्रादिका सदैव सपिण्डत एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है। इसमें विष-जल-अग्नि-भृगु-दंष्ट्रि-सर्प-पशु-व्याघ्र-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उद्बन्धनादि दुर्मरण मृतका भी श्राद्ध होता है। एकोद्दिष्ट यद्यपि अदैव है तथापि इस एकोद्दिष्टमें विश्वेदेवा वचनात् होते हैं। १०६-चतुर्दशीश्राद्धमें विघ्न हो जाय तो दिनान्तरमें पार्वणविधिसे ही श्राद्ध होता है एकोद्दिष्ट नहीं। १०७-आश्विनशुक्लप्रतिपत्को मातामहका एकपार्वण सदैव अपिण्ड होता है इस श्राद्धको जीवत्पितृक और अनुपनीत भी करसकता है। इस श्राद्धको जीवत्पितृक सङ्गवकालमें तथा मृतपितृक अपराह्णमें करे। मातामह सपत्नीक या अपत्नीकका उल्लेख करे इसमें विकल्प है, श्राद्धांतमें तर्पण होता है। यह श्राद्ध इस तिथिको न हो तो वृश्चिकतक होता है। १०८-चन्द्र और सूर्यग्रहणके स्पर्शकालमें अशौचमध्यमें षड्दैवत्य सांकल्पिक श्राद्ध आमान्न या हिरण्यसे करे। भोक्ता ब्राह्मण मिलें तो अन्नसे भी हो सकता है। संपन्नको पक्वान्नसे ग्रहणमें श्राद्ध करना चाहिए। सूर्यग्रहणमें तीर्थयात्राङ्ग श्राद्धवत् घृतप्रधान अन्नसे श्राद्ध करे। १०९-पौषकृष्ण अमा और माघी अमाको दिनमें रविवार श्रवणनक्षत्र व्यतीपात योग हो तो अर्द्धोदय योग होता है उसमें अपिण्ड षड्दैवत श्राद्ध करना चाहिए, इसमें तर्पण श्राद्धसे पूर्व होता है। ११०—भद्रा व्यतीपात और रवि जिसदिन पड़ें वह पद्मक योग होता है इसमें अपिण्ड षड्दैवत सदैव श्राद्ध करनाचाहिए। इसमें तर्पण श्राद्धसे पूर्व होता है। १११-अमाको अनुराधा, विशाखा, स्वाती, पुष्य, आर्द्रा, पुनर्वसु, नक्षत्र हो तो श्राद्ध अपिण्ड सदैव षड्दैवत्य करना चाहिए। इसमें तर्पण श्राद्धसे पूर्व होता है। ११२-अमाको श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, मृगशिर और व्यतीपात हो तो महाव्यतीपात योग होता है। इसमें भी पूर्ववत् श्राद्ध प्रशस्त है, तर्पण श्राद्धसे प्रथम होता है। ११३ महावारुणीको भी श्राद्ध प्रशस्त है तर्पण श्राद्धसे प्रथम होता है। ११४—वैशाखशुक्ल द्वादशीको यदि सिंहस्थ गुरु और भौम हों तथा मेषमें रवि हों हस्तनक्षत्र हो तो व्यतीपात योग है इसमें श्राद्ध और तर्पण पूर्ववत् करना चाहिए। ११५—माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी है। इसमें भीष्मनिमित्त एकोद्दिष्ट सपिण्ड काम्य श्राद्ध होता है, तर्पण नित्य है यहतर्पण अपसव्यसे जीवत्पितृकको भी विहित है। इसीप्रकार यमको भी तर्पण यमद्वितीयाको विहित है। ११६ वैशाखशुक्लतृतीयाको रोहिणी हो और कार्तिक शुक्ल नवमी कोशतभिषा हो तो युगादि श्राद्धवत् श्राद्ध होता है। ११७-आषाढ़ी कार्तिकी और माघी पूर्णिमाको साङ्कल्पिक षड्दैवत श्राद्ध होता है, इसमें तर्पण श्राद्धके पूर्व होता है। ११८—बहुत विद्वानोंकी प्राप्तिके लिये गोशाला या विद्वत्सभामें जो षड्दैवत सदैव सपिण्ड श्राद्ध होता है उसको गोष्ठीश्राद्ध कहते हैं। ११९—महापातकादिप्रायश्चित्ताङ्गतया विहित जो षड्दैवत सदैव सपिण्डश्राद्ध है उसको शुद्धिश्राद्ध कहते हैं। १२०—देवताओंके निमित्त जो द्वादश्यादि तिथिमें जो श्राद्ध होता है उसको दैविकश्राद्ध कहते हैं। यह नित्य श्राद्धवत् होता है। १२१—शरीर और द्रव्यके वृद्ध्यर्थ जो श्राद्ध सपिण्ड षड्दैवत दर्श श्राद्धवत् होता है। उसको औपचयिकश्राद्ध कहते हैं। १२२—यदि अच्छे धुरन्धर वेदवित ब्राह्मण उपस्थित हो जावें तो उसी समय दर्शश्राद्धवत् अपिण्डक श्राद्ध करे। उसको सद्यःश्राद्ध कहते हैं। इसमें अपराह्णादिकालकी प्रतीक्षा नहीं है इसको जीवत्पितृककर सकता है। १२३-तीर्थश्राद्धमें अर्घ आवाहन द्विजाङ्गुष्ठनिवेशन, तृप्तिप्रश्न, विकिर, दिग्रक्षण, विसर्जन, दृष्टिदोष नहीं होते हैं पिण्डप्रक्षेपतीर्थमें होता है। पार्वणादिमें पिण्डप्रक्षेप गौ, अज, विप्र, अग्निअथवा जलमें होता है। १२४-तीर्थयात्रागमनसमयमें और तीर्थसे आनेपर जो श्राद्ध किया जाता है उसको घृतश्राद्ध कहते हैं यह श्राद्ध प्रथमदिन उपवास करके द्वितीयदिन अपराह्णमें होता है यह षड्दैवत पञ्चगौड सम्प्रदायमें होता है। दाक्षिणात्यसम्प्रदायमें द्वादशदैवत अथवा पित्रादि आम्नाय पार्वणै कोद्दिष्टात्मक सर्वदैवत सपिण्ड सदैवत होता है। इसमे घृत प्रधान है और भक्ष्यभोज्यादि व्यञ्जनरूपरूपसे दिये जाते हैं पार्वणवत् इसकी विधि है। तीर्थश्राद्धवत् दाक्षिणात्य लोग करते हैं। अग्नौकरण इसमे कृताकृत हैं करणपक्षमें घृतसे होता है। अन्ननिवेदनकालमें इदमन्नम्-के स्थानमें इदं घृतम्-प्रयोग होता है, इसमें श्राद्धाङ्गतर्पण श्राद्धसे पूर्व होता है। १२५-तीर्थश्राद्ध मलमासमें भी होता है। तीर्थप्राप्तिपर निषिद्धदिनमें विवाहाद्यनन्तरकालमें भी सतिल होता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१२६–अविभक्त भ्राता एक साथ तीर्थमें उपस्थित हों तो ज्येष्ठ ही करे विभक्त एक साथ उपस्थित हों तो पृथक् २ श्राद्ध करें। तीर्थश्राद्ध पाकसे तदभावमें आमान्न या हिरण्यसे होता है अशक्तिमें–पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। मातामहस्तित्पिता च प्रमातामहकादयः। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्—इस मन्त्रसे एक पिण्ड भी देनेसे तीर्थश्राद्ध होता है। एवं समग्रतर्पणाशक्तिसे-आब्रह्मस्तंबपर्यन्तम्—इन दो श्लोकोंसे तर्पण होता है। उस दिन उपवासपक्षमें श्राद्धशेषका आघ्राण होता है। १२७–एक दिन यदि युगादि मन्वादि संक्रान्त्यादि श्राद्ध समानजातीय अर्थात् साङ्कल्पिक प्राप्त हो जावें जिनमें देश काल देवता तथा कर्ता समान हों, एवं काश्यादिमहादितीर्थप्राप्तिमें अवान्तरतीर्थ प्राप्तिनिमित्त यदि अनेक श्राद्ध प्राप्त हों जैसे–काशी, मणिकर्णिका, चक्रपुष्करिणी, गङ्गा, प्रयाग, त्रिवेणी आदिमें सपिण्डश्राद्ध तन्त्रसे एकही होता है और तर्पण भी एक ही होता है श्राद्ध या तर्पणकी आवृत्ति नहीं होती है। १२८–दर्श और आब्दिक एक दिन पड़े तो तन्त्रता नहीं है क्योंकि दर्शश्राद्ध षड्दैवत्य और आब्दिक एक दैवत्य है नित्य और दार्शिककी भी तन्त्रतानहीं है नित्य साङ्कल्पिक है और दर्श सपिण्ड है। १२९–विवाहादिके अनन्तर सपिण्डश्राद्ध निषिद्ध है अतः अमाको यदि श्राद्धान्तर संक्रान्त्यादि निमित्त उपस्थित हो तो उसके साथ दर्शश्राद्धकी तन्त्रता हो सकती है। १३०—महालयमें अमाको सकृन्महालय और दर्शश्राद्ध तन्त्रतासे होता है। १३१—दर्शको ग्रहणनिमित्ति श्राद्ध से ही दर्श और संक्रांति श्राद्धकी प्रसङ्गसे सिद्धि है। १३२—ग्रहणदिनमें पित्रादिका वार्षिक श्राद्ध पड़े तो सतिसम्भवमें अन्नसे करे। ब्राह्मणाद्यलाभमें आमान्न या सुवर्णसे करे। १३३—दर्शको यदि क्षयाहश्राद्ध हो तो क्षयाहकरके अमाश्राद्धकरे यदि ग्रहण उस दिन हो तो दर्शश्राद्धानन्तर ग्रहण निमित्त श्राद्ध होता है। १३४—आश्विनकृष्ण अमाको आब्दिक, महालय, उपस्थित हों तो प्रथम आब्दिक तदनन्तर महालय होता है दर्शश्राद्धकी महालयश्राद्धसे सिद्धि है पृथक् करनेकी आवश्यकता नहीं। १३५–साग्निकको अमाको पिण्ड पितृयाग भी करना होता है। और पिण्डपितृयागके अनन्तर दर्शश्राद्धकी विधि है अतः साग्निकको आब्दिक और महालय यदि आश्विनकृष्ण अमाको उपस्थि हों तो प्रथम आब्दिक तदनन्तर महालय पृथक् पाकसे कर पिण्डपितृयाग और बादमें साङ्कल्पिकदर्शश्राद्ध यह क्रम है, साग्निकको महालय और दर्शका तन्त्र या प्रसङ्ग नहीं हो सकता है क्योंकि मध्यमें पिण्डपितृयाग पतित है तन्त्रता करनेसे महायल और दर्शके मध्यपातित्वका बाध हो जाता है। १३६–एक दिनमें अनेक श्राद्धकी प्राप्तिमें तर्पण भी तन्त्रसे होता है। १३७–एक तिथिमें अनेककी मृत्यु हो तो मरण क्रमसे श्राद्ध होता है मरणक्रम अज्ञात हो तो संबन्ध क्रमसे होता है। तीर्थप्राप्तिमें अवान्तरतीर्थ यदि अनेक प्राप्त हों तो अनेक श्राद्ध भी एकही दिनमें होते हैं जैसे पञ्चक्रोशीमें कर्दमेश्वर, भीमचण्डी आदि अनेक तीर्थकी प्राप्तिमें यदि एक श्राद्ध कर्ता दो व्क्तिका श्राद्ध करे तो पूर्व मृतक श्राद्ध प्रथम करके स्नानकर पश्चात् मृतकका श्राद्ध पृथक्पाकसे करे यह भट्टमत है (श्राद्ध न करके केवल भोजनादि करनेमें पृथक्पाकका नियम नहीं है) देशकाल कर्ता आदिके ऐक्यमें पाकभी एकही होता है यह संप्रदाय है। निर्णयसिंधु– तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक्)। १३८–पार्वणदिनमें यदि भ्रातादिका एकोद्दिष्ट भी पड़े तो प्रथम पार्वण करके एकोद्दिष्ट करना चाहिये। १३९–यदि दूसरेके उद्देश्यसे तीर्थयात्राकरे तो प्रथमप्रेषकके पित्रादिका श्राद्ध करके पश्चात् अपने पित्रादिका श्राद्ध करे। १४०–श्राद्धारंभमें प्रथम यदि आशौचप्राप्ति हो तो वार्षिक-श्राद्ध आशौचान्तमें होता है। मासिकश्राद्ध उत्तर मासिकके साथ होता है। दर्शश्राद्ध पिण्ड यज्ञादिका लोप होता है। श्राद्धारंभ पाक सिद्धिसे होता है। १४१–श्राद्धारंभकेअनंतर कर्ता आशौच प्राप्ति हो तो आरब्धश्राद्धको समाप्तकर देना चाहिये। कर्ताको आशौचकर्मसमाप्ति पर्यन्त नहीं होता है भोगोक्ताको दोष होता है। यदि ब्राह्मण भोजन मध्यमें कर्ताके कोई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बान्धवादिकी मृत्यु होतो शेष, उच्छिष्ट अन्नको छोड़कर परकीय शुद्धय जलसे आचमन कर। आवाहनोत्तर भोक्ता विप्रको सपात्रिकश्राद्धमें विप्र विसर्जनपर्यन्त आशौच नहीं होता है। १४२-श्राद्धकर्ताकी पत्नी यदि ऋतुमती हो जावे तो दार्शिक युगादि मन्वादि श्राद्ध आमान्नसे होते हैं। १४३-माता पिताका आब्दिक श्राद्ध हो तो उसीदिन अन्नसे सपिण्डकरे यह कमलाकरादि मत है पञ्चमादिनमें करे यह शुद्धिविवेकारादि मत है। पक्षमहालयश्राद्ध भी पत्नीके ऋतुमती होनेपर उसीदिन अन्नसे ही सपिण्डकरे। सकृन्महालयश्राद्ध तो स्नानान्तर आदिमें करे। काम्य और अनावश्यक श्राद्धका लोप होता है। नैमित्तिक आवश्यक श्राद्ध आमान्नसे होते हैं अपुत्रकी स्त्री यदि श्राद्धकर्त्री हो यदि वह रजस्वला हो तो आब्दिकको पंचम दिनमें करे, मासिकको उत्तरमासिकके साथ करे। सकृन्महालय श्राद्धको शुद्धहोकर आमादिमें करे। दर्शादिक लोप करे। १४४-मातृपित्रिमरणमें द्वादश सपिण्डनपक्षमें प्रथमाब्दमें भी स्त्री आदिका मत्याब्दिक सपिण्ड श्राद्ध होता है। १४५-पुत्रजन्मादि निमित्त आभ्युदयिक होनेपर भी आब्दिक महालयादि होते हैं। १४६-आब्दिकश्राद्ध, महालयादिश्राद्ध हरएक अवस्थामें होते हे। १४७-अमा अथवा महालयमें मृतका वार्षिक श्राद्ध और महालयमें एक पार्वणात्मक होता है उसमें एकोद्दिष्ट नहीं होता है। "अमायां वा क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः एकोद्दिष्टं न कुर्वीत तस्योक्तः पार्वणो विधिः" इस वचनमें पार्वन्ते विधिः-कहनेसे एकही पार्वण अतिदेश है यह मिताक्षरादिका स्वारस्य है। १४८-नान्दीश्राद्ध मातृकापूजन पूर्वक होता है। जब तक मातृविसर्जन न हो जाय तब तक द्वितीय आभ्युदयिक नहीं होता। पुत्रजन्म, राज्याभिषेकादि विशेष निमित्तमें तो मातृविसर्जनके पूर्व भी होता है। १४९-यज्ञमें २१, विवाहमें १०, उपनयनमें ६, और चूड़ाकरणमें ३, दिन प्रथम तक आभ्युदयिकश्राद्ध हो सकता है। एवं एक दिन प्रथम और विवाहादिक दिन भी अभ्युदयिक होता है। उक्त दिन व्यतीत होजावे तो पुनः नान्दी श्राद्ध करे। २५०-जीवत्पितृक भी स्वमाता, अपुत्र असपत्न माता, स्वभार्या, अपुत्र पितृक, अपुत्र मातामह मातामहीका दाहादि प्रेतकर्म कर सकता है। और मातृमरणमें तीर्थमें, अग्न्याधानमें, सोमयागादिमें वपन भी कर सकता है। १५१-अत्रिवर्षचूडारहित बालक अपने माता पिताका समन्त्र दाह करके शेष कृत्य अन्यद्वारा करावे त्रिवर्ष कृतचूड़ाका सम्पूर्ण प्रेतकर्म समन्त्रक स्वयं करे। अनुपनीत जीवत्पितृक बालकका अपनी माताके और्ध्वदैहिकमें अधिकार है। १५२-ब्रह्मचारी माता पिता और मातामहका अन्त्यकर्मकर सकता है अन्यका नहीं। १५३-भर्ता और दौहित्रके सत्वमें पत्नीका दाहादि भर्ता ही करे भर्ताको मुण्डन नहीं है। १५४-पत्नी और दौहित्रके सत्वमें पत्नी ही भर्ताका दाहादि समन्त्रक करे। शेष कार्य स्वयं संकल्पकरके ब्राह्मण द्वारा करावे। भर्ता और सपत्नी पुत्रके रहते सापत्न पुत्र ही दाहादि करे भर्ता नहीं। सपत्नीपुत्र और दौहित्रके सत्वमें सपत्नीपुत्र ही दाहादि करे दौहित्र नहीं। पत्नी और भ्रातृपुत्रके सत्वमें अपुत्रका दाहादि पत्नी ही करे। अपुत्र विधवाका दाहादि भर्तृभ्रातृपुत्र और विधुरका स्वभ्रातृपुत्र करे विधवाका दाह विधवा भ्रातृ पुत्र और दौहित्रके सत्वमें दौहित्र ही करे। उपनीत ही दत्तकको दाहादिमें अधिकार है। १५५-पति भ्राताके रहते भी पतिका दाह समन्त्रक पत्नी ही करे। पिण्डदानादि अन्यद्वारा करावे। और सपुत्राभावमें दत्तक और तदभावमें पौत्र प्रपौत्रादि, तदभावमें पत्नी तदभावमें भ्राता, तदभावमें भ्रातृपुत्र, तदभावमें दुहिता, धनहारिणी, तदभावमें दौहित्र धनहारी तदभावमें पिता, माता, स्नुषा, भगिनी, तत्पुत्र सपिण्डादि अधिकारी हैं। अनूढ़ा कन्याका पिता तदभावमें भ्रातादि अधिकारी हैं। ऊढाके पुत्र, सपत्नीपुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, पति, दुहिता, दौहित्र पतिभ्राता पतिभ्रातृपुत्र स्नुषा, पिता, भ्राता, भ्रातृपुत्रादि। १५६-मरणसमयमें जो तिथि हो वही तात्कालिकी तिथि वार्षिक महालयादिमें ग्राह्य है सूर्योदयातिथि नहीं। १५७-सोमावती आमाकोकपिलधारामें सपिण्डश्राद्ध करना चाहिए, इसमें तर्पण अधिक होता है। १५८-श्राद्धयोगद्रव्यमिलनेपर दुःस्वप्नदर्शनमें जन्मनक्षत्रमें ग्रहपीड़ामें जो श्राद्ध है उसको ऐच्छिक श्राद्ध कहते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१५९–वर्षा ऋतुमें आर्द्रानक्षत्रके जब सूर्य हों प्राचीन गृहका जब पुनः आच्छादन हो उसमें और आग्रयणानन्तर नवीन अन्नके भक्षणमें दर्शश्राद्धवत् श्राद्ध करना चाहिये।
१६०-नूतन गृहप्रवेशमें आभ्युदयिक श्राद्ध होता है।

[श्राद्धमें ग्राह्य हवि]

माष—उड़दी। कृष्णमास—काली उड़दी। (अत्र तिलमुद्गमाषाणामवर्जनमुच्यमानं न तज्जातिमात्रेण सम्बध्यते, किन्तु कृष्णवर्णवतैव। प्रसक्ते हि वर्जने तन्निषेधो वक्तव्यः। वर्जन-प्रसक्तिश्च कृष्णानामेव। इत्यादि हेमाद्रौ श्राद्ध कल्पे पृ० ५४४-५४६) तिल—काले तिल। यवशाली—अगहनी चावल। महायव—[वेणुबीज] बांसके बीज। व्रीहियव—कुवांरके चावल। मधूलिका—दोधिया गेहूँ (सफेद वर्णका गेहूं) यावनाल—जोंधरी। अस्यैव विशेषणं कृष्णाः श्वेताश्च लोहाश्चेति। लोहाः—लोहिताः। शालिविशेषो वा मधूलिका' इति हेमाद्रिः पृ० ५४२। गोधूक—गेहूं। श्वेततिल—सफेदतिल। सर्षप—सरसों। पीतसर्षप—पीली सरसों। श्वेतसर्षप—सफेद सरसों। वर्धमान तिल—जंगली तिल। तिलबहुलमिति हेमाद्रिः पृ० ५४३। गोधूम—गेहूं माधुली। मुग्द्–मूंग। यव–जव, जोंधरी (यावनालाः–जोन्थलाः। ते च माधूलिकाख्यजोन्थलव्यतिरिक्ता एव वर्ज्याः मलूलिकाशब्दं शालिभेदवचनं वर्णयन्ति। तन्मते सर्वमेव यावनालाः वर्जनीयाः—इति हेमाद्रिः पृ० ५४६। व्रीहि—सांवा। चणक—चना। श्यामाक—सांवा। निवार—तिन्नीका चावल। हरिश्यामाक—वनका सांवा। प्रियङ्गु—ककुनी। गोरस–दुग्ध। मधु–सहत (श्राद्धमें सहत नहीं देना चाहिए, इसप्रकारके अनेक वचन प्रायः मिलते हैं परन्तु कलिवर्जमें पठित न होने से वे वचन निर्मूलसे हैं) वदरी–वैर। वटक—(वडा) वाटी। सत्तू—सतुवा। अपूपाः–मालपूआ। मूल–मूली। आर्द्रक।आदी। कदलीफल–केला। आम्र-आम। इक्षु-ईख। भरुण्ड-मखानां। इति श्राद्धमञ्जर्याम्। भूकूष्माण्डमित्यन्ये। (जलजफल) कन्द। शृङ्गाटक–सिंघाड़ा (तिलगोजा) कञ्चुक–कचनार (वनकी अरवी) कन्द–सूरण (अर्शोघ्नः सूरणः कन्द इत्यभिधाबत्)। कर्कन्धु–(बनकी ककड़ी) केन्दू। पालेवत–सहतूत (जम्बीराकारं फलं काश्मीरेषु प्रसिद्धम् इति हेमाद्रिः)। आरुक–आड़ू (अरुई) अक्षोट–अखरोट (द्वीपान्तरीय पीलुफलमिति हेमाद्रिः)। पनस–कटहर। काकोली–काकोली (अश्वगन्ध) क्षीरकाकोली–(अश्वगन्धा) ये गौड देशमें प्रसिद्ध हैं। पिण्डालक–सुथनीतिपूर्वदेशे, महाराष्ट्रानां मोहलनकन्द इति प्रसिद्धम्। लाजा—लावा। त्रपुस—खीरा वड़ा (त्रपुसादयस्त्रयः कर्कटीभेदाः) रुचिभंट—फूट (खरबूजा) गो दधि–गौकी दही। गो घृत–गौका घृत। सर्षप–सरसोंका साग। धान–भुजा हुआ यव। राजशाक–बथुआ (राजवृक्षाख्यं शाकम्)। इङ्गुद–हिंगौट (हिंगोटके वृक्ष मारवाड़ अलीगढ़ आदि देशोंमें मिलते हैं इसमें फल छोटे–छोटे होते हैं)। राजजम्बु–फरैना जामुन (बड़ी जामुन) कञ्जिक–काञ्जीका वड़ा। प्रियाल–चिरोंजी (चारवृक्षस्य फलं चिरोंजीति प्रसिद्धम्)। फल्गु–कठगूलर (क्षुद्रा-मलकमिति हेमाद्रिः) काकोदुम्बरिका पृ० ६७१। तिलपटक–(पटोल) परवर। विलम्बकैःइति हेमाद्रौ पाठान्तरम्। वेत्राङ्कुर–वेंतका अग्रभाग (वंशाङ्कुरैः)। तालन्द-तालके वृक्षका कन्द ताडमुसला। चुक्रिका—(तिन्तिडी) डासरिया मारवाड़में प्रसिद्ध खट्टी मीठी चार पत्तेवाली घासका नाम। क्षीरिका—(फलोंका राजा) खिरनी (राजादनः फला-ध्यक्षे क्षीरिकायामित्यमरसिंहेनाभिधानात्)। वच—वच, यह दो प्रकारको होती है, प्रथम कटु द्वितीय मीठी। लोच—केला या वैर। मोच—केला। लकुच—बड़हर) लिकुचस्य फलमेवनेषु प्रसिद्धमिति हेमाद्रिः। स च जम्बीरफलतुल्यखर्वफलवान् गुल्मविशेषः)। बीजपूरक—विजोरानिंबू (मातुलिङ्ग)। मुञ्जातक—मूंज (काबुली फल) ताडका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

फल अभावमें । सतीन—मटर । पञ्चफल—कवलगट्टा । रागखाण्डव—मीठी चिटनी (पिप्पली, शुण्ठी, मुद्गरस, एतत्त्रयं मिलितं रागखाण्डव इत्युच्यते) (पिप्पलीशुण्ठियुक्तस्तु मुद्गयूषस्तु खाण्डवः । रागखाण्डवतां याति शर्करासंयुतं तु तत् ॥ इत्युक्तः पान विशेषः—इति सिन्धुः । त्रिजातक—लवंग, एला, पत्र । वास्तूक—बथुवा । राग—(रुचिकरपेयविशेष) रायता । महाशाक—लौनिया । द्रोणशाक—गोमा । बिल्व—बेल । आमलक—आंवला । आम्रात—आंवडा (यह कच्चे आमके रूप होते हुए भी परवरका कुछ रूप होता है वृक्ष पिप्पलाकार होता है) । द्राडिम (द्राडिमी)—अनार । चव्य—चव्य (इसके फलको गजपीपल कहते हैं) । खर्जूर—खजूर । बृहतीफल—बनभंटा । पिप्पल—(पिप्पलीमरीचादेस्तु प्रत्यक्षनिषेधो नत्वन्यद्रव्यमिश्रस्य, 'सौवीरतिक्तैलवर्णादिभिस्तु पाकस्य सिद्धिर्महतीह येस्तु तद्बीजपुरोन् मरीचादियोगात्सिद्धं प्रदेय न तु दुष्यतीह—इति निर्णयसिन्धुः । सत्रैव—दातुश्च यस्मिन्मनसोऽभिलाः श्रद्धा भवेद्यत्र च दीयमाने । श्राद्धेषु देयं विधिवत्तदेव तद्दत्तमक्षय्यमिति ब्रुवन्ति' एतन्निषिद्धेतरविषयम्) । एला—लायची । शुण्ठी—सोंठ । सैन्धव—सेंधानिमक । शर्करा—सक्कर । गुड—गुड । कर्पूर—कपूर । द्रोणपत्र—गोमा । मधुप—मुलेठी (गुडपुष्प—इति हेमाद्रिः) । रामठ—(हिङ्गु) हींग । शाली—साठी चावल । सर्षपद्रव—सरसोंका रायता । कुब्जातक—चिरगोगा । पञ्चफल—कवलगट्टा । भक्ष्य—दाल, चावल, रोटी आदि । चोष्यअचार आम्र आदि । पेय—दुग्ध तक्रादि । लेह्य—रबड़ी, मलाई आदि । भूकूष्माण्ड—पातालककोहडा । काकलीद्राक्षा—मुनक्का । शिम्बिनिका—सेब । अमृतफल—नासपाती । विदारी—बिलैयाकन्द । धान्याक—धनिया । कोविदार—लिसोड़ा (काञ्चनारस्य तत्सदृशस्य वा वृक्षविशेषस्य कोमलावस्थं पुष्पवा इति कोविदारस्य निषेधोऽपि वक्ष्यते अतो विकल्पः । हेमाद्रिः—पृ० ५५३) । तालकन्द—तालमूली (भूम्यन्तर्निहित तालफलप्रभवमारब्धफलाकारं पाण्ड्यदेशादौ प्रसिद्धं मूलम् । तालमूली कन्दो वा 'तालकन्द' इति हेमाद्रिः) विसम्—कमलकी जड़ (पद्मिनीमूलमिति हेमाद्रिः) । तमाल—तेजपत्ता (तापिञ्छमिति हेमाद्रिः) । शतकन्द—शतावरी । मध्वालु—मीठा—आलू (दीर्घरोमा मधुरैकरसः कन्दविशेषः मोहालू रिति प्रसिद्धः) । शीतकन्द—कमलके नीचे एक प्रकारका गोलाकार कन्द (शलूकमिति यावत्) । कालेय—करासंज्ञकसाग । दारुहलदी वेति पृथ्वीचन्द्रोदयः । कराळोरव्यं शाकमिति गोविन्दराजः) । कालशाक—करेमू (कालिकाशाकमिति हेमाद्रिः पृ० ५४१) । (बड़ा शाक) सुनिषण्ण—चौराई । चाङ्गेरिसदृशो जलप्रभव शाकविशेषः सुणसुणेति प्रसिद्धः) सुवचल—(सागविशेषः) रहर (आदित्यभक्ता 'चूञ्चू' चूचुरिति प्रसिद्धः) शाक—साधारणतया पत्र, पुष्प आदि । शीतकन्दी—रतालू । चीर—खिन्नो । (राजादनमिति इति हेमाद्रिः । अन्ये तु फलाध्यक्षः क्षीरिका इननामोंसे कहते हैं) अम्बु—जलवेंत । कट्फल—कायफल । कौङ्कणी—खट्टी मुनक्का (कुङ्कणदेश प्रभवा उपलक्षणश्चैतत् स्वादुरसाया द्राक्षायाः (द्राक्षा—दाख मुनक्का, अंगूर । तिन्दुक—तेन्दू (शितिशारकस्य फलं, डिण्डिसमिति क्वचिदिति श्राद्धप्रकाशे । मोच—सीमरम (सेमर) । अलाबु—लौकी । ग्रीवक—ग्रीवक । चार—चीरोंजी । मधुसाह्वय—महुवा (ज्येष्ठीमधुः मधूफलं वा) । वैकङ्कत—कंटाई । नारिकेल—नारिकेल परूषक—फालसा । पिप्पलो—पीपल छोटी । मरिच—गोलमिर्च । पटोल—परवर (आरण्यपटोलस्य फलं न लता । लतायां हि पटोलस्तिहलकः कटुरिति पटोलशब्दस्य लिङ्गानुशासने पुलिङ्गतया प्रयोगात् । बृहतीफल—वनभंटा (कण्डकारिकाफलम्) । नागर—सोंठ 'शुण्ठी' इति' हेमाद्रि । दीर्घमूलक—बड़ी मूली । पृथुक—चूडा । आम्र—आम । आम्रातक—आंवडा ('अबाडा' इति प्रसिद्धो वृक्षः, तत्फलञ्च) । बीजपूरक बिजोरानिम्बु (जंबीर, पालेवत) प्रचीनामलक-पानीयामल कमिति हेमाद्रिः । नारङ्गक-नारङ्गी । द्रोणशाक-गोमा बिल्व-बेल (बालश्रीफलमिति हेमाद्रिः) । नीलकपित्थ-(हरितवर्णकपित्थफलति श्राद्धप्रकाशे) । कैथके वृक्षमें जो फल लगते हैं उनको तोड़ दिया जाय उसमें गुद्दी निकलती है वह दो प्रकारकी होती है सफेद और नीलवर्णकी ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तन्दुलीयक—चौराई । सूक्ष्मपत्रमिति हेमाद्रिः । शाकमाण्यक—वनेला साक । फांजी चूचादि । मागधी—पिप्पली । तिन्तिणी–डासरिया (इमली) । जीरक–जीरा । कुम्बर–धनिया ।

[अग्राह्य पेय]

सन्धिना–(सन्धिन्या अवत्सायाश्च गोः क्षीरमेव । वृषभेण क्रान्ता सन्धिनी । मेधातिथिस्त्वाह या उभयोः कालयोः प्राप्ता दोहा कथञ्चिदन्यतरत्र दुह्यते, सायमदुग्धा प्रातर्दुग्धा प्रातरदुग्धा सायं वा दुग्धा सा सन्धिनी । अन्या तु स्वल्पदुग्धत्वान्नित्यमेकस्मिन्नेव काले दुह्यमाना अत्र दोहशब्दस्य सन्धानात्सन्निकर्षात् सन्धिनीशब्दप्रवृत्तौ सन्धाशब्दोत् सन्धिशब्दाद्वा व्रीह्यादिपाठादिनिः । कश्चिदाह—या मृतवत्सा वत्सान्तरसन्धानेन दुह्यते सन्धिनीति । सन्धिनीशब्दस्यावस्थाविशेषवचनत्वात्तदवस्था एव क्षीर वर्जम् । नोत्तरकालमपि विवत्सायाः । मृतवत्सायास्तु गोर्वत्सविरहजनितशोकशान्तिपर्यन्तं पयोवर्जम् । या तु जीवद्वत्सापि वत्समन्तरेणैव तुष-चूक्र-पिण्याकादिना दुह्यते तस्या अपि विवत्सायाः पयो वर्जम् । क्षीरादौ विशेषमाह-आपस्तम्बस्तु ब्राह्मणव्यतिरिक्तेन कापिलं पयो न पेयमित्याह—'क्षत्रियश्चैव वृतस्थो वैश्यः शूद्रोऽथवा पुनः । यः पिबेत् कापिलं क्षीरं ततोऽन्योन्यास्त्य पुण्यकृत् । तेन ब्राह्मणव्यतिरिक्तः कपिलाया गोः क्षीरं श्राद्धादिकर्मोपयुक्तशेषमपि प्रयत्नेन वर्जयेदित्यर्थः । ब्राह्मणस्य हुतशेषव्यतिरिक्तकापि क्षीरपाने दोषो भविष्यत्पुराणे-कापिलं यः पिबेत् शूद्रो नरके स विपच्यते । हुतशेषं पिबेद्विप्रो विप्रः स्यादन्यथा पशुरिति । हुतशेषे पीते विप्रस्य जन्मान्तरेऽपि विप्रत्वं भवति—इत्यादि हेमाद्रौ श्राद्धख० पृ० ५७१-५७२) । उष्ट्र-ऊँटका दूध । एकसफ—घोड़ी (एकशफादीनाम् वडवाप्रभृतीनामिदमैकशफम्) । स्त्रैण-स्त्रीदूध (मानुषीक्षीरम्) । आरण्यक–चमरी प्रभृतिका दूध । आविक (अविकानामिदमाविकम्) । नवसूतायाः सप्त०—(एतेषु सप्तरात्रादिपक्षेषु यथा रजोनिवृत्तिवृत्तिव्यवस्था द्रष्टव्या । धर्मविद्ग्रहणं मासान्ते रजोनिवृत्तिसंशयोऽपि नारतीति ज्ञापनार्थं तेन यदा सप्तरात्रादावपि रजोनिवृत्ति निश्चियः तदा पयः पानेऽपि न धर्महानिः) सिन्धा तु—नवसूतायाः सप्तरात्रादित्येके, दशरात्रादित्यपरे, मासेनोपेयुषं भवतीति धर्मविदः । एतद्रजो भात्रपरम् । माहिष-(आरण्यमहिषीक्षीरं विना) । चामर–गौ । मार्गम्–मृगी गौ । अज–बकरा । अवि-भेड़ । पर्युसित–(पयोदधिगुडमरिचमिश्रितं यत् पर्युषितम्) । दीर्ण–फटा हुआ (यत्तक्रं दीर्णं दर्वीघट्टन–शून्याग्नितापादिना स्वतो वा स्फुटतम्) । नष्टा–स्वाद–(शुक्लं नष्टरसम्) । फेनवत्–(यच्च बहुदिनस्थित्या सञ्जातफेनतदप्यपेयम्) । सगुडं मरिचाक्तं-(गुडमरीचाक्तस्य पर्युषितदोषोऽच्यत–इति हेमाद्रिः) । पर्युषितं दधि -बासी दही ।

त्याज्य-हवि—

भूस्तृण–गन्धतृण (कत्तृण, रोहिषतृण) (भूतीक संज्ञकः शाकविशेषः । स च काश्मीरेषु प्रसिद्ध इत्येके । कलम्बीकेत्यपरे । स्मृतिचन्द्रिकाकारेण त्वेवमुपलक्षितः । यस्य नाले ग्रन्थिस्थाने परिमण्डलावयवा भवन्ति स भूतृण इति ! अस्य च मालातृणकभूस्तृणौ इत्यभिधानकोशे वक्ष्यमाणासु च स्मृतिषु सुड़ागमसहितस्यैव प्रयोगो दृश्यते । अतस्तद्रहितस्यात्रप्रयोगः छान्दसः– इति हेमाद्रौ पृ० ५५६) । सुरसा–तुलसी (तुलसीति पृथ्वीचन्द्रोदयः । सा च भक्ष्यत्वेन निषिद्धा, न पुष्पत्वेनेति गौडाः) । शिग्रु-मीठा सेजन । (शोभाञ्जनकः तस्य रक्तपुष्पस्य सर्वदा निषिद्धत्वेनात्र प्राप्त्यभावेऽपि श्वेतपुष्पस्य पत्रशाकत्वेन प्राप्तिरस्तीति प्रतिषेधोर्थवान्) इति हेमाद्रिः । पालङ्की–सोवापालक (मुकुन्दाख्यो गन्धद्रव्यविशेषः । (बलकश्चाथ पालङ्क्या मुकुन्द कुन्दकुन्दुरु इति त्रिकाण्डीस्मरणात्) । मृचुक–जलका साग . करेमू साग) ससुकम्-इति पाठे खदिरशाक इति हेमाद्रिः । कूष्माण्ड-कुम्भवद्वर्तुलमदीर्घालाबुसदृशं फलम् । (पेठा) कोहड़ा

(सफेद कोंढा) 'कर्कारु' इति हेमाद्रिः । अलाबू-लौकी तुम्बा वाला (तुम्बिनीफलम् । तच्च वर्तुलमेव वर्ज्यम् । अलाबुवर्तुलञ्चेति वचनान्तरे विशेषदर्शनात्) इति हेमाद्रौ । वार्ताक-बैंगन (क्षुद्रवार्ता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कीफलम्)। मरिच–मिरची (ताजी मिरच नहीं) मरिचान्याद्राणि स्वतन्त्रशाकतया प्राप्तानि प्रतिषिध्यन्ते न तु शाकसंस्कारकप्रद्रव्यनेन शुष्काणि' इति हेमाद्रिः। पिण्डमूलक-सलगम। कृतलवण-बनाया हुआ सब निमक। सांभरभिन्नम्। [यतु-भविष्यम्-तर्जन्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा-इति। तत्र क्षारलवणं खारीति प्रसिद्धं निषिद्धम्, भुक्त्वा तु क्षारलवणं त्रिरात्रं तु वने वसेत्। इति ब्राह्मोक्तेरिति शूलपाणिः। क्षीरलवणमिति पाठात् क्षीरमिश्रं लवणं निषिद्धमिति वाचस्पतिः] इति सिन्धौ। अक्षारलवणम्-ऊषरमृत्तिका कृताच्छावणाद्भिन्नम्। वंशाग्र-बांसका अग्र-भाग। राजमाष–बोड़ा छोटा। मसूर–मसूर। कोद्रव-कोदा। कोरदूषक–चणकोदो। लोहितवृक्षनिर्यासान्–सेमर या पलासका गोंद। तुण्डीर–कुदरु। करमर्द–करोंदा। नालिक-करेमु। विडालोच्छिष्ट–बिल्लीसे स्पर्श हुई चीज। राजसर्षप–राई। कवीरफल और पुष्प–टीटके फल और पुष्प। विडङ्ग-बाई विडिंग [बीजपूरकं मातुलिङ्गमाषाः]। जंभारिका। जम्बीरा-जंबीरी-निम्बू। सुपक्वबीजपूरक–पका विजोरानिम्बू। जम्बू-छोटी जामुन। आढकी–अरहरकी दाल। परिपाटलाः—स्थूला राजमाषाः। बड़ा बोड़ा। पुलका–सर्षपविशेष। यावनाल—जोंधरी। कुलित्थ-कुलथी। शण शणके बीज। निष्पाव-[मटर] सेव, चावल। [यतु-प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चात्र शोभनाः] निष्पावः-श्वेतशिम्बीतिदानसागरे श्राद्धप्रकाशे चोक्तम्। सफेद सेव। चना-[अत्र चणकादीनि विहितनिषिद्धानि तेषां विकल्पः। अन्यथा 'श्यामाकैश्चणकैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः। गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्' इति, 'गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सती नैश्चणकैरपि। इति हेमाद्रौ कौर्मविष्णुधर्मादिविरोधः स्यादिति सिन्धौ। कृष्णधान्य-सब काले धान। कुसुम्भिक-बरेंका बीज। पद्म-कमल। उद्दार–बन कोंदो। वटका-बनके मूंग। कपित्थ-कैथ। मधुक-महुवा। ज्येष्ठीमध्विति चन्द्रिका। असली–तीसी। बिल्व–बेल। अर्क–मदार। धतूर–धतूरा। पारिभद्र–बकायन (मीठी नीम)। आटरूषक–अडूसा और पुष्प। पिण्याक–खलीसरसों। करंभ–केलेका खंभा। शाक–साधारण साग। सूप–दाल। कृसर–खिचड़ी। यवागूः–लप्सी [कढ़ी खिचड़ी आयुर्वेदानुसार]। अस्नेहसंयुतम्–स्नेहसे हीन पैनिक-मर्कटकाः केवाच नालिका–करेमू। पोत–पोई साक। अश्मन्तक–पत्थर फोड़ [पत्थरचूर]। अभिषव–मद्यभेद [सूक्तमिति चन्द्रिका, सन्धानकमिति पृथ्वीचन्द्रः]। शतपुष्पा-सौंप। जम्बीरफल–जँभीरीनिम्बू। मारिष-मरसासाक [मध्यदेशे मरुसा। महाराष्ट्रेषु राजगिरा—इति च प्रसिद्धम्-इति सिन्धुः]। रक्तकलम्बिका–लाल करेमू। गन्धारिका-चौराई [तन्दुलीयकमिति चन्द्रिका] जवासाख्या दुरालभा इति कैदवः। लशुन–लशुन। पटोल–परवर। हींगु- हींग। कुकुण्डक–छत्रशाक [पुररलाबुग्रहणमुभयालाबुनिषेधार्थमिति पृथ्वीचन्द्रः]। कृष्णलवणम्–काला निमक। कुस्तुम्बुरम्–नेपाली धनिया। आसनारूढम्–साक्षादासनस्येपरिस्थापितं भूम्यतिरिक्ताधिकरणस्थापितपात्र स्थितं वा। अन्नाद्यम्–अदनाहमन्नम्। पादोहतम्- साक्षात् भाजनद्वारा वा पादस्पर्शदूषितम्। अमेध्यादागतैः–अपवित्रस्पर्शदूषितैश्चेतनाचेतनैः स्पृष्टम्। अमेध्यैर्जङ्गमैः इति निर्णयसिन्धुमते पाठान्तरम्। पर्युषितम्- रात्र्यन्तरितम्। द्विः स्विन्नम्- वारद्वयं पक्वम्। यदन्नमवश्रयणान्तं परिक्रियया सिद्धं सन्मार्दवाय पुनरुदकं निनीयावस्त्रावरणान्तमेव पच्यते तत् द्विः स्विन्नम्। न तु यसिद्धमेव पुनरौष्ण्यनिर्वाहार्थमग्निसन्निधौ स्थाप्यते। 'अन्युष्णं सर्वमन्नं स्यात्' इति वचनात्। अत एव पुनर्विलाप्य मानभोज्यमपि न द्विः स्विन्नम्। यस्य तु सूरणादेरधिश्रयणद्वयेनैव सिद्धाः प्रसिद्धा तस्य तावदवयव एक एवासौ पाक इति तत्रापि न द्विः पक्वता। द्विः स्विन्नं यत्सकृत्पाकेन भक्ष्यमपि हिङ्गुजीरादिसंस्कारार्थं पुनः पच्यते तद्वर्ज्यम्। यत्तु तिक्तशाकान्नविकारादिद्विः पाकेनैव भक्षणार्हं तन्न निषिद्धम्। पर्युषितस्य सदा निषेधेऽपि पुनर्वचनम्—'अपूपाश्च करम्भाश्च धानावटसक्तवः। शाकं मासमपूपं च सूपं कृसरमेव च। यवागूः पायसं चैव यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम्। सर्वं पर्युषितं भोज्यं शुक्तं चेत्परिवर्जयेत्। 'माधवीये-यथोक्तवटकादेरपि पर्युषितस्य निषेधार्थमिति चन्द्रिकादयः। परिदग्धम्– द्रव्यांशसंशोषणात् भाण्डाग्निना परिप्लुष्टम्। अग्रावलेहितम्–अग्रे उपरिभागे मार्जारादिभिरवलीढम्,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूर्वमन्येनास्वादितैकदेशवा । शर्कराः—श्वेताश्मजातिविशेषः । कीटाः—पिपीलिकादयः । केशः—कचः । मथितम्—आलोडितं दधिः । अतिलवणम्—अतिमात्रलवणयुक्तम् । लवणाधिक्य । सिद्धः कृताश्च ये भक्ष्याः—येषु तैलपक्वगोधूमचूर्णमयवर्त्तिशोपित्फल-फाणी-पर्पटकादिरूपेषु भक्ष्येषु चिरकालस्थितेष्वपि पर्युषित व्यवहारो नास्ति ते भक्ष्याः सिद्धाः कृता इत्युच्यन्ते । प्रत्यक्षलवणी कृताः—भोक्तरि पश्यति लवणेन संयोजिताः । वाससा चोपधूतानि—येषामुपरि मक्षिकापगमार्थमौष्ण्यनिवृत्तये वा प्रसङ्गान्तरेण वा वस्त्रमवधूयते तान्यन्नानि । कलिङ्गोत्थम्-बहेडे का फल । आम्लवेतस—अमलवेत । वृन्ताक—भण्टा— [श्वेतम् इति देवलः, तेन कृष्णस्यानिषेध इति चन्द्रिकामाधवौ । वस्तुतस्तु सदा श्वेतनिषेधात् पुनः श्राद्धे निषेधो व्यर्थः । तेन भक्ष्यस्य कृष्णवृन्ताकस्यापि निषेधार्थमिदमिति सिन्धः] पञ्चशिम्ब-मोठ, बोड़ा, मसूर, कुलथी, मटर । लोमशानि-जिन फलोंके ऊपर रोवाँ हो । कलिङ्ग-तरबूज काले बीजवाला । रक्तचार-लाल लाल चिरोंजी । घृतचारक—सड़ी चिरोंजी । कपाल-नारिकेल । काचमारी-काचमारी । करञ्ज कँजा । गञ्जन-पलाण्डुभेदः पश्चिमदिशि प्रसिद्धः, न तु गाजरम् । तस्य पृथगुक्तेः । हेमाद्रिणा तु गृञ्जनंगाजरमेवोक्तम् । गौड़श्राद्धकौमुद्यामप्येवं, तच्चिन्त्यम् । चक्रिका—चिरकालशुक्तं पानकम् । गाजार-गाजर । जीवक जीवक ही नामसे प्रसिद्ध अष्टवर्ग घटितद्रव्य । कुम्भाण्ड-गोल लौकी कण्डूरा-केवाच । वट वट । उदुम्बर वगूलर । प्लक्ष शेलु-लिसोड़ा । कपित्थ कैथ । नीप कदम्ब । मातुलिंग विजोरा निम्बू ।

त्याज्य जलम्—

दुर्गन्धि दुर्गन्धयुक्त जल । फेनिल-जिस जलमें फेन आती हो । क्षार-जिस जलमें निमक मालूम होता हो [यवाक्षादिः इति हेमाद्रिः] । पङ्किल मोटा जल । पल्वलोदक-अल्पजलाशयजल । इत्यादि ।

ग्राह्य-पात्र और पुष्प—

पुर्युषित वासी [मोदकादिवर्ज्यमिति हेमाद्रिः] । १—मध्याह्न, २ खड्गपात्र, ३—उच्छिष्ट-वत्सपीत शेष दुग्ध, ४—शिवानिर्माल्य—गङ्गोदक । ५-वान्त—मधु । ६-मृतकर्पट—टसर वस्त्र । ७-त्रिदण्डी—दण्डी (यति—अत्र त्रिदण्डीति यतेर्विशेषणम्) । ८-रजतपात्र-चाँदीका पात्र [खड्गपात्रमिति कल्पतरुः] । दौहित्र-क्षीणेन्दावमावास्यायां या गौर्या अपः पिबेत् तस्या गोस्तत्परिणामजन्यात् क्षीरात् यद् घृतं जायते तद्दौहित्र शब्देनोच्यत इत्यर्थः । अत्राप इत्यौषधीनामुपलक्षणार्थम्, अमावास्यायां ह्यौषधीष्वप्सु च सोम प्रविशति । 'स इहापश्चौषधीश्च प्रविशतीति श्रुतेः । अमावास्याव्यतिरेकेणापि गोविशेष प्रभवस्य घृतस्य दौहित्रत्वमुक्तम् । कृष्णाजिन-कृष्णाजिन । नैपालकम्बलः-नेपाल देश प्रभव कम्बलः । हरिहरेण तु पार्वतीयाजलोमसूत्रै—निर्मितः कम्बलाकारः पट उदीच्येषु प्रसिद्ध इत्येवं व्याख्यातः । अटव्यां ये समु०— येऽटव्यामुत्पन्ना अकृष्टायां च भूमौ फलितास्ते यत्तिलाख्यास्तिलाः श्राद्धकर्मणि प्रशस्ततमाः । ये तु ग्राम्याः कृष्टक्षेत्रे फलिताः प्रसिद्धास्तिलास्ते न तिला । नायं तेषां तिलरूपस्य निषेधः । अशक्यत्वात् नापि तिलकार्यकारित्वनिषेधः । लौकिकतत्कार्यकारित्वनिषेधस्य प्रत्यक्षादिवाधित्वात् । नापि वैदिककार्यकारित्वस्य निषेधः वचनविरोधात् । तिल तीन प्रकारके हैं—श्वेत, काले, वनमें होनेवाले । पूतिक-सुगन्धितृणविशेषः पूतिकं करञ्जकाष्ठ वा प्रकीर्यः पूतिकरजः पूतिकः कलिकारक [इत्यमरसिंहेनाभिधानात् । मृगनाभि-कस्तूरी रोचना-गोरोचन । रक्तचन्दन-लालचन्दन । कालीक-'गन्धद्रव्यविशेषः' इति हेमाद्रिः । उग्रगन्ध-जोङ्कम—गन्धद्रव्यम्, वंशकागुरुराजार्ह [लोहं क्रमिजजोङ्कमिति सुगन्धद्रव्यप्रकरणे अमरसिंहेनाभिधानात् । तुरुष्क—राल [सिह्लकः] । कस्तूरी- कस्तूरी [हेमाद्रिकार विकल्प मानते हैं] । जाती-मालतीके पुष्प [चमेलीके पुष्प] । चम्पक-चंपा पुष्प [यह पीला कम होता हुआ विशेष सफेद] । लोध्र—लोधपुष्प [सफेद कुछ लाल] जङ्गलीपुष्प । मल्लिका—बेला [मुद्गरा—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ख्यानि पुष्पाणि] इति हेमाद्रिः । बाण—कटसरैया पुष्प [बाणः—आर्त्तगलः, बर्बरी—कर्वरी, इति हेमाद्रिः । बर्बरी—जङ्गलीतुलसी, रानीतुलसी, ममरी,] । चूत-आमपुष्प । अशोक-अशोक [वञ्जुलः] । तुलसी—साधारण तुलसी [सुरसा । अस्याश्च श्राद्धे वर्जनीयत्वमुक्तं स्मृत्यर्थसारकारेण । तत्तु बहुस्मृतीतिहासपुराणेष्वदृष्टत्वान्निर्मूलमिति जानीमः] । शतपत्रक-गुलाब । कुब्जक-गुलाब [भूपद्म] [कुजकम्] तगर-तगर हिन्दमें प्रसिद्ध है [गन्धतगरम्] । भृङ्ग—भङ्गरा [लम्बी पत्ती होती है] । आरण्यकेतकी—रामबांस । यूथिका—जूही [सुगन्धीदार] । अतिमुक्त—मोगरा । वेलापुष्प [माधवीलतापुष्पम्, कमलादयःपङ्कजभेदाः प्रसिद्धाः] कमल —[लोकनद] लाल कमल । कुमुद—कुंई फूल सफेद । पद्म —सफेद कमल । पुण्डरीक—सफेदकमल । इन्दीवर—नीलकमल । कोकनद-लालकमल । कह्लार-[सायंकाल खिलनेवाला सुगन्धियुक्त सफेद कमल] लालकमल[कमलगट्टा] [गोरखमुखीका फूल] । जाती —मालती पुष्प [चमेली] । मल्लिका—बेला । श्वेतयूथिका—सफेद जूही [हेमकुसुमानि] । जलमें होनेवाले सब पुष्प । चम्पा-चम्पा । अगस्त्य-अगस्तपुष्प । भृङ्गराज भङ्गरैया । शतपत्रिका—गुलाब जात्यां विकल्प इति हेमाद्रिः] तिलपुष्प—तिलके पुष्प । गन्धनेपालिका—जङ्गली बेला । दूर्वा—दूब । सुकुमारकिसलय—कोमलपत्र । मञ्जरी ।

वर्ज्य पुष्प—

केतकी—केवड़ेका फूल [खजूर] । तुलसीपत्र—तुलसीके पत्ते [माधवीये स्मृत्यर्थसारे च तुलसी निषिद्धा] तुलसी निर्मूल इति हेमाद्रिः । समूलत्वेऽपि पिण्डपरः—इति सिन्धौ । बिल्वपत्र—बिल्वपत्र । द्रोण—द्रोण । करवीर—करवीर । धत्तर [उन्मत्तः] । किंशुक-पलाशका फूल [केवड़ाका फूल] । जपा—रुद्र पुष्प । आदिशब्दःप्रकारवचनः, तेन जपाकुसुमसदृशानां कारवीरादिकुसुमानां वर्ज्यत्वम् । जातीकुसुम—[सुमना] इति पाठान्तरं । जातिः । सुमना मालती जातिरिति स्मरणात् । भिण्डी-मञ्जिठा । नीलकटसरैया पुष्प । रूपिका—अर्कः । कुरुडकः-रक्तकटसरैया पुष्प । पीत पुष्पमहासहा । जातीकुसुमनिषेधोऽन नित्यः नित्यनिषेधे 'जात्यश्च सर्वा दातव्यः' इति वचनस्य निर्विषयत्वमापद्यते । कदलीपत्रकम्-कदलीपत्रमत्र भोजनपात्रतया प्राप्तं निषिध्यते । जात्यां विकल्पः—'असुराणां कुले जात जाती पूर्वपरिग्रहे । तस्या दर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः । 'पूर्वपरिग्रहे' पूर्वजन्मनि देहपरिग्रहावसरे, यद्यपि त्रीणि ह वै यज्ञस्योदराणि अत्र झोवावयन्ति अत एवोद्वयतीति वर्तमानापदेशगतयार्थवादसरूपे वाक्ये अर्थवादनिर्वाहार्थं गायत्र्यादिष्वावापी द्वापविधिकल्पनवदत्र निन्दार्थवादरूपे वाक्ये निषेधविधिः कल्प्यते तथापि पाक्षिण एवा-ऽपि प्रतिषेध इति न मार्कण्डेयवचनं निर्विषयं किन्त्वनिषिद्धपुष्पान्तरालाभविषयम । प्रतिषेधद्वयं तु तल्लाभविषयमिति मन्तव्यम् । उग्रगन्धानि—अहृद्यगन्धानि । अग्रन्धीनि विना गन्धके पुष्प । चैत्यवृक्षोद्गवानि-श्मशानवृक्ष प्राहुर्भूतानि । रक्तवर्णके पुष्पोंको ग्रहण न करे । परन्तु जलमें होनेवाले लाल पुष्पोंसे भी [पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च । जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः] कार्म करे । केतकी—केवड़ा । करवीर जनैर । बकुल मौलसरीका फूल । कुन्दक—माघमासमें फूल होता है सफेद । पाटला—पानडीका फूल । वनस्पतिमयम्—पुष्पं विना ये फलन्ति ते वनस्पतयः तद्दारुमयम् पर्णमयम्-पर्णान्यपि वनस्पतीनामेव । जलजम्—कमलिनीपत्रम् । सागरमयम्- शङ्खशुक्त्यादि ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[१] महालयश्राद्ध और गयाश्राद्धमें आंवलेके आकारका पिण्डदेना चाहिये। गयामें शमीपत्रप्रमाणसे भी पिण्ड दे सकता है।

[२] एकोद्दिष्टमें कपित्थ प्रमाणसे वार्षिकश्राद्धमें और मासिकमें नारिकेल प्रमाणका पिण्ड देवे।

[३] जहाँपर बहुत पिण्ड देना अत्यावश्यक हो वहाँ बिल्वफलके आकारका, तीर्थश्राद्ध और दर्शमें कुक्कुटाण्ड प्रमाणका पिण्ड देवे।

[४] जहाँ एक पिण्ड ही देना आवश्यक हो वहाँ खजूरके तुल्य पिण्ड देवे।

[५] प्रेत पिण्ड बारह अंगुल लम्बा होता है।

[६] महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे दशाह्निके। पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत् ॥

[७] कुत्ता, सियार, गदहा, इनसे यदि पिण्डका स्पर्श हो जाय तो कर्ताकी आयुका नाश तथा प्रेत उसको भक्षण नहीं करता। इसलिए उसकी शान्तिके लिए प्राजापत्यकर फिर स्नानकर पिण्डदान करे। कौवेके स्पर्शसे दोष नहीं। मार्जार, चाण्डाल, मूषक, आदिके स्पर्श होनेपर फिर पिण्ड देवे।

[८] नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम्। न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम् ॥ अत्र-निर्दिश्य भोजयित्वा तु किञ्चिद्दत्वा विसर्जयेत्। इससे प्रतीत हुआ कि दक्षिणामें विकल्प है। जो लोग यह कहते हैं कि नित्यश्राद्ध दैवहीन तथा नियमादि वर्जित है, दक्षिणारहित भी है। यह विप्रभाव परक है यह पृथ्वीचन्द्रका मत है। भविष्यमें यह लिखा है कि आवाहन, स्वधाकार, पिण्ड, अग्नौकरण, ब्रह्मचर्यादि नियम, विश्वेदेवा, आदिका नियम नहीं है। यदि यह दिनमें न हो सके तो रात्रिके प्रथम प्रहरतक करे।

[९] इष्टिश्राद्धमें क्रतु और दक्ष, नान्दीमुखमें-सत्य और वसु, नैमित्तिकमें-काम और काल, काम्यमें-धूरि और लोचन, पार्वणमें–पुरूरवार्द्रव विश्वदेव होते हैं।

[१०] यत्कि ञ्चित्पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम्। अनिवेद्य न भोक्तव्य पिण्डमूले कथञ्चन ॥ एतत्सव्येनेति केचित्। युक्तं त्वपसव्येन।

[११] मौञ्जीबन्धाद्वत्सरार्धं वत्सरं पाणिपीडनात्। पिण्डान् सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनात्र तु ॥' अस्यापवादः––महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि। यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा। कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वापणं सदा·········।

[१२] आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च। व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान्परिवर्जयेत् ॥

[१३] ब्राह्मणके यहाँ आशौच आ जानेपर इतर ब्राह्मण एक बार भी उनके यहाँका भोजन करता है वह उनकी शुद्धिपर स्वयं प्रायश्चित्तकर पवित्र जाने।

[१४] सूतकीके यहाँ भोजन करनेपर सान्तन प्रायश्चित्त करे। अभ्यासमें एकमास व्रत रहे। अज्ञातावस्थामें एक रात तीन रात, पाँच रात, या सात रात्रितक भोजन न करे। तदनन्तर पञ्चगव्य प्राशन करे। यह वर्ण क्रमसे है। अभ्याससमें दूना २ जाने।

नोट–विद्वज्जनों परोपकारार्थ निर्णयसिन्धु निबन्धानुसार हवि निर्णयमें स्पष्टी करण किया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सप्तम स्कन्ध

* इति *

श्रीमद्भागवतभाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६६ पुष्पलता

(अष्टम-स्कन्ध)

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलङ्कृत]

संपादक—संयुक्तप्रान्तीय सरकार-द्वारा संमानित विद्वान्-आचार्य श्रीदौलतरामगौड वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रत्येक मन्वन्तरके व्यासोंका नाम—

यस्मिन् मन्वन्तरे व्यासा ये ये तांस्तान् निबोध मे । यथा च भेदः शाखानां व्यासेन क्रियते मुने !॥
अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः । वैवस्वतेऽन्तरे त्वस्मिन् द्वापरेषु पुनः पुनः॥
वेदव्यासा व्यतीता ये अष्टाविंशतिसत्तमाः। चतुर्धा यैः कृतो वेदो द्वापरेषु पुनः पुनः ॥
द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयंभुवा। द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ॥
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः । सविता पञ्चमे व्यासो मृत्युः षष्ठे स्मृतः प्रभुः॥
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः । सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ॥
एकादशे च त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम्। त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मी चापि चतुर्दशे॥
तथारुणः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः। कृतञ्जयः सप्तदशे ऋणज्याष्टादशे स्मृतः ॥
ततो व्यासो भरद्वाजो भरद्वाजात्तु गौतमः। गौतमादुत्तरं व्यासो हर्यात्मा योऽभिधीयते॥
तस्मादस्मत् पिता शक्तिः व्यासस्तस्मादह (पराशरः) मुने। जातूकर्णोऽभवन्मत्तः (पराशरादनन्तरम्)
कृष्णद्वैपायनस्ततः। [ततो जातूकर्णात्परम अष्टाविंशतिमे युगे]।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः । एको वेदश्चतुर्धा तु तैः कृतो द्वापरादिषु॥
भविष्ये द्वापरे चैव द्रोणिर्व्यासो भविष्यति। व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुने॥

पुराणकी कुछ झलक—

नमस्कृत्य पुराणज्ञं दद्याच्चार्घासनं ततः। निषीद तत्र चेत्युक्त्वा गन्धपुष्पैः समर्चयेत्॥
आत्मयोग्यं च ताम्बूलमधिकं वा समर्चयेत्। ब्रूहि पुण्यकथां ब्रह्मन्पौराणिकीमितीरयेत्॥
न खट्वासनमारुह्य नोच्चासनमथापि वा। नोच्चासनो वै शृणुयाद् धर्मकामार्थसिद्धये॥
शृणोत्युक्त्वा पुराणज्ञ इमं मन्त्रमुदीरयेत्। नमो हरिं हरमथो गणेशं भारती मतः॥
इष्टेरेवं नमस्कृत्वा पुराणं वक्तुमर्हति । अर्धयामं प्रतिदिनं यदि वाऽपीच्छया भवेत्॥
एवं दिनसमाप्तिं च श्रुत्वा कृत्यं समाचरेत्। श्रोतुश्च तूष्णीं मननं तूष्णीं श्रवणमेव वा॥
अन्यथा भारतीक्रुध्येत्तत्क्रोधान्मूकता भवेत्। तस्मात् पुराणश्रोता च ताम्बूलादिसमर्पणम्॥
वक्तुश्च जीविका कार्या स्वसामर्थ्यानुसारतः। पुराणे प्रक्रमे देयं स चेतोद्गमनीयकम्॥
सूक्ष्माम्बरमथो वाऽपि वस्त्रद्वितयमर्पयेत्। आसनं तु महच्चित्रं रम्ममूर्जस्वलं मृदु॥
सुवर्णं वा तथा दद्याद् गोभूगेहादिकं तथा! एतत्समस्तं विप्रेन्द्रा दक्षिणामूर्तिना पुरा॥
शङ्करेण मुनीनां हि भाषितं च दिवौकसाम्। अथ ते मुनयः सर्वे तं प्रणम्याऽऽसनस्थितम्॥
पृथक् पृथक् च ताम्बूलं दद्यात् शुश्रूषवः स्थिताः। तेनापि कथितं सर्वं पुराणं सर्वसम्पदम्॥
उपान्ताध्यायपर्यन्तं श्रुतवन्तो द्विजोत्तमाः। पद्मपुराण-पातालख० अ० १८६।

रोहितलक्षणम्—

काणं व्यङ्गमपुत्रं वाऽनभिज्ञमजितेन्द्रियम्। न ह्रस्वं व्याधितं वाऽपि नृपः कुर्यात्पुरोहितम्॥
(कालिकापुराण)

शाकल्यप्रमाणम्—

तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा। यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्द्धं च घृतं स्मृतम्॥
(आनन्दरामायण)
'आयुःक्षयो यवाधिक्ये यवसाम्ये धनक्षयः। धनधान्यसमृद्धिः स्यात्तिलाधिक्ये न संशयः॥
त्रिभागाश्च यवाः कार्या भागमेकन्तु तण्डुलाः॥'

भागवतसे रोगादि निवृत्ति—

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम्। पठनाच्छ्रवणाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अष्टादश पुराणों का दान—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा। तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा। दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं तथा॥
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चैव त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा॥
मत्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डमन्तिमं तथा। अन्यान्युपपुराणानि सहिरण्यानि पर्वणि॥
लिखित्वा यः प्रयच्छेत्तु स विद्यापारगो भवेत्। (वाराहपुराण)

पुस्तकोंका दानप्रकार—

शास्त्रसद्भावविदुषे वाचके च प्रियम्वदे। वस्त्रयुग्मेन संवीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत्॥
कपिलादानसहस्रेण सम्यक् दत्तेन यत्फलम। तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकैकप्रदानतः॥
पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा। दत्वा यत्फलमाप्नोति पार्थ तत्केन वर्ण्यत—इति।
(दानमयूख)

—दौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजा परीक्षित्ने कहा—हे गुरो, स्वायम्भू मनुके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन मैंने सुना, जिसमें विश्वकी सृष्टि करनेवाले मरीच्यादिकोंकी पुत्र पौत्र परम्परा भी आती है। अब अन्य मनुओंका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्, जिन-जिन मन्वन्तरोंमें पूजनीय भगवान् विष्णुके जिन-जिन जन्मों और कर्मोंका विद्वान् लोग वर्णन करते हैं उन सबका आप हम श्रोताओंसे वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्, विश्वपालक भगवान् जिस व्यतीत मन्वन्तरमें, जो कर्म किये हैं, आगामी जिन मन्वन्तरोंमें जो कुछ करेंगे तथा वर्तमानमें जो कर रहे हैं उन सबका वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस वर्तमान कल्पमें जो स्वायम्भू आदि छः मनु हो चुके हैं, उनमें प्रथम मनुका हमने आपसे वर्णन किया, जिस वर्णनमें देवादिकोंकी भी उत्पत्ति कही गई है ॥ ४ ॥ उस स्वायम्भू मनुकी आकूती और देवहूती नामवाली पुत्रियोंमें स्वयं भगवान् यज्ञमूर्ति और कपिलके स्वरूपसे पुत्रताको प्राप्त हुए, क्योंकि उन्हें धर्म तथा ज्ञानका उपदेश करना

❁ अथ प्रथमोऽध्यायः ❁

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ॥ यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥ १ ॥ यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ॥ गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥ यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः ॥ कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट्कल्पे स्वायम्भुवादयः ॥ आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च संभवः ॥ ४ ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ॥ कर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥ कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ॥ आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥ ६ ॥ विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ॥ विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥ ७ ॥ सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ॥ तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ८ ॥ मनुरुवाच ॥ येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ॥ यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥ आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत् ॥ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वि-

आवश्यक था ॥ ५ ॥ भगवान् कपिलके किये गये चरित्रोंका मैंने पहले ही तृतीयस्कन्धमें वर्णन कर दिया है। हे कुरुवंशपालक, अब यज्ञमूर्ति भगवान्ने जो कुछ किया, उसका वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ शतरूपापति श्रीस्वायम्भू मनु कामोपभोगसे विरक्त होकर राज्यका परित्याग करके स्त्री सहित तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये ॥ ७ ॥ हे भारत, वहाँपर सुनन्दा नदीके तटपर सौ वर्षोंतक एक पैरसे पृथ्वीपर खड़ा रहकर, घोर तपस्या कर रहे भगवान् मनु समाधिमें अनुभूत विज्ञानका प्रजावर्गमें प्रचार करते हुए जैसे यह कहने लगे ॥ ८ ॥ मनुने कहा-जिस चेतन स्वप्रकाश भगवान्के द्वारा यह विश्व चेतन बनाया जाता है. किन्तु यह विश्व जिसे चेतन नहीं बना सकता। तथा इस विश्वकी सौषुप्तावस्थामें भी साक्षीरूपसे जो जागता रहता है, अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि प्राणी उसे नहीं जान पाता, परन्तु वह प्रभु सबको जानता है ॥ ९ ॥ लोकमें जो कुछ भी यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक भूतवर्ग है, वह आत्माके विस्तृत सत्ता और चैतन्यस्वरूपसे व्याप्त है अतः उसके द्वारा दिये गये धनसे ही भोग करो और किसी दूसरेके धनकी अभिलाषा मत करो ॥ १० ॥ निखिल विश्वप्रपञ्चको देखते रहे जिस देवको ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साधारण प्राणी तथा लौकिक नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं देख पातीं और जिसकी ज्ञानशक्ति निःसीम तथा नित्य है, जो सम्पूर्ण स्थिर, चर एवं भूतवर्गका निवासस्थान होकर सर्वान्तर्यामी है और जो आसक्तिशून्य निर्मल ज्ञानसे विशिष्ट है उस पर परमात्मदेवका तुमलोग भजन किया करो ॥११॥ जिसका आदि, मध्य, अन्त, अपना, पराया, भीतर और बाहर इत्यादि व्यवहार नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण संसारका आदि, मध्यादि व्यवहार जिससे ही होता है तथा यह विश्वही उसका स्वरूप है, वही सत्य परिपूर्ण ब्रह्म है ॥ १२ ॥ वह ईश्वर अज अर्थात् जन्मरहित, सत्य, स्वप्रकाश, पुराण, निर्विकार और अनेक संज्ञाओंसे युक्त होते हुए भी अपनी शक्तिरूप नित्य मायाके द्वारा इस विश्वकी सृष्टि, पालन तथा संहार करता है एवं उस मायाको अपनी नित्यसिद्ध विद्याशक्ति अर्थात् ज्ञानसे दूर भगाकर निश्चेष्ट और निर्विकार ही रहता है॥ १३ ॥ चूँकि भगवान् विश्वसृष्ट्यादिकर्म करके त्याग भावनाके कारण कर्मोंमें अनासक्त रहते हैं, इसलिये ऋषिवृन्द भी मोक्षसिद्धिके लिये पहले कर्म करते हैं; क्योंकि कर्म करनेमें तत्पर मनुष्य ही प्रायः कर्मों का त्याग भी करता है ॥ १४ ॥ भगवान् ईश हैं—करने, न करने तथा

द्धनम् ॥ १० ॥ यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ॥ कं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११ ॥ न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ॥ विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥ १२ ॥ स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयञ्ज्योतिरजः पुराणः ॥ धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥ १३ ॥ अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ॥ ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥ १४ ॥ ईहते भगवानाशो न हि तत्र विषज्जते ॥ आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥ १५ ॥ तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ॥ नॄञ्छिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ॥ दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ॥१७॥ तांस्तथाऽवसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ॥ यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासत्त्रि-विष्टपम् ॥ १८ ॥ स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ॥ द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥ तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासी-द्देवाश्च तुषितादयः ॥ ऊर्जस्तम्भादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥ ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषितानाम पत्न्यभूत् ॥ तस्यां जज्ञे ततो देवो

विपरीत कर देनेमें समर्थ एवं निज लाभसे ही पूर्णकाम हैं, अतः संसार सृष्ट्यादि कर्म करके भी अनासक्त रहते हैं और उनकी अनुवृत्ति करने वाले भक्तगण भी अनासक्त रहते हैं, इसलिये सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे भी पीड़ित नहीं होते ॥१५॥ कर्म करते हुए भी उनमें आसक्त न रहनेवाले, बुध, निरहङ्कारी, परिपूर्ण अनन्यप्रेरित एवं सम्पूर्ण धर्मों के प्रवर्तक अपने मार्गमें स्थिर होकर सबको शिक्षित करनेवाले भगवान् प्रभुकी मैं शरण में हूँ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इसप्रकार सावधान चित्त होकर मन्त्रोपनिषत्को उच्चारणद्वारा प्रकटकर रहे भगवान् मनु को देखकर भूखसे पीड़ित असुर और यातुधान उन्हें खा जानेके लिए दौड़े ॥१७॥ सर्वव्यापी भगवान् यज्ञने उन असुरोंका यह निश्चय देखकर उनका वध किया और यामसंज्ञक अपने पुत्रों को साथ लेकर स्वयं इन्द्र बनकर स्वर्गका शासन किया ॥१८। अग्निके पुत्र स्वारोचिष दूसरे मनु हुए। द्युमान्, सुषेण, रोचिष्मान् आदि उनके प्रमुख पुत्र हुए ॥ १९ ॥ उस मन्वन्तरमें रोचन इन्द्र, तुषितादि देवता तथा ब्रह्मज्ञानी ऊर्जस्तम्भादि सप्तर्षि हुए ॥२०॥ वेदशिरा नामक ऋषिको तुषिता नामकी पत्नी हुई। उस ऋषिसे तुषितामें भगवान्ने अवतार धारण किया,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिस अवतारकी 'विभु' इस नामसे प्रसिद्धि हुई ॥२१॥ कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करनेवाले उन भगवान् विभुसे अट्ठासी हजार संयमी ऋषियोंने ब्रह्मचर्य्य व्रतकी शिक्षा ग्रहण किया ॥ २२ ॥ महाराज प्रियव्रतके पुत्र उत्तमनाम वाले तीसरे मनु हुए। हे राजन्, पवन, सृञ्जय और यज्ञहोत्र आदि उनके पुत्र हुए ॥ २३ ॥ और वशिष्ठके प्रमदादि नामक पुत्र सप्तर्षि हुए तथा सत्य, वेदश्रुत एवं भद्र संज्ञक देवता हुए और सत्यजित् नामक इन्द्र हुए ॥ २४ धर्मकी सूनृतानामकी भार्यामें भगवान् पुरुषोत्तमने अवतार धारण किया और सत्यव्रत संज्ञक देवताओंके साथ उनकी सत्यसेन इस नामसे प्रसिद्ध हुई। २५ ॥ उन्होंने मिथ्याभाषी, दुःशील और प्राणियोंको कष्ट पहुँचानेवाले यक्षों तथा राक्षसों का सत्यजित् (इन्द्र) सहायक बन

विभुरित्यभिविश्रुतः ॥ २१ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ॥ अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥ २२ ॥ तृतीय उत्तमो नाम
प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥२३॥ वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमादादयः ॥ सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु
सत्यजित् ॥ २४ ॥ धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥ सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो
यक्षराक्षसान् ॥ भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥ चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ॥ पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या
दश तत्सुताः ॥ २७ ॥ सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ॥ ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥२८॥ देवा वैधृतयो नाम विधृ-
तेस्तनया नृप ॥ नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥ तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ॥ हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो
मोचितो ग्रहात् ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥ तत्कथासु
महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान् गीयते हरिः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोपवि-
ष्टेन कथासु चोदितः ॥ उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे
मन्वन्तरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कर बध किया ॥ २६ ॥ उत्तमके भाई तामस नामक चतुर्थ मनु हुए। ख्याति, पृथु, नर, केतु आदि उनके दस पुत्र हुए ॥ २७ ॥ सत्यक, हरि और वीर संज्ञक देवता तथा त्रिशिख संज्ञक इन्द्र हुए तथा तामस मन्वन्तरमें ज्योति धर्मादिक सात ऋषि हुए ॥ २८ ॥ हे राजन्, उस मन्वन्तरमें विधृतिके पुत्र वैधृति नामके देवता भी हुए, जिन्होंन कालक्रमसे नष्ट प्राय वेदों को अपने तेजसे धारण किया ॥ २९ ॥ उस मन्वन्तरमें भी हरिमेधा नाम ऋषिसे हरिणीमें भगवान् अवतरित हुए और हरिनामसे पुकारे गये, जिन्होंने ग्राह द्वारा ग्रस्त हुए गजराजको छुड़ाया ॥ ३० ॥ राजाने कहा—हे मुने, बादरायण, भगवान् हरिने ग्राहग्रस्त गजेन्द्रको किस प्रकार मुक्त किया, यह हम आपसे सुनना चाहते हैं ॥ ३१ ॥ क्योंकि जिन जिन कथाओंमें उत्तम कीर्ति भगवान् हरि गाये जाते हैं, उन सब कथाओंके कहने और सुननेमें धन्य कल्याणास्पद तथा शुभ कारक महान् पुण्य होता है ॥ ३२ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, उपवास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की अवस्थामें राजा परीक्षित् द्वारा भगवत्कथा कहनेके लिये प्रेरित हुए श्री व्यास पुत्र शुकदेवजीने भी भगवतामृतको पान कर रहे मुनियोंकी सभामें राजाका अभिनन्दन करके प्रसन्नता-पूर्वक यह कहा ॥ ३३ ॥

प्रथम अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस कल्पमें सर्वप्रथम स्वायंभू मनु हुए। मनुकी आहूती और देवहूती नामकी लड़कियोंमें भगवान् स्वयं कपिल और यज्ञ नामसे पुत्र बनकर प्रकट हुए। भगवान् यज्ञने यामसंज्ञक पुत्रोंको साथ लेकर स्वयं इन्द्र बनकर स्वर्गका शासन किया। हे राजन्, स्वारोचिष नामके द्वितीय मनु हुए। उसके द्युमद आदि पुत्र हुए, रोचन नामक इन्द्र और तुषित आदि ऋषि हुए। ऊर्जस्तम्भ आदि सप्तर्षि हुए तथा उस मन्वन्तरमें विभुनामसे भगवान्ने अवतार लिया। उत्तम नामके तृतीय मनु हुए। पवन आदि उनके पुत्र, सत्य आदि देवता, प्रमद आदि सप्तर्षि और सत्यजित् नामक इन्द्र हुए। इसमें सत्यसेन नामसे भगवान् ने अवतार लिया। तामस नामक चतुर्थ मनु हुए। उनके पृथु आदि दस लड़के हुए। सत्यक आदि देवता और त्रिशिख नामक इन्द्र हुए। ज्योतिर्धाम सप्तर्षि और वैधृति आदि देवता हुए। हे राजन्, इस मन्वन्तरमें भगवान् हरिनामसे अवतरित हुए, जिन्होंने ग्राहसे ग्रस्त हुए गजेन्द्रकी रक्षा की। प्रथम अध्याय समाप्त॥

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

शुक उवाच॥ आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः॥ क्षीरोदेनावृतः श्रीमान् योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥ तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् ॥ दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥ अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलता-गुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥ स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात्पयऊर्मिभिः ॥ करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः ॥ किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥ ५ ॥ यत्र सङ्गीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ॥ अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥ ६ ॥ नानाऽऽरण्यपशुव्रातसङ्कुलद्रोण्यलङ्कृतः ॥ चित्रद्रुमसरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७ ॥ सरित्सरोभिरच्छोदैः

❀ हथिनियोंके साथ जल में क्रीडा करते समय ग्राह द्वारा पकड़ लिये गये गजेन्द्र की अचानक उत्पन्न हो गई भगवान्की स्मृतिका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, चित्रकूट नामक एक प्रसिद्ध पर्वत है। जो चतुर्दिक क्षीरसमुद्रसे घिरा हुआ, अत्यन्त शोभाशाली तथा दससहस्र योजन ऊँचा है ॥ ॥ दशसहस्र योजन ही चारो तरफ फैला हुआ है। तथा सुवर्ण, चाँदी और लोहेके तीन शिखरोंसे समुद्र, आकाश तथा दिशाओंको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥ अनेकरत्नों और गेरिक आदि धातुओंसे विचित्र नाना वृक्षों एवं लताओंसे युक्त अपने अन्य शिखरों तथा झरनोंके जलकी झरझर ध्वनिसे भी सम्पूर्ण दिशाओंको शोभित बनाता है ॥ ३ ॥ उस पर्वतकी चरणरूपी अधोभाग को समुद्रकी लहरियाँ प्रक्षालित करती हैं और वह पर्वत उन लहरोंके द्वारा हरितवर्ण वाले मरकतमणिके खण्डोंको फैलाकर पृथ्वीको श्यामल बना देता है ॥४ ॥ उस पर्वतकी कन्दराएँ क्रीड़ा कर रहे, सिद्ध, चारण, विद्याधर, महानाग, किन्नर तथा अप्सराओंसे सेवित हैं ॥ ५ ॥ उस पर्वत पर जब संगीतकी सुन्दर ध्वनिसे कन्दरायें प्रतिध्वनित होती है, तब उचक्कोटिके सिंह, दूसरे सिंहकी आशङ्कासे चारो ओर गरजने लगते हैं ॥ ६ ॥ तथा नाना प्रकारके वन्य-पशु-समूहोंसे पूर्ण, द्रोणियों (पर्वततटों) से शोभित और चित्र-विचित्र वृक्षोंसे युक्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

देव उद्यानोंमें कलरव करनेवाले पक्षियोंसे युक्त है ॥ ७ ॥ उसपर स्वच्छ जलसे पूर्ण ऐसी सरितायें और ऐसे सरोवर हैं जिनका तट मणिमय वालुकासे युक्त है देवाङ्गनाओंके स्नान करनेके कारण सुगन्धित पदार्थों के योगसे सुरभित जल और वायुसे वह समन्वित है ॥ ८ ॥ उसकी द्रोणीपर महात्मा श्रीवरुणदेवका ऋतुमान् नामक उपवन है, जो देवाङ्गनाओंके विहारका स्थल है ॥ ९ ॥ जो उपवन निरन्तर दिव्य वृक्षों, पुष्पों और फलोंसे अलङ्कृत है तथा मन्दार, पारिजात, गुलाब, अशोक, चम्पा ॥ १० ॥ चूत (आम्रभेद) प्रियाल, कटहल, आम्र, अमला, पूगीफल, नारिकेल, खर्जूर, बीजपूरक (अनार नीबू) ॥ ११ ॥ महुवा, साल, ताड़, तमाल, असन, अर्जुन, अरिष्ट (रीठी) गूलर, पकड़ी, वट, पलाश, चन्दन ॥ १२ ॥ नीब, कचनार गुग्गुल, देवदारु, मुनक्का, ऊख, केला, जामुन, बैर, हर्रे, आवला ॥ १३ ॥ बिल्व, कपित्थ, कागजी नीबु, भिलावा इत्यादि अनेक जातिके वृक्षोंसे जो घिरा है उसे उद्यानमें स्वर्ण कमलोंसे

पुलिनैर्मणिवालुकैः ॥ देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्बनिलैर्युतः ॥ ८ ॥ तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥ उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुर-
योषिताम् ॥ ९ ॥ सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥ १० ॥ चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैरा-
म्रातकैरपि ॥ क्रमुकैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ ११ ॥ मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ॥ अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥१२॥
पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ॥ द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ १३ ॥ बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ॥ तस्मि-
न्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥ १४ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ॥ मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ १५ ॥ हंसकारण्ड-
वाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १६ ॥ मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजः पयः ॥ कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकै-
र्वृतम् ॥ १७ ॥ कुन्दैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः ॥ कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १८ ॥ मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवी-
जालकादिभिः ॥ शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥१९॥ तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ॥ सकण्टकान्कीचक-
वेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन्❀ ॥ २० ॥ यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः ॥ महोरगाश्चापि भयाद् द्रवन्ति

शोभित अति विशाल एक जलाशय है ॥ १४ ॥ जो कुई, कमल, कह्लार (कमलभेद), शतपत्र (कमलभेद) आदिकी शोभासे समृद्ध है और मतवाले भ्रमरों तथा मधुरस्वरवाले पक्षियों से शब्दायमान है ॥ १५ ॥ हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस आदिसे भी व्याप्त तथा जलमुर्ग, कोकिल, (पिक) चातकोंके समूहोंसे कूजित रहता है ॥१६॥ जो मछलियों और कछुओं के चलनेसे चलायमान कमलोंके परागसे युक्त एवं कदम्ब, बेंत, नरकट, नीप (कदम्बभेद) अशोक आदिसे घिरा है ॥ १७ ॥ कुन्द, कुरवक, अशोक, शिरीष, कुटज, इङ्गुदी, कुब्जक, स्वर्णयूथी, नागकेशर, बड़ा नागकेशर जूही ॥१८॥ चमेली, कमल, माधवीलता तथा अन्य प्रकारके भी तटमें उत्पन्न और सब ऋतुओंमें फूलने फलनेवाले वृक्षोंसे खूब शोभित है। १९॥

❀दृष्टान्त—हाथियों का समुदाय शेर के चिघाड़ से भाग सकता है, किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि—हाथी के शब्द से वन के राजा सिंहगण क्यों कर भाग गये।
उत्तर—चूंकि वह पूर्व जन्म का तपस्वी था, शाप के कारण उसे हाथी का जन्म मात्र था। इसलिये वे सब पलायन तत्पर हुए।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक बार उस पर्वतके जङ्गलमें रहनेवाला गजराज बहुत-सी हथिनियोंके साथ घूमता हुआ वहाँ आया। और आकर उसने अनेकों बाँस तथा बेंतके कण्टक युक्त विशाल गुल्मों एवं बड़े-बड़े वृक्षोंको छिन्न भिन्न कर दिया ॥२०॥ उस गजराज के मद-गन्धको सूँघकर सिंह, व्याघ्र आदि, अन्य गजराज, सर्प, गैंड़ा, अजगर, गौर और कृष्ण वर्णके मृग, शरभ, चँवरवाली सुरभी गाय आदि अन्य-सिंहक पशुगण भयभीत होकर भागने लगे ॥ २१ ॥ और जिनके अनुग्रहसे भेड़िया, शूकर, महिष, भालू, शाही, (एक तरहका बन्दर) श्वान या [गीदड़] बन्दर तथा हरिण आदि अन्य छोटे पशु उसकी दृष्टिसे बचकर निर्भय हो घूमने लगे ॥ २२ ॥ धूपमें तपा हुआ मेद स्त्रावी वह गजराज अनेक हाथियों, हथनियों और परिपोतोंके साथ अपनी गुरुतासे पर्वत को कम्पित कर रहा था तथा मदभोजी भ्रमरोंसे सेवित था ॥ २३ ॥ मदसे चञ्चल नेत्रवाला वह गजराज कमल-परागसे मिश्रित जलाशयसे निर्गत वायुको दूसरे हो सूँघता हुआ तृषा-पीडित अपने यूथके साथ शीघ्रता पूर्वक उस जलाशयके पास पहुँचा ॥ २४ ॥ प्रवेश करके सुवर्ण-कमलके परागसे सुगन्धित और अमृतके समान मधुर जलका खूब पान

सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥ २१ ॥ वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छशालावृकमर्कटाश्च ॥ अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २२ ॥ स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ॥ गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २३ ॥ सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ॥ वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ॥ २४ ॥ विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बुनिर्मलं हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ॥ पापौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मानमद्भिः स्नपयन् गतक्लमः ॥ २५ ॥ स्वपुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभिर्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ॥ घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २६ ॥ तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाग्रहीत् ॥ यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २७ ॥ तथाऽऽतुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ॥ विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २८ ॥ नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ॥ समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २९ ॥ ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः ॥ विकृष्यमाणस्य

किया। तदनन्तर अपनी सूँड़से ऊपर छोड़े गये जलसे शरीर को स्नान कराकर अपना परिश्रम दूर किया ॥ २५ ॥ तथा गृहस्थके समान दयालु वह अपनी सूँड़से जल उठा-उठाकर हथिनियों और करिपोतोंको पिलाकर, स्नान कराकरके परम सन्तुष्ट हुआ, किन्तु भगवान्की मायाके वशीभूत होनेके कारण दीनबुद्धि मतवाला वह गजराज अपने ऊपर आनेवाली आपत्ति के विषयमें तनिक भी विचार नहीं कर सका २६ ॥ हे राजन, वहाँ पर ऐसी घटना हुई कि दैव प्रेरित अत्यन्त बलशाली किसी ग्राहने आकर उसके चरण पकड़ लिये। इस प्रकार प्रारब्धानुसार विपत्तिमें फँसे हुए अत्यन्त बलशाली उस गजराजने अपने बलानुसार बाहर निकलनेके लिये विविध पराक्रम किये ॥ २७ ॥ बलवान ग्राहके द्वारा वेगसे आकृष्यमाण पीड़ित यूथपतिको देखकर सभी हथिनियाँ खिन्न चित्त होकर चिल्ला उठीं। और उसके अन्य सहायक गज भी उसे बाहर निकाल लेनेमें समर्थ न हो सके ॥ २८ ॥ इसप्रकार गजेन्द्र और ग्राह में युद्ध होने लगा। तथा परस्परमें बाहर-भीतर एक दूसरेको खींचते हुए उन दोनों का एक हजार वर्ष बीत गया। हे राजन्, इसप्रकार युद्धको देवताओं ने भी आश्चर्यमय माना ॥ २९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यों युद्ध करते करते बहुत समय बीत जानेके कारण गजेन्द्रकी मनःशक्ति, शरीरशक्ति और इन्द्रिय शक्तिका महान् व्यय हो गया, क्यों कि वह जलमें खींचा जा रहा था अतएव जलचर न होनेके कारण कष्ट पा रहा था, तथा जलचर ग्राहके लिये ये सभी बातें विपरीत हुईं अर्थात् उसके मन, बल और ओजकी वृद्धि ही होती गई ॥ ३० ॥ उस देहधारी, गजेन्द्रके ऊपर प्रारब्धानुसार जब इसप्रकार प्राणसंकटका अवसर उपस्थित हो गया तथा कोई उसका सहायक उस विपत्तिसे उसे जब बचा न सका, तब अपनेको छुड़ानेमें असमर्थ देखते हुए उसने बहुत देर तक ध्यान किया और इस बुद्धिको प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ जब कि ये मेरी जातिवाले बड़े-बड़े गजराज भी आतुर (सङ्कटग्रस्त) मुझको छुड़ा सकनेमें समर्थ नहीं हैं तब भला हथिनियाँ क्या कर सकेगीं । अतएव विधाताके ग्राह-रूप-फाँसमें बँधा हुआ अब मैं उस परमेश्वरकी शरणमें जाता हूँ, जो कि ब्रह्म आदिका भी आश्रय स्थान है ॥ ३२ ॥ जो कोई ईश्वर अत्यन्त वेगशाली गतिशील बलवान् कालरूपी सर्पसे भयभीत हो कर अपनी शरणमें आये हुए जीवोंकी रक्षा प्रत्येक सम्भव उपायोंसे करता है और मृत्यु भी जिसके भयसे भागती है मैं उसकी अब शरणमें जाता हूँ ॥ ३३ ॥

द्वितीय अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, चित्रकुटपर्वतके ऊपर अनेक हाथियोंके साथ धूपमें घूमते-घूमते थक जाने के कारण प्याससे व्याकुल एक गजराज उसी पर्वतके ऊपर एक सरोवरके निकट पहुँचा । उस सरोरके अन्दर उसने यथेच्छ जलका पान किया । तदनन्तर अपने साथियोंको जल पिलाकर ज्योंही वह बाहर निकलने लगा, त्योंही एक ग्राहने उसके चरण पकड़ लिये॥ उसके अन्य साथियोंने उसे बाहर निकालनेकी कोशिश की, लेकिन वे उसके छुड़ानेमें समर्थ न हुए । जब गजराज ने अपनेको हरतरहसे असमर्थ पाया, तब अचानक उसे भगवान् की स्मृति हो गई । द्वितीय अध्याय समाप्त॥

जलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥ ३० ॥ इत्थं गजेन्द्रः स यदाऽऽप सङ्कटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ॥ अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३१ ॥ न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ॥ ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३२ ॥ यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ॥ भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्यवसितो बुद्धया समाधाय मनो हृदि ॥ जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥ गजेन्द्र उवाच ॥ ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ॥ पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ॥ योऽस्मात्पर-

❀ गजेन्द्र द्वारा स्तुत श्रीहरिने शीघ्र आकर ग्राहसे उसे छुड़ाया—यह वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महीपते, इसप्रकार अपनी बुद्धिसे निश्चय कर मनको सावधान करके उस गजेन्द्रने हृदयमें ही उस परम जपनीय मन्त्रका जप करना प्रारम्भ कर दिया जिसकी शिक्षा पूर्व जन्ममें उसने पायी थी ॥ १ ॥ स्तुति करते हुए गजेन्द्रने कहा—जिस भगवान्से यह विश्व चेतनात्मक बना है, उस भगवान्को नमस्कार है । जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें कारण ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रूपसे प्रविष्ट है, और जो सारे विश्वप्रपञ्चका मूल कारण तथा प्रकृति पुरुष स्वरूप है, उस परमेश्वरको प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ जिस अधिष्ठानमें, जिस उपादानसे, जिस कर्ताके द्वारा जो स्वयं इस संसाररूपमें विद्यमान है। जो इस कार्य-कारण से भी परे है, स्वयं सिद्ध उस भगवान्‌की शरणमें आया हूँ ॥ ३ ॥ जिस भगवान्‌ने अपनेमें ही अपनी माया शक्तिके द्वारा इस विश्वका निर्माण किया है। यह विश्व कभी तो-सृष्टि स्थित कालमें—प्रतीत होता है और प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपमें तिरोहित रहता है, किन्तु इसकी कार्य कारणरूप दोनों अवस्थाओंका जो साक्षी होकर द्रष्टा है, क्योंकि उसकी ज्ञानशक्ति कभी नष्ट न होनेवाली है तथा जो स्वयं प्रकाश और दूसरोंके प्रकाशक चक्षुरादिकोंका भी प्रकाशक है, वह मेरी रक्षा करे ॥ ४ ॥ प्रलयकालमें जब कि सम्पूर्णलोकों, लोकपालों और सबके कारणोंका नाश हो जाता है, जब केवल प्रगाढ़ अन्धकार (अज्ञान) ही रह जाता है, तब भी उस तमसे भी परे सूर्यनारायणके समान प्रकाशकरूपमें जो विभु चारो ओर विराजमान रहता है ॥ ५ ॥ अनेक आकृतियोंको विविध क्रीडा करने वाले नटके समान विविध स्वरूप धारण करने वाले जिस प्रभुके स्वरूपको देवता और ऋषि लोग भी नहीं जानते, तो फिर भला उसके स्वरूपकी जानने या उसका वर्णन करनेमें कौन जन्तु समर्थ हो सकता है ? अत्यन्त दुर्गम चरित्र है वह भगवान्

स्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ❀ ॥३॥ यः स्वात्मनीदं निजमाययाऽर्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ॥ अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥ कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु कालेषु च सर्वहेतुषु ॥ तमस्तदासीद् हनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥ न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तु पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ॥ यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स माऽवतु ॥ ६ ॥ दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ॥ चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥७॥ न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ॥ तथाऽपि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥ तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥ नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ॥ नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥ सत्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ॥ नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥ नमः शान्ताय घोराय

मेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण भूतोंमें आत्म दृष्टि रखते हुए जो सबके मित्र हैं, जो निर्जन वनोंमें निष्कपट भावसे ब्रह्मचर्य आदि क्रिया करते हैं ऐसे असक्ति शून्य सांसारिक वासनाओंका परित्याग किये हुए अत्यन्त साधु स्वभाव मुनिगण भी जिसके मङ्गलमय स्वरूपको देखनेकी इच्छा रखते हैं, वही भगवान् अब मेरी गति हैं ॥ ७ ॥ जिसके जन्म, कर्म, नाम, रूप, गुण-दोष आदि वास्तवमें नहीं है, किन्तु लोकोंकी सृष्टि और संहृतिके लिये अपनी माया शक्तिके द्वारा समय-समय पर इन जन्मादिकोंको जो ग्रहण करता है ॥ ८ ॥ उस अनन्तशक्ति सम्पन्न परब्रह्म-परमात्माको नमस्कार है। निरूप, नानारूप और आश्चर्यकर्मा उस भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ९ ॥ आत्मप्रदीप (किसीके प्रकाशसे न प्रकाशित होनेवाले)

❀दृष्टान्त—भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र ने अल्प काय के लिए स्वयं वहाँ आकर गजेन्द्र का उद्धार क्यों कर किया।
उत्तर—जो श्री भगवान् के नामोच्चारण को जपता है वहाँ वे स्वयं आकर उसकी रक्षा करते हैं। जैसे गौ का बचा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा सबके साक्षी परमात्माको नमस्कार है वाणी, मन एवं चित्तसे भी अप्राप्य उस भगवान्को नमस्कार है ॥१०॥ विद्वान् लोग शुद्ध संन्यासके द्वारा जिसे प्रत्यक् तत्त्व व्यक्त रूपसे प्राप्त करते हैं, कैवल्यनाथ मोक्षानन्दनकी अनुभूति उस प्रभुको नमस्कार है ॥ ११ ॥ शान्त होते हुए भी घोर स्वरूपवाले तथा मूढ़ होते हुए भी सत्वादि गुणोंसे युक्त भगवान्को नमस्कार है । सम-स्वरूप तथा सम्पूर्ण विशेषताओंसे शून्य होते हुए भी ज्ञानघन भगवान्को नमस्कार है ॥ १२ ॥ हे प्रभो, आप क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) होकर भी सम्पूर्ण जीवोंके अध्यक्ष तथा साक्षी हैं। भगवन्, आपको नमस्कार है । आप पुरातन पुरुष हैं और सम्पूर्ण क्षेत्रज्ञोंके मूल तथा प्रकृतिकी भी उत्पत्तिके कारण हैं । आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे प्रभो, आप सम्पूर्ण इन्द्रिय विषयोंके द्रष्टा हैं और सम्पूर्ण इन्द्रिय वृत्तियाँ आपकी ज्ञापिका हैं । छायारूप असत् प्रपञ्चसे आप सूचित हैं, क्योंकि सर्वत्र आपके ही सत् अंशका मान होता है । आपको नमस्कार है ॥१४॥ सम्पूर्ण विश्व के कारण स्वयं निष्कारण और विचित्र कारण आपको वार-वार नमस्कार है । आप सम्पूर्ण पाञ्चरात्रादि आगमों और वेदोंके महासमुद्र हैं अर्थात् जैसे सभी नदियोंका पर्यव-

मूढाय गुणधर्मिणे ॥ निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ॥ पुरुषायाऽऽत्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥ सर्वेन्द्रियगुणद्रष्टे सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ असता च्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ॥ सर्वागमाम्नाय महार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥ गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ॥ नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥ मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ॥ स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥ आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ॥ मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥ यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ॥ किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥ एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ॥

सान महासमुद्रमें ही होता है वैसे ही सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्पर्यका पर्यवसान आपमें ही होता है । हे प्रभो, आप मोक्ष स्वरूप तथा महात्माओंके भी आश्रयस्थान हैं अतएव आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥ सत्वादि गुणरूप काष्ठमें जिस आपकी ज्ञानाग्नि छिपी रहती है । जब गुणोंका क्षोभ होनेपर प्रपञ्चरूपमें वह परिणाम हो जाती है तब आपका मन बाहरी वृत्तियोंसे युक्त हो जाता है । आत्मतत्त्वकी भावना करनेसे विधि और निषेध शास्त्रोंके परतन्त्र नहीं रहनेवाले ज्ञानियोंमें जिसका स्वयं प्रकाश है ऐसे आपको नमस्कार है ॥ १६ ॥ आप स्वयं मुक्त करुणाशील और आलस्य रहित हैं, इसलिये मेरे सदृश पामर जन्तुओंके अज्ञान-पाशको छुड़ानेवाले हैं, अतः आपको नमस्कार है । आप अन्तर्यामी रूपमें सम्पूर्ण शरीरधारियोंके मनमें विद्यमान हैं, व्यापक तथा भगवान् हैं, आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ जो लोग देह, पुत्र, मित्र, गृह, धन तथा सम्बन्धियोंमें आसक्त हैं उन लोगोंको आप अप्राप्य हैं और गुणोंमें आसक्तिसे शून्य हैं तथा मुक्त ज्ञानीगण अपने हृदयमें आपका ध्यान करते हैं । ज्ञानस्वरूप समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त सब कुछ करनेमें समर्थ आपको नमस्कार है ॥१८॥ जिस आपके भजनको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चाहनेवाले मनुष्य करते हैं तथा अपनी अभिलषित गतिको प्राप्त करते हुए और भी अनिच्छित उत्तम पदार्थोंको प्राप्त करते हैं एवं आप उनकी देहको भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनश्वर बना डालते हैं अतः अत्यन्त दयाशील आप मुझे बन्धनसे छुड़ाइये ॥ १९ ॥ जिस आपके अनन्य भक्त आपको ही शरण बनाकर किसी भी पदार्थकी अभिलाषा नहीं करते, अत्यन्त अद्भुत और मङ्गलमय आपके चरित्रका ही गान कर आनन्दमग्न रहते हैं ॥ २० ॥ उस परमेश्वरको मैं स्तुति करता हूँ, जो अनश्वर, बृहत्, श्रेष्ठ, अव्यक्त, आध्यात्मिकज्ञान से प्राप्य अतीन्द्रिय, सूक्ष्म, अतिदूर, अनन्त, सर्वप्रकारसे पूर्ण और सबका आदि है ॥ २१ ॥ जिसके अत्यन्त लघु अंशसे ही ब्रह्मादिक देवता, वेद, चराचर लोक इत्यादिका नाम और रूपभेद हुआ है ॥ २ ॥ जिस प्रकार अग्निसे चिनगारियाँ तथा सूर्यसे अनन्त रश्मियाँ निकलती हैं और उनमें ही फिर लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार जिस परमेश्वरसे यह संसार प्रवाह चलता है तथा जिससे बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरोंको भी सृष्टि होती है ॥ २३ ॥ वह देव, असुर, मनुष्य, पशु पक्षी नहीं है न स्त्री है, न नपुंसक है, न और कोई प्राणी है वह न गुण है, न कर्म है, न सत् है, न असत् है, केवल निषेधकी अवधिमात्र शेष रहता है, तथापि मायाके द्वारा सबका स्वरूप है, वह प्रभु मेरी विमुक्तिके लिये प्रकट हो ॥ २४ ॥ ग्रहमुक्त होकर मैं

अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥२०॥ तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ॥ अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ॥ नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥ यथाऽर्चिषोऽ-
ग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ॥ तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २३ ॥ स वै न देवासु-
रमर्त्यतिर्यङ्‌न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ॥ नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥ जिजीविषे नाहमिहामुया
किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ॥ इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्याऽऽत्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥ सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं
विश्ववेदसम् ॥ विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥ योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ॥ योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं
तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥ नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ॥ प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥
नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ॥ तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनि-

बाहर-भीतर सर्वत्र अज्ञानपूर्ण इस गजयोनिमें जीवनकी इच्छा नहीं करता, किन्तु आत्मास्वरूपकी आवृत करनेवाले अज्ञानसे ही मुक्त होना चाहता हूँ। जिस मोक्ष का कालप्रवाहसे नाश नहीं होता ॥ २५ ॥ जो परमात्मा विश्वस्वरूप होकर भी विश्वसे पृथक् है तथा विश्व जिसका धन है और विश्वका जो निर्माता है, उसपर पद वाच्य, व्यापक, विश्वरूप भगवान्को केवल प्रणाम करता हूँ ॥ २६ ॥ योगके द्वारा जिन्होंने अपने कर्मोंको दग्ध कर दिया है, ऐसे योगिवृन्द योगसे शुद्ध किये हुए अपने हृदयमें जिस परमात्मतत्त्वको देखते हैं, उस योगेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥ जिसके सत्त्वादि त्रिगुणोंका राग द्वेषादि वेग असह्य है, जो सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके शब्दादिरूपविषय स्वरूपमें प्रतीत होता है। जो शरणागतोंका रक्षक है तथा जिसकी शक्ति का पार नहीं पाया जा सकता और कुत्सित इन्द्रियोंवाले सांसारिक जनोंको जिसके मार्गका ज्ञान नहीं हो सकता, ऐसे हे प्रभो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥ २८ ॥ जिसकी मायाशक्ति से ऐसी अहङ्कार-बुद्धि होती है कि मनुष्य अपने स्वरूपको भी नहीं जान पाता। हे भगवन्, उस अनन्त महिमाशालीके ही मैं आश्रित हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि विशेष नामोंके उच्चारण किये बिना ही गजेन्द्रने यों स्तुति की। उस स्तुतिको सुनकर भी विविध देह भेदोंके अभिमानी ब्रह्मादिदेवोंमेंसे कोई भी गजेन्द्रकी रक्षाके लिए जब नहीं उद्यत हुआ, तब निखिल देव स्वरूप होनेके कारण भगवान श्रीहरि प्रकट हो गये ॥ ३० ॥ जगन्निवास श्रीहरि अपनी स्तुति कर रहे देवगणोंके साथ इस प्रकार पीड़ित देखकर छन्दोमय गरुड़के ऊपर आरूढ हो अपना चक्रायुध लेकरके शीघ्रतापूर्वक उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँपर ग्राहग्रस्त गजेन्द्र भगवान्का ध्यान कर रहा था ॥ ३१ ॥ सरोवरके भीतर अतिबलशाली ग्राहसे गृहीत अतएव अतिपीडित उस गजराजने आकाशमें गरुड़के ऊपर आरूढ और चक्रधारण किये हुए दुःखद्रावक भगवान् हरिको देखकर कमल सहित अपनी सूँड ऊपर उठा करके क्लेशकी अवस्थामें भी प्रेमविवश होकर हे नारायण, हे अखिलगुरो, हे भगवन्, आपको नमस्कार है, यों श्रीहरिसे कहा ॥ ३२ ॥ गजेन्द्रको इस प्रकार अति पीड़ित देखकर भगवान्ने झटपट उतर कर कृपापूर्वक ग्राहके सहित गजराजको जलाशयसे बाहर खींच लिया और देवगणोंके देखते देखते चक्रसे ग्राहका मुख विदीर्ण करके गजेन्द्रको छुड़ा लिया ॥ ३३ ॥

तृतीय अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ग्राहग्रस्त वह गजेन्द्र भगवान्की स्तुति करने लगा—जिस भगवान्से इस विश्वकी रचना हुई है। उसे मेरा नमस्कार है। विश्वके पालक रचयिता और संहारक स्वयं प्रकाश सवसाक्षीसे यह सारा विश्व प्रकाशित है, किन्तु उसका प्रकाशक कोई नहीं है ऐसे परब्रह्म परमात्माको मेरा नमस्कार है। हे राजन्, यों बहुत देरतक किसी नाम विशेषसे रहित होकर उस गजेन्द्रकी स्तुति सुनकर विविध लिङ्गभेदों के अभिमानी ब्रह्मादि कोई देव जब वहाँ नहीं आए, तब अपना चक्र लेकर भगवान् श्रीविष्णु वहाँ दौड़ आये और उसे उस सरोवरसे बाहर खींच लिया तथा ग्राहका मुख अपने सुदर्शनचक्रसे काट दिया। तृतीय अध्याय समाप्त॥

विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाऽभिमानाः ॥ नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥ तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ॥ छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥ सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ॥ उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥ तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य स ग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ॥ ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीम० म० पु० अ० गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥ मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥ नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः ॥ ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ॥ मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्व-

❀ गज और ग्राह—इन दोनोंमें ग्राह तो भगवान्के स्पर्शसे फिर गन्धर्व होकर अपने लोकको चला गया, लेकिन गजराजको अपना पार्षद बनाकर भगवान् अपने साथ ले गये—यह वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—जब भगवान् ने गजको ग्राहसे मुक्त किया तब ब्रह्मा, शिव प्रभृति देवगण, ऋषिगण और गन्धर्व समूहोंने भगवान हरिके इस कर्मकी प्रशंसा तथा पुष्पोंकी वर्षा की ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आकाशमण्डलमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, गन्धर्वगण नाचने-गाने लगे और ऋषि, चारण तथा सिद्धगण भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ वह ग्राह पूर्वजन्ममें हूहू नामका श्रेष्ठ गन्धर्व था । केवल ऋषिके शापसे उसे ग्राह योनि प्राप्त हुई थी । इस समय भागवत् स्पर्शके प्रभावसे शापमुक्त होकर उसने परमाश्चर्यमय स्वरूप धारण कर लिया ॥ ३ ॥ सिर नवाकर उसने उत्तम कीर्ति अव्यय परमेश्वर भगवान श्रीहरिको प्रणाम करके उनका गुण-गान किया, क्योंकि भगवान कीर्तिके आश्रय हैं, उनके गुण वर्णनीय हैं और उनकी कथाएँ मङ्गलमयी है ॥ ४ ॥ वह गन्धर्व भगवानका अनुकम्पा-पात्र होकर भगवानकी परिक्रमा और प्रणाम करके सब लोगोंके सम्मुख ही पाप रहित हो अपने गन्धर्वलोकको चला गया ॥ ५ ॥ गजेन्द्र भी भगवान्का स्पर्श होते ही आज्ञानरूप बन्धनसे छूट गया और पीताम्बर धारण किये हुए भगवान् चतुर्भुज के स्वरूपको प्राप्त हो गया ॥ ६ ॥ वह गजराज पूर्व जन्ममें द्रविड़ोंमें सर्वश्रेष्ठ पाण्ड्य देशका इन्द्रद्युम्न नामक विख्यात परम वैष्णव राजा था ॥ ७ ॥ मलयाचल पर उसका आश्रम था, वहाँ पर आत्मानिष्ठ होकर मौनव्रत धारण करके जटाधारी तपस्वीके स्वरूपमें वह रहता था । कभी एक वार वह उपासनाके समय स्नान करके भगवान्की पूजा करने लगा ॥ ८ ॥ वहाँपर अतियशस्वी अगस्त्य मुनि अपने शिष्योंके साथ घूमते हुए कहींसे

सत्तमः❀॥ ३ ॥ प्रणम्य शिरसाऽधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ॥ अगायन यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४॥ सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥ लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥५॥ गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ॥ प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः[] ॥ ६ ॥ स वै पूर्वमभूद्राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः ॥ इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥ स एकदाराऽऽधनकाल आत्मवान्गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ॥ जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥ यदृच्छया तत्र महाशया मुनिः समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ॥ तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥९॥ तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य ॥ विप्रावमन्ताविशतां तमोऽन्धं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राज-

अनायास ही आ गये । राजाने उठकर उनकी पूजा आदि सत्क्रियाएँ नहीं की । तत्पश्चात् राजाको एकान्तमें उपासना करते देखकर ऋषि क्रोधित हो गये ॥९॥ ऋषिने उस राजाको शाप दे दिया—'अशिक्षित् असाधु प्रकृति दुष्टात्मा यह राजा ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला है, गजके समान अविवेकी है, इसलिये गजराज ही यह अभी हो जाय ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने

❀दृष्टान्त—एक समय की बात है कि—किसी तालाबमें अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्व जल क्रीड़ा कर रहा था । अकस्मात् उसी तालाबमें ऋषिदेवल स्नानादिके लिए उतरे कि मदोन्मत्त गन्धर्वने उनका पैर पकड़ कर अपनी ओर खींचा । इससे मुनिने कुपित हो उसे शाप दिया की तूँ अभी ग्राह होजा । इससे भयभीत हो स्तुति द्वारा प्रसन्न कर उनसे वरदान प्राप्त यों किया कि—तुम जब कभी भी गजराजका चरण पकड़ोगे तभी साक्षात् भगवान् श्रीविष्णुके द्वारा तेरा कल्याण होगा ।

[]दृष्टान्त—वह गजेन्द्र शुद्र कर्म से उत्तम गतिको प्राप्त हो गया इसमें क्या रहस्य है ।

उत्तर—वह अनेक युगों से बराबर तपस्या कर रहा था । और ऋषिका शाप भी झूठा नहीं हो सकता था ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा—हे राजन, इसप्रकार शाप देकर अपने शिष्योंके सहित भगवान् अगस्त्य ऋषि चले गये। राजर्षि महाराज इन्द्रद्युम्न भी इस शापको भाग्यकी बात समझकर ॥ ११ ॥ अपनी स्मृति
को नष्ट करनेवाली गजयोनिको प्राप्त हो गये, किन्तु भगवान्की आराधनाके प्रभावसे गजयोनिमें भी उनको पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही ॥ १२ ॥ इसप्रकार कमलनाभ भगवान् हरिने
गजराजको विमुक्त कर अपनी पार्षद-गति उसे दी। तदनन्तर उसको साथ लेकर गन्धर्व, सिद्ध और देवगणोंके द्वारा गाये जा रहे अपने कर्मोंको सुनते हुए गरुड़के ऊपर आरूढ ही भगवान
अपने अद्भुत भवनको चले गये ॥ १३ ॥ हे महाराज, गजराज मोक्षण नामक भगवान् श्रीकृष्णका यह चरित्र हमने आपसे कहा। हे कुरुश्रेष्ठ, यह चरित्र सुननेवालोंको स्वर्ग प्रदान करने
वाला, यश देनेवाला, उसके कलिमलोंको नष्ट करनेवाला और उनके दुःखस्वप्नोंका नाश करने वाला है १४ ॥ इसलिये मङ्गलाभिलाषी द्विजाति गण पवित्र होकर प्रातःकाल उठकरके

र्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥ ११ ॥ आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशनीम् ॥ हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥ १२ ॥ एवं विमोच्य
गजयूथपमब्जनाभस्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ॥ गन्धर्वशिद्धविबुधैरुपगीयमानकर्माऽद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥१३॥ एतन्महाराज
तवेरितो मया कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥ यथाऽनुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेय-
स्कामा द्विजातयः ॥ शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वनाद्युपशान्तये ॥ १५ ॥ इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो
विभुः ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ये मां त्वा च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् ॥ वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥ १७ ॥ शृङ्गाणीमानि
धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ॥ क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥१८॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ॥ सुद-
र्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९ ॥ शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ॥ ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २० ॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ॥ कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१ ॥ प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम् ॥ दाक्षा-
यणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२ ॥ गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् ॥ ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३ ॥

दुःस्वप्न आदि उपद्रवकी शन्तिके लिये यथाविधि कीर्तन करते हैं ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, सर्वभूतस्वरूप भगवान् हरिने सब प्राणियोंको सुनाते हुए गजेन्द्रसे इस प्रकार कहना—आरम्भ
किया ॥ १६ ॥ श्रीभगवानने कहा—हे गजेन्द्र, जो लोग तुम्हारा, मेरा, इस सरोवर, पर्वत, कन्दरा, और काननका वेंत, बाँस इत्यादिके गुल्मोंका तथा सुरवृक्षोंका ॥ १७ ॥ ब्रह्मा और
शिवके स्थानोंका, इन शिखरोंका तथा अत्यन्त प्रिय हमारे क्षीरसागरका, भास्वरश्वेतद्वीपका ॥ १८ ॥ श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, वनमाला, कौमोदकीगदा, हमारे सुदर्शनचक्र पाञ्चजन्य
शङ्ख, पक्षिराज गरुड़ ॥ १९ ॥ हमारे सूक्ष्म अंश श्रीशेष और हमारी प्रिया श्रीलक्ष्मी, ब्रह्मा, नारद, शङ्कर तथा प्रह्लाद आदिका ॥२०॥ और मत्स्य, कच्छप, वराहादि अवतारोंमें किये गये
अनन्तर मङ्गलमय कर्मोंका तथा सूर्य, सोम और अग्निका ॥२१॥ एवं प्रणव, सत्य, माया, गो, ब्राह्मण, अव्यय भक्तिरूप धर्मका धर्मपत्नि दक्ष कन्याओंका तथा सोम और कश्यपकी
भी पत्नियोंका ॥ २२ ॥ गङ्गा, सरस्वती, नन्दा, यमुना, ऐरावत, ध्रुव, सप्तर्षिगण, तथा पुण्यकीर्तिवाले मनुष्योंका ॥ २३ ॥ रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उठकर पवित्र और सावधान होकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्मरण करेंगे, वे लोग सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायगें, क्योंकि पूर्वोक्त सभी नामावलियाँ मेरी ही विभूतियाँ हैं ॥ २४ ॥ हे गजेन्द्र, जो लोग रात्रिके अन्तमें जागकर इस तुम्हारे स्त्रोत्रं द्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उन लोगोंको मैं शरीर त्यागके वाद निर्मल बुद्धि प्रदान करूँगा ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इस प्रकार आदेश देकर भगवान् हृषीकेश शङ्ख बजाकर देवगणोंको आनन्दित करते हुए गरुड़के ऊपर आरूढ हो गये ॥ २६ ॥

चौथे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, देवल ऋषिके शाप से ग्राह योनिको प्राप्त वह 'हूहू' गन्धर्व भगवान् को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा कर उनके गुणोंका कीर्तन करते हुए अपने गन्धर्वलोकको चला गया। इधर अगस्त ऋषिके शापसे गजयोनिको प्राप्त द्रविण देशका प्रसिद्ध राजा इन्द्रद्युम्न भी भगवान्के स्पर्शसे अपनी गज योनिको छोड़कर भगवान्का पार्षद बन गया। भगवान् अपने साथही उसे भी अपने अद्भुत भवनमें ले गये। वहाँसे जाते समय भगवान् ने कहा—गजेन्द्र द्वारा किया गया यह स्तोत्र जो संयत होकर सबेरे पढ़ेगा, उसे मैं अवश्य सद्गति दूंगा। चौथा अध्याय समाप्त❀

उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः ॥ स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात् ॥२४॥ ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये ॥ तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ॥ हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भा म० पु० अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माऽघनाशनम् ॥ गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥ पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ॥ बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥ विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ॥ हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥ पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ॥ तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४॥ वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ॥ रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥ तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ॥ भौमान्रेणून्स विममे यो

❀ पञ्चम और षष्ठ मनुके वर्णन के बाद दुर्वासा ऋषिके शापसे श्रीविहीन हुए देवताओं द्वारा भगवान्की स्तुति ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, प्राणियोंके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला भगवान्का यह गजेन्द्र मोक्षण कर्म मैंने आप से कहा। अब इसके बाद आप रैवत मनुका वृतान्त सुनिये ॥ १ ॥ चतुर्थ तामस मनुके भाई रैवत पञ्चम मनु हुए। उनके अर्जुन पूर्वक बलि-विन्ध्यादि पुत्र हुए ॥ २ ॥ हे राजन, उस कालमें विभु इन्द्र, भूत रयादि देवता और हिरण्यरोमा, वेदशिरा, उर्ध्ववाहु आदि सप्तर्षि हुए ॥ ३ ॥ शुभ्रकी पत्नी विकुण्ठामें विकुण्ठवासी श्रेष्ठ देवताओंके साथ भगवान् वैकुण्ठ स्वयं अवतरित हुए ॥ ४ ॥ देवी लक्ष्मीकी प्रार्थना करने पर जिस भगवान् ने उसकी प्रीतिके लिए लोकवन्द्य वैकुण्ठलोकका निर्माण किया ॥ ५ ॥ उस वैकुण्ठ संज्ञक भगवान्के अनुभाव (सनकादिके शापसे दैत्य रूप धारण किये अपने पार्षदों से वराहरूपसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युद्ध) गुण और परमोदयका वर्णन मैं तृतीयस्कन्धमें कर चुका हूँ। वास्तवमें तो भगवान्के गुणोंका वही वर्णन कर सकता है, जिसने भूमिके कणों की गिनती की है॥ ६ ॥ चक्षुके पुत्र षष्ठ मनु हुए। पुरु, पूरुष, सुद्युम्न, प्रमुख उनके पुत्र हुए॥ ७ ॥ हे राजन, चाक्षुष मनुके समय मन्त्रद्रुम इन्द्र हुए और आप्यादि देवता तथा हविष्मद्, वीरकादि सप्तर्षि हुए॥ ८ ॥ उस समय भी जगत्पति भगवान्ने वैराजकी पत्नी संभूतियोंमें अपने अंगोंसे अवतार लिया, जो कि अजित नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ९ ॥ कच्छपके रूपसे जलमें मन्दराचलको धारण कर जिस भगवान्ने समुद्रका मन्थन कर देवताओं के लिए अमृत निकाला॥ १० ॥ राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन, भगवान्ने जिस प्रकार समुद्र मन्थन किया तथा जिसलिए कच्छपरूपसे मन्दराचलको धारण किया उसे कृपाकर मुझे बतलाइये॥ ११ ॥ और जिस प्रकार देवताओंने अमृत प्राप्त किया तथा और भी भगवान्का जो परम अद्भुत चरित्र है उसे कृपा कर सुनाइये॥ १२ ॥ क्योंकि आपके मुखारविन्दसे कहे जा रहे यदुकुलकमल भगवान्के चरित्रको सुनता हुआ चिरकालके भवानलसे अत्यन्त सन्तप्त मेरा मन तृप्त नहीं होता॥ १३ ॥ श्रीसूतजीने

विष्णोर्वर्णयेद् गुणान् ॥ ६ ॥ षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ॥ पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥ इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ॥ मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥ तत्रापि देवः संभूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः ॥ अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥ पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ॥ भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥ १० ॥ राजोवाच ॥ यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ॥ यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥ ११ ॥ यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किं चान्यदभवत्ततः ॥ एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥ त्वया सङ्कथ्यमानेन महिम्ना सात्वतांपतेः ॥ नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ॥ अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ॥ गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥ १५ ॥ यदा दुर्वाससः शापात्सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप ॥ निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः❀ ॥ १६ ॥ निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ॥ नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥ १७ ॥

कहा—हे ब्राह्मणो, इस प्रकार राजा परीक्षित् के प्रश्न करने पर श्रीशुकदेवजी भगवानके पराक्रमकी वन्दना करते हुए कहनेके लिए उद्यत हुए॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—जिस समय देवता लोग असुरोंके साथ संग्राम में असुरोंके तीक्ष्ण आयुधोंसे पीडित हो गत प्राण होकर गिर पड़े तथा गिरकर वे उठ न सके॥ १५ ॥ और हे राजन्, जिस समय दुर्वासा ऋषिके शाप से इन्द्रके साथ तीनों लोक श्रीविहीन हो गया, जिससे यज्ञ-यागादि क्रियाएँ लुप्त हो गईं दुर्वासाका शाप इस प्रकार हुआ—एक समय दुर्वासा कहीं जा रहे थे कि मार्गमें उन्हें इन्द्र मिल गए इन्द्रको देखकर उन्होंने गलेकी माला इन्द्रको देदी। इन्द्रने धनकी मदसे गर्वित हो उसे ऐरावतके समीप फेंक दिया। ऐरावतने उसे पैरोंसे कुचल डाला। यह देखकर

❀दृष्टान्त—मुनि दुर्वासा ने इन्द्रको ही शाप दिया, हे इंन्द्राणीपति इन्द्र, तुम लक्ष्मी से हीन हो जाओगे। फिर तीनलोककी लक्ष्मी क्यों कर नष्ट हो गयी।

उत्तर—इससे बलि राजा हुए और इसकी रण राक्षसोंके साम्राज्य से लक्ष्मी हीन हो गयी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुर्वासा अत्यन्त क्रोधित हुए और शाप दिया कि तीनों लोकके साथ तुम श्रीसे विहीन हो जाओगे ॥१६ ॥ तीनों लोकमें यज्ञ यागादिका नाश सुन कर महेन्द्र वरुण आदि अत्यन्त चिन्तित हुए और इसके मूल भूततत्वका विचार करने लगे, किन्तु अन्तिम निश्चय तक जानेमें असमर्थ हुए ॥ १७ ॥ तदन्तर सुमेरुपर्वतके शिखर पर होनेवाली ब्रह्माकी सभामें वे सबके सब सम्मिलित हुए। वहाँ इन लोगोंने ब्रह्माको प्रणाम कर उनसे ये सब वृतान्त सुनाया ॥ १८ ॥ इन्द्र, वायु आदि देवोंको प्रभाहीन तथा निःसत्व देखकर और तीनों लोकोंको अमङ्गल ग्रस्त समझ कर एवं असुरोंको इसके विपरीत प्रभावशाली तथा बलिष्ठ देखकर ॥१६॥ श्रीब्रह्माजीने इस कष्टको दूर करनेमें समर्थ परब्रह्म परमेश्वरका समाहित मनसे चिन्तन कर प्रसन्नवदन होते हुए देवोंसे कहा ॥ २० ॥ मैं, शंकरजी, आप लोग, असुर, मनुष्य तथा द्रुमादि जिस भगवान्के अवतारांशकलासे पुत्र पौत्रादिरूपमें प्रवर्तित हैं, उस अविनाशी भगवान्की शरणमें हम सब चलें ॥ २१ ॥ यद्यपि उस भगवान्का न कोई वध्य है, न कोई रक्षणीय है और न कोई उनका उपेक्षणीय तथा आदरणी ही है तथापि सर्ग-स्थितिके नियमके लिए समय-समय

ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोमूर्धनि सर्वशः ॥ सर्वं विज्ञापयाञ्चक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८ ॥ स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निःसत्वान्विगतप्रभान् ॥ लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १६ ॥ समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ॥ उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥ अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमधर्मजातयः ॥ तस्यावतारांशकलाविसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥२१॥ न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः ॥ अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥ २२ ॥ अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् ॥ तस्माद् व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम ॥ अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४ ॥ तत्राद्दृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो ॥ स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ॥ मनोऽग्रयानं वचसाऽनिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥ विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ॥ छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे

पर वे सत्व, रज, तम इन गुणों को धारण करते है ॥ २२ ॥ स्थिति पालनका यह उनका समय है, इस समय जीवोंकी उत्पत्तिके लिए सत्व गुणोंको धारण किये हुए हैं, इसलिए हम लोग जगद्गुरु परमेश्वरकी शरणमें चलें। देवप्रिय भगवान् हम लोगोंको आत्मीय समझकर हम लोगोंके सुख साधनमें सहायक होंगे ॥ २३ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा—हे अरिन्दम, ब्रह्मा इसप्रकार देवताओंके साथ मन्त्रणाकर सबको साथ ले करके अजित भगवानके साक्षात् वास स्थान पर पहुँचे, जो तमसे परे हैं ॥ २४ ॥ हे विभो, वहाँ जाकर श्रुतपूर्व-अदृष्टपूर्व, भगवानके स्वरूपको देखकर अपनी इन्द्रियोंको सावधान करके दैवीवाणियोंसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजीने कहा—अनन्त अनादि अतएव अविक्रिय, सत्यस्वरूप, सर्वान्तरात्मा, निरुपाधि, तर्करहित, मनसे भी अचिन्तनीय, वाणीसे अकथ्य, देवोंमें श्रेष्ठ वरेण्य आपको हम लोग नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ प्राणादि इन्द्रियोंके ज्ञाता अर्थेन्द्रियोंके आभासस्वरूप, स्वप्नद्रष्टाके समान अज्ञानसे रहित, देह रहित, अतएव अक्षर आकाशकी नाईं व्याप्त और तीनों युगोंमें आविर्भूत होनेवाले उस परमेश्वरके शरणमें हम आये हैं, जहाँ जीवके पक्षपाती अविद्या

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और उसको दूर करनेवाली विद्या भी नहीं है ॥ २७ ॥ मन जिसमें प्रधान है, दस इन्द्रियाँ और पाँच प्राण ये पन्द्रह जिसमें आरे हैं, जो अत्यन्त शीघ्रगामी हैं, जिसके तीन गुण हा नाभि
हैं, जो विद्युत्की नाईं चञ्चल है और नेमिके सदृश जिसकी आठ प्रकृतियाँ ही आवरण हैं ऐसे माया द्वारा प्रेरित हो रहे इस जीवके देहरूपी चक्रका जो अधिष्ठान कहा गया है उस सत्य
स्वरूप भगवान्की मैं शरणमें हूँ ॥ २८ ॥ जो जीवोंके नियन्ता होकर इसके समीप वर्तमान है या भक्तोंके रक्षार्थ गरुड़के ऊपर जो आरूढ़ हैं और ज्ञानैकस्वरूप, प्रकृतिसे परे अदृश्य,
निर्विकल्प, काल तथा देशसे अपरिच्छिन्न जिस भगवान्की धीर पुरुष योगमार्ग से उपासना करते हैं ॥ २९ ॥ जिसकी मायाको कोई भी अतिक्रमण नहीं करता और जिस मायासे मोहित
होकर मनुष्य अपने आत्मस्वरूपको नहीं समझता, उस माया तथा मायाके गुणोंको जीतने वाले एवं सब भूतोंमें समान रूपसे व्यवहार करने वाले उस परब्रह्मपरमेश्वरको हम नमस्कार करते
हैं ॥ ३० ॥ हम देवता तथा ऋषि जो कि भगवान्के प्रिय शरीरसे एकमात्र सत्त्वके ही द्वारा आविर्भूत हैं, जब बाहर और भीतर सत्ता तथा प्रकाश से प्रकटित उस भगवान्के निरुपाधिक

॥ २७ ॥ अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पञ्चदशारमाशु ॥ त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २८ ॥ य एकवर्णं
तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ॥ आसाञ्चकारोपसुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥ न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो
मुह्यति वेद नार्थम् ॥ तं निर्जितात्माऽऽत्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥३०॥ इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ॥
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥ ३१ ॥ पद्भ्यां महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ॥ स वै महापूरुष
आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३२ ॥ अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ॥ लोका यतोऽथाखिललोकपालाः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३३ ॥ सोमं मनो यस्य समामनन्ति दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः ॥ ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स
महाविभूतिः ॥ ३४ ॥ अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ॥ अन्तः समुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतां नः स महा-

स्वरूपको नहीं जानते तो फिर ऐसे रज एवं तम प्रधान असुरादि कैसे जान सकते हैं ? ऐसे भगवान्को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥ [अब वैराज (विराट) रूपसे भगवान्की स्तुति
प्रारम्भ कर रहे हैं—] जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज चार प्रकारकी सृष्टी जिस पृथ्वी पर है वह पृथ्वी जिस भगवान्की पादभूत है वह सर्वस्वतन्त्र, महापुरुष, महाविभूति तथा
अप्रच्युतरूप भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३२ ॥ उदार वीर्य जिस भगवान्के रेतभूत जलसे तीनों लोक तथा अखिल लोकपाल उत्पन्न होते, बढ़ते और जीते हैं वह ब्रह्मस्वरूप महावि-
भूति हमपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ जो सोम देवताओंकासे अन्न अतएव बल और आयु तथा वृक्षोंका वर्द्धक है उस सोमको (चन्द्रमाको) वेद जिसका मन कहते हैं वह प्रजाओंका ईश
महाविभूति सम्पन्न भगवान् हम सबोंके ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ क्रियाकाण्ड प्रतिपाद्य कर्मके निमित्त जन्म लेनेवाले, धनका कारण भूत, उदरके मध्यमें स्थिति हो अपने धातुओं
अन्नादिकों को पकानेवाला अग्नि जिस भगवान्का मुख है वह महाविभूति भगवान् हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ देवयान (अर्चि आदि मार्गोंका देवता) वेदमय, ब्रह्मोपासनाका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थानभूत देवयान होनेसे मुक्तिका मार्ग, पुण्यलोक होनेसे अमृतरूप और कालात्मक हो जानेसे मृत्युरूप भगवान् सूर्य जिस विराट् भगवान्का चक्षु है वह महाविभूति सम्पन्न भगवान् हम सब के ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ चराचर अखिल प्राणियोंका प्राण, बल और ओजस्वरूप जो वायु है तथा जिस प्राणवायुका बुद्ध्यादिके अधिष्ठाता देवता लोग, राजा का अनुसरण करने वाले भृत्यके समान, अनुसरण करते हैं वह वायु जिस भगवान्के प्राणसे उत्पन्न है वह महा ऐश्वर्यवान् भगवान् हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ जिसके श्रोत्रसे दिशाएँ हृदयसे शरीर गर्ताद्रव तथा पञ्चवृत्ति प्राण, इन्द्रिय, आत्मा, मन, नाग कूर्मादि तथा शरीरके आश्रयभूत आकाश जिस भगवान्की नाभिसे उत्पन्न हुआ वह महाविभूति भगवान् हम सबके ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ जिस भगवान्के बलसे महेन्द्र, प्रसन्नतासे त्रिदशा, क्रोधसे गिरीश, बुद्धिसे विरञ्चि, शरीरके छिद्रोंसे छन्द और ऋषि तथा मेढ्रसे प्रजापति उत्पन्न हुए वह महाविभूति

विभूतिः ॥ ३५ ॥ यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ॥ द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसादतां नः स महाविभूतिः ॥३६॥ प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ॥ अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३७ ॥ श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ॥ प्राणेन्द्रियात्माऽसुशरीरकेतं प्रसीदतां नः समहाविभूतिः ॥ ३८ ॥ बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिञ्चः ॥ खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३९॥ श्रीर्वक्षसः पितरश्छायायाऽऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ॥ द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥ विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ॥ ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥ लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ॥ भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥ द्रव्यं वयः कर्मगुणान्विशेषं यद्योगमाया विहितान्वदन्ति ॥ यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४३ ॥ नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ॥ गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४ ॥ स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ॥ प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥ ४५ ॥

सम्पन्न भगवान् हम लोगोंपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिस भगवान्के वक्षःस्थलसे लक्ष्मी, छायासे पितर, स्तनसे धर्म, पृष्ठसे अधर्म, मस्तकसे स्वर्ग तथा विहारसे अप्सरागण उत्पन्न हुए वह महाविभूति भगवान् हम लोगों पर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ जिसके मुखसे विप्र और वेद, भुजासे क्षत्रिय तथा बल, उरूसे वैश्य तथा व्यापारिक वृत्ति अङ्घ्रिसे अवेद (शुश्रूषा) और शूद्र उत्पन्न हुआ वह महाविभूति भगवान् हम सबके ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिसके अधरसे लोभ, ऊर्ध्वोष्ठसे प्रीति, नासिकासे कान्ति, स्पर्शसे काम, भ्रूसे यम और पक्ष्मसे काल उत्पन्न हुआ वह महाविभूति भगवान् हम सबके ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ हम लोगोंसे दुर्विभाव्य, विद्वानोंके जानने योग्य भूत, काल, भौतिक प्रपञ्च कर्म गुण, जिस भगवान्की योगमायासे विहित है यह महर्षि कहते हैं वह महाविभूति हम सबोंके ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४३ ॥ स्वराज्यके लाभसे परिपूर्ण है आत्मा जिसकी तथा मायासे रचित गुणोंमें दर्शनादि वृत्तियोंसे संसक्त होनेवाले शान्तस्वरूप वायुके समान लीला करनेवाले भगवान्को नमस्कार है ॥ ४४ ॥ हे भगवन्, आप दर्शनके इच्छुक हम लोगोंको हमलोगोंके देखने योग्य मधुरहासयुक्त मुखार-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विन्दसे शोभित अपने रूपको दिखलाइये ॥ ४५ ॥ हे भगवन्, आप समय-समय पर आवश्यकताके अनुसार अपनी इच्छासे रूप धारणकर हमलोगोंसे अशक्य कर्मोंको स्वयं करते हैं ॥ ४६ ॥ विषयासक्त पुरुषोंके भूरिपरिश्रमसे निष्पन्न अल्पफलवाले कर्म अथवा सकामोंके निष्फलकर्म भी आपके चरणोंमें अर्पित कर दिये जाने पर सफल हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ अल्पकर्म भी आपके चरणोंमें अर्पित कर दिये जाने पर निष्फल नहीं होता, क्योंकि आप पुरुषके आत्मा हैं। आत्मामें अर्पण किया गया कर्म निष्फल नहीं होता ॥ ४८ ॥ जैसे वृक्षके मूलका आसेचन करनेसे सम्पूर्ण वृक्षका आसेचन हो जाता है वैसे ही विष्णुके आराधनासे ही सबका एवं अपना भी आराधन हो जाता है ॥ ४९ ॥ अचिन्तनीय स्वाभाविक कर्मोंवाले निर्गुण, गुणाधिनायक, अनन्तस्वरूप इस समय सत्वगुणको धारण किये हुए आपको नमस्कार है ॥ ५० ॥

पाँचवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, पञ्चम रैवत मनुके वलि विन्ध्यादि पुत्र हुए। उस समय विभु इन्द्र थे। हिरण्यरोमा प्रभृति सप्तर्षि थे। उसी समय शुभ्रकी पत्नी विकुण्ठामें भगवान्‌ने अपने अंशसे अवतार लेकर परमधाम बैकुण्ठका निर्माण किया। उसके बाद षष्ठ मनु चाक्षुष हुए। उस समय भगवान् संभूती में अपने अंशसे उत्पन्न होकर अजित नामसे प्रसिद्ध हुए और समुद्रका मन्थन कर देवताओंके लिए उन्होंने अमृत निकाला। वह कथा इस प्रकार है—जब देवता लोग असुरोंके साथ युद्धमें तीक्ष्ण आयुधोंसे पीड़ित होकर गिर पड़े और पुनः उठनेकी आशा जाती रही तथा जब तीनों लोकके साथ इन्द्र दुर्वासाके शापसे लक्ष्मी हीन हो गए तब सब लोग मिलकर ब्रह्माके पास गए। वहाँ उन लोगोंने अपना वृतान्त सुनाया—ब्रह्मा भी इन लोगोंको लेकर भगवान्‌के समीप जाकर यों स्तुति करने लगे—जिसकी मायाका कोई अतिक्रमण नहीं करता और जिस मायासे मोहित होकर मनुष्य आत्मस्वरूपको नहीं समझता, उस माया तथा उसके गुणोंको जीतने वाले परब्रह्म परमेश्वरको नमस्कार है। जो सोम (चन्द्रमा) देवताओंका अन्न, बल एवं आयु तथा वृक्षोंका प्रवर्द्धक है उस सोमको वेद जिसका मन कहते हैं वह प्रजाओं का ईश महान् ऐश्वर्य वाला भगवान् हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न हो। पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥

तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ॥ कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥ ४६ ॥ क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ॥ देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७ ॥ नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ॥ कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥ यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ॥ एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ॥ निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धेऽमृतमथने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

❀ अथ षष्ठमोऽध्यायः ❀

॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥ तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिह-

※ देवताओं द्वारा भगवान् स्तुति तथा भगवान्‌के आदेशसे असुरोंके साथ अमृतके लिए देवताओंका महान् उद्योग—यह वर्णन ※

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस प्रकार देवताओंके स्तुति करने पर उदयकालीन सहस्रसूर्यकी कान्तिके समान कान्तिवाले परमेश्वर विष्णुको धारण किए हुए भगवान उन सबके सामने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकट हुए ॥ १ ॥ भगवान्के उस तीक्ष्ण तेजके सामने देवताओंकी दृष्टिमें चकाचौंध हो गया, जिससे वे आकाश, दिशा, भूमि, तथा अपने आपको भी कुछ देर तक न देख सके, फिर भगवान्को कहाँसे देख पावें ॥ २ ॥ देवश्रेष्ठ भगवान् ब्रह्माजी शंकरजीके साथ प्रकटित स्वच्छ मरकतके समान श्यामवर्ण, कमलगर्भके समान लाल-लाल नेत्रवाले, ॥ ३ ॥ सप्त सुवर्णके समान पीली कान्ति वाले, कौशेयवस्त्रोंसे शोभित, प्रसन्न तथा सुन्दर सब अङ्गवाले, कमनीय मुखकमलवाले, सुन्दर नेत्र तथा सुन्दर भ्रूसे युक्त ॥ ४ ॥ महामणि (बड़े बड़े मणि लगे हुए हैं, जिन किरीटोंमें उन) किरीटों तथा केयूरसे शोभित, कानके भूषणोंकी कान्ति से देदीप्यमान कपोलकमलद्वयसे दर्शनीय मुखवाले ॥ ५ ॥ काँची, हार, नूपुर, वलयसे शोभित कण्ठ प्रदेशमें कौस्तुभ मणिको धारण किये हुए. वक्षःस्थल पर स्थिति लक्ष्मीसे राजित, वनमालासे विभूषित ॥ ६ ॥ अपने मूर्तिमान सुदर्शनादि अस्त्रोंसे उपासित अपूर्व शरीरको देखकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे पृथिवीपर लोटकर यानी साष्टाङ्ग प्रणाम कर परमपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे भगवन्, जन्म, स्थिति और संयमसे रहित

तेक्षणाः ॥ नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥ विरञ्चो भवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ॥ स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥ तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ॥ प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ॥ ४ ॥ महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ॥ कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ॥ ५ ॥ काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् । कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम्❀ ॥६॥ सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ॥ तुष्टाव देवप्रवरः स शर्वः पुरुषं परम् ॥ सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिङ्गतैः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ॥ अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥ रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ॥ योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥ त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ॥ त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥ त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ॥ पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥ यथाऽग्निमेधस्यमृतं च गोषु भुव्यन्न-

निर्गुण अपार मोक्ष सुखके सागर अतिसूक्ष्मसे सूक्ष्म, अपरिगण्य मूर्तिवाले, अचिन्त्य प्रभावशाली आपको बार बार नमस्कार हैं ॥ ८ ॥ हे पुरुषर्षभ, हे धातः, यह आपका विराट्स्वरूप वैदिक तथा तान्त्रिक विधि द्वारा कल्याणार्थं मनुष्योंसे पूज्य है इसलिए यह रूप आपका कोई अपूर्व नहीं है, मनुष्योंसे पूज्य हम लोग भी अपने आपको तीनों लोकके साथ आपके इस विराट् स्वरूपमें देख रहे हैं ॥ ९ ॥ हे भगवन्, आत्माधीन आपमें ही यह जगत् सृष्टिसे पहले, सृष्टिके समय और अन्तमें है आप प्रधान (प्रकृति) से भी परे हैं, इसलिए जिस प्रकार मृत्तिका घड़ेका आदि, मध्य अन्त है । उसी प्रकार आप भी इस जगत्का आदि, मध्य, अन्त हैं ॥ १० ॥ हे भगवन्, आप अपने अधीनमें रहनेवाली अपनी मायासे इस जगत्

❀दृष्टान्त—साक्षात् आनन्दकन्द लक्ष्मीपति भगवान्ने स्त्रियों और लड़कों (बालकों) के आभूषण कंकण, हार, नूपुर आदि क्योंकर धारण किये ।

उत्तर—शिव, ब्रह्मा आदि तैंतीस करोड़ देवताओंको भगवान् का शिशुरूप ही प्रिय है । इसलिए उन्हें ऐसा करना पड़ा ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को बनाकर जगत्‌में प्रवेश कर जाते हैं। इसीलिए विवेकशाली शास्त्रज्ञ मनुष्य गुणके परिणाममें भी आपको युक्तमनसे निर्गुण स्वरूप ही देखते हैं ॥ ११ ॥ हे भगवन् जैसे काष्ठमें मन्थन से अग्नि गौवोंमें दोहनादिव्यापारसे दूध, भूमिमें ब्रीह्यादि वपनसे अन्न, कूपादि खननसे जल और वाणिज्यादिसे अपनी जीविका मनुष्य प्राप्त करता है, वैसे ही कविलोग बुद्धिसे आपको गुणोंमें स्मरण करते हैं तथा आपसे बातें भी कर लेते हैं ॥ १२ ॥ हे पद्मनाभ, हे नाथ, चिरकालसे अभिलषित योगक्षप्राप्य आपका आज प्रत्यक्ष दर्शन कर हमलोग इसप्रकार निर्वृत्त हो गये, जिस प्रकार दावानलसे पीड़ित गज गङ्गाजलका पान कर निर्वृत्त हो जाता है ॥ १३ ॥ हे अन्तरात्मन्, सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयस्थित अभिप्रायको जाननेवाले आपसे अप्रत्यक्ष क्या है, जिसे हमलोग निवेदन करें, अतः हम समस्त लोकपाल जिस कार्यके लिये आपके चरणकमलमें उपस्थित हुए हैं उसे आप पूर्ण करें ॥ १४ ॥ मैं, शंकर इन्द्र तथा अन्य देवता और दक्षादि अग्निके स्फुलिंगके सदृश आपसे ही उत्पन्न होकर आपसे पृथक् विराजमान हो रहे हैं, अतः हमलोग अपना कल्याण क्या समझें, इसलिये हे ईश, आपही देवताओं तथा ब्राह्मणोंको उपायका उपदेश करें

मम्बूद्यमने च वृत्तिम् ॥ योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुध्या कवयो वदन्ति ॥ १२ ॥ तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभातिचि-रेप्सितार्थम् ॥ दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥ १३ ॥ स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ॥ समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्किं वाऽन्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥ १४ ॥ अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ॥ किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं तथैव ॥ जगाद जीमूत-गभीरया गिरा बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६ ॥ एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ॥ विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम् ॥ शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥ १८ ॥ यात दानवदैतेयैस्ता-वत्सन्धिर्विधीयताम् ॥ कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥ १९ ॥ अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ॥ अहिमूषकवद्देवा अर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २० ॥ अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् ॥ यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ

॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार ब्रह्मादिकोंके स्तुति करनेपर भगवान्‌ने उन लोगोंके हृदयस्थित अभिप्रायको समझ कर मेघके समान गम्भीर वाणीसे हाथ जोड़कर खड़े हुए संयतेन्द्रिय देवोंसे कहा ॥ १६ ॥ उस देवकार्यके लिये समुद्रमन्थन आदि रूप क्रीड़ासे विहार करनेकी इच्छावाले अकेले ही समर्थ सुरेश्वर भगवान् उन प्रार्थियोंके प्रति सम्बोधन कर कहने लगे ॥ १७ ॥ हे शंकर, हे ब्रह्मन्, हे सब देवतालोगो, हे गन्धर्वादि, आपलोग सावधान होकर मेरे वचनको सुनिये, इससे देवताओंका श्रेय होगा ॥ १८ ॥ आपलोग जाएँ और दानव तथा दैत्योंके साथ सन्धि कर लें। जबतक आपलोगोंकी वृद्धि होती है अर्थात् जबतक आपलोग अपना सामर्थ्य न बढ़ालें तबतकके लिये सन्धि कर लें ॥ १९ ॥ हे देवतालोग, अपने भारी कार्यको सिद्ध करनेके लिये शत्रुसे भी मित्रता कर लेनी चाहिए। कार्यसिद्ध हो जानेपर पुनः सर्प और मूषिकका वध्यघातक भाव करना चाहिए। अथवा जिसप्रकार सर्प काष्ठके पेटीमें जबतक बन्द रहता है तबतक पेटी को काटकर द्वार बनानेके लिये मूषिकसे मित्रता कर लेता है और बाहर आने पर मूषिकको खा जाना चाहता है ॥ २० ॥ दानव और दैत्योंके साथ मैत्रीकर अमृत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निकालनेका प्रयत्न आपलोग शीघ्र करें, जिस अमृतके पानसे मृत्युग्रस्त प्राणी भी जीवित हो जाते हैं ॥ २१ ॥ क्षीरसमुद्रमें तृण, लता और सब औषध फेंककर मन्दराचलको मन्थान बनाकर तथा वासुकी सर्पको रज्जुके स्थानमें रखकर मेरी सहायता से आपलोग आलस्यरहित होकर समुद्रका मन्थन करें। इसमें दैत्य और दानव क्लेशभागी होंगे तथा आपलोग फलभागी हो जायँगे ॥ २२, २३ ॥ हे देवताओ, दैत्य और दानव जिसे चाहते हैं उसका अनुमोदन आपलोग करें, क्योंकि शान्तिसे जैसे सब मनोरथ सिद्ध होते हैं वैसे क्रोध द्वेषसे नहीं ॥ २४ ॥ हे देवगण समुद्रसे निकलनेवाले कालकूट विषसे आपलोग न डरें तथा समुद्रसे उत्पन्न वस्तुओंके विषय में लोभ, रोष और द्वेष आपलोग न करें ॥ २५ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा—इसप्रकार उन देवोंके अधीश्वर भगवान पुरुषोत्तम देवताओंको आदेश देकर अन्तर्हित हो गये ॥ २६ ॥ ब्रह्मा तथा शंकरजी भगवान्को नमस्कारकर अपने अपने स्थानको चले गये और देवतालोग

सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ॥ मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२ ॥ सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः ॥ क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३ ॥ यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ॥ न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥ २४ ॥ न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसम्भवात् ॥ लोभः कार्यो न वै जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥ अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ॥ भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाऽरीनप्यसंयत्तान् जातक्षोभान् स्वनायकान् ॥ न्यषेधद्दैत्यराट् श्लोक्यः सन्धिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥ ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ॥ श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥ महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ॥ अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥ तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ॥ शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥ ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ॥ उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥ ३२ ॥ ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ॥ नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥ दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ॥ अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥ ३४ ॥

भी बलिके धामको पधारे ॥ २७ ॥ सन्धि और विग्रह जानने वाले स्तुत्य दैत्यराज बलिने शस्त्रसे रहित असंयत अपने दुश्मन देवताओंको देखकर क्रोधयुक्त अपने सैनिकोंके नायकोंको विग्रह करनेसे रोक दिया ॥ २८ ॥ त्रैलोक्यविजयी, परम श्रीसे युक्त असुर सेनाधिपतियोंसे रक्षित बैठे हुए दैत्यराज बलिके सम्मुख देवगण उपस्थित हुए ॥ २९ ॥ महामति महेन्द्रने मधुरवाणियों से दैत्यराजको शान्त करते हुए भगवानने उपदिष्ट समुद्र मन्थनरूप वृत्तान्त सुनाया ॥ ३० ॥ महेन्द्रसे उपदिष्ट मार्ग वहाँपर बैठे हुए अन्य वह सब शम्बरादि तथा अरिष्टनेमि प्रभृति एवं त्रिपुरके निवासी जो थे, उन सब राक्षसोंको भी अच्छा प्रतीत हुआ ॥ ३१ ॥ तदन्तर हे राजन, देवता और दानव सन्धिसे परम सौहार्दभावको प्राप्त होकर अमृत प्राप्तिके लिए परम प्रयत्न करने लगे ॥ ३२ ॥ उसके बाद परिघके समान भुजाओंको धारण करने वाले दुमद दैत्य-दानवोंके साथ देवता लोग मन्दराचलको बड़े बलसे उखाड़कर प्रसन्न होते हुए समुद्रकी ओर ले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चले ॥ ३३ ॥ शक्र और वैरोचन आदि बहुत दूरतक उस मन्दराचलको ढनेसे थक गये । उसे और आगे ले चलनेकी सामर्थ्य न होते हुए रास्तेमें ही विवश होकर उसे उन लोगोंने छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ गिरते समय विशाल कनकाचलने अपने प्रचुर भारसे अनेक दैत्य तथा देवोंको चूर्ण चूर्ण कर दिया ॥ ३५ ॥ भुजा, उरू तथा कन्धासे रहित उस तरहके भग्न शरीर उदासीन दैत्य, दानव तथा देवताओंको देखकर वहाँ गरुड़ारूढ़ भगवान् प्रकट हो गये ॥ ३६ ॥ मन्दराचलके पतनसे विनष्ट हुए दैत्य, दानव और देवताओंको देखकर अपने दृष्टिविलाससे उन्हें भगवान्‌ने जीवित कर दिया और व्रणी बने हुए देवता और दानव निव्रण हो गये ॥ ३७ ॥ खेलवाड़ करते हुए जैसे मन्दराचलको एकही हाथसे उठाकर गरुड़पर रख करके अपने भी भगवान् उसीपर बैठ गये और देवताओंके साथ समुद्र पहुँच गये ॥ ३८ ॥ पक्षियोंमें सर्वश्रेष्ठ गरुडने स्कन्धसे मन्दराचलको उतार कर समुद्रमें जलके भीतर फेंक दिया और भगवान्‌से आज्ञा लेकर वैकुण्ठको चला गया ॥ ३९ ॥

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ॥ चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५ ॥ तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ॥ विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥ ३६ ॥ गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ॥ ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥ ३७ ॥ गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ॥ आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८ ॥ अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः ॥ ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० अ० अमृतमथने अमृतमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

छठे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हेराजन्, श्री शङ्करजीके साथ ब्रह्माजी मकरकतिमणिके समान श्यामवर्ण पद्मलोचन, कौशेयवस्त्रधारी, किरीट, नूपुरसे शोभायमान, और कौस्तुभमणिसे विभूषित हुए भगवान्‌का दर्शनकर स्तुति करने लगे--हे भगवन्, जन्म स्थिति और संयमसे रहित, निर्गुणस्वरूप, परममोक्ष सुखके धाम, महानुभाव आपको नमस्कार है। आप ही इस जगत्‌के आदि, मध्य तथा अन्त हैं। आप अपनी माया से इस जगत्‌की सृष्टि कर आप स्वयं जगत् में प्रविष्ट हो जाते हैं। हे भगवन्, सबके हृदयस्थितभावको जानने वाले आपसे छिपा ही क्या है, जिसे हम लोग निवेदन करे। समस्तलोकपाल, देवगण आपके चरणकमलके निकल जिस कार्यकेलिए उपस्थित हुए हैं उसे आप स्वयं जानते हैं। आप देवताओं तथा ब्राह्मणोंको उपदेश दीजिये। हे राजन्, यों स्तुत हुए सर्वान्तरात्मा भगवान् देवताओं के हृदयस्थित मनोरथ को समझ गये। उन्होंने आदेश दिया—हे देवताओ, आप लोग जाइए और दैत्यदानवोंसे सन्धिकर मृतको जिलाने वाला अमृत प्राप्त करनेके लिए मेरी सहायतासे समुद्रका मन्थन कीजिए। ब्रह्मा तथा शंकर अपने-अपने धामको पधारे। देवता लोग दैत्यराज्यबलिके भवनपर गए और मधुरवाणियोंसे दैत्यराजको शान्त करते हुए इन्द्रने भगवान्‌से उपदिष्ट समुद्र मन्थनको सुनाया। दैत्योंको भी यह बात अच्छी लगी और देवताओं से सन्धिकर समुद्रमन्थनमें मन्थन बनानेके लिए वे मन्दराचलको लाने में प्रवृत्त हुए। इन्द्र तथा बलि प्रभृति दैत्योंने मार्गमें ही थककर मन्दराचलको छोड़ दिया, जिसके गिरनेसे अनेक देवता तथा दैत्य नष्ट हो गये। भगवान् यह देखकर स्वयं प्रकट हुए और मरे हुए दैत्य और देवोंको अपने दृष्टि विलाससे जीवितकर मन्दराचलको गरुड़पर एक हाथ से ही रखकर स्वयं भी बैठकर समुद्रतट पहुँच गये। गरुड़ मन्दराचलको समुद्रमें रखकर वैकुण्ठ सिधारा। छठवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, देवता तथा दैत्योंने अमृतमें भाग देनेकी शर्तकर नागराज वासुकिको रज्जुरूपसे मन्दराचलमें लपेटकर बड़े आनन्दके साथ समुद्रमन्थन प्रारम्भकर दिया ॥ १ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, तीव्र वासुकीके मुखको दैत्योंसे ग्रहण करानेके लिये भगवान्ने स्वयं आगे मुखका ग्रहण किया उसके बाद अमृतके लिये तैयार देवता भी आगे हो गये ॥ २ ॥ दैत्योंने भगवान्के इस कार्यको पसन्द न किया और वासुकिका पुच्छ पकड़ना अपने लिये अनादर तथा अमङ्गल समझ वे कहने लगे—हे देवगण, स्वाध्याय तथा शास्त्र ज्ञान सम्पन्न हम-लोग सर्पराज वासुकिका पुच्छ पकड़ना नहीं चाहते। इससे जन्म तथा कर्मसे मख्यात हमारे वंशकी निन्दा होगी, यह कह चुपचाप बैठ गये ॥ ३, ४ ॥ इसप्रकार स्थित दैत्योंको देखकर

❀ अथ सप्तमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ॥ परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥ आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ॥ हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥ तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ॥ न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥ ३ ॥ स्वाध्यायश्रुतसंपन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ॥ इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ॥ स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ ४ ॥ कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ॥ ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ ५ ॥ मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥ ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥ ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ॥ आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥ विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ॥ कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥ तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ॥ दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥ सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ॥ बिभ्रत्तदाऽऽवर्तनमादिकच्छपो मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥ १० ॥ तथाऽसुरानाविशदा-

आश्चर्यान्वित भगवान् पुरुषोत्तमने देवताओंके साथ पकड़े हुए सर्पराजके मुखको छोड़कर पुच्छ ग्रहणकर लिया। इस तरह स्थानका विभागकर कश्यपनन्दनोंने अमृतके लिये बड़े उद्योगके साथ समुद्रमन्थन किया ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन, अमृतके लिये समुद्रमन्थन करते समय बलवानोंसे धारण किया जा रहा भी मन्दराचल भारके कारण कोई दूसरा आधार न होनेसे जलके अन्दर प्रविष्ट गया ॥ ६ ॥ हे पाण्डुनन्दन, बड़े-बड़े बलशाली वीरोंसे धारण किये जा रहे मन्दराचलके जलमें प्रवेशकर जानेपर अत्यन्त बलवान् दुर्दैवके कारण अपने पौरुष तथा प्रयासको विनष्ट हुए समझकर वे सबके सब उदासीन तथा खिन्न मन हो गये। उसके मुखकी कान्ति मलिन हो गई ॥ ७ ॥ विघ्नेशसे किये गये विघ्नको देखकर अत्यन्त बलशाली सत्य संकल्प भगवान्ने अपूर्व महान् कच्छपका शरीर धारणकर जलके अन्दर जाकर मन्दराचलको निकाला ॥ ८ ॥ उस मन्दराचलको ऊपर आये देखकर देव तथा दानव पुनः समुद्रमन्थनमें प्रवृत्त हुए। दूसरे महान् द्वीपकी नाई कच्छपरूपधारी उस भगवान्ने लक्ष्य योजनमें विस्तृत पृष्ठभागसे मन्दराचलको धारण किया ॥ ९ ॥ हे राजन्, देवेन्द्र तथा असुरेन्द्र बलि प्रभृतिकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भुजाओंके बलसे कम्पित भ्रमणशील मन्दराचलको पृष्ठभागको धारणकर रहे अप्रमेय कच्छप भगवान्‌ने मन्दराचलके आवर्तनको अंगका कण्डूयन (खुजलाहट) समझा ॥ १० ॥ अलच्यस्वरूप भगवान् विष्णुने असुरोंमें असुररूपसे तथा देवोंमें देवरूपसे प्रवेशकर उनके बलको बढ़ाते हुए वासुकिमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ जब मन्थन समयमें मन्दराचल ऊपर भागमें आया तब ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र प्रमुख देवगण स्तुति करने लगे सुमनवृष्टि आकाशमार्गसे होने लगी और सहस्रबाहु भगवान् द्वितीय गिरिराजके समान हाथसे मन्दराचलको पकड़कर स्थित हो गये ॥ १२ ॥ देवता और दैत्योंके मध्यमें तथा पर्वतमें दाढ्यरूपसे तथा रस्सीरूप वासुकिके अभेद्य तथा अबोधरूपसे भगवान् प्रविष्ट हो गये, जिससे देवता एवं दानव लोग अत्यन्त ओजस्वी होकर नक्र समूहको क्षोभित करते हुए बड़े वेगके साथ मन्दराचलसे समुद्रका मन्थन करने लगे ॥ १३ ॥ सर्पराजके असंख्य तथा कठोर नेत्र, एवंश्वाँससे निकले हुए अग्नि तथा

सुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ॥ उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णुर्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥ उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ॥ तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥ १२ ॥ उपर्यधश्चाऽऽत्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ॥ ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥ अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखश्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ॥ पौलोमकालेयबलील्वलादयो दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥ १४ ॥ देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् ॥ समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥ १५ ॥ मथ्यमानात्तथा सिन्धोर्देवासुरवरूथपैः ॥ यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाऽजितः स्वयम् ॥ १६ ॥ मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ॥ जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताऽथो धृताद्रिः ॥ १७ ॥ निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ॥ संभ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमि-

धूमसे असुरोंका तेज नष्ट हो गया और पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल् प्रभृति राक्षस दावाग्निसे दग्ध हुए वृक्षके समान हो गये ॥ १४ ॥ सर्पराजके श्वाँसाग्निसे देवताओंकी प्रभा नष्ट हो गई। वस्त्र, माला, कंचुक तथा मुख धूम्र वर्णका हो गया। भगवान्‌ने उनकी यह दशा देखकर वृष्टि तथा वायुको आदिष्ट किया, जिससे वृष्टि होने लगी तथा समुद्रकी लहरोंसे आलिङ्गित वायुका संचार होने लगा ॥ १५ ॥ देवता तथा असुरोंके यूथपति जब समुद्र मन्थन करते करते थक गये और अमृत न निकला, तब अजित भगवान् स्वयं मन्थन करने लगे ॥ १६ ॥ घनश्याम पीताम्बरधारी, प्रकाशमान विद्युतको कर्णप्रदेशमें कुण्डलरूपमें धारण किये हुए सिर पर बिखरित घुंघराली केशोंके धारण किये हुए, मालाधारी, लाल लाल नेत्रों वाले भगवान् मन्दराचलको पकड़े हुए संसारको अभय करनेवाली जयशील भुजाओंसे सर्पराज वासुकिको पकड़कर मन्थानसे मन्थन करते समय प्रतिद्वन्दी पर्वतके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥ १७ ॥

*दृष्टान्त—देवगण वासुकीके श्वांस द्वारा जो विषसे प्रभाहीनसे मालूम हो रहे थे अर्थात् उनका शरीर, भूषण, कंचुक आदि मेघवर्णके दिखाई दे रहे थे। उनपर भगवान्‌के वशीभूत मेघोंने क्यों वर्षा की ?

उत्तर—सुप्रसिद्ध वैद्य शिरोमणि अश्विनी कुमारोंने अपनी औषध अर्थात् रस उन मेघोंको देदिया। मेघोंने उसी वर्षा द्वारा उन देवताओंका विष दूर किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌के इसप्रकार मन्थन करनेपर समुद्रसे पहले पहल उत्कट हलाहल विष निकला, जिससे मीन, मकर, सर्प, कच्छप, तिमि, ह्रिङ्ग, ग्राह, तिमिङ्गिल प्रभृति जन्तु व्याकुल हो उठे ॥ १८ ॥ प्रत्येक दिशाओंमें नीचे तथा ऊपरकी ओर फैल रहे असह्य, अप्रतिम उग्रविषको देखकर किसी दूसरे से रक्षित न हो रहीं अतएव डरकर प्रजाएँ अपने अधीश्वरोंके साथ शङ्करकी शरणमें गईं ॥ १९ ॥ तीनों लोकोंके उद्भवके लिये कैलासपर्वत ऊपर पार्वतीके साथ बैठे हुए भी मुनियोंकी अपवर्ग प्राप्तिकेलिए उनके अभिमत तपकर रहे उस देवश्रेष्ठ भगवान् शंकरको देखकर स्तुतियोंके द्वारा प्रजाओंने उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥ प्रजापतियोंने कहा—हे देवदेव, हे महादेव, हे भूतभावन, हे भूतात्मन्, शरणमें आये हुए हमलोगोंकी त्रैलोक्यको दहन करनेवाले इस विष से आप रक्षा करें ॥ २१ ॥ हे महादेव, इस सम्पूर्ण जगत्‌के बन्धन तथा मोक्षके आपही एक स्वामी हैं । शरण आये हुए प्राणियोंके दुःखको हरण करनेवाले गुरुस्वरूप आपकी विचारशील मनुष्य पूजा करते हैं ॥ २२ ॥ हे विभो, हे भूमन्, जब आप त्रिगुणात्मिका अपनी मायासे संसारकी सर्ग, स्थिति तथा नाश करना चाहते हैं तब स्वतः

ङ्गिलाकुलात् ॥ १८ ॥ तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ॥ भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥ १९ ॥ विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्याऽभिमतं मुनीनाम् ॥ आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥ २० ॥ प्रजापतय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ॥ त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥ २१ ॥ त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ॥ तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥ २२ ॥ गुणमय्या स्वशक्त्याऽस्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ॥ धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३ ॥ त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ॥ नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४ ॥ त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ॥ कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्वय्यक्षरं यत्त्रिवृदामनन्ति ॥ २५ ॥ अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥ २६ ॥ नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ॥ परावरात्माश्रयणं तवाऽऽत्मा सोमो मनो द्यौर्भगवन् शिरस्ते ॥ २७ ॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघा

सिद्धज्ञानसे ही आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी संज्ञा धारण करते हैं ॥ २३ ॥ परम गुह्यब्रह्म आपही सत् असत् यानी उत्कृष्ट स्वभाव देवता, तिर्यग् आदि भावों को उत्पन्न करते हैं एवं आपही अनेक शक्तियोंके द्वारा जगत्‌रूपसे प्रतीत होते हैं, इसलिए आपही ईश्वर हैं ॥ २४ ॥ वेदकी योनि आपही हैं, जगत्‌का आदिकारण महत्तत्त्व तथा अहंकार भी आप ही हैं । प्राण, इन्द्रिय तथा द्रव्योंके कारणभूत आपके ही राजस आदि गुण हैं । स्वभाविक भी आपही हैं । काल, क्रतु, सत्य, ऋतु, धर्म ये सब आपके ही स्वरूप हैं । त्रिगुणात्मक प्रधानको भी बुद्धिमान मनुष्य आपके ही आश्रय मानते हैं अथवा पूर्वमें कहे हुए लक्षणोंसे विशिष्ट आपमें त्रिवृत् प्रणयको प्रकाशक मानते हैं ॥ २५ ॥ हे अखिल देवताओंके आत्मभूत भगवन, अग्नि आपका मुख है । हे लोकभव, पृथिवी आपके चरणस्वरूप है । काल आपकी गति है, दिशाएँ कर्णस्वरूप हैं और वरुण आपकी जिह्वा है ॥ २६ ॥ हे भगवन्, आकाश आपकी नाभि है, वायु आपका श्वाँस है, सूर्य आपके चक्षु हैं, जल आपका शुक्र है । पर तथा अवर जीवोंका आश्रय आपका अहंकार है । चन्द्रमा आपका मन है और स्वर्ग आपका सिर है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २७ ॥ समुद्र आपकी कक्षि है, पर्वत आपका अस्थिसमूह है। औषधियाँ और लताएँ आपके रोम हैं, छन्द आपके सप्तसाधु स्वरूप हैं तथा हे वेदत्रयस्वरूप भगवन्, सम्पूर्ण धर्म आपका हृदय है ॥ २८ ॥ हे ईश, तुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशानरूप पाँचो उपनिषद् आपके पाँच मुख हैं, जिनके पदच्छेदसे अड़तीस मन्त्रोंका समूह होता है। हे देव, जो प्रसिद्ध शिवाख्य स्वयंप्रकाश परमार्थ तत्त्व है वह आपकी उपरतावस्था है ॥ २९ ॥ हे नाथ, दम्भ लोभादि अधर्मकी लहरें आपकी छाया हैं, सत्व, रज, तम आपके नेत्र हैं, जिसके द्वारा विविध सृष्टि होती है। हे देव, छन्दोमय सनातन वेद आपकी नेत्र ज्योति है आप सांख्यकी आत्मा और शास्त्रोंके कर्त्ता हैं ॥ ३० ॥ हे शिव, सत्व, रज और तमसे रहित भेदशून्य ब्रह्मरूप आप ज्योति, अखिल लोकपाल, विरञ्चि, वैकुण्ठ तथा सुरेन्द्रसे भी अगम्य है ॥ ३१ ॥ हे भगवन्, काम, दक्षयज्ञ, त्रिपुरराक्षस, काल, गर इत्यादि अनेक प्राणियोंके शत्रु वर्गको नष्ट करनेवाले आपके चरित्रका स्तवन हम लोगोंसे नहीं होता, क्योंकि आप जैसे महामहिमके लिये यह तुच्छ है, जो आप प्रलयकालमें अपने द्वारा किये गये इस जगत्को अपने नेत्राग्निके ज्वालासे

रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ॥ छन्दांसि साक्षात्तव सप्तधातवस्त्रयीमयात्मन्हृदयं सर्वधर्मः ॥ २८ ॥ मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तर-
मन्त्रवर्गः ॥ यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देवः स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥ छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ॥
सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा छन्दोमयो देवऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥ न ते गिरित्राखिललोकपालविरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ॥ ज्योतिः परं यत्र
रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥ कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ॥ यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं
स्वनेत्रवह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ॥ ३२ ॥ ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रिद्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाऽभितप्तम् ॥ कत्थन्त उग्रपरुषं
निरतं श्मशाने ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥ ३३ ॥ तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः ॥ ब्रह्मादयः
किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषयो अपि शक्तिमात्रम् ॥ ३४ ॥ एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ॥ मृडनाय हि लोकस्य
व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ॥ सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥

भस्म होते भी नहीं जानते ॥ ३२ ॥ नित्य अपने स्वरूप में रमण करने वाले तथा निरन्तर विश्वके लिये कल्याणमार्गका उपदेश देने वाले गुरुजन लोग जिनके चरणयुगलका हृदयमें चिन्तन करते हैं ऐसे आपको जो लोग उमाके साथ निरन्तर रमण करनेसे कामी तथा श्मशानमें निवास करने से क्रूर और हिंस्र कहते हैं वे मूर्ख हैं, क्योंकि वे आपके स्वभावको नहीं जानते, वे निर्लज्ज हैं ॥ ३३ ॥ हे महेश्वर, इसलिये सत् असत्से परे आपके स्वरूपको जाननेमें ब्रह्मादि भी समर्थ नहीं हैं, फिर बिना स्वरूप जाने उनसे आपकी स्तुति किस प्रकार हो सकती है। जब ब्रह्मादिकोंकी यह दशा है, तो आपके सर्गमें अत्यन्त अर्वाचीन हम स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हों, फिर भी हम लोग अपनी शक्तिके अनुसार स्तुति कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर, यद्यपि आपके इस परम उत्कृष्टरूपको हमलोग नहीं देखते, तथापि हमलोग आपके दर्शनसे ही कृतार्थ हैं। अव्यक्तकर्मा आपका प्रादुर्भाव संसारकी रक्षाके लिये ही है अतः आप हमलोगों की रक्षा करें ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, प्रजाओंके इस कष्टको देखकर दया आजानेसे अत्यन्त दुःखी होते हुए सब प्राणियोंके हितचिन्तक भगवान शंकरने सती अपनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रिया पार्वतीसे कहा ॥ ३६ ॥ शिवजीने कहा—हे भवानि, अहो क्षीरसमुद्रके मन्थनसे उत्पन्न कालकूटसे जन्य प्रजाओंके इस भयको तो देखो ॥ ३७ ॥ प्राणकी रक्षा चाहनेवाले इन प्रजाओंकी रक्षा मुझे करनी चाहिए, क्योंकि दीनोंकी रक्षा करना ही प्रभुका काम है ॥ ३८ ॥ मायासे मोहित होकर परस्पर द्वेषबुद्धि रखनेवाले प्राणियोंमें साधुजन अपने प्राणोंकी प्रतीक्षा न कर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, क्योंकि प्राण तो क्षणभंगुर है ॥ ३९ ॥ प्राणियोंपर कृपा करनेसे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं और भगवान्के प्रसन्न होनेसे मैं प्रसन्न होता हूँ तथा चराचर जगत् प्रसन्न होता है, इसलिये मैं हलाहल विषका पान करता हूँ, जिससे प्रजाओंके जीवनकी रक्षा हो ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार विश्वभावन भगवान् शंकरजीने पार्वतीसे मन्त्रणाकर विष खाना प्रारम्भ किया और उनके प्रभावको जाननेवाली पार्वतीने भी अनुमोदन किया ॥४१॥ तदन्तर भगवान् शंकरजीने व्यापनशील वह विष करतलमें लेकर प्राणियोंकी रक्षाके लिये खा लिया ॥ ४२ ॥ उस कालकूट विषने शंकरजीके गलेमें जाकर उन्हें भी अपना वीर्य दिखलाया यानी उनके भी कण्ठको नीलाकर दिया और वह नीला

शिव उवाच ॥ अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७ ॥ आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ॥ एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ ३८ ॥ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः ॥ बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥ ३९ ॥ पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ॥ प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ॥ तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः ॥ तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत ॥ ४१ ॥ ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ॥ अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥ तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ॥ यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥ तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ॥ परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥ निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः ॥ प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥४५॥ प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किञ्चिज्जगृहुः स्म तत् ॥ वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० अ० अमृतमथने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पन शंकरजीके लिये भूषण हो गया ॥ ४३ ॥ प्रायः साधुजन लोकके दुःखसे दुःखी होते हैं, यह उनके लिये अखिलात्मा भगवान्का आराधन है ॥ ४४ ॥ देवदेव भगवान् शंकरके इस विषपान कर्मको सुनकर दाक्षायणी प्रजा, ब्रह्मा तथा विष्णुने प्रशंसा की ॥ ४५ ॥ विषपान करते हुऐ शंकरजीके हाथसे जो विष गिर पड़ा, उसे वृश्चिक, सर्प, विषौषधि तथा दन्दशूकोंने ग्रहणकर लिया। अन्य भी जो सविष जन्तु हैं उन सबोंने भी उसी विषको ग्रहण किया ॥ ४६ ॥

सातवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, देवता तथा दैत्योंने अमृतमें भाग देने की शर्तपर सर्पराज वासुकिको रज्जु बनाकर मन्दराचलमें लपेटकर समुद्र मथना प्रारम्भ किया। दैत्योंसे वासुकिका मुख ग्रहण कराने की इच्छासे भगवान्ने पहले स्वयं वासुकिका मुख ग्रहण किया। यह दैत्योंको अच्छा न लगा। उन्होंने वासुकिका पुच्छ पकड़ना अपने लिए अमङ्गल तथा अपमान समझा। वे देवताओंसे कहने लगे—स्वाध्याय तथा शास्त्राध्ययनसे लोग पवित्र हम पुच्छ पकड़ना नहीं चाहते। यों कहकर चुपचाप बैठ गए। भगवान्ने यह देखकर मुखको छोड़कर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवोंके साथ पुच्छ पकड़ लिया। इसप्रकार मन्थन करते हुए मन्दराचल अधिक गुरु होनेके कारण जलके अन्दर प्रविष्ट हो गया। यह देखकर देव-दानव बहुत दुःखी हुए। तब भगवान्ने कच्छपका अवतार धारणकर मन्दराचलको जलके अन्दरसे निकाला और उसे अपने पीठपर भगवान् लिए रहे। तदनन्तर समुद्र मन्थन होने लगा। जब देव दानव मन्थन करते करते थक गये और अमृत न निकला तब पीताम्बरधारी भगवान् स्वयं मन्थन करने लगे। भगवान्के मन्थन करनेपर पहले हलाहल विष निकला, जो दिशाओंमें फैलने लगा। यह देखकर प्रजा विषसे बचनेका दूसरा उपाय न देख कर भगवान शङ्करकी शरणमें जाकर प्रार्थना करने लगी। प्रार्थनासे प्रसन्न होकर दीन वत्सल भगवान् शङ्कर विषको पान कर गये, जिससे उनका कण्ठ नीला हो गया। पीते समय जमीनपर गिरे, विषका वृश्चिक, सर्प, दन्दशूक इत्यादि सविष जन्तुओंने ग्रहण किया। सातवाँ अध्याय समाप्त॥

॥ समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मीके भगवान्को अपना वर चुने लेनेके बाद धन्वन्तरिके अमृत कलशको दैत्योंद्वारा अपहरण हो जानेपर मोहहिनीरूपकी उत्पत्ति ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा- हे राजन्, शंकरजीके विषपानकर लेनेसे देवता, दानव प्रसन्न होकर अत्यन्त वेगसे समुद्रमन्थन करने लगे, जिससे तदनन्तर कामधेनु उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ हे नृप, उसे

❀ अथाष्टमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ॥ समन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥ तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥ तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः ॥ तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥ तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ॥ दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥ कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः ॥ तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ ॥ ५ ॥ ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ॥ पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान्॥ ६ ॥ ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७ ॥ ततश्चाविर-

ब्रह्मलोक मार्गप्राप्तिके साधन भूतयज्ञ सम्बन्धी पवित्र हविष् सम्पादन करनेके लिये अग्निहोत्र करनेवाले ब्रह्मवादी ऋषियोंने ग्रहणकर लिया ॥ २ ॥ उसके बाद चन्द्रमाके समान पाण्डुवर्णवाला उच्चैःश्रवा नामका अश्व उत्पन्न हुआ। उसके लिये बलिने स्पृहा प्रकट की। भगवान्के पूर्व उपदेश (मन्थनसे प्रादुर्भूत वस्तुओंमें आप लोभ न कीजियेगा) के कारण इन्द्रने उसके लिये स्पृहा नहीं की ॥ ३ ॥ उसके बाद भगवान्के श्वेताद्रिकी शोभाको अपने चार दाँतोंसे हरण करते हुए ऐरावत नामक गजेन्द्र निकला ॥ ४ ॥ उसके बाद समुद्रसे कमलका रंग धारण करनेवाला कौस्तुभमणि निकला। भगवान्ने वक्षःस्थलका भूषण बनानेके लिये उस मणिमें स्पृहा की ॥ ५ ॥ हे राजन्, उसके बाद कल्पतरु उत्पन्न हुआ, जो कि स्वर्गका विभूषण है। वह पृथिवीपर आपके समान, अर्थियोंके मनोरथको सदा पूर्ण करता है ॥ ६ ॥ उसके बाद अप्सराएं उत्पन्न हुई, जिनका स्वर और वस्त्र बहुत ही अच्छा है। वे अप्सराएँ अपने

❀दृष्टान्त—तीनों युगों में अर्थात् सतियुग द्वापर और त्रेता युग में बड़े बड़े दानी राजा हुए उन्हें ऋषियों से पूर्ण वरदान न प्राप्त हो सका।
उत्तर—राजा परीक्षित्को श्रीशुकदेवजीद्वारा श्रीमद्भागवत में परिपूर्ण श्रद्धा देखकर उन्हें कल्प वृक्ष तुल्य कहा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनोहर गमन और चकित अवलोकनादिसे देवाङ्गनाएँ बन गईं ॥ ७ ॥ उसके बाद सौदामनी विद्युत्के समान दिशाओंको प्रकाशमान करती हुई साक्षात् विष्णुप्रिया भगवती रमा प्रादुर्भूत हुईं ॥ ८ ॥ भगवती रमाके रूप, उदारता, अवस्था, वर्ण तथा प्रभावसे आकृष्टचित्त होकर देव, दानव और मानव सबसे अपनी-अपनी इच्छा प्रकट की ॥९॥ लक्ष्मीको इन्द्रदेवने अत्यन्त अद्भुत आसन दिया और देहधारी श्रेष्ठ नदियोंने स्वर्णकलशसे पवित्र जल लाकर दिया ॥ १० ॥ पृथिवीने अभिषेक योग्य समस्त औषधियाँ दीं, गौने पवित्र पञ्चगव्य (घृत, दुग्ध, दधि, मूत्र और पुरीष) दिया तथा ऋतुराज वसन्तने चैत्र वैशाख मासमें होनेवाला फल और पुष्प दिया ॥ ११ ॥ समस्त ऋषियोंने वैदिकविधिसे अभिषेक किया, गन्धर्वोंने मङ्गल गीत गाये और अप्सराओंने भी गीत गाये तथा नृत्य किये ॥१२॥ मेघोंने तुमुल ध्वनिवाले मृदङ्ग, पणव, मुरज और गोमुख प्रभृति वाद्य बजाये तथा शंख, वेणु और वीणा भी बजायी ॥ १३ ॥

भूत्साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ॥ रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ८ ॥ तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ॥ रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥ तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ॥ मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥ १० ॥ आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ॥ गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥ ऋषयः कल्पयाञ्चक्रुरभिषेकं यथाविधि ॥ जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥ मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् ॥ व्यनादयन् शङ्खवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान् ॥ १३ ॥ ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ॥ दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥ १४ ॥ समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ॥ वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥ १५ ॥ भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ॥ १६ ॥ ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ॥ चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥ १७ ॥ स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ॥ ततस्ततो नूपुरवल्गुसिञ्जितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १८ ॥ विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारि सद्गुणम् ॥ गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥ १९ ॥ नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं क्वचि-

तदनन्तर दिग्गजोंने पूर्ण कलशोंसे ब्राह्मणोंके सूक्तमन्त्र पढ़नेपर पद्महस्ता सती लक्ष्मी देवका अभिषेक किया ॥ १४ ॥ पूर्णकलशसे अभिषिक्त पद्मकरा भगवती लक्ष्मीको समुद्रने पीले कौशेय वस्त्र दिये और वरुणदेवने मधुपानसे मत्त भ्रमरोंसे शोभायमान वैजयन्ती पुष्पमाला दी ॥ १५ ॥ विश्वकर्मा प्रजापतिने भगवतीको विचित्र आभूषण दिये, सरस्वतीने हार प्रदान किया तथा ब्रह्माने पद्म और नागोंने कुण्डल समर्पित किया ॥ १६ ॥ माङ्गलिक कार्य सम्पन्न होनेपर मदमत्त गुञ्जारकर रहे भ्रमरोंसे व्याप्त पुष्पमाला थालमें लेकर लक्ष्मीजीने सुन्दर कपोल तथा कुण्डलसे रमणीय, लज्जापूर्ण मुसकुराहटसे युक्त अपना सुन्दर मुख चलाया ॥ १७ ॥ चन्दन तथा केशरादिकोंसे निरन्तर आलिप्त स्तनोंवाली कृशोदरी रमाजी नूपुरके मनोहर शब्दोंसे युक्त इधर-उधर गमन करती हुई हेमलताके समान शोभित होने लगीं ॥ १८ ॥ लोकवन्द्य, अव्यभिचारी, सद्गुणोंसे युक्त, नित्य अपना आश्रय देख रही (ढूढ़ रही) लक्ष्मीने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध, चारण तथा देवताओंमें किसीको भी योग्य नहीं समझा, क्योंकि उन्हें कुछ न कुछ दोष प्रत्येकमें मिला ॥ १९ ॥ जिन दुर्वासा प्रभृति ऋषियोंमें तपस्या है उनके अन्दर क्रोधका आधिक्य है। शुक्र गुरु प्रभृतिमें ज्ञान है, लेकिन उनका वह ज्ञान आसक्तिशून्य नहीं है। ब्रह्मा तथा चन्द्रमा बड़े हैं, किन्तु उनमें कामजय नहीं है। इन्द्रादिदेवस्वामी हैं, किन्तु उनमें भी स्वामित्व यथोचित नहीं है। पर सापेक्ष क्या ईश्वर हो सकता है ॥ २० ॥ जिस जिस किसीमें परशुराम प्रभृतिमें धर्म है, तो उनमें प्राणियोंके प्रति सौहार्द नहीं है। शिवि नृप प्रभृतिमें त्याग हैं, तो वह मुक्तिका कारण नहीं है। कार्यवीर्य प्रभृतिमें वीर्य है, किन्तु वह वीय काल परिमाणसे विनश्वर है। गुणसंगसे रहित सनकादि ऋषि समाधिमें तत्पर रहते हैं, इसलिये वे मेरे वर नहीं हो सकते ॥ २१ ॥ मार्कण्डेय प्रभृति चिरायु हैं तो उनका मगल स्वभाव नहीं है, क्योंकि ये इन्द्रियोंको दमन किये हुए हैं। हिरण्यकश्यप प्रभृतिमें यद्यपि शील स्वभाव है तथापि भगवान्में द्वेषके कारण उनकी आयु अनिश्चित है। शंकरजीमें इन्द्रियदमनादिका अभाव तथा आयुस्थैर्य है, किन्तु वे श्मशान निवासी हैं और जो निरवद्य

त्तच न सङ्गवर्जितम् ॥ कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ॥ २० ॥ धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ॥ वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं न हि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥ २१ ॥ क्वचिच्चिरायुर्नहि शीलमङ्गलं क्वचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ॥ यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥ २२ ॥ एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयताऽगुणाश्रयम् ॥ वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥ २३ ॥ तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ॥ तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥ २४ ॥ तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षोनिवासमकरोत्परमं विभूतेः ॥ श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ॥ देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥ २६ ॥ ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ॥ ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्प-

और सुमंगल हैं वे मुझे चाहते नहीं हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवती रमाने इसप्रकार सबके विषयमें गुण दोषका विचारकर अव्यभिचारी धर्मज्ञानादि गुणों के आश्रयभूत तथा स्वयं अपना आश्रय होनेसे प्रकृतिके गुणोंसे परे एवं अणिमादि गुणोंसे घिरे हुए भगवान् मुकुन्दको ही अपने विषयमें निरपेक्ष होनेपर भी अभिलषित वर बनानेके लिये निश्चय किया ॥ २३ ॥ भगवान्के कन्धेपर मतवाले भ्रमरोंके समूहोंके गुञ्जारसे युक्त कमनीय नूतन कमलकी माला रखकर उनके वक्षःस्थलको अपना निवास बनानेकी इच्छासे अपनी लजीली मुसकुराहटसे युक्त खिल रही आँखोंसे उनके वक्षःस्थलरूपी अपने निवास स्थानको जा रही-सी भगवती रमादेवी उनके निकट चुपचाप खड़ी हो गई ॥ २४ ॥ विशिष्ट विभूतिसे युक्त तीनों लोककी जननी भगवती रमाके लिये तीनों लोकके जनक भगवान्ने अपने वक्षःस्थलको परम निवास बना दिया। वहाँ निवास करती हुई भगवती अपने सकरुण निरीक्षणसे अधिपतियोंके साथ तीनों लोककी अपनी प्रजाओंका पालन करने लगीं ॥ २५ ॥ उस समय देवताओंके साथ नृत्य और गान करती हुई स्त्रियोंका शब्द तथा शंख, तूरी, मृदंगादि वाद्योंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शब्द अभिव्यक्त हुआ ॥२६॥ तदन्तर विष्णुके अंशस्वरूप ब्रह्मा, रुद्र, अंगिरा प्रभृति सब देवताओं ने पुष्पवर्षा करते हुए भगवान्के प्रतिपादक अवितथ मन्त्रों द्वारा विश्वकर्त्ता भगवान्की स्तुति की ॥ २७ ॥ भगवती लक्ष्मी द्वारा विलोकित प्रजापतियोंके साथ सब देवता तथा शीलादि गुणसम्पन्न सभी प्रजाएँ परम सुखको प्राप्त हुईं ॥२८॥ हे राजन्, लक्ष्मीके उपेक्षित हुए दैत्य तथा दानव निःसत्त्व, लोलुप, उद्योगहीन तथा निर्लज्ज हो गये ॥ २९ ॥ कमलके समान नयनों वाली वारुणीनाम्नी कन्या थी, उसे भगवान्की अनुमतिसे उन दैत्यों ने ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ हे महाराज, अमृत चाहने वाले दैत्य, दानव तथा देवताओंके द्वारा मन्थन करते समय उस समुद्रसे परम् अद्भुत एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ वह लम्बा तथा मोटी मोटी भुजाओंको धारण किये हुए, घटके समान ग्रीवावाला लाल नेत्रधारी, श्यामवर्ण एवं नव यौवनसे युक्त, मालाधारी, सम्पूर्ण भूषणोंसे सुशोभित था ॥ ३२ ॥ उसके वस्त्र पीले थे, वक्षःस्थल

वर्षिणः ॥ २७ ॥ श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ॥ शीलादिगुणसंपन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥ २८ ॥ निःसत्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः ॥ यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥ अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना ॥ असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥ अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ॥ उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ॥ श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥३२॥ पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ॥ स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ॥ ३३ ॥ अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः ॥ स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ॥ ३४ ॥ धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् ॥ तमालोक्यासुरः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ॥ ३५ ॥ लिप्सन्तः सर्व स्तूनि कलशं तरसाऽहरन् ॥ नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥ ३६ ॥ विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ॥ मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥ ३७ ॥ मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥ ३८ ॥ देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः ॥ सत्रयाग

बहुत चौड़ा था, सुन्दर मणिके कुण्डलोंको धारण किये हुए था। उसके केशका अन्त भाग स्निग्ध तथा कुञ्चित (घुमा हुआ) था। अच्छे भाग्य तथा शरीर को धारण किये हुए सिंहके समान वह पराक्रमी था ॥ ३३ ॥ अमृतसे परिपूर्ण कलशको धारण किये हुए, चमकीले वलसे भूषित साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशके अंशसे प्रादुर्भूत, यज्ञ भाग भोक्ता, आयुर्वेदके तत्त्वज्ञ धन्वन्तरि नामसे विख्यात उस पुरुषको तथा अमृतपूर्ण कलशको देखकर असुर लोग उन सब वस्तुओंके लिये लालायित हो गये और अमृतपूर्ण कलशको लेकर भाग चले ॥ ३४-३६ ॥ असुरोंसे अमृतपूर्ण कलशको अपहरण होते देखकर देवता बहुत दुःखी हुए, भगवान्की शरणमें गये, भगवान्ने उन्हें खिन्न देखकर आश्वासन दिया कि आप लोग खिन्न न हों मैं अपनी मायासे दैत्योंके बीच कलह कराकर आप लोगोंके मनोरथको सिद्ध करूँगा ॥ ३७ ॥ हे प्रभो, उन दैत्योंमें अमृतके लिये 'मैं पहले, मैं पहले, तुम नहीं, तुम नहीं' इसप्रकार परस्परमें कलह होने लगा ॥ ३८ ॥ और जो दैत्योंमें दुर्बल थे वे कहने लगे—अमृत मन्थनमें हमलोगोंके साथ परिश्रम करनेवाले देवताओंको भी इसमें अपना भाग मिलना चाहिए। जिसप्रकार सत्र-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

याग में उन्हें भाग मिलता है, यह सनातनधर्म है, अन्यथा अधर्म होगा ॥ ३९ ॥ हे राजन्, इसप्रकार बलिष्ठ तथा कलशको धारण किये हुए दैत्योंसे दुर्बल दैत्य डाहके मारे दानव कहकर उन्हें बार-बार निषेध करने लगे ॥ ४० ॥ उसी समय सब उपायोंको जाननेवाले भगवान्ने अवर्णनीय परमाद्भुत स्त्रीरूप धारण कर लिया ॥ ४१ ॥ दर्शनीय कमलके समान श्यामवर्ण सम्पूर्ण शरीरकी सुन्दर रचनाओंसे मनोहर, दोनों कानोंमें सुन्दर भूषणको धारण किये हुए एवं सुन्दर कपोल तथा उन्नत नासिकासे रमणीय मुखवाले रूपको भगवान्ने धारण किया ॥ ४२ ॥ नवयौवनके आगमनको द्योतन करनेवाले गुरुस्तनोंके भारसे उनका हृदय कृश हो गया था और मुखके आमोदसे अनुरक्त भ्रमरोंके झंकारसे उसके नेत्र चंचल हो रहे थे ॥४३॥ वह विकसित मालिकाओंसे युक्त मालाको अपने केशपाशसे धारण किये था, सुन्दर ग्रीवा और कण्ठके आभूषणसे युक्त था तथा मनोहर भुजाओंके भूषणसे वह विभूषित था ॥ ४४ ॥ सफेद वस्त्रसे वेष्टित नितम्बरूपी द्वीपप्रदेशों में शोभित हो रही करधनीसे वह खूब शोभित हो रहा था तथा बड़े नजाकतके साथ चल रहे उसके चरणों में नूपुर विराजमान थे ॥ ४५ ॥ लज्जा सहित मुसकुराहटके साथ फेंके गये भ्रूविलासयुक्त अवलोकनोंसे यानी उसकी तिरछी निगाहोंसे दैत्योंके यूथपतियों के हृदयमें काम अधिक उद्दीप्त हो गया ॥ ४६ ॥

इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥ ३९ ॥ इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ॥ दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीतकलशान् मुहुः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥ योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥ प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ॥ समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥ नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ॥ मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥ बिभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ॥ सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ॥ ४४ ॥ विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया ॥ काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥ सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ॥ दैत्ययूथपचेतस्सु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० अष्टमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे परीक्षित्, भगवान् शंकरके विषपानसे सन्तुष्ट होकर दैत्य-दानव पुनः मन्थनमें प्रवृत्त हुए ! कुछ देरके बाद समुद्रसे कामधेनु उत्पन्न हुई, जिसे अग्निमें होम करनेवाले ऋषियोंने ग्रहण किया। इसके बाद उच्चैश्रवा नामका अश्व प्रकट हुआ, जिसके लिए बलिने इच्छा प्रकट की। इसके बाद कौस्तुभमणि निकला, जिसे भगवान्ने स्वयं ग्रहण किया। तदन्तर कल्पतरु प्रादुर्भूत हुआ, जो कि आज भी अर्थियोंके मनोरथको पूर्ण करनेके लिये स्वर्गमें विराजमान हैं। तत्पश्चात् भगवती रमाका प्रादुर्भाव हुआ। रमाके गुण, उदारता, अवस्था तथा हावभावसे दैत्य, दानव देव सभी मुग्ध हो गये। सम्पूर्ण औषधियोंसे अभिषेक होनेके बाद स्वस्त्ययनके समाप्त होनेपर भगवती रमाने हाथमें पुष्पमाला धारण की और अपने योग्य पतिके लिये विचार करने लगी। सबमें गुण-दोषका विचार करते करते अन्तमें भगवान् विष्णुको ही अपना पति बनाना निश्चयकर उनकी उपेक्षा करनेपर भी पुष्पमाला उनके गलेमें डालदी। भगवान्ने अपने हृदय में उन्हें स्थान दिया। रमाके न मिलनेसे दैत्य-दानव खिन्न हो गये और उन्होंने भगवान्की अनुमतिसे वारुणी नामकी कन्याका ग्रहण किया और पुनः वे समुद्रमन्थन करने लगे। उस समय यज्ञमें भाग पानेवाला, आयुर्वेदका विद्वान्, अमृतसे पूर्ण स्वर्णकलशको धारण किये हुए धन्वन्तरि नामधारी पुरुष विष्णुके अंशसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रादुर्भूत हुआ। दैत्य-दानव अमृतसे पूर्ण कलशको देखकर लालायित हो गये और कलश लकर भाग चले। देवता लोग इससे बहुत दुःखी हुए। भगवान्‌ने उन्हें आश्वासन दिया—आपलोग दुःखी न हों और अपनी मायासे उनमें कलह कराकर आप लोगों का मनोरथ पूर्ण करूँगा। उधर दैत्योंमें मैं पहले, इस प्रकार कलह होने लगा। उसी समय भगवान् ने एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर पहुँच गये और अपने भ्रूविलाससे उनके हृदयमें उन्होंने काम उत्पन्न कर दिया। आठवाँ अध्याय समाप्त❀

❀ मोहिनीरूपसे मोहित दैत्योंके द्वारा अमृतकलशके समर्पित कर दिये जानेपर उन्हें स्वरूपमें फँसकर मोहिनी रूपधारी भगवान्‌के द्वारा देवताओंको अमृत प्रदान ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—सौहार्दभावका त्यागकर परस्पर पात्रका अपहरणकर रहे उन दस्युधर्मा दैत्योंने अपनी ओर आती हुई एक सुन्दर स्त्री देखी ॥ १ ॥ अहो, यह रूप, यह तेज और इसकी यह नवजवानी इसप्रकार काममोहित हो उसके समीपमें जाकर लज्जारहित होकर वे पूछने लगे ॥ २ ॥ हे कमललोचने, हमलोगोंके मनको मन्थनकर रही सी तुम कौन हो, कहाँसे

❀ अथ नवमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः ॥ क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥ अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ॥ इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥ का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ॥ कस्यासि वद वामोरु मन्थन्तीव मनांसि नः ॥ ३ ॥ न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥ ४ ॥ नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषिताऽसि शरीरिणाम् ॥ सर्वेन्द्रियमनः प्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥ ५ ॥ सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि ॥ ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥ वयं कश्यपदायदा भ्रातरः कृतपौरुषाः ॥ विभजस्व तथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥ इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ॥ प्रहस्य रुचिरापाङ्गैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि सङ्गताः ॥ विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि❀ ॥ ९ ॥ सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ॥ सख्यान्याहुरनित्यानि नूनं

आ रही हो, क्या चाहती हो और हे सुजघने, तुम किसकी स्त्री हो ॥ ३ ॥ हमलोग तुझे देव, असुर, गन्धर्व, सिद्ध, चारणादिकोंसे भी अस्पृष्ट समझ रहे हैं पुनः मृत्युलोकके राजाओंके लिये क्या कहना है अर्थात् उनकी तो सम्भावना भी नहीं है ॥ ४ ॥ हे सुभ्रु, तुम शरीरधारियोंके सम्पूर्ण इन्द्रिय तथा मनको प्रसन्न करनेके लिये ही घृणाके साथ भगवान् ब्रह्मासे भेजी गई हो क्या, या अपनी इच्छासे आई हो, नहीं, ऐसी बात नहीं है तुम निश्चित भेजी ही गई हो ॥ ५ ॥ हे मानिनि, तुम एक वस्तुके लिये परस्पर स्वबन्धुओं में होनेवाले कलहको शान्त-कर हम लोगों का कल्याण करोगी। हे सुमध्यमे, सिर्फ तुम्हारे वास्ते हमलोगों में दुश्मनी पैदा हो गई है ॥ ६ ॥ हमलोग कश्यपके दायाद हैं, इसलिये सभी बन्धु हैं। हमलोगों ने पुरुषार्थकर

❀दृष्टान्त—श्रीलक्ष्मीपति भगवान्‌ने मोहनीरूप धारण कर दैत्योंको अपने वशमें करने यह तरीका क्यों निकाला।

उत्तर—किसी समय नारदजीको स्त्री रूपमें रहनेके कारण आज उन्हें भी यह रूप स्वीकार करना ही पड़ा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अमृत लिया है, इसका यथोचित विभागकर दो, जिससे हमलोगों में भेद न हो ॥७॥ इसप्रकार दैत्योंसे प्रार्थना करनेपर योषितरूपधारी भगवान् अपने सुन्दर नेत्रोंसे देखते हुए हँसकर कहने लगे ॥ ८ ॥ भगवान्ने कहा—हे दैत्यो, आपलोग कश्यपके दायाद (खान्दान) होकर पुँश्चली मुझपर कैसे विश्वास करते हैं, क्योंकि पंडित लोग कामनियोंमें कभी भी विश्वास नहीं करते ॥ ९ ॥ हे दैत्यो, रोज-रोज नये-नये ढूँढ़ रही स्वैरिणी स्त्रियों और कुत्तों कुतियों या गीदड़ोंमें जो मित्रता होती है उसे विद्वान लोग स्थायी कभी नहीं कहते, क्षणिक कहते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उसके इसप्रकारके नम्र वाक्योंसे मोहित होकर अपने मनको विश्वास बनाकर किसी एक गम्भीरभावसे दैत्योंने हँस दिया और उसे अमृत पात्र दे दिया ॥ ११ ॥ भगवान्ने अमृतपात्र लेकर ईषद् हास्ययुक्त वाणीसे कहा—हे दैत्यो, यदि मुझसे उचित या अनुचित हुआ विभाग आपलोगोंको स्वीकार हो, तो मैं सुधाका

नूनं विचिन्वताम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ॥ जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥
ततो गृहीत्वामृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ॥ यद्यभ्युपेत क्व च साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥ १२ ॥
इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः ॥ अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥ अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् ॥
दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥ १४ ॥ यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते ॥ कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥१५॥
प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ॥ धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥ तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशद्दुकूलश्रोणीतटालसगति-
मदविह्वलाक्षी ॥ सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥ १७ ॥ तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्णनासाकपोलव-
दनां परदेवताख्याम् ॥ संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ॥ १८ ॥ असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव
दुर्नयम् ॥ मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥ १९ ॥ कल्पयित्वा पृथक्पङ्क्तीरुभयेषां जगत्पतिः ॥ तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च
पङ्क्तिषु ॥ २० ॥ दैत्यान् गृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसञ्चरैः ॥ दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥ ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं

विभाग कर दूँ ॥ १२ ॥ भगवान्के इस वचनको सुनकर दैत्यश्रेष्ठोंने उसके प्रमाणको न जानकर उसका अनुमोदन करते हुए स्वीकार कर लिया ॥ १३ ॥ इसके बाद वे सब उपवास व्रतकर स्नान करनेके बाद अग्निमें हवनकर गौ, ब्राह्मणों तथा अन्य प्राणियोंको कुछ देकर, ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययन मंगल कराकर अपने इच्छाके अनुसार नये वस्त्र धारणकर आभूषण पहिने हुए पूर्वाग्रमुख विस्तृत कुशोंपर बैठ गये ॥ १४, १५ ॥ धूपसे आमोदित तथा माला और दीपकांसे सुशोभित यज्ञशालामें पूर्वाग्रमुख देवता तथा दैत्यो के बैठजानेपर ॥१६॥ हे राजन्, मदसे विह्वल आँखों वाला, करभके सदृश उरुवालो, कमनीय वस्त्रसे शोभित, अपने विशाल नितम्बतटके भारसे अलसाई गतिसे जल रही वह कुम्भस्तनी मोहिनी-हाथमें कलश लेकर पैरमें पहिने हुए अपने सोनेके नूपुरों के झङ्कारसे चारों ओर अंकृत करती हुई यज्ञशालामें प्रविष्ट हुई ॥१७॥ सुवर्णके कुण्डलसे शोभित सुन्दर कान, नाक, कपोल और मुखवाली लक्ष्मीकी सखी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परदेवता नामक उस मोहिनीको उस समय देखकर—जब कि उसके स्तनपरका आँचर खिसक गया था, स्तनपट्टिकाका छोर ढिला पड़ गया था जब वह सबकी ओर मुसकुराती हुई लुभानी चितवनसे एक अजीब नजाकतके साथ देख रही थी—देव और असुर सबके सब मोहित हो गये ॥ १८ ॥ इसप्रकार उन सबको मोहित भगवान् अच्युतने स्वभावसे ही क्रूर दैत्योंको सुधा देना सर्पको दुग्ध देनेके समान समझकर दैत्योंके लिये सुधाका विभाग नहीं किया ॥ १९ ॥ जगत्पति भगवान्ने दैत्यों और देवताओंकी पृथक् पृथक् पंक्तिका विभागकर उन्हें अपनी-अपनी पंक्तिमें बैठ या ॥ २० ॥ अमृतपूर्ण कलशको धारण किये हुए भगवान्ने दैत्योंको प्रिय वाक्योंसे सन्तुष्टकर दूरस्थ देवोंको जरा तथा मृत्युका अपहरण करनेवाला अमृत पिलाया ॥ २१ ॥ हे राजन्, वे दैत्य अपने पूर्वकृत प्रतिज्ञाके अनुसार तथा स्त्रीके साथ विवाद करनेमें जुगुप्साके भयसे और मोहिनीमें अत्यन्त प्रेम करनेके कारण कुछ न कहकर चुपचाप बैठे रहे ॥ २२ ॥ उस मोहिनीमें अत्यन्त प्रेम करने वाले दैत्यगण प्रणय भंगके भय से भीत और बहुमानयुक्त वञ्चक बचनों (आपलोग शान्तिपूर्वक धैर्यधारण करें) से आबद्ध

नृप ॥ तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥ २२ ॥ तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ॥ बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किञ्चन विप्रियम् ॥ २३ ॥ देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ॥ प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥ २४ ॥ चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ॥ हरिस्तस्य कवन्धस्तु सुधयाऽप्लावितोऽपतत् ॥ २५ ॥ शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् ॥ यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६ ॥ पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः ॥ पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥ २७ ॥ एवं सुरासुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ॥ तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपुर्यत्पादपङ्कजरजः श्रयणान्न दैत्याः ॥ २८ ॥ यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ॥ तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धेऽमृतमथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हो कर उसके लिए कुछ भी अप्रिय बचन न कर सके ॥ २३ ॥ देवता का रूप धारणकर राहुने चन्द्रमा और सूर्यके बीचमें बैठकर अमृतका पान कर लिया। चन्द्रमा तथा सूर्यके द्वारा इस विषयकी सूचना मिलनेपर भगवानने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे अमृत पी रहे उसका सिर काट डाला। वह कबन्ध सुधासे अस्पृष्ट होनेसे (कण्ठ नीचे सुधाके न जाने से) गिर पड़ा ॥ २४, २५ ॥ भगवान्ने उस सिरको अमर बनाकर उसे ग्रह बना दिया, जो वैर बुद्धिसे अमावस्या और पूर्णिमाके दिन सूर्य तथा चन्द्रमापर आक्रमण करता है ॥ २६ ॥ इसप्रकार देवताओंके अमृत पानकर लेनेपर लोकभावन भगवान् विष्णुने असुरोंके देखते देखते अपना स्वरूप ग्रहण कर लिया ॥ २७ ॥ हे राजन्, असुर तथा देवताओंके देश, काल, हेतु मन्दराद्रि, अर्थ-समुद्रमें फेंका हुआ विरुदादि तथा परिश्रममें साम्य होनेपर भी उनके फलमें वैषम्य हो गया, जिससे देवताओंको अमृत मिला और असुरोंको नहीं। इसमें कारण यह है कि—देवताओंने भगवत्पादङ्कजके रजका आश्रयण लिया था तथा दैत्योंने नहीं इससे यह निश्चित है कि भगवान्के भक्तोंका ही परिश्रम सफल होता है, दूसरे का नहीं ॥ २८ ॥ मनुष्योंके द्वारा प्राण, धन,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मन कर्म तथा वचनोंसे देह और पुत्रादिके लिये जो कर्म किया जाता है वह व्यर्थ है, क्योंकि उसमें भेद का आश्रयण है। इसलिए वह कर्म वृक्षकी शाखाके निषेचनके समान व्यर्थ है और प्राणादिकोंसे ईश्वरके निमित्त जो कर्म किया जाता है, क्योंकि उसमें सर्वत्र ईश्वर अनुगत है, उसमें भेदबुद्धि नहीं है ॥ २९ ॥

नवम अध्याय का सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अमृतके लिये आपसमें कलह करते हुए दैत्यगण उस सुन्दर स्त्रीको देखकर मुग्ध हो गये और पूछने लगे—तुम कौन हो, कहाँसे किसलिए आयी हो? मालूम होता है कि विधाताने ही शरीरधारी मनुष्योंके इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिए तुझे भेजा है हे कामिनि, हमलोग कश्यपके खान्दान तथा सभी भाई हैं। हम लोगोंमें अमृत विभागके लिए कलह हो रहा है. अब तुम्हीं विभाग कर दो, जिसमें हम लोगोंका कलह दूर हो जाय। स्त्री वेषधारी भगवान्ने कहा—दैत्यो, आप लोग कश्यपके खान्दान होकर इस पुँश्चली स्त्री पर कैसे विश्वास कर रहे है, क्योंकि पण्डित लोग कभी भी स्त्रियोंपर विश्वास नहीं करते। हे राजन्, इसप्रकारके भगवान्के वचनसे सन्तुष्ट तथा विश्वसित होकर दैत्योंने वह अमृत स्त्री वेषधारी भगवान्के सामने लाकर रख दिया। भगवान्ने हँसकर कहा—दैत्यो, यदि आप लोग मुझसे किया गया उचित या अनुचित विभागको माननेके लिए तत्पर हों, तो मैं विभाग कर सकती हूँ। दैत्यदानव यह सुनकर प्रसन्न हो गये। सभीने इसका अनुमोदन किया। इसके बाद सब लोग स्नानकर अपने इच्छाके अनुसार नूतन वस्त्र धारणकर ब्राह्मणोंको दान देकर स्वस्त्ययन कराकर पूर्वाभिमुख होकर कुशासन पर बैठ गये। इसप्रकार दैत्य तथा देवताओंके बैठ जानेपर कलशस्तनी, श्रेणीके भारसे मन्दगति होती हुई मदसे विह्वल नेत्रोंवाली मोहिनी हाथमें अमृतपूर्ण कलश लेकर उस शालामें प्रविष्ट हुई। उसके रूपको देखकर दैत्यदानव मुग्ध हो गये स्त्रीवेषधारी भगवान्ने देवता और दानवोंकी पंक्ति पृथक् पृथक् कर दी और स्वभावसे क्रूर दैत्योंको अमृतपान कराना सर्पको दुग्धपान करानेके मान जानकर उन्हें मधुर वचनोंके द्वारा मोहित कर दूरस्थ देवताओंको अमृत पान कराना प्रारम्भ कर दिया। दैत्यदानव मोहिनीमें अत्यन्त अनुराग तथा पूर्व प्रतिज्ञाके कारण कुछ कह न सके। सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें बैठकर राहु अमृतका पान कर लिया सूर्य और चन्द्रमाके कहनेपर भगवान्ने उसका सिर काट कर उसे ग्रह बना दिया जो पूर्व वैर कारण आज भी चन्द्रमा तथा सूर्यपर आक्रमण करता है। इस प्रकार देवताओंके अमृत पान करने पर भगवान्ने अपना रूप धारण कर लिया। देश काल तथा परिश्रमके समान होने परभी देवताओंको अमृत मिला और दैत्योंकी नहीं, क्योंकि देवोंने भगवत्पाद कमलरजका आश्रय कर लिया था और दैत्योंने नहीं। इसलिये जो मनुष्य भेद बुद्धिके द्वारा देहादिके अभिमावसे कार्य करता हैवह व्यर्थ होता है और जो अभेदबुद्धिसे ईश्वरको समर्पित कर कार्य प्रारम्भ करता है वह सफल होता है। नवम अध्याय समाप्त॥

❀ अथ दशमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ॥ युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ❀ ॥१॥ साधयित्वाऽमृतं राजन् पाययित्वा

❀ देवताओंके साथ दैत्योंकी माया से देवताओंके विषादको प्राप्त हो जाने पर भगवान् श्रीहरिका आविर्भाव ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा – हे राजन् दानव और दैत्योंके समुद्रमन्थनरूप कर्ममें प्रयत्नशील रहनेपर भी भगवान्से पराङ्मुख होजाने के कारण उन्हें अमृत नहीं मिला ॥ १ ॥ हे राजन्, भगवान्

दृष्टान्त—जन्मसे ही भगवान्के नो राक्षस शत्रु थे उन्हें अमृत न मिल सका हो, पर भगवद्भक्त बलि इससे वञ्चित रह गये यह बड़ा आश्चर्य है।

उत्तर—राजा अपने धर्मपथ पर था इसलिये वे अमृत से बहित थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समुद्रमन्थनकर अमृत निकालकर अपने देवताओंको पिलाकर गरुड़पर सवार होकर सब जीवोंके देखते-देखते वैकुण्ठ चले गये ॥ २ ॥ देवताओंके इस अभ्युदयको देखकर स्पर्धा करते हुए उस दैत्योंने देवताओंके ऊपर आयुध लेकर युद्ध करनेके लिये धावा बोल दिया ॥ ३ ॥ तदन्तर भगवान् नारायणका आश्रय करनेवाले सब देवगण भी अमृतपानसे शक्तिशाली होकर असुरोंसे लड़नेके लिये हथियार लेकर तैयार हो गये ॥ ४ ॥ हे राजन्, उस समुद्रके तटपर देवासुर नामका रोमहर्षक परमदारुण घोर संग्राम हुआ ॥ ५ ॥ उस देवासुर संग्राममें परस्पर शत्रुओंको पाकर तलवारों, बाणों तथा अन्यान्य हथियारोंसे एक दूसरेको मन लगाकर मारने लगे ॥ ६ ॥ उस संग्राम शंख, तूरी, मृदंग, भेरी, डमरू प्रभृति वाद्योंका, चिंघाड़ रहे हस्तियों, हिनहिना रहे अश्वों और शब्दकर रहे रथोंके ऊपर चढ़े हुए योद्धाओं तथा पैदल सिपाहियोंका महान् शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ उस संग्राममें रथी रथियोंके साथ, पैदल सिपाही पैदल सिपाहियोंके साथ, अश्व अश्वोंके साथ तथा गज गजोंके साथ भिड़ने लगे ॥ ८ ॥ कुछ सैनिक उष्ट्रोंसे, कुछ गजोंसे, कुछ गदहोंसे, कुछ सिंहोंहे, कुछ बानरोंसे, कुछ हाथियोंसे

स्वकान्सुरान् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥ सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः ॥ अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥ ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ॥ प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥ तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ॥ रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥ तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ॥ समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां महान् ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निःस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥ रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ॥ हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥ उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ॥ केचिद्गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः ॥ शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥ १० ॥ शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः ॥ बस्तैरके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥ ११ ॥ अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ॥ सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२ ॥ चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः ॥ महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥१३॥ वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ॥ स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥१४॥ देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन ॥ रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५ ॥ वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ॥ यानं वैहायसं

और कुछ गौर मृगोंसे युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥ कुछ योद्धा गृद्धोंसे, कुछ कंकोंसे, कुछ बंकोंसे, कुछ शरभोंसे, कुछ महिषोंसे, कुछ श्वेनोंसे, कुछ तिमिङ्गोंसे, कुछ वृकोंसे तथा कुछ नील गायोंसे, युद्ध करने लगे ॥ १० । कुछ योद्धा शृगालोंसे, कुछ मूषिकोंसे, कुछ कृकलासोंसे, कुछ खरहोंसे कुछ नरोंसे, कुछ बकरोंसे, कुछ कृष्णसारोंसे, कुछ हंसोंसे और कुछ सूकरोंसे लड़ने लगे ॥ ११ ॥ हे राजन्, अन्य योद्धागण भयंकर शरीरवाले जल तथा स्थलवासी प्राणियोंसे युद्ध करते हुए दोनों सेनाओंके मध्यमें आगे-आगे प्रवेश करने लगे ॥ १२ ॥ हे राजन्, विचित्र ध्वजाओंसे, श्वेत निर्मल छत्रोंसे, मूल्यवान् वज्रदण्डोंसे तथा व्यजन और बार्ह चामरोंसे ॥ १३ ॥ वायुके प्रकोपसे उद्धूत उष्णीषकी ज्योतिसे सूर्यकी किरणोंके साथ चमक रहे कवचों तथा स्वच्छ शस्त्रोंसे ॥ १४ ॥ हे पाण्डुनन्दन, वीर देव और दानवोंकी दोनों सेनाएँ उपर्युक्त वस्तुओं तथा वीरोंकी मालाओंसे उस तरह शोभने लगी, जिस तरह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरङ्गोंकी मालाओंसे समुद्र शोभित हैं ॥ १५ ॥ हे प्रभो, उन असुरोंकी सेनामें मयासुरसे निर्मित, आकाशमार्गसे चलनेवाला, स्वेच्छागामी, सम्पूर्ण संग्रामोपयोगिसामग्रियोंसे युक्त, सबके आश्चर्यान्वित करनेवाला, तर्कका अविषय, अनिर्देश्य और दृश्यमान होते हुए भी अदर्शनतुल्य, विमानोंमें श्रेष्ठ वैहायस विमानपर सब सेनाधिपतियोंसे घिरा हुआ, बालव्यजन तथा छत्रोंसे सुशोभित असुरोंके सेनापति विरोचनका लड़का राजा बलि उदयगिरिके शिखरपर विराजमान चन्द्रमाके समान शोभने लगा ॥ १६–१८ ॥ उसके चारो तरफ अपने-अपने वाहनके साथ यूथाधिपति नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचिति, अयोमुख, द्विमूर्द्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि भूतसंताप, वज्रदंष्ट्रा, विरोचन, हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्रदृक्, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, मय, त्रिपुराधिप, पौलोम, कालेय, निवातक, वच प्रभृति राक्षस समूह बैठा हुआ था ॥ १९–२२ ॥ पूर्वोक्त इन सब

नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६ ॥ सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७ ॥ आस्थितस्तद्विमा-
नाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ॥ वालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥ १८ ॥ तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ॥ नमुचिः शम्बरो बाणो
विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ॥ शकुनिर्भूतसन्तापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २० ॥ हयग्रीवः शङ्कुशिराः
कपिलो मेघदुन्दुभिः ॥ तारकश्चक्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥ २१ ॥ अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ॥ अन्ये पौलोमकालेया
निवातकवचादयः ॥ २२ ॥ अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ॥ सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥ २३ ॥ सिंहनादान्विमुञ्च-
न्तः शङ्खान्दध्मुर्महारवान् ॥ दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित्कुपितो भृशम् ॥ २४ ॥ ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ॥ यथा स्रवत्प्रस्रवणमु-
दयाद्रिमहर्पतिः ॥ २५ ॥ तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ॥ लोकपालाः सहगणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ २६ ॥ तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य
क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः ॥ आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥ २७ ॥ युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ॥ वरुणो हेतिनाऽयुध्य-

राक्षसोंने अमृतपानसे वञ्चित होकर समुद्रमन्थनके परिश्रमके स्मरणसे क्रोधान्ध होते हुए अनेक बार देवताओंपर विजय प्राप्त की ॥ २३ ॥ सिंहनाद करते हुए उन लोगोंने भयंकर शब्द करनेवाले सब बजाये। इसप्रकार शत्रुको उन्मत्त देखकर भगवान् इन्द्र बहुत कुपित हुए ॥ २४ ॥ और निरन्तर गण्डस्थलसे मदधारा बहा रहे ऐरावतके ऊपर आरूढ़ हो, नित्य प्रस्रवणशील उदयाचलपर विराजमान सूर्यकी नाईं शोभने लगे ॥ २५ ॥ उनके चारों तरफ नाना प्रकार बाहन, ध्वजा तथा आयुधसे विराजमान सब देवगण शोभित थे तथा अपने गणोंके साथ समस्त लोकपाल और वायु, अग्नि, वरुण आदि विराजमान थे ॥२६॥ देवता तथा राक्षसोंने परस्पर मर्मभेदी अस्त्रोंका प्रहार करते हुए एक दूसरेको ललकारते तथा एकके सैन्यके आगे दूसरे जाकर द्वन्द्व युद्ध आरम्भ किया ॥ २७ ॥ हे राजन्, बलिने इन्द्रके साथ, गुहने तारकके साथ, वरुणने हेतिके साथ, मित्रने प्रहेतिके साथ, यमने कालनाभके साथ, विश्वकर्माने मयके साथ, त्वष्टाने शम्बरके साथ, सविताने विरोचनके साथ, अपराजितने नमुचिके साथ, अश्विनीकुमारोंने वृषपर्वाके साथ, सूर्यने बलिके सौ पुत्रोंके साथ, जिसमें ज्येष्ठ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाण था। चन्द्रमाने राहुके साथ, वायुने पुलोमाको साथ, अति तेजस्वी भद्रकाली देवी दुर्गाने शुम्भ-निशुम्भके साथ, वृषाकपिने जम्भके साथ, विभावसुने महिषके साथ, इल्वलवातापीने ब्रह्मपुत्रोंके साथ, दुर्मर्षने कामदेवके साथ, उत्कलने मातृके साथ, बृहस्पतिने शुक्रके साथ, शनिचरने नरकके साथ, मरुतोंने निवातकवचोंके साथ, अमर वसुओंने कालेयोंके साथ, विश्वेदेवोंने पौलोमोंके साथ और हे अरिन्दम; रुद्रोंने क्रोधवशोंके साथ युद्ध किया ॥ २८-३४ ॥ इसप्रकार युद्धमें तीक्ष्णवाण, तलवार, तोमरादि शस्त्रोंसे जयकी अभिलाषा करते हुए उन सुर और असुरोंने परस्पर एक दूसरेको पाकर एक दूसरेके साथ लड़ते हुए एक दूसरेका नाशकर डाला ॥ ३५ ॥ भुशुण्डि, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश शक्ति, ज्वलत्काष्ठ, परशु, भल्ला, परिघ, मुग्दर, भिन्दिपाल आदि शस्त्रोंसे एक दूसरेका सिर काट डाला॥ ३६ ॥ गज, तुरंग, रथि, पदाति (पैदल चलनेवाले) और घुड़सवारोंके साथ अन्य घोड़े विविध प्रकारसे खण्डित हो गये,

न्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥२८॥ यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ॥ शम्बरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥ २९ ॥ अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ॥ सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च । ३० ॥ राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ॥ निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥ ३१ ॥ वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेन विभावसुः ॥ इल्वलः सहवातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिन्दम ॥ ३२ ॥ कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ॥ बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥ ३३ ॥ मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ॥ विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥ ३४ ॥ त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः ॥ अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥३५॥ भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ॥ निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥ ३६ ॥ गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रयश्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥ ३७ ॥ तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णितादायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ॥ रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥ ३८ ॥ शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ॥ महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥ ३९ ॥ कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः

उनकी भुजा, उरू, सिर, गला और चरण छिन्न-भिन्न हो गया, ध्वजा काट दी गई तथा आभूषण आदि भी छिन्न-भिन्नकर दिये गये ॥३७॥ देवता तथा दैत्योंके पदाघातसे रथके चक्रसे चूर्णित रणभूमिसे उड़ी हुई धूल दिशाओंको, आकाशको और सूर्यको आच्छादितकर शीघ्रही उन स्थानोंसे लौट आई, क्योंकि रक्त गिरनेसे वे स्थान सिक्त हो गये थे अथवा दिशा आकाश तथा सूर्य पर्यन्त रक्तधाराके उच्छलनसे, वे स्थान प्लावित हो गये थे, जिसके कारण धूल वहाँ ठहर न सकी ॥ ३८ ॥ गिर गये हैं किरीट, कुण्डल जिनसे, संरम्भयुक्त दृष्टि है जिनमें तथा कटे हुए हैं ओष्ठ जिनमें, ऐसे सिर आभूषणयुक्त मस्तकोंसे, आयुधधारी भुजाओंसे और करभ सदृश उरुओंसे आस्तृत वह रणभूमि उत्पन्न शोभाको प्राप्त हुई। अर्थात् उस भूमिपर अनेक सिर, भुजाएँ तथा उरूभाग कटकर गिरे हुए थे ॥ ३९ ॥ उस रणभूमिमें गिरे हुए अपने सिरोंको आँखोंसे देखते हुए कबन्ध अपनी भुजाओंमें हथियार लेकर सैनिकोंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दौड़-दौड़कर लड़ने लगे ॥ ४० ॥ बलिने दस बाणोंसे इन्द्रको, तीनसे ऐरावतको, चार बाणोंसे चारो अश्वोंको और एकसे सारथिको मारा ॥ ४१ ॥ उन बाणोंको अपनी ओर आते देख-कर हँसते हुए-से इन्द्रने उतने ही अपने तीक्ष्ण भल्लोंसे काट दिया, वे उनके पास पहुँच भी न पाये थे ॥४२॥ इन्द्रके इस पराक्रमको देखकर दुर्मर्ष बलिने शक्तिका ग्रहण किया, किन्तु इन्द्रने महान् उल्काके समान जलती हुई उस शक्तिको देखकर उसके हाथमें ही उसे काट डाला ॥ ४३ ॥ शक्तिके कट जानेपर बलिने शूल उसके बाद तदनन्तर तोमर प्रास और ऋष्टि आदि जो-जो शस्त्र थे उन सबको धारण किया, किन्तु भगवान् इन्द्रने सबको काट डाला ॥ ४४ ॥ हे राजन्, भगवान् इन्द्रके इस शक्तिको देखकर बलिने अन्तर्ध्यान होकर आसुरी मायाकी कल्पना की, जिससे देव सैनिकोंपर बड़ाभारी शैल प्रादुर्भूत हुआ ॥४५॥ और दावाग्निसे दह्यमान होकर वृक्ष गिरने लगे तथा शिलाओंका शिखर भी सैनिकोंको चूर्ण करते हुए

पतितस्वशिरोऽङ्घ्रिभिः ॥ उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान्मृधे ॥ ४० ॥ बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारो-
हमार्च्छयत् ॥ ४१ ॥ स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ॥ चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव ॥ ४२ ॥ तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य
दुर्मर्षः शक्तिमाददे ॥ तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥ ४३ ॥ ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ॥ यद्यच्छस्त्रं समाद-
द्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ॥ ४४ ॥ ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानगतोऽसुरः ॥ ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरनीकोपरि प्रभो ॥ ४५ ॥ ततो निपेतुस्तरवो
दह्यमाना दवाग्निना ॥ शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्‌बलम् ॥ ४६ ॥ महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः ॥ सिंहव्याघ्रवरा-
हाश्च मर्दयन्तो महागजान् ॥ ४७ ॥ यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः ॥ छिन्धिभिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥ ४८ ॥
ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः ॥ अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥ ४९ ॥ सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः ॥ ५० ॥
ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ प्रचण्डवातैरुद्धततरङ्गावर्तभीषणः ॥ ५१ ॥ एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ॥ सृज्यमानासु मायासु
विषेदुः सुरसैनिकाः ॥ ५२ ॥ न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप ॥ ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥ ५३ ॥ ततः सुपर्णांसकृ-

गिरने लगा ॥४६॥ बड़े-बड़े सर्प, दन्दशूक, बिच्छू उत्पन्न होने लगे और बड़े-बड़े गजोंका मर्दन करते हुए सिंह, व्याघ्र तथा वराह उत्पन्न हो गये ॥४७॥ हे राजन्, शूल हाथमें लिए हुए नंगे (वस्त्रहीन) सैकड़ों राक्षस काट डालो, चीर डालो, कहते हुए उत्पन्न होकर दौड़ने लगे और अनेक यक्ष भी दीखने लगे ॥४८॥ आकाशमें वायुसे आहत होकर गम्भीर शब्द करता हुआ मेघसमुदाय अंगारोंको वर्षाने लगा ॥४९॥ दैत्योंकी मायासे उत्पन्न महान् अग्निने वायुको अपना सार बनाकर, प्रलयकालके सांवर्तकके समान, देवसैन्यको भस्म कर दिया ॥५०॥ तथा प्रचण्ड वायुके प्रकोपसे उद्धततरङ्ग और आवर्त्तोंसे बढ़ा हुआ चारों ओर समुद्र भयंकर दीखने लगा, जो अपनी वेलासे देवसैन्यको सिक्तकर रहा था ॥५१॥ इसप्रकार महामायिक अलक्ष्यगति होनेसे भीषण दैत्योंकी मायासे देवसैन्य बहुत विषाद करने लगा ॥५२॥ हे नृप, इन्द्रादि देवताओंने उस भीषण मायारूप संकटसे पार होनेका जब कोई उपाय न देखा, तब भगवान्‌का ध्यान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया, जिससे वहाँ गरुड़के अंशप्रदेशपर अपने चरणकमलको रखे हुए पीताम्बरधारी, नवकमललोचन, अदृश्य आठ भुजाओंमें आयुध धारण किये, अमूल्य किरीटकुण्डलसे सुशोभित, लक्ष्मी तथा कौस्तुभमणिको हृदयप्रदेशपर धारण किये हुए विश्वभावन भगवान् प्रकट हुए ॥५३, ५४॥ भक्तवत्सल भगवान्के आते ही असुरोंके मन्त्रादि प्रयोगसे उत्पन्न माया भगवान्के प्रभावसे नष्ट हो गई। जिसप्रकार जागरण होनेपर स्वप्नावस्थाका स्वप्न नष्ट हो जाता है, वैसेही भगवान्के स्मरणसे सब कष्ट दूर हो जाते हैं ॥५५ हे नृप, तदन्तर कालनेमिने गरुड़वाहन भगवान्को उस युद्धमें देखकर शूल प्रहार किया। तीनों लोकके अधिपति भगवान्ने गरुड़पर गिरते हुए शूलको देखकर लीलापूर्वक स्वयं ग्रहण कर लिया और उसी शूलसे सिंहवाहन कालनेमिको मार डाला ॥५६॥ और अत्यन्त बलवान् माली तथा सुमालीका सिर चक्रसे काटकर गिरा दिया, वे दोनों युद्धभूमिमें गिर पड़े। यह देखकर माल्यवान् मायावी होनेके कारण पहले भगवान्से मिलकर ज्योंही गरुड़के ऊपर अपनी तिग्म गदासे प्रहार करता हुआ भगवान्को मारने दौड़ा त्योंही भगवान्ने शब्द कर रहे उस शत्रुका भी सिर अपने चक्रसे काट डाला ॥ ५७ ॥

ताङ्घ्रिपल्लवः पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः ॥ अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा माया विनेशुर्महिना महीयसः ॥ स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ॥ तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः ॥ ५६ ॥ माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ॥ आहत्य तिग्मगदयाऽहनदण्डजेन्द्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दसवें अध्याय सार—श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, विश्वभावन भगवान् देवताओंको अमृतसे तृप्तकर अपने परमधाम वैकुण्ठको पधारे। अपने शत्रु देवताओंके इस अभ्युदयको देख कर उनसे युद्ध करनेके लिए दैत्य उद्यत हो गये। देवता लोग भी अमृतपानसे शक्तिशाली हो भगवान्के आश्रयसे उत्साहके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार हो गये। इस प्रकार देवासुर संग्राम छिड़ गया। एक दूसरेको पाकर तलवार, बाण, गदा, इत्यादि अस्त्रोंके प्रहारसे आहत करने लगे। राक्षसोंने अनेक देवताओंको इस युद्धमें जब पराजित कर दिया, तब इन्द्र अनेक देवताओंके साथ रणभूमिमें पधारे और अस्त्र प्रहारसे राक्षसोंका मर्दन करने लगे। दोनोंमें खूब लड़ाई हुई। देव दानवोंके सैन्योंके पदाघातसे तथा रथचक्रसे चूर्णित रणभूमिसे उड़ी हुई धूलने दिशाओंको ढक दिया। अनेक मस्तक तथा भुजाओंसे रणभूमि सुशोभित हुई, कबन्ध नृत्य करने लगे। भयङ्कर शब्द होने लगा। बलिने इन्द्रको मारनेके लिये शक्तिका प्रयोग किया, किन्तु इन्द्रने उसे काट डाला। इस प्रकार बलिने अनेक अस्त्रोंका ग्रहण किया, किन्तु इन्द्रने सभीको काट डाला। तब बलिने माया की, जिससे एक महान् शैल देव सैन्यपर गिरने लगा। दावाग्निकी ज्वाला फैलने लगी, समुद्रके जलसे सैन्य डूबने लगा। तब देवोंने भगवान्का ध्यान किया। भगवान् गरुड़ारूढ़ होकर पद्ममालासे विभूषित हो प्रकट हो गये। उसके आते ही स्वप्नावस्थाके विषयके समान दैत्योंकी माया नष्ट हो गई और देवगण प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे। कालनेमिने गरुड़पर शूल प्रहार किया किन्तु भगवानने उसे स्वयं ग्रहण कर उस शूलसे उसका सिर काट डाला। तदनन्तर माली, सुमाली और माल्यवान्का का भी सिर चक्रसे काट डाला। दसवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, तदनन्तर परमपुरुष भगवान्‌के परमानुकम्पासे चैतन्यको प्राप्तकर इन्द्र और वायु आदि देवता युद्धमें उन उन दैत्योंको मारने लगे, जिन्होंने पहले उन्हें मार गिराया था ॥ १ ॥ सन्नद्ध होकर जब भगवान् इन्द्रने दैत्याधिपति बलिको मारनेके लिए वज्रका ग्रहण किया, तब सम्पूर्ण प्रजाएँ हाहाकार करने लगीं ॥ २ ॥ वज्रपाणि भगवान् इन्द्रने युद्धमें अपने सम्मुख स्थित अभिमानी अपने हथियारोंसे युक्त दैत्याधिपति बलिसे तिरस्कारपूर्वक यह कहा–अरे मूर्ख, तुम माया करके मायाके आदिकारण हम देवताओंको जीतना चाहते हो, जैसे नट अपनी मायासे बँधे हुए आँखोंवाले बालकोंको विमोहितकर उनका धन अपहरणकर लेता है ॥ ३, ४ ॥ रे मूर्ख, तुम मेरे प्रभावको सुनो–जो मूर्ख मायासे स्वर्गको प्राप्त

❀ अथैकादशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परयानुकम्पया ॥ जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तांस्तान् रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥ वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः ॥ उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः ॥ २ ॥ वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् ॥ मनस्विनं सुसंपन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३ ॥ नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि ॥ जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥ आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् ॥ तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥ सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ॥ शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥ बलिरुवाच ॥ संग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ॥ कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥ तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः ॥ न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥ न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ॥ गिरो वः साधु शोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ॥ आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥ १० ॥ एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ॥ नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥

करना चाहता है अथवा जो मायासे स्वर्गका तिरस्कारकर मोक्ष चाहता है उन मूर्खोंको मैं पहलेके पदसे भी नीचे गिरा देता हूँ ॥५॥ हे महात्मन्, मायाशाली तुम्हारे सिरको मैं सौ पर्ववाले वज्रसे काट रहा हूँ, अब तुम बन्धुओंके साथ अपनी रक्षा करो। ६ ॥ बलिने कहा—हे इन्द्र, संग्राममें लड़नेवाले, कालसे नियन्त्रित भाग्यवाले वीरोंके लिए यश, विजय पराजय तथा क्रमशः मृत्यु होना स्वाभाविक है ॥७ इसलिये इन सब विषयोंको ज्ञानी मनुष्य कालाधीन मानते हैं। इसलिए इस विषयमें हर्ष तथा शोक नहीं करते। आपलोग इस विचारोंमें ज्ञानशून्य

❀दृष्टान्त—मृत राक्षसोंको अमृत-संजीवनी द्वारा श्रीशुक्राचार्य जीवित ही कर देते थे, ऐसी परिस्थितिमें—उनका नाश हो जाना खटक रहा है।

उत्तर—जब उनके राजाका तेज विलीन हो गया, तब उनके सेवक राक्षसगणों को जिलाना सामर्थ्यतासे परे था। अर्थात्—मनुष्य का समय एकसा नहीं रहता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रतीत हो रहे हैं ॥८॥ इसीलिये कीर्ति, जय, पराजय तथा मृत्युमें अपनेको दास मानने वाले आपलोगोंके मर्मभेदी वाक्योंको हमलोग अच्छा नहीं मानते। सचमुच आपलोग शोच्य हैं ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार इन्द्रकी निन्दा करते हुए बलिने बाण इन्द्रपर छोड़ दिये ॥ १० ॥ इसप्रकार तत्त्ववादी अपने शत्रु बलिसे किये ये आक्षेपोंको अंकुशसे आहत गजके समान इन्द्र सहन न कर सके ॥ ११ ॥ और उन्होंने शीघ्रही अमोघ वज्र बलिके ऊपर फेंक दिया। वज्रके लगनेसे छिन्न पर्वतके समान वह बलि जमीनपर सोते हुए गिर पड़ा ॥ १२ ॥ बलिको गिरते देखकर बलिका मित्र महाबलवान् जम्भने मरे हुए मित्रको भी मित्रता दिखाते हुए, सिंहारूढ़ होकर बड़े वेगसे इन्द्रके कण्ठके मूलमें गदासे चोट की और ऐरावतको भी गदासे ताड़ित किया ॥ १३, १४ ॥ गदा प्रहारसे अत्यन्त व्यथित हो विह्वल होता हुआ गजराज जानुओंके सहारे भूमिपर गिर पड़ा और बहुत दुःखी हुआ ॥१५॥

प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ॥ सयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥ सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् ॥ अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥ स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ॥ जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४ ॥ गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ॥ जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥ ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ॥ आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६ ॥ तस्य तत्पूजयन्कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः ॥ शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥ १७ ॥ सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलिः ॥ इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥ १८ ॥ जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ॥ नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥ १९ ॥ वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु ॥ शरैरेवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ २० हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ॥ तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥ शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ॥ सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥ २२ ॥ नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः ॥ आहत्य व्यदनत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥ सर्वतः शरकूटेन

तब मातलि हजार घोड़ोंवाला रथ लाया। भगवान् इन्द्र गजको छोड़कर रथपर बैठ गये ॥ १६ ॥ दानवश्रेष्ठ जम्भने उस सारथिके कर्मको प्रशंसा करते हुए मुसकुराकर मातलिको जलते हुए शूलसे मारा ॥ १७ ॥ मातलिने धैर्य धारणकर शूलजन्य भयकर व्यथाका सहन किया। भगवान् इन्द्रने क्रोधित होकर चक्रसे जम्भका सिर काट डाला ॥ १८ ॥ नारदसे जम्भके मरणको सुनकर उसके ज्ञातिवाले नमुचि, बल और पाकनामक राक्षस बड़े वेगसे वहाँ पहुँचे ॥ १९ ॥ और तीनोंने परुष वचनोंसे इन्द्रके मर्मप्रदेशको पीड़ित करते हुए बाणोंसे उन्हे उस प्रकार आच्छादित कर दिया, जिसप्रकार मेघ अपनी धारासे पर्वतको आप्लावितकर देते हैं ॥ २० ॥ युद्धमें बलने हजार बाणोंसे इन्द्रके हजार अश्वोंका आहत किया और हजार बाणोंसे इन्द्रको भी आच्छादित कर दिया ॥ २१ ॥ पाकने युद्धमें एक बार दो सौ बाणोंके सन्धान और मोक्षणसे इन्द्रके सारथि मातलिको रथके साथ आहतकर दिया। इसप्रकार वह अद्भुत संग्राम हुआ ॥ २२ ॥ नमुचिने पन्द्रह सुवर्ण पुंखोंवाले महान् बाणोंसे युद्धमें इन्द्रको आहतकर जलसे भरे हुए मेघके समान गर्जन किया ॥ २३ ॥ जैसे वर्षाऋतुमें मेघ सूर्यको आच्छा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दितकर लेते हैं वैसे ही श्रेष्ठ दैत्योंने अपने बाणोंसे इन्द्रको रथ और सारथीके साथ चारों ओरसे आच्छादितकर लिया ॥२४॥ बाणोंसे आच्छादित इन्द्रको नहीं देखते हुए तथा नायकसे रहित होनेके कारण शत्रुओंसे पराजित होकर देवता सब अत्यन्त विह्वल हो उसप्रकार रोदन करने लगे, जिसप्रकार समुद्रमें नौकाके डूब जानेपर वैश्य रोदन करते है ॥ २५ ॥ तबतक बाणोंसे बने हुए पंजर (पिंजड़े) से अश्वनाथ तथा सारथिके साथ निकलकर इन्द्र रात्रिके व्यतीत हो जानेपर सूर्यके अदृश्य अपने तेजसे दिशाओं, पृथ्वी और आकाशको प्रकाशित करते हुए शोभने लगे ॥ २६ ॥ युद्धमें दैत्योंसे हन्यमान अपने सैन्यको देखकर शत्रुओंको नाश करनेके लिए क्रोधपूर्वक इन्द्रने बज्रको उठा लिया ॥ २७ ॥ हे राजन्. बल तथा पाकको भय उत्पन्न करते हुए उनके बन्धुओंको देखते अष्टधारवाले वज्रसे उनका सिर इन्द्रने काट डाला ॥ २८ ॥ हे राजन्, इसप्रकार बल और पापका नाश देखकर नमुचि शोक तथा

शक्रं सरथसारथिम् ॥ छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः ॥२४॥ अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः॥ अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे ॥२५॥ ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ॥ बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ॥ उदयच्छद्रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥ २७ ॥ स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ॥ ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥ २८ ॥ नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा सोकामर्षरुषान्वितः ॥ जिघान्सुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥ २९ ॥ अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् ॥ प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ॥ प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥ तदाऽऽपतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ॥ तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे रुषाऽन्वितस्त्रिदशपतिः शिरो हरन् ॥ ३१ ॥ न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ॥ तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥ तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥ ३३ ॥ येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ।॥ कृतो निविशतां भारैः पतत्त्रैः पततां भुवि ॥ ३४ ॥ तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ॥ अन्ये चापि बलोपेताः

क्रोधसे व्याकुल हो इन्द्रको मारने के लिये भारी प्रयत्न करने लगा तथा स्वर्णके घण्टोंसे विभूषित अश्मसारमय शूलको लेकर 'तुम मरे, तुम मरे, इसप्रकार ललकारते हुए उसने सिंहके समान नादकर शूल प्रहार किया ॥ २९, ३० ॥ हे नृप, आकाशमें गिरते हुए उस महावेगशाली शूलको इन्द्रने अपने बाणोंसे सहस्र टुकड़े कर डाले और क्रोधान्वित होकर उसके सिरका हरण करते हुए सुरेन्द्रने वज्रसे कन्धेमें प्रहार किया ॥ ३१ ॥ किन्तु इन्द्रसे पराक्रमपूर्वक फेंका गया वज्र अत्यन्त बलवान् होते हुए भी शत्रुकी त्वचाका भी विदारण न कर सका, यह अत्यन्त अद्भुत हुआ। इसप्रकार नमुचिके शिरोधरकी त्वचाने वृत्रके शत्रु महापराक्रमी इन्द्रके अस्त्रका तिरस्कार किया ॥ ३२ ॥ चूँकि शत्रुके प्रति फेंका गया वज्र विफल हो गया, अतः इन्द्र उस शत्रुसे डर गये और कहने लगे—यह लोकका विमोहन करनेवाला दैवयोग से क्या हुआ! ॥३३॥ प्रजाओंके नाशके समय जिस अस्त्रसे मैंने पर्वतोंके पक्षोंका छेदन किया, क्योंकि वे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर्वत पक्षोंके भारसे जमीनपर गिर रहे थे और नीचे धसते जा रहे थे, इसलिये उनका काटना आवश्यक था ॥ ३४ ॥ जिस अस्त्रसे तपस्याके प्रभावसे प्राप्तबल वृत्रासुरको मैंने मारा, और अन्य भी राक्षसोंका जिस अस्त्रसे मैंने विनाश किया, जिनकी अन्य सब अस्त्रोंसे त्वचा अक्षत थी, वह अस्त्र आज इसकी त्वचाका भी विदारण न कर सका यह बड़ा आश्चर्य है ॥ ३५ ॥ वह सामर्थ्यशाली मेरे द्वारा छोड़ा गया अस्त्र एक अल्प राक्षसके विषयमें यदि व्यर्थ हो रहा है, तो मैं व्यर्थ इस लगुड़सदृश दण्ड नहीं धारण करूँगा । अहो, ब्रह्मतेज भी व्यर्थ हो गया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार चिन्तित हो रहे इन्द्रसे आकाशवाणीने कहा—हे इन्द्र यह राक्षस शुष्क तथा आर्द्र अस्त्रों द्वारा नहीं मर सकता ॥ ३७ ॥ क्योंकि मैंने वरदान दे दिया है कि शुष्क तथा आर्द्रसे तेरी मृत्यु नहीं होगी, इसलिये हे इन्द्र, आप इस शत्रुके लिये दूसरा उपाय सोचें ॥ ३८ ॥ इसप्रकार भगवती वाग्देवताके आदेशको सुनकर भगवान् इन्द्रने समाधि लगाकर

सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥३५ ॥ सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ॥ नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥ ३६ ॥ इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी ॥ नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥ ३७ ॥ मयाऽस्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ॥ अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्त उपायो मघवन् रिपोः ॥ ३८ ॥ तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ॥ ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥ ३९ ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ॥ तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥ गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥ अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ॥ वारयामास विबुधान् दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥ नारद उवाच ॥ भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ॥ श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः ॥ उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ ४५ ॥ येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते ॥ बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥ तत्राविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् ॥ उशना

ध्यान करते हुए शुष्क और आर्द्र (उभयात्मक) जलफेन से उसकी मृत्युका उपाय देखा ॥ ३९ ॥ और उन्होंने न शुष्क न आर्द्र जलफेनसे नमुचिका सिर काट डाला तदन्तर मुनिगोंने पुष्पमाला प्रदानकर समर्थशाली उनकी स्तुति की ॥ ४० ॥ गन्धर्व प्रधान विश्वावसु तथा परावसुओंने गान किया । नर्तकियोंने आनन्दसे नृत्य किया और देव दुन्दुभियोंने नाद किया ॥ ४१ ॥ वायु, अग्नि, वरुण प्रभृति देवताओंने भी संग्राममें लड़नेवाले अपने अनेक शत्रु असुरोंको अस्त्र प्रहारसे ऐसे मार गिराया, जैसे मृगोंको केशरी मार गिराते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन्, ब्रह्माजीके द्वारा देवताओंके पास भेजे गये नारदजीने रणभूमिमें आकर असुरोंका नाश देखकर देवताओंको आदेश दिया ॥ ४३ ॥ नारदजीने कहा—भगवान्की भुजाके आश्रयसे आपलोगों ने अमृत प्राप्त किया । आप सब लोग लक्ष्मीसे परिपूर्ण हो और अब युद्धसे विरत हो जाँय ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, बढ़ते हुए क्रोधके वेगको रोककर मुनिके वचनको स्वीकारकर अनुचरों से गीयमान होते हुए देवता सब अपने स्थान स्वर्गको चले गये ॥४५॥ उस युद्धमें जो बचे हुए दैत्य थे वे भी भगवान् नारदके आज्ञानुसार मरे हुए बलि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

को लेकर अस्ताचल पर्वतपर चले गये ॥ ४६ ॥ वहाँपर शुक्रने अविनष्ट अवयव तथा विद्यमान शिरोधरवालों को अपनी सञ्जीवनी विद्यासे जिला दिया ॥ ४७ ॥ और शुक्रके स्पर्शसे इन्द्रियों की स्मृति पाकर लोकतत्त्वको जाननेवाला पराजित होनेपर भी बलि खेदको नहीं प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥

ग्यारहवें अध्याय का सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, विश्वभावन भगवान्की अनुकम्पासे दैत्योंकी मायासे निकलकर इन्द्रादि देवता संग्राममें दैत्योंको मारने लगे। जिस समय देवेन्द्रने बलिको मारनेके लिए वज्र ग्रहण किया उस समय सारी प्रजाएँ हाहाकार करने लगी। इन्द्रने बलिसे कहा—अरे मूर्ख, तुम मायाके स्वामियोंको मायासे अपने वशमें करना चाहते हो। मायासे अब तुम अपनी रक्षा करो। बलिने कहा—संग्राममें लड़नेवाले वीरोंके लिए, जय पराजय तथा मृत्यु स्वाभाविक है। ज्ञानी जय, पराजय तथा मृत्युको दैवाधीन मानते हैं। आप लोग इस ज्ञानसे शून्य प्रतीत हो रहे हैं। यों सुनकर शीघ्रही इन्द्रने वज्रपातकिया, जिससे वह बलि जमीनपर गिर पड़ा। अपने मित्र बलिको गिरे हुए देखकर जम्भने क्रोध कर गदा द्वारा इन्द्र तथा ऐरावतको आहत कर दिया। मातली शीघ्रही हजार घोड़ों वाला रथ लाया। इन्द्र उसपर सवार हुए। जम्भने जलते हुए शूलसे मातलिको मारा मातलिने भी बड़े धैर्यके साथ उसका सहन किया। इन्द्रने वज्र द्वारा जम्भका सिर काट डाला। जम्भकी मृत्युको नारद द्वारा सुनकर नमुचि, बल, पाक नामक राक्षस युद्धस्थलमें पधारे और बड़ी वीरतासे युद्ध करने लगे। इन्द्र उन राक्षसोंके बाणसमूहकी ओटमें घिर गये। देवता लोग इन्द्रको न देखकर तथा असुरोंसे पराजित होकर रोदन करने लगे। तब तक इन्द्रमेघपटलको विदारते हुए बाहर निकले। और क्रोधान्वित होकर वज्रद्वारा बल और पाकका सिर काट डाला। तदनन्तर नमुचिने इन्द्रके ऊपर शूलसे प्रहार किया, किन्तु इन्द्रने उसे खण्डित कर डाला। तदनन्तर इन्द्रने वज्र प्रहार उसपर किया, किन्तु वज्रने उसके त्वचाका भी विदारण नहीं किया, यह देखकर इन्द्र बहुत आश्चर्यान्वित हुए और विषादको प्राप्त होकर वज्र त्याग करनेके लिए उद्यत हो गये। तबतक वाग्देवताने आदेश दिया—यह राक्षस शुष्क तथा आर्द्रसे नहीं मर सकता, क्योंकि मेरा बरदान है, अतः आप दूसरा उपाय करें। इन्द्रने उभयात्मक जलफेनसे उसका सिर काट डाला अग्नि वरुणादि भी अनेक राक्षसों को मार गिराये। मुनिगणोंने इन्द्रकी स्तुति की। विश्वावसु और परावसुओंने गान किया, नर्तकियोंने नृत्य किया। ब्रह्माद्वारा भेजे गये नारदकी आज्ञासे देवता लोग अपने स्थानको चले गये। दैत्य भी मरे हुए बलिको लेकर अस्ताचल पधारे। वहाँ शुक्रने अपनी सञ्जीवनी विद्यासे अविनष्ट अवयव तथा विद्यमान शिरोधर बलीको जीवित कर दिया शुक्रके स्पर्शसे स्मृति प्राप्त कर लोक तत्वज्ञ बलि पराजित होनेसे खेदको नहीं प्राप्त हुआ। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त❀

जीवयामास सञ्जीविन्या स्वविद्यया ॥ ४७ ॥ बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ॥ पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामे एकादशोऽध्यायः ॥

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान ॥ मोहयित्वा सुरगणान् हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥ वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूत-

❀ मोहिनीरूप देखनेके लिये उत्सुक शंकरजीको मोहित करनेके बाद भगवान्की सान्त्वना ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब भगवान् शंकरको यह विदित हुआ कि भगवान्ने स्त्रीरूप धारणकर देवताओंको अमृत पिलाया है और मधुर वचनों द्वारा असुरोंको मोहित कर उन्हें

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अमृतसे वञ्चित किया है ॥ १ ॥ तब भगवान् शंकर वृषपर सवार हो, भगवती पार्वती तथा अपने गणोंके साथ उस रूपको देखनेके लिये वहाँ पहुँचे जहाँ भगवान् मधुसूदन थे ॥ २ ॥ भगवान्ने उमाके साथ शंकरजीकी यथायोग्य पूजाकर आसन प्रदान किया। शंकरजी आसनपर बैठकर भगवान्की भी पूजाकर आदरपूर्वक मुसकुराते हुए कहने लगे ॥ ३ ॥ शंकरजीने कहा—हे देवदेव, जगत् व्यापित, जगदीश, जगन्मय आप सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा तथा हेतु अतः ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ इस जगत्का जहाँसे आदि, मध्य तथा अन्त होता है और जिस अविनाशीका आदि, मध्य तथा अन्त नहीं है वह दृश्य, द्रष्टा, भोग्य भोक्ता और सत्य चिद्रूप ब्रह्म आपही हैं ॥ ५ ॥ मुनिलोग इसलोक तथा परलोक विषयक संगका त्यागकर मोक्षकी इच्छासे आपके ही चरणकमलकी उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ हे भगवन्, आप पूर्ण सुखस्वरूप, विकारशून्य, नित्यानन्दस्वरूप, निर्गुण और विशोक ब्रह्म हैं। किञ्च, ब्रह्मसे व्यतिरिक्तका अभाव होनेपर भी आप निरपेक्ष हैं, सबसे पृथक् हैं संसारके उदय, स्थिति तथा संयमके आप हेतु हैं एवं तदुपाधि जीवोंके आप स्वामी तथा फलदाता हैं। आपको उनसे किसी तरहकी

गणैर्वृतः ॥ सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥ सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ॥ सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥ श्री महादेव उवाच ॥ देवदेव जगद्व्यापिन् जगदीश जगन्मय ॥ सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥ आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिद मन्यदहं बहिः ॥ यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥५॥ तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ॥ विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥६॥ त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ॥ विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥७॥ एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ॥ अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद्गुणव्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥८॥ त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेक एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ॥ अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥९॥ नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ॥ यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः

अपेक्षा न रहनेसे आप निरपेक्ष हैं. अतः आपका ऐश्वर्य केवल प्राणियोंके अनुग्रहके लिये ही है ॥ ७ ॥ हे भगवन्, एकही आप सत्. असत्, कारण, अकारण, कृत, अकृत, भेदसे प्रतीत होते हैं। वस्तुतः आप एकही हैं। चूँकि उपाधिशून्य आपके ही गुणोंके द्वारा भेद हुआ है, स्वतः भेद नहीं है, इसलिये अज्ञानके कारण जिसप्रकार मनुष्य कृतकुण्डलको अकृत सुवर्णसे भिन्न समझते हैं वैसेही आपके विषयमें भी भेदकी कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ हे भगवन्, आपको वेदान्ती लोग परमेश ब्रह्म मानते हैं, मीमांसक धर्म मानते हैं, सांख्यानुयायी प्रकृत-पुरुषसे परपुरुष मानते हैं, पञ्चरात्र सिद्धान्तानुयायी लोग विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—इन नव शक्तियोंसे युक्त पर मानते हैं तथा पातञ्जल लोग आपको अव्यय आत्मतन्त्र महापुरुष मानते हैं ॥ ९ ॥ हे भगवन्, मैं, ब्रह्मा तथा मरीच्यादि ऋषि सत्त्वगुण युक्त होते हुए भी आपकी मायासे मोहितचित्त होकर आपसे रचित इस जगत् तत्त्वको भी नहीं जानते, तो भला आपको कैसे जान सकते हैं और जब हमलोगोंकी यह दशा है, तब दैत्य एवं दानव आपके चरित्रको क्या जाने, जो निरन्तर राजस-तामस वृत्तियोंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभद्रकर्म करते रहते हैं ॥ १० ॥ हे भगवन्, जिस प्रकार वायु आकाश तथा चराचर देहसमूहोंमें प्रवेशकर सबकी जानता है, वैसेही आप भी तदस्वरूप होनेके कारण सबमें व्याप्त होकर इस संसारकी स्थिति, जन्म तथा नाशको, सब भूतोंके मनोरथोंको एवं संसारके बन्धन और मोक्ष सबको जानते हैं ॥ ११ ॥ हे भगवन्, मैंने गुणोंके द्वारा रम्यमाण आपके अनेक अगतारों का अवलोकन किया है। इस समय मैं आपकी वह योषित् अवतार देखना चाहता हूं, जिसे आपने अभी धारण किया है ॥ १२ ॥ जिस अवतारको धारण कर आपने दैत्यों को मोहितकर देवताओंको अमृत पिलाया है, उस अवतारको हम लोग देखना चाहते हैं। उसके लिये हमलोगोंको अत्यन्त कौतूहल हो रहा है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इसप्रकारके शंकरजीका वचन सुनकर हँसते हुए भगवान् गम्भीरभाव युक्त शूलपाणि शंकरसे कहने लगे ॥ १४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—अमृतपात्रके दैत्योंके हाथमें चले जानेपर मैंने देवताओंका कार्य देखकर

॥ १० ॥ स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ॥ वायुर्यथाविशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥ अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ॥ सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२ ॥ येन संमोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवान् शूलपाणिना ॥ प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ॥ पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५ ॥ तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ॥ कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभवोदयम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥ १७ ॥ ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ॥ विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥ १८ ॥ आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तनप्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ॥ प्रभज्यमानामिव अध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥ १९ ॥ दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ॥ स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्कपोल-

दैत्योंके कौतूहलके लिये स्त्रीका रूप धारण किया ॥ १५ ॥ हे सुरसत्तम, देखनेकी इच्छा रखनेवाले आपको में वह रूप दिखा रहा हूं, जिस रूपको देखने से कामी जनोंके हृदयमें काम उत्पन्न हो जाता है, उस रूपको सर्वोत्कृष्ट समझना चाहिए ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार शंकरजीसे कहकर भगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये। भगवती उमाके साथ भगवान् शंकरने चारो ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई, किन्तु कहीं भी भगवान्को नहीं देखा ॥ १७ ॥ विचित्र तरहके पुष्पों तथा रक्तपल्लवोंसे सुशोभित वृक्षोंवाली उपवनमें गेंद खेल रही, विचित्र चमचमा रहे वस्त्रसे परिवेष्टित नितम्बप्रदेशमें स्थित करधनीसे शोभित हो रही, गेद खेलनेमें नीचे ऊपर उछलनेसे कम्पित हुए स्तनों तथा कीमती हारोंके भारसे पद-पद (डेग-डेग) में विभाकर रही-सी, प्रवालके समान कोमल पैरोंसे इधर-उधर चलती हुई, दिशाओंमें घूम रहे कंदुकके चाञ्चल्यसे अत्यन्त उद्विग्न हो रहे तारों से युक्त चंचल बड़ी बड़ी आखोंवाली, कानोंमें पहिने हुए चमकदार कुण्डलोंके द्वारा उल्लसित हो रहे कपोलोंसे तथा नीले केशोंसे मण्डित मुखवाली, पहिने हुए वस्त्रके खिसक रहे भागको मनोहर वामहस्तसे बाँधती हुई, खुल रहे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माथेके बालोंको सम्भालती हुई तथा दाहिने हाथसे गेंदको मारती हुई एवं अपनी मायासे संसारको मोहित करती हुई उस स्त्रीको देखकर कन्दुकलालासे उत्पन्न हुई लज्जाके मारे कुछ मुसकुराहटके सहित किये गये उसके कटाक्षसे मोहित हुए अतएव स्वयं उस स्त्रीका अवलोकन करनेसे तथा उस स्त्रीके भी देखनेसे उद्विग्नमन हुए भगवान् शंकर अपने समीपमें स्थित उमा तथा अपने गणोंको न देख सके। भगवान् अपनेको भी न जान पाये ॥ १८–२२ ॥ उस स्त्रीके हाथसे जब कन्दुक दूर चला गया तब उस कन्दुकके पीछे दौड़ रही उसके करधनी युक्त पतले वस्त्रको वायुने उड़ा दिया। भगवान् शंकरके देखते-देखते वायुने यह कार्य किया ॥ २३ ॥ इसप्रकार सुन्दर कटाक्षवाली, दर्शनीय और मनोहर उस स्त्रीको देखकर उसके कटाक्ष चलानेपर भगवान् शंकरजी उसके साथ रमण करनेकी इच्छा करते हुए उसमें अपना मन लगा दिया।।२४।। उसने अपने रूप से शंकरके ज्ञानका अपहरणकर लिया। भगवान शंकर काम

नीलालकमण्डिताननाम् ॥ २० ॥ श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ॥ विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥ २१ ॥ तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ॥ स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा नात्मानमान्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥ २२ ॥ तस्याः कराग्रात्स तु कन्दुको यदा गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ॥ वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥ २३ ॥ एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ॥ दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥ २४ ॥ तयापहतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः भावान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पद ययौ ॥ २५ ॥ सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ॥ निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ॥२६॥ तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेन्द्रियः ॥ कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः* ॥ २७ ॥ सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् ॥ केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २८ ॥ सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ॥ इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९ ॥ आत्मानं मोचयित्वाऽङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् ॥ प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३० ॥

से विह्वल हो भगवती पार्वतीके देखते हुए भी लज्जारहित होकर उस स्त्रीके समीप चले गये ॥२५॥ भगवान् शंकरको आते हुए देखकर वस्त्ररहित होनेके कारण वह अत्यन्त लज्जित हुई और हँसती हुई वृक्षोंकी ओटमें छिप गई। वहाँ नहीं ठहरी ॥ २६ ॥ चञ्चलेन्द्रिय भगवान् शंकर कामके वशमें होकर उस स्त्रीके पीछे, करेणुके पीछे यूथपके समान चल पड़े ॥२७॥ अत्यन्त वेगसे उसके समीप जाकर उसका केशपाश पकड़कर भुजाओंके द्वारा आलिङ्गन करने लगे, लेकिन वह भागनेकी कोशिश करने लगी ॥ २८ ॥ हे राजन्, करिसे करिणीके समान भगवान् शंकरसे जबर्दस्ती आलिङ्गित होती हुई बिखराये हुये केशपाशवाली इधर-उधर शरीरको करती हुई शंकरकी भुजाओंसे किसीप्रकार अपनेको छुड़ाकर विपुल नितम्बवाली वह

*दृष्टान्त—साक्षात् उमापति शिव जी ने तीसरे नेत्रद्वारा कामदेव को भस्म करने के बाद फिर उसीके वशमें होकर इधर उधर दौड़ने लगे। यह महान् आश्चर्य है।

उत्तर—किसी समय मायाने उनसे वर माँगा था कि मेरे वशीभूत सब हो जायँ—केवल आपको किञ्चित् समय छोड़कर, वही कारण था कि उन्हें भी माया के वशीभूत होना ही पड़ा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌से निर्मित माया भाग चली ॥ २६, ३० ॥ भगवान् विष्णुके अद्भुत कर्मके पीछे भगवान् शंकर शत्रु जैसे कामसे पराजित होकर दौड़े ॥३१॥ करिणीके पीछे दौड़ते हुए कामी यूथपके समान, दौड़ते हुए अमोघवीर्य भगवान् शंकरका वीर्य स्खलित हो गया ॥३२॥ जहाँ जहाँ पृथिवीपर उस महात्मा भगवान् शंकरका वीर्य गिरा वहाँ वहाँ रजत तथा सुवर्णका खान बन गया । इस प्रकार उसके पीछे दौड़ते हुए शंकर सरित, तालाब, वन, उपवन पर्वत तथा जहाँ कहीं ऋषिलोग रहते थे उन्हींके आश्रममें घुस गये ॥ ३४ ॥ हे राजन्, वीर्यके स्कन्दन (चरण) के बाद भगवान् शङ्करने अपनेका देवमायासे विमोहित समझा और दुःखित होते हुए लौट गये ॥ ३५ ॥ इसप्रकार भगवान् शंकरने जगदात्मा अचिन्यवीर्य भगवान्‌के प्रभावका अनुभवकर उनकी मायासे विमोहित होना, यह आश्चर्य न समझा ॥ ३६ ॥ भगवान् मधुसूदन अपने स्वाभाविक शरीरको धारण कर, अपने चरित्रसे खिन्न न हुए तथा लज्जाका

तस्यासौ पदवी रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ॥ प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः ॥ शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ३२ ॥ यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ॥ तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥ सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ॥ यत्र क्वचासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥ ३४ ॥ स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ॥ जडीकृतं नृपश्रेष्ठ सन्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५ ॥ अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ॥ अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥ ३६ ॥ तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ॥ उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ॥ यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥ ३८ ॥ को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान ॥ तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥ सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ॥ मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन् श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः ॥ आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ॥ ४१ ॥ आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ॥ शसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥ अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः ॥ अहं कलानामृषभो विमुह्ये यया

अनुभव न कर रहे शङ्करजीसे प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥३७॥ भगवान्‌ने कहा—हे देवश्रेष्ठ, शंकरजी, यह भाग्यकी बात है कि आप स्त्रीरूप मेरी मायासे विमोहित होकर भी फिर अपने आप अपनी प्रकृतिमें आ गये ॥३८॥ उन-उन अनेक भावोंको उत्पन्न करनेवाली सुदुस्तर मेरी मायाका आपसे अन्य कौन पारकर सकता है । अकृतात्मा तो मेरी मायाके वशमें ही रहते हैं ॥ ३९ ॥ यह त्रिगुणात्मिका मेरी माया यद्यपि काल तथा क्रमशः कालरूप मुझसे मिश्रित है, तथापि आपको पराजित नहीं कर सकती ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् इस प्रकार श्रीवत्साङ्क भगवान् विष्णुसे सत्कृत हो उनसे आज्ञा लेकर प्रदक्षिणाकर अपने गणके साथ शंकरजी कैलासको चले गये ॥ ४१ ॥ हे राजन्, तदन्तर भगवान् शङ्करने परमेश्वरके अंशसे समुद्भूत उस भवानी मायाका चरित्र ऋषियोंके मध्यमें सुनाया ॥ ४२ ॥ शंकरजीने कहा—हे भगवति, परमपुरुष-अज परमेश्वरकी माया तुमने भी देखा है, जिस मायाके वशमें पड़कर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कलाओंमें सर्वश्रेष्ठ मैं भी जब मोहित हो गया, तब पराधीन अन्य जीवोंके लिये क्या कहना है ॥ ४३ । हजारों वर्ष तपस्या करनेके बाद मुझे प्राप्तकर तुमने जिसके विषयमें पूछा है वह यही साक्षात् परमपुरुष हैं, जिसको काल जानता भी नहीं, प्रवेश कहाँ कर सकेगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार मैंने शार्ङ्गधन्वा उस भगवान्के विक्रमका आपसे वर्णन किया, जिस भगवान्ने समुद्रमन्थनमें मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया था ॥ ४५ ॥ संसारके समस्त परिश्रमको नष्ट करनेवाले उत्तमश्लोक भगवान्के इस गुणानुवादको बार बार सुनने तथा सुननेसे मनुष्यका उद्यम कभी भी कहीं नहीं नष्ट होता ॥४६॥ जिसका चरणकमल असज्जनोंका अविषय है, भजनसे जो प्राप्य है, शरणमें आये हुए देवताओंको जिसने अमृतपान कराया, स्त्रीका वेष धारणकर जिससे दैत्योंको मोहितकर दिया तथा जो शरणमें आये हुए अर्थियोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला है उस भगवान् को नमस्कार है ॥ ४७ ॥

वशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥ ४३ ॥ यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समा सहस्रान्त उपारतं वै ॥ स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तेऽभिहितस्तस्य विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ॥ सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाऽचलः ॥ ४५ ॥ एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुश‍ृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ॥ यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥ असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ॥ कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारींस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे शङ्करमायामोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, जब भगवान् शङ्करने सुना कि भगवान् विष्णुने स्त्रीका रूप धारण कर असुरोंको विमोहितकर देवताओंको अमृत पिलाया है तब वे उमा तथा गणोंके साथ भगवान्के धामपर पहुँचे। उन्होंने भगवान्को स्तुतिकर कहा—हे भगवन्, मैंने आपके सभी अवतारोंका अवलोकन किया है, किन्तु जिस स्त्री रूपको धारणकर आपने दैत्योंको विमोहित कि, वह रूप मैंने नहीं देखा, अतः आपका वह रूप भी देखना चाहता हूँ, कृपाकर मुझे दिखलाइये। भगवान्ने कहा—भगवन्, मैं आपको वह रूप दिखलाता हूँ, जिसके देखनेसे कामीजनोंके हृदयमें कामके सङ्कल्पका प्रादुर्भाव हो जाता है। यों कहकर भगवान् शंकरके देखते ही देखते अन्तर्हित हो गये। कुछ देरके बाद विचित्र पुष्प लाल पल्लवोंसे सुशोभित वृक्षोंवाले उपवन में कन्दुक खेलती हुई, नितम्ब प्रदेशमें मेखलासे शोभित हो रही गेंद फेंकनेसे कम्पित हो रहे स्तनोंके भारसे धीरे-धीरे चलती हुई एक स्त्रीको देखकर उसके कटिल-कटाक्षसे मोहित होकर भगवान् शङ्कर सब कुछ भूल गये। गेंद खेलते-खेलते उसके हाथसे गेंद दूर चला गया। उसे लेनेके लिए वेगसे जाती हुई उसका वस्त्र वायुने उड़ा दिया। शङ्करजीने इस अवस्थामें उसे देखकर उसके साथ रमण करनेकी इच्छासे पार्वतीके देखते हुए भी निर्लज्ज होकर उसके समीप चले गये और भागती हुई उसको पकड़ कर भुजाओंके सहारे आलिङ्गन करने लगे। वह किसी प्रकार शङ्करकी भुजाओंसे अपनेको छुड़ाकर भाग गई। शङ्कर भी उसके पीछे कामके विवश होकर दौड़ने लगे। रास्तेमेंही उनका रेत स्कन्दन होने लगा। भूमिपर जहाँ-जहाँ उनका रेत स्कन्दन हुआ वहाँ-वहाँ रजत और सुवर्णका खान बन गया। शङ्करजी दौड़ते-दौड़ते वन, उपवन, पर्वत तथा ऋषियोंके आश्रममें घुस गये। जब उनका रेत स्कन्दन हो गया, तब उन्होंने अपनेको मायासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विमोहित समझा, और खेद करते हुए वहाँसे वे लौट गये। भगवान् भी अपने स्वाभाविक शरीरको धारणकर बैठ गये। तदनन्तर भगवान्ने शङ्करसे कहा—हे शङ्करजी, यह भाग्यकी बात है कि आप मेरी मायासे विमोहित होकर भी पुनः अपनी प्रकृतिमें आ गये। त्रिगुणात्मिका मेरी मायासे आपके अतिरिक्त कोई भी पार नहीं पा सकता, क्योंकि मायामें मैं स्वयं प्रविष्ट रहता हूँ। शङ्करजी आज्ञा लेकर तथा भगवान्की प्रदक्षिणा कर अपने स्थानको आये और उन्होंने ऋषियोंके मध्यमें पार्वतीसे भगवान्की मायाका वर्णन किया। बारहवाँ अध्याय समाप्त॥

॥ सप्तम मन्वन्तरसे लेकर सम्पूर्ण मन्वन्तरोंका पृथक् पृथक् वर्णन ॥

श्रीशुकदेवजीने का—हे राजन्, विवस्वतका पुत्र श्राद्धदेव सप्तम मनु हैं। उनके पुत्रोंको सुनिये॥ १ ॥ जिनके ये नाम हैं—इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग और दिष्ट ॥२॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

श्रीशुक उवाच ॥ मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ॥ सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्या-
तिरेव च ॥ नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥ करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परन्तप
॥ ३ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः ॥ ४ ॥ कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ
गौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥ अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ॥ आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक्
॥ ६ ॥ संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते ॥ भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च ॥ ७ ॥ विवस्वतश्च द्वे जाये विश्व-
कर्मसुते उभे ॥ संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ८ ॥ तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ॥ यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च
सुतान् शृणु ॥ ९ ॥ सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ॥ शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ॥ ॥ १० ॥ अष्टमेऽन्तर आयाते

हे परन्तप, करूष, पृषध्र, वसुमान् आदि दस पुत्र विवस्वत मनुके हुए। इनमें वसुमान् दशम थे ॥ ३ ॥ हे राजन्, उनके समयमें आदित्य, ८ वसु, ११ रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनी-कुमार और ऋभु ये देवता थे और इनके पुरन्दर इन्द्र थे ॥ ४ ॥ उस समय कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सप्तर्षि थे ॥ ५ ॥ हे भगवन्, इस मन्वन्तरमें भी भगवान्ने कश्यपसे अदितिमें अवतार धारण किया, जो वामन नामसे प्रसिद्ध है। वामनरूपधारी भगवान् विष्णु सब भाइयोंमें छोटे थे ॥ ६ ॥ इसप्रकार सात मन्वन्तरोंको कथा मैंने आपको संक्षेपसे सुना दी। अब आगे होनेवाले मन्वन्तरोंकी भी सुनाऊँगा और विष्णुके अंशभूत अवतारोंका भी वर्णन करूँगा॥ ७ ॥ हे राजन्, विवस्वत्की दो स्त्रियाँ थीं।

॥दृष्टान्त—उत्तमकुलोत्पन्न सावर्णिमनुके छोटे भाई सूर्य भगवान के लड़के शनिदेव संसार में रहनेवाले जीवों को क्यों सता रहे हैं।

उत्तर—नास्तिकों और अभिमानी धनिकों को देवों में श्रद्धा न होने के कारण शनिदेव ने ब्रह्मा से वर प्राप्त कर कष्ट द्वारा खर्व स्वाहा कर देते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दोनों विश्वकर्माकी लड़की थीं। उनका नाम संज्ञा और छाया था। जिनका मैंने पहले ही आपसे वर्णनकर दिया है ॥ ८ ॥ कोई बड़वाको तृतीया स्त्री मानते हैं, किन्तु मेरे मतसे संज्ञाका ही बड़वा उपनाम है। संज्ञाके यम, यमी और श्राद्धदेव ये तीन पुत्र हुए। अब छायाके पुत्रोंको बता रहाहूँ, सुनिये—॥ ९ ॥ सावर्णि, तपती और शनैश्चर ये तीन छायाके शरीरसे उत्पन्न हुए। जिनमें तपती कन्या हुई जो संवरणकी स्त्री हुई और अश्विनीकुमार बड़वाके पुत्र हुए ॥ १० ॥ हे राजन्, आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि नाम मनु होंगे और निर्मोक विरजस्कादि दस पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ उस मन्वन्तरमें सुतप, विरजा और अमृतप्रभा ये देवता होंगे। विरोचनका पुत्र बलि उनका इन्द्र बनेगा ॥ १२ ॥ जो सातवें मन्वन्तरमें याचक विष्णुके तीन डेग (तीन पादपर्यन्त) भूमि देकर आठवें मन्वन्तरमें इन्द्रपदका त्यागकर मोक्षको प्राप्तकर लेगा ॥ १३ ॥ जो इस समय भगवान्‌की प्रसन्नतासे स्वर्गसे भी अधिक ऐश्वर्यपूर्ण धरातल (पाताल) में

सावर्णिर्भविता मनुः ॥ निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥ ११ ॥ तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ॥ तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ १२ ॥ दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ॥ राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥ १३ ॥ योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ॥ निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनाऽऽस्ते स्वराडिव ॥१४॥ गलवो दीप्तिमान् रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ॥ ऋष्यशृङ्गः पितास्माकं भगवान्बादरायणः ॥ १५ ॥ इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः ॥ इदानीमासते राजन्स्वे स्वे आश्रममण्डले ॥ १६ ॥ देवगुह्यां सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ॥ स्थानं पुरन्दराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥ १७ ॥ नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसंभवः ॥ भूतकेतुर्दीप्तकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥ १८ ॥ पारामरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः ॥ द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥ १९ ॥ आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ॥ भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥ २० ॥ दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ॥ तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥ हविष्मत्सुकृतिः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ॥ सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शम्भुः सुरेश्वरः ॥ २२ ॥

इन्द्रके समान राज्यकर रहा है ॥ १४ ॥ उस मन्वन्तरमें गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यशृंग और मेरे पिता भगवान् व्यास, ये अपने योगसे सप्तर्षि होंगे। हे राजन्, इस समय ये लोग अपने अपने आश्रम मण्डलमें स्थित हैं ॥ १५, १६ ॥ उस मन्वन्तरमें देवगुह्यसे सरस्वतीमें भगवान् अवतार लेंगे, जो सार्वभौम नामसे प्रसिद्ध होगा और वह सार्वभौम भगवान् इन्द्रसे स्वर्गको छीनकर बलिको दे देंगे ॥ १७ ॥ नवम मन्वन्तरोंमें वरुणसे उत्पन्न दक्षसावर्णिमनु होंगे। भूतकेतु, दीप्तिकेतु आदि उनके दस पुत्र होंगे ॥१८॥ उन मन्वन्तरमें पारामरीचि गर्भादि देवता होंगे, अद्भुत नामक इन्द्र होंगे और द्युतिमत् प्रमुख सप्तर्षि होंगे ॥ १९ ॥ तदनन्तर आयुष्मान्‌से अम्बुधारामें भगवान् ऋषभ नामक अवतार लेकर त्रिलोककी रक्षा करेंगे और अद्भुत इन्द्र बनकर भोग करेंगे ॥ २० ॥ दसम मनु उपश्लोकके पुत्र महान् ब्रह्म सावर्णि होंगे। भूरिषेणादि उनके पुत्र होंगे और हविष्मत् प्रमुख सप्तर्षि होंगे ॥ २१ ॥ हविष्मान्, सुकृत, जय, मूर्ति और सत्य ये ब्राह्मण होंगे, सुवासन, विरुद्धादि देवता होंगे और शम्भु इन्द्र होंगे॥ २२ ॥ विश्वसृक्‌से विषूचीमें सर्वव्यापक भगवान् अपने अंशसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अवतीर्ण होकर शम्भुसे मित्रता करेंगे और विष्वक्सेनावतार नामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ २३ ॥ आत्मज्ञानी धर्मसावर्णि एकादश मनु होंगे और उनके सत्य, जर्मादि दस पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ विहंगम, कामगम, निर्वाणरुचि प्रभृत देवता होंगे, वैधृत नामके इन्द्र होंगे और उनके अरुण आदि सप्तर्षि होंगे ॥ २५ ॥ जिस समय आर्यकसे वैधृतमें भगवान् अवतार लेंगे, जो धर्मसेतु नामसे प्रसिद्ध होगा। धर्मसेतु भगवान् तीनों लोकका धारण करेंगे ॥२६॥ हे राजन्, बारहवें मन्वन्तरमें रुद्रसावर्णि मनु होंगे, उनके देव, अनुपदेव और देवश्रेष्ठ आदि दस पुत्र होंगे ॥ २७ ॥ उस मन्वन्तरमें हरितादि देवता होंगे और ऋतुधामा इन्द्र होंगे। तपोमूर्ति तपस्वी अग्नीध्रक आदि सप्तर्षि होंगे ॥ २८ ॥ सत्यसहासे सुनृतामें स्वधामा नामक भगवान्का अवतार

विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति ॥ जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २३ ॥ मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ॥ अनागतास्तस्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४ ॥ विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ॥ इन्द्रश्च वैधृतस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २५ ॥ आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ॥ वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥ २६ ॥ भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ॥ देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥ २७ ॥ ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः ॥ ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥ २८ ॥ स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ॥ अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९ ॥ मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ॥ चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३० ॥ देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ॥ निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृष यस्तदा ॥ ३१ ॥ देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ॥ योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥ ३२ ॥ मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ॥ उरुगम्भीरबुद्धयाद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥ ३३ ॥ पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति ॥ अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तप स्विनः ॥ ३४ ॥ सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः ॥ वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥ ३५ ॥ राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकाला नुगतानि ते ॥ प्रोक्तान्योभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥ ३६ ॥ (चतुर्दशमनूनां च कथां यः कीर्तयेन्नरः ॥

होगा और स्वधामा भगवान् उस मन्वन्तरकी रक्षा करेंगे ॥ २९ ॥ तेरहवें मन्वन्तरमें आत्मवान् देवसावर्णि मनु होंगे, उनके चित्रसेन, विचित्र आदि दस पुत्र होंगे ॥ ३० ॥ सुकर्म और सुत्राम संज्ञक देवता होंगे, दिवस्पति इन्द्र होंगे और उस समय निर्मोकतत्त्व दर्श आदि सप्तर्षि होंगे ॥३१॥ देवहोत्रकी भार्या बृहतीमें भगवान् योगेश्वर नामक अवतार धारण करेंगे। यह अवतार दिवस्पति इन्द्रके लिये उपकारक होगा अर्थात् उनके इन्द्रत्वका सम्पादक होगा ॥ ३२ ॥ इन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु होंगे, जिसके उरू, गम्भीर और बुद्ध्यादि पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥ उस मन्वन्तरमें पवित्र चाक्षुषादि देवता होंगे और शुचि इन्द्र होंगे एवं अग्निबाहु, सुचि, शुद्ध तथा मागध आदि तपस्वी होंगे ॥ ३४ ॥ उस समय सत्रायणकी स्त्री वितानामें भगवान् अवतार धारण करेंगे, जो कि बृहद्भानु नामसे प्रसिद्ध होगा और वह अवतार क्रियामार्गका विस्तार करेगा ॥३५॥ हे राजन्, तीनों कालमें होनेवाले इन चौदह मन्वन्तरोंका मैंने आपसे वर्णन कर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिया। इन्हीं चौदह मन्वन्तरोंसे ही युगसहस्रके प्रमाणकी कल्पना होती है ॥ ३६ ॥

तेरहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, विवस्वतका पुत्र श्राद्धदेव वर्तमान सातवाँ मनु है। इससे इक्ष्वाकु प्रभृति दस पुत्र हैं। और आदित्य, वसु, रुद्र आदि देवता हैं। पुरन्दर इन्द्र तथा कश्यप आदि सप्तर्षि हैं। इन मन्वन्तरमें भगवान्ने वामन नामक अवतार धारण किया है। हे राजन्, अब भविष्यके मन्वन्तरोंका वर्णन सुनिये-आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि नामक मनु, निर्मोक आदि उनकेपुत्र; सुतप, विरज आदि देवता और इन्द्र होंगे उस मन्वन्तरमें गालव, परशुराम आदि सप्तर्षि होंगे, इस समय ये लोग अपने अपने मण्डलमें स्थित हैं। नवें मन्वन्तर में दक्षसावर्णि मनु, भूतकेतु, दीप्ति आदि उसके पुत्र, पारामरीचि गर्भादि देवता और अद्भुत इन्द्र होंगे। आयुष्मान्से अम्बुधारामें भगवान् अवतार लेकर तीनों लोककी रक्षा करेंगे दसवें मन्वन्तरमें ब्रह्म सावर्णिमनु भूरिषेणादि उसके पुत्र सुकृत, सत्य प्रभृति सप्तर्षि, सुवासन आदि देवता और शम्भु नामक इन्द्र होंगे। उस मन्वन्तरमें विसूचीके गर्भसे विश्वक्सेनावतार होगा। ग्यारहवें मन्वन्तरमें धर्मसावर्णि मनु, सत्य धर्मादि उनके पुत्र, वैधृति नामक इन्द्र और अरुणादि देवता होंगे। उस समय भगवान् आर्यककी स्त्री वैधृतिमें अवतार लेंगे। बारहवें मनु रुद्र सावर्णि, देव श्रेष्ठादि उनके पुत्र ऋतधामा नामक इन्द्र और हरितादि देवता होंगे। सुनृताके गर्भसे स्वधामा नामक भगवान्का अवतार होता। तेरहवें मन्वन्तरमें देवसावर्णि मनु चित्रसेन आदि उनके लड़के और दिवस्पति इन्द्र होंगे। देवहोत्रकी स्त्री बृहतीके गर्भसे भगवान्का अवतार होगा चौदहवें मनु इन्द्रसावर्णि, उनके उरुगम्भीर आदि पुत्र पवित्र आदि देवता और शुचि इन्द्र होंगे तथा अग्नि, बाहु आदि तपस्वी होंगे। सत्रायणकी स्त्री वितानाके गर्भसे बृहद्भानु नामक अवतार होता। हे राजन्, यों चौदह मन्वन्तरोंसे ही युगसहस्रके प्रमाणकी कल्पना होती है। तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥

शृणुयाद्वापि राजेन्द्र तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥ ३७ ॥) इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अ० मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

❀ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे ॥ यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ॥ इन्द्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥ यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ॥ मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥३॥ चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुतिगणान्यथा ॥ तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥ ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो

❀ भगवान् श्रीविष्णुके वशवर्त्ती सम्पूर्ण मनु आदिके पृथक् पृथक् वर्णन ❀

राजा परीक्षित्ने कहा—हे भगवन्, मन्वन्तरोंमें मन्वादिमनु जिसके द्वारा जिस कर्ममें नियुक्त किये गये हैं, उसे आप मुझे सुनाइये ॥ १ ॥ ऋषि शुकदेवजीने कहा-हे राजन्, मनु, मनुके पुत्र, सप्तर्षि, इन्द्र तथा देवगण ये सभी पुरुषेश्वरके शासनमें रहते हैं ॥ २ ॥ हे राजन्, पुरुषेश्वर भगवान्के जिन यज्ञादि अवतारोंका मैंने वर्णन किया है, उन्हींसे अपने-अपने कर्ममें नियुक्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होकर ये मन्वादि जगत् यात्राका नयन करते हैं ॥ ३ ॥ चतुर्युगके अन्तमें कालसे ग्रस्त श्रुतिगणों वेदोंको ऋषिलोग तपस्याके प्रभावसे देखते हैं, जिनसे सनातन धर्म लोप नहीं होने पाता क्योंकि धर्मोपदेशक वेद ही हैं ॥ ४ ॥ उसके बाद भगवान्‌की प्रेरणासे मनुलोग चतुष्पाद युक्त धर्मका प्रचार करते हैं और अपने-अपने समयमें राजा लोग संयत होकर पृथ्वीका पालन करते हैं ॥५॥ मनुके पुत्र उन धर्मोंकी रक्षा तबतक करते हैं जबतक मन्वन्तरका अवसान नहीं होता। मनुके पुत्रोंके बाद उनके पौत्र उनका कार्य करते हैं। इसप्रकार पुत्र पौत्रादिसे क्रमसे धर्मकी रक्षा होती है और देवता लोग अन्य द्यावापृथिव्यादि देवता जिस कर्ममें भोक्ताके रूपसे अन्वित रहते हैं उनके साथ यज्ञभाग भोजी बनते हैं ॥ ६ ॥ भगवान्‌के द्वारा दिये गये ऐश्वर्यका भोग करते हुए इन्द्र तीनों लोककी रक्षा करते हैं और समय-समयपर वर्षा बरसाते हैं ॥७॥ भगवान् हरि सनकादि सिद्धोंका रूप धारणकर प्रत्येकयुगमें ज्ञानका, याज्ञवल्क्यादि ऋषियोंका रूप धारण कर कर्मका तथा दत्तात्रेयादि योगेशका रूप धारणकर योगका उपदेश देते हैं ॥ ८ ॥ मरीच्यादि प्रजापतियोंका रूप धारणकर भगवान् सृष्टि करते हैं, राजाका रूप धारण कर चोर और बदमाशोंको दण्ड देते हैं तथा कालरूप धारण कर शीतोष्णादि गुण सम्पन्न होकर सबका नाश करते हैं ॥ ९ ॥ नामरूपात्मिका मायासे विमोहित आत्मावाले जनोंको

हरिणोदिताः ॥ युक्ताः सञ्चारयन्त्यद्धा स्वे काले महीं नृप ॥ ५ ॥ पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः ॥ यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रा-
न्विताश्च तैः ॥ ६ ॥ इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ॥ भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥ ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते
हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ॥ ऋषिरूपधरः कर्मयोगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥ सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः ॥ कालरूपेण सर्वेषामभवाय
पृथग्गुणः ॥ ९ ॥ स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया ॥ विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥ १० ॥ एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं
परिकीर्तितम् ॥ यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥ इति श्रीमद्भा० म०पु ० अ० चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

नाना दर्शनों तथा शास्त्रोंसे निरूप्यमाण होनेपर भी दिखाई नहीं देवे॥१०॥ यह अवान्तर कल्पका प्रमाण मैंने आपको बतला दिया, जिसमें पौराणिक लोग चौदह मन्वन्तर बतलाते हैं ॥११॥

चौदहवें अध्यायका सार—परीक्षित्‌ने प्रश्न किया—हे भगवन्, मन्वन्तरोंमें मन्वादि किसके द्वारा किस कर्ममें नियुक्त किये जाते हैं और नियुक्त होकर क्या करते हैं इसे आप सुनाइये—श्रीशुकदेवजीने कहा—मनु तथा मनुके पुत्र आदि पुरुषेश्वर भगवान्‌के शासनमें रहते हैं। भगवान् अपने यज्ञादि अवतारोंके द्वारा इनको अपने अपने कर्ममें नियुक्त करते हैं। प्रलयकाल कालसे ग्रस्त वेदोंको मुनि लोग तपस्यासे देखते हैं, जिनसे सनातन धर्मकी रक्षा होती है। भगवान्‌से प्रेरित होकर मन्वादि चतुष्पाद धर्मका संसारमें प्रचार करते हैं मनुके पुत्र-पौत्रादि उस धर्मकी रक्षा हैं। देवता लोग यज्ञमें भाग पाते हैं। इन्द्र भगवान्‌से प्राप्त ऐश्वर्यका भोग करते हुए तीनों लोकका पालन करते हैं और समय समय पर वृष्टि करते हैं। भगवान् विष्णु सनकादिका वेष धारण कर प्रत्येक युगमें ज्ञानका याज्ञवल्क्यादिरूपसे कर्मका, तथा दत्तात्रेयादि रूपसे योगका उपदेश देते हैं। मरीच्यादि प्रजापतिरूपसे सृष्टि करते हैं राजाका रूप धारण कर चोर बदमाशोंको दण्ड देते हैं। कालका रूप धारण कर प्राणियोंका नाश करते हैं मायासे विमोहित जनोंको अनेक दर्शनों तथा शास्त्रोंसे स्तुति होनेपर भी भगवान् दिखाई नहीं देते। यों मैंने अवान्तर कल्पका प्रमाण आपको बतला दिया। चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे भगवन्, भगवान्‌ने कृपणके समान तीन डेग भूमिके लिये राजा बलिसे क्यों याचना की और भूमि प्राप्तकर लेनेपर उन्हें क्यों बाँध दिया ॥१॥ यह मैं जानना चाहता हूँ और मुझे इसके लिये अत्यन्त कौतूहल है कि यज्ञेश्वर पूर्ण भगवान्‌ने विना अपराधके बलिको क्यों बाँधा ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, लक्ष्मीको पराजित करनेवाला बलि इन्द्रके द्वारा युद्धमें अपने प्राणोंसे त्यक्तकर दिया गया। तदनन्तर भृगुवंशियोंने उसे जिलाया। जीवित होकर शिष्य उस महात्मा बलिने अर्थदानसे भृगुवंशियोंकी सर्वात्मना सेवा की ॥ ३ ॥ उसकी सेवासे प्रसन्न होकर भृगुवंशी ब्राह्मणोंने स्वर्ग जीतनेकी इच्छावाले बलिसे 'विश्वजित् नामक यज्ञ' कराया और उस यज्ञमें उन महानुभावोंने विधिवत् बलिका महाभिषेक

❀ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ॥ भूतेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः ॥ यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो हीन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः ॥ सर्वात्मना तानभजद्भृगून्बलिः शिष्यो महात्माऽर्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥ तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ॥ जिगीषमाणं विधिनाभिषिच्य महाभिषेकेण महानुभावः ॥ ४ ॥ ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ॥ ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥ धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ॥ पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥ एवं स विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥ अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ॥ सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥ हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥ तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ॥ पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥ वृतो

किया ॥ ४ ॥ हविष्के द्वारा हवन करनेपर अग्निसे सुवर्णपट्टसे बँधा हुआ इन्द्रके अश्वोंके समान अश्व और सिंहके चिह्नसे चिह्नित ध्वजायुक्त रथ प्रादुर्भूत हुआ ॥५॥ सुवर्णसे बद्ध दिव्य धनुष, अक्षय्य बाणवाला तरकस और दिव्य कवच ये सभी अग्निसे निकले। पितामह प्रह्लादने आम्लान पुष्पोंकी एक माला प्रदान की। शुक्रने शंख दिया ॥ ६ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके द्वारा युद्ध सामग्रीका सम्पादन हो जानेपर बलिने ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन कराकर उन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणाकर प्रणाम करनेके बाद उनसे पूछकर प्रह्लादको प्रणाम किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर धनुष, तलवार और तरकस धारण किये हुए, सुन्दर मालासे विभूषित सुवर्णके विजायठ बाहुमें पहने हुए तथा चमक रहे कानोंमें मकर कुण्डलसे युक्त वह महारथ बलि भृगु द्वारा दिये गये दिव्य रथपर आरूढ़ होकर कुण्डस्थ अग्निके समान शोभने लगे ॥ ८, ९ ॥ अपनी आँखोंसे आकाशको पी रहे तथा दिशाओंको जला रहे जैसे तुल्य ऐश्वर्य, बल और श्रीसे सम्पन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने यूथों तथा दैत्य यूथपतियोंसे घिरे हुए राजा बलि महती आसुरी सेनाके साथ आकाश तथा पृथिवीको कम्पित करते हुए-से अत्यन्त समृद्ध इन्द्रपुरीको छले ॥ १०, ११ ॥ वह इन्द्रपुरी श्रीसम्पन्न नन्दन आदि उपवनों तथा उद्यानोंसे अत्यन्त रमणीय थी। जिन उद्यानों तथा उपवनोंमें चिड़ियाँ चहचहाती और मतवाले भौंरे गुञ्जार करते रहते हैं ॥ १२ ॥ जिनमें प्रवाल आदिके भारोंसे झुकी हुई शाखाओंवाले अनेक अमर वृक्ष हैं। हंस, सारस, चक्रवाक और कारण्डव नामक पक्षियोंके समूहोंसे व्याप्त जहाँ अनेक तालाब हैं तथा उन तालावोंमें देवताओंसे सेवित स्त्रियाँ बराबर क्रीडाएँ करती रहती हैं ॥ १३ ॥ जो परिखाभूत आकाशगंगासे वेष्टित है। और जो ऐसे सौवर्णप्राकारोंसे आवृत है, जिनके ऊपर अनेक युद्धस्थान बनाये गये हैं ॥ १४ ॥ जो अच्छे कपाटोंसे सुशोभित है तथा जिसमें स्फटिकमय पुरद्वार हैं। जिसमें अनेक विभक्त राजमार्ग हैं और जो विश्वकर्मासे निर्मित है ॥ १५ ॥ जो उपवेश स्थानों, आङ्गनों और उपमार्गों (गलियों) से युक्त है। दसकोटिविमानोंसे युक्त हीरा तथा विद्रुम जटित चबूतरोंसे समन्वित अनेक चौमुहानियोसे जो सुशोभित है ॥ १६ ॥

विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ॥ ययाविन्द्रपुरीं स्नृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥ रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ १२ ॥ प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ॥ हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ॥ नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः सुरसेविताः ॥ १३ ॥ आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया ॥ प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४ ॥ रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ॥ जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ॥ शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥ यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ॥ भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥ १७ ॥ सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम् ॥ यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥ १८ ॥ हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना ॥ पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥ मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम् ॥ शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥ २० ॥ मृदङ्गशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ॥ नृत्यः सवाद्यैरुपदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१ ॥

जिसमें नित्य तारुण्य अवस्था और सौकुमार्यरूप धारण कर सफेद वस्त्रों तथा अनेक आभूषणादिकोंसे सुशोभित रूपवती षोडशवर्षीया अनेक स्त्रियाँ अर्चिसे सुशोभित, अग्निकी नाईं प्रकाश करती रहती हैं ॥ १७ ॥ जहाँ वायु देवताओंकी स्त्रियोंके केशोंसे पतित स्थल चम्पाके पुष्पोंकी मालाओंके आमोदको ग्रहण कर मार्गको सुशोभित करता रहता है ॥१८॥ सुवर्णके गवाक्षोंसे निकलते हुए अगरकी गन्धयुक्त धूमोंसे व्याप्त मार्गसे जहाँ देवाङ्गनाएँ विचरण करती हैं ॥ १९ ॥ मुक्तामय वितानों, मणि और सुवर्णमय पताकाओं तथा नानाविध पताकाओंसे युक्त वलभियोंसे समन्वित विमानोंके पुरोभागोंसे जो व्याप्त है। जहाँ वैमानिकोंकी स्त्रियोंका सदा सुन्दर मंगलगान होता है तथा जहाँ निरन्तर मयूर, कपोत और भ्रमर आदि गान करते रहते हैं ॥ २० ॥ मृदंग, शंख, आनक और दुन्दुभिके शब्दोंसे तालके सहित बीणा, मुरज, ऋष्टि तथा वेणुके रवोंसे एवं वाद्यके सहित गन्धर्वादिकोंके गानोंसे जो मनोरम है तथा अपनी प्रभासे जिसने दीप्ति-अधिष्ठातृ देवताकी प्रभा जीतली है ॥ २१ ॥ जहाँ पापी, सठ, भूतद्रोही, मानी तथा कामीपुरुष नहीं जाते, किन्तु अधर्मके इन हेतुओंसे हीन धार्मिक व्यक्ति ही जाते हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २२ ॥ उस देव राजधानी स्वर्गपुरीको बलिने अपने सैन्यसे घेर किया और स्त्रियोंको भय उत्पन्न करते हुए भृगुसे दिया गया महाशब्दवाला शंख बजाया ॥ २३ ॥ भगवान् इन्द्रने बलिके उस भयंकर आक्रमणोंको जानकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ गुरुके समीप जाकर कहा ॥ २४ ॥ हे भगवन्, पूर्व वैरी बलिने पुनः महान् आक्रमण किया है, इस आक्रमणको हमलोग असह्य समझते हैं। न जाने, किस कारणसे इसे इतना तेज प्राप्त हो गया है ॥ २५ ॥ दिशाओंको मुखसे पी रहे जीभसे चाट रहे और नेत्रोंसे जला रहे—जैसे प्रलयकालके अग्निके समान प्रवृत बलिके समान कोई कहींसे भी लड़नेके लिये समर्थ नहीं हो रहा है ॥ २६ ॥ दुर्धर्ष मेरे शत्रु बलिके उत्थानका कारण मुझे बतानेकी कृपा करें। किस कारणसे इसे ऐसा बल,

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ॥ मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत् ॥ २२ ॥ तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समन्ताद्रुरुधे पृतन्यया ॥ आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम् ॥ २३ ॥ मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ॥ सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥ २४ ॥ भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः पूर्ववैरिणः ॥ अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः ॥ २५ ॥ नैनं कश्चित्कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ॥ पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ॥ दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥ २६ ॥ ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ॥ ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥ २७ ॥ गुरुरुवाच ॥ जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ॥ शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८ ॥ भवद्विधो भवान्वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ॥ नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥ २९ ॥ तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥ ३० ॥ एष विप्रबलोदर्कः संप्रत्यूर्जितविक्रमः ॥ तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्ष्यति ॥ ३१ ॥ एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणाऽर्थानुदर्शिना ॥ हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥ ३२ ॥ देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ॥ देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥ तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ॥ शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ ३४ ॥ ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ॥ कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेजे उडुराडिव ॥३५॥

तेज और ओज प्राप्त हो गया है ॥ २७ ॥ गुरुने कहा—हे इन्द्र, मैं आपके इस शत्रु बलिके उत्थानका कारण जानता हूँ। ब्रह्मवादी भृगुओंने अपने शिष्य बलिकी वृद्धिके लिये अपना तेज बलिमें निहित कर दिया है ॥२८॥ भगवान्को छोड़कर आप तथा आपके सामान अन्य कोई भी उसके सामने ठहरनेमें उस प्रकार समर्थ नहीं है, जिस प्रकार यमके सामने कोई पुरुष ठहरनेमें समर्थ नहीं है ॥ २९ ॥ इसलिये आप सब लोग स्वर्ग छोड़कर दूसरे स्थानको चले जायँ और कुछ कालतक शत्रुके विपर्ययकी प्रतीक्षा करें ॥ ३० ॥ इस समय बलि ब्राह्मणोंकी कृपासे अत्यन्त बलवान् हो गया है। कुछ समयके बाद उन ब्राह्मणोंके अपमानसे सानुबन्ध नष्ट हो जायगा ॥ ३१ ॥ कार्योंके विषयमें भली भांति विचार करनेवाले अपने गुरुसे आज्ञापित होकर देवतालोग अपनी इच्छासे रूप धारण कर वहां से भागकर अन्यत्र चले गये ॥३२॥ देवताओंके भाग जानेपर बलिने इन्द्रके स्थानको प्राप्त कर तीनों लोक अपने वशमें कर लिये ॥३३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पञ्चदशोध्यायः ॥ १५ ॥

शिष्यवत्सल भृगुवंशियोंने ऐन्द्रपदको स्थिर करानेके लिये बलिसे 'अश्वमेधयज्ञ' कराना प्रारम्भ किया ॥ ३४ ॥ उस यज्ञमें प्रभावसे तीनों लोकमें विख्यात अपनी कीर्तिको दिशाओंमें फैलाते हुए चन्द्रमाके समान वह राजा बलि शोभने लगे ॥३५॥ और महामना राजा बलि अपनेको कृतकृत्य मानते हुए ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे प्राप्त समृद्ध ऐश्वर्यका भोग करने लगे ॥३६॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार—परीक्षितने कहा—हे भगवन्, भगवान्ने कृपणके समान राजा बलिसे तीन डेग भूमिकी याचना क्यों की और भूमि प्राप्तकर लेनेपर उन्हें क्यों बाँधा, यह कहिये। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब देवासुरसंग्राममें इन्द्र पराजित हुए बलिका दैत्योंने भी त्यागकर दिया, तब भगवान् भृगुने संजीवनी विद्यासे बलिको जिलाया। जीवित होकर बलिने भृगुवंशियोंकी सर्वात्मना सेवा की। सेवासे प्रसन्न होकर भृगुवंशियोंने बलिको ऐन्द्रपद प्राप्त करानेके लिये 'विश्वजित् नामक' यज्ञ कराया। यज्ञमें हविष् हवन करनेपर अग्निसे सुवर्ण, मणि इत्यादि धातुओंसे रचित रथ तथा इन्द्रके समान अश्व और सिंहके चिह्नसे चिह्नित ध्वजा प्रादुर्भूत हुई। अग्निदेवने धनुष, तरकस और कवच बलिको दिया प्रह्लादने पुष्पमाला और शुक्रने शंख दिया। इस प्रकार विप्रोंसे अस्त्र प्राप्तकर बलि ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा कर अपने पितामह प्रह्लादको नमस्कार कर अग्निसे प्राप्त रथपर सवार हो यूथपोंके साथ कुण्डस्थित अग्निके समान शोभित होने लगे। महती आसुरी सेनाके साथ राजा बलिने अपनी आँखोंसे आकाशको पीते हुए दिशाओंको जलते हुए और पृथिवीको कापाते हुए अनेक पुष्प फलयुक्त वृक्षोंसे तथा हंस, चक्रवाक, सारस, कारंडादि अनेक पक्षिगणोंसे व्याप्त उपवन तथा उद्यानसे रमणीय स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। और देवराजधानी स्वर्गको प्राप्तकर अपने सैन्यसे उसे घेर लिया तथा गुरु शुक्रसे प्राप्त शंख बजाया, जिससे देवताओंकी स्त्रियाँ कम्पित हो गईं। इन्द्र इसप्रकार बलिके तेज और बलको देख देवताओंके साथ बृहस्पतिके समीप गये। उनसे उन्होंने बलिके तेज और बलका कारण पूछा। बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र, शुक्रने अपने शिष्य बलिके अभ्युदयके लिये अपना तेज बलिमें निहितकर दिया है, अतः इस समय भगवान्के अतिरिक्त कोई भी उससे संग्राम करनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये आप देवताओंके साथ कुछ दिन के लिये स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र अपना रूप बदलकर निवास करें और शत्रु के विपर्ययकी प्रतीक्षा करें। जिन ब्राह्मणोंके तेजसे आज राजा बलिने इतना प्रभुत्व पाया है, उन्हीं ब्राह्मणोंके अपमानसे यह स्वयं कालान्तरमें विनष्ट हो जायगा। देवताओंने आज्ञा पाकर स्वर्ग छोड़ दिया और अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारणकर अन्यत्र चले गये। बलिने इन्द्रका स्थान लेकर तीनों लोकको अपने वशमें कर लिया। भृगुवंशियोंने बलिके ऐन्द्रपदको स्थिर करानेके लिये 'अश्वमेधयज्ञ' कराना प्रारम्भ किया, जिसके प्रभावसे राजा बलि तीनों लोकमें विख्यात कीर्तिको प्राप्तकर चन्द्रमाके समान सुशोभित होने लगे। पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ षोडशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ॥ हते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥ एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवान्-

❀ पुत्रोंके नाशसे चिन्ताकर रही अदितिको उसके पति कश्यपजीके द्वारा पयोव्रतका उपदेश—यह वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार पुत्रोंके नष्ट हो जाने और स्वर्गको दैत्योंसे अपहृत हो जानेसे देवमाता अदिति अत्यन्त अनाथवत् सन्तप्त हुई ॥१॥ चिरकालसे समाधिसे विरत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कश्यप ऋषि एक समय घूमते-घूमते अदितिके आश्रमपर पहुँचे, तो उन्हें आश्रम निरुत्सव तथा अरमणीय प्रतीत हुआ ॥ २ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, अदितिसे दिये गये आसनको ग्रहणकर कश्यपजीने दीनवदना अदितिसे न्यायके अनुसार यह पूछा ॥३॥ हे प्रिये, इस समय ब्राह्मणोंके धर्ममें किसी प्रकारकी बाधा तो नहीं हुई अथवा मृत्युके वशीभूत संसारका कोई अमंगल तो नहीं हुआ ॥ ४ ॥ हे गृहमेधिनी, क्या घरमें त्रिवर्गके लिये कोई अमंगल तो नहीं हुआ, जिस धर्म, अर्थ और काममें अयोगियोंको भी अपने धर्मादिसे योगका फल होता है ॥५॥ क्या कोई अतिथि आकर तुम्हारे गृहकार्यमें व्यग्र रहनेके कारण बिना पूजित हुए ही लौट तो नहीं गया। अथवा क्या तुमने घरपर आये हुए किसीका प्रत्युत्थान नहीं किया ॥ ६ ॥ क्योंकि जिसके घरसे अतिथि आसन और जलमात्र न पानेसे असन्तुष्ट होकर लौट जाता है वह घर सियारके घरके समान है ॥७॥ हे भद्रे, मेरे चले जानेसे उद्विग्न होकर क्या तुमने होमकालमें हविष्से

गात् ॥ निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥ स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ॥ सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥
अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुना गतम् ॥ न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ अपि वाऽकुशलं किञ्चिद् गृहेषु गृहमेधिनि ॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥ अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटु म्बासक्तया त्वया ॥ गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा
क्वचित् ॥ ६ ॥ गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ॥ यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥ अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता
हविषा सति ॥ त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥ यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ॥ ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः
सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥ अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ॥ लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥ १० ॥ अदितिरुवाच ॥
भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ॥ त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥ अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ॥
सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥ १२ ॥ को नु मे भगवान्कामो न संपद्येत मानसः ॥ यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते
॥ १३ ॥ तवैव मारीच मनःशरीरजाः प्रजा इमाः सत्वरजस्तमोजुषः ॥ समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥

कभी हवन नहीं किया ॥ ८ ॥ ब्राह्मण और अग्नि सर्वदेवात्मा विष्णुके मुख हैं, अतः इनकी पूजा करनेसे गृहस्थको स्वर्गादिलोक प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ हे मनस्विनि, तुम्हारे सब पुत्र तो सकुशल हैं न, क्योंकि मुख म्लानादि कारणोंसे मैं तुम्हें अस्वस्थ देख रहा हूँ ॥ १० ॥ अदितिने कहा–हे ब्रह्मन्, गौ, ब्राह्मण धर्म तथा इस प्राणीका भी कल्याण है और हे गृहमेधिन्, ये घर भी त्रिवर्गके साधनोंसे परिपूर्ण हैं ॥ ११ ॥ अग्नि, अतिथि, भृत्य, भिक्षुक तथा लिप्सजन भी सन्तुष्ट हैं, हे ब्रह्मन्, ऐश्वर्यशाली आपके ध्यानयोगसे जो कुछ मैं करती हूँ उससे किसीकी भी हानि नहीं है ॥ हे भगवन्, हे प्रजाध्यक्ष, आप जिससे धर्म चर्चाकर रहे हैं उसका कौन-सा मानस मनोरथ है, जो सिद्ध नहीं होगा। अर्थात् उसके सभी मनोरथ सफल हैं ॥ १३ ॥ हे मारीच, आपके शरीर तथा मनसे ही सत्त्व, रज और तम गुण संयुक्त संपूर्ण प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं। हे प्रभो, यद्यपि असुर आदि उन सबमें आपका समान भाव है, तथापि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माहेश्वर तो अपने भक्तजनोंपर विशेष करके दया रखते ही हैं ॥ १४ ॥ इसलिये हे स्वामिन्, हे सुव्रत, भजनशीला अपनी दासीके कल्याणके विषयमें विशेष विचार करें। शत्रुओंने मेरा स्थान तथा मेरी लक्ष्मीका हरण कर लिया है, इसलिये हे प्रभो, आप शत्रुओंसे मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ प्रबल दैत्योंने ऐश्वर्य, श्री, यश तथा मेरा स्थान छीन लिया है उन लोगोंके द्वारा निवासित हुई मैं दुःख सागरमें निमग्न हो रही हूँ ॥१६॥ हे साधो, हे कल्याणसत्तम, मेरे पुत्र जिसप्रकार दैत्योंसे अपहृत ऐश्वर्य, श्री तथा साधन पुनः प्राप्तकर लें वैसा उपाय आप अपनी बुद्धिसे निश्चित करें ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार आदितिके प्रार्थना करनेपर कश्यपने कहा-अहो, यह सारा जगत् स्नेहसे बद्ध है, यह भगवान् विष्णुकी माया अतीव दुस्तर है ॥ १८ ॥ यह पाञ्चभौतिक जड़ शरीर कहाँ और प्रकृतिसे परे आत्मा ? किसके कौन पति तथा पुत्र आदि हैं ? मोहही इसमें कारण है ॥ १९ ॥ सब प्राणियोंके

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत ॥ हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥ १५ ॥ परैर्विवासिता साऽमग्ना व्यसनसागरे ॥ ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥ यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ॥ तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ॥ अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥ १८ ॥ क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ॥ कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ १९ ॥ उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् ॥ सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥ २० ॥ स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः ॥ अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥ २१ ॥ अदितिरुवाच ॥ केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ॥ यथा मे सत्यसङ्कल्पो विदध्यात्स मनोरथम् ॥ २२ ॥ आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ॥ आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥ २३ ॥ कश्यप उवाच ॥ एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ॥ यथाऽह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥ २४ ॥ फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयाऽन्वितः ॥ २५ ॥ सिनीवाल्यां मृदालिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ॥ यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥ त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थान-

हृदयके अन्दर निवास करनेवाले जगद्गुरु भगवान् जनार्दन की उपासना करो ॥ २० ॥ दीनबन्धु भगवान् ही तुम्हारे मनोरथोंको पूर्ण करेंगे, क्योंकि भगवद्भक्ति कभी भी व्यर्थ नहीं होती, यह मेरी धारणा है ॥ २१ ॥ अदितिने कहा-हे ब्रह्मन्, मैं किसप्रकार भगवान् जगदीशकी उपासना करूँ, जिससे वे सत्यसङ्कल्प भगवान् मेरे मनोरथको पूर्ण करें ॥ २२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ, भगवद्‌उपासनाकी विधि आप बतावें, जिससे पुत्रोंके साथ दुःख पा रही मेरी भगवान् शीघ्र रक्षा करें ॥ २३ ॥ कश्यपने कहा-हे अदिते, प्रजाओंकी कामनासे मेरे पूछनेपर भगवान् ब्रह्माने जो व्रत मुझे बताया था, वह हरितोषक व्रत मैं तुम्हें आज बता रहा हूँ ॥ २४ ॥ फाल्गुनशुक्लपक्षमें बारह दिनतक पयोव्रत रहकर परमभक्तिसे युक्त हो करके भगवान्का पूजन करे ॥ २५ ॥ यदि मिल सके, तो अमावस्याके दिन वनमें होनेवाले वराहसे विदीर्ण मिट्टी लेकर आलेपकर नदी आदिमें स्नान करे ॥ २६ ॥ आलेपनमें यह मन्त्र पढ़े-हे देवि, तुम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदि वराहकी रसासे उद्धृत हो, अतः तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे पापोंको नष्ट करो ॥ २७ ॥ स्नानकर नित्य-नैमित्तिक कर्मके बाद समाहितचित्त होकर भक्तिसे प्रतिमामें, भूमिमें, सूर्यमें अग्निमें तथा गुरुमें भगवान्‌की पूजा करे ॥२८॥ आवाहन आदिमें इन मन्त्रों का उच्चारण करे—हेसर्वभूतनिवास, हे वासुदेव, हे परमपुरुष, हेसाक्षिस्वरूप भगवान्, आप सबसे महान् हैं, आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ अव्यक्त, सूक्ष्म, चौबीस तत्त्वोंके ज्ञाता, सांख्य प्रवर्तत, प्रधान पुरुष आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥ दो सिरवाले आपको नमस्कार है, तीन पैरवाले, चार सींगोंसे सुशोभित, सात हाथोंसे विभूषित, वेदमय, यज्ञस्वरूप और फलोंका विस्तार करनेवाले आपको नमस्कार है ॥३१॥ शक्तिधारण करनेवाले, सम्पूर्ण विद्याधिपति, सब प्राणियोंके अधिपति, शिवस्वरूप आप रुद्रको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ हिरण्यगर्भ, प्राणमय, जगदात्मस्वरूप, योगैश्वर्यशरीर योगकारणरूप, आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ आदिदेव, साक्षिभूत,

मिच्छता ॥ उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७ ॥ निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ॥ अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ
गुरावपि ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ॥ सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९ ॥ नमो व्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरु-
षाय च ॥ चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥ नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ॥ सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने
नमः ॥३१॥ नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ॥ सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥ नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदा-
त्मने ॥ योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥ नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ॥ नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४॥
नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ॥ केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥ त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ॥ अतस्ते श्रेयसे
धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥ अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ॥ स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥ एतैर्म-
न्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ॥ अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥ अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ॥
वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ॥ गन्धधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥ शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ॥ ससर्पिः

नर-नारायणस्वरूप, ऋषि, भगवान् हरिको नमस्कार है ॥३४॥ हे भगवन्, मरकतमणिके समान श्यामवर्ण आपको नमस्कार है। लक्ष्मीको प्राप्त करनेवाले पीताम्बरधारी भगवान् केशव आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, हे वरदर्षभ, आप प्राणियोंके समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाले हैं, इसलिए धीर मनुष्य अपने कल्याणके लिये आपके चरणकमलोंकी उपासना करते हैं ॥३६॥ जिस भगवान्‌के देवता लोग अनुगामी है तथा देवता और लक्ष्मी जिस भगवान्‌के चरणकमलके आमोदकी स्पृहा करते हैं वह तेरे लिये प्रसन्न हों ॥३७॥ इनमन्त्रोंसे आवाहनमें सम्मानित हुए भगवान् हृषीकेशकी श्रद्धासे युक्त होकर अर्घ्य, पाद्य, आचमन आदिके द्वारा पूजा करे ॥३८। गन्ध माल्य आदिके द्वारा पूजाकर उसके बाद भगवान्‌को दूधसे स्नान करावे। स्नानके बाद फिर वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभरण, पाद्य और आचमन तथा दूध, धूप, दीप आदिके द्वारा द्वादशाक्षरमन्त्रसे भगवान्‌को पूजा करे ॥ ३९ ॥ इसके बाद धन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होनेपर दुग्धमें सिद्ध गुड़ और घृत मिश्रित शाल्यन्न नैवेद्य देकर द्वादशाक्षर मन्त्रसे हवन करे ॥४०॥ इसप्रकार भगवान्‌को नैवेद्य समर्पणकर उसे भगवद्भक्तोंको दे दे अथवा स्वयं प्रसाद पावे। तदन्तर भगवान्‌के आचमन और ताम्बुल समर्पण करे ॥४१॥ अष्टोत्तर शतवार द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करे और स्तुतियोंके द्वारा भगवान्‌की स्तुति करे। अनन्तर प्रदक्षिणा कर सानन्द दण्डवत् प्रणाम करे ॥४२॥ भगवानको समर्पित मालाको प्रसादरूपमें सिरपर धारण कर भगवान्‌का विसर्जन करे और पायससे ब्राह्मणोंको यथोचित तृप्त करे, यदि अधिककी शक्ति न हो, तो कमसे कम दो ब्राह्मणोंको अवश्य ही खिलावे ॥ ४३ ॥ भोजनकर तृप्त हुए ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर स्वयं भोजन करे तथा बन्धुओंको खिलावे और पहले दिन ब्रह्मचर्यपूर्वक वह रात बितावे और प्रातः होनेपर स्नानकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो पुनः यथोक्तविधिसे दुग्धसे भगवान्‌को स्नान करावे और गन्ध, पुष्पादिसे पूजन करे। इस तरह तबतक करते चले जबतक

सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥ निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् ॥ दत्त्वाचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ ४१ ॥
जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥ ४२ ॥ कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः ॥
द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥ ४३ ॥ भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ॥ ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥ ४४ ॥
स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ॥ पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५ ॥ पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ॥
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥ एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ॥ ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥ वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ॥ अहिंस्रः
सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥ त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः ॥ कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥
पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥ सूक्तेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ॥
नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥ आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥

व्रत समाप्त न हो जाय ॥ ४४, ४५ ॥ भगवान् विष्णुकी पूजामें आदरयुक्त होकर केवल दूध पान करते हुए इस व्रतका पालन करे तथा प्रतिदिनकी नाई अग्निमें हवनकरे और ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन करावे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार बारह दिनतक पयोव्रत पालन करे। प्रतिदिन भगवान्‌का पूजन, अग्निमें हवन तथा भोजन करावे ॥ ४७ ॥ प्रतिपदासे लेकर शुक्ल-पक्षको त्रयोदशी पर्यन्त ब्रह्मचर्यसे रहे भूमिपर शयन तथा त्रिकाल स्नान करे ॥ ४८ ॥ तथा असद्भाषण न करे, भोगों का त्यागकर दे। अप्रिय तथा दूषित बचन न कहे। हिंसा न करे, सब प्राणियोंको समान समझे। बराबर भगवान् वासुदेवमें परायण रहे ॥४९॥ तदन्तर त्रयोदशीके दिन विधि जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मणोंको आमन्त्रित कर शास्त्रोक्त विधिसे पंचामृत में भगवान् विष्णुको स्नान करावे ॥ ५० ॥ कृपणताका त्यागकर अपने धनके अनुसार भगवान्‌की पूजा करे तथा दुग्धमें चरु निर्माणकर गरुड़ासनपर स्थित अथवा रश्मिपर स्थित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌को चरु समर्पण करे ॥५१॥ उस दुग्धमें पकाये गये खीरसे भगवान् पुरुषोत्तमका यजन करे और अत्यन्त गुणकारी भगवान् पुरुष को तुष्टि देनेवाला नैवेद्य समर्पण करे ॥५२॥ ज्ञानसम्पन्न आचार्य तथा ऋत्विजों वस्त्र, भूषण तथा द्रव्यादि देकर सन्तुष्ट करे। इसप्रकार भगवान्‌की आराधना करे ॥५३॥ आचार्य तथा ऋत्विजोंको षड्रसयुक्त पायस आदि अच्छे अन्नसे भोजन करावे तथा अन्य जो समागत ब्राह्मण हों उन्हें भी अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करावे ॥ ५४ ॥ हे शुचिस्मिते, व्रतोपदेष्टा गुरु और ऋत्विजोंको जैसी जिसकी उचित दक्षिणा हो वह देकर सन्तुष्ट करे और वहाँ आये हुए चाण्डालादिकोंको अन्न देकर प्रसन्न करे ॥ ५५ ॥ दीन, अन्ध और कृपण सबके भोजन कर लेनेपर बन्धुओंके सहित विद्वान् भक्त स्वयं भोजन करे। यहाँ दीन, अन्ध, कृपणादिका विधान भगवान्‌की प्रीतिके लिये है (आशय यह है कि उस समय दीन अभ्यागत प्रभृति जो भी हों उन सबको भोजन कराये)

भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ॥ अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥ ५४ ॥ दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ॥ अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥५५॥ भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च ॥ विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५६॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ॥ कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥ ५७ ॥ एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ॥ पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥ ५८ ॥ त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ॥ आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥ ५९ ॥ अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ॥ तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥ त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ॥ तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥ तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ॥ भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अदितिपयोव्रतं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ ५६ ॥ नृत्य, वाद्य, गान, स्तुति, स्वस्तिवाचन तथा भागवती कथाओंके द्वारा प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करे। ५७ ॥ यह 'पयोव्रत' नामका व्रत भगवान् पुरुषोत्तमकी परम आराधना है। यह ब्रह्माजीने मुझसे कहा था, मैंने भी तुम्हें आज बतला दिया ॥५८॥ हे महाभागे, तुम शुद्धभाव, नियतात्मा होकर भलीभाँति आचरित इस व्रतके द्वारा अव्यय भगवान् केशवकी उपासना करो ॥ ५९ ॥ हे भद्रे, यह सर्वव्रत सम्पूर्ण तपस्याओंका सारभूत कहा गया है, सम्पूर्ण यज्ञ और दानरूप एवं भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला है अर्थात् इस एक व्रतसे सब यज्ञ सम्पन्न हो जाते हैं ॥ ६० ॥ वे ही साक्षात् नियम और उत्तम यम हैं जिससे भगवान् अक्षन्न हों तथा तप, दान, व्रत, यज्ञ सब कुछ वही है, जिससे भगवान् प्रसन्न हों ॥ ६१ ॥ हे भद्रे, इसलिये तुम प्रयत्नपूर्वक श्रद्धासे इस व्रतका पालन करो, भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें शीघ्र वरदान देंगे ॥ ६२ ॥

सोलहवें अध्यायका सार—शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार पुत्रोंके नष्ट हो जाने और दैत्योंसे स्वर्ग अपहृत हो जानेपर देवमाता अदिति अनाथके समान सन्तप्त होने लगी। एक समय कश्यप ऋषि घूमते-घूमते अदितिके आश्रम पर पहुँचे। अदितिने आसन तथा पाद्य अर्घ्यसे पूजन किया। तदनन्तर आसन ग्रहणकर आश्रमको निरुत्सव और अदितिको भी दीनवदना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखते हुए कश्यप ऋषीने पूछा—हे प्रिये, ब्राह्मणोंके धर्ममें कोई बाधा तो नहीं हुई। अथवा संसारका कोई अमङ्गल तो नहीं हुआ ? हे गृहमेधिनि, क्या गृहमें त्रिवर्गसाधनमें कोई अड़चन पड़ गया या कोई अतिथि तुम्हारे गृह कार्यमें व्यग्र रहने के कारण निवास होकर लौट गया ? भद्रे, तुम्हारे पुत्र तो सकुशल है न ? इतनी तुम उदास क्यों हो। अदितिने कहा—हे भगवन्, गौ, ब्राह्मण, धर्म, त्रिवर्गके विषयमें कोई बाधा नहीं है। अतिथि सत्कार भी निरन्तर हो रहा है। असुरोंने मेरे स्थान, लक्ष्मी तथा यशका अपहरण कर लिया है, जिससे पुत्र सहित मैं दुःखी हूँ आप इस दुःखसे मेरा उद्धार करें। कश्यपने कहा—भगवान्की मायासे सम्पूर्ण जगत बद्ध है। पिता-पुत्र तथा पति-पत्नी के सम्बन्धमें मोह ही कारण है। वस्तुतः किसीका कोई नहीं है, यह सब संसारकी माया है। प्रजाके लिए मेरे पूछनेपर ब्रह्माजीने जो व्रत मुझे बताया है वही व्रत तुम करो, भगवान् तुम्हारे दुःख दूर करेगें, क्योंकि भगवद् आराधन कभी भी व्यर्थ नहीं होता। अदितिने कहा—हे भगवन्, वह कौन-सा व्रत है और उसकी क्या विधि है। कश्यपने कहा-फाल्गुन शुक्लपक्षमें 'पयोव्रत' नामक व्रतका अनुष्ठान किया जाता है। उसकी विधि इसप्रकार है—अमावस्याके दिन वनमें वराहके द्वारा खोदी गई हुई मिट्टीका 'त्वं देव्या' इत्यादि मन्त्रसे शरीरमें आलेपन कर प्रातःकाल स्नानकर नित्य नैमित्तिक कर्मके बाद प्रतिमामें, भूमिमें अथवा सूर्य तथा गुरुमें भगवान्की पूजा करे। वहाँ 'नमस्तुभ्यमित्यादि' मन्त्रसे भगवान्का आवाहन करे। द्वादशाक्षर मन्त्रसे भगवान्को आसन आदि समर्पण करे। दुग्धसे स्नान कराकर वस्त्र, यज्ञोपवीत आदि निवेदन करे। दुग्धमें चावल पकाकर चीनी (गुड़) और घी मिलाकर नैवेद्य प्रदान करे। उसके बाद उसे भगवद्भक्तों खिलावे या स्वयं भोजन करे। भगवान्को आचमन कराकर ताम्बूल समर्पण करे, स्तुति करे, और प्रदक्षिणा दण्डवत् नमस्कार कर प्रसादरूपसे माला धारण कर भगवान्का विसर्जन करे। ब्राह्मणोंको पायस खिलावे, उनसे आज्ञा लेकर स्वयं बन्धुवोंके साथ भोजन करे। रात्रिमें ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे और फिर सुबह यथोक्त विधिसे पूजन करे। इस प्रकार प्रतिपद्से लेकर त्रयोदशी तक व्रत पालन करे। बारह दिन तक ब्रह्मचर्य, अधः शयन, त्रिकाल स्नान तथा सत्सङ्गमें निरत रहे। बारहवें दिन विद्वान् ब्रह्मणों द्वारा शास्त्रविधिसे भगवान्की पूजा करनेके बाद ब्राह्मण भोजन करावे। आचार्य तथा ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। अतिथि, अभ्यागत तथा आये हुए चाण्डालपर्यन्तको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस प्रकार यह पयोव्रत बारह दिनका है। हे भद्रे, इस व्रतका अनुष्ठान करो, भगवान् सङ्कट दूर करेंगे। सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता साऽदिती राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥ अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥ चिन्तयन्त्येकया बुद्धया महापुरुषमीश्वरम् ॥ प्रगृह्यन्द्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ वासुदेवे समाधाय चचार ह

॥ अदितिके पयोव्रतसे प्रसन्न होकर उसकी कामनओंकी पूर्तिके लिये उसके पुत्ररूपसे अवतरित हुए भगवान्—यह वर्णन ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवती अदितिने अपने पति कश्यपसे व्रतको यथाविधि जानकर आलस्य रहित होकर द्वादशाहव्रत करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १ ॥ एकात्मना पुरुषोत्तम भगवान्की चिन्तन करती हुई दुष्ट अश्वस्वरूप इन्द्रियोंको मनसे निग्रह कर बुद्धिको सारथि बनाकर उनपर दमन करने लगी ॥२॥ एकाग्र बुद्धिसे मनको अखिलात्मा भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वासुदेवमें स्थिर कर पयोव्रत पालन करने लगी ॥ ३ ॥ हे राजन, उस व्रतके प्रभावसे पीताम्बरधारी चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र और गदासे विभूषित आदिपुरुष भगवान् उसके सम्मुख प्रादुर्भूत हुए ॥ ४ ॥ भगवान्‌को अपनी आँखोंके सामने उपस्थित देखकर प्रेमसे विह्वल हो उस उस अदितिने शीघ्र उठकर आदर पूर्वक भूमिपर लोटकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ५ ॥ उसके बाद उठकर हाथ जोड़कर स्तुतिके लिये तैयार होने लगी, दर्शनजन्य आनन्दसे उसके नेत्रोंमें जल भर आये ! शरीरमें कम्प होने लगा और पुलक व्याकुल हो गये, जिसमे कुछ कालके लिये वह बिल्कुल चुप हो गई ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, कुछ देरके बाद देवी अदितिने अपनी आँखोंसे जगत्पति लक्ष्मीनाथ विष्णुको पीती हुई प्रीतिपूर्वक गद्गद वाणियोंसे धीरे-धीरे स्तुति प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥ अदितिने कहा—हे यज्ञेश, हे यज्ञपुरुष, हे अच्युत, हे तीर्थपाद, हे तीर्थकीर्ते, श्रवणमात्रसे मङ्गल देनेवाले नामधेयवाले भगवन्, आपत्तिसे पीड़ित

पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ॥ ननाम भुवि कायेन दण्डवत्प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥ सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ॥ बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥ प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ॥ उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥७। अदितिरुवाच ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥ आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥८॥ विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ॥ स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥९॥ आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ॥ ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ अदित्यैवं स्तुतो राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः ॥ क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥११॥ श्रीभगवानुवाच ॥ देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् ॥ यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥१२॥ तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदान-

जनोंके उद्धारके लिए जन्म धारण करनेवाले आप लोगोंका कल्याण करें, क्योंकि आप दीनानाथ हैं ॥ ८ ॥ हे भगवन्, संसारकी स्थिति, जन्म तथा प्रलयके निमित्त अपनी इच्छासे आप मायाके गुणोंको धारण करते हैं, तथापि आप स्वयं स्वस्थ तथा अप्रच्युतस्वरूप हैं, क्योंकि आप निरन्तर अपने पूर्णबोधके द्वारा मायारूप तमको आत्मामें ठहरने नहीं देते अर्थात् मायाके गुणोंको आप धारण करते हैं, तथापि आप उसके पृथक् है। आपके ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं है, ऐसे विश्वरूप सर्वव्यापक आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे अनन्त, आपके प्रसन्न होनेसे मनुष्योंको परमायु, शरीर, अभीष्टसिद्धि, अपरिमिति लक्ष्मी, आकाश, भूमि, पाताल सम्पूर्ण योगोंके अणिमा द्विगुण, धर्म, अर्थ और काम तथा ज्ञान प्राप्त होता है, फिर शत्रुवोंके विनाश आदि की गणना ही क्या है ? यह तो अत्यन्त लघुमनोरथ है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, इस प्रकार अदितिके स्तुति करनेपर कमलनेत्र समस्त भूतोंके क्षेत्रज्ञ भगवान् कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे अदिते मुझे तुम्हारा चिरकांक्षित मनोरथ विदित हो गया। शत्रुओंने तुम्हारे निवासस्थान स्वर्गपर कब्जा जमा लिया है और तुम्हारी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लक्ष्मीको भी अपहरण कर लिया है ॥ १२ ॥ दुर्मद उन असुरश्रेष्ठ शत्रुओंको समरमें जीतकर विजय और लक्ष्मीको पुत्रोंके साथ तुम एकत्र रहना चाहती हो ॥ १३ ॥ और इन्द्रप्रभृति अपने पुत्रोंके द्वारा संग्राममें मारे गये शत्रुओंकी दुःखित स्त्रियोंको रोती हुई तुम अपना स्थान पाकर देखना चाहती हो ॥ १४ ॥ तथा यश और लक्ष्मीको वापस कर लाये सुसमृद्ध हुए अपने पुत्रोंको स्वर्गमें बैठकर आनन्दपूर्वक खेलते हुए देखना चाह रही हो ॥ १५ ॥ हे देवी, इस समय ब्राह्मणोंकी अनुकम्पासे प्रायः दैत्य सैन्योंके अधिपति अत्यन्त बलवान् हो गये हैं। उनका अतिक्रमण करना अत्यन्त दुस्तर प्रतीत हो रहा है, इसलिये इस समय हमलोगोंका पराक्रम सुखदायी न होगा, ऐसी मेरी धारणा है ॥ १६ ॥ तथापि हे देवी, मुझे इसके लिये

सुरर्षभान् ॥ प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥ इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ॥ स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥ १४ ॥ आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहतयशः श्रियः ॥ नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥ प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः ॥ यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥ अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः सन्तोषितस्य व्रतचर्यया ते ॥ ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥ त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ॥ स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥ उपाधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ॥ मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥ नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयापि कथञ्चन ॥ सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥ (अदितिरुवाच ॥ नाहं वोढं क्षमा देव त्वामाद्यं पुरुषं परम् ॥ ब्रह्माण्डकोटिसाहस्रं रोमकूपे तवाव्यय ॥ १ ॥ महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रतः ॥ प्रयाति मुक्तिं देवेश तं कथं धारयाम्यहम् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सत्यमुक्तं महाभागे त्वया नास्त्यत्र संशयः ॥ पतिव्रताः पतिप्राणाः पतिभक्तिपरायणाः ॥ ३ ॥ वहन्ति सततं बाले स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सराः ॥) ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥ २१ ॥ उपाधावत्पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ स वै समाधियोगेन

उपाय तो सोचना ही पड़ेगा, क्योंकि तुमने अपनी व्रतचर्यासे मुझे प्रसन्न कर लिया है और मेरी प्रसन्नता कदापि विफल नहीं होती, क्योंकि श्रद्धाके अनुरूप फल देनेमें वह अवश्य हेतु है ॥ १७ ॥ हे मातः, तुमने पुत्ररक्षार्थ मेरी पूजा की है, अतः मैं अंशसे तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा और कश्यपकी तपस्यामें किसीप्रकारकी बाधा न होगी ॥ १८ ॥ हे भद्रे, मेरे इस रूपका ही पतिमें ध्यान करती हुई तुम निष्पाप प्रजापति अपने पति कश्यप ऋषिकी सेवा करो अर्थात् पतिका संग करो ॥ १९ ॥ हे देवि, इस वृत्तान्तको सर्वदा गोप्य रखना। किसीके किसी तरह पूछनेपर भी नहीं कहना, क्योंकि गोप्य रखनेसे ही तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। देवताओंका रहस्य सुगुप्त रहकर ही सिद्ध होता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान् इतना कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये। भगवती अदिति अपनेमें भगवान्का जन्म अत्यन्त दुर्लभ समझकर अपनेको कृतकृत्य मानती हुई अत्युत्कट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भक्तिसे पतिकी सेवा करने लगी। कश्यप भी समाधियोगसे ही अदितिके मनोरथ जान गये॥ २१, २२॥ हे राजन्, अवितथ दृष्टिवाले ऋषिने अपनेमें भगवान् हरिका अंश प्रविष्ट समझकर तपस्या द्वारा चिरकालके सञ्चित वीर्यका समाहित मनसे अदितिमें स्थापित कर दिया। जिस प्रकार वायु सर्वत्र सम रहते हुए भी काष्ठके साथ संघर्ष होनेपर वनको जला देनेवाले दावाग्नि को उत्पन्नकर देता है, उसीप्रकार कश्यपजीने पुत्रोंमें समभाव रखते हुए भी अदितिमें दैत्यक्षपणक वीर्यका आधान किया॥२३॥ अदितिके गर्भमें स्थित सनातन भगवान्को जानकर ब्रह्माने गुह्यनामोंके द्वारा उनकी स्तुति आरम्भ की॥ २४॥ ब्रह्माने कहा—हे कीर्तिमन्, आपकी जय हो। हे महापराक्रमी भगवन्, आपको नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेव त्रिगुणात्मक आपको बार-बार नमस्कार है॥२५॥ हे भगवन्, पृश्निके गर्भ से अवतार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। तीनों लोकोंको नाभिमें धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। वेदगर्भ तथा तीनों लोकोंको पृष्ठपर धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सब जीवोंके भीतर अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट और सर्व व्यापक आपको नमस्कार है॥ २६॥ आप इस जगत्का आदि, मध्य तथा

कश्यपस्तदबुध्यत॥ २२॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः॥ सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम्॥ समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथानिलः॥ २३॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम्॥ हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः॥ २४॥ ब्रह्मोवाच॥ जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः॥२५॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे॥ त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे॥ २६॥ त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यमनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः॥ कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथान्तःपतितं गभीरम्॥ २७॥ त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः॥ दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु॥ २८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अन्त हैं। आपको लोग अनन्त शक्तिमान् पुरुष कहते हैं। जिस प्रकार गम्भीर स्रोत अन्तःपतित तृणादिको खींचकर ले जाता है ईश, आप भी कालरूप होकर इस संसारको आकर्षित करते हैं॥ २७॥ हे देव, आप स्थावर जंगम सभी प्राणियों के तथा हम प्रजापतियोंके भी उत्पादक हैं। जिस प्रकार जलमें डूबते हुए मनुष्योंका आश्रय नौका होती है, उसी प्रकार स्वर्गसे च्युत हुए देवताओंके आप परम आश्रय हैं॥ २८॥

अठ्ठारहव अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कश्यपके आज्ञानुसार भगवती अदितिने पयोव्रतका पालन समाहित चित्तसे किया। जिसके प्रभावसे पीताम्बरधारी शङ्ख चक्रसे विभूषित आदिदेव भगवान् प्रादुर्भूत हुए। भगवान्को सामने देखकर सहसा उठ खड़ी हुई और दण्डवत् नमस्कारकर हाथ जोड़कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुई, किन्तु आनन्दाश्रुसे उसके नेत्र परिपूर्ण से हो गये। कुछ देरके बाद गद्गद् वाणीसे कहने लगी—हे भगवन्, आपके नामोंके श्रवणमात्रसे प्राणियोंका मङ्गल होता है। आप आर्तनोंके उद्धारके लिए ही अवतार धारण

ॐदृष्टान्त—कश्यपजीने अपनी पत्नी में वीर्य स्थापन किया—उससे साक्षात भगवान्का जन्म—यह कैसे।

उत्तर—कश्यपजीने अपनी योग समाधि से भगवान् पुत्र रूपसे होकर हमारे यहाँ आ रहे हैं, यह जानकर अपनी पत्नीमें गर्भाधान (वीर्य स्थापन) किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते हैं, इसलिये आप हमलोगोंका कल्याण करें। हे राजन्, इसप्रकार अदितिके प्रार्थना करनेपर भगवान्ने कहा—हे देवि, मैं तुम्हारा मनोरथ जान गया। दैत्योंसे अपहृत स्वर्ग तथा लक्ष्मीको प्राप्तकर अपने पुत्रोंके साथ स्वर्गमें निवास करना चाहती हो। किन्तु इस समय ब्राह्मणके तेजके प्रभावसे दैत्योंका बल बढ़ा हुआ है, तथापि तुम्हारे व्रतसे मैं प्रसन्न हूँ और मेरी प्रसन्नता कदापि निष्फल नहीं होती, अतः मैं इसके लिए उपाय सोच रहा हूँ। मैं अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा। तुम मेरे स्वरूपका ध्यान करती हुई पतिकी सेवा करो। इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। अदिति कश्यपके आश्रम पर गई और एकाग्रबुद्धिसे पतिसेवा करने लगी। कश्यपने भी समाधियोगसे अपनी आत्मामें भगवान् हरिका अंश प्रविष्ट जानकर अदितिमें वीर्यका आधान किया। अदिति के गर्भमें स्थित भगवानको जानकर ब्रह्माने गुह्यनामोंके द्वारा यह स्तुति की—हे भगवन्, आप समस्त प्राणियों तथा देवताओंके आश्रय हैं। आप प्रजापतिके भी उत्पादक हैं। आप स्वयं अजन्मा होते हुए भी भक्तोंके लिए अवतार धारण करते हैं इसलिए आप देवताओंके कष्टको दूर करें। आप को अनेक नमस्कार है। सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अश्वमेध यागमें पहुँचकर भृगुवंशी ब्राह्मणों तथा राजा बलि द्वारा सत्कृत भगवान् हुए वामनसे 'आप जो चाहते हों, मुझसे माँग लीजिये,'—यह बलिका कथन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार ब्रह्माके स्तुति करनेपर पीताम्बरधारी कमलनेत्र, शंख, चक्र, गदा पद्मसे विभूषित चार भुजाओंको धारण किए हुए भगवान् अदितिमें प्रकट

❀ अथाष्टादशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं विरिञ्चिस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥ चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥१॥ श्यामावदातो झषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ॥ श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥ मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः ॥ प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन्कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ॥ द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजा सञ्जहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ॥ सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां सविताऽतिष्ठन्मध्यन्दिनगतो नृप ॥ विजया नाम सा प्रोक्ता

हुए। वे श्यामवर्णके तथा मकराकार कुण्डलोंकी कान्तिसे सुशोभित हो रहे मुखकमलसे युक्त थे। उनका वक्षःस्थल कौस्तुभमणिसे विभूषित था। वलयों तथा अङ्गदोंके साथ उल्लसित हो रहे किरीट काञ्चीगुण, तथा सुन्दर नूपुरों से समन्वित थे ॥ २ ॥ मधुकर समूहके शब्दोंसे गुञ्जित वनमालासे विराजित भगवान् विष्णु अपने तेजसे कश्यपके गृहके अन्धकारको दूर कर रहे थे। उनके गलेमें कौस्तुभ विराजित था ॥ ३ ॥ भगवान् अवतारसे दिशाओंमें प्रसन्नता आ गई, नदी आदिका जल स्वच्छ हो गया, प्रजा प्रसन्न हुई, ऋतुएँ अपने-अपने गुणोंसे युक्त हो गईं, गायें, ब्राह्मण, आकाश, अन्तरिक्ष, पृथिवी, पर्वत और देवता प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ भाद्रपद शुक्ल द्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है उसी दिन, जब श्रवण नक्षत्रके ऊपर चन्द्रमा स्थित थे, श्रवणके प्रथमांश अभिजित मुहूर्तमें भगवान् प्रादुर्भूत हुए। उस समय सब नक्षत्र तथा सभी ग्रहोंने भगवान्के जन्मको उदार बनाया यानी उस समय सब ग्रह, नक्षत्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदि श्रेष्ठफल देनेवाले थे ॥ ५ ॥ द्वादशीके दिन सूर्यके मध्याह्नस्थित होनेपर भगवान्का जन्म हुआ। उस द्वादशीका नाम विजया है, उसी दिन भगवान्का जन्म हुआ ॥६॥ भगवान्के जन्मकालमें शंख, दुन्दुभि, मृदंग पणव, आनक, चित्रवादित्र तथा तूरी प्रभृति अनेक वाद्योंका महान् शब्द हुआ ॥ ७ ॥ प्रसन्न होकर, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व गाना गाने लगे। मुनि, देवता, अग्नि तथा पितृगण प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ तथा सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, चारण, यक्ष, रक्ष, सुपर्ण, नाग प्रभृतिने गाते तथा नाचते हुए और भगवान्की प्रशंसा करते हुए अदितिके आश्रमको पुष्पवृष्टिसे भर दिया ॥ १० ॥ अदिति अपने गर्भसे उत्पन्न परमपुरुष भगवान्को देखकर अत्यन्त विस्मित हो परम प्रसन्न हुई और कश्यपने भी विस्मययुक्त होते हुए योगमायासे शरीर धारण करनेवाले भगवान्को देखकर 'जय हो' यह कहा ॥११॥ भगवान्ने पहले भूषणादिसे विभूषित अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त जिस शरीरको धारण किया

जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ॥ चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७ ॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥ सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥ गायन्तोऽति प्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः ॥ अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसम्भवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ॥ गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥ यत्तद्वपुर्भातिविभूषणायुधैरव्यक्तमधारयद्धरिः ॥ बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥ तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ॥ कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥ तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥ ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः ॥ कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्त्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ॥ अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥ तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ॥ भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादम्बिका सती ॥ १७ ॥ स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां सम्भावितो बटुः ॥ ब्रह्मर्षिगणसञ्जुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥१८॥ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ॥ परिस्तीर्य समभ्य-

था, उस शरीरसे ही माता-पिताके देखते देखते अद्भुत चेष्टावाले भगवान् वामन बटु हो गये। जैसे नट अपने शरीरका परिवर्तनकर लेता है ॥ १२ ॥ ऋषियोंने उस वामन बटुको देखकर अत्यन्त प्रसन्नताके साथ कश्यपसे जातकर्मादि संस्कार कराये ॥१३॥ उपनीयमान भगवान्को सूर्यने गायत्रीका उपदेश दिया, बृहस्पतिने ब्रह्मसूत्र तथा कश्यपने मेखला दी ॥१४॥ भूमिने मृगचर्म, जंगलके स्वामी सोमने दण्ड, माताने कौपीन और द्यौने छत्र दिया ॥ १५ ॥ हे महाराज, ब्रह्माने कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुशा और सरस्वतीने रुद्राक्षमाला अव्ययात्मा भगवान्को समर्पित की ॥१६॥ उपनीत हुए उस बटु भगवान्को यक्षराट् कुबेरने भिक्षापात्र दिया और साक्षात् अम्बिका सती भगवती उमाने भिक्षा दान दिया ॥ १७ ॥ इसप्रकार वामन भगवान् उपनीत हो ब्रह्मचारी बने हुए श्रेष्ठ अपने ब्रह्मतेजसे ऋषिगणोंसे व्याप्त सभाको अतिक्रमणकर शोभित होने लगे ॥१८॥ इसके बाद भगवान्ने अग्निको प्रदीप्तकर परिसमूहनकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुशाओंको विस्तृतकर समिधासे हवन किया ॥१९॥ तदन्तर भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा प्रवर्तित अश्वमेधयज्ञ कराते हुए महाबलशाली बलिको सुनकर सम्पूर्ण बलसे परिपूर्ण हो पद पदमें अपने भारसे पृथिवीको नवाते हुए, वामन भगवान् कहाँ गये ॥२०॥ नर्मदाके उत्तर तटपर भृगुकच्छ संज्ञक क्षेत्रमें सर्वश्रेष्ठ यज्ञ करा रहे जो राजा बलिके भृगुवंशी ऋत्विग् थे उन्होंने अपने नजदीकमें ही उदित हुए सूर्यके समान वामन भगवान्को देखा ॥२१॥ हे राजन, वे ऋत्विज्, यजमान तथा सदस्यगण वामन भगवान्के तेजसे हतकान्ति होकर तर्क करने लगे—क्या यज्ञ देखनेके लिये सूर्य या सनत्कुमार आ रहे हैं ॥ २२ ॥ इसप्रकार भृगुवंशीय ब्राह्मण सब अपने शिष्योंके साथ अनेक तरहके तर्ककर ही रहे थे कि छत्र, दण्ड तथा सजल कमण्डल धारण किये हुए वे भगवान् वामन अश्वमेधयज्ञ मण्डपमें प्रविष्ट हो गये ॥ २३ ॥ मौञ्जी, मेखला, उपवीत तथा मृगचर्मसे युक्त जटाधारी उस माया माणवक विष्णुको यज्ञमें

र्च्यं समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥ १९ ॥ श्रुत्वाश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ॥ जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमय-
न्पदे पदे ॥ २० ॥ तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ॥ प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥२१॥
त ऋत्विजो यजमानः सदस्या हतत्विषो वामनतेजसा नृप ॥ सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थं
सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ॥ छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥ २३ ॥ मौञ्ज्या मेखलया
वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ॥ जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥ २४ ॥ प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ॥ प्रत्यगृह्णन्समु-
त्थाय सङ्क्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ॥ रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६ ॥ स्वागतेनाभि-
नन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः ॥ अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम् ॥ २७ ॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविन्मूर्ध्न्यदधात्सुमङ्गलम् ॥
यद्देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥ बलिरुवाच ॥ स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते ॥ ब्रह्मर्षीणां तपः
साक्षान्मन्ये त्वार्य वपुर्धरम् ॥२९॥ अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ॥ अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ॥३०॥ अद्या-

प्रविष्ट हुए देखकर अपने शिष्योंके साथ वे सब भृगुवंशी ब्राह्मण भगवानके तेजसे आकृष्ट होकर उठ खड़े हुए और उन्होंने भगवान् वामन का आदरपूर्वक पाद्य, अर्घ्य आदिसे खूब सम्मान किया ॥ २४, २५ ॥ यजमान बलि भी दर्शनीय, मनोरम और रूपानुकूल अवस्थाको धारण किये भगवान्को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होंने आसन लाकर दिया ॥२६॥ और स्वागतपूर्वक अभिनन्दन करते हुए राजा बलिने आसक्तिशून्य मुनियोंके मनमें रमण करनेवाले भगवान्का पादप्रक्षालनकर पूजन किया ॥ २७ ॥ और धर्मवित् बलिने उस मङ्गलमय पादोदकको परम भक्तिसे सिरपर धारण किया। वह पादोदक गंगारूप प्राणियोंके पापको दूर करने वाला है, जिसे देवदेव चन्द्रमौलि शंकरने बड़े आदरके साथ अपने सिरपर धारण किया है ॥ २८ ॥ बलिने कहा—हे ब्रह्मन्, आपका स्वागत हो। आपको नमस्कार है। मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा ? हे आर्य, मैं आपका तपस्वियोंका शरीरधारी तेज समझता हूँ ॥ २९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आज हमारे पितर तृप्त हो गये, आज हमारा कुल पवित्र हो गया तथा हमारा यह यज्ञ आज सफल हो गया कि आप हमारे घर आ गये ॥ ३० ॥ हे द्विजात्मज, आपके आनेसे अग्निदेव यथाविधि तृप्त हो गये, आपके चरणकमलके प्रक्षालन जलके मेरे पाप नष्ट हो गये, मैं पवित्र हो गया और हमारी भूमि भी आपके नन्हें चरणोंसे पवित्र हो गई ॥ ३१ ॥ हे बटो, आप जो जो चाहते हों, मुझसे ले सकते हैं। मैं देनेके लिए तैयार हूँ। हे विप्रतनय, आप मुझे अर्थी प्रतीत हो रहे हैं, ऐसा मेरा अनुमान है। इसलिये हे विप्र, गौ, सुवर्ण, मकान, मिष्टान्न, अन्न, पेय अथवा कन्या तथा समृद्ध गाँव, घोड़े, हाथी या रथ जो आप चाहें, ले सकते हैं, दास समर्पण करनेके लिये तैयार है ॥ ३२ ॥

अग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ॥ हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥ ३१ ॥ यद्यद्बटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥ गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथाऽन्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् ॥ ग्रामान्समृद्धांस्तुरगान्गजान्वा रथांस्तथाऽर्हत्तम सम्प्रतीच्छ ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे बलिवामनसम्वादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अठारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ब्रह्माके स्तुति करनेपर पीताम्बरधारी कमल-नेत्र, शङ्ख-चक्र-गदा और पद्मसे विभूषित भगवान् चतुर्भुज अदितिके गर्भसे प्रकट हुए भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको भगवान्का जन्म हुआ, चन्द्रमा श्रवण नक्षत्रके थे, ग्रहादि भी अनुकूल थे। मध्याह्नका समय था, यह द्वादशी विजयाके नामसे प्रसिद्ध है। जन्मकालमें शङ्ख, मृदङ्ग, भेरी, दुन्दुभि प्रभृति अनेक वाद्य बजाए गये। सिद्ध, चारण, विद्याधरादिकोंने पुष्पवृष्टि की, जिससे अदितिका आश्रम भर गया। अदिति अपने गर्भसे उत्पन्न परमपुरुष भगवान्को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। कश्यपने भी जयकार किया। भगवान्ने अपने पूर्वरूपका त्याग कर माता-पिताके देखते-देखते वामन रूप धारण कर लिया। ऋषियोंने कश्यपसे वामन बटुके जात कर्मादि संस्कार कराये। उपनयनके समय सूर्यने गायत्रीका उपदेश किया। भगवान् उपनयन संस्कारसे संस्कृत हो अत्यन्त दीप्यमान हो गये। उसी समय राजा बलि नर्मदाके तटपर 'अश्वमेध यज्ञ' कर रहे थे भगवान् वहाँ पहुँचे। आते हुए भगवान्को देखकर आचार्य तथा ऋत्विजोंने समझा—यज्ञ देखनेके लिए सूर्य या सनत्कुमार आ रहे हैं। इस प्रकार वे लोग तर्क कर रहे थे कि भगवान् यज्ञ मण्डपमें प्रविष्ट हो गये भगवान्को देखकर आचार्य तथा ऋत्विज उठकर खड़े होगये और स्वागत पूर्वक भगवान्को अपने समीप बैठाये। राजा बलि भी आसन पाद्य अर्घ्यसे भगवान्की पूजाकर चरण प्रक्षालनकर उसे सिरपर चढ़ाया। तदन्तर बलिने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन्, आपका स्वागत हो। आपको नमस्कार है। मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है। मैं आपको तपस्वियोंका तेजपुञ्ज समझता हूँ। आज हमारे पितर तृप्त हो गये, अग्निदेव भी यथाविधि हुत हो गये और मैं भी आपके पाद प्रक्षालनसे पवित्र हो गया, हमारी भूमि भी पवित्र हो गई तथा यज्ञ भी सफल हो गया कि आज आप हमारे घर पधारे। हे भगवन्, आप अर्थी प्रतीत हो रहे हैं, अतः जो आपको चाहिए मुझसे माँग लीजिए। हे विप्रबटो, हाथी, घोड़े आदि आपको अभीष्ट हो, दास समर्पण करनेके लिए तैयार है। अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

दृष्टान्त—तीनों युगोंसे यह बात प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण लोग राजाओंसे दान चाहा करते थे। राजा भी सुपात्रकी व्यवस्था समझ कर दान देता है। पर राजाने बिना याचना करते हुए वामन भगवान् से यह क्यों कहा—मुझसे जो चाहो मांगो।

उत्तर—सुयोग्यको बिना चाहने पर भी दान देना गुरुजनों की आज्ञा है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकारके धर्मयुक्त बलिके वचनको सुनकर भगवान् प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ १ ॥ भगवान्ने कहा—हे राजन्, आपका यह वचन कुलोचित तथा धर्मयुक्त है और यशको देनेवाला है आपका वंश सदासे धार्मिक तथा भक्त होता आया है। हे जनदेव, इस पारलौकिकधर्मके विषयमें तो ये ब्राह्मण और आपके कुलवृद्ध प्रशान्त पितामह प्रह्लाद ही प्रमाण हैं ॥ २ ॥ आपके कुलमें कृपण तथा निःसत्व कोई भी राजा नहीं हुआ तथा किसीने भी याचकोंसे 'नहीं दूंगा' ऐसा नहीं कहा ॥ ३ ॥ तीर्थमें याचकों द्वारा तथा युद्धमें क्षत्रियों द्वारा प्रार्थित राजा सब जो आपके कुलमें पैदा हुए हैं, उन लोगोंने कभी भी दान देनेसे तथा रणसे मुँह नहीं मोड़ा। आपके पितामह प्रह्लाद निर्मल यशसे इस संसारमें, आकाशमें

❀ अथैकोनविंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं ससूनृतम् ॥ निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ॥ यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥२॥ न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् ॥ प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥३॥ न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः ॥ युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥ यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ॥ प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥ ५ ॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ॥ नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥ तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् ॥ चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥ यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ॥ अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥ एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ॥ श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥ स तन्निकेतं परिमृश्य शून्यम-

चन्द्रमाके समान, सुशोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥ जिस आपके वंशमें उत्पन्न गदाधारी हिरण्याक्षने इस भूमिपर अखण्ड राज्य करते हुए दिग्विजयमें किसीको भी प्रतिद्वन्द्वी योद्धा नहीं पाया ॥ ५ ॥ पृथिवीके उद्धारके लिये आये हुए भगवान् विष्णु जिस हिरण्याक्षको बड़ी कठिनाईसे जीतकर उसके महान् बलका स्मरण करते हुए अपनेको विजयी नहीं माना ॥ ६ ॥ बहुत दिनकी बात है, हिरण्यकशिपु अपने भाईका वध सुनकर भाईको मारनेवाले भगवान्को मारनेके लिये क्रुद्ध होकर भगवान्के स्थानतक चला गया ॥ ७ ॥ हाथमें शूल लिये यमराजके सदृश आते हुए उसे देखकर मायाके अधिष्ठाता कालज्ञ भगवान् भी चिन्तित हो गये ॥ ८ ॥ जहाँ-जहाँ मैं जाता हूँ वहाँ-वहाँ यह प्राणियोंकी मृत्युके समान जाता है, इसलिये बहिर्दृष्टिवाले इसके हृदयमें मैं प्रवेश हो जाऊँ ॥ ९ ॥ हे असुरेन्द्र, ऐसा विचारकर श्वाँस वायुमें अपने सूक्ष्मशरीरको अन्तर्हितकर अति कम्पित हृदय भगवान् उसके प्राणवायुके द्वारा पीछे-पीछे दौड़ रहे उसके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हृदयमें प्रविष्ट हो गये ॥ १० ॥ उस वीर हिरण्यकशिपुने उस स्थान पर अन्वेषणकर भगवान्‌को न देख करके क्रुद्ध हो घोर गर्जन किया और भूमि, आकाश, दिशा, स्वर्ग, विवर तथा समुद्रमें उन्हें खोजा, किन्तु कहीं नहीं पाया ॥ ११ ॥ सर्वत्र खोजनेके बाद उसने कहा—मैंने सारा जगत् छान डाला, मेरा शत्रु उस स्थानपर चला गया, जहाँ जानेपर यह निश्चित है कि मनुष्य वहाँसे पुनः नहीं लौटता ॥ १२ ॥ इस संसारमें शरीरधारियोंको वैरभाव मृत्युपर्यन्त रहता है। अज्ञानसे ही क्रोध उत्पन्न होता है और अहंकारसे बढ़ता है ॥ १३ ॥ आपके पिता विरोचन विद्वान् तथा द्विजभक्त थे। उन्होंने अपनी आयु ब्राह्मण रूपधारी देवताओंको याचना करनेपर दे दी ॥ १४ ॥ हे राजन्, आपने ब्राह्मणों, पूर्वजों, वीरों तथा अन्य उत्कट कीर्तिवाले गृहस्थ मनुष्योंसे आचरित धर्मोंका आश्रयण किया है ॥ १५ ॥ हे दैत्येन्द्र, आप वरदान देनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये आपसे मैं थोड़ी-सी भूमि, जो कि मेरे चरणसे नापनेपर सिर्फ

पश्यमानः कुपितो ननाद ॥ क्ष्मां द्यां दिशः विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥११॥ अपश्यन्निति होवाच मयान्विष्टमिदं जगत् ॥ भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥ १२ ॥ वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥ पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः ॥ स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्योऽदात्स याचितः ॥ १४ ॥ भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ॥ ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात् ॥ पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम ॥१६॥ नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ॥ नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः❀ ॥ १७ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ॥ त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १८ ॥ मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् ॥ पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान्द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥ न पुमान्मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति ॥ तस्माद्वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ॥ न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१ ॥ त्रिभिः क्रमैरसन्तुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ॥ नववर्षसमेतेन सप्त-

तीन चरण हो, माँगना चाहता हूँ ॥१६॥ हे राजन्, दानवीर, जगन्नायक आपसे मैं और कुछ नहीं चाहता, क्योंकि विद्वान् अपने प्रयोजनसे अधिक प्रतिग्रह नहीं लेता तथा प्रयोजनके अनुसार प्रतिग्रह लेनेवाला विद्वान् कष्ट नहीं पाता ॥ १७ ॥ बलिने कहा—हे ब्राह्मणपुत्र, आप बालक हैं, अभी आपकी बुद्धि बच्चों जैसी है, इसलिये आप स्वार्थके प्रति अबुधके समान हैं, किन्तु आपकी वाणी वृद्ध जनोंसे अनुमत है ॥१८॥ सम्पूर्ण लोकोंके एक अधीश्वर द्वीप देनेमें समर्थ मेरे-ऐसे दाताको वाणियोंसे प्रसन्नकर जो तीनचरण भूमि माँग रहा है वह मेरे समझसे अज्ञ है ॥ १९ ॥ हे वटो, मेरे यहाँ याचक बना हुआ मनुष्य फिर दूसरेके यहाँ याचक नहीं होता, अतः आप अपनी जीवनवृत्तिके लिये पर्याप्त भूमि मुझसे ले लीजिये ॥२०॥

दृष्टान्त—भगवानने छलके द्वारा राजाबलि क्यों दण्ड दिया।

उत्तर—'सठे साठ्यं समाचरेत्' दुष्टोंके साथ दुष्टता द्वारा कार्य करना यह नीति का उपदेश है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌ने कहा—हे राजन्, इन त्रिलोकीमें जितने श्रेष्ठ विषय हैं, उन विषयोंकी पूर्ति अजितेन्द्रिय याचकके लिये कोई नहीं कर सकता। अर्थात् अजितेन्द्रिय याचककी पूर्ति करने में त्रिपय भी समर्थ नहीं हैं ॥ २१ ॥ जो तीनचरण परिमित भूमिसे असन्तुष्ट है वह दीप पानेपर भी नववर्षोंके सहित सप्तद्वीप पानेकी इच्छासे सन्तुष्ट नहीं होगा ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिपति वेन, गयादि राजा अर्थ तथा कामसे पीड़ित रहनेके कारण तृष्णासे पार नहीं पाये। अर्थात् सातद्वीपके राजा होनेपर भी उनकी कामना दिनोंदिन बढ़ती ही गई यह हमलोगोंने सुना है ॥२३॥ जो मनुष्य थोड़े मिलनेपर भी सन्तुष्ट रहता है वही सुखी है और जिसको सन्तोष नहीं है तथा जो अजितेन्द्रिय है वह प्राप्त हुए तीनों लोकोंसे भी कदापि सुखी नहीं हो सकता ॥२४॥ पुरुषके लिये अर्थ और काममें असन्तोषी होना बन्धनका कारण है तथा इसके विषयमें यथाप्राप्तसे सन्तोष करना मुक्तिका कारण है ॥ २५ ॥ यदृच्छालाभसे सन्तुष्ट ब्राह्मणका तेज बढ़ता

द्वीपवरेच्छया ॥ २२ ॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ॥ अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति न श्रुतम् ॥ २३ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन सन्तुष्टो वर्तते सुखम् ॥ नासन्तुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥ पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥ २५ ॥ यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ॥ तत्प्रशाम्यत्यसन्तोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥ तस्मात् त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ॥ एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ॥ वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥२८॥ विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् ॥ जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदाम्वरः ॥ २९ ॥ शुक्र उवाच ॥ एष वैरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ॥ न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥ एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ॥ दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिविक्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति ॥ सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥ क्रमतो गां पदैकेन

है और असन्तोषी ब्राह्मणका तेज जलसेवन करनेवाली अग्निके समान असन्तोषसे नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥ इसलिये श्रेष्ठ वरदाता आपसे मैं तीनचरण परिमित ही भूमि माँगता हूँ और इतनेमें ही मैं सन्तुष्ट हूँ, अधिकसे मुझे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि प्रयोजनके अनुसार-धन सुखकारक होता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्‌के इतना कहनेपर हँसते हुए बलिने कहा—इच्छानुसार आप ले लीजिये यह कहकर भगवान् वामनको जमीन देनेके लिये राजा बलिने जलपात्र ले लिया ॥२८॥ विज्ञवर महाराज शुक्रने भगवान् विष्णुकी अभिलाषा जानकर भगवान् विष्णुको भूमि दे रहे अपने शिष्य असुरेन्द्र राजा बलिसे कहा ॥२९॥ शुक्रने कहा-हे वैरोचने, यह वामनरूपधारी अव्यय साक्षात् भगवान् विष्णु हैं और ये देवताओंके कार्य साधनके लिये कश्यपसे अदितिके गर्भमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ३० ॥ तुमने जो इनके लिये प्रतिज्ञाकी है, वह होनेवाले अनर्थको नहीं जानते हुए ही दैत्योंके लिये यह बड़ा ही अन्याय हुआ। इसको हम अच्छा नहीं समझते ॥ ३१ ॥ बालक वेषधारी ये भगवान् तुम्हारा स्थान, ऐश्वर्य, लक्ष्मी और यश इन सबको लेकर इन्द्रको दे देंगे ॥ ३२ ॥ विश्वकाय भगवान् अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तीन चरणसे ही ये सम्पूर्णलोक ले लेंगे। अरे मूर्ख, जब तुम भगवान्‌को ही सब दे दोगे, तब अपना निर्वाह कैसे करोगे ॥ ३३ ॥ भगवान् एक पादन्याससे भूमिको दूसरेसे स्वर्गको और महान् शरीरसे आकाशको दखलकर लेंगे, तो तीसरे पादन्यासमें क्या दोगे। उस तीसरे पादन्यासकी कहाँसे गति होगी ॥३४॥ और यदि तुम प्रतिज्ञाके अनुकूल पूर्णदान नहीं दोगे, तो नरकमें तुम्हारा वास नियत है तथा प्रतिज्ञाके अनुकूल देनेमें तुम असमर्थ अवश्य बनोगे ॥ ३५ ॥ यदि तुम कहो कि दानसे प्रतिष्ठा है, तो सो भी नहीं है, क्योंकि जिस दानसे अपनी वृत्तिका उच्छेद होता है उस दानकी प्रशंसा नहीं होती। क्योंकि संसारमें दान, यज्ञ, तप तथा कर्मवृत्तिके लिये ही किया जाता है ॥ ३६ ॥ धर्म, यश, अर्थ, काम और स्वजन इन पाँच विभागोंमें धनको विभक्त कर रहा पुरुष ही इसलोक तथा परलोकमें आनन्द पाता है ॥ ३७ ॥ हे असुरसत्तम, यदि कहो कि प्रतिज्ञा करके अब कैसे कहूँ कि मैंने प्रतिज्ञा नहीं की, क्योंकि अनृत नहीं बोलना चाहिए, तो ऋग्वेदमें किये गये सत्य और अनृतकी परिभाषा सुनलो—'ओम्' यह कहना सत्य है और न कहना अनृत है। वृत्ति संकटादि अवस्थामें अनृत बोलना भी

द्वितीयेन दिवं विभोः ॥ खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥३४॥ निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम्॥ प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥३५॥ न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ॥ दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥३६ धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ॥ पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ३७ ॥ अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ॥ सत्यमोमिति यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥ ३८ ॥ सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥ ३९ ॥ तद्यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ॥ एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥ पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति ॥ यत्किञ्चिदोमिति ॥ ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ॥ भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ ४१ ॥ अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ॥ सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः

निषिद्ध नहीं है। यह बह्वृचोंने गान किया है ॥ ३८ ॥ यह सबको समझ लेना चाहिए कि इस आत्मवृक्षका सत्य पुष्प तथा फल और अनृत मूल कहा जाता हैं। इसलिये शरीरके नष्ट हो जानेपर पुष्प तथा फलका नाश निश्चित है ॥ ३९ ॥ जैसे उत्पाटित मूलवाला वृक्ष सद्यः सूख जाता है वैसेही अनृतके नष्ट हो जानेपर शरीर अवश्य सूख जायगा ॥४०॥ जो 'ओम्' अक्षर है वह पराक् है यानी बहुत दूरतक अर्थ लेकर चलनेवाला है। इस श्रुतिपदका व्याख्यान रिक्त है। या कहीं हुआ भी है तो वह अपूर्ण है, इसलिये यदि देनेके लिये 'ओम्' का उच्चारण किया गया है, तो उसमें फिर न्यून हो सकता है। यदि यह माना जाय कि भिक्षुको सर्वस्व देनेकी प्रतिज्ञा कर मैं सब दे दूँगा, तो फिर उसमें अपने भोगके लिये कुछ भी नहीं रह जाता ॥ ४१ 'नहीं' वह जो अनृत वचन है वह पूर्ण है, क्योंकि इसका व्यय नहीं है और अपने अनुकूल भी है, क्योंकि दूसरेका अर्थ लाकर देनेवाला है। जो प्रतिदिन यह कहता है कि मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं दुःख पा रहा हूँ, वह पुरुष झूठ बोलकर दूसरेका धन खींचता है। मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्यको हमेशा झूठ ही बोलना चाहिए, क्योंकि जो मनुष्य मेरे पास नहीं है यों सब झूठही बोलता है वह जीता हुआ भी मरा हुआ है। उस पुरुषकी इस संसारमें सब जगह अकीर्ति होती है। इसलिये मनुष्यको निम्नलिखित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जगहोंमें ही झूठ बोलना चाहिए, इन जगहोंपर झूठ बोलनेसे मनुष्यही निन्दा नहीं होती। स्त्रियोंको प्रोत्साहन देकर उन्हें वशमें जहाँ करना हो, परिहासमें, विवाहमें, वृत्तिके लिये प्राण संकटमें, गौ और ब्राह्मणोंके हितके लिये तथा किसी मनुष्यका यदि प्राण जाता हो। ४२. ४३।

॥ ४२ ॥ स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्यर्थे प्राणसङ्कटे ॥ गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम-स्कन्धे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

उन्नीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार जर्मयुक्त बलिके वचनको सुनकर भगवान् हँसते हुए कहने लगे--हे राजन्, आपका यह बचन कुलचित, धर्मयुक्त तथा यशस्कर आपका खन्दान सदासे ही धार्मिक तथा वीर होते आया है। इसके विषयमें आसके पितामह प्रह्लाद ही प्रमाण हैं। आपके खन्दानमें ऐसा कोई भी नहीं हुआ जो याचकोंको 'नहीं' किया हो। हे राजन्, इसलिए आपसे मैं केवल तीन डेग जमीन, जोकि मेरे चरणसे परिमित हो, मांग रहा हूँ, क्योंकि विद्वान् अपने प्रयोजनसे अधिकका प्रतिग्रह नहीं लेते। राजा बलिने कहा--हे वटो, आप बालक हैं, इसलिए आप स्वार्थ नहीं जानते। द्वीप प्रदाद करनेमें समर्थ मेरे समान दाताकी आराधना कर आप तीन पाद परिमित भूमि मांग रहे हैं, इसलिए मैं आपको बालक ही समझता हूँ। मेरे यहाँ याचक बननेपर उसे पुनः दूसरी जगह याचक बननेकी आवश्यकता नहीं होती, अतः आप अपनी जीविकाके लिए पर्याप्त भूमि मांग लीजिए। भगवान्ने कहा-हे राजन्, संसारमें अनेक विषय है, किन्तु वे विषय अजितेन्द्रिय याचकोंको सन्तुष्ट नहीं कर सकते। जो तीन चरण भूमिसे सन्तुष्ट नहीं है वह द्वीप देनेपर भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। ब्राह्मणको सन्तोषी होना चाहिए, असन्तोषसे ब्राह्मणका नाश होता है। मुझे अधिककी आवश्यकता नहीं है। यह सुनकर राजा बलिने ब्राह्मणको भूमि देनेके लिए जलपात्र ग्रहण किया। दैत्य गुरु शुक्रने भगवान्की इच्छा समझते हुए बलिसे कहा--यह बालक वेषधारी विष्णु हैं, ये तुम से स्वर्ग तथा लक्ष्मी और यशको छीनकर इन्द्रको देगें, इसलिए इन्होंने अवतार ग्रहण किया है। न जानते हुए तीन चरण जमीन देनेकी प्रतिज्ञा कर तुमने दैत्योंका अनिष्ट किया। विश्वका प्रभु एक पाद न्यायसे भूलोक तथा दूसरेसे स्वर्ग और शरीरके विस्तार से आकाश ग्रहण कर लेगें पुनः तृतीयपाद न्यासमें क्या दोगे और यदि सङ्कल्पके अनुसार नहीं दे सकोगे, तो तुम्हारा नरकमें वास नियत होगा। और सब दानमें ही दे दोगे, तो तुम्हारी जीविका कैसे चलेगी। यदि तुम तुम कहो कि अब स्वीकार कर नहीं कैसे करें क्योंकि अनृत भाषणमें प्रायश्चित होगा। तो सत्य और अनृतकी परिभाषा ऋग्वेदकी बह्वृचों ने इस प्रकार कि है—ओम्-यही स्वीकार है और न यह अनृत है। आत्मवृक्षका मूल अनृत है और पुष्पफल सत्य है। जैसे मूलके काटनेसे वृक्ष गिर पड़ता है वैसे ही अनृतके न रहनेपर आत्मवृक्षका रहना असम्भव है, इसलिए यह निर्णय किया गया है कि प्रोत्साहन द्वारा स्त्रियोंके वशीकरणमें, परिहासमें, ब्राह्मण तथा गौ के लिए हिंसामें, वृत्ति संकटमें अनृत बोलनेमें कोई प्रायश्चित नहीं है। उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ विंशतितमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥ तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम्❀ ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ सत्यं भगवता प्रोक्तं

❀ दृष्टान्त—श्रीशुकदेवजीने क्योंकर बलिको गृहपति शब्द से व्यवहार किया।

उत्तर—जो निरन्तर भगवानका नाम जपते रहते हैं उन जीवोंका गृह (मकान) नाम है और पति बलि हैं। वह दिन रात भगवानकी पूजा करता था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार कुलगुरु शुक्राचार्यके कहनेपर कुछ देर चुप होकर सावधान होते हुए बलिने कहा–आपने गृहस्थोंके लिये जो धर्म बतलाया वह सत्य है, जिससे अर्थ, काम, यश तथा वृत्तिमें किसीप्रकारकी बाधा न हो वही दान सत्य है ॥ १,२॥ मैं प्रह्लादके वंशमें उत्पन्न होकर वित्तके लोभसे 'मैं दूँगा' इस की गई प्रतिज्ञाको अब 'नहीं' मैं कैसे कहूँ, जैसा कि धूर्त कहा करते हैं ॥ ३ ॥ असत्यसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है, यह पृथिवीने कहा है। मैं सब कुछ सहन करनेके लिये तैयार हूँ, किन्तु मैं मिथ्यावादी मनुष्य बनना नहीं चाहता ॥ ४ ॥ मुझे नरक, दारिद्र, स्थान त्याग दुःखके सागर तथा मृत्युसे भय नहीं है। मुझे केवल ब्राह्मणके प्रलम्भनसे भय है। इसलिये मैं नरकमें जानेके लिये तैयार हूँ दरिद्र होना मुझे स्वीकार है। मरना मुझे मंजूर है, किन्तु प्रतिज्ञासे हटना मुझे स्वीकार नहीं है ॥५॥ संसारमें जो कुछ धनादि है वह सब मृत प्राणीको छोड़ देगा, उसके साथ नहीं जायगा। यदि

धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥ स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ॥ प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥ न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ॥ सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ॥ न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ॥ तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥ श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ॥ दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ॥ तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥ सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ॥ न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ॥ कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥ १० ॥ यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ॥ स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो

ब्राह्मण दिये गये दानसे सन्तुष्ट नहीं हुआ, तो उस दानका क्या महत्व है। इसलिये याचनाके अनुसार ही दान देना युक्त है। अतः मैं न्यून करना उचित नहीं समझा ॥ ६ ॥ दध्यङ् (दधीचि) शिवि प्रभृति महात्मालोग अपने दुस्त्यज प्राणोंसे भी प्राणियोंका कल्याण करते हैं ममताके आस्पद पृथिवी और धनके विषयमें क्या विचार करना है ॥७॥ हे ब्रह्मन्, जिन-जिन पराक्रमशाली दैत्योंने इस पृथिवीका भोग किया उनका लोक तथा भोग कालसे ग्रसित हो गया, किन्तु यश आजतक विराजमान है, अतः यशकी ही रक्षा करनी चाहिए ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षे, युद्धमें शरीरत्याग करनेवाले सुलभ हैं, किन्तु दानपात्रके प्राप्त होनेपर भी श्रद्धासे धनत्याग करनेवाले दुर्लभ ही हैं ॥ ९ ॥ अर्थियोंके मनोरथ पूर्ण करनेसे जो दैन्य होता है वह मनस्वी तथा दयालु पुरुषके लिये भूषण है, फिर भी आपलोग जैसे ब्रह्मविद् महात्माओंके मनोरथ पूर्ण करनेसे जो दीनता होती है वह तो अत्यन्त प्रशंसनीय है, इसलिये इस बालकका मनोरथ पूर्ण करना आवश्यक है। जो यह चाहता है, वह मैं इसे दूँगा ॥ १० ॥ हे मुने, वेदविधिको जाननेवाले आपलोग जिस महापुरुषकी यज्ञोंद्वारा बड़े आदरके साथ आराधना करते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है वही भगवान् विष्णु मेरे यहाँ उपस्थित हैं, चाहे वे देवरूपसे हों या शत्रुरूपसे । मैं तो उनके मनोरथको अपेक्षित जमीन देकर पूर्ण करूँगा ही ॥११॥ यदि निरपराध मुझको अधर्मके द्वारा भी भगवान् बाँधे, तो भी ब्राह्मण वेषधारी उन्हें मैं नहीं मार सकता, क्योंकि वे ब्राह्मणवेषमें भयभीत शत्रु हैं ॥ १२ ॥ यदि पुण्यश्लोक भगवान् यशका त्याग करना नहीं चाहते, तो वे मुझे रणमें मारकर भूमिका अपहरण कर लें, या मेरे द्वारा निहत होकर सो जायँ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार धर्मज्ञान बतला रहे, उपदेश न माननेवाले, गुरुवचनमें श्रद्धा न रखनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ और मनस्वी अपने शिष्य बलिको दैवसे प्रेरित हुए पंडितमानी बनकर मेरा अनुशासन नहीं मान रहे हो, इसलिये तुम्हारी लक्ष्मी शीघ्रही नष्ट हो जायगी ॥ १५ ॥ यों अपने गुरुके शापसे भी महान् राजा बलि सत्यसे विचलित नहीं हुए और भगवान् वामन की पूजाकर जल अक्षत ग्रहणकर जमीन देनेका सङ्कल्प किया ॥१६॥

द्धास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥ यद्प्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ॥ तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥ १२ ॥ एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ॥ हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ॥ शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ॥ मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५ ॥ एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलिता महान् ॥ वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ विन्ध्यावलिस्तदागत्य पत्नी जालकमालिनी ॥ आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥ यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ॥ अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥ तदाऽसुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ॥ मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥ तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ॥ भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ॥ ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥ रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ

तब मुक्ताकी माला धारणकी हुई उनकी पत्नी विन्ध्यावलीने पादप्रक्षालनके लिये जलपूर्ण सुवर्णकलश ला दिया ॥१७॥ यमराज बलिने स्वयं हर्षके साथ भगवान्का पाद प्रक्षालन किया और उस जलको विश्वपावनी गंगा समझते हुए सिरपर धारण किया ॥ १८ ॥ उस समय स्वर्गस्थित देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण बलिके कर्मकी प्रशंसा करते हुए असुरेन्द्र बलिके ऊपर पुष्पवर्षा करने लगे तथा बहुत प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ हजारों दुन्दुभियोंका खूब नाद होने लगा। गन्धर्व, किंपुरुष और किन्नर गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, मनस्वी विद्वान् बलिने इस यज्ञमें तीनों लोकका जो दान अपने शत्रुरूपी वामनको दे दिया, यह बहुत दुष्कर कर्म किया—इसप्रकार देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारणादि सब आपसमें कहने लगे ॥२०॥ अनन्त भगवान् विष्णुका वह त्रिगुणात्मक वामनरूप अद्भुत ढंगसे बढ़ गया, जिस रूपमें पृथिवी, आकाश, स्वर्ग, दिशा, विवर, समुद्र, तिर्यक्, मनुष्य, देवता, ऋषि सभी आ गये ॥२१॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महाविभूति भगवान्‌के त्रिगुणात्मक शरीरमें आचार्य, ऋत्विग् तथा सदस्य सहित दैत्यराज बलिने त्रिगुणात्मक इस संसारको देखा ॥ २२ ॥ विश्वमूर्ति पुराणपुरुष भगवान्‌के चरणतलके नीचे रसातल, चरणोंके नीचे पृथिवी, जाँघोंमें वृक्षों, जानुओंमें पर्वतों और उरुप्रदेशमें वायुसैन्यको इन्द्रपदमें स्थित बलिने देखा ॥ २३ ॥ उरुक्रम सर्वव्यापक भगवान्‌के वस्त्रमें सन्ध्याको, गुह्यप्रदेशमें प्रजापतियोंको, जघनमें दैत्योंको, नाभिमें आकाशको, कुक्षिमें सात समुद्रोंको, उरस्थलमें नक्षत्र पंक्तिको देखा ॥ २४ ॥ हे राजन्, भगवान् मुरारिके हृदयमें धर्मको, स्तनोंमें सत्य और अनृतको, मनमें चन्द्रमाको वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको, कण्ठमें सामवेद तथा शब्दसमहूको देखा ॥ २५ ॥ हे नृप, भुजाओंमें इन्द्रादि देवताओंको, कर्णप्रदेशमें दिशाओंको, मस्तकपर स्वर्गको, केशोमें मेघोंको, नासिकामें वायुको, नेत्रोंमें सूर्यको, मुखमें अग्निको ॥ २६ ॥ वाणीमें वेदोंको, जिह्वामें वरुणको, भ्रुओंमें विधि तथा निषेधको, पक्ष्ममें अहोरात्रको, ललाटमें

पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः ॥ पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥ सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीन्
जघने आत्ममुख्यान् ॥ नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च मन-
स्यथेन्दुम् ॥ श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥ इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ॥
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६ ॥ वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ॥ अहश्च
रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७ ॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ॥ छायासु मृत्युं हसिते
च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ॥ प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि
ददर्श वीरः ॥२९॥ सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ॥ सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ पर्ज-
न्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ॥ विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥३१॥ सुनन्दमुख्या उप-
तस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ॥ स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥३२॥ मधुव्रतस्रग्वनमालयावृतो रराज राज-

क्रोधको, अधरोष्ठमें लोभको ॥ २७ ॥ स्पर्शमें कामको, रेतमें कालको, पृष्ठपर अधर्मको, पादन्यासमें यज्ञको, छायामें मृत्युको, हास्यमें मायाको तथा रोमोंमें औषधिसमूहको ॥ २८ ॥ नाड़ियोंमें नदियोंको, नखमें शिलाओंको, बुद्धिमें ब्रह्माको, इन्द्रियोंमें देवगण तथा ऋषियोंको, शरीरमें स्थावर तथा जंगम प्राणियोंको उस वीर दैत्यराज बलिने देखा ॥ २९ ॥ हे राजन्, इसप्रकार भगवान्‌के शरीरमें सम्पूर्ण जगत्‌को तथा भगवान्‌के असह्य सुदर्शनचक्र, मेघके समान शब्द करनेवाले धनुष, मेघके समान गर्जन करनेवाले पाञ्चजन्य शंख, तेज चोट करनेवाली कौमुदी गदा, विद्याधर तलवार, सैकड़ों चन्द्रमाकी कान्तिवाले चर्म और अक्षय्य सायकवाले श्रेष्ठ तूणको देखकर सब राक्षस अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए ॥ ३०, ३१ ॥ सुनन्द मुख्य पार्षदोंने लोकपालोंके साथ भगवान्‌की स्तुति की । हे राजन्, स्फुरणशील किरीट, मकराकार कुण्डल, श्रीवत्स, रत्नादिसे युक्त मेखला, पीताम्बर तथा मधुभ्रमरोंसे व्याप्त वनमालसे सुशो-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मित उरुक्रम भगवान् अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए त्रिविक्रम भगवान्ने एकपादसे ही बलिके समस्त भूमिको, शरीरसे आकाशको, भुजाओंसे दिशाओंको और द्वितीयचरणसे स्वर्गको अतिक्रमणकर लिया। तृतीयचरणके लिये बलिके पास कुछ न बचा, क्योंकि उरुक्रम भगवान्का द्वितीयचरण स्वर्गके ऊपर सत्यलोकतक पहुँच गया ॥ ३२-३४ ॥

॥४३॥ न्भगवानुरुक्रमः ॥ क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥३३॥ पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥ ॥२१॥

उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० अ० विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

बीसवें अध्याय का सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार कुलगुरु शुक्राचार्यके समझानेके बाद कुछ देर तक चुप रहकर बलिने कहा—हे महाराज, अपने गृहस्थोंके लिये जो धर्म बताया वह सत्य है, किन्तु प्रह्लादके वंशमें मैं उत्पन्न होकर झूठ बोलना नहीं चाहता, क्योंकि असत्यसे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है। मुझे नरकमें जानेसे भय नहीं है, दरिद्रतासे भी भय नहीं है, भय है तो केवल ब्राह्मणके सामने मिथ्यावादी बननेमें। आज कल जितने दैत्य राजा हुए उनका केवल यश ही आज तक विराजमान है, इसलिए यशका ही उपार्जन करना चाहिए। यदि दान देनेसे दरिद्रता भी हो, तो वह श्लाघनीय है। हे मुने, वेदविधिसे जिस भगवान्की आप लोग उपासना करते हैं वही भगवान् विष्णु याचक रूपसे उपस्थित हैं। इनको दान देना आवश्यक है। यदि भगवान् निरपराध मुझको बाँध भी लें, तो भी ब्राह्मण रूप धारण किये हुए भगवान्के लिए मैं कुछ नहीं कर सकता। अगर भगवान् मुझे मारकर भूमिका अपहरण भी कर लें तो भी मेरा यश ही है। शुक्राचार्यने कहा—तुम पण्डित ज्ञानी होकर मेरी आज्ञाका उलंघन कर रहे हो, इसलिए तुम्हारी लक्ष्मी शीघ्र ही नष्ट हो जायगी। राजा बलिने जल लेकर सङ्कल्प कर भूमि भगवान् वामनको दे दी। पत्नी द्वारा लाये जलसे बलिने वामनका पाद प्रक्षालन कर सिरपर चढ़ाया। देवता, गन्धर्व तथा सिद्ध चारणादिकोंने बलिकी प्रशंसा करते हुए पुष्पवर्षा की। दुन्दुभी नाद हुआ। भगवान् वामनने अपने विराट्स्वरूपको धारण किया, जिस रूपमें बलिने आचार्य, ऋत्विज तथा सदस्यके सहित अपनेको तथा सचराचर जगत्को देखा। पार्षदोंने भगवान्की स्तुति की। भगवान्ने अपने एक चरणसे भूलोकको दूसरेसे स्वर्गको शरीरसे आकाशको और भुजाओंसे दिशाओंको नाप लिया। तीसरे चरणके लिए बलिके पास कुछ भी अवशिष्ट न रहा क्योंकि भगवान्का दूसरा चरण स्वर्गके ऊपर-ऊपर सत्यलोक तक पहुँच गया। बीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ एकविंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः

॥१॥ वेदोपवेदानियमान्विता यमास्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ॥ ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ॥ २ ॥ ववन्दिरे

❀ संसारमें ख्याति बढ़ानेके लिये भगवान् वामनके द्वारा तीन डेग भूमि नापनेके बहाने राजा बलिका बन्धन—यह वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे नरदेव, भगवान्के चरणकमलको सत्यलोकमें देखकर भगवान्के चरणनखकी द्युतिसे तिरस्कृत अपने स्थानकी द्युतिवाले ब्रह्मा, मरीचि मिश्र प्रभृति बड़े बड़े व्रत करनेवाले ऋषि और सनन्दनादि योगीजन उपस्थित हो गये ॥ १ ॥ तथा वेद, उपवेद, नयसे युक्त यम, तर्क, इतिहास, शिक्षा-कल्पादि अंग, पुराण तथा पुराण संहिता औ योगरूप वायुसे ॥४३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दीप्त ज्ञानाग्निसे दग्ध कर्मफलवाले पुरुष भी आ गये और भगवान्‌के चरणकी वन्दना करने लगे। जिस चरणकमलके स्मरणसे कर्मोंसे अप्राप्य भगवान्‌के धामको चले गये। भगवान्‌के नाभिकमलसे उत्पन्न स्वयं ब्रह्माने भगवान्‌के उन्नत चरणके पूजनके लिये पूजासामग्री उपस्थित की और बड़ी भक्तिसे चरणकी पूजाकर पादोदक ग्रहण किया ॥ २, ३ ॥ हे राजन्, भगवान्‌के चरणकमलके स्पर्शसे पवित्र होकर उरुक्रम ब्रह्माके कमण्डलका जल आकाशमें गंगारूप हो गया। गिरता हुआ वह जल तीनों लोकोंको पवित्र करता है। भगवान्‌की हो वह उज्ज्वल कीर्ति है ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक लोकपालोंने अपने सेवकोंके साथ समाहृत होकर आत्मविभूतिको उपसंहृत किये हुए भगवान्‌के लिये बलिप्रदान किया ॥ ५ ॥ सुगन्धित जलों, सुन्दर मालाओं, दिव्यचन्दनों, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीपों, लाजा, अक्षत और फलांकुरोंसे एवं स्तोत्रपाठों, जय शब्दों, भगवान्‌के पराक्रमको महिमासे अंकित नृत्य, वाद्य, गीतों, शंख तथा

यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ॥ समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचि-
श्रवा यन्नाभिपङ्केरुहसम्भवः स्वयम् ॥३॥ धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ॥ स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ॥ सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥५॥ तोयैः
समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥६॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्ख-
दुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥ जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः ॥ विजय दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिप-
दव्याजयाच्ञया ॥ ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥ न वा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं
चिकीर्षति ॥ १ ॥ अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा ॥ सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥ सत्यव्रतस्य सततं दीक्षि-
तस्य विशेषतः ॥ नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ॥ इत्यायुधानि जगृहुर्बले-
रनुचरासुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः ॥ अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दिति-

दुन्दुभिके शब्दोंसे भगवान्‌की उन सबने पूजा की ॥ ६, ७ ॥ और मनके समान वेगवाले ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने भेरीके शब्दोंसे सब दिशाओंमें महोत्सवकी सूचना देते हुए भगवान्‌की प्रदक्षिणा की ॥ ८ ॥ दैत्योंने तीन चरणमात्र याचनाके छलसे सम्पूर्ण पृथिवीको अपहृत होते देखकर यज्ञमें दीक्षित अपने स्वामीसे अत्यन्त क्रोधित होते हुए कहा ॥ ९ ॥ यह ब्राह्मण नहीं है, किन्तु मायावियोंमें सर्वश्रेष्ठ विष्णु है। यह ब्राह्मणका रूप धारणकर देवकार्य करना चाहता है ॥ १० ॥ बटुरूप धारणकर भीख माँग रहे शत्रुरूप इसने हमलोगोंके सत्यव्रत दयालु राजा बलिका, जिसने यज्ञमें दण्ड देना छोड़ दिया है, सर्वस्व छीन लिया ॥ ११ ॥ इसलिये निरन्तर सत्यव्रती तथा विशेष करके यागमें दीक्षित हुए, ब्रह्मण्य और दयावान् राजा बलि किसी प्रकार भी झूठ नहीं बोल सकते ॥ १२ ॥ अतः इसके वध करनेमें अधर्म भी नहीं है और हमलोगोंके स्वामीकी शुश्रूषा भी है। इसप्रकार विचारकर बलिके सेवक सब अस्त्र लेकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दौड़े ॥ १३ ॥ हे राजन्, राजा बलिके नहीं चाहते हुए भी सेवकगण वामनको मारनेके लिये हाथमें शूलादि आयुध लेकर दौड़े, क्योंकि उन्हें क्रोध अधिक आ गया था ॥१४॥ हे नृप, आयुधके सहित दौड़ते हुए उन असुरसेना नायकोंको देखकर विष्णुके दूतोंने हथियार लेकर हँसते हुए उनका प्रतिषेध किया ॥ १५ ॥ नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड़, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त और सात्वत प्रभृति अयुत नागोंके बलके समान बलवाले सब विष्णुके दूतोंने आसुरी सेना नष्टकर दी ॥१७॥ बलिने अपने सैन्यको नष्ट होते देखकर शुक्रके शापको स्मरणकर अपने सैनिकोंको लड़नेसे रोका ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते, हे राहो, हे नेमे, आपलोग हमारे वचनको सुनें और संग्रामसे विरत हो जायँ, यह हमलोगोंके अनुकूल समय नहीं है ॥ १९ ॥ हे दैत्यो, जो सब भूतोंके सुख दुःखकी उपत्तिमें समर्थ है उस कालका पुरुष अपने पौरुषसे अतिक्रमण करनेमें समर्थ नहीं है ॥ २० ॥ जो

जानीकपान्नृप ॥ प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधा ॥ १५ ॥ नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट् ॥ १६ ॥ जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ॥ सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७ ॥ हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ॥ वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ॥ मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ॥ तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥ यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ॥ स एव भगवानद्य वर्तते यद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ॥ सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ॥ दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः* ॥ २३ ॥ एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४॥ श्रीशुक उवाच ॥ पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ रसां निर्विविशू राजन्विष्णुपार्षदताडिताः ॥ २५ ॥ अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभुचिकीर्षितम् ॥ बबन्ध

भगवान् पहले देवताओंका अकल्याण करनेवाले थे, वे ही आज उनका कल्याण करना चाहते हैं। भगवान् पहले हमलोगोंके कल्याणके इच्छुक थे, लेकिन अब नहीं है। समय बदल गया है ॥ २१ ॥ बल, बुद्धि, दुर्ग, मन्त्र, औषधादिसे तथा साम, दाम आदि उपायोंसे मनुष्य कालका अतिक्रमण नहींकर सकता ॥ २२ ॥ हे दैत्यो, आप लोगोंने पहले अनेक बार इन देवताओंपर विजय पायी है, आज वेही देवता हमलोगोंको जीतकर प्रसन्न हो रहे हैं ॥ २३ ॥ जब हमलोगोंका भाग्य अनुकूल होगा, तब पुनः हमलोग विजय प्राप्त करेंगे। इसलिये आप लोग उस समयकी प्रतीक्षा करें, जो हमलोगोंके अनुकूल हो ॥२४॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, बलिके इस वचनको सुनकर दैत्य और दानवोंके यूथप भगवान्के पार्षदोंसे पीड़ित

*दृष्टान्त—वामन भगवान्ने क्रोधके वशीभूत हो राजा बलिसे कहा कि तूने जो कहा था वह पूर्ण न हो सका। अतः नरकमें रहो। पर उसे सुतल लोकमें भेजा यह क्यों।
उत्तर—सुतल लोक में वास करोगे। जहाँ मणिरत्नोंकी खान है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होते हुए रसातलमें घुस गये ॥२५॥ गरुड़ने विराट् भगवान्के अभिप्रायको समझकर अपने वारुणपाशसे यज्ञमें सोम अभिषवके दिन बलिको बाँध लिया ॥२६॥ भगवान् विष्णुसे बलिके बँध जानेपर स्वर्ग तथा पृथिवीपर सब दिशाओंमें महान् हाहाकार शब्द होने लगा। सबको आश्चर्य हो गया ॥२७॥ हे राजन्, वरुणपाशसे बद्ध हुए, श्रीहत, स्थिर, प्रज्ञ और उदारकीर्ति बलिसे भगवान् वामनने कहा—हे दानव, तुमने मुझे तीनपाद परिमित भूमिदान दिया है। मैंने दो चरणसे ही स्वर्ग तथा पृथिवीको नाप लिया। अब तीसरे चरणके लिये और दो ॥२८, २९ ॥ जहाँतक सूर्य अपनी किरणोंके साथ तप्यमान होते हैं और चन्द्रमा अपने नक्षत्रोंके साथ जहाँतक प्रकाशमान होते हैं वहाँतक तुम्हारी पृथिवी है ॥ ३० ॥ तुम्हारे देखते-देखते मैंने एकपादसे भूलोकको, द्वितीयसे स्वर्गको और शरीरसे आकाश तथा दिशाओंको नाप लिया ॥३१॥ प्रतिज्ञा करके नहीं देनेवाले मनुष्यका नरकमें वास होता है और तुम्हारे गुरु शुक्रने भी

वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येहनि क्रतौ ॥ २६ ॥ हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतोदिशम् ॥ गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ॥ नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥२८॥ पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ॥ द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुकल्पय ॥२९॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ॥ यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥३०॥ पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ॥ स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥३१॥ प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ॥ विश त्वं निरयं तस्माद् गुरुणा चानुमोदितः ॥३२॥ वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ॥ प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥३३॥ विप्रलब्धो ददानीति त्वयाहं चाढ्य-मानिमा ॥ तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

इसका अनुमोदन किया है, अतः तुम नरकमें प्रवेश करो ॥३२ जो याचकके लिये प्रतिज्ञा करके नहीं देता है उसका मनोरथ नष्ट हो जाता है तथा स्वर्ग उससे दूर चला जाता है और वह नीचे गिर जाता है ॥३३॥ तुमने धनके अभिमानसे 'मैं दूँगा' ऐसा कहकर मेरा तिरस्कार किया और दे भी न सका, इसलिये असत्यका फल नरकवास तथा अपराधियोंके समान कुछ वर्षों तक करो ॥ ३४ ॥

इक्कसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्के चरणको सत्यलोकमें आये देखकर ब्रह्मा तथा मरीचि आदि सभी एकत्रित हुए और भगवान्की प्रार्थना करने लगे। ब्रह्माने पूजन कर चरणोदक लिया। भगवान्के पादप्रक्षालनसे पवित्र ब्रह्माके कमण्डलुका जल आकाशगङ्गा हो गया। ब्रह्मादि लोकपालोंने जल, पुष्प, धूप,दीप, चन्दनादि, स्तुति, कीर्तन तथा अनेक वाद्योंसे भगवान्की पूजा की। दैत्योंने सम्पूर्ण पृथ्वीको व्याजसे अपहृत होते देखकर बिना बलिके कहे ही वामनको मारनेके लिए दौड़े। नन्द, सुनन्द प्रभृति विष्णुके पार्षदोंने आसुरी सेनाका नाश कर दिया। जब बलिने अपने सैन्योंको मारते देखा, तब अपने सैनिकोंसे कहा—हे विप्रचित्ति, प्रभृति प्रमुख सैनिकों, आप लोग युद्धसे विराम करें। जो भगवान् प्राणियोंको सुख-दुःख देनेमें समर्थ हैं उन्हें दैत्य अपनी शक्तिसे पराजित नहीं कर सकते। जो भगवान् पहले देवताओंका अकल्याण कर रहे थे वही आज उनके कल्याणके लिये सन्नद्ध हैं। आप लोगोंने अनेक बार देवोंपर विजय पायी है, आज देवता आपको पराजित कर रहे हैं। पुनः जब आपका भाग्य अनुकूल होगा तब आप भी इनको पराजित करोगे। अतः आप लोग समयकी प्रतीक्षा करें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बलिके वचनको सुनकर दैत्य सब रसातलको चले गये। गरुड़ने भगवान्‌का अभिप्राय समझकर बलिको वरुणपाशसे बाँध लिया। भगवान्‌ने पाश बद्ध हतश्री, उदारकीर्ति बलिसे कहा—तुमने मुझे तीन पाद परिमित भूमि देनेको कहा है। मैंने सारी भूमि दो चरणसे नाप ली, अब तीसरे चरणके लिये क्या दोगे? अगर नहीं दे सकते, तो असत्य भाषणसे तुम्हें नरकमें निवास करना होगा, क्योंकि जो याचकको प्रतिज्ञा करके उसके अनुकूल दान नहीं देता, वह नरकगामी होता है। तुमने धनके घमण्डसे 'मैं दूँगा' ऐसा कहकर मेरा तिरस्कार किया, इसलिए तुम्हारा मनोरथ नष्ट हो गया और स्वर्ग दूर चला गया। अब तुम्हें नरकमें निवास करना होगा। इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ वरुणपाशसे बँधे हुए बलिके द्वारा अपने मस्तकपर भगवान्‌से तीसरा चरण रखनेकी प्रार्थनाके अनन्तर स्वर्गसे भी अधिक रमणीय रसातल लोकमें उसका वास ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, राजा बलि वामन भगवान्‌के इस वचनको सुनकर वचनसे विदीर्ण हृदय होते हुए भी अविदीर्णके समान शान्तिपूर्वक कहने लगे ॥ १ ॥ बलिने कहा—हे उत्तमश्लोक, मेरी प्रतिज्ञा असत्य नहीं है, क्योंकि वामनरूपसे याचनाकर आपने जमीन नापते समय विराट्स्वरूप धारणकर लिया। हे सुरवर्य, यदि आप मेरे वचनको झूठ समझते

❀ अथ द्वाविंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ एवं विप्रकृतो राजन् बलिर्भगवताऽसुरः ॥ भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ॥ करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ॥ नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥ पुंसां श्लाघ्यतरं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ॥ यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४ ॥ त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ॥ यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥ यस्मिन्वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः ॥ बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥ तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ॥ बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥ पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्राद आविष्कृतसाधुवादः ॥ भवद्विपक्षेण विचि-

है, तो मैं उसे सत्य साबित करता हूँ, जिससे वह झूठ न होने पावे। मैं आपको अपना मस्तक समर्पण करता हूँ। आप तीसरा चरण इसके ऊपर रखें ॥ २ ॥ हे भगवन्, मैं नरकसे नहीं डरता, पाशबन्धनसे भी नहीं डरता, स्थान त्यागसे भी मुझे भय नहीं है, कठिन दुःखसे मैं नहीं डरता, आर्थिक कष्टसे नहीं डरता और न मैं डरता हूँ आपके विनिग्रहसे। जैसा कि मैं केवल अपकीर्तिसे अत्यन्त उद्विग्न हो उठता हूँ ॥ ३ ॥ हे भगवन्, श्रेष्ठजनोंके द्वारा दिया गया उस दण्डको मैं अच्छा समझता हूँ, जिसे माता, पिता, सुहृद और बन्धु नहीं दे सकते ॥ ४ ॥ शत्रुके व्याजसे वर्तमान आप हम असुरोंके निश्चय परमगुरु हैं, क्योंकि आप दुर्मदान्ध हम असुरों को ज्ञानचक्षु प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥ जिस आपमें वैरभाव रखनेसे अनेक असुर उस सिद्धिको प्राप्त हो गये, जिसे एकान्त योगीलोग प्राप्त करते हैं ॥६॥ उस भूरिकर्मा भगवान् आपसे मैं निगृहीत हुआ हूँ तथा वरुणपाश बद्ध हुआ हूँ, अतः न मुझे इसमें कोई लज्जा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है और न काई दुःख है ॥ ७ ॥ अपने पिता और आपके शत्रु हिरण्यकशिपुके द्वारा नाना प्रकारकी हिंसामें पहुँचा दिये जानेपर भी अगाध बोधवाले महान् मेरे पितामह इस देहसे क्या लाभ है, जो आयुके अन्तमें त्याग देती है, सर्वस्व हरण करनेवाले अपने आत्मीय पुत्रादि चोरोंसे क्या लाभ है, बन्धनके हेतु भूतात्मा आदिसे क्या लाभ, इसप्रकार गृहकार्यमें केवल आयुका नाश होता है, किसीप्रकारका उसमें प्राणीको सुख नहीं है, यों संसारको असार समझकर आपके ध्रुव चरणारविन्दको भजने लगे, जिससे प्राणीको किसी तरहका भय नहीं रहता। वे संसारसे डरते थे। वे मेरे पितामह आपके भक्तोंके सम्मानित थे। आपके भक्तोंने उन्हें साधुवादसे विभूषित किया था और दैत्यकुल नाशकमें भी वे श्रेष्ठ थे ॥ ८–२० ॥ मैं भी जबर्दस्ती लक्ष्मीसे रहित कराकर अपने भाग्यसे आप भगवान्के सम्मुख लाया गया हूँ। जिस लक्ष्मीके कारण स्तब्धमति प्राणी मृत्युके निकट जीवनको भी अध्रुव नहीं समझता है ॥ ११ ॥

त्रवैशसं सम्प्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ॥ किं जायया संसृतिहेतु-
भूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥ इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ॥ ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जना-
द्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तमः ॥ १० ॥ अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ॥ इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं यया-
ऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः
॥ १२ ॥ तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ॥ प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥ १३ ॥
तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ॥ ननाम मूर्ध्नाश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥ १४ ॥ स तत्र हासी-
नमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ॥ उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविक्लवः ॥ १५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ त्व-
यैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ॥ मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥ यया हि

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, इसप्रकार राजा बलि कह रहे थे कि भगवान्के प्रिय प्रह्लादजी पूर्ण चन्द्रमाके समान वहाँ आ गये ॥१२॥ शोभासे विराजमान, कमलनेत्र, पिशंग वस्त्रधारी, अंजनके समान कान्तिवाले, विशाल भुजाओंको धारण किये हुए, सुन्दर शरीरवाले अपने पितामह प्रह्लादको बलिने देखा ॥ १३ ॥ पाशबद्ध राजा बलिने अपने पूजनीय पितामहका पहलेके समान पूजा नहीं किया, किन्तु आँसुओंसे पूर्ण चञ्चल नेत्रोंके सहित मस्तकसे नमस्कार किया और अहंकाररूप अपराधका स्मरणकर लज्जित हो गये ॥ १४ ॥ आँसुओंसे भरे आँखोंसे युक्त महामना प्रह्लादने सुनन्दन आदि पार्षदोंसे उपासित सज्जनोंके पति वामन भगवान्को वहाँ आसीन देखकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १५ ॥ प्रह्लादने कहा—हे भगवन्, आपने ही इसे जबर्दस्त इन्द्रपद दिया था और आपने ही आज छीन लिया। यह अपने इसके ऊपर महान् अनुग्रह किया, इसको मैं बहुत अच्छा समझता हूँ, क्योंकि आपने इसके धनमदको तोड़ दिया। धनके कारण यह बहुत मदान्ध हो गया था ॥ १६ ॥ लक्ष्मीसे विद्वान् मनुष्य भी मोहित हो जाते हैं क्योंकि लक्ष्मीके रहते कौन मनुष्य आत्मतत्त्वको यथावत् देख सकता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अखिल लोकसाक्षी जगदीश्वर उस नारायणको नमस्कार है ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, कृताञ्जलि हो प्रह्लादके इतना कहनेपर मधुसूदन भगवान् कुछ कहना चाहते थे ॥ १८ ॥ किन्तु हे राजन्, उसी समय बँधे हुए अपने पतिको देखकर साध्वी पतिव्रता विन्ध्यावलि पतिके भयसे विह्वल होकर कहनेके लिये प्रवृत्त हुई और हाथ जोड़कर मुख नीचे किये हुए कहने लगी ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिने कहा–हे ईश, आप अपनी क्रीड़ाके लिये इन तीनों जगत्का निर्माण करते हैं, किन्तु अल्पबुद्धि मनुष्य अपना स्वामित्व इसपर समझते हैं। इसलिये यह कह रहा है कि मैंने तीनों लोक आपको दे दिया। अब मैं अपना सिर देखकर प्रतिज्ञापूर्ण करना चाहता हूँ। इसको देहादिमें स्वामित्वका अभिमान है इसलिये इस कुबुद्धि निर्लज्जके ऊपर आप स्वयं दया करें। हे नाथ, इसके समान ही आपके द्वारा अवरोपित कर्तृत्ववाले लोग इस संसारके कर्ता पालक और संहारक आपको भला क्या समर्पितकर सकते हैं ॥ २० ॥ ब्रह्माने

विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ॥ यस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै नारायणायखिललोकसाक्षिणे ॥ १७॥ श्रीशुक उवाच॥
तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्रादस्य कृताञ्जलेः ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥ १८ ॥ बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ॥
प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश
कुर्युः ॥ कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ॥
मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥२१॥ कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ॥ निवेदितं च सर्वस्वमात्माऽविक्लवया धिया ॥२२॥
यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ॥ अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्
॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ॥ यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥ २४ ॥ यदा कदाचि-
ज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ॥ नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५ ॥ जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ॥ यद्यस्य न भवेत्स्त-
म्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ॥ सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदै-

कहा—हे भूतभावन, हे भूतेश, हे जगन्मय, आपने इसका सर्वस्व अपहरणकर लिया। अब इसे आप छोड़ दें, यह बन्धनके योग्य नहीं है ॥ २१ ॥ इसने आपको सारी पृथिवी और कर्मद्वारा अर्जित अपने सारे लोक दे दिये। इसने सर्वस्व समर्पण कर दिया। अपना शरीर भी आपको इसने शान्तबुद्धिसे समर्पितकर दिया, अतः इसे आप अब छोड़ दें ॥ २२ ॥ जिस आपके चरणका जल तथा दूर्वांकुरसे अच्छी तरह पूजनकर अशठबुद्धि मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त करता है उस आपको तीनों लोक दानमें देकर शान्तात्मा यह बलि दुःख कैसे पायगा ॥ २३ ॥ भगवान्ने कहा—हे ब्रह्मन्, मैं जिसके ऊपर कृपा करता हूँ, उसका मैं धन छीन लेता हूँ, क्योंकि धनके मदसे दुर्विनीत होकर मनुष्य मेरा तथा लोकका अपमान करता है ॥२४॥ जब यह जीवात्मा प्रसन्न होकर अपने कर्मोंके अनुसार नानायोनियोंमें घूमते हुए कदाचित् ही जब कभी मनुष्य शरीरको प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ उस मनुष्य शरीरके प्राप्त होनेपर जन्म,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य तथा धनादिकोंसे यदि इसे मद न हो, तो हमारी इसके ऊपर अनुकम्पा समझना ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन्, मानरूपी अनम्रताके निमित्तभूत तथा चारों ओरसे समस्त श्रेयके प्रतिकूल जन्म, कर्म, ऐश्वर्य आदिके रहनेपर मेरा भक्त मोहित नहीं होता ॥ २७ ॥ दानव और दैत्योंमें सर्वश्रेष्ठ, कीर्तिवर्धन राजा बलिने अजय मेरी माया जीत ली है, अतः तकलीफ उठा रहा भी यह मोहित नहीं हो रहा है ॥ २८ ॥ यह क्षीणधन, स्थानसे भ्रष्ट, शत्रुओंसे दुःखको प्राप्त तथा बद्ध एवं स्वजातियोंसे त्यक्त होकर यातनाका अनुभवकर रहा है ॥ २९ ॥ सत्यव्रत बलि गुरुसे शप्त होनेपर भी सत्यसे विचलित नहीं हुआ और छलसे मेरे माँगनेपर भी सत्यवादी इसने अपने धर्मका भी त्याग नहीं किया ॥ ३० ॥ देवताओंसे अप्राप्य मेरे स्थानको प्राप्त करेगा और सावर्णि मन्वन्तरमें मेरे आश्रयसे इन्द्र होगा ॥ ३१ ॥ तबतक विश्वकर्मासे निर्मित पाताललोकमें बलि वास करेगा। जहाँ रहनेवालोंको आधि, व्याधि, क्लम,

त्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ॥ अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥ क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ॥ ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनु यापितः ॥ २९ ॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ॥ छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ॥ सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥ तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ॥ नोपसर्गा निवसतां सम्भवन्ति ममेक्षया ॥ ३२ ॥ इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ॥ सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥ ३३ ॥ न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे ॥ त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४ ॥ रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ॥ सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥ तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः ॥ दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति* ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अ० बलिवामनसम्वादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तन्द्रा, पराभव और उपसर्ग (किसी तरहका उपद्रव) नहीं होता ॥ ३२ ॥ हे महाराज इन्द्रसेन, आप स्वर्गवासियोंसे प्रार्थ्य पाताललोकको अपने बन्धुओंके साथ जाइये। आपका कल्याण हो ॥ ३३ ॥ जहाँपर रहते हुए आपको लोकेश भी पराजित नहीं कर सकते, औरोंकी तो बातही क्या है। एवं आपकी आज्ञाका उलंघन करनेवाले दैत्योंको मेरा चक्र दण्ड देगा ॥ ३४ ॥ मैं आप तथा नौकर-चाकरसहित आपके सारे परिवारकी सब तरहसे रक्षा करूँगा। हे वीर, आप वहाँ भी मुझे सदा अपने निकट पायेंगे ॥ ३५ ॥ दानव और दैत्योंके सहवाससे उत्पन्न आपका असुरभाव मेरे अनुभावको देखकर शीघ्रही कुण्ठित हो जायगा ॥ ३६ ॥

बाईसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्के इस वचनको सुनकर विदीर्ण हृदय होते हुए भी बलिने धैर्यधारण कर कहा—हे भगवन्, यद्यपि आपने वामनरूपसे याचना कर जमीन नापते समय विराट्रूप धारण किया तथापि मैं अपने शरीरको भी समर्पित कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहता हूँ, इसलिए आप अपना तीसरा चरण मेरे मस्तक-

*दृष्टान्त—बलि उस लोकको गया जिसके लिए देवतागण भी तरसते हैं। अर्थात् तपस्या और यज्ञद्वारा भी कठिनता से प्राप्त करते हैं।

उत्तर—जिस समय भगवान्ने उसका सारा साम्राज्य अपने हस्तगत किया उसी समय मनसे उसे अगम्यलोक भेज दिया ऐसा मानना चाहिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर रखें। मुझे नरक तथा स्वर्ग त्यागादि कष्टोंका भय नहीं है, केवल एक ब्राह्मणके अपमानका भय है। अतः मैं अपने शरीरको भी देकर प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहता हूँ। आप मदान्ध दैत्योंको ज्ञान चक्षुप्रदान करते हैं। आपसे वैर कर अनेक दानव परम गतिको प्राप्त कर गये। मैं भी वरुणपाशसे बाँधकर अपने भाग्यसे उसी परमेश्वरके सामने लाया गया हूँ, जिसके भक्त हमारे पितामह तथा ध्रुव प्रभृति हैं। उन लोगोंने असार संसारकी मायाका त्यागकर आपकी शरण ली। वस्तुतः पुत्र, स्त्री तथा धनादि केवल बन्धनके हेतु हैं। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उसी समय चन्द्रमाके समान देदीप्यमान प्रह्लाद वहाँ पहुँचे। कमलनेत्र पिशंग वस्त्रधारी, प्रलम्बबाहु प्रह्लादको देखकर राजा बलि पहलेके समान पूजन तो न कर सके, किन्तु सिरसे नमस्कार मात्र किया। प्रह्लादने भगवान्को नमस्कार कर कहा—हे भगवन्, आपने ही इसे इन्द्रपद प्रदान किया और छीन भी लिया। इससे मैं प्रसन्न हूँ, क्योंकि यह पद पानेसे गर्वित हो गया था। प्रह्लादके बचनको सुनकर भगवान् कुछ कहना ही चाहते थे कि बलिकी स्त्री विन्ध्यावलि बोल उठी—हे भगवन्, आप अपनी क्रीड़ाके लिए त्रिलोकका निर्माण करते हैं, किन्तु मूर्खजन देहाभिमानसे उसपर अपना स्वामित्व समझते हैं। जैसे हमारे पतिदेव कह रहे हैं कि मैंने आपको तीन लोक दे दिये। अब अपना शरीर भी देनेको मैं तैयार हूँ। इन्हें अभी भी देहादिका अभिमान बना हुआ है, अतः आप दया करते अपनी ओरसे इन्हें छोड़ दें। ब्रह्मा भी वहाँ पहुँचे और भगवान्को नमस्कार कर कहने लगे—हे भगवन्, आपने इनका सर्वस्व छीन लिया। तीनोंलोकको दानमें देनेवाला बलि बन्धनके योग्य नहीं है। उसे शीघ्र मुक्त कीजिये। भगवान्ने कहा—मैं जिसपर कृपा करता हूँ उसका सर्वस्व छीन लेता हूँ, क्योंकि धनके मदसे मनुष्य हमारा तथा लोकका अपमान करता है। मैं बलिके लिए देवोंसे भी अप्राप्य अपने स्थानको दे रहा हूँ और यह बलि सावर्णि मन्वन्तर में मेरी कृपासे इन्द्र होगा। हे बले, तबतक आप विश्वकर्मासे निर्मित पाताल लोकमें निवास कीजिये। वहाँ आधि, व्याधि, आदि आपको सन्तप्त न कर सकेगी। मैं परिवारके साथ आपकी रक्षा करूँगा और वहाँ आप मेरा प्रतिदिन दर्शन करेंगे। बाईसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥ बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥१॥ बलिरुवाच ॥ अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ॥ यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ॥ विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥ एवमिन्द्राय भगवान्प्रत्यानीय

❀ अपने पितामहके साथ राजा बलिके पातालमें चले जानेपर उपेन्द्रके साथ भगवान् विष्णुका स्वर्गमें जाकर पूर्ववत् आनन्द करना—यह वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार कहते हुए पुरातनपुरुष भगवान्के प्रति सब साधुओंके मान्य, महानुभाव, श्रद्धाञ्जलि, अश्रुव्याप्त नेत्र राजा बलि भक्तिसे पूर्ण होकर गद्गद् वाणीसे कहने लगे ॥ १ ॥ बलिने कहा—हे भगवन्, मैंने आपको तीनोंलोक दिये, यह तो कथामात्र है। वस्तुतः मैंने आपको सम्यक् नमस्कार भी नहीं किया, किन्तु नमस्कार करनेके लिये उद्योग मैंने अवश्य किया। एकमात्र वही शरणागत भक्तोंके कार्य सम्पादनमें तत्पर रहा। इतने मात्रमें आपने नीच असुर मेरे ऊपर लोकपाल तथा अमरोंसे भी दुर्लभ अनुग्रह किया। इसलिये आपके प्रणामका प्रभाव अवर्णनीय है॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—नागपाशसे मुक्त तथा परमप्रसन्न हुए राजा बलि यह कहकर भगवान्, ब्रह्मा तथा शंकरजीको नमस्कार कर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दैत्योंके साथ पाताललोकको चले ॥ ३ ॥ इसप्रकार भगवान्‌ने इन्द्रको स्वर्ग देकर तथा अदितिके मनोरथको पूर्णकर अखिल जगत्‌का पालन किया ॥ ४ ॥ वरदानको प्राप्त किये, वरुणपाशसे निर्मुक्त, वंशपालक, अपने पौत्र बलिको देखकर भक्तिप्रवण प्रह्लाद यह कहने लगे ॥ ५ ॥ प्रह्लादने कहा—हे भगवन्, औरोंकी तो बातही क्या है, इसप्रकारका वरदान ब्रह्मा, लक्ष्मी और शंकर किसीने भी आजतक नहीं पाया । क्या कारण है कि विश्ववन्द्य लोगोंसे वन्दित चरणवाले होते हुए भी आप हम असुरोंके द्वारपाल हुए हैं, जिसके पादारविन्द मकरन्दके सेवनसे ब्रह्मादि देवता विभूतिका उपभोग करते हैं । दुष्टजाति दुष्कृत्य करनेवाले हमलोग आपको दाक्षिण्यदृष्टिमें (बहुमानसे युक्त कृपादृष्टिमें) कैसे पहुँचा दिये गये हैं । मुझे इस विषयमें आश्चर्य हो रहा है ॥ ६, ७ ॥ हे नाथ, आप अमित योगमायासे लीला जगत्‌की सृष्टिकर्त्ता हैं, आप सर्वज्ञ हैं, आप सर्वात्मा, सर्व शक्तिवान्, समानद्रष्टा तथा विषमस्वभाव हैं ।

त्रिविष्टपम् ॥ पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥ लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ॥ निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ॥ यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः ॥ कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥७॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ॥ सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ॥ मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ॥ मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आज्ञां भगवतो राजन् प्रह्लादो बलिना सह ॥ बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥ परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ॥ प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥ अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके ॥ आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मन्सन्तनु शिष्यस्य कर्म च्छिद्रं वितन्वतः ॥ यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥ शुक्र उवाच॥ कुतस्तत्कर्म वैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ॥ यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥

आपकी महिमा आश्चर्ययुक्त है क्योंकि आप कल्पतरु स्वभाव होते हुए भी भक्तजनोंके प्रिय हैं ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—वत्स प्रह्लाद, तुम्हारा कल्याण हो, तुम भी पाताललोकको चले जाओ और अपने पौत्र बलिके साथ आनन्दपूर्वक रहो तथा अपनी ज्ञातियोंको सुख पहुँचाओ ॥९॥ तुम वहाँ गदा धारण किये हुए मेरा प्रतिदिन दर्शन करोगे, जिससे तुम्हें महान् आनन्द होगा और उससे तुम्हारा कर्मबन्धन नष्ट हो जायगा ॥१०॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, निर्मलमति सम्पूर्ण असुरसेनाधिपति प्रह्लादने इसप्रकार भगवान्‌का आदेश प्राप्तकर अपने पौत्र बलिके साथ हाथ जोड़कर आदिपुरुष भगवान्‌की प्रदक्षिणा कर उनकी आज्ञा लेते हुए पातालमें प्रवेश किया ॥११, १२ ॥ हे राजन्, भगवान्‌के समीप ब्रह्मवादियोंकी सभायोंको बीच बैठे हुए शुक्रसे बलिका अपराध हरण करनेवाले भगवान् नारायणने कहा ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन, यज्ञ कर्मकर रहे आपके यजमानमें जो न्यूनता हुई है उसे आप पूर्ण करें, यदि कहो कि यजमानके बिना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कैसे होगा, तो जो कर्ममें वैषम्य होता है वह ब्राह्मणोंसे दृष्टवैषम्य सम हो जाता है। अतः यजमानके बिना भी पूर्ण हो सकता है॥ १४ ॥ शुक्रने कहा—हे भगवन, जिस यज्ञमें यज्ञेश, यज्ञपुरुष, कर्मेश्वर आपकी सर्वतोभावेन पूजा हुई हो, उस यज्ञमें न्यूनता कैसे हो सकती है ॥ १५॥ क्योंकि आपके नामकीर्तनसे मन्त्र, तन्त्रके द्वारा जो कुछ न्यूनता होती है वह सब पूर्ण हो जाती है। और देश, काल तथा वस्तुके कारण जो न्यूनता होती है वह भी पूर्ण हो जाती है॥ १६ ॥ चूँकि आप कह रहे हैं, इसलिये मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा, क्योंकि आपकी आज्ञाका जो पालन करता है वह प्राणियोंके लिये अत्यन्त श्रेयस्कर है ॥१७॥ श्रीशुकदेवजीने कहा--हे राजन्, भगवान्के वाक्यका अभिनन्दनकर शुक्र भगवान् विप्रर्षिके साथ बलिके यज्ञमें हुई न्यूनताको पूर्ण करने लगे ॥ १८ ॥ हे राजन, भगवान् वामनने इसप्रकार बलिसे भूमिकी भिक्षा लेकर अपने बड़े भाई इन्द्रको स्वर्ग दे दिया, जिसको

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ॥ सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसङ्कीर्तनं तव ॥१६॥ तथापि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् ॥ एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञानुपालनम् ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ॥ यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥ एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः ॥ ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ १९ ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ॥ दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥२०॥ कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ॥ लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम्॥ ॥ २१ ॥ वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥२२॥ उपेन्द्रं कल्पयाञ्चक्रे पतिं सर्वविभूतये ॥ तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥ ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ॥ लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४ ॥ प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ॥ श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ॥ पितरः सर्वभूतानि

शत्रुओंने छीन लिया था ॥ १९ ॥ ब्रह्मा, देवर्षि, पितृ, मनु, अश्विनीकुमार, शिव, दक्ष, मरीचि आदिके साथ कश्यप और आदितिकी प्रसन्नता तथा प्राणियोंके कल्याणके लिये लोकों एवं लोकपालोंके पति भगवान्ने वामनको बनाया ॥ २०, २१ ॥ और वेद, सर्वदेव, धर्म, यश, लक्ष्मी, मंगल, व्रत, कल्प, स्वर्ग तथा अपवर्गके पालनमें समर्थ वामनको भगवान्ने प्राणियोंके कल्याणके लिये उपेन्द्र बनाया। हे राजन्, उस समय प्राणिमात्रको अत्यन्त आनन्द हुआ ॥ २२, २३ ॥ उसके बाद ब्रह्मासे अनुमोदित इन्द्र वामनको बहुमूल्य वस्त्रादिसे सम्मानित कर देवयान मार्गसे लोकपालोंके साथ विमान द्वारा स्वर्गमें ले गये ॥ २४ ॥ वामनकी भुजाओंसे पालित तीनों लोक पाकर और अत्यन्त उत्कृष्ट लक्ष्मीसे विभूषित इन्द्र निर्भय हो अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २५ ॥ उसके बाद हे राजन्, ब्रह्मा, शंकर, कुमार, भृगु प्रभृति मुनिगण, पितर, सिद्ध तथा और भी जो वैमानिक थे, सभी लोग विष्णुके परम अद्भुत महत्वपूर्ण कार्यको

॥दृष्टान्त—जो भगवान् संसार के अभ्युदय के कारण हैं उनका आधिपत्य न होकर ब्रह्मा जी ने इन्द्र को ही राजा बनाया।
उत्तर—चूंकि बड़े के रहते हुए छोटा भाई राज्याधिपति कैसे होगा यों विचार कर ब्रह्मा जी ने नाटक रचा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानको पधारे तथा अदितिकी प्रशंसा करने लगे ॥ २६, २७ ॥ हे कुरुनन्दन, मैंने सुननेवालोंके पापोंको नष्ट करनेवाला उरुक्रम भगवान्‌का यह सब चरित्र आपसे कहा ॥ २८ ॥ हे राजन्, अनेक तरहसे अपना पराक्रम दिखानेवाले भगवान् विष्णुकी महिमाके अन्तका जो वर्णनकर सकता है उस प्राणीने पृथिवीकी परमाणुओंकी गिनती अवश्य कर ली है अर्थात् जिसप्रकार पार्थिव परमाणु गणनासे अतीत हैं वैसेही अनन्त लीलावाले विष्णुका चरित्र भी गणनासे अतीत है। मन्त्रद्रष्टा वसिष्ठ आदि ऋषि भी जिस पुरुषके चरित्रका अन्त न पा सके, तो फिर जायमान या उत्पन्न जीव कैसे पा सकते हैं ॥ २९ ॥ जो मनुष्य देवदेव अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुके अवतार तथा चरित्रको सुनता है वह परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ३० ॥ किये जा रहे दैवकर्म, पितृकर्म तथा मनुष्यकर्ममें जो इस चरित्रका जहाँ-जहाँ स्मरण तथा गान करता है, उसका वह कर्म सफल हो जाता है ॥ ३१ ॥

सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥ २६ ॥ सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् ॥ धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥ २७ ॥ सर्वमेत-
न्मयाख्यातं भवतः कुलनन्दन ॥ उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणामघमोचनम् ॥ २८ ॥ पारं महिम्न उरु विक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स
रजांसि मर्त्यः ॥ किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥ य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवता-
रानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥ ३० ॥ क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥ यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

तेईसवें अध्याय का सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्‌के वरदान देनेपर राजा बलिने हाथ जोड़कर अश्रुपूर्ण नेत्र होकर कहा—हे भगवन्, मैंने अभी तक आपको नमस्कार भी नहीं किया, केवल नमस्कार करनेके लिए उद्योग किया था, उससे ही आपने देवताओंसे भी दुष्प्राप्य बरदान दे दिया। यह कहकर भगवान्, ब्रह्मा तथा शङ्करजी को नमस्कार कर पाताल-लोक जानेको तैयार हुए। प्रह्लादने वर पाये हुए मुक्त बन्धन अपने पौत्र बलि को देखकर भगवान्‌से कहा—हे भगवन्, ऐसा वरदान आपने ब्रह्मा, तथा शकर प्रभृतिको भी नही देते, पर क्या कारण है कि आप बलिके द्वारका द्वारपाल होना स्वीकार कर रहे हैं। भगवान्‌ने कहा —वत्स प्रह्लाद, तुम अपने पौत्रके साथ पातालमें निवास करो। मैं प्रतिदिन गदा धारण किए तुम्हारे घर आकर दर्शन दूंगा, जिससे तुम्हारा दैत्य संसर्गजन्य अज्ञान दूर हो जायगा। प्रह्लाद आज्ञा लेकर प्रदक्षिणा कर बंदि तथा दैत्य सैन्यके साथ पातालको पधारे। भगवान्‌की आज्ञासे शुक्र यज्ञमें हुई न्यूनताको पूर्ण करने लगे। भगवान्‌ने इस प्रकार बलिसे भिक्षा लेकर बड़े भाई इन्द्रको स्वर्ग दे दिया, जिससे अदितिका मनोरथ पूर्ण हुआ। ब्रह्मा, शिव, दक्ष, मरीच्यादिके साथ कश्यप अदितिकी प्रसन्नताके लिए लोक और लोकपालोंका पति वामनको बनाया तथा वेद, उपवेद धर्म, श्री मैं पालक वामनको उपेन्द्र बनाया। उसके बाद इन्द्र वामनके साथ विमान द्वारा स्वर्ग पधारे। ब्रह्मा, शङ्कर, भृगु प्रभृति वामनके गुणोंको गाते हुए अपने अपने स्थानको चले। हे राजन, श्रोताओंके पापको दूर करनेवाला चरित्र मैंने सुनाया। जिसप्रकार पार्थिव परमाणुण गणना अतीत है वैसे ही भगवान्‌का चरित्र भी गणना अतीत है। जो मनुष्य भगवान्‌के चरित्रको सुनता है वह परमगतिको प्राप्त करता है। तेईसवाँ अध्याय समाप्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजा परीक्षित्ने कहा—हे भगवन्, मैं अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुकी आद्य कथा, माया द्वारा मत्स्यरूपका जिसमें अनुकरण हुआ है, आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ जिस कारणसे भगवान्ने कर्मसे ग्रस्त तमोगुणी ईश्वरके समान, दुःसह लोकनिन्द्य मत्स्यरूपको धारण किया॥ २ ॥ हे भगवन्, इसको आप मुझे यथावत् बतलानेकी अनुकम्पा करें, क्योंकि उत्तमश्लोक भगवान्का चरित्र प्राणीमात्रको सुखदायक है ॥ ३ ॥ श्रीसूतजीने कहा—इसप्रकार परीक्षित्के प्रश्न करनेपर भगवान् शुकदेवजीने मत्स्यरूपसे भगवान्ने जो कृत्य किया–उसे कहने लगे ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेदों तथा धर्म और अर्थकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे भगवान्ने मत्स्यावतार धारण किया ॥ ५ ॥ भगवान् वायुके समान बुद्धिके गुणोंसे

❀ अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥ यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ॥ तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्त इवेश्वरः ॥ २ ॥ एतन्नो भगवन्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान्बादरायणिः ॥ उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ॥ रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः ॥ नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥ आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥ समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥ कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ॥ मुखतो निःसृतान्वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा तद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ॥ दधार शफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ॥ नारायणपरोऽतप्यत्तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥ योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ॥ श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणाऽर्पितः ॥ ११ ॥ एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥ तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥१२॥

ऊँच-नीँच प्राणियोंमें भ्रमण करते हुए भी निर्गुण होनेके कारण ऊँच-नीच नहीं होते॥ ६ ॥ हे राजन्, गतकल्पके अन्तमें ब्रह्माकी निद्रासे उत्पन्न ब्राह्म नैमित्तिक नामका भारी प्रलय हुआ था। उसमें भू इत्यादि लोक समुद्रमें निमग्न हो गये थे ॥ ७ ॥ उस प्रलयमें समयसे नींद आ जानेके कारण सोनेकी इच्छाकर रहे ब्रह्माके मुखसे निकले हुए वेदोंका हयग्रीव नामक राक्षसने अपहरण कर लिया ॥ ८ ॥ दानवेन्द्र उस हयग्रीवके इस कृत्यको जानकर भगवान् परमेश्वर विष्णुने वेदोंके उद्धारके लिये मत्स्यरूप धारण किया ॥ ९ ॥ वहाँपर केवल जल पीकर कोई सत्यव्रत नामक महान् राजर्षि भगवान्में नारायण लवलीन होकर तपस्याकर रहे थे ॥ १० ॥ जो इस श्वेतवराह महाकल्पमें विवस्वत्का पुत्र, भगवान् हरिसे मनुत्वमें अर्पित श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध हुए हैं ॥ ११ ॥ एक समय कृतमाला नदीमें सत्यव्रतजी तर्पणकर रहे थे कि उनके हाथमें एक मछली आ गयी ॥ १२ ॥ हे भारत, द्रविड़ेश्वर सत्यव्रतने अञ्जलिमें मछली

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखकर अञ्जलिस्थ जल सहित उसे जलमें फेंक दिया ॥ १३ ॥ मछली महाकृपालु उस राजासे अत्यन्त करुणाभरे शब्दोंसे कहा—हे दीनवत्सल, हे राजन्, ज्ञातिघातक यादवोंसे भयभती मुझ दीन मछलीको आप इस सरिताके जलमें क्यों फेंक रहे हैं ॥ १४ ॥ अपने ऊपर अनुग्रह करनेके लिये प्रेमसे मत्स्यरूपधारी भगवान्‌को न जानते हुए राजाने उस मछलीकी रक्षाके लिये अपना मन लगा दिया ॥ १५ ॥ उसका अत्यन्त दीनवचन सुनकर दयालु वह राजा कलशके जलमें उसे रखकर आश्रमपर लाये । १६ ॥ वह एक रात्रमें ही इतनी बढ़ गई कि कमण्डलमें रहना उसे मुश्किल हो गया, अतः राजासे उसने यह कहा ॥ १७ ॥ इस कमण्डलमें दुःखपूर्वक अब रहना मैं नहीं चाहती । मेरे लिये पर्याप्त स्थान दीजिये, जहाँ मैं सुखपूर्वक रहूँ ॥ १८ ॥ राजाने कमण्डलुसे निकालकर मणिकपात्रमें जल पूर्णकर उसे रख दिया वहाँ वह एकही मुहूर्तमें बढ़कर तीन हाथकी हो गई और कहने लगी ॥१९॥ हे राजन्, मेरे सुखपूर्वक

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत ॥ उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥ तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् ॥ यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ॥ कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले ॥ १४ ॥ तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ॥ अजानन्रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥ १५ ॥ तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ॥ कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥ सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ॥ अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहं कमण्डलावस्मिन्कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ॥ कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥ स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके ॥ तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥ न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ॥ पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाहं शरणं गता ॥ २० ॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ॥ तदावृत्त्यात्मना तोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥ नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ॥ निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ॥ जलाशये संमितं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ॥ अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गु भारतीम् ॥ तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण

रहनेके लिये यह मणिकपात्र पर्याप्त नहीं है जल थोड़ा है, आप मुझे पर्याप्तस्थान दें, जहाँ कि सुखपूर्वक रह सकूँ । मैं आपकी शरणमें आई हूँ, मेरी रक्षा आपके लिये उचित है । मेरा शरीर तथा पैर मोटा और बड़ा है ॥ २० ॥ हे राजन्, तब राजाने उस शफरीको लेकर सरोवरमें फेंक दिया । वहाँपर भी बढ़कर महामीनाकार होकर सम्पूर्ण सरोवरमें व्याप्त हो गई ॥२१॥ तदनन्तर उसने कहा—हे राजन्, सलिल निवासी मेरे लिये यह सरोवर पर्याप्त नहीं है, अतः मुझे आप ऐसे ह्रदमें रखकर मेरी रक्षाका प्रबन्ध करें, जिसका जल कम न हो ॥ २२ ॥ इसप्रकार कहनेपर जहाँ जहाँ रखा गया वहाँ-वहाँ वह मत्स्य बढ़ता ही गया । तब लाचार होकर अन्तमें राजा उसे समुद्रमें फेंकने लगे ॥ २३ ॥ समुद्रमें फेंकते समय राजासे मत्स्यने यह कहा—हे वीर, यहाँपर मुझे बलशाली मकरादि खा जायँगे, अतः यहाँ मुझे रखना आपको उचित नहीं है ॥ २४ ॥ इसप्रकार मनोहरवाणी बोल रहे उस मत्स्यसे विमोहित होकर राजाने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा—आप मत्स्यरूपसे हमें मोहित कर रहे हैं, कहिये, आप कौन हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकारका जलचर न मैंने आजतक देखा, न सुना जो आपने दिनभरमें सौ योजनके तालाबको अपने शरीरसे व्याप्त कर लिया ॥ २६ ॥ आप निश्चय करके साक्षात्, अविनाशी, नारायण भगवान् हरि हैं। आप प्राणियोंके कल्याणके लिये ही होते हैं, अतः जिस कार्यके लिये आप इस मत्स्य रूपको धारण किये हुए हैं, उसे बतलाइये, मैं जानना चाहता हूँ ॥ २९ ॥ हे कमलनेत्र, जिसप्रकार देहाभिमानी अन्यजनोंका गमन व्यर्थ होता है उसप्रकार सबके सुहृद् प्रियात्मा आपका नहीं, अतः जिस कार्यके लिये आपने यह अद्भुत मत्स्यावतार हम भक्तोंको दिखलाया है उसे बतलाइये ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार प्रार्थना करते हुए सत्यव्रत

मोहयन् ॥ २५ ॥ नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ॥ यो भवान् योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥ २६ ॥ नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ २७ ॥ नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ॥ भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥ सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ॥ ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥ २९ ॥ न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ॥ यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ॥ विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम ॥ निमङ्क्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥ ३२ ॥ त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ॥ उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥ त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥ आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ॥ एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५ ॥ दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ॥ उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥ ३६ ॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ॥ विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ॥ वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे सम्प्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३८ ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत ॥

राजासे उनका हित करनेकी इच्छाकर रहे भक्तप्रिय मत्स्य शरीरधारी जगत्पति भगवान् अपने आनेके कारण युगान्तमें प्रलयार्णवमें विहाररूप बतलाने लगे ॥ ३१ ॥ भगवान्ने कहा—हे शत्रुमर्दन, आजसे सातवें दिन तीनों लोक तथा भूर्भुवादिलोक भी समुद्रमें डूब जायगा ॥ ३२ ॥ उस प्रलय जलमें तीनों लोकके मग्न होते समय मुझसे प्रेरित एक विशाल नौका तुम्हारे पास आयगी ॥ ३३ ॥ तुम सम्पूर्ण औषधियों तथा सम्पूर्ण छोटे-बड़े बीजोंको ग्रहणकर सप्तर्षियोंके साथ एक बड़े नावपर सवार होकर सम्पूर्ण सत्त्वोंसे युक्त तुम लोकरहित प्रलय समुद्रमें शान्तिपूर्वक ऋषियोंके ही तेजसे विचरण करोगे ॥ ३४, ३५ ॥ बलवान् वायु चलनेसे चंचल हो रही उस नौकाको वहाँ उपस्थित मेरे शृंगमें महान् वासुकिनागके द्वारा बाँध देना ॥ ३६ ॥ हे राजन्, मैं सप्तर्षियोंके साथ नौकाके सहित तुम्हें खींचते हुए जबतक ब्राह्मी निशा रहेगी, तबतक विचरण करूँगा ॥ ३७ ॥ तुम्हारे प्रश्न करनेपर 'परब्रह्म' इस शब्दसे कही गई मैं अपनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महिमाको तुम्हारे ऊपर अनुग्रहकर प्रकाशित करूँगा, तब तुम मेरी महिमाको अपरोक्षरूपसे हृदयमें जान जाओगे ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान् इसप्रकार राजाको आदेश देकर अन्तर्हित हो गये। राजा उस कालकी प्रतीक्षा करने लगे, जिसका निर्देश हृषीकेशने किया था ॥ ३९ ॥ राजा कुशाग्रोंको पूर्वाग्रमुख बिछाकर उत्तरमुख बैठकर मत्स्यरूपी भगवान्के चरणोंका चिन्तन करने लगे ॥ ४० ॥ कुछ समयके बाद बरस रहे मेघोंसे बढ़े हुए समुद्रसे चारों ओर सम्पूर्ण पृथिवीको प्लावित देखने लगे ॥ ४१ ॥ और भगवान्का ध्यानकर रहे राजा सत्यव्रतने भगवान्के आदेशके अनुसार वहाँपर उपस्थित एक नौका देखी। देखतेही सम्पूर्ण औषधियों लताओं तथा ऋषियोंके साथ नौकापर सवार हो गये ॥ ४२ ॥ राजा सत्यव्रतसे ऋषियोंने प्रसन्न होकर कहा—हे राजन्, आप भगवान् केशवका ध्यान करें, वही हमलोगोंको इस कष्टसे मुक्त करेंगे और हम सबका कल्याण करेंगे ॥ ४३ ॥ तदनन्तर राजा सत्यव्रतके ध्यान करनेपर लक्षयोजन विस्तृत एकशृंगधारी सुवर्णमय मत्स्यरूप धारणकर भगवान् महासागरमें प्रादुर्भूत हुए ॥ ४४ ॥ राजा सत्यव्रतने, जैसा भगवान्ने पहले कहा था,

सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥ आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ॥ निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन्मत्स्य-
रूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम् ॥ वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥ ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमा-
गताम् ॥ तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् ॥ स वै नः सङ्कटादस्मादविता शं
विधास्यति* ॥ ४३ ॥ सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ॥ एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥ निबध्य नावं तच्छृङ्गे
यथोक्तो हरिणा पुरा ॥ वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ अनाद्यविद्योपहतात्मसम्विदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ॥
यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो न परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥ जनोऽबुधो यं निजकर्मबन्धनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ॥ यत्सेवया
तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ॥ भजेत वर्ण

उसीके अनुसार भृगमें वासुकिके द्वारा नौका बाँध दी और भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ राजाने कहा—अनादि अविद्यासे आवृत आत्मज्ञानवाले तथा अविद्याके मूल संसारके परिश्रमसे पीड़ित मनुष्य इस संसारमें जिस भगवानके अनुग्रहसे ही आश्रित होते हुए जिसको प्राप्त करते हैं, वह मुक्ति देनेवाले भगवान् आपही हमलोगोंके परमगुरु होते हुए हृदयग्रन्थिका विच्छेद करें ॥४६॥ निज कर्मसे बद्ध यह अबुधजन सुखकी इच्छासे कर्म करता है, किन्तु दुःखको ही प्राप्त करता है। जिसकी सेवासे उस सुखेच्छारूप असत् बुद्धिको नष्टकर देता है ऐसे आप हमलोगोंको हृदयग्रन्थिका छेदन करें, क्योंकि आप परमगुरु हैं ॥ ४७ ॥ जिसकी सेवासे ही मनोमलरूपी तमका त्यागकर यह पुरुष अपने स्वरूपका भजन करता है। जैसे कि सुवर्ण

*दृष्टान्त—हे राजन्, केशव का ध्यान कर क्योंकि वे ही संकट से रक्षा कर सकेंगे।
उत्तर—मुनिगणों ने उनका ध्यान न कर राजा से कहा—चूंकि वे मोक्ष की कामना के लिये ही ध्यान करते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्निपर तप्त होने के बाद अपने मलका त्यागकर शुद्धस्वरूपको धारण करता है, प्रक्षालनादि व्यापारसे नहीं। ऐसेही परमेश्वर मेरे गुरु हों क्योंकि वही गुरुके भी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ जिस भगवान्‌के प्रसादका लक्षभागके एक लेशमात्र भी समवेत हुए सब देवता और गुरुलोग नहीं कर सकते, उस आप परमेश्वर भगवान्‌की शरणमें मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥ ४९ ॥ अन्धेके लिये अग्रणी बनाये गये अन्धेकी नाईं, मूर्खके लिए मूर्खगुरु कुछ भी कल्याण करनेमें समर्थ नहीं होता, अतः अपनी गति हमलोगों सम्पूर्ण इन्द्रियोंके सूर्यकी नाईं प्रकाशक आपको गुरु बनाया है ॥ ५० ॥ दूसरे लोग मनुष्यके लिये असतीमति अर्थात् अनुपयुक्त मार्गका उपदेश करते हैं जिससे उन्हें पुनः दुर्गम अन्धकारमें जाना पड़ता है। आप तो उस अविनाशी ज्ञानमार्गका उपदेश करते हैं, जिससे मनुष्य मुक्त होकर आपको प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ हे भगवन्, आप सम्पूर्ण जगत्‌का मित्र, प्रियबन्धु, ईश्वर, आत्मा, ज्ञान तथा अभीष्ट सिद्धिदाता

निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥ न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ॥ कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥ अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ॥ त्वमर्कदृक्सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ॥ त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥ त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ॥ तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ॥ छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रन्थीन्हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ॥ मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोग-क्रियावतीम् ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥ अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ॥ नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५६ ॥ अतीतप्रलयापात उत्थिताय स वेधसे ॥ हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥ ५७ ॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञान-संयुतः ॥ विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ॥ संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा

गुरु हैं, तथापि हृदयमें विराजमान रहते हुए भी विषयासक्त अज्ञानीजन आपको नहीं जानते ॥ ५२ ॥ हे भगवन्, मैं देवताओंमें श्रेष्ठ, पूजनीय परमेश्वर आपकी शरणमें उपदेशके लिए आया हूँ। हे भगवन्, आप परम अर्थके प्रकाशक वचनोंसे हमारे हृदय ग्रंथिका छेदन करें और मेरे हृदयमें अपने रूपको प्रकाशित कर ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–राजर्षि सत्यव्रतके इसप्रकार प्रार्थना करने पर उन्हें प्रलयसमुद्रमें विहारकर रहे मत्स्यरूपधारी आदि पुरुष भगवान्‌ने अपने गोपनीय, सांख्य योग क्रियाको बतलानेवाली, दिव्य तथा भगवत्तत्त्वकी प्रकाशिका पुराण संहिताका अनेकरूपसे उपदेश दिया ॥ ५४, ५५ ॥ और सत्यव्रतने ऋषियोंके साथ नौकापर स्थित होकर आत्मसंशयका छेदक भगवान् द्वारा कहे गये सनातन ब्रह्म आत्मतत्वका श्रवण किया ॥ ५६ ॥ भगवान् विष्णुने प्रलयके अन्तमें ब्रह्माके जागृत होनेपर हयग्रीव राक्षसको मारकर वेदोंको लाकर ब्रह्माको दे दिया ॥ ५७ ॥ ज्ञानविज्ञानसे सम्पन्न राजा सत्यव्रत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् विष्णुकी अनुकम्पासे इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य मायासे मत्स्यरूपधारी भगवान् और राजर्षि सत्यव्रतका सम्वाद सुनता है, जो एक बड़ा आख्यान है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें मोक्षपद पाता है ॥ ५९ ॥ जो नर इस हरिके अवतारका प्रतिदिन कीर्तन करता है, उसका सब सङ्कल्प सिद्ध हो जाता है और वह परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ६० ॥ हे राजन्, जिस भगवान्‌ने प्रलय समुद्रमें हयग्रीव नामक राक्षसको मारकर सुप्तशक्ति ब्रह्माके मुखसे आपहृत वेदको लाकर ब्रह्मर्षियों तथा सत्यव्रतके बीच ब्रह्मतत्वका उपदेश दिया, माया मत्स्यरूपधारी, सबके हेतु उस भगवान्‌को मेरा नमस्कार है ॥ ६१ ॥

मुच्येत किल्विषात् ॥ ५८ ॥ अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ॥ सङ्कल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥ दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशशाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां वैयासक्यामष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

चौबीसवें अध्यायका सार—राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे भगवन्, भगवान्‌ने मत्स्यरूप क्यों धारण किया और किसप्रकार धारण किया तथा मत्स्यावतारमें उन्होंने क्या किया ? यह कहिये। श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, भगवान्‌ने गौ, ब्राह्मण, देवता, भक्त तथा वेदोंकी रक्षाके लिए मत्स्यावतार धारण किया। कल्पके अन्तमें ब्रह्माके निद्रामग्न होनेके कारण हयग्रीव नामक राक्षस ब्रह्माके मुखसे निकले हुए वेदोंको अपहरण कर लिया था। इस वृतान्तको जानकर भगवान्‌ने शफरीका रूप धारण कर कृतमाला नदीमें प्रवेश किया। एक समय सत्यव्रत नामक राजर्षि कृतमाला नदीमें तर्पण कर रहे थे कि उनके अञ्जलिमें शफरी आ गई। राजर्षिने उसे जलमें फेंक दिया। तब शफरीने कहा—हे राजर्षि, भयानक बड़े-बड़े मत्स्योंसे त्रस्त मुझे आप क्यों फेंक रहे हैं। राजर्षि दीन बचन सुनकर उसे कमण्डलुमें रखकर अपने आश्रमपर ले गये। कुछ देरके बाद वह मछली बढ़कर कमण्डलुमें पूर्ण हो गयी और तदनन्तर उसने कहा—मुझे पर्याप्त स्थान दीजिए, छोटे स्थानमें हमें कष्ट होता है। तब राजर्षिने उसे मणिकपात्र में रखा। उसके बाद सरोवरमें रखा। इसप्रकार जहाँ-जहाँ रखा, उन सब स्थानोंको बढ़कर उसने व्याप्त कर लिया। तब तब उसे समुद्रमें फेंक दिया समुद्रमें फेंकने पर उसने कहा—हे राजन्, मुझे हिंसक जलचर कष्ट दे रहे हैं, अतः मुझे अलग रखनेका प्रबन्ध करें। राजा मोहित हो गए और कहने लगे—मत्स्यरूपधारी आप कौन हैं, क्योंकि ऐसा मत्स्य आज तक मैंने नहीं देखा न सुना। अतः निश्चय आप भगवान्‌के अवतार हैं और भक्तोंके कार्यके लिए आप आये हैं। हे भगवन्, आप बतावें कि इस रूपमें आनेका प्रयोजन क्या है। भगवान्‌ने कहा—आजके सातवें दिन समुद्रके बाढ़से तीनों लोक जल मग्न हो जायगा। उस समय मेरी कृपासे एक नौका तुम्हारे सामने आएगी। तुम उसपर समस्त औषधियों तथा ऋषियोंके साथ बैठ जाना और जब नौका वायुके वेगसे चञ्चल होने लगे, तब तुम मेरे शृङ्गमें नौकाको वासुकिनागसे बाँध देना। मैं प्रलय समुद्रमें नौकाको खींचते हुए विचरण करूंगा और तुम्हारे प्रश्नसे तुम्हारे संशयका उच्छेद करूंगा। भगवान् इतना कहकर अन्तर्हित हो गये। राजर्षि उसी दिनसे कुशासनपर बैठकर समयकी प्रतीक्षा करने लगे। ठीक नियमित समयपर समुद्रके जलसे तीनों लोक मग्न हो गया। एक नौका राजर्षिके समीप पहुँची। राजर्षि उसपर समस्त औषधियों तथा ऋषियोंके साथ बैठ गये और भगवान्‌का स्मरण करने लगे। कुछ देरके बाद सुवर्णमय मत्स्यरूपधारी भगवान् प्रादुर्भूत हुए। उनके शृङ्गमें राजाने वासुकिके द्वारा नाका बाँध दी और हाथ् जोड़कर वे भगवान्‌से आत्मज्ञान विषयक प्रश्न करने लगे। भगवान्‌ने प्रलय समुद्रमें विचरते हुए पुराणसंहिताका उन्हें उपदेश दिया और ब्रह्माके जागृत होनेपर राक्षस हयग्रीवको मारकर उससे अपहृत वेदोंको लेकर ब्रह्माको दे दिया। ज्ञानविज्ञानसे सम्पन्न राजा सत्यव्रत भगवान्‌की अनुकम्पासे इसकल्पमें वैवस्वत मनु हुए है। जो मनुष्य सत्यव्रत और भगवान्‌के सम्वादको सुनता है वह अपने सङ्कल्पको पूर्णकर मुक्तिको पाता है।
चौविसवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माहात्म्यम्—विष्णुरुवाच— अष्टमस्कन्ध इह मे नेत्रद्वयमुदाहृतः । तस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात् ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापविनाशिनीम् । विदर्भनगरे राजा जिष्णुजित्संज्ञको भवान् ॥ मृगयासक्तचेताः स जगाम गहनं वनम । ददर्श राक्षस तत्र शूलहस्तं नरान्तकम् ॥ तत्संमुखं जगामाशु जयाकाङ्क्षी धरापतिः । दैत्य उवाच । किमर्थमागता ह्यत्र भन्दमाग्य नराधिपः ॥ तुरङ्गं मम भक्षार्थं दत्वा सत्वरमन्यतः । स्वगेहं वा याहि राजन् मात्र तिष्ठ ममाग्रतः॥ न चेत्त्वामपि भक्षामि श्रुत्वेत्थं धनुरग्रहीत् । दैत्योऽपि वृक्षमुत्पाट्य युयुधे तन सत्वरम् ॥ छिन्ने वृक्षे मुष्टिघातं राज्ञि दैत्यश्चकार ह ।.तदा च कुपितो राजा पत्रिणा तच्छिरोऽच्छिनत् ॥ देवान्तकश्च तद्भ्राता निशम्य भ्रातरं मृतम् । रुरोद बहुधा तत्र भ्रातृघ्नं घातये कथम् ॥ इति सञ्चिन्त्य मनसा सूदो भूत्वा जगाम तम् । उवाच येत्थं मत्समः पाचको भुवि ॥ न विद्यतेऽन्यो राजेन्द्र ब्राह्मणैश्चापि तत्त्वतः । मत्कृतपाकापर्णे नैव तृप्यन्ति पितृदेवताः ॥ श्रुत्वा राजा दैत्यवचः पाकाध्यक्षं चकार तम् । एकदा श्राद्धदिवसे पक्त्वा दत्वा नरामिषम् ॥ ब्राह्मणानां भोजनार्थं भ्रातृप्रति चिकीर्षया । तज्ज्ञात्वा तद्गुरुर्विप्रः शशाप श्रीधरो नृपम् ॥ राक्षसो भव दुर्बुद्धे नरमांसप्रसादतः । सगुरोर्वचनं श्रुत्वा प्रोवाचेन्द्रजितो नृपः ॥ शापयोग्यस्त्वहं नास्मि नापराधोऽस्ति मे गुरो । दत्तं मांसं सूदेनेत्युक्त्वा राधा पपात ह ॥ श्रीगुरोः पादयोस्तर्हि गुरुस्तुष्टमना नृपम् । उवाच द्वादशाब्दान्ते तव शापः प्रणश्यति ॥ ततः स राक्षसो भूत्वा नदीतीरे चरन् क्षुधा । बभूव ह मुने पुत्रं ब्रह्महत्यायुतोऽभवत् ॥ शापान्ते तां विच र्याशु त्यक्तराज्यो वनं गतः । ब्रह्महत्या विनाशार्थं शोचमानः सदा नृपः ॥ तीर्थाटनं कृतवता कदाचिद्गौतमाश्रमे । अष्टस्कन्धजातेन श्रुता भागवती कथा ॥ ब्रह्महत्या गता तस्य मृतो वैकुण्ठमाययौ । सन्देहो नात्र कर्तव्यो नासत्यं मम भाषितम् ॥······प्रतिष्ठा-विषयक विचार—(१) चाण्डालमद्य संस्पर्शदूषिता वह्नि नाथवा। अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतदूषिता ॥ खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानवर्जिते । यागहाने पशुस्पृष्टे पतिते यज्ञभूमिषु । अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते । दशस्वेतेषु। नो चक्रः सन्निधानं दिवौकसः । (२) चौरचाण्डालपतितश्वोदक्यास्पर्शने सति । शवाद्युपहतौ चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥ खण्डिता स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा । तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः ॥ (३) जलाधिवासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम् । (४) अर्चाभङ्गादावुपवासः कार्यः, न राज्ञा विप्लवेऽश्नीयात्सुरार्चाविप्लवे तथा । (५) शतेन स्थापनं कुर्यात्सहस्त्रेण तु चालनम् । (६) जीर्णादीनां च लिङ्गानामुद्धारविधिमाचरेत् । लक्ष्मोज्झितं च भग्नं च स्थूलं वज्रहतं तथा । संपुटं स्फुटितं व्यङ्गं लिङ्गमित्येवमादिकम् । इत्यादि दुष्टलिङ्गानां त्याज्यापिण्डी तथा बुधः। (७) पीठाच्च चालितं लिङ्गं निर्दोषं तु भवेद्यदि । तदा वै स्थापयत्तत्र जपेल्लक्षमघापहम् । (८) त्यजेत्तदापतं लिङ्गं श्वपचाद्यैश्च सेवितम् । लिङ्गान्तरं प्रतिष्ठाप्य विशुद्धिमधिगच्छति ॥ (९) यद्द्रव्यं यत्प्रमाणं च लिङ्गं वा प्रतिमापि वा । तादृक् तेनैव मानन तद्द्रव्यण प्रकल्पयत् । कायेच्चान्यमानेन नान्यद्द्रव्येण तत्पुनः। नान्याकारं च नान्यत्र स्थापयेत्तद्गुरूत्तमः । प्रासादे पतित हर्म्ये गोपुरे मण्डपादिके । तदाकारं च तद्द्रव्यैस्तन्मानं तत्र कारयेत् । हीनं वाप्यधिकं मानमाकारं वा न कारयेत् । (१०) लिङ्गपीठादिकं जीर्णं तदुद्धारं तथाचरेत् । तिथिनक्षत्रवारादितदर्थं न विचारयेत् । इदं मलमासशक्रास्तादावपि कार्यमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च। (११) दार्वीं च दाहयद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले । धातुजां रत्नजां वापि प्रक्षिपेन्मकरालये। अगाधे चान्यतोये च क्षिपेन्नद्यां महाजले । यानमारोप्य जीर्णार्चां छायवस्त्रादिना गुरुः । शंखदुन्दुभिनिर्घोषगीतवादित्रनिस्स्वनैः । नत्वागाधं जलं रम्यं भागारथ्या महार्णवे। (१२) बाणलिङ्गानि राजेन्द्र स्थितानि भुवनत्रये । न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा । (१३) अनादिसिद्ध प्रतिष्ठितलिङ्गादौ दुष्टेऽपि न कार्यः । तत्र तु महाभिषेकं कुर्यादिति त्रिविक्रमः । 'अतिजीर्णं लिङ्गं स्याच्चेत्तदा तज्जले निक्षिप्य तत्रन्यल्लिङ्गं स्थापयेत् । (१४) धेनवो दश वा पञ्च स्वर्णवस्त्राद्यलंकृताः । जीर्णोद्धारे प्रदातव्या गुरवे विष्णुतुष्टये । (१५) त्रिरात्रमुत्सवः कार्यः पञ्च सप्त ह्यथापि वा । (१६) सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नापेक्ष्यां तत्र कारयेत्। यत्प्रमाणं यदाकारं यन्मयं बिम्बमुद्धरेत् । तत्प्रमाणं तदाकार तन्मान तत्र विन्यसेत् । विधाय पाण्डिकां पूर्वां तद्दिने चार्चां न्यसेत् । द्वितीये वा तृतीये वा दिवसे स्थापयेद् हरिम् । अत ऊर्ध्वं भवेद्दोषो विधिनापि निवेशिते ॥ सूचना—दोषाधिक्ये विशेषः, शान्तिहोमः, अङ्कु, राद्युपहतौ प्रायश्चित्तं क्वचित्पक्षभेदश्च, बलिदेवताप्रत्ययोर्विपर्यये, बल्यभावे कालत्रयपूजातिक्रमे च, ध्वजोपघाते शिवे वज्रदाहे च, प्रपूरितद्वारघटोपघाते, प्रा श्चित्तहोमाद्यर्थमुत्पादितस्याग्निनाशे, अग्नेरशुद्धौ विशेषश्च, अधिवासहोमादिषु दिक्षु विहृतानामग्नीनां नाशे, आचार्यकुण्डस्याग्निनाशे, उभयाग्निनाशे, प्रासादस्यापि दक्षिणादिदिग्विभागेभोत्वा दतानामग्नीनां, विशिष्यापरिज्ञाते, क्रियामध्ये यस्य कस्यचिद् गमने तल्लाघवगौरवानुरोधेन कारणीयः प्रायश्चित्तहोमः, भिन्ने कलशे, क्रियामध्ये कलशोपघाते, कर्मबिम्बे दुष्टेऽशुद्ध निपतिते वा, बल्याद्यर्थं प्रस्थापिते तस्मिन्मध्ये मार्गे भग्ने, अष्टबन्धे जीर्णे कर्तव्यं कर्म, (अष्टबन्धद्रव्याणि तत्परिमाणञ्च, जलाधिवासकालनियमादिकम्, महास्रुग्लक्षम्, होमद्रव्याणां प्रमाणम्, मुद्रादिभेदः) देखिये—तन्त्रसमुच्चय और वैखानसागम नामक मुद्रित पुस्तकोंको ।

—दौलतराम गौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(अष्टम-स्कन्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

मुद्रक-गोपाल प्रेस, जालिपादेवी बनारस।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भरतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६९ पुष्पलता

(नवम-स्कन्ध)

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और ''प्रकाश' टिप्पण से अलङ्कृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय [संयुक्तप्रान्तीय] सरकार द्वारा संमानित विद्वान्-आचार्य श्रीदौलतरामगौड वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री पौरोहित्यरत्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुराणश्रवणविधिः-

सर्वपापविनिर्मुक्तिकरणे यस्य मानसम् । वर्तते विधिवत्तेन पुराणं श्रूयते ध्रुवम् ॥
प्रातःकाले समुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् । प्रातःस्नानं विधायैव जुहुयाज्जातवेदसम् ॥
कृताह्निकं समाहूय वक्तारं शीलकोविदम् । संभाव्याऽऽसनदानेन नमस्कुर्यात्समञ्जसा ॥

'अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भगवतं शृणु ।
पठ त्वं स्वमुखेनापि यदं च्छसि भव त्तयम् ॥

'देशकालौ सङ्कीर्त्य—सकलपातकक्षयपूर्वकमोक्षसिद्ध्यर्थं श्रीमद्भागवतश्रवणं करिष्ये । ॐ सरस्वत्यै नमः-इति गन्धादिभिः पुस्तकं संपूज्य, व्यासस्वरूपिणे वाचकाय नम-इति वाचकं गन्धादिभिः संपूज्य नमस्ते भगवन्निति श्लोकेन नमस्कृत्य तन्मुखादेकाग्रमनाः पुराणं शृणुयात्' इत्याचारेन्दौ ।

आचार्यकी अलौकिकतापर विचार—

आर्यादीनामलाभे तद्रूपं पटे लिखित्वा तन्नमस्कृत्य तत्सन्निधौ अन्यं युक्तमाचार्यं वरयेत् । एकस्मिन् काले बहुकर्मणि प्राप्ते सति-आचार्यं प्रणम्य तद्विधिना तत्पुत्रादिभिः कारयेत् । तदलाभे त्वाचार्य एव तन्त्रयित्वा करोतीति विज्ञायते । (विमानार्चनाकल्प)

संभारद्वारा ही भगवान्‌के पूजनसे लाभ—

सर्पं दृष्ट्वा तथा कार्यं कम्पते च मुहुर्मुहुः । अमन्त्रमर्चकं दृष्ट्वा तथा भीतो जनार्दनः ॥
गन्धहीने भयोत्पत्तिः पुष्पहीने तु सङ्कलम् । नैवेद्यहीने दुर्भिक्षं मरणं मन्त्रहीनके ॥
अमन्त्रमविधिं चैवमकालं चैव पूजनम् । नित्यं राष्ट्रभयं कुर्यात्तद्ग्रामं तु विनश्यति ॥
अमन्त्रेणैव यत्पूज्यं पिशाचासुरवर्धनम् । व्याधितस्करदोषौ च अनावृष्टिमहद्भयम् ॥

(पञ्चरात्रारक्षासे उद्धृत)

अकारण उन्मत्त यादवोंको शापका भीषणरूप—

व्यास उवाच-विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः । पिण्डारके महातीर्थे दृष्ट्वा यदुकुमारकैः ॥
ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यं प्रचोदिताः । साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा स्त्रियं यथा ॥
प्रसृतास्तान्मुनीनूचुः प्रणिपातपुरःसरम् ।
कुमारा ऊचुः—इयं स्त्री पुत्रकामा तु प्रभो किं जनयिष्यति ।
व्यास उवाच-दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते विप्रलब्धा कुमारकैः । शापं ददुस्तदा विप्रास्तेषां नाशाय सुव्रताः॥
मुनयः कुपिताः प्रोचुर्मुसलं जनयिष्यति । येनाखिलकुलोत्सादो यादवानां भविष्यति ॥
"प्रद्युम्नासाम्बप्रमुखाः कृतवर्माऽथ सात्यकिः । अनिरुद्धादयश्चान्ये पृथुर्विपृथुरेव च ॥
चारुधर्मा सुचारुश्च तथाऽक्रूरादयो द्विजाः । एरकारूपिभिर्वज्रैस्ते निजघ्नुः परस्परम् इत्यादि ॥

[ब्रह्मपुराण अ० २१० ।]

अकारण उत्पातमें शान्ति—

मण्डपस्य तथा भित्तिश्चूडादेवकुलस्य च । अकस्मान्निपतेद्यत्र कम्पते वाऽनिमित्ततः ॥
दधिक्षौद्रघृताक्तानामश्वत्थ समिधां ततः । जुहुयाद्वै अष्टशतमिमारुद्रेति मन्त्रवित् ॥
धेनुञ्च दक्षिणां दद्यात्तिलपात्रं सकाञ्चनम् ॥
'पवित्रे पतिते ज्ञाते तथा जपमणावपि । प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नात्वा विप्रोऽघमर्षणम् ॥

वैदिक ब्राह्मण ही का होतृत्वमें अधिकार—

होता चेन्मन्त्रहीनः स्यादशुचिर्भवते सदा । तस्मात्त्वं संस्कृते वह्नौ न होतव्यमवैदिकैः ।
स-मन्त्र वैदिकहोतारः आप्यायन्ति देवताः । अवैदिकास्तु होतारो नैव प्रीणन्ति वै सुरान् ॥

यन्त्र पर विचार—

सुवर्णं रचितं यन्त्रं सर्वराजवशं करम् । रतेजन कृतं यन्त्रमायुरारोग्यकामदम् ॥
ताम्रे तु रचितं तन्त्रं सर्वेश्वर्यप्रदं मतम् । क्लृप्तं मरकते यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥
लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसद्धिकरं महत् ।

—दौलतराम गौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्री राजा परीक्षित्ने कहा–हे भगवन्, आपने जो मुझसे सम्पूर्ण मन्वन्तरोंका वर्णन किया है वह सब मैंने अच्छी तरह सुन लिया है तथा अनन्तपराक्रमशाली श्रीहरिके चरित्रोंका भी श्रवण किया है ॥ १ ॥ जो यह द्रविड़ देशके राजा सत्यव्रत हुए हैं, जिन्होंने श्रीवैकुण्ठनाथकी सेवाके द्वारा गतकल्पके अन्तमें ज्ञान प्राप्त किया है ॥ २ ॥ वह विवस्वान् मनुके पुत्र थे तथा इक्ष्वाकु आदि राजा उनके पुत्र हुए हैं, यह मैंने आपके ही मुखारविन्दसे सुना है ॥ ३ ॥ हे प्रियवर, उनके वंश और उनके वंशजोंके चरित्रका मुझसे अलग-अलग साफ-साफ वर्णन कीजिये । हमलोगोंका बड़ा सुननेकी इच्छा है ॥ ४ ॥ उनके जो वंशज हो चुके हैं अथवा आगे चलकर होंगे और जो वर्तमान हैं, उन सब पवित्र कीर्तिशालियोंके चरित्रका हमसे वर्णन

❀ अथ प्रथमोऽध्यायः ❀

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ॥ ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया ॥२॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥ त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथग्ब्रह्मन्वंश्यानुचरितानि च ॥ कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये ॥ तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषा वद विक्रमान् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित् ॥६॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप ॥ न शक्यते विस्तरतो वक्तुंवर्षशतैरपि ॥७॥ परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ॥ स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किञ्चन ॥ ८ ॥ तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोशो हिरण्मयः ॥ तस्मिञ्जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ॥ दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः ॥ १० ॥ ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ॥ श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ॥ नरि-

कीजिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजीने कहा–हे शौनकजी, इसप्रकार ब्रह्मर्षियोंकी सभामें श्री राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न किया । प्रश्न सुनकर परमधर्मज्ञ श्रीशुकदेवजीने कहा ॥६॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे परन्तप, अब आप संक्षेपसे मानववंशका श्रवण कीजिये, क्योंकि विस्तारपूर्वक तो सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता है ॥ ७ ॥ हे राजन्, कल्पके अन्तमें यह नाना विधि दृश्यमान संसार नहीं था, किन्तु उत्कृष्ट और निकृष्ट सभी प्राणियोंकी आत्मा तथा प्रकृति जो परपुरुष है, वही अकेला था और कुछ भी अवशिष्ट नहीं था ॥ ८ ॥ उनकी नाभिसे सुवर्णमय एक कमलकोश उत्पन्न हुआ । हे महाराज, उस कमलकोशमें चार मुखवाले श्रीब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ इसके बाद श्रीब्रह्माजीके मनसे मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए तथा मरीचिसे कश्यप हुए एवं कश्यपसे दक्षकी पुत्री अदितिके गर्भसे विवस्वान् पुत्र हुआ ॥ १० ॥ हे भारत, विवस्वान्से संज्ञानामको स्त्रीमें श्राद्धदेव मनु पुत्र हुए तथा विज्ञ और आत्मज्ञानी उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनुने श्रद्धानामकी पत्नीमें दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम ये हैं ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्टक, रूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ १२ ॥ पहिले जिस समय मनुके कोई सन्तान नहीं हुआ था, उस समय समर्थशाली भगवान् वसिष्ठजीने इनको सन्तानरहित देखकर सन्तानके निमित्त मैत्रावरुणनामक यज्ञ किया था ॥१३॥ उस समय केवल दूध पीकर रहनेवाली मनुकी पत्नी श्रद्धाने होताके समीप जाकर प्रणाम करनेके बाद यह प्रार्थना की कि हे महाराज, आप इसप्रकारका यज्ञ कीजिये कि हमें एक कन्या हो जाय ॥ १४ ॥ अध्वर्युके द्वारा प्रेरित वह ब्राह्मण होता हविका ग्रहणकर लेनेके बाद उसकी प्रार्थनाका स्मरण तथा मुखसे वषट्का उच्चारण करता हुआ सावधान होकर यज्ञ करने लगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार होताके उस व्यभिचारसे याना प्रयोगसे इला नामकी वह कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याको देखकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त न होते हुए मनुजी गुरु वसिष्ठजीसे कहने लगे ॥ १६ ॥

ष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥ १२ ॥ अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ १३ ॥ तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ॥ दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४ ॥ प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः ॥ हविषि व्यचरत्तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५ ॥ होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साभवत् ॥ तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥ भगवन्किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ॥ विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद् ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥ यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ कुतः सङ्कल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ॥ होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥ १९ ॥ एतत्सङ्कल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ॥ तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥ एवं व्यवसितो राजन्भगवान्स महायशाः ॥ अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥ तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ ददाविलाभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन्मृगयां वने ॥ वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥ २३ ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ॥ दंशितोऽनु-

हे भगवन्, आप ब्रह्मवादियोंके द्वारा अनुष्ठित यह कर्म विपरीत भावको क्यों प्राप्त हो गया है? बड़े दुःखकी बात है, इस तरह वेदमन्त्रोंका अन्यथा हो जाना तो असम्भव है ॥ १७ ॥ आपलोग मन्त्रोंके अच्छे ज्ञाता हैं, योगी हैं, तपद्वारा आपलोगोंके समस्त पाप भस्मकर दिये गये हैं, फिर भी देवताओंके विषयमें मिथ्या भाषणकी तरह आपलोगोंका यह संकल्प विपरीत क्यों हो गया है ॥१८॥ इसप्रकार मनुके वचन सुनकर तथा होताके व्यतिक्रमको समझकर महर्षि वसिष्ठजीने मनुसे कहा ॥१९ हे राजन्, यद्यपि यह वैपरीत्य आपके होताके व्यभिचारसे हुआ है तथापि मैं अपने तेज से आपको सुन्दर सन्तान देता हूँ ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, भगवान् वसिष्ठजी इसप्रकार निश्चय करके इला नामकी कन्याको पुरुष बननेकी इच्छासे आदिपुरुष श्रीनारायणकी स्तुति करने लगे ॥ २१ महर्षिकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर साक्षात् जगदीश्वर भगवान् श्रीहरिने इन्हें यथेष्ट वर दिया, जिससे इला उसी समय सुद्युम्न नामक श्रेष्ठ पुरुष हो गई ॥ २२ ॥ हे महाराज, अपने कुछ मन्त्रियोंके साथ वह सुद्युम्न एकदिन मृगयाके लिये वनमें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ बड़े अद्भुत बाणों तथा सुन्दर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

धनुषको लेकर कवच धारण किये हुए वह वीर एक मृगके पीछे उत्तर दिशाकी ओर दौड़ा ॥ २४ ॥ वह सुकुमार इसप्रकार मृगके पीछे दौड़ता हुआ सुमेरु पर्वतके नीचे वनमें प्रविष्ट हो गया, जहाँपर जगज्जननी पार्वतीके साथ भगवान् शङ्करजी विराजमान हैं॥ २५ ॥ हे राजन्, उसमें प्रवेश करते ही बड़े बड़े वीरोंको मार गिरानेवाले उस सुद्युम्नने अपनेको स्त्री तथा घोड़ेको घोड़ी देखा ॥ २६ ॥ हे राजन्, तथा उस समय उनके सेवक और मन्त्रीगण परस्पर एक दूसरेको स्त्रीरूपमें देखते हुए बड़े दुःखी हो गये ॥ २७ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा – हे भगवन्, वह देश इसप्रकार कैसे और किसके द्वारा हुआ, जहाँ प्रवेश करनेसे पुरुष भी स्त्रीभावको प्राप्त हो जाता है, इस प्रश्नका उत्तर आप मुझसे कहिये, मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम हो रहा है ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, एक बार अपने तेजसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए बड़े-बड़े चान्द्रायणादि व्रत करनेवाले महर्षि लोग भगवान् शंकरके दर्शनके लिये

मृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥ स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ॥ यत्रास्ते भगवान् रुद्रो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥ तस्मिन्प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्न परवीरहा ॥ अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥ तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिङ्गविपर्ययम् ॥ दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन्वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन्कृतः ॥ प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥२८॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ॥ दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ २९ ॥ तान्विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ॥ भर्तुरङ्कात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥३०॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः ॥ निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥ तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ॥ स्थानं यः प्रविशेदेतस वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ तत ऊर्ध्वं वनं तद्धै पुरुषा वर्जयन्ति हि ॥ सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम्*॥ स्त्रीभिः परिवृतां वी-

कैलाश गये ॥ २९ ॥ सहसा मुनियोंको देखकर अति लज्जित हो वस्त्रहीन पार्वतीजीने पतिकी गोदीसे उठकर शीघ्र ही ग्रन्थियुक्त वस्त्र धारणकर लिया ॥३०॥ रमणकर रहे उन दोनोंका प्रसङ्ग देखकर यानी जगज्जननीके साथ जगत्पिताकी रति क्रीड़ा देखकर स्त्रीप्रसङ्ग दर्शनसे कलुषित चित्त होते हुए वे सब ऋषि भी वहाँसे लौटकर नरनारायण भगवान्के दर्शनके लिये उनके बदरिकाश्रममें चले गये ॥३१॥ तब भगवान् शंकर ने प्रिया पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये यह कहा–आजसे जो इस स्थानमें प्रवेश करेगा, वह तत्क्षण ही स्त्री हो जायगा ॥३२॥ तभीसे पुरुषोंने इस जंगलका त्यागकर दिया। यहाँ कोई पुरुष नहीं आता। स्त्रीरूप सुद्युम्न भी स्त्रीरूप अपने अनुचरोंके साथ लज्जाके मारे अपने घर नहीं जा सका, बल्कि वहीं एक वनसे दूसरे वनमें विचरण करने लगा ॥३३॥ इसके बाद आश्रमके समीप अन्य स्त्रियोंसे युक्त घूम रही स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ उस स्त्रीके ऊपर भगवान् बुध मोहित हो गये तथा इसको प्राप्त

---

*दृष्टान्त—शिवजीने श्रीपार्वतीके प्रसन्नार्थ यह कह दिया जो पुरुष यहाँ पर आवेगा वह स्त्रीका रूप धारण करेगा।

उत्तर—एक समय पार्वती नग्नावस्थामें थी, उससमय ऋषिगण वहाँ पहुँच गए। इससे पार्वती बड़ी लज्जित हुई। इसलिए कैलाशका महत्व बढ़ानेके लिए उपरोक्त बात हुई।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करनेकी इच्छा करने लगे ॥ ३४ ॥ सुन्दर भौंहोंसे युक्त उस स्त्रीने भी अति सुन्दर चन्द्रमाके पुत्र उस बुधको अपना पति बनानेकी इच्छा की इसप्रकार दोनोंका संयोग होनेके बाद भगवान् बुधने इस स्त्रीमें 'पुरूरवा' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ इसप्रकार मनुके पुत्र राजा सुद्युम्नने स्त्रीभावको प्राप्त होते हुए अपने कुलगुरुके आचार्य वसिष्ठका स्मरण किया यह सुना जाता है ॥३६॥ भगवान् वसिष्ठने सुद्युम्नकी जब यह दशा देखी तब वे बड़े दुःखी होकर सुद्युम्नको पुनः पुरुष बनने की इच्छासे भगवान् शंकरकी उपासना करने लगे ॥३७॥ हे राजन्, वसिष्ठ उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने वसिष्ठजीके मनोरथको सफल बनाते हुए तथा पूर्वोक्त अपने वचनकी रक्षा करते हुए यह कहा ॥३८॥ हे महर्षे, यह आपका वंशज एक मास पुरुष तथा एक मास स्त्री रहेगा, इसी व्यवस्था के द्वारा सुद्युम्न पृथिवीका पालन करे ॥३९॥ इसप्रकार अपने कुलाचार्यके अनुग्रहसे पुनः व्यवस्थापूर्वक पुरुषभावको प्राप्त कर राजा सुद्युम्न इच्छानुसार पृथिवीका पालन करने लगा, किन्तु एक मास स्त्री तथा एक मास पुरुष रहनेके कारण प्रजाएँ इससे प्रसन्न नहीं रहती थीं ॥ ४० ॥ हे राजन्, सुद्युम्नके

त्य चकमे भगवान् बुधः ॥ ३४ ॥ सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५ ॥ एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥३६॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ॥ सुद्युम्नस्या शयन्पुंस्त्वमुपाधावत शङ्करम् ॥३७॥ तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ॥ स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥३८॥ मासं पुमान्स भविता स्त्री तव गोत्रजः ॥ इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ॥ पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन्स्म तं प्रजाः ॥ ४० ॥ तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः ॥ दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥ ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥ पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥४२॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० नवमस्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

उत्कल, गय, और विमल नाम के तीन पुत्र हुए, धर्मवत्सल ये तीनों भाई दक्षिणापथके राजा हो गये ॥४१॥ इसके बाद प्रतिष्ठानदेशके स्वामी सुद्युम्नने वृद्धावस्थामें अपने पुत्रपुरूरवाको राज्य देकर वनमें प्रस्थान किया ॥ ४२ ॥

प्रथम अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मानववंशका अब संक्षेपसे वर्णन सुनिये। संज्ञा नामक स्त्रीमें विवस्वान्‌से मनु महाराज उत्पन्न हुए और उसके इक्ष्वाकु, नृग शर्याति आदि दस लड़के हुए। पहले जब इन्हें कोई सन्तान नहीं थी तब इनके कुलगुरु वसिष्ठजीने सन्तानके लिए यज्ञ किया। उस समय इनकी पत्नी श्रद्धाने होताके पास जाकर कहा—भगवन्, इस तरहका प्रयोग कीजिये कि मुझे एक लड़की हो। होताने ऐसा ही किया। अनन्तर इला नामकी कन्या उत्पन्न हुई। पुत्रकी इच्छा रखनेवाले मनुने वसिष्ठजीसे कहा—यह व्यतिक्रम कैसे हुआ ? महाराज वसिष्ठ ने कहा—यह होताके विपरीत प्रयोगसे हुआ है, कोई चिन्ता न कीजिये। मैं आपको पुत्र देता हूँ। यों कहकर इलाको पुत्र बनानेकी इच्छासे वसिष्ठजी नारायण भगवानकी स्तुति करने लगे। प्रसन्न होकर भगवान्‌ने वर दिया, जिससे इला सुद्युम्न नामक पुरुष हो गई। एक दिन शिकार खेलनेके लिये अपने मन्त्रियोंके साथ सुद्युम्न जङ्गलकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ओर निकल पड़ा। एक मृगके पीछे दौड़ते हुए सुमेरुपर्वतके नीचे पहुँच गया, जहाँ भगवान् शङ्कर और पार्वती विराजमान हैं। वहाँ पहुँचते ही वह अपने साथियोंके साथ स्त्री रूपमें परिणत हो गया। इसके सौन्दर्य पर बुध मोहित हो गया और इसने भी बुधको अपना पति बना लिया। दोनोंके संयोगसे पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तदनन्तर सुद्युम्नकी ऐसी दशा देख वसिष्ठजी पुनः पुत्र बनानेकी इच्छासे शङ्करकी आराधना करने लगे। भगवान शंकरने प्रसन्न होकर कहा—महर्षे, यह आपका वंशज एक मास पुरुष और एवं मास स्त्री रहेगी। तदनन्तर सुद्युम्न अपने कुलगुरुकी कृपासे पुनः पुरुष हो गया और इच्छानुसार पृथ्वीका पालन करने लगा। उत्कल, गय, तथा विमल नामके इसके तीन लड़के हुए वे तीनों दक्षिणापथके राजा हुए। वृद्धावस्थामें सुद्युम्नने पुरूरवाको राज्यभार सौंपकर जङ्गलका राह लिया। प्रथम अध्याय समाप्त॥

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥ पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥ ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ॥
इक्ष्वाकुपूर्वजान्पुत्राँल्लेभे स्वसदृशान्दश ॥ २ ॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥३॥
एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ॥ शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकां जग्राह बलवान्सा चुक्रोश भयातुरा ॥
तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५ ॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ॥ अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥ ६ ॥
व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः ॥ निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥ ७ ॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ॥
अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥ तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ॥ न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना

❀ मनुके दो विरक्त हुए पुत्रों तथा करूषक आदि पाँच पुत्रोंके वंशोंका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार पुत्र सुद्युम्नके वनमें चले जानेके बाद वैवस्वत मनुने पुत्रप्राप्तिके लिये यमुनाजीके किनारे सौ वर्षोंतक तपस्याकी ॥ १ ॥ मनुने सन्तानके लिये परमसमर्थ श्रीहरिका यजन किया तदन्तर इक्ष्वाकु आदि सदृश दस पुत्र उन्होंने उत्पन्न किये ॥ २ ॥ मनुके पुत्र पृषध्र जिस समय विद्याध्ययन करनेके लिये गुरुकुलमें गये, इनको गुरुजीने गोसेवामें लगा दिया। वे रात्रिमें वीरासनसे बैठकर सावधान होकर गायोंका पालन करते थे ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिमें जलवृष्टिके समय एक व्याघ्र गोशालामें घुस गया। उसे देखकर भयभीत हो सम्पूर्ण गौयें उठकर इधर-उधर भागने लगीं ॥ ४ ॥ एक गायको उस बलवान् व्याघ्रने पकड़ लिया, वह गाय भयाकुल होकर चिल्लाने लगी, उसके आर्त्तनादको सुनकर पृषध्र दौड़े ॥ ५ ॥ वे तलवार लेकर बहुत शीघ्र ही वहाँ पहुंच गये, किन्तु रातमें, जब कि सब तारे विलीन हो चुके थे, अन्धकार अधिक होनेके कारण व्याघ्रके धोखेसे कपिला गायके सिरपर तलवार चला दिया ॥ ६ ॥ व्याघ्र भी तलवारके द्वारा छिन्नकर्ण होकर मार्गमें रक्त टपकाता हुआ अत्यन्त भयभीत होकर वहांसे भाग गया। ॥७॥ बड़े-बड़े वीरोंका नाश-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करनेवाले पृषध्र भी व्याघ्रको मरा हुआ समझते हुए रात्रि व्यतीत हो जानेके बाद यानी बिलकुल सुबहमें अपने द्वारा मारी गई कपिला गायको देखकर अत्यन्त दुःखित हुए ॥ ८ ॥ तदन्तर जान-बूझकर अपराध किये हुए भी उस पृषध्रको कुलाचार्यने इस अपराधके ऊपर शाप दे दिया-क्षत्रीको बात तो दूर रहे आजसे कि तुम पतित क्षत्री भी नहीं रहोगे, इस कर्मसे तुम शूद्र हो जाओगे ॥९॥ इसप्रकार गुरुके द्वारा दिये गये शापको पृषध्रने हाथ जोड़कर स्वीकारकर लिया। और तभीसे उन्होंने वीर्यकी रक्षा करते हुए मुनियोंके प्रिय ब्रह्मचर्य व्रतको धारण किया ॥ १० ॥ तथा प्रकृतिसे परे, सर्वदोषशून्य और सर्वात्मक भगवान् वासुदेवमें मनोनिग्रहपूर्वक भक्तिके द्वारा सब प्राणियोंमें समदर्शी होकर ॥ ११ ॥ सब तरहकी आसक्तिको छोड़ते हुए, शान्तस्वरूप, जितेन्द्रिय तथा त्यागी बनकर बिना उद्योगसे ही प्राप्त वृत्तिके द्वारा अपनी जीविका चलाने लगे ॥ १२ ॥ परमात्मामें मनको लगाकर ज्ञानसे तृप्त होते हुए समाहित हो जड़ान्ध तथा बधिरकी तरह इस पृथ्वी पर विचरण करने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार आचरणवाले पृषध्र वनमें जाकर अत्यन्त प्रज्वलित दावाग्निको देखकर उसीमें

॥ ९ ॥ एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः ॥ अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥ वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ॥ एका-
न्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥ विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन्वृत्तिमात्मनः ॥ १२ ॥
आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः ॥ विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥ १३ ॥ एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ॥
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥ कविः कनीयान्विषयेषु निःस्पृहो विसृज्य राज्यं सहबन्धुभिर्वनम् ॥ निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरो-
चिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥ १५ ॥ करूषान्मानवादासन्कारुषाः क्षत्रजातयः ॥ उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टा-
द्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥ नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ॥ कन्या
चोघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यन्ताद्दक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥१९॥

भस्मीभूत हो परब्रह्मको प्राप्त हो गये ॥ १४ ॥ इसके बाद उनका छोटा भाई जिसकी किशोरावस्था थी और जिसका नाम कवि था, वह भी विषयोंमें निःस्पृह होनेके कारण राज्यको छोड़कर अपने भाइयोंके साथ वनमें चला गया। वहाँ परमेश्वरमें अपना चित्त लगाकर स्वयं प्रकाशस्वरूप परम पुरुष ईश्वरमें लीन हो गया ॥ १५ ॥ करूष जो मनुका पुत्र था, उससे कारुष नामक क्षत्रिय उत्पन्न हुए। ये सब लोग उत्तरापथ देशके स्वामी हुए इनकी ब्राह्मणों और धर्मके विषयमें बड़ी श्रद्धा थी ॥ १६ ॥ तथा धृष्टसे धार्ष्ट नामकी क्षत्रिय जाति उत्पन्न हुई, जो पृथिवीमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुई [अब नृगके वंशको बतलाते हैं]—नृगका पुत्र सुमति हुआ, सुमतिसे भूतज्योति और भूतज्योतिसे वसु उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ वसुके पुत्र प्रतीक, प्रतीकके ओघवान् तथा ओघवान्के पुत्र भी ओघवान् नामके हुए और ओघवान्को एक कन्या भी हुई, जिसका नाम ओघवती पड़ा। ओघवतीका व्याह सुदर्शनके साथ हुआ ॥१८॥ [अब नरिष्यन्तके वंशको कहते हैं]—नरिष्यन्तसे चित्रसेन और चित्रसेनसे दक्ष तथा दक्षसे मीढ्वान् और मीढ्वान्से कूर्च एवं कूर्चसे इन्द्रसेन उत्पन्न हुये ॥१९॥ इन्द्रसेनसे वीतिहोत्र,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वीतिहोत्रसे सत्यश्रवा तथा उनसे उरुश्रवा और उरुश्रवासे देवदत्तका जन्म हुआ ॥२०॥ देवदत्तसे अग्निवेश्य नामसे स्वयं भगवान् अग्नि पुत्र रूपसे प्रादुर्भूत हुए यही कानीन तथा जातूकर्ण्य नामसे महान् ऋषि प्रसिद्ध हुए ॥२१॥ हे राजन्, अग्निवेश्यसे अग्निवेश्यायन ब्रह्म कुलकी उत्पत्ति हुई इसप्रकार मैंने आपके नरिष्यन्तके वंशका वर्णन किया। अब आप दिष्टके वंशका श्रवण कीजिये ॥ २२ ॥ दिष्टके पुत्र नाभाग हुए। आगे कहे जानेवाले नाभागसे ये भिन्न हैं। ये अपने कर्मसे वैश्य बन गये नाभागसे भलन्दन और भलन्दनसे वत्सप्रीतिकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिसे प्रांशु और प्रांशुसे प्रमति तथा इनसे खनित्र एवं खनित्रसे चाक्षुष और इनसे विविंशति उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ हे महाराज, विविंशतिसे रम्भ, रम्भसे धार्मिक खनिनेत्रसे तथा खनिनेत्रसे हेराजन्, करन्धम नामके पुत्र हुए ॥ २५ ॥ करन्धमसे अवीक्षित् और अवीक्षित्से चक्रवर्ती मरुत हुए, जिनका महायोगी अङ्गिराके पुत्र संवर्तने यज्ञ

वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत् ॥ उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥२०॥ ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः ॥ कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥२१॥ ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ॥ नरिष्यन्तास्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥२२॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥ भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥२३॥ वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ॥ खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४ ॥ विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ॥ करन्धमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृपः ॥ २५ ॥ तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ संवर्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यङ्गिरस्सुतः ॥ २६ ॥ मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कश्चन ॥ सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥ अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥२८॥ मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ॥ सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥२९॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद् बन्धुमान्वेगवांस्ततः ॥ बन्धुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥ ३० ॥ तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम् ॥ वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाभवत् ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ॥ प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२ ॥ विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ॥

कराया था ॥ २६ ॥ राजा मरुत्तने जैसा यज्ञ किया था वैसा यज्ञ किसीने भी नहीं किया। इनके यज्ञमें जितने यज्ञ पात्र थे, सब सुवर्णके थे और थे बड़े ही सुन्दर ॥ २७ ॥ मरुत्तके यज्ञ में सोमलतासे इन्द्र अत्यन्त तृप्त हो गये थे तथा ब्राह्मणलोग दक्षिणासे अति सन्तुष्ट हो गये थे। इनके यज्ञमें समस्त मरुद्गण परिवेषण करनेवाले तथा विश्वेदेवा लोग सभासद् बने थे ॥२८॥ तदनन्तर मरुत्तके पुत्र दम, दमके राजवर्धन, राजवर्धनके सुधृति और सुधृतिके पुत्र नर हुए ॥२९॥ नरसे केवल, केवलसे बन्धुमान् और बन्धुमान्से वेगवान् हुए। वेगवान्के पुत्र बन्धु और बन्धुसे राजा तृण बिन्दु पैदा हुए ॥ ३० ॥ नानाविध श्रेष्ठ गुणशाली तृणबिन्दु महाराजको परम सुन्दरी अलम्बुषा नामकी अप्सराने स्वीकार कर लिया, जिससे आगे कहे जानेवाले विशालादि पुत्र तथा इडविडा नामकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ योगेश्वर अपने पितासे ब्रह्मविद्या प्राप्त करके उस कन्यासे महर्षि विश्रवाने धनद पुत्र उत्पन्न किया ॥३२॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विशाल, शून्य बन्धु और धूम्रकेतु, ये तृण विन्दुके पुत्र हुए। वंशकर्ता विशाल नामक राजाने वैशाली नामकी नगरी बसाई॥ ३३ ॥ विशालसे हेमचन्द्र और उनसे धूम्राक्ष तथा धूम्राक्षसे संयम और संयनसे कृशाश्व एवं देवज दो पुत्र हुए॥ ३४ ॥ तदनन्तर कृशाश्वसे सोमदत्त हुए जिन्होंने अश्वमेधयज्ञों द्वारा श्रीपुरुषोत्तमका यजन करके योगेश्वरोंके आश्रयसे मोक्षको प्राप्त किया ॥ ३५ ॥ तत्पश्चात् सोमदत्तने सुमति और सुमतिसे जनमेजय हुए। ये पूर्वोक्त राजा लोग तृणविन्दुके पुत्र विशालाके वंशमें उत्पन्न हुए और अपने पूर्वजोंका यश इन लोगोंने खूब फैलाया ॥ ३६ ॥

विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥३३॥ हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः॥ तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥३४॥ कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ॥ इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥३५॥ सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः॥ एते वैशालभूपालास्तृणविन्दोर्यशोधराः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

द्वितीय अध्यायका सार—शुकदेवजिने कहा—हे राजन्, सुद्युम्नके वनमें जानेके बाद पुत्रकी कामनासे मनुने घोर तपस्याकी, जिससे इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति आदि दस पुत्र पैदा हुए। इनके आठवें पुत्र पृषध्रने गुरुशापसे शूद्र होकर भगवान् विष्णुकी भक्ति करनेके बाद ब्रह्मभावकी प्राप्ति कर ली। सबसे छोटा पुत्र जो कवि था उसने शैशवकालमें ही सब कुछ छोड़-छाड़कर भगवान् की शरण ली। बाकि बचे आठ लड़कोंमें धृष्टके कुलका धार्ष्ट नाम पड़ा। जो ब्राह्मणोंका बहुत बड़ा भक्त था। मनुके छठे पुत्र करूषके सभी लड़के धर्मपरायण और उत्तरापथके राजा बने। हे राजन् नरिष्यन्त, दिष्ट और नृगके वंशज भी विश्वविख्यात महात्मा थे। द्वितीय अध्याय समाप्त❀

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच॥ शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥ यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥१॥ सुकन्या नाम तस्यासीत्कन्या मललो सार्धं चना ॥ तया वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥२॥ सा सखीभिः परिवृता विचिन्वत्यङ्घ्रिपान्वने॥ वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥३॥ सा देवचोदिता बालज्योतिषी कण्टकेन वै॥ अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां च तत्क्षणात् ॥

❀ मनुपुत्र शर्यातिके वंशका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मनुपुत्र वह राजा शर्याति वेदार्थतत्वज्ञ हुआ था, जिसने अङ्गिरा वंशजों द्वारा किये गये यज्ञमें द्वितीय-दिन होनेवाले यज्ञके कृत्यको स्वयं करा था ॥१॥ उनके घरमें सुकन्या नामकी कमलके सदृश नेत्रवाली कन्या पैदा हुई थी, उस कन्याके साथ एक दिन वे जङ्गलमें च्यवन मुनिके आश्रम पहुँचे ॥ २ ॥ उस आश्रममें उस कन्याने सखियों के सहित भ्रमण करती हुई तथा वनके सुन्दर सुन्दर वृक्षोंको खोजती हुई एक वल्मीकके छिद्रमें खद्योतके समान चमक रही दो ज्योतियाँ देखीं ॥ ३ ॥ दैवसे प्रेरित होकर उस कन्याने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

काँटा लेकरके चमक रही उन दोनों ज्योतियोंको मुग्ध भावसे छेद दिया। छेदनेके पश्चात् उन दोनोंसे खूब रुधिर बहने लगा ॥ ४ ॥ इस अपराधसे राजाके समस्त सैनिकोंका मलमूत्र तत्त्वण ही बन्द हो गया। इसे देखकर राजर्षि शर्यातिने विस्मयको प्राप्त होते हुए अपने सेवकोंसे कहा —॥ ५ ॥ भाइयो, हमलोगोंके बीचमें मालूम होता है कि किसीने महर्षि च्यवनका अवश्य अपराध किया है या हमलोगों में से किसीने और कोई आश्रममें दोष किया है॥ ६ ॥ पिताको व्याकुल देखकर सुकन्याने कहा—पिताजी, मैंने अवश्य कुछ अपराध किया है। वल्मीकके भीतर चमक रही दो ज्योतियोंको विना जाने समझे मैं काँटेसे छेद दिया ॥७॥ इसप्रकार कन्याके वचनों को सुनकर राजा शर्यातिने भय को प्राप्त होते हुए वल्मीकके भीतर स्थित च्यवन मुनिके पास जाकर प्रार्थनाके द्वारा धीरे-धीरे मुनिको प्रसन्न किया ॥८॥ (महर्षिने पूछा— राजन्, तुम्हारी कन्याकी क्या अवस्था है? अभी इसकी शादी की है या नहीं इत्यादि) मुनिके वचनोंसे राजा उनके अभिप्रायको आप समझकर अपनी लड़की उन्हें दे दी तथा कष्टसे मुक्त हो उनसे आज्ञा लेकर अपनी राजधानीमें लौट आये ॥९॥ सुकन्याने परम

राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान्विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम्॥ व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥
सुकन्या प्राह पितरं भीता किञ्चित्कृतं मया ॥ द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥७॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ॥
मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्हितं शनैः॥ ८ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः ॥ कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥
सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ॥ प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्तानुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ॥ तौ
पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥ ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ॥ क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२ ॥
बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ॥ निमज्जतां भवानस्मिन्ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः ॥ ह्रदं
प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥ १४ ॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ॥ पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५ ॥

क्रोधी च्यवनको पति पाकर उनके मनोगत भावको जानती हुई उनके अनुकूल आचरणों द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेमें तत्पर हो गई ॥ १० ॥ इसकेबाद कुछ काल बीत जानेपर एकबार महर्षि च्यवनके आश्रममें अश्वनी कुमार आ पहुँचे। मुनिने उनका यथोचित सत्कार करके प्रार्थना की—हे सद्वैद्यो, मैं वृद्ध हो गया हूँ, मुझे आप लोग तारुण्य प्रदान कीजिये ॥ ११ ॥ सोमलताके पानसे रहित आप लोगोंके लिये हम सोमसे पूर्ण पात्र प्रदान करेंगे अर्थात् सोमलतासे आपका यजन करेंगे, किन्तु आपलोग मुझे इसप्रकारकी अवस्था और रूप देदीजिये, जो स्त्रियोंको अभीप्सित हो यानी जिस रूपको देखकर स्त्रियाँ मोहित हो जायँ ॥ १२ ॥ अश्वनीकुमारोंने मुनिके वचनोंको स्वीकारकर उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—हे भगवन्, आप इस कुण्डमें स्नान कीजिये, इसका सिद्धों द्वारा निर्माण किया गया है ॥ १३ ॥ यों कहकर जराजीर्ण शरीरवाले तथा नसोंसे व्याप्त ढीली तोंद तथा केशोंके सफेद हो जानेसे अतिकुरूप च्यवन को अश्वनी कुमारोंने उस जलाशयमें प्रवेश कराया तथा वे स्वयं भी प्रविष्ट हो गये ॥ १४ ॥ इसके बाद उस जलाशयसे तीन पुरुष निकले जो बड़े ही सुन्दर तथा नागरियोंको मोहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करनेवाले थे। वे तीनों सुन्दर गलेमें कमलकी माला पहिने हुए, कानोंमें सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए तथा सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित थे ॥ १५ ॥ सूर्य्यके समान कान्तिवाले उन तीनों पुरुषोंको देखकर सुन्दर जाँघवाली वह कन्या अपने पतिको न पहचानती हुई उन्हीं अश्विनीकुमारोंकी शरण में गई यानी आप दोनों अलग होकर मेरे पतिको दिखला दीजिये, यह उस कन्याने अश्विनीकुमारोंसे प्रार्थना की ॥ १६ ॥ उसके पतिव्रत्यसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारोंने उसके पतिको बतला दिया और महर्षिने आज्ञा लेकर विमानसे स्वर्गलोकको वे दोनों चले गये ॥ १७ ॥ कुछ दिनके बाद यज्ञ करनेकी इच्छा करते हुए राजा शर्याति च्यवनके आश्रममें आ पहुँचे और उन्होंने अपनी कन्या के पास सूर्यके समान कान्तिवाले एक पुरुषको देखा ॥ १८ ॥ कन्याके पादाभिवन्दनके पश्चात् उससे अप्रसन्न होनेके कारण उसको कुछ भी आशीर्वाद न देते हुए उस अपनी लड़की से कहने लगे—॥ १९ ॥ हे असति, हे कुलटे, तुमने यह क्या किया, जो यह तुमने जो नमस्कृत जगत्पूज्य अपने पतिको धोखा दिया। जरासे जीर्ण शरीरवाले अनिच्छित मुनिरूप पतिका त्यागकर अपने मनसे आज तुम इस राहगीर

तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान्सूर्यवर्चसः ॥ अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ* ॥ १६ ॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥ ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ॥ ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् ॥ आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥ चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ॥ यत्त्वं जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ॥ बिभर्षि जारं यदपत्रपाकुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१ ॥ एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ॥ उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः ॥ २२ ॥ शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् ॥ विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ ॥ सोमेन याजयन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ॥ असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः ॥ स्तम्भयामास

जार पतिकी सेवा कर रही हो ॥ २० ॥ हे कन्यके, सत्कुलमें उत्पन्न होने पर भी तुम्हारी बुद्धि इसप्रकार विपरीत क्यों हो गई ? यह तो बड़ाभारी कुलका दोष है। तुम आज एक निर्लज्ज और अकुलीन जार पतिकी सेवा कर रही हो तथा पिता और पति दोनोंके कुलको नरक ले जा रही हो ॥ २१ ॥ इसप्रकारके बचन कह रहे अपने पितासे पातिव्रत्य धर्मके गर्वसे मुसकुरा रही उस कन्याने कहा—हे तात, यह सामने आपके जामाता च्यवन मुनि बैठे हैं, आपने इन्हें पहचाना नहीं ॥ २२ ॥ जिसप्रकार च्यवनको वह अवस्था और रूपकी प्राप्ति हुई उसकी सारी किस्सा सुकन्याने अपने पितासे कह सुनाई यह सुनकर राजा बहुत चकित हुए तथा अपनी कन्यासे परम प्रसन्न हो उसे गलेसे लगा लिया ॥ २३ ॥ इसके बाद च्यवन

---

*दृष्टान्त—सुकन्या के समक्ष तीन पुरुष अतितेजस्वी पहुचे इससे वह अपने पतिदेव को न पहचान सकी।

उत्तर—वह बार बार अपने स्वामीका ही ध्यानकर अन्वेषण कर रही थी। हे भगवन्, मेरे पति कौन है. इतर जो है वे मेरे पिता के तुल्य हैं। यों कहते ही उसका मनोरथ पूर्ण होगया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ने शर्यातिको सोमलतासे यज्ञ करायां तथा सोमपानसे रहित अश्विनीकुमारोंको अपने तेजसे च्यवनने सोमपात्रका ग्रहण करायां ।। २४।। अश्विनीकुमारोंको सोमपान करते हुए जब इन्द्रने देखा, तब उसी क्षण उन्हें क्रोध आ गया। अश्विनीकुमारोंको मारनेकी इच्छासे इन्द्रने हाथमें बज्र ग्रहण किया। यह देखकर च्यवनमुनिने अपने तेजसे बज्रके सहित इन्द्रका हाथ रोक दिया ॥ २५ ॥ यद्यपि पहिले इनको वैद्य समझकर सोमयज्ञसे बहिष्कृतकर दिया था तथापि इस समय सब देवताओंने पुनः अश्विनीकुमारोंको यज्ञ भागको स्वीकार कर लिया ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण, ये तीन पुत्र शर्यातिके हुए। इसके अनन्तर आनर्तसे रेवत हुए ॥२७॥ हे राजन्, रेवतने समुद्रके भीतर कुशस्थली नामकी नगरी बसाई और उसी नगरी में रहते हुए आनर्तने देशके आनन्दका भोग किया ॥ २८ ॥ इनके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए, इनमें सबसे बड़ा कुकुद्मी था, कुकुद्मी अपनी रेवती कन्याको लेकर ब्रह्माजीके पास गया

भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥ अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ॥ भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्यां बहिस्कृतौ ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हि-रानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ॥ शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम ॥ २८ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥ कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३० ॥ तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥ अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥ कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ॥ तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥ कन्यारत्नमिदं राजन्नररत्नाय देहि भो ॥ भुवो भारा-वताराय भगवान्भूतभावनः ॥ ३४ ॥ अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥ त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ॥ बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥ इति

॥ २९ ॥ तमोगुण तथा रजोगुणसे शून्य ब्रह्मलोकमें कन्याके वास्ते वर पूछनेके लिये गया। उस समय वहाँ गन्धर्वोंका गान हो रहा था वह वहाँ अवसर न पानेपर भी क्षणभर बैठ गया ॥ ३० ॥ ब्रह्माजीके पास जाकर नमस्कार करके अपना अभिप्राय उन्हें कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्माजी हँसकर इनसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन्, जिनका आपने अपने हृदयमें विचार किया था, वे सब कालके ग्रास हो गये। उनके तो पुत्रके पौत्रोंके नप्ताओंके गोत्र भी आजकल पृथिवी पर नहीं सुनाई देते ॥ ३२ ॥ इस समय तो चतुर्युगोंसे विभक्तकाल व्यतीत हो चुका है, इसलिये आप जाइये। भगवन् विष्णुके अंश महाबलशाली बलदेवजी उत्पन्न हुए हैं ॥ ३३ ॥ इस कन्या रत्नको हे राजन्, आप उन नररत्नको ही दे दीजिये। जिसे भूत-भावन भगवान्ने पृथिवीका भार दूर करनेके लिए अवतार धारण किया है ॥ ३४ ॥ पवित्र है श्रवण कीर्तन जिनका ऐसे भगवान्ने ही अपने अंशके सहित अवतार धारण किया है। इस प्रकारका आदेश पाकर ब्रह्माजीको प्रणाम करके यह राजा ककुद्मी अपने नगरको लौट आये ॥ ३५ ॥ उस समय यक्षोंकी त्राससे इनके भाई नगर छोड़कर बाहर भाग गये थे। इन्होंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाकर उस सुलक्षण सुन्दर अङ्गोंवाली कन्याको बलशाली बलरामजीको देकर आप स्वयं तप करनेके लिये बदरीवनको चले गये, जहाँपर भगवान् नर-नारायणका आश्रम है ॥ ३६ ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तीसरे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हेराजन्, एक दिन अपनी लड़की को साथ लेकर शर्याति च्यवन ऋषिके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ अपनी सखियोंके साथ खेल रही सुकन्याने वाल्मीकके ऊपर चमक रही दो ज्योतियाँ देखीं। अपने खेलनेकी कोई अजिब चीज समझकर सुकन्याने काँटेसे उसे खोद दिया। तत्पश्चात् उसमें से खूनकी धारा बहने लगी और इधर राजाके सब सैनिकोंके मल-मूत्र भी बन्द हो गये। राजाने कहा—हमलोगोंमें किसीने च्यवनऋषिका अपराध अवश्य किया है। डरती हुई सुकन्याने कहा—हेतात, अनजानमें मैंने इसको चमकती हुई ज्योति समझकर खोद दिया है। राजाने ऋषिको प्रसन्न करने के लिए उनका अभिप्राय समझते हुए सुकन्या देदी। सुकन्याने अपनी सेवासे अपने वृद्धपति च्यवनको खूब प्रसन्न किया। एक दिन अश्विनीकुमार वहाँ आये। च्यवनने उनसे कहा—भगवन्, हम आपलोगोंको यज्ञमें सोमपान करायेंगे आप लोग हमें सुन्दर नवयुवक बना दीजिये। अश्विनीकुमारोंने ऐसा ही किया। एक दिन यज्ञ करनेकी इच्छा कर रहे राजा शर्याति च्यवनके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ च्यवन ऋषिको न देख अपनी लड़कीसे कहा—हे कुलटे, वृद्ध च्यवनऋषिको छोड़कर एक राह चलते जार पतिकी तुम सेवा कर रही हो। तुमने मेरे और ऋषि च्यवनके कुलको कलङ्कित किया। अपने पिताकी ऐसी बातें सुन मुसकाती हुई कन्या कहने लगी—पिताजी क्या आप अपने दमाद च्यवनको सामने नहीं देख रहे हैं अश्विनीकुमारोंकी कृपासे आज वे ऐसे हो गये हैं। अपने दमादको इस रूप में देखते हुए शर्याति बहुत प्रसन्न हुए। शर्यातिने एक यज्ञ किया। उसमें च्यवनने अश्विनी-कुमारोंको सोमरस का पान कराया। यद्यपि उन्हें सोमरस का पान कराते समय क्रोधित इन्द्रने वज्र लेकर उनके ऊपर आक्रमण किया, तथापि ऋषिने अपने तेजसे उसे वहीं विफल बना दिया उसके बाद शर्यातिको तीन पुत्र हुए—उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण। आनर्तके लड़के का नाम रैवत था। रैवतके सौ लड़कोंमें सबसे बड़ा कुकुद्मीने अपनी रेवती कन्या का विवाह ब्रह्माजी की रायसे बलभद्रके साथ कर दिया उसके बाद तप करने के लिए वह बदरिकाश्रममें चला गया। तीसरा अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् ॥ यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥ भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ॥ त्वां म आर्यास्तताऽभाक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥ इमे अङ्गिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ॥ षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति

❀ मनु-पुत्र नभगकी कथा तथा उनके पुत्र अम्बरीष द्वारा कृत्याका नाश ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अनन्तर नभगके वंशको सुनिये। नभगके पुत्र नाभाग हुए, जिन्हें इनके भाइयोंने ब्रह्मचर्य्य आश्रममें बहुत दिनों तक रहनेसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी समझकर दाय भाग पहले नहीं दिया था, किन्तु जब कवि नामसे प्रसिद्ध ये ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य आश्रमसे लौटे, तब इनका भाग पिताको दिया ॥१॥ कविने वनसे आकर भाइयोंसे कहा—हे भाईयो, आपलोगोंने मेरे लिये क्या दाय भाग दिया है ? भाईयोंने उत्तर दिया—हमलोगोंने तुम्हारा भाग पिताजीको दे दिया। तब कविने जाकर पितासे कहा—पिताजी आपको मेरे भागमें क्या भाइयोंने दिया है ? यह सुनकर पिताने कहा—हे पुत्र, उन लोगोंने तुझे ठग दिया है, तू उनके वचनोंमें श्रद्धा न कर, मैं क्या कोई भोग्य वस्तु हूँ ॥२॥ हे पुत्र, मैं तुम्हारी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जीविकाके लिये उपाय बतलाता हूँ। ये अङ्गिरस लोग इस समय यज्ञ कर रहे हैं, ये लोग बुद्धिमान् होते हुए भी यज्ञके छठे दिनके कर्ममें किंकर्तव्य विमूढ हो जायगें ॥३॥ क्योंकि उसमें विश्वेदेवता सम्बन्धी 'इदमित्था रौद्रम्' और 'ये यज्ञेन दक्षिणा' ये दो सूक्त हैं, उन्हें वे लोग नहीं जानते, इसलिये तुम उन दोनों सूक्तोंको वहाँ जाकर पढ़ देना। वे लोग स्वर्ग जाते हुए यज्ञसे अवशिष्ट धनको तुम्हें दे देंगे॥४॥ इसलिये तुम वहीं जाओ। यह सुनकर उसने उसी प्रकार किया। अङ्गिरस लोग भी यज्ञसे अवशिष्ट धनको उसे देकर स्वर्ग चले गये॥५॥ किन्तु जिस समय वह उस धनको स्वीकार करने लगा उसी समय उत्तर दिशासे एक कृष्णवर्ण पुरुषने आकर कहा—यह तो मेरा भाग है ॥६॥ मनुके पुत्र नभगने कहा—यह तो मुझे ऋषियोंने दिया है, इसलिये यह मेरा है। रुद्रने कहा—हम दोनोंके इस विवादमें अपने पिताजीसे ही जाकर तुम पूछ लो, यह सुनकर नभगने जाकर अपने पिताजीसे पूछा ॥ ७ ॥ नभगके पिताने कहा कि

कर्मणि ॥ ३ ॥तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ॥ तेस्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४ ॥ दास्यन्त्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान्यथा ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥ तं कश्चित्स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६ ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति ताह स्म मानवः ॥ स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान्पितरं तथा ॥ ७ ॥ यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ॥ चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥ नाभगस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ॥ इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्छिरसा त्वां प्रसादय ॥ ९ ॥ यत्ते पितावदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे ॥ ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥ गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितो रुद्रो भगवान्सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥ य एतत्संस्मरेत्प्रातः सायं च सुसमाहितः ॥ कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥ १२ ॥ नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ॥ नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ॥ न प्राभूद्यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अम्बरीषो महाभागः

यज्ञके स्थानमें अवशिष्ट समस्त द्रव्य रुद्रके लिये ही दक्षके यज्ञमें मुनियोंने विभक्त किया है, इसलिये वही सबके अधिकारी हैं ॥ ८ ॥ तब नभगने आकर प्रणाम करके कहा—हे भगवन्, यज्ञके अवशिष्ट अन्नादिके अधिकारी आपही हैं, यही हमारे पिताजीने कहा है। हे ब्रह्मन्, मैं आपको नमस्कार द्वारा प्रसन्न करता हूँ ॥ ९ ॥ तदनन्तर रुद्रने कहा—हे विप्र, चूंकि तुम्हारे पिताने धर्मयुक्त वचन कहे हैं तथा तुम भी सत्य बोल रहे हो, इसलि मैं मन्त्रवेत्ता तुम्हें ये ब्रह्मज्ञान देता हूँ, जो सनातन हे ॥ १० ॥ विप्रोंद्वारा दिये गये यज्ञसे अवशिष्ट मेरे द्रव्योंको ग्रहण करो, यों कहकर सत्यप्रिय रुद्र भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥ ११ ॥ जो प्रातःकाल तथा सायंकाल एकाग्रचित्त होकर इसका स्मरण करेंगे वे कवि मन्त्रज्ञ होते हुए अपनी आत्मगतिको प्राप्त होंगे ॥ १२ ॥ नाभागके पुत्र अम्बरीष हुए। अम्बरीष बड़ा ही भगवद्भक्त था पुण्यात्मा था जिसको ब्राह्मण दुर्वासाका कृत्यानलरूप शाप भी स्पर्श नहीं कर सका ॥ १३ ॥ राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे भगवन्, मुझे परम बुद्धिमान् उस राजर्षि अम्बरीषके चरित्र सुननेकी महती इच्छा है, जिसके ऊपर दुर्वार ब्राह्मणका दण्ड भी अपना प्रभाव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं जमा सका ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, महानुभाव अम्बरीष सात द्वीप सहित अखण्ड पृथिवीका राज्य तथा अटूट सम्पत्ति और अनन्त ऐश्वर्यको प्राप्त करके भी, ॥ १५ ॥ जो कि अन्य साधारण प्राणियोंको दुर्लभ है, सारी भोग सामग्री और समस्त राज्यको स्वप्नके तुल्य मानता था, क्योंकि वह जानता था कि यह संसार तथा इसके विषय सब क्षणभंगुर हैं, जिन विषयोंमें फँसकर प्राणीका अवश्य अधःपतन होता है ॥१६॥ भगवान् वासुदेवमें, भगवान्के भक्तोंमें तथा साधुओंमें वह बड़ा प्रेम रखता था, जिसके प्रभावसे इस सारे सांसारिक वैभवको अतितुच्छ समझता था ॥१७॥ राजर्षि अम्बरीष भगवान्के चरणारविन्दमें अपना मन, भगवान्के गुणानुवादमें अपनी वाणी, भगवान्के मन्दिरकी सफाईमें अपने दोनों हाथ और भगवान्की कथाके श्रवणमें अपने दोनों कान लगा देते थे ॥१८॥ भगवान्के मन्दिर तथा मूर्तिके दर्शनमें अपने दोनों नेत्र, भगवान्के सेवकोंसे मिलनेमें अपना शरीर, भग-

सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥ मैनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् ॥ विद्वाविभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ॥ १६ ॥ वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत्स्मृतम् ॥ स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ॥ करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥१७॥ मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् ॥ घ्राणं चा तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९ ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ॥ कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥ २० ॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठ विप्राभिहितः शशाह ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः ॥ ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२ ॥ यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ॥ तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥ २३ ॥ स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ॥ शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टिम् ॥ २४ ॥ समर्धयन्ति तान्कामाः

वान्के चरण कमलकी सुगन्धि तथा उसके ऊपर चढ़ी हुई तुलसीकी सुगन्धमें अपनी नासिका और भगवान्को निवेदित प्रसादमें अपनी रसना लगा देते थे ॥ १९ ॥ भगवान्से अधिष्ठित तीर्थयात्रामें दोनों पैर और भगवान्को नमस्कार करनेमें अपना मस्तक झुका देते थे। स्रक् चन्दनादि सेवारूप कामको भगवान्के दास्यभावमें ही समर्पित कर देते थे न कि विषयों के सेवनकी इच्छासे। यों जैसे भगवान् सेवकोंसे प्रेम हो वैसा ही आचरण राजा किया करते थे ॥ २० ॥ इसप्रकार अपने समस्त क्रिया कलापको अधियज्ञ तथा इन्द्रियातीत परमेश्वरमें सर्वात्मभावना करते हुए तथा भगवत् परायण ब्राह्मणोंसे ही शिक्षा लेते हुए पृथिवीका शासन करते थे ॥ २१ ॥ यज्ञके अधिष्ठाता परम प्रभुको अश्वमेध यज्ञों द्वारा यजन करते हुए राजाने लक्ष्मीका खूब व्यय किया, ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी तथा यज्ञके अङ्ग भी बड़े विशालरूपसे किए। महर्षि गौतम-वसिष्ठादिके द्वारा कुछ यज्ञ धन्वदेशमें तथा कुछ सरस्वती नदी के किनारे किए ॥ २२ ॥ जिसके यज्ञमें सदस्य जन भी वेष, भूषा तथा सुन्दर वस्त्रोंसे देवताओंके तुल्य ही दिखाई पड़ते थे ॥ २३ ॥ तथा भगवान्के गुणानुवाद गाते-सुनते हुए जिस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाकी प्रजाने देवप्रिय स्वर्गकी इच्छा नहीं की ॥२४॥ भगवान् मुकुन्दका हृदयमें साक्षात्कार करनेवाले भक्तजनोंको स्वरूप सुखसे बड़े-बड़े विषय सुख, सिद्ध लोगोंको भी दुर्लभ हैं, कभी भी हर्षित नहीं करते ॥ २५ ॥ इसप्रकार भक्तियोगसे युक्त तपोयुक्त अपने धर्मानुष्ठानके द्वारा श्रीहरिको प्रसन्न करते हुए धीरे-धीरे सम्पूर्ण ममताका उस राजाने त्याग कर दिया ॥२६॥ भगवान्की सेवामें अनुपयोगी गृहों, स्त्रियों, लड़कों, बन्धुओं तथा उत्तम हाथी-घोड़ों, रथों, पैदल सेनाओं, अक्षय्यरत्नके भूषणों, आयुध तथा अखण्डकोषोंके विषयमें राजा असत्यबुद्धि करने लगे ॥ २७ ॥ अम्बरीषके अत्यन्त भक्तिभावसे प्रसन्न होकर श्रीहरिने इनकी रक्षार्थ शत्रुसेनाको भय पैदा कर देनेवाला अपना चक्र दे दिया ॥ २८ ॥ अपने तुल्य शीलवाली रानी के साथ भगवान्की आराधना करनेकी इच्छा रखनेवाले राजाने पवित्रता पूर्वक एक वर्ष तक द्वादशी व्रत किया ॥ २९ ॥ कार्तिकके महीनेमें किसी समय इन्होंने तीन रात उपवास किया

स्वाराज्यपरिभाविताः ॥ दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥२५॥ स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ॥ स्वधर्मेण हरिं प्रीणन्सङ्गा न्सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥ २६ ॥ गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु ॥ अक्षय्यरत्नाभरणायुधादिष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ॥ एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥ २८ ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ॥ युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥ व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समु पोषितः ॥ स्नातः कदाचित्कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३० ॥ महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा ॥ अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् ॥ ब्राह्मणांश्च महाभागान्सिद्धार्थानवि भक्तितः ॥ ३२ ॥ गवां रुक्मविषाणीनां रुप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ॥ पयश्शीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ॥ ३३ ॥ प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ॥ भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥ लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ॥ तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ॥ ययाचेऽभ्यव-

अर्थात् दशमीको भोजन करके द्वादशी पर्यन्त तीन रात उपवास किया। व्रतके अन्तिम दिन यमुनामें स्नान करके मधुवनमें भगवान्की पूजा की ॥ ३० ॥ महा-अभिषेकविधिके द्वारा सम्पूर्ण सामग्री सम्पदाके द्वारा तथा नानावस्त्र और आभूषणोंके द्वारा एवं सुन्दर सुन्दर मालादिकोंके द्वारा भगवान्का अभिषेक करके पूजन किया ॥ ३१ ॥ भगवान्में एकाग्रचित्त होकर भगवान्का पूजन किया तथा पूजाकी अपेक्षा न रखनेवाले महाभाग्यवान ब्राह्मणोंकी भी भक्तिभावसे पूजा की ॥ ३२ ॥ सुवर्णसे जड़ित सींगोंवाली, चाँदी जटित खुरोंवालों सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंसे सज्जित नूतन अवस्थावाली, सुन्दर एवं खूब दूध देनेवाली साठ करोड़ गायें वत्सों तथा नाना प्रकारकी सामग्रियोंके साथ राजाने ॥३३॥ सत्पात्र ब्राह्मणोंको दीं और उन्होंने नाना प्रकारके पुष्टिवर्धक पदार्थोंसे युक्त भोजन ब्राह्मणोंको कराया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर पूर्णमनोरथ ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर ज्योंही राजाने पारणा करनेकी तैयारी की त्योंही उनके यहाँ महर्षि भगवान् दुर्वासा अतिथिरूपमें साक्षात् उपस्थित हो गये ॥ ३५ ॥ राजाने उठकर उन्हें अर्घ्य देकर आसन दिया और उनका पूजन करके उनके पैरपर माथा रखते हुए उनसे भोजनके लिये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ मुनि दुर्वासा राजाकी प्रार्थना स्वीकारकर नित्यकर्म करनेके लिये यमुनाजी गये और वहाँ स्नान करके जलमें ही ब्रह्मका ध्यान करने लगे ॥ ३७ ॥ यहाँपर जब एक मुहूर्त द्वादशी अवशेष रह गई तब पारणा करनेके लिए राजाने इस धर्म संकटमें ब्राह्मणसे परामर्श किया ॥ ३८ ॥ यदि निमंत्रित ब्राह्मणको छोड़कर भोजन करें तो भी अपराध तथा यदि द्वादशीमें पारण न की जाय तो भी दोष है, इसलिये जैसा करनेसे मेरा कल्याण हो तथा मुझे कोई अधम न हो वैसा ही आपलोग उपाय बतलाईये ॥ ३९ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंसे परामर्शकर निश्चय किया कि केवल जलसे ही पारण कर लूँ क्योंकि इसका भोजन करना और न करनेके तुल्य ही विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार विचारकर राजाने जलसे आचमनकर लिया तथा मनसे अच्युत भगवान्का स्मरण करते हुए महर्षि दुर्वासाकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ४१ ॥ दुर्वासा मुनि भी यमुनाजीसे मध्याह्नकालका कृत्यकर आ पहुँचे। राजाने

हाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥ प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ॥ निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिन्दीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ॥ चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसङ्कटे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ॥ यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतधारणम् ॥ प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥ इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन्मनसाच्युतम् ॥ प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ॥ राज्ञाभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥ मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ॥ धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥ यो मामतिथिमायातिथ्येन निमन्त्र्य च ॥ अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ ४५ ॥ एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ॥ तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ॥ वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ॥ ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ॥ दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥

उन्हें प्रणाम किया, किन्तु राजाकी चेष्टाको देखकर मुनिने सब जान लिया ॥ ४२ ॥ वह क्रोधसे काँपने लगे, भृकुटी टेढ़ी होनेसे उनका मुखमण्डल कुटिल हो गया, क्योंकि वे अत्यन्त भूखे थे। अपने सामने हाथ जोड़े हुए राजाके प्रति कहने लगे ॥४३॥ अहो, इस निर्दयीके धर्म व्यतिक्रमको तो देखो, यह लक्ष्मीके द्वारा अत्यन्त मतवाला हो गया है, अपनेको बड़ा विष्णुभक्त लगता है, वस्तुतः तो यह अहंकारी विष्णुका तनिक भी भक्त नहीं है ॥ ४४ ॥ जो आए हुए मुझ अतिथिको अतिथिभावसे निमन्त्रण करके अतिथिको भोजन न देकर स्वयं खा बैठा, ठहर, मैं अभी इसका फल दिखाता हूँ ॥ ४५ ॥ इतना कह क्रोधसे लाल होकर उस ऋषिने अपनी एक जटा उखाड़कर उससे कालग्निके सदृश एक राक्षसीका निर्माण किया ॥ हाथमें तलवार लेकर अपने पैरोंसे पृथिवीको कपाते हुए जलती हुई सन्मुख आ रही उस राक्षसीको देखकर राजा एक डेग भी और आगे न चल सका ॥ ४७ ॥ भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विष्णुके द्वारा पहलेसे ही सेवक अम्बरीषकी रक्षामें नियुक्त किये गये सुदर्शन चक्रने अतिक्रोधित सर्पको अग्निकी नाईं, भस्म कर दिया ॥ ४८ ॥ उस राक्षसीको जलाकर अपने सन्मुख आते हुए चक्रको देखकर तथा अपने प्रयासको निष्फल समझकर दुर्वासा मुनि भयभीत होकर अपने प्राण बचानेकी इच्छासे वहाँसे दिशाओंमें भागे ॥ ४९ ॥ ऊपरको उठी हुई है ज्वाला जिसकी ऐसी दावाग्नि जिसप्रकार सर्पके पीछे दौड़ती है उसीप्रकार अपने पीछे पीछे दौड़े आ रहे भगवान्के चक्रको देखकर मुनि दुर्वासाने सुमेरुपर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छासे उसी दिशामें गमन किया ॥ ५० ॥ दिशाओंमें, आकाशमें, पृथिवीमें, कन्दराओंमें, समुद्रोंमें, तथा अन्यान्य लोकों एवं स्वर्गमें जहाँ जहाँ वे जाते हैं वहाँ-वहाँ दुःसह तेजस्वी सुदर्शनको देखते हैं ॥ ५१ ॥ जब उन्हें कहीं भी शरण न प्राप्त हुई, तब शरण खोजते हुए वे ब्रह्मलोकमें प्रहुंचे और कहने लगे—हे आत्मयोने, आप मेरी इस हरि चक्रसे रक्षा कीजिये ॥ ५२ ॥

तमन्वधावद्भगवद्रथाङ्गं दावाग्निरुद्धतशिखो यथाहिम् ॥ तथानुषक्तं मुनिरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान्समुद्राँल्लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ॥ यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥ अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ॥ देवं विरिञ्चं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ॥ भ्रूभङ्गमात्रेण हि सन्दिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरो भविष्यति ॥ ५३ ॥ अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ॥ सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोगहितं वहामः ॥ ५४ ॥ प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः ॥ दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ॥ भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥ अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ॥ कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥ मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः परदर्शिनाः ॥ विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मययावृताः ॥ ५८ ॥ तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ॥ तमेव शरणं याहि हरिस्ते

ब्रह्माजीने कहा–हे पुत्र, द्विपरार्ध संज्ञक कालपर्यन्त होनेवाली भगवान्की क्रीडाके अन्तमें इस विश्वको संहार करनेकी इच्छावाले कालस्वरूप जिन भगवान्की भ्रूभङ्गमात्रसे ही विश्व सहित यह मेरा स्थान तिरोहित हो जायगा ॥ ५३ ॥ मैं, महादेव, दक्ष और भृगु हैं प्रधान जिन लोगोंमें ऐसे जो प्रजापति, देवपति, भूतपति, इत्यादि जिनके नियमका विश्वके कल्याणके लिये सिरसे स्वीकार करते हुए पालन करते हैं ॥ ५४ ॥ उनके भक्तसे द्रोह करनेवालेको हमलोग कैसे शरण दे सकते हैं ? इस प्रकार जब ब्रह्माने जबाब दे दिया तब चक्रसे पीड़ित दुर्वासा कैलासवासी शङ्करकी शरणमें गये ॥ ५५ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे मुने, जो भगवान् अनन्त जीवोंकी रचना तथा संहार करते हैं, जिस ईश्वरमें ही अनन्त ब्रह्माण्ड कल्पित हैं और जिन ब्रह्माण्डोंमें लोकेशाभिमानी ब्रह्मादि हम अनेक चक्कर लगाते हैं, उन भगवान्के भक्तसे द्रोह करनेवालेकी रक्षामें हम कैसे समर्थ हो सकते हैं ॥ ५६ ॥ मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिल अपान्तरतम मुनि, देवल, धर्म और आसुरि मुनि ॥ ५७ ॥ मरीचि प्रधान अन्य त्रिकाल मुनि तथा हम सब सिद्धेश्वर लोग भी जिनकी मायासे आच्छन्न होकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिनकी मायाको नहीं जान पाते ॥ ५८ ॥ उन्हीं भगवान् विश्वेश्वरका यह दुःसह अस्त्र है, हमलोग भी इसका ताप नहीं सह सकते, इसलिये तुम उन्हींकी शरण जाओ वे श्रीहरि ही तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥५९॥ तदनन्तर सब ओरसे निराश होकर दुर्वासा मुनि भगवान्के लोकको गये, जिसका नाम वैकुण्ठ है, जहाँपर भगवान् लक्ष्मीके सहित निवास करते हैं ॥६०॥ भगवान्के अस्त्रसे जलते तथा काँपते हुए वह दुर्वासा मुनि जाकर भगवानके चरणपर गिर पड़े और कहने लगे-हे अनन्त, हे अच्युत, हे सज्जनप्रिय, हे प्रभो, हे विश्वभावन, इस अपराधीकी रक्षा कीजिये ॥ ६१ ॥ हे भगवन्, आपके प्रभावको न जानते हुए मैंने आपके भक्तको दुःख दिया है, मैंने आपका बड़ा भारी अपराध किया है, इसलिये इस अपराधको क्षमा कीजिये, हे भगवन्, मेरा निस्तार कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। जिसके नामके उच्चारणमात्रसे नारकीपुरुष भी मुक्त हो जाता है ऐसे आपके लिए कोई अगम्य नहीं है, आप सर्वसमर्थ

शं विधास्यति ॥ ५६ ॥ ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ॥ वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ सन्दह्यमानोऽशि-
तशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ॥ आहाच्युतानन्त सदीप्सितप्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ ६१ ॥ अजानता ते परमा-
नुभावं कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ॥ विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं भक्तपरा-
धीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ॥ श्रियं चात्यन्तिकीं
ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा ॥ ६४ ॥ ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमं परम् ॥ हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयि निर्ब-
द्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ॥ वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥६६॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ नेच्छन्ति
सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥ ६७ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ॥ मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८ ॥
उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ॥ अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥ साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ ६९ ॥

हैं ॥ ६२ ॥ श्री भगवान्ने कहा—हे विप्र, मैं तो अस्व तन्त्रकी तरह भक्तके पराधीन हूँ मेरा हृदय साधुओंके अधीन रहता है तथा मेरे भक्त मुझे अतिप्रिय हैं। ६३ ॥ मैं साधु और भक्तोंको छोड़कर कुछ नहीं चाहता हूँ अर्थात् लक्ष्मी भी मुझे उतनी प्रिय नहीं है, जितने मेरे भक्त हैं, जो रात-दिन मेरा ही भजन किया करते हैं ॥ ६४ ॥ जो भक्त श्री, गृह मित्र, धन एवं अपने प्राण तकको भी कुछ नहीं समझते हुए उनका त्यागकर मेरी शरणमें प्राप्त होते हैं। मैं उनको किस प्रकार छोड़ सकता हूँ ॥ ६५ ॥ जिसका हृदय रात-दिन मुझमें बँध गया है, वे समदर्शी साधुजन अपनी विशुद्ध भक्तिद्वारा मुझे उसप्रकार वशीभूत कर लेते हैं, जिसप्रकार पतिव्रता नारी अपने पतिको वशमें कर लेती हैं ॥ ६६ ॥ मेरी सेवामें अनुरक्त जन सलोक्य, सायुज्य, सामीप्य और कैवल्य—इस चार प्रकारकी मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते, पुनः स्वर्गादि लोककी तो कहना ही क्या है ॥ ६७ ॥ साधु लोग मेरे हृदय हैं तथा मैं भी साधुओंका हृदय हूँ। जिस प्रकार वे लोग मुझसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते, उसी प्रकार मैं भी उनसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता ॥ ६८ ॥ तो भी हे विप्र, मैं इसका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपाय तुम्हे बतलाता हूँ, उसे सुनो—जहाँसे जिसके द्वारा तुम्हें यह आपत्ति प्राप्त हुई है, उसीकी शरणमें तुम जाओ, क्योंकि साधुओंके ऊपर यदि कोई अपना तेज फेंकताहै, तो उलटा उसीका अकल्याण होता है ॥६९॥ तप और विद्या ये दोनों ही ब्राह्मणोंके कल्याणके उपाय हैं, किन्तु वे ही दुष्ट ब्राह्मणके अकल्याणके साधन हो जाते हैं ॥ ७० ॥ इसलिये हे ब्रह्मन्, तुम शीघ्र नाभागके पुत्र अम्बरीषकी शरणमें जाओ और क्षमा माँगो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा तथा तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी ॥ ७१ ॥

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे॥ ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥ ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम्॥ क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भ० म० पु० न० अम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

चौथे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ब्रह्मचर्याश्रमसे लौट आनेपर नभगने अपने भाइयोंसे जब अपना हिस्सा माँगा तब उन लोगोंने कहा—तुम्हारा हिस्सा तो पिताजी को दे दिया है। नभगने पिताजीसे पूछा तो उन्होंने जवाब दिया—बेटा, तुम्हारे भाइयोंने तुम्हें ठग दिया है। आओ, तुम्हें एक युक्ति बतलाता हूँ, उससे तुमको यथेष्ट धन मिल जायगा। देखो, अङ्गिरसके लड़के याग कर रहे हैं, इन्हें छठें दिनका कृत्य मालूम नहीं है, तुम वहाँ चले जाओ। मैं तुम्हें दो मन्त्र बतला देता हूँ, जाकर पढ़ देना। ये बहुत-से धन छोड़कर स्वर्ग चले जायँगे। तुम उन्हें उठा लाना। पिताके आज्ञानुसार नभग उस यागमें चले गये। अङ्गिरसोंके स्वर्ग चले जानेके बाद जब नभग धन उठाने लगे तब रुद्रने आकर रोक दिया। उन्होंने कहा—नभग, पहले अपने पितासे जाकर पूछ लो कि यह धन किसका होता है। नभगने ऐसा ही किया। तदन्तर भगवान् रुद्रकी स्तुतिकर नभग उनसे सब धन पा गया। नभगका लड़का अम्बरीष भगवान्का बहुत बड़ा भक्त हुआ। एक दिन द्वादशीको ज्योंही वह पारण करने बैठा त्योंही दुर्वासा मुनि वहाँ आ धमके। अम्बरीषने विनय पूर्वक उन्हें भोजनके लिए निमन्त्रण दिया। उनका निमन्त्रण स्वीकार कर दुर्वासा स्नान करने चले गये इधर द्वादशीकी पारणका समय बीत रहा है, वह जानकर अम्बरीषने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे सिद्धजलसे पारणकर अपने धर्मकी रक्षा की। इधर दुर्वासा आतेही अम्बरीषका चेहरा देखकर क्रुद्ध हो गये। और तुरन्त एक भीषण कृत्याको उत्पन्नकर दिया। भगवद्भक्त अम्बरीषकी ओर जा रही उस कृत्याको देख भगवान्के सुदर्शन चक्रने उसे भस्मकर डाला तथा तुरन्त दुर्वासाकी ओर झपट पड़ा। भागते-भागते दुर्वासा को जब कहीं शरण न मिली तब भगवान् शङ्करकी आज्ञासे भगवान् विष्णुके पास पहुँचे। भगवान्ने कहा—पुत्र, मैं तुम्हें नहीं बचा सकता चले जाओ मेरे उसी भक्तके पास जिसके ऊपर तुमने क्रुद्ध होकर शाप दिया है। उसीसे क्षमा माँगा, वही तुम्हें बचा सकता है, और किसी दूसरेकी सामर्थ्य नहीं है कि तुम्हें बचाले। चौथा अध्याय समाप्त

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥ अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्प-

❀ सुदर्शन चक्रसे दुर्वासाकी रक्षा ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा- राजन्, इस प्रकार भगवान्के द्वारा आज्ञा पाकर चक्रसे पीडित मुनि दुर्वासा अति दुःखित होकर अम्बरीषकी शरणमें आकर उसके चरणोंपर गिर पड़े ॥ १ ॥ इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकार दुर्वासाको चरण छूकर प्रार्थनामें उद्यत देखकर पैर छूनेसे लज्जित होते हुए राजा अम्बरीषको दया आ जानेसे अत्यन्त दुःखित होकर भगवान्‌के चक्रकी प्रार्थना करने लगे ॥ २ ॥ अम्बरीषने कहा—हे सुदर्शनचक्र, तुम अग्नि हो, सूर्य तुम हो, तथा नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा तुम्हीं हो, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तुम हो, तथा पञ्च तन्मात्राएँ एवं इन्द्रियाँ तुम हो ॥ ३ ॥ हे सुदर्शन, हे सहस्रधार, हे अच्युतप्रिय, समस्त अस्त्रोंका नाश करनेवाले तुम्हें नमस्कार है। हे पृथिवीके ईश्वर, इस ब्राह्मणका कल्याण करो ॥ ४ ॥ हे सुदर्शन, तुम्हीं शाश्वत् धर्म तथा सत्ययुक्त प्रिय वाणी हो, तुम्हीं यज्ञ हो, तुम्हीं सकल यज्ञोंके भोक्ता हो, लोकपाल तुम्हीं हो, तथा सबकी तुम आत्मा हो और भगवान्‌के तुम्हीं परम तेज हो ॥ ५ ॥ हे सुन्दरी नाभिवाले चक्र, सकल धर्मको मर्यादा पालन करनेवाले तथा अधम आचरण करनेवाले असुरोंको भस्म करनेके लिये साक्षात् अग्निस्वरूप तुम्हें नमस्कार है, तुम

शर्विलज्जितः ॥ अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ॥ त्वमा-
पस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३ ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ॥ सर्वास्त्रघातिन्विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥
त्वं धर्नस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ॥ त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५ ॥ नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशो-
लासुरधूमकेतवे ॥ त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ॥
दुरत्ययस्ते महिमा गिरांपते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ २७ ॥ यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ॥ बाहूदरोर्वङ्घ्रि-
शिरोधराणि वृश्चन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ॥ विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥ यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥
यदि नो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ॥ सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णु-

त्रैलोक्यकी रक्षा करनेवाले हो, तुम्हारा तेज परम शुद्ध है, मनकी तरह तुम्हारा वेग है तथा तुम्हारे चरित्र बड़े अद्भुत हैं मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन, धर्ममय तुम्हारे तेजसे महात्माओंके हृदयका अन्धकार दूर हो जाता है तथा उनके हृदयमें प्रकाश हो जाता है। हे वाणीकेपति, संसारमें जो कुछ सत्-असत् है तथा उत्कृष्ट-निकृष्ट है वह सब तुम्हारा ही रूप है अर्थात् तुम्हींसे उत्पन्न हुआ है ॥ ७ ॥ हे अजित, युद्धमें जिस समय तुम्हें भगवान्‌की आज्ञा मिल जाती है, उस समय तुम दैत्योंकी सेनामें प्रवेश करके उनके हाथ, उदर, जाँघ, पैर, शिर अधर आदि अङ्गोंको विदीर्ण करते हुए शोभाको प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥ हे जगद्रक्षक, तुम सब कुछ सहन करनेवाले हो तुम्हें भगवान्‌ने दुष्टोंका नाश करनेके लिये ही नियुक्त किया है, इसलिये मेरे कुल देवता इस ब्राह्मणका कल्याण करो, इससे मेरे ऊपर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह होगा ॥ ९ ॥ यदि मैंने कुछ ब्राह्मणोंको दान दिया हो, देवताओंका यजन किया हो, अपने धर्मका अनुष्ठान किया हो, तथा मेरा कुल वस्तुतः अपना इष्ट देव ब्राह्मणोंको समझता हो तो यह ब्राह्मण शीघ्र ही दुःखसे छूट जाय ॥ १० ॥ यदि समस्त गुणोंके भण्डार श्रीहरि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हमारे ऊपर किञ्चिन्मात्र भी प्रसन्न हों जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी आत्मा हैं, तो इन महर्षिका दुःख दूर हो ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार जब राजाने भगवान्के सुदर्शन चक्रकी स्तुति की, तब राजाकी प्रार्थनासे विप्रको सन्तप्त करनेवाला वह चक्र बिलकुल शान्त हो गया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर चक्रके तापसे मुक्त होकर मुनि दुर्वासाने राजाकी बड़ी प्रशंसा की तथा बहुत आशीर्वाद दिये ॥ १३ ॥ मुनि दुर्वासाने कहा—अहो, अनन्त जो भगवान् हैं, उनके भक्तोंका महत्त्व आज मैंने भली-भाँति देख लिया, क्योंकि हे राजन्, जो आप इस अपराधीका भी कल्याण चाहते हैं ॥ १४ ॥ साधुओंको कौन-सा कार्य दुष्कर है तथा महात्माओंको कौन-सी वस्तु दुस्त्याज्य है, जिन्होंने भक्तप्रिय भगवान्को अपने वशीभूत कर लिया ॥ १५ ॥ जिन भगवान्के नाम सुननेसे प्राणी पवित्र हो जाता है, उन तीर्थपाद भगवान्के भक्तोंको भला कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है ॥ १६ ॥ हे राजन्, अत्यन्त करुणा

चक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत्सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ॥ प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ॥ कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥ १४ ॥ दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ॥ यैः सङ्गृहीतो भगवान्सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ॥ तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६ ॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयातिकरुणात्मना ॥ मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७ ॥ राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ॥ चरणावुपसङ्गृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥ सोऽशित्वादृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ॥ तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ॥ दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २० ॥ कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वः स्त्रियो मुहुः ॥ कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सङ्कीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ॥ ययौ विहायसामन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो

सागर अपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है, जो कि हमारे अपराधको पीछे करके अर्थात् उसके ऊपर ध्यान न देकर प्राणोंकी रक्षा की है ॥१७॥ दुर्वासाके लौटनेकी प्रतीक्षा करते हुए राजाने अभी तक भोजन नहीं किया था इसलिये इस समय दुर्वासाके चरणोंको धोकर उन्हें प्रसन्न करते हुए अच्छी तरह भोजन कराया ॥१८॥ तदनन्तर आदर पूर्वक अतिथि योग्य लाए गये पदार्थोंकी इच्छाभर खाकर अच्छी तरह तृप्त होनेके बाद राजासे मुनिने आदर पूर्वक कहा—हे राजन्, आप भी अच्छी तरह भोजनकर लीजिये ॥ १९ ॥ हे राजन्, परम भगवद्भक्त आपके दर्शन, स्पर्शन, भाषण और आत्माको तुष्ट करनेवाले अतिथि सत्कारसे मैं आपके ऊपर परम प्रसन्न हूँ तथा मेरा आपके ऊपर बड़ा अनुग्रह है ॥ २० ॥ हे राजन्, यह आपके अति उज्ज्वल चरित्रका स्वर्गमें स्त्रियाँ गान करेंगी तथा यह पृथिवी आपकी परम पवित्र कीर्तिका कीर्तन करेगी ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् इसप्रकार अम्बरीषकी प्रशंसा करके तथा उनसे पूछकर परम सन्तुष्ट होते हुए दुर्वासा मुनि आकाश मार्गसे शुष्क तर्कवादियोंसे शून्य ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २२ ॥ हे राजन्, जबसे दुर्वासा मुनि गये तबसे एक वर्ष

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बीत गया। लेकिन जब तक वह लौटकर नहीं आये तब तक उनके दर्शनकी लालसा से राजा अम्बरीष केवल जल पीकर ही रहते थे ॥२३॥ इस प्रकार दुर्वासाके चले जानेपर महाराज अम्बरीषने दुर्वासासे अवशिष्ट पवित्र अन्नका भोजन किया तथा मुनिके कष्ट, मोक्ष एवं अपने धैर्यका स्मरणकर इन सबको भगवान् ही प्रभाव समझा ॥ २४ ॥ इस प्रकारके अनेक सद्गुणोंसे सम्पन्न उस राजाने अपने सम्पूर्ण क्रियाकलापोंको भगवान् परब्रह्म वासुदेवमें अर्पित करते हुए इस प्रकारकी भक्ति प्राप्त की, जिसके द्वारा वह ब्रह्मलोकपर्यन्तके भोगोंको नरक तुल्य समझने लगा ॥ २५ ॥ इसके बाद राजा अम्बरीषने अपने समान शीलवान् पुत्रके ऊपर राज्यभार छोड़कर तथा तीनों गुणोंसे मुक्त होकर भगवान्में एकाग्रचित्त करके वनमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ इस पवित्र राजा अम्बरीषके आख्यानको सुन रहे तथा कह रहे मनुष्यकी भगवान्के विषयमें भक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥ २७ ॥

गतः ॥ मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ॥ ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥ २४ ॥ एवंविधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिञ्चान्निरयांश्चकार ॥ २५ ॥ अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः ॥ वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद् ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अम्बरीषचरितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पाँचवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, जब दुर्वासाको कहीं शरण न मिली, तब भगवान्, विष्णुकी आज्ञासे राजा अम्बरीषके चरणोंपर जाकर गिर पड़े। इनकी ऐसी दशा देख अम्बरीषको दया तथा लज्जा भी आ गई। इनकी रक्षाके लिए सुदर्शन चक्रकी राजा अम्बरीषने खूब स्तुति की। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सुदर्शनचक्र शान्त हो गया। तदनन्तर दुर्वासा मुनि राजाकी प्रशंसा करते हुए भोजन करनेके बाद ब्रह्मलोकको चले गये। अम्बरीषने यही समझा कि यह सब भगवान्का ही प्रभाव है। अनन्तर अपने पुत्रोंको राज्यभार सौंपकर अम्बरीष वनमें चले गये। पाँचवाँ अध्यायय समाप्त॥

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ विरूपः केतुमाञ्छम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः ॥ विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्त-

❀ अम्बरीषके वंशका तथा इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुए शशादसे लेकर मान्धाता तकके राजाओंका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसके उपरान्त अम्बरीषके विरूप, केतुमान और शम्भु ये तीन पुत्र हुए तथा विरूपसे पृषदश्व और पृषदश्वसे रथीतर हुए ॥ १ ॥ रथीतरके जब कोई सन्तान नहीं हुआ, तब अङ्गिरामुनिसे प्रार्थना करने पर उन्होंने रथीतरकी भार्यामें अपने वीर्यसे ब्रह्मतेजसे सम्पन्न बहुतसे पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ ये पुत्र रथीतरकी भार्यामें उत्पन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होनेसे रथीतर गोत्रवाले तथा अङ्गिराके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण अङ्गिरागोत्रसे प्रसिद्ध हुए । रथीतर गोत्रवालोंमें प्रधान हुए, क्योंकि इनमें क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्व दोनों था ॥३॥ (अब मनु पुत्र इक्ष्वाकुके वंशका वर्णन करते हैं) एक बार छींकते हुए मनुकी नाकसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम इक्ष्वाकु पड़ा । इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए, उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डक ये ज्येष्ठ थे ॥ ४ ॥ हे राजन्, उन लड़कोंमेंसे पचीस लड़के आर्यावर्तके पूर्वभागमें, तीन बड़े लड़के पश्चिम भागमें और बाकी लड़के अन्यान्य भागोंमें राजा हुए ॥ ५ ॥ एक बार राजा इक्ष्वाकुके घर अष्टका श्राद्ध था । इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षिको बुलाकर कहा—हे पुत्र, वनमें जाकर पिण्ड देनेके लिये पवित्र मांस कहींसे ले आओ, विलम्ब न होने पावे ॥ ६ ॥ 'ठीक है, जा रहा हूँ' यह कहकर विकुक्षिने वन में जाकर श्राद्धके योग्य मृगोंको मारकर परिश्रम करनेके कारण खूब भूखके मारे श्राद्धका स्मरण न करते हुए खरगोशका खा-

वेऽर्थितः ॥ अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥ एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ॥ रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥ क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ॥ तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ॥ पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥ स एकदाष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ॥ मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥ ६ ॥ तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणाम् ॥ श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७ ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ॥ चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाभिहितं नृपः ॥ देशान्निसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥ स तु विप्रेण संवादे जापकेन समाचरन् ॥ त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ॥ शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥ पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ॥ ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥ कृतान्त आसीत्समरो देवानां सह दानवैः ॥ पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥

लिया ॥ ७ ॥ तथा और जो थे उन सबको घर आकर अपने पिताको समर्पितकर दिया । जब श्राद्धका समय हुआ तब इक्ष्वाकुने गुरुजीसे उसके ऊपर मन्त्र पढ़कर जल छोड़नेके लिये कहा । वह सुनकर सर्वज्ञ वसिष्ठजीने कहा कि यह तो जूठा है, इसलिये श्राद्धकर्मके योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ इक्ष्वाकुने गुरुजीसे पूछा तो मालूम हुआकि पुत्रने ही इसे जूठा किया है । इस अपराधसे मर्यादाका उलंघन करनेवाले अपने पुत्रको इक्ष्वाकुने क्रोधके मारे देशसे निकाल दिया ॥ ९ ॥ इसके बाद इक्ष्वाकु भी राज्यसे विरक्त होकर गुरुवसिष्ठसे योगचर्या सीखकर उसीका अभ्यास करते हुए कालान्तरमें शरीर छोड़कर योगके द्वारा परमगति मोक्षको प्राप्त हो गये ॥१०॥ पिताके मोक्ष हो जानेपर विकुक्षिने पुनः राज्यमें आकर इस पृथिवीका शासन करते हुए यज्ञोंके द्वारा भगवान्का यजन किया । लोकमें इनका नाम 'शशाद' पड़ा ॥११॥ शशादका पुत्र पुरञ्जय हुआ, इन्हींका नाम इन्द्रवाह तथा ककुत्स्थ भी था । जिन-जिन कर्मोंसे इनका जो जो नाम पड़ा वह सुनिये ॥१२॥ एक बार दैत्योंके साथ देवताओंका महान् भयंकर युद्ध हुआ उस युद्धमें देवता लोग हार गये तब उन्होंने जाकर विरञ्चि इस सम्पूर्ण विश्वको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नष्टकर देनेकी सामर्थ्यवाले वीर पुरञ्जयसे सहायता मांगी ॥ १३ ॥ पुरञ्जयने कहा—यदि इन्द्र हमारा वाहन बनें, तो हम सहायता करेंगे इसके उपरान्त देव देव विश्वात्मा भगवान विष्णुके कहनेसे इन्द्रने वाहन बनना मंजूर किया और वे एक महान् बैल बन गये ॥ १४ ॥ इसके बाद पुरञ्जय तैयार हो गये। अपने हाथमें दिव्य धनुष तथा तीखे बाण लेकर देवताओं द्वारा प्रशंसित होते हुए वृषभरूपधारी इन्द्रके कन्धेके कुब्बड़पर बैठ गये ॥ १५ ॥ पुरञ्जयको भगवान् विष्णुने अपना तेज दे दिया। परमपुरुष विष्णुकेतेजसे पुष्ट होकक पुरञ्जयने देवताओंकी सेनाके साथ पश्चिम दिशामें जाकर राक्षसोंकी नगरी घेर ली ॥१६॥ उन दैत्योंके साथ इनका घनघोर युद्ध हुआ उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। जो-जो दैत्य युद्धमें गये उन सबको भालाके द्वारा पुरञ्जयने यमलोकको भेज दिया ॥ १७ ॥ महाप्रलयकी अग्निके समान भयङ्कर उसकी बाणवर्षाका सामना त्यागकर आहत होकर दैत्यलोग अपने-अपने घरकी

वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभो ॥ वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४ ॥ स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखान् सितान् ॥ स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥ तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ॥ प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥ तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे ॥ १७ ॥ तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्वणम् ॥ विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८ ॥ जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ॥ प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९ ॥ पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ॥ विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २० ॥ शाबस्तस्तत्सुतो येन शावस्ती निर्ममे पुरी ॥ बृहदश्वस्तु शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥२१॥ यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली ॥ सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद् वृतः ॥२२॥ धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ॥ धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २२ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ॥ दृढाश्वपुत्रो पर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥ बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ॥ युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः

ओर भागने लगे ॥१८॥ इसप्रकार राजर्षि पुरञ्जयने अपने यथार्थ नामके अनुसार धन सम्पत्ति सहित दैत्योंके पुरको जीतकर समस्त धन लाकर इन्द्रको दे दिया, इसलिये इनका पुरञ्जय नाम पड़ा और इन्द्रको वाहन बनानेसे इन्द्रवाह तथा इन्द्रकी ककुद्पर बैठनेसे ककुत्स्थ नाम पड़ा ॥ १९ ॥ इसके बाद पुरञ्जयका पुत्र अनेना हुआ, अनेनाका पुत्र पृथु हुआ, पृथुसे विश्वरन्धि और उनसे चन्द्र तथा युवनाश्व हुए ॥ २० ॥ युवनाश्वका पुत्र शावस्त हुआ जिनसे शावस्ती नगरी बसाई तथा शावस्तका पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलायश्व हुआ ॥ २१ ॥ धुन्धुनाम दैत्योंको इक्कीस हजार पुत्रों सहित पराक्रमशाली कुवलयाश्वने मित्र उतङ्ककी प्रशन्नताके लिये मार डाला ॥२२॥ इसलिये धुन्धुदैत्यके मारनेसे इनका नाम धुन्धुमार पड़ा किन्तु धुन्धुके मुखसे निकले अग्निसे कुवलयाश्वके सब पुत्र भस्म हो गए, केवल तीन पुत्र अवशिष्ट रह गये ॥ २३ ॥ (जो पुत्र अवशेष रहे, उन्हें बतलाते हैं–) दृढ़ाश्व, कपिलाश्व, और भद्राश्व हे राजन्, दृढ़ाश्वका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ ॥ २४ ॥ निकुम्भका पुत्र बर्हणाश्व, बर्हणाश्वका पुत्र कृशाश्व, कृशाश्वका पुत्र सेनजित् और सेनजित्का पुत्र युवनाश्व

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

हुआ। युवनाश्वके जब कोई पुत्र नहीं हुआ तब वह राज्यको छोड़कर बनको चला गया ॥२५॥ युवनाश्वकी सौ स्त्रियाँ थीं, किन्तु किसीसे जब कोई सन्तान नहीं हुआ तब युवनाश्व अपनी सौ स्त्रियोंके सहित वनको चले गये। वहाँ पर कृपालु उन मुनियोंने इनको सन्तान न होनेसे उदासीन देखकर पुत्रोत्पत्तिके लिये इन्द्रदेवता सम्बन्धी बड़ी सावधानीके साथ यज्ञ कराया ॥ २६ ॥ एक दिन रातमें राजाको बड़ी प्यास लगी, तब उठकर राजाने यज्ञमण्डपमें जाकर समस्त ब्राह्मणोंको सोये हुए देखकर जिस घड़ेमें मुनियों द्वारा अभिमन्त्रित करके जो कि पत्नी के पीनेके लिये जल रखा था, उसीको पी लिया ॥ २७ ॥ हे राजन्, प्रातःकाल उठकर मुनियोंने उस घड़ेको खाली देखकर सबसे पूछा—यह किसकी करतूत है, किस ने यह जल पी लिया है? यह जल पुंसवन कर्मके लिये रखा गया था ॥ २८ ॥ ईश्वर की प्रेरणासे राजाने ही उस जलको पी लिया है यह समझकर मुनियोंने ईश्वरको नमस्कार करके कहा—अहो, दैव बड़ा बलवान् है ॥ २९ ॥ कुछ काल बीत जानेपर राजा युवनाश्वकी दक्षिण कुक्षि फाड़कर चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ उस समय दुःखित होकर ब्राह्मणोंने कहा—यह बच्चा किसका

॥२५॥ भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ॥ इष्टिं स्म वर्तयाञ्चक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥२६॥ राजा सद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ॥
दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मन्त्रजलं स्वयम्* ॥ २७ ॥ उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ॥ पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम्
॥ २८ ॥ राज्ञा पीतं विदित्वाऽथ ईश्वरप्रहितेन ते ॥ ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९ ॥ ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ॥
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥३०॥ कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ॥ मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥३१॥
न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ॥ युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य वै ॥
यस्मात्त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥३३॥ यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ॥ सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥३४॥

दुग्धपान करेगा, बहुत रो रहा है, यह सुनकर उस यज्ञमें आवाहित इन्द्रने कहा—मेरा दुग्धपान करेगा, यह कहकर हे पुत्र मत रोओ, ऐसा कह उस बच्चेको चुप कराते हुए इन्द्रने अपनी तर्जनी अगुली उसके मुँहमें डाल दी ॥ ३१ ॥ कुक्षिसे पुत्र होनेपर भी ब्राह्मण तथा देवताओंके प्रसादसे उस कुमारके पिता युवनाश्व मरे नहीं, किन्तु वे लज्जाके मारे लौटकर घर नहीं आए, वहींपर तपके द्वारा सिद्धिको प्राप्त हो गये ॥ ३२ ॥ हे राजन्, युवनाश्वके पुत्रका नाम मान्धाता हुआ, इनसे रावणादि बड़े बड़े डाकू लोग भय खाते थे, इसलिये इन्द्रने इनका दूसरा नाम त्रसद्दस्यु रक्खा ॥ ३३ ॥ युवनाश्वके पुत्र चक्रवर्ती राजा मान्धाताने सात द्वीपवाली पृथिवीको अपने अखण्ड तेजके द्वारा अकेले ही शासन किया ॥ ३४ ॥ तथा आत्मज्ञानी उस

*दृष्टान्त—एक समय राजा युवनाश्व सन्तान न होनेसे अत्यन्त दुःखी हो सपत्नीक वनमें चले गये। वहाँके ऋषियोंने उन्हें यज्ञ कराया। उस यज्ञमें जलका अभिमन्त्रण मन्त्रोंद्वारा कर यज्ञशालामें रख दिया दैवयोगसे रात्रिको राजाको प्यास लगी उन्होंने उसी जलको पी लिया—यह निन्दित कर्म क्यों किया?

उत्तर—एक समय गंगाजीको देखकर यह हँस पड़ा था। उसीका नतीजा हुआ जो इसकी यह दशा हुई। इसलिए गर्भिणी स्त्रीको देखकर हँसना न चाहिये।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाने इन्द्रियोंसे परे सर्वान्तर्यामी देवाधिदेव श्री नारायणका बहुत दक्षिणावाले यज्ञों द्वारा यजन किया ।।३५।। द्रव्य, मन्त्र, विधि, यज्ञ यजमान, ऋत्विज धर्म तथा देश-काल यह सब कुछ ईश्वरका स्वरूप है ।। ३६ ।। जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ अस्त होता है वहाँ तक युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका सब राज्य कहा जाता है ।। ३७ ।। राजा शशबिन्दुकी विन्दुमती नामकी कन्यामें पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा योगी मुचुकुन्द ये तीन पुत्र मान्धाताने पैदा किये तथा पचास कन्याएँ पैदा की, जिन कन्याओंने सौभरिमुनिको अपना पति बनाया ।। ३८ ।। इनकी कथा इसप्रकार है—एक बार परमतपस्वी सौभरि मुनि यमुनाजीमें जलके भीतर स्थित होकर तपकर रहे थे, वहाँपर उन्होंने मत्स्य दम्पतिका मैथुन करते हुए देखा ।।३९।। यह देखकर इनकी भी इच्छा विषयमें हो गई तब वे जलसे बाहर निकलकर राजा मान्धाताके पास जाकर एक कन्या मागी । राजाने कहा-हे ब्रह्मन्, मैं इन कन्याओंका स्वयम्बर रचता

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ।। सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ।। ३५ ।। द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ।। धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ।। ३६ ।। यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।। सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ।। ३७ ।। शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृवः ।। पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ।। तेषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ।। ३८ ।। यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परन्तपः ।। निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ।।३९।। जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ।। सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयम्वरे ।। ४० ।। स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ।। वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ।। ४१ ।। साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ।। किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ।। ४२ ।। मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्यान्तःपुरमृद्धिमत् ।। वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ।।४३।। तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ।। ममानुरूपो नायं वा इति तद्गतचेतसाम् ।।४४।। स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपश्श्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ।। गृहेषु नानोपवनामलाम्भस्सरस्सु सौगन्धिककाननेषु ।।४५।। महार्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्य-

हूँ, उसमें जो कन्या आपको माला पहना देगी, उसीके साथ आपका पाणिग्रहण हो जायगा ।।४०।। सौभरिने मनमें सोचा—राजाने यह बात समझा है कि यह एक तो वृद्ध हैं दूसरे इनका शिर काँप रहा है तथा सुन्दर भी नहीं हैं, जिससे कि इनके ऊपर स्त्रियाँ मोहित हो जायगी, बाल सफेद हो गये हैं यही समझकर स्वयंवरके बहाने राजाने टाल दिया है ।। ४१ ।। इसलिये मैं अपने तपोबलसे इसप्रकारकी सुन्दरता अपने शरीरमें उत्पन्न करता हूँ, जिससे राजकन्याओंकी बातही क्या ? देव कन्याएँ भी मोहित हो जायँगी ।। ४२ ।। ऐसा निश्चयकर राजाके पास पुनः गये, तब राजाने इनको अपने अन्तःपुरमें भेज दिया । वहाँ इनके अति दिव्य सुन्दर रूपको देखकर पचास कन्याओंने इन्हीं अकेलेको ही अपना पति चुन लिया ।। ४३ ।। यद्यपि वे कन्याएँ परस्पर में बहिन थीं, तो भी इनके ऊपर मोहित होकर सब आपसमें सपत्नियोंकी तरह झगड़ा करने लगीं और कहने लगीं कि वह तो हमारे ही रूपके योग्य हैं, तुम्हारे रूपके योग्य नहीं हैं ।। ४४ ।। महर्षि सौभरिने अपने तपोबलके द्वारा उन सब कन्याओंके लिये अलग अलग अमूल्य सामग्रीसे पूर्ण घरोंकी रचना की तथा निर्मल जल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से भरे सरोवर वाले उपवनोंकी रचना की एवं सुगन्धित वृक्षोंसे सघन बगीचे सजा दिये ॥ ४५ ॥ वे सुन्दर-सुन्दर घर बनाये गये थे, जिनमें बहुमूल्य पलंग, आसन, वस्त्र गहने स्नान करनेके लिये जल और उबटनके मसाले साबुन, तेल आदि नाना प्रकारकी सामग्रियाँ उपस्थित थीं, जहाँपर सुन्दर-सुन्दर भूषण वस्त्र पहने हुए दासियाँ तथा अनेक दास उपस्थित थे एवं भ्रमर, पक्षी तथा बन्दीजन सौभरिके पवित्र यशका जहाँ गानकर रहे थे ॥४६॥ जिसके गार्हस्थ्य जीवनको देखकर सात द्वीपवाली पृथिवीका स्वामी साम्राज्य लक्ष्मीसे युक्त राजा मान्धाता आश्चर्ययुक्त हो अपना गर्व छोड़ दिया ॥ ४७ ॥ इसप्रकार गृहमें आसक्त होकर विविध प्रकारके विषय सुखोंका सेवन करते हुए, घृतके बिन्दुओं द्वारा अग्निकी तरह, सन्तुष्ट नहीं हुए ॥ ४८ ॥ एकदिन बह्वृचाचार्य सौभरिमुनि बैठे हुए थे, अकस्मात् इनके मनमें यह विचार हुआ कि मछली और मच्छके भोग विलासको देखकर मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, उन्होंने देखा— सिर्फ मेरे मानसिक विकारके कारण मेरी सारी तपस्या नष्ट हो गई ॥ ४९ ॥ अहो, सच्चरित्र मुझे तपस्वीके इस विनाशको तो देखो, जिसने जलके भीतर जलचरोंका प्रसङ्ग देखकर इतने

वहारमाल्यकैः ॥ स्वलङ्कृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गवन्दिषु॥ ४६ ॥ यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ॥ विस्मितः स्तम्भमजहात्सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥ ४७ ॥ एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ॥ सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥४८॥ स कदाचिदुपासीन आत्मावह्नपमात्मनः ॥ ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ॥ अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्प्रच्यावितं ब्रह्मचिरं धृतं यत ॥ ५० ॥ सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि ॥ एकश्चरन्रहसि चित्तमनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥ ५१ ॥ एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः ॥ नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२ ॥ एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ॥ वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ५३ ॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् ॥ सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्म-

दिनोंका सञ्चित वीर्य तथा सारी जिन्दगीका तप नष्टकर दिया ॥ ५० ॥ जो मुमुक्षु प्राणी हो, उसे चाहिये कि वह मैथुन करनेवालोंके साथ न रहे, सदा ऐसा प्रयत्न करे कि इन्द्रियाँ सांसारिक विषयोंकी ओर चलायमान न हो तथा एकान्तमें निवास करे और अनन्त अच्युत भगवान्में अपने चित्तको लगावे। यदि सत्सङ्ग करे, तो भगवान्के अनन्य भक्त साधुलोगोंका ही करे ॥ ५१ ॥ मैं अकेला जलमें तपकर रहा था, वहाँपर मछली और मच्छके सङ्गसे मुझे विवाह करनेकी इच्छा हुई। तब पचास स्त्रियोंसे शादीको, उनमें हजार पुत्र तथा कन्याएँ हुईं फिर भी इसलोक तथा परलोकमें होनेवाले मनोरथोंका मैंने अन्त नहीं पाया। मायाके गुणोंने मेरी बुद्धि हरली, जिससे सांसारिक तुच्छ विषय सुखोंमें मेरी सत्यबुद्धि हो गई ॥ ५२ ॥ इसप्रकार कुछ कालतक गृहमें सौभरिने निवास किया, पश्चात् वैराग्यको प्राप्त होकर संन्यासी होकर वनको चले गये, साथहीमें पतिव्रता इनकी स्त्रियाँ भी बनको चली गईं ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानी सौभरि मुनिने— जिससे ईश्वरका ज्ञानहो, ऐसा तप करके शरीरस्थ तीनों अग्नियों सहित आत्माको— परमात्मामें लीनकर दिया ॥ ५४ ॥ हे महाराज, अपने पतिको इसप्रकार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परब्रह्ममें लीन समझकर जिसप्रकार अग्निके शान्त हो जानेपर उसके साथ ही साथ उसकी चिनगारियाँ भी शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार वे मुनिकी पत्नियाँ भी मुनिके साथ ही उनके प्रभावसे सती हो गईं ॥ ५५ ॥

-हाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ॥ अन्वीयुस्तत्प्रभावेन अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥५५॥ इति श्रीम० म० पु० न०सौभर्याख्याने षष्ठोऽध्यायः॥६॥

छठे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मनुपुत्र राजा इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें विकुक्षि, निमि और दण्डक सबसे ज्येष्ठ थे। एक दिन इक्ष्वाकुने विकुक्षिको बुलाकर कहा—बेटा, आज श्राद्ध करना है, पिण्डदानके लिए जङ्गलमें जाकर कहींसे पवित्र मांस ले आओ। पिताकी आज्ञा पाकर विकुक्षि जङ्गलमें चला गया। वहाँ वह अनेक मृगोंका शिकार करनेके बाद थक गया। भूख प्यास अधिक लगनेके कारण उसे श्राद्धकी स्मृति न रहनेसे वह एक खरगोशको खा गया। बाकी बचे हुएको अपने पिताको समर्पित कर दिया। श्राद्ध करते समय वसिष्ठजी ने कहा—यह मांस जूठा है, यह सुनकर इक्ष्वाकुने विकुक्षिको देशसे निकाल दिया। पिताकी मृत्युके बाद विकुक्षि पुनः देशमें आकर धर्मपूर्वक पृथिवीका शासन करने लगा। एक बार देव और दैत्योंमें भयङ्कर युद्ध हुआ। उसमें देवता हार गये। देवताओंने विकुक्षिके लड़के पुरञ्जयसे सहायता माँगी, पुरञ्जयने कहा—इन्द्र यदि मेरा वाहन बने, तो मैं सहायता कर सकता हूँ। देवताओंने स्वीकार किया, तब वृषरूपधारी इन्द्रके ककुत् पर बैठकर पुरञ्जयने देवताओंके दुश्मनोंको मार भगाया, इसीसे पुरञ्जयका इन्द्रवाह और ककुत्स्थ भी नाम पड़ा। पुरञ्जयकी सोलहवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुए युवनाश्वको कोई सन्तति न थी इस लिए वह अपनी पत्नीके साथ वनसे चला गया। ऋषियोंने उसकी सन्ततिके लिये यज्ञ किया। रातमें प्याससे बेचैन राजा ऋषियों द्वारा अभिमन्त्रित जल पी गया, जिससे कि राजा की दक्षिण कुक्षि फाड़कर एक पुत्र हुआ। उसका मान्धाता नाम पड़ा। इन्द्रने उसे दूध पिलाया। वह पृथिवीका सबसे बड़ा राजा हुआ उससे तीन लड़के और पचास लड़कियाँ उत्पन्न हुई। जलमें डूबे हुए सौभरिने मत्स्य दम्पतिका मैथुन देखकर स्वयं वैसा ही करनेकी इच्छा की। उन्होंने जाकर मान्धातासे एक लड़की माँगी। राजाने कहा—मैं स्वयम्बर रचता हूँ, उसमें जो लड़की आपको पसन्द कर लेगी, उसे ले लीजियेगा। सौभरिने सोचा—मुझे वृद्ध समझकर राजाने मुझे ठुकरा दिया है। तदनन्तर दूसरी बार सौभरि राजाके पास फिर आगये, राजाने उन्हें अन्तःपुर भेज दिया। अपने तपोबलके प्रभावसे भीतर जाकर सौभरि मुनि सुन्दर मुनि हो गये। उनके रूपसे मोहित होकर राजाकी पचास लड़कियोंने अकेले सौभरिको ही अपना पति चुन लिया। उनसे सौभरिको पाँच हजार लड़के लड़कियाँ पैदा हुई। अनेक वर्षोंतक उनके साथ विहार करनेके बाद उन्हें वैराग्य हो गया। सब स्त्रियोंके साथ फिर वनमें चले गये और अन्तमें उन्होंने अपने शरीरको ब्रह्ममें लीन कर दिया। उन्हींके साथ उनकी स्त्रियाँ भी सती हो गईं। छठवाँ अध्याय समाप्त *

❀ अथ सप्तमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ॥ पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा

* मान्धाताके वंशमें उत्पन्न हुए पुरुकुत्स तथा हरिश्चन्द्रका आख्यान *

श्रीशुकदेवजीने कहा—मान्धाताके सब पुत्रोंमें श्रेष्ठ अम्बरीष कहे गये हैं, इनको इनके पितामह युवनाश्वने अपना पुत्र स्वीकार किया। अम्बरीषके पुत्र हारीत हुए। अम्बरीष, युवनाश्व और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हारीत इन तीनोंके मान्धाता ही प्रवर थे ॥ १ ॥ अब इसी वंशमें उत्पन्न पुरुकुत्सके वंशका वर्णन करते हैं —रसातलनिवासी नागोंने अपनी बहिन नर्मदाका इनके साथ विवाह कर दिया। नर्मदा अपने भाई सर्पोंकी प्रेरणासे पुरुकुत्सको पाताल ले गई ॥२॥ वहाँपर जाकर पुरुकुत्सने नागोंको सतानेवाले गन्धर्वोंको मार डाला, क्योंकि ये साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश थे, इनके लिये यह गन्धर्वोंका मारना कोई बड़ी बीरता नहीं थी। तब सर्पोंने यह वरदान दिया कि जो इसका स्मरण करेगा उसको सर्पसे भय नहीं रहेगा ॥ ३ ॥ कुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु और त्रसदस्युके पुत्र अरण्य हुए। अरण्यसे हर्यश्व हर्यश्वसे अरुण अरुणसे त्रिबन्धन हुए ॥ ४ ॥ त्रिबन्धनके पुत्रसत्यव्रत हुए, जो त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध हुए और अपने गुरुशापसे चण्डालयोनिको प्राप्त हुए और बादमें महर्षि विश्वामित्रके तेजसे शरीर सहित स्वर्गको प्राप्त हुए वे आज भी नक्षत्रमण्डलमें दिखाई दे रहे हैं। स्वर्गसे देवताओंने इन्हें नीचे सिर करके

इमे ॥ १ ॥ नर्मदा भ्रातृभिर्दत्तापुरुकुत्साय योरगैः ॥ तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥ २ ॥ गन्धर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्ति-
धृक् ॥ नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥ ३ ॥ त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ॥ हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ त्रिबन्धनः
॥ ४ ॥ तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ॥ प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥५॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥
पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥ ६ ॥ त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम्
॥ ७ ॥ सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ॥ वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे
इति ॥ तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९ ॥ जातः सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो
भवेदिति ॥ १० ॥ निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥ ११ ॥ जाता दन्ता यजस्वेति
स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति ॥ १२ ॥ पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशोः

जब पटका, तब विश्वामित्रने अपने तेजसे वहीं इन्हें जबर्दस्ती रोक दिया ॥ ५,६ ॥ त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, जिनके कारण पक्षीका रूप धारण किये हुए विश्वामित्र और वसिष्ठमें बहुत वर्षों तक युद्ध होता रहा ॥ ७ ॥ हरिश्चन्द्रको कोई पुत्र नहीं था, इसलिये उन्होंने दुःखी होकर नारदजीसे प्रार्थना की। नारदजीने पुत्रप्राप्तिके लिये वरुणकी उपासना बतलाई। नारदजीके उपदेशसे राजाने वरुणकी शरणमें जाकर उनसे प्रार्थना की—हे भगवन्, मुझे एक पुत्र उत्पन्न हो जाय ॥८॥ हे महाराज, यदि वीर पुत्र मुझे उत्पन्न होगा, तो उसीको यज्ञपशु बनाकर मैं आपका यज्ञ करूँगा। यह सुनकर वरुणने कहा—बहुत अच्छा, जाओ तुम्हें एक पुत्र होगा। तदन्तर रोहित नामक उसे पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ तब वरुणने जाकर कहा—हे राजन् तुम्हें पुत्र हुआ है, इससे मेरा यजन करो। राजाने कहा—जब यज्ञपशु दस दिनका हो जायगा तब पवित्र होगा ॥ १० ॥ दस दिनके उपरान्त फिर वरुणने आकर कहा—अब यह दस दिनका हो चुका है, मेरा यज्ञ करो। राजाने कहा—जब पशुके दाँत निकल आयेंगे तब पवित्र होगा ॥ ११ ॥ दाँत उत्पन्न हो जानेपर फिर जाकर वरुणने कहा—अब दाँत उत्पन्न हो गये हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेरा पूजन करो। राजाने प्रत्युत्तर दिया– जब पशुके दाँत गिर जायँगे, तब यह शुद्ध होगा ॥ १२ ॥ इसके बाद उसके दाँत जब गिर गये, तब पुनः जाकर वरुणने कहा–अब यज्ञ करो, यह सुनकर राजाने उत्तर दिया–जब पुनः इसे दाँत उत्पन्न हो जायँगे, तब यज्ञपशु पवित्र होगा ॥ १३ ॥ पुनः दाँत उत्पन्न हो जानेपर वरुणने कहा—अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो तब हरिश्चन्द्रने यह कहा—हे वरुण, जब कवच धारण करने योग्य क्षत्रिय हो जायगा तब यह पशु पवित्र होगा ॥ १४ ॥ इसप्रकार पुत्रके अनुरागसे राजाने नाना प्रकारके बहाने बनाकर जब वरुणको बार-बार टाल दिया, तब वरुण भी राजाकी चालबाजी समझ गये ॥ १५ ॥ रोहित भी पिताके मनोवाञ्छित अभिप्रायको जानकर अपने प्राण बचानेकी इच्छासे धनुष हाथमें लेकर वनमें चला गया ॥ १६ ॥ और इधर क्रोधित होकर वरुणने भी राजाके पेटमें जलन्धर नामका रोग पैदाकर दिया। वनमें रोहितने पिताको वरुणके द्वारा रोगग्रस्त समझकर घर आनेकी इच्छाकी, किन्तु मार्गमें आकर इन्द्र उन्हें पुनः वनको लौटा ले गये ॥ १७ ॥ घरकी तरफ आ रहे रोहितको ब्राह्मणका वेष धारणकर इन्द्रने यही उपदेश दिया, कि तुम घरके

पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः* ॥१३॥ पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिको यदा राजन् राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥१४॥ इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा ॥ कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ॥ प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ॥ रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥ १७ ॥ भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ॥ रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥ १८ ॥ एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा ॥ अभेत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा ॥ १९ ॥ षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ॥ उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥ २० ॥ शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ॥ ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥ २१ ॥ मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः ॥ विश्वामित्रोऽभवत्तस्मिन्होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥ २२ ॥ जमदग्निरभूद् ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः ॥ तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ॥ २३ ॥ शुनःशेपस्य

प्रपञ्चमें फँसने क्यों जा रहे हो, पृथिवीके पवित्र तीर्थोंमें भ्रमण करो तथा सुन्दर-सुन्दर तीर्थोंका सेवन करो, यह सुनकर रोहित पुनः वनको लौट गये और एक वर्षतक रहे ॥१८॥ इसी प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्ष भी घरको आते रहे रोहितको वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर इन्द्रने अपने उपदेश द्वारा वनको लौटा दिया ॥१९॥ छठे वर्ष फिर रोहित घरको चले और मार्गमें अजीगर्त मुनिसे उनके मझले पुत्रको यज्ञका पशु बनानेके लिये खरीद लिया ॥ २० ॥ इस मझले पुत्रका नाम शुनःशेप था शुनःशेप पशुको रोहितने पिताको सौंपकर प्रणाम किया। महायशस्वी हरिश्चन्द्रने पुरुषमेधसे अर्थात् नरमांससे वरुणका यजन किया ॥२१॥ इस यज्ञसे वे शीघ्रही जलन्धर रोगसे मुक्त हो गये। इस यज्ञमें महर्षि विश्वामित्र होता,

*दृष्टान्त—राजा हरिश्चन्द्रने वरुणसे कहा –हे वरुण, यज्ञपशु बनाकर यज्ञ करूँगा।
उत्तर—ऐसी विपत्ति में मिथ्या कहने पर दोष नहीं होता।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आत्मवान् जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठजी ब्रह्मा और अयास्य मुनि उद्गाता हुए ॥ तब प्रसन्न होकर इन्द्रने हरिश्चन्द्रके लिए एक सोनेका रथ दिया ॥२२, २३॥ शुनःशेपके माहात्म्यका आगे चलकर वर्णन करेंगे। विश्वामित्रने राजाके सत्यकी परीक्षा ली, किन्तु स्त्रीसहित राजाके अलौकिक सत्य और धैर्यको देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर उनके लिये ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया। राजाने मनको पृथिवीमें, पृथिवीको जलमें, तेजको वायुमें ॥ २४, २५ ॥ और वायुको आकाशमें धारण किया तथा आकाशको अहङ्कारमें एवं अहङ्कारको महत्तत्त्वमें मिला दिया अर्थात् लीनकर दिया, इसप्रकार ज्ञानकलाके ध्यान द्वारा अज्ञानको नाश करते हुए अन्तमें ब्रह्मानन्दके अनुभवसे ज्ञानको भी त्यागकर समस्त बन्धनोंसे मुक्त होते हुए अपने ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हो गये जो अनिर्देश्य और अप्रतर्क्य है ॥ २६, २७ ॥

माहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्षते ॥ सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददाववितहतां गतिम् ॥ मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽपोऽनिलेन तत् ॥ खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ॥ तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन् ॥२६॥ हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥ अनिर्देश्याप्रतर्क्ये तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥ २७ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सातवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मान्धाताकी नवम पीढ़ीमें उत्पन्न हुए राजा हरिश्चन्द्रको कोई सन्तान न होनेके कारण वरुणसे पुत्रके लिए प्रार्थना की तथा वरुणसे कहा—भगवन्, यदि मुझे पुत्र होगा तो उसीको यज्ञीयपशु बनाकर मैं आपका यजन करूँगा। वरुणके प्रसादसे राजको एक पुत्र हुआ। वरुणने राजासे यज्ञ करनेके लिए कहा। राजाने अनेक बहाने बनाकर वरुणको टाल दिया। वरुण भी राजाकी चालबाजी समझ गये। रोहित भी अपने पिताका अभिप्राय जानकर वनमें चला गया। अनन्तर क्रुद्ध वरुणके द्वारा दिये गये जलोदर रोगसे पीड़ित पिताको सुनकर घर चला। मार्गमें आते हुए इन्द्रने कितने बार रोका उसने मुनिके मझले बेटेको उनसे खरीद लिया। घरमें आकर अपने पिताको समर्पित कर दिया। राजाने शुनःशेप नामक उस नरपशुसे वरुणका यजन किया तदनन्तर रोगमुक्त हो राजा जंगलको चले गये और सत्य प्रतीक्षाके बाद विश्वामित्रसे ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो गये। सातवां अध्याय समाप्त ❁

❁ अथाष्टमोऽध्यायः ❁

श्रीशुक उवाच ॥ हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता ॥ चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥ भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्वृकस्तस्यापि बाहुकः ॥ सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यती ॥ और्वेण जानतात्मानं प्रजावन्तं

❁ रोहितके वंशमें उत्पन्न हुए राजा सगरके साठ हजार लड़कोंका कपिलमुनिकी आखें खुलते ही भस्म हो जाना-यह वर्णन ❁

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, रोहितके पुत्र हरित और हरितसे चम्प हुए, जिन्होंने चम्पापुरी नामकी नगरी बसाई। चम्पसे सुदेव और सुदेवसे विजय हुए ॥ १ ॥ विजयसे भरुक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मरुकसे वृक और वृकसे बाहुक हुए। बाहुकका सारा राज्य जब शत्रुओंने छीन लिया, तब वे अपनी रानियोंको साथ लेकर वनको चले गये ॥ २ ॥ राजा बाहुक वृद्ध तो थे ही, इसलिये उनका वनमें ही देहान्त हो गया। बड़ी रानी उनके साथ सती होने लगी, किन्तु महर्षि और्वने उसे गर्भवती समझकर सती होनेसे रोक दिया ॥ ३ ॥ रानीको गर्भवती समझकर इसका सपत्नियोंने डाहके मारे इसे विष दे दिया, किन्तु महर्षि और्वके प्रतापसे वह गर्भ नष्ट नहीं हुआ, बल्कि विषके साथही साथ एक तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। वही महाराज सगरके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥४॥ महाराज सगर चक्रवर्ती हुए। इन्हींके पुत्रोंने सागरका निर्माण किया था। राजा सगरने अपने गुरु और्वके वचनसे तालजंघ, यवन, शक, हैहय, बर्बर जातिवाले अपने शत्रुओंको जानसे नहीं मारा, किन्तु उनके वेषको केवल बिगाड़ दिया। किसीका दाढ़ी रखवा दी, किसीका सिर आधा मुड़वा दिया तथा किसीको खुले हुए बाल रखनेकी ही आज्ञा दे दी ॥५,६॥ किसीको मुक्तकच्छ रहनेकी आज्ञा दी तथा किसीको दिगम्बर रहनेका नियम कर दिया। राजा सगरने अश्वमेधयज्ञों द्वारा सर्वदेवमय तथा सर्वदेवमय भगवान्‌का यजन किया

निवारिता ॥ ३ ॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह ॥ सह तेनैव सञ्जातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥ सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ यस्तालजङ्घान्यवनाञ्छकान्हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥ नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ॥ मुण्डान् श्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ॥ ६ ॥ अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ॥ सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७ ॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ॥ तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ॥ ८ ॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ॥ हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन्महीम् ॥ ९ ॥ प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके ॥ एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः ॥ उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११ ॥ स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः ॥ महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ॥ १२ ॥ न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ॥ कथं तमो रोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १३ ॥

॥७॥ इसप्रकार जब सगरने और्वमुनिके द्वारा बताये गये मार्गसे परमात्मा श्रीहरिका यजन किया, तब अश्वमेधमें छोड़े गये उनके अश्वको इन्द्र हरकर ले गये ॥ ८ ॥ राजा सगरकी धर्मपत्नी सुमतिके अति अभिमानी साठ हजार पुत्र पिताकी आज्ञासे चारों दिशाओंमें घोड़ेको खोजते हुए पृथिवीपर पता न लगनेसे पृथिवीको खोदने लगे ॥९॥ पूर्व और उत्तर दिशामें पृथ्वीको खोदकर कपिलमुनिके समीप अपने घोड़ेको देखते हुए उन्होंने सोचा-यही हमारा घोड़ा चुरा लाया है और यहाँपर आंखें बन्दकर बैठ गया है ॥ १० ॥ इसको मार डालो मार डालो, ऐसा कहते हुए वे साठ हजार पुत्र ऊपरको ओर अस्त्र उठाकर मुनिके संमुख दौड़े। यह हलचल सुनकर मुनिने अपने नेत्र खोले ॥ ११ ॥ इन्द्रकी मायासे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जानेके कारण उन्होंने महात्मा कपिलका अपमान किया, इसलिये वे सबके सब उसी समय अपने-अपने शरीरको अग्निसे भस्मीभूत हो ॥ १२ ॥ कुछ लोग यह कहते हैं कि कपिलमुनिके क्रोधानलसे वे सब भस्म हो गये, किन्तु यह उन लोगोंका कहना ठीक नहीं है, क्योंकि विष्णुके अंश शुद्ध सत्त्वगुणमय पवित्रात्मा मुनिके विषयमें क्रोधमय तमोगुणके उदयकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कैसे सम्भावनाकी जा सकती है। भला आकाशमें पृथिवी रजकी सम्भावना कैसेकी जा सकती है ॥१३॥ जिन भगवान् कपिलने सांख्ययोगमयी नौकाका निर्माण किया है, जिससे मुमुक्षु प्राणी मृत्युपथरूप दुरत्यय संसारसागरको पारकर जाते हैं, उन परात्मस्वरूप सर्वज्ञमुनिकी भेदद्दष्टि कैसे हो सकती हैं ॥ १४ ॥ केवल अज्ञोंद्वारा जो असमञ्जस नामसे कहे गये वस्तुतः 'समञ्जस' थे। वे तो राजा सगरकी केशिनी नामकी पत्नीमें उत्पन्न हुए थे। उन असमञ्जससे अंशुमान् उत्पन्न हुए थे, वे अपने पितामहके बड़े हितैषी थे ॥ १५ ॥ असमंजस पूर्वजन्मके योगी थे, पूर्वजन्मका इन्हें भलीभांति स्मरण था। किन्तु सङ्ग रखनेके कारण योगसे भ्रष्ट हो गये थे, इनका असमंजस जैसा नाम था वैसा ही वे आचरण भी करते थे ॥१६॥ ये अपनी जातिवालोंके विरुद्ध निन्दनीयकर्म करते थे, जिससे लोग हमारे आचरणसे व्याकुल होकर हमें निकाल दें और तब हम वनमें जाकर पुनः योगाभ्यास करें। इस उद्देश्यसे खेल रहे बालकोंको लेकर सरयूनदीमें फेंक देते थे ॥१७॥ इसप्रकार आचरणवाले पुत्रको इनके पिताने पुत्रस्नेहका त्यागकर देशसे निकाल दिया। तब इन्होंने अपने योगबलसे उन

यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ॥ भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ ॥ १४ ॥
योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्या नृपात्मजः ॥ तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम पितामहहिते रतः ॥ १५ ॥ असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ॥
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥ आचरन्गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ॥ सरय्वां क्रीडतो बालान्प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम्
॥ १७ ॥ एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहहपोह्य वै ॥ योगैश्वर्येण बालांस्तान्दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८ ॥ अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान्पुन-
रागतान् ॥ दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९ ॥ अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरङ्गान्वेषणे ययौ ॥ पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति
ददृशे हयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ॥ अस्तौत्समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच ॥
न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ॥ कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥ ये देह-

सब सरयू फेंके गये बालकोंको जिलाकर उन्हें सबको दिखा करके वनको चले गये ॥ १८ ॥ हे राजन्, अयोध्यावासी लोग मरे हुए अपने अपने पुत्रोंको जीवित देखकर बड़े चकित हुए तथा राजाको भी पुत्रके निकालनेका शोक हुआ ॥१९॥ तब राजाने अंशुमानको अश्व खोजनेकी आज्ञा दी। वह अपने चाचाओं द्वारा खोदे गये मार्गसे गया और वहाँ जाकर उसने एक भस्मके ढेरके समीप बँधे हुए अश्वको देखा ॥ २० ॥ और वहाँपर बैठे हुए अधोक्षजावतारभूत कपिलमुनिको देखकर उन्हें प्रणाम करके सावधान चित्त हो हाथ जोड़ करके स्तुति करने लगा ॥ २१ ॥ अंशुमानने कहा—हे भगवन्, साधारण मनुष्यकी तो बातही क्या ? साक्षात् ब्रह्मा भी अपने स्वरूपसे परे आपको समाधित तथा युक्तिद्वारा जब आजकल न जान सके, तब भला उन ब्रह्माजीके सत्त्व, तम और रजोगुणके कार्यरूप शरीर और बुद्धिसे विरचित जो नानाप्रकारकी देव-तिर्यङ्-नरादि योनियां हैं उनमें उत्पन्न हुए हमारे जैसे अज्ञानी आपके स्वरूपका साक्षात्कार कैसे कर सकते हैं ॥२२॥ हे भगवन्, समस्त प्राणियोंके हृदयमें यद्यपि आप अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, तथापि वे देहधारी सब, जिनमें तीन गुणोंकी प्रधानता है आपका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साक्षात्कार नहीं कर सकते हैं, उन्हें केवल आपके गुणोंका ही साक्षात्कार होता है अथवा केवल तमका ही ज्ञान होता है, क्योंकि वे आपकी मायासे मोहित हैं, इसीलिये उन्हें केवल बाह्य विषयोंका ज्ञान तथा अनुभव होता है ॥ २३ ॥ हे नाथ, आपकी मूर्ति शुद्ध ज्ञानमयी है, इसलिये मायाके गुणोंसे उत्पन्न भेद मोहादि जिनके अपने आप नष्ट हो गये हैं ऐसे सनकादि मुनियों द्वारा चिन्तनीय आपको मैं मूढ़ कैसे जान सकता हूँ ॥२४॥ हे शान्तस्वरूप, मायाके गुण तथा विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहाररूप कार्यही आपके लिङ्ग हैं तथा आप कार्य-कारण अथवा पुण्य-पाप दोनोंसे परे हैं। अपने भक्तोंको ज्ञानोपदेश देनेके लियेही आपने शुद्ध सत्त्वात्मक शरीर धारण किया है। आप पुराणपुरुष हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२५॥ हे प्रभो, काम, लोभ, ईर्ष्या, मोहादिके द्वारा भ्रान्त चित्तवाले प्राणी आपकी मायासे रचित संसारमें सत्यकी तरह भासमान तथा वास्तवमें असत्य जो गृहादि हैं उनमें सत्यकी बुद्धिसे रमण करते हैं ॥२६॥ हेसर्वभूतात्मन्, आज आपके दर्शनसे हमारा वासना, कर्म और इन्द्रियोंका आश्रयरूप अत्यन्त दृढ़ मोहरूपी पाश यानी बन्धन कट गया ॥२७॥ श्रीशुक-

भाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान्विपश्यन्त्युत वा तमश्च ॥ यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३ ॥ तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ॥ सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥ २४ ॥ प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ॥ ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ॥ भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥ २६ ॥ अद्य न सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः ॥ मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान्कपिलो मुनिः । अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ॥ इमे च पितरो दग्धा गङ्गाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ॥ २९ ॥ तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ॥ सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥ ३० ॥ राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः ॥ और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

देवजीने कहा—हे राजन्, जब अंशुमानने इसप्रकार कपिल भगवान्‌की स्तुति की, तब वे प्रसन्न होकर यों अंशुमान्‌से बोले ॥२८॥ श्रीभगवान् कपिलमुनिने कहा–हे वत्स, यह तुम्हारे पितामहका अश्व है, तुम इसे ले जाओ। ये तुम्हारे साठ हजार पितर लोग जले हुए पड़े हैं, इनका मोक्ष बिना गङ्गाजलके नहीं हो सकता है॥ २९ ॥ यह सुनकर अंशुमान् कपिल भगवान्‌की प्रदक्षिणा तथा उन्हें नमस्कार करके अश्वको ले आये। तदनन्तर सगरने यज्ञपशु पाकर उससे अपना यज्ञ समाप्त किया ॥३०॥ यज्ञ समाप्त होनेके बाद राजा सगर राज्यका पूरा भार अंशुमानको देकर स्वयं निःस्पृह हो तथा सांसारिक जालसे मुक्त होकर और्व महर्षिके द्वारा बताये गये मार्गसे उपासना करते-करते मुक्त हो गये॥ ३१ ॥

आठवें अध्यायका सार– श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, रोहितकी नवम पीढ़ीमें राजा सगर उत्पन्न हुए। उनसे सुमति नामक स्त्रीमें साठ हजार लड़के उत्पन्न हुए। बड़ी श्रद्धाके साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजा सगर अश्वमेध याग करने बैठे। दीक्षित होनेके बाद अपना घोड़ा छोड़के उसकी रक्षामें अपने लड़कोंको नियुक्त कर दिया। स्वतन्त्र घूम रहे उस घोड़ेको चुराकर इन्द्रने कपिलमुनिके आश्रममें बाँध दिया। घोड़ेको ढूँढ़ रहे सगरके लड़कोंने कपिल मुनिके आश्रममें उसे देखा। वे सब कहने लगे—इसीने हमारा घोड़ा चुरा लाया है और यहाँ झूठ-मूठ आँखें बन्द किये हुए बैठा है। इस पापीको मार डालो। कोलाहल सुनकर कपिल मुनिने अपनी आँखें खोल दीं। उनकी आँखें खुलते ही मुनिको अपमानित करनेवाले सगरके सभी लड़के तुरन्त भस्मीभूत हो गये। केशिनीके गर्भसे उत्पन्न सगरके लड़केका नाम असमञ्जस था। उसे अंशुमान् पैदा हुआ था। अंशुमान् कपिल मुनिको प्रसन्न करके अपना घोड़ा ले आया। तदन्तर राजा सगरने घोड़ा पाकर यज्ञ समाप्त किया। अध्याय समाप्त ❀

❀ राजा खट्वाङ्गतक अंशुमान्का वंश तथा भगीरथ द्वारा भूतलपर गङ्गाको लाना—यह वर्णन ❀

श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन, अपने पितामहके वन जानेके बाद अपने पितरोंके उद्धारकी इच्छासे गङ्गाजीको लानेके लिये अंशुमान्ने बहुत कालतक तप किया, लेकिन उनका मनोरथ पूर्ण न होनेके पहले ही शरीर छूट गया॥१॥ अंशुमान्के पुत्र राजा दिलीप हुए, इन्होंने भी अपने पुत्रको राज्य सौंपकर गङ्गाजीको पृथिवीपर लानेके लिये घोर तप किया, किन्तु इनका

❀ अथ नवमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ॥ कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत्तपः ॥ २ ॥ दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदास्मि ते ॥ इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः❀ ॥ ३ ॥ कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ॥ अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४ ॥ किञ्चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ॥ मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥ भगीरथ उवाच ॥ साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ॥

शरीर भी अंशुमान्की तरफ पहलेही छूट गया। दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, इन्होंने गङ्गाके निमित्त जब महान् तप किया ॥२॥ तब भगीरथके ऊपर प्रसन्न होकर गंगाजीने दर्शन दिया और प्रसन्न होकर कहा—हे पुत्र, यथेष्ट वर मांगो, यह सुनकर मस्तक नीचे किये हुए राजाने अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३ ॥ गङ्गाजीने कहा—हे राजन्, ब्रह्मलोकसे गिरते हुए मेरे वेगका पृथिवीतलपर कौन धारण करेगा ? अन्यथा भूतलको छेदकर मैं रसातलको चली जाऊँगी ॥४॥ किञ्च, हे राजन्, मैं पृथिवीपर न जाऊँगी, क्योंकि वहाँपर पापीजन अपने पापोंका मुझमें प्रक्षालन करेंगे। हे राजन्, भला विचारो तो सही, मैं उन पापोंको कहाँ और किसप्रकार धोऊँगी ॥ ५ ॥ भगीरथजीने कहा—हे मातः ब्रह्मज्ञानी, लोकपाल तथा शान्त

❀दृष्टान्त—भगीरथ के कुलमें इनके पूर्वजोंने श्रीगङ्गाजीके ले आनेके लिए बड़ी तपस्या की। पर उन लोगोंका मनोरथ पूर्ण न हो सका।

उत्तर—श्रीभगीरथजीने उस कार्यको पूर्ण किया। यह केवल वंशपरंपरागत स्तुतिका फल है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

साधु-संन्यासी तुममें स्नान करेंगे, इसलिये उनके अङ्ग-स्पर्शसे तुम्हारे सब पाप दूर हो जायँगे, क्योंकि उनके हृदयमें पापनाशक श्रीहरि सदा विराजमान रहते हैं ॥६॥ तथा तुम्हारे वेगको समस्त प्राणियोंके आत्मा साक्षात् भगवान् रुद्र धारण करेंगे, जिनमें यह सकल संसार, साड़ीमें सूतकी नाईं, ओत-प्रोत है ॥ ७ ॥ हे राजन्, श्रीगंगाजीसे इतना कहकर राजा भगीरथने श्रीशंकरजीकी तपस्या की वह भूतभावन आशुतोष भगवान् शिवजी थोड़ेही कालमें प्रसन्न हो उठे ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजाने वैसा करनेके लिये अर्थात् गंगाजीको धारण करनेके लिये प्रार्थना की और शिवजीने उसे स्वीकार कर लिया। स्वीकार करनेके बाद समस्त लोकोंके परम हितैषी श्रीशिवजीने भगवान् विष्णुके चरणसे पवित्र जलवाहिनी गङ्गाको सावधान होकर धारण किया ॥ ९ ॥ अनन्तर राजर्षि भगीरथ त्रैलोक्यपावनी श्रीगंगाजीको वहाँपर ले गये, जहाँपर साठ हजार पितर लोगोंके शरीर भस्म होकर पड़े थे ॥१०॥ वायुके समान वेगशाली

हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥ धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ॥ यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शटीव तन्तुषु ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥ कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥ ८ ॥ तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ॥ दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥ भागीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ॥ यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १० ॥ रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ॥ देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ॥ सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२ ॥ भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥ १३ ॥ न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ॥ अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥ सन्निवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः ॥ त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥ श्रुतो भागीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ॥ सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ॥ दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥

रथके ऊपर चढ़कर आगे-आगे राजा भगीरथ गये और पीछे-पीछे दौड़ती हुई तथा मार्गके सकल देशोंको पवित्र करती हुई श्रीगंगाजीने जाकर सगरके साठहजार पुत्रोंका उद्धार किया, जो निर्दग्ध हो चुके थे ॥११॥ शरीरके भस्मके साथ जिसके केवल जलके स्पर्शमात्रसे ब्राह्मणके अपमानसे भस्मीभूत भी सगरके पुत्र स्वर्गको प्राप्त हो गये ॥ १२ ॥ जब कि शरीरके भस्मके साथ केवल स्पर्श होनेपर सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये, तो फिर जो पवित्रात्मा श्रद्धासे नियमपूर्वक श्रीगंगाजीमें स्नान करेंगे, उनकी गतिके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥१३॥ यह जो श्रीगंगाजीका माहात्म्य हमने आपसे वर्णन किया है इसमें कोई आश्चर्य करनेकी बात नहीं है, क्योंकि जन्म-मरणरूप संसारका नाश करनेवाले श्रीहरिके चरणकमलसे ही गंगाजीका जन्म हुआ है ॥१४॥ जिन श्रीअनन्त भगवान्में अच्छी तरह श्रद्धापूर्वक अपने मनको स्थिर करके पापरहित चित्तवाले मुनिजन त्रिगुणात्मक विषयोंका, जिनका त्याग सहज नहीं है, त्यागकर भगवान्के सारूप्यको शीघ्र प्राप्त हो चुके हैं ॥१५॥ भगीरथके पुत्र श्रुत हुए, श्रुतसे नाभ और नाभसे सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ऋतुपर्ण हुए

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ १६ ॥ ऋतुपर्ण और नलमें परस्पर बड़ी मित्रता थी। इन्होंने नलको द्यूतविद्या सिखलाई थी और नलमे अश्वविद्या सीखी थी। इनके पुत्रका नाम सर्वकाम था ॥ १७ ॥ हे राजन्, सर्वकामसे सुदास और सुदाससे सौदास हुए। इनको स्त्रीका नाम मदयन्ती था, इन्हींको कहींपर कन्माषपाद तथा मित्रसह भी कहते हैं ये वसिष्ठजीके शापसे राक्षस हो गये थे तथा अपने कर्मद्वारा अनपत्य अर्थात् सन्तानहीन भी हो चुके थे ॥ १८ ॥ श्रीराजा परीक्षित् ने चकित होकर पूछा—हे भगवन्, सौदासको किसकारण उनके गुरुने शाप दिया, यदि यह छिपानेके लायक न हो, तो इसे आप कहिये, मेरी सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥१९॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक बार सौदास शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँपर इन्होंने दो राक्षसों को देखा, उनमें एक भाईको तो मार डाला और दूसरेको छोड़ दिया। वह राक्षस वहाँसे भाग गया, किन्तु तभीसे अपने भाईका बदला लेनेकी चिन्तामें रहता था ॥ २० ॥ इसप्रकार राजाका अनिष्ट सोच रहा वह राजाके भण्डारीका वेषधारण करके राजभवनमें रहने लगा एक दिन राजाने वसिष्ठजीको निमन्त्रण दिया, वसिष्ठजी महाराज भोजनके लिये पधारे। इधर

ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप ॥ आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ॥ वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥१८॥ राजोवाच ॥ किन्निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सौदासो मृगयां किञ्चिच्चरन् रक्षो जघान ह ॥ मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २० ॥ स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ॥ गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥ परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा ॥ राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥ रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ॥ सोऽप्यपोऽञ्जलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितो मदयन्त्याऽपो रुशतीः पादयोर्जहौ ॥ दिशः खमवनीं सर्वं पश्यन् जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥ राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ॥ व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥ २५ ॥ क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ॥ न भवान् राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥ मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ॥

इस राक्षसने उनके भोजनके लिये मनुष्यका मांस पकाकर तैयार किया ॥ २१ ॥ जब वसिष्ठजीके सामने वह भोजन परोसा गया, तब उस अभक्ष्य नरमांसको देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने राजाको शाप दे दिया – जा, तू राक्षसका कर्म करनेसे राक्षस होगा ॥२२॥ इसके बाद उन्हें जब यह मालूम हुआ कि यह सब राक्षसका कर्तव्य है, इसमें राजाका कोई दोष नहीं है, तब उन्होंने अपने शापकी अवधि बारहवर्षकी रख दी। सौदास भी हाथमें जल लेकर गुरुको शाप देनेके लिये तैयार हो गये ॥२३॥ किन्तु उन्हें उनकी स्त्रीने रोक दिया। राजाने दिशा, पृथिवी तथा आकाश सबको जीवमय अर्थात् जीवोंसे व्याप्त देखकर उस शापको जलको अपने पैरोंपर छोड़ दिया ॥२४॥ इस कारण इनके पैरोंमें काला चिह्न पड़ गया, इसीलिये इसका नाम कल्माषपाद पड़ा। राजा सौदासके राक्षस होनेमें तथा कल्माषपाद नाम पड़नेके हेतु हम बतला चुके अब सन्तानरहित होनेके हेतु बतलाते हैं—एक बार गुरुशापसे राक्षस होकर वनमें विचरणकर रहे राजा सौदासने एक वनवासी पक्षियोंका मिथुन देखा, वे दोनों पक्षी मैथुनमें लीन थे ॥२५॥ वास्तवमें वे दोनों पक्षी नहीं थे, किन्तु एक मुनि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और उनकी पत्नीने ही मैथुनके लिये पक्षीका रूप धारणकर लिया था। राजा सौदास बहुत भूखे थे, उन्होंने उस पक्षीरूप ब्राह्मणको पकड़ लिया। तब उसकी पत्नी बड़ी दीनतासे कहने लगी हेराजन्, आप वास्तवमें राक्षस नहीं हैं, किन्तु श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न महारथी सौदास हैं ॥२६॥ हेवीर, आप मदयन्तीके पति होकर तथा इक्ष्वाकुवंशमें जन्म लेकर इसप्रकार अधर्म करनेके योग्य नहीं हैं। मैं सन्तानकी कामनासे पतिकी सेवाकर रही थी, अभी मेरा तथा मेरे पतिका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ है, इसलिये मेरे पतिको आप दे दीजिये ॥२७॥ हे राजन्, यह मनुष्य शरीर चारों पदार्थोंको देनेवाला है, इसलिए हे वीर, जो इसका वध करता है, वह मानो उसके सभी पुरुषार्थोंका नाश करता है तथापि उसको महान् पाप लगता है ॥ २८॥ फिर यह ब्राह्मण तपशील और गुणोंसे युक्त है तथा समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित एवं मायाके गुणोंसे अप्रकाशित महापुरुष संज्ञावाले परब्रह्मकी आराधना करना चाहता है ॥ २९ ॥ इसलिये हे धर्मज्ञ प्रभो, जिसप्रकार पिताके द्वारा पुत्रका वध होना अनुचित है, उसीप्रकार राजर्षि आपके द्वारा इस ब्रह्मर्षिका वध होना अनुचित है ॥ ३० ॥ हे राजन्, आप

देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥ देहोऽयं मानुषो राजन् पुरुषस्याखिलार्थदः ॥ तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥२८॥ एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः ॥ आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥ सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ॥ कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ॥ कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ॥ न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥३२॥ एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ॥ व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥३३॥ ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ॥ शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ॥ तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥ एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ॥ तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥ विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथु-

सत्पुरुषों द्वारा माननीय होते हुए इस निर्दोष तथा श्रोत्रिय कर्मनिष्ठ वेदपाठी ब्राह्मणका वध किसप्रकार अच्छा समझ सकते है, क्योंकि वह तो कपिला गायके वधके तुल्यही पापजनक है ॥ ३१ ॥ यदि आपको इसे खा जाना ही निश्चय है, तो पहले मुझे खा लिजिये, क्योंकि मैं इसके बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकूँगी, इसलिये मृतकतुल्य मुझे ही पहले स्वीकार कीजिये ॥३२॥ इसप्रकार करुणायुक्त वचन कह रही तथा विलापकर रही ब्राह्मणीके वचनोंपर ध्यान न देकर वसिष्ठके शापसे मोहित होकर उस ब्राह्मणको सौदास इसप्रकार खा गया जिसप्रकार व्याघ्र पशुको खा जाता है ॥३३॥ इसप्रकार राक्षसके द्वारा खाये गये अपने पतिको देखकर अपने अदृष्टको शोचकर रही वह ब्राह्मणी भी राजा सौदासके प्रति कुपित होकर शापयुक्त वचन बोलने लगी ॥३४॥ हे पापी, मैं कामसे पीड़ित हो रति क्रीड़ाकर रही थी, ऐसे समय चूँकि मेरे पतिको तूने भक्षणकर लिया है, इसलिये मैं शाप देती हूँ कि तूँ भी जब गर्भाधान करनेके लिये अपनी स्त्रीके पास जायगा, तव ही विवेकशून्य, उसी क्षण तेरी भी मृत्यु हो जायगी ॥३५॥ इसप्रकार मित्रसहको शाप देकर पतिलोक परायण वह ब्राह्मणी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी देदीप्यमान अग्निमें अपने पतिकी हड्डियोंको रखकर तथा स्वयं भी उसीमें प्रविष्ट होकर अपने पतिके धामको प्राप्त हो गई ॥३६॥ जब बारह वर्षके बाद सौदासका शाप दूर हो गया, तब वे मैथुनके लिये स्त्रीके पास गये, किन्तु उनकी स्त्रीने ब्राह्मणीके शापका स्मरण करके उन्हें उस कर्ममें प्रवृत्ति होने नहीं दिया ॥३७॥ इसके बाद तभीसे उन्होंने स्त्री-सुखका त्यागकर दिया। इसी अपने कर्मके द्वारा वे सन्तानहीन रहे, किन्तु कुछ दिनके बाद राजाकी आज्ञासे वसिष्ठजीने रानी मदयन्तीमें गर्भाधान किया ॥ ३८ ॥ उस गर्भको सात वर्षतक मदयन्तीने धारण किया अर्थात् सात वर्षतक वह गर्भ जब बाहर नहीं निकला, तब वसिष्ठजीने पाषाण द्वारा प्रहार किया। तदनन्दर वह गर्भ बाहर निकला, इसीसे उस गर्भजन्यपुत्रका नाम अश्मक हुआ ॥ ३९ ॥ अश्मकके पुत्र मूलक हुए, इनकी स्त्रियोंने वस्त्रमें लपेटकर पृथिवीके निःक्षत्रकर्ता परशुरामसे रक्षाकी थी, इससे इनका नाम नारीकवच हुआ तथा क्षत्रियहीन पृथिवीपर क्षत्रियोंके मूल होनेके कारण ये मूलक कहलाए ॥४०॥ मूलकसे दशरथ, दशरथसे ऐडविड, ऐडविडसे राजा विश्वासह और विश्वसहके पुत्र चक्रवर्ती राजा खट्वाङ्ग हुए ॥४१॥ महाराज

नाय समुद्यतः ॥ विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥ तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ॥ वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥ सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत ॥ जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ॥ नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडस्ततः ॥ राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥४१॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ॥ मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं सन्दधे मनः ॥४२॥ न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ॥ न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥ न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ॥ न पश्यामुत्तमश्लोकादन्यत्किञ्चन वस्त्वहम् ॥ ४४ ॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ॥ न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥ ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ॥ न विदन्ति न प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥ अथेशमायारचितेषु सङ्ग गुणेषु गन्धर्वपु-

खट्वाङ्गको युद्धमें कोई जीत नहीं सकता था, वे बड़े वीर थे, इसलिये एक बार जब देव-दानव युद्ध हुआ, तब देवताओंने सहायनके लिये खट्वाङ्गसे प्रार्थना की। खट्वाङ्गने उसे स्वीकारकर युद्धमें दैत्योंका संहारकर डाला। तदनन्तर देवताओंने प्रसन्न होकर इनसे वर मांगनेका अनुरोध किया। इन्होंने कहा—पहले हमारी आयु बतलाओ कितनी बाकी है? तब देवताओं द्वारा मुहूर्तमात्र अपनी आयु जानकर देव विमानसे शीघ्र अपने नगरमें आकर अपने मनको ईश्वरमें हो लगा दिया ॥४२॥ राजा खट्वाङ्गका यह कथन था कि मेरे कुलके इष्टदेव ब्राह्मण हैं। इनसे बढ़कर प्रिय मुझे अपने प्राण, पुत्र, लक्ष्मी, पृथिवी, राज्य, स्त्री कुछ भी नहीं है ॥४३॥ बाल्यकालमें भी मेरी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं प्रवृत्त हुई तथा भगवान् वसुदेवके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु संसारमें मुझे दृष्टिगोचर नहीं होती ॥४४॥ यद्यपि तीनों लोकोंके ईश्वर देवताओंने मुझे यथेष्ट वर मांगनेको कहा है, तथापि मेरा भगवान्से प्रेम हो गया है, इसलिये मैं वरदान नहीं चाहता ॥४५॥ इन्द्रियोंके वशीभूत जो देवगण हैं वे भी अपने हृदयमें स्थित ईश्वरको नहीं देख पाते और न उस प्रिय आत्माको जान ही पाते हैं, तो फिर और साधारण प्राणियोंकी तो बातही क्या है ॥४६॥ ईश्वरकी मायासे रचित अतएव गन्धर्व नगरके सदृश मिथ्या इन गुणोंमें स्वभावसिद्ध मनकी आसक्तिका भगवद्भावनाके द्वारा त्याग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करके उन्हीं ईश्वरकी शरणमें हम प्राप्त हो चुके हैं ॥ ४६ ॥ इसप्रकार भगवान्में लगी हुई बुद्धिद्वारा ऐसा निश्चय करके राजान देहादि अभिमानरूप अज्ञानका त्यागकर दिया और अपने स्वरूपमें स्थित हो गया ॥ ४७ ॥ हे राजन, अतिसूक्ष्म होनेके कारण अशून्य भी परब्रह्म शून्यवत् कल्पित है, जिसको भक्तजन वासुदेव नामसे पुकारते हैं ॥ ४९ ॥

रोपमेषु ॥ रूढं प्रकृत्यात्मनि विश्वकर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ॥ हित्वाऽन्यभवमज्ञानं ततस्स्वं भावमाश्रितः ॥४८॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ॥ भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नवम अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपने पितरोंके उद्धारके लिए अंशुमान्ने चिरकाल तक तप किया, किन्तु अभीष्टकी सिद्धि होनेके पहले ही अपना शरीर छोड़ दिया। उसके बाद उनके पुत्र राजा दिलीपने भी वैसा ही तप किया, किन्तु उनका भी मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ। तत्पश्चात् अंशुमान्के पौत्र भगीरथने अपनी घोर तपस्यासे गङ्गाजीका दर्शन दिया। राजा भगीरथ आगे आगे चलते हुए गङ्गाजीको उस स्थानपर ले गये। जहाँ पर उनके पितरोंके भस्मीभूत शरीर पड़े थे। गङ्गाजीने वहाँ जाकर सबका उद्धार किया। भगीरथके नवम पीढ़ीमें उत्पन्न राजा सौदास एक बार शिकार खेलने जंगलमें गये। वहाँ इन्हें दो राक्षस मिले, उन दोनोंमें सौदासने एकको मार डाला। बदला लेने की इच्छासे सौदाके याचकका भेष धारण कर दूसरा रहने लगा। एक दिन भोजन करनेके लिये बैठे हुए वसिष्ठजीके आगे नरमांस लाकर उसने रख दिया। उसे देखते ही मुनिको क्रोध आ गया। झट उन्होंने सौदासको शाप दे दिया कि जाओ तुमने राक्षसका काम किया है, इसलिए राक्षस हो जावो। यह सुनकर अपने गुरुको शाप देनेके लिए उद्यत सौदासको उनकी पत्नी मदयन्तीने रोक दिया। तब सारे संसारको संहार करनेवाले उस जलको राजाने अपने पैरोंके बीचमें छोड़ दिया। इसीसे उनका मित्रसह और कल्माषपाद भी नाम पड़ा। वसिष्ठके शापसे राक्षस बनकर बारह वर्ष तक जंगलमें घूम रहे सौदासको रतिमें आसक्त पक्षीरूप धारी एक ब्राह्मणका वध करनेसे उसकी पत्नीने शाप दे दिया—जाओ, तुम्हारी भी मृत्यु रति करते समय ही हो जायगी। बारह वर्षके बाद रति करनेनेके लिए पहुँचे हुए राजाको उनकी स्त्रीने निषेध कर दिया। राजाकी प्रार्थनापर इनके गुरुने इनकी भार्यामें एक पुत्र उत्पन्न होगा जिसका नाम अश्मक पड़ा। अश्मकके छठी पीढ़ीमें राजा खट्वाङ्ग हुए। इन्होंने इन्द्रकी प्रार्थनापर देवासुर संग्राममें असुरोंको मार भगाया। उसके एक मुहूर्त अपनी बची आयु जानकर शीघ्रही घर आकरके भगवान् वासुदेवमें अपने चित्तको लीनकर कैवल्य धामको प्राप्त हो गये। नवम अध्याय समाप्त❀

❀ अथ दशमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥ अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥ तस्यापि भगवानेष साक्षाद-

❀ राजा खट्वाङ्गके वंशमें उत्पन्न हुए श्रीरामचन्द्रजीके—लङ्काधिपति रावणको मारकर अयोध्यामें आगमन तक—चरित्रका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, इसके बाद महाराज खट्वाङ्गसे दीर्घबाहु, दीर्घबाहुके पुत्र महायशस्वी रघु, रघुके पुत्र अज और अजके पुत्र राजा दशरथ हुए ॥१॥ साक्षात् ब्रह्ममय हरिने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवताओंकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त होकर राजा दशरथके घर जन्म लिया। उन भगवान् सीतापतिके चरित्रका तत्त्वदर्शी वल्मीकि आदि मुनियोंने बहुत वर्णन किया है और आपने बार-बार सुना भी है, तथापि मैं संक्षेपतः वर्णन करता हूँ, आप ध्यान देकर सुनिये ॥ २, ३, जिस भगवान् रामने अपने पिताके सत्यकी रक्षाके लिये राज्यका त्यागकर अति सुकुमार सीताके करकमल स्पर्शको भी न सह सकने योग्य चरणकमलोंसे वन-वनमें विचरण किया कपीन्द्र, हनुमान और लक्ष्मणजी जिनके मार्गश्रमको चरण दबाकर दूर किया करते थे एवं शूर्पणखाको विरूप करनेसे जब रावणने सीताको हर लिया, तब प्रियाके वियोगसे उत्पन्न हुए कोपसे कुटिल भ्रुकुटियुक्त जिन्हें देखकर सागरके भयाकुल होनेपर उस अगाध समुद्रमें सेतु बाँधकर दुष्ट रावण आदि रूपी वनको जलानेके लिये जो पावक बन गये, वे ही कौशलेन्द्र भगवान् हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ हे राजन् जिन भगवान् रामने विश्वामित्रके यज्ञमें लक्ष्मणके देखते ही देखते मारीचादि बड़े बड़े राक्षसको मार डाला ॥ ५ ॥ जिन भगवान् रामचन्द्रने सीताके स्वयम्वरमण्डपमें इकट्ठे हुए विश्व-

ब्रह्ममयो हरिः ॥ अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ २ ॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्व-
दर्शिभिः ॥ श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥ गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजित-
पथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ॥ वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोषितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥
विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ॥ पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवर-
गृहे त्रिशतोपनीतम् ॥ आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ ६ ॥ जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां सीता-
भिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ॥ मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिराजबीजाम् ॥ ७ ॥ यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ॥ राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः ॥ ८ ॥ रक्षस्स्वसुर्व्यकृत रूपम-

विख्यात वीरोंकी बीच सभामें तीन सौ वीरोंद्वारा स्वयम्वरशालामें लाये गये भयंकर शिवजीके धनुषको लीलापूर्वक हाथमें लेकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा करके उसे खींचते हुए बीचसे ऐसे तोड़ दिया, जैसे बालगज ईख दण्डीको तोड़ देता है ॥ ६ ॥ पहले विष्णुरूपमें अपने वक्षःस्थलमें जिने लक्ष्मीको भगवान्ने स्थान देकर सम्मानित किया था, वही इस समय अपने समान शीलरूप, गुण, अवस्था, अङ्ग सौन्दर्यशालिनी सीतारूपमें अवतरित हुई हैं। ऐसी सीताको स्वयम्वरमें जीतकर जब भगवान् अयोध्याको जाने लगे, तब मार्गमें इक्कीसबार पृथिवी को क्षत्रियोंसे शून्य करने वाले परशुरामजीसे उन्हें मुलाकात हुई और परशुरामजीके बढ़े हुए अहङ्कारको उन्होंने क्षणभरमें दूरकर दिया ॥ ७ ॥ तथा जिन भगवान् रामने सत्यरूपी पाशमें बँधे हुए स्त्रीलम्पट होते हुए भी अपने पिताके आदेशको स्वीकार करके राज्य, राज्य, लक्ष्मी, प्रियबन्धु वर्ग तथा निवासस्थानका भी—जो उन्हें प्राणोंसे भी प्रिय थे, त्यागकर भार्यासहित वनको प्रस्थान किया ॥ ८ ॥ और दण्डकारण्यमें पापबुद्धिसे आई हुई रावणकी बहिन शूर्पणखाको जिन्होंने विरूप कर दिया। जब खरदूषण त्रिशिरा इत्यादि उसके मुख्य भाईयोंको इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खबर लगी, तब वे चौदह हजार सेना लेकर वहाँ गये, किन्तु किसीसे भी पार न पाए जानेवालेको दण्ड [धनुषको] हाथमें लेकर भगवान् रामने सबका संहार करके कुछ दिन कष्टपूर्वक वहाँ विचरते हुए निवास किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर रावणने शूर्पणखाके द्वारा जब सीताकी सुन्दरता सुनी, तब उसका काम जाग उठा। उसने सीताको हरनेकी इच्छासे मारीचको भेजा। मारीचने सुन्दर स्वर्णमय मृगरूप धारण किया और वह अपने कलाकौशलसे रामको आश्रमसे दूर ले गया। रामने मृगको देखकर कुछ दूर जाकर एक बाणसे इसप्रकार मारा, जिस प्रकार पूर्वकालमें रुद्रने दक्षको मारा था ॥ १० ॥ इधर रामके आश्रमसे दूर चले जानेपर रावणने परोक्षमें भेड़ियेकी तरह सीताका हरणकर लिया। तब सीतावियोगी रामचन्द्रजी भाईके सहित वनमें मनुष्योंकी तरह, स्त्रियोंसे प्रेम करनेवालेको ऐसाही कष्ट मिलता है, संसारको यह शिक्षा देते हुए, विलाप करने लगे ॥ ११ ॥ इसकेबाद सीताको खोजते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अपने स्वार्थके लिये रावणके द्वारा युद्धमें मारे गये जटायुके दाहादि शास्त्रीय संस्कारोंको ऐसे किया, जैसे पुत्र पिताके संस्कारोंको करता है। इसके बाद वहींपर आते हुए कबन्ध राक्षसको

शुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ॥ जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥ सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ॥ जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाश्रमतोपकृष्टो मारीचमाशुविशिखेन यथा कमुग्रः ॥ १० ॥ रक्षोधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥ भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥ दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ॥ बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यैर्वेलामगात्समनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥ यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ॥ सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥ न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ॥ यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीरपत्नीम् ॥ बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायन्ति दिग्विजयिनो

मारा। तदनन्तर सुग्रीवादि वानरोंसे मित्रता प्राप्तकर उनके द्वारा सीताकी खबर पाकर तथा बलिको मारकर ब्रह्मा एवं शंकरसे पूजनीय चरणवाले मनुवंशमें उत्पन्न भगवान् रामचन्द्रजी वानरी सेनाको साथ लेकर समुद्रके तटपर आ पहुँचे ॥ १२ ॥ भगवान्ने तीन दिनतक समुद्रकी प्रतीक्षा की, किन्तु जब वह नहीं उपस्थित हुआ, तब भगवान्को क्रोध आगया जब क्रोधलीलासे कुटिल कटाक्ष दृष्टिपात समुद्रके ऊपर किया, तब समुद्रमें रहनेवाले नक्र मकरादि सभी जीव त्रस्त हो गये तथा भयके मारे समुद्रका शब्द बन्द हो गया। मूर्तिमान् वह एक थालमें बहुतसी पूजा सामग्री लेकर हाथ जोड़े हुए भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करके यह कहने लगा ॥ १३ ॥ हे भगवन्, आप आदि पुरुष हैं, व्यापक हैं तथा कूटस्थ हैं। आप जगतके स्वामी हैं, ऐसे आपको हम मूढ़ बुद्धिवाले प्राणी किस प्रकार जान सकते हैं। हे प्रभो, आप तीनों गुणोंके स्वामी हैं, आपके सत्त्वगुणसे देवगण, रजोगुणसे प्रजापतिगण तथा तमोगुणसे भूपतिगण यक्ष राक्षसोंकी सृष्टि होती है ॥ १४ ॥ हे भगवन्, आपको जिसप्रकार इच्छा हो उसीप्रकार लंकाको जाइये और वहाँ जाकर विश्रवामुनिके विष्ठातुल्य त्रैलोक्य कष्टदाता रावणको शीघ्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मारिये। हे वीर, सीताको जाकर रावणसे छुड़ा लाइये और मुझमें सेतु बाँध डालिये, इससे आपकी बड़ी कीर्ति होगी। आपके सेतुको देखकर दिग्विजयी राजालोग आपके यशका गान करेंगे ॥१५॥ हे राजन्, समुद्रके इसप्रकार वचन सुनकर भगवान् रामचन्द्र ने वानरोंके द्वारा लाये गये तथा अनेक वृक्षोंसे युक्त विविध पर्वत शिखरोंसे उसपर सेतु बाँध दिया इसके बाद विभीषणकी सम्मतिसे सुग्रीव नल-नील, हनुमान् आदि मुख्य सेनापतियोंसहित सीताकी खोजमें पहले जाकर हनुमान् द्वारा जलाई गई लंकामें प्रवेश किया ॥१६॥ वानरी सेनाने लंकाको चारो ओरसे घेर लिया और लंकाके विहार भवनों, धान्य आदि रखनेकी कोठियों, कोषालयों, पुरद्वारों, सभाभवनों, प्रसादोंके अगले बरामदों तथा कबूतरोंके निवास स्थानोंपर वानरोंने आक्रमण कर दिया। विमान, ध्वजाएँ, वेदिकाएँ और सुन्दर-सुन्दर सुवर्ण निर्मित कलश तथा चौराहे सब तोड़-फोड़ डाले। तब लंका ऐसे काँपने लगी, जैसे हाथीके घुसनेसे नदी उछली है ॥ १७ ॥ जब राक्षसपति रावणने लंकाका यह दुर्दशा देखी, तब उसने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक आदि राक्षसोंको, अपने पुत्र प्रहस्तको, अनेक अतिकाय

यमुपेत्य भूपाः ॥ १५ ॥ बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ॥ सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लङ्कां विभीषणदृ-
शाऽविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥ सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ॥ निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृङ्गाटका गजकुले-
र्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७ ॥ रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भधूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ॥ पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्सर्वानुगा-
न्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८ ॥ तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमादनीलाङ्गद-
र्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९ ॥ तेऽनीकपा रघुपतेरधिपत्य सर्वे द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ॥ जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः सीता-
भिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् ॥ २० ॥ रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ॥ स्वःस्यन्दने द्युमति मातलिनो-
पनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥ रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः कान्ताऽसमक्षमसताऽपहृता श्ववत्ते ॥ त्यक्तत्रपस्य फलमद्य

विकम्पनादि अपने सब अनुकूल सेनापतियोंको तथा अपने छोटे भाई कुम्भकर्णको भी भेजा ॥ १८ ॥ तब भगवान् रामचन्द्रने खड्ग, शूल, चाप, प्रास, ऋष्टि शक्ति, बाण, तोमर तलवार आदि शस्त्रोंसे भयावह उस राक्षसी सेनाका मुकाबला सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान, गन्धमाद, नील, अंगद, जाम्बवान्, पनस आदि वानरो सेनाने अन्वित होकर किया ॥ १९ ॥ हे राजन्, रघुनाथजीके अङ्गद आदि सभी सेनापतियोंने युद्ध करनेके लिए आगे बढ़कर सीताहरण करनेसे ही नष्ट हुए मंगलवाले उस रावणकी हाथियों, घोड़ों तथा रथोंसे युक्त एवं पैदल सेनाके ऊपर वृक्ष, पर्वत गदा, बाण आदिसे प्रहार करना आरम्भ कर दिया ॥२०॥ राक्षसेन्द्र वह रावण अपनी सेनाको इसप्रकार नष्ट होते देखकर क्रोधित होते हुए एक सुन्दर विमानपर चढ़कर भगवान् रामचन्द्रकी ओर झपटा तथा इन्द्रके सारथि मातलिद्वारा लाये गये दिव्यरथपर बैठे हुए भगवान् रामचन्द्रके ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण छुरों, बाणोंसे प्रहार करने लगा ॥२१॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे राक्षसकी विष्ठाके तुल्य रावण, तूँने जो दुष्टता पूर्वक हमारे परोक्षमें हमारी पत्नीका ऐसे हरण किया हैं, जसे कुत्ता शून्यगृहसे अन्नादिका हरण करता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे निर्लज्ज, इस निन्दनीय कर्मका फल मैं तुझे इसप्रकार शीघ्र देता हूँ, जिस प्रकार अधर्म करनेवाले पापी मनुष्यको काल शीघ्र फल देता है। हे दुष्ट, मैं अलङ्घ्य वीर्य हूँ ॥२२॥ इस प्रकार रावणको डाँटकर श्रीरामचन्द्रजीने धनुषपर चढ़ाया हुआ बाण रावणके ऊपर छोड़ दिया। वह बाण जाकर रावणके हृदयमें प्रवेशकर गया वज्रके तुल्य उसके लगनेसे रावण दशों मुखोंसे खून वमन करते हुए रथसे ऐसे गिर पड़ा, जैसे पुण्यात्मा प्राणी पुण्यके क्षीण होनेपर स्वर्गसे गिर पड़ता है। तब उसकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥२३॥ इस खबरको सुनकर मन्दोदरीके साथ सैकड़ों राक्षस पत्नियाँ लंकासे निकलकर रोती हुई उस युद्धभूमिमें आ पहुँची ॥ २४ ॥ और लक्ष्मणजीके बाणोंसे मारे गये अपने-अपने बन्धुओंसे लिपट-लिपटकर अपने ही हाथोंसे अपनी छाती और सिर पीटती हुई बड़े दीनस्वरसे वहाँ विलाप करने लगी ॥ २५ ॥ हे नाथ, हाय, आपके मरनेसे हमलोग भी मर चुकीं। हे लोकोंको रुलानेवाले रावण,

जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवं क्षिपन्धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज बाणं सवज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ॥ सोऽसृग्वमन्द-शमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धातेति जल्पति जने सुकृतीवरिक्तः ॥ २३ ॥ ततो निष्क्रम्य लङ्काया यातुधान्यः सहस्रशः ॥ मन्दोदर्या समं तस्मिन्प्ररु-दत्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥ स्वान्स्वान्बन्धून्परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ॥ रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥ २५ ॥ हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ॥ कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६ ॥ नैवं वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः ॥ तेजोनु-भावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥ कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन ॥ देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वानां विभीषणश्चक्रे कोशलेन्द्रानुमोदितः ॥ पितृमेधविधानेन यदुक्तं सांपरायिकम् ॥ २९ ॥ ततो ददर्श भगवानशोकवनि-काश्रमे ॥ क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ॥ आत्मसन्दर्शनाह्लादविकस-न्मुखपङ्कजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ॥ विभीषणाय भगवान्दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लङ्कामायुश्च कल्पान्तं

शत्रुओंसे पीड़ित लंका तुमसे वियुक्त होकर अब किसकी शरणमें जाय ॥ २६ ॥ हे महाभाग, तुमने कामके वशीभूत होकर सीताके प्रभावको नहीं जाना, इसीसे तुम इस दशाको प्राप्त हुए हो ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन, यह लंका विधवा बना दी गई और हम सब भी विधवा हो गईं। यह देह गीधोंके भोजनके लिये अन्न हो गई और यह आत्मा भी अब तैयार हो गई नरकका भोग करनेके लिये ॥ २८ ॥ इसके बाद श्रीशुकदेवजीने कहा— हे राजन्, विभीषण भगवान्के आज्ञानुसार अपने कुटुम्बियोंका प्रेतविधानके अनुसार दाहादि और्ध्वदेहिक संस्कार किया। ॥२९॥ तदनन्तर भगवान् श्री रामचन्द्रजीने अशोकवाटिकामें एक अशोक वृक्षके नीचे बैठी हुई अपने स्वामीके विरहसे व्याकुल अतएव अत्यन्त क्षीण अङ्गवाली अपनी प्रियतमा भार्याको देखा ॥ ३० ॥ अशोक वाटिकामें अति दीन अपनी प्रियतमा भार्याको देखकर श्रीरामचन्द्रजीको दया आई-वे उनकी दशा देखकर काँप गये तथा श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनसे उत्पन्न आनन्दसे श्रीसीताजीका मुखकमल खिल गया ॥३१॥ तब भगवान् श्री रामचन्द्रजी लंकाका राज विभीषणको देकर तथा श्रीसीताजीको पुष्पक विमानपर बैठाकर हनुमान और लक्ष्मणके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सहित स्वयं भी आरूढ़ हो गये ॥ ३२ ॥ लङ्काका राज्य और कल्पकी आयु विभीषणको देकर तथा चौदहवर्षके व्रतको पूर्ण करके श्रीरामने अयोध्यापुरीको प्रस्थान किया। मार्गमें उनके ऊपर लोकपालोंने खूब पुष्पकी वृष्टिकी ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा तथा शंकर आदिके द्वारा स्तुत हुए भगवान् रामचन्द्रजीने मार्गमें यह सुना कि हमारे लिये भरतजो बड़ा कष्ट सह रहे हैं। गोमूत्रमें यवको पकाकर भोजन करते हैं, वल्कल वस्त्रही धारण करते हैं और जटा बढ़ाये हुए स्थण्डिलके ऊपर शयन करते हैं। यह समाचार पाकर परमदयालु रामजीको बड़ा सन्ताप हुआ। जब भरतजीको भगवान्का आगमन विदित हुआ, तब वे पुरोहित तथा मन्त्रियोंके सहित भगवान्की चरणपादुकाको सिरपर धारण करके एवं गीत और नानाप्रकारके बाजों-को लेकर अपने शिविर नन्दीग्रामसे श्रीरामजीको आगे बढ़कर लाने चले ॥ ३४-३६ ॥ मार्गमें भरतजीके साथ वेदपाठी ब्राह्मण वेदध्वनिकर रहे थे। सुवर्णको पताकाओंसे

ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३३ ॥ उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥३४॥ महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥ ३५ ॥ पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥ नन्दिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजैः ॥ ३७ ॥ सदश्वैः रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ ३८ ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥ पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ ३९ ॥ पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ॥ तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ ४० ॥ रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ॥ तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ ४१ ॥ धुन्वन्त उत्तरासङ्गान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥ उत्तराः कोशला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ ४२ ॥ पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ॥ विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतछत्रं मरुत्सुतः ॥ ४३ ॥ धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् ॥ अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण्नृप ॥ ४४ ॥ पुष्पक-

शोभायमान स्वर्ण जटित चित्र-विचित्र सुन्दर-सुन्दर अश्वोंसे युक्त सुवर्ण परिच्छद सम्पन्न रथ और सुवर्णमय कवच धारण किये योद्धाओं समान व्यवसायियोंकी मण्डलियों वेश्याओं तथा बहुतसे पैदल चलनेवाले सेवकोंके साथ भरतजी चले। महात्मा भरत राजाओंके योग्य छत्र, चमर और बहुमूल्य अनेक प्रकारके रत्नादि भेंट देनेके लिये लेकर चले। श्रीरामचन्द्र-जोसे भेंट होतेही उन सब राजचिह्नोंको अर्पित करके भरतजी बड़े भाईके पैरोंपर गिराकर प्रणाम किया। प्रेमके आँसुओंसे भरतजीके नेत्र भर आए, उनका हृदय गद्गद हो गया, उन्होंने हाथ जोड़कर रामजीकी दोनों पादुकाएँ सामने रख दीं, फिर नेत्र-जलोंसे भगवान्को आर्द करते हुए बहुत देरतक दोनों भुजाओंसे हृदयमें लगाये रहे ॥ ३७-४० ॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मणके सहित ब्राह्मणोंको तथा दूसरे पूजनीय बड़े लोगोंको नमस्कार किया एवं प्रजाओंने भी भगवान्का अभिवादन किया ॥ ४१ ॥ उत्तर कोशल-देशवासी प्रजाएँ चौदह वर्षके उपरान्त आये हुए अपने स्वामीको देखकर आनन्दके मारे अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रको कँपाती हुई तथा भगवान्के ऊपर पुष्पवृष्टि करती हुई खूब नृत्य करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगीं ॥४२॥ श्रीभरतजीने भगवान्‌की चरणपादुका ग्रहण की तथा उत्तम चामर-व्यजन विभीषण और सुग्रीवने ग्रहण किये एवं धवलछत्रको श्रीअञ्जनीलालने धारण किया ॥ ४३ ॥ हे नृप, श्री शत्रुघ्नजीने धनुष और निषङ्गोंको ग्रहण किया और श्रीसीताजीने पवित्र कमण्डलुको ले लिया। श्रीअंगदजीने भगवान्‌के खड्गको और श्रीजाम्बवान्‌जीने स्वर्णमय चर्मको ग्रहण किया ॥ ४४ ॥ हे राजन, भगवान् पुष्पक यानपर बैठे थे और उनके चारों ओर स्त्रियाँ खड़ी थीं। नन्दीजन स्तुतिकर रहे थे। उस समय उन सबके बीचमें भगवान्‌की ऐसी शोभा हुई जैसी ग्रहोंके मध्यमें उदित चन्द्रमाकी शोभा होती है ॥ ४५ ॥ तदनन्तर भाईयों द्वारा अभिनन्दित रामचन्द्रजीने उत्सवपूर्ण राजपुरीमें प्रवेश किया। राजभवनमें प्रवेश करके अपनेसे बड़े छोटे और वयस्थ लोगों द्वारा पूजित तथा अभिनन्दित होते हुए रामचन्द्रजीने गुरु माताओं (कैकेयी आदिकों) एवं अपनी माता कौशल्याको बड़ी श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। इसीप्रकार लक्ष्मण और सीताने भी यथोचित सबका अभिवादन किया ॥ ४६, ४७ ॥ प्राणके आ जानेपर जैसे शरीर उठ खड़ा हो जाता है वैसेही अपने-अपने पुत्रोंको देखकर उनकी माताएँ सहसा

स्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ॥ विरेजे भगवान् राजन्ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥४५॥ भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्रविशत्पुरीम् ॥ प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ ४६ ॥ गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥ वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ ४७ ॥ पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ॥ आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४८ ॥ जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥ ४९ ॥ एवं कृतशिरस्स्नानः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृतः ॥ स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ५० ॥ अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ ५१ ॥ त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ ५२ ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ॥ सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥ ५३ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥ मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधो-

उठ खड़ी हुईं एवं अपने-अपने पुत्रको गोदमें लेकर आँसुओंके जलके वेगसे स्नान कराती हुई अपने हृदयका शोक उन्होंने त्याग दिया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर श्री वसिष्ठजीने कुलवृद्धोंकी सम्मतिसे भगवान् रामकी जटाएँ खोलकर, जैसे देवगण बृहस्पतिके सहित इन्द्रका अभिषेक करते हैं वैसे ही, चारों समुद्रके जल तथा अन्यान्य सामग्री मँगाकर रामका विधिवत् अभिषेक किया ॥ ४९ ॥ इसप्रकार सीता और लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजीने सिरसे स्नान करके सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा सुन्दर-सुन्दर मालाएँ धारण कीं। उसीप्रकार लक्ष्मणादि भाइयोंने और श्री जानकीजीने भी नाना प्रकारके वस्त्र तथा अलंकार धारण किये। तब भगवान् अपने भाइयों और भार्याके सहित अपूर्व शोभाको प्राप्त हो गये ॥ ५० ॥ भरतजीने प्रणाम करके रामजीको प्रसन्न किया। तदन्तर श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीके अनुरोधसे राज्यासन ग्रहण किया। रामचन्द्रजीके राजा होनेपर उन्होंने स्वधर्म परायण तथा वर्णाश्रमके गुणोंसे युक्त प्रजाका पुत्रवत् पालन किया तथा प्रजाएँ भी उनको अपना पिता मानती थीं ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजीके राज्यमें प्रजाको सब प्रकारका आनन्द था। त्रेतायुगके वर्तमान रहते भी सत्ययुगके समान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

काल हो गया था ॥ ५२ ॥ हे भरतर्षभ, वन, नदी, पर्वत, वर्ष, द्वीप समुद्र ये सब प्रजाओंको कामधेनुकी भाँति फल देते थे ॥ ५३ ॥ हे राजन्, अधोक्षज रामके राजा होनेपर प्रजाको आधि-व्याधि, जरा, ग्लानि, दुःख, शोक, भय क्लेश नहीं व्यापते थे। तथा बिना इच्छाके किसीकी मृत्यु नहीं होती थी ॥ ५४॥ श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और एक पत्नी व्रतधारी होकर राजर्षियोंकी तरह आचरणकरते थे तथा सबको गृहस्थधर्मकी शिक्षा देनेके लिये स्वयं उसका आचरण करते थे ॥ ५५ ॥ अपने पतिके भावको जाननेवाली सीता भी प्रेम, अनुकूलता, शील विनय, लज्जा इत्यादि सद्गुणोंके द्वारा अपने पतिके मनको अपनी ओर आकृष्ट करती हुई उन्हें प्रसन्न रखती थी ॥ ५६ ॥

त्तजे ॥ ५४ ॥ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥ स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरन्॥ ॥ ५५ ॥ प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरामचरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, राजा खट्वाङ्गकी पाँचवीं पीढ़ीमें राजा दशरथ हुए। देवताओंकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न-इन चार अंशोंसे साक्षात् भगवान् विष्णु ही उनके घर जन्म लिए। भगवान् रामचन्द्रजी अपने पिताके सत्यकी रक्षाके लिए चौदह वर्षके लिए जङ्गलमें चले गये। उनके साथ सीताजी और लक्ष्मण भी हो लिए। शूर्पणखाको विरूप बना देनेके बाद रावणने सीताको हर लिला। श्रीरामचन्द्रजी समुद्रमें सेतु बाँधकर वानरोंकी सेनाके साथ लंकामें पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही अङ्गद आदि इनको बड़े-बड़े सेनापतियोंने लंकाको नहस नहस करना आरम्भ कर दिया। लंकाकी दुर्दशा देखकर रावणने कुम्भकर्ण आदि बड़े-बड़े वीरोंको इनकी वानरी सेनाका सामना करनेके लिए भेजा। रामचन्द्रजीकी सेनाने उन सब राक्षसोंको नष्ट कर दिया। अपनी सारी सेनाको नष्ट हुए देख अन्तमें रावण आया। आते ही अपने पैने वाणोंसे भगवान्के ऊपर आक्रमण कर दिया। अरे दुष्ट, अब तूँ अपनी काली करतूतोंका फल चख, यों कहते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अपना बाण उसके ऊपर छोड़ दिया। वह बाण उसके हृदयमें प्रवेश कर गया। रावण मूर्च्छित होकर रथसे गिर पड़ा। और उसके प्राण शीघ्र चले गये। तदनन्तर लंकाका राज्य विभीषणको देकर सीताजीको साथ लेकर अयोध्याको प्रस्थान किया। भगवान् आ रहे हैं, यह सुनकर भरतजी बहुत-सी सेना तथा अन्यान्य सेवकोंके साथ भगवानकी अगवानी करनेके लिए नन्दीग्रामसे आगे आये। भरतजी अपने नेत्र जलोंसे भगवानको आर्द्र करते हुए बहुत देर तक अपनी भुजाओंसे हृदयमें लगाये रहे। तदनन्तर वहाँसे सबके सब अयोध्यामें आ गये। वसिष्ठजीने रामका राज्याभिषेक किया। राजा होनेपर रामने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार अपनी प्रजाका पालन किया। उनके राज्यमें प्रजाएँ सन्तुष्ट थीं। किसीको कोई कष्ट नहीं था। उनकी धर्मपत्नी सीताजी उनके मनके मुताबिक आचरण करती थीं। दसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथैकादशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद्दिशं प्राचीं ब्रह्मण

॥ भाइयोंके साथ अयोध्यामें रहकर श्रीरामचन्द्रजीका यज्ञ करना—यह वर्णन ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, श्रीरामचन्द्रजीने वसिष्ठजीको आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रीसे सम्पन्न यज्ञोंद्वारा सर्वदेव अपना ही अपनेसे यजन किया ॥ १ ॥ यज्ञकी दक्षिणामें उन्होंने

॥ दृष्टान्त—रामराज्यमें कोई भी अल्पायु नहीं होता था। अर्थात् मृत्यु उनकी इच्छा पर होती थी। इसका क्या कारण था।

उत्तर—उस जमाने के लोग रामजी के विशेष उपासक थे देवताओंमें उनका अटूट प्रेम था। सभी दशामें मृत्यु उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती थी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होताको पूर्व दिशाका राज्य, ब्रह्माको दक्षिणदिशाका राज्य, अध्वर्युको पश्चिमदिशाका राज्य और सामवेदकाका गान करनेवालेको उत्तरदिशाका राज्य दे दिया ॥ २ ॥ चारों दिशाओंके मध्यकी अवशिष्ट सब भूमि आचार्यके लिये दानकर दी। निःस्पृह रामचन्द्रजीका यह भाव था कि यह सकल राज्य ब्राह्मणोंका ही है-वे ही इसके योग्य हैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार दान करनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके पास पहिने हुए वस्त्र और भूषणके अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया तथा महारानी श्रीसीताजीके पास दानके अनन्तर केवल हाथमें सौमंगल्यनामका भूषण हो अवशिष्ट रह गया ॥ ४ ॥ यज्ञके ब्राह्मणोंने परम ब्राह्मणभक्त रामके इस औदार्य तथा वात्सल्य भावको देखकर दानमें प्राप्त हुआ समस्त राज्य रामको समर्पित करके बड़े प्रेमसे यह कहा ॥ ५ ॥ हे भगवन, हे भुवनेश्वर, आज आपने भला हमको क्या नहीं दिया अर्थात् सब कुछ दे दिया, जो कि हमलोगोंके हृदयमें प्रविष्ट होकर अपने तेजसे हमलोगोंके अज्ञानको भस्म-कर दिया ॥ ६ ॥ सदा अकुण्ठ है ज्ञानशक्ति जिनकी ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम ब्रह्मण्यदेव रामको हम नमस्कार करते हैं, जिनके चरणोंका संन्यासी तथा मुनिलोग रातदिन ध्यान करते हैं

दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥ ३ ॥ इत्यय तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेहि सौमङ्गल्यावशेषिता ॥ ४ ॥ ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥ अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन्भुवनेश्वर ॥ यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७ ॥ कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन्वाचोऽश्रृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥ नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥ इति लोकाद्बहुमुखाद्दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन स त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥ अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥ तक्षः

॥ ७ ॥ एक बार रामचन्द्रजीको यह इच्छा हुई कि थोड़ा देखें तो सही, हमारे प्रति प्रजाका कैसा भाव है, यों बिचारकर वे रातमें छिपकर गुप्तचरोंकी भाँति नगरमें घूम रहे थे, इतनेमें उन्होंने एक रजक और उसकी स्त्रीमें परस्पर हो रही बातें सुनी ॥ ८ ॥ वह कह रहा था कि हे दुष्टे-तूँ दूसरेके घर रह चुकी है, सती नहीं है, इसलिये अब मैं तुझे स्वीकार नहीं कर सकता। बहुत दिनों रावणके घर रहनेपर भी, सीताको स्त्रीलोभी राम भलेही अपने घरमें रखें, लेकिन मैं तो फिर तुझे अपने घर नहीं रख सकता ॥ ९ ॥ यह सुनतेही श्रीरामचन्द्रजीने विचारणीय अज्ञानो, नीच लोगोंके अपवादसे कहीं कीर्तिमें कलंग न लग जाय, इस भयसे सीताको त्याग दिया और पतिसे त्यक्त श्रीसीता भी वाल्मीकिके आश्रममें पहुँची ॥ १० ॥

दृष्टान्त दान देनेबाद उन वस्तुओं का फिर से स्वीकार करना कहाँ तक उचित है।

उत्तर—यदि श्रीरामचन्द्रजी प्रसाद रूपसे उन वस्तुओं को स्वीकार न करते तो उन्हें डर था कि वे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों के शापसे हमारा बना बनाया खेल समाप्त हो जायगा। वे तो श्री मर्य्यादा पुरुषोत्तम थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

गर्भवती थी, इसलिये समय आनेपर उनके दो पुत्र हुए–एकका नाम लव और दूसरेका नाम कुश हुआ। उन दोनों का महर्षि वाल्मीकिने सब संस्कार किया ॥११॥ हे महीपते, अंगद और चित्रकेतु ये दो पुत्र लक्ष्मणजीके हुए तथा तक्ष और पुष्कल ये दो पुत्र भरतजीके हुए ॥ १२ ॥ सुबाहु और श्रुतसेन ये दो पुत्र शत्रुघ्नजीके हुए। श्री भरतजीने दिग्विजयके करोड़ों गन्धर्व मार डाले ॥ १३ ॥ और उनका सब धन लेकर राजा रामचन्द्र जीको अर्पित किया। इसीप्रकार श्री शत्रुघ्नजीने मधुवन निवासी मधुके पुत्र लवणासुर राक्षसको मारकर वहाँपर मथुरा नामकी पुरी बसाई ॥ १४ ॥ अपने पतिके द्वारा निर्वासित सीताजी भी महर्षि वाल्मीकिको शरणमें अपने दोनों पुत्रोंको रखकर अपने पिताके चरणोंका ध्यान करती हुई पृथिवीके अन्दर प्रविष्ट हो गई ॥१५॥ जब भगवान् रामने यह सब सीताका समाचार सुना, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि उन्होंने ज्ञानके द्वारा शोकको रोकना चाहा, परन्तु सीताके वे सुन्दर-सुन्दर

पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गन्धर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ १४ ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥ ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ १६ ॥ स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः ॥ अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥१७॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत्प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥१८॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥१९॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥२०॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ॥ तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ॥ कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ २२ ॥ पुरुषो

गुण उनके स्मरणमें आ जाते थे, इसलिये वे उस शोकको रोकनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥१६॥ स्त्री और पुरुषका प्रसङ्ग सब जगह दुःखदायी देख पड़ता है। जब कि ईश्वरोंके लिये स्त्री रूपी बन्धन इतना कष्टदायक है तो भला फिर उन विषयी पुरुषोंको तो बात ही क्या है, जिनका चित्त रातदिन गृहमें आसक्त रहता है ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर प्रभु रामचन्द्रजीने तेरह हजार वर्षोंतक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारणकरके अग्निहोत्र किया ॥१८॥ इसके बाद भगवान् रामने दण्डकवनके कण्टकोंसे विदीर्ण अपने पादपल्लवको अपने भक्तोंके हृदयमें स्थापित करके तदनन्तर अपने परमधामको चले गये ॥ १९ ॥ यद्यपि समुद्रमें सेतुबन्धन तथा अस्त्रशस्त्रोंसे राक्षसवध इत्यादि रामचन्द्रके कार्योंको अद्भुत कहकर कवियोंने उनका वर्णन किया है तथापि यह सब श्रीरामकी कीर्ति तथा स्तुति नहीं, क्योंकि जिसने अधिक और जिनके बराबर पराक्रमी कोई नहीं है, उनको क्या रावणादिका वध करनेके लिये वानरोंकी सहायता अपेक्षित थी? भगवान्ने देवगणकी प्रार्थनासे लीला करनेहीके लिये मनुष्यावतार लिया था ॥ २० ॥ जिन भगवान्की निर्मल तथा पापको नाश करनेवाली दिगन्तव्यापिनी कीर्तिका-आज भी

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युधिष्ठिरादि राजाओंकी सभामें मार्कण्डेयादि महर्षिगण-गान करते हैं तथा इन्द्रादि दिग्पालोंके किरीटसे जिनके चरणकमल सेवित हैं ऐसे भगवान् रामकी शरणमें हम प्राप्त हो रहे हैं ॥२१॥ जिन लोगोंने भगवान् रामके साथ अनुगमन किया है, उनका दर्शन और स्पर्श किया है, वे सब कोशल देशवासीजन उस स्थानको चले गये हैं जहाँ योगीजन जाते हैं ॥२२॥ हे राजन, भगवान् रामके चरित्रका श्रवणकर रहा पुरुष क्रमशः शान्त होकर कर्मबन्धनसे छूट जाता है ॥ २३ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा—हे भगवन्, भगवन् रामके कैसे आचरण थे और अपने अंशसे उत्पन्न तीनों भाइयोंके प्रति उनका कैसा व्यवहार था तथा उन परमेश्वर रामके विषयमें तीनों भाइयोंका एवं प्रजावर्गका कैसा आचरण था ॥२४॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, त्रिभुवनेश्वर श्रीरामजीने राजसिंहासनपर बैठनेके बाद अपने बन्धुओंको दिग्विजयके लिये आदेश दिया तथा स्वयं अपने लोगोंसे आत्मीयता प्रकट करते हुए अनुचरगण सहित पुरीका निरीक्षण करने लगे । २५॥ वह नगरी सुगन्धित जल तथा हाथियोंके मद-जलसे सींची गई थी और नाना भांतिसे सजाई गई थी । मालूम होता था, मानो अपने स्वामीको आते

रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशद्दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदसीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥ प्रसादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ॥ विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७ ॥ पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ॥ आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥ तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ॥ आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः ॥ अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः

हुए देखकर वह उन्मत्त हो रही है ॥ २६ ॥ वहाँके प्रसाद, गोपुर, चैत्य-भवन, देवमन्दिर आदि स्थानोंमें जलसे पूर्ण कलश शोभायमान हो रहे थे । जगह-जगहपर पताकाएँ फहरा रही थीं । सुपारीके गुच्छों, केलोंके स्तम्भों तथा सुन्दर-सुन्दर रेशमी वस्त्रोंके पट्टिकाओंसे वह नगरी खूब शोभित हो रही थी, नगरीमें चारो ओर तोरण बंधे हुए थे, उनमें शीशे तथा चित्र-विचित्र वस्त्र और मालाएँ लटक रही थीं ॥ २७, २८ ॥ ऐसी नगरीमें विचरते हुए भगवान्के सामने वहाँके पुरवासीगण अपने हाथोंमें पूजाकी सामग्री लेकर उपस्थित हुए और भगवान्को आशीर्वाद देते हुए प्रार्थना करने लगे—हे नाथ, अपने पूर्वकालमें वाराहरूप धारण करके इस धराका उद्धार किया था । हे नाथ, इस समय भी उसीप्रकार इसकी रक्षा कीजिये ॥२९॥ बहुत दिनोंके बाद आये हुए अपने स्वामीको देखकर दर्शनकी लालसासे स्त्री पुरुष सब प्रजाएँ घरके भीतरसे निकलकर महलोंके ऊपर चढ़कर दर्शन करने लगीं तथा पुष्पवृष्टि करने लगीं, किन्तु कमलनेत्र भगवान् रामके दर्शनसे तृप्त न हुईं ॥ ३० ॥ इसके बाद भगवान्ने अनन्त अखिल प्रकारके रत्नों कोशोंसे सम्पन्न तथा अमूल्य अनन्त असबाबोंसे युक्त अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पितामहादिसे युक्त राजभवनमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ उस राजभवनके दरवाजेकी चौखटें विद्रुममणिसे बनी हुई थीं, खम्भे वैदूर्यमणिसे निर्मित थे तथा मरकतमणियोंसे फर्श और स्फटिक मणियोंसे भीतें बनाई थीं ॥ ३२ ॥ वह भवन विचित्र पुष्पमालोंसे उत्तम पट्टिकाओं तथा वस्त्रों और मणियोंकी दीप्तियोंसे प्रकाशमान एवं जहाँ तहाँ वैदूर्यके स्तम्भोंमें लगे हुए उज्ज्वल मोतियोंके गुच्छों और रमणीय सुगन्धित धूप-दीपादि द्रव्योंसे वह अलंकृत था। वह भवन पुष्पोंके भूषणोंसे भूषित देवताओंके तुल्य भूषणोंको भी भूषित करनेवाले स्त्रीपुरुषों से शोभायमान था ॥३३,३४॥ आत्माराम पुरुषोंमें श्रेष्ठ भगवान् रामचन्द्रजी उसी भवनमें अपनी स्निग्ध, मनोभिलषित प्यारी प्रिया सीताके साथ रमण करते थे ॥ ३५ ॥ भगवान् रामने अपने धर्मका पालन करते हुए बहुत वर्षों तक मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग किया। उनकी सब प्रजाएँ सदैव उनके चरणोंका चिन्तन करती थीं ॥३६॥

स्वच्छैर्मार्तं स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥ धूप-दीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः ॥ स्त्रीपुंभिः सुरसङ्काशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्स भगवान् रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वाराममधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥ बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ॥ वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरामोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ।

ग्यारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, वशिष्ठ महाराजको आचार्य बनाकर श्रीरामचन्द्रजीने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। उस यागमें उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया। उनकी यह धारणा थी कि यह सब राज ब्राह्मणोंका ही है—इसके योग्य ब्राह्मण ही हैं। भगवान्के इस औदार्यको देखकर ब्राह्मणोंने रामको दानमें प्राप्त वह सब राज्य पुनः उन्हें ही दे दिया। ब्राह्मणोंने कहा—भगवन्, हम लोगोंके हृदयमें प्रविष्ट होकर आपने हम लोगोंके अज्ञानको नष्ट कर दिया, कहिये, भला आपने हम लोगोंको क्या नहीं दिया। हे भगवन्, मर्यादा पुरुष आपको हमारा नमस्कार है। एक दिन गुप्तचरोंकी भाँति छिपकर नगरमें रातको घूम रहे श्रीरामचन्द्रजीने सुना—एक धोबी कह रहा था - हे दुष्टे, तूँ दूसरेके घर रह चुकी है, तुझे मैं यहाँ न रखूँगा रावणके घर अधिक दिनों तक रहने पर भी स्त्री लम्पट राम भले ही अपने यहाँ सीताको रख लें, लेकिन मैं तो तुझे फिर नहीं रख सकता। यह सुनते ही श्रीरामचन्द्रजीने कीर्तिमें धब्बा न लगे, इस विचारसे सीताका त्याग कर दिया। पतित्यक्ता सीताजी वाल्मीकिके आश्रममें चली गईं। वह गर्भवती थीं, इसलिये समय पूरा होने पर उन्हें दो बच्चे पैदा हुए—एक का नाम लव दूसरे का नाम कुश पड़ा। लक्ष्मणजीके दो लड़के हुए उनका नाम अङ्गद और चित्रकेतु पड़ा तथा तक्ष और श्रुतसेन दो लड़के भरतको हुए, एवं सुबाहु और श्रुतसेन ये दो लड़के शत्रुघ्नके थे। सीताजी अपने बच्चोंको वाल्मीकिको देकर भगवान्के चरणोंका ध्यान करती हुई पृथिवीमें प्रविष्ट हो गईं। इस समाचारसे रामको बहुत दुःख हुआ। हे राजन्, स्त्री-पुरुषका सबन्ध सब जगह दुःखदायी होता है। जब ईश्वरोंको स्त्रीरूपी बन्धन इतना कष्टदायक है, तो फिर उन गृहस्थोंको बात ही क्या ? जो रात दिन घरमें ही आसक्त हैं। तदनन्तर तेरह हजार वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर रामजीने अग्निहोत्र किया और उसके बाद अपने भक्तोंके हृदयमें अपना चरणकमल रखकर वे अपने धामको चले गये। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कुशके पुत्र अतिथि और अतिथिसे निषध तथा निषधके पुत्र नभ हुए। नभसे पुण्डरीक और उनसे क्षेमधन्वा हुए॥ १॥ क्षेमधन्वासे देवानीक और देवानीकसे अनीह हुए। अनीहसे पारियात्र, पारियात्रसे बलस्थल, बलस्थलसे वज्रनाभ हुए। इनका जन्म सूर्यके अंशसे हुआ था॥ २॥ वज्रनाभसे खगण, खगणसे विधृति और विधृतिसे हिरण्यनाभ हुए। ये जैमिनिमुनिके शिष्य तथा योगाचार्य थे॥ ३॥ इन्हीं हिरण्यनाभसे याज्ञवल्क्यमुनिने अध्यात्मविद्या प्राप्त की थी बड़ी-बड़ी सिद्धियोंका उदय करनेवाले और हृदयकी ग्रन्थिका भेदन करनेवाले योगका भी अभ्यास किया था॥ ४॥ हिरण्यनाभसे पुष्य और पुष्यसे ध्रुवसन्धि हुए। ध्रुवसन्धिसे सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णसे

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच॥ कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः॥ पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः॥ १॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः॥ ततो बलः स्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः॥२॥ खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः॥ ३॥ शिष्यः कौशल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम्॥ ४॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत्॥ सुदर्शनोऽथाग्निवर्णः शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः॥ ५॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः॥ कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः॥ ६॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः॥ सहस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत॥ ७॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्तक्षको भविता पुनः॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पिता ते समरे हतः॥ ८॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान्॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः॥ ९॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति॥ प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः॥ १०॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान्॥ प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ११॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः॥ तस्यान्तरिक्षस्त-

शीघ्र और शीघ्रसे पुत्र मरु हुए॥ ५॥ मरु योगसिद्ध होकर कलापग्राममें इस समय अवस्थित हैं। कलियुगके अन्तमें नष्टप्राय सूर्यवंशको ये पुनः पुत्र उत्पन्न करके चलायेंगे॥ ६॥ मरुके पुत्र प्रसुश्रुत और प्रसुश्रुतके पुत्र सन्धि हुए। सन्धिसे अमर्षण, अमर्षणसे महस्वान् और उनसे विश्वसाह्व हुए॥ ७॥ विश्वसाह्वके पुत्र प्रसेनजित् और उनसे तक्षक हुए। तक्षकसे बृहद्बल हुए इनका महाभारतके युद्धमें तुम्हारे पिता अभिमन्युने मारा था॥ ८॥ हे राजन, ये सब राजा इक्ष्वाकुवंशमें हो चुके हैं। अब जो आगे होंगे, उनके नाम सुनिये। बृहद्बलसे बृहद्रण होंगे॥ ९॥ बृहद्रणसे उरुक्रिय और उरुक्रियसे वत्सवृद्ध पुत्र होंगे। वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम तथा प्रतिव्योमसे भानु और भानुसे सेनापति दिवाक होंगे॥ १०॥ दिवाकसे सहदेव, सहदेवसे बृहदश्व, बृहदश्वसे भानुमान्, भानुमान्से प्रतीकाश्व और प्रतीकाश्वसे सुप्रतीक पुत्र होंगे॥ ११॥ सुप्रतीकसे मरुदेव, मरुदेवसे सुनक्षत्र, पुष्कर, पुष्करसे अन्तरिक्ष, अन्त-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रिचसे सुतपा, सुतपासे अमित्रजित् होंगे ॥ १२ ॥ अमित्रजित्से बृहद्राज, उनसे बर्हि, बर्हिसे कृतञ्जय, उनसे रणञ्जय, रणञ्जयसे सञ्जय होंगे ॥ १३ ॥ सञ्जयसे शाक्य, शाक्यसे शुद्धोद, उनसे लाङ्गल, लाङ्गलसे प्रसेनजित् और उनसे क्षुद्रक होंगे ॥ १४ ॥ क्षुद्रकसे रणक, उनसे सुरथ और उनसे सुमित्र होंगे। यह बृहद्बलका भविष्य वंश है ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुवंश राजा सुमित्रतक चलेगा। इसके बाद कलियुगमें एक सीमामें पहुँच जायगा यानी वहीं नष्ट हो जायगा ॥ १६ ॥

त्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥ १२ ॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतञ्जयः ॥ रणञ्जयस्तस्य सुतः सञ्जयो भविता ततः ॥ १३ ॥ तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ १४ ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ॥ सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ॥ यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

बारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, रामचन्द्रके पुत्र कुशके वंशमें कुशसे लेकर बृहद्बल तक आज तक कुल अठाइस राजा हो चुके हैं। ये सभी इक्ष्वाकु वंशके हैं। बृहद्बलको महाभारतकी लड़ाईमें आपके पिता अभिमन्युने मारा था। इसके बाद आगे चलकर बृहद्बलके वंशमें बृहद्बलसे लेकर सुमति तक कुल इकतीस राजा होंगे। बारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥ आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥ तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥ तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥ निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥ शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत्पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥ निमिः प्रति ददौ

❀ जिस वंशमें जनक आदि ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए थे, उस इक्ष्वाकुके पुत्र निमिके वंशका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ करनेकी इच्छासे वसिष्ठजीसे ऋत्विज बननेके लिये प्रार्थना की, किन्तु वसिष्ठजीने कहा—हे राजन्, मैंने पहले इन्द्रका निमन्त्रण यज्ञके लिये स्वीकारकर लिया है ॥ १ ॥ इसलिये मैं इन्द्रके यागको पूर्ण कराकर आ जाऊँगा, तबतक मेरी प्रतीक्षा करना, यह सुनकर यजमान निमि चुप रह गये और वसिष्ठभी इन्द्रके यज्ञमें चले गये ॥ २ ॥ इस शरीरका क्या ठिकाना, न जाने कब नष्ट हो जाय, इसलिये अच्छे कार्यमें देरी करना ठीक नहीं है, यह समझकर आत्मज्ञानी राजा निमिने गुरुके न आनेके पहलेही अन्यान्य मुनियोंको ऋत्विज बनाकर यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् जब इन्द्रका यज्ञ समाप्त करके वसिष्ठजी आए और उन्होंने इसप्रकार अपने शिष्य निमिके अन्यायको देखा, तब उन्होंने क्रोधित होकर शाप दे दिया—अपनेको पण्डित लगानेवाले निमिका शरीर इसी क्षण नष्ट हो जाय ॥ ४ ॥ यह सुनकर राजा निमिने भी इसीप्रकार शिष्यके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रति अधर्माचरण करनेवाले गुरुको शाप दे दिया—आपका भी शरीर इसी क्षण नष्ट हो जाय, क्योंकि लोभके कारण आपने धर्मका विचार नहीं किया ॥५॥ इतना कहकर अध्यात्मविद्याके पण्डित निमिने अपना शरीर छोड़ दिया और साथही साथ वसिष्ठका भी शरीर छूट गया। इसके बाद मित्रावरुणोंके वीर्यसे उर्वशीमें यानी उर्वशीके अवलोकनसे स्खलित मित्रावरुणोंके वीर्य लेकर अधिकरण कुम्भमें पुनः प्रपितामह वसिष्ठका जन्म हुआ* ॥ ६ ॥ निमिके शरीरको मुनियोंने गन्ध वस्तुओंमें सुरक्षित रक्खा। यज्ञके समाप्त होने पर यज्ञमें आये हुए देवताओंने मुनियोंसे प्रार्थना की—हे देवगण, आपलोग समर्थ हैं, यदि यज्ञसे हमलोगोंके ऊपर प्रसन्न हुए हों, तो यह राजाका शरीर पुनः जीवित हो जाय। देवताओंके 'तथास्तु' ऐसा कहनेपर निमिने कहा—मैं पुनः देहबन्धन नहीं चाहता हूँ ॥ ७, ८ ॥ जिस शरीरके वियोगसे भयभीत होकर मुनिलोग कदापि देहका सम्बन्ध नहीं चाहते, बल्कि उसकी निवृत्तिके लिये भगवान्‌के चरणों-का ध्यान करते हैं ॥ ९ ॥ जिसके सम्बन्धमें दुःख शोक भयादि होते हैं ऐसे शरीरको हम नहीं प्राप्त करना चाहते, क्योंकि जैसे मछलियोंकी जलमें बड़े-बड़े जलचरोंसे और स्थलमें तो

शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ॥ तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥ इत्युत्ससर्ज स्वं देवं निमिरध्यात्मकोविदः ॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥ ८ ॥ यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ॥ भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् ॥ सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥ उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ अराजकभयं नृणां मान्यमाना महर्षयः ॥ देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥ १२ ॥ जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः ॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मा-दुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः ॥ ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥ तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥ मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विसृतोऽथ महाधृतिः ॥ १६ ॥ कृतिरातस्तत-

स्वभावसे ही मृत्यु है, वैसेही सर्वत्रही इसको मृत्यु विद्यमान है ॥ १० ॥ देवताओंने कहा—हे विदेह, आप बिना देहके ही सब मनुष्योंके नेत्रोंमें निवास करें। तबसे आजतक नेत्रोंके खोलने और बन्द करनेसे अध्यात्मसंस्थित निमि लक्षित होते हैं ॥ ११ ॥ राजाके बिना लोग परस्परमें कलह करेंगे और नाना प्रकारके उपद्रव होंगेही, यह सोचकर महर्षियोंने उनके शरीरका मन्थन किया और उससे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ असाधारण जन्म होनेसे इनका नाम जनक हुआ तथा जीवरहित देहसे इनकी उत्पत्ति हुई इसलिये इनका नाम विदेह भी हुआ एवं शरीरके मथनेसे इनकी उत्पत्ति हुई, इसलिये इनका नाम मिथिल भी हुआ। इन्हींने मिथिलापुरी बसाई है ॥ १३ ॥ हे राजन्, जनकके पुत्र उदावसु हुए, उदावसुसे नन्दिवर्धन हुए,

* अर्थात् उर्वशीके अवलोकनसे स्खलित हुए अपने वीर्यको मित्रावरुणोंने एक घोड़े में निषिक्त कर दिया, उससे प्रपितामह वसिष्ठजी पैदा हुए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनसे सुकेतु और सुकेतुसे देवरात हुए ॥ १४ ॥ देवरातसे बृहद्रथ, उनसे महावीर्य, उनसे सुधृति, उनसे धृष्टकेतु उनसे हर्यश्व और उनसे मरु उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ मरुसे प्रतीपक, उनसे कृतिरथ, उनसे देवमीढ, उनसे विसृत और उनसे महाधृति हुए ॥ १६ ॥ महाधृतिसे कृतरात, उनसे महारोमा, उनसे स्वर्णरोमा और उनसे ह्रस्वरोमा हुए ॥ १७ ॥ ह्रस्वरोमासे सीरध्वज हुए। ये सीरध्वज एक बार किसी कारण पृथिवी जोत रहे थे। इनके सिरके अर्थात् हलके अग्रभागसे सीताकी उत्पत्ति हुई, इसी कारण सिरसे ही इनकी कीर्ति हुई और इनका नाम सीरध्वज हो गया ॥ १८ ॥ सीरध्वजसे कुशध्वज और उनसे धर्मध्वज राजा हुए। धर्मध्वजके कृतध्वज और मितध्वज नामके दो पुत्र हुए ॥ १९ ॥ कृतध्वजसे केशिध्वज और मितध्वजसे खाण्डिक्य हुए। हे राजन्, कृतध्वजके पुत्र केशिध्वज अध्यात्मविद्याके पण्डित थे ॥ २० ॥ कर्मकाण्डके तत्त्वको जाननेवाले खाण्डिक्य केशिध्वजसे डरकर कहीं भाग गये। केशिध्वजके पुत्र भानुमान् और उनके पुत्र शतद्युम्न हुए ॥ २१ ॥ शतद्युम्नसे शुचि, उनसे सनद्वाज, उनसे ऊर्ध्वकेतु उनसे अज और उनसे पुरुजित पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ पुरुजितसे अरिष्टनेमि

स्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीरध्वजो जज्ञे यथार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥ कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् ॥ कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २० ॥ खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ॥ भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादयोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२ ॥ अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ॥ ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥ तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ॥ आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥ २४ ॥ वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः ॥ श्रुतस्ततो जयस्तस्माद्विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५ ॥ शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ॥ बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६ ॥ एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ॥ योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उनसे श्रुतायु, उनसे सुपार्श्वक, उनसे चित्ररथ और उनसे मिथिलाधिपति क्षेमधि उत्पन्न हुए ॥२३॥ क्षेमधिके पुत्र समरथ, उनके सत्यरथ उनके उपगुरु और उनके अग्निके अंश उपगुप्त उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ उपगुप्तके पुत्र वस्वनन्त, उनके युयुध, उनके सुभाषण और उनके पुत्र श्रुत हुए। उनसे जय, जयसे विजय और उनसे ऋत उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ ऋतसे शुनक पैदा हुए। उनसे वीतहव्य, उनसे धृति, उनसे बहुलाश्व, उनसे कृति और कृतिसे महावशी हुए ॥ २६॥ हे राजन्, ये सब मिथिलके राजा आत्मविद्यामें बड़े निपुण थे तथा योगेश्वरोंके प्रसादसे गृहमें रहते हुए भी सुख दुःखादि द्वन्द्वोंसे मुक्त थे ॥ २७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेरहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, यज्ञ करनेकी इच्छासे इक्ष्वाकुपुत्र निमिने वसिष्ठजीको निमन्त्रण दिया। वसिष्ठजीने कहा—राजन्, यज्ञ करानेके लिये इन्द्रका निमन्त्रण मैंने स्वीकार कर लिया है। अतः वहाँसे लौटकर आपका यज्ञ करा दूँगा। इस शरीरको क्षणभंगुर जानकर यज्ञ शीघ्र कर देनेकी इच्छासे अन्य ऋषियोंको बुलाकर राजा निमिने यज्ञ करना शुरूकर दिया। इन्द्रका यज्ञ कराकर जब वसिष्ठजी राजा निमिके यहाँ आये तब उन्हें क्रोध आ गया, झट उन्होंने शाप दे दिया, अपनेको पण्डित माननेवाले निमिका शरीर अभी छूट जाय। यह सुनकर निमिने भी शाप दे दिया। लोभके मारे धर्मका विचार न कर रहे आपका भी शरीर छूट जाय। इसके बाद उन दोनोंका शरीर छूट गया। मित्रावरुणोंके वीर्यसे उर्वशीमें प्रपितामह वसिष्ठजी की पुनः उत्पत्ति हुई। यज्ञ समाप्तिके बाद ऋषियोंने देवताओंसे निमिको पुनः उत्पन्न हो जानेके लिये प्रार्थना की, क्योंकि उनलोगोंने निमिके शरीरको तबतक सुरक्षित रखा था। देवताओंके—'तथाऽस्तु' कहनेके बाद निमिने इस शरीरमें आनेके लिये अस्वीकार कर दिया। तब देवताओंने कहा—आप मनुष्योंके नेत्रमें बिना देहके ही निवास करें। तदनन्तर ऋषियों द्वारा उनके शरीरका मथन करने पर एक पुत्र निकला, जिसका नाम जनक पड़ा। इन्होंने मिथिलापुरी बसाई। इनकी इक्कीसवीं पीढ़ीमें राजा सीरध्वज हुए थे। किसी कारणवश हल जोतते समय हलके अग्रभागसे एक लड़की पैदा हो गई, जिसका नाम सीता पड़ा। इसीसे इनकी कीर्ति फैली और इनका भी नाम सीरध्वज हो गया। तेरहवाँ अध्याय समाप्त ❁

❁ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❁

श्रीशुक उवाच ॥ अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः ॥ यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥ सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ॥ जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥ तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ॥ विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥ सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ॥ पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद् बलात् ॥ ४ ॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ॥ नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥ शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य

❁ गुरुपत्नी तारामें चन्द्रमाके वीर्यसे उत्पन्न हुए बुधके वीर्यसे इलामें पैदा हुए पुरूरवाको उर्वशी द्वारा बतलाई गई युक्तिसे गन्धर्वलोककी प्राप्तिका वर्णन ❁

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अब आप पवित्र चन्द्रवंशका वर्णन सुनिये, जिसमें पवित्र कीर्तिवाले ऐलादि राजाओंका यश वर्णन किया जायगा ॥१॥ सहस्र सिरवाले महापुरुष विष्णुके नाभिरूपी सरोवरमें विकसित कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीके पुत्र अत्रि हुए। अत्रिमुनि गुणोंमें अपने पिता ब्रह्माके तुल्य थे ॥२॥ अत्रिके नेत्रसे अमृतमय चन्द्रमाका जन्म हुआ। सोमको ब्रह्माजीने ब्राह्मण, औषधि और तारागणोंका राजा बना दिया ॥३॥ चन्द्रमाने तीनों लोक जीतकर राजसूय नामक यज्ञ किया और यज्ञमें आई हुई बृहस्पतिकी तारा नामकी परमसुन्दरी स्त्रीको जबर्दस्ती छीन लिया ॥ ४ ॥ देवगुरु बृहस्पतिके बार-बार माँगनेपर भी मदके कारण जब चन्द्रमाने उसे नहीं छोड़ा तब उसके कारण देव और दानवोंमें घोर संग्राम छिड़ गया ॥५॥ बृहस्पति और शुक्राचार्यमें परस्पर द्वेष होनेके कारण शुक्राचार्यने अपने शिष्य दैत्योंके सहित चन्द्रमाके पक्षमें हो गये तथा श्रीशङ्करजी अपने भूतगणोंको लेकर अत्यन्त स्नेह होनेके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारण अपने गुरु अङ्गिरामुनिके पुत्र बृहस्पतिके पक्षमें हो गये ॥६॥ इन्द्र भी समस्त देवताओंको लेकर गुरु बृहस्पतिके पक्षमें हो गये । इस ताराके निमित्त युद्धमें बहुतसे देवताओं और दैत्योंका नाश हो गया ॥ ७॥ इसके बाद अङ्गिरामुनिने जाकर ब्रह्माजीसे सब समाचार कह सुनाया । ब्रह्माजीने आकर चन्द्रमाको जब बहुत डाँटा, तब चन्द्रमाने बृहस्पतिको तारा सौंप दी । कुछ दिनके बाद बृहस्पतिको मालूम हुआ कि यह गर्भिणी है ॥ ८ ॥ बृहस्पतिने क्रोधित होकर तारा से कहा—हे कुलटे, दूसरोंके द्वारा बोये गए बीजको हमारे क्षेत्रसे शीघ्र त्याग दे । तूँ स्त्री है और मुझे सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा है, नहीं तो मैं तुझे अभी भस्मकर देता ॥९॥लज्जित होकर ताराने सुवर्णके तुल्य कान्तिमान् सुन्दर पुत्र बाहर निकाल दिया। उस पुत्र को देखकर उसे लेनेकी बृहस्पति और चन्द्रमाको इच्छा हुई ॥ १० ॥ तब बृहस्पतिने कहा-यह हमारा है, सोमने कहा-नहीं, यह हमारा है, इस प्रकार दोनोंमें परस्पर खूब विवाद होने लगा । तब ऋषि और देवताओंने तारासे पूछा, किन्तु ताराने लज्जाके मारे कुछ नहीं कहा ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस कुमारने लज्जाके मारे कुपित होकर मातासे कहा—हे पर-

विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥ त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ॥ ९ ॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ॥ स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥ ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ॥ पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किं न वोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाऽऽशु मे ॥ १२ ॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्याभिधां नृप ॥ बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५ ॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा ॥ तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥ मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणाम् ॥ १७ ॥ धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥ स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥१८॥ राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम

पुरुषगामिनि, अपने किये हुए निन्दनीय कर्मको अब तूँ क्यों छिपाती है, कहती क्यों नहीं ॥१२॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजीने आकर ताराको एकान्तमें बुलाकर तथा बहुत समझा-बुझाकर जब पूछा, तब उसने धीरेसे कहा—यह बालक चन्द्रमाका है । यह सुनकर सोमने उस बालकको ले लिया ॥१३॥ ब्रह्माने बालककी तीव्र बुद्धि देखकर उसका नाम बुध रक्खा । चन्द्रमा बुधको पाकर बड़े प्रसन्न हुए ॥१४ ॥ बुधसे इलानामकी पत्नीमें पुरूरवाका जन्म हुआ यह कहा गया है इन्द्रकी सभामें नारदमुनिके द्वारा कहे जा रहे पुरूरवाके रूप, गुण, औदार्य्य, शील, धन और पराक्रमको ॥ १५ ॥ सुनकर उर्वशी मोहित हो गई । कामसे पीड़ित होकर वह उनके पास आ गई ॥१६॥ मित्रावरुणोंके शापसे उर्वशी मनुष्यलोकमें रहती थी कामदेवके समान सुन्दर पुरूरवाको देखकर वह सुन्दरी धैर्य्य धारणकर उनके समीपमें उपस्थित हुई । उस सुन्दरीको देखकर राजाके भी कमलनेत्र खिल गये, उनके शरीरमें रोमाञ्च हो गया । राजाने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मधुरवाणीसे कहा ॥ १७, १८ ॥ हे वरारोहे, तुम्हारा स्वागत है, बैठो कहो मैं तुम्हारी कौनसी सेवा करूँ ? हमारी इच्छा है कि तुम मेरे साथ रमण करो और हजारों वर्षों तक हम दोनों की खूब रतिक्रीड़ा होती रहे ॥ १९ ॥ यह सुनकर उर्वशीने कहा-हे सुन्दर, तुमको देखकर कौन ऐसी स्त्री होगी, जिसकी दृष्टि और मन तुम्हारेमें आसक्त न हो जाय तथा तुम्हारे वक्षःस्थलको पाकर रमण करनेकी इच्छा न हो ॥२०॥ हे मेरा सम्मान करनेवाले राजन्, मैं आपके पास धरोहर रूपमें अपने दो भेड़ रखती हूँ, इनकी आप रक्षा करना। मैं आपके साथ रमण करूँगी, क्योंकि जो सुन्दर होता है वही स्त्रियोंका वर कहा गया है। अतः इसमें विजातीय दोष नहीं है ॥ २१ ॥ हे राजन्, और मैं घृतका ही भोजन करूँगी तथा आपको मैथुनके अतिरिक्त कभी नग्न नहीं देखूँगी। यह सुनकर उदारचित्त राजाने कहा—बहुत अच्छा ॥ २२ ॥ हे प्रिये, मनुष्यमात्रको मोहित करनेवाला जिसका अलौकिकरूप है तथा विचित्र हाव-भाव कटाक्ष है एवं जो अपने आप आई हुई ऐसी देवीरूप तुम्हारी कौन मनुष्य सेवा नहीं करेगा ॥ २३ ॥ इसप्रकार पुरुषश्रेष्ठ उसके साथ यथोचित चैत्ररथादि देवताओंके

किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९ ॥ उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ॥ यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥२०॥ एतावुरणकौ राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद ॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥२१॥ घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्य मैथुनात् ॥ विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥२२॥ अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ॥ को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥२३॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः ॥ रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥२४॥ रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्क-गन्धया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥२५॥ अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समनोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥२६॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ॥ उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥२७॥ निशम्याऽऽक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ॥ हतास्म्यहं कुनाथेन न पुंसा वीरमानिना ॥२८॥ यद्विश्रम्भादहं नष्टा हतापत्या च दस्युभिः ॥ यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥२९॥ इति

क्रीड़ास्थानोंमें रमण करने लगे ॥ २४ ॥ उर्वशीके मुखसे कमलके गन्धके सदृश गन्ध निकलती थी, इसलिये उसके साथ रमण करते हुए राजा पुरूरवा उसके मुखगन्धसे मोहित होकर बहुत दिनोंतक आनन्द लूटते रहे ॥ २५ ॥ कुछ दिनोंके बाद इन्द्रको मालूम हुआ कि उर्वशी स्वर्गसे चली गई है। तब इन्द्रने गन्धर्वोंको बुलाकर कहा कि मुझे उर्वशीके बिना स्वर्ग अच्छा नहीं लगता, इसलिये उसे जाकर ले आओ ॥ २६ ॥ यह सुनकर गन्धर्वलोग आधी रातके समय जहाँपर उर्वशी थी, वहाँ उपस्थित हुए और उर्वशीने राजाके समीप जो दो भेड़ धरोहररूपमें रखे थे, उनको अदृश्य होकर गन्धर्वोंने हर लिया ॥ २७ ॥ उर्वशीने जब पुत्रके तुल्य प्रिय तथा गन्धर्वों द्वारा हरण किये गये भेड़ोंकी चिल्लाहट सुनी, तब वह भी पुरूरवाको फटकारती हुई विलाप करने लगी। वह कहने लगी—अपनेको वीर समझनेवाले इस नपुंसक पतिने मुझे मार डाला, जिसके विश्वाससे मैं नष्ट हो गई तथा डाकुओंने मेरे बच्चोंको हर लिया डरपोक यह राजा दिनमें तो पुरुष बन जाता है और रातमें स्त्रियोंकी तरह भयभीत हो सो रहता है ॥२८, २९॥ इसप्रकार अंकुशसे हाथीकी तरह उर्वशीके वाक्यबाणसे घायल वह राजा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्रोधके मारे अतिशीघ्र नग्नही होकर हाथमें खड्ग लेकर दौड़ा ॥ ३० ॥ तब वे गन्धर्व भेड़ोंको छोड़कर भाग गये, किन्तु पुरूरवा जब भेड़ोंको लेकर लौटा तब यद्यपि रात अँधेरी थी, किन्तु उसी समय बिजली चमक गई और उसके प्रकाशमें आये हुए राजाको उर्वशीने नग्नहो देख लिया ॥३१॥ पुरूरवाको नग्न देखते ही वह उसे छोड़कर चली गई। तब रात पुरूरवा भी विस्तरमें प्रियाको न देखकर बड़ा उदास हो गया, क्योंकि उसका चित्त उसीमें था, इसकारण वह बहुत विह्वल हो गया। अति चिन्तित होकर वह पागलकी भाँति इधर-उधर पृथिवीपर घूमने लगा ॥ ३२ ॥ इसप्रकार उसीके वियोगमें घूमते हुए अकस्मात् कुरुक्षेत्रमें पाँच सखियोंके साथ उसको देखकर उसने मधुर वचनोंसे कहा ॥ ३३ ॥ हे प्रिये, ठहरो, ठहरो। अबकी बार मुझे छोड़ना तुम्हें उचित नहीं है। तुम बड़ी कठोर हृदय मुझे मालूम होती हो। आज भी मुझे सुखी बिना किये जाना तुम्हें उचित नहीं हैं। आओ जरा एकान्तमें मीठी-मीठी बातें कर लें ॥३४॥ हे सुन्दरि, तुम्हारे मिलनेकी आशा मुझे यहाँ तक खींच लाई है। यदि तुम इसे स्वीकार नहीं करोगी, तो यह शरीर यहीं गिरकर गीध और भेड़ियोंका भोजन बन जायगा

वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुञ्जरः ॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥३०॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः ॥ आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥३१॥ ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥ स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ॥ पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥३३॥ अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥ सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ॥ घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥ संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥ अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दान्त उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह

॥ ३५ ॥ उर्वशीने कहा—हे राजन्, मरो मत तुम पुरुष हो, धैर्य धारण करो, तुम्हें भेड़िया आदि न खायँगें हे राजन्, जरा विचार करो। स्त्रियोंका प्रेम कहीं स्थित नहीं रहता। इनका हृदय भेड़ियोंकी तरह कठोर होता है ॥ ३६ ॥ स्त्रियाँ बड़ी कठोर निर्दय तथा क्रूर होती हैं। इनको सहनशीलता नहीं होती तथा साहस बड़ा प्रिय होता हैं। थोड़ेसे ही कारणसे ये सब विश्वस्त अपने पति तथा भाईको मार डालती हैं ॥३७॥ वास्तविक प्रेमशून्य स्त्रियाँ मूर्ख लोगोंको अपना मिथ्या स्नेह दिखाकर विश्वास करा देती हैं तथा स्वेच्छाचारिणी प्रतिदिन नये-नये पतिकी ही खोज किया करती हैं ॥ ३८ ॥ हे राजन्, एक संवत्सरके बाद मेरे साथ एक रातके लिये तुम्हारा समागम होगा तथा तुम्हें सन्तान भी होंगें ॥३९॥ इस बातचीतसे राजा उसको गर्भिणी समझकर अपने नगरमें चले आए, फिर इसके बाद एक वर्षके उपरान्त वीर माता उर्वशीको पाकर प्रमसे उसके साथ एक रात रमण किया। इसके बाद विरहाकुल अतिदीन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजासे वह कहने लगी ॥४०,४१॥ हे राजन्, आप गन्धर्वोंसे प्रार्थना कीजिये। आपकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर आपको अवश्य मुझे दे देंगे। तब राजाने उर्वशीके कथनानुसार गन्धर्वोंकी स्तुतिकी और वे उसके ऊपर प्रसन्न हो गये। हे राजन्, उन्होंने राजाको एक अग्निस्थाली (पात्र विशेष) दी। कामान्ध राजा उसीको उर्वशी समझता हुआ वनमें भ्रमण करने लगा ॥४२॥ बादमें उसे मालूम हुआकि वह उर्वशी नहीं है, तब वह उस अग्निस्थालीको वनमें रखकर नगरमें आ गया, किन्तु रातमें सोते हुए बराबर उर्वशीका ही चिन्तन किया करता था इसके बाद त्रेता-युगके आरम्भकालमें स्वर्गलोककी प्राप्ति जिन कर्मोंमें होती है उनका बोध करानेवाली वेदत्रयीका प्रादुर्भाव पुरूरवाके हृदयमें हुआ ॥ ४३ ॥ तब उसने जहाँपर वह स्थाली थी, वहींपर जाकर देखा कि शमीवृक्षके गर्भमें एक अश्वत्थ यानी पीपल पैदा होगया है तथा उसमें अग्नि भी देखी। तदनन्तर उसने उर्वशीलोकको प्राप्त करनेकी भावनासे उस पीपलको दो अरणि बनाकर ॥४४॥ मन्त्रानुसार नीचेकी अरणिमें उर्वशीकी भावनाकर तथा ऊपरकी अरणिमें अपनी भावनाकर और दोनों काष्ठके मध्य स्थानमें पुत्रकी भावनाकर मन्थन करना प्रारम्भ

कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥ गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ॥ तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥ स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥ उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेनाऽयजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ॥ उर्वशीलोकमन्विच्छन्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥४७॥ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥४९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

कर दिया ॥ ४५ ॥ उस अरणिमन्थनसे जातवेदा अग्नि उत्पन्न हुई। वह अग्नि त्रयीविद्या विहित आधानसंस्कारसे आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि तीनरूप हो गई। तब राजाने उस त्रिवृत् अग्निको पुत्र कल्पित करके उसीके द्वारा उर्वशीलोककी इच्छासे सर्ववेदमय तथा सवदेवमय यज्ञेश श्रीहरि अधोक्षज भगवानका यजन किया ॥४६, ४७॥ हे राजन्, पहले सत्ययुगमें समस्त शब्दोंका बीज 'ओम्' यही एकमात्र वेद तथा नारायण ही एकमात्र देवता थे। अग्नि एकही थी तथा एकही वर्ण था ॥४८॥ हे महाराज, त्रेतायुगके आरम्भमें राजा पुरूरवासे ही वेदत्रयी प्रकट हुई तथा पुरूरवा भी अग्निरूप प्रजाके द्वारा गन्धर्व लोकको प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥

चौदहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, अब चन्द्रवंशका वर्णन सुनिये। ब्रह्मपुत्र अत्रिके नेत्रसे उत्पन्न चन्द्रमाने तीनों लोक जीतकर राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञमें आई हुई बृहस्पति की परम सुन्दरी ताराको देखकर चन्द्रमाने जबर्दस्ती बृहस्पतिसे छीन लिया। उसके कारण देव और दानवोंमें घोर युद्ध हुआ। उस युद्धमें अनेक दैत्य और दानवोंका संहार हो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जानेके बाद अङ्गिराके मुखसे सारी कथा सुन लेनेके बाद ब्रह्माजीने आकर चन्द्रमासे बृहस्पतिको तारा दिला दी। कुछ दिनोंके बाद बृहस्पतिको मालूम हुआ कि तारा गर्भिणी है। बृहस्पतिने कहा—अरे दुष्टे, मेरा क्षेत्र खाली कर दे, मैं इसमें बचा पैदा करूँगा। अन्यथा मैं अभी तुझे भस्मकर देता हूँ। ताराने डरकर तुरन्त अपने पेटसे एक बच्चा फेंक दिया। अत्यन्त सुन्दर उस बच्चेको देखकर बृहस्पतिको लोभ हो गया। बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंको उसे लेनेकी इच्छा हुई। ऋषियों और देवताओंके बहुत कहनेपर भी शर्मके मारे तारा कुछ भी न बोल सकी। तब ब्रह्माने आकर एकान्तमें तारासे पूछा। तब ताराने धीरेसे कहा—चन्द्रमाका यह पुत्र है। यह सुनते ही चन्द्रमाने उसे ले लिया। उस बच्चेकी तीव्र बुद्धि देखकर ब्रह्माने उसका बुध नाम रख दिया। इला नामकी पत्नीमें बुधसे पुरूरवाकी उत्पत्ति हुई। हे राजन्, यहाँसे चन्द्रवंशका आरम्भ होता है। इन्द्रकी सभामें नारदमुनिके मुखसे पुरूरवाके गुण आदि का वर्णन सुनकर उर्वशी कामसे पीड़ित हो गई। वह पुरूरवाके समीप आ गई। उर्वशीको देखते ही वह राजा पुरूरवा भी अत्यन्त मोहित हो गया। अनेक वर्षोंतक विहार करनेके बाद एक दिन इन्द्रसे प्रेरित अपने दोनों भेड़ चुरा लिये जा रहे गन्धर्वोंको देखकर उर्वशीके फटकारनेपर अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण न करते हुए नङ्गे दौड़े आ रहे पुरूरवाको देखकर गन्धर्व भेड़ छोड़कर भाग गये। तदनन्तर भेड़ लेकर अन्धेरी रातमें नङ्गे आ रहे उसे बिजलीकी चमकमें उर्वशी देखकर तत्क्षण ही उसको छोड़कर चली गई। उर्वशीसे शून्य अपने शयन स्थानको राजाने देखा। उर्वशीके वियोगमें पागल हुआ वह राजा पृथिवीपर इधर-उधर घूमते हुए कुरुक्षेत्रमें पहुँचा। अपनी पाँच सखियोंके साथ उर्वशीको देखकर विलाप करने लगा। तदनन्तर उर्वशी द्वारा बतलाई गई युक्तिसे वह अप्सराओंके लोकमें पहुँच गया। चौदहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥ श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतञ्जयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुर्मूर्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशाम्बुजः ॥ ४ ॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥

❀ पुरूरवाके वंशमें उत्पन्न हुए गाधिके दामाद जमदग्निके लड़के परशुरामद्वारा सहस्रार्जुनका वध वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, पुरूरवाको उर्वशीके गर्भसे छः बालक पैदा हुए—आयु, श्रुतायु, सत्यायु रय, विजय, और जय ॥१॥ श्रुतायुके पुत्र वसुमान् तथा सत्यायुके श्रुतञ्जय हुए। रयके पुत्रका नाम एक तथा जयके पुत्रका नाम अमित था ॥ २ ॥ विजयके पुत्र भीम थे भीमसे काञ्चन हुए और काञ्चकसे होत्रक हुए, होत्रकसे जह्नु हुए, जिन्होंने गंगाजीको एक आचमनमें पी लिया था। जह्नुसे पुरु, उनसे बलाक और बलाकसे अजक पुत्र हुए ॥ ३ ॥ अजकसे कुश और कुशके कुशाम्बु, मूर्तय, वसु एवं कुश ये चार पुत्र हुए। कुशाम्बुसे गाधि हुए ॥४॥ गाधिकी सत्यवती नामकी कन्या भृगुवंशकी ऋचीक मुनिने माँगी। तब वृद्ध ऋचीक मुनिको युवती कन्याके योग्य वर न समझकर वे गाधि ऋचीकसे कहने लगे—॥५॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे मुने, हमलोग कुशिक वंशके हैं, इसलिये एक कान जिनका श्याम हो ऐसे चन्द्रमाके समान शुक्ल वर्णवाले एक हजार अश्व इस कन्याके शुल्करूपमें देने होंगे, यह हमारे यहाँका नियम है ॥ ६ ॥ यह सुनकर मुनिने राजाके अभिप्रायका जानकर वरुणके समीपसे उसीप्रकारके एक हजार अश्व लाकर राजाको देकर उस सुमुखी कन्याका पाणिग्रहण कर लिया ॥ ७ ॥ कुछ दिनके बाद मुनिसे उनकी स्त्री और उनकी सास दोनोंने पुत्रके लिये प्रार्थना की। तब ऋचीकमुनि दोनोंकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी स्त्रीके लिये ब्रह्ममन्त्रोंसे और सासके लिये क्षात्रमन्त्रोंसे चरुको अभिमन्त्रितकर तथा पकाकर स्वयं स्नान करने चले गये ॥८॥ तबतक सत्यवतीकी माताने सत्यवतीकी चरुको श्रेष्ठ समझकर उससे माँगकर भक्षणकर लिया और माताकी चरु, जो क्षात्रयमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित थी, सत्यवतीने खाली ॥९॥ वहाँसे आनेपर मालूम हुआ जब मुनिको तब वे सत्यवतीसे बड़े नाराज होते हुए कहने लगे—तुमने बहुत बुरा काम किया। अब तेरा पुत्र तो घोर उग्र होगा और तेरा भाई ब्रह्मज्ञानी होगा ॥१०॥ यह सुन सत्यवतीने बहुत प्रार्थना की कि हे महाराज, आप प्रसन्न हो जाइये, ऐसा न हो। तब मुनिने कहा—अच्छा, तो

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥ इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥७॥ स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥ तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम् ॥ ९ ॥ तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥ घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥ तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ॥ त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ॥ रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः

पुत्र ब्रह्मज्ञानी और पौत्र उग्र होगा। तदनन्तर ऋचीकसे जमदग्नि हुए ॥ ११ ॥ और शरीर छूटनेपर वह सत्यवती लोकपावनी कौशिकी नदी हुई। जमदग्निका विवाह रेणुकी पुत्री रेणुकाके साथ हुआ ॥ १२ ॥ रेणुकामें जमदग्निसे वसु, मद आदि पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुरामजी हुए, ऐसा सुना जाता है ॥ १३ ॥ जिनको भगवान्का अंशावतार लोग कहते हैं तथा जिन्होंने हैहय कुलका विनाशकर दिया एवं इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियोंसे हीनकर दिया ॥१४॥ रजोगुण तथा तमोगणसे दूषित ब्राह्मणभक्तिसे हीन एवं पृथिवीके भरभूत क्षत्रिय वंशको जिन्होंने थोड़ेसे ही अपराधको निमित्त बनाकर मार डाला ॥ १५ ॥ राजा परीक्षितने कहा—हे भगवन्, कौनसा अपराध अजितेन्द्रिय क्षत्रियोंने परशुरामजीका किया था, जिससे उन्होंने कई बार क्षत्रियकुलका नाश किया ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, हैहयवंशीयक्षत्रियोंके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ अर्जुन हुए, उन्होंने नारायणके अंशावतार भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दत्तात्रेयकी सेवाके द्वारा प्रसन्न करके उनसे वरदानमें एक हजार भुजाएँ प्राप्त कीं। तदनन्तर वे शत्रुओंमें दुर्धर्ष हो गये तथा भगवान् दत्तात्रेयसे उन्होंने अव्याहत इन्द्रियशक्ति, लक्ष्मी, तेज, वीर्य, यश और बल प्राप्त किया एवं अणिमा, महिमा इत्यादि सिद्धियोंके सहित योगैश्वर्य भी प्राप्त किया। तबसे समस्त लोकोंमें, वायुकी तरह, उनकी अव्याहत गति हो गई ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ एक बार वह सहस्रार्जुन बहुतसी स्त्रियोंके सहित वैजयन्ती मालाको पहिनकर मदोन्मत्त हो नर्मदाके जलमें क्रीड़ा करता था। क्रीड़ा करतेही उसने अपनी हजार भुजाओंसे नर्मदाका जलप्रवाह रोक दिया ॥ २० ॥ उधर पीछे रावण नर्मदातटपर शंकरजीका पूजनकर रहा था। जब वह जल पीछेको बढा, तब रावणको सामग्री बह गई। वीरमानी रावण उसका यह वीर्य सह न सका ॥ २१ ॥ शीघ्र आकर रावण उससे भिड़ गया। तब अर्जुनने अपराधी रावणको स्त्रियोंके सामने खेलवाड़ करते हुए पकड़ लिया और माहिष्मतीनगरीमें बन्दरकी नाईं उसे बन्दकर दिया तथा तिरस्कारके साथ उसे पीछे छोड़ दिया ॥ २२ ॥ ऐसा प्रभावशाली वह सहस्रार्जुन एक बार वनमें विचरता हुआ अचानक अपनी इच्छासे महर्षि जमदग्निके

क्षत्रियर्षभः ॥ दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेन्द्रियौजः श्रीतेजोवीर्यशोबलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ॥ चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥१९॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन् रेवाम्भसि मदोत्कटः ॥ वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद्रुरोध सरितं भुजैः ॥ विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतः सरिज्जलैः ॥ नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२ ॥ स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने ॥ यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥२३॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या स्तपोधनः ॥२४॥ स वीरस्तत्र तद्दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः सहैहयः ॥२५॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥२६ ॥ अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥२७॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायु-

आश्रममें आ पहुँचा ॥ २३ ॥ तपोधन जमदग्निने सेना, मन्त्री, वाहनादिके सहित राजाका अपनी कामधेनु द्वारा खूब सत्कार किया ॥ २४ ॥ वह वीर सहस्रार्जुन अपने ऐश्वर्यसे भी अधिक मुनिके ऐश्वर्यको देखकर किये हुए अतिथि सत्कारसे सन्तुष्ट नहीं हुआ, क्योंकि मुनिको कामधेनु लेनेकी उसको इच्छा उत्पन्न हो गई थी ॥ २५ ॥ जब माँगनेपर मुनिने नहीं दी, तब बड़े घमण्डके साथ बलपूर्वक गौ लेजानेके लिये अपने अनुचरोंको उसने आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर बछड़ेके सहित चिल्लाती हुई उस कामधेनुको बलपूर्वक वे लोग माहिष्मती नगरीको ले गये ॥ २६ ॥ गौको लेकर राजाके चले जानेपर श्रीपरशुरामजी आश्रममें आये और पिताके मुखसे राजाका कामधेनु हरणरूप दौरात्म्य सुनकर, पैरसे ताड़ित सर्पकी नाईं अति क्रोधित हो गये ॥२७॥ घोर फरसा, बाणोंसे भरे तरकस और धनुष लेकर, हाथियोंके झुण्डमें सिंहकी नाईं, दुर्धर्ष होकर वे उसके पीछे दौड़े ॥ २ ॥ धनुष, बाण तथा फरसा आदि शस्त्रोंके सहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मृगचर्म पहिने हुए एवं सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रही जटाओंसे समन्वित परशुरामको पुरीमें प्रवेश करते हुए सहस्रार्जुनने देखा ॥ २९ ॥ सहस्रार्जुनने हाथी, रथ घोड़े तथा पैदल सेनाको गदा, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी, शक्ति तोमर आदि अस्त्रोंसे सुसज्जित करके भेजा, किन्तु इस अति भयङ्कर सत्रह अक्षौहिणी सेनाका भगवान् परशुरामने अकेले ही संहारकर दिया ॥ ३० ॥ मन एवं वायुके समान वेगशाली भगवान् परशुरामजी फरसा लेकर जिधर दौड़ते थे उधरही कटी हुई भुजाएँ, जंघों और गर्दनवाले तथा मर गये हैं सूत तथा वाहन जिनके ऐसे वीर पृथिवीपर लोटते ही दिखाई देते थे ॥ ३१ ॥ इसके बाद सहस्रार्जुनने रुधिरके वेगसे कीचड़ हुए रणाङ्गणमें भगवान् परशुरामजीके फरसा और बाणोंसे कट गये हैं धनुष चर्म ध्वजा तथा शरीर जिनके ऐसे अपने सैनिकोंको देखा । तदनन्तर युद्ध करनेके लिये क्रोधके मारे रथमें उतर आया ॥ ३२ ॥ सहस्रार्जुनने अपनी एक हजार भुजाओंमें एक ही साथ पाँच सौ धनुष लेकर परशुरामजीके लिये संधान किया, किन्तु परशुरामजीने एक धनुषके बाणसे ही एक साथ उन सबको काट डाला ॥ ३३ ॥ इसके बाद अपनी भुजाओंमें बहुतसे पर्वत और

धम् ॥ ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥२९॥ अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोनिलौजाः परचक्रसूदनः ॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद्रुषा ॥ ३२ ॥ अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्धनुःषु बाणान्युगपत्स सन्दधे ॥ रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् ॥ हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥ स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् ॥ अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥ वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां

वृक्षोंको उखाड़के लेकर परशुरामजीके प्रति वह युद्धमें दौड़ा, किन्तु भगवान् परशुरामजीने तीक्ष्ण धारवाले कुठारसे, सर्पके फणकी तरह, उसकी भुजाओंको भी शीघ्र काट डाला ॥ ३४ ॥ जब उसकी भुजाएँ कट चुकीं, तब उसका मस्तक भी पर्वतके शिखरकी भाँति काटकर गिरा दिया । हे राजन्, पिताके मर जानेपर उसके दस हजार पुत्र भयके मारे प्राण बचाकर भाग गए ॥ ३४ ॥ शत्रुसूदन परशुरामने इसके बाद बछड़ाके सहित कामधेनु लेकर तथा अपने आश्रममें आकर अपने पिताको शत्रुओंसे पीड़ित वह कामधेनु सौंप दी ॥३६॥ तथा श्रीपरशुरामजीने जिसप्रकार सहस्रार्जुनका बध किया वह सब कथा अपने पिता तथा भाइयोंसे सुनाई । यह सुनकर जमदग्निजीने परशुरामजीसे कहा ॥ ३७ ॥ हे राम, हे महाबाहो, तुमने बड़ा पाप किया, जोकि सर्वदेवमय राजाका वधकर डाला ॥३८॥ हे तात, हम लोग ब्राह्मण हैं, क्षमाके द्वारा ही हम लोग जगतपूज्य हुए हैं, तथा क्षमाके द्वारा ही लोकगुरु ब्रह्माजीको पारमेष्ठ्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पद प्राप्त हुआ है ॥ ३९ ॥ हे वत्से, ब्राह्मी सम्पत्तिकी शोभा क्षमासे होती है। जिसप्रकार सूर्यकी प्रभा है उसीप्रकार ब्राह्मण तेजकी भी प्रभा है। क्षमाशील पुरुषोंके ऊपर श्रीभगवान् हरि शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४० ॥ जिसका विधिवत् शास्त्रानुसार राज्याभिषेक हुआ हो ऐसे राजाका वध करनेसे ब्रह्महत्यासे भी अधिक पाप लगता है, इसलिये हे पुत्र, इस पापको तीर्थयात्रा तथा भगवान्के ध्यानसे तुम दूर करो ॥ ४१ ॥

गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमतात्पदम् ॥३९॥ क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४० ॥ राज्ञो मूर्धावसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० पु० नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार-श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, उर्वशीमें पुरुरवाको ६ पुत्र हुए। उसके विजय नामक पुत्रकी पाँचवीं पीढ़ीमें राजा जह्नु पैदा हुए, जिन्होंने गंगाका पानकर लिया था। राजर्षि जह्नुकी सातवीं पीढ़ीमें गाधि उत्पन्न हुए। गाधिकी सत्यवती नामक पुत्रीमें तपोधन ऋचीकऋषिसे जमदग्नि पैदा हुए। जमदग्निका विवाह रेणुकी पुत्री रेणुकासे हुआ। उससे जमदग्निको चार लड़के हुए—उसमें सबसे छोटा परशुराम था। जमदग्नि ऋषिकी कामधेनु गौको जबर्दस्ती छीन ले गये मदोन्मत्त राजा सहस्रार्जुनको परशुरामजीने युद्धमें मारकर अपनी गौ लाकर पिताजीको दे दी। पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॐ

❀ अथ षोडशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् ॥ गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥ विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किञ्चिच्चित्ररथ-स्पृहा ॥ ३ ॥ कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा

ॐ सहस्रार्जुनके पुत्रों द्वारा जमदग्निके मार दिये जानेपर परशुराम द्वारा पुनः क्षत्रियोंके संहार तथा विश्वामित्रके वंशका वर्णन ॐ

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार पिताके द्वारा दी गई शिक्षाको स्वीकारकर परशुरामजी एक वर्षमें तीर्थयात्राकर पुनः आश्रममें आ गये ॥ १ ॥ एक बार परशुरामकी माता रेणुका जल लेने गंगाजी गई। वहाँपर उन्होंने अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करते हुए पद्ममाली गन्धर्वको देखा ॥ २ ॥ वे यद्यपि जलके लिये गई थीं, उन्हें शीघ्र आना चाहिए था, क्योंकि मुनिके होम करनेका समय हो रहा था, किन्तु उनका चित्त क्रीड़ा करते हुए गन्धर्वराज चित्ररथको देखकर उसकी ओर आकृष्ट हो गया, इसलिये उन्हें मुनिके होमका समय भूल गया ॥ ३ ॥ कालात्यय समझकर मुनिके शापसे शङ्कित होकर वे वहाँसे शीघ्र आ पहुँची और मुनिके सामने कलश रखकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई ॥ ४ ॥ तदनन्तर जमदग्निमुनिने पत्नी- ॥३३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के मानसिक व्यभिचारको समझकर कुपित होकर अपने पुत्रोंसे कहा—हे पुत्रो, तुमलोग इस पापिनीको मार डालो इतना मुनिके कहनेपर किसी लड़केने उनकी आज्ञाका पालन नहीं किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर मुनिने परशुरामजीको आज्ञा दी। उन्होंने पिताकी आज्ञासे भाइयोंके सहित माताको मार डाला, क्योंकि वे मुनिके समाधि और तपके प्रभावको अच्छी तरह जानते थे ॥ ६ ॥ तब प्रसन्न होकर मुनिने रामसे वर माँगनेके लिये कहा—परशुरामने यह माँगा कि जिनको हमने मारा है वे सब पुनः जीवित हो जायँ और उनको यह स्मृति न रहे कि हमें इन्होंने मारा था ॥ ७ ॥ तदनन्तर वे सब लोग कुशलपूर्वक उठ बैठे, मानों जैसे सोकर जागे हों। पिताके तपके प्रभावको जानते हुए ही परशुरामने अपने बन्धुओंका वध किया था ॥ ८ ॥ हे राजन्, सहस्रार्जुनके पुत्र अपने पिताके वधका स्मरण करते हुए तथा परशुरामजीके वीर्यसे पराजित होकर शान्तिको न प्राप्त हुए॥९॥ एक बार भाइयोंके साथ परशुरामजीके आश्रमसे बाहर चले जानेपर अवसर पाकर अपने बापका बदला लेनेकी इच्छासे वे सहस्रार्जुनके पुत्र आश्रममें आ पहुँचे ॥१०॥ और उन्होंने भगवान्के ध्यानमें लीन एवं अग्निहोत्रशालामें आसीन

पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ॥ घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥ रामः सञ्चोदितः पित्रा भ्रातॄन्मात्रा सहावधीत् ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च सः ॥ ६ ॥ वरेण छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७ ॥ उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८ ॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे शमं न क्वचित् ॥ ९ ॥ एकदाश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्रातिदारुणाः ॥ प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥ रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना ॥ राम रामेति तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥ तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वनम् ॥ त्वरयाश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ॥ हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वास्मान्स्वर्गतो भवान् ॥ १५ ॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ॥ प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥१६॥

जमदग्नि मुनिको मार डाला ॥ ११ ॥ यद्यपि मारनेके पहले अतिदीन होकर परशुरामजीकी माताने उन लोगोंसे बहुत प्रार्थना की थी, यद्यपि उन क्षत्रियाधमोंने एक न सुनी। हठपूर्वक उनका सिर काटकर ले गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर रेणुका दुःख शोकसे व्याकुल होकर छाती तथा सिर धुनती हुई हे राम, हे तात, इसप्रकार उच्चस्वरसे विलाप करने लगीं ॥ १३ ॥ भगवान् परशुरामजीने दूरसे ही माताके आर्त स्वरको सुना। सुनकर वे शीघ्र आश्रममें आ गये और उन्होंने अपने मरे हुए पिताका शरीर देखा ॥ १४ ॥ पिताकी मृत्यु जनित दुःखसे उत्पन्न रोष, पीड़ा, और शोकके वेगसे मोहित होकर परशुराम कहने लगे—हे तात, हे धर्मिष्ठ, हम लोगोंको छोड़कर आप स्वर्ग चले गये, इसप्रकार विलाप करनेके बाद पिताके मृत शरीरको बन्धुओंके पास रखकर तथा स्वयं हाथमें फरसा लेकर उन्होंने क्षत्रियोंको निर्मूल करनेका अपने मनमें निश्चयकर लिया ॥ १५, १६ ॥ हे राजन्, ब्रह्महत्यासे जिनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कान्ति हत हो गई है ऐसी माहिष्मती नगरीमें जाकर उन पापियोंके सिर काट-काटकर उन्होंने एक बड़ा भारी पर्वत बना दिया ॥ १७ ॥ उन लोगोंके रुधिरसे ब्राह्मण द्रोहियोंको भय देने वाली बड़ी घोर नदी बह चली । इस प्रकार भगवान् परशुरामजीने अपने पिताके वधको हेतु बनाकर दुष्ट क्षत्रियोंका वध कर डाला ॥ १८ ॥ इक्कीस बार उन्होंने पृथिवीको क्षत्रिय विहीन करके स्यमन्त पञ्चक तीर्थमें खूनसे उन्होंने नव कुण्ड भर दिये ॥ १९ ॥ इनके बाद उन्होंने अपने पिताके सिरका पुनः शरीरमें जोड़कर तथा कुशासनपर बैठाकर सर्वदेवमय देवस्वरूप अपने ही अपना यजन किया ॥ २० ॥ यज्ञके अन्तमें उन्होंने दक्षिणामें होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिमदिशा और उद्गाताको उत्तर दिशा दान कर दी ॥ २१ ॥ तथा अन्यान्य यज्ञके ब्राह्मणोंको अवान्तर दिशाएँ एवं कश्यपको मध्यम भूमि और उपद्रष्टाको आर्यावर्तकी भूमि दान कर दी । इससे अवशिष्ट भूमि सब सदस्योंको दे डाली ॥२२॥

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम् ॥ तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥ तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥ १८ ॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥ स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान्ह्रदान्नव ॥ १९ ॥ पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥ ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यतः ॥ आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥ स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मण्डले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥ जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ॥ आगामिन्यन्तरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः ॥ उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ २६ ॥ एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥ विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ॥ मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥ २९ ॥ पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं

इसके बाद महानदी सरस्वतीमें यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान करनेसे वे समस्त पापोंसे निर्मुक्त हो गये तथा मेघमालासे रहित आकाशमें सूर्यकी कान्तिके समान देदीप्यमान हो गये ॥२३॥

परशुराम द्वारा पूजित जमदग्नि भी चेतनामय शरीर पाकर ऋषिमण्डलमें सातवें ऋषि हो गये ॥२४॥ हे राजन्, कमलके सदृश नेत्रवाले जमदग्नि पुत्र परशुराम भी आगामी मन्वन्तर में वेदके प्रवर्तक होंगे अर्थात् वेद प्रवर्तक सप्तर्षियोंमें एक होंगे ॥२५॥ इस समय न्यस्त दण्ड एवं शान्त चित्त होकर महेन्द्राचल पर्वतपर विराजमान हैं । चारों ओर सिद्ध, गन्धर्व और चारण उनके विचित्र चरित्रोंका गान करते हैं ॥२६ ॥ इसप्रकार विश्वात्मा भगवान् सर्वेश्वर श्रीहरिने भृगुवंशमें अवतार लेकर पृथिवीके भारभूत बहुतसे राजाओंका वध किया ॥ २७ ॥ राजा गाधिके अग्निमें समान देदीप्यमान महातेजस्वी पुत्र विश्वामित्र हुए, जिन्होंने तपोबलसे क्षत्रित्वका त्यागकर ब्राह्मणतेज प्राप्त किया ॥ २८ ॥ हे राजन्, विश्वामित्रके एक सौ पुत्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए, उनमें यद्यपि उनके मझले पुत्रका नाम मधुच्छन्दस था, तथापि वे सभी मधुच्छन्दस नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २६ ॥ विश्वामित्रने भृगुवंशी अजीगर्तऋषिके पुत्र शुनःशेपको देवरात नाम रखकर अपना पुत्र बना लिया और अपने पुत्रोंसे कहा कि तुम लोग इसे अपना जेष्ठ भाई मान लो ॥ ३० ॥ जिस शुनःशेप यज्ञके पशु बनानेके लिये हरिश्चन्द्रने खरीद लिया था, किन्तु प्रजापति आदि देवताओंकी स्तुति जब शुनःशेपकी, तब उन लोगोंने प्रसन्न होकर उन्हें छोड़ दिया था ॥ ३१ ॥ देवताओंके द्वारा ही यह रात अर्थात् प्रदत्त हुए इसलिये गाधिवंशमें देवरात नामसे प्रसिद्ध हुए । पहले तो भृगुवंशी थे तथा शुनःशेप इनका नाम था ॥ ३२ ॥ जब विश्वामित्रकी आज्ञासे मधुच्छन्दस नामक उनके पुत्रोंने शुनःशेपको अपना जेठा भाई बनाना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उन्हें वैसा करनेमें कुशल नहीं दीखता था, तब कुपित होकर विश्वामित्रने उन्हें शाप दे दिया कि तुम लोग म्लेच्छ हो जाओ ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कुपित विश्वामित्रको देखकर मध्यम पुत्र मधुच्छन्दसने कहा—हे भगवन्, पचास भाइयोंके सहित हम लोगोंको कनिष्ठ अथवा ज्येष्ठ बननेकी आप जो आज्ञा दें सो सब हम

देवरातं च भार्गवम् ॥ आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ॥ स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबन्धनात् ॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ॥ देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गवः ॥ ३२ ॥ ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत्तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥ स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः ॥ यन्नो भवान्सञ्जानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ॥ विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ ॥ ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम् ॥ ३५ ॥ एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ॥ अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ॥ प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥३७॥ इति श्रीम० न० षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

लोगोंको मंजूर है आपकी उसी आज्ञाके पालनमें हमलोग सदा तैयार रहेंगे ॥ ३४ ॥ तथा विश्वामित्रके पुत्रोंने भी शुनःशेपको अपना जेठा भाई संजूर करके कहा—हे भाई, हम लोग अब तुम्हारे अनुगामी हो गये अर्थात् कनिष्ठ भ्राता हो गये । तदनन्तर पुत्रोंके ऊपर प्रसन्न होकर विश्वामित्रने कहा—जाओ, तुम लोग वीर होओगे । जो कि तुम लोगोंने मेरी आज्ञा का पालन करके मेरा सम्मान किया एवं मुझे वीर पुत्रवान् बनाया है ॥ ३५ ॥ हे पुत्रो, ये देवरात भी आजसे कुशिकवंशमें ही गिने जायँगे । तुम लोग इनका अनुसरण करना । इसके बाद इन सौ पुत्रोंके अतिरिक्त और भी अष्टक, हारीत, जय, क्रतुमद आदि पुत्र विश्वामित्रके हुए हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक गोत्रके कई भेद हो गये तथा देवरातसे कौशिक गोत्र दूसरे प्रवरको भी प्राप्त हो गया, जिसका विकल्प विवरण कह चुके ॥ ३७ ॥

सोलहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, राजहत्याजनित पापकी निवृत्तिके लिये अपने पिताकी आज्ञा मानकर परशुरामजी तीर्थयात्रा करने निकल गये । सालभरके बाद अपने आश्रममें लौट आये । एक दिन जमदग्निकी पत्नी रेणुका जल लानेके लिए गङ्गाके निकट गईं वहाँ अप्सराओंके साथ जलक्रीडा कर रहे गन्धर्वराजको देखकर कुछ देर तक रुक गई । तदनन्तर पतिके समीप आकर जल रखते हुए हाथ जोड़कर खड़ी हो गई । जमदग्निने उसके मानसिक व्यभिचार को समझकर कहा—हे पुत्रो, इस मानसिक व्यभिचारिणी अपनी माँ को मार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

डालो। अपनी मांका गर्दन काटनेकी जब किसी लड़के की हिम्मत न हुई। तब अपने पिताके तपोबलको जानते हुए परशुरामने पिताकी आज्ञासे अपने भाइयोंके साथ मांका गर्दन काट दिया। तदनन्तर अपने आज्ञाकारी पुत्रको देखकर जमदग्निने प्रसन्न होते हुए कहा—पुत्र वर माँगो। परशुरामने कहा—'पिताजी, ये सबके सब जीवित खड़े हो जायँ, जिन्हें मैंने अभी मारा है तथा इन्हें यह न मालूम हो कि परशुरामने हमें मार दिया था'। जमदग्निने 'तथास्तु' कहा और वे सब जी उठे। एक दिन परशुराम कहीं आश्रमसे बाहर चले गये थे। मौका पाकर सहस्रार्जुनके लड़कोंने ध्यानमें बैठे हुए जमदग्निका गर्दन उतार दिया। यह कुकृत्य देखकर अपने पिताके मृतक शरीरको भाइयोंके हाथ सुरक्षित रखनेके लिए सौंपते हुए परशुरामने पृथिवीको क्षत्रियोंसे शून्य बना देनेकी प्रतिज्ञाकर अपना फरसा लेकर निकल पड़े। इक्कीसबार क्षत्रियोंका संहार कर उन्होंने स्यमन्तक पञ्चक तीर्थमें उनके रुधिरसे नव कुण्ड भर दिये। तदनन्तर आश्रममें आये। अपने पिताके मृतक शरीरको कुशासनपर बैठाकर सर्वदेवमय भगवान्का उन्होंने यजन किया। सारी पृथिवी ब्राह्मणोंको देकर पापोंसे निवृत्त होते हुए महेन्द्रपर्वत पर चले गये। हे राजन्, आजकल भी वे वहीं पर विराजमान हैं। हे महीपते, गाधिके विश्वामित्र पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपनी तपस्यासे क्षत्रित्वका त्यागकर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। इनके सौ पुत्र थे। इन्होंने भृगुवशी अजीगर्तके पुत्र देवरातको लेकर अपना पुत्र बनाया और अपने लड़कोंसे कह दिया कि तुम लोग इसे अपना ज्येष्ठ भाई मानना। उनके लड़कोंने पहले तो अस्वीकार किया, लेकिन पीछे उनकी बात मान ली। विश्वामित्रने कहा—तुम लोग वीर होओगे। क्योंकि मेरी बात मानकर मुझे वीर पुत्रवान् तुम लोगोंने बनाया है। आजसे देवरात भी कुशिक वंशमें ही माने जायँगे। हे राजन्, इन पुत्रोंके अतिरिक्त अष्टक आदि और भी अनेक इनके लड़के हुए हैं, जिनसे कौशिक गोत्रके कई भेद हो गये। सोलहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्या भवन्सुताः ॥ नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥ अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ॥ क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २ ॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ॥ शुनकः शौनको यस्य बह्वृच-प्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतम पिता ॥ धन्वन्तरिर्दैर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४ ॥ यज्ञभुग्वासुदेवांशः स्मृतमात्रा-र्तिनाशनः ॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः ॥ स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज

❀ पुरूरवाके ज्येष्ठ पुत्र आयुके पाँच लड़कोंमें क्षत्रवृद्ध आदि चार लड़कोंके वंशका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, पुरूरवाके पुत्र आयु हुए, जिनका हम पहले वर्णनकर चुके हैं। आयुके पाँच पुत्र हुए–नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, रम्भ और अनेना। हे राजन्, इसमेंसे क्षत्रवृद्ध वंशका वर्णन सुनिये। क्षत्रवृद्धके पुत्र सुहोत्र हुए तथा सुहोत्रके तीन पुत्र हुए ॥१,२॥ काश्य कुश और गृत्समद्, गृत्समद्से शुनक हुए तथा शुनकसे बह्वृचोंमें श्रेष्ठ शौकीनजी हुए॥३॥ काश्यसे काशि हुए, काशिसे राष्ट्र हुए, राष्ट्रसे दीर्घतम हुए और दीर्घतमसे आयुर्वेदशास्त्रके प्रवर्तक धन्वन्तरि हुए ॥ ४ ॥ इनको यज्ञमें भाग मिलता है। ये साक्षात् भगवान् वासुदेवके अंशावतार कहे जाते हैं। इनका स्मरण करनेमात्रसे प्राणियोंके नाना प्रकारके रोग नष्ट हो जाते हैं। धन्वन्तरिसे केतुमान, और केतुमानसे भीमरथ हुए ॥ ५ ॥ भीमरथके पुत्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिवोदास तथा दिवोदाससे द्युमान् हुए। द्युमानके ही प्रतर्दन, शत्रुजित्, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व ये पाँच नाम पड़े। प्रतर्दनसे अलर्क आदि बहुतसे पुत्र हुए॥ ६॥ हे राजन्, अलर्कने छियासठ हजार वर्षों तक युवा रहकर पृथिवीका राज्य किया॥ ७॥ अलर्कसे सन्तति हुए, सन्ततिसे सुनीथ और उनसे सुकेतन हुए। उनके धर्मकेतु तथा उनके सत्यकेतु हुए॥ ८॥ सत्यकेतुसे धृष्टकेतु, उनसे सुकुमार, उनसे वीतिहोत्र, उनसे गर्ग और उनसे राजा भार्गभूमि हुए॥ ९॥ ये सब राजा काशिके वंशज हैं। इनका जन्म क्षत्रवृद्धके वंशमें हुआ है॥ रम्भके पुत्र रभस, उनके गम्भीर और उनके अक्रिय हुए॥ १०॥ तथा अक्रियके पुत्र ब्रह्मवित् हुए। अब अनेनाके वंशको सुनिये—अनेनाके पुत्र शुद्ध हुए, उनके शुचि और उनके त्रिककुद् हुए। इन्हींका दूसरा नाम धर्मसारथि है॥ ११॥ त्रिककुद्के पुत्र शान्तरथ हुए। ये बड़े आत्मज्ञानी एवं कृतकृत्य थे। रजिके अमितबलशाली पाँचसौ पुत्र हुए॥ १२॥ दैत्योंसे युद्धमें हारकर देवताओंने रजिसे जब प्रार्थना की, तब इन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकारकर युद्धमें दैत्योंका संहारकर इन्द्रको पुनः स्वर्गका राज्य दे दिया। तदनन्तर इन्द्रने प्रह्लाद आदि

इतीरितः॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः॥ ६॥ षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥७॥ अलर्कात्सन्ततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ सुकेतनः॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत॥ ८॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः॥ वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः॥ ९॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः॥ रम्भस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः॥ १०॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः॥ शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः॥११॥ ततः शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान्॥ रजेः पञ्चशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम्॥१२॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेन्द्रायाददाद्दिवम्॥ इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः॥१३॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्रादाद्यरिशङ्कितः॥ पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः॥ १४॥ त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः॥१५॥ अवधीद् भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः॥ कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्सञ्जयस्तत्सुतो जयः॥१६॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः॥ सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः॥ १७॥ संकृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः॥ क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात्॥ १८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चन्द्रवंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

शत्रुओंसे डरकर रजिके चरण पकड़कर उन्हें स्वर्गके राज्य सहित आत्मसमर्पण कर दिया, किन्तु कुछ दिनके बाद रजिका जब शरीर छूट गया, तब इन्द्रने उनके पुत्रोंसे स्वर्गका राज्य माँगा। उन्होंने नहीं दिया बल्कि वे लोग यज्ञके भागको भी बलपूर्वक ग्रहण करने लगे। तदनन्तर बृहस्पतिने रजिके पुत्रोंकी मति भ्रष्ट करनेके लिये अभिचार विधिसे हवन किया॥१३॥ १४, १५॥ तब वे लोग मार्गसे भ्रष्ट हो गये और इन्द्रने अनायास ही उन सबका वधकर डाला। कोई भी उनमें अवशिष्ट न रहा। क्षत्रवृद्धके पौत्र कुशसे प्रति हुए, प्रतिसे सञ्जय और सञ्जयसे जय हुए॥ १६॥ जयसे कृत, उनसे राजा हर्यवन, उनसे सहदेव, उनसे अहीन और उनसे जयसेन हुए॥ १७॥ जयसेनसे संकृत और उनसे जय हुए। ये बड़े क्षत्रिय धर्मनिष्ठ एवं महारथी थे। ये सब राजा लोग क्षत्रवृद्धके वंशमें हुए हैं। हे राजन्, अब नहुशवंश सुनिये॥ १८॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सत्रहवें अध्याय का सार—हे राजन् आयुके नहुष आदि पाँच लड़कोंमें क्षत्रवृद्धकी चौथी पीढ़ीमें शुनक हुए। इन्हींके पुत्र बहृचोंमें सर्वश्रेष्ठ शौनकजी हुए थे। क्षत्रवृद्धकी सातवीं पीढ़ीमें धन्वन्तरि हुए। धन्वन्तरिकी चौथी पीढ़ीमें राजा दिवोदास हुए और दिवोदासकी तीसरी पीढ़ीमें राजा अलर्क हुए। अनेनाकी पाँचवें पीढ़ीमें शान्तरय हुए, ये बड़े आत्मज्ञानी थे। रजिके पाँच सौ लड़के हुए थे। देवताओंकी प्रार्थनापर रजिने दैत्योंको मारकर स्वर्गका राज्य इन्द्रको दे दिया, लेकिन इन्द्रने प्रह्लाद आदिसे डरकर स्वर्गका राज्य रजिको दे दिया। रजिके मर जानेपर जब इन्द्रने रजिके लड़कोंसे स्वर्गका राज माँगा, तब उन्होंने देनेसे अस्वीकारकर दिया। तदनन्तर बृहस्पतिने उनकी बुद्धिको आभिचारिकप्रयोगसे जब भ्रष्टकर दिया, तब इन्द्रने उन सबको मार डाला, यों उनमें कोई नहीं बचा रहा। रम्भकी तीसरी पीढ़ीमें अक्रिय हुए। ये ब्रह्मवित् थे और इन्हें कोई सन्तति न थी। सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथाष्टादशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायातिर्वियतिः कृतिः ॥ षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥१॥ राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ॥ यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥ पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद् द्विजैः ॥ प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥ चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन्भ्राता यवीयसः ॥ कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ॥ राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ॥ सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥ देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसङ्कुले ॥ व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीर्मिथः ॥८॥ वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ॥ सह-

* ययातिके पाँच पुत्रोंमें सबसे छोटेने अपनी युवावस्था पिताको देकर पिताकी वृद्धावस्था लेली—यह वर्णन *

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति ये छः पुत्र शरीरधारियोंकी छः इन्द्रियोंके समान राजा नहुषके हुए ॥ १ ॥ ज्येष्ठ पुत्र यतिने पिताके द्वारा दिये गए राज्यको नहीं स्वीकार किया, क्योंकि वे राज्यके परिणामको भलीभाँति जानते थे कि राज्यमदके कारण प्राणी आत्मज्ञानसे वंचित रह जाता है ॥ २ ॥ इन्द्राणीके कारण ब्राह्मणोंके शापसे पिता नहुष जब अजगर योनिको प्राप्त हो गये, तब ययाति राजा बने ॥ ३ ॥ ययातिने अपने चारों छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंका राज्य दे दिया और अपने स्वयं वृषपर्वा दैत्य एवं शुक्राचार्यकी कन्याके साथ विवाह करके सारे भूमण्डलका शासन करने लगे ॥ ४ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित्ने कहा—हे भगवन्, शुक्राचार्य तो ब्रह्मर्षि हैं तथा नहुष क्षत्रिय हैं, फिर शुक्राचार्यकी कन्याके साथ इनका प्रतिलोम विवाह सम्बन्ध कैसे हुआ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एकबार दानवेन्द्र वृषपर्वाकी शर्मिष्ठानामकी कन्या एक हजार सखियोंसे युक्त होकर गुरुपुत्री देवयानीके साथ पुष्पित वृक्षोंसे व्याप्त पुरवाटिकामें विचरण करने लगी, वहाँपर कमलके वृक्षोंपर बैठे हुए भौंरे गुञ्जार कर रहे थे ॥ ६, ७ ॥ कमलके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समान नेत्रोंवाली वे सब कन्याएँ वहाँपर विचरण करती हुई एक जलाशयके पास पहुँचीं और उन सबने साड़ी आदि सब वस्त्र खोल-खोलकर जलाशयके किनारे रख दिये तथा वे सबके सब नग्न होकर उसमें जलक्रीड़ा करने लगीं ॥ ८ ॥ दैवयागसे देवी पार्वतीके सहित नन्दीपर बैठे हुए शंकरजी वहाँसे निकले। उन्हें देखकर वे सब अत्यन्त लज्जित हो गईं और सहसा जलसे निकलकर अपने वस्त्र पहनने लगीं ॥ ९ ॥ शीघ्रताके कारण अज्ञानसे शर्मिष्ठाने देवयानी गुरुपुत्रीका वस्त्र पहिन लिया। अपने वस्त्रको पहिनते हुए देखकर कुपित होकर देवयानीने यह कहा ॥१०॥ अहो, अहो, इस दासीके निन्दनीय कर्मको तो देखो, जो कि हमारे धारण करनेका वस्त्र इसने धारणकर लिया है, जैसे कि यज्ञमें कुत्ती हवनको ग्रहणकरले ॥ ११ ॥ जिन्होंने अपने तपोबलसे जगत्की सृष्टि की है, जो परमात्माके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, जो ब्रह्मरूप वेदके जाननेवाले हैं तथा जिन्होंने मङ्गलकारक वेदमार्ग संसारको दिखलाया है ॥१२॥ एवं समस्त लोकपाल तथा इन्द्रादि देवता और साक्षात् विश्वात्मा विश्वपावन श्रीनिवास भगवान् विष्णु जिनकी बन्दना और स्तुति करते हैं ॥१३॥ यह तो साधारण ब्राह्मणों

सोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥
अहो निरीक्षतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते
यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः ॥ १२ ॥ यान्वन्दन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः ॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः
॥१३॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥१४॥ एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ॥
रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥१५॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥१६॥
एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाचार्यसुतां सतीम् ॥ शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥
प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ ॥ दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः
॥ १९ ॥ तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरञ्जय ॥२०॥ हस्तग्राहो परो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि

की बात है, हम लोग तो फिर भी भृगुवंशी हैं और इसका पिता हमलोगोंका शिष्य है, तो भी जैसे शूद्र वेदको धारण करे, वैसेही हमारे वस्त्रको इसने धारणकर लिया है ॥१४॥ गुरुपुत्री देवयानीके इसप्रकार तिरस्कारपूर्ण वचन सुनकर शर्मिष्ठा भी क्रोधसे नागिनीकी तरह फुफकारती हुई गुरुपुत्रीके प्रति दाँतोंसे ओठ काटती हुई कहने लगी ॥१५॥ अरी भिक्षुकी तूँ अपने आचरणोंपर ध्यान न देकर बड़ी-बड़ी बातें बखार रही है। क्या तुमलोग बलि खानेवाले कौओं और कुत्तोंकी तरह हमारे घरकी प्रतीक्षा नहीं करती हो ॥ १६ ॥ इसप्रकार नाना कठोर वचनोंसे गुरुपुत्रीको डाँटकर शर्मिष्ठाने उसका वस्त्र लेकर उसे कुँएमें क्रोधके मारे ढकेल दिया। ॥ १७ ॥ इसप्रकार जब शर्मिष्ठा सखियों सहित गृहको चली गई, तब राजा ययाति शिकार खेलकर पानी पीनेको इच्छासे अकस्मात् उस कुँए पर आ पहुँचे और उन्होंने कुँएमें पड़ी हुई देवयानीको देखा ॥१८॥ देखकर राजाको बड़ी दया आई। उन्होंने नग्न देवयानीको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पहिननेके लिये अपना वस्त्र दुपट्टा देकर अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर कुँएमेंसे उसे निकाल लिया ॥ १९ ॥ तब प्रेमभरी गद्गद वाणीसे देवयानीने राजा ययातिसे कहा—हे परपुञ्जय राजन्, आपने मेरा हाथ पकड़ लिया है ॥ २० ॥ इसलिये अब मेरा पाणिग्रहण आपके अतिरिक्त और किसी दूसरेके साथ नहीं होगा, क्योंकि हे वीर, मेरा और आपका यह संयोग ईश्वर ने ही निश्चित किया है, न कि किसी मनुष्यने ॥ २१ ॥ हे राजन्, ईश्वरकी इच्छासे ही कूपमें पड़ी हुई मुझे आपका अचानक दर्शन हुआ और हे महाबाहो, बृहस्पतिके पुत्र कचका, जिसे मैंने पहले शाप दिया था, मुझे शाप भी है कि तुम्हें ब्राह्मण पति नहीं मिलेगा ॥ २२ ॥ यद्यपि ब्राह्मणकन्याके साथ विवाह करना शास्त्रविरुद्ध समझकर राजाको अभिप्रेत नहीं था, तथापि ययातिने इस विषयमें दैव इच्छा समझकर और देवयानीमें अपने मनको आसक्त जानकर उसके वचनको स्वीकारकर लिया ॥ २३ ॥ राजा ययाति इसके बाद अपने घर चले गये। तदनन्तर देवयानी भी उस स्थानसे रोती हुई अपने पिताके पास पहुँची और शर्मिष्ठाद्वारा की गई सारी बातें उसने अपने पितासे सुनाईं ॥ २४ ॥ यह सुनकर शुक्राचार्य बहुत ही दुःखित हुए एवं

मे ॥ एष ईशकृतो वीर संबन्धो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥ यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्य मशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ २३ ॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥ दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ॥ स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥ गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥ क्षणार्धमन्युर्भगवाञ्शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥ तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥ स्वानां तत्सङ्कटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः ॥ तमाह राजन् शर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥ विलोक्यौशनसीं राजन् शर्मिष्ठा

पुरोहित्य वृत्तिकी निन्दा और शिलोञ्छवृत्तिकी प्रशंसा करते हुए कन्याके सहित वृषपर्वाके नगरसे चले गये ॥ २५ ॥ जब वृषपर्वाको यह मालूम हुआ, तब उसने सोचा कि यदि गुरुजी इस अपमानसे शत्रुओंके पक्षमें मिल गये, तो फिर दैत्योंका कल्याण नहीं है, इसलिये उनको जैसे हो प्रसन्न करना चाहिए, यह विचारकर वह मार्गमें जाते हुए गुरुजीके चरणोंपर गिर पड़ा और मीठी-मीठी बातोंसे उसने प्रसन्न किया ॥ २६ ॥ थोड़ी देरके बाद उनका कोप शान्त हो गया और उन्होंने अपने शिष्य वृषपर्वासे कहा—हे राजन्, मैं तो प्रसन्न हूँ, किन्तु अपनी इस पुत्रीको नहीं छोड़ना चाहता हूँ, इस कारण तुम इसको प्रसन्न करो और जो यह कहे, सो इसका मनोरथ सफल करो ॥ २७ ॥ जब वृषपर्वाने यह सब स्वीकार कर लिया, तब देवयानी अपने मनोगत अभिप्रायको प्रकट करती हुई कहने लगी—हे राजन्, हम यही चाहते हैं कि पिताजी जहाँपर हमारा विवाह कर दें, वहींपर शर्मिष्ठा अपनी सखियों सहित हमारी दासी बनकर रहे ॥ २८ ॥ यह सुनकर वृषपर्वाने सोचा कि यदि गुरुजी चले जायँगे, तो हमलोगोंपर बड़ा कष्ट आ जायगा और इनके रहनेसे बड़े-बड़े कार्य सिद्ध होंगे, इसलिये उनसे देवयानीकी बात

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वीकारकर ली। तबसे शर्मिष्ठा एक हजार सखियों सहित देवयानीकी दासी बनकर सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर शुक्राचार्यने देवयानीके इच्छानुसार राजा ययातिको शर्मिष्ठा सहित देवयानीको अर्पणकर दिया और ययातिसे कह दिया कि शर्मिष्ठाको कभी अपनी शय्यापर न बैठा रखना॥ ३० ॥ हे राजन्, कुछ दिनके बाद देवयानीके गर्भसे राजा ययातिके कई पुत्र हुए। तदनन्तर देवयानीको पुत्रवती देखकर शर्मिष्ठाने भी एकान्तमें जाकर ऋतुकाल उपस्थित होनेपर सखिपति राजा ययातिसे सन्तानके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ इसप्रकार राजा-पुत्री शर्मिष्ठासे अपत्यके लिये प्रार्थित धर्मज्ञ राजा ययातिने सोचा—परस्त्री गमनमें भी पाप है तथा ऋतुकालमें पार्थना करती हुई स्त्रीको निराश करनेसे भी गोवध तुल्य पाप लगता है, अब इस विषयमें क्या करना चाहिए। शर्मिष्ठाके साथ रमण करना शुक्राचार्य्यने निषेध भी किया है। तदनन्तर कुछ देर बाद उन्होंने इस विषयमें दैव इच्छा जानकर स्वीकार किया ॥ ३२ ॥ तत्पश्चात् ययातिके यदु, तुर्वसु ये दो पुत्र देवयानीसे और द्रुह्यु, अनु तथा पूरु ये तीन पुत्र शर्मिष्ठासे हुए ॥ ३३ ॥ इसके बाद जब देवयानीको विदित हुआ कि हमारे पतिसे शर्मिष्ठाके

सप्रजां क्वचित् ॥ तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥ गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्च्छिता ॥ ३४॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ॥ त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच ॥ अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥ ३७ ॥ इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मायामहकृतं वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥३९॥

गर्भसे पुत्र हुए हैं, तब मानिनी क्रोधसे मूर्छित होकर अपने पिताके घर चली आई ॥ ३४ ॥ और उसके पीछे पीछे मीठे- मीठे वचनोंसे प्रसन्न करते हुए कामी राजा ययाति भी चले आए। अन्तमें वे उसके पैरोंपर गिर गये और लगे उसके पैर दबाकर प्रार्थना करने, किन्तु उसने राजाकी एक भी न सुनी तथा न प्रसन्न हुई ॥ ३५ ॥ जाकर पितासे सब समाचार सुनाया। सुनकर शुक्राचार्य्यने कुपित होकर राजासे कहा—अरे कामी, अरे मिथ्यावादी, तूने हमारी आज्ञाका उलंघन किया। हे मन्द, तुझे शीघ्र ही मनुष्योंको विरूप करनेवाली जरा ग्रस्तकर लेगी ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिने कहा—हे भगवन्, मैं अभी भोगसे आपकी कन्यामें तृप्त नहीं हुआ हूँ, यह सुनकर कुछ देर बाद शान्त होकर शुक्राचार्य्यने कहा—यदि कोई अपनी युवावस्था कुछ दिनके लिये दे सके, तो उससे इच्छानुसार बदल लेना ॥ ३७ ॥ इसप्रकार व्यवस्था पाकर राजा ययातिने घर आकर ज्येष्ठ पुत्र यदुसे कहा—हे तात यदो, कुछ दिनके लिये अपनी युवावस्था देकर मेरी जरावस्था ग्रहणकर लो, क्योंकि मैं अभी विषयोंमें तृप्त नही हुआ हूँ और हे वत्स, तुम्हारे नानाने मुझे शापसे वृद्ध बना दिया है, इसलिये मैं चाहता हूँ कि कुछ दिनतक तुम्हारी अवस्था लेकर रमण करूँ ॥ ३८, ३९ ॥ यदुने कहा—पिताजी, आप तो कुछ विषयसुखोंका अनुभवकर मध्य अवस्थामें वृद्ध हुए हैं। मैंने तो अभी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ भी अनुभव नहीं किया, इसलिये मैं आपकी जरा अवस्था धारण न कर सकूँगा। क्योंकि बिना सांसारिकसुखोंका अनुभव किये मनुष्यको वैराग्य नहीं होता ॥ ४० ॥ हे भारत, इसीप्रकार तुर्वसु तथा दह्यु से भी राजाने अवस्था बदलनेकी प्रार्थना की, किन्तु अधर्मज्ञ विषयोंमें नित्य बुद्धि रखनेवाले उन लोगोंने भी यदुकी तरह ही अस्वीकारकर दिया। तदनन्तर राजाने अवस्थामें सबसे छोटे तथा गुणोंमें सबसे बढ़े चढ़े छोटे पुत्र पूरुसे कहा-हे पुत्र, मुझे अपने बड़े भाइयोंकी तरह निराश मत करना, किन्तु मेरे मनोरथको अवश्य पूर्ण कर देना ॥ ४१, ४२ ॥ पिताकी इसप्रकार प्रार्थना सुनकर पूरुने कहा-हे मनुष्येन्द्र, अपने शरीरको उत्पन्न करनेवाले पिताका प्रत्युपकार करनेको इस संसारमें कौन पुरुष समर्थ है, जिसकी कृपा से मनुष्य परमपदको प्राप्तकर लेता है ॥ ४३ ॥ तथा जो पुत्र पिताका रुख देखकर कार्य करता है उसकी गणना उत्तम पुत्रमें होती है तथा जो कहनेपर कार्य करता है उसकी मध्यम पुत्रमें गणना होती है और जो कहनेपर भी अश्रद्धासे कार्य करता है उसकी अधमकोटिमें गणना होती है। जो किसीप्रकार करता ही नहीं है वह पुत्र नहीं है, बल्कि वह पिताके पुरीषके तुल्य

यदुरुवाच ॥ नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विन्दते परम् ॥ ४३ ॥ उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥ अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चारितं पितुः ॥ ४४ ॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५ ॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥ देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥ अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥ यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥ तमेव हृदि विन्यस्य

है ॥ ४४ ॥ हे राजन्, इतना कहकर पूरुने हर्षपूर्वक पितकी जरा अवस्था ग्रहणकर अपनी युवावस्था दे दी। तदनन्तर राजाने भी पुत्रकी अवस्था पाकर खूब विषयभोग किया ॥ ४५ ॥ अखण्ड भूमण्डलके स्वामी राजा ययातिने पुत्रकी भाँति प्रजापालन करते हुए अव्याहत इन्द्रियों द्वारा इच्छानुसार भोग किये ॥ ४६ ॥ अपने पतिकी प्यारी देवयानी भी मन, वचन और शरीरसे तथा नाना पदार्थों से प्रतिदिन एकान्तमें राजाको प्रसन्न रखती थी ॥ ४७ ॥ इनके बाद राजा ययातिने बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे सर्वदेवमय एवं सर्वदेवमय यज्ञपुरुष भगवान् हरिका यजन किया ॥ ४८ ॥ जिन भगवान्में यह संसार आकाशमें मेघमालाके समान विरचित होकर स्वप्न और मायासे युक्त मनोरथकी नाईं जबतक इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति रहती है तबतक नाना रूपसे अवभासित होता है और इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति जब शान्त हो जाती है तब अवभासित नहीं होता। उन्हीं अतिसूक्ष्म सर्वान्तर्यामी नारायण भगवान् वासुदेवका हृदयमें चिन्तन करते हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निष्कामभावनासे यज्ञ किया ॥ ५० ॥ इसप्रकार सार्वभौम राजा ययाति मनसहित छः इन्द्रियोंसे हजारों वर्षोंतक निरन्तर विषयभोग करते रहे, किन्तु उन विषयासक्त कुत्सित इन्द्रियोंद्वारा वे तृप्त न हो सके ॥ ५१ ॥

वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥५०॥ एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनः सुखम् ॥ विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० नवमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अट्ठारहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, पुरूरवाके पुत्र नहुषके यति आदि ६ः पुत्रोंमें सबसे विख्यात ययाति हुए। उन्होंने दान-धर्म खूब किये। एक दिन वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा अनेक सखियोंके साथ नगरोद्यानके एक जलाशयमें जाकर नङ्गे जलक्रीडा करने लगी। अचानक भगवान् शङ्करको देखकर सब लड़कियाँ लज्जा गईं। जल्दीमें शुक्राचार्यकी लड़की देवयानीकी साड़ी शर्मिष्ठाने पहन ली। क्रुद्ध होकर देवयानीके कहा—इस दासीको तो देखो, इस नादान छोकरीने भार्गव वंशमें उत्पन्न मेरी साड़ी पहन ली। यों अपमान भरी बातें सुननेके बाद शर्मिष्ठाने कहा—अरी भिखमङ्गेकी बेटी, बड़ी बातें बखार रही है। क्या तुम लोग कुत्तोंकी तरह हम लोगोंके घरकी प्रतीक्षा नहीं करती हो यों डाटती हुई उसने देवयानीको कुएँमें ढकेल दिया। तदनन्तर शिकार खेलकर पानी पीनेकी इच्छासे उस कुएँ पर आये हुए राजा ययातिने कुएँके भीतरसे देवयानीका हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल दिया। देवयानीने कहा—राजन्, ख्याल रखना, तुमने मेरा हाथ पकड़ा है घर आकर देवयानीने शुक्राचार्यसे सारी कथा कह सुनाई। शुक्राचार्य पौरोहित कर्मकी निन्दा करते हुए उस नगरसे निकल पड़े। यह सुनकर वृषपर्वाने रास्तेमें आकर शुक्राचार्यको जब प्रसन्न किया तब शुक्राचार्यने कहा—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, लेकिन मेरी लड़की नहीं है उसे प्रसन्न करो। वृषपर्वाने देवयानीसे प्रार्थना करने पर देवयानीने ने कहा—मेरा जहाँ विवाह हो वहीं शर्मिष्ठा दासी बनकर रहे। वृषपर्वाने स्वीकार कर लिया। तदनन्तर देवयानीके इच्छानुसार शुक्राचार्यने ययातिसे उसकी शादी कर दी और उसीके साथ शर्मिष्ठा चली गई। देवयानीको पुत्रवती देखकर शर्मिष्ठाने भी एकान्तमें राजासे पुत्रके लिये प्रार्थना की। राजाने स्वीकार कर लिया। तदनन्तर उसे तीन पुत्र हुए, यह देखकर देवयानीने नाराज होकर अपने पिताके घर चली गई। शुक्राचार्यने सारी कथा सुनकर राजाको शाप दे दिया—अरे कामी, तूँ शीघ्र वृद्ध हो जायगा। यह सुनकर राजाने शुक्राचार्यसे कहा—भगवन् अभी आपकी लड़कीमें मेरी काम शान्ति नहीं हुई है। तब शुक्राचार्यने कहा—अच्छा, आओ, अपने इच्छानुसार जिस किसीसे तुम अवस्था बदल सकते हो। राजाने आकर अपने बड़े पुत्रोंसे अवस्था बदलनेके लिये कहा, लेकिन सभी बड़े लड़कोंने जब अस्वीकारकर किया। तब छोटे लड़केने उनकी अवस्था बदल ली। हे महाराज, राजा ययातिने निष्काम भावसे भगवान्का पूजन करते हुए खूब विषयोपभोग किये, लेकिन फिर भी वे विषयोंमें तृप्त न हो सके। अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त॥

दृष्टान्त—राजा ययातिने अपने सबसे छोटे पुत्रसे प्रार्थनाकर उसकी आयुका कुछ हिस्सा लेकर उसकी मातासे रमणकर इस महापापका संचय क्यों किया !

उत्तर—मालूम होता है कि राजाकी मति नष्ट हो गई थी। इस युगमें भी बुड्ढोंकी बुद्धि इतनी नष्ट हो जाती है, जिससे उनका नाश अवश्यंभावी हो जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार स्त्रीके वशीभूत होकर राजा ययातिको नाना विषयोंको भोगते हुए अपने आत्मपतनका ज्ञान हुआ। वे विषयोंसे विरक्त होकर अपनी स्त्री देवयानीसे यह गाथा सुनाने लगे ॥ १ ॥ ययातिने कहा—हे प्रिये, मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ, सुनो इस कथामें प्रायः मेरे जैसे कामी विषय प्रियकी ही चर्चा है, जिसके लिए वनमें रहनेवाले धीर पुरुष भी शोच किया करते हैं ॥ २ ॥ जङ्गलमें एक बकरेने अपनी प्रिय वस्तु खोजते हुए स्वकर्मानुसार एक कुएँमें पड़ी हुई एक बकरी देखी‡ ॥ ३ ॥ वह कामी उसे निकालनेका उपाय सोचते हुए उस कामीने अपने सींगोंसे† किनारेकी मिट्टी खोदकर जब रास्तेका निर्माण कर दिया ॥ ४ ॥ तब बकरी उस मार्गसे निकली और मैथुनमें निपुण उसी बकरेपर अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई जब उस बकरीने उसे अपना पति बनाया, तब अन्यान्य बहुत-सी* बकरियाँ भी उसे हरेक प्रकारसे समर्थ देखकर उस कान्तके प्रति कामासक्त हो गईं ॥५॥ इसप्रकार मोटा-ताजा, बड़ी दाढ़ीवाला, बहुत वीर्य्य छोड़नेवाला और मैथुन कर्ममें निपुण वह एक ही बकरा उन सब बकरियोंके साथ रमण करता हुआ कामसे मोहित

❀ अथैकोनविंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन्कामांस्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः ॥ बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥ शृणु भार्गव्यमुं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥ बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥ तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयत् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल ॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः ॥ ५ ॥ पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥ स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया ॥ विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद्बस्तकर्म तत् ॥ ७ ॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ॥ इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥ सोऽपि

होकर अपनेको भूल गया ॥ ६ ॥ उस कूपसे निकली हुई बकरीने॰ जब उस बकरेको दूसरी बकरीके () साथ रमण करते हुए देखा, तब उसे यह सहन न हुआ ॥७॥ और उस बकरीने यह समझ लिया—यह हमरा स्वामी बड़ा दुष्ट हृदय है। जिसको हमने अपना मित्र समझ रखा है, यह कामी अपनी इन्द्रियकी तृप्त करनेके लिये ही हमसे थोड़ी देर तक प्रेम रखता है, यह सोचकर वह बकरी उसको छोड़कर अपने मालिकके [] पास चली गई ॥८॥ वह स्त्री लम्पट बकरा भी उसको मनानेके लिये इडविडाकर अपना शब्द करता हुआ उसके पीछे-

‡जङ्गलमें यानी संसारमें। एक बकरेने यानी राजा ययातिने। प्रियवस्तु यानी विषय। एक बकरी अर्थात् देवयानी। † सींगोंसे अर्थात् हाथोंसे। * बहुत सी-शर्मिष्ठा आदि। ॰ बकरीने—देवयानीने। () बकरीके—शर्मिष्ठाके। [] मालिकके—अपने पिता शुक्राचार्यके।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पीछे गया, किन्तु बहुत चापलूसी करनेपर भी मार्गमें वह उसे प्रसन्न नहीं कर सका ॥९॥ उसके पीछे वह बकरा जब उसके पालनेवाले ब्राह्मणके पास पहुँचा, तब उस अजा ब्राह्मणने क्रोधके मारे उस बकरेके लटकते हुए दो अण्डकोश काट लिये। कुछ देरके बाद शान्त होनेपर उसे दया आई और उपाय सोचकर उसने कार्य सिद्धके लिये यानी अपनी लड़कीके कामोपभोगके लिए पुनः दोनोंको जोड़ दिया ॥ १० ॥ हे भद्रे, तदनन्तर अण्डकोशके पुनः जुट जानेपर कूपसे निकाली गई उस बकरीके साथ बहुत दिनों तक विषयोंका सेवन करते हुए भी उन विषयोंसे वह बकरा आज भी तृप्त नहीं होता ॥११॥ उसी बकरेकी भाँति हे सुभ्रु, अत्यन्त दीन मैं भी तुम्हारे प्रेमबन्धनमें फँसा हूँ एवं तुम्हारी मायासे मोहित होकर आत्मज्ञानसे वञ्चित रह गया हूँ ॥ १२ ॥ हे प्रिये, जिस पुरुषका चित्त कामासक्त हो जाता है अर्थात् विषयभोगमें लिप्त हो जाता है। उसके लिये पृथिवीमें जितने धन, धान्य एवं सुवर्ण पशु इत्यादि हैं वे सब उनके मनको तृप्त करनेवाले एवं सुख देनेवाले नहीं होते ॥१३॥ मनुष्यको कभी भी विषयोंके भोगसे कामसे तृप्ति नहीं हो सकती, जिसप्रकार घृतकी आहुतिसे अग्नि

चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि सन्धितुम् ॥ ९ ॥ तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ॥ लम्बन्तं वृषणं भूयः सन्दधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥ संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥ तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥ यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ न दुह्यन्ति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ॥ समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७ ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् ॥ तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८ ॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ॥ निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ दृष्टं श्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ॥ संसृतिं चात्मनाशं च

कभी भी शान्त नहीं हो सकती, किन्तु उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है ॥ १४ ॥ किन्तु जब मनुष्यको सर्वत्र समदृष्टि हो जाती है और वह किसी प्राणीका अनिष्ट चिन्तन न करता हुआ सबके कल्याणकी भावना हृदयमें रखता है, तब उसे समस्त दिशाएँ सुखमय भासने लग जाती हैं ॥१५॥ इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले प्राणीको चाहिए कि शरीरके जीर्ण होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होती एवं मूर्खजन जिसका त्याग नहींकर सकते ऐसी दुःखोंसे भरी तृष्णाका शीघ्र त्यागकर दे ॥१६॥ मनुष्यको चाहिए कि माता, बहिन एवं कन्या, इनके साथ कभी भी एकान्तमें न बैठे, क्योंकि इन्द्रियोंका समूह बड़ा बलवान् है, विद्वानोंको भी अपनी ओर खींच लेता है ॥१७॥ मुझे आज विषयोंका लगातार सेवन करते-करते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु तृप्ति तो दूर रही, प्रत्युत प्रतिदिन तृष्णा और बढ़तीही जाती है ॥ १८ ॥ इसलिये अब मैं इस बढ़ती हुई तृष्णाका त्यागकर एवं परब्रह्ममें अपने मनको लगाकर निर्द्वन्द्व

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एवं निरहङ्कार होकर वनमें जाकर मृगोंके साथ विचरण करूँगा ॥ १९ ॥ जो मनुष्य देखे और सुने गये समस्त पदार्थोंको मिथ्या समझकर न उनका भोग करता है एवं न उनका ध्यान करता है, बल्कि उनका सेवन करनेसे संसृति तथा आत्मनाशको समझता है, वही पुरुष आत्माका साक्षात्कार करता है ॥२०॥ हे राजन्, इतना अपनी प्रियासे कहकर एवं विषयोंसे विरक्त होकर अपने छोटे पुत्र पूरुको उसकी युवावस्था देकर तथा उससे अपनी जरावस्था लेकरके सम्पूर्ण इच्छाओंका त्याग करते हुए ॥ २१ ॥ राजा ययातिने पूर्वदिशाका राज्य द्रुह्युको, दक्षिणदिशाका राज्य यदुको, और पश्चिमदिशाका राज्य तुर्वसुको सौंप दिया एवं उत्तरदिशाका राज्य अनुको दे दिया ॥२२॥ और इससे अवशिष्ट सारे भूमण्डलका राज्य पूरुको अभिषिक्त करके दे दिया तथा सब बड़े लड़कोंको पुत्रश्रेष्ठ पूरुके अधीन राजा बनाकर वे स्वयं तप करनेके लिये वनको चले गये ॥२३॥ वनमें जाकर जिसप्रकार पक्षियोंके पाँख उत्पन्न होनेपर उन्हें घोंसलाकी परवाह नहीं रहती अर्थात् वे नीडको त्याग देते हैं, उसीप्रकार राजाने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि तथा काम, क्रोध, लोभादि विषयोंमें वर्षोंतक किये गये

तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥ स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ सा संनिवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७ ॥ सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥ कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० न० एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अभ्यासका ईश्वरभावनाके द्वारा क्षणभरमें त्यागकर दिया ॥ २४ ॥ उन्होंने आत्माका अनुभव होनेपर समस्त विषयोंमें ममता मोहका त्यागकर दिया । तदनन्तर विश्वविख्यात वे राजा ययाति त्रिगुणात्मक लिङ्गसे मुक्त हो गये एवं निर्दोष परब्रह्म परमात्माका ध्यान करते हुए भगवानके पदको प्राप्त हो गये ॥ २५ ॥ स्त्री-पुरुषके स्नेहसे वैराग्य होनेके कारण परिहास जैसी कही गई कथाको सुनकर देवयानीने उस कथाको अपने लिये निवृत्तिमार्गमें प्रोत्साहन ही समझा ॥२६॥ तदनन्तर देवयानीको भी वैराग्य हो गया और वह सुहृद्गणोंके साथ जो निवास हैं उसे भगवान्की मायासे विरचित एवं पौसराके ऊपर इकट्ठे हुए जनसमूहकी भाँति क्षणिक समझ गई और उसे यह भी अनुभव हो गया कि ये सब सुहृदादि ईश्वराधीन हैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार उस भार्गवी देवयानीने स्वप्नतुल्य विषयोंसे ममता त्यागकर भगवान वासुदेवमें अपने मनको जोड़कर अपने लिङ्गशरीरका त्यागकर दिया ॥ २८ ॥ इतना कहकर श्रीशुकदेवजी गद्गद् हो गये तथा भगवान्को नमस्कार इसप्रकार कहने लगे—हे भगवन्, सर्वान्तर्यामी, शान्तस्वरूप एवं व्यापक स्वरूप आपको नमस्कार है। आपही इस विश्वके विधाता हैं ॥२९॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्नीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, हजारों वर्षोंतक विषयोंका भोग करते हुए ययातिको एक दिन अचानक आत्मज्ञान हो गया। उन्होंने अपनी प्रिया देवयानीसे कहा—प्रिये, आज मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ, जो मेरे ही ऊपर घटती है, सावधान होकर सुनो। जङ्गलमें अपनी प्रिय वस्तु खोजते हुए एक बकरेने एक कुँएमें गिरी हुई बकरी देखी। उस कामी बकरे द्वारा उस कुँएसे निकलनेका मार्ग बना दिये जानेपर वह बकरी बाहर निकल आई और मैथुनमें समर्थ उस बकरेको अपना पति बनाया। तदनन्तर बहुत-सी दूसरी बकरियाँ भी उस बकरेको हृष्ट-पुष्ट तथा मैथुनमें निपुण देखकर उसके प्रति कामासक्त हो गईं। उन बकरियोंके साथ रमण करते हुए बकरेको देखकर कूपसे निकली गई वह बकरी नाराज होकर अपने मालिकके घर चल दी। रास्तेमें उस बकरेने उसकी बहुत प्रार्थना की, लेकिन उसने उसकी एक भी न सुनी। उसका पालन करनेवाले ब्राह्मणने क्रुद्ध होकर उसके दोनों अखण्डकोश काट दिये। लेकिन जब बकरेने उसकी बकरीमें अपनी कामासक्ति बतलाई तब फिर उसने वे दोनों अखण्डकोश जोड़ दिये। तदनन्तर बहुत दिनों तक उसके साथ रमण करते हुए भी वह बकरा आज भी वृद्ध नहीं हो रहा है। हे प्रिये, उस बकरेके सदृश मैं भी तुम्हारे प्रेम बन्धनमें फँसा हूँ। हजारों वर्षों तक विषयोंका भोग करने पर भी उनसे मुझे तृप्ति नहीं हुई। अब मैं इनका त्याग कर भगवान्‌में लीन हो जाऊँगा। ऐसा कहकर वह अपने छोटे पुत्रसे जरावस्था बदलकर तथा उसीको राज्यभार सौंपकर वनमें चला गया वहाँ भगवान्‌का चिन्तन करते हुए परम पदको प्राप्त हो गया। तदनन्तर देवयानी भी उस कथाको अपनी निवृत्तिमार्गमें प्रोत्साहन समझती हुई संसारसे विरक्त हो गई। उसने सांसारिक विषयोंका त्याग कर दिया। उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ विंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥ जन्मेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वां-
स्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥ तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्त-
त्सुतः स्मृतः ॥३॥ ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः सन्ततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥४॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ॥
घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रन्तिभारोऽभूत्त्रयस्तस्यात्मजा नृप ॥ सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः
॥ ६ ॥ तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः ॥७॥ दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं

❀ पूरुवंशमें उत्पन्न दुष्यन्तके लड़के भरतके यशका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, अब पूरुके वंशको सुनिये, जिसमें आपका जन्म हुआ है। तथा जिस वंशमें बहुतसे राजर्षि एवं ब्रह्मर्षियोंका जन्म हुआ है ॥ १ ॥ पूरुके पुत्र जन्मेजय हुए, जन्मेजयके प्रचिन्वान्, उनसे प्रवीर, उनसे नमस्यु और नमस्युके चारुपद नामक पुत्र हुए ॥ २ ॥ चारुपदके सुद्यु, उनसे बहुगव, उनसे अहंयाति और अहंयातिसे रौद्राश्व उत्पन्न हुए, यह कहा गया है ॥३॥ रौद्राश्वसे ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डलेयु, कृतेयु, जलेयु, संततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु तथा वनेउ ये दस पुत्र घृताची नामकी अप्सरामें जगत्‌के आत्मभूत प्राणकी दस इन्द्रियोंकी तरह उत्पन्न हुए ॥४, ५॥ ऋतेयुके रन्तिभार हुए, रन्तिभारके सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ ये तीन पुत्र हुए। हे राजन्, अप्रतिरथके पुत्र कण्व हुए ॥ ६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कण्वके मेधातिथि और उनसे प्रस्कण्वादि द्विजातिजन हुए। अब सुमतिके वंशको सुनिये-सुमतिसे रैभ्य हुए और रैभ्यके पुत्र दुष्यन्त हुए ॥ एक बार दुष्यन्त शिकार खेलते हुऐ कण्वके आश्रममें पहुँचे। वहाँपर उन्होंने अपनी कान्तिसे लक्ष्मीको भी लज्जितकर रही एक कन्या देखी। साक्षात् देवमायाकी तरह उसे देखकर शीघ्र वे विमोहित हो गये। अपने कतिपय योद्धाओंसे घिरे हुए राजाने वरारोहा उस कन्यासे कहा ॥ ८, ९ ॥ उसके दर्शनसे उनका चित्त प्रसन्न हो गया। एवं मार्गका परिश्रम दूर हो गया। तदनन्तर वे कामसे पीड़ित होकर मधुरवाणीसे उससे पूछने लगे ॥ १० ॥ हे हृदयको आकृष्ट करनेवाली कमललोचने, तुम किसकी पुत्री हो, एवं इस निर्जन वनमें तुम्हारे रहनेका क्या कारण है ॥ ११ ॥ हे सुमध्यमे, मैं निश्चय ही तुमको राजाकी कन्या समझता हूँ, क्योंकि पुरुवंशी राजाओंका चित्त कभी कहींपर अधर्ममें रमण नहीं करता ॥ १२ ॥ शकुन्तलाने कहा—मैं विश्वामित्रसे मेनका नामकी

गतः ॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ ८ ॥ विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ ९ ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तः परिश्रमः ॥ प्रपच्छ कामसन्तप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ १० ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयङ्गमे ॥ किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ ११ ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ नहि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ १२ ॥ शकुन्तलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १३ ॥ आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १४ ॥ दुष्यन्त उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १५ ॥ ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ॥ गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित् ॥ १६॥ अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १७ ॥ कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः ॥ बध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १८ ॥ तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरन्तिकमागतम् ॥ १९॥

अप्सरामें उत्पन्न हुई कन्या हूँ। और मेनकाने मुझे इस वनमें छोड़ दिया है। इस वृत्तान्तको भगवान् कण्व जानते हैं। और हे वीर, मैं आपका क्या स्वागत करूँ ॥१३॥ हे अरविन्दाक्ष, यहाँपर बैठिये और हमारी पूजा ग्रहण कीजिये। यह नीवार है, भोजन कीजिये तथा यदि आपकी इच्छा हो, तो यहींपर रह भी जाइये ॥ १४ ॥ दुष्यन्तने कहा—हे सुभ्रु, कुशिकवंशमें उत्पन्न हुई तुम्हारे लिये यह योग्य ही है, क्योंकि राजाओंकी कन्याएँ अपने योग्य पतिका स्वयं ही वरण करती हैं ॥१५॥ तदनन्तर देशकालके विभागको जाननेवाले राजाने शकुन्तला के स्वीकारकर लेनेपर उसके साथ धर्मका उलंघन न करते हुए गान्धर्व विधिसे विवाहकर लिया ॥ १६ ॥ तथा अमोघ पराक्रमवाले उस राजर्षिने शकुन्तलामें वीर्यका आधान किया। और दूसरे दिन अपने नगरको चले गये। तदनन्तर समय आनेपर उसने पुत्र उत्पन्न किया ॥ १७ ॥ ऋषि कण्वने वनमें उस बालककी उचित क्रियाएँ कीं। वह बालक सिंहोंको हठपूर्वक बाँधकर क्रीड़ा करता था ॥ १८ ॥ राजाके अंशसे होनेवाले अत्यन्त पराक्रमी उस बालकको लेकर शकुन्तला अपने पतिके पास गई ॥ १९ ॥ परन्तु जब राजाने अनिन्दित अपनी स्त्री तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुत्रको ग्रहण नहीं किया, तब समस्त प्राणियोंके सुनते-सुनते आकाशवाणीने कहा ॥२०॥ हे दुष्यन्त, माता धौंकनीके समान केवल आधार मात्र है। पुत्र तो पिताका ही होता है, क्योंकि आत्मा ही पुत्ररूपसे पैदा होता है*। इसलिये हे दुष्यन्त, तुम इस पुत्रका पालन करो तथा शकुन्तलाका भी अनादर मत करो ॥ २१ ॥ हे नरदेव, जिससे पुत्र उत्पन्न होता है, वह पुत्र पिताको यमके लोकसे उद्धार करता है। तुम्हीं इसके गर्भदाता हो, यह शकुन्तला बिलकुल सत्य कहती है ॥ २२ ॥ पिताके मर जानेपर वह भरत चक्रवर्ती राजा हुए। भगवान्‌के अंशावतार कहे जाते हैं। इनकी महिमा पृथ्वीमें गाई जाती है ॥ २३ ॥ इनके दक्षिण हाथमें चक्र एवं दोनों चरणोंमें कमलकोशका चिह्न था। राज्याभिषेकसे अभिषिक्त हुए अधिराट् उस भरतने यज्ञोंसे भगवान्‌का यजन किया ॥ २४ ॥ उन्होंने गङ्गा और यमुनाके किनारे ममताके पुत्र दीर्घतमा महर्षिको अपना पुरोहित बनाकर पचपन अश्वमेध यज्ञ किये ॥ २५ ॥ उन्होंने अठहत्तर अश्वमेधके घोड़े बाँध दिये तथा ब्राह्मणोंको खूब दान दिया। दुष्यन्त पुत्र भरतके प्रकृष्ट गुणशाली देशमें अग्निका स्थापन हुआ था। जिस अग्निस्थापनके समय भरतने ब्राह्मणोंके लिये

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी() ॥ २० ॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ २१ ॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ २२ ॥ पितुर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २३ ॥ चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः ॥ २४ ॥ पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ॥ मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥ २५ ॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबन्ध प्रददद्वसु ॥ भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ॥ सहस्रं बद्वशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥ २६ ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बध्वा विस्मापयन्नृपान् ॥ दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २७ ॥ मृगान् शुक्लदतः कृष्णान्हि-

इतने गोदान किये कि प्रत्येक ब्राह्मणने तेरह हजार चौरासी गायें पाईं ॥२६॥ भरतने तेंतीस सौ यज्ञीय अश्वोंको अपने घर बाँध रखा था। देवता एवं भगवान्‌की भक्तिके प्रभावसे दुष्यन्त पुत्र भरतने समस्त राजाओंको विस्मयमें डालते हुए भगवान्‌की मायाका अतिक्रमण कर डाला ॥२७॥ भरतने यज्ञ सम्बन्धी मष्णार कर्म विशेषमें या मष्णार नामक तीर्थमें सुवर्णके आभरणोंसे अलंकृत एवं

---

*'आत्मा वै पुत्रनामासि' यह श्रुति इसमें प्रमाण है।

दृष्टान्त—एक महाजनके ५ पुत्र थे। वे सुयोग्य होते हुए भी अपनी जमीदारी खेती बारी नहीं कर सकते थे। इससे पिता चिन्तित रहा करता था। कुछ समय बाद मृत्युका दिन आया तो पिताने कहा कि मेरे बगीचेमें धन गड़ा हुआ है। तुम लोग निकालकर बराबर बराबर बाँट लेना। यों कहते ही उसके प्राण निकल गये। उन लोगोंने खोदा पर धन उस खेतसे न मिला संयोगवश वृष्टिसे वहाँ इतना अन्न हुआ कि उनको उस वर्ष तिगुना लाभ हुआ। तब वे आपसमें कहने लगे कि यही धनको पिताजी प्रकारान्तरसे बतलाया था। अब हम सब आलस्य त्यागकर कार्य करेंगे।

()दृष्टान्त—दुष्यन्त अपनी प्रिया शकुन्तलाको देखने पर भी न पहचान सका।

उत्तर—वह लोकापवादसे डरता था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शुक्लदाँतवाले चौदह नियुत हाथी दान किये ॥२८॥ भरतके इन महान् कार्योंकी बराबरी न तो भूतकालमें राजाओंने की है और न भविष्यमें कोई राजा करही सकेंगे। अर्थात् उन्हे भुजाओंसे स्वर्ग पकड़नेकी तरह भरतके सदृश पुरुषार्थ करना बिलकुल असम्भव है ॥ २९ ॥ भरतने दिग्विजयके समय किरात, हूण, यवन, अन्ध्र, कङ्क, खश, शक एवं ब्राह्मणोंसे द्रोह करनेवाले राजाओंका वध किया था ॥ ३० ॥ पूर्वकालमें जिन राक्षसोंने देवताओंको जीतकर रसातलादि लोकोंको अपना स्थान बनाया था। एवं जिन राक्षसोंने देवताओंकी स्त्रियाँ हर करके रसातलमें छिपा रखी थीं, उन्हें पुनः ये राक्षसको जीतकर ले आये ॥ ३१ ॥ भरतके राज्यमें स्वर्ग और पृथ्वी उनकी प्रजाओंके लिये कामदुहा धेनु हो गई थीं। राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्षोंतक चारों दिशाओंमें अपने राजका शासन किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वह सम्राट् लोकपालोंसे भी बढ़कर उस ऐश्वर्य एवं राज्यलक्ष्मीको तथा अव्याहत शासनको मिथ्या समझकर वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥ ३३ ॥ हे राजन्, बिदर्भराजकुमारी तीन स्त्रियाँ थीं। उनमें एक रानीको एक पुत्र हुआ। उसे देखकर भरतने कहा—यह हमारे अनुरूप नहीं है, इस भयसे

रण्येन परीवृतान् ॥ अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २८ ॥ भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २९ ॥ किरातहूणान्यवनानन्ध्रान्कङ्कान्खशान् शकान् ॥ अब्रह्मण्यान्नृपांश्चाहन्म्लेच्छादिग्विजयेऽखिलान् ॥ ३० ॥ जित्वा पुराऽसुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३१ ॥ सर्वकामान्दुदुहतुः प्रजानां यस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्त्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३२ ॥ स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट् श्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३३ ॥ तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ॥ जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥ ३४ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३५ ॥ अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ॥ प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३६ ॥ तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशङ्किताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३७ ॥ मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ

रानियोंके जितने पुत्र उत्पन्न हुए, उन्होंने सब मार डाले, क्योंकि शायद पतिदेव इस पुत्रको अपने अनुरूप समझकर एवं हमलोगोंको व्यभिचारिणी समझकर त्याग न दें ॥३४॥ इस प्रकार जब उनके वंशमें कोई सन्तान न रही, तब उन्होंने सन्तानार्थ 'मरुतस्तोम यज्ञ' किया। और उससे प्रसन्न होकर मरुद्गणोंने भरद्वाज नामक पुत्र दिया ॥३५॥ एक बार अपने भाई उतथ्यकी पत्नी ममताके पास चोरीसे मैथुन करनेके लिये बृहस्पति गए। वह गर्भिणी थी, इसलिये उसके पेटमें दूसरे गर्भका अवकाश न था। किन्तु जब बृहस्पतिने नहीं माना तब शब्द करते हुए गर्भस्थ पुत्रने इन्हें मना किया। उसके मना करनेपर कुपित होकर बृहस्पतिजीने जा तूँ अन्धा हो जा, ऐसा शाप देकर बलपूर्वक मैथुन किया। इसलिये वह बालक तो अन्धा हो गया, किन्तु उसने अपने पैरसे बृहस्पतिके वीर्यको योनिसे बाहर फेंक दिया। तदनन्तर वह उसी क्षण बालकरूपमें हो गया ॥ ३६ ॥ पतिके त्यागके भयसे उस बालकको त्याग देनेकी इच्छाकर रही ममतासे देवताओंने बृहस्पति और ममताके विवादरूप यह श्लोक कहा, जिससे जिससे लड़केका नाम भलीभाँति निर्वचन हो जाता है ॥३७॥ हे मूढे, तूँ इस द्वाज पुत्रका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मी पालनकर* और हे बृहस्पते, तुम इस द्वाज पुत्रका भरण करोऐसा कहकर माता ममता और पिता बृहस्पति दोनों चले गये। अतएव इस बालकका नाम भरद्वाज‡ पड़ा ॥ ३८ ॥ मरुद्गणोंने उस कुमारका पालन किया और जिस समय भरत राजाका वंश नष्ट हो रहा था, तब वह पुत्र उनको दे दिया ॥ ३९ ॥

यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३८ ॥ चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३९ ॥
इति श्रीमद्भागवते महपुराणे नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

बीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ययातिके पुत्र पूरुके तेरह लड़के हुए। उनके तेरहवें पुत्र रन्तिभारके तीन लड़कोंमें सबसे छोटे अप्रतिरथसे कण्वमुनि पैदा हुऐ। रन्तिभारके प्रथम पुत्र सुमतिकी तीसरी पीढ़ीमें दुष्यन्त उत्पन्न हुए। एक बार राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए वनमें कण्व ऋषिके आश्रममें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक अपूर्व सुन्दरीको देखकर उससे पूछा—कन्यके, तुम किसकी लड़की हो, कहाँ क्यों रहती हो। तुम अवश्य ही किसी राजाकी लड़की जान पड़ती हो, क्योंकि पूरुवंशी राजाओंका चित्त अधर्ममें प्रवृत्त नहीं होता। शकुन्तलाने कहा—राजन्, मैं विश्वामित्रसे मेनका अप्सरामें उत्पन्न कन्या हूँ। माँ इस वनमें मुझे छोड़कर चली गई। सारी बातें कण्व महाराज जानते हैं। कहिये मैं आपका क्या स्वागत करूँ, आइये, बैठिये,। यदि आपकी इच्छा हो, तो आज यहीं रह भी जाइये। दुष्यन्तने कहा—कन्यके, राजवंशमें उत्पन्न तुम्हारे लिये यह योग्य ही है, क्योंकि राजकन्याएँ अपना योग्य वर स्वयं ढूँढ़ लेती हैं। तदनन्तर राजाने उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया। दूसरे दिन राजा वहाँसे अपने घर चले गये। समय आनेपर उसे एक बच्चा पैदा हुआ। वह सिंहके बच्चोंसे खेलता था। उस बच्चेको लेकर शकुन्तला राजाके घर आई, राजाने उसे अस्वीकारकर दिया। तदनन्तर आकाशवाणी हुई—हे राजन्, यह पुत्र तुम्हारा है, तुमने शकुन्तलाके साथ गन्धर्व विवाह किया है. यह सच कर रही है। राजाकी मृत्यु के बाद वही भरत चक्रवर्ती राजा हुए। उन्होंने अनेक अश्वमेधयाग किये। उनकी बराबरीका न कोई हुआ है और न होगा ही। बहुत दिनों तक राज्य करनेके बाद उन्हें वैराग्य हो गया। उन्होंने कोई सन्तति न देखकर 'मरुत्स्तोमयाग' किया। तदनन्तर प्रसन्न होकर मरुद्गणोंने उन्हें भरद्वाज नामक पुत्र दिया। बीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ एकविंशतितमोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥ गुरुश्च रन्तिदेवश्च संकृतेः

❀ राजा दुष्यन्तके पुत्र वितथके वंशका वर्णन करते हुए रन्तिदेव तथा अजमीढ आदिके चरित्रका सविस्तार वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजने कहा—हे राजन, भरद्वाजका ही दूसरा नाम वितथ था। अब इनके वंशको सुनिये। वितथके पुत्र मन्यु हुए और मन्युके बृहच्छत्र,जय, महावीर्य, नर, गर्ग ये पाँच पुत्र

*पुत्र छोड़कर भाग रही ममतासे यह बृहस्पतिने कहा। †यह बृहस्पतिसे ममताने कहा। ‡ किसी एकके क्षेत्रमें दूसरेसे उत्पन्न हुए का नाम द्वाज है। चूँकि उन दोनोंने इस द्वाज पुत्रके भरणके लिये कहा, इसलिये इस लड़केका नाम भरद्वाज पड़ गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए, नरके पुत्र संकृति हुए ॥ १ ॥ हे पाण्डुनन्दन, संकृतिके पुत्र गुरु रन्तिदेव हुए । रन्ति देवका यश इस लोक तथा परलोकमें गाया जाता है ॥ २ ॥ एक बार दान करते-करते इनके पास कुछ भी न रहा । क्योंकि ये कोई उद्योग तो करते नहीं थे और जो कोई भूखा आता था उसे भोजन दे देते थे, इस वृत्तिसे ये कुटुम्बके सहित स्वयं भूखसे पीड़ित हो गए ॥३॥ इन्हें निर्जल करते-करते अड़तालीस दिन व्यतीत हो गये । तब भूख-प्यासके मारे कुटुम्बके सहित राजाका शरीर काँपने लगा । उनचासवें दिन उनको प्रातःकाल घीसे पकी हुई खीर, हलुवा तथा जल कहींसे प्राप्त हुआ । तब वे उसे खानेको बैठे, लेकिन उसी चण अतिथिके रूपमें एक ब्राह्मण वहाँ आकर उपस्थित हो गया ॥४, ५॥ तब सर्वत्र ईश्वरदृष्टि रखनेवाले राजाने आदर एवं श्रद्धापूर्वक उस ब्राह्मणके लिये भोजनका हिस्सा लगा दिया । वह ब्राह्मण अपने भागको खाकर चला गया । ६ ॥ हे राजन्, इसके बाद जो कुछ अवशिष्ट रहा उसे

पाण्डुनन्दन॥ रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते॥२॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः॥ निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३ ॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि गतः किल ॥ घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥ तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७ ॥ याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ॥ राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥ स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसन्तप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२ ॥ क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ॥ सर्वे निवृत्ताः

खानेके लिये राजा तत्पर हुए, इतनेहीमें एक शूद्र भूखसे व्याकुल वहाँ उपस्थित हो गया । राजाने उस थोड़े से भोजन में से उसको भी भोजन दिया ॥७॥ शूद्रके चले जानेपर बहुतसे कुत्तों को लेकर एक दूसरा शूद्र अतिथिरूपसे उपस्थित होकर राजासे कहा — हे राजन्, हम सब भूखसे व्याकुल हैं, हमें खानेके लिये अन्न दीजिये । राजाने कुत्तोंके सहित भूखसे व्याकुल उसको आदरपूर्वक अवशिष्ट अन्न देकर सबमें ईश्वरभावना रखते हुए उन कुत्तों एवं शूद्रको नमस्कार किया ॥ ८, ९ ॥ एक मनुष्यके पीने लायक केवल जल अवशिष्ट रहा, जब राजा वह जल पीने लगे तब एक पुल्कसने आकर प्रार्थना की—हे राजन्, मुझ पापीको जल दे दीजिये, मैं बड़ा प्यासा हूँ ॥ १० ॥ बड़े परिश्रम पूर्वक कहे गये उसके दीन वचनको सुनकर दयाके कारण अत्यन्त दुःखी होते हुए राजाने यह अमृतमय वचन कहा ॥ ११ ॥ हे भगवन्, मैं आपसे अष्टसिद्धियोंसे युक्त योगकी गति नहीं चाहता एवं मोक्षकी भी इच्छा नहीं रखता किन्तु मैं यही चाहताहूँ कि मैं सबसे अन्तःकरण में स्थित होकर सबके दुःखका अनुभव करूँ । अर्थात् सबका कष्ट मुझे ही हो । जिससे सब लोग सुखी हो जायँ ॥ १२ ॥ क्योंकि जीनेकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इच्छा रखनेवाले कृपण प्राणीको जीवनके हेतु जलके अर्पणसे मेरे भूख और प्यास, शरीरके परिश्रम एवं दैन्य, क्लम, शोक, विषाद, मोहादि सब दूर हो जायँगे ॥ १३ ॥ इतना कहकर स्वयं प्याससे व्याकुल राजाने उस पुल्कसको जल दे दिया। राजा रन्तिदेव बड़े धीर एवं स्वभावसे ही बड़े दयालु थे ॥ १४ ॥ तीनों लोकके स्वामी एवं फलार्थियोंको फल देनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश राजाके सामने प्रकट हो गये और इन तीनोंने अपना स्वरूप राजाको दिखलाया, जिन्होंने मायासे शूद्रादिका वेश धारणकर उसके धैर्यकी परीक्षा ली थी। आसक्ति रहित राजाने उन्हें नमस्कारकर उनसे किसी चीजकी स्पृहा नहीं की। भगवान् वासुदेवमें भक्ति रखनेके कारण केवल नमस्कारमात्र किया ॥ १५, १६ ॥ हे राजन्, अनन्य भक्तिसे ईश्वरमें चित्त लगाते हुए निष्काम राजा रन्तिदेवकी त्रिगुणात्मक माया स्वप्नकी भाँति आत्माहीमें लीन हो गई ॥१७॥ राजा रन्तिदेवके सत्सङ्गसे उनके अनुवर्ती लोग भी सब योगी एवं भगवद्भक्त

कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥ इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ॥ पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ॥ आत्मानं दर्शयाञ्चक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥ स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निस्सङ्गो विगतस्पृहः ॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥ १६ ॥ ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ॥ माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ॥ अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥ गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥२०॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित्समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥ स

बन गये ॥ १७ ॥ गर्गसे शिनि और शिनिके पुत्र गार्ग्य हुए। गार्ग्य क्षत्रियकुलमें जन्म पाकर भी कर्मके द्वारा ब्राह्मण हो गये। महावीर गार्ग्यके पुत्र दुरितक्षय तथा उनके त्रय्यारुणि, कवि, पुष्करारुणि-ये तीन पुत्र हुए। ये तीनों कर्मके द्वारा ब्राह्मण हो गये। बृहत्क्षत्रके पुत्र हस्ती हुए, जिन्होंने 'हस्तिनापुर' बसाया है ॥१९, २०॥ हस्तिके अजमीढ, द्विमीढ, पुरुमीढ-ये तीन पुत्र हुए। अजमीढके वंशमें प्रिय मेधावी ब्राह्मण हो चुके हैं ॥ २१ अजमीढसे बृहदिषु, उनसे बृहद्धनु, उनसे बृहत्काय और बृहत्कायके जयद्रथ हुए ॥ २२ ॥ जयद्रथसे विशद, उनसे सेनजित हुए। सेनजितके रुचिराश्व, दृढ़ हनु, काश्य और वत्स ये चार पुत्र हुए। रुचिराश्वके पुत्र पार हुए एवं पारके पुत्र पृथुसेन हुए। पारको नीप नामका एक और भी पुत्र था नीपके एक सौ पुत्र हुए। नीपने शुकदेवकी कृत्वी नामकी कन्यामें ब्रह्मदत्त नामक पुत्र उत्पन्न किया। ब्रह्मदत्त बड़े योगी थे। उन्होंने सरस्वतीको स्त्री बनाकर विष्वक्सेन पुत्र उत्पन्न किया ॥ २३-२५ ॥ जैगीषव्य ऋषिके उपदेशसे उन्होंने योगतन्त्रका निर्माण किया। विष्वक्सेनसे उदक्स्वन हुए और उदक्स्वनसे भल्लाद हुए। ये सब राजा बृहदिषुके वंशज हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २६ ॥ द्विमीढ़के यवीनर हुए और यवीनरके पुत्र कृतमान् कहे गये। कृतिमान्के सत्यधृत, सत्यधृतके दृढ़नेमि तथा दृढ़नेमिके सुपार्श्व हुए ॥ २७ ॥ सुपार्श्वके सुमति, उनके सन्नतिमान् हुए। सन्नतिमान्के कृति हुए। जिस कृतिने हिरण्यनाभके निकट योगभिक्षा पाकर प्राच्यसामकी छः संहिताओंको विभाजितकर अपने छः शिष्योंको अध्ययन कराया। कृतिके उग्रायुध, उनके क्षेम्य, क्षेम्यसे सुवीर और उनके रिपुञ्जय पुत्र हुए ॥ २८,२९ ॥ रिपुञ्जयके बहुरथ हुए। पुरुमीढ़को कोई सन्तान नहीं हुआ। अजमीढ़को नालिनी नामकी भार्यामें नील नामक एक पुत्र हुआ। नीलसे शान्ति हुए ॥ ३० ॥ शान्तिके सुशान्ति, सुशान्तिके पुरुज और पुरुज के अर्क हुए। अर्कके भर्म्याश्व एवं भर्म्याश्वके मुद्गलादि पांच पुत्र हुए। ३१॥ मुग्दल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और सञ्जय ये पाँच पुत्र थे। भर्म्याश्वने कहा कि ये मेरे पाँचों पुत्र पाँचों विषयोंकी रक्षा करनेके लिये समर्थ हैं। इसलिये उनकी पञ्चाल संज्ञा हुई।

कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम्* ॥ २५ ॥ जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ॥
उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लादो बार्हदीषवाः ॥२६॥ यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥२७॥
सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ॥ कृतिर्हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥२८॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्त-
तः ॥ तस्य क्षेम्यः सुमीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिः सुत-
स्ततः ॥३०॥ शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः काम्पि-
ल्यः सञ्जयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥ विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद ब्रह्म निवृत्तं
गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य
सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥ ३५ ॥ शरस्तम्बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ तद् दृष्ट्वा कृप-
याऽगृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥३६॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० न० एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

मुग्दलसे मौद्गल्य गोत्रीय ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई ॥३२, ३३ ॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुग्दलसे दिवोदास नामक एक पुत्र तथा अहल्या नामकी एक कन्या हुई। जिस अहल्यामें गौतम ऋषिसे शतानन्द नामका पुत्र हुआ ॥३४॥ शतानन्दसे धनुर्वेदविशारद सत्यधृतिका जन्म हुआ। सत्यधृतसे शरद्वान् हुए। उर्वशी अप्सराको देखकर कामातुर राजा शरद्वान्का वीर्य शरस्तम्बमें गिर पड़ा। उससे एक कन्या और एक पुत्र पैदा हुआ। राजा सन्तनु शिकार करते हुए अचानक वहाँ आ पहुँचे और वहाँ उन दोनों बच्चोंको देकर कृपापूर्वक उन्हें अपने घर ले आए। उन दोनोंमें पुत्रका नाम कृप था तथा कन्याका नाम कृपी। यही कृपी द्रोणाचार्यकी पत्नी हुई ॥ ३५, ३६ ॥

* दृष्टान्त—राजा नीपने श्रीशुकदेवजीकी कन्यासे उद्वाह किया। क्षत्रिय होकर ब्राह्मणकी कन्यासे पाणिग्रहणकी इच्छा क्योंकर हुई।
उत्तर—वह उन्हींको स्वामी बनाना चाहती थी वे ब्रह्मज्ञानी थे। उस समय उनकाही ब्रह्मज्ञानी में प्रथम नाम था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इक्कीसवें अध्यायका सार— श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भरद्वाजका ही दूसरा नाम वितथ था। राजा वितथकी पाँचवीं पीढ़ीमें रन्तिदेव उत्पन्न हुए। ये बड़े दानी थे। गरीबोंको दान देते-देते आखिरमें कंगाल बन गये। सारे परिवारके साथ उपवास करते हुए जब इन्हें अड़तालीस दिन बीत गये तब उनचासवें दिन अचानक इनके पास खीर और हलुवा कहींसे आ गया। सपरिवार वे ज्योंही भोजन करने बैठे त्योंही एक भूखा ब्राह्मण वहाँ आ धमका। उसे भोजन करानेके बाद जब खाने बैठे तब एक भूखसे व्याकुल शूद्र आ पहुँचा। उसे खिलानेके बाद अवशिष्ट भोजन करने राजा चले, तब तक कुत्तोंको लिये हुए एक दूसरा शूद्र आ गया। उसे सादर भोजन कराकर राजाने नमस्कार किया। अब राजाके पास सिर्फ जल बच गया था। राजा ज्योंही उसे पीने चले, त्योंहीं एक पुल्कस आ पहुँचा। उसकी करुणा भरी बात सुननेके बाद राजाने कहा—हे भगवन्, मैं तुमसे मोक्ष नहीं चाहता और न अष्टसिद्धियोंसे युक्त योगकी गति। मैं सिर्फ यही चाहता हूँ कि सब प्राणियोंके हृदयमें रहकर दुःखोंका अनुभव करूँ जिससे वे सुखी हो जायँ। जीवन चाहे रहे प्राणीकी जल पिलानेसे मेरे सब कष्ट दूर हो जायँगे। यों कहकर स्वयं प्याससे मर रहे राजाने उस पुल्कसको जल पिला दिया। तदनन्तर उसके धैर्यकी प्रतीक्षा करनेके लिये मायासे शूद्र आदि रूपधारी ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रकट हो गये। भगवान् वासुदेवमें भक्ति होनेके कारण राजाने उन्हें सिर्फ नमस्कारमात्र किया, उनसे किसी वस्तुकी याचना नहीं की। तदनन्तर अनन्य भक्तिसे भगवान्का भजन करते हुए रन्तिदेवकी माया कट गई। उसके सत्सङ्गसे उनके अनुयायी भी भगवद्भक्त बन गये। हे राजन्, मन्युके पाँच पुत्रोंमें नरके वंशका वर्णन तो आप सुन चुके, औरोंका भी सुन लीजिये। गर्गसे शिनि और उससे गार्ग्य हुए। महावीर्यसे दुरितक्षय और उससे त्र्य्यारुणि, कवि, और पुष्करारुणि हुए। बृहत्क्षत्रसे हस्ति हुए, जिन्होंने हस्तिनापुर बसाया। हस्तिके अजमीढ आदि तीन पुत्र हुए। अजमीढकी बारहवीं पीढ़ीमें राजा नीप हुए, जिनके सौ लड़के थे। अजमीढके दूसरे वंशमें नील हुए। नीलकी छठीं पीढ़ीमें भर्म्याश्व हुए, जिनके मुद्गल आदि पाँच पुत्र हुए। मुद्गलको दिवोदास नामका एक लड़का और अहल्या नामकी कन्या पैदा हुई, अहिल्यामें गौतमसे शतानन्द हुए। शतानन्दसे सत्यधृति और सत्यधृतिसे शरद्वान् हुए। उर्वशीके अवलोकनसे शरस्तम्भमें गिरे हुए शरद्वान्के वीर्यसे एक लड़की और एक लड़का पैदा हुआ। शिकार खेलनेके लिये जंगलमें घूमते हुए राजा शन्तनुने उन्हें देखकर कृपाकर उसे अपने घर उठालाये, अतः लड़केका नाम कृप और लड़कीका नाम कृपी पड़, जो कृपी द्रोणकी पत्नी हुई। इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ द्वाविंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच॥ मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत्॥ १॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुताः॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः॥२॥ धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पञ्चालका इमे॥ योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः॥३॥

❀ दिवोदासवंश वर्णनके बाद ऋक्षवंशमें उत्पन्न हुए जरासन्ध, पार्थ तथा दुर्योधन आदिका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अब दिवोदासके वंशका श्रवण कीजिये—दिवोदासके पुत्र मित्रेयु और उनसे च्यवन हुए। च्यवनसे सुदास, उससे सहदेव, सहदेवसे, सोमक और उनसे जन्तु हुए॥१॥ सोमकके सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ेका नाम जन्तु और सबसे छोटेका पृषत था। पृषतके पुत्र राजा द्रुपद हुए और द्रुपदके द्रौपदी नामकी कन्या एवं धृष्टद्युम्न आदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुत्र हुए ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नके पुत्र धृष्टकेतु हुए । ये सब भर्म्यश्वके वंशमें पञ्चाल संज्ञक राजा हुए । अजमीढको जो ऋक्षनामक एक और पुत्र था उससे संवरण हुए ॥ ३ ॥ संवरणका विवाह सूर्यकी तपती नामकी कन्याके साथ हुआ । उस कन्यामें उन्होंने कुरुक्षेत्रपति कुरुका उत्पन्न किया । कुरुके परीक्षित् सुधनु, जन्हु और निषधाश्व ये चार पुत्र हुए ॥४॥ सुधनुके पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रके च्यवन और उनके कृती हुए । कृतीके पुत्र उपरिचर वसु और वसुके बृहद्रथ प्रभृति हुए ॥ ५ ॥ उन्हीं वसुके पुत्रोंको बतलाते हैं-बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र, चेदिप इत्यादि हुए । बृहद्रथके पुत्र कुशाग्र और कुशाग्रके ऋषभ हुए ॥ ६ ॥ ऋषभके पुष्पवान् पुष्पवान्के सत्यहित और सत्यहितके पुत्र जह्नु हुए । हे राजन्, बृहद्रथकी दूसरी रानीमें एक मरा हुआ पुत्र हुआ । उसके शरीरके दो टुकड़े अलग-अलग थे ॥ ७ ॥ रानीने गर्भसे उत्पन्न मरे हुए बालकके उन दोनों टुकड़ोंको बाहर फेंकवा दिया । जरा नामकी राक्षसीने उन

तपत्यां सूर्यकयायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः परीक्षित्सु धनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोः सुताः ॥४॥ सुहुत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ॥ वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥५॥ कुशाम्बमत्स्य प्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥६॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जह्नुः ॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥७॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते ॥ जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत्सुतः ॥८॥ ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ॥९॥ ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत् ॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥ ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥ ११ ॥ देवापिः शन्तनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः ॥ पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥ १२ ॥ अभवच्छन्तनू राजाऽप्राङ्महाभिषसंज्ञितः ॥ यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥ १३ ॥ शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः ॥ समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥ शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ताऽयमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् ॥

टुकड़ोंको जोड़कर खेलवाड़ करते हुए कहा—जो जाओ, जो जाओ, । तदनन्तर वह बालक जी उठा और उसका नाम जरासन्ध हुआ ॥ ८ ॥ जरासन्धका पुत्र सहदेव हुआ, सहदेवसे सोमापि और सोमापिसे श्रुतश्रवा हुआ । कुरुके पुत्र परीक्षित्के कोई सन्तान नहीं हुआ । जह्नुके पुत्र सुरथ हुए ॥ ९ ॥ सुरथके पुत्र विदूरथ, विदूरथके सार्वभौम, उनके जयसेन, उनके राधिक और उनके अयुत हुए ॥ १० ॥ अयुतके क्रोधन, उनके देवातिथि, उनके ऋष्य, उनके दिलीप और उनके प्रतीप हुए ॥ ११ ॥ प्रतीपके देवापि, शन्तनु और बाह्लीक ये तीन पुत्र हुए । ज्येष्ठ पुत्र देवापि पिताके दिये हुए राज्यको त्यागकर वनको चले गये । तब शन्तनु राजा हुए । पहले इनका नाम महाभिष था । इनके हाथोंमें यह गुण था कि ये जिस-जिस वृद्धका हाथसे स्पर्श करते थे, वह वृद्ध पुनः युवावस्थाको प्राप्त हो जाता था ॥ १२, १३ ॥ इनके स्पर्श करनेसे मनुष्य परमशान्तिको प्राप्त हो जाता था, इसलिये बादमें इनको लोग शन्तनु कहने लगे । एक बार इनके राज्यमें बारह वर्षतक जब जलवृष्टि नहीं हुई ॥ १४ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा-हे राजन्, आप परिवेत्ता हो गये क्योंकि अपने बड़े भाईको राज्य न देकर आपने स्वयं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृथिवीका राज्य ग्रहणकर लिया, इसलिये शीघ्र अपने बड़े भाईको राज्य दे दीजिये, जिससे कि वृष्टि हो एवं पुर और राष्ट्रकी वृद्धि हो ॥ १५ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके कहनेसे शन्तनुने बड़े भाईसे राज्यके लिये प्रार्थना की, किन्तु उनके पहले ही मन्त्रीने उनको वेदमार्गसे च्युत करानेके लिये ब्राह्मणोंको भेज दिया था, उन ब्राह्मणोंके साथ जब देवापिकी बातचीत हुई तब उन्होंने वेदकी निन्दा की, अतएव वे राज्यके योग्य न रहे। तदनन्तर शन्तनु निर्दोष हो गये और वृष्टि होने लगी। और देवापि,भी योगावलम्बन करके कलापग्राममें अब रहने लग गये ॥ १६, १७ ॥ कलिके अन्तमें जब सोमवंश नष्ट हो जायगा तब सत्ययुगके आदिमें विवाह करके ये पुनः सोमवंशकी स्थापना करेंगे। बाह्लीकके पुत्र सोमदत्त और भूरि, भूरिश्रवा तथा शल ये तीन पुत्र हुए ॥ शन्तनुसे गङ्गा नामकी भार्यामें जितेन्द्रिय भीष्म हुए। ये समस्त धर्मवेत्ताओंमें अग्रगण्य माने जाते हैं तथा महाभागवत एवं कवि थे ॥ १८, १९ ॥ ये भीष्म

तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥ १६ ॥ वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥ १७ ॥
सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ बाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८ ॥ शलश्च शन्तनोरासीद्गङ्गायां भीष्म आत्मवान् ॥
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्राङ्गदः सुतः* ॥ २० ॥
विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥ वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥
हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥ मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात्
॥ २३ ॥ स्वयम्बरादुपानीते अम्बिकाम्बालिके उभे ॥ तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४ ॥ क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ॥ धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥ गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ॥ तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि

वीरोंमें अग्रणी हैं, जिन्होंने परशुरामको भी युद्धमें पराजित कर दिया। शन्तनुसे दासकन्या सत्यवतीमें चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य दो पुत्र हुए। चित्राङ्गदको चित्राङ्गद नामक गन्धर्वने मार डाला। जिस सत्यवतीमें शन्तनुके पाणिग्रहणके पहले ही पराशर ऋषिसे भगवानके अंशावतार व्यासजी हुए, जिन्होंने वेदोंकी रक्षा की। जिनसे मेरी उत्पत्ति हुई एवं जिनसे मैंने इस भागवत ग्रन्थका अध्ययन किया। उन्हें कृष्णद्वैपायन भी कहते हैं। उन्होंने पैलादि अपने शिष्योंको छोड़कर मुझ शान्त पुत्रको परमगोपनीय इस भागवतग्रन्थका उपदेश किया। विचित्रवीर्यने काशीराजकी दो पुत्रियोंके साथ जबर्दस्ती विवाह किया था ॥ २०–२३ ॥ वे दोनों कन्याएँ भीष्मद्वारा स्वयम्बरसे जीतकर लाई गईं थीं। उनमें एकका नाम अम्बिका और दूसरीका नाम अम्बालिका था। उन दोनोंमें आसक्तहृदय विचित्रवीर्यको यक्ष्मारोगने पकड़ लिया और वे मर गये ॥ २४ ॥ सन्तानहीन अपने भाईकी पत्नीमें मातासे आज्ञा पाकर वेदव्यासजीने धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। हे राजन्, धृतराष्ट्रने गान्धारीमें सौ पुत्र पैदा किये। उन सबमें दुर्योधन ज्येष्ठ था और एक दुःशला नामकी कन्या

*वास्तवमें—दाशकन्या ही सत्यवती नामसे पुकारी जाती थी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी उत्पन्न हुई थीं ॥ २५, २६ ॥ पाण्डुकी स्त्री कुन्ती थी, उन्हें मृगका शाप था, इसलिये उन्होंने कुन्तीसे मैथुन नहीं किया। तथापि धर्मराज, वायु और इन्द्र इन देवताओंसे कुन्तीके महारथी युधिष्ठिरादि तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ एवं पाण्डुकी द्वितीय स्त्री माद्रीमें अश्विनीकुमारोंसे सहदेव और नकुल उत्पन्न हुए। द्रौपदीमें युधिष्ठिरादि पाँच भाइयोंसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। जो कि तुम्हारे पितर हुए हैं ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति और नकुलके सतानीक हुए ॥ २९ ॥ हे राजन्, सहदेवके पुत्र श्रुतकर्मा हुए। (द्रौपदिके इन पुत्रोंका हम वर्णनकर चुके हैं, अब अन्यान्य भार्याओंमें पुत्रोत्पत्ति सुनिये) युधिष्ठिरसे पौर्वी नामकी भार्यामें देवक पुत्र हुआ, भीमसेनसे हिडम्बना नामकी भार्यामें घटोत्कच हुआ और भीमसेनकी काली नामकी भार्यामें सर्वगत नामका पुत्र हुआ। सहदेवकी पर्वतकन्या विजया नामकी भार्यामें सुहोत्र नामक पुत्र हुआ। नकुलकी करेणुमती भार्यामें

कन्यका ॥ २६ ॥ शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महरथाः ॥ जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः॥ ॥२७॥ नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ॥ द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथापरे ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥ सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥३१॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ॥ इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥ परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ॥ सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषान्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ॥ समन्तात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्या-

निरमित्र नामका पुत्र हुआ तथा अर्जुनको अलपीके (नागकन्याके) गर्भसे इरावान और मणिपुरके राजाकी कन्याके गर्भसे बभ्रुवाहन हुआ। हे राजन्, सुभद्राके गर्भसे परम प्रतापी आपके पिता अभिमन्यु हुए। बभ्रुवाहनके नानाने अपनी कन्या इस प्रतिज्ञापर अर्जुनको दी थी कि उसका पुत्र हम ले लेंगे, इसलिये बभ्रुवाहन अपने नानाके ही घर रहा। अभिमन्यु सबको जीतने वाले अतिरथ वीर थे। अभिमन्युसे उत्तराके गर्भमें आप उत्पन्न हुए हैं ॥ ३०–३३ ॥ अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्र तेजसे कुरुकुलका नाश होनेपर भगवान् श्रीकृष्णने ही आपको मृत्युसे बचाया था ॥ ३४ ॥ हे तात, आपके भी जननेजय, श्रुतसेन, भीमसेन एवं पराक्रमी उग्रसेन ये चार पुत्र विद्यमान हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन्, आपके ज्येष्ठपुत्र जनमेजयको जब यह

॥ एक दिन राजा पाण्डु वनमें शिकार खेलने गये हुए थे। वहाँ उन्होंने ऋषी और ऋषी पत्नीको मृग और मृगीरूप में मैथुन करते देखा। उन्हें साधारण मृग जानकर हनन कर दिया। उससे दुःखित हो मृगीने शाप दिया अरे दुष्ट जब तुम अपनी स्त्रीके साथ रमण करोगे तभी तुम्हारी भी यही दशा होगी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मालूम होगा कि हमारे पिताकी मृत्यु तक्षक सर्पसे हुई है, तब वे क्रोधित होकर 'सर्पयाग' करेंगे और अग्निमें समस्त सर्पोंका हवन करेंगे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर अश्वमेधयज्ञमें समस्त पृथिवी दिग्विजय करके कवषके पुत्र तुरगनामक ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर नाना यज्ञोंसे यजन करेंगे॥ ३७ ॥ जनमेजयके पुत्र शतानीक होंगे। वे याज्ञवल्क्यसे वेदत्रयीका अध्ययन करके अस्त्रज्ञान एवं क्रियाज्ञान शौनक मुनिसे प्राप्त करेंगे ॥ ३८ ॥ शतानीकसे सहस्रनीक और उनसे अश्वमेधज होंगे अश्वमेधजसे असीम, कृष्ण और उनसे नेमिचक्र होंगे ॥३९॥ हस्तिनापुर जब यमुनामें डूब जायगा, तब वे कौशाम्बी नगरीमें सुखसे वास करेंगे। नेमिचक्रके पुत्र उक्त, उनको चित्ररथ और उनके कविरथ होंगे ॥४०॥ कविरथके पुत्र वृष्टिमान, उनके सुषेण, उनके महीपति, उनके सुनीथ, उनके नृचक्षु और उनके सुखीनल होंगे ॥ ४१ ॥ सुखीनलके परिप्लव, उनके सुनय, उनके मेधावी, उनके नृपञ्जय, उनके दूर्व और उनके तिमि उत्पन्न

त्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ॥ असीमकृष्णस्तस्यासि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥ तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ ४२ ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ ४३ ॥ दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमका भविता नृपः ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ ४४ ॥ क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ ४५ ॥ भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ ४६ ॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ॥ ततः सुतञ्जयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ ४७ ॥ क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥ द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥४८॥ सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुञ्जयः ॥ बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे दिवोदासर्क्षयोर्वंशवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

होंगे ॥ ४२ ॥ तिमिके बृहद्रथ, उनके सुदास, उनके शतानीक, शतानीकसे दुर्दमन और उनके पुत्र बहीनर होंगे ॥ ४३ ॥ बहीनरके दण्डपाणि, उनके निमि और उनके क्षेमक होंगे। ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी उत्पन्न करनेवाला एवं देवर्षियों द्वारा आदरको प्राप्त यह वंश कलियुगमें क्षेमक राजातक चलेगा। इसके बाद नष्ट हो जायगा। (अब मगधवंशमें जो राजा होंगे उन्हें सुनिये–) ॥ जरासन्ध तनय सहदेवके पुत्र मार्जारि, उनके श्रुतश्रवा, उनके अयुतायु, उनके निरमित्र उनके सुनक्षत्र, उनके बृहत्सेन, उनके कर्मजित्, उनके सुतञ्जय उनके विप्र और उनके शुचि होंगे ॥ ४६,४७ ॥ शुचिके पुत्र क्षेम, क्षेमके सुव्रत, उनके धर्मसूत्र, उनके शम, उनके द्युमत्सेन, उनके सुमति और उनके सुबल होंगे ॥ ४८ ॥ सुबलके पुत्र सुनीथ, उनके सत्यजित्, उनके विश्वजित् और उनके रिपुञ्जय होंगे। ये सब बृहद्रथ वंशीय राजागण कलियुगमें सहस्रवर्ष पर्यन्त रहेंगे, फिर इस वंशका भी नाश हो जायगा ॥ ४९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाईसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, दिवोदासकी आठवीं पीढ़ीमें द्रुपद राजा हुए। जिनके पुत्रका नाम धृष्टद्युम्न और लड़कीका नाम द्रौपदी था। राजा वितथकी चौथी पीढ़ीमें राजा हस्ती उत्पन्न हुए, जिसने हस्तिनापुर बसाया। उनके पुत्र अजमीढकी चौथी पीढ़ीमें राजा कुरु हुए। राजा कुरुकी छठी पीढ़ीमें बृहद्रथ हुए। बृहद्रथसे जरासन्ध कुशाग्र आदि लड़के पैदा हुए। कुरुपुत्र राजा जह्नुकी बारहवीं पीढ़ीमें राजा देवापि हुए, जिनके पीछे शन्तनु और बह्लीक उत्पन्न हुए। राजा शन्तनुसे गङ्गामें भीष्म उत्पन्न हुए। भीष्म जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी बने रहे। उनके बाद सत्यवतीमें विचित्रवीर्य हुए जिन्होंने काशीराजकी लड़की अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। शन्तनुके साथ सत्यवतीके विवाहसे पहले ही उसमें पराशर ऋषिसे हमारे पिता व्यासजी उत्पन्न हुए। अपनी दोनों पत्नियोंमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण विचित्रवीर्यके राजयक्ष्मासे मर जानेके बाद अपनी माँकी आज्ञासे अपने कुलमें आगेके लिए कोई सन्तान न देखते हुए व्यासजीने भाई विचित्रवीर्यकी पत्नीमें धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि सौ लड़के हुए, राजा पाण्डुके युधिष्ठिर आदि पाँच लड़के उत्पन्न हुए। महाभारतकी लड़ाईमें कौरवोंका संहार हो जाने पर हे राजन्, अभिमन्यु पुत्र आपके ऊपर जब कि इस वंशके अंकुर स्वरूप आप गर्भमें ही थे, अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र से प्रहार करने पर भगवान् श्रीकृष्णने आपकी रक्षा की। हे महीपते, आपके लड़से जनमेजयको जब यह मालूम हो जायगा कि साँपके काटनेसे ही हमारे पिताकी मृत्यु हुई तब क्रुद्ध होकर नागयज्ञ करेंगे। जनमेजयकी उन्तीसवीं पीढ़ीमें राजा क्षेमक होंगे। हे राजन्, इन्हीं तक कलियुगमें आपका वंश चलेगा। मगधवंशमें उत्पन्न जरासन्धके पुत्र सहदेवकी बाईसवीं पीढ़ीमें बृहद्रथ वंशीय राजा हजार वर्ष तक कलियुगमें रहेंगे, फिर इस वंशका भी नाश हो जायगा। बाइसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च त्रयः सुताः ॥ सभानरात्कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥ जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ २ ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ॥ वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ ३ ॥ शिवेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ॥ ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ ४ ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ ५ ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ॥ खनपानोऽङ्गतो जज्ञे

❀ ययातिके पुत्र अनु, द्रुह्यु और तुर्वसुके वंश वर्णनके बाद विपर्य पर्यन्त यदुवंशका वर्णन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, अब ययातिके चौथे पुत्र अनुकेवंशका वर्णन सुनिये—अनुके सभानर चक्षु एवं परोक्ष ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सभानरसे कालनर, कालनरसे सृञ्जय उनके जनमेजय, उनके महाशील, उनके महामनस् और महामनस्के उशीनर एवं तितिक्षु ये दो पुत्र हुए ॥ १, २ ॥ उशीनरके शिवि, वन, शमि, और दक्ष ये चार पुत्र हुए। शिविके वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकय ये चार पुत्र हुए तथा तितिक्षुके रुशद्रथ हुए। रुशद्रथके हैम, हैमके सुतपा और सुतपाके बलि हुए ॥ ३, ४, ॥ बलिकी भार्यामें दीर्घतमा ऋषिके वीर्यसे अङ्ग वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और आन्ध्र संज्ञक राजा उत्पन्न हुए ॥५॥ उन्होंने अपने नामसे अङ्गादि छः देश बसाये। अङ्गके पुत्र खनपान, उनके दिविरथ, उनके धर्मरथ और उनके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चित्ररथ हुए। चित्ररथके कोई सन्तान नहीं हुआ। इनका दूसरा नाम रोमपाद था। इनकी दशरथजीसे बड़ी मित्रता थी ॥ ६, ७ ॥ दशरथजीने रोमपादको सन्तानहीन देखकर अपनी शान्ता नामकी कन्या दे दी और उसका हरिणिसुत ऋष्यशृंगके साथ विवाह हुआ। एक समय रोमपाद राजाके राज्यमें इन्द्रने जल नहीं बरसाया। राजाकी आज्ञासे वेश्याएँ तपोवनमें जाकर गीत, वाद्य, नाट्य आदिके कौतुकोंसे ऋष्यशृंगको मोहितकर रोमपादके राज्यमें ले आईं। उनके आते ही खूब जलवर्षा हुई। ऋष्यशृंगने राजाको सन्तानहीन देखकर 'इन्द्रयाग' कराकर पुत्र उत्पन्न कराया एवं महाराजा दशरथने भी इन्हींकी सहायतासे रामआदि चार पुत्रोंको प्राप्त किया। रोमपादके पुत्र चतुरङ्ग हुए और उनके पुत्र पृथुलाक्ष हुए ॥ ८-१० ॥ पृथुलाक्षके बृहद्रथ बृहत्कर्मा और बृहद्भानु ये तीन पुत्र हुए। बृहद्रथसे बृहद्मना हुए और उनसे जयद्रथ हुए। जयद्रथके संभूति नामकी पत्नीमें विजय नामक पुत्र हुआ। विजयसे धृति, धृतिसे

तस्माद्दिविरथ स्ततः ॥ ६ ॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ ७ ॥ शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् ॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ ८ ॥ नाट्यसङ्गीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ ६ ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ॥ चतुरङ्गो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ १० ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ॥ आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ ११ ॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥ ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माधिरथस्ततः ॥ १२ ॥ योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम् ॥ कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥ १३ ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥ द्रुह्युश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ १४ ॥ आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ १५ ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ १६ ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः ॥ मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ १७ ॥ दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः ॥

धृतव्रत, धृतव्रतके सत्कर्मा और उनसे अधिरथ हुए ॥ १२ ॥ अधिरथके कोई सन्तान नहीं था। उन्होंने गंगा किनारे क्रीड़ा करते हुए मञ्जूषाके भीतर बन्द गंगामें बहते हुए एक बालक पाया। उसीको अपने पुत्रके समान पालने लगे। वह बालक विवाहके पहले ही सूर्यके वीर्यसे कुन्तीमें उत्पन्न हुआ था और कुन्तीने लज्जाके कारण उसे बन्दकर गंगामें बहा दिया था ॥ १३ ॥ उस कर्णसे वृषसेन हुए। अब ययातिपुत्र द्रुह्युका वंश सुनिये— द्रुह्युके पुत्र बभ्रु हुए और उनके सेतु हुए ॥ १४ ॥ सेतुके पुत्र आरब्ध उनके गान्धार, उनके धर्म, उनके धृत उनके दुर्मना और उनके प्रचेता हुए। प्रचेताके सौ पुत्र हुए ॥ १५ ॥ वे सब पुत्र उत्तरदिशामें रहनेवाले म्लेच्छोंके अधिपति बन गये। अब तुर्वसुका वंश सुनिये—तुर्वसुकाके पुत्र वह्नि, उनके पुत्र भर्ग और उनके भानुमान हुए ॥ १६ ॥ भानुमानके पुत्र त्रिभानु हुए तथा उनके उदार बुद्धि करन्धम हुए और करन्धमके पुत्र मरुत हुए। मरुतको कोई पुत्र नहीं था, इसलिसे उन्होंने पुरुवंशमें उत्पन्न दुष्यन्तको ही अपना पुत्र स्वीकार किया ॥ १७ ॥ कुछ दिन बाद दुष्यन्तको जब राज्यकी इच्छा हुई, तब वे पुनः अपने वंशमें चले आये। हे राजन्, अब मैं ययातिके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ज्येष्ठ पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥१८॥ यह यदुवंशका वर्णन महापुण्यको उत्पन्न करनेवाला एवं मनुष्यके समस्त पापोंको दूर करनेवाला है। मनुष्य यदुवंशको सुनकर समस्त पापोंसे दूर हो जाता है ॥ १९ ॥ जिस यदुवंशमें साक्षात् परब्रह्म परमात्माने मनुष्यावतार धारण किया है। यदुके पुत्र सहस्रजित, क्रोष्टा, नल और रिपु ये चार हुए। सहस्रजित्के पुत्र शतजित हुए तथा शतजित्के महाहय, वेणुहय और हैहय ये तीन पुत्र हुए। हैहयके धर्म तथा धर्मके नेत्र हुए। नेत्रके कुन्ति और कुन्तिके सोहञ्जि हुए। सोहञ्जिके महिष्मान् एवं उनके भद्रसेनक हुए ॥ २०-२२ ॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक नामके दो पुत्र हुए। धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा ये चार पुत्र हुए।। कृतवीर्यके पुत्र सप्तद्वीप पति सहस्रबाहु अर्जुन हुए। इस अर्जुनने भगवान्के अंशावतार परमहंस दत्तात्रेयजीसे योगविद्या पाई थी॥ २३, २४ ॥ अन्य राजा लोग यज्ञ, दान, तप, योग, शास्त्रपराक्रमादि

ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ १८ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥ यत्राव-
तीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः ॥ यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ २० ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः ॥ महाहयो
वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ २१ ॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः ॥ सोहञ्जिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥ २२ ॥ दुर्मदो
भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ॥ कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥२३॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्त-
योगमहागुणः ॥२४॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ॥ यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥२५॥ पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याह-
तबलः समाः ॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २६ ॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे ॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः
॥ २७ ॥ जयध्वजात्तालजङ्घस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ क्षत्रं यत्तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥ २८ ॥ तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः
स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद्वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २९ ॥ माधवा वृष्णयो राजन्यादवाश्चेति संज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो
वृजिनवांस्ततः ॥ ३० ॥ स्वाहितस्ततो रुशंकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ॥ शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३१ ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रव-

के द्वारा कार्तवीर्यके पदको नहीं प्राप्तकर सकते ॥ २५ ॥ अव्याहत बलशाली राजा कार्तवीर्यने पचासी हजार वर्षोंतक निरन्तर छः इन्द्रियोंके विषयसुखका उपभोग किया। तथापि उनका भण्डार-कोष अक्षय ही बना रहा ॥२६॥ सहस्रार्जुनके एक हजार पुत्र थे, किन्तु सब परशुरामजीके द्वारा मार दिये गये, केवल जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु, ऊर्जित ये पाँच पुत्र अवशिष्ट रह गये ॥ २७ ॥ जयध्वजसे तालजंघ और तालजंघके सौ पुत्र हुए। ये सब तालजंघ नामक क्षत्रिय राजा सगरके हाथों मारे गये। तालजंघके सौ पुत्रोंमें बड़ेका नाम वीतिहोत्र था। मधुके पुत्रका नाम वृष्णि पड़ा था। मधुके एक सौ पुत्र थे। उनमें वृष्णि सबसे बड़े थे। हे राजन्, यदु, मधु, एवं वृष्णिके नामसे इस वंशमें यादव, माधव तथा वार्ष्णेय नामसे कई अवान्तर भेद हो गये। यदुपुत्र क्रोष्टाके पुत्र वृजिनवान् हुए ॥ २८-३० ॥ वृजिनवान्के स्वाही, उनके रुशेकु और उनके चित्ररथ हुए। चित्ररथके महायोगी महाभाग शशबिन्दु हुए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजा शशबिन्दु चतुर्दश महारत्नोंके स्वामी एवं अपराजित चक्रवर्ती राजा थे। शशबिन्दुकी दस हजार रानियाँ थीं। प्रत्येक पत्नीमें एक एक लक्ष सन्तान हुई। ऐसे उनको सौ करोड़ सन्तान हुई। उन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति और पृथुयशा आदि छः पुत्र प्रधान थे। पृथुश्रवाके पुत्र धर्म और उनके उशना हुए उन्होंने सौ अश्वमेधयज्ञ किये। उशनाके पुत्र रुचक हुए और उनके जो पाँच पुत्र हुए, उसे सुनिये ॥ ३१-३४ ॥ पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु एवं ज्यामघ ये पाँच हैं। ज्यामघको कोई पुत्र नहीं था। तथापि उन्होंने अपनी शैव्या नामकी भार्याके भयसे दूसरा विवाह नहीं किया। वे एक समय अपने शत्रुके भवनसे भोज्या नामकी कन्या हर लाये। जब रथमें बैठकर अपने घर आये, तब उनकी पत्नी शैव्याने उसे देखकर क्रोधित होकर उनसे कहा ॥ ३५, ३६ ॥ हे कपटी, यह बताओ कि इस रथपर बैठाकर जिसे लाये हो वह कौन है। जब ज्यामघने भयके मारे स्त्रीसे कहा-यह तुम्हारे पुत्रकी स्त्री होगी। यह

र्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३२ ॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ॥ तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३३ ॥ धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजा शृणु ॥ ३४ ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ ३५ ॥ नाविन्दच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्यामहारषीत् ॥ रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्यापतिममर्षिता ॥ ३६ ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ अहं बन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ॥ जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ ३८ ॥ अन्वमोदन्तताद्विश्वेदेवाः पितर एव च ॥ शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सुनकर मुसकुराती हुई वह पतिसे बोली ॥ ३७ ॥ मैं तो बन्ध्या हूँ और मेरी कोई सौतिन भी नहीं है। ऐसी स्थितिमें यह मेरे पुत्रकी स्त्री कैसे हो सकती है। तदनन्तर हँसकर ज्यामघने कहा—हे रानी, तुम जिस पुत्रको उत्पन्न करोगी उसकी यह पत्नी होगी ही ॥ ३८ ॥ राजाके इस वाक्यको विश्वेदेवा एवं पितृगणोंने अनुमोदन किया। तदनन्तर ज्यामघकी रानी शैव्याको गर्भ रह गया और समय आनेपर सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रका नाम विदर्भ हुआ तथा विदर्भके साथ उसी भोज्यका विवाह हुआ ॥ ३९ ॥

तेईसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ययातिके पुत्र अनुके तेरहवीं पीढ़ीमें अङ्ग-वङ्ग आदि ६ राजा हुए। ये अपने नामसे ६, देश बसाये। राजा अङ्गकी पाँचवीं पीढ़ीमें राजा रोमपाद उत्पन्न हुए। इन्हींका नाम लोमपाद भी था। लोमपादकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें अधिरथ हुए। उन्होंने कुन्तीपुत्र कर्णको अपना पोष्य पुत्र बनाया। ययातिके पुत्र द्रुहुकी नवम पीढ़ीमें प्रचेता उत्पन्न हुए। इनके सब लड़के उत्तरदिशामें जाकर म्लेच्छोंके अधिपति बन गये। हे राजन्, ययातिके पुत्र तुर्वसुकी सातवीं पीढ़ीमें राजा मरुत उत्पन्न हुए। सन्तान न होनेके कारण इन्होंने पुरुवंशमें उत्पन्न दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाया। ययातिके पुत्र यदुकी चौथी पीढ़ीमें हैहयकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें महाराज कार्तवीर्य पैदा हुए। उनसे मधु और मधुसे वृष्णि पैदा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुए। हे राजन्, यदु, मधु और वृष्णिके नामसे यादव, माधव और वार्ष्णेय आदि कई भेद इस वंशमें हो गये हैं। हे राजन्, यदुके द्वितीय पुत्र क्रोष्टाकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें ज्यामघ उत्पन्न हुए और उनके पुत्र हुए राजा विदर्भ। तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ राजा विदर्भके पुत्रोंके अनेक शाखाओंमें फैले हुए वंशका बलदेव और भगवान् श्रीकृष्णकी उत्पत्तितक वर्णन ❋

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, विदर्भने भोज्या नामकी भार्यामें कुश, क्रथ, एवं विदर्भकुल नन्दन रोमपाद ये तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ रोमपादके पुत्र बभ्रु हुए और बभ्रुके कृति हुए। कृतिके उशिक और उनके चेदि हुए। हे राजन्, चेदिके पुत्र चैद्य इत्यादि हुए ॥ २ ॥ क्रथके पुत्र कुन्ति और उनके पुत्र धृष्टि, उनके निर्वृत्ति, उनके दाशार्ह, उनके पुत्र व्योम

❋ अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ❋

श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिर-
जायत ॥ उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ॥ ततो दशार्हो नाम्नाभूत्तस्य
व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥ जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ॥ ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करम्भिः शकुनेः पुत्रो
देवरातस्तदात्मजः ॥ देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ॥ भजमानो भजिर्दिव्यो
वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६ ॥ सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ॥ भजमानस्य निम्लोचिः किङ्किणो धृष्टिरेव च ॥ ७ ॥ एकस्यामा-
त्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८ ॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू ॥ यथैव
शृणुमो दूरात्सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ९ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥ वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परन्तप ॥

हुए ॥ ३ ॥ व्योमके जीमूत, उनके विकृति, उनके भीमरथ उनके नवरथ और उनके दशरथ हुए ॥ ४ ॥ दशरथके शकुनी, उनके करम्भी, उनके देवरात, उनके देवक्षत्र, उनके मधु, उनके कुरुवश, उनके अनु, उनके पुरुहोत्र, उनके आयु, उनके सात्वत और हे आर्य, सात्वतके भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, महाभोज देवावृध तथा अन्धक ये सात पुत्र हे प्रभो, भजमानके निम्लोचि, किङ्किण एवं धृष्टि ये तीन पुत्र एक स्त्री में हुए दूसरी स्त्रीमें शताजित्, सहस्राजित्, अयुताजित ये तीन पुत्र हुए इसप्रकार कुल छ पुत्र हुए ॥ ५–८ ॥ देवावृध के पुत्र बभ्रु हुए। इनके पिता और पुत्रके विषयमें कवियोंने ये दो श्लोक कहे हैं–हम जैसा इन्हें दूरसे सुनते हैं वैसाही निकट जाकर देख पाते हैं। बभ्रु जी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृधजी देवताओंके समान हैं। देवावृत और बभ्रुके उपदेशसे उन्नासी हजार मनुष्य मोक्षको प्राप्त हो गये। सात्वतके पुत्र महाभोज बड़े धर्मात्मा थे। उनके वंशमें भोजवंशीय यादव हुए ॥९–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

११ ॥ हे राजन्, सात्वतके पुत्र वृष्णिके सुमित्र और युधाजित् दो पुत्र हुए । युधाजित्के शनि और अनमित्र ये दो पुत्र हुए तथा अनमित्रके निम्न हुए ॥ १२ ॥ निम्नके प्रसेन और सत्राजित् ये दो पुत्र हुए । अनमित्रके द्वितीय पुत्र शिनिसे सत्यकका जन्म हुआ ॥ १३ ॥ सत्यकके युयुधान एवं सात्यकि ये दो पुत्र हुए । सात्यकिसे जय और जयसे कुणि हुए। कुणिसे युगन्धर हुए । अनमित्रके वृष्णिनामसे प्रसिद्ध एक पुत्र और थे, उनके श्वफल्क और चित्ररथ दो पुत्र हुए । श्वफल्कसे गान्दिनी नामकी भार्यामें अक्रूरादि द्वादश पुत्र हुए, जिनमें अक्रूर प्रमुख थे, अक्रूरको छोड़कर बाकी ये हैं-आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद्, गिरि, धर्मभृद्धि, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमाद और प्रतिबाहु । इन बारह भाइयोंकी एक सुचीरा नामकी बहिन थी । तदनन्तर देववान् और उपदेव नामके दो पुत्र अक्रूरजीके हुए । चित्ररथके पृथु, विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुए । ये सब वृष्णि वंशीय कहे जाते हैं ॥१४-१८॥

शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥ अनमित्रासुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३ ॥ युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ॥ युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः ॥ अक्रूरप्रमुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ॥ धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥ तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥ देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥१८॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ॥ कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥ कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः ॥ अन्धको दुन्दुभिस्तस्य दरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥ तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ॥ तेषां स्वसारः सप्तासन्धृत-देवादयो नृप ॥ २२ ॥ शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३ ॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कः सुहूस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानोग्रसेनयः ॥ २४ ॥ कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो

अन्धकके कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हिष ये चार पुत्र हुए । कुकुरके पुत्र वह्नि और उनके विलोमा हुए । विलोमाके कपोतरोमा, उनके अनु हुए । तुम्बुरु गन्धर्वके साथ अनुकी बड़ी दोस्ती थी । अनुके पुत्र अन्धक , उनके दुन्दुभि, उनके दरिद्योत और उनके पुनर्वसु हुए ॥ १९, २० ॥ पुनर्वसुको आहुक नामक एक पुत्र और आहुकी नामकी एक कन्या हुई । आहुकके देवक तथा उग्रसेन ये दो पुत्र हुए । एवं देवकके भी देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देववर्धन ये चार पुत्र हुए । उन चारोंकी हे राजन्, धृतदेवा इत्यादि सात बहनें थीं ॥२१, २२॥ उन सबके नाम बतलाते हैं-शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी ये छ एवं सातवीं धृतदेवा जेठी बहिन थी, उसका वर्णन हो चुका है । इन सबके साथ वसुदेवने विवाह किया था ॥ २३ ॥ उग्रसेनके कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि तथा तुष्टिमान ये पुत्र थे ॥ २४ ॥ तथा कंसा, कंसवती, कङ्का शूरभू और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राष्ट्रपालिका ये कन्याएँ हुई थीं। जिनसे वसुदेवके छोटे भाइयोंने विवाह किया ॥ २५ ॥ विदूरथसे शूर हुए उनसे भजमान हुए, उनसे शनि, उनसे स्वयम्भोज और उनसे हृदीक हुए ॥ २६ ॥ हृदीकके देवबाहु, शतधनु और कृतवर्मा ये तीन पुत्र हुए। देवमीढके पुत्र शूरकी पत्नी मारिष्या नामकी स्त्री हुई थी ॥२७॥ उसमें शूरने पापरहित दस पुत्रोंका उत्पन्न किया। जिनके नाम–वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक तथा वृक थे। वसुदेवके जन्मके समय देवताओंने दुन्दुभि तथा आनक बजाया था। इसीसे भगवान् के जन्मस्थान वसुदेवको आनकदुन्दुभि कहते हैं। वसुदेवकी पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति श्रुतश्रवा तथा राजाधिदेवी नामकी पांच बहनें थीं। शूरने अपने मित्र कुन्तीको पुत्र रहित देखकर अपनी कन्या प्रथा दे दी। उसने दुर्वासाको प्रसन्न करके उनसे देवहूती नाम विद्या प्राप्त की। और उस विद्याके प्रभावकी परीक्षा करनेके उसने सूर्यका आवाहन किया ॥ २८–३२ ॥

वसुदेवानुजास्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथादासीद्भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात्स्वयम्भोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति यत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥ सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगन्यः पञ्च कन्यकाः ॥ कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥ साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२ ॥ तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ॥ प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥ अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ॥ सद्यः कुमारः सञ्जज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ॥ प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६ ॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ॥ यस्यामभूद्दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥३७॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ॥ सन्तर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन्कैकयाः

तदनन्तर वहाँपर आये हुए सूर्यको देखकर वह अत्यन्त विस्मित हुई और कहने लगी–हे देव, मैं आपको परीक्षाके लिए प्रयोग किया, इसलिये आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये और अपने स्थानको चले जाइये ॥ ३३ ॥ सूर्यने कहा—हे देवि, मेरा दर्शन कभी भी व्यर्थ नहीं होता, इसलिये मैं तुममें पुत्रका आधान करता हूँ। और हे सुमध्यमे, जिस रीतिसे तुम्हारी योनि दूषित न होने पावे, वैसाही करूँगा ॥३४॥ इसप्रकार कहकर उसमें गर्भधारण करके सूर्यदेव स्वर्गको चले गये। तदनन्तर उसी समय दूसरे सूर्यके समान उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३५॥ उसने संसारके अपवादके भयसे उस बालकको बड़े कष्टके साथ नदीके जलमें छोड़ दिया। तदनन्तर सत्यपराक्रमवाले तुम्हारे प्रपितामह पाण्डुने उसके साथ विवाह किया ॥३६॥ कारूषवंशीय वृद्धशर्माने श्रुतदेवाके साथ विवाह किया। वैकुण्ठमें ऋषियोंके शापसे जो पहले जय दितिका पुत्र हिरण्यकशिपु हुआ था, वही इस समय जिसमें दन्तवक्र हुआ ॥३७॥ केकय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देशके धृष्टकेतु नामक राजाके साथ श्रुतकीर्तिका विवाह हुआ। उनमें सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए॥३८॥ जयसेनने राजाधिदेवीके साथ विवाह करके विन्द तथा अनुविन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न किये। चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाके साथ विवाह किया॥३९॥ उसका पुत्र शिशुपाल हुआ। उसकी उत्पत्ति मैंने कह दी है। अब वसुदेवके भाइयोंका वंश सुनिये-कंसा नामकी भार्यामें देवभागके चित्रकेतु और बृहद्बल नामक दो पुत्र हुए॥४०॥ एवं कंसवती भार्यामें देवश्रवाको सुवीर और इषुमान् दो पुत्र हुए। कङ्का भार्यामें आनकको सत्यजित् तथा पुरुजित ये दो पुत्र हुये॥४१॥ राष्ट्रपाली भार्यामें सृञ्जयने वृष एवं दुर्मर्षणादि पुत्रोंको उत्पन्न किया। श्यामकके शूरभूमिके गर्भसे हरिकेश और हिरण्याक्ष ये दो पुत्र उत्पन्न हुए॥४२॥ वत्सकने मिश्रकेशी अप्सरामें वृकादि पुत्रोंको उत्पन्न किया। वृकके दुर्वार्क्षी भार्यामें तक्ष, पुष्कर और शालादि पुत्र उत्पन्न हुए॥४३॥ शमीकके सुदामिनीके गर्भसे सुमित्र और अर्जुनपाल आदि पुत्र हुए। कंकके (आनकके) कर्णिकाके गर्भसे ऋतधाम तथा जय पुत्र उत्पन्न हुए। वसुदेवकी पौरवी, रोहणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला इत्यादि देवकी प्रमुख बहुत सी स्त्रियाँ रहीं॥४४,४५॥ उनमें रोहणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र हुए एवं पौरवीके गर्भसे सुभद्र, भद्रवाह, दुर्मद, भद्र तथा भूत आदि बारह पुत्र हुए॥४६,४७,॥ इसीप्रकार मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और शूरादि पुत्र हुए। इसीप्रकार भद्राके गर्भसे केशी नामका एक प्रतापि पुत्र हुआ॥४८॥ रोचनाके गर्भसे वसुदेवके हस्त, हेमाङ्गद आदि पुत्र हुए और इलाके गर्भसे उरु वल्कादि बहुतसे यदुमुख्य पुत्र पैदा हुए॥४९॥ हे राजन्, धृतदेवके गर्भके वसुदेवको विपृष्ट और शान्तिदेवाके गर्भसे श्रुत, प्रतिश्रुत आदि पुत्र हुए, उपदेवाके गर्भसे राजा कल्प, वर्ष आदि दस पुत्र हुए तथा श्रीदेवाके गर्भसे वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र एवं देवरक्षिताके गर्भसे गद आदि नौ पुत्र उत्पन्न हुए। जैसे-साक्षात् धर्मने आठों वसुओंको उत्पन्न किया वैसेही वसुदेवने सहदेवाके गर्भसे पुरु-विश्रुत मुख्य आठ श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किये। देवकीके गर्भसे भी उदार श्रीवसुदेवजीने इन आठ पुत्रोंका उत्पन्न

सुताः॥३८॥ राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह॥ दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत्॥ ३९॥ शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ॥ ४०॥ कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा॥ कङ्कायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा॥ ४१॥ सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान्॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः॥ ४२॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा॥ तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे॥ ४३॥ सुमित्रार्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी॥ कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि॥ ४४॥ पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला॥ देवकीप्रमुखा आसन्पत्न्य आनकदुन्दुभेः॥४५॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम्॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत्॥ ४६॥ सुभद्रो भद्रवाहश्च दुर्मदो भद्र एव च॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन्॥ ४७॥ नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः॥ कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम्॥ ४८॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः॥ इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत्॥४९॥ विपृष्टो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः॥ शान्तिदेवात्मजा राजन् श्रमप्रतिश्रुतादयः॥५०॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया ॥ ५०-५३ ॥ कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, समर्दन, भद्र एवं महीश्वर भगवान् संकर्षण और आठवें गर्भसे तो साक्षात् भगवान्ने ही अवतार लिया। देवकीको सुभद्रा नामकी कन्या भी हुई थी, जो तुम्हारी पितामही हुई ॥ ५४, ५५ ॥ हे राजन्, जब-जब धर्मकी हानि एवं अधर्मकी वृद्धि होती है तब-तब भगवान् धर्मकी रक्षाके तथा वृद्धिके लिये अवतार धारण करते हैं ॥ ५६ ॥ हे महीपते, मायाके नियामक, संगरहित, सबके साक्षी एवं सर्वव्यापक जो श्री भगवान् हैं उनके जन्म या कर्मका कारण मायाविनोदके अतिरिक्त और क्या हो सकता है ॥ ५७ ॥ जिन भगवान्की मायामयी लीलाएँ जीवात्माके अनुग्रहके लिये होती हैं, जिन लीलाओंसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं प्रलय होता है और उन लीलाओंकी निवृत्ति

राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥ देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कार्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजं संमर्दनं भद्रं सङ्कर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४ ॥ अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥ ५५ ॥ यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥५६॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥५७॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥ अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः ॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयाणि मनसाऽपि सुरेश्वरैः ॥ सहसङ्कर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ॥ श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ॥ श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः॥ ६३ ॥ स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४ ॥ यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ॥ नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः

ही जीवके मोक्षका कारण है ॥ ५८ ॥ तथा जिन भगवान्ने राजचिह्नधारी एवं अनेक अक्षौहिणी सेनासे सम्पन्न राक्षसोंसे आक्रान्त पृथिवीका भार दूर करनेके लिये महाभारत युद्धरूपी महान् उद्योग किया ॥ ५९ ॥ उन भगवान् मधुसूदनने बलदेवजीके साथ अनेक अद्भुत कर्म किये, जिनकी सुरेश्वरादि देवगण मनसे भी कल्पना नहीं कर सकते ॥ ६० ॥ श्रीकृष्णजीने इसप्रकार कलियुगमें होनेवाले भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके दुःख शोक तथा अज्ञानका नाश करनेवाले पवित्र यशका विस्तार किया है ॥ ६१ ॥ सत्-पुरुषोंके कर्णके लिये अमृततुल्य भगवान्के जिस यशरूपी तीर्थ सरोवरमें अपने श्रोत्ररूप अञ्जलिसे एक बार भी आचमन करने से मनुष्यकी समस्त कर्मवासनाएँ नष्ट हो जाती हैं ॥६२॥ जिन भगवान्के पवित्र चरित्रोंकी प्रशंसा भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह कुरु, सृञ्जय और पाण्डु आदि सब लोग करते हैं ॥ ६३ ॥ जिन भगवान् श्रीकृष्णजीने मधुर हास्यपूर्वक अवलोकन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा मधुरवाक्योंसे, विचित्र पराक्रमयुक्त लीलाओंसे एवं सर्वाङ्ग सुन्दर अपनी मधुर मूर्तिसे मनुष्यलोकको आनन्दित किया ॥ ६४ ॥ जिन भगवान्‌के मकराकृत कुण्डलोंसे सुन्दर दोनों कर्ण तथा उन्हीं कुण्डलोंकी प्रभासे देदीप्यमान कपोलोंसे युक्त और विलास-हास्यसे पूर्ण नित्योत्सवरूप मुखमण्डलको देखकर मुदित हुए व्रजवासी स्त्री-पुरुषोंके नेत्र तृप्त नहीं होते थे, बल्कि उन्हें नेत्रोंके उन्मेष-निमेष करनेवाले राजा निमिके ऊपर क्रोध आता था, जिनका पलकोंके ऊपर निवास है ॥ ६५ ॥ पहले भगवान् अपने अलौकिकरूपसे ही अवतरित हुए। तदनन्तर लीला करनेके लिये मनुष्याकार हो गये और व्रजको चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने व्रजवासियोंके शत्रुओंको मारकर बहुत कार्य सिद्ध किये। तदनन्तर बहुतसे विवाह करके बहुत सन्तान उत्पन्न किये और उसके बाद अपने वेदमार्गका जनतामें प्रचार करते हुए उन्होंने नाना यज्ञोंसे परमात्मस्वरूप अपना ही यजन किया ॥ ६६ ॥ कौरवोंमें उठे हुए गृहविवादको हेतु बनाकर अपनी दृष्टिसे ही युद्धक्षेत्रमें युद्ध करनेके लिये उपस्थित राजाओंकी आयु और सेनाका नाश करते हुए पृथिवीके अनन्त भारको उतारकर एवं अर्जुनकी विजयघोषणा कराकर और उद्धवके लिये तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने परमधामको चले गये ॥ ६७ ॥

कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥ जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयन् जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामन्तः समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥६७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायामष्टादशसाहस्र्यां नवमस्कन्धे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ समाप्तः नवमः स्कन्धः ।

बीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महीपते, राजा विदर्भके लड़के रोमपादकी पाँचवीं पीढ़ीमें राजा चेदि हुए और उनके पुत्र हुए राजा चैद्य। राजा विदर्भके पुत्र क्रयकी बीसवीं पीढ़ीमें सात्त्वत हुए। सात्त्वतसे देवावृध और उनसे बभ्रु उत्पन्न हुए। सात्वतके पुत्र वृष्णिसे युधाजित् हुए और युधाजित्‌की पाँचवीं पीढ़ीमें सात्यकि हुए। शिन पुत्र वृष्णिसे श्वफल्क हुए और उनसे अक्रूर हुए। युधाजितके दूसरे लड़के अनमित्रसे निम्न हुए तथा उनसे सत्राजित्। सात्त्वतके पुत्र अन्धकसे कुकुर हुए और कुकुरकी ग्यारहवीं पीढ़ीमें राजा उग्रसेन हुए। उग्रसेनको लड़का कंस तथा देवकी आदि लड़कियाँ भी हुई थीं। वृष्णिके लड़के चित्ररथसे विदूरथ और उनसे हुए देवमीढ। देवमीढ़के पुत्र शूर थे तथा उनके थे लड़के वसुदेव। वसुदेवके देवभाग आदि नव भाई थे। इस वंशकी हजारों शाखाएँ थीं। वसुदेवसे रोहिणीमें बलदेवजी उत्पन्न हुए। हे राजन्, वसुदेवजीसे रोहिणीमें ही उत्पन्न एक लड़की भी थी, जिसका नाम सुभद्रा था, वह रिस्तेमें बलदेवजी की बहिन और आपकी पितामही लगती है। हे महाराज, पृथिवीका भार उतारनेके लिए साक्षात भगवान् विष्णुने ही देवताओंकी प्रार्थनासे देवकीके गर्भसे अवतार लिया।

❀ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माहात्म्यश्रवणफलम्—हरिरुवाच—मत्कपोलौ च भृकुटिर्नवमस्कन्ध इष्यते। एतस्य श्रवणाद् गोघ्नः सद्गतिं लभतेतराम् ॥ १ ॥ इतिहासं चात्र शृणु वङ्गदेशे कृषीवलः। विश्राम इति विख्यातो बभूव द्विजपूजकः ॥ २ ॥ नानान्नमुप्त्वा भूमौ स प्रोतमन्नं तन्नृपाय वै। ददो करार्थं तच्छेषं स्वगृहं चानयत्पुनः ॥३॥ गृहं गत्वा ब्राह्मणेभ्यो ददौ चान्नं कृषीवलः। कदाचित्पक्तिते क्षेत्रे स्थिता गा निशि दृष्टवान् ॥ ४ ॥ दण्डेन तास्तताडेति मत्क्षेत्रं भक्षितं हि वः। निशम्य तद्ध्वनिं गावो दुद्रवुस्तु दिशो दश ॥ ५ ॥ एका वृद्धा मृता धेनुस्तां दृष्ट्वा दुःखितोऽभवत्। उत्थाप्य तां नदीतीरे दूरे प्रक्षिप्तवान्पुनः ॥ ६ ॥ प्रायश्चित्तं न कृतवाँल्लोके ख्यातिभया त्तदा। देहान्ते नरकाँल्लेभे बहुकालं स पादजः ॥७॥ पुनश्चाण्डालतां प्राप्तो मृता माता मृतः पिता। मातृष्वसृगृहे सोन्धो भूत्वा कुष्ठरुजा जितः ॥ ८ ॥ उपवास दशवर्षाणि ततो मातृष्वसा मृता। ततो यष्टिं गृहीत्वान्धो गेहे गेहे क्षुधान्वितः ॥ ९ ॥ भ्रमन्दैवात्कदाचित्स ब्राह्मणस्य गृहं गतः। तत्र भागवती गाथा नवमस्कन्धजा श्रुता ॥ १० ॥ तदा ववर्ष जलदो बहुधारासमन्वितः। स चाण्डालो मार्गतः श्लोकार्द्धं नवमस्य हि। शुश्रा वच्छायामाश्रित्य ततः पङ्के पपात ह ॥ ११ ॥ तदैव स मृतो लोकं वैकुण्ठं प्रजगाम वै। श्लोकार्धश्रवणेनैव मुक्तो गोवधपापतः ॥ तत एतादृशं शास्त्रं न लोके पापराशिनुत् ॥ १२ ॥

❀ अथ गौरीतन्त्रोक्तं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम् ❀

कैलासशिखरारूढं भक्तिशास्त्रविशारदम्। सदाशिवं नमस्कृत्य गौरी पप्रच्छ सादरम् ॥ १ ॥ पार्वत्युवाच—सदाशिवशिवाधार शङ्करश्रीधरप्रिय। गिरिशाखिलसद्गोष्ठीनीराजितपदाम्बुज ॥ २ ॥ किञ्चित् पृच्छामि भो देव ब्रूहि कृत्वा कृपां मयि। श्रीभागवतमाहात्म्यं श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ ३ ॥ महादेव उवाच—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतमं शिवे। श्रीभागवतमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ ४ ॥ यदि न स्याद्भागवतं कलौ सर्वमलाकुले। तदा गतिः कथं नृणां सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ५ ॥ जगत्त्राणाय हरिणा श्रीमद्भागवतं परम्। भुवि प्रकटितं गौरि कारुण्येन दयालुना ॥ ६ ॥ ये तु भागवतं शास्त्रमन्यशास्त्रेण दुर्धियः। समत्वेनैव जानन्ति तेषां दैवं पराङ्मुखम् ॥ ७ ॥ ते पतन्ति महाघोरे सौर्यलोके हि मानवाः। धिक् धिक् तेषां प्रसङ्गोऽपि ये भागवतदूषकाः ॥ ८ ॥ येषां श्रोतुं मनीषाऽभूच्छ्रीमद्भागवतस्य च। तेषामनेकजन्मोत्थशतकानि वियन्ति हि ॥ ९ ॥ किमिहोक्तेन विधिना सद्यः कृष्णः प्रसीदति। अनेकजन्मसंसिद्धेः शिवो भवति यो नरः ॥ १० ॥ श्रीभागनतशुश्रूषा तस्यैव हृदि जायते। कोटिजन्मान्तरे येषामशुभं कर्मभामिनि ॥ ११ ॥ तेषां गतिर्भवेद् गौरि श्रीभागवतनामतः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ १२ ॥ सर्वशास्त्रावगाही स या भगवतचिन्तकः। तस्य दर्शनमात्रेण दूरतो याति पातकम् ॥ १३ ॥ किं तस्य दानैः पुरुभिर्मखैर्वा किं तस्य पुण्यैश्चिरसञ्चितैर्वा। किं तस्य शास्त्रैः किमु तस्य योगैः किं तस्य मैत्र्या किमुतस्य जाप्यैः ॥ १४ ॥ किं तस्य बुद्ध्या किमु तस्य शुद्ध्या किं तस्य ऋद्ध्या बत शैलपुत्रि। यस्याऽनिशं श्रोत्रपवित्रभागवतामृताम्भोधिरसावगाहः ॥ १५ ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म लब्ध्वाऽपि भुवि मानवाः। श्रीमद्भागवतास्वादरहितास्ते जना वृथाः ॥ १६ ॥ कीर्त्तियन्ति च ये भक्त्या भागवतं धरात्मजे। तत्राप्यकीर्त्तयन्त्येव सर्वे देवा महर्षयः ॥ १७ ॥ षट्शास्त्रवेत्ता निगमप्रवीणस्तथागमव्याकरणादिनिष्ठः। विना हरेर्भागवतप्रसादज्ज्ञानाति को भागवतान्तरार्थम् ॥ १८ ॥ यत्कामिनां कामदातृ अर्थिनामर्थदातृ यत्। धर्मार्थिनां धर्मदातृ मुक्तीच्छूनां च मुक्तिदम् ॥ १९ ॥ भक्तीच्छूनां पराभक्तिदातृ भागवतं प्रिये। ये न शृण्वन्ति निन्दन्ति ते त्याज्याः सुदूरतः ॥ येऽहङ्कारमहा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न्यालिगिलिता मन्दबुद्धयः । विहसन्ते भागवतं ते मूढा धीरमानिनः ॥ २१ ॥ यः शृणोति सतां निन्दां विप्रः शास्त्रस्य सुन्दरि । कामाद् भोगात्कौतुकाद्वा नश्यति सुकृतं कृतम् ॥ २२ ॥
धन्यौ च तस्य पितरौ धन्यास्तस्य च बान्धवाः ॥ धन्यस्तस्य जनुर्भद्रे यो भागवतमर्चति ॥ २३ ॥ पुष्पैर्धूपैश्च सुरभिश्चन्दनैर्वस्त्रभूषणैः । उच्चावचैश्चोपहारैस्तथा तद्वाचके जनम् ॥ २४॥
गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसम्वादे पुराणदानमाहात्म्ये श्रीभागवतमाहात्म्ये प्रथमः पटलः ।

शिवोवाच—सदाशिव महासाधो कीदृक् भागवतवाचकः॥ किं लक्षणं भागवतं तन्मे ब्रूहि दयानिधे ॥ १ ॥ शिव उवाच—नातिनीचस्वरोनात्युच्चस्वरो न विलुप्तधीः । न रिपुर्न-
खलो देवि नालसः क्रोधनश्चलः ॥ २ ॥ न स्त्रैणो न च साधुद्विट् स्याद् भागवतवाचकः । दिव्यमासनमास्थाय वाचकः कथयेत्कथाम् ॥ ३ ॥ स्कन्धाध्यायाद्यन्तपद्यं द्विस्त्रिर्नोच्चारयेच्छिवे ।
तथा नमस्क्रिया कार्या वक्तृ-पृच्छक-श्रोतृभिः ॥ ४ ॥ उपक्रमोपसंहारे सादरं गिरिनन्दिनि । अमान्यो हेतुवादी च विष्णुभक्ती जितेन्द्रियः ॥५॥ श्रद्धावान् सारसङ्ग्राही श्रोता भवति नाऽपरः ।
हेतुवादरते मूर्खः स्त्रीजितः कृपणः शठः ॥ ६ ॥ अहं युत्क्रोधनोऽसाधुः श्रोता न स्याद्वरानने । श्रोतृप्रियो भवेद् वक्ता श्रोता वक्तृप्रियो भवेत् ॥ ७ ॥ अन्यथा तयोर्योगे रसो नैवोपजायते ।
अश्नन्ननश्नन् श्रुणुयाद्वाचयेद्वा धरात्मजे ॥ ८ ॥ स कामः श्रुणुयात्सुभ्रु कथयेद्वा उपोषितः । भाग्यवान्शृणुयाद् ब्रूयात्सदा विष्णुपरायणः ॥ ९ ॥ यः पठेत्संहितां कृत्वा शृणुयाद्वा वरानने ।
अश्वमेधसहस्रस्य वर्णे वर्णे लभेत्फलम् ॥ १० ॥ सर्वतीर्थावगाहोत्थं यच्च सर्वव्रतोद्भवम् । तत्फलं कोटिगुणितं संहिताश्रुतिमात्रतः ॥ ११ ॥ अर्थं विना तु यः पाठः संहिता सा निगद्यते ।
अधीयन्ते च वृत्यर्थं ये तु भागवतं शुभम् ॥ १२ ॥ हरिणा स्वयमुद्दिष्टं तेऽपि सद्गतिमाप्नुयुः ॥ श्रीभागवतपाठार्थं यः प्रयच्छति मन्दिरम् ॥ १३ ॥ सुन्दरं सुदृढं गौरि स स्यात्कृष्णप्रिय-
श्चिरम् । ससागरा मही तेन दत्ता स्यान्नाऽत्र संशयः ॥ १४ ॥ यस्तु तद्वाचकायैव धनं दद्यात्सुपुष्कलम् । नानातीर्थेषु विधिवन्नानादानैश्च तस्य किम् ॥१५॥ स्वर्णं रौप्यं च रत्नानि नागेन्द्रं
च रथं हयम् । गृहं दद्यात् यथाशक्ति वाचकाय च दक्षिणाम् ॥ १६ ॥ देवतानां यथा विष्णुर्नक्षत्राणां यथा शशी । तीर्थानां च यथा गङ्गा वैष्णवानां यथा वयम् ॥ १७ ॥ वर्णानां चैव सर्वेषां
यथा भूमिसुरावराः । शास्त्राणां च यथा वेदाः पुराणानामिदं तथा ॥ १८ ॥ युगानां च यथा सत्यं मासानां मार्गशीर्षकम् । एकादशीतिथीनां च पुराणानामिदं तथा ॥१९॥ एतस्य पाठकाले
तु अन्यालापांश्च वर्जयेत् । उपक्रमोपसंहारे हरिकीर्तनमाचरेत् ॥ २० ॥ कथायां कथ्यमानायां विवादं ये प्रकुर्वते । तेषां द्रष्टा स्वयं विष्णुर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २१ ॥ गायत्री भाष्यरूपोयं
द्वादशस्कन्धसंयुतः । ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः ॥ २२ ॥ पञ्चत्रिंशोत्तराध्याय त्रिशतायुक्त ईश्वरि । द्वैपायनमनः क्षोभतमोहननभास्करः ॥ २३ ॥ प्रथमश्च द्वितीयश्च चरणौ द्वौ
प्रकीर्तितौ । तृतीयश्च चतुर्थश्च द्वावूरू समुदीरतौ ॥ २४ ॥ पञ्चमो नाभिदेशश्च षष्ठो हृदयमुच्यते । सप्तमश्चाष्टमश्चैव द्वौ बाहू परिकीर्तितौ ॥ २५ ॥ नवमः कण्ठदेशः स्याद्दशमो मुखमुच्यते ।
एकादशो भालतटं द्वादशस्तु शिखोच्यते ॥ २६ ॥ एवं सर्वं भागवतं श्रीहरेरङ्गमुच्यते । रसिकास्तद्विजानन्ति नान्येषां पदमत्र हि ॥ २७ ॥ तत्र श्रीदशमः श्रेष्ठस्तत्र गोकुलकेलयः । तत्रैव
श्रीरासलीला गोपिकागीतिकास्ततः ॥ २८ ॥ तत्राटवीति पद्यं तु प्रोच्यते परमं पदम् । तत्रैव च रसश्लोकः प्रेमनियसिरूपकः ॥ २९ ॥ यस्तु श्रुत्वा भागवतं वक्त्रकूटनमाचरेत् । हेयबुद्ध्या
तस्य शुद्धिर्नास्ति नास्ति वरानने ॥ ३० ॥ पारम्पर्यागतं योग्यं वाचकं लंघयेच्छुभे । यस्तु मौग्ध्यात्स गुरुहा सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ३१ ॥ श्रीभागवतगोष्ठ्यां यःप्रभुत्वं गर्वमेव च । कलिं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गिरिसुते कुर्यात्कोऽन्यः पापतमस्ततः ॥ ३१ ॥ तत्संपर्को महेशानि नरं नयति नारकम् ॥ ३३ ॥ गौरितन्त्रे शिवपार्वतीसम्वादे पुराणदानमाहात्म्ये श्रीभागवतमाहात्म्ये द्वितीयः पटलः ।

उमोवाच—प्राणनाथ कृपासिन्धो ब्रूहि शास्त्रविदां वर । कस्य स्कन्धस्य श्रवणे किं किं भवति वा नृणाम् ॥१॥ शिव उवाच—उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वाचकः कथयेत्कथाम् । अथवा गौरि नियमो ब्रह्मसत्रेण विद्यते ॥ २ ॥ कथा भागवती यत्र तत्र साक्षाच्छ्रियः पति । परिवारगणैर्युक्तो मुदा वसति पार्वति ॥ ३ ॥ तत्राऽन्येषां कथा का वा यत्र भागवतोत्तमाः । सर्वेषां चैव स्कन्धानां पठनाच्छ्रवणात्प्रिये ॥ ४ ॥ भवन्ति पुंसां सर्वेऽपि पुरुषार्था न संशयः । तथापि किञ्चिद्वैशिष्टं शृणु त्वं प्राणवल्लभे ॥ ५ ॥ प्रथमस्कन्धश्रवणाद् वैष्णवं तनयं लभेत् । द्वितीयस्कन्धश्रवणात्परमां गतिमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ तृतीयस्कन्धश्रवणाल्लिङ्गदेहेन मुच्यते । चतुर्थस्कन्धश्रवणात्परमं पदमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ पञ्चमस्कन्धश्रवणान्मुक्तो भवति नारकैः । षष्ठस्य श्रवणाद्देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥८॥ सप्तमस्कन्धश्रवणात्सत्सङ्गतिमवाप्नुयात् । अष्टमश्रवणाद्देवि ऐश्वर्यमतुलं लभेत् ॥ ९ ॥ नवमस्कन्धश्रवणात्सन्ततेर्वृद्धिमाप्नुयात् । दशमश्रवणेनाऽत्र रसास्वादी भवेद्धरेः ॥१०॥ एकादशस्य श्रवणात् ज्ञानविज्ञानभक्तिभान् । द्वादशश्रवणाद्देवि आश्रयं लभते नरः ॥ ११ ॥ बहुना किमिहोक्तेन सर्वं सर्वत्र तिष्ठति । केवलं श्रीहरेर्भक्तिर्महाफलमिति ध्रुवम् ॥ १२ ॥ श्रीभागवतमाहात्म्यं वक्तुं कः शक्नुयात् प्रिये । यथा गुणा भगवतस्तथा भागवतस्य च ॥ १३ ॥ कर्मप्रधानं प्रवदन्ति केचित् ज्ञानप्रधानं प्रवदन्ति चाऽन्ये । अत्रैव भद्रे निजवासनातः परम्पराचाऽत्र भवानि भक्तिः ॥ १४ ॥ यस्य या वासना गौरि तस्य सा दुरतिक्रमात् । सिताक्तं निम्बपत्रं च मधुरं न भवेत् क्वचित् ॥ १५ ॥ श्रोतव्यं रसिकादेव वक्तव्यं रसिकाग्रतः । स्ववासनानुसारेण विविधं च यथा मनः ॥ १६ ॥ नियमेन च नित्यं हि शृणुयाद्यः शुभानने । तस्य विघ्ने समुत्पन्नेनुतापः फलदो भवेत् ॥ १७ ॥ यो वक्ति श्रीभागवतं सज्ञेयः श्रीशुकः स्वयम् । अन्यथा पर्वतसुते को वक्तुं शक्तिमान्भवेत् ॥ १८ ॥ शुकास्यपुटसङ्गित्वात्स्वादु भागवतं फलम् । शुकवद्वदते शास्त्रं शुकस्तेन निगद्यते ॥ १९ ॥ अथवा शुक्लमथनाज्जातः शुक इतीरितः । किं वा शुक्लस्वरूपत्वाच्छुक इत्यभिधीयते ॥ २० ॥ सर्वज्ञाननिधित्वाच्च स ऋषिः परिकीर्तितः ॥ यमुनाया एकदेशे बादं वनमस्ति हि ॥ २१ ॥ अयनं तस्य तद्यस्मात् स व्यासो बादरायणः । तत्सुतः शुक उत्पन्नो बादरायणिसंज्ञकः ॥ २२ ॥ शृणोति यो भागवतं 'परीक्षित्' ज्ञेय एव सः । सर्वत्र कृष्णं पश्येद्यत् कृष्णभावपरीक्षकः ॥ २३ ॥ तस्मात्परीक्षिद्राजा सः यतो भक्त्या विराजते ॥ २४ ॥ भक्त्या ध्रुवं नरं याति भूयोऽपि नृप ईरितः ॥ अत्रैव वाच्यो भगवान् नन्दगोकुलनन्दनः । उपक्रमोपसंहारे मध्ये मध्ये स कीर्तितः ॥ २५ ॥ प्रयोजनं हरेर्भक्तिरन्यत्स्यादानुषङ्गिकम् ॥ २६ ॥ आश्रयाश्रयि सम्बन्धः श्रद्धावन्तोऽधिकारिणः । पुराणेषु परं गुह्यं यथा कृष्णस्तथा इदम् ॥ २७ ॥ गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसम्वादे पुराणदानमाहात्म्ये श्रीभागवतमाहात्म्ये तृतीयः पटलः ।

शिवोवाच—चन्द्रशेखरभूतेश वद कौतूहलं मम । श्रीभागवतदानादेश्चरितं परमं महत् ॥१॥ शिव उवाच—दानं ददाति यो देवि जनो भागवतं सदा । विप्राय भक्तियुक्ताय ऋजवे सम्प्रदायिने ॥ २ ॥ विशेषतः कृष्णमन्त्रोपसकाय वरानने । किं पुनर्वै भाद्रपदे पौर्णमास्यां यथाविधि ॥ ३ ॥ अष्टादशपलैः कुर्यात्स्वर्णसिंहासनं प्रिये । अष्टादशापि क्षौमाणि तावत्यः स्वर्णमालिका ॥४॥ अष्टादशापि निष्कानि गौरि देया च दक्षिणा । अथवार्द्धं तदर्धं वा तदर्धं वा वरानने ॥ ५ ॥ कुर्यात्सर्वं महेशानि वित्तशाठ्यं न कारयेत् । दानस्यावश्यकत्वाच्च यथाशक्ति प्रदापयेत् ॥ ६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ददाति यो भागवतं तेन दत्तं जगत्त्रयम् । बहुनोक्तेन किमिहैतेन दत्तः स्वयं हरिः ॥ ७ ॥ यत्पुण्यं मथुरां गत्वा यत्पुण्यं पुष्करे वरे । तत्पुण्यं कोटिगुणितं श्रीभागवतदानतः ॥ ८ ॥ यत्पुण्यं स्वात्कुरुक्षेत्रे महादानेन यत्फलम् । यत्फलं मकरे मासे स्नानेन वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ यत्फलं सर्ववेदैश्च पुराणाद्यैश्च यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं श्रीभागवतदानतः ॥ १० ॥ परोपकारकरणे यत्पुण्यं भवति प्रिये । यत्पुण्यं सर्वसंन्यासे तत्पुण्यं कोटिशो भवेत् ॥ ११ ॥ शतधा वाचयेद्वेदान् कोटिधा भारतं तथा । कोटिकोटिगुणं चैव पुराणान् संहितादिकान् ॥१२॥ श्रीमद्भागवतस्यापि कलां नार्हन्ति षोडशीम् । सन्देहो नाऽत्र कर्तव्यः प्रमाणं व्याससमानसम् ॥१३॥ नास्तिकाय च मूर्खाय हेतुवादरताय च । धर्मध्वजाय लुब्धाय न च देयं कदाचन ॥१४॥ लोभपैशुन्यमात्सर्यासूयाहिंसायुते हृदि । न वर्तते हरिकथा श्रीभागवतसंश्रिता ॥ १५ ॥ को वा वदेद्भागवतं विना श्रीरसिकाश्रयम् । विद्यया तमसा बुद्ध्या टीकया वा मनीषया ॥ १६ ॥ विशेषतः कर्मजडा विप्रा मीमांसकाः प्रिये । श्रीमद्भागवतास्वादरहिताः सहिता मदैः ॥ १७ ॥ तेषामग्रे न वक्तव्यं गोपनीयं च शाश्वतम् । शास्त्रं परमं देवि न चेद्दोषं स आप्नुयात् ॥ १८ ॥ ये चाऽन्ये देवतामन्त्रोपासका येऽसुसद्धियः । ये पाषण्डमनुप्राप्तास्तैरिदं दुर्गमं महत् ॥१९॥ उपदेशं विना व्यासो नाज्ञासीत्पूर्वमीश्वरम् । तस्मात्प्रयत्नतः कार्य उपदेशः सतो मुखात् ॥ २० ॥ यथा गदं वीर्यतममनुपानं विना तथा । नोपकुर्याच्छिवे तद्वदुपदेशं विना त्विदम् ॥ २१ ॥ सत्यं सत्यमहं वक्ष्ये शृणु गौरि मम प्रिये । श्रीमद्भागवतास्वादी मत्पूज्यः पूज्य एव सः ॥२२॥ किं तस्य शक्र सम्पत्या पारमेष्ठेन वाऽथ किम् । मत्सम्पत्या ब्राह्मयलक्ष्म्या यो भागवतनिर्वृतः ॥२३॥ यत्राऽऽस्ते श्रीभागवतव्याख्यानैकपरो नरः । तत्र सर्वाणि तीर्थानि धन्यो देशो नृपस्तथा ॥२४॥ नृपो भूत्वा भागवतं यदा न शृणुयात्प्रिये । तद्यशो धिक् प्रतापं धिक् धिक् लक्ष्मीं भक्त्यभावतः ॥२५॥ गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे पुराणदानमाहात्म्ये चतुर्थः पटलः ।

शिवोवाच—वैष्णवाग्रसुरश्रेष्ठ सम्प्रदायं वद प्रभो । श्रीमद्भागवतस्यास्य श्रोतुं कौतूहलं मन ॥ १ ॥ शिव उवाच—विना भागवतं शास्त्रं नैव भक्तिर्नृणामिह । निःशेषान्तरमालिन्यहृद्-त्यन्तं यतः शिवे ॥२॥ यन्नारायणरूपेण भगवानवदत्स्वयम् । ब्रह्माणं ब्रह्मरूपेण ततः सुन्दरि नारदम् ॥३ तद्रूपेण ततो व्यासं तद्रूपेण शुकं तथा । शुकरूपेण भगवद्गीतं तत्परमं प्रिये ॥४॥ घोरे तमसि मग्नानामुद्धारार्थं वरानने । यत्पुनः शेषरूपेण सनकाय प्रकाशितम् ॥५॥ तद्रूपेण तथा सांख्यायनाय तत्स्वरूपिणा । पराशराय तद्रूपेण मित्रासूनवे ततः ॥६ ॥ विदूराय महाभागवताय गिरिनन्दिनी । एवं श्रीमद्भागवतं सम्प्रदायप्रकाशितम् ॥ ७ ॥ श्रीमद्भागवते विद्या सामान्यधियमत्र ये । कुर्वन्ति ते य महाघोरे पच्यन्ते तमसि ध्रुवम् ॥ ८ ॥ यथा गुरौ नृबुद्धिं च यथामन्त्रेण बुद्धिकम् । प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वन्तो यान्त्यधस्ततः ॥ ९ ॥ यथा सर्वेश्वरे विष्णौ देवसामान्यदर्शिनः । यथा श्रीमद्भागवते शास्त्रसामान्यदर्शिनः ॥ १० ॥ अत्र षट्शास्त्रविद्वांसो देवि दर्भाग्रबुद्धयः । मदेन मोहिताः सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११ ॥ पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति यथा विष्णुतमोयुताः । पठन्तोऽपि न जानन्ति तथा भागवतं शिवे ॥ १२ ॥ येषां श्रीवैष्णव-जने बहिरङ्गारतिर्नहि । तेऽपि जानन्ति सरसं श्रीमद्भागवतं किल ॥ १३ ॥ ग्रन्थागमनकाले तु अभ्युत्थानं करोति यः । तथाऽनुगमनं सुभ्रुतोऽपि जानाति तद्रसम् ॥ १४ ॥ यथा गुरुमु-खान्मन्त्रश्रवणे आसनं नहि । ग्रन्थश्रवणकाले तु वर्जयेदासनं तथा ॥ १५ ॥ सर्वं कर्म परित्यज्य भूत्वैकाग्रमनाः प्रिये । तूष्णीं भूतो हरिकथां शृणुयाद्रसविज्ञरः ॥ १६ ॥ कथनान्तरनेव स्याद् यावद् ग्रन्थानुबन्धनम् । न तावत्सहसा सुभ्रु समुत्तिष्ठेत्कथञ्चन ॥ १७ ॥ प्रसङ्गात्कथयेद् गौरि श्रोतृवाचकयोः कथाम् । सात्त्विको राजसश्चेति तामको वाचसो भवेत् ॥ १८ ॥ तथा श्रोताऽपि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्रिविधः तदिहैकमना शृणु । यच्चार्थं कृत्स्नशो बुध्वा रसभावस्वरान्वितम् । विस्पष्टमद्रुतं साङ्गं श्रावयेत्स च सात्त्विकः ॥ १९ ॥ अबुध्यमानो ग्रन्थार्थं कृत्स्नशः स्पष्टमद्रुतम् । फलस्वरसमायुक्तं श्रावयेत्स च राजसः ॥ २० ॥ अबुध्यमानो ग्रन्थार्थमस्पष्टं रसवर्जितम् । शीघ्रं यः श्रावयेद्देवि! सोऽधमस्तामसः स्मृतः ॥ २१ ॥ सर्वं कर्म परित्यज्य श्रद्धाभक्त्यन्वितः सदा । कृत्स्नशो दक्षिणादानरतः श्रोता स सात्त्विकः ॥ २२ ॥ यः प्रसङ्गात्कौतुकेन शृणोति गिरिनन्दिनी । दक्षिणां च मनाक् दत्त्वा स श्रोता राजसः स्मृतः ॥ २३ ॥ श्रद्धाभक्तिविहीनो यो हेतुवाद्यर्थदूषकः । क्रोधासूयान्वितः किञ्चिद्दक्षिणां राति नापि वा । स श्रोता तामसो ज्ञेयः शैलपुत्रि विगर्हितः ॥ २४ ॥ परं वक्तुस्स्वभावात्तु किञ्चिकिञ्चत्फलं लभेत् । सप्ताहश्रवणात्पाठात्सम्यगुक्तं फलं लभेत् ॥ २५ ॥ मासेनापि तथा सुभ्रु द्विमासेनापि वा पुनः । वर्षेणापि महेशानि सम्प्रदायानुसारतः ॥ २६ ॥ तथा श्रीमद्भागवतश्रवणं पठनं समम् । एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघे । वक्तुं कः शक्नुयाद् गौरि कृत्स्नशः परमेश्वरः ॥ २७ ॥ श्रीभागवतमाहात्म्यं त्वयि यत्स्नेहात्प्रकाशितम् । न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं बहिर्मुखे ॥ २८ ॥ अन्तर्मुखे तु वक्तव्यं यत्नतः प्राणवल्लभे । गुरुवैष्णवभक्त्यैकजीवनोऽन्तर्मुखः स्मृतः ॥ २९ ॥ य इदं शृणुयाद्देवि पठेद् वा नित्यशः प्रिये । स श्रीकृष्णस्य पादाब्जे रतिं परमिकां लभेत् ॥ ३० ॥ गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे पुराणदानमाहात्म्ये श्रीभागवतमाहात्म्ये पञ्चमः पटलः । इति ।

ॐ अथ स्कन्दपुराणोक्तं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम् ॐ

व्यास उवाच—श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे । विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम् ॥ १ ॥ नैमिषे सूतमासीनमभिवन्द्य महामतिम् । कथामृतरसास्वादकुशला ऋषयोऽब्रुवन् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः—वज्रं श्रीमाथुरे देशे स्वपौत्रं हस्तिनापुरे । अभिषिच्य गते राज्ञि तौ कथं किं च चक्रतुः ॥ ३ ॥ सूत उवाच—नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ महापथं गते राज्ञि परीक्षित् पृथिवीपतिः । जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभदिदृक्षया ॥ ५ ॥ पितव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः । अभिगम्याभिवाद्याथ निनाय निजमन्दिरम् ॥ ६ ॥ परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैकमतमानसः । रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः ॥ ७ ॥ ताभिः सम्मानितोऽत्यर्थं परीक्षित् पृथिवीपतिः । विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह ॥ ८ ॥ परीक्षिदुवाच—तात त्वत्पितृभिर्नूनमस्मत्पितृपितामहाः । उद्धृता भूरिदुःखौघादहं च परिरक्षितः ॥ ९ ॥ न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः । त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्ग सुखं राज्येऽनुयुज्यताम् ॥ १० ॥ कोशसैन्यादिजा चिन्ता तथारिदमनादिजा । मनागपि न कार्या ते सुसेव्याः किन्तु मातरः ॥ ११ ॥ निवेद्य मयि कर्त्तव्यं सर्वाधिपरिवर्जनम् । श्रुत्वैतत् परमप्रीतो वज्रस्तं प्रत्युवाच ह ॥ १२ ॥ वज्रनाभ उवाच—राजन्नुचितमेतत्ते यदस्मासु प्रभाषते । त्वत्पित्रोपकृतश्चाहं धनुर्विद्याप्रदानतः ॥ १३ ॥ तस्मान्नाल्पापि मे चिन्ता क्षत्रं दृढमुपेयुषः । किन्त्वेका परमा चिन्ता तत्र किञ्चिद् विचार्यताम् ॥ १४ ॥ माथुरे त्वभिषिक्तोऽपि स्थितोऽहं निर्जने वने । क्व गता वै प्रजाश्चत्र यत्र राज्यं प्ररोचते ॥ १५ ॥ इत्युक्तो विष्णुरातस्तु नन्दादीनां पुरोहितम् । शाण्डिल्यमाजुहावाशु वज्रसन्देहनुत्तये ॥ १६ ॥ अथोटजं विहायाशु शाण्डिल्यः समुपागतः । पूजितो वज्रनाभेन निषसादासनोत्तमे ॥ १७ ॥ उपोद्घातं विष्णुरातश्चकाराशु ततस्त्वसौ । उवाच परमप्रीतस्तावुभौ परिसान्त्वयन् ॥ १८ ॥ शाण्डिल्य उवाच—शृणुतं दत्तचित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजम् । व्रजनं व्याप्तिरित्यु-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कत्या व्यापनाद् व्रज उच्यते ॥ १९ ॥ गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते । सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम् ॥ २० ॥ तस्मिन् नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दाङ्गविग्रहः । आत्मारामश्चाप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते ॥ २१ ॥ आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ । आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥२२॥ कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः । नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम् ॥२३॥ रहस्यं त्विदमेतस्य प्रकृतेः परमुच्यते । प्रकृत्या खेलतस्तस्य लीलान्यैरनुभूयते ॥ २४ ॥ सर्गस्थित्यप्यया तत्र रजःसत्त्वतमोगुणैः । लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी ॥ २५ ॥ वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी । आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित् ॥ २६ ॥ युवयोर्गोचरेयं तु तल्लीला व्यावहारिकी । यत्र भूरादयो लोका भुवि माथुरमण्डलम् ॥ २७ ॥ अत्रैव व्रजभूमिः सा यत्र तत्त्वं सुगोपितम् । भासते प्रेमपूर्णानां कदाचिदपि सर्वतः ॥ २८ ॥ कदाचिद् द्वापरस्यान्ते रहोलीलाधिकारिणः । समवेता यदात्र स्युर्यथेदानीं तदा हरिः ॥ २९ ॥ स्वैः सहावतरेत् स्वेषु समावेशार्थमीप्सिताः । तदा देवादयोऽप्यन्येऽवतरन्ति समन्ततः ॥ ३० ॥ सर्वेषां वाञ्छितं कृत्वा हरिरन्तर्हितोऽभवत् । तेनात्र त्रिविधा लोकाः स्थिताः पूर्वं न संशयः ॥ ३१ ॥ नित्यास्तल्लिप्सवश्चैव देवाद्याश्चेति भेदतः । देवाद्यास्तेषु कृष्णेन द्वारिकां प्रापिताः पुरा ॥३२॥ पुनर्मौशलमार्गेण स्वाधिकारेषु चापिताः । तल्लिप्सूंश्च सदा कृष्णः प्रेमानन्दैकरूपिणः ॥३३॥ विधाय स्वीयनित्येषु समावेशितवांस्तदा । नित्याः सर्वेऽप्ययोग्येषु दर्शनाभावतां गताः ॥ ३४ ॥ व्यावहारिकलीलास्थास्तत्र यन्नाधिकारिणः । पश्यन्त्यत्रागतास्तस्मान्निर्जनत्वं समन्ततः ॥३५॥ तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया । वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिस्ते भविष्यति ॥३६॥ कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः । त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूरियं परा ॥ ३७ ॥ गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावने । नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राजास्थितिस्त्वया ॥३८॥ नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान् संसेवतस्तव । राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नास्त्वं च प्रीतो भविष्यसि ॥ ३९ ॥ सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः । तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात् ॥४०॥ वज्र संसेवनादस्या उद्धवस्त्वां मिलिष्यति । ततो रहस्यमेतस्मात् प्राप्स्यसि त्वं समातृकः ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वा तु शाण्डिल्यो गतः कृष्णमनुस्मरन् । विष्णुरातोऽथ वज्रश्च परां प्रीतिमवापतुः ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शाण्डिल्योपदिष्टव्रजभूमिमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः—शाण्डिल्ये तौ समादिश्य परावृत्ते स्वमाश्रमम् । किं कथं चक्रतुस्तौ तु राजानौ सूत तद् वद ॥१॥ सूत उवाच—ततस्तु विष्णुरातेन श्रेणीमुख्याः सहस्रशः । इन्द्रप्रस्थात् समानाय्य मथुरास्थानमापिताः ॥ २ ॥ माथुरान् ब्राह्मणांस्तत्र वानरांश्च पुरातनान् । विज्ञाय माननीयत्वं तेषु स्थापितवान् स्वराट् ॥३॥ वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्यस्याप्यनुग्रहात् । गोविन्दगोपगोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात् ॥ ४ ॥ विज्ञायाभिधयाऽऽस्थाप्य ग्रामानावासयद् बहून् । कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥ ५ ॥ गोविन्दहरिदेवादिस्वरूपारोपणेन च । कृष्णैकभक्तिं स्वे राज्ये ततान च मुमोद ह ॥ ६ ॥ प्रजास्तु मुदितास्तस्य कृष्णकीर्तनतत्पराः । परमानन्दसम्पन्ना राज्यं तस्यैव तुष्टुवुः ॥७॥ एकदा कृष्णपत्न्यस्तु श्रीकृष्णविरहातुराः । कालिन्दीं मुदितां वीक्ष्य पप्रच्छुर्गतमत्सराः ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः—यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने । वयं विरहदुःखार्तास्त्वं न कालिन्दि तद् वद ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा स्मयमाना सा कालिन्दी वाक्यमब्रवीत् । सापत्न्यं वीक्ष्य तत्तासां करुणापरमानसा ॥ १० ॥ कालिन्द्युवाच—आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका । तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ११ ॥ तस्या एवांशविस्तारा: सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः । नित्यसम्भोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययोगतः ॥ १२ ॥ स एव सा स सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका । श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसङ्गा-
चन्द्रावली स्मृता ॥ १३ ॥ रूपान्तरमगृह्णाना तयोः सेवातिलालसा । रुक्मिण्यादिसमावेशो मयात्रैव विलोकितः ॥ १४ ॥ युष्माकमपि कृष्णेन विरहो नैव सर्वतः । किन्तु एवं न जानीथ
तस्माद् व्याकुलतामिताः ॥ १५ ॥ एवमेवात्र गोपीनामक्रूरावसरे पुरा । विरहाभास एवासीदुद्धवेन समाहितः ॥ १६ ॥ तेनैव भवतीनां चेद् भवेदत्र समागमः । तर्हि नित्यं स्वकान्तेन विहार
मपि लप्स्यथ ॥ १७ ॥ सूत उवाच–एवमुक्तास्तु ताः पुत्न्यः प्रसन्नां पुनरब्रुवन् । उद्धवालोकनेनात्मप्रेष्ठसङ्गमलालसाः ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः–धन्यासि कान्तेन यस्या नैवास्ति
विच्युतिः । यतस्ते स्वार्थसंसिद्धिस्तस्या दास्यो बभूविम ॥ १९ ॥ परन्तूद्धवलाभे स्यादस्मत्सर्वार्थसाधनम् । तथा वदस्व कालिन्दि तल्लाभोऽपि यथा भवेत् ॥२०॥ सूत उवाच–एवमुक्ता तु
कालिन्दी प्रत्युवाचाथ तास्तथा । स्मरन्ती कृष्णचन्द्रस्य कलाः षोडशरूपिणीः ॥ २१ ॥ साधनभूमिर्बदरी व्रजता कृष्णेन मन्त्रिणे प्रोक्ता । तत्रास्ते स तु साक्षात्तद्वयुनं ग्राहयँल्लोकान् ॥२२॥
फलभूमिर्व्रजभूमिर्दत्ता तस्मै पुरैव सरहस्यम् । फलमिह तिरोहितं सत्तदिहेदानीं स उद्धवोऽलक्ष्यः ॥ २३ ॥ गोवर्द्धनगिरिनिकटे सखीस्थले तद्रजःकामः । तत्रत्याङ्कुरवल्लीरूपेणास्ते स उद्धवो
नूनम् ॥ २४ ॥ आत्मोत्सवरूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् । तस्मात्तत्र स्थित्वा कुसुमसरः परिसरे सवज्राभिः ॥ २५ ॥ वीणावेणुमृदङ्गैः कीर्तनकाव्यादिसरससङ्गीतैः । उत्सव आरब्धव्यो
हरिरतलोकान् समानाय्य ॥ २६ ॥ तत्रोद्धवावलोको भविता नियतं महोत्सवे वितते । यौष्माकीणामभिमतसिद्धिं सविता स एव सवितानाम् ॥ २७ ॥ सूत उवाच–इति श्रुत्वा प्रसन्नास्ताः
कालिन्दीमभिवन्द्य तत् । कथयामासुरागत्य व्रजं प्रति परीक्षितम् ॥ २८ ॥ विष्णुरातस्तु तच्छ्रुत्वा प्रसन्नस्तद्युतस्तदा । तत्रैवागत्य तत् सर्वं कारयामास सत्वरम् ॥ २९ ॥ गोवर्द्धनाददूरेण
वृन्दारण्ये सखीस्थले । प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवः ॥ ३० ॥ वृषभानुसुताकान्तविहारे कीतनश्रिया । साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन् ॥ ३१ ॥ ततः पश्यत्सु सर्वेषु
तृणगुल्मलताचयात् । आजगामोद्धवः स्रग्वी श्यामः पीताम्बरावृतः ॥३२॥ गुञ्जामालाधरो गायन् बल्लवीवल्लभं मुहुः । तदागमनतो रेजे भृशं सङ्कीर्तनोत्सवः ॥ ३३ ॥ चन्द्रिकागमतो यद्वत्
स्फाटिकाट्टालभूमणिः । अथ सर्वे सुखाम्भोधौ मग्नाः सर्वविसस्मरुः ॥ ३४ ॥ क्षणेनागतविज्ञाना दृष्ट्वा श्रीकृष्णरूपिणम् । उद्धवं पूजयाञ्चक्रुः प्रतिलब्धमनोरथाः ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कान्दे
महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यो संहितायां द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये गोवर्द्धनपर्वतसमीपे परीक्षिदादीनामुद्धवदर्शनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

सूत उवाच–अथोद्धवस्तु तान् दृष्ट्वा कृष्णकीर्तनतत्परान् । सत्कृत्याथ परिष्वज्य परीक्षितमुवाच ह ॥१॥ उद्धव उवाच–धन्योऽसि राजन् कृष्णैकभक्त्या पूर्णोऽसि नित्यदा । यस्त्वं निमग्न-
चित्तोऽसि कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवे ॥ २ ॥ कृष्णपत्नीषु वज्रे च दिष्ट्या प्रीतिः प्रवर्तिता । तवोचितमिदं तात कृष्णदत्ताङ्गवैभव ॥ ३ ॥ द्वारकास्थेषु सर्वेषु धन्या एते न संशयः । येषां व्रजनिवा-
साय पार्थमादिष्टवान् प्रभुः ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधास्यप्रभयान्वितः । तद्विहारवनं गोभिर्मण्डयन् रोचते सदा ॥ ५ ॥ कृष्णचन्द्रः सदा पूर्णस्तस्य षोडश याः कलाः । चित्सहस्रप्रभा-
भिन्ना अत्रास्ते तत्स्वरूपता ॥ ६ ॥ एवं वज्रस्तु राजेन्द्र प्रपन्नभयभञ्जकः । श्रीकृष्णदक्षिणे पादे स्थानमेतस्य वर्तते ॥ ७ ॥ अवतारेऽत्र कृष्णेन योगमायातिभाविताः । तद्बलेनात्मविस्मृत्या
सीदन्त्येते न संशयः ॥ ८ ॥ ऋते कृष्णप्रकाशं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित् । तत्प्रकाशस्तु जीवानां मायया पिहितः सदा ॥ ९ ॥ अष्टाविंशे द्वापरान्ते स्वयमेव यदा हरिः । उत्सारयेन्निजां
मायां तत्प्रकाशो भवेत्तदा ॥ १० ॥ स तु कालो व्यतिक्रान्तस्तेनेदमपरं शृणु । अन्यदा तत्प्रकाशस्तु श्रीमद्भागवताद् भवेत् ॥ ११ ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं यत्र भागवतैर्यदा । कीर्त्यते श्रूयते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चापि श्रीकृष्णस्तत्र निश्चितम् ॥ १२ ॥ श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च । तत्रापि भगवान् कृष्णो बल्लवीभिर्विराजते ॥१३॥ भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः । श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः ॥ १४ ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितम् । पितुर्मातुश्च भार्यायाः कुलपङ्क्तिः सुतारिता ॥ १५ ॥ विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् । धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद् भवेत् ॥ १६ ॥ योषितामपरेषां च सर्ववाञ्छितपूरणम् । अतो भागवतं नित्यं को न सेवेत भाग्यवान् ॥ १७ ॥ अनेकजन्मसंसिद्ध श्रीमद्भागवतं लभेत् । प्रकाशो भगवद्भक्तेरुद्धवस्तत्र जायते ॥ १८ ॥ सांख्यायनप्रसादाप्तं श्रीमद्भागवतं पुरा । बृहस्पतिर्दत्तवान् मे तेनाहं कृष्णवल्लभः ॥ १९ ॥ आख्यायिकां च तेनोक्तां विष्णुरात निबोध ताम् । ज्ञायते सम्प्रदायोऽपि यत्र भागवतश्रुतेः ॥ २० ॥ बृहस्पतिरुवाच–ईक्षाञ्चक्रे यदा कृष्णो मायापुरुषरूपधृक् । ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चापि रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ २१ ॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरधिकारांस्तदादिशत् । उत्पत्तौ पालने चैव संहारे प्रक्रमेण तान् ॥ २२ ॥ ब्रह्मा तु नाभिकमलादुत्पन्नस्तं व्यजिज्ञपत् । ब्रह्मोवाच–नारायणादिपुरुष परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥ त्वया सर्गे नियुक्तोऽस्मि पापीयान् मां रजोगुणः । त्वत्स्मृतौ नैव बाधेत तथैव कृपया प्रभो ॥२४॥ बृहस्पतिरुवाच–यदा तु भगवांस्तस्मै श्रीमद्भागवतं पुरा । उपदिश्याब्रवीद् ब्रह्मन् सेवस्वैनत् स्वसिद्धये ॥२५॥ ब्रह्मा तु परमप्रीतस्तेन कृष्णाप्तयेऽनिशम् । सप्तावरणभङ्गाय सप्ताहं समवर्तयत् ॥२६॥ श्रीभागवतसप्ताहसेवनाप्तमनोरथः । सृष्टिं वितनुते नित्यं ससप्ताहः पुनः पुनः ॥२७॥ विष्णुरप्यर्थयामास पुमांसं स्वार्थसिद्धये । प्रजानां पालने पुंसा यदनेनापि कल्पितः ॥ २८ ॥ विष्णुरुवाच–प्रजानां पालनं देव करिष्यामि यथोचितम् । प्रवृत्त्या च कर्मज्ञानप्रयोजनात् ॥ २९ ॥ यदा यदैव कालेन धर्मग्लानिर्भविष्यति । धर्मं संस्थापयिष्यामि ह्यवतारैस्तदा तदा ॥३०॥ भोगार्थिभ्यस्तु यज्ञादिफलं दास्यामि निश्चितम् । मोक्षार्थिभ्यो विरक्तेभ्यो मुक्तिं पञ्चविधां तथा ॥ ३१ ॥ येऽपि मोक्षं न वाञ्छन्ति तान् कथं पालयाम्यहम् । आत्मानं च श्रियं चापि पालयामि कथं वद ॥ ३२ ॥ तस्मा अपि पुमानाद्यः श्रीभागवतमादिशत् । उवाच च पठस्वैनत्तव सर्वार्थसिद्धये ॥ ३३ ॥ ततो विष्णुः प्रसन्नात्मा परमार्थकपालने । समर्थोऽभूच्छ्रिया मासि मासि भागवतं स्मरन् ॥ ३४ ॥ यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता । तदा भागवतश्रावो मासेनैव पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ यदा लक्ष्मीः स्वयं वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः । मासद्वयं रसास्वादस्तदातीव सुशोभते ॥ ३६ ॥ अधिकारे स्थितो विष्णुर्लक्ष्मीर्निश्चिन्तमानसा । तेन भागवतास्वादस्तस्या भूरि प्रकाशते ॥ ३७ ॥ अथ रुद्रोऽपि तं देवं संहाराधिकृतः पुरा । पुमांसं प्रार्थयामास स्वसामर्थ्यविवृद्धये ॥ ३८ ॥ रुद्र उवाच–नित्ये नैमित्तिके चैव संहारे प्राकृते तथा । शक्तयो मम विद्यन्ते देवदेव मम प्रभो ॥ ३९ ॥ आत्यन्तिके तु संहारे मम शक्तिर्न विद्यते । महद् दुःखं ममैतत्तु तेन त्वां प्रार्थयाम्यहम् ॥ ४० ॥ बृहस्पतिरुवाच-श्रीमद्भागवतं तस्मा अपि नारायणो ददौ । स तु संसेवनादस्य जिग्ये चापि तमोगुणम् ॥ ४१ ॥ कथा भागवती तेन सेविता वर्षमात्रतः । लये त्वात्यन्तिके तेनावाप शक्तिं सदाशिवः ॥ ४२ ॥ उद्धव उवाच–श्रीभागवतमाहात्म्य इमामाख्यायिकां गुरोः । श्रुत्वा भागवतं लब्ध्वा मुमुदेऽहं प्रणम्य तम् ॥४३॥ ततस्तु वैष्णवीं रीतिं गृहीत्वा मासमात्रतः । श्रीमद्भागवतास्वादो मया सम्यङ्निषेवितः ॥४४॥ तावतैव बभूवाहं कृष्णस्य दयितः सखा । कृष्णेनाथ नियुक्तोऽहं व्रजे स्वप्रेयसीगणे ॥ ४५ ॥ विरहार्त्तासु गोपीषु स्वयं नित्यविहारिणा । श्रीभागवतसन्देशो मन्मुखेन प्रयोजितः ॥ ४६ ॥ तं यथामति लब्ध्वा ता आसन् विरहवर्जिताः । नाज्ञासिषं रहस्यं तच्चमत्कारस्तु लोकितः ॥४७॥ स्ववासं प्रार्थ्य कृष्णं च ब्रह्माद्येषु गतेषु मे । श्रीमद्भागवते कृष्णस्तद्रहस्यं स्वयं ददौ ॥४८॥ पुरतोऽश्वत्थमूलस्य चकार मयि तद् दृढम् । तेनात्र व्रजवल्लीषु वसामि बदरीं गतः ॥४९॥ तस्मान्नारदकुण्डेऽत्र तिष्ठामि स्वेच्छया सदा । कृष्णप्रकाशो भक्तानां श्रीमद्भागवताद् भवेत् ॥५०॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तदेषामपि कार्यार्थं श्रीमद्भागवतं त्वहम् । प्रवक्ष्यामि सहायोऽत्र त्वयैवानुष्ठितो भवेत् ॥५१॥ सूत उवाच-विष्णुरातस्तु श्रुत्वा तदुद्धवं प्रणतोऽब्रवीत् । परीक्षिदुवाच-हरिदास त्वया कार्यं
श्रीभागवतकीर्तनम् ॥ ५२ ॥ आज्ञाप्योऽहं यथा कार्यः सहायोऽत्र मया तथा । सूत उवाच—श्रुत्वैतदुद्धवो वाक्यमुवाच प्रीतमानसः ॥५३॥ उद्धव उवाच-श्रीकृष्णेन परित्यक्ते भूतले बलवान्
कलिः । करिष्यति परं विघ्नं सत्कार्ये समुपस्थिते ॥ ५४ ॥ तस्माद् दिग्विजयं याहि कलिनिग्रहमाचर । अहं तु मासमात्रेण वैष्णवीं रीतिमास्थितः ॥५५॥ श्रीमद्भागवतास्वादं प्रचार्य
त्वत्सहायतः । एतान् सम्प्रापयिष्यामि नित्यधाम्नि मधुद्विषः ॥ ५६ ॥ सूत उवाच—श्रुत्वैवं तद्वचो राजा मुदितश्चिन्तयाऽऽतुरः । तदा विज्ञापयामास स्वाभिप्रायं तमुद्धवम् ॥५७॥ परीक्षि-
दुवाच-कलिं तु निग्रहीष्यामि तात ते वचसि स्थितः । श्रीभागवतसम्प्राप्तिः कथं मम भविष्यति ॥५८॥ अहं तु समनुग्राह्यस्तव पादातले श्रितः । सूत उवाच-श्रुत्वेतद् वचनं भूयोऽप्युद्ध-
वस्तमुवाच ह ॥ ५९ ॥ उद्धव उवाच-राजंश्चिन्ता तु ते कापि नैव कार्या कथञ्चन । तवैव भगवच्छास्त्रे यतो मुख्याधिकारिता ॥६०॥ एतावत्कालपर्यन्तं प्रायो भागवतश्रुतेः । वार्तामपि न
जानन्ति मनुष्याः कर्मतत्पराः॥६१॥ त्वत्प्रसादेन बहवो मनुष्या भारताजिरे । श्रीमद्भागवतप्राप्तौ सुखं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥६२॥ नन्दनन्दनरूपस्तु श्रीशुको भगवानृषिः । श्रीमद्भाग-
वतं तुभ्यं श्रावयिष्यत्यसंशयम् ॥ ६३ ॥ तेन प्राप्स्यसि राजंस्त्वं नित्यं धाम व्रजेशितुः । श्रीभागवतसञ्चारस्ततो भुवि भविष्यति ॥६४॥ तस्मात्त्वं गच्छ राजेन्द्र कलिनिग्रहमाचर। सूत
उवाच—इत्युक्तस्तं परिक्रम्य गतो राजा दिशा जये ॥ ६५ ॥ वज्रस्तु निजराज्येशं प्रतिबाहुं विधाय च । तत्रैव मातृभिः साकं तस्थौ भागवताशया ॥ ६६ ॥ अथ वृन्दावने मासं गोवर्द्धन-
समीपतः । श्रीमद्भागवतास्वादस्तूद्धवेन प्रवर्तितः ॥ ६७ ॥ तस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणी । प्रचकाशे हरेर्लीला सर्वतः कृष्ण एव च ॥ ६८ ॥ आत्मानं च तदन्तःस्थं सर्वेऽपि
ददृशुस्तदा । वज्रस्तु दक्षिणे दृष्ट्वा कृष्णपादसरोरुहे ॥६९॥ स्वात्मानं कृष्णवैधुर्यान्मुक्तस्तद्भुव्यशोभत । ताश्च तन्मातरः कृष्णे रासरात्रिप्रकाशिनि ॥७०॥ चन्द्रे कलाप्रभारूपमात्मानं वीक्ष्य
विस्मिताः । स्वप्रेष्ठविरहव्याधिविमुक्ताः स्वपदं ययुः ॥ ७१ ॥ येऽन्ये च तत्र ते सर्वे नित्यलीलान्तरं गताः । व्यावहारिकलोकेभ्यः सद्योऽदर्शनमागताः ॥ ७२ ॥ गोवर्द्धनिकुञ्जेषु गोषु
वृन्दावनादिषु । नित्यं कृष्णेन मोदन्ते दृश्यन्ते प्रेमतत्परैः ॥ ७३ ॥ सूत उवाच-य एतां भगवत्प्राप्तिं शृणुयाच्चापि कीर्तयेत् । तस्य वै भगवत्प्राप्तिर्दुःखहानिश्च जायते ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कान्दे
महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां द्वितीये वैष्णवखण्डे परीक्षिदुद्धवसंवादे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ।

ऋषय ऊचुः-साधु सूत चिरं जीव चिरमेवं प्रशाधि नः । श्रीभागवतमाहात्म्यमपूर्वं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥ तत्स्वरूपं प्रमाणं च विधिं च श्रवणे वद । तद्वक्तुर्लक्षणं सूत श्रोतुश्चापि
वदाधुना ॥ २ ॥ सूत उवाच-श्रीमद्भागवतस्याथ श्रीमद्भगवतः सदा । स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्यप्रकाशकम् । समुज्जृम्भति यद्वाक्यं
विद्धि भागवतं हि तत् ॥४॥ ज्ञानविज्ञानभक्त्यङ्गचतुष्टयपरं वचः । मायामर्दनदक्षं च विद्धि भागवतं च तत् ॥ ५ ॥ प्रमाणं तस्य को वेद ह्यनन्तस्याक्षरात्मनः । ब्रह्मणे हरिणा तद्दिक्चतुः-
श्लोक्या प्रदर्शिता ॥६॥ तदानन्त्यावगाहेन स्वेप्सितावहनक्षमाः । त एव सन्ति भो विप्रा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७॥ मितबुद्ध्यादिवृत्तीनां मनुष्याणां हिताय च । परीक्षिच्छुकसंवादो योऽसौ
व्यासेन कीर्तितः ॥८॥ ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो योऽसौ भागवताभिधः । कलिग्राहगृहीतानां स एव परमाश्रयः ॥९॥ श्रोतारोऽथ निरूप्यन्ते श्रीमद्विष्णुकथाश्रयाः । प्रवरा अवराश्चेति श्रोतारो
द्विविधा मताः ॥ १० ॥ प्रवराश्चातको हंसः शुको मीनादयस्तथा । अवरा वृकभूरुण्डवृषोष्ट्राद्याः प्रकीर्तिताः ॥११॥ अखिलोपेक्षया यस्तु कृष्णशास्त्रश्रुतौ व्रती । स चातको यथाम्भोदमुक्ते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पायसि चातकः ॥ १२ ॥ हंसः स्यात् सारमादत्ते यः श्रोता विविधाच्छ्रुतात् । दुग्धेनैक्यं गतात्तोयाद् यथा हंसोऽमलं पयः ॥१३॥ शुकः सुष्ठु मितं वक्ति व्यासं श्रोतृंश्च हर्षयन् । सुपाठितः शुको यद्वच्छिक्षकं पार्श्वगानपि ॥१४॥ शब्दं नानिमिषो जातु करोत्यास्वादयन् रसम् । श्रोता स्निग्धो भवेन्मीनो मीनः क्षीरनिधौ यथा ॥१५॥ यस्तुदन् रसिकाञ्छ्रोतॄन् विरौत्यज्ञो वृको हि सः । वेणुस्वनरसासक्तान् वृकोऽरण्ये मृगान् यथा ॥१६॥ भूरुण्डः शिक्षयेदन्याञ्छ्रुत्वा न स्वयमाचरेत् । यथा हिमवतः शृङ्गे भूरुण्डाख्यो विहङ्गमः ॥१७॥ सर्वं श्रुतमुपादत्ते सारासारान्धधीर्वृषः । स्वादुद्राक्षां खलिं चापि निर्विशेषं यथा वृषः ॥ १८ ॥ स उष्ट्रो मधुरं मुञ्चन् विपरीते रमेत यः । यथा निम्बं चरत्युष्ट्रो हित्वाम्रमपि तद्युतम् ॥ १९ ॥ अन्येऽपि बहवो भेदा द्वयोर्भृङ्गखरादयः । विज्ञेयास्तत्तदाचारैस्तत्तत्प्रकृतिसम्भवैः ॥ २० ॥ यः स्थित्वाभिमुखं प्रणम्य विधिवत्त्यक्तान्यवादो हरेर्लीलाः श्रोतुमभीप्सतेऽतिनिपुणो नम्रोऽथ क्लृप्ताञ्जलिः । शिष्यो विश्वसतोऽनुचिन्तनपरः प्रश्नेऽनुरक्तः शुचिर्नित्यं कृष्णजनप्रियो निगदितः श्रोता स वै वक्तृभिः ॥२१॥ भगवन्मतिरनपेक्षः सुहृदो दीनेषु सानुकम्पो यः । बहुधा बोधनचतुरो वक्ता सम्मानितो मुनिभिः ॥ २२ ॥ अथ भारतभूस्थाने श्रीभागवतसेवने । विधिं शृणुत भो विप्रा येन स्यात् सुखसन्ततिः ॥२३॥ राजसं सात्त्विकं चापि तामसं निर्गुणं तथा । चतुर्विधं तु विज्ञेयं श्रीभागवतसेवनम् ॥२४॥ सप्ताहं यज्ञवद् यत्तु सश्रमं सत्वरं मुदा । सेवितं राजसं तत्तु बहुपूजादिशोभनम् ॥२५॥ मासेन ऋतुना वापि श्रवणं स्वादसंयुतम् । सात्त्विकं यदनायासं समस्तानन्दवर्द्धनम् ॥२६॥ तामसं तत्तु वर्षेण सालसं श्रद्धया युतम् । विस्मृतिस्मृतिसंयुक्तं सेवनं तच्च सौख्यदम् ॥ २७ ॥ वर्षमासदिनानां तु विमुच्य नियमाग्रहम् । सर्वदा प्रेमभक्त्यैव सेवनं निर्गुणं मतम् ॥ २८ ॥ परीक्षितेऽपि संवादे निर्गुणं तत् प्रकीर्तितम् । तत्र सप्तदिनाख्यानं तदायुर्दिनसंख्यया ॥२९॥ अन्यत्र त्रिगुणं चापि निर्गुणं च यथेच्छया । यथा कथञ्चित् कर्त्तव्यं सेवनं भगवच्छ्रुतेः ॥३०॥ ये श्रीकृष्णविहारैकभजनास्वादलोलुपाः । मुक्तावपि निराकाङ्क्षास्तेषां भागवतं धनम् ॥३१॥ येऽपि संसारसन्तापनिर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः । तेषां भवौषधं चैतत्कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥३२॥ ये चापि विषयारामाः सांसारिकसुखस्पृहाः । तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साधुना कलौ ॥३३॥ सामर्थ्यधनविज्ञानाभावादत्यन्तदुर्लभा । तस्मात्तैरपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥३४॥ धनं पुत्रांस्तथा दारान् वाहनादि यशो गृहान् । असापत्न्यं च राज्यं च दद्याद् भागवती कथा ॥३५॥ इहलोके वरान् भुक्त्वा भोगान् वै मनसेप्सितान् । श्रीभागवतसङ्गेन यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥३६॥ यत्र भागवती वार्त्ता ये च तच्छ्रवणे रताः । तेषां संसेवनं कुर्याद् देहेन च धनेन च ॥ ३७ ॥ तदनुग्रहतोऽस्यापि श्रीभागवतसेवनम् । श्रीकृष्णव्यतिरिक्तं यत्तत् सर्वं धनसंज्ञितम् ॥३८॥ कृष्णार्थीति धनार्थीति श्रोता वक्ता द्विधा मतः । यथा वक्ता तथा श्रोता तत्र सौख्यं विवर्द्धते ॥३९॥ उभयोर्वैपरीत्ये तु रसाभासे फलच्युतिः । किन्तु कृष्णार्थिनां सिद्धिर्विलम्बेनापि जायते ॥४०॥ धनार्थिनस्तु संसिद्धिर्विधिसम्पूर्णतावशात् । कृष्णार्थिनोऽगुणस्यापि प्रेमैव विधिरुत्तमः ॥ ४१ ॥ आसमाप्ति सकामेन कर्त्तव्यो हि विधिः स्वयम् । स्नातो नित्यक्रियं कृत्वा प्राश्य पादोदकं हरेः ॥४२॥ पुस्तकं च गुरुं चैव पूजयित्वोपचारतः । ब्रूयाद् वा शृणुयाद् वापि श्रीमद्भागवतं मुदा ॥४३॥ पयसा वा हविष्येण मौनं भोजनमाचरेत् । ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिं क्रोधलोभादिवर्जनम् ॥४४॥ कथान्ते कीर्त्तनं नित्यं समाप्तौ जागरं चरेत् । ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् ॥ ४५ ॥ गुरवे वस्त्रभूषादि दत्त्वा गां च समर्पयेत् । एवं कृते विधाने तु लभते वाञ्छितं फलम् ॥४६॥ दारागारसुतान् राज्यं धनादि च यदीप्सितम् । परन्तु शोभते नात्र सकामत्वं विडम्बनम् ॥४७॥ कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत् प्रेमानन्दफलप्रदम् । श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥४८॥ इति श्रीस्कान्दे महापुराणे द्वितीये वैष्णवखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः । इति ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(नवम–स्कन्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

मुद्रक–गोपालप्रेस, जालिपादेवी बनारस ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—

भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६६ पुष्पलता

(दशमस्कन्ध पूर्वार्ध)

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

परिवर्तित-परिवर्धित—श्रीगङ्गापूजन-कृष्णपूजन-पुराणपूजन-व्यासपूजन-नानासङ्कल्प—अध्यायसार-आदि समन्वित—

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय-सरकार-द्वारा-सम्मानित-विद्वान् याज्ञिकसम्राट् आचार्य श्रीदौलतरामगौड

वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ गङ्गापूजनम्

ॐ शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ प्राणायामः । देशकालौ संकीर्त्य–मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य सर्वपापक्षयपूर्वकसर्वक्लेशनिवारणवाञ्छितमनोरथसिध्यर्थं मया सह दशपूर्वान् दशापरान् वंश्यान्नरकोद्धारणार्थं यथोपचारैः गङ्गापूजनं करिष्ये—इति सङ्कल्प्य ध्यानं कुर्यात्–चतुर्भुजां त्रिनयनां शुद्धस्फटिकसन्निभाम्। ध्यायेऽहं मकरारूढां शुद्धवस्त्रां शुचिस्मिताम् ॥ ध्यायामि । विष्णुपादाब्जसम्भूते विश्वनाथशिरस्थिते । आवाहयामि गङ्गे ! त्वां भक्ताऽभीष्टफलप्रदे ! ॥ आवाहयामि । मुक्तारत्नसुवर्णादिखचितं सुन्दरं शुभम् । सिंहासनं प्रदास्यामि गृहाण मकरासने । आसनं समर्पयामि । सिन्ध्वादिसरिदुद्भूत गन्धपुष्पसमन्वितम् । पाद्यं ददाम्यहं देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ! ॥ पाद्यं स० । ब्रह्मकमण्डलुसम्भूते ! गङ्गे ! त्रिपथगामिनि ! गृहाणाऽर्घ्यं प्रदास्यामि जह्नुकन्ये नमोऽस्तु ते ॥ अर्घ्यं स० । सुवर्णकलशाऽऽनीतं नानागन्धसुवासितम् । आचम्यतां मया दत्तं गृहाणाऽमृतवर्षिणि ! ॥ आचमनीयं स० । पयो दधि घृतक्षौद्रं रम्भाफलसमन्वितम् । पञ्चामृतमिदं देवि ! स्वीकुरुष्व महेश्वरि ॥ पञ्चामृतं स० । नर्मदायमुनासिन्धुगोदावर्याऽऽहृतैर्जलैः । स्नापयामि शिवे । भक्त्या भागीरथि नमोऽस्तु ते ॥ स्नानं स० । वदूर्यपद्मरागादिखचितं मेखलान्वितम् । सुवर्णसूत्रसंयुक्तं क्षौमं दास्यामि गृह्यताम् ॥ वस्त्रं समर्पयामि । मलयाचलसम्भूतं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । कर्पूरमिश्रितं गन्धं गृहाण परमेश्वरि ! ॥ गन्धं स० । अक्षतान् शालिसम्भूतान् हरिद्राकुङ्कुमान्वितान् । पूजार्थं सङ्गृहाणेमानक्षय्यफलदायिनि ! ॥ अक्षतान् स० । वज्रवैदूर्यमाणिक्यपद्मरागादिनिर्मितम् । कङ्कणं करशोभार्थं कामितार्थं फलप्रदे ॥ आभरणं स० । केतकीतुलसीविल्वमल्लिकाकमलादिभिः । पुन्नागैरर्चयामि त्वां गृहाणाऽमरवन्दिते ॥ पुष्पं स० ।

अथाङ्गपूजा

ओं पर्वतनाशिन्यै नमः–पादौ पूजयामि । भक्तवत्सलायै नमः–गुल्फौ पूज० । जगद्धात्र्यै न०–जङ्घे पू० । जाह्नव्यै न०–जानुनी पू० । शैलसुतायै न०–ऊरू पू० । समुद्रगामिन्यै न०–कटिं पू० । मकरारूढायै न०–गुह्यं पूज० । आनन्दवर्धिन्यै न० जघनं पू० । गङ्गायै न० नाभिं पूज० । जगत्कुक्ष्यै न०–उदरं पू० । विशालवक्षायै न०–वक्षःस्थलं पू० । हादिन्यै न० हृदयं पू० । सुस्तन्यै न०–स्तनौ पूज० । तरङ्गिण्यै न० पार्श्वौ पूज० । उन्नतकण्ठ्यै न० कण्ठं पू० । त्रैलोक्यसुन्दर्यै न०–स्कन्धौ पूज० । अमृतकलशहस्तायै न०–हस्तान् पूज० । लीलाशुकधारिण्यै न०–बाहुं पूज० । विद्याप्रकाशिन्यै न० मुखं पू० । त्रैलोक्यवासिन्यै न०–ललाटं पू० । सुनासिकायै न०– नासिकां पू० । मकरकुण्डलधारिण्यै न० श्रोत्रे पू० । विम्बोष्ठ्यै न०–ओष्ठौ पू० । अनाथरक्षिण्यै न०– अधरं पू० । चञ्चलगत्यै न०–जिह्वां पूज० । अलकनन्दायै न०–गण्डस्थलं पू० । तिलकधारिण्यै न०–भालं पू० । ज्ञानरूपिण्यै न०–चुबुकं पू० । अमृतविम्बायै न०–अलकां पू० । भीमरथ्यै न०–शिरः पू० । भागीरथ्यै न०–सर्वाण्यङ्गानि पूजयामि ।

अथ धूपादिपूजा

चन्दनाऽगरुमुस्तादि घृतगुग्गुलसंयुतम् । दशाङ्गद्रव्यसंयुक्तं धूपोऽयं प्रति गृह्यताम् । धूपं स० । साज्यं त्रिवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । गृहाण मङ्गलं दीपं त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥ दीपं स० । शल्यन्नं व्यञ्जनैर्युक्तं सूपाऽपूपघृतान्वितम् । क्षीराऽन्नं लड्डुकोपेतं भुज्यताममृताशिनी ॥ नैवेद्यं स० । पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ ताम्बूलं स० । तेजः पुञ्जस्वरूपे ते तेजसा भासितं जगत् । नीराजयामि गङ्गे त्वां भक्ताऽभीष्टफलप्रदे । नीराजनं स० । गङ्गे ! त्रिपथगे ! दिव्ये ! जाह्नवि ! त्रिदिवस्थिते ! ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रदक्षिणां करोमि त्वां प्रणताघौघनाशिनी ॥ प्रदक्षिणां स० । अद्य पूर्वोक्त० प्रीत्यर्थं गङ्गाभागीरथीपूजान्ते क्षीराऽर्घ्यप्रदानं करिष्ये । ब्रह्मकमण्डलुसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ! त्रैलोक्यवन्दिते ! देवि गृहाणाऽर्घ्यं नमोऽस्तु ते । गङ्गायै नमः–इदमर्घ्यम् । प्रालेयाचलसम्भूते प्राचीनाब्धिसमागमे । प्राणिनां भव रोगघ्नी पूजां सम्पूर्णतां कुरु ॥ पुत्रपौत्रधराधान्यपशुपुण्यफलोदयम् । देहि मे देवि ! भक्तिं ते त्वत्पादकमले सदा ॥ प्रार्थना । इति ।

अथ कृष्णपूजनक्रमः

नारद उवाच—श्रीमद्भागवतं चैतत्पुराणं ब्रह्मसम्मितम् । सप्ताहश्रवणं तस्य त्वतिपुण्यप्रदं भवेत् ॥ सङ्क्षेपेण विधिं वक्ष्ये तत्प्रदानसमन्वितम् । गणेशपूजनं कुर्यात्पूर्वं वै स्वस्तिवाचनम् ॥ कलशस्थापनं तत्र वरुणावाहनं तथा । मण्डले सर्वतोभद्रे श्रीकृष्णस्य च पूजनम् ॥ रुक्मिणीसहितस्यैव गोपालसहितस्य च ॥ अङ्गोपाङ्गायुधानान्तु पूजनं परितस्तथा ॥ उपचारैः षोडशभिर्भक्तिभावेन संयुतः । व्यासस्य वरणं कुर्यात्सुवर्णैर्भूषणैस्ततः ॥ द्विजहस्ताक्षरेणैव लिखितं शोधितं शुभम् । पट्टिकावेष्टनयुतं पुस्तकं पूजयेत्ततः ॥ व्यासमुच्चासने कृत्वा तदग्रे पुस्तकं न्यसेत् । मित्रवर्गेण सहितः सकुटुम्बः समाहितः ॥ शृणुयात्तं द्विजं चित्ते शुकरूपं विचारयन् । मण्डपं कदलीस्तम्भं वितानैस्तोरणैर्युतम् ॥ कुर्यादास्तरणं भूरि श्रोतॄणां सुखहेतवे । उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तथा ॥ प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता वोदङ्मुखस्तथा । आसूर्योदयमारभ्य सार्धं त्रिप्रहरान्तिकम् ॥ वाचनीया कथा सम्यक् सावधानतयाऽनिशम् । मध्यमं सुखकरं कृत्वा स्पष्टार्थं विरलाक्षरम् ॥ कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् । तत्कथामनुकार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैः सह ॥ हविष्यान्नं तु कर्तव्यो लघ्वाहारः सुखावहः । फलाहारेण वा स्थेयमेकभक्तेन वा पुनः ॥ एवं पारायणं श्रुत्वा शुभं सप्तदिनावधि । श्रीकृष्णपूजनं कृत्वा समाप्तौ हवनं चरेत् ॥ गायत्र्या दशमं स्कन्धश्लोकैर्वा वेदरीतितः । हेमसिंहासनस्थं सत्पुस्तकं शुकरूपिणे ॥ दद्याद् व्यासाय विधिवदलङ्कृत्य विधानतः । साङ्गतासिद्धये दद्यात्सौवर्णीं दक्षिणां ततः ॥ करौ द्वौ सम्पुटीकृत्य विष्णोश्च विनयं वदेत् । माहात्म्यं पुस्तकस्यैव व्यासस्य स्तुतिरेव च । एवं कृते मनुष्याणां भवेत्पापप्रणाशनम् । इहलोके सुखावाप्तिः परलोकेऽक्षयं सुखम् ॥

अथ श्रीकृष्णपूजनम्

शुभे दिने सपत्नीको यजमानः कृतनित्यकृत्यः शान्तिपाठादिकं पठित्वा सङ्कल्पं कुर्यात्–देशकालौ । सङ्कीर्त्य-- सर्वकिल्बिषोपशमनार्थं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तसमस्तशुभफलप्राप्तिकामः श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये अष्टादशपुराणान्तर्गतस्याष्टादशसहस्रपरिमितश्लोकात्मकस्य श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य सप्ताहपुराणविधिना कथाश्रवणमहं करिष्ये । तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं, मातृकापूजनं, वसोर्धारापूजनम्, आयुष्यमन्त्रजपं, नान्दीश्राद्धं वरणं च करिष्ये । तत्रादौ निर्विघ्नतासिध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं करिष्ये—इति सङ्कल्प्य पूजनं ग्रहशान्त्यनुसारेण कुर्यात् । ततः व्यासस्य हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य पञ्चोपचारैः पूजनं कृत्वा वरणसामग्रीं गृहीत्वा देशकालौ सङ्कीर्त्य—अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य सप्ताहपारायणकर्तृत्वेन एभिर्वरणद्रव्यैरहं वृणे । अथ न्यासः—ॐ केशवाय नमः–वामकरे १ ॐ नारायणाय न० दक्षिणकरे २ ॐ माधवाय न० वामपादे ३ ॐ गोविन्दाय न० दक्षिणपादे ४ ॐ विष्णवे न० वामजानौ ५ ॐ मधुसूदनाय न० दक्षिणजानौ ६ ॐ त्रिविक्रमाय न० वामकट्याम् ७ ॐ वामनाय न० दक्षिणकट्याम् ८ ॐ श्रीधराय न० नाभौ ९ ॐ हृषीकेशाय हृदयाय नमः १० ॐ पद्मनाभाय न० कण्ठे ११ ॐ अनिरुद्धाय न० मूर्ध्नि १२ अथ पञ्चाङ्गन्यासः— ॐ पुरुषोत्तमाय न० हृदयाय नमः १ ॐ अधोक्षजाय न० शिरसे स्वाहा २ ॐ नृसिंहाय न० शिखायै वषट् ३ ॐ अच्युताय न० कवचाय हुम् ४ ॐ जनार्दनाय न० अस्त्राय फट् ५ अथ ध्यानम्—शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥ आवाहनम्—१ आगच्छ कृष्ण देवेश तेजोराशिः जगत्पते । रुक्मिण्या सह लोकेश त्राहि मां भवसागरात् ॥ १ ॥ पाद्यम्—नन्दनन्दनगोपेश गोपीमण्डलमण्डित । त्वया चैतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ २ ॥ अर्घ्यम्—अर्घपात्रे-गन्ध-पुष्प-तिल-श्यामाक-दूर्वा-कुश-विष्णुक्रान्ता-तुलसीदलानि प्रक्षिप्य—पूतनादर्पसंहारिन् तृणावर्त निषूदन । विहारेऽनन्तरूपोऽसि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥३॥ आचमनीयम्—गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् । आचम्यतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशनम् ॥ ४ ॥ पयः स्नानम्—क्षीरशायिन् महाविष्णो लक्ष्मीहृदयभावन । दुग्धस्नानं गृहाणेदं यथाशक्त्या समर्पितम् ॥ ५ ॥ दधिस्नानम्—दिव्यदुग्धोद्भवश्चैतद्दधि पयु षितं तथा । स्नानार्थं ते मयानीतं तुलसीप्राणवल्लभ ॥ ६ ॥ घृतस्नानम्—घृतदध्युद्भवं नित्यं सर्वेषां चैव पावनम् । घृतस्नानं गवामीश कुरुष्वेतज्जनार्दन ॥ ७ ॥ मधुस्नानम्—चौद्रसर्वरसोपेतं मधुरं सर्वरोगहृत् । इदं मधु प्रयच्छामि तेन स्नानं समाचर ॥८॥ शर्करास्नानम्-इक्षुरससमुद्भूता शर्करारुक्मिणीप्रिय । घनश्याम वपुर्यत्त तया संक्षालयाम्यहम् ॥९॥ शुद्धोदकस्नानम्—शुद्धोदकं मयानीतं तुलसीचन्दनान्वितम् । गृहाण देवदेवेश वृषभानुसुतापते ॥१०॥ वस्त्रम्—नारायण नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारक । त्रैलोक्यस्वामिने तुभ्यं ददामि वसनं शुभम् ॥११॥ यज्ञोपवीतम्—यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं सूत्रनिर्मितम् । गृहाण गोपिकावृन्द रासमण्डलमण्डित ॥ १२ ॥ नानाभरणम्—अनेकरत्नखचितं तोडकं नूपुरादिकम् । त्रैलोक्यालङ्कृते कृष्ण गृहाणाभरणानि च ॥ रत्नकं मणिवैदूर्यमुक्ताहारादिकं तथा । मनसा सुप्रसन्नेव सर्वं वै प्रतिगृह्यताम् ॥ गन्धम्—श्रीखण्डागरुकर्पूरकुङ्कुमादिविलेपनम् । भक्त्या दत्तं मया देव दामोदर जगत्पते ॥ १३ ॥ कनिष्ठामूलगताङ्गुष्ठयोगेन गन्धमुद्रां प्रदर्श्य अनामिकया गन्धानुलेपनं समर्पयामि । पुष्पम्—माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो । मयाऽऽहृतानि पुष्पाणि प्रीयतां परमेश्वर ॥ सुवर्णपुष्पम्—सुवर्णस्वर्णरचितं माणिक्यखचितं शुभम् । पुष्पं गृहाण देवेश ममोपरि दयां कुरु ॥ वनमाला—सत्पुण्डरीकैः कणवीरमागधीकदम्बकैतक्यतुलस्यशोकजैः । नानाविधैः पल्लवपुष्पनिर्मितां मालां वनाख्यां विनिवेदयामि ॥ पाद्यशंखजपापुष्पैः शतपत्रैर्विचित्रिताम् । पुष्पमालां प्रयच्छामि गृहाण त्वं सुरेश्वर ॥ १४ ॥

❀ अथाङ्गपूजा ❀

ओं केशवाय नमः ओं जनार्दनाय नमः पूजयामि १ ओं नारायणाय पादौ गुल्फौ पू० २ ओं नृसिंहाय० जानुनी पू० ३ ओं वासुदेवाय० जङ्घे पू० ४ ओं उपेन्द्राय न० ऊरू पू० ५ ओं गुहावासाय० गुह्यं पू० ६ ओं गोविन्दाय० मेढ्रं पू० ७ ओं गोवर्द्धनाय० कटिं पू० ८ ओं पद्मनाभाय० पार्श्वे पू० ९ ओं पुण्डरीकाक्षाय० नाभिं पू० १० ओं अनिलाय० ओं हृदयाय० कुक्षिं पू० ११ ओं देवेशाय० हृदयं पू० १२ ओं वैकुण्ठाय० उदरं पू० १३ ओं विष्णवे० बाहुं पू० १४ ओं वीरविक्रमाय० हस्तौ पू० १५ ओं विश्वंभराय० कराङ्गुलीः पू० १६ ओं श्रीकण्ठाय० पृष्ठं पू० १७ ओं जगदाधाराय० कण्ठं पू० १८ ओं वेदमूर्तये० मुखं पू० १९ ओं मुरारये० जिह्वां पू० २० ओं दामोदराय० अधरोष्ठं पू० २१ ओं नरहरये न०

---

१ चिच्छक्तिजुष्टं सगणं प्रभुं त्वामावाहये पूजनमन्दिरेऽस्मिन् । विलोक्य भक्तिं मम किङ्करस्य श्रीकृष्णसान्निध्यमिहाद्य तेऽस्तु ॥ आसनम्—स्फुरत्प्रभं काञ्चनरत्ननिर्मितं यदर्धचन्द्रेण च बिन्दुनायुतम् । हृत्पद्मतुल्यं विधिवन्मयार्ऽर्पितं राधापते तुभ्यमिदं शुभासनम् ॥ औदुम्बरे सुन्दरभाजनेऽमले रेखाङ्किते पद्मदलानुकारिणि । प्रपूरितं पादसुखावहं तदा मयार्पितं पाद्यमिदं गृहाण ॥ औदुम्बरे यज्ञघुभाजने स्थितं रेखाङ्किते पद्मदलानुकारिणि । श्रीकृष्णतचन्दपुष्पसंयुतं गृहाण हरतार्घमिदं मयार्पितम् ॥ हृत्कण्ठताल्वोष्ठगताभिरद्भिः पुनन्ति विप्रप्रमुखाः क्रमेण । यस्मादतश्चाचमनार्थमीश मयाऽर्पिता आप इमा गृहाण ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दन्तपङ्क्ति पू० २२ ओं सोमसूर्यनेत्राय० नासिकां पू० २३ ओं ईश्वराय० नेत्रे पू० २४ ओं सर्वेश्वराय० भ्रुवौ पू० २५ ओं अच्युताय० कर्णौ पू० २६ ओं मुकुन्दाय० ललाटं पू० २७ ओं सहस्रशिरसे न० रोमकूपान् पू० २८ ओं श्रीमदनन्ताय० शिरः पू० २९ ओं श्रीकृष्णमूर्तये० सर्वाङ्गं पूजयामि। ओं लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः पादौ पूजयामि। ओं विशालाक्षीकेशवा०-गुल्फौ पू०। ओं सुनन्दासङ्कर्षणाभ्यां नमः जंघे पू०। ओं रुक्मिणीमाधवाभ्यां० जानुनी पू०। ओं माधवी-अच्युताभ्यां ऊरू पू०। ओं नारायणीगोविन्दाभ्यां० कटिं पू०। ओं मित्रविन्दाअनिरुद्धाभ्यां न० नाभिं पू०। ओं पद्माविक्रिमाभ्यां न० हृदयं पू०। ओं क्षेमकरीनृसिंहाभ्यां न० कण्ठं पू०। ओं सत्या-वासुदेवाभ्यां न० बाहुं पू०। ओं कालिन्दीप्रद्युम्नाभ्यां न० हस्तौ पू०। ओं कमलावामनाभ्यां न० मुखं पू०। ओं विजयापुरुषोत्तमाभ्यां न० नेत्रे पू०। ओं कान्तिश्रीधराभ्यां न० श्रोत्रे पू०। ओं सुक्ष्मिण्यवोत्तजाभ्यां न० ललाटं पू०। ओं अपराजिताहृषिकेशाभ्यां न० शिरः पू०। ओं लक्ष्मीनारायणाभ्यां न० सर्वाङ्गं पू०।

अथ परिधिदेवपूजनम्

पूर्वे—ओं शङ्खाय नमः १ दक्षिणे-ओं चक्राय नमः २ पश्चिमे-ओं गदायै नमः ३ उत्तरे-ॐ पद्माय नमः ४ पुनः पूर्वे-ॐ वैकुण्ठाय नमः १ दक्षिणे-ॐ श्वेतद्वीपाय नमः २ पश्चिमे-ॐ क्षीरसमुद्राय नमः ३ उत्तरे-ॐ गोलोकाय नमः ४ देवस्य वामे—ॐ यमुनायै नमः १ दक्षिणे-गङ्गायै नमः २ देवस्य पादभागे-ओं रुक्मिण्याद्यष्टपट्टपत्नीभ्यो नमः १ तत्रैव-ओं ललिताद्यष्टसखीभ्यो नमः १ ओं श्रीदामाद्यष्टगोपेभ्यो नमः २ ओं ओं ध्रुवाद्यष्टभक्तेभ्यो नमः ३ अथ चतुर्विंशतिनामभिः कृष्णं पूजयेत्-ओं केशवाय नमः। नारायणाय०। माधवाय०। गोविन्दाय०। विष्णवे०। मधुसूदनाय०। त्रिविक्रमाय०। वामनाय०। श्रीधराय०। हृषिकेशाय०। पद्मनाभाय०। दामोदराय०। सङ्कर्षणाय०। वासुदेवाय०। प्रद्युम्नाय०। अनिरुद्धाय०। पुरुषोत्तमाय०। अधोक्षजाय०। नृसिंहाय०। अच्युताय०। जनार्दनाय०। उपेन्द्राय०। हरये०। श्रीकृष्णाय नमः। अथ दशावतारनाममन्त्रैः पूजयेत्-ओं मत्स्याय०। कूर्माय०। वराहाय०। नृसिंहाय०। वामनाय०। जमदग्नये०। रघुनाथाय०। हलधराय०। बुधाय०। कल्किने०। अथान्यैर्नाममन्त्रैः पूजयेत्-ओं सच्चिदानन्दाय०। श्रीमत्परमपुरुषाय०। परमेश्वराय०। सकलगुणनिधानाय०। अतिसुन्दराय०। अतिरमणाय०। श्रीकण्ठाय०। जगदोल्हादकारकाय०। ब्रह्माण्डाधीश्वराय०। वेदपुरुषाय०। सकलदेवकराय०। सकलदानवभयङ्कराय०। आत्मने०-अन्तरात्मने०। ज्ञानात्मने०। पर्यङ्कशायिने०। परमपुरुषाय०। अनन्तमूर्तये०। परमात्मने नमः।

अथाष्टोत्तरशतनाममन्त्रैः पूजयेत्

ओं श्रीकृष्णाय०। कमलनाथाय०। वासुदेवाय०। सनातनाय०। वासुदेवात्मजाय०। पुण्याय०। लीलामानुषविग्रहाय०। श्रीवत्सकौस्तुभाधिपाय०। यशोदावत्सलाय०। हरये०।

पञ्चामृतैः शुध्यतिपाञ्चभौतिको देहस्तथा शुद्धजलेन सत्वम्। पञ्चामृतस्नानमतो मयाऽर्पितं शुद्धोदकस्नानमिदं गृहाण॥ युवासुवासा इति मन्त्रपूर्वं तडित्प्रभं नूतनमम्बरद्वयम्। तथारुणं काञ्चनतारकाचितं लक्ष्मीपते तुभ्यमिदं मयार्पितम्। अशुद्धितामेति कटिच्युतेन वस्त्रेण पादान्तजघन्यकायः। ऊरू च जङ्घे चरणौ करौ च तत्क्षालये मृज्जलतोस्त्रिवारम्॥ ऊर्ध्वं वृतं यत्त्रिवृदप्योद्वृतं पुनस्त्रिवृद्ग्रन्थिविराजितं शुभम्। यज्ञोपवीतं श्रुतिमन्त्रितः कृतं मयाऽर्पितं तत्तद्विधितो गृहाण॥ भाले लसत्केशरमर्पयामि कस्तूरिकाबिन्दुमपीन्दुवक्त्र। श्रीकृष्णगात्रे हरिचन्दनस्य दिव्याङ्गरागं परितोऽर्तयामि.॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चतुर्भुजचक्रासिगदाशङ्खाद्युधाय० । देवकीनन्दनाय० । श्रीशाय० । नन्दगोपप्रियात्मजाय० । यमुनावेगसंहारिणे० । बलभद्रप्रियानुजाय० । पूतनाजीवितहराय० । शकटासुरभञ्जनाय० । नन्दव्रजजनानन्दाय० । सच्चिदानन्दविग्रहाय० । नवनीतविलिप्ताङ्गाय० । नवनीतनटाय० । अनवद्याय० । नवनीतनवाहाराय० । मुचुकुन्दप्रसादकाय० । षोडशस्त्रीसहस्रेशाय० । त्रिभङ्गीललिताकृतये० । शुकवागमृताब्धिविन्दवे० । गोविन्दाय० । गोविदाम्पतये० । वत्सवाटचराय० । अनन्ताय । धेनुकासुरखण्डनाय० । तृणीकृततृणावर्ताय० । यमलार्जुनभञ्जनाय० । उत्तालतालभेत्रे० । तमालश्यामलाकृतये० । गोपगोपीश्वराय० । योगिने० । कोटिसूर्यसमप्रभाय० । इलापतये० । परञ्ज्योतिषे० । यादवेन्द्राय० । यदूद्वहाय० । वनमालिने० । पीतवाससे० । परिजातापहारकाय० । गोवर्धनाचलोद्धर्त्रे० । गोपालाय० । सर्वपालकाय० । अजाय० । निरञ्जनाय । कामजनकाय० । कञ्जलोचनाय० । मधुघ्ने० । मथुरानाथाय० । बलिने० । वृन्दावनान्तसञ्चारिणे० । तुलसीदामभूषणाय० । नरकान्तकाय० । नरनारायणात्मकाय० । कुब्जाकृष्णाम्बरधराय० । मायिने० । परमपुरुषाय० । मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदाय० । संसारवैरिणे० । कंसारिणे० । मुरारये० । अनादिब्रह्मचारिणे० । कृष्णाव्यसनकर्षकाय० । शिशुपालशिरश्छेत्रे० । दुर्योधनकुलान्तकाय । विदुराक्रूराय० । विश्वरूपप्रदर्शकाय० । सत्यवाचे० । सत्यसङ्कल्पाय० । सत्यभामारताय० । जयिने० । सुभद्रापूर्वजाय० । विष्णवे० । भीष्ममुक्तिप्रदर्शकाय० । जगद्गुरवे० । जगन्नाथाय० । वेणुनादविशारदाय० । वृषभासुरविध्वंसिने० । बाणासुरबलान्तकाय० । युधिष्ठिरप्रतिष्ठात्रे० । बर्हिबर्हावतंसकाय० । पार्थसारथये० । अव्यक्ताय० । गीतामृतमहोदधे० । कालीयफणिमाणिक्यरञ्जितश्रीपदाम्बुजाय० । दामोदराय० । यज्ञभोक्त्रे० । दानवेन्द्रविनाशनाय० । नारायणाय० । परब्रह्मणे० । पन्नगाशनवाहनाय० । जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकाय० । पुण्यश्लोकाय० । तीर्थपादाय० । वेदवेद्याय० । दयानिधये० । सर्वभूतात्मकाय० । सर्वग्रहरूपिणे० । परात्पराय० । लक्ष्म्यै० । पद्मायै० । कमलायै० । इन्द्राण्यै० । हरिप्रियायै नमः । तत्रैव- आद्यलक्ष्म्यै० । विद्यालक्ष्म्यै० । सौभाग्यलक्ष्म्यै० । अमृतलक्ष्म्यै० । कामलक्ष्म्यै० । सत्यलक्ष्म्यै० । भोगलक्ष्म्यै० । रुक्मिण्यै० । सत्यभामायै० । नाग्निजित्यै० । कालिन्द्यै० । मित्रविन्दायै० । लक्ष्मणायै० । जाम्बवत्यै० । सुशीलायै० । वासुदेवाय० । देवक्यै० । नन्दाय० । यशोदायै० । बलभद्राय० । सुभद्रायै० । गोपेभ्यो० । गोपिकाभ्यो० । भीष्माय० । विदुराय० । अक्रूराय० । उद्धवाय० । गरुडाय० । सुदामाय० । पाञ्चजन्याय० । चक्राय० । गदायै० । पद्माय० । युधिष्ठिराय० । भीमाय० । अर्जुनाय० । सहदेवाय० । कुन्त्यै० । द्रुपदायै नमः । ततः—

धूपम्—धूपं १ मनोहरं दिव्यं सुगन्धिघ्राणतर्पणम् । गृह्यतां रुक्मिणी नाथ राधाधव जगत्पते ॥ १५ ॥ तर्जनीमूलाङ्गुष्ठयोगेन धूपमुद्रां प्रदर्श्य धूपमाघ्रापयामि । दीपम्—लोकान्धकारदर्पघ्नं दीपं सुघृतपूरितम् । गृहाण जगतां नाथ भक्तानां वाञ्छितार्थद ॥ १६ ॥ नैवेद्यम्—अन्नं चतुर्विधं स्वादु भूतानां जीवनं परम् । नैवेद्यं ते मया दत्तं देवेश प्रतिगृह्यताम्

---

१ सुगन्धयुग्घ्राणसुखावहः सदा धूपोऽपि यस्याऽकटुतानुभूयते । मनो यथा त्वच्चरणार्चकानां तं धूपमीशेश समर्पयामि ॥ प्रज्वालितं दीपनिधाय पात्रे दशायुतं स्नेहयुतं सुनिर्मलम् । सार्द्धं त्रिवारं विधुमण्डलीकृतं गृहाण दीपं भगवन्मयार्पितम् ॥ व्यतीतयामं नवनीमेतद् द्राक्षादिरंभासितशर्करां च । निधाय पर्णे कनकस्य पात्रे दत्तं तु नैवेद्यमिदं गृहाण ॥ घोटासुधैलाकदलासिवल्लीदलैर्युतं श्रीमुखमण्डनार्थम् । निद्रारुकान्तं नवरङ्गगर्भं गृहाण ताम्बूलमिदं मयार्पितम् ॥ प्रदक्षिणा—ब्रह्माण्डमेतत्तवदेहसंस्थितं यतो प्रयासादनुकूलतां व्रजेत् । यतो मुनीन्द्रैः परिवर्तितां प्रदक्षिणां ते परितः करोमि ॥ मृदङ्गशङ्खझल्लरीसतालवल्लकीस्वनैर्गभीरनाददुन्दुभिध्वनद्घटीघटादिभिः । कलिन्दजह्नुनन्दिनीतरङ्गतुल्यचामरैः प्रसन्नदीपकान्तिभिर्निरञ्जये निरञ्जनम् ॥ पुराणमन्त्रकीर्तनैर्मनोहरैश्च नर्तनैर्मुहुर्मुहुर्मृदङ्गवैश्च नूपुरस्य सिञ्जितैः । महासुगन्धिधूपश्च मेघसारदीपतः प्रसन्नदीपकान्तिभिर्निरञ्जये निरञ्जनम् ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ १७ ॥ अनामामूलयोरङ्गुष्ठयोगेन नैवेद्यमुद्रां प्रदर्श्य ग्रासमुद्राः प्रदर्शयेत्–अङ्गुष्ठप्रदेशिनीमध्यमाभिः–ॐ प्राणाय स्वाहा १ अङ्गुष्ठमध्यमानामिकाभिः ॐ अपानाय स्वाहा २ अङ्गुष्ठानामिकाकनिष्ठाभिः ॐ व्यानाय स्वाहा ३ कनिष्ठातर्जन्यङ्गुष्ठैः–ॐ समानाय स्वाहा ४ साङ्गुष्ठाभिः सर्वाभिः–ॐ उदानाय स्वाहा । मध्ये पानीयं समर्पया० । उत्तरापोशनं समर्प० । करोद्वर्तनार्थे चन्दनानुलेपनं समर्पयामि । ताम्बूलम्– पूगानि नागपत्राणि कर्पूरसहितानि च । मया दत्तानि देवेश श्रीकृष्ण प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥ दक्षिणा—हृषीकेश नमस्तेऽस्तु दामोदर नमोऽस्तु ते । साधुपुण्यप्रदा चैव दक्षिणा प्रतिगृह्यताम् ॥१९॥ नीराजनम्–ॐह लक्ष्मीपते परं ब्रह्म व्रतिनां पुण्यवर्धन । नीराजनं करोम्यद्य श्रीराधापरमप्रिय ॥ २० ॥ [सर्ववाद्यमयीं घण्टां देवदेवस्य वल्लभ] तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घण्टानादं तु कारयेत् ॥ घण्टानादं समर्पयामि । प्रणामः—१ नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे । सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥१॥ नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने । नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥२॥ प्रार्थना–संसारो दुस्सहव्यालो लेलिहानस्य पृष्ठतः । धावन्तं पाहि मां कृष्ण कृपालुस्त्वं यतो मतः ॥३॥ श्रीराम गोविन्द कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन्नमस्ते । प्रौढारिषड्वर्गमहाभयेभ्यो मां त्राहि नारायणविश्वमूर्ते ॥४॥ प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर । आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर । संसारसागरे मग्नं दीनं मां परिपालय ॥ ६ ॥ तदस्तु मे नाथ समूरिभागो भवेऽत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् । येनाहमेको भगवज्जनानामभुक्त्वा निषेवे तवपादपल्लवम् ॥ ७ ॥

पूजनस्य विशेषक्रमः—

आसनम्—अथो समुत्थाय तडिद्विराजितो बलाहकः स्वर्णगिरेस्तटीमिव । गृहीतपाणिं कमलालयां नयन् समाश्रय श्रीधर ! हेमपीठिकाम् ॥

पादावनेजनम्—सुगन्धिपाटीरजपङ्कमिश्रिता इयत्य आपः करकाग्रनिःसृताः । निसर्गसिद्धां दधती विशुद्धतां पदे मुदे नेनिजतां जगत्पतेः ॥

स्नानम्—परश्शतास्तत्रभवद्भिनिःसृताः सरिवरा संप्रति तावदासताम् । अये ! पतत्पावन ! मत्सरस्वती भवत्प्रभातस्नपनाय जायताम् ॥

---

१ देहः प्रियोऽयं सकलस्य जगन्तोर्देहस्य चाहंकृतिरेव मूलम् । तस्मात्प्रणामस्य मिषेण देव समूलदेहं चरणेऽर्पयामि ॥२ नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे । विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे । कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने । नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥ वर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे । रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने । वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः ॥ वेणुवादनशीलाय गोपालायाऽहिमर्दिने । कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ॥ वल्लीवदनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने । नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ नमः पापप्रणाशाय गोवर्धनधराय च । पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासु हारिणे । निष्कलायाविमोहाय शुद्धायाऽशुद्धवैरिणे । अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः । प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर । आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ॥ श्रीकृष्णरुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर । संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ॥ केशवक्लेशहरणनारायणजनार्दन । गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥ रत्नाकरो हि सदनं गृहिणी च पद्मा किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय राधागृहीतमनसो मनसोऽस्ति दैन्यं दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ॥ पुष्पाञ्जलिः–विचित्रपुष्पैर्बहुगन्धयुक्तैर्वनादिदानीं स्वयमाहृतैश्च । स्वाराज्यमेतद्ददताप्लुतेन पुष्पाञ्जलिरते भगवन्मयार्पितः ॥ इत्थं सपर्यां विधिवद्विधाय गोपांश्च गाश्चैव कलिन्दकन्याम् । देवाङ्गभूतानि बृहन्मुखानि समर्चये द्वादश काननानि ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अर्घः—कुशाग्रसर्पिर्दधिदुग्धचन्दनप्रसूनदुर्वायवतोयसंभृतम् । अनर्घतावत्करुणामहोदधे दधेऽर्घमेतं भवतः पुरो हरे ॥

आचमनीयम्—समस्तदेवस्तवनीयकर्मणे कनीय एतत्सलिलं ससौरभम् । परात्परस्मै करुणसुधाब्धये त्वपामपास्याऽऽचमनीयमर्पये ॥

उद्वर्तनम्—जगन्तिजे कर्मणि भासनादिके विकर्तनाद्यं यमनप्रवर्तये । प्रपद्य तस्मै महनीयमूर्तये कलवरोद्वर्तनमेतदर्पये ॥

पयस्नानम्—यदीयशक्त्या विधिना निधीयते पयः पृथिव्यां पयओषधीषु च । इदं तदस्मै मम हन्त ! शेमुषी पयः परस्मै पुरुषाय दित्सति ॥

जलस्नानम्—दयोदधे ! नाथ ! लघुप्रकल्पितं पयोभिषेकाद्विहितादनन्तरम् । सलीलतां संश्रयते सदातनी हिमं हि तुभ्यं सलिलं प्रदीयते ॥

दधिस्नानम्—दयार्द्रताऽजामिलपालनावधिः प्रभुत्वमम्भोनिधिबन्धनावधि । अबोधि यस्य स्नपनेऽल्पकं दधि त्रयीगुरोस्तस्य पुरो दधीमहि ॥

जलस्नानम्—मजज्जगत्किल्विषहारिकीर्तये श्रियासमेताय बलज्ञमूर्तये ॥ धिया दधिस्नाविधेरनन्तरं सभक्ति शुद्धोदकमेतदर्पये ॥

घृतस्नानम्—अजानिरीक्षापरिचेयवैभव ! प्रकल्पनाकल्पितविष्टपत्रय । इदं जगत्प्राण ! गृहाण लीलयाऽभिषेकहेतोरपिसर्पिरर्पितम् ॥

जलस्नानम्—वितृष्णताशीतलसज्जनाग्रणीमनःसरोमज्जनमात्रकर्मणे । न्यवेदि कृष्णाय कवोष्णमादरादिदं च सर्पिःस्नपनोत्तरं पयः ॥

मधुस्नानम्—निरस्तरूपाप समस्तवर्ष्मणो सदाप्रबुद्धाय पपाब्धिशायिने । इदं च तुभ्यं भगवन् ! वितीर्यते स्वभावरम्याय मधुद्विषे मधु ॥

शुद्धोदकस्नानम्—प्रपञ्चवैचित्र्यविधानचातुरीधुरीणतार्थिद्रुहिणादतस्तु ते ! । मनागनुत्तौद्रमिदं प्रकाशितत्रयीनिबन्धाय कबन्धमस्तु ते ॥

शर्करास्नानम्—पदाब्जयुग्मस्मृतिशुद्धया धिया जगत्पितः प्रीतिभृता समर्पिता । प्रमोदमेषा ध्रुवमेव वर्धयेदखण्डस्नानस्तव खण्डशर्करा ॥

शुद्धोदकस्नानम्—अखण्डतामाप्लवनस्य कल्पयन् परं च खण्डस्नपनादिदं पुनः । समर्पये वारि यथेष्टमादराद्बलिष्ठवृन्दारकवैरिवारिणे ॥

रूपभावनम्—तदम्बराकारकमार्द्रतावशात्प्रसक्तपीताम्बरमैश्वरं वपुः । अनन्तदोषे नितरां मलीमसे प्रदोयतां यातु मदीयमानसे ॥

अङ्गोञ्छनम्—घनत्विषे विश्वजनीनकर्मणे धियैव धौतं घनसारपाण्डुरम् । घनं समाकुञ्चिततन्तुसन्तति प्रदीयतेऽङ्गोञ्छनमेतदम्बरम् ॥

अन्तरीयकम्—परिस्फुरत्काञ्चनसूत्रयोजनासनाथपर्यन्तचतुष्टयाञ्चितम् । मुदा वितीर्णं परिधीयतां प्रभो ! तडिद्द्युति द्रागिदमन्तरीयकम् ॥

उत्तरीयम्—नवीनकार्तस्वरसूत्रगर्भितप्रतीरभागं तरलापितच्छवि । अखण्डविज्ञानदयामय ! प्रभो ! गृहाण संव्यानमिदं समर्पितम् ॥

अन्तरीयम्—तुलोज्झितत्वेन पुलोमजादिभिर्दिगीशदारैः स्पृहणीयमाश्रितैः । इदं प्रबालाधिकदीप्ति गृह्यतां रमे ! जनित्रि ! द्रुतमन्तरीयकम् ॥

उत्तरीयम्—जपाप्रसूनद्युतिसूक्ष्मसूक्ष्मतासमुल्लसत्काञ्चनतन्तुसन्तति । हरिप्रिये ! त्वामिदमन्तरीयकं धिनोतु धैर्येण धिया पुरस्कृतम् ॥

सिंहासनम्—अथाऽऽश्रय श्रीरमण ! स्वयं कथापथातिगस्फीतरुचे ! यथासुखम् । उपान्तभागद्वयसिंहसुन्दरं सदार एवेदमुदारमासनम् ॥

आचमनम्—अधीशताधन्य ! पुराणपूरुष ! प्रमाणमूर्धन्य ! हरे ! धिया शुचीः । गिराऽम्बरस्वीकृति कालगोचरस्मृतेर्द्विराचाम समर्पिता अपः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यज्ञोपवीतम्—प्रतिप्रतीकोद्गतदैवतव्रज ! स्वयं व्रजन् स्वीकृतयज्ञसूत्रताम् । क्षमस्व भूयोऽपि मया विधेर्वशाद्विनीपितः स्वीकृतयज्ञसूत्रताम् ॥
आचमनम्—अनूपवीतग्रहणं पुनः शुचीरूपस्पृशन् फेनविवर्जिता अपः । प्रपन्नतापन्नजनौघयन्त्रणासहासहे ! माधव ! मोदय स्मृतीः ॥
मधुपर्कः—समस्तमेतज्जगदात्मनिर्मितं निरस्तसंपर्कतयाऽधितस्थुषे । इदं धिया तर्कविदूरवर्त्मने रमेश ! तुभ्यं मधुपर्कमर्पये ॥
आचमनम्—अनन्तलोकत्रयनाथ ! शीतलं सुगन्धि पाथः कुसुमाधिवासितम् । इदं द्विराचाम पुनः सकामताकृशानुभीशामकनामकीर्तन ॥
सिन्दूरम्—समुल्लसल्लक्षणलक्षलक्षिते ! धिया महालक्ष्मि ! पुरस्कृतं मम । ललाटमध्ये शुकचञ्चुपाटलं कुरुष्वसिन्दूरमिदं समुज्ज्वलम् ॥
कज्जलम्—त्रिलोकमातः ! क्रियतश्चिदाश्रयैः क्षणान् स्थिरत्वं पुरतः प्रसेदुषी । समाहितः कज्जलकेन तावके क्रमादिदानीमनजानि चक्षुषी ॥
तिलकम्—अये ! त्रिलोकीतिलक ! त्रयीनुत ! त्रिकालसत्ताकलित ! त्रिविक्रम ! । धिया भवद्भालतलेऽतिनिर्मले त्रिरेखमूर्द्ध्वं तिलकं निवेशये ॥
चन्दनम्—सिताभ्रकश्मीरजकेशरार्पणासमुल्लसत्सौरभसारशालिना । ललाटदेशं तुलितेन्दुना विभोर्विभूषये चन्दनविन्दुना पुनः ॥
यक्षकर्दमः—अयस्त्वदीयं मुनिकर्दमः पदद्वयं क्षमोऽभूत्कपिलोद्भवाय सः । कथं न कुर्याद्रतिोद्भवं हरेतवाङ्गसङ्गी मम यक्षकर्दमः ॥
यवाः—विमिश्रणामिश्रणयोः स्वतन्त्रतां प्रभोःश्रुतिर्गायति माययासमम् । यवास्तथान्त्वप्रतिपादनोद्यता उपश्रुति स्थातुमुशन्ति संप्रति ॥
पत्राणि—शमीदलैर्विल्वदलैश्च निर्मलैस्तथा हरिद्भिर्हरितादलैरपि । कृताभयं नाथ ! भवत्पदद्वयं प्रभूतभावा मम धीः समर्चति ॥
वनमाला—मृता प्रसूनैरखिलर्तुसंभवैः कदम्बपुष्पैर्धिवासितान्तरा । अतीवजानुद्वितया मयार्पिता ददीत मोदं वनमालिका हरेः ॥
तुलसीस्रक्—उरःस्थलाभ्यर्णवितीर्णयाऽनया दयामयाभ्यन्तर नन्यरूपया । समन्ततः सौरभसाहिनी स्रजा प्रसीद शौरे ! तुलसीदलस्रजा ॥
मल्लिकाकुसुमम्—मदीयया भक्तिरसार्द्रया धिया सुगुम्फितासुन्दरकोरकाकृति । जगत्पते ! पतितमल्ल ! मल्लिकाहृदि त्वदीये व्रजतु प्रफुल्लताम् ॥
मालतीस्रक्—जगज्जनित्रि ! त्रिजगत्पितः ! पृथक् समर्पितामच्छरुचिं मदीयसीम् । समेन संयोजयितुं हृदा मुदा प्रतीच्छतं संप्रति मालतीस्रजम् ॥
कोकनदम्—इदं दिनाद्युद्गतसूरमण्डलप्रभं सुगन्धीति ससौरभं द्विधा । समर्पितं कोकनदं भवत्करे हरे ! मुहुर्यच्छतु भूरिसंपदम् ॥
शङ्खः—चिरस्य धिक्कृत्य नभस्य वारिदं युधिध्वनन् साधु करालताश्रयः । स पाञ्चजन्य प्रकृतीश ! जन्यतां भवत्कराम्भोजमरालताश्रयः ॥
चक्रम्—स्वयं सुवृत्ततरुणारुणप्रभः सदर्पदुर्वृत्तजनौघमर्दनः । चराचराधीश्वर ! तावकं हरे ! कराग्रभागं भजतां सुदर्शनः ॥
गदा—सतां न तावद्विगदोन रोचसे तथापि वृद्ध्यै निजविग्रहश्रियः । त्वदीयमेतर्हकि पाणिपङ्कजं गृहीतकौमोदकि जायतां प्रभो ! ॥
ध्यानम्—कृताञ्जवः स्थासकवान् धृताम्बरः समाल्यवक्षाः प्रहसन्मुखः प्रभो । सकम्बुचक्रः सगदः सवारिजः सदासदारश्चिरमास्स्वचेतसि ॥
धूपः—उदारयोः शर्मणि शङ्खघण्टयोः समुल्लसन्मानसरोमहर्षयोः । नितान्तधीरे मधुरोद्धतात्मनि क्रमेण मेघाध्वनि धावति ध्वनौ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

असाधुशीलत्रिदशारिशास्तये दशावतारादिदशामुपेयुषे । इमं दशाङ्गं खलुधूपमादराद्दिशामि देवाय दशास्यघातिने ॥
दीपः—भजद्गते ! सृष्टवते सते स्वयं दृगास्यचित्तेन विरोचनत्रयम् । अहीनतल्पायनदीपवर्तितां गताय तुभ्यं वत ! दीपमर्पये ॥
नैवेद्यम्—परेश ! तुभ्यं विरसेन मृत्युनोपसिच्य लोकानदते चराचरान् । अवेद्याधम्ने निरवद्यकीर्तये प्रसद्यनैवेद्यमिदं निवेद्यते ॥
इदं हि तुभ्यं मुदितेन चेतसा समीति वृन्दारकवृन्दरक्षिणे । सितोपलाढ्यं विमलं कलंबुटं दिशामि वृन्दावनवासरागिणे ॥
इदं च तुभ्यं भजतार्तरक्षणव्रतानुरक्ताय सदैव जाग्रते । निवद्धसन्तानिकतामनोरमं व्यतारि पुंसे प्रतनाय गोपयः ॥
मदोन्नमत्कालियमौलिनर्तिने सते शरद्व्योमसदृक्षमूर्तये । इदं च तुभ्यं नवनीतमादराद्धियाप्रणीतं जगदीश ! दीयते ॥
समन्ततोऽन्तगतशर्करोत्करान् मिषीकणोद्भावितसौरभान्निमान् । अपापिताधायिपदाब्जभक्तये शुभानपूपान् भवते निवेदये ।
इमाश्च गव्याज्यविपाचिताः सिताघनद्रवप्लावनपूरितान्तराः । प्रतीतदावानलपान ! पीवरीरशानकारुण्यनिधान ! शष्कुलीः ॥
परिष्कृतव्यञ्जनराजिराजितं पुरस्कृतप्राज्यपयस्कमुज्ज्वलम् । घृताज्यभाराद्दधियुक्तमोदनं चिरेण नारायण ! साधु भुज्यताम् ॥
पटप्रघृष्टच्युतशर्करान्वितं प्रलोडितोपस्करताकृताश्रियम् । इमं रसालां रसनाग्रचारिणीं विधाय शौरे ! धिनुमामिकाश्रियम् ॥
नितान्तविख्यातकृतान्तकार्कशीपरिस्फुरत्त्रासवशीकृतान् जनान् । समुद्धरन् ! श्रीधर ! मुद्गमोदकानिमानदन् मोदय मामकं मनः ॥
अधःपतद्धर्मपरम्पराधराधराधरोद्धारधुरन्धर ! प्रभो ! । हसन् हसन् भक्तसतृष्णतां गतः कदुष्णमेतत्पिब माहिषं पयः ॥
इदं यथायुक्तिसमर्पितसाधितं समुल्लसत्काञ्चनभाजनस्थितम् । रमेश ! तुभ्यं निरपायशक्तये समर्पये भूरिकृपायपायसम् ॥
उपस्कृतं सैन्धवहिङ्गुराजिकोज्ज्वलानिशातुम्बुरुजम्भजीरकैः । गृहाण कुस्तुम्बुरुलेह्यमर्पितं लिहन् जहि श्रीश ! निजामजामिताम् ॥
कुचेलधानाकणमुष्टिचर्वणप्रदर्शितश्रद्धसमुल्लसद्गुरः । धृतेष्टगन्धं घृतयुक्तमोदनं पुनर्मनागद्धि जगद्धिता कृते ॥
विमोचनाङ्गीकरणानुकम्पितप्रभूतमाहेयनिरुद्धयौवत । समन्दहासादनुकूटमादरादशान शौरे ! घृतपूरमर्पितम् ॥
यथोचितोपस्करतामनोहरान् घनेन दध्ना परिपूरितोदरान् । ग्रसस्व सद्रक्षक ! पाकलोहितान् हितानुबन्धान् वटकान् समर्पितान् ।
विशिष्टनिम्बूकरसाद्युपस्कृतं निविष्टमाधुर्यसमिश्रसौरभम् । प्रपञ्चतापापह ! दीपितानलं लवैतदापानकमस्तुशीतलम् ॥
जगत्त्रयीकान्त ! कलम्बिकादिकान् सकैरवीकान् श्रितचन्द्रशूरकान् । अभीष्टपाकान् धृतवेसवारकान् शानशाकानरुचेर्निवारकान् ॥
ससैन्धवं पावकदीप्तिकर्मठं सरामठं जीरकरेणुरूपितम् । अलं पिब श्रीधर ! भक्तवत्सल ! प्रसद्य तक्रं निरवद्यमर्पितम् ॥
शनैः शनैर्भुङ्क्ष्व जगत्त्रयीपितर्हसन् हसन् वस्तु समस्तमर्पितम् । अनेहसं कञ्चन भासिकामतिः स्थिरासती ध्यायतु तावकं वपुः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ पुस्तकपूजनम् (पञ्चोपचारेण)

गन्धम्—श्रीमद्धरिकथासारश्रुतपुण्यप्रवर्द्धन । पुराणप्रवरं कृष्णं वै गन्धेनार्चयाम्यहम् ॥ पुष्पम्—द्वादशस्कन्धविश्रामरूप प्रेमविवर्द्धन ; नानाख्यानसमायुक्तं पुष्पाणि प्रददाम्यहम् ॥ धूपम्—वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ दीपम्—अज्ञानां तिमिरान्धानां दिवाकरसमप्रभ । नानाध्यायाकुलतनो दीपं तेऽद्य समर्पये ॥ नैवेद्यम्—पुराणप्रवरप्रेम्णा भगवद्रूपदर्शक । नैवेद्यं ते प्रयच्छामि संसारार्णवतारक ॥ स्तुतिः—धन्यं भागवतं शास्त्रं यस्मिन्भाति जनार्दन । धन्यास्ते वैष्णवा लोके ये शृण्वन्ति कथामिमाम् ॥ यत्रऽयत्र भवेद् भव्यं शास्त्रं भागवतं कलौ । तत्र तत्र हरिर्याति शिष्यैः साधं च नारद ॥ श्रीमद्भागवतं शास्त्रं विष्णुरूपं यदुच्यते । तदहं संप्रवक्ष्यामि विशेषेण पादादिजानुपर्यन्तं प्रथमं स्कन्धमुच्यते । उर्वादिकटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्धमेव च ॥ तृतीयं नाभिमेवैकं वेदैरुक्तं मनोहरम् चतुर्थमुदरं प्रोक्तं पृष्ठं कुक्षिसमन्वितम् ॥ तथैव पञ्चमस्कन्धं हृदयं समुदाहृतम् । बाहुद्वयं तथा कण्ठं षष्ठस्कन्धं समुच्यते ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमं मुखमुच्यते । चक्षुर्द्वयं च श्रीविष्णोरष्टमस्कन्धमुच्यते ॥ भृकुटीं च कपोलं च नवमस्कन्धमीर्यते । जीवरूपं च दशमं महाविष्णोः परन्तप ॥ सर्वेन्द्रियमनन्तारमन एकादश स्मृतम् । परमात्मस्वरूपश्च द्वादशस्कन्धमुच्यते ॥ एवं सर्वं भागवतं श्रीहरेरङ्गमुच्यते । रसिकास्तद्विजानन्ति नान्येषां यदमुत्र हि । श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमतम् ॥ तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम् । सुरपादपयोः स्कन्धैर्वै द्वादशभिर्युतः ॥ जगत्त्राणाय हरिणा श्रीमद्भागवतं परम् ॥ भुवि प्रकटितं गौरि कारुण्येन दयालुना ॥ तावत्संसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यतेऽज्ञानतः पुमान् । यावत्कर्णगतं नास्ति शुकशास्त्रकथाक्षरम् ॥

अथ व्यासपूजनादिकम्

गन्धम्—श्रीमद्व्यासाय विप्राय सौम्याय शुकरूपिणे । गन्धं समर्पयाम्यद्य नमस्तुभ्यं धरासुर ॥ अक्षतान्—पौराणिककथा शुद्धप्रसङ्गामोददायिनम् । श्रोतृणां मनसां तापं हर्त्तारं प्रणताक्षतम् ॥ पुष्पम्—हरिगाथामृतानन्ददायिने हृद्यमायिने । व्यासाय माल्यं च यच्छामि ऋतुपुष्पसमन्वितम् ॥ यथा परीक्षित्सदसि शुको व्यासः प्रकीर्तितः । तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् व्यासो भव कृपानिधे । ततः—व्यासाग्रे स्वस्थचित्तः सकुटुम्बो यजमान उपविश्य भागवतपरायणं शृणुयात् । समाप्तौ तु—कुण्डं स्थण्डिलं वा कृत्वा सविधिमण्डपं छायामण्डपं वा कुर्यात् ततः गणेशपूजनम्, स्वस्तिवाचनम्, षोडशमातृकापूजनम्, सप्तघृतमातृकापूजनम्, नान्दीश्राद्धम्, आचार्यादिवरणम्, अग्निस्थापनम् गृहस्थापनम्, कुशकण्डिकाकरणम्, ग्रहाहुतिं, गणेशाम्बिकाहुतिं च दद्यात् । प्रधानहोमारम्भे तु—'ओं नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा' इति मन्त्रेणाष्टोत्तरशताहुतिं हुत्वा पुनर्दशमस्कन्धश्लोकैर्जुहुयात् । ततः तर्पणं मार्जनं च कुर्यात् । प्रत्याध्यायान्ते—'ॐ इदं विष्णुरिति मन्त्रेण सघृतपूगीफलं जुहुयात् । शक्तिश्चेत्सर्वत्र चीराहुतिः प्रत्याध्यायं प्रतिस्कन्धं वा । अन्ते पुनर्द्वादशाक्षरमन्त्रेण हुत्वा पूजाद्युत्तराङ्गं सकलं कर्म परिसमाप्य व्यासं हेमासंहासने स्थापितं पुस्तकं च सम्पूज्य देशकालौ सङ्कीर्त्य—'मम कायिकवाचिकमानसिकसांसर्गिकज्ञाताज्ञातसमस्तकिल्बिषक्षयपूर्वकश्रीमद्भागवतमहापुराणस्य श्लोकसंख्याश्रवणसंख्यावेष्टनपटतन्तुसंख्याऽवच्छिन्नवर्षासादिसमस्तसुखभोगसिद्धये श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तज्योतिष्टोमातिरात्रादिफलावाप्तये श्रीलक्ष्मीनारायणानुग्रहसंपादनहेतवे अमुकगोत्रायामुकप्रवरायामुकवेदशाखाध्यायिनेऽमुकशर्मणे ब्राह्मणाय इदं श्रीमद्भागवतपुस्तकं विष्णुदैवतं तुभ्यमहं संप्रददे । दानप्रतिष्ठा—श्रीमद्भागवतपुस्तकदानप्रतिष्ठासाङ्गतासिध्यर्थं हिरण्यमग्निदैवतं तुभ्यमहं सम्प्रददे । एवं दानविधिं समाप्य यथाशक्ति मधुपायसैर्द्वादशब्राह्मणान् भोजयित्वा भूयसीं दद्यात्—कृतेऽस्मिन् सप्ताहादिपारायणकर्मणि न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थं ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्यश्च यथाशक्ति भूयसीं दक्षिणां

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दातुमहमुत्सृज्ये। ततः—कृतस्य श्रीमद्भागवतपरायणकर्मणः साङ्गतासिध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्तये च आचार्यादिभ्यो महर्त्विग्भ्यः सूक्तपाठकेभ्यो हवनकर्तृभ्यो देवयजनमागतेभ्यश्च च दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये। गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवस्तत्र गच्छ हुताशन॥ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादायमामिकाम्। इष्टकामसमृध्यर्थं पुनरागमनाय च॥ ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥ आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥ जपच्छिद्रं तपच्छिद्रं यच्छिद्रं शान्तिकर्मणि। सर्वं भवतु मेऽछिद्रं ब्राह्मणानां प्रसादतः॥ प्रमादत्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णस्यादति श्रुतिः॥ यस्थ स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां यति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥ पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः। त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो हरिः॥ अज्ञानात् विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम्। विपरीतं तु तत्सर्वं क्षमस्व परमेश्वर॥ अपराधसहस्राणि क्रियतेऽहर्निशं मया। दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर॥ चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च। हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः॥ कालेवर्षतु पर्जन्यः पृथ्वीशस्य शालिनी। देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥ सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम। तस्मात्कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर॥ 'ॐ कृष्णाय नमः'—इति द्वादशकृत्वः समुच्चार्य अनेन कर्मणा श्री योगीराज१ कृष्ण२ परमेश्वरः३ प्रीयताम्४।

१वासन्त ध्यानम्—श्रीमत्प्रफुल्लितवनेऽतिसुगन्धपूर्णे गुञ्जद्भ्रमद्भ्रमरकोकिलकाकलीके, खेलच्चलन्मलयमारुतदीप्तकामे कृष्णं स्थितं परमशक्तियुतं रमाध्वम्॥ उद्भिन्नयौवनवतीमरविन्दनेत्रां रक्ताम्बरामरुसकोमलपाणिपादाम्। राधामखण्डशरदिन्दुमनोहरास्यां कृष्णप्रियां गुणवतीं हृदिमावयध्वम्॥ मृदुभृगमदगर्भैः केसरैरञ्जितं सत्रवतनुतरवासोयुग्ममङ्गेदधानम्। कुसुमरचितनानाभूषणैरोचमानं सहसितकृतराधालिङ्गनं कृष्णमीडे॥ ग्रैष्मं ध्यानम्—मेघसारकृतिवन्दिरे गन्धसाररचितारेन्दिरे। पुष्पसारजलसिक्तकन्दरे माधवं स्मरत मन्दिरे॥ गोपिकाशतसहस्रलालितं चारुचामरतरङ्गवीजितम्। फुल्लपद्मसरसाविहारिणं माधवं स्मरत चित्तहारिणम्॥ वार्षिकध्यानम्—क्रीडाकुञ्जे क्रीडद्विहगे प्रियशाखापुष्यत्पुष्पा भक्तमयूरध्वनिजुष्टा। तत्सम्बद्धा चन्दनदोला धृतमाल्या गुञ्जद्भृङ्गा काञ्चनरश्मिः सुभगेव॥ तत्रासीनं गोपकुमारं घनशीलं राधाविद्युद्द्योतितगात्रं स्मितवक्त्रम्। पूर्णानन्दं छत्रितदिव्यारुणवस्त्रं ध्यायेदेवं रहसि रहस्यं रसयन्तम्॥ अन्योन्यं स प्रापिवाहू गायन्तौ, श्लिष्टात्मानौ घनरसतृप्तौ प्रहसन्तौ, दिव्यैः पुष्पैर्चितगात्रौ रतिकुञ्जादागच्छन्तौ युगलकिशोरौ चिन्तयतः॥

शारदध्यानम्—अनेकगोपबालकैस्तथैव गोभिरावृतं गवांखुरोत्थरेणुभिर्विराजमानकुन्तलम्। स्फुरद्विलोलकुण्डलं महार्हरत्नकङ्कणं शरत्सुधाकरानगनं स्मरामि नन्दनन्दम्॥ सुगन्धिधूपमण्डलैर्ज्वलत्प्रदीपमालया, सहस्रचन्द्रकान्तिभिः सुवर्णदण्डचामरैः। सतालगीतवादनैर्विचित्रपुष्पवृष्टिभि जयस्वनेश्चपूजितं स्मरामि नन्दनन्दनम्॥ २॥ हेमन्तं ध्यानम्—प्रियकदम्बतलाश्रयमुन्स्मितं मुदितलालितगोपगवावृतम्। चपलवत्सगणैश्चपलपरं मनो नवनीतकरं हरिम्॥ मसृणमेचककुञ्चितकुन्तलं तरलकुण्डलमम्बुजलोचनम्। असितकम्बलयष्टिविराजितं भज मनः सततं यदुनन्दनम्॥ २॥ शैशिरध्यानम्—उदितमङ्गलकाञ्चनमन्दिरे गगनतुल्यवितानिते। मृदुसुखास्तरणेऽगुरुधूपिते हततमोमणिदीपसुदापिते॥ १॥ कनकारत्नकृते शयने शुभे शशिनिभेमणिविन्दुविचित्रते। सितमनङ्गशतादपिसुन्दरं मनसि गोपकिशोरममुं स्मरेत्॥ तारकासदृशगोपकाचितं पूर्णकाममतिकान्तविग्रहम्। हासविभ्रममनोहरं नवं कृष्णचन्द्रममले हृदि स्मर॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ कमना परक संकल्पों का संकलन ❀

अनेकजन्मसञ्चिताखिलदुष्कृतनिवृत्तिपुरस्सरैहिकाध्यात्मादित्रिविधतापकायिकादित्रिविधपापापनोदनार्थं दशाश्वमेधयज्ञजन्यपुण्यसम्यगिष्टराजसूययज्ञसहस्रपुण्यसमपुण्यचन्द्रसूर्यग्रहणकालिकबहुब्राह्मणसंप्रदानकसर्वसस्यपूर्णसर्वरत्नोपशोभितमहीदानपुण्यप्राप्तये एतत्पुस्तकावस्थिताक्षरसंख्यवर्षसहस्रावच्छिन्नस्वर्गाधिकरणवासतदुत्तरैस्तत्पुस्तकावस्थिताध्यायसमसंख्यकल्पवैकुण्ठैश्वर्यानुभवपुरस्सरैतत्पुस्तकस्कन्धसमकल्पकोटिगोलोकवासकामोऽमुकगोत्रामुकप्रवरामुकशर्मब्राह्मणावदनारविन्दाच्छ्रीकृष्णवाङ्मयमूर्तीभूतं श्रीमद्भागवतमष्टादशपुराणप्रकृतिभूतं श्रीगोविन्दप्रीत्याविर्भावकामोऽनेकश्रोतृश्रावणपूर्वकं यथासंभवदिनाद्यैः श्रोष्यामि ।

सन्ततीच्छया श्रवणे–अतीतानन्तजन्मसंपादितदुष्कृतपरिपाकवशप्राप्तजन्माङ्गक्रूरग्रहसूचितपत्नीवन्ध्यात्वकाकवन्ध्यात्वमृतवत्सात्वस्रवद्गर्भत्वादिरूपसन्ततिप्रतिबन्धकदोषनिवृत्तिकामः ।

सद्गतीच्छया—स्वीयानन्तदुष्कृतपरिपाकवशाप्तनानाविधदुःखक्षेत्रयोनीनां पितृणामन्यस्य वा कस्यचित्प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकस्वर्गादिलोकप्राप्तिः ।

रोगनिवृत्यर्थं तु–प्राग्जन्मकृतब्रह्महत्यादिपातकोपलब्धयक्ष्मादिरोग निवृत्यर्थम् ।

ग्रहाद्यरिष्टत्वे–जन्मपत्राद्यनुसारेण वर्षमासदिनविचारवशेन वर्षमासदिनविचारवशेन दशान्तर्दशोपदशासुविषमस्थानस्थग्रहजन्यदुष्टफलदूरीकरणपूर्वकशुभस्थानस्थग्रह जन्यसत्फलावाप्तिकामः ।

राजा तु— राज्याश्वगोशालादिसमृद्धिपुरस्सरमुद्गगोधूमव्रीहियवचणकाद्यन्नस्वर्णरूप्यमणिमुक्तादिरत्नाढ्यकोशसमृद्धिपूर्वकषड्गुणसप्तप्रकृतित्रिशक्तिसंयुतात्मनः कल्याणार्थं शत्रुजयलब्धातीवयशोधाराप्रजापालनाद्यनेकगुणावाप्त्यर्थं च । देखिये—वंशीधरी भागवत ।

❀ अथ–द्रव्यदेवताः ❀

अभयं सर्वदेवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता । कन्यादासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः । प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदेवतः । तथा चैकशफं सर्वं कथितं यमदैवतम् । महिषश्चतथा याम्य उष्ट्रो वै नैरृता भवेत् । रौद्री धेनुर्विनिर्दिष्टा छागमाग्नेयमादिशेत् । मेषं तु वारुणं विद्याद् वराहं वैष्णवं तथा । आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदेवताः । जलाशयानि सर्वाणि वारिधानीं कमण्डलम् । कुम्भं च करकं चैव वरुणानि निबोधत । समुद्रजानि रत्नानि वारुणानि द्विजोत्तमाः । आग्नेयं कनकं प्रोक्तं सर्वलोहानि चाप्यथ । प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपि च द्विजाः । ज्ञेयाश्च सर्वगन्धास्तु गान्धर्वा वै विचक्षणैः । बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्या ज्ञेया रसास्तथा । पक्षिणस्तु तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्तिताः । विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपकरणानि च । सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकादीनि पण्डितैः । सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां विश्वकर्मा तु दैवतम् । द्रुमाणामथपुष्पाणां शाकैर्हरितकैः सह । फलानामपि सर्वेषां ज्ञेयो देवो वनस्पतिः । मत्स्यमांसे विनिर्दिष्टे प्राजापत्ये गजस्तथा । छत्रं कृष्णाजिनं शय्यां रथमासनमेव च । उपानहौ तथा यानं यच्चान्यत्प्राणिवर्जितम् । सर्वमाङ्गिरसत्वेन प्रतिगृहीतमानवः । शूरोपयोगि यत्सर्वं विज्ञेयं सर्व [विश्व] दैवतम् । गृहं च शक्रदेवत्यं [सर्वदेवत्यं] यदनुक्तं द्विजोत्तमाः । तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्वं वा द्विजसत्तम ः । ॥ ७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गोपालोंके नाम—

कृष्णलीलामें—	गौरलीलामें—
श्रीदाम	अभिराम ठाकुर
सुदामा	सुन्दर ठाकुर
वसुदामा	धनञ्जय पण्डित
सुवल	गौरीदास पण्डित
महावल	कमलाकर पिपलाई
सुवाहु	उद्धारणदत्त (स्वर्ण वणिक्)
महावाहु	महेश पण्डित
दाम	पुरुषोत्तम नागर
स्तोक कृष्ण	ठाकुर पुरुषोत्तम
अर्जुन	परमेश्वर ठाकुर
लवङ्ग गोपाल	कनाई ठाकुर या कृष्णदास
मधुमङ्गल	श्रीधर
	उप गोपालों का गण—
सुवल	हलायुध पण्डित
वरूथप	रुद्र पण्डित
गन्धर्व	मुकुन्दानन्द पण्डित
किङ्किणी	काशीश्वर पण्डित
अशुंमान्	ओझावनमाली दास
भद्रसेन	सप्तठाकुर

कृष्णलीलामें—	गौरलीलामें -
वसन्त	मुरारीमहान्ति
उज्वल	गङ्गादास
कोकिल	गोपाल ठाकुर
विलासी	शिवाई
पुण्डरी	नन्दाई
चौसठ महन्त—	
नारद	श्रीवास
हनुमान	मुरारी गुप्त
अंगद	पुरन्दर पण्डित
सुग्रीव	गोविन्दानन्द
वसिष्ठ	गंगादास
विभीषण	रामचन्द्रपुरी
ऋचीकपुत्र [ब्रह्मा]	हरिदास ठाकुर
वेदव्यासमुनि	वृन्दावनदास
संकर्षण व्यूह	मीनकेतन रामदास
प्रद्युम्न व्यूह	श्रीरघुनन्दन
अनिरुद्ध व्यूह	चक्रेश्वर पण्डित
ब्रह्मा	गोपीनाथाचार्य
शुकदेव गोस्वामी	वल्लभ भट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गरुड	गरुड पण्डित	माधवी	माधवाचार्य
शंखनिधि	आचार्य रत्न	सुकेशी	मकरध्वज विद्यावाचस्पति
दुर्वासा	जगन्नाथ आचार्य	मधुरेक्षणा	बलभद्र भट्टाचार्य
इन्द्रद्युम्न	प्रतापादित्य	कलकण्ठी	रामानन्द वसु
चन्द्रकान्ति गन्धर्व	गदाधर दास	नान्दीमुखी	सारंग ठाकुर
विश्वामित्र	वनमाली आचार्य	सुकण्ठी	सत्यराजखाँ
अर्जुन	राय रामानन्द	मधुमती	नरहरि सरकार
भागुरी	देवानन्द पण्डित	वीरा	शिवानन्दसेन
चन्द्रावली	सदाशिव	वृन्दादेवी	मुकुन्ददास
भद्रा	शंकर पण्डित	कलावती	गोविन्दघोष
सन्ध्या	दामोदर पण्डित	श्रीप्रेममञ्जरी	भृगर्भठाकुर
ललिता	ध्रुवानन्द ब्रह्मचारी	लीलामञ्जरी	लोकनाथ गोस्वामी
विशाखा	स्वरूप दामोदर	रामोल्लासा	माधवघोष
चित्रा	वनमाली कविराज	गुणतुङ्गा	वासुघोष
चम्पकलता	राघव गोसाईं	रागरेखा	शिखि महान्ति
तुङ्गविद्या	प्रबोधानन्द सरस्वती	यज्ञपत्नी	शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी
इन्दुरेखा	कृष्णदास ब्रह्मचारी	चन्द्रललिता	जगदीशपण्डित
रंगदेवी	गदाधर भट्ट	रत्नावली	भगवानाचार्य
सुदेवी	अनन्ताचार्य महन्त	गुड़चूड़ा	परमानन्द सेन
रत्नरेखा	कृष्णदास (कुलीन ब्राह्मण)	कर्पूरमञ्जरी	रमाई ठाकुर
धनिष्ठा	राघव पण्डित	श्याममञ्जरी	द्विजहरिदास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कामलेखा	छोटे हरिदास
काममञ्जरी	नन्दब्रह्मचारी
कलभाषिणी	वाणीनाथ पण्डित
कलकण्ठी	चिरञ्जीवदास
खञ्जनी	सुन्दरानन्द ठाकुर
नीलकान्ति	नवाई होड
कलापिनी	जगदानन्द
सुकेशी	कंसादिसेन

बत्तीस उप महन्त—

कलावती	सुलोचन
सौरसेनी	भागवताचार्य
इन्दिरा	श्रीजीव पण्डित
मनोहरा	कविचन्द्र
कात्यायनी	श्रीकान्तसेन
वंशी	वंशीदास
कुब्जा	काशीमिश्र
मालती	यदुनाथाचार्य
कमला	मुकुन्दठाकुर
चन्द्रिका	परमानन्दगुप्त
सुधीरा	माधवाचार्य
कस्तूरी मञ्जरी	कृष्णदास कविराज
नागरी	द्विजशुभानन्द
सुरङ्गिणी	श्रीधर ब्रह्मचारी
कलहंसी	रघुनाथ द्विज
सुमुखी	जगन्नाथ
शशिमुखी	सुबुद्धि मिश्र
सुरङ्गिणी	श्रीहर्ष
सम्मोहनी	कृष्णदास सरबेल
विलासिनी	श्रीसुर पण्डित
गोपालिका	गोपालाचार्य
गौरशान्ति	यदुनन्दन
विमलदासी	श्रीरामठाकुर
सुशीला	गोविन्ददत्त
विद्युल्लता	विहारी कृष्णदास
रत्नावली	हरिदास होड़
चित्राङ्गी	श्रीनाथ पण्डित
सुकपाणी	गालिम जगन्नाथ
आह्लादिनी	पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी
सुखमयी	मधु पण्डित
रसवती	काशीश्वर
प्रेमवती	शङ्करारण्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अष्ट सखी—

ललिता	श्रीरूप गोस्वामी
विशाखा	श्रीशमानन्दराय
सुमित्रा	श्रीशिवानन्दसेन
चम्पकलता	श्रीराघव पण्डित
रङ्गदेवी	श्रीगोविन्द घोष
सुन्दरी	श्रीवसुघोष
तुङ्गदेवी	श्रीमाधवघोष
इन्दुरेख	श्रीगोविन्दानन्द

सुलोचना	रामचन्द्र
मन्दोदरी	गोविन्द
गोपाली	कर्णपुर
सुचण्डिका	नरसिंह

नव मञ्जरी—

श्रीरूपमञ्जरी	श्रीरूपगोस्वामी
जीवमञ्जरी	श्रीसनातनगोस्वामी
श्रीअनङ्गमञ्जरी	गोपालभट्टगोस्वामी
श्रीरमञ्जरी	श्रीरघुनाथदास गोस्वामी
श्रीविलासमञ्जरी	श्रीजीव गोस्वामी
प्रेममञ्जरी	श्रीभूगर्भ गोस्वामी
नागमञ्जरी	श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी
लीलामञ्जरी	श्रीलोकनाथ गोस्वामी
कस्तूरीमञ्जरी	श्रीकृष्णदास गोस्वामी

अष्ट कविराज—

सरस्वती	भगवान्
बाला	वल्लभदास
सुतारा	गोकुल
कस्तूरी	कृष्णदास

—श्रीदौलतरामगौड़

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ प्रथमोऽध्यायः ❋

[भगवान् द्वारा पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव और देवकी का विवाह, और आकाशवाणी सुन, कंसके द्वारा देवकी के छः पुत्रोंको मार डालना]

राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे सन्तोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी, आपने चंद्रवंश और सूर्यवंशका वर्णन किया तथा इन दोनों वंशोंमें उत्पन्न हुए राजाओंके विचित्र चरित्रोंको भी आपने सुनाया ॥१॥ और आपने यह भी सुना दिया कि महाराज यदु कितने बड़े धार्मिक थे। अब आप यह विस्तारसे बतलाइये कि इन यदुके वंशमें बलरामके साथ अवतार धरकर भगवान कृष्णने कौन कौन सी लीलाएँ कीं ॥ २ ॥ भगवान्‌का वह गुणानुवाद इतना सरस है कि मुक्त लोग भी उसका गान करते नहीं थकते, मुमुक्षुओंके लिए वह संसार रोगका महौषध और वह इतना श्रुति मधुर एवं मनोमोहकारी है कि विषयी भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। ऐसे गुणानुवादसे भला हत्यारेके अतिरिक्त ऐसा और कौन होगा जिसको विराग हो ॥ ३ ॥ और कृष्ण

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥ राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥१॥
यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ॥ कृतवा-
न्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्वि-
रज्येत विना पशुघ्नात् ॥४॥ पितामहा मे समरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः
॥ ५ ॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ॥ जुगोप कुक्षिंगत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥
वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो
रामः सङ्कर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः

तो हमारे कुलदेवता हैं। हमारे पितामह पाण्डव लोगोंने, जो कौरवोंके उस अपार सैन्यसागरको, जो कि देव विजयी भीष्मादिरूपी तिमिङ्गिलोंसे बड़ा भयानक हो रहा था, पार कर लिया उसमें बस कृष्णकी कृपा ही एकमात्र कारण थी ॥ ४ ॥ दूसरी बात यह है कि उन्हीं भगवान्‌ने मेरे इस शरीरको, जो कि कुरुवंशका एकमात्र अंकुर था किन्तु माताके गर्भमें ही अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध हो रहा था, अपने चक्रसे बचाया था॥५॥ भगवन्, योगमायासे मनुष्यका रूप धारण करनेवाले उन्हीं भगवान्‌की लीलाओं को आप मुझे सुनाइये। वह परमात्मा प्राणियोंके भीतर जीवरूपसे एवं बाहर कालरूपसे वर्तमान हैं और अज्ञानियोंको जन्म-मरणके चक्रमें डालते हैं एवं विदेहियोंको मुक्ति देते हैं ॥ ७ ॥ आप अभी कह चुके हैं कि बलराम रोहिणीके पुत्र थे और फिर उन्हें देवकी पुत्र बतलाते हैं। किन्तु बिना दूसरा जन्म लिए बलराम देवकीके गर्भमें कैसे आ सकते हैं ॥ ८ ॥ भगवान् कृष्ण मथुरा छोड़कर व्रज

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्यों चले गये थे ? नन्द आदि परिजनोंके साथ उन्होंने कहाँ वास किया था ॥ ९ ॥ व्रजमें और मथुरामें भगवान्‌ने कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं ? उन्होंने अपने मामा कंसको जो मार डाला यह तो बड़ा अनुचित प्रतीत होता है ॥ १० ॥ भगवान् मानव शरीर धारणकर यादवोंके साथ कितने वर्ष तक द्वारकामें रहे ? उनकी स्त्रियाँ कितनी थीं ॥ ११ ॥ आप सर्वज्ञ हैं, अतः मेरी पूछी इन बातोंको बतलाइये और उन बातोंको भी बतलाइये जिन्हें मैंने पूछा नहीं है किन्तु जो मेरे जानने योग्य है ॥ १२ ॥ यद्यपि मैंने अन्न जलका परित्याग कर दिया है फिर भी भूख प्यास मुझे नहीं सताती, इसलिए कि मैं आपके मुखकमलसे निकले हुए भगवत्कथारूपी अमृतका पान कर रहा हूँ ॥ १३ ॥ सूतजीने शौनकजीसे कहा कि शुकदेवजीने राजा परिचित्के इस प्रश्नको बड़ा सराहा और कृष्णकी उन लीलाओंको कहना प्रारम्भ किया, जिनसे कि कलियुगके सारे दोष ध्वस्त हो जाते हैं ॥१४॥ श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्

सार्धं कृतवान्सात्वतांपतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धातदर्हणम् ॥ १० ॥ देहं मानुष-माश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् । वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥ नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ॥ प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥ वासुदेव कथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ॥ उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥१८॥ ब्रह्मा यदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ॥ जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ पुरुषं पुरुष-सूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु

से कहा कि यह बड़ा ही अच्छा हुआ कि तुम्हारी बुद्धि भगवान्‌की कथामें अनुरक्त हो गयी है ॥ १५ ॥ गङ्गाकी तरह श्रीकृष्णकी कथा वक्ता, श्रोता प्रष्टा, इन तीनोंको पवित्रकर देती है ॥ १६ ॥ उन दिनों दैत्यगण राजाओंके रूपमें अतीवर्ण थे । उनकी सेनाओंके भारसे पृथ्वी बड़ी पीड़ित हो गई थी वह गौका रूपधर कर रोती बिलखती ब्रह्माके पास पहुँची और उन्हें अपना दुःखड़ा सुना दिया ॥ १७, १८ ॥ ब्रह्मा इसे सुनकर पृथ्वी, शङ्कर देवताओंको साथ ले क्षीरसागरके तटपर जा पहुँचे ॥ १९ ॥ वहाँ समाधिस्थ होकर पुरुषसूक्तके द्वारा उन्होंने भगवान्‌का स्तवन किया ॥ २० ॥ समाधिमें ही उन्हें अलौकिक वाणी सुनाई पड़ी । उन्होंने देवताओंसे कहा तुमलोग मुझसे भगवान्‌की वाणीको सुन लो और तुरन्त ही वैसा अनुष्ठान करो ॥ २१ ॥ भगवान् अन्तर्यामी हैं, उन्होंने पृथ्वीकी पीड़ा पहलेसे ही परख ली है । तुम लोग अपने-अपने अंशसे यदुकुलमें अवतार धारण करो और तब तक वहाँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहो जब तक कि भगवान् पृथ्वीके भारको नष्ट करते हुए पृथ्वी पर विचरें ॥२२॥ वसुदेवके घर में साक्षात् परब्रह्म अवतार लेंगे अतः उनकी प्रसन्नताके लिए देवपत्नियाँ भी वहाँ जन्म लें ॥ २३ ॥ भगवान्के अंश, हजार मुखोंवाले शेषनाग उनकी प्रसन्नताके लिए पहले ही अवतार ले लेंगे ॥ २४ ॥ और भगवान्की माया भी, जिससे सारा संसार मोहित हो रहा है, भगवान्की आज्ञासे उनकी सहायताके लिए अवतीर्ण होगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेव महाराजने राजा परीक्षित्से कहा कि इस तरह दक्षादि प्रजापतियोंके पति ब्रह्मा देवताओंको आदेश देकर तथा पृथ्वीको दिलासा देकर अपने लोकको चले गये ॥ २६ ॥ उन दिनों यदुवंशियोंका राजा शूरसेन मथुरामें वासकर वहाँका तथा शूरसेनदेशका राज्य करता था ॥ २७ ॥ तभीसे सभी यादवराजाओंकी राजधानी मथुरा हो गयी, जहाँ कि नित्य ही भगवान्का वास बना रहता है ॥ २८ ॥ कभी वसुदेव विवाह कर प्रस्थान करनेके लिए अपनी नववधू देवकीके साथ रथपर

तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥ स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥२२॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवानपुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलाऽनन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥२४॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् ॥ आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥२५॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥ शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् ॥ माथुराञ् शूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साभूत्सर्वयादवभूभुजाम् ॥ मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिवसुदेवः कृतोद्वहः ॥ देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ॥ अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥३१॥ दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलङ्कृते ॥ दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां

सवार हुए ॥ २९ ॥ उग्रसेनका लड़का कंस बहिन देवकीके स्नेह परवश हो स्वयं रथ हाँकने लगा ॥ ३० ॥ देवकको अपनी पुत्रीपर बड़ा स्नेह था। उसने सोनेकी मालाओंसे भूषित चार सौ हाथी, पन्द्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ और भूषणोंसे सज्जित दो सौ दासियाँ उसे दहेजमें दिया ॥ ३१, ३२ ॥ वर-वधूके प्रस्थानके समय शंख, तुरही, मृदङ्ग और नगारे आदि मङ्गल वाद्य एक साथ बज उठे ॥ ३३ ॥ रास्तेमें, जब कि कंस रथ हाँक रहा था, उसे सम्बोधनकर एक आकाशवाणी हुई—मूर्ख, जिसे रथपर बिठाये जा रहे हो उसका आठवाँ लड़का तुम्हे मार डालेगा ॥ ३४ ॥ यह सुनकर वह कुलकलङ्क बहनकी चोटी पकड़ उसे मारनेको तैयार हो गया ॥ ३५ ॥ वसुदेवने उसे उस नीच कर्म पर उतारू देख समझाते हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा-तुमसे तो भोजवंशकी शोभा बढ़ी है और बड़े बड़े शूर-वीर भी तुम्हारी धाक स्वीकार करते हैं, फिर तुम बहनकी हत्या सरीखे कर्म पर कैसे उतारू हो गये ॥ ३७ ॥ तुम वीर हो, तुम्हें स्त्रियोंपर हाथ न उठाना चाहिये। मृत्यु तो जन्मके साथ ही पैदा होती है, वह ध्रुव सत्य है, आज नहीं तो सौ वर्षके बाद तो मरना होगा ही ॥ ३८ ॥ [दूसरी बात यह है कि इस देहके नष्ट हो जानेपर यदि पुनः दूसरे देहकी प्राप्ति न होती तो पापकर लेना संगत भी होता, परन्तु यह बात है ही नहीं] आत्मा तो नित्य है, इस देहके नष्ट होनेपर तत्त्वण वह दूसरे देहको प्राप्तकर लेता है ॥ ३९ ॥ बल्कि सत्य तो यह है कि जैसे चलनेवाला व्यक्ति एक पग आगे जमाकर दूसरा पग हटाता है और जैसे जोंक अगले तृणको पकड़ कर ही पिछले तृणको छोड़ता है उसी तरह आत्मा भी दूसरे शरीरको प्राप्त कर ही पहले शरीरका परित्याग करता है ॥ ४० ॥ प्राणी जाग्रत अवस्थामें जो कुछ देखता सुनता है उसका संस्कार उसके मन पर जम जाता है अतः वार-वार उसीके सोचते रहनेसे स्वप्नमें भी वही देखता है तथा सोचने लगता है कि मैं वही हूँ, और तब उसे जाग्रत देहकी याद भी नहीं आती उसी तरह

वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत ॥ ३५ ॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच ॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते । अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥ देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति । यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४० ॥ स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः । दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्प्रपद्यते तत्किमपिह्यपस्मृतिः ॥४१॥ यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥४२॥ ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥ तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ॥ हन्तुं नार्हसि कल्याणी-

आत्मा भी देहान्तरको प्राप्तकर पहले देहको छोड़ देता है ॥ ४१ ॥ मृत्युके समय प्राणी जिस किसी देवादि योनिका स्मरण करता है, वह मरकर उसी योनिको प्राप्त हो जाता है ॥४२॥ सूर्य-चन्द्र आदि हवाके झोंकेसे कभी हिलते डुलते नहीं, किन्तु जलमें पड़े उनके प्रतिबिम्बके हिलने-डुलनेसे वह भी हिलते-डुलते प्रतीत होते हैं, उसी तरह प्राणी अविद्याके गुणोंमें आसक्त होनेके नाते अपने स्वरूपको नहीं पहिचानता और मृत्युसे डरने लगता है। ४३ ॥ अत जिन्हें अपना कल्याण इष्ट हो उन्हें किसीसे भी द्रोह न करना चाहिये, नहीं तो उन्हें दोनों लोकमें भीत रहना पड़ता है ॥ ४४ ॥ यह तुम्हारी बहन बहुत छोटी-सी है, डरसे अचेत सी हो गयी है। तुम दीनवत्सल हो, तुम्हें तो इसपर बिलकुल हाथ न उठाना चाहिये ॥ ४५ । श्रीशुकदेवजीने कहा—ईस तरह साम और भेद नीति से वार वार समझाये जाने पर भी वह नृशंस अपने सङ्कल्पसे न डिगा, वह तो राक्षसोंकी लीकका अनुसरण कर रहा था

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ४६ ॥ वसुदेवजी कंसका आग्रह देख देवकीके प्राण बचानेके और उपाय सोचने लगे ॥ ४७ ॥ जहाँ तक बुद्धिकी शक्ति हो वहाँ तक मृत्युको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इतने पर भी सफलता न मिली तो इसमें प्राणीका दोष नहीं रहता ॥ ४८ ॥ सो देवकी के गर्भसे उत्पन्न पुत्रको इसे दे देनेका वचन दे इस दुःखियाको छुड़ा लेना चाहिये। जब पुत्र होंगे तो देखा जायेगा। हो सकता है तब तक कंसकी मृत्यु हो जाय, और यदि वह स्वयं न भी मरा तो मेरे पुत्रके हाथोंसे मारा जायगा, भला विधितके विधानको कौन टाल सकता है ॥ ४६,* ५० जङ्गलमें आग लगनेपर अदृष्टवश जैसे कुछ समीपके वृक्ष बच जाते हैं और दूरके वृक्ष जल जाते हैं, उसी तरह भाग्यवश ही प्राणीका जन्म और मरण होता है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार यावन्मति सोच-विचारकर वे कंसकी तारीफ करने लगे ॥ ५२ ॥ उनका मन तो बड़ा खिन्न हो रहा था, पर कंसको विश्वास दिलानेके लिए उन्होंने हँसते हुए उस नृशंससे

मिमां त्वं दीनवत्सलः ॥४५॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ॥ न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६॥ निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥ मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥४८॥ प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ॥ सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥४९॥ विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ॥ उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥५०॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ॥ एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥५१॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥५२॥ प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥५३॥ वसुदेव उवाच। न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक् ॥ पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥५४॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निवृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् । वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद् गृहम् ॥ ५५ ॥ अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ॥ पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥ किं दुःसहं न साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ॥ किमकार्यं

कहा। ५३ ॥ अजी, आपको देवकीसे तो कोई डर है नहीं, डर तो इसके पुत्रोंसे है, सो मैं उन पुत्रोंको आपके हवाले कर दूँगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि कंसने वसुदेवको सत्यवादी समझ देवकीके मारनेका इरादा छोड़ दिया। वसुदेव उसपर बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसाकर घर लौटे । ५५ ॥ सर्वदेवतामयी देवकीके गर्भसे समय-समयपर आठ वर्षों में आठ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ वसुदेवने पहले पुत्र कीर्तिमान्‌को वचन सत्य करनेके लिए बड़े कष्टसे कंसको दे दिया ॥ ५७ ॥ सज्जन धर्मके लिए बड़े-बड़े कष्टोंको

*दृष्टान्त—होइ हैं सोई जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावहिं साखा॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनायास झेल लेते हैं, वह तो एक भगवान्‌को ही तत्त्व मानते हैं, अतः और सारी वस्तुओंका त्याग कर सकते हैं। पर नीच तो कोई भी कुकुर्म कर सकता है ॥ ५८ ॥ कंस वसुदेव की उस सत्यावादिता और सुख-दुःखमें समता देखकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ और हँसते हुए कहा ॥ ५९ ॥ इस बच्चेको लौटा ले जाइये, मुझे तो इससे भय है नहीं, मुझे तुम्हारी आठवीं सन्तानसे खटका है ॥ ६० ॥ वसुदेवजी उसे लेकर लौट आये, किन्तु कंस असत्यवादी था अतः उसकी बातपर उन्हें विश्वास न जमा ॥ ६१ ॥ नारद भगवान्‌ने कंसके उस कार्यको अवतारमें बाधक समझ उसे समझाया कि नन्द आदि गोप और गोपियों, वसुदेव आदि वृष्णिवंशी तथा यदुकुलकी स्त्रियाँ, देवकी एवं इनके परिजन और तुम्हारे आश्रयमें रहनेवाले अक्रूर आदि सभी प्रायः देवस्वरूप हैं। इन लोगोंने दैत्योंका नाशकर भूमिके भारके उतारनेका बीड़ा उठाया है ॥ ६२-६४ ॥ नारदजोके चले जानेपर कंसने यादवोंको देवता और

कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ॥ कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥
प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ॥ अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः ॥
नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥६१॥ नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः
॥६२॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ॥ ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः ॥
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥
देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ॥ जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ घ्नन्ति ह्यसुतृपो
लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥ आत्मानमिह सञ्जातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥
उग्रसेनं च पितरं च यदुभोजान्धकाधिपम् ॥ स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥६९॥ इति श्रीम० द० श्रीकृष्णवतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

देवकीके पुत्रको विष्णु समझा ॥ ६५ ॥ तब वह देवकी और वसुदेवको कड़ी-बेड़िया डाल जेलमें बन्दकर दिया और उनके प्रत्येक पुत्रको विष्णु समझकर उत्पन्न होते ही मारने लगा ॥ ६६ ॥ लोभी और प्राणोंका मोह करनेवाला राजा मार्गका कण्टक समझ माता, पिता, भाई एवं मित्रोंकी भी हत्या कर देता है ॥ ६७ ॥ कंस यह जानकर कि पहले जन्नमें वह कालनेमि था और विष्णुके हाथसे मारा गया था, यादवोंसे विरोध करने लगा ॥ ६८ ॥ अपने पिता उग्रसेनको, जो कि यादवों, अन्धकों एवं भोजवंशियोंके राजा थे, कैदकर स्वयं शूरसेन देशका राजा बन बैठा ॥ ६९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रथम अध्यायका सार—राजा परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीसे श्रीकृष्णकी पूरी सरस लीलाओंके सुननेकी प्रार्थना की। इससे शुकदेवजी परम प्रसन्न हुए, इसलिए कि वे महाभागवत थे और श्रीकृष्ण चर्चामें ही उन्हें अत्यन्त आनन्द मिलता था। पहले तो उन्होंने परीक्षित्‌को उसके इस प्रश्नके लिये बड़ा धन्यवाद दिया फिर उन्होंने कथा प्रारम्भकी किस तरह दैत्योंके बोझसे पीड़ित पृथ्वी गौका रूप धरके ब्रह्माके पास गयी, किस तरह ब्रह्माने विष्णुके पास जा आकाशवाणी सुनी और उनके आदेशसे किस तरह देवगणने यदु आदि वंशोंमें अवतार लिया। उनदिनों उग्रसेनकी राजराधानी मथुरा थी। उनके पुत्रका नाम कंस था, किन्तु एक समय वसुदेवजीने अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकीको रथपर बिठाये घर लौटे जा रहे थे। बहनके रहनेसे कंसने स्वयं रथ हाँकना शुरु कर दिया। चरणमें आकाशवाणी हुई-मूर्ख, तुम जिसके रथ को हाँके जा रहे हो उसीकी आठवीं सन्तान तुझे मार डालेगी।' यह सुनते ही वह देवकीको मारनेके लिए तैयार हो गया। वसुदेवके बहुत समझानेपर और यह बतलाने पर कि आपको डर देवकीसे नहीं है किन्तु उसके पुत्रोंसे है अतः इसे मत मारो, बच्चोंको मैं तुम्हें सौंप दूँगा कंस मान गया। जब वसुदेवको सन्तान हुई, उन्होंने अपने वचनके अनुसार उसे कंसके हवाले कर दिये। कंसने निर्दयताके साथ बच्चोंको मारना शुरू कर दिया। देवकी वसुदेवको कैद कर लिया। स्वयं अपने पिता उग्रसेनको कैदकर शूरसेन देशका राज्य करने लगा।❀

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

[देवकीके सातवें गर्भको रोहिणीके गर्भमें डाल आना और भगवान्‌को देवकीके गर्भमें आना]

श्री शुकदेवजीने परीक्षित्‌से कहा—महापराक्रमी कंसने प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक एवं बाणासुर तथा भौमासुर जैसे असुर राजाओंके साथ-साथ जरासन्धका प्रश्रय पाकर यदुवंशियोंका विनाश करना प्रारम्भ कर दिया ॥१,२॥ वे लोग कंससे सताये जाकर कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह

श्रीशुक उवाच ॥ प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् ॥ शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥३॥ एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ॥ हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥४॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥५॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥६॥ गच्छ देवि व्रजं

और कोशल आदि देशोंमें भाग गये ॥ ३ ॥ किन्तु उनमेंसे कुछ लोग कंसकी हां में हां मिलाकर वहीं रहने लगे। कंसने एक-एककर देवकीके छः पुत्रोंको मार डाला ॥४॥ सातवीं बार भगवान् शेषनाग देवकीके गर्भमें आये जिससे देवकीको हर्ष और शोक दोनों हुए ॥ ५ ॥ भगवान्‌ने असहाय यदुवंशियोंका कंसप्राप्त भयको देखकर अपनी योगमायाको आदेश दिया कि तुम गोप गोपियोंसे भरे व्रजको जाओ। वहाँ नन्दके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी रहती है। वसुदेवकी पत्नियाँ कंसके भयसे इधर-उधर छिपी रहती हैं ॥ ६, ७ ॥ देवकीके सातवें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गर्भमें शेप नामक मेरा तेज है, उसको अपनी शक्तिसे आकृष्टकर रोहिणीके गर्भमें डाल दो ॥ ८ ॥ मैं भी पूर्ण कलासे देवकीका पुत्र बनूँगा और तुम नन्दकी पत्नी यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होना ॥ ९ ॥ तुम भक्तोंको मनोवाञ्छित फल दोगी इसीलिए धूप, दीप आदिके द्वारा वे तुम्हारी अर्चना करेंगे ॥ १० ॥ तुम्हें लोग दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका नामोंसे पुकारेंगे, विन्ध्याचल एवं कामरूप आदि तुम्हारे धाम होंगे ॥ ११, १२॥ गर्भके खींचे जानेके कारण उस बालकका नाम संकर्षण, संसारको आनन्दित करनेके कारण राम और महाबली होनेके कारण बलराम कहलायेगा ॥१३॥ भगवान्‌के सन्देशको सहर्ष स्वीकार कर योगमाया पृथ्वीपर उतरी और वैसाही किया जैसा कि भगवान्‌ने कह रखा था ॥ १४ ॥ जब योगमायाने देवकीका गर्भ रोहिणीमें स्थापित कर दिया तब नगरनिवासियोंने यह हल्ला मचा दिया कि देवकीका

भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले ॥ अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७ ॥ देवक्याः जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत्सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥८॥ अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि॥ दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥ कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ॥ माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥ १२ ॥ गर्भसङ्कर्षणात्तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि ॥ रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥ सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥१४॥ गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ॥ अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥१५॥ भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ॥ आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥१६॥ स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ॥ भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वति

गर्भ गिर गया ॥ १५ ॥ इसके बाद भक्त भयहारी विश्वात्मा भगवान् सम्पूर्ण कलासे वसुदेवके अन्तःकरणमें आविष्ट हो गये ॥ १६ ॥ उस तेजके धारण करते ही वसुदेवकी कान्ति सूर्य-सी हो गई । कोई भी प्राणी इनकी ओर ताक न सकता था ॥१७॥ जैसे पूर्वदिशा चन्द्रमाको धारणकर लेती है, उसी तरह देवकीने वसुदेवजीकी आँखोंसे आखें मिला उस तेजको धारण कर लिया ॥ १८ ॥ जैसे कीसी धूर्तके पास पड़ी विद्यासे लोकका लाभ नहीं होना और जैसे पत्थरकी दीवारोंसे घिरी अग्निका प्रकाश बाहर नहीं फैलता उस तरह कंसके कारागारमें अवरुद्ध

दृष्टान्त—जिस समय कंस ने उस कन्या को जमीन पर दे मारा उसी समय उसे उत्तर मिला अरे मूर्ख, क्या तू दुनियां में अमर होकर आया है । यों समझले तेरे मारने वालेका जन्म हो चुका है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहनेके नाते देवकीसे बाहरके लोगोंको सुख न मिल सका, अकेले ही उसने उसका आस्वादन किया ॥ १९ ॥ कंसने जब देवकीकी उस तेजस्विताको देखा तो उसने निश्चयकर लिया कि अवश्य ही विष्णु इसके गर्भमें आ गया है, क्योंकि इसके पहले देवकीमें ऐसी तेजस्विता न देखी गई थी ॥ २० ॥ कंस सोचने लगा कि मैं ऐसा कौनसा उपाय करूँ जिससे कि मुझे कोई कलंक भी न लगे और मैं बच भी जाऊँ। इस समय देवकीकी हत्या करता हूँ तो स्त्रीजाति, बहन एवं गर्भिणी होनेके नाते शीघ्रही मेरी कीर्ति और आयुका नाश हो जायगा ॥ २१ ॥ नृशंसता करनेवाला व्यक्ति जीवित रहते भी मृतकके समान है। जबतक उसका देह है तबतक लोग निन्दा करते हैं और मरनेके बाद नरकमें जाना पड़ता है ॥ २२ ॥ भगवान्से वैरभाव रखनेवाला कंस इस तरह सोच-विचारकर देवकीकी हत्यासे विरत हो गया ॥ २३ ॥ बैठते, सोते, चलते-फिरते एवं खाते हुए वह कृष्णकी ही बात सोचता था, अतः सारा संसार उसके लिये कृष्णमय हो गया था ॥ २४ ॥ नारद आदि मुनियोंके साथ भगवान् ब्रह्मा और शंकर देवकीके पास आये और रमणीय वाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ हे भगवन्,

ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाऽजितान्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ॥ आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥२०॥ किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ॥ स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥ स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ॥ देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२ ॥ इति घोरतमाद्भावात्सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः ॥ आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥ आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुञ्जानः पर्यटन्महीम् ॥ चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ॥ देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ॥ सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौ

आप सत्यसंकल्प हैं, सत्यही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है, आप सृष्टि स्थिति, प्रलयमें विद्यमान रहते हैं, पाञ्चभौतिक जगत्को आपही सर्जन करते हैं, आप अन्तर्यामी हैं, आपही पारमार्थिक सत्य हैं, मीठी सत्यवाणी एवं समदर्शिताके आप प्रवर्तक हैं, इस तरहसे आप बिलकुल सत्यमय हैं, हम आपके चरणोंका आश्रय लेते हैं ॥ २६ ॥ हमलोग एक-एक लोकके अधिपति अवश्य हैं, परन्तु यह सारा आधिपत्य आपका ही प्रसाद है, सच पूछिये तो आपसे अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। इस संसार वृक्षका प्रकृतिही एक आश्रय है, सुख और दुःख यह दो इसके फल हैं, सत, रज, तम यह तीन गुण इसकी जड़ है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार रस हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इसके ज्ञानके साधन हैं, छः उर्मियाँ* इसके स्वभाव हैं, स्नायु † यदि सात धातुएँ इसके छाल हैं, पृथिवी, जल, अग्नि वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ इसकी शाखाएँ हैं, नव इन्द्रियाँ इसके छिद्र हैं, दश प्राण‡ इसके पत्ते

---

*बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनसः स्मृतौ। शोकमोहौ जरामृत्यू देहस्येति षडूर्मयः। भूख-प्यास प्राणके, शोक-मोह मनके एवं बुढ़ापा, मृत्यु देहके इस तरह छ उर्मियां होती हैं।

† सात धातु होते हैं—रस, रक्त, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा एवं शुक्र—रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः। ‡ प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयाः—इति।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं और इसपर जीवात्मा तथा परमात्मारूपी दो पत्ती रहते हैं ॥ २७ ॥ इस संसार वृत्तके तुमही उद्भावक, पालक एवं संहारक हो। इन तीन कामोंको तुम ब्रह्मा, विष्णु, महेशका रूप धरकर करते ही अतः अज्ञानियोंको भ्रम हो जाता है कि तुम अनेक हो, किन्तु विद्वान् तो उस अनेकतामें भी एकताका दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ अखण्ड ज्ञानस्वरूप तुम अग-जगके कल्याणके लिये अजन्मा होते हुए भी उस मङ्गलमय विग्रहको धारण करते हो, जो सच्चिदानन्दमय होता है और जिससे पापियोंको सन्तप्त एवं पुण्यात्माओंको सुख मिलता है ॥ २९ ॥ इस तरह जब तुम मोहक रूप धरकर अवतार लेते हो तो बहुतोंको तुम्हारे ध्यानमें सुविधा मिल जाती है, तुम्हारे सौन्दर्यमें उनका चित्त आपही उलझ जाता है, उन्हें सहजही समाधि लग जाती है और आपके चरणकमलोंकी नौकासे संसार सागरको पारकर जाते हैं ॥ ३० ॥ इस तरह आप अवतार धर उस समयके लोगोंको अपनी रूपच्छटासे आकृष्टकर सदाके लिये अपना लेते हैं और बाद वालोंके कल्याणके लिये आपका वह भक्तिसम्प्रदाय बच रहता है जिससे भक्तलोग स्वयं इस सागरको तरकर इस नौकाको इसलिये छोड़ देते हैं ताकि और लोग भी तर

द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ॥ सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृत्तः ॥ २७ ॥ त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ॥ त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥ बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ॥ सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥३०॥ स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ॥ भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥ येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥३२॥ तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाऽभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥ सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ॥ वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥ न

जायँ, भक्तलोग परोपकारी जो होते हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग तुममें भाव भक्ति न रख स्वतः मुक्त होनेका दावा करते हैं, वे वेचारे पतित हो जाते हैं, इसलिये कि भक्तिके विना उनकी बुद्धि तो शुद्ध रहती नहीं, ऊँचे चढ़कर भी फिसल जाते हैं ॥ ३२ ॥ किन्तु जो लोग तुम्हें अपना लेते हैं–तुममें अपना अपनापन पुञ्जीभूतकर लेते हैं, वे आपसे रचित होकर कभी नहीं फिसलते, बल्कि निर्भय होकर विघ्नराजको भी धता बताकर उठ जाते हैं ॥ ३३ ॥ बस आपका अवतार आपकी दयाकी ही देन है। आप उस विशुद्ध विग्रहको धारण करते हैं कि जिससे लोगोंको आपकी प्राप्तिकी सुविधा हो। तभी वे वेद, शुभकर्मों के अनुष्ठान, तपस्या, समाधि आदिके साधनोंसे तुम्हें पानके लिये तत्पर होते हैं ॥ ३४ ॥ यदि आप अवतार न लेते तो लोगोंको आपके स्वरूपकका यथार्थ ज्ञान न होता, अज्ञानका मार्जन न होता। हाँ, कुछ विवेकी ऐसा तर्ककरे कि जड़बुद्धि स्वतः प्रकाशित नहीं हो सकती, इसका कोई प्रकाशक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अवश्य है, जो प्रकाशक है वही ईश्वर है' भले आपको जाननेकी चेष्टा करते, पर इससे तो उनको अनुमानमात्र हाथ लगता आपका साक्षात्कार तो उन्हें कभी नहीं होता ॥ ३५ ॥ दूसरी बात यह है कि गुणों, जन्मों एवं कार्यों से आपके स्वरूपका निरूपण भी तो अशक्य है, क्योंकि वे सभी अनन्त हैं और सबसे बड़ी बात यह कि वह तर्कनासे परे हैं। अतः अनुमानसे जो कुछ भी हासिल होगा, वह अपूर्ण ही होगा ॥ ३६ ॥ अतः भक्तिसे ही आपकी यथार्थ उपलब्धि हो सकती है। इसलिए यदि आपके मंगलमय नाम एवं रूपका कीर्तन-स्मरण सतत करता रहे एवं मनको लगाकर आपके चरणोंकी उपासना करता रहे तो संसारका बन्धन कट जाता है ॥ ३७ ॥ भूमिका भार तो आपके चरणन्याससे दूर हो गया। सौभाग्य तो यह है कि अब आप अपने ध्वज आदि चिह्नोंसे चिह्नित चरणोंके द्वारा भूमि एवं स्वर्गके लोगोंको अनुगृहीत करेंगे ॥ ३८ ॥ भला आप अजन्मा जन्म लेना खेलके अतिरिक्त और क्या हो सकता

नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देवक्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदोभुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्याङ्किता त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥३८॥ न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४० ॥ दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ॥ मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रति ययुर्दिवम् ॥४२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

है? आप तो छः भावविकारोंसे बिलकुल मुक्त हैं, फिर आपका जन्मही कैसा? निश्चयही यह आपकी लीला है। अजी सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, प्रलय भी आपकी क्रीडाही तो हैं ॥३९॥ भगवन्, आपने मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वराह, नृसिंह, हंस परशुराम, राम, वामन आदि अवतार धर तीनों लोकोंकी रक्षा की है उसी तरह आज भी अवतार धर पृथ्वीका बोझ हलका करो। आपको बार-बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ बाद देवताओंने देवकीसे कहा—माताजी, यह सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें परमात्मा आये हैं। कंसकी मृत्यु निकट है आप उससे मत डरें। तुम्हारा यह लड़का यादवोंकी रक्षा करेगा ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि हेपरीक्षित्, इस तरह देवता वाणी और मनके अगोचर भगवान्की स्तुतिकर ब्रह्मा और शङ्करको आगेकर चले गये ॥ ४२ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दूसरे अध्यायका सार—जब कंस स्वयं राजा बन बैठा तो उसने बड़े-बड़े राक्षसोंको यादवोंके संहारके लिए नियुक्त किया। बहुतसे यदुवंशी उनके भयसे दूसरे देशोंमें भाग गये और अक्रूर आदि कुछ चतुरलोग छिपकर मथुरामें ही रहने लगे। कंसने एक-एक कर देवकीके छः बालकोंको मार दिया। सातवीं बार बलरामजी उसके गर्भमें आए। भगवान्के आदेशसे योगमायाने उस गर्भको वसुदेवकी दूसरी पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया, जो उन दिनों नन्दबाबाके गोकुलमें दिन काट रही थी। जब योगमायाने गर्भको स्थानान्तरित कर दिया तो लोगोंने यही समझा कि देवकीका गर्भ गिर गया। भगवान् वसुदेवके अन्तःकरणमें आविष्ट हो गये और उस तेजको देवकीने ग्रहण कर लिया। उनकी शोभा निखर उठी। कंस देवकीके इस रूपपरिवर्तनसे समझ गया कि मेरा काल अवश्य इसके गर्भमें आ पहुँचा है। परलोकनिन्दा और परलोकके भयसे उसने देवकीको मारा नहीं। पर सोते-जागते उसे कृष्णकी ही चिन्ता सताने लगी और वह सब ओर कृष्ण ही कृष्ण देखने लगा। इसी बीचमें देवगण ब्रह्मा और शङ्करको आगे कर देवकीके पास आये और यथाशक्ति भगवान् और देवकीकी स्तुति की। दूसरा अध्याय समाप्त *

❀ अथ तृतीयोऽध्यायः ❀

(भगवान्का अवतार लेना, वसुदेव और देवकीका स्तुति करना और वसुदेवको उन्हें गोकुल ले जाना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—जब भगवान्के अवतीर्ण होनेका समय आया तब ग्रह और नक्षत्र अनुकूल हो गये ॥ १ ॥ दिशायें प्रसन्न हो गयीं, आकाश निर्मल हो उठा उसमें तारे चमकने लगे, गाँव, सहर, व्रज और खान आदि सहित सारी पृथ्वी मङ्गलसूचक चिह्नोंसे व्याप्त हो गयी ॥२॥ नदीके जल स्वच्छ हो गये, तालाबोंमें कमल उग आये, वनस्थली पक्षियोंकी

श्रीशुक उवाच ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥ द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥३॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ ५ ॥ जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥

चहकसे पूर्ण हो गयी ॥ ३ ॥ वायु मन्द सुगन्ध, शीतल बहने लगी, द्विजोंके अग्निहोत्रकी शान्त अग्नि भी आपही प्रज्वलित हो उठी ॥ ४ ॥ असुरोंको छोड़कर और सभी लोगोंका मन प्रसन्न हो गया, आकाशमें नगाड़े बज उठे ॥ ५ ॥ किन्नर और गन्धर्व स्तुति करने लगे, अप्सराओंके साथ-साथ विद्याधारियाँ नाचने लगीं ॥ ६ ॥ खुश होकर देवता पुष्पवृष्टि करने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगे, बादल समुद्रकी तरह गम्भीर गर्जन करने लगे ॥ ७ ॥ आधीरात होनेपर जबकी चारों ओर घोर अन्धकार छा गया था, तभी प्राणियोंके हृदयदेशमें रहनेवाले भगवान् विष्णु देवकीके गर्भसे उसीतरह प्रकट हुए जिसतरह कि पूरब दिशामें पूर्णिमाका चाँद उगता है ॥८॥ वसुदेवने उस बालकको अद्भुत ही देखा। देखा कि कमलसरीखी उसकी आँखें, चार भुजाएँ, चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये हुए हैं, उसके हृदयपर श्रीवत्सका चिन्ह है, गलेमें कौस्तुभमणि सुहा रहा है, पीले वस्त्र पहने हुए हैं, सघन घनकी सांवली उसकी छटा है, बहुमूल्य वैदूर्यमणियोंसे खचित किरीट एवं कुण्डलकी कान्तिसे उसकी घुँघराली अलकें शोभित हो रही हैं ॥ ९, १० ॥ वसुदेवजीकी आँखें आश्चर्यसे खिल गयीं। उन्होंने देखा कि विष्णुही उनके लड़के बनकर आये हैं। आनन्दमें मग्न हो उन्होंने कृष्णावतारका उत्सव मनानेके लिये ब्राह्मणोंको दस हजार गौएँ देनेका संकल्प किया ॥ ११ ॥ और इसके बाद यह जानकर कि यह तो परमपुरुष परमात्मा हैं, सिर नवा हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। उस समय भगवान्के तेजसे सूतिकागृह आलोकित हो उठा था और तब कंसको वसुदेवका कोई डर न

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदन्विताः ॥ मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥७॥ निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥८॥ तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ॥ उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥ स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥ अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ॥ स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥१२॥ वसुदेव उवाच ॥ विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥१३॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ॥ तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥

रह गया था ॥ १२ ॥ वसुदेवजीने कहा—भगवन्, मैंने आपको पहिचान लिया। आप तो प्रकृतिसे परे साक्षात् पूर्णतम पुरुषोत्तम हैं। ज्ञान और आनन्द ही आपका स्वरूप है। आप सबकी बुद्धियोंके साक्षी हैं ॥ १३ ॥ आप देवकीके गर्भमें प्रविष्ट थे यह समझना सही नहीं है, अजी, जब आप सारा प्रपञ्च उत्पन्न करके भी उसमें प्रविष्ट नहीं हैं तब आपको देवकीके गर्भमें प्रविष्ट कैसे कहा जा सकता है ? हाँ, किन्तु आप प्रविष्टसे प्रतीत अवश्य होते हैं ॥ १४ ॥ जैसे कार्यके उत्पादनकी शक्तिके होते हुए भी महत् आदि तत्त्व पृथक् रहकर सृष्टि नहीं कर पाते किन्तु रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द एवं ग्यारह इन्द्रियाँ हैं इन सोलह विकारोंके साथ मिलकरही सृष्टिकी रचना करते हैं और उसके बाद उन कार्योंमें प्रविष्टसे दीखते हैं, किन्तु वास्तवमें वे उनसे पृथक् रहते हैं, क्योंकि सृष्टिके पूर्वही वे विद्यमान रहते हैं, उसी तरह आप अच्युत स्वरूप होनेपर भी सृष्टिकी रचनाके बाद इसमें प्रविष्टसे दीखते हैं पर आप वास्तव में प्रविष्ट नहीं रहते ॥ १५, १६ ॥ उन इन्द्रियोंमें जिनका कि रूप आदि विषयोंके द्वारा अनुमान होता है, विद्यमान होने पर भी आप उन इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं हैं। जिसप्रकार किसी एक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन्द्रियसे ग्राह्य विषयको दूसरी इन्द्रिय नहीं ग्रहण कर सकती, उसी तरह कोई भी इन्द्रिय आपका प्रत्यक्ष नहीं कर सकती। इस तरह यह तय पाया कि जब आप सृष्टिमें ही प्रविष्ट नहीं हैं, तब देवकीके गर्भमें आपका प्रविष्ट होना सुतरां असम्भव है। भगवान् व्यापक हैं अतः भीतर बाहरका भेद उनमें नहीं हो सकता ॥ १७ ॥ जो लोग देह आदिको आत्मासे अलग एवं सवस्तु समझते हैं, उन्हें नासमझ कहना चाहिये। इसलिए कि जिसे असत् वस्तु समझ विवेकियोंने त्याग दिया है वे उसीका ग्रहण कर रहे हैं ॥ १८ ॥ भगवन् कुछ लोग इच्छारहित, गुणरहित एवं क्रियारहित आपसे इस प्रपञ्चको सर्ग स्थिति, निरोध बतलाते हैं। आपाततः यह असङ्गत प्रतीत होता है पर आप सर्वशक्तिमान् हैं इसलिए यह बातें वस्तुतः असङ्गत नहीं हैं। बात यह है कि गुणमयी प्रकृति ही यह सब कुछ करती-धरती है. किन्तु वह आपसे शक्ति पाकर ही करती है और उस प्रकृतिके आप आश्रय हैं इसलिए प्रकृतिके कर्तृत्वको आपमें

नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥ सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ॥ प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ १६॥
एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ॥ अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥ य आत्मनो
दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ॥ विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥१८॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थि-
तिसंयमान्विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्व-
मायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥२०॥ त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षि-
षुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥ अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽ-
ग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ॥ स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुष-
लक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥ देवक्युवाच ॥ रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारकम् ॥

मान लिया जाता है ॥ १९ ॥ वही परब्रह्म परमात्मा आप तीनों लोकोंकी स्थितिके लिए भक्तोंपर कृपाकर शुद्ध सतोगुणके प्रकाशक विष्णुका रूप धारण करते हैं, सज्जनके लिए रजोगुणके प्रकाशक ब्रह्माका रूप धारण करते हैं एवं संहारके लिए तमोगुणके प्रकाशक रुद्र रूपको धारण करते हैं ॥ २० ॥ वही तुम इसलोकके रक्षा करनेकी इच्छासे मेरे घरमें अवतीर्ण हुए हो। क्षत्रिय राजाओंके वेषमें प्रच्छन्न असुरोंके द्वारा संचालित करोड़ों सेनाओंका आप विनाश करेंगे ॥ २१ ॥ दुष्ट कंसने मेरे घर आपके अवतार लेनेकी बात सुन आपके छः भाइयोंको मार डाला है। और रक्षकोंसे आपका अवतार लेना सुन अभी शस्त्र लिए यहाँ आ धमकेगा ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—यद्यपि देवकी कंससे डरी थीं, किन्तु लड़केके उन विलक्षण लक्षणोंको देखकर उसका भय कम हुआ और वह हँसकर उनकी स्तुति करने लगी ॥ २३ ॥ भगवन् आपतो वह साक्षात् विष्णु हैं जिनको कि आदिकारण ब्रह्म, चेतन, निर्गुण निर्विकार,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अविनाशी, निर्विशेष, निरीह कहा जाता है ॥ २४ ॥ ब्रह्माकी आपके द्विपरार्धकाल बीतजानेपर जबकि संसार पञ्चमहाभूतमें और पञ्चमहाभूत महत्तत्त्वमें लीन हो जाता है, उस समय केवल आपही बच रहते हैं अतः आपको अशेष कहा जाता है आप उस समय सोचते हैं कि संसार मुझमें लीन है पीछे फिर प्रकट करूँगा ॥ २५ ॥ आप प्रकृतिके प्रवर्तक हैं, निमेषसे लेकर वर्षरूप जो द्विपरार्धकाल है जिससे कि सारा संसार सचेष्ट रहता है, वह काल भी आप ही हैं, आपके अतिरिक्त कुछ नहीं है मैं आपकी शरणमें हूँ ॥२६॥ कालरूपी कराल सर्पके भयसे सन्त्रस्त मानव प्रत्येक लोकमें गया, पर उसका भय भागा नहीं, जब उसने आपका पल्ला पकड़ा, तब कहीं वह स्वस्थ हुआ और आज वह नीडर होकर सो रहा है, मृत्युरूपी साँप उसके पास फटक तक नहीं सकता ॥ २७ ॥ आप भक्तभयहारी हैं, अतः कंसके भयसे भीत हम सबोंकी आप रक्षा करें यह तो योगियोंके लिये है मेरे-जैसे चर्मचक्षुओंके लिये नहीं, सो

सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं काल-वेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥२५॥ योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायँल्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ॥ त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥२७॥ स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान्भृत्यवित्रासहासि । रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः॥२८॥ जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शङ्ख-चक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥३२॥ युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ॥ सहमानौ श्वासरो-धविनिर्धूतमनोमलौ ॥३४॥ शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ॥मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं

आप मानव सुलभ रूप धारण कर लीजिये ॥२८॥ भगवन्, आपके जन्म लेनेकी बात कंस न जान सके। मैं कंसके भय से अधीर हो रही हूँ और आपके लिये मैं उद्विग्न हो रही हूँ ॥२९॥ भगवन्, आप अपने शंख-चक्र-गदा-पद्मश्रीसे समन्वित इस अलौकिक चतुर्भुज रूपको अन्तर्हित कर लीजिये ॥ ३०॥ प्रलयमें सारा संसार जिसके अङ्गमें समा जाता है वही विश्वात्मा मेरे उदरमें आये इस बातको दुनिया समझ न सकेगी ॥ ३१ ॥ श्री भगवान्ने कहा—पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें तुम पृश्नि नामवाली थी और उस समय यह वसुदेवजी निष्पाप सर्वदोष रहित सुतपा नामक प्रजापति थे ॥ ३२ ॥ जब ब्रह्माने तुम दोनोंको प्रजाकी सृष्टिका आदेश किया तब तुम दोनोंने अपनी सभी इन्द्रियोंका नियमन करके बड़ी कठिन तपस्या की ॥३३॥ तुम दोनोंने आँधी-पानी, सर्दी-गर्मी सूर्यकी किरण जनित ताप आदि काल गुणोंको निरन्तर सहकर और प्राणायामकर चित्तकी वृत्तियोंको वशमें कर लिया ॥ ३४ ॥ उस समय तुम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दोनोंका आहार सूखे पत्ते और वायुमात्र रहा और शान्तचित्तसे तुम दोनों पुत्रोंने मुझसे पितृभावोचित नानाविध सुख चाहते हुए मेरी आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥ इस तरहके अत्यन्त दुष्कर तीव्र तप करते-करते तुम दोनोंने मुझमें लवलीन होकर देवताओंके बारह हजारवर्ष व्यतीत कर दिये ॥ ३६ ॥ उस समय हे अनघे, तुमने अपने हृदयमें तपस्या, श्रद्धा भक्तिसे निरन्तर मुझे ख्याल किया अतः मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ और वरदान देनेकी इच्छासे इसी चतुर्भुजरूप धारी शरीरसे वरदाताओंमें सर्वश्रेष्ठ मैं प्रकट हुआ। जब मैंने वर माँगनेको कहा तब तुम दोनोंने यह वर माँगा कि आप–सरीखा मुझे पुत्र हो ॥ ३७, ३८ ॥ उस समय तुम दोनों विषयभोगसे दूर रहे और तुम्हें कोई सन्तान न थी, इसलिये और इसलिये कि तुम मुग्ध देव मायासे मोहित हो गये थे, तुम दोनोंने मुझसे भी मोक्षकी याचना न की ॥३९॥ जब मैं वर देकर अन्तर्हित हो गया, तब तुम मेरे–जैसा पुत्र वररूपसे प्राप्तकर सफल मनोरथ

तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥३७॥ प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते माद्दशो वां वृतः सुतः ॥३८॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ॥ न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥ गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥४०॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥ उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥४३॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥४४॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ॥ चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥४५॥ (यदि कंसाद् बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥१॥) श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः

होते हुए विषयोंका उपभोग करने लगे ॥ ४० ॥ संसारमें शील, उदारता आदि गुणोंमें मैंने अपने सरीखे किसी और को न देखकर पृश्निगर्भ नामसे विख्यात मैं तुम्हारा लड़का बना था ॥४१॥ इसके बाद तुम दोनों कश्यप और अदिति बने। तब मैंने फिर तुमसे अवतीर्ण हुआ, उस समय मेरा नाम उपेन्द्र था और वामन होनेसे लोग मुझे वामन भी कहते थे ॥४२॥ हे कोविदे, तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी मैं उसी चतुर्भुजरूपसे फिर उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिए मेरा कहना बिलकुल सत्य हो गया ॥ ४३ ॥ यह चतुर्भुजरूप जो मैंने दिखलाया है वह इसलिये कि तुम्हें अपने पहले जन्मोंकी बातें याद आ जायँ। इसके बिना किसीको मेरे असली स्वरूपका मानुषलिङ्गसे ज्ञान नहीं हो सकता ॥४४॥ तुम दोनों मुझे ब्रह्मभाव और पुत्रभाव इन दोनों भावोंसे निरन्तर स्मरण एवं स्नेह करते-करते परमगतिको प्राप्त कर लोगे ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इतना कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये और माता-पिताके देखते-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखते अपनी मायासे प्राकृत बच्चे-से शीघ्र बन गये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर वह वसुदेवजी भगवान्‌के आदेशानुसार उनको उठाकर जब सूतिकागृहसे बाहर निकालनेकी इच्छा कर रहे थे, ठीक उसी समय अजन्मा होती हुई भी भगवती योगमाया यशोदाजीके गर्भसे प्रकट हुई ॥४७॥ योगमायाने द्वारपालोंको अचेत कर दिया और नगरनिवासियोंको प्रगाढ़ निद्रामें डाल दिया। वे दुर्लङ्घ्य दरवाजे, जिनमें लोहेके कीलोंसे युक्त जञ्जीरोंके सहित बड़े-बड़े किवाड़ लगे थे, कृष्णवाहक वसुदेवके आते ही स्वयं अपने आप उसी तरह से खुल गये, जैसे कि सूर्यके आते ही तम स्वयं फट जाता है। धीरे-धीरे गरजते हुए मेघ झमाझम बरसने लगे और शेष भगवान् फणको छत्र बनाकर भगवान्‌को बूँदोंसे बचाते हुए वसुदेवजीके पीछे-पीछे चलने लगे॥४८,४९॥ वर्षा होने कारण यमुनामें अथाह जल उमड़ रहा था, बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं, फेन उतरा आया था और बड़े भयानक सैकड़ों भँवर पड़ रहे थे। उनसे वह व्याकुल हो उठी थी, किन्तु वसुदेवके आते ही यमुनाने उन्हें उसी तरह रास्ता दे दिया, जिस तरह कि समुद्रने रामको रास्ता दे दिया था ॥ ५० ॥ वसुदेवजी जब नन्दबाबाके व्रजमें पहुँचे, तब वहाँ सारे

॥४६॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नन्दजायया ॥४७॥ तया हृतप्रत्य सर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ॥ द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ ४८ ॥ ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ॥ ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥४९॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ॥ भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियःपतेः ॥ ५० ॥ नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान् गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ॥ सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५१ ॥ देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥ यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ॥ न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पू० कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ग्वाल-बाल गाढ़ी नींद ले रहे थे। यह देखकर उन्होंने भगवान्‌को यशोदाकी शय्यापर लिटा और उनकी कन्याको लेकर वहाँसे पुनः घरको चल दिया ॥ ५१ ॥ उसके बाद जब वसुदेवने कन्याको देवकीके शयनपर लिटा दिया, तब पहलेकी तरह ही उन्होंने अपनेको कड़ी-बेड़ियोंमें जकड़ा हुआ पाया ॥ ५२ ॥ उधर नन्दकी पत्नी यशोदाने इतना तो अवश्य जाना कि उन्हें सन्तान उत्पन्न हुई है, पर यह न जान सकी थीं कि वह पुत्र है कि पुत्री, यह योगमायाका ही प्रभाव था, जिससे कि उनकी स्मृति बिलकुल खतम हो चुकी थी यानी वे लोग निद्रासे मोहित हो गई थीं ॥ ५३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तीसरे अध्यायका सार—जब भगवान्‌के प्रादुर्भावका समय हुआ, तब सारे संसारमें प्रसन्नता छा गयी। भाद्रकृष्ण अष्टमीकी आधी रातको भगवान्‌का जन्म हुआ। उस समय वे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए थे। वसुदेव और देवकीने उनकी बारी-बारीसे स्तुति की। भगवान्‌ने बतलाया कि तुम दोनों पहिले सर्गमें पृश्नि-सुतपा थे। ब्रह्माने जब तुम्हें सृष्टिके लिए आदेश दिया तब तुमने उग्र तपस्या की। मैंने तुम्हें दर्शन दे वर माँगनेका कहा। तुम उस समय अचिन्त्य मायाशक्तिसे अभिभूत थे, अतः मुक्ति न माँगकर मुझ सरीखा पुत्र माँगा। अपने अनुरूप और किसीको न पा मैं ही तुम्हारा पुत्र बना। उस समय लोग मुझे पृश्निगर्भ कहते थे। उसके बाद तुम दोनों अदिति-कश्यप बने और मैं वामन नामसे तुम्हारे यहाँ प्रकट हुआ। अब कृष्णरूपमें तुम्हारे यहाँ प्रकट हुआ हूँ। चतुर्भुज मैंने इसलिए दिखलाया, ताकि तुम्हें पहले जन्मोंकी सब बातें याद आ जायँ। इसके बाद अब तुम दोनों जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिए छूट जाओगे। इस समय तुम मुझे नन्दबाबाके घर धर आओ। उनकी कन्या उठा लाना और मुझे वहीं छोड़ देना। इसके बाद भगवान् प्राकृत शिशुसे बन गये। वसुदेवजी जब उन्हें लेकर चलनेको तैयार हुए तब कड़ी बेड़ियाँ आप ही आप खुल गयीं, फाटक खुल गये। पहरेदार गाढ़ी नींदमें बेसुध हो गये। यशोदा तककी अपनी कन्याका चेत न हुआ। वसुदेवजी जब योगमायाको लेकर लौट आये तब कड़ी बेड़ियोंने फिर उन्हें जकड़ दिया। फाटक पहलेकी तरह बन्द हो गये। तीसरा अध्याय समाप्त॥

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

(योगमायाके द्वारा यह बतलाना कंसके मारनेवालेने जन्म ले लिया और कंसका बालकोंके नाशका निश्चय)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, वसुदेवजी जब कारागारमें वापस आये तब बाहर-भीतरके किवाड़ अपने-आप बन्द हो गये। द्वारपाल तब जागे, जब कि उन्होंने बच्चेके रोनेकी आवाज सुनी ॥ १ ॥ वे लोग जल्दीही कंसके पास दौड़ गये और बच्चेके जन्मकी बात कह सुनाई, जिसकी कंस बहुत उद्विग्न होकर प्रतीक्षा कर रहा था ॥ २ ॥ सुनते ही वह

श्रीशुक उवाच ॥ बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥ आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥ तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ॥ स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥४॥ बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः

बिछावनसे उछल पड़ा, उसके केश इधर-उधर बिखर उठे, उसके मुँहसे निकल पड़ा कि यह तो मेरा काल ही आ गया है। वह सूतीगृहमें जा धमका ॥ ३ ॥ दुःखिनी देवकीने अपने भाई कंससे करुणाभरे शब्दोंमें कहा—हे कल्याण, इस बच्चीको मत मारो, एक तो यह स्त्री है दूसरे है तुम्हारी पुत्रवधू-जैसी ॥ ४ ॥ भइया, मेरे प्रारब्धसे प्रेरित होकर तुमने अग्निसे तेजस्वी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बहुतसे पुत्र मार दिये, कमसे कम इस एक पुत्रीकी तो जान बखसो ॥५॥ मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ मेरे सभी बच्चे नष्ट हो चुके अतः मैं दुःखी हूँ। मुझ अभागिनको यह अन्तिम सन्तान तो दे दो ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अत्यन्त दीनकी नाई रोती हुई देवकीने इतना कह पुत्रीको हृदयसे चिपटा लिया। किन्तु यों देवकीके प्रार्थना करने भी दुष्ट कंसने उसको डाँटते हुए जबर्दस्ती उसके हाथसे उस कन्याको छीन लिया ॥ ७ ॥ स्वार्थके कारण कंसका स्नेह नष्ट हो गया था। उसने तत्काल उत्पन्न हुई बहनकी कन्याको उसके दोनों पैर पकड़ पत्थरपर दे मारा ॥ ८ ॥ किन्तु भगवान् विष्णुकी बहिन वह लकड़ी उसके हाथसे उछल पड़ी और आकाशमें आयुध युक्त अष्टभुजी देवीका रूप धारण किये हुए कंसादि सबको देख पड़ी ॥ ९ ॥ दिव्य माला, कपड़े, रत्न आदिसे वह भूषित थीं और धनुष, त्रिशूल, वाण, ढाल, तलवार, शंख चक्र, एवं गदा लिये हुई थीं ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा,

पावकोपमाः ॥ त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥ दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ॥ याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥ अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ॥ अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ॥ धनुःशूलेषुचर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ॥ यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥१२॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि । बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥१३॥ तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥१५॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ॥ काँल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥१६॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव

किन्नर एवं नागलोग उन्हें खूब पूजा चढ़ा रहे थे और स्तुति कर रहे थे ॥ ११ ॥ उन्होंने कहा—अरे मूर्ख, मुझे मारकर तुझे कुछ मिलनेका नहीं, तुम्हें मारनेवालेने तो जिस किसी जगह पर जन्म ले लिया है। अब दीन अन्य बच्चोंको व्यर्थ मत मारना ॥ १२ ॥ इतना उससे कहकर भगवान्की वह माया अन्तर्हित हो गयी और काशी आदि भिन्न-भिन्न पीठोंमें भिन्न-भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुई ॥१३॥ उनकी वाणी सुन कंसको बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने वसुदेव-देवककी को बन्धन-मुक्तकर विनयपूर्वक उनसे कहा ॥ १४ ॥ हे बहिन, हे भाम पापी मैंने आपलोगोंकी बहुत सन्तानोंको, अपनी सन्तानोंकी हत्या करनेवाले राक्षसोंकी तरह मार डाला, इसका मुझे खेद है ॥ १५ ॥ सो दया-माया एवं जाति-भाईको छोड़नेवाला खल मैं पता नहीं किस लोकमें जाऊँगा। ब्रह्महत्यारेकी तरह उस समय मुझे दुःखसे लम्बी-लम्बी सांसें लेनी पड़ेंगी ॥ १६ ॥ केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, बल्कि देवतागण भी झूठ बोलते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं, मैंने आकाशवाणीपर विश्वासकर ही बहनके उचोंको मार दिया ॥ १७ ॥ आपलोग उस बच्चोंके लिये शोक मत करें, उनके भाग्यमें यही लिखा था। सभी प्राणी प्रारब्धके अधीन हैं, उन्हें अपने कियेका फल भोगना ही पड़ता है वे सदा एकत्र नहीं रहते ॥ १८ ॥ जैसे—अपने आधारभूत पृथिवीमें घटादि आते जाते हैं वैसेही आधारभूत आत्मामें देहही आते-जाते रहते हैं और जैसे इन घटादि पदार्थों के विकारको प्राप्त हो जानेपर भी मिट्टी विकारको प्राप्त नहीं होती, उसी तरह प्राणीके शरीरके जन्म मरण आदिके द्वारा विकारोंको प्राप्त होने पर भी उससे आत्माका कुछ बनता विगड़ता नहीं, वह एक रूपही बना रहता है ॥ १९ ॥ जैसे कि जो भली-भाँति यों नहीं जानता उसीको आत्मविपर्यय होता है यानी आत्माके स्वरूपका सम्बन्ध उलट-पलट हो जाता है। यह बुद्धि होने लगती है कि शरीरही आत्मा है। जिस आत्मविपर्ययके कारण भेद उत्पन्न होता है और जिस भेदके कारण पुत्रादि देहोंके साथ मनुष्यका संयोग और वियोग होता है उससे सुख दुःख रूपी संसारकी निवृत्ति नहीं होती यानी इस अज्ञानको दूर किये विना संसार-चक्रका नाश कभी सम्भव नहीं ॥ २० ॥ इसलिये हे भद्रे, मेरे द्वारा

केवलम् ॥ यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवान् शिशून् ॥१७॥ मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतंभुजः ॥ जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्त-दासते ॥ १८ ॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥१९॥ यथाऽनेवंविदो भेदो यत आ-त्मविपर्ययः ॥ देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥२०॥ तस्माद् भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ॥ माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽ-वशः ॥२१॥ यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥२२॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥२३॥ मोचयामास निगडाद्विश्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शय-न्नात्मसौहृदम् ॥२४॥ भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च देवकी ॥ व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥२६॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथ-

मार डाले गये भी इन अपने बच्चोंके लिए शोक मत करो, क्योंकि सभी प्राणी अवश होकर अपने किये का ही फल प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥ जबतक स्वरूपभूत आत्माको न देखनेवाला देहात्माभिमानी अज्ञ प्राणी अपनेको यह मानता है कि मैं मार डाला गया मैंने दूसरेको मार डाला, तबतक वह सुख-दुःखके चक्करमें पड़ा रहता है ॥ २२ ॥ साधुलोग दीनवत्सल होते हैं, आप मेरी दुष्टताके लिये क्षमा प्रदान करें। इतना कहकर रोता हुआ वह बहन और बहनोईके चरणों पर गिर पड़ा ॥२३॥ कंसको योगमायाकी वाणी सुन उनपर विश्वास हो गया था। उसने उनपर स्नेह जतलानेके लिये उन्हें बन्धनोंसे मुक्त कर दिया ॥ २४ ॥ भाईको अनुताप करते देख देवकीका रोष समाप्त हो गया और शोक भी कम हो गया। वसुदेवजीने हँसकर कहा—महोदय, जैसा आप कह रहे हैं ठीक ऐसा ही है। प्राणियोंको देहादिमें आत्म बुद्धि अज्ञानसे ही उत्पन्न होती है, जिस अहं बुद्धिसे अपना और पराया, यह भेद दृष्टि होती है ॥ २५,२६॥ वह भेद दृष्टि रखनेवाले जो लोग शोक, हर्ष, भय, लोभ, मोह, अभिमानसे युक्त हैं, वे लोग देव दैत्यादि निमित्तभूत पदार्थों से देवदैत्यादिरूप पदार्थको परस्पर मार रहे काल-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रूपी परमेश्वरको नहीं देख पाते, बल्कि अपनेको ही मरने-मारनेवाला समझते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, देवकी और वसुदेवने प्रसन्नतापूर्वक जब निश्छल यह बातें कहीं, तब कंस अनुगृहीत हो घर चला गया ॥ २८॥ उस रातके बीत जानेपर कंसने मन्त्रियोंको बुलाया और उसने वह सब बातें सुना दीं, जिन्हें योगमायाने कहा था ॥२९॥ देवताओंसे वैर-विरोध बढ़ानेवाले नासमझ दैत्योंने अपने स्वामीके कथन को सुनकर कहा ॥ ३०॥ राजन्, यदि ऐसी बात है तो हमलोग आज ही शहर, गाँव एवं टोलेमें घूम-घूमकर जिनके जनमके दस दिन बीत गये हैं या बाकी हैं सभी छोटे-बड़े बच्चोंको मार डालते हैं ॥ ३१ ॥ एक तो वह देवतागण स्वभावतः रणभीरु हैं, दूसरे वे धनुषकी टङ्कारसे बिलकुल डरे मनके हमेशा हुए रहते हैं, तब कोई भी उद्योग कर वह क्या कर लेंगे ? ॥ ३२ ॥ उन दिनोंकी बात है, जब कि वे बेध रहे तुम्हारे बाणोंसे चौतरफा बिंध गये तब वे जीनेकी इच्छासे रण छोड़-छोड़कर एक मात्र अपने जीवनके उपाय भूत भागनेको ही समझते हुए भाग पड़े ॥ ३३ ॥ उनमेंसे कुछ लोगोंने तो हाथ जोड़ लिये थे, कुछ देवोंने भयसे काँपते हुए हथियार डाल

गृहशः ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः। देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद् गृहम् ॥२८॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ॥ देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥३०॥ एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥३१॥ किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ॥ मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः ॥ ३४ ॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ॥ हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा ॥ किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥३६॥ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥ ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥३७॥ यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्म-

दिये थे और कुछ तो कच्छ-शिखा खोल त्राहि-त्राहि पुकारने लगे थे ॥ ३४ ॥ किन्तु तुम तो वैसे लोगोंपर हाथ ही नहीं उठाते, जो अस्त्र-शस्त्र एवं रथसे हीन हों, भीत हों, जो अन्य विषयमें आसक्त हों, रणविमुख हों, जिनके धनुष टूट गये हों और जो युद्ध न कर रहे हों ॥ ३५ ॥ भला उन बुजदिल देवताओंसे क्या डरना जो कि स्त्रियोंके आगे डींग हाँकते हैं और युद्धसे अन्यत्र निर्भय स्थानमें डकारते फिरते हैं ? विष्णुसे भी क्या डरना, वह तो एकान्तमें छिपा फिरता है और इसी तरह शंकरसे भी डरनेका कोई कारण नहीं है, क्योंकि खुद वह जङ्गलोंमें मारे-मारे फिरता है । इन्द्रमें तो कुछ बल ही नहीं और ब्रह्माको तो तपस्यासे ही फुर्सत नहीं ॥ ३६ ॥ फिर भी देवता हमारे शत्रु हैं, अतः उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये यह हमारी राय है । तः उनकी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिये आप अपने हम सेवकोंको नियुक्त करें ॥ ३७ ॥ जैसे उपेक्षा पाकर रोग जड़ जमा लेता है और तब उसका औषधआदिके द्वारा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उखाड़ फेंकना दुःसाध्य हो जाता है तथा जैसे इन्द्रियोंको बेलगाम छोड़ देनेसे फिर वह वशमें नहीं होतीं उसी तरह उपेक्षित शत्रु जब बहुत बलवान् हो जाता है तब फिर दबाये नहीं दबता ॥ ३८ ॥ देवताओंकी जड़ विष्णु हैं और वह वहाँ रहते हैं जहाँ सनातन धर्म रहता है और वह धर्म वेद, गौ, ब्राह्मण, तप और दक्षिणावाले यज्ञमें रहता है ॥ ३९ ॥ इसलिये हे राजन्, ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों, तपस्वियों, याज्ञिकों एवं होम साधन घृतादि प्रदान करनेवाली गौओंको हम मार डालते हैं ॥४०॥ सच पूछो तो ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य, शम, दम, श्रद्धा, दया सहनशीलता और यज्ञ ये सभी भगवान्के शरीर ही हैं ॥ ४१ ॥ वही अन्तः करणमें स्थित विष्णु सभी देवताओंके स्वामी हैं, असुरोंके शत्रु हैं, उन्हींके बलपर सभी देवता, ब्रह्मा और रुद्र भी टिके हैं। अतः उनके विनाशका एक उपाय यह है कि सब ऋषियोंकी हत्या कर दी जाय ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कंसकी मृत्यु अति निकट थी, देवताओंका

हान्बद्धबलो न चाल्यते ॥३८॥ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः ॥३९॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥४०॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ॥ श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥४१॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः स चतुर्मुखाः ॥ अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः संमन्त्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥ संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ॥ कामरूपधरान्दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥४४॥ ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥ हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीम० द० पू० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

मति मारी गई थी, अतः दुष्ट मन्त्रियोंके उस मतको मानकर उसने ब्राह्मणोंकी हिंसामें ही हित देखा ॥ ४३ ॥ उसने हिंसाप्रिय राक्षसोंको, जो कि मनमाना रूप धर सकते थे, सदाचारी पुरुषोंकी हिंसा करनेका आदेश देकर घर चला गया ॥ ४४ ॥ और वे राक्षसगण सज्जनोंको सताने लगे रजोगुणसे उनका स्वभाव विक्षिप्त हो गया था, तमसे उनकी बुद्धिपर तो परदा पड़ गया था, वे क्या जान सकते थे कि उनकी मृत्यु उनके सिरपर आ बैठी है ॥ ४५ ॥ यदि सज्जनोंको शरीर, मन, वचनसे तिरस्कार किया जाय, तो वह पुरुषकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति धर्म स्वर्गादि लोक, पुत्रादि अभिलषित वस्तुएँ और अधिक क्या कहा जाय सब तरहके श्रेय—इन सबका नाश कर देता है ॥४६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चौथे अध्यायका सार—शुकदेवजीने कहा—हे परीक्षित, जब वसुदेवजी योगमायाको लेकर कारागारमें वापस लौट आये तब तमाम फाटक अपने आप बन्द हो गये। कड़ी बेड़ियोंने फिरसे देवकी-वसुदेवको पहले-जैसा जकड़ दिया। बच्चेकी रोनेकी आवाज सुनकर पहरेदार जागे। उन लोगोंने यह समाचार कंसको सुनाया। कंस इस समाचारको सुनकर हक्का-बक्का हो गया और बेतहाता दौड़ता हुआ वहाँ आ धमका। उसने देवकीसे जबर्दस्ती बच्चेको छीन लिया और उसे पत्थरपर पटक दिया। किन्तु वह बच्ची उसके हाथसे छूट निकली और अष्टभुजीरूपमें घर कहने लगी कि तुम्हारे मारनेवालेने तो जन्म ले लिया है। कंसको बड़ा दुःख हुआ। आकाशवाणीको सच मान नाहक ही उसने देवकी के बच्चेको मार दिया। उसने उनसे क्षमा माँगी और उन्हें जेलसे मुक्तकर दिया। घर जाकर उसने दैत्योंकी मीटिङ्ग बुलाई और इन घटनाओंको कह सुनाया। दुर्बुद्धि दैत्योंने यह सलाह दिया कि दुनियाँके जितने नवजात शिशु हैं सबको मसलकर दिया जाय। इस तरह वह बचा भी मार दिया जायगा, जिसका डर आपको है और दूसरी बात यह कि ब्राह्मण, गौ, वेद इन सबोंका नाशकर डालना चाहिए, ताकि इन्हीं लोगोंसे देवताओं एवं विष्णुका बल बढ़ता है। यदि यह न रह सके तो विष्णु भी न रह जायँगे और तब एक भी देवता न बच सकेंगे कंसके सरपर तो मौत नाच रही थी। उसे उन लोगोंकी वह नृशंसकृत्य अच्छे जँचे और उन्हें वैसा करनेका आदेश दे डाला। चौथा अध्याय समाप्त ❀

—❀—❀—❀—

❀ अथ पंचमोऽध्यायः ❀

(नन्दका अपने पुत्रका जन्मोत्सव मनाना और कंसको कर देनेके लिये मथुरा जाना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—पुत्रकी उत्पत्तिसे महामना नन्दकी खुशीका कोई ठिकाना न था। ज्योतिषियोंको बुलाकर मुहूर्त पूछा और स्नानकर सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहन स्वस्ति-वाचन कराया, फिर बच्चेका जातकर्म संस्कार पूरा किया। तदनन्तर नान्दीश्राद्धकर पितरों एवं देवताओंको पूजासे सत्कृत किया ॥१, २॥ फिर नन्दजीने दो लाख गौओंको भूषितकर ब्राह्म-

श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥ आहूय विप्रान्वेदज्ञान्स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥१॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ॥ कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥ धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्य समलङ्कृते ॥ तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ॥ शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥ ४ ॥ सौमङ्गल्यगिरो

णोंको दिया और सोनेके पानी चढ़ाये गये कपड़ोंसे ढंके हुए तिलोंके सात पहाड़ सरीखे ढेरका दान दिया ॥ ३ ॥ समय पाकर अशुद्ध जमीनकी आपही शुद्धि हो जाती है। स्नानसे देह, धो डालनेसे वस्त्र आदि, संस्कारसे गर्भ आदि, तपसे इन्द्रियाँ, यज्ञके द्वारा ब्राह्मणादि, दानसे द्रव्य, सन्तोषसे मन और अध्यात्मविद्यासे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥ ब्राह्मण बार-बार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आशीर्वाद देने लगे, पौराणिक पुराण बाचने लगे, वंशावलियोंके जानकार मागधवंशका बखान करने लगे, बन्दीजन गुणगान सुनाने लगे, गवैया गाने लगे एवं नगाड़े और दुन्दुभि नामक बाजे जहाँ तहाँ खूब बजने लगे ॥ ५ ॥ व्रजके सभी दरवाजे, आँगन, घर झाड़ दिये गये और उनपर जलका छिड़काव हो गया। सब जगह तरह-तरहके ध्वजा, पताका, माला, वस्त्र एवं वन्दनवार लटकाये गये ॥ ६ ॥ गौओं, बछड़ों एवं बैलोंको हल्दी-तेल लगाकर तरह-तरहके धातु, मोरपंख, वस्त्र एवं सोनेकी लड़ियोंसे सजाया गया ॥ ७ ॥ गोपलोग बहुमूल्य कपड़े, गहने पहन लिये, अँगरखे और पगड़ियाँ भी पहन लीं। और तब हे राजन्, हाथमें बहुमूल्य भेंट लेकर नन्दजीके यहाँ आये ॥ ८ ॥ गोपिकाओंने जब सुना कि यशोदाको लड़का हुआ है, तब बड़ी खुश हुईं। अपनेको उन्होंने वस्त्र, अलङ्कार एवं अञ्जन आदिसे सजाया और तदनन्तर पूजाकी थाली ले जल्दीसे चल पड़ीं। वे सबके सब बृहन्नितम्बा थीं। उन्होंने अपने मुख-कमलमें फूलकी धूल मल रखी थीं और शीघ्रतासे चलनेके नाते उनके स्तन हिल रहे थे ॥ १० ॥ तुरन्तके खरादे गये मणियोंके कुण्डल उनके कानोंमें झूम रहे थे, कण्ठमें हार और

विप्राः सूतमागधबन्दिनः ॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ॥ चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥ गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥ ७ ॥ महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥ गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम्। आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥ ९ ॥ नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ॥ बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥ गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥११॥ ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥ १२ ॥ अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥१३॥ गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ॥ आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥

हाथोंसे कंकण थे एवं रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियाँ उन लोगोंने पहन रखी थीं। चलनेसे रास्तेमें उनके सिरसे मालाएँ खिसकती जाती थीं, कुण्डलके हिलन डुलनेसे उनके कानोंकी शोभा बढ़ रही थीं तथा उनके स्तनोंपर सुन्दर हारोंसे अपूर्व सौन्दर्य झलक रहा था। नन्दबाबाके घर जाते समय रास्तेमें वे विशेष रूपसे शोभित हो रही थीं ॥ ११ ॥ उन्होंने नवजात शिशुको यह आशीर्वाद दिया कि यह बड़ा होकर बहुत दिनोंतक उनका पालन-पोषण करे। इसके बाद हल्दी-चूर्ण आदि लेकर एक दूसरेको लगाने लगीं और ऊँचे स्वरसे गीत गाने लगीं ॥ १२ ॥ अनन्त भगवान् विश्वपति श्रीकृष्णके व्रजमें अवतार ले लेनेपर जो उत्सव हुआ उसमें तरह-तरहके बाजे बजने लगे ॥ १३ ॥ ग्वालोंकी प्रसन्नताकी कोई सीमा न थी। वे एक दूसरेको दूध-दही, घी और जलसे सींचने लगे एवं मक्खनके लोंदोंसे मुखमें लेप करते हुए उन्हें दधि आदिके पङ्कमें फेंकने लगे ॥१४॥ महामना नन्दजीने परमेश्वरकी प्रसन्नता तथा पुत्रके अभ्युदयके लिये सूत, मागध और वन्दीजनोंको वाद्य, अलंकार और गौओंसे यथोचित् पूजा की तथा अन्यान्य जो-जो गायक आदि विद्योपजीवी थे उनकी भी, जिन-जिन वस्तुओंको उन लोगोंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रार्थना की उन-उन वस्तुओं से यथोचित् पूजा की ॥ १५, १६ ॥ नन्द और अन्य गोपों ने महाभाग्यवाली रोहिणीको यह कहकर सत्कार किया कि तुम्हारे आनेसे ही मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। रोहिणी भी भड़कीले कपड़े एवं गलेमें भूषण और हार पहनकर लोगोंकी आवभगत करने लगी ॥ १७ ॥ हे राजन्, तबसे नन्दका व्रज सभी समृद्धियोंसे युक्त हो गया और भगवान् श्रीहरिका निवास होनेके कारण सर्वप्रियत्व आदि अपने सभी गुणोंसे लक्ष्मीजीकी लीलाभूमि बन गया ॥ १८ ॥ हे कुरुद्वह, एक बार नन्दजी गोपोंको व्रजकी रक्षाका भार सौंपकर कंसको वार्षिक मालगुजारी देने मथुरा गये ॥ १९ ॥ जब वसुदेवजीने सुना कि मेरे भाई नन्दजी आये हैं तथा राजाको कर दे चुके हैं तब उनसे मिलनेके लिये वे उनके उस स्थानपर गये, जहाँपर उनकी गाड़ी खड़ी थी ॥ २० ॥ नन्द वसुदेवको आते देख इतने खुश हुए कि तुरन्त उछल पड़े, उस समय वे मारे प्रेमके विह्वल हो गये थे उनकी वही गति हुई,

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोलङ्कारगोधनम् ॥ सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥ तस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥१६॥ रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ॥ व्यचरद्दिव्यवाससक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥
तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणैः रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥ गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥ वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ॥ प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्टया भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥
दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥ नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन
व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥ २६ ॥

जो प्राणोंके आनेसे शरीरकी होती है। दोनो हाथोंको फैलाकर उनसे मिले ॥ २१ ॥ हे राजन्, तदनन्तर अपने निवासस्थानपर आनेसे नन्दजीके द्वारा पाद्य आदिसे पूजित तथा कुशल मंगल पूछनेके बाद आदृत होकर जब सुखपूर्वक आसनपर बैठे तब अपने पुत्र बलराम और श्रीकृष्णका विशेष समाचार जाननेके ख्यालसे नन्दजीसे यों कहने लगे ॥ २२ ॥ भाई यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस ढलती अवस्थामें, जब कि आपको सन्तानकी कोई आशा न थी, सन्तान हुई है ॥ २३ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस संसारके चक्करमें पड़े हुए हमलोगोंकी परस्पर भेंट हो गयी। यह एक नया जन्मही समझना चाहिये, क्योंकि संसारमें प्रियजनकी भेंट अत्यन्त दुर्लभ होती है ॥ २४ ॥ जैसे तरङ्गोंके थपेड़ोंसे टकराकर काष्ठ आदि दूर दूर हो जाते हैं वैसेही विभिन्न व्यवसायोंमें फँसे प्रियजनको एक दूसरेसे दूर हो जाना पड़ता है ॥ २५ ॥ भाई, जिस बड़े वनमें अपने प्रियजनोंसे घिरे हुए तुम रहते हो, इस समय वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वन कुशलसे है न ? उसमें पशु सुखसे तो हैं न ? जल, घास एवं लताएँ तो कम नहीं हैं न ? ॥ २६ ॥ भाई, मेरा लड़का बलराम अपनी माता रोहिणीके साथ आपके यहाँ व्रजमें ही रहता है। आप दोनोंने उसका लालन-पालन किया है, अतः आपको ही वह माता-पिता मानता है, वह तो सकुशल है न ? ॥ २७ ॥ शास्त्रोंने धर्म, अर्थ और कामका विधान स्वात्मीय जनके सुखभोगके लिए ही किया है। यदि भाई बन्धु कष्टही भोगते रहें, तो इस त्रिवर्गकी फिर क्या जरूरत है ? ॥ २८ ॥ नन्दने सान्त्वना देते हुए कहा—भाई, देवकीसे उत्पन्न तुम्हारे अनेक पुत्रोंको दुष्ट कंसने मार डाला। अन्तमें सबसे छोटी एक कन्या भी हुई, वह भी स्वर्ग सिधार गई ॥ २६ ॥ मनुष्य भाग्य परही टिका है, उसके लिए अदृष्ट सबसे बड़ा है वही पुत्र-आदिको देता है और छीन भी लेता है। सुख-दुःखका अव्यभिचारी कारण अदृष्ट ही है। यदि इस बातपर दृढ़ता आ जाय, तो मनुष्य मोहसे बच सकता है ॥३०॥ वसुदेवजीने कहा—

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद् व्रजे ॥ तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ॥ न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥ नन्द उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकावशिष्टाऽवरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २६ ॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥ अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥ वसुदेव उवाच ॥ करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दवसुदेवसङ्गमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आपने राजा कंसको मालगुजारी चुकाही दी और हमसे भेंट मुलाकात हो ही गयी, अब आप यहाँ अधिक और न ठहरें, क्योंकि गोकुलमें आजकल बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ऐसा सुनकर नन्द आदि गोपगण वसुदेवजीसे अनुमति ले बैल गाड़ियोंपर सवार होकर गोकुलको चल दिये ॥ ३२ ॥

पाँचवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नन्दजीको पुत्र पाकर हर्ष हुआ। उन्होंने शुभमुहूर्तमें बड़ी पवित्रताके साथ बच्चेका जातकर्म संस्कार कराया। पितरों और देवताओंकी पूजाकी। ब्राह्मणोंको लाखों गौएँ दीं। ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे थे, पौराणिक कथा बांच रहे थे। इस तरह चारों ओर उत्सवकी धूम मच गयी। गोपियों और गोपोंमें उमंग समाये नहीं समाती थी। नन्दजी तथा अन्यान्य गोपोंने रोहिणीको बड़ा आदर दिया—कहा कि हम सबका भाग्योदय बस तुम्हारे यहाँ आनेका ही फल है। एकबार नन्द कंसको कर देने मथुरा गये। व्रजका भार उन्होंने योग्य गोपोंपर रख छोड़ा था। वसुदेवजी उनसे मिले बलराम और कृष्णके समाचार जाननेके लिए उन्होंने जिज्ञासा की। नन्दने वसुदेवके कष्टपर सहानुभूति प्रकट की और बतलाया उन बातोंके लिए शोक करना बिलकुल ठीक नहीं, क्योंकि सुख-दुःख तो प्रारब्धसे होते हैं। उनके लिए हंसना-रोना व्यर्थ है। फिर वसुदेवकी अनुमति से वे व्रज लौट आये। पाँचवाँ अध्याय समाप्त ❀

—❀—❀·❀—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ षष्ठोऽध्यायः ❋

(नन्दके गोकुल लौटते समय रास्तेमें पूतनाका वृत्तान्त सुनना और उससे विस्मित होना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब नन्दजी रास्तेमें बढ़ते जा रहे थे तो यह सोच हुई कि वसुदेवजीकी वाणी झूठी नहीं हो सकती। वे उत्पातागमकी आशंकासे घबड़ाकर भगवान्की शरणमें गये ॥ १ ॥ इधर पूतना नामकी राक्षसी, जिसे बालकोंको मारनेके लिये ही कंसने नियुक्त किया था, गाँव-गाँव घर-घरमें जा-जाकर बालकोंको मार रही थी ॥ २ ॥ जहाँपर लोग अपने कामके आरम्भमें भगवान्के कीर्तन एवं रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ नहीं करते, वहींपर ऐसी राक्षसियाँ पहुँचा करती थीं ॥ ३ ॥ एक दिन वह पूतना आकाशमार्गसे उड़कर, मायासे सुन्दरी स्त्रीका रूपधर गोकुलमें आई ॥ ४ ॥ उसने केशोंमें मालती गूँथ रखी थी, उसके स्तन एवं नितम्ब बड़े-बड़े थे, कमर पतली थी, अच्छी साड़ी पहन रखी थी, उसके कर्णाभूषण हिल-से रहे थे, जिसकी कान्तिसे उसकी अलकावलियाँ चमक रही थीं उनसे उसके मुखकी शोभा खूब बढ़ रही थी, मधुर मुसकान एवं कटाक्षपातसे वह व्रजवासियोंके मनको

श्रीशुक उवाच ॥ नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ॥ हरिं जगाम शरणमुत्पातागमनशङ्कितः ॥ १ ॥ कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ॥ शिशूंश्चार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥ न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ॥ कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ॥ योषित्वा माययात्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ॥ सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५ ॥ वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ॥ अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६ ॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥ विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः ॥ अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥ तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तरा कोशपे-

अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी। इसलिए घरके अन्दर जाते समय किसीने उसे रोका नहीं, गोपियोंने तो उसे देख यह समझ लिया कि साक्षात् लक्ष्मी ही अपने पतिको देखने पधार रही हैं ॥ ५. ६ ॥ बालकोंकी ग्रह वह पूतना बच्चोंको ढूँढ़ती-ढूँढ़ती नन्दके घरमें आ घुसी और वहाँ उसने कृष्णको देखा। यद्यपि वह दुर्जनोंके काल हैं, पर इन्होंने अपनी तेजस्विता उस समय छिपा रखी थी, वह भस्ममें छिपी हुई अग्निकी नाईं थे ॥ ७ ॥ चराचरके स्वामी श्रीकृष्णने उस पूतनाको बालघातिनी जानकर आँखें मूँद लीं जैसे कोई अज्ञ रस्सीके धोखेमें सोये हुए सर्पको उठा ले उसी तरह पूतनाने भगवान्को गोदमें तो उठा लिया पर यह न जाना कि यह हमारा काल है ॥ ८ ॥ मखमलके म्यानमें रखे हुए तलवारकी तरह वह पूतना थी। भीतरसे तो हिंसावृत्तिसे भरी थी, पर ऊपरसे शुभग नारियोंका बाना बना रखा था। रोहिणी और यशोदा उससे ठगी गईं, उन्होंने उसे कोई कुलीन स्त्री समझा। सुन्दर माँकी तरह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आवरणकर रही कठोरचित्त उस मोहिनी स्त्रीको एक-न-एक अपने घरके अन्दर प्रविष्ट हुई देखकर उसकी कान्तिसे मोहित हो वे दोनों माताएँ सिर्फ उसकी ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी रह गईं, उसे रोका नहीं। ९॥ वहाँ उस राक्षसीने कृष्णको गोदमें ले तीक्ष्ण [भयङ्कर] विषसे भरे स्तनको शिशुरूप उनके मुखमें दे दिया। भगवान्को इससे रोष हो आया, वे दोनों हाथोंसे जोरसे दबाकर उसके प्राणोंके साथ उसे पीने लगे यानी ऐसे जोरसे दबाकर पीने लगे कि उसके प्राण निकलने लगे ॥ १० ॥ वह चिल्ला पड़ी, छोड़ दो, छोड़ दो, अब मुझे छोड़ दो, सम्पूर्ण प्राणियोंका जो मर्मस्थल रहता है वहीं वह पीड़ित हो रही थी यानी उसके मर्मस्थल फट रहे थे। आँखें बाहर निकल आईं, हाथ-पैर पटक-पटककर रोने लगी और पसीनेसे लथ-पथ हो गई ॥ ११ ॥ उसकी अति चिल्लाहटसे पर्वतसहित पृथ्वी डगमगा उठी और ग्रहसहित आकाश चलायमान हो गया। रसातल एवं दिशाएँ गूँज उठीं। लोगोंने तो यह समझा कि कहीं वज्रपात हो गया उस वज्रपातके भयसे सभी लोग पृथ्वीपर गिर पड़े ॥१२॥ इस तरह स्तनके दर्दसे पीड़ित उस राक्षसीके प्राण-पखेरू उड़ गये। मरते समय उसका वह राक्षसी

रिच्छदासिवत् ॥ वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते नीरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणां घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ ॥ गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥१०॥ सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ॥ विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ॥ रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया ॥ १२ ॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥ प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥ पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ॥ गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥ अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रिशून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ सन्तत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥१७॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥१८॥ यशोदारोहिणीभ्यां

रूप प्रकट हो गया और वह मुँह बाकर धमाकसे गोष्ठमें ऐसे गिर पड़ी जैसे वज्रसे आहत होकर वृत्रासुर गिरा था। उसके केश, हाथ-पैर छितरा गये ॥ १३ ॥ हे राजन्, अचम्भेकी बात तो यह हुई कि गिरते हुए उसके शरीरने छः कोशके पेड़-पौधोंको दबाकर चूर-चूर कर डाला ॥ १४ ॥ उसकी दाढ़ें हल-जैसी बड़ी-बड़ी थीं, उससे उसका मुख बड़ा भयानक दीखता था, पर्वतके गुफाकी तरह उसके नाक थे, शिलाओंके समान उसके स्तन थे, केश लाल-लाल तथा बिखरे थे, अन्धेरे कुएँकी तरह उसकी आँखें थीं, नदीके कगारेके समान उसके जघन थे, हाथ-पाँव और घुटने पुलकी भाँति थे और सूखे तालावकी तरह उसका पेट था ॥ १५, १६ ॥ उसके उस भयङ्कर शरीरको देखकर गोप और गोपियाँ डर गयीं। इसके पहले तो उसकी चीखसे ही इनके कान और माथे फट रहे थे ॥ १७ ॥ उसके वक्षःस्थलपर बच्चेको निडर खेलते देख गोपियाँ घबड़ा गयीं, उन्होंने जल्दीसे उसे उठा लिया ॥ १८ ॥ गोप-गोपियाँ यशोदा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

और रोहिणीके साथ-साथ गायकी पूँछ घमाकर उनकी चारों ओरसे रक्षा करने लगीं ॥ १९ ॥ गोमूत्रसे उनको नहलाया, फिर खुर की धूलसे नहलाया तदनन्तर गोबरका बारहों अङ्गोंमें केशव आदि नामोंके द्वारा तिलक लगाया; इस तरह उनकी रक्षा करने लगीं ॥२०॥ घबराहटके कारण पहिले तो बिना नहाये यह सब कर बैठी थीं, अब जब कुछ चित्त ठिकाने हुआ तब उन्होंने आचमन न्यास आदिके द्वारा स्वयं अपनेको शुद्धकर तब बच्चेको अङ्गन्यास एवं करन्यास कराया ।.२१॥ ए बच्चे, अब तुम्हारे पैरोंकी, अणिमान् तुम्हारे घुटनोंकी, यज्ञ जंघाओं की, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थलकी, सूर्यनारायण कण्ठकी, विष्णु बाहुओंकी, वामन मुखकी, ईश्वर सिरकी इस तरह तुम्हारे सब अङ्गोंकी रक्षा करें ❀ ॥२२॥ और तुम्हारे आगे चक्री, पीछे गदाधर, अगल-बगलमें धनुष और तलवार लिए हुए मधुहा भगवान, कोणोंमें शंखधारी, ऊपर उपेन्द्र, नीचे गरुड़ और चारों ओर हलधर बाहर

ताः समं बालस्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥ २० ॥ गोप्यः संस्पृष्ट सलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ॥ न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥ अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥ चक्र्यग्रतः सहगदो हरिस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ॥ कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३ ॥ इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः ॥ क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥ व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ॥ भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥ २६ ॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥

की रक्षा करें ॥२३ ॥ भीतरके अङ्गोंमें तुम्हारी इन्द्रियोंकी रक्षा हृषीकेश, नारायण प्राणोंकी, श्वेतद्वीपपति चित्तकी, योगेश्वर मनकी, पृश्निगर्भ बुद्धिकी और ईश्वर अन्तःकरणकी रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द, सोते समय माधव, चलते-फिरते समय वैकुण्ठ, बैठते समय श्रीपति तथा खाते समय सभी दुःखदायी ग्रहोंमें भयङ्कर यज्ञभुक् भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥२४–२६॥

❀ ॐ अं नमो दक्षिणकरतले । ॐ मं नमो वामकरतले । ॐ यं नमः उभयोः करपृष्ठयोः । ॐ अं नमो दक्षिणाङ्गुलिसन्धौ । ॐ हं अं नमः कट्यः दक्षिणमणिबन्धे । ॐ कं नमो दक्षिणकूर्परे। ॐ ईं नमो दक्षिणबाहुमूले । ॐइं वामाङ्गुलिसन्धौ । ॐविं वाममणिबन्धे। उं वामकूर्परे । ॐईं वामबाहुमूले । ओं अं नमः पादयोः । ओं मं नमो जानुनोः । ओं यं नमः ऊर्वोः । ओं अं नमः कट्योः । ओं इं उदरे । ओं कें नमः हृदये । ओं ईं नमः उरसि । ओं इं नमः कण्ठे । ओं विं नमो भुजयोः । ओं उं नमो मुखे । ओं ईं नमो मूर्ध्नीति बीजन्यासः यद्वा–बालस्याङ्गेष्वङ्घ्र्यादिषु बीजस्याजादिनामाद्यैकैकाक्षरस्य सानु स्वारस्य नमः– शब्दान्तस्य न्यासमकुर्वततेन अं नमोऽजस्तवाङ्घ्री अव्यात् । अं नमः अणिमास्तव जानुनी अव्यादित्येवं प्रयोगः–इत्येके । देखिये—अन्वितार्थप्रकाशिका ।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

डाइन, राक्षसी, कूष्माण्डा, बालघातिनी, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, रक्ष, विनायक, कोटरा, रेवती, जेष्ठा, पूतना प्रभृति मातृकाएँ तथा देह, प्राण इन्द्रियको जर्जर बनानेवाले पागलपन एवं मृगी ॥ २७, २८ ॥ जो उत्पात स्वप्नमें दिखाई पड़ते हैं एवं वृद्ध-बाल ग्रह हैं, सभी भगवान्के नामोच्चारणसे नष्ट हो जायँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इस तरह स्नेहसे युक्त होकर गोपियोंने जब बच्चेकी रक्षा की, तब माताने दूध पिलाया और उसे ढँक दिया ॥ ३० ॥ जब नन्द आदि गोप मथुरासे व्रज पहुँच आये और पूतनाका शरीर देखा तब बड़े अचम्भेमें पड़ गये ॥ ३१ ॥ अवश्य वसुदेव दूरतक पहुँचे हुए व्यक्ति हैं, पूर्व जन्ममें तपस्वी या योगेश्वर होते हुए इस जन्ममें उसी रूपसे अवतीर्ण हुए देदीप्यमान मालूम पड़ते हैं। उन्होंने उत्पातकी जो बातें कही थीं, आज वही घटित हो रही हैं, जो हम लोग अपनी आँखों देख रहे हैं ॥ ३२ ॥ इसके बाद व्रजवासियोंने कुल्हाड़ीसे उसके अवयवोंको काट-काटकर मारे दुर्गन्धके दूर

कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ॥ उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुह ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ॥ सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥ तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ नूनं बतर्षिः सञ्जातो योगेशो वा समास सः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरं परशुभिश्छित्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठधिष्ठितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ॥ जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥ किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥ पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ॥ अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ॥ ३७ ॥ यातु-

कर फिर लकड़ी बटोरकर जला दिया ॥ ३३ ॥ चूँकि उसका शरीर कृष्णसे मुक्त हुआ था, इस नाते उसके सारे पाप शीघ्रही नष्ट हो चुके थे, अतः जलनेके समय उस शरीरसे जो धुआँ निकला, वह बहुतही सुगन्धित था। उससे अगरुसी सुगन्धि आती थी ॥ ३४ ॥ वह* पूतना बालघातिनी थी, रुधिर पीनेवाली थी, श्रीकृष्णको मारनेके ख्यालसे दूध पिलाया था, फिर भी भगवान्ने उसे सद्गति दी ॥ ३५ ॥ फिर उनकी सद्गतिका क्या पूछना है, जो कि श्रद्धा भक्तिसे भगवान् कृष्ण परमात्माको प्रियतम वस्तु निछावर करते हैं और उनकी माताओंकी तरह सदा अनुरक्त रहते हैं ॥ ३६ ॥ भगवान्ने लोकवन्दित ब्रह्मादि देवोंके भी वन्दनीय अपने चरणोंसे, जो कि भक्तोंके हृदयमें निरन्तर बसते हैं, पूतनाके अङ्गोंको जो कुचला और उसका जो दूध पिया, क्या यह पूतनाके लिए कम सौभाग्यकी बात है ॥ ३७ ॥ उस पूतनाने केवल दूध पिलानेके नाते जब सद्गति प्राप्तकर ली, तब यशोदा आदि माताएँ एवं

*'पूतना लोकबालघ्नी' इस श्लोकसे लेकर 'तासामविरतं कृष्णे' इस श्लोकतकके छः श्लोकोंको वल्लभाचार्यने प्रक्षिप्त माना है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गौएँ जो प्रेमसे भगवान्का लालन-पालन करती थीं, उनकी सद्गतिका क्या पूछना ? ॥ ३८ ॥ हे राजन्, स्नेहसे चू रहा गायों एवं माताओंका दूध कैवल्यादि सब पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले भगवान्ने पीया और जिनका कृष्णपर अविच्छिन्न पुत्रभाव बना था, भला क्या उन्हें फिर प्रपञ्चमें पड़ना पड़ेगा ? पुत्रभावसे निरन्तर भगवान्को देख रही उनका अज्ञानजनित संसार पुनः नहीं हो सकता ॥ ३९, ४० ॥ नन्द आदि व्रजवासीगण उसके शरीरकी उस सुगन्धिको सूँघकर एक दूसरेसे पूछने लगे कि यह सुगन्धि कैसी और कहाँ से आ रही है ? यों आपसमें बातें करते हुए व्रज लौट आये ॥४१॥ जब नन्द आदि गोपोंने पूतनाका आना, उसके मरनेका वृत्तान्त और बच्चेका कुशल गोपोंसे वर्णित सुना, तब उन्हें कम विस्मय न हुआ ॥ ४२ ॥ हे कुरुद्वह, उदारमति नन्द अपने लड़केका सिर सूँघ बहुतही आनन्दित हुए । उन्होंने यह समझा कि मानों वह लड़का मरकर जी उठा हो ॥ ४३ ॥ जो लोग श्रद्धाके साथ भगवान्के द्वारा किये गये पूतना उद्धाररूपी अद्भुत बालचरितको सुनेंगे, वे भगवान्में भक्ति प्राप्तकर सकेंगे ॥ ४४ ॥

धान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीरा किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥ पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम ॥ भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥ तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥ ४० ॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥ किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥४२॥ नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेतागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते म० पु० द० पू० षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

छठवें अध्यायका सार—श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब ग्वाल-बाल सहित नन्द व्रज लौट रहे थे तब यह सोचते आ रहे थे कि वसुदेवकी बात झूठी नहीं हो सकती। जरूर व्रजमें कोई न कोई उत्पात होगा । इसी बीचमें कंससे भेजी गई पूतना व्रजमें आ धमकी । वह एक कुलीन सुन्दरीका रूप धर कृष्णके पास पहुँची । माताओंने उसे भद्र महिला समझा और उसे रोका नहीं । पूतनाको देखकर भवान्ने आँखे मोंज लीं । उस दुष्टाने झटसे अपना विषसे युक्त स्तन भगवान्के मुखमें डाल दिया । भगवान्ने जोरसे दबाकर प्राण सहित उसे लिया । वह छटपटा उठी और मरते समय अपने रूपको छिपा न सकी । उसके शरीरके गिरते ही उसके साथ बहुतसे वृक्ष आदि ढंह पड़े । गोपियोंने जब देखा कि उस विशाल शरीर पर भगवान् खेल रहे हैं तब उन्हें बड़ा भय लगा । उन्होंने उन्हें गोमूत्र से नहलाकर उनके अङ्गन्यास कर न्यास कर दिये । बाद माता ने अपना दूध पिलाया और ढँक कर सुला दिया । व्रजवासियों ने कुल्हाड़ी से पूतनाके शरीर काट काट कर जला दिया । भगवान् ने उसका स्तन पिया था, इस नाते उसके पाप तो ध्वस्त हो चुके थे, अतः उसकी देह से सुगन्धित धुँआँ उठने लगा । जब नन्दलाला व्रज में आये और वहाँ का वृत्तान्त सुने, तब उन्हें वसुदेवकी बातें याद आईं और उन्होंने उन्हें एक ऋषि जैसा तत्त्वदर्शी समझा । उन्होंने श्रीकृष्णके बार-बार सिर सूँघा । हे राजन्, जो इस भगवान् के पूतना मोक्ष रूपी बालचरित्र का श्रवण करेगा उसकी भगवान् में भक्ति बढ़ेगी । छठवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ सप्तमोऽध्यायः ❋

(श्रीकृष्णका शकटासुर एवं तृणावर्तका उद्धार तथा विश्वरूप दिखलाना)

राजाने कहा—हे प्रभो, भगवान् मत्स्यादि अवतार धारणकर जो जो कार्य करते हैं वे सब हमारे कानोंके लिये सुखकर तथा मनको प्रसन्न करनेवाले होते हैं। उनके श्रवणसे पुरुषमात्रको मानसिक ग्लानि, तीनों एषणाओंका नाश, अन्तःकरणकी शुद्धि एवं भगवान्में भक्ति तथा भगवद्भक्तोंके साथ मित्रता शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। भगवान्का वह चरित्र हारकी नाईं धारण करने योग्य है। यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रहकर रहे हों, तो कृपाकर उसीका वर्णन कीजिये ॥ १ २ ॥ इसलिये मानवलोक में आकर मानव जातिके अनुरूप लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके अन्य मनोहर अद्भुत बाल लीलाओंको आप मुझे सुनाइये ॥ ३ ॥ श्री शुकदेवजी ने कहा—कदाचित् जब कि भगवान् करवट बदलने लगे यानी लगभग जब तीन मास उनके जन्मके बीत चुके, तब उनके निमित्त एक बहु बड़ा उत्सव मनाया गया। उस दिन जन्म नक्षत्रका भी योग था। बहुत-सी स्त्रियाँ एकत्रित हुई थीं। उस समय यशोदाजी

राजोवाच ॥ येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥ करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरति-वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ॥ भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ॥ वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥ नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ॥ अन्नाद्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः सञ्जातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥५॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः ॥ नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥ अधःशयानस्य शिशोरनोऽल्पक प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः

अपने पुत्रका अभिषेक करने लगीं ॥ ४ ॥ बाद उन्होंने भगवान्की आँखोंमें अञ्जन आदि लगा दिया और अन्न, वस्त्र माला तथा अन्यान्य अभिलषित वस्तुओंको देकर ब्राह्मणोंकी पूजा की। ब्राह्मणगणने स्वस्त्ययन कर दिया। इसके बाद पुत्रकी आँखें झपती देख नन्दपत्नी यशोदाने उन्हें धीरेसे एक गाड़ीके नीचे सुला दिया ॥ ५ ॥ उस औत्थानिकोत्सवमें यशोदाका मन बहुत लग गया था। उदारचित्तवाली वह आये-गये व्रजवासियोंके सत्कारमें संलग्न थीं। अतः वह कृष्णकी रुलाई न सुन सकीं। भगवान्का वह रोना दूध माँगनेका उपक्रम था। जब यशोदा न आईं तब उन्होंने दोनों चरणोंको उस गाड़ीपर दे मारा ॥ ६ ॥ उस गाड़ीके नीचे सो रहे उनके चरण तो छोटे-छोटे और कमल से भी बढ़कर कोमल थे, किन्तु उनके आघात से गाड़ी उलट गयी और उसपरके दूध दहीके सारे कांस आदिके बर्तन लुढ़क पड़े एवं उसके धुरा तथा जुआ आदि सभी चूर-चूर हो बिखर गये ॥ ७ ॥ यशोदा, नन्द एवं उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्सवमें आयी सारी व्रज स्त्रियाँ इस विचित्र घटनाको देख घबड़ा गयीं, बोलीं—अरे, अपने आप यह गाड़ी कैसे उलट पड़ी ? ॥ ८ ॥ उन गोप और गोपियोंकी बुद्धिको परेशान देख ग्वाल-बालोंने कहा कि रोते-रोते बच्चेने ही उसपर लातें जमा दी है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं करना ॥ ९ ॥ किन्तु उन गोप लोगोंको बालकोंकी बातपर विश्वास न हुआ, बच्चोंकी बात समझ उन्होंने उसकी अवहेलना करदी । वे लोग बाल-गोपालके अप्रतर्क्य शक्तिको जान न सके ॥ १० ॥ यशोदाको तो किसी दुष्टग्रहकी आशंका हुई । वह रो रहे बच्चेको गोदीमें लेकर ब्राह्मणोंके द्वारा पुरुषसूक्तादि से मङ्गल करवा दूध पिलाने लगीं ॥ ११ ॥ बलवान् गोपलोगोंने गाड़ीको फिरसे पहलेकी तरह उसके सभी अवयवोंके साथ सजा दिया और ब्राह्मणोंने ग्रहोंका होमकर दही, अक्षत, कुश और जल से सपर्या कर देवताओंकी पूजा कर दी ॥ १२ ॥ जो ब्राह्मण निन्दा, झूठ, दम्भ, ईर्ष्या, हिंसा और मान-अपमानसे शून्य हैं, भला सत्यशील

समागताः ॥ नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥ (इति ब्रुवन्तोऽतिविवादमोहिता जनाः समन्तात्परिवव्रुरार्तवत्)॥ ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ॥ रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥ रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ॥ कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥ पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्रा हुत्वाऽर्चयाञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२ ॥ येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफला कृताः ॥ १३ ॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥ गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥ विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ॥ ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७ ॥ एकदाऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ॥ गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥ भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमादध्यौ

उनके द्वारा दिये गये आशीर्वाद क्या विफल हो सकते हैं ? ॥ १३ ॥ यों निश्चयकर नंदगोपने उत्तम ब्राह्मणों द्वारा साम, ऋक्, और यजुर्वेदके मंत्रोंसे अभिमंत्रित जल एवं पवित्र औषधियों से बच्चे का अभिषेक कराया, स्वस्त्ययन करवाया एवं अग्निमें हवन कराया और ब्राह्मणोंको उत्तम-उत्तम अन्न, सर्वगुण सम्पन्न यानी बहुत दूध देनेवाली तथा वस्त्र सुवर्ण और पुष्पकी मालाओंसे भूषित गौएँ दीं, ताकि उनके लड़केका अभ्युदय हो । ब्राह्मणोंने भी उन्हें पाकर बड़ी प्रसन्नता बतलाई और आशीर्वाद दिये ॥ १४–१६ ॥ चूँकि वे मंत्रोंके जानकार योगयुक्त ब्राह्मण थे, अतः उन्होंने जो आशीर्वाद दिये वे कभी भी उनमें निष्फल नहीं हो सके, किन्तु ठीक वैसेही घटे, यह बिल्कुल निश्चित है ॥ १७ । एक दिन की बात है, यशोदाजी अपने लड़केको गोदमें लेकर प्यारकर रही थीं । क्षणमें उन्हें मालूम पड़ा कि वह बच्चा पहाड़-सा भारी हो गया है । वह उस भारको सम्भाल न सकीं ॥ १८ ॥ इससे उन्हें बड़ा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विस्मय हुआ और भारसे पीड़ित उन्होंने लड़केको पृथ्वीपर उतार दिया। तदनन्तर तीनोंलोकके महापुरुष भगवान्‌का उत्पातकी आशंकासे ध्यान किया फिर विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा स्व-
स्त्ययनादि करानेमें जुट गईं ॥ १९ ॥ ठीक उसी समय जब कि कृष्ण बैठे हुए थे, तृणावर्त नामक असुर वहाँ आया। वह कंस का नौकर था और उसीके द्वारा भेजा गया था। उसने
बवण्डरका रूप धर लिया। गोकुलको धूलसे भर दिया. सबकी आँखोंमें धूल झोंक दिया एवं सारी दिशाओं विदिशाओंको घोर शब्दोंसे आकुल कर दिया। एकक्षणमें सारा गोकु धूलिके
अन्धकारसे आच्छन्न हो गया और उसी बवण्डररूपसे बैठे हुए उस बालकको वह चुरा ले गया। यशोदा अपने बच्चेको उस स्थानपर न देख सकीं, जहाँ कि उन्होंने पहले उसे बिठला-
पाया था ॥ २०–२२॥ तृणावर्तने इतनी धूलियाँ उड़ा रखी थीं कि उससे पीडित होकर लोग अपने-परायेको भी न देख पाते थे ॥ २३ ॥ उस बवण्डरके उत्पातसे इतनी धूल छा गई
कि यशोदाजी बहुत खोज ढूंढ़कर भी बच्चेको न पा सकीं। बार-बार कृष्णको स्मरण करने लगीं और अधिक शोक करने लगीं आखिरमें उस शोकके आवेगका न सह सकनेके कारण उस

जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ॥ चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं
सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥ ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥२१॥ मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसा वृतम् ॥ सुतं यशोदा
नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ॥ तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥
इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥
रुदितमनु निशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥२५॥ तृणावर्तः
शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥२६॥ तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत
उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥
तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥ प्रादाय

तरहसे पृथ्वीपर गिर पड़ीं, जिस तरहसे कि बछड़ेके मर जानेपर गौ आकुल होकर गिर जाती है ॥ २४ ॥ जब आँधीका वेग शान्त हो गया, धूल बरसना शांत हो गया, तब गोपियों को
उनके रोनेकी आवाज सुन पड़ी। सुनतेही वे वहाँ आगईं नन्दके बच्चेको न देख अत्यन्त सन्तप्तमन हो गईं, उनकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं वे सबके सब रोने लगीं ॥ २५ ॥ बवण्डरका
रूप धारण करनेवाला तृणावर्त भगवान्‌को उठाकर कुछही ऊपर ले जा सका कि उसका वेग आकाशमें जाकर शान्त पड़ने लगा वह भगवान् कृष्णको और दूर न उठा ले जा सका, बात
यह पड़ी कि भगवान् ने अपना भार बढ़ा दिया था ॥ २६ ॥ भगवान् तो उसके लिये पहाड़ जैसे भारी हो गये थे। अपनेसे अधिक भारी होनेके कारण उन्हें पहाड़ समझता हुआ वह
घबड़ाकर उस अद्भुत बालकको पृथ्वीपर झटक देना चाहता था, किन्तु उन्होंने इतना कसकर उसका गला धर दबाया था कि वह वैसा न कर सका ॥ २७ ॥ गला दबाये जानेसे वह
दैत्य मुर्दा-जैसा हो गया और उसकी आँखें बाहर निकल आयीं. उसके मुँहसे साफ आवाज न निकलती थी, वह धड़ामसे श्रीमुकुन्दके साथ-साथ व्रजभूमिमें आ गिरा और मर गया ॥२८॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आकाशसे चट्टानपर गिरनेके नाते उसके अंग-प्रत्यंग टूट-फूटकर छितरा गये, उसका रूप भयानक हो गया। गिरनेकी आवाज सुन स्त्रियाँ वहाँ आयीं और रोती हुई उन्होंने उसे उस हालतमें देखा। देखते ही उन्हें मालूम पड़ा कि मानो शंकरके बाणसे मरा हुआ पुर नामक असुर ही पड़ा हुआ है ॥ २९ ॥ उसके छातीपर श्रीकृष्णको सवार देख उन्हें बड़ा ही आश्चर्य मालूम पड़ा और उन्होंने उन्हें उठा यशोदाजीको दे दिया। नरभक्षी तृणावर्त उन्हें मारनेकी नीयतसे ऊपर आकाशमार्गसे ले गया था, किन्तु उस मृत्यु-मुखसे श्रीकृष्णको छूटा हुआ, सकुशल देख एवं पुनः पाकर नन्द आदि सब गोप-गोपियाँ बहुत आह्लादित हुईं ॥ ३० ॥ वे लोग कहने लगे कि यह तो बड़े ही अचम्भेकी बात है कि अति बलवान् तृणावर्त तो मारनेके लिये इस लड़केको ले गया था, किन्तु वह परहिंसा परायण दुष्ट अपने पापसे आप मारा गया और यह बच्चा निर्भय हो हमलोगोंके सामने पुनः आ गया। यह ठीकही हुआ, क्योंकि सदाचारी लोग समदृष्टि रखनेसे भयसे विमुक्त रहते हैं ॥ ३१ ॥ भाई, हमलोगोंने ऐसी कौन-सी तपस्याकी थी, विष्णुकी कौन-सी पूजा की थी, हमने कौनसे श्रौत-स्मार्त कर्म किये

मात्रे प्रतिहृत्य विस्मताः कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ॥ तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा, मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥३०॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ॥ यत्सम्परेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥३२॥ दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥ एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥ पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ॥ द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥ सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्सञ्जातवेपथुः ॥ सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० द० पू० तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

थे, कौन-सी विश्वबन्धुता दिखलायी जिसके फलस्वरूप यह बालक अपने हम बन्धुओंको हर्षित करता हुआ कालके गालसे बचकर पुनः सामने आया? यह हमलोगोंका भारी मंगल हुआ इस तरहके अनेक अद्भुत चरित उस महावनमें देखकर नन्दजीने विस्मित हो वसुदेवजीकी वे सब बातें बार-बार सत्य मानीं ॥ ३३ ॥ एक दिन परम सौभाग्यवती यशोदाजी अपने बच्चेको गोदमें लेकर स्नेहसे व्याप्त हो, टपक रहे दूधसे युक्त स्तनको पिला रही थीं ॥ ३४ ॥ हे राजन्, लड़केने दूध पीकर मुस्करा दिया। यशोदाने उसका मुख चूम लिया। उस समय कृष्ण जँभाई लेने लगे। यशोदाने उनके मुखकी ओर देखा, तो उन्हें उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, तारे, दिशाएँ सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पहाड़, नदी-नाले वन-उपवन एवं समस्त जड़-चेतन जितने प्राणी थे, वे सब दीख पड़े ॥ ३५, ३६ ॥ हे राजन्, बच्चेके मुखमें समग्र विश्वको अकस्मात् देखकर उन्हें कँपकपी हो आयी। उन्होंने मृगके बच्चेकी नाईं त्रस्त हुई अपनी आँखें बन्दकर लीं। उस समय उन्हें बहुत आश्चर्य मालूम पड़ रहा था ॥ ३७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सातवें अध्यायका सार—श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब शिशु श्रीकृष्ण इधर-उधर करवट बदलने लगे, तब नन्द बाबाने एक बड़ा उत्सव मनाया। जन्म-नक्षत्रका भी उसी दिन योग था, इसलिये यशोदाने अभिषेक आदि मंगल कृत्य किये। इसी बीचमें कृष्णकी आँखें कुछ झपती देख यशोदाने उन्हें एक गाड़ीके नीचे लिटा दिया और आये गयेकी सेवा सत्कारमें लग गयीं। इधर कृष्ण जग गये और दूधके लिये रोने लगे। परन्तु उस होहल्लामें यशोदा उनका रोना सुन न सकीं। कृष्णने खीजकर गाड़ीपर लातें जमा दीं। गाड़ी उलट पड़ी उसपर रखी हुई सारी वस्तुएँ बिखर गयीं। गिरनेकी आवाज सुन लोग उधर दौड़े। गाड़ीको उलटी देख उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। बच्चोंने बतलाया कि गाड़ी तो कृष्णके पैर की चोटसे उलट गयी है। पर किसीको उन बच्चोंके कहनेपर विश्वास न हुआ। यशोदाने ग्रहका उपद्रव समझ उसकी शान्ति करायी। एक दिन यशोदा गोदमें ले कृष्णको दूध पिला रही थीं। उन्हें मालूम पड़ा मानो कृष्ण बहुत भारी हो गये हैं। उन्हें इस बातसे बड़ा अचम्भा हुआ। वे ब्राह्मणोंको बुला स्वस्त्ययन कराने लगीं। इसी बीचमें तृणावर्तनामक असुर बवण्डरका रूपधर वहाँ आया और कृष्णको आकाशमें उड़ा ले गया। उसने भगवान्‌को ऊपरसे झटकना चाहा, किन्तु भगवान् ने उसका गला दबा दिया। मरकर वह चट्टान पर गिर पड़ा और चकनाचूर हो गया। गोपियोंने कृष्णको उसके हृदयपर खेलते देखा। तदनन्तर शान्तिपाठ कराया गया। एक दिन यशोदाने कृष्णके मुसकान भरे मुखको चूम लिया कृष्णको जँभाई आ गई। यशोदाको उस मुखमें सारा संसार दीख पड़ा। वे भयसे काँप-सी गयीं उस समय उनके अचरजका कोई ठिकाना न रहा। सातवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ अष्टमोऽध्यायः ❋

(गर्गाचार्यको बुलाकर बलराम कृष्णका नामकरण करना, कृष्णका मिट्टी खाते समय पकड़ा जाना और माताको मुँहमें सारा ब्रह्माण्ड दिखलाना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, वसुदेवजीकी प्रार्थनापर यदुओंके पुरोहित महा तपस्वी गर्गाचार्यजी नन्दजीके व्रजमें पहुँचे ॥ १ ॥ उन्हें देखकर नन्दको अपार प्रसन्नता हुई। उन्होंने उठकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विष्णु समझकर उनकी पूजा की ॥२॥ जब गर्गाचार्य आरामसे बैठ गये, तब मीठी मीठी बातोंसे उन्हें सन्तुष्ट कर नन्दबाबा कहने लगे—महा-

श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ॥२॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ॥ नन्दयित्वाऽब्रवीद् ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥४॥ ज्योतिषामयनं

राज, आप तो सर्वथा पूर्ण हैं, फिर भी बतलाइये आपकी क्या सेवा करूँ ॥ ३ ॥ भगवन्, आप-जैसे महापुरुषोंका कृपण गृहस्थ पुरुषोंके घर पधारना अवश्य उनके कल्याणकी दृष्टिसे होता है। इसके अतिरिक्त कोई भी कहीं दूसरा उद्देश्य उनका नहीं होता ॥ ४ ॥ जो परोक्षज्ञानका साधन ज्योतिःशास्त्र है उसका आपहीने प्रणयन किया है। उससे कोई भी बुद्धिमान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनुष्य भूत भविष्यकी छिपी बातें देख सकता है ॥ ५ ॥ आप ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, आप मेरे इन दोनों बच्चोंका नामकरण आदि संस्कार कर दीजिये । ब्राह्मण तो जन्मसे ही दुनिया-भरके गुरु होते हैं, अतः इस विचारकी कोई गुञ्जाइश नहीं है कि इनके गुरु कोई और हैं, मैं कैसे कहूँ ? ॥ ६ ॥ गर्गाचार्यने कहा—ऐसा करनेमें कुछ अड़चनें हैं । यह तो सदासे इस पृथिवीपर प्रसिद्ध है कि मैं यदुवंशियोंका पुरोहित हूँ । अतः यदि तुम्हारे पुत्रोंके संस्कार करूँ, तो हो सकता है कि लोग इन्हें देवकीके पुत्र मानने लगें ॥ ७ ॥ एक तो कंसकी पापमय बुद्धि है वह सदा अनर्गल बातें सोचा करता है । दूसरी तुम्हारे और वसुदेवकी मैत्री है, तीसरी बात यह है कि देवकीकी आठवीं सन्तान लड़की नहीं हो सकती अरे पापी, मुझे मारनेसे क्या फायदा ? इत्यादि योगमायाकी बातें सुनकर प्रतिदिन वह यही सोच करता रहता है कि कहीं न कहीं अवश्य ही वह होगा । आप दोनोंकी मैत्री सोचता हुआ नन्दके ही घर वह हो सकता है, यह संभावना करके तथा मेरे संस्कार करानेसे आशङ्कित होकर यदि वह बच्चेको मार देगा, तो हमलोगोंका महान अनिष्ट होगा ॥ ८, ९ ॥ नन्दजीने कहा—यदि ऐसी

साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ॥ प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥५॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥६॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वतः ॥ सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥७॥ कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ॥ देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥८॥ इति सञ्चिन्तयन् श्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ॥ अपि हन्तागताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥९॥ नन्द उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे ॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्ति वाचनपूर्वकम् ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥११॥ गर्ग उवाच ॥ अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः । यदूनामपृथग्भावात्सङ्कर्षणमुशन्त्युत ॥१२॥ आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१३॥ प्रागयं वसुदेवस्य

बातें हैं, तो महाराज, एकान्त स्थानमें चलकर स्वस्त्ययनपूर्वक इनके द्विजाति संस्कारकर दीजिये, इस गोव्रजमें मेरे अपने आदमी भी उसे न जान सकेंगे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, नन्दकी इन बातोंको सुनकर गर्गाचार्यने एकान्तमें छिपकर बच्चेका नामकरण करा दिया । एकान्तमें ही नामकरण करना तो उन्हें अभीष्ट ही था और इसीलिये वह आये भी थे ॥ ११ ॥ गर्गजीने कहा—रोहिणीका यह लड़का गुणोंसे अपने लोगोंको प्रसन्न करेगा, अतः इसका नाम 'राम' होगा, इसी नामसे यह पुकारा जायगा । इसमें बलकी अधिकता देख लोग इसे बल भी कहेंगे और यदुवंशियोंमें फूट मिटाकर उनमें एकता ला देगा, अतः लोग इसे 'संकर्षण' भी कहेंगे ॥ १२ ॥ और तुम्हारा लड़का तो प्रत्येक युगमें अवतार लेता है । कभी इसका वर्ण श्वेत, कभी लाल, कभी पीला होता है । पूर्वके प्रत्येक युगोंमें शरीर धारण करते हुए इसके तीन वर्ण हो चुके हैं इस बार कृष्ण वर्णका हुआ है, अतः इसका नाम कृष्ण होगा ॥ १३ ॥ तुम्हारा यह पुत्र पहले वसुदेवके यहाँ जन्म लिया था, अतः इसे श्रीमान् वासुदेव नामसे विद्वान् लोग पुकारेंगे ॥ १४ ॥ तुम्हारे लड़केके नाम और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रूप तो गिनतीके परे हैं, उनमेंसे गुण और कर्मके अनुरूप कुछको मैं जानता हूँ, दूसरे लोग नहीं जान पाते ॥ १५ ॥यह तुम्हारे गोप, गौओं एवं गोकुलको आनन्दित करता हुआ तुम्हारा कल्याण करेगा। इसके द्वारा तुम भारीसे भारी विपत्तियोंको शीघ्र तयकर लोगे ॥ १६ ॥ पहले, जब कि लोग चोर-डाकुओंसे त्रस्त हो गये थे, घोर अराजकता छा रही थी, तुम्हारे इसी पुत्रने अवतार धर उन्हें दण्ड दे सज्जनोंकी रक्षाकी थी। उन लोगोंने इसीकी सहायतासे उपद्रवियोंको धर दबाया था ॥ १७ ॥ जो भाग्यवान् मानकर इसकी भक्ति करेंगे उन्हें शत्रु उसी तरह पराजित नहींकर सकेंगे, जिस तरह विष्णुके भजनेवालोंको असुर ॥ १८ ॥ यह तुम्हारा लड़का सौन्दर्य, कीर्ति, प्रभाव आदिमें विष्णुसे कुछ भी कम न होगा, अतः इसका पालन-पोषण जरा सावधानीसे करना ॥ १९ ॥ इसप्रकार कृष्णके विषयमें आदेश दे जब गर्गाचार्य अपने आश्रमको चले गये, तब नन्दने अत्यन्त प्रसन्न हुए

क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥१४॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानु-
रूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१५॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥
पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति
मानवाः ॥ नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ । तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः । श्रिया कीर्त्यानुभावेन
गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥
कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ ॥ जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥ २१ ॥ तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥२२॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणयास्नु
वन्त्यौ पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ॥ दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥ यर्ह्य-
ङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ॥ वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४॥

अपनेको आशीर्वादोंसे परिपूर्ण—भाग्यवान् समझा ॥ २० ॥ जब कुछ और समय बीता तब गोकुलमें बलराम और कृष्ण घुटनोंके बल चलने लगे ॥ २१ ॥ जब वे व्रजके कीच धूलमें घुटनेके बल कुछ और तेजोसे चलने लगे, तब उनकी करधनी और पैजनियाँ बजने लगीं। उसे सुन उन्हें भी प्रसन्नता होती थी। किसीके पीछे दो-तीन पग चलकर फिर बालस्वभाव वश मुग्ध और भीत हुए-जैसे माताके पास दौड़ आते ॥ २२ ॥ धूल भरे बच्चोंको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर वे बड़े स्नेहसे उन्हें छातीसे चिपटा दूध पिलातीं उस समय मारे प्रेमके उनके स्तनोंसे दूध चूने लगता था स्तन पकड़कर पी रहे उनके उस मुँहको देखकर बड़ाही आनन्द मिलता था, जिसमें कि अभी छोटे- छोटे दाँत उग रहे थे और कभी कभी मन्द मुस्कुराहट हो जाती थी ॥ २३ ॥ कुछ और बड़े होनेपर व्रजाङ्गनाओंके दर्शनीय कुमार लीलावाले जब वे दोनों हुए, तब उस व्रजके भीतर वे गौ-बछड़ोंकी पूँछ पकड़ने लगे। वे बछड़े भाग पड़ते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और उनके साथ यह भी घसिटने लगते। इस लीलाको देखकर व्रजकी गोपियाँ हँसने लगतीं और गृहकार्यको भी भूल बैठतीं, यों उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था ॥ २४ ॥ पशुओं, अग्नि, कुत्तों, तलवार, जल, गीध आदि पक्षियों एवं काँटोंसे उन्हें बचा रखनेमें ही माताओंका समय बीत जाता था। वे इतने चपल और खेलवाड़ी थे कि उनके बचावसे अतिरिक्त उन्हें समय ही नहीं मिलता कि वे घर-गृहस्थी देखें। जब वे इन्हें उपर्युक्त पशुओंसे बचाने तथा गृहोचित कर्मोंके सम्पादनमें समर्थ न हो सकीं तब उनके मनमें वात्सल्यपोषक संचारिभावका भलीभाँति आविर्भाव हो गया। वे बाललीला देख खूब प्रसन्न होती थीं ॥ २५ ॥ हे राजर्षे, कुछ समय और बीत जानेपर यानी थोड़े ही कालके बाद बलराम तथा कृष्ण गोकुलमें बिना घुटनोंके सहारे ही पैरोंके बल यानी डेगाडेगी इधर-उधर आनन्दसे चलने लगे ॥ २६ ॥ इसके बाद वे भगवान् कृष्ण समवयस्क व्रजबालकों और बलरामके साथ बड़ा मधुर खेल खेलने लगे, जिसे देख गोपियाँ बहुत ही प्रसन्न होती थीं ॥ २७ ॥ कृष्णके रुचिर कुमार चापलताको देखकर गोपियाँ वहाँ आ जातीं और स्वयं अनुभूत उस लीलानन्दका

शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥ कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ॥ अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥२७॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ॥ शृण्वत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥ हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ॥ ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥ एवं धाष्ट्र्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको

यशोदाको अनुभव करानेके लिये खूब जोरसे सुना-सुनाकर उनसे कहतीं ॥ २८ ॥ अजी, तुम्हारा लाल तो असमयमें ही बछड़ोंको खोल देता है, यदि हमलोग पकड़ो-पकड़ोकी आवाज देती हैं तो वह हँस पड़ता है। चोरी करनेके जितने कल्पित ढंग हैं उनसे चुराकर दही-दूध खा लेता है, खाते समय पहले तो बानरोंको बाँट देता है और यदि कोई बन्दर खानेवाला नहीं बच रहता, तब मटके फाड़ देता है। यदि कोई चीज घरमें न मिल सकी, तो, बस घरवालों के प्रति नाराज होकर सोये हुए बच्चोंको रुलाकर भाग खड़ा होता है ॥ २९ ॥ यदि कोई चीज ऊपर छींकेपर रख दी जाती है, तो पीढ़े और ऊखलपर चढ़कर पानेके लिये प्रयत्न करता है। इतना करनेपर भी जब वह मटकियोंतक नहीं पहुँच पाता, तब वह उनमें छेदकर डालता है, उसे पता रहता है कि कौनसी मटकी दही-दूधसे भरी है और कौनसी नहीं। जब घरमें अन्धेरा घिरा रहता है, तब नानाविध मणियोंको पहने हुए अपने अंगको ही दधि आदि ढूँढ़नेका प्रकाशक बनाता है यानी अपने शरीरमें धृत मणियोंके प्रकाशके सहारे उन्हें ढूँढ़ निकालता है और उसकी ये सब शरारतें तब शुरू होती हैं, जब कि हम सब गोपियाँ अपने अपने घरेलू कामोंमें उलझी रहती हैं ॥ ३० ॥ हे यशोदे, जब कभी वह पकड़ जाता है और उसे कुछ कहा जाता है तब वह बड़ी प्रगल्भतासे कह बैठता है कि चोर तो तूँ है, घरका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मालिक तो मैं ही हूँ !' उस तरह यह बहुत धृष्टता करता है। यदि डाँट-डपटकी जाती है, तब लिपेपुते स्थानको मूत्र आदि करके बिगाड़ देता है चोरी करनेके जितने तरीके हैं उनसे यह सब करता है और यदि तुम्हारे पास इसकी कुछ शिकायतकी जाती है, तब ऐसा मुँह बना लेता है मानो यह कुछ जानता ही नहीं। इन उलाहनोंके सुननेसे बालकृष्ण डर गये। वह उनकी आँखोंसे स्पष्ट प्रतीत होने लगा। गोपियाँ इस छटाको देख अघायी नहीं और यशोदाने भी मानों अपने जीवनका फल पा लिया। बाद उन्होंने कृष्णको डराया-धमकाया नहीं बल्कि शिर्फ इतना ही कहा कि--वत्स, ऐसा व्यवहार क्यों करते हो ॥ ३१ ॥ एकबार बलराम आदि ग्वालबाल खेलते-खेलते यशोदाके पास पहुँचे और यशोदाजीसे कहा कि माँ, 'कृष्णने तो आज मिट्टी खा डाली है' ॥ ३२ ॥ यशोदाने कृष्णके हाथोंको पकड़ लिया और धमकाने लगी कि तुमने मिट्टी क्यों खाई ? यशोदाको बहुत डर था कि मिट्टी खानेसे बच्चेको रोग पकड़ लेगा। कृष्ण तो इतने डर गये कि वे माँकी ओर आँखें भी न उठा सके ॥ ३३ ॥ माँने कहा—अरे नटखट, तूने एकान्तमें मिट्टी क्यों खाई, तुम्हारे ये मित्र लड़के और यह

यथास्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी नह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥ एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥ सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणा ॥ यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥ कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान्भक्षितवान् रहः ॥ वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥३४॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ॥ यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥३५॥ यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः ॥ व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥३६॥ सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ॥ साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥३७॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ॥ वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥३८॥ एतद्विचित्रं सह जीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ ३९ ॥ किं स्वप्न एतदुत

बलराम भी तो इस बातको कह रहे हैं ॥ ३४ ॥ कृष्णने कहा—माई, मैंने मिट्टी बिलकुल नहीं खायी। ये सब लोग तो झूठे हैं। यदि उन्हें सच्चा मानती हो, तो मेरा मुख देख लो ॥३५॥ माँने कहा—'यदि ऐसी बात है तो मुँह बा।' लीला करनेके लिये मनुज बालरूपधारी सर्वेश्वर सम्पन्न श्रीकृष्णने मुँह खोल दिया ॥ ३६ ॥ यशोदाने जब मुखको निहारा तब उन्हें उसमें चर-अचर सारा विश्व दीख पड़ा। अन्तरिक्ष, दिशायें, द्वीप, पर्वत-समुद्रसहित सारी पृथ्वी, प्रवह नामक वायु, विद्युत्, चन्द्र, तारा सहित सारा स्वर्गलोक, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अपने अधिष्ठाओं एवं शब्द आदि विषयोंके साथ दसों इन्द्रियाँ, सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों तथा मन, जीव, काल, स्वभाव, कर्म, वासना आदिसे लिङ्गशरीरोंका यानी चराचर शरीरोंका जिससे विचित्र विश्व एकही कालमें दीख पड़ा ! इतना ही नहीं यशोदाने उस मुखमें व्रजके साथ-साथ अपनेको भी देखा। इन बातोंसे उन्हें तरह-तरहके तर्क वितर्क होने लगे ॥ ३७-३९ ॥ यह क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ या देवताओंकी कोई माया है, अथवा मेरी बुद्धिका ही व्यामोह है या इस मेरे बच्चेका हो कोई स्वाभाविक अपना प्रभावपूर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चमत्कार है ? ॥ ४० ॥ अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि अवश्य ही यह बच्चेका ही चमत्कार है और निश्चयही ईश्वर इसके रूपमें आये हैं एवं तब उन्होंने उनकी स्तुति की चित्त, मन, कर्म, वचन, तथा तर्ककी पहुँचसे परे इस सारे ब्रह्माण्डका आश्रय है, जिसके द्वारा बुद्धिवृत्तिमें अभिव्यक्त प्रकाशसे इसकी प्रतीति होती है उस अचिन्त्यशक्ति परब्रह्मको मैं नमस्कार करती हूँ ॥ ४१ ॥ यह मैं हूँ, नन्द हमारे पति हैं, यह मेरा लाड़ला लाल है, व्रजेश्वरे नन्दकी मैं सम्पूर्ण धनादिकी अधिष्ठात्री पतिव्रता पत्नी हूँ और गोधन आदिके सहित ये गोप, गोपियाँ मेरी सम्पत्ति हैं, ऐसी जिसकी मायासे अभिमानरूप निकृष्ट बुद्धि मेरी हो गई है, वही भगवान् मेरी शरण हैं ॥ ४२ ॥ कृष्णने जब देखा कि इस तरह यशोदाने तो मेरा तत्त्व समझ लिया है, तब झटसे सर्वसमर्थ उन्होंने पुत्रस्नेहमयी अपनी शक्तिरूप माया फैलादी ॥ ४३ ॥ क्षणमें ही यशोदाको वे सब बातें भूल गयीं। उनके हृदयमें पहले-जैसा अपार

देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥ अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ॥ यदाश्रयं येन यत प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥ अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥४३॥ सद्योनष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीद्यथा पुरा ॥४४॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥४५॥ राजोवाच ॥ नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥ पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ॥ गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिस्स्यात्परमा लोके

वात्सल्यका रस उमड़ आया। उन्होंने उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया ॥ ४४ ॥ मायामुग्ध यशोदाने उस परब्रह्म श्रीहरिको जिसकी कि कर्मकाण्डरूप वेद इन्द्र कहकर, उपनिषदें ब्रह्म कहकर, सांख्य पुरुष कहकर, योगशास्त्र परमात्मा कहकर, सन्त भगवान् कहकर महिमा गाते हैं, पुत्ररूपमें मान लिया ॥४५॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन, नन्द एवं उस महाभाग्यशालिनी यशोदाने ऐसा कौन-सा महाफलवान् पुण्यकर्म किया था, जिससे कि भगवान् उनके पुत्र हुए और यशोदाके स्तनके दूध पीये ? ॥ ४६ ॥ और देवकी एवं वसुदेव—श्रीकृष्णकी उन महती बाललीलाओंसे जिन्हें आज भी विद्वान् लोग गाते हैं तथा जिनसे सभी श्रोता आदिके सारे पापताप नष्ट हो जाते हैं, क्यों वञ्चित रह गये ? ॥ ४७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा— आठ वसुओंमें द्रोणनामक एक वसु अपनी पत्नी धराके साथ ब्रह्मलोकमें रहते थे। एक बार ब्रह्माने उन्हें आदेश दिया कि तुम दोनों पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर गोपालन आदि कार्य करो उन दोनोंने प्रसन्न हुए ब्रह्मासे कहा कि हमदोनों पृथ्वीपर आपके वचनानुसार अवश्य करेंगे, किन्तु आप यह वर दीजिये कि महादेव विश्वेश्वर भगवान् हरिकी पराभक्ति हममें कूट-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कूदकर मर जायं, लोकमें विद्यमान मनुष्य जिसके द्वारा अनायास दुर्गतिसे पार हो जायं ॥ ४८, ४९ ॥ ब्रह्माने 'तथास्तु' कहा। तब वे दोनों व्रजमें अवतीर्ण हुए। उनमें द्रोण ऐश्वर्यादिसे युक्त महा यशस्वी नन्द नामसे प्रसिद्ध हुए एवं धरा यशोदा नामसे विख्यात हुईं ॥ ५० ॥ हे भारत, उस ब्रह्माके वरदानसे उन दोनोंका और गोप-गोपियोंकी अपेक्षा पुत्रभूत भगवान् कृष्णमें निरवच्छिन्न अनुराग बना रहा। ५१ ॥ सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माके वचनको सत्य करनेके लिये व्रजमें आकर बलरामके साथ बस गये और अपनी बाल-लीलाओंसे उन्हें अपनी ओर आकृष्टकर खूब प्रसन्न किया ॥ ५२ ॥

ययाऽञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥४९॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः॥ जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥५०॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥ कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥ सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आठवें अध्यायका सार--श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक दिन वसुदेवजीने सोचा कि बलराम और कृष्णके नामकरण संस्कारका समय आ गया है, अतः अपने पुरोहित गर्गाचार्यको व्रजमें भेज यह मंगलकृत्य करा डालना चाहिये। गर्गाचार्य व्रजमें पहुँचे। नन्द बाबाने बड़ी आवभगतकी और अपने पुत्रके संस्कारोंके लिए उनसे प्रार्थना की। गर्गाचार्यने इस बातको गुप्त रखनेका वचन ले एकान्तमें जाकर दोनों लड़कोंका नामकरण आदि संस्कार कर दिये। रोहिणीके पुत्रका नाम बलराम रखा गया, और वसुदेवके पुत्रका नाम कृष्ण रखा गया था। गर्गाचार्यने उन दोनों पुत्रोंकी अलौकिकताका भी संकेत कर दिया। और यह बतला दिया कि इन दोनों पुत्रोंकी वजहसे तुम्हारा सर्वविध अभ्युदय होगा। नन्दने अपने भाग्यको सराहा। कृष्ण उत्तरोत्तर बड़े होने लगे और बाल सुलभ तरह-तरहकी लीलाएँ करने लगे। इन लीलाओंसे केवल उनकी माता ही नहीं मुग्ध होती थीं, किन्तु सारे व्रजवासी दुनियाँके दुःखसन्तापको भूल जाते थे। जब भगवान् अन्य व्रजवालाओं के घरमें घुस शरारत करते, तब उन्हें हर्षका ठिकाना न रहता। वे अपनेको धन्य-धन्य समझतीं। वे लोग भी इनसे शरारत करनेमें बज नहीं आतीं। आकर यशोदाको कृष्णके सामने उलहना देतीं। कृष्ण जब भयसे विह्वल हो जाते, तब गोपियाँ उनमें कुछ और सौन्दर्य निरख विमुग्ध हो जातीं। एक बार बलराम आदि ग्वालबालोंने यशोदाके पास कृष्णकी शिकायत पहुँचायी। लोगोंने कहा कि कृष्णने तो मिट्टी खा डाली है। माताने उनके दोनों हाथ पकड़ धमकाना शुरू किया। कृष्णने साफ इन्कार कर दिया, कहा कि माँ, मैंने तो मिट्टी बिल्कुल नहीं खायी। ये लोग झूठा अभियोग लगा रहे हैं। न विश्वास हो, तो मेरा मुख निरख लो। यशोदाने मुँह बानेको कहा। जब कृष्णके खुले मुखपर यशोदाकी दृष्टि पड़ी, तब तो उनके शरीरमें कँपकँपी हो आयी। उन्होंने तो उस मुखमें सारा ब्रह्माण्ड देखा, अपनेको और शिशु कृष्णको भी देखा। स्तुति-विनय की। बाद भगवान्ने अपनी माया फैला माताकी बुद्धिसे इस बातको ही सदाके लिए उतार दिया। अब वे कृष्णको केवल अपना समझने लगीं और वात्सल्यसे सराबोर हो दूध पिलाने लगीं। आठवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ नवमोऽध्यायः ❋

[श्रीकृष्णका मटकी फोड़ना तथा यशोदाका उन्हें डोरीसे बाँध देना]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक दिनकी बात है कि यशोदाकी सारी दासियाँ गृहस्थीके भिन्न-भिन्न कार्यों में लग गयी थीं। अतः नन्दजीकी गेहिनी यशोदाजी स्वयं दही मथने लगीं ॥ १ ॥ श्रीकृष्णने अबतक जो इस व्रजमें मधुर-मधुर बाललीलाएँ की थीं और जो कवियोंसे निबद्ध, उन्हें स्मरण कर यशोदाजी गाती भी जाती थीं ॥ २ ॥ यशोदाजी अपने विशाल कटितटमें रेशमी वस्त्रके ऊपर करधनी पहने हुए थीं। वे इस तरह दधिमन्थनकर रहीं थीं कि उस दही मथनेके कारण उनके स्तन हिल रहे थे और पुत्रस्नेहसे उनसे दूध टपक रहा था। मथानीकी डोरी खींचनेके श्रमसे उनके हाथोंके कंकण और कुण्डल हिल रहे थे। मुखपर पसीना आ गया था और जूड़ेमें खोंसे गये मालतीके फूल गिरते जाते थे ॥३॥ भगवान्‌को दूध पीने की इच्छा हुई वे दधिमन्थन कर रही माताके पास जा पहुँचे और जाकर मथानीको पकड़ लिया। तदनन्तर माताके मनमें स्नेह उत्पन्न करनेके लिए हठ करने लगे, दधिमन्थन

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ॥ कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ॥ दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥२॥ क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेह-स्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ॥ रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥३॥ तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ॥ गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥४॥ तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ॥ अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥ संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम् ॥ भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः ॥ ६ ॥ उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ॥ भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥ उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं

को उन्होंने रोक लिया ॥ ४ ॥ यशोदाने उन्हें गोदमें ले लिया और उनके मुस्कराते मुखको देखती हुई उन्हें अपना स्तन पिलाने लगीं, जिससे दूध चू रहा था। किन्तु बीचमें ही, जब कि भगवान् दूध पीकर अभी अघाये न थे, चूल्हे पर रखे दूधमें उफान आ गया और गिरने लगा, इसलिए वह तुरन्त उन्हें गोदसे उतार दूध उतारने दौड़ गयीं ॥५॥ कृष्णको क्रोध हो आया। अपने फड़कते लाल ओठोंको उन्होंने दाँतों से काट लिया और पत्थरके टुकड़ेसे मार दहीकी भरही फोड़ डाली एवं झूठमूठ रोने लगे। इसके बाद घरके भीतर घुस अकेलेमें मक्खन खाने लगे ॥६॥ गरम दूधको उतारकर यशोदा जब वापस आयीं, तो भरहीको फूटा पाया। यह सब देख वह मुस्करायीं और यह समझ गयीं कि यह सब खुराफात कृष्ण ही की है और वहाँ कृष्णको न देख ढूढने लगीं ॥ ७ ॥ उन्हें ढूढती हुई जब भीतर गयीं, तब उन्होंने देखा घरके भीतरसे छींके पर रखी गई मटकीसे मक्खन निकाल-निकालकर बाहर ओखरी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उलटकर उनका लड़का उसपर खड़ा हो बन्दरोंको बाँट रहा है और कोई देख न ले इस भयसे इधर-उधर वह नजरें भी दौड़ा रहा है। यशोदाजी धीरे-धीरे आकर उनके पीछे खड़ी हो गयीं ॥ ८ ॥ जब कृष्णने माताको डण्डा लिए खड़ी देखा, तो झट डरे-हुए की तरह वह ओखलीसे कूद भाग खड़े हुए। बड़े-बड़े योगियोंका तपःपूत, प्रविष्ट होने योग्य तथा एकाकार ताको प्राप्त हुआ भी जो मन जिनको न प्राप्त कर सका, उनका यशोदाजी पीछा करने लगीं [क्या यह कम पुण्य की बात है ?] ॥ ९ ॥ कृष्णके पीछे माँ यशोदा दौड़ी तो सही, किन्तु अपने बृहत् चल रहे नितम्बों के भारसे उनकी गति धीमी पड़ गई। वेगके कारण उनके खुल गये जूड़ेके फूल गिरकर इधर-उधर बिखर गये। बड़ी परेशानीके बाद उन्होंने कृष्ण को पकड़ लिया ॥ १० ॥ अपराधी कृष्ण रो पड़े। आँसुओंसे आँखोंका काजल चारो ओर पसर रहा था, वे उन्हें अपने हाथोंसे पोंछते जाते थे। वे माताको भयविह्वल नेत्रोंसे देख रहे थे। भय पैदा करती हुई यशोदा उनका हाथ पकड़ उन्हें धमकाने लगीं ॥ ११ ॥ पुत्रवत्सला यशोदाने जान लिया कि लड़का बहुत डर गया है तब उन्होंने डण्डेको फेंक दिया और

मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ॥ हैयंगवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥८ ॥ तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्व-
रस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ॥ गोप्यन्वधावन्नयमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९ ॥ अन्वञ्चमाना जननी बृहच्च-
लच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ॥ जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी
कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ॥ उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषन्त्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञा-
यार्भकवत्सला ॥ इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चा-
न्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥
तद्दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ॥ द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन सन्दधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥ यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि
सन्दधे ॥ तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा सन्दधत्यपि ॥ गोपीनां सुस्मयन्तीनां

उसे रास्ते पर लानेके लिए उनके प्रभावको न जाननेवाली उन्होंने रस्सीसे बाँधना चाहा ॥ १२ ॥ अजी, व्यापक होनेके नाते जिनका न तो भीतरी भाग है और न बाहरी भाग, जिनमें पूर्व-परकी कल्पना नहीं तथा जो जगत्के भीतर-बाहर पूर्वपर जगद्रूप हैं, उन्हीं अजन्मा, इन्द्रियज्ञानातीत, अव्यक्त परब्रह्मको जो लीलाके लिए नररूपमें आये है, वह ग्वालिन अपना लड़का समझकर साधारण लड़केकी तरह ओखलीमें बाँधने लगी। १३, १४ ॥ जब अपराधी अपने लड़के कृष्णको वह रस्सीसे बाँधने लगीं, तब वह दो अंगुल छोटी हो गई छोटी होनेसे और दूसरी रस्सी लेकर उसके साथ जोड़ दीं। दोनों जोड़नेसे जो एक हुई वह छोटीही रही तब इसके बाद उसने दूसरी रस्सी जोड़ी, पर वह भी दो अंगुल छोटी ही रही। उन्होंने बार-बार रस्सियाँ जोड़ीं पर दो अंगुल कमी न पूरी हुई ॥ १५, १६ ॥ इस तरह घर भरकी सब रस्सी लग चुकीं किन्तु रस्सी छोटी ही रही और कृष्ण बाँधे न जा सके। इसे देख दूसरी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्वालिने हँस पड़ीं, स्वयं यशोदा भी मुस्करा उठीं साथही उन्हें बड़ा आश्चर्य भी मालूम हुआ ॥ १७ ॥ जब कृष्णने देखा कि उनकी माता तो मारे पसीनेके लथपथ हो गई हैं और जूड़ेके फूल तितर वितर हो गये हैं, तब उनके परिश्रमको देखकर उन्हें दया हो आयी। वहाँ स्वयं बँध गये ॥ १८ ॥ राजन्, भगवान् श्रीकृष्ण स्वतन्त्र हैं, ब्रह्मादि लोकपालोंके सहित यह सारा संसार उनके वशमें है, फिर भी वह जो बँध गए, उससे श्रीहरिने यह दिखलाया कि मैं भक्तोंके वशमें हूँ ॥ १९ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर एवं उनकी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीने भी जो प्रसन्नता न प्राप्त की, वह यशोदाने दृढ़भक्तीके द्वारा भगवान्से प्राप्तकर ली ॥ २० ॥ यशोदानन्दन यह भगवान् जितनी सुगमतासे इस संसारमें देहधारियोंके बीच भक्तोंको मिल जाते हैं उतनी सुगमतासे अपने अन्यभूत ज्ञानियोंको भी नहीं मिलते ॥ २१ ॥ जब यशोदाजी कृष्णको बाँध गृहकार्यमें लग गयीं, तब उन्होंने अर्जुनके उन दोनों वृक्षोंपर नजर दौड़ायी, जो कि पहिले जन्ममें नलकूबर, मणिग्रीव नामके यक्ष तथा कुबेरके औरसम्पन्न पुत्र हुए थे किन्तु मारे घमण्डके वे दोनों नारदके शाप से वृक्षरूपताको वृन्दावनमें प्राप्त हो चुके थे ॥ २२, २३ ॥

स्मयन्ती विस्मिताभवत ॥ १७ ॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ॥ दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबन्धने ॥ १८॥ एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता ॥ स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥ नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया ॥ प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ २० ॥ नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥ कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥ नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—एक दिन की घटना है कि यशोदा दही मथ रही थीं। कृष्ण उनके पास दूध पीने आए और लाड़लड़ानेके लिए उन्होंने रई पकड़ ली। माता दही मथना छोड़ उन्हें दूध पिलाने लगीं। इसी बीचमें चूल्हे पर रखे हुए दूधमें उफान आने लगा। यशोदाजी कृष्णको दूध पिलाना छोड़ दूध उतारने चली गयीं। इससे कृष्णको क्रोध हो आया। उन्होंने एक ऐसा पत्थर मारा कि मटकी फूट गयी। सब दही बह गयी। बाद भीतर घुस मक्खन निकाल-निकालकर बाहर बानरोंके लुटाने लगे। जब माता वापस आयीं, तब मटकेको फूटा पाया। वह कृष्ण की सब शरारत समझ गयीं। ढूढ़ते-ढूढ़ते जब घरके भीतर पहुँची तो देखा कि भीतरसे मक्खन निकाल-निकालकर बाहर कृष्ण ओखली उलट उसपर सवार हो बानरोंको बाँट रहे हैं। वह उन्हें पकड़नेके लिए दबे पाँव वहाँ जा पहुँची। जब कृष्णकी नजर उनपर पड़ी तब मारे भयके विह्वल हो गये। पर वे तो अब पकड़में आ चुके थे। माताने उन्हें भयभीत देख डण्डा तो रख दिया पर चेतावनीके लिए उन्हें ओखलीमें बाँधना चाहा। पर रस्सी दो अंगुल छोटी हो गई। उन्होंने बार-बार रस्सी जोड़ी, घर भरकी रस्सियाँ लगा दीं, पर वे बाँधे न जा सके माँको परेशान देख भगवान् स्वयं बँध गये। जब बाँध-बूँधकर माता कहीं चली गयीं, तो कृष्ण ऊखलीको घसीटकर वहाँ ले गये जहाँ दो अर्जुन पेड़ खड़े थे। वे पेड़ कुबेरके दो पुत्र थे जिनका नाम नलकूबर-मणिग्रीव था। नारदके शापसे उन्हें पेड़ बनना पड़ा था। नवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ दशमोऽध्यायः ❋

[कृष्णका नलकूबर और मणिग्रीवका उद्धार करना]

राजाने कहा—भगवन्, कहिए, इन दोनोंने ऐसा कौन सा निषिद्ध कार्य किया था, जिससे इनके शापका वह कारण बना और नारदजीको भी क्रोध करना पड़ा ? ॥१॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—कुबेरके वे दोनों लड़के जब शङ्करके भृत्य हो गए तब अतिगर्वित और मदोत्कट बन गये। एक बार उन्होंने वारुणी मदिरा पी ली। नशासे उनके नेत्र घूम रहे थे। बहुत स्त्रियाँ गाती हुई उनके पीछे-पीछे चल रही थीं। वे रम्य कैलासके उपवनके नजदीक बह रही गङ्गाके समीपमें उनके साथ फूलोंसे लदे वनोंमें विचरण करने लगे। बाद वे गङ्गामें घुसकर स्त्रियोंके साथ उसी तरहसे जलक्रीडा करने लगे, जैसेकि हाथी हथिनियोंके साथ जलक्रीडा करते हैं ॥२–४॥ राजन्, अचानक उधर देवर्षि भगवान नारदजी आ पहुँचे। उन्होंने उन दोनों यक्षोंको देखा और उन्हें नशामें बिलकुल चूर समझा ॥५॥ नारदजीको देख नग्न देवाङ्गनाएँ लज्जित हो गयीं और शापके डरसे शीघ्र अपने-अपने वस्त्र पहन लिए, किन्तु वे दोनों

राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥४॥ यदृच्छया च देवर्षिभगवांस्तत्र कौरव ॥ अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किता ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ नह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ॥८॥ हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक्

इतने मत्त हो गए थे कि उसी नग्न अवस्थामें उनके सामने डटे रहे ॥ ६ ॥ कुबेरके उन पुत्रोंको इस तरह श्रीके अभिमानसे अन्धा और मदिराके पानसे मतवाला देख उनकी कल्याण कामनासे नारदजी शाप देते हुए कहने लगे ॥ ७ ॥ नारदजीने कहा—विषयी पुरुषोंका बुद्धिभ्रंश जितना धनमदसे होता है, उतना कुलीनता आदिके मदसे नहीं और न रजोगुणके कार्य भूत हास्य आदि ही बुद्धि नष्ट करनेवाले होते हैं। इस मदसे स्त्री, द्यूत एवं सुरापन आदि दोष उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥ धनी लोग बड़े निर्दय और अजितेन्द्रिय होते हैं। वे स्थूल शरीरके पोषणके लिए निरपराध पशुओंका संहार करते हैं, इस नश्वर शरीरको ही अजर-अमर समझ लेते हैं ॥ ९ ॥ जो शरीर पहले नरदेव, भूदेव आदि कहलाता है, वही प्राण निकल जानेपर या तो जलकर राख हो जाता है या कृमि आदिके खा लेनेपर उनका विष्ठा बन जाता है। ऐसे शरीरके लिए जो प्राणियोंकी हत्या करते हैं वे क्या अपना हित जानते हैं ? कि भूतद्रोहसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नरकमें जाना पड़ता है, वे बिलकुल मूर्ख हैं अपना हित नहीं जानते, यह भाव है ॥ १० ॥ दूसरी बात यह है कि इस शरीरपर अहङ्कार करना किसी तरह उचित भी तो नहीं है ? उसपर अन्नदाताका अधिकार है या पिता, माता एवं नानाका अधिकार है या राजाका अथवा किसी खरीदनेवालेका या अग्नि और कुत्ते आदिका अधिकार है ? इस बातका भी तो निश्चय नहीं है। किसी न किसी सम्बन्धसे सबका अधिकार हो सकता है, तब उसमें ममता करना कहाँतक उचित है ? ॥ ११ ॥ जो यह शरीर जिसके ऊपर अव्यक्तसे उत्पन्न हो फिर पूर्वोक्तप्रकारसे निश्चय न हो सकनेसे साधारणतया जिसके ऊपर सबका अधिकार है, ऐसा जो यह शरीर अव्यक्तसे उत्पन्न हो फिर उसीमें लीन हो जाता है, उसे आत्मा समझकर उसके लिए प्राणियों-की हत्या मूर्खके अतिरिक्त भला कोई विवेकी कैसेकर सकता है ? ॥ १२ ॥ जो अजितेन्द्रिय धनके मदसे अन्धा हो चुका है, उसके लिए दरिद्रताही केवल अञ्जनका काम करती है, क्योंकि एकमात्र दरिद्र ही हर बातका अनुभव कर सकता है कि कष्ट जैसे मेरे लिए अप्रिय है वैसे दूसरेके लिए भी वह अप्रिय होगा ॥ १३ ॥ जिस प्राणीको काँटा चुभ चुका है और जो

तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥ देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ का विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ॥ आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥१३॥ यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ॥ जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाऽविद्धकण्टकः ॥१४॥ दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥१५॥ नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः ॥ इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥१७॥ साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥१८॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ॥ तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥ यदिमौ

उसके दर्दको महसूसकर चुका है वह यह नहीं चाहता कि किसी दूसरेको भी काँटा चुभे, वह मलिनमुख आदिके द्वारा सभी जीवोंके सुख दुःखको एक-सा जानता है, किन्तु वह प्राणी जिसे कि काँटा चुभा ही न हो, कभी उस तरहसे दूसरेका कल्याण नहीं चाह सकता ॥ १४ ॥ इस संसारमें अहङ्काररूपी स्तम्भसे रहित दरिद्र होता है, वह सभी मदोंसे मुक्त रहता है यानी किसी तरहका अभिमान उसे नहीं छूता, जो कुछ कष्ट उसे सहने पड़ते हैं, वह उसकी तपस्या हो जाती है और वह मुक्तिका अधिकारी बन जाता है ॥ १५ ॥ भूखसे दरिद्रका शरीर ढीला पड़ जाता है, सदा उसे अन्न की आशंका बनी रहती है और इन्द्रियाँ इतनी कमजोर पड़ जाती हैं कि हिंसा-द्वेषके भावतक नहीं उठते ॥ १६ ॥ जो दरिद्र होते हैं उन्हें समदर्शी सन्तोंकी सङ्गति अपने आप मिलती है। सत्संगतिसे विषयवासना नष्ट हो जाती है, जिससे कि अन्तःकरण शीघ्रही निर्मल हो जाता है ॥ १७ ॥ और जो धनदुर्मदान्ध विषयासक्त असज्जन हैं भगवान् मुकुन्दकी अनन्यभक्तिके इच्छुक समदर्शी सन्तलोग उनसे बहुत ही दूर रहते हैं, ये उनकी उपेक्षा करते हैं. उनसे उनका कोई मतलब नहीं रहता, अतः उनका कल्याण भी दूर-दूर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहता है ॥ १८ ॥ इसलिए धनके मदसे अन्धे एवं मधुमयी मदिरासे मतवाले बने हुए स्त्रीलम्पट, अजितेन्द्रिय इन दोनोंके अहङ्कारको मैं दूर करूँगा ॥ १९ ॥ चूँकि ये दोनों लोकपालके पुत्र होकर भी अज्ञानव्याप्त अतएव दुष्टमदसे इतने भरे हैं कि इन्हें अपनी नंग-धड़ङ्ग अवस्थाकी भी सुध नहीं है ॥ २० ॥ इसलिए ये पेड़ बन जायँ, ताकि फिर ऐसी भूल न कर सकें। मेरी दयासे फिर वे ऐसे मदान्ध न होंगे जैसे कि अभी थे तथा उस योनिमें भी मेरे अनुग्रहसे इन्हें इन बातोंका स्मरण रहेगा ही ॥ २१ ॥ देवताओंके सौ वर्ष बीत जानेपर श्रीकृष्णकी सन्निधिसे फिर देवलोकमें आ जायँगे और वे भक्त बन जायेंगे ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इस तरह शाप देकर नारदजी बदरिकाश्रम चले गये और वे दोनों नलकूबर, मणिग्रीव एक साथ उत्पन्न अर्जुन वृक्ष व्रजमें बन गए ॥ २३ ॥ सन्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीके उसी वचनको सत्य करनेके लिए कृष्ण वहाँ धीरे धीरे जा पहुँचे, जहाँ यमलार्जुन वृक्ष थे ॥२४॥

लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमः प्लुतौ ॥ नविवाससमात्मानं विजानीतः सदुर्मदौ ॥२०॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥ वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥२२॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् । नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥२३॥ ऋषेर्भागवत मुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥२५॥ इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ॥ आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥२६॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ॥ निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ॥२७॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥२९ ॥ त्वमेकः

उन्होंने सोचा कि चूँकि नारद तो मेरे प्रिय हैं ही अतः महात्मा नारदजीने जो कहा है, मैं वही उसी तरह इन दोनों कुवेर पुत्रोंको करूँगा ॥ २५ ॥ इस तरह विचारकर कृष्ण यमलार्जुन वृक्षोंके बीचसे निकलने लगे तो उस समय सिर्फ भगवान्के मध्यमें चले जानेसे ही ओखली टेढ़ी हो गई ॥ २६ ॥ पेटमें रस्सी बँधे हुए बालकृष्णने टेढ़ी ओखली ज्योंही खींची, त्योंही उस वृक्षकी-जड़ें वेगसे टूट गयीं, उसकी शाखा-प्रशाखाएँ परमेश्वर भगवान्के विक्रमसे बिलकुल हिल गयीं, उनसे एक धड़ाकेकी आवाज हुई और वे वृक्ष गिर पड़े ॥ २७ ॥ इसके बाद वे अपने स्वरूपमें हो गये वृक्षसे निकली हुई, मूर्तिमान् अग्निसे जैसे दिशायें जगमगा उठती हैं, उसी तरह उन्होंने अपनी सर्वोत्कृष्ट कान्तिसे दिशा विदिशाओंको आलोकित करते हुए अखिललोकके नाथ श्रीकृष्णको निरभिमान होकर सिरसे प्रणाम किया और तदनन्तर हाथ जोड़कर यह कहा ॥ २८ ॥ हे कृष्ण, हे कृष्ण, महायोगिन्, आप तो आदिपुरुष हैं, प्रकृतिसे परे हैं। जो ब्रह्मज्ञानी हैं वे इस सारे व्यक्त या अव्यक्त संसारको आपका रूप मानते हैं ॥ २९ । आप अद्वैत हैं, सभी प्राणियोंके शरीर, आत्मा, प्राण और इन्द्रियोंके नियामक हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपकी ही लीला काल है, आपही अविनाशी परमेश्वर भगवान् विष्णु हैं ॥ ३० आपही महतत्त्व हैं, आपही सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंवाली सूक्ष्म प्रकृति हैं, आपही अन्तर्यामी पुरुष हैं एव आपही सर्वत्र प्रत्येक देहके मन आदि विकारोंके जानकार हैं ॥ ३१ ॥ दृश्यगत प्रकृतिके गुणकार्य बुद्धि, इन्द्रिय आदि विकारोंसे द्रष्टारूप आप नहीं जाने जाते । प्राकृत गुणोंसे ढका कौन प्राणी जीवोत्पत्तिके पहले स्वप्रकाशरूपसे सिद्ध आपको जान सकता है ॥ ३२ ॥ जगज्जन्मादिके विधाता आप वासुदेव भगवान्को नमस्कार है । मेघोंसे आच्छन्न सूर्यकी नाईं आत्मप्रकाश गुणोंसे आच्छन्न परब्रह्म परमेश्वरको नमस्कार है ॥३३॥ जिनकी ही समानता और कहीं मिल नहीं सकती तथा जिनसे चढ़-बढ़कर और कोई दूसरा है ही नहीं, अतएव प्राकृत प्राणियोंमें सर्वथा अनुपपन्न यानी बिलकुल न रहनेवाले आपके तत्-तत् पराक्रमरूप चिन्होंसे ही अजन्मा आपके अवतारोंका शरीरियोंमें पता चलता है । तात्पर्य यह कि आप जब कभी अवतार लेते हैं तो आपके अवतारविग्रहका पहचान आपके अद्भुत कामोंसे ही लगता है ॥ ३४ ॥ वही धर्मादि पुरुषोंके पति आप समस्त प्राणियोंके अभ्युदय एवं मोक्षके लिये

सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥ त्वं महान्प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ॥ कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ।३२। तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥३३॥ यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः । ३४॥ स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोऽशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ॥३५॥ नमः परमकल्याण नमः परममंगल ॥ वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥३६॥ अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥३७॥ वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ॥ स्मृत्यां शिरस्तवनिवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥३९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽ-

परिपूर्णरूपसे इस समय गोकुलमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याण, आपको नमस्कार , हे परममंगल,है आपको नमस्कहै ।र यादवोंके स्वामी एवं परमशान्त आपको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे भूमन, हम आपके दासानुदास हैं । महर्षि नारदकी दयासे आपके दर्शन हुए हैं अब हमें जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३७ । हमारी वाणी आपके गुणानुवादमें, कान कथा सुननेमें, हाथ पूजन आदिमें, मन आपके चरणोंके स्मरणमें लगा रहे । हमारा सिर व्रजमण्डलके प्रणाममें एवं हमारी दृष्टि उन भक्तोंको देखनेमें लग जाय. जो कि आपके विग्रहभूतहैं ॥३८॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उन दोनोंके इसप्रकार स्तुति करनेपर ओखलीमें रस्सीसे बँधे हुए गोकुलेश्वर भगवान् कृष्णने हँसकर उन गुह्यकोंसे कहा ॥३९॥ श्रीभगवान्ने कहा—इस बातको तो मैं पहलेसे ही जानता हूँ कि दयालु नारदने धनमदान्ध तुम्हारे कल्याणके लिये शाप देकर अनुग्रह किया है ॥ ४० ॥ जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार भाग जाता है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आँखोंकी अन्धता निवृत्त हो जाती है, उसी तरह समदर्शी एवं मुझमें अत्यन्त चित्त लगानेवाले महात्माओंके दर्शनसे सारे बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर, अब तुम दोनों अपने स्थानको मुझे याद करते हुए जाओ। मुझमें अपेक्षित परमभक्ति तो तुम्हारी हो ही गई है। अब तुम्हारा जन्म-मरणरूप संसार छूट जायगा ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्‌से ऐसा कहे जानेपर वे दोनों ओखलमें बँधे हुए उनकी परिक्रमाकर, बार-बार प्रणाम कर अनुमति ले उत्तरदिशाकी ओर चले गये ॥ ४३ ॥

नुग्रहः कृतः ॥४०॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ॥ दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥४१॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् ॥ सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥४२॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नारदशापो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दसवें अध्यायका सार—राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन्, वे कुबेरके पुत्र वृक्ष कैसे हो गये, यह कहिये। शुकदेवजीने कहा—राजन्, किसी समय वे दोनों कुबेरके पुत्र अप्सराओंके साथ वन विहारकर रहे थे। नशेसे वे अपने होश हवासमें न थे। नादमें वे जल-क्रीडा करने लगे। अचानक कहींसे वहाँपर नारदजी आ पहुँचे। देवाङ्गनाएँ तो उनके शापसे डरकर अपने-अपने वस्त्र पहन लिये। पर वे दोनों नङ्ग-धड़ङ्ग बने रहे। नारदजीको उनकी इस पामरतापर तरस आयी और उन्होंने दण्ड दे उन्हें पथपर लाना चाहा। शाप दे दिया कि तुम दोनों गोकुलमें और वृक्ष हो जाओ। जब कृष्ण तुमको उखाड़ डालेंगे, तब तुम्हारी मुक्ति हो जायगी। मेरी कृपासे वृक्षकी हालतमें भी तुम्हें अपना ज्ञान बना रहेगा तथा कृष्णमें भी भक्ति हो जायगी। वही दोनों कुबेरपुत्र एक साथ अर्जुन बने थे। भगवान् नारदजीके वचन रखनेके लिये ओखलको लुढ़काते हुए वहाँ ले जाकर उन दोनोंके बीचमें अड़ा दिया और एक ऐसा झटका दिये कि पेड़ जड़सहित उखड़कर धड़ामसे गिर पड़े। वे दोनों कुबेर पुत्रोंने अपने रूपमें आ भगवान्‌की स्तुति की और घर जानेकी अनुमति चाही। भगवान्‌ने अनुमति दे डाली। तदनन्तर वे उत्तरदिशा को चल दिये ॥ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❁ अथ एकादशोऽध्यायः ❁

(श्रीकृष्णका वत्स और बकासुरका उद्धार करना)

श्रीशुक उवाच ॥ गोपी नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥ तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यां निप-

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, नन्द आदि गोपोंने जब गिरते हुए पेड़ोंकी कड़कड़ाहट सुनी, तो उन्हें वज्रपातका सन्देह हुआ, वे वहाँ आ धमके ॥१॥ वहाँ उन लोगोंने यमला-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

र्जुनको गिरा देखा। किन्तु गिरनेका कोई कारण न जान वे तर्क-वितर्कमें पड़ गये ॥२॥ उन लोगोंने ओखलीमें बँधे और उसे लुढ़काते हुए कृष्णको तो अवश्य देखा, फिर भी वे दुविधा में पड़ भीत हो सोचते रहे कि ओह, यह किस राक्षसका काम है और ऐसा क्यों हुआ? कोई उत्पात तो नहीं होनेवाला है? ॥ ३ ॥ लड़कोंने कहा कि कृष्णने ही टेढ़ी ओखलीके धक्केसे बीचमें जाकर इसे गिराया है। उनसे दो पुरुष निकले और उन्होंने कृष्णसे बातें भी कीं ॥ ४ ॥ किन्तु उन लोगोंको उन बच्चोंकी बातपर विश्वास न जमा। उन्होंने इसे असङ्गत समझा कि कोई लड़का इतने बड़े पेड़ गिरा दे। पूतनादिके नाशसे व्याप्ति पाकर कुछ लोग बालकोंकी बातोंपर विश्वास भी करने लगे ॥५॥ नन्दने जब देखा कि उनका पुत्र रस्सीसे ओखलीमें बँधा है और उसे इधर-उधर घसीट रहा है, तो उन्होंने हँसकर उन्हें खोल दिया ॥ ६ ॥ कहीं जब ग्वालिनें कह देतीं—कृष्ण, तुम तो बहुत अच्छा नाचते हो, तब वे भगवान् उनके ताली बजाने आदिसे प्रोत्साहित होकर तुरन्त बच्चेकी तरह नाच पड़ते। कहीं किसीने कह दिया—भाई, तुम तो बहुत अच्छा गाते हो, बस उनके वशीभूत होकर कठपुतलीकी तरह मुग्ध

तितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ॥ बभूवुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्सन्दिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ॥ विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥६॥ गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥७॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥ दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ॥ व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥९॥ *(क्रीणीहि भो फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥१०॥ फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥११॥ सरि-

भगवान् कृष्ण ऊँचे स्वरसे गाने लग जाते थे। [जिस तरह कठपुतली बाजीगरके इशारेपर नाचती है, उसी तरह भगवान् भी गोपियोंके इशारेपर चलते थे] ॥ ७ ॥ जब उनसे कोई कहता कि 'पीढ़ा, पसेरी, खड़ाऊँ ले आ' तो तुरन्त उसे ला देते, पर उसे उस ढंगसे उठाते मानों उनके लानेमें उन्हें बड़ा श्रम पड़ रहा हो और अपने प्रियजनोंके सन्तोषके लिये ताल ठोंककर तैयार हो जाते थे ॥ ८ ॥ इस तरह लोकमें जो भगवान्का ऐश्वर्य जानते हैं उनके निश्चयके लिये या अपने भक्तोंको यह दिखलानेके लिये कि मैं 'भक्तोंका परवश हूँ' भगवान् बाललीलाओंके द्वारा व्रजवासियोंको हर्षित रखते थे ॥९॥ *(एक बार एक फल बेचनेवाली वहाँ आई। वह कहने लगी—फल खरीद लो, फल खरीद लो मैं फल लायी हूँ। यह सुनकर सब फलोंके दाता भगवान् श्रीकृष्ण फल खरीदनेकी इच्छासे हाथमें अन्न लेकर घरसे बाहर आये और उससे फल खरीदने लगे। अन्नका बहुत-सा हिस्सा तो भगवानके हाथसे गिर पड़ा, पर फल बेचनेवाली उसका ख़्याल न कर अन्न ले उनकी अञ्जलि फलोंसे भर दी। भगवान् श्रीकृष्णने भी देखते-देखते उसकी टोकरी भी रत्नोंसे भर दी ॥ १०, ११ ॥ एकबार बलराम

* यहाँसे ग्यारह श्लोक (१०–२०) श्रीधर स्वामीको मान्य नहीं है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और अर्जुनवृक्षको तोड़ गिरानेवाले कृष्ण बालकोंके साथ यमुना तटपर खूब खेल रहे थे। देर हो गयी थी, देवी रोहिणीने दोनोंको पुकारा ॥ १२ ॥ पर वे खेलमें इतने लग गये थे कि वे उस बुलाहटपर न आये। तब रोहिणीने पुत्रवत्सल यशोदाको भेजा कि उन्हें बुला लाओ ॥ १३ ॥ स्नेहके आवेगसे यशोदाजीके स्तनसे दूध टपकने लगा। उन्होंने पास जाकर बलराम और कृष्णको, जो बहुत देरसे बच्चोंके साथ खेल रहे थे, पुकारा ॥ १४ ॥ बेटा कृष्ण अरविन्दाक्ष कृष्ण यहाँ आओ, दूध पीलो। बेटा, भूख लगी होगी, अब खेलना बन्द कर दो। खेलते-खेलते तो तुम थक गये हो ॥१५॥ हे बलराम, तुम कृष्णको साथ ले लौट आओ। बेटा, जल्दी आओ कुलनन्दन, सबेरेके ही खाये हो, अब तो तुम्हें खाही लेना चाहिये ॥१६॥ दाशार्ह, तुम्हारे पिता भोजनपर बैठ चुके हैं और तुम्हारी प्रतीक्षाकर रहे हैं। आओ, हमलोगोंको प्रसन्न करो। इसके बाद यशोदाने और बालकोंसे कहा— तुम सब भी अपने-अपने घर जाओ ॥ १७ ॥ यशोदाने उन्हें कहा-बेटा, धूलसे तुम्हारे अंग गंदे हो उठे हैं, अतः नहा-धोलो। आज तुम्हारी जन्मतिथि है, अतः नहानेके बाद पवित्र हो ब्राह्मणोंको गोदान आदि

चीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ॥ रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥ १२ ॥ नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ १३ ॥ क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ॥ यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १४॥ कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ॥ अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥ १५ ॥ हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन ॥ प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥१६॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ॥ एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥१७॥ धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ॥ जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥१८॥ पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १९ ॥ इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥२०॥) गोपवृद्धा महोत्पातानुभूय बृहद्वने ॥ नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ॥ २१ ॥ तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ॥ देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृ-

कर दो ॥ १८ ॥ जरा अपने साथियोंको देखो, उनकी माताओंने उन्हें स्नान-भूषणादिसे उन्हें सज्जित कर दिया है। तुम भी स्नान-भोजनकर खूब आभूषणोंसे सज-धजकर खेलना ॥१९॥ राजन्, इस तरह यशोदाजो स्नेह परवश हो उन परमात्माको पुत्र समझती थीं, जो ब्रह्मा आदिके भी चूड़ामणि-पूज्य हैं और वैसा समझ बलरामके सहित अच्युतका हाथ पकड़कर घर लायी और उनके स्नानादि मङ्गलकार्य किये ॥ २० ॥) नन्द आदि वृद्ध गोपोंने जब व्रजमें कोई-न-कोई उत्पात होते देखा, तब गायोंका हित कैसे होगा? इसको एक जगह इकट्ठे होकर आपसमें विचार करने लगे ॥ २१ ॥ उनमें उपनन्द नामका एक गोप उन सबमें ज्ञान एवं वय इन दोनोंमें बड़ा था। वह देशकालकी बातको जानता था और राम, कृष्णपर उनका बड़ा स्नेह भी था ॥ २२ ॥ उसने कहा—यदि हमें गौओंका हित करना है, तो हमें यहाँसे उठकर अलग चले चलना चाहिये। यहाँ तो बच्चोंपर सङ्कट डालनेवाले बड़े-बड़े उत्पात हो रहे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं ॥ २३ ॥ बालघातिनी पूतनासे किसी तरह यह बच्चा बच पाया कि गाडीके नीचे दबनेकी नौबत आ गयी, यह तो निःसन्देह भगवान्की कृपा थी कि गाड़ी इसके ऊपर न गिर पड़ी ॥२४॥ बवण्डरका रूपधर दैत्य इसे पक्षियोंके विहारस्थान आकाशमें ले भागा। वहाँसे यह उस पत्थरपर गिरा, पर भगवान्ने तब भी रक्षा कि ॥२५॥ दो वृक्षोंके गिरने पर उस बीचमें भी जो यह बच्चा या और कोई दूसरा बचा बचा रह गया, वह भी भगवान्की ही रक्षा थी उसके अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं ? ॥२६॥ अतः उत्पातसे व्रजका कोई अनिष्ट न हो, उसके पहलेही बच्चोंको लेकर साथियों समेत यहाँसे चल देना चाहिये ॥ २७ ॥ वृन्दावनकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती है, वह पशुओंके उपयोगी है। उसमें नये-नये और भी वन हैं। उसमें अच्छे-अच्छे पहाड़, तृण, वृक्ष हैं, जिनसे कि गोप, गोपी एवं गौ सबका कल्याण हो सकता है ॥ २८ ॥ यदि आपलोगोंको पसन्द हो, तो, वहाँके लिये आजही प्रस्थानकर देना चाहिये।

ष्णायो ॥२२॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ॥ आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥२३॥ मुक्तः कथञ्चिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ।२४॥ चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ॥ शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२५॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥२६॥ यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥२७॥ वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥२८॥ तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युङ्क्त मा चिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते २९॥ तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ॥ व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ३०॥ वृद्धान्बालान् स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥३१॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥३२॥ गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुंकुमकान्तयः ॥ कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥३३॥ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ॥ रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३४ ॥ वृन्दावनं संप्रविश्य सर्व-

गाड़ियाँ जोत और गौओंको आगेकर हम चल दें ॥ २९ ॥ यह बात सुनकर सबने 'बहुत ठीक बहुत ठीक' यों कहते हुए एकमतिसे मान ली और अपनी-अपनी गाड़ियोंको जोतकर, उनपर पर्दा डाल चल पड़े ॥ ३० ॥ हे राजन्, वृद्ध, बच्चे, स्त्री एवं सभी सामग्रीको उन्होंने गाड़ीपर चढ़ा दिया एवं स्वयं धनुषबाण तानकर प्रयत्नशील वे ग्वाले चले ॥३१॥ गौओंको आगेकर घरसे निकलते समय खूब जोरसे सिंगा फूँककर महान् उस तुरहीके शब्दके साथ पुरोहितजीको साथ लिये हुए चले ॥ ३२ ॥ गोपियोंकी शोभा स्तनपर किये गये कुंकुमके नये लेपसे बढ़ गयी थी। उन्होंने कण्ठमें हँसली एवं अच्छी-अच्छी साड़ी पहन रखी थीं। वे रथपर बैठ प्रेमसे कृष्णकी लीलाओंका गान करने लगीं ॥३३॥ रोहिणी और यशोदाजी बलराम और कृष्णको लिये एक रथमें बैठी खूब शोभित थीं। गोपियोंसे उन दोनोंकी लीला बड़े चावसे सुन रही थीं ॥ ३४ ॥ जब वे सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाले वृन्दावनमें पहुँचे तब पहले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिन तो उन्होंने गाड़ियोंको अर्द्ध चन्द्रकारमें खड़ाकर ही गौओंके रहनेका स्थान बनाया ॥ ३५ ॥ हे राजन्, जब बलराम और कृष्णने वृन्दवन, गोवर्द्धन एवं यमुनाके तट देखे, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३६ ॥ इस तरह ये लोग व्रजवासियोंको अपनी बाल-लीलाओं एवं मनोहर तुतली बोलीसे प्रसन्न करते हुए गो चराने योग्य हो गये ॥ ३७ ॥ व्रजसे थोड़ी दूरपर ग्वालबालोंके साथ तरह-तरहके खेल खेलते हुए बछड़ोंको चराने लगे ॥ ३८ ॥ कभी वंशी बजाते, कभी ढेलफेंकवासे ढेले फेंकते। कभी किङ्किणी बाँधे पैरोंसे नाच पड़ते, कभी ओढ़नी डाल गौ-बैल बन जाते, गरजते एवं परस्परमें युद्ध करते ॥ ३९ ॥ कभी वन्य पक्षियोंकी बोलीकी नकल उतार-उतारकर वे दोनों भाई साधारण लड़कोंकी तरह विहार करते थे ॥ ४० ॥ एक दिनकी बात है कि एक दैत्य यमुनातटपर जहाँ कि कृष्ण एवं बलराम अपने साथियोंके साथ बछड़ोंको चरा रहे थे, उन्हें मारनेकी इच्छासे आया ॥ ४१ ॥ कृष्णनेउसे बछड़ेका

कालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥३५॥ वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ॥ वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राम-माधवयोर्नृप ॥३६॥ एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ॥ कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥३७॥ अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३८ ॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ॥३९॥ अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ ४० ॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥४१॥ तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥४२॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४३ ॥ तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४४॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥४५॥ स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ॥ गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥४६॥ ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ॥ वत्रसुर्वज्रनिभिन्नं

रूपधर बछड़ोंमें मिला देखकर उसे बलरामको दिखलाया कि यह बछड़ा नहीं दैत्य है और बादमें अनजान बच्चेकी तरह उसके पास धीरेसे आये ॥ ४२ ॥ आकर उन्होंने पूँछसहित उसके पिछले पैरोंको पकड़कर खूब घुमाया तथा बादमें कैथकी जड़पर दे मारा। प्राण तो उसके घुमानेसे ही निकल चुके थे। कैथके फल तड़ातड़ गिर पड़े। मरनेपर उस राक्षसका रूप प्रकट हो गया ॥ ४३ ॥ उसे देख लड़के वाह-वाह कर उठे। देवता सन्तुष्ट हो फूल बरसाने लगे ॥ ४४ ॥ इस तरह बलराम और कृष्ण, जो कि संसारभरके पालक हैं, गोपालबन प्रातः-कालका कलेवा लेकर गौओंको चराते-फिरते थे ॥ ४५ ॥ एक दिन ग्वालबाल अपने-अपने गौओंकी टोलीको जलाशयके निकट पहुँच पानी पिलाकर स्वयं पानी पीने लगे ॥ ४६ ॥ इतनेमें उन्हें एक बड़ा भारी जीव बैठा दीख पड़ा, मानो वज्रसे टूटा हुआ कोई पहाड़का वह शिखर ही हो। वे डर गये ॥ ४७ ॥ वास्तवमें तीखे चोंचवाला महान् बली वह बक नामका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

एक असुर था, जो बगुलेका रूप घरकर बैठा था। वह कृष्णकी ओर एक-ब-एक झपटा और उन्हें निगल लिया ॥ ४८ ॥ बलराम आदि ग्वालबाल कृष्णको महाबगुलेसे ग्रस्त देख ठीक वैसेही अचेत हो गये, जैसे बिना प्राणके इन्द्रियाँ अचेत हो जाती हैं ॥ ४९ ॥ ब्रह्माके भी पिता तथा नन्दगोपके पुत्र कृष्णजी उसके तालुमें पहुँच उसे अग्निकी तरह जलाने लगे। उसे सह्य न हो सका वह घबड़ाकर मारे क्रोधके शीघ्र उन्हें उगल दिया और दुबारा चोंच चलाना चाहा ॥ ५० ॥ वह बकासुर कंसका मित्र था। उसे उस तरह झपटते देख साधुओंके रक्षक तथा देवोंको आनन्द देनेवाले भगवान् कृष्णने उसके दोनों चोंचोंको पकड़कर लड़कोंके देखते-देखते तृणकी भाँति चीर डाला ॥५१॥ उसके बाद तब बकासुरके नाशक भगवान् कृष्णके ऊपर देवतालोग नन्दनवनके फूलोंकी वृष्टि करने लगे तथा नगारे शङ्ख आदि बाजे बजाकर उनकी स्तुति करने लगे। इसे देख ग्वालबाल बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥ ५२ ॥ जैसे इन्द्रियाँ प्राणके वापस अपने स्थानपर आ जानेसे सचेत हो जाती हैं, उसी तरह बलराम आदि ग्वालबाल बकके मुखसे कृष्णको छूटा देख सचेत हो गये और उनका आलिङ्गन करने लगे। इसके

गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥ ४७ ॥ स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४८ ॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४९ ॥ तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चच्छर्द सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ५० ॥ तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥५१॥ तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः ॥ समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मरे ॥५२॥ मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवैन्द्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५३॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ॥ प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥५४॥ अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥५५॥ अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥५६॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो

बाद दोपहरमें ही बछड़ोंको इकट्ठाकर घरकी ओर लौट पड़े, घर आकर बकासुरका वध आदिका बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने लगे ॥ ५३ ॥ इस बातको सुनकर गोप और गोपियाँ बहुत विस्मित हुईं। वे सबके सब अति प्रेमसे परिपूर्ण हो मरकर जी उठेकी तरह प्यासी आँखोंसे उन्हें देखने लगीं ॥ ५४ ॥ नन्द प्रभृति गोप परस्परमें कहने लगे कि अजी, इस लड़केकी मौत कई बार आ-आकर टल गयी। जिन्होंने इसका संहार करना चाहा स्वयं उनका ही संहार हो गया, जिनके कारण दूसरोंको अन्य जन्ममें नानाप्रकारके दुःख झेलने पड़े थे ॥ ५५॥ बड़े-बड़े भयंकर असुर इसे मारने आये पर अग्निमें पड़े पतंग की तरह वे स्वयं नष्ट हो गये, इसका कुछ भी न बिगाड़ सके ॥ ५६ ॥ अहो, ब्रह्मवेत्ताओंकी वाणी कभी असत्य नहीं होती। भगवान् गर्गाचार्यने जो कुछ भी कहा था, वह सब ठीक-ठीक वैसेही हुआ ॥५७। इस तरह वे नन्दादि गोप आपसमें बलराम और कृष्णकी चर्चा करते तथा उनके साथ सानन्द

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहते हुए संसारके सभी कष्टोंको परमानन्दकी प्राप्ति होनेसे भूल गये ॥ ५८ ॥ इस तरह आँखमिचौनी, पुल बनाना, बन्दरोंकी तरह उछलना-कूदना आदि बच्चोंके योग्य अनेक मनोहर खेल खेल उन्होंने अपनी कुमारावस्था व्रजमें बिता दी ॥ ५६ ॥

नासत्याः सन्तिकर्हिचित्॥ गर्गो यदाह भगवानन्वभावितथैव तत् ॥५७॥ इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ॥ कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन्भववेदनाम् ॥ ५८ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥५९॥ इति श्रीम० म० पु० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

ग्यारहवें अध्यायका सार—जब यमलार्जुन वृक्ष गिरा था, तब एक बड़े धड़ाकेकी आवाज हुई थी। नन्द आदि गोपोंको तो उसे सुन वज्रपातका सन्देह हो उठा था। वे वहाँ दौड़ पड़े, जहाँ वृक्ष गिरे थे। उतने बड़े वृक्षका जड़सहित उखड़ा देख उन्हें तरह-तरहके सन्देह होने लगे। कुछने उसे राक्षसोंका कर्म समझा, तो कुछने कुछ और ही। तय नहीं हो पाया। इसके बाद जब नन्दने कृष्णको ओखलमें बंधे देखा, उन्होंने उन्हे खोल दिया। इस तरह कृष्ण गोपियोंकी प्रसन्नताके लिए तरह-तरहके खेल करने लगे। वे कहतीं, तो नाच पड़ते, वे कहतीं तो गा पड़ते। उन्होंने दिखलाया कि मैं भक्तके वश में रहता हूँ। एकबार एक फल बेचने वाली आयी। आवाज सुनते ही कृष्ण अपनी अञ्जलियोंमें अन्न भर फल खरीदने दौड़ पड़े। फलवाली इन्हें देख स्नेहसे पिघल गयी। उसने यह न ख्याल किया इन नन्हीं अञ्जलियोंके सब अन्न रास्तेमें ही बिखर गये हैं, अन्न नहीं रहा तो फल मैं कैसे दूँ। उसने उनकी अञ्जलिको फलोंसे भर दिया। क्षणमें वह देखती है कि उसकी टोकरी तरह-तरहकेहीरा-मोती जवाहरातोंसे जगमगा उठी है। वृद्धगोपोंने एक गोष्ठी की। जिसमें यह विचार सर्वसम्मतिसे ठहराया गया कि गोकुलमें तरह-तरहके उत्पात हो रहे हैं, अतः इसे छोड़ वृन्दावन चलना चाहिये। सभी लोगोंने वहाँके लिए प्रस्थान किया। स्त्रियाँ बच्चे और बूढ़े छकड़ों पर थे, युवक उनकी निगरानी करते हुए जाते थे। वृन्दावनमें पहुँच पहले दिन गाड़ियोंको अर्ध चन्द्राकार में खड़ा कर गौओंके रहने का स्थान बनाया। कृष्णको वह वन और यमुनातट बहुत ही भाया वे गौ-बछड़ोंको चराने जाने लगे। एक दिन एक राक्षस बछड़ाका रूप धर उनके बछड़ेमें जा मिला। कृष्ण तो सब समझ चुके थे। उन्होंने उसके पिछले दो पैर पकड़ बहुत जोरसे घुमाकर दे मारा। वह तो घुमाते समय मर चुका था। कुछ दिन बाद ग्वालबालोंके साथ गायको पानी पिला भगवान् स्वयं पानी पीने लगे। इतनेमें बकके रूपमें एक राक्षसने उन्हें निगल लिया। सभी लड़के शोकसे अचेत हो गये। पर कृष्ण उसके तालुमें जा उसे जलाने लगे। वह उन्हें उगल दिया। तब कृष्णने उसके चोंच पकड़ उसे चीर कर मार डाला ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ द्वादशोऽध्यायः ❋

(अघासुरका उद्धार)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् एक बार कृष्णने सोचा कि आज वनमें सवेरेका कलेवा कर लूँगा। अतः बड़े सवेरे उठ सिंगा बजाकर उसके मनोहर शब्दसे अपने साथियों एवं बछड़ोंको जगा दिया। इसके बाद बछड़ोंको आगेकर वनकी ओर व्रजसे चल दिये ॥ १ ॥ उनसे स्नेह रखनेवाले हजारों लड़के छींका, वेंत, सींग और वंशी लेकर उन्हींके साथ हजारोंसे अधिक संख्यावाले अपने-अपने बछड़ोंको आगेकर बड़े आनन्दके साथ निकले ॥२॥ वहाँ असंख्य कृष्णके बछड़ोंमें अपने-अपने बछड़े मिलाकर उन्हें चराने लगे और इधर-उधर तरह-तरहके बालोचित खेल खेलने लगे ॥ ३ ॥ यद्यपि उनकी माताओंने उन्हें काँच, गुञ्जा, विद्रुम आदि मणि तथा स्वर्णके अनेक तरहके आभूषणोंसे सजा दिया था, फिर भी उन्होंने फल, पल्लव, फूलके गुच्छे एवं मोरपङ्खसे अपनेको खूब अलंकृत किया ॥४॥ तदनन्तर एक दूसरेका छींका चुराने लगे, छींकवालेके जान जानेपर कि मेरा छींका इसके पास है, तब झटसे

श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥१॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ॥ स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥२॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ॥४॥ चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजहुस्तत्र तत्र ह ॥३॥ फलप्रवालस्तबक-सुमनःपिच्छधातुभिः ॥ काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥ मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ॥ तत्र-त्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥५॥ यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥ केचिद्वेणून्वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ॥ केचिद्भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ।७। विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः ॥ बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥८॥ विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च

उस लड़के ने उस छींकको दूसरेके पास फेंक दिया। फिर जब छींकावाला लड़का वहाँ पहुँचा तो उसने और दूर बढ़ा दिया। बाद हँसकर उसे छींका लौटा दिया ॥ ५ ॥ जब वनकी शोभा देखते हुए कृष्ण कुछ दूर निकल गये, तब वे 'मैं पहले छूऊँगा, मैं पहले' इस तरह वे एक दूसरेको छूकर खेलने लगे ॥६॥ कुछ लोग वंशी बजाते, कुछ सिंगा फूंकते, कुछ भौरोंके साथ गुनगुनाते और कुछ लोग कोयलके बोलकी नकल करते हुए ॥ ७ ॥ कुछ लोग उड़ते पक्षीके पीछे दौड़ते, कुछ हंसके साथ चलते, कुछ बगलोंके साथ बैठते और कुछ लोग मोरके साथ साथ नाचते हुए विहार करने लगे ॥ ८ ॥ कुछ लोग बानरोंकी पूँछ खींचते और उनके साथ-साथ पेड़पर चढ़ते, जब वे दाँत दिखलाते, किलकिलाते, तो वे भी उसका अनुकरण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते, जब वे एक डालसे दूसरी डालपर जाते, तो वे भी वैसा ही करते हुए खेलने लगे ॥ ९ ॥ कोई मेढकोंके साथ यमुनामें गोते लगाते, कोई जलमें अपनी परछाईं देख हँसते कोई प्रतिध्वनि सुन उसे गाली देते हुए मजेमें खेलने लगे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इस तरह ज्ञानियोंको स्वप्रकाश परम सुखस्वरूप, भक्तोंको परमदेवतारूप तथा साधारण मनुष्योंको जो नरपुत्र पुत्रसे प्रतीयमान हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके साथ उन ग्वालबालोंने मित्रभावसे विहार किया, अतः उनके पुण्यपुञ्जकी कोई सीमा न थी, उन्होंने बहुत पुण्यपुञ्ज एकत्र किये थे ॥११॥ जिन परब्रह्मके चरणकमलकी धूलको हजारों जन्मोंतक कठिन तपस्या करके भी योगीलोग नहीं पाते। वही परमात्मा जिनकी आँखोंके सामने स्वयं स्थित रहा, भला उन ग्वालबालोंके भाग्यका क्या वर्णन किया जाय ? ॥ १२ ॥ जब कि वे ग्वालबाल खेलमें संलग्न हो चुके थे, तब वहाँ अघ नामक एक बड़ा भयङ्कर असुर आया। वह बलराम, कृष्ण आदि बच्चोंकी हँसी-खुशी देख न सकता था, वह ईर्ष्यासे जल रहा था। वह इतना बड़ा दुष्ट रहा कि अमृतपायी देवता भी, जो अमृतपान करनेपर भी उनकी बाललीला देखनेके लिये अपने

पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः ॥ विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगलभ्यः ॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥१२॥ अथाघनामाभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ॥ नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥ दृष्ट्वार्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥ १४ ॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ॥ प्राणे गतेवर्ष्मसु का नु चिन्ता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः सयोजनायाममहाद्रिपीवरम् ॥ धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६ ॥ धराधरोष्ठोः जलदोत्तरोष्ठो दर्या-

जीवनकी चाहकर रहे थे, उससे घबड़ाते थे और चाहते थे कि कब इसकी मृत्यु हो ॥ १३ ॥ वह अघासुर पूतना और बकका छोटा भाई था और कंससे भेजा गया था। उसने उन बालकोंको, जिनमें कृष्णही प्रधान थे, देखकर निश्चय किया कि कृष्णही मेरे भाई और बहनको मारनेवाला है, अतः दल बलसहित इसे मार डालता हूँ ॥ १४ ॥ जब ये बालक-बछड़े मार दिये जायँगे तब भाई-बहिनकी भी तृप्ति हो जायगी और व्रजवासीगण भी नष्ट कर दिये जायँगे जब प्राण चला जाता है, तब देहकी कौन चिन्ता करता ? माता-पिताके बच्चे ही प्राण होते हैं, जब ये 'ही' न रह जायेंगे, तो बूढ़े ग्वाले स्वयं मर मिटेंगे ॥ १५ ॥ ऐसा विचारकर वह खल चार कोसका लम्बा-चौड़ा विशालकाय अद्भुत अजगर बनकर उन्हें खा जाने की इच्छासे रास्ते पर पड़ गया, वह पर्वत सा मोटा मालूम पड़ता था, खुला मुँह गुफा-सा जान पड़ता था, उसका निचला ओठ पृथ्वीसे एवं ऊपरका ओठ मेघमें लगा हुआ था जबड़े गुफा एवं दाँत पर्वत-शिखर-से दीखते थे। उसके मुखका भीतरी हिस्सा अन्धकारसे व्याप्त था। फैली जीभ सड़क-सी मालूम पड़ती थी। आँधी-सरीखी साँसें और दावानल-जैसी गर्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आँखें थीं ॥ १६-१७ ॥ उसे इस तरहसे देख बालकोंने उसे वृन्दावनकी शोभा बढ़ानेवाली एक अद्भुत वस्तु समझा। और वे कौतूहल वश उसे मुँह फैलाये अजगरसे तुलाना करने लगे ॥ १८ ॥ कहने लगे—अहो, मित्रो, कहो न, यह सामने स्थित पर्वत शिखर-सा है या नहीं ? हम लोगोंको निगल जानेके लिए मुँह बाये बैठा कोई अजगर-सा आचरण कर रहा है या नहीं ? ॥ १९ ॥ देखो न, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सूर्यकी किरणों से लाल मेघ इसके ऊपरके ओठसे एवं उसकी छाया पड़नेसे लाल बनी पृथ्वी इसके नीचेके ओठसे मालूम पड़ते हैं ॥२०॥ देखो न, दायें-बायें दोनोंके मध्यमें वर्तमान दो गुफायें इसके दोनों जबड़ोंसे अपनी तुलनाकर रही हैं तथा पर्वतकी ऊँची चोटियाँ इसकी दाँतोंमे स्पर्धा कर रही हैं ॥२१॥ लम्बा-चौड़ा दूर तक फैला हुआ मार्ग इसकी जीभकी स्पर्धा कर रहा है, और इन पर्वतोंके भीतर रहनेवाले अन्धकार इसके मुँहके भीतरी भागकी स्पर्धा कर रहा है ॥ २२ ॥ जङ्गलमें आग लग जानेसे गरम-गरम हवा आ रही है, वही इसकी साँससी मालूम पड़ती है। देखो न और उस अग्निसे जले हुए वनैले जीवोंकी दुर्गन्ध भीतरी मांस की दुर्गन्ध सी

ननान्तो गिरिश्रृङ्गदंष्ट्रः ॥ ध्वान्तान्तरास्यो वितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ॥ व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥ १८ ॥ अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छायया ऽरुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥ तुङ्गश्रृंगालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ॥ एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥ २३ ॥ अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति ॥ क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥२५॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्व-

प्रतीत हो रही है ॥ २३ ॥ दूसरोंने कहा कि भाई, है तो यह अजगर ही, किन्तु कोई परवाह नहीं। जब हमें यह निगल लेगा, तो यह बक की तरह कृष्णके हाथों शीघ्र स्वयं माग जायगा। यों भोलेभाले उन ग्वालबालोंकी आपसमें हो रही गलत बातें सुनकर अखिलप्राणियोंके हृदयमें स्थित श्रीकृष्ण भगवान् 'ये बच्चे वस्तुतः अघासुरको ही अजगर सदृश पर्वत मान रहे हैं' यों विचारकर उन अपने साथियोंको उसके अन्दर जानेसे मना करने जा ही रहे थे कि बकासुरके घातक भगवान् श्रीकृष्णके कमनीय मुखकी ओर देखकर हँस पड़े और ताली बजाकर उसके मुँहमें प्रविष्ट हो गये ॥ २४, २५ ॥ बछड़ो समेत वे ग्वालबाल अभी उस असुरके उदरके बीचमें सिर्फ पहुँच मात्र गये थे। उस असुरने उन ग्वालबालोंको निगला नहीं था, क्योंकि अपने भाई और बहिनके मारनेवालेके घात में था, वह इस प्रतीक्षामें था कि कृष्ण भीतर आ जायँ, तो फिर सबको निगल जायँ ॥२६॥ संसारभरको अभय प्रदान करनेवाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कृष्णने जब देखा कि बछड़े सहित सभी ग्वालबाल जिनका रक्षक उनके सिवा दूसरा नहीं था उनके हाथसे निकल गये और मृत्युके पेटमें घुस गये, तो उन्हे बड़ी दया आयी और आश्चर्य भी हुआ कि इनका भाग्य इन्हें कहाँ खींच ले गया ॥ २७ ॥ इस समय मुझे ऐसा कौन-सा कार्य करना चाहिये, जिससे कि मेरे ये भक्त ये सब बालक बच जायँ और इस दुष्टका संहार भी हो जाय। ये दोनों कार्य कैसे होंगे, ये विचारकर तथा उपाय जानकर बाद सबके द्रष्टा वे हरि उसके मुखमें घुस गये ॥ २८ ॥ मेघमें छिपकर देवता इस घटनाको देख रहे थे, कृष्णको भी उसके मुखमें घुसा देख हाहाकार कर उठे। और अघके बन्धु कंसके अनुयायी जितने राक्षस थे उनकी खुशीका कोई ठिकाना न रहा ॥ २९ ॥ उधर अघासुर बछड़ों सहित उन सबोंको निगलनेका विचार कर रहा था कि अविनाशी भगवान् कृष्णने वह सब सुनकर अपनेको उसके गलेके भीतर बढ़ा दिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर विशालकाय अघासुरका गला रुँध गया उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। वह इधर-उधर छटपटानें लगा। इसके बाद उसकी देहके भीतर रुकी हुई प्राणवायु निकलनेका मार्ग न पा उसके ब्रह्माण्डको फाड़कर

कान्तस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ॥ दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ॥ द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥२८॥ तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥२९॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ॥ पूर्णोऽन्तरंगे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥ तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ ॥३२॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ॥ प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ॥ गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्य-

बाहर निकल आया ॥ ३१ ॥ इसके बाद उसी मार्गसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंके बाहर निकल आनेपर उन्होंने उसके पेटमें मूर्छित बछड़ों और बालकोंको अपनी अमृतवर्षिणीदृष्टिसे सचेत किया और उनके साथ-साथ भगवान् मुकुन्द उसके मुखसे बाहर निकल आये ॥ ३२ ॥ अघासुरके मरनेके बाद उसकी अद्भुत अति विशालसर्परूपदेहसे एक सत्त्वगुणमय तेज निकला जिससे सारी दिशाएँ जगमगा उठीं। वह ज्योति अन्तरिक्षमें जाकर भगवान्की प्रतीक्षा करके रुक गयी। भगवान् ज्योंही उसके मुखसे निकले, त्योंही वह तेज उनमें देवताओंके देखते-देखते प्रविष्ट हो गया ॥ ३३ ॥ अघासुरके मर जानेसे सभी लोग परम प्रसन्न हुए। और अपना कार्य करनेवाले भगवान्की पूजा करने लगे। देवता पुष्पवृष्टि करने लगे। गन्धर्व गाने लगे, विद्याधर बाजे बजाने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। ब्राह्मण लोग स्तुति करने लगे। पार्षद लोग जय जयकार करने लगे ॥ ३४ ॥ तरह तरहके अद्भुत उन स्तुति, बाजे, गीत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जय जयकार और अनेक विध उत्सवयुक्त मङ्गल सूचक ध्वनियोंको सुनकर ब्रह्मा गोकुलमें शीघ्र आये और भगवान् कृष्णकी महिमा देखकर उन्हें बड़ा ही अचम्भा हुआ ॥३५॥ राजन् जब अघासुरका वह अद्भुत शरीर सूख गया, तो व्रजवासियोंके लिए वृन्दावनमें बन बहुत दिनों तक खेलनेका गुफा बन गया ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णने पाँचवें यह कार्य किया था। किन्तु बालकोंने मृत्युसे अपनी मुक्ति तथा अघासुरका संसारसे उद्धार एक वर्ष बाद अपने अपने घरवालोंसे व्रजमें विस्मित हो कहा। उन्हें मालूम पड़ता था कि यह घटना आज ही घटी है ॥ ३७ ॥ कृष्णके लिये, जो कि मायासे मानव बालक बने हुए हैं और जो ब्रह्मादिके निर्माता परमेश्वर हैं, यह बात अद्भुत नहीं है। तभी तो महापातकी अघासुरने भी जिनके स्पर्शसे पातक शून्य हो सायुज्य गति पायी, जिसे पापी कभी नहीं पा सकते ॥ ३८ ॥ जिसके अङ्गकी मनोमयी केवल प्रतिमाने बलात अन्तःकरणमें एकबार स्थित हो प्रह्लाद आदि

गीतिकाजयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ॥ मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद्यदङ्गप्रतिमाऽन्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ॥ पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद्ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥ वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ॥ यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥

अपने भक्तोंको सायुज्य गति प्रदान की तब भला, जो नित्य आत्मसुखानुभूतिसे अपनी माया नष्ट कर देनेवाले साक्षात् स्वयं भगवान् ही जिसके भीतर प्रविष्ट हो चुके हैं उसके विषयमें क्या आश्चर्य करना है ॥ ३९ ॥ सूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, राजा परीक्षितने श्रीकृष्णकी यह विचित्र लीला सुनकर फिर भी उन्हीं पावन चरित्रोंको श्रीशुकदेवजीसे पूछा। उनका चित्त तो उसमें लीन हो चुका था। ४० ॥ राजाने कहा—महाराज, भगवान्ने जो काम पाँचवें वर्ष में किया था, उसे ग्वालबालोंने छठें वर्षमें जाकर अपने घर कहा, यह जो अपने कहा है वह पाँचवें वर्षमें किया गया काम छठें वर्षमें कैसे हुआ ? ॥ ४१ ॥ हे महायोगिन्, हे गुरो, मुझे इस बातका बड़ा कुतूहल है, आप इसका स्पष्टीकरण कीजिए। मुझे तो निश्चित यह भगवान् की माया ही प्रतीत होती है ॥ ४२ ॥ हे गुरो, ब्राह्मणके शापसे मैं क्षत्रियत्वसे यद्यपि च्युत हो चुका हूँ, फिर भी मैं अपनेको इस लोकमें कम भाग्यवान् नहीं समझता, इसलिए मैं आपके मुखकमलसे निकले पुण्यमय कथा अमृतको खूब छककर पान कर रहा हूँ ॥ ४३ ॥ सूतजी ने कहा–ऋषियो, परीक्षित्के प्रश्नसे शुकदेवजीको भगवान्के दिव्यगुणोंका स्मरण हो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आया और उन्हें समाधि-सी लग गयी। मुश्किलसे वे फिर धीरे-धीरे अपनेको वाह्यचरणोंमें ला सके। और तब भागवत श्रेष्ठ उस राजासे कहने लगे ॥ ४४ ॥

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ॥ कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

बारहवें अध्यायका सार—एक बार कृष्णने सोचा कि आज सबेरेका कलेवा जंगलमें ही कर लूँगा। ऐसा विचार वे बछड़ोंको हाँक बनकी ओर चल पड़े। चलते समय सिंगा एवं वंशी बजायी जिसे सुन सभी ग्वाल-बाल उनके पीछे हो लिये। वहाँ पहुच वे तरह-तरहके खेल खेलने लगे। इतनेमें कंसका भेजा हुआ अघासुर वहाँ आया। वह इन लोगोंको देख मारे ईर्ष्या से जल-भुन गया। पूतना इसकी बड़ी बहन एवं बकासुर इसका भाई था। अतः उन दोनोंके मौतकी बात सोच वह क्रुद्ध भी कम न हुआ। उसने सोचा कि आज सारी गौ, ग्वालबाल सहित गोपालको मार ही डालूँ। वह विशालकाय अजगर बन मुँह बा उनके रास्तेपर लेट गया। लड़के उसे पर्वत एवं उसके मुखको गुफा समझ उसमें पैठ गये। भगवान्‌ने अघासुरकी पापवृत्तिका पता पा लिया। वह भी उसके मुँहमें जा घुसे और तुरन्त इतना बढ़ गये कि उसका साँस लेना बन्द हो गया और मारे उत्पीड़नके आँखें बाहर निकल आयीं। प्राणवायु निकलनेका मार्ग न पा उसके मस्तकको फाड़ अन्तरिक्षमें चला गया। इसके बाद भगवान्‌ने बछड़ों एवं बालकोंको, जो उसके मुँहके भीतर मूर्च्छित हो गये थे, अपनी दृष्टिसे सचेत कर उनके साथ-साथ बाहर हो गये। इस घटनासे देवता बहुत प्रसन्न हुए, वे पुष्पवृष्टि करने लगे। स्तुतियों की आवाज ब्रह्मा तक पहुँची, वे कृष्णके इस कामको देख विस्मित हुए। यह लीला भगवान्‌ने पाँचवें वर्षमें की थी। पर लड़कोंने इसे आज की घटना समझा। एक वर्षकी घटनाको आज की घटना कैसे समझा? कृपाकर कहिये। मुझे महान् कौतुक हो रहा है ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

(ब्रह्माका बाल-बछड़ोंको चुराना और भगवान्‌का स्वयं बाल बछड़ा बन जाना)

श्रीशुक उवाच ॥ साधुपृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥ सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥२॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, आपने बहुत बढ़िया पूछा है। सचमुच आप भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आप बड़े भाग्वान् हैं, यही कारण है कि बार-बार पूछकर भगवान्‌की लीलाको आप नूतन बना देते हैं ॥ १ ॥ जिनके श्रवण, मन और वचनका विषय एकमात्र अच्युत भगवान्‌की चर्चा ही रहती है ऐसे सारग्राही सन्त स्वभावतः निरन्तर ही अच्युत भगवान्‌की चर्चा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते रहते हैं। किन्तु फिर भी उन्हें वह प्रतिवार नयी-नयी ही मालूम पड़ती है, प्रत्येक बार उनका ठीक वैसा ही उधर अनुराग खूब बढ़ता जाता है। जैसे स्त्रैण व्यक्ति दिन-रात स्त्रियोंकी चर्चा करके भी खूब नहीं तृप्त होते, उन्हें भी उधर नया-नया ही रस मिलता जाता है ॥ २ ॥ राजन्, मैंने गोपनीय समय जो बात छिपा रखी थी, उसे अब प्रकट कर दूँगा, ध्यान देकर सुनो। योग्य शिष्यसे गोपनीय भी बात गुरुजन कह देते हैं ॥३॥ जब भगवान्ने अघासुरके दुखरूपी मृत्युसे ग्वालबालों को बचा लिया, तो वे उन्हें यमुना तटपर ले गये और कहने लगे ॥ ४ ॥ मित्रो, यह यमुनामका पुलिन हमारे खेलनेकी अच्छी जगह है। यहाँके बालू कितने कमल एवं स्वच्छ हैं? यहाँ सुगन्धसे मतवाले हो रहे भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं एवं यहाँके जल में पक्षियोंके कलरवसे वृक्ष सब प्रतिध्वनित हो उठे हैं इन विलासित हो रहे वृक्षोंसे यह तट व्याप्त है ॥ ५ ॥ दिन चढ़ आया है, हमें भूख भी लग आयी है, अतः हम लोगोंको यहीं

गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ३ ॥ तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान्। सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥४॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वान-लसद्द्रुमाकुलम् ॥५॥ अत्रभोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तुशनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेति पाय-यित्वाऽर्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥७॥ कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजना ॥ ९ ॥ सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ॥ हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयो शृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥ भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं

भोजन कर लेना चाहिये। बछड़े जल पी-पीकर कोमल घास चर रहे ॥ ६ ॥ उन लोगोंने भगवान्की बात स्वीकार कर ली बछड़ोंको पानी पिला घास चरनेके लिए मैदानमें कर दिया और अपने-अपने छींके खोल भगवान्के साथ सानन्द भोजन करनेके लिए कृष्णके चारो ओर घेरा लगाकर बैठ गये। भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्तिके सहारे सबके सम्मुखही प्रतीत हुए अतः खुशीसे उन सब व्रजके बच्चोंकी आँखें खिल उठी थीं। उस समय वे ऐसे शोभ रहे थे कि मालूम पड़ता था मानो कमलकी कर्णिकाके चारो ओर उसके दल लगे हों ॥ ७, ८ ॥ कुछने फूलों पर, कुछने पत्तों पर, कुछने पल्लवों पर, कुछने अंकुरों पर, कुछने छींके पर, कुछने वृक्षोंकी छाल पर और कुछने पत्थर पर भोजन निकालकर भोजन करना प्रारम्भ किया ॥ ९ ॥ वे अपने भोजनकी वस्तुओंके स्वादकी बखान करते जाते थे। कहते थे मेरा भोजन कितना स्वादु है इस तरह स्वयं हँस-हँसकर दूसरोंको हँसाते हुए वे सब कृष्ण भगवान्के साथ भोजन करने लगे ॥ १० ॥ उस समय कृष्णने फेंटमें वंशी खोंस ली थी। कमरमें सींग और लकुटी लगा रखी थी। बायें हाथमें स्निग्ध दही-भातका कौर और अङ्गुलियोंमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नीबू आदि फल रख छोड़े थे। इस तरह वे उन लोगोंके बीचमें बैठ चुटीली बातोंसे अपने चारो ओर बैठ मित्रोंका मन बहलाते हुए भोजन करने लगे। जो भगवान् यज्ञके भोक्ता हैं, उनकी वह बालसुलभ लीला देख स्वर्गवासी लोग चक्करमें पड़ गये ॥ १०, ११ ॥ राजन्, इस तरह भोजन कर रहे ग्वालबाल तो कृष्णमय हो चुके थे, उन्हें गौओंका भला क्या स्मरण रहे ? अतः गौएँ हरि-हरि घासके लोभसे वनके भीतर बहुत दूर जा घुसीं ॥ १२ ॥ जब उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ और बछड़े न देखे, तो वे घबड़ा गये, भयभीत होकर कृष्णसे कहे। तब, श्रीकृष्णने भी कहा—मित्रो, घबड़ाओ नहीं, भोजन भी मत छोड़ो, मैं अभी सब बछड़ोंको हाँक लाता हूँ ॥ १३ ॥ बादमें भगवान् कृष्ण हाथमें कौर लिये हुए अपने बछड़ोंकी खोज करनेके लिये पर्वतों, गुफाओं, एवं जंगलों झाड़ियोंमें चले गये ॥ १४ ॥ हे कुरुद्वह, जो पहले ब्रह्माजी आकाशमें स्थित हो अघासुरका उद्धार देख बहुत विस्मित हो उठे थे। उन्होंने ही उस समय मायासे वहाँ आकर मनुष्य रूप धारण करनेवाले कृष्णकी और मृदुल महिमा झाकनेके लिए बछड़ोंको और बादमें जब कि भगवान् ग्वालबालोंको छोड़कर बछड़ोंकी खोजमें

विविशुस्तृणलोभिताः ॥१२॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ॥ मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥
इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥१४॥ अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो माया-
र्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं
प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥ ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥१६॥
क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह ॥१७॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां
च कस्य च उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदल-
शिग्यावद्विभूषाम्बरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥ स्वय-

इधर आये तो ग्वालबालोंको अन्यत्र लेकर अन्तर्हित हो गये ॥१५॥ जब कृष्णने वहाँ बछड़ों को न देखा, तो वे यमुना के किनारे वापस आ गये, पर यहाँपर बालकोंको भी न पाये; उस वनमें भगवान् कृष्णने चारो ओर उन दोनोंको खोजा। उस जङ्गलके भीतर कहीं भी उन बछड़ों और ग्वालबालोंको खोजकर भी जब नहीं पाये, तब सर्वज्ञ भगवान् कृष्णने सहसा जान लिया कि यह सब करतूत ब्रह्माकी ही है ॥ १६, १७ ॥ तब उन बालकोंकी माँ एवं स्वयं ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिए विश्वके रचयिता परमेश्वर कृष्णने अपनेको उन-उन रूपोंमें विभक्त कर लिया ॥ १८ ॥ वे बछड़े एवं बालक जितने छोटे-बड़े रहे, जितने छोटे बड़े अनेक हाथ पैर आदि अङ्ग प्रत्यङ्ग रहे, जैसी उनकी यष्टि, सींग, वंशी, छींके, आभूषण, कपड़े आदि वस्तुएँ थीं, जिसमें जैसा शील-स्वभाव, गुण, नाम रूप, वय एवं आहार-विहार था, अजन्मा कृष्णने ठीक-ठीक वैसा ही बना लिये यों सर्वस्वरूप बनकर उन्होंने 'सब विष्णुमय जगत्, इस शास्त्रीय वचनको मानो सार्थक कर दिया ॥१९॥ उस समय वे स्वयं कर्ता, कर्म, प्रयोज्यकर्ता, क्रिया एवं कारक बन गये थे। वही बछड़े बने, ग्वाल बने, एवं उनकी सर्वविध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चेष्टाएँ वन गये थे। अपनेको ही खेलनेका साधन बनाकर उनसे खेलते हुए ग्वालबालोंके साथमें उन्होंने अपने ही गौ स्वरूपको हाँककर विभिन्न घरोंमें पहुँचा दिया ॥ २० ॥ जितने बछड़े जिस गोष्ठसे गये थे, उसमें उतने बछड़ोंको अलग-अलग पहुँचाया ॥ २१ ॥ तथा हे राजन् तत्-तत् बच्चेका रूप धरकर तत्-तत् घरमें प्रविष्ट हो गये। उन-उन बालकोंकी माताओं ने जब वंशीकी धुन सुनी, तो जल्दीसे उठ दौड़ीं। स्नेहसे उनके स्तनसे दूध टपक रहे थे। वे उन्हें हाथोंसे पकड़ खूब गले लगा और दूध पिलाने लगीं। वह तो यही समझती थीं कि यह हमारा लड़का है। उन वेचारियोंको क्या पता था कि वे साक्षात् परब्रह्मको दूध पिला रही हैं ? ॥ २२ ॥ तदनन्तर हे राजन्, इस तरह भगवान् नानाविध खेल खेलकर जब सामको घर लौटते तब उनकी माताएँ उन्हें उबटन लगातीं, नहलातीं, चन्दन लगातीं, आभूषण पहनातीं, रक्षासूत बाँधती, खिलाती-पिलाती थीं और भगवान् भी अपनी मधुर बाललीलाओं

मात्मात्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥२०॥ तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं मत्वा परं ब्रह्मसुतानपाययन् ॥२२॥ ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालङ्काररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः ॥२३॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुङ्कारघोषैः परिहूतसङ्गतान् ॥ स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृतास्मिन्सर्वा स्नेहर्धिकां विना ॥ पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् ॥ शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः ॥ पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥२७॥ एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् ॥ पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥२८॥ ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाथ

से उन्हें खुश रखते थे ॥ २३ ॥ गौएँ जब चरकर घर आ जातीं, तब हुङ्कार मचा अपने-अपने बछड़ोंको बुलातीं और वे शीघ्र दौड़ आते। आते ही उन्हें वे चाटतीं और दूध पिलातीं अपने बच्चोंको देखते ही उनके थनसे दूध चूने लगते थे ॥ २४ ॥ गौओं और गोपियोंका तो कृष्णपर पहलेसे ही लालन-पालन आदि सब प्रेम था, पर इसबार स्नेह हो आया। अब वे मायामें बँध समझने लगीं कि यह मेरा लड़का है और मैं इनकी माता हूँ और इनमें भी भगवान्की बाल भावनादि पूर्ववत् हो थी, किन्तु माया छोड़कर थी ॥ २५ ॥ व्रजवासियोंका यशोदानन्दन कृष्णमें जैसे अधिक बढ़ा चढ़ा स्नेह था वैसे ही इस समय भी अपने पुत्रोंमें पहलेके स्नेहसे विलक्षण असीम बढ़ हो गया। उनकी स्नेहलता प्रतिदिन धीरे-धीरे वर्ष तक निरन्तर बढ़ती ही रही ॥ २६ ॥ इस तरहसे कृष्ण भगवान् गौओं उनके बछड़ों तथा उनके बालकोंके बहाने स्वयं बछड़ा बनकर अपने आपको पालन करते हुए वर्ष भर तक वन और व्रजमें लीला करते रहे ॥ २७ ॥ वर्ष पूरा होनेमें पाँच-छ रात की कमी थी। एक दिन बलरामके साथ कृष्णजी बछड़ोंको चराते हुए वनमें पहुँचे ॥ २८ ॥ चरते चरते गौओंकी दृष्टि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन बछड़ोंपर जा पड़ी, जो बहुत दूर ब्रजके समीपवाली गोवर्धनपर्वतकी चोटी पर हरे-हरे घास चर रहे थे ॥ २९ ॥ उन्हें देखते ही उन गौओंके स्नेह उमड़ आये और वे अपने आपको भूल गयीं। ग्वालबालोंके लाख उपाय करने पर भी वे उनके घेरेसे निकल भागीं। उधर जानेका मार्ग यद्यपि दुर्गम था तथापि इतनी जोरसे दौड़ीं कि देखने से दो पैर वाली-सी प्रतीत होती थीं। ककुद्की ओर उनका गर्दन घूम गया था, पूँछ और मुँह ऊपर कर वे डकार मारती हुई बछड़ोंके पास चली आयीं, उस समय उनके थनसे दूध चू रहे थे ॥ ३० ॥ उस पर्वत के नीचे चर रहे बछड़ोंके समीप में पहुँच वे बड़े बछड़ोंको दूध पिलाने लगीं, यद्यपि छोटे बछड़े भी वहीं खड़े थे। उनका स्नेह उनमें ही उमड़ आया था, वे उन्हें इतनी चाट रही थीं मानो मारे प्रेमके पेटमें रख लेंगी ॥३१॥ ग्वाले उन गौओंको रोक न सके थे। इसलिए अपनी विफलता पर उन्हें लज्जा और क्रोध दोनों हो रहा था। वे दुर्गम रास्तोंको पारकर वहाँ पहुँचे, तो अपने लड़कोंको गौओं और उनके बछड़ोंके साथ देखा। (उन्होंने देखा कि गौएँ तो बड़े बछड़ोंको पिला रही हैं) ॥३२। उन्हें इस हालतमें देखते ही उनका हृदय स्नेहरससे भर गया

तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ॥ द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽधोवत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ॥ गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥३२॥ तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥३४॥ व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥३५॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥३६॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ॥ प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥ नैते

और उनका क्रोध जाता रहा उन्हें और अधिक अनुराग हो गया। अपने-अपने बच्चे को दोनों हाथोंसे उठा छातीसे लगा लिया। तथा उनके मस्तक सूँघ बहुत हर्षित हुए ॥३३॥ इसके बाद वे अपने बच्चोंके आलिङ्गनसे परम आनन्दको प्राप्त हुए वृद्ध गोप लोग बहुत कष्टसे धीरे-धीरे अपने बच्चोंसे पृथक् हो सके। हटनेपर अपने बच्चोंकी यादसे उनकी आँखें छलछला आयीं ॥ ३४ ॥ जब बलरामने दूध छोड़ दिये हुए बच्चोंमें भी उत्तरोत्तर व्रजवासियोंके स्नेहाधिक्य को बढ़ते देखा तो, कोई कारण न जानकर बड़े विस्मित हुए और सोचने लगे कि यह कौन-सी विचित्र बात है कि सबकी आत्मा वासुदेव कृष्णमें जैसा सबका प्रेम था वैसा ही सारे व्रजवासियोंका प्रेम अपने-अपने बच्चोंपर बढ़ रहा है, स्वयं मेरा भी प्रेम इनके प्रति प्रगाढ़ होता जा रहा है ? ऐसा तो पहले नहीं था ॥ ३५, ३६ ॥ यह कौन सी माया है, देवों की है या मनुष्यों की है, या असुरोंकी है, या स्वयं मेरे स्वामी श्रीकृष्णकी है अवश्य यह माया श्रीकृष्णकी है दूसरे की नहीं है, तभी तो मुझे भी मोहित कर रही है ॥ ३७ ॥ ऐसा विचारकर बलरामजीने ज्ञानमय चक्षुसे अपने साथियोंके साथ उन बछड़ों तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गोपोंको श्रीकृष्ण ही देखा। उन्होंने कृष्णसे कहा—हे ईश, मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि ये सब ग्वालबाल देवताके अंश हैं तथा इनसे पालित हो रहे ये बछड़े भी ऋषियोंके अंश हैं तथापि इस तरहका भेद रहने पर भी इस समय ये न तो सुरेश हो सकते हैं और न ऋषि ही हो सकते हैं, किन्तु तुम्हीं सब भाषित हो रहे हो। परन्तु ये सब घटनाएँ कैसे घटीं, इसका अलग-अलग खूब विवेचनकर मुझे बतलाओ। बलदेवजीसे यों पूछने पर श्रीकृष्णने संक्षेपसे सारी घटना कह सुनाई। उसके बाद बलदेवजीको सारी उक्त घटनाएँ ठीक-ठीक मालूम हो गयीं ॥ ३८, ३९ ॥ एक वर्ष बीत जानेपर भी वह काल तो ब्रह्माके लिए एक क्षण जैसा था। वे अपने कामसे सिर्फ एक क्षणमात्र काल बिताकर शीघ्र ही ब्रह्मलोकसे जब लौटे तब उन्होंने देखा कि कृष्ण तो पहलेकी तरह गो-ग्वालबाल सबके साथ खेल रहे हैं ॥ ४० ॥ वे सोचमें पड़ गये कि गोकुलके जितने बछड़े एवं बालक हैं उन सबको तो मैंने यहाँ से दूर ले जाकर मायारूपी शय्या पर सुला दिया है और वे अब तक फिर उठे नहीं। तब मेरी माया से मोहित हुए के अतिरिक्त कृष्णके साथ खेलनेवाले ये ग्वालबाल, बछड़े कहाँसे

सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ॥ सर्वंपृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥ यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ।४२। एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥४३॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥४४॥ तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ॥ महतीतरमायैश्यंनिहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥४५॥ तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ॥ नूपुरै

आ टपके? जो ठीक उतने ही हैं और उसी स्थान पर कृष्णके साथ एक वर्षसे खेल रहे हैं ॥ ४१, ४२ ॥ इन ग्वालबाल तथा बछड़ोंमें भेद न रहने पर भी इसके विषयमें बहुत सोचने पर ये ब्रह्माजी किसी तरह भी न जान सके कि कौन असली ग्वालबाल बछड़े हैं और कौन नकली? ॥ ४३ ॥ सर्वदा मोहरहित विश्वमोहन भगवान् श्रीकृष्णको मोहित करनेके लिए यों प्रवृत्त हुए ब्रह्माजी अपनी ही मायासे जिसका प्रयोग भगवानके ऊपर किया था, स्वयं मोहित हो गये ॥ ४४ ॥ जैसे कुहरा रात्रिके अन्धकारको बढ़ानेकी चेष्टा कर स्वयं नष्ट हो जाता है और जैसे तारोंकी कान्ति दिनको प्रकाशित करनेकी चेष्टाकर स्वयं श्रीहत हो जाती है उसी तरह महापुरुषपर माया प्रयोग करनेवाले की नीच माया कुछ नहीं कर पाती, बल्कि अपने आश्रयमें रहनेवाली ईशता को ही नष्ट करती है ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजी तो उधेड़ बुनमें पड़े ही हुए थे कि इतनेमें उनके देखते देखते सारे ग्वालबाल शीघ्र पीताम्बर पहने घनश्याम दीखने लगे ॥४६॥ उनकी चार भुजाएँ थीं वे चारो हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए थे। किरीट, कुण्डल एवं मनोहर वनमाला धारण किये हुए थे। उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभ,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाहुओंमें अङ्गद [बिजायठ], हाथोंमें शङ्खकी तीन रेखाओं–जैसे कङ्कण थे पैरोंमें नूपुर एवं कड़े, कमरमें करधनी एवं अङ्गुलियोंमें अँगूठियाँ शोभित हो रही थीं। सभी अङ्गोंमें परम पुण्यात्माओं द्वारा अर्पित, कोमल तुलसीकी मालाओंसे पैरसे लेकर मस्तक तक वे अलंकृत थे ॥ ४७, ४८, ४९ ॥ उनकी मुस्कराहट चाँदनी-सी शुभ्र थी, तिरछी चितवनसे देखना गजब ढाहती थी। इनसे ऐसा प्रतीत होता था कि वे रजोगुणसे भक्तोंकी इच्छा पूर्ण की सत्त्वगुणसे उनका परिपालन कर रहे हों ५०॥ ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त मूर्तिधारी सभी चराचर प्राणी अपनी शक्तिके अनुमार नृत्य, गीत आदि विभिन्न पूजाके साधनोंसे उन्हें अलग अलग प्रसन्न कर रहे थे ॥ ५१ ॥ वे सबके सब अणिमा आदि अष्टसिद्धियाँ माया विद्या आदि शक्तियाँ महत् आदि चौबीस तत्त्वोंसे परिपूर्ण थे ॥ ५२ ॥ काल, स्वभाव [परिणामका हेतु, संस्कार वासनाका उद्‌बोधक], कामना, कर्म और गुण देह धरकर इनकी स्तुति कर रहे थे। उन लोगोंकी महिमासे इनकी महिमा निष्प्रभ हो उठी थी ॥ ५३ ॥ एकमात्र सत्य, ज्ञान, अनन्तानन्दैकरस ही उनका स्वरूप था। केवल उपनिषत् जाननेवाले ज्ञानियोंको भी उनकी प्रचुर

कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥४८॥ आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥
चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ॥ स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥ ५० ॥ आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्च-
राचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता
महदादिभिः ॥५२॥ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥ स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानानन्तान-
न्दमात्रैकरसमूर्तयः ॥ अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्य भासा
सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥५५॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्य स्तिमितैकादशेन्द्रियः ॥ तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका॥५६॥
इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति

महिमा स्पर्श योग्य [गोचर] न थी ॥ ५४ ॥ इस तरह ब्रह्माने एककालमें उन सब ग्वालबालोंको उस परब्रह्मपरमात्मा कृष्णके रूपमें देखा जिसकी ज्योतिसे यह सारा चराचर विश्व अलोकित होता है ॥ ५५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी तो उस कौतुकसे ऐसे अवाक् हो गये कि उनकी ग्यारहों इन्द्रियोंकी गति हो उनके तेजसे अवरुद्ध हो गयी। और वे बिलकुल निश्चल हो गये। वे उस निश्चेष्ट हालतमें ऐसे प्रतीत होते थे, मानो व्रजकी चतुर्मुखी अधिष्ठात्री देवीकी प्रतिमा हो। ५६ ॥ यह सब देखकर तर्कके अगोचर, असाधारण महिमावाले, स्वप्रकाशसुखस्वरूप, प्रकृतिसे परे, जड़का खण्डनकर उपनिषदोंसे ज्ञायमान भगवान्‌के विषयमें, सरस्वतीके ईश ब्रह्माजीके 'यह क्या देख रहा हूँ' यों मोहित हो जानेपर तथा पीछे तो उसे भी देखने में असमर्थ हो जाने पर परमपुरुष अजन्मा भगवान्‌ने उनका मोहादि क्लेश जानकर उनके ऊपर पड़ी अपनी मायाका परदा शीघ्र दूर हटा दिया ॥ ५७ ॥ मायाका परदा फट जानेपर अपनी बाह्यान्द्रियोंको प्राप्तकर, मरा हुआ जैसे अमृतके सेवनसे पुनः जी उठे वैसे ही उठकर ब्रह्मा जी उठ पड़े। उन्होंने बड़े मुश्किलसे आँखें मलकर अपने देहादिके साथ सारे विश्वको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखा ॥ ५८ ॥ शीघ्र ही चारो तरफ सब दिशाओंको देखते हुए उन्हें पहले अपने आगे वृन्दावन दीख पड़ा। जिसमें अधिकांश वृक्ष ऐसे थे, जिनसे मनुष्योंको खुराक मिलती है। वहाँ अन्यान्य मनोभिलाषित वस्तुएँ भी थीं ॥ ५९ ॥ वहाँ स्वभावसे ही वैरी नर, सिंह, मृग आदि वैर भुलाकर मित्रकी तरह रहते थे। भगवान्‌के आवास होनेके नाते काम, लोभ मोह आदि वहाँ न रह गये थे ॥ ६० ॥ ब्रह्माने उसी वृन्दावनमें पहलेकी तरह ही उन अनन्त, अगाध, अबोध, अद्वैत परमब्रह्म को देखा जो कि गोपाल बालकी लीला कर रहे थे जिस तरह पहली बार उन्होंने उन्हें बायें हाथ में कौर लिए बछड़ों एवं अपने मित्र बालकोंको ढूँढ़ते देखा ठीक उसी तरह आज भी उन्हें देखा ॥ ६१ ॥ उन्हें इस हालतमें देख वे झटसे अपने वाहन हंससे उतर पड़े और सोने के डण्डे की तरह अपना शरीर पृथिवीपर लेटाकर चारो मुकुटके अग्रभागसे उनके चरणको स्पर्शकर प्रणाम किया और आनन्दके आँसुओंसे उनका अभिषेक किया ॥ ६२ ॥ भगवान्‌की पूर्व दृष्ट उस महिमाका पुनःपुन स्मरण करते हुए उन्होंने बार बार उठ-उठकर चिरकाल तक उन्हें प्रणाम किया ॥ ६३ ॥ इसके बाद धीरेसे उठकर

चछादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७ ॥ ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥५८॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥ वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥ यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्मृगादयः ॥ मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥६०॥ तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ॥ वत्सान्सखीनिव पुरा परितो विचिन्वदेकं सपाणिकेवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य ॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥ आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ॥ कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥६४॥ इति श्रीम० म० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

आँखें पोंछ लीं। मुकुन्द भगवान्‌को आगे देख वे लज्जासे झुक गये और हाथ जोड़कर किसी तरह अपने मनको काबूमें ला करके स्खलितअक्षरवाली वाणीसे स्तुति करने लगे। इस समय उनके शरीरमें कँपकपी आ रही थी तथा उनका गला रुँध रहा था ॥ ६४ ॥

तेरहवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, आप बार-बार भगवान्‌की सरसलीलाके सम्बन्धमें प्रश्न पूछ पूछकर ताजा बना देते हैं। मैंने गोपनीय समझ उस कथाको छिपा रखा था पर अधिकारी समझ अब उसे सुना देता हूँ, सुनिये। जब भगवान्‌ने अघासुरसे बाल-बछड़ेको बचा लिया, तब वे उन्हें ले यमुना तटपर आये। दिन चढ़ आया था, अतः वे सब मिलकर भोजन करने लगे। कृष्ण बीचमें बैठे थे एवं उनके चारो ओर गोल घेरा बनालड़के बैठे थे। कृष्ण की छटा अवर्णनीय हो रही थी। वे मनोरञ्जक बातों से बालकोंको प्रफुल्लित करते जाते थे। कुछ देर बाद उन्हें अपने-अपने बछड़ों की याद आयी। देखा, तो बछड़े वहाँ नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

थे। उन्हें घबड़ाया देख कृष्णने उनसे कहा अजी, तुम सब डटकर भोजन करो। मैं उन्हें हाँके लाता हूँ। वे बछड़ोंको ढूँढ़ने लगे। पर उनका कहीं पता न चला। जब वापस आये, तो यहाँ बालक भी गायब थे। बात ऐसी हुई कि ब्रह्माने पहले तो बछड़ोंको और बादमें, जब भगवान् उन्हें ढूँढ़ने निकले तो बालकोंको चुराकर अन्तर्हित कर लिया। अघासुरकी घटना से वे विचारे चक्करमें पड़ गये थे। कृष्णकी महिमा जानना चाहते थे। जब भगवान् कृष्णने ग्वालों और बछड़ों इन दोनोंको गायब देखा, तो उन्होंने ज्ञान दृष्टिसे ब्रह्माकी करतूतें जानलीं। वे स्वयं बालक एवं बछड़े बन गये। जब दलबलके साथ व्रजमें पहुँचे, तो गोपियाँ एवं गौएँ आज अपने-अपने बच्चोंके प्रति इतनी स्निग्ध हुईं, जितनी पहले कभी न हुई थीं। इस तरह उनका स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। एक वर्षकी दीर्घ अवधिमें तो उनके स्नेहकी सीमा न रही। इसी तरह गोपोंका स्नेह भी बच्चोंके प्रति प्राप्त हो गया था। एक दिनकी घटना है कि चरते-चरते गौओंकी दृष्टि अपने बछड़ों पर पड़ गयी बछड़े वहाँसे बहुत दूर थे। देखना था कि उनमें स्नेहकी बाढ़ आ गई। गोपोंके रोकनेपर भी वे दौड़ती-दौड़ती वहाँ आ पहुँची और बड़े-बड़े बछड़ोंको दूध पिलाने एवं चाटने लगीं। उनके नवजात बछड़े भी वहीं थे, पर उनका स्नेह तो इनपर था। गोप लोग गौओंकी इस खुराफातसे झुँझला उठे थे। जब पीछेसे वे वहाँ पहुँचे और इस दशाको देखे, तब उनके हृदयमें अपने-अपने बच्चोंके प्रति वह प्रगाढ़ प्रेम उमड़ा कि क्रोधकी कहीं जगह ही नहीं रह गई। बड़े कष्टसे वे बच्चोंसे अलग हुए। बलरामको इन बातोंसे सन्देह हुआ। वे सोचने लगे कि क्या कारण है कि आज सारे व्रजवासी कृष्णसे भी अधिक अपने-अपने बच्चोंको प्यार कर रहे हैं? कृष्णने ब्रह्माके सारे करनामें सुना दिये। तब कहीं बलरामजीका सन्देह हट। एक वर्ष बीत गया, पर यह तो ब्रह्माके लिए एक क्षण जैसा काल था। वे जब बछड़ों और बालकोंको मायासे सुला वृन्दावन पहुँचे, तो उन्हें कृष्णके साथ-साथ सारे बाल-बछड़े दिखलाई पड़े। दोनों जगह एकसे बाल-बछड़ेको देखकर वे बड़े चक्करमें पड़े। समझ नहीं सकते थे कि असली बाल-बछड़े कौन है? और नकली कौन है? क्षणमें सारे बाल बछड़े चतुर्भुज कृष्णके रूपमें परिवर्तित हो गए। अब ब्रह्माके आश्चर्यका कोई ठिकाना न था। वे स्तब्धसे हो गए। बाद भगवान्ने अपनी माया हटा ली। तब उन्होंने भगवान्को उसी तरह बाल-बछड़ोंको ढूढ़ते देखा।

❀ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❀

[ब्रह्माका श्रीकृष्णकी स्तुति करना]

ब्रह्माजीने कहा—भगवन् आप सत्य हैं। आपको प्रणाम करता हूँ। आपका शरीर मेघकी तरह श्याम है। बिजलीकी तरह पीले-पीले आपके वस्त्र हैं। कानोंमें गुञ्जाओंके कर्ण

ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥ अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य नतु भूतमयस्य कोऽपि ॥ नेशे महि त्ववसितुं मनसान्त- ॥४४॥

भूषण हैं एवं मोरपङ्खसे आपके मुखकी शोभा निखर उठी है। वन्यफूलोंकी आपने माला पहर रखी है। आपके बायें हाथमें दही-भातका कौर है, बायीं कमरमें लकुटी और सींग है, तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

फेंटेमें वंशी खोसी हुई है। आपके चरण कमलकी तरह कोमल हैं। आप नन्दके लाड़ले लाल हैं, आपको नमस्कार है॥१॥ देव, मुझपर अनुग्रहकर आपने भक्तके इच्छानुसार जिस शुद्धसत्त्वमय विग्रहको धारण किया है, जो पाञ्चभौतिक तत्त्वसे नहीं बना है—अप्राकृत है, उसकी भी महिमा जब आन्तरिक मनसे ब्रह्मा होकर भी हम जान नहीं पाते, तो भला साक्षात्सच्चिदानन्दात्मक आपके निर्गुण, निर्विकार रूपकी महिमा कैसे जान पायेंगे ? ॥ २ ॥ ज्ञान प्राप्तिका प्रयास छोड़ जो लोग सज्जनोंके निवास स्थानपर ही रहकर सन्तोंसे भी गायमान आप की कथा का श्रवण करते हुए जीवनयापन करते हैं, तन, मन, वचनसे उसे सुनते-सुनाते आपका नमन करते रहते हैं वे आपको वशमें कर लेते हैं। यद्यपि आप अवश हैं किसीके वशमें नहीं होते. पर ऐसे भक्तगणके वशमें आप हो ही जाते हैं ॥ ३ ॥ हे विभो, जो लोग कि अभ्युदयके प्रलयण भक्तिको छोड़ छाड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए मरते हैं। उन्हें केवल क्लेश ही हाथ आता है। भला जो भूमि कूटेगा, उसे भूमि के अतिरिक्त और दूसरा क्या मिलेगा ? ॥ ४ ॥ हे अच्युत, इस लोकमें पहले भी बहुतसे योगियोंने ज्ञानके द्वारा आपको

रेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥ ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ॥ स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ॥ तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥४॥ पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ॥ विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥ तथापि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ॥ अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोधात्मतया न चान्यथा ॥ ६॥ गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ॥ कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥ ७ ॥ तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ॥ हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥ पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परा-

पाना चाहा, पर जब उन्हें सफलता न मिली, तो उन्होंने भक्तिके द्वारा ही आपको पा लिया। भक्तिकी साधनामें पहले तो उन्होंने अपने सभी कर्मोंको आपको अर्पित कर दिया। बाद में वे कथाश्रवण जनित प्रेमरूप भक्तिके द्वारा आपके परम तत्त्वको जानकर आपके स्वरूपको प्राप्त हो गये ॥ ५ ॥ हे भूमन्, तथापि निर्गुण रूपधारी आपकी महिमा शुद्धचित्तवाले पुरुष जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको अभिमुख बना लिया है, एकमात्र अपने अनुभवसे विशेषाकारसे रहित तथा बिना रूपका होनेके कारण स्वप्रकाशरूपसे ही जान सकते हैं और किसी दूसरी तरह नहीं ॥ ६ ॥ जब सभी गुणोंके अधिष्ठाता आप हैं, तो भला आपके अनन्त गुणोंको कोई कैसे गिन सकता है ? आप तो दुनियाके हितके लिए अवतीर्ण होते हैं। अनेक कल्पोंमें अतिनिपुण कोई पृथ्वीके कणोंको सूर्यकी किरणोंको एवं आकाशके ओसबिन्दुओंका भले ही गिन डाले, पर आपके गुणकी गणना वे किसी तरह नहीं कर सकते ॥ ७ ॥ इसलिए आप के दयाकी प्रतीक्षा करता हुआ, अपने कृतकर्मोंके फलोंको अनासक्त होकर भोगता हुआ एवं तन, मन, वचनसे जो आपकी भक्ति करता हुआ, जीवन व्यतीत करता है वह मुक्तिका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अधिकारी हो जाता है ॥ ८ ॥ हे ईश, जरा मेरी अभद्रता तो देखिये । मायावियोंके मायावी, पुराण पुरुष, अनन्त परमात्मा आपके ही ऊपर मैंने अपनी माया फैलाकर अपना प्रभाव देखना चाहा पर मुझ अकिञ्चनकी शक्ति ही क्या ? अग्नि कण क्या अग्निको जला सकते हैं ॥ ९ ॥ हे अच्युत, मेरी उत्पत्ति रजोगुणसे हुई है, इसलिए मैंने आपको जाननेमें भूल की। आपसे भिन्न ईश्वर तो मैं ही हूँ, ऐसा मुझे अभिमान हो गया था । चूँकि मैं आपके प्रभावको भूल गया था, इसलिए आपकी मायाके सम्बन्धसे गाढ़ अन्धकार द्वारा मेरा अन्तःकरण बिलकुल ढक गया था, अतः अब आप मेरा अपराध मुझ स्वामीके रहते यह मेरा भृत्य अनुकम्प्य है, यह समझकर क्षमा कर दीजिये ॥ १० ॥ कहाँ तो प्रकृति, महतत्त्व, अहङ्कार एवं पञ्चभूतकी समष्टिसे बना [मेरे हाथसे] सात हाथ परिमाणवाला मह मेरा ब्रह्माण्ड रूपी घटभूत शरीर और कहाँ आपकी वह महिमा, जिसके रोमके झरोखेमें अखण्ड, अनन्त ब्रह्माण्ड रूपी परमाणु उड़ रहे हैं ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज, अपने गर्भमें स्थित बच्चेका जो पैर उछालता है क्या माता उसे अपराध समझती है उसपर क्रोध करती है ? कभी नहीं । अतः आप भी

त्मनि त्वय्यपि मायिमायिनी ॥ मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥ अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो
ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥ १० ॥ क्वाहं तमोमहदहंखचरा-
ग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ॥ क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥ उत्क्षे-
पणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ॥ किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥
जगत्त्रयान्तोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥ विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा किन्त्वीश्वर त्वन्न विनि
र्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥ नारायणस्त्वं नहि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशाऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि
सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किं नो सपद्येव

मुझपर क्रोध न करें, क्योंकि मैं भी आपके गर्भगत बच्चेकी तरह ही हूँ और आप माँ ही हैं । जब भाव-अभाव पदसे पुकारी जानेवाली सारी वस्तु आपकी कुक्षिमें हैं तो मैं ही उससे बाहर कैसे रह सकता हूँ ॥ १२ ॥ और यह तो दुनियाँ जानती है कि मैं आपके पेटसे ही निकला हूँ । तीनों जगत्के प्रलयके समय जब समुद्रमें संक्षोप होता है, तो उस जलमें सोये हुए नारायण भगवान्के नाभिकमलसे ब्रह्मा पैदा होते हैं, यह शास्त्रीय बात कभी झूठ होनेको नहीं । फिरभी हे ईश्वर, आप ही बतलाइये कि क्या मैं आपके पेटसे उत्पन्न नहीं हुआ हूँ ? आप क्या मेरी माँ नहीं हैं ? ॥ १३ ॥ क्या आप नारायण नहीं हैं ? अवश्य हैं. आप सभी प्राणियों की आत्मा हैं, आप सबके अधीश हैं समस्त लोकोंके साक्षी हैं, पृथ्वी, जल आदि तत्त्वोंके आप ही निष्पादक हैं और जल आपका निवासस्थान हैं । इसलिये नारायण नामसे जो प्रसिद्ध है वह भी आपकी ही मूर्ति है, परन्तु वह सत्य नहीं है, किन्तु आपकी वह भी माया ही है ॥१४॥ जगत्के आश्रयभूत वह आपका शरीर सिर्फ जलमें ही रहनेवाला है, यदि यही सत्य हो तो हे भगवान्, कमलनाल मार्गकेद्वारा भीतर प्रविष्ट होकर जब मैं ढूँढ़रहा था

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तो उसी समय मैंने क्यों नहीं देख लिया, तपस्या करनेके बाद अपने अन्तःकरणमें हो मैंने उसे भलभाँति क्यों देखा ? और फिर यह भी है कि उस समय भी तत्क्षण ही मैंने क्यों नहीं देखा ? अतः सर्वव्यापक आपकी इच्छासे ही उस समय मुझे आपका स्वरूप दीख पड़ा। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि आपका रूप परिछिन्न नहीं है ॥ १५॥ हे मायोपशमन, आपका यह अवतार अनेक लीलाओंके प्रदर्शनके लिये हुआ है। आपने इसी अवतारमें अपनी माताको अपने जठरके भीतर सारे इस बाह्य जगत्को दिखलाकर आपने सबको बतला दिया है कि यह जगत् मायामय ही है ॥१६॥ उस समय आपकी कुक्षिमें जिस तरह आपके सहित यह सब बाह्य प्रपञ्च दीख पड़ा, उसी तरह वह सब आज आपमें बाहर भी यहाँ दीख पड़ा। इसलिये इस तह सम्पूर्ण जगत्का भान होना आपमें मायाके सिवा कैसे घट सकता है ? ॥ १७ ॥ अभी, अभीकी बात है, आपने अपने सिवा इस जगत् का मायात्व क्या मेरे सामने नहीं प्रकट कर दिया ? पहले तो आप एक रहे। फिर व्रजके बछड़े-ग्वालबाल सब बन अनेक हो गये। तदनन्तर मेरे साथ महत्तत्त्व आदि सम्पूर्ण तत्त्वों द्वारा उपासित हो रहे आप ही चतर्भुज

पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥ अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्यामायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७ ॥ अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥ अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् ॥ सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ॥ जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ २० ॥ को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ॥ त्वय्येव नित्य-

रूपधारी सबके सब बन गए। उसके बाद उतनेही ब्रह्माण्डरूपमें आप ही हो गये। उसके बाद आप फिर अमित अद्वय ब्रह्म ही रह गये हैं ॥ १८ ॥ जो आपके स्वरूपको नहीं जानते उनके आगे प्रकृतिमें स्थित आपही स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी माया फैलाकर जगत्की सृष्टि करते समय मैं ब्रह्मा ही सत्य भासित होते हैं। पालन करते समय यह आपही विष्णुसे भासते हैं तथा प्रलय करते समय आप रुद्रसे भासित होते हैं ॥ १९ ॥ हे प्रभो, हे ब्रह्म, हे ईश, जन्मरहित आपहीका देवताओंमें इन्द्र, यज्ञ आदि, ऋषियों में परशुराम, नारद आदि, मनुष्योंमें राम, पृथु आदि, पशुपक्षियोंमें वाराह, हंस आदि, जलजन्तुओंमें मत्स्य, कूर्म आदि रूपसे अवतार दुष्टोंका दमन एवं शिष्टोंपर अनुग्रह करनेके लिये होता है ॥ २० ॥ भगवन्, आप परमात्मा हैं, योगेश्वर हैं, अहो आप अपनी योगमाया फैलाकर जब लीला करते हैं तब आपकी लीलाएँ किस जगह, कैसे, कब, कितनी होती हैं, इसे भला तीनों लोकमें कौन जान सकता है ? ॥२१॥ यही कारण है कि नित्यानन्द ज्ञानरूप आपमें ही स्वाप्निक पदार्थोंकी नाईं भासित होनेवाला, प्रतिभासरहित, नानाविधि दुःखोंसे पूर्ण अज्ञानियोंकी दृष्टिमें प्रतीयमान यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जगत् सब असत्स्वरूप ही है। मायसे उत्पन्न और नष्ट होता हुआ भी सत्-सा भासता है ॥ २२ ॥ आप एकही आत्मा हैं, पुराणपुरुष, सत्य, स्वप्रकाशमय, अनादि और अनन्त हैं। आपही दानोपदानरहित, षड्भाव विकार शून्य, आनन्दमय, निर्लिप्त, पूर्ण, अद्वितीय, मुक्त और उपाधिसे रहित हैं ॥२३॥ गुरुरूपी सूर्यसे प्राप्त उपनिषद्-जन्य ज्ञानरूपी चक्षुसेजो पूर्वोक्त स्वात्मा तथा समस्त जीवोंके आत्मभाको अपनेसे अभिन्न देखते हैं वे संसाररूपी मिथ्या सागरको तैर जाते हैं ॥ २४ ॥ जो आत्माको आत्माके रूपमें नहीं जान पाते उन्हें ही यह संसार दीख पड़ता है। यदि उन्हें भी ज्ञान हो जाय, यदि वे भी आत्माको आत्मा ही देखने लगें, तो उनके लिये भी संसार न रह जायगा। रस्सीको रस्सीरूपमें न समझ यदि कोई साँप समझ लेता है, तभी उसे भय आदि होता है और जब रस्सीका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तो उसका भय भागही जाता है ॥२५॥ संसार बन्धन और मोक्ष दोनों ही अज्ञानसे होते हैं। नित्यज्ञानरूप केवल अद्वितीय परब्रह्म शुद्ध परमात्माका विचार करने पर तो वस्तुतः चिदात्मक परमार्थभूत परमात्मासे अन्य वे दोनों ऐसे नहीं हैं, जैसे सूर्यका विचार करने पर रात-दिन

सुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥२२॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ॥ नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥ एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ॥ गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥ २४ ॥ आत्मानमेवात्मतयाविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ॥ ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ॥ अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥ २६॥ त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ॥ आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥ २७ ॥ अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ॥ असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥ २८ ॥ अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ॥ जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ॥ येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे

उससे अलग नहीं है ॥ २६ ॥ स्वात्मभूत आपको भिन्न देहादिरूप तथा स्वतः भिन्न देहादिको परमात्मा मानकर बाहर आत्माकी खोज करनी चाहिये, अहो इस तरह कहना अज्ञजनोंकी कितनी मूर्खता है ॥ २७ ॥ हे अनन्त, विवेकी लोग आपसे अतिरिक्त आत्मरूपसे अध्यस्त देहादिका खण्डन करते हुए अपने चिज्जडात्मक शरीरके भीतर ही आपको खोजकर जानते हैं। नहीं रहते हुए भी सर्पके विना अपने समीपमें विद्यमान रज्जुको विवेकीलोग क्या सर्परूपसे जानते हैं? कभी नहीं, यह अज्ञानियोंका ही काम है कि रज्जुको साँप समझकर परेशान होते हैं, सन्तलोग ऐसा नहीं करते ॥२८॥ हे देव, फिर भी आपके दोनों चरणकमलोंके प्रसादलेशसे अनुगृहीत हुआ पुरुषही आपकी महिमाका असली तत्त्व जान पाता है। हे भगवन्, आपके भक्तके सिवा अन्य कोई भी अकेले एकान्तमें चिरकालतक विचार करता हुआ भी आपके तत्त्वको नहीं जान पाता ॥ २९ ॥ हे नाथ, इस जन्ममें या पक्षियोंके मध्यमें जो कोई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेरा जन्म हो, उस जन्ममें भी एक यही मेरा सबसे बड़ा भाग्य हो, जिससे कि आपके भक्तोंके मध्यमें कोई एक बनकर मैं आपके चरणकमलपल्लवकी सेवा करता रहूँ ॥ ३० ॥
ओह, वे व्रजाङ्गनाएँ कितनी धन्य हैं, जिनके बच्चे बन आपने स्तनपान किये और वे गौएँ भी कितनी धन्य हैं जिनके हे विभो, बछड़े बन आनन्दसे आपने खूब दूध पीया और च्रण-
चणमें तृप्तिका अनुभव किया। जिस आपको बड़े-बड़े यज्ञ भी आजतक तृप्त करनेमें समर्थ न हो सके ॥ ३१ ॥ अहो, नन्द, गोपगण एवं प्रत्येक व्रजवासीके भाग्य कितने महान् हैं, यह
कौन आँक सकता है? जब कि पूर्णतम, परमानन्द, परब्रह्म जिनके मित्र बन गये हैं ॥ ३२ ॥ हे अच्युत, इनके भाग्यकी महिमा तो दूर रहे, हम तेरह देवता (शिव, ब्रह्मा, चन्द्र, दिशा,
वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, प्रजापति) भी कम भाग्यवान् नहीं हैं। क्योंकि उन व्रजवासियोंके इन्द्रियरूपी प्यालोंमें आपके चरणकमलके मीठे आसवका
बार-बार पीते हैं ॥ ३३ ॥ [पर हमारी कृतकार्यता सीमित है क्योंकि एक-एक इन्द्रियसे ही आपका रसास्वादनकर सकते हैं। धन्य तो व्रजवासी हैं, जो सभी इन्द्रियोंसे आपका उपभोग

तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥ अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽ-
द्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥ अहो भाग्यमहो भाग्य नन्दगोपव्रजौकसाम् ॥ यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२ ॥ एषां
तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ॥ एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं
ते ॥ ३३ ॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम् ॥ यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दस्त्व-
द्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥ एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति नश्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मु-
ह्यति ॥ सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥ तावद्रागादयः स्तेनास्ता-
वत्कारागृहं गृहम् ॥ तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥ प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ॥ प्रपन्न-

करते हैं।] इसलिये मेरा ऐसा बड़ा भाग्य हो, जिससे मेरा कोई भी जन्म मनुष्यलोकमें हो और उसमें भी इस गोकुलमें हो, जहाँ कि किसी-किसी गोप-गोपीके चरणरजका मुझपर
अभिषेक होता रहे। भला उन व्रजवासियोंके भाग्यकी कौन माप हो सकती है? जिनके जीवन तथा गृहपुत्र आदि सर्वस्व मुकुन्द भगवान् हों। जिनके चरणकमलकी धूलिको श्रुतियाँ
अनादिकालसे खोज रही हैं, पर देख नहीं पातीं ॥ ३४ ॥ हे देव, आप भी इन व्रजवासियोंकी सब तरहसे देनमें समर्थ होते हुए भी क्या देंगे? यों सर्वफलात्मक आपसे भी अन्य कोई
दूसरा फल ढूँढ़ता हुआ कहींपर भी न प्राप्तकर हमलोगोंका चित्त मोहित हो जाता है। क्योंकि हे देव, आपकी माताके समान वेश-भूषा बनाकर आपको मारनेके लिये पास आई हुई दुष्ट
राक्षसी पूतना भी अपने बकासुर आदि सारे परिवारके सहित जब आपको ही प्राप्त हो गई तब भला बतलाइये तो सही अब आपके पास और कौन सा बड़ा फल है जो इन्हें आप देंगे।
जिनके घर, धन, मित्र, प्रिय वस्तु, शरीर, पुत्र, इन्द्रियाँ, प्राण, अन्तःकरण आदि—ये सभी एकमात्र आपके ही लिये हैं ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण, जबतक जीव आपके नहीं हो जाते यानी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

आपको लोग अपना नहीं लेते, तभीतक काम, क्रोध आदि उनके लिये चोर ठहरते हैं, तभीतक घर उनके लिये जेल है और तभीतक मोह पैरोंको जकड़ रखनेवाली उनकी बेड़ियाँ बनी रहती हैं ॥ ३६ ॥ भगवन्, आप अपने प्रेमीजनोंको अलौकिक आनन्द प्रदानके लिये ही निष्प्रपञ्च होकर भी इस भूतलपर प्रपञ्चमें आ जाते हैं॥३७॥ जो लोग यह कहते है कि महतत्त्वको हम जानते हैं, वेही जानें। मुझे उनके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु हे प्रभो, आपका वैभव मेरे तन, मन, और वचनका विषय नहीं होता। मैं तो आपका वैभव समझनेमें निरामूर्ख हूँ और लोग भलेही पण्डित बनें ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण, अब मुझे आप सत्यलोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये। आप सर्वद्रष्टा हैं, सब कुछ जानते हैं, आपही जगत्के नाथ हैं, अतः ममताका स्थान यह मेरा शरीर और यह सारा जगत् आप पर निछावर है ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण, हे यादवकुलरूपी कमलको खिलानेवाले सूर्य, हे भूमि, देवता, ब्राह्मण और गौरूप समुद्रके लिये चन्द्र, हे पाखण्डधर्मरूपी घोर अन्धकार दूर करनेवाले और दुष्ट दैत्योंके संहारक एवं सूर्य आदि देवोंतक सबके वन्द्य, हे भगवन्, कल्पपर्यन्त आपको मेरा प्रणाम

जनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७ ॥ जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाऽभिष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ॥ वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥ एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥ किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥ ४५ तवो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य

है ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् इस तरह ब्रह्माजीने कृष्णकी स्तुतिकर प्रणाम किया और तीन परिक्रमाकर अपने पूजित धामको चले गये ॥ ४१ ॥ कृष्ण उनको अनुमति दे पहलेके समान ही घास चरकर अवस्थित उन बछड़ोंको हाँककर उस अपने पुलिनपर ले गये, जहाँ उनके पहलेके मित्र ग्वालवाल अपने-अपने स्थानपर जिस-जिस रूपसे बैठे थे ॥४२॥ यद्यपि अपने प्राणप्रिय कृष्णसे बिछुड़े इन बालकोंको एक वर्ष बीत चुका था, किन्तु हे राजन् कृष्णकी मायाकी वजहसे उन लड़कोंने उसे लम्बे कालको क्षणार्ध ही समझा ॥ ४३ ॥ मायासे मोहितचित्त होकर मनुष्य इस संसारमें भला क्या-क्या नहीं भूल सकता ? यह सारा जगत् जिसकी मायासे मोहित होकर शास्त्रों द्वारा बार-बार बोधित करानेपर भी अपना स्वरूप भूल बैठा है ॥ ४४ ॥ कृष्णको सामने देख बड़ी उत्सुकतासे वे मित्र बोल पड़े—कृष्ण, आओ यहाँ तुम्हारे बिना तो हमने एक कौर भी नहीं खाया, आओ इधर मिलजुलकर अच्छी तरह खालें ॥ ४५ ॥ वे मुस्करा पड़े। इसके बाद उन लड़कों के साथ भोजनकर अजगरके चर्मको दिखलाते हुए हृषीकेश व्रज लौट आये ॥ ४६ ॥ मोरपंख, फूल एवं नवीन धातुओंसे

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्होंने शरीरको चित्र-विचित्ररूपसे भूषितकर रखा था। उद्दाम, वंशी और सींग आदिकी ध्वनियोंसे एक उत्सव-सा हो गया था। भगवान् बछड़ोंको उनके नाम लेकर बुला रहे थे। अपने साथियों द्वारा गायी जा रही पवित्र कीर्तिवाले कृष्णको देख गोपियोंकी आँखें आनन्द रससे सराबोर हो रही थीं। इस तरह वे व्रजमें पहुँचे ॥ ४७ ॥ बालकोंने व्रजमें जाकर कहा कि आज कृष्णने यह एक बहुत बड़ा अजगर मारा है और हमलोगोंको इससे बचा लिया है ॥ ४८ ॥ राजाने कहा—ब्रह्मन्, व्रजवासियोंका जो प्रेम पहले अपने-अपने पुत्रोंमें भी नहीं था वह इतना अधिक प्रेम परकीय पुत्र श्रीकृष्णमें कैसे हुआ? यह कहिए ॥ ४९ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, सभी प्राणियोंको अपना आत्माही अधिक प्रिय होता है। पुत्र, धन आदि पर जो प्रेम होता है वह इसलिए कि उनसे आत्माको आनन्द मिलता है ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र, प्राणियोंको अपने-अपने आत्मापर जैसा स्नेह होता है, वैसा ममताके आलम्बन पुत्र, वित्त, स्त्रीमें नहीं होता ॥ ५१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ, जो देहात्मवादी हैं, उन्हें भी अपना शरीर जैसे अधिक प्रिय होता है वैसे उस शरीरके पीछे-पीछे चलनेवाले उनके अपत्य आदि प्रियतम नहीं होते

सहार्भकः ॥ दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनोद् व्रजम् ॥ ४६ ॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ॥ हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥ राजोवाच । ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् ॥ योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुकउवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृपः स्वात्मैव वल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लाभतयैव हि ॥ ५० ॥ तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् न तथा ममतालम्बि पुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ॥ यथादेहः प्रियतमस्तथा नह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः ॥ यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भगवद्रूप-

॥ ५२ ॥ अहङ्कारके आस्पद भी देह यदि कुछ ज्ञान हो जानेसे आत्मभिन्नरूपसे प्रतीत हो जाय, तो यह भी आत्माके समान प्रिय कदापि नहीं रह सकता, किन्तु आत्माके अनुरोधसेही प्रिय बना रहता है। क्योंकि इस शरीरके पूरे तरीह जीर्ण शीर्ण हो जानेपर भी प्राणियोंको जीनेकी इच्छा बनी ही रहती है ॥ ५३ ॥ इसलिए यह सिद्धान्त है कि सभी प्राणियोंको आत्माही सबसे अधिक प्रिय है। देह और गृह आदि सम्पूर्ण यह जगत् तो उसके लिए है, अतः प्रिय है ॥ ५४ ॥ हे राजन्, इन श्रीकृष्णको आप सभी प्राणियोंकी आत्मा जानिये। दुनियाँके हितके लिये अवतीर्ण वह कृष्ण भी सशरीर इस लोकमें अपनी मायासे सांसारिक पुरुषसे प्रतीत होते हैं ॥ ५५ ॥ परमार्थतः श्रीकृष्णको ही जगत्का कारण जाननेवाले पुरुष हैं उनको इस संसारमें स्थावर और जंगम सभी वस्तुएँ भगवद्रूप ही प्रतीत होती है। उनसे अतिरिक्त कुछ भी इस जगत्में अवशिष्ट नहीं है ॥ ५६ ॥ सभी कार्योंके कारणरूप अर्थही स्थिर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होते हैं । भगवान् कृष्ण तो उन कारणोंके भी कारण हैं, तो फिर उनसे भिन्न कौन वस्तु हो सकती है ? इसका आप निरूपण तो कीजिये ॥५७॥ जिन लोगोंने ब्रह्मादिके भी आश्रयभूत पुण्यश्लोक भगवान् मुरारिके चरणकमलरूपी नौकाका आश्रयण किया है उनके लिए संसारका सागर बछड़ेके खुरके समान हो जाता है और परमपद [वैकुण्ठ] उनका स्थान हो जाता है । फिर सम्पूर्ण विपत्तियोंका स्थान जो संसार है वह उन्हें पुनः कदापि नहीं प्राप्त होता ॥ ५८ ॥ राजन्, आपने जो वह मुझसे प्रश्न किया था कि भगवान्ने जिस कामको पाँचवें वर्षमें

मखिलं नान्यद्वस्त्विह किञ्चन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत्कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

किया था, बालकोंने उसे एक वर्ष बाद आजही हुआ है' यह समझकर क्यों कहा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया ॥ ५९ ॥ जो कभी कृष्णके ग्वालबालोंके साथ खेलने, हरे-हरे घासोंपर भोजन करने, अघासुरके उद्धार, स्वयं बाल-बछड़े बन जाने एवं ब्रह्माकी लम्बी स्तुतिको सुनेगा या गायेगा वह समस्त पुरुषार्थोंको पालेगा ॥ ६० ॥ इस तरह आँखमिचौनी, पुल बाँधना बानरोंकी तरह उछलना-कूदना आदि कुमारोचित खेलोंके द्वारा कृष्ण एवं बलरामने व्रजमें अपनी कुमारावस्था बिता दी ॥ ६१ ॥

चौदहवें अध्यायका सार— ब्रह्माने बड़ी लम्बी स्तुति की । उसके बाद वे बार-बार कृष्णको प्रणामकर उनकी परिक्रमा लगा एवं अनुमति ले अपने लोकको चले गये । बाद भगवान् वहाँ आये, जहाँ कि बालक बैठकर भोजनकर रहे थे । यद्यपि वे विचारे अपने प्रियतमसे पूरे एक वर्षके लिए वियुक्त रहे, पर कृष्णकी माया से वह समय उन्हें एक क्षण-जैसा प्रतीत हुआ । वे जोर-जोरसे भगवान् को बुलाने लगे और कहने लगे कि अजी, बहुत जल्दी लौटा लाये । आओ, तुम्हारे बिना तबसे अबतक हमलोगोंने एक कौर भी नहीं खाया है । भगवान् मुस्कुरा उठे, उन्होंने भोजन किया । बादमें उन्हें साथ ले व्रज लौट आये । गोपियाँ कृष्णको निहार आनन्द-रससे भीतर-बाहर भिग उठीं । बालकोंने जाकर अघासुर का वृतान्त सुनाया । उन्हें तो वह आजकी ही घटना मालूम थी ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[श्रीकृष्णका धेनुकासुरका उद्धार एवं कालियह्रदके जलपानसे मृत गौओं एवं गोप-बालकोंकी रक्षा करना]

श्रीशुकदेवजीने कहा—कुमारावस्था बीत जानेपर जब कृष्ण पौगण्ड अवस्थामें आये [छः सात वर्षके हुए] तब गौओंकी निगरानीके योग्य वे माने जाने लगे और तब वे गौओंको चराते हुए मित्रोंके साथ अपने चरणकमलसे वृन्दावनको खूब पवित्र करने लगे ॥१॥ बलरामके साथ तथा गोपोंसे घिरे हुए, जो उनका यश गा रहे थे, भगवान् श्रीकृष्ण विहार करनेकी इच्छासे वंशी बजाते हुए पशुओंको आगे करके उस वृन्दावनमें प्रविष्ट हुए, जो कुसुमोंका आकार था तथा पशुओंके चरनेके लिए तृण, पीनेके लिए पानी एवं उसके आरामके लिये छायेदार जहाँ अनेक वृक्ष थे ॥२॥ वह वन मधुर गुञ्जार करते भौंरों, चहकते पक्षियाँ एवं मृगोंसे बड़ा भला प्रतीत हो रहा था । वहाँ सन्तोंके मनकी तरह निर्मल जलमे पूर्ण तालाबमें विकसित कमलोंकी सुगन्धिसे युक्त हो वायु चल रही थी । वह मनोहर वन देख भगवान्‌की इच्छा वहाँ खेलनेकी हो गई ॥ ३ ॥ सभी जगहके वृक्ष फूल-फलसे लदे हुए थे । वे लाल-लाल सुन्दर

श्रीशुक उवाच ॥ ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसंमतौ ॥ गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥ तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनः प्रख्यपयः सरस्वता ॥ वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान्मनो दधे ॥ ३ ॥ स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ॥ स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो अमी देववरामरार्चितं पादाम्बुजं ते सुमनः फलार्हणम् ॥ नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ॥ प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥ नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ॥

पत्तियों, फूलों एवं फलोंके भारसे झुकी हुई अपनी शाखाओंसे कृष्णके चरणोंका स्पर्श कर रहे थे । यह देख आदिपुरुष भगवान् कृष्ण मुस्करा उठे और बलरामजीसे कहने लगे ॥ ४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—अहो, हे देववर, जिस घोर पापसे इन्हें वृक्षयोनि मिली है, अपने उस पापको मिटानेके लिए मानो ये सब वृक्ष फल-फूलकी भेंट ले आपके पवित्र चरणोंमें, जो कि बड़े-बड़े देवताओंसे पूजित होते रहते हैं ॥ ५ ॥ हे आदिपुरुष, ये, भौंरे जो गुञ्जार रहे हैं, वास्तवमें वे भौंरे नहीं हैं, वे तो अखिललोकके शोधक आपके यशका पग-पगपर गान करते हुए आपका ही भजन करते हैं, चूँकि ये सब भौंरे प्रायः आपके सेवकोंमें मुख्य मुनिगण ही हैं, अतः हे अनघ, वनमें छिपे हुए अपने देवता आपको भौंरोंके वेशमें छिपे हुए वे नहीं छोड़ रहे हैं—आपकी सेवा करते चलते हैं ॥ ६ ॥ हे स्तुत्य, देखिये, वे मयूर नाच-नाचकर आपका स्वागत कर रहे हैं । हरिणबालाएँ गोपियोंकी तरह कटाक्षपातकर आपको प्रसन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करना चाहती हैं, निश्चित ही कोकिल आपके प्रसन्नतार्थं कूक रही है। अतः ये वनवासी भ्रमर आदि भी धन्य हैं। यह तो सज्जनोंका स्वभाव ही है कि बड़े लोगोंके घर आनेपर उनका बड़ा सत्कार करते हैं ॥ ७ ॥ आज यहाँकी यह पृथ्वी धन्य हो गयी, आपके चरणोंको छूनेवाले वे तृण और लताएँ धन्य हो गयीं, आपकी अंगुलियोंका स्पर्श पा द्रुमलताएँ भी धन्य हो गयीं। ये नदियाँ, यह पहाड़, ये मृग और पक्षी भी कम धन्य नहीं हैं, क्योंकि आपने उन्हें सस्नेह देखा है तथा गोपियाँ भी आपके वक्षःस्थलका आलिङ्गन प्राप्तकर धन्य हो गईं, जिसके लिये स्वयं लक्ष्मीजी भी तरसा करती है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इस तरह उस सौन्दर्यशाली वृन्दावनके प्रति आकृष्टचित्त हुए श्रीकृष्ण पहाड़के पार्श्ववर्ती नदी तटपर गौओंको चराते हुए ग्वालबालोंके साथ बड़ी प्रसन्नताके साथ खेलने लगे ॥ ६ ॥ गोपोंसे गाये जा रहे चरितवाले, श्रीबलदेवजीके साथ माला पहने हुए श्रीकृष्ण भगवान् मधुपानके मदसे मतवाले भौंरोंके कहीं गुञ्जार करनेपर—स्वयं गुनगुनाने लगे ॥ १० ॥ कहींपर तो वे कलहंसोंके कूजनका अनुकरण करने लगे और कभी नाचते हुए मयूरोंका अनुकरणकर लोगोंको हँसाने लगे

सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥ धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ६ ॥ क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी सङ्कर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् ॥ अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥ ११ ॥ मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ॥ क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ॥ अनुरौति स्म सत्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित्क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान्हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥ क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनं चक्रुः

॥ ११ ॥ कहीं चरते-चरते पशुओंके चले जानेपर मेघ-जैसी गम्भीर वाणीसे उनके नाम ले-लेकर पुकारने लगे, जिससे ग्वालबाल खूब प्रसन्न होने लगे ॥ १२ ॥ कभी चकोर, चकवा, बगुला, भारद्वाज और मोरके शब्दोंका अनुकरण करने लगे। कभी व्याघ्र-सिंहसे डरे हुएकी तरह नाट्य करने लगे ॥ १३ ॥ जब बलराम खेलसे थककर किसी ग्वालेकी गोदको तकिया बना उसीपर माथा रख लेटने लगे, तब कृष्ण उनके पैर दबाने लगे ॥ १४ ॥ ग्वालबाल जब नाचने, गाने, उछलने और कुश्ती लड़ने लगे, तब बलराम तथा कृष्ण एक दूसरेका हाथ पकड़ उठ पड़े एवं उनके उन-उन कामोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ १५ ॥ कृष्ण भगवान् जब कुश्ती लड़ते-लड़ते थक गये, तब किसी पेड़की जड़में पत्तोंके सेजपर लेट गये और किसीकी गोदको उन्होंने तकिया बना ली ॥ १६ ॥ कुछ बालक तो उन महात्माके चरण दबाने लगे और कुछ पुण्यवान् पंखा झलने लगे ॥ १७ ॥ हे राजन्, कुछ बालक धीरे-धीरे मधुर स्वरसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌के गुणोंके अनुसार मनोहर उनके चरित गाने लगे। उस समय उनका हृदय स्नेहसे आर्द्र था ॥१८॥ इस तरह लक्ष्मीसे सेवित चरणकमलवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरितोंसे ग्वालबालकी लीला करते हुए अपनी मायासे अपने ऐश्वर्यको छिपा बीच-बीचमें कहीं-कहीं अपनी ईश्वरीय शक्ति दिखाते हुए देहाती बालकोंके साथ देहाती खेल खेलने लगे ॥ १९ ॥ एक दिन उनके मित्र श्रीदामा नामक ग्वाल तथा स्तोककृष्ण, सुबल आदि अन्य बालकोंने बड़े प्रेमसे बलराम और श्रीकृष्णसे कहा—हे बलरामजी, हे बलरामजी, हे महाबाहो, हे दुष्टनाशक श्रीकृष्ण, यहाँसे थोड़ी दूरपर तालोंकी पङ्क्तियोंसे व्याप्त एक महावन है ॥ २०, २१ ॥ वहाँ तालके पके-पके फल गिर रहे हैं तथा बहुतसे गिरे हुए पड़े हैं, परन्तु दुष्ट धेनुकने उनपर प्रतिबन्ध लगा रखा है ॥ २२ ॥ हे बलरामजी, हे कृष्ण, वह असुर है, किन्तु गदहाका रूप बनाये रहता है। स्वयं बहुत बलवान् है और अपने सरीखे ही वीर अपने अन्य अनेक जाति-

केचित्तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ॥ गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥१९॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ॥ सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ।२०॥राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥२१॥ फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ॥ सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ॥ वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ २६ ॥ एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्संपरिकम्पयन् ॥ फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुर-

भाइयोंके साथ वह वहाँ रहता है ॥ २३ ॥ हे शत्रुनाशक, वह मनुष्योंको खा जाता है, उससे डरे हुए मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी वहाँ नहीं जाते, अतः इनसे वह रहित रहता है ॥२४॥ किसी मनुष्यने उन फलोंको आजतक नहीं चखा है। बड़ेही सुगन्धित हैं, यह उनकी ही सुगन्धि चारों ओर फैल रही है ॥ २५ ॥ उनकी सुगन्धिसे हमारा चित्त लुभा गया है। हे कृष्ण, हमें उन्हें ला दो। हे बलरामजी, उन्हें खानेकी हमारी बड़ी इच्छा है। यदि जँचे, तो चल चलिये ॥ २६ ॥ उन अपने मित्रोंकी ऐसी बातें सुन उनको प्रिय करनेकी इच्छासे वे दोनों स्वामी भी हँसकर उस तालवनके पास चल पड़े। उनके आगे-पीछे ग्वालबाल हो लिये ॥ २७ ॥ बलरामजीने वहाँ पहुँचकर बाहुओंसे तालके पेड़ोंको हाथीकी तरह झकझोर दिया,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और बहुतसे फल गिरा दिये ॥ २८ ॥ फलोंके गिरनेकी आवाज सुनते ही धेनुकासुर पर्वतोंके सहित पृथ्वीतलको कँपाते हुए दौड़ पड़ा ॥ २९ ॥ बड़े वेगसे आकर उस बली खलने बलरामकी छातीपर अपनी पिछली दोनों लात जमाकर रेंगता हुआ कुछ पीछे हटा। फिर मारनेका अवसर देखता हुआ समीपमें इधर-उधर दौड़ने लगा ॥ ३० ॥ हे राजन्, क्रुद्ध उस गर्दभ रूपधारी असुरने समीपमें आकर पीठ घुमाकर खड़े हो बलरामजीको मारनेके लिए मारे क्रोधके अपने दोनों पैर जोरसे फेंक दिए ॥ ३१ ॥ अबकी बार बलरामने उसके पिछले दोनों पैर पकड़ नचाकर उस तालके पेड़पर दे मारा वह तो घुमानके समय ही मर चुका था ॥३२॥ उसकी लाशके आघातसे वह ताल जड़से ऊपरतक हिल उठा और दूसरे बगलमें स्थित तालको कँपाते हुए वह उसपर गिर पड़ा। इस तरह बहुतसे ताल हिल उठे तथा एक दूसरेपर गिर पड़े ॥ ३३ ॥ बलरामजीके द्वारा खेलवाड़पूर्वक फेंके गये उस गदहेके शरीरसे आहत एक तालसे दूसरा ताल आहत हो क्रमशः उस वनके सभी ताल, आँधीसे झकझोरे गये-जैसे काँप उठे ॥ ३४ ॥ हे राजन्, यदि उनके द्वारा फेंकी गई लाशसे सारा तालवन हिल उठा, तो इसमें कोई

रासभः ॥ अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥२९॥ समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खलः ॥३०॥ पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥३१॥ स तं गृहीत्वा प्रपदो र्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥ चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः ॥ पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ॥ तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥३४॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥३७॥ फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणं च पशवश्चेरुहत-

आश्चर्य नहीं है। क्योंकि वे बलरामजी अनन्त भगवान् जगदीश्वर हैं। जैसे सूत कपड़ेमें ओत-प्रोत रहता है, उसी तरह सारा संसार उन्हींमें ओत-प्रोत है ॥३५॥ इसके बाद धेनुकासुरके जितने भाई-बन्धु गदहे थे, उसे मरा देख रेंकते हुए सबके सब अपने भाईके मर जानेसे क्रुद्ध होकर कृष्ण और बलरामपर टूट पड़े ॥३६॥ हे राजन्, बड़े वेगपूर्वक दौड़े आ रहे उन-उन गर्दभ रूपधारी दैत्योंको उनकी पिछली टाँगे पकड़-पकड़कर श्रीकृष्ण और बलदेव हँसते-हँसते तालवृक्षकी मूलपर पटकने लगे ॥ ३७ ॥ अनेक फलसमूहों, प्राणरहित दैत्योंकी लाशों तथा टूटी हुई शाखाओंसे युक्त तालवृक्षोंसे व्याप्त वहाँकी पृथ्वी, मेघोंसे व्याप्त नभस्तलकी नाईं, शोभने लगी ॥ ३८ ॥ उन दोनोंके उस महान् कार्यको देखकर देवता आदि पुष्पवृष्टि करने लगे, बाजे बजाने लगे एवं स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥ धेनुकासुरके मर जानेपर उसके उस वनमें मनुष्योंका भय जाता रहा, वे उसके फलको खाने लगे और गौएँ वहाँके घास-पात

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चरने लगीं ॥ ४० ॥ इसके बाद देवर्षियों एवं गोपोंसे स्तुत हो रहे कमल सरीखे नेत्रवाले भगवान् कृष्ण, जिनकी लीलाओंका श्रवण-कीर्तन बहुत पुण्यमय है, बलदेवजीके साथ व्रजमें आये ॥ ४१ ॥ कृष्णके घुँघराले केश गौओंके खुरकी धूलिसे व्याप्त थे। उनपर मोरपंख बँधा था, जंगली फूलोंकी माला उन्होंने पहन रखी थी। उनकी आँखें और मुसकान गजबकी थी। वे मुरली टेर रहे थे। ग्वालबाल गुणगान गा रहे थे। दिनभर कृष्णके न देखनेसे गोपियोंकी आँखें तृषार्त हो चुकी थीं। वंशीकी टेर सुनते ही वे कृष्णको देखने एकही साथ दौड़ पड़ीं ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णके मुखकमलके मधुको नेत्ररूपी भ्रमरोंसे पीकर वे व्रजाङ्गनाएँ अपने दिनभरके विरहतापको बुझा सकीं। लज्जापूर्वक, विनययुक्त, मन्द मुसकानसे शोभित जो कटाक्षवीक्षण था तद्रूप उनके सत्कारको प्राप्तकर भगवान् श्रीकृष्ण घरमें आए ॥ ४३ ॥ वहाँ पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणीने समयानुसार इच्छाभर बलराम और श्रीकृष्णको सर्वोत्कृष्ट

धेनुककानने ॥४०॥ कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥४१॥ तं गोरजश्छुरित-कुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ॥ वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ॥ तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम्॥४३ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥ गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ॥ ४५ ॥ जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवं स भगवान्कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ॥ ययौ राममृते राजन्कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथ गावश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥ विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ॥ आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥ अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानु-

आशीर्वाद दिए ॥ ४४ ॥ वहाँ तेल आदि मलकर नहा-धो लेनेसे कृष्ण एवं बलरामकी थकान जाती रही। वे अच्छे अच्छे कपड़े एवं बहुमूल्य दिव्यचन्दन और मालासे सुसज्जित हो गये ॥ ४५ ॥ माताओं द्वारा लाये गये वहाँ स्वादिष्ट भोजनकर उनसे लालित हो वे दोनों सुन्दर बिस्तरपर सुखसे सो गये ॥ ४६ ॥ हे राजन्, यों गाय चराते हुए वृन्दावन विहारी भगवान् श्रीकृष्ण एक दिन गर्मीमें बलरामजीके सिवा और अन्यान्य अपने साथियोंसे घिरे हुए जल पीनेके लिये यमुनाके किनारे पहुँचे ॥ ४७ ॥ तदनन्तर धीरे-धीरे जा रहे भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर गर्मीके तापसे पीड़ित अतः प्याससे व्याकुल गौओं और ग्वालोंने जल्दी पहुँचकर कालियविषसे दूषित उस यमुनाका जल पी लिया ॥४८॥ हे कुरुद्वह, भगवानकी मायासे उनकी बुद्धि मारी गयी थी। विषाक्त जलका स्पर्श करतेही वे प्राणविहीन हो तटपर गिर पड़े ॥ ४९ ॥ उन्हें इस हालतमें देख योगेश्वर भगवान श्रीकृष्णने अपनी अमृतमयी दृष्टि उनपर डाली।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिससे वे जी उठे उनके तो वेही एकमन्त्र स्वामी थे ॥ ५० ॥ उन्हें जब भलीभांति स्मृति हो गई तब वे सब एक दूसरेको परस्पर देख-देखकर बहुत आश्चर्य करने लगे ॥ ५१ ॥ हे राजन्, बादमें उन लोगोंने यह अनुमानकर लिया कि हकतो विष पीकर मर चुके थे, किन्तु कृष्णके जिलानेसे फिर जो उठे हैं ॥ ५२ ॥

ग्रहेक्षितम् ॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पन्द्रहवें अध्यायका सार—कृष्ण जब छः-सात वर्षके हुए, तो उन्हें गौ चरानेकी अनुमति मिल गयी। वे गौ चराने वृन्दावन जाने लगे। एक दिन श्रीदामा आदि उनके मित्रोंने उन्हें तालवनमें चलनेका अनुरोध किया। वे वहाँ गये, बलरामने तालके वृक्षको ऐसा झकझोरा कि सब पके फल चू पड़े। लड़के बहुत ही प्रसन्न हुए। किन्तु वहाँ गदहेके वेषमें एक धेनुकासुर रहता था, उसे यह बातें पसन्द न आयीं। वह दौड़ा-दौड़ा आया और बलरामपर दुलत्तियाँ झाड़ने लगा। बलरामने उसकी टांगें पकड़ जोरसे घुमायी और तालकी जड़पर दे मारा। वह तो घुमानेके समय ही मर चुका था। इसके बाद उसके जाति-भाईके असुर कृष्ण-बलरामपर टूट पड़े, पर सब मारे गये। जंगलका कण्टक दूर हो गया। अब मनुष्य और पशु-पक्षी वहाँ आने लगे। सामको ग्वालबालोंके साथ कृष्ण व्रजको लौटे। गोपियाँ उनके देखे बिना बिलकुल बेचैन थीं। भगवान्की वंशीकी टेर सुनते ही वह दौड़ पड़ीं और उनके रूपका पान करने लगीं ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❋ अथ षोडशोऽध्यायः ❋

(कृष्णका कालियदमन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—महाराज, जब सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्ण कालियनागसे यमुनाको दूषित देखा, तो उसे शुद्ध करनेके लिये उस नागको देशनिकाला दे दिया ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥ तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत ॥ १ ॥ राजो-
वाच ॥ कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् ॥ स वै बहुयुगावासं यथासीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छ-

राजा परीक्षित्ने कहा—हे विप्र, कृष्ण भगवान्ने अथाह-जलके मध्यमें उस नागको कैसे पकड़ा? साँप तो पृथ्वीपर जलके बाहर रहते हैं, इतने दिनोंतक वह जलमें कैसे रहा? यह सब कहिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्, उस स्वच्छन्द विहारी भूमा भगवान्ने जो सुन्दर गोपलीलाकी है, वह अमृतसे भी बढ़कर मधुर है, भला उनके सेवनसे कोई कैसे तृप्त हो सकता है ॥ ३ ॥ शुक-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवजीने कहा—राजन्, उस यमुनामें एक कोई कुण्ड था, जिसमें कालियनाग रहता था। उसके उल्बण विषसे उसका जल खौलता रहता था। उससे ऊपरके पक्षी झुलसकर उसमें गिर पड़ते थे॥ ४ ॥ उसके जलसे संयुक्त वायुका जब तीरके पेड़ पौधों तथा पशुओं आदिसे स्पर्श होता था, तब वे तुरन्त सूख पड़ते थे। कोई भी जंगम या स्थावर प्राणी तब जीवित नहीं रह सकता था॥ ५ ॥ भगवान् कृष्ण अपरिहार्य वेगयुक्त विषरूपी वीर्यवाले उस नागको तथा उसके उस उल्बण विषसे दूषित यमुनाको देखकर कमर कसके एक अत्यन्त ऊँचे कदम्बके पेड़पर चढ़ गये और ताल ठोंककर उस कदम्बसे विषयुक्त जलवाले उस ह्रदमें धमसे कूद पड़े। दुष्टोंके दमनके लिये ही तो उन्होंने अवतार लिया था॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम भगवान्के कूदनेसे सर्प सब संक्षुब्धा हो उठे। वे मारे क्रोधके विष उगलने लगे। उस विषको गर्मीसे ह्रदका जलसमूह उछल उठा, उसमें विषके कारण लाल-पीले आदि कई रङ्गकी तरंगें उठने लगीं और चार सौ हाथ दूरतक चारों ओर दौड़ता हुआ फैलकर उस नागके ह्रदने तटको डुबो दिया। अनन्त बल भगवानके लिये आश्चर्य ही क्या है॥ ७ ॥ हे राजन्, मतवाले हाथीकी तरह विहार

न्द्वर्तिनः ॥ गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालिन्द्यां कालियस्यासीद्ध्रिदः कश्चिद्विषाग्निना ॥ श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतन्त्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥ विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिर-जङ्गमाः ॥ ५ ॥ तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥ कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गमास्फोट्य गाढ-रशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ॥ पर्यक् प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मि-र्धावन्धनुः शतमनन्तबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत्स्वसदना-भिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ॥ क्रीड न्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥ तं नागभोगपरिवीतमदृष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥१०॥ गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ॥

करनेवाले भगवन् श्रीकृष्ण उस ह्रदमें जलक्रीड़ा करने लगे। जलक्रीड़ाकर रहे भगवानके भुजदण्डोंसे आहत होनेके कारण घूर्णित हो रहे जलके नादको सुनकर तथा उस जलक्रीड़ासे अपने घरके ऊपर आक्रमण हुआ देखकर इसे बर्दास्त न करता हुआ वह सर्प भगवान्के समीपमें आ गया॥ ८ ॥ उसने कमनीय, सुकुमार, मेघके समान स्वच्छ श्यामवर्ण, श्रीवत्ससे युक्त, पीत वस्त्रधार, मुसकुरा रहे सुन्दर मुखसे सुशोभित तथा कमलके उदरकी तरह कोमल चरणवाले निर्भय होकर जलक्रीड़ाकर रहे भगवान् श्रीकृष्णको—प्राणहानिकारक कण्ठ आदि स्थानोंमें डसकर उस सर्पने अपने सारे शरीरसे वेष्टितकर लिया॥ ९ ॥ जब गोपोंने कृष्णको उस सर्पके द्वारा वेष्टित देखा, तो वे बड़ेही दुःखी हुए। उन लोगोंने अपने इष्टमित्र, धन-दौलत, कलत्र तथा संसारके सारे भोग कृष्णको ही अर्पित कर रखी थी, भगवान् ही उनके एकमात्र प्रिय थे तथा वे भी भगवान्के परममित्र थे। अतः वे भगवान्को बेकाबू देखकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अत्यन्त पीड़ित हुए। तदनन्तर दुःख और बार-बार शोकके मारे अचेत हो गिर पड़े ॥ १० ॥ गौ, बैल, बछिया सभी पशु बहुत दुःखी हो क्रन्दन करने लगे। सबने कृष्णकी ओर टकटकी लगा रखी थी वे सबके सब भीत हो रोते हुए ही खड़े रह गये ॥ ११ ॥ इधर-व्रजमें तीन तरहके अतिदारुण महोत्पात होने लगे। पृथ्वीमें भूकम्प, आकाशमें उल्कापात एवं अपने अंगोंमें बायीं आँखका फड़कना आदि अपशकुन निकट भविष्यमें होनेवाले घोर अमंगल एवं दुर्घटनाके सूचक थे ॥ १२ ॥ उन उत्पातोंको देखकर नन्द आदि गोपोंने जब यह जाना कि आज कृष्ण बिना बलरामके ही गौ चराने गये हैं, तो वे बड़े भयभीत हो गये ॥ १३ ॥ उनके प्राण और मन तो कृष्णमें ही लगे रहते थे, अतः दुःख, शोक तथा भयसे वे आतुर थे। वे बेचारे भगवानकी असीम शक्तिको क्या जानें! उन्होंने तो इन उत्पातोंका यह अर्थ लगाया कि कृष्ण अब जीते नहीं हैं ॥ १४ ॥ हे राजन्, कृष्णके दर्शनकी उत्कण्ठा उनकी बढ़ गयी थी। जितने वृद्ध-शिशु, स्त्री-पुरुष गोप थे, सभी कातर हो गोकुलसे निकल पड़े ॥ १५ ॥ महाबलवान् बलरामने जब नर-नारियोंको यों कातर देखा, तो उन्हें हँसी आ गयी।

कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ॥ तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ॥ निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥ तांस्तथा कातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः ॥ प्रहस्य किञ्चिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ॥ मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ॥ १८ ॥ अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ॥ गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं

वे तो अपने छोटे भाई कृष्णकी सर्वशक्तिमत्तासे भलीभाँति परिचित थे, फिर भी उन्होंने किसीसे कुछ कहा नहीं ॥ १६ ॥ वे शंख, चक्र आदि चिन्होंसे चिह्नित अपने प्रिय भगवान श्रीकृष्णके चरणचिन्होंको परखते हुए यमुना तटपर पहुँचे ॥ १७ ॥ हे राजन्, गौओंके रास्तेमें गाय आदि अन्यान्य लोगोंके बहुतसे पदचिन्ह थे, पर उनके बीचमें वहाँ कमल, यव, अंकुश, वज्र, ध्वजा आदि चिन्होंसे चिन्हित गोपोंके अधिपति भगवान्के चरणचिन्हपर ही दृष्टि डालते हुए वे लोग शीघ्र यमुना तटपर पहुँचे ॥ १८ ॥ उन्हें दूरसे ही लोगोंने देखा कि ह्रदके भीतर कृष्ण कालियके शरीरसे वेष्टित अतएव निश्चेष्ट हो रहे हैं, जलाशयके निकट अन्य ग्वालबाल भी इधर-उधर शोकसे गिरे पड़े हैं और चारों ओर पशु हुंकार रहे हैं, तो वे अत्यन्त पीड़ित होते हुए भयंकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥ १९ ॥ अनन्त भगवान्में अनुरक्त मनवाली, उनके स्नेह, मुसकुराहट, कटाक्षवीक्षण और मीठी बोलीका स्मरणकर रही गोपियोंने अपने प्रियतम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीकृष्णके सर्पसे वेष्टित हो जानेपर अत्यन्त दुःखसे सन्तप्त हो, श्रीकृष्णसे विरहित तीनों लोकोंको शून्य देखा ॥ २० ॥ प्रत्येक गोपी मृतप्राय हो चुकी थीं। उनकी आँखें कृष्णकी ओर लगी थीं। उन लोगोंने जब देखा कि यशोदाजी अपने पुत्रके पीछे जलमें घुसने जा रही हैं, तो उन्हें हाथ पकड़कर रोक लिया। वे सभी यशोदाके समान ही व्यथित हो रही थीं, सभीकी आँखोंसे आँसू जारी था। वे पूतनावध आदिरूप भगवान्‌की तत्-तत् कथा कह यशोदाको ढाढ़स देने लगीं कि धैर्य रखो, कृष्ण अभी इसे पछाड़कर आ जाते हैं ॥ २१ ॥ उधर कृष्णही जिनके प्राण थे ऐसे नन्द आदि गोप उस ह्रदमें घुस जाना चाहते थे। पर भगवान् बलरामने सबको रोक दिया ॥ वह तो कृष्णका महत्व जानते थे ॥ २२ ॥ इस तरह मनुष्य रीतिका अनुवर्तनकर रहे भगवान् श्रीहरि एक मुहूर्ततक बन्धनमें रहकर अनन्यगति स्त्रियों तथा बालबच्चोंके सहित अपने सारे गोकुलको अपने वियोगके कारण अत्यन्त दुःखित देखकर कालिय द्वारा किये गये परिवेष्टनरूप बन्धनसे बाहर निकलनेके लिये अपने शरीरको फैलाते हुए उठ खड़े हो गये ॥ २३ ॥ भगवान्‌के विस्तृत हो रहे शरीर से उस सर्पका शरीर व्यथित होने

ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ॥ तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशतो नन्दादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् ॥ प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥ २३ ॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः ॥ तस्थौ श्वसन् श्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ॥ क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥ २५ ॥ एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरस्स्वधिरूढ आद्यः ॥ तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥ तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्ध-

लगा। वह सर्प क्रुद्ध होकर अपनी कुण्डली छोड़कर अपने फणको ऊपर उठा करके श्वास छोड़ते हुए खड़ा हो गया। वह भगवान्‌के ऊपर चोट करनेके लिये दाव देख रहा था। मारे क्रोधके उसके नथुनोंमें विषके फवारे छूट रहे थे। भट्ठीकी तरह उसकी आँखें जल रही थी और मुँहसे ज्वाला निकल रही थी ॥ २४ ॥ वह अपनी दोनों जीभोंसे दोनों ओठ चाट रहा था। उसकी आँखोंसे अति भयंकर विषकी अग्नि निकल रही थी। भगवान् कौतुक करते हुए गरुड़की नाईं उसके चारों ओर घूमने लगे और वह भी चोटका अवसर देखता हुआ उनकी ओर घूमने लगा ॥ २५ ॥ इस तरह घूमनेसे ही उसकी देह, इन्द्रिय आदिकी सारी ताकत नष्ट हो गई, फिर भी ऊपरकी ओर उठाये हुए फणवाले उसको अपने हाथसे नीचे नवाकर उसके विशाल मस्तकोंके ऊपर भगवान् चढ़ गये। उसके मस्तकोंके रत्नसमूहोंके स्पर्शसे स्वभावतः लालरङ्गके भगवान्‌के चरणकमल और अधिक लाल हो गये और वहींपर अखिल कलाओंके आदिगुरु भगवान् श्रीकृष्ण नाचने लग गये ॥ २६ ॥ उन्हें नाचनेको उद्यत देख उस समय उनके पार्षद गन्धर्व आदि मारे हर्षके मृदङ्ग आदिसे उनकी शीघ्र सेवा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करने लगे, गन्धर्व गीत गाने लगे, सिद्धलोग पुष्पवृष्टिकर ताम्बूल आदि उपहार देने लगे, मुनिलोग स्तुति करने लगे, चारणलोग मृदङ्ग आदि बाजे बजाने लगे एवं अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ २७ ॥ हे राजन्, उसके सौ मस्तक मुख्य थे । वह जिस-जिस सिरको उठाकर उन्हें डँसना चाहता था, खलोंको दण्ड देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण नाचनेके बहाने उस-उस मस्तकपर पहुँचकर चरणोंसे उसे कुचलने लगे । वह मृतप्राय हो गया । फिर भी क्रोधके मारे वह घूमता ही रहा । उसके मुख एवं नाकसे विष मिला हुआ भयंकर खून बहने लगा, वह अत्यन्त मूर्छित हो गया ॥ २८ ॥ कुछ देरके बाद उसे होश हुआ । मारे क्रोधके वह जोर-जोरसे फुफकारने लगा । वह अपनी आँखोंसे विष उगलने लगा । जिस-जिस मस्तकको वह ऊपर उठाने लगा, भगवान उसके ऊपर नाच करते हुए उसे अपने पैरसे कुचलकर उसका दमन करने लगे । इस अवसरपर पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे मालूम पड़ रहे थे, मानो कालियनागसे पुष्पों द्वारा खूब पूजित हो रहे हों ॥ २९ ॥ हे राजन्, भगवान् श्रीकृष्णके उस विचित्र नृत्यसे उसके फणरूपी आतपत्रमें अनेक व्रण हो गये । भगवान्के विस्तृत हो रहे शरीरसे उसका शरीर तो

सुरचारणदेववध्वः ॥ प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥ यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णा-
स्तत्तन्ममर्द खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ् नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥ तस्या-
क्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ॥ नृत्यन्पदानुनमयन्दमयाम्बभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पु-
राणः ॥ २९ ॥ तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं
तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥ कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ॥ दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य
पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥ ३१ ॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः
कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥ नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मि-
स्तवावतारः खलनिग्रहाय ॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो दण्डोऽ-

पहलेही भग्न हो चुका था । वह अपने मुखोंसे उस समय बहुत अधिक खून फेंक रहा था । परन्तु पीछे भगवान्के चरणस्पर्शकी महिमासे उसे ज्ञान हो गया । वह स्थावर जंगम सभी प्राणियोंके गुरु पुराणपुरुष उस नारायण भगवान्को स्मरण करके मनसे उन्हींकी शरणमें चला गया ॥३०॥ जिनके भीतर सारे ब्रह्माण्ड भरे हैं, उनके अति भारसे आक्रान्त तथा एड़ीके प्रहारसे क्षत हुए फणोंरूपी आतपत्रोंवाले उस सर्पको देखकर उसकी स्त्रियाँ भगवान्के पास आ पहुँची । घबराहटसे उनके वस्त्र, आभूषण और केश इधर-उधर बिखर गये थे ॥ ३१ ॥ वे सब बिलकुल आकुल हो उठी थीं । अपने अपने लड़कोंको आगेकर उन लोगोंने हाथ जोड़ करके उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया । वे पतिव्रताएँ थीं, अपने पतिके अपराधको क्षमा करानेके लिये वे सभीको आश्रय देनेवाले भूतपति भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गयीं ॥३२॥ नागपत्नियोंने कहा—भगवन्, आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही होता है । अतः अपराधी मेरे इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पतिको दण्ड देना उचित ही है। आपके लिये तो शत्रु और पुत्र बराबर हैं। फिर भी जो आप दुष्टोंको दण्ड देते हैं वह इसलिये कि उनका भी उद्धार हो जाय ॥ ३३ ॥ भगवन्, आपने हम-लोगोंके ऊपर यह दण्डरूप बहुत बड़ा अनुग्रह ही किया है। इसमें तनिकभी सन्देह नहीं कि आप दुष्टोंके कल्मषका अपहरण करनेवाले हैं, जिस कल्मष[पाप] के बदौलत इस मेरे पतिको आप सर्पयोनिमें उत्पन्न हुआ देख रहे हैं। इसलिए हे भगवन्, इसके पापका निवर्तक होनेसे आपके क्रोधको भी हमलोग महान् अनुग्रह ही समझती हैं ॥३४॥ पता नहीं, हमारे पतिने निरभिमान हो एवं दूसरोंको प्रतिष्ठा दे ऐसा कौन-सा पूर्व जन्ममें तप किया था। या सभी जीवोंके ऊपर दयाकर कौन-सा धर्म किया था, जिससे कि सबको जिलानेवाले आप इसके ऊपर प्रसन्न हो गये ॥ ३५ ॥ हे देव, हमें पता नहीं, इसका कौन-सा ऐसा पुण्य कर्म है, जिसका फल इसे आपके चरणरेणुके स्पर्शका अधिकार मिला। जिसकी इच्छासे सम्पूर्ण कामनाएँ छोड़कर उराम श्री लक्ष्मीजीने बहुत दिनोंतक महान् तप किया था ॥ ३६ ॥ जिन लोगोंने उस चरणरेणुको पा लिया वे आपके भक्त न तो स्वर्ग चाहते हैं, न सम्पूर्ण पृथ्वी एवं पाताल साम्राज्य

सतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद्दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमा-नेन च मानदेन ॥ धर्मोऽथवा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणु-स्पर्शाधिकारः ॥ यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥३६॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसा-धिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥३७॥ तदेष नाथाप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः॥ संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥३८॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने॥ भूतावासाय भूताय पराय पर-मात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥ कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन

चाहते और न ब्रह्मपदकी ही अभिलाषा रखते। अधिक क्या कहें योगसिद्धियों और मोक्षको भी वे नहीं चाहते ॥ ३७ ॥ हे नाथ, संसारचक्रमें भ्रमणकर रहे जीवको जिस चरणरेणुके पानेकी इच्छामात्रसे समस्त वैभव अपने आप सामने उपलब्ध हो जाता है, ब्रह्मादिको भी दुष्प्राप्य उसी धूलको क्रोधपरवश एवं नीच योनिमें उत्पन्न हमारा यह पति पा गया ॥३८॥ हम आपको प्रणाम करती हैं। आप षड्विधि ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, अन्तर्यामी, अपरिछिन्न, आकाशादि पाँच भूतोंके आश्रय, सार्वकालिक सत्तावान् एवं प्रकृतिसे परे परमात्मा है ॥ ३९ ॥ आप ज्ञान और चैतन्यके सिन्धु हैं, सर्वव्यापक, अनन्त शक्तिसम्पन्न, निर्गुण, निर्विकार तथा प्रकृतिके प्रवर्तक हैं ॥ ४० ॥ आप कालस्वरूप हैं, कालशक्तिके आधार हैं और कालके अवयवोंके साक्षी हैं। आप विश्वरूप हैं, विश्वके साक्षी, कर्त्ता एवं कारण हैं ॥ ४१ ॥ पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार ये सब आपके ही रूप हैं। आपने ही सत्त्व, रज, तम ये तीन गुण जिसमें हेतु हैं, ऐसे देहादिमें आत्माभिमानके द्वारा अपने अंशभूत जीवोंके विवेक ज्ञानको आच्छन्नकर रखा है। भगवन्, आपको नमस्कार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ ४२ ॥ आप अनन्त, सूक्ष्म, कूटस्थ तथा साक्षीरूप हैं और शब्द, अर्थकी शक्तियाँ जिससे उत्पन्न होती हैं आपही हैं। प्रत्येक भूतका आपही लक्ष्य हैं। भगवन्, आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणोंके आप मूल हैं। आप निर्भ्रान्त ज्ञानमय हैं। वेदके आपही कारण हैं एवं विधि-निषेधपरके वेद आपका स्वरूप है, आपको बार-बार नमस्कार है ॥ ४४ ॥ वसुदेवसुत आप कृष्णको नमस्कार है, बलरामको नमस्कार है, भक्तोंके प्रतिपालक प्रद्युम्न और अनिरुद्धको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ अन्तःकरण आदि गुणोंके प्रकाशक, अहङ्कारादि गुणोंसे अपना स्वरूप छिपा रखनेवाले, वृत्तियोंसे उपलक्ष्य, गुणोंके द्रष्टा और स्वयं प्रकाशस्वरूप आपको नमस्कार है ॥४६॥ प्रकृतिमें विहार करनेवाले, सम्पूर्ण तत्त्व एवं ब्रह्माण्डके उत्पादक और प्रकाशक आपको नमस्कार है। हे इन्द्रियोंके प्रवर्तक, मननशील और मौनशीली आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ ब्रह्मा तथा हमलोगोंकी गतिके आप पूर्णतया जानकार हैं, सभीके आप अध्यक्ष हैं, विश्वसे पृथक् होकर भी आप विश्वरूप हैं, विश्वके साक्षी हैं एवं उसके कारण आपही हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे

गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥ नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥ नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च॥ गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥ अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥४८॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ॥ तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥४९॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ॥ शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥५१॥ अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५२ ॥ विधेहि ते

प्रभो, आप इच्छारहित होते हुए भी अनादिसिद्ध कालरूप शक्तिको धारण करते हैं। आपकी सृष्टि आदि लीला जीवोंके चतुर्विध पुरुषार्थके लिये ही होती है। संस्काररूपसे विद्यमान प्राणियोंके तत्-तत् स्वभावोंको आप ईक्षणमात्रसे प्रतिबोधित करते हुए गुणोंके द्वारा इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार किया करते हैं ॥ ४९ ॥ तीनों लोकमें जो सात्त्विक, राजस और तामस जीव हैं वे भी संसारके रचयिता आपके ही शरीर हैं, तथापि सज्जनोंके धर्म रक्षाकी इच्छासे आप अवतार ग्रहण किया करते हैं। यही कारण है कि उनकी रक्षाके लिये अवस्थित हुए आपको इस समय सात्त्विक स्वभावके मनुष्य ही प्रिय हैं और दूसरे नहीं ॥ ५० ॥ हे शान्तात्मन, चूँकि अपनी प्रजा द्वारा हुए अपराधको एक बार सह लेना तो स्वामीको उचित ही है अतः आपके स्वरूपको न जान रहे मूढ़ हमारे इस पतिका अपराध आप अवश्य क्षमा कर दें। हे भगवन्, यह सर्प अभी प्राण छोड़ने जा रहा है, अतः इसके ऊपर दया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कीजिये, इसको मरनेसे बचा लीजिये। हे भगवन्, और अधिक हम आपसे क्या कहें, पराधीन होनेके कारण साधुजनोंसे शोचनीय हम स्त्रियोंको पतिरूप प्राण दे दीजिये ॥ ५१, ५२ ॥ हम आपकी दासियाँ हैं। बतलाइये हम आपकी कौन-सी सेवा करें। जो श्रद्धासे आपकी आज्ञाका पालन करता है वह सभी भीतियोंसे छूट जाता है ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह जब नागपत्नियोंने भगवान्‌की स्तुति की तो उन्होंने उसे छोड़ दिया। उसके सिर तो उनके पादप्रहारसे क्षत-विक्षत हो ही चुके थे, वह अचेत हो चुका था ॥ ५४ ॥ जब वह छूटा तो उसके शरीरमें धीरे-धीरे शक्तिका सञ्चार हो आया, उसकी इन्द्रियाँ और प्राण पुनः लौट आये। मुश्किलसे सांस ले रहा था। बड़ी दीनतासे हाथ जोड़कर उसने भगवान् कृष्णकी प्रार्थना की ॥ ५५ ॥ हे नाथ, हम तो जन्मसे ही दूसरोंको उद्वेगित करनेवाले, तामस प्रकृतिके और महाक्रोधी हुआ करते हैं। प्राणियोंका स्वभाव दुरतिक्रम होता है, जिस स्वभावके कारण देहादिमें प्राणियोंको अहन्ता ममतारूप आग्रह हो जाता है ॥ ५६ ॥ हे धातः, आपने जो इस संसारकी रचना की है, इसके मूलमें तीन गुण हैं। उन्हीं तीनों गुणोंके

किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्सम-भिष्टुतः ॥ मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥५४॥ प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥५५॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥ वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः ॥ कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥५८॥ भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः ॥ नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥ स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी ॥ ६० ॥ य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भया-

वैषम्यसे सृष्टिमें तरह-तरहके स्वभाव, पराक्रम, ओज, योनि, शुक्र, वासना और स्वरूपमें विचित्रताएँ दीखती हैं ॥५७॥ हे भगवन्, आपकी उस सृष्टिमें हम सर्पजातिके लोग तो जन्मसे ही महा क्रोधी होते हैं। जब यह नैसर्गिक बात है, तो हम आपकी मायासे मोहित हो स्वयं ब्रह्मादिसे भी दुर्जय आपकी उस मायाका अतिक्रमण किसप्रकार कर सकते हैं ॥५८॥ आप जगत्‌के स्वामी हैं, सर्वज्ञ हैं, इस संसारके आप ही कारण हैं, इस विषयमें जैसा आप उचित समझें या तो दण्ड दीजिये या कृपा कीजिये ॥ ५९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नररूपधारी भगवान् उसकी यह बातें सुन कहने लगे—देखो, हे सर्प, अब तुम यहाँ मत रहो, अपने परिवारके साथ शीघ्र यहाँसे समुद्रकी राह लो, क्योंकि यह यमुना नदी अब गौओं और मनुष्यसे उपभुक्त होगी ॥ ६० ॥ यह जो मैंने तुम्हें आज्ञा दी है, इसका जो मनुष्य स्मरण करेगा, साँझ-सबेरे कीर्तन करेगा, उसको तुमसे भय न प्राप्त होगा ॥ ६१ ॥ और जो कोई इस दहमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जहाँ मैंने क्रीड़ाकी है, स्नानकर मेरा स्मरण करते हुए देव-पितरोंको तर्पण करेगा तथा उपवासकर मेरी पूजा करेगा वह सब पापोंसे छूट जायगा ॥ ६२ ॥ तुम जिस गरुड़के डरसे रमणक द्वीपको छोड़कर इस हदमें भाग आये थे। उस गरुड़का वह भय अब तुम्हें न होगा। मेरे चरणचिन्ह तुम्हारे मस्तकपर उग आये हैं, अब तुम्हें वह गरुड़ खा न सकेगा ॥६३॥ श्रीशुक-देवजीने कहा—हे राजन, जब अद्भुतकर्मा भगवान्ने ऐसा कहा तब नागपत्नियाँ बड़ी खुश हुईं और अपने पतिके साथ, दिव्य कपड़ों, मालाओं, मणियों, अमूल्य अलङ्कारों, दिव्यचन्दन,

त्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ॥ दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्य तम् ॥ ६६ ॥ सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥ इति श्रीम० म० पु० द० पूर्वार्धे कालियर्दानिर्या-पणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

प्रभृति सुगन्धित लेपों एवं एक बड़ी कमलकी मालासे उनकी सादर पूजा की ॥ ६४, ६५ ॥ गरुड़ध्वज जगदीश्वर कृष्णको पूजाके द्वारा प्रसन्नकर वह सर्प स्वयं सन्तुष्ट हुआ। बाद उनकी आज्ञा ले और परिक्रमाकर अपने स्त्री-पुत्र, मित्र आदि सब बन्धुओंके साथ उस स्थानसे समुद्रके बीचमें स्थित रमणकद्वीपमें चला गया। उसी समय क्रीड़ाके लिये मनुष्य शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रहसे यमुनाका जल निर्विष हो अमृत-सा मीठा हो गया॥ ६६, ६७ ॥

सोलहवें अध्यायका सार—एक दिन कृष्ण बिना बलरामके ही गौ चराने गये। और ग्वालबाल साथ थे। जेठकी दोपहरी थी। सबने यमुना जल पी लिया। जल तो कालियनागके विषसे दूषित हो उठा था। पीते ही ग्वाल-बाल एवं गाय-बछड़े प्राण हीन हो गिर पड़े। भगवान्ने जब यह देखा तो अपनी दयाकी दृष्टि फेंक उन्हें फिरसे जिला दिया। सबोंने यह जान लिया कि निश्चय ही हम कृष्णके जिलाये जी उठे हैं। उधर भगवान्ने उसे दुष्ट कालियको दण्ड देनेको सोचा। वे एक कदम्बपर चढ़ यमुनामें कूद पड़े। धमाके की आवाज सुन सब सर्प क्षुब्ध हो उठे। वे इतने क्रुद्ध हुए कि उनके मुखसे विषके फव्वारे छूटने लगे जिससे जल खौल उठा और सौ धनुषकी दूरी तक तटको डुबो दिया। कालिय-नागने सोचा कि अवश्य ही मेरे घरपर कोई चढ़ आया है। यह बात उसे असह्य हो उठी और दल-बलके साथ वह दहसे निकल पड़ा। उसने एक सुकुमार सुन्दर बालकको जलमें तैरते देखा, तो उसके क्रोधकी कोई सीमा न रही। मर्मस्थलोंमें डस लिया और उनके शरीरको बाँध लिया। कृष्ण बेकाबू हो अचेत हो गये। इस दृश्यको देखते ही ग्वाल-बाल बेहोश हो जहाँके तहाँ लुढ़क पड़े। गौएँ हँकारने लगीं व्रजमें अशकुन देख व्रजनारी वहाँ आ पहुँची। सभी बेहाल थे। कृष्णको अचेत देख सब पर मुर्दनी छा गयी। यशोदा और नन्दपानीमें कूदना चाहते थे, पर लोगोंने पकड़ लिया। बलरामजीने सबको ढाढ़स बँधाया। गोपियोंके कष्टका कौन अनुमान कर सकता है? अपने सहेलियोंको विह्वल देख कृष्णने नरलीला संवरण कर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ली और झट उस दुष्ट नागके सिरपर जा चढ़े। एक सौ उसके बड़े-बड़े फन थे। वे उन्हीं पर नाचने लगे। देवताओंने उनके नृत्यके अनुरूप साज सजा दिया। कालियनाग उस भारको न सम्भाल सका। रुधिर वमन करने लगा। बाद नागपत्नियोंने बड़ी अनुनय-विनय की। भगवान्‌ने उसे छोड़ दिया। कहाकि तुम समुद्रमें चले जाओ। मेरी कृपासे तुम्हें अब गरुड़का भय न होगा। नागपत्नियोंने उन्हें बड़ी आवभावसे पूजाकी। बाद उनकी आज्ञा ले परिक्रमा की वह नाग दलबलके साथ रमणक द्वीपको चला गया॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❋

(श्रीकृष्णका व्रजबासियोंको वनाग्निसे बचाना)

राजा परीक्षित्‌ने कहा—महाराज, उस अकेले कालियने गरुड़जीका कौन-सा अपराध किया था, जिससे उसे नागोंका निवासस्थान रमणकद्वीप छोड़ना पड़ा॥१॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महाबाहो, पहले सर्पोंने गरुड़जीसे यह स्वीकारकर लिया था कि प्रत्येक अमावास्याको किसी वृक्षके नीचे उसके लिये बलि रख आया करेंगे॥२॥ अतः प्रत्येक पर्वपर्वपर [अमावस्या] वे सर्पलोग अपनी रक्षाके लिये महात्मा गरुड़को अपना-अपना भागरूप बलि रख आते थे॥३॥ किन्तु कद्रुपुत्र कालिय बड़ा गर्वीला था। वह अपने विष और वीर्यके मदसे

राजोवाच॥ नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम्॥१॥ श्रीशुक उवाच॥ उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः॥२॥ स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने॥३॥ विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः॥ कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम्॥४॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः॥ विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत्॥५॥ तमापतन्तं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः॥ दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्दायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः॥६॥ तं तार्क्ष्यपुत्रः स

आविष्ट था गरुड़को तुच्छ समझ वह सब बलि स्वयं खा जाता था॥४॥ इस बातको जब महावेगवान् भगवद्भक्त भगवान् गरुड़ने सुना, तो हे राजन्, उन्हें बड़ा क्रोध हो आया। वे उसे मार डालनेकी इच्छासे वेगपूर्वक उसपर टूट पड़े॥५॥ गरुड़जीको वेगसे अपनी ओर आते देखकर वह अपना एक फन ऊपर फैलाकर दौड़ा। दूसरे फुत्कार करके विष छोड़ने लगा। उसकी जीभ बड़ी भयानक थी। उसकी आँखें उग्र और उच्छ्वसित हो गई थीं यानी उनसे आग निकल रही थी। उसने नजदीक आकर दाँतोंसे गरुड़को डँस लिया॥६॥ बादमें प्रचण्ड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वेगशाली भगवान् मधुसूदनके आसन, उग्रपराक्रम तार्क्ष्यपुत्र गरुड़ने क्रुद्ध होकर अपने बायीं पाँवसे, जो कि सुवर्णकी तरह तेजस्वी था, उसको घायलकर दिया ॥ ७ ॥ पाँवकी चोटसे कालिय अत्यन्त विह्वल हो गया और भागकर यमुनाके इस अगाध ह्रदमें प्रविष्ट हो गया ॥ ८ ॥ एक बार गरुड़ इसी ह्रदमें एक मछलीपर टूटे। सौभरिमुनिने गरुड़जीको रोका कि यहाँ जीवको मत मारो, पर वे भूखे थे. अतः अपने ईप्सित भक्ष्य मत्स्यराजको जबर्दस्ती लेकी उड़े ॥ ९ ॥ उस मीनपति [मुखिया] के मर जानेसे और मछलियाँ बिडी दुःखी और असहाय हो गयीं। उन्हें दीन-दुःखो देख उनका कल्याण चाहते हुए उनके दुःखसे दुःखी हो सौभरिने शाप दे दिया कि—यदि यह गरुड़ फिर कभी यहाँ पहुँच मछली खायेंगे, तो वे तुरन्त मर जायँगे, यह मैं सत्यही कहता हूँ ॥ १०, ११ ॥ इस बातको अकेला कालिय ही जानता था उसके अतिरिक्त और कोई साँप नहीं जानता था। इसलिये गरुड़के भयसे वह यहाँ

निरस्य मन्युमान्प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ॥ ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति ॥ सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ तं कालिय परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ॥ अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥ कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् ॥ महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥१४॥ यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव ॥ कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥१५॥ रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित्॥ नगा गावो वृषा वत्सो लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥ नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालीयग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥ देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदा-

रहता था। बादमें, भगवान्‌ने उसको यहाँसे निर्वासितकर दिया ॥ १२ ॥ जब भगवान् ह्रदमेंसे निकले, तो दिव्यमाला, चन्दन और कपड़े पहने हुए थे, बहुमूल्य मणि एवं स्वर्णमय आभूषणसे भूषित थे ॥ १३ ॥ उन्हें पाकर सभी गोप-गोपी उसी तरह उठ बैठे, जैसे प्राणोंके आ जानेपर इन्द्रियाँ सक्रिय हो जाती हैं। उनके आनन्दका कोई आर-पार न था। उनको मारे प्रेमके गलेसे लगा लिया ॥ १४ ॥ हे कौरव, यशोदा, रोहिणी, नन्द, गोप और गोपियाँ कृष्णको पाकर लब्धचेष्ट एवं सफल मनोरथ हो गई ॥ १५ ॥ बलराम तो कृष्णकी शक्तिको जानते थे। उन्होंने मुस्कराते हुए उन्हें गले लगा लिया। गाय बैल, बछड़े, वृक्ष सभी परम प्रमुदित हो गये ॥ १६ ॥ हे राजन्, नन्दके गुरु ब्राह्मण-लोगोंने सपत्नीक जाकर कहा—आपका लड़का बड़े भाग्यसे कालियके मुखसे लौटा है ॥ १७ ॥ अतः आप कालियनागसे चूँकि आपके पुत्र कृष्ण बच गये हैं, इस हेतु ब्राह्मणोंको पूरी दान-दक्षिणा दीजिये, तब नन्दने प्रसन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मन हो बहुत-सी गायें और सुवर्ण दान दिये ॥ १८ ॥ यशोदाके भाग्यका क्या पूछना है, नष्ट हुई सन्तान इन्हें फिरसे मिल गयी थी। वह कृष्णको गोदमें लेकर आनन्दसे खूब रोने-लगीं ॥ १९ ॥ हे राजन्द्र, गौएँ और व्रजवासी, भूख-प्यास तथा रोने और इधर-उधर दौड़ने आदिके श्रमसे बहुत पीड़ित हो गये थे, इसलिए उस रातको उस यमुनाके तटपर ही रह गये ॥ २० ॥ जब आधी रात हुई, तो ग्रीष्मकालकी दावाग्नि भभक उठी और सोये हुए गौओंके सहित उन सब व्रजवासियोंको चारों ओरसे घेरकर जलानेको तैयार हुई ॥ २१ ॥ उस अग्निसे जल रहे व्रजवासी सब जाग उठे और हका-बका हो मायामनुज साक्षात् ईश्वर श्रीकृष्णके पास शीघ्र दौड़ आये और कहने लगे—हे महाभाग भैया कृष्ण, हे कृष्ण, हे

दिशत् ॥ १८ ॥ यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९ । तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः २० ॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ तत उत्थाय संभ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम ॥ २२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥२३॥ सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ॥ न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥ इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अमित पराक्रमयुक्त बलराम, देखो, तो यह अत्यन्त भयंकर अग्नि तुम्हारे अपने लोगोंको जलाती आ रही है ॥ २२, २३ ॥ हे प्रभो, उस दुस्तर कालाग्निसे हम आत्मीय सुहृदोंको बचाओ। हमलोग सर्वमय निर्मुक्त तुम्हारे चरणोंको नहीं छोड़ सकते ॥ २४ ॥ इस तरह अपने स्वजनोंको व्याकुल देख अनन्त शक्तिसम्पन्न, जगदीश्वर, अनन्त भगवान् श्रीकृष्ण उस दावाग्निको पी गये ॥ २५ ॥

सत्रहवें अध्यायका सार—राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे महाराज, कालियने गरुड़जीका ऐसा कौन-सा अपराध किया था, जिससे उसे रमणकद्वीप छोड़ना पड़ा। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, पहलेकी बात है कि सर्पोंने गरुड़से यह तय कर लिया था कि हम निश्चित तिथिमें आपके पास बलि भेज दिया करेंगे। और सब सर्प ऐसा करते भी थे। केवल कालियने उसका अपलाप किया। उसे अपने विष और वीर्यका अभिमान था। वह सब बलि आप ही खा जाता था। गरुड़को इस बातसे बड़ा क्रोध आया। वे उसपर टूट पड़े। बायीं पंखसे उन्होंने ऐसा दहन किया कि वह बेतरह घबड़ा गया और जान बचाने के लिये यमुना तटपर भाग आया। वह जानता था कि गरुड़ यहाँ नहीं आ सकते, क्योंकि सौभरि ऋषिने कह रखा था कि, यदि गरुड़ यहाँके किसी जीव जन्तुको खायँगे, तो वह स्वयं भी न बचेंगे इसलिए कालियनागने यहींपर अपने लिये निर्भय स्थान चुन लिया था। उससे संसारको बहुत क्षति हो रही थी। अतः भगवाने उसे वहाँसे निर्वासित कर दिया ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ अष्टदशोऽध्यायः ❋

(बलराम द्वारा प्रलम्बासुर उद्धार होना–यह वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसके बाद कृष्णजी अपने जाति भाइयोंके साथ, जो कि परम प्रसन्न हो रहे थे एवं जो कृष्णका गुणकीर्तनकर रहे थे, गोकुल मण्डित व्रजमें पहुँचे ॥ १ ॥ गायोंका पालन करना हो एकमात्र जिसमें बहाना था, ऐसी अपनी मायासे कृष्ण और बलराम दोनों भाई तरह-तरहकी लीलाकर रहे थे। इसी बीचमें प्राणियोंको घबड़ा देनेवाली ग्रीष्म ऋतु आयी ॥ २ ॥ किन्तु वृन्दावनमें उस ग्रीष्मका कोई बुरा असर न हुआ, वहतो गुणोंसे बसन्त-सा ही वहाँ साक्षात् कृष्ण भगवान् बलरामजीके साथ थे ॥ ३ ॥ ग्रीस्मकालमें भी वहाँपर झरनीकी आवाजसे झिंगरोंकी कड़ी आवाज वहाँ दब गयी थी। निरन्तर झरनाके जलकणोंसे सिक्त हो रहे वृक्षोंके मण्डल से वह मण्डित था ॥ ४ ॥ और वायु नदी, तालाब, एवं झरनोके तरंगोंसे अपनेको सपृक्तकर तथा कह्लार, कञ्ज एवं उत्पलके परागको लेकर बह रही थी। जिससे घास लहलहा रहे थे और वहाँ किसी भी प्राणीको

श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥ अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥ स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ॥ यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥३॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ॥ शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥४॥ सरित्सरः प्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ॥ न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥ प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥

ग्रीष्म तथा तत्कालीन अग्नि और सूर्यसे किसीप्रकारके तापका अनुभव नहीं हो रहा था ॥ ५ ॥ अथाह जलयुक्त नदियोंकी तरङ्गें तटसे टकराती थीं और कीचड़को बहा ले जाती थीं। आसपासकी भूमि हरियालीसे भरी थी, अतः सूर्यकी प्रचण्ड विषैली किरणें पृथ्वीकेरस और हरियालीको हरनेमें समर्थ न थीं, वहाँ उनका कोई असर न पड़ता था॥ ६ ॥ वृन्दावन फूलोंसे लहलहा रहा था, चित्र-विचित्र तरहके मृग बोल रहे थे, पक्षी कलरवकर रहे थे, मयूर और भ्रमर गुञ्जार रहे थे एवं कोकिल तथा सारस बोल रहे थे ॥७॥ भगवान् कृष्णकी वहाँ खेलनेकी इच्छा हुई। वे गौ, ग्वालों एवं बलरामके साथ बंशी बजाते वहाँ जा पहुँचे ॥ ८ ॥ किसलय, मोरपंख, गुच्छे, मालाएँ एवं धातुओंसे अपनेको सजाकर बलराम तथा श्रीकृष्ण आदि कभी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाचने, कभी लड़ने, और कभी गाने लगे ॥ ९ ॥ हे राजन्, जब उस समय कृष्ण नाचने लगते, तब कोई गाने लगा, कोई बाजा बजाने लगा, कोई वंशी एवं मृदङ्ग बजानेमें जुट गया, कोई तालियाँ बजाने लगा और कोई उनकी प्रशंसा करने लगा ॥१०॥ हे राजन्, गोपके रूपमें अवतीर्ण देवता लोग गोपाल रूपधारी कृष्ण-बलरामकी एवं ये दोनों उनकी प्रशंसा करने लगे। मानो नाटक करनेवाले नट एक दूसरेकी प्रशंसाकर रहे हों ॥ ११ ॥ कहीं एक दूसरेका हाथ पकड़कर घुमाने लगा, कहीं लाँघनेकी होड़ लग गई, कहीं ढेलोंको उठा फेंकने लगे कभी ताल ठोंकने लगे और कभी वे बाहुयुद्ध करने लग गये ॥ १२ ॥ हे महाराज, जब गोपलोग नाचने लगे तब कृष्ण और बलराम गाने-बजाने लगे। यदि वे गाने-बजाने लगे तो ये दोनों नाचने लगे और वाह वाह कह उनका उत्साह बढ़ाने लगे ॥ १३ ॥ कभी बेलोंसे, कभी कुम्भोंसे, कभी आँवलोंकी मूठसे वे खेल खेलने लगे। कभी आँखमिचौनी लुकालुकौवल खेलने लगे, तो कभी-कभी मृगपक्षीका आचरण करने लगे ॥ १४ ॥ कभी मेढकोंकी तरह उछलने लगे, कभी हँसी-ठिठौली करने लगे, कभी झूले झूलने लगे, तो कभी राजाओंकी

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥ वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० गोपजातिप्रतिच्छन्नौ देवा गोपाल-रूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥ भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ॥ चिक्रिडतुर्नियुद्धेन काकपक्ष-धरौ क्वचित् ॥ १२ ॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ॥ शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥ १३ ॥ क्वचिद्बि-ल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः ॥ अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित्स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥ पशूंश्चारयतो गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भग-वान्सर्वदर्शनः ॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरि-ष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥

नकल उतारने लगे ॥ १५ ॥ इस तरह बलराम और कृष्ण बालसुलभ लौकिक खेलोंको खेलते हुए नदी, पहाड़के गुफाओं, कुञ्जों वनों तथा तालाबोंमें विचरने लगे ॥ १६ ॥ एक-बार जब कि बलराम और कृष्ण गौ चरा रहे थे, प्रलम्बासुर ग्वाल बन उनके दलमें घुस आया। वह उन दोनोंको हर लेना चाहता था ॥ १७ ॥ सबकी जानकारी रखनेवाले भगवान्ने तो आते ही उसे ताड़ लिया। किन्तु युक्तिसे बध करनेके लिए उन्होंने उसकी मित्रता स्वीकार कर ली ॥ १८ ॥ विहार करनेमें कुशल श्रीकृष्णने सब ग्वालबालोंको बुलाया और कहा कि आज हमलोग दो दलोंमें विभक्त होकर खेल खेलेंगे ॥१९॥ एक दलने कृष्णको अपना मुखिया चुना और दूसरे दलने बलरामको वहाँ कोई कृष्णके पक्षमें जा मिले और कोई बलरामके पक्षमें जा घुसे वहाँ उनमें एक दूसरेकी पीठपर चढ़ने चढ़ानेकी विविध क्रीडाएँ होने लगीं ॥ २० ॥ जो दल हारता था वह दूसरे दलको अपनी पीठपर चढ़ाकर किसी निश्चित स्थानतक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पहुँचाता था ॥ २१ । इस तरह एक दूसरेको चढ़ते-चढ़ाते एवं गौएँ चराते हुए कृष्णके साथ वे लोग भाण्डीर नामक वनके पास पहुँचे ॥ २२ ॥ एक बार खेलमें बलरामके दलवाले श्रीदामा, वृषभ आदिने बाजी मार ली। हे राजन्, तब कृष्ण और उनके दलवाले उन्हें ढोने लगे ॥ २३ ॥ हारकर श्रीकृष्णने श्रीदामाको पीठपर चढ़ाया, भद्रसेनने वृषभको एवं प्रलम्बने बलरामको चढ़ाया ॥ २४ ॥ राक्षसोंमें चतुर प्रलम्बासुरने श्रीकृष्णको अजेय समझा। इसलिये वह कृष्णके दलमें आकर बलरामको लेकर जोरसे खेलनेके निश्चित स्थान उस वटसे दूर भागा ॥२५॥ पहाड़सरीखे बोझवाले बलरामको ले जाते हुए वह महासुर बहुत दूर तक न ले जा सका। जब उसकी गति नष्ट हो गई तब वह अपने असली रूपमें आ गया। वह सोनेका आभूषण पहने था, एवं उसका शरीर मेघ-सा काला था। उस समय वह ऐसा शोभित हो रहा था मानो काला मेघ विद्युतसहित चन्द्रमाको धारण किए हुए हो ॥ २६ ॥ उसकी आखें

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ॥ यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥ २१ ॥ वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ॥ भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥२२॥ रामसङ्घट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ॥ वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ॥ वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥२५॥ तमुद्वहन्धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥२७॥ अथागतस्मृतिरभया रिपुं बलो विहाय सार्थमिव हरन्तमात्मनः ॥ रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत्समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥२९॥ दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता आसन्साधु साध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचे-

वेगसे धधक रही थीं, भौंहोंतक दाढ़ें पहुँची हुई थीं, अग्निकी तरह उसके केश जल रहे थे। बलरामने जब इसके इस कटक, किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे दीप्त अद्भुत रूपको देखा एवं उसे बड़े वेगसे आकाशमें उड़ते देखा, तो वे कुछ डरसे गये ॥२७॥ किन्तु बलरामजी अपने स्वरूपको यादकर निडर हो गये। उन्होंने जब देखा कि वह शत्रु उन्हें उनके साथियोंसे हटाकर ले भागा जा रहा है, तब उन्हें बड़ा क्रोध चढ़ आया। जिस तरह इन्द्र पर्वतपर वज्रका प्रहार करते हैं, उसी तरह उन्होंने उसके सिरपर एक घूँसा कसकर जमाया, उस घूँसेमें वज्र-सा वेग था ॥२८॥ घूँसेकी चोटसे उसका सिर तुरन्त टुकड़ा-टुकड़ा हो गया। वह रुधिर वमन करता हुआ बेहोश हो गया और महान् शब्द करता हुआ इन्द्रके वज्रकी चोट खाये पर्वतकी तरह निष्प्राण होकर गिर पड़ा ॥ २९ ॥ पराक्रमी बलरामके द्वारा प्रलम्बासुरका उद्धार हुआ देखकर ग्वालबाल बड़े विस्मित हुए वे 'धन्य-धन्य' कहने लगे ॥ ३० ॥ जो उनसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बड़े थे, उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिये और उनकी प्रशंसा की। वे तो इस योग्य थे ही। मरकर लौटे हुएकी तरह प्रेमसे विह्वल हो वे उन्हें हृदयसे लगाने लगे ॥ ३१ ॥ पापी प्रलम्बासुरके मर जानेसे देवताओंको बड़ी खुशी हुई। वे बलरामपर पुष्पवृष्टि करने लगे और धन्य-धन्य प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥

तसः ॥ ३१ ॥ पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥ अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रलम्बवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अठारहवें अध्यायका सार— ग्रीष्म ऋतु थी। वृन्दावनकी एवं यमुनाकी छटा निराली थी। बच्चे तरह-तरहके खेल खेल रहे थे। एक दिन प्रलम्बासुर बालकका रूप धरकर उनके दलमें आ पहुँचा उसकी नीयत बुरी थी। भगवान् ताड़ गये। पीठपर चढ़नेका खेल खेला जाने लगा। मौका पाकर प्रलम्बासुर बलरामको लेकर भाग चला। उसने असली सूरत धारण कर ली। बलरामजी उसकी गुस्ताखी देख क्रुद्ध हो गये उन्होंने कसकर एक ऐसा घूँसा जमाया कि उसका सिर टुकड़ा-टुकड़ा हो गया और वह वहीं ढेर हो गया। ग्वाल-वालोंने उन्हें हृदयसे लगा लिया। देवताओंने उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❁ अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः ❁

(श्रीकृष्णका वनाग्नि पी लेना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक दिन ग्वालवाल खेलमें उलझ गये। उनकी गौएँ दूर चर रही थीं। अपनी इच्छाके अनुसार चरती हुई वे हरी-हरी घासोंके लोभमें सघन दुष्प्रवेश वनमें बैठ गयीं ॥ १ ॥ बकरियाँ गाएँ और भैंसे एक वनसे दूसरे वनमें घूमती-फिरती सरकण्डोंके वनमें घुस गयीं। ग्रीष्मके तापसे अत्यन्त प्यासी वे रम्भा रही थीं ॥२॥

श्रीशुक उवाच ।' क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥ स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः २॥ तेऽपश्यन्तः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाजीव्या

जब बलराम, कृष्ण एवं अन्य गोपोंने पशुओंको न देखा, तब वे पश्चात्ताप करने लगे। बहुत ढूँढ़नेपर भी वे गौएँ किस रास्ते कहाँ गईं, यह न जान सके ॥ ३ ॥ गौएँ ही उनकी जीविका थीं, उन्हें न देख वे घबड़ा गये। गौओंके खुरों एवं दाँतोंसे कटी घासों और खुरोंके चिन्होंसे चिन्हित भूमिके द्वारा उनका पता लगाते हुए वे आगे बढ़े ॥४॥ कुछ दूर पर उन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोगोंने देखा कि उनकी गौएँ रास्ता भूलकर सरकण्डोंके बनमें घुसी हुई हैं एवं रम्भा रही हैं। वे स्वयं भी बहुत थके और प्याससे लहालोट हो रहे थे, वहाँसे उन्हें लौटाने लगे ॥५॥ भगवान्‌ने गौओंका नाम ले-लेकर मेघ-सी गंभीर आवाज से उन्हें बुलाया। गौएँ अपना नाम सुन प्रसन्न हो गईं और उत्तर प्रदानके समान प्रतिध्वनि करने लगीं। ठीक उसी समय वनमें अकस्मात् प्राणियों के किसी दुर्भाग्यसे दावाग्नि लगी। वनके लिये धूमकेतु एवं वनवासियोंके लिये उसे कालही समझना चाहिये। आँधीने भी उसका साथ दिया। फिर क्या पूछना था, वह महती दावाग्नि अतितीव्र उल्मुकोंके द्वारा चारो तरफ झटसे सभी जड़-जङ्गमको चाटने लगी ॥ ७ ॥ जब गौओं एवं गोपोंने चारों ओरसे उसे दावानलको अपनी ओर बढ़ते देखा, तो वे देखकर बिलकुल डर गये और जैसे मृत्युके डरसे लोग विष्णुकी शरण जाकर प्रार्थना करते हैं, उसी तरह वे बलराम सहित श्रीकृष्णकी शरणमें पहुँचकर प्रार्थना करने लगे ॥ ८ ॥ हे महावीर्य कृष्ण, हे कृष्ण, हे अमित पराक्रमी बलराम, हम आपकी शरणमें आये हैं, इस दावाग्निसे जल रहे हमलोगोंको आप दोनों बचाइये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण,

विचेतसः ॥ ४ ॥ मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ॥ संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥ ता आहूता भगवता
मेघगम्भीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समन्ताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षयकृद्वनौकसाम् ॥
समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्महान् ॥७॥ तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥ कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामितविक्रम ॥ दावाग्निना दह्यमा-
नान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम् ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥
श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान्हरिः ॥ निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥ तथेति मीलिताक्षेषु
भगवानग्निमुल्बणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ॥
निशाम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम् ॥ दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य

आप तो सभी धर्मके जानकार हैं, अतः आपको यह बतलानेकी जरूरत नहीं है कि शरणागतका पालन करना धर्म है। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि आपके हम सम्बन्धी हैं आपही हमारे रक्षक हैं, फिर हमें क्यों कोई कष्ट हो। दावाग्निके भयसे हम आपकी शरण आये हैं, हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्, भगवान् हरिने अपने बन्धुओंके इस दीन वचनको सुनकर कहा कि 'डरो मत' केवल आँखें मींच लो। ११ ॥ उन्होंने कहा—ऐसाही करते हैं और जब उन्होंने आँखें मींच लीं तब योगाधीश भगवान्‌ने उस तीव्र वनाग्निको अपने मुखसे पी लिया और वहाँसे उन्हें भाण्डीर वनमें ले जाकर उनकी उस विपत्तिसे रक्षा की ॥ १२ ॥ तदनन्तर जब उन्होंने आँखें खोलीं, तो उन्होंने अपनेको फिर भाण्डीरवनमें पाया। अपने एवं अपनी गौओंको वनाग्निसे बचा देख वे बड़े विस्मित हुए ॥ १३ ॥ योगमायासे सम्पादित, दावाग्निसे अपनेको बचानेवाला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌का वह योगवीर्य देखकर वे सब गोप श्रीकृष्ण भगवान्‌को देवता समझने लगे ॥ १४ ॥ जब सायंकाल हुआ तब बलराम और कृष्ण लौटकर व्रजमें आ गये । आते समय

ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ॥ वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने ॥ क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निपानं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

ग्वालबाल उनकी स्तुतिकर रहे थे और वे बंशी बजा रहे थे ॥ १५ ॥ जब गोपियोंने उनका दर्शन किया, तब उनकी खुशीकी सीमा न रही । उनके बिना तो एक क्षण भी गोपियोंके लिये सौ युगके बराबर हो जाता था ॥ १६ ॥

उन्नीसवें अध्यायका सार—एक बार कृष्ण आदि सब गोप लोग खेलमें बिलकुल जुट गये । गौओंकी सुध न रही । इतनेमें ये घूमती-फिरती रास्ता भूल सरकण्डोंके वनमें घुस गयी । जब गोपोंको उनकी सुध हुई, तो वे बहुत चिन्तित हुए । वही तो उनकी जीविका थी । ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे वहाँ पहुँचे । इतनेमें दावाग्नि लग गई । आँधी भी बड़े वेगसे उठी । घबड़ाकर वे भगवान्‌की शरणमें आये । भगवान्‌ने उन्हें आँख मींचनेको कहा । उनके वैसा करनेपर भगवान्‌ने वह आग पीकर भाण्डीरवनमें उन्हें पहुँचा दिया । जब उन्होंने आँखें खोलीं, तो अपनेको भाण्डीरवनमें देख वे विस्मित हुए । सायंकालको भगवान् गौएँ लौटाकर व्रजमें आ गये ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❋ अथ विंशतितमोऽध्यायः ❋

(वर्षा और शरद ऋतुका वर्णन और कृष्णके बरसाती खेल)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ग्वालबालोंने घर जाकर दावाग्निसे अपनी रक्षारूप श्रीकृष्णके तथा प्रलम्बासुरके वधरूप बलरामजीके उस अद्भुत कर्मका गोपियोंसे वर्णन किया ॥१॥ वृद्ध गोपों एवं गोपियोंने इस घटनाको सुनकर विस्मित हो बलराम कृष्णको देवता समझा, जो उनपर दया करनेके लिये व्रजमें पधारे थे ॥ २ ॥ गर्मी बीत जानेपर वर्षाऋतु

श्रीशुक उवाच ॥ तयास्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥ गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मेनिर देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रावर्तत प्रवृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ॥ विद्योतमानपरिधिविस्फूर्जि-

आई । इस ऋतुमें सभी प्राणियोंकी वृद्धि होती है । चन्द्रमामें परिवेष (मण्डल) लग जाते हैं या यों कहिये कि सब दिशाएँ चमकने लग जाती हैं । आकाशमें बादल गरजने लगते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बिजली चमकने लगती है ॥ ३ ॥ आकाश सघन नीलघनोंसे घिर जाता है । बिजलीकी चमक और स्फूर्जन होने लगती है । उसमें सूर्य और चन्द्रमाकी आभा अस्पष्ट हो जाती है । इस हालतमें वह अकाश सत्त्वादि गुणोंसे आच्छन्न सगुण ब्रह्मकी तरह मालूम पड़ने लगता है ॥ ४ ॥ अपनी किरणोंके द्वारा आठ महीनेतक सूर्यने पृथ्वीसे जलरूपी जो 'कर' लिया था, उसे समयपर वे फिर देने लगे ॥ ५ ॥ जैसे सन्तलोग मनुष्योंको दुःखी देख उनके लिये अपने जीवन निछावरकर देते हैं, उसी तरह बिजलीरूपी अपनी आँखोंसे गर्मीसे सन्तप्त इस विश्वके प्राणियोंको देख उन्हें तृप्त करनेके लिये मानो दया करके काले-काले मेघ प्रचण्ड वायुसे टकराकर जीवनके साधनभूत जल बरसाने लगे ॥ ६ ॥ सकाम तपश्चर्या करनेवाले व्यक्तिका शरीर पहले बिलकुल सूख जाता है और मनोरथ पूर्ण होते ही जैसे फिर मोटा-ताजा हो जाता है, उसी तरह गर्मीसे सूखी हुई भूमि वर्षासे सिक्त हो पहलेसे अधिक हरी-भरी सर्वाङ्ग परिपुष्ट हो गयी ॥ ७ ॥ जैसे कलियुगमें विवेकके आच्छादक अज्ञानजनित पापसे वेद-विरुद्ध अनेक पाखण्ड शास्त्रोंका बोलबाला रहता है. नित्यसिद्ध वेद तो लुप्त हो जाते—कहीं प्रकाशमें नहीं

तनभस्तला ॥ ३ ॥ सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान्नि-
पीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥ तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः ॥ प्रीणनं
जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥ तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥
निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः ॥ यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका
व्यसृजन्गिरः ॥ तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः पुंसो यथाऽस्व-
तन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिता ॥ उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११ ॥
क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ॥

आते वैसेही वर्षाकालकी रातोंमें प्रकाश और ग्रह आदिके आच्छादक मेघजनित अन्धकारसे जुगुनू इधर-उधर खूब चमकते हैं । नित्यसिद्ध चन्द्र, गुरु, शुक्र आदि ग्रह तो विलुप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जैसे पहले यानी अध्यापकके नित्यकर्मके आचरणके समय शिष्यगण चुप रहते हैं और नित्यकर्मकी समाप्तिके बाद गुरुका आदेश पातेही वेदका अध्ययन शुरूकर देते हैं, उसी तरह बिजलीका घोष सुनते ही मेढक टर्र-टर्र करने लगे ॥९॥ जैसे इन्द्रियसे परतन्त्र प्राणियोंकी देह, धन-दौलत आदि सारी सम्पत्तियाँ बह बिला जाती हैं, उसी तरह गर्मीमें सूखी पड़ी छोटी-छोटी नदियाँ करारा तोड़कर बहने लगीं ॥१०॥ कहीं तो भूमि हरे घासोंसे हरी जान पड़ने लगी, कहीं बीरबहूवटियाँ [एक प्रकारके बरसाती कीड़ों] से लाल-लाल दीखने लगी और कहीं कहीं उसपर रामछाते [कुकुरमुत्ते] उगे हुए दिखाई देने लगे इससे हरे-लाल वस्त्रोंसे लज्जित किसी राजाकी खड़ी सेना-सी पृथ्वी मालूम पड़ने लगी ॥ ११ ॥ धनसे खेत लहलहा उठे जिसे देख किसान फूले न समाते थे । परन्तु इससे कुछ अन्नके व्यापारी कुढ़ भी रहे थे । उनको क्या पता कि सस्यसम्पत्ति आदि सब दैवाधीन है, हम झूठे क्यों मन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खराबकर रहे हैं ॥ १२ ॥ जैसे भगवान्‌की भक्तिसे सभी एक मनोहर शोभा धारण करते हैं वैसेही जलमें रहनेवाले मत्स्य आदि तथा स्थलके निवासी गो, वृक्ष आदिकोंने वर्षाके नवीन जलके सेवनसे मनोहररूप धारणकर लिया ॥१३॥ जैसे अधकचरे योगियोंका भोगवासनासे युक्त विषयासक्त चित्त तरङ्गित हो उठता है, उसी तरह वायु एवं नदियोंके संगसे सागर तरङ्गित हो क्षुब्ध हो उठा ॥१४॥ जैसे अधोक्षज भगवान्‌में समर्पित चित्तवाले सन्तलोग दुःखोंसे अभिभूत होते हुए भी व्यथित नहीं होते, उसी तरह वर्षाकी धारासे चोट खा रहे पर्वत तनिक भी व्यथित न हुए ॥ १५ ॥ जैसे ब्राह्मणों द्वारा पठित भी श्रुतियाँ अभ्यास छूट जानेपर और समय निकल जानेपर विस्मृत होती हुईं सन्दिग्ध हो जाती हैं वैसेही घासोंके बढ़ जानेसे एवं उनकी छटाई न होनेसे सन्दिग्ध जान पड़ने लगे यानी मार्गोंका ठीक-ठीक परिज्ञान लोगोंको न होने लगा ॥१६॥ जैसे अस्थिर प्रेमवाली कुलटाएँ अपने गुणी पतिपर अनुरक्त नहीं रहतीं वैसेही लोकोंका उपकार करनेवाले मेघोंपर विद्युतोंका प्रेम स्थिर न रहा ॥ १७ ॥ वस्तुतः निर्गुण भी परमात्मा जिस तरह गुणोंके कार्यभूत संसारमें सगुणसे प्रतीत होते हैं, उसी तरह

अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ ॥ सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ॥ अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयु-
ग्यथा ॥१४॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥ मार्गा बभूवुः सन्दि-
ग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ १६ ॥ लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं
न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो
यथा ॥ १८ ॥ न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवा
हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ॥ गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥ २० ॥ पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ॥
प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥ सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ॥ गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव

इन्द्रधनुष मेघोंके गर्जन आदि शब्दगुण युक्त आकाशमें ज्यारहित शोभ रहा था ॥ १८ ॥ जैसे स्वचैतन्यसे ही प्रकाशित अहङ्कारसे आच्छन्न जीव सुशोभित नहीं होता, वैसेही अपनी चाँदनीरूप प्रकाशसे प्रकाशित मेघोंसे आच्छन्न-सा प्रतीत हो रहा चन्द्रमा अशोभित होने लगा ॥ १९ ॥ जिस तरह गृहमें स्थित अतएव तीनों तापसे तप्त हुए श्रान्त एवं विरक्त जन भगवद्भक्तके आनेपर प्रत्युत्थान आदि करके खूब प्रसन्न होते हैं वैसेही ग्रीष्मके तापसे सन्तप्त अतएव मेघोंके आगमनसे आनन्द मनानेवाले प्रसन्नचित्त मयूर मेघोंका गर्जन सुन स्वयं शब्द करते हुए नाचने लगे ॥ २० ॥ जैसे सकाम तपस्या करनेवाले पहले तो दुबले-पतले और श्रान्त हो जाते हैं यानी बिलकुल सूख जाते हैं, किन्तु मनोरथके सिद्ध होते ही कामोंके सेवनसे फिरसे तगड़े हो जाते हैं, उसी तरह पहले ग्रीष्मकालमें सन्तप्त हुए वृक्ष जड़के द्वारा जलको ग्रहणकर फल-फूलसे परिपूर्ण हो गये ॥ २१ ॥ हे राजन्, अशान्त यानी पङ्क, कण्टक आदिसे युक्त तटवाले सरोवरोंमें सारस पक्षी ऐसे निवास करने लगे, जैसे कि दुःखदायक नानाविध कर्मोंवाले गृहोंमें विषयाकृष्टचित्त गृहस्थ निवास करते हैं। तात्पर्य यह कि जैसे गृहस्थ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विषयसुखोंकी अभिलाषासे घरमें निवास करते हैं वैसेही सारस पक्षी मछली आदि पानेकी अभिलाषासे सरोवरोंके तटपर रहने लगे ॥ २२ ॥ जैसे कलियुगमें पाखण्डियोंके दुष्ट वाद से वेदका सिद्धान्त विलुप्त होने लगता है उसी तरह इन्द्र भगवान्‌के बरसनेपर जलके प्रवाहसे खेतों तथा नदियोंमें बाँध टूटने लगे ॥ २३ ॥ जैसे ब्राह्मणोंके उपदेशसे वैश्योंके अधिपति या राजा लोग समय-समयपर धनका सदुपयोगकर दुःखियोंकी कामनाएँ पूर्ण करते हैं, उसी तरह पवनोंसे प्रेरित हुए मेघ दुःखित प्राणियोंको अमृततुल्य जीवनके हेतुभूत जलदान करने लगे ॥ २४ ॥ जब वृन्दावनमें खजूर और जामुनके फल पक गये तब इस तरह पके फलोंसे समृद्ध उस वनमें भगवान् कृष्ण अपने गौओं एवं ग्वालबालोंके साथ रमण करनेकी इच्छासे प्रविष्ट हुए बलराम भी उनके साथ थे ॥ २५ ॥ गौएँ थनकी जबरदस्त भारसे धीरे-धीरे चल रही थीं। किन्तु जब कृष्णने उन्हें पुकारा तो, वे प्रेमके मारे शीघ्र दौड़ पड़ीं, जिससे उनके थनसे दूध टपकने लगा ॥ २६ ॥ जंगलके वासी बड़े प्रसन्न थे, वनराजी मधुसिक्त थी, पर्वतसे झरने झर रहे थे और उनकी ध्वनियोंसे गुहाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं। कीचक, पक्षी आदिके

दुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ॥ पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ २३ ॥ व्यमुञ्चन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ॥ यथाशिषो विश्पतयः कालेकालेद्विजेरिताः ॥२४॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ॥ गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥ धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्यास्नुतस्तनीः ॥२६॥ वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७ ॥ क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥ निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके ॥ संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्वितः ॥२९॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥ प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ॥ भगवान्पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतोस्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिवचेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥

अनेकविध मनोहर शब्द हो रहे थे, भगवान्‌ने चारों ओर आनन्दमय देखा ॥ २७ ॥ पानी बरसनेपर कभी भगवान् पर्वतकी गुफाओंमें तथा वृक्षोंके नीचे रहकर कन्दमूलफल भोजन करते हुए खूब क्रीड़ा करने लगे ॥ २८ ॥ जलके किनारे पत्थरपर बैठ घरसे लाये दही-भातको खाने लगे। उसमें ग्वालबाल एवं बलराम भी शरीक थे ॥ २९ ॥ साँड, बछड़े और गौएँ घासपर बैठकर सुखसे आँखें बन्दकर जुगालीकर रही थीं। गौएँ थनके भारसे आक्रान्त थीं ॥ ३० ॥ भगवान्‌ने वर्षाकी उस शोभाको देखकर उसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ३१ ॥ इस तरह व्रजमें प्रतिदिन क्रीडापूर्वक वास करते हुए राम कृष्णकी वर्षाऋतु बीत गई और शरदृऋतु आयी। बादल हट गये, आकाश स्वच्छ हो गया, नदी नालेका जल विमल हो गया और वायु-का वेग शान्त हो गया ॥ ३२ ॥ कुमुद आदि पुष्पोंको उत्पन्न करनेवाली शरदृऋतुके आनेसे जल स्वच्छ और मधुर उस तरह हो गया, जिस तरह कि योगभ्रष्टका चित्त फिर भगवान्‌की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सेवासे प्रसन्न हो जाता है ॥३३॥ जैसे भगवान्‌की भक्ति चारों आश्रम मनुष्योंके क्लेशोंको हर लेती है, उसी तरह शरद्‌ने आकाशसे बादलोंकी गड़गड़ाहट, नाना जन्तुओंकी संकीर्णता पृथिवीके पङ्क तथा जलकी मलिनताको दूरकर दिया ॥ ३४ ॥ मेघ सब जल बरसकर उस तरह बिलकुल शुभ्र हो शोभने लगे, जिस तरह कि तीनों एषणाओंको त्यागकर मुनिलोग पापसे रहित शान्त हो शोभने लग जाते हैं ॥ ३५ ॥ जैसे गुरुजन किसी एक नियत समयपर अधिकारी किसी एक शिष्यको ही ज्ञानामृत प्रदान करते हैं, अनधिकारीको नहीं, उसी तरह कहीं तो पर्वत जल छोड़ने लगे और कहींपर नहीं ॥ ३६ ॥ जैसे मूढ़ कुटुम्बीजन गृहस्थके जंजालमें पड़े प्रतिदिन अपनी घटती आयुको नहीं देखते, उसी तरह अथाह जलमें रहनेवाले जन्तु घटते हुए जलको न देख सके ॥ ३७ ॥ जैसे पहले सम्पन्न तथा पीछे दरिद्र, कृपण, अनेक परिवारोंसे युक्त तथा अजितेन्द्रिय जन संसार तापको प्राप्त करते हैं, उसी तरह थोड़े जलमें बसनेवाले जलचर शरत्कालिक सूर्यके तापको प्राप्त करने लगे ॥ ३८ ॥ जैसे विवेकी लोग शनैः शनैः शरीरादिमें स्थित अहन्ता ममता बुद्धिको दूर हटाते हैं, उसी तरह

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ॥ शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥ सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥ यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्नमुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥ नैवाविदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ॥ यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ॥ यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥ केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत् ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥ सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥ अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो

पृथ्वी धीरे-धीरे पङ्कको और वनस्पतियाँ की अपक्वताको दूर हटाने लगीं ॥ ३९ ॥ जैसे मनके भलीभाँति उपरत हो जानेपर मुनि वेदोंके घोषसे निवृत्त हो जाते हैं, उसी तरह शरत्कालके आनेपर निश्चल जलवाला समुद्र वर्षाकालिक महाघोषसे शून्य अतएव शान्त हो गया ॥ ४० ॥ जैसे इन्द्रियोंके रास्ते ज्ञानको क्षरित होता देख योगीलोग इन्द्रियोंका दरवाजा बन्दकर देते हैं, उसी तरह खेतोंसे जलको बहते देख किसानोंने दृढ़ बाँध बाँध दी ॥ ४१ ॥ जैसे ज्ञान देहाभिमानसे उत्पन्न त्रिविध तापको नष्टकर देता है और जैसे व्रजाङ्गनाओंके स्वविरह जनित तापको कृष्ण नष्टकर देते थे, उसी तरह शरत्कालिक सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न कृषकोंके तापको रातमें चन्द्रमाने मिटा दिया ॥ ४२ ॥ जैसे वेदोंके वास्तविक अर्थको बतलानेवाला सत्त्वगुणसे युक्त चित्त शोभता है, उसी तरह शरदृतुके कारण निर्मल तारोंसे युक्त, मेघरहित आकाश शोभने लगा ॥ ४३ ॥ जिस तरह यदुपति कृष्ण यादवोंसे घिर पृथिवीपर सुधर्मा सभामें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शोभित हो रहे थे, उसी तरह तारोंसे घिरे हुए पूर्ण चन्द्रमा आकाशमें शोभने लगे ॥ ४४ ॥ हाथमें न तो ज्यादा ठण्डक रही न ज्यादा गर्मी, वन्य फूलोंसे उसमें सुगन्धि भर गया थी। ऐसे सुखद वायुके स्पर्शसे और लोगोंका ताप तो मिट गया, पर बेचारी गोपियोंका ताप न मिटा, उनके चित्तको तो कृष्णने हर लिया था—वे तो कृष्णके बिना तप्त थीं ॥ ४५ ॥ जैसे ईश्वर प्रीत्यर्थ की गई क्रियाएँ बिना इच्छा किये ही सब तरहके भोगोंसे पूर्ण हो जाती हैं, उसी तरह गौ, मृगी, चिड़ियाँ और स्त्रियाँ बिना इच्छाके ही कामोद्दीपक शरत्कालके आजानेसे बलात् अपने पतियोंसे 'अनुगम्यमान होती हुईं' गर्भवती हो गईं ॥ ४६ ॥ हे राजन्, जैसे धर्मात्मा राजाके आ जानेसे चोरोंको छोड़कर और सभी लोग भयशून्य हो प्रसन्न हो जाते हैं,

भुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥ गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ॥ वर्षरुद्धः यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० द० पूर्वार्धे शरद्वर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

वैसेही शरत्कालमें सूर्यके उदित होनेपर कुमुदिनीको छोड़कर सभी कमल खिलने लगे ॥ ४७ ॥ नवीन अन्नके प्राशनके लिये वैदिक यज्ञों, लौकिक महोत्सवोंसे एवं पके सस्योसे तो पृथ्वीकी शोभा बढ़ी ही, किन्तु भगवान् श्रीविष्णुकी कला बलराम और कृष्णसे तो उसकी शोभा अनन्त गुणित हो गयी ॥ ४८ ॥ जैसे सिद्धलोग अन्तकाल आनेपर स्वर्गलोकमें अपने योग्य देवतादि देहको प्राप्त करते हैं, उसी तरह साधु-संन्यासी, बनिये-व्यापारी, राजा और स्नातक लोग शरत्कालके आनेपर अपने-अपने अर्थोंको प्राप्त करनेमें लग गये ॥ ४९ ॥

बीसवें अध्यायका सार—वर्षाऋतुमें वृन्दावन फलफूलोंसे लद गया। उसकी शोभा इतनी निराली हो उठी कि दुनियाँके सभी सुख उसकी अपेक्षा क्षुद्र हो गये। भगवान् कृष्ण अपने दल-बलके साथ वर्षा विहार करने लगे। कुछ दिनों बाद शरदृऋतु आ पहुँची। यह ऋतु तो और सुख की है इस ऋतुमें न तो ज्यादा गर्मी पड़ती है न ज्यादा ठण्ढक। खेत फलके बोझसे दबे रहते हैं। सारी दुनियाँ इस सुखसे सराबोर थी, किन्तु बेचारी गोपियों पर इसका कोई असर न था। वे तो कृष्णके लिए तड़प रही थीं। उनके अन्तरका वह दाह भला इनक्षुद्र प्राकृतिक सुखोंसे कैसे शान्त होसकता था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ एकविंशतितमोऽध्यायः ❋

(वेणु-गीत)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् जब कि वृन्दावनमें शरत्सुषमा बिखरी हुई थी, जब कि तालावका जल निर्मल हो गया था और कमलोंकी सुगन्धि लेकर वायु इधर-उधर टकराती-फिरती थी, भगवान् कृष्ण गौओं और ग्वालबालोंके साथ वहाँ पहुँचे ॥१॥ जहाँकी वनरानियाँ फूलोंसे लद चुकी थीं। उसपर मतवाले भ्रमर और पक्षी गुञ्जार कर रहे थे। तालाब, नदी और पर्वत उनसे मुखरित हो उठे थे। ऐसे वनमें भगवान् कृष्ण ग्वालबालों एवं बलरामके साथ प्रविष्ट होकर गौओंको चराते हुए वंशी बजाने लगे ॥ २ ॥ कामोत्तेजक भगवान् श्रीकृष्णकी उस वंशी ध्वनिको सुन कुछ गोपियाँ उसके समीप दौड़ गईं। वहाँकी सारी बातोंका अनुभवकर लौट आईं और परोक्षमें अपनी सखियोंसे उसका वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥ हे राजन्, कामके वेगसे वे पागल-सी हो गई थीं, अतः श्रीकृष्णके व्यवहारोंका स्मरण करती हुईं वे वर्णन करनेके लिये प्रवृत्त तो हुईं, किन्तु वर्णन न कर सकीं ॥४॥ उनके मनमें उद्वेग

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥ न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥१॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ॥ मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥ तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥ तद्वर्णयितुमारब्धा स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥४॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ॥ रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ । इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये विरेज-

उत्पन्न करनेवाला कृष्णका स्वरूप बड़ाही मनोरम था। वे अलकोंमें मोरपंख लगाये हुए थे, नट-सा उनका वेष था, कानोंपर कनैलके फूल थे, सुवर्ण-सा पीला पट पहने हुए थे, वैजयन्तीकी माला घुटनेतक लटक रही थी, मुखवायुसे वंशीके रन्ध्रोंको भर रहे थे और उनके साथी उनके गुनगान गा रहे थे। ऐसे भगवान अपने चरणचिन्होंसे वृन्दावनको रम्य बनाते हुए उसमें प्रविष्ट हुए ॥ ५ ॥ हे राजन, सभी प्राणियोंको मोहित करनेवाली वंशीकी उस टेरको सुनकर गोपियाँ भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करती हुईं मन ही मन कृष्णका आलिङ्गन करने लगीं ॥ ६ ॥ गोपियोंने कहा—हे सखियो, वंशी बजाते तथा अपने अनुरक्तोंके ऊपर कटाक्षविक्षेप करते हुए पशुओंको चरानेके लिये वनमें ले जाते समय व्रजेशके पुत्र बलराम और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीकृष्णके मुखके माधुर्यका जिन लोगोंने अपने नेत्ररूपी भृङ्गोंसे अनुभव किया तथा उन लोगोंने जो प्राप्त किया, बस, एकमात्र यही तो आँखवालोंकी आँखोंका मुख्य फल है, इससे बढ़कर और कोई दूसरा फल तो हम नहीं जानतीं ॥ ७ ॥ अन्य गोपियोंने कहा—जब वे दोनों अपने मस्तकपर आमके कोमल पल्लव, मोरपंख, फूलोंके गुच्छे, कानोंमें दो कमल, दाहिने हाथमें एक नीलाकमल तथा गलेमें माला धारणकर इनसे कुछ दूरीपर पहने हुए दो नील पीताम्बरोंसे विचित्र वेष बनाकर कभी ग्वालवालोंके बीचमें बैठ जाते और गाना गाने लग जाते हैं तब वे ऐसे शोभने लगते हैं, जैसे कि मल्लयुद्ध स्थान विशेष नटसभामें गाना गा रहे दो नटवर शोभते हों ॥ ८ ॥ सखियो, भला इस वंशीने ऐसे कौन-से पुण्य किये थे जिनसे कि हम गोपियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ यह कृष्णकी अधरसुधा निःशङ्क पी रही है [अब तो हमें वह जब कभी भाग्यसे मिलेगी, तो फिर जूठनही होकर मिलेगी ?] जैसे अपने कुलमें किसी भक्तको उत्पन्न हुआ देख वृद्धगण रोमाञ्चित हो अश्रुधारा बहाते दीखते हैं—फूले नहीं समाते उसी तरह जिनके वंशमें यह उत्पन्न हुई है वे बाँसके वृक्ष सब रोमाञ्चित हो आनन्द-

तुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्वच गायमानौ ॥८॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः ॥ ९ ॥ वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुत-पदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रि सान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥ धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥११॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकवरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥१२॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ॥ शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥ प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालान् श्रृण्व-

की अश्रुधारा बहाते दिखाई दे रहे हैं और वे नदियाँ जिनसे कि इसका सिंचन हुआ था, खिले हुए कमलरूपी वदनके बहाने रोमाञ्चित-सी दीख रही हैं—आज वे फूली नहीं समातीं ॥९॥ हे सखि, वृन्दावनके कारण इस भूलोककी कीर्ति तो सभी लोकोंसे बढ़ गयी। क्योंकि केवल वृन्दावनका ही यह सौभाग्य है कि कृष्णके चरणचिन्होंसे अङ्कित है, जहाँके मयूर कृष्णकी वंशी ध्वनि सुन उसे मन्दगर्जित नील मेघ जानकर नाच उठते हैं, और उनको नाचते देख पर्वतके शिखरके प्राणी सब अपना-अपना व्यापार छोड़कर बैठ जाते हैं ॥ १० ॥ दूसरी गोपियोंने कहा—सखियो, विवेकहीन होनेपर भी धन्य तो ये हरिणियाँ हैं जो वंशीध्वनि सुनकर विचित्र वेष बनाये हुए नन्दनन्दन कृष्णको प्रेमपूर्वक चल चितवनसे निहार उनकी पूजा कर रही हैं और उनके पति भी पूजनमें हाथ बँटा रहे हैं ॥ ११ ॥ अन्य गोपियोंने कहा—सखियो, कृष्णने एक बार ऐसा वेषका विन्यास किया, जो स्त्रियोंके लिये जबरदस्त आकर्षक था, उनके उस अद्भुत वेषको तथा उनकी बजायी गई वंशीके विचित्र गीतको सुनकर, और स्त्रियोंकी तो बात छोड़ो, विमानोंसे जा रही साक्षात् देवाङ्गनाएँ भी, यद्यपि वे उस समयमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने पतियोंकी गोदमें ही बैठी थीं, कामसे च्युत धैर्य हो मोहित हो गयीं। वे इतनी आपसे बाहर हो गयीं कि उनके जूड़ेके बँधे फूल बिखर गये और नीवी खुल गयी ॥ १२ ॥ अन्य गोपियोंने कहा—जब कृष्ण वंशी बजाने लगते हैं तो गौएँ उनके मुखसे निकले वंशीके गीतामृतको अपने कर्णपुटोंसे ग्रहण करने लगती हैं। जब बछड़े दूध पीनेको तैयार होते हैं और उस समय जब वंशी बजती है तब वे दूधकी घूँटको मुँहमें लिये हुए ही कान खड़ाकर स्थित हो जाते हैं—दूध पीनेकी क्रियाही भूल जाते हैं। वे गौएँ और उनके बछड़े अपने नेत्रमार्गसे मनमें श्रीकृष्णका आलिङ्गन करने लगती हैं, जिससे कि उनकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें टपकने लग जाती हैं ॥ १३ ॥ इस बनमें जो रहनेवाले पक्षी हैं, प्रायः ये मुनि हो हो सकते हैं, क्योंकि वे पक्षी सब, मनोहर जिनमें पल्लव लगे हुए हैं ऐसी वृक्षकी शाखाओंपर चढ़कर अपने भोजन करने योग्य फल आदि न खाकर चूँकि भगवान् श्रीकृष्णका ही एकमात्र हमें दर्शन मिल सके तथा और दूसरे किसीका दर्शन न हो सके—इस विचारसे आँखें मूँदकर तथा अन्य बातें छोड़कर श्रीकृष्णके द्वारा गाये गये वंशीगीतका ही श्रवण करते हैं। मुनिलोग भी तो वेदरूप वृक्षकी शाखाको पकड़कर उसके द्वारा प्रतिपादित कर्मफलोंका त्यागकर मनोहर प्रवाल-जैसे कर्मोंका ही सेवन करते हुए चूँकि भगवान् श्रीकृष्णका भलीभाँति दर्शन हो सके इस

न्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥ नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजै-
र्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह रामगोपैः सञ्चारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् ॥ प्रेमप्रवृद्ध उदितः
कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥ पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ॥
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥ हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्श-
प्रमोदः ॥ मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूर्यवसकन्दरकन्दमूलैः १८ ॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदै-

विचारसे आँखें मूँदकर श्रीकृष्ण गीतका ही श्रवण करते हैं। इसलिये हे माँ, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ये विहँग सब मुनि ही हो सकते हैं ॥ १४ ॥ अन्य गोपियोंने कहा—सखियो, इन चेतन जीवोंकी बात तो छोड़ो, अजी, वंशी बजते समय श्रीमुकुन्दके गीत सुनकर तो जड़ नदियाँ भी काम-विह्वल हो जाया करती हैं। भँवरसे उनकी काम-विह्वलताका थोड़ा-सा अन्दाजा लगाया जा सकता है। देखो न, आलिङ्गनके द्वारा ढककर तरंगरूपी हाथोंसे कमलोंकी हो भेंट चढ़ाती हुई वे श्रीकृष्णके दोनों पैर पकड़ रही हैं ॥ १५ ॥ वह देखो, मेघ तो नर है, परन्तु जब इसने भी देखा कि बलराम और ग्वालबालोंके साथ गौओंको चराते और उनके पीछे-पीछे वंशी बजाते हुए धूपमें परेशान हो रहे हैं, तो वह इनके ऊपर पहले मँडराने लगा और फिर मारे प्रेमके प्रविद्ध हो स्वयं अपने शरीरको ही छत्र बना दिया। इतना ही नहीं, अपने मित्र कृष्णपर फूलोंकी तरह जलकणोंकी वृष्टिकर इनके क्लेशका भी हरण करने लगा ॥ १६ ॥ कुछ गोपियोंने कहा—सखी, हमसे धन्य तो वृन्दावनकी शबराङ्गनाएँ हैं, क्योंकि तृणोंमें लगे कुंकुम दर्शनसे उन्हें जो असह्य कामज्वर हो गया, उस अस्मरज्वरादिका प्रतिकार उन लोगोंने कृष्णके उन चरणकमल लिप्त केसरोंको अपने स्तनोंके ऊपर और मुखोंमें लगाकर कर लिया, जिन्हें पहले तो श्रीकृष्णकी नायिकाओंने अपने स्तनोंपर लगाया था,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बादमें रतिके समय जो कृष्णके चरणोंमें लग गये थे तथा जिनका सौन्दर्य श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी लालिमासे बढ़ गया था एवं जो अब वृन्दावनके तृणगुल्मोंमें इधर-उधर कृष्णके घूमनेसे लग गये थे ॥ १७ ॥ सखियो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह गोवर्द्धन पर्वत भी भगवान् श्रीहरिके दासोंमें सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि बलराम और श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्शसुख पाकर गौओं तथा ग्वालबालोंके सहित उनका जल, तृण, फल-कन्द मूल एवं कन्दराओंसे खूब सत्कार करता है ॥ १८ ॥ अन्य गोपियोंने कहा—सखियो, जब ग्वालबालको साथ लेकर गोएँ चराते हुए एवं मुरली टेरते हुए बलराम और कृष्ण एक वनसे दूसरे वनमें जाने लगते हैं तब वे अपने सिरपर गौओंको दुहते समय उनके पैर छाननेके लिये जो रस्सियाँ रहती हैं

स्तनुसृत्सु सख्यः ॥ अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥ एवंविधा भगवतो या वृन्दावन-
चारिणः ॥ वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकविंश-
तितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

उन्हें तथा दुष्ट गौओंको पकड़ बाँधनेके लिये जो रस्सियाँ रहती हैं उन्हें भी रख लेते हैं। उस समय उनकी अवर्णनीय छटा हो जाती है। मधुर पदोंसे युक्त उनकी वंशीकी आनन्दप्रद ध्वनि सुनकर जितने जंगम प्राणी हैं वे सब तो स्थिर हो जाते हैं एवं जितने वृक्ष हैं उनमें रोमाञ्च होने लगता है [वृक्ष शब्द यहाँ उपलक्षण है अर्थात् जितने स्थावर प्राणी हैं उन सबमें गति आ जाती है। यह आश्चर्यकी बात है ॥ १९ ॥ इस तरह वृन्दावन विहारी भगवान् श्रीकृष्णकी क्रीड़ाओंको परस्पर कह-सुन रही गोपियाँ तन्मयको प्राप्त होने लगीं ॥ २० ॥

इक्कीसवें अध्यायका सार—कृष्णके बिना गोपियोंका दिन बड़ो कठिनतासे बीतता था। वे दिन भर उनकी चर्चामें ही रत रहती थीं। कभी एक गोपी जब उनकी किसी लीलाका वर्णन करने लगती तो अन्य गोपियाँ उसे बड़े मनोयोग से सुनतीं और जब वह वर्णन करने लगतीं, तो दूसरी गोपियाँ सुनने लगतीं। वे वृन्दावनकी शबराङ्गनाओं हरिणियों, यहाँतककि नदियोंको भी अपनेसेध न्य समझतीं थीं, इसलिए कि इन लोगोंको भगवान् की लीलाओंका उनकी मादक मुरलीध्वनिका रसास्वाद मिलता रहता था॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❋ अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ❋

(चीरहरण लीला)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब हेमन्तऋतुका पहला मास आया यानी जब अगहनका महीना आया, तब व्रजकन्याओंने श्रीकृष्णको पतिरूपमें पानेके लिये सिर्फ

श्रीशुक उवाच ॥ हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ॥ चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्याम्भसि
कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे ॥ कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥ २ ॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥

हविष्य खाकर ही कात्यायनी देवीकी पूजाका व्रत करना शुरू किया ॥ १ ॥ अरुणोदय वेलामें यमुनाजलमें स्नानकर वे जलके किनारे बालूकी मूर्ति बना देवीकी पूजा करने लगीं ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके पूजनमें चन्दन सुगन्धित माला, बलि, धूप, दीप तथा उत्तम, मध्यम, अधम यथा प्राप्त वस्त्राभरण आदि उपहारों एवं नूतन, पल्लव, फल एवं चावलका व्यवहार होता था ॥ ३ ॥ हे कात्यायनि, हे महामाये, हे महायोगिनि एवं हे अधीश्वरि, श्रीकृष्णको मेरा पति बनाओ, तुम्हें नमस्कार है। इस तरह प्रार्थनापूर्वक नमस्कारोत्सुक मन्त्रका जप करती हुई वे प्रतिदिन पूजन करती थीं ॥४। हे राजन्, एकमात्र कृष्णमें ही जिनका चित्त लगा हुआ था ऐसी वे कुमारियाँ 'हे देवि' नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों' इस तरह श्रीकृष्णको ही पति बनानेकी चाहकर रही उन कुमारियोंने एक मासतक भद्रकालीकी अर्चना की ॥ ५ ॥ वे प्रतिदिन उषाकालमें उठतीं एक दूसरेका नाम लेकर जगातीं और एक दूसरेका हाथ पकड़कर यमुनामें नहाने जाते समय कृष्ण-कृष्ण कहते हुए खूब जोरसे भगवान् श्रीकृष्णके नामोंका गान करती थीं ॥ ६ ॥ एक दिनकी बात है। प्रतिदिनकी तरह आज भी गोप कन्याएँ आयीं और तटपर अपने अपने वस्त्र उतार जलमें उतर पड़ीं और बड़े आनन्दके साथ कृष्णका यशगान करती हुई जलमें विहार करने लगीं ॥ ७ ॥ भगवान् कृष्णने उन गोपकन्याओंके मनकी बात

उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ ४ ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥५॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ॥ कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ ७ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ ८ ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ ९ ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ १० ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ ११ ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योऽन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ १२ ॥ एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणा क्षिप्तचेतसः ॥ आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनयं

जान ली थी। अतः योगेश्वरोंके ईश्वर ग्वालबालोंके साथ उनके मनोरथ पूर्तिके लिये वहाँ आ गये ॥ ८ ॥ वे उन सबोंका सारा वस्त्र लेकर कदम्बपर झट चढ़ गये। हँसते हुए ग्वालबालोंके साथ स्वयं मुसकुराते हुए वे ठिठोलीमें गोपियोंसे कहने लगे ॥ ९ ॥ अबलाओ, इस पेड़के नीचे आकर अपने इच्छानुसार अपने-अपने वस्त्र ले जाओ। मैं सच कहता हूँ। इसे परिहास मत समझो, क्योंकि तुम लोग व्रतसे सफल हो गयी हो, तुम्हें सताना अच्छा नहीं ॥ १० ॥ हे सुन्दर कमरयुक्त अबलाओ, मैंने तो कभी झूठ बोला ही नहीं, नहीं प्रतीति हो, तो मेरे इन साथियोंसे पूछ लो, ये तो यह खूब जानते हैं। तुमलोग चाहे एक-एककर वस्त्र ले जाओ चाहे एक साथ सभी आओ ॥ ११ ॥ कृष्णके उस परिहासको देखकर उससे गोपियाँ प्रेमसे आप्लुत हो गयीं। एक दूसरेको देख लज्जित हो गईं और हँस पड़ीं, नदीसे निकली नहीं ॥ १२ ॥ कृष्णके इस तरह बार-बार कहनेपर उनके उपहाससे उन कुमारियोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मन भगवान्‌की ओर और खींच गया। वे कण्ठभर जलमें डूबकर खड़ी रहीं, शीतसे कँपकँपी छूट रही थी। कहने लगीं ॥ १३ ॥ हे कृष्ण, तुम अनीति मत करो, हम जानती हैं कि तुम नन्दके लाड़ले लाल हो एवं सारा व्रज तुम्हारी सराहना करता है, अतः अन्याय न करो, हमें वस्त्र दे दो, हम काँप रही हैं ॥१४॥ श्यामसुन्दर, हम तो तुम्हारी दासी हैं, जो कहोगे वह हम करेंगीं किन्तु धर्मात्मा जरा वस्त्र तो दे दो। यदि हठ पकड़ोगे तो राजासे प्रार्थना करेंगी, हाँ ॥१५॥ भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अच्छा, यदि तुम मेरी दासियाँ हो और मेरे कहेके अनुसार चलोगी, तो मेरा कहना करो। सुहासिनियो, यहाँ आओ और अपने-अपने वस्त्र ले जाओ ॥ १६ ॥ व्रजबालाएँ ठण्ढसे ठिठर रही थीं। सब हाथोंसे योनिको ढँककर उस जलाशयसे बाहर निकल आयीं, भगवान् उनके विशुद्ध भोलापनसे बहुत सन्तुष्ट हुए। उनका अक्षत कन्यात्व देख उन्हें और सन्तोष हुआ। कदम्बकी डालपर वस्त्र रखकर उन्होंने कहा ॥१८॥ व्रत धारण करनेपर भी तुम लोगोंने नग्न होकर जो नदीमें स्नान किया है, तो यह देवताओंका एक बड़ा अपराध हो गया है। अतः उस अपराधजन्य पापसे छूटनेके लिये मस्तकपर

भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ॥ जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ॥ अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥ भगवानाहता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ॥ स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ॥ बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहिता व्रजाबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यताः ॥ २० ॥ तास्तथाऽवनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥ दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः

हाथ जोड़कर क्षमा माँगो और वस्त्र ले लो ॥१९॥ कृष्णके ऐसा कहनेपर व्रजबालाओंने समझ लिया कि नग्नस्नानसे हमारा व्रत खण्डित हो जायगा। अतः उसकी पूर्तिके लिये लोगोंने व्रतगत हुए दोषका परिमार्जन करनेवाले तथा अन्य सभी कर्मोंके साक्षात्फलस्वरूप उन कृष्णको ही नमस्कार किया* क्योंकि सभी पापोंके निवारक वही हैं ॥२०॥ देवकी सुत भगवान् कृष्ण उन्हें इस तरह अवनत देख उनके वैसे प्रणाम करनेसे बहुत सन्तुष्ट हुए और कृपा करके उनके वस्त्र लौटा दिये ॥ २१ ॥ कृष्णने जो यह कहा कि तुमने यमुनामें नंगी स्नानकर

---

* किसी-किसी भागवतमें ग्रन्थान्तरके भी निम्नलिखित दो श्लोक दिखाई पड़ते हैं—"एकेन पाणिना नेमुरेकेनाच्छाद्य योनिकम्। ता वीक्ष्योवाच भगवान् भूयोधर्म्यमिदं वचः। एकेन पाणिना यो वै प्रणमेद्देवमच्युतम्। तस्य दण्डः करच्छेदः इति धर्मविदो विदुः।" शातातपने भी इस विषयमें यह कहा है—"जन्मप्रभृति यत् किञ्चिच्चेतसा धर्ममाचरेत्। तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनात् ॥"

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवताओंका अपराध किया है, जलसे बाहर आकर वस्त्र ले लो, हम सच बोलते हैं, हँसी नहीं करते, हाथ जोड़कर प्रणाम करो यों भगवान्‌की बातोंसे ठगी जाने, लज्जासे परित्यक्त होने, उपहसित होने तथा कठपुतली-जैसी बनाई जानेपर तथा उनके वस्त्र चुरा लिये जानेपर भी उन्हें कोई असूया न हुई। बल्कि थोड़ी देर प्रियतमकी सन्निधि मिल जानेसे उनके आनन्दकी सीमा न रही ॥२२॥ वे वस्त्र पहनकर चलनेको तैयार तो हो गईं किन्तु एक पग भी बढ़ न सकीं। क्योंकि प्रियके सम्पर्कसे वशीभूत हो गई थीं अतएव उनका चित्त प्रियकी ओर खींच गया था। लज्जापूर्ण नयनोंसे वे उन्हें निहारने लगीं ॥ २३ ॥ पतिभावसे चरणस्पर्शकी कामनाकर व्रत करनेवाली उन व्रजकुमारियोंका अभीष्ट जानकर भगवान् दामोदरने उन अबलाओंसे कहा—हे साधु-स्वभाववाली कुमारियो, तुम्हारे कहे बिना ही मैं तुम लोगोंका मेरे अंगके साथ स्पर्श करनेका जो सङ्कल्प किया है वह मैं तुम लोगोंने कहे बिना ही जान गया हूँ, मैं तुम्हारी उस इच्छाका अनुमोदन करता हूँ। तुम्हारा वह संकल्प अवश्य पूरा होगा ॥२४, २५॥ मुझमें आसक्तचित्त पुरुषोंका काम ऐसे कामके लिये नहीं रह जाता, जैसे भूँजा गया या

प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ॥ वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन्प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः ॥२३॥ तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां सङ्कल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥२४॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ॥ भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥२६॥ याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ॥ यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥ ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥२८॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः ॥ वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन्गाः सहाग्रजः ॥२९॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥ आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥३०॥ हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ॥ विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥३१॥ पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकान्तजीवितान् ॥ वातवर्षातपहिमान्सहन्तो वार-

व्यथित हुआ जो प्रायः अंकुरोत्पादनके लिये स्वीकृत नहीं किया जाता ॥२६॥ हे सती अबलाओ, अब तुमलोग व्रज [अपने घर लौट जाओ। तुम सब पूर्णमनोरथ हो चुकी। चूँकि मेरे साथ रमण करनेके उद्देश्यसे तुमलोगोंने यह व्रत किया है, अतः इन आनेवाली शरत्‌की रातोंमें मेरे साथ रमण करोगी शरत्‌की रातोंमें तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी ॥२७॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्‌का यह आदेश पाकर एवं स्तब्ध मनोरथ हो वे व्रजबालाएँ उनके चरणकमलोंका ध्यान करती हुईं बड़ी कठिनतासे व्रज लौटीं ॥ २८ ॥ बाद देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण बलराम एवं ग्वालवालोंको साथ लेकर, गौएँ चराते हुए, वृन्दावनसे दूर जा निकले ॥२९॥ वहाँ उन्होंने देखा कि वृक्ष तिग्म ग्रीष्मकालके सूर्यके आतपमें अपनी छायासे छत्ररूपमें अपनेको परिणतकर धूपसे पीड़ित लोगोंको शान्तिप्रदान कर रहे हैं। तब उन्होंने गोपोंसे कहा—हे स्तोक कृष्ण, हे अंशो, हे श्रीदामन, हे सुबल, हे अर्जुन, हे विशाल, हे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऋषभ, हे तेजस्विन्, हे देवप्रस्थ और हे वरूथप ॥ ३०, ३१ ॥ एकमात्र दूसरोंके उपकारके लिए जिनका जीवन है, ऐसे जरा इन वृक्षोंकी ओर तो देखो, ये स्वयं आँधी-पानी, सर्दी-गर्मी सहकर हम दूसरोंको उनसे बचाते हैं ॥ ३२ ॥ अहो, सभी प्राणियोंके जीवनके साधनरूप इन वृक्षोंका जन्म सराहनीय है—सचमुच धन्य है। जैसे किसी सज्जनके पास कोई याचक विमुख नहीं लौटता, उसी तरह इनके पाससे भी कोई व्यक्ति निराश होकर नहीं लौटता ॥ ३३ ॥ ये पत्र फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी गन्ध, गोंद, राख, कोयला और कोयल आदिसे प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इसी तरह जो लोग प्राण, धन, बुद्धि और वाणीसे दूसरोंका सदा कल्याण करते हैं, इतनाही तो बस, इस संसारमें सभी प्राणियोंके

यन्ति नः ॥३२॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥३३॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूल-वल्कलदारुभिः ॥ गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ॥३४॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः ॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥ ३६ ॥ तत्र गाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः ॥ ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप ॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

बीचमें उन थोड़ेसे महानुभावोंके जीवनकी सफलता समझनी चाहिए ॥ ३५ ॥ इस तरह वृक्षोंकी प्रशंसा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण पल्लव, गुच्छे फल, फूल तथा पुष्प-पत्रोंके समूहोंके भारसे विनम्र शाखाओंवाले वृक्षोंके नीचेसे होते हुये यमुनातटपर जा पहुँचे ॥ ३६ ॥ हे राजन, वहाँ पहुँचकर गोपोंने मीठा, शीतल, स्वच्छ, लाभकारी जल गौओंको पिलाया और उसके बाद स्वयं भी पीया ॥ ३७ ॥ फिर हे राजन्, यमुनाके कछारपर उन लोगोंने गौओंको यथेष्ट चरने दिया। बाद उन्हें जोरोंसे भूख लग आई। क्षुधासे पीड़ित रामकृष्णके पास जाकर वे यह कहने लगे। ३८ ॥

बाईसवें अध्यायका सार—हे राजन्, जब अगहनका महीना आया, तो व्रजबालाओंने कृष्णको पतिरूपमें पानेके लिए कात्यायनी देवीकी पूजाका व्रत करना शुरू कर दिया। उस समय वे केवल हविष्यान्न खाती, तड़के उठकर यमुनामें स्नान करती, बालूकी मूर्ति बना देवीजीकी पूजा करती और इस आशयके मन्त्रका जप करतीं कि—हे भगवति, कृष्णको हमारा पति बनाओ। एक दिन की बात है कि वे व्रजबालाएँ यमुना तटपर आयीं और अपने-अपने वस्त्र छोड़कर यमुनामें नहाने लगीं। भगवान्ने उनका मनोरथ जान लिया था। वे उन्हें प्रसन्न करनेके लिए और उनके व्रतके वैगुण्य दूर करनेके लिए यमुना तट पर आ पहुँचे। उनके सभी वस्त्रोंको लेकर कदम्ब पर चढ़ गये। गोपकन्यायें शीतसे जकड़ी जा रही थीं, उन्होंने कृष्णसे अपने-अपने वस्त्रों की माँग की। भगवान्ने कहा—यदि तुम्हें वस्त्रों की जरूरत है, तो पेड़के नीचे आकर ले जाओ। उन्होंने वैसा ही किया। उनके इस भोलापन, आदि व्यवहारसे भगवान्को बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने कहा कि—तुम लोगोंके नग्न स्नान करनेके कारण देवताओंका अपराध हो गया है। अतः उन्हें प्रणाम करो। गोपियोंने कृष्णको ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सभीका नियन्ता समझ प्रणाम किया। और उनका व्रत पूरा हो गया। भगवान्ने समझाया—हे व्रजकुमारियों, अब अपने घर जाओ। मैं तुम लोगोंके कहे बिनाही तुम सबोंका अभिप्राय जान गया हूँ। आगामी शरदऋतुमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।

❋ अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ❋

[ग्वालबालोंका यज्ञशालामें जाकर भातमाँगना]

ग्वालबालोंने कहा—हे राम, हे कृष्ण, तुम बड़े पराक्रमी और दुष्टोंका विनाश करनेवाले हो। देखो न, हमें भूख सता रही है, अतः इसका प्रतिकार करो ॥१॥ श्रीशुकदेवजीने कहा राजन् यों ग्वालबालोंके कहने पर देवकीसुत भगवान् कृष्णने एक ऐसा रास्ता सोचा, जिससे कि उनकी भूख भी मिटे और भक्त यज्ञपतियोंके ऊपर कृपा करनेका भी अवसर प्राप्त हो ग्वालबालोंसे यह कहा—तुम लोग अङ्गिरस यज्ञमें जाओ यहाँसे वह थोड़ी ही दूर पर हो रहा है। स्वर्ग जाने की इच्छासे कुछ वेदपाठी ब्राह्मण उसका अनुष्ठान कर रहे हैं ॥ २, ३ ॥

गोपा ऊचुः ॥ राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान्देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ॥ कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचन्त ते तथा ॥ कृताञ्जलिपुटा विप्रान्दण्डवत्पतिता भुवि ॥ ५ ॥ हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ॥ प्राप्तान् जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥६॥ गाश्चारयन्तावविदूरं ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥ दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र

ग्वालबालों वहाँ जाकर मेरा और सर्वप्रथम भगवान् बलराम भैयाका नाम लेकर भात माँगना, हम दोनों तुम्हें भेज रहे हैं ॥ ४ ॥ यों भगवान्की आज्ञा पाकर लड़के वहाँ पहुँचे। पृथ्वी में लोटकर दण्डवत् प्रणाम किया और याचना की ॥ ५ ॥ हे भूमिदेवो, आपलोग सुन लीजिए। आप लोगोंका कल्याण हो। हम लोग कृष्णकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं उनकी आज्ञा तथा बलरामजीके कहनेसे आपके पास आये हैं हम सबके सब गोप हैं ॥ ६ ॥ गौ चराते हुए वे यहाँसे थोड़ी दूरपर आ निकले हैं। हे विप्रो, उन्हें भूख लग आयी है। यदि उन पर आपकी श्रद्धा हो, तथा आप लोगोंके पास भात हो तो हे धर्मात्माओं, उनके लिए दे दीजिए ॥ ७ ॥ महानुभावों, आप जानते ही हैं कि पशुबलिवाले योगमें पशुबलिसे पूर्व एवं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सौत्रामण्य यागके अवसरपर यजमानके घरका अन्न न खाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यागोंमें दीक्षितोंके अन्न खाने-खिलानेमें दोष नहीं है ॥ ८ ॥ क्षुद्र स्वर्गादिमें ही एकमात्र जिनकी आशा थी, अतः उसके लिए नानाप्रकारके क्लेश बहुत कर्म करनेवाले वेदोंका मर्मज्ञ न होते हुए भी अपनेको महान् पण्डित माननेवाले उन ब्राह्मणोंने इस प्रकार ग्वालबालोंके मुखसे भगवान्की प्रार्थना सुनते हुए भी न सुनी ॥ ९ ॥ भला देश, काल, हवनके विभिन्न उपकरण, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विग्, अग्नियाँ, देवता, यजमान, योग, और अपूर्वात्मक धर्म ये सभी भगवान्के स्वरूप हैं, उन साक्षात् परब्रह्म परमात्मा अधोक्षज भगवान्की उन दुर्बुद्धि ब्राह्मणोंने, जो कि इस शरीरमें 'हम ब्राह्मण हैं' इस तरहका अभिमान रखनेवाले थे, मनुष्यमात्र समझा, उनका आदर नहीं किया—उनकी बात सुनी अनसुनी कर दी। हे परन्तप, उन लोगोंने न तो 'न' कहा और न 'हाँ' ही कहा, चुप्पी साध ली। बेचारे वे बालक निराश हो गये और लौटकर राम-कृष्णसे यह समाचार सुनाया ॥ १०-१२ ॥ इन बातोंको सुनकर जगदीश्वर भगवान् हँस पड़े। भाई, निराश मत होओ, माँगने पर अपमान होता ही है, इसके लिए

दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् ॥ मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥ ११ ॥ न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥ १२ ॥ तदुपाकर्ण्य भगवान्प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥ मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाथ पत्नीशालायां दृष्ट्वासीनाः स्वलङ्कृताः नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ॥ इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन्स गोपालैः सरामो दूरमागतः ॥ बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय

चिन्ता न करो यों सांसारिक स्थिति दिखलाते हुए फिर कहने लगे, ॥ १३ ॥ अब तुम सब यज्ञपत्नियोंके पास जाकर कहो कि राम-कृष्ण यहाँ ठहरे हुए हैं। वे तुम्हें यथेष्ट भोजन देंगी, वे देहमात्रसे घरमें रहती हुई भी बुद्धिसे मुझमें ही रहती हैं—उनका मन मुझमें ही लगा रहता है ॥ १४ ॥ वे वहाँ फिर पहुँचे। देखा कि पत्नीशालामें ब्राह्मणियाँ सजधजकर बैठी हैं। गोपोंने उन्हें प्रणाम किया और विनयपूर्वक यह कहा—॥ १५ ॥ विप्रपत्नियो, आपको नमस्कार करते हैं, आप हमारी बातें सुनें। यहाँसे थोड़ी दूर पर भगवान् कृष्ण गौ चरा रहे हैं। उन्होंने हमें आपके पास भेजा है। वे ग्वालबाल तथा बलरामके साथ गौ चराते हुए दूर निकल आये हैं। उन्हें तथा उनके हमसाथियोंको भी भूख लग आई है। आप भोजन दे दीजिए ॥ १६, १७ ॥ भगवान्की कथा सुननेसे आकृष्टचित्त वे पवित्र साध्वी नारियाँ भगवान्के दर्शनके लिए बहुत दिनोंसे उत्सुक थीं। जब उन्होंने भगवान्को समीपमें आया सुना तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्हें भूखा जाना तो सहमा सहम गयीं ॥ १८ ॥ थालियोंमें चार प्रकारके बढ़िया बढ़िया, स्वादिष्ट गुणकारक पदार्थ लेकर वे कृष्णकी ओर चलीं, मानो अनेक नदियाँ अपने प्रिय समुद्रमें मिलने जा रही हों ॥ १९ ॥ यद्यपि उनके पति, पुत्र, भाई, बन्धु उन्हें रोक रहे थे, पर वे न मानीं। क्योंकि जब बहुत दिनों तक भगवान्के गुणानुवाद सुनते रहनेके कारण उनका मन उनमें दृढ़तासे आबद्ध हो गया था, तब रुकतीं कैसे ? ॥ २० ॥ उन लोगोंने देखा कि यमुनाके उपवनमें, जो कि अशोकके नवपल्लवोंसे आच्छादित था, ग्वालबाल एवं रामके साथ भगवान् कृष्ण विचर रहे हैं ॥ २१ ॥ उनका श्याम वर्ण था, वह पीताम्बर पहने थे, वनमाला उनके गलेमें लटक रही थी, माथेपर मयूरपुच्छ था, अंगोंमें गेरु आदि लगाये हुए थे, सिरपर पल्लव रखे हुए थे, कानोंपर कोमल कमल खुसे हुए थे, कपोलोंपर अलकें बिखर रही थीं, मुखकमलपर मृदुल मुसकान खेल रही थी। वे एक सजे-धजे अभिनेता-से मालूम पड़ते थे। उनका एक हाथ अपने मित्रके कन्धेपर था और दूसरे हाथसे वे कमल घुमा रहे थे ॥ २२ ॥ हे नरेन्द्र, यज्ञपत्नियोंने बहुत दिनोंसे सज्जनोंके कानोंके आभूषणरूप भगवान् कृष्णके

भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥ निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ॥ विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥२२॥ प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ॥ अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥२५॥ नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ॥ अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥२६॥ प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्सम्पर्कात्प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥

उत्कर्षोंको सुन सुनकर आकृष्टचित्त हो उनके स्वरूपकी रूपरेखाकी कल्पना आती रहती थी। आज उन्हीं प्रियतमको अब आँखोंके रास्ते हृदयमें बिठलाकर देरतक मानसिक आलिङ्गन कर विरहतापको ऐसे बुझा सकीं जैसे अहंवृत्तियाँ सुषुप्तिके साक्षीमें लयको प्राप्तकर सांसारिक ताप बुझा देती है ॥ २३ ॥ भगवान् कृष्णने देखा कि ये बेचारी गृह, पुत्र आदि सारी ममताओंको छोड़कर केवल मेरे दर्शनके लिए मेरे पास पहुँची हैं, तो उन्हें उनपर प्रसन्नता हुई। सर्व बुद्धिसाक्षी भगवान्ने हँसकर कहा ॥ २४ ॥ देवियो, मैं आपका स्वागत करता हूँ, आइये बैठिये, बतलाइये मैं आपका कौनसा हित करूँ। आप मुझे देखने यहाँतक जो आयीं, यह आपके योग्य ही हुआ है ॥ २५ ॥ इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जो लोग आत्मप्रिय मुझमें यथोचित साक्षात् फलकी इच्छासे रहित तथा बिना किसी व्यवधानके भक्ति करते हैं वे सचमुच स्वार्थदर्शी और निपुण हैं ॥ २६ ॥ जिस आत्माके सम्पर्कसे यानी अभ्यासके सम्बन्धसे ही प्राण, बुद्धि, मन, जाति-भाई, देह, स्त्री, पुत्र आदि अपत्य तथा धन आदि सभी प्रिय बनते हैं, भला उस आत्मासे अन्य कौन प्रिय होगा [वह आत्मा मैं ही हूँ] ॥२७॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अब आप यज्ञशालामें लौट जाइये । वहाँ पहुँचनेपर ही आपके साथ होवे तभी आपके गृहस्थ ब्राह्मण पतिलोग यज्ञको पूर्णकर सकेंगे, नहीं तो आपके बिना वह अधूरा ही रह जायगा ॥ २८ ॥ ब्राह्मणपत्नियोंने कहा—भगवन्, आप ऐसी कठोर बातें न कहें । आप 'न स पुनरावर्तत' इस वेदवाक्यको सत्य करें, क्योंकि हम तो अपने पति-पुत्रादि समस्त बन्धुओंका तिरस्कारकर आपके चरणोंमें आयी हैं और आपकी भक्त हैं । आपके चरणोंसे च्युत तुलसीकी माला बड़े आदरके साथ हम अपने मस्तकपर रखनेको तैयार हैं । वही हमारा सब कुछ होगी, बस, आप मुझे इतना ही अधिकार दीजिए ॥२६॥ लौटनेपर तो हमारे पति, माँ-बाप, बेटे, भाई-बन्धु ही जब मुझे अंगीकार न करेंगे, तो फिर अन्यलोग हमें कैसे आश्रय देंगे ? इसलिए हे अरिन्दम, आपके चरणोंपर पतित शरीरवाली हमलोगोंकी आपके सिवा और कोई दूसरी गति नहीं है, इसलिए आप अपनी दासी हमें बना लीजिये ॥ ३० ॥ भगवान्ने कहा—देवियो, तुम डरो मत । मेरे द्वारा भक्तरूपसे स्वीकृत तुम्हारे पति, पिता, भाई-बन्धु, लड़के आदि तथा और दूसरे जन भी तुम्हें दोषारोपपूर्वक न देखेंगे । देखो न आकाशमें देवता भी जब तुम्हारा

तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ॥ स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥ २६ ॥ गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥३०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ॥ तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥३२॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता द्विजपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥३३॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् ॥ हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥३५॥ एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतैः ॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः ॥ यद्वि-

समर्थनकर रहे हैं, तो तुम्हारे परिजन तुम्हारा समर्थन क्यों न करेंगे ? इस संसारमें अङ्गासङ्ग प्राणियोंको सुख नहीं दे सकता और न नितरां स्नेहको ही बढ़ा सकता है अर्थात् यह बात नहीं है कि संयोगसे ही प्रेम बढ़ता है । बल्कि वियोगमें ही वह पुष्ट होता है । सो हे देवियो, घर जाकर मुझमें अनुराग रखना, शीघ्रही तुमलोग मुझसे मिलोगी ॥३१, ३२॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्के यों कहनेपर वे देवियाँ यज्ञस्थलको लौट गयीं । उनके परिजनोंने इसको थोड़ा भी बुरा न माना और उनके साथ यज्ञकृत्यको समाप्त किया ॥३३॥ उनमेंसे एक ब्राह्मणने अपनी पत्नीको बाँध रखा था । उस बेचारीने जैसा भी भगवान्को सुना था उसी रूपमें उनका मानसिक आलिंगनकर कर्मानुबन्धी अपने स्थूलशरीरका परित्यागकर दिया ॥ ३४ ॥ यहाँ जगदीश्वर भगवान् कृष्णने भी उन विप्रपत्नियों द्वारा लाये गये चार प्रकारके अन्न गोपबालोंको खिलाकर स्वयं भी खाया ॥ ३५ ॥ लीलाके लिए मनुष्यरूपधारी श्रीकृष्णभगवान्ने इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरह नृलोकका अनुकरणकर रूप, वाणी, एवं कर्मसे गोपों तथा गोप गोपिकाओंको रमण कराते हुए स्वयं रमण किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर, चूँकि लीलाविग्रहधारी विश्वेश्वरोंकी (श्रीकृष्ण और बलराम) की प्रार्थना हमलोगोंने ठुकरा दी, अतः हमलोगोंने महान् अपराध किया—यों अपनी गलती महसूसकर वे ब्राह्मण आदि पश्चात्ताप करने लगे ॥ ३७ ॥ और जब उन्होंने अपनी यज्ञपत्नियोंकी भगवान्कृष्णमें अलौकिक भक्ति एवं अपनेमें उसका अभाव देखा, तब उन्हें और पश्चात्ताप हुआ। वे अपनी भर्त्सना करने लगे कि हमारा ब्राह्मणजातिमें जन्म लेना, वेदका पढ़ना, व्रत लेना, बहुज्ञ होना, उच्चकुल एवं कर्मकाण्डकी कुशलता आदि सब व्यर्थ हुए, हमारे इन सबको धिक्कार है। क्योंकि हमलोग परमात्मासे विमुख हैं ॥ ३८, ३९ ॥ भगवान्की माया सचमुच योगियोंसे भी गम्य नहीं है—उन्हें भी मोहमें डाल देती है। तभी तो हम ब्राह्मण भी, जो समाजके नेताहैं, अपने स्वार्थमें फँस गये—इस भक्तिसे वञ्चित रह गये ॥ ४० ॥ अहो, देखो न, इन स्त्रियोंकी भी जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें कैसी सर्वबाधक भक्ति हो गई है—आश्चर्यकी बात तो यह है कि जहाँ हम इस लाभसे वञ्चित रह गये, वहाँ

श्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥ आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥ ३८ ॥ धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम् ॥ धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्-गुरौ ॥ दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥ नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४२ ॥ अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ॥ अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४४ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्या-शिषां पतेः ॥ ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥ ४५ ॥ हित्वान्यान्भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयासकृत् ॥ आत्मदोषापवर्गेण

इन स्त्रियोंने कृष्णमें अचल निष्ठा प्राप्तकर ली है, जिससे कि गृहस्थीके सारे जंजाल उनके कट-फट गये हैं ॥ ४१ ॥ यद्यपि इन स्त्रियोंका कोई संस्कार नहीं हुआ, इन्होंने गुरुकुलमें वास भी नहीं किया, न तपश्चर्या की, न आत्मविचार किया, न इनमें पवित्रता है और न तो ये सन्ध्योपासनादि ही करती हैं, फिर भी यह आश्चर्य है कि इनकी उत्तमश्लोक योगेश्वर भगवान्में दृढ़ भक्ति है और हमलोग उससे हीन हैं, यद्यपि हमें संस्कार आदि कार्य हुए हैं ॥४२, ४३॥ अजी, हम तो गृहस्थीके नानाविध व्यापारोंसे प्रमत्त—असावधान हो गये हैं और स्वार्थमें विमूढ़ हो गये हैं—अपना परमस्वार्थ ही भूल गये हैं। परमात्माने गोपवालोंको भेजकर हमें चेताया भी, ओह, सज्जनोंकी एकमात्र गति वे कितने दयालु हैं। भला इसके अतिरिक्त उन्हें हम क्षुद्रजीवोंसे क्या लेना-देना था। वे तो आप्तकाम हैं, मोक्ष आदि बड़े-बड़े पुरुषार्थों के वे ईश्वर हैं, हम तो ईशितव्य—अधीन हैं, भला उन्हें हमसे कौन-सा फल साध्य है तथा यह जो उनकी प्रार्थना थी, वह तो उनका लोकानुकरणमात्र थो ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा आदिकी प्रार्थनाको ठुकराकर स्वयं लक्ष्मी जिनके चरणस्पर्शके लिये मरी फिरती हैं और चाञ्चल्यरूप अपना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दोष छोड़कर दिन-रात वहाँ बनी रहती हैं, उनका अब माँगन अवश्य लोगोंकी बुद्धिको चक्करमें डाल देता है ॥ ४६ ॥ देश, काल, हवनके विविध उपकरण, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विग् तीनों अग्नियाँ, देवता, यजमान, याग और धर्म जिनके स्वरूप हैं, वे ही योगेश्वर साक्षात् विष्णुभगवान् यदुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, इस बातको जानकर भी हम मूर्ख उन्हें न जान पाये—हमलोगोंने उनकी आज्ञा टाल दी ॥४७, ४८॥ सन्तोषकी बात एक यह है कि हमारी स्त्रियाँ इतनी भक्तिमति हैं। इन्हींसे हम धन्यतम हैं, क्योंकि इन्हींकी वजहसे हमारी भी निश्चल बुद्धि भगवान्में

तथाज्ञा जनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४७ ॥ स एष भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥ जातो यदुष्वित्यशृणम ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४८ ॥ अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥ ५० ॥ स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ॥ अविज्ञातानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

हो गई है ॥४९॥ भगवन्, आपकी मायासे मोहित होकर ही हमलोग कर्मकाण्डके क्षुद्र पचड़ेमें पड़े हुए हैं। आप आदिपुरुष हैं। हम मायामें फँसे होनेके कारण आपका ऐश्वर्य समझ न सके, अतः हमारा अपराध क्षमा कर दें। अकुण्ठमेध उस भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥ ५०, ५१ ॥ इस तरह भगवान् कृष्णमें हुए अपने अपराधका स्मरणकर वे बड़े अनुतप्त हुए और राम-कृष्णके दर्शनके लिये उत्सुक हो उठे। परन्तु कंसके भयसे वहाँ जा न सके ॥ ५२ ॥

तेईसवें अध्यायका सार—जब गोप बालकोंने भगवान्से भूखकी बात सुनी तो भगवान्ने एक ऐसा रास्ता निकाला, जिससे उनकी भूख भी चली जाय और ब्राह्मण पत्नियोंपर कृपा करनेका अवसर भी मिल जाय। उन्होंने ग्वाल-बालोंसे कहा कि—तुम लोग अङ्गिरा यज्ञमें जाकर वहाँके ब्राह्मणोंसे हमारा नाम ले भोजन माँग लाओ। लड़के वहाँ गये। दण्डवत प्रणाम कर कृष्णका सन्देशा सुनाया। वे चुप्पी साध गये—हाँ, ना कुछ नहीं किये। विचारे बालक निराश होकर लौट आये। तब भगवान्ने उन्हें वहीं उनकी पत्नियोंके पास भेजा। उनकी पत्नियाँ भगवान्के दर्शनोंको बहुत दिनोंसे उत्सुक थीं। तुरन्त भोजनके थाल लेकर चल पड़ीं। उनके आदमियोंने रोका भी, पर उन्होंने किसीका कुछ ख्याल नहीं किया। एक ब्राह्मणने तो अपनी साध्वी स्त्रीको जबरन बाँध भी लिया। विचारी क्या करती, मनही मन भगवान्का ध्यान करने लगी। और अपना स्थूल शरीर छोड़ सबसे पहले भगवान्की सेवामें पहुँची। बाद और विप्रपत्नियाँ भी पहुँच आयीं। भगवान्ने उनका स्वागत सत्कार किया और उनकी उस भक्तिका बड़ा आदर किया। फिर उन्होंने उन्हें यह कहकर लौटा दिया कि प्रेमका बढ़ाव आदर वियोगमें ही अधिक होता है। इसके कुछ दिन बाद ही तुम लोग मुझमें आ मिलोगी इधर ब्राह्मणोंको अपनी भूल सूझ पड़ी। अब बहुत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पछताने लगे कि, हमसे वह भूल क्यों बन पड़ी। उन्हें सन्तोषका यही एक मात्र साधन था कि उनकी पत्नियाँ तो कमसे कम उनकी भक्ति मती हैं। वे चाहने लगे—कब उन श्याम-गौरचक्रका दर्शन करें, किन्तु कंसके भयसे वहाँ पहुँच न सके। तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❋ अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ❋

(इन्द्रकी पूजा रोककर श्रीकृष्णका गोवर्धन पूजाकी सलाह देना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, बलदेवके साथ गोकुलमें रहते हुए एक बार भगवान्ने देखा कि सभी गोपजन इन्द्रयागकी तैयारीमें लगे हैं ॥ १ ॥ भगवान् कृष्ण तो सर्वात्मा तथा सर्वद्रष्टा हैं, उन्हें इस बातका तो पता था ही, फिरभी उन्होंने विनयपूर्वक नन्द आदि बड़े बूढ़ोंसे पूछा ॥२॥ भगवान्ने कहा–पिताजी, यह आपलोगोंका कैसा उत्सव आया है, मुझसे कहिये। इसका क्या फल होगा, इसका कौन-सा उद्देश्य है और किन-किन सामग्रियोंकी इस यज्ञमें अपेक्षा है ? ॥३॥ पिताजी, इस बातको जाननेकी मुझे बड़ी इच्छा है, आप अवश्य बतलाइये। छिपाइये नहीं, समदर्शी साधुलोग कोई बात छिपाते नहीं। क्योंकि ऐसे लोगोंका अपना-पराया का ख्याल नहीं होता। उनके न कोई मित्र होते या न तो कोई उदासीन या शत्रु

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥ अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपि भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥ कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः ॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥ एतद्ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ॥ नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्व च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥ तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किंविचारितः ॥ अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥ नन्द उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ॥ तेऽभिवर्षन्ति भूतानां

ही होते हैं। तथापि यदि कोई गुप्त विचार हो, तो उदासीन जनका भी शत्रुवत् परित्यागकर देना चाहिए, किन्तु अपने मित्रसे नहीं, क्योंकि मित्र तो अपनी आत्मा है ॥ ४, ५ ॥ कर्म दो तरहसे किये जाते हैं। एक तो उसे जानकर और दूसरे उसे बिना जाने। उसमें जो जानकर कर्म करते हैं उन्हें जैसी कर्ममें सफलता मिलती है, वैसी जो बिना जाने कर्म करते हैं उन्हें कभी भी सफलता नहीं मिलती ॥ ६ ॥ सो आपलोग उस कामको अपने मित्रोंके साथ बैठकर शास्त्रोंसे विचारकर करने जा रहे हैं या बिना विचार किये ही केवल लोकव्यवहार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समझकर ? यह मेरे पूछनेका आशय है मुझसे भलीभाँति बतलाइये ॥७॥ नन्द बाबा कहने लगे—लाला, इन्द्र मेघोंके अधिपति हैं, मेघ उनके ही रूप हैं। वेही प्राणियोंको जीवन प्रदान करनेवाला एवं तृप्ति करनेवाला पानी बरसाते हैं ॥ ८ ॥ बेटा, इसलिये हमलोग और अन्य लोग भी उन मेघपति भगवान् परमेश्वर इन्द्रकी उनके जलसे सिद्ध हुए अनादि द्रव्यों द्वारा यागकर आराधना करते हैं और उस यज्ञसे अवशिष्ट अन्न आदि लोग धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्तिके लिये अपनी उपजीविकाकी कल्पना करते हैं, क्योंकि पुरुषोंके कृषि आदि व्यापारोंका इन्द्रही वृष्टिद्वारा फलसाधक होते हैं ॥ ९, १० ॥ यदि कोई पुरुष यों परम्परा प्राप्त धर्मको काम, लोभ, भय या द्वेषसे छोड़ देता है, तो वह कल्याण नहीं करता ॥११॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, भगवान्ने पिताकी एवं अन्य व्रजवासी वृद्धजनोंकी इस बातको सुनकर इन्द्रके विरुद्ध क्रोध उभाड़नेके लिये पितासे कहा ॥ १२ ॥ श्री भगवान्ने कहा—प्राणी तो कर्मके अधिन हैं। कर्मसे वह उत्पन्न होता है और कर्मसे ही वह नाशको प्राप्त होता है। सुख-दुःख, भय कल्याण सभी कर्मसे ही उपलब्ध होते हैं ॥ १३ ॥ जो लोग कर्मके फलदाता

प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ य एवं विसृजेद्धर्मं पारम्पर्यागतं नरः ॥ कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम् ॥ इन्द्राय मन्युं जनयन्पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव निलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥ अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोऽपि नह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥ किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥ तस्मात्संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ॥ अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥ आजीव्यै-

किसी ईश्वरको स्वीकार करते हैं उन्हें भी यह बात माननी ही पड़ेगी कि ईश्वर कर्म करनेवालोंको ही फल देता है, यानी जो जिस कर्मको करता है उसीको उसका फल देता है, क्योंकि वह कर्म न करनेवालोंको फल नहीं ही देता ॥ १४ ॥ जब समस्त प्राणी अपने-अपने कर्मका ही अनुवर्तन करते हैं, तब अन्यथासिद्ध इन्द्रकी पूजाकी क्या आवश्यकता है ? स्वभावसे जो कार्य जैसा बन पड़ता है, उसको पलटनेका सामर्थ्य इन्द्रमें कहाँ है ? ॥१५॥ समस्त प्राणी स्वभावके वशमें हैं और वेद उसीका अनुगमन करते हैं। देवता, असुर, मनुष्य सभी स्वभावके पराधीन हैं ॥ १६ ॥ प्राणी कर्मवश ही ऊँच-नीच योनियों में शरीर धारण करता है और उसे छोड़ता है। शत्रु, मित्र, उदासीन कर्मकी वजहसे बनते हैं और कर्मके कारण ईश्वर तथा गुरु होते हैं ॥ १७ ॥ इसलिये प्राणी स्वभावानुसार अपने वर्णानुसार कर्मको करता रहे। जिस कर्मके करनेसे सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह होता चले, उसीको देवता समझे ॥ १८ ॥ जो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुरुष किसी एकको देवता समझके अपने जीवनके उपायरूपसे उसका सेवनकर फिर किसी अन्यका आश्रयण करता है, तो वह कल्याण नहीं प्राप्त करता, जैसे कि कुलटा स्त्री जारका सेवन करके सुख नहीं प्राप्त करती ॥ १९ ॥ ब्राह्मण वेदाध्ययनकर, क्षत्रिय पृथ्वीका पालनकर, वैश्य 'वार्ता' से और शूद्र द्विजातिकी सेवा करके जीविका चलावे ॥ २० ॥ 'वार्ता' चार तरहकी होती है—खेती करना, व्यापार करना गोरक्षा करना तथा व्याजपर रुपये देना। उनमें हमलोगोंका प्रधान व्यवसाय गोपालन है ॥२१॥ सत्त्व रज, तम ये तीन गुण ही संसारको उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं। उनमें रजोगुणसे उत्पत्ति होती है, उसीसे स्त्री-पुरुषके सम्भोगसे नानाविध सारा संसार उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ उसी रजोगुणसे प्रेरित होकर मेघ चारों ओर उमड़-घुमड़कर पानी बरसाते हैं जिनसे प्रजाएँ अपने जीवनके साधनभूत अन्नादिसे सम्पन्न होती हैं, ऐसी दशामें इन्द्र क्या करेंगे ॥ २३ ॥ पिताजी, हमारे पास नगर, देश,

कतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ॥ न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥ वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ॥ प्रजास्तैरेव सिध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ नित्यंवनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इन्द्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥२६॥ हूयन्तामग्नयः सम्यक् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलङ्कृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्प

गाँव या घर कुछ नहीं है। हम वनवासी हैं, वन, पहाड़ ही हमारा निवासस्थान है ॥ २४ ॥ इसलिए गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धनका याग [पूजन] आजसे आपलोग आरम्भकर दीजिये। इन्द्रयागके लिए जो सामग्री एकत्र की गई है उन्हींसे इस यागको पूरा कीजिए ॥ २५ ॥ दाल-भात, खीर, हलुआ, पूआ, पूरी आदि तरह-तरहके भोजन बनने दीजिए, दूध-दही सब सुरक्षित रखिए ॥ २६ ॥ वेदवादी ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिपूर्वक अग्निहोत्र कीजिए। उन्हें बहु गुणकारी तरह-तरहके आपलोग भोजन दीजिए और दक्षिणामें गौएँ दीजिये ॥ २७ ॥ जितने भी अश्वादि पशु एवं अन्त्यज आदि पतित हैं उन सबोंको यथायोग्य भोजन दीजिए। गौओंको भूसा एवं गोवर्द्धनको नैवेद्य अर्पण कीजिए ॥ २८ ॥ अच्छे अच्छे कपड़े पहन, चन्दन आदिका अनुलेपकर, अच्छा आभूषण पहन, रस पीकर गौ, ब्राह्मण, अग्नि और गोवर्द्धनकी परिक्रमा कीजिए ॥ २९ ॥ पिताजी, मुझे तो यही काम भला प्रतीत होता है, यदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपको भी जँचे, तो यह कीजिए। यह उत्सव गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धनको भी प्रिय है ।। ३० ।। श्रीशुकदेवजीने कहा—इन्द्रके दर्पको नष्ट करनेकी इच्छा रखनेवाले कालरूप परमात्माके द्वारा कही गई इस बातको नन्द आदि बड़े बूढ़े लोगोंने मान लिया ।। ३१ ।। जैसा कि भगवान् मधुसूदनने कहा था, वैसाही सब उन लोगोंने किया। ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन कराकर इन्द्रयागमें प्रस्तुत अन्नादि उपकरणोंसे गोवर्द्धन और ब्राह्मणोंको नैवेद्यादि बलि निवेदन किया गया, गौओंको हरी-हरी घासें दी गयीं। बादमें आदरयुक्त हो ब्राह्मणोंका आशीर्वाद ग्रहणकर नन्द आदि गोप तथा खूब अलंकृत हुईं एवं कृष्णका गुण गा रही गोपियाँ गौओंको आगेकर बैलगाड़ियोंपर सवार हो करके गोवर्द्धनकी प्रदक्षिणा करने लगीं ।। ३२–३४ ।। भगवान् कृष्ण गोपोंके विश्वासके लिए अपने अनेक रूपोंमें एक अन्य वृहत् रूप धारणकर गोवर्द्धन पर्वतके ऊपर चढ़कर कहने लगे कि मैं ही गोवर्द्धन पर्वताभिमानी देव हूँ, मुझे नैवेद्य

जिघांसता ।। प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ।। ३१ ।। तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ।। वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ।। ३२ ।। उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम् ।। गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ।। ३३ ।। अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलङ्कृताः ।। गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ।। ३४ ।। कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमाददबृहद्वपुः ।। ३५ ।। तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रेऽऽत्मनात्मने ।। अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ।। ३६ ।। एषोऽवजानतो मर्त्यान्कामरूपी वनौकसः ।। हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ।। ३७ ।। इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ।। यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ।। ३८ ।। इति श्रीमद्भा० महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।। २४ ।।

चढ़ाओ और यों कहते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपोंके द्वारा समर्पित प्रचुर बलि भोजनकर गये ।। ३५ ।। व्रजके लोगोंके साथ अपने उस बड़े रूपको आपही नमस्कार करने लगे और कहने लगे—बड़ा आश्चर्य है कि बहुत दिनोंतक आपलोगोंने इन्द्रकी पूजा की लेकिन वह प्रत्यक्ष न हुए, किन्तु इस गोवर्द्धनशैलने तो आज प्रत्यक्ष दर्शन देकर हमें अनुगृहीत किया है, हमलोगों द्वारा समर्पित बलि ले लिया है ।। ३६ ।। यह पर्वत अपनी इच्छाके अनुसार रूप धर लेते हैं, अतः इनका अपमान करनेवाले वनवासी मनुष्योंको सिंह आदि हिंसक जानवर बनकर मार डालते हैं। अतः अपने एवं अपने गौओंके कल्याणके लिए, आओ इन्हें प्रणाम करें ।। ३७ ।। इस तरह कृष्णकी सलाह मान वे गोप गोवर्द्धन और ब्राह्मणोंकी यथोचित् पूजाकर कृष्णके साथ वहाँसे व्रजको लौट आये ।। ३८ ।।

चौबीसवें अध्यायका सार—एक बार भगवनन्ने सारे गोपोंको इन्द्रयागकी तैयारी करते देखा। उन्होंने विचार किया कि इन्द्र तो देवराज हैं, उन्हें गर्व न कर ईश्वरको स्वीकार कराना चाहिये। किन्तु वे भी अपनेको ही सब कुछ मानने लगे हैं। अतः उनके गर्वका विनाश कर उनपर उपकार करना चाहिए। तब उन्होंने बूढ़े गोपोंको समझाया कि इन्द्रकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपेक्षा गोवर्धन गौ और ब्राह्मणकी पूजा अधिक अपेक्षित है। उनलोगोंने उनकी बात मान इन्द्रयागके लिए तैयार की गई सामग्रीसे गोवर्धनकी पूजा कर डाली। उन्हें विश्वास दिलानेके लिये भगवान्‌ने एक बड़ासा रूप धर लिया और कहने लगे—मैं ही गोवर्धन हूँ। मेरी पूजा करो। लोगोंको इस घटनासे बड़ा विस्मय हुआ। सब लोग पूजन कर व्रज लौट आये। चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ❋

(इन्द्रका कोप और कृष्णका गोवर्द्धन धारण)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे नृप, जब इन्द्रने अपनी पूजा बन्द देखी, तो उन्हें नन्द आदि गोपोंपर और खासकर कृष्णपर बड़ा क्रोध आया ॥ १ ॥ वे तो अपनेको सर्वशक्तिमान् समझने लगे थे। अतःउन्होंने सांवर्तक नामक मेघोंके गणको, जो कि प्रलयकालमें जल बरसाते, क्रुद्ध होकर कहा कि देखो धनका मद किसे नहीं होता, जरा इनजंगली ग्वालोंको तो देखो, मरणधर्मा कृष्णकी बात वे मान देवताकी अवहेलनापर उतारू हो गये हैं ॥२, ३॥ जैसे वेदान्तविद्या छोड़ कर्मकाण्डकी अदृढ़ नैयासे भवसागर पार करना कठिन है, उसी तरह

श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥ गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥ गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् ॥ इन्द्रः प्राचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥३॥ यथादृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ एषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ॥ धनुत श्रीमदस्तम्भं पशून्नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ॥ नन्दगोकुलमासारैः पीडयामा-

मेरी अवहेलनासे इन्हें कभी कल्याण नहीं मिलनेका है ॥ ४ ॥ मनुष्य शरीरधारी कृष्ण बड़ा बकवादी है। समझ तो उसको है ही नहीं, दुर्विनीत है, जबरदस्त मूर्ख है, लेकिन अपनेको किसी पण्डितसे कम नहीं समझता। उसी छोकड़ेकी बात मान इन गोपोंने मेरी उपेक्षाकर दी है ॥ ५ ॥ इसलिये हे मेघों, तुमलोग ऐसी वर्षा करो कि इनके धनका मद उतर जाय वे नानाविध सम्पत्तियोंसे गर्वित हो चुके हैं, कृष्णकी वजहसे इनका मन बहुत बढ़ गया है, इनके सभी पशुओंको नष्ट-भ्रष्टकर दो ॥ ६ ॥ मैं भी ऐरावत हाथीपर चढ़कर तुम्हारे पीछे ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

व्रजको आता हूँ। मेरे सहायक महावीयवान् मरुद्गण होंगे, जो नन्दके गोष्ठको उखाड़ फेंकेंगे ॥७॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—वे सांवर्तक मेघ तो बन्धनमें पड़े थे, उन्हें आज्ञा थी कि तुम प्रलयमें बरसना। यों इन्द्रकी आज्ञासे वे बंधनमुक्त होकर नन्दके गोकुलमें पहुँच बड़े जोरकी घनघोर वृष्टिसे पीड़ित करने लगे ॥ ८ ॥ बिजलियाँ चमक उठीं, कड़कनेकी आवाज बड़ी कड़ी थी। तीव्र मरुद्गणोंकी सहायतासे उन्होंने बड़ी कड़ी जल और ओलोंकी वर्षा की ॥ ९ ॥ खम्भोंकी तरह मोटी-मोटी जलधाराएँ मेघोंके चारों तरफ खूब बरसानेपर इतना जल पृथिवीपर बरस गया कि उन जलसमूहोंसे आप्लावित ऊँची नीची जमीन एकसी हो गयी कहीं कुछ भी न दीखने लगा ॥ १० ॥ भयङ्कर मूसलाधार पानी एवं आँधीसे पीड़ित होकर गौएँ, गोप, गोपियाँ थरथराने लगीं वे मारे ठण्ढकके पीड़ित हो गोविन्दकी शरणमें पहुँचीं ॥११॥ मूसलाधार वृष्टिसे पीड़ित अतः काँप रही वे गौएँ सिर नीचाकर तथा पेटमें बछड़ोंको छिपाकर भगवान् कृष्णकी शरणमें गईं ॥ १२ ॥ हे कृष्ण, हे प्रभो, गोकुलके तुमही मालिक हो। हे भक्तवत्सल, कुपित देवताओंसे हमें तुम्हीं बचा सकते हो, यों सबके सब

सुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥ स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥ अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥ शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ॥ वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥१२॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥१३॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयागे निहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ॥ मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥ तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ॥ गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ॥ दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥१९॥

प्रार्थना करने लगे ॥ १३ ॥ पत्थर-पानीकी वर्षासे मूर्च्छित अपने जनोंको देखकर श्रीकृष्णने समझ लिया कि यह सब उपद्रव कुपित इन्द्रके द्वारा किया गया है ॥ १४ ॥ उन्होंने विचार किया कि हमलोगोंके द्वारा अपना योग बन्द हो जानेसे इन्द्र कुपित होकर हमलोगोंके नाशके लिए यह बे मौसम भयंकर आँधी-पानी और पत्थरकी झड़ी लगा रहा है ॥ १५ ॥ अतः ऐसी परिस्थितिमें अभी मैं उसका प्रतीकार अपनी सामर्थ्यसे कर देता हूँ और अपनेको लोकेश माननेवाले इन इन्द्र तथा वरुण आदि देवताओंके धनके मदको, जो तमोगुणका कार्य है, नष्टकर देता हूँ ॥ १६ ॥ भगवद्भक्त देवताओंके भी हम ईश हैं, इस तरहका विशिष्ट गर्व होना चूँकि युक्त नहीं है, इसलिए इन असज्जनोंका मानभङ्ग करना ठीक ही है। यह मुझसे इनका मानभङ्ग होना इनके कल्याणके लिए ही होगा ॥ १७ ॥ यह सारा व्रज मुझे ही अपना रक्षक मानता है, मैं ही इसका स्वामी हूँ, कुटुम्बकी तरह इसकी रक्षा करना मेरा धर्म है।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपनी सामर्थ्यसे मैं इसकी रक्षा करूँगा। 'व्रजकी रक्षा मैं करूँगा' यह व्रत मैंने स्वीकार किया है ॥१८॥ ऐसा अपने मनमें कहकर भगवान् श्रीकृष्णने गोवर्धन-पर्वतको अनायास ही एक हाथसे उठा लिया, जैसे किसी लड़केने छत्रक उठा लिया हो ॥ १९ ॥ इसके बाद भगवान्‌ने गोपों, माता पिता तथा अन्य व्रजवासियोंसे कहा कि हे माँ, हे पिताजी, हे व्रजवासियों, आपलोग सुखपूर्वक पर्वतके गड्ढेमें गौओंके समेत प्रविष्ट हो जाइये ॥ २० ॥ पहाड़ मेरे हाथसे छूटकर गिर जायगा, इस विषयमें आप तनिक भी डर न करें। अब आँधी-पानीका कोई भय न रह जायगा, क्योंकि उसीसे आपलोगोंके बचनेके लिऐ मैंने यह उपाय किया है ॥ २१ ॥ कृष्णका आश्वासन पाकर वे लोग गाय-बछड़े, धन-दौलत, नौकर-चाकर तथा छकड़ोंके ऊपर सभी सामग्री लादकर उनके पास उस गड्ढेमें आ गये और अपने उपयुक्त स्थान ढूँढ़कर वहीं ठहर गये ॥ २२ ॥ भगवान्‌ने भूख-प्यास तथा निद्रादिजनित सुखकी अभिलाषा छोड़ कर लगातार सात दिनतक उस पहाड़को उठाये रहे। एक पग भी हिले-डुले नहीं। व्रजवासी बड़े आश्चर्यसे यों भगवान्‌को देख रहे थे ॥ २३ ॥ भगवान् कृष्णकी इस असाधारण क्षमता-

अथाह भगवान्गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥ क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ॥ वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान्मेघान्संन्यवारयत् ॥ २४ ॥ खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशाम्योपरतं गोपान्गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः। उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ॥ शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥२७। भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८ ॥ तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ॥ गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नन्दो

को देख इन्द्रको आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वह स्तब्ध रह गये, उनका संकल्प टूट गया, उन्होंने मेघोंको बरसनेसे रोक दिया ॥ २४ ॥ जब आकाश बादलसे साफ हो गया सूर्यका दर्शन होने लगा और भयानक आँधी-पानी थम गया है और नदियोंकी बाढ़ हट गयी है ॥ २५, २६ ॥ इसके बाद अपनी-अपनी गौओंकी टोलियाँ तथा गाड़ीपर लदे सामानोंको लिए हुए स्त्री, बालक, बूढ़े सभी धीरे-धीरे पहाड़के नीचेसे निकल आये ॥ २७ ॥ इसके बाद जगत्‌के प्रभु भगवान श्रीकृष्णने सभी उस पहाड़ को अनायास ही सभी लोगोंके देखते-देखते वहीं अपने स्थान पर पूर्ववत् स्थापितकर दिया, जहाँ वह पहले था। २८ ॥ व्रजवासी गण प्रेमके उमंगसे परिपूर्णहो यथोचित आलिङ्गन आदि पूर्वक कृष्णसे मिले। गोपियोंने आनन्दमग्नहो दधि-अक्षत लाकर उनकी बड़े स्नेहसे पूजा की और सुन्दर अनेक आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी, नन्द और पराक्रमी बलराम स्नेहसे कातरहो गये। उन्होंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीकृष्णका गाढ़ आलिंगन किया था तथा बहुत-बहुत आशीर्वाद दिये ॥३०॥ हे राजन्, आकाशमें देवता साध्य, सिद्ध, गन्धर्व और चारणोंने सन्तुष्ट होकर स्तुतियाँ कीं तथा पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ३१ ॥ राजन्, आकाशमें देवताओं द्वारा बजाये गये शंख और नगाड़े खूब बजने लगे। तुम्बरुप्रमुख गन्धर्वोंके स्वामियोंने गाना प्रारम्भ किया ॥ ३२ ॥ राजन्, इसके बाद उनपर

रामश्च बलिनां वरः ॥ कृष्णमालिङ्गच युयुजुराशिषः स्नेकातराः ॥ ३० ॥ दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्सगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अनुरक्त व्रजवासियोंने उन्हें चारों ओरसे घेरकर उनसे घिरे हुए तथा बलरामके साथ व्रजको भगवान् श्रीहरि चल दिये। हृदयसे कृष्णको चाहनेवाली गोपिकाएँ इस तरहकी उनके द्वारा की गई अन्यान्य लीलाओंको बड़े उत्साहसे कहती जाती थीं ॥ ३३ ॥

पचीसवें अध्यायका सार—इन्द्र अपनी पूजाके बन्द होनेसे व्रजवासियोंपर और खासकर श्रीकृष्णपर बहुत ही कुपित हुए। सांवर्तक मेघ एवं मरुद्गणको उन्होंने व्रजको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये भेजा। घनघोर वृष्टि हुई। सारे व्रजवासी भींग कर ठण्ढकके मारे थर-थर काँपने लगे। उन लोगोंने कृष्णसे सविनम्र कहा। भगवान्से उनका कष्ट देखा न गया। चट उन्होंने एक हाथसे गोवर्धन उठा लिया। सभी व्रजवासी अपने सामानके साथ उसमें घुस पड़े। भगवान् सात दिन तक लगातार बिना हिले-डुले खड़े रहे। बेचारे व्रजवासी अब सुखसे थे। उन्हें न तो आँधीका कोई असर होता था और न पानीका ही। पर उन्हें श्रीकृष्णके कृत्य पर बड़ा विस्मय हो रहा था। उधर इन्द्रने भी जब इस बातको परखा, तो उनका होश ठिकाने हुआ उनका गर्व जा चुका था। और अब वे भी समझने लगे कि अवश्य ही यह ईश्वर हैं। उन्होंने मेघोंको रोक दिया। जब आकाश स्वच्छ हो गया एवं नदियोंकी बाढ़ कम हो गयी, तब भगवान्ने सबोंको अपने-अपने स्थानपर जानेको कहा और गोवर्धनको रख दिया। सब लोग व्रजको लौट आये। पचीसवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः ❀

(नन्दजीको कृष्णका माहात्म्य बतलाना)

श्रीशुकदेवजीने कहा–राजन्, वे गोपलोग कृष्णके गोवर्धन पर्वतको उठाना आदि इस तरहके अनेक अलौकिक कार्योंको देखकर बड़े विस्मित हुए। उन बेचारोंको भगवान्के

श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥ अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य

अतुल ऐश्वर्यका क्या पता था। वे नन्दजीके पास आकर कहने लगे ॥ १ ॥ चूँकि कृष्णके जितने भी कार्य हैं, सभी चक्करमें डालनेवाले हैं, इसलिए ऐसा अद्भुत बालक अपने अयोग्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हम ग्रामीण ग्वालोंके यहाँ कैसे जन्म ले सकता है ? ॥ २ ॥ जैसे हाथी किसी कमलको उखाड़ लेता है, उसी तरह अनायास ही गोवर्धन पहाड़को यह सात वर्षका बालक एकही हाथसे कैसे उठा लिया ? ॥ ३ ॥ जैसे काल आयुको पी लेता है, उसी तरह इस अद्भुत बालकने विकराल पूतना राक्षसीका प्राणसहित स्तन पी लिया, उस समय तो वह इतना बचा था कि आँखें भी अभी नहीं खुलने पाई थीं ॥ ४ ॥ जब यह तीन महीनेका था तो एक छकड़ेके नीचे सोया था। इसने रोते-रोते एक लात उसपर जमा दी और छकड़ा उलट पड़ा, भला यह कितना आश्चर्य है ? ॥५॥ जब यह एक वर्षका था और आँगनमें बैठा था, तो तृणावर्त–दैत्य इसे आकाशमें उड़ा ले गया। किन्तु इसने उसका ऐसा गला दबाया कि बेचारेकी आँखेंतक निकल पड़ीं, वह वहीं खतम हो गया ॥ ६ ॥ एकबार माखनकी चोरीमें यह लड़का पकड़ा गया, माताने ओखलीसे बाँध दिया। बस, इसने अपनी भुजाओंके बल रेंगते हुए ओखलीको अर्जुनवृक्षोंमें भिड़ा ऐसा झटका दिया कि वह उखड़ पड़े ॥७॥ एकबार बनमें बछड़ोंको चराते हुए बलराम और अन्य ग्वालबालोंके साथ यह बालक खेल रहा था। उसी समय बका-

यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥ तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः पीतः स्तनः ॥ सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥ हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥ दैत्येन यस्तृणावर्तमहन्कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ क्वचिद्धैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां ताव-पातयत् ॥ ७ ॥ वने सञ्चारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः ॥ हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥ ९ ॥ हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥ आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्सर्वेषां नो

सुरने इसे मारनेकी इच्छासे अपने चोंचोंसे इसपर आक्रमण करना चाहा, बस अपनी भुजाओंसे इसने उसकी चोंच पकड़कर चीरही तो डाला ॥८॥ वत्सासुर बछड़ाका रूप धर मारनेकी इच्छासे बछड़ोंमें जा मिला। तब इस बालकने लीलापूर्वक उसे घुमाकर कैथके पेड़पर दे मारा, और उसके मृत शरीरके द्वारा कैथके फल भी गिरा दिए ॥ ९ ॥ धेनुकासुरने तालवनपर अपना कब्जा जमा रखा था। बलरामके द्वारा इस लड़केने उसे मरवाकर स्वयं बलरामके साथ उसके बन्धुओंका भी संहारकर परिपक्व फलोंसे समन्वित उस तालवनको निरापदकर दिया ॥ १० ॥ इसी लड़केने पराक्रमी बलरामके द्वारा उग्र प्रलम्बको मार गिरवाया और दावाग्निसे सारे ग्वालबाल एवं पशुओंको बचा लिया ॥ ११ ॥ अतिक्रूर विषधर सर्पाधिपति कालिय नागका बलात् दमन करके इसी लड़केने उसका मद चूरकर दिया और उस ह्रदसे उसे निकालकर यमुनाको विषरहित स्वच्छ बना दिया ॥१२॥ नन्दजी हम व्रजवासियोंका जैसा अमिट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुराग इस आपके लड़केपर है उसी तरह इसका भी हमलोगोंपर स्वाभाविकप्रेम कैसे है, अवश्य ही यह कोई महान् आत्मा है ॥१३॥ कहाँ तो सात वर्षका बालक और कहाँ गोवर्धन जैसे बड़े पर्वतका उठाना। हे व्रजनाथ, इन्हीं सब बातोंसे हमें आपके लड़केपर संदेह होता है, कदाचित् ईश्वर न हों ॥ १४ ॥ नन्दजीने कहा—हे गोप-भाइयो, इस लड़केको उद्देशकर गर्गाचार्यजीने जो बात कही है वह मैं आपलोगोंको सुना देता हूँ। मेरी उस बातको आपलोग सुन लीजिए, ताकि इस बच्चेके विषयमें जो आपलोगोंकी शंका है, वह मिट जाय ॥१५॥ उन्होंने कहा था कि—तुम्हारे पुत्रका प्रत्येक युगमें प्रत्येक वर्ण होता है। सत्ययुगमें शुक्ल त्रेतामें रक्त तथा द्वापरमें पीतवर्ण होता है और अब इस द्वापरके अन्तमें यह कृष्णवर्णमें आया है ॥ १६ ॥ तुम्हारे पुत्रने वसुदेवजीके यहाँ कभी पहले जन्म लिया था, इसलिए जानकार लोग 'वासुदेव' कहते हैं ॥ १७ ॥ इसी तरह गुण और कर्मके अनुरूप तुम्हारे लड़केके

व्रजौकसाम् ॥ नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥ १३ ॥ क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥ १४ ॥ नन्द उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके ॥ एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥ १५ ॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः। अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः २० ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्याऽनुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥ इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ॥ (दृष्टश्रुतानुभावस्ते कृष्णस्यामिततेजसः ॥) मुदिता नन्दमानर्चुः

नाम और गुण अनेक हैं, उन्हें मैं ही जानता हूँ, सब लोग नहीं जानते ॥१८॥ गोपों और गोकुलको आनन्दित करनेवाला यह लड़का तुम सब लोगोंका बड़ा कल्याण करेगा। जितनी भी विपत्तियाँ आयेंगी, उन सबको तुम लोग इसके द्वारा अनायास पार कर जाओगे ॥ १९ ॥ हे व्रजपते, पहले की बात है कि अराजकताके कारण दुष्ट लोग जब सन्तों पर अत्याचार करने लगे, तो तुम्हारे इसी पुत्रके द्वारा रक्षित होते तथा संवर्धित होते हुए उन सन्तोंने उन्हें पराजित किया था ॥ २० ॥ जो कोई महाभाग्यवान् मानव तुम्हारे इस पुत्रकी भक्ति करेंगे, उन्हें कोई शत्रु दबा नहीं सकता, जैसे कि असुर विष्णुके पक्षवालोंको नहीं हरा सकते ॥ २१ ॥ सो हे नन्दजी, यह तुम्हारा पुत्र गुणों सम्पत्ति कीर्ति और अनुभावमें नारायणके समान है। अतः इसके कर्तव्योंपर कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २२ ॥ इस तरह साक्षात् मुझसे इस कृष्णका प्रभाव कहकर गर्गाचार्य अपने घर लौट गये। उस समय न मानता हुआ। इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समय मैं क्लेशोंको दूर करनेवाले कृष्णका नारायणांश ही मानता हूँ ॥ २३ ॥ व्रजवासी नन्दके द्वारा गर्गाचार्य की ये बातें सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने पहले ही अमित तेजस्वी कृष्णके अद्भुत कार्य देख-सुन चुके थे, अब उन्हें तो उन कर्मोंके प्रति कोई आश्चर्य न रह गया ॥ २४ ॥ यज्ञ रोक देनेसे क्रुद्ध हो इन्द्रके घनघोर वृष्टि करने पर सारे व्रजका

कृष्णं च गतविस्मयाः ॥ २४ ॥ देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् ॥ उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा ॥ बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभिन्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

जहाँ वर्षा, पत्थर, वज्र और आँधीसे गोप, पशु तथा स्त्रियाँ पीड़ित हो रही थीं, संरक्षक अपने को ही देखकर हँसते हुए गोवर्द्धन पर्वतको जिन्होंने एक ही हाथसे अनायास उखाड़ कर धारण कर लिया, जैसे कि कोई बालक खेलनेके लिए छत्रकको उखाड़कर धारण कर लेता है और इस तरह जिन्होंने सारे व्रजकी रक्षा कर ली इन्द्रका मद, चूर करनेवाले गौओंके इन्द्र वही भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

छब्बीसवें अध्यायका सार—गोवर्द्धन उठानेके बाद तो व्रजवासियोंको कृष्ण पर बड़ा सन्देह होने लगा। वे समझ न पाते थे कि इतना छोटा बच्चा इतना बड़ा पहाड़ कैसे उठा सकता है। उन्होंने नन्दबाबाके पास जाकर अपना सन्देह रखा। नन्दबाबाने इनके समाधानके लिए गर्गाचार्यकी वह उक्तियाँ सुनायीं, जो बहुत पहले ही उन्होंने कह दिया था। तब लोगोंका सन्देह जाता रहा और यह विश्वास हो गया कि कृष्ण अवश्य ही भगवान् नारायणके अंश हैं। छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः ❋

(कामधेनु और इन्द्रके द्वारा श्रीकृष्णका अभिषेक)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, जब भगवान् गोवर्धन पहाड़ उठाकर आँधी-पानीसे व्रजको बचा लिया, तो गोलोकसे कामधेनु एवं स्वर्गसे इन्द्र श्रीकृष्णके पास पधारे ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥ विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ॥ मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न

इन्द्र लज्जित थे, इसलिए कि उन्होंने कृष्णकी अवहेलना की थी एकान्तमें आकर उन्होने अपने सूर्यके समान चमकीले मुकुटको कृष्णके चरणोंपर रख दिया ॥ २ ॥ अमित तेजस्वी इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् कृष्णका प्रभाव देख-सुन लेनेसे इन्द्रका मैं तीनों लोकका ईश हूँ, यह मद उतर चुका था। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा ॥ ३ ॥ इन्द्रने कहा—आपका स्वरूप विशुद्ध सत्त्वमय है, निर्विकार है और ज्ञानमय है। आप रजोगुण और तमोगुणसे परे हैं। अतः आप पर उस अज्ञानानुबन्धी मायामय संसारका कोई असर नहीं पड़ता ॥ ४ ॥ हे ईश, जब आपमें जन्म-मरण आदिके हेतु ही नहीं है तब देहाध्यासकृत अज्ञानियोंके लक्षण भूत लोभ, मोह आदि आपमें कैसे हो सकते हैं? फिर भी आप धर्म की रक्षा एवं दुष्टोंके दमनके लिए दण्ड धारण करते हैं ॥ ५ ॥ आप जगत्के जनक, उपदेष्टा तथा नियन्ता हैं। अनतिक्रमणीय काल भी आप ही हैं। अतः आप दण्ड देनेमें समर्थ हैं। जो लोग अपने को ही ईश्वर मान बैठते हैं, मेरे जैसे उन लोगोंके कल्याणके लिए, उनका मानमर्दन करते हुए आप लीलाएँ करते हैं। (आपकी वे लीलाएँ ही अभिमानियोंके लिए दण्ड बन बैठती हैं) ॥ ६ ॥ जो कोई मेरे समान अज्ञ हो जाते हैं और विपत्तिके समयमें भी भयका परवाह न रखनेवाले आपको देख लेते हैं, तो उसका अभिमान गल जाता है। गर्व शून्य हो वे झट से प्रणत होकर आपके

विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः ॥ तथापि दण्डं भगवान्बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ॥ हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥ ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ॥ हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्य-पस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढ-चेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥ स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥ मयेदं भगवन्गोष्ठनाशायासारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं

चरणोंमें आ जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि आपकी लीला ही उनके लिए दण्ड है ॥ ७ ॥ इसलिए हे प्रभो, ऐश्वर्यके मदसे परिपूर्ण मैंने आपके प्रभावको भुलाकर जो अपराध कर डाला है, उसे आप क्षमा कर दें। और हे ईश, ऐसा आशीर्वाद दें कि मूढचित्त मेरी बुद्धि फिर इस तरहकी कुपथगामिनी न हो जाय ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज हे देव, आपका अवतार तो पृथ्वीके भारको उतारनेके लिए होता है? आज बहुतसे राजा स्वयं पृथ्वीके भारभूत हैं इस पृथ्वी पर अधिक भार उत्पन्न होनेमें वे ही कारण हैं, उन्होंने अत्याचारके लिये बड़ी-बड़ी सेनाएँ एकत्र की हैं। आप उन्हें नष्ट करनेके लिए एवं अपने भक्तों की रक्षाके लिए ही अवतीर्ण हुए हैं ॥ ९ ॥ भगवान् महात्मा हैं, पुरुषोत्तम यादवोंके अधिपति आप वासुदेव श्री कृष्णको नमस्कार है ॥१०॥ अपनी इच्छासे मनुष्य शरीरधारी, विशुद्धज्ञानमूर्ति, सर्वस्वरूप, सबके कारणभूत सर्वभूतात्मक आपको नमस्कार है ॥११॥ भगवन्, मैं तो यों ही अज्ञानीठहरा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जब अपने यज्ञको रुकते देखा तो क्रोधसे क्षुब्ध हो उठा। अतः मैंने आँधी-पानी बरसाकर बड़ी भूल की हैं ॥ १२ ॥ किन्तु, भगवन् आपने इस हालतमें भी मुझपर अनुग्रह ही किया। तभी तो आपने मेरे उद्यमोंको नष्टकर मेरे अविनयके स्तम्भको ध्वस्त कर दिया आप ही सबके नियन्ता, गुरु एवं आत्मा हैं, मैं आप ही शरणमें आया हूँ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—जब इस तरहसे इन्द्रने भगवान्‌की स्तुति की, तो भगवान् मेघ-जैसी गम्भीर ध्वनिसे कहने लगे ॥ १४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—इन्द्र, तुम ऐश्वर्य मदसे इतने अभिभूत हो गये थे कि तुमने परमात्माकी याद ही भुला दी थी। मैंने तुम पर अनुग्रह करके ही तुम्हारा यज्ञ रुकवाया है। ताकि तुम्हारा अभिमानका वह भूत तुम्हारे सरसे उतर जाय और तुम परमात्माकी ओर झुको अब तुम्हें मेरी स्मृति सदा आया करेगी ॥ १५ ॥ जो लोग ऐश्वर्य मदसे मत्त हो जाते हैं वे अपराध कर बैठते हैं और विवेकशून्य वे कालयमादिरूप मुझे नहीं देखते यह भूल जाते हैं कि उनके उस अपराधका दण्ड देनेवाला भी कोई है मैं जिनके ऊपर अनुग्रह करना चाहता हूँ उनके उस अहङ्कारकी मूल उनकी सम्पत्तियोंको ही नष्ट कर

गतः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सङ्कीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ॥ मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता ॥ मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रिया भृशम् ॥ १५ ॥ मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः ॥ १७ ॥ अथाह सुरभिः कृष्णमभिवन्द्य मनस्विनी ॥ स्वसन्तानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ॥ भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः ॥ जलैराकाश-

देता हूँ [तब वे सत्य पथपर आ जाते हैं। इन्द्र समझो कि मैंने तुम पर दया ही दिखलाई है] ॥१६॥ इन्द्र, अब तुम जाओ मेरी आज्ञाका पालन करना इससे तुम लोगोंका कल्याण होगा। अहङ्कार छोड़कर अपने-अपने कर्तव्यमें युक्त हो सदा स्थित रहना ॥ १७ ॥ इसके बाद मनस्विनी कामधेनु अपनी सन्तानोंके साथ गोपरूपधारी जगदीश्वर कृष्ण को 'हे कृष्ण, हे भगवन्, यों पुकारकर वहाँ और उनकी वन्दना कर कहने लगी ॥ १८ ॥ कामधेनुने कहा—हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे महायोगिन, हे विश्वात्मन्, हे विश्वसंभव, हे अच्युत, इन्द्र द्वारा नष्ट कर दिये जानेपर भी लोकनाथ आपको पाकर हम सनाथ हो गई—आपके द्वारा हम सुरक्षित रह गई ॥ १९ ॥ हे जगत्पते, चूँकि आप हम लोगोंके परमदेवता हैं, अतः गो, विप्र, देवता तथा जो साधु-सन्त हैं उनके एवं हम सब लोगोंके अभ्युदयके लिये आप हमारा इन्द्र बनिए। ब्रह्माकी प्रेरणासे हम आपको इन्द्रपदके लिए अभिषेक करने आयी हैं विश्वात्मन्, आप तो पृथ्वीके भारको उतारनेके लिए अवतीर्ण हुए हैं ॥ २०, २१ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा—इस तरह भगवान् श्रीकृष्णकी प्रार्थनाकर कामधेनुने अपने दूधसे भगवान्‌का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिषेक किया। बादमें अदिति आदि की प्रेरणासे आये हुए इन्द्रने देवर्षियोंके साथ आकाश गङ्गाके जलसे, जिसे कि ऐरावत अपने सूड़में लाया था, भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया और उनका नाम 'गोविन्द' रखा ॥ २२–२३ ॥ वहाँ तुम्बरु, नारद आदि गन्धर्व विद्याधर सिद्ध और चारण आ पहुँचे और लोकोंका मल दूर करनेवाले भगवानके गुण गाने लगे तथा आनन्द मग्न हो अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ २४ ॥ देवताओंमें प्रमुख लोगोंने उनकी स्तुति की और उनपर अद्भुत फूल बरसाये। तीनों लोकके प्राणी परम सुखको प्राप्त हुए, उस

गङ्गाया ऐरावतकराद्धृतैः ॥२२॥ इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ॥ अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात्॥२३॥ तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥ तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो ह्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ॥ लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन्पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसमन्मधुस्रवाः ॥ अकृष्टपच्यौषधयो गिरयो बिभ्रदुन्मणीन् ॥२६॥ कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥ इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे इन्द्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

समय गौओंने अपने स्तनके दूध से पृथ्वीको सिक्त कर दिया ॥२५॥ नदियाँ दूध-दही आदि नाना रसोंको बहाने लगीं, पेड़ोंसे मधु टपकने लगा बिना जोते बोये उत्पन्न हुई औषधियों-वाले पर्वत अपने गर्भमें छिपाये हुए मणियोंको बाहर प्रकट रूपसे धारण करने लगे ॥ २६ ॥ हे कुरुनन्दन, हे तात, श्रीकृष्णके अभिषेकसे स्वभावतः हिंसक भी ये सर्प आदि जीव परस्पर के वैर-भाव भूल गये ॥ २७ ॥ इस तरह गौ एवं गोकुलके अधिपति 'गोविन्द' का अभिषेक कर उनकी अनुमतिसे देवादिके साथ हो इन्द्र अपने लोक को लौट गये ॥ २८ ॥

सत्ताईसवें अध्यायका सार—जब भगवान्ने गोवर्धन धारणकर इन्द्रका गर्व नष्ट कर दिया, तब वे बहुत लज्जित होकर श्रीकृष्णके पास पहुँचे। कामधेनु भी आयीं। इन्द्रने बड़ी बिनतीकी और अपने अपराधके लिए क्षमा याचना की। अनन्तर कामधेनुने अपने दूधसे उनका अभिषेक किया और इन्द्रपद पर प्रतिष्ठित किया। 'सभी देवताओंके साथ इन्द्रने भी आकाशगङ्गाके जलसे उनका अभिषेक किया। कृष्णके अभिषिक्त होते ही सारी दुनियामें सुखके बादल घिर आये। दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। नदियोंमें दूध-दही बहने लगा, पेड़ोंसे मधु चूने लगा। इसके बाद भगवान्की अनुमति पाकर सभी लोग अपने-अपने स्थानको सिधारे। सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ❋

(श्रीकृष्णका वरुणको वशमें करना)

श्रीशुकदेवजीने कहा–राजन्, एक एकादशीको नन्दबाबाने निराहार रहकर विष्णुकी पूजाकी और द्वादशीको नहानेके लिए यमुनाके जलमें प्रविष्ट हुए ॥१॥ नन्दजीको यह ख्याल नहीं था कि यह आसुरीवेला है, इस समय जलमें न घुसना चाहिए। वहाँ वरुणका एक भृत्य असुर था, वह रातमें जलके अन्दर प्रविष्ट हुए नन्दबाबाको पकड़कर वरुणके पास ले गया ॥ २ ॥ उधर गोपोंने जब नन्दबाबाको न देखा, तब वे हे कृष्ण, हे बलराम, यों गोप सब पुकारने लगे। जब भगवान्‌ने यह सुना कि वरुणने मेरे पिताका आहरण कर लिया है, तब वे वरुणके पास गये। हे राजन्, सर्व समर्थ भगवान् अपने भक्तोंका भय भला कब देख सकते हैं ? ॥ ३ ॥ जब लोकपाल वरुणने हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णको आया देखा, तो

श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद्भृत्यो वरुणस्यासुरेऽन्तिकम् ॥ अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥३॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयित्वाह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥ वरुण उवाच ॥ अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ॥ आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ (ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥) गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागात्स्वपितरं

वे बड़े हर्षित हुए और उन्होंने बड़े धूम-धामसे महती पूजन सामग्री लेकर उनकी पूजा की और तदनन्तर कहने लगे ॥ ४ ॥ वरुणने कहा—हे प्रभो, आज ही मैंने शरीर धारण किया है, आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज ही मुझे सच्चा अर्थ मिला। भगवन् अधिक क्या कहूँ आपके चरणोंके सेवकोंने तो मोक्ष तक प्राप्त कर लिया है ॥ ५ ॥ परब्रह्मपरमात्मा भगवान् आपको नमस्कार है। मायासे आप परे हैं मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ मेरा सेवक मूर्ख है, उसे कर्तव्याकर्तव्यका ठीक ज्ञान नहीं है। वह भूलकर ही पिताजीको ले आया है। आप उसे क्षमा कर दें ॥ ७ ॥ हे पितृवत्सल गोविन्द, आप ही सर्वज्ञ हैं, आपसे क्या कहना-सुनना है। उसे तो क्षमा कर ही दें, मुझपर भी अनुग्रह करें और अपने पिताजी को ले जायँ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, जब वरुणने लोकेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णको मनाया तो भगवान् श्रीकृष्ण वरुणके अपराधको क्षमाकर अपने पिताको घर ले आये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिससे और लोग प्रसन्न हुए ॥ ९ ॥ नन्दने वरुणका वह अतुल वैभव देखा और साथ-साथ यह भी देखा कि वे वरुण श्रीकृष्णकी कितनी मिन्नतें कीं तो उन्हे बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सारी बातें और लोगोंसे सुना दीं ॥ १० ॥ हे राजन्, तदनन्तर उन सब लोगोंको यह निश्चय हो गया कि निश्चय ही कृष्ण परमात्मा हैं और उत्सुकता से सोचने लगे कि तो क्या यह अधीश्वर अपना सूक्ष्म लोक भी हम लोगोंको दिखलावेंगे ? ॥ ११ ॥ भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। वे अपने स्वजनोंकी यह इच्छा ताड़ गये। और उनकी इच्छा पूर्तिके लिए कृपाकर सोचने लगे ॥ १२ ॥ अविद्या, काम और कर्मोंके द्वारा इस लोकमें उत्तम, अधम, देव, तिर्यग आदि योनियोंमें भ्रमण कर रहे व्रजवासी जब अपनी गति बिलकुल नहीं जानते। अतः इन्हें इनकी गति क्या है ? यह हमें दिखाना चाहिए ॥ १३ ॥ ऐसा सोचकर महा कारुणिक भगवान् श्रीहरिने प्रकृतिसे परब्रह्मस्वरूप अपने वैकुण्ठधामका दर्शन कराया ॥ १४ ॥ जो

बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ सङ्कल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥ जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ॥ उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥ इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ॥ दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४ ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥ ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ॥ ददृशुर्ब्रह्मणोलोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ॥ कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥

वह कोई सत्य, ज्ञानमय, अनन्त, स्वयं प्रकाश सनातन ब्रह्मरूप हैं। उसे ऋषि लोग तीनों गुणोंका अपाय होनेपर समाधिस्थ होकर ही देखते हैं ॥ १५ ॥ वे लोग जब ब्रह्मरूपी आनन्दके तालाबमें पहुँचे और जब अत्यन्त मग्न हो गये और सब सुध-बुध भूल बैठे, तब भगवान्ने उन्हें सचेत किया। तब उन्हें सगुण विष्णुके उस वैकुण्ठलोकका दर्शन हुआ, जिसे अक्रूरजीने यमुनामें नहाते समय देखा था ॥ १६ ॥ नन्द आदि गोप उसके दर्शनसे परमधामको प्राप्त हुए। और जब उन्होंने यह देखा कि वहाँ कृष्णकी मूर्ति देहधारी धारण कर रहे हैं, तो उन्हें आश्चर्य भी कम न हुआ ॥ १७ ॥

अट्ठाईसवें अध्यायका सार—एक बार नन्दबाबाने एकादशीका उपवास किया। रातमें ही द्वादशी लग आयी। अतः वे उसी समय यमुनामें नहाने गये। जल्दीमें वे भूल गये थे कि यह आसुरी बेला है और इस समय उन्हें यमुनामें न नहाना चाहिए था। वरुणका एक असुर सेवक उन्हें पकड़कर वरुणके पास ले आया। इधर नन्दको न देख ग्वाले सब हाहाकार मचाने लगे। श्रीकृष्णजी वरुणके पास गये। वरुणने कृष्णकी बड़ी आवभगत की, बड़ी पूजा की। सेवकके अपराधकी क्षमायाचना की। बड़े सत्कारसे विदा किया। नन्दबाबा उसके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उस अतुल वैभवको देख बड़े विस्मित हुए उन्हें बड़ा आश्चर्य तो तब हुआ, जब उन्होंने उस वरुणको भी कृष्णके आगे नत देखा। उन्हें कृष्ण भगवान् नहीं हैं ऐसा सन्देह भी न रहा। और ग्वालोंसे भी उन्होंने यह घटना कह सुनाई। सबको विश्वास हो गया कि सचमुच यह परमात्मा ही हैं। तब उनके मनमें एक इच्छा जागी। वे चाहते थे कि परमात्मा अपना वैकुण्ठलोक उन्हें दिखलायें। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, उन्होंने उनके मन की बातें जान लीं और उन्हें अपना वह लोक दिखला दिया। अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(श्रीकृष्णको रासके लिए गोपियोंसे बातचीत)

श्रीशुकदेवजीने कहा-राजन्, जब भगवान्ने देखा कि शरदृतु आ पहुँची है, चमेली आदि फूल खिल उठे हैं और रात सुहावनी बन गयी है, तो इन्होंने भी योगमायाका आश्रयण लेकर रासक्रीडाकी इच्छा की ॥ १ ॥ उसी समय जैसे बहुत दिनोंके बाद परदेशसे लौटा हुआ पति अपनी प्रियतमाके मुखमें कुङ्कुम लगा है, उसी तरह दिनभरके प्रवासके बाद लौटघर रागयुक्त चन्द्रमा अपनी अत्यन्त सुखदायक लाल-लाल किरणोंके हाथोंसे प्राचीरूपी प्रियतमाके मुखको लाल बनाते हुए उदित हो गये। चन्द्रमाके उग आनेसे सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ चन्द्रमाने उनका सारा ताप हर लिया ॥ २ ॥ परिपूर्णमण्डलवाले, लक्ष्मीजीके मुखकी तरह आभासे युक्त चन्द्रमाको जब भगवान्ने नूतन कुकुंमके सदृश लाल देखा तथा

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥ वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥ तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ॥ स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ॥ वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥ आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥ दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ॥ पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः

उस वृन्दावनको जब चन्द्रमाने स्वच्छ प्रकाशवाली किरणोंके द्वारा चारों तरफ अत्यन्त रमणीय बना दियेगये उस वृन्दावनको देखा, तब उन्होंने स्त्रियोंका मन हर लेनेवाली अपनी बाँसुरी बजायी ॥ ३ ॥ कामोत्तेजक गीतको सुनते ही गोपियोंका मन उनके वशमें न रहा, कृष्णकी ओर खींच गया। वे बेतहाशा कृष्णकी ओर बढ़ गयीं जहाँ वे विद्यमान थे। जल्दी जल्दी चलनेमें उनके कानके कुण्डल डोल रहे थे। उन्हें यह भी सुध न रही कि कमसे कम सखी-सहेलियोंसे तो अपना उद्यम बतला दें, उन्हें भी अपने साथ ले लें ॥ ४ ॥ वे इतनी उत्सुक हो गयीं कि जो जिस अवस्थामें थीं, वे उसी हालतमें भाग खड़ी हुईं। कुछ दूध दूह रही थीं, वह दूध दूहना छोड़ दीं, किसीने दूध चूल्हे पर चढ़ा रखा था, वह उसे चूल्हे पर ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छोड़कर, कुछ स्त्रियाँ हलुआ बना रही थीं, वह उसे अधपका ही छोड़कर, कुछ भोजन परोस रही थीं वे परोसना छोड़कर, कुछ तो बच्चेको पिला रही थीं वे पिलाना छोड़कर, कुछ महिलाएँ पतियोंकी सेवाकर रही थीं वे उस सेवाको छोड़कर, कुछ औरतें भोजनकर रही थीं वे भोजन छोड़कर, इसी तरह कुछ उबटन लगा रही थीं, कुछ अङ्गराग लगा रही थीं कुछ आखोंमें अञ्जन लगा रही थीं, वे इन सबको छोड़कर कृष्णके समीप दौड़ पड़ीं। जल्दीमें उन्हें यह भी भान न रहा कि यह ओढ़नेकी जगह लहँगेको ओढ़ रही हैं या पैरके आभूषणको हाथमें पहन रही हैं ॥ ५-७ ॥ उनके पतियोंने, पिताओंने एवं भाई बन्धुओंने उन्हें रोका भी, किन्तु वे विवश थीं, उनका मन गोविन्दसे अपहृत हो चुका था, वे मोहित हो चुकी थीं भला वे कैसे रुकतीं ? ॥ ८ ॥ कुछ गोपियोंको* उनके परिजनोंने घरमें बन्दकर दिया। वे बेचारी निकल न सकीं। तब आँखें मींचकर वह वहीं भगवान्‌का ध्यान करने लगीं ॥ ९ ॥ प्रियतमके

शिशून्पयः ॥ शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥ लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ॥ व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥ ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥ गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ॥ कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥ दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ॥ ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः ॥ जहुर्गुणमयं देहं सद्यःप्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ॥ गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥१३॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव

तीव्र एवं दुःसह विरहतापसे उनके पाप मिट गये एवं ध्यानमें कृष्णके आलिङ्गनजन्य आनन्दसे उनके पुण्य भी नष्ट हो गये। इस तरह पुण्य-पाप दोनोंके नष्ट हो जानेपर गुणसे बँधा शरीर भी तुरन्त छूट गया। भलेही उन्होंने जार बुद्धिसे ही भगवान्‌को अपनाया, पर बुद्धिसे क्या होने जानेकी है, वह तो भगवान् थे, अतः उन्होंने सचमुच उस परमात्माको ही पा लिया ॥ १०, ११ ॥ राजाने कहा—मुने, गोपियोंने तो कृष्णको केवल अपना प्रियतम समझा था, यह नहीं समझा था कि वे परब्रह्म परमात्मा हैं। इस तरह उनकी बुद्धि तो गुणमें ही बनी रही, तब गुणोंका शमन ही उनमें कैसे हुआ ? ॥ १२ ॥ शुकदेवजीने कहा—यह बात तो मैंने पहले ही कह दी है कि जब हृषीकेश भगवान्‌के साथ वैर-विरोध रखते हुए भी शिशुपाल सिद्धिको प्राप्त हो गया, तब भला अधोक्षज भगवान्‌में प्रेम रखनेवाले क्यों नहीं सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥ १३ ॥ राजन्, भगवान्‌का तो अवतार ही इसलिये होता है कि जीवोंका

---

*भगवान्‌की प्रेयसी ये गोपियाँ अनेक प्रकारकी थीं। देखिये पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—'तदा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् स्वविग्रहैः ॥ ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले। हरिं सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्ताभवार्णवात् ॥ बृहद्वामनपुराणोक्तके ये कुछ तो श्रुतिस्वरूप हैं। 'सम्भवन्तु सुरस्त्रियः' इस पूर्वकथनसे इनमें कुछ तो देवकन्याएँ हैं। "गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः। देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कथञ्चन ॥" यह भी पद्मपुराणमें ही मिलता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कल्याण हो, नहीं तो उस अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियामक भगवान्को अवतार लेनेकी क्या जरूरत पड़ी थी? ॥ १४॥ इसलिये काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और मित्रता चाहे जो भी हो, जिस किसी तरह भगवान्में निरन्तर प्रेम जो करता है वह अवश्य ही भगवद्रूपताको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ योगेश्वरोंके भी ईश्वर उन अज भगवान् श्रीकृष्णके विषयमें ऐसा कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए, जिस श्रीकृष्ण भगवान्की कृपासे यह सारा स्थावर-जंगम प्राणी मुक्त हो जाता है ॥१६॥ वक्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् उन व्रजस्त्रियोंको वहाँ उपस्थित देखकर अपने मनोहर वाग्विलासोंसे उन्हें अपनी ओर और अधिक आकृष्ट करते हुए कहने लगे ॥ १७ ॥ भगवान्ने कहा—सुन्दरियो, मैं आपका स्वागत करता हूँ। बतलाइये मैं आपका कौन-सा प्रियकार्य करूँ? व्रजमें कुशल-मंगल तो है न? इस रातमें आनेका क्या कारण है, कहिये ॥ १८ ॥ सुन्दरियो, यह भयावनी रात है, बड़े-बड़े भयंकर हिंसक पशु यहाँ रहते हैं। अतः आपलोग व्रज लौट जाइये। यहाँ आप स्त्रीजनोंका ठहरना अच्छा नहीं है ॥ १९ ॥ आपके परिजन—माता-पिता, पुत्र, भाई, पति आपको न देखकर आपको ढूँढ़

च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः ॥ अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रजस्यानामयं कच्चिद्ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥ रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१९॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ॥ यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः ॥ क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ॥२२ ॥ अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्व-

रहे होंगे। उन बन्धुओंको आदर्शनजन्य भय उत्पन्न न होने दीजिये, लौट जाइये ॥ २० ॥ आपने इस वनको, जो फूलोंसे लदा है, जिसपर मनोरम चाँदनी छिटक रही है एवं जिसमेंके पेड़ोंके पत्ते यमुनाकी मन्द मीठी वायुसे कम्पित हो रहे हैं, देख ही लिया। अब यहाँ क्या जरूरत है? ॥ २१ ॥ अतः हे सतियो, आपलोग शीघ्रही व्रजको लौट जायँ। आप पतिव्रताएँ हैं, अपने पतियोंकी सेवा करें। बछड़े और बच्चे क्रन्दनकर रहे होंगे, उन्हें दूध पिलाइये गौएँ दूहिए ॥ २२ ॥ अथवा यदि आप मेरे स्नेहसे आकृष्टचित्त हो यहाँ पधारी हैं, तो ठीक ही है। मुझसे तो सभी लोग प्रेम रखते ही हैं ॥२३॥ स्त्रियोंके लिए तो परमधर्म यह है कि वे छल कपट छोड़कर पतिकी सेवा करें, एवं उनके भाई बन्धुओंकी देख-भाल करें तथा बच्चोंका पालन-पोषण करें ॥ २४ ॥ यदि पति दुःशील हो, अभागा हो, वृद्ध, जड़, रोगी, निर्धन होनेपर भी यदि वह महापातकसे रहित हो, तो पुण्यलोककी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको चाहिये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

कि वे उसे न छोड़ें ॥ २५ ॥ उपपतिसे उत्पन्न कुलाङ्गनाओंका सुख नरक दिखलानेवाला, लोकमें अपयश फैलानेवाला, तुच्छ कष्टका हेतु, इस लोक तथा परलोकमें भयावह एवं सर्वत्र जुगुप्सित है ॥ २६ ॥ मुझमें जो भाव मेरे श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्तनसे आते हैं, वह मेरे पास रहनेसे नहीं, अतः आप घर लौट जायँ ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, जब गोविन्द भगवान्ने ऐसी अप्रिय बातें कहीं, तो भगवान्के साथ रमण करनेकी उनकी आज्ञाओंपर पानी फिर गया, सुनकर वे गोपियाँ बहुत दुःखी और चिन्तित हुईं ॥ २८ ॥ दुःखके उच्छ्वाससे उनके ओठ सूख रहे थे, वे मुखको नीचा करके चरणसे जमीन खुरदने लगीं। अश्रुधारा बहनेसे उनके नेत्रोंके काजल धुल गये उन अश्रुओंके पयोधपर गिरनेसे उसमें लगा कुंकुम भी छूट गया। दुःखके भारसे वह हिल-डुल न सकीं, जैसेके तैसे खड़ी रहीं ॥ २९ ॥ बेचारी गोपियोंने तो श्रीकृष्णके लिये अपने द्वारा सब कुछ छोड़ दिया था। वह उन्हें अपना प्रियतम जानती थीं। किन्तु जब उन्होंने ही शत्रुकी तरह बातें सुनायीं तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। रोते-रोते उनकी आँखें सूज आयी थीं। किसी तरह उन्हें पोंछकर कुछ कोपकर

र्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनु-कीर्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ॥ अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तित-सर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किञ्चित्संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥ गोप्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धु-रात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म

गद्गद वाणीसे बोलीं, यह कोप तो प्रणय कोप था, क्योंकि वह तो उनमें अनुरक्त थीं ॥ ३० ॥ गोपियोंने कहा—हे विभो, आप ऐसी कठोर बात न कहें। हम तो सारी आशा अभि-लाषाको त्यागकर आपके पास पहुँची हैं और आप इस तरह फटकारते हैं। हे स्वच्छन्द हमने तो आपके चरणोंका ही सहारा लिया है, अतः जैसे आदि पुरुष देव परमात्मा मुमुक्षुओंका परित्याग नहीं करते, उसी तरह आप हमारा परित्याग न करें ॥ ३१ ॥ हम जानती हैं, आप बड़े धर्मवेत्ता हैं। अभी आपने हमारे लिए जो यह धर्म बतलाया कि हमें अपने-अपने पति, पुत्र, मित्रकी सेवा करनी चाहिए, वह मान्य हो सकता है, किन्तु इस उपदेशपदमें अधिष्ठित परमेश्वर आपमें ही वह रहे, क्योंकि आप तो प्राणीमात्रके हितैषी और आत्मा हैं, आपही सबको अत्यन्त प्रिय हैं, अतः हम तो आपकी सेवा करना चाहती हैं। [वे पति मित्र थे, पर आप तो परमपति, परममित्र हैं] ॥ ३२। जो चतुर एवं विद्वान् हैं वे स्वात्म-

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वरूप आपमें ही प्रेम करते हैं, क्योंकि आपका प्रेम नित्य है और आप नित्यप्रिय हैं। क्षणिक सुख देकर दुःखके गड्ढेमें ठेलनेवाले पति-पुत्रसे हमें क्या लेने-देने हैं? इसलिए हे परमेश्वर जरा प्रसन्न हो जाइये, हमारी आशाओं, अभिलाषाओंको मत कुचलिए। हे कमलनयन, बहुत दिनोंसे हमारी आशाएँ आपमें बँधी हैं—हमने आपकी बहुत प्रतीक्षा की है ॥३३॥ आप हमें लौटनेको कहते हैं, अच्छा बतलाइये कहाँ लौटूँ, कैसे लौटूं? आजतक जो हमारा चित्त गृहकृत्यमें सुखपूर्वक लगा रहता था, उसे तो आपने अनायास ही चुरा लिया और जो हमारे हाथ घरके कामोंमें लगे रहते थे, उन्हें भी आपने व्यापारशून्य बना दिया तथा आपके चरणोंको छोड़कर हमारे पैर भी तो एक पग खिसकना नहीं चाहते, फिर बतलाइये हम व्रज कैसे जायँ और जाकर वहाँ करें ही क्या? ॥ ३४ ॥ सखे, आपके मनोहर हास्य, चितवन, एवं वंशीकी तानने हमारे हृदयमें आग लगा दी है, अब अपनी अधरामृतके प्रवाहमे उसे शान्तकर दीजिये। यदि आप ऐसा न कर सकेंगे, तो याद रखिये कि विरहकी अग्निमें इस देहको जलाकर आपके चिन्तन द्वारा हम आपके चरणोंकी सन्निधिमें आ धमकेंगी ॥ ३५ ॥ आपके

छिन्द्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥ पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवामः किं वा ॥ ३४ ॥ सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ॥ नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ॥ त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥ वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥ दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः

चरणस्पर्शका सौभाग्य तो लक्ष्मीजीको भी कभी-कभी ही मिला करता है, फिर दूसरोंके लिये तो वह अत्यन्त दुर्लभ ही ठहरा। किन्तु आपको वृन्दावनके वासी प्रिय हैं, अतः आपकी दयासे हम वनवासिनको एक बार उसका स्पर्श मिल सका। उस दिन आपने जो हमें आनन्दप्रदान किया उसे हम नहीं भूल सकतीं, हे कमलनयन, उसी दिनसे उसकी ऐसी चोट लग गई कि अब उसे छोड़कर हम कहीं दूसरी जगह खड़ी भी नहीं हो सकतीं ॥ ३६ ॥ जिन लक्ष्मीजीकी कृपादृष्टिके लिये बड़े-बड़े देवता तरसते रहते हैं, वह लक्ष्मीजी आपके वक्षःस्थलपर स्थान पाकर भी अपनी सौत तुलसीके साथ जिस आपके भृत्य सेवित चरणरजकी चाहना करती हैं, उसी तरह हम भी उस चरणरेणुकी प्राप्तिके लिये ही यहाँ उपस्थित हैं ॥ ३७ ॥ आप तो पापीका नाश करनेवाले हैं, अतः हे भगवन्, हम आपकी चरणोंकी सेवाकी इच्छासे अपने घर-द्वार छोड़कर आपके चरणके समीप आयी हैं। आपकी मधुर मुसकान एवं चितवनसे हृदयमें कामका तीव्र ताप बढ़ गया है, अतः हे पुरुषभूषण; हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइये, अब तो हमें अपनी दासी बनने ही दीजिये ॥ ३८ ॥ आपके उस मुखको, जिसपर घुंघराली

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अलकें लटक रही हैं, जिसके दोनों कपोलस्थल कुण्डलकी किरणोंसे उद्दीप्त हो रहे हैं, जिसकी अधरों में सुधा माधुरी छलछला रही है और जिसमें मुसकुराहटभरी चितवन है, देखकर हम आपेसे बाहर हो गयी हैं। इसी तरह अभयदान देनेवाले आपके दोनों बाहुओं एवं एकमात्र लक्ष्मीको रतिप्रदान करनेवाले आपके वक्षःस्थलको देखकर हम आपके वशमें हो गयी हैं—आपकी चेली बन गयी हैं ॥३९॥ हे प्रभो, भला आपही बतलाइये कि जब आपकी मधुरपदोंसे युक्त मुरलीकी 'मूर्छना' से मोहित हो एवं तीनों लोकमें सर्वाधिक सुन्दर आपके रूपको देखकर पशु, पक्षी, पेड़, पौधे तक पुलकित हो उठते हैं, तब तीनों लोकमें ऐसी कौन- सी स्त्री है, जो इन्हें देख- सुनकर अपने धर्मसे विचलित न हो जाय—आपके लिये विह्वल न हो जाय ? ॥ ४० ॥ जैसे देवताओंकी रक्षा आदिपुरुष विष्णु भगवान् करते हैं उसी तरह यह निश्चित है कि आप व्रजवासियोंके भयको मिटानेके लिये प्रकट हुए हैं। भगवान् आप तो दीन-बन्धु हैं, अतः हम दासियोंको दुःखसे उबारिये। देखिये, हमारे मस्तक और पयोधर अन्तरज्वालासे कितने तप्त हो गये हैं, इनपर आप अपने सुभग शीतल कर-स्पर्श कीजिये ॥ ४१ ॥

श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥ का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन संमोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥ तन्नो निधेहि करपंकजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम् ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥ ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ॥ रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥ बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन्रतिपतिं रमयाञ्च-

श्रीशुकदेवजीने कहा—जब योगेश्वर भगवान्ने उनके इस प्रकार परवशतासे भरे प्रलापको सुना, तो उन्हें दया हो आयी। आत्माराम होते हुए भी उन्होंने मुस्कराकर उन गोपियोंके साथ रमण करनेका आयोजन करने लगे ॥४२॥ मीठी मुसकानसे कुन्दकुड्मल-से उनके दाँत चमक उठे। प्रियकी प्रसन्नता देख गोपियोंका मुखकमल बिलकुल खिल उठा। चारों ओरसे खड़ी हुई उन सबोंके बीचमें गोपियोंके मनोरथपूरक चेष्टाओंसे युक्त भगवान् कृष्ण उस तरहसे शोभित हो रहे थे, मानों अनेक ताराओंके बीचमें चन्द्रमा हो ॥ ४३ ॥ सैकड़ों गोपियोंके झुण्डको लिए हुए वैजयन्ती माला धारणकर रहे भगवान् उस बनको अलंकृत करते हुए इधर-उधर विचरण करने लगे। वहाँ कभी तो भगवान् स्वयं गाना गाने लगते तथा कभी उनके गीतोंको सुनने लग जाते थे ॥ ४४ ॥ गोपियोंके साथ इस तरह घूमते-फिरते वे यमुनाके पुलिनपर पहुँच गये। वहाँका बालू जलयुक्त होनेसे बड़ा शीतल हो गया था। वहाँ यमुनाकी शीतल तरङ्गों एवं कुमुदकी सुगन्धियोंसे संयुक्त वायुने उनकी अच्छी सेवा की, वहाँ गोपियोंके साथ भगवान्ने खूब रमण किया ॥ ४५ ॥ उस समय कभी तो वे बाहुओंको फैलाकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दूरकी गोपियोंको हृदयसे लगाते, किसीके हाथ पकड़ते, किसीकी घुंघराली अलकोंसे छेड़खानी करते, किसीकी जाँघ, किसीकी नीवी एवं किसीके पयोधरका स्पर्श करते किसीसे परिहास करते और किसीको तनिक नोच लेते थे। इस तरह नाना प्रकारके कौतुकोंसे व्रजाङ्गनाओंके कामभावको बढ़ाते हुए भगवान्ने उन्हें विहार कराया ॥ ४६ ॥ इस तरह महात्मा भगवान्

कार ॥ ४६ ॥ एवं भागवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥ तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीकृष्णसे मान पाकर वे गोपियाँ अपनेको इस पृथ्वीपर सब स्त्रियोंसे अधिक भाग्यवती समझने लगीं—कि हमारे जैसी दूसरी सुभग स्त्रियाँ नहीं हैं ॥ ४७ ॥ जब केशव भगवान्ने देखा कि इनके भीतर तो अब अभिमान एवं अहङ्कार आने लगा है, तो उसके गर्वकी शान्तिके लिए तथा उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिए वे वहीं अन्तर्हित हो गये ॥ ४८ ॥

उन्तीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, शरत्कालकी रातोंमें भगवान्को रमणकरनेकी इच्छा हुई। वे वनमें जा पहुँचे और वंशी बजाये। वंशीकी तान सुनते ही व्रजकी सभी स्त्रियाँ जो जिस हालतमें थीं, शीघ्र भगवान्की ओर दौड़ आयीं। भगवान्ने कहा—पतिव्रताओ अपने घर लौट जाओ। तुम्हारे माँ-बाप आदि तुम्हें ढूँढ़ते होंगे। रो रहे होंगे। लौट जाओ पर उन गोपियोंने भगवान्की एक न सुनी। उन्होंने कहा—प्रिय, हम आपके प्रेममें विह्वल हो चुकी हैं। हमारी आशाओं पर पानी मत फेरिये हमारा मन आपने हर लिया है। हम अब घर जाकर क्या करेंगी। हम आपके इस मुसकान भरे रूपको तथा वंशीकी माधुरी तानको सुनकर आपसे बाहर हो गयी हैं। हमारे हृदयके भीतर धधक रही कामकी ज्वालाको शान्त कीजिए। हमारे इन पयोधरों पर जरा हाथ तो रख दीजिए। भगवान् उनकी ऐसी कातर वाणी सुनकर उनके साथ यमुनाके तटके समीप पहुँचकर उनके साथ खूब रमण करने लगे। बादमें वे अपनेको ऐसा समझने लगीं कि इस पृथ्वीपर जितनी स्त्रियाँ हैं। उन सबमें सौभाग्यवती हमीं हैं। उनके इस अभिमानको देख भगवान् शीघ्र वहीं अन्तर्हित हो गये। उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(उन्मत्त गोपियों द्वारा श्रीकृष्णका अन्वेषण)

श्रीशुकदेवजीने कहा—जब भगवान् अचानक अन्तर्हित हो गये, तो वे गोपियाँ उन्हें न देखकर वैसेही दुःखित हुईं, जैसे यूथपतिके न रहनेपर हथिनियाँ आकुल हो जाती हैं ॥१॥

श्रीशुक उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥१॥ गत्यानुरागस्मित-

भगवान्की चाल, प्रेमपूर्ण मुस्कराहट, विलासभरी चितवन, मधुर बातचीत एवं क्रीडा-केलियोंसे गोपियोंका मन बिलकुल भगवान्में लग चुका था। वे इतनी तन्मय बन चुकी थीं कि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

उनकी क्रीडाओंको स्वयं करने लगीं ॥२॥ भगवान्‌की गमन, मुस्कराहट, चपलचितवन एवं बातचीतसे वे इतनी तन्मय हो गयीं कि अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गमन आदिमें प्रविरूढ़ मूर्ति हो गयीं—वे स्वयं वैसेही चलने, हँसने एवं बातचीत करने लगीं और मैं ही कृष्ण हूँ, यों सबकी सब समझने लगीं ॥ ३ ॥ वे तो उन्मत्त बन बैठी थीं । इसलिए वे उस परमात्माको जो आकाशकी तरह बाहर-भीतर व्याप्त है, पेड़-पौधोंसे पूछती फिरती थीं कि वह कहाँ गये ? वे जोर-जोरसे एक साथ मिलकर कृष्णको पुकार रही थीं, यों वे सबके सब एक वनसे दूसरे वनमें श्रीकृष्णको ढूँढ़ रही थीं ॥ ४ ॥ उन्होंने पीपल, बड़ एवं पाकरोंको सम्बोधित करके पूछा—अरे वृत्तो, क्या तुमने नन्दलालाको देखा है ? चोरकी तरह मेरे मनको अपने प्रेमपूर्वक हासावलोकनोंसे चुराकर वह कहीं खिसक गया है ॥ ५ ॥ गोपियोंने जब उनसे कुछ उत्तर न पाया, तो लोकोपकार करनेवाले वृत्तोंसे जाकर पूछा—ओ कुरबक, ओ अशोक, ओ नाग, पुन्नाग, चम्पा, क्या तुमलोगोंने बलरामके छोटे भैयाको इधरसे जाते देखा है ? उसकी मधुर मुसकानसे तुमने उसे अवश्य पहचान लिया होगा । उसकी मुसकान इतनी गजब ही है, हम

विभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥२॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥ गायन्त्यउच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ॥ पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥ दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थप्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ॥ नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥५॥ कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः ॥ रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥६॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ॥ सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ।७॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ॥ प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ॥ येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥९॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहै-र्विभासि ॥ अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥१०॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि-

मानिनी स्त्रियोंके सभी मान निकल गये ॥ ६ ॥ अरी कल्याणी तुलसी, तुम्हें तो उनके चरणोंमें अनुराग है, क्या तुमने कहीं उस अपने प्रियतम अच्युतको देखा है ? तुम्हें तो भ्रमरोंके साथ वे धारण करते हैं ॥ ७ ॥ अरी मालती, मालिका, जूही एवं चमेली, क्या तुमने कहीं माधवको देखा है, उन्होंने अपने करस्पर्शसे तुम्हें रोमाञ्चित करते हुए किधर गये हैं ॥ ८ ॥ ओ परोपकारमें जीवन अर्पण करनेवाले आम, प्रियाल, कटहल, असन, कचनार, जामुन, आर्क, बेल, मौलसिरी एवं कदम्बके वृत्तो, एवं अन्य सभी वृत्तों, हम उनसे विहीन हो गयी हैं, कहीं उन्हें जाते देखा हो तो बतलाओ, आप यमुनाके किनारे रहते हो, झूठ तो कभी न बोलोगे, बतलाओ कृष्ण किधर गये ? ॥ ९ ॥ ओ पृथ्वी, तुमने कौनसी ऐसी तपस्याकी है कि तुम्हें उनके चरणोंके स्पर्शसे रोमाञ्चित होनेका सौभाग्य मिला है ? अच्छा यह बतलाओ कि यह रोमाञ्च तुम्हें कृष्णके चरणस्पर्शसे हुआ है, या वामन भगवान्‌के चरणस्पर्शसे वा वाराहके

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आलिङ्गनसे ? ॥१०॥ सखि हरिणियो, बतलाओ, इधरसे अपनी प्रियतमाके साथ कृष्ण तो नहीं गये हैं ? कृष्ण तो अपने लावण्यमय अंगोंके द्वारा तुम्हारी आँखोंको सफल बनाते हैं। देखो न, यहाँ उनकी पहनी हुइ कुन्दमालाकी सुगन्धि लिए वायु बह रही है, जिसमें प्रियतमका आलिङ्गन करनेसे उसके कुचोंका कुङ्कम भी लग गया मालूम होता है ॥ ११ ॥ कुछ-कुछ पेड़ फलोंके बोझसे झुक गये थे। उन्हें मालूम हुआ कि अवश्य ये लोग कृष्णको देखकर उनको प्रणाम कर रहे हैं। अतः लोगोंने पेड़ोंसे पूछा—वृत्तो, ‚जरा यह तो बतलाओ कि एक हाथ प्रियतमाके कन्धेपर रख एवं दूसरे हाथसे कमल झुलाते हुए इधरसे कृष्ण तो नहीं निकले हैं ? उन्होंने तुलसीकी माला पहन रखो है, अतः उनके पीछे मदमत्त भौंरे भी मँड़राते जाते होंगे ? जब तुम लोगोंने प्रणाम किया होगे, तो प्रीतिस्निग्ध नेत्रोंसे तुम्हें अवश्य देखे होंगे ? क्यों ? ॥ १२ ॥ सखियो, जरा पेड़ोंसे लिपटी हुई इन लताओंसे तो पूछें', ये अवश्य उनका पता बतलायेंगी, क्योंकि उन्हें जो रोमाञ्च हो आया है, इससे पता चला है कि कृष्णने अवश्य इनका आलिङ्गन किया है ॥ १३ ॥ कृष्णकी खोजमें वे कातर हो चुकी

सुनिर्वृतिमच्युतो वः ॥ कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥ बाहुँ प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ॥ अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ॥१२॥ पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवत स्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥ कस्याश्चित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ॥ रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ॥ वत्सायन्तीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ॥ वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहाऽपरा ननु ॥ कृष्णोऽहं पश्यत

थीं। उन्हें अपनी कुछ सुध बुध तो थी नहीं। वे पागलों, जैसी बक-झक करती थीं। धीरे-धीरे कृष्णकी भावना दृढ़ हों गयी और वे उनकी भिन्न-भिन्न लीलाओंका अभिनय करने लगीं ॥१४॥ कोई पूतना बन गई और कोई कृष्ण बनकर उसका स्तनपान करने लगी। कुछने बालकृष्णका बाना बनाकर शकटका अभिनय करनेवाली पर एक लात जमायी ॥ १५ ॥ एकने शिशु कृष्णका रूप बनाया और दूसरीने तृणावर्तका रूप बना उसे उड़ाने की चेष्टा की ॥ कुछ घुटनेसे चलने की नकल करने लगीं, घुघरुएँ भी बाँध रखी थीं ॥ १६ ॥ कुछने कृष्ण और बलरामका पाठ लिया तो कुछ गोप बन गयीं। किसीने वत्सासुरका नकल किया, तो कृष्ण बनी गोपीने उसे पटकनेका अभिनय किया, किसीने बकासुर बनी हुई गोपी को मारनेकी नकल की ॥ १७ ॥ एक गोपींने वंशी बजाकर बहुत दूरतक गई हुई गौओंको बुलानेका नाट्य किया, तो और गोपियोंने बहुत ठीक-बहुत ठीक कहकर उसका सराहना प्रारम्भ कर दिया ॥ १८ ॥ कोई कृष्णका बाना बना अन्य गोपीके कन्धे पर हाथ रखकर चलने लगी। वह कृष्णमय हो रही थी, कह रहा थी, मैं ही कृष्ण हूँ, मेरी सुन्दर गति तो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देख लो ॥ १६ ॥ किसीने गोवर्धनधारणका अभिनय किया। कहा—ओ, तुम लोग आँधी-पानीसे तनिक भी न डरो। उससे बचावका उपाय मैंने कर लिया है, ऐसा कहकर उसने अपनी ओढ़नीको अपने एक हाथसे ऐसा ऊपर उठाया, मानो पहाड़ ही उठा रही हो ॥ २० ॥ हे राजन्, एक दूसरीपर चढ़ बैठी और एक लात मारकर बोली—अरे दुष्ट कालिय, यहाँ से भाग, नहीं तो तेरा कल्याण नहीं। मैं दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए अवतीर्ण हो चुका हूँ ॥२१॥ उनमेंसे एक गोपीने कहा—ओ ग्वालबाल, वह देखो, भयङ्कर वनाग्नि धधक उठी है, तुम सब अपनी आँखें झट बन्द कर लो। मैं तुन्हें बचा लूँगा ॥ २२ ॥ एकने यशोदा बन कृष्ण बनी हुई किसी दूसरी कोमलाङ्गीको मालासे उलूखलमें जकड़ दिया। वह बहुत डर गई। और उसके बाद उसने सुन्दर नेत्रवाले अपने मुखको दोनों हाथोंसे ढककर डरका ऐसा सुन्दर अभिनय किया कि जो अवर्णनीय है ॥ २३ ॥ इस तरह कृष्णकी लीलाओंका अभिनय करतीं वृन्दावनकी लताओं और वृक्षोंसे कृष्णको पूछती हुई उन लोगोंकी दृष्टि उस वनके किसी एक भागमें परमात्माके एक चरणचिह्न पर जा पड़ी ॥ २४ ॥ वे बोल उठीं—ये तो

गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १६ ॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥ आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ॥ दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥२२॥ बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ॥ लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५ ॥ तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ॥ वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ॥ यान्ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥

साफ-साफ उसी महात्मा नन्दके लड़के श्रीकृष्णके चरणचिह्न मालूम पड़ते हैं, क्योंकि इसमें ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश, यव आदिके चिह्न अङ्कित हैं ! ॥ २५ ॥ इस तरह उन चरणचिह्नोंका अनुगमन करती हुई वे सकल अवलाएँ आगे बढ़ने लगीं। कुछ दूरी पर उन्हें उन चिन्होंमें एक किसी स्त्रीका चिह्न दीख पड़ा। तब वे व्याकुल हो उठीं, बोलीं ॥ २६ ॥ ओ, यह किसी स्त्रीके चरणचिह्न हैं, जो नन्दजीके लाड़लेके साथ-साथ गयी है। जैसे हाथी अपनी स्त्रीके गलेमें सूँड फँसाकर जाता है, उसी तरह कृष्ण भी उस स्त्रीके कन्धे पर हाथ रखकर गये हैं ! ॥ २७ ॥ सचमुच वह स्त्री बड़ी भाग्यवती है और उसने ही सचमुच जगदीश्वर विष्णु भगवान्‌की आराधना की है। यही कारण है कि हमलोगोंको छोड़कर, उससे प्रसन्न हुए गोविन्द भगवान् उसे एकान्तमें ले गये हैं ॥ २८ ॥ सखियो, अहो, व्रजका रज कितना धन्य है। इसीलिए कि यह भगवान्‌के चरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो गया है। जिस चरण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रजको ब्रह्मा और लक्ष्मी भी अपने पापोंको मिटानेके लिए अपने मस्तकपर चढ़ाती हैं। (हम लोग भी इसे सिर पर चढ़ायें। जिसके पुण्यसे हम भगवान्को पुनः पा सकें) ॥ २९ ॥ अरी, उस स्त्रीके चरणचिह्न तो हमें खाये डालते हैं। जो सब गोपियोंके सर्वस्व श्रीकृष्णके अधरामृतका अपहरणकर वह अकेले पी रही है ॥ ३० ॥ देखो न, यहाँ तो उसके अब चरण-चिह्न ही नहीं दीखते। मालूम पड़ता है, प्रियतमने दूबकी नोंकोंसे उसके चरणोंको छिदते देख उसे कन्धेपर उठा लिया है ॥ ३१ ॥ मालूम पड़ता है प्रियतमने अपनी प्रेयसीके लिए यहाँ उचक-उचककर फूल तोड़े हैं। देखो न, तभी तो चरणके केवल पंजे उगे हैं और एड़ीका कहीं पता ही नहीं है ॥ ३२ ॥ यहाँ तो निश्चित ही कामी श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसी कामिनीका केश सँवारा है। अपनी कान्ताके मस्तकके केशोंमें फूल गूथनेके समय वे यहाँ अवश्य बैठे होंगे ॥ ३३ ॥ राजन, भगवान् तो आत्माराम हैं, उनका ब्रह्मचर्य अखण्डित है,

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् ॥ यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः ॥ खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ (इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥ अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ १ ॥) अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसकले पदे ॥ ३२ ॥ केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः ॥ कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥ ३६ ॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ॥ पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ॥ ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम् ॥ ३९ ॥ अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्यो विदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेष-

फिर भी उन्होंने जो इस तरह कामिनीके साथ रमण किया है वह इसीलिए कि कामियोंकी कातरता और स्त्रियोंकी दुष्टता प्रकट हो जाय ॥ ३४ ॥ वे विरहसे अचेत थीं। चरण चिन्होंको दिखलाती हुई वे इधर-उधर भटक रही थीं। उधर वनने अन्य स्त्रियोंको छोड़कर जिस गोपीको भगवान् श्रीकृष्ण ले गये थे, उसने समझा कि 'मैं सब गोपियोंमें श्रेष्ठ हूँ' तभी तो हमारे प्रिय उन सब गोपियोंको छोड़कर, जो हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण को जी जानसे चाह रही हैं, मुझे ही ले आये हैं और मुझे इतना मान रहे हैं ॥ ३५, ३६ ॥ उसे तो अभिमान हो आया था। कुछ दूर वनप्रदेशमें बढ़ने पर उसने भगवान्से कहा—म अब चल नहीं सकती। जहाँ ले चलनेकी तुम्हारी इच्छा हो वहाँ तुम कंधे पर बैठाकर ले चलो ॥ ३७ ॥ ऐसा कहनेपर भगवान्ने उस प्रेयसीसे कहा—आओ, कन्धेपर चढ़ जाओ। वह चढ़ने चली, पर भगवान् अन्तर्हित हो गये। पीछे उसे बड़ा पश्चाताप हुआ ॥ ३८ ॥ चिल्लाने लगी—

न पारयेऽहं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हा नाथ, रमण, प्रियतम, महाबाहो, सखे, तुम कहाँ हो। देव, मैं तुम्हारी दासी हूँ और तुम्हारे बिना बेचैन हूँ मुझे अपनी सन्निधि दिखलाओ दर्शन दो ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-राजन्, उधर गोपियाँ भगवान्के चरणचिन्होंकी ढूँढ़ती हुई वहाँ आ पहुँचीं। कुछ दूरसे ही उन्होंने उस अपनी सखी गोपीको प्रियके विरहमें कातर अतएव दुःखित देखा ॥ ४० ॥ जब उसने भगवान्से अपनी मानप्राप्ति एवं अपनी दुष्टतासे उनके अपमानकी बात बतलायी, तो सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४१ ॥ इसके बाद जहाँ तक चाँदनी छिटकी थी वहाँ तक वे वनमें चली गयीं। जब निविड़ अन्धकार मिला तो वे लौट आयीं कि यदि हम इसी तरह बढ़ती जायँगी, तो भगवान् और भी भीतर चले जायेंगे ॥ ४२ ॥ उनका मन कृष्णमें

मोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥ तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अवमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४३॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥

ही लगा हुआ था। वे कृष्णके विषयमें ही बातचीत कर रही थीं। वचन भी उनका उन्हींमें लगा हुआ था। और उनकी देह भी उनकी ही चेष्टाओंमें तन्मय थी। इस तरह वे कृष्णमय बन गयी थीं। फिर उन्हें अपने आपकी तथा गृह, पुत्रादिकी याद ही कैसे आती? वे सब भूल गयीं। उस समय वे केवल उनके गुणोंको ही गा रही थीं ॥४३॥ इसके बाद वे फिर उसी यमुनाके पुलिनपर आ गयीं। वे कृष्णकी भावनासे भावित होकर उनके आनेकी इच्छासे इकट्ठी होकर कृष्णके गुणोंको गाने लगीं ॥ ४४ ॥

तीसवें अध्यायका सार—भगवान्के अन्तर्हित होजाने पर गोपियोंके हृदयमें विरहकी ज्वाला जाग उठी, वे बेचैन हो गयीं। वे कृष्णकी लीलाओंका अभिनय करने लगीं। इसके बाद वे पेड़ों-पौधों से उनका पता पूछने लगीं। पूछते-पूछते जब वे कुछ दूर निकल गयीं तो उन्हें भगवान्के चरणचिह्न दीख पड़े। वहीं पर किसी गोपीके भी चरणचिह्न उगे थे। उन्हें देख वे व्याकुल हो गयीं। वे और वेगसे आगे बढ़ीं। कुछ दूर जाने पर उन्हें वह गोपी दीख पड़ी, जिसे भगवान् अपने साथ ले गये थे। वह रो रही थी। पूछने पर उसने कहा-मुझे मेरे सौभाग्यपर गर्व हो आया, मैंने भगवान्से कहा कि—आप जहाँ मुझे ले चलना चाहते हों, कन्धे पर बैठाकर ले चलिए। इतनेमें भगवान् अन्तर्हित हो गये। उनके बिना मैं बहुत व्याकुल हूँ। इसके बाद वे लोग फिर उसी यमुना पुलिन (तट) पर लौट आयीं और मिलकर भगवान्का गुणगान करने लगीं। तीसवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर पशुओंके पीछे-पीछे दौड़ते हैं और साँपके फणपर भी चढ़नेसे नहीं हिचकते। प्यारे, जरा उन चरणोंको हमारे कुचोंपर रखो और हृदयकी ज्वालाको शान्त कर दो ॥ ७ ॥ कमल सरीखे नयनोंवाले, मनोहर काव्योंसे युक्त तुम्हारी मीठी-मीठी बोलीसे जिसके कि एक-एक अक्षरसे पण्डितजन मुग्ध हो पड़ते हैं। हे वीर, हम बिलकुल मोहित हो चुकी हैं। अब तो हम दासियोंको अपने अधर रससे शराबोर ही कर दो ॥ ८ ॥ हम तो मर ही चुकी थीं, बस तुम्हारी कथाने हमें बचाया है। क्योंकि वह कथामृत विरहियोंका जीवन है, ब्रह्माआदिने उसकी महिमा गाये हैं, पापोंका नाश करता है, सुनने मात्रसे मंगलप्रद है और परम सुन्दर है। जो उसके गायक होते हैं, वे जन धन्य हैं। [जब तुम्हारी कथामें यह गुण है तब तुम्हारे संगके विषयमें क्या पूछना है ! अतः प्यारे दर्शन दे दो] ॥ ९ ॥ ओ छलिया प्रेमी, हमें तो तुम्हारी मुस्कराहट, प्रेमपूर्ण निरीक्षण, ध्यानमात्रसे मंगल देनेवाला विहार हृदयस्पर्शी एकान्तकी वह ठिठोलियाँ बेबस बना रही हैं ॥ १० ॥ हे नाथ, हे प्राणप्रिय, जरा सोचो तो सही, जब तुम व्रजसे गौ चराते हुए बनकी ओर जाते हो, तो यह सोचकर कि तुम्हारे

तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७ ॥ मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुध-
मनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥ ८ ॥ तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषा-
पहम् ॥ श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥ प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ॥ रहसि-
संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥ चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ॥ शिल-
तृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ११ ॥ दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ॥ घनरजस्वलं
दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं दुह्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ॥ चरणपंकजं शन्तमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३ सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्ते-
ऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्-

सुन्दर कोमल चरणकमलमें कहीं काँटे न चुभ जायँ, हमारा मन बेचैन हो उठता है। और हे वीर, तुम जब सायंकालको लौटते हो, तो अपने उस मुखकमलको दिखलाते हो, जिसपर काले काले घुँघराले बाल लटकते रहते हैं और गौओंकी खुरकी धूल लगी रहती है। इस तरह तुम केवल हमारे हृदयमें कामकी व्यथा बार बार भर देते हो, पर सङ्ग तो देते नहीं, कहो यह तुम्हारी कैसी कपटपटुता है ॥ ११, १२ ॥ अतः अब तो कपट छोड़ दो और जैसा हम कहती हैं, करो। अब तो हे रमण, हे मनकी पीड़ा शान्त करनेवाले हमारे प्राणप्यारे, अपने उस चरणकमलको हमारे वक्षःस्थलपर रखो ही, जो कि शरणागतोंका मनोरथ पूर्ण करता है, ब्रह्मासे पूजित है, पृथ्वीका मण्डन है, कल्याणकारक है एवं जिसका आपत्तिकालमें लोग ध्यान करते हैं ॥ १३ ॥ वीर, तुम्हारा अधरामृत संभोगसुखको बढ़ानेवाला एवं शोकको नष्ट करनेवाला है। वह मनुष्योंकी सब तरहकी आसक्तियोंको भुला देनेवाला है। हमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(दर्शनकी अभिलाषा कर रही गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण भगवान्‌के गुणोंका गान करना)

गोपियाँ रो रोकर कहने लगीं–प्रियतम, तुम्हारे जन्मसे व्रजमें बहुत उत्कर्ष हो आया है। यहाँ लक्ष्मीजी सर्वदा बसी रहती हैं। किन्तु हम तुम्हारी दासी सभी दिशाओंमें तुम्हें ढूँढ़ रही हैं—मारी मारी फिर रही हैं। हम गोपियोंका जीना बस तुम्हारे लिए है। अतः देव दर्शन दो ॥ १ ॥ ओ प्रेमके देवता, तुम्हारे नयनोंने हमें घायल कर दिया है। शरत्कालीन जलाशयमें उत्पन्न कमलकी सुन्दर कर्णिकाकी शोभा हर लेनेवाली आपकी वे आँखें हैं। उनसे तो हमारी हत्या हो रही है। हम तो तुम्हारी बिना खरीदी दासियाँ हैं और तुम हो सबको वर देनेवाले! फिर यह हत्या क्यों कर रहे हो? क्या इस लोकमें चितवनकी चोटसे मारना हत्या नहीं कहलाती! अतः दर्शन दे दो ॥२॥ और आपने तो बार-बार हमारी रक्षा की है। विषैले जलसे, अघासुरसे, आँधी-पानीसे, वज्रपातसे और दावाग्निने आपने हमें बचाया है। वृषभासुर और व्योमासुरसे तथा और भी सभी तरहके भयोंसे आपने हमारी रक्षा की है,

गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद विघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥ वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ॥ विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥ विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ॥ करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥ व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किङ्करी स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं

फिर हे ऋषभ, इसबार दर्शन दे कामसे मारी जा रही हमारी रक्षा क्यों नहीं करते! ॥ ३ ॥ सखे, हम जानती हैं कि आप केवल यशोदाके लाड़ला लाल ही नहीं हैं, आप तो प्रत्येक प्राणीकी अन्तरात्मा हैं। ब्रह्माकी अनेक प्रार्थना करनेपर आप विश्वकी रक्षाके लिए यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४ ॥ हे यदुवंशभूषण, तुम्हारे हाथ भवसे भीत शरणार्थियोंको अभयदान देते हैं। प्यारे, अपने उस हाथको, जिससे कि तुमने लक्ष्मीका पाणिग्रहण किया है, हमारे सिर पर रख दो ॥५॥ ओ व्रज–जनकी पीड़ाओंको मिटानेवाले वीर, तुमको रूठकर कहीं छिपे रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी मुस्कराहटकी हल्की लकीरोंसे ही हम लोगोंके गर्वका नाश हो जाता। अतः जरा अपनी दासियोंकी खबर तो लो। सखे, अपना मनोहर मुख-कमल हम अबलाओंको दिखलाओ ॥६॥ तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके पापोंको विनष्ट कर देते हैं। लक्ष्मीजी सदा उनका आश्रयण किए रहती हैं। फिर भी वे हमपर कृपा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उस अधरामृतको पिलाओ। उसे जब गानेवाली बाँसुरी पीती रहती है, तब हमें देनेमें हिचकिचाहट क्यों ? ॥ १४ ॥ जब तुम दिनमें जंगलोंमें चले जाते हो, तुम्हें न देख एक क्षण एक युगके समान मालूम पड़ने लगता है। और जब सायंकालको लौटते हो, तो घुघराली अलकोंसे युक्त तुम्हारे सुन्दर मुखको हम देखती ही रह जाती हैं। उस समय तो टकटकी लगाकर देखनेवालोंके पलकोंका गिरना भी बुरा मालूम पड़ता है। विधाता पर खीझ आती है कि उन्होंने उन्हें बनाने की नादानी क्यों की ? यही कहना पड़ता है कि वे ब्रह्मा भी हैं पूरे जड़ही ॥ १५ ॥ पति, पुत्र, भाई बन्धुको छोड़कर हम तुम्हारे समीप आयी हैं। हे अच्युत, हम तुम्हारी चालें समझती हैं, और तुम्हारे गीतसे मोहित हो चुकी हैं। हे धूर्त, इस तरह रातमें आयी स्त्रियोंको तुम्हारे सिवा कौन छोड़ सकता है ॥ १६ ॥ कामको उत्पन्न कर देनेवाली तुम्हारी एकान्तकी ठिठोलियाँ, प्रेमभरी चितवनसे युक्त मुसकुराहट और लक्ष्मीके निवास

दृशाम् ॥ १५ ॥ पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ॥ गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरःश्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ॥ त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥ यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥ तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० द० पू० रासक्रीडायां गोपीगीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

स्थानभूत शोभयमान चौड़े वक्षःस्थलको देखकर हम तो बिलकुल उत्सुक हो उठी हैं—हमारा मन बार-बार मोहको प्राप्त हो रहा है ॥ १७ ॥ प्यारे, तुम्हारा अवतार तो व्रजवासियोंके कष्टको मिटानेके लिए एवं सारे संसारके कल्याणके लिए हुआ है। अतः हमारे हृदयरोगको मिटा देनेवाली अपनी वह औषधि मनका मैल छोड़कर तनिक दे दो। हम तो तुम्हारी अपनी हैं। तुम्हारे सम्बन्धकी स्पृहामें ही हमारा मन लगा हुआ है ॥ १८ ॥ आपके चरणकमल तो अत्यन्त ही कोमल है। हम तो उसकी कोमलता देख अपने कर्कश स्तनों पर उसे डरते डरते सँभालकर ही रख सकेंगी। तुम तो उसी चरणसे जंगल झाड़में घूम रहे हो ? फिर भी वह तीखे तीखे काँटोंसे विद्ध क्यों नहीं हो जाता ? यह सब सोचकर हमारी बुद्धि चक्कर काटने लग जाती है। हम लोगोंका जीवन तो तुम्हीं हो ॥ १९ ॥

इकतीसवें अध्यायका सार—जब भगवान् अन्तर्हित हो गये और बहुत खोज-ढूढ़ करने पर भी न मिले, तो गोपियाँ रो पड़ीं। रो-रोकर उन्होंने भगवान्को कोसना शुरू किया। कहा कि भगवान् हमने तो सब कुछ आपके लिए छोड़ दिया और आप हम सबको छोड़ गये, यह उचित नहीं है। आओ, दर्शन दो। उसके बिना हम जी नहीं सकतीं। इकतीसवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(भगवान्का प्रकट होना तथा गोपियोंका सम्मान करना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इस तरह गोपियाँ अनेक तरहसे रोने-गाने लगीं। उनका रोना भी सस्वरगीत बन गया, क्योंकि कृष्णदर्शनकी लालसासे वे व्याप्त थीं ॥१॥ उन्हें इस तरह दुःखी देख उनके बीचमें भगवान् प्रकट हो गये। उस समय उनका मुखकमल मुस्कुरा रहा था, वे पीताम्बर एवं बनमाला धारण किये हुये थे। कामदेव भी उस रूपसे पराजित हो चुका था ॥२॥ जब गोपियोंने अपने प्रियतम कृष्णको आये हुए देखा, तो उनकी आँख खिल उठी। जैसे आये हुए प्राणको पाकर, चरण आदि सारे अङ्ग सजग हो उठते हैं, ठीक उसी तरह, वे सबके सब एक साथ उठ गयीं ॥ ३ ॥ मारे हर्षके किसीने तो भगवान्का करकमल अपने हाथोंमें ले लिया और किसीने उनकी चन्दनचर्चित भुजाको अपने कन्धेपर

श्रीशुक उवाच ॥ इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥ तासामा-
विरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥ तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ॥
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥ काचित्कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ॥ काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दन-
भूषितम् ॥ ४ ॥ काचिदञ्जलिनाऽगृह्णात्तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ॥ एका तदङ्घ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥ एका भ्रुकुटिमाबध्य
प्रेमसंरम्भविह्वला ॥ घ्नन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ॥ आपीतमपि नातृ-
प्यत्सन्तस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥ तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ॥ पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥ ८ ॥
सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ॥ जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ॥

रख लिया ॥ ४ ॥ एक छड़ी-सी पतली गोपीने अपने हाथमें उनका चबाया हुआ पान ले लिया, तो दूसरी ने उनके चरणकमलको अपने स्तनोंपर रख लिया, वह कामसे खूब जल रही थी ॥ ५ ॥ कोई प्रेमावेगसे विह्वल हो रही थी। उसने भौंहें तान ओठ काट विक्षेपसे बींधती हुई-सी उनकी ओर देखने लगी ॥ ६ ॥ दूसरी एक अपने निर्निमेष नेत्रोंसे उनके मुखकमलका पान करने लगी। बार-बार उस सुधाको पीकर भी वह उससे सन्तुष्ट न हुई। उसका वह काम सन्तोंके काम-जैसा था। सन्त भी भगवच्चरणके मधुपान से कभी सन्तुष्ट नहीं होते ॥ ७ ॥ जैसे योगी लोग भगवान्की मूर्तिका ध्यान द्वारा आलिङ्गन करते हैं, उसी तरह कोई गोपी उन्हें नेत्रछिद्र द्वारा [नेत्ररन्ध्र द्वारा] हृदयमें रखकर आँखें बन्द करके उनका आलिंगन करने लगी। उसे रोमाञ्च हो आया था ॥ ८ ॥ उन सब गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनरूपी परम महोत्सवसे आनन्दित हो उनके विरहजनित तापको ऐसे दूर कर दिया, जैसे मुमुक्षु लोग ईश्वरको प्राप्तकर सांसारिक तापको दूर कर देते हैं ॥ ९ ॥ राजन्, शोकशून्य उन गोपियोंसे घिरे हुए अच्युत भगवान् और अधिक शोभने लगे, जैसे कि ज्ञानबल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वीर्यादि शक्तियोंसे घिरा हुआ उपासक पुरुष अधिक शोभता है या सम्पूर्ण इन्द्रियशक्तियोंसे आवृत पुरुष अधिक शोभता है ॥ १० ॥ भगवान् उन्हें ले दे यमुनाके पुलिनपर पधारे । वहाँ कुन्द और मन्दार खिल रहे थे । उससे वहाँ की वायु सुगन्धित हो गयी थी एवं भौंरे गुञ्जार कर रहे थे ॥ ११ ॥ शरत्कालीन चन्द्रमाके किरणसमूहोंसे [चाँदनी से] रात का अन्धकार मिट चुका था । यमुनाने अपने लहररूपी हाथोंसे कोमल बालुओंको एकदम सजा दिया था ॥ १२ ॥ जैसे कर्मकाण्डमें अपूर्ण श्रुतियाँ ज्ञानकाण्डमें ईश्वरका प्रतिपादनकर पूर्णमनोरथ होती हैं वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनजनित आह्लादसे जिनके हृदयकी विरहजनित पीड़ा बिलकुल शान्त हो चुकी है ऐसी गोपियाँ पूर्णमनोरथ हो गईं । अपने बन्धु अन्तर्यामी श्रीहरिके लिए अपनी चादरोंसे उन गोपियोंने सुन्दर आसनकी रचना कर डाली, जिनमें उनके स्तनोंकी रोलीके धब्बे लगे हुए थे ॥ १३ ॥ वह भगवान् परमेश्वर, जिन्हें बड़े बड़े योगी लोग अपने हृदयकमलके भीतर विरचित आसनपर बैठाना चाहते हैं, गोपियोंकी चादरपर बैठ गये । तीन लोकमें जो कुछ सौन्दर्य है उन सबका एकमात्र

व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिल-
षट्पदम् ॥११॥ शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥ तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनो-
रथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३॥ तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरान्त-
र्हृदिकल्पितासनः ॥ चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥ सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं सहासलीलेक्षणवि-
भ्रमभ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्य-
यम् ॥ नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ॥
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥ भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ॥ धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च

आश्रयभूत अपने शरीर को धारण करते हुए वे भगवान् उन गोपियों की परिषत्के बीच में उनसे पूजित होकर बहुत सुन्दर मालूम पड़ते थे ॥ १४ ॥ अपने सौन्दर्यसे वे गोपियोंकी लालसाको और उद्दीप्त कर रहे थे । गोपियोंने मुस्कराकर विलासपूर्ण चितवन एवं तिरछी भौंहोंसे उनका सम्मान किया । उनके हाथ और चरणों को अपनी गोदमें लेकर एवं उनके मीठे स्पर्शकी तारीफ कर [देखो न, अहो यह कितना शीतल है, यह कितना सुन्दर है, इसके स्पर्शमात्रसे हमारे हृदयके सन्ताप मिट गये । परन्तु तुम्हें तो हमारे दुःख मालूम ही नहीं, इसीलिए हमें छोड़कर चले गये थे, यों तारीफ कर] कुछ क्रुद्ध सी होकर कहने लगीं ॥ १५ ॥ गोपियोंने कहा—कुछ लोग ऐसे होते हैं कि प्रेम करनेवालेसे प्रेम करते हैं, कुछ ऐसे होते हैं कि प्रेम न करनेवालेसे भी प्रेम करते हैं और कुछ ऐसे होते हैं कि प्रेम करनेवालेसे भी प्रेम नहीं करते, फिर प्रेम न करनेवालोंसे वे प्रेम क्या करेंगे ? आप बतलाइये कि इनमें आप को कौन अच्छा लगता है ? ॥ १६ ॥ भगवान्‌ने कहा—सखियो, जो लोग परस्पर एक दूसरेके उपकार-प्रत्युपकारकी अपेक्षासे प्रेम करते हैं वे अपनी आत्माका ही प्यार करते हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्यका नहीं। चूँकि जिनका एकमात्र उद्यम अपना मतलब सिद्ध करनेमें ही रहता है, ऐसे वे होते हैं, इसलिए उनका वह प्रेम भी एकमात्र अपना प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये ही होता है, दूसरेके लिए नहीं। अतः उस प्रेममें उसका फल मैत्री या प्रेमधर्म कोई भी उत्पन्न नहीं होता ॥ १७ ॥ हाँ, जो दयालु लोग माता पिताकी तरह अपनेसे न प्रेम करने वालेसे भी प्रेम करते हैं, सुन्दरियो, सचमुच उस प्रेममें ही निर्बाध धर्म एवं सौहार्द रहता है ॥ १८ ॥ और जो लोग तो अपने प्रेमीसे भी प्रेम नहीं करते, फिर न करनेवालेसे तो कुछ पूछना ही नहीं है, वैसे लोग चार तरहके होते हैं, एक तो आत्माराम—जो कि आत्मा के अतिरिक्त और कुछ देखते सुनते नहीं, दूसरे आप्तकाम—पूर्णकाम होनेके कारण दूसरे के साथ प्रेम करनेमें प्रवृत्तिरहित, तीसरे अकृतज्ञ, जो दूसरे द्वारा किए गये उपकारका अनुसन्धान नहीं करते यानी मूर्ख चौथे होते हैं—गुरुद्रोह, जो लोग माता-पिता—जैसे निश्चलप्रेम करनेवालोंसे भी द्रोह करते हैं अर्थात् कृतघ्न ॥ १९ ॥ सखियो, मैं तो उन लोगोंमें हूँ, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेमका व्योहार नहीं करता, इसका मतलब यह नहीं कि मैं उन अपने प्रेमियोंसे भी प्रेम करता ही नहीं, प्रेम तो करता हूँ, पर प्रकट नहीं, वह इसलिए कि उनकी चित्तवृत्ति बिलकुल मुझमें ही लग जाय। जैसे कोई निर्धन धन पाकर उस

सुमध्यमाः ॥ १८ ॥ भजतोऽपि न वै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झित-लोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥ न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ॥ या माऽभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥ इति श्रीम-द्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

धनके नष्ट हो जाने पर उसकी प्राप्तिकी चिन्तासे व्याप्त हो और कुछ नहीं जानता—उसकी चित्त-वृत्ति उसीको पानेमें लगी रहती है, वैसे ही मैं भी मिलकर बिछुड़ जाता हूँ ताकि प्रेमीकी सारी चित्तवृत्ति एकाग्र हो जाय ॥ २० ॥ प्रिय गोपियो, तुम लोगोंने तो मेरे लिए लोक और शास्त्र की मर्यादा एवं अपने सगे सम्बन्धियोंका कोई विचार नहीं किया है। इस हालतमें मैं भी चाहता हूँ कि तुम्हारी चित्तवृत्ति अन्यत्र न जाय, तुम्हारा प्रेम शाश्वत हो अटल हो। और इसलिए मैं छिप गया था। छिपकर तुम्हारी प्रेमकी बातों को सुन रहा था, कहं गया तो था नहीं? अतः मुझपर दोषदृष्टिसे मुझ प्रियको देखना तुम्हें उचित नहीं है—दोष मत मढ़ो ॥ २१ ॥ यदि मैं दिव्य जीवनसे देवताओंकी आयुकाल तक निष्कपट प्रेम करनेवाली तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाना चाहूँ, तो भी चुका न सकूँगा। तुम लोगोंने तो घर-गृहस्थीके कड़ेसे कड़े जञ्जीरों को तोड़कर मुझसे प्रेम किया है। उसका ऋण मैं कैसे चुका सकूँगा। हाँ, यदि तुम लोग अपने साधु स्वभावसे मेरा ऋण चुका दो, तभी वह सम्भव है ॥ २२ ॥

बत्तीसवें अध्यायका सार—जब गोपियाँ रो-रोकर तरह-तरहका प्रलाप करने लगीं, बड़ी विकल हुईं, तब कृष्ण उनके बीचमें प्रकट हो गये। उनका सौन्दर्य इस बार इतना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निखर उठा था कि कामदेव भी लजा जाता था। गोपियोंकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न था। उन्होंने कई तरहसे अपनी व्यथा मिटायी। भगवान् उन सबोंको लेकर यमुनाके पुलिन पर पहुँचे। गोपियोंने अपनी चादर बिछा दी। और वे उसपर बैठ गये। गोपियोंने पूछा कि, तुमको तो हम चाहती हैं, और तुम इस तरह भागे-भागे क्यों फिरते हो? भगवान्ने बतलाया कि यह सब काम प्रेमको और उभाड़ने वाला था। मैं यहीं छिपकर तुम लोगोंकी बातें सुन रहा था। बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(श्रीकृष्णका गोपियोंके साथ महारासक्रीडाकरना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, गोपियोंने कृष्णकी ये मनोहर बातें सुनीं, तो उनके विरहसे उत्पन्न सारे दुःख नष्ट हो गये। उनके अङ्ग-स्पर्शसे तो वे एकदम कृतकृत्य ही हो गयीं, उनके मनोरथ और बढ़ गये॥ १॥ वहाँ भगवान् गोविन्दने अपने आधीन हुई परम प्रसन्न गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा प्रारम्भ कर दी। गोपियोंने एक दूसरेका हाथ पकड़ रखा था॥ २॥ इस तरह गोपियोंके बीचमें, जो मण्डलरूपसे स्थित थीं, प्रकट हो गये और गलबहियाँ डाल दीं। गोपियोंने समझा कि प्रियतम तो मेरे पास ही हैं—मुझे ही आलिङ्गित

श्रीशुक उवाच॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः॥ जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः॥ १॥ तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः॥ २॥ रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः॥ प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः॥ ३॥ यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसंकुलम्॥ दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्॥ ४॥ ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः॥ जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्॥ ५॥ वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले॥ ६॥ तत्रातिशुशुभे

किये हुए हैं। तत्क्षण उत्सुकतासे विवश चित्तवाले देवतागण अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ विमान पर बैठकर वहाँ आ पहुँचे। आकाशमें इतने विमान उतर पड़े कि, जिनकी कोई गिनती न थी॥३,४॥ तदनन्तर अपने-आप दुन्दुभियाँ बज उठीं। पुष्पवृष्टि होने लगी। श्रेष्ठ गन्धर्व अपनी स्त्रियोंके साथ कृष्णका निर्मल यशोगान गाने लगे॥५॥ श्रीकृष्ण और गोपियोंके उस रासमण्डलमें उनके कङ्कण, नूपुर, और पायजेबकी तुमुल ध्वनि हुई॥ ६॥ उन गोपियोंके बीचमें देवकीसुत ऐसे अत्यधिक शोभने लगे, जैसे सुवर्ण-मणियोंके बीचमें महामरकत मणि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शोभता है ॥ ७ ॥ आगे-पीछे पैर रखना, भावप्रदर्शन के लिए हाथोंका घुमाना, मुस्कुराना, भौहें नचाना, आदि कामों तथा कमरकी लचकसे परेशान सी हो गयीं। नाचनेसे उन के स्तन का कपड़ा हट गया था और कुण्डल उनके गाल पर झूल रहे थे। उनके मुखपर पसीना आ गया। नाचनेके कारण केशपाशों और करधनियोंकी गाँठें ढीली पड़ गई थीं, नाचनेके साथ-साथ कृष्णकी वे प्रियतमाएँ गा भी रही थीं। उस समय कृष्ण मेघकी तरह एवं गोपियाँ बिजलीके समान शोभित हो रही थीं ॥ ८॥ जिनके गीतोंसे यह सारा विश्व आवृत है ऐसी वे नृत्यशीला नाना रागोंसे अनुरञ्जित कण्ठवाली गोपियाँ, जिन्हें एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीति ही प्रिय है, श्रीकृष्ण भगवान्के स्पर्शसे अत्यन्त आनन्दित होकर

ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ॥ मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्च-
लकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ॥ स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥
उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ॥
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ॥ तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ १० ॥ काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य
गदाभृतः ॥ जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ॥ चन्दनालिप्तमाघ्राय
हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ १२ ॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ॥ गण्डं गण्डे संदधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ १३ ॥

ऊँचे स्वरसे गान करने लगीं ॥९॥ कोई गोपी कृष्णके स्वरमें स्वर मिलाकर गाती जा रही थी। उसने* उनसे भी उच्च स्वरमें गाया, भगवान्ने प्रसन्न होकर उसको बहुत सराहा। उसी रागको दूसरी गोपीने [१] ध्रुपद में गाया, भगवान्ने पूर्व गोपीसे अधिक उसकी तारीफ की—उसे रत्नमाला आदि पुरस्कारमें दिया, ॥ १० ॥ एक गोपी [२] राससे थक गयी थी। उसके हाथसे कंकण और सिरसे फूल खिसक रहे थे। इसने समीपमें खड़े कृष्णके कन्धेको बाहुओंसे जकड़ लिया ॥११॥ उन गोपियोंके बीचमें दूसरी गोपी [३] श्रीकृष्णके कमल सरीखे गन्धवाली एवं चन्दनचर्चित बाहुको, जो कि उसके कन्धेपर पड़ा था, सूँघकर रोमाञ्चित हो गयी, उसने उसका झट चुम्बन कर लिया ॥१२॥ किसी गोपीके [४] कुण्डल नाचनेकी वज

---

*यह विशाखा थी। [१] यह गानमें अत्यन्त कुशल ललिता थी। सुनिये स्वर क्या है—'षडजर्षभौ च गान्धारौ मध्यमः पञ्चमस्तथा। धैवतश्च निषादश्च सर्वे स्युः श्रुतिसंभवाः। मयूर-चातकच्छागक्रौञ्चकोकिलदर्दु राः। मातङ्गश्च क्रमेणाहुः स्वरानेतान् सुदुर्लभान्।' स्वरोंकी अठारह जातियाँ हैं। सुनिये—'रागस्तु जायते यस्याः सा जातिरभिधीयते। शुद्धा च विकृता चेति सा द्विधा परिकीर्तिता। शुद्धाः स्युः जातयः सप्त ताः षड्जादि स्वराभिधाः। ता एव विकृता सत्यो जाता विकृतसंज्ञया ॥'

[२] यह राधिका थी। [३] यह श्यामला थी। (४) यह शैव्या थी। (५) यहाँ पर 'काऽपि' पदकी आवृत्ति कर कोई-कोई लोग दो गोपियोंका ग्रहण करते हैं। उनका 'नृत्यन्ती' पदसे 'चन्द्रावली' और 'गायती' पनसे उसकी सखी 'पद्मा' का ग्रहण करनेमें तात्पर्य है, इस तरह सात सखियोंका वर्णन हो चुका। आठवी 'भद्रा' की खोज करनी चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हसे हिल-डुल रहे थे। उसने उन कुण्डलोंकी कान्तिसे मण्डित अपने कपोलस्थलको कृष्णके कपोलस्थलसे सटा दिया। भगवान्‌ने अपना चबाया हुआ पान उसके मुखमें दे दिया ॥१३॥ कोई नाचने-गानेमें तल्लीन थी [५] उसके पैरके पायजेब और करधनी अलंकृत हो रही थी। जब थक गयी, तब समीपमें खड़े श्रमनिवर्तक कृष्णके करकमलको अपने वक्षःस्थल के दोनों तरफ [स्तनोंपर] रख लिया ॥ १४ ॥ गोपियाँ लक्ष्मीके अतिप्रिय अच्युत भगवान्‌को पति पाकर गाती हुई विहार करने लगीं। भगवान्‌ने अपनी दोनों भुजाओंको उनके गलेमें डाल दिया ॥ १५ ॥ गोपियोंके मुखकी शोभा कान पर पड़े कमलोंसे एवं कपोल पर झूलते अलकों तथा श्वेदबिन्दुओंसे और बढ़ गयी थी। उनके कंकण एवं पायजेबके बाजे बज रहे थे। भ्रमर ही उनके रासके गायक थे। वे कृष्णके साथ नृत्य करने लगीं। नाचते-नाचते उनके जूड़ेके फूल बिखर उठे ॥ १६ ॥ जैसे बच्चे अपनी परछाई के साथ खेलते हैं उसी तरह भगवान्‌ने भी उस समय किसीको हृदयसे लगाकर, किसीको हाथोंसे छूकर, किसीको चल चितवनसे निहारकर, और कभी उन्मुक्त हँसी हँसकर व्रजांगनाओंके साथ विहार

नृत्यन्ती गायती काचित्कूजन्नूपुरमेखला ॥ पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ॥ गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥ गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥ एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥१७॥ तदंगसंगप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा ॥ नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ॥ कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुह-

किया ॥ १७ ॥ राजन्, कृष्णके अङ्गसंगसे गोपियोंकी इन्द्रियाँ आनन्दसे विह्वल हो गयी थीं। उनके आभरण एवं माल्य बिखर गये थे। उस समय वे खुलते केश, कपड़े एवं स्तन पट को अनुसन्धानपूर्वक पहलेकी नाईं रखनेमें समर्थ न हो सकीं ॥ १८ ॥ भगवान् कृष्णकी उस क्रीडाको देखकर देवांगनाएँ भी कामसे मोहित हो गयीं। ताराके साथ चन्द्रमा भी विस्मित हो गये ॥ १९ ॥ जितनी गोपियाँ थीं उतने ही रूप धरकर वह आत्माराम भी भगवान् मजेमें उनसे विहार करने लगे ॥ २० ॥ राजन्, बहुत देर तक विहार करते रहनेके कारण गोपियाँ थक चुकी थीं, उनके मुखपर श्रमबिन्दु आ गये थे। भगवान्‌को दया आ गई। उन्होंने बड़े प्यारसे उनके मुखको अपने निरतिशय सुखदायी हाथसे पोंछ दिया ॥ २१ ॥ गोपियोंको भगवानके नखस्पर्शसे अत्यन्त हर्ष हुआ। वे कपोलोंके सौन्दर्यसे जिनपर सुवर्णके कुण्डलों एवं कुन्तलोंकी कान्ति स्फुटित हो रही थी, अमृततुल्य मुस्कुराहट से और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चलचितवनसे अपने स्वामी श्रीकृष्ण का सम्मान करती हुई उनके पुण्य कृत्योंका गान करने लगीं ॥ २२ ॥ इसके बाद जैसे हाथी तटको तोड़-फोड़कर हथिनियोंके साथ जलमें घुसता है वैसे ही वेद और लोक की मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले भगवान्ने भी गोपियोंके साथ थकान मिटानेके लिए यमुनाजलमें प्रवेश किया। उस समय भगवान्की वनमाला गोपियोंके अंगोंकी रगड़से कुछ कुम्हला गयी और उनके स्तनपर लगाये गये केसरसे रंग भी गयो थी। उस मालाके पीछे-पीछे गुनगुनाता हुआ भ्रमर मँडरा रहा था, वह ऐसा मालूम पड़ता था मानो गन्धर्वराज कृष्णका गुण-गान गा रहे हों ॥ २३ ॥ राजन्, हँसती हुई युवतियाँ प्रेमपूर्वक उन्हें निहार-निहाकर इधर-उधरसे उनपर जलकी बौछारें खूब डालने लगीं। देवता लोग विमानोंसे फूल वर्षाकर उनकी स्तुति करने लगे। इस तरह स्वयं आत्माराम भी भगवान् श्रीकृष्णने मतवाले हाथी की नाईं जलक्रीडाके भीतर रमण किया ॥ २४ ॥ इसके बाद यमुना के उपवनमें [तटपर] जहाँ दिशाओंके ओर-छोर तक जल-थलमें उगे फूलोंकी सुगन्धि लेकर मतवाली वायु बह रही थी, भ्रमरों एवं युवतियोंसे घिरे अच्युत भगवान् ऐसे विचरने लगे,

स्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥ ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्गघृष्टस्रजः सकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः ॥ गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः श्रान्तो गजीभीरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ॥ वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ॥ चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्द्विरदः करेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ॥ सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट

जैसे हाथियोंके साथ गजेन्द्र विचर रहा हो ॥ २५ ॥ इसतरह सत्यकाम आत्माराम भगवान्ने उस शरत्कालीन रात्रिका, जिसमें अनेक रात्रियाँ मिल गयी थीं, प्रीतियुक्त अबलाओंके साथ सेवन किया, फिर भी उन्होंने अपने में ही वीर्य रोक रखा—स्खलित होने नहीं दिया। वह रात ज्योत्स्नासे मण्डित तो थी ही, शरत्कालीन उन सभी चीजोंसे सम्पन्न थी, जिनका कि काव्योंमें वर्णन मिलता है ॥ २६ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा—ब्रह्मन्, भगवान् तो धर्मकी स्थापना एवं अधर्मके नाशके लिये अपने अंशसे अवतीर्ण होते हैं। धर्मकी मर्यादा का जो कर्ता, उपदेष्टा एवं पालक हैं, उन्हीं जगदीश्वरने परस्त्री स्पर्श-जैसे गर्हित कर्म क्यों किया ? ॥ २७-२८ ॥ श्रीकृष्ण तो आप्तकाम हैं, उन्हें भला किसी चीजकी क्या कमी है ? फिर उन्होंने इस तरह का जो निन्दित कर्म किया उसका क्या अभिप्राय था ? हे सुव्रत, मेरे इस सन्देहको आप दूर कीजिए ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, प्रजापति, इन्द्र, सोम और विश्वामित्र आदि समर्थ लोगोंका भी कभी-कभी धर्मव्यतिक्रम एवं साहस देखा-सुना गया है। सर्वभक्षी अर्थात् विष्ठा आदि अपवित्र पदार्थोंको भी जला देनेवाली अग्नि को

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जैसे किसी तरहका दोष नहीं लगता वैसे ही तेजस्वी लोगोंको अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण किसी तरहका दोष नहीं लगता। उनका कोई काम पापके लिए होता ही नहीं ॥ ३० ॥ किन्तु जो समर्थ नहीं हैं, उन लोगोंको तो मन से भी ऐसे कर्मोंका अनुकरण न करना चाहिये। यदि मूर्खतावश जो कोई ऐसा आचरण कर बैठेगा तो उसका नाश हो जायगा। शङ्करने तो विष भी पी लिया था, वे तेजस्वी थे, समर्थ थे, उसे पचा ले गये। यदि कोई साधारण प्राणी विषपान का अनुकरण करेगा तो अवश्य मर मिटेगा ॥ ३१ ॥ अतः जो समर्थ हैं, उनके वचनको ही प्रमाण रूपसे मानना चाहिए। उनका आचरण तो कहीं-कहीं प्रमाण होता है। अतः उनका जो आचरण उनके वचनके अनुकूल हो, उसीका बुद्धिमान्‌को अनुकरण करना चाहिए ॥ ३२ ॥ हे प्रभो, इन समर्थ जीवोंका न तो सत्कर्मसे अपना कुछ स्वार्थ रहता है और न असत्कर्मसे इन्हें कोई अनर्थ नही छूता है। वे तो अहंकारसे ऊपर उठे हुए हैं, अतः उनके लिए कर्मका बन्धन नहीं होता ॥ ३३ ॥ जो कृष्ण भगवान् यक्ष, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं उनको मानवीय पाप-पुण्यका सम्बन्ध कैसे हो सकता

ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥३१॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥३२॥ कुशलचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥ ३३ ॥ किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ॥ ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥ यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ॥ स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र

है ? ॥ ३४ ॥ भला जिस भगवान्‌के चरणकमलके परागकी सेवासे तृप्त होनेवाले लोग योगके बलसे अखिल कर्मबन्धनोंसे जब छूट जाते हैं एवं ज्ञानीलोग बन्धनसे छूट स्वतन्त्र बनकर यथेच्छ कर्म करते हैं, तब अपनी इच्छासे मनुष्य शरीरधारी स्वयं उन भगवान्‌को कोई कर्मबन्धन कैसे लगेगा ॥ ३५ ॥ राजन्, भगवान्‌का शरीर तो हमारे और आपके जैसा है नहीं, जो उन्हें दोष लगे। जो गोपीजन, उनके पति एवं सभी प्राणियोंके हृदयके भीतर नियन्तारूपसे रहते हैं, वे तो बुद्धि आदि सबके साक्षी हैं। उन्होंने तो केवल लीला करनेके लिए ही इस लोकमें मनुष्यशरीर धारण किया है ॥ ३६ ॥ भगवान् जो केवल प्राणियोंपर दया करनेके लिए ही मनुष्यशरीर धारण करते हैं और वैसी मधुर चेष्टाएँ करते हैं, जिनका स्मरण कर मनुष्य श्रीकृष्णपरायण हो जाय ॥ ३७ ॥ व्रजवासी जनोंने श्रीकृष्णके सम्बन्धमें कुछ भी भला-बुरा न सोचा। भगवानकी मायासे वे मोहित हो चुके थे, उन्हें तो यह मालूम पड़ा कि उनकी पत्नियाँ उनके पास ही हैं ॥ ३८ ॥ वह रात्रि ब्रह्माकी रात्रिकी तरह बड़ी थी। जब वह समाप्त होनेको हुई तो कृष्णकी आज्ञासे गोपियाँ अपने-अपने घरकी ओर लौटीं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्हें लौटनेकी तनिक भी इच्छा न थी, क्योंकि उनके तो भगवान् ही प्रिय थे। पर भगवान्की आज्ञा वे कैसे टाल सकती थीं ॥ ३९ ॥ भगवान् कृष्णकी गोपियोंके साथकी इस क्रीडाको जो श्रद्धासे सुनेगा या वर्णन करेगा, वह भगवानमें पराभक्ति प्राप्तकर शीघ्र ही जितेन्द्रिय बन करके हृदयरोगकी नाईं अनर्थकारक कामको नष्ट कर देगा ॥ ४० ॥

उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

तेंतीसवें अध्यायका सार—हे राजन्, भगवान्की मनोहर मीठी बातें सुन गोपियोंका सारा विरहजन्य दुःख मिट गया। कृष्णका स्पर्श पा वे कृतकृत्य हो गयीं। वे एक दूसरेके गलेमें बाँह डाल खड़ी हो गयीं। भगवान् अनेक रूप धरकर दो-दोके बीचमें खड़े हो गये। सबोंको यह अनुभव हुआ कि भगवान् मेरे ही साथ हैं। रास प्रारम्भ हुआ। स्वर्गके नगारे अपने आप बज उठे। गन्धर्व तरह-तरहके गीत गाने लगे। पुष्पवृष्टिकी झड़ी लग गयी। पायजेब एवं करधनीके झङ्कारसे दिग्दिगन्तर मुखरित हो गया। इसतरह जब बहुत देर तक नृत्य होता रहा, तो गोपियाँ थक गयीं। भगवान् उन सबोंको साथ लेकर यमुनाके तटपर पहुँचे। बादमें उससे निकलकर सुगन्धित यमुना उपवनमें विचरण करने लगे। शरद्की बहुतसी रात्रियाँ उस एक रात्रिमें पुञ्जीभूत हो गयी थीं। इसतरह वह एककी रात्रि ब्रह्माकी रात्रिके बराबर थी' तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(सुदर्शन और शंखचूड़का उद्धार)

श्रीशुकदेवजीने कहा–राजन, एक बार गोपालोंको देवयात्राकी बड़ी उत्सुकता हुई। उन्होंने बैलगाड़ियोंपर सवार हो अम्बिका वनकी यात्रा की ॥१॥ राजन वहाँ उन लोगोंने

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥ २ ॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधुमध्वन्नमादृताः ॥

सरस्वती नदीमें स्नानकर सर्वसमर्थ पशुपति देव तथा अम्बिका देवीकी बड़ी भक्तिसे अनेक पूजन सामग्रियोंसे पूजा की ॥ २ ॥ तदनन्तर 'भगवान् महादेवजी हमलोगोंपर प्रसन्न होवें' इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिप्रायसे उन्होंने ब्राह्मणोंको गौ, सुवर्ण, कपड़े और मधुरमिश्रित मीठे-मीठे अन्न बड़े आदरके साथ दिये ॥ ३ ॥ नन्द, सुनन्द आदि गोपोंने उपवास व्रत किया। केवल जल पीकर वे रात्रिमें उसी सरस्वतीके तटपर रह गये ॥ ४ ॥ उसी अम्बिकावनमें एक कोई बड़ा अजगर था, जो भूखसे व्याकुल था। वह दैववश उधर आया और सोते हुए नन्दजीको पकड़ लिया ॥ ५ ॥ सर्पसे ग्रस्त नन्दजीने कृष्णकी गुहार की—कृष्ण, कृष्ण, हे तात, देखो यह बड़ा साँप मुझे निगले जा रहा है। मैं तुम्हारी शरण हूँ, मुझे बचाओ ॥ ६ ॥ नन्द बाबाका चिल्लाना सुनकर सभी गोपाल सहसा जाग पड़े। उन्हें अजगरसे ग्रस्त देख घबड़ा गये और लुकाठियों [जलती हुई लकड़ी] से साँपको मारने लगे ॥७॥ किन्तु लुकाठीकी उस मारसे साँपने नन्द बाबाको छोड़ा नहीं। तब यादवपति भगवान् वहाँ आ पहुँचे और लातसे उसे छू दिया ॥ ८ ॥ भगवान्के चरणका स्पर्श होते ही उसका सारा पाप दग्ध हो गया और वह साँपका देह छोड़कर विद्याधरोंका वन्दनीय बन गया ॥ ९ ॥ बड़ी नम्रतासे भगवान्को प्रणामकर उनके सामने वह खड़ा हो गया। उसके शरीरसे दीप्ति निकल रही थी और वह सुवर्ण-

ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः ॥ रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः ॥ यदृच्छयागतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥ स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ॥ सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः ॥ तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्वतांपतिः ॥८॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥ को भवान्परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥ १२॥ ऋषीन्विरूपानङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥ शापो मेऽनुग्रहायैवं कृतस्तैः

की माला पहने हुए था। हृषीकेश भगवान्ने उससे पूछा ॥ १० ॥ आप कौन हैं, आप तो सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यसे युक्त प्रकाशित हो रहे हैं—परम तेजस्वी और अद्भुत दीख पड़ते हैं ? यह भी बतलाइये कि आप इस घृणित साँपयोनिमें विवश हो कैसे आ पड़े थे ? ॥ ११ ॥ सर्पने कहा—मैं सुदर्शन नामका प्रसिद्ध कोई विद्याधर था। सौन्दर्य और लक्ष्मी दोनों मुझमें थी। मैं विमानपर चढ़ दिशा-विदिशाओंमें चक्कर लगाता रहता था ॥ १२ ॥ एक दिन मैंने अङ्गिरा गोत्रवाले कुछ ऋषियोंको देखा, जो कुरूप थे। और मुझे तो अपने सौन्दर्यपर गर्व था। मैं उनकी कुरूपतापर हँस पड़ा। मैंने उन्हें क्षुब्ध कर दिया, क्षुब्ध हुए उन ऋषियोंके द्वारा अपने ही पापके कारण मैं इस सर्पयोनिमें पहुँचा दिया गया ॥ १३ ॥ सच पूछिये तो उन दयालुओंने यह शाप देकर मुझपर अनुग्रह ही किया। तभी तो मुझे तीनों लोकके गुरु भगवान्के चरणस्पर्शका सौभाग्य मिला, जिससे मेरा दुरित नष्ट हो गया ॥ १४ ॥ हे दुःखोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाश करनेवाले भगवन्, आप भवसे भीत होकर शरणमें आये हुए लोगोंके भयको दूर कर देते हैं। मैं अब आपके चरणस्पर्शके कारण शापसे छूट गया हूँ। आपसे अनुमति ले अपने लोकमें जाना चाहता हूँ ॥ १५ ॥ हे महायोगिन्, हे महापुरुष, हे सत्पते- हे सर्वलोकेश्वरोंके ईश्वर, हे देव, मैं आपकी शरणमें हूँ, मुझे आज्ञा दीजिए ॥ १६ ॥ हे अच्युत, अपने स्वरूपसे कभी न च्युत होनेवाले हे भगवन्, आपके दर्शनमात्रसे मैं ब्राह्मणोंके शापसे शीघ्र छूट गया हूँ। किन्तु यह कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि जो आपके नामका संकीर्तन करनेवाले हैं, वे लोग जब अपने और अपने सभी श्रोताओंको नामोच्चारण करते ही शीघ्र पवित्र कर डालते हैं, तब फिर उसके लिए क्या पूछना है, जो आपके साक्षात् चरणसे स्पृष्ट हुआ है ॥ १७ ॥ इस तरह कृष्णकी स्तुति करनेके बाद उनसे आज्ञा लेकर परिक्रमाकर और नमस्कार करके सुदर्शन अपने लोकको चला गया। और नन्दबाबाको एक आफतसे छुटकारा मिला ॥ १८ ॥ राजन्, व्रजवासियोंको कृष्णका वह अपना असाधारण प्रभाव देखकर आश्चर्यका ठिकाना न था। तदनन्तर तीन राततक उस तीर्थमें वासरूप नियमको पूराकर बड़े आदरके साथ भगवान्

करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥ तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ॥ आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते ॥ अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥ ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥ सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥१७॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ॥ सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ॥ समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपाययुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः । विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥ उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ॥ स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोम्बरौ ॥ २१ ॥ निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ॥ मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥ जगतुः सर्वभूतानां मनः श्रवणमंगलम् ॥ तौ कल्पयन्तौ युगपत स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥ २३ ॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप ॥

श्रीकृष्णके वैभवका बखान करते हुए वे लोग फिर व्रजको लौट आये ॥१९॥ इसके बाद एक दिनकी घटना है कि अद्भुत पराक्रमी बलराम और कृष्ण रात्रिके समय वनमें विहारकर रहे थे। उनको चारों ओरसे गोपियोंने घेर रखा था ॥ २० ॥ गोपियाँ उनका गुणगान गा रही थीं। वे तो उनपर अनुरक्त थीं ही उन दोनोंने भी ढंगसे आभूषण पहन रखे थे एवं अङ्गराग लगा रखे थे। गलेमें मालाएँ झूल रही थीं एवं उनके कपड़े बिलकुल निर्मल थे ॥२१॥ शामकी वेला थी, चन्द्रमा और तारे निकल आये थे। कुमुद-मल्लिकाकी गन्धसे मत्त भौंरे मँडरा रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामने शामको बड़ाई देनेके ख्यालसे स्वर समूहोंकी इकीस तरहकी मूर्च्छनाओंके आरोह और अवरोहकी एक साथ ही कल्पना करते हुए गाना प्रारम्भ कर दिया। वह गाना सभी प्राणियोंके मन एवं कानको मंगलमय मिठाससे भर देनेवाला था ॥ २२, २३ ॥ राजन्, उस गीतको सुनकर गोपियाँ तो मूर्च्छित हो गयीं। मूर्च्छा आ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जानेके कारण उन्हें अपने खिसकते कपड़ों एवं केशके फूलोंकी कोई सुध न रही, यहाँतक कि वे अपनेको भी न जान सकीं कि हम किस अवस्थामें पड़ी हैं ॥ २४ ॥ इस तरह जब वे दोनों स्वच्छन्दरूपसे प्रमत्तकी नाईं गीत गा-गाकर विचर रहे थे, उसी समय कुबेरका एक नौकर, जिसका नाम शंखचूड़ था, वहाँ आ धमका ॥ २५ ॥ वह बिलकुल निर्भय था। राजन्, उन दोनोंके देखते-देखते वह गोपियोंको उठाकर उत्तर दिशाकी ओर ले भागा। गोपियाँ चिल्ला रही थी, उनका एक मात्र सहारा तो भगवान् कृष्ण और बलदेव ही थे ॥ २६ ॥ जब भगवान् कृष्ण और बलरामने स्वकीयत्वेन परिगृहीत गोपियोंको देखा कि वे हे राम, हे कृष्ण, यों चिल्ला रही हैं और वह दुष्ट जैसे डाकू गौओंको ले जाय वैसे उन्हें लिये जा रहा है, तो वे उनके पीछे दौड़ गये ॥ २७ ॥ अब मत डरो, अब मत डरो, यों गोपियोंके भयको दूर करनेवाले शब्दको कहते हुए तथा हाथमें शालके वृक्षको लिए हुए अति वेगयुक्त वे दोनों

स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत् ॥ शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्य-
गात् ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ॥ क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ॥ २६ ॥ क्रोशन्तं कृष्ण
रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७ ॥ मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ॥
आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥ विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीविते-
च्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद्गोविन्दो यत्र यत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥ अविदूर इवाभ्येत्य
शिरस्तस्य दुरात्मनः ॥ जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥ अग्रजायाद-
दात्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शङ्खचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

बड़े वेगसे गुह्यकोंमें नीच उस शंखचूड़के पास शीघ्र पहुँच गये ॥ २८ ॥ जब उसने देखा कि काल एवं मृत्युकी तरह दोनों यहाँ आ धमके हैं, तब वह घबड़ा गया और जान बचानेकी इच्छासे स्त्रियोंको छोड़ वह मूढ़ भाग खड़ा हुआ ॥ २९ ॥ वहाँ पहुँचकर बलराम तो स्त्रियोंकी देख-रेखमें वहीं ठहर गये और भगवान् श्रीकृष्णने उसका पीछा किया। वह उसके सिरका रत्न लेना चाहते थे, इसलिए वह जिधर-जिधर भागता गया, भगवान् भी उसका पीछा करते गये ॥ ३० ॥ राजन्, समीप पहुँचकर विभु भगवान् श्रीकृष्णने उस दुरात्माके सिरपर एक घूँसा जमाया, जिससे उसका सिर धड़से अलग हो गया और उन्होंने उसके सिरका रत्न भी ले लिया ॥ ३१ ॥ इस तरह शंखचूड़को मारकर एवं तेजोयुक्त मणि लेकर वे लौट आये और गोपियोंके सामने उन्होंने बड़े प्रेमसे वह मणि बलरामजीको दे दिया ॥ ३२ ॥

चौंतीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक दिन नन्दबाबा अपने दलबलके साथ अम्बिकावन गये। उन्होंने सरस्वतीमें स्नानकर बड़ी भक्तिसे पार्वती और शंकरकी पूजाकी। उपवास कर रातमें सो रहे। एक भयङ्कर अजगर भूखसे व्याकुल होकर उधर आ निकला और उसने नन्दबाबाको पकड़ लिया। वह बहुत चिल्लाये। ग्वालोंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लुकाठियोंसे मारना प्रारम्भ कर दिया। पर उसने छोड़ा नहीं। इतनेमें भगवान् आये। उन्होंने चरणसे उसका स्पर्श कर दिया। बस, तत्क्षण ही वह विद्याधर बन गया। उसके सौन्दर्य की कोई सीमा न थी। भगवान्‌के पूछनेपर उसने बतलाया कि वह सुदर्शन नामका विद्याधर था। अपने सौन्दर्यपर मत्त हो वह अङ्गिराओंके कुछ ऋषियोंकी कुरूपतापर हँस पड़ा। उन्होंने तुरन्त शाप दे दिया और वह अजगर बन गया। शापसे अनुग्रहका उपाय उन्होंने यह बतलाया कि भगवान्‌के चरणस्पर्शसे वह फिर अपने रूपमें आ जायगा। इस तरह उसने अपना वृत्तान्त सुनाकर उनको प्रणामकर आज्ञाले अपने लोकको चला गया। एक दिनकी घटना है कि बलराम और कृष्ण गोपियोंके साथ बनमें विहार कर रहे थे। इतनेमें शंखचूड़-नामका एक अनुचर वहाँ आया। उसके मनमें पाप आ गया और वह गोपियोंको उठा उत्तरकी ओर भाग चला भगवानने उसका पीछा किया। उसे मार उसके सिरका रत्न निकाल बलरामजीको बड़े प्रेमके साथ दे दिया। चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(युगलगीत)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, जब कृष्ण वनमें चले जाते थे, तो गोपियोंका चित्त भी उनके साथ चला जाता था। वे बड़ी कठिनाईसे कृष्णकी लीलाओंको कह-सुनकर समय व्यतीत करती थीं॥ १। गोपियाँ आपसमें कहती थीं—गोपियो, मुकुन्द भगवान् जब बायें कन्धेपर वाम कपोल झुकाकर भौंहें नचाकर ओठसे बंशी लगा लेते हैं तथा कपोल पर अंगुलियोंको

श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥ व्योम-यानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्पितचित्ता कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ३ ॥ हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ॥ नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥ वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवा-

छेदोंपर थिरकाते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, तो विमानपर बैठी सिद्धपत्नियाँ उस वेणुगीतको सुनकर विस्मित हो जाती हैं। पतियोंको साथ समक्ष उन्हें लज्जा तो अवश्य मालूम पड़ती है, किन्तु तुरन्त उनका चित्त कामबाणसे विध जाता है, परवश हो जाती हैं और यह नहीं जान पातीं कि उनकी नीवी कब खुल पड़ी, सखियो, भला ऐसे कृष्णका विरह हम कैसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सहें ॥ २, ३ ॥ अरी सखियो, यह आश्चर्य तो देखो । जब वे हँसते हैं, तो उनकी किरणें हारपर प्रतिफलित हो जाती हैं । श्रीवत्स उनके वक्षःस्थलपर स्थिर बिजली-सा प्रतीत होता है । यह नन्दलाल विरहियोंके दुःख मिटा देते हैं । और जब वे वंशी बजाते हैं, तो व्रजके जितने बैल, गाय, मृग हैं, सबके मुखमें चबाया हुआ घास ज्योंका त्यों पड़ा रह जाता है । उनका चित्त तो उनके वशमें रहता नहीं । दूरसे ही वंशीकी तान सुननेसे उसी ओर खींच जाता है, वे कान खड़ेकर उसे सुननेमें इतने तल्लीन हो जाते हैं कि हिलते-डुलतेतक नहीं । मानों वे निद्रित हों, चित्रमें लिखे हुए हों । प्यारी सखियो, कहो न, उस कृष्णका विरह हम कैसे बर्दास्त करें ? ॥ ४, ५ ॥ हे सखि, मयूर-पुच्छ, गेरु एवं पल्लवोंसे वे मुकुन्द भगवान् पहलवान का बाना बना जब कभी जिस जगहपर ग्वाल-बालके साथ गौओंको गंगा, यमुना आदि नामोंसे वंशी बजाकर बुलाते हैं तब नदियाँ भी अवरुद्धगति हो जाती हैं । वे समझती हैं कि श्रीकृष्ण मुझे ही बुला रहे हैं और तब वे चाहती हैं कि वायुसे उड़ती हुई चरणधूलका आलिङ्गन कर लें, इसके लिये वे तरङ्गरूपी भुजाओंको फैलाती भी हैं, किन्तु हम अभागिनोंकी तरह

यहृतचेतस आरात् ॥ दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्ह-विडम्बः ॥ कर्हिचित्सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥ तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिल-नीतम् ॥ स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥ अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ॥ वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥ वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ॥ प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥ ९ ॥ दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ॥ अलिकुलैरल-घुगीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः ॥ १० ॥ सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥ सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥ हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति

अबहुपुण्या वे भी प्रेमसे काँपकर निश्चल जलवाली हो जाती हैं, जड़ बन जाती हैं, कहो तो, भला ऐसे कृष्णका विरह हम कैसे सहें ? ॥ ६, ७ ॥ जैसे देवता लोग अचल वैभव पुरुषोत्तम भगवान्के गुणोंका वर्णन करते रहते हैं, उसी तरह व्रजवासी ग्वालगण उनका गुणानुवाद करते रहते हैं । और जब वे वनमें जाकर पहाड़के प्रत्यन्त भागोंमें चरती हुई गौओंको वंशीमें नाम ले लेकर बुलाते हैं तो वन, लताएँ एवं वृक्ष सब फूल-फलसे लद जाते हैं । उनकी शाखाएँ उनकी बोझसे झुक जाती हैं, और वे प्रसन्नशरीर हो मधुकी अजस्र धाराएँ बहाने लगती हैं । मानो अपने पास आये हुए विष्णु भगवान्की आवभगत कर रही हों, कहो तो सखि, ऐसे कृष्णका विरह हम कैसे बर्दास्त करें ? ॥ ८, ९ ॥ भगवान्का तिलक भी खूब ही फबता है । उनकी वनमालामें जो तुलसी पिरोयी हुई है, उसके दिव्य गन्धसे भौंरे जब मतवाले बन जाते हैं और गुनगुनाने लगते हैं, तो भगवान् भी ऊँचे स्वरसे उनके अनुकूल गीत गानेके लिये यानी उनके स्वरोंमें स्वर मिलानेके लिये वंशी अधरपर धर लेते हैं । उस समय तालाबमें रहनेवाले सारस, हंस आदि पक्षी कृष्णके पास आकर आँख मूँद उसे सुनने लगते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं। बेचारोंका चित्त उनके हाथोंमें नहीं रहता। वे मन लगाकर मौन हो जाते हैं। उस समय ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों वे उनकी उपासना ही कर रहे हैं, सखियो, ऐसे कृष्णका विरह हम कैसे सहें १०, ११ ॥ ओ व्रजदेवियो, जब भगवान् कृष्ण बलरामके साथ गिरिराजके समतल भूभागोंपर खड़े होकर स्वयं हर्षित हो दुनियाको हर्षित करते हुए वंशीकी तानसे विश्वको पूर्ण कर देते हैं, उस समय मेघ धीरे-धीरे गर्जने लगता है। वह भगवान् श्रीकृष्णके अतिक्रमणमें शंकितचित्त हो इतना ही गरजता जितनेसे कि वंशीकी तानसे मेल बना रहे। अपनी छायासे छत्र बनकर फिर देवरूप घरके छोटी-छोटी फुहियों एवं पुष्पोंकी अपने मित्र श्रीकृष्णपर वृष्टि करता है। तब भगवान्का सौन्दर्य उनके मालाके कर्णभूषणसे और निखर उठता है, कहो न, ऐसे श्रीकृष्णका विरह हम कैसे सहें ॥ १२, १३ ॥ सखी यशोदाजी, आपका लाड़ला लाल तो ग्वालबालोंके अनेक खेलोंमें बहुत ही चतुर है। वंशी बजाना तो उसने किसीसे सीखा ही नहीं, फिर भी जब वंशीको अधरपर धर उसमें तरह-तरहके स्वर निकालने लगता है, तो उसे इन्द्र, शंकर, ब्रह्मा प्रमुख विद्वान् देवता भी तत्त्वतः समझ

विश्वम् ॥ १२ ॥ महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनु गर्जति मेघः ॥ सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥
विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥ तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः ॥१४॥ सवनशस्त-
दुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ॥ कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥ निजपदाब्जदलैर्ध्वज-
वज्राङ्कुशविचित्रललामैः ॥ व्रजभुवः शमयन्खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥१६ व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ॥
कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥ १७ ॥ मणिधरः क्वचिदागणयन्गा मालया दयितगन्धतुलस्याः ॥ प्रण-
यिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥ क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः गुणगणार्णमनु-
गत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥ कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नन्दसूनुरनघे तव वत्सो

नहीं पाते। वे सुध-बुध भूलकर अपनी ग्रीवा और चित्तको नीचे करके धीरे-धीरे उसे सुनने लगते हैं और सुनकर बादमें मोहित हो जाते हैं, कहिये न, भला ऐसे कृष्णका विरह हम कैसे सहें ॥ १४, १५ ॥ जब गौओंके खुरसे व्रजभूमि खुद जाती है, तो भगवान् उसकी पीड़ा मिटानेके लिए अपने उन चरणोंको उसपर रखते हैं, जिनमें चित्र-विचित्रके सुन्दर ध्वजा, वज्र, कमल और अंकुशके चिह्न अंकित हैं। गजके समान उनकी चाल बड़ी मोहक होती है। और वंशी बजाते हुए जब वे चलते हैं, तब तो हमलोगोंमें उनकी वह वंशीकी ध्वनि और उनकी वह विलासपूर्ण चितवन कामका वेग अर्पित कर देती है—हम आपेसे बाहर हो जाती हैं। हममें इतनी जड़ता आ जाती है कि मानो हम वृक्ष बन गयी हों। और तब सारे मोहके हमें यह नहीं पता रहता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपर वस्त्र है या नहीं, भला ऐसे कृष्णका विरह हम कैसे सहें ॥ १६, १७ ॥ मनोहर गन्धयुक्त तुलसीकी मालासे विरचित जब श्रीकृष्ण मालासे गौओंकी गणना करते हुए अपने प्रेमी मित्रके कन्धेपर हाथ डाल देते हैं और वंशी बजा देते हैं तब उस बजी हुई वंशीकी टेरसे कृष्णसार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मृगकी पत्नियोंका चित्त उनके काबूमें नहीं रह जाता। वे माधुर्यादि गुणोंके सागर श्रीकृष्णके पास पहुँचकर फिर हम-जैसी ही घर-गृहस्थी भूल जाती हैं, ऐसे कृष्णका विरह हम कैसे सहें ॥ १८, १९ ॥ हे भाग्यवती यशोदा मैया, आपके लाड़ले, नन्दकुमार जब सायंकालमें यमुनाके तटपर गौओं और ग्वालवालोंसे युक्त हो चन्दनकी मालासे कौतुकपूर्ण वेष बना करके अपने प्रेमी मित्रोंको हर्षित करते हुए खेलने लगते हैं तब उस समय चन्दनके समान शीतल स्पर्शसे श्रीकृष्णकी सेवा करती हुई उनके अनुकूल मन्द मन्द वायु बहने लगती है और गन्धर्व आदि जो उपदेवतागण हैं वे वंदीकी तरह गा बजाकर एवं उपहार देकर प्रसन्न करते हैं, ऐसे श्रीकृष्णका विरह हम कैसे सहें ॥ २०, २१ ॥ वे व्रजजन एवं गौओं से बड़ा प्रेम, करते हैं। इन्हींको बचानेके लिये उन्होंने पहाड़तक उठाया था। जब वे सायंकाल लौटने लगते हैं, तो बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वृद्धगण उनकी अभ्यर्थना करने लग जाते हैं, इसलिये उन्हें आनेमें देर हो जाती है। देखो न, बंशी बजाकर गौओंको एकत्रकर वह आ ही रहे हैं! ग्वाल बाल उनके यशका गान गा रहे हैं। वे थक गये हैं, फिर भी उनका सौन्दर्य हमलोगोंकी

नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥ मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं मानयन्मलयजस्पर्शेन ॥ वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥ वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥ कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥ उत्सवं श्रमरुचापि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्रक् ॥ दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥ मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ॥ बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४ ॥ यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ॥ मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीला नु गायतीः ॥ रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावनक्रीडायां गोपिकायुगलगीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

आँखोंमें सुखकी बाढ़ ला देता है। वह देखो, उनकी वनमाला तो गौके खुरोंकी धूलोसे भर गयी है। फिर भी वे कितने अच्छे लगते हैं। देवकीके गर्भसे यह सौन्दर्यका चाँद ही उदित हुआ है। वे हमें प्रसन्न करनेकी इच्छासे इधर ही आ रहे हैं ॥ २२, २३ ॥ ओह! वे कितने भले लगते हैं। उनकी नशीली आँखें घूम-सी रही हैं। घुटनेतक माला लटक रही है। सोनेका कुण्डल झलमला रहा है एवं उसकी पीली कान्ति उनके मुख पर पड़ रही है, जिससे कपोल बड़े मधुर मालूम पड़ते हैं। एवं मुख कुछ पके बेरकी तरह मालूम पड़ता है वे गोपों के मालिक हैं, एवं अपने लोगोंको बड़ाई देनेवाले हैं। देखो न, गजकी गतिसे वे हमारी ओर ही आ रहे हैं। उगते चन्द्रमाकी तरह उनका प्रसन्न मुखमण्डल है और उसीकी तरह दुर्निवार दिनभरके गौओं एवं हमारे तापको मिटाने वे अब शामको आ रहे हैं ॥ २४, २५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, बड़ी भाग्यवती वे गोपियाँ, जिनका एकमात्र जीवन श्रीकृष्ण ही थे, दिनभर उन्हींमें अपना मन लगाकर उनकी लीलाओंका दिनभर गान करती हुई अपना दिल बहलाती थीं ॥ २६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पैंतीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—जब भगवान् वनमें गौ चराने चले जाते थे, तो गोपियोंको दिन काटना कठिन हो जाता था। इनका मन कृष्णमें लगा रहता था। अतः उन्हींकी लीलाओंको कह-सुनकर वे दिन बिताती थीं। पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(अरिष्टासुरका उद्धार तथा कंसका अक्रूरजीको व्रज भेजना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इसके बाद एक दिन भगवान् व्रजमें प्रविष्ट हो भोजनोत्तर व्रजसे बाहर निकलकर पुनः रासके लिए जब उद्यत हुए, उसी समय अरिष्टासुर व्रजमें घुस आया। उसका ककुत् और आकार-प्रकार बहुत बड़ा था। वह खुरोंकी चोटसे पृथ्वीको कँपा रहा था ॥१॥ बड़े वेगसे कर्कश स्वरमें डकार रहा था एवं पैरोंसे पृथ्वीका विदारित करते हुए धूल उड़ाता जा रहा था। पूँछ उठाकर बड़े-बड़े मेड़ोंको अपने सींगके अग्रभागसे उखाड़ रहा था ॥ २ ॥ बीचमें कुछ गोबर एवं मूत्रका त्याग करता जा रहा था एवं आँखें फाड़े हुए था। उसका डकार वज्रकी तरह कर्कश था। राजन्, उसे सुनकर गौओं एवं स्त्रियोंका असमयमें ही गर्भ भयके कारण स्रवित हो जाता था। बहुत दिनोंका भी गर्भ गिर जाता था।

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महा महाककुत्कायः कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥ रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम् ॥ उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥ २ ॥ किञ्चित्किञ्चिच्छकृन्मुञ्चन्मूत्रयन्स्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै ॥ निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ॥४॥ तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम् ॥ ५ ॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ६ ॥ भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्मन्दः त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥ बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोप-

उसके ककुद् आकाशमें सटे हुए थे। पहाड़ समझकर मेघ उसके पास चले जाते थे ॥ ३, ४ ॥ उसकी सींग बड़ी पैनी थी। उसे उस रूपमें देखकर गोप एवं गोपियाँ डर गयीं। पशु सब भयभीत हो छान-पगहा तोड़ ताड़कर गोकुलको छोड़ भाग खड़े हुए ॥५॥ और वे सबके सब 'कृष्ण, कृष्ण' कहकर उन गोविन्दकी शरणमें हो गये ॥६॥ जब भगवान्ने भयसे व्याकुल गोकुलको देखा, तो उन्हें जोरोंसे पुकारकर कहा—डरो मत डरो मत। इसके बाद अरिष्टासुरको ललकारकर कहने लगे—हे मन्द बुद्धे, अरे दुष्ट, तूँ इन ग्वालों एवं गौओंको क्या डरा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहा है ? ॥ ७ ॥ देख, तुझ सरीखे दुरात्मा दुष्टोंके बल एवं घमण्डको दूर करनेवाला मैं यहाँ खड़ा हूँ । इसके बाद ताल ठोंक दुःखहर्ता वे अच्युत भगवान् समीपमें खड़े मित्रके कन्धेपर अपना हाथ रख खड़े हो गये, ताकि वह आग-बबूला बन जाय । यों क्रुद्ध बनाया गया वह दुष्ट अरिष्ट भी खुरसे पृथ्वीको विदारित करता हुआ तथा क्रुद्ध हो पूँछसे मेघोंको चीरता-फाड़ता कृष्णकी ओर बढ़ा ॥ ८, ९ ॥ उसने सीगोंको आगेकर लिया, खूनकी तरह लाल-लाल आँखें फाड़ कटाक्षसे उन्हें निहारकर शीघ्र इतने वेगसे भगवान् अच्युतके पास दौड़ा, मानो इन्द्रका वज्र ही छूटा हो ॥ १० ॥ भगवान्ने उसकी सींग पकड़ उसे अठारह पीग पछे ठेल दिया । जैसे एक गज दूसरे गजको ठेल देता है ॥ ११ ॥ वह गिरा अवश्य, किन्तु फिर शीघ्र ही उठ खड़ा हो भगवान्की ओर झपटा । वह पसीनेसे लथपथ हो गया था एवं क्रोधसे व्याप्त हो लम्बी-लम्बी सांसें छोड़ रहा था ॥ १२ ॥ भगवान्ने उसे उस तरह अपनेपर टूटते देख

यन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वा अष्टादश पदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ सोऽविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ॥ आपतत्स्विन्नसर्वाङ्गोनिःश्वसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥ तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतलेनिष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग्वमन्मूत्रशकृत् समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ॥ जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥ एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ॥ विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ १५ ॥ अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ कंसायाथाह भगवान्नारदो देव-दर्शनः ॥ १६ ॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥ रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥ १७ ॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ निशम्य तद्भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः ॥ १८ ॥ निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥

उसकी सींग पकड़ लिये एवं पृथ्वीपर गिरा उसे पैरसे दबाकर कपड़ेकी तरह निचोड़ डाला, बादमें सींग उखाड़कर उसे खूब पीटा जिससे कि वह पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥ वह खून उगलने लगा, मूतने लगा, गोवर करने लगा एवं पैर पटकने लगा । उसकी आँखें उलट गयीं । वह भारी कष्टको प्राप्त हुआ । बादमें मृत्यु आ जानेसे वह क्षयको प्राप्त हो गया—मर गया । तब देवताओंने पुष्पवृष्टिकर कृष्णकी पूजा की ॥ १४ ॥ इस तरह उस अरिष्टासुरका उद्धार कर, अपने लोगोंसे स्तुत होकर, बलरामके साथ वे व्रजमें प्रविष्ट हुए । गोपियोंकी आंखें प्रफुल्लित हो गयीं ॥ १५ ॥ अद्भुतकाम करनेवाले कृष्णसे जब अरिष्टासुर मारा गया तब देवर्षि भगवान् नारदजीने कंसके पास जाकर कहा ॥ १६ ॥ हे कंस, वसुदेवने डरकर देवकीके पुत्र कृष्ण एवं रोहिणी के पुत्र बलरामको अपने मित्र नन्द बाबाके पास रख छोड़ा है और वह लड़की, जो तुम्हारे हाथसे छूट उड़ गई थी वह तो यशोदाकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लड़की थी। कृष्ण एवं बलरामने ही तुम्हारे सारे सेवकोंको मारा है। इस बातको सुनकर कंस क्रोधसे तिलमिला उठा—मारे क्रोधके उसकी सब इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं। उसने वसुदेवको मारनेके लिये पैनी तलवार उठा ली, किन्तु नारदने उसे मनाकर दिया। उन दोनों लड़कोंको अपनी मृत्युका कारण समझ उसने वसुदेव और देवकीको लोहेकी हथकड़ी डाल जेलमें डाल दिया। और जब नारदजी लौट गये, तो उसने केशीको राम और कृष्णको जाकर मार डालो यों सचेतकर व्रजमें भेज दिया और इसके बाद कंसने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि पहलवानों, मन्त्रियों एवं महावतोंको बुलाकर कहा कि-हे वीर, हे चाणूर एवं मुष्टिक, नन्दके व्रजमें वसुदेवके दो लड़के हैं, उनका नाम राम कृष्ण है। उन्हींके द्वारा मेरी मृत्यु नारदजीने बतलायी है ॥ १७–२३ ॥ जब वे दोनों यहाँ पहुँच जायँ तो, आप दोनों कुश्ती लड़नेके बहाने उन्हें मार डालना अखाड़ेके चारों तरफ तरह तरहके मञ्च तैयार

निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ
कंस आभाष्य केशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥
अमात्यान्हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥ नन्दव्रजे किलासाते सुतावानक-
दुन्दुभेः ॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ मञ्चाः क्रियन्तां
विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ॥ पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥ २४ ॥ महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ॥ द्विपः
कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ २५ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसन्तु पशून्मेध्यान् भूतराजाय
मीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं
क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ॥ यथेन्द्रो
विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥२९॥ गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ॥ आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥ ३० ॥

करो। ताकि सभी नागरिक उस कुश्तीको अच्छी तरह देख सकें ॥ २४ ॥ और महावत, तुम तो बड़े अच्छे हो। तुम अखाड़ेके द्वारपर कुवलयापीडको लेकर तैयार रहना और मौका पाकर मेरे शत्रुओंको कुचलवा देना ॥ २५ ॥ चतुर्दशीको विधिपूर्वक धनुर्यज्ञ प्रारम्भकर दो और योग्य पशुओंको मथुराके क्षेत्रपाल वरदानी भूतेश्वरको बलि चढ़ाओ ॥ २६ ॥ इस तरह आज्ञा देकर अर्थशास्त्रके जानकार उस कंसने यादव श्रेष्ठ अक्रूरजीको बुलाया और उनके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर उनसे कहा ॥ २७ ॥ आप दानवीर हैं एवं भोजवंशी, वृष्णि वंशियोंमें आपकी तरह मेरा कोई अधिक सम्मान करनेवाला और हितैषी नहीं है। अतः हे दानपते, आप मेरा एक मित्रोचित कार्यकर दें ॥ २८ ॥ हे सौम्य, आप किसी भी कार्यको भली भाँति सिद्धकर देते हैं। अतः मैं आपका उसी तरह आश्रयण करता हूँ, जिस तरह कि सर्वसमर्थ इन्द्र विष्णुका आश्रयणकर अपने अभीष्टको पा गये ॥ २९ ॥ आप नन्दके व्रजमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाइये। वहाँ वसुदेवके दो लड़के रहते हैं, उन्हें इस रथसे जल्दी लिवा लाइये, देरी न कीजिए ॥ ३० ॥ विष्णुके सहारे जीनेवाले देवताओंने उन्हें मेरी मृत्युका कारण ठहराया है। इसलिये उन दोनोंको नन्द आदि ग्वालोंके साथ ले आइये। वे भेंट भी चुका दें ॥ ३१ ॥ यहाँ बुलाकर कालके समान कराल हाथीसे उन्हें मरवा डालूँगा और यदि कहीं वे उससे छूट गये, तो बिजली सरीखे पहलवानोंसे उन्हें मरवा दूँगा ॥ ३२ ॥ उन दोनोंके मारे जानेपर वसुदेव आदि शोक सन्तप्त हो जायँगे तब उनके बन्धु वृष्णि, भोज एवं दशार्ह वंशियोंको मार डालूँगा ॥३३॥ फिर राज्यके लोभी वृद्ध पिता उग्रसेन, उसके भाई देवक एवं अन्य अपने सारे शत्रुओंको नष्टकर दूँगा ॥ ३४ ॥ हे मित्र, तब यह पृथवी निष्कंटक हो जायगी। जरासन्ध मेरा ससुर ही ठहरा, द्विविद तो मेरा प्यारा दोस्त ही है। इसी तरह शम्बर, नरक एवं बाणासुरसे मेरी मैत्री है ही। इनकी सहायतासे मैं देवताओंके पक्षपाती राजाओंको मारकर पृथ्वीका

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ॥ तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥ घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ॥ तद्बन्धून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥ तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ॥ जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वानय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन्मनीषितं सध्र्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥ सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥ मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ॥ युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ॥ प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

निष्कण्टक भोग करूँगा ॥ ३५, ३६ ॥ इन सब बातोंको आप जान गये। अब आप बलराम कृष्णको शीघ्र लिवा लाइये। वे तो अभी बच्चे हैं, कहियेगा कि धनुर्यज्ञ और मथुराकी शोभा देखने चलो ॥ ३७ ॥ अक्रूरजीने कहा—राजन्, अपनी मृत्युको इस तरह हटानेके लिए आपका सोचना अच्छा ही है। फलकी सिद्धि और असिद्धिमें मनुष्यको अपना चित्त एक-सा बनाये रखना चाहिये, क्योंकि फलका साधक तो दैव ही है ॥ ३८ ॥ मनुष्य बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते हैं, पर वे सभी भाग्यसे हत होते हैं। अनुकूल होनेपर लोग प्रसन्न होते हैं एवं प्रतिकूल होनेपर दुःखी होते हैं, फिर भी आपकी आज्ञाका मैं पालन करने जा रहा हूँ ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—कंस इस तरह अक्रूरजीको आज्ञा देकर, मन्त्रियोंको विदाकर अपने घरको गया और अक्रूर भी अपने घरकी ओर बढ़े ॥ ४० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छत्तीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, एक दिन सायंकालको जब भगवान् व्रजमें प्रविष्ट हो भोजनके बाद रासकी तैयारी कर रहे थे तभी अरिष्टासुरबड़ा वृषभका रूप धर कर आया। उसका आकार-प्रकार बहुतही बड़ा था। सभी डर गये और 'कन्हैया-कन्हैया' पुकारने लगे। भगवान् आगे बढ़े और उस दुष्टका काम तमाम कर दिये। इसके बाद नारदजी कंससे मिले। उन्होंने बतला दिया कि वसुदेवने अपने दोनों लड़कोंका नन्दके पास रख छोड़ा है। और वह लड़की तो यशोदा की थी, जिसे तुमने मारना चाहता था। यह सुनकर कंस दुःखित हुआ। उसने वसुदेवको मारनेके लिए तलवार निकाल ली। पर नारदके रोकनेसे रुक गया। बादमें उसने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर राय करके धनुर्यज्ञ की तैयारी की और अक्रूरजीको व्रज भेजा कि वे नन्द आदिके साथ रामकृष्णको भी लेते आयें। कृष्णको मारनेके लिए केशीको भेजा। छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(केशी और व्योमासुरका उद्धार)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, कंससे भेजा गया वह केशी महा वेगवान् बहुत बड़ा घोड़ा बन गया। टापोंसे धरतीको विदारता हुआ, गरदनके बालोंसे आकाशमें मेघों एवं विमानोंको तितर-बितर करता हुआ तथा हिनहिनाहटसे सारे संसारको डराता हुआ दुष्टचित्त वह कंसका हित करनेके लिए व्रजमें आया॥ १॥ जब कृष्णने देखा कि वह मेरे गोकुलको हिनहिनाहटसे भयभीतकर रहा है, अपने बालोंसे मेघोंको तितर-बितरकर रहा है एवं लड़नेके लिए मुझे ही खोज रहा है, तो उन्होंने आगे बढ़कर उसे ललकारा और सिंहकी तरह महान्

श्रीशुक उवाच॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन्मनोजवः॥ सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषि-
ताखिलः॥ १॥ (विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाम्बुदोपमः॥ दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नन्दस्य जगाम
कम्पयन्॥ १॥) तं त्रासयन्तं भगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्वालविघूर्णिताम्बुदम्॥ आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत् स व्य-
नदन्मृगेन्द्रवत्॥ २॥ स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः॥ जघानपद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवो
दुरत्ययः॥ ३॥ तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो

नाद किया॥२॥ जब दुष्ट केशीने कृष्णको सामने खड़ा देखा, तो उसे और चिढ़ हो आयी, वह मुख फैलाकर, मानो आकाशको ही पी जायगा। वह सचमुच पराक्रमी था और किसीके हाथमें आनेवाला न था। उसने बड़े जोरोंसे कमलनयन कृष्णपर दुलत्ती झाड़ी॥ ३॥ उस वारसे कृष्णने अपनेको बचा लिया और वे क्रोधकर अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों पैर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पकड़कर जैसे कश्यप सुत गरुड़जी साँपको घुमाते हैं वैसेही सौ धनुषकी दूरीतक फेंककर आनन्दसे खड़े हो गये ॥ ४ ॥ उसे जब होश हुआ, तो वह केशी फिर उठा और मारे क्रोधके मुख बाकर बड़े वेगसे कृष्णकी ओर दौड़ा। भगवान्‌ने हँसकर अपना बायाँ हाथ उसके मुखमें डाल दिया और जैसे कोई साँप निर्भय हो बिलमें घुस जाता है, उसी तरह वह हाथ भी उसके मुखमें घुस गया ॥ ५ ॥ भगवान्‌की भुजाकी चोटसे उस केशीके वे दाँत ऐसे उखड़ गये, जैसे तप्त लोहेके पिण्डका स्पर्श करते ही पदार्थ गिर पड़ते हैं। उसके मुँहमें घुसकर वह भगवान्‌का बाहु उसी तरह बढ़ने लगा, जैसे जलोदर रोग दवा न करनेपर बढ़ता है ॥ ६ ॥ उस बढ़ते हुए भगवान् श्रीकृष्णके बाहुसे उसका साँस लेना बन्द हो गया, उसका दम घुटने लगा। वह पैर पटक-पटककर छटपटाने लगा। पसीनेसे तरबतर हो गया, आँखें उलट गयीं और मल त्यागता हुआ प्राणविहीन हो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७ ॥ ककड़ीकी तरह फटे हुए उसके शरीरसे महा बाहु भगवान् श्रीकृष्णने अपना बाहु निकाल लिया। इस कामसे उन्हें कोई आश्चर्य न हुआ। वह तो बिना श्रमके मारा गया। परन्तु इससे देवताओंको

व्यवस्थितः ॥ ४ ॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽपतद्धरिम् ॥ सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ५ ॥ दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशो यथा ॥ बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथामयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥ समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं विसृजन्क्षितौ व्यसुः ॥ ७ ॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ॥ अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ८ ॥ देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥ आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ॥ तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥ स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रथमरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥ दिष्ट्या ते निहतो

बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उनपर फूलोंकी वर्षा करते हुए उनकी स्तुति की ॥ ८ ॥ राजन्, भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजी क्लेशरहित हो अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णके पास एकान्तमें जाकर यह कहने लगे ॥९॥ हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे अविच्छिन्नस्वरूप, हे अचिन्त्यप्रभाव, हे जगदीश्वर, हे सबभूतोंमें वर्तमान रहनेवाले भगवन्, हे सबके आधार, हे प्रभो, हे यदुप्रवर ॥१०॥ जिस तरह एकही अग्नि बहुत सी लकड़ियोंमें रहती है उसी तरह आप एक होते हुए भी सभी प्राणियोंमें अन्तर्निहित हैं। किन्तु आप दिखलाई नहीं पड़ते, क्योंकि आप बुद्धिकी भी पहुँचसे बाहर हैं। द्रष्टा, पुरुषोत्तम और ईश्वररूपमें आप अनुभूत होते हैं ॥ ११ ॥ अपना आश्रय आप हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें आपने मायासे गुणोंकी सृष्टि की, और उन गुणोंके आश्रयणकर सृष्टि, प्रलय, एवं पालन करते हैं, आप सत्य सङ्कल्प हैं, आपको बाहरी साधनोंकी अपेक्षा नहीं होती ॥ १२ ॥ वही आप नृपके रूपमें आये हुए दैत्य, प्रथम एवं राक्षसोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

संहारके लिए तथा धर्मकी रक्षाके लिए अवतीर्ण हुये हैं ॥ १३ ॥ सौभाग्यसे आपने इस घोड़ेके आकारमें परिणित दुष्ट केशीका खेलवाड़ करते हुए संहारकर दिया है, जिसकी हिनहिनाहटके डरसे देवता लोग स्वर्ग छोड़ देते थे ॥ १४ ॥ हे विभो, अब परसों चाणूर, मुष्टिक एवं अन्य पहलवानों, हाथी और कंसको भी मैं आपके द्वारा मारा देखूँगा ॥ १५ ॥ इसके बाद शंख, यवन, मुर, नरक इन असुरोंकी मृत्यु, पारिजातका हरण एवं इन्द्रकी पराजय भी देखूँगा ॥ १६ ॥ इसके बाद पराक्रम प्रदर्शन ही जिसमें शुल्क है ऐसा अनेक राजकन्याओंके साथ आपका विवाह, तदनन्तर हे जगत्पते, द्वारकामें नृगका पापोंसे उद्धार, स्यमन्तक मणिका जाम्बवतीके साथ लाना, ब्राह्मणके मृतपुत्रोंका महाकालपुरसे आनयन आदि आपका कार्य देखूँगा ॥ १७, १८ ॥ इसके बाद पौण्ड्रकका उद्धार, काशीपुरीका दहन, यज्ञमें शिशुपाल एवं रास्तेमें दन्तवक्रका उद्धार ॥ १९ ॥ तथा इस तरहके और जितने भी कार्य आप द्वारकामें

दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसन्त्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥ चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥ तस्यानु शंखयवनमुराणां नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥ १६ ॥ उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते ॥ १७ ॥ स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥ पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् ॥ दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ १९ ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ॥ कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥ अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ॥ अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥ विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥ २२ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥ भगवानपि गोविन्दो हत्वा

रहते हुए करेंगे, मैं वह सब देखूँगा, जिनका कि कविलोग इस पृथिवीपर गान किया करेंगे ॥ २० ॥ इसके बाद सर्वग्रासी कालरूपसे अर्जुनका सारथी बन भूभार स्वरूप अक्षौहिणी सेनाका आप नाश करेंगे, यह सब मैं देखूँगा ॥ २१ ॥ आप विशुद्ध विज्ञानघन हैं। अपने परमानन्दरूपसे आपको सभी वस्तुएँ मिली हुई हैं। आप सत्य संकल्प हैं। अपनी चिति शक्तिसे मायाके कार्यरूप गुणप्रवाह [संसारको] आपने सदाके लिये दूरकर दिया है, भगवान, मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ २२ ॥ आप ईश्वर हैं, अपना आश्रय आप हैं। अपनी मायासे निर्मित सम्पूर्ण महदादि गुणोंके द्वारा आपने देवादि सृष्टिकी कल्पनाकर रखी है। इस समय लीलाके लिये आपने मनुष्यशरीर धारणकर यादव, वृष्णि एवं सात्वतोंमें श्रेष्ठ बने हुए हैं, आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन, इस तरह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीने यदुपति कृष्णको प्रणामकर एवं उनका दर्शनकर बहुत प्रसन्न हुए। फिर आज्ञा लेकर

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चल दिये ॥ २४ ॥ भगवान् गोविन्दने भी युद्धमें केशीका काम तमामकर व्रजको प्रसन्न करते हुए प्रसन्नचित्त गोपालोंके साथ पशुओंकी रक्षा करने लगे ॥ २५ ॥ एक दिन वे ग्वाल-बाल पहाड़की समतल भूमिपर पशुओंको चराते हुए चोर और पालके व्याजसे लुकालुकीका खेल खेलने लगे ॥ २६ ॥ उनमें कुछ भेड़ बन गये, कुछ उनके रक्षक और कुछ चोर। इस तरह हे राजन्, वे निर्भीक होकर खेल रहे थे ॥ २७ ॥ उसी समय वहाँ मयका पुत्र महा मायावी व्योमासुर गोपालका वेष बनाकर खेलने लगा। उस खेलमें प्रायः चोर बनकर उसने बहुतसे बच्चोंको, जो भेड़ बने हुए थे, चुरा लिया ॥ २८ ॥ वह असुर बच्चोंको गुहामें ले जाकर रख देता और चट्टानसे उसका मुख बन्दकर देता। इस तरह अन्तमें चार-पाँच ही

केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २५ ॥ एकदा ते पशून्पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोर-पालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन् कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥ मयपुत्रो महा-मायो व्योमो गोपालवेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २८ ॥ गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥ २९ ॥ तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ॥ गोपान्नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौ-जसा ॥ ३० ॥ स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ॥ इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः ॥ स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

लड़के बच रहे ॥ २९ ॥ उस व्योमासुरकी यह करतूत जानकर अपने भक्तोंके रक्षक भगवान्ने ग्वालबालोंको लिये जा रहे उस असुरको इस तरह बलपूर्वक वेगसे धर दबाया, जैसे भेड़िये-को सिंह ॥ ३० ॥ बलवान् उसने हिमालयकी तरह अपना रूप बना लिया और अपनेको उसने छुड़ाना चाहा। किन्तु वह फँस चुका था, अपनेको न छुड़ा सका ॥ ३१ ॥ भगवान्ने उसे हाथोंसे पकड़कर पृथिवीपर गिरा दिया और यज्ञीय पशुकी नाईं गला दबाकर मुट्ठोंसे मार डाला। आकाशमें देवता यह तमाशा देख रहे थे ॥ ३२ ॥ गुफाके ढकनको हटा उन्हों ग्वालबालोंको उस कष्टसे निकाल लिया। तदनन्तर नीचे ग्वालबालों और ऊपर देवताओंसे स्तुत होते हुए वे व्रजको लौट आये ॥ ३३ ॥

सतीसवें अध्यायका सार—हे राजन्, कंसके द्वारा भेजा गया केशी व्रजमें घोड़ेका रूप धरकर आया। उसका डील-डौल बहुत बड़ा और बहुत भयानक था। भगवान् उसके सामने आये। वह बड़े वेगसे इनपर टूट पड़ा। भगवान्ने बहुत दूर उसे फेंक दिया। वह मूर्छित हो गया। होश आनेपर फिर मुँह बाकर दौड़ा। भगवान् अपना बाहु उसके मुँहमें डालकर उसे बढ़ा दिया। उसका दम घुटने लगा, वह मर गया। उसके मरनेपर नारदजीने उनकी स्तुति की। एक दिन सब ग्वाल-बाल खेल रहे थे। व्योमासुर भी गोपालका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वेष बना कर उनमें आ मिला । लुकालुकीका खेल था कोई भेड़ बने थे, कोई उनके रक्षक और कोई उनके चुरानेवाले । व्योमासुर चोर बन बहुत बालकोंको गुफामें डाल कर उसका दरवाजा बन्द कर दिया । जब चार पाँच बच्चे बचे रहे तो भगवानने उसे दण्ड देनेको सोचा । जब वह फिर किसीको लेकर भागा, तो उन्होंने उसे पकड़कर पटक दिया और मार डाला । सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

❁ अथ अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः ❁

(अक्रूरजीका व्रजमें आना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—कंससे कृष्णको बुलानेकी आज्ञा पाकर महामति अक्रूरजीने वह रात मथुरामें ही बितायी । सबेरे रथपर बैठ नन्दबाबाके गोकुलकी ओर बढ़े ॥ १ ॥ सचमुच वे बड़े भाग्यवान् थे कि उन्हें रास्तेमें भगवान्में पराभक्ति हो आयी । वे यह सोचने लगे ॥ २ ॥ ओह, मैंने कौन-सा पुण्य किया है, कौन-सी बड़ी तपश्चर्याकी है, कौन-सा दान किसी योग्यको दिया है, जिसके फलस्वरूप आज श्रीकृष्णके दर्शन होंगे ? ॥३॥ मैं तो विषयोंमें डूबा हुआ हूँ । मेरे लिये कृष्णदर्शन उतना ही दुर्लभ है, जितना कि किसी शूद्रके लिये वेदाध्य-

श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ॥ भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥ किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ॥ किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥ ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥ मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ॥ ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ॥ यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ ६ ॥ कंसो बताद्याऽकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥ कृतावतारस्य

यन, यह मैं खूब समझता हूँ ॥४॥ अथवा यह ऐसी बात नहीं है अघटित-घटना भी कभी-कभी हो ही जाती है । जैसे कोई नदीमें पड़ा हुआ तृण कभी पार लग जाता है, उसी तरह मुझ अधमको भगवान् अच्युतके दर्शन होंगे और मैं भी किनारे लग जाऊँगा ॥ ५ ॥ मेरे सारे अमंगल आज नष्ट हो गये हैं और मेरा जन्म सफल हो गया है । क्योंकि आज मैं उन चरणोंको नमस्कार करूँगा-दर्शन करूँगा, जिनका कि योगी लोग केवल ध्यानकर पाते हैं ॥ ६ ॥ कंसने तो आज मुझपर महान् अनुग्रह ही किया है, क्योंकि उसके भेजनेसे ही आज

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मैं इस संसारमें अवतीर्ण हुऐ भगवान् विष्णुके चरणकमलका दर्शन कर सकूँगा। भगवान्का वह चरण भवसिन्धुके पार जानेकी सीढ़ी है, पहलेके लोग उस चरणके नखोंकी ज्योतिसे अन्धकारको पाकर गये हैं ।।७।। जिस चरणकमलकी ब्रह्मा, शंकर आदि देवता, लक्ष्मीजी मुनि एवं सन्तोंने पूजाकी है, वही चरण गोचारणके लिये अपने मित्रोंके साथ वन-वन फिरता है एवं गोपियोंके वक्षःस्थलकी रोलीसे अंकित होता है भगवान् कितने कृपालु हैं एवं प्रेममात्रसे सुलभ हैं ।। ८ ।। यह देखो, मेरी दाहिनी तरफ मृग विचर रहे हैं। इससे सूचित होता, है कि आज मैं उनके उस सुन्दर मुखमण्डलको अवश्य देख पाऊँगा। कपोल कितने कोमल एवं नाक कितने भले होंगे, मुस्कराहटसे भरी उनकी चितवन कितनी प्यारी होगी? मुख-पर घुंघराले केशोंकी छटा कितनी अच्छी होगी? ।। ९ ।। भगवान् विष्णु ही पृथ्वीके भारको उतारनेके लिए अपनी इच्छासे मनुष्यके रूपमें आये हैं। वे तो सौन्दर्यके निधि हैं। ओह, आज तो उनके साक्षात् दर्शन अवश्य होंगे, और तब क्या मेरे लोचनोंका फल नहीं मिलेगा? नहीं, यह बात न होगी, अवश्य मिलेगा ही ।। १० ।। भगवान् तो कार्य-कारणके द्रष्टा हैं

दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन्यन्नखमण्डलत्विषा ।। ७ ।। यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ।। गोचारणाया-नुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ।। ८ ।। द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।। मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ।। ९ ।। अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ।। लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः ।। १० ।। य ईक्षिताऽहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदाभ्रमः ।। स्वमा-ययात्मन्रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ।। ११ ।। यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ।। प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ।।१२।। स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्म-कृत् ।। यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ।। १३ ।। तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशि-मन्महोत्सवम् ।। रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ।। १४ ।। अथावरूढः सपदीशयो रथात् प्रधानपुंसोश्च-

फिर भी उनमें साक्षित्वका अहंकार नहीं है। उनके तेजके आगे अज्ञानजनित सारे भ्रम दूर रहते हैं। ऐसे होते हुए भी वे वृन्दावनके वृक्षों एवं गोपियोंके घरमें विहार करते हुए उनकी दृष्टिसे अपनी मायासे अपने आपके प्रकाशित प्राण, इन्द्रिय एवं बुद्धिसे युक्त हो हमलोगोंकी तरह प्रतीत हो रहे हैं ।। ११ ।। सबके पापोंके नाशक, मंगलमय उनके गुणों, कर्मों एवं जन्मोंसे मिश्रित वाणियाँ सारे जगत्को सफल जीवन करती हैं। सज्जनोंको सभामें शोभित एवं पवित्रकर देती है। जो भगवान्के गुणों आदिसे शून्य हैं वे तो मुर्देकी नाईं व्यर्थ और अपवित्र हैं ।। १२ ।। अपने विरचित वर्णाश्रम धर्मोंका पालन कर रहे देवताओंका कल्याण करनेवाले, यशका विस्तार करते हुए वह परमेश्वर ही यादव कुलमें श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण हो व्रजमें रहते हैं। सबका मंगल करनेवाले जिसके यशका देवता लोग गान करते हैं ।। १३ ।। अहा, आज मैं उन बड़ों-बड़ोंके उपास्य एवं गुरु उन भगवान्को अवश्य देखूंगा। वे ऐसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

रूपको धारणकर रहे हैं जो तीनों लोकमें सबसे बढ़कर सुन्दर हैं, आँखोंवालोंके महोत्सव रूप हैं और जो सौन्दर्यकी देवी लक्ष्मीके अभिलाषित आश्रयभूत है, आज मैं उनका अवश्य दर्शन करूँगा। क्योंकि आज सुबह-सुबह मुझे शुभ शकुन दीख पड़ते हैं ॥ १४ ॥ पहुँचते ही झट रथसे कूद पड़ूँगा और प्रकृति पुरुषरूप बलराम और कृष्णके चरणोंका, जिनका योगीलोगभी स्वरूपज्ञान प्राप्तिके लिए बुद्धिसे चिन्तन करते हैं, कसकर पकड़ लूँगा। बादमें उनके सखाओं और वनवासियोंके चरणोंकी वन्दना करूँगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ और जब मैं इस तरह उनके चरणोंपर पड़ जाऊँगा, तो क्या वे मेरे सिरपर अपने हस्तकमलको न रखेंगे? वे ऐसा अवश्य करेंगे। इसलिये कि उन हस्तकमलोंने तो बहुत पहलेसे ही काल भुजङ्गसे भीतों एवं उनके शरणागत मनुष्योंको अभयदान दे रखा है इन्द्र तथा बलिने भी उन्हीं हस्तकमलोंमें अपनी पूजा भेंटकर तीनों लोकोंका इन्द्रत्व पद पाया। उन्हीं कर-कमलोंकी सुगन्धिने रासमें थकी गोपियोंकी थकानको मिटा दिया था ॥ १६, १७ ॥ यद्यपि मैं कंसको भेजा हुआ दूत हूँ, पर फिर भी अच्युत भगवान् मुझे अपना वैरी न समझेंगे।

रणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥ १५ ॥ अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिर-
स्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ॥ दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशिक-
स्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिम-
च्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥ अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं
कृताञ्जलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ॥ सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशंक ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥ सुहृत्तमं ज्ञाति-
मनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥
लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ॥ तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥

वह तो विश्वसाक्षी हैं—वह सबके अन्तरकी बातको जानते हैं। वे तो सभी प्राणियोंके बाहर-भीतरके जानकार हैं, वे क्षेत्रज्ञ हो कमलनेत्रसे सब कुछ यथार्थ रूपसे देखते हैं ॥ १८ ॥ अतः वे मुझे वैरी न समझेंगे, बल्कि जब मैं उनके चरणोंमें लोट जाऊँगा तो अवश्य ही मुस्कराहट भरी अमृतमय चितवनसे मुझे देखेंगे और तब हमारे पाप तत्क्षण ही नष्ट हो जायँगे और मैं जन्म-मरणकी शंकासे शून्य हो अपार आनन्दके पारावारमें डूबने उतराने लगूँगा ॥ १९ ॥ अजी, मैं तो उनका सबसे बढ़कर हितैषी हूँ, उनका चाचा हूँ और हूँ केवल उन्हींके सहारे--वही मेरे इष्टदेव हैं। इसलिए वे मुझे अवश्य अपने लम्बे दोनों हाथोंमें उठाकर मेरा ज्योंही आलिंगन करेंगे, त्योंही मेरी देह पवित्र हो जायगी और इस देहसे मेरे सब कर्म बन्धन टूट-फूट जायँगे ॥ २० ॥ महा यशस्वी वे जब आलिङ्गनकर चुकेंगे और मैं हाथ जोड़कर उनके आगे झुक जाऊँगा, तो वे मुझे अवश्य 'चाचा अक्रूर' कहकर पुकारेंगे और तब तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा-मेरा जन्म सफल हो जायगा। वे तो लीला करनेके लिए अवतीर्ण हुए हैं, अतः 'चाचा' कहते उन्हें सङ्कोच न होगा। जिसे सबके पूज्य भगवान्ने अपनाया नहीं

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसके जन्मको धिक्कार है ॥ २१ ॥ यद्यपि भगवान् सम हैं, उनका कोई प्रिय, अप्रिय, मित्र एवं शत्रु तथा उपेक्ष्य नहीं है, फिर भी जैसे कल्पद्रुम उससे जो जैसा माँगता है उसे वैसा ही देता है, वैसे ही भगवान् भी प्रेम करनेवालोंसे प्रेम करते हैं—भजनेवालेको वे भी भजते हैं ॥ २२ ॥ और जब यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ बलरामजी मुझे अवनत देखेंगे, तो वे मुझे मुस्कराकर हृदयसे लगायेंगे और मेरी अञ्जलियोंको पकड़ करके भीतर ले जाकर मेरा सब अच्छी तरह सत्कार करेंगे। और तब पूछेंगे कि 'कंस मेरे परिवारवालोंके साथ कैसा व्यवहार करता है ?' ॥२३॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन, श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी इस तरह रास्तेमें कृष्णका सोच-विचार करते हुए रथसे गोकुल पहुँचे। उधर सूर्य भी अस्ताचलको पहुँच गये ॥२४॥ व्रजमें वहाँ उन्होंने भगवान्के उन चरण-चिह्नोंको उगा देखा, जिनकी पवित्र धूलिको अखिल लोकपाल मुकुटोंपर धारण करते हैं। वहाँकी पृथ्वीकी शोभा बढ़ गयी थी, वे भगवान्के चरणचिह्न पृथिवीके अलंकार स्वरूप थे और उन चिह्नोंमें कमल, यव अंकुश आदि उगे हुए थे ॥ २५ ॥ उन चिह्नोंके देखनेमात्रसे उनमें आनन्दकी बाढ़ उमड़ आयी और वे अपने-

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथापि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२॥ किञ्चाग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥ २६ ॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ॥ संदेशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥ ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ॥ पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥

आपको सम्भाल न सके। प्रेमसे रोमाञ्च हो आया और आँसुओंसे आँखें भर आयीं। वे रथसे कूद पड़े और 'यह तो प्रभुके ही चरणोंके रज हैं' कहकर लोटने-पोटने लगे ॥२६॥ कंसके सन्देशके अनन्तर भगवान्के चरणचिन्ह देखने तथा उनके गुणोंके श्रवण आदिसे अक्रूरजीकी जो दशा हुई—बस, इतना ही प्राप्त करना तो प्रत्येक देहधारीके लिये पुरुषार्थ है। उन्हें चाहिये कि वे छल कपट, भय एवं शोक छोड़कर इस अवस्थाको प्राप्त करनेकी चेष्टा करें ॥ २७ ॥ व्रजमें जब वे गोदोहनकी जगह पहुँचे, उन्होंने कृष्ण और बलरामको देखा। कृष्णने पीताम्बर एवं बलरामने नीलाम्बर धारण रखा था। शरत्कालीन कमलकी तरह उनके नेत्र थे। वे किशोरावस्थाको प्राप्त हो रहे थे। कृष्ण श्यामल एवं बलराम गोरे थे। दोनोंकी लम्बी भुजाएँ थीं एवं शोभाके आवास थे। उनका मुख बहुत सुन्दर था, वे तो सौन्दर्यकी पराकाष्ठा थे, बाल गजकी तरह उनकी गति थी। उनके चरणोंमें ध्वजा, वज्र अंकुश, कमलके चिन्ह थे जिससे वहाँकी भूमि बड़ी भली मालूम पड़ती थी। उनके सुन्दर स्वभाव थे, चितवन दयासे पूर्ण थी, वे बड़े उदार थे, उनकी लीलाएँ बड़ी रुचिकर थीं। वनमाल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एवं हार पहने थे नहा धोकर निर्मल वस्त्र पहन उन्होंने अभी अभी सुन्दर गन्धयुक्त चन्दन लगाया था ।। २८–३१ ।। वे जगत्‌के आदि एवं अभिन्न निमित्तोपादान कारण प्रधान एवं पुरुष ही थे, जो मूर्तिभेदसे बलराम और कृष्ण रूपमें जगत्‌के कल्याणके लिये अवतीर्ण हुए थे ।। ३२ ।। हे राजन्, वे अपनी प्रभासे दिशाओंके अन्धकारको भगा रहे थे । मालूम पड़ता था मानो सुवर्णसे खचित मरकत एवं चाँदीके पहाड़ हों ।। ३३ उस समय स्नेहसे विह्वल अक्रूरजी जल्दीसे रथसे कूद पड़े और बलराम एवं कृष्णके चरणोंके पास दण्डेकी तरह पड़ गये ।। ३४ ।। राजन्, भगवान्‌के दर्शनके अनन्दाश्रुसे उनकी आँखें भर आयीं, रोमाञ्च हो आया और उत्कण्ठासे गला रुँध जानेके कारण यह नहीं कह सके कि 'मैं अक्रूर आपको प्रणाम करता हूँ' ।। ३५ ।। भगवान् तो उनके मनकी बात जान गये थे । उन्होंने चक्रचिन्हित हाथोंसे उन्हे समीपमें खींचकर हृदयसे लगा लिया । भगवान् तो प्रेममय और शरणागत

ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ।। शोभयन्तौ महात्मानावनुक्रोशस्मितेक्षणौ ।। ३० ।। उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ।। पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ।।३१।। प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ।। अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ।।३२।। दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया ।। यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ।। ३३ ।। रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ।। पपात चरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ।।३४।। भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ।। पुलकाचिताङ्ग औत्कण्ठ्यात् स्वाख्याने नाशकन्नृप ।।३५।। भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना ।। परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ।। ३६ ।। सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ।। गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजो गृहम् ।। पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।। प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ।। ३८ ।। निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ।। अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ।।३९।। तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ।। मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ।।४०।। पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ।। कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ।।४१।। योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः ।। किं नु स्वि-

वत्सल है ।। ३६ ।। बलरामजीने भी उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया । एक हाथको प्रसन्नचित्त उन्होंने और दूसरे हाथको कृष्णने पकड़ा और घर लिवा ले गये ।। ३७ ।। सुन्दर आसनपर बैठाकर उनका स्वागत किया और कुशल-मंगल पूछा । विधिपूर्वक चरण पखारकर बढ़िया मधुपर्क दे समुचित पूजन किया ।। ३८ ।। तदनन्तर बलरामजीने बड़े आदरके साथ अपने अतिथिको एक गाय दी और उनके पैर दबाने लगे, वे थक गये थे, और बड़ी श्रद्धासे उन्हें षड्रस युक्त विशुद्ध अच्छा-अच्छा भोजन जिमाया ।। ३९ ।। जब वे खा चुके, तो धर्मके परम जानकार बलरामजीने बड़े प्रेमसे ताम्बूल आदि मुखशुद्धि एवं माला देकर उन्हें पुनः खूब प्रसन्न किया ।। ४० ।। बाद नन्दबाबाने सत्कृत हुए अक्रूरजीसे पूछा कि अक्रूरजी, कंस तो बड़ा निर्दयी है, उसके जीते जी आप कैसे वहाँ रह रहे हैं । वह तो भेड़ोंके लिये भेड़िया-जैसा खूंखार है ।। ४१ ।। जिस दुष्टने अपने प्राणोंको बचानेके लिये रोती-चिल्लाती अपनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बहनके बच्चोंकी हत्याकर दी। भला उसके प्रजाजनोंको उससे कितना भय बना रहता होगा? जब आपका तथा उसकी प्रजाओंका जीवन ही दुर्लभ है, तो फिर उनके कुशलके विषयमें हम क्या विचार करें॥ ४२॥ इस तरह जब नन्दबाबाने मीठी-मीठी बातें कीं, तो अक्रूरजीकी रही-सही थकान सब मिट गयी॥ ४३॥

त्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥४२॥ इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरागमनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

अड़तीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, अक्रूरजीने कंसकी आज्ञा स्वीकारकर ली थी। उन्होंने रात मथुरामें ही बितायी। सबेरे व्रजको प्रस्थान किया। रास्तेमें उन्हें भगवान् के प्रति प्रेमभक्ति उमड़ आयी और वे मारे प्रेमके कृष्ण सम्बन्धी बातोंको सोचते-सोचते व्रज पहुँचे। रास्तेमें उन्हें भगवान्के चरणचिह्न मिले, जिनमें यव, अंकुश आदि चिह्न उगे हुए थे। उन चिह्नोंको देख वे अपनेको सँभाल न सके। वे उनपर लोट-पोट गये। जब दूध दुहनेकी जगह पहुँचे तो उन्हें कृष्ण और बलरामका दर्शन हुआ। भगवान्ने उन्हें गलेसे लगाया और घर लिवा ले जाकर उनकी बड़ी आव-भगत की। नन्दबाबाने पूछा कि अक्रूरजी, कंस बड़ा नृशंस है। वहाँ आप कैसे गुजरकर रहे हैं। वह भेड़ियेकी तरह खूंखार है नन्दजीकी बातचीतसे उन्हें बड़ी खुशी हुई॥

❋ अथ एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❋

[कृष्ण और बलरामका मथुरा जाना]

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, जब राम कृष्णने उनकी बड़ी सेवा टहल की, तो वे बड़े सुखी हुए और पलंगपर बैठ गये। रास्तेमें उन्होंने जितनी भी इच्छाएँ की थीं, सब पूरी

श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ॥ लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ॥ तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥२॥ सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः ॥ सुहृत्सु

हो गयीं॥ १॥ भला लक्ष्मीपति भगवान्के प्रसन्न हो जानेपर कौन-सी वस्तु अलभ्य रह सकती है? फिर भी हे राजन्, भगवान्के भक्त उनके अतिरिक्त और कुछ चाहते नहीं॥ २॥

जब देवकीनन्दन भगवान्ने सायंकालका भोजन समाप्तकर लिया तो उन्होंने अक्रूरजीसे पूछा कि कंस हमारे परिवार वालोंसे कैसा बर्ताव करता है और आगे वह क्या करने जा रहा है?॥३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्री भगवान्‌ने पूछा—चाचाजी, आपका हृदय बड़ा उदार है। रास्तेमें आपको कोई कष्ट तो न हुआ। मैं आपका स्वागत करता हूँ। आपका सभी तरहसे कल्याण हो। हमारे जाति-भाइयोंका कुशल तो है न ? कंसके द्वारा उन्हें कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है ? ॥ ४ ॥ पर यह मेरा पूछना भी व्यर्थ ही है, क्योंकि नाममात्रका मामाकुलको ग्रसनेवाला भारी रोगकी तरह कंस मौजूद हो है। तो उसकी प्रजाओं तथा अपने परिवारवालोंका कुशल-क्षेम क्या पूछें ? ॥ ५ ॥ दुःखकी बात है कि हमारे लिए हमारे माता-पिताको इतना कष्ट उठाना पड़ा है। हमारे लिए ही उनके पुत्र मारे गये हैं एवं हमारे लिए ही वे जेलमें बन्द हैं ॥ ६ ॥ मैं बहुत चाहता था कि अपने लोगोंमेंसे किसीसे भेंट हो। सौभाग्यसे आपका दर्शन मिला। पूज्य चाचाजी, अब आप अपने आनेका कारण बतलाइये ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, भगवान्‌से पूछे जानेपर अक्रूरजीने वे सब बातें सुना दीं कि किस तरह कंस यदुवंशियोंसे

वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः ॥ अपि स्वज्ञातिबन्धूना-मनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥ किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ॥ कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥ अहो अस्मदभूद्भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् ॥ सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ॥ वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्सन्देशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥ श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञादिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥ गोपान् समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यान्ति जानपदा किल ॥ एवमाघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्यान-

वैर रखता है और किस तरह वह वसुदेवको मारनेके लिए तैयार हुआ था ॥ ८ ॥ कंसका क्या सन्देश है और उसने किस मतलबसे आपके पास भेजा है, ये सब बातें उन्होंने बतला दीं। यह भी बतला दिया कि कंसको नारदजीने आपको वसुदेवका पुत्र बता दिया है ॥९॥ अक्रूरजीकी बात सुन शत्रुके वीरोंका नाश करनेवाले बलराम और कृष्ण हँस पड़े और उन्होंने पिता नन्दजीसे राजा कंसकी आज्ञा सुना दी ॥१०॥ नन्दने सारे व्रजको कहला दिया कि सब लोग गोरस एवं भेंट लेले और गाड़ियाँ जोतकर तैयार रखें ॥११॥ कल हम लोग मथुरा जायँगे और राजाको भेंट देकर वहाँका उत्सव देखेंगे। वहाँ सभी लोग इकट्ठे हो रहे हैं, नन्दबाबाने इन सब बातोंको अपने कोतवालके द्वारा व्रजमें कहला दिया ॥ १२ ॥ जब गोपियोंने यह समाचार सुना कि अक्रूरजी मथुरापुरीमें ले जानेके लिए बलराम और कृष्णको लेने आये हैं, तो उन्हें बड़ी व्यथा हुई ॥ १३ ॥ कुछ गोपियोंको तो हृदयमें इतनी जलन हुई कि उनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सांसें गरम हो गयीं और उनका मुख कुम्हला गया। कुछ तो बेहोश हो गयीं तथा उन्हें अपने सरकते कपड़े, कंकण एवं केशोंकी कुछ सुध न रही ॥ १४ ॥ कुछको तो भगवान्की याद आतेही उनकी सारी चित्तवृत्तियाँ नष्ट हो गयीं और वे इस लोककी किसी बातको न जान सकीं, मानों वे आत्मनिष्ठ हो गयी हों ॥१५॥ कुछ गोपियोंको प्रेमभरी मुस्कराहट लिये हृदयस्पर्शी भगवान्की विचित्र बोलीका स्मरण हो आया और वे बेसुध हो गयीं ॥१६॥ इसके बाद बहुत-सी गोपियाँ इकट्ठी हो गयीं। उनका अन्तःकरण तो भगवन्मय हो रहा था वे विरहसे कातर थीं उन्होंने भगवान्के गमन, अच्छी चेष्टाएँ, प्रेमपूर्वक हास्य एवं चितवन, खुश करने वाली छेड़खानियाँ एवं उद्दाम चरित्रोंका एक साथ मिलकर जोर-जोरसे गान करने लगीं। आँसूसे उनका मुख भींग गया था ॥१७,१८॥ गोपियोंने कहा—'अरे विधाता, तुझे तो थोड़ी भी दया नहीं है। पहले तो तुम प्राणियोंके मैत्री द्वारा प्रेमसे एक दूसरेसे मिला देते हो और जब उन

निवृत्ताशेषवृत्तयः ॥ नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥ स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ॥ हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७ ॥ चिन्तयन्तो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः ॥ समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान्वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥ न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ॥ विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ॥ याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासां

बेचारों की आकांक्षाएँ तृप्त भी नहीं होने पातीं कि उन्हें अलगकर देते हो। तुम तो बच्चोंकी तरह प्रयोजनशून्य खिलवाड़ करते हो॥१९॥ तुमने तो पहले कृष्णके मुखकमलको दिखलाया ओह, वह कितना सुन्दर है, उसपर काले-काले घुँघराले केश लटक रहे हैं, कोमल कपोल एवं सुन्दर नासिका है। उस मुखकी मुस्कराहटसे शोक दुःखका पता नहीं रहता। हाँ, तो उस मुखको दिखा, अब तुम उसे छिपाना चाहते हो। तुम कितने निठुर हो ! ॥ २० ॥ तुम भयंकर क्रूर हो। अक्रूरके रूपमें तुम्हीं यहाँ आये हो। तुमने जो हमें आखें दी थीं, उनसे सचमुच हमने तुम्हारे समस्त सौन्दर्यका सार एकही जगह भगवानके केवल मुखमें देखा था, पर मूर्खकी तरह अब वे आँखें छीनना चाहते हो ॥ २१ ॥ अरी, विधाताको क्या दोष देना है ! अपने ये नन्दलाल भी कम नहीं हैं, इन्हें तो बस नये-नये लोगोंसे प्रेम लगाना है, इनका प्रेम क्षणिक है। भला हमलोगोंने तो अपने घर गृहस्थी, पति, पुत्रको छोड़ दिया और वे महोदय हमें सब तरहसे आतुर बना अब नेहकर नाता तोड़ लेना चाहते हैं। देखो न, हमारी ओर देखते भी नहीं ॥ २२ ॥ भाग्यवती तो मथुराकी स्त्रियाँ हैं। आजका उनका प्रभात सुप्रभात

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

होगा। सारे मनोरथ पूर्ण हो गये ब्राह्मण आदिकोंके आशीर्वाद सब सफल हो गये, क्योंकि नन्दलाल जब मथुरामें घुसेंगे, तो वे लोग कटाक्षविक्षेपसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णके मुस्कराहटरूपी आसवका वे छककर पान करेंगी ॥ २३ ॥ श्यामसुन्दर यद्यपि मनस्वी और नन्द आदिके परवश हैं, पर फिर भी उनकी मनोहर मीठी-मीठी बातोंसे इनका चित्त खिंच जायगा। फिर उनके सलज्ज मुसकान भरी चितवनोंके फेरमें पड़कर उनमें आसक्ति रखते हुए हम ग्राम्य अबलाओंका भला क्यों ख्याल करेंगे ? हम लोगोंके पास लौटकर नहीं आवेंगे ॥२४॥ आज सचमुच उन दाशार्ह, भोज, अन्धक एवं वृष्णिवंशियोंकी आँखें कृतकृत्य हो जायँगी, क्योंकि रास्तेमें वे सौन्दर्य-माधुर्यादि गुणोंके आश्रयभूत लक्ष्मीकान्त देवकीनन्दन श्रीकृष्णको देख सकेंगे ॥२५॥ अरी, यह भी एक तमाशा देखो, जो इतना क्रूर हो कि हम दुःखियोंको कुछ आश्वासन भी न दे हमारे प्राणसे भी बढ़कर प्रियको दूर बहुत दूर ले जाये, ऐसे निकृष्ट कर्म करनेवालेका नाम लोगोंने अक्रूर रख दिया। इसका यह नाम ठीक नहीं है। ओह, वह तो भयंकर हृदयहीन है ॥२६॥ अक्रूरको छोड़ो, अपने श्यामसुन्दर भी कम कठोर थोड़े हैं,

मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ।। कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥
अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥
मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ॥ योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥
अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥ निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ॥ मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरम्भरासगोष्ठ्याम् ॥ नीताः स्मः नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥ २९ ॥ योऽन्हःक्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ॥ वेणुं क्वणन्

देखो न, वे तो स्नेहशून्य बुद्धि करके रथपर भी बैठ गये। वृद्धोंने भी इन्हें इसीलिए मना न किया कि ये निठुर हैं, बात तो मानेंगे नहीं। उन मूर्ख और मतवाले गोपोंको तो देखो, बड़े उत्साहके साथ गाड़ी लेकर कृष्णके पीछे-पीछे चलनेकी जल्दी मचा रहे हैं। अरी, क्या करें, आज तो विधाता ही हमलोगोंके प्रतिकूल आचरण कर रहे हैं—वाम नजर आते हैं ॥२७। आओ, चलो, हम ही लोग कृष्णके समीप विनयपूर्वक जाकर हाथ जोड़ करके जानेसे रोक लें, क्योंकि आधे क्षण भी उनका सङ्ग छोड़नेमें हम असमर्थ हैं। दुर्दैवने हमारे चित्तको उनसे वियुक्तकर दिया है अतएव हमारे चित्त कातर हो गये हैं। हमें मृत्युसे भी भय नहीं है अतः घरके वृद्धजन तथा दूसरे बान्धव लोग क्याकर लेंगे ॥ २८ ॥ गोपियो, भला रासलीलामें जिनके प्रेमपूर्ण सुन्दर मुस्कान, रहस्यभरी बातें, विलासपूर्ण चितवन एवं आलिङ्गनसे उतनी बड़ी रात्रि भी एक क्षणके समान गवाँ दी, उनके बिना एक क्षण भी हम इस दुःसह विरह दुःखसे कैसे पार पायेंगी ? ॥ २९ ॥ बलराम एवं ग्वाल-बालोंके साथ घिरे हुए जो कृष्ण सायंकाल वंशी टेरते हुए चल चितवनसे हमारे हृदयको बिंध देते थे, उनके बिना हम कैसे रह ॥१०१।

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.
CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सकती हैं। ओह, उस समय उनके उस घुंघराले केशोंकी छटा तो और अवर्णनीय हो जाती थी, जब उसपर गायोंके खुरसे उठी धूलि पड़ी रहती थी ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इस तरह बोलती हुई वे विरहिनी व्रजाङ्गनाएँ लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वरसे 'गोविन्द, दामोदर, माधव, कहकर रो पड़ीं। उनका चित्त कृष्णमें बिलकुल जा लगा था ॥ ३१ ॥ स्त्रियाँ इधर इस तरह रो रही थीं, उधर अक्रूरजीने इनकी कुछ भी परवाह न कर सूर्यके उग आनेपर संध्योपासानादि करके रथ हाँक दिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर नन्द आदि गोप लोग अपनी गाड़ियोंसे उनके पीछे हो लिए। उन्होंने गोरससे भरे मटके प्रचुर मात्रामें भेंटके लिए ले रखे थे ॥ ३३ ॥ गोपियाँ अपने प्रियतम कृष्णके पीछे-पीछे आ रही थीं। भगवान्ने घूम कर उनकी ओर देखा तो वे कुछ प्रसन्न हुईं, वे वहीं खड़ी हो गयीं ताकि भगवान् उन्हें कुछ सन्देशा दे दें ॥ ३४ ॥ जब भगवान्ने उन्हें अपने प्रस्थानसे उस तरह आकुल देखा, तो

स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ॥ विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेव रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥ गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः ॥ आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससंभृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥ ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने ॥ विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ॥ वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् ॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौ

उन्होंने उन्हें प्रेमभरे दूत वाक्यों द्वारा सान्त्वना दी और सन्देश दिया कि 'मैं शीघ्र ही आऊँगा, कसम खाकर कहता हूँ, तुमलोग विश्वास करो ॥ ३५ ॥ चूँकि उन्होंने अपने चित्तको भगवान् श्रीकृष्णके पीछे दौड़ा दिया था, इसलिए जबतक रथकी ध्वजा एवं पहिएसे उठी धूल दीखती रही तबतक वे चित्रलिखित सी वहीं ठहरी रहीं ॥ ३६ ॥ राजन्, जब कृष्ण न लौटे, तो वे निराश होकर घर लौट आयीं। प्रियतमकी लीलाओंको कह-सुनकर शोकशून्य हो वे रात-दिन बिताने लगीं ॥ ३७ ॥ राजन्, उधर बलराम और अक्रूरजीके साथ भगवान् भी उस वायुके समान वेगवाले रथसे पुण्यतोया यमुनाके तटपर पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहाँ वे बलरामके साथ जलका स्पर्शकर एवं मरकतमणिकी तरह नीले निर्मल पानी पी झुरमुटमें खड़े रथपर जाकर बैठ गये ॥ ३९ ॥ अक्रूरजी उन्हें रथपर बिठाकर एवं उनसे राय लेकर कालिन्दीके ब्रह्महृदपर आकर विधिवत् स्नान करने लगे ॥४०॥ जब वे डुबकी लगाकर गायत्री-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का जप करने लगे, तो उन्हें जलमें बलराम और कृष्ण बैठे हुए नजर आये ॥ ४१ ॥ अक्रूरजीको शंका हुई कि नन्दजीके वे लड़के तो रथपर बैठे थे, यहाँ कैसे चले आये ? यदि यहाँ हैं तो रथपर न होंगे, ऐसा सोच उन्होंने रथपर दृष्टि डाली ॥ ४२ ॥ तो वहाँ भी उन्होंने उन्हें उसी तरह बैठा पाया। उन्होंने सोचा कि जो जलमें देखा वह भ्रम रहा होगा और जब फिर डुबकी लगायी तो देखा कि वहाँ शेषनाग हैं और उन्हें सिर झुकाकर सिद्ध, चारण, गन्धर्व, असुर स्तुतिकर रहे हैं। उनके हजार सिर हैं एवं हजारों फण पर मुकुट है। वे कमलनालकी तरह श्वेत थे एवं उनका कपड़ा नीला था। मालूम पड़ते थे, मानो हजारो चोटीवाला हिमालय हो ॥ ४३–४५ ॥ उनकी गोदमें मेघकी तरह श्याम, पीताम्बर पहने हुए कमलदलकी तरह लाल आँखोंवाले, शान्त, चतुर्भुज भगवान्को उन्होंने देखा ॥ ४६ ॥ उनका मुख बड़ा सुन्दर एवं प्रसन्न था। उनकी मुस्कराहट और चितवन बड़ी भली थी। भौंहें

रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ॥ तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम् ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलाम्बरं विसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥ प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ॥ कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ॥ चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥ तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ॥ नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥५०॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥ ५१ ॥ भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ५२ ॥ सुनन्दनन्द-

भली एवं नासिका निम्नोन्नत थी। कान, कपोल सुन्दर एवं ओठ लाल थे। हाथ घुटनेतक लम्बे एवं सुडौल थे। कन्धे एवं वक्षःस्थल उभड़े हुये थे, उनका सौन्दर्य सराहनीय था। शंखकी तरह कण्ठ था। नाभी गहरी एवं उदारत्रिवलिसे युक्त एवं पीपलके पत्तेकी तरह था। उनकी सुन्दर पतली कमर, नितम्ब तथा हाथीकी सूँडके समान जाँघें थीं। घुठने एवं चरण बड़े सुन्दर थे। एड़ियाँ कुछ ऊँची एवं नख लाल थे, उनसे किरणें निकल रही थीं। उनके चरण कमलकी तरह एवं अंगुलियाँ पंखुड़ियोंकी तरह शोभित होती थीं। बहुमूल्य मणिसमूहसे खचित मुकुट, कड़े, अङ्गद एवं करधनी, यज्ञोपवीत, हार, पायजेब और कुण्डलसे वे शोभित हो रहे थे। शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए थे। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न एवं कौस्तुभमणि विराज रहा था। वे वनमाला पहने हुये थे। शुद्धचित्तवाले सुनन्द, नन्द प्रभृति पार्षद, 'स्वामी' सनकादि 'परब्रह्म' ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवता 'महेश्वर', मरीच्यादि नव प्रजापति 'परप्रजापति' तथा प्रह्लाद, नारद, वसु आदि सर्वोत्तम भक्त 'भगवान्' समझकर पृथक्-पृथक् अभिप्राय युक्त निर्मल वाणियोंसे उनकी स्तुतिकर रहे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं। श्री, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, पृथ्वी, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, ह्लादिनी संवित् एवं चिति शक्ति आदि मूर्तिमती होकर उनकी सेवाकर रही थीं ॥ ४७–५४ ॥ इस झाँकीका दर्शनकर वे प्रसन्नतासे नाच उठे और पराभक्तिसे युक्त हो गये। रोमहर्षसे सिहर उठे। भावाश्रु ओंसे उनके चित्त एवं नेत्र गीले हो गये ॥ ५५, ५६ ॥ फिर धीरे-धीरे धैर्य बटोरकर भक्त अक्रूरजीने हाथ जोड़कर भगवान्‌को सिर झुकाकर प्रणाम करके टूटे-फूटे अक्षरोंवाली वाणीसे (रुँधे कण्ठसे) स्तुति की ॥ ५७ ॥

प्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ॥ विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० द० पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियाने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

उनतालीसवें अध्यायका सार—राजन्, भगवान्‌ने अक्रूरजीकी बड़ी आव-भगत की। अक्रूरजीकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गयीं। भगवान्‌ने अपने परिजनोंका कुशल मंगल पूछा। अक्रूरजीने कंसका सन्देश और उसकी बुरी नियत कह सुनायी। भगवान् उसपर हँस पड़े और नन्दबाबाको उसका सन्देश सुना दिया। नन्दजीने कोतवालसे कहकर व्रजके लोगोंको कंसके पास चलनेके लिए तैयार कर दिया। जब गोपियोंने यह समाचार सुना, तो बड़ी विकल हुईं। किन्तु उन बेचारियोंका वश ही क्या था? सबेरे अक्रूरजी सन्ध्योपासनादिकर रथपर भगवान् और बलरामको बिठा बढ़ चले। गोपियोंको भगवान्‌ने यह कहकर विदा कर दिया कि 'मैं फिर आऊँगा'। जब यमुनातटपर पहुँचे, तो भगवान्‌ने हाथ मुँह धोकर निर्मल जल पीया। अक्रूरजी उन्हें रथपर बिठा स्वयं नहाने उतरे। वहाँ भी उन्हें कृष्ण और बलराम बैठे हुए मिले उन्हें शङ्का हुई कि मुझे भ्रम हो गया है। किन्तु जब रथपर भी उन्हें बैठे देखे, तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। जब जलमें फिर डूबे, तो उन्हें वहाँ इस बार 'विष्णु' दीखे, जिनकी ब्रह्मा आदि स्तुति कर रह थे। उन्हें देखकर अक्रूरजी भी रुँधे कण्ठसे स्तुति करने लगे। उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❋

[अक्रूरजीका भगवान्‌की स्तुति करना]

अक्रूर उवाच ॥ नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥ यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्ब्रह्माऽविरासीद्यत

अक्रूरजीने स्तुति करते हुए कहा—आप अखिलकारणके कारण हैं, आदिपुरुष नारायण हैं, अव्यय हैं। जिनकी नाभिके कमलसे ब्रह्मा पैदा हुए, जिन्होंने इस लोककी रचना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की। मैं आपके चरण पड़ता हूँ ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, इन्द्रियोंके विषय, उनके अधिष्ठात्री देवता ये सब जितने जगत्‌के हेतु हैं वे सबके सब आपके अङ्गभूत हैं ॥२॥ प्रकृति एवं प्रकृतिका सारा परिवार अनात्मा है। अनात्मरूपसे गृहीत उनसे आप नहीं जाने जा सकते। ब्रह्मा भी उस मायाके गुणोंसे बँधे हुए हैं, अतः वे भी आपके गुणोंसे परेके स्वरूपको नहीं जान सकते। [तभी तो उन्होंने वत्स और बच्चोंका अपहरण किया था ?] ॥३॥ हिरण्यगर्भ आदि योगीजन अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैवत साक्षीस्वरूप, ईश्वर एवं महापुरुष आपको साक्षात् ही ध्यान करते हैं ॥ ४ ॥ कोई याज्ञिक ब्राह्मणलोग आपको ही ऋग् यजुः सामात्मक वेदत्रयरूपी विद्यासे बोधित विस्तृत यज्ञों द्वारा कर्मकाण्डकी पद्धतिसे पूजते हैं। वे यद्यपि इन्द्रादि अनेक देवोंके नामसे ही पूजा करते हैं, किन्तु वह पूजा आपकी ही होती है ॥ ५ ॥ बहुतसे लोग कर्मोंका त्यागकर

एष लोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ॥ सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥२॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ॥ अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥३॥ त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ॥ साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥४॥ त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥५॥ एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ॥ ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥ अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते ॥ यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥८॥ सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्याधियः प्रभो ॥९॥ यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ॥ विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥१०॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥११॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां

शान्त हो जाते हैं। वे ज्ञानी लोग होते हैं, वे ज्ञानयज्ञसे ज्ञानरूप आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ कुछ लोग वैष्णव पद्धतिका आश्रयणकर आपके द्वारा विहित विधिके अनुसार अपने अन्तःकरणको संस्कृत बनाकर आपके स्वरूपमें लीन हो वासुदेव, संकर्षण आदि नाना रूपोंमें तथा महानारायण रूप एक रूपसे भी आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ७ ॥ भगवन्, कुछ लोग शैवपद्धतिका आश्रयण पाकर शिवोक्त मार्गसे, जिसके आचार्य भेदसे अनेक प्रभेद हैं, शिवस्वरूप आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ यद्यपि कुछ साधक बेचारे किसी अन्य देवताको आपसे भिन्न समझकर ही पूजा करते हैं, फिर भी वे आपकी ही पूजा करते हैं, क्योंकि हे प्रभो, आप सब देवताओंके रूपमें विराजमान ईश्वर हैं ॥ ९ ॥ जैसे पहाड़से निकली नदियाँ वर्षाके जलसे पुष्ट होकर अन्तमें समुद्रमें जा मिलती हैं, इसी तरह हे प्रभो, आखिरमें सारे रास्ते आपमें ही समाप्त हो जाते हैं ॥ १० ॥ सत्य, रज और तम ये तीन गुण आपकी प्रकृतिके हैं। ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त जीव उन्हीं गुणोंमें ओत प्रोत हैं ॥ ११ ॥ आपकी दृष्टि अप्रतिहत है। आप तो सर्वात्मा एवं सबकी बुद्धिके साक्षी हैं। अविद्याकृत यह गुणका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रवाह देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी सबमें है। केवल एक आप इससे बचे हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ आपका अग्नि मुख है, पृथ्वी चरण है, सूर्य नेत्र है, आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं, स्वर्ग सिर है, इन्द्रादि देवता बाहु हैं, समुद्र कोख है और वायु प्राणबल है, यह उपासकों द्वारा ध्यानके लिये कल्पित हैं ॥ १३ ॥ वृक्ष और औषधियाँ रोम हैं, मेघ सिरके बाल हैं, पर्वत अस्थि एवं नख हैं, दिन-रात आँखोंका खोलना-मीचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय एवं वृष्टि आपका वीर्य है, जो प्रामाणिक पुरुषों द्वारा अभिलषित है ॥ १४ ॥ जैसे जलमें बहुत जलचर एवं गूलरके फलमें बहुतसे कीड़े भरे रहते हैं, उसी तरह हे अव्ययात्मन्, आपके मनोमय पुरुष रूपमें सभी लोक एवं लोकपाल कल्पितहैं, जो प्राणियोंसे ठसाठस भरे हैं ॥ १५ ॥ इस संसारमें अपनी क्रीड़ाके लिये आप जो जो रूप धरते हैं, उन रूपोंके चिन्तनसे प्राणियोंके शोक, मोह आदि सभी नष्ट हो जाते हैं अतः सबके सब वे प्राणी आपके

च सान्निणे ॥ गुणप्रवाहोऽयंविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥१२॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥ त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः ॥ यथा जले सञ्जिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ॥ तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतांपतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय

यशका बड़े आनन्दसे गान करते हैं ॥ १६ ॥ आप मत्स्यावतार धर जगत्के आदि कारण बनते हैं एवं प्रलयके जलमें विचरण करते हैं। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। मधु-कैटभको मारनेके लिये आपने हयग्रीव अवतार लिया था, मैं उस रूपको प्रणाम करता हूँ ॥१७॥ मन्दराचलको धारण करनेके लिये बहुत बड़ा कूर्मका रूप धारण किया था, मैं उस रूपको प्रणाम करता हूँ। आपने पृथ्वीके उद्धारके लिये वाराहका अवतार लिया था, मैं उस रूपको नमस्कार करता हूँ ॥१८॥ साधुजनोंके भयको मिटानेके लिये आपने विचित्र नृसिंहावतार धारण किया था, मैं उस रूपको प्रणाम करता आपने तीनों लोकोंको तीन पैरसे नापनेके लिये वामनका रूप धारण किया था, मैं उस रूपको प्रणाम करता हूँ ॥ १९ ॥ गर्वीले क्षत्रियोंके संहारके लिये आपने परशुरामावतार धारण किया था एवं रावणके विनाशके लिये आपने रामका रूप धारण किया था, मैं आपके उन दोनों ही रूपोंको नमस्कार करता हूँ ॥२०॥ आपही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध रूपसे चतुर्व्यूह बने हैं, मैं उन सब रूपोंको धारण करनेवाले सात्वतपति आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २१ ॥ दैत्य-दानवोंको मोहनेके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिये आप शुद्धबुद्धका अवतार लेंगे मैं उस रूपको नमस्कार करता हूँ। एवं म्लेच्छ जब क्षत्रियोंकी तरह राजा बन बैठेंगे, तो उनके विनाशके लिये आप कल्कि अवतार धारण करेंगे, आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ भगवन्, यह समस्त प्राणी आपकी मायासे मोहित होकर अहन्ता, ममताका दुराग्रहकर कर्मके पचड़ेमें पड़े घूम रहे हैं ॥ २३ ॥ और मैं भी अनित्य एवं अनात्मवस्तुओंमें आत्मबुद्धि करता हूँ। हे विभो, अपनेको एवं पुत्र, गृह, स्त्री, धन, स्वजनोंको सत्य समझकर इनमें भटक रहा हूँ। जो स्वप्न सरीखे हैं, उन्हें ही सत्य समझना अवश्य मेरी मूर्खता है, मैं मूर्ख हूँ ॥ २४ ॥ जो अनित्य है, उसे नित्य समझना, जो अनात्मा है उसे आत्मा समझना, जो दुःख है उसे सुख समझना अवश्य मेरी भयङ्कर भूल है- इनमें मेरी विपरीत बुद्धि है। मैं तो सुख-दुःखमें ही रम रहा हूँ, अन्धकारसे बिलकुल घिरा हुआ हूँ, अतः मैं अपने प्रियतम आपको नहीं जान पाता ॥ २५ ॥ कोई अज्ञानी तृण, शैवाल आदिसे ढक जानेके कारण जलको छोड़ देता है और मृगमरीचिकाके पीछे पड़ जाता है, उसी तरह मैं भी मायासे आच्छन्न आपको छोड़कर देहादिके अभिमुख हो गया हूँ—दुनियामें

शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥ भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥२४॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ॥ द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ॥ अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ॥ रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥ नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० द० पूर्वार्धेऽक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

उलझ गया हूँ ॥ २६ ॥ मेरी बुद्धि कायर है और मेरा मन कामना और कर्मकी वासनासे ओत-प्रोत है। इसपर दुर्दमनीय इन्द्रियाँ उसे विषयोंकी ओर खींचे लिये जाती हैं। उस प्रबल मनको तो मैं रोकनेमें असमर्थ हूँ ॥२७॥ इसलिए हे ईश, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। यद्यपि वह दुष्टोंके लिए सर्वथा दुर्लभ है तथापि इस ओर जो मैं झुका हूँ उसमें आपकी दयाका ही हाथ है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। हे कमलनाभ, आपकी कृपाके बिना न तो सत्संगति होती है और न तो आपकी ओर झुकाव ही होता है। जब जीवको संसारचक्रसे छुटकारा मिलनेको होता है तभी उसकी मति सन्तोंकी सेवासे आपकी ओर जाती है ॥ २८ ॥ आप विज्ञानमय हैं एवं समस्त ज्ञानोंके कारण हैं। पुरुषके सुख दुःख आदिके प्रापक काल, कर्म, स्वभाव आदिके आप नियन्ता हैं और आपकी शक्तियोंका कोई अन्त नहीं है आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ आप वासुदेव हैं एवं आपही सभी जीवोंके आश्रय हैं, अतः आपके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संकर्षणरूपको एवं बुद्धि और मनके अधिष्ठाता प्रद्युम्न, अनिरुद्ध रूपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो, मैं आपकी शरणमें हूँ आप मेरी रक्षा कीजिए ॥ ३० ॥

चालीसवें अध्यायका सार—राजन्, अक्रूरजीने भगवान्‌की सारगर्भित एवं भक्तिरससे आप्लुत बड़ी ही सुन्दर स्तुति की। चालीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(श्रीकृष्णका मथुरामें पहुँच जाना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—जब अक्रूरजी इस तरह स्तुति कर रहे थे तभी भगवान्‌ने जलमें अपना ऐसा रूप दिखलाकर उसे फिर अन्तर्हितकर लिया। वह काम वैसा ही हुआ, जैसे कोई नट अभिनय दिखलाकर फिर परदेकी ओटमें चला जाय ॥१॥ अक्रूरजी भी उन्हें अन्तर्हित देख जल्दीसे निकल आये और सब आवश्यक कृत्य समाप्तकर रथपर लौटे। उस समय वे बड़े विस्मित थे ॥ २ ॥ श्रीकृष्णने उन्हें उस तरह देखकर पूछा कि चाचा जी, आपने पृथ्वीपर, जलमें या आकाशमें क्या कोई अद्भुत चीज देखी है? आपकी आकृतिसे तो यही

श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥ सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथयागमत् ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूर उवाच ॥ अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥४॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ॥ तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन् कि मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥५॥ इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ॥ मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥६॥ मार्गेग्रामजना राजंस्तत्रतत्रोपसङ्गताः ॥

मालूम पड़ता है ॥३॥ अक्रूरजीने कहा—भगवन्, यहाँ पृथ्वी, जल या आकाशमें जितनी अद्भुत चीजें हैं, वे सबकीसब विश्वरूप आपमें ही हैं, इसलिए जब मैंने आपको ही भलीभाँति देख लिया, तो फिर और अद्भुत कौन-सी चीज बच गयी, जिसे मैं देखूँ। मैंने सब कुछ अद्भुत ही तो देखा ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन्, जिस आपमें सभी चीजें अद्भुत हैं ऐसे आपको देखते हुए मैंने पृथ्वी, जल, आकाशमें अद्भुत क्या देखा? आपके सिवा और कुछ दूसरा तो मैंने अद्भुत नहीं देखा, हाँ, एकमात्र आपको ही अद्भुत रूपधारी देखा ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर अक्रूरजीने रथ हाँक दिया। जब दिन ढलनेको हुआ तो वे बलराम और कृष्णको लेकर मथुरा पहुँचे ॥ ६ ॥ राजन्, जगह-जगहपर मार्गमें इकट्ठे हुए गाँवके लोगोंने जब वसुदेवजीके इन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दोनों लड़कोंको देखा, तो परम प्रसन्न हो एकटक वे देखते ही रह गये ॥ ७ ॥ नन्द, गोप आदि व्रजवासी जन तो पहले ही मथुरा पहुँच चुके थे, वे वहाँके उद्यानमें ठहरकर इनकी
प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ८ ॥ जब जगदीश्वर भगवान् उनके निकट पहुँच गये, तब प्रेमावनत अक्रूरजीके हाथको अपने हाथमें लेकर मुस्कराते हुए उन्होंने कहा ॥ ९ ॥ आप पहले रथके
साथ मथुरामें प्रवेश कीजिए तदनन्तर अपने घर जाइये । हमलोग यहीं विश्राम कर लेंगे, तब नगरमें आवेंगे ॥ १० ॥ अक्रूरजीने कहा—प्रभो, आपके बिना मैं नगरमें नहीं जा सकता।
आप भक्तवत्सल हैं, फिर नाथ, मुझ भक्तको आप यों छोड़ रहे हैं ? ॥ ११ ॥ देव, आइये, हमलोग साथ ही घर चलें । हे अधोक्षज, हे सुहृत्तम, अपने भाई बन्धुओंके साथ आज आप
हमारे घरको सनाथ करें ॥ १२ ॥ हम गृहस्थ हैं । हमारे घरको आप अपने चरणरजसे पवित्रकर दें । आपके चरणरजसे तो पितर और अग्नि आदि सभी देवता तृप्त हो जाते हैं ॥१३॥

वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥७॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥८॥
तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान्प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥
वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां
नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥
पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो
बलिर्महान् ॥ ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥ १४ ॥ आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकान् शुचयोऽपुनन् ॥ शिरसाऽधत्त
याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ॥ पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणा-

बलि आपके चरणोंको पखारकर उत्तमश्लोक बन गये और अपने गुणोंसे महान् हो गये । उन्होंने ऐहिक पारलौकिक अतुल ऐश्वर्य पाया । अन्तमें उत्तम भक्तोंकी गति पाई ॥ १४ ॥
आपके चरणोंसे निकली पवित्र जलवाली गंगाजीने तीनों लोकोंको पावन बना दिया है । जिस चरणोदकको शंकरजीने सिरपर धारण किया एवं जिससे सगरके सारे पुत्र ब्रह्मलोक चले
गये ॥ १५ ॥ आप देवताओंके देवता हैं । संसारके मालिक हैं । आपका श्रवण कीर्तन बहुत ही पावन है । उत्तम सन्तोंने आपका यश गाया है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१६॥
श्री भगवान्ने कहा—चाचाजी, मैं भैयाके साथ आपके यहाँ अवश्य आऊँगा । किन्तु जब यदुवंशियोंके शत्रु कंसका संहार कर लूँगा, तभी यादवोंका और तभी अपने प्रियजनोंका
हित करूँगा ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—जब भगवान्ने अक्रूरजीको यह आज्ञा दी, तो वे विमन से हो गये । वे मथुरा लौटे और कंससे भगवान्के आनेका समाचार सुनाया, तद-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न्वितः ॥ मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥ ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्यो पवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ॥ वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥ जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥ संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलङ्कृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ तां संप्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृववस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥ कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥ २५ ॥ अश्नन्त्य एकास्तदपास्य सोत्सवा अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ॥ स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ॥ जहार मत्तद्वि-

नन्तर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ दूसरे दिन सायंकाल गोपाल से घिरे हुए भगवान् बलरामके साथ मथुरा देखनेके लिए नगरमें आये ॥ १९ ॥ वहाँ स्फटिक पत्थरसे बना हुआ प्रधान फाटक था । सोनेके बड़े-बड़े किवाड़ लगे हुए थे एवं सोनेके ही तोरण थे । ताँबे एवं पीतलके बने धान्यागार तथा अश्वशालाएँ आदि थीं । नगरके चारों ओर इतनी गहरी खाइयाँ थीं कि कोई नगरमें प्रवेश नहीं कर सकता था । उद्यान एवं उपवनसे वह सुशोभित था ॥ २० ॥ सोनेके चौराहे, धनियोंके घर एवं विश्राम गृह भले मालूम पड़ते थे । श्रेणी सभाके घर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । वैदूर्य, हीरे, स्फटिक, नीलमणि, मूंगे, मोती और पन्ने आदि रत्नोंसे वहाँके छज्जे, चबूतरे, झरोखे एवं अट्टालिकाएँ जटित थीं और उनपर मयूर एवं कबूतर बैठकर कलरवकर रहे थे । उसके राजमार्ग, गलियाँ एवं आँगन जलसे सिक्त किये गये थे । माल्या, जर्द, धानका लावा और अचत उनपर बिखरे पड़े थे ॥२१,२२॥ वहाँके घरके दरवाजोंपर दही एवं चन्दन लगाकर सजल कलश रखे हुए थे । उनमें फूल, दीपक, पल्लव, केले एवं पूगीके फल तथा उनके वृक्ष, ध्वजा और वस्त्र सजाये गये थे, इस तरहके नगरको उन्होंने देखा ॥ २३ ॥ राजन्, जब बलराम एवं कृष्णने राजपथसे मथुरामें प्रवेश किया, तो नगरकी स्त्रियाँ उन्हें देखनेको बड़ी उत्सुक हो उठीं । वे कोठोंपर उन्हें देखनेके लिए शीघ्र चढ़ गयीं ॥ २४ ॥ किसीने जल्दीमें उलटा कपड़ा एवं गहना पहन लिया । किसीने एकही कंकण, कुण्डल पहने । किसीने एक कर्णपर ही पत्ता डाला, तो किसीने एक पैरके ही पाय जेब डाला । किसीने एकही आँखमें आँजन लगाकर दूसरी आँखको योंही छोड़ दिया ॥ २५ ॥ कोई भोजनकर रही थीं, वह भोजन छोड़कर कोई उबटन लगा रही थीं वह उबटन लगाना छोड़कर तथा कोई स्नान कर रही थीं, वह स्नान छोड़कर गीले वस्त्रोंसे ही दौड़ पड़ीं । वे तो बिलकुल उत्कण्ठित हो उठी थीं, । कुछ सो रही थीं, वह हल्ला सुनकर झट दौड़ पड़ीं । कुछ बच्चे पिला रही थीं, वह पिलाना छोड़ दौड़ पड़ीं ॥ २६ ॥ लक्ष्मीरमण भगवान् गजराजकी चालसे चल रहे थे। उनके नेत्र कमल सरीखे लुभावने थे । उन्होंने प्रगल्भ हँसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एवं चल चितवनसे उनका मन हर लिया। अपने सौन्दर्यसे उनकी आँखोंको उन्होने बड़ा आनन्द दिया ॥ २७ ॥ बहुत पहलेसे बार-बार उनके विषयमें सुनते रहनेसे उन स्त्रियोंका चित्त भगवन्मय बन रहा था। भगवान्‌ने जब कटाक्षपातपूर्वक हँसीकी सुधामे उनका सम्मान किया, तो वे और आपेसे बाहर हो गयीं। उन्होंने उनकी उस आनन्दमय मूर्तिको आँखोंके रास्ते हृदयमें बिठा उनका आलिङ्गन किया। हे अरिन्दम, भगवान्‌की अप्राप्तिजनित अनन्त मानसिक व्यथाका उन्होंने त्यागकर दिया ॥ २८ ॥ कोठोंके शिखरोंपरसे उन प्रसन्न मुखकमल महिलाओंने बलराम और कृष्णपर फूलोंकी वर्षा की ॥ २९ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंने दही, अक्षत, जलपूर्ण पात्र, माला, चन्दन एवं भेंट लेकर जगह जगहपर खुशीसे उनकी पूजा की ॥ ३० ॥ नगरवासियोंने एक स्वरसे कहा—अहो, व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं, उन्होंने ऐसो कौन-सी बड़ी तपश्चर्या की है, जिसकी वजहसे वे इस नरलोकके महोत्सवरूप इन्हें निहा-

रदेन्द्रविक्रमो दृशां दद्च्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ॥ आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥ २८ ॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः ॥ अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥३०॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥३१॥ रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः ॥ दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥३२॥ देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥३३॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥ ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥३५॥ याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा ॥ बन्धन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥३७॥ तस्यानुजीविनः

रती रहती हैं ॥ ३१ ॥ वहाँ कोई धोबी आ निकला, जो रंगरेजका भी काम करता था, भगवान्‌ने उसे आते देख कुछ अच्छे धुले कपड़े उससे माँगे ॥ ३२ ॥ उन्होंने कहा—हम इन कपड़ोंके अधिकारी हैं, हमारे योग्य जो कपड़े हों, हमें दो। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा, इसमें कोई सन्देह न करना ॥ ३३ ॥ सब तरहसे परिपूर्ण, आप्तकाम भगवान्‌ने उससे याचना की, किन्तु वह दुष्ट कुपित हो गया। वह कंसका नौकर था और बड़ा घमण्डी था ॥ ३४ ॥ उसने कहा—तुम तो जंगली हो। क्या तुम वहाँ इसी तरहके कपड़े पहनते हो ? अरे उद्दण्ड, क्या तुम राजाके धनपर दाँत गड़ाते हो ? ॥ ३५ ॥ अरे मूर्खो, यदि जीना चाहते हो तो अब ऐसी बात मुँहसे मत निकालना, भाग जाओ। जो तुम्हारे तरह उद्दण्ड हैं, उन्हें पुलिस बाँध लेती है, मार डालती है और लूट लेती है ॥ ३६ ॥ उसके ऐसा कहनेपर देवकी सुत भगवान् क्रुद्ध हो गये और उन्होंने एक ऐसा हाथ जमाया कि उसका सिर धड़से अलग हो गया ॥ ३७ ॥ उसके कुछ नौकर उसके साथ थे। वे यह तमाशा देख भाग खड़े हुए। वे कपड़ोंकी लादी वहीं छोड़ गये। उनके गदहे भी इधर-उधर भाग निकले, भगवान्‌ने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कपड़े ले लिए ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्ण और बलरामने अपने योग्य कपड़े पहनकर बचे कपड़े अपने गोपोंको दे दिया, जो उनसे कोई बचे, उन्हें वहीं जमीनपर छोड़ दिया ॥ ३९ ॥ उनको देखकर एक दर्जी उनपर अनुरक्त हो गया। उसने उन विचित्रवर्णके वस्त्रमय अनुरूप आभूषणोंसे उनका वेष सजा दिया ॥ ४० ॥ तरह-तरहकी वेषभूषामें बलराम और कृष्णकी छटा और भी निखर उठी। वे वैसे मालूम पड़ते थे, मानो उत्सवके समय उजले एवं नीले हाथीके बच्चे सजाये गये हों ॥ ४१ ॥ भगवान् उस दर्जीपर बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने इस लोकमें उसे बहुत ही सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य, अतीन्द्रिय ज्ञान एवं आत्मसारूप्य दे दिया ॥ ४२ ॥ इसके बाद वे दोनों सुदामा नामक मालीके घर पहुँचे। उन्हें देख वह उठ खड़ा हुआ और पृथ्वीपर पड़कर नमस्कार किया ॥ ४३ ॥ वह आसन लाया और पाद्य, आचमनीय, माला ताम्बूल, चन्दन आदि पूजाकी सामग्रियोंसे गोपोंके साथ उनकी पूजा की ॥ ४४ ॥

सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ॥ शेषाण्यदत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पै-रनुरूपतः ॥ ४० ॥ नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ॥ स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥ तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात्सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥ ४२ ॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बू-लानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ४५ ॥ भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ॥ अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥ नहि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभि-प्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥ ४९ ॥ ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहा-

इसके बाद प्रार्थना की कि भगवन्, आज आपने मेरे जन्म और मेरे कुलको पवित्रकर दिया। आपके आगमनसे मेरे ऊपर ऋषि, देवता और पितर सन्तुष्ट हो गये ॥ ४५ ॥ आप दोनों तो सकाम जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। फिर भी आपने जगत्के क्षेम एवं उद्भवके लिये ही ग्वालबालोंके साथ अवतार लिया है ॥४६॥ यद्यपि आप भक्तों एवं प्रेमियोंका उन्हींकी तरह प्रेम एवं भजन करते हैं, फिर भी आप सब भूतोंमें समदृष्टि ही हैं, आप तो समस्त प्राणियोंकी आत्मा एवं मित्र हैं, आपकी कहीं विषम दृष्टि नहीं है ॥ ४७ ॥ मुझ भृत्यको आपलोग आज्ञा दें कि मैं आपके लिए क्या करूँ ? पुरुषपर आपका यह बहुत बड़ा अनुग्रह है, यदि आप उसे कुछ करनेके लिये कह दें ॥ ४८ ॥ राजन्, भगवान्का अभिप्राय समझकर बड़े प्रसन्नमनसे सुदामाने अच्छे सुगन्धित फूलोंकी विरचित मालाएँ उन्हें दी ॥ ४९ ॥ जब कृष्ण उन मालाओंसे बलराम एवं अन्य ग्वालबालोंके साथ अच्छी तरह अलंकृत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हो गये, तो खुश होकर उन दोनों वरदाताओंने प्रणत एवं शरणागत उसे वर माँगनेको कहा ॥ ५० ॥ उस सुदामाने भी अखिलात्मा भगवान्‌में ही अचलभक्ति, उनके भक्तमें प्रेम एवं प्राणियोंमें परम दयाका वरदान माँगा ॥ ५१ ॥ तब भगवान्‌ने उसे वैसा वर दिया। यह भी वरदान दिया कि उसकी वंशानुवंश लक्ष्मी, बल, आयु, यश, कान्ति—यह सब बने रहें। बाद बलरामके साथ वहाँसे चल दिये ॥ ५२ ॥

नुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥ सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥ बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इकतालीसवें अध्यायका सार—हे राजन्, अक्रूरजीके स्तुति करनेके बाद भगवान्‌का वह विग्रह अन्तर्हित हो गया। तब वे रथपर लौटे और मथुराके उपवनमें पहुँचे। नन्द आदि गोपगण पहलेसे ही वहाँ पहुँचे थे और इनकी प्रतीक्षामें थे। अक्रूरजीको यह वचन देकर कि कंससे निबट कर मैं आपके पास आऊँगा, भगवान्‌ने विदा किया और वे दूसरे दिन सायंकालको मथुरा देखनेके लिए दलबलके साथ निकले। स्त्रियोंके आनन्दकी कोई हद न थी। रास्तेमें रङ्गरेजका काम करनेवाला एक धोबी मिला। भगवान्‌ने उससे कुछ कपड़े माँगे, पर वह उद्दण्ड था, वह भगवान् पर बरस पड़ा। भगवान्‌के एक ही हाथकी चोटसे उसका सिर धड़से अलग हो पड़ा। उन्होंने अच्छे-अच्छे कपड़े पहन लिए। सारे ग्वाल लोगोंने भी पहना। आगे आनेपर एक दर्जी मिला उसने उनके वस्त्रोंको सजा दिया। एवं एक मालीने उन्हें मालाओंसे अलंकृत किया। भगवान्‌ने उन दोनोंको अत्युत्तम वर दिया। इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(कुब्जाको सीधा करना, धनुर्भङ्ग तथा कंसका घबड़ाना)

श्रीशुक उवाच ॥ अथ व्रजन्राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यान्तीं

श्रीशुकदेवजीने कहा—इसके बाद भगवान् जब राजपथसे जा रहे थे, तो उन्होंने कुब्जाको देखा। वह उबटनका पात्र लिए हुए थी। उसका मुख सुन्दर था। उन्होंने उससे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हँसते हुए पूछा। वह तो रसके दानी ठहरे ।।१।। सुन्दरी, तुम कौन हो और किसकी स्त्री हो और यह उबटन किसके लिए है ? यह सब ठीक-ठीक कहो। हमें तुम उबटन दे दो। तुम्हारा इससे बड़ा कल्याण शीघ्र ही होगा ।।२।। सैरन्ध्रीने कहा कि सुन्दर, मैं कंसकी दासी हूँ। वह मुझे बहुत मानते हैं। मैं तीन स्थानोंसे टेढ़ी हूँ, इसलिए त्रिवक्रा' यह मेरा अन्वर्थ नाम है। मैं उनके यहाँ चन्दन-उबटन लगाती हूँ। मेरा अङ्गराग उन्हें बहुत जँचता है। किन्तु आप दोनोंको छोड़कर उस अङ्गरागके योग्य कोई तीसरा नहीं है ।।३।। भगवान्के रूप, सौकुमार्य, माधुर्य, मुसकराना, बातचीत, कटाक्ष वीक्षणसे वह मोहित हो चुकी थी। उसने उन्हें घना उबटन दे दिया ।। ४ ।। कृष्णने पीत एवं बलरामने लाल अङ्गराग नाभिसे ऊपरके भागमें लगाया जिससे उनकी शोभा और बढ़ गयी ।। ५ ।। भगवान् उसपर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने दर्शनका सद्यः फल दिखलानेके लिये उसका कुब्जत्व मिटाना चाहा। उसका

प्रहसन्रसप्रदः ।। १ ।। का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ।। देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते नचिराद्भविष्यति ।। २ ।। सैरन्ध्र्युवाच ।। दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।। मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ।। ३ ।। रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ।। धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ।। ४ ।। ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ।। संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ।। ५ ।। प्रसन्नो भगवान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ।। ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ।। ६ ।। पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना ।। प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ।। ७ ।। सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ।। मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ।। ८ ।। ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ।। उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ।। ९ ।। एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ।। त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ।। १० ।। एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ।। मुखं वीक्ष्यानुगानां प्रहसंस्तामुवाच ह ।। ११ ।। एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ।। साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ।। १२ ।। विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणि-

मुख तो बड़ा सुन्दर था पर वह तीन जगहोंसे टेढ़ी थी ।। ६ ।। उन्होंने उसके दोनों चरणोंके अगले हिस्सेको दोनों पैरसे दबाकर दो अंगुलियोंसे उत्तान हाथ करके, उसके चिबुक पकड़ उसकी देहको उचका दिया ।। ७ ।। भगवान्के स्पर्श करते ही वह सीधी और समान अवयववाली हो गयी और वह बृहद् नितम्ब एवं स्तनवाली उत्तम सुन्दरी स्त्री बन गयी ।। ८ ।। वह रूप, गुण एवं सौन्दर्यसे युक्त हो गयी थी। उसके हृदयमें काम भी जाग उठा। उसने भगवान्के दुपट्टेका छोर पकड़ मुस्कराकर कहा ।। ९ ।। 'वीर' आइये घर चलिए। आपको मैं अब छोड़नेकी नहीं। आपने मेरे मनको उन्मथित कर डाला है। अब पुरुषोत्तम, मुझपर प्रसन्न होइये' ।। १० ।। जब उसने इस तरह कहा तो कृष्ण बलराम एवं ग्वाल-बालोंके मुख निहारकर हँसते हुए कहने लगे ।।११।। सुभ्रु, मैं तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा। तुम्हारा घर पुरुषोंके मानसिक रोगको मिटानेका साधन है। किन्तु तब आऊँगा, जब अपना काम कर चुकूँ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हम राहियोंका, जिनका कोई आश्रय नहीं है, तुम्हीं लोग आश्रय हो ॥ १२ ॥ इस तरह मीठी-वाणीसे उसे सन्तुष्टकर और विदाकर उस पथपर आये जहाँ बनिये रहते थे। उन लोगोंने बलराम तथा कृष्णको पान, माला एवं चन्दनादि भेंट देकर पूजा की ॥ १३ ॥ उनके दर्शनसे ही स्त्रियोंमें काम-भाव उमड़ पड़ा और वे क्षुभित हो गयीं। उन्हें अपने परायेका ज्ञान न था। उन्हें अपने ढीले पड़े कपड़े, जूते एवं कंकड़का कोई होश न हुआ। वह चित्र लिखित-सी रह गयीं ॥ १४ ॥ इसके बाद नागरिकोंसे रङ्गभूमिका पता पूछते हुए वे वहाँ पहुँचे। उन्होंने वहाँ इन्द्रधनुष-सा एक धनुष रखा देखा ॥ १५ ॥ उस धनुषकी बहुतसे पुरुष रखवाली कर रहे थे। उसकी पूजाकी गई थी एवं वह बहुत भूषणोंसे भूषित था। रक्षकोंने कृष्णको मना किया, पर वे रुके नहीं और जबरदस्ती ही उसे उठा लिया ॥ १६ ॥ उन्होंने बायें हाथसे खेलमें ही उसे उठा लिया और एक क्षणमें लोगोंके देखते-देखते उन्होंने उसपर

स्वथैः ॥ नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासः कबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥ १४ ॥ ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ॥ तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धितम् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ॥ नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥ धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागतम् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ॥ ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथ तान्दुरभिप्रायान्विलोक्य बलकेशवौ ॥ क्रुद्धो धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखतः ॥ निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥ २१ ॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः ॥ तेजःप्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥ २३ ॥ गोप्यो

डोरी चढ़ा दी। मतवाला हाथी जिस तरह ईखको टुकड़े-टुकड़े कर देता है, उसी तरह उन्होंने उस धनुषको तोड़ डाला ॥ १७ धनुषके टूटनेसे जो शब्द उत्पन्न हुआ वह आकाश, पृथ्वी एवं दिशाओंको भर दिया। उससे कंसको बहुत डर मालूम पड़ा ॥१८॥ उसके रक्षक बड़े कुपित हुए। वे तो आततायी थे। वे अपने नौकरोंके साथ उन्हें पकड़नेके लिए चिल्लाने लगे—'पकड़ो, बाँधो' ॥ १९ ॥ जब बलराम एवं कृष्णने उनके दुष्ट विचारको भाँप लिया, तो वे बड़े क्रुद्ध हुए और धनुषके टुकड़ोंसे उनका काम तमाम कर दिया ॥२०॥ कंसने कुछ सेना भेजी थी, उन्होंने उसे भी मार डाला। उसके बाद दरवाजेसे निकलकर नगरकी शोभाको देखकर बहुत खुश हो घूमने लगे ॥२१॥ नगर निवासियोंने जब उनके अद्भुत पराक्रम, तेज एवं धृष्टता देखी-सुनी तो उन्होंने देवता ही समझा ॥ २२ ॥ इस तरह स्वच्छन्द होकर उनके घूमते-घूमते सूर्य डूब गये। बाद कृष्ण और बलराम ग्वालोंसे घिरकर अपने डेरेपर लौटे ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी मथुरा यात्राके समय गोपियोंने मथुरा वासियोंके सौभाग्यके सम्बन्धमें जैसा सोचा था, वह सच निकला। जिस लक्ष्मीको देवताओंने चाहा वे उन्हें ठुकरा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीकृष्णको वरणकर गयी। भगवान्‌के उस सौन्दर्यको देख मथुरा निवासी सचमुच आनन्दमें मग्न हो गये ॥ २४ ॥ उन्होंने पैर धो दूधसे बनी चीज खाकर एवं कंसका अगला कार्यक्रम जान सुखसे सो गये ॥ २५ ॥ जब कंसने धनुर्भंग, रक्षकों एवं अपनी सेनाका कृष्णके द्वारा खेलमें ही नाश सुना, तो बहुत डर गया। रातभर उसे ठीकसे नींद न आयी। उस दुर्मतिको जाग्रत एवं स्वप्नमें बहुतसे अपशकुन दीख पड़े, जो उसकी मृत्युके सूचक थे ॥ २६, २७ ॥ दर्पण तथा जल आदिमें प्रतिरूपके रहते हुए भी उसे सिर नहीं दीख पड़ता था। आँखके व्यवधायक वस्तुके न रहनेपर भी उसे नक्षत्र आदि दो दीख पड़ते थे ॥ २८ ॥ अपनी छायामें छेद दीखता था। कान मूँदनेपर भी धक्-धक्-सी भीतरी आवाज नहीं सुन पड़ती थी। वृक्षमें सुवर्ण मालूम पड़ता था। धूलिमें अपने चरणचिन्ह नहीं दिखायी पड़ते थे ॥ २९ ॥ और स्वप्नमें प्रेतका आलिङ्गन, गदहेकी सवारी, विष भक्षण, ओढ़हुलके फूलकी माला पहन

मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ॥ संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४ ॥ अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च ॥ वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ॥ बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥२७॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ॥ असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥२८॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम् ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ॥ पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ॥ कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥ आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मञ्चाश्चालङ्कृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥ कंसः परिवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् ॥ मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलङ्कृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समाविशन् ॥ ३६ ॥ चाणूरो मुष्टिकः

लेना, तेलसे शरीरका तर दिखाई पड़ना, नग्न होना आदि अपशकुन दीखे ॥ ३० ॥ इसी तरह जाग्रत् एवं स्वप्नमें और भी अपशकुनोंको देखकर वह मृत्युके डरसे घबड़ा गया और चिन्ताके मारे वह सो न सका ॥ ३१ ॥ जब रात बीत गयी एवं सूर्य उग आये तब हे राजन्, मल्लयुद्ध उत्सवको प्रारम्भ कराया ॥ ३२ ॥ राजपुरुषोंने रङ्गशालाको सजाया, नगाड़े बज उठे। माला, पताका, कपड़ों एवं तोरणोंसे मञ्च सजाये गये ॥ ३३ ॥ उन मञ्चोंपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, प्रमुख सभी नगरवासी यथास्थान बैठ गये। माण्डलिक राजा भी अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये ॥ ३४ ॥ मन्त्रियोंसे घिरा हुआ कंस भी राजमञ्चपर आ बैठा। वह मण्डलेश्वरोंके बीचमें बैठा हुआ था, किन्तु उसके हृदयका डर भागा न था ॥ ३५ ॥ पहल-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बानोंके ताल ठोंकनेके साथ ही साथ नगाड़े गड़गड़ा उठे। गर्वीले पहलवान लोग सज-धजकर अपने गुरुओंके साथ आये ॥३६॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, बाजोंकी आवाजसे जोशमें आकर वहाँ आ धमके ॥ ३७ ॥ कंससे बुलाये गये नन्द आदि गोपगण अपनी-अपनी भेंट देकर एकही मञ्चपर बैठ गये ॥ ३८ ॥

कूटः शलस्तोशल एव च ॥ त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहृताः ॥ निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे मल्लरङ्गोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

बयालीसवें अध्यायका सार—राजन्, इसके बाद जब भगवान् आगे बढ़े, तो उन्हें एक स्त्री मिली। वह तीन जगहोंसे टेढ़ी थी वह अङ्गरागका पात्र ले कहीं जा रही थी। भगवान्के पूछनेपर उसने बतलाया कि मैं कंसकी दासी हूँ—सैरन्ध्री हूँ। भगवान्के माँगनेपर उसने उन्हें घना अङ्गराग दे दिया। प्रसन्न होकर भगवान्ने उसकी चिबुक पकड़कर झटका दे उसकी कूबर मिटा दी। सुन्दरी स्त्री बन गयी। उसने भगवान्का दुपट्टा पकड़ लिया। भगवान् फिर मिलनेका वादाकर आगे बढ़ गये। बाद रंगशालामें धनुष तोड़ डाला। पहरेदारोंने गुस्ताखी की और वे मारे गये। कंसकी सेना, आयी, उसका भी खातामा हो गया। फिर घूम-फिर कर सायंकालको वे अपने डेरेपर आये। उधर रातको कंसको नींद न आयी। उसको जाग्रत एवं स्वप्नमें बड़े-बड़े अपशकुन दीखे। वह घबड़ा गया। सबेरे रंगशालामें सभी आये। पहलवान भी आ चुके थे। नगाड़े बज रहे थे। बयालीसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(कुवलयापीडका उद्धार और रंगशालामें आना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, श्रीकृष्ण और बलरामको शौचादिकृत्यमें देर हो गयी थी। वे नित्यक्रिया समाप्तकर पहलवानों एवं नगाड़ोंकी आवाज सुनकर वहाँ आये ॥१॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ॥ मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥ रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हस्तिपं

जब रंगशालाके दरवाजेपर पहुँचे तो उन्होंने कुवलयापीड़ हाथीको खड़ा देखा। महावतने उसे वहाँ कर रखा था ॥ २ ॥ भगवान्ने कमर कस ली एवं अपनी घुंघराली अलकें हटाकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्होंने मेघ-सी गम्भीर ध्वनिमें महावतसे कहा ॥३॥ महावत, ओ महावत, हमें जाने दो, जल्दी रास्ता साफ करो, नहीं तो हाथी सहित तुझे आज मार डालूँगा ॥ ४ ॥ फटकार सुनकर महावत क्रोधसे आग बबूला हो उठा और उसने मृत्यु सरीखे हाथीको उकसाकर इनकी ओर बढ़ाया ॥ ५ ॥ हाथी झपटा और झटसे उन्हें सूँड़में जकड़ लिया। भगवान् तुरन्त उससे अपनेको छुड़ा एक घूँसा मार उसके पैरोंकी ओटमें छिप गये ॥६॥ हाथी और झुंझला उठा और जब उन्हें न देख सका, तो सूँघकर उनका पता लगा लिया और सूँड़से खींच लिया। भगवान् भी झट बल प्रयोगकर उससे छूट गये ॥ ७ ॥ जैसे गरुड़जी साँपको खींच लेते हैं, उसी तरह अनायास ही श्रीकृष्णने अति बलवान उसकी पूँछ पकड़ पचीष धनुष खींच लिया ॥ ८ ॥ वे उसकी पूंछ पकड़ कभी उसे बायें घुमाते और कभी दाहिने। जैसे कोई लड़का बछड़ेके साथ खेल खेलता हो ॥ ६ ॥ इसके बाद उसके सामने आये और एक घूँसा

वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ॥ नो चेत्सकुञ्जरं त्वाऽद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥
एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ॥ चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥ ५ ॥ करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसा-
ग्रहीत् ॥ कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ॥ परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य-
विनिर्गतः ॥ ७ ॥ पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् । विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥ स पर्यावर्तमानेन सव्य-
दक्षिणतोऽच्युतः । बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाहत्य वारणम् ॥ प्राद्रवन्पातयामास
स्पृश्यमानः पदे पदे ॥१०॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम् ॥ ११ ॥
स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः । चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः ॥
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ॥ दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहन-
द्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ॥ अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ॥ विरूढस्वेदकणिकावदना-

जमाकर उस तहरसे उस हाथीको दौड़ाने लगे कि वह गिर जाय ॥१०॥ दौड़ते हुए उन्होंने गिरनेका अभिनय किया और फिर भाग खड़े हुए। हाथीने समझा कि वे गिर पड़े हैं, अतः क्रुद्ध हो उसने वहाँकी जमीनपर दोनों दाँत गड़ा दीं ॥ ११ ॥ जब हाथीका वार खाली चला गया, तो वह गजराज बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसपर उसे महावत छेड़ रहा था, वह बड़े वेगसे भगवान्की ओर झपटा ॥ १२ ॥ जब मधुसूदन भगवान्ने उसे आते देखा, तो हाथसे उसका सूँड पकड़ उसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १३ ॥ गिर जानेपर पैरसे दबाकर सिंहकी तरह उन्होंने खेलवाड़ करते हुए उसके दाँत उखाड़ लिए और उन्हींसे हाथी एवं महावतको मार गिराये ॥ १४ ॥ मरे हाथीको वहीं छोड़ उसकी सूँड़ हाथमें लेकर वे रंगशालामें पहुँचे। कन्धेपर उन्होंने हाथीका दाँत रख छोड़ा था। उनके ऊपर हाथीके खून और मदका छींटा पड़ा हुआ था, मुखकमलपर पड़े पसीनेकी बूँदोंसे वे खूब शोभ रहे थे ॥ १५ ॥ हे राजन्,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसके बाद गोपोंसे घिरे हुए बलराम और कृष्ण हाथीका दाँत लिए हुए अखाड़ेमें पहुँचे ॥ १६ ॥ जो पहलवान थे, उनके लिए वे वज्र प्रतीत हो रहे थे, साधारण मनुष्योंके लिए महापुरुष, स्त्रियोंके लिए मूर्तिमान् कामदेव, गोपालोंके लिए आत्मीय, दुष्ट राजाओंको शासक, अपने माता-पिताको पुत्र, कंसको मृत्यु, अज्ञोंको विराट्, योगियोंको परमतत्त्व एवं वृष्णि वंशियोंको बलराम सहित रंगशालामें पहुँचे वे परम देवता प्रतीत हो रहे थे ॥ १७ ॥ हे राजन्, कंस बहादुर था, पर जब उसने कुवलयापीड़को मारा गया एवं उन्हें दुर्जय देखा, तो धीर भी वह बहुत उद्विग्न हो गया ॥ १८ ॥ उनकी बाँहें घुटनोंतक लम्बी थीं। विचित्र वेष, आभूषण एवं मालाएँ धारणकर रखी थीं। उत्तम वेषधारी नटकी तरह वे वहाँ निर्भय होकर शोभित हो रहे थे। अपनी प्रभासे वे देखनेवालोंका मन भी चुरा लेते थे ॥ १९ ॥ राजन्, जो भी नगर एवं अन्य जगहके रहनेवाले व्यक्ति मञ्चपर बैठे थे वे उन पुरुषोत्तमोंको देखकर

म्बुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रङ्गं विविशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥ १६ ॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥ १७ ॥ हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥ १८ ॥ तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥ पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया । जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ॥ अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ । एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ॥ कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥ २४ ॥ पूतनाऽनेन नीताऽन्तं चक्रवातश्च दानवः ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥ २५ ॥

बड़े आनन्दित हुए। उनकी आँखें एवं मुख उत्सुकतासे आकुल हो गया और उनके मुखके सौन्दर्यको पीकर भी वे तृप्त नहीं हो रहे थे ॥ २० ॥ वे उन्हें मानो आँखोंसे पी रहे थे, जिह्वासे चाट रहे थे, नासिकासे सूँघ रहे थे एवं बाहुओंसे पकड़ आलिङ्गन कर रहे थे ॥ २१ ॥ उन्हें देखते ही उन्होंने उनके सम्बन्धमें जैसा देख-सुन रखा था वैसा बखान करने लगे। मानों उन्हें उनके उस गुण, माधुर्य एवं धृष्टतासे वे बातें याद आ गयीं ॥ २२ ॥ वे कहने लगे—श्रीकृष्ण तो साक्षात् परमात्माके अवतार हैं और बलराम उनके अंशावतार हैं। ये दोनों यहाँ वसुदेवके घरमें प्रकट हुए हैं ॥ २३ ॥ ये श्रीकृष्ण देवकीसे उत्पन्न होते ही गोकुल पहुँचा दिये गये। आजतक वे नन्दके घरपर इतने दिनोंतक छिपकर रहे, वहीं बढ़े हैं ॥ २४ ॥ इन्होंने पूतना, चक्रवात, यमलार्जुन, शंखचूड़, केशी, धेनुक एवं अन्य राक्षसोंका उद्धार किया है ॥ २५ ॥ इन्होंने गौ एवं गोपालोंको दावाग्निसे बचाया, कालियको दण्ड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिया एवं इन्द्रके गर्वको भंग किया है ॥ २६ ॥ इन्होंने एक सप्ताहतक गोवर्द्धनको एक हाथसे उठा रखा एवं आँधी, पानी तथा वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा की ॥ २७ ॥ गोपियाँ धन्य हैं, उन्होंने इनके प्रसन्न हास्य एवं चल चितवनसे युक्त मुखको नित्य ही निहारा है। इस तरह वे अपने सब तरहके तापोंको अनायास ही पार कर लिया है ॥ २८ ॥ ऐसा लोग कहते हैं कि इनसे परिरक्षित यदुका वंश बहुत ख्यात हो गा, कीर्ति एवं महत्वको प्राप्त करेगा ॥ २६ ॥ और यह इनके बड़े भाई कमललोचन बलराम हैं। इन्होंने प्रलम्ब, वत्सक एवं बक आदिका उद्धार किया है ॥ ३० ॥ जब लोग इस तरह कह रहे थे और बाजे बज रहे थे उसी समय चाणूरने कृष्ण तथा बलरामको ललकारकर कहा ॥ ३१ ॥ ओ कृष्ण ओ बलराम, आप वीरोंके आदरणीय हैं और युद्धमें कुशल हैं, इस बातको जानकर ही राजाने आपको देखनेके लिये बुलाया है ॥ ३२ ॥ प्रजा मन, कर्म और वाणीसे राजाको सन्तुष्टकर बहुत लाभ

गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ॥ कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रि-प्रवरोऽमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ॥ पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा ॥ २८ ॥ वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ॥ श्रियं यशो महत्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २६ ॥ अयं चास्याग्रजः श्रीमान्रामः कमललोचनः ॥ प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसम्मतौ ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा । ३३। नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम-हे ॥ भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः ॥ नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्य-मानोऽभिनन्द्य च ॥ ३६ ॥ प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बाला वयं तुल्य बलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ॥ भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥ चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च

उठाती है। नहीं तो उन्हें कष्ट झेलना पड़ता है ॥ ३३ ॥ यह तो प्रसिद्ध हो है कि गोप एवं गोपाल प्रसन्नचित्त हो जब गौ चराने जाते हैं, तब वनमें नित्य मल्लयुद्धकर खेलते हैं और गौओंको चराते रहते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिए आइये हमलोग राजाको खुश करें। यदि राजा प्रसन्न हो जाय, तो और प्राणी भी प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि राजा सर्वमय है ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्ने उस बातको सुनकर देश कालके उचित कहा—लड़ना तो अभीष्ट था ही, इन्होंने उसकी प्रशंसा का ॥ ३६ ॥ हम जंगलके बासी भी कंसकी प्रजा हैं। अतः उन्हें प्रसन्न करना चाहिये ही, इसमें सन्देह नहीं कि हम लोगोंके ऊपर उनका परम अनुग्रह हो ॥ ३७ ॥ किन्तु हम लड़के हैं, अपने हम जोड़ियोंसे खेलेंगे। उचित युद्ध ही ठीक होता है। नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तो, सभासदोंको भी अधर्मका भागी बनना पड़ता है। चाणूरने उत्तर दिया—न तो आप बच्चे ही हैं, और न तो किशोर ही हैं। तुम और बलराम तो बलियों में श्रेष्ठ हो। भला जिसने एक हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कुवलयापीड़का अभी-अभी संहार कर दिया है, वह भी बालक ही है? अतः सभासद को कोई दोष न लगेगा। इसलिये आपलोग हमसे लड़ें। हे श्रीकृष्ण, आप मेरे ऊपर अपना पराक्रम दिखाइये और मुष्टिक बलरामके साथ लड़ें ॥ ३९, ४० ॥

बलिनां वरः ॥ लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥ तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

तैंतालीसवें अध्यायका सार—हे राजन्, भगवान् और बलरामको शौचादि कृत्यमें देर हो गयी थी, अतः वे कुछ ग्वाल-बालके साथ पीछे पहुँचे। रास्तेपर कुवलयापीड़ खड़ा था। महावतने उसे भगवान्की ओर बढ़ाया। भगवान्ने उसे खेल-खेलाकर गिरा दिया और उसके दाँत उखाड़ लिये। उसका और उसके महावतका संहार कर डाला। बाद वे एक अखाड़ेमें गये। सबोंने अपनी भावनाके अनुसार उन्हें देखा। चाणूरने ललकारा कि आओ, हमलोग मल्ल-विद्यासे राजाको सन्तुष्ट करें। तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(चाणूर, मुष्टिक, अन्य पहलवान तथा कंसका उद्धार)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इस तरह चाणूरका अनुमोदनकर देवकीसुत भगवान् मधुसूदन उसके पास पहुँचे एवं बलराम मुष्टिकके पास ॥१॥ जीतनेकी इच्छासे एकने दूसरेको हाथोंसे हाथ एवं पैरोंसे पैर भिड़ाकर बलपूर्वक खींचा। पंजोंसे, घुटनोंसे, एवं सिरसे वे एक दूसरेके पंजे, घुटनों एवं सिरका ताड़न करने लगे ॥२, ३॥ इधर-उधर घुमाना, खींचना, लिपट

श्रीशुक उवाच ॥ एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान्मधुसूदनः ॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः। विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥४॥

जाना, उछलना, पटकना, आगेसे खींच लेना, पीछे हट जाना—इत्यादि कार्यों द्वारा वे एक दूसरेके उद्यमको नष्ट करने लगे ॥४॥ परस्पर एक दूसरेको जीतने की इच्छासे दोनों पैर और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

घुटनोंको एक करके ऊपर उठा देना, अपने हाथों से ऊपर ले आना गर्दनमें हाथ-पैरसे फाँस लगा देना—इत्यादि कुश्तीके नियमों द्वारा वे एक दूसरेके शरीरके ऊपर हानि पहुँचाने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन्, संघ बनाकर एकत्र बैठी हुई भगवान् श्रीकृष्णके विषयमें अनुकम्पायुक्त सभी स्त्रियाँ उस विषम युद्धको, जिसमें एक ओर तो बड़े-बड़े बलवान् दो वीर हैं तथा दूसरी ओर कोमल दो लड़के लड़ रहे हैं, देखती हुई परस्पर कहने लगीं ॥ ६ ॥ कमजोर और बलवान् दो पहलवानोंका युद्ध यदि राजा भी देख रहा हो, तो उसको स्वयं सभासदोंको निषेध करना चाहिये। परन्तु खेदकी बात है कि यहाँ जो सभासद राजाके देखते हुए स्वयं बलाबल युद्ध देखनेको इच्छा कर रहे हैं तथा उसका समर्थनकर रहे हैं इनको तो महान् अधर्म हो रहा है ॥ ७॥ कहाँ तो वज्रसार तुल्य सभी अङ्गोंसे युक्त, शैलेन्द्रके सदृश ये बड़े दो पहलवान् और कहाँ ये अति सुकुमार अङ्गोंवाले किशोरावस्थाके दो कुमार, जिनकी युवा अवस्था अभी आयी ही नहीं है ॥ ८ ॥ इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस समाजको धर्मव्यतिक्रम अवश्य होगा। जहाँपर अधर्मका उत्थान हो रहा हो, वहाँपर कभी नहीं

उत्थापनैरुन्नयनश्चालनैः स्थापनैरपि ॥ परस्परं जिगीषन्तावुपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन्सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥ महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम् ॥ ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥७॥ क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ ॥ क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ॥ यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥ न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥ ११ ॥ किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ॥ मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ॥ गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयाऽञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥ १३ ॥ गोप्यस्तपः किमचर-

ठहरना चाहिये। अतः हमलोगोंका यहाँसे हट जाना ही समुचित है ॥ ९ ॥ सभ्योंके दोषोंका ख्याल कर बुद्धिमान पुरुषको सभामें नहीं जाना चाहिये। क्योंकि दोषोंको जानकर भी यदि वह चुप रहता है अथवा उन लोगोंकी प्रसन्नताके लिये धर्म विरुद्ध कुछ भाषण करता है या जाननेपर भी अज्ञ बन जाता है तो भी वह मनुष्य पापका भागी होता है ॥ १० ॥ हे सभासदो, आपलोग शत्रुके चारो ओर दौड़ रहे भगवान् श्रीकृष्णके श्रम जलबिन्दुओंसे व्याप्त मुखकमलको जरा देख लीजिये। इनका यह मुख ऐसा दीखता है, जैसा कि जल व्याप्त पद्मकोश हो ॥ ११ ॥ कुछ-कुछ लाल आँखोंवाले बलरामजीकी ओर क्या आपलोग नहीं देख रहे हैं। देखिये न, मुष्टिकके प्रति क्रोधयुक्त हासावेशसे कैसा सुशोभित हो रहा है ॥ १२ ॥ आश्चर्यका तो कोई ठिकाना ही नहीं। पुण्यमय तो वे व्रजकी भूमि है, जहाँ मनुष्यके रूपमें अपने ऐश्वर्यको छिपाये हुए भगवान् शंकर और लक्ष्मीसे अर्चित चरणकमलवाले पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण बलरामके साथ वनमें खिले हुए चित्र-विचित्र फूलोंकी मालाएँ धारणकर गौओंको चराते तथा वंशी बजा-बजाकर खिलवाड़ करते हुए घूमते-फिरते हैं ॥ १३ ॥ भला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन गोपियोंने कौनसा तप किया है, जिससे कि इस श्रीकृष्णके रूपका अपनी आँखोंसे खूब छककर पान करती हैं। जो इनका रूप लावण्यका सार है, इसकी समानता करनेवाला या इससे बढ़कर और किसी दूसरेका तो इस संसारमें रूप है ही नहीं, यह अनन्यसिद्ध है–आभूषण आदिके द्वारा इनका सौन्दर्य बढ़ाया नहीं गया है। सर्वदा अभिनव ही यह दीखता है। यह सबको सुलभ नहीं है। इतना ही नहीं, किन्तु यश, श्री और ऐश्वर्यका तो अव्यभिचारी स्थान है ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णमें लगे हुए चित्तके द्वारा जिनकी सम्पूर्ण विषयोंमें प्रवृत्ति होती है, ऐसा अनुरक्त बुद्धि तथा आँसुओंसे रुँधे कण्ठवाली व्रजकी महिलाएँ गौओंको दूहते समय, ओखलमें मूसल मारते समय, दही मथते समय, घर लिंपते समय, झूला झूलते समय, रो रहे बच्चोंको पुचकारते समय, घरमें झाड़ू लगाते तथा जलका छिड़काव करते समय यानी प्रत्येक कार्य करते समय इन भगवान् श्रीकृष्णका ही गुणगान गाया करती हैं अतः वे स्त्रियाँ धन्य हैं ॥१५॥ गौओंके साथ सवेरे व्रजसे निकलते तथा शामको वापस आते समय वंशी बजाते हुए श्रीकृष्णकी वंशीकी टेर सुन, जो व्रजकी महिलाएँ शीघ्र घरसे निकलकर

न्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ॥ दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥
या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ॥ गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धान्या व्रजस्त्रिय उरुक्र-
मचित्तयानाः ॥ १५ ॥ प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ॥ निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि
भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥ एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ॥ शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान्भ-
रतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विवि-
धैरच्युतेतरौ ॥ युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्ला-
निमवाप ह ॥ २० ॥ स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ॥ भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥ नाचलत्तत्प्रहारेण

भगवान् श्रीकृष्णके दयापूर्ण चितवनसे युक्त तथा मुस्कराहट भरे मुखका अवलोकन करती हैं, वे सचमुच प्रचुर भाग्यवाली हैं। उन्होंने पूर्वजन्ममें खूब पुण्योंका अर्जन किया है ॥१६॥ हे भरतर्षभ, इस तरह भयभीत हो जब स्त्रियाँ आपसमें बातें कर रही थीं, तब योगेश्वर भगवान् श्रीहरि उनकी भय निवृत्तिके लिये शत्रुको मारनेके लिए बिलकुल उद्यत हो गये ॥१७॥ उस समय नन्द और वसुदेवजी अपने दोनों लड़कोंके बलको न जानते हुए स्त्रियोंकी भययुक्त वाणी सुनकर पुत्र विषयक स्नेहके कारण उत्पन्न हो रहे शोकसे आतुर हो पश्चताप करने लगे। अपने मनमें कहने लगे—'अब हम व्रजमें कैसे जायँगे ? मैंने भयंकर भूल की। मैंने अक्रूरको पहले ही क्यों नहीं बतला दिया कि भैया, इन्हें मत ले जाओ। मेरे मना करनेपर अक्रूर कभी नहीं इन्हें यहाँ लाते ॥ १८ ॥ यों श्रीकृष्ण और चाणूर नानाविध तत्-तत् कुस्तीके दाँव-पेंच लगाकर जैसे लड़ रहे थे, वैसे ही बलराम और मुष्टिक भी आपसमें लड़ रहे थे ॥ १९ ॥ वज्रके तीव्र प्रहारके तुल्य अत्यन्त निष्ठुर भगवान् श्रीकृष्णके गात्रोंके प्रहारसे चाणूरके अंग टूटने लगे। वह बार-बार ग्लानिको प्राप्त होने लगा ॥ २० ॥ बाजपक्षीके समान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वेगवाले उस चाणूरने क्रुद्ध हो, दोनों हाथमें मुट्ठी बाँधकर बड़े वेगसे ऊपर कूदकरके भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर चोट की ॥ २१ ॥ इस तरह उसके ताडन करनेपर भी, पुष्पसे घायल हाथीकी तरह भगवान् तनिक भी इधर-उधर कम्पित न हुए। वे झट चाणूरको अपने हाथोंमें पकड़ उसे खूब घुमाने लगे। भगवान्के वेगपूर्वक घुमानेसे ही उसके प्राण तो तुरन्त निकल गये। तदनन्तर भगवान्ने उसे पृथ्वीपर बड़े जोरसे पटक दिया। भगवान्के यों पटकनेपर उसके सभी आभूषण, केश तथा मालाएँ इधर-उधर बिखर गईं। वह पृथ्वीपर ऐसे गिरा, जैसे कि इन्द्रका वज्र ॥ २२, २३ ॥ इसी तरह मुष्टिकने भी उधर अपनी मुट्ठीसे बलरामको घायल किया। उसकी मुट्ठीकी चोट खाये हुए महाबली बलरामजीने उसे जोरका तमाचा दे मारा। अतः वह अत्यन्त पीड़ित हो काँपने लगा। उसके मुखसे रुधिरकी धारा बहने लगी। रुधिर वमन करते हुए उसके प्राण निकल गये। प्रचण्ड वायुसे आहत वृक्षकी नाईं वह पृथ्वीपर धड़ामसे गिर पड़ा ॥ २४, २५ ॥ हे राजन्, उसकी थोड़ी देर बाद ही प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने कूट नामक पहलवानके पास पहुँचकर उसे बड़ी अवहेलनाके साथ

मालाहत इव द्विपः ॥ बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ॥ २२ ॥ भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ॥ विस्रस्ताकल्पकेश-स्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ॥ २३ ॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः ॥ अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदा पहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥ २९ ॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ॥ न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥

अनायास ही मार डाला ॥ २६ ॥ ठीक उसी समय उधर भगवान् श्रीकृष्णने शल नामसे प्रसिद्ध पहलवानके सिरपर एक लात जमायी। जिससे उसका सिर फट गया और यही दशा तोशलकी भी हुई। इस तरह जीवन रहित हो वे दोनों पहलवान जमीनपर धड़ामसे गिर पड़े ॥ २७ ॥ इस तरह चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलके मर जानेपर और जितने पहलवान वहाँ उपस्थित थे, सबके सब वहाँसे भाग निकले, जो अपने जीवनकी रक्षा चाह रहे थे ॥ २८ ॥ तदनन्तर नानाविध बाजे बजने लगे। उस समय बलराम और श्रीकृष्णके चरणोंमें भी नूपुरके मनोहर झंकार हो रहे थे। वे दोनों भाई दर्शकोंको प्रसन्न करने तथा कंसका क्रोध बढ़ानेके लिये अपने मित्र ग्वालबालोंके हाथ खींचकर उनके साथ मिल करके नृत्यादि करते हुए आनन्द मनाने लगे ॥२९॥ उस समय कंसको छोड़कर और जितने वहाँ विप्रप्रमुख साधुजन उपस्थित थे, वे सभी 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहते हुए बलराम और श्रीकृष्णके कार्यसे प्रसन्न हुए, उन लोगोंने इन दोनोंकी खूब सराहना की ॥ ३० ॥ कंसके सभी अच्छे-अच्छे नामी पहलवान जब मर चुके और बचे हुए पहलवान सब जब भाग निकले, तब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कंसने अपने बजते हुए बाजे रुकवा दिये और अपने नौकरोंसे साफ-साफ उसने यह कहा ॥ ३१ ॥ वसुदेवके दुर्वृत्त इन दोनों लड़कोंको इस नगरसे निकाल बाहर कर दो, सभी ग्वालोंके धन छीन लो और कुबुद्धि नन्दको भी बेड़ियोंमें जकड़ दो ॥ ३२ ॥ यह वसुदेव दुर्मेधा है, मिथ्यावादी है, इसने अपनी प्रतिज्ञाका ठीक तरहसे पालन नहीं किया, अतः यह सज्जन पुरुष कहलाने योग्य नहीं है, इसे तो अभी मार डालो* । उग्रसेन हमारे शत्रुपक्षमें जा मिला है अतः सेवक आदिके साथ इसका भी काम तमाम कर दो ॥३३॥ यों कंसके सगर्व कहते ही प्रकुपित हो अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण झट कूदकर उसके ऊँचे मञ्चपर चढ़ गये ॥ ३४ ॥ मञ्चके ऊपर चढ़ते हुए भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मृत्यु देखकर मनस्वी कंसने झटपट अपने आसनसे उठकर उन्हें मारनेके लिये ढाल तलवार ले लिये ॥ ३५ ॥ जैसे गरुड़जी बलात् सर्पको पकड़ लेते हैं उसी तरह अविसह्य उग्र तेजवाले भगवान् श्रीकृष्णने, दायें-बायें

निस्सारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥ लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ॥ समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य । ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात् ॥ तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥ ३७ ॥ तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ॥ हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥ स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचर-

आकाशमें इधर-उधर उड़ रहे बाजपक्षीके सदृश, हाथमें तलवार लिये हुए इधर-उधर विचर रहे उस कंसको झट पकड़ लिया ॥३६॥ भगवान्के पकड़ लेनेपर उसके सिरका किरीट डोलने लगा । फिर क्या था विश्वके आश्रय आत्मतन्त्र पद्मनाभने जोरसे उसके सिरके बाल पकड़ लिए और उस ऊँचे मंचसे उसे रङ्गभूमिमें पटककर उसकी छातीके ऊपर स्वयं गिर पड़े॥३७॥ सारे संसारके देखते-देखते या यों कहिये कि अपने भक्तोंके साथ द्रोह करनेवालेको क्या फल मिलता है, यह दिखाते हुए उस मरे हुए भी कंसको जैसे हाथीको सिंह घसीटता है उस तरह कृष्ण भगवान् पृथ्वीपर घसीटने लगे, ताकि लोगोंका यह सन्देह बिलकुल मिट जाय कि 'कंस अभी मरा नहीं है किन्तु मूर्च्छित है' तथा जिन्हें कंसने पहले खूब सताया था उनको भी पूरा सन्तोष हो जाय । हे राजन्, उस समय वहाँ जितने राजकीय पुरुष उपस्थित थे उन लोगोंके मुँहसे हा हा-यह महान् शब्द नि लने लगा ॥ ३८ ॥ चूँकि वह कंस सदा उद्विग्न चित्तसे चक्रधर भगवान् श्रीकृष्णको ही खाते पीते, चलते फिरते बोलते, सोते तथा श्वास आदि लेते समय—सभी अवस्थाओंमें सर्व प्रथम देखता था, इसीलिए योगियोंके

*कंसका मनोगत अभिप्राय यह था— यह वसुदेवजी दुर्गम बुद्धिवाले हैं । इनसे बढ़कर दूसरा तो कोई सत्तम है ही नहीं । यह परमेश्वर भगवान्के पक्षमें जा रहे हैं, अतः सभी इनका आश्रय लें ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी दुर्लभ उसी रूपको वह प्राप्त हो गया अर्थात् सारुप्यलक्षणा मुक्ति उसने प्राप्त कर ली ॥ ३९ ॥ अपने भाईका बदला चुकानेके लिये अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस कंसके कंक आदि आठो भाई भगवान् श्रीकृष्णको मारने सामने दौड़ आये ॥ ४० ॥ जिनमें अत्यधिक वेग था ऐसे मारनेको उद्यत उन कंक आदिको देवकी सुत भगवान् श्रीकृष्णने विना प्रयासके ही परिघ उठाकर मार डाला, जैसे कि सिंह अनायास पशुओंको मार डालता है ॥ ४१ ॥ आकाशमें देवताओं द्वारा बजाई गई दुन्दुभि बजने लगी। भगवान्‌की विभूतिरूप ब्रह्मा आदि सब देवता लोग पुष्पवृष्टि करते हुए बड़े प्रेमसे स्तुति करने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज, उनकी स्त्रियाँ अपने पतिके मर जानेसे दुःखित हो माथा पीट-पीटकर रोने लगीं। आँसूभरे आँखोंवाली वे अपने पतिके निकट आयीं ॥ ४३ ॥ और युद्धभूमिमें सो रहे अपने पतिको गोदमें लेकर शोक करने लगीं। बार-बार शोकाश्रु बहाती हुईं वे स्त्रियाँ

न्स्वपञ्छ्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतस्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥ तस्यानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥ तथातिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः ॥ अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥ नेदुदुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥ तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिङ्गच्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥ अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित्सुखमेधते ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यामाहुर्लौकिकीं संस्थां

सुरीली आवाजमें विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ हा नाथ, हे प्रियधर्मज्ञ, हे दयालो, हे अनाथवत्सल, आपके मार दिये जनेसे अचानक सपरिवार प्रजाएँ तथा आपके आत्मीय हमलोग भी एकतरहसे मार ही दिये गये ॥ ४५ ॥ हे पुरुषर्षभ, इस पुरीके एकमात्र तुम्हीं स्वामी रहे, अब तुमसे विरहित यह पुरी हमलोगोंकी तरह ही शोभित नहीं है। अब इस पुरीसे प्राणियों-के महोत्सव और सुख विदा हो गये ॥ ४६ ॥ स्वामिन्, तुमने निरपराधी प्राणियोंके साथ भयंकर शत्रुता की थी, यही कारण है कि तुम इस दशामें पहुँचाये गये। क्योंकि प्राणियोंके साथ शत्रुता करनेवाला कौन प्राणी सुख पायेगा ॥ ४७ ॥ इस संसारमें यही श्रीकृष्ण भगवान् सभी प्राणियोंके स्रष्टा, संहर्ता और रक्षिता हैं, अतः इनका अपमान करनेवाला प्राणी कहीं पर भी सुख नहीं प्राप्त करता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह शोक कर रही उन राजमहिलाओंको लोकभावन भगवान् श्रीकृष्णने ढाढ़स देकर मृतकोंकी परलोक सम्बन्धी दाहादि जो क्रिया मनु आदि महर्षियोंने बतलाई है वह उनसे करायी ॥ ४९ ॥ इसके बाद श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंने अपने माँ-बाप यानी देवकी तथा वसुदेवको जेलसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छुड़ाकर उनके चरणोंपर माथा टेक करके बन्दना की ॥ ५० ॥ देवकी और वसुदेव भी लोक मर्यादाके संरक्षणके लिए नमस्कार कर खड़े हुए अपने दोनों पुत्रोंको कंस वधादिके प्रभावसे जगदीश्वर जानकर 'हम इनका आलिङ्गन कैसे करें' यों शकित हो आलिंगन न कर सके, किन्तु चुपचाप स्तब्ध खड़े रहे ॥ ५१ ॥

हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरं पितरं चैव मोचयित्वाथ बन्धनात् ॥ कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसाऽस्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥ देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४ ॥

चौवालीसवें अध्यायका सार—हे राजन्, रङ्गभूमिमें पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णजी चाणूरके साथ तथा बलदेवजी मुष्टिकके साथ कुस्ती लड़ने लगे। बहुत देरतक युद्ध करनेके बाद भगवान्ने चाणूरको नचाकर जमीनपर पटक दिया। उसके प्राण तो नचाते समय ही निकल चुके थे। उधर बलरामजीने भी मुष्टिकको मार गिराया। इसके बाद अनेक पहलवान आये। सबका दोनों भाइयों ने काम तमाम कर दिया। जो बाकी बचे थे, वे अपना प्राण लेकर भाग खड़े हुए। आखिरमें, कंसके दुर्वचन कहनेके बाद भगवान् क्रुद्ध हो उसके मञ्चपर चढ़ गये। उसने भी इन्हें आते देख हाथ में तलवार खींच ली। भगवान्ने उसे पृथ्वीपर पटक दिया और उसकी छातीपर सवार हो गये। सबके देखते-देखते वह कंस सदाके लिये इस संसारसे चल बसा। तदनन्तर वहाँ मरे हुए लोगोंकी स्त्रियाँ आकर विलाप करने लगीं भगवान्ने उन्हें ढाढ़स दिया। उसके बाद दोनोंने अपने माँ-बापको जेलसे छुड़ाकर उनको नमस्कार किया। इन दोनोंको देवकी और वसुदेवजी ईश्वर समझकर इनका आलिङ्गन न कर सके। चुपचाप खड़े ही रह गये। चौंवालिसवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथ पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❋

(श्रीकृष्णका नन्दबाबाको सान्त्वना देना, उग्रसेनको अभिषिक्त करना और गुरुकुलमें प्रवेश)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे माता-पिताने मेरी भगवत्ता जान ली है, अतः इन्हें पुत्र-सुख न मिल सकेगा। इसलिए उन्होंने सज्जनोंको

श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥ मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥ उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ॥ प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥२॥ नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ॥ बाल्य-

मोहनेवाली अपनी माया उनपर फैला दी ॥ १ ॥ यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्ण, बलरामके साथ माता-पिताके पास जाकर बड़ी नम्रता एवं आदरके साथ 'माँ' बाबू' कहकर बोले ॥ २ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मातजी, एवं पिताजी, यद्यपि आप हमारे लिए बहुत लालायित रहते थे, किन्तु आप शैशवसे किशोरावस्था तकका कोई सुख हमसे कहीं न पा सके ॥ ३ ॥ दुर्भाग्यसे हमें आपके पास रहनेका मौका ही नहीं मिला, इसलिये हम दोनों भी उन सुखोंसे वंचित ही रह गये, जो शिशुओंको माता-पिताके लाड़-प्यारमें मिलता है ॥ ४ ॥ माता-पिता ही इस शरीरको जन्म देते हैं एवं पाल-पोषकर बड़ा बनाते हैं। तब कहीं यह शरीर चारों पुरुषार्थोंका साधक बनता है। इसलिये सैकड़ों वर्षोंमें भी कोई मनुष्य उनका ऋण चुका नहीं सकता ॥ ५ ॥ जो पुरुष समर्थ होते हुए भी शरीर और धनसे उनकी सेवा नहीं करता, खाने-पीनेको नहीं देता, मृत्युके बाद यमदूत उसे उनके शरीरका मांस खिलाते हैं ॥ ६ ॥ समर्थ होते हुए भी यदि पुरुष बूढ़े माता-पिता. पतिव्रता भार्या, बच्चे, गुरु, ब्राह्मण एवं शरणागतको नहीं खिलाता, वह जीता हुआ भी मरा ही है ॥७॥ हम दोनोंके इतने दिन तो व्यर्थ ही बीते, क्योंकि दुष्ट कंसके

पौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥ न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥ ६ ॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥ तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः ॥ अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ॥ मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ॥ न किञ्चिदूचतू राजन्बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः ॥ मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ॥ ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य उपासीने

भयसे भीत एवं असहाय आप दोनोंकी हमने कोई भी सेवा नहीं की ॥ ८ ॥ किन्तु, माताजी एवं बापू. हम तो पराधीन थे। यही कारण है कि दुर्बुद्धि कंसके द्वारा सताये जानेपर भी हमने आपकी कोई सहायता नहीं की, अतः आप हमें क्षमा करें ॥ ९ ॥ उन विश्वात्मा भगवान्‌की वाणीसे, जिन्होंने लीलासे ही मनुष्यविग्रह धारण किया है। वे मोहित हो गये। अपने बच्चोंको हृदयसे लगाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १० ॥ वे मोहित हो स्नेहपाशसे बिलकुल बँध चुके थे। गला रुँध जानेसे वे कुछ बोल नहीं सके। केवल उन्होंने उन्हें अपने आँसू की धारासे अभिषिक्त कर दिया ॥ ११ ॥ इस तरह माता-पिताको आश्वासन देकर देवकीनन्दन भगवान्‌ने अपने नाना उग्रसेनको यदुओंका राजा बनाया ॥ १२ ॥ और कहा कि महाराज, हम प्रजाओंको आप आज्ञा दें। यद्यपि ययातिके शापकी वजहसे यदुवंशियोंको राजसिंहासनपर नहीं बैठना चाहिए। फिर भी मेरे कहनेसे आपको कोई दोष न होगा ॥१३॥ जब मैं ही आपकी सेवामें तत्पर हूँ तो बड़े-बड़े देवता भी आपको भेंट चढ़ावेंगे तथा आपके आगे झुकेंगे। फिर और राजाओंके लिए तो कुछ कहना ही नहीं है ॥ १४ ॥ इसके बाद

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

भगवान् कृष्णने यदु- वृष्णि, अन्धक, मधु, दशार्ह कुकुर आदि सभी जाति-भाइयोंको सभी दिशाओंसे बुलाकर उन्हें अपने-अपने घरोंमें बसाया। वे कंसके डरसे भाग गये थे। विदेशमें बसनेके कारण उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था। किन्तु अब उन्हें भगवान्‌की ओरसे धन और आश्वासन दिया गया, भगवान्‌ने उनका खूब सत्कार किया ॥ १५, १६ ॥ वे लोग बलराम और कृष्णके बाहुबलसे सुरक्षित थे। उन्हें उनकी मनचाही वस्तु मिल गयी थी, इसलिये वे कृतार्थ होकर घर गृहस्थीमें मजेसे रहने लगे। बलराम और कृष्णने उनके सारे दुःख मिटा डाले थे ॥ १७ ॥ वे लोग भगवान्‌के नित्यप्रसन्न, सुन्दर एवं सदय कटाक्षवीक्षणसे युक्त मुखकमलको प्रतिदिन देख-देखकर खूब प्रसन्न रहते थे ॥१८॥ वहाँ भगवान् मुकुन्दके मुखकमल पीयूषका अपने नेत्ररूपी भौरोंसे निरन्तर पान करते हुए वृद्धजन भी जवान हो गये थे। उनमें अधिक बल और उत्साह उमड़ आया था ॥१९॥ हे राजन्, इसके बाद भगवान्

भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥ सर्वान्स्वान् ज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ॥ यदु-वृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान्समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ॥ न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥ कृष्णसङ्कर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ॥ पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नन्दं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः ॥ सङ्कर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ॥ शिशून्बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सान्त्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः ॥ वासोऽलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥ अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः

देवकीसुत श्रीकृष्ण और बलराम नन्दबाबाके पास गये। गले लगकर बोले—बापू, आप और मैया यशोदाने बड़े स्नेहसे हमारा पालन-पोषण किया है। माता-पिताको तो अपने शरीरसे भी अधिक स्नेह अपने पुत्रोंपर होता है ॥ २०, २१ ॥ जब माता-पिता पालन-पोषणमें असमर्थ हो अपने बच्चोंको त्याग देते हैं, उस समय पुत्रकी तरह उन्हें जो पालते हैं, वही सच्चे माता-पिता हैं ॥२२॥ बापू, अब आप व्रज जाइये। यहाँके सुहृद लोगोंको सन्तुष्टकर हम आपका दर्शन करेंगे। हमें मालूम है कि हमारे बिना हमारे स्नेहसे आपको बड़ा कष्ट होगा ॥२३॥ इस तरह नन्द एवं अन्य व्रजवासियोंको समझाकर श्रीकृष्णने आदरके साथ कपड़े, गहने और बर्तन-बासन देकर उनका सत्कार किया ॥ २४ ॥ ऐसा कहे जानेपर नन्दबाबा प्रेमसे विह्वल हो गये। उनकी आँखें डबडबा आयीं और बड़ी मुश्किलसे गोपोंके साथ व्रजको लौटे ॥ २५ ॥ राजन्, इसके बाद वसुदेवजीने अपने पुरोहित एवं अन्य ब्राह्मणोंके द्वारा

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शास्त्रानुसार बलराम और कृष्णका यज्ञोपवीतादि संस्कार कराया ॥२६॥ ब्राह्मणोंको वस्त्रादिसे अलंकृत कर सत्कारपूर्वक दक्षिणा और गौएँ दीं । वे गौएँ सुवर्ण एवं रेशमकी माला तथा और भी सजावटोंसे सजायीं गई थीं, सभी बछड़ोंवाली थीं ॥ २७ ॥ महामना वसुदेवने श्रीबलराम और कृष्णके जन्म-नक्षत्रपर जितनी गायें मनसे दी थीं, उन्हें कंसने अधर्मसे छीन लिया था । इस बातको स्मरणकर वसुदेवजीने वे ही सब गौएँ राजकीय गोशालासे लाकर ब्राह्मणोंको दे दीं ॥ २८ ॥ बाद यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसे संस्कार कराकर दृढ़ सङ्कल्पवाले बलराम और कृष्ण द्विजत्वको प्राप्त हुए । उनका व्रत तो पहलेसे भी अखण्ड था, फिर भी ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन करने लगे ॥ २९ ॥ वे दोनों तो सभी विद्याके उत्पादक थे, सब कुछ जानते थे, क्योंकि वे तो जगत्के मालिक थे, उनका ज्ञान तो स्वतः सिद्ध है । फिर जो उन्होंने पढ़ना आरम्भ किया वह नरलीला दृष्टिसे ही । इसके बाद नरलीलाओंसे अपने असली

समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥२६॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलङ्कृताः । स्वलङ्कृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ॥ ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥२८॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥२९॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥ यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ॥ ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४॥ सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुर्नृप ॥३५॥

स्वरूपको ढकते हुए गुरुकुल वासके विचारसे उज्जयिनीमें रहनेवाले काश्यप गोत्रोत्पन्न सान्दीपनिके पास गये ॥ ३०, ३१ ॥ वे विधिपूर्वक गुरुके पास जाकर संयमपूर्वक गुरुसेवाका निर्दुष्ट आदर्श रखते हुए, भक्तिसे देवताकी तरह उनकी सेवा करते थे । गुरु भी इनका बहुत आदर करते थे ॥ ३२ ॥ उनके शुद्ध भावकी सेवासे सन्तुष्ट होकर द्विजवर गुरुजीने उन्हें छःहों अङ्ग और रहस्य सहित सभी वेद बतला दिये ॥ ३३ ॥ उन्हें गुरुजीने रहस्यके साथ धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, मीमांसा, न्याय मार्ग, सांख्ययोग, तर्क शास्त्र एवं छः प्रकारकी राजनीति भी पढ़ा दी ३४ ॥ राजन्, बलराम एवं कृष्ण तो सफल विद्याके प्रवर्तक हैं, फिर भी वे महापुरुषकी लीला करते हुए एक बार कहनेसे ही सारी विद्याओंको उन्होंने सीख लीं ॥ ३५ ॥ संयमी उन दोनों भाइयोंने चौसठ अहोरात्रमें चौसठों* कलाएँ सीख लीं । राजन्, इसप्रकार अध्ययन समाप्त कर उन्होंने गुरुजीसे दक्षिणा माँगनेके लिये अनुरोध किया ॥ ३६ ॥ हे

---

* चौसठ कलाएँ ये हैं—गानशिक्षा गायकत्वं तालरागस्वरज्ञता । स्वरादिमेलनमिति गीताख्या षड्विधा कला ॥ १ ॥ तत वीणादिकं ज्ञेयमानद्धं मुरजादिकम् । वंशादिकं च सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् । वाद्येष्वेतेषु वाद्याख्या गीतवत् षड्विधा कला ॥ २ ॥ अङ्गविक्षेपणं नृत्यं षोडा प्राग्वच्च तत्कला ॥ ३ ॥ नटक्रिया नाट्यकला नाटकाभिनयात्मिका ॥ ४ ॥ चित्राणां पुस्तकानां च लेख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजन्, गुरुजीने उनकी उस अद्भुत महिमा एवं मानव दुर्लभ बुद्धिको परख लिया था। उन्होंने पत्नीसे सलाहकर उनसे दक्षिणा माँगी कि प्रभासक्षेत्रमें हमारा लड़का समुद्रमें डूब गया

अहोरात्रैश्चतुः षष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ॥ गुरुदक्षिणायाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं सँल्लक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ॥ संमन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमा-

है, उसे लादो ॥ ३७ ॥ उन्होंने बहुत अच्छा कहा और रथपर सवार होकर वे प्रभासतीर्थमें पहुँचे। वे महारथी थे एवं उनके पराक्रमकी कोई इयत्ता न थी। वे समुद्रतटपर पहुँचकर

आलेख्यजा कला ॥ ५ ॥ विशेषकच्छेद्य कला स्तनादौ कुंकुमादिभिः। मत्स्याकाररचना तिलकस्य विधि तथा ॥ ६ ॥ पूजाप्रकारादि कला कुसुमैस्तण्डुलादिभिः ॥ ७ ॥ शय्यादे रचना पुष्पादिभिरास्तरणे कला ॥ ८ ॥ दशमे वसनेऽङ्गे च रञ्जनं रागजा कला ॥ ९ ॥ पाण्डवादिसभा तुल्यमणिभू रचना कला ॥ १० ॥ मञ्चकादिकनिर्माणं कला शयतकल्पना ॥ ११ ॥ जलस्तम्भो जले यानं जलवाद्यं च तत्कला ॥ १२ ॥ चित्रयोगकलानेकाद्भुतदर्शनवेदिता ॥ १३ ॥ पुष्पैर्हारादि रचना माल्यग्रन्थनजा कला ॥ १४ ॥ पुष्पादिभिः कला तद्वत् शेखरापीडयोजने ॥ १५ ॥ नेपथ्यस्य कला भूषा वस्त्राद्यैरङ्गसंस्कृतिः ॥ १६ ॥ कर्णादौ पत्रभंगन्यादिनिर्मितिस्तत्कला मता ॥ १७ ॥ सुगन्धियोजनकला पटवासादिषु स्मृता ॥ १८ ॥ भूषादियोजनकला स्वर्णकारक्रिया भवेत् ॥ १९ ॥ ऐन्द्रजाल कला ख्याता मृदादेः स्वर्णतालिका ॥ २० । कुचुमारर्षिकथिता कौचुमारकलात्र तु। धारणं भूरिवेषाणां पटूनामपि मोहनम् ॥ २१ ॥ शरादौ वस्तु गुदयादौ हस्तलाघवजा कला ॥ २ ॥ सूपशाकं चित्रशाका पूपभक्ष्यादि कृतकला ॥ २३ ॥ पानकादिकला नानापेयमद्यादियोजनम् ॥ २४ ॥ स्यूतिर्वानं चित्रकृतिरियादिः सूचिजा कला ॥ २५ ॥ सूत्रक्रीडा कलासूत्रैः पुत्तल्यादिकचालनम् ॥ २६ ॥ वीणाडमरुवाद्यादि कला तदयन्त्रनिर्मितिः ॥ २७ ॥ प्रहेलिका कला कूट वाक्यार्थज्ञानिता यथा। पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः कमललोचने। यदि दास्यसि नेच्छामि नो दास्यसि, पिबाम्यहम् ॥ २८ ॥ प्रतिमानां कला नाना प्रतिमानां विनिर्मितिः। छायया चित्रनिर्माणमपि केचित्प्रक्षते ॥ २९ ॥ दुर्वच्चककला दुष्टलोकानां वञ्चनं यया। उपाय दुर्वच वक्तुमितित्वन्ये प्रचक्षते ॥ ३० । पुस्तकवा नकला शीघ्रं पुस्तकवाचनम्। यद्वा दृष्ट्वा हस्तचेष्टां जिव्हतोऽक्षरवाचनम् ॥ ३१ ॥ नाटकारकायिकादीनां निर्माण तत्कला मता ॥ ३२ ॥ समस्यापूरणकला श्लोकपादादिपूरणम्। यथा—शतचन्द्रं नभस्तलम्। तत्पूरणं—दामोदर कराघातविहूलीकृतचेतसा। दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम् । ३३ ॥ पट्टिका वेत्रवाणादिकला तद्रचना भवेत् । ३४ । स्कुकर्मकला सूत्रैर्नानावस्त्रादिनिर्मितिः ॥ ३५ ॥ तक्षणस्य कला काष्ठादिभिः स्तम्भादिकल्पनम् ॥ ३६ ॥ वास्तुविद्याकला गेहप्रासादिविनिर्मितिः ॥ ३७ ॥ सुवर्णरूप्यरत्नादेः परीक्षायाः कला स्फुटा ॥ ३८ ॥ धातुवादकल ख्यात ताम्रादेः स्वर्णकारिका ॥ ३९ ॥ मणिरागज्ञानकला रत्नरञ्जनकौशलम् ॥ ४० ॥ आकारस्य कला स्वर्ण रत्नादि खनिज भूज्ञता ॥ ४१ ॥ वृक्षरक्षा चिकित्सादिवृक्षायुर्वेदजा कला ॥ ४२ ॥ मेषकुक्कुरलावादि युद्धरीतिस्तु तत्कला ॥ ४३ ॥ शूकसारिकयोः पाठकला तच्छिक्षणे विधिः ॥ ४४ । उत्सादनकला शत्रोर्मन्त्रैरुच्चाटना विधिः। उद्वर्तनं शरीरस्य संस्कारमपरे जगुः ॥४५॥ स्यात्केशमार्जनकला रचना मार्जनादिका ॥ ४६ ॥ लुप्ताक्षराणां मुष्टिस्थवस्तूनां कथने कला ॥ ४७ । म्लेच्छितादि कला तत्तद्भाषाशास्त्रेषु कौशलम् ॥ ४८ ॥ देशभाषाकला तत्तद्देशभाषण कौशलम् ॥ ४९ ॥ कला पुष्पशकटाख्या सदसत्फलार्थस्ततः ॥ ५० ॥ पूजायन्त्रादि निर्माणं कला स्याद् यन्त्रमातृका ॥ ५१ ॥ मातृका संवाच्यकला नानाभाषा विनिर्मितिः। हीरकादेर्वेध्यस्य वेधादिरपि सा मता ॥ ५२ ॥ परचित्तार्थकविता कलामानसकाव्यजा ॥ ५३ ॥ कलामिधानकोषस्य बहुकोशप्रवीणता ॥ ५४ ॥ छन्दोज्ञानकला नाना छन्दैविषयनैपुणम् ॥ ५५ ॥ नानोपायैरेकवस्तु भूरिण्येकेन कर्मणा। कुर्यात् क्रिया विकल्पाख्या सा कला भूरिपाटवा ॥ ५६ ॥ क्रियाच्छलितयोगाख्या चारणावञ्चनादिका ॥ ५७ ॥ वस्त्रगुप्ति कला तूलवस्त्रादौ पट्टतादिका ॥ ५८ ॥ स्फुटा द्यूतकला ॥ ५९ ॥ कर्षक्रीडा ख्यातुकला परा। यत्र दूरस्थवस्तूनामाकर्षैः क्रीडनं भवेत् ॥ ६० ॥ बालक्रीडा कला स्पष्टा क्रीडनं कन्दुकादिभिः ॥ ६१ ॥ वैनायिकी कला भूतचेटादेर्मन्त्रसाधनम् ॥ ६२ ॥ कला वैजयिकी यत्र वादादौ ज्ञायते जयः ॥६३॥ वैतालिकी कला सिद्धर्षैः वेतालादेरुपासनम् ॥ ६४ ॥ श्रीधरस्वामीजीने इन चौसठ कलाओंका सिर्फ नाम निर्देश भर कर दिया है। किन्तु अन्वितार्थप्रकाशिकाकारने इनकी उपर्युक्त रीतिसे व्याख्या की है। अत्यन्त उपयोगी होने के कारण हमने उन्हें यहाँ ज्योंका त्यों उद्धृत कर दिया है। एतदर्थ हम अन्वितार्थप्रकाशिका कराके चिर ऋणी हैं।—सम्पादकः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बैठ गये । समुद्रने उन्हें परमात्मा समझकर पूजाकी सामग्री लेकर उपस्थित हुआ ॥३८॥ भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रसे कहा कि 'तुमने जो बड़ी-बड़ी तरंगोंसे हमारे गुरुपुत्रको बहा ले आये हो, उसे ला दो' । समुद्रने कहा कि 'मैंने लड़का नहीं चुराया । उसे तो पञ्चजन नामक दैत्यने, जो मेरे जलमें शंखके रूपमें विचरता रहता है, चुराया होगा' ॥ ३९, ४० ॥ इस बातको सुनकर श्रीकृष्ण जलमें उतर पड़े और शंखासुरको भी मार डाले । किन्तु उसके पेटमें गुरुपुत्रको न देखा ॥ ४१ ॥ उसके बाद उसके शरीरसे उत्पन्न शंखको लेकर ये रथपर बैठ गये और यमराजकी प्यारी पुरी 'संयमनी' को चल दिये ॥ ४२ ॥ वहाँ पहुँचकर कृष्णने बलरामके साथ शंख बजाया । शंखध्वनि सुनकर प्रजाओंके शासक यमराजने भक्तिके साथ उनकी बड़ी पूजा की । उसने बड़ी नम्रतासे घट-घटके वासी श्रीकृष्णसे कहा—लीलासे नर शरीरधारी हे विष्णो, मैं आपका कौन-सा काम करूँ ? भगवान्ने कहा—मेरे गुरुपुत्रको उसके कर्मा-

साद्य दुरन्तविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिन्धुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ॥ योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥ ३९ ॥ समुद्र उवाच॥ नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥ (आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥) जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥४१॥ तदङ्गप्रभवं शङ्खमादाय रथमागमत् ॥ ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥४२॥ गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ शङ्खनिर्हादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥ तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशया लयम् ॥ लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५॥ तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदुत्तमौ ॥ दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥४६॥ गुरुरुवाच॥ सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥४७॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ॥ छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं तात

नुसार आप यहाँ ले आये हैं । महाराज, मेरी आज्ञासे उसे ले आइये ॥ ४३–४५ ॥ उन्होंने उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली और उनके गुरुपुत्रको ला दिया । बलराम और कृष्णने गुरुजी को वह लड़का सौंप दिया और कहा कि—और कुछ दक्षिणा माँग लें ॥ ४६ ॥ गुरुजीने कहा कि वत्स, तुम दोनोंने भलीभाँति गुरुदक्षिणा चुका दी है, तुम्हारे जैसे शिष्योंके गुरुकी कोई कामना ही कैसे अवशिष्ट हो सकती है ? ॥ ४७ ॥ वीरो, अब तुम अपने घर जाओ, तुम्हें पवित्र कीर्ति प्राप्त हो, तुम्हारी विद्या इसलोकमें तथा परलोक में सदा ताजी बनी रहे ॥ ४८ ॥ हे तात, गुरुकी ऐसी आज्ञा पाकर वायुवेगवाले एवं मेघकी तरह गम्भीर ध्वनिवाले रथसे वे मथुराको लौट आये ॥४९॥ मथुराकी प्रजाएँ भगवान्को बहुत दिनोंसे न देखनेके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारण बड़ी आकुल थीं, उन्हें आया देख वे बड़ी प्रसन्न हुईं, जैसे किसीको खोया हुआ धन मिल गया हो ॥ ५० ॥

पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥ समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गुरुपुत्रानयनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

पैंतालीसवें अध्यायका सार—राजन्, भगवान् कृष्णने अपने मायाके द्वारा अपने माता पितामें भगवद्भावकी जगह पुत्रभाव पैदा कर दिया। उन्होंने बड़े लाड़ प्यारकी बात कही, जिन्हें सुन उनकी आँखें छलछला आयीं। इसके बाद उन्होंने नन्दबाबाको बहुत समझाकर घर लौटाया। बाद उन्होंने उग्रसेनको राजा बनाया। अपने कुलके लोगोंको, जो कंसके भयसे जहाँ तहाँ भाग गये थे, फिरसे बुलाकर सम्मान पूर्वक बसाया। बाद इनका संस्कार हुआ और वे उज्जयिनीमें सान्दीपनि आचार्यके पास पढ़ने गये। जल्दी ही अध्ययन पूरा कर दिया। गुरुदक्षिणामें उन्होंने यमराजाके यहाँसे गुरुपुत्रको लाकर गुरुजीके हवाले किया। बाद, गुरुकी आज्ञासे वे मथुरा लौट आये। पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❀

[उद्धवजी को व्रज भेजना]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उद्धवजी वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ, भगवान् कृष्णके मित्र एवं मन्त्री, बृहस्पतिके शिष्य एवं बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पुरुष थे ॥ १ ॥ एक दिन एकान्तमें शरणागत वत्सल भगवान्ने उन अनन्य प्रिय भक्त उद्धवसे, उनके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर कहा–हे सौम्य उद्धव, तुम व्रज जाओ। हमारे माता-पिताको खुश करो और मेरे विरहसे

श्रीशुक उवाच ॥ वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥ शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥ गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे

पागल बनी गोपियोंके दुःखको मेरा सन्देशा देकर दूर करो ॥२,३॥ उनके मन मुझमें लगे हैं, मैं ही उनका प्राण हूँ, मेरे लिये उन्होंने मुझपर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है, लोक धर्मकी भी तिलाञ्जलि दे दी है। मेरा यह सङ्कल्प है कि जो सर्वधर्मका परित्याग कर मेरी शरण लेते हैं, मैं उनका योगक्षेम स्वयं वहन करता हूँ ॥ ४ ॥ उनका प्रियतम एवं प्राणधन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मैं, आज उनसे दूर हूँ। वे व्रजाङ्गनाएँ मेरी स्मृतिमें मूर्च्छित हो जाती हैं। विरहसे वे बार हैं एवं मेरे लिए उत्कण्ठित हैं। किसी तरह वे प्राणोंको धारणकर रही हैं। मैंने उन्हें कहा था, मैं लौट आऊँगा, इसीसे वे किसी तरह जी रही हैं, मैं ही उनकी आत्मा हूँ॥ ५, ६॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्, उद्धवजी बड़े आदरसे श्रीकृष्णका सन्देश लेकर रथपर बैठ नन्दबाबाके गोकुलको चल दिये॥ ७॥ जब भगवान् भास्कर डूब रहे थे, तब श्रीमान् उद्धवजी व्रजको पहुँचे। उस समय गौएँ चरकर लौट रही थीं, उनके खुरोंसे इतनी धूल उठ रही थी कि उद्धवका रथ उसमें छिप गया और उसे कोई देख न सका॥ ८॥ ऋतुमती गौओंके लिये मत्त साँड़ डँकार-डँकार कर रहे थे। गौएँ यद्यपि स्तनभारसे व्यथित थीं, फिर भी वे अपने बछड़ोंके लिए छलांग मारती हुई दौड़ रही थीं। उजले बछड़ोंकी टोलियाँ इधर-उधर कूद-फाँद मचा रही थीं। गोदोहनके 'घर-घर' शब्द एवं वंशीकी ध्वनिसे वह व्रज अनुरणित

तान्बिभर्म्यहम्॥ ४॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः॥ स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥ ५॥ धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथञ्चन॥ प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः॥ ६॥ श्रीशुक उवाच॥ इत्युक्त उद्धवो राजन्सन्देशं भर्तुराहृतः॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ ७॥ प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खररेणुभिः॥ ८॥ वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः॥ धावन्तीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान्॥९॥ इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः॥ गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च॥ १०॥ गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः॥ स्वलङ्कृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम्॥ ११॥ अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः॥ धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम्॥१२॥ सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम्॥ हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्च मण्डितम्॥१३॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम्॥ नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत्॥१४॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम्॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः॥१५॥ कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः॥ आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः॥१६॥ दिष्ट्या

हो रहा था। सज धजकर गोप एवं गोपियाँ कृष्णकी लीलाओंको गा रही थीं, जिससे व्रजकी शोभा और बढ़ गयी थी। अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण, पितृ और देवताका पूजन घर-घरमें हुआ था। धूप, दीप एवं मालासे वह और सुन्दर लगता था॥ ९–१२॥ उपवन चारों तरफसे फूलोंसे लदे थे, पक्षी चहक रहे थे, भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, हंस और बतख विहरण कर रहे थे और कमल खिले हुए थे॥ १३॥ जब नन्दबाबाने कृष्णके प्रिय सखा उद्धवको आया देखा, तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उनका आलिंगन किया और कृष्णकी तरह ही उनका स्वागत किया—कृष्णको ही आया जानकर उनका सत्कार किया॥ १४॥ उत्तम भोजन कराया, पलंगपर सुखसे बैठाकर उनका सेवकोंके द्वारा पैर दबवाया। इस तरह उनकी थकान मिट जानेपर बोले॥ १५॥ महाभाग उद्धवजी, हमारे मित्र वसुदेवजी अपने बाल-बच्चोंके साथ कुशलसे ता हैं न? अब वे जेलसे छूट गये हैं और अपने परिवारवालोंके साथ हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २६ ॥ सौभाग्यसे पापी कंस अपने अनुचरोंके साथ अपने पापोंसे ही मारा गया। वह सदा धार्मिक एवं सन्तस्वभाववाले यदुवंशियोंको सताता था ॥ १७ ॥ यह तो कहिए, क्या कृष्णजी अपने माता, स्वजन, मित्र, ग्वाले, उन्हींको स्वामी माननेवाले व्रज, गौ, वृन्दावन एवं गोवर्धनकी कभी याद भी करते हैं ? ॥ १८ ॥ क्या अपने लोगोंको देखने वे एक बार फिर आयेंगे ? यदि आ जायँ तो मुझे उनका वह सुन्दर मुखड़ा देखनेको मिल जाय। ओह, उनका नाक और कटाक्षवीक्षण कितना मधुर है ॥१६॥ महात्मा कृष्णने दावाग्नि, आँधी-पानी वृषभासुर एवं अघासुरसे हमें बचाया है। इतना ही नहीं, उन्होंने इसी तरहके अनेक मौतकी बाधाओंसे हमें बचाया है ॥ २० ॥ उद्धवजो, उनके पराक्रम, लीला, चल चितवन, हास्य एवं भाषणका स्मरणकर हमारे सब काम जहाँ के-तहाँ पड़े रह जाते हैं ॥ २१ ॥ जब मैं कृष्णके चरणचिन्होंसे सुशोभित नदी, पहाड़ और वन प्रान्तोंको देखता हूँ एवं उनकी

कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १६ ॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुन्दपदभूषितान् ॥ आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥ मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥ सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥ अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ॥ बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ॥ अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥ यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ॥ शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षी-

लीलाओंको स्मरण करता हूँ, तो मेरा मन कृष्णमय बन जाता है ॥ २२ ॥ मैं मानता हूँ कि वे दोनों देवताओंमें श्रेष्ठ हैं और देवताओंके मतलबके लिये यहाँ पधारे हैं। गर्गजीने मुझसे यही कहा था ॥ २३ ॥ उन्होंने दसहजार हाथीके बलवाले कंसको, उनके दोनों पहलवानों और कुवलयापीड़को खेलमें मार डाला, जैसे सिंह मृगोंको मार डाले ॥ २४ ॥ उन्होंने तीन ताल लम्बे कठोर धनुषको खेलमें ही उसी तरह तोड़ डाला था, जैसे महा मतवाली हाथी ईखको तोड़ डालता है। उन्होंने एक हाथसे [बायें हाथसे] गोवर्धन पर्वतको लगातार सात दिनोंतक थाम रखा था ॥ २५ ॥ जिन्होंने प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त, बक आदि दैत्योंको, जो कि सुर एवं असुर सबको जीत लेनेवाले थे, यहाँ खेलमें ही मार डाला ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, उस तरह स्नेही नन्दबाबा बार-बार कृष्णका स्मरणकर बिलकुल विह्वल हो गये। उनका गला रुँध गया प्रेममें पागल हो गये, आगे कुछ भी बोल न सके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २७ ॥ यशोदा अपने पुत्रके चरित्रोंको सुन-सुनकर पहलेसे ही अश्रुवर्षा कर रही थीं, उनके स्तनोंसे दूध टपकने लगा ॥ २८ ॥ जब उद्धवने नन्द एवं यशोदाका अनुराग भगवान् कृष्णमें इस तरह देखा, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे ॥२९॥ बाबा, आपलोग तो प्राणियोंके लिये बिलकुल श्लाघनीय हैं, क्योंकि ब्रह्मादि सबके गुरु श्रीनारायणमें आपकीबुद्धि इतनी अनुरक्त है ॥ ३० ॥ राम और कृष्ण ही संसारके निमित्तोपादान कारण हैं । कृष्ण पुरुष हैं और बलराम प्रकृति । ये दोनों पुराणपुरुष हैं । सभी शरीरोंमें प्रविष्ट होकर जीवन देते हैं तथा शरीरोंसे बिलकुल विलक्षण ज्ञानरूप जीवके नियन्ता हैं ॥३१॥ मरते समय प्राणी यदि उनमें एक क्षणके लिये भी शुद्ध भावसे मन लगा देता है, तो वह अपने आनन्दस्वरूपको प्राप्तहो सभी कर्म बन्धनोंको तोड़-फोड़कर सूर्यकी तरह तेजस्वी बनकर मुक्तिको पा लेता है ॥ ३२ ॥ वे समस्त जगत्के आत्मा एवं कारण हैं । धर्मके उत्थान एवं अधर्मके ह्रासके लिये

त्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ॥ वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीज-योनी रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जनः प्राणवियो-गकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ॥ निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥ तस्मिन्भवन्तावखिला-त्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन्किं वाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥३३॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ३४ ॥ हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ॥ यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥ मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ॥ अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वापि समानस्यासमोऽपि वा ॥३७॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥३८॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थः सोऽपि साधूनां

वे अवतार लेते हैं । उन परमात्मामें आप दोनों महात्माओंका परम प्रेम है, तो फिर आप लोगोंके लिये कौन-सा कर्मकर्तव्य रह जाता है ? ॥ ३३ ॥ यदुवंश श्रेष्ठ भगवान् कृष्ण शीघ्र ही व्रजमें आयेंगे और आप लोगोंका कल्याण करेंगे ॥ ३४ ॥ रंगशालामें यदुवंशियोंके शत्रु कंसको मारकर और आपके पास आकर उन्होंने जो कहा था कि 'मैं व्रजमें आऊँगा' उसे वे सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥ आप शोक न करें, आप देखेंगे कि कृष्ण आपके पास ही हैं । जैसे लकड़ियोंमें अग्नि व्याप्त रहती है, उसी तरह वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें व्याप्त रहते हैं ॥३६॥ शरीराभिमानी न होनेके कारण उनका न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय । सबमें समरस होनेके कारण, उनके लिये न कोई श्रेष्ठ है और न कोई अधम । शत्रु भी उनके लिये शत्रु नहीं हैं ॥ ३७ ॥ उनकी न कोई माता है, न कोई पिता, न कोई स्त्री है, न कोई पुत्र, न कोई अपना है, न पराया, न उनका कोई देह ही है और न कोई जन्म ही । ३८ ॥ सद्योनि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

या असद्‌योनिमें उनका जो अवतार होता है, वह कोरी क्रीड़ाके लिये । किन्तु वह क्रीड़ा भी साधुओंको कल्याणदायक सिद्ध होती है । अतः उनके लिये कोई कर्म नहीं है ॥ ३६ ॥ वे निर्गुण हैं, संसारातीत और अजन्मा हैं, फिर भी क्रीड़ाके लिये वे सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंका आश्रयण कर उनके द्वारा सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे घूमनेवालोंकी दृष्टि से पृथ्वी घूमती दीखती है, पर वस्तुतः वह घूमती नहीं, उसी तरह कर्तृत्व केवल चित्तमें है, फिर भी उसमें अहंकार होनेके कारण जीव अपनेको कर्ता समझता है ॥ ४१ ॥ भगवान् कृष्ण केवल आप दोनोंके ही पुत्र नहीं हैं, वे तो सभीके पुत्र हैं, आत्मा, पिता, ईश्वर आदि सब कुछ हैं ॥ ४२ ॥ जितनी चीजें तीनों कालमें देखी-सुनी जाती हैं, चाहे वह छोटी हों या बड़ी सबमें कृष्ण उपस्थित हैं । उनके अतिरिक्त कोई बड़ा है ही नहीं, वही परमार्थ सत् हैं ॥ ४३ ॥ राजन्, नन्द और उद्धवकी बात चीतमें वह सारी रात बीत

परित्राणाय कल्पते ॥३९॥ सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥४०॥ यथा भ्रमरिका-दृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्त्तैवाहंधिया स्मृतः ॥४१॥ युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥४२॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद् भविष्यत् स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद्वस्तु तरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥ एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ॥ गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्वास्तून्समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥ ४४ ॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ॥ चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डलत्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ॥ दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः ॥ दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥ अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥ किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ॥

गयी । ब्राह्ममुहूर्तमें गोपियोंने जागकर दीपक जलाया और वास्तुपूजनकर दही बिलोने लगीं ॥४४॥ दीपसे जगमगाते हुए रत्नोंसे वे बड़ी भली लगती थीं । रस्सी खींचनेसे कंकण बज रहे थे एवं नितम्ब, स्तन, हार हिल रहे थे । कुण्डल हिल डुलकर लाल कुंकुमसे विलिप्त उनके मुखकी शोभा और निखर रही थी ॥ ४५ ॥ उस समय गोपियाँ कृष्णका गुणगान गा रही थीं । उनके गानेकी ध्वनि आकाशमें व्याप्त हो गयी । उस ध्वनिने दही मथनेकी ध्वनिसे मिलकर दिशाओंका अमंगल मिटा दिया ॥ ४६ ॥ जब सूर्य उग आये, तो व्रजकी गोपियोंने नन्दबाबाके दरवाजेपर सुवर्णका रथ देखकर आपसमें पूछना प्रारम्भ किया कि यह रथ किसका है ? ॥ ४७ ॥ क्या कंसका हितैषी वह अक्रूर फिर आ गया, जिसने कमललोचन कृष्णको मथुरा पहुँचाया था ? ॥ ४८ ॥ क्या अब वह मरे राजाका हमलोगोंसे पिण्डदान करायेगा ? इस तरह व्रजकी स्त्रियाँ बोल रही थीं, उसी बीच नित्य क्रिया समाप्तकर उद्धवजो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

वहां आ पहुँचे ॥ ४६ ॥

छियालीसवें अध्यायका सार—गुरुकुलसे लौटकर भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवजीको व्रज भेजा। वे शाम होते-होते वहाँ पहुँचे। उस समय गोधूलीसे उनका रथ ढँक गया था, अतः किसीने भी उन्हें आते देखा नहीं। नन्दबाबाने उनका कृष्ण-सा ही दुलार किया। माता यशोदा और नन्दबाबा दोनों ही कृष्णकी स्मृतिमें डूबते-उतराते थे। उद्धवने उनके प्रेमको बहुत सराहा और बताया कि श्रीकृष्ण वस्तुतः परब्रह्म परमात्मा हैं वह रात उन लोगोंकी बातचीतमें ही समाप्त हो गयी। सबेरे वहाँकी स्त्रियोंने उनके रथ को खड़ा देखा तो उनके मनमें कई तरहकी तर्कनाएँ उठने लगीं—कहीं वह अक्रूर ही तो नहीं आया है जो हमारे श्रीकृष्णको मथुरा ले गया। अब आकर यह क्या हमलोगोंसे कंसका पिंडदान करायेगा? छियालीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(भ्रमर गीत)

श्रीशुक उवाच ॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ॥ पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥ शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ॥ इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २ ॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ॥ रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय सन्देशहरं

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन, गोपियोंने उद्धवको कृष्णके समान देखा। देखा कि ये आजानुबाहु हैं, कमलकी तरह उनके लोचन हैं, वे पीताम्बर और कमलकी माला पहने हुए हैं, कानोंमें मणिजटित कुण्डल है एवं उनका मुख बड़ा सुन्दर है ॥ १ ॥ पवित्र मुसकानवाली गोपियोंने उद्धवके विषय में आपसमें कहा—यह प्रियदर्शन कौन है, वहाँ से आया है, किसका भेजा हुआ आदमी है और इसने कृष्ण सरीखा पहिरावा क्यों पहन रखा है? कुछ लोगोंने उन्हें घेर लिया ॥२॥ जब उन्हें यह मालूम हुआ कि ये श्रीकृष्णके दूत हैं, तो उन्होंने उन्हें एकान्तमें जाकर बैठाया, विनयावनत हो सलज्ज हास्य, चल चितवन एवं मीठी बातोंसे उनका सत्कार कर पूछा ॥ ३ ॥ हम जानती हैं कि आप यदुपति श्रीकृष्णके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सन्देशवाहक हैं । उन्होंने माता-पिताको सुखी करनेके लिये आपको यहाँ भेजा है ॥४॥ नहीं तो, पशुओंके इस वासस्थानमें उनके स्मरण करने योग्य वस्तु ही कौन सी है ? यह भी सच है कि अपने परिजनोंका स्नेहबन्धन मुनियोंके भी छुड़ाये जल्दी नहीं छूटता ॥५॥ माता-पिताको छोड़कर दूसरोंसे जो प्रीति होती है वह स्वार्थको लेकर ही होती है । जबतक स्वार्थ सधता है तबतक तो प्रेम है, नहीं तो उसका कोई अस्तित्व नहीं । जैसे कि पुरुषोंकी प्रीति स्त्री-जातिपर स्वार्थको लेकर ही है, उसी तरह भौंरोंका पुष्पोंसे प्रेम केवल उनकी स्वार्थसिद्धि तक है ॥ ६ ॥ वेश्या दरिद्रको छोड़ बैठती है, असमर्थ राजाको प्रजा त्याग देती है, शिष्य पढ़नेके बाद गुरुका परित्याग कर देते हैं, दक्षिणा मिल जानेपर ऋत्विग् लोग यजमानको छोड़ देते हैं ॥ ७ ॥ पक्षी फल न रहनेपर वृक्षको छोड़ देते हैं, खा-पीकर अतिथि घरकी सुध भुला देते हैं । जले जंगलको मृग छोड़ देते हैं और जार पुरुष स्त्रीसे भोगकर भाग खड़े होते हैं । इस तरह सारी दुनियाँ स्वार्थको लेकर प्रेम करती है ॥ ८ ॥ गोपियाँ तो कृष्णमें तन, मन, वचनसे अनुरक्त थीं । कृष्णके दूत उद्धवको व्रज आनेपर तो वे सारी सुध-बुध खो बैठीं ॥९॥

रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ॥ भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥ अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ॥ पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत्सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥ निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ॥ दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥ इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ॥ कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥ गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ॥ तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ गोप्युवाच ॥ मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ॥ वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥ सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजे·

कृष्णने लड़कपनसे लेकर किशोर अवस्था तक जितनी लीलायें की थीं, उनका वे गान करतीं और उनकी याद आनेपर वे फूट-फूटकर रो पड़तीं । जब वे अपनेको भी भूल बैठी थीं, तो लाजका भूल जाना कोई आश्चर्य न था ॥ १० ॥ किसी गोपीको एक भौंरा दीख पड़ा । उस समय वह प्रिय मिलनकी लीलामें तल्लीन थी । अतः उसे कृष्णका दूत समझ वह बोली ॥११॥ गोपीने कहा—मधुप, तुम उस छलियाके मित्र हो अतः मेरे चरणोंको न छूओ । मेरी सौतके स्तनोंसे मसली गई कृष्णकी वनमालाका पराग तेरी मूँछोंपर लगा है । कृष्ण उन मथुराकी मानिनियोंको ही मनाया करें, उनका वह प्रसाद यादवोंकी सभामें उपहासके योग्य है, उन्हींको मुबारक हो । जिसका दूत ही लम्पट हो उस मनुष्यकी लम्पटताका क्या पूछना ? । १२॥ जैसे तुम एक फूलको छोड़कर दूसरेपर जा टूटते हो, उसी तरह तुम्हारे कृष्ण भी बड़े स्वार्थी हैं । उन्होंने केवल एक बार ही अधरसुधाका पान कराया था, फिर तो यहाँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से दूर जा पहुँचे। पता नहीं लक्ष्मीजी क्यों उनकी सेवा-टहल करती हैं। मालूम पड़ता है 'उत्तमश्लोक' की झूठी बातोंमें फँसकर वे उधर खिंच गयी हैं। किन्तु मैं उनकी जैसी भोली नहीं, जो उनके बहकावेमें आ जाऊँ ॥१३॥ मधुकर, तुम यहाँ कृष्णका इतना गुनगान क्यों सुना रहे हो। मैं उनकी सभी पुरानी बातें जानती हूँ। अतः उनके बहकावेमें पड़नेकी नहीं। तुम मथुरावासिनी स्त्रियोंके पास जाकर यह अनुनय-विनय करो, कृष्णके आलिङ्गनसे उनके वक्षःस्थलकी पीड़ा कम हुई है, वे तुम्हारे कृष्णको बातें सुनेंगी वे उनकी दुलारी हैं, तुम्हे वे मुँहमागा देंगी ॥ १४ ॥ मैं भी उनकी चर्चा नहीं करती। पर क्या करूँ, बस नहीं चलता। मेरा यह विश्वास है कि स्वर्ग, पृथ्वी, पातालमें ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जो उनके कपटभरी मधुर मुसकान एवं भौंहोंके नाचनेसे वश न हो जाय। जब लक्ष्मीजी भी उनके चरणोंकी धूलके लिये तरसती हैं, तो मेरी कौन गिनती है ? फिर भी तुम उन्हें याद दिलाना कि लोग उन्हें उत्तमश्लोक कहते हैं यह शब्द दीनोंके ऊपर अनुकम्पा करनेवाले पुरुषमें ही व्यवहृत होता है। अपनी इस विरदावली की वे रक्षा करें ॥१५॥ मेरे पैरोंपर सिर न रखो, मैं तुम्हारी

जेऽस्मान्भवादृक् ॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ॥ चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ॥ स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥ मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृतविरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ॥ बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीला-कर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ॥ सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥१८॥

चाटुकारिता जानती हूँ। अतः तेरे जालमें इससे मैं नहीं फँसने की। मालूम पड़ता है, तुमने कृष्णसे ही यह चाटुकारिताकी कला सीखी है, हो बड़े घुटे-घुटाये। भला जिनके लिये तो मैंने अपने पुत्र, पति एवं अन्य बन्धुओंका परित्याग कर दिया, चंचलचित्त वेही मुझे यहाँ छोड़ भागे। फिर उनपर मैं कैसे विश्वास करूँ ॥ १६ ॥ तुम शायद उन्हें नहीं पहचान पाये हो, मैं तो उन्हें जन्म जन्मसे जानती हूँ कि वे कितने छलिया हैं। उनकी क्रूरता देखो, उन्होंने बेचारे बालीको व्याधकी तरह छिपकर मार गिराया। बेचारी शूर्पणखा तो काम विह्वल हो उनके पास पहुँची थी, स्त्री परवश होते हुए भी उन्होंने उसके नाक कान काट लिये। बलिने उनकी पूजा की, पर उन्होंने उसे बाँधकर पाताल भेज दिया, जैसे कौआ बलि खाकर भी उसके देनेवालेको तंग करता है। अब तो मैं सभी काले रंगवालोंसे नफरत करती हूँ। पर उस कृष्णकी कथारूप अर्थका भुलाना मेरे बसकी बात नहीं है ॥ १७ ॥ उनमें कुछ ऐसा ही जादू है जो उधर एक बार भी झुका कि अपनेपरसे अधिकार गया। उनका चरित और लीलामृतका एक कण भी जिसके कानमें पड़ जाता है, वह सारे द्वन्द्वोंसे छूट जाता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। इस संसारमें बहुतसे लोग तो तुरत घर-गृहस्थी छोड़कर फिरंट हो जाते हैं और पक्षियोंकी तरह चुन-चुनकर भीख माँगकर गुजारा करते हैं उनका चसका ऐसा ही होता है ॥ १८ ॥ जैसी भोली हरिणबालाएँ व्याधका गान सुनकर जान खो देती हैं उसी तरह हम गोपियाँ भी उनकी कपटी बातोंको सच समझकर मारी गयीं। हम उनके नखस्पर्शसे उत्पन्न तीव्र काम रोगको उनपर विश्वास कर ही बढ़ाती गयीं—हमें उनके नखस्पर्शसे उत्पन्न तीव्र काम रोगकी पीड़ा ही बार-बार देखनेको मिली। पर उसकी वे दवा न देकर भाग खड़े हुए। इसलिये कृष्णदूत, यदि तुम्हें कुछ बातचीत करनी हो, तो इसे छोड़कर और कुछ बातचीत करो ॥ १९ ॥ [भौंराँ चला जाता है औरस्वभावतः लौटकर फिर वहीं आ जाता है। गोपीने समझा कि भगवान्‌ने इसे इस बार फिर भेजा है, अतः अब वह उसे आदर देने लगीं, बोलीं—प्रियतमके दूत, प्रियतमके सन्देश लेकर तुम फिर आ गये ? मधुकर, तुम मेरे माननीय हो। मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। जो चाहो माँग लो। सौम्य, तुम मुझे वहाँ ले जाना क्यों चाहते हो ? उनका मिलन तो इस समय भी कठिन है, क्योंकि उनका तो प्रेम लक्ष्मीमें

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन्भण्य-
तामन्यवर्ता ॥ १९ ॥ प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ॥ नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यज-
द्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च
गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो
निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सान्त्वयन्प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥२२॥ उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोक-
पूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥२३॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णभक्तिर्हि
साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥ दिष्ट्या पुत्रान्पती-

है और वे तो सदा उनके साथ हैं वक्षःस्थलपर ही बैठी हैं ? ॥ २० ॥ अच्छा, यह तो बताओ कि कृष्ण क्या इस समय मथुरामें ही हैं। हे सौम्य, क्या वे माता पिता, घर, मित्र एवं स्वजनोंकी कभी याद भी करते हैं ? क्या हम दासियोंकी भी कभी कोई चर्चा करते हैं ? क्या अगरुसे सुगन्धित अपनी बाहें हमारे सिरपर फिर कभी रखेंगे ? ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, जब उद्धवने गोपियों को कृष्णको देखनेके लिये इतना आकुल देखा, तो उन्हें कृष्णका सन्देश दे उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा ॥ २२ ॥ उद्धवने कहा—गोपियो, आप-लोग धन्य हैं और संसारके लिये पूजनीय हैं। क्योंकि भगवान् कृष्णमें इस तरहसे मनको अर्पित कर दिया है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तपश्चर्या, होम, जप, स्वाध्याय, संयम और कल्याणकारी साधनोंसे कृष्णमें भक्ति प्राप्त होती हैं ॥ २४ ॥ पुण्यश्लोक भगवान्‌में आपने उसी पराभक्तिको परिनिष्ठित किया है, जो बड़े बड़े ऋषि महर्षियोंके लिये भी दुर्लभ है। यह कितने सौभाग्यकी बात है ॥ २५ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंने पुत्र, पति, देह, सगे सम्बन्धी एवं घरसे नाता तोड़कर कृष्णनामक परमपुरुष परब्रह्म परमात्माको वरण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया है ॥ २६ ॥ आपलोगोंने विरहके द्वारा अधधोक्षज भगवान्‌में सर्वात्मभावको प्राप्त किया है, जो बड़ा ही उत्तम है। हे कल्याणियो, यह आपका मुझपर भी बड़ा अनुग्रह हुआ है, इससे मैं भी कृतार्थ हो गया ॥ २७ ॥ कल्याणियो, मैं आपके कृष्णका दूत हूँ। आपलोगोंको मैं उनका वह सन्देश सुनाता हूँ, जिसे सुनकर आपको सुख मिलेगा ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णने कहा है—आपलोगोंसे मेरा वियोग तात्त्विक नहीं, क्योंकि मैं सर्वात्मा हूँ-सभी नाम रूपोंमें मैं ही अनुभूत हूँ जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश सभी प्राणीमें ओत-प्रोत हैं तथा सभी प्राणी उन्हींके परिणाम हैं, उसी तरह मैं भी मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रियों एवं उनके विषयोंका अधिष्ठान हूँ। मैं ही अपनी मायासे पञ्चभूत, इन्द्रिय और गुणरूप हो अपनेमें अपनेहीसे यानी उन गुणोंके द्वारा अपनेको निमित्त बनाकर स्वात्मभूत जगत्‌की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करता हूँ ॥ २९-३१ ॥ आत्माका स्वरूप ज्ञानमय है। वह विशुद्ध, मायासे

न्देहान्स्वजनान्भवनानि च ॥ हित्वाऽवृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥ विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतांप्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ॥ यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥ तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥ आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥ आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥ आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ॥ सुषुप्ति स्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥ येनेन्द्रियार्थान्ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥ एतदन्तः समाम्नायो योयः सांख्यं मनीषिणाम् ॥ त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ॥ मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥ यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥ ३५ ॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो

पृथक् एवं तीनों गुणोंसे असंग है। सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्—इन तीन माया वृत्तियोंसे वही परमात्मा प्राज्ञ, तैजस और विश्वरूपसे प्रतीत होते हैं ॥ ३२ ॥ जागा हुआ पुरुष जैसे स्वप्नकी वस्तुओंको मिथ्या समझता है, उसी तरह जिस मनसे वह रूप-रसादि इन्द्रिय विषयोंका चिन्तन करता है, उसे वह आलस्यरहित हो रोक ले ॥ ३३ ॥ जैसे सभी नदियोंकी गति समुद्रमें जाकर समाप्त हो जाती है, उसी तरह मनीषियोंके वेदाभ्यास, योग, त्याग, तप, दम, सत्य—इन सबकी अवधि इस मनका निरोध ही है ॥ ३४ ॥ यह ठीक है कि मैं आपकी आँखोंका प्यारा हूँ। फिर भी मैं जो आपलोगों से दूर रहता हूँ वह इसलिये कि आपलोग हमारा स्मरण करते रहें, मनमें हमारा सन्निध्य प्राप्त करें ॥ ३५ ॥ स्त्रियोंका चित्त जितना दूरदेशी प्रियतममें लगा रहता है, उतना समीपवर्ती-आँखोंके सामने रहनेवाले प्रियतममें नहीं लगता ॥ ३६ ॥ जब आपका मन सर्वथा लग जायगा, तो आपकी सभी चित्त-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वृत्तियाँ मिट जायँगी। फिर सतत स्मरणसे आप शीघ्र मुझे पा लीजियेगा ॥ ३७ ॥ आपने देखा ही था कि जो गोपी रोकी जानेके कारण रासलीलामें उस रातको सम्मिलित न हो सकीं, व्रजमें ही रह गयीं, वह मेरे स्मरणसे ही मुझे प्राप्त हो गयीं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, व्रजाङ्गनाओंने जब अपने प्रियतमका यह सन्देश सुना, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उस सन्देशसे उन्हें कृष्णकी और लीलाओंका स्मरण हो आया, वे उद्धवजीसे बोलीं ॥ ३९ ॥ गोपियोंने कहा—वह बड़े सौभाग्यकी बात है कि यदुवंशियोका शत्रु पापी कंस दल-बलके साथ मारा गया। यह भी सौभाग्यकी ही बात है कि कृष्णके सगे सम्बन्धियोंका मनोरथ पूरा हो गया और कृष्ण सकुशल इस समय उनके साथ हैं ॥४०॥ अच्छा, हे सौम्य, यह बतलाइये कि कृष्ण वहाँके नगर निवासिनी स्त्रियोंसे प्रेम करते हैं? वे तो स्नेहपूर्ण, सलज्ज हास्य एवं चल चितवनसे उनकी तो पूजा करती ही होंगी ॥४१॥ दूसरी गोपीने कहा कि कृष्ण तो प्रेमके विशेषज्ञ हैं एवं श्रेष्ठ स्त्रियोंके प्रिय हैं। तब वे उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों और विलासोंसे क्यों न रीझेंगे? ॥ ४२ ॥ तीसरी गोपीने

माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥३७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृतीः ॥३८॥ गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ॥ दिष्ट्याप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥ ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥४३॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ सञ्जीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥४४॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ॥ नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥४५॥ किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः आप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥४६॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया

पूछा कि—उद्धवजी, जरा यह बतलाइये कि जब नागरिक स्त्रियोंकी मण्डलीमें स्वच्छन्द बातचीत चलती है तो वे हम गाँवके ग्वालिनोंका कोई जिक्र करते हैं कि नहीं? ॥ ४३ ॥ चौथी गोपीने पूछा—कभी वे उस रासलीलाकी रातको स्मरण करते हैं या नहीं, जो कुमुद, कुन्द तथा चन्द्रमासे रमणीय बने वृन्दावनमें की गयी थी। हमलोग उनका गुणगान गा रही थीं और वे उस रासगोष्ठीमें, जिसमें कि हमारे नूपुरकी ध्वनियाँ गूँज रही थीं, हमारे साथ क्रीड़ाकर रहे थे ॥ ४४ ॥ पाँचवींने कहा—जैसे इन्द्र मेघोंके द्वारा जल बरसाकर वनको जीवित कर देते हैं उसी तरह मुखादिके दर्शन तथा स्पर्शनादिसे, उनकी ही दी हुई पीड़ासे सन्तप्त हमलोगोंको वे जीवन प्रदान क्या यहाँ करने आयेंगे? ॥ ४५ ॥ छठीं गोपीने कहा—कृष्णने तो शत्रुको मारकर राज्य पा लिया है। सभी सगे सम्बन्धियोंसे घिरे हैं ही, राज्यकन्याओंसे भी उनकी शादी हो गयी होगी। तो फिर वे यहाँ क्या करने आयेंगे? ॥ ४६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ ने कहा—अरी सखि, ऐसा न कहो। भगवान् कृष्ण तो परिपूर्ण आप्तकाम आत्माराम हैं उन्हें हम जंगली लोगों एवं राज्य-कन्याओं से क्या लेना-देना है। वे महात्मा तो लक्ष्मीके मालिक हैं ॥ ४७ ॥ यद्यपि पिंगला वेश्याने जो यह कहा था कि निराशा ही सुख है, उसे हम जानती हैं, फिर भी कृष्णमें हमारी आशा बँधी है, यह कितना आश्चर्य है ? और हटाये हटनेकी भी तो नहीं है ॥ ४८ ॥ न चाहनेपर भी लक्ष्मी जिनका अङ्ग नहीं छोड़ती, उन पुण्यकीर्ति भगवान्के एकान्त वार्ताको हम छोड़नेके लिये भी कैसे सोच सकती हैं ? ॥ ४९ ॥ उद्धवजी, देखिये यह नदी, यह पर्वत यह वनप्रान्त, ये गौएँ वही हैं, जहाँ भगवान् बलरामके साथ नित्य लीला किया करते थे। यहींपर वे वंशी बजाते थे, जिनका अनुराग आज भी साफ-साफ सुन पड़ता है ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णके ये उभरे पदचिन्ह बार-बार उनकी स्मृति जगा देते हैं, फिर हम उन्हें कैसे भूलें ॥ ५१ ॥ उनकी ललित गति, उन्मुक्त हास, लीलापूर्वक कटाक्षविक्षेप और मीठी बोलीसे हमारी बुद्धि उधर खींच गयी है। हम उन्हें कैसे भुलायें ? ॥ ५२ ॥ हे स्वामी हे लक्ष्मीरमण, हे व्रजनाथ, हे गोविन्द, आपने बार-बार हमारी पीड़ाएँ

॥४७॥ क उत्सहेते संत्यक्तमुत्तमश्लोकसंविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ॥४८॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ सङ्कर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥ पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥ गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ॥ माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥ ५१ ॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥ ५२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥ उवास कतिचिन्मासान्गोपीनां विनुदन् शुचः ॥ कृष्णलीला कथां गायन्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ॥ व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन्रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादिगोपीनां कृष्णावेशात्म-

मिटायी हैं। आज गोकुल दुःखके समुद्रमें डूब रहा है, जरा आकर इसे उबारिये ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—कृष्णका सन्देश मिल जानेसे उनका विरह दुःख दूर हो चुका था। वे कृष्णको आत्मरूपमें समझ गयी थीं। उन्होंने उद्धवका आदर किया ॥ ५४ ॥ गोपियोंका दुःख शान्त करनेके लिये उद्धवजी कुछ महीनेतक व्रजमें रह गये। कृष्णलीलाका गायनकर वे व्रजवासियोंको सन्तुष्ट रखते थे ॥ ५५ ॥ नन्दबाबाके व्रजमें जितने दिनोंतक उद्धव रहे, उतने दिन ब्रजवासियोंको क्षणके समान मालूम पड़े, क्योंकि कृष्णकी बात होते रहनेसे उन्हें किसीकी भी सुध न रह गयी थी ॥ ५६ ॥ उद्धवजी वहाँके नदियों, वनों, गिरिकन्दराओं और तराइयोंमें घूमते हुए एवं फूलसे लदे पेड़ोंको देखते हुए गोपियोंसे पूछते जाते थे कि यहाँ कृष्णने कौन-सी लीला की इस तरह कृष्णका स्मरण कराकर वे उन्हें सन्तुष्ट कराते थे ॥५७॥ उद्धवने जब गोपियोंमें कृष्णके प्रति इतना जबरदस्त आकर्षण एवंप्रेम विह्वलता देखी, तो उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार गाने लगे—पृथ्वीपर ये व्रजकन्याएँ ही धन्य हैं, क्योंकि ये सर्वस्वरूप गोविन्द भगवान्के महाभावमें स्थित हो गयी हैं। इस परमप्रेम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भावको मुमुक्षु मुनि भी चाहते हैं और मैं अभी चाह ही रहा हूँ। जिन्हें कृष्णकी कथामें रस मिल गया है, उन्हें ब्राह्मण आदिके कुलमें जन्म लेनेकी क्या जरूरत रह जाती है? ॥५८,५९॥ कहाँ वह बनैली स्त्रियाँ, जो जार बुद्धिसे ही कृष्णकी ओर झुकी हैं, और कहाँ तो इनका परमात्मा कृष्णमें वह परमप्रेम भाव! जिस तरह अनजानमें भी सेवन करनेसे दवा लाभ पहुँचाती है, उसी तरह ईश्वरकी महिमा न जाननेपर भी जो उन्हें भजते हैं, वे भगवान्‌को पा लेते हैं ॥ ६० ॥ भगवान्‌ने जो प्रसाद इन व्रजाङ्गनाओंको रासोत्सवके समय इनके गलेमें बाँह डाल कर दिया है, वह नित्य संगिनी लक्ष्मीको भी न मिला, कमल-सी गन्ध तथा कान्तिवाली अप्सराओंको भी न मिला तब और अन्य स्त्रियोंके लिये तो कहना ही व्यर्थ है ॥ ६१ ॥ यदि भगवान् मेरी इच्छा पूर्ण करना चाहते हों, तो मैं उनसे यही वरदान माँगता हूँ कि वे मुझे वृन्दावनमें कोई लता, पौधा या तृण ही बना दें, जिससे कि मुझपर इन गोपियोंकी चरणधूल

विक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढ-भावाः ॥ वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥ ५८ ॥ क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ॥ नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥ नायं श्रियोऽङ्ग उनितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ॥ रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्ल-वीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥ या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६२ वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ॥ यासां हरिकथोद्-गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ॥ गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥ तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ॥ नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥ मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ॥ मङ्गला-

पड़ती रहे। इन्होंने बड़ा कठिन त्याग किया है, अपने परिजन एवं सनातन मार्गका भी परित्याग कर वे कृष्णकी पदवी में आयी हैं। श्रुतियाँ तो अभी उस पदवीको खोज ही रही है ॥ ६२ ॥ जिन भगवान्‌के चरणकमलोंकी पूजा लक्ष्मीजी करती हैं, आत्मकाम एवं योगेश्वर ब्रह्मा प्रभृति भी जिनका मनमें ध्यानभर करते हैं, उन चरणोंको महारासमें इन गोपियोंने अपने वक्षःस्थलसे आलिङ्गन कर दुःख मिटाये हैं ॥ ६३ ॥ मैं तो नन्दके व्रजकी इन स्त्रियोंके चरणरेणुकी बार-बार वन्दना करता हूँ। इन्होंने जो कुछ कृष्णकथाका गायन किया है वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रही है ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इसके बाद नन्द, यशोदा एवं अन्य ग्वालोंसे उद्धवजी अनुमति ले चलनेके लिये रथपर जा बैठे ॥ ६५ ॥ जब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनका रथ व्रजसे बाहर आया तब नन्द आदि लोगोंने तरह-तरहकी भेंट सामग्री लेकर वहां आये और मारे प्रेमके आँखोंमें आँसू भरकर कहा ॥ ६६ ॥ उद्धवजी, हम चाहते हैं कि हमारी चित्तवृत्तियाँ कृष्णके चरणोंमें आकृष्ट हो जायँ, हमारी वाणी उनके नाम संकीर्तनमें एवं शरीर उनके नमनमें लगा रहे ॥ ६७ ॥ कर्मके द्वारा परमेश्वरकी इच्छासे जिस किसी भी योनिमें हमारा जन्म हो, उन सभी योनियोंमें उत्तम कर्म दान आदि करते हुए हमारी प्रीति कृष्णमें बनी रहे ॥ ६८ ॥ हे राजन्, इस तरह कृष्ण भक्त गोपोंसे सत्कृत होकर उद्धवजी कृष्ण-पालित मथुरामें पुनः लौट आये ॥ ६९ ॥ कृष्णको नमस्कार कर उन्होंने व्रजवासियोंका प्रेम जतलाया और उसके बाद बलराम, कृष्ण एवं राजाको भेंट सामग्री प्रदान की ॥ ७० ॥

चरितर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ॥ उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

सैंतालीसवें अध्यायका सार—राजन्, गोपियोंने जब देखा कि यह आगन्तुक कृष्णसे मिलता-जुलता है और उन्हींका वेष बनाया है, तो उन्हें बड़ा कूतूहल हुआ और उन्होंने उन्हें घेर लिया। यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि ये कृष्णके भेजे हुए दूत हैं और उनका सन्देश लेकर आये हैं। वे तो कृष्णमय हो रही थीं। उन्हे एकान्तमें बैठा बात-चीत करने लगीं। इतने में एक भौंरा आया। एक गोपी कृष्णमिलनकी स्मृतिमें तल्लीन थी। देखते ही उसने उसे कृष्णका दूत समझा और बड़ी-बड़ी बातें कीं। वैसे ही अन्याय गोपियोंने भी कृष्णमें अपना अनन्य प्रेम दिखलाया। उद्धवपर इन सबकी बातोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उन्हें सान्त्वना देनेके लिये कृष्णके सन्देश सुनाये। वे बड़ी प्रसन्न हुईं तथा उन्होंने उनसे कृष्णके आनेके सम्बन्ध में अनेक तरहकी जिज्ञासाएँ कीं। उद्धव कई महीनों तक उन्हें सान्त्वना देनेके ख्यालसे वहाँ टिक गये। धीरे धीरे उनपर भी प्रेमका रङ्ग चढ़ने लगा और अब उन्होंने जाना कि गोपियाँ कितनी उत्कृष्ट कोटिकी भक्त प्रेमी हैं। उन्होंने यही कामना प्रकट की—वे वृन्दावनमें तृण, गुल्म बन रहें। इसके बाद वे मथुराको लौट आये। सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(श्रीकृष्णका कुब्जा और अक्रूरके यहाँ जाना)

श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥ महार्हो-

श्रीशुकदेवजीने कहा—इसके बाद सर्वस्वरूप अन्तर्यामी भगवान्ने काम पीड़ित कुब्जाके कल्याणके लिये उसके घर गये ॥१॥ उसका घर बड़े-बड़े तकियों एवं कामोत्तेजक वस्तुओंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भरा हुआ था। मोतीकी मालाएँ, ध्वजाएँ, चँदोवे एवं पलंगोंसे वह सजाया गया था। धूप एवं मालाओंसे सुगन्ध फैल रही थी। दीपक जगमगा रहे थे ॥ २ ॥ भगवान्‌को ऐसे घरमें आते देख कुब्जा घबड़ाकर जल्दीसे आसनसे उठ खड़ी हुई और सखियोंके साथ उनके पास आकर आसन आदि देकर उनका सत्कार किया ॥ ३ ॥ उद्धवका भी उसने अच्छी तरहसे सत्कार किया। किन्तु वे आसन छूकर भूमिपर बैठ गये। भगवान् कृष्ण भी लोकका अनुसरण करते हुए उसके बहुमूल्य आसनपर झट बैठ गये ॥४॥ कुब्जा भी स्नान, अनुलेप, वस्त्र, आभूषण, माला, इत्र, पान एवं अमृत तुल्य आसव आदिसे अपनेको सजाकर लजाती तथा लीलापूर्वक हँसती विलास भरी चितवनसे एवं कृष्णको देखती हुई उनके पास आयी ॥ ५ ॥ वह पहली संगतिसे लजा रही थी, भगवान्‌ने उसे बुलाकर उसके कंगनवाले हाथ पकड़कर शय्यापर उसे बैठा लिया और उसके साथ क्रीडा करने लगे। कुब्जाने केवल अङ्गरागका अर्पण-

पस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ॥ धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥ २ ॥ गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासनात्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा ॥ यथोपसङ्गम्य सखीभिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधु तयाभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ॥ कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ॥ प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥ आहूय कान्तां नवसङ्गमह्रिया विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ॥ प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥ सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ॥ दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ॥ अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥ आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ॥ सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितम् ॥ १० ॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः

कर यह पुण्य कमा लिया था ॥ ६ ॥ उसने कामतप्त स्तनों, छाती और नेत्रोंपर भगवान्‌के चरणोंको रखकर, उन्हें सूँघकर अपना रोग मिटाया। तथा उसने प्रियतमको जो आनन्दकी मूर्ति हैं, स्तनोंके बीचमें चिपटाकर बहुत दिनोंके हृदयकी जलन को शान्त किया ॥७॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, अङ्गरागका अर्पणकर कुब्जाने उस जगदीश्वरको प्राप्तकर लिया था, जो मुक्तिके मालिक हैं और मुश्किलसे प्राप्त होते हैं। किन्तु वह इतनी अभागिन थी कि उसने उनसे यही वरदान माँगा कि—प्रियतम, कुछ दिन यहीं मेरे साथ आनन्दसे रहिये। कमललोचन, मैं आपका साथ छोड़नेमें असमर्थ हूँ ॥८, ९ ॥ लोगोंको मान देनेवाले सर्व-नियन्ता भगवान् उसको अभीष्ट वर देकर, उसका आदर कर एवं स्वयं उससे सम्मानित होकर उद्धवके साथ अपने घर लौटे ॥ १० ॥ भगवान् सबके अधीश्वर हैं और वे जल्दी मिलते भी नहीं। फिर भी उन भगवान् विष्णुको पाकर जो अपनी क्षुद्रताके नाते उनसे विषयसुख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माँगता है, वह बड़ा दुर्बुद्धि है ॥ ११ ॥ इसके बाद भगवान् कृष्ण बलरामके साथ अक्रूरजीके घर गये। उन्हें उनसे कुछ काम था एवं उनकी चाह भी पूरी करनी थी ॥ १२ ॥ अक्रूरजीने दूरसेही उन नर श्रेष्ठ स्वजनोंको देखा। वे हर्षसे उठ खड़े हुए और उनको हृदयसे लगाया एवं नमस्कार किया ॥१३॥ जब अक्रूरजीने उनको प्रणाम किया, तो उन लोगोंने भी उनका अभिवादन किया। अक्रूरजीने उन्हें आसनपर बिठाकर विधिवत् पूजा की ॥१४॥ हे राजन्, चरणोदकको सिरपर चढ़ाया और दिव्य एवं उत्तम वस्त्र, इत्र, माला, आभूषणसे उनका सत्कारकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनके चरणोंको अपनी गोदमें ले सहलाते हुए बोले ॥ १५, १६ ॥ सौभाग्यकी बात है कि पापी कंस अपने दल-बलके साथ मारा गया। आपने यदुकुलको मिटनेसे बचा लिया एवं उसे समुन्नत बना दिया ॥ १७ ॥ आप दोनों प्रधान एवं पुरुष हैं, जगत्के कारण हैं एवं जगत्रूप हैं, आप दोनोंके बिना कारण-कार्यरूप

सहरामोद्धवः प्रभुः ॥ किञ्चिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्धवान् ॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १३ ॥ ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धारयन् शिरसा नृप ॥ अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसानम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ॥ प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥१६॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ॥ भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरन्ताच्च समेधितम् ॥१७॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किञ्चित्परमस्ति न चापरम् ॥१८॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥१९॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना ॥ एवं भवान्केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥२०॥ सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥२१॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदात्मनः स्यात् ॥ अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखण्ड-

कोई वस्तु नहीं है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्, अपनेको ही निमित्त बनाकर आपने जगत्रूपमें अपनेको व्यक्त किया है और इसमें काल आदि विभिन्न शक्तियोंसे प्रवेशकर सभी श्रुत एवं दृश्य वस्तुओंके रूपमें आपही प्रतीत हो रहे हैं ॥ १९ ॥ जैसे समस्त कार्य जगत्में पञ्चभूत कारण हो विभिन्न नाम-रूपोंसे प्रतीत होते हैं, उसी तरह आप हैं तो एकही, फिर भी अपनी इच्छासे अनेक रूपमें भासते हैं ॥ २० ॥ अपने सत्त्व रज और तमकी शक्तियोंसे आप विश्वका पालन, सर्जन एवं विनाश करते हैं। किन्तु आप उन गुण एवं कर्मोंसे बद्ध नहीं होते। आप तो ज्ञानात्मा हैं, फिर वे आपके बन्धनके कारण कैसे बन सकते हैं? ॥ २१ ॥ आप तो आत्मरूप हैं, आपमें देह आदि किसी उपाधिका होना सम्भव नहीं है, फिर जन्म-मरण ही कैसे हो सकता है, बन्ध और मोक्षकी तो बात ही दूर है। तथापि आपमें जो इन सबकी प्रतीति होती है, वह अविवेकके द्वारा ही ॥ २२ ॥ आपने अपने श्रीमुखसे कहा है कि पाखण्डियों एवं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुष्टोंसे जब-जब वेदपथ तोड़ा-फोड़ा जाता है, तब तब आप सत्त्वगुणका आश्रय ले अवतार लेते हैं ॥ २३ ॥ भगवन्, आपने बलरामके साथ आजकल वसुदेवके घरमें अवतार लिया है आप राक्षसोंकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंका संहारकर पृथिवीका भार उतारेंगे तथा अपने कुलके यशोंका विस्तार करेंगे ॥ २४ ॥ आपकी ही सभी देवता, पितर, भूत और राजा मूर्ति हैं। आपके चरणकमलकी धोवन गंगा हैं, जो तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। आप जगद्गुरु हैं। वही आप आज हमारे घरपर पधारे हैं, अत हमारे सारे घर बड़भागी बन गये हैं ॥ २५ ॥ आप भक्तवत्सल, सत्यवक्ता, मित्र एवं कृतज्ञ हैं। अतः कौन ऐसा बुद्धिमान होगा, जो आपको छोड़कर किसी दूसरेकी शरण जायगा। आप अपने भक्तोंको सब कुछ दे देते हैं, दानोपादानरहित अपने आपको भी आप उनपर निछावर कर देते हैं ॥२६॥ बड़े-बड़े योगेश्वर एवं ब्रह्मादि भी आपका स्वरूप नहीं पहिचानते। आप जन्म-मरणके क्लेशको नष्ट

पथैरसद्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं विभर्ति ॥ २३ ॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥ अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ॥ सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥ छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ३० ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥ स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते

करनेवाले हैं। फिर भी मैंने आपका दर्शन किया, यह कितने सौभाग्यकी बात है। अब आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, घर और देह आदिकी मोह रज्जुको, जो आपकी मायाकी प्रेरणासे है, काट डालिये ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरसे इस तरह पूजित एवं सन्तुष्ट होनेपर भगवान् हरिने मुस्कराकर अपनी वाणीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा ॥२८॥ श्री भगवान्ने कहा—आप हमारे गुरुदेव, चाचा एवं अपने कुलमें प्रशंसनीय महापुरुष हैं। हम आपकी सन्तान हैं अतः हम आपके रक्षा, पोषण और कृपाके पात्र हैं ॥ २९ ॥ जो कल्याणकामी पुरुष हैं, उन्हें तो आप सरीखे महात्माओंकी ही सेवा करनी चाहिये। देवता तो कर्म सचिव हैं, वे तो कर्मकी अपेक्षा रखकर ही उपकार करते हैं, किन्तु महापुरुष ऐसे नहीं होते। अतः महापुरुष उनसे बहुत ऊँचे होते हैं ॥ ३० ॥ केवल जल ही तीर्थ नहीं है और न केवल मिट्टी एवं पत्थर ही देवता हैं। सेवा करते रहनेपर बहुत दिनोंमें वे पवित्र करते हैं, पर साधुलोग तो दर्शनमात्रसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही पवित्र कर देते हैं ॥ ३१ ॥ आप हमारे मित्रोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, इसलिये आप अब पाण्डवोंके कल्याणके लिये हस्तिनापुर जाइये और उनका समाचार ले आइये ॥३२॥ पाण्डुके मर जानेपर माताके साथ वे पाँचो राजकुमार बड़े दुःखसे पड़ गये हैं। अब धृतराष्ट्रने उन्हें राज्यमें बुलवा लिया है और अब वे वहीं हैं, ऐसा हमने सुना है ॥ ३३ ॥ जन्मान्ध धृतराष्ट्र दुष्ट दुर्योधनके वशमें हो ओछी बुद्धिका हो गया है। वह पाण्डवोंपर समदृष्टि नहीं रखता ॥ ३४ ॥ जाइये और इस समय उनका समाचार अच्छा है या बुरा, यह जानिये। उनका समाचार जान हम उनका जैसे होगा कल्याण करेंगे ॥ ३५ ॥ जगदीश्वर भगवान् कृष्ण अक्रूरजीको यह आज्ञा देकर बलराम और उद्धवके साथ वहाँसे अपने घर लौटे ॥ ३६ ॥

बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥ तेषु राजाम्बिकापुत्रा भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ॥ समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥ ३४ ॥ गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ॥ विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥ सङ्कर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

अड़तालीसवें अध्यायका सार—भगवान्ने कुब्जाको मिलनेका वादा किया था। उसके अनुसार उद्धवके साथ वहाँ गये। उसकी मनोकामना पूरी हुई। वहाँसे लौटकर भगवान् कृष्ण बलराम और उद्धवके साथ अक्रूरजीके घर गये उन्होंने उनकी विधिपूर्वक पूजा तथा स्तुति की। बाद भगवान्ने उन्हें हस्तिनापुर जाकर पाण्डवोंका समाचार लानेका आदेश दिया। उस समय पाण्डव पिताके मर जानेके बाद धृतराष्ट्रकी ही देख-रेखमें रहते थे। पर धृतराष्ट्रका भाव उनपर अच्छा न था। अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त।

❁ अथ एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ❁

(अक्रूरजीका हस्तिनापुर गमन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, अक्रूरजी हस्तिनापुर पहुँचे। वह नगरी पुरुवंशी राजाओंके यशोगाथाका प्रदर्शनकर रही थी। उन्होंने धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक और

श्रीशुक उवाच ॥ स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोङ्कितम् ॥ ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥ सहपुत्रं च बाल्हीकं भारद्वाजं सगौतमम् ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान्सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसङ्गम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ॥

उनके पुत्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डव तथा अन्य लोगोंसे भेंट की। अक्रूरजी यथायोग्य सबसे मिलकर जब बैठे, तब लोगोंने उनका कुशल-क्षेम पूछा। उन्होंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी उनका समाचार पूछा ॥१–३॥ वे धृतराष्ट्रके व्यवहारको जाननेके लिये कुछ महीने वहीं ठहर गये । धृतराष्ट्रके लड़के बड़े दुष्ट थे, उन्हें बुद्धि न थी, परन्तु वह उनके प्रतिकूल न चल उनके इच्छानुसार व्यवहार करते थे ॥४॥ उन्हें कुन्ती एवं विदुरने बतलाया कि धृतराष्ट्रके लड़के पाण्डवोंके प्रभाव, ओज, बल, पराक्रम, नम्रता आदि सद्गुणोंसे जलते हैं। प्रजाओंका अनुराग तो उन्हें और खलता है । उन लोगोंने कई बार इनपर विषदान आदि नृशंस कर्म भी किये हैं ॥ ५, ६ ॥ कुन्ती अक्रूरजीके आनेपर उनके पास गई । उन्हें घरका स्मरण हो आया और उनकी आँखें आँसुओंसे भर गयीं । बोलीं–॥ ७ ॥ भाई, मेरे माता-पिता, भाई, बहन, भतीजे, बहिन सरीखी स्त्रियाँ एवं सखियाँ क्या कभी मेरी याद करती हैं ? ॥ ८ ॥ मेरे भाईके लड़के कृष्ण तो बड़े शरणागत प्रतिपालक एवं भक्तवत्सल हैं कमल सरीखे उनके नेत्र हैं । वे और बलराम क्या कभीं मेरी एवं मेरे पुत्रोंकी याद करते हैं ? ॥ ९ ॥ जैसे भेड़ियोंके

संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययन् ॥ ३ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमपसृत्य तम् ॥ उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा ॥७॥ अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वस्रेयान्स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥११॥ नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ॥ बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥१२॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुदद्दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ॥ सान्त्वयामासतुः

बीचमें हरिणी अकुलाती है, उसी तरह मैं अपने शत्रुओंके बीचमें पड़ी हूँ । क्या वे अपने वचनोंसे मुझे और मेरे अनाथ बच्चोंको आश्वासन देंगे ? ॥ १० ॥ ओ कृष्ण, तुम तो महायोगी, विश्वात्मा एवं विश्वके उज्जीवक हो । मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ, मेरे पुत्रोंके साथ तुम मेरी रक्षा करो, मैं अपने इन बच्चोंके साथ बहुत दुःख उठा रही हूँ ॥११॥ तुम्हारे चरण मोक्ष देनेवाले हैं, जो लोग मृत्युसे भीत हैं, उनके लिये तुम्हारे उन चरणोंके अतिरिक्त और कोई बचाव नहीं है ॥ १२ ॥ कृष्ण, तुम शुद्ध हो, बोधमय हो, परमात्मा हो, और योगके ईश्वर हो, तुम्हें नमस्कार है । मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ ॥ १३ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्, आपकी परदादी दुःखित होकर अपने आत्मीय जगदीश्वर कृष्णका अनुस्मरण कर इस तरह रोने लगी ॥ १४ ॥ अक्रूर और महायशस्वी विदुरजी तो सुख-दुःखको समान दृष्टिसे देखनेवाले थे । उन्होंने कुन्तीको, उनके पुत्रोंकी अलौकिक उत्पत्तिकी बात याद दिला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ढाढ़स बँधाया ॥ १५॥ जब वे मथुरा लौटने लगे, तो वे धृतराष्ट्रसे मिले। धृतराष्ट्र तो खुले आम पुत्रोंका पक्षपात कर रहे थे। अतः उन्होंने हितैषियोंके समक्ष श्रीकृष्ण और बलरामका वह सन्देश कह सुनाया, जो पूरी हितैषितासे भरा था ॥१६॥ अक्रूरजीने कहा—महाराज धृतराष्ट्र, आप कुरुवंशियोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले हैं। आप पाण्डुके स्वर्ग जानेके कारण इस गद्दीपर इस समय आसीन हुए हैं ॥ १७ ॥ यदि आप पृथ्वीका धर्मसे पालन करेंगे, प्रजाका अनुरञ्जन करेंगे एवं स्वजनोंमें समव्यवहार करेंगे, तो आपका बड़ा कल्याण होगा, आपको कीर्ति मिलेगी ॥ १८ ॥ यदि इसके प्रतिकूल आचरण करियेगा तो आपकी निन्दा होगी तथा आप परलोकमें पकड़े जायंगे। इसलिये अपने पुत्रों एवं पांडवोंको एक तरह से रखिये ॥ १९ ॥ इस संसारमें किसीको किसीके साथ आत्यन्तिक संयोग नहीं मिलता। राजन्, जब एक दिन अपने शरीरसे भी वियोग हो जाता है तो स्त्री-पुत्रोंका वियोग तो अवश्यंभावी है ही ॥ २० ॥ प्राणी अकेले ही उत्पन्न होता है और अकेले ही मरकर जाता है। अपने पुण्य-पापको भी अकेले ही भोगता है ॥ २१ ॥ जैसे जलचारीके अपने लोग ही उसके जीवन-

कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥१५॥ यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत्सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥१६॥ अक्रूर-उवाच ॥ भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ॥ भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् ॥ वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात्समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥१९॥ नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह ॥ राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥२०॥ एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ॥ संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥२४ ॥ तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम् ॥ वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यथा वदति कल्याणीं वाचं

भूत जलको पी जाते हैं, उसी तरह पुत्र-पौत्रादि परिजन यह कहकर कि 'हम तुम्हारे पुत्रादि हैं हमें धन दो' अभागे अभिभावकके पाई-पाई करके अधर्मपूर्वक कमाये गये धन लूट लेते हैं ॥ २२ ॥ मूर्ख मनुष्य अपने प्राण पुत्रादि को अपना समझकर पुष्ट करता है, किन्तु उसे विफल मनोरथ ही छोड़कर ये प्राण, धन लड़के आदि चले जाते हैं ॥ २३ ॥ वह लौकिक स्वार्थको भी नहीं समझता। वह स्वयं अपूर्ण मनोरथ होता है तथा प्राण पुत्रादिसे वह परित्यक्त हो उस पापीको पापोंका बोझ ले नरकमें घुसना पड़ता है ॥ २४ ॥ इसलिये राजन्, मायामय एवं स्वप्नके इच्छाकी तरह समझ, अपने आपपर काबू रख समव्यवहारका पालन कर शान्ति प्राप्त कीजिये ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रने कहा—अक्रूरजी, आप जैसी कल्याणी वाणी कह रहे हैं, उससे मुझे वैसे ही तृप्ति नहीं होती, जैसे किसी मरणधर्मा प्राणीको अमृतसे तृप्ति नहीं होती ॥२६॥ फिर भी जैसे सौदामिनी पर्वतपर बिजली स्थिर नहीं रहती उसी तरह आप-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की मीठी और हितकर वाणी पुत्र-प्रेमसे विवश बने हृदयमें ठहरती नहीं है ॥ २७ ॥ जिस ईश्वरका विधान कोई पुरुष पलट नहीं सकता, वही परमात्मा भूमिका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं ॥ २८ ॥ उनकी माया अतर्क्य है, उसी मायाके सहारे वे सृष्टिकर उसमें प्रवेश कर जाते हैं एवं गुणोंका विभाजन कर देते हैं । जिनकी लीलाशक्तिको कोई समझ नहीं

दानपते भवान् ॥ तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथाऽमृतम् ॥ २६ ॥ तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनात्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान्विभजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥ शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पाण्डवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पूर्वार्ध एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ इति पूर्वार्धः समाप्तः ।

सकता और जो संसार-चक्रको घुमाते हैं, उन मायापति परमेश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—अक्रूरजी धृतराष्ट्रका अभिप्राय लेकर सगे सम्बन्धियोंकी अनुमति ले फिर मथुरा लौट आये ॥ ३० ॥ वे तो इसी सन्देशके लिये यहाँ आये थे । हे कौरव्य, उन्होंने पांडवोंके प्रति किये गये धृतराष्ट्रके व्यवहारोंको सुना दिया ॥ ३१ ॥

उनचासवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, कृष्णजीने अक्रूरको हस्तिनापुर इसलिये भेजा कि वहाँसे पांडवोंका सच्चा समाचार ले आवें । कुन्ती एवं विदुरसे अक्रूरजीको धृतराष्ट्रके अपने पुत्रोंके प्रति किये गये पक्षपातका पता लगा । उन्होंने चेतावनीके दृष्टिसे भरी सभामें कृष्णका सन्देश कहा । फिर धृतराष्ट्रका सन्देश ले वे मथुरा लौट आये ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(पाण्डव पत्नी द्रौपदीसे सत्यभामाको यथोचित शिक्षा)

एक समय भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया सत्यभामाने एकान्तमें द्रौपदीसे यों कहा—हे पाञ्चालि, आप अपने युवा वीर पाण्डवोंसे कैसे व्यवहार करती हो। हे शुभे, ये तुम्हारे अनुकूल ही वशमें कैसे हैं, कभी भी क्रोधित नहीं होते नेसब तुम्हारे मुखकी तरफ देखते रहते हैं। हे पाञ्चालि, इसके लिये कोई व्रत, तप, जप, होम, मन्त्र, तन्त्र, शृंगार आदि हो तो कहो, जिससे मेरे पति श्रीकृष्ण वशमें हों। हे सत्ये, तुम तो पुँश्चलि स्त्रियोंके ऐसा आचरणवाला प्रश्न कर रही हो। हे सुन्दरि भगवान् कृष्णकी प्रिया होनेपर भी तुम्हें ऐसी बुद्धि क्यों हुई यदि पति यह जान जाय कि मेरी पत्नी मन्त्र, तन्त्र आदि उपायोंसे मुझे वशमें करना चाहती है तो वह घरमें प्रवेश किये हुए सर्पके तुल्य घबरा अशान्त वातावरण में फँस कर कठिन रोगोंका शिकार हो जाता है। इन मूर्ख स्त्रियोंने पतियोंको वशमें करनेका ऐसा दुष्प्रयोग कर डाला, जिनसे जलोदर एवं श्वेत कुष्ठ सम्पन्न हो असमयमें वृद्ध, नपुंसक, पागल, अन्धे और बहरे हो जाते हैं। इसलिये मन्त्र तन्त्रोंसे पति वशमें नहीं हुआ करते। हे सत्यभामे, मैं उन पाण्डवोंके साथ जो आचरण करती हूँ उसे बतलाती हूँ। सुनो अहंकार, काम, क्रोध और ईर्ष्याको छोड़ बड़े सावधान चित्तसे पापाचरणोंसे रहित इन पाण्डवोंकी सेवा करती हूँ। देव, मनुष्यु, गन्धर्व भूषणोंसे विभूषित, तरुण धनवान् तथा सुन्दर पुरुष क्यों न हो मैं किसीको नहीं जानती। मैं तो केवल अपने पतियोंके भोजन, स्नान और शयनके पहले न तो भोजन करती, न स्नान करती, न सोती हूँ। एवं सेवकोंसे पूर्व भी भोजन न शयन ही करती हूँ। मैं उन पतियोंकी अनेक तरहसे सेवा करती हूँ। घरके सारे कार्योंपर स्वयं ध्यान रखती हूँ तथा न कभी पतिसे तिरस्कृत करनेवाली वाणी कहती और न कभी दुष्ट स्त्रियोंका सहवास करती। परन्तु आलस्यको त्याग पतियोंके अनुकूल रहती हूँ। न तो कभी हँसती हूँ, न कभी द्वारपर बैठती हूँ, अकारण न कभी गुप्तस्थानसे बैठती हूँ न कभी बाग-बगीचेमें जाती हूँ पतियों से रहित कोई स्थान प्रिय मुझे नहीं है। लड़ाई झगड़ोंमें नहीं रहतीं मैं तो सदा सत्यताके पथपर रहकर भर्त्ताओं को भजती हूँ। किसी कुटुम्बके कार्यसे जब पति बाहर जाते हैं, तब मैं पुष्पमाला, उबटन, लेप आदिका त्याग कर देती हूँ और व्रत करने लगती हूँ। जिसको वह नहीं चाहते, उसे मैं भी नहीं चाहती। हे वराङ्गने, जो कुलक्रमागत मेरी सामने भिक्षा, बलि, श्राद्ध, पर्वोंपर दान, महामान्योंकी पूजा और सत्कार आदि धर्म बतलाये हैं तथा अन्य धर्म भी जो मुझे मालूम हुए, उनका सावधानीसे रात दिन पालन करती हूँ। हे महाभागे, स्त्रियोंका सब धर्म पति ही है, इस लिये अपने पतिका कभी भी अहित नहीं करे। मैं तो पतियोंकी आज्ञाका कभी भी उल्लंघन नहीं करती न अधिक भोजन करती, न अधिक शृंगार करती, न कभी सासकी निन्दा करती। हे सुभगे, इन कारणोंसे ये पति मेरे वशमें हैं। वस्त्र, आभूषण तथा भोजन देनेमें विलम्ब नहीं करते, न कभी पृथ्वीके तुल्य पूज्य कुन्तीकी कुछ समालोचना करती हूँ। मैं जिन आठ हजार वेदपाठी ब्राह्मणोंको मेरे पति युधिष्ठिर भोजन और तीस हजार दास-दासियोंका खान पान, से पालन-पोषण करते थे, उन लोगोंकी मैं भोजन और वस्त्रसे पूजा करती रहती थी। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके राजभवनमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कंकण, कुण्डल और अलंकारोंसे विभूषित अमूल्य माला तथा सुन्दर वर्णवाली नाचनेमें कुशल उन उन एक लाख स्त्रियोंका मैं नाम, रूप तथा भोजनकी व्यवस्था करती थी। उस समय मेरा उनके कार्योंपर हाथ था। हे कल्याणि, यशस्विनी, इन युधिष्ठिर सहित पाण्डवोंके अकेले ही मैं आय-व्ययको देखती थी। हे वरानने, ये सब पाण्डव मुझपर ही भार छोड़कर भजन-पूजन पाठमें संलग्न हो जाते थे और धनसे परिपूर्ण कोषको मैं अकेली जानती थी। हे सत्ये, मेरे इन सब कार्योंसे ही 'वशीकरण' होता था। ये सुन भगवान् कृष्णकी प्रिया सत्यभामाने कहा--हे पाञ्चालि, मेरे अपराधको क्षमा करो। फिर द्रौपदीने कहा--हे सखि, मैं स्वामीको वशमें करनेका तरीका बतलाती हूँ जिससे तुम अन्य कामिनियोंसे अपने पतिको सुरक्षित रख सकोगी। हे सत्ये, सब लोकोंमें पतिके तुल्य कोई देव नहीं। पतिके सन्तुष्ट हो जानेसे सब कामनाएँ परिपूर्ण हो जाती हैं, पतिसे ही सन्तान, नाना प्रकारके भोग और विपुल कीर्ति प्राप्त होती है। हे साध्वि, इसलिये कपटको त्यागकर पवित्र प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा करो, उन्हें चातुर्यतासे उत्तमोत्तम भोजन, माला, चन्दन, आसन, पाद्य आदि द्वारा अर्चना करो। यदि ऐसा करती रहोगी तो वह तुम्हारेमें आसक्त रहेंगे। यदि किसी कार्यके लिये भगवान् श्रीकृष्ण नौकरानीको भेजें, तो तुमही उस कार्यको अपने हाथों द्वारा सम्पन्न कर दो। हे सत्ये, जिससे वह जान सकें कि यह मुझे ही चाहती है, कुछ कहें तो उसे गोपनीय बात न होनेपर भी किसीसे मत कहो। पर-पुरुषसे मदभरी बातोंका त्यागकर अपने हृदयको इष्टदेव पतिको अर्पण कर दो। एकान्तमें अपने पुत्र प्रद्युम्न तथा साम्बसे बात मत करो और क्रोधी, धूर्त, अधिक भोजी, दुष्ट, चञ्चल आदि स्त्रियोंसे दूर रहो। यह उपाय साध्वी स्त्रियोंके लिए है भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे बात-चीत समाप्तकर द्वारकामें जानेके लिये सत्यभामाको बुलाया। उधर सत्यभामाने द्रौपदीसे आलिंगन और द्रौपदीकी प्रदक्षिणा कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके रथकी ओर गमन किया। उधर भगवान् श्रीकृष्णने कुछ मुस्कराकर द्रौपदीको आश्वासन दे शीघ्रगामी अश्वोंके रथसे अपनी द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। ❀

--दौलतराम गौड

❀ देखिये—महाभारत।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हमारे यहाँ की प्रकाशित संस्कृत पुस्तकें छपकर तैयार हैं—

एकबार मँगाकर परीक्षा कीजिये।

- वाल्मीकीय रामायण भाषा १४)
- विनय पत्रिका मूल १)
- श्रीमद्भगवद्गीता भाषा २)
- मानसागरी भाषा टीका ८)
- माधवनिदान भाषा टीका ६)
- माघ माहात्म्य भाषा टीका ३)
- मुहूर्त चिन्तामणि सान्वय भाषा टीका। ३॥)
- रामायण सटीक सुपररायल १३)
- लघुसंग्रह भाषा टीका १॥)
- मनुस्मृति भाषा टीका ३)
- लग्नचन्द्रिका भाषा टीका २)
- शीघ्रबोध भाषा टीका १)
- शिवस्वरोदय भाषा टीका ॥।)
- स्तोत्र रत्नाकर बड़ा ३)
- स्तोत्र रत्नाकर गुटका ३)
- सुखसागर मध्यम १२)
- गणपतिपूजा =)
- रुद्राष्टाध्यायी ॥।)
- संध्या और तर्पण ≡)
- सन्तानगोपाल स्तोत्र =)
- गोपालसहस्रनाम ।=)
- गोदान प्रयोग =)
- वासिष्ठीहवनपद्धति ।)
- अनन्तव्रत कथा ।=)
- ऋषिपञ्चमीव्रत कथा ।=
- स्वस्त्ययनकलशप्रतिष्ठा =)
- तर्पण सविधि ≡)
- दुर्गासप्तशती भाषा टीका २)
- दुर्गासप्तशतीमूल १६ पेजी १॥)
- दुर्गासप्तशती मूल ६४ पेजी ॥।)
- सत्यनारायणव्रत कथा ॥)
- किरातार्जुनीय ३ सर्ग २।)
- जातकालंकार भाषा टीका ॥)
- ज्योतिषसार भाषा टीका ३=)
- जीवित पुत्रिका भाषा टीका ।)
- बटुकभैरवस्तोत्र =)
- यज्ञोपवीत भाषा टीका ॥।=)
- ताजिक नीलकण्ठी भाषा टीका ३)
- विवाहपद्धति भाषा टीका ॥।=)
- तर्कसंग्रह न्यायबोधिनी भाषा टीका १)
- दुर्गापाठ ३२ पेजी साँची ॥≡)
- दुर्गाकवच मोटा ३२ पेजी ≡)
- गरुड पुराण भाषा टीका ३।)
- पार्थिवपूजन -॥)
- बहुलाव्रतकथा भाषा टीका =)।
- वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड मूल गुटका रेशमी २)
- गीताभाषा १८ अध्याय १॥)
- ब्रह्मानंद ३२ पेजी ५०० भजन १।)
- महाभारत भा० सम्पूर्ण ५)
- इन्द्रजाल चार भाग ४)
- बूटी प्रचार वैद्यक ३॥)
- पुरुषोत्तममहात्म्य भा० टी० ४)
- होड़ाचक्र भाषा टीका =)
- गयामहात्मय भा० टी० १॥)
- निर्णयसिन्धु १०)
- चाणक्यनीति दर्पण भा० टी० ॥।=)
- वैसाखमास माहात्म्य भा० टी० ३)
- कर्मविपाक भा० टी० ३॥)
- कार्तिक माहात्म्य भा० टी० ३)

मिलने का पता—**बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्त बुकसेलर,**

राजादरवाजा, ब्रांच-कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(दशम-स्कन्धपूर्वार्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६९ पुष्पलता

(दशमस्कन्ध-उत्तरार्ध)

श्रीमद्भागवतभाषाटीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलङ्कृत]

संपादक—उत्तर प्रदेशीय-सरकार द्वारा-सम्मानित-विद्वान्-आचार्य-श्रीदौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(सत्यभामा द्वारा श्रीकृष्णदान)

हे वेदवन्द्य, जगदोद्धारक मन्मथके जनक, त्रिभुवनसुन्दर, ब्रह्मानन्दमत, अति उदार, द्वारका नगरवासी, तुम्हारी जय हो जय हो। तुम्हारी उदारता बहुत बड़ी है। विभीषणने तुम्हें केवल नमस्कार किया था और तुमने उसे जबतक चन्द्र-सूर्य हैं तब तकके लिए सारी लङ्कापुरी दे दी। सुदामा अत्यन्त दरिद्र था उसको तुमने द्वारकाके समान नगरी दे दी। कंसको मारकर मथुरामें उग्रसेनको स्थापित किया। सुग्रीवको तुमने किष्किन्धा दी और बालीको नीचे ढकेला। हे पांडवपालक गोविन्द, तुम भक्तोंको वर देनेवाले और जगत्पति हो। तुम्हारी महिमा अचिन्त्य है। भगवन्, तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारी उस समयकी विभूतिका आज वर्णन करने जा रहा हूँ, जिस समय सत्यभामाने तुम्हें नारदको दान दे दिया है श्रोतागण, आप भी सुने। वह सच्चिदानन्द अमूर्त परमात्मा द्वारकामें मूर्त रूपसे अवतीर्ण हुए। वह श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् रातमें आरामके समय सत्यभामाके मन्दिरमें सो रहे थे। वह दिन था तो वस्तुतःमित्रविन्दाका दिन, किन्तु भगवान् गलतीसे सत्यभामाके घर आ गये। कमरपर दोनों हाथ रखकर सत्यभामाके द्वारपर खड़े होकर मुरारीने कहा–सत्यभामा, गोविन्दको जब देखा तो उनने कहा–मित्रविन्दे, तुम सुखसे हो न ? मुग्धे, तुम्हारे लिए मैं रातमें आया हूँ। ऐसा भाषण सुनकर सत्यभामाका मन क्षुब्ध हो उठा और वह मनमें कहने लगी–अरे कपट नाटकवाले, मुझे सौतके नामसे पुकारते हो। मित्रविन्दाके नामसे यादवेन्द्रने मुझे पुकारा, तो मैं उनका दूसरा नाम रखूँगी। मेरा नाम छोड़कर दूसरे नामसे मुझे तुमने क्यों पुकारा ? फिर श्रीकृष्णसे कहने लगी—आइये, आइये, क्यों कंसजी, मथुरा छोड़कर यहाँ द्वारकामें क्यों आये। बैरीका नाम सुनकर पुरुषोत्तम क्षुब्ध हुए और कहने लगे—तुमको क्या भ्रम हुआ, जो मुझे कंस कहती हो। तुम क्या पागल हो गई हो, जो मुझे कंस कहती हो। तब झूठ-मूठकी आँखें पोंछती हुई भगवान्से सत्य भामा कहने लगी। गोविन्द, कहाँ है मित्रविन्दा जल्दी दिखाओ। यह शब्द सुनकर मुकुन्दको हँसी आ गई। सत्यभामा का गर्व जानकर जगन्मोहन झट वहीं छिप गये। सत्यभामा चारो ओर देखने लगी। कहने लगी—भगवान्को समझाऊँगी। किन्तु भगवान् हाथसे चले गये। साधकको गर्व करनेसे आत्म प्राप्तिका अनुभव कैसे हो सकता है। अति गर्वसे सत्यभामाका भी वही हाल हुआ, वह कहने लगी—हाथका धन चला गया, मैं कैसी भ्रान्त हो गई। मैंने दिव्य रत्नको फेंक दिया अमृतपात्र उड़ेल दिया। घरमें आये हुए परब्रह्मका पापिनी मैंने तिरस्कार किया कामधेनु घरमें आई और उसे पीटकर मैंने बाहर खदेड़ दिया। तदनन्तर वह विह्वल होकर गिर गई। घरमें आये परमात्माका तिरस्कार किया जानकर वह सखियोंसे कहने लगी कि मेघश्यामसे भेंट करा दो। सत्यभामाने इन्दिरावरको लानेके लिए दूती भेजी। उसने यदुवीरके पास जल्दी जाकर क्या प्रार्थना की सो सुनिये। दूतीने जाकर कहा—हे जगजीवन, शीघ्र सत्यभामाके यहाँ चलिए। आपके लिए कमलनयना वह बहुत विह्वल हो गई है। उसे दिव्य फूलोंके हार विषधर साँपकी तरह लगते हैं। यादवेन्द्र, आपके बिना उसको मन्दिर शून्य लगता है। दूतीको वस्त्राभरण देकर भगवान्ने उसका खूब सम्मान करते हुए कहा—हे गजगमने ! अब मेरा जाना एकदम असम्भव है। इधर सत्भामा मन्दिरमें हरि प्राप्तिके लिए खेद कर रही थी। बार-बार दरवाजेपर आकर देखती थी और कहती थी—क्या मुरारि नहीं आया। सेजपरका हार सूख गया। अगरू चन्दन भी खराब हो गया। रोशनी फीकी पड़ गई। मेरे मनको मुरहरने हर लिया। जगन्निवास, तुम कहाँ फँसे हो। किस सौभाग्यवतीके पास गये हो। यह तो चक्र चालक हमलोगोंका ही केवल भर्ता नहीं है। या मेरे घर आते समय वनमालीको कोई दूसरी स्त्री रास्तेमें मिल गई। जिस सखीको भेजा उसकी क्या गति हुई। आज रात बीत नहीं रही है आकाशके तारे अस्त नहीं हो रहे हैं। अभी सूर्य उदय नहीं हो रहा है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चक्रवाक अभी देखते ही हैं। ऐसा विचार कर ही रही थी कि उतनेमें अकस्मात् दूती आ धमकी। उससे पूछा श्रीपति क्यों नहीं आये, कहो। तुम्हारी साँस ऊपर नीचे यों क्यों चल रही है, मुझसे कहो। उसने कहा—मैं जल्दी दौड़ी आ रही हूँ, इसलिए साँस चढ़ गई है। फिर पूछा—तुम्हारे शिरके केश क्यों बिखरे हैं। उसने कहा—कृष्णके चरणमें जब मस्तक रखा, तो कृष्णने ऊपरके-ऊपर ही उठाया, इसीलिए ये बिखरे हैं। फिर पूछा-तुम्हारा यह कोमल वस्त्र पसीनेसे भींग गया है, तुम क्या विचार करके आई हो, सो मैं नहीं समझ पाती। उसने कहा—मत्स्यावतारी भगवान्को मैंने सब सागरमें खोजा, मेरे वहाँ प्रवेश करते ही मेरा वस्त्र भींग गया। तुम्हारी दृष्टिमें ऐसी धुन्द क्यों है। तुम्हें नींद नहीं आई, यह बात सच है, किन्तु तुमने भगवान्के साथ सम्भोग किया है इसीके सब चिन्ह दीखते हैं। उसने कहा—कूर्म भगवान् तुम्हारे पति हैं। उसकी बड़ी तीखी नजर है, उससे शरीरमें सब भाव आ जाते हैं। सत्यभामाने कहा—तुम्हारे ओंठ तो देखो, मालूम पड़ता है कि चुम्बन लेते समय उसने काट लिया है। दूतीने कहा—भगवान् एकदम सूकर हो गये थे, इसलिए मुझे एकदम उनका दाँत लग गया। सत्यभामाने कहा—तुम्हारे स्तनमें नख चिन्ह दीखते हैं। ओहो, मैं बड़ी बुद्धिमती निकली कि दूधकी रक्षाके लिये मैंने बिल्ली भेजी। दूतीने उत्तर दिया—तुम्हारे पति नरसिंह हो गये, उनका मैंने हाथ पकड़ा कि चलो जल्दी करके तब उस दैत्यनाशक क्रोधीने मुझे निर्दय कचोट लिया, उससे उसके नख लग गए। तुम मुझे दोष क्यों दे रही हो। सत्यभामाने कहा-तुमको जल्दी भेजा था, इतनी देर तुम कहाँ थी। और तुम गजगामिनीको उसने उत्तर क्या दिया। दूतीने कहा—तुम्हारा मेघनील पति बलिका द्वारपाल हो गया है। उसको ढूँढ़ते रसातलमें गई, इसलिये देर हो गई। सत्यभामाने कहा—दिव्य सारी और यह चोली मुझे भी कभी वनमालीने आजतक नहीं दी। सनकादिकोंको भी चरणधूलि नहीं मिलती, फिर तुम्हें वस्त्र कैसे मिले। दूतीने कहा—तुम्हारा पति तो परशुधर है। उसने क्षत्रियोंको मारकर भारी जय पायी है। वहीं मैं जाकर जल्दीसे उसके सामने खड़ी रही। तब तुम्हारी सखी समझकर उसने मुझे यह विदाई दी। तुमको मेरा विश्वास न होगा इसके लिए मैं यह निशानी लाई हूँ। भामाने कहा—तुम्हारे कपालका अर्धचन्द्रका तिलक कैसे मिट गया, कहो? दूतीने प्रत्युत्तर दिया। रामने बन्दी ग्रहोंको मुक्त किया, उसीमें परम क्रूर राहु भी छूटा। उसको देखकर यह चन्द्र भी भाग निकला। भामाने कहा—तुम्हारे शरीरमें पतला चन्दनागरका लेप था वह पसीनेसे क्यों बह गया? बारह गावोंमें जब आग लगी तब कृष्णने उसको पी लिया। उस समय मुझे पसीना आ गया और उसीके कारण चन्दन लिप गया। भामाने कहा—तुमने वहाँ इतनी देर क्यों लगाई? दूतीने कहा—तुम्हारा पति बौद्धावतार धारणकर शस्त्र-वस्त्रोंसे रहित होकर अरण्यमें घूमने लगा और वह अव्यक्त कहीं दीखता नहीं था, अतः देर हो गई। भामाने कहा—तुम्हारा मुखचन्द्र क्यों म्लान हो गया है? सुन्दर अञ्जन क्यों बह गया? तुमने निश्चय कृष्णका सम्भोग सुख पाया है, अब नाहकमें लिपा-पोती कर रही हो। दूतीने कहा—ठीक-ठीक सुनो! तुम्हारे पतिको देखने गई, तो एकदम उसको म्लेच्छोंका उत्कर्ष देखकर क्रोध चढ़ आया। हाथमें तलवार लेकर घोड़ेपर बैठनेके लिए तैयार हो गया वह क्रोधसे मुझे कुछ नहीं बोला। श्री हरि मुझसे बोलते नहीं यह देखकर मुझे रुलाई आ गयी। उससे अञ्जन भी बह गया और मुखचन्द्र भी उतर गया। तब सत्यभामाने कहा—तुम तो बहुत अच्छा लिपा-पोती जानती हो। खैर, मेरे लिए तुमने बहुत श्रम किए, अब सुखसे जाकर सो रहो। दरवाजा लगाकर सत्राजित पुत्री सेजपर सो गई। उसे अन्दर विरहाग्नि जला रही थी। आँखोंसे आँसू बह रहे थे। वह कहने लगी—हे जगदोद्धारक, हे श्रीकृष्ण, हे वासुदेव, हे यादवकुल तिलक, हे दयासागर, इस समय शीघ्र प्रसन्न होइये। अन्दरका भाव जानकर भगवान् दयासागर केशव तत्काल आकर दरवाजेपर अंगुली बजाने लगे। वह जानकर सत्यभामा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को मजाक करनी सूझी, उसने कहा—कौन चोर इस समय दरवाजा खटखटा रहा है। भगवान्‌ने कहा—हे कुटिले, मैं माधव, इस समय आया हूँ। तुम्हारी आँखे नींदसे भ्रान्त हैं। पोछ-कर जरा देख तो लो। तब भामाने कहा—माधव माने वसन्त वह तो वनमें रहता है, यहाँ क्यों आया ? हरिने कहा-मैं चक्रधर तुम्हारे घर आया हूँ। भामाने कहा—तुम कुम्हार हो तो रातमें किस लिए आये भाई ? हरिने कहा—मैं धरणीधर हूँ। भामाने कहा-तुम शेष हो, तब कहो किसे डसने इतनी रातमें आए हो। कृष्णने कहा—कालिय नामक जो पापी सर्प था, उसको मारनेवाला मैं महावीर हूँ। भामाने कहा—ओह ! तुम तो गरुड़ हो, रातमें क्यों आए भाई ? फिर कृष्णने कहा—मैं भोगके समय हरि आया हूँ तब वह सुन्दरी खिलखिला हँसने लगी और कहने लगी-यानी तुम निश्चित बन्दर हो। अरे बन्दर अपना वन छोड़कर क्यों आए। जल्दी जाओ, मेरा पति अब आयगा। वह परमपुरुषार्थी है। तुम्हें शिक्षा देनेलगेगा वह सत्यवादी और एक पत्नीव्रती है, वैसा दूसरा कोई नहीं है। यह सुनकर श्रीकृष्णको हँसी आई। तब भामाने दरवाजा खोला और भगवान् अन्दर आए। भामाने उन्हें मुखसे नीचे तक देखा और आखिरमें दृढ़ चरण पकड़े। उसने कहा—हे आदि पुरुष नारायण ! मैं बहुत उद्धत वचन कह चुकी हूँ। अतः हे मनमोहन, मुझे क्षमा कीजिए। मैं दासी सर्वथा दोषी हूँ। फिर सत्यभामाने मधुकैटभारिको हाथ पकड़कर उन्हें सेजपर बैठाया और तब षोडशोपचारसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् सत्यभामाने कहा—इतनी देर तक कहाँ रहे। मेघश्यामने कहा-शिकार खेलते देर हो गई। सत्यभामाने कहा—आपके वदनसे और कुछ की गन्ध आ रही है। तब चातुर्यके सागर हृषिकेशने कहा—वनमें अनेक पुष्पमाला भक्तिसे गुथकर गलेमें डाली, इसलिए हे मृगनयने, तुम्हें दूसरी गन्ध मालूम पड़ी। भामाने कहा—हृषिकेश, आपको पसीना क्यों आ गया है। आपको बहुत श्रम हुआ, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। हरिने कहा—वनोंमें दौड़नेके कारण वदनमें पसीना आ गया। फिर भामाने कहा—हे केसरि, बड़ा आश्चर्य है कि आपके प्रवालके समान अधर चापे हुए से मालूम पड़ते हैं। हरिने कहा—बड़ी जोरसे शंख बजाया, इसलिए ऐसे हो गये हैं। सत्यभामाने कहा- ये बातें सत्य हैं; उसमें आप कुछ प्रमाण दे सकते हैं। हरिने कहा—अगर सत्य हो; तो मैं समुद्रमें गिरकर ऊपर तैरते रह सकता हूँ। सत्यभामाने कहा-यह क्या प्रमाण है; आप समुद्रमें तो सोते ही हैं। हरिने कहा-चाहे तुम बड़ा सर्प लाकर घड़ेमें डाल दो; मैं सत्यके बल हाथ डालकर उसे निकाल लूँगा। अगर मेरी बात सत्य हो; तो वह विषारी मुझे नहीं डसेगा। भामाने कहा-सांपपर सोनेवाले आपका क्या करेंगे। हरिने कहा—अग्नि जलाओ; उसमें मैं निःशंक प्रवेश कर जाऊँगा। भामाने कहा—आपने तो बचपनमें ही बारह गाँवकी अग्नि पी ली थी। हरिने कहा—जो क्रूर देवता भूमिमें हों; उसके मन्दिरमें मुझे डालकर बन्दकर दो; वहाँ सत्यताका निर्णय हो जायगा। भामाने कहा—समस्त देव आपके सामने भृत्य होकर सेवा करते हैं। हरिने कहा—तराजू लाओ; मुझे उसमें बैठाओ। उसमें बड़े वजन रखनेपर भी मेरा पलड़ा अन्त-रातलमें न उठेगा फिर वहाँ सत्यताका निर्णयहो जायगा। फिर गौरांगीने कहा-अनन्त ब्रह्माण्ड आपके पेटमें हैं। जगत्पालक आपका वजन करनेके लिए मैं तराजू कहाँसे लाऊँ। भगवन्;आपके पास प्रमाण माँगनेसे सभी अप्रमाण हो जाएँगे। ऐसा कहकर भामाने भगवान्‌के चरण दृढ़तासे पकड़ लिए और कहा—आपकी पूर्ण महिमा कोई नहीं जान सकता। फिर एकान्त शयनमें चक्रपाणिने सत्यभामाका भोग किया। वह मोक्षदायक सच्चिदानन्द भक्तोंको लीला दिखाते हैं। एक बार नारद सत्यभामाके घर पधारे। सत्यभामाने दौड़कर प्रणाम किया और बैठनेको आसन दिया। फिर षोडशोपचारपूजा करके वह कहने लगी—मुनिजी; एक विचार सुनिए। जन्म-जन्ममें कृष्णाही पति हों; ऐसा ही मैं चाह रही हूँ। इसलिए ऐसा कौन व्रत या दान है; मुझे बतलाइये। सुनकर नारदजी हँसे और बोले-यह भगवान्‌की महिमा न जानकर जन्मपरम्परा चाह रही है। श्रीकृष्णकी पत्नी बननेपर भी इसका अज्ञान अभीतक नहीं गया। मेढक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कमलके पास बैठकर भी उसका सुगन्ध न जानकर कीचड़में लोटता है। उन्होंने सोचा; इसका अभिमानसमूह नष्ट हो; ऐसा कुछ खेल खेलना चाहिए। कुशल लोग पात्र देखकर पदार्थ रखते हैं। नारदजीने कहा—कृष्णका दान देनेसे ही उनको तुम जन्म-जन्ममें पाती रहोगी। यह तुम कृष्णसे ही पूछ कर निश्चित करो। फिर एकबार एकान्तमेंही भगवान्को पाकर सत्यभामाने कहा—पुरुषोत्तम; आपका मैं दान दूँगी। तब पूर्णकाम सर्वेश्वर भगवान्को हँसी छूटी। कृपानिधिने भामासे कहा—मुझे यह तुम्हारा विचार पसन्द है। यदि देनाही है तो फिर देर मत करो। आजही जल्द दे दो। तब ब्राह्मणोंसे जाकर भामाने पूछा—क्या आप कृष्णका दान लेंगे? ब्राह्मणोंने कहा—यह तो गोपाल हैं; हम शुद्ध ब्राह्मण हैं वह परम कपटी, चोर जार हमारे घरमें उसका सञ्चार नहीं हो सकता और उसको हमलोग उत्तमोत्तम वस्त्रालंकार कहाँसे देंगे। कृष्णदानको कोई विप्र भी किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकता। सब ब्राह्मण अविद्यासे बँधे केवल आचार पालनेवाले थे। कृष्णमहिमा नहीं जानते थे। यदि अनेक जन्मोंका तपाचरण हो, तभी श्रीकृष्ण हाथमें आ सकते हैं। फिर सत्यभामा लौटकर नारदके पास आ गई। उसने कहा-कृष्णका कोई दान नहीं लेता, तुम्हीं इसको अङ्गीकार करो, तुम ब्रह्मपुत्र हो, तुम्ही इस दानके पात्र हो। नारदने कहा—मैं अवश्य दान लूँगा। जगन्निवास, पूर्णब्रह्म, पुराणपुरुष अनायासेन हाथमें आ जाते हैं। सत्यभामाने भगवान्से कहा-यदुवीर, नारद दानके पात्र हैं, यह आपके विचारमें बैठता है कि नहीं। भगवान्ने कहा-जल्दी करो। पुष्यार्क बड़ा अच्छा योग है, फिर ऐसा मुहूर्त नहीं मिल सकता। फिर कृष्णको वस्त्राभरणोंसे शृंगारकर नारदके पास लायी। यथा सांग संकल्प करके श्रीरंगको नारदके हाथमें दे दिया, जो चीराब्धिका हृदय है, रत्नरंग है, पूर्णनिःसंग परब्रह्म है। नारदने कहा-वनमाली, आप ब्रह्मवीणा पासमें लीजिये, मूलका तन्तु मत टूटने दीजिये। श्रुति स्वर सम्भालकर रखिये। मूलका तन्तु टूटनेसे बहुत नाश होगा। और मेरा यथार्थ राग भी तो आपको मालूम ही है। मेरी पूजाकी पेटी यत्न करके सम्भालिये, यों कहते हुए नारदजी तुरन्त चलने लगे, तब सत्यभामा देखने लगी। आगे ब्रह्मपुत्र चले और पीछे कमलनेत्र भगवान् घनश्याम, द्वारकाके लोग कहने लगे-इस जगद्वन्द्य जगजीवनको नारद ऋषि लिये जा रहे हैं। नारदजी हृषिकेशसे कहने लगे-अरे, धीरे क्यों चलते हो। अभी घरकी आशा नहीं छोड़ रहे हो। परमार्थ कैसे साधोगे। इस तरह नारदमुनि शार्ङ्गपाणिको दूर ले गये और तदनन्तर सत्यभामा वियोगसे दुःख करने लगी। सत्यभामा रोने लगी कि अब मधुसूदनको कैसे देखूँगी। नारदने मुझे पूर्ण ठग लिया। मुझे धोखा दिया सत्यभामाके घरमें सभी कृष्णस्त्रियाँ जुटीं और कहने लगीं-तुमने तो बड़ा अच्छा काम किया, जो चक्रपाणिका दान दिया। जाम्बवतीने कहा—हम इतनी कृष्णकी स्त्रियोंके रहते तुम अकेली दान देनेकी अधिकारिणी कैसे हुई, कहो। उस अजित जगत्पतिका जन्मपरम्परा कहाँसे आई। तुम्हें यह अत्यन्त दुःखदायक सलाह किसने दी फिर सूर्यकुमारी कहने लगी—तुमने अच्छा मत्सर साधा। तुमने क्या अपना भी हित विचारा, कहो दूसरेके ऊपर पत्थर डालने गई और अपने ही पैर तोड़कर आई। अपने हाथसे आँखोंमें सींक डालकर तुमने अपनी आँख गँवाई। तुमने अपना नाक काटकर दूसरेका अपशकुन किया। अपनेही लड़केको मारकर सौतपर दोष लगाया। मजेमें विषपान तो किया; किन्तु पासमें मरण आ गया। तुमने कृष्णदान करके अपने हाथसे अपना अहित किया। मित्रविन्दाने कहा—तुम्हारी बुद्धिमानी समझमें आ गई। निर्विकार श्रीकृष्णमें जन्म-मरण लगाया। वैकुण्ठनाथ पूर्ण अवतारीपर तुम्हारे बापने चोरी लगाई; तो विचारा पाताल विवरमें ढूँढ़ने गया। फिर ऋक्षराज जाम्बवान्से लड़कर मणि और जाम्बवतीको ले आया। ऐसी तो तुम्हारी ख्याति है। लक्ष्मणाने कहा – तुम्हारा ज्ञान अब समझमें आया; तुम्हींने ले जाकर भगवान्को नरकासुरसे भिड़ाया था। सोलहसहस्र सौत तुम्हींने लाई और अब भगवान्का दान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही दे दिया। अच्छो बुद्धिमानो दिखलाई। यज्ञजितिने कहा—अच्छा; सौतियां डाह किया। दानमें श्रीरङ्गको ही दे दिया। यह किसने तुम्हें शिक्षा दी। नारदने तो स्वर्गका फूल लाकर रुक्मिणीको दिया और तुमने अनर्थ किया। तुम्हारे गुण हमलोग जानती हैं। बार-बार भूख लगती है; यह कहकर पेट ही काट डाला। जैसे कि देवताका शिखर गिराकर चारो ओर दिवाल बना लिये। अपने पास कुछ धन चाहिए; इसलिये अपनेही पैर काटकर बेच दिये। मकान तोड़कर आगे मंडप डाला; जो जगन्मोहनका तुमने दान दिया। तब भद्रावतीने कहा-तुम्हारा ज्ञान दग्ध हो गया। जिस भगवान्‌का स्मरण करते ही संसार बन्धन टूट जाता है; जो सर्वदा अचिन्त्यगुण है; उसमें तुमने गुण लगाया। उतनेमें देवकी आई और कहने लगी—तुमने मेरे पुत्रका दान दिया॥ मैंने नव महीना पेटमें पाला; जो मानो मेरा निर्मल हृदय था। मुझ जननीके रहते और इन सोलह हजार स्त्रियोंके रहते तुम्हीं दान देनेकी मालकीन कैसे बनी। जिसने तुम्हारे पिताको मारा; उस शतधन्वाने पहले तुम्हें वरा था; किन्तु तुमने उसको छोड़कर बुद्धिमानीसे कृष्णको चाहा। सत्यभामा नीचे मुख करके किसीका प्रत्युत्तर नहीं देना चाहती थी। जैसे बिच्छु डसनेपर भी चोट वेदना सहन करके चुप बैठे रहता है वैसे ही चुप बैठी रही या जैसे चोरकी मा प्रकटरूपसे रो भी नहीं सकती। फिर बलरामको बात मालूम हो गई कि नारद कृष्णको ले गये। तब चतुरंग सैन्य सिद्ध करके बलभद्र; अक्रूर; वसुदेव; उग्रसेन सभी दौड़ने लगे और कहने लगे—यह नारद पक्का बदमाश है; सत्यभामाको ठगकर जगज्जीवन श्रीकृष्णको चोरी करके लिये जा रहा है। दूरसे सब भीड़ देखकर श्रीहरिने कहा—मालूम होता है कि हमारे पिताजी आ रहे हैं। अब हमें जबरदस्त शिक्षा देंगे। नारदने कहा—तुम डरो मत; मैं सबका उत्तर देता हूँ। तुम मेरे पीठकी तरफ रहो। तब वसुदेव और बलराम पासमें आकर नारदजीके चरणपर गिरे और कहने लगे—दयासागर; हमारे जीवन श्रीकृष्णको मत ले जाइये। नारदने कहा सुनिये; मैं क्या इनको चुराकर लिये जा रहा हूँ; जो मेरे पीछे सैन्यके साथ आपलोग दौड़े आ रहे हैं। मैं तो अकेला ब्राह्मण हूँ। मुझसे आपलोग लड़ाई करना चाहते हैं। मुझे सत्मभामाने श्रीकृष्णका दान दिया है और आपलोग वापस माँगते हैं। मेरी अब बुढ़ौती आई; इनको साथमें लिये जा रहा हूँ। तब लोगोंने कहा—आपको एक दूसरा सेवक देंगे। नारदजीने कहा—क्यों व्यर्थ दे रहे हैं; यह मेरे मनके अनुसार चलते हैं। त्रिभुवन ढूँढ़नेपर भी यह साथ मिलता नहीं। नारदके सामने नमस्कारकर अपना कपड़ा पसारकर यादव माँगने लगे-आप जो बदलेमें चाहें हम देनेको तैयार हैं। नारदने कहा—कृष्णके बदलेमें कौन विनाशी वस्तु देकर आप हमें ठगकर इन अविनाशीको लेना चाहते हैं। कृष्णके ऊपरसे करोड़ों काम न्योछावरकर देंगे। त्रिभुवन ढूंढ़नेपर भी साथमें नहीं मिल सकते। यादवोंने कहा—स्यमन्तक मणि लेकर कृष्णको दे दीजिये। नारदने कहा-जरूरत नहीं। उस मणिका सगुन बड़ा खराब है। उसीके लिये प्रसेन और सत्राजित मरे। हमारा भी वैसाही घात होगा। हम मणिको नहीं लेते। यादवोंने कहा—अच्छा; सुवर्ण भगवान्‌के तुलाभार देंगे। नारदने कहा—जरूर ला दीजिये। तब तराजू लगाया। एक पलड़ेमें हरिको बैठाया। तब सत्यभामाने कहा—मैंही हरिको वापस लूंगी। मेरे बापका मणि जो दहेजमें मिला वह रोज नौभार सोना देता है। मुझे धनकी कमी नहीं है मैं हरिको छुड़ाती हूँ। पूर्ण अहंकार रखकर सत्यभामाने सब सुवर्ण डाला सब धन खतम हुआ; तब सत्यभामाने नीचे मुँहकर लिया। क्रमशः एक एक करके सभी सोलह हजार नारियाँ एकदम उठीं और जल्दी निस्संकोच सोना डालने लगीं। फिर गोपियोंने वदनपरके सब सुवर्णालङ्कार डाले। आखिर सम्पूर्ण द्वारकाने पूरा भण्डार लाकर डाला। समुद्रमें कंकड़ डालनेके समान वह सब बेकार साबित हुआ। एक मछलीसे कभी भूलोक उलटा जा सकता है। फतिंगा आकाश ऊँचा है कि नीचा क्या जान सकता है; तुम क्या आदित्यमण्डलकी प्रभाकी बराबरीकर सकता है। जैसे मेरुके वजनमें राई डाली; उसीप्रकार वह द्वारकाका सोना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खतम हो गया। नगरीके सब लोग दौड़े; अपना-अपना सोना सभीने डाला; आखिर द्वारकामें गुञ्जभर भी सोना नहीं रहा। तब वसुदेव पत्नी जिसने श्रीकृष्णको नव मास पेटमें रखा; उसने सोना लाकर डाला। आखिर चाँदी; पासा; ताँबा; पीतल सभी अष्टधातु डाले। सब लोग आश्चर्य करने लगे; यह अद्भुत तौल देखकर महावृक्षके शाखापर बैठी चीटी जैसे दीखती है वैसेही सब धातु तराजूमें दीखने लगे। जिसके पेटमें अनन्त ब्रह्माण्ड बैठा हुआ है वह जगदाधार पलड़ेमें बैठा हुआ है। कुछ कहते हैं—यह कपटनारकी है; बहुत भारीहो गया है। नारद और कृष्ण दोनोंने यह मजाक शुरू की--एक भोंदु और दूसरा लुचा। दोनों सत्यभामाको मिले। एक लबरा और एक चोर। एक कल घुमानेवाला और एक जार। एक उदास और एक उदार दोनों ही अनिवार हैं। पलड़ा न उठते देख देवकी जोरसे रोने लगी कहने लगी—वैरिणी; सत्यभामे ! तुमने अनहित कर्म किया। पतिका दान यह मैं अब तक नहीं सुना था। देवकीने नारदके चरण पकड़कर कहा-मुझे कृष्णकी भीख दीजिये। नारदने कहा—जो त्रिभुवनकी पटरानी रुक्मिणी है; वह तो नहीं आई। उसके घरमें बहुत सोना है। उसको बुला भेजिये। सभीने बात मानी, तुरन्त उद्धवको भेजा। उसने मन्मथजननी गौरांगीको देखा। रत्नखचित आसनपर जगन्माता बैठी है। शुभ्र वस्त्र और चोली पहिने है, कण्ठमें एकावली डोलती है। ऐसे भीमहृदय रत्नके उद्धवने देखकर नमस्कार किया तथा सब कुछ कह सुनाया। आदिसे अन्त तक सारी बातें सुनकर वह मुसकुरायी तुरन्त वृन्दावनके पास जाकर तुलसीको नमस्कार किया। तीन बार प्रदक्षिणाकर प्रार्थना करनेके अनन्तर एक पका तुलसी दल ले लिया। रत्नके थालमें रखकर ऊपरसे दिव्यवस्त्र ढक दिया। मन्मथजननी हंसगतिसे चमकती वहाँ आई। उसने कृष्ण और नारदकी षोडशोपचारसे पूजा की। रुक्मिणीका भाव अत्यन्त निर्मल था। उसने तुरन्त तुलसीदल पलड़ेमें रख दिया। तब एकदम अपनेही आप कृष्णका पलड़ा ऊपर उठ गया। सबसे बड़ा भाव ही है। उसीसे माधव छुड़ाये गये। ऊपर विमानसे देवता देख रहे थे और पुष्पवृष्टि कर रहे थे। भीष्मक कुमारी धन्य है, जिसने तुलापर तुलसीदल रखकर मधुकैटभारिको छुड़ाया। वह कंसारि भक्तवत्सल हैं। जो आदिपुरुषकी ज्ञानशक्ति है अनन्त शक्तियाँ जिनके सामने तैयार रहती हैं। ब्रह्मादि जिनके पुत्र हैं, जिनको वह रात दिन नचाती है। ब्रह्मसुखके समुद्र जिसमें सब जीव डूबते हैं। लेकिन वहाँकी मिठास चख नहीं सकते। वह जिधर कृपादृष्टि फेंकती है, वे लोग ज्ञानसम्पन्न हो जाते हैं और देहमें ही मुक्त होकर कैवल्य पाते हैं। तत्पश्चात् जो सोना वहाँपर आया था उसको हाथोहाथ निकालने लगे। सभी गोपियाँ मेरा मेरा कहकर दौड़ने लगीं। गुड़पर जैसे मक्खियाँ बैठती हैं उसीप्रकार सब गोपियाँ झपट गईं। रुक्मिणी, नारद और कृष्ण उसकी मजा देखने लगे। इस तरह लोग फँसे और कृष्ण भजनसे विमुख हो गये। स्त्री, धन आदिको ही सच्चा सुख मानकर अहङ्कार मदसे भ्रांत हो गये। कोई कहती है-मेरी सिकड़ी देखो। कोई कहती है-मेरा पदक, कोई कहती है-मेराचिंताक अलग छुड़ाओ। एक कहती है—मेरा चद्ररेखा फूल। वह गेंदा मेरा दो। अँगूठियाँ, गलेकी मालाएँ, ये सब देखो, मेरी हैं। मेरे ये कंगन, तोड़ा, बाजुबन्द, मेरे ये आभारण, मेरी यह मुद्रिका, मेरे ये मुक्ताहार। ऐसा चिल्लाने लगीं। सत्यभामाने लोभसे कहा—मैंने पर्वत रामान सुवर्ण डाला है, उसमें गुञ्जभर भी कम होनेसे अनर्थ होगा। सोलहहजार बहुओंको देख देवकीने कहा—तुम सभी मूर्खा हो। मेरे अलङ्कार मुझे दो। तब गोपियाँ खिलखिलाकर हँसने लगीं। कहने लगी--बुढ़ौतीमें आपको बड़ी हौस है। अब ये सब अलंकार बहुओंको दे दीजिये। नारदने रुक्मिणीको प्रणाम करके कहा—मातः, आपही जगन्नाथका उपभोग कीजिये। दोनोंकी प्रदक्षिणा करके वह आकाशमार्गसे चल दिये। सभी लोग धनमें जुटे रहे रुक्मिणी जगन्मोहनको ले गई। पूर्ण ब्रह्मानन्द वैकुण्ठपति अपनी अगाध लीला दिखाते हैं। [कृपाकर देखिये—हरिविजय ग्रन्थका तीसवाँअध्याय।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(भगवान् श्रीकृष्णकी सखियोंके नाम)

1

अथ कृष्णसखीनाञ्च संख्यायाः संवदामि ते। तत्रातीव रहो रम्यं वदिष्येऽग्रेति वल्लभम् ॥ १ ॥ येन नारायणः साक्षात्स्वतो नारीवशं गतः ॥ काचित्कलान्निधिप्रायाव ल्लभा वल्लवी हरेः ॥ २ ॥ माधवी मधुराकारा न तां जानन्ति पण्डिताः ॥३॥ तिस्रः कोट्यो वल्लवीनां समाजस्तावद्रूपो वल्लवः सोऽपि मध्ये ॥ काचित्तासां नाट्यविद्या [नाव्यविद्या] प्रशस्ता शश्वच्चान्या गानवेदप्रवीणा ॥ ४ काचित्तासां वाद्यपूरप्रविज्ञा नृत्यत्यन्या तालमानप्रतर्का। काचित्तासां वाटिकाद्यानदत्ता चान्याभिज्ञा वस्त्रदानप्रयत्ने ॥ ५ ॥ तत्तत्पश्चात्प्राप्तकाले च कार्यं कुर्वन्त्यस्ता-स्तोषयन्त्यः स्वनाथम्। एवं ताभिः कृष्ण एवानुरूपं कर्त्ता तत्तद् गोपिका भावदत्तः ॥ ६ ॥ भृङ्गाधिप उवाच ॥ सर्वयूथप्रसंख्यानं शतानि त्रीणि विद्धि वै। नियुते नियुते मुख्यास्तासां नामानि मे शृणु ॥ ७ ॥ विधुन्तुदा विधुरता रागरङ्गा सुरागिणी। कामकन्दा सुनन्दा च नन्दिनी नादनन्दिनी ॥ ८ ॥ नेत्रसौभाग्यसुभगा मोदमाना मनस्विनी। मनोभवा विराग च हावहूरा रतिप्रदा ॥ ९ ॥ धन्या धनेश्वरी धामा भावा भावप्रमोदिनी। मुक्ता मनोहरा साध्वी मालती मलयाश्रया ॥ १० ॥ मदोलसा मनोभीष्टा मनाज्ञा मानसावला। चित्रा वेत्रवती भीमा भावभेदा सदाचला ॥ ११ ॥ चञ्चला चपला कान्ता कला कामप्रवेदिनी। कलोत्तमा कलाभिज्ञा धनिष्ठा च कलावती ॥ १२ ॥ विधृतानङ्गभुजा या मन्मथोदयपुञ्जिका। कामवृन्दा सुनन्दा च नन्दिनी मयनोत्सवा ॥ १३ ॥ कनकाङ्गी कुरङ्गाक्षी चन्द्रास्या चन्द्रमण्डला। मदोन्नता मदोत्साहा हंसी हंसगतिस्तथा ॥ १४ ॥ कन्दर्पमञ्जरी वेला वलिष्ठा कलभाषिणी। वराङ्गदा विशालाक्षी विशाला विशदाशया ॥ १५ ॥ कृष्णा कृष्णवती भावा भयभेदप्रदर्शिता। नवाङ्गा नववासाश्च नवीना प्रेमकारिणी १६ ॥ सारिका सरला शान्ता कान्ता कामप्रदा–यिनी। प्रेमवती नागरिका नवीना नवमञ्जरी ॥ १७ ॥ भेदभावविशिष्टा च धन्या साध्या च गोमती। आनवा पीननन्दा च प्रमोदा मुदितानना ॥ १८ ॥ मानशान्ता नवीना च भामिनी प्रेमकारिणी। सारिका सरला शान्ता कान्ता कामप्रदा शुभा ॥ १९ ॥ प्रेमबद्धा मधुमुखी मनोजा मन्दगामिनी। कामिना रमिता रामा निष्ठा चातिकृशोदरी ॥ २० ॥ वराङ्गनाऽथ विम्बोष्ठी वेलावलयभूषणा। वल्लवी रूपिता वाग्मी वरभेदा विनोदिनी ॥ २१ ॥ वलोन्नता वलाका च पावनी पाचिका परा। परोदया दयावेदी देवताललना लता ॥ २२ ॥ आनन्दभद्रा भद्रा गौर्भद्रा भावा विलासिनी। अङ्गदा नङ्गदा धात्री धर्मपात्रिवरा हरेः ॥ २३ ॥ माधवी मन्दगा गङ्गा मञ्जरी पार्वती तथा। परा तारा परेशा च परमा सुरमा परा ॥ ॥ २४ ॥ समोष्ठी समकर्णा च कामिनी रतियामिनी। पञ्जिका मदनप्राणा साञ्जनी मदभावनी ॥ २५ ॥ चन्द्रावली शशिकला योनियुक्ता मनोरमा ॥ भद्रावली भगवती ततः सौदामनी मता ॥ २ ६ ॥ चम्पावती चम्पाकलिः परावीरवती प्रभा। मानिनी मदनोत्साहा तथा मन्दालसा परा ॥ २७ ॥ पट्वी पटोलिका षड्गखण्डिता मन्मथोज्ज्वला। वरूथिनी वनलता व्रजवल्ली तिलोत्तमा ॥ २८ ॥ रसा गन्धर्विणी भिज्या वज़ा भोगप्रदायिनी। वैकुण्ठमञ्जरी रुक्मा तथा रुक्मवती मता ॥ २९ ॥ कुञ्जरी भद्ररेखा च हरिणी भद्रलेखिका। चरिता चन्द्रतिलका कातराक्षी सुमन्दिरा ॥ ३० ॥ चित्राङ्गा तुङ्गविद्या च मञ्जुमेधा रसालिका। शौरसेनी सुगन्धा च सुमध्या तनुमध्यमा ॥ ३१ ॥ गुणचूड़ा मेदिनी च करिणी रागवेलिका। मञ्जुकेशी मञ्जुवक्त्रा तथा कन्दर्प-सुन्दरी ॥ ३२ ॥ सुसङ्गावा मधुस्यन्दा इन्दुलेखा मनोजवा। परंमतातिविनता प्रमीला पट्टभाषिणी ॥ ३३ ॥ परात्मिका परोत्कर्षा कलिताऽचलगामिनी। भारहा वरमाला च वरारोहा तिलोत्तमा ॥ ३४ ॥ वामनेत्रा च सोन्मेषा चञ्चला चलभाषिणी। चलक्रीड़ा चलात्मा च चक्षणी चतुरानना ॥ ३५ ॥ प्राणपात्रा परप्राणा रमणी परपावनी ॥ पटोच्चा लम्बकेशी च कलाभावा कलाञ्जनी ॥ ३६ ॥ कार्यपट्वी परप्रीता परकामा परम्मदा। यामिनी जनिता शेषा पतगा रतिचञ्चला ॥३७॥ यशःप्रदा यशोधना जलजाक्षी जयप्रदा। यामिता यमिना कामा बाल-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भावा रसाकरा ॥ ३८ ॥ मञ्जुपाणि मञ्जुपदा वरदीप्तिर्मनोरमा । कुञ्जनाभिरथो वामा कामरङ्ग वशङ्गता ॥ ३९ ॥ भानुकामा वीतवला भीरुभावा प्रमोदिनी । वराङ्गना वरामोदा वनवन्धुर्व्रजोत्सवा ॥ ४० ॥ वनभावा वनमता वनवञ्जुवनाम्बुजा । वनभूर्वनजा योषा घोषमञ्जुर्व्रजावला ॥ ४१ ॥ व्रजाङ्गना व्रजवधूर्व्रजकेलिर्व्रजोत्सवा । व्रजबाला व्रजेशा च व्रजेशपरमप्रिया ॥ ४२ ॥ घोषवृन्दा घोषलता घोषराजविलासिनी । घोषनन्दाऽनन्दकन्दा नित्यानन्दविनोदिनी ॥ ४३ ॥ भानुवृन्दा चन्द्रवृन्दा कामवृन्दा कलापटुः । किशोरी नागरी नेत्री नयकान्ता नयानुगा ॥ ४४ ॥ नीतिवाङ्नयना कान्ता त्वलया चालयोदया । सर्वयूथप्रधाना च परयूथा विनोदिनी ॥ ४५ ॥ विशेषा विशिखा विश्वा गुणा गुणवती शुभा । इत्याद्या यूथमुख्याश्च यूथे लक्षाभिधे चराः ॥ ४६ ॥ [आदिपुराण]

(सखियोंका वर्णन)

अथापरा राधिकायाः सख्यः शश्वन्मनोरमाः । विमला राधिका भृङ्गी निभृताऽभिमता परा ॥ १ ॥ तथाष्टौ सदृशास्तस्या वराः सख्यस्तथा पराः । शारदा जननी यस्याः पतिर्वा कीरसंज्ञितः ॥ २ ॥ ताम्बूलहृत्सुकरुणा प्रगल्भा ललिता वरा । द्वितीया तु विशाखेति देवी विद्यारसालया ॥ ३ ॥ तारावली धराश्तिस्त्रः पत्न्यस्तासान्तु पावनाः । कृष्णमाया वनसरः सर्वं विश्वैकपावनम् ॥ ४ ॥ नानार्थदक्षिणस्तस्याः पतिर्वच्छवसंज्ञितः । सामदानं ततो भेदो भयादिष्विति सम्मतम् ॥ ५ ॥ नानावस्त्रप्रयोगा सा प्रगल्भा परमा मता । तृतीया चम्पकलता चम्पकांगी सुभूषणा ॥ ६ ॥ नीलप्रभदुकूला च पितावामस्तथैव च । माता च वाटिका तस्याः पतिश्चण्डाक्ष एव च ॥ ७ ॥ सूचितश्चाधिकारोऽस्याः पाकभेदेऽधिकारिणी । मिष्टवस्तु प्रदानेन सा हरेः प्रतिवर्द्धिनी ॥ ८ ॥ चित्रादेवी चतुर्थी च कुङ्कुमांगी मनोहरा । अरुणा करुणार्द्रा च पिता स्याच्चतुरः स्मृतः ॥ ९ ॥ मातास्याश्चर्विका नाम पतिरस्याश्च पीठरः । त्रिकालज्ञानसम्पन्ना ज्योतिशास्त्रविशारदाः ॥ १० ॥ पशुविद्या विदग्धा च पानभोज्यविदाम्वरा । सुगन्धजलकार्ये वा अधिकारवती च सा ॥ ११ ॥ पञ्चमी तुङ्गविद्या च सुगन्धा कुङ्कुमाष्टमी । पट्टमण्डलवस्त्रेषु अतिदक्षा मनोहरा ॥ १२ ॥ पिता पौषकसंज्ञोऽस्या मातामेधापतिस्तथा । वणीशाखाश्चाधिकृताः सर्वशास्त्रार्थवेदने ॥ १३ ॥ सङ्गीतसङ्गनिरता वीणावादपटीयसी । सन्धिकाये प्रगल्भा सा क्षणदासुविलासिनी ॥ १४ ॥ इन्दुलेखा ततः षष्ठी हरितालसमानना । सर्वाङ्गशोभना सा हि दाडिमी कुशुमांशुका ॥ १५ ॥ अत्यन्तसुन्दरी कान्ता वावदूका विलासिनी । सागरस्तु पिता तस्या माता वेला महोदया ॥ १६ ॥ दुर्वलस्तु पतिस्तस्याः कामशास्त्रविशारदा । वशीकरणमन्येषु त्वतिसौभाग्यमन्त्रिता ॥ १७ ॥ लेपस्य साधने दूतीकर्म्मण्यग्रचा विचक्षणा । भाण्डागारस्य रक्षादिकर्मण्यप्यधिकारिणी ॥ १८ ॥ सप्तमी रंगदेवीं तु पद्मकिञ्जल्कभासुरा । जातीपुष्पांशुका तस्या रंगसारः पिता मतः ॥ १९ ॥ माता च करुणा तस्याः पतिर्वक्रेक्षणः स्फुटम् । अनुलेपनगन्धेषु धूप व्यजनकर्मसु ॥ २० ॥ स्रगादिरचनायान्तु सुन्दरी याऽधिकारिणी । ममता भगिनी तस्या राधिकायाश्च कृत्रिमा ॥ २१ ॥ देवबन्धु पिता तस्याः सुदेवी जननी शुभा । पतिस्तस्याः खलेहश्च कोपनख्यातिमाश्रितः ॥ २२ ॥ अञ्जनाभ्यङ्गकुशला केशसंस्कारकारिणी । तनुरूपातिसुखदा कोमलाङ्गी मनोहरा ॥२३॥ गण्डूपक्षेपपात्रादिर्व्वाधिकारपरायणा ॥ २४ ॥ इत्यष्टौ वैराधिका सेविका या यूथश्रेष्ठा गोपिकाः सुप्रतिष्ठाः । कुञ्जे स्वेच्छया ताश्चरन्त्यो वक्ष्ये ते किञ्चैश्वरं तद्विभुत्वम् ॥ २५ ॥

(भगवान्‌की स्त्रियों और पुत्रों आदिके नाम)

व्यास उवाच—चारुदेष्णं सुदेष्णं च चारुदेहं च शोभनम् । सुषेणं चारुगुप्तं च भद्रचारुं तथा परम् ॥ चारुविन्दं चारु च चारुं च बलिनां वरम् । रुक्मिण्यजनयत्पुत्रा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न्कन्यां चारुमती तथा ॥ अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूव सप्त शोभनाः । कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा ॥ देवी जाम्बवती चापि सदा तुष्टा तु रोहिणी । मद्रराज्यसुता चान्या सुशीला शीलमण्डला ॥ मात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी । षोड्शास्त्रसहस्राणि स्त्रीणामन्यानि चक्रिणः ॥ प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो रुक्मिणस्तनयां शुभाम् । स्वयं वरस्थां जग्राह सापि तं तनयं हरेः ॥ तस्यामस्याभवत्पुत्रो महाबलपराक्रमः । अनिरुद्धो रणे रुद्धो वीर्योदधिररिन्दमः ॥ तस्यापि रुक्मिणः पौत्री वरयामास केशवः । दोहित्राय ददौ रुक्मिीं स्पर्धन्न-पि शौरिणा ॥ तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह । रुक्मिणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकटं द्विजा ॥ विवाहे तत्र निर्वृत्ते प्रद्युम्नेः सुमहात्मनः । कलिङ्गराजप्रमुखा रुक्मिणं वाक्यमब्रुवन् ॥ ब्रह्मपुराण ।

कृष्णयामले—अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गोपीः मुनीचारीः परा । याः कृष्णं तपसा प्राप्य रमन्ते स्म निरन्तरम् ॥ १ ॥ चित्रगन्धा सुगन्धा च सगन्धा हरिवल्लभा । रङ्गवल्ली च सारंगी शारदा च शुचिश्रवा ॥ २ ॥ स्निग्धा सुवर्चा मृदुला मधुरा च मधुश्रवा । सुधाधारा चित्रकला रत्नचूडा कलस्वना ॥ ३ ॥ अमृता शोभना चैवामृतानन्दा-ऽमृतप्रिया । रत्नाभृङ्गी परिमला तथा रत्नकला शची ॥ ४ ॥ हारावली मालिनी च शुभा काञ्चनमालिनी । रुक्ममाला सुगन्धा च कस्तूरी पद्मिनी सती ॥ ५ ॥ विपुला नन्दिनी मेधा मेध्या सिद्धिर्धृतिध्रुवा । कुमुदा कामिनी काम्या कौलिनी कमलावती ॥ ६ ॥ कालिका कामनीया च कामचारा कलावती । कुशला वकुला धीरा विधुरा विधुराङ्गिका ॥ ७ ॥ जयन्ती जयनी जाती जगन्मोहनसुन्दरी । रुचिरा चारुसर्वाङ्गी शुभ्रा सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ८ ॥ मङ्गला महिला मौञ्जी मदना मदनप्रिया । नीलावती नीलदीप्तिः प्रभा शोभा जया कृपा ॥ ९ ॥ मधुप्रियेति विज्ञेया अशीतिमुनि सुन्दरी । ज्ञानप्रेमान्वितैर्भावैर्भजन्त्यः कृष्णमन्वहम् ॥ १० ॥

(भगवान् कृष्णके अगल बगल भागमें बैठनेवाली और सखियोंका वर्णन)

नामानि–कृष्णयामले—अथ वक्ष्ये श्रुतिचरीर्गोपीः कृष्णमनोरमाः । कृष्णस्य दक्षिणे पार्श्वे दीव्यन्ती चारुदर्शना ॥ सुतपोग्रतपाश्चैव सुव्रताथ प्रियम्वदा । सुरेखा च सुपर्व्या या रत्नरेखा बहुश्रवाः ॥ विश्रामधारणी चैव धरित्री चान्तिरेव च । सुमेधा सुमुखी धन्या सुखदा च सुलक्षणा ॥ सुन्दरी च सुखोत्पन्ना सुरश्री गुणवत्यथ । सुलोचना सुफलिनी सुशीला सुभ्रुवा तथा ॥ उद्गीता च सुगीता च कलगीता कलस्वना । कलकण्ठी कलोत्ताना मातङ्गी च कलावती ॥ कमप्रदायवहुदा बहुदूता बहुक्रिया । सुप्रयोगा विप्रयोगा बहुभोगा सुनासिका ॥ चत्वा-रिंशदमूर्गोप्यो ज्ञानप्रेमरसाश्रिताः । जायन्तः सामगानोत्थं सङ्गीतं मधुरस्वरम् ॥ नानायन्त्रविधानेन तोपयन्ति निजेश्वरम् । 'पद्मिनी सदृशाकारा रूपलावण्यसंयुता । सुवेषा परमाश्चर्या धन्या मानयिता सदा । कृष्णस्य वामपार्श्वस्थाः पद्मिनी पद्ममालिनी ।

अन्याँस्तु शृणु देवेशि शक्तिं परमसुन्दरि । चन्द्रप्रभा चन्द्रावती चन्द्रकान्ति शुचिस्मिते । चन्द्राचन्द्रकला देवि चन्द्ररेखा च पार्वती । चन्द्राङ्किता महेशानि रोहिणी विमला तथा । विशाखा माधवी चैव मालती च तथा प्रिये । गोपाली रत्नरेखा च पराख्या च वरानने । सुभद्रा भद्ररेखा च सखा च सुरभिस्तथा । चपला कुञ्जरी चैव कलावती कला तथा । कलहंसी कालपीठं समानवयसा सदा । समानवयसाः सर्वे नित्यनूतनविग्रहाः । सर्वाभरणभूषाढ्याः जपमालाविधारिणी ।' 'ललिताद्या प्रकृतयोष्टौ पद्मिनी राधिका स्वयम् । संमुखे ललिता देवि श्यामा तस्य चोत्तरे । तदुत्तरे श्रीमति धन्या ईशान च हरिप्रिये । विशाला च तथा पूर्वे शैव्या चाग्नौ ततः परम् । पद्मा च दक्षिणे भद्रा नैऋत्यां क्रमतः स्थिता । एतास्तु परमेशानि पद्-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मिन्या अष्टनायिकाः ।' योगपीठस्य कोणाग्रे चारुचन्द्रा वलीप्रिये । प्रधाना प्रकृति चाष्टौ कृष्णस्य कार्यसिद्धिदा । पद्मिनी त्रिपुरादूति श्रीराधाकृष्णमोहिनी । चन्द्रावली चन्द्रेखा चित्रा मदनसुन्दरी । प्रिया च श्रीमधुमती शशिरेखा हरिप्रिया । संमुखादि क्रमात् दिक्षु विदिक्षु यथा स्थिताः । षोडशप्रभृतिश्रेष्ठाः प्रधानाः कृष्णवल्लभाः ।' लम्बनी चन्द्रिका कान्ता कूटा शान्ता महोदया । भीषणी नन्दनी शोका सुपूर्णा विमलाक्षया । शुभदा शोभना पुण्या हंससुताः कलाः क्रमात् ॥ (स्कन्दपुराणान्तर्गत—प्रभासखण्ड]

सुशीला, शशिकला, चन्द्रमुखी, माधवी, कदंबा, माला, कुन्ती, यमुना, सर्वगन्धा, सर्वमङ्गला, पद्ममुखी, सावित्री, पारिजाता, जाह्नवी, साधुमुखी, शुभा, पद्मा, गौरी, स्वयंप्रभा, कालिका, कमला, दुर्गा, सरस्वती, भारती, अपूर्णा, रति, गंगा, अम्बिका, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, मधुमती, चम्पा, चन्दनन्दिनी । [कृष्णजन्मखण्ड अध्याय २७ श्लोक ७६–७९ ।

माया, शतचन्द्रानना, मधुमती, खलिता, विशाखा, रमा, विरजा, माधवी, कालिका, गंगा, दिव्या, मोहिनी, कलावती, रोहिणी, चन्द्रानना, प्रभावती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या [नाग्नजिती] लक्ष्मी, भद्रा, पद्मावती, प्रहर्षिणी, वृन्दा, पद्मा, लीलावती [राधा] प्रभावती, रमा । [गर्गसंहिता]

(गोपियोंके नामोंका संकेत असंख्य यूथ गणोंका नाम और भगवान्‌की पट रानियोंके नाम)

लोकाचलवासिनी, ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी, श्वेतदीपनी, वैकुण्ठवासिनी, मायायूथनी, निकुञ्जवासितृका, कुञ्जन निर्मातृका श्रृंगारकर्तृका, वृन्दावनपालिका, गोवर्धनरत्तिका, गोलोकवासिनी, द्वारपालिका, अजितपदवासिनी, मैथिली, कोशला, अयोध्या, जालिन्दिनी, सुतलपासिनी, जलंधरवासिनी, तमोवृत्ति, रजोवृत्ति, सतोवृत्ति, दित्या, अप्सरा, भूमि, श्रुतिरूपा, मुनिरूपा, यज्ञसीतारूपा, पुलिन्दी, ऋषिरूपा, लतारूपा, सुन्दरी । [गर्गसंहिता] ......अष्टयूथ, ३३, १६, ६४, १००, यमुनायूथ—इत्यादि अगणित यूथपोंका समूह था ।......आठ पटरानियाँ—रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, सत्या, मित्रविन्दा, भद्रा, लक्ष्मणा ।

(भगवान् कृष्णने अपनी माया द्वारा एकही समय सबसे विवाह किया)

तासां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् । सविधिं जगृहे पाणी नानारूपस्वमायया ॥ [गर्गसंहिता]

(द्वापरयुगमें भगवान् श्रीकृष्णका जन्म और पूतनाने स्वप्नमें हो तेहुए वृत्तान्तको कंसके द्वारा श्रवण)

द्वापरे युगपर्यन्ते यथाकाले हरिः स्वयम् । आविरासीत्पृथिव्यां वै नैव मिथ्या कदाचन ॥ 'व्रजस्थेभ्यः सुखं दातुं लीलाकर्तुं समुत्सुकः । द्वापरान्ते कलेरादौ व्यतीते तु शरच्छते ॥ प्रौष्ठपद्यामथाष्टम्यां कृष्णायामर्द्धरात्रके । रोहिणीस्थे चन्द्रमसि स्वोच्चगेऽभूज्जनिर्मम ।.. ...अद्य स्वप्ने मया दृष्टो बालकः कालरूपवान् । तेन चोक्तमिदं भद्र हनिष्ये त्वां न संशयः ॥ वर्षे चैकादशे प्राप्ते मूढ तिष्ठाम्यहं व्रजे ।

(राधाके कुलका वर्णन)

कीरवर उवाच ॥ भृङ्गाधिप मया बुद्धे राधिकाया कुलं वद । कस्य वंशे समुत्पन्ना तस्याः को जनकोऽभवत् ॥ १ ॥ का माता भ्रातरः किं वै ब्रह्ममेतत्प्रकाशय । त्वं हि ब्रह्मविदां विज्ञः स्वेच्छापत्ति तनुङ्गतः ॥ २ ॥ भृङ्गाधिप उवाच ॥ धन्योऽसि त्वं महाबुद्धे ममानुग्रहकृद् भवान् । यतोऽतिविशदं त्रिगुणेशचरितं पृष्टवानसि । ३ ॥ आसित्सेणो महागोपः पुरासोदति-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पावनः ॥ आर्ष्टिग्रामेऽथ वसतिः सर्वसम्पत्समृद्धियुक् ॥ ४ ॥ तस्य पुत्रो महाभानुः स्वभानुश्च तदात्मजः । तस्यासीदति पुण्यात्मा वृषभानु प्ररोदयः ॥ ५ ॥ मातास्य मानवी नाम्नी पतिव्रत्यपरायणा । तस्यामजास्तु चत्वारः सदा कृष्णैकचेतसः ॥ ६ ॥ वृषवृध्नुर्मनः सौख्यः स्तोककृष्णस्तथापरः । श्रीदामा च चतुर्थस्तु कन्ये हि कृष्णवल्लभे ॥ ७ ॥ राधिकाय मते वाले महाबुद्धि बलोदये ॥ तत्रापि राधिका शश्वदतिप्राणप्रिया हरेः ॥ ८ ॥ अष्टम्यां भाद्रशुक्लस्य सा जाता रविवासरे ॥ रात्रौ पराह्नसमये ज्येष्ठायाश्चान्तिमे पदे ॥ ९ ॥ किमहं वर्णये भाग्यं राधायाः परमाद्भुतम् । ब्रह्मादयोऽपि न विदुः परमानन्दमन्दिरम् ॥ १० ॥ ततो विवाहमकरोद्वृषभानुर्गुणोदयः । वैशाखे सितपक्षे तु तृतीया चाक्षयाह्वया ॥ ११ ॥ रोहिणी स्वर्च्च-सम्पूर्णा जायालग्नशुभावहा । पारिवर्हादिकं दत्त्वा वस्त्रमन्नं समृद्धिमत् ॥ १२ ॥

(श्रीकृष्णचन्द्रके वंशका वर्णन)

कीर उवाच । श्रीकृष्णस्यान्वयं ब्रूहि पुण्यात्पुण्यतरं हि मे । यस्य स्मरणतो यान्ति पापा अपि शुभां गतिम् ॥ १ ॥ न नित्यस्यामनो जन्म न च कर्म कुलंक्रिया ॥ तथापि व्यक्ति-मापन्नो भवेद्धि भगवान् स्वयम् ॥ २ ॥ व्यक्तिद्वारा त्वनेकात्मा स्वयं वै तत्स्वरूपधृक् । स्वयं पिता स्वयं माता स्वयमेव कुलाकरः ॥ ३ ॥ विभाति तत्स्वरूपेण परमात्मा सनातनः । तथापि कथयाम्येतत्तुभ्यं ।.श्रद्धालवे द्विज ॥ ४ ॥अनन्यशरणेभ्यो हि रहस्यं नैव गोप्यते । शृणुष्वावहितः कीर सुगोप्यमपि तद्वदे ॥५ ॥ आभीरभानुर्गोपेशो वसतिस्म महावने । तत्पुत्रश्चन्द्र सुरभिस्तस्यासीत्सुश्रवा महान् ॥ ६ ॥ कालमेदुः सुतस्तस्य कालमेदो सुता दश । जयसेनो जयबलो जय कीर्तिर्यशोधनः ॥ ७ ॥ कण्ठभानुर्महाबुद्धिर्मानमेरुर्मनोरथः ॥ वरांगदश्चित्रसेन-स्तस्य पुत्रा भवन्नव ॥ ८ ॥ सुनन्दश्चोपनन्दश्च महानन्दोऽथ नन्दनः । कुलनन्दो बन्धुनन्दः केलिनन्दोऽथ सप्तमः ॥ ९ ॥ अष्टमः प्राणनन्दश्च नन्दोऽयं परमो महान् । तस्य पत्नी यशोदा च महाभाग्यवती शुभा ॥ १० ॥ तस्याश्च भक्तिभावेन भगवान् भवत्स्वयम् । व्यक्तानां व्यक्तिमापन्नो नित्यानां नित्यदर्शकः ॥ ११ ॥ अनेकरूपरूपोऽसौ सरूपश्च सनातनः । श्रीकृष्णः करुणा सिन्धुस्त्वधीरः सर्वशक्तिधृक् ॥ १२ ॥ व्रजे व्रजे विनोदी च विपिने विपिने सुहृत् । वैकुण्ठेऽकुण्ठरूपोऽसौ जलशायी जले सदा ॥ १३ ॥ सृष्टिरिच्छाकृता यस्य सर्व-लीलाकरो हरिः । अनाविराविः कुत्रापि न व्रजेदहितः क्वचित् ॥ १४ ॥ ये ये च सखिभिः साद्धं नन्दयन्ते व्रजौकसः । क्रीडन्ते विपिने गावश्चारयन्तो वनान्तरे ॥ १५ ॥ तथा वने व्रज-स्त्रीभिः कोटिभिश्च व्रजौकसः । क्रीडन्ते बहुधा नित्यं क्रीडन्ते रासलीलया ॥ १६ ॥ तत्र कुञ्जनिकुञ्जेषु राधया सहितः प्रभुः । राधा च नायिका भावैरानन्दयति वल्लभम् ॥ १७ ॥ संभोगे योगकाले हि जायन्ते च पृथक्पृथक् । सख्ये सख्यस्तथा सर्वा मया पूर्व निवेदितता ॥ १८ नित्यं क्रीड़ा निकुञ्जेषु कदाचिद्विचरस्म्महीम् । अनन्तलीलास्य हरेस्त्रिधा लीलास्ति नित्यदा ॥ १९ ॥

(भगवान् श्रीकृष्णके सखाओंका नाम)

कीर उवाच ॥ सखायः कति कृष्णस्य तेषाँ नामानि वा पुनः । ब्रूहि मे श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽ हंमधुपाधिप ॥ १ ॥ भृंग उवाच ॥ कोटिसंख्या सखाभन्ते तेषां मुख्या हरेः प्रिया । शतैकसंख्यया ख्याता नामान्येषां वदामि ते ॥ २ ॥ वृषवृध्नुर्मनः सौख्यस्तोककृष्णस्तथा परः । श्रीदामा वृषभानोश्च पुत्राश्चत्वार एव च ॥ ३ ॥ अनन्तभद्रो वृषभ ओजस्वी च वरूथकः । देवभद्रो विनोदास्यः सुबलश्चार्जुनोऽपरः ॥ ४ ॥ अथ ते कथयिष्यामि कामकन्दो मरुत्सहः । प्राणभानः चमीरोत्सो विधतिः श्यामसङ्गमः ॥ ५ ॥ वारिजाक्षो हंसगतिः कालकन्धो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मसीहरः विनेता वसुवाहुश्च बृहद्भानुरथापरः ॥ ६ ॥ केलिः सुकेलिः शुभगो कली च लय एव च । मारकेलिः कलोत्तारः कलभाषी कलस्वनः ॥ ७ ॥ शीतरश्मिविधुर्भानु भावितो भाविनो भवः । रतिप्रीतो वीरसेनो मंजुबुद्धिबलानुगः ॥ ८ ॥ कीर्तिसिन्धुर्माल्यदश्च चेतनश्चतुराननः । रेषो परेशोरेतास्योमानमेरुः पराञ्जनः ॥ ६ ॥ पावनो मदनाकान्तः कुंकुमः कमलाकरः । शतेज्यः शतशक्तिश्च शतानन्दाः यशोधनः ॥ १० ॥ सन्तोषः शंकरः साधुः शान्तिभद्रः समो नरः । देवभद्रस्तु भद्राश्वः सुदेवः सुखसागरः ॥ ११ ॥ एवं परशुरामश्च रजनीकर एव च । श्रीभद्रो भासुरः श्रीदः शालिभद्रो गदः परः ॥ १२ ॥ नरो नारायणश्चान्योऽमलश्चाति सुखस्तथा । सञ्जयोऽजितसंज्ञश्च कृष्णस्यासन्सखिप्रियाः ॥ १३ ॥ क्रीडन्ते हरिणा नित्यं वने सञ्चारयन्ति गाः । न ते नश्यन्ति लोका वै वयः परिणतिर्न हि ॥ १४ ॥ [आदिपुराण]

(भगवान् श्रीकृष्णकी बांसुरीका स्वरूप)

अर्द्धाङ्गुलातन्रोन्मानं तारादिविवराष्टकम् । ततोङ्गुलान्तरे यत्र मुखरन्ध्रं तथाङ्गुलम् ॥ १ ॥ शरो वेदांगुलं पुच्छं त्र्यङ्गुलं सा तु वंशिका । नवरन्ध्रा स्मृता सप्तदशाङ्गुलमिता बुधैः ॥ २ ॥ दशाङ्गुलान्तरास्याच्चेत् स्यात्तारमुखरन्ध्रयोः । महानन्देति विख्याता तथा सम्मोहनीति च ॥ ३ ॥ भवेत्सूर्यान्तरा सा चेत्तत आकर्षणी मता । आनन्दिनी तथा वंशी भवेदिन्द्रान्तरा यदि ॥ ४ ॥ गोपानां वल्लभा सेयं वंशुलीति च विश्रुता । क्रमात् मणिमयी हैमी वैणवीति त्रिधा च सा ।

(भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमल चिह्न)

'षोडशैव तु चिह्नानि मया दृष्टानि तत्पदे दक्षिणे चाष्टचिह्नानि इतरे । सप्त एव च ॥ ध्वजः पद्मं तथा वज्रमकुशो यव एव च । स्वस्तिकं चोर्ध्वरेखा च अष्टकोणं तथाष्टकम् ॥ इन्द्रचापं त्रिकोणश्च कलशश्चार्द्धचन्द्रकम् । अपरे मत्स्यचिह्नं च गोष्पदं सप्तमं स्मृतम् ॥ षोडशश्च तथा चिह्नं शृणु देवर्षि सत्तम । जम्बूफलसमाकारं दृश्यते यत्र कुत्रचिदिति ।। शङ्खध्वजातपत्रैश्चचिह्नितं चरणद्वयम् ।

(वृन्दावनकी श्रेष्ठता)

नामानि द्वादश बुधैः कथितानीह भूतले । नामानि तेषां शृणुत वदाम्युद्देशतः स्फुटम् । आद्यं मधुवनं तत्र द्वितीयं तालसंज्ञकम् । तृतीयं कुमुदं नाम बहुलाख्यं चातुर्थकम् । खादिरं पञ्चमं चैव षष्ठं बिल्वकसंज्ञितम् । सप्तमं लौहसंज्ञन्तु भाण्डीरं चाष्टमं स्मृतम् ॥ नवमं भद्रकं नाम कामिकं दशमं वनम् । एकादशं छत्रवनं वृन्दावनमथादिमम् । तत्र वै द्वादशादित्यास्तेषु विष्णुः परो मतः । तथा वनेषु सर्वेषु परं वृन्दावनं वनम् ।

(यादवों के नाम)

वासुदेवं च देवाभं कङ्कं चाहूय यादवम् । सत्यकं दारुकं चैव कङ्कावरजमेव च ॥ भोजं वैतरणं चैव विकद्रुं च महाबलम् । भयशङ्खं च धर्मज्ञं विपृथुं च पृथुश्रियम् । बभ्रुं दानपतिं चैव कृतवर्माणमेव च । भरितेजसमक्षोभ्यं भूरिश्रवसमेव च ॥ एतान्सयादवान् सर्वानाभाष्य शृणुतेति च । दशार्हा वृष्णयश्चेति । 'भौमाश्च कुकुराश्चैव भोजाश्चान्धकयादवाः ॥

देखिए—हरिवंशपुराणमें । इसप्रकार छप्पनकरोड़ यादव थे यह मिलता है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(भगवान् श्रीकृष्णके गाय चरानेका मुहूर्त)

ज्योतिर्विदः शुभगिरो ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः । समाहूयाथ सम्पूज्य नन्दो वचनमब्रवीत् ॥ अहो ब्रह्मविदां श्रेष्ठाः पश्यन्तु दिनमुत्तमम् । मत्पुत्रस्य समीहास्ति वत्सानां पालनाय हि ॥ समीक्ष्य सुदिनं मह्यं ब्रुवन्तु न चिरं भवेत् । प्रेषयिष्ये वने पुत्रं वत्सचारणहेतवे ॥ रोहिणीजन्मनक्षत्रं वृषराशिस्सु तस्य मे । विष्णुदेवेति नामास्य ततः सर्वं विचार्यताम् ॥ अथ नन्दवचः श्रुत्वा ब्राह्मणाः ब्रह्मवित्तमाः । विचार्योचुः शुभदिनं तृतीया माधवे शुभा । अश्विनीभौमवारे च सिद्धियोगः शुभावहः ॥ तस्मिन्दिने तव सुतः सखिभिः सह गच्छतु । तथेत्युक्त्वा ततो नन्दो ब्राह्मणांस्तान्पूजयत् ॥ गोहिरण्याचदानैश्च ते तुष्टा आशिषो ददुः । विसर्जितास्ते नन्देन ययुः स्वभवनानि च ॥ ततस्तु षष्ठे दिवसे गोपानाहूय गोपिकाः । गीतवादित्रनिनदैश्चकार च महोत्सवम् ॥ मात्रा प्रमृष्टा वालाश्च वस्त्राभरणभूषिताः । आययुः स्वस्वगेहेभ्यो दर्शनीयाः समन्ततः ॥ ताम्बूलं नारिकेलं च पूगीफलमनुत्तमम् । प्रददौ गोपगोपीभ्यो नन्दो मां वस्त्र-भूषणैः ॥ परिष्कृत्याथ तिलकं कृत्वा नीराजनं ततः । सर्वेभ्यः कारयामास प्रणामं सुविधानतः ॥ ततश्चाशिचयद्वालान् पृथग्मागच्छत क्वचित् । अविदूरे व्रजभुवो वत्सानारुध्यशाद्वले ॥ कृष्णेन सहिता यूयं वलेन च वनान्तरे । क्रीडित्वा त्वविरं यावद्भानुरस्तं न गच्छति ॥ तावद्वत्सान्परावृत्य समायान्तु व्रजं पुनः । एवमादिश्य नन्दस्तु बालकान्मां वलं तथा ॥ ब्राह्मणैरकरोत्स्वस्ति तथैवाक्षतरोपणम् । तत्त्वाशिष्यो यशोदाद्या गोपिका मां व्यलोकयन् ॥ मङ्गलैर्गीतघोषैश्च वेदेनिर्घोषशोभितम् । नन्दालयं तदभवन्नितरां मम सन्निधेः ॥ पितरौ मुदमापन्नौ प्रयुज्यावितथा गिरः । वलेन सिखिभिर्वत्सैः साकमादिशताङ्गमाम् ॥ सर्ववत्सान्पुरस्कृत्य सवलोऽहं वनं ययौ । विहृत्य विभ्रन्त पुनर्गृहमुपागमम् ॥ मां विलोक्य ततः सर्वे मुदमापुर्व्रजौकसः । ततोऽनुदिन-मेवेत्थं चक्रे वनगतागतम् । देखिए— लिखित आदिपुराण ।

गौवोंके नाम—

चितकवरी, पीली, श्यामा, शुभ्रा, भव्या, धूमरी, ह्रस्वशृंगी, दीर्घशृंगी, उच्चशृंगी, मृगशृंगी, कुटिलशृंगी, कपिला, पाटला, हरिता, कोकिलवर्णा, विचित्रिता, [गर्गसंहिता]

महारथियोंके नाम—

प्रद्युम्न अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदवाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रवाहु, विरूप, कवि, न्यग्रोध । [भागवत]

(नन्द, उपनन्दों गोप, और राधिकाकी सखियोंके नाम)

गय, विमल, श्रीश, श्रीधर, मंगलायन, मंगल, रंगवल्लीश, रङ्गोजी, देवनायक, वृषभानु, नीतिवित्, मार्न्नद, शुक्र, पतङ्ग, दिव्यवाहन, गोपेष्ट ।' वीतिहोत्र, अग्निभुक्, साम्ब, श्रीकर, गोपति, श्रुत, व्रजेश, पावन, शान्त ।' श्रीदामा, नन्द, रङ्गोजीगोप, सनन्दगोप, स्तोक, अर्जुन, अंश, विशतार्षभ, वरूथप । [गर्गसंहिता]

'सुशीला च शशिकला यमुना माधवी रती । कदम्बमाला कुन्ती च जान्हवी च स्वयंप्रभा ॥ चन्द्रमुखी शशिमुखी सावित्री च सुधामुखी । शुभापद्मा पारिजाता गौरी च सर्वमङ्गला ॥ कालिका कमला दुर्गा भारती च सरस्वती ॥ गङ्गाऽम्बिका मधुमती चम्पाऽपर्णा च सुन्दरी । कृष्णप्रिया सती चैव नन्दनी चन्दनेति च । अर्चिरादिपद्धति ।

(राधाके महलके दरवाजोंका वर्णन)

पुनराजग्मू राधायाः प्रधानद्वारमेव च । सद्रत्नमणिनिर्माणवेदिकायुग्मसंयुतन् ॥१॥ हरिद्राकारमणिना वज्रसंमिश्रितेन च । अमूल्यरत्नरचितकपाटेन विभूषितम् ॥ २ ॥ द्वारे नियुक्तं ॥७॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ददृशुर्वीरभानुमंनुत्तमम् । रत्नसिंहानस्थं च रत्नाभरणभूषितम् ॥ ३ ॥ पीतवस्त्रपरीधानं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । द्वारं चित्रविचित्रेण चित्रितं परमाद्भुतम् ॥ ४ ॥ सर्वं निवेदनं चक्रुर्देवा दौवारिकं मुदा । तानुवाच द्वारपालो निःशङ्कं त्रिदशेश्वरान् ॥ ५ ॥ नाहं विदाऽऽज्ञया गन्तुं दातुं सांप्रतमीश्वरः । किङ्करान्प्रेरयामास श्रीकृष्णस्थानमत्र च ॥ ६ ॥ हरेरनुज्ञां सम्प्राप्य ददौ गन्तुं सुरान् मुने ! । तां सम्भाष्य ययुर्देवा द्वितीयद्वारमुत्तमम् ॥ ७ ॥ ततोऽधिकं विचित्रं च सुन्दरं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तं ददृशुश्चन्द्रभानं च नारद ! ॥ ८ ॥ किशोरं श्यालं चारुस्वर्णवेत्रकरं वरम् । रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् ॥ ९ ॥ गोपानां च समूहेन पञ्चलक्षेण शोभितम् । तं सम्भाष्य ययुर्देवास्तृतीयद्वारमुत्तमम् ॥१०॥ तेऽतोऽतिसुन्दरं चित्रं ज्वलितं मणितेजसा । द्वारे नियुक्तं ददृशुः सूर्यभानुं च नारद ! ॥ ११ ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं श्यामसुन्दरम् । मणिकुण्डलयुग्मेन कपोलस्थलराजितम् ॥ १२ ॥ रत्नदण्डकरं श्रेष्ठं श्रेष्ठं राधेशयोः परम् । नवलक्षेण गोपेन वेष्टितं च नृपेन्द्रवत् ॥१३॥ तं सम्भाष्य ययुर्देवाश्चतुर्थद्वारमेव च । ततो विलक्षणं रम्यं सुदीप्तं मणितेजसा ॥ १४ ॥ अत्यद्भुतं विचित्रेण भूषितं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तं ददृशुर्वसुभानुं व्रजेश्वरम् ॥ १५ ॥ किशोरं सुन्दरवरं मणिदण्डकरं परम् । रत्नसिंहासनस्थं च रम्यं भूषणभूषितम् ॥ १६ ॥ पक्वबिम्बाधरोष्ठं च सस्मितं सुमनोहरम् । तं सम्भाष्य ययुर्देवाः पञ्चमद्वारमेव च ॥ १७ ॥ वज्रभित्तिस्थितैश्चित्रैर्विचित्रैर्ज्वलितं परम् । द्वारत्रालं च ददृशुर्देवभान्वाभिधायकम् ॥ १८ ॥ चारुसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम् । मयूरपुच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम् ॥ १९ ॥ कदम्बपुष्पसंयुक्तं सद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ २० ॥ नृपेन्द्रवरतुल्यं च दशलक्षत्रजान्वितम् । ते वेत्रपाणिं सम्भाष्य ययुर्देवा मुदान्विताः ॥ २१ ॥ विलक्षणं द्वारषट्कं चित्रराजिविराजितम् । वज्रभित्तियुग्मयुक्तं पुष्पमाल्यावभूषितम् ॥ २२ ॥ द्वारे नियुक्तं ददृशुः शक्रभानुं व्रजेश्वरम् । नानालङ्कारशोभाढ्यं दशलक्षत्रजान्वितम् ॥ २३ ॥ श्रीखण्डपल्लवासक्तकपोलं कुण्डोज्ज्वलम् । तूर्णं सुरास्तं सम्भाष्य ययुर्द्वारं च सप्तमम् ॥ २४ ॥ नानाप्रकारचित्रं च षड्भ्यश्चातिविलक्षणम् । द्वारे नियुक्तं ददृशु रत्नभानुं हरेः प्रियम् ॥ २५ ॥ भूषितं भूषणै रम्यैर्मणिरत्नमनोहरैः । गोपैर्द्वादशलक्षैश्च राजेन्द्रमिव राजितम् ॥ २६ ॥ वज्रसिंहासनस्थं च स्मेराननसरोरुहम् । तं वेत्रहस्तं सम्भाष्य जग्मुर्देवेश्वरा मुदा ॥ २७ ॥ विचित्रमष्टमद्वारं सप्तभ्योऽपि विलक्षणम् । दौवारिकं ते ददृशुः सुपार्श्वं सुमनोहरम् ॥ २८ ॥ सस्मितं सुन्दरवरं श्रीखण्डतिलकोज्ज्वलम् । बन्धुजीवाधरोष्ठं च रत्नकुण्डलमण्डितम् ॥२९॥ सर्वालङ्कारशोभाढ्यं रत्नदण्डधरं वरम् । गोपैर्द्वादशलक्षैश्च किशोरैश्च समन्वितम् ॥३०॥ ततः शीघ्रं ययुर्देवा नवद्वारमीप्सितम् । वज्रसद्रत्नरचितं चतुर्वेदीसमन्वितम् ॥३१॥ अपूर्वचित्ररचितं मालाजालैर्विराजितवम् । द्वारपालं च ददृशुः सुबलं ललिताकृतिम् ॥ ३२ ॥ नानाभूषणभूषाढ्यं भूषणार्हं मनोहरम् । व्रजैर्द्वादशलक्षैश्च कृष्णतुल्यं मनोहरम् ॥ ३३ ॥ तं दण्डहस्तं सम्भाष्य सुरा द्वारान्तरं ययुः । विशिष्टं दशमं दृष्ट्वा ते विस्मिताः सुराः ॥ ३४ ॥ सर्वानिर्वचनीयं चाप्यदृष्टमश्रुतं मुने ! । ददृशुर्द्वारपालं च सुदामानं च सुन्दरम् ॥ ३५ ॥ रूपानिर्वचनीयं च कृष्णतुल्यं मनोहरम् । गोपविंशतिलक्षाणां समूहैः परिवारितम् ॥ ३६ ॥ तं दण्डहस्तं दृष्ट्वैव जग्मुर्द्वारान्तरं सुराः । द्वारमेकादशाख्यं च सुचित्रं महदद्भुतम् ॥ ३७ ॥ द्वारपालं च तत्रस्थं श्रीदामानं व्रजेश्वरम् । राधिकापुत्रतुल्यं च पीतवस्त्रेण भूषितम् ॥ ३८ ॥ अमूल्यरत्नरचितं रम्य सिंहासनस्थितम् । अमूल्यरत्नभूषाभिर्भूषितं सुमनोहरम् ॥ ३९ ॥ चन्दनागुरुकस्तुरीकुङ्कुमेन विराजितम् । गण्डस्थलकपोलार्हसद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलम् ॥ ४० ॥ सद्रत्नश्रेष्ठरचितं विचित्रमुकुटोज्ज्वलम् । प्रफुल्लमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषितम् ॥ ४१ ॥ कोटिगोपैः परिवृतं राजेन्द्राधिकमुज्ज्वलम् । तं सम्भाष्य ययुर्द्वारं द्वादशाख्यं सुरा मुदा ॥ ४२ ॥......इत्यादि—

—दौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(जरासन्धके भयसे समुद्रके भीतर नगर बसाकर अपने बान्धवोंको भगवान्का रखना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, कंसके मरनेके बाद अस्ति-प्राप्ति नामकी उनकी दोनों स्त्रियाँ पतिके मरनेसे अतिदुःखी होकर पिताके घर चली गईं ॥ १ ॥ अति दुःखी दोनों स्त्रियोंने मगधके राजा अपने पिता जरासन्धसे अपने वैधव्यकी सारी बातें बतलाईं ॥ २ ॥ हे राजन्, इस तरहका अप्रिय वचन सुनकर शोकसे क्रुद्ध हो उस मगधराजने पृथिवीको यादवहीन करनेका भारी उद्योग किया ॥ ३ ॥ जरासन्धने 'तेईस अक्षौहिणी' सेना लेकर यादवोंकी राजधानी मथुराको चरों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ इसके बाद भगवान्ने बेलाका अतिक्रमणकर चुके सागरके सदृश मगधराजाकी सेना, चारो तरफसे घिरे हुए अपने नगर और भयसे डरे हुए अपने जनोंको देखा ॥ ५ ॥ भूभारावताररूप प्रयोजनसे मानव शरीरधारी भगवान् श्रीहरि देश, कालके अनुकूल अपने अवतारका प्रयोजन सोचने लगे अर्थात्–श्रीकृष्ण भगवान्–मनुष्यदेह धरनेका प्रयोजन विचारकर केवल सेनाको ही मारूँ या केवल जरासन्धको मारकर

श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते ॥ वेदयाञ्चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परमसुद्यमम् ॥३॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिन्तयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः ॥ तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ॥ मागधेन समानीतं वंश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥ अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ॥ मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥८॥ एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संध्रियते मया ॥ विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात्सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥११॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः

सेनाको कैद कर लूँ अथवा सेनासहित राजाको मार दूँ–इस तरह सोचनेलगे ॥६॥ पृथिवीके ऊपर भारस्वरूप एकत्र हुई इस सेनाको मैं नष्टकर दूँ, क्योंकि इस पृथिवीका बोझ हल्का करनेके लिये ही तो मेरा अवतार हुआ है, इसलिये मगधराज द्वारा लाई गई समस्त वंशोद्भव राजाओंकी सेनाको ही मार देना उचित है, जो वीरों, अश्वरथ और हाथियोंसे युक्त तेईस अक्षौहिणी के सहित गिनतीमें हैं। मगधराजको मारना उचित नहीं है, क्योंकि यदि यह बचे रहेंगे, तो फिर सेना एकत्र करनेमें उद्योग अवश्य करेंगे ॥७, ८ ॥ क्योंकि पृथिवीका बोझ हल्का करनेके लिये, साधुओंकी रक्षाके लिये और दुराचारियोंको मारनेके लिये ही मेरा यह अवतार हुआ है ॥ ९ ॥ और भी मनुष्यसे अन्य शूकरादि शरीर धर्मस्थापनार्थ धारण करता हूँ। कभी-कभी अधर्मका नाश करनेके लिये भी जन्म लेता हूँ जब कि अधर्म अधिक बढ़ने लग जाता है ॥ १० ॥ इस तरह स्मरणकर रहे भगवान्के सम्मुख आकाशसे सूर्यके तेजके सदृश

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सारथि और ध्वजा पताकादिसे युक्त दो रथ अति शीघ्र उपस्थित हो गये ॥ ११ ॥ अनायास ही आये हुए उन प्राचीन दिव्यास्त्र-शस्त्रोंको देखकर भगवान् हृषीकेश बलदेवजीसे कहने लगे ॥ १२ ॥ हे आर्य, तुम्हीं रक्षक हो जिनके ऐसे यदुवंशियोंके प्राप्त दुःखको देखो। तुम्हारे लिये ही यह रथ और अपूर्व शस्त्रादि आये हैं ॥ १३ ॥ इस रथपर बैठकर इस आपत्तिसे अपने भक्तोंका दुःख दूर कीजिये उनका उद्धार कीजिये। हे भगवन्, इसीके लिये हम दोनोंका जन्म हुआ है और आप साधुओंका दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं ॥ १४ ॥ अतः तेईस अक्षौहिणी सेनाको मारकर पृथिवीके भारको दूर कीजिये। ऐसा विचारकर कृष्ण और बलदेव कवच पहनकर रथपर बैठकर अपने आयुध तथा थोड़ीसी सेनाके साथ नगरसे बाहर निकले। नगरसे बाहर होते ही दारुक सूतवाले श्रीहरि भगवान्ने अपना शंख बजाया ॥ १५,१६ ॥ तदनन्तर जरासन्धके सैनिकोंके हृदयमें डर और कपकपी होने लगी। यह देखकर जरासन्धने कृष्ण और बलदेवसे कहा—हे कृष्ण, तुम पुरुषोंमें अधम हो † ॥ १७ ॥ तुम्हारे सदृश बालकके साथ मैं कभी नहीं लड़ूँगा, क्योंकि तुम्हारे साथ लड़नेमें मुझे लज्जा हो रही है। हे दुष्ट,

सङ्कर्षणमथाब्रवीत ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥१४॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ॥ एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात ॥ १५ ॥ निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसा वृतौ ॥ शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥१६॥ ततोऽभूत्पर-सैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ॥ गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥१८॥ तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥१९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ॥ न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुत-स्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसावृणोत् ॥ ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ

तुम वैश्य हो अर्थात् नन्द द्वारा तुम्हारा पालन-पोषण हुआ है अतः हे बन्धुओंका हनन करनेवाले * कृष्ण तुम चले जाओ ॥१८॥ हे बलदेव, यदि तुम्हें युद्धकी इच्छा हो, तो मेरे साथ धैर्यपूर्वक युद्ध करो या मेरे बाणसे घायल अपना शरीर छोड़कर चले जाओ, अथवा तुम्हें शक्ति हो तो मुझे ही मार डालो ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे राजन्, वीर पुरुष अपनी प्रशंसा एवं दूसरोंकी निन्दा नहीं करते। वे तो अपना बल-पौरुष ही दिखाते हैं। हे राजन्, हमलोग मरणासन्न रोगी व्यक्तिकी बातोंको स्वीकार नहीं करते ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, जरासन्ध उनसे अलग होकर कृष्ण और बलदेव दोनोंको महान् बलवान् सेनाके बलसे ढक दिया। भगवान्की सेना, रथ, ध्वजा, अश्व और सारथिको ऐसे घेर लिया, जैसे कि

† वास्तविक अर्थ यह है—जिससे पुरुष अधम है उसका नाम है पुरुषाधम अर्थात् हे कृष्ण, तुम पुरुषोत्तम हो।

* इसका असली मतलब यह है- बध्नातीति बन्धु अर्थात् बन्धनमें फँसानेवाली यानी अविद्या उसको जो नष्ट करता है उसका नाम है बन्धुहन् अर्थात् हे अविद्याके नाशक श्रीकृष्ण।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वायु बादलोंसे सूर्यको और मिट्टीसे अग्निको ढक देता है ॥ २१ ॥ युद्धमें अपने नगरके बड़े-बड़े कोठोंके ऊपर बैठकर स्त्रियाँ बलदेव और कृष्णके गरुड़ और ध्वजासे तालचिह्नित रथोंको न देखकर शोकसे व्याकुल हो मूर्छित होने लगीं ॥ २२ श्रीकृष्ण अपने शत्रुरूपी मेघद्वारा मूसलाधार बाणरूपी वर्षासे पीड़ित अपने सैनिकोंको देखकर देव दानवसे पूजित रमणीय अपना धनुषबाण चढ़ाया ॥ २३ ॥ तदनन्तर निषंग [बाण रखनेके स्थान] से बाणोंको लगातार निकाल-निकालकर धनुषकी डोरीपर चढ़ाते हुए तथा डोरी खींचकर अपने पैने बाणसमूहोंको छोड़ते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शत्रुके रथों, घोड़ों हाथियों तथा पैदल लड़नेवाले सिपाहियोंको मारने लगे। उनके बाण जब धनुषसे छूटते थे, तब मालूम पड़ता था कि चारो ओर आगकी चिनगारियाँ उड़-उड़कर गिर रही हैं ॥ २४ ॥ फटे हुए मस्तकवाले बहुतसे हाथी भूमिपर गिर पड़े, बाणसे कटे हुए गर्दनवाले अनेक अश्व भी अचेत होकर गिर पड़े, मरे हुए सारथी, घोड़े और नायकवाले रथ तथा मरे हुए सिर, हाथ एवं गर्दनवाली पैदल सेना भी भूमिपर गिर पड़ी ॥ २५ ॥ युद्धमें परस्पर कटे जा रहे मनुष्यों, हाथियों और

रथावलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिता ॥२२॥ हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्वणवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्ग शरासनोत्तमम् ॥२३॥ गृह्णन्निषङ्गादथ सन्दधच्छरान्विकृष्य मुञ्चञ्छितबाणपूगान् ॥ निघ्नन्रथान्कुञ्जरवाजिपत्तीन्निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाहयः पुरुषशीर्षकच्छपा हताद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसङ्कुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ॥ विनिघ्नताऽरीन्मुसलेन दुर्मदान्संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥२८॥ बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवान्तं भुव-

घोड़ोंके अंगसे सैकड़ों खूनकी नदियाँ बहने लगीं। उनमें पुरुषोंकी भुजाएँ ही साँप-सी मालूम पड़ने लगीं, पुरुषोंके मस्तक ही कच्छपरूपसे तैरने लगे, मारे गये हाथी नदियोंके तट जैसे दीखने लगे, मरे हुए घोड़ोंरूपी ग्राहोंसे वे नदियाँ व्याप्त हो रही थीं, उनमें मनुष्योंके हाथ और जंघे मछलीके रूपमें तैर रहे थे, मनुष्योंके केशोंरूपी सेवालोंसे वे भर रही थीं, धनूषरूपी तरंगों एवं आयुधरूपी काण्डरहित वृक्षोंसे वे संकुल हो रही थीं, चर्म या चक्ररूपी आवर्तोंसे वे भयङ्कर दीख रही थीं, महामणियोंके श्रेष्ठ अलङ्कार उनमें जहाँ तहाँ पत्थरके रूपमें दीख रहे थे। वे डरपोंक लोगोंके लिये भयोत्पादक बन रही तथा मनस्वी वीर पुरुषोंको आनन्द प्रदानकर रही थीं। अपरिमित तेजसे युक्त बलदेवजीने अपने मूसलसे दुर्दान्त शत्रुओंको मारते हुए हे राजन्, जिसका पार पाना अत्यन्त कठिन था ऐसी समुद्रके समान दुर्गम और भयङ्कर मगधराजकी रक्षित सेना बिलकुल नष्टकर दी। हे राजन्, यह समझ लीजिये कि वसुदेवके पुत्र जगत्के ईश्वर बलदेव और श्रीकृष्णका यह एक केवल खेलवाड़ था, पराक्रम नहीं था ॥ २६-२९ ॥ क्योंकि अनन्त गुणवाले भगवान्की लीलासे ही तीनों लोककी उत्पत्ति, पालन और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाश होता है। मनुष्यके पराक्रमका अनुकरण करनेवाले उनके द्वारा शत्रूका नाश होना कोई बड़ा अश्चर्य नहीं है। तथापि हे राजन्, आश्चर्यवत् मैं वर्णनकर रहा हूँ ॥ ३० ॥ तदनन्तर जैसे अपने ओजसे एक सिंह दूसरे सिंहको पकड़ ले उसी तरह बलदेवजीने 'जिसकी सारी सेना नष्ट हो चुकी थी, जिसका एकमात्र प्राणही अवशेष रह गया ऐसे महाबलवान् जरासन्धको-पकड़ लिया ॥ ३१ ॥ बलदेवजी द्वारा अपने बहुत शत्रुओंको मारनेवाले जरासन्धको वरुणपाशसे बाँधते समय भगवान्ने मनाकर दिया, क्योंकि जरासन्ध द्वारा कुछ कार्य और करानेकी भगवान्की इच्छा रह गई थी ॥ ३२ ॥ बलदेव और श्रीकृष्ण द्वारा छोड़ दिये जानेपर लज्जित होकर वीर जरासन्धने राजाओंसे रोकनेपर भी मार्गमें तपश्चर्याके हेतु दृढ़ सङ्कल्प किया ॥ ३३ ॥ पवित्र धर्मोपदेशपरक पदवाले लौकिक नीतियुक्त वाक्योंकी नाईं इन थोड़ेसे नीति निपुण साधारण यदुवंशियोंके द्वारा महान् पराक्रमी तुम्हारा जो पराभव हुआ है, सो केवल पूर्वजन्मके कर्मबन्धनसे ही हुआ है, अतः तुम्हें इसमें शर्मानेकी कोई बात ही नहीं है, ऐसा उस मगधराजने विचार किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर जरासन्ध सम्पूर्ण सेनाओंके नष्ट हो जाने-

नत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्व लीलया ॥ न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥३०॥ जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानं हताराितं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचि-कीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसम्मतः ॥ तपसे कृतसङ्कल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥३४॥ हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपेक्षितो भगसा मगधान्दुर्मना ययौ ॥३५॥ मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसङ्गम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगी-यमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥ ३८ ॥ सिक्तमार्गां हृष्ट-जनां पताकाभिरलङ्कृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९ ॥ निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ॥ यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृ-

पर और भगवान् द्वारा छोड़ दिये जानेपर वह राजा जरासन्ध अत्यन्त दुःखित होकर अपनी राजधानी मगधको चला गया ॥ ३५ ॥ अपनी सेनाका नाश नहीं कराते हुए भी समुद्रके सदृश शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाले भगवान्के ऊपर देवता सब अति प्रसन्न हो भगवन्, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो, 'यों कहते हुये पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ ३६ ॥ क्लेशरहित प्रसन्नचित्त हुए मथुरावासी यदुवंशियों से मिलकर सूत, मागध आदि बन्दी जनोंके द्वारा भगवान्ने अपना विजयगान सुना ॥ ३७ ॥ भगवान्के नगरमें प्रवेश करते समय शंख, भेरी, दुन्दुभि, तुरही, वीणा, वेणु, मृदंग इत्यादि अनेक बाजे बजने लगे ॥ ३८ ॥ नगरकी समस्त सड़कें सींची गई थीं, पताकाओंसे खूब सजी हुई थीं, वहाँके नागरिक खूब खुश हो रहे थे, ब्राह्मणों द्वारा वेदपाठ किया जा रहा था, उत्सवके कारण चारो ओर तोरण बँधे हुए थे ॥ ३९ ॥ नगरमें प्रवेश करते समय भगवान्के ऊपर नागरिक स्त्रियाँ दधि, अक्षत, दूर्वाङ्कुर तथा पुष्प मालाएँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बखेर रही थीं, प्रेमभरी उत्फुल्ल आँखोंसे वे अपना प्रचुर स्नेह वर्षाती हुई देख रही थीं ॥ ४० ॥ इसके बाद भगवान्ने युद्धमें स्थित अनन्त धन और अनेक वीरोंके वे सब लाये गये आभूषण यदु राजाको दिये ॥ ४१ ॥ इस तरह पराजित होनेपर भी जरासन्धने तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्णसे रक्षित यदुवंशियोंके साथ सत्रह बार युद्ध किया ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे यदुवंशियोंने जरासंधकी वह पूरी सेना नष्टकर दी। अपनी सारी सेनाओंके नष्ट हो जानेके बाद दुश्मनोंसे छुटकारा पानेपर वह जरासंध अपनी राजधानीको वापस चला गया ॥ ४३ ॥ इसके बाद होनेवाले अठारहवें युद्धमें नारदसे भेजा गया वीर कालयवन अकस्मात् आ धमका ॥ ४४ ॥ उस कालयवनने तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लेकर मथुरा नगरको घेर लिया और अपने तुल्य बलवाले यदुवंशियोंको सुनकर युद्ध छेड़ दिया। हे राजन्, वह कालयवन इस मनुष्यलोकमें अप्रतिद्वन्द्वी था ॥ ४५ ॥ यह देखकर बलदेवजी हैं सहायक जिसके ऐसे श्रीकृष्णजी अति चिन्तित हुए कि अहो, यदुवंशियोंको दोनों तरफसे महान् दुःख प्राप्त हो गया यानी एक ओरसे जरासंधने और दूसरी ओरसे

त्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः । युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥ अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥ अष्टादशमसंग्राम आगामिनि तदन्तरा ॥ नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ । रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ॥ नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन् श्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥ तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्कृष्णः सङ्कर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥४६॥ यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥४७॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ॥ बन्धून्वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४८ ॥ तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ॥ तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ५० ॥ दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ॥ रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ॥

कालयवनने उनके ऊपर चढ़ाईकर दी ॥ ४६ ॥ आज तो महाबलवान् यवनने नगर घेर लिया है और आज, कल या परसों अवश्य जरासंध भी आ जायगा ॥ ४७ ॥ हम दोनोंके युद्ध होते समय यदि जरासंध भी आ गया, तो महाबलिष्ठ वह बलदेवजीको मार डालेगा अथवा पकड़कर अपने नगरको ले जायगा ॥ ४८ ॥ अतः हाथियोंके भी दुर्गम दुर्ग बनाकर वहीं यदुवंशियोंको रखकर यवनको आजही मार डालूँगा ॥ ४९ ॥ ऐसा विचारकर भगवान् श्रीकृष्णजीने समुद्रके अन्दर बारह योजन विस्तीर्ण चार हजार आठ सौ कोशका अति कठिन दुर्ग बनाकर उसके बीचमें अत्यन्त आश्चर्यमय नगरका निर्माण कराया ।।५०।। उस दुर्गके भीतर विश्वकर्माकी विज्ञानकला और शिल्पकारीका चातुर्य देखते ही बनता था। सुन्दर सड़कें बनाई गई थीं, चौक, बाजार तथा गलियाँ जैसा चाहिये गृहनिर्माण स्थानके मुताबिक सुन्दर ढङ्गसे निर्मित की गई थीं ॥ ५१ ॥ जहाँ सुरद्रुम और सुन्दर लताएँ विराज रही हैं ऐसे उद्यानों तथा विचित्र उपवनोंसे वह युक्त था। गगनचुम्बी सुवर्ण शिखरोंवाली उसमें स्फटिककी अटारियाँ बनी हुई थीं और स्फटीकके ही थे बनाये गये उसके सुन्दर फाटक, चाँदी, पीतल एवं लोहेसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसकी अश्वशालाएँ तथा अन्नशालाएँ निर्मित हुई थीं, जो सोनेके बने घड़ोंसे खूब अलङ्कृत थीं, पद्मरागादिके शिखरोंवाले सोनेके वहाँ अनेक गृह बनाये गये थे, उन गृहोंके गच महामरकत-मणिमय थे। देवताओंके मन्दिरों और चन्द्रशालाओं (कोठेके सबसे ऊपरके बँगलों) से वह खूब सुशोभित था। चारो वर्णके लोगोंसे वह ठसाठस भरा हुआ था तथार ।जा वसुदेवके अनेक प्रासादोंसे वह नगर चमचाम रहा था ॥५२–५४॥ श्रीकृष्णचन्द्रके लिए इन्द्र भगवानने वहाँ अपनी सधर्मा सभा और पारिजातको लाकर रख दिया था, जहाँ बैठा हुआ मृत्युलोकका प्राणी भूख-प्यास आदि मृत्युलोकके धर्मों से युक्त नहीं होता ॥ ५५ ॥ श्यामवर्णके एक कानवाले तथा मनके समान दौड़ लगानेवाले सफ़ेद घोड़े लाकर वरुणदेवने रख दिये और लोकपाल कुवेरने अपनी विभूतिस्वरूप आठों निधियाँ* लाकर धर दी थीं ॥ ५६ ॥ हे राजन्, जब भगवान् पृथ्विपर आये तब जिन-जिन सिद्धादिकोंको भगवानने जो अधिकार उनके अधिकारकी सिद्धिके

हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलङ्कृतैः ॥ रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥ वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥५५॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोजवान् ॥ अष्टौ निधिपतिः कोशाँल्लोकपालो निजोदयान् ॥५६॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ॥ निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

लिए दिये थे वे सब अधिकार उन लोगोंने भगवान्को वापस कर दिये ॥ ५७ ॥ अपने योगप्रभावसे वहाँपर सभी वस्तुएँ भगवान्ने लाकर रख दीं। इसका पता कालयवन तथा अन्य किसीको भी न लगा। तत्पश्चात् बलदेवजीसे 'आप तो यहीं रहकर इन प्रजाओंका पालन कीजिये और मैं यहाँसे भाग जाता हूँ, यों सलाहकर बिना हथियार लिये ही पद्ममाली भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी नगरके फाटकसे बाहर निकल गये ॥ ५८ ॥

पचासवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कंसकी मृत्युके बाद उसकी सब स्त्रियोंने पिताके घर जाकर अपने पिता जरासंधसे सारी बातें कह सुनाई। वह सब सुनकर जरासन्धने तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापर चढ़ाई कर दी। नगरको चारो ओरसे घेर लिया। तदनन्तर भगवान्के ध्यान करते ही आकाशसे दो रथ आकर खड़े हो गये। बलदेव तथा श्रीकृष्णचन्द्रजी दोनों उनपर बैठकर जरासन्धकी सेनाको नष्ट करने लगे। सारी सेनाके मृत्युके गालमें चले जानेके बाद श्री बलदेवजीके द्वारा मारे जा रहे जरासन्धको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने रोक दिया। छुटकारा पाते ही वह लज्जित होकर अपनी राजधानीको चला गया। तदनन्तर दोनों भाई अपनी पुरीमें प्रविष्ट हुए, जहाँ नानाविधसे विजयोत्सव मनाये जा रहे थे।

*पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, उदक, नील, मुकुन्द और शंख—ये आठ निधियाँ हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसी तरह मगधराजने सत्रह बार मथुरापर चढ़ाई की, लेकिन हरेक बार पराजित होता गया। जब अठारहवीं बार वह चढ़ना हीं चाहता था कि तबतक इधर कालयवनने तीन करोड़ सेना लेकर मथुराको घेर लिया। तदनन्तर बहुत विचारकर श्रीबलदेवजीसे सलाह करके समुद्रके अन्दर बड़े भारी बारह योजन दुर्गका निर्माण कराकर उसके बीचमें द्वारकापुर बसाकरी उसीमें अपने स्वजनोंको रखकर बलदेवजीको उसकी रक्षाके लिए नियुक्त करके स्वयं भगवान् कालयवनसे मथुराको बचानेके लिए चले गये। पचासवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ❀

(मुचुकुन्द द्वारा कालयनका भस्म होना तथा मुचकुन्दके ऊपर भगवान्का अनुग्रह करना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नगरके फाटकसे निकल रहे अत्यन्त दर्शनीय, श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी श्रीवत्सको वक्षःस्थलपर धारण किये हुए, चमक रहे कौस्तुभमणिसे सुशोभित कन्धरावाले, गोल-गोल लम्बी चार भुजाओंसे युक्त, नवीन कमलके समान आँखोंवाले, सर्वदा प्रसन्नचित्त सौन्दर्यभरे कपोलोंवाले, मधुर मुसकानसे युक्त तथा चमक रहे मकर कुण्डलोंसे समन्वित मुखारविन्दको धारणकर रहे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको, उदित हो रहे चन्द्रमाकी नाईं देखकर श्रीवत्सलाञ्छन चतुर्भुज, अरविन्दाक्ष, वनमाली, अतिसुन्दर भगवान् वासुदेव यही

श्रीशुक उवाच॥ तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौ-स्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकर-कुण्डलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्छ्रीवत्सलाञ्छनः ॥ चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥ ७ ॥ पलायनं यदुकुले जातस्य तव

हैं क्योंकि नारदमुनिने जो-जो भगवान्के लक्षण बतलाये हैं उन लक्षणोंसे युक्त इनके सिवा दूसरा नहीं हो सकता है। चूँकि यह बिना हथियार लिये हुए हैं, इसलिये मैं भी बिना हथियारके ही पैदल चलते हुए इनके साथ युद्ध करूँगा, यों निश्चयकर कालयवन पराङ्मुख दौड़ रहे भगवान्के पीछे उनके मार डालनेकी इच्छासे दौड़ गया, जो भगवान् योगियोंको भी बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं ॥ १–६ ॥ अपनेको हस्तगत हुएकी नाईं पद-पदपर दिखलाते हुए भगवान् विष्णु बहुत दूर पर्वतकी कन्दरामें यवनेशको चढ़ा ले गये ॥ ७ ॥ तत्पश्चात् हे-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कृष्ण, तुम यदुकुलमें पैदा हुए हो तुम्हारा यों भागना उचित नहीं है, इस तरह भगवान्की निन्दा करते हुए पीछे-पीछे दौड़ रहा अक्षीणकर्मा वह कालयवन भगवान्को प्राप्त न कर सका ॥८॥ इस तरहके आक्षेपको सुनते हुए भी भगवान् गिरिकन्दरामें घुस गये और तदनन्तर वह भी वहीं प्रविष्ट हो गया। वहाँ उसने सो रहे एक दूसरे मनुष्यको देखा ॥ ९ ॥ इतनी दूरीपर मुझे लाकर यह साधुकी तरह यहाँपर सो रहा है, ऐसा समझकर उस मूर्खने उसे कृष्ण मानकर लातसे मारा ॥ १० ॥ वह बहुत दिनोंसे सोया हुआ था, उठकर धीरे-धीरे आँखें खोलकर चारों तरफ दृष्टि दौड़ाते हुए उसने समीपमें ही खड़े हुए यवनको देखा ॥ ११ ॥ हे राजन्, वह यवन क्रुद्ध उनकी दृष्टि पड़ते ही अपनी देहसे उत्पन्न अग्नि द्वारा उसी क्षणमें भस्मीभूत हो गया ॥ १२ ॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन्, यवनको मारनेवाला वह पुरुष कौन था, किसका पुत्र था, उसमें कैसा पराक्रम था, उसका क्या नाम था, किस मतलबसे गुहामें प्रविष्ट होकर सो रहा था तथा उसमें कैसा तेज था ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, वह पुरुष इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न महान् मान्धाताका पुत्र था, मुचकुन्द उसका नाम था और

नोचितम् ॥ इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥८॥ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद् गिरिकन्दरम् । सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ॥ इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥१०॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ को नाम स पुमान्ब्रह्मन् कस्य किंवीर्य एव च ॥ कस्माद् गुहां गतः शिश्ये किन्तेजो यवनार्दनः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥१४॥ स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥१५॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ॥ राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान् नः परिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् ॥ अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७ ॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ॥ प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना सन्ति कालिताः ॥ १८ ॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ प्रजाः

वह सत्य प्रतिज्ञावाला तथा ब्राह्मणमें निष्ठा रखनेवाला था ॥ १४ ॥ असुरोंसे परित्रस्त हुए इन्द्रादि देवताओंके द्वारा अपनी रक्षाके लिये प्रार्थित होनेपर उस महापुरुषने चिरकालतक उनकी रक्षा की ॥ १५ ॥ तदनन्तर कार्तिकेयको प्राप्तकर उन सब देवताओंने अपने स्वर्गके पालक मुचुकुन्दसे यह कहा—हे राजन्, इस दुःखरूप हमलोगोंके परिपालनसे आप विराम लेनेकी कृपा करें ॥ १६ ॥ हे वीर, मृत्युलोकमें अपना अकण्टक राज्य छोड़कर हमलोगोंकी रक्षा करते हुए आपकी समस्त कामनाएँ त्यक्त हो चुकी हैं ॥ १७ ॥ हे राजन्, आपके लड़के, आपकी स्त्रियाँ, बान्धव, अमात्य मन्त्रीगण तथा आपके ही समान कालवाली आपकी प्रजाएँ भी इस समय नहीं हैं, वे सबके सब उस महान् कालके द्वारा उड़ा दी गईं। आज उनका इस पृथिवी पर कहीं नामोनिशान भी नहीं है ॥ १८ ॥ अत्यन्त बलवानोंमें सबसे बली ईश्वर अविनाशी काल भगवान् हैं। पशु पालनेवाला पुरुष जैसे पशुओंको अपनी इच्छानुसार जिधर चाहता है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उधर चलता-फिराता है; उसी तरह काल भगवान् अपनी इन प्रजाओंको इच्छानुसार इधर-उधर चलाते-फिराते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्, आपका कल्याण हो, आप जो चाहें हमलोगोंसे आज वर माँग लीजियें, लेकिन एक कैवल्यको छोड़कर, क्योंकि हे राजन्, उस कैवल्य (मोक्ष) का मालिक अविनाशी केवल एक भगवान् विष्णु ही हैं ॥ २० ॥ यों देवताओं द्वारा कहे जानेपर उन देवताओंको प्रणाम करके उसने सिर्फ निद्राको ही वररूपमें माँगी, क्योंकि वह राजा श्रम करते-करते थक कर चूर हो गया था, उसे विश्रान्तिकी नितान्त आवश्यकता थी। उसने कहा–हे देवताओ, जो कोई मेरी निद्रा भङ्ग करेगा, वह शीघ्र भस्मीभूत हो जायगा, यही मुझे आपलोग वर दीजिए। देवता सब 'तथास्तु' कहकर चल दिये। उन देवताओंसे प्राप्त निद्राके कारण गुहामें प्रविष्ट होकर यह मुचुकुन्द सो रहा था ॥ २१ ॥ देवताओंने जाते समय मुचुकुन्दसे कहा—हे राजन्, सोये हुए आपको यदि कोई अचेतन बीचमें जगा देगा, तो वह उसी

कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १६ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥
एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ॥ (निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः ॥ यः कश्चिन्मम निद्राया भङ्गं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ १ ॥ स
हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा) ॥ अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ २१ ॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः ॥ स
त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥२२॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२३॥ तमा-
लोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २४ ॥ चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ॥
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २५ ॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २६ ॥ पर्य-
पृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥ २७ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिने
गिरिगह्वरे ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २८ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोक-

क्षण आपके देखते-देखते भस्म हो जायगा* ॥ २२ ॥ मुचुकुन्द द्वारा यवनके भस्म हो जानेपर भक्तवत्सल बुद्धिमान् भगवान्ने मुचुकुन्दको अपना रूप दिखलाया ॥ २३ ॥ घनश्याम पीताम्बरधारी छाती पर श्रीवत्ससे विभूषित, चमक रहे कौस्तुभमणिसे विराजित, चतुर्भुज, वैजयन्ती मालासे खूब शोभ रहे, सुन्दर प्रसन्न वदनयुक्त, देदीप्यमान मकरकुण्डलोंसे समन्वित, मनुष्यलोकके दर्शनीय पदार्थभूत, सानुराग मुसकुराहटयुक्त चितवनवाले, कमनीय वयवाले मतवाले सिंहके सदृश उदार विक्रमवाले उस भगवान्को देखकर उनके तेजसे अभिभूत होते हुए महाबुद्धिमान् राजाने नाना तरहकी शङ्काएँ करते हुए तेजसे दुर्धर्ष-जैसे भगवान्से धीरेसे पूछना आरम्भ किया ॥ २४–२७ ॥ मुचुकुन्दने कहा—अति भयानक वनकी पहाड़ी गुफामें अति कण्टकयुक्त मार्गमें कमल और पलाशकी नाईं सुन्दर कोमल पैरसे आप क्यों विचर रहे हैं ? आप कौन हैं, कृपया बतलाइये ॥ २८ ॥ क्या आप तेजस्वियोंमें अति तेजस्वी भगवान्

*यह भी श्लोक प्रक्षिप्त-सा मालूम पड़ता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्निदेव हैं या सूर्य, चन्द्र, इन्द्र अथवा कोई लोकपाल तो नहीं हैं ? या इन सबोंसे अन्य कोई अलौकिक पुरुष तो नहीं हैं ? ॥ २९ ॥ हे भगवन्, मैं आपको ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनोंमें श्रीविष्णु ही समझता हूँ, क्योंकि आप इस गुफा तथा मेरे हृदयके अन्धकारको ऐसेही दूरकर रहे हैं, जैसे प्रदीप अपनी प्रभासे समस्त गाढान्धको दूरकर देता है ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, या तो आप मेरा अति तुच्छ जीवन-चरित्र सुनें, अथवा आपको यदि अच्छा लगता हो, तो अपना नाम, जन्म और वंश बतलानेकी कृपा करें ॥ ३१ ॥ हे पुरुषव्याघ्र, हे प्रभो, मैं तो क्षत्रियजातीय इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न यौवनाश्व अर्थात् मान्धाताका पुत्र मुचुकुन्द नामसे प्रोक्त हूँ ॥ ३२ ॥ बहुत कालतक जागते रहनेसे अति थक गया हूँ और घोर निद्राके कारण मेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं, अतः निर्जन इस एकान्त वनमें अपनी इच्छासे सो गया हूँ, इस समय मुझे किसने किस अभिप्रायसे उठाया ॥ ३३ ॥ जिसने मुझे जगाया है वह अपनेही पापसे भस्म हो गया है। इस तरह कहनेके अनन्तर मुचुकुन्दने पुनः कहा—हे भगवन्, आप दुश्मनोंके नाशक श्रीमान् लक्षित हो रहे हैं ॥ ३४ ॥ अत्यन्त असहनीय आपके

पालो परोऽपि वा ॥ २९ ॥ मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥ ३० ॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ॥ स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३१ ॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ॥ मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३२ ॥ चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयोपहतेन्द्रियः ॥ शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३३ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनन्तरं भवाञ्छ्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३४ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ ३५ ॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान्भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ॥ न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वन्मयापि हि ॥ ३७ ॥ क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ॥ गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ ३९ ॥ तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां

प्रचुर तेजसे मैं दृष्टिहीन हो गया हूँ। अतः अच्छी तरह मैं आपको नहीं देख सकता। हे महाभाग, देहधारियोंमें परम पूजनीय आप मालूम पड़ रहे हैं ॥ ३५ ॥ इस तरह मुचुकुन्दके द्वारा कहे जानेके बाद भूतभावन भगवान् मेघके समान गम्भीर वाणीसे हँसते हुए कहने लगे ॥ ३६ ॥ भगवान्ने कहा—हे मुचुकुन्द, मेरे जन्म और कर्मोंके नाम हजारों हैं, अतः अनन्त होनेसे मैं भी अपने जन्म-कर्मोंकी गिनती नहीं कर सकता ॥३७॥ यद्यपि कहीं किसीने अनेक २ श्रेष्ठ जन्मोंके कारण पृथ्वीकी धूलिकी तो गणना कर ली है तथापि गुण और कर्मोंके द्वारा जहाँ अनेक नाम हैं ऐसे मेरे जन्मोंकी किसीने कभी नहीं गिनती की है ॥३८॥ हे राजन्, तीनों कालमें सिद्ध हुए मेरे जन्मकर्मोंकी गिनती करते हुए बड़े-बड़े परम महर्षि लोग भी पार नहीं पाते हैं ॥ ३९ ॥ तथापि हे राजन्, मेरी इस जन्मकी कथा सुनो, मैं कह रहा हूँ। धर्मकी रक्षा करने तथा पृथ्वीके भारभूत असुरोंका संहार करनेके लिए सर्वप्रथम ब्रह्माजीसे विज्ञापित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हो यदुवंशमें आनक दुन्दुभिके घर अवतीर्ण हुआ हूँ। मुझे सारा संसार वसुदेवसुत 'वासुदेव' इस नामसे पुकारता है ॥ ४०, ४१ ॥ मैंने सज्जनोंके दुश्मन अत्यन्त दुष्ट कालनेमि, कंस और प्रलम्बादि असुरोंका नाश कर दिया है। हे राजन्, आपके अति तेजस्वी नेत्रद्वारा यह यवन जला दिया गया है ॥ ४२ ॥ हे राजन्, तुमने भक्तवत्सल मेरी पहले प्रचुर प्रार्थना की है, इसीलिये तुम्हारी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर मैं इस गुफामें तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए अर्थात् तुम मेरा दर्शन कर सको, इस वास्ते उपस्थित हुआ हूँ ॥ ४३ ॥ हे राजर्षे, तुम वर माँगो, मैं सभी अभिलषित वस्तुएँ तुम्हें दे रहा हूँ। मेरी शरणमें आकर कोई पुरुष मैं अपूर्ण हूँ, ऐसी फिर, किसी वस्तुकी चिन्ता नहीं करता ॥ ४४ ॥ इसके बाद श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान् द्वारा इतनी कथा कहनेके बाद हर्षसे युक्त होकर मुचुकुन्द भगवान्को प्रणाम करके गर्गाचार्यके कहेका स्मरण करते हुए, ये ही नारायण देव हैं, ऐसा समझकर बोलने लगा ॥ ४५ ॥ मुचुकुन्दने कहा—हे ईश, पुरुष और स्त्रियाँ दोनों तरहके जीव आपकी विलक्षण मायासे मुग्ध होकर अनर्थको देखने लगते हैं, उन्हें परमार्थ आप ईश्वरकी भक्ति नहीं

त्रयाय च ॥ ४० ॥ अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ॥ वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४१ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४२ ॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥ प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ॥ ४३ ॥ वरान्वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ॥ मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४५ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ॥ सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४६ ॥ लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ॥ पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४७ ॥ ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥ ४८ ॥ कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यसन्निभे निरूढमानो

दीखती, अतः दुःखोंके उत्पत्तिस्थान घरोंमें ही सुखके लिए आसक्त हो जाते हैं, लेकिन अन्तमें होते हैं वे सबके सब सुखोंसे वञ्चित ही ॥४६॥ हे अनघ, इस संसारमें अति कष्टके अनन्तर सूकर, कीट, पतङ्गादि योनियोंके बाद परम दुर्लभ सर्वाङ्गसुन्दर मनुष्य शरीर किसी तरह पाकर भी जो मूढ़ बिना परिश्रमके आपके पदारविन्दका चिन्तन नहीं करता है वह विषयोंमें आसक्तमति मूर्ख, जैसे पशु तृणादिके लोभसे कूपमें गिरता है वैसेही मायाके वशीभूत होकर गृहरूपी अन्धकारमय कूपमें ही जाकर गिरता है ॥ ४७ ॥ और लोगोंकी तरह शरीरमें ही आत्मबुद्धि रखनेवाला मैं भी राज्य, लक्ष्मीके मदसे वशीभूत होकर इतना समय व्यर्थमें ही बितादिया, मैं अपने इस समयको जीत न सका। क्योंकि रात-दिन पुत्र, स्त्री, कोष, भूमि इत्यादि दुःखदायी चीजों की चिन्तामें ही फँसा रहा, उनको ही अपना समझता रहा और उनकी प्राप्तिकी अपार चिन्तासे आपका चिन्तन न कर सका ॥ ४८ ॥ हे नरदेव, मिट्टीके घड़ेके समान अति शीघ्र विनाशी तुच्छ शरीरको पाकर इसमें अभिमान करके रथ, हाथी, अश्व और सेना वगैरहसे युक्त रहकर रातदिन इसीके फेरमें पड़कर इस पृथिवीपर निकृष्ट अभिमानयुक्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विचरणकर रहा मैं आपके अमूल्य रूपको नहीं पहचान सका ॥ ४९ ॥ हे भगवन्, मैंने यह कामकर लिया, अब मुझे यह काम करना बाकी रह गया है, यह तो मिल गया किन्तु यह अभी बाकी है, इस तरहके नानाविध मनोरथ परम्पराओंकी चिन्तासे अनेक मनोरथोंके भग्न हो जानेपर भी विषयोंमें लोलुप, प्राप्ति हो जानेपर भी और अधिक प्राप्तिकी तृष्णासे अभिभूत हुये महान् प्रमादी मेरे पास अप्रमत्त आप भगवान् सहसा ऐसे आ गये हैं, जैसे मूषकके पास भूखसे व्याकुल अपना लार चाटते हुये साँप आ जाता है ॥ ५० ॥ पहले सुवर्ण सज्जित रथों या हाथियों के ऊपर चढ़कर नरदेव संज्ञाको प्राप्त जो इस भूमिपर विचरता था वही यह कलेवर आपके दुर्लङ्घ्य कालके द्वारा कर जानेपर विट, कृमि संज्ञाको प्राप्त करते हुये अन्तमें फलीभूत भी हो जाता है ॥ ५१ ॥ हे ईश, समस्त दिशाओंको जीतकर संग्राम शून्य हो, ऊँचे राजसिंहासनपर आसीन तथा जीतनेके पहले अपने समकक्ष राजाओंसे वन्दित होते हुए पुरुष, एकमात्र मैथुन सुख ही जहाँ सर्वोत्कृष्ट सुख है ऐसे घरोंके अन्दर क्रीड़ामृगकी नाईं इधर-उधर स्त्रियों द्वारा नचाया जाता है । ५२ ॥ अत्यन्त लोभ बढ़ जानेपर उसे शान्ति नहीं

नरदेव इत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन्सुदुर्मदः ॥ ४९ ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ५० ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५१ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः ॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥ ५२ ॥ करोति कर्माणि तपः सुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५३ ॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ॥ सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ५४ ॥ मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥ ५५ ॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्ध-

मिलती, कारण कि सम्पूर्ण भोग विलासोंको छोड़कर तपश्चर्या करनेपर भी जन्मान्तरमें राजादिका शरीर पाकर धनादिको वितरण करते हुए । वह फिरभी 'दूसरे जन्ममें मैं चक्रवर्ती राजा हो जाऊँ' इस तरहकी इच्छासे कर्म करता है और जन्म जन्मान्तरमें दुःखी ही रहता है, उसे सुख कहीं नहीं मिलता ॥ ५३ ॥ अतः हे अच्युत, इस संसारमें बार-बार जन्म लेकर भटक रहे पुरुषके बन्धनका अन्त तभी हो सकता है जब कि सन्तोंका समागम कहीं प्राप्त होता है और सन्तोंका साथ भी तब होता है जब कि सब विषय वासनाओंकी निवृत्तिसे शुद्ध चित्त होने पर कार्यकारण सबके नियामक और सबके आश्रय आपमें नैसर्गिकभक्ति उत्पन्न होती है ॥ ५४ ॥ सत्सङ्गके पहले ही जो मेरी राज्यादि में आशक्तिका त्याग अपने आप हो गया, सो हे ईश, मैं तो यही समझता हूँ कि आपने मेरे ऊपर बड़ीही कृपा की है, क्योंकि तपके लिए जङ्गलमें जानेकी इच्छा करते हुए विवेकी महानुभाव अखण्ड पृथिवीके पालक राजा लोग एक मात्र उसकी प्रार्थना करते हैं, कारण कि स्वयं आसक्तिका त्याग होना उनके लिये बड़ा कठिन होता है ॥ ५५ ॥ हे विभो, जिसके आगे मोक्ष पर्यन्त वर भी अति तुच्छ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ऐसी परम पवित्र, निवृत्ताभिमानी पुरुषोंसे प्रार्थनीय आपकी चरण सेवाके अतिरिक्त कोई दूसरा वर नहीं चाहता हूँ, क्योंकि हे हरे, ऐसा कौन आर्य होगा, जो कि दृढ़ भक्ति देनेवाले आपको प्रसन्न कर आत्माको बन्धनमें डालने वाले स्वर्गादि लौकिकसुखोंकी आपसे माँग करेगा ॥ ५६ ॥ अतः हे ईश, रजोगुण तमोगुण और सतोगुणसे मिश्रित जो नाना विध ऐश्वर्यों से युक्त ऐन्द्रादि बड़े-बड़े स्थान हैं उन्हें हर तरहसे छोड़कर निरञ्जन, निगुर्ण, अद्वय, ज्ञानस्वरूप, अक्षर तथा परमपुरुष ईश्वररूप आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ५७ ॥ हे शरणद, इस संसारमें अपने किये गये कर्म-फलोंसे आर्त तथा उनकी वासनाओंसे मैं अत्यन्त तप्त हो रहा हूँ, तथापि मेरी तृष्णाएँ आजतक खतम न हुईं और काम क्रोध आदि मेरे छः दुश्मन अभीतक नष्ट नहीं हो पाये। हे भगवन्, यही कारण है कि अबतक मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हो सकी। हे परात्मन्, इसलिए किसी तरह भाग्यसे मैं आपके अभय, अमृत अशोक चरण-

नम् ॥५६॥ तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमः सत्त्वगुणानुबन्धनाः ॥ निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ॥ शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ५९ ॥ प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ॥ न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥ ६० ॥ युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६१ ॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ॥ अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६२ ॥ क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६३ ॥ जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥६४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

कमलकी शरणमें आया हूँ। हे ईश, इस शरणागतकी आप रक्षा कीजिये ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे सार्वभौम महाराज, संसारकी कामनाओंसे रहित बिलकुल विशुद्ध तुमने बुद्धि प्राप्त करली है। क्योंकि अनेक तरहके सकामवरोंका लोभ दिखाने पर भी उनसे तुम्हारी बुद्धि न विचलित हो सकी ॥ ५९ ॥ हे राजन्, यह जानलो कि मेरे वरका प्रलोभन भी दृढ़ भक्तिका अङ्गही हो जाता है। उसे पाकर भी जीव मुझे ही भजते हैं, वह प्रमोदके लिए नहीं होता कारण कि मुझमें जिनकी दृढ़ भक्ति हो गई है वे ऐन्द्रादि महान् पदको पाकर भी उसमें आसक्त नहीं होते मुझे ही बार-बार भजते हैं ॥ ६० ॥ हे राजन्, प्राणायामादिके द्वारा योग साधन कर रहे मेरे भक्त न बने हुए लोगोंका मन वासना शून्य न होनेके कारण पुनः विषयाभिमुख होते दिखाई देता है ॥ ६१ ॥ अतः हे राजन्, मुझमें अपने मनको सच्चे लगनसे लगाकर पृथ्वीपर स्वेच्छा पूर्वक विचरते रहो। मुझमें तुम्हारी अविनाशिनी भक्ति सदा बनी रहे ॥६२॥ हे राजन्, क्षात्रधर्ममें स्थित होकर जो शिकार आदिके द्वारा हरिण आदि जन्तुओंका तुमने वध किया है, उस पापको मेरा आश्रयण करके समाहित (जितेन्द्रिय) हो तपस्या द्वारा नष्ट कर दो ॥६३॥ हे राजन्, तुम अगले जन्ममें सभी प्राणियोंका हितचिन्तक श्रेष्ठ ब्राह्मण बनकर सिर्फ मुझे ही प्राप्त करोगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इक्यावनवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, विना हथियारके भगवान्को आते देखकर उन्हें मारनेकी इच्छासे कालयवन उनका पीछा करने लगा। अपनेको हस्तगत हुए जैसे चलते हुए उसे बहुत दूर तक जाकर भगवान् दौड़ा ले गये। भगवान्को न पाते हुए यवनने कहा—हे कृष्ण, यदुकुलमें उत्पन्न हुए इस तरह भागना उचित नहीं है। ऐसे यवनके आक्षेप पूर्ण वचनको सुनते हुए भी भगवान् उसे एक गुफामें ले जाकर कहीं छिप गये। वहाँपर सोये हुए एक दूसरेको पाकर उस कालयवनने उसके एक लात मारी। तदनन्तर उठते ही उस पुरुषने क्रोध भरी निगाहसे कालयवनको देखा। उसके देखते ही वह यवन भस्म हो गया। तदनन्तर अपने सामने उपस्थित चतुर्भुज पीताम्बरधारी भगवान्को देखकर अपनी पूर्वकथाका स्मरण करते हुए मुचुकुन्दने कहा—भगवन्, बतलाइये, आप कौन हैं? मुझे तो आप साक्षात् भगवान् नारायण मालूम होते हैं। तदनन्तर हँसकर भगवान्ने अपना परिचय देते हुए उससे कहा—राजन्, मुझसे जो चाहो वर माँग लो। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ मुचुकुन्दने भगवान्को प्रणाम करते हुए कहा—भगवन्, आप कृपाकर मुझे अपनी निष्काम भक्ति दीजिये। मुझे सांसारिक वस्तुएँ नहीं चाहिये। भगवान्ने कहा—हे राजन्, तुम्हारी मुझमें भक्ति निरन्तर बनी रहेगी। अगले जन्ममें ब्राह्मण बनकर तुम मुझे प्राप्त करोगे। इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त *

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(जरसन्धको चकमा देकर बलराम और श्रीकृष्णका द्वारकामें प्रवेश तथा रुक्मिणीका पत्र ब्राह्मण द्वारा पढ़वा लेनेपर कृष्णकी उसपर स्वीकृति—यह वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसतरह वह इक्ष्वाकुनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे अनुगृहीत होकर भगवान्की परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम करके उस कन्दरेके मुखसे निकल गया ॥१॥ वह बाहर आते ही अल्पकालीन आयुवाले छोटे-छोटे मनुष्यों, पशुओं, लताओं, और वनस्पतिओंको देखकर कलियुग आ गया ऐसा समझकर बदरिकाश्रम चला गया ॥ २ ॥ तपमें

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥ स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपः श्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ॥ समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद् गन्धमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुन-

श्रद्धावान्, धीर, आसक्तिशून्य तथा संशयोंसे रहित वह भगवान् कृष्णमें मन लगाकर गन्धमादन पर्वतमें प्रविष्ट हो गया ॥ ३ ॥ भगवान् नर-नारायणके निवासस्थान बदरिकाश्रममें जाकर सम्पूर्ण सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंका सहन करते हुए शान्तात्मा वह तपस्यासे भगवान्की आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ यवनके मर जानेपर भगवान् यवनकी सेनासे घिरी हुई अपनी पुरीमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गये और यवनकी सम्पूर्ण सेनाओंको मारकर उनका सांग धन मथुरामें उठा ले गये ॥ ५ ॥ भगवान्‌की प्रेरणासे मनुष्यों और वृषभों द्वारा सब धन नगरमें आ जानेपर तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ जरासन्ध पुनः चढ़ आया ॥ ६ ॥ हे राजन्, तब श्रीकृष्ण और बलदेवजी जरासन्धकी सेनाके वेगको देखकर साधारण मनुष्यकी तरह चेष्टा करने लगे और अति शीघ्र भाग चले ॥ ७ ॥ निडर ये दोनों सम्पूर्ण धनको छोड़कर कायरकी भाँति सुन्दर सुकोमल कमल और पलाश जैसे अपने पैरोंसे बहुत योजन दूर चले गये ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण और बलदेवको भागते हुये देखकर उन ईश्वरोंकी इयत्ता न जाननेवाला वह मगधराज बली जरासन्ध हँसते हुए रथ और सेनाके साथ उनके पीछे दौड़ा ॥ ९ ॥ बहुत दूर दौड़नेके कारण वे दोनों थक-कर चूर-चूर हो गये थे अतः वे ग्यारह योजन ऊँचे प्रवर्षण नामक पर्वतके ऊपर चढ़ गये, जहाँ भगवान् इन्द्र सदा बरसते रहते हैं ॥ १० ॥ तदनन्तर हे राजन्, पर्वतमें छिपे हुये उन्हें जानकर उनकी वह खोज करने लगा, लेकिन अन्तमें उनके निलय स्थानको न पा करके वह जरासन्ध लकड़ियोंसे अग्नि पैदा करके चारों ओरसे पर्वतको जलाने लगा ॥ ११ ॥ तत्पश्चात्

राजन्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥ नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ॥ आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेरतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ॥ प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥ गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ॥ ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ॥ दशैकयोजनोत्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥ सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥ १४॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुताम् ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ॥ वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः

जिस भागमें अग्नि पर्वतको जला रही थी उस जलते हुए ग्यारह योजन ऊँचे पर्वतके भागसे वे दोनों शीघ्र ही कूदकर नीचे भूमिपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे राजन्, पीछे-पीछे आ रहे अपने शत्रुसे दिखाई न देते हुये वे दोनों भाई पुनः 'समुद्र है चारो तरफ जिसके ऐसे' अपने नगरमें आ गए ॥ १३ ॥ मगध देशके राजा उस जरासन्धने बलदेव और श्रीकृष्ण जल गये ऐसा असत्यको ही सत्य मानकर अपनी सारी सेना एकत्र खींचकर मगधमें लौटा लायी ॥ १४ ॥ अनर्त देशके राजा श्रीमान् रैवतने अपनी रेवती नामकी कन्या ब्रह्माकी प्रेरणा करनेपर बलदेवजीको दे दी, यह कथा नवमस्कन्धमें कही जा चुकी है ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, श्रीभगवान्‌ने भी स्वयंवरमें भीष्मककी कन्या महालक्ष्मीकी अवतारभूत वैदर्भीका पाणिग्रहण किया ॥ १६ ॥ जिस तरह गरुड़ने देवताओंको जीतकर अमृत दान लिया उसी तरह भगवान् श्रीकृष्णने भी जरासन्धके पक्षमें रहनेवाले शाल्व और शिशुपाल आदि सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाओंको सब लोगोंके देखते-देखते जीत लिया ॥ १७ ॥ राजाने कहा—हे मुने, भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मककी लड़की सुमुखी रुक्मिणीका राक्षसविधानसे पाणिग्रहण किया, यह मैं सुन चुका हूँ ॥ १८ ॥ हे भगवन्, मगधराज तथा शाल्वादि राजाओंको जीतकर भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको कैसे भगवान् ले आए, यह अमित विक्रमशाली भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा मैं सुनना चाहता हूँ, कृपाकर सुनाइये ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्, भगवान्की कथाएँ पुण्यमय कानोंके लिए अमृत तथा संसारके मलोंका अपहरण करनेवाली हैं। ऐसा कौन श्रुतज्ञ होगा जो नित्य नई आश्चर्य-जैसे प्रतीत होनेवाली उन्हें सुनते हुये तृप्त न होगा ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, विदर्भ देशका महान् राजा अति बलवान् भीष्मक था। उसे एक कन्या और पाँच पुत्र उत्पन्न हुये थे। वह लड़की अत्यन्त देखनेमें सुन्दरी थी ॥ २१ ॥ उनमें सबसे बड़ा रुक्मी, उससे छोटा रुक्मरथ, तीसरा रुक्मबाहु, चौथा रुक्मकेश और पाँचवाँ रुक्माली था। इन पाँचोंकी बहन सती रुक्मिणी थी ॥ २२ ॥ घरमें आए हुए लोगोंसे कही जा रही वह रुक्मिणी भगवान्के रूप, गुण, पराक्रम और सौन्दर्य सुनकर उन्हें अपना अनु-

शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥१८॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥१९॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥२०॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥२१॥ रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥ सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ॥ कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥ २४॥ बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप। ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥ तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित् कृष्णाय प्राहिणोद् द्रुतम् ॥२६॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात्। उपवेश्यार्हयाञ्चक्रे

कूल पति मान बैठी थी ॥ २३ ॥ बुद्धि तथा स्त्रियोंके सामुद्रिक शास्त्रोक्त लक्षणोंसे युक्त एवं सौन्दर्य, रूप, शील आदि गुणोंकी आश्रय उस रुक्मिणीको जानकर उसे अपनी अनुकूल भार्या बनानेके लिए उसके साथ विवाह करनेका अपना मन भगवान् श्रीकृष्णने भी स्थिर किया ॥ २४ ॥ हे राजन्, भगवान् श्रीकृष्णको अपनी बहिन देनेकी इच्छा कर रहे अपने अन्य चारों भाइयोंको रोककर रुक्मीने कृष्णके शत्रु शिशुपालको वर ढूँढा ॥ २५ ॥ यह समाचार पाकर अति नील सुन्दर कटाक्ष करनेवाली उस रुक्मिणीने अत्यन्त दुःखित हो कुछ सोच करके अपने आत्मीय किसी ब्राह्मणको श्रीकृष्णके यहाँ अति शीघ्र भेजा ॥ २६ ॥ उस ब्राह्मणने द्वारकापुरीमें जाकर द्वारपाल द्वारा अन्तःपुरमें प्रवेश पाकर स्वर्णसिंहासनपर बैठे हुए आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णको देखा ॥ २७ । ब्राह्मणोंके रक्षक भगवान्ने उस विप्रको देखकर अपने आसनसे नीचे उतरकर अपने आसनपर बैठाया और जैसे देवता भगवान्की पूजा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया करते हैं वैसे ही भगवान्‌ने भी उस ब्राह्मणकी पूजा की ॥ २८ ॥ भोजनोपरान्त विश्राम कर रहे उस ब्राह्मणके समीप जाकर सज्जनोंके आश्रय भगवान् श्रीकृष्णने हाथसे पैरपकड़कर शान्तिपूर्वक उससे पूछा ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तम, वृद्ध महर्षियोंसे परम्परया प्राप्त अति कष्ट आनेपर भी सदा सन्तुष्ट रहनेवाले आपका धर्म सानन्द हो रहा है न ॥ ३० ॥ यदि ब्राह्मण जिस किसी तरहसे सन्तुष्ट कर दिया जाय और यदि अपने धर्मसे वह त्यक्त न होने पावे, तो वह ब्राह्मण इस सम्पूर्ण विश्वकी सब कामनाओं का दाता होता है ॥ ३१ ॥ क्योंकि असन्तोषी इन्द्रदेव भी अमरावतीको पाकर भी बार-बार दूसरे-दूसरे लोको में जाता है और परम निर्धन पुरुष भी सन्तुष्ट होकर सम्पूर्ण अङ्गोमें क्लेश रहित हो खूब सोता है ॥ ३२ ॥ स्वयंप्राप्त लोभसे सन्तुष्ट रहनेवाले, सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, सीधे स्वभाववाले, अहङ्कारसे रहित और शान्त ब्राह्मणोंके लिए मैं बार-बार सिर झुकाता हूँ ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणदेव, राजाकी ओरसे आपका सब कुशल है न ? क्योंकि जिस राजाके देशमें ब्राह्मण कुशलपूर्वक रहते हों तथा पाली जा रही सम्पूर्ण प्रजाएँ सुखपूर्वक रहती हैं वह राजा मेरा अतिप्रिय

यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ॥ पाणिनाभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ क्वचिद् द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ॥ वर्तते नातिकृच्छ्रेण सन्तुष्टमनसः सदा ॥३०॥ सन्तुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥३१॥ असन्तुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिंचनोऽपि सन्तुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥ ३२ ॥ विप्रान्स्वलाभसन्तुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहंकारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥३३॥ कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः ॥ सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥३६॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥३७॥ का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-

होता है ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण, आप जहाँसे जिस कार्यके लिए समुद्र पार करके यहाँ आये हैं, वह सब मुझसे बतलाइये । यदि कोई गुप्त भी हो तो भी बतलाइये कि हम आपका कौन कार्य करें ॥ ३५ ॥ संसारको अपनी लीला दिखानेके लिए शरीर धारण किये हुए परमेश्वर भगवान्‌से यों पूछे जानेपर उस ब्राह्मणने भगवान्‌को सारी बातें बतलाने लगा ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणने भगवान् से कहा—हे भगवन्, सुनिये । रुक्मिणीने । कहा है—हे भुवनसुन्दर, हे अच्युत, सुननेवालोंके कर्ण विवरोंके द्वारा हृदयके अन्दर प्रविष्ट होकर जो शरीरके तापोंको हर लेते हैं ऐसे आपके गुणोंका श्रवण कर तथा जिन प्राणियोंको भगवान् परमेश्वरके द्वारा सुन्दर आँखे मिली हुई हैं ऐसे प्राणियोंके अखिलार्थलाभात्मक आपके रूपको सुनकर मेरा यह चित्त निर्लज्ज होकर आपमें आसक्त हो रहा है ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द, हे नरश्रेष्ठ, भला ऐसी कौन कुलवती, प्रचुर उदार गुणोंवाली तथा धैर्यधारिणी कन्या होगी, जो विवाहका अवसर आनेपर आपको अपना पति न चुने ! भगवन्, आप कभी ऐसी आशङ्का न कीजियेगा कि एक अकेली मैं ही आपको चाह रही हूँ । कुल, शील, रूप, विद्या, वय, धन, धाम आदिमें तो आपकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपमा कहीं नहीं मिल सकती। भगवन्, कुल शीलादिसे तो आप आपने ही तुल्य हैं। भगवन्, आपसे ही तो मनुष्यलोकके मनोंका अभिसरण होता है यानी आपमें जो मेरा मन लग गया है इसका भी कारण आप ही हैं ॥ ३८ ॥ हे विभो, मैंने आपको ही अपना पति बना लिया है, आपके लिए मैं अपना सर्वस्व निछावर कर चुकी हूँ, इसलिए हे अम्बुजाक्ष, आप यहाँ आकर मुझे अपनी पत्नी बना लें, देरी न करें। अन्यथा अतिबलशाली आपका भाग शिशुपाल शीघ्र आकर ऐसे न ग्रहण करले, जैसे सिंहका शिकार सियार ग्रहण कर लेता है॥ ३९ ॥ कूपादिनिर्माणों, अग्निहोत्रादि कर्मों, सुवर्ण आदि द्रव्योंके दानों, तीर्थादिके सेवनों, चान्द्रायणादि कृच्छ्र व्रतों तथा देव, गुरु और ब्राह्मणोंके अर्चनों आदिके द्वारा यदि परमेश्वर भगवान् गदाग्रजकी मैंने भलीभाँति आराधना की है, तो वे भगवान् आकर मेरा पाणिग्रहण करें, दमघोषके लड़के आदि अन्य आकर मेरा पाणिग्रहण न करें, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४० ॥ हे अजित भगवन्, कल होनेवाले विवाहके समयसे पहले गुप्त रूपसे विदर्भमें आकर बादमें सेनापतियोंसे परिवृत शिशुपाल और जरासन्धके सारे बलको नाश करके मेरा राक्षसविधिसे

विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्ऽपितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥४०॥ श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥४२॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते

जबर्दस्ती विवाह कर लें। इस विवाहमें मेरे लिए आप को सिर्फ अपना प्रभावप्रदर्शन मात्र ही शुल्क देना होगा ॥ ४१ ॥ तुम महलके अन्दर रहनेवाली हो, तुम्हारे भाइयोंको बिना मारे भला मैं कैसे तुम्हारे साथ विवाह कर सकता हूँ, ऐसी आप आशङ्का न करें। मैं उपाय बतलाती हूँ—कल यहाँ कुलदेवीकी सबसे बड़ी यात्रा है, उसमें नगरके बाहर वर्तमान अम्बिकादेवीकी पूजा करनेके लिए यह नवीन वधू जायगी। बस आप वहीं आकर मुझे ले करके भाग चलियेगा ॥४२॥ जिस भगवान्के चरणकमल रजके द्वारा स्नपनकी—अपने अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेके लिए भगवान् उमापति महादेवकी नाईं बड़े-बड़े साधु सन्त महात्मा लोग—सदा चाह रखते हैं ऐसे आपके प्रसादको यदि न पा सकूँगी, तो हे कमलनेत्र, यह आप अच्छी तरह जान लीजिये कि उपवासादि व्रतोंसे कृश बनकर मैं अपने प्राणोंको गवां दूँगी और इस तरह मैं बार-बार अपने प्राणोंको छोड़ती रहूँगी, जब तक कि आपका प्रसाद मुझे न मिल जाय, चाहे मुझे सैकड़ों जन्म क्यों न धारण करने पड़ें, उन सैकड़ों जन्मोंसे भी मैं आपका प्रसाद अवश्य प्राप्त करूँगी ॥ ४३ ॥ इस तरह रुक्मिणीके सन्देश सुनाकर ब्राह्मणने कहा—हे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यदुदेव, ये ही गुप्त सन्देश मैं वहाँसे ले आया हूँ। इस विषयमें विचारकर देख लीजिए और जैसा जो करना उचित समझिये वैसा शीघ्र कीजिये ॥ ४४ ॥

महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहप्रस्तावे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

बावनवें अध्यायका सार—शीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्का अनुग्रह पाकर वह मुचुकुन्द बदरिकाश्रमको चला गया। तदनन्तर जरासन्धने फिर मथुरापर चढ़ाई कर दी। उसे आते देख बलराम और कृष्ण दोनों भाई भाग चले और जरासन्ध भी उनका पीछा करने लगा। अन्तमें वे दोनों भाई प्रवर्षण पर्वतपर चढ़ गये। जरासन्धने पर्वतके चारो ओर खूब खोजा, लेकिन कहीं उन्हें न पाया। बादमें जरासन्धने पर्वतको चारों ओरसे घेरकर लकड़ियाँ एकत्र करके आग लगा दी। जल रहे पर्वतको देखकर वे दोनों भाई ग्यारह योजन ऊँचे पर्वतके शिखरसे कूदकर द्वारकापुरीमें गुप्तरूपसे आ गये। बहुत देरतक अन्वेषण करनेपर भी जब वे नहीं मिले तब जरासन्ध उनको भस्मीभूत हुए जानकर वहाँसे अपनी सब सेना लेकर मगधको लौट गया। हे राजन्, तदनन्तर भगवान् ब्रह्माकी आज्ञासे आनर्तदेशाधिपतिने बलदेवजीसे अपनी रेवती नामकी कन्याका विवाह कर दिया। उसके बाद मेरा भाई मुझे शिशुपालको देना चाहता है, यह जानकर भगवान् श्रीकृष्णमें अनुरक्त रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णके पास 'हे प्राणनाथ, मुझे आप राक्षसविधिसे विवाह करके अपने यहाँ ले चलिए। भगवन्, यदि मैं आपको इस जन्ममें न पा सकूँगी, तो यह आप समझ लीजिए कि, मैं आत्मघात कर इस संसारसे विदा हो जाऊँगी। और मैं तबतक बराबर ऐसा ही करती रहूँगी जबतक कि आप मुझे मिल न जाँय, चाहे मुझे सैकड़ों बार इस संसारमें क्यों न आना पड़े।' इसतरहका एक लम्बा पत्र लिखकर एक ब्राह्मणके हाथ भेज दिया। उस ब्राह्मणने वहाँ पहुँचकर भगवान्के सम्मुख उसे ज्यों-का-त्यों पढ़कर सुना दिया। बावनवाँ अध्याय समाप्त।

❀ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ❀

(रुक्मिणी-हरण)

भगवान् रुक्मिणीका सारा सन्देश सुनकर हाथसे हाथ मिलाते हुए अतिप्रसन्न होकर यह कहने लगे ॥१॥ मनही मन भगवान्ने कहा—मेरा भी मन उसीमें लगा हुआ है अतः

श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ॥

रात्रिमें मुझे निद्रा नहीं आती है जिस द्वेषसे उसके भाई रुक्मने मेरे साथ विवाह होना रोक दिया है वह सब मैं भी जानता हूँ ॥ २ ॥ युद्धमें शिशुपाल आदि दुष्ट राजाओंका उन्मथनकर ॥१७॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके बीचसे मुझमें लवलीन निर्दोषाङ्गी उस रुक्मिणीको मैं रथके ऊपर ऐसे उठा लाऊँगा, जैसे लकड़ीसे उन्मथनकर अग्निज्वाला ऊपर उठा लायी जाती है ॥३॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, रुक्मिणीके विवाहका निश्चित लग्न जानकर भगवान्ने दारुक नामक सारथीसे कहा कि बहुत शीघ्र रथ सजाकर लाओ ॥ ४ ॥ वह दारुक शैव्य, सुग्रीव, मेघ और पुष्प बलाहक नामके चार घोड़ोंसे युक्त रथको शीघ्र लाकर भगवान्के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ॥ ५ ॥ तब भगवान् अतिशीघ्र चलनेवाले घोड़ोंसे युक्त रथपर ब्राह्मणको बैठा स्वयं भी उसीपर बैठकर एकही रातमें आनर्तसे विदर्भ पहुँच गये ॥ ६ ॥ वह कुण्डिन देशका राजा—अपने पुत्रके स्नेहमें पड़कर शिशुपालको ही कन्या देनेकी इच्छासे—विवाहके सभी कार्य कराने लगा ॥७॥ अपने नगरकी प्रधान सड़कोंको, झाड़ू आदिसे साफ कराकर उन्हें सींचवा दिया। तदनन्तर गलियों एवं चौकको साफ कराकर जलसे धुलाकर नानाप्रकारकी चित्र-विचित्र ध्वजाओं, पताकाओं

मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ॥ आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥ राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥ स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोम्बरभूषितैः ॥ जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥ पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥१२॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥१३॥ एवं चेदिपती राजा दमोघषः सुताय वै ॥ कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ ॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः ॥

एवं तोरणों द्वारा उन्हें खूब सजवाया ॥८॥ अति सुगन्धित फूलकी मालाओं, चन्दन एवं नानाप्रकारके आभरणों तथा सफेद वस्त्रोंसे भूषित स्त्री-पुरुषोंसे और अगरुसे धूपित श्रीसम्पन्न अनेक गृहोंसे अपने नगरको राजाने खूब अलंकृत कराया ॥९॥ हे राजन्, उस राजाने पितर और देवताओंका पूजन करके बालकोंको विधिपूर्वक भोजन कराया और तदनन्तर ब्राह्मणों द्वारा यथोचित वेदपाठ वगैरह माङ्गलिक क्रियाएँ भी करायीं ॥१०॥ तदनन्तर जिसका विवाहसूत्रसे मंगल किया गया है ऐसी सुन्दर दन्तपङ्क्तियोंवाली कन्याको स्नान कराकर नवीन दो वस्त्रोंसे भूषित तथा सर्वोत्तम अलंकारोंसे अलंकृत कराया ॥११॥ तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् और यजुर्वेदकी ऋचाओंसे कन्याके हाथमें रक्षासूत्र बाँधा तथा धर्मज्ञ उनके पुरोहितजीने ग्रहोंकी शान्तिके लिये हवन किये ॥१२॥ विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ राजाने भी सोना, चाँदी, वस्त्र एवं गुड़ मिश्रित तिल तथा बहुत सी गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं ॥ १३ ॥ इसी तरह चेदिदेशके राजा दमघोषने भी अपने पुत्रके लिए मन्त्रोंको जाननेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा समस्त अभ्युदयोचित माङ्गलिककृत्य करवाये ॥ १४ ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े मद चुआ रहे हाथियोंकी सेनाओं, सोनेकी मालाओंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुसज्जित रथों, पैदल चलनेवाले सिपाहियों एवं घोड़ोंसे व्याप्त सैन्योंसे युक्त वह राजा दमघोष कुण्डिन नगरमें पहुँचा ॥ १५ ॥ विदर्भाधिपति भीष्मकने भी दमघोषकी बारातको आते देखकर उसकी अगवानीके लिये उसके आगे जाकर विधिपूर्वक पूजा करके अति प्रसन्न हो सजाये गये जनवासोंमें उसे आसनपर बैठाया ॥ १६ ॥ उस नगरमें चेदिकी तरफसे शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि हजारों राजा आ गये ॥ १७ ॥ बलदेव आदि यदुवंशियोंसे घिरे हुये श्रीकृष्ण आकर कहीं रुक्मिणीको हर न ले जायँ, इस आशंकासे शिशुपालको हीं यह कन्या मिले, इस उपायमें कृष्ण और बलरामके दुश्मन सब राजा लग गये थे ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण सेना और वाहनोंके साथ समस्त चैद्यपक्षीय राजा 'हम सबलोग मिलकर श्रीकृष्णके साथ युद्ध करेंगे' इस तरह अपने मनको निश्चित करके आये हुए थे ॥ १९ ॥ अपने शत्रुपक्षीय राजाओंके इस तरहके भारी उद्यमको सुनकर तथा रुक्मिणीको हर लानेके लिये अकेले ही गये हुए श्रीकृष्णको जानकर लड़ाईकी भारी आशंकासे भाईके स्नेहसे विह्वल हो बलदेवजी हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सिपाहियों सहित महती सेनाके साथ शीघ्र कुण्डिन-

पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥१५॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च । निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥१६॥
तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्रो विदूरथः ॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ॥१७॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ॥
यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥१८॥ योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥१९॥
श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः
कुण्डिनं प्रागाद् गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥ भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः । प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥ २२ ॥
अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ॥ नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥२३॥
अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम् ॥ मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २४ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥२५॥ एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा ॥ न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥२६॥

पुरमें आ गये ॥ २०, २१ ॥ सुन्दर जाँघवाली वह रुक्मिणी भी श्रीकृष्णको देखनेके हेतु छतपर बैठकर उनका आगमन चाहतीं हुई भेजे गये अपने ब्राह्मणको वापस आये न देखकर उसके विषयमें मनहीं मन चिन्ता करने लगीं ॥ २२ ॥ अहो, मुझ अभागिनका विवाह कल सुबह हो जायगा, सिर्फ रातभरका व्यवधान रह गया है । कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण अभीतक नहीं आये, इसमें क्या कारण है, मैं कुछ भी समझ नहीं पाती । अभीतक वह ब्राह्मण भी लौटकर नहीं आया, जो मेरा सन्देश ले गया था ॥ २३ ॥ जान पड़ता है कि वह निर्दोष भगवान् मुझमें कुछ धृष्टतादि दोष देखकर सन्देश पाकर भी मेरा विवाह करने नहीं आ रहे हैं और उस ब्राह्मणको भी उन्होंने रोक लिया है, यही कारण है कि वह भी नहीं आ रहा है ॥ २४ ॥ मैं किस्मतकी छोटी हूँ । इस समय न तो ब्रह्मा अनुकूल हैं और न महेश ही मेरे अनुकुल दीखते हैं । देवी गौरी, रुद्राणी, सती गिरिजा भी विमुख मालूम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पड़ती हैं, क्या करूँ ॥ २५ ॥ यों सोच करती हुई गोविन्द भगवान्से हतचित्तवाली उस वालाने अब थोड़ी सी रात रह गई है, यदि भगवान् चाहें तो अभी भी आ सकते हैं, यों अपने मनको कुछ सन्तोष देकर आँसुओंकी झरियोंसे व्याकुल अपनी आँखें मूँद लीं ॥२६॥ हे राजन्, भगवान् गोविन्दके आगमनकी यों प्रतीक्षा कर रही उस रुक्मिणीकी बायीं जांघ, भुजा और वामनेत्र शुभसूचक हो फड़क उठे ॥२७॥ नगरके उपवनमें आकर भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणसे कहा–हे विप्र, अब जाकर रुक्मिणीको कह दीजिये कि मैं उपवनमें आकर ठहरा हूँ। भगवान्से यों आदेश पाकर वह सुनन्दनामा सन्देशवाहक विप्र समाचार सुनानेके लिये राजमहलमें चला गया और राजमहलमें विराज रही उस राजपुत्री रुक्मिणीको उसने देखा ॥२८॥ दूतके लक्षण-को जाननेवाली सती रुक्मिणीने अतिप्रसन्नवदन एवं शान्तिपूर्वक आते हुए उस ब्राह्मणको देखकर उससे मुसकुराते हुए पूछा ॥ २९ ॥ तब उस ब्राह्मणने 'भगवान् आ गये' ऐसा मंगल समाचार सुनाया। रुक्मिणी यह समाचार सुनकर ब्राह्मणकी वार-वार प्रशंसा करने लगी। उस ब्राह्मणने 'भगवान्को मैं कैसे बुला लाया' इसकी सब सच्ची बातें उससे कह

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप ॥ वामऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अन्तः-पुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥ मधुपर्क-मुपानीय वासांसि विरजांसि सः ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ॥ ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥ यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥ ३६ ॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ॥

दीं ॥३०॥ भगवान्को आये जानकर रुक्मिणी अति प्रसन्नमन होकर इस कार्यके लिये सर्वस्व अर्पण करना भी थोड़ा ही होगा, ऐसा समझकर उस ब्राह्मणको देनेयोग्य कोई दूसरी वस्तु न देखकर उस समय केवल प्रणाम ही किया ॥३१॥ राजा भीष्मक भी मेरी कन्याका विवाहोत्सव देखनेके लिये वलदेवजी तथा श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं, ऐसा सुनकर बाजा बजवाते हुए शीघ्र पूजन सामग्रीके साथ उनके यहाँ गये ॥३२॥ विधिपूर्वक उन्होंने सुन्दर स्वच्छ वस्त्र, मधुपर्क और नाना प्रकारके पूजनीय नैवेद्यादि उत्तम वस्तुओंके द्वारा भगवान्का पूजन किया। मनही मन भावी जामाता समझकर वरकी विधिसे ही पूजा की ॥३३॥ महाबुद्धिमान् भीष्मकने सेना एवं सेवकोंके सहित आये हुए उन दोनों भाईको बहुतही सुन्दर ठहरनेकी जगह बनवाकर समुचित अतिथि सत्कार किया ॥ ३४ ॥ इसी तरह समस्त राजाओंका भी जिसका जैसा बल, जैसी अवस्था, जितनी सेना और जैसा धन था, ठीक वैसा ही सभी अपेक्षित वस्तुओंसे स्वागत किया अर्थात् यथायोग्य सभीका खूब स्वागत किया ॥३५॥ विदर्भनगरवासियोंने कृष्णके आनेका समाचार सुनकर उनके समीप आकरके अपनी नेत्राञ्जलियोंसे उनके मुखारविन्दका यथेच्छ पान किया ॥३६॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रुक्मिणी ही इनकी भार्या बनने योग्य है, दूसरी कन्या नहीं और पवित्रात्मा यह भी इस रुक्मिणीके ही समुचित पति बनने योग्य हैं दूसरीके कदापि नहीं ॥ ३७ ॥ इसके बाद उनके रूपको देखकर वहाँकी जनता कहने लगी कि जो कुछ हमलोगोंने पुण्य किया है उससे सन्तुष्ट होकर तीनों लोकके स्वामी भगवान् ऐसा अनुग्रह करें कि श्रीकृष्ण भगवान् वैदर्भीका पाणिग्रहण अवश्य कर लें ॥ ३८ ॥ इस तरह प्रेमसे विह्वल होकर नगरवासी आपसमें बातचीत कर रहे थे कि तबतक रुक्मिणी भी बड़े-बड़े बलिष्ठ रक्षकोंके साथ अम्बिकाके मन्दिरकी ओर राजमहलसे चली ॥ ३९ ॥ मनमें भलीभाँति भगवान्के चरणकमलका स्मरणकर रही वह वैदर्भी पैदल ही दुर्गाके चरणकमलका दर्शन करने निकली ॥ ४० ॥ वह रुक्मिणी उपमाताओं एवं सखियोंसे युक्त हो कवच और शस्त्र धारण किए हुए बड़े-बड़े शूर राजभटोंसे रक्षित होकर चली। उसके साथमें नाना तरहके मृदङ्ग, शंख, पणव, तुरही और भेरी वगैरह बाजा बजने

असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥ किञ्चित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत्। अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥३८॥ एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः कन्या चान्तः पुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताम्बिकालयम् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ॥ सा चानुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धै रुद्यतायुधैः ॥ मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥४१॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः। स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलङ्कृताः ॥४२॥ गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः ॥ परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥ ४३ ॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ॥ उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकान्तिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ॥ भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥४५॥ नमस्ये त्वाऽम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम्॥ भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥४६॥ अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासः स्रङ्माल्य-

लगे ॥ ४१ ॥ अनेक प्रकारके पारितोषिकों और भोजनोंसे सन्तुष्ट की गई हजारों श्रेष्ठ वेश्याएँ भी साथमें थीं तथा पुष्पमाला, गन्ध, वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित ब्राह्मणोंकी अनेक स्त्रियाँ भी उसके साथ चलीं ॥ ४२ ॥ सूत, मागध और बन्दीजन गाते हुए, बाजा बजाते हुए, स्तुति करते हुए रुक्मिणीको चारो तरफसे घेरकर साथमें चल पड़े ॥ ४३ ॥ देवीके मन्दिरके समीप जाकर हाथ-पैर अच्छी तरह धो लेनेके बाद आचमन करके परमपवित्र होकर शान्तिपूर्वक जगदम्बिकाके मन्दिरके भीतर वह प्रविष्ट हुई ॥ ४४ ॥ देवी पूजनविधि जाननेवाली अनेक वृद्धा ब्राह्मणस्त्रियोंने भगवान् शंकरके सहित उनकी पत्नी पार्वती देवीकी उस बाला रुक्मिणीसे स्तुति कराई ॥ ४५ ॥ रुक्मिणी यों स्तुति करने लगी—हे अम्बिके, तुम्हारे पति शंकर एवं पुत्र गणेश आदिके साथ तुम्हें मैं प्रणाम करती हूँ, तुम शिवा हो। हे देवि, मुझे भगवान् श्रीकृष्ण ही पति मिलें, इसका तुम अनुमोदन करो—ऐसा वरदान देकर मुझे अनुगृहीत करो ॥ ४६ ॥ जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, पुष्पमालाओं और रत्नमालाओं एवं आभूषणों द्वारा अलग-अलग अनेक तरहके उपहार योग्य बलिदानोंसे तथा अनेक दीपकोंके द्वारा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसने अम्बिकाकी पूजा की ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणोंकी सधवा स्त्रियोंने भी तरह-तरहकी नमकीन, मिठाइयों, मालपूओं, पान, यज्ञोपवीत, फल और ईखोंके द्वारा देवीकी पूजा की ॥ ४८ ॥ तदनन्तर रुक्मिणीको ब्राह्मण स्त्रियोंने देवीका निर्माल्य दिया और आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् रुक्मिणीने देवी तथा ब्राह्मणियोंको प्रणाम करके अन्य स्त्रियोंसे गले मिलकर भेंट की ॥४९॥ इसके बाद अपना मौनव्रत या सतीव्रत छोड़कर रत्नजड़ित अँगूठीसे सुशोभित अपने हाथसे अपनी सखीको पकड़कर अम्बिका मन्दिरसे बाहर निकल आई ॥ ५० ॥ पैदल चल रही उस कल-हंसगामिनीको देखकर उत्तेजित कामदेवकी पीड़ासे वहाँके वीर सब मूर्च्छित होकर गिर पड़े। वह देवमाया-जैसी वीरमोहिनी थी, उसकी सुन्दर पतली कमर थी, उसका मुख कुण्डलोंसे विभूषित था, वह अभी श्यामा थी, उसके नितम्बतटके ऊपर रत्नजटित करधनी खूब शोभ रही थी, अभी-अभी उसके स्तनरूपी कुड्मल कुछ खिल रहे थे, घुघराले बालोंके कारण उसकी

भूषणैः ॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥४७॥ विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ॥ लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥४८॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ॥ ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बि-कागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥५०॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ॥ श्यामां नितम्बा-र्पितरत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् ॥ पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं सिञ्जत्कलानू पुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ यां वीक्ष्यते नृपतयस्तदु-दारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ ५३ ॥ पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ ५४ ॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ॥ तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ ५५ ॥ रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥ ततो

चञ्चल आँखें भयभीत-जैसी शंकित होकर इधर-उधर देख रही थीं, उसके वदनपर हलकी सुन्दर मुसकुराहट विराज रहीं थी, उसकी दाँतरूपी कुन्दोंके कुड्मलबिम्बिफल-जैसे अधरकी द्युतिसे खूब शोभायमान हो रहे थे तथा मनोहर शब्दकर रहे नूपुरोंकी कान्तिसे उसके पैर खूब शोभ रहे थे ॥ ५१, ५२ ॥ यात्राके बहाने अपना लावण्य भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित कर रही उस राजकुमारीको देखकर सभी समागत यशस्वी वीर राजा, जो हाथी, रथ और घोड़ेपर सवार थे, उसकी मनोहर हँसी तथा लजीली चितवनसे हृतचित्त होते हुए विमूढ़ होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके हाथोंसे अस्त्र छूट गये। भगवान्‌को चारो ओर ढूंढ़ रही वह राजकुमारी चञ्चल पद्मकोश-जैसे अपने चरणोंको धीरे-धीरे उठाते हुए अपने घुघराले काले-काले बालोंको आँखोंके ऊपरसे हटाकर जमीनपर मूर्च्छित पड़े हुए राजाओंको अपनी लजीली आँखोंसे जब देखने लगी तभी भगवान् अच्युतको भी उसने देख लिया। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने उस राज-कुमारीको, जो भगवान्‌के रथपर चढ़नेकी चाह कर रही थी, अपने दुश्मन सब राजाओंके देखते-देखते हर लिया ॥ ५३–५५ ॥ गरुड़ध्वज रथपर उसे बैठाकर सब राजाओंका तिरस्कृत करके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् माधव बलराम आदिके साथ वहाँसे धीरेसे ऐसे निकल गये, जैसे सियारोंके बीचसे अपना भाग लेकर सिंह निकल जाता है ॥ ५६ ॥ जरासन्धके मित्र वे सब मानी राजा, जो भगवान्के दुश्मन थे, यशःक्षयरूप अपने इस पराभवको न सह सके। वे कहने लगे—अहो, हमें धिक्कार है, आज हम धनुर्धारियोंका यश ये गोप ऐसे हर ले गये, जैसे सिंहोंका यश मृग हर ले जाते हैं ॥ ५७ ॥

ययौ रामपुरोगमैः शनैः सृगालमध्यादिव भाग्यहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशः क्षयं परे जरासन्धवशा न सेहिरे ॥ अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द० उ० रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चा-शत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

तिरपनवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, पत्र पढ़ाकर सुन लेनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने यथोचित समयका ध्यान रखते हुए सारथिको रथ लानेका आदेश दिया। आदेश पाते ही सारथिने रथ लाकर खड़ा कर दिया। तदनन्तर अनेक राजा जहाँ एकत्र हुए हैं। ऐसे विदर्भनगरको भगवान् उस रथपर चढ़कर चल दिए। यह समाचार जानकर अपनी सारी सेनाओंके साथ बलदेवजी भी चल पड़े। दोनों भाइयोंके वहाँ पहुँचनेके बाद भगवान्के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित रुक्मिणीसे जाकर उस ब्राह्मणने कहा—हे राजपुत्रि, भगवान् आगये हैं। यह सुन्दर समाचार सुनते ही राजकुमारी उस समय ब्राह्मणको और कुछ न देकर सिर्फ उसके चरणोंपर गिर पड़ी भगवान्को विदर्भ नगरमें आये जानकर वहाँकी जनता उनके दर्शनके लिए टूट पड़ी। विदर्भ राजाने भगवान्की यथोचित पूजा करनेके उनके रहनेका सर्वोत्तम प्रवन्ध कर दिया। वहाँकी सारी जनता यह कह रही थी कि भगवान्के योग्य अकेली यही है और इसके योग्य भी भगवान् ही हैं। इधर नगरमें ऐसी बातें हो रही थी तबतक अनेक राजभटोंसे सुरक्षित अपनी सहेलियोंके तथा पूजन विधि जाननेवाली बूढ़ी ब्राह्मण स्त्रियोंके साथ अम्बिका पूजन को रुक्मिणी निकल पड़ी। पूजन करनेके बाद अम्बिका मन्दिरसे निकलते ही भगवान्को अपना लावण्य समर्पण करनेकी अभिलाषासे धीरे धीरे कलहंसगतिसे चलने लगी। उसके सौन्दर्यको देखते ही सभी वीर राजा मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जमीनमें गिरे राजाओंकी ओर अपनी लजीली आँखोंसे देखते हीं उसने भगवान् श्रीकृष्णको देख लिया। भगवान्के रथपर चढ़नेकी अभिलाषा कर रहीं उसको सभी राजाओंके देखते-देखते उनके बीचसे रथपर बैठाकर भगवान् वहाँसे ले भागे। तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ❀

(शत्रुपक्षीय राजाओंको जीत लेनेके बाद रुक्मीको कुरूप बनाकर छोड़ देनेपर श्रीकृष्णका द्वारकामें रुक्मिणीसे विवाह करना)

श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥ स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥ तानापततं आलोक्य

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह विचारकर सब राजा क्रोधाविष्ट हो कवच और धनुष आदि अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर अपने-अपने रथपर बैठकर अपनी-अपनी सेनाके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साथ भगवान्के रथका पीछा करने लगे ॥ १ ॥ हे राजन्, यादव सेनाधिपति सब उन लोगोंको आते देखकर अपना धनुष चढ़ा करके उनके सम्मुख खड़े ही गये ॥ २ ॥ जैसे पहाड़पर मेघ जल बरसाता है वैसेह घोड़ेके पीठपर, हाथियोंके स्कन्धपर तथा रथोंके ऊपर बैठकर शस्त्र चलानेमें पण्डित सब बाणवृष्टि करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर अपने पतिकी सेनाको बाणसे आच्छादित देखकर अति भयसे विह्वल आँखोंसे युक्त होकर वह सुन्दर कमरवाली रुक्मिणी भगवान्को लज्जापूर्वक देखने लगी ॥४॥ तब भगवान्ने हँसकर कहा—हे वामलोचने, मत डरो। अभी अति शीघ्रहीं तुम्हारे सैनिकोंकी रक्षाके लिए समस्त इन शत्रुओंकी सेनाको मार देता हूँ ॥५॥ तब उन जरासन्ध आदिके विक्रमको वर्दास्त न करते हुए गद, संकर्षण वगैरह सब वीरोंने क्रोधित होकर बाणों से हाथी, घोड़े और रथ नष्ट कर दिये ॥ ६ ॥ तदनन्तर अश्वपतियों, गजपतियों और रथियोंके सिर अनेक करोड़ों कुण्डलों, किरीटों तथा पगड़ियों के सहित भूमिपर

यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ॥ विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसङ्कर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हय-गजान् रथान् ॥ ६ ॥ पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥ हस्ताः सासिग-देष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥ हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः ॥ राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरः सराः ॥ ९ ॥ शिशुपालं समभ्येत्य हतदारमिवातुरम् ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥ भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ॥ एवमीश्वरतन्त्रोऽयमी-हते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥१३॥ तथाप्यहं न शोचामि

गिर पड़े ॥ ७ ॥ तलवार, गदा और धनुषके सहित अनेक हाथ, करभ-जैसी जंघा और पैर कटकर पृथिवीपर गिर गये तथा घोड़ों, खच्चरों, हाथियों, ऊँटों और गदहोंके भी सिर कटकर गिर पड़े ॥ ८ ॥ जय चाहनेवाले वृष्णियों द्वारा सम्पूर्ण सैन्यके मार दिये जानेपर जरासन्धके पीछे-पीछे चलनेवाले समस्त राजे अति दुःखी हो उदास मुँह लेकर लौट गये ॥ ९ ॥ रुक्मिणीके न मिलनेसे मानो उसकी स्त्री कहीं खो गई हो, इसतरह आतुर होकर बैठे हुए कान्तिहीन, उत्साहशून्य तथा सूख रहे वदनवाले उस शिशुपालके समीप आकर सब राजा उससे यों कहने लगे ॥ १० ॥ हे हे पुरुष शार्दूल, यह उदासीनता छोड़ दो, क्योंकि हे राजन्, देहधारियोंमें सुख और दुःखकी स्थिरता बराबर नहीं दीखती ॥ ११ ॥ जैसे लकड़ीकी स्त्री (कठपुतली) नचानेवालेकी इच्छासे चारो तरफ घूमती है उसी तरह यह जीव सुख और दुःखमें ईश्वरके अधीन होकर चेष्टा करते रहता है यानी ईश्वर जैसा चाहता है इसे नचाता है ॥ १२ ॥ [जरासन्धने कहा—हे राजन्] कृष्णसे सत्रह बार पराजित होनेपर भी पुनः अठारहवीं बार तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ जाकर मैंने सिर्फ एक युद्धमें विजय प्राप्त की ॥१३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथापि मैं न तो कभी प्रसन्न रहता हूँ और न दुःखी ही, क्योंकि यह सारा जगत् ही दैवयुक्त कालरूपी ईश्वरसे विद्रावित है यानी सब संसार ही ईश्वराधीन है, ऐसा समझकर सन्तोष रखता हूँ ॥ १४ ॥ हे राजन्, इस समय दैव हमलोगोंके अनुकूल नहीं है। अभी वीरोंके झुण्डोंकी रक्षा करनेवालोंके भी रक्षक हम सब थोड़ी-सी सेना रखनेवाले कृष्णद्वारा रक्षित इन यदुवंशियोंसे पराजित हो चुके हैं ॥ १५ ॥ अपने अनुकूल समयमें अभी तो हमारे दुश्मनोंने विजय पायी है ' जब हमलोगोंका समय अनुकूल आयगा तब हमलोग भी इन्हें जीत लेंगे ॥ १६ ॥ इस तरह मित्र राजाओंके समझानेपर शान्ति पाकर वह शिशुपाल सेवकोंके साथ घर चला गया मरेसे बचे हुए और भी राजा सब अपने-अपने नगरको चले गये ॥ १७ ॥ कृष्णद्वेषी अति बलवान् रुक्मी तो राक्षसविधिसे अपनी बहिनके विवाहका सहन न करते हुए एक अक्षौहिणी सेनाके साथ होकर कृष्णके पीछे चल पड़ा ॥ १८ ॥ क्रुद्ध और बद्धकवच

न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥ कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥ अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥ रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणी ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥ एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ॥ हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥ रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥१९॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ चोदयाश्वान् यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥२१॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥२२॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ॥

महाबाहु उस रुक्मीने अपनी बहिनका अपहरण न सहते हुए सभी राजाओंके बीचमें धनुष हाथमें लेकर प्रतिज्ञा की ॥ १९ ॥ हे भूपालो, समरमें बिना कृष्णको मारे और रुक्मिणीको बिना लौटाये अपने नगर कुण्डिनमें में प्रवेश नहीं करूँगा, यह मैं आपलोगोंसे सत्य कहता हूँ ॥ २० ॥ ऐसा कहकर रथपर बैठ करके उसने सारथियोंसे शीघ्र कहा—जहाँ कृष्ण हैं, उसी ओर इन घोड़ोंको हाँको। जल्दी उसके साथ मेरा युद्ध होगा ॥ २१ ॥ आज मैं अपने तीखे-तीखे बाणोंसे सुदुर्बुद्धि गोपालक* दुष्ट कृष्णका सम्पूर्ण वीर्यमद चूर कर दूँगा, कारण कि उस दुष्टने मेरी बहिनको जबर्दस्ती हर लिया है ॥ २२ ॥ अकेले रथपर बैठे उस दुष्टमति रुक्मीने भगवान्की निन्दा करते हुए हे गोविन्द, ठहरो, ठहरो, यह कहा ॥ २३ ॥ और बड़ी दृढ़ताके साथ धनुष चढ़ाकर कृष्णको तीन बाण मारकर फिर कहा—हे यदु कुलपांसन,† थोड़ी देर यहाँ ठहर जाओ ॥ २४ ॥ मेरी बहिनको, हवि चुरानेवाले काककी तरह, चुराकर कहाँ भगे जा

* इसका वास्तविक अर्थ यह है—जिसकी बुद्धि दुष्ट पुरुषोंमें भी सुन्दर अनुग्रहवाली है, उसका नाम है सुदुर्बुद्धि तथा गोपाल यानी वेदपालक-यह यहाँ वास्तविक अर्थ है।

† हे यदुकुलपते, हे अंसन—स्वयं रिपुहन चतुर-यह वास्तविक अर्थ है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहे हो ? हे दुष्ट, धोखा देकर लड़नेवाले मायावी आज तुम्हारा सब मद ठण्ढा कर दूँगा ॥ २५ ॥ जबतक मेरे बाणोंसे घायल होकर सो नहीं जाते हो, उसके पहले ही मेरी बहनको छोड़ दो, ऐसा वचन सुनकर श्रीकृष्णने हँसते हुए रुक्मीका धनुष काटकर छः बाणोंसे उसे वेधकर घायल कर दिया ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे चारों घोड़ोंको, दो बाणोंसे सारथिको और तीन बाणोंसे ध्वजाको काटकर गिरा दिया। तदनन्तर रुक्मीने दूसरा धनुष लेकर पाँच बाणोंसे भगवान्‌को वेध दिया ॥ २७ ॥ उन बाणसमूहसे घायल होकर भगवान्‌ने पुनः उसके धनुषको काट डाला। तब उसने तीसरा उठा लिया। उसे भी भगवान्‌ने तत्क्षण ही काट दिया ॥ २८ ॥ परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति, तोमर वगैरह जिस-जिस शस्त्रका रुक्मीने ग्रहण किया, उन सबको भगवान्‌ने काट दिया ॥ २९ ॥ तब क्रुद्ध वह रुक्मी भगवान्‌को मार डालनेकी इच्छासे हाथमें तलवार लेकर रथसे उतरकर, जैसे अग्निकी तरफ छोटे-छोटे पतंग

आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४ ॥ कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्‌क्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम् ॥ स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्‌भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥ अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्‌गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापततः खड्‌गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ छित्वाऽसिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्‌वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥ योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते ॥ हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तया परित्रासविकम्पिताङ्गया शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥ ३४ ॥ चैलेन बद्‌ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं

जाते हैं वैसे भगवान्‌की तरफ दौड़ा ॥ ३० ॥ तदनन्तर अपनी ओर दौड़े आ रहे रुक्मीकी तलवार तिलश और चर्म (ढाल) को बाणोंसे काटकर हाथमें तलवार लेकर भगवान् उस तिग्म रुक्मीको मारनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ३१ ॥ भाईको मारनेकी इच्छा देख रुक्मिणी भयसे विह्वल होकर भगवान्‌के पैरोंपर गिर पड़ी और करुणापूर्वक कहने लगी ॥ ३२ ॥ हे योगेश्वर, हे अप्रमेयात्मन्, हे देव, हे जगत्पते, हे कल्याण, हे महाभुज, मेरे भाईको मारनेके लिए आप प्रयत्नशील न बनिए ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उस समय भयके मारे रुक्मिणीके सभी अंग काँप रहे थे, उसका मुख सूख रहा था कण्ठसे बोली बन्द हो गई थी, अधिक कातरता आ जानेके कारण उसकी स्वर्णमयी माला खिसक गई थी। उसने भगवान्‌के चरणकमल पकड़ लिए। तदनन्तर करुणासागरने उसके भाईको मारनेकी अपनी इच्छा रोक ली ॥ ३४ ॥ किन्तु भगवान्‌ने कुत्सितकर्म करनेवाले रुक्मीको वस्त्रसे बाँधकर उसकी दाढ़ी और अन्य जगहके बाल जहाँ-तहाँ उसी तलवारसे काटकर उसे अति कुरुप बना दिया और वीर यदुवंशियोंने उसकी उतनी बड़ी अद्भुत सेना इस तरह नष्टकर दी जैसे हाथी नलिनीको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नष्ट भ्रष्टकर देता है ॥ ३५ ॥ तब सर्वसमर्थ करुणासागर भगवान् बलदेवजीने कृष्णाके समीप आकर मरे हुएकी तरह अति दीन बँधे हुए रुक्मीको देखकर उसका बन्धन खोलकर कृष्णसे यों कहा ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण, अति तुच्छ यह कार्य हमलोगोंके लिए अति निन्दित है। तुमने अच्छा नहीं किया। दाढ़ी और समस्त बालको बनवाकर कुरूपकर देना, यह सुहृद्का वध द्योतन करता है ॥ ३७ ॥ हे साध्वी रुक्मिणी, अपने भाईका यह नतीजा देखकर हमलोगोंके ऊपर नाराज मत होओ, चिन्ता छोड़ दो, कारण कि सुख-दुःख देनेवाला कोई दूसरा नहीं है, मनुष्य आपही अपना कर्मफल भोगता है अर्थात् मनुष्य अपना सुख-दुःख किये हुए कर्मका फल जानकर भोगता है ॥ ३७ ॥ भाई बध करने योग्य भी अपने भाईको नहीं मारते, कारण कि वह तो अपने ही दोषसे मर जायगा, उस मरे हुएको फिर क्या मारना, ऐसा कृष्णसे बलदेवजीने कहा ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीसे कहा—हे देवि, ब्रह्माने क्षत्रियका यह धर्म बतलाया है, जिससे भाई भी भाईको मार सकता है यह अति दारुण क्षत्रियधर्म है, इसलिए इसमें हमलोगोंका कोई अपराध नहीं है ॥ ४० ॥ [पुनः श्रीकृष्णसे कहा—] राज्य, भूमि, सम्पत्ति,

प्रवपन्व्यरूपयत् ॥ तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूत हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ३७ ॥ मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ॥ सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ ३८ ॥ बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ॥ त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥ भ्रातापि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतरस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ॥ मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ॥ यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया ॥ सुहृद् दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥ एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ नानेव गृह्यते

स्त्री, मान, तेज या अन्य वस्तुके निमित्त बहुतसे लक्ष्मीके मदसे अन्धे हुए देहादिमें आत्माभिमानी पुरुष आपसमें लड़कर मर जाते हैं ॥ ४१ ॥ (पुनः रुक्मिणीसे कहा—) सभी भूतोंमें दुर्भाव रखनेवाले भाइयोंका अज्ञानियोंकी नाईं जो तुम सदा कल्याण चाहती हो, सो हे देवि, यह तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है क्योंकि वही तो तुम्हारे सुहृदोंका अभद्र (अकल्याण) अथवा सभी भूतोंमें सदा शत्रुता रखनेवालेभी अपने भाइयोंके भद्रको ही यानी दण्डरूपी मुण्डनको ही जो तुम अभद्र मान रही हो, सो तुम्हारी यह बुद्धि अज्ञानियोंकी बुद्धिकी नाईं विषम है। अथवा सम्पूर्ण प्राणियोंके मध्यमें शिशुपाल आदिका सदा अकल्याण तथा अपने सुहृदोंका जो तुम कल्याण चाहती हो, सो हे देवि, तुम्हारी यह बुद्धि, अज्ञानियोंकी नाईं, सम नहीं है ॥ ४२ ॥ यह मेरा मित्र है, यह दुश्मन है और यह तो मेरा न मित्र है तथा न दुश्मन ही है, इस तरहका जो देहादिमें आत्माभिमान करनेवाले मनुष्योंका आत्ममोह होता है वह भगवान्की मायासे कल्पित होता है ॥ ४३ ॥ शुद्ध आत्मा सभी देहियोंके अन्दर एकही है, किन्तु मूढ़ लोग इसे नाना प्रकारके ऐसे स्वीकार करते हैं, जैसे जलोंके अन्दर शुद्ध एक चन्द्रादि ज्योतिको या

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

घटादि पदार्थों में एकही आकाशको नानारूपसे ग्रहण करते हैं ॥४४॥ द्रव्य, प्राण, और गुणात्मक [अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव] यह शरीर तो आदि तथा अन्तवान् है यानी जन्म लेता और मरता है। अविद्याद्वारा आत्मामें कल्पित है। यही जन्मादि संसार रहित भी देहीको संसारी बनाता है ॥ ४५ ॥ हे सति, अन्य अधिभूत देह आदिके साथ आत्माका संयोग और वियोग नहीं होता, क्योंकि देहादि अन्य तो असत् ही हैं। यदि यह कहो कि देहादि असद् कैसे हैं तो इसका उत्तर यही है कि भूतों तथा इन्द्रियादिकोंके प्रकाशमें आत्मा ही कारण है यानी जो तुम यह सदृश्य प्रपञ्च देख रही हो यह सब एकमात्र आत्मासे ही भास्य है, आत्मा ही इन सबका अवभासक है यदि तुम यह आशंका करो कि देवताओंसे अधिष्ठित इन चक्षु आदि इन्द्रियोंसे ही समस्त भूतोंकी प्रतीति प्रसिद्ध है और उन भूतोंकी प्रतीतिसे इन्द्रियोंकी प्रसिद्धि है, न कि आत्मासे, तो यह तुम्हारी आशंका निर्मूल है। देखो-यद्यपि घट-पटादि पदार्थों में रहने वाला नील, पीत आदि रूप और चक्षु-ये दोनों प्रकाश्य और प्रकाशरूपसे वर्तमान हैं तथापि इन दोनोंकी प्रसिद्ध सूर्यसे ही होती है, क्योंकि दोनोंही तैजस हैं तथा दोनोंमें अभेद

मूर्दैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४ ॥ देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥४५॥ नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ॥ तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥४७॥ यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ॥ अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥४८॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् । तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ॥ वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ ५१ ॥ (चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम् ॥) अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा

सम्बन्ध है। ठीक इसी तरह परस्पर एक दूसरेसे सिद्ध हुए भी भूतों और इन्द्रियोंका प्रकाश चैतन्यके ही अधीन है। चूँकि ये उसके कार्य हैं इसलिये उसके साथ व्यतिरेक होनेके कारण ये सबके सब असत् हैं ॥ ४६ ॥ यह जन्म-मरण तो देहका विकार है, आत्माका नहीं। उसका जन्म मरण कहीं नहीं होता। जैसे चन्द्रमाकी कलाओंके क्षीण हो जानेसे चन्द्रमाका जन्म-मरण नहीं होता, ठीक वैसेही यहाँ भी समझना चाहिये। और जैसे कलाओंके नाशसे ही अमावस्या चन्द्रक्षय कही जाती है वैसेही इस आत्माके देह नाशसे ही इसमें मरण व्यवहार होता है ॥४७॥ जैसे सो रहा पुरुष स्वप्नमें आत्मा, विषयों और फलोंका असत् पदार्थके न रहनेपर भी अनुभव करता है यानी स्वप्नमें जैसे पुरुष अपनेको राजा मानकर तत् तत् विषय सुखोंका पदार्थों अभावमें भी उपभोग करता है वैसेही अज्ञानी संसारको प्राप्त करता है ॥४८॥ इसलिये हे शुचिस्मिते, आत्माको सुखा देनेवाले मोहमें डाल देनेवाले इस अज्ञानजनित शोकको तत्त्वज्ञानसे नष्टकर स्वस्थ हो जाओ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह बलदेवजीके द्वारा समझाने-बुझानेपर वह तन्वी अपने मनका सब विकार छोड़कर वास्तविक विचार करने लगी ॥ ५० ॥ तदनन्तर शत्रुओं द्वारा नष्टकर दिए गये बल और तेजवाला वह रुक्मी अपना प्राणमात्र बचा देखकर अपने कुरूप होनेका कारण स्मरण करते हुए अपना मनोरथ न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

षाकर अति निन्दित हुआ ।। ५१ ।। दुर्मति कृष्णको बिना मारे और बहिनको बिना लौटाये इस नगरमें न आऊँगा, ऐसी प्रतिज्ञा पूर्वमें उसने की थी, अतः अपने नगरमें न जाकर मारे क्रोधके जहाँ वह कुरूप बनाया गया था, वहीं बस गया कुछ दिनोंके बाद वहाँ भोजकट नामका बड़ा विशाल नगर हो गया ।। ५२ ।। हे कुरुश्रेष्ठ, भगवान्‌ने भी अनेक राजाओंको इस तरह जीतकर भीष्मककी लड़की रुक्मिणीको अपने नगरमें लाकर विधिपूर्वक विवाह किया ।। ५३ ।। हे राजन्, उस समय मथुरामें घर-घर कृष्णके अतिरिक्त अन्यमें प्रेम न रखनेवाले स्त्री-पुरुषोंने भगवान्‌के विवाहके उपलक्ष्यमें महान् उत्सव मनाया ।। ५४ ।। सुन्दर मणिके कुण्डल धारण किये हुए स्त्री-पुरुषोंने अति प्रसन्न होकर विचित्र वस्त्र पहने हुए भगवान् और रुक्मिणीको देने योग्य अनेक सुन्दर वस्तुएँ उपहारमें लाकर दीं ।। ५५ ।। खूब ऊँचे खम्भोंके ऊपर फहरा रहे इन्द्रकेतु नामक ध्वजाओंसे, विचित्र तरहकी मालाओं, वस्त्रों और नानाविध

तत्रावसद्रुषा ।। ५२ ।। भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ।। पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ।। ५३ ।। तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ।। अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ।। ५४ ।। नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।। पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ।। ५५ ।। सा वृष्णिपुर्युत्तम्भितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ।। बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ।। ५६ ।। सिक्तमार्गा मदच्युद्‌भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ।। गजैर्द्वास्सु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ।। ५७ ।। कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ।। मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ।। ५८ ।। रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ।। राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ।। ५९ ।। द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ।। रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ।। ६० ।। इति श्रीमद्‌भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५४ ।।

रत्नों द्वारा विरचित तोरणोंसे तथा घरोंके प्रत्येक दरवाजेपर रखे गये जलपूर्ण कलश, अगरु, धूप, दीप आदि माङ्गलिक वस्तुओंसे वह द्वारकापुरी खूब शोभ रही थी ।। ५६ ।। उस समय बुलाये गये बड़े-बड़े राजाओंके मतवाले हथियोंकी मदधारासे द्वारकका मार्ग बिलकुल सिक्त हो गया था । द्वारोंपर केलेके स्तम्भों और सुपारीके वृक्षोंसे वह द्वारका उपशोभित हो रही थी ।। ५७ ।। उस द्वारकापुरीमें अधिक उत्सुकताके कारण खूब इधर-उधर दौड़ रहे बन्धुओंके बीचमें परस्पर मिलकर कुरुवंशीय राजा, सृञ्जय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्तय आदि सबके सब खूब आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ।। ५८ ।। जगह-जगहपर गाये जा रहे रुक्मिणीके हरणको सुनकर राजे और राजकन्याएँ अत्यन्त विस्मित हो रही थीं ।। ५९ ।। हे राजन्, द्वारकामें लक्ष्मीरूप रुक्मिणीसे युक्त लक्ष्मीपति कृष्णको देखकर वहाँके वासियोंको महान् आनन्द हुआ ।। ६० ।।

चौवनवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, रुक्मिणीको अपने रथपर बैठा लिये जा रहे श्रीकृष्णके ऊपर तथा उनकी सेनापर जरासन्ध प्रभृति राजा सब तत्काल ही बाणोंकी वर्षा करने लगे । भगवान्‌के ऊपर गिर रहे बाणोंकी बौछार देखकर रुक्मिणी भयसे काँपने लगी । भयसे काँप रही रुक्मिणीको सान्त्वना देते हुए भगवान्‌ने भी अपने दुश्मन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सभी राजाओंके ऊपर बड़े वेगसे पैने बाण छोड़ने लगे। भगवान्के उन तीखे बाणोंसे कुछ तो राजा मर गये और जो कुछ घायल बच गये थे वे भी सब भाग निकले। तदनन्तर अपनी बहिनको लिये जा रहे श्रीकृष्णको देखकर रुक्मने एक अक्षौहिणी सेना लेकर भगवान्को मारनेकी प्रतिज्ञा करते हुए उनका पीछा किया। युद्धके लिये आये अपने साले रुक्मीकी सेनाको मारकरके उसे पकड़ लिया। अपने भाईका वध होते देख रुक्मिणीने भगवान्के चरणोंपर गिरकर उनको प्रसन्न किया। तदनन्तर भगवान्ने जहाँ-तहाँ उसकी डाढ़ी-मूछ आदि केशोंको अपने तलवारसे काटकर उसे कुरूप बना दिया। अपने भाईकी ऐसी दुर्दशा देखकर अति दुःखित हो रही रुक्मिणीको बलदेवजीने खूब समझा-बुझाकर स्वस्थ किया तदनन्तर अपनी भगवान्को मारनेकी प्रतिज्ञाका स्मरण करके दृढ़ प्रतिज्ञ वह रुक्मी अपने देशको न लौटकर जहाँ भगवान्ने उसे कुरूप बना दिया था वहीं बस गया, जो स्थल कालान्तरमें जाकर भोजकट नामक नगरसे प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद भगवान्ने रुक्मिणीको अपने घर लाकर उसे अपनी धर्मपत्नी बना लिया। चौवनवाँ अध्याय समाप्त॥

❋ अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ❋

(कृष्णसे प्रद्युम्नकी उत्पत्ति, शम्बरासुर द्वारा प्रद्युम्नका अपहरण, प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध, अपनी पत्नी रतिके साथ द्वारकापुरीमें प्रद्युम्नका आना तथा प्रद्युम्नके खो जाने और पुनः मिल जानेसे उनके कुटुम्बियों द्वारा सन्तति विषयके सुख-दुःख प्रकट करना—इन सबका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, वासुदेवका अंशभूत कामदेव, जो पहले भगवान् शंकरके क्रोधसे भस्म हो गया था, पुनः कृष्णमें ही जाकर दूसरा देह धारण करनेके निमित्त ठहरा ॥१॥ वही कामदेव वैदर्भीके गर्भसे भगवान्के वीर्य द्वारा उत्पन्न हो प्रद्युम्न नामसे विख्यात हुआ। वह प्रत्येक बातमें पितासे तनिक भी कम नहीं था ॥२॥ जिसके जन्मके दस दिन

श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥ तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ॥ स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद् गृहम् ॥ ३ ॥ तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् ॥ सूदा महानसं नीत्वाऽवाद्यन्स्वधितिनाद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ॥ नारदोऽकथय-

भी अभी नहीं बीते थे ऐसे उस प्रद्युम्न बच्चेको कामरूपी शम्बर अपना शत्रु मानकर उसे जन्मके छठे दिन चुरा करके समुद्रमें फेंककर गृह चला आया ॥ ३ ॥ उसे एक बलवान् मत्स्य निगल गया। वह मत्स्य और भी अनेक मत्स्योंके साथ महान् जालसे मल्लाहों द्वारा पकड़ लिया गया ॥ ४ ॥ उस मत्स्यको धीवरोंने शम्बरको उपायन (भेंट) रूपमें दे दिया। राजा शम्बरके याचकोंने महानसमें ले जाकर उस अद्भुत मत्स्यको मत्स्य काटनेवाले एक छोटे-से अस्त्रसे काट दिया ॥ ५ ॥ उसके उदरमें बालकको देखकर मायावती नामकी स्त्रीको दे दिया,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो मायावती वास्तवमें रति थी, वह पतिको पानेकी इच्छासे वहाँ जन्म ली थी। उसे यह वृत्तान्त जानकर सन्देह हुआ तब नारद भगवान्‌ने बालककी उत्पत्ति एवं मछलीके उदरमें उसका कैसे प्रवेश हुआ, यह सब बतला दिया ॥ ६ ॥ वह कामदेवकी पत्नी यशस्विनी थी, जो जले हुए अपने पतिकी देहोत्पत्तिकी प्रतीक्षाकर रही थी ॥ ७ ॥ वह भोजन बनानेके लिये राजा शम्बरसे नियुक्तकी गई थी। वह उसे कामदेव ही मानकर उस समय बालक देख पुत्रकी तरह उसमें स्नेह करने लगी ॥ ८ ॥ वह कृष्णका पुत्र प्रद्युम्न थोड़े ही दिनोंमें युवावस्था पाकर उसे देख रही नारियोंको मोहित करने लगा ॥ ९ ॥ हे राजन्, लज्जापूर्ण मुसकुराहट और तिरछी नजरसे देखती हुई वह कमलदललोचन आजानुबाहु नरलोक सुन्दर उस अपने पतिकी रति उत्पन्न करनेवाले नानाविध भावोंसे बड़े प्रेमसे सेवा करने लगी ॥ १० ॥ तदनन्तर कृष्णके पुत्र भगवान् प्रद्युम्नजीने मायावतीसे कहा—हे माँ, तुम्हारी बुद्धि बदल गई है, कारण कि पुत्रभाव छोड़ करके कामिनी-जैसी मेरे साथ अब तुम व्यवहारकर रही हो ॥ ११ ॥ तब रतिने कहा—भगवन्, आप भगवान् कृष्णके पुत्र हैं। शम्बरके द्वारा अपने घरसे आप चुरा

त्सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥ सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्ध-
देहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदार्भके ॥ ८ ॥ नातिदी-
र्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोक-
सुन्दरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमतिक्रम्य
वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् ॥ अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥
एष त्वाऽनिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिहः प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ॥
मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४॥ परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ॥ पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥१५॥

लाये गये हैं। मैं आपकी धर्मपत्नी रति हूँ और हे प्रभो, आप कामदेव हैं ॥ १२ ॥ हे प्रभो, जब आप दस दिनके भी नहीं हुए थे, तभी इस शम्बरासुरने आपको आपके पिताके घरसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था। वहाँ एक मछली आपको निगल गई थी और संयोगवश अनेक मछलियोंके साथ वह भी मल्लाहोंके जालमें फँस गई। मल्लाहोंने उसे लाकर इस शम्बरासुरको भेंटमें दे दी। इस असुरने अपने याचकोंको दे दी और तदनन्तर उस मछलीका पेट चीरनेपर आप निकले। आपको उन याचकोंने मेरे हाथमें सौंप दिया। तबसे लगातार आजतक मैंने आपका बड़े स्नेहके साथ पालन किया। नारद भगवान्‌से मुझे मालूम हुआ है कि आप मेरे पति हैं। हे प्रभो, यों आप मुझे यहाँ एक मछलीके पेटसे प्राप्त हुए हैं ॥१३॥ अतः आप अति भयानक कष्टसे पराजित होनेवाले हजारों मायाको जाननेवाले इस दुष्टको अपनी मोहन आदि मायासे नष्ट कर दीजिये ॥ १४ ॥ आपकी माँ पुत्रके मरनेसे दुःखी होकर जिस तरह हरिणी रोती है उस तरह पुत्रस्नेहसे व्याकुल अतिदीन होकर, वत्सहीन दुःखिया गौकी तरह रो रही है ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर उस मायावती रतिने सब मायाको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नष्ट करनेवाली महामाया नामक विद्या अपने स्वामी महात्मा प्रद्युम्नको दे दी ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नजीने शम्बरासुरके पास जाकर असहनीय कटुवचनोंसे उसका तिरस्कार करते हुए तथा उसे लड़नेके लिये उभाड़ते हुए संग्रामके लिये खूब ललकारा ॥ १७ ॥ जैसे पैर लगनेसे सर्प क्रुद्ध होता है वैसेही वह भी कठोर वचनोंसे अति क्षुब्ध होकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये हुए हाथमें गदा लेकर घरसे बाहर निकल पड़ा ॥ १८ ॥ उसने बड़े वेगसे गदा घुमाकर महात्मा प्रद्युम्नके ऊपर फेंक दी और गदा फेंक करके वज्रके निर्घातपर जैसे तीव्र आवाज होती है उस तरह चिग्घाड़ मारने लगा ॥ १९ ॥ हे राजन्, भगवान् प्रद्युम्नजीने भी अपनी ओर आ रही उसकी गदाको अपनी गदासे काटकर अति क्रुद्ध होकर अपनी गदा शत्रुके ऊपर छोड़ दी ॥ २० ॥ उस शम्बरने आकाशमें जाकर मयसे बताई गई दानवोंकी मायाका आश्रयणकर प्रद्युम्नके ऊपर अनेक तरहकी अस्त्रोंकी वृष्टि शुरू कर दी ॥ २१ ॥ रुक्मिणीके

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥ स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्सञ्जनयन्कलिम् ॥ १७ ॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदा हत इवोरगः ॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतन्तीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥ स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ॥ सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ २२ ॥ ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः ॥ प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २३ ॥ निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ शम्बरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्रोजसाऽहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ॥ भार्ययाऽम्बरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥ अन्तःपुरवरं राजँल्ललनाशतसङ्कुलम् ॥ विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं

पुत्र महारथी प्रद्युम्नजीने भी नानाविध अस्त्रोंकी वृष्टिसे घायल होकर सब मायाका उपमर्दन करनेवाली सत्त्वगुणमयी मायाका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तब शम्बरने कार्तिकेय, गान्धर्व, पैशाच, सर्प और राक्षसी नामकी सैकड़ों मायाओंका प्रयोगकर डाला, पर उन सबको उस प्रद्युम्नजीने नष्ट कर दिया ॥ २३ ॥ तब प्रद्युम्नजीने अति तेज तलवार लेकर कुण्डल, किरीट एवं लालवर्णकी दाढ़ीयुक्त शम्बरका सिर अपने बलसे काट लिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर स्तुतिकर रहे देवताओंकी फूलोंको वृष्टिसे आच्छादित हुए प्रद्युम्नजी आकाशमें विचरण करनेवाली अपनी भार्या मायावती द्वारा आकाशमार्गसे अपनी द्वारकापुरीमें लाये गये ॥ २५ ॥ हे राजन, तदनन्तर बिजुलीके साथ मेघकी नाईं प्रद्युम्नजीने आकाशसे उतरकर अपनी पत्नी मायावतीके साथ सैकड़ों ललनाओंसे भरे राजमहलमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ मेघके सदृश नीलवर्ण, पीत कौशेयवस्त्र धारण किये हुए, विशाल बाहुवाले, मधुर मुसकानयुक्त मुख-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाले और लालकमलके समान नेत्रवाले नीले घुँघराले बालोंरूपी भौंरोंसे भूषित मुखारविन्दयुक्त प्रद्युम्नजीको देखकर वहाँकी स्त्रियाँ उन्हें कृष्ण मानकर लज्जाके मारे इधर-उधर छिपने लगीं ॥ २७, २८ ॥ धीरे-धीरे उनमें कृष्णसे कुछ विपरीत लक्षण देखकर उन्हें अन्य निश्चय करके रतिरूपी स्त्रीरत्नके साथ प्रद्युम्नजीके पास प्रसन्न तथा विस्मित होकर स्त्रियाँ चली गईं ॥ २९ ॥ तदनन्तर वहाँ नीली आँखोंवाली मधुरभाषिणी रुक्मिणीको उन्हें देखकर अपने खोये हुए बच्चेकी याद आ गई और पुत्र-प्यारके कारण उसके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगी ॥ ३० ॥ यह नरश्रेष्ठ कौन है ? यह कमलनेत्र किसका पुत्र है ? किस स्त्रीने इसको अपने उदरमें धारण किया ? इसको यह कौन स्त्री मिली है ॥ ३१ ॥ मेरा भी बच्चा, जिसको सूतिका घरसे किसीके चुरा लिये जानेसे नष्ट हो गया है, वह भी अवस्था और रूपमें इसीके तुल्य होगा, यदि अबतक कहीं भगवान्‌की दयासे जीवित होगा ॥ ३२ ॥

रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलङ्कृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ॥ उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ॥ धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥ मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥ एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ॥ आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥३३॥ स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥ एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ॥ अभ्यनन्दन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ३८ ॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥

यह बालक कैसे श्रीकृष्णके सारूप्यको पा गया, क्योंकि इसकी आकृति, अवयवोंकी बनावट, गति, स्वर, हँसी और देखना ठीक भगवान्‌के ही तुल्य है ॥ ३३ ॥ निश्चय यह बालक मेरा ही है, जिसे मैं गर्भमें रखा था, कारण कि इसमें अधिक प्रीति हो रही है। इसे देखते ही मेरा बायाँ हाथ फड़कने लगा है ॥ ३४ ॥ इस तरह रुक्मिणी द्वारा विचार करते समय देवकी और वसुदेवजीके साथ उत्तमश्लोक भगवान् वहीं आ गये ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण कथा जानते हुए भी जनार्दन भगवान् चुप रहे, परन्तु नारदजीने शम्बरद्वारा हरण एवं रतिको प्राप्त आदि, यह सब कथा कह सुनाई ॥ ३६ ॥ उस महान् आश्चर्यमय घटना सुनकर श्रीकृष्ण भगवान्‌के अन्तःपुरकी रानियाँ, जैसे कोई मरा हुआ बहुत दिनोंके बाद जिन्दा होकर फिर कहींसे आ जाय, वैसेही कई वर्षोंके बाद उन्हें आये देखकर बहुत प्रसन्नता को प्राप्त हुईं ॥ ३७ ॥ देवकी, वसुदेव, बलदेव और श्रीकृष्ण तथा अन्य स्त्रियाँ एवं रुक्मिणी ये सबके सब उस दम्पतिका आलिङ्गनकर अति प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ खोए हुए प्रद्युम्नको पुनः आये सुनकर द्वारकावासी कहने लगे—अहो, कितने बड़े सौभाग्यकी बात है कि इतने दिनोंका खोया हुआ बालक आज

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुनः ऐसे अचानक आ गया, जैसे कि मरकर कोई पुनः आ जाय ॥ ३९ ॥ जिन्हें बार-बार देखकर पिताके समानरूप होनेके कारण पितृसदृश जिन प्रद्युम्नमें 'यह तो मेरे पति भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं'—यों भावना रखनेसे जिनकी माताओंने एकान्तमें जाकर शृङ्गाररसमें डूबकरके जिनकी खूब सेवा की, यह सुनकर जो आश्चर्य प्रतीत हो रहा है, सो रमाके आस्पद श्रीकृष्ण भगवान्के प्रतिबिम्ब स्वरूप और स्मरणमात्रसे ही क्षोभ पैदा करनेवाले उन कामदेवके अवतारस्वरूप प्रद्युम्नके आँखोंके सामने आ जानेपर ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है और जब ऐसा भाव उनकी माताओंमें आ गया, तो फिर अन्य स्त्रियोंके विषयमें कहना ही क्या है* ॥ ४० ॥

अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येतिहाब्रुवन् ॥ ३९ ॥ यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ॥ चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

पचपनवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, प्रद्युम्नको उत्पन्न हुए अभी दस दिन भी पूरे नहीं हुए थे कि शम्बरासुरने प्रसूतिगृहसे उन्हें चुराकर समुद्रमें फेंक दिया। वहां उन्हें एक मछली निगल गई। मल्लाहों द्वारा जालमें और मछलियोंके साथ वह भी फँस गई। मल्लाहोंने वह मछली शम्बरासुरको भेंटमें दे दी। शम्बरासुरने अपने पाचककारोंको दे दी। पाचकोंने जब उसे चीरा तब उसमेंसे सुन्दर एक बालक निकला। उस बच्चे को उन लोगोंने वहीं पर मायावती नामक रतिको दे दिया। वैसे सुन्दर बच्चेकी उत्पत्ति देखकर रतिको आश्चर्य हुआ। तदनन्तर नारदजीके समझानेपर अपना पति कामदेव उसे समझकर उसका पालन-पोषण बड़े प्रेमके साथ वह करने लगी। उसके युवक होनेपर अपना वात्सल्यभाव छोड़कर जब रति उसके साथ पत्नी व्यवहार करनेंको उद्यत हुई तब उस लड़केके फटकारनेपर उस मायावतीने अपनी तथा उस लड़केकी सारी कथा उससे कह सुनाई। तननन्तर उसने महामाया नामक विद्या उसे दे दी। उस रतिके कथनानुसार उस भगवान् प्रद्युम्नने अपने शत्रु शम्बरासुरका सिर महामाया विद्याके द्वारा काट दिया। तत्पश्चात् आकाशमार्गसे रति अपने पति भगवान् प्रद्युम्नको द्वारकापुरीमें लायी। प्रद्युम्न को देखते ही सब स्त्रियोंको कृष्ण भगवान्का भ्रम हो गया। माता-पिता आदि सबको विस्मयमें पड़े देखकर नारदजीने प्रद्युम्नके विषयमें सब बातें उन लोगोंसे कह सुनाई। भगवान् नारदमुनिकी बातें सुनकर चिरकालसे नष्ट हुए प्रद्युम्नको आते देखकर वहाँकी सारी जनता आनन्दसे उछलने लगी ॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त।

---

* यद्यपि यहाँ इस श्लोकके शृंगारभाव परक अर्थमें वैरस्यप्रतीति हो रहीं है तथापि श्रीधरस्वामीजीकी पद्धतिका अनुसरण करके अनुवादकर रहे हमें लाचार होकर यही अर्थ करना पड़ा है। हमारे भागवत के प्रेमी पाठक अन्वितार्थ प्रकाशित टीकामें उसका वात्सल्यभावपरक अर्थ कृपया देख लें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(मिथ्या अभियोग लगनेपर स्यमन्तकमणिका भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अन्वेषण तथा जाम्बवान् और सात्राजित्की कन्याके साथ भगवान्का विवाह)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपराधी सत्राजित्ने अपना दोष दूर करनेके लिए स्यमन्तकमणिके साथ अपनी कन्या भगवान्को विवाह करके दे दी ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन्, सत्राजित्ने भगवान् कृष्णका कौन-सा अपराध किया था और स्यमन्तकमणि कहाँसे उसको मिली थी तथा अपनी कन्या क्यों श्रीकृष्णको दे दी ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपने भक्त सत्राजित्के भगवान् सूर्य परमभक्त हो गये थे। उन्होंने उसकी आराधनासे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे स्यमन्तकमणि दिया था ॥३॥ मणिको गलेमें धारणकर सूर्यके समान शोभायमान द्वारकानगरमें प्रविष्ट हुआ। हे राजन्, उस मणिके तेजसे कोई भी सत्राजित्को न पहचान सका ॥४॥ दूरसे ही आते हुए सत्राजित्को देख-

श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥ स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् ॥ स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादत्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥ ३ ॥ स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥ ५ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ॥ दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥ सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥ दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधि-

कर द्वारकावासी सब मणिके तेजसे नेत्रकी ज्योति कम हो जानेके कारण उन्हें सूर्य समझकर चौसर खेल रहे भगवान्कृष्णसे कहने लगे ॥५॥ हे नारायण, शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले हे दामोदर, हे अरविन्दाक्ष, हे गोविन्द, हे यदुनन्दन, आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे जगत्पते, यह तीक्ष्ण किरणवाले भगवान् सूर्यदेव अपने तीव्र तेजद्वारा हमलोगोंके नेत्रके प्रकाशको छिपाते हुए आपका दर्शन करने आ रहे हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो, त्रिलोकीमें देवता सब आपके मार्गको सदा खोजते-फिरते हैं। आज यदुकुलमें छिपे जानकर आपको देखनेके लिए सूर्यदेव आ रहे हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह बालकके सदृश उन सबोंका वचन सुनकर हँसकर कमलनयन भगवान्ने कहा—यह सूर्यदेव नहीं हैं, यह तो मणिसे देदीप्यमान सत्राजित् है ॥ ९ ॥ सत्राजित्ने नानाविध कौतुकपूर्ण किए गए मंगलवाले श्रीसम्पन्न अपने घरमें आकर एक देवमन्दिरमें ब्राह्मणों द्वारा वह मणि रखवा दिया ॥ १० ॥ हे प्रभो,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वह मणि प्रत्येक दिन आठ भार सोना उत्पन्न करती थी तथा दुर्भिक्ष, महामारी, अरिष्ट, सर्पभय, किसी प्रकारकी आधि-व्याधि एवं और भी दुःखके हेतु दैत्यादि तथा चोर आदि नहीं रहने पाते थे, जहाँ पूजित हो वह मणि रहती थी ॥ ११ ॥ ऐसे मणिका राजाके पास रहना उचित है, इस विचारसे भगवान्‌के द्वारा यदुराजके लिये माँगनेपर भी अर्थके लोभी उस सत्राजित्‌ने भगवान्‌की प्रार्थनाका कुछ भी विचार न करते हुए वह मणि नहीं दिया ॥ १२ ॥ उसका भाई प्रसेन एक दिन महाप्रभा सम्पन्न अति उज्वल उस मणिको गलेमें धारणकर घोड़ेपर सवार होकर शिकारके निमित्त वनमें विचरण करने लगा ॥ १३ ॥ घोड़ा समेत उस प्रसेनको मारकर उसके गलेसे मणि लेकर पहाड़पर जा रहे किसी एक सिंहको मणि लेनेकी इच्छासे जाम्ववान्‌ने मार डाला ॥ १४ ॥ जाम्ववान्‌ने भी वह मणि अपने कुमार नामक पुत्रको खेलनेके लिये बिलमें दे दिया। तदनन्तर प्रसेनका भाई सत्राजित् अपने भाईको न देखकर

व्याधयोऽशुभाः ॥ न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥ स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थ कामुकः प्रादाद्याञ्चाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥ प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशञ्जाम्ववता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ॥ अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनङ्गतः ॥ भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवां-स्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ माष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहत-मृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसा वृतम् ॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥ तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥ तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ तच्छ्रुत्वाऽ-भ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः ॥ २१ ॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥

अति दुःखी हो परिताप करने लगा ॥ १५ ॥ प्रायः गलेमें मणि पहनकर वनमें गये हुए मेरे भाईको कृष्णनेही मार डाला है, ऐसा उसने कहा, यह बात धीरे-धीरे सभीके कानमें पहुँच गई अर्थात् सत्राजित् ऐसा कह रहा है—यों लोग कानमें फुस-फुस करने लगे ॥ १६ ॥ अपनेमें प्राप्त यह कलंक सुनकर इस कलङ्कको मिटानेके लिए नागरिकोंके साथ होकर प्रसेनको ढूँढ़नेके लिये भगवान् उसी रास्ते वनमें निकल गये, जिस रास्ते प्रसेन गया था ॥ १७ ॥ सब लोगोंने जंगलमें सिंहसे मारे गये घोड़े और प्रसेनको देखकर तदनन्तर पहाड़पर जाम्बवान् रिछसे मारा गया वह सिंह भी देखा ॥ १८ ॥ बिलके बाहर सभी नागरिकोंको बैठाकर अति अन्धकारसे पूर्ण ऋक्षराजके भयानक बिलमें भगवान् अकेले प्रविष्ट हो गये ॥ १९ ॥ वहाँ जाकर बालकके हाथका खिलौना बनाये गये उस श्रेष्ठ स्यमन्तकमणिको देखकर उसे लेनेके अभिप्रायसे बालकके समीपमें भगवान् बैठ गये ॥ २० ॥ उस अपूर्व नरको देखकर उस बच्चेकी माता भगवान्‌की मणि चुरानेकी इच्छा जानकर डरे हुएकी नाईं बड़े जोरसे चिल्लायी। उसकी चिल्लाहट सुनकर बलवानोंमें श्रेष्ठ जाम्बवान् क्रुद्ध होकर वहाँ दौड़ आया ॥ २१ ॥ उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऋक्षराज जाम्बवान्ने भगवान्को प्राकृत मनुष्य जानकर उनके बलको न जानते हुए क्रुद्ध हो अपने इष्टदेव भगवान्के साथ युद्ध किया ॥ २२ ॥ एक दूसरेको पराजित कर देनेकी चाह रखनेवाले उन दोनोंमें हथियारों, पत्थरों वृक्षों एवं भुजाओंसे मांसके लिये लड़ रहे दो श्येन पक्षीकी नाईं घनघोर युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ रात-दिन लगातार बिना विश्राम किये ही वज्रके निर्घातके समान निष्ठुर आपसमें उनकी मुक्का-मुकी अठाईस दिनोंतक चलती रही ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्णजी मुष्टिकाप्रहारसे चूर-चूर हो गई शरीरके बन्धनकी गाँठवाला वह ऋक्ष जाम्बवान् अति बलहीन एवं खिन्न गात्र होकरके आश्चर्य करते हुए कहने लगा ॥ २५ ॥ हे भगवन्, सभी भूतोंमें जो प्राण, ओज, अन्तःकरणकी शक्ति, शारीरिक बल आदि रहता है वह सब तुम्हीं हो, यह मैं जानता हूँ। इसलिये हे भगवन्, मैं सर्वव्यापक, पुराणपुरुष, प्रभवनशील और सबके नियन्ता तुमको जानता हूँ ॥ २६ ॥ तुम्ही विश्वकी सृष्टि करनेवाले महदादि पदार्थों एवं ब्रह्मादिके भी स्रष्टा हो। महदादि जो सृज्य पदार्थ हैं उनमें जो परमार्थभूत उपादान हैं वह भी तुम्हीं हो। तुम्हीं नियामक एवं नाशकोंके भी ईश काल हो तथा जीवोंके भी उपादान

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ॥ क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५ ॥ जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ॥ विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम् ॥ २७ ॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः ॥ सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥ इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ॥ व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शङ्करेण तम् ॥ कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ॥ अर्हणार्थं स मणिना

और निर्लेप-असंग तुम्हीं हो ॥२७॥ जिसके तनिक उद्दीपित रोषज नित करालविक्षेपसे जिसमें ग्राह और तिमिङ्गल (बड़े-बड़े मत्स्य) क्षुभित होने लगे, ऐसे समुद्रने जिनके लिये रास्ता दे दिया तथापि हे भगवन्, जिसने वहाँ सारी अपना यशरूपी सेतु तैयार किया। जिसने सारी लंका भस्म कर दी तथा जिनके बाणोंसे छिन्नभिन्न होकर राक्षसोंके मस्तक पृथिवीपर लोटने लगे थे, हे भगवन्, वही मैं आपको समझता हूँ ॥ २८ ॥ हे महाराज, यों विज्ञातविज्ञानवाले अपने भक्त उस ऋक्षराज जाम्बवान्से देवकीसुत कमलनयन भगवान् अच्युत उसके मस्तकपर अपना मंगलदायक यशस्वी हाथ फेरकर परमोत्कृष्ट कृपापूर्ण प्रेमसे गम्भीर वाणीसे कहने लगे ॥ २९, ३० ॥ हे ऋक्षराज, इस मणिके कारण मुझे मिथ्या कलंक लगा है, अतः इस मणिसे अपना मिथ्या कलंक मिटानेके लिये इस बिलमें मैं आया हूँ ॥ ३१ ॥ ऐसा भगवान्के कहनेपर ऋक्षराजने मणिके साथ-साथ अपनी लड़की जाम्बवती भी भगवान्की पूजा करनेके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निमित्त दे दी ॥ ३२ ॥ बिलके भीतर प्रविष्ट हुए भगवान्‌को वहाँसे निकले हुए न देखकर बारह दिनोंतक प्रतीक्षा करनेके बाद जो नागरिक भगवान्‌के साथ आये हुए थे वे सबके सब दुःखित हो अपने नगरको चले गये ॥ ३३ ॥ 'कृष्णदेव बिलसे न निकले' ऐसा सुनकर देवी देवकी, रुक्मिणी, वसुदेवजी तथा मित्र एवं बन्धुवर्ग अति सोच करने लगे ॥ ३४ ॥ द्वारकावासी सब सत्राजित्‌को शाप देते हुए अति दुःखित होकर 'किसीप्रकार भगवान् कृष्ण आ जाँय' इस विचारसे महामाया दुर्गाके मन्दिरमें जाकर उस देवीकी उपासना करने लगे ॥३५॥ उन सबोंके अच्छी तरह आराधना करनेपर देवीने आशीर्वाद दिया कि 'कृष्ण मिल जायँगे' ऐसा सुनते ही भगवान् श्रीकृष्ण अपना मतलब सिद्ध किये हुए पत्नीसहित एकाएक उनके सामने प्रकट हो गये ॥ ३६ ॥ जाम्बवतीके साथ स्यमन्तकमणि गलेमें धारण किए हुए मरकर आते हुएकी तरह कृष्णको पाकर सब अति प्रसन्न हो गये ॥ ३७ ॥ और सभामें राजाओंके

कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ॥ प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥ निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥३६॥ उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ॥ सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ॥ प्राप्तिं चाख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥ स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाच्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥ दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥ तां

सामने सत्राजित्‌को बुलाकर मणि किसप्रकार मिला, यह सब वृत्तान्त बतला करके भगवान्‌ने उसको वह मणि दे दिया ॥ ३८ ॥ यह सब बात सुनकर सत्राजित् अति लज्जित होकरके चुपचाप मणि लेकर अपनेही अपराधसे दुःखी हो अपने घर चला आया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर बलवान्‌के साथ विग्रह करनेसे व्याकुल वह सत्राजित् उस पापका मनमें स्मरण करनेसे अति दुःखित होकर विचार करने लगा कि भला कौनसा उपाय किया जाय जिससे कि भगवान् कृष्णदेव प्रसन्न हो जाँय अथवा मेरा यह अपराधमल धो जाय ॥ ४० ॥ क्या करनेसे मेरी भलाई हो सकती है, अथवा ऐसा कौन उपाय है जिससे कि अदीर्घदर्शी, क्षुद्र, मूढ़ और धनलोलुप मुझे जनता शाप न दे ॥ ४१ ॥ इसलिए पहले तो मैं स्त्रीरत्नरूपी अपनी कन्या और बादमें स्यमन्तकमणि भी उन्हें दे दूँ, इसीसे मेरे पापकी शान्ति हो सकती है, यही सबसे बढ़िया उपाय है और दूसरा नहीं ॥ ४२ ॥ इस तरह मनमें विचारकर उस सत्राजित्‌ने अपनी शुभ कन्या तथा स्यमन्तकमणि भी स्वयं उद्योग करके कृष्णजीको उपहारमें दे दिया ॥ ४३ ॥ भगवान्‌ने विधिवत् उस सत्यभामाका पाणिग्रहण किया। वह कृतवर्मा आदि अनेक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाओंसे प्रार्थित थी तथा शील, रूप और औदार्य आदि गुणोंसे युक्त थी ॥ ४४ ॥ भगवान् कृष्णजीने मणि देते समय राजासे कहा कि हे नृप, हम मणि न लेंगे, यह आपही रखें, आप देवभक्त हैं, पर इसका फल जो आठ भार सोना रोज देनेका है सो आप हमें देते रहें, इसके फलभागी हम हैं ॥ ४५ ॥

सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ॥ बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥ तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

छप्पनवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, सूर्यभक्त सत्राजित्को प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यदेवने स्यमन्तक मणि दिया था। उस मणिको धारणकर सभामें आते सत्राजित्को देखकर द्वारकावासी सबको यह भ्रम हो गया कि भगवान् सूर्यदेव आ रहे हैं। नजदीक आनेपर मालूम हुआ कि यह तो सत्राजित् हैं। यह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देता था। भगवान् श्रीकृष्णने राजा उग्रसेनके लिए यह मणि सत्राजित्से माँगा, लेकिन सत्राजित्ने इसे देनेसे इनकारकर दिया। तदनन्तर एकदिन सत्राजित्का भाई प्रसेन उस मणिको धारणकर शिकार खेलने जंगलमें घोड़ेपर चढ़कर गया। वहाँ घोड़ेके सहित प्रसेनको एक सिंह मारकर उस चमकीले मणिको लेकर पर्वतकी कन्दरामें जा रहा था कि उस सिंहको मणि सहित जाते देखकर जाम्बवान्ने उसे मारकर अपने यहां लाकर अपने लड़केके हाथका खिलौना बना दिया। उसका लड़का तबसे बराबर उस मणिसे खूब खेलने लग गया था। मणि पहनकर शिकार खेलने जंगलमें गये अपने भाईकी मृत्यु सुनकर सत्राजित्ने यह सोचा कि मेरे भाईको कृष्णने मारकर स्यमन्तक मणि ले लिया। धीरे-धीरे सत्राजित्की यह बात द्वारकावासियोंके प्रत्येकके कानतक पहुँच गई। सत्राजित्की यह उक्ति बहुतोंको सच मालूम पड़ी और जहाँ तहाँ लोग काना फूसी करने लग गये थे कि शायद यह बात हो सकती है, जैसा कि सत्राजित् कह रहा है। कानों कान यह बात कृष्णतक पहुँच गई। श्रीकृष्णने इस मिथ्या कलंकको मिटानेके लिए वहाँके अनेक नागरिकोंको साथ लेकर उस मणिकी खोजके लिये जङ्गलमें चले गए। वहाँ जाकर मरे हुए घोड़े तथा प्रसेनको देखा। तत्पश्चात् कुछ दूर और आगे बढ़कर पर्वतकी कन्दराके समीप उन्होंने एक मरा हुआ सिंह देखा। नागरिकोंको बाहर बैठाकर भगवान् स्वयं उस पर्वतकी कन्दराके भीतर प्रविष्ट हो गये। भीतर जाते ही उन्होंने देखा कि जाम्बवान्का लड़का उससे खेल रहा है। उस मणिको उस लड़केके हाथसे छीन कर ले भागनेकी इच्छासे भगवान् उस लड़केके समीप बैठ गये। तदनन्तर अपने बच्चेके समीप बैठे हुए भगवान्को देखकर उसकी माता जोरसे चिल्लायी। उसकी चिल्लाहट सुनकर जाम्बवान् झट वहाँ आ गया और भगवान्से लड़ने लगा। भगवान्के साथ रात-दिन लगातार अट्ठाईस रोजतक लड़ाई होती रही। अन्तमें उसने समझ लिया कि यह मनुष्य नहीं बल्कि साक्षात् भगवान् विष्णु हैं। उसने अनेक तरहसे भगवानकी स्तुति की। तदनन्तर भगवान वहाँ आनेका अपना मतलब उससे कह सुनाये। भगवान्का अभिप्राय जानकर उसने अपनी लड़कीका भगवान्के साथ विवाह करके मणि समेत अपनी लड़की भगवान्को दे दी। इधर तेरहवें दिन जब द्वारिकावासियोंने भगवान्को उस गुफासे निकलते न देखा, तब लाचार होकर अत्यन्त दुःखित हृदय हो द्वारकाको वे सब लौट आये और सारी कथा वसुदेव आदि से उन सबोंने कह सुनायी। वसुदेव आदि द्वारकावासी भगवान्के आनेके लिए भगवती दुर्गाके मन्दिरमें जाकर प्रार्थना करने लगे। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो देवीने कहा—भगवान् शीघ्र आयेंगे, तुम सब धैर्य रखो। इतना सुनते ही द्वारकावासी सब जाम्बवती कन्याके साथ-साथहो उस मणिको लाते भगवानको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखकर परम प्रसन्न हुए तदनन्तर भरी सभामें सत्राजित्को बुलाकर भगवान् श्रीकृष्णने स्यमन्तकमणि दे दिया। इन सब बातोंसे सत्राजित् बहुत दुःखित हुआ और पश्चात्ताप करते हुए इस अपने मिथ्याभियोगरूप पापसे छुटकारा पानेके लिए उसने अपनी लड़की सत्यभामा भगवान्को दे दी। भगवान्ने सत्यभामाका विधिवत् पाणिग्रहण किया। तदनन्तर दहेजमें जब सत्राजित् भगवान्को स्यमन्तकमणि देने लगा, तब भगवान्ने उसे लेनेसे अस्वीकार कर दिया। और कहा—यह मणि तो आपही रखिए, हाँ जो यह प्रति दिन आठ भार सोना देता है वह मुझे देते रहियेगा। मैं तो सिर्फ फलका ही भागी हूँ। छप्पनवाँ अध्याय समाप्त।

❋ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ❋

(सोये हुए सत्राजित्को मारकर स्यमन्तकमणिकी चोरी, शतधन्वाका कृष्णद्वारा भयके मारे भागे हुये अक्रूरजीको बुलाना तथा उनसे मणि लेकर उसे द्वारकावासियोंको दिखलाकर उससे अपना कलंक मिटा करके पुनः अक्रूरजीको भगवान् श्रीकृष्णका मणि दे देना—यह सब वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, पाँचों भाई पाण्डव एवं कुन्ती वे सब लाक्षागृहमें जले नहीं हैं ऐसा जानते हुए भी, पाँचों भाई और कुन्ती जल गई ऐसा अप्रिय समाचार सुनकर बलरामजीके साथ होकर कुलोचित व्यवहार करनेके लिए कुरुक्षेत्रमें भगवान् चले गये ॥ १ ॥ वहाँ भीष्मक, कृपाचार्य, विदुर, द्रोण और गान्धारीसे मिलकर उन्हींके समान अति दुःखी हो दोनों भाई शोक मनाने लगे—हाय, यह कितने कष्टकी बात है। २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वासे कहा—तुम सत्राजित्से मणि क्यों नहीं ले लेते

श्रीशुक उवाच॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान्॥ कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च सङ्गम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥ लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः । अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥३॥ योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥ ५ ॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत्॥ हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता ॥ व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां

हो ? ॥ ३ ॥ जिस सत्राजित्ने प्रतिज्ञा करके भी हमलोगोंको अपमानित करके कन्या और मणि न देकर कृष्णको दे दिया, वह भी अपने भाई प्रसेनका क्यों न अनुगमन करे ॥ ४ ॥ यों उन दोनोंके बहकावेमें आकर अल्पजीवी दुष्ट पापी उस शतधन्वाने मणिके लोभसे सोते हुए सत्राजित्को जानसे मार डाला ॥ ५ ॥ जैसे कसाई पशुओंको मारता है उसी तरह सत्राजित्को मारकर अनाथकी नाईं रोती-विलखती स्त्रियोंको छोड़कर वह मणि लेकर चलता बना ॥६॥ पिताको मरे हुए देखकर शोकसे युक्त तथा बार-बार मूर्च्छित हो हा तात, हा तात, मैं भी मारी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गई ऐसा विलाप करने लगी ॥ ७ ॥ और पिताके शवको तैलके कड़ाहेमें रखकर हस्तिनापुरको चली। वहाँ जाकर शोक सन्तप्त उसने पिताके वधका समाचार पहलेहीसे सबकी जानकारी रखनेवाले श्रीकृष्णसे कह सुनाया ॥ ८ ॥ हे राजन्, यह दारुण समाचार सुनकर ईश्वर होते हुए भी दोनों भाई मनुष्यलोकका अनुसरण करके 'अहो' हमलोगोंपर भारी विपत्ति आयी' यों कहते हुए आँखोंमें आँसू भरकर विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ सत्यभामाके सहित हस्तिनातुरसे बलदेवजीको साथमें लेकर द्वारकापुरीमें भगवान् आये। तदनन्तर शतधन्वाको मारने और मणि छीन लेनेके लिए उद्योग करने लगे ॥ १० ॥ शतधन्वा भी कृष्णके उद्योगको जानकर प्राण बचानेकी इच्छासे अत्यन्त भयभीत हो सहायताके लिए कृतवर्मासे प्रार्थना करने लगा ॥११॥ कृतवर्माने कहा—मैं ईश्वरस्वरूप बलदेव और कृष्णजीके प्रतिकूल न होऊँगा, कारण कि उनका अपराधी बनकर भला कौन अपनी रक्षाकर सकता है ॥ १२ ॥ जिसके साथ द्वेष करनेसे अपने भाइयोंके सहित कंस राज्यलक्ष्मीसे त्याजित हो मृत्युको प्राप्त हो गया और जरासन्ध भी सत्रह बार युद्ध करके अन्तमें शरीरमात्र अवशिष्ट होकर चला गया ॥ १३ ॥ तब कृतवर्मासे

मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयेम् ॥ कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ॥ जरासन्धः सप्तदश संयगान्विरथो गतः ॥१३॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥ चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥१५॥ यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरु-

सहायता न पाकर शतधन्वाने अक्रूरसे अपनी सहायताकी प्रार्थना की। तब उन्होंने भी कहा—भला ऐसा कौन विद्वान् होगा, जो उन ईश्वरोंके बलको जानकर भी उनसे विरोध करेगा॥१४॥ जिसकी लीलासे संसारकी उत्पत्ति, पालन, सर्वनाश होता है, जिस विश्वस्रष्टाकी अलौकिक मायासे मोहित होकर उसकी लीलाको कोई भी न जान सकता है ॥ १५ ॥ सात वर्षकी ही अवस्थामें जिस भगवान्ने एकही हाथसे पहाड़ उखाड़कर लीलापूर्वक अंगुलीपर रख लिया, जैसे कि छोटे-छोटे बच्चे कठफुल्लोंको उखाड़कर लीलापूर्वक अपने हाथोंपर उठा लेते हैं ॥ १६ ॥ ऐसे अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णको नमस्कार है। वे तो अनन्त नाम और गुणवाले हैं, ऐसे कूटस्थ भगवान् परमात्माको नमस्कार है ॥ १७ ॥ अक्रूरसे भी यों कोरा जवाब पाकर शतधन्वा मणि अक्रूरजीको देकरके स्वयं सौ योजन दूर जानेवाले घोड़ेपर सवार होकर भाग गया ॥ १८ ॥ हे राजन्, तब बलदेवजी एवं श्रीकृष्णजी गरुड़ध्वज रथपर बैठकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महावेगवाले घोड़ों द्वारा श्वसुरको मारनेवाले शतधन्वाका पीछा करने लगे ॥ १९ ॥ मिथिलाके उपवनमें जाकर गिरे हुए अश्वको छोड़कर मारे डरके पैदल दौड़े जा रहे शतधन्वाके पीछे भगवान् कृष्ण भी क्रोध करके दौड़े ॥ २० ॥ पैदल चलते हुए भगवान् पैदल दौड़ रहे शतधन्वाका सिर तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे काटकर उसके वस्त्रमें मणि ढूँढ़ने लगे ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजीने मणि न पाकर बलदेवजीके निकट आकर कहा—व्यर्थ ही मैंने शतधन्वाको मार डाला। उसके पास तो मणि नहीं है ॥ २२ ॥ तदनन्तर बलदेवजीने कहा—हे कृष्ण, निश्चय ही शतधन्वाने मणि किसी दूसरेको दे दिया नगर चलो, वहीं जाकर ढूंढ़ो ॥ २३ ॥ और मैं अपने अत्यन्त प्रियमित्र विदेहको देखने जाता हूँ, ऐसा कह हे राजन्, बलदेवजी मिथिलामेंप्रविष्ट हो गये ॥ २४ ॥ बलदेवजीको देखकर मिथिलाधिपति जनकने अति प्रसन्नचित्त होकर आसनसे सहसा उठकर पूज्यतम बलदेवजीकी पाद्यादि द्वारा पूजा की ॥ २५ ॥ प्रीतियुक्त महात्मा जनक द्वारा सम्मानित होकर कुछ वर्षोंतक मिथिलामें विभु बलदेवजी रहे। उसी समय धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने सुन्दर अवसर पाकर उनसे गदा चलाना सीखा ॥ २६ ॥ अपनी प्रियाका

द्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनान्मणिम् ॥२१॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनन्दनः ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ २५ ॥ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ॥ मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥ ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६ ॥ केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥२७॥ ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ॥ साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः सांपरायिकाः ॥ २८ ॥ अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ॥ शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यङ्गोपदिश-

हित करनेवाले श्रीकृष्णजीने भी द्वारकामें आकर शतधन्वाका मरण एवं मणिका न मिलना यह वृत्तान्त अपनी प्रियतमा सत्यभामासे कह सुनाया ॥२७॥ तत्पश्चात् भगवान्ने अपने बन्धु सत्राजित्की जो जो पारलौकिक क्रियाएँ कर्तव्य थीं, वे सब अपने मित्रोंके साथ करायीं ॥ २८ ॥ शतधन्वाका मरण सुनकर अक्रूर और कृतवर्मा दोनों ही डरसे अति दुःखी होकर, जो मणि हरण करानेमें प्रेरक थे, द्वारका छोड़कर कहीं चले गये ॥ २९ ॥ द्वारकासे अक्रूरजीके चले जानेपर द्वारकावासियोंको अनेक तरहके अरिष्ट होने लगे तथा उनसे सूचित बार-बार शारीरिक व्याधियाँ, मानसिक पीड़ाएँ और दैविक एवं भौतिक नानाप्रकारके ताप होने लगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मैंने जो पहले भगवान्का माहात्म्य बतलाया है उसका स्मरण न करके ही ऐसी बात कोई ऋषि कहते हैं, पर यह उनका कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जिसमें मुनियोंका निवास स्थान है ऐसे भगवान्के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्वारकामें रहते-रहते उनकी इच्छाके बिना भला अनिष्ट कैसे हो सकता है। अतः अक्रूरके जानेसे यह काण्ड हुआ, यह कहना असत्य है ॥ ३१ ॥ एक बार काशीराजके देशोंमें वर्षा नहीं हो रही थी तब काशीराजने अपने नगरमें आये हुए महाराज श्वफल्कके साथ अपनी गान्दिनी नामकी पुत्रीका विवाह कर दिया। तदनन्तर वहाँ वृष्टि होने लगी ३२ ॥ श्वफल्क ऋषिके पुत्र अक्रूरजी भी उनकी तरहही प्रभावशाली हैं जहाँ-जहाँ रहते हैं वहाँ-वहाँ वृष्टि होती है और लोगोंको दैविक, भौतिकताप एवं महामारी वगैरह नहीं होती है ॥ ३३ ॥ इस तरह वचन अक्रूरके विषयमें वृद्धलोगों द्वारा सुनकर, पर वास्तवमें यह कारण तो था नहीं, यह जानते हुए भी भगवान्ने अक्रूरके आनेसे मेरी मणि भी मिल जायगी ऐसा समझ अक्रूरजीको बुलाकर उनसे कहा ॥ ३४ ॥ और अक्रूरजीका पूजन करके तथा अन्यान्य प्रियकथाएँ कहकर समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणके भावको जाननेवाले भगवान् हँसते हुए कहने लगे ॥ ३५ ॥ हे दानपते

येन्त्के विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतांगान्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ॥ देवोभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥ ३३ ॥ इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाऽभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ॥ स्यमन्तको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥३६॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ॥ दायं निनीयापः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किन्तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥ दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ॥ आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ॥ विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं

अक्रूरजी, शतधन्वाके द्वारा धरोहररूपमें रखा गया श्रीसम्पन्न स्यमन्तकमणि आपके पासमें है, यह बात हमें पहलेही मालूम हो गई थी ॥ ३६ ॥ सत्राजितके कोई पुत्र नहीं है, अतः उनकी कन्या सत्यभामाके पुत्र जल और पिण्डदान देकर पितृऋणसे मुक्त कराकर बचा हुआ उनका दायभाग ले लेंगे, यह शास्त्रसंमत है ॥ ३७ ॥ हे सुव्रते, आपके सिवा और किसी दूसरेके लिये इसका रखना अत्यन्त कठिन है, इसलिये यह मणि आपके ही पास रहना चाहिये। किन्तु मेरे भाई बलदेवजी मणिके प्रति ऐसा विश्वास नहींकर रहे हैं ॥ ३८ ॥ हे महाभाग, अतः मणि दिखलाइये और बन्धुओंको शान्तिप्रदान कीजिये। मेरे पास मणि नहीं है, यह तो आप कभी नहीं कह सकते, क्योंकि उसीके प्रभावसे स्वर्णरचित वेदिकाओंवाले आपके लगातार अनेक यज्ञ होते चले आ रहे हैं ॥ ३९ ॥ इस तरह शान्तिपूर्वक कहे जानेपर अक्रूरजीने वस्त्रसे ढके हुए सूर्यके समान कान्तिवाले मणिको निकालकर दे दिया ॥ ४० ॥ उनसे मणि लेकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने वन्धुवर्गको दिखलाकर उस मणिसे अपना कलंक मिटाकर भगवान् श्रीकृष्णने वह मणि फिर उन्हींको दे दिया ॥ ४१ ॥ जो कोई पुरुष परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णजीके कलंक मिटानेवाले मंगलयुक्त पराक्रमपूर्ण इस आख्यानको सुनाता है, पढ़ता है या स्मरण करता है वह पुरुष समस्त पाप एवं कलंकको दूर करके अन्तमें शान्ति पाता है ॥ ४२ ॥

सुमङ्गलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सत्तावनवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, लाक्षागृहमें दग्ध हुए पाण्डवोंको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने भी बलदेवजीके साथ कुरुदेशको चल दिए। इसी वीचमें इधर अक्रूर और कृतवर्मा द्वारा प्रोत्साहित होकर शतधन्वाने रातमें सोये हुए सत्राजितको मार दिया और मणि लेकर वहाँसे वह चम्पत हो गया। अपने पिताको मरे हुए देखकर विलाप करती हुई सत्यभामाने अपने मृत पिताके शरीरको तैलके कढ़ाहेमें छोड़कर हस्तिनापुरमें अपने स्वामीके पास पहुँची। यह सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णजी अपने भाई और स्त्रीके साथ शीघ्र द्वारकामें आ गये। और शतधन्वाको मारनेका उपाय सोचने लगे। भगवान्को अपने मृत्युके उपायमें व्यग्र देखकर शतधन्वाने कृतवर्मासे सहायताकी प्रार्थना की। लेकिन कृतवर्माने उसको रूखा जवाव दे दिया। अनन्तर उसने अक्रूरजीसे सहायता माँगी। उनसे भी कोरा जवाव पाकर वह शतधन्वा मणिको उनके पास रखकरके अपनी जान बचानेकी इच्छासे सौ योजन दूरतक दौड़नेवाले घोड़ेपर सवार होकर निकल भागा। उसे भागते देखकर बलराम और श्री कृष्ण दोनों भाई रथपर बैठकर उसका पीछा करने लगे। तदनन्तर उन सौ योजन दूर मिथिलामें जाकर गिरे हुए घोड़ेको छोड़कर पैदल भागे जा रहे उस शतधन्वाको पैदल चलकर ही भगवान् मार करके उसके पास मणि ढूँढने लगे, किन्तु मणि उसके पास न पाकर वहाँसे लौट आये और आकर सारी वातें अपने भाई बलदेवजीसे उन्होंने बतला दी। तदनन्तर बलदेवजीने कृष्णसे कहा—हे श्रीकृष्ण, देखो, मैं अपने प्रिय मित्र जनकसे मिलने जा रहा हूँ। तुम यहाँसे द्वारका लौट जाओ। बलदेवजीका आदेश पाकर श्रीकृष्णजी द्वारका चले आये। शतधन्वाकी मृत्यु सुनकर अक्रूर और कृतवर्मा दोनों मारे भयके द्वारकासे भाग निकले। अक्रूरके यहाँसे चले जानेपर वहाँ नाना प्रकारके उपद्रव होते देख द्वारकावासियोंके कथनानुसार भगवान्ने अक्रूरजीको बुलाकर बड़ी शान्तिके साथ उनसे वातें करके उनसे मणि माँगकर सबको दिखला देनेके बाद पुनः उन्हींको लौटा दिया और यों अपना कलङ्क दूर किया। सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त *

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(कालिन्दी आदि पाँच कन्याओंका भगवान् द्वारा पाणिग्रहणकरना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय श्रीमान् पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण युयुधान आदि राजाओंके साथ होकर लाक्षागृहमें नष्ट हुए भी राजा द्रुपदके घर देखे गये पाण्डओंको देखनेकी इच्छासे इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥ जगत्के ईश मुकुन्द भगवान्को आये देखकर जैसे इन्द्रियाँ अपने मुख्य प्राणको आये देख आनन्दित होती हैं वैसेही पाँचो पाण्डव हाथ जोड़ खड़े हो गये ॥ २ ॥ अच्युत भगवान्का आलिङ्गन कर उनके अङ्गस्पर्शसे पापरहित होकर वे पाँचों पाण्डव उनकाप्रीतिपूर्ण मुसकानयुक्त मुख देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर औ भीमका चरण छूकर भगवान्ने प्रणाम किया, अर्जुनको गले लगाया और नकुल सहदेव आकर भगवान्को प्रणाम किये ॥ ४ ॥ तदनन्तर मनोहर आसनपर भगवान् श्रीकृष्णके विराजमान हो जानेपर नववधू सुन्दरी द्रौपदीने लज्जापूर्वक धीरे-धीरे वहाँ आकर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया ॥ ५ ॥ वैसेही सात्यकि भी पाण्डवों द्वारा पूजित और अभिवन्दित

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पाण्डवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥ इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ॥ सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥ ४ ॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता ॥ नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनै रेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः ॥ निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः ॥ आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ॥ स्मरन्ती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥ तदेव कुशलं नोऽभूत्सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथापि स्मरतां

होकर आसनपर बैठ गये। तदनन्तर और यादव भी सम्मानित होनेके बाद बैठ गये ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुन्तीके पास जाकर भगवान्ने प्रणाम किया और उन्होंने अत्यन्त स्नेहकी आँसुओंसे युक्त नेत्रोंवाली होकर भगवान्को अपनी छातीमें चिपका लिया। कुन्ती द्वारा अपने बन्धु-बान्धवोंका समाचार पूछनेपर भगवान्ने भी अपनी फूआसे उनकी पुत्र बन्धुओंके साथ कुशलक्षेम पूछा ॥ ७ ॥ तब प्रेमसे विह्वल होनेके कारण अवरुद्ध कण्ठ एवं आँसूभरी आँखोंसे युक्त हो अपने अनेक क्लेशोंका स्मरण करती हुई कुन्ती भक्तोंका क्लेश दूर करनेके लिए अपना दर्शन देनेवाले भगवान्से कहने लगी ॥ ८ ॥ हे कृष्ण, हमलोगोंका उसी समय कुशल हो गया तथा हमलोगोंको आपने तभी सनाथ बना दिया, जब कि हम अपने ज्ञातियोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्मरण करके आपने मेरे भाई अक्रूरको हमलोगोंके पास भेज दिया ॥ ९ ॥ विश्वका कल्याण चाहनेवाले आप संसारके मित्र और आत्मा हैं। आपकी दृष्टिमें निज एवं परायेकी भ्रान्ति नहीं है, तो भी स्मरण करनेवालोंके हृदयमें रहकर उनके समस्त क्लेशोंका नाशकर देते हैं ॥ १० ॥ तब युधिष्ठिरजीने कहा—हे अधीश्वर, आपने हमलोगोंका क्या नहीं कल्याण किया, ऐसा मैं नहीं समझता हूँ, कारण कि योगियों द्वारा कठिनतासे दीखनेवाला जो आपका रूप है वह विषयासक्त चित्त हमलोगोंके द्वारा देखा गया ॥ ११ ॥ इसप्रकार राजासे सम्मानित होकर भगवान् विभु वहाँ बहुत दिनोंतक इन्द्रप्रस्थमें रहनेवाले प्राणियोंकी आँखोंको आनन्द देते हुए सुखपूर्वक ठहर गये ॥१२॥ एक समय विजयी कवचधारी शत्रुमर्दन अर्जुन हनुमान्जी हैं ध्वजापर जिस रथकीऐसे रथपर बैठकर न घटनेवाले बाणोंसे युक्त तरकस एवं अपना गाण्डीव धनुष लेकर कृष्णके साथ अनेक सिंह मृगादिसे युक्त भयानक वनमें विचरणके निमित्त प्रविष्ट हुए ॥ १३, १४ ॥ वहाँ जाकर अपने बाणोंसे अनेक सिंह, सूकर, महिष, कृष्णमृग, शरभ, वनगाय, गेड़ें, हरिण, खरगोश और शल्लक इत्यादि जानवरोंको मारा ॥ १५ ॥ उनमेंसे

शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इति वै वार्षिकान्मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ॥ गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं विपिनं वनम् ॥ बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून् ॥ शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणाञ्छशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते । तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥ तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥ कालिन्द्युवाच ॥ अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तप परममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ॥

कई एक यज्ञकर्म योग्य मृग आदि पशुओंको उनके सेवक अष्टकाश्राद्ध आदि पर्वकाल उपस्थित होनेपर राजा युधिष्ठिरके पास ले आये। वहाँ शिकारके परिश्रमसे थक जानेके कारण प्याससे अत्यन्त व्याकुल अर्जुन यमुनाके तटपर चले गये ॥१६॥ वहाँ यमुनाके किनारे दोनों महारथियोंने हाथ-पैर धोनेके बाद स्वच्छ जलका यथेच्छ पान किया। तदनन्तर यमुनाकेरमणीय तटपर विचरणकर रही एक सर्वाङ्ग सुन्दरी देखी ॥१७॥ तदनन्तर कृष्णद्वारा भेजे जानेपर अर्जुनने वहाँ जाकर सुन्दर जाँघ, सुन्दर दाँतों और सुन्दर मुखवाली उस सर्वोत्तम स्त्रीसे पूछा ॥ १८ ॥ हे सुश्रोणि, तुम कौन हो, किसकी हो, कहाँसे आई हो, क्या चाहती हो। मालूम पड़ता है कि तुम पति ढूँढ़ रही हो। हे शोभने, सब बातें साफ-साफ बतलाओ ॥ १९ ॥ कालिन्दीने कहा—मैं सूर्यदेवकी कन्या हूँ और पति ढूँढ़ रही हूँ। अत्यन्त तपस्या करके सर्वाङ्गश्रेष्ठ वरद भगवान् विष्णुको ही अपना पति बनाना चाहती हूँ, इसीकेलिये परमतप कर रही हूँ ॥ २० ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे वीर, भगवान्‌के अलावे अन्य किसीको भी अपना पति नहीं चाहती हूँ, दीनोंके रक्षक सर्वसम्पत्तियोंके स्थान वे मुकुन्द भगवान् प्रसन्न होकर मुझे अपनावें ॥ २१ ॥ मेरा नाम कालिन्दी है और पिताके द्वारा बनाया गया भवन जो यमुनाके जलके भीतर है उसीमें भगवान्‌के दर्शन निमित्त रहती हूँ ॥ २२ ॥ ये सब बातें अर्जुनने श्रीकृष्णसे आकर कह दी। भगवान् ये सब पहलेहीसे जानते थे, इसलिए उस कालिन्दीके पास गये और रथपर बैठाकर उसे धर्मराजके पास ले आए ॥ २३ ॥ और पाण्डवों द्वारा सब समाचार भगवान् पहले सुनही चुके थे, अतः पाण्डवोंने ज्योंही भगवान्‌से कहा त्योंही भगवान्‌ने उनके लिए विश्वकर्मा द्वारा परम अद्भुत विचित्र नगर बनवा दिया ॥ २४ ॥ अपने आत्मीय पाण्डवोंका प्रिय करनेकी इच्छासे भगवान् खाण्डव नामक वन अग्निको देनेके निमित्त अर्जुनके सारथि बनकर वहीं कुछ दिनोंतक और रह गये ॥ २५ ॥ हे राजन्, खाण्डववनके दाहसे अति प्रसन्न हो अग्निने

तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ॥ निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ॥ रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः सन्दिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥ सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद् हयान् श्वेतान् रथं नृप ॥ अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ॥ आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ॥ वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥ २९ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ॥ प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥३१॥ नग्नजिन्नाम कौशल्य आसीद्राजातिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

धनुष और श्वेत रङ्गवाले घोड़े, अक्षय तरकस और अभेद्य कवच ये तीन चीज अर्जुनको दीं ॥ २६ ॥ खाण्डववनके दाहके समय अर्जुनने मयनामक दानवको बचाया था, इसलिये उसने अर्जुनसे मित्रता करके उनके लिए एक ऐसी सभा बनाकर दी, जिस सभामें दुर्योधनको जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रम हो गया था ॥ २७ ॥ फिर भगवान् युधिष्ठिरसे आज्ञा लेकर अपने मित्रवर्गों से अनुमति लेनेके बाद सात्यकि सहित पुनः द्वारका आ गये। २८ ॥ उसके बाद शुभ नक्षत्र और बलवान् शुभग्रहोंसे युक्त मुहूर्त जानकर उसमें अपने बन्धुवर्गों को अति आनन्द प्राप्त कराते हुए परम मंगलरूप भगवान्‌ने कालिन्दीके साथ विवाह किया ॥ २९ ॥ दुर्योधनके वशमें रहनेवाले अवन्तिदेशके राजा विन्द और अनुविन्द स्वयम्वरमें श्रीकृष्णके प्रति आसक्त अपनी बहनको भगवान् कृष्णको पति चुननेसे रोक दिया ॥ ३० ॥ हे राजन्, अनेक राजाओंके देखते-देखते भगवान् कृष्ण भी अपनी फूआ राजाधिदेवी की लड़की मित्रविन्दा को बलपूर्वक हर लाये ॥ ३१ ॥ हे राजन्, कोशलदेशके राजा नग्नजित् बड़े धार्मिक थे। उनकी नाग्नजिती नामसे प्रसिद्ध सत्यानामकी सुन्दरी लड़की थी ॥३२॥ उसके तीखे सींगोंवाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अति बलवान्, वीरोंकी भी गन्धको न सहनेवाले सात दुष्ट बैलोंको बिना जीते उस सत्याके साथ कोई भी राजा विवाह न कर सके ॥ ३३ ॥ बैलोंको जीतनेके अनन्तर ही वह मिलेगी यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बहुत बड़ी सेना लेकर कौशलपुर पहुँचे ॥ ३४ ॥ उन्हें आये हुए देखकर अति प्रसन्नचित्त कोसलदेशके राजा नग्नजित् आगे बढ़कर भगवान्को लाकरके उनका आसनादि प्रदानपूर्वक महान् पूजा साधनोंसे पूजनकर हुए स्वयं भगवान् द्वारा सत्कृत हुए ॥ ३५ ॥ अपने आये हुए अभिमतवर भगवान्को देखकर नरेंद्रकन्याने रमापति-को ही अपना पति बनाने की कामना की। सत्याने अपने मनमें कहा—यदि नानाविध व्रत-नियमादिके द्वारा मैंने भगवान्का अपने हृदयमें चिन्तन किया है, तो वे भगवान् मेरे पति होकर मेरे उत्कृष्ट मनोरथोंको सत्य करें ॥ ३६ ॥ जिस भगवान्के चरणकमलकी धूलि लक्ष्मी और ब्रह्मा तथा लोकपालोंसे युक्त भगवान् शंकर अपने मस्तकपर चढ़ाते हैं, अपने द्वारा विरचित धर्म मर्यादाओंकी रक्षाके लिए धर्मग्लानिकालमें जो भगवान् लीला शरीर धारण करते हैं वह भगवान् मेरे किस उपायसे प्रसन्न होंगे ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णजीका पूजन करके राजा

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान्वीरगन्धासहान्खलान् ॥ ३३ ॥ तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्वतांपतिः ॥ जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥ ३४ ॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन्प्रतिनन्दितः ॥ ३५ ॥ वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ॥ भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥३६॥ यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥ अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ॥ आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेन्द्र याञ्चा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः ॥ तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां नहि शुल्कदा वयम् ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किं त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ॥

नग्नजित्ने कहा—हे जगत्पते, हे नारायण, आत्मानन्दसे परिपूर्ण आपके लिए मैं क्या करूँ। मेरे किस कार्यसे आपको प्रसन्नता होगी, कहिए। मैं तो आपका एक बहुत क्षुद्र सेवक हूँ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे कुरुनन्दन, नग्नजित् द्वारा दिये गये आसनपर बैठ जानेके बाद सेवा सन्मानसे अत्यन्त प्रसन्न होकर मेघके समान गम्भीरवाणीसे नग्नजित्से भगवान् कहने लगे ॥ ३९ ॥ भगवान्ने कहा—हे नरेन्द्र, अपना धर्म पालन करनेवाले क्षत्रियकी याचनाको मुनिलोग गर्हित समझते हैं। तथापि मैं मित्रताके नाते आपकी कन्या माँगता हूँ। हम सब द्रव्य देनेवाले नहीं हैं ॥ ४० ॥ तब राजा नग्नजित्ने कहा—हे नाथ, संसारमें आपसे बढ़कर दूसरा उत्तम कन्याका अभिलषित वर कौन हो सकता है ? कारण कि समस्त गुणके अधार आपके हृदयमें अविनाशिनी लक्ष्मी सर्वदा रहती हैं ॥ ४१ ॥ परन्तु हे भगवन्, अपनी कन्याके योग्य वर पानेकी इच्छासे ही मनुष्योंके बलकी परीक्षाके हेतु मैंने पहलेही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रतिज्ञा कर दी है, अन्यथा उत्तम गुणयुक्त मेरी कन्याके लिए बहुतसे प्रार्थी होते, मैं किन-किनको जवाब देता फिरता ॥४२॥ हे वीर, ये बड़े-बड़े दाँतवाले अत्यन्त पराक्रमी दुष्ट अपराजित सात वृषभ हैं। इन सातोंने बहुतसे राजकुमारोंको पराजित कर दिया है, इनसे शरीर तोड़वाकर वे अपने घर लौट गये हैं ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन, यदि आपके द्वारा यह सातों वृषभ नाथ दिये जायँ, तो हे लक्ष्मीपते, आपही मेरी कन्याके अभिमत पति हो सकते हैं ॥ ४४ ॥ नग्नजित्की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर कमर कसकर भगवान्ने अपनेको सातरूपोंमें बनाकर उन सातों बैलोंको एकही कालमें खेलवाड़ करते हुए नाथकर बाँध दिया ॥ ४५ ॥ भगवान् कृष्णजी सातोंको रस्सीमें बाँधकर मद चूर हो जानेसे बलहीन हुए सातों वृषभोंको लीलापूर्वक खींचते हुए ऐसे चले, जैसे कि छोटा बच्चा लकड़ीके वृषभको खींच ले चलता हो ॥ ४६ ॥ तब प्रसन्न होकर विस्मित होते हुए नग्नजित्ने अपनी कन्या भगवान्को दे दी भगवान्ने भी अपने अनुरूप पत्नीका विधिवत् पाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ नग्नजित्की सभी पटरानियाँ अपनी कन्याके प्रियपति भगवान्को पाकर अत्यन्त खुशी हुईं और आनन्द मनाने लगीं ॥ ४८ ॥

पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥४२॥ सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्नाःसुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥४३॥ यदि मे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ॥ वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ॥ ४४ ॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ॥ आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णल्लीलयैव तान् ॥ ४५ ॥ बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः ॥ व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णां लब्ध्वा प्रियं पतिम् ॥ लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासः स्रगलङ्कृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणात्रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ५१ ॥ दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः॥५२॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥ तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः ॥ गाण्डीवी

शंख, भेरी और ढोल वगैरह बाजे बजने लगे, गीत, गान, नाच होने लगा। ब्राह्मणलोग आशीर्वाद देने लगे, पुरुष तथा स्त्रियाँ अति प्रसन्न होकर अच्छे-अच्छे वस्त्र एवं आभूषण पहनकर शरीर सजाने लगीं ॥ ४९ ॥ दहेजमें दस हजार गायें स्वर्णके आभूषणोंसे सुसज्जित तीन हजार दासियाँ, नव हजार हाथी, उनके सौगुने यानी नव लाख रथ, उनके सौगुने यानी नव करोड़ घोड़े, उनके सौगुने यानी नव अरब सेवक राजाने दिए ॥ ५०, ५१ ॥ कोसलेश नग्नजित्ने प्रेमसे अति विह्वल होकर बड़ी सेनाके साथ कृष्ण और सत्याको रथपर बैठाकर उनके स्थानको भेजवा दिया ॥ ५२ ॥ तब यह सुनकर यदुओं और उन वृषभोंसे नष्ट पराक्रम हुए राजा सब भगवान्की विजयका सहन न कर सकनेके कारण कन्याको साथमें लिये जा रहे भगवान्को रास्तेमें रोक लिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर बाणसमूहोंकी वृष्टि कर रहे उन राजाओंको श्रीकृष्णका प्रिय चाहनेवाले गण्डीवधारी अर्जुनने अपने बाणोंसे मार-पीट कर इधर-उधर ऐसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगा दिया, जैसे सिंह छोटे-छोटे मृगोंको ॥ ५४ ॥ सम्पूर्ण दिये गये दहेजको लेकर सत्याके साथ द्वारकामें आकर यदुवंशियोंमें सबसे श्रेष्ठ देवकीसुत भगवान् सत्याके साथ रमण करने लगे ॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान्ने अपनी फूआ श्रुतकीर्तिकी केकयदेशोत्पन्न कन्या भद्राके साथ विवाह किया जिसे सन्तर्दन आदि उसके भाइयोंने भगवान्को स्वयं दे दिया ॥ ५६ ॥

कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ॥ रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः सन्तर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥ सुतां चमद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ॥ स्वयम्वरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चरुदर्शनाः ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

भद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणा सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त थी, अतएव भगवान्ने अकेले ही स्वयंवरमें उसे ऐसे हर लाये, जैसे गरुड़ अमृत हर लाये थे ॥ ५७ ॥ इनके अतिरिक्त इस तरहकी और भी हजारों स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी थी, जिन्हें वे भौमासुरको मारकर उसके जेलसे छुड़ाकर ले आये थे ॥ ५८ ॥

अट्ठावनवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कुछ दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी पाण्डवोंको देखते इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। एक दिन शिकार खेलनेके लिए अर्जुनके साथ जङ्गलमें जाकर उन्होंने अपनेको पति बनानेकी इच्छासे तपस्या कर सूर्यकी लड़की कालिन्दीका यमुनाके किनारे अवलोकन किया। अर्जुन द्वारा उसका अभिप्राय जान लेनेके बाद भगवान् अपने रथपर बैठकर धर्मराजके समीप ले आये। खाण्डववन अग्निको देनेके लिए वहीं और कुछ दिनों तक रहनेके बाद अपने नगरमें चले आये। तदनन्तर अपनी फूआकी लड़की मित्रविन्दाका स्वयंवरमें सब राजाओंके देखते-देखते वहाँसे उड़ा लाये। उसके बाद राजा नग्नजित्के अति पराक्रमी महान् दुष्ट सात बैलोंको पछाड़कर नाथ देनेके अनन्तर राजाकी लड़की नाग्नजिती सत्याका भगवान्ने पाणिग्रहण किया। दहेजमें वहाँ भगवान्को अनेक वस्तुएँ मिलीं। तत्पश्चात् अपनी फूआ श्रुतिकीर्तिकी लड़की भद्राका भगवान्ने स्वयम्वरसे हरण कर लिया। उसके अनन्तर मद्रदेशाधिपतिकी सर्वगुण सम्पन्न लड़कीको भगवान् सब राजाओंके देखते-देखते उड़ा लाये। हे राजन्, इनके अतिरिक्त भगवान्की हजारों स्त्रियाँ थीं, जिन्हें वे भौमासुरको मारकर उसके कारागारसे छुड़ा लाये थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

(भौमासुरको मारकर उसके घरसे सोलह हजार राजकन्याओंको अपने घर लाकर उनके साथ भगवान्‌का विवाह करना तथा स्वर्गसे पारिजातको अपने घर उठा लाना–यह वर्णन)

राजाने कहा—हे मुने, भगवान् द्वारा भौमासुर क्यों और कैसे मारा गया, जिसने उन स्त्रियोंको कैदकर रखा था, यह सब बातें कृपाकर बतलाइये, मैं भगवान् श्रीकृष्णका पराक्रम सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भौमासुर द्वारा वरुणका छत्र, आदितिके कुण्डल एवं इन्द्रके निवास स्थान मणि प्रवर्त छीन लिये जानेपर इन्द्रद्वारा भौमासुरका सब वृत्तान्त सुनकर भगवान् सत्यभामाको साथमें लेकर गरुड़पर बैठ करके प्राग्ज्योतिषपुरको गये ॥ २ ॥ गमनमें प्रतिबन्धक अनेक पर्वतों तथा चारों ओर स्थापित तोप आदि शस्त्र दुर्गोंसे एवं जल, अग्नि और वायुसे वह नगर दुर्गम था। मुरराक्षसके दस हजार घोर और दृढ़ पाशोंसे वह चारों तरफसे घिरा हुआ था ॥ ३ ॥ तब वहाँ पहुँचते ही भगवान्‌ने गदासे

राजोवाच ॥ यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥ निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रेण हृतछत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ॥ हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥ सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥२॥ गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ॥ मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥ गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ॥ चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥ शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥ पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् ॥ मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥ आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पञ्चभिः ॥ सरोदसी सर्वदिशोऽन्तरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥ तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरता-

पहाड़ी किलाएँ तोड़ डालीं, बाणोंसे शस्त्र दुर्ग नष्टकर डाले और अपने सुदर्शनचक्रसे अग्नि, वायु तथा जलको काट दिया एवं तलवारसे मुरराक्षसके पाशोंको दूरकर दिया ॥ ४ ॥ और शंखकी ध्वनिसे मनस्वियोंके हृदयों एवं यन्त्रोंको तथा अपनी भारी गदासे उसके किलाके फाटकको तोड़ डाला ॥ ५ ॥ प्रलयकालके वज्रके सदृश भयानक पाञ्चजन्य नामक कृष्णके शंखकी ध्वनि सुनकर जलके भीतर सोया हुआ पाँच शिरवाला मुरनामक दैत्य बलसे बाहर निकला ॥६॥ महाप्रलयमें सूर्य और अग्नि ज्वालाकी कान्तिके सदृश अति प्रचण्ड देखनेमें भयानक मुरदैत्य हाथमें त्रिशूल लेकर, जैसे सर्प गरुड़को देखकर दौड़ता है वैसेही पाँचों मुखसे त्रिलोकीको निगल जानेकी इच्छा करते हुए-सा दौड़ा ॥७॥ उस मुरने भगवान्‌के ऊपर बड़ी तेजसे गदा चलाकर पाँचों मुखसे भयानक आवाज की। उसकी आवाज पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष एवं सम्पूर्ण दिशामें फैलकर समस्त ब्रह्माण्डको व्याप्त कर लिया ॥८॥ तब गरुड़को ओर दौड़े आ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहे त्रिशूलको देखकर भगवान् हरिने अपने दो बाणोंसे शीघ्र उसके तीन टुकड़े कर डाले और उसके मुखोंमें भी अनेक बाण छोड़े, जिससे कि वह घायल हो गया। तदनन्तर मारे क्रोधके उस मुरने भी भगवान्के ऊपर अपनी गदा छोड़ दी ॥ ९ ॥ तब युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णजीने अपनी ओर आ रही उसकी गदा अपनी गदासे हजारों टुकड़े करके तोड़ डाली। तदनन्तर अपनी दोनों बाँह उठा कर मारनेके लिए दौड़े आ रहे उस दैत्यके सिर भगवान् श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्रसे अनायास ही काट डाले ॥ १० ॥ सिर कट जानेपर वह मुरदैत्य, इन्द्रके वज्रसे शृङ्ग काट लेने पर पर्वतके समान, जलमें गिर पड़ा और पिताकी मृत्युसे अति दुःखसे सातों पुत्र भगवान्से बदला लेनेकी इच्छासे अति क्रुद्ध होकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये ॥ ११ ॥ ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण नामवाले मुरके सातों पुत्र सेनापति पीठनामक दैत्यको आगे करके भौमदैत्यसे प्रेरित होकर शस्त्रास्त्र लेकर निकल पड़े ॥ १२ ॥ वह सब भगवान्को पाकर बाण, तलवार, गदा, शक्ति, शूल ये सब शस्त्रास्त्र अति क्रोधसे भगवान्के ऊपर एक बारही छोड़ दिये। तब अमोघ बलवाले भगवान्ने

डयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ॥ उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥ व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन्गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान् स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥१३॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमक्षयं निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥१४॥ निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥१६॥ यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥१७॥

अपने बाणोंसे उनके सम्पूर्ण शस्त्र तिल तिल करके काट डाले ॥ १३ ॥ तदनन्तर कट गये सिर जाँघ, भुजा पैर और कवचवाले उन पीठादि दैत्योंको भगवान्ने यमके घर भेज दिया तदनन्तर भगवान्के सुदर्शनचक्र तथा बाणों द्वारा इस तरह मारे गये अपने सेनापतियोंको देखकर अत्यन्त असहनशील भूमिपुत्र नरकासुर चू रहे मदवाले ऐरावतकुलमें उत्पन्न अनेक हाथियोंको लेकर युद्धके लिये निकल पड़ा उस समय गरुड़के ऊपर अपनी भार्याके सहित स्थित सूर्यके ऊपर बिजलीसहित स्थित नीलमेघ जैसे, भगवान् कृष्ण को देखकर उसके ऊपर 'शतघ्नी' नामक अपनी विशेष शक्ति उसने फेंक दी और भी जो उसके वीर थे वे भी एक साथ भगवान्के ऊपर प्रहार करने लगे ॥ १४, १५ ॥ हे राजन्, उसी क्षणमें भगवान् श्रीकृष्णने भौमकी सेनाको अपने तीखे बाणोंसे, जिनके विचित्र पत्र थे, कटे हुए बाहु, ऊरु, सिर, पैर और शरीरवाले बना डाले एवं उनके हाथी, घोड़े सबके सब नष्ट कर दिये ॥ १६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे कुरूद्वह, उसकी सेना नष्ट करनेके पहले उसके योधाओं द्वारा प्रयुक्त किये गये जो शस्त्रास्त्र थे, वे सब भगवान्ने अपने तीन पैने बाणोंसे एक-एक करके काट डाले ॥ १७ ॥ उस लड़ाईमें गरुड़भी अपनी सेनोंसे हाथियोंको मार रहे थे, जिनके ऊपर भगवान् बैठे थे गरुड़ो द्वारा उनके तुण्ड, पंख और नखोंसे मारे जा रहे हाथी सब दुःखी होकर नगरमें ही घुस गये और नरकासुर अकेले ही संग्राममें युद्ध करते हुए डटा रहा, गरुड़ द्वारा पीड़ित अतएव भागे जा रहे अपने सैन्यको देखकर नरकासुरने अपनी उस शक्तिसे उस गरुड़के ऊपर प्रहार किया, जिस शक्तिसे वज्र भी प्रतिहत हो चुका था । उस शक्तिसे घायल गरुड़जी, मालासे आहत हाथीकी नाईं तनिक भी काँप न सके ॥ १८–२० ॥ अपना शक्तिरूप वज्र चलाना व्यर्थ जानकर भौमासुरने भगवान्को मारनेके लिये हाथमें त्रिशूल छोड़नेके पूर्वमें ही भगवान्ने नरकासुरका सिर अतितेज सुदर्शनचक्रसे काट लिया ॥ २१ ॥ उस समय कुण्डलों सहित, सुन्दर किरीट-नामक अलंकारसे शोभित अतएव प्रकाशमान उसका सिर पृथिवीपर गिर पड़नेके बाद खूब शोभता था । उसका सिर पृथिवीपर गिरते ही उसके सम्बन्धी हा हा करने लगे और ऋषिलोग

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥२०॥ शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः ॥ तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ॥ हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ॥ स वैजयन्त्या वनमालयार्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्राञ्जलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥ अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणोऽनन्तशक्तये ॥ परावरात्मन्भूतात्म-

साधु-साधु एवं देवता सब भगवान् मुकुन्दके ऊपर फूलोंकी वृष्टि करते हुए स्तुति करने लगे ॥२२॥ तदनन्तर पृथिवीने कृष्णके समीप आकर अत्युज्ज्वलित सुवर्णमय रत्नजटित चमक रहे दो कुण्डल तथा वैजयन्ती वनमालाके सहित वरुणका छत्र और महामणि भगवान् को समर्पित किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे राजन्, पृथिवीदेवी इन्द्रादिकोंसे पूजित जगन्नियन्ता भगवान्को हाथ जोड़कर भक्तियुक्त बुद्धिसे प्रणत हो स्तुति करने लगी ॥ २४ ॥ भूमिने कहा—हे देवेश, हे शंखचक्रगदाधर, हे परमात्मन्, आप अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार रूप धारण करते हैं आपको बार-बार नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे पङ्कजनाभ, आपको नमस्कार है, हे पङ्कजमालिन, आपको नमस्कार है, हे पङ्कजनेत्र आपको नमस्कार है तथा हे पङ्कजचरण, आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे वासुदेव, आप भगवान् विष्णु को नमस्कार है और समस्त जगत्के आदिकारण एवं पूर्ण आत्मबोधवाले हे भगवन्, आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे परावरात्मन्, हे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भूतात्मन्, हे परमात्मन्, स्वयं अज होते हुए भी इस जगत्के उत्पादक ब्रह्मरूप, अनन्तशक्ति सम्पन्न आपको प्रणाम है ॥२८॥ हे प्रभो, हे जगत्पते, तुम्हीं जगत्की सृष्टिके लिये कार्योन्मुख रजोगुणकी सृष्टि करते हो, जगत्के विनाशके लिये उत्कट तमोगुण की तुम्हीं सृष्टि करते हो तथा जगत्के पालनके लिये तुम्हीं सत्त्वगुणकी भी सृष्टि करते हो। एवं तमोगुणके धारणमें तुम स्वतन्त्र ही हो। काल और प्रधानपुरुष तुम्हीं हो तथा इन सबसे अलग भी तुम्हीं हो ॥ २९ ॥ पृथिवी, जल, ज्योति, अनिल, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अधिष्ठातृदेवता सब, मन इन्द्रियाँ एवं अहंकार और महान्–इस तरहसे सम्पूर्ण यह चराचर अद्वितीय भी तुममें जो प्रतीत हो रहा है, सो यह सब हे भगवन्, मनुष्योंका एकमात्र भ्रम है ॥ ३० ॥ इस तरह स्तुति करनेके बाद पृथिवीने कहा—हे शरणागतकी पीड़ा हरनेवाले, यह भगदत्तनामक नरकासुरका पुत्र है, यह आपसे बहुत डर गया है, अतः मैं आपकी शरणमें ले आई हूँ। इसका पालन करें। समस्त पापको दूर करनेवाले, अपने हाथमें लिये हुए कमलको इसके मस्तकपर रखिये ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भक्तिसे विनम्र हुई

न्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमोनिरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥ २९ ॥ अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ॥ कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥ ३० ॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ॥ तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥ तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम्, ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५ ॥ ताः प्राहिणोद् द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ॥ नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥३६॥ ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ॥ पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वाऽदित्यै च कुण्डले ॥ पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥ ३८ ॥

पृथिवीके द्वारा उसकी इस तरहकी वाणियोंसे प्रार्थित हुए भगवान्ने अभय वरदान देकरके सम्पूर्ण समृद्धियोंसे भरे भौमासुरके घरमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर राजाओंको जीतकर लाइ गई सोलह हजार राजकन्याएँ भगवान्ने देखीं ॥ ३३ ॥ वे सब राजकन्याएँ नरवीर उस भगवान्को देखकर अति मुग्ध हो गईं और उन्होंने मनही मन अकस्मात् भाग्यसे आये भगवान्को अपना प्रियपति चुन लिया ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा मुझसे प्रसन्न होकर मुझे यही वरदान दें कि यही भगवान् मेरे पति बनें। इस तरह सभी स्त्रियोंने अपना हृदय अलग-अलग इस भावसे कृष्णमें लगा दिया ॥३५॥ सुन्दर निर्मल वस्त्र पहिने हुईं अति कमनीय स्त्रियोंको तथा बहुत बड़ा कोश, रथ अश्व और बहुत-सा धन लेकर द्वारकापुरीमें भगवान्ने पालकियों द्वारा भेजवा दिया ॥ ३६ ॥ ऐरावत कुलोत्पन्न चार दाँतोंवाले अति तेजस्वी सफेद चौसठ हाथी भी भगवान्ने द्वारकाको भेज दिये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर अमरावतीमें जाकर भगवान्ने अदिति माताको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके कुण्डल दे दिये और वहाँ इन्द्राणी सहित इन्द्रद्वारा सत्यभामा सहित स्वयं पूजित हुए ॥ ३८ वहाँसे लौटते समय सत्यभामा द्वारा प्रेरित होकर पारिजातको उखाड़कर गरुड़के ऊपर रख लिया और इन्द्रसहित सब देवताओंको जीतकर द्वारकामें उसे ले आये ॥३९॥ उस परिजातको सत्यभामाके घरके बागमें लगा दिया। इससे उसका सौन्दर्य बढ़ गया। उस पारिजातकी गन्ध और मकरन्द के लोभी भ्रमर सब भी स्वर्गसे उसके पीछे-पीछे चले आये ॥ ४० ॥ हे राजन्, इन्द्रको जब अपना मतलब गाँठना था, तब इन्द्रने पहले अपना मस्तक झुकाकर करोड़ो किरीटोंसे भगवान्‌के चरणस्पर्श करते हुए भौमासुर वधादि कार्यसाधक भगवान् अच्युतसे भौमवधादिकी प्रार्थना की लेकिन जब इन्द्रका मतलब सिद्ध हो गया, तब महान् ज्ञानवान् होते हुए भी उन्होंने भगवान्‌के साथ विरोधकर लिया। अहो, आश्चर्य है, इन सात्विक देवताओंको भी अज्ञान उत्पन्न हो गया, धिक्कार है इनकी धनिकताको ॥४१॥ इसके बाद अविनाशी भगवान्‌ने अनेक गृहोंमें जाकर अपना अनेक रूप धारण करके सभी स्त्रियोंके साथ एकही मुहूर्तमें विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ४२ ॥ नष्ट हो गई है समानता और अतिशयिता जिनकी ऐसे यानी

चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥ आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः ॥ ४० ॥ ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरोगार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥
इति श्रीमद्भागवते म० पु० दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पारिजातहरणनरकवधो नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

संसारभरके घरोंमें सर्वश्रेष्ठ उन स्त्रियोंके घरोंमें अचिन्त्य इस जगत्‌के कर्ता अच्युत भगवान् स्त्रियोंके ठहरे। अपने कामसे पीड़ित भगवान् लक्ष्मीरूप उन सब स्त्रियोंके साथ रमण ऐसे किये जैसे गृहस्थधर्मोंका पालन करता हुआ अन्य साधारण गृहस्थ अपनी कान्ताके साथ रमण करता है ॥४३॥ जिसके प्राप्तिमार्गको ब्रह्मादि देवता भी नहीं जानते ऐसे रमापति भगवान्‌को पाकर सभी स्त्रियाँ प्रेमपूर्वक हास्य, विलासपूर्ण अवलोकन और नूतन रतिके समय प्रेमालापमें लजाती हुई दिनोंदिन बढ़ते हुए प्रेमसे उनकी सेवा करने लगीं ॥ ४४ ॥ उनकी सैकड़ों दासियोंके रहते भी वे सब स्त्रियाँ भगवान्‌के उनके पास पहुँचनेपर उन्हें आदरपूर्वक आगे बढ़कर लाने, आसन देने, पूजा करने, पैर धोने पान देने, चरण दबाकर उनका थकावट दूर करने, पंखा डुलाने, चन्दन, माला आदि देने, केश सँवारने, विस्तर लगाने, स्नान कराने और नानाविध उपहार भेंट करने आदिके द्वारा उनकी सेवा करती रहती थीं ॥ ४५ ॥

उनसठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इन्द्रकी प्रार्थना करनेपर सत्यभामाको साथ लेकर भगवान् प्राग्ज्योतिषपुरको गये। वहाँ पहुँचते ही भौमासुरके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किलाओंको नष्ट करते हुए वीरोंमें अग्रगण्य उस इन्द्रके शत्रु भौमासुरको भगवान्‌ने मार डाला · तदनन्तर उसकी माता पृथिवीकी प्रार्थना सुनकर उनके उपर अनुग्रह करते हुए भगवान् अत्यन्त सम्पतियोंसे भरे भौमासुरके घरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ पहुँचकर भगवान्‌ने अनेक राजाओंको पराजितकर भौमासुर द्वारा लायी गई सोलह हजार स्त्रियाँ देखीं। भगवान्‌को देखते ही उन सबोंने उनको अपना पति चुन लिया। अपने ऊपर अनुरक्त वे सब राजकन्याएँ तथा चौसठ मतवाले हाथी भगवान्‌ने द्वारका भेज दिये। भौमके मार दिये जानेके बाद उसके जमीनपर गिरे हुए मस्तकसे दोनों कुण्डल लेकर गरुड़के पीठ पर सवार हो सत्यभामाके सहित स्वर्गमें जाकर भगवान्‌ने अदितिको दे दिये। अपनी प्रियाके कहनेपर भगवान् देवताओंको पराजित करके पारिजातको अपने घर उठा लाये। तदनन्तर उनकी जितनी स्त्रियाँ थीं, अपनेको उतने ही रूपमें परिणत कर गृहस्थधर्म का आचरण करते हुए साधारण गृहस्थ की नाईं भगवान्‌ने उन सबके साथ बहुत वर्ष तक रमण किया। उनसठवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ षष्टितमोऽध्यायः ❀

(कान्ताओंमें रमण करनेवाले मनुष्योंके आनन्द विशेषोंके अनुकरणों द्वारा रुक्मीणीके साथ प्रेमकलहके बहाने भगवान्‌के ऐश्वर्यका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय सखियोंसे युक्त रुक्मिणी पंखा लेकर सुखपूर्वक पलङ्गपर लेटे हुए जगद्‌गुरु अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णकी सेवाकर रही थी ॥१॥ जो परमेश्वर भगवान् अपनी लीलासे इस पृथिवीकी सृष्टि, उत्पत्ति और रक्षा करते हैं वह भगवान् अपने द्वारा नियमित धर्मकी रक्षाके लिये यदुवंशमें अवतीर्ण हुए थे ॥२॥ हे राजन्, उस

श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्‌गुरुम् ।। पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ॥ विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादितैः ॥ जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजै राजञ्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयः फेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं

राजमहलके भीतर दूधके फेनके सदृश सफेद सुन्दर पलंगके ऊपर बिछाये गये सर्वोत्तम विस्तरपर सानन्द बैठे हुए अपने पति जगतपति भगवान् श्रीकृष्णकी रुक्मिणीजी सेवाकर रही थीं, जो वह राजमहल मोतियों की मालाओंके लटक रहे गुच्छोंवाली चाँदनीसे, मणिमय दीपकोंसे, मल्लिकाकी मालाओंसे, भौरों द्वारा गुञ्जायमान नानाविध अन्यान्य पुष्पोंसे, झरोखोंके छेदोंसे होकर आ रही निर्मल चन्द्रकिरणोंसे, उद्यानमें शोभ रहे पारिजात वनकी मीठी सुगन्धयुक्त वायुकी झोंकोंसे और झरोखोंसे होकर निकल रहे जलाये गये अगरुके धूपोंसे खूब सुशोभित हो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहा था ॥ ३–६ ॥ हे राजन्, देवी रुक्मिणीजी, अपनी एक सखीके हाथसे रत्नजटित दण्डयुक्त चँवर लेकर उसे स्वयं डुलाती हुई अपने जगदीश्वर पतिदेवकी सेवा करने लगीं ॥ ७ ॥ उस समय रुक्मिणीजीके हाथोंमें रत्नजटित अंगूठियाँ, कंकण और चँवर अपनी छटा दिखा रहे थे। भगवान् अच्युतके नजदीक मणिजटित नूपुरोंसे मधुर झंकारकर रही वे आँचरसे ढके स्तनोंमें लगे कुंकुमसे लाल हुए मुक्ताहारकी दीप्तिसे तथा नितम्बोंके ऊपर धृत बहुमूल्य करधनीसे अत्यन्त शोभित हो रही थीं ॥ ८ ॥ जिन्होंने लीलासे ही मनुष्यरूपधारी भगवान्के योग्य रूप धारण कर रक्खा था, जो सदा साथ रहनेवाली थीं, जिनका मुखकमल घुंघुराले बालों, सुन्दर कुण्डलों तथा 'पदक' नामक अलंकृत कण्ठसे देदीप्यमान था। जिनके मुखपर मधुर मुसकानरूपी अमृत उल्लसित हो रहा था, ऐसी मूर्तिमती उन लक्ष्मीजीको देखकर भगवान् श्रीहरि परम प्रसन्न हो मुस्कुराते हुए कहने लगे ॥ ९ ॥ भगवान्ने कहा—हे राजकुमारि, जिन राजाओंके पास लोकपालोंके समान धन, रूप, औदार्य और बल था, ऐसे बड़े बड़े महान् धनिक तथा महानुभाव सर्वोत्कृष्ट राजालोग तुम्हें पहले चाह रहे थे ॥ १० ॥ हे सुभ्रू,

पतिम् ॥ ६ ॥ बालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ॥ तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रान्तगूढकुचकुङ्कुमशोणहारभासानितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भी रूपोदार्य बलोर्जितैः ॥ १० ॥ तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान ॥११॥ राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥ १३ ॥ निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ॥ तस्मात्प्रायेण नह्याढया मां भजन्ति सुमध्यमे ॥१४॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥१५॥

तुम्हारे भाई और पिता तुम्हें उनको दे चुके थे, वे तुम्हारे लिये बिलकुल लालायित कामान्ध तुम्हें प्राप्त ही थे, फिर त्यागके अयोग्य उन शिशुपाल आदि राजाओंको छोड़कर तुम हमें क्यों चाहने लग गई थी ? हम तो सर्वथा तुम्हारे अयोग्य ही थे। बलवान् जरासन्ध आदि राजाओंसे द्वेष करके हमलोगोंने उन सबों के डरसे समुद्रकी शरण ली थी, एक तरहसे हम लोग राजसिंहासनसे च्युत हो चुके थे ॥ ११, १२ ॥ हे सुभ्रू, जिनका कोई रास्ता स्पष्ट नहीं रहता ऐसे लोकपथका अनुसरण न करनेवाले मेरे जैसे स्वतन्त्र पुरुषोंके मार्गको प्राप्त हुई स्त्रियाँ प्रायः दुःख ही भोगती हैं ॥ १३ ॥ मैं तो सदा अकिञ्चन यानी अति तुच्छ हूँ और अकिञ्चन पुरुषको प्रिय मानता हूँ, अतः हे सुमध्यमे, प्रायः धनीलोग मुझे नहीं ही भजते हैं हे सुमध्यमे, जिनमें समान धन हो और जिनकी जन्म, संपति, रूप तथा अवस्था समान हो, उन्हीं दोनोंका विवाह तथा मित्रता ठीक रहती है। उत्तम और अधममें विवाह एवं मैत्री कहीं ठीक नहीं होती ॥ १५ ॥ हे वैदर्भि, इन सब बातोंको न जानकर दूरतक न सोचनेवाली तुमने झूठमूठमें ब्राह्मण द्वारा मेरी प्रशंसा सुनकर गुणोंसे हीन मुझको अपना पति चुन लिया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ १६ ॥ अतः अपने अनुरूप किसी उत्तम चत्रियको ही अब भी अपना पति बना सकती हो, जिससे कि तुम ऐहिक और लौकिक दोनों मनोरथ पा सको ॥ १७ ॥ तुम्हारे कारण ही शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र आदि राजा सब तथा हे वामोरु, तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी भी मुझसे द्वेप करता है ॥ १८ ॥ हे भद्रे, अपने बलसे मदान्ध एवं उद्दण्ड दुष्ट असज्जन उन राजाओंका गर्व चूर करनेके लिये ही उन सबोंका पौरुष नष्ट करके तुमको मैं हर लाया हूँ ॥१६॥ मैं न तो स्त्री, पुत्र और धनकी इच्छा रखता हूँ और न इन सबोंसे अति उदासीनहीं रहता हूँ, अतः देह और घरसे उदासीन रहकर आत्मानन्दसे परिपूर्ण होकर प्रदीपकी तरह साच्िमात्ररूपसे क्रियारहित हो स्थित रहता हूँ ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कभी भी अलग न रहनेके कारण अपनेको ही भगवान्का अत्यन्त प्रियपात्र समझ रही रुक्मिणीसे यह सब सुनाकर भगवान् उनके गर्वको नष्ट करके चुप हो गये ॥ २१ ॥ इस तरह रुक्मिणीजी

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ॥ वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ॥ येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥ चैद्यशाल्वजरासन्धदन्तवक्त्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १६ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ॥ आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥२०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥ पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ॥ आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन् रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥२४॥ तद् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ॥ हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥२५॥

अपने प्रिय त्रिलोकिके स्वामी भगवान्के मुखसे कभी न सुना गया अप्रिय वचन सुनकर अत्यन्त डर गयीं, उनके हृदयमें कपकपी शुरू हो गई। अतः रोती हुई, वह अपार-चिन्ताको प्राप्त हो गई ॥ २२ ॥ नखोंके द्वारा अरुणकान्तिसे युक्त अपने अत्यन्त कोमल बायें पैरके अंगूठेसे जमीन खोद रही वे काजलके कारण काले रंगको प्राप्त आँसुओंसे कुंकुम भूषित अपने स्तनोंको सींचती हुई नीचे मुँहकर चुपचाप खड़ी रह गईं। अत्यन्त दुःख आ जानेसे उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई ॥ २३ ॥ अत्यन्त दुःख, भय और शोकसे नष्टबुद्धि उनके हाथसे कंकण गिरने लगे, उनकी बुद्धि वशके बाहर हो गई, उनके हाथसे पंखा गिर पड़ा तथा शीघ्रही मूर्छित हो अपने केशोंको इधर-उधर बिखेर करके प्रचण्ड वायुसे चोट खाकर जैसे जमीनपर कदली गिर पड़ती है, उसी तरह उनकी देह भी गिर पड़ी ॥ २४ ॥ हास्यरसके गाम्भीर्य भावको न जाननेवाली अपनी प्रिया रुक्मिणीके उस स्नेहबन्धनको देखकर दयालु भगवान काँप उठे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥२५॥ चतुर्भुज भगवान् अपने पलंगसे शीघ्र उठकर रुक्मिणीको उठाकरके उसके खुले हुए बालोंको समेटकर अपने कमलतुल्य कोमल हाथ से उसका मुँह पोंछने लगे ॥२६॥ तदनन्तर हे राजन्, भगवान्ने आँसुओंसे पूर्ण उसके नेत्रों तथा शोकाश्रुसे आर्द्र हुए उसके स्तनोंको अपने हाथसे पोंछकर अपने बाहुद्वारा अनन्याश्रया सती रुक्मिणीजीको छातीसे चिपका लिया ॥ २७ ॥ तत्पश्चात् सान्त्वना देनेमें अत्यन्त चतुर, सज्जनोंके आश्रय भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजी जबर्दस्त हँसीके कारण भ्रान्तचित्त तथा उस तरहके हास्यके अयोग्य दीन रुक्मिणी कृपापूर्वक सान्त्वना देने लगे ॥ २८ ॥ भगवान्ने कहा—हे वैदर्भि, मेरे ऊपर मत नाराज होओ। तुम मेरे ऊपर आसक्त हो, अन्य किसीको नहीं चाहती हो, यह आज जान लिया हे अङ्गने, इस विषयमें तुम क्या बोलती हो, इस अभिप्रायसे मैंने हँसीके रूपमें यह सब कहा था, वास्तवमें नहीं ॥ २९ ॥ प्रलयकोपसे फड़क रहे अधरोंसे, कटाक्षविक्षेपसे तिरछे और लालवर्णके

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥ सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ॥ त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥ मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥ कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसान्त्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥ बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाहं यद्वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ॥ क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ॥ नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादपद्ममकर-

हो रहे नेत्रोंसे तथा सुन्दर भ्रुकुटियोंसे युक्त तुम्हारा अनुपम मुख देखनेके लिये ही मैंने ऐसी हँसीकी थी ॥ ३० ॥ हे भीरु, हे भामिनि, गृहस्थोंको यही तो घरमें रहनेपर परमलाभ होता है, जो कि वे अपनी प्रियाके साथ कोमल परिहास वचनोंसे रात्रि व्यतीत करते हैं ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् इसप्रकार भगवान् द्वारा रुक्मिणीजीने सान्त्वना पाकर भगवान् परिहासवचन समझकर 'भगवान् मेरा त्यागकर देंगे' यह भय छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे भरत, लज्जायुक्त परिहास तथा सुन्दर प्रेम भरे कटाक्षविक्षेपसे पुरुषश्रेष्ठ भगवान्का मुँह निहारती हुई रुक्मिणीजी कहने लगीं ॥ ३३ ॥ रुक्मिणीजीने कहा—हे अरविन्दलोचन, यह जो आपने कहा है, सो बिलकुल सही है। सचमुच ऐश्वर्य आदि सर्वगुण सम्पन्न सर्वव्यापक आपके योग्य मैं नहीं हूँ। कहाँ तो अपनी महिमामें अभिरत ब्रह्मा आदि तीनोंके नियन्ता आप और कहाँ अज्ञपुरुषों द्वारा गृहीतचरणा त्रिगुणस्वभावा मैं। हम दोनों में भारी वैषम्य है ॥ ३४ ॥ हे उरुक्रम, जरासन्ध आदि राजाओंके भयसे समुद्रमें हम भाग आये, यह जो आपने कहा है, सो भी ठीक ही है गुणोंसे मानो डरकर चैतन्यघन आप सत्यही समुद्रके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भीतर सोते हैं। कुत्सित इन्द्रियरूपी राजाओंके साथ आप सदा संग्राम छेड़े रहते हैं। राजसिंहासनसे हम त्यक्त हो चुके हैं, यह भी आपका कथन ठीक है, क्योंकि गाढ़-अन्धकाररूपी राजसिंहासन तो आपके भक्तों द्वारा त्यक्त हो चुका है, फिर आपके विषयमें कहना ही क्या है ॥ ३५ ॥ आपके चरणकमलके मकरन्दका आस्वाद चखनेवाले मुनियोंका मार्ग स्पष्ट नहीं रहता। उनका समझना इन नरपशुओंको अत्यन्त ही मुश्किल है। इसलिए हे भूमन्, जो आपका अनुगमन करते हैं, उसकी भी चेष्टाएँ जब अलौकिक-सी होती हैं तब भला आप परमेश्वरकी चेष्टाएँ अलौकिक होती हैं, इसमें कहना ही क्या है ? ॥ ३६ ॥ हे प्रभो, आप ऐसे अकिञ्चन हैं, जिनके यहाँसे प्राप्त करना मनुष्यको कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है, आप दरिद्रतारूप अकिञ्चनवान् सही हैं। दूसरोंसे पूजनीय ब्रह्मादि भी जिस आपको पूजा समर्पण करते हैं ऐसे सर्वेश्वर आप भला दरिद्र कैसे हो सकते हैं। पूजा स्वीकार करनेवाले ब्रह्मादि लोकेश्वरोंमें आप अतिप्रिय हैं। और वे ब्रह्मादिक भी आपके बहुत प्यारे हैं। अत्यन्त धन आदिके अभिमानसे अन्धे बने हुए अतएव अपनी इन्द्रियोंको ही तृप्त करनेमें तत्पर रहनेवाले लोग

न्दजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥ ३६ ॥ निष्किञ्चनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किञ्चिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ॥ न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढयतान्धाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥ त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥ यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुषगयादय ऐक-

आयुका हरण करनेवाले कालस्वरूप भी आपको नहीं जानते, यही कारण है कि वे धनी सब अपने धनसे अन्धे होकर आपको नहीं भजते ॥ ३७ ॥ आप तो समस्त पुरुषार्थमय परमानन्दस्वरूप हैं, जिसकी वाञ्छासे बुद्धिमान् पुरुष अपना सब कुछ छोड़ देते हैं। हे विभो, उन्हीं ज्ञानी महात्माओंका आपके साथ सेव्य-सेवकभाव-सम्बन्ध समुचित होता है। स्त्री और पुरुषके परस्पर स्मरणसे प्राप्त सुख-दुःखके अधीन रहनेवालोंका तो सम्बन्ध आपके साथ समुचित होता ही नहीं ॥ ३८ ॥ हे भगवन्, प्राणियोंको किसी तरहका दण्ड न देनेवाले मुनियोंने ही आपके प्रभावका बखान किया था। आप समस्त जगत्की आत्मा तथा आत्मस्वरूप प्रदान करनेवाले हैं। यही कारण है कि आपकी भ्रुकुटिके विलाससे समुत्पन्न कालके वेगद्वारा नष्ट मनोरथवाले ब्रह्मा आदि देवोंको भी छोड़कर मैंने आपको ही अपना स्वामी बनाया है ॥ ३९ ॥ जैसे सिंह अपना भाग पशुओंको मारकर उनके बीचसे छीन लाता है वैसेही हे गदाग्रज, आपने जो शार्ङ्गधनुषकी टङ्कारसे ही जरासन्ध आदि राजाओंको मार भगाकर उनके बीचसे जो अपना भाग मुझे हर लाये, सो उन्हीं आपका यह कहना है कि मैंने जरासन्ध आदि राजाओंके भयसे भागकर समुद्रकी शरण ली थी, बिलकुल असङ्गत है, यह जड़ताभरी बात है ॥ ४० ॥ हे अम्बुजाक्ष, आपने जो यह कहा कि मेरा अनुसरण करनेवाला दुःख पाता है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह भी असत्य है, कारण कि आपको प्राप्त करनेकी इच्छासे राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ अङ्ग, पृथु, भरत, नहुष, गय इत्यादि जो अनेक राजा सब अपना-अपना एक छत्र राज्यको ठुकराकर वनमें प्रविष्ट हो गये और वहाँ आपके मार्गका जिन्होंने अनुसरण किया, सो क्या उन्होंने किसी तरहका कष्ट उठाया ? नहीं, उन्होंने तो आपके मार्गका अनुसरण कर उच्च पदको प्राप्तकर लिया, अतः आपका अनुसरण करनेवाला कोई भी व्यक्ति किसी तरहका दुःख नहीं पाता है, बल्कि सब दुःखोंको झेलकर परम पुरुषार्थ मोक्ष पाता है ॥४१॥ गुणोंके आश्रय आप—मनुष्योंका ताप हरण करनेवाले, लक्ष्मीके आश्रय, सज्जनों द्वारा प्रशंसित—चरणकमलकी गन्धको सूँघकर पुनः उसकी अवहेलनाकर भला ऐसी कौन अपने हिताहितके विचारमें दिव्यदृष्टि रखनेवाली मरणधर्मा स्त्री होगी, जो सदा नानाप्रकारके भयसे युक्त रहनेवाले किसी अन्यको अपना पति बनायेगी ? ॥४२॥ हे स्वामिन्, जगत्के अधीश, परमात्मास्वरूप, लोक और परलोकमें सब मनोरथ पूर्ण करनेवाले आपको मैंने अपने अनुरूप ही जानकर पति चुना है। देव, तिर्यक् आदि नानाविध जन्मों द्वारा भ्रमणकर रही मेरे लिये अब आपका चरण ही शरण है, जो

पत्यम् ॥ राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥ काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ॥ लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वाऽनुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवाङ्घ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥४५॥ अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ॥ यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमानु-

भजन करनेवाले अपने भक्तोंके संसारको नष्टकर उन्हें अपने स्वरूपमें मिला लेता है ॥ ४३ ॥ हे अच्युत, हे शत्रुमर्दन, जो आपने कहा कि लोकपालोंके सदृश अणिमादि सिद्धियोंसे युक्त राजा लोग तुमको चाह रहे थे, सो उनके विषयमें मेरा यह कथन है कि ब्रह्मा शिवादिकी सभामें गाया गया आपका गुणानुवाद जिसस्त्रीके कानोंमें नहीं गया है ऐसी एक उसी अभागिनके वे आपके द्वारा बतलाये गये राजे पति हों, जो केवल रात-दिन स्त्रियोंके घरमें गदहोंकी भाँति भार ढोनेवाले, वृषभोंकी तरह रात दिन परिश्रम करनेवाले, कुत्तोंकी तरह दुष्ट, विडालोंकी तरह हिंसामें रत और सेवकोंकी तरह सेवा करनेवाले हैं ॥४४॥ जो आपके चरणकमलोंके मकरन्दका स्वाद न जानने वाली है वह विमूढ स्त्री अपने पतिको ही सर्वस्व समझती हुई जिन्दा मुर्देको ही भजती हैं क्योंकि बाहरमें त्वचा मूँछ, दाढ़ी, रोम, नख और केशोंसे ढके हुए तथा भीतर मांस, हड्डी- रुधिर, कृमि विष्टा,कफ, पित्त एवं वातसे पूर्ण अपने पुरुषको ही सर्वस्व मान बैठती हैं। वास्तवमें वह पुरुष तो मल-मूत्रादिसे युक्त अति भ्रष्ट मुर्दा ही है ॥ ४५ ॥ हे अम्बुजाक्ष, आप अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले हैं और मुझमें भी आपकी कोई अतिशय कृपादृष्टि नहीं रहती। हे नाथ, आपके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे, यह मेरे लिए कम लाभ नहीं है। हे प्रभो, और अधिक मैं क्या कहूँ, विश्वकी वृद्धिके लिए उत्कट रजोगुण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धारण करके मुझे जो आप देखते हैं, बस यही मेरे लिए आपका परम अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ हे मधुसूदन, आपका वचन मैं असत्य नहीं मानती हूँ। क्योंकि जैसे समय-समयपर एक-एक पुरुषसे जीती जानेपर भी कभी काशीराजकी अम्बा, अम्बालिका और अम्बिका इन तीन लड़कियोंमें अम्बानामक कन्याका आपमें ही विशेष प्रेम हो गया था वैसे ही मेरा भी प्रेम आपमें ही हो गया है ॥ ४७ ॥ विवाहिता भी पुंश्चली स्त्रीका मन नित्य नया नया पति ही ढूँढ़ता फिरता है। ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रीका पण्डितजन भरण पोषण न करें कारण कि उस व्यभिचारिणीका पोषण करनेवाला पुरुष दोनों लोकसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ तब भगवान्ने कहा—हे राजपुत्रि, हे साध्वि, यही सब बातें सुननेके लिए ही मैंने तुमसे हँसी की थी। मेरे कहे हुए वचनका जो तुमने बुद्धिमत्ताके साथ बात बदल कर उत्तर दिया है, यह तुम्हारा उत्तर बिलकुल सत्य है ॥ ४९ ॥ हे भामिनि, जिन-जिन कामनाओंको तुम मुझसे चाह रही हो, वे सब कामनाएँ हे कल्याणि, अनन्य भक्त तुम्हें सर्वदा प्राप्त हैं ही ॥ ५० हे अनघे, पतिका प्रेम जो पातिव्रत्य है वह तुम्हें उपलब्ध हो गया है, क्योंकि मुझमें लगी हुई तुम्हारी

कम्पा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ।अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ॥ बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता ॥ मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥ यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ॥ सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥ उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजन्ति दम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं वाञ्छति ये सम्पद एव तत्पतिम् ॥ ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृताऽनुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ॥ सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुम्भराया निकृतिजुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ॥ प्राप्तान्नृपा-

बुद्धि वाणोंद्वारा इधर-उधर करनेपर भी कहीं अन्यत्र न गई। अतः पतिव्रता साध्वी स्त्री तुम हो, यह सिद्ध हो चुका ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य तपस्या एवं नानाविध व्रतों द्वारा दाम्पत्य सुखको निमित्त मोक्ष देनेवाले मुझको भजते हैं वे कामात्मा मेरे भक्त मेरी मायासे मोहित हैं ॥ ५२ ॥ मोक्षसहित ऐश्वर्योंवाले मुझे पाकर भी जो केवल सम्पदाओंको ही यानी विषय को ही चाहते हैं, उन सम्पदाओंके स्वामी मुझे नहीं चाहते वे वास्तवमें भाग्यहीन हैं, क्योंकि वे विषय सुख तो नानाविध नीच योनिरूप नरकोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं। और चूँकि उनका चित्त विषय-वासनाओंमें ही फँसा रहता है, इसलिए उन्हे वहाँ रहना भी अच्छा ही लगता है ॥ ५३ ॥ इसलिए हे गृहेश्वरी, यह तुम्हारे भाग्यकी बात है कि तुमने संसारबन्धनसे छुड़ानेवाली मेरी निष्काम लगातार सेवा की है। खलोंसे यह कभी नहीं हो सकती। दुष्ट मनोरथोंवाली अतएव अपनी इन्द्रियोंको ही तृप्त करनेमें सदा तैयार रहनेवाली और कामीपुरुषोंको धोखा देनेवाली स्त्रीके लिए तो यह बिलकुल असाध्य है ॥ ५४ ॥ हे भामिनि, मैंने तुम्हारी-जैसी प्रणययुक्त गृहिणी और घरोंमें नहीं देखता। जो तुमने अपने विवाहकालमें अनेक समुपस्थित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाओंकी अवहेलना कर सिर्फ मेरी कथाएँ दूसरोंके द्वारा सुनकर मेरे यहाँ उस गुह्यसन्देशवाहक ब्राह्मणको भेज दिया ॥ ५५ ॥ युद्धमें तुम्हारे भाईको जीतकर मैंने उसे कुरूप बन दिया और अनिरुद्धके विवाहके अवसरपर ही द्यूतसभामें मेरे भाई बलदेवजीने मार भी डाला, फिर यह सब देखते हुए तुमने सहनकर लिया। और मुझसे सिर्फ मेरे वियोगके भयसे चुपचाप उपस्थित दुःखको मुझसे कुछ भी नहीं कहा। इन सब कृत्योंसे मुझे तुमने जीत लिया ॥ ५६ ॥ कल विवाह होनेवाला था और आज गुप्तसन्देश देकर ब्राह्मणको मेरे पास मेरी प्राप्तिके लिए तुमने भेज दिया। उस ब्राह्मणको आनेमें बिलम्ब जानकर संसारको व्यर्थ मान करके अपने शरीरको नष्ट कर देनेपर भी तुम उतारु हो गई थी। हे प्रिये, ऐसे यह सब

नवगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्यानैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥ दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ॥ मत्वा जिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसँल्लापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥ ५८ ॥ तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ आस्थितो गृहमेधीयान्धर्माल्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

तुम्हारा कर्म तुम्हींमें रहे इसका मैं बदला नहीं चुकाना चाहता। मैं सिर्फ तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ ॥ ५७ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जगत्के प्रभु आत्मरत भगवान इस तरह सुरतकालीन प्रेमालाप द्वारा अपने ऐश्वर्योंको तुच्छ बनाकर मनुष्योंके चरित्रका अनुकरण करते हुए रुक्मिणीके साथ रमण करने लगे ॥५८॥ जैसे गृहस्थ अपने गृहमें रहकर अपने समस्त आवश्यकीय कर्मका पालन करता है, वैसे ही लोकगुरु सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने और सब स्त्रियोंके घरोंमें जाकर उनके सभी मनोरथोंको पूर्ण करते हुए बहुत दिनों तक उन . साथ इसी तरत गार्हस्थ्यधर्मका पालन किया ॥ ५९ ॥

साठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, एक समय सुन्दर सुसज्जित राजभवनके भीतर पलङ्गपर विश्रामकर रहे भगवान्की रुक्मिणीजी सेवाकर रही थीं, पंखा डुला रही रुक्मिणीजीसे उस समय भगवान्ने यों कहा–हे प्रिये, अनेक समृद्ध राजाओंके चाहते हुए भी तुमने मुझ अकिञ्चनको अपना पति क्यों बनाया। लोकपथ अनुसरण न करनेवाले पुरुषोंके साथ रहकर स्त्रियाँ सांसारिक सुखोंको नहीं प्राप्तकर सकतीं। मुझे स्त्री, पुत्र आदि किसीकी चाह नहीं है। न तो मैं इनकी प्राप्तिके लिये यत्न करता हूँ और न इनका त्यागकर देना उचित समझता हूँ। मैं इन सांसारिकविषयोंसे उदासीन रहता हूँ। हे प्रिये, मेरे साथ रहकर तुम्हें सुख नहीं मिल सकता। यदि सांसारिक सुखोंकी प्राप्ति करना चाहती हो, तो मेरी सलाह है कि अब भी तुम किसी धनी-मानी क्षत्रिय राजाको अपना पति बना लो, ताकि सुखपूर्वक तुम्हारी संसारयात्रा कटे। भगवान्की ये बातें सुनते ही मूर्च्छित होकर रुक्मिणी जमीनपर गिर पड़ीं, उनके केश तितर-बितर हो गये, कण्ठसे बोली रुक गई। रुक्मिणीको मूर्च्छित हुए देख भगवान्ने पलङ्गसे उठकर उन्हें अपनी गोदीमें ले लिया और अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करकमलसे उनका मुख पोंछते हुए यों कहा—हे प्रिये, डरो मत, मैंने तुमसे हँसीकी थी। मैं खूब समझता हूँ कि तुम्हारा प्रेम मुझमें अटूट है। भगवान्‌के द्वारा यों सान्त्वना पाकर रुक्मिणीने कहा—हे नाथ, यह सत्य है कि आप किसीमें अनुरक्त न रहते हुए भी अनुरक्त रहते हैं। हे भगवन्, निर्गुण आपकी त्रिगुणा में योग्य नहीं हूँ। हे भगवन्, आपका प्रभाव जानकर ही मैंने आपको अपना पति बनाया है। हे नाथ, निष्काम भक्ति करनेवाले आपसे सब कुछ पा जाते हैं॥ हे भगवन्, आपने जो अपने चरणोंमेंमुझे स्थान दिया है, यही मेरे लिये सब कुछ है। रुक्मिणीजीकी ये बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिये, मैं तुम्हारे प्रेमका बदला नहीं चुका सकता। मैं सिर्फ तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। साठवाँ अध्याय समाप्त।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

(भगवान् श्रीकृष्णकी पुत्र-पौत्र आदि सन्ततिका वर्णन और अनिरुद्धके विवाहमें बलदेवजीके द्वारा रुक्मणीके वधकी कथा)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, श्रीकृष्णजी की सोलहहजार एकसौ आठ स्त्रियाँ थीं, उन सब स्त्रियोंमेंसे प्रत्येकने रूप, बल आदि गुणोंमें पिताके तुल्य महाबली दस-दस पुत्र उत्पन्न किये॥ १॥ घरसे बाहर कहीं नहीं निकलते अपने-अपने गृहमें ही अपने सामने उपस्थित रहते भगवान्‌को देखकर वे सब राजकुमारियाँ यही जानती थीं कि भगवान् मेरा ही अधिक प्यार करते हैं, क्योंकि वे भगवान्‌का असलीतत्त्व नहीं जानती थीं॥ २॥ परन्तु सुन्दर कमलके कोश समान मुख, बड़े बड़े बाहु और नेत्र, प्रेमपूर्वक हास्यरस युक्त अवलोकन

श्रीशुक उवाच॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः॥ अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसम्पदा॥१॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम्॥प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः॥ २॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः॥सम्मोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः॥३॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः॥ ४॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम्॥

तथा भगवान्‌के प्रेमसंलापसे स्वयं ही मोहित होकर वे स्त्रियाँ अपने-अपने अनेक नेत्र कटाक्ष रसभरी मनोहर विभ्रमोंसे भगवान्‌के मनको जीतनेमें समर्थ न हो सकीं॥ ३॥ भगवान्‌के वे सोलह हजार स्त्रियाँ गूढहास्ययुक्त कटाक्षों द्वारा अभिव्यक्त अभिप्रायपूर्ण मनोहर भ्रूमण्डलसे छोड़े गये सुरत सम्बन्धी रहस्य कथनोंमें प्रगल्भ कामदेवके बाणों तथा अन्यान्य कामशास्त्र प्रसिद्ध साधनोंसे भी उनके मनको क्षोभित करनेमें समर्थ न हो सकीं॥४॥ जिनकी पदवीको ब्रह्मा आदि भी ठीक-ठीक नहीं जानते उन रमापति भगवान् श्रीकृष्णको पाकर उन स्त्रियोंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अविछिन्न रूपसे बढ़ रहे अनुराग हास्ययुक्त मनोहर अवलोकन और नूतन सङ्गममें उत्सुकता आदि नानाविधि विभ्रमविलासोंसे इस तरह आनन्दपूर्वक उनकी सेवा की ॥५॥ दस दस पुत्र पैदा करनेवाली भगवान् श्रीकृष्णकी उन स्त्रियोंमें आठ पटरानियाँ थीं, जिनका मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ। हे राजन्, अब प्रद्युम्न आदि उनके पुत्रोंका नाम गिनाता हूँ, सुनिये। भगवान्के आनेपर आगे बढ़कर उन्हें बुला लाकर, आसन देकर, पैर धोकर, पान देकर, बिछौनेपर बैठ जानेके बाद पंखा डुलाकर उनका श्रम दूर करके तथा सुगन्धयुक्त माला पहना कर, उनके बाल सवाँरकर, उन्हें सुलाकर तेल लगा करके स्नान कराकर तथा नानाप्रकारके उपहार देकरके प्रत्येकके सैकड़ों दासियोंके रहते भी उनसबोंने भगवान्की सेवा की ॥ ६ ॥ प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यवान् चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवाँ चारु ये दस पुत्र रुक्मिणीके थे। ये दस पुत्र बल और रूपमें भगवान्के ही सदृश थे,

भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनसङ्गमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥ तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ॥ अष्टौ महिष्यस्त-
त्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७ ॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ॥ सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथा परः ॥८॥ चारुचन्द्रो विचारुश्च
चारुश्च दशमो हरेः ॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥ भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चन्द्रभानुर्बृहद्भानु-
रतिभानुस्तथाऽष्टमः ॥१०॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ॥ साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च
वसुमान् द्रविडः क्रतुः ॥ जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसम्मताः ॥ १२ ॥ वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः ॥ आमः शङ्कुर्वसुः
श्रीमान्कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ॥ शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥

उनसे तनिक भी कम नहीं थे ॥ ८, ९ ॥ भानु, सुभान, स्वर्भानु, प्रभानु, भानमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु तथा आठवाँ अतिभानु एवं श्रीभानु और प्रतिभानु ये दस पुत्र सत्यभामाके थे। साम्ब, सुमित्र, पुरुजित् शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु वसुमान् द्रविड तथा क्रतु ये दस पुत्र जाम्बवतीके थे। ये साम्ब आदि दसों पिताके सदृश बल और रूपमें थे ॥ १०,११ ॥ वीरचन्द्र, अश्वसेन, चित्रगुवेगवान् वृष, आम, शङ्कु वसु, श्रीमान्, कुन्ति ये दस पुत्र नाग्नजिती के थे ॥ १३ ॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुवाहु, भद्र एकल, शान्ति, दर्श पूर्णमासी,

---

इस विषयमें श्रीपराशरजीने—'कन्यापुरे सकन्यनां षोडशातुलविक्रमः। शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामते ॥' इसीमतके अनुसार श्रीधरस्वामी भगवान्की सोलहहजार एकसौ साधारण स्त्रियाँ थीं यह मानते हैं। इनके अतिरिक्त आठ पटरानियाँ थीं, जिनका वर्णन भी इसी भागवतमें अलग मिलता है। उनके नाम ये हैं—भैष्मी जाम्बवन्ती भामा सत्या भद्रा च लक्ष्मणा। कालिन्दी मित्रविन्दा चेत्यष्टौ पट्टमहास्त्रियः ॥ यों कुल मिलकर भगवान्की सोलहहजार एकसौ आठ स्त्रियाँ थीं, यह प्रसिद्ध है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और सबसे छोटा सोम ये दस पुत्र कालिन्दीके थे ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सहओज और अपराजित् ये दस पुत्र माद्रीके थे ॥ १५ ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुधा ये दस पुत्र मित्रविन्दाके थे ॥ १६ ॥ संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम आयु और सत्यक ये दस पुत्र भद्राके थे ॥ १७ ॥ दीप्तिमान् ताम्रतप्त इत्यादि दस पुत्र भगवान् श्रीकृष्णके रोहिणी केगर्भसे पैदा हुए थे। हे राजन्, भोजकटनामकन गरीमें रहनेवाले रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नके वीर्यसे महाबली अनिरुद्ध उत्पन्न हुए थे। हे नृप, इन सबोंके पुत्र-पौत्र करोड़ोंकी संख्यामें हुए थे, क्योंकि श्रीकृष्णके पुत्रोंकी माताओंकीसं ख्या सोलह हजार थी ॥ १८, १९ ॥ राजा परीक्षित्ने कहा—हे मुने, श्रीकृष्णसे युद्धमें पराजय पाकर रुक्मीने शत्रुके पुत्र प्रद्युम्नको अपनी कन्या कैसे दे दी, वह तो भगवान् श्रीकृष्णको मारनेका अवसर ढूढ़

प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ॥ माद्रयाः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च ॥ महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ॥ जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥ पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ २० ॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ॥ विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥ २२ ॥ यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥ व्यतरद् भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥ २३ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ॥

रहा था। हे विद्वन्, उन दोनों शत्रुओंका आपसमें विवाहसम्बन्ध किस तरह हुआ, यह सब कृपाकर मुझे सुनाइये ॥ २० ॥ भूत, भविष्य, वर्तमान हमलोगोंकी इन्द्रियोंके अगोचर, बहुत दूर स्थित भित्ती आदिसे अन्तर्हित सभी वस्तुएँ भी योगी लोग अपनी योग दृष्टिसे अच्छीतरह देख लेते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, स्वयम्वरमें रुक्मवती द्वारा पति चुन लिये जानेपर युद्धमे इकट्ठे हुए सभी राजाओंको जीतकर साक्षात् अनङ्ग ही अङ्गोंसे युक्त होकर यानी कामदेवके अवतार प्रद्युम्नजी अकेले ही उसे उठा लाये ॥ २२ ॥ कृष्ण द्वारा रुक्मी यद्यपि पूर्व वैरका स्मरण कर रहा था, तथापि उसने अपनी बहनका प्रिय करनेकी चाहसे अपनी कन्या भानजेको दे दी ॥ २३ ॥ हे राजन्, कृष्णकी सभी रानियोंमें प्रत्येकके एक-एक पुत्री भी हुई थी। उनमें सबसे बड़ी रुक्मिणीकी पुत्री थी। कृतवर्माके पुत्र बलीने रुक्मिणीकी कन्या विशालनेत्रोंवाली उस चारुमतीके साथ विवाह किया ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णसे वैर रखते हुए भी अपनी बहन रुक्मिणीका हित करनेकी इच्छासे अपनी बहनके प्रेमपाशमें विबद्ध होकर योनिसबन्धी अधर्मको जानते हुए भी रुक्मीने भगवान्के दौहित्र अनिरुद्धको रोचना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नामकी अपनी पौत्री दे दी ॥ २५ ॥ हे राजन्, उसी विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, श्रीकृष्ण और बलदेवजी भी साम्ब, प्रद्युम्नादिके साथ लेकर भोजकट नगरमें गये ॥ २६ ॥ उस विवाहोत्सवके समाप्त हो जानेपर कालिङ्ग आदि राजाओंने क्रुद्ध होकर रुक्मीसे कहा कि जुआ खेलकर बलदेवजीको जीत लो ॥ २७ ॥ बलदेव जुआ खेलना नहीं जानता, तथापि इसको इसका भारी व्यसन है। इस तरह उन राजाओंके कहनेके बाद रुक्मीने बलदेवजीको बुलाकर उनके साथ जुआ खेलने बैठ गया ॥ २८ ॥ उस जुएमें बलदेवजीने सौहजार, तथा दसहजार रुपये का दाँव लगाये। उन्हें रुक्मीने जीत लिया। यह देखकर कालिङ्ग बहुत जोरसे दाँत निपोरकर बलदेवजीकी तरफ हँसने लगा। उसकी यह हँसी बलदेवजीसे न सही गयी ॥ २९ ॥ तब रुक्मीने लाख रुपयों का दाँव लगाया उनको बलदेवजीने जीत लिया। यह देख धूर्तता करते हुए कहा—यह दाँव मैंने जीता है ॥ ३० ॥ रुक्मीकी धृष्टता देखकर पूर्णिमाके दिन क्षुभित हुए समुद्रके समान स्वभाविक लाल लाल आँखों वाले बलदेवजी क्रोधसे क्षुभित हो गये और उन्होंने अत्यन्त क्रोध करके दस करोड़ मुहरोंका दाँव लगा दिया ॥ ३१ ॥ अरब

रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ॥ पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद् व्यसनं महत् ॥ इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ॥ तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गः प्राह सद् बलय ॥ दन्तान्सन्दर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥२९॥ ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद् ग्लहं तत्राजयद् बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥३०॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ॥ रुक्मी जितं मयाऽत्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ सङ्कर्षणं परिहसन्बभाषे कालचोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥ ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥

रुपयों के इस दाँवको भी बलदेवजीने धर्मसे जीत लिया और रुक्मीने पुनः कपट करके कहा—इसे भी मैंने ही जीता है। इस विषयमें यहाँ पर जो प्रश्न निर्णायक बैठे हैं वही बतावें कि किसने जीता है। आप लोग क्या कहते हैं ऐसा बलदेवजीने कहा— ॥ ३२ ॥ तब आकाशवाणी हुई कि अगर धर्मसे बोलकर कहा जाय, तो यह दाँव बलदेवजीने ही जीता है। रुक्मी झूठ बोलता है ॥ ३३ ॥ दुष्ट राजाओंके बहकावेमें आकर इस आकाशवाणीका तिरस्कार करके कालसे प्रेरित हो हँसते हुए रुक्मीने बलदेवजीसे कहा ॥ ३४ ॥ आप लोग जङ्गलोंमें घूम-घूमकर गौएँ चरानेवाले ग्वाले ही तो हैं। जुआका हाल क्या जानें। इसके विद्वान् आप लोग नहीं हैं राजा लोग ही जुआ खेलना और युद्धमें बाण चलाना जानते हैं। आपके जैसे मनुष्य नहीं ही जानते ॥ ३५ ॥ इसप्रकार रुक्मी द्वारा निन्दा करनेपर और अन्य राजाओं द्वारा हँसी उड़ाने पर क्रुद्ध होकर बलदेवजीने अपनी गदा उठाकर राजाओंकी सभामें ही रुक्मीको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मार डाला ॥ ३६ ॥ तदनन्तर बलदेवजीने झटपट दौड़कर दस डेग पर ही कलिङ्गको पकड़कर, जिन दाँतोंको निकालकर वह हँसा था, उसके वे सब दाँत क्रोधपूर्वक तोड़ डाले ॥ ३७ ॥ अन्य राजे भी बलदेवजीकी गदाकी चोटसे बाहु, जाँघ और सिर आदिके टूट-फूट जानेसे रुधिर आप्लावित हो डरके मारे वहाँसे बड़े वेगसे भाग निकले ॥ ३८ ॥ मेरा स्नेह कहीं टूट

क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दन्तानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥ अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिणीबलयो राजन्स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥ रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

न जाय, उस विचारसे भगवान् श्रीकृष्णजी अपने साले रुक्मीके मर जानेपर रुक्मी और अपने भाई बलदेवजीके विषयमें यह काम अच्छा हुआ या बुरा, यह कुछ भी न बोल सके ॥३९॥ तदनन्तर सूर्या नामकी पौत्रवधुके साथ अनिरुद्ध नामक वरको रथपर बैठाकर सब काम निबट जानेके बाद भगवान् श्रीकृष्णके आश्रित बलराम आदि सब यादव भोजकट नगरको छोड़कर वहाँसे द्वारका चले आये ॥ ४० ॥

इकसठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्की सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियोंमें प्रत्येकके दस पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई थी। उन भगवान् श्रीकृष्णके सब लड़कोंमें रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्न सबसे बड़े थे। वैदर्भीके उदरसे उत्पन्न भगवान्की चारुमती पुत्रीका विवाह कृतवर्माके लड़केके साथ हुआ था। स्वयम्बर में सभीराजाओंको जीत कर प्रद्युम्नने अपने मामा रुक्मीकी लड़की रुक्मवती से विवाह किया था। रुक्मवतीमें प्रद्युम्नसे अनिरुद्ध उत्पन्न हुए थे। रुक्मीने अपनी बहनका हित करनेकी इच्छा से अपनी पौत्री रोचनाका विवाह अनिरुद्धजीसे कर दिया था। उस विवाहमें अनेक राजाओंके कहनेपर रुक्मीने जुआ खेलनेके लिये बलदेवजीको बुलाया। उस जुएमें बलदेव जीके द्वारा हराये जानेपर भी रुक्मी अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर रहा था। और वहाँपर उपस्थित कलिङ्गराज भी उसकी बातका समर्थन करते हुए दाँत निपोरकर हँस रहा था, तबतक आकाशवाणी हुई कि 'यदि धर्मपूर्वक कहा जाय, तो यही कहना पड़ेगा कि बलदेवजीने ही यह एक अरबकी बाजी मारी है'। यह सुनते ही रुक्मी क्रुद्ध होकर कहने लगा; आपलोग जंगलोंमें गाय चरानेवाले जुएका हाल क्या जानें कि जुआ कैसे खेला जाता है? यह तो हमारे जैसे राजे ही जानते हैं। उसकी यों तिरस्कार भरी बातें सुनकर बलदेवजीने
१५. तुरत अपना परिघ उठाकर रुक्मीको मार दिया और उस द्यूतसभाके भीतरसे मारे डरके भागे जा रहे कलिङ्गराजका दाँत तोड़ डाले। और राजे उनकी गदा की चोट से घायल होकर भाग गये इधर कृष्णजी इस विषय में मौन ही रहे। इकसठवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ❋

(ऊषाके साथ अनिरुद्धका मिलन)

राजाने कहा—हे महायोगिन् बाणकी कन्या ऊषाके साथ भगवान् अनिरुद्धने कैसे विवाह किया और उस विवाहमें शङ्कर और श्रीकृष्णका महान् घोरयुद्ध कैसे हुआ था, यह आख्यान सुनाइये, मैं यह सब सुनना चाहता हूँ ।।१।। श्रीशुकदेवजीने कहा–हे राजन्, जिस महादानी महात्मा बलिने वामनरूपधारी भगवान्को सम्पूर्ण पृथ्वी दानमें दे दी थी, उस पराक्रमी बलिके बाण आदि सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा बाणासुर था ।। २ ।। उस बलिका औरसपुत्र बाण शङ्करकी भक्तिमें सदा रत रहता था। वह मान्य उदार चरित सत्य प्रतिज्ञ, दृढ़व्रत तथा बहुत बुद्धिमान् था ।।३।। वह पूर्वकालमें शोणित नामक रम्य नगरमें राज्य करता था, शम्भुकी दयासे उसके सामने समस्त देवगण सेवक समान रहते थे। उसने एक बार अपने हजारों भुजाओं द्वारा ताण्डव नृत्यके अवसरपर, डमरू बजाकर भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया ।। ४ ।। तब समस्तभूतोंके ईश, भक्तवत्सल शरणमें रखनेवाले शङ्करजीने उसके ऊपर अति

(राजोवाच ।। बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ।। तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशङ्करयोर्महत् ।। एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ।।१।।) श्रीशुक उवाच ।। बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ।। [येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ।। २ ।। तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।। मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः ।। ३ ।। शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा ।। तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव तेऽमराः] सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ।। ४ ।। भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ।। वरेण छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ।। ५ ।। स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ।। किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ।। ६ ।। नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ।। पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ।। ७ ।। दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ।। त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ।। ८ ।। कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ।। आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ।। ९ ।। तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः

प्रसन्न होकर वर माँगनेके लिए उससे कहा। तदनन्तर उसने भगवान् शङ्करसे यही वर माँगा कि आप मेरे नगरके रक्षक बने रहें और इस वरसे भगवान् शङ्करको उसने अपने वशमें कर लिया ।। ५ ।। अपने बलसे अति गर्वको पाकर सर्वदा पासमें रहनेवाले शङ्करसे अपने लालवर्णके किरिटसे उनका चरणकमल स्पर्श करते हुए उसने कहा ।। ६ ।। हे महादेव, संसारके गुरु ईश्वर आपको प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण मनोरथोंसे रहित मनुष्योंकी कल्पतरुकी तरह कामनाएँ पूर्ण करनेवाले आप हैं ।। ७ ।। आपने मुझे हजार भुजाएँ दे दी हैं। यह तो मुझे भार स्वरूपही जान पड़ती हैं तीनोंलोकमें आपको छोड़कर कोई भी अपने समान योद्धा मुझे नहीं दीख पड़ता ।। ८ ।। हे आद्य, एक दिन मैं अपनी हजारों भुजाओंमें खुजलाहट आ जाने से दिग्गजोंसे लड़नेकेलिये पहाड़ों को चूर-चूर करता हुआ चला, यह देखकर दिग्गज सब डरके मारे भाग गये ।। ९ ।। यह सुनकर भगवान् शङ्करने क्रुद्ध होते हुए कहा—हे मूढ़, जब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तुम्हारी ध्वजा कट जायेगी, तब मेरे समान बलावान् से तुम्हारा युद्ध होगा, उसमें तुम्हारा गर्व नष्ट हो जायेगा ॥ १० ॥ हे राजन्, यह सुन कर कुमति वह बाण प्रसन्न होकर अपने गृह आया और शङ्करके आज्ञानुसार पताका भङ्ग होनेपर ही गर्व नष्ट होगा, इस बातका स्मरण करता हुआ उसीकी प्रतीक्षामें वह कुबुद्धि रहने लगा ॥ ११ ॥ उसकी ऊषा नामकी कन्या ने स्वप्नमें, न कानसे सुने गये, न नेत्रसे देखे गये प्रद्युम्नके लड़के सुन्दर अनिरुद्धके साथ रति सुखका अनुभव किया ॥ १२ ॥ नींद टूटनेके बाद वह ऊषा अनिरुद्धको वहाँ न देखकर हे कान्त, कहाँ हो, ऐसी कहती हुई उठ बैठी और सखियोंके बीचमें रतिसे अत्यन्त श्रान्त अपनेको देखकर अति लज्जाको प्राप्त हुई ॥ १३ ॥ बाणका मन्त्री कुम्भाण्ड था उसकी कन्या चित्रलेखा ऊषाकी सखी थी उस चित्रलेखाने कौतूहल वश अपनी सखी ऊषासे पूछा ॥ १४ ॥ हे सुभ्रू, किसको तुम ढूँढ रही हो ? तुम्हारा क्या मनोरथ है ? हे राजकुमारि, तुम्हारा पाणिग्रहण करनेवाले कौन हैं ? मैंने अभी तक उन्हें नहीं देखा ॥ १५ ॥ तब ऊषाने कहा—हे सखि, स्वप्नमें मैंने कमलनेत्र, श्यामवर्ण, पीताम्बर पहने, विशालबाहु एवं स्त्रियोंका हृदयङ्गम

केतुस्ते भज्यतेयदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥ इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं
कुधीः ॥ ११ ॥ तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ॥ कन्याऽलभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥ १२ ॥ सा तत्र तमपश्यन्ती
क्वासि कान्तेति वादिनी ॥ सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ १३ ॥ बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्य-
पृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १४ ॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं नतेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥
ऊषोवाच ॥ दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयङ्गमः ॥ १६ ॥ तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाऽधरं
मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये
नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथालिखत् ॥ १९ ॥ मनुजेषु
च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया ॥

कोई एक पुरुष श्रेष्ठ देखा है ॥ १६ ॥ अपना अधरामृत पिलाकर अतृप्तावस्थामें ही मुझे दुःखके सागरमें फेंककर वह कहीं चला गया है। हे सखि, मैं उसी कान्तको ढूँढ़रही हूँ ॥ १७ ॥ यह सुनकर चित्रलेखाने कहा—हे सखि, यदि वह तुम्हारा मनहरण करनेवाला पुरुष तीनों लोकके अन्दर कहीं भी होगा, तो मैं अवश्य ही उसे ले आऊँगी, और तुम्हारी विरह व्यथा दूर करूँगी, तुम अपने कान्तको इनमें बतलाओ तो सही ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर चित्रलेखाने देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्न, दैत्य, विद्याधर, यक्ष तथा अनेक मनुष्योंका चित्र खींचकर उसके सामने रख दिया ॥ १९ ॥ चित्रलेखाने मनुष्योंमें वृष्णियोंका, उनमें भी शूरसेन, वसुदेव, श्रीकृष्णजी, बलदेवजी और प्रद्युम्नजीका चित्र खींचा। ऊषा प्रद्युम्नके चित्रको देखकर 'यह तो मेरे श्वसुरजीका चित्र है यों अपने मनमें जानकर लज्जायुक्त हो गई ॥ २० ॥ हे राजन्, अनिरुद्धजीके चित्रको देखकर ऊषाने लज्जाके मारे नीचे मुख करके मुसकुराकर कहा—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यही वह है, यही वह है ॥ २१ ॥ तब योगिनी चित्रलेखा यह चित्र तो कृष्णके पौत्र तथा प्रद्युम्नके लड़के अनिरुद्धका है इसतरह उसे समझाकर हे राजन्, आकाशमार्गसे भगवान् कृष्ण द्वारा पालित द्वारकाको उड़ गई ॥ २२ ॥ वहाँ जानकर सुन्दर पलंगपर लेटे हुए अनिरुद्धको अपनी योगमायासे उठाकर शोणितपुर नामक अपने नगरमें लाकरके उसने ऊषाको दिखलाया ॥ २३ ॥ उस सुन्दर वरको देखकर बहुत प्रसन्नचित्त हो उसने अन्यपुरुषों द्वारा न देखने योग्य अपने गृहमें प्रद्युन्नके पुत्र अनिरुद्धके साथ चिरकालतक रमण किया ॥ २४ ॥ बहुमूल्य वस्त्र, सुगन्धिततैल, चन्दन, धूप, दीप, आसन आदि तथा पान करने एवं भोजन करने योग्य नानाविध भोज्यपदार्थों और मधुरवचनोंके द्वारा सरल सेवापूर्वक अनिरुद्धका ऊषाने खूब सत्कार किया ॥ २५ ॥ निरन्तर बढ़ रहे प्रेमसे युक्त ऊषाने कन्याओंके अन्तःपुरमें अनिरुद्धको बहुत दिनोंतक छिपा रखा। ऊषाके द्वारा अपहृत इन्द्रियोंवाले हो अनिरुद्ध जो उन अपने बीते हुए अनेक दिनोंको बिलकुल नहीं जान पाये ॥ २६ ॥ यों लगातार बहुत दिनों तक अनिरुद्ध द्वारा भोगी जा रही उस ऊषाको छिपानेमें अयोग्य गर्भ आदि

सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥ सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ॥ दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २४ ॥ परार्ध्यवासः स्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ॥ नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः ॥२६॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ॥ हेतुभिर्लक्षयाञ्चक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥२७॥ भटा आवेदयाञ्चक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २८ ॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥ २९ ॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ॥ त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्रजम् ॥

लक्षणों द्वारा नष्ट कुमारी व्रत एवं अतिप्रसन्नचित्त देखकर द्वारपालोंने अपने राजासे कहा—हे राजन्, आपकी लड़कीकी अवस्था बढ़ गई है। हमलोग ऐसा समझते हैं कि आजकल इस कन्याका आचरण आपके कुलको कलंकित करनेवाला हो रहा है ॥ २७, २८ ॥ हे प्रभो, प्रमादरहित हमलोगोंने ऊषाको अच्छी तरह छिपाकर अन्तःपुरमें रखा था। वहाँ तो किसी पुरुषकी दृष्टि भी न जा सकती थी, फिर वह किसके द्वारा किस तरह दूषित हो गई, यह हम लोग अन्वेषण करनेपर भी नहीं जान पा रहे हैं ॥ २९ ॥ इसप्रकार अपने सेवकों द्वारा अपनी कन्याका दूषण सुनकर बाणने अतिशीघ्र कन्याके घरमें आकर प्रद्युम्नके लड़के अनिरुद्धको वहाँ उपस्थित देखा ॥ ३० ॥ जो तीनों भुवनोंमें सर्वोत्तम सुन्दर, पीताम्बर पहने, कमल-नेत्र, विशालबाहु, कानके कुण्डल; घुँघराले बालों और मन्द मुसकुराहट पूर्वक अवलोकनोंसे मुखारविन्दकी शोभाको बढ़ा रहे थे ऐसे कामके पुत्र अनिरुद्धको देखा ॥ ३१ ॥ वह सर्वमङ्गला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपनी प्रियाके साथ जुआ खेल रहे थे। वह अपनी भुजाओंमें बद्ध प्रियाके अङ्गसङ्गसे लगे हुए स्तनकुंकुमसे युक्त मल्लिका-पुष्पोंकी माला धारण किये हुए अपनी प्रियाके सम्मुख बैठे हुए थे। उन्हें देखते ही बाणासुर आश्चर्यके सागरमें डूब गया ॥ ३२ ॥ हथियार लिए हुए अनेक सैनिकोंसे घिरे बाणासुरको गृहमें प्रविष्ट हुए देखकर अनिरुद्धजी धनुषपर बाण चढ़ाकर और परिघ नामक शस्त्रको अपने हाथमें लेकर हाथमें दण्ड धारण करके खड़े हुए यमराजकी नाईं सबको मारनेके लिए तैयार हो गये ॥ ३३ ॥ जिसप्रकार शूकरका झुण्ड मारनेके लिये दौड़े सब ओरसे आए हुए कुत्तोंके समूहको मार भगा देता है, ठीक उसी तरह अनिरुद्धजीके मारनेके लिये सब ओरसे दौड़े आए हुए सम्पूर्ण उन राजभटोंको मारने लगे। उनसे मारे जा

बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२ ॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः ॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ॥ ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥ तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

रहे वे सब सिर, छाती, बाँह कट जानेसे अतिकष्ट पाकर भवनसे निकलकर बाहर भाग चले ॥३४, ३५॥ तब बलिपुत्र महाबलवान् बाणने क्रुद्ध होकर अपनी सेनाको मारते हुए अनिरुद्धको नागपाशसे बाँधकर अपने वशमें कर लिया। ऊषा अनिरुद्धको बन्धनमें पड़े देखकर अत्यन्त शोक और विषादसे विह्वल हो आँसुओंकी झड़ी लगाती हुई रोने लगी ॥ ३६ ॥

बासठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे महीपते, शोणितपुर नामक नगरमें बाणासुर राज्य करता था। उसने भगवान् शङ्करके ताण्डवनृत्यमें बहुत सुन्दर बाजा बजाया था, जिससे भगवान् अति प्रसन्न होकर उसके नगर रक्षक हो गये थे। उसकी परमसुन्दरी ऊषा नामकी एक लड़की थी। उसने एकदिन एक नवयुवकसे स्वप्नमें सुरत संभोग किया। नींद टूटनेपर वह अपने स्वप्नकालीन प्रियतमको ढूढ़ने लगी। उसे उन्माद ग्रस्त देखकर उसकी परमसखी चित्ररेखाने अनेक उस समयके प्रसिद्ध राजाओंका चित्रखींचकर उसके सामने रख दिया और कहा—हे सखि, बतलाओ, इनमें तुम्हारा कौन चित्तचोर है? भगवान् प्रद्युम्नका चित्र देखते ही वह लज्जासे संकुचित हो गयी। तदनन्तर अनिरुद्धका चित्र देखते ही उसने कहा—यही है, यही है। यह सुनकर योगिनी चित्ररेखा पलङ्गपर सोते हुए आकाशमार्गसे जाकर शोणितपुरमें उठा लायी। अनिरुद्धको अपने अन्तःपुरमें छिपाकर ऊषाके अनेक दिनोंतक विहार करनेके बाद एक दिन उसे गर्भके चिह्नोंसे युक्त खुशदिल देखते हुए द्वारपालोंने जाकर बाणासुरसे कहा—महाराज, आपकी लड़कीका चाल-चलन ठीक नहीं दीखता। हमलोगोंकी बराबर निगरानी रहते हुए भी न जाने कौन कैसे अन्तःपुरमें प्रविष्ट हो गया है। उसके लक्षणोंसे तो यही प्रतीत हो रहा है कि वह छोकड़ी आपके निर्मल कुलमें दाग लगाकर ही छोड़ेगी। यह सुनतेही बाणासुरने मारे क्रोधके लाल-लाल आँखें करके झट अन्तःपुर में अनेक सैनिकोंके साथ आकर अनिरुद्धको अपनी लड़कीके साथ जुआ खेलते देखा। उस समय अपनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लड़की ऊषाको अनिरुद्धके गोदमें पड़ी देखकर मारे क्रोधके वह जल गया। बाणासुरके सैनिकों तथा उसको देखते ही प्रद्युम्न लोहेका दण्ड लेकर उठ खड़े हो गये और लगे उन सैनिकोंको मारने। अपने सैनिकों को अनिरुद्धजीके द्वारा मार खाते देखकर बाणासुरने उन्हें नागपाशमें बाँध लिया। पुका फारकर रो रही आँसुओंकी झड़ी लगा रही उस ऊषाको देखते हुए अनिरुद्धजी कारागारको पहुँचा दिये गये। बासठवाँ अध्याय समाप्त।

❀ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ❀

(बाणासुर और यादवोंके संग्राममें भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा बाणासुरकी भुजाओंका भेदन तथा माहेश्वर ज्वरकी स्तुति।)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अनिरुद्धजीको न देखे हुए उनके लिये शोक करते हुए उनके बन्धुओंके वर्षाके चार मास पूरे बीत गये ॥ १ ॥ तदनन्तर नारदके द्वारा अनिरुद्धके पराक्रम तथा बाणासुरके द्वारा प्राप्त बन्धनका सारा समाचार पानेपर यदुवंशी सब जिनके देवता भगवान् श्रीकृष्ण ही थे, शोणितपुर नामक नगरमें पहुँचे ॥ २॥ श्रीकृष्ण और बलदेवके सहायक

श्रीशुक उवाच ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ॥ नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतोदिशम् ॥ रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यान-प्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥ बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशंकरयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह

प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्रनामक श्रेष्ट यदुवंशियोंने बारह अक्षौहिणी सेनासे समन्वित हो बाणसुरके नगरको चारों तरफसे अच्छी तरह घेर लिया ॥ ३, ४ ॥ नगरके बाग, प्राकार, अटारी और फाटकोंको तोड़े जाते देखकर अतिक्रुद्ध हो उतनी ही यानी बारह अक्षौहिणी सेना साथमें ले करके बाणासुर भी युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा ॥ ५ ॥ बाणासुरकी ओरसे श्रीशङ्करजी भी प्रमथादि अपने पुत्रोंके सहित नन्दी वृषभपर बैठकर श्रीकृष्ण और बलरामजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन्, वह रोंगटे खड़ा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर देनेवाला महाभयङ्कर परम अद्भुत युद्ध कृष्ण और शंकरमें, प्रद्युम्न और कार्तिकेयमें, कुम्भाण्ड कूपकर्ण और बलराममें, साम्ब और बाणासुरके लड़के में तथा सात्यकि और बाणासुरमें हुआ ॥ ७, ८ ॥ ब्रह्मादि देवगण, इन्द्र, समस्त, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ और यक्ष सब विमानपर बैठकर युद्ध देखनेके लिये वहाँपर आये हुए थे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णजीने शङ्करके अनुचर भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, गणेश, प्रेतसमूह, मातृसमूह, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षसों आदिको अपने धनुषके तीखे-तीखे बाणोंसे घायल कर भगा दिया ॥१०, ११॥ श्रीशङ्करजीने नानाप्रकारके अस्त्र श्रीकृष्णजीके ऊपर छोड़े, पर श्रीकृष्णजीने अनायास ही अपने बाणोंसे उनके सब अस्त्रोंको शान्त कर दिया ॥१२॥ भयंकर ब्रह्मास्त्रके लिये ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्रके लिये पार्वतास्त्र, आग्नेयबाणके लिये पार्जन्यबाण और पाशुपतास्त्रके लिये अपना नारायणास्त्र छोड़कर भगवान्‌ने उनके सभी देवास्त्र नष्टकर डाले ॥ १३ ॥

संयुगः ॥ साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥ शङ्करानुचराञ्छौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥१०॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥ मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भतम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥१४॥ स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ॥ असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्यः शिखिनापाक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥ कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ॥ दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पञ्चशतानि वै ॥ एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान्धनूंषि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥ ततस्तिर्यङ्मुखो

शङ्करजीको जृम्भण नामक अस्त्रसे मूर्च्छित करके उन्हें जृम्भित हो रहे छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्र बाणासुरके पूतनास्त्रको तलवार, गदा और बाणोंसे काटने लगे ॥ १४ ॥ कार्तिकेयजी प्रद्युम्नके बाणोंसे घायल होकर चारों तरफ अपने शरीरसे रुधिरको बहाते हुए अपने मयूरपर चढ़कर युद्धसे भाग निकले ॥१५॥ बलदेवजीने मूसलसे घायल होकर कुम्भाण्ड और कूपकर्ण पृथ्वीपर गिर पड़े तथा मार दिये गये स्वामीवाले उनके सैनिक सब व्याकुल हो चारों ओर भागने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर बाणासुर अपनी सेनाओंका नाश होते देख अति क्रुद्ध करके रथपर बैठकर सात्यकिके साथ युद्ध करना बन्द करके श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें दौड़ पड़ा ॥ १७ ॥ सामने आकर उस रणोन्मत्त बाणासुरने इकट्ठे पाँच सौ धनुष हाथमें खींचकर प्रत्येक धनुषके ऊपर दो दो बाण चढ़ा दिये ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजीने उसके पाँच सौ धनुष एकही बारमें काट दिये और उसके सारथि, रथ, तथा घोड़ोंको मारकर अपना शंख बजा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिया ॥ १६ ॥ इसके बाद बाणकी माता कोटरा बालोंको खोलकर नंगी होकर अपने पुत्रकी रक्षाके लिये कृष्णके आगे आकर खड़ी हो गई ॥ २० ॥ तब श्रीकृष्णजीने उस नंगी स्त्रीको न देखते हुए नीचे अपना मुखकर लिया। उसी बीचमें बाण रथहीन एवं धनुषहीन हो जानेके कारण डरकर अपने नगरमें भाग गया ॥ २१ ॥ शङ्करजीके सम्पूर्ण भूतगणोंके नष्ट हो जाने-पर तीन पैर और तीन सिरवाला उनका ज्वर वृष्णियोंसे लड़नेके लिये दसों दिशाओंको जानता हुआ भगवान्‌की ओर दौड़ा ॥ २२ ॥ तब श्रीकृष्णजीने माहेश्वर ज्वरको अपनी ओर आते हुए देखकर अपना नारायण ज्वर छोड़ दिया। इसके बाद माहेश्वर ज्वर और नारायण ज्वर दोनों आपसमें लड़ने लगे ॥ २३ ॥ आखिरमें माहेश्वरज्वर नारायणज्वरसे पीड़ित होकर किसी अन्यको रक्षक न जानकर डरके मारे चिल्लाने लगा। तदनन्तर वह माहेश्वरज्वर श्रीकृष्णचन्द्रको ही अपना आश्रय जानकर हाथ जोड़ करके स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ माहेश्वरज्वरने कहा—हे देव, अनन्तशक्तिसम्पन्न, सबके रक्षक, सबकी आत्मा, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाशके कारण, वेदोंसे ही गम्य, प्रशान्त जो ब्रह्म हैं वह

नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यधावत
दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥
माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥ २४ ॥
ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥ २५ ॥
कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ॥ तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावै-
र्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतून्बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ २७ ॥ तप्तोऽहं ते तेजसा
दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ॥ तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्ते

आपही हैं। हे भगवन्, आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म जीव, स्वभाव, भूत सूक्ष्म, शरीर, प्राण, अहङ्कार और विकार ग्यारह इन्द्रियाँ एवं पाँच भूत तथा इन सबका संघातरूप जो लिङ्गदेह और उस देहके बीजके अंकुरका उत्पादन, यह सब आपकी माया ही है। इसकी अवधिभूत आपकी मैं शरणमें हूँ ॥ २६ ॥ हे भगवन्, सम्पूर्ण उपाधियोंसे निर्मुक्त रहते हुए भी आप लीलासे ही मत्स्यादि नानाविध रूपोंको प्राप्त करके उनके द्वारा देवताओं, साधुओं तथा वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा करते हैं। कुमार्गगामी एवं हिंसामें रत हुए प्राणियोंका आप संहार करते हैं। पृथिवीके ऊपर पड़े भारको हलका करनेके लिये ही यह आपका जन्म हुआ है। यह आपका लीलावतार है, वस्तुतः आप किसीके पुत्र नहीं हैं ॥ २७ ॥ हे ईश, मैं आपके दुःसह, अति प्रचण्ड, तेजोरूप शीतज्वरसे पीड़ित हूँ। जबतक आशाओं विवद्ध हुए मनुष्य आपके चरणकमलके समीप नहीं जाते हैं तबतक उनका ताप शमन नहीं होता है, अतः हे प्रभो, अब मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ २८ ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—हे त्रिशिर, मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। मेरे शीतज्वरका ताप तुम्हारा दूर हो चला जाय। जो कोई भी यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्वाद हम दोनोंका सुनेगा उसको भी तुमसे भय न होगा ॥ २९ ॥ यह सुनकर माहेश्वरज्वर भगवान् अच्युतको प्रणाम करके चला गया और इतनेहीमें पुनः बाणासुर रथपर चढ़कर श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये युद्धभूमिमें आ गया ॥ ३० ॥ हे राजन्, बाणासुरने हजारों भुजाओंमें अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्र लेकर अति क्रुद्ध होकर श्रीकृष्णके ऊपर अनेक बाण चलाये ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णजीने आते हुए उसके सभी बाणोंको अपने तीखे सुदर्शनचक्रसे वनस्पतीकी शाखाओंकी नाई काट दिया ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णजी द्वारा बाणासुरकी सभी भुजाओंके कटते देखकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरजी चक्रधारी श्रीकृष्णके यहाँ जाकर कहने लगे ॥ ३३ ॥ श्री रुद्रजीने कहा—हे ईश, आपके स्वरूपको न जानकर ही यह आपसे युद्धकर रहा है, क्योंकि आप वाङ्मय वेदोंमें भी छिपे हुए परब्रह्म हैं। निर्मलात्मा पुरुष ही आपको एकमात्र आकाशके समान स्वच्छ और व्यापकरूपसे देख पाते हैं ॥ ३४ ॥ आपकी आकाश ही नाभि है, अग्नि ही मुख है, जलही वीर्य है, आकाश सिर है, समस्त दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय हैं, पृथिवी पैर है, चन्द्रमा मन है, सूर्य नेत्र है, आत्मा अहङ्कार मैं हूँ, समुद्र उदर है और इन्द्रही भुजाएँ

प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ॥ यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥ तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान्बाहूञ्छाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषुच्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ॥ भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशा श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ॥ चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥ ३५ ॥ ॥ रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥ तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ॥ प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥ ३८ ॥ यथैव सूर्यः पिहि-

हैं ॥ ३५ ॥ आपके रोम समस्त औषधियाँ हैं, बादल ही केश है, ब्रह्मा बुद्धि है, प्रजापति लिङ्ग और धर्म हृदय है। इसप्रकार जिसके स्वरूपकी समस्त लोकोंसे कल्पनाकी गई है ऐसे एकमात्र आपही समस्त वस्तुओंमें व्याप्त परमपुरुष हैं ॥ ३६ ॥ हे अप्रच्युतस्वरूप, आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा और संसारके कल्याणके लिये हुआ है। हम सब लोकपाल भी आपके द्वारा पालित होकर ही सातों भुवनोंका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप अपने स्वरूपके अकेले, आदि पुरुष, अद्वितीय, शुद्ध स्वप्रकाश ज्ञानरूप, सबके हेतु और स्वयं हेतुशून्य परमेश्वर हैं। तथापि हे भगवन्, आप समस्त विषयोंको प्रकाशित करनेके लिये अपनी मायाके द्वारा गुणोंके विकारके अनुसार देव, पशु, पक्षी आदि नानाविध शरीरोंमें भिन्न भिन्न रूपसे प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ हे भूमन्, जैसे अपनी मेघरूपी छायासे आच्छादित होकर भी सूर्य अपनी छाया मेघ और मेघ द्वारा ढके हुए घटादि नानाविध पदार्थोंको प्रकाशित करता है वैसेही अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कार्यभूत जीवोंके आवरक अहङ्काररूपी गुणसे जीवोंकी दृष्टिमें अाच्छादित होकर भी स्वयंप्रकाश आप उन सत्त्वादि सभी गुणों तथा गुणी सब जीवोंको भी प्रकाशित करते हैं। अतः सर्वसाक्षीरूप आपका तो संसार है ही नहीं ॥ ३९ ॥ हे परमेश्वर, आप ऐसे हैं कि जिसकी मायासे मोहित बुद्धिवाले होकर मनुष्य पुत्र, गृह, स्त्री आदिमें आसक्त होकरके इस दुःख सागरमें कभी देवयोनियोंमें जन्म पाकर ऊपर उठ जाते और कभी नीच स्थावरादि योनियोंमें पड़कर नीचे गिरते डूबते उतराते रहते हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य इन्द्रियोंके वशीभूत होकर अति तपश्चर्याके बाद कर्माध्यक्ष आप देवके द्वारा दिये गये इस मनुष्य शरीरको पाकर भी आपके चरणोंमें प्रेम नहीं करता वह आत्मवञ्चक पुरुष शोचनीय है ॥ ४१ ॥ जो पुरुष आपके स्वरूपके विपरीत यानी अनात्म अप्रिय और अनीश्वर पुत्र आदिके लिये, जो इन्द्रियोंके विषय हैं, अपने प्रिय आत्मस्वरूप आप ईश्वरको त्याग देता है वह अमृतका त्यागकर विषपान करता है ॥ ४२ ॥ अतः मैं, ब्रह्मा, देवगण और शुद्धहृदयवाले ऋषिगण सब लोग अपनी आत्मा, अत्यन्त प्रिय और ईश्वरस्वरूप आपकी शरणमें सर्वात्मना आये रहते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन्,

तच्छाययया स्वया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ॥ एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ॥ उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥ देवदत्तामिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥ ४१ ॥ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ॥ विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥ अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ॥ अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥ अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव ॥ संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यथात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद् व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ॥ प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः ॥ पार्षदमुख्यो

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाशके हेतु आपही हैं। आप सबमें समान, प्रशान्त, सबके मित्र, आत्मा, ईश्वर, अनन्य, एक और संसारके अधिष्ठान हैं। संसारके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये ही आपको हम सब भजते हैं ॥ ४४ ॥ यह बाणासुर मेरा परमभक्त है और मेरा इष्ट अनुचर है। सेवक भावसे इसने मेरी खूब आराधना की है, अतः हे देव, इसको मैंने अभय वर दे दिया है। इसलिये जैसे आपकी अपने भक्त दैत्यपति प्रह्लादके ऊपर कृपा हो चुकी है वैसेही मेरा भक्त यह बाणासुर भी आपकी कृपा प्राप्त करे ॥ ४५ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजीने कहा—हे शंकरजी, आप जो कुछ कह रहे हैं वह सब आपका प्रिय करनेके लिये हम तैयार हैं आपने जो कुछ निश्चय किया है उसका हमने भी भलीभाँति अनुमोदन किया है ॥ ४६ ॥ चूँकि यह बाणासुर बलिका पुत्र है, इसलिये मेरा भी यह अवध्य ही है, इसे मैं कदापि नहीं मार सकता हूँ, कारण कि मैंने तो प्रह्लादको वर पूर्वमें ही दे दिया है कि तुम्हारे वंशको मैं न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मारूँगा ॥ ४७ ॥ सिर्फ इसका गर्व दूर करनेकी इच्छासे मैंने इसकी सभी भुजाएँ भर काट डाली हैं और इस पृथिवीके ऊपर भारस्वरूप इसकी बहुत-सी सेनाएँ नष्टकर दी हैं ॥ ४८ ॥ अब इसकी जो चार भुजाएँ अवशिष्ट रह गई हैं वे चार भुजाएँ अजर-अमर रहेंगी और यह आपके पार्षदोंमें मुख्य बना रहेगा। अब इसको किसीसे भय नहीं रहेगा ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्ण द्वारा यों अभय वरदान पाकर बाणासुरने श्रीकृष्णको अपना सिर झुकाकर प्रणाम किया और अपनी कन्या ऊषाके साथ अनिरुद्धजीको रथपर बैठाकर भगवान्‌के आगे लाकर उपस्थित किया ॥ ५० तदनन्तर एक अक्षौहिणीसेनासे घिरे, सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणोंसे अलंकृत वधूसहित अनिरुद्धको आगे करके भगवान् रुद्रजीसे अनुमोदित होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी द्वारकाको चल दिये ॥ ॥५१॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजीने अपने पुरवासियों, सुहृदों और ब्राह्मणों द्वारा आगे आकर सत्कृत किये जाते हुए अपनी राजधानी द्वारकापुरीमें प्रवेश किया जो द्वारकापुरी उस समय ध्वजाओं एवं तोरणों आदिसे खूब सजायी गई थी, जिसकी प्रधान सड़कें और चौराहे जलसे भलीभाँति सिक्त किये जा चुके थे तथा शंख, ढोल, दुन्दुभि आदि

भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥ इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः समलङ्कृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥ स्वराजधानीं समलङ्कृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षित-मार्गचत्वराम् ॥ विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम् ॥ संस्मरेत्प्रात-रुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धानयनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

बाजे जहाँ चारों ओर बजाये जा रहे थे ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य सुबह उठकर भगवान् शङ्करजीके साथ श्रीकृष्णके युद्ध और विजय विषयक इस आख्यानका स्मरण करता है उसका कभी किसीसे पराजय नहीं होती ॥ ५३ ॥

तिरसठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नारदमुनिके द्वारा जब भगवान् श्रीकृष्णको यह मालूम हुआ कि अनिरुद्धजी चार महीनोंसे बाणासुरके जेलमें पड़े हैं, तब बारह अक्षौहिणी सेना लेकर शोणितपुरपर उन्होंने चढ़ायी कर दी। भगवान्‌ने नगरको चारों तरफसे घेर लिया। बाणासुरके ओरसे भी भगवान् शङ्करजी अपने गणोंके साथ भगवान्‌से लड़नेके लिए युद्धभूमिमें आ डटे। दोनोंमें खूब लड़ाई जम गई अपनी सेनाको भगवान् शङ्करके नानाविध अस्त्रोंसे घायल होते देखकर भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रसे भगवान् शङ्करको मोहित कर दिया। तदनन्तर अपने बायें हाथोंमें पाँच सौ धनुष और दाहिने हाँथोंमें हजार बाणोंको रखकर बाणासुर रणभूमिमें भगवान्‌के सम्मुख आ धमका। भगवान्‌ने अपने बाणोंसे उसके सभी धनुषोंको एकही साथ काटकर रथ, घोड़ों और सारथिके साथ उस सहस्रबाहु बाणासुरको जमीनपर लेटा दिया। मृत्युकी गोदमें सदाके लिए सोने जा रहे बाणासुरको देखकर उसकी माता कोटरा नग्न होकर भगवान्‌के सामने आकर खड़ी हो गई। उसको नग्न देखते ही भगवान्‌ने अपना मुख नीचे कर लिया। इतने ही में मौका पाकर बाणासुर अपने घरको भाग गया। तदनन्तर भगवान् शङ्करने अपना माहेश्वरज्वर भगवान्‌के ऊपर छोड़ा। भगवान्‌ने भी उसको पराजित करनेके लिए अपना वैष्णवज्वर छोड़ ही दिया। आखिरमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैष्णवज्वरसे माहेश्वरज्वर पराजित हो गया। भगवान्‌की स्तुति करके उनसे निर्भय होकर वह माहेश्वरज्वर वहाँसे निकल गया। इसके बाद फिर बाणासुरने रणभूमिमें आकर भगवान्‌के ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। तदनन्तर क्रुद्ध होकर भगवान्‌ने चार भुजाएँ छोड़कर बाकी उसकी सभी भुजाएँ अपने चक्रसे काट दी। तत्पश्चात् शङ्करजीने भगवान्‌की नानाविध स्तुति करते हुए कहा—भगवन् आप ही सब कुछ हैं आपकी ही आज्ञासे हमलोग इन सातों भुवनोंका पालनपोषण करते हैं। हे प्रभो, यह बाणासुर हमारा प्रिय पात्र सेवक है, अब इसका गर्व चूर हो गया, इसे छोड़ दीजिये। भगवान्‌ने कहा—ठीक है, मेरा भी यह वध्य नहीं है, क्योंकि मैंने पहले ही प्रह्लादको वर दे दिया है कि तुम्हारे कुलका मैं संहार नहीं करूँगा। यह अब खुशीसे जाय। इसको अब किसीसे भय नहीं रहेगा। तदनन्तर बाणासुरने अपनी लड़कीको अलंकृत कर अनिरुद्धके साथ रथपर बैठाकर भगवान् के सामने ला दिया। उसके बाद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपनी पौत्रवधू ऊषा और अनिरुद्धको साथ लेकर द्वारकाको लौट आये। तिरसठवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ❀

(उपवनमें खेल रहे प्रद्युम्न आदि पुत्रोंसे शुष्ककूपमें गिरे नृग द्वारा ब्राह्मण शाप सुनकर ब्राह्मणोंके प्रति अनीति न करनेका उपदेश देना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यादव-कुमार सब उपवनमें विहारको गये ॥१॥ वहाँ जाकर बहुत कालतक खेलनेके बाद प्याससे व्याकुल हो उन्होंने जल ढूँढ़ते हुए जलरहित कूपमें बैठा एक अद्भुत प्राणी देखा ॥ २ ॥ उस कूपमें पहाड़के तुल्य स्थूल गिरगिट देखकर उन्हें अति आश्चर्य हुआ। वे अति दयालु होकर उसे उस कूपसे निकालनेके लिये प्रयत्न करने लगे ॥ ३ ॥ जब सब लड़के चमड़े और सूतोंकी डोरियोंसे बाँधकर कुएँमें गिरे हुए उसको निकालनेमें समर्थ न हो सके, तब उन्होंने

श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥ कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥ चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान्विश्वभावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥ स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ॥ सन्तप्त-

अति उत्सुक होकर भगवान् श्रीकृष्णसे आकर कहा ॥४॥ वहाँ आकर विश्वभावन कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णजीने कूपमें उसे देखकर अनायास ही बाएँ हाथसे निकाल दिया ॥ ५ ॥ वह गिरगिट भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके करकमलका स्पर्श पाते ही अपना गिरगिट रूप छोड़ करके अति शुद्ध स्वर्णके समान सुन्दर आकृतिवाला होकर अद्भुत वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मालाएँ धारण किये हुए स्वर्गीय पुरुषकी तरह मालूम पड़ने लगा ॥ ६ ॥ उसकी सब बातें जानते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णजीने लोगोंमें उसकी ख्यातिके लिये गिरगिट होनेका कारण पूछा—हे महाभाग, सर्वोत्तम रूपवाले आप कौन हैं ? मैं तो देवताओंमें सर्वोत्तम आपको कोई देव समझता हूँ ॥ ७ ॥ हे सुभद्र, यह गिरगिटरूप आपने किस पापकर्मसे प्राप्त किया था ? आप इसके योग्य मालूम तो नहीं पड़ते। यदि आपको कहनेमें किसीप्रकारका सङ्कोच न हो, तो यह आख्यान सुननेके लिये उत्सुक हमलोगोंको कृपया सुनाइये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अनन्तमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा यों पूछे जानेपर राजा नृगने सूर्यके समान देदीप्यमान अपना किरीटयुक्त सिर झुकाकर भगवान् माधवसे कहना प्रारम्भ किया ॥९॥ राजा नृगने कहा—हे प्रभो, राजा इक्ष्वाकुका पुत्र मैं नृग नामका राजा हूँ। दानियोंकी गणना होते समय कभी मेरा नाम भी आपके कानोंमें अवश्य पहुँचा होगा ॥ १० ॥ हे नाथ,

चामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालङ्काराम्बरस्रक् ॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ॥ कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥ आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥ यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः ॥ यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलङ्कृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपः श्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रदां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्टं च

समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणके साक्षी आपसे क्या कोई बात छिपी है, क्योंकि काल भी आपकी दृष्टिको रोक रखनेमें समर्थ नहीं है। तथापि आपकी आज्ञा मानकर जिस कालके कुचक्रसे हमारी यह दशा हुई है उसकी कथा सुनाता हूँ ॥ ११ ॥ पृथ्वीपर जितनी सिकताएँ हैं, आकाशमें जितने तारे हैं, जितनी वर्षामें जलकी धाराएँ गिरती हैं, उतनी ही गायें मैंने दान करके दी थीं ॥ १२ ॥ दूधयुक्त, तरुणी शील, रूप और गुणोंसे युक्त, सुवर्णसे सींग और चाँदीसे खुर मढ़ी, न्याय द्वारा उपार्जित, बछड़ोंसे युक्त, वस्त्र, मालाओं और नानाविध अलङ्कारोंसे भूषित कपिलवर्णकी मैंने अनेक गायें दान दी थीं ॥ १३ ॥ हे भगवन्, मैंने उन युवक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गायें दी थीं जो अपनी तपस्यासे ख्याति प्राप्तकर चुके थे जो सदा वेदाध्ययनमें लवलीन रहते थे, जिनका आचरण दम्भपूर्ण तनिक भी नहीं रहता था, जिनके कुटुम्ब तकलीफ झेल रहे थे, जो ब्राह्मणोंकी वेश-भूषासे सदा अलंकृत रहनेवाले थे और जो गुणशील सम्पन्न सदाचारी थे ॥ १४ ॥ इसके अलावे मैंने अनेक गौएँ पृथ्वी, स्वर्ण, गृह, अश्व, गज एवं दासियोंसे युक्त अनेक कन्याएँ, तिल, चाँदी, अनेक शय्याएँ, वस्त्र, रत्न परिच्छद और बहुतसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रथ ब्राह्मणोंको दान दिये थे, अनेक यज्ञ किये तथा बहुतसी वापी, कूप आदि बनवाये थे ॥१५॥ संयोगवश एक दिन किसी ब्राह्मणकी गौ बिछुड़कर दानकी जानेवाली मेरी गौओंमें आकर मिल गई। मिली हुई गौको न जानकर मैंने भूलसे पुनः वही गौ दूसरे ब्राह्मणको दान दे दी ॥ १६ ॥ उस गौको लिये जा रहे ब्राह्मणको देखकर जिसको मैंने पहले गौ दी थी, उस ब्राह्मणने कहा—'यह गौ मेरी है।' यह सुनकर ले जानेवाले उस ब्राह्मणने कहा—नहीं, भगवन्, यह गौ मेरी है। अभी नृग राजाने मुझे दान दी है ॥ १७ ॥ आपसमें लड़ते हुए वे दोनों ब्राह्मण मेरे पास आये। अपने-अपने स्वार्थ साधनमें वे दोनों लगे थे। गाय ले जानेवाले ब्राह्मणने कहा—राजन्, यह गाय तो आपने दान करके मुझे दी थी, फिर आपने इसका अपहरण कैसे कर लिया? आपने दानमें दी गई मेरी गाय चुरा ली है। यों उन दोनोंकी बातें सुनकर मुझे भ्रम हो गया ॥ १८ ॥ धर्मसंकटमें पड़कर मैंने दोनों ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की कि इस गौके बदलेमें मैं एक लाख सर्वोत्तम गौएँ देता हूँ, आप लोगोंमेंसे कोई एक आदमी यह गौ मुझे दे दें

यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥ कस्यचिद् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ सम्पृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥ तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥ विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ॥ भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद् भ्रमः ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवन्तावनुगृह्णीतां किङ्करस्याविजानतः ॥ समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्ययात्क्रमत ॥ नान्यद् गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥ पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम् ॥ नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ॥ तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ॥ स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता

॥ १९ ॥ अज्ञानवश मैंने ऐसा किया है, अतः आप सब मुझ सेवकपर दया करें। पापके कारण नरकमें गिरते हुए मुझको आपलोग बचावें ॥ २० ॥ तदनन्तर उस गायका स्वामी, जो उस गायको लेकर जा रहा था, 'हे राजन्, मैं अधिक देरतक आपकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता' यह कहकर चल दिया। जिसको मैंने पहले वह गाय दानकर दी थी, वह ब्राह्मण भी 'राजन् मैं लाखों आपकी दूसरी गायें नहीं चाहता' यह कहकर वहाँसे चला गया ॥ २१ ॥ हे देवदेव, जगत्पते, इसी बीचमें यमके दूतों द्वारा मैं यमपुरीमें पहुँचाया गया। वहाँ यमराजने मुझसे पूछा ॥ २२ ॥ हे नृप, प्रथम अपने अशुभ कर्मोंका फल भोगोगे या शुभ कर्मोंका फल भोगोगे? तेजोमय लोक प्राप्त करानेवाले तुम्हारे दान और धर्मका मैं अन्त नहीं देखता ॥ २३ ॥ तब मैंने कहा—हे देव, प्रथम अशुभ कर्मोंका मैं फल भोगना चाहता हूँ, मेरा यह वाक्य सुनकर यमराजने कहा—तब गिर जाओ। ऐसा कहतेही हे प्रभो, मैंने अपनेको गिरगिट होकर नीचे गिरते देखा ॥ २४ ॥ हे केशव, मैं ब्राह्मण भक्त दानी और आपका दास था। मुझे आपको देखनेकी बड़ी अभिलाषा थी, इसीलिये अभीतक मेरी पूर्वजन्मकी स्मृति विध्वस्त नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुई है ॥ २५ ॥ हे विभो, आप परमात्मा हैं। योगेश्वरोंसे उपनिषद्‌रूप चक्षुद्वारा शुद्धान्तःकरणमें आप देखे जाते हैं अनेक व्यसनोंसे अन्धबुद्धि मेरे सामने आकर कैसे आपने दर्शन दिये, क्योंकि आप तो अधोक्षज हैं अर्थात् आँखोंसे न दिखाई पड़नेवाले हैं। जिसका संसार छूट जानेवाला बदा रहता है उसीको यहाँ आपका दर्शन मिलता है ॥ २६ ॥ हे देवदेव, हे जगन्नाथ, हे गोविन्द, हे पुरुषोत्तम, हे नारायण, हे हृषीकेश, हे पुण्यश्लोक, हे अच्युत, हे अव्यय, हे कृष्ण, देवलोकमें जा रहे मुझको ऐसा वर दो कि जहाँ कहीं भी मैं रहूँ तुम्हारे चरणकमलमें मेरा चित्त लगा रहे ॥ २७, २८ ॥ सम्पूर्ण जगत्‌के उत्पादक, अनन्त शक्तिसम्पन्न ब्रह्मस्वरूप आपको प्रणाम है। योगेश्वर वासुदेव श्रीकृष्णजीको मेरा बार-बार प्रणाम है ॥ २९ ॥ राजा नृग इसप्रकार कहकर अपने मुकुटयुक्त सिरसे भगवान्‌के चरण छूकर और उनकी प्रदक्षिणा करके उनकी आज्ञासे लोगोंके देखते-देखते सुन्दर विमानपर बैठ गये ॥ ३० ॥ देवकीसुत,

भवत्हन्दर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः ॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ॥ नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ॥ यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥२८॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ॥ अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥ ३० ॥ कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ॥ ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ॥ तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ॥ ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ॥ प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥३५॥ राजानो राजलक्ष्म्यान्धा नात्मपातं विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यन्ते

ब्राह्मणभक्त, धर्मात्मा श्रीकृष्णचन्द्रजीने यादव राजकुमारोंको शिक्षा देते हुए कहा ॥ ३१ ॥ थोड़ा भी ब्राह्मणों का धन बड़ा दुर्जर होता है। ब्राह्मणोंका खाया गया धन अग्निके समान, अति तेजस्वी मनुष्यको भी पचाना कठिन पड़ जाता है, फिर अपनेको ईश्वर समझनेवाले इन राजाओंकी क्या बात है ॥ ३२ ॥ मैं तो हलाहल विषको विष नहीं मानता हूँ, क्योंकि उसकी प्रतिक्रिया हो सकती है। पर ब्राह्मणका धनरूपी विषही सचमुच विष है, जिससे बचनेका कोई भी उपाय इस पृथिवीपर नहीं है ॥ ३३ ॥ विष केवल खानेही वालेको मारता है अग्नि जलसे शान्त हो जाती है, पर ब्राह्मण धनरूपी अरणिसे उत्पन्न अग्नि सम्पूर्ण कुलको समूल जला देती है ॥ ३४ ॥ बिना ब्राह्मणकी आज्ञाके खाया गया उसका धन तीन पीढ़ियोंको और बलपूर्वक जबर्दस्ती भोगा गया उसका धन दस पूर्वके तथा दस पीछेकी पीढ़ियोंको नष्टकर देता है ॥ ३५ ॥ राजलक्ष्मीसे अन्धे बने वे अति मूर्ख राजा लोग अपने पतनका कारण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं विचारते, जो नरकमें भेजनेवाले ब्राह्मणका धन ले लेना उचित मानते हैं ॥ ३६ ॥ वृत्ति छीन जानेसे वृत्तिहीन हो उदार और सपरिवार ब्राह्मणोंके रोनेसे नेत्रसे गिरी हुई आँसुओंकी बूँदे जितनी धूलको सिक्त करती है उतनेही वर्षोंतक उनका धन हरण करनेवाले वे सब राजे और उनके वंशज कुम्भीपाक नामक नरकमें यातनाएँ भोगते रहते हैं ॥ ३७, ३८ ॥ अपनी दी गई या दूसरेके द्वारा दी गई ब्राह्मणकी वृत्तिका जो मूर्ख अपहरणकर लेता है वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठामें कीटाणु होकर रहता है ॥ ३९ ॥ मुझको ब्राह्मणका धन न मिले, कारण कि उसकी इच्छा करनेवाले मनुष्य अल्पायु हो जाते हैं, राज्यसे च्युत तथा राजाओंसे पराजित हो जाते हैं और जन्मान्तरमें दूसरोंको उद्वेग देनेवाले सर्प हो जाते हैं ॥ ४० ॥ हे मेरे प्रिय मित्रो, ब्राह्मणसे कभी भी द्रोह मत करो, चाहे उसके द्वारा किसी तरहका अपराध ही क्यों न हुआ हो। चाहे वह भलेही किसीको मार रहा हो या शाप दे रहा हो ॥ ४१ ॥ जैसे मन,

ब्रह्मस्वं साधुबालिशाः ॥ ३६॥ गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ॥ विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दानिरङ्कुशाः ॥ कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां वा परदत्तां ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिर्वर्ष-सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥३९॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद् गृद्ध्वाऽल्पायुषो नराः ॥ पराजितारच्युता राज्याद्भवन्त्युद्विजिनोऽहयः ॥४०॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ॥ घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥ यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ॥ तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥४२॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ॥ अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥४३॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः ॥ पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥ इति मद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

कर्म और वचन द्वारा समय-समय ध्यान करके नित्य ब्राह्मणको मैं प्रणाम करता हूँ वैसे ही तुमलोग भी प्रणाम करो। हे मित्रो, जो ऐसा न करेगा, वह मेरे दण्डका भागी होगा ॥४२॥ ब्राह्मणका अपहरण किया गया धन हरण करनेवालेको नरकमें ले जाकर ढकेल देता। अज्ञानवश ब्राह्मणकी गौ लेनेवाले राजा नृगकी जैसी दशा हुई वसीही दशा सभीकी होती है ॥ ४३ ॥ इस तरह द्वारकावासियोंको सुनाकर समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् मुकुन्दजी अपने गृहमें प्रविष्ट हो गये ॥ ४४ ॥

चौसठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय उपवनमें खेल रहे प्रद्युम्न आदि भगवान्के लड़कोंने शुष्क कूपमें गिरे विशालकाय एक गिरगिटको देखकर उसे बाहर निकालनेमें अपनेको असमर्थ पाते हुए आकर भगवान्से कहा। उनकी बातें सुनकर भगवान् तुरन्त वहाँ पहुँच कर उसे कूपसे बाहर निकाल दिया। भगवान्का स्पर्श पाते ही वह सुन्दर शरीरधारी पुरुष हो गया सब कुछ जानते हुए भी भगवान्के पूछनेपर उसने कहा—भगवन्, मैं पूर्वजन्ममें राजा नृग था। मैंने भूलसे एक ब्राह्मणकी गाय दान करके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दूसरे ब्राह्मणको दे दी। उसीका यह फल है कि सत्ययुगसे लेकर आजतक मैं इस दशामें आपके दर्शन कर पाया हे प्रभो, अनन्तशक्ति सम्पन्न परब्रह्म परमात्मा आपको मेरा बार-बार नमस्कार है। यों भगवान्की प्रार्थना करनेके बाद उनकी परिक्रमा करके हे राजन्, वह उपस्थित व्योमयानके ऊपर बैठकर परमधामको प्राप्त हो गया। यह कथा नगरमें चारों ओर शीघ्र फैल गयी। भगवान्ने घर जाते समय उस राजा नृगकी कथा सुनाते हुए अपने विनीत प्यारे बच्चोंसे कहा—लड़को, ब्राह्मणका धन भूलसे भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। वह हालाहल विषसे भी बढ़कर क्रूर तथा दावानलसे भी बढ़कर तीव्र सन्ताप देनेवाला होता है। इससे सदा बचकर रहना। हे महीपते, यों अपने बच्चोंको उपदेश देकर भगवान् उनके साथ उपवनसे घर आ गये। चौसठवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ❀

(बलदेवका गोकुलमें पहुँचकर विरहमें व्याकुल नन्दादिको सान्त्वना, तदनन्तर युवतियोंके साथ क्रीडाकर रहे बलदेवका यमुनाको दण्ड देना)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्—भगवान् बलदेवजी रथपर बैठकर अपने मित्रवर्गों को देखनेकी इच्छासे अति उत्सुक होकर गोकुल नगरमें गये॥१॥ बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित गोप और गोपियों द्वारा आलिङ्गन कर लेनेके बाद बलदेवजीने अपने माता-पिताको प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया॥ २॥ हे दाशार्ह, अपने भाईके साथ जगदीश्वर आप

श्रीशुक उवाच॥ बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ १॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च॥ रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः॥ २॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः॥ इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः॥ ३॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवन्दितः॥ यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः॥ ४॥ समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः॥ विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः॥५॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा॥ कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः॥ ६॥ कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते॥ कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः॥ ७॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो

सबोंकी रक्षा कीजिये, ऐसा कहकर आलिङ्गन करके अपनी गोदमें बैठाकर आनन्दकी आँसुओंसे बलदेवजीको सिक्त करने लगे॥ ३॥ बलदेवजीने वयोवृद्ध गोपोंको विधिवत् प्रणाम किया और उन सबोंसे आशीर्वाद पाकर अपने समकक्ष युवक गोपोंको अपने नातेके मुताबिक प्रणाम किया॥ ४॥ तदनन्तर बलदेवजी ग्वालबालोंके पास आकर उनसे हँसते हुए हाथ मिलाकर आराम करते हुए आसनपर बैठ गये। उसके बाद चारों तरफसे घेरकर ग्वालबाल आकर उनसे पूछने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके प्राप्तिके लिये अपना सब सुख छोड़ देनेवाले सब ग्वालबालोंने प्रेमसे गद्गद वाणीसे अपने यादवोंके विषयमें कुशलक्षेम पूछा॥ ५, ६॥ हे रामजी, हमारे समस्त बान्धव कुशलपूर्वक तो रहते हैं न? हे रामजी, स्त्रियों और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बालबच्चोंसे युक्त आप सब हमलोगोंको कभी स्मरण किया करते हैं ? ॥ ७ ॥ यह सौभाग्यकी बात है कि पापी कंस मारा गया और संयोगवश आपके सुहृद् उससे मुक्त हो गये । अब आपलोग अपने शत्रुओंको मारकर तथा उन्हें जीत करके दुर्गमें रहते हैं, यह सौभाग्यकी बात है ॥ ८ ॥ बलदेवजीको देखकर अति प्रसन्न चित्तवालीं गोपियाँ हँसती हुई पूछने लगीं—नगरके स्त्रियोंके प्रेमी श्रीकृष्णजी सुखपूर्वक हैं न ? ॥९॥ श्रीकृष्णजी अपने बान्धवों और पिता तथा माताका भी स्मरण करते हैं ? क्या अपने माँ-बापको देखने एक बार भी आयेंगे ? हमलोगोंकी सेवाओंकी कभी याद करते हैं ? ॥१०॥ हे दाशार्ह, जिनके लिये हमलोगोंने माँ-बाप, भाई-बहिन, पति और पुत्र सभी अपने दुस्त्यज बान्धवोंका त्याग कर दिया था, हे प्रभो, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमलोगोंकी मित्रता अचानक शीघ्र तोड़कर हमलोगोंको छोड़ करके चले गये । यदि आप कहें कि उनके जाते समय हमलोगोंने प्रतिबन्ध क्यों नही डाला, तो हे भगवन्, उनकी शपथपूर्वक 'न पारयेऽहं निरवद्य संयुजाम्' इत्यादि बातोंपर भला कौन ऐसी स्त्री होगी जो विश्वास न कर लेगी ॥ ११, १२ ॥ एक गोपीने कहा—जिनकी बातोंका

दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ॥ निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामसन्दर्शनादृताः ॥ कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बन्धून्पितरं मातरं च सः ॥ (अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥) अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरं पितरं भ्रातृन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि ॥ यदर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥ ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ॥ कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥ कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ॥ गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥ किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ॥ यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ सङ्कर्षणस्ताः कृष्णस्य सन्देशैर्हृदयङ्गमैः ॥ सान्त्वयामास भगवान्नानानुनयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौ मासौ तत्र चावा-

कोई ठीक नहीं ऐसे अव्यवस्थित चित्त कृतघ्न श्रीकृष्णकी बातोंपर भला नागरिक स्त्रियाँ क्यों विश्वास करेंगी ? अन्य गोपियोंने कहा—कृष्ण बातें बनानेमें भारी पण्डित हैं उन्हें खूब बातें बनाना आता है, उनके सुन्दर मुसकान भरे अवलोकनसे क्षुभित हुए कामसे व्याकुल होकर वे स्त्रियाँ उनकी बातोंपर अवश्य विश्वासकर लेती होंगी ॥१३॥ औरोंने कहा—हे गोपियो, उनकी बातोंसे हमें क्या प्रयोजन ? यदि हमलोगोंके बिना उनका समय कट जाता है, तो वैसेही हम सबोंका समय भी तो उनके बिना कट ही जाता है, समय किसीके लिये किसीका बैठा नहीं रहता उनका और हमलोगोंका भी समय तो जाता ही है लेकिन विशेष इतनाही है कि उनका सुखसे जाता है और हमलोगोंका दुःखसे ॥ १४ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजीकी हँसी, उनकी बातें, उनके सुन्दर अवलोकन, उनके गमन और प्रेमपूर्वक आलिङ्गन आदिका स्मरण करती हुई वे सब गोपियाँ रोने लगीं ॥ १५ ॥ तब अनेक तरहके अनुनय-विनय करनेमें महान् पण्डित बलदेवजीने हृदयमें चुभनेवाली भगवान् श्रीकृष्णकी बातें सुनाकर उन्हें धैर्य प्रदान किया ॥ १६ ॥ भगवान् बलदेवजीने रात्रिमें उन गोपियोंके साथ, जो श्रीकृष्णके क्रीड़ा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समयमें बिलकुल नादान थीं, रहि करते हुए चैत्र और वैशाख ये दो महीने गोकुलमें ही रहकर बिताये ॥ १७ ॥ पूर्ण चन्द्रकी स्वच्छ चाँदनीसे उज्ज्वल एवं विकसित कुमुदकी सुगन्धसे वासित वायुसे अति सुगन्धित यमुनाके किनारेके उपवनमें गोपियोंसे घिरे हुए बलदेवजीने उनके साथ खूब रमण किया ॥ १८ ॥ वहाँ उसी समय वरुणदेव द्वारा भेजी गई वारुणी देवीने वृक्षके कोटरसे मधुधाराके रूपमें निकलकर अपनी मधुरगन्धसे समस्त वनको सुगन्धितकर दिया ॥ १९ ॥ बलदेवजी वायु द्वारा उपस्थितकी गई वारुणीकी मधुधाराकी गन्ध सूँघकर वहाँ गये और ललनाओंके साथ बैठकर यमुनाके किनारे उन्होंने छककर पान किया ॥ २० ॥ उस वारुणी पीनेके मदसे चञ्चल नेत्रोंवाले मतवाले बलदेवजी गोपियोंके द्वारा अपना चरित्र सुनते हुए वनमें इधर-उधर घूमने लगे ॥२१॥ जो गलेमें माला और एक कानमें कुण्डल पहने हुए थे, जो स्वभावतः मत्त, थे तथा वैजयन्तीमालासे अति सुशोभित थे। स्वेदरूपी

त्सीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ॥ यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥ तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ॥ बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २३ ॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि ॥ मयाऽऽहुता ॥ नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥ एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥२५॥ राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥२६॥ परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् ॥ मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततो व्यमुञ्चद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः

हिमकणोंसे अलंकृत उनका हास्यसहित मुखकमल खूब शोभ रहा था ॥ २२ ॥ वारुणी पीनेसे मतवाला होकर इसी समय जलमें क्रीड़ा करनेके लिये सर्वसमर्थ बलदेवजीने यमुनाको बुलाया। इनको मतवाला जानकर इनके वाक्यका तिरस्कार करके जब यमुना सामने न आई, तब बलदेवजीने अपने हलके अग्रभागसे उसे अपनी ओर खींचा ॥ २३ ॥ हे पापिनि यमुने, मेरे बुलानेपर भी मेरी बातका उल्लंघन करके तुम मेरे पास नहीं आ रही हो, अतः अभी अभी अपने हलके अग्रभागसे स्वेच्छाचारिणी तुम्हें सैकड़ों टुकड़े कर देता हूँ ॥ २४ ॥ हे राजन्, इसप्रकार बलदेवजी द्वारा फटकार पाकर बलदेवजीके पैरपर गिर गई और मारे भयके काँपती हुई बलदेवजीसे कहने लगी ॥ २५ ॥ हे राम, हे राम, हे महाबाहो, मैं आपका पराक्रम नहीं जानती थी। हे जगत्पते, जिस आपके एक अंश शेषने यह समस्त जगत् उठा रक्खा है ॥ २६ ॥ हे भगवन्, आपके इस उत्कट प्रभावको मैं अज्ञान वश नहीं जानती थी, अतः हे विश्वात्मन्, हे भक्तवत्सल, मैं आपकी शरणमें आई हूँ मुझे मुक्त कीजिये ॥ २७ ॥ इस तरह यमुना द्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान् बलरामजीने उसे छोड़ दिया और जैसे मतवाला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हाथी हथिनियोंके यथेच्छ जलक्रीड़ा करता है वैसेही बलदेवजी गोपियोंके साथ यमुनाके जलका मथन करने लगे ॥ २८ ॥ स्त्रियोंके साथ यमुनाके जलमें यथेच्छ जलक्रीड़ाकर लेनेके बाद जलसे निकले हुए बलदेवजीको लक्ष्मीजीने नीले वस्त्र, महा मूल्यवान् अनेक आभूषण और सुन्दर एक माला भेंट की ॥ २९ ॥ लक्ष्मी द्वारा समर्पित नीले वस्त्र पहनकर स्वर्णकी माला गलेमें धारणकर और सुगन्धित चन्दनादि अङ्गमें लगा करके भगवान् बलदेवजी इन्द्रके ऐरावत हाथीकी तरह शोभने लगे ॥ ३० ॥ हे राजन्, आज भी यमुनाजी बलदेवजीके हल खींचने से जो टेढा मार्ग हो गया था उसी मार्गसे बहती हुई मानों अनन्त शक्तिसम्पन्न बलदेजीके अतुलित बलकी सूचना दे रही है ॥ ३१ ॥ हे राजन्, व्रजबालाओंमें माधुर्यसे आकृष्टचित्त हो उनके साथ व्रजमें रमण करते हुए श्रीबलदेवजीकी वे दो महीनेके सारी रातें एकही रात-सी जान पड़ीं ॥ ३२ ॥

करेणुभिरवेभराट् ॥ २८ ॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् ॥ रेजे स्वलङ्कृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥ ३० ॥ अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाकृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥ एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

पैसठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपने पुराने स्नेहको यादकर भगवान् बलदेवजी नन्द आदिसे भेंट करनेके लिए दिव्यरथपर बैठकर गोकुल पहुँचे। वहाँ सबसे कुशल मङ्गल पूछने और सुन लेनेके बाद कृष्णके विरहसे व्याकुल गोपियोंको बलदेवजीने खूब सान्त्वना दी। चूँकि वसन्त ऋतु आ गई थी, अतः वहीं पर भगवान् बलदेवजीने उन गोपियोंके साथ जो कृष्णके समय कुमारी थीं, विहार करते हुए चैत्र और वैसाखके दो महीने बिता दिये। चैत्र पूर्णिमाकी रातमें, जब कि चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी, उन गोपियोंके साथ बलदेवजी यमुनाके किनारे पहुँचे। वहाँ उचित अवसर देखकर भगवान् वरुणदेवने वारुणी भेज दी। उसकी मतवाली गन्धसे यमुनाके किनारेका सारा गुञ्ज गूँज उठा। अपने सौन्दर्यसे कामदेवकी पत्नी रतिको भी हीन बना देनेवाली उन युवतियोंके साथ भगवान् बलदेवजीने छककर वारुणीका पान किया। वारुणीके मदसे उनकी आँखें मतवाली हो गईं। वे जलक्रीडा करनेके लिए यमुनाको बुलाने लगे। इन्हें मतवाला देखकर यमुना इनके समीप आनेमें आनाकानी करने लगी। यमुनाको अपने पास न आते देखकर अपने हलके अग्रभागसे भगवान् बलदेवजी अपनी ओर उसे खींचने लगे भगवान्के प्रभावको देखकर यमुना झट उनके पैरों पर गिर पड़ी और स्तुति करने लगी। यमुनाकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् बलदेवजी काम से व्याकुल उन गोपियों के साथ यमुना के भीतर जाकर यथेच्छ विहार किया। जल से बाहर आने पर उनको साक्षात् कान्ति ने नीले वस्त्र, कानों के कुण्डल आदि भूषण तथा सुवर्णकी माला समर्पित की। उन्हें धारण कर भगवान् बलदेवजी खूब सुशोभित हुए। हे राजन्, बलदेवजीके हलके नोक से खींची गई यमुनाजी आज भी उनके प्रभावको सूचित कर रही हैं। पैसठवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❁ अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः ❁

[श्रीकृष्ण का रूप धारण करनेवाले पौण्ड्रक [राज्यको उसके साथियों सहित मार कर भगवान् शङ्कर की तपस्या कर रहे काशीराजके पुत्र सुदक्षिण सहित काशी का भस्म करना]

श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, बलदेवजीके गोकुल चले जानेपर वासुदेव मैं ही हूँ ऐसा कहकर करूष देशके राजा अज्ञ पौण्ड्रकने अपना दूत कृष्णके यहाँ भेजा ॥ १ ॥ आपही जगत्पति भगवान् वासुदेवके रूपमें इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं, यों मूर्खों द्वारा प्रोत्साहित होकर वह अनेकों ही अच्युत .मानने लगा ॥ २ ॥ बच्चों द्वारा खेलमें बनाये गये राजाकी नाईं अपनेको कृष्ण समझ रहे उस अज्ञानी राजाने अचिन्त्य गति भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत द्वारकामें भेज दिया ॥ ३ ॥ उस दूतने द्वारका में आकर सभामें बैठे हुए कमलनेत्र भगवान्को पौण्ड्रकका सन्देश सुनाया, जो यह था ॥४॥ मैं ही वासुदेव हूँ, मेरे अलावे दूसरा कोई भी वासुदेव नहीं है। मैंने ही प्राणियोंके कल्याणार्थ अवतार लिया है। तुम

श्रीशुक उवाच ॥ नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥ वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥ त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ॥ इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥ दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ॥ द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ॥ भूतानामनुकम्पाथ त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ ५ ॥ यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद् बिभर्षि सात्वत ॥ त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ॥ उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ॥ शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ॥ कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुप जगाम

झूठमूठका अपना वासुदेव नाम छोड़ दो ॥५॥ हे सात्वत, शंख, चक्र, गदा और पद्म आदि जिन जिन मेरे चिह्नोंको मूर्खतावश तुम धारण किये हो, उन सब चिह्नोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जाओ, नहीं तो मुझे युद्ध करनेका अवसर दो ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरह बुद्धिहीन पौण्ड्रककी आत्मप्रशंसा सुनकर उस समय उग्रसेनादि सम्पूर्ण सभासद जोरसे ठहाका मारकर हँस पड़े ॥ ७ ॥ तब भगवान्ने परिहास करते हुए उस दूतसे कहा—तुम जाकर अपने स्वामीसे कह दो कि—हे मूर्ख, मैं अपने उन सुदर्शनचक्र आदि चिह्नोंको उन सब लोगोंके सहित तुम्हारे ऊपर छोड़ दूँगा, जिन लोगोंसे प्रोत्साहित होकर तुम डींग हाँक रहे हो ॥ ८ ॥ हे अज्ञ, अपने जिस मुखसे तुम ऐसी बातें कर रहे हो, याद रक्खो, उस अपने मुखको छिपाकर जब तुम कङ्क, गृद्ध और वट आदि पक्षियोंसे घिरकर युद्धभूमिमें मरकर शयन करोगे, तब तुम कुत्तोंकी ही शरणमें रहोगे ॥ ९ ॥ दूतने आकर श्रीकृष्णका वह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तिरस्कारपूर्ण सन्देश अपने स्वामी पौण्ड्रकको सुना दिया और श्रीकृष्णचन्द्र भी रथपर बैठकर काशीपुरी आ गये ॥ १० ॥ तब महारथी पौण्ड्रक भी श्रीकृष्णसे युद्धके लिये उद्योग देखकर दो अक्षौहिणी सेना साथ ले करके बहुत शीघ्रही अपने नगरसे निकल पड़ा ॥ ११ ॥ हे राजन्, पौण्ड्रकका मित्र काशिराज भी पृष्ठरक्षक होकर तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ पौण्ड्रकके पीछे-पीछे आ धमका ॥ १२ ॥ चारों भुजाओंमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा, पद्म, कटि भागमें तलवार और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि धारण किये हुए वनमालासे सुशोभित पौण्ड्रकको भगवान्‌ने देखा ॥ १३ ॥ वह पीतरङ्गके रेशमी वस्त्र पहने हुए था तथा अमूल्य रत्नोंसे भरे मुकुट, आभूषण और मकराकृत कुण्डलसे सुशोभित था एवं गरुड़ चिह्न ध्वजायुक्त रथपर आसीन था ॥ १४ ॥ अपने तुल्य कृत्रिम वेष बनाये हुए पौण्ड्रकको देखकर भगवान् जोरसे ऐसे हँस पड़े, जैसे रङ्गमञ्चपर बनावटी वेष धारणकर आये हुए नटको देखकर लोग हँस

ह ॥ १० ॥ पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद् द्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ॥ अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौण्ड्रकं हरिः ॥ १२ ॥ शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ॥ अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥१५॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ॥ असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥१६॥ कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ॥ गदासिचक्रेषुभिरार्दयद् भृशं यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक्प्रजाः ॥१७॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जरद्विपत्खरोष्ट्रै रथिणावखण्डितैः ॥ बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥१८॥ अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भो पौण्ड्रक यद्भवान् ॥ दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाऽज्ञ मृषा धृतम् ॥ व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ॥ शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो

पड़ते हैं ॥ १५ ॥ भगवान्‌के सब शत्रु शूल, गदा, परिघ, शक्ति ऋष्टि प्रास, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाण आदि नानाप्रकारके शस्त्र उनके ऊपर एक साथ छोड़ने लगे॥ १६ ॥ तब श्रीकृष्णजीने भी पौण्ड्रक और काशिराजकी गजारूढ़, अश्वारूढ़, स्यन्दनारूढ़ और पैदल चलनेवाली सेनाको पृथक्-पृथक् गदा तलवार, सुदर्शनचक्र और बाणोंसे इस तरह कुचल दिया, जिस तरह प्रलयकालमें अग्नि भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रजाओंको कुचल देती है ॥ १७ ॥ भगवान्‌के सुदर्शनचक्रसे खण्डशः कर दिये गये पौण्ड्रकके रथ, गज, अश्व, मनुष्य, खच्चर, गधे और ऊँटोंसे पूर्ण वह संग्रामभूमि कल्पान्तके भूतपति महादेवजीकी भयानक क्रीडा भूमिके सदृश वीर पुरुषोंकी आनन्ददायक प्रतीत होने लगी ॥ ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजीने पौण्ड्रकसे कहा—अरे, अरे पौण्ड्रक, जिन अस्त्रोंको छोड़ देनेके लिये अपने दूतके वचनों द्वारा मुझसे तुमने कहा था, उन सब अस्त्रोंको मैं अब तुम्हारे ऊपर छोड़ रहा हूँ ॥ १९ ॥ तथा हे मूर्ख, तुमने झूठमूठका जो मेरा नाम धारण कर रक्खा है, उसे भी छुड़ा दूँगा। यदि तुम्हारे साथ मैं युद्ध न करना चाहूँगा, तो हे अज्ञ, आज मैं तुम्हारी शरणमें अवश्य आजाऊँगा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २० ॥ इसप्रकार उसे अत्यन्त तिरस्कार करते हुए भगवान्‌ने अपने तीखे-तीखे बाणोंसे पौण्ड्रकको रथहीन बना करके उसका सिर सुदर्शनचक्रसे ऐसे काटकर अलगकर दिया, जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतोंके पंख काटकर अलग कर दिये थे ॥ २१ ॥ तथा काशिराजके सिरको भी अपने बाणोंसे काटकर काशीपुरीमें ऐसे गिरा दिया, जैसे वायु कमलकोशको गिरा देता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी अपने साथ शत्रुता करनेवाले काशिराजके सहित पौण्ड्रकको मारकर गन्धर्वों द्वारा अपने कथामृतका गान सुनते हुए द्वारकापुरीमें आकर प्रविष्ट हो गये ॥ २३ ॥ शत्रुभावसे भगवान्‌का नित्य स्मरण करनेसे उसके समस्त कर्मबन्धन नष्ट हो चुके थे, अतः हे राजन्, वह पौण्ड्रक श्रीकृष्ण भगवान्‌का स्वरूप पाकर आखिरमें तद्रूप ही हो गया ॥ २४ ॥ काशीपुरीमें काशिराजके कुण्डलयुक्त सिरको राजद्वारपर पड़े देखकर सब लोग कहने लगे कि यह क्या हुआ, यह किसका मुख है ॥ २५ ॥ बादमें काशिराजका यह सिर है ऐसा जानने-

यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्त्रिभिः ॥ न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥२२॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः ॥ द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ॥ बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ॥ किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशयिरे जनाः ॥ २५ ॥ राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ॥ पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥ सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ॥ निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥ इत्यात्मनाऽभिसन्धाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ॥ सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८ ॥ प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद्भवः ॥ पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः समम्‌ृत्विजम् ॥ अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यति सङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ॥ इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥ ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरा-

पर काशिराजके पुत्र, स्त्री, बान्धव और पुरवासी जन सबके सब हाय हाय, हम सब मारे गये, हे नाथ, हे नाथ हे राजन्, ऐसा कहकर रोने लगे ॥ २६ ॥ काशीनरेशके पुत्र सुदक्षिणने पिताके श्राद्धादि करके संकल्प किया कि पिताके मारनेवालेको मारकर ही पितृऋणसे मुक्त होऊँगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार मनमें विचारकर गुरुके साथ अत्युदार सुदक्षिणने काशीमें रहकर अत्यन्त एकाग्र मनसे बहुत दिनोंतक भगवान् शंकरकी आराधना की ॥ २८ ॥ उसके व्रतसे सन्तुष्ट होकर काशीपति विश्वनाथने उसे वर माँगनेको कहा। तब सुदक्षिणने पिताको मारनेवाला जिस उपायसे मर जाय वही उपाय वरदानसें माँगा ॥ २९ ॥ तब भगवान् शंकरजीने कहा--तुम ब्राह्मणोंके साथ ऋत्विग्भूत दक्षिणाग्निकी अभिचार विधिसे आराधना करो। उससे वह दक्षिणाग्नि प्रसन्न होकर मेरे गण भूतादिसे युक्त होकर जो ब्राह्मणोंका अभक्त होगा उसके ऊपर प्रयोजित होनेपर तुम्हारा संकल्प पूरा करेगा। इसप्रकार शंकरकी आज्ञा पाकर वह सुदक्षिण भगवान् कृष्णको मारनेके लिये नियम पूर्वक अभिचारक अनुष्ठान करने लगा ॥ ३०,३१ ॥ तत्पश्चात् उस कुण्डसे अति भीषण मूर्तिमान् अग्निदेव आविर्भूत हुए। उनके केश

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और दाढ़ी मूँछ तपाये हुऐ ताम्रधातुके सदृश लाल थे और उनके नेत्रोंसे आगके अङ्गारे निकल रहे थे ॥ ३२ ॥ उनका मुख दाँतों और उग्र भृगुटि दण्डोंसे अत्यन्त क्रूर दीखता था। वे नंगे थे। अपनी जीभसे ओठ चाटते हुए अत्यन्त प्रज्वलित त्रिशूल चारों ओर घुमा रहे थे ॥ ३३ ॥ ताड़के वृक्षके सदृश बड़े-बड़े पैरोंसे पृथिवीको कम्पित करते तथा भूतादि गणोंसे युक्त होकर चारों दिशाओंको जलाते हुए द्वारका की ओर दौड़े ॥ ३४ ॥ द्वारकावासी सब उस अभिचार जनित अग्निको देखकर जंगल में आग लगने पर वन जलने पर मृगसमूह जैसे डरता है वैसेही डर गये ॥ ३५ ॥ सब लोग अति भयभीत होकर द्यूत सभा में जुआ खेल रहे भगवान्‌को पुकारने लगे--हे त्रिलोकेश, द्वारकापुरीको जलाते हुए अग्निसे हमलोगोंको बचाइये ,बचाइये ॥ ३६ ॥ द्वारकावासियोंका क्रन्दन सुनकर और अपने वान्धवोंको भयभीत देखकर शरणागत रक्षक भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर कहा—मैं तुम सबोंका रक्षक हूँ, मत डरो,

स्यः स्वजिह्वया ॥ आलिहन्सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलत् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कपम्यन्नवनीतलम् ॥ सोऽभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥ ३४ ॥ तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ॥ विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥ अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः ॥ त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ॥ शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्यान्तर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ॥ विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥ तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ॥ स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥ कृत्यानलः प्रतिहतः सरथाङ्गपाणेरस्त्रौजसा नृप स भग्नमुखो निवृत्तः ॥ वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥ चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसीं पाट्टसभालयापणाम् ॥ सगोपुराट्टालककोष्ठसङ्कुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ॥ भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य

मत डरो ॥ ३७ ॥ सबके वाहर और भीतर रहनेवाले सर्वसमर्थ भगवान्‌ने अपने विनाशके लिये आयी हुई माहेश्वरी कृत्याको जानकर उसके विघातके लिये अपने वगलमें स्थित सुदर्शनचक्रको आदेश दिया ॥ ३८ ॥ कोटि सूर्यके समान तेजस्वी, जाज्वल्यमान भगवान्‌का वह सुदर्शनचक्र प्रलयकालीन अग्निके समान प्रभासे युक्त था। अपने तेजसे आकाश, सम्पूर्ण दिशाओं और अन्तरिक्षको प्रकाशित करता हुआ वह चक्र अग्निको नष्ट करने लगा ॥ ३९ ॥ हे राजन्, भगवान् श्रीकृष्णके सुदर्शनसे पराजित और भग्नमुख हो जानसे उस कृत्यानलने लौटकर काशीपुरीमें आकरके ऋत्विजोंसे युक्त काशीनरेशके पुत्र सुदक्षिणको ही जला डाला। उसका अपना किया हुआ अभिचार ही उसके नाशका कारण हुआ ॥ ४० ॥ भगवान्‌के उस चक्रने उस अग्निके पीछे-पीछे आकर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं, सभालयों, बाजारों, नगरके फाटकों, द्वारोंके गुम्बजों तथा अनेक कोठोंसे युक्त एवं नानाविध कोशों, हाथिशालाओं, अश्वशलाओं, रथशालाओं और अनेक अन्नशालाओंसे परिपूर्ण उस काशीपुरीमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका वह सुदर्शनचक्र सम्पूर्ण काशीको भस्म करके पुनः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अद्भुत कार्य करनेवाले श्रीकृष्णके पास वापस आ गया ॥ ४२ ॥ जो कोई विद्वान् यह भगवान्‌का पराक्रमरूप आख्यानको सुनाता है अथवा मन लगाकर सुनता है, वह सब पापोंसे रहित हो जाता है ॥ ४३ ॥

उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥ समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः मुच्यते ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महा० द० उ० पौण्ड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

छाछठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अनेक दुष्ट कृष्णके द्वेषी राजाओंके बहकावेमें आकर भगवान् वासुदेवका अनुकरण करनेवाले पौंड्रकने भगवान्‌के पास यह कहकर अपना दूत भेजा—हे यादव, चतुर्भुज जगत्पति वासुदेव तो मैं हूँ। तुम झूठमूठमें वासुदेव भगवान् कहलाते हो। तुम वासुदेव कहलाना और अपना सब चिह्न छोड़ दो। हे कृष्ण, मेरे साथ युद्ध करो या मेरी शरण में आ जाओ। सभा में बैठे हुए भगवान्‌ने पौंड्रकका यह सन्देश सुनकर हँसते हुए उस दूतसे कहा—तुम जाकर अपने स्वामीसे कह दो कि जो तुम मुझे अपना चिह्न छोड़ देनेके लिये कहते हो सो ठीक है। हे मूढ़, याद रक्खो, मैं अपना सुदर्शनचक्र आदि सम्पूर्ण चिन्होंको तुम्हारे ऊपर छोड़ दूँगा। भगवान्‌का यह सन्देशा दूतने पौंड्रकसे आकर सुना दिया। तदनन्तर रथपर बैठकर भगवान् काशीको चल दिये। अपने मित्रको सहायताके लिए रणभूमिमें आये हुए काशीराजके साथ पौंड्रकको भगवान्‌ने मृत्युकी गोदमें पहुँचा दिया। मित्रके साथ अपने पिताकी मृत्यु देखकर काशीराजके पुत्र सुदक्षिणने भगवान् जनार्दनको मारनेकी इच्छासे भगवान् शङ्करकी घोर तपस्या की। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने अभिचार विधिसे हवन करनेकी उसको सलाह दी। नियम पूर्वक वैसा करने पर कुण्डसे प्रदीप्त अग्नि निकली। वह मूर्तिमान् अग्नि द्वारकाको भस्म करने लगी द्वारका वासियोंको उससे व्याकुल होते देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपना सुदर्शनचक्र उसके प्रतिकारके लिए छोड़ दिया। भगवान्‌के सुदर्शनचक्रने उस अभिचारिक अग्निका भगवान् शङ्करकी नगरी सम्पूर्ण वाराणसीको तथा उस काशीराजपुत्रको भस्म कर दिया। छाछठवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ❀

(रैवत पर्वत के ऊपर गोपियों के साथ बलदेवजीका यथेच्छ विहार तथा द्विविद्‌का वध।)

राजाने कहा—हे मुने, अनन्त, अप्रमेय और अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् बलदेवजीका अद्भुत कार्य पुनः सुनाइये, जो बादमें उन्होंने मथुरामें किया, मैं और सुनना चाहता

राजोवाच ॥ भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्‌भुतकर्मणः ॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकस्य

 हूँ ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नरकासुरका मित्र द्विविद नामका कोई एक महाबलशाली वानर था। वह सुग्रीवका मन्त्री, मैन्दका भ्राता था ॥ २ ॥ उस द्विविदने अपने मित्र नरका-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुरका बदला लेनेके लिये राष्ट्रविप्लव मचा दिया। वह पुर, ग्राम, खान और घोषोंमें आग लगाकर सबको भस्म करने लगा ॥ ३ ॥ जहाँ श्रीकृष्णजी रहते थे, उस आनर्तदेशमें जाकर वह उपद्रव मचाने लगा। कभी वह बड़े-बड़े पहाड़ोंको उखाड़कर उनसे अनेक देशोंको चूर्ण-चूर्ण कर देता, तो कभी दस हजार हाथियोंका बलवाला वह वानर समुद्रमें जाकर अपनी भुजाओंसे समुद्रके जलको उछाल कर समुद्रके समीपवर्ती नगरों को जलमें मग्न करके उन्हें बहा दिया करता था ॥ ४, ५ ॥ यहाँतक कि बड़े-बड़े ऋषियोंके आश्रमोंके वृक्ष आदि उखाड़कर मल मूत्र आदिसे वह दुष्ट हवनके निमित्त स्थापित उनके अग्निकुण्डोंको दूषित करने लगा ॥ ६ ॥ वह उद्दण्ड वन्दर अनेक पुरुषों तथा स्त्रियोंको उठा ले जाकर पर्वतकी गुफाओंमें छोड़कर उसका दरवाजा पत्थरोंसे ऐसे वन्दकर देता था, जैसे कि भृङ्गी अन्य कमजोर छोटे-छोटे कीड़ोंको ले जाकर अपने बिलमें बन्दकर देता है ॥ ७ ॥ इसप्रकार वह दुष्ट

सखा कश्चिद् द्विविदो नाम वानरः ॥ सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ॥
पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥ क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ॥ आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥
क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ॥ देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्न-
वनस्पतीन् ॥ अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान् खलः ॥ ६ ॥ पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद् द्रोणीगुहासु सः ॥ निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेश-
स्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ॥ श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं
पुष्करमालिनम् ॥ सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ॥ विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव
वारणम् ॥ १० ॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् ॥ चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धार्ष्ट्यं कपेर्वीक्ष्य
तरुण्यो जातिचापलाः ॥ हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः संमुखादिभिः ॥ दर्शयन्स्वगुदं तासां

बन्दर देशोंको पीड़ित करता तथा कुलीन स्त्रियोंको दूषित करता हुआ सुललित गीत सुनकर रैवतक पहाड़पर पहुँच गया ॥ ८ ॥ वहाँ जाकर सर्वाङ्ग सुन्दर, पुष्करकी माला पहने और स्त्रियोंके मध्यमें बैठे उस यदुपति बलरामजीको उसने देखा ॥ ९ ॥ वहाँ उस समय बलदेवजी वारुणी पीकर गीत गा रहे थे, उनकी आँखें नशेमें खूब झूम रही थीं। वे अपने मस्त सुन्दर शरीरसे मतवाले हाथीके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १० ॥ वह दुष्ट बन्दर वृक्षोंकी शाखाओंपर चढ़कर वृक्षोंको कँपाता हुआ खूब जोरसे किलकिला शब्द करने लगा, ताकि वहाँकी उपस्थित स्त्रियाँ उसे अवश्य देखें ॥ ११ ॥ अक्सर सभी युवती स्त्रियाँ स्वभावतः चञ्चल और हास्यप्रिय होती हैं, अतः उस बन्दरकी धृष्टता देखकर बलदेवजीकी वे सब स्त्रियाँ बहुत जोरसे हँसने लगीं ॥ १२ ॥ तब वह बन्दर बलदेवजीकी आँखोंके सामने ही उन स्त्रियोंको मुख, कान, नाक चमकाकर भौं मटका करके अपनी गुदा दिखाने लगा और लगा उन्हें खूब घुड़की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दे देकर चिढ़ाने ॥ १३ ॥ तब प्रहार करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ बलदेवजीने अति क्रुद्ध हो पत्थर उठाकर उसके ऊपर फेंके। वह बन्दर पत्थरकी चोटसे बचकर बलदेवजीका मदिराकलश उठाकर ले गया ॥ ४ ॥ मदिराकलशको हाथमें लेकर उस धूर्त बन्दरने क्रोध करके हँसते हुए कलशको फोड़कर स्त्रियोंके वस्त्र खींच करके फाड़ डाले। यों मदोन्मत्त उस बलवान् बन्दरने बलदेवजीकी अवहेलना करके उन्हें क्रुद्ध बना दिया। उसकी बदमाशी तथा उसके द्वारा किया गया देशका उपद्रव देखते हुए बलदेवजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसको मारनेके लिये तैयार हो गये ॥ १५, १६ ॥ क्रुद्ध हुए बलदेवजी हाथमें हल और मूसल लेकर उसे मारने दौड़े पर महाबलवान् वह भी द्विविद् अपने हाथसे शालवृक्षको उखाड़कर दौड़ पड़ा ॥ १७ ॥ और उस वृक्षको बलदेवजीके मस्तकपर बड़े वेगसे उस दुष्टने लाकर पटक दिया। महापराक्रमी बलदेवजी पर्वतकी नाईं स्थित रहकर अपने सिरपर गिरते हुए उस वृक्षको मध्यमें ही रोककर उस

रामस्य च निरीक्षतः ॥ १३ ॥ तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ॥ स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ॥ निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद् बलम् ॥ १५ ॥ कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥ १६ ॥ क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥ १७ ॥ अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ तं तु सङ्कर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ॥ १८ ॥ प्रतिजग्राह बलवान्सुनन्देनाहनच्च तम् ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥ १९ ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥ पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥ २० ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाच्छिनत् ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत् ॥ २१ ॥ एवं युध्यन्भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ॥ आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ २२ ॥ ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ॥ तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥ २३ ॥ स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २४ ॥ यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसल-

बन्दरके ऊपर सुनन्दन नामक अपने मुसलसे चोट दिया। मुसलकी चोटसे उसका मस्तक फट गया और खूनकी धारा बहने लगी ॥ १८, १९ ॥ इस रक्तकी धारासे वह गेरुकी धारासे पर्वतकी नाईं अलंकृत हुआ। सिर फट जानेपर भी किसी तरहकी चिन्ता न कर पुनः एक दूसरा वृक्ष उखाड़कर उसके पत्ते छिल करके बलदेवजीके ऊपर उसने बड़े वेगसे फेंका। परन्तु बलदेवजीने उसको भी सैकड़ों टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न कर दिया। तत्पश्चात् फिर उसने मारे क्रोधके दूसरा पेड़ उखाड़ कर फेंका। बलदेवजीने उसके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले ॥ २०, २१ ॥ इसप्रकार बलदेवजीके साथ युद्ध करता हुआ जिस जिस पेड़को उखाड़-उखाड़ कर बलदेवजीको वह मारता था, उन सभी वृक्षोंको बलदेवजी छिन्न-भिन्नकर देते थे। यों एक वृक्षके कट जानेपर दूसरा पुनः उखाड़ फेंकनेसे सब ओरके वृक्षोंको उखाड़ते-उखाड़ते पूरे जंगलको वृक्षहीन बना दिया ॥ २२ ॥ तब वह अति क्रुद्ध होकर बलदेवजीके ऊपर पहाड़के टुकड़े गिराने-लगा। परन्तु उन सब पर्वतके टुकड़ों को मूसलधारी बलदेवजीने अनायास ही चूर्ण चूर्ण कर दिया ॥ २३ ॥ आखिरमें उसने तालवृक्षके समान अपने हाथोंमें मुट्ठी बाँधकर उन दोनों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हाथोंसे बलदेवजीके समीप जाकर उनके वक्षःस्थलमें मुष्टिका प्रहार किया ॥ २४ ॥ तब बलदेवजीने भी हाथमें लिये मुसल और हलको छोड़कर अपने हाथोंसे उस बन्दरको पकड़ कर उसके कण्ठ और बाहुके मूलभागमें मुष्टिका प्रहार किया। मुष्टिका लगते ही रुधिरका वमन करते हुए वह पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, उसके गिरनेसे जलसहित पाषाणमय कुण्डों तथा वृक्षोंसहित समस्त पर्वत ऐसे डगमगा गये, जैसे कि तूफानसे जलमें नौका डगमगाती है ॥ २६ ॥ हे राजन्, बलदेवजीके ऊपर उस समय पुष्पवृष्टि करनेवाले देवता, सिद्ध और मुनीन्द्रों के जय-जयकार, नमस्कार तथा साधु-साधु शब्द आकाशमें गूँज उठे ॥ २७ ॥ इस तरह संसारको अति कष्ट देनेवाले द्विविद्को मारकर सिद्ध, गन्धर्वों द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए भगवान् बलदेवजी अपनी पुरीमें आ गये ॥ २८ ॥

लाङ्गले ॥ जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २५ ॥ चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ॥ पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥ २६ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ॥ सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २७ ॥ एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥ संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

सड़सठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नरकासुरका मित्र महाबलवान् एक वानर था। जो भगवान्से खूब द्वेष रखता था। वह खूब उत्पात मचाने लग गया था। वह कभी जल उछाल कर द्वारकाको डुबो देता था, तो कभी पर्वतोंको उखाड़कर द्वारकाके ऊपर पटक देता था। उसके आचरणसे द्वारकावासी घोर कष्ट पाने लग गये थे। हे राजन्, एक समय की बात है कि रैवतक पर्वतके ऊपर सुन्दरियोंके बीचमें बैठकर भगवान् बलदेवजी सङ्गीत सुन रहे थे, वहीं पर वह वानर पहुँचा। वहाँ वृक्षकी शाखाओंपर चढ़करके वह स्त्रियोंको चिढ़ाने लगा। वहाँपर रखे हुए वारुणीके कलशको उठाकर फोड़ दिया। अनेक तरह-तरहके उत्पात मचाते उसे देखकर भगवान् बलदेवजीने उसे मारनेके लिए अपना हल और मूसल ज्योंही हाथमें लिया, त्योंही उस महाबली वानरने पेड़ उखाड़कर उनके ऊपर पटक दिया। तब भगवान् बलदेवजीने क्रुद्ध होकर उसके मस्तकपर अपने मूसलसे प्रहार किया। मूसल की चोटसे उसका मस्तक फट गया, फिर भी उसकी चिन्ता न कर उसने पुनः एक दूसरा वृक्ष उखाड़कर उससे बलदेवजीके ऊपर प्रहार किया। बलदेवजीने उसके सैकड़ों टुकड़े कर डाले इस तरह उसने उस पर्वतको बिना वृक्षका कर दिया। तदनन्तर पत्थरोंकी भगवान्के ऊपर उसने वृष्टि की, परन्तु भगवान् बलदेवजी उन सबको चूर्णित कर दिया। अन्तमें हारकर उसने भगवान् बलदेवजीकी छातीसे मुष्टि प्रहार किया। तत्पश्चात् बलदेवजीने उसके कण्ठमूलमें ऐसी मुक्की मारी कि उसके मुखसे खूनकी धारा बह चली और वह आखिरमें सदाके लिये इस असार संसार से बिदा हो गया। इससे देवता सिद्ध मुनीन्द्रों ने स्तुति सुनते हुए वह अपनी पुरी में आगए। सड़सठवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः ❋

(जाम्बवती पुत्र साम्बके कौरवों द्वारा युद्धमें पकड़ लिये जानेपर बलदेवजीके द्वारा हस्तिनापुरको गङ्गामें डुबो देनेकी इच्छा से हलके नोंकसे खींचना)

श्रीशुकदेवजीने कहा--हे राजन्, जाम्बवती पुत्र युद्धवीर साम्बने दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाको स्वयम्वरसे हर लिया था ॥ १ ॥ यह देखकर कौरव सब क्रुद्ध होकर आपसमें कहने लगे कि दुष्ट इस लड़केने हमलोगोंका तिरस्कार करके न चाहनेवाली कन्या लक्ष्मणाको जबर्दस्ती लिये जा रहा है ॥२॥ अतः इस लड़केको बाँधकर रख लेना चाहिए, जो हमलोगों द्वारा दी गई समृद्ध, हमलोगोंकी ही पृथिवी पाकर अपना निर्वाह करते हैं वे यदुवंशी हमलोगोंका क्या कर लेंगे ॥ ३ ॥ यदि बँधे हुए पुत्रको सुनकर यादव सब यहाँ आयेंगे भी, तो उन

श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिञ्जयः ॥ स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद् बलात् ॥ २ बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥ इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान्महारथः ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥ तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ॥ आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ॥ नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥८॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन्षड्रथान्वीरांस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥ तं तु

सर्वोंका गर्व दूर हो जायगा और प्राणायामादिके द्वारा नियमित इन्द्रियोंकी तरह शान्त हो जायँगे ॥ ४ ॥ यह सुनकर कर्ण, शल, भूरिश्रवा यज्ञकेतु, दुर्योधन आदि वीर सब कुरुवृद्ध भीष्मजीकी आज्ञा लेकर साम्बको बाँधने चले ॥ ५ ॥ कौरवोंको दौड़ते पीछे पीछे आते देखकर वह महारथी साम्ब धनुष खींचकर अकेला ही सिंहके समान खड़ा हो गया ॥ ६ ॥ साम्बको एकड़नेकी इच्छासे अति क्रोधित धनुष धारण किये हुए कर्ण आदि कौरव सब 'ठहरो, ठहरो' ऐसा कहते हुए उसपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, वह भगवान्का बचा साम्ब कौरवोंसे घायल होनेपर उनके विक्रमको ऐसे नहीं सह सका, जैसे छोटे-छोटे मृगोंसे घायल सिंह उनका पराक्रम नहीं सहता ॥ ८ ॥ साम्बने अपने सुन्दर धनुषकी टङ्कार करके उसके एकही साथ छोड़े गये छः बाणोंसे कर्ण आदि छःहो महारथियों को वेध दिया ॥ ९ ॥ और चार-चार बाणों से चार-चार घोड़ों को एक-एक बाणसे सारथिको तथा एक-एक बाणसे महारथियों को वेध दिया साम्बके इस अद्भुत कर्मको देखकर सभी कर्णादि प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ इसके अनन्तर छःहो ने मिलकर साम्बको रथहीन कर दिया। चार महारथियोंने उसके चारों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

घोड़ोंको मार दिया, एक महारथीने उसके सारथिको और एकने उसका धनुष काट डाला। इसप्रकार छः महारथियोंने मिलकर रथ आदि काट दिये ॥ ११ ॥ छः हों महारथी युद्धमें अति कष्टसे रथहीन करके उसे बाँधकर अपनी जयकार करते हुए अपनी कन्या लक्ष्मणा और उसको अपने नगरमें ले आये ॥ १२ ॥ हे राजन्, नारद द्वारा यह समाचार सुन करके अत्यन्त क्रोधित हो यदुवंशी सब उग्रसेनका आदेश पाकर कौरवोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगे ॥ १३ ॥ कौरवोंसे युद्ध करनेके लिये सब तरहसे तैयार यदुवंशियोंको बलदेवजीने किसीप्रकार समझा कर शान्त किया क्योंकि कलिके मलको दूर करनेवाले बलदेवजी कौरव और यदुवंशियोंमें परस्पर होनेवाले कलहको ठीक नहीं समझते थे ॥ १४ ॥ आठों ग्रहोंसे युक्त चन्द्रमाकी नाई ब्राह्मणों और अपने कुलके वृद्धोंसे युक्त हो बलदेवजी सूर्यके समान तेजस्वी रथपर बैठकर हस्तिनापुरको चल पड़े ॥ १५ ॥ हस्तिनापुर जाकर नगरके उपवनमें बलदेवजी

ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ॥ एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥
कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्सञ्जातमन्यवः ॥ कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥
सान्त्वयित्वा तु तान्रामः सन्नद्धान्वृष्णिपुङ्गवान् ॥ नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्य-
वर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभु-
त्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च वाह्लिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य
प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाऽभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥ १८ ॥ तं सङ्गम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः
प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥ १९ ॥ बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः
क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलम्बितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥

ठहर गये और कौरवोंका मतलब समझनेके लिये धृतराष्ट्रके समीप उन्होंने उद्धवको भेजा ॥ १६ ॥ उद्धवजीने हस्तिनापुरमें जाकर अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, वाह्लिक और दुर्योधनको यथायोग्य प्रणाम करके 'बलदेवजी भी आये हुए हैं' यह कहा ॥ १७ ॥ अपने अत्यन्त प्रियमित्र बलदेवजी आये हुए हैं, यह सुनकर कौरव सब अति प्रसन्न होकर उनका सत्कार करके हाथमें माङ्गलिक वस्तुएँ लेकर बलदेवजीके पास आये ॥ १८ ॥ तब ये सब कौरव यथायोग्य अपने-अपने सम्बन्धके मुताबिक बलरामजीसे मिलकर उन्हें गौ और अर्घ्य समर्पण किया। उनमें जो भगवान् बलदेवजीका प्रभाव जाननेवाले थे, उन्होंने अपना सिर नवाकर उनको प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उन सबोंने परस्पर कुशल-मंगल, स्वास्थ्य आदि पूछकर तथा हमारे बन्धु कुशलसे हैं, यह सुनकर बलदेवजी निर्भय होकर कहने लगे ॥ २० ॥ राजाओंके राजा उग्रसेनने आपलोगोंको जो आज्ञा दी है उसे शान्तचित्त हो सुन करके शीघ्र पालन कीजिये ॥ २१ ॥ आप अनेकोंने मिलकर अधर्मसे धार्मिक अकेले साम्बको जीतकर जो उसे बाँध लिया है, उसे 'बन्धुओंमें ऐक्य बना रहे' इस कामनासे मैंने सह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिया है ॥ २२ ॥ हे राजन्, बल, शौर्य तथा पराक्रमसे भरे आत्माभिमानीके समान बलदेवजीके वचनको सुनकर समस्त कौरव अति क्रुद्ध हो गये और कहने लगे ॥ २३ ॥ अहो, यह बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है, दुर्लङ्घ्य कालकी गतिसे आज पैरोंकी जूती मुमुट् सेवित सिरपर चढ़ना चाहती है ॥ २४ ॥ विवाहादि सम्बन्ध वृष्णियोंके साथ हो जानेसे इनका शय्या, आसन और भोजन हमलोगोंके साथ-साथ समान हो गया है हमलोगोंके द्वारा दिया गया राजसिंहासन पाकर ये यादव सब हमारे तुल्य हो गये हैं ॥ २५ ॥ चँवर, व्यजन, शंख, श्वेत छत्र, किरीट, सुन्दर शय्या और राजाओंके समान राजसिंहासनका ये सब आज हम सबोंकी उपेक्षासे ही उपभोग करते हैं ॥ २६ ॥ जैसे साँपोंको पिलाया गया दूध पिलानेवालेके लिये ही बुरा होता है वैसे ही इन यादवोंको हमलोगोंके द्वारा दिये गये ये छत्र चँवर आदि राजचिह्न हमीं लोगोंके लिये दुःखदायी हो रहे हैं, अब इन लोगोंको इनकी जरूरत नहीं, जो यादव

अवध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥ अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥ एते यौनेन सम्बद्धाः सह शय्यासनाशनाः ॥ वृष्णय-स्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥ चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् ॥ किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥ अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥ कथमि-न्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ॥ अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥२८॥ श्रीशुक उवाच ॥ जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ॥ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः ॥ अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३० ॥ नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः ॥ तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥ अहो यदून्सुसंर-ब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ॥ सान्त्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥ त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः ॥ तं मामवज्ञाय

हमलोगोंकी दयासे इतने बड़े बने वे ही आज लज्जा छोड़कर हमलोगोंको आज्ञा दे रहे हैं ! ॥ २७ ॥ सिंहद्वारा ग्रस्त वस्तुका जैसे मेड़ उपभोग नहीं कर सकता वैसेही भीष्म, द्रोण और अर्जुन आदि कौरवोंके बिना दिये किसी चीजका इन्द्र भी उपभोग कैसे कर सकते हैं ॥२८॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, राजाके घरमें जन्म लेनेसे तथा सौ भाइयोंसे युक्त होनेसे लक्ष्मीके घमण्डसे मतवाले असभ्य कौरव सब बलदेवजीको दुर्वचन सुनाकर अपने नगरमें चले गये ॥ २९ ॥ तदनन्तर बलदेवजीने कौरवोंकी दुष्टता देख तथा उनके कठोर बचन सुनकर अति क्रोधित हो जानेके कारण भयानक मुख बना करके मुस्कुराते हुए फिर कहा ॥ ३० ॥ नानाविध धन-जन आदिके मदसे उन्मत्त हुए दुष्ट पुरुष शान्ति नहीं चाहते। दुष्ट पशुओंको शान्त करनेके लिये लगुडकी नाईं उन दुष्ट पुरुषोंको भी शान्त करनेका उपाय एकमात्र दण्ड ही उपयुक्त होता है ॥ ३१ ॥ अहो, युद्ध करनेके लिये तैयार यदुवंशियोंको तथा थोड़ा क्रोधित कृष्णको भी किसी प्रकार धीरे धीरे शान्त करके इन कौरवोंकी शान्तिके निमित्त मैं यहाँ आया हूँ ॥ ३२ ॥ कलह चाहनेवाले, दुष्ट ये मन्दमति कौरव ऐसे अभिमानी हो रहे हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कि मेरा और फिर उग्रसेनका भी तिरस्कार करते हुए दुर्वचन कहकर चले गये ॥ ३३ ॥ भोज, वृष्णि और अन्धक वंशीय यादवोंके स्वामी उग्रसेन क्या इन्हें आज्ञा देनेकी सामर्थ्य नहीं रखते ? इन्द्रादि लोकपाल भी जिन उग्रसेनके आदेशसे बराबर चलते हैं ॥ ३४ ॥ जो श्रीकृष्ण इन्द्रकी सभा सुधर्मापर आक्रमण करके पारिजात नामक देवताओंका वृक्ष लाकर उपभोग करते हैं वह क्या मनुष्योंके राजसिंहासनके अधिकारी नहीं हैं ॥ ३५ ॥ जिनके चरणकमलकी सम्पूर्ण जगत्की स्वामिनी साक्षात् लक्ष्मीदेवी सेवा करती हैं। वह लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण क्या राजाओंके छत्र, चँवर आदिके अधिकारी नहीं हैं ॥ ३६ ॥ योगियों द्वारा सेवित गङ्गादि तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाली जिनके चरणकमलकी धूलिका सब लोकपाल भी अपने उत्तम मस्तकोंसे धारण करते हैं, ब्रह्मा, भगवान् शङ्कर, मैं और लक्ष्मीजी भी जिनके अंशके अंशरूप होकर जिनके चरणकमलकी धूलि अपने सिरपर नित्य चढ़ाते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रके

मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ॥ शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्माक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ॥ आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ॥ स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ॥ ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥ भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल ॥ उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ॥ असम्बद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥ ३९ ॥ अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ॥ गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥ लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ॥ विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ॥ आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातिसंभ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः[1] ॥

लिये यह राजसिंहासन भला कौनसी सर्वोत्कृष्ट वस्तु है ? ॥ ३७ ॥ कौरवोंसे दी गई पृथिवीको यदुवंशी सब भोगते हैं अतः यह सही है कि हम सब जूती हैं और कौरव सिर हैं ॥ ३८ ॥ अहो, शराब पीकर मतवाले पुरुषोंकी नाईं धनके मदसे मदोन्मत्त अभिमानी इन कौरवोंके असम्बद्ध और कठोर वचनोंको इनका शासक होकर भी भला कौन मनुष्य सह सकता है ॥ ३९ ॥ इसलिये आज मैं इस पृथिवीको कौरवोंसे शून्य बना दूँगा, यह कहकर मानो तीनों जगत्को भस्मकर देंगे इस अभिप्रायसे क्रोधयुक्त हो करके बलदेवजी हल लेकर उठ खड़ेहो गये ॥४०॥ अपने हलके अग्रभागसे बलदेवजी हस्तिनापुरको उखाड़कर क्रोध करके नगरको गङ्गामें फेंक देनेके इच्छासे उसे खींचने लगे ॥ ४१ ॥ उनके हलके अग्रभागसे खींचे गये नगरको नावके समान चक्कर काटकर गङ्गाजी में गिरते हुए देखकर सब कौरव मारे भय घबड़ा गये ॥ ४२ ॥ जीनेकी इच्छा रखनेवाले सपरिवार कौरव साम्ब और लक्ष्मणाको आगे करके उन्हीं सर्व-

१—इत्यक्षराधिक्यं सोढव्यम्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समर्थ प्रभु हाथ जोड़कर पहुँचे ॥ ४३ ॥ जाकर सब कहने लगे—हे समस्त जगत्के आधार, हे बलराम, हे बलराम, हम आपका प्रभाव नहीं जानते थे। अतः हम मूढ़ कुबुद्धियोंका अज्ञानवश हुआ अपराध क्षमा करें ॥ ४४ ॥ भगवन्, संसारकी उत्पत्ति, पालन और नाशके प्रधान कारण आपही हैं। आपका कोई और दूसरा आधार नहीं है। हे ईश, जब आप खेल खेलने लगते हैं तब ये समस्त लोक आपके खिलौने बन जाते हैं, ऐसा मुनिलोग कहते हैं ॥ ४५ ॥ हे हजार सिरवाले शेषावतार, हे अनन्त, आपही इस समस्त भूमण्डलको अपने सिर-पर लीलासे धारण करते और महाप्रलयकालमें भी समस्त जगत्को अपनी आत्मामें रखकर अकेले बचे आपही क्षीर सागरमें सोते हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन्, जब आप संसारकी स्थिति और पालनमें तत्पर रहते हैं तब सत्त्वगुणको धारण करते हैं। आपका क्रोध संसारको शिक्षा देनेके लिए ही होता है, किसी द्वेष या डाहके कारण नहीं ॥ ४७ ॥ हे सर्वभूतात्मन् हे समस्त-

सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ॥ मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ॥ लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥ ४५ ॥ त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ॥ अन्ते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥ कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ॥ बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय ॥ विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ॥ प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान्षष्टिहायनान् ॥ ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ॥ दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ससुतः सस्नुषः प्रागात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः ॥ शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापि च पुरं

शक्तिधर, हे अव्यय, हे विश्वकर्मन्, आपको बार-बार प्रणाम है। हम सब आपकी शरणमें आये है ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जिनके नगर डोल रहे थे और जो भयसे अधिक घबड़ाकर शरणागत हो चुके थे, उन कौरवोंके इसप्रकार स्तुति करनेपर प्रसन्न हो बलदेवजीने 'भयभीत मत होओ' यह कहकर उन्हें अभयदान दे दिया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर पुत्री-वत्सल दुर्योधनने अपनी लड़कीके दहेजमें साठ वर्षकी अवस्थावाले बारह सौ हाथी, दस हजार घोड़े, सूर्यके समान तेजस्वी सोनेके बने छः हजार रथ और कण्ठमें निष्क (पदका) पहने एक हजार दासियाँ दीं ॥ ५०, ५१ ॥ यदुश्रेष्ठ भगवान् बलदेवजी यह सब लेकर अपने पुत्र साम्ब और पुत्रवधू लक्ष्मणाके साथ मित्रोंसे अभिनन्दित होते हुए द्वारकाको चल दिये ॥५२॥ तदनन्तर अपने नगरमें प्रविष्ट होकर बलदेवजीने अनुरक्तचित्त अपने बन्धुओंसे मिलकर यदुश्रेष्ठोंकी सभाके बीचमें सारी घटनाएँ कह कह सुनाईं, जो कौरवोंके विषयमें उन्होंने की थी ॥५३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे राजन्, आज भी हस्तिनापुर* बलदेवजीके पराक्रमको सूचित करता हुआ जो कि दक्षिणदिशासे ऊँचा गङ्गा ओर झुका दिखाई देता है ॥ ५४ ॥

ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ॥ समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनु दृश्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे० उ० हास्तिनपुरकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

अड़सठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा हे राजन्, भगवान्के साम्ब नामक लड़केको स्वयम्वरसे दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको हरकर लिये जाते देख कर्ण आदि महारथी, कौरव सब उनसे लड़ने लगे। उस युद्धमें सभी महारथी कौरवोंने मिलकर साम्बको रथ हीन बना करके अपनी लड़कीके साथ उन्हें बाँध लिया। नारदजीके द्वारा कौरवोंसे बँधे हुए भगवान् कृष्णको पता लगानेपर उन कौरवोंसे युद्ध करनेके लिए यादवोंको तैयार हुए देखकर शान्तिके इच्छुक बलदेवजी हस्तिनापुरको चल दिये। वहाँ एक उपवनमें ठहरे हुए बलदेवजीको सुनकर सभी कौरव नाना प्रकारके उपहार लेकर पहुंचे। यथा योग्य कौरवोंमें द्वारा पूजन आदि हो जाने तथा कुशल-क्षेम पूछने और सुन लेनेपर शान्ति चाहनेवाले बलदेवजीने कहा—हे क्षत्रियश्रेष्ठो, महाराज उग्रसेनका यह आदेश है, तुम लोग अच्छी तरह सुन लो। 'साम्बको जो तुम लोगोंने युद्धमें अन्यायपूर्वक बाँध लिया है, वह हमने सम्बन्धियोंके कल्याणकी इच्छासे ही सह लिया है।' हे राजन्, भगवान् बलदेवजीका इसतरहका गर्वयुक्त भाषण सुनकर तिरस्कारपूर्ण बातें कहते हुए कौरव वहाँसे अपने नगरमें आ गये। तदनन्तर क्रुद्ध होकर बलदेवजी अपने हलके नोंकसे द्वारकाको गंगामें डुबो देनेकी इच्छासे खींचने लगे। अपने नगरको डगमगाते देखकर कौरव लोग लक्ष्मणाके सहित साम्बको आगे करके भगवान् बलदेवजीके पास पहुँचे उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर बलदेवजीने अपना हल खींच लिया और द्वारकाको गङ्गामें डुबो देनेसे बचाया। हे राजन्, तदनन्तर दहेजमें दुर्योधन द्वारा समर्पित हाथी, घोड़े, रथ आदि बहुत-सी वस्तुएँ लेकर अपनी पुत्र वधू लक्ष्मणा और साम्बके साथ अपनी पुरीको लौट आये। अड़सठवाँ अध्याय समाप्त।

❋ अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ❋

(सोलह हजार स्त्रियोंके प्रत्येक घरमें भगवान्के गार्हस्थ्य धर्मको देखकर विस्मित हुए श्रीनारदमुनिकी स्तुति)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नरकासुरका श्रीकृष्ण द्वारा मरण तथा उसके सोलह हजार स्त्रियोंके साथ भगवान्का विवाह सुनकर कैसे एक श्रीकृष्ण सोलह हजार स्त्रियोंके

श्रीशुक उवाच ॥ नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥ कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन

साथ रमण करते हैं, यह देखनेकी नारदजीको इच्छा हुई ॥ १ ॥ एक ही शरीरसे एक समय सोलह हजार घरोंमें अलग-अलग रहनेवाली सोलह हजार स्त्रियोंके साथ किसप्रकार भगवान्ने

*कौरवोंकी राजधानी जो वर्तमान दिल्ली नगरसे कुछ दूरपर थी। यह नगर हस्तिन नामक राजाका बसाया हुआ था। इसका स्थान दिल्लीसे उत्तर-पूर्व २८ कोशपर निश्चित किया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विवाह किया, यह अत्यन्त आश्चर्यकी वात है ॥ २ ॥ यह देखनेकी इच्छासे अति उत्सुक हो नारदजी पुष्पित उपवनों और उद्यानोंमें भ्रमरसमूहोंके गुनगुनाहटसे गुञ्जायमान द्वारकापुरीमें आये ॥ ३ ॥ वहाँ विकसित इन्दीवर, अम्भोज, कह्लार, कुमुद तथा उत्पलोंसे व्याप्त तालावोंमें हंस और सारस आदि पची कलरव कर रहे थे ॥ ४ ॥ सुवर्ण एवं नानाविध रत्नोंसे भरे, महामरकतमणियोंसे प्रकाशित हो रहे स्फटिक तथा चाँदीके नव लाख राजभवनोंसे वह शोभित हो रही थी ॥ ५ ॥ अलग-अलग दूर-दूरपर निर्मित गलियों, सड़कों, चौराहों, बाजारों अनेक तरहकी शालाओं, और देवमन्दिरोंसे देखनेमें वह अत्यन्त मनोहर लगती थी। उसके सभी मार्ग, चौक, गलियाँ तथा देहलियाँ खूव संसिक्तकी गई थीं तथा फहरा रही पताकाओं एवं ध्वजाओंसे घामका निवारण किया जा रहा था ॥ ६ ॥ उसी द्वारकाके अन्दर भगवान् श्रीकृष्णका सोलह हजार स्त्रियोंके घरोंसे अलंकृत सर्वविध वैभव सम्पन्न अन्तःपुर

वपुषा युगपत्पृथक् ॥ गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥ इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ॥ पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥ प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गाङ्गणवीथिदेहलीं पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥ तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलङ्कृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भै र्वैदूर्यफलकोत्तमैः ॥ इन्द्रनीलमयैः कुड्यै र्जगत्या चाहतत्विषा ॥९॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥१०॥ दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलङ्कृतम् ॥ पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ॥ नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥ १२ ॥ तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेषदासी-

समस्त लोकपालोंसे बनाया गया था। जहाँपर विश्वकर्माने अपनी शिल्प कौशल पूर्णरूपसे दिखलाया था भगवान् कृष्णकी स्त्रियोंके उन भवनोंमेंसे एक विशाल भवनमें नारदजी प्रविष्ट हुए ॥ ७, ८ ॥ उस भवन विद्रुमके खम्भे लगे हुए थे, वैदूर्य मणिमय उसके छादन थे तथा इन्द्रनील मणियोंकी उसकी भित्तियाँ बनी हुई थीं। जिसकी कान्ति कभी धीमी न पड़नेवाली थी, इन्द्रनीलमयी जमीनसे वह खूव अलंकृत हो रहा था ॥ ९ ॥ विश्वकर्मा द्वारा विरचित मोतियोंके झूलरसे झालरोंसे युक्त चाँदनियों तथा उत्तम-उत्तम मणियोंसे जटित हाथीके दाँतोंके बने हुए आसन और पलंगोंसे वह खूव सजाया गया था ॥ १० ॥ गलेमें पदक पहने तथा सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित अनेक दासियों एवं कुर्ता-पगड़ी पहने और सुन्दर मणिमय कुण्डल धारण किए हुए अनेक सेवकोंसे वह भवन और देदीप्यमान हो रहा था ॥ ११ ॥ हे राजन्, रत्नप्रदीपोंकी प्रभाओंसे उसके अन्दरका अन्धकार दूर हो गया था, उसके विचित्र वलभियोंके ऊपर बैठे मयूर झरोखोंसे जलाए गए अगरु-धूपके निकलते हुए धुएँको देखकर उसे मेघ जानते हुए खूव जोरके जोरसे कारव करके नाच रहे थे ॥१२॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐसे परम रमणीय अपनेमें अपने ही समान गुण, रूप, अवस्था और वेषवाली वस्त्र-आभूषण दस हजार दासियोंसे युक्त रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्ण भगवान्‌को नारदजीने देखा, उस समय रुक्मिणीजी सुवर्ण दण्ड युक्त चमर डुलाकर भगवान्‌की निरन्तर सेवामें लग रही थीं ॥ १३ ॥ नारदजीको देखते ही सम्पूर्ण धार्मिकोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजीने रुक्मिणीके पलङ्गसे शीघ्र उठकर अपने किरीटयुक्त शिरसे उनके चरणकमलको प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़ते हुए अपने आसनपर उन्हें बैठाया ॥ १४ ॥ धार्मिकोंके स्वामी श्रीकृष्णजीने स्वयं सम्पूर्ण संसारके परमगुरु होते हुए भी नारदजीके चरण अपने हाथोंसे धोकर चरणोदक सिरपर चढ़ाया। ब्रह्मण्यदेव यह जो भगवान्‌का नाम है वह उनके गुणके अनुरूप और युक्त ही है, क्योंकि जिस भगवान्‌के चरणसे निकली गङ्गाके द्वारा सम्पूर्ण तीर्थ पवित्र हो गये हैं ऐसे परमपूत भगवान्‌ने नारदजीके पैर अपने हाथसे स्वयं धोये ॥ १५ ॥ देवर्षियोंमें सर्वश्रेष्ठ नारदजीका पुराण ऋषि मनुष्योंके सखा श्रीनारायणने वेदोक्त–विधिसे पूजा किया और अमृत तुल्य थोड़ेसे वचन बोलकर नारदजीसे प्रार्थना की—हे प्रभो, कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ॥ १६ ॥

सहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमर व्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥ १३ ॥ तं सन्निरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्नाऽबिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥१५॥ सम्पूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥१६॥ नारद उवाच ॥ नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥१७॥ दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥१८॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्या स नारदः ॥ योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥१९॥ दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि

तब नारदजीने कहा—हे प्रभो, समस्त चराचरके आप स्वामी हैं, आपके विषयमें यह आश्चर्य नहीं है कि समस्त प्राणियोंमें मैत्री रखते हैं और दुष्टोंका दमन करते हैं, क्योंकि जगत्‌की स्थिति तथा रक्षाके साथ-साथ उसके कल्याण देनेके लिए ही आपका यह स्वेच्छावतार हुआ है, यह हमलोग भली भाँति जानते हैं। अतः दुष्टोंका दमन और साधुओंका सम्मान जो आपके द्वारा होता रहता है, वह युक्त ही है ॥ १७ ॥ अगाध ज्ञानवाले ब्रह्मा आदि जिन चरणकमलका हृदयमें ध्यान किया करते हैं, ऐसे संसाररूपी कूपमें पड़े हुए लोगोंको निकालनेमें सहायक और संसारको मोक्ष देनेवाले आपके दोनों चरणोंका मैंने दर्शन किया, अतः मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। तथापि हे भगवन्, आप प्रसन्न हों, जिससे कि आपकी स्मृति बराबर बनी रहे और मैं उनका ध्यान करता हुआ विचरता फिरूँ ॥ १८ ॥ हे राजन्, तदनन्तर नारदजीने योगेश्वर श्रीकृष्णजीके योगमाया देखनेकी इच्छासे उनकी अन्य स्त्रीके दूसरे गृहमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ वहाँ भी अपनी प्रिया और उद्धवजीके साथ जुआ खेलते हुए भगवान्‌जीको देखा। भगवान्‌ने भी उन्हें देख उठकर परम भक्तिसे अभ्युत्थान तथा आसन आदिके द्वारा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खूब सम्मान किया ॥ २० ॥ अनजानकी तरह होकर नारदजीसे पूछा—आप कब आये ? अपूर्ण हम पूर्णकाम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ? ॥ २१ ॥ तथापि हे भगवन्, कुछ अवश्य कहिये, मेरा जन्म सफल बनाइये, यह सुनकर भगवान् नारदजी आश्चर्ययुक्त हो चुपचाप उठकर दूसरे गृहमें चले गये ॥ २२ ॥ अन्य गृहमें भी अपने छोटे-छोटे बच्चोंको प्यार करते हुए भगवान्को देखा । पुनः उससे अन्य गृहमें स्नान करनेके लिए तैयारी करते भगवान्को देखा ॥ २३ ॥ इसी प्रकार किसी गृहमें अग्निहोत्र करते हुए, कहीं यज्ञ करते हुए, कहीं ब्राह्मणोंको भोजन कराते हुए, कहीं अवशिष्ट भोजन करते हुए भगवान्को देखा ॥ २४ ॥ कहीं पर सन्ध्योपासन करते हुए, कहीं गायत्रीमन्त्र जप करते हुए, कहीं पर तलवार लेकर चलाते हुए देखा ॥ २५ ॥ कहीं पर घोड़े हाथी और रथोंपर बैठकर भ्रमण करते, कहीं वन्दीजन द्वारा स्तुति सुनते, कहीं पलङ्गपर सोते, कहीं पर उद्धवादि मन्त्रियोंके साथ सलाह करते, कहीं पर

प्रियया चोद्धवेन च ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥ पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति ॥ क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनं कुरु ॥ स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद् गृहम् ॥ २२ ॥ तत्राप्यचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुताञ्छिशून् ॥ ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥२३॥ जुह्वन्तं च वितानाग्नीन्यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ॥ भोजयन्तं द्विजान्क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥ २४ ॥ क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ॥ एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसि-वर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् ॥ क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥२६॥ मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्म-न्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः ॥ जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद् द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलङ्कृताः ॥ इतिहास-पुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥ २८ ॥ हसन्तं हास्यकथया कदाचित्प्रियया गृहे ॥ क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥ ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ शुश्रूषन्तं गुरून्क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥ कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित्सन्धिं चान्यत्र केशवम् ॥ कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥३१॥ पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ॥ दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥३२॥

अप्सराओंसे युक्त होकर जलक्रीडामें लगे हुए भगवान्को देखा ॥ २६, २७ ॥ कहीं पर ब्राह्मणोंको वस्त्र, आभूषणसे सुसज्जित गौ देते और कहीं पर कल्याण देनेवाला इतिहास-पुराणको सुनाते हुए भगवान्को देखा ॥ २८ ॥ कहीं पर अपनी स्त्रियोंके साथ प्रेमालाप करते, कहीं पर धर्म करते, तथा कहीं पर अर्थ और कामका सेवन करते हुए भगवान्को देखा ॥ २९ ॥ कहीं पर प्रकृतिसे परे परम पुरुष ब्रह्मका ध्यान करते, कहीं पर अभिलषित पदार्थों और सामग्रियों से पूजनकर गुरुजनोंकी सेवा करते हुए भगवान्को देखा ॥ ३० ॥ कहीं पर किसीसे युद्ध करते, कहीं पर सन्धि करते, कहीं पर बलदेवजीके साथ सज्जनोंके कल्याणके विषयमें विचार करते, और कहीं समय-समयपर अपने पुत्र और कन्याओंके उनके सदृश स्त्री और वरोंके साथ खूब वैभव लगाकर धूमधामसे विधिपूर्वक विवाह करते भगवान्को देखा ॥ ३१, ३२ ॥ कहीं अपनी कन्याओं और जामाताओंकी विदाई कर तथा अन्यत्रसे उन्हें बुला करके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नानाविध महोत्सवों को करते देखा। योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णके वचों के जिन महोत्सवों को देखकर उस समय सारा संसार विस्मय करने लग जाता था ॥ ३३ ॥ कहीं पर बड़े बड़े यज्ञों द्वारा सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा करते हुए और कहीं पर कूप, बाग तथा मठ, मन्दिर आदि बनवाकर पूर्णरूपसे धर्मका सम्पादन करते हुए भगवान्को देखा ॥ ३४ ॥ कहीं पर सिन्धुदेशोत्पन्न अश्वपर बैठकर शिकार करते हुए तथा तदनन्तर यदुवंशियोंसे युक्त होकर पवित्र पशुओंको यज्ञके लिए मारते हुए भगवान्को देखा ॥ ३५ ॥ कहीं पर अपनी प्रजा तथा अन्तःपुरमें वहाँके लोगोंके हृदयका भाव जाननेकी इच्छासे अपने असली रूपको छिपाकर बनावटी रूप धारणकर घूमते हुए योगेश्वर भगवान्को देखा ॥ ३६ ॥ इस तरह मनुष्योंके मार्ग का अनुसरण कर रहे भगवान्की हृषीकेश योगमायाका अभ्युदय देखकर हँसते हुए उनसे नारदजीने कहा ॥ ३७ ॥ हे योगेश्वर, आपके चरणकमलोंकी सेवा अपने अन्तःकरणमें प्रतीत

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ॥ वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजन्तं सकलान्देवान्क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः ॥
पूर्तयन्तं क्वचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ॥ घ्नन्तं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥
अव्यक्तलिङ्गं प्रकृतिष्वन्तःपुरगृहादिषु ॥ क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ॥ योगमायोदयं
वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ३७ ॥ विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ॥ योगेश्वरात्मन्निर्माता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥
अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ॥ पर्यटामि तवोद्गायँल्लीलां भुवनपावनीम् ॥३९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताहं कर्ता
तदनुमोदिता ॥ तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरन्तं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् ॥ तमेव
सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ॥ मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥
इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ॥ सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिल-

ब्रह्मादि मायावियों द्वारा भी दिखाई देनेमें कठिन आपकी केवल योगमायाओंको ही जानता हूँ, आपके परमार्थ स्वरूपको मैं नहीं जानता ॥ ३८ ॥ इसलिए हे देव, आप मुझे ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे कि तीनों भुवनोंको पवित्र करनेवाली आपकी अद्भुत लीलाका गान करता हुआ मैं आपके पवित्र यशसे भरे हुए सम्पूर्ण लोकोंमें भ्रमण करता रहूँ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन्, धर्मका वक्ता, कर्ता और अनुमोदन करनेवाला मैं ही हूँ। इसलिए संसारको शिक्षा देनेके लिये मैंने इस धर्मका आश्रयण किया है। हे पुत्र, मोह मत करो ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, गृहमें रहनेवालोंके परम पवित्र सत्कर्मका गार्हस्थ्य धर्मका आचरण करते हुए समस्त गृहोंमें एक रूपमें ही वर्तमान भगवान्को नारदजीने देखा ॥ ४१ ॥ अनन्तभक्ति सम्पन्न श्रीकृष्णजीकी अद्भुत योगमायाके महान् अभ्युदयको बार-बार देखकर कौतुकपूर्ण देवर्षि नारदजी विस्मित हो गये ॥ ४२ ॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ और काममें श्रद्धायुक्त भगवान् श्रीकृष्णसे सम्मानित हो नारदमुनि प्रसन्न चित्त होकर उनका स्मरण करते हुये वहाँसे चल दिए ॥ ४३ ॥ हे राजन्, इस प्रकार समस्त संसारके कल्याणके लिए अपनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपनी मायां शक्तिको स्वीकार किये श्रीभगवान् नारायणने मनुष्योंके मार्गका अनुसरण करते हुए सोलह हजार अपनी सर्वाङ्ग सुन्दरी स्त्रियोंके लज्जायुक्त प्रेम भरे अवलोकनों तथा मन्द मनोहर हास्योंसे सेवित होते हुए उनके साथ यथेच्छ विहार किया ॥ ४४ ॥ हे राजन्, संसारके रचयिता, पालयिता और नामके हेतु भगवान्ने जो जो अति कठिन साधारण लोगोंसे न होनेके योग्य अद्भुत कार्य किए हैं, उनको जो पुरुष गाता, सुनाता और अनुमोदन करता है उसके मोक्षका मार्ग भूत भगवान्में भक्ति होती है ॥ ४५ ॥

भवाय गृहीतशक्तिः ॥ रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार । यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

उनहत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय नारदमुनिको भगवान्के वैभव देखनेकी इच्छा हुई । भगवान्के अनन्य भक्त नारदमुनि द्वारकाको चल दिये । वहाँपर भगवान्को अपनीं स्त्रियोंके सोलह हजार भव्यभवनोंमें भिन्न भिन्न कार्योंमें लगे हुए देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए । वहाँ प्रत्येक घरमें पहुँचनेपर भिन्न-भिन्न कार्य करते हुए भगवान्ने नारदजीका खूब सम्मान किया । भगवान्के अभूतपूर्व वैभवको देखकर नारदजीने कहा—हे प्रभो, मैं केवल आपकी मायाको ही जानता हूँ । आपका असली रूप नहीं जानता । मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये, ताकि मैं आपके स्वरूपका ध्यान तथा गुणानुवाद करता हुआ इस पृथिवीपर विचरण करता रहूँ । हे राजन्, नारदकी यह बात सुनकर भगवान्ने कहा—हे ब्रह्मन्, चूँकि धर्मका वक्ता, कर्ता और अनुमोदक मैं ही हूँ, अतः संसारको धर्मशिक्षा देनेके लिए मैंने इस गार्हस्थ्यधर्म को स्वीकार किया है । पुत्र, इस विषयमें तुम खेद मत करो । भगवान्का ऐसा मधुर भाषण सुनकर नारदजी आनन्दित होकर वहाँसे निकल गये । उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।

❀ सप्ततितमोऽध्यायः ❀

[आह्निककृत्यसे निवृत्त हो भगवान्के सुधर्मा सभामें पहुँचने पर जरासन्ध द्वारा कैद किये गये राजाओंके दूतका सन्देश सुनते समय नारदजीका युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें जानेके लिए निमन्त्रण देनेके बाद उद्धवके साथ भगवान्की मन्त्रणा]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समयकी बात है कि ऊषाकालके बीतने पर जब मुर्गे बोलने लगे, तब भगवान् द्वारा आलिङ्गित उनकी स्त्रियाँ वियोगके भयसे व्याकुल हो

श्रीशुक उवाच ॥ अथोपस्थ्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ॥ गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥ वयांस्यरूरुवन्कृष्णं

उन मुर्गोंको शाप देने लगीं ॥ १ ॥ मन्दारके उपवनकी वायुसे मत्त होकर गुनगुनाते हुए भ्रमरोंके शब्द होनेपर निद्राहीन हुए पक्षी सब बन्दियोंकी तरह भगवान् श्रीकृष्णको जगाते हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खूब जोर-जोरसे कूजन करने लगे ॥ २ ॥ परन्तु रुक्मिणी अपने प्रियकी भुजाओंमें चिपकी हुई आलिङ्गन विश्लेषके भयसे उस परम रमणीय समयको भी न बर्दास्त कर सकीं ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर जल लेकरके हाथ-मुँह धो लेनेके बाद प्रसन्नेन्द्रिय हो मायासे परे, अखण्ड, स्वयं ज्योतिःस्वरूप, उपाधिरहित, नाशशून्य, अपने स्वभावसे ही अविद्याको सदा निरस्त किये हुए इस विश्वकी उत्पत्ति और नाशकी हेतु भूत अपनी सत्व-रज-तम आदि शक्तियोंके द्वारा सद्रूप-आनन्दस्वरूप दिखाई देनेवाले अपने परम ब्रह्मरूपका ध्यान करने लगे ॥ ४ ५ ॥ इसके बाद स्वच्छ जलमें स्नान करके वस्त्र पहनकर सज्जनोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने सन्ध्योपासान आदि विधिपूर्वक क्रियाकलाप किये। तदनन्तर हवन करके मौन होकर गायत्रीका जप भगवान् करने लगे ॥ ६ ॥ उदित हो रहे सूर्यकी तरफ खड़ा होकर उपस्थान करनेके बाद अपने अंशभूत देव ऋषि और पितरोंको तर्पण करके वृद्धों

बोधयन्तीव बन्दिनः ॥ गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ॥ परिरम्भणविश्लेषात्प्रिय-बाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ॥ दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥ एकं स्वयञ्ज्योतिरनन्य-मव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ॥ ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी ॥ चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥ उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वाऽऽत्मनः कलाः ॥ देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मश‍ृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ॥ पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥ ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ॥ अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने ॥ ९ ॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः ॥ नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ॥ वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं तथादर्शं गोवृषद्विजदेवताः ॥ कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तः पुरचारिणाम् ॥ प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥ १२ ॥

तथा ब्राह्मणोंका आत्मवान् श्रीकृष्णजीने पूजन किया ॥ ७ ॥ वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत ब्राह्मणोंको रेशमीवस्त्र, मृगचर्म और तिलकोंके साथ प्रतिदिन एक-एक बद्व यानी तेरह हजार चौरासी गायें भगवान् दान करके देते थे। वे सब गायें नई व्याई, दूध देनेवाली, बछड़ोंसे युक्त सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित तथा मोतियोंकी मालाओंसे युक्त रहती थीं। उनके सींग सोनेसे तथा खुर चाँदीसे मढ़े रहते थे ॥ ८, ९ ॥ अपनी विभूतिस्वरूप गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध गुरु तथा समस्त प्राणियोंको प्रणाम करके माङ्गलिक द्रव्योंका भगवान्ने स्पर्श किया ॥ १० ॥ बाद में नरलोकके विभूषण भगवान्ने अपने शरीरको सुन्दर माला, चन्दन, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से सजाया ॥ ११ ॥ तदनन्दर घृत तथा दर्पणमें अपना प्रतिविम्ब देखकर गौ, वृषभ ब्राह्मण और देवताओं का दर्शन किया। अपने नगर तथा अन्तःपुरोंमें रहनेवाले सभी वर्णों एवं समस्त मन्त्रियोंको उनकी अभिलषित वस्तुएँ देकर उन्हें सन्तुष्ट करके भगवान् स्वयं अति प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ इसके बाद सबसे पहले ब्राह्मणोंको मालाएँ, पुष्प, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य और ताम्बूल देकर तदनन्तर मित्रों, मन्त्रियों तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्त्रियोंको दे देनेके बाद भगवान्‌ने स्वयं उनका उपभोगके लिए ग्रहण किया ॥ १३ ॥ इसके बाद सारथि परमाद्भुत रथको लाया, जिस रथमें सुग्रीवादि नामक सुन्दर घोड़ें जोते गये थे। उसे लाकर वह प्रणाम करके भगवान्‌के आगे खड़ा हो गया ॥ १४ ॥ जैसे उदयाचल पर सूर्यदेव भगवान् उदयको प्राप्त होते हैं वैसे ही सात्यकि और उद्धवके साथ भगवान् सारथिका हाथ पकड़कर रथपर बैठ गये ॥ १५ ॥ अपने अन्तःपुरकी स्त्रियोंके लज्जा और प्रेमयुक्त दृष्टिसे देखते भगवान्‌को कुछ हँसी आ जानेके कारण उनके मनको हरते हुए बड़ी कठिनतासे भगवान् वहाँसे चले ॥ १६ ॥ हे राजन्, जहाँ रहनेवालोंको भूख, प्यास, शोक, मोह, मरण और जन्म नहीं होता है ऐसी सुधर्मा नामक सभामें सब यदुवंशियोंको साथमें लेकर भगवान् जा पहुँचे ॥ १७ ॥ यदुवंशी नरसिंहोंसे घिरकर वहाँ सर्वोत्तम राजसिंहासनपर बैठे हुए यदुओंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णजी अपनी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए ऐसे शोभने

संविभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥ तावत्सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् ॥ सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थिताऽग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् ॥ सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥१५॥ ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ॥ कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥ सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ प्राविशद्यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षडूर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ॥ वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥ तत्रोपमन्त्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ॥ १९ ॥ मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ॥ ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ॥ पूर्वेषां पुण्यशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ॥ विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥ स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ॥ राज्ञामावेदयद् दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य सन्नतिं न ययुर्नृपाः ॥ प्रसह्य

लगे, जैसे कि आकाशमें ताराओंसे घिरा हुआ चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥ १८ ॥ हे राजन्, वहाँ पर उपमन्त्री (परिहासक) सब हास्य रस युक्त प्रेमालापोंसे भगवान्‌को प्रसन्न करने लगे। नटचार्य और नर्तकियाँ पृथक्-पृथक् मृदङ्ग, वीणा, मुरज और बाँसुरीके लय तथा, तालके अनुसार शब्दोंसे नाचने-गाने लगीं तथा सूत, मागध और बन्दीजन भगवान्‌को नानाविध स्तोत्रोंसे प्रसन्न करने लगे ॥ १९, २० ॥ उस सभामें कुछ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण बैठे व्याख्या करनेमें चतुर वे लोग वेद मन्त्रोंकी व्याख्या करते हुए पवित्र कीर्तिवाले प्राचीन राजाओंकी कथा कहने लगे ॥ २१ ॥ हे राजन्, इसी समय वहाँ एक अभूत पूर्व दर्शन एक पुरुष आया। द्वारपालोंने उसके आनेका समाचार भगवान्‌को सुनाया। सुनते ही भगवान्‌ने उसे भीतर लानेकी आज्ञा दी। भगवान्‌की आज्ञा पाते ही उन द्वारपालोंने उसे राजसभामें लाकर उपस्थित किया ॥ २२ ॥ भगवान् परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम करके हाथ जोड़कर जरासन्ध द्वारा कैद किये गये राजाओंका समस्त दुःख उस दूतने कह सुनाया ॥ २३ ॥ हे राजन्, उस दूतने भगवान्‌से उन राजाओंका दुःख सुनाया। जिन्होंने जरासन्धके दिग्विजयके समय उसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रणाम नहीं किया था, जिससे कि क्रुद्ध होकर जरासन्धने उन्हें गिरिव्रज नामक दुर्गमें बन्द कर रक्खा था, उनकी संख्या बीस हजार थी ॥ २४ ॥ हे राजन्, उनका दुःख सुनाते हुए दूतने कहा—हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे अमेयात्मन्, शरणागतका भय दूर करनेवाले, हम सब लोग आपकी शरणमें आये हुए हैं। चूँकि हम लोग भेदबुद्धिसे युक्त हैं अतः हमलोग संसार के भयसे डर गये हैं ॥ २५ ॥ निषिद्ध और काम्यकर्ममें निरत होनेके कारण आपके द्वारा बतलाये गये आपके पूजनरूपकल्याणदायककर्ममें जब यह जीव प्रमाद करने लग जाता है तब हे भगवन्, बलवान् आप इसके जीवनकी आशा शीघ्र नष्ट कर देते हैं, ऐसे सर्वदा सावधान रहनेवाले कालस्वरूप आपको मेरा मनस्कार है ॥ २६ । इस संसारके सभी लोग तो वैसा किया करते ही हैं, पर हम लोग आपके भक्त हैं। आप संसारके स्वामी हैं। सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिए तथा दुष्टोंका नाश करनेके लिए ही आप अपनी कलाके साथ अवतार हुए हैं। यदि आपके रहते हुए भी कोई जरासन्ध आदि अन्य राजा आपके आदेश उल्लङ्घन कर दे और आपसे रक्षित हुआ भी पुरुष अपने किये हुए कर्मका फल भोगे तो हैं ईश, यह हम

रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन ॥ वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोका विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥२६॥ लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ॥ कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥२७॥ स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ॥ हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥२८॥ तन्नो भवान्प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात्॥ यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥२९॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ॥ जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद् विधेहि ॥३०॥ दूत उवाच ॥ इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकाङ्क्षिणः॥ प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥३१॥

लोगोंकी समझमें नहीं आ रहा है कि ये दोनों बातें कहाँ तक ठीक है ॥ २७ ॥ हे ईश, परतन्त्र यानी विषय साध्य होनसे राजाओंका सुख स्वप्न तुल्य है। और अधिक हम क्या कहे आजकल निरन्तर भयग्रस्त इस मृतक तुल्य इस शरीरसे पुत्र, स्त्री आदिकी चिन्ताका भार ढोना पड़ता है। आपसे निष्काम कर्मों द्वारा प्राप्त जो स्वतः सिद्ध आत्म सुख है उसको छोड़कर हे भगवन्, हम यहाँ आपकी प्रबलमायासे मोहित होकरके विषयासक्त होनेके कारण यह दुःख भोग रहे हैं ॥ २८ ॥ इसलिए हे भगवन्, शरणागतका शोक दूर करनेवाले चरणकमलों से युक्त आप जरासन्ध संज्ञक अपने कर्मपाशोंसे बँधे हुए हम सब राजाओंको वन्धनसे मुक्त कीजिये। वह अकेले दस हजार हाथियों का बल रखनेवाला है। उसने हम सब राजाओंको अपने घरमें ऐसे कैदकर रक्खा है जैसे कि भेड़ियोंको सिंह ॥ २९ ॥ हे उदात्तचक्र, आपने उसके साथ अठारह बार युद्ध किया। पर सत्रह बार तो उसे आपने हराया, किन्तु सिर्फ एक अठारहवीं बार मनुष्य लीलामें निरत अनन्त वीर्य आपको उसने जीत लिया, तभीसे वह सबसे मत्त होकर वह आपकी हम प्रजाओंको कष्ट दे रहा है, अतः हे अजित, जैसा उचित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समझें वैसा ही करें ॥३०॥ दूतने कहा—हे भगवन्, जरासन्धके कैदी बने हुए राजा सब आपका दर्शन चाहते हैं। वे सब आपके चरणोंमें आये हैं दयाकर उन दीनोंका कल्याण कीजिये उन्हें जरासन्धसे मुक्त कीजिये ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस प्रकार वह दूत कह ही रहा था कि उसी समय पीतवर्ण जटा धारण किये हुए परम तेजस्वी सूर्यके समान वहाँ देवर्षि नारदजी अचानक आविर्भूत हो गये ॥ ३२ ॥ उनको आये हुए देखकर समस्त लोकोंके स्वामियोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णजीने उठकर सभी सभासदों और अनुचरोंके साथ प्रसन्नतासे सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ विधिपूर्वक उनका पूजन आदिके द्वारा सत्कार करनेके बाद आसनपर बैठे हुए नारदजीको श्रद्धासे तृप्त कराते हुए भगवान्‌ने अपनी कोमल वाणी द्वारा कहा ॥ ३४ ॥ हे मुने, कहिये, अब तीनों लोकोंको किसीसे भय तो नहीं है? आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते है। आपसे सबसे बड़ा लाभ तो मुझे यह होता है कि मुझे यहाँ बैठे-बैठे समस्त लोकोंकी बातें मालूम पड़ जाती हैं ॥ ३५ ॥ ईश्वरसे विरचित जो तीन लोक है उन तीनों लोकोंकी कोई भी बात आपसे छिपी नहीं है। अतः हे मुने, प्रार्थना पूर्वक

श्रीशुक उवाच ॥ राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ॥ बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥ तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥ सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् ॥ बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ॥ ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥ न हि तेऽविदितं किञ्चिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ॥ अथ पृच्छामहे युष्मान्पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ॥ भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिवच्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ॥ यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ॥ लीलावतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥ अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडम्बनम् ॥ राज्ञः पैतृष्वसेयस्य

मैं आपसे पूछता हूँ कि हम सबोंके प्रति अब पाण्डव सब क्या कहना चाहते हैं ॥ ३६ ॥ नारदजीने कहा—हे विभो, मैंने आपकी दुस्तर माया अनेक बार देखी है। आप विश्वके रचयिता ब्रह्माको भी मोहमें डाल देने वाले हैं, आप अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण भूतोंके अन्तःकरणमें ऐसे छिपे रहते हैं, जैसे कि लकड़ीमें ज्वाला रहित अग्नि छिपी रहती है। यही कारण है कि आपको प्राणी नहीं देख पाते। इसलिए हे भूमन्, आपका यह प्रश्न मेरे लिए कोई आश्चर्यजनक नहीं है ॥ ३७ ॥ असत् होनेपर भी सत्की नाईं प्रतीत हो रहे इस संसारको हे भगवान्, आप अपनी मायासे बनाते और विगाड़ते हैं। इसलिए आपके मनोरथोंको भया अच्छी तरह कौन जान सकता है। अचिन्त्यस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३८ ॥ अनर्थ वाही इस शरीरसे अपने मोक्षका उपाय न जाननेवाले अतएव जन्म-मरणका चक्कर काट रहे जीवको मुक्त करनेके लिए आपने अपने अनेक लीलावतारोंसे अपना यशरूपी दीपक जलाया है। भगवन्, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ३९ ॥ हे परमात्मन्, यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं तथापि मैं मनुष्य लीलाका अनुकरण करनेवाले आपसे आपकी फूआके लड़के तथा आपके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परम भक्त राजा युधिष्ठिरकी क्या करनेकी इच्छा है, सो मैं बतलाता हूँ ॥ ४० ॥ परमोत्कृष्ट सम्पत्तिकी कामना से पाण्डु पुत्र राजा युधिष्ठिर सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूययज्ञ द्वारा आपका पूजन करना चाहते हैं, अतः आप उसका अनुमोदन करें ॥ ४१ ॥ हे देव, उस सर्वोत्तम राजसूययज्ञमें आपको देखनेके लिए समस्त देवता लोग तथा अनेक प्रतापी यशस्वी राजा भी आयँगे ॥ ४२ ॥ आप परमब्रह्मस्वरूप परमात्माका श्रवण, कीर्तन तथा ध्यान करनेसे चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं, आपका साक्षात् दर्शन और स्पर्श करनेवालोंको क्या कहना है ॥४३॥ हे भुवनमङ्गल, आपका निर्मल यश स्वर्ग, पाताल और पृथिवीमें सभी ओर दिशाओंके आच्छन्नरूपसे व्याप्त है। आपका चरणजल स्वर्गमें मन्दाकिनी, पातालमें भोगवती और भूलोकमें

भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥४०॥ यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः ॥ पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥४१॥ तस्मिन्देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः ॥ दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयन्तेऽन्तेवसायिनः ॥ तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥४३॥ यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम् ॥ मन्दाकिनीति दिवी भोगवतीति चाधो गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ॥ वाचःपेशैः स्मयन् भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ तथात्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥ ४६ ॥ इत्युपामन्त्रितो भर्ता सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥ निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भागवत महापुराणे द० उ० भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

गङ्गा नामसे विख्यात होकर सारे विश्वको पवित्र करता है ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जरासन्धको जीतनेकी इच्छासे अपने आत्मीय यदुवंशियोंको नारदकी बातें न मानते हुए देखकर मुसकुराते हुए भगवान् केशवने अपने प्रिय मित्र उद्धवसे कोमलवाणीमें कहा ॥ ५४ ॥ भगवान्ने कहा—हे उद्धव, तुम समस्त मन्त्रार्थोंके तत्त्वको समझनेवाले, हमारी एकमात्र आँखें तथा प्रिय सुहृद हो। कहो, इस विषयमें हमें क्या करना चाहिये, तुम्हारी ऊपर हमारी बड़ी श्रद्धा है, तुम जो कुछ कहोगे वही हम करेंगे ॥ ४६ ॥ सब कुछ जानते हुए भी अनजानकी तरह अपने स्वामी भगवान्के द्वारा यों पूछे जाने पर उनके आदेशको अपने सिर पर रखते हुए उद्धवजीने कहा ॥ ४७ ॥

सत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा-हे राजन्, एक समयकी बात है कि अपने नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर भगवान् श्रीकृष्णजी अपने दिव्य रथपर बैठकर यदुवंशियोंके साथ सुधर्मा नामक राजसभामें पहुँचे। वहाँ राजसिंहानपर भगवान्के आसीन होते ही अदृष्टपूर्व एक आदमी आ पहुँचा। द्वारपालोंके द्वारा सूचना देनेपर भगवान्ने द्वारपालोंको उसे भरी सभाके बीचमें लानेका आदेश दिया। भगवान्का आदेश पाते ही उन द्वारपालोंने उस पुरुषको सभामें लाकर खड़ाकर दिया। वह पुरुष जरासन्ध द्वारा कैद किये गये बीस हजार राजाओंका दूत था। आते ही भगवान्को उसने प्रणाम करते हुए विनम्र वाणीमें राजाओंका सन्देश सुनाया उसने कहा—हे प्रभो, हमलोग आपकी मायासे मोहित होकर अपने जरासन्ध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नामक कर्मपाशमें बँधे, हम आपकी शरणमें आये हुए हैं। भगवन्, हमें इस बन्धनसे मुक्त कीजिये। यों वह दूत राजाओंका सन्देश सुना ही रहा था कि अचानक वहाँ नारदमुनि प्रकट हो गये। भगवान् द्वारा आदर सत्कार पानेके बाद नारदजीने कहा–हे प्रभो, सर्वोत्कृष्ट पद प्राप्तिकी कामनासे राजायुधिष्ठिर 'राजसूययज्ञ' करना चाहते हैं, आप उसका अनुमोदन कीजिये। आपको राजा युधिष्ठिर निमन्त्रण दे रहे हैं। चलिये वहाँ आपको देखनेके लिये अनेक राजे और देवता उपस्थित होंगे। जरासन्धको पराजित करनेकी चाह रखनेवाले यदुवंशियों द्वारा नारदजीकी ये बातें अस्वीकृत हो जानेपर भगवान् अपने प्रियमित्र उद्धवसे पूछे—हे उद्धव, कहो, इस विषयमें तुम्हारी क्या राय है? तुम मेरी दोनों आँखें हो, जो कहोगे वही मैं करूँगा। भगवान्की बात सुनकर उद्धवजी कहने लगे। सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथैकसप्ततितमोऽध्यायः ❀

[उद्धवकी सलाहसे भगवान् श्रीकृष्णके इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर पाण्डवों द्वारा महान् उत्सवको तैयारी तथा राजसूय यज्ञकी समाप्ति हो जानेपर भीम, दुर्योधन आदिमें कलह उत्पन्न कराकर भगवान्का पृथिवीका भार हलका करना]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार नारदजीके कहे हुए संवादको सुनकर सभ्य राजकीय सदस्यों तथा श्रीकृष्णजीका आदेश लेकर महाबुद्धिमान् उद्धवजी कहने लगे॥ १॥ उद्धवजीने कहा—हे विभो, देवर्षि नारदजीने जो कहा है उसके अनुसार तो आपको अपने फूआके लड़के युधिष्ठिरकी राजसूय यज्ञ में सहायता करनी चाहिये, परन्तु शरणमें

श्रीशुक उवाच॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत्॥ सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः॥ १॥ उद्धव उवाच॥ यत्यु-
क्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया॥ कार्यं पैतृष्वस्रेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम्॥ २॥ यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो॥ अतो
जरासुतजय उभयार्थो मतो मम॥ ३॥ अस्माकं च महानार्थो ह्येतेनैव भविष्यति॥ यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान्विमुञ्चतः॥ ४॥ स

आये हुए राजाओंकी रक्षा भी अत्यन्त जरूरी ही है॥ २॥ हे विभो, समस्त दिशाओंके जीतनेके बाद ही तो राजसूय यज्ञ होता है, इसलिए उसको सम्पन्न करते समय जरासन्धको भी पराजित किया जा सकता है, अतः मेरी धारणा तो यह है कि इस एक कार्यके जरिये दोंनों कार्य समाप्त हो जायेंगे॥ ३॥ राजसूय यज्ञमें आपके जानेसे हम लोगोंका सबसे बड़ा काम जरासन्ध का वध हो जायगा और समस्त राजाओंका जरासन्धके बन्धनसे छुटकारा मिल जानेपर आपका यज्ञ भी फैल जायगा॥४॥ दस हजार हाथियोंके समान बलवाला वह जरासन्ध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दूसरे किसी भी बलवान् द्वारा मारा न जायगा, केवल भीम ही अपने बल द्वारा उसे मार सकते हैं, क्योंकि उसकी मृत्यु भीमके ही हाथसे बदी है ।। ५ ।। वह भी मल्लयुद्धमें ही जीता जा सकता है। अनेक अक्षौहिणी सेना लेकर वहाँ जानेकी आवश्यकता नहीं है। जरासन्ध ब्राह्मणोंका भारी भक्त है। वह उनकी प्रार्थनाको अस्वीकार कभी न करेगा ।। ६ ।। अतः भीम ब्राह्मणका वेष धारण करके जरासन्धसे मल्लयुद्धकी भिक्षा माँगे। तब आपके सामने मल्लयुद्धमें भीम निश्चय उसको मार देगें, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।। ७ ।। निराकार कालस्वरूप आप परमेश्वरकी विरचित इस जगत्की सृष्टि और नाशमें ब्रह्मा तथा शङ्कर तो निमित्त मात्र हैं ।। ८ ।। हे भगवन्, आपके विमल यशका जरासन्ध द्वारा कैद किये गये राजाओंकी स्त्रियाँ अपने घरोंमें रो रहे बच्चों को चुप कराते समय यों गान करती हैं—हे वत्स, मत रोओ। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने दुश्मन जरासन्धको मारकर तुम्हारे पिताको बन्धनसे छुड़ायेंगे। जैसे कि गोपियाँ आपके द्वारा हुए शङ्खचूडके वध तथा अपने मोक्षका बखान करती हैं। आपके शरणागत मुनि लोग आपके द्वारा हुए गजके वधसे ग्राहकी मुक्ति तथा रावणादिके वधसे

वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ।। बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ।। ५ ।। द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ।। ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ।। ६ ।। ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत् वृकोदरः ।। हनिष्यति न सन्देहो द्वैरथे तव सन्निधौ ।।७।। निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ।। हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ।। ८ ।। गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ।। गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ।। ९ ।। जरासन्धः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ।। प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ।। १० ।। श्रीशुक उवाच ।। इत्युद्धववचो राजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् ।। देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ।। ११ ।। अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः ।। भृत्यान् दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः।। १२ ।। निर्गमय्यावरोधान् स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् ।। सङ्कर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ।। सूतोपनीतं स्वरथमारुहद् गरुडध्वजम् ।। १३ ।। ततो रथद्विपभटसादिनायकैः

सीताकी मुक्तिका तथा हम लोग भी कंसको मारने और अपने माता-पिताको कारागारसे छुड़ानेकी आपके यशका सदा गान करते रहते हैं ।। ९ ।। हे कृष्ण, जरासन्धके मरनेसे अनेक कार्य सिद्ध हो जायँगे। शिशुपाल आदिका वध भी अनायास ही हो जायगा। राजाओं के पुण्यके विपाकसे या शिशुपालादिके पापके विपाकसे प्रायः आपको भी राजसूययज्ञ अभीष्ट ही है ।। १० ।। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, चारों तरफसे कल्याण देनेवाला युक्ति युक्त उद्धवका वचन सुनकर देवर्षि नारदजी, वयोवृद्ध यदुवंशी एवं कृष्णजी उद्धवजी के वचनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ।। ११ ।। इसके बाद देवकी सुत भगवान् अपने सेवक दारुक, जैत्रादिकों को हस्तिनापुर चलनेकी आज्ञा देकर वसुदेव आदिकी आज्ञा ले करके चलनेकी व्यवस्था करने लगे ।। १२ ।। तब बालबच्चों आदि अनेक सामग्रियोंके साथ अपनी स्त्रियोंको भेजकर बलदेवजी तथा उग्रसेनसे आज्ञा लेकर सूत द्वारा लाये गये गरुड़ध्वज रथपर शत्रुनाशक भगवान् बैठ गये ।। १३ ।। तदनन्तर रथों, हाथियों, पैदल चलनेवाले सिपाहियों तथा घुड़सवारोंसे भयङ्कर अपनी सेनासे युक्त होकर मृदङ्ग, भेरी, आनक, शङ्ख, गोमुख नामक वाद्य विशेषोंके शब्दोंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिशाओंको व्याप्त करते हुए भगवान् नगरसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ सुन्दर वस्त्र, आभूषण, चन्दन और पुष्पमालाओं से सुसज्जित भगवान्‌की पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पुत्रादिके साथ हाथमें ढाल-तलवार लिये हुए राजपुरुषों द्वारा अच्छी तरह सुरक्षित होकर पालकी, अश्वयान तथा सुवर्ण मण्डित शिविकाओं पर बैठकर श्रीकृष्णजीके पीछे-पीछे चलीं ॥ १५ ॥ एवं उनके सेवकोंकी स्त्रियाँ तथा नगरकी वेश्याएँ भी खूब शृङ्गारकर खस आदि तृणोंद्वारा विरचित घरों तथा कम्बल और वस्त्र आदि सामग्रियोंको बैल आदिकों के ऊपर खूब लादकर पालकी, ऊँट, बैल, भैंसे, गदहे, खच्चर, छकड़े तथा हथिनियोंपर आरूढ़ होकर चलीं ॥ १६ ॥ बड़ी-बड़ी ध्वजा-पताकाओं, छत्र-चवरों तथा सर्वोत्तम आयुधों, आभूषणों, कीरीटों एवं कवचोंके कारण तुमुलध्वनि युक्त वह सेना, दिनमें सूर्यकी किरणें पड़ने तथा चञ्चल मत्स्य और तरङ्गों के कारण शोभते हुए समुद्रकी नाईं, खूब शोभने लगीं ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उग्रसेनजीके द्वारा

करालया परिवृत आत्मसेनया ॥ मृदङ्गभेर्यानकशङ्खगोमुखैः प्रघोषघोषितककुभो निराक्रमत्॥ १४ ॥ नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ॥ वराम्बराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवारयोषितः ॥ स्वलङ्कृताः कटकुटिकम्बलाम्बराद्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥ बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ॥ दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथार्णवः क्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ॥ निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो मकुन्दसन्दर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान् प्रीणयन् गिरा ॥ मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ॥ तेऽपि सन्दर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन् यन्मुमुक्षवः ॥२०॥ आनर्तसौवीरमरून्स्तीर्त्वा विनशनं हरिः ॥ गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् ॥ पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् ॥ अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥ गीतवादित्रघोषेण

सम्मानित हो उनकी पूजाको स्वीकार करते हुए नारदजी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करके राजसूययज्ञ में भगवान्‌के जानेका उद्योग देखकर उन्हें प्रणाम करके हृदयमें उनको रखते हुए आकाश मार्गसे चल दिये ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान्‌ने अपने कोमल सुन्दर वचनोंसे राजदूतको प्रसन्न करते हुए कहा—हे दूत, तुम लोग मत डरो। तुम सबोंका कल्याण करूँगा और जरासन्धको मारूँगा ॥ १९ ॥ यह सुनकर वह दूत वहाँ चला गया और भगवान्‌के कहे हुए वचनको ठीक-ठीक उन राजाओंसे कह दिया। यह सुनकर श्रीकृष्णके द्वारा हम लोग मुक्त होंगे, इस विचारसे उनके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ २० ॥ आनर्त, सौवीर और मारवाड़ पार करके कुरुक्षेत्रको भी लांघकर पहाड़, नदी, पुर, ग्राम, व्रज एवं आकरोंको भी झेलकर आगे बढ़े ॥ २१ ॥ उसके बाद दृषदवती और सरस्वती नदी पारकर पञ्चाल और मत्स्य देशको लाँघकर इन्द्रप्रस्थ पहुँचे ॥ २२ ॥ मनुष्योंको जिनका कष्टसे दर्शन मिलना दुर्लभ था, ऐसे भगवान्‌को आए हुए सुनकर गुरु और मित्रोंके साथ होकर महाराज युधिष्ठिरजी प्रसन्न हो अगवानीके लिए नगरसे बाहर निकल आये ॥ २३ ॥ गीतें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

और बाजोंके रमणीय तुमुल घोषके साथ तथा ब्राह्मणों द्वारा वेद पाठ करवाते हुए जैसे इन्द्रियाँ प्राणसे मिलने जा रही हों वैसे ही श्रीकृष्ण . सामने दौड़े ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर मारे स्नेहके युधिष्ठिरका हृदय गद्गद् हो गया । बहुत दिनके बाद देखे अपने प्रियतमको बार-बार उन्होंने गलेसे लगाया ॥ २५ ॥ पाप रहित राजा युधिष्ठिरने अपने दोनों हाथोंसे कमलाके अत्यन्त पवित्र आधार मुकुन्द भगवान्का आलिङ्गन करके परम आनन्द प्राप्त किया । उनके नेत्रमें आँसू भर आये शरीरमें रोमाञ्च हो गया और उस समय प्रेमके मारे वे सब लोक व्यवहार बिलकुल भूल गये ॥ २६ ॥ उसके बाद प्रेमके वेगसे व्याकुलेन्द्रिय भीमने भी हँसते हुए अपने ममेरे भाई कृष्णका आलिङ्गन कर परम शान्ति प्राप्त की । तत्पश्चात् नकुल, सहदेव तथा अर्जुनने भी प्रेमके मारे आँसू बहाते हुए अपने मित्र श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया ॥ २७ ॥ बराबरीके नाते अर्जुनने आलिङ्गन किया, नकुल और सहदेव छोटे थे, अतः उन्होंने चरण छुए । बादमें भगवान्ने यथायोग्य ब्राह्मणों और वृद्धों को प्रणाम किया ॥ २८ ॥ भगवान्ने अभिमानी कुरु, सृञ्जय और कैकेय देशके राजाओंका यथोचित सम्मान

ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः ॥ चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥ २५ ॥ दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ॥ लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेन्द्रियः ॥ यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः ॥ २८ ॥ मानितो मानयामास कुरुसृञ्जयकैकयान् ॥ सूतमागधगन्धर्वा वन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ॥२९॥ मृदङ्गशङ्खपटहवीणापणवगोमुखैः ॥ ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥३०॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥ संस्तूयमानो भगवान्विवेशालङ्कृतं पुरम् ॥३१॥ संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः ॥ मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥३२॥ उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्म जालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ॥ मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्य-

किया । बादमें सूत, मागध, गन्धर्व, बन्दीजन, परिहास कुशल पुरुष एवं ब्राह्मण लोग मृदङ्ग, शंख, पटह, वीणा पणव और गोमुख आदि बाजे बजाकर अरविन्दाक्ष भगवान् कृष्ण की स्तुति करने तथा नाचने गाने लग गये ॥ २९, ३० ॥ इस तरह मित्रमण्डलीसे मुक्त पुण्य श्लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् सूत मागधादि द्वारा स्तुति सुनते हुए परमरमणीय अलंकृत नगरमें प्रविष्ट हुए ॥ ३१ ॥ जिसकी सड़कें मतवाले हाथियोंकी मदधारासे सीचीं गई थीं । चित्र-विचित्र ध्वजाओं, सुवर्णके जलपूर्ण कलशों सुनहली तोरणों तथा अपने शरीरको खूब साफ-सुथरा बनाकर नवीन सुन्दर वस्त्र-आभूषणों एवं सुगन्धित मालाओं तथा इत्र आदि गन्ध द्रव्योंसे विभूषित नागरिक युवतियों एवं पुरुषोंसे जो विराजमान थीं ॥ ३२ ॥ भगवान् श्री कृष्णने कुरुराजकी राजधानीको प्रज्वलित दीपकों तथा उपहारोंसे मनोहर प्रत्येक घरके झरोखोंमें निकलते हुए धूपके धूओंसे रुचिर, उड़रही पताकाओंसे समन्वित, शिखर पर स्वर्ण

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कलशोंसे राजित एवं चाँदीके स्थूल शिखरोंसे अलंकृत भवनोंसे युक्त देखा ॥ ३३ ॥ सभी मनुष्योंकी आँखोंके देखने योग्य भगवान् श्रीकृष्णको आये सुनकर नगरकी सब युवती स्त्रियाँ झटपट गृहकर्म तथा विस्तरपर सोये अपने पतिको छोड़कर राजमार्गपर भगवान्को देखने दौड़ गयीं। अत्यधिक उत्सुकताके कारण उनके उस समय केशों और वस्त्रोंके बन्धन शिथिल ही रह गये थे ॥ ३४ ॥ हाथी, घोड़े रथ और पैदल सैनिकोंसे व्याप्त उस बड़ी भीड़में स्त्री सहित श्रीकृष्णको राजमार्गमें जाते देखकर कोठों पर बैठी स्त्रियोंने पुष्पवृष्टि करती हुई मनसे आलिङ्गन करके अपने मनोहर दृष्टिपातसे उनका सुन्दर स्वागत किया ॥ ३५ ॥ चन्द्रमाके साथ विराज रही तारिकाओंकी नाईं राजमार्गमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ विराज रही उनकी स्त्रियोंको देखकर वे नागरिक स्त्रियाँ कहने लगीं—इन सौभाग्यशालिनी स्त्रियोंने कौनसा ऐसा पुण्य किया है, जिससे कि पुरुष श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रजी अपनी उदार हँसी तथा

विश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ॥ सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसङ्कुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ॥ नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥ ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यभूमिः ॥ यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति । ३६ ॥ तत्र तत्रोपसङ्गम्य पौरा मङ्गलपाणयः ॥ चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः ॥ ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३९ ॥ गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ॥ पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ॥ स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वा सञ्चोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ॥ आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥४२॥

लीलामय अवलोकनोंसे इनकी आँखोंको आनन्द सागरमें डुबो देते हैं ॥३६॥ एवं जहाँ तहाँ पुण्यात्मा प्रतिष्ठित नागरिकों तथा शिल्पजीवियोंमें सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंने हाथमें माङ्गलिक वस्तुएँ ले आगे आकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ ३७ ॥ इसके बाद हर्षके मारे अति प्रसन्नचित्तवाले अन्तःपुरके राजपुरुषों द्वारा विकसित और विह्वल आँखोंसे स्वागत करनेपर भगवान् मुकुन्दने राजमन्दिरोंमें प्रवेश किया ॥३८॥ वहाँ कुन्तीने तीनों भुवनके स्वामी अपने भतीजे कृष्णको देखकर प्रसन्नतापूर्वक पलङ्गसे उतरकर द्रौपदीके साथ आगे बढ़कर आलिङ्गन किया ॥३९॥ देवदेवेश गोविन्द भगवान्की आदरपूर्वक अपने महलमें लाकर जब युधिष्ठिरजी उनकी पूजा करने बैठे, तब वे आनन्दसे विभोर होजानेके कारण पूजामें क्रमको ही भूल गये ॥ ४० ॥ हे राजन्, तब भगवान्ने कुन्ती एवं बड़ोंके स्त्रियोंको प्रणाम किया तथा स्वयं भी द्रौपदी तथा सुभद्रासे नमस्कृत हुए ॥ ४१ ॥ तत्पश्चात् सास कुन्तीकी आज्ञासे द्रौपदीने रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती कालिन्दी, शैव्या, मित्रविन्दा, नाग्नजिती, सत्या तथा और भी आई हुई अन्यान्य भगवान् श्रीकृष्णकी स्त्रियोंकी वस्त्र, माला और आभूषण आदि द्वारा ली-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भाँति पूजा की ॥ ४२, ४३ ॥ तब युधिष्ठिरने सेनाओं, अनुचरों, मन्त्रियों तथा स्त्रियोंसे युक्त उस भगवान्‌को ले जाकर ऐसे स्थानमें ठहराया जहाँ उन्हें प्रतिदिन नया-नया सुख मिला करे ॥४४॥ जिस भगवान्‌ने अर्जुनके साथ खाण्डववन जलाकर अग्निदेवको तृप्त किया तथा मयदानवको उस अग्निसे बचाकर उससे युधिष्ठिरके लिए एक दिव्य राजसभा बनवाई ॥४५॥ युधिष्ठिरका प्रिय करनेकी इच्छासे राजपुरुषोंसे युक्त तथा अर्जुनके साथ रथपर बैठकर भ्रमण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कई एक महीने वहींपर ठहर गये ॥ ४६ ॥

कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ॥ अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मण्डनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ॥ ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥ मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णस्येन्द्रप्रस्थगमनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

एकहत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उद्धवने कहा—हे श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें जानेसे दोनों कार्य सिद्ध होंगे। बिना दिग्विजय किये राजसूययज्ञ तो होता नहीं। इसलिए राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें सहायता पहुँचाते हुए आप जरासन्धको भी मार सकते हैं। उद्धवकी सलाह मानकर भगवान् अपने सेवकों तथा स्त्रियोंके साथ हस्तिनापुरको चल दिए। भगवान्‌के वहाँ पहुँचते ही सभी पाण्डव यथा योग्य प्रणाम आदि पूर्वक आकर भगवान्‌से मिले। भगवान्‌को देखकर वहाँके नागरिक सब हर्षसे फूले न समाये। द्रौपदीने अपनी सास कुन्ताकी आज्ञासे भगवान्‌की सभी स्त्रियोंका खूब सत्कार किया। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने भगवान्‌के रहनेका यथोचित ऐसा प्रबन्ध किया, जिससे कि उन्हें किसी तरहका कष्ट न हो, प्रत्युत प्रतिदिन उन्हें नये नये सुखका अनुभव होता रहे। भगवान्‌ने वहाँ आनन्द पूर्वक अर्जुन के साथ विहार करते हुए खाण्डववन जलाकर अग्निको तृप्त किया तथा उस वनमें अग्निसे जलते हुए मयदानवको बचाकर उसके द्वारा राजा युधिष्ठिरके लिए सुन्दर एक राजसभा तैयार करायी। एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ❀

(युधिष्ठिर द्वारा राजसूययज्ञका आयोजन तथा जरासन्धका वध)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय राजा युधिष्ठिर अनेक मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों भीमसेन आदि भाइयों, आचार्य, कुलवृद्धों तथा ज्ञाति सम्बन्धी एवं बन्धु-बान्धवोंसे घिरे सभाके बीचमें बैठे हुए थे। इनके सबके सुनते हुए भगवान्को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा ॥१, २॥ युधिष्ठिरजीनें कहा—हे गोविन्द, यज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ राजसूयज्ञ द्वारा आपकी परम पवित्र विभूतियोंकी पूजा करना चाहता हूँ। अतः हे प्रभो, वह यज्ञ मेरा आप पार लगावें ॥ ३ ॥ जो शुद्धचित्त पुरुष सर्वदा आपकी अमङ्गलनाशिनी चरणपादुकाका अपने शरीरसे सेवा करते हैं, मनसे स्मरण करते हैं एवं वचन द्वारा गुणानुवाद करते हैं, वे हे कमलनाभ, संसारके समस्तदुःखनाशक परमपद मोक्षको पाते हैं। हे ईश, यदि वे किसी कार्यकी

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः ॥ यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्संपादय नः प्रभो ॥ ३ ॥ त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ॥ विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥ तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्दसेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ॥ ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरु सृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥ न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ॥ संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवाऽनुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन ॥

पूर्तिके लिये आपसे प्रार्थना करते हैं तो वह भी आपकी कृपासे अनायास पाते हैं और कदापि नहीं पाते ॥ ४ ॥ अतः हे देव, आपके चरणकमलोंकी सेवाका माहात्म्य यह सारा संसार देख लेवे। हे प्रभो, जो कुरु तथा सृञ्जयवंशीय राजा आपकी भक्तिका महत्त्व नहीं देते उनके मोहकी निवृत्तिके लिये जो लोग आपको भजते या जो लोग आपको नहीं भजते उन दोनों तरहके पुरुषोंकी स्थिति संसारको दर्शाइये ॥ ५ ॥ हेप्रभो, आपमें अपने परायेका भेद-भाव नहीं रहता है, क्योंकि आप उपाधिरहित सबपर समानदृष्टि रखनेवाले, अपने आत्मसुखसे निरत और सर्वात्मक हैं तथापि जैसे कल्पवृक्ष सेवा करनेवालेको ही फल प्रदान करता है दूसरेको नहीं इसी प्रकार आपकी सेवाके अनुरूप ही प्राणियोंको फल मिलता है। इस विषयमें आपके ऊपर किसी तरहका दोष नहीं लगाया जा सकता ॥ ६ ॥ यह सुनकर श्रीभगवान्ने कहा—हे राजन्, यह सब आपने बिलकुल ठीक सोच समझ रक्खा है। हे शत्रुसूदन, इससे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आपकी कल्याणमयी कीर्ति समस्त लोकोंमें फैलेगी ॥ ७ ॥ हे राजन्, समस्त ऋषि, पितर, समस्त देवता, आपके सम्पूर्ण मित्रवर्ग और संसारके सभी प्राणियोंको यह राजसूययज्ञ अभिमत है ॥ ८ ॥ सब राजाओंको जीतकर समस्त संसारको वशमें कर लें तदनन्तर यज्ञकी समस्त आवश्यकीय वस्तुओंको इकट्ठाकर लेनेके बाद राजसूययज्ञ शुरू करें ॥ ९ ॥ हेराजन्, ये सब आपके भाई लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न हैं। चूँकि आप जितेन्द्रिय हैं, इसीसे आपने मुझे जीत लिया है। अजितेन्द्रिय मुझे कदापि अपने वशमें नहीं कर सकते ॥ १० ॥ इस संसारमें मेरे भक्तको देवता भी तेज, यश, श्री तथा अपनी नानाविध विभूतियोंसे नहीं पराजित कर सकते, फिर ये साधारण छोटे-छोटे राजे क्या कर सकते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, राजा युधिष्ठिर भगवान्के वचन सुनकर अति प्रसन्न हुए उनका आनन्दसे मुखकमल खिल उठा। विष्णुके तेजसे अत्यन्त तेजस्वी अपने भाइयोंको उन्होंने दिग्विजयमें नियुक्तकर

कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ॥ सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥८॥
विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे ॥ सम्भृत्य सर्वसम्भारानाहरस्वमहाक्रतुम् ॥ ९ ॥ एते ते भ्रातरो राजँल्लोकपालांशसम्भवाः ॥
जितोऽस्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ १० ॥ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ॥ विभूतिभिर्वाभिभवेद्देवोऽपि किमु
पार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥
सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सहसृञ्जयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ॥ प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ १३ ॥
ते विजित्य नृपान्वीरा आजहुर्दिग्भ्य ओजसा ॥ अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥१४॥ श्रुत्वाऽजितं जरासन्धं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ॥
आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः ॥ जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥
ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ॥ ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ॥

दिया ॥ १२ ॥ सृञ्जय राजाओंके साथ सहदेवको राजा युधिष्ठिरने दक्षिणदिशामें भेज दिया, पश्चिममें, नकुलको, उत्तरमें अर्जुनको तथा मत्स्य कैकय और मद्रक राजाओंके साथ भीमको पूर्व दिशाकी ओर जानेकी आज्ञा दे दी ॥ १३ ॥ हे राजन्, उन वीरोंने चारों दिशामें जाकर अपने बलसे राजाओंको जीतकर चारों दिशाओंसे बहुत धन लाकर राजसूययज्ञ करनेवाले युधिष्ठिरजीको दिया ॥ १४ ॥ परन्तु जरासन्धको अपराजित सुनकर चिन्तामें पड़े हुए राजा युधिष्ठिरको आदिपुरुष श्रीहरिने वही उपाय बतलाया, जो पहले उद्धवने उन्हें बताया था ॥ १५ ॥ हे तात, ब्राह्मणका वेष धारण किये हुए भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण ये तीनों जहाँपर जरासन्ध रहता था उस गिरिव्रज नामक स्थानपर पहुँचे ॥ १६ ॥ ब्राह्मण वेषधारी इन तीनोंने वहाँ जाकर अतिथि सत्कारके समय दोपहरको गार्हस्थ कर्मकर रहे ब्राह्मणभक्त जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा माँगी ॥ १७ ॥ उन लोगोंने कहा—हे राजन्, आपका कल्याण हो।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आप यह जान लीजिये कि हमलोग बहुत दूरसे आये आपके अतिथि हैं, हमलोग आपसे जो कुछ माँगना चाहते हैं, वह देनेकी कृपा कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि त्यागियोंके लिये इस संसारमें कोई भी दुःसह नहीं है और दुष्टजनोंके लिये कोई अकार्य नहीं है। अत्यन्त उदार व्यक्तिके लिये कौन-सी वस्तु अदेय है तथा समदर्शीके लिये कौन पराया है ॥ १९ ॥ जो पुरुष समर्थ होकर भी नाशवान् इस शरीरसे सज्जनों द्वारा गाया गया निर्मल शाश्वत यशका सम्पादन नहीं करता, वह निन्दनीय तथा शोचनीय है ॥ २० ॥ देखिये—राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रको स्त्री, पुत्र, धन देकर स्वर्ग गये, रन्तिदेव अड़तालीस दिनतक बिना जलके रहनेपर भी याचकको अपना भोजन देनेसे स्वर्ग पधारे। मुद्गलने छः महीनेतक सकुटुम्ब भूखे रहनेपर भी अतिथिको देकर उत्तमगति पायी, राजा शिबिने अपना मांस शरणागत कपोतकी रक्षाके लिये श्येनपक्षीको देकर स्वर्ग पधारे, राजा बलि अपना सर्वस्व ब्राह्मण वेषधारी भगवान्को देकर उन्हींके रूपको प्राप्त हो गये, कपोत व्याधको अपनी स्त्रीके साथ अपना मांस देकर स्वर्ग गया तथा वह व्याध भी कपोतकी उदारता देखकर जङ्गलमें भस्म होकर स्वर्ग

तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥१८॥ किं दुर्मषं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ॥ किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥१९॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ॥ नाचिनोति स्वयङ्कल्पः एव स वाच्यः शोच्य सः ॥२०॥ हरिश्चन्द्रो रतिन्देव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः ॥ व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ॥ राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥२२॥ राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ॥ ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥२३॥ बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा ॥ ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥२४॥ श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ॥ जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना ॥ देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥ इत्युदारमतिः प्राह

चला गया। इस तरह अनेक प्राणी अपने अनित्य इस शरीरसे यशका उपार्जन करके नित्यलोक प्राप्तकर चुके हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उनके स्वर, आकृति तथा प्रकोष्ठके ऊपर पड़े धनुषकी डोरीके चिह्नोंसे भी उन्हें द्रौपदीके स्वयम्वरमें पहले देखे हुए क्षत्रिय राजा जानकर वह सरासन्ध सोचमें पड़ गया ॥ २२ ॥ ये तीनों राजपुत्र ही हैं, ब्राह्मणका वेष बनाकर भ्रमणकर रहे हैं। यह सब समझ बूझकर भी जरासन्धने अपने मनमें कहा। इन सबोंके भिक्षामें दुस्त्यज प्राण माँगनेपर भी मैं दे दूँगा ॥ २३ ॥ अहो, ब्राह्मण वेषधारी भगवान् विष्णुके द्वारा कपटपूर्वक अपने ऐश्वर्यसे अंशित किये गये राजा बलिकी सभी दिशाओंमें फैली निर्मलकीर्ति कैसी सुनी जाती है ॥ २४ ॥ सुना जाता है कि इन्द्रका ऐश्वर्य हर लेनेकी इच्छासे ब्राह्मण वेषधारी भगवान् विष्णुको जानते हुए तथा शुक्राचार्यके द्वारा मना करनेपर भी राजा बलिने पृथिवी दे दी ॥ २५ ॥ जीतेजी इस अधम क्षत्रियशरीरसे ब्राह्मणके लिये यदि विपुल यशका सम्पादन नहीं किया गया, तो फिर नाशवान् इस शरीरके रहनेसे लाभ ही क्या है ? ॥ २६ ॥ इस तरह विचार करते हुए उदारमति जरासन्धने कृष्ण, अर्जुन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और भीमसे कहा—हे विप्रो, तुम लोग जो चाहों माँग लो, मैं अपना सिर भी दे सकता हूँ ॥ २७ ॥ तब श्रीकृष्णने कहा—हे राजेन्द्र, यदि तुम देना ही चाहते हो, तो मल्लयुद्ध करना हमें दो। हम अन्न माँगने नहीं आये हैं, युद्धके लिये ही हम सब तुम्हारे यहाँ आये हैं, हम लोग क्षत्रिय हैं ॥ २८ ॥ यह भीम हैं और ये भीमके भाई अर्जुन हैं और इनका ममेरा भाई मैं तुम्हारा शत्रु श्रीकृष्ण हूँ, ऐसा समझ लो ॥ २९ ॥ यह सब सुनकर राजा जरासन्धने ऊँचे स्वरसे हँसा और कुछ क्रुद्ध होकर कहा—हे मूढ़ो, युद्ध करनेकी भिक्षा माँग रहे हो, तो आओ, वह भी मैं तुम लोगोंको दे रहा हूँ ॥ ३० ॥ मेरे डरसे भयभीत होकर तुम अपनी राजधानी मथुरा छोड़कर समुद्रमें भाग गये थे, अतः तुम अत्यन्त डरपोक हो, तुम्हारे साथ युद्ध न करूँगा ऐसा श्रीकृष्णसे जरासन्धने कहा ॥ ३१ ॥ यह अर्जुन तो अवस्थामें छोटा है एवं बलमें भी थोड़ा है, अतः यह मेरे बराबर नहीं है। हाँ भीम मेरे समान बलवान् है, अतः

कृष्णार्जुनवृकोदरान् ॥ हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे ॥ युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकाङ्क्षिणः ॥ २८ ॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् ॥ अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ॥ आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥ न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ॥ मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥ अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ॥ अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥३२॥ इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ॥ द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद् बहिः ॥३३॥ ततः समे खले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ ॥ जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ॥ चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रङ्गिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ॥ गदयोः क्षिप्तयो राजन्दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ॥ चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्य्वोः ॥३७॥

इसके साथ मेरा युद्ध हो सकता है ॥ ३२ ॥ ऐसा कहकर भीमसेनको एक बड़ी गदा देकर स्वयं भी दूसरी गदा लेकर नगरके बाहर युद्ध करनेके निमित्त निकल आया ॥ ३३ ॥ वहाँ एक समतल युद्धभूमिमें वे दोनों युद्धके मतवाले भीम और जरासन्ध आपसमें भिड़ गये और वज्र सदृश गदा एक दूसरे पर चलाने लगे ॥ ३४ ॥ जैसे रङ्गमञ्चपर घूम-घूमकर भाव देखाकर अभिनय करते हुए शोभा पाते हैं वैसेही ये दोनों भी दाहिने बायें अति विचित्र पैतरा बाजी करते हुए युद्धमें अति शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ तब हे राजन्, उस समय हाथीके दाँतके सदृश उन दोनोंसे फेंकी गई गदाओंके आघातसे वज्रपातके समान चटपट शब्द निकलने लगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर वे दोनों गदाएँ बड़े वेग से परस्पर एक दूसरेके कन्धे, कमर, पैर, हाथ, जाँघ तथा बाहुओंके पुट्ठोंपर गिरनसे उनसे टक्कर खाकर यों चूर्ण-चूर्ण हो गये, जिस तरह अत्यन्त क्रोधी दो हाथियोंके मदारकी शाखाओंके साथ लड़ते समय उन हाथियोंसे पकड़ी गईं दोनों शाखाएँ उनके अङ्गोंसे टक्कर खाकर चूर्ण-चूर्ण हो जाती हैं ॥ ३७ ॥ इस तरह लड़ते हुए उन दोनोंकी गदाओंके चूर्णित हो जानेपर वे दोनों नरवीर क्रुद्ध होकर लोहेके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सदृश अपने मुक्कोंसे प्रहार कर एक दूसरेको चूर्णित करने लगे। एक दूसरेके ऊपर हाथियोंके समान प्रहार करते हुए उनके ताल ठोंकनेसे उत्पन्न हुआ शब्द बिना बादलके बिजुलीकी कड़कके समान मालूम पड़ता था ॥ ३८ ॥ हे नृप, इस तरह एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हुए समान शिक्षा, बल और प्रभावसे युक्त उन दोनोंका असाधारण युद्ध हुआ। उस समय वहाँ लड़ते हुए उन दोनोंमें किसीका भी उत्साह कम न हुआ ॥ ३९ ॥ हे महाराज, इस तरह लगातार आपसमें युद्ध करते उन दोनोंके सत्ताईस दिन निकल गये। ये दोनों वीर दिनमें तो युद्ध करते पर रातमें मित्रकी तरह रहते थे ॥ ४० ॥ हे राजन्, एक दिन भीमने अपने ममेरे भाई कृष्णसे कहा—हे कृष्ण, मल्लयुद्धमें मैं तो जरासन्धको कदापि नहीं जीत सकूँगा ॥ ४१ ॥ अपने शत्रु जरासन्धके जन्म और मृत्यु दोनों को भगवान् हरि खूब जान रहे थे, उन्हें यह भलीभाँति मालूम था कि जरा राक्षसीने कैसे उसे जीवदान दिया था, यही कारण था

इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयः स्पर्शैरपिष्टाम् ॥ शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥३८॥ तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ॥ निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ॥ दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ॥ न शक्तोऽहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् ॥ पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिन्तयद्धरिः ॥ ४२ ॥ सञ्चिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ॥ दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः ॥ गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥ एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ॥ गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥ ४५ ॥ एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ॥ एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥४६॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ॥ पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥ ४७॥ सहदेवं तत्तनयं

कि अपने तेजसे भीमको उत्साह सम्पन्न बनाते हुए उन्होंने जरासन्धकी मृत्युके विषयमें सोचा ॥ ४२ ॥ अमोघदर्शन भगवान्ने झटपट उसकी मृत्युका उपाय निश्चित कर एक वृक्षकी शाखा पकड़ ली और उसे चीरकर दो टुकड़े करके दिखाते हुए भीमको उसकी मृत्युका उपाय बतला दिया कि देखो, इसी तरह यह मर सकता है, अन्यथा नहीं ॥ ४३ ॥ यह जानकर प्रहार करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ महाबली भीमने जरासन्धके दोनों पैर पकड़कर पृथिवीपर उसे पटक दिया और उसे चीरनेका उपाय करने लगे ॥ ४४ ॥ और उसके एक पैरको अपने पैरसे दाबकर दूसरे पैरको हाथसे खींचकर गुदामार्गसे दो टुकड़ेकर दिये, जैसे कि वृक्षकी शाखा को कोई महागजराज चीरकर उसके दो टुकड़े कर देता है ॥ ४५ ॥ हे राजन्, उस समय प्रजाओंने देखा कि उसके देहके पैर, जाँघ, अण्डकोश, पीठ, स्तन, कन्धा, बाहु, नेत्र, भ्रुकुटि और कान—इन सबोंके एक-एकके दो-दो टुकड़े हो गये हैं ॥ ४६ ॥ इसप्रकार जरासन्धके मारे जानेसे चारों तरफसे हाहाकारकी आवाज आने लगी और अर्जुन तथा भगवान्ने छातीसे लगाकर भीमका सम्मान किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर अमेयात्मा भूतभावन भगवान्ने जरासन्धके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुत्र सहदेवको मगधका राजा बनाकर राजतिलक दे दिया और जरासन्धके द्वारा कैद किये गये सम्पूर्ण राजाओंको बन्धनसे मुक्त कर दिया ॥ ४८ ॥

भगवान्भूतभावनः ॥ अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मागधानां पतिं प्रभुः ॥ मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ॥७२॥

॥७०॥ बहत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान् श्रीकृष्णके इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर राजा युधिष्ठिरने राजसूययज्ञ करनेकी अपनी इच्छा भगवान्से प्रकट की। भगवान्ने भी उन्हें राजसूययज्ञ करनेकी स्वीकृति दे दी। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंको चारो दिशाओंमें दिग्विजयके लिए भेज दिया। परन्तु पूर्वदिशामें जरासन्धको पराजित नहीं हुए सुनकर चिन्तामग्न राजा युधिष्ठिरसे भगवान्ने उद्धवकी कही युक्ति सुना दी। तदनन्तर ब्राह्मणका वेष बनाकर भीम, अर्जुन, और भगवान् श्रीकृष्ण—ये तीनों जरासन्धकी राजधानीमें पहुँचे। आह्निककृत्यके बाद अतिथिसत्कार करनेके लिए बैठे हुए जरासन्धसे इन लोगोंने जाकर कहा—राजन्, हम लोग बहुत दूरसे आये हुए आपके अतिथि हैं, हम आपसे कुछ माँगनेके लिये आये हुए हैं। आशा है, उदार प्रकृति आप हम ब्राह्मणको विमुख न करेंगे। जरासन्धने ब्राह्मण वेषधारी उन्हें आकृति और स्वर आदिसे क्षत्रिय जानते हुए भी मनमें विचार किया—सुना जाता है कि राजा बलि आदि अनेक प्राचीन राजे ब्राह्मणोंको दान देकर विपुल यश प्राप्त कर चुके हैं। क्षणभंगुर इस अधम क्षत्रिय शरीरसे ब्राह्मणके लिए यदि कुछ न हो सका, तो फिर इसके रहनेसे दूसरा लाभ ही क्या है ? हे महीपते यों अपने मनमें विचार करते हुए जरासन्धने उनसे कहा—हे विप्रो, जो चाहो, मुझसे माँग सकते हो। मैं अपना तुम्हें प्राण देनेमें भी तनिक भी हिचकिचाहट न करूँगा। तब श्रीकृष्णजी ने कहा—हे राजन्, हम तीनों क्षत्रिय हैं, आपसे मल्लयुद्धकी भिक्षा माँग रहे हैं। देखिये, ये तो हैं भीम, ये हैं अर्जुन और यह मैं आपका शत्रु श्रीकृष्ण हूँ जरासन्धने कहा—श्रीकृष्ण, तुम तो डरपोक हो, मेरे डरसे मथुरा छोड़कर समुद्रमें छिप गये थे। यह अर्जुन मेरे सामने बच्चा है। हाँ, यह भीम मेरे बराबरीका है, इसके साथ मैं लड़ सकता हूँ। यों कहकर जरासन्धने एक गदा लाकर भीमको दे दी और एक दूसरी स्वयं अपने हाथमें लेकर नगरसे बाहर मैदानमें युद्धके लिये निकल आया। एक समतल भूमिमें दोनोंका मल्ल युद्ध होने लगा। सत्ताईस दिनोंतक लगातार दिनमें वे दोनों लड़ते थे और रातमें मित्रकी नाईं सोते थे। अन्तमें भीमने श्रीकृष्णसे कहा मैं जरासन्धको मल्लयुद्धमें नहीं पछाड़ सकता। तब भगवान्ने एक वृक्षकी डाली पकड़कर भीमको उसके दो टुकड़े कर दिखाते हुए संकेतसे कहा—इसी तरह इसके पैर पकड़कर चीर डालो। तदनन्तर भीमने जरासन्धको जमीनपर पटककर उसे चीर डाला। वहाँकी जनताने उस समय जरासन्धके पैर आदि सभी अङ्गोंके एक-एक के दो-दो टुकड़े हुए देखे। उसके बाद भगवान् और अर्जुनने भीमका आलिङ्गन कर खूब सम्मान किया। बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ❀

[कारागारसे मुक्त हुए राजाओंको विदाकर भगवान् श्रीकृष्णका भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थमें लौट आना]

श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, बीस हजार आठ सौ राजे जरासन्ध द्वारा युद्धमें अनायास ही पराजित होकर गिरिव्रज नामक दुर्गमें बन्दकर रखे गये थे। मैले-कुचैले वस्त्र पहने, भूख और प्यासके मारे दुर्बल, मलिन मुख बहुत दिनोंतक दुर्गमें कैद रहनेसे अत्यन्त दुबले हुए वे सब राजे जब कारागारसे निकले, तब सामने खड़े पीतवर्णके रेशमी वस्त्र पहने हुए तथा मेघके सदृश नीलवर्ण भगवान्‌को उन्होंने देखा ॥ १, २ ॥ श्रीवत्ससे चिह्नित, चार भुजावाले, कमलके कुडमलके समान लालनेत्रवाले, सुन्दर और प्रसन्नमुखसे शोभित, मकराकृति कुण्डलसे अत्यन्त रमणीय भगवान् उनके सामने खड़े थे ॥ ३ ॥ वे हाथमें पद्म, शंख चक्र और गदा धारण किये हुए थे तथा किरीट, सोनेके हार, कटक एवं सुन्दर केयूर आदि आभूषण से भूषित थे ॥ ४ ॥ कौस्तुभमणिको गलेमें धारण करनेसे अत्यन्त शोभायमान और वनमालाकी अपूर्वकान्तिसे युक्त भगवान्‌को उन राजाओंने अपने नेत्रोंसे पीते हुए, जिह्वासे चाटते,

श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥ ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ॥ ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशङ्खरथाङ्गैरुपलक्षितम् ॥ किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाञ्चितम् ॥ ४ ॥ भ्राजद्वरमणिग्रीवं विनीतं वनमालया ॥ पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ ५ ॥ जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः ॥ प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसन्दर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ॥ प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥ ७ ॥ राजान ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ॥ प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नैनं नाथानसूयामो मागधं मधुसूदन ॥ अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ॥ त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते संपदोऽचलाः ॥ १० ॥

नासिका से सूँघते तथा बाहुओंसे आलिङ्गन करते हुएके समान उनके चरणोंमें पापशून्य हो अपना सिर रखकर प्रणाम किया ॥ ५, ६ ॥ कृष्णके दर्शनसे ही अति आनन्द होकर दुर्गमें बन्द रहनेका सब दुःख दूर करके अपने-अपने हाथ जोड़कर राजालोग भगवान्‌की विनम्रवाणीमें यों प्रार्थना करने लगे ॥ ७ ॥ सभी राजाओंने कहा—हे देवदेवेश, हे शरणागतोंकी पीड़ा हरनेवाले अविनाशी भगवान्, आपको प्रणाम है। इस घोर संसारसे निर्वेदको प्राप्त हुए हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। हे श्रीकृष्ण, हमलोगोंकी शीघ्र रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥ हे नाथ, हे मधुसूदन, जरासन्धको हमलोग कोई दोष नहीं देते, क्योंकि हे विभो, आपके अनुग्रहसे ही हमलोग इसके द्वारा अपने-अपने राज्यसे भ्रष्ट हो गये, इसमें जरासन्ध का कुछ भी दोष नहीं है ॥ ९ ॥ राजकीय सम्पत्तिसे मदोन्मत्त राजा अपने कल्याणको नहीं पहचानता, क्योंकि आपकी प्रबल मायासे मोहित वह अनित्य लक्ष्मीको नित्य माने बैठा रहता है ॥ १० ॥ जैसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मूर्खलोग मृगतृष्णाको ही जलाशय मानते हैं, वैसेही अज्ञलोग भी विकारमयी मायाकी नित्य वस्तु मानते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो, आपके दर्शनके पहले हमलोग भी लक्ष्मीके मदसे अन्धे होकर परस्पर एक दूसरेसे जला करते थे। एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे सर्वदा सामने खड़ी मृत्युरूप आपको भी मदसे भो चूर हो कुछ न गिनकर अत्यन्त निर्दय बन करके अपनीही प्रजाका नाश करनेमें सदा तत्पर रहते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण, वेही हमलोग आज अनन्तवीर्य गम्भीर गति आपकी साक्षात् मूर्तिका राज्य श्रीविहीन हो जानेके कारण आपके परम अनुग्रह-से दर्परहित होकर आपके चरणकमलका स्मरण कर रहे हैं ॥ १३ ॥ अतः हे भगवन्, निरन्तर क्षयदशाको प्राप्त हो रहे तथा नानाप्रकारके रोगोंके घर इस शरीरसे सेवन करने योग्य मृग-तृष्णा सदृश यह राज्य तथा मृत्युके बाद परलोकमें प्राप्त होनेवाले और कानोंके रुचिकर स्वर्गफल भोगनेकी भी अभिलाषा हम नहीं करते ॥ १४ ॥ इसीलिए हे भगवन्, इस संसारमें भ्रमण

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् ॥ एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयाऽस्या इतरेतरस्पृधः ॥ घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाऽविगणय्य दुर्मदाः ॥ १२ ॥ त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः ॥ कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥ १३ ॥ अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा ॥ उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥ १४ ॥ तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ॥ स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥१५॥ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१६॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानो भगवान् राजभिर्मुक्तबन्धनैः ॥ तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ॥ सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥१८॥ दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः ॥ श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ॥ श्रीमदाद् भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥ भवन्त एतद्विज्ञाय

कर रहे हमें ऐसा कोई उपाय बतलाइये, जिससे कि आपके चरणकमलोंकी स्मृति सदा बनी रहे ॥ १५ ॥ हे कृष्ण, वासुदेव, विष्णु, परमात्मा, तथा शरणमें आये हुए का दुःख दूर करने-वाले गोविन्दको कोटिशः प्रणाम है ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, बन्धन छुड़ाये गये उन राजाओं द्वारा इसप्रकार स्तुति सुनकर शरणरक्षक दयालु भगवान् उन सबोंसे मनोहर वाणीमें कहने लगे ॥ १७ ॥ भगवान्ने कहा—आजसे समस्त चराचरके स्वामी मुझमें आप सबोंकी दृढ़ भक्ति बनी रहेगी जैसी भक्ति आप सब चाहते हैं वैसी ही मेरी भक्ति आपलोगोंको मिलेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ हे राजाओ, यह सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंने मेरा भजन करना निश्चय कर रक्खा है यह आपलोग बिलकुल सच कह रहे हैं। और ऐश्वर्यके मदसे उत्पन्न स्वेच्छाचारित मनुष्योंको मैं मतवाला बना देनेवाला शराब समझता हूँ ॥ १९ ॥ हैहय राजा जमदग्निकी गौ चुरानेपर परशुराम द्वारा सपरिवार मारे गये, राजा नहुष इन्द्रपद पानेके बाद उन्मत्त हो इन्द्राणीके साथ सङ्गम करनेकी इच्छासे ब्राह्मणोंसे पालकी ढोआते हुए इनके शापसे अजगर हुए तथा वेनने भी धनसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया और ब्राह्मणोंके हुँकारसे वह मारा गया। इसप्रकार अनेक दैत्य, दानव और राजे लक्ष्मीके मदसे मतवाले होकर अपने स्थानसे भ्रष्ट हो नीचे गिर चुके हैं ॥ २० ॥ इसलिये आपलोग उत्पन्न होनेवाले इस शरीर आदिको विनाशवान् समझ कर सावधानीके साथ यज्ञों द्वारा मेरी आराधना करते हुए धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करते चलें ॥ २१ ॥ हे राजाओ, आपलोग प्रजातन्तुकी वृद्धि करते तथा प्रारब्धानुसार प्राप्त सुख-दुःख, सम्पत्ति और विपत्तिको भोगते हुए मुझमें अपना चित्त लगाकर इस संसारमें विचरण करते रहिये ॥ २२ ॥ देहादि विषयोंमें उदासीन और दृढ़ व्रती होकर अपनी आत्मामें आनन्द अनुभव किया करें अपने मनको मुझमें अच्छी तरह लगा दें, इसप्रकार अभ्यास करते-करते अन्त ब्रह्मरूप मुझे ही आ जायँगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, समस्त भुवनोंके स्वामी भगवान्ने इसप्रकार राजाओंको आदेश देकर उन्हें स्नान आदि करानेके

देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् ॥ मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥ २१ ॥ सन्तन्वन्तः प्रजातन्तून्सुखं दुःखं भवाभवौ ॥ प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥ उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यङ्मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान्भुवनेश्वरः ॥ तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥ सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ॥ नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५ ॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलङ्कृतान् ॥ भोगैश्च विविधै-र्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः ॥ विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान्सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् ॥ प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान् प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥ त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ॥ ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥ २९ ॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ॥ यथाऽन्वशासद्भ-गवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥ ३० ॥ जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ॥ पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥ गत्वा

लिये अनेक स्त्री और पुरुष नियुक्त कर दिये ॥ २४ ॥ हे भारत, तब भगवान्ने जरासन्धके लड़के सहदेव द्वारा राजाओंके लयक वस्त्र, आभूषण, पुष्प मालाएँ और चन्दन आदिके द्वारा सब राजाओंकी पूजा करायी ॥ २५ ॥ अच्छी तरह स्नान कर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हुए उन राजाओंको सर्वोत्तम भोजन करा करके ताम्बूल आदि नानाप्रकारके राजोचित्त भोगोंसे भगवान्ने सम्पन्न बनाया ॥ २६ ॥ इस तरह भगवान्के द्वारा बन्धनके समस्त दुःखसे मुक्त किये गये तथा पूजित हुए वे सब राजे सुन्दर कुण्डल पहने ऐसे शोभने लगे जैसे वर्षाऋतुके अन्तमें ताराओंके समूह शोभते हैं ॥ २७ ॥ उसके बाद सुन्दर घोड़ोंसे युक्त मणियों और सोनोंसे जटित रथोंपर बैठाकर सुन्दर मधुरवाणीसे प्रसन्न करते हुए भगवान्ने उन्हें अपने-अपने देशमें भेज दिया ॥ २८ ॥ महात्मा श्रीकृष्ण द्वारा इसप्रकार कष्टसे मुक्त होकर वे सब राजे जगत्पति उन श्रीकृष्णके कृत्यों तथा उनके स्वरूपका मनही मन स्मरण करते हुए अपने-अपने देशको चले गये ॥ २९ ॥ और राज्यमें जाकर अपने मन्त्री आदिको उन्होंने भगवान्के गुणानुवाद कह सुनाये। तदनन्तर भगवान्ने जैसा करनेको उन्हें आदेश दिया था वैसाही वे सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आलस्य छोड़कर करने लगे ॥ ३० ॥ भीमसेनके द्वारा जरासन्धका वध कराकर उसके पुत्र सहदेवसे पूजित होकर भगवान् भीम और अर्जुनके साथ वहाँसे चल दिये ॥ ३१ ॥ शत्रुओंको पराजित किये हुए वे सब खाण्डववनमें आकर अपने मित्रोंको हर्षित करते एवं शत्रुओंके हृदयको दहलाते हुए अपने-अपने शंख बजाये ॥ ३२ ॥ पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनि सुनकर इन्द्रप्रस्थके रहनेवाले सब खूब प्रसन्न हुए। उन्हें मालूम हो गया कि जरासन्ध मर गया और राजा युधिष्ठिरका मनोरथ पूर्ण हो गया ॥ ३३ ॥ भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण तीनोंने आकर युधिष्ठिरको प्रणाम किया तथा अपने किये समस्त वृत्तान्त कहकर सुना दिये ॥ ३४ ॥ भगवान्के उस अनुग्रहपूर्ण कार्यको जानकर राजा युधिष्ठिर नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बहाते हुए प्रेमसे विह्वल हो कुछ भी न कह सके ॥ ३५ ॥

ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान्दध्मुर्जितारयः ॥ हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः ॥ मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ॥ सर्वमाश्रावयाञ्चक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ॥३४॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ॥ आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

तिहत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कारागारसे निकलते समय फाटकपर खड़े भगवान् श्रीकृष्णको देखकर सब राजे स्तुति करने लगे। भगवान्ने उन्हें मैले-कुचैले देखकर स्नान कराया। तदनन्तर वस्त्रादिसे विभूषित कर खूब उत्तम भोजन कराया। उसके बाद ताम्बूल आदिसे सम्मानित करते हुए भगवान्ने सुन्दर रथोंपर चढ़ाकर उन्हें अपने-अपने देशको भेज दिया। तदनन्तर जरासन्धके लड़केसे स्वयं पूजित हो भगवान् श्रीकृष्ण भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थको चल दिये। खाण्डववनमें पहुँचते ही उन्होंने अपना-अपना शङ्ख बजाया। उनके शङ्खकी ध्वनि सुनकर इन्द्रप्रस्थके निवासी सब खूब प्रसन्न हुए। उन्होंने समझ लिया कि जरासन्ध मर गया और राजाके मनोरथ पूर्ण हो गये। युधिष्ठिरके पास आकर श्रीकृष्ण आदि तीनोंने चरणपर झुककर प्रणाम किया। भगवान्के अनुग्रहपूर्ण कार्यको जानकर राजा युधिष्ठिरकी आँखोंसे आनन्दकी अश्रुधारा बहने लगी। वे प्रेमसे विह्वल हो कुछ भी बोल न सके। तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ❀

[राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञ तथा अग्रपूजाके प्रसङ्गसे शिशुपालके वध आदिका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जरासन्धका वध तथा सर्वसमर्थ श्रीकृष्णजीका प्रभाव सुनकर राजा युधिष्ठिर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजीने कहा—हे कृष्ण, जो तीनों लोकोंके गुरु सनक आदि हैं वे तथा जो लोकपालोंके भी रक्षक महान् ईश्वर ब्रह्मादिक देवता हैं वे सब भी जिनके दुर्लभ अनुशासनको सिरपर रखकर पालन करते हैं ॥ २ ॥ हे भूमन्, वे ही कमलनेत्र आप नानाविध ऐश्वर्यादिसे सम्पन्न अपनेको माननेवाले हम तीनोंका अनुशासन मान पालन करते हैं, यह भी आपकी विचित्र लीला ही है ॥ ३ ॥ एक अद्वितीय परम ब्रह्म परमात्मस्वरूप आपका तेज कर्म करने या न करनेसे, सूर्यके तेजकी नाईं, कभी भी घटता बढ़ता नहीं है ॥ ४ ॥ हे अजित्, हे माधव, जैसी अज्ञानियोंके शरीर आदिमें भेद बुद्धि

श्रीशुक उवाच ॥ एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः ॥ कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ॥ वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ॥ धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥ न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ॥ त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः ॥ कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः ॥ वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ॥ पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ॥ वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ॥ धृतराष्ट्रः

रहती है वैसी आपके भक्तजनोंकी अपने शरीर आदिमें 'मैं और मेरा' तथा 'तुम और तुम्हारा' यह भेदबुद्धि नहीं रहती, फिर आपमें भेदबुद्धि नहीं है, इस विषयमें क्या कहना ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्से इसप्रकार कहकर और उनका आदेश ले करके युधिष्ठिरने यज्ञके उचित समय आनेपर निरन्तर यज्ञादि करानेवाले वेदपाठी ब्राह्मणोंका ऋत्विजादिरूपमें वरण किया ॥ ६ ॥ जिनमें व्यास, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, भार्गव, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्द, वीरसेन तथा अकृतवर्ण थे ॥ ७-९ ॥ इसके अतिरिक्त यज्ञमें निमन्त्रित होकर द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य अपने सौ पुत्रोंके साथ धृतराष्ट्र और महा बुद्धिमान् विदुरजी तथा अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके लोग यज्ञ देखने आये और हे नृप, समस्त राजे तथा उनके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अमात्यगण भी यज्ञ देखनेकी इच्छासे वहाँ आ धमके ॥ १०,११ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वर्णके हलसे यज्ञभूमि जुतवाकर वेदविहित विधिसे युधिष्ठिरको यज्ञकी दीक्षा दीं ॥ १२ ॥ जिस-प्रकार वरुणके राजसूययज्ञमें सोनेके समस्त यज्ञीयपात्र थे वैसेही इनके इस यज्ञमें भी सोनेके समस्त पात्र थे। पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरके इस यज्ञमें ब्रह्मा और शंकरसे युक्त इन्द्र आदि समस्त लोकपाल अपने अपने गणोंके साथ-साथ सिद्ध और गन्धर्व, विद्याधर, शेष, मुनिवृन्द, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण तथा सब राजे एवं राजपत्नियाँ भी निमन्त्रण पानेपर चारों ओरसे युधिष्ठिरके राजसूययज्ञ देखनेके लिये वहा आयीं। उन सबोंने कृष्णभक्त राजा युधिष्ठिरके उस राजसूयज्ञको विना विस्मयके सुसम्पन्न समझा। तदनन्तर देवताओंके सदृश तेजस्वी यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंने महाराज युधिष्ठिरसे उसी तरह राजसूययज्ञ विधिवत् कराया, जिस तरह देवताओंने वरुणसे पूर्वकालमें यज्ञ कराया था ॥ १३–१६ ॥ राजा युधिष्ठिरने सोमरस पान करनेके दिन

सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ॥ तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥ ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः ॥ कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥ हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ॥ इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चिभवसंयुताः ॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥ १४ ॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ॥ राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ॥ १५ ॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥ राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ॥१६॥ सुत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ॥ अपूजयन्महाभागान्यथा-वत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः ॥ नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥१८॥ अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतां पतिः ॥ एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ॥ अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥ २० ॥ एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् ॥ आत्मनात्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीह कर्माणि जनयन्यदवेक्षया ॥ ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ॥ एवं

महाभाग सभापतियों और ऋत्विजोंका समाहित होकर वेदविहित विधानसे पूजन किया ॥ १७ ॥ जब सभी सदस्य 'सबसे पहले किसका पूजन किया जाय' इसका कोई निर्णय एकमत न होनेसे न कर सके तब सहदेवजीने कहा ॥ १८ ॥ व्यास, नारदादि भक्तोंके पति श्रीकृष्णजी ही सर्वप्रथम पूजनके योग्य हैं। ये ही समस्त देवता, देश, काल और धनादिरूप हैं ॥ १९ ॥ जिनके अधीन यह समस्त विश्व है, समस्त यश जिनके अधीन हैं तथा अग्नि, आहुति, मन्त्र, ज्ञान और उपासना जिन भगवान्के अधीन है, येही एक अद्वितीय हैं, सारा संसार इन्हीका रूप है। हे सभ्यो, अज ये भगवान् ही अपनेमें इस विश्वकी सृष्टि पालन और संहार किया करते हैं, इनका आश्रय दूसरा कोई नहीं है ॥ २१ ॥ जिनके परम अनुग्रहसे ही तप, यज्ञादि अनेक कार्य करता हुआ यह सारा विश्व धर्मादिरूप परम कल्याणको सिद्ध करता है ॥ २२ ॥ अतः महात्मा श्रीकृष्णजीकी ही सर्वप्रथम पूजा होनी चाहिए। ऐसा करनेसे सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राणियोंमें रहनेवाले भगवान्‌के पूजनसे ही सम्पूर्ण देवादिका भी पूजन हो जायगा ॥ २३ ॥ अपने दान का अनन्त फल चाहनेवालेको चाहिए कि वह सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा, भेदबुद्धि रहित, शान्त एवं पूर्ण श्रीकृष्णजीका ही पूजन करें ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले सहदेवजी अपना वक्तव्य समाप्त कर चुपचाप हो गये यह सुनकर साधुप्रकृति सदस्य गण 'साधु, साधु, ऐसा कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २५ ॥ तब ब्राह्मणों द्वारा 'बहुत ठीक है, 'बहुत ठीक है, यह आवाज सुनकर और सभासदोंका हार्दिक अभिप्राय जानकर प्रसन्न हुए राजा युधिष्ठिर प्रेमसे अति विह्वल होकर श्रीकृष्णकी पूजा करने चले ॥ २६ ॥ और स्त्री, भाई, मन्त्री तथा कुटुम्बियोंके साथ आनन्दपूर्वक भगवान्‌के तीनों लोकको पवित्र करनेवाले चरणोदकको अपने सिरपर धारण किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर उन्होंने रेशमी पीताम्बर एवं महा-मूल्यवान् आभूषणोंसे भगवान्‌की भलीभाँति पूजा की। भगवान्‌की पूजा करते समय आँखोंमें

चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ॥ देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ॥ तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः २५ ॥ श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ॥ समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥ तत्पादावनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ॥ सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बोऽवहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ॥ अर्हयित्वाश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयो जनाः ॥ नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ॥ उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ॥ वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् ॥ सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्सम्मतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥ तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ॥ परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ३३ ॥ सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ॥ यथा

आँसू आ जानेके कारण वे वहाँकी उपस्थित कोई भी वस्तु अच्छी तरह नहीं देख सके ॥ २८ ॥ इसप्रकार राजा युधिष्ठिर द्वारा पूजित भगवान्‌को देखकर वहाँकी उपस्थित समस्त जनताने हाथ जोड़कर नमः और जय-जय शब्द करते हुए प्रणाम किया तथा उनके ऊपर खूब पुष्पवृष्टि हुई ॥ २९ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णका गुणवर्णन सुनकर उनके गुणवर्णनसे अति क्रुद्ध हुए दमघोषके पुत्र डाही शिशुपालने अपने आसनसे उतरकर सभामें हाथ उठा करके निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्णको अति कठोर वचन सुनाते हुए कहा ॥ ३० ॥ दुर्निवार काल बलवान् है, यह श्रुति बिलकुल सत्यही है। क्योंकि यहाँपर बैठे हुए वृद्धलोगोंकी भी बुद्धि इस कड़केकी बातोंसे भ्रान्त हो गई है। ३१ ॥ हे सभापतियो, आपलोग पात्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, अतः 'श्रीकृष्ण ही अग्रपूजाके योग्य हैं इस बच्चेके इस कथनको आपलोग ठीक न समझें ॥३२॥ तप, विद्या और नियमसे युक्त, अपने ज्ञानद्वारा समस्त पात्रोंको दूर किए हुए ब्रह्मनिष्ठ लोकपालोंसे पूजित परमर्षि सभापतियोंको छोड़कर अपने कुलका दूषक यह ग्वाला भला कैसे पूजाका पात्र हो सकता है? कौवा भी क्या यज्ञीय पुरोडाशका भागी होता है ॥ ३३, ३४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्ण, आश्रम और कुलसे अलग, सब धर्मोंसे बहिष्कृत, स्वेच्छाचारी और समस्त गुणोंसे हीन कृष्ण पूजनके योग्य कैसे है ? ॥ ३५ ॥ इसके कुलको राजा ययातिने शाप दिया है, अतः यह कुल सज्जनोंसे बहिष्कृत है सदा वृथा शराब आदि पीनेमें ही तत्पर रहता है, ऐसी स्थितिमें भला यह पूजाके योग्य कैसे हो सकता है ॥ ३६ ॥ ये सब चोर यादव ब्रह्मर्षियों द्वारा सेवित, ब्रह्मतेजसे युक्त देशको छोड़कर अति अपवित्र ब्रह्मतेजसे हीन समुद्रमें दुर्गका आश्रयकर प्रजाओंको कष्ट देते-फिरते हैं ॥ ३७ ॥ सौभाग्यहीन उस शिशुपालने इस तरहके अनेक कटु वचन कहे, लेकिन वह सब सुनकर भगवान्ने उससे ऐसे कुछ नहीं कहा, जैसे सियारके शब्द सुनकर सिंह कुछ नहीं बोलता ॥३८॥ उस सभाके सभी सदस्य शिशुपाल द्वारा भगवान्की दुःसह निन्दा सुनकर अपने-अपने कान बन्दकर क्रोधके मारे उसको शाप देते हुए वहाँसे बाहर निकल गये ॥ ३९ ॥ क्योंकि जो कोई भी पुरुष भगवान्की या तत्परायण भक्तोंकी निन्दा

काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥ ३४ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ॥ वृथापानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान् हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ॥ समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥३७॥ एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ॥ नोवाच किञ्चिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥३८॥ भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ॥ कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥३९॥ निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥४०॥ ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ॥ उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥४१॥ ततश्चैद्यस्त्वसम्भ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी ॥ भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥४२॥ तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं रुषा ॥ शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥४३॥ शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् ॥ तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥४४॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥४५॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ॥ ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥४६॥

सुनकर वहाँसे दूर नहीं हट जाता, वह भी अपने सुकृतसे च्युत होकर नरकमें जाता है ॥ ४० ॥ यह सुनकर पाँचों भाई पाण्डव एवं मत्स्य, सृञ्जय और कैकय देशके राजे सब अपने अपने शस्त्रास्त्र लेकर शिशुपालको मारनेके लिए उठ खड़े हो गये ॥ ४१ ॥ हे भारत, तब शिशुपालने भी उस समय असम्भ्रान्त होकर खचाखच भरी सभामें श्रीकृष्णपक्षीय राजाओंकी भर्त्सना करते हुए ढाल-तलवार अपने हाथमें पकड़ ली ॥४२॥ यह सब देखकर भगवान्ने अपने आसनसे नीचे उतरकर अपने पक्षवालोंको लड़नेसे मना करके अपनी ओर आते हुए अपने शत्रुका छुरेके समान तीक्ष्ण धारवाले सुदर्शनसे सिर अलग कर दिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मर जानेपर वहां भारी कोलाहल मच गया तथा उसके अनुयायी सब राजे डरके मारे अपने अपने प्राण लेकर भाग गये ॥ ४४ ॥ सब लोगों के देखते-देखते ही शिशुपालकी देहसे निकला हुआ अत्यन्त तेजस्वी प्रकाश भगवान् में ऐसे विलीन हो गया, जैसे आकाश से गिरी हुई उल्का पृथिवी से विलीन हो जाती है ॥४५॥ तीन जन्म से भगवान् के साथ वह शिशुपाल बराबर वैरभाव रखते आ रहा था, इसलिये वैरभाव युक्त बुद्धिसे भगवान् का निरन्तर ध्यान करते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहनेके कारण वह उनमें तन्मय हो चुका था, क्योंकि ध्येयाकार जन्मका कारण तो एकमात्र भावना ही होती है ॥४६॥ सम्राट् युधिष्ठिरने सदस्योंसे युक्त समस्त ऋत्विजोंको प्रचुर दक्षिणा दी। तदनन्तर विधिपूर्वक सबका पूजन करके अवभृथ स्नान किया ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञको विधिवत् समाप्त कर मित्रमंडली के प्रार्थनासे कुछ महीनेतक हस्तिनापुरमें ही ठहर गये ॥ ४८ ॥ तब जाने देनेकी इच्छा न रहनेपर भी युधिष्ठिरजीसे आदेश लेकर वे देवकीनन्दन परमेश्वर भगवान् अपनी समस्त स्त्रियों एवं अमात्य आदिके साथ अपनी राजधानी द्वारकाको चले गये ॥ ४९ ॥ हे राजन्, ब्राह्मणके शापसे वैकुण्ठवासी जय और विजयका बार-बार जन्म हुआ था, वह सब आख्यान विस्तार-

ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ॥ सर्वान्सम्पूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥४७॥ साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥४८॥ ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ॥ ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥४९॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ॥ वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ ५० ॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ॥ ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥ ५१ ॥ राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ॥ कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ॥ यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥ य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥ राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पूर्वक मैंने आपसे कह सुना दिया ॥ ५० ॥ राजसूययज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान करके राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी सभामें इन्द्रके तुल्य शोभित हुए ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर द्वारा सम्मानित हो समस्त देवता, मनुष्य प्रमथ आदि कृष्ण और राजसूययज्ञकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए प्रसन्नचित्त हो अपने-अपने घर चले गये ॥ ५२ राजा युधिष्ठिरकी चढ़ी-बढ़ी उस सम्पत्तिको देखकर जो उसका सहन न कर सका, उस कुरुकुलके नाशक कलिके अंशभूत दुर्योधनके सिवा वहाँ और कोई नहीं था ॥ ५३ ॥ जो कोई भगवान्‌के शिशुपाल वध आदि कर्मों, राजाओंको कैदसे छुड़ाने आदि वृत्तान्तों तथा राजसूययज्ञका वर्णन सुनता है, वह समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ५४ ॥

चौहत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, भगवान् श्रीकृष्णसे आज्ञा लेकर राजा युधिष्ठिरने शुभमुहूर्तमें राजसूययज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञमें निमन्त्रित होकर अनेक राजे, सुर, मुनि, गन्धर्व आदि आये हुए थे। सोमपानके दिन सहदेवके कथनपर सर्वसम्मतसे जब यह हो गया कि अग्रपूजाके सर्वथा योग्य एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं जब यह शिशुपालको सहन न हुआ। भरी सभामें भगवान्‌की वह निन्दा करने लगा। उसके द्वारा की जा रही निन्दाके न सुननेकी इच्छासे बहुतसे ऋषि-मुनि सब अपने-अपने कान बन्द

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर वहाँसे चलने लगे। सदस्योंको वहाँसे जाते देखकर पाण्डव लोग शिशुपालको मारने दौड़े। इधर शिशुपाल भी ढाल-तलवार लेकर तैयार हो गया। यह देख भगवान्ने पाण्डवोंको रोक दिया। तब अपनी ओर दौड़े आ रहे शिशुपालको देखकर भगवान्ने अपने सुदर्शनचक्रसे उसका सिर अलग कर दिया। सबके देखते-देखते शिशुपालके शरीरसे निकलकर ज्योति भगवान्में जाकर मिल गयी। यह देखकर वहाँकी उपस्थित सारी जनता विस्मय करने लगी। यज्ञकी समाप्तिमें राजाने सकुटुम्ब अवभृथस्नान किया। तदनन्तर मित्रोंके आग्रहसे भगवान् कुछ दिन वहीं ठहर गये। जाने देनेकी इच्छा नहीं रहते भी राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा लेकर भगवान् सपरिवार अपनी राजधानी द्वाराकामें आ गये। इधर राजा युधिष्ठिरसे सम्मानित होकर जितने लोग यज्ञ देखने आये हुए थे सबके सब वे अपने अपने स्थानको चले गये। चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

—०*०—

❀ अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ❀

(राजा युधिष्ठिरकी चढ़ी बढ़ी राजसम्पत्तिको देख उनसे सन्तप्त हुए दुर्योधनका मान भङ्ग)

राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन्, युधिष्ठिरजीका परम पवित्र वह महान् राजसूययज्ञ देखकर दुर्योधनको छोड़कर समस्त देव, ऋषि और राजे अत्यन्त आनन्दित हुए यह बात आपने कहीं है, सो हे भगवन, इसका क्या कारण है? आप मुझे कृपाकर बतलाइये ॥१, २॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, महात्मा आपके पितामह राजा युधिष्ठिरके उस राजसूययज्ञमें उनके

राजोवाच ॥ अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥ सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ॥ इति श्रुतं नो भगवन्स्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥ ऋषिरुवाच ॥ २ ॥ पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ॥ बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ॥ सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ॥ परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ॥ बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सन्तर्दनादयः ॥ ६ ॥ निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ॥ प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

सभी भाई अर्जुन आदि प्रेमके वश होकर उनकी भिन्न-भिन्न सेवामें लगे हुए थे ॥ ३ ॥ जिसमें भीम पाकशालाके अध्यक्ष थे, दुर्योधन कोषाध्यक्ष थे, सहदेव ब्राह्मणोंके पूजनमें तत्पर थे, नकुल द्रव्य इकट्ठा करनेमें, अर्जुन ये समागत गुरुजनोंकी सेवामें, श्रीकृष्ण सबके पैर धोनेमें, द्रौपदी सबको परोसकर खिलानेमें और महामना कर्ण दान देनेमें लगे थे ॥ ४, ५ ॥ हे राजेन्द्र, युयुधान, विकर्ण, कृतवर्मा और विदुर, भूरिश्रवा एवं संतर्दन आदि सब राजे उस महायज्ञमें भिन्न-भिन्न कार्यों में नियुक्त होकर राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेकी चाहसे अपने-अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कार्यमें तत्पर थे ॥ ६, ७ ॥ ऋत्विक्, सदस्य और बहुज्ञों तथा अपने प्रिय मित्रोंके मधुर वचनों, महा अलङ्कारादि सामग्रियों एवं दक्षिणादिसे अच्छी तरह सन्तुष्ट कर दिये जाने तथा शिशुपालके मरणके बाद सात्वतपति भगवान्‌के चरणोंमें प्रविष्ट हो महाराज युधिष्ठिर आदि सबने गङ्गामें जाकर अवभृथ स्नान किया ॥ ८ ॥ उस अवभृथ स्नानके उत्सवके समय मृदङ्ग, शंख, पणव, गोमुख, धुन्धुरी और आनक आदि अनेक तरहके विचित्र बाजे बजने लगे ॥ ९ ॥ नर्तकियाँ सब प्रसन्न होकर खूब नृत्य करने लगीं तथा गायकसमूह भी खूब प्रसन्नचित्तसे नानाप्रकारके भजन गाने लगे । उन सबोंकी वीणा, वेणु और तालियोंके महान् शब्द आकाशमें गूँज उठे ॥ १० ॥ यजमानको आगे करके चित्रविचित्र ध्वजा-पताकाओंको उठाये, नानाप्रकारके अलङ्कारोंसे अलंकृत रथ, हाथी घोड़े और पैदल सेनाओंके साथ सुवर्णके हारोंको पहने हुए यदु, सृञ्जय, कम्बोज, कुरु, केकय और कोसलदेशके राजे सब पृथिवीको कँपाते हुए निकले ॥ ११, १२ ॥ सदस्य, ऋत्विज और भी ब्राह्मण सब ऊँचे स्वरसे वेदपाठ करते हुए युधिष्ठिरके साथ चले । देव, ऋषि, पितर तथा गन्धर्व पुष्पवृष्टि करते

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ॥ चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥
मृदङ्गशङ्खपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः ॥ वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्त्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ॥ वीणा-
वेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः ॥ स्वलङ्कृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥
यदुसृञ्जयकाम्बोजकुरुकेकयकोसलाः ॥ कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥ १२ ॥ सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ देवर्षिपितृ-
गन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥ स्वलङ्कृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः ॥ विलिम्पन्त्योऽभिषिञ्चन्त्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥ १४ ॥
तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः ॥ पुम्भिर्लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥ १५ ॥ गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि
विमानवरैर्नृदेव्यः ॥ ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥ ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्ना-

हुए स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ चन्दन, माला, आभूषण और सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित स्त्री तथा पुरुष सब नानाप्रकारके रसोंको एक दूसरेके शरीरमें लेप करते एवं एक दूसरेको अभिषिक्त करते हुए खेलवाड़ करने लगे ॥ १४ ॥ तैल, गोरस, गन्धयुक्त जल, हल्दी और खूब गाढ़ कुंकुमोंसे पुरुषों द्वारा लिप्त हुई वारवनिताएँ उन्हीं द्रव्योंसे उन पुरुषोंके ऊपर लेप करती हुई खूब खेलवाड़ करने लगीं ॥ १५ ॥ उस समय आकाशमें सुन्दर विमानोंपर चढ़कर आयी देव-पत्नियोंके सदृश राजपत्नियाँ इस महोत्सवको देखनेके लिये रथ आदि सवारियोंमें बैठकर अनेक रक्षक पुरुषों द्वारा सुरक्षित हो नगरसे बाहर निकलीं । पाण्डवोंके ममेरे भाई श्रीकृष्ण, बलराम तथा उनके मित्रों द्वारा अभिषिक्त होती हुई वे सब राजमहिलाएँ लज्जायुक्त हाससे विकसित वदन हो खूब सुशोभित हुईं ॥ १६ ॥ कपड़े गीले हो जानेके कारण जिनके शरीरके स्तन, जाँघ तथा मध्यभाग आदि अङ्ग स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, ऐसी वे राजपत्नियाँ अपने देवरों तथा मित्रोंको पिचकारियोंसे खूब अभिषिक्त करने लगीं । ज्यादा उत्सुकता हो जानेके कारण खुले हुए केशपाशों तथा उनमें गुंथी हुई खिसक गई मालाओंसे युक्त वे स्त्रियाँ मनोहर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्रीडाओंसे दुर्योधन आदि कामी पुरुषोंके मनमें क्षोभ पैदा करने लगीं ॥ १७ ॥ सुन्दर घोड़ोंसे युक्त सोनेकी मालासे मण्डित रथमें अपनो पत्नियोंके साथ बैठे हुए सम्राट् युधिष्ठिरजी ऐसे उस समय शोभित हो रहे थे, जैसे कि क्रियाओंके साथ साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुष ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन ऋत्विजोंने पत्नीसंयाज नामक याग तथा अवभृथस्नानके समयके कर्म एवं आचमन कराकर द्रौपदीके साथ युधिष्ठिरको गंगामें स्नान कराया ॥ १९ ॥ मनुष्योंके बाजेके साथ-साथ देवताओंके भी बाजे बजने लगे। तदनन्तर देव, ऋषि, पितर और मनुष्य सब पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ २० ॥ तदनन्तर सभी वर्णाश्रमधर्मी पुरुषोंने उस गंगाजीमें स्नान किया, क्योंकि अवभृथके समय स्नान करनेसे महापातकी भी शीघ्र पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने नवीन रेशमी वस्त्र पहने समस्त आभूषणादिसे अलंकृत होकर ऋत्विग्, सदस्य और ब्राह्मणों आदिकी वस्त्रों और आभूषणोंसे पूजा की ॥ २२ ॥ भगवत्परायण राजा युधिष्ठिरने अपने कृष्ण आदि बन्धुओं, भीष्म आदि ज्ञातियों, विराट आदि मित्रों, द्रुपद आदि सुहृदों तथा इनके अतिरिक्त और लोगोंका भी यथायोग्य सब तरहसे

म्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ॥ औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७ ॥ स सम्राड्रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ॥ व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥१८॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥ आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया ॥ १९ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ॥ महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥ अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलङ्कृतः ॥ ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥ २२ ॥ बन्धुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ॥ अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्रगुष्णीषकञ्चु कदुकूलमहार्ध्यहाराः ॥ नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ॥ पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ॥ नैवातृप्यन्प्रशंसन्तः पिबन्मर्त्योऽमृतंयथा ॥२७॥

खूब सम्मान किया ॥२३॥ तब मणिमय कुण्डल, माला, सिरपर पगड़ी, शरीरमें सुन्दर कुर्ता तथा कन्धे पर रेशमी दुपट्टा और गलेमें महामूल्यवान् हार पहनकर देवताओंके सदृश कान्तियुक्त वहाँके सब लोग हो गये। स्त्रियाँ भी दोनों कानोंमें सुन्दर कुण्डल और काले-काले घुंघराले बालोंसे अपने मुखकी शोभाको बढ़ाती हुई कमरमें सोनेकी करधनी धारण करके अति शोभाको प्राप्त हुईं ॥ २४ ॥ इसके बाद हे राजन्, महाकुलीन ऋत्विक्, ब्रह्मवादी सदस्य निमन्त्रित होकर आए हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और राजे सब तथा अपने अनुयायियोंके साथ देव, ऋषि, पितर, भूत तथा लोकपाल सब राजासे सम्मानित हो तथा उनसे आज्ञा लेकर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ २५, २६ ॥ हे राजर्षे, भगवान्के परमभक्त युधिष्ठिरका राजसूययज्ञ देखनेवाले सब लोग, जैसे अमृतका पानकर मनुष्य नहीं तृप्त होते वैसेही यज्ञकी प्रशंसा करते-करते तृप्त न हो सके ॥ २७ ॥ राजा युधिष्ठिरने भीष्मादि अपने सुहृदों, द्रुपदादि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्बन्धियों एवं अपने मित्र विराटादिको प्रेमवश अपने यहाँ कुछ दिन और रख लिया तथा कृष्णजीको भी न जाने दिया, क्योंकि उन सबोंके जाते समय युधिष्ठिरका मन वियोगके भयसे अति दुःखित होने लगता था ॥ २८ ॥ हे राजन्, महाराज युधिष्ठिरके अत्यन्त शुभचिन्तक भगवान् भी साम्ब आदि यदुवीरोंको द्वारका भेजकर स्वयं वहीं ठहर गये ॥ २९ ॥ इसप्रकार धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णकी अनुकम्पासे अपने मनोरथरूपी दुस्तर समुद्रको पार करके निश्चिन्त हो गये ॥३०॥ एक दिन दुर्योधन युधिष्ठिरके अन्तःपुरमें जाकर उनकी राज्य-लक्ष्मी तथा राजसूययज्ञ द्वारा प्राप्त हुई महती प्रतिष्ठाको देखकर बहुत सन्तप्त हुआ ॥ ३१ ॥ जिस अन्तःपुरमें विश्वकर्मा द्वारा लाई गई राजेन्द्रों, दैत्येन्द्रों तथा सुरेन्द्रोंकी विविध विभूतियाँ अत्यन्त शोभित हो रही थीं एवं जहाँपर द्रौपदी उन सब विभूतियोंसे अपने पतियोंकी परिचर्या कर रही थीं तथा जिस अन्तःपुरमें भगवान् श्रीकृष्णकी हजारों स्त्रियाँ अपने नितम्बके

ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ॥ प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥ २८ ॥ भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सी-
त्तत्प्रियङ्करः ॥ प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बादींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥ इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ॥ सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णे-
नासीद्गतज्वरः ३० ॥ एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ॥ अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेन्द्रदिति-
जेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मीर्नाना विभान्ति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ॥ ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥
यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदङ्घ्रिशोभम् ॥ मध्ये सुचारु कुचकुङ्कुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डल-
कुन्तलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ॥ वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः काञ्चने
साक्षादासने मघवानिव ॥ पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ॥ किरीटमाली
न्यविशदसिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥ ३६ ॥ स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ॥ जले च स्थलवद्भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥

विपुल भारसे धीरे-धीरे चलती हुई पैरके नूपुरों कों झनकारसे अपना सौन्दर्य और अधिक बढ़ा रही थीं, जिनकी कमरकी शोभा देखते बनती थी, जिनके कुंकुमरञ्जित स्तनों के ऊपर पड़े हार लाल हो गये थे तथा चञ्चल कुण्डलों एवं घुंघराले काले-काले बालोंसे सम्पन्न जो अपने अनुपम सौन्दर्यशाली मुखसे खूब शोभित हो रही थीं, उस अन्तःपुरको देखकर द्रौपदी में आसक्त दुर्योधन मनही मन अत्यन्त सन्तप्त होने लगा ॥ ३२,३३ ॥ एक दिन मयदानव द्वारा निर्मित सुन्दर राजसभामें अपने चारों भाइयों, अपने बन्धुओं एवं अपने मित्रसमूह श्रीकृष्णसे घिरे हुए सम्पूर्ण राज्य श्रीसे सम्पन्न हो साक्षात् इन्द्रके समान स्वर्ण सिंहासनपर महाराज युधिष्ठिर बैठे हुए थे और उनकी बन्दीजन स्तुति कर रहे थे ॥ ३४,३५ ॥ हे राजन्, उसी समय अपने सौ भाइयोंके साथ महामानी दुर्योधनने किरीट और माला पहिने हुए तथा हाथ में तलवार लेकर द्वारपालोंको फटकारते हुए राजसभा में प्रवेश किया ॥ ३६ ॥ मयदानवकी मायासे विमोहित हो उसने स्थलको ही जल समझकर वहीं अपना वस्त्र बटोर लिया तथा जलमें उसे स्थलवत् भ्रम हो जानेसे वह उसमें गिरपड़ा ॥ ३७ ॥ हे राजन्, राजा युधिष्ठिर द्वारा मना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करने पर भी वहाँ गिरते हुए दुर्योधनको देखकर भीम, राजाओंकी स्त्रियाँ तथा अनान्य राजे सब श्रीकृष्णका अनुमोदन पाकर (इशारा देखकर) हँस पड़े ॥ ३८ ॥ यह देखकर दुर्योधन लज्जित होकर नीचे मुख करके क्रोधसे जलता हुआ चुप चाप हस्तिना पुर चला गया। उसके जानेसे सज्जनोंमें महा हाहाकार मच गया। यह सब देख सुनकर युधिष्ठिर महाराज कुछ अन-

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ॥ निवार्यमाणा अप्यङ्ग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८ ॥ स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ॥ हाहेति शब्दः सुमहानभूत्सतामनजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ॥ बभूव तूष्णीं भगवान्भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे दुर्योधनमानभङ्गो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

मने से हो गये। जिनकी दृष्टिविक्षेप से सुयोधनको उस तरहकी भ्रान्ति हो गयी थी वे पृथिवीका भार हलका करनेकी इच्छा रखनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी उस समय बिलकुल चुपचाप रहे ॥ ३९ ॥ हे राजन् जो आपने मुझसे पूछा था कि उस राजसूय महायज्ञमें सभी प्रसन्न थे पर दुर्योधन क्यों दुःखी हुआ ? सो मैंने आपसे कह दिया ॥ ४० ॥

पचहत्तरवें अध्यायका सार—राजा परीक्षितने कहा—हे मुने, उस राजसूययज्ञमें दुर्योधनके सिवा सभी प्रसन्नचित्त थे, इसका क्या कारण था ? कहिये। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक दिन राजायुधिष्ठिर अपने राजमहल में अपनेभाइयों आदिके साथ बैठे हुए थे और द्रौपदी उनकी सेवा कर रही थी, उसी समय अचानक दुर्योधन वहाँ पहुँच गया। राजा युधिष्ठिरकी राज्यश्री देखकर वह सिर से पैर तक जल गया। तदनन्तर एक दिन मय द्वारा निर्मित राजसभामें अभिमानी दुर्योधन पहुँचा। वहाँ उसने भगवान्की मायासे स्थलको जल समझकर अपना वस्त्र समेट लिया तथा जल में स्थलकी भ्रान्ति हो जाने से गिर पड़ा। उसे गिरते देख वहाँकी सभी स्त्रियाँ और राजे भीमके साथ हँस पड़े। दुर्योधन शर्मके मारे अपना मुँह नीचे किये हुए चुप चाप वहाँ से चला गया। महायुद्धका इसे बीज समझकर भगवान् ने कुछ नहीं कहा। हे राजन्, जो आपने पूछा था वह मैंने कह दिया। पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ❋

[यदुवंशियों और शाल्वके महान् युद्धमें द्युमानकी गदासे मर्छित हुए प्रद्युम्नका रणभूमिसे सारथी द्वारा निर्गमन]

श्रीशुकदेवजींने कहा—हे राजन्, जिस तरहसौभपति शाल्व मारा गया था, वह भी संसारके लोगोंको अपना खेल दिखानेके लिये मनुष्य शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णका एक और अद्भुत कर्म सुनिये ॥१॥ रुक्मिणीके विवाहमें शिशुपालका मित्र शाल्व भी आया था। जरासन्धादि राजाओंके साथ युद्धमें वह भी जब यदुवंशियोंसे पराजित हो गया ॥ २ ॥ तब समस्त राजाओंको सुनाते हुए उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं पृथिवीको यादवोंसे हीन अवश्य कर दूँगा तुम लोग मेरा पुरुषार्थ देख लेना ॥ ३ ॥ हे राजन्, इसप्रकार प्रतिज्ञा करके वह मूर्ख प्रतिदिन एक बार एक मुट्ठी धूलि फाँकता हुआ सबके प्रभु भगवान् पशुपति महादेवकी आराधना करने लगा ॥४॥ वर्षके अन्तमें ही प्रसन्न होकर आशुतोष उमापति भगवान्ने शरणमें आये हुए शाल्वको वर माँगनेको कहा ॥५॥ यह सुनकर शाल्व देव, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प एवं राक्षसों द्वारा भेदित न होनेवाला और स्वेच्छानुसार चलनेवाला रथ माँगा। जिसे देखकर

श्रीशुक उवाच ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥ क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥ शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ॥ यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासन्धादयस्तथा ॥ २ ॥ शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥ आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥ संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः ॥ वरेण छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥ ५ ॥ देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥ तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः ॥ पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥ स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ॥ ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥ निरुद्ध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ॥ पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥ सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ॥ विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिला

वृष्णि सब डर जायँ ॥६॥ तब भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कह दिया। तदनन्तर भगवान् गिरीशकी आज्ञा पाकर शत्रुओंके देशको जीतनेवाले मयदानवने एक लोहेका सौभनाम विमान बनवाकर शाल्वको दिया ॥७॥ वह शाल्व स्वेच्छासे चलनेवाला अभेद्य अन्धकारका आश्रय रथ पाकर यदुवंशियोंके पूर्व वैरका स्मरण करता हुआ अत्यन्त दुर्गम्य द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥८॥ हे भारत श्रेष्ठ, शाल्व अपनी बड़ी सेनासे नगरको चारों दिशाओंसे घेरकर नगरके उपवनों और उद्यानोंको उजाड़ने लगा ॥ ९ ॥ वह शाल्व विमान के आगे बैठकर द्वारकाके गोपुर दरवाजों, गृहों, कोठों एवं मुँड़ेरों तथा विहार करनेके स्थानोंको तोड़ने लगा और नगरके चारों तरफ अस्त्रकी उस विमानसे वृष्टि करने लगा ॥ १० ॥ बड़े-बड़े पहाड़, वृक्ष, वज्र, सर्प

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एवं वृष्टिके साथ-साथ पत्थर गिरने लगे तथा महा भयानक प्रचण्ड बवण्डरके कारण सम्पूर्ण दिशाएँ धूलिसे आच्छादित हो गईं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार त्रिपुरासुरसे पृथिवी व्याकुल हो उठी थी उसोप्रकार हे राजन्, उस नगरमें कोई भी निरोग न रहा। सौभके कारण कृष्णकी द्वारकापुर नष्ट-भ्रष्ट हो गई ॥ १२ ॥ शाल्व द्वारा अपनी समस्त प्रजाओंको दुःखसे अति दुःखी देखकर 'तुम सब मत डरो' यह कहकर महाबली प्रद्युम्नजी रथपर बैठकर शाल्वको मारनेके लिए दौड़ पड़े ॥ १३ ॥ यह देखकर सात्यकि, चारुदेष्ण साम्ब और अपने छोटे भाइयोंके साथ अक्रूरजी, हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक्र, सारण तथा इनके अलावे भी महाबली धनुर्धारी, रथी एवं यूथपोंके भी यूथप वीर सब कवच धारण करके रथ, हाथी, थोड़े और पदाति सेनाओंके साथ रक्षित हो निकल पड़े ॥ १४, १५ ॥ इसके बाद जिसप्रकार देवताओं और असुरोंका युद्ध हुआ था, उसीप्रकार शाल्व तथा यदुवंशियोंका रोमाञ्च करनेवाल घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ १६ ॥ तदनन्तर प्रद्युम्नजीने जैसे सूर्य रात्रिका अन्धकार दूरकर देते हैं वैसेही शाल्वकी समस्त माया अपने दिव्य अस्त्र द्वारा क्षणभरमें दूरकर ॥ १७ ॥ और

द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ॥ प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद्रजसाच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥ इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ॥
नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥ प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ॥ माभैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥१३॥
सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः ॥ हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥ अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपः ॥
निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ॥ यथाऽसुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥
ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ॥ क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥ विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः ॥
शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१८॥ शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ॥ दशभि दशभिर्नेतृन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥१६॥
तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥२०॥ बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते ॥ मायामयं
मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥ २१ ॥ क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ॥ अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥ २२ ॥

स्वर्णके पंख, लोहेके नोंकवाले तथा सन्नत वर्णवाले अति कठोर पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको विद्ध कर दिया ॥ १८ ॥ पुनः सौ बाणोंसे शाल्वको तथा एक-एक बाणसे समस्त सैनिकों को दस दस बाणोंसे सेनापतियोंको और तीन-तीन बाणोंसे उनसबोंके वाहन घोड़े, हाथी, आदियोंको घायल कर दिया ॥ १६ ॥ महात्मा प्रद्युम्नके उस अद्भुत महान् चमत्कारपूर्ण कर्म को देखकर समस्त दोनों दलके सैनिक बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ २० ॥ वह सौभ विमान मयद्वारा मायाको पाकर कभी अनेक रूप धारण कर लेता कभी दिखाई पड़ता कभी-कभी अलक्षित हो जाता इसप्रकार दूसरोंसे नानाप्रकरका दिखाई पड़ने लग जाता था ॥ २१ ॥ कभी पृथिवीपर, कभी आकाशमें कभी पहाड़की चोटीपर और कभी जलमें अलातचक्रके सदृश चारों तरफ भ्रमण करता हुआ दिखाई पड़ता था ॥ २२ ॥ जहाँ-जहाँ सौभ और अपने सैनिकोंके साथ जहाँ-जहाँ शाल्व दिखाई पड़ने लग जाता था, वहाँ-वहाँ यदुवंशी सब बाणोंकी झड़ी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगाने लग जाते थे ॥ २३ ॥ अपने शत्रु यदुवंशियों द्वारा छोड़े गये अग्निके समान दाहक तथा सूर्यके समान चारो तरफ फैलनेवाले शस्त्रसे अपने विमान और सैनिकोंको पीड़ित होते देखकर शाल्व मूर्छित हो गया ॥ २४ ॥ एवं शाल्वके सैनिकों द्वारा छोड़े गये शस्त्रों द्वारा अत्यन्त पीडित होते हुए भी दोनों लोक जीतनेकी इच्छा रखनेवाले यादववीरोंने अपना-अपना युद्ध नहीं छोड़ा ॥ २५ ॥ इसी समय शाल्वका मन्त्री द्युमान् प्रद्युम्नके बाणसे पीड़ित हो उनके पास जाकर लोह निमित गदासे उन्हें मारकर बड़े जोरसे चिल्लाने लगा ॥ २६ ॥ द्युमान्की गदाके प्रहारसे शत्रुनाशकारी प्रद्युम्नका वक्षःस्थल फट गया और रुधिर निकलने लगा, इससे मूर्छित हुए उन्हें देखकर धर्मवित् दारुकके पुत्र सूतने रणभूमिसे उन्हें अलग पहुँचा दिया ॥ २७ ॥ थोड़ी देरमें प्रद्युम्नको जब होश हुआ, तब सारथिसे कहने लगे कि हे सूत, रणसे बाहर भाग आना यह कार्य मेरे लिये बड़ाही बुरा हुआ ॥ २८ ॥ नपुंसक चित्त-

यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः ॥ शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चञ्छरान्सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ॥ पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः २४ ॥ शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ॥ न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥ २५ ॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं पाक् प्रपीडितः ॥ आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद् बली ॥२६॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिन्दमम् ॥ अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ॥ अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ॥ विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसङ्गम्य पितरौ रामकेशवौ ॥ युद्धात्सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः ॥ क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३० ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानताऽऽयुष्मन् कृतमेतन्मया विभो ॥ सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥ एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ॥ उपसृष्टः परेणेति मूर्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शाल्वयुद्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

वाले सूतके द्वारा जिसे यह कलङ्क मिला हो ऐसा एकमात्र मुझे छोड़कर यादव कुलमें उत्पन्न और कोई भी दूसरा वीर रणभूमिसे भागा हुआ आजतक नहीं सुना जाता ॥ २९ ॥ अपने पिता बलदेव एवं श्रीकृष्णजीके पास जाकर उनके पूछनेपर भला युद्धसे भागा हुआ मैं अपनी वीरताका आख्यान क्या बतलाऊँगा ॥ ३० ॥ वहाँ पहुँचनेपर मेरी भाभियाँ मेरी मजाक उड़ाती हुई साफ-साफ कहेंगी—कहो वीर, तुम्हें युद्धमें दुश्मनोंने कायर कैसे बनादिया ? ॥ ३१ ॥ यह सुनकर सारथीने कहा—हे आयुष्मन्, सूतका कर्तव्य है कि विपत्तिमें पड़े हुए रथी की रक्षा करे तथा रथीका कर्तव्य है कि संकटमें पड़े हुए अपने सारथीकी रक्षा करे । अतः हे विभो, मैंने अपना धर्म समझ कर ही यह किया है ॥ ३२ ॥ यह जानकर कि शत्रुकी गदाकी चोटसे घायल होकर आप मूर्छित पड़े हैं, मैं आपको रणभूमिसे उठाकर यहाँ ले आया हूँ ॥ ३३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

छिहत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अद्भुतकर्मा भगवान्का एक और वर्णन सुनिये। रुक्मिणीके स्वयम्बरमें सभी राजाओंके समक्ष शिशुपालके मित्र शाल्वने यदुवंशियोंके नाशकी प्रतिज्ञाकी थी। तदनुसार भगवान् शङ्करकी आराधना कर उसने उन्हें प्रसन्न किया। प्रसन्न हुए भगवान् शङ्करकी आज्ञासे मय द्वारा निर्मित सौभ नामक विमानपर बैठकर वह द्वारका में जाकर वहाँके निवासियोंको त्रस्त बना दिया। अपने नगर वासियोंको उससे त्रस्त होते देखकर प्रद्युम्नजी उसके साथ लड़नेके लिए निकल पड़े। उनके पीछे यदुवंशियोंकी सेना भी चली आयी। दोनों में लड़ाई होने लगी। प्रद्युम्न के बाणोंसे घायल होते देखकर शाल्वके मन्त्री द्युमान्ने गदासे प्रद्युम्नके वक्षःस्थलमें प्रहार किया। उसके प्रहारसे मूर्छित हुए प्रद्युम्नको उनके सारथीने उठाकर रणभूमि से अलग रख दिया। होशमें आनेपर प्रद्युम्नने सारथीको फटकारते हुए कहा—यदुवंशियोंके कुलमें आज तक रणसे भागा हुआ कोई नहीं सुना जाता। यहाँसे जानेपर मैं अपने पिताजी आदिके पूछनेपर अपनी बहादुरीका क्या बखान करूँगा। छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथसप्ततितमोऽध्यायः ❀

(अनेक प्रकारकी माया जाननेवाले शाल्वका भगवान् श्रीकृष्णजी द्वारा तथा सौभ विमानका नाश—यह वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसके बाद प्रद्युम्नने जलसे अपने मुखादिका प्रक्षालन करके धनुष लेकर सन्नद्ध हो सारथिसे कहा—वीर, द्युमान्के पास शीघ्र मुझे ले चलो ॥१॥ प्रद्युम्नने अपनी सेनाको द्युमानके द्वारा नष्ट होते देखकर उसे हँसते हुए आठ बाणोंसे विद्ध कर दिया ॥२॥ चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको, एक बाणसे सारथिको, एक बाणसे धनुष

श्रीशुक उवाच ॥ स तूपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥ नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥ विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः ॥ प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्सूतमेकेन चाहनत् ॥ द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसाम्बाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ॥ पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥ एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुल्बणम् ॥५॥ इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ॥ राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले

और रथकी ध्वजाको तथा एक बाणसे द्युमान्का सिर काट गिरा दिया ॥ ३ ॥ इसके बाद गद, सात्यकि और साम्ब आदि यादव सब मिलकर शाल्वकी सेनाको मारने लगे। सौभके ऊपर बैठे हुए उसके सैनिक सिर कट जानेसे समुद्रमें बेरोक-टोक गिरने लगे ॥ ४ ॥ इसप्रकार शाल्व और यदुवंशियोंका आपसमें मारकाट होने लगा। इस तरह बारह दिनतक उनका वह घनघोर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर द्वारा निमन्त्रित होकर श्रीकृष्णजी इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे । वहाँ राजसूययज्ञ समाप्त हो चुका था तथा शिशुपाल भी मर गया था ॥६॥ कुरुवृद्धों, मुनियों, पाण्डवों तथा कुन्तीसे आज्ञा लेकर भगवान् अनेक प्रकारके अपशकुन देखते हुए द्वारकाको चले ॥ ७ ॥ वे अपने मनही मन कह रहे थे—मैं अपने भाई बलदेवजीके साथ इधर आया हूँ, उधर शिशुपालके पक्षपाती राजाओंने मेरी पुरीपर निःसन्देह चढ़ाई कर दी होगी ॥ ८ ॥ इसप्रकार चिन्ता करते हुए द्वारकामें आए । आतेही द्वारकावासियोंका कष्ट एवं शाल्व और उसके सौभ विमानको देखकर बलदेवजीको पुररक्षक बना करके अपने सारथी दारुकसे कहा ॥ ९ ॥ हे दारुक, शाल्वके समीप मेरा रथ शीघ्र ले चलो । यह शाल्व बड़ाही मायावी है । उसकी मायासे डरकर भाग मत आना ॥ १० ॥ यह सुनकर दारुक रथपर बैठकर अति शीघ्र रथको उधर ही ले चला । गरुड़ध्वज रथको अपनी ओर आते दोनों पक्षके सभी वीरोंने देखा ॥११॥

च संस्थिते ॥६॥ कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन्द्वारवतीं ययौ ॥७॥ आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसङ्गतः ॥ राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥ वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ॥ सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥ रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यान्तिकमाशु वै ॥ सम्भ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ॥ विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ॥ प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥ तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ॥ भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाऽच्छिनत् ॥ १३ ॥ तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ॥ अविध्यच्छरसन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ॥ बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥ हाहाकारो महानासीद्भूतानां तत्र पश्यताम् ॥ विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥ यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥ तं त्वाऽद्य निशितै-

लगभग सभी सेनापति जिसके मर चुके थे ऐसे उस शाल्वने भगवान् श्रीकृष्णको रणभूमिमें देखकर भयङ्कर शब्द करनेवाली एक शक्ति दारुकके ऊपर छोड़ दी॥१२॥ जैसे आकाशमें उल्का घूमती है उसीप्रकार अपने वेगसे चारों दिशाओंमें अति प्रकाश करती हुई आ रही उस शक्तिको भगवान्ने अपने बाणोंसे सौ टुकड़े कर दिए ॥ १३ ॥ पुनः भगवान्ने शाल्वको सोलह बाणोंसे विद्धकर, जैसे अपनी प्रखर किरणोंसे सूर्य आकाशको व्याप्तकर देता है वैसेही आकाशमें भ्रमण करते हुए सौभ विमानको अपने बाणोंसे व्याप्त कर दिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर शाल्वने भी शार्ङ्गधन्वा भगवान् श्रीकृष्णके शार्ङ्गधनुषसे युक्त बायें हाथको घायल कर दिया, जिस कारण उनके हाथसे धनुष छूटकर गिर पड़ा, यह कार्य अत्यन्त अद्भुत हुआ ॥ १५ ॥ वहाँपर सब लोगोंके देखते-देखते चारों तरफसे हाहाकार होने लगा तथा सौभराज शाल्वने भगवान्से खूब गरजकर यह कहा ॥ १६ ॥ रे मूढ़, हमलोगोंके देखते-देखते तू हमारे फुफेरे भाई और मित्र शिशुपालकी स्त्री रुक्मिणीको हर ले आया तथा हमारे उस मित्रको, जो बिलकुल अनवहित था, तूने सभाके बीचमें मार दिया ॥१७॥ इसलिए अपनेको अपराजित माननेवाले तुमको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपने तीखे बाणोंसे आज मारकर मैं मृत्युकी गोदमें भेज दूँगा बशर्ते कि हमारे आगे इसप्रकार खड़े रह गये ॥ १८ ॥ यह सुनकर भगवा ने शाल्वसे कहा—रे मन्द, व्यर्थ क्यों अपनी प्रशंसाकर रहे हो ? अपने समीप उपस्थित मृत्युको देखो । वीर लोग बहुत बकवाद नहीं किया करते, वे तो अपना पौरुष दिखलाते हैं ॥ १६ ॥ ऐसा कहकर भगवान्ने शाल्वके ऊपर भयं कर वेगवाली गदा उसके स्कन्धोंपर चलाई । उससे घायल शाल्व रुधिर वमन करता हुआ काँपने लगा ॥ २० ॥ उस गदाको मारकर पुनः अपने हाथमें वापस आ जानेपर शाल्व अन्तर्हित हो गया और क्षणभरके बाद एक पुरुषने सिर हाथ जोड़े भगवानके आगे आकर प्रणाम करके रोते हुए यह कहा—मैं आपकी माता देवकीसे भेजा गया हूँ ॥२१॥ हे पितृवत्सल श्रीकृष्ण, हे कृष्ण, हे महाबाहो, जैसे पशुको रस्सीमें बाँधकर कसाई ले जाता है वैसेही तुम्हारे पिताको बाँधकर शाल्व ले भगा ॥२२॥ यह अप्रिय संवादको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मानव प्रकृतिकी

बाणैरपराजितमानिनम् ॥ नयाम्यपुनरावृत्त यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ पौरुषं दर्शयन्ति स्म शरा न बहुभाषिणः ॥१६॥ इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया भीमवेगया ॥ तताड जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक् ॥२०॥ गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत ॥ ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाच्युतम् ॥ देवक्या प्रहितोस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥२१॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल ॥ बद्ध्वापनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥ निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ॥ विमनस्को घृणी स्नेहाद् बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसम्भ्रान्तं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ॥ शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान्विधिः ॥ २४ ॥ इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ॥ वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥ एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ॥ वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः ॥ उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजनानुषङ्गतः ॥ महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां

प्राप्त हो गए और साधारण मनुष्यके सदृश उदास हो गए । उनके हृदयमें करुणा आगई । स्नेहके मारे यों कहने लगे ॥ २३ ॥ अहो, काल सबसे बलवान् है । जिनको सुर और असुर भी आजतक पराजित न कर सके उन्हीं बलदेवजीको, जो सर्वदा सावधान रहनेवाले हैं, अल्प बलशाली शाल्व जीतकर मेरे पिताको बाँध ले गया ? ॥ २४ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी बलदेवजीको कहही रहे थे कि सौभराट् शाल्व वसुदेवजीके समान माया द्वारा विरचित एक पुरुषको लाकर कृष्णसे यह कहने लगा ॥ २५ ॥ रे मूर्ख, जिसके लिए तुम यहाँ जीवित हो, वह तुम्हारा उत्पादक पिता वसुदेव यह है, तुमको दिखाकर इसे मार डालता हूँ । यदि तुम समर्थ हो, तो अपने पिताकी रक्षा करो ॥ २६ ॥ उस मायावी शाल्वने इसप्रकार श्रीकृष्णजीकी भर्त्सना करके अपनी तलवारसे वसुदेवजीका सिर काट दिया और उसे लेकर अपने आकाशमें स्थित सौभ विमानके भीतर वह प्रविष्ट हो गया ॥ २७ ॥ यह सब देखकर स्वतः सिद्ध ज्ञान-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वान् होते हुए भी महानुभाव भगवान् अपने पिताजीके स्नेहसे क्षणभरके लिए साधारण प्राणीकी नाईं शोकमें निमग्न हो गये। परन्तु कुछ देरके बाद पुनः समझ पाये कि अरे, यह तो मायासुरके द्वारा कथित शाल्व द्वारा फैलायी आसुरी माया हैं ॥ २८ ॥ युद्धभूमिमें प्रबुद्ध होकर भगवान् अच्युतने देखा कि न तो वहाँ कोई दूत है और न पिताका शरीर ही है। जैसा स्वप्न होता है वैसाही सब वस्तु उन्हें वहाँ मिलीं। तब आकाशमें घूमते हुए सौभमें स्थित शाल्वको देखकर उसे मारनेके लिए भगवान् उद्यत हुए ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजर्षे, पूर्वापरके अनुसन्धानसे रहित कुछ ऋषिलोग ऐसा कहते हैं, परन्तु वे महानुभाव निःसन्देह इसका तनिक भी विचार नहीं करते कि इस तरहके कथनसे उनका ही वचन विरुद्ध पड़ जाता है ॥ ३० ॥ कहाँ तो अज्ञानियोंमें होनेवाले ही शोक, मोह, स्नेह, भय और कहाँ अखण्ड विज्ञान, ज्ञान तथा सर्वविधि ऐश्वर्यसे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण ॥ ३१ ॥ जिस भगवान्के

मयोदिताम् ॥ २८ ॥ न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ॥ स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च नान्विताः ॥ यत्स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥ ३० ॥ क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसम्भवाः ॥ क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितयात्मविद्यया हिन्वन्त्यनाद्यमार्तविपर्ययग्रहम् ॥ लभन्त आत्मीयमनन्तमैश्वरं कुतो नु मोहः परमस्य सद्गते ॥ ३२ ॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ॥ विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥ ३३ ॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा ॥ विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद् द्रुतम् ॥ ३४ ॥ आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाथ रथाङ्गमद्भुतम् ॥ वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद् बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ॥ वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥ नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥

चरणसेवनसे प्राप्त आत्मविद्या द्वारा 'मैं दुःखी हूँ, मैं सुखी हूँ' इस ज्ञानको सन्तलोग नष्टकर डालते हैं और अखण्ड ऐश्वर्यको पाते हैं, तो भला उन सज्जनों की गति इस परमेश्वरको कैसे शोक और मोह हो सकता है ॥ ३२ ॥ शस्त्र समूहों तथा अपन अनन्त बाणोंसे वेगपूर्वक प्रहारकर रहे शाल्वको अमोघशक्ति सम्पन्न भगवान्ने घायल करके उस अपने शत्रुके धनुष, कवच और मुकुटको काट दिया तथा अपनी गदासे उसके सौभ विमानको भी चूर्णित कर दिया ॥ ३३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे फेंकी गई गदासे विचूर्णित वह सौभ हजारों टुकड़ोंमें विभक्त होकर समुद्रमें जा गिरा। तब शाल्व उसे छोड़कर भूतलपर आकर उपस्थित हो गया और गदा उठाकर भगवान् अच्युतके ऊपर शीघ्र मारनेके लिये टूट पड़ा ॥ ३४ ॥ हाथमें गदा लेकर अपनी ओर दौड़े आ रहे उसकी भुजा भालेसे काटकर प्रलयकालीन सूर्यके समान चमकते हुए अपने अद्भुत सुदर्शनचक्रको उसके वधके लिये छोड़ दिया, उस समय भगवान् उदयाचल पर्वतके ऊपर उदित हो रहे सूर्यके समान शोभित हो रहे थे ॥ ३५ ॥ भगवान्ने उसी अपने सुदर्शनचक्रसे मायावी शाल्वका किरीट और कुण्डल युक्त सिर काट डाला, जैसे कि भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शंकरने वृत्रासुरको वज्रसे मारा था। उसके मर जानेपर उस समय सभी प्राणी हाहाकार करने लगे ॥ ३६ ॥ पापी शाल्वके मर जानेपर तथा गदासे उसके सौभके नष्ट हो जानेपर हे राजन्, आकाशमें देवताओंके द्वारा बजाये गये दुन्दुभि आदि बाजे बजाने लगे तदनन्तर हे राजन्, अपने मित्र शाल्व, पौण्ड्रक और शिशुपालका बदला लेनेके लिये क्रोधयुक्त दन्तवक्र वहाँ आ गया ॥ ३७ ॥

 सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्त्रो रुषाभ्यगात् ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सौभवधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

सतहत्तरवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, समरभूमिमें जाकर पुत्र द्युमानके साथ पुनः प्रद्युम्नजी लड़ने लगे। प्रद्युम्न आदि अनेक वीर यदुवंशियोंके लगातार सत्ताईस दिनतक घोर संग्राम करने पर भी वहा सौभपति शाल्व पराजित नहीं हुआ। इन्द्रप्रस्थसे आनेपर जब भगवान्को यह सब बात मालूम पड़ी, तब शीघ्र ही समरभूमिमें आगये। आते ही उन्होंने शाल्वके ऊपर गदा चलायी। गदा लगते ही उसके मुखसे खूनकी धारा बहने लगी। वह शीघ्र ही अन्तर्हित हो गया। इसी बीचमें देवकीके यहांसे एक दूत आकर भगवान्से कहने लगा—कृष्ण, तुम्हारे पिताको बाँधकर शाल्व कहाँ ले गया, मालूम नहीं। यह सुनते ही भगवान् उदास हो गये। तदनन्तर शीघ्र ही शाल्वने मायिक वसुदेवको सामने लाकर उपस्थित करते हुए कहा—हे कृष्ण, देखो, ये तुम्हारे पिता हैं, जिनके लिए तुम जिन्दा हो। इन्हें मैं तुम्हारे सामने मारता हूँ। यदि तुम्हारे ये शक्ति हो तो बचाओ। अपने पिताको देखकर क्षण भर के लिए भगवान् साधारण पुरुषकी नाईं मोहमें पड़ गये। परन्तु शीघ्र ही बोध हो जाने पर उन्होंने समझ लिया कि यह तो शाल्वकी असुरी माया है तदनन्तर भगवान्ने अपने सुदर्शनचक्रसे उसका सिर काट दिया। मस्तक कट जानेके बाद पृथ्वी पर शाल्वके गिरते ही आकाश में देवताओंके द्वारा दुन्दुभि बजने लगी। सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ❀

(दन्तवक्र और विदूरथको मारकर भगवान्का द्वारकामें रमण करना तथा कुछ दिनोंके बाद बलरामजीके द्वारा सूतका मारा जाना—यह वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपने परलोकतगत सुहृत् शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रकका भला करनेके लिए महाबलवान् निकृष्ट बुद्धि दन्तवक्रका अतिक्रुद्ध होकर हाथमें गदा

श्रीशुक उवाच ॥ शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥ परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन् ॥ पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥ तं तथाऽऽयान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः ॥ अवप्लुत्य

ले पृथिवीको कँपाता हुआ पैदल ही अकेले आते द्वारकाके समीप दिखाई दिया ॥ १, २ ॥ उसको उस प्रकार आते देखकर भगवान् श्रीकृष्णने रथसे शीघ्र उठकर हाथमें गदा लिए हुए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वहीं ऐसे रोक दिया, जैसे कि तट समुद्रको रोक देता है ॥ ३ ॥ तब दुर्मद करुष देशाधिपति दन्तवक्र गदा उठाकर भगवान् मुकुन्दसे कहने लगा—संयोगवश आज तुम मेरे नेत्रोंके आगे दिखाई पड़े हो ठीक है ॥ ४ ॥ हे कृष्ण, तुम मेरे ममेरे भाई हो, इसलिए तुम्हें मारना मुझे उचित नहीं है, फिर भी तुम मेरे मित्र शिशुपाल आदिका वध करनेवाले हो और मुझे भी मारना चाहते हो, इसलिए अरे मन्द, तुम्हें मैं आज अपने वज्र सदृश इस गदासे अवश्य मार डालूँगा ॥ ५ ॥ जिस प्रकार अपने शरीरमें रहनेवाले व्याधिको नाशकर मनुष्य शान्त हो जाता है वैसे हीं बन्धुरूप अपने शत्रु तुमको मारकर हे अज्ञ, मित्रका उपकार करनेवाला मैं भी अपने मित्रोंसे उत्तीर्ण होकर स्वस्थ हो जाऊँगा ॥ ६ ॥ जिसप्रकार अंकुशसे हाथीको मारकर मनुष्य तङ्ग कर देता है वैसे अतिकठोर वाणीसे श्रीकृष्णकी निन्दा करते हुए उसने अपनी गदासे उनके सिरपर मारा और सिंहके समान घोर गर्जन किया ॥ ७ ॥ उस संग्राममें यादवोंके संरक्षक भगवान् श्रीकृष्ण उसकी गदासे आहत होकर भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने भी कौमोदकी नामक अपनी गदासे उसकी छातीपर गहरा प्रहार किया ॥ ८ ॥ भगवान्की

रथात्कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्य कारूषो मकुन्दं प्राह दुर्मदः ॥ दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ् मां जिघांससि ॥ अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥५॥ तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ॥ बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥६॥ एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ॥ गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद् व्यनदच्च सः ॥७॥ गदयाभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ॥ कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरं मुखात् ॥ प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन्धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥ १० ॥ विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥१२॥ एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्रं सहानुजम् ॥ हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥१३॥

गदाके प्रहारसे उसका हृदय विदीर्ण हो गया, उसके मुखसे रक्तकी धारा बहने लगी और वह प्राण रहित हो पृथ्वीपर चारो खाने चित्त हो गया। उसके केश, बाहु तथा पैर इधर-उधर फैल गये ॥ ९ ॥ हे राजन्, सभी लोगोंके देखते-देखते एक अद्भुत अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति उसके शरीरसे निकलकर भगवान् श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गई। जैसे कि शिशुपालका वध होजानेसे उसके शरीरसे निकलकर भगवान्में प्रविष्ट हो गई थी ॥ १० ॥ तदनन्तर उसका भाई विदूरथ अपने बड़े भाईकी मृत्युके शोकसे व्याप्त होकर भगवान् श्रीकृष्णको मारनेकी इच्छासे ढाल और तलवार लेकर खूब साँस खींचता हुआ आ गया ॥ ११ ॥ हे राजन्, उसको अपनी ओर झपटते देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने छुरेके समान तेज धारवाले चक्रसे उसका भी किरीट और कुण्डलके सहित मस्तक काट डाला ॥ १२ ॥ इस प्रकार सौभ, शाल्व तथा भाइयोंके साथ दन्तवक्र इन अपने दुश्मनोंको जो अन्य लोगोंसे कभी भी पराजित न होनेवाले थे, भगवान्ने मार डाला। देवता और सभी मनुष्य भगवान्की स्तुति करने लगे। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, सर्प, अप्सरा, पितृगण, यक्ष, किन्नर और चारणलोग भगवान्का विजय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गान एवं उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण प्रमुख यादवोंके साथ भलीभांति सुसज्जित की गई द्वारकापुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ १३–१५ ॥ इसप्रकार योगेश्वर भगवान् जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र सदा विजयी हैं। परन्तु अज्ञानियोंकी दृष्टिमें पराजित हुए भी कभी प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ इसके बाद बलरामजी पाण्डव और कौरवोंके युद्धकी तैयारी सुनकर तीर्थ भ्रमणके बहाने मध्यस्थ होनेके विचारसे चले ॥ १७ ॥ प्रभासतीर्थमें स्नान करके देव, ऋषि, पितृ और मनुष्योंका तर्पण करके प्रवाहके अभिमुख हो सरस्वती नदीके किनारे-किनारे ब्राह्मणोंके साथ चलने लगे ॥ १८ ॥ पृथूदक, (पृथु द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञ जहाँपर किया गया था) तथा कर्दम ऋषिके आश्रम गुजरातमें स्थित विन्दुसर, त्रित ऋषिके आश्रम त्रितकूप, सुदर्शनतीर्थ, विशाल, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्व दिशाकी ओर बहनेवाली सरस्वती आदि तीर्थोंमें पहुँच वहाँसे आगे बढ़े ॥ १९ ॥ इसके बाद यमुना और गंगाके किनारे जितने तीर्थ थे, उन सबमें होते हुए वे जहाँ चौरासी हजार ऋषि मिलकर यज्ञकर रहे थे उस नैमिषारण्य क्षेत्रमें गये ॥ २० ॥ हे भारत, बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले उन ऋषियोंने उन्हें आये

मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ॥ अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥१४॥ उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ॥ वृतश्च वृष्णि-
प्रवरैर्विवेशालङ्कृतां पुरीम् ॥ १५ ॥ एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा
युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः ॥ तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥ प्रभासे स्नात्वा सन्तर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ॥
सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥ १८ ॥ पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ॥ विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥
यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत ॥ जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥२०॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥ अभिनन्द्य यथान्यायं
प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥२१॥ सोऽर्चितः सपरीवारकृतासनपरिग्रहः ॥ रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥२२॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्व-
णाञ्जलिम् ॥ अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥ यस्मादसाविमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ॥ धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति
दुर्मतिः ॥२४॥ ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ॥ सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥ अदान्तस्याविनीतस्य वृथापण्डि-

जानकर अपने अपने आसनसे उठ यथोचित प्रणाम करके उनका पूजन किया ॥ २१ ॥ उन सबोंसे पूजा पाकर सपरिवार बलदेवजी आसनपर बैठ गये इसी समय उन्होंने महर्षि व्यासके शिष्य रोमहर्षणको व्यास गद्दीपर अति प्रसन्नचित बैठे हुए देखा ॥ २२ ॥ बलरामजीके वहाँ आनेपर सूतजी अपनी व्यासगद्दीसे न तो उठ खड़े हुए और न उनसे हाथ जोड़कर अभिवादन ही किया। वे ब्राह्मणोंसे भी ऊँचे आसनपर बैठे हुए थे, यह देख बलरामजीको क्रोध चढ़ आया ॥ २३ ॥ यह प्रतिलोमज सूत धर्मपालक इन विप्रों तथा हमलोगोंसे भी ऊँचे आसनपर बैठा हुआ है, इसलिए यह कुबुद्धि वधके योग्य है ॥ २४ ॥ श्रीव्यास भगवान्का शिष्य होकर एवं इतिहास, पुराण तथा समस्त धर्मशास्त्रोंका अध्ययन कर भी यह ऐसा अनर्थ कर रहा है ॥ २५ ॥ यह रोमहर्षण उद्दण्ड, अधार्मिक तथा व्यर्थ पंडित बननेवाला है। यह अजितेन्द्रिय है। इसकी सारी विद्या और तपस्या ऐसे निष्फल हो जायगी, जैसे नटकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सारी चेष्टाएँ निष्फल होती हैं ॥२६॥ इसीलिए तो इस संसारमें मैंने अवतार लिया है। धर्मका ढोंग रखनेवाले तो और अधिक पातकी होते हैं। उनका मैं अवश्य वध करूँगा ॥ २७ ॥ यद्यपि तीर्थयात्रा करनेके कारण दुष्टोंके वधसे भी वे निवृत्त हो चुके थे, तथापि इतना कहकर 'भवितव्यताको कौन मिटा सकता है' ऐसा सोचकर हाथमें लिए हुए कुशके अग्रभागसे रोमहर्षणको भगवान् बलरामजीने मार डाला ॥२८॥ रोमहर्षणके मर जानेसे अत्यन्त दुःखी समस्त मुनि हाहा शब्द करने लगे और बलदेवजीसे कहने लगे कि हे प्रभो, आपने इन्हें मारकर सचमुच अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे यदुनन्दन, हमलोगोंने इन्हें जब तक यज्ञ समाप्त न हो जाय तब तक पुराणपाठ करनेके लिए ब्रह्माका आसन दिया था तथा तब तक के लिए शारीरिक कष्टसे रहित इन्हें आयु भी दी थी ॥ ३० ॥ यह सब बिना समझे ही अज्ञानवश आपने यह ब्रह्मवधके तुल्य कार्य किया है। आप योगेश्वर हैं, अतः वेद भी आपका नियमन नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ तथापि हे लोकपावन, यदि इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त बिना किसीके आदेशके आप स्वयं अपनी बुद्धि द्वारा कर लेंगे, तो इसे देख संसार भी प्रायश्चितादि किया

तमानिनः ॥ न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥२६॥ एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ॥ वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥२७॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ॥ भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ॥ ऊचुः सङ्कर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥ अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन ॥ आयुश्चात्माक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ॥ ३० ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥ योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥ ३१ ॥ यद्येतद् ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ॥ चरिष्यति भवाँल्लोकसङ्ग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम् ॥ ३३ ॥ दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च ॥ आशासितं यत्तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ॥ यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ॥ तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ॥

करेगा। यदि आप आज प्रायश्चित्त न करेंगे, तो कोई भी न करेगा ॥ ३२ ॥ श्री बलदेवजीने कहा—संसारके कल्याणके निमित्त इस हत्याका मैं प्रायश्चित करूँगा। इस हत्याका जो प्रधान प्रायश्चित्त हो उसे आप लोग बतावें ॥ ३३ ॥ इस सूतके लिये लम्बी आयु, ताकत और इन्द्रियोंसे पाटव आदि जो कुछ भी आपलोग कहें, वह सब मैं अपनी योगमायासे ला दूँगा ॥ ३४ ॥ ऋषियोंने कहा—हे बलरामजी, आप ऐसा कोई उपाय करें, जिससे कि आपका प्रबल शस्त्र एवं वीर्य तथा इसकी मृत्यु भी व्यर्थ न हो और हमलोगोंका कहना भी सत्य हो जाय ॥ ३५ ॥ यह सुनकर बलदेवजी कहने लगे कि—'अपनी आत्माके समान ही पुत्र पैदा होता है' यह वेदका आदेश है। अतः इसके स्थानपर पुराण वक्ता एवं दीर्घ आयु और बलवान् इन्द्रियोंसे युक्त इसका पुत्र हो ॥ ३६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो, इसके अतिरिक्त और भी किसी वस्तुकी आपलोगोंको इच्छा हो, तो मुझे बतलावें मैं उसे पूर्ण करनेको तैयार हूँ। और हे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सर्वज्ञो, अज्ञान वश मैंने जो हत्या की है, उसका भी जो उचित प्रायश्चित्त हो, उसे आपलोग सोच-विचारकर बतला दीजिये ॥ ३७ ॥ यह सुनकर ऋषियोंने कहा—हे बलरामजी, इल्वल-का पुत्र बल्वल नामधारी एक भयंकर राक्षस है। वह प्रत्येक पर्वपर यहाँ आकर हमारा यज्ञ दूषित कर देता है ॥ ३८ ॥ हे दाशार्ह, इस यज्ञमें आकर वह रक्त, विष्ठा, मूत्र, शराब और

अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥ ३७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ॥ स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३८ ॥ तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ॥ पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३९ ॥ ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥ चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

मांसकी वृष्टि करने लग जाता है। उस दुराचारीको मार डालिये-बस यही हमलोगोंकी परम सेवा होगी ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर काम-क्रोधादिसे रहित हो भारतवर्षकी प्रदक्षिणा करके बारह महीनेका चान्द्रायण व्रत करके समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे आप पापसे मुक्त हो जायँगे ॥ ४० ॥

अठहत्तरवें अध्यायका सार—हे राजन्, शिशुपाल आदिके मर जानेके बाद अन्तमें विदूरथ भगवान्से लड़ने आया। भगवान्ने उसका सिर अपने चक्रसे काटकर गिरा दिया। इसके बाद कौरवों और पाण्डवोंमें युद्धकी तैयारी होते सुनकर बलदेवजी मध्यस्थ हो निपटारा कर देनेके लिए तीर्थाटनके बहाने निकले। घूमते-घूमते वे नैमिषारण्यमें आकर पहुँचे। वहाँ ऋषि लोग दीर्घकालमें समाप्त होने वाला एक यज्ञ कर रहे थे। और सूतजी व्यास गद्दीपर पुराण बाँच रहे थे। बलरामजीके आते ही सब ऋषि लोग खड़े हो गये और उनका पूजन किया। तदनन्तर आसनपर बैठे हुए बलरामजीकी दृष्टि सूतजीके ऊपर पड़ी। उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा—तुम्हारी विद्या निष्फल हो जायगी। तुम्हारे जैसे लोगोंका वध करना ही मेरा काम है, जो पापी धर्मका ढोंग रचते हैं। यों कहकर उन्होंने कुशाके अग्रभागसे सूतजीको मार डाला। फिर ऋषियोंके समझाने बुझानेपर उन्होंने कहा—अच्छा, इसका आप लोग उचित प्रायश्चित्त बतलावें, मैं करूँगा। ऋषियोंने कहा—भगवन्, ऐसा कोई उपाय करें जिससे आपका शस्त्र और इसकी मृत्यु व्यर्थ न हो तथा हम लोगों की वाणी भी सच हो। बलरामजीने कहा—इसका पुत्र इसके स्थानपर पुराण वक्ता होगा। हे मुनियों, और आप लोगोंकी मैं कौन-सी सेवा करूँ बतलावें। ऋषियोंने कहा-भगवन्, इल्वलका पुत्र बल्वल नामधारी एक राक्षस है, वह इस यज्ञको प्रतिदिन दूषित कर देता है। उसे मार दीजिये। और इसके बाद आप सभी तीर्थोंमें जा वहाँके जलमें स्नान कीजिये उससे आप पापमुक्त हो जायेंगे। अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

—०※०—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

[मुनियोंके कथनानुसार बलदेवजीका उस राक्षसको मारना और तीर्थोंमें भ्रमण करना]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, तदनन्तर पर्वकाल आनेपर धूलकी वर्षा करता हुआ भयंकर प्रचण्ड पवन चलने लगा, जिसकी वजहसे सभी ओर दुर्गन्ध फैल गयी ॥ १ ॥ उसके बाद यज्ञशालामें बल्वल मल-मूत्र आदि अपवित्र पदार्थोंकी वृष्टि करने लगा। कुछ ही देरके बाद हाथमें त्रिशूल लिये हुए भयंकर उस राक्षसको बलरामजीने देखा ॥२॥ उसका विशाल शरीर था, अञ्जनपुञ्जके तुल्य वह अत्यन्त काला था। तप्त हुए ताँबेके समान उसके लाल वर्णके केश और दाढ़ी-मूँछें थीं। टेढ़ी द्रष्टाओं और भ्रुकुटियोंसे उसका मुख देखनेमें बड़ा भयानक था ॥ ३ ॥ यह देखकर भगवान् बलदेवजीने शत्रुओंको मारनेवाले अपने मुसल एवं दैत्योंका नाश करनेके लिये हलका स्मरण किया। स्मरण होते ही हल और मूसल शीघ्र

श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः ॥ भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ॥ अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥३॥ सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ॥ हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥४॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ॥ मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥५॥ सोऽपतद् भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक्समुत्सृजन् ॥ मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥६॥ संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ॥ अभ्यषिञ्चन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥ वैजयन्तीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपङ्कजाम् ॥ रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ॥ स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥

भगवान्के आगे आ गये ॥ ४ ॥ तब हलके अग्रभागसे आकाशमें घूमनेवाले बल्वलको पकड़कर मूसलसे ब्राह्मणोंको दुःख देनेवाले उस राक्षसके सिरपर क्रुद्ध हो महाबलवान् बलदेवजीने प्रहार किया ॥ ५ ॥ बल्वलका मूसलके प्रबल आघातसे सिर फट गया और उससे रक्तकी धारा बहने लगी। वह बहुत जोरसे चिल्लाता हुआ, वज्रके प्रहारसे गिरते हुए पर्वतकी नाईं पृथिवीपर धड़ामसे गिर पड़ा। उस समय खूनसे उसका सारा शरीर लाल हो गया था ॥ ६ ॥ यह देखकर महा भाग्यवान् मुनियोंने बलदेवजीकी खूब स्तुति की और तदनन्तर उन्हें अनेक तरहके सफल आशीर्वाद देकर ऐसे स्नान कराया, जैसे कि वृत्रासुरको मारनेसे सन्तुष्ट हुए देवताओंने स्तुत्यादिपूर्वक इन्द्रको ॥ ७ ॥ उसके बाद, जिसमें कभी भी मलिन न होनेवाले सौन्दर्यके धाम कमलके फूल गूँथे गये थे, ऐसी एक वैजयन्ती माला, दिव्य दो वस्त्र तथा दिव्य अलंकार उन मुनियोंने बलदेवजीको दिये ॥ ८ ॥ इसके बाद ऋषियोंसे आज्ञा लेकर ब्राह्मणोंके साथ-साथ कौशिकीके तटपर आये और उसीमें स्नान करके वहाँसे एक सरोवरमें गये जहाँसे सरयू नदी निकली है ॥ ९ ॥ उसके बाद सरयूकी धाराके साथ-साथ प्रयागमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आये और वहाँ स्नान कर देव ऋषि आदिका तर्पण करके पुलह ऋषिके आश्रमपर* पहुँचे ॥ १० ॥ उन्होंने गोमती और गण्डकी नदीमें स्नान करनेके बाद विपाशामें भी स्नान कर सोननदीमें जाकर पुनः स्नान किया और गयामें आकर पितरोंको पिण्डदान दिया। तदनन्तर वे गंगासागरके संगमपर पहुँचे ॥ ११ ॥ गंगासागरमें स्नान करके महेन्द्रपर्वतके ऊपर परशुरामजीका उन्होंने दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके तदनन्तर सप्तगोदावरीमें स्नान किया। इसके बाद वेना और पम्पासर होते हुए भीमरथी नामक नदीमें जाकर स्नान किया ॥१२॥

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ॥ स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम् ॥ १० ॥ गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण
आप्लुतः ॥ गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ११ ॥ उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाभिवाद्य च ॥ सप्तगोदवरीं वेणां पम्पां भीमरथीं
ततः ॥ १२ ॥ स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ॥ द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णीं पुरीं
काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम् ॥ श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ॥ सामुद्रं

इसके बाद स्कन्दजीका दर्शनकर भगवान् शंकरके निवासस्थान श्रीकैलासपर्वतपर सर्वसमर्थशाली बलदेवजी पहुँचे। तदनन्तर द्रविड़ देशमें जाकर अत्यन्त पुण्यदायक वेङ्कट पर्वतके दर्शन किये ॥ १३ ॥ वहाँसे कामकोष्णी, काञ्चीपुरी एवं सर्वश्रेष्ठ नदी कावेरी होते हुए बड़े पुण्यप्रद श्रीरङ्ग स्थानपर पहुँचे। जहाँपर सतत भगवान् वर्तमान रहते हैं ॥ १४ ॥ तद-

---

* आज कल 'हरिहरक्षेत्र' नामसे यह प्रसिद्ध है। कार्तिकशुक्ल पूर्णिमाके दिन एक बहुत बड़ा मेला लगता है। भारतवर्षमें इससे बड़ा मेला और कहीं दूसरी जगह नहीं लगता। यहाँ जानेके लिये सोनपुर स्टेसनपर उतरना पड़ता है। ऐसा सुना जाता है कि सोनपुर रेलवे स्टेशनका प्लेटफार्म संसारके सभी रेलवे स्टेशनोंके प्लेटफार्मसे लम्बा है।

अथ हरिहरयागकारिका—शय्यातलात्समुत्थाय स्वेष्टदेवनमस्कृतिः। नित्यकर्म समाप्यैव दन्तधावनपूर्वकम् ॥ स्नात्वा नूतनवासांसि धृत्वा विधिविधानतः। शिखां बध्वा तथाऽचम्य कौशाद्यासनसंयुतः ॥ सन्ध्यामुपास्य विधिवद् गायत्र्या जपनं तथा। प्रायश्चित्तं समं कृत्वा गणेशादिप्रपूजनम् ॥ पुण्याहवाचनं वेदैस्तथा षोडशमातृकाः। पूजयित्वा सप्तघृतमातृकादेवरूपिकाः ॥ आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं ततश्चरेत्। आचार्यस्य तथाऽन्येषां वरणं च ततः स्मृतम् ॥ प्रवेशो मण्डपे कार्यो दिशां रक्षणमेव च। पञ्चगव्यस्य करणं वास्तुपूजनमेव हि ॥ पूजनं मण्डपस्यैव-मग्निस्थापनसत्क्रिया। नवग्रहान्समभ्यर्च्य असंख्यातहरांस्तथा ॥ हरिं हरं पृथक्कृत्वेन पूजयित्वा विधानतः। योगिनीपूजनं पश्चात्क्षेत्रपालप्रपूजनम् ॥ प्रकारैर्विविधैस्तत्र कार्या तु कुशकण्डिका। आचार्यादिसुवरणं ग्रहहोमस्ततः परः ॥ समीपे कुण्डदेवस्य होतॄणामुपवेशनम्। विष्णुन्यासो विष्णुयागे रुद्रयागे हरस्य च ॥ गणपत्याम्बिकाहोमः प्रधानहवनं तदा। एवं प्रतिदिनं पूजा समाप्ते-रन्तिमे दिने ॥ सायंकाले देवमन्त्रैराज्याहुतिरितःपरा। विष्णोस्सहस्रनाम्नश्च पाठः पूर्वमतश्शुभः ॥ एवं शिवसहस्रनाम्नः पाठस्समुदीरितः। स्विष्टकृद् होमकरणं नवाहुतिरतः परा ॥ दिक्पालबलिः कार्यो ग्रहाणां च बलिस्ततः। असंख्यातबलिः पश्चात्प्रधानबलिरेव हि ॥ वास्तुदेवबलिश्चैव योगिनीनां बलिस्तथा। क्षेत्रपालबलिं कृत्वा षोडशमातृकाबलिः ॥ सप्तानां घृतमातॄणां ततो बलिरुदाहृतः। पूर्णाहुतिस्ततः कार्या वसोर्द्धारा समाहुतिः ॥ त्र्यायुषकरणं चैव संस्रवप्राशनं ततः। पवित्राभ्यां मार्जनं तु अग्नौ पावित्रकं तथा ॥ ब्रह्मणे चापि पूर्णपात्रदानमेवमुदीरितम्। द्रव्यैराचार्यादिपूजा दानरूपैः। प्रकीर्तिताः ॥ अभिषेको ह्यवभृथमङ्गलस्नानमाचरेत्। उत्तरपूजनं चैवमारार्तिकमतः परम् ॥ विशेषप्रार्थना कार्या विधिरेवमुदाहृतः। आचार्यादिपीठदानं तथा दानान्तरं मुदा। ब्रह्मभोजनसङ्कल्पो भूयसीदक्षिणा तथा शय्यादानं भूमिदानमन्नदानं च सम्मतम्। विष्णुविप्रान् समभ्यर्च्य तत एव विसर्जनम्। क्रमेणैनेन सकलं कार्यं वेदानुशासनात् ॥ इति ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नन्तर वे हरिके क्षेत्र ऋषभ पर्वतपर तथा वहाँसे मथुरा होते हुए समुद्रके सेतु रामेश्वर स्थानको गये, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है ॥ १५ । रामेश्वरमें बलदेवजीने दस हजार गायें ब्राह्मणोंको दान दीं और वहाँसे कृतमाला तथा ताम्रपर्णीमें स्नान कर वे मलय एवं कुलाचलपर्वतपर होते हुए आगे बढ़े ॥ १६ ॥ वह पर बैठे हुए अगस्त्यजीको देखकर प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद लेकर उनके आदेशानुसार दक्षिण समुद्रमें गये और उस समुद्रके निकट स्थित कन्या नामकी दुर्गा देवीका दर्शन किया ॥ १७ ॥ पुनः वहाँसे अनन्त-पुर होते हुए, जहाँपर साक्षात् भगवान् विष्णु सदा वर्तमान रहते हैं, उस उत्तम तीर्थ पञ्चाप्सर नामक सरोवरमें जाकर वहाँ स्नान करके दस हजार गौओंका दान किया ॥ १८ ॥ पुनः वहाँसे भ्रमण कर केरलदेश एवं त्रिगर्तदेशमें होते हुए गोकर्णनामक शिवक्षेत्रमें पहुँचे। जहाँ श्रीशङ्करजी सर्वदा वर्तमान रहते हैं ॥ १९ ॥ वहाँसे द्विपनिवासिनी आर्या देवीका दर्शन

सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ॥ कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रा-गस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ॥ योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥ दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥ १७ ॥ ततः फाल्गुनमासाद्य पञ्चाप्सरससमुत्तमम् ॥ विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद् गवायुतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्त-कान् ॥ गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥ १९ ॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद् बलः ॥ तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामु-पस्पृश्याथ दण्डकम् ॥ २० ॥ प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी ॥ मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे ॥ सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥ २२ ॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ॥ वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ॥ अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किंविवक्षुरिहागतः ॥ २४ ॥ गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ॥ मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर ॥ एकं प्राणा-

कर बलदेवजी शूर्पारक क्षेत्र गये। वहाँसे पुनः तापी और पयोष्णी नदी पार करके विन्ध्याचल पर्वतसे निकली हुई नदीमें स्नान करनेके बाद दण्डकारण्यमें पहुँचे ॥ २० ॥ तदनन्तर वे रेवा नदीके किनारे पहुँचे, जहाँ माहिष्मती पुरी बसी है और मनुतीर्थमें स्नान करके पुनः प्रभासक्षेत्रमें वापस आ गये ॥ २१ ॥ वहीं पर कौरव और पांडवोंके युद्धमें समस्त राजा मर गये हैं, यह समाचार ब्राह्मणोंके द्वारा सुना और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने सब राजाओंको मारकर पृथिवी ा भार हलका कर दिया, यह समझा ॥ २२ ॥ तदनन्तर समरभूमिमें 'भीम और दुर्योधन परस्पर गदा युद्ध कर रहे हैं यह समाचार सुनकर यदुनन्दन बलदेवजी उनको युद्धसे निवृत्त करनेके लिए कुरुक्षेत्र पहुँचे ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरजी एवं श्रीकृष्ण, अर्जुन और नकुल, सहदेवने उनको आये देखकर प्रणाम किया तथा वे चुपचाप हो गये कि देखें क्या कहनेके लिए बलदेवजी यहाँ आये हैं ॥ २४ ॥ हाथमें गदा लेकर परस्पर एक दूसरेको पराजित करनेकी इच्छासे अत्यन्त क्रुद्ध तथा तरह-तरहके अति विचित्र पैंतरा बदलते हुए भीम और दुर्योधनको देखकर बलदेवजीने कहा—हे राजा दुर्योधन और हे वृकोदर, तुम दोनों ही वीर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बराबर बलमें हो, क्योंकि एकमें तो बल अधिक मालूम पड़ता है और दूसरेमें गदा युद्धकी शिक्षा अधिक मालूम पड़ती है, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २५, २६ ॥ इसलिए समान बलवाले तुम दोनोंमें से कोई भी न तो विजयी होगा और न कोई आपसमें पराजित ही हो सकेगा. अतः निष्फल इस युद्धसे अलग हो जाओ ॥ २७ ॥ किन्तु हे राजन्, आपसके वैरसे अत्यन्त क्रुद्ध दोनों ही बलदेवजीके बचन न मानकर आपसके अपकार एवं दुर्वाक्योंका स्मरण करते हुए युद्ध करते ही रह गये ॥ २८ ॥ इनका प्रारब्ध ऐसा ही है–यह सोचकर बलदेवजी द्वारकापुरी वापस आ गये। वहाँ उग्रसेन आदि परम प्रसन्न अपने ज्ञातिबन्धुओंसे आकर मिले ॥ २९ ॥ वहाँसे बलदेवजी पुनः नैमिषारण्य गये। वहाँ इस तरह समस्त तीर्थाटन करनेसे प्रायश्चित्तादिसे निवृत्त उन यज्ञमूर्ति बलदेवजीसे उन ऋषियोंने प्रसन्नतापूर्वक बड़े-बड़े सभी यज्ञ कराये ॥ ३० ॥ सर्वसमर्थ भगवान् बलदेवजीने वहाँपर समस्त ऋषियोंको दक्षिणाके रूपमें

धिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥ २६ ॥ तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ॥ न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥ २७ ॥
न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ॥ अनुस्मरन्तावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥ दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ॥
उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥ तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा ॥ क्रत्वङ्गं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥
तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान्व्यतरद्विभुः ॥ येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥ ३१ ॥ स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः ॥
रेजे स्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलङ्कृतः ॥ ३२ ॥ ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति
हि ॥ ३३ ॥ योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥ सायंप्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे
दशस्कन्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

विशुद्ध विज्ञान दिया, जिस विज्ञानको पाकर उन लोगोंने जान लिया कि अपनी आत्मामें सम्पूर्ण विश्व तथा सारे विश्वमें यह आत्मा व्याप्त है ॥ ३१ ॥ अपनी पत्नी रेवतीके साथ अवभृथ स्नानकर (यज्ञान्त स्नानकर) सुन्दर वस्त्रों तथा अलंकारोंसे अलंकृत हो श्रीबलदेवजी अपने सगे सम्बन्धियों, जाति-भाइयों, तथा मित्रोंसे घिरे ऐसे शोभने लगे, जैसे कि अपनी ज्योत्स्ना समेत चन्द्रमा ॥ ३२ ॥ बलशाली, मायापुरुष, अनन्त, अप्रमेय शक्ति सम्पन्न, भगवान् बलदेवजीके इसप्रकारके असंख्येय कार्य हैं ॥ ३३ ॥ जो पुरुष अद्भुत कार्य करनेवाले अनन्तशक्ति सम्पन्न बलदेवजीका यह अलौकिक आख्यान सायं प्रात स्मरण करता है, वह भगवान् विष्णुका प्रिय होता है ॥ ३४ ॥

उन्नासीवें अध्यायका सार—हे राजन्, बलदेवजीने वहाँ अपवित्र पदार्थोंकी वृष्टि करते हुए उस बल्वलको देखा। वह राक्षस बड़ा भयानक था देखते ही उन्होंने उसके सिरपर अपना मूसल दे मारा। मूसलकी चोटसे उसका मस्तक फट गया और वह तत्काल ही मर गया। ऋषियोंने उनकी खूब स्तुति की। तदनन्तर उनसे आज्ञा लेकर भारतवर्षके प्रत्येक तीर्थोंमें जाकर स्नान किया और वहाँके देवताओंका दर्शन किया। इसी बीच उन्हें यह समाचार मिला कि कौरवों और पाँण्डवोंमें लड़ाई हो रही है। यह सुनते ही वे कुरुक्षेत्र पहुँचे। वहाँ भीमसेन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और दुर्योधनको गदा युद्ध करते देख उन्होंने कहा—हे राजा दुर्योधन, तुम दोनों समान बलवाले हो इस व्यर्थके युद्धसे हट जाओ। लेकिन प्रारब्ध उनका कुछ ऐसा ही था अतः उन्होंने बलदेवजीकी बातें न मानीं। उसके बाद वे वहाँसे द्वारका लौट आये वहाँसे पुनः नैमिषारण्य पहुँचे। वहाँ ऋषियोंने उनसे सभी यज्ञ कराये। सर्व-समर्थ बलदेवजीने दक्षिणामें उन्हें ज्ञानोपदेश दिया, जिससे उन्हें यह ज्ञान हो गया कि—'यह सारा विश्व आत्मामें तथा यह आत्मा भी सारे विश्वमें व्याप्त है।' यज्ञान्तमें अपनीपत्नी रेवती के साथ स्नान कर सुन्दर वस्त्रों एवं अलङ्कारोंसे अलंकृत हो वे ऐसे शोभने लगे जैसे चाँदनीसे चाँद शोभता है। उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथाशीतितमोऽध्यायः ❀

(भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा ब्राह्मणका सत्कार)

राजा परीक्षित्ने कहा—हे प्रभो, अनन्त शक्ति सम्पन्न महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रजीने और भी जो प्रभावसूचक अन्य कार्य किये हैं उन्हें आप सुनावें, हम उन्हें सुनना चाहते हैं ॥१॥ हे ब्रह्मन् उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णजीकी सुन्दर कथाएँ सुनकर कामदेवके बाणोंसे दुःखी भला ऐसा कौन विवेकी पुरुष है जो बार-बार सुननेपर भी मनुष्य उनकी कथासे तृप्त हो सकेगा ॥ २ ॥ वही वाणी है, जो भगवान्के गुणोंका गान करती है। उसीके हाथ भी सार्थक हैं, जो भगवान्की सेवामें लगे रहते हैं, मन भी वही सार्थक है, जो समस्त चराचरमें

राजोवाच ॥ भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामि हे प्रभो ॥ १ ॥ को नु श्रुत्वा सकृद् ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ॥ विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥ सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ॥ स्मरेद्वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥ शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत् तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥ अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन सम्पृष्टो भगवान्बादरायणिः ॥ वासुदेवे भगवति

रहनेवाले भगवान्का सतत ध्यान करता है और वही कान सफल है, जो भगवान्की पुण्यकथाओंका निरन्तर श्रवण करता है ॥ ३ ॥ वही मस्तक सचमुच मस्तक है, जो भगवान्की प्रतिमाको देखकर एवं उनके भक्तको पाकर भगवान्का साक्षात् रूप समझ कर स्वयं झुक जाता है। नेत्र भी वही सार्थक है, जो भगवान्के दोनों रूपोंका अवलोकन करता और मनुष्यके वे ही अङ्ग भी सार्थक हैं, जो भगवान् श्री विष्णु तथा उनके भक्तोंका पादोदक सेवन करते हैं ॥ ४ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे ऋषियो, राजा परीक्षित्के यों पूछनेपर भगवान् वेदव्यास-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जीके सुपुत्र श्रीशुकदेवजीका हृदय वासुदेव भगवान्‌में विलीन हो गया। वे यों कहने लगे ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, विषयोंसे विरक्त, जितेन्द्रिय एवं प्रसन्नचित्त रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके एक ब्राह्मण प्रिय मित्र थे ॥ ६ ॥ वे गृहाश्रमी थे। बिना माँगे प्रारब्धवश जो कुछ मिल जाता था उसीसे अपने गृहस्थाश्रम धर्मका निर्वाह करते थे। उनके वस्त्र फटे-पुराने एवं अत्यन्त मलिन रहते थे। उनकी भार्या भी उन्हींके सदृश भूखके मारे अत्यन्त दुर्बल रहा करती थी ॥ ७ ॥ दरिद्रा, व्याकुल चित्ता, म्लानमुखी पतिव्रता वह ब्राह्मणी एक दीन भयसे काँपती हुई अपने पतिसे जाकर कहने लगी ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन्, आपके मित्र यादवश्रेष्ठ लक्ष्मीके साक्षात् पति भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वे ब्राह्मणभक्त तथा शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ इसीलिये हे महाभाग, साधुओंके परमभक्त भगवान् यहाँ आप जाइये। द्रव्याभावसे अत्यन्त कष्ट पा रहे आपको वे बहुत सा धन दे देंगे ॥ १० ॥

निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥५॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥६॥
यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ॥ तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥ ७ ॥ पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ॥
दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियःपति ॥ ब्रह्मण्यश्च भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥ तमुपैहि
महाभाग साधूनां च परायणम् ॥ दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ॥ स्मरतः
पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ किं न्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः ॥ ११ ॥ स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु ॥
अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥१२॥ इति सञ्चिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे॥ अप्यस्त्युपायनं किञ्चिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥१३॥
याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतण्डुलान् ॥ चैलखण्डेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥१४॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल॥

इस समय भगवान् भोज, वृष्णि और अन्धकोंके अधिपति होकर द्वारिकामें रहते हैं। अपने चरणकमलोंका स्मरण करनेवाले पुरुषको भगवान् जब अपना शरीर तक दे देते हैं, तब भला जगत्‌के गुरु वे भगवान् अपने भक्तोंको जो अत्यन्त अभीष्ट नहीं है, ऐसे अर्थ और काम दे देते हैं तो इसमें आश्चर्य करनेकी बात ही कौन सी है ॥ ११ ॥ इसप्रकार अपनी पत्नी द्वारा कोमल वचनोंसे बार-बार प्रार्थित होनेपर उस ब्राह्मण देवता 'सबसे उत्तम लाभ तो मुझे यह होगा कि उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन मिल जायगा।'—यों अपने मनमें सोचकर द्वारकापुरी जानेका निश्चय कर लिया ॥ १२ ॥ और अपनी स्त्रीसे कहा—हे कल्याणि, भगवान्‌को देने योग्य कोई वस्तु यदि घरमें हो, तो मुझे दे दो ॥ १३ ॥ वह स्त्री अपने पड़ोसीके गृहसे चार मुट्ठी चिउड़ा* माँगकर ले आयी और उसे एक फटे-पुराने कपड़ेमें किसी प्रकार लपेटकर अपने पति सुदामाजीको दे दिया ॥ १४ ॥ किस प्रकार भगवान्‌का दर्शन

* पृथुकतण्डुलान्—इसका अन्वितार्थप्रकाशिकाकारने 'धान्यचिपिटान्'—यह अर्थ किया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होगा, ऐसा विचार करते हुए उन चिउड़ोंको लेकर वे विप्रवर द्वारका पहुँच गये ॥ १५ ॥ अन्तःपुरके वाहर दरवाजेपर रक्षा करनेके निमित्त नियुक्तकी गई तीन सेनाएँ तथा तीन चौड़ी सड़कें (तीन ड्योढ़ी) पारकर अन्य ब्राह्मण के साथ वे विप्रवर सुदामाजी भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाले अन्धक और वृष्णियोंके अगम्य गृहोंमें पहुँचे ॥ १६ ॥ तदनन्तर उनके घरोंके समीपमें हो स्थित भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियोंके घरोंके वीचमें सबसे सुन्दर एवं सबसे मुख्य श्रीरुक्मीणीजीके घरमें प्रविष्ट हुए वहाँ पहुँचते ही वे उस समय मानों ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो गये ॥ १७ ॥ रुक्मिणीके साथ पलंगपर बैठे हुए भगवान् उन्हें दूरसे ही आते देख झटपट दौड़कर अपने करकमलोंसे उन्हें पकड़ अति प्रसन्न हो उनका आलिङ्गन किया ॥ १८ ॥ प्रियमित्र ब्राह्मणश्रेष्ठ सुदामाजीके अङ्गका स्पर्श करनेसे अति आनन्दको प्राप्त कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्ण परम प्रसन्नचित्त हो अपने नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे

कृष्णसन्दर्शनं मह्यं स्यादिति चिन्तयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च सद्विजः ॥ विप्रोऽगम्यान्धकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ॥ विवेशैकतमं श्रीमद् ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥१७॥ तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यङ्कमास्थितः ॥ सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ॥ प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ १६ ॥ अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् ॥ उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ॥ व्यलिम्पद्दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ॥ अर्चित्वावेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसन्ततम् ॥ देवी पर्यचरत्साक्षाच्चामरव्यजनेन वै ॥ २३ ॥ अन्तः पुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ॥ विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥ किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ॥ श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः ॥ पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥ २६ ॥

लगे ॥१६॥ हे राजन्, सभी लोकोंको पवित्र करनेवाले श्री उन भगवान्ने उन्हें अपने पलंगपर बैठाकर पूजनकी सामग्री लाकरके स्वयं अपने प्रियमित्र सुदामजीके पैर पखारकर पैर धोनेसे बचे जलको सिरपर लगाया और चन्दन आदि गन्धोंका उनके शरीरपर लेप किया ॥ २०, २१ ॥ भगवान् प्रसन्नचित्त होकर सुगन्धित धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन करनेके बाद पान आगे रख गौ दे करके यों स्वागत वचन कहने लगे ॥ २२ ॥ फटे-पुराने वस्त्र पहने, अत्यन्त मलिन मुखवाले एवं भूख प्यासके मारे मुख सुखाये तथा दुर्बलताके कारण दीख रही शरीरकी सम्पूर्ण अस्थियों तथा रक्तकी नलियोंसे युक्त परम दरिद्र ब्राह्मणको साक्षात् लक्ष्मीरूपदेवी रुक्मिणीजी हाथमें पंखा लेकर उन्हें हवा देने लगीं ॥ २३ ॥ निर्मल यशवाले भगवान् द्वारा बड़े प्रेमसे इस प्रकार मैले-कुचैले वस्त्र पहिने भिखमंगे दरिद्र ब्राह्मणका स्वागत देखकर अन्तःपुरके सभी लोग आश्चर्यमें डूब गये ॥ २४ ॥ वे परस्पर कहने लगे—धनहीन, इस लोकमें गर्हित, नीचके समान प्रतीत हो रहे इस अवधूत भिखारीने भला ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिससे तीनों लोकके गुरु श्री निवास भगवान् श्रीकृष्णने पलंगपर स्थित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लक्ष्मीको छोड़कर इनका बड़े भाईके तुल्य आलिंगन और सम्मान किया ॥ २५, २६ ॥ हे राजन्, तदनन्तर वे दोनों परस्पर एक दूसरेका हाथ पकड़कर अपनी मनोहर गाथाएँ उस समयकी कहने लगे, जब वे बहुत दिन पहले गुरुकुलमें निवास कर रहे थे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे ब्रह्मन्, हे धर्मज्ञ, गुरुजीको गुरुदक्षिणा देकर गुरुकुलसे लौट आनेके बाद आपने अपने अनुकूल भार्याके साथ पाणिग्रहण अभी किया या नहीं ? ॥ २८ ॥ मित्र, औरोंकी तरह गृहस्थाश्रममें वर्तमान रहते हुए भी तुम्हारा चित्त प्रायः सांसारिक विषयोंसे आकृष्ट नहीं होता, यह तो मुझे मालूम है। विद्वन्, यही कारण है कि धन, वस्त्र, आदि वस्तुओंमें तुम्हारी अधिक प्रीति नहीं रहती ॥ २९ ॥ कुछ लोग यहाँ ऐसे हैं, जो विषयोंसे आकृष्ट-चित्त न होते हुए भी सृष्टि आदिके कर्ता भगवान् परमेश्वरकी प्रकृतिके कार्यभूत नानाविध कामनाओंका निराकरण करनेके लिए ही कर्म किया करते हैं। जैसे कि कोई प्रयोजन न रहते हुए भी मैं सिर्फ संसारको शिक्षा देनेके लिए ही कर्म करता हूँ ॥ ३० ॥ ब्रह्मन्, क्या तुम्हें ब्रह्मचर्याश्रमकी वे बातें सब याद है, जब कि गुरुकुलमें हम दोनों एक साथ रह चुके थे।

कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ॥ आत्मनो ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षिणात् ॥ समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ॥ नैवातिप्रीयसे विद्वन्धनेषु विदितं हि मे ॥ २९ ॥ केचित्कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ॥ त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसङ्ग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिद् गुरुकुले वासं ब्रह्मन्स्मरसि नौ यतः ॥ द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥ स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजातेरिह सम्भवः ॥ आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥ नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह ॥ ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन्वृत्तं निवसतां गुरौ ॥ गुरुदारैश्चोदिता-

जहाँसे द्विजमात्र धर्मादि ज्ञातव्य वस्तुओंकी जानकारी प्राप्तकर संसारके किनारे लग जाते हैं—मोक्ष पा लेते हैं ॥ ३१ ॥ मित्र, इस संसारमें जिससे प्राणीका जन्म होता है वह सबसे पहला गुरु है तथा द्विजातिमात्रके सत्कर्मोंकी जहाँपर उत्पत्ति होती है यानी यज्ञोपवीतसंस्कार कराकर जो वेदोंका अध्ययन कराता है वह द्वितीय गुरु है और जो सभी आश्रमोंको ज्ञान प्रदान करता है वह तो साक्षात् मेरे समान गुरु है अर्थात् साक्षात् जैसे मैं गुरु हूँ, वैसे ही गुरुरूपसे वह भी पूज्य हैं ॥ ३२ ॥ ब्रह्मन्, इस लोकमें जो लोग गुरुरूप मेरे उपदेशसे अनायास ही संसाररूपी महासागर तैर जाते हैं वे ही सभी वर्णों और आश्रमियोंके बीचमें अपने पुरुषार्थ साधनमें कुशल हैं ॥ ३३ ॥ मैं गार्हस्थ्यधर्म, जो अतिथि सत्कारादि रूप है उससे अथवा ब्रह्मचर्यावस्थाका जो विद्याध्ययनादि कर्म है उससे या वानप्रस्थाश्रमका जो धर्म है तपश्चर्या उससे अथवा संन्यासाश्रमका जो धर्म है शान्त रहना उससे भी वैसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा कि सभी प्राणियोंमें रहनेवाला मैं गुरुकी शुश्रूषासे प्रसन्न होता हूँ ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन्, गुरुजीके समीपमें निवास कर रहे हमलोगोंकी और कोई दूसरी बात तुम्हें याद है ?

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जब गुरुजीकी स्त्रीसे आज्ञा पाकर वनमें लकड़ी लाने हमलोग गये थे, उस समयकी बात क्या याद आ रही है ? ॥ ३५ ॥ हमलोग उस एक बड़े जंगलके भीतर जा चुके थे और उस समय वर्षा ऋतु समाप्त हो गयी थी—शीतकाल आ गया था, फिर भी हे विप्र, एक बहुत बड़ी आँधी वर्षाके साथ आयी। वह तूफान बड़ा दुःसह था। उस समय निष्ठुर बादल भी खूब गरज रहे थे ॥ ३६ ॥ भगवान् सूर्य तुरन्त अस्त हो गये। सारी दिशाएँ अन्धकारसे आच्छादित हो गईं। सब जलमय हो गया, अतः ऊँची-नीची जमींन कुछ भी मालूम न होने लगी ॥ ३७ ॥ तब हमलोग उस घनघोर हवा और जलवृष्टिसे अत्यन्त क्षुब्ध होकर, जहाँपर केवल जल ही जल है ऐसे जलमय वनमें इधर-उधर भटकने लगे। दिशाका ज्ञान नष्ट हो जानेसे हमलोग व्याकुलचित्त हो गये थे। आपसमें एक दूसरेका हाथ पकड़कर जहाँ-तहाँ खूब घूमते फिरे ॥ ३८ ॥ हमलोग लकड़ी लाने गये हैं, यह जानकर सूर्योदय होनेपर हम

नामिन्धनानयने क्वचित् ॥ ३५ ॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद्द्विज ॥ वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तं गतस्तावत्तमसा चावृता दिशः ॥ निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३७ ॥ वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभिर्निहन्यमाना मुहुरम्बुसंप्लवे ॥ दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥ एतद्विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिर्गुरुः ॥ अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ॥ आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ॥ यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥४१॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः ॥ छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ॥ गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशान्तये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ॥ भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥ ४४ ॥ यस्य छन्दोमयं ब्रह्म देह

शिष्योंको ढूँढ़ते हुए हमलोगोंके आचार्य सान्दीपनि गुरुजीने हमें इस प्रकार आतुर देखा ॥ ३९ ॥ अहो पुत्रतुल्य प्रिय शिष्यो, प्राणियोंको अपनी देह सबसे प्यारी होती है। इस अमूल्य देहका भी परवाह न करके मेरी गुरुभक्तिमें पड़ करके मेरे वास्ते तुम लोग इतने अधिक दुःखी हो गये हो ॥ ४० ॥ जो विशुद्ध भक्तिसे सम्पूर्ण पदार्थों तथा अपने शरीरको भी गुरुको अर्पित कर देता है यही तो बस उत्तम शिष्योंका कर्तव्य है। गुरुके लिए सबसे बढ़कर यही एक उपकार है ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कहनेके बाद गुरुजी कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठो, मैं तुम लोगोंपर प्रसन्न हूँ। इसलिए तुम्हारे सभी मनोरथ सफल होवें। तुम लोगोंने जो वेद पढ़े हैं, वे इस लोकमें तथा परलोकमें अभिलषित फल पैदा करनेमें समर्थ होवे ॥ ४२ ॥ मित्र, गुरुकुलमें निवास करते समय हमलोगोंकी ऐसी बहुत-सी बातें हैं, क्या उनका तुम स्मरण करते हो ? मैं तुमसे अधिक क्या कहूँ, एकमात्र गुरुकी कृपासे ही इस संसारमें प्राणी पूर्णकाम होते हुए संसार दुःखनिवृत्तिरूप मोक्षके लिए समर्थ होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर विप्र सुदामाने कहा—हे देवदेव हे जगद्गुरो, सत्यकाम आपके साथ गुरुकुलमें जिसका निवास रहा है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐसे मैंने भला कौन-सा फल नहीं प्राप्त किया ? ॥ ४४ ॥ हे विभो, धर्मादि फलोंकी उत्पत्तिकी भूमि वेदात्मक जिसकी देह है, ऐसे आपका गुरुकुलमें निवास करना अत्यन्त विडम्बना है—हमलोगोंको शिक्षा देनेके लिए ही आपका यह एक बड़ा अनुकरण था ॥ ४५ ॥

आवपनं विभो ॥ श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सात्विकनिरोधनिरूपणप्रकरणे श्रीरामकृष्णसंवादनिरूपणं नामाशीतितमोध्यायः ॥ ८० ॥

अस्सी अध्यायका सार—राजा परीक्षित्ने कहा--प्रभो, भगवान्के ऐसे ही अद्भुत चरित्रोंका और वर्णन कीजिए। उनका गुणानुवाद बार-बार सुननेपर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। श्रीशुकदेवजीने कहा--राजन्, भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय मित्र सुदामा नामका एक दरिद्र ब्राह्मण था। उसके ही सदृश प्रतिव्रता उसकी धर्मपत्नी थी। भोजन न मिलनेसे दुबली पतली उस ब्राह्मणीने भयसे काँपती हुई एक दिन अपने पतिदेवके समीप जाकर कहा--प्रभो, सुनती हूँ--भगवान् श्रीकृष्ण आपके परम मित्र हैं, ब्राह्मण भक्त और शरणागतोंके प्रतिपालक हैं। कृपाकर उनके पास जाकर अपनी गाथा सुनाइये। विप्रवरने कहा--प्रिये, कुछ भेंट देनेके लिए लाओ, तो उनके पास मैं जाऊँ। उस ब्राह्मणीने किसी पड़ोसीके घरसे चार मुट्ठी चिउड़ा माँगकर उन्हें दे दिया। ब्राह्मण देवता द्वारकाको चल दिए। वहाँ पहुँच कर तीन ड्योढ़ी पार करनेके बाद वृष्णि और अन्धकोंके घरोंके समीपमें भगवान्की, सोलह हजार स्त्रियोंके घरोंके बीच रुक्मिणीजीके घरके पास पहुँचे। वहाँ भगवान् पलंगपर रुक्मिणीके साथ विराजमान थे। इन्हें दूरसे ही आते देखकर झट पलंगसे दौड़ आये। और इन्हें गले लगाया। इन्हें घरमें ले जाकर अपने पलङ्गपर बैठाकर अपने हाथ से स्वयं इनका चरण धोकर अवशिष्ट जलको अपने सिरपर चढ़ाया। बहुत दिनोंके बाद प्रिय मित्रके आलिंगनसे वे प्रेम विह्वल हो गये। उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। चन्दन आदिसे विधिवत् पूजन करनेके बाद ताम्बूल देते हुए भगवान् मधुर वाणीसे पूछने लगे। उधर रुक्मिणीजी हाथमें पंखा झेलने लगीं। यह देख अन्तःपुरवासी सब आश्चर्य चकित हो गये। भगवान्ने कहा–मित्र, कहो, अपने अनुकूल धर्मपत्नीका पाणिग्रहण किया नहीं। सुदामाको इसका कुछ उत्तर न देते देख उन्होंने फिर कहा–मित्र, यह तो मुझे पहले हीसे विदित है कि सांसारिक पदार्थोंमें तुम्हारी अभिरुचि नहीं रहती। अच्छा मित्र कहो तो सही, गुरुकुलकी वे बातें तुम्हें कुछ याद आ रही हैं ?। क्या उस दिनकी वह घटना तुम्हें याद है जब गुरुआइनजीकी आज्ञासे हम लोग जंगलमें लकड़ी लाने गये थे और वहीं हम लोगोंको भयंकर आँधी-पानीसे सामना करना पड़ा था। उस दिन बड़े जोरकी हवा चल रही थी और वृष्टि मूसलाधार हो रही थी बिजलीकी कड़कड़ाहट तथा बादलोंकी गरजनसे हम लोगोंके चित्त ठिकाने नहीं थे। पानी तो इतना उस दिन बरसा था कि ऊँची-नीची जमीनका पता न लगनेसे हमलोग रात भर जङ्गल में ही भटकते रहे। सबेरे हमें ढूँढ़ते हुए गुरुजी आये और हम लोगों पर बहुत प्रसन्न हो उन्होंने अनेक आशीर्वाद दिये। मित्र, ऐसी अनेक घटनाएँ घटी थीं, क्या उनका तुम्हें स्मरण है ? मित्र, गुरु कृपा ही प्राणीके लिए सब कुछ है उससे प्राणी मोक्षतक पा लेता है। विप्रवर सुदामाने कहा—हे जगद्गुरो, जिसने आपके साथ गुरुकुलमें निवास किया है उसे इस संसारमें भला कौन-सा फल मिलना बाकी है। अस्सी अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथैकाशीतितमोऽध्यायः ❋

(भगवान् द्वारा प्राप्त सुदामाकी अलौकिक समृद्धि वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस प्रकार सुदामाजीसे बातचीत कर रहे, सब प्राणियोंके मनका अभिप्राय जाननेवाले, ब्राह्मणोंके हित करनेमें तत्पर, सन्तोंके एकमात्र अवलम्बन भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराते हुए उस अपने प्रियमित्र ब्राह्मणसे कहने लगे। भगवान् उस समय अपनी प्रसन्नता सूचित करते हुए बड़े प्रेमसे अपने प्रियतमकी ओर देख रहे ॥ १, २ ॥ भगवान्ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, घरसे आप मेरे लिये क्या उपहार लाये हैं। भक्तों द्वारा प्रेमसे समर्पित थोड़ा भी उपहार मेरे लिये बहुत है। परन्तु अभक्त द्वारा अनादरपूर्वक समर्पित चाहे अधिक ही क्यों न हो, वह मेरे सन्तोषके लिये पर्याप्त नहीं होता ॥ ३ ॥ जो कोई प्रेमसे मुझे पत्र, पुष्प, जल आदि—इनमें किसी एकको भी मुझे समर्पण करता है तो विशुद्धात्मा

श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः ॥ सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ॥ प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ॥ अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ॥ पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥५॥ सर्वभूतात्मदृक्साक्षात्तस्यागमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ॥ प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥७॥ इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ॥ स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥८॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ॥ तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ॥ तावच्छ्रीर्ज-

उस पुरुषकी भक्तिपूर्वक समर्पित उस वस्तुको मैं बड़े प्रेमसे स्वीकार करता हूँ ॥ ४ ॥ हे राजन्, इस तरह भगवान्के कहनेपर भी वह बेचारा ब्राह्मण श्रीपति भगवान्को एक पसर चिउड़ा न दे सका, बल्कि मारे लज्जाके उसने अपना मुँह नीचे कर लिया ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणके साक्षी भगवान्ने उस ब्राह्मणके आनेका कारण समझकर मनमें विचार किया कि—इसने धन प्राप्तिकी इच्छासे पहले मेरा भजन नहीं किया है, अतः चिउड़ा लाकर भी मुझे यह नहीं दे रहा है और न किसी चीजकी मुझसे प्रार्थना करता है ॥ ६ ॥ यह मेरा मित्र पतिव्रता अपनी पत्नीका प्रिय सम्पादनकी इच्छासे ही मेरे पास आया है, इसलिये उसकी प्रसन्नताके लिये मैं इसे वह सम्पत्ति दूँगा, जो देवताओंको भी अप्राप्य है ॥ ७ ॥ इस प्रकार विचार करनेके बाद भगवान्ने उस ब्राह्मणके फटे हुए कपड़ोंसे एक चिथड़ेमें लपेटे गये चिउड़ोंको 'यह क्या है' कहकर जबर्दस्ती स्वयं ले लिया ॥ ८ ॥ और कहा—हे मित्र, यह जो उपहार मेरे लिये तुम लाये हो, यह मुझे अत्यन्त तृप्ति प्रदान करनेवाला है, क्योंकि ये चिउड़े तो मुझे और मेरे आश्रित सारे संसारको तृप्तकर देंगे ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर भग-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वान्‌ने एक मुट्ठी चिउड़ा खाकर फिर ज्योंही दूसरी मुट्ठी खानेके लिये उठाई कि, पासमें बैठी हुई भगवदेकनिष्ठा लक्ष्मीकी अंशभूता रुक्मिणीने भगवान् श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया और कहा ॥ १० ॥ हे विश्वात्मन्, आपके भक्तको इस लोक या परलोकमें सम्पूर्ण सम्पत्तियोंकी समृद्धिके लिये, अपने भक्तकी जिस समृद्धको देखकर आप सन्तुष्ट रहते हैं, यह मुट्ठीभर चिउड़ा ही काफी है। इसीसे आप सन्तोष कीजिये। यदि सब आपही खा जायँगे तो, तो इसमेंसे अपनी सखियों तथा बच्चोंको मैं क्या दूँगी ? ॥ ११ ॥ उन ब्राह्मण देवताने तो वह रात भगवान्‌के भवनमें ही बिताई। वे भोजन आदि कर परम सन्तुष्ट हुए। उस समय उन्होंने अपनेको स्वर्गवासी सा समझा ॥ १२ ॥ हे तात, सबेरे सूर्योदय होनेपर वे अपने घरको चल दिये। जाते समय विश्वभावन परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने उनका अभिनन्दन किया तथा रास्तेमें दूरतक आकर मित्र, फिर मुझसे मिलना—इत्यादि मीठी-मीठी बातोंसे उन्हें खूब प्रसन्न किया ॥ १३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा जाते समय प्रत्यक्ष रूपमें कुछ भी सम्पत्ति न प्राप्त होनेपर भी सुदामाजीने उनसे किसी वस्तुकी याचना नहीं की। अपने

गृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये ॥ अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे ॥ भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः ॥ जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥ १३ ॥ स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् ॥ स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ॥ यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥१५॥ क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ॥ अहो ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥ १६ ॥ निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा ॥ महिष्या वीजितः श्रान्तो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ॥ पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥ अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ॥ इति कारुणिको

हृदयकी कमजोरीसे लज्जित तथा भगवान्‌के दर्शनसे सुखी होते हुए उन्होंने अपने घरका सीधा रास्ता पकड़ा ॥ १४ ॥ अहो मैंने ब्राह्मणोंके हितकारी भगवान् वासुदेवकी ब्रह्मण्यता आज देखी। जो अपने हृदयमें लक्ष्मीको सदा धारण करते हुएभी उन्होंने अत्यन्त दरिद्र मेरा आलिङ्गन किया ॥ १५ ॥ कहाँ तो मैं अतिदरिद्र और पापी ब्राह्मण और कहाँ श्रीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ? फिर भी केवल ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न होनेके नाते ही उन्होंने बाहुओंमें मुझे जकड़ लिया ॥ १६ ॥ रास्ता चलनेसे मैं बहुत थक गया था, उन्होंने प्रियासे सेवित अपने पलंगपर भाईकी तरह बैठाया। उनकी महारानीने हाथमें पंखा लेकर स्वयं डुलाया ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंके परम सेवक, देवताओंके भी देवता भगवान् श्रीकृष्णने देवताओंकी तरह मेरी पूजा की। उन्होंने मेरे पाँव दबाये, शरीरमें चन्दनका लेप किया—इत्यादि अनेक प्रकारसे उन्होंने मेरी अच्छी सेवा की ॥ १८ ॥ यद्यपि पाताल और पृथ्वीपर पुरुषोंकी सभी सम्पत्तियों, अणिमादि सिद्धियों तथा उनके स्वर्ग और मोक्षका भी कारण भगवान्‌के चरणकमलका अर्चन ही है, 'तथापि यह दरिद्र ब्राह्मण धन पाकर गर्वयुक्त हो मेरा स्मरण नहीं करेगा' ऐसा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सोचकर ही परम कारुणिक उन भगवान्‌ने मेरे ऊपर दया करके थोड़ा भी धन मुझे नहीं दिया ॥ १९, २० ॥ इस प्रकार विचारसागरमें गोता लगाते हुए सुदामाजी अपने घरके समीप आ गये, जो इस समय रवि, चन्द्र और अग्निके सदृश अनेक अट्टालिकाओंसे आवृत्त था ॥ २१ ॥ पासमें ही नानाप्रकारके पक्षियोंके कलरवसे व्याप्त विचित्र उपवन और उद्यान शोभित हो रहे थे तथा खिले हुए कुमुद, अम्भोज, कह्लार तथा उत्पल आदि अनेक रङ्गके कमलोंसे पूर्ण सरोवर तथा नाना प्रकारसे अलंकृत पुरुष एवं हरिणाक्षी महिलाएँ उनकी खूब शोभा बढ़ा रही थीं। यह देख सुदामा अति विस्मित होकर सोचने लगे—अहो, यह क्या, किसकी यह अट्टालिक शोभित हो रही है? यहाँपर मेरा गृह था, वह इस तरहका कैसे हो गया? ॥ २२, २३ ॥ वे इसी तरहके सोच विचारमें पड़े थे कि देवतुल्य तेजस्वी अनेक पुरुष और स्त्रियाँ उन महाभागकी अगवानी करने आयी। वे सबकी सब गाना गा रही थीं तथा उनके

नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् ॥ सूर्यानलेन्दुसङ्काशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥ विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ॥ प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलङ्कृतैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ॥ किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥२३॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ॥ प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥२४॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षातिसंभ्रमा ॥ निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाऽश्रुलोचना ॥ मीलिताक्ष्यनमद्बुध्या मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ॥ दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ॥ मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥ आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥ ३० ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नदीपाम्भ्राजमानाँल्ललनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मण-

साथ अनेक तरहके बाजे बज रहे थे ॥ २४ ॥ अपने पतिदेवको आये सुनकर उनकी स्त्री अत्यन्त हर्षसे विह्वल हो ऐसे घरसे बाहर झट निकल आयीं जैसे कि लक्ष्मीजी अपने स्थानसे निकलकर आ रही हो ॥ २५ ॥ उस सतीने अपने पतिको देखकर अत्यन्त हर्षसे प्रेमाश्रु भरे अपने नेत्रोंको बन्दकर मनही मन उन्हें प्रणाम कर उनका आलिङ्गन किया। अश्रुपात द्वारा अमंगलकी आशंकासे उसने अपनी आँखें बाहर नहीं खोलीं ॥ २६ ॥ विमानपर आरूढ़ देवपत्नी-सी देदीप्यमान तथा गलेमें 'कण्ठा' नामक अलंकारसे भूषित अनेक दासियोंके बीचमें और अधिक शोभाको प्राप्त हो रही अपनी स्त्रीको देख वे ब्राह्मण देवता अति-विस्मित हुए ॥ २७ ॥ और प्रसन्न हो उन्होंने अपनी स्त्रीके साथ अनेकों रत्नजटित खम्भोंसे युक्त इन्द्र भवनकी तरह अपने गृहके अन्दर प्रवेश किया ॥ २८ ॥ जहाँपर दूधकी फेनकी तरह मृदुल एवं सफेद विस्तर, हाथी दाँतोंके बने सुवर्ण जटित पलंग तथा सुवर्णके दण्डावाले चँवर और पंखे थे ॥ २९ ॥ जहाँपर कोमल विस्तरोंसे युक्त सोनेके सिंहासन बने हुए थे तथा जिनमें मोतियोंकी लड़ियाँ नीचे लटक रही थीं ऐसे चँदवे जहाँपर देदीप्यमान हो रहे थे ॥ ३० ॥ उस भवनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दीवारें स्वच्छ स्फटिकमय थीं, जिनमें इन्द्रनील मणि आदि कीमती पत्थर जड़े गये थे। वहाँ रत्न ही सब दीपककी जगह विद्यमान थे। इनसे संयुक्त अनेक स्त्री रत्न तो और अधिक शोभित हो रहे थे—इन सबको देखकर तथा उस भवनमें स्थित इस तरहकी नानाविध समृद्धिका अवलोकन कर सावधानचित्त हो वह ब्राह्मण देवता 'अकस्मात् यह समृद्ध वहाँसे आ गयी' यों विचारमें लग गये ॥ ३१, ३२ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि निरन्तर दरिद्र मुझ अभागेकी समृद्धिका कारण महाविभूति सम्पन्न यदुकुल नायक भगवान् श्रीकृष्णकी कृपादृष्टिके अतिरिक्त और दूसरा नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार समुद्रादिको परिपूर्ण करनेवाले मेघ कदाचित् कहीं अधिक वर्षाको भी उसके सामने अल्प समझकर लज्जाके मारे वृष्टि न करते हुए किसानके सो जानेके बाद उसके खेतको जलपूर्ण कर देते हैं, उसी प्रकार यादव श्रेष्ठ सभी उपभोगोंसे युक्त, मेरे मित्र भगवान् भी इन्द्रादिके सभी सम्पत्तियोंको देते समय अति तुच्छ समझ याचकके सामने कुछ न कहते हुए सभी कुछ दे डालते हैं ॥ ३४ ॥ अहो, भगवान्का कैसा स्वभाव है ? जो अपने प्रेमी भक्तोंके अल्प किए हुए को बहुत मानते हैं

स्तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदाम् ॥ तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥ ३२ ॥ नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ॥ महा-
विभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥ ३३ ॥ नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ॥ पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो
दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥ किञ्चित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारी ॥ मयोपनीतं पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो
महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ॥ महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥ ३६ ॥
भक्ताय चित्रा भगवान्हि सम्पदो राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ॥ अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥ ३७ ॥ इत्थं
व्यवसितो बुद्धया भक्तोऽतीव जनार्दने ॥ विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलम्पटः ॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ॥ ब्राह्मणाः
प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ॥ तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धन-

स्वयं यदि बहुत भी करें, तो उसे स्वल्प ही समझते हैं। मेरे द्वारा उपस्थित किये गये मुट्ठी भर चिउड़ेको उदारचित्त भगवान् कितने प्रेमसे ग्रहण किया ॥ ३५ ॥ गुणोंके आगर महानुभाव भगवान् श्रीकृष्णके ही द्वारा प्रेरित हुए की विशेष रूपसे संगति रखनेवाले मुझे तो प्रत्येक जन्ममें उनका ही प्रेम, उन्हीका विश्वास उनकी ही मैत्री तथा उन्हींकी दासता प्राप्त होवे। इतना ही नहीं, बल्कि उनसे मेरी प्रार्थना है कि उनके भक्तोंकी संगति मुझे सदा प्राप्त रहे ॥ ३६ ॥ स्वयं विचक्षण अजन्मा भगवान् धनके मदसे धनियोंका अनिवार्य पतन देखकर मेरे-जैसे अविवेकी भक्तको नानाप्रकारकी सम्पत्तियाँ राज्य तथा पुत्र-कलत्र आदि कुछ नहीं देते, बल्कि दृढ़ भक्ति ही देते हैं। मुझे तो भक्ति न रहनेसे ही ये सम्पत्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इसलिये मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि—हे भगवन्, केवल तुम्हारी भक्ति ही बनी रहे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार अपनी बुद्धिसे निश्चय कर विप्रवर सुदामाजी भगवान् जनार्दनमें अपना दृढ़ प्रेम लगा करके विषयोंके त्यागका अभ्यास करते हुए अतएव उनमें अति लम्पट न बन अपनी स्त्रीके साथ सम्पत्तियोंका उपभोग करने लगे ॥ ३८ ॥ देवाधिदेव, यज्ञोंके स्वामी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जगत्प्रभु उस श्रीहरिके ब्राह्मण ही स्वामी हैं देवता भी इनसे अधिक श्रेष्ठ नहीं हैं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परममित्र विप्रवर सुदामाजी दूसरोंसे अपराजित होनेपर भी भगवान्‌को इसतरह भृत्योंसे पराजित हुए देखकर उनके ही चरणारविन्दके ध्यानसे सकल आत्मबन्धनोंका उन्मूलनकर शीघ्रही परमगतिको प्राप्त हो गये ॥ ४० ॥ इसप्रकार ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्राप्त सुदामाकी सर्वसम्पत्तिका वर्णन तथा भगवान्‌की ब्राह्मण भक्ति सुनकर भगवान्‌में भक्ति करके मनुष्यकर्म बन्धनोंसे विमुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

स्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥ एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥ लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पृथुकोपाख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इक्यासी अध्यायका सार—राजन्, भगवान्‌ने पूछा—विप्रवर, मेरे लिये क्या भेंट लाये हो। यह सुनते ही शर्मके मारे सुदामाजीने नीचे मुँह कर लिया। चिउड़ेकी पोटली जो ले गये थे उसे भी न दे सके। परन्तु अन्तर्यामी भगवान् तो ताड़ गये। उन्होंने वह पोटली स्वयं उनसे छीन ली और कहा मित्र, यह क्या लाये हो। यह तो मेरे लिए सबसे अच्छी चीज है। भगवान्‌ने झट उसमेंसे एक मुट्ठी चिउड़ा निकाल अपने मुँहमें डाल लिया। दूसरी मुट्ठी उठाते ही रुक्मिणीजीने रोक दिया और कहा—सब आपही खा जायेंगे तो मैं अपनी सखियों तथा बच्चोंको क्या दूँगी? बस, आपके लिए इतना ही बहुत है। सुदामाजीने वह रात वहीं बिताकर दूसरे दिन सबेरे अपने घरको चल दिये। रास्तेमें सोचते जा रहे थे—अहो, आज मैंने भगवान्‌की ब्रह्मण्यता देखी मुझ दरिद्र ब्राह्मणकी उन्होंने अच्छी सेवा की, मेरा खूब सत्कार किया। 'यदि मैं इसे धन दे देता' तो यह घमण्डी हो मेरा भजन नहीं करेगा—इसी विचारसे उन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया। यों उधेड़ बुनमें पड़े ब्राह्मण देवता अपने घर पहुँचे। आते ही उन्होंने अनेक सुन्दर भवनोंके बीचमें सुशोभित एक सबसे बड़ा अनोखा भवन देखा। उन्होंने विचारा—यहाँ तो मेरा घर था, यह किस प्रकार हो गया है। अहो, यह मेरा घर इस रूपमें कैसे हो गया। यों विचारमें लगे उन्हें आते देख वहाँके नर-नारी सब उनकी अगवानी को दौड़े। उनकी पत्नी अपने पतिको आये सुन झट घर से बाहर हो गयीं। प्रेमाश्रुसे उनकी आँखें छलछला आयीं। वे कुछ न बोल सकीं। मनही मन उनका आलिंगन किया। अनेक दासियोंसे घिरी अपनी पत्नीको देख सुदामाजी विस्मित हो गये। उन्होंने कहा—भगवान्‌की महिमा धन्य है। वे अपने भक्त द्वारा प्रेमपूर्वक दी गई थोड़ी भी वस्तुको ज्यादा समझते हैं और अपनी विभूतीको भक्तके सामने कुछ नहीं समझते। मुट्ठी भर चिउड़ा भगवान्‌ने कैसे प्रेमसे खाया। मुझे तो जन्म-जन्ममें उनकी भक्ति ही चाहिये यों अपनी बुद्धिसे निश्चय कर सुदामाजी विषयोंमें आसक्त न होते हुए अपनी धर्मपत्नीके साथ प्रेमपूर्वक उस सम्पत्तिका भोग करने लगे। इक्यासी अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❁ अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः ❁

(सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ व्रजवासी आदि सगे-सम्बन्धियों तथा अनेक राजाओंकी भेंट)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय जब कि बलरामके साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिकापुरीमें निवास कर रहे थे सर्वग्रास सूर्य ग्रहणका अवसर आया। वह ऐसा मालूम देता था मानो कल्पक्षयका समय आया हो ॥ १ ॥ राजन्, ज्योतिषियों द्वारा यह बात जानकर सब देशके लोग पहलेसे ही पुण्यसञ्चयके लिये स्यमन्तपञ्चकनामक कुरुक्षेत्रमें पहुँच चुके थे ॥ २ ॥ जिस जगहपर परशुरामजीने पृथिवीको क्षत्रिय हीन बना देनेकी इच्छासे राजाओंके साथ संग्राम करते हुये उनके रुधिरसमूहसे पाँच बड़े-बड़े तालाब बना दिये थे। उस समय परशुरामजी शास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कहे जाते थे ॥ ३ ॥ जहाँपर कर्मोंसे यानी क्षत्रियोंको मारनेसे उत्पन्न पापसे अस्पष्ट होते हुए भी सर्वसमर्थ भगवान् परशुरामजीने संसारको शिक्षा देनेके लिए अन्य साधारण मनुष्योंकी नाईं पापसे छुटकारा पानेके लिए अनेक यज्ञ किये ॥ ४ ॥ इसी महातीर्थ यात्राके अवसरपर वहाँ भारतवर्षके सभी मनुष्य पहुच गये थे। हे

श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥ सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥ तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ॥ स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन्रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान्रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥ लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥ ४ ॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्राऽऽगन्भारतीः प्रजाः ॥ वृष्णयश्च तथाऽक्रूर वसुदेवाहुकादयः ॥५॥ ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥ ६ ॥ आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ ७ ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः ॥ ८ ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ तत्र स्नात्वा महाभागा

भारत, इसी मौकेपर वृष्णिवंशके अक्रूर, वसुदेव और आहुक भी अपने-अपने पापको नष्ट कर देनेकी इच्छासे वहाँ गये थे ॥ ५ ॥ इनके साथमें गद प्रद्युम्न और साम्ब आदि यादव भी चले गये थे। केवल रुक्मिणीके पुत्र चारुचन्द्र तथा शुक्र और शारणके सहित अनिरुद्धजी एवं सेनापति कृतवर्मा द्वारिकापुरी की रक्षाके लिये रह गये थे ॥ ६ ॥ वे सब लोग देवविमानों की तरह देदीप्यमान रथों, तरङ्गकी तरह तीव्रगामी घोड़ों तथा बादलोंके समान काले एवं चिघाड़ मार रहे हाथियोंपर चढ़कर जा रहे थे। विद्याधरोंके समान सुन्दर उनके साथ अनेक पुरुष थे। उन यादवोंकी स्त्रियाँ भी उनके साथ थीं। गलेमें पड़ी सोनेकी माला, दिव्यहार, दिव्यवस्त्र एवं कवचसे ये खूब भले लगते थे। हे राजन्, महातेजस्वी वे यादवगण मार्गमें जा रहे देवताओंकी तरह शोभ रहे थे ॥ ७, ८ ॥ दिव्यवस्त्रों तथा मालाओंसे सुशोभित उन महाभाग्यशाली यादवोंने अपनी स्त्रियोंसे युक्त हो उस ह्रदमें स्नान किया। स्नान करनेके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाद उपवासकर उन यादवोंने सावधान होकर ब्राह्मणोंको वस्त्र, माला, तथा सोनेके हारसे विभूषित अनेक गौएँ दान दी ॥ ९ ॥ इस प्रकार मुख्य तालावमें स्नान करनेके बाद उन यादवों ने पुनः भगवान् परशुरामजीके निमित्त नवों तालावोंमें भी विधिवत् स्नानकर 'भगवान् श्रीकृष्णमें हमारी भक्ति बनी रहे' इस अभिप्रायसे ग्रहण समाप्त हो जानेपर ब्राह्मणोंको बढ़िया अन्नका भोजन कराया ॥ १० ॥ तदनन्तर एकमात्र श्रीकृष्णही जिनके देवता थे ऐसे वे यादव लोग उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले स्वयं यथेच्छ भोजन कर शीतल छायावाले वृक्षोंके नीचे आराम करनेकी इच्छासे जा बैठे। हे राजन्, वहाँपर आए हुए अपने सुहृद्-सम्बन्धियों, मत्स्य, उशीनर, कौसल्य, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्भोज, कैकय, मद्र, कुन्ती, आनर्त तथा केरल आदि देशोंके अनेक राजाओं तथा सैकड़ों और भी बहुतसे अपने तथा दूसरे पक्षके लोगोंको देखा। इनके सिवा हे राजन्, अपने मित्र नन्द आदि गोपों तथा उन गोपिकाओंको भी देखा, जो दर्शनके लिए चिरकालसे उत्कण्ठित हो रही थीं ॥ ११-१४ ॥ आपसके दर्शनसे उनका हर्ष उमड़ पड़ा, उसके वेगसे उनके हृदय और मुखरूपी कमलकी शोभा निरख उठी। वे

उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ॥ रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥ १० ॥ ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्-
येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ ११ ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायाङ्घ्रिपाङ्घ्रिषु ॥
तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्सम्बन्धिनो नृपान् ॥ १२ ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ॥ काम्बोजकैकयान्मद्रान्कुन्तीनानर्तकेरलान् ॥१३॥
अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान्परांश्च शतशो नृप ॥ नन्दादीन्सुहृदो गोपान्गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम् ॥ १४ ॥ अन्योन्यसन्दर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्ल-
हृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ॥ आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १५ ॥ स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामला-
पाङ्गदृशोऽभिरेभिरे ॥ स्तनैः स्तनान्कुङ्कुमपङ्करूषितान्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १६ ॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवादिताः ॥
स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥ १७ ॥ पृथा भ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ॥ भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ सङ्कथया

उस समय अति रमणीय मालूम हो रहे थे। आपसमें एक दूसरेका उन्होंने गाढ़ आलिङ्गन किया। उस समय उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुकी धारा चल पड़ी तथा रोमाञ्च हो आया और मारे प्रेमके उनकी वाणी रुक गयी। वे सबके सब परमानन्दमें निमग्न हो गये ॥ १५ ॥ स्नेह भरी मन्द मुसकुराहटसे अत्यन्त विमल नेत्र कटाक्षवाली वे स्त्रियाँ भी एक दूसरीको देख अपनी आँखोंमें प्रेमके आँसू भरकर कुंकुमपङ्कलिप्त स्तनोंको अपने स्तनोंसे दबाकर भुजाओंसे जकड़ आलिङ्गन करने लगीं ॥ १६ ॥ इसके बाद उन सभी यादवों और मत्स्यदेश वासियोंने अपनेसे छोटा तथा समान उम्रवालोंसे अभिवादित हो अपनेसे बड़े वृद्धोंको प्रणाम किया। बादमें स्वागत एवं कुशल-क्षेम पूछकर वे भगवान् श्रीकृष्णजीके विषयमें परस्पर बातें करने लगे ॥ १७ ॥ उनमें कुन्तीने अपने भाइयों, बहनों, उनके पुत्रों, तथा माता-पिताको देखकर तथा भ्रातृ-पत्नियों एवं श्रीकृष्णचन्द्रको देख उनके साथ प्रेमालापसे अपने शोकको दूर भगा दिया ॥ १८ ॥ कुन्तीने कहा—बड़का भइया, मैं अपनेको सबसे बढ़कर अभागिन समझती हूँ—शायद संसारमें मुझ-सी अभागिन कोई दूसरी औरत ढूढ़े नहीं मिलेगी, क्योंकि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इतने बड़े महात्मा आप भी अनेक विपत्तियाँमें भी मेरी कोई खोज-खबर नहीं रखते ॥ १९ ॥ भइया, इसमें सन्देह नहीं कि जिसका दैव प्रतिकूल होता है तो उसके मित्र, जातिबन्धु, पुत्र, भाई तथा माँ भी अपने आत्मीयजनकी याद नहीं करते, कभी उनकी खोज खबर नहीं लेते। इसलिये मेरे भाग्यका ही दोष है, आप लोगोंका दोष मैं क्या दूँ ॥ २० ॥ वसुदेवजीने कहा—बहन, इसमें हमलोगोंका कुछ दोष नहीं है। हमें दोष न दो। हम लोग तो दैवके खिलौने हैं। संसारके सभी प्राणी परमेश्वरके वशमें हैं। अतः उसीसे प्रेरित हो प्राणी प्रत्येक कार्य करता है, वही प्रत्येक कार्य कराता है ॥ २१ ॥ हे बहन, कंसके द्वारा क्लेशित हमलोग सभी दिशाओंमें भटकते रहे। अभी यहाँ पर हम लोग बहुत दिनोंके बाद अपने स्थानपर एकत्र हुए हैं। यह हमलोगोंके भाग्यका ही प्रभाव है ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, वसुदेव, उग्रसेन आदि यादवोंसे पूजित हो कुरु, मत्स्य आदि देशोंके सभी राजे

शुचः ॥ १८ ॥ कुन्त्युवाच ॥ आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ॥ यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १९ ॥ सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ॥ नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ २० ॥ वसुदेव उवाच ॥ अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान्नरान् ॥ ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २१ ॥ कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशम् ॥ एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ॥ आसन्नच्युतसन्दर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥ २३ ॥ भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा ॥ सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सृञ्जयो विदुरः कृपः ॥२४॥ कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ॥ पुरुजिद् द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट् ॥२५॥ दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ॥ युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥२६॥ राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ॥ श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २७ ॥ अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः ॥ प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥ २८ ॥ अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ॥ यत्पश्यथासकृत् कृष्णं दुर्दर्शमपि

भगवान् अच्युतके दर्शन जनित परमानन्दसे अत्यन्त सुखी हो रहे थे ॥ २३ ॥ हे राजेन्द्र, भीष्म, द्रोण, अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र तथा अपने लड़कोंके साथ गान्धारी, अपनी स्त्रियोंसे युक्त पाण्डव, कुन्ती, विदुर, सृञ्जय, कृपाचार्य, कुन्तिभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मैथिल, मद्र, केकय, युध, मन्यु, सुशर्मा एवं पुत्रों सहित, वाह्लिक आदि जो जो युधिष्ठिरके अनुयायी राजे वहाँ पहुँचे थे वे सभी लक्ष्मीके निवासभूत श्रीकृष्णचन्द्रके शरीरको स्त्रियोंके सहित देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ २४-२७ ॥ बलराम तथा श्रीकृष्णने उन सबका भलीभाँति सत्कार किया। उनके सत्कारसे सन्तुष्ट हो वे राजे कृष्णके आत्मीय यदुवंशियोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २८ ॥ हे उग्रसेनजी, इस संसार में मनुष्योंके बीच आप यादव लोग हो सफल जन्म हैं। योगियोंसे भी अप्राप्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रतिदिन निरन्तर दर्शन करते हैं ॥ २९ ॥ जिनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कीर्ति वेदोंसे भी स्तुत है तथा जो इस संसारको अच्छी तरह पवित्र कर देते हैं, जिनके पैरकी धोवन गंगाजी भी सम्पूर्ण अनुष्ठान द्वारा सारे विश्वको पवित्र बनाते हैं तथा जगत्को पवित्र कर डालती हैं, जिनके वचनरूप वेद, गीता आदि शास्त्र श्रवण, कीर्तन आदि जिनके चरण स्पर्शसे पुनः शक्ति प्राप्त कर कालप्रभावसे नष्ट शक्तिवाली पृथिवी भी हम सबोंको सम्पूर्ण पदार्थ प्रदान करती है ॥ ३० ॥ जिनके साथ आप लोगोंकी हर समय दर्शन, स्पर्श, अनुगति, बातचीत करने, सोने-बैठने, तथा भोजन करने आदि सब क्रिया होती है तथा जिन के साथ विवाह एवं सपिण्ड सम्बन्ध भी है एवं जिन आप महानुभावोंके गृहमें प्रवृत्तिमार्गमें वर्तमान प्राणियोंको स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) से भी विमुख करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णु अवतरित हुए हैं ऐसे आप लोगोंका ही जन्म सफल है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, जब नन्दजीने यदुवंशियोंके साथ श्रीकृष्णका आना सुना, तो वे गोप-गणोंसे युक्त गाड़ियोंपर लदी हुई वस्तुओंके सहित देखने तथा वहीं रहनेकी इच्छासे आ गये ॥ ३२ ॥ जैसे मूर्छित प्राणीके कर, चरण आदि सब अवयव पाँचों वृत्तियोंमें मुख्य

योगिनाम् ॥२६॥ यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ॥ भूःकालभर्जितभगाऽपि यदङ्घ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिर-भिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः ॥ येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गाप-वर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्तत्र यदून्प्राप्तान्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ॥ तत्रागमद् वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दि-दृक्षया ॥ ३२ ॥ त दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ॥ परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३३ ॥ वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः ॥ स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३४ ॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ॥ न किञ्चनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥ ३५ ॥ तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३६ ॥ रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ॥ स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥ ३७ ॥ का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ॥

प्राणके आते ही सचेष्ट हो जाते हैं वैसे ही जब वृष्णियोंने नन्दजीको आये देखा, तो वे बिलकुल सचेष्ट हो गये। अति प्रसन्नताके साथ उठकर उन्होंने उनका गाढ़ आलिङ्गन किया उनके दर्शन न पानेसे बहुत दिनोंसे वे विह्वल हो रहे थे ॥ ३३ ॥ कंस जनित क्लेशों तथा गोकुलमें अपने बालकोंका उनके घर रख आना आदि बातोंको स्मरण करते हुए वसुदेवजीने अति प्रीतिके साथ नन्दजीका आलिङ्गन किया। मारे प्रेमातिशयके वे विह्वल हो गये ॥ ३४ ॥ हे कुरूद्वह, श्रीकृष्ण तथा बलरामजी अपने माँ बाप यशोदा और नन्दको प्रणाम कर उनकी गोदीमें चिपक गये। प्रेमसे विह्वल हो दोनों भाई कुछ भी न बोल सके। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये थे। उनकी वाणी भी गद्गद् हो गई थी ॥ ३५ ॥ महाभाग्यवती यशोदा मैया एवं बड़े भाग्यवान नन्दबाबाने उन दोनों पुत्रोंको अपनी गोदीमें बैठाकर भुजाओंमें खूब जकड़ लिया। हे राजन्, उनका पुत्र वियोग जनित शोक बिलकुल जाता रहा ॥ ३६ ॥ रोहिणी और देवकीने यशोदाजीका आलिङ्गन किया और उनके उपकारका स्मरण कर आँखों आँसू भर रुँधे कण्ठसे बोली ॥ ३७ ॥ हे व्रजेश्वरि, आपकी मित्रताको इन्द्रके समान ऐश्वर्यको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राप्त कर भी इस संसारमें कौन भूल सकती है, जिसका बदला हमलोगोंसे तो जन्म-जन्मान्तरमें भी नहीं चुकाया जा सकता—हम आपके उपकारका कभी भी प्रत्युपकार नहीं कर सकतीं ॥ ३८ ॥ आप लोगोंके यहाँ उन दोनों बच्चोंने, जिन्होंने अपने माँ बापको देखा ही न था, रहकर प्रीतिसे प्रत्येक वस्तु प्राप्ति की। इनके माँ बाप तो आपही लोग थे। वहींपर इनका जातकर्मादि संस्कार तथा लालन-पालन हुआ। आप लोगोंने इस न्यासकी इस प्रकार रक्षा की, जिस प्रकार पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं। आपके यहाँ रहते हुए इनको किसीसे भय नहीं था, वे बिलकुल निर्भीक थे ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, चिरकालके बाद अपने प्रियतम श्रीकृष्णको जब गोपियोंने देखा, तो उनके दर्शनमें व्यवधायक पलकोंके रचयिता ब्रह्माको वे शाप देने लगीं। अपनी आँखों द्वारा उन्हें अपने हृदयमें रख उनका गाढ़ आलिङ्गन किया। वे प्रेमसे उस भावको प्राप्त हो गईं, जिस भावको समाधिनिष्ठ योगी भी नहीं प्राप्त कर पाते ॥ ४० ॥ तदनन्तर अपनी माँकी गोदसे उठकर भगवान् श्रीकृष्णने भी उन्हें प्रेम विह्वल जान एकान्तमें उनके पास जाकर उनका आलिङ्गन किया और कुशल प्रश्नकर हँसते

अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३८ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ॥ प्राप्योषतुर्भवति
पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु
पक्ष्मकृतं शपन्ति ॥ दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ४० ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसङ्गतः ॥
आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४१॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ॥ गतांश्चिरायिताञ्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥४२॥
अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञाविशङ्कया ॥ नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४३ ॥ वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ॥
संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥४४॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥४५॥
अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ॥ भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४६ ॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वाऽऽत्मना ततः ॥

हुए यह कहा ॥ ४१ ॥ सखियो, क्या तुम्हें हमारी कभी याद आ रही थी? हम तो अपने जनोंकी प्रयोजन सिद्धिके लिये यहाँ आये थे और शत्रुपक्षका नाश करनेमें हमें इधर ही बहुत विलम्ब हो गया, अतः हम तुमसे न मिल सके ॥ ४२ ॥ बड़े धोखेबाज हैं, अकृतज्ञ हैं, हमें छोड़कर चले गये—इस तरह पुनः न मिलनेकी आशंकासे तुम हमें अवश्य अपराधभागी बनाती रही होगी। परन्तु इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्राणियोंका संयोग और वियोग परमेश्वरके अधीन है। भगवान् ही प्राणियोंको एक साथ मिलाते तथा उन्हें फिर पृथक् करते रहते हैं ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार पवन मेघ समुदाय, तृण, रूई तथा धूलिको एक जगह फिर उन्हें पृथक् कर देता है, उसी प्रकार विश्वस्रष्टा भगवान् भी प्राणियोंको कहीं संयुक्त कर उन्हें फिर वियुक्त कर देता है ॥ ४४ ॥ चूँकि मेरी भक्ति ही प्राणियोंकी सद्रूप मुक्ति दिलानेमें समर्थ है, अतः मेरे विषयमें जो तुम्हें आजतक स्नेह बना रहा, उसीका यह फल है कि यह पुनर्मिलन प्राप्त हो सका—यह कम सौभाग्यकी बात नहीं है ॥ ४५ ॥ गोपियो, जिस प्रकार भौतिक शरीरवादिकोंका आदि और अन्त पाँचों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महाभूत ही हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये ही सर्वत्र व्याप्त हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियोंका मैं ही आदि और अन्त हूँ तथा उनके बाहर-भीतर सर्वत्र मेरा ही वास है। अतः सर्वव्यापी मैं तुम्हें प्राप्त ही हो गया ॥ ४६ ॥ गोपियो, एवं घट, शराव आदि चार प्रकारके शरीर अपने कारणरूप आकाशमें ही स्थित हैं, भोक्तारूप, आत्मामें नहीं। जीवात्मा तो उन भूतोंमें भोक्ताके रूपसे व्याप्त है, कारण रूपसे नहीं। । भोक्ता और भोग्य दोनों ही सबके कारणभूत निर्विकार मुझमें प्रतीत हो रहे हैं—यह अच्छी तरह समझ लो ॥ ४७ ॥ श्रीशुकदेव-

उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ॥ तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४८ ॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहञ्जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे वृष्णिगोपसङ्गमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

जीने कहा—राजन्, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्राप्त आत्मतत्त्वकी शिक्षासे शिक्षित होकर वे सब गोपियाँ उस आत्मतत्त्वके निरन्तर चिन्तनसे जीवके आवरक अपने अज्ञानको नष्ट करके सर्वात्मक उस भगवान्को अच्छी तरह समझ गयीं ॥ ४८ ॥ और भगवान्से उन्होंने यों प्रार्थना की—हे कमलनाभ, आपका चरणारविन्द, जो संसाररूपी कूपमें गिरे हुए मनुष्योंने निकालनेका सहारा है, जिसका अगाध बोधवाले बड़े-बड़े योगेश्वर लोग अपने हृदयमें निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, हम गृहस्थोंके मनमें सदा आविर्भूत होता रहे ॥ ४९ ॥

बयासी अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, एक समयकी बात है, कि सूर्यग्रहण लगनेवाला था। सभी लोग कुरुक्षेत्रकी यात्रा कर रहे थे। यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भीं सपरिवार वहाँकी यात्राके लिये प्रस्थान किया और द्वारकापुरीकी रक्षाके लिये कुछ यदुवंशियोंके साथ अनिरुद्धको नियुक्त कर दिया। वहाँ पहुँचनेके बाद ग्रहण स्नान कर उन लोगोंने अनेक गौएँ विधिवत् ब्राह्मणोंको दान दीं। श्रीकृष्णमें अपने प्रेमकी प्रार्थना करते हुए उन्होंने ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराया और उनसे आशीर्वाद ग्रहण किया। उसके बाद वहाँपर आये हुए अपने सुहृद् राजाओंसे उनकी भेंट हो गई और कुन्तीके सहित पाँचो भाई पाण्डवोंसे भी मुलाकात हुई। कुन्तीने अपने भाई, भतीजोंसे भेंट कर अति प्रसन्नता प्राप्त की। बाबा नन्द और यशोदाने जब सुना कि श्रीकृष्ण सपरिवार स्नानके लिये आये हैं, तो वे भी गोप गोपियोंके साथ वहाँ आये और परम प्रसन्न हो उन्होंने वसुदेवजीसे मिलकर कुशल-क्षेम पूछा। कृष्ण और बलरामने भी अपने माता-पिता यशोदा और नन्दको प्रणाम किया। उन लोगोंने उन्हें अपनी गोदीमें बिठाकर उनका गाढ़ आलिंगन किया। तत्पश्चात् गोपियोंको प्रेम विह्वल जान भगवान्ने उन्हें एकान्तमें ले जाकर उनसे भेंट की और अध्यात्मज्ञानका उपदेश देकर उन्हें शिक्षित बनाया। अन्तमें गोपियोंने कहा—हे पद्मनाभ, आपसे प्रार्थना है कि—आपका चरणारविन्द हम गृहस्थोंके मनमें सदा आविर्भूत होता रहे।

—०※०—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

[द्रौपदीके पूछनेपर भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपने-अपने विवाहकी बातें बतलाना]

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, गोपियोंके गुरु एवं परमगति भगवान् श्रीकृष्णने उनपर इस तरह अनुग्रह कर युधिष्ठिरजी तथा अन्य मित्रोंसे उनका कुशल पूछा ॥ १ ॥ तीनों लोकके ईश भगवान् श्रीकृष्णके इस तरह आदरपूर्वक पूछनेपर उनके चरणकमलके दर्शनसे विगतकल्मष वे सब अति प्रसन्न हो बोल उठे ॥ २ ॥ हे प्रभो, देहधारियोंके देह सम्पादक अनादि अज्ञानको दूर करनेवाले बड़े-बड़े पूज्य चरण व्यास आदि महर्षियोंके मुखपङ्कज द्वारा निकले आपके चरणारविन्द सबका यानी कथामृतका जो कोई कहीं पर भी अपने कर्णपुटोंसे यथेच्छ पान करते हैं, भला उनका अमङ्गल कैसे हो सकता है ॥ ३ ॥ भगवन्, आप अपने स्वरूप प्रकाशसे बुद्धिकृत जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंको दूरकर देनेवाले हैं, आप आनन्दके प्रवाह स्वरूप, पूर्णानन्द, अपरिछिन्न, अप्रतिहत चिच्छक्तिसे सम्पन्न हैं। कालके प्रभावसे विलुप्त हुए वेदोंकी रक्षाके लिए अपनी योगमायासे आपशरीर धारण करते हैं ऐसे परम-

श्रीशुक उवाच ॥ तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥ युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥ त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ॥ प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥ कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ॥ पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहम्भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥ हित्वात्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानन्दसंप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् ॥ कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ॥ समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौसले ॥ हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान्स्वयम् ॥ उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ चैद्याय माऽर्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः ॥ निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्त-

हंसोंकी गति आपको हमारा प्रणाम है ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इस प्रकार उत्तमश्लोक शिखामणि भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति जब सब लोग कर रहे थे, उसी समय अन्धकों तथा कौरवों आदिकी स्त्रियाँ वहाँ आकर तीनों लोकमें वर्णित भगवान् गोविन्दके चरित्रका वर्णन आपसमें करने लगीं। उनका वर्णन मैं आपसे करता हूँ, ध्यान देकर सुनिये ॥ ५ ॥ द्रौपदीने पूछा—हे वैदर्भि, हे भद्रे, हे जाम्बवति, हे कौसले, हे सत्यभामे, हे कालिन्दि, हे शैब्ये, हे रोहिणी, हे लक्ष्मणे तथा हे कृष्णपत्नियो, आप लोग मुझे यह बतलानेकी कृपा करें कि—भगवान् अच्युतने अपनी मायासे लोकका अनुकरण कर आपलोगोंका वरण किस प्रकार किया ? ॥ ६,७ ॥ श्रीरुक्मिणीजीने कहना प्रारम्भ किया कि—हे द्रौपदी, श्रीनिकेत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌ने मुझे जब मेरे भाई रुक्मने शिशुपालको देनेका विचार किया था, उसी समय उसके पक्षपाती सभी राजे अपने-अपने धनुषबाण आदि शस्त्रास्त्र लेकर भगवान्‌का विरोध करनेके लिये सज्जित हो खड़े थे, लेकिन जैसे बकरी या भेड़ीके समूहसे मृगराज अपना अंश ले लेता है उसी प्रकार सभी अजेय राजाओंका मस्तक नीचाकर अपना चरण उनके सिर पर रख भगवान्‌ने उनका मर्दन किया और मुझे अनुगृहीत किया। लक्ष्मीके आश्रय उस भगवान्‌का वह चरण मेरे अर्चनके लिये सदा प्रस्तुत रहे ॥ ८ ॥ सत्यभामाने कहा—भाईके मरनेके कारण दुःखित हृदय मेरे पिता द्वारा स्यमन्तकमणि चुरानेका अपयश हटानेके लिये ऋक्षराज जाम्बवान्‌को मारकर भगवान्‌ने मेरे पिताको वह मणि दिया। इस अपराधसे भयभीत हो मेरे पिताजीने सर्वसमर्थ भगवान्‌को मुझे दे दिया। यद्यपि मुझे दूसरेको देनेके लिये मेरे पिताजी वचनबद्ध हो चुके थे ॥ ९ ॥ जाम्बवतीने कहा—मेरे पिताजीने इन्हें अपने प्रभु तथा अपने कुलके देवता भगवान् सीतापति ने जाकर इनके साथ सत्ताइस रोजतक निरन्तर लड़ते रहे। तदनन्तर जब उन्हें भलीभाँति यह विश्वास हो गया कि 'ये साक्षात् सीतापति मेरे प्रभु

च्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥ सत्यभामोवाच ॥ या मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात्स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥ जाम्बवत्युवाच ॥ प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाभ्ययुध्यत् ॥ ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ॥ १० ॥ कालिन्द्युवाच ॥ तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया ॥ सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ मित्रविन्दोवाच ॥ यो मां स्वयम्वर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः ॥ भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्याऽस्तु मेऽनुभवमङ्घ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥ सत्योवाच ॥ सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ॥ तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम् ॥ पथि निर्जित्य राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥ भद्रोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय

ही हैं' तो चरण पकड़कर मुझे स्यमन्तकमणिके साथ प्रभुको उपहाररूपमें अर्पित कर दिया। इसलिये मैं इनकी दासी हो सकी हूँ ॥ १० ॥ कालिन्दीने कहा—भद्रे, जब मैं भगवान्‌के चरणारविन्दके स्पर्शकी इच्छासे तप कर रही थी, तो सर्वान्तरयामीं भगवान्‌ने अपने मित्र अर्जुनके साथ जाकर मेरा पाणिग्रहण किया। उनके घरमें झाड़ू देनेवाली वही मैं प्रभुकी दासी हूँ ॥ ११ ॥ भद्राने कहा—कुत्तोंके झुण्डमें गये अपने अंशको जैसे सिंह उनसे छीन लाता है वैसे ही स्वयम्बरमें जाकर अनेक राजाओं तथा अपकारमें तत्पर मेरे भाइयोंको पराजितकर जो भगवान् अपनी द्वारकापुरीमें मुझे उठा लाये, लक्ष्मीके आश्रय उन भगवान्‌के चरणकमल धोनेका अनुभव मुझे प्रत्येक जन्ममें होता रहे ॥ १२ ॥ सत्याने कहा—मेरे पिताने राजाओंके पराक्रमकी परीक्षाके लिये सात तीखे सींगवाले बलिष्ठ बैल बाँधनेके लिये छोड़ रखे थे। उन वीरोंका मद चूर्ण कर देनेवाले बैलोंको भगवान्‌ने पकड़ कर अनायास ही इस तरह बाँध दिया, जिस प्रकार लड़के बकरीके बच्चेको पकड़ बाँध देते हैं। जिस भगवान्‌ने इस कारके पराक्रम शुल्कसे मेरा पाणिग्रहण किया और जो रास्तेमें राजाओंके समूहको जीतकर चतुरंगिणी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सेना सहित मुझे अपनी पुरीमें ले आये, उनके चरणकी सेवा चाहनेवाली मैं उनकी सदाके लिए दासी बनी रहूँ ॥ १३, १४ ॥ मित्रविन्दाने कहा—हे द्रौपदीजी, मेरे पिताजीने मेरे मनको भगवान्में संलग्न समझकर मेरे मामाके लड़के भगवान् श्रीकृष्णको स्वयं बुलाकर मुझे अक्षौहिणी सेनाके साथ सखियों सहित समर्पित कर दिया अपने कर्मोंके द्वारा संसारमें भटक रही मैं उन भगवान्के पादस्पर्शको प्रत्येक जन्ममें चाह करती हूँ, जिससे कि मेरा कल्याण हो ॥ १५, १६ ॥ लक्ष्मणाने कहा—हे राज्ञि द्रौपदि, जिस प्रकार भद्राका मन भगवान्के चरणारविन्दमें लग गया था, उसी प्रकार नारद द्वारा प्रशंसित भगवान् मुकुन्दमें, मेरा भी मन लग गया था। पद्महस्ता मैंने भी अनेक राजाओंको छोड़कर उन्हें ही अपना पति बना लिया ॥ १७ ॥ हे सति, द्रौपदीजी, मेरे पिता बृहत्सेनजीने मेरा ऐसा निश्चय जानकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए उपाय रचा। मेरे पिताजीकी प्रसिद्धि बहुत दूरतक थी। वे मेरा खूब प्यार करते थे ॥ १८ ॥ हे रानी द्रौपदीजी, अर्जुनकी प्राप्तिके लिए जिस प्रकार आपके पिताजीने मत्स्य वेधनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसी प्रकार मेरे स्वयम्वरमें भी मेरे पिताजीने

दत्तवान् ॥ कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तमक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच ॥ ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ॥ बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥ यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ॥ अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ॥ आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥ २१ ॥ आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः ॥ आकोष्टि ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥२२॥ सज्यं कृत्वाऽपरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ॥ भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥ मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ॥ पार्थो यत्तोऽसृजद् बाणं नाच्छिन-

की थी। परन्तु इसमें विशेषता यह थी कि वह मत्स्य चारों तरफ भीतरसे ढका हुआ था, केवल खम्भेके पास रखे हुए कलशके जलमें उसका प्रतिबिम्ब देखकर ही उसका वेध करना था। और आपके स्वयम्वरमें मत्स्य भीतरसे नहीं ढका था। इसलिए अर्जुन उसको वेध नहीं सकते थे ॥ १९ ॥ स्वयम्वरके इस प्रणको सुनकर देश-देशके हजारों नरेश मेरे पिताजीके नगरमें पहुँचे, वे नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र चलानेमें कुशल थे। उनके साथ उनके उपाध्याय भी आये थे ॥ २० ॥ सबका आदर-सत्कार मेरे पिताजीने किया। उन सबने मेरी प्राप्तिकी इच्छासे सभामें अपने पराक्रम तथा अवस्थाके अनुसार बाणसहित धनुष उठाया ॥ २१ ॥ बहुतोंने तो उठाकर भी धनुष-बाण रख दिया, क्योंकि वे धनुषकी डोरी न चढ़ा सके। कितने वीरोंने तो थोड़ी दूर धनुष पर डोरी चढ़ानेकी इच्छा से लचकाया, परन्तु वैसा न कर सके और धनुषकी चोट खाकर पृथिवी पर धड़ामसे गिर पड़े ॥ २२ ॥ अनेक वीर धनुष के ऊपर डोरी चढ़ाकर भी उस मीनका वेध न कर सके, क्योंकि लक्ष्यस्थितिका उन्हें ठीक-ठीक परिज्ञान नहीं था। वे लोग मगध, अम्बष्ठ एवं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चेदि देशके राजे थे। भीम, कर्ण और दुर्योधन की भी यही दशा हुई ॥ २३ ॥ अर्जुनने जलमें उसके आभासको देखकर उसकी गति पहचान ली और उन्होंने बड़े यत्नसे बाण भी चलाया, लेकिन बाणसे उसका स्पर्शमात्र हुआ, वह गिर न सका ॥ २४ ॥ इस तरह अहङ्कारी राजाओंका मान भङ्ग हो जानेसे जब वे सबके सब अपनी ताकत अजमाकर अलग हो बैठ गये तब भगवान्‌ने सहजमें ही धनुषको चढ़ाकर ॥ २५ ॥ जलमें मत्स्यको देख उसपर निशाना लगाकर ऐसा बाण मारा कि वह कटकर गिर पड़ा। उस समय जयप्रद भगवान् सूर्यदेव अभिजित् नक्षत्र पर थे ॥ २६ ॥ आकाशमें दुन्दुभि बजने लगी, और देवता लोग हर्षसे अतिविह्वल हो जयशब्दके साथ पृथिवीपर फूलोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २७ ॥ तब विवाह के उपर्युक्त अत्यन्त सुन्दर नवीन रेशमी वस्त्र पहन तथा चादर ओढ़ लज्जापूर्वक मुसकुरा रही मैं नूपुरोंकी झनकार करती हुई रङ्गशालामें पहुँची। उस समय मेरे सिरके बालोंमें फूलोंकी माला विराज रही थी और सोनेसे देदीप्यमान मणियोंकी माला मेरे हाथोंका सौन्दर्य बढ़ा रही थी ॥ २८ ॥ घुघुराली चमकीली सुन्दर बालों तथा कुण्डलोंकी कान्तिसे अजीब सौन्दर्य

त्पस्पृशो परम् ॥ २४ ॥ राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ॥ भगवान्धनुरादाय सज्यं कृत्वाथ लीलया ॥ २५ ॥ तस्मिन्सन्धाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ॥ छित्त्वेषुणापातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ॥ देवाश्च कुसुमासारान्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् ॥ नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कबरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ॥ राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥ तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यानकादयः ॥ निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः ॥ ३० ॥ एवं वृते भगवति मयेशे नृपयूथपाः ॥ न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥ मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ॥ शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम् ॥ मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥ तेऽन्व-

धारण कर रहे कपोलोंसे युक्त अपना चाँदसा मनोहर मुख उठा शरत्कालकी चन्द्रकिरण-सी मुसकुराहट भरे कटाक्षसे एकबार राजाओंकी ओर अवज्ञापूर्वक निहारकर भगवान् मुरारिके गलेमें मैंने धीरेसे माला डाल दी। मेरा हृदय तो उनमें अनुरक्त था ही ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीहरिके गलेमें माला पड़ते ही मृदङ्ग पटह, शंख, भेरी और आनक आदि बाजोंकी ध्वनि गूँज उठी। नट तथा नर्तकियोंका नृत्य होने लगा। गायक लोग गान करने लगे ॥ ३० ॥ इसप्रकार हे द्रौपदीजो, जब मैं मायापति भगवान् मधुसूदनका वरण कर चुकी, तो कामके वशीभूत उन राजाओंको यह सहन नहीं हुआ, वे भगवान्‌के साथ स्पर्धा करने लगे ॥ ३१ ॥ चतुर्भुज भगवान्‌ने जब राजाओंको इसप्रकार देखा, तो मुझे रथपर बैठाकर, जिसमें चार उत्तम घोड़े जुते हुए थे अपने शार्ङ्ग धनुषको उठा रणके लिए तैयार हो गये ॥ ३२ ॥ रानी द्रौपदीजी, भगवान्‌से प्रेरित हो दारुकने सुवर्णजटित वह रथ हाँक दिया और जिस प्रकार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मृगोंके देखते-देखते सिंह अपना अंश लेकर चल देता है, उसी प्रकार राजाओं के देखते-देखते भगवान् मुझे उनके बीचसे लेकर चल दिये ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार गाँवके कुत्ते सिंहको रोकनेके लिए अपनी पूँछ उठाकर उसके पीछे दौड़ पड़ते हैं उसी प्रकार कुछ इने-गिने तुच्छ राजे भगवान्को रास्तेमें रोक रखनेके लिए अपना धनुष-बाण उठाकर लड़नेको तैयार हो उनके पीछे दौड़ पड़े ॥ ३४ ॥ उनमेंसे बहुत राजे भगवान्के शारंग धनुषसे छूटे बाणोंकी वर्षासे हाथ, पैर, कन्धे आदिके कटकर गिरजानेसे युद्धभूमिमें गिर पड़े, यह देख कितने ही और राजे भाग खड़े हुये ॥ ३५ ॥ उसके बाद अस्ताचलमें सूर्य भगवान्की तरह, रविदेवको ढक देनेवाली ध्वजा, पताकाओं एवं चित्र-विचित्र तोरणोंसे युक्त स्वर्ग तथा मर्त्यलोकमें प्रशंसनीय अपनीपुरी कुशस्थलीमें यदुपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रविष्ट हुए ॥ ३६ ॥ मेरे पिताजीने भी नानाप्रकारके अमूल्य वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसनों तथा पात्र आदि वस्तुओं के द्वारा अपने इष्ट-मित्रों सगे-सम्बन्धियों तथा भाई-बन्धुओंका खूब सत्कार किया ॥ ३७ ॥ पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णको भी पिताजीने दासियों, सर्वसम्पत्तियों पैदल सेनाओं,

सज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ॥ संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥ ३४ ॥ ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ॥
निपेतुः प्रधने केचिदेके सन्त्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलङ्कृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ॥ कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभि-
संस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ॥ महार्हवासोऽलङ्कारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥
दासीभिः सर्वसम्पद्भिर्भटेभरतवाजिभिः ॥ आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ॥
सर्वसङ्गनिवृत्त्याद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ॥
निर्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥ न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ॥ वैराज्यं
पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ॥ कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥

रथों, एवं सुन्दर तेज दौड़नेवाले अनेक घोड़ोंके सहित बहुमूल्य अनेक शस्त्रास्त्र समर्पित किये ॥ ३८ ॥ हे महारानी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पूर्वजन्ममें हम लोगोंने सभी आसक्तियोंका त्यागकर कोई न-कोई बड़ी भारी तपस्या की थी। उसका ही प्रभाव है कि इस जन्ममें आत्माराम भगवान् मधुसूदनकी हम गृहदासियाँ बन सकी हैं ॥ ३९ ॥ महर्षियों ने कहा—सारी सेनाओंके साथ भौमासुरको मारकर उसके बाद 'पृथिवीका दिग्विजय करते समय युद्धमें पराजित हुए अनेक राजाओंकी कन्याएँ भौमासुरके द्वारा उसके महलके अन्दर रोक रखी गयीं हैं'—यह जानकर हम सबको वहाँ बन्धुनमुक्त करके आप्तकाम होते हुए भी उन्होंने संसारसे मुक्त कर देनेवाले उनके चरण-कमलोंका बराबर स्मरण कर रही हम राजकुमारियोंके साथ पाणिग्रहण किया ॥ ४० ॥ हे साध्वि, हमलोग साम्राज्य, इन्द्रपद तथा दोनोंके उपभोगकी क्षमता अणिमादि सिद्धि ब्रह्मपद, मोक्ष तथा साम्राज्य आदि कुछ नहीं चाहतीं ॥ ४१ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हम तो लक्ष्मीके कुच कुंकुमकी गन्धसे युक्त उन भगवान् गदाधरके श्रीचरणरजका ही वहन सिरसे करना चाहती हैं ॥ ४२ ॥ उदारचेता जिन भगवान्के चरणस्पर्शकी अभिलाषा, उनके गौ चराते समय गोप, व्रजकी स्त्रियाँ, भीलनियाँ तथा जड़ तृण एवं लताएँ भी करती थीं ॥ ४३ ॥

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ॥ गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

तिरासी अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, सबके प्रेमपूर्वक मिल लेनेके बाद भगवान्की पत्नियोंसे रानी द्रौपदीके पूछनेपर उन सबने अपने-अपने विवाहकी बातें बतलायीं। रुक्मिणीने कहा—हे महारानी, मेरे भाई मुझे शिशुपालको देना चाहते थे। पर भगवान् मेरे भाइयोंके सहित राजाओंको जीतकर मुझे अपने यहाँ लाये। सत्यभामाने कहा—मेरे पिता भगवान्को स्यमन्तकमणीकी चोरी लगायी। इसलिये भगवान्ने जाम्बवान्को मारकर वह मणि लाकर मेरे पिताको दे दी। मेरे पिताजी भयभीत हो मुझे भगवान्को अर्पित कर दिये। जाम्बवतीने कहा—स्यमन्तकमणिके लिये मेरे पितासे भगवान् सत्ताईस दिनतक युद्ध करते रहे। अन्तमें मेरे पिताने भगवान्को सीतापति समझकर मेरे साथ वह मणि अर्पित कर दिया। कालिन्दीने कहा—मेरी तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान्ने आकर मेरा स्वयं वरण किया। भद्राने कहा—मेरा प्रेम जान भगवान् मेरे भाइयोंके विरोध करनेपर भी स्वयम्वरसे ले आये। सत्याने कहा—मेरे प्रेमसे भगवान् सात विशाल वृषभोंको बाँधकर, जो कि मेरे वरण करनेमें शुल्क स्वरूप थे, मुझे लाये। मित्रवृन्दाने कहा—मेरे चित्तको भगवान्में संलग्न देख उन्हें स्वयं बुलाकर दे दिया। लक्ष्मणाने कहा—मेरा मन भी भगवान् मुकुन्दमें लग गया था, जब मेरे पिताको यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने स्वयम्बर किया और एक मछलीको ऊपर स्तम्भमें बँधवा दिया जिसे नीचे रखे हुए कलश-जलमें देखकर मारना था। सब राजाओंका मान मर्दन हो जानेपर भगवान्ने उसे सहजमें ही मार गिराया और मेरा वरण किया। महिषियोंने कहा—जब भौमासुरको मारकर हमलोगोंको उसके कारागारसे छुड़ाया और प्रेमके साथ हमलोगोंको स्वीकार किया। हम भगवान्की सब दासियाँ उनके चरणरजको बार-बार सिरपर रखनेकी इच्छुक हैं तिरासी अध्याय समाप्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ चतुराशीतितमोऽध्यायः ❋

(वसुदेवजीका विष्णुयज्ञोत्सव तथा उसमें समागत बन्धुओंकी विदाईका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन, सर्वात्मक तथा सांसारिक दुःखोंके नाशक भगवान् परमानन्द श्रीकृष्णचन्द्रके इस तरह विवाहोत्सवको सुनकर कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, माधवी और अन्य राजमहिर्षियों एवं गोपियोंकी आँखें प्रेमाश्रुसे आकुल हो गईं। सुनकर उन सबको ही अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥ १ ॥ इस तरह पुरुषोंका पुरुषोंसे एवं स्त्रियोंका स्त्रियोंसे परस्पर संभाषण हो रहा था कि कृष्ण एवं बलरामके दर्शनकी इच्छासे मुनि वृन्दों का वहाँ आगमन हुआ ॥२॥ महात्मा व्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द भरद्वाज, गौतम, शिष्योंके सहित परशुरामजी, भगवान वसिष्ठ मुनि, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय और बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्माके पुत्र सनक आदि आङ्गिरा, अगस्त्य,

श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥ कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं सर्वा
विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥ इति सम्भाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ॥ आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥ द्वैपायनो
नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ॥ विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥ रामः सशिष्यो भगवान्वसिष्ठो गालवो भृगुः ॥
पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः ॥ अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥५॥
तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ॥ पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥६॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ॥
स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥ उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥ सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुश्रृण्वतः ॥ ८ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किं स्वल्पतपसां नृणाम-

याज्ञवल्क्य तथा वामदेव तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुतसे ऋषि वहाँ आ धमके ॥ ३-५ ॥ विश्ववन्दित उन ऋषियोंको पहलेसे बैठे हुए सब राजे एवं कृष्ण तथा बलरामजी झट उठकर उनको प्रणाम किया ॥ ६ ॥ जिस प्रकार वहाँपर उपस्थित सब लोगोंने स्वागत करते हुए आसन, पाद्य, अर्घ्य, माल्य, धूप, अनुलेपन आदि वस्तुओंसे उनकी पूजा की, उसीप्रकार बलरामके साथ श्रीकृष्णने भी उनकी पूजा की ॥ ७ उसके बाद धर्मकी रक्षाके लिये विग्रह धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने सुखपूर्वक बैठे हुए उन ऋषियोंसे कहा। भगवान्के उस भाषणको उस समय वहाँकी सारी उपस्थित जनता बड़े ध्यानसे चुपचाप सुन रही थी ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—अहो, हमलोगोंका जन्म आज सार्थक हो गया। जन्म लेनेका फल हमें आज पूर्णरूपसे लब्ध हो गया। क्योंकि देवताओंको भी दुष्प्राप्य आज हमें इन योगेश्वरोंके दर्शन प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ स्वल्प पुण्यवाले तथा प्रतिमामें ही देवबुद्धि रखनेवाले हम तुच्छ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राणियोंको इन योगेश्वरोंके दर्शन, स्पर्शन, प्रश्न, प्रणाम, पाद-अर्चन आदि क्यों कैसे प्राप्त हुए, यह कम आश्चर्य नहीं है ॥ १० ॥ साधु महात्माओंके सिवा जलमय तीर्थ सेवाके योग्य नहीं है तथा मिट्टी या पत्थरके बने देवता भी सेवाके योग्य नहीं हैं, क्योंकि ये तीर्थ आदि तो बहुत कालके बाद मनुष्यको पवित्र करते हैं, परन्तु साधु-महात्मा लोग तो दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हैं ॥ ११ ॥ अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, तारागण, भू, जल, आकाश, वाणी और मन—ये सभी अनेक वर्षोंतक उपासित होनेपर भी भेदबुद्धि रखनेवाले पुरुषके पापका शीघ्र नाश नहीं करते, किन्तु भेदशून्य विवेकी महापुरुष तो क्षणमात्रकी सेवासे सम्पूर्ण मनुष्यके पापोंको शीघ्र नाश कर डालते हैं ॥ १२ ॥ जिस मनुष्यकी वात, पित्त और कफ—इन तीन विकारोंसे युक्त शव तुल्य शरीरमें ही आत्मबुद्धि, कलत्र, पुत्र आदिमें स्वत्वबुद्धि, पार्थिव आदि विकारोंमें देवबुद्धि तथा जलमें ही तीर्थबुद्धि रहती है, ज्ञानीजनोंमें नहीं रहती वह गौके लिए अपनी पीठपर घास ढोनेवाली गदहेके समान है ॥ १३ ॥ शुकदेवजीने कहा—राजन्, इसप्रकार तीक्ष्णबुद्धि भगवान् श्रीकृष्णके दुरन्वय वचन सुनकर उन ऋषियोंकी बुद्धि क्षणमात्र-

चर्यां देवचक्षुषाम् ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥ उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ १२ ॥ यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ॥ यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः ॥ वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः ॥ १४ ॥ चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ॥ जनसङ्ग्रह इत्यूचुः स्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥ मुनय ऊचुः ॥ यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ॥ यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीह एतद् बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ॥ भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ १७ ॥ अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि

के लिए भ्रममें पड़ गई। वे कुछ देरके लिये चुप हो गये ॥ १४ ॥ बहुत देरतक विचार करनेके बाद उन महर्षियोंने भगवान्के जनसंग्रहमात्रकी इस कर्माधिकारके भावको यानी सारी दुनियाँ मेरे ही समान मुनिजनोंकी सेवा करे—इस अभिप्रायको समझकर मुस्कराते हुए जगद्गुरु उन श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा ॥ १५ ॥ जिनकी मायासे दक्षप्रजापतियोंके भी अधीश्वर तथा तत्त्वविदोंमें सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी हमलोग मोहित होते हैं एवं मनुष्योंकी तरह आचरण कर जो अपनेको छिपा रखते हैं, इसलिए साधारण मनुष्यों द्वारा जो नहीं जाने जाते, उन भगवान्की लीला विचित्र है, उसका पता चलना अत्यन्त कठिन है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार एकही नाम रूपवाली पृथिवीसे अनेकों रूप तथा नामके घटादि बनते हैं, उसी प्रकार आप एकही अपनी आत्मासे आसक्तिशून्य हो संसारकी सृष्टि अनेक रूपोंमें करते हैं, इसकी रक्षा करते और फिर संहार भी कर डालते हैं, यह भी सर्वश्रेष्ठ आपका हम ब्राह्मणोंका सम्मान आदि रूप चरित अनुकरणमात्रही है, वास्तविक नहीं ॥ १७ ॥ समय-समयपर अपने भक्तजनोंकी रक्षाके लिए तथा दुष्टोंका नाश करनेके लिए आप शुद्ध सत्त्वस्वरूप शरीर धारण करते हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और अपनी नाना प्रकारकी लीलाओं द्वारा लोक-शिक्षाके लिए वर्णाश्रमधर्माभिमानी होकर सनातन वेदपथका रक्षण करते हैं–वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं ॥ १८ ॥ वेदस्वरूप आपका शुद्ध हृदय है, जिसमें तप, स्वाध्याय और संयमसे व्यक्त (कार्य) अव्यक्त (कारण) और इन दोनोंसे–कार्य और कारणसे भी परे सत्तामात्रपर ब्रह्मकी उपलब्धि होती है ॥ १९ ॥ इसलिये हे ब्रह्मन्, आप उन ब्राह्मणोंके कुलको पूजते हैं–सम्मानित करते हैं, जो वेदोंके प्रवर्तक आपकी स्वरूप प्राप्तिके स्थान हैं। यही कारण है कि आप ब्राह्मण भक्तोंमें मुख्य बने हुए हैं ॥ २० ॥ हे भगवन्, सज्जनोंकी गति आपका साथ प्राप्त हो जानेसे आज हमलोगोंका जन्म सफल हो गया। हमारी विद्या, तपस्या तथा ये आँखें भी आज सफल हो गयीं, क्योंकि सम्पूर्ण कल्याणोंकी परम अवधि आपकी संगति ही है। इससे उत्तम इस संसारमें दूसरा कोई फल नहीं है ॥ २१ ॥ इसलिए जिनकी बुद्धि कभी कुण्ठित नहीं होती एवं अपनी योगमाया द्वारा जिन्होंने अपनी शक्ति छिपा रखी है, उन आप परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥ २२ ॥ ये सब राजे तथा एक साथ स्नान-पान करनेवाले ये यदुवंशी लोग मायाके

सत्त्वं खलनिग्रहाय च ॥ स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भगवन् ॥ १८ ॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥ १९ ॥ तस्माद् ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ॥ सभाजयसि सद्धाम तद् ब्रह्मण्याग्रणी-र्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ॥ त्वया सङ्गम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः ॥ २१ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥ २२ ॥ न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ॥ मायाजवनिकाच्छन्न-मात्मानं कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ॥ नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥ २४ ॥ एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया ॥ मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते ददृशिमाङ्घ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं

आवरणसे आच्छन्न, जगत्की सृष्टि आदिके निमित्तभूत सबकी आत्मा परमेश्वर आपको नहीं जानते ॥ २३ ॥ जैसे गुणोंके कार्य शरीरको ही आत्मतत्त्वरूपसे देखनेवाला पुरुष स्वप्न देखते समय मिथ्याभूत मनसे प्रतिभात सिंह, व्याघ्र आदि रूप ही अपनेको समझता है, तत्तत् आकारसे रहित तथा भिन्न देवदत्त, यज्ञदत्त आदिरूप अपनेको नहीं समझता, वैसेही हे भगवन्, विषयोंकी ओर हो रही इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे भ्रान्तचित्त पुरुष अपने विवेकज्ञानके नष्ट हो जानेसे स्वप्नादिके तुल्य देहादि पदार्थोंमें विद्यमान रहते हुए भी आपको अपनी आत्मा नहीं जान पाता बल्कि देहादिको ही अपनी आत्मा समझता है ॥ २४, २५ ॥ हे भगवन्, पापोंके समूहका नाश करनेवाली गंगाकी जो उत्पत्तिके स्थान हैं, परमपूत योगियोंके हृदयमें जिनका वास रहता है, आपके उन चरणोंका दर्शन आज हमलोगोंने किया। आपके चरणोंमें बढ़ी भक्तिसे ही अन्तःकरणका अज्ञान नष्ट हो जानेसे हम आज आपके दर्शन कर पाये हैं। भगवन्, हमारे ऊपर अब अनुग्रह कीजिये–दयापूर्वक जाने की आज्ञा दीजिए ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजर्षे, इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णजीसे तथा धृतराष्ट्र और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युधिष्ठिरसे आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमपर जानेकी मुनियोंने इच्छा की ॥ २७ ॥ उन सब ऋषियोंके अपने-अपने आश्रमपर जानेका उद्योग करते देखकर महा यशस्वी वसुदेवजी उनके
पास जा प्रणाम र संयत ही मधुरवाणीमें बोले—॥ २८ ॥ वसुदेवजीने कहा—सर्वदेवस्वरूप आप ऋषियोंको नमस्कार है। हे ऋषियो, थोड़ा सुन लीजिये, मेरी वाणीपर ध्यान देकर
आपलोग यह बतलानेकी कृपा करें कि कौन-सा ऐसा कर्म है, जिसके अनुष्ठानसे कर्मोंका निरास हो सकता है ॥ २९ ॥ नारदजीने ऋषियोंको विस्मित देखकर कहा—हे ऋषिगण,
भगवान् श्रीकृष्णजीसे न पूछकर अपने कल्याणका मार्ग जो वसुदेवजीने हमलोगोंसे पूछा है, इसपर आपलोगोंको आश्चर्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन्होंने भगवान्को अभीतक अपना
बचा ही समझ रखा है ॥ ३० ॥ इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्योंका अधिक निकट सम्पर्क होना अनादरका कारण बन जाता है। जैसे कि गंगातीरवासी मनुष्य परमपावनी गंगाको
छोड़कर अन्य तीर्थोंके जलकी ओर अपनी शुद्धिके लिये दौड़ता है और वहाँ स्नानकर सन्तुष्ट होता है ॥ ३१ ॥ जिनकी प्रकाशस्वरूप अनुभूति समयसे फलोंकी तरह, स्वयं विद्युतके

धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ॥ राजर्षे स्वाश्रमान् गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ॥ प्रणम्य चोपसङ्गृह्य
बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥
नारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ॥ कृष्णं मत्वार्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥ सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानाम-
नादरणकारणम् ॥ गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१ ॥ यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै ॥ स्वतोऽन्यस्माच्च
गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ॥ प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो
मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् ॥ सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥
कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधुनिरूपितः ॥ यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ॥
दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥

नाशकी तरह, दण्डादि दूसरों द्वारा घटादिकोंकी तरह तथा गुणोंसे रङ्गद्वारा घटके पूर्व रूपादिकी तरह इस विश्वके नाश या उत्पत्तिसे नष्ट नहीं होती ॥ ३२ ॥ जिनका अनुभव रागद्वेषा-
भिनिवेशरूपपञ्चक्लेशनिमित्तककर्मोंके फलभूत सुख दुःख आदिरूप सत्त्वादि गुणोंके प्रवाहसे नष्ट नहीं होता, ऐसे उन अद्वितीय ईश्वरको भी अन्य साधारण प्राणी अपने वैभवरूप
प्राण, मन और बुद्धिसे आच्छन्न ऐसे समझता है, जैसे कि अपने वैभवस्वरूप मेघ, हिम तथा राहुसे आच्छन्न सूर्यको ॥ ३३ ॥ हे राजन्, यों भगवान् नारद मुनिका कथन सुनकर सभी
राजाओं एवं कृष्ण और बलरामके सामने ही मुनियोंने वसुदेवजीसे कहना प्रारम्भ किया ॥ ३४ ॥ प्राणीको चाहिये कि वह श्रद्धापूर्वक यज्ञों द्वारा समस्त यज्ञोंके स्वामी भगवान् विष्णुका
ही यजन करे। कर्मसे कर्मका निरास करनेके लिये यही एक सुगम उपाय विद्वानों द्वारा बतलाया गया है ॥ ३५ ॥ कवियोंने शास्त्र दृष्टि द्वारा चित्तकी शांति तथा आत्माकी सन्तुष्टिका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुगम उपाय एवं धर्म तथा योग भी इसे ही बतलाया है ॥ ३६ ॥ गृहस्थ द्विजातिके लिये यही एक सुगम रास्ता है कि शास्त्रोक्त विधिद्वारा प्राप्त धनसे श्रद्धाके अनुसार परमपुरुष भगवान् विष्णुका वह पूजन करे ॥ ३७ ॥ विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह उपलब्ध धनके फलभूत यज्ञदानादिसे धनैषणाका, गृहके सभी उपभोगों द्वारा स्त्री, पुत्र आदिकी इच्छका एवं काल प्रभावसे क्षयानुसन्धान द्वारा परलोक प्राप्तिकी इच्छा अथवा कालसे देवताओंके नाशके अनुभव द्वारा आत्मलोकेच्छाका त्याग कर दे। इसीप्रकारसभी इच्छाओंका परित्याग कर धीरपुरुष पहले तपोवनमें पहुँचते थे ॥ ३८ ॥ हे प्रभो, द्विजमात्रका जन्म देवऋण, पितृऋण ऋषिऋणके साथ होता है और यज्ञद्वारा देवऋण, अध्ययन द्वारा ऋषिऋण एवं पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृऋणसे विना मुक्त हुए जो गृह त्याग करता है वह वाञ्छित फलको न प्राप्त कर अपने उद्देश्यसे च्युत हो जाता है—नरकमें गिरता ॥ ३९ ॥ महामते, आप तो ऋषिऋण एवं पितृऋणसे मुक्त हो ही चुके हैं। अब यज्ञ सम्पादन द्वारा देवऋणसे ही मुक्त हो, विना ऋणके हो जाइये ॥ ४० ॥ हे वसुदेवजी, आपने अति भक्ति-भावसे भगवान् श्रीहरिकी पूजा

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ॥ आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ॥ ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥३८॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ॥ यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ॥ ३९ ॥ त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ॥ यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ॥४०॥ वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् ॥ जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥४१॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः ॥ तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ॥ तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ॥ स्नाताः सुवाससो राजन्राजानः सुष्ठ्वलङ्कृताः ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥ ४५ ॥ नेदुर्मृदङ्गपटहशङ्खभेर्यानकादयः ॥ ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ॥ जगुः सुकण्ठ्यो गन्धर्व्यः सङ्गीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिञ्चन्विधिवदक्त-

अवश्य की थी, जिसके कारण जगत्के स्वामी आपके यहाँ पुत्ररूपमें अवतरित हुए हैं ॥४१॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस तरहके ऋषियोंके वचन सुनकर प्रसन्नचित्त वसुदेवजीने उन ऋषियोंको प्रणाम करके प्रसन्नकर उन्हींका ऋत्विक्के रूपमें वरण किया ॥ ४२ ॥ हे राजन्, वसुदेव द्वारा विधिवत् वरण ग्रहणकर ऋषियोंने उत्तममन्त्रतन्त्र द्रव्यादिसे सम्पन्न यज्ञों द्वारा उसी स्यमन्तकपञ्चकक्षेत्रमें धार्मिक वसुदेवसे यज्ञ भगवान्का पूजन कराया ॥ ४३ ॥ हे राजन्, जब वसुदेवजीने दीक्षा ग्रहण की, उस समय सभी वृष्णिवशके सब राजे तथा वहाँपर आये हुए अन्यान्य राजे भी स्नानकर अच्छे-अच्छे वस्त्रों, कमलकी मालाओं एव अलंकारोंसे भूषित हो अति शोभित हुए ॥ ४४ ॥ तथा सुन्दर वस्त्रोंसे भूषित गलेमें पदक धारणकर चन्दन आदिसे आलिप्त अंगवाली महाराज वसुदेवकी महारानियाँ भी प्रसन्न वदन हो यज्ञशालामें पूजनकी सामग्री हाथमें लिये आयीं ॥ ४५ ॥ मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी इत्यादि बाजोंके शब्द होने लगे और नर्तकियाँ नाचने लगीं, सूत मागध स्तुति करने लगे तथा कोकिल कण्ठ गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ अपने पतियोंके साथ गान करने लगीं ॥ ४६ ॥ अपनी आँखोंमें अञ्जन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगाये, सम्पूर्ण अंगोंमें मक्खनका लेप किये तथा अपनी अठारह स्त्रियोंके सहित उपस्थित वसुदेवजीको ऋत्विजोंने ऐसे अभिषिक्त किया, जैसे कि पूर्वकालमें अपनी पत्नीरूपतारोंके सहित चन्द्रमाको ॥ ४७ ॥ मृगचर्मसे संवृत वसुदेवजी उन अपनी स्त्रियोंके साथ अत्यन्त सुशोभित हुए, जो रेशमी वस्त्रों, कंकणों एवं हार, नूपुर तथा कुण्डलोंसे अलंकृत अतिशय शोभा पा रही थीं ॥ ४८ ॥ हे महाराज, सदस्योंके सहित, अनेक रत्नों तथा पीताम्बरोंसे अलंकृत महाराज वसुदेवजीके वे ऋत्विक् लोग उस यज्ञशालामें ऐसे शोभने लगे, जैसे कि वृत्रासुर वधके अनन्तर भगवान् इन्द्रके यज्ञमें शोभ रहे थे ॥ ४९ उस समय सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी कृष्ण एवं बलरामजी अपने अपने बन्धुओं तथा अपने अंशभूत पुत्रों और स्त्रियोंसे खूब सुशोभित हो रहे थे ॥ ५० ॥ तदनन्तर विधिपूर्वक क्रमसे अग्निहोत्रादि रूप प्राकृत (ज्योतिष्टोम, दर्श, पूर्णमास) तथा वैकृत (सौर सत्रादि यज्ञों द्वारा द्रव्य (पुरोडाशादि), ज्ञान (मन्त्र) और क्रिया कर्मादि के स्वामी भगवान् विष्णुका उन्होंने पूजन किया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर महाराज वसुदेवजीने उस अवसरपर स्वयं अलंकृत रहते हुए भी ब्राह्मण को खूब विभूषित कर उन्हें शास्त्रोंमें

मभ्यक्तमृत्विजः ॥ पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः ॥ स्वलङ्कृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥ तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ ॥ रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः ॥ प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ॥ स्वलङ्कृतेभ्योऽलङ्कृत्य गोभूकन्या महाधनाः ॥ ५२ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ॥ सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥ ५३ ॥ स्नातोऽलङ्कारवासांसि बन्दिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ॥ ततः स्वलङ्कृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥ ५४ ॥ बन्धून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा ॥ विदर्भकोसलकुरून्काशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥

कहे हुए अनुसार दक्षिणा दी तथा प्रचुर धनोंके साथ नानाविध अलंकारोंसे सुसज्जित गौओं तथा पृथ्वी एवं कन्याओंका भी दान दिया ॥ ५२ ॥ पत्नीसंयाज तथा अवभृथ्य कर्मोंके अनुष्ठानके बाद उन विप्र ऋत्विजोंने यजमानको आगेकर परशुरामजीके ह्रदमें स्नान किया ॥ ५३ ॥ स्नान करनेके बाद वसुदेवजीने तथा उनकी स्त्रियोंने बन्दियोंको नाना प्रकारके वस्त्र तथा अलङ्कार आदि देकर प्रसन्न किया। उसके बाद स्वयं सुन्दर वस्त्र तथा अलंकार आदि धारणकर वसुदेवजीने कुत्ते से लेकर समस्त वर्णोंके प्राणियोंका अन्नदान द्वारा पूजन किया—उन्हें खूब तृप्त किया ॥ ५४ ॥ अत्यन्त प्रीति द्वारा स्त्री-पुत्रों सहित अपने भाइयों, (परिवारके लोगों) तथा विदर्भ१, कोसल२, कुरु३ काशी, केकय* एवं सृञ्जय देशके राजाओंका सत्कार

---

१ आधुनिक बरार प्रदेशका ही नाम महाभारत कालमें 'विदर्भ' था। २ सरयू वा घाघरा नदीके दोनो तटोंपरका देश। उत्तर तटवालेको उत्तर कोसल तथा दक्षिण तटवालेको दक्षिण कोसल कहते हैं। किसी पुराणमें इस देशके चार खण्ड और किसीमें सात खंड बतलाए गए हैं। प्राचीनकालमें इस देशकी राजधानी अयोध्या थी। ३ उस कालमें यह देश दो भागोंमें विभक्त था—उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु। दक्षिणकुरु हिमालयके दक्षिणमें था, जिसमें पाञ्चाल आदि देश थे और उत्तरकुरु हिमालयके उत्तरमें था, जिसमें फारस, तिब्बत, आदि देश थे। इसको बहुतसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया ॥ ५५ ॥ सदस्य, ऋत्विक्, सुरगण, नृगण, भूत और चारणोंका भी पूजन-सत्कार वसुदेवजीने किया। तदनन्तर भगवान्‌की आज्ञा पाकर वे सब लोग अपने देशको यज्ञकी प्रशंसा करते हुए लौट गये ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्र, विदुर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कुन्ती, भीष्म, द्रोणाचार्य नारदजी तथा भगवान् वेदव्यास इत्यादि तथा और जितने मित्र, संबन्धी तथा बन्धुगण थे, वे भी सब, जिनका चित्त मैत्रीसे आर्द्र हो रहा था यदुवंशियों तथा अन्य बन्धुओंसे गले मिलकर वियोगजनित दुःखसे दुःखित होते हुए अपने-अपने देशको लौट गये ॥५७, ५८॥ परन्तु नन्दजी प्रेमके वशीभूत हो कृष्ण, बलराम, उग्रसेन इत्यादि आत्मीय लोगोंसे अति सत्कृत हो अन्य गोपगणोंके साथ वहींपर रह गये ॥५९॥ वसुदेवजीने अनायास ही मनोरथ सागर पारकर मित्रोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक नन्दजीका हाथ पकड़ कर कहा—॥ ६० ॥ वसुदेवजीने कहा—हे भाई नन्दजी, भगवान्‌ने मनुष्योंके साथ यह जो स्नेहरूपी बन्धन

सदस्यर्त्विक्सुरगणान्नृभूतपितृचारणान् ॥ श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ॥ नारदो भगवान्व्यासः सुहृत्संबन्धिबान्धवाः ॥ ५७ ॥ बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाक्लिन्नचेतसः ॥ ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥५८॥ नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ॥ कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः ॥५९॥ वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥ ६० ॥ वसुदेव उवाच ॥ भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ॥ तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताज्ञेषु सत्तमैः ॥ मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥६२॥ प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि ॥ अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥ ६३ ॥ मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ॥ स्वजनानुत बन्धून्वा न

लगा दिया है, उससे छुटकारा पाना, मैं तो समझता हूँ कि अतिवीर योगियोंको भी अत्यन्त कठिन है ॥ ६१ ॥ उपकारको न जाननेवाले हम अज्ञानियोंके साथ आप सज्जनोंने जो मैत्री स्थापित की है—आपलोगोंने जो हमारा उपकार किया है, यद्यपि आजतक उसका हम कोई बदला न चुका सके, तथापि वह अभी ज्योंकी त्यों बना है—वह कभी नहीं हट सकती। इसलिए भाई नन्दजी, हमें तो निश्चय हो गया है कि यह हम दोनोंका स्नेह बन्धन ईश्वर विरचित है ॥ ६२ ॥ भाई नन्दजी, पहले तो हम कंसके द्वारा जेलमें बन्द कर दिये जानेके कारण बिलकुल सामर्थ्यहीन थे, इसलिए हम आपका कोई हित न कर पाए। परन्तु अब हमारी आँखें धनके मदसे ऐसी अन्धी हो गई हैं कि सामने उपस्थित रहते हुए भी आपको हम देख नहीं रहे हैं ॥ ६३ ॥ हे दूसरोंका सत्कार करनेवाले नन्दजी, भगवान् जिसका कल्याण करना चाहें, उस कल्याणकामी पुरुषको राजलक्ष्मीका सुखभोग तो कदापि न दें

लोग स्वर्ग भी कहते हैं। *रामायण कालमें यह देश व्यास और शाल्मली नदीके दूसरी ओर था और उस समय वहाँकी राजधानी गिरिव्रज वा राजगृह थी, किन्तु अब यह कश्मीर राज्यके अन्तर्गत है, और कक्का कहलाता है। यहाँके निवासी गक्खर या कक्का कहलाते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्योंकि उससे अन्धा वनकर प्राणी अपने लोगों तथा इष्ट मित्रोंको भी नहीं देखता ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस प्रकार कहकर मित्र प्रेमसे अति विह्वल हो वसुदेवजी नन्दजीके द्वारा किए गए उपकारका स्मरण कर उनका नेत्र जलसे भर गया ॥ ६५ ॥ वलराम एवं श्रीकृष्ण प्रेमसे उनका भला करनेके लिए नन्दजी "आज रह जाइये, कल जाइयेगा" इस तरह यदुवंशियोंसे प्रेमपूर्वक सम्मानित होते हुए तीन महीने वहींपर रह गये ॥ ६६ ॥ उसके वाद वे गौओं तथा अपने व्रजवासी वन्धुओंके साथ वहुमूल्य आभरणों, रेशमी वस्त्रों एवं अनेक प्रकारके कीमती सामानोंसे परिपूर्ण हो वसुदेव, उग्रसेन एवं कृष्ण, वलराम आदि यादव लोगों द्वारा दिये गये उपहारको स्वीकार कर वहाँसे चल दिए। यदुवंशियोंने पीछे·

पश्यति ययान्धदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः ॥ रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥
नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविन्दरामयोः ॥ अद्य श्व इति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सह-
बान्धवः ॥ परार्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ॥ दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदु-
भिर्ययौ ॥६८॥ नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे ॥ मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥६९॥ बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्ण-
देवताः ॥ वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥७०॥ जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥ यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्सन्दर्शनादिकम् ॥७१॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द० उ० तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुराशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पीछे कुछ दूरतक चलकर उन्हें वड़े सम्मानके साथ विदा किया ॥ ६७, ६८ ॥ नन्द, गोप एवं गोपियोंने भगवान् कृष्णके चरणकमलमें लगे हुए मनको किसी प्रकार भी हटानेमें समर्थ न होते हुए भी मथुराके लिए प्रयाण किया ॥ ६९ ॥ उन लोगोंके चले जानेके वाद वृष्णिवंशके लोग, जिनके केवल कृष्ण ही पूजनीय हैं, वर्षाकालको सन्निहित जानकर द्वारकापुरीको चल दिये ॥ ७० ॥ वहाँ पहुँचनेपर वहाँके लोगोंसे उन्होंने वसुदेव द्वारा किए गये यज्ञका समाचार तथा इष्ट-मित्रों एवं सगे सम्बन्धियोंसे मिलनेका समाचार कह सुनाया ॥ ७१ ॥

चौरासी अध्यायका सार—राजन्, भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिए वहाँ सभी महर्षि समुपस्थित हुए। भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका मीठी वाणीसे अभ्युत्थान तथा अर्घ्य, पाद्य आदि प्रदान द्वारा खूब सम्मान किया। तदनन्तर भगवान्की स्तुति कर महर्षि लोग अपने आश्रमको ज्योंही जानेको उद्यत हुये कि वसुदेवजीने उनसे प्रश्न कर दिया—भगवन्, आप लोग कृपाकर मुझे वतलाइये कि किसतरहके कर्मसे मनुष्योंकी कर्मबन्धनसे मुक्ति हो सकती है। यह सुनते ही ऋषियोंने कहा—वसुदेवजी, आश्चर्य है कि गंगाकिनारे रहते हुए भी आप कूपका जल चाह रहे हैं। हे परब्रह्म परमात्माके पिता वसुदेवजी, सावधान होकर सुनिये। भगवान् श्रीकृष्णके उपस्थित रहते हुए भी आपके प्रश्नका उत्तर दे रहे हैं—'कर्म-फलकी अभिलाषा छोड़कर श्रद्धापूर्वक विष्णु भगवान्का यजन करता हुआ मनुष्य कर्मबन्धनसे छुटकारा पा जाता है। उन महर्षियोंकी यह वात सुनकर बड़ी श्रद्धाके साथ यज्ञ करनेकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

अभिलाषा कर रहे वसुदेवजीने शीघ्र उन्हीं ऋषियोंका ऋत्विक्के रूपमें वर्णन किया। और अपनी अठारह पत्नियोंके साथ विष्णुयाग (१) करनेके लिये दीक्षित् हो गये। यज्ञ समाप्तिके बाद उन्होंने ऋत्विजोंको यथेष्ट दक्षिणा तथा अपने सगे सम्बन्धियोंको वस्त्रादिसे भूषितकर विदा किया। भगवान् कृष्ण और बलरामको देखनेकी अभिलाषा तथा यदुवंशियोंके आग्रहसे नन्दजी तीन महीने तक और वहीं रह गये। तदनन्तर यदुवंशियों द्वारा प्रेमपूर्वक विदा हो अपने घर लौट आये। उधर वर्षाकालको निकट जानकर यदुवंशी लोग द्वारकाको चल दिये। चौरासी अध्याय समाप्त।

❀ अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ❀

[श्रीकृष्ण तथा बलरामजीका अपने पिता वसुदेवजीको ज्ञान प्रदान करना तथा अपनी माताजीको उनके मृत बच्चोंको लाकर दे देना]

श्रीशुकदेवजीने कहा–राजन्, कुरुक्षेत्रसे लौटनेके बादकी एक समयकी बात है कि सुबहमें अपने पिताजीका अभिवादन करनेके लिये श्रीकृष्ण और बलरामजी उनके समीप पहुँचे। दोनोंने पिताके चरण छूकर प्रणाम किया। तदनन्तर बड़े प्रेमके साथ उन्हें आशीर्वाद देते हुए पिता वसुदेवजी कहने लगे ॥ १ ॥ परमेश्वरत्वज्ञापक मुनियोंके वचनोंका स्मरण कर तथा उनके पराक्रम भरे कार्योंसे स्वयं विश्वसित हो वसुदेवजी यों सम्बोधन कर कहने लगे ॥ २ ॥ हे कृष्ण, हे कृष्ण महायोगिन, हे संकर्षण, हे सनातन, मैं आप दोनोंको जानता हूँ। आप दोनों

श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ॥ वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या सङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥ मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ॥ तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्सङ्कर्षण सनातन ॥ जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥ यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा । स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ॥ आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यजः ॥ ५ ॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ॥ पारतन्त्र्याद्वैसा-

ही इस संसारके परम कारणभूत साक्षात् ईश्वर हैं ॥ ३ ॥ जिस जगह, जिससे, जिसके द्वारा, जिस सम्बन्धसे, जिसके लिये, जो जिस प्रकारसे और जब यह जगत् होता है, उस जगत्के आप दोनों भोग्य-भोक्ता स्वरूप साक्षात् कारण हैं ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज, अपने आप विरचित इस देव, तिर्यक्, नर आदि नानाविधरूपविश्वमें आप अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होकर स्वयं

नोट—(१) देखिये प्रकाशित—होमात्मकविष्णुयाग, अनन्तदेवकृतविष्णुयाग, कामदेवकृतविष्णुयाग, और लिखित नागरकृत (एकलक्षं द्विलक्षं च त्रिलक्षं च ततः परम् । मोक्षार्थी क्रमतो जप्त्वा द्वादशाक्षरसंयुतम् । अर्काक्षरसंयुक्तेन पुरुषसूक्तं समाचरेत् । तथैव चाहुतिर्देया ग्रहयज्ञपुरः सरम् ।) विष्णुयाग ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जन्मादि विकारोंसे रहित होते हुए भी प्राण और जीव बनकर आप इसका धारण-पोषण करते हैं ॥ ५ ॥ विश्वकी सृष्टि करनेवाले कारण स्वरूप प्राणादिकोंकी जो शक्तियाँ हैं वह संसारसे परे रहनेवाले परम कारण उस परमेश्वरकी हैं, न कि उनकी। वे तो ऐसे परतन्त्र हैं, जैसे कि बाण आदि। अर्थात् बाण आदिकी वेधशक्ति जैसे पुरुषके अधीन रहती है वैसे ही इन प्राणादिकोंकी भी शक्तियाँ परमेश्वरके अधीन हैं। इतना ही नहीं बल्कि चेतन और अचेतन होनेसे इन दोनोंमें सादृश्य भी नहीं है। परमेश्वर चेतन और ये अचेतन हैं, अतः परतन्त्र होना इनका सर्वथा उचित ही है। चेष्टा कर रहे इनमें जो चेष्टा दीखती है, वह एकमात्र चेष्टा ही है शक्ति तो परमेश्वरकी ही है। जैसे कि वायुकी शक्तिसे तृणादिका चालन होता है ॥ ६ ॥ चन्द्रमामें सौन्दर्य, अग्निमें तेज, सूर्यमें प्रभा, तारों और विद्युतोंमें स्फुरणमात्र सत्ता, पर्वतोंमें जो स्थैर्य तथा पृथ्वीमें जो सर्वसाधारणशक्तिरूपवृत्ति एवं गन्धरूप गुण है—ये सबके सब परमार्थतः आप ही हैं ॥ ७ ॥ जिस जलमें तृप्तिजनकत्व, जीवन हेतुता, देवरूपता तथा शोधकत्वधर्म विद्यमान है वह जल तथा उसका गुण रस एवं वायुमें इन्द्रिय सामर्थ्य,

दृश्यात् द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥ कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ॥ यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥
तर्पण प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ॥ ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥८॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ॥
नादो वर्णस्त्वमोङ्कार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ॥ अवबोधो भवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती
॥१०॥ भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणाञ्च तैजसः ॥ वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥११॥ नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ॥
यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ॥ त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥१३॥
तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ॥ त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदा व्यावहारिकः ॥ १४ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिला-

अन्तःकरण सामर्थ्य, शारीरिक बल, शरीरके व्यापार तथा जो गति है, वह भी सब हे ईश्वर, आपकी ही है ॥ ८ ॥ दिशाएँ और उनका अवकाश आप ही हैं। आकाश और उसका आश्रय शब्द आप ही हैं। नाद, और ओंकार वर्ण आप ही हैं तथा पदार्थोंका विभागकरणरूपी नाम रखनेवाला पद भी आपही हैं अर्थात् पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक वाणी भी आपही हैं ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंकी विषय प्रकाशन शक्ति, इन्द्रियोंका अधिष्ठाता देव तथा उनकी अधिष्ठान शक्ति भी आप ही हैं। और बुद्धिकी अध्यवसायात्मिका शक्ति तथा जीवकी प्रतिसंधान शक्ति भी आप ही हैं ॥ १० ॥ पञ्चभूतोंका कारण तामस अहंकार, इन्द्रियोंका कारण राजस अहंकार, नानाप्रकारके ज्ञानके जनक देवताओं और मनका कारण वैकारिक सात्त्विक अहंकार तथा जीवोंके संसारके कारणरूप प्रकृति भी आप ही हैं ॥ ११ ॥ इस प्रपञ्चात्मक संसारके भीतर नश्वर पदार्थोंमें जो परमार्थभूत अनश्वररूप है वह आप ही हैं, जैसे कि मिट्टी तथा सुवर्ण आदि द्रव्यके विकाररूप [कार्यरूप] घट, कुण्डल आदिके नश्वर होते हुए भी उनमें मिट्टी तथा सुवर्णादिरूपद्रव्य तो अनश्वर ही निरूपित होता है ॥ १२ ॥ सत्त्व, रज, तमगुण तथा उनमें रहनेवाली वृत्तियाँ भी आप ही हैं। ये सभी परब्रह्मरूप आपहीमें आपकी योगमाया द्वारा कल्पित हैं ॥ १३ ॥ चूँकि ये सभी पदार्थ आपमें ही कल्पित हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसलिये हे भगवन् , दुःखसुखादिविकारस्वरूप ये सबके सब आपमें वस्तुतः हैं ही नहीं। जब आप इन विकारोंमें स्थित होते हैं तभी ये आपमें प्रतीत भी होते हैं। जब सुषुप्ति आदिमें देह, इन्द्रिय आदि सब लीन हो जाते हैं तब तो आप एक मात्र शुद्ध ही प्रतीत होते हैं। इसलिये वे पदार्थ आरोपित होनेसे ही आपमें प्रतीत होते हैं, वास्तवमें तो इनका कोई स्वरूप ही नहीं है ॥ १४ ॥ सत्त्वादि गुणोंके कार्यभूत इस देह आदिमें आप अखिलात्माकी सूक्ष्मगति दुर्ज्ञेय सच्चिदानन्दात्मक स्वरूप न जाननेसे ही अज्ञानी लोग अपने किये हुए पुण्य-पापात्मक कर्मों द्वारा इस संसारमें भटकते फिरते हैं ॥ १५ ॥ इस लोकमें दुर्लभ तथा पुरुषार्थ साधनमें समर्थ मनुष्य शरीर पाकर भी हे जगदीश्वर, आपकी मायाकी बदौलत मैं अपने पुरुषार्थ साधनमें सदा असावधान रहा, अतः मेरी सारी आयु व्यर्थमें यों ही चली गई ॥ १६ ॥ इस शरीरमें 'मैं हूँ' तथा इस शरीरके पुत्र, कलत्र आदि सम्बन्धियोंमें 'ये मेरे ही हैं' इस प्रकारके अभिमानपूर्वक स्नेहरुपी पाशोंसे आप इस सारे संसारको ही फँसा रखते हैं ॥ १७ ॥ आप दोनों मेरे पुत्र नहीं हैं किन्तु साक्षात् प्रधान और पुरुषके भी ईश्वर हैं, हमारा यह भ्रम था, जो आज तक आपको हम पुत्र मानते आ रहे थे। आपलोग तो इस पृथिवीके भारको हल्का करनेके लिए ही अवतरित हुए हैं, यह तो आपने ही जन्म लेते समय

त्मनः ॥ गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ॥ स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माय-
येश्वर ॥ १६ ॥ असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ॥ स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥ युवां न नः सुतौ साक्षात्प्रधान-
पुरुषेश्वरौ ॥ भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥ १८ ॥ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्दमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ॥ एतवताऽलम-
लमिन्द्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ सञ्जज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ॥
नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः ॥
प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ॥ यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्व-

मुझसे साफ कह दिया था ॥ १८ ॥ हे दीनदुःखियोंके बन्धो, अतः आज मैं आपके उन चरणकमलोंकी शरणमें उपस्थित हूँ, जो शरणागतोंके संसारके भयको दूर करनेवाले हैं। मेरी इन इन्द्रियोंकी लालसाकी अब हद हो चुकी, बस इतनाही बहुत हैं। इन्हींकी वजहसे मरणधर्मा इस शरीरमें मुझे आत्मबुद्धि तथा परमात्मस्वरूप आपमें मुझे पुत्रबुद्धि हुई है ॥ १९ ॥ हे नाथ जन्मसे रहित होते हुए आपने हम दोनोंसे सूतिकागृहमें कहा था कि प्रतियुगमें मैं निजधर्मकी रक्षाके लिए अवतीर्ण होता हूँ। सो हे भगवन्, नानाप्रकारके बादलोंके शरीर जैसे आकाशमें बनते हैं उसी प्रकार नानाप्रकारके शरीर धारण करनेवाले आप उसे धारण एवं विसर्जन भी कर देते हैं। इसलिए हे उरुगाय, आपकी विभूतिस्वरुपा उन नामोंको भला कौन जान सकता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, यदुश्रेष्ठ भगवान् अपने पिताके इस तरहके वचन सुनकर नम्रतापूर्वक मधुरवाणीमें बोले ॥ २१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे तात, सब अर्थोंके समूहसे युक्त वाणियोंसे जो आपने कहा है, उसे मैं मानता हूँ, क्योंकि आपने हम पुत्रोंके उद्देश्यसे तत्त्वोंके समूहका सम्यक् निरूपण किया है ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मैं, आप यह बलराम और ये सारे द्वारकावासी लोग, अधिक मैं क्या कहूँ ? यह सारा संसार ही ब्रह्मस्वरूप है, यह आप जान लीजिए ॥ २३ ॥ यह आत्मा एक, स्वयं प्रकाश, नित्य, देहादिसे भिन्न तथा गुणरहित होता हुआ भी आत्मसृष्टि उन गुणोंसे ही उत्पन्न हुए देव, मनुष्य आदि प्राणियोंमें उपाधिके अनुसार नानाप्रकारका प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ आकाश, वायु, तेज (प्रकाश) जल, पृथिवी–इनसे बने हुए पदार्थों में अनेक प्रकारसे प्रतीत होता है। उपाधिके अनुसार आविर्भाव और तिरोभावसे एकही यह आत्मा थोड़ा और बहुत तथा छोटा तथा बड़ा अनेकरूपका प्रतीत होता है ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्के इस प्रकार कहनेपर वसुदेवजीकी अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ विनष्ट हो गईं। प्रसन्नचित्त हो वे चुप हो गये ॥ २६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, 'मेरे दोनों पुत्र बलराम और श्रीकृष्णने एक समय अपने गुरुके मरे हुए बच्चेको ला दिया था'—यह सुनकर सर्वदेवस्वरूपा देवकी आश्चर्यमें डूब

ग्राम उदाहृतः ॥ २२ ॥ अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ॥ सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्मा ह्येकः स्वयञ्ज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥ २४ ॥ खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ॥ आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजन् वसुदेव उदाहृतः ॥ श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥२६॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ॥ श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥२७॥ कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ॥ स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच ॥ राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर ॥ वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥ २९ ॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ॥ भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥ यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ॥ भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा कालचोदितौ ॥ आनिन्यथुः पितृस्थानाद् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥३२॥ तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ॥ भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥३३॥

गईं। कंस द्वारा मारे गये अपने पुत्रोंका स्मरण कर रही वे मारे शोकके आँखोंमें आँसू भरकर कृष्ण और बलरामको सम्बोधित करके दीनतापूर्वक कहने लगीं ॥ २७, २८ ॥ श्री देवकीजीने कहा—हे बलराम, हे बलराम, हे अमेयात्मन्, हे कृष्ण, हे योगेश्वर, विश्वकी सृष्टि, करनेवालोंके भी ईश्वर आप दोनोंको मैं जानती हूँ कि आप दोनों ही आदिपुरुष (जगत्के कारणरूप) हैं ॥२९॥ आपलोग उन राजाओंका नाश करनेके लिये ही मेरे यहाँ अवतरित हुये हैं, जिनका काल प्रभावसे बल-पराक्रम नष्ट हो गया है, जो शास्त्रमर्यादाका उल्लंघनकर रहे हैं तथा जो इस पृथिवीपर भारस्वरूप हैं ॥ ३० ॥ हे विश्वस्वरूप, जिस आपके अंशांश भागसे यानी एकमात्र परमाणुसे भी इस संसारकी उत्पत्ति तथा लय आदि होते हैं, मैं आज उसी आपकी शरणमें हूँ ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंके मरे हुए अपने पुत्रको ला देनेके लिए अपने गुरुसे प्रेरित होकर आप दोनोंने यमराजके घर जाकर वहाँसे जैसे गुरुदक्षिणास्वरूप गुरुपुत्रको ला दिया था, वैसे ही हे योगेश्वरो, मेरा भी मनोरथ आप दोनों पूर्ण करें। 'कंसके द्वारा मारे गये मेरे भी बच्चे आपलोगोंके द्वारा यहाँ ला दिए जायँ।' मैं भी उन्हें देखना चाहती हूँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ ३२, ३३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे भारत, इस प्रकार मातासे प्रेरित होकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके अपनी मायाका आश्रय ले बलराम और कृष्ण दोनों ही सुतललोकमें चले गये ॥ ३४ ॥ सुतलमें प्रविष्ट हुए सभी प्राणियोंके तथा अपने देवता भगवान श्रीकृष्ण और बलरामको देखकर दैत्यराज राजा बलिने उनके दर्शनकी प्रसन्नतासे विह्वल हृदय होकर तुरन्त अपने परिवारके साथ उठकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ उन कृष्ण एवं बलरामजीको अपने भवनमें लाकर उच्च आसनपर बिठा बड़ी प्रसन्नताके साथ पादप्रक्षालन किया। तथा उस जलको सपरिवार अपने सिरपर चढ़ाया, जो इस सारे ब्रह्माण्डको ब्रह्मासे लेकर कीटाणु-तकको पवित्र करता है ॥ ३६ ॥ बहुमूल्य वस्त्रों, आभूषणों, चन्दनादिकों तथा ताम्बूल, प्रदीप, अमृत भक्षणादि पूजाकी सामग्रियोंसे उनकी विधिवत् पूजा की और अपने सारे धन तथा जनोंके सहित अपनेको भी उन्हें समर्पित किया ॥ ३७ ॥ हे राजन्, तदनन्तर प्रेमसे आर्द्र हुई

ऋषिरुवाच ॥ एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ॥ सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड् विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः ॥ यद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥३५॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ॥ दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृन्द आब्रह्म पुनद्यदम्बु ह ॥३६॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ॥ ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥ स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ॥ उवाच हानन्दजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् ॥ रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥ विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ॥ नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्वद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ॥ न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥

बुद्धिसे भगवान्के चरणकमलोंका बार-बार ध्यान करते हुए आँखोंमें आँसू भरकर रोमाञ्चित हो वह राजा बलि रुँधे कण्ठसे बोलने लगे ॥ ३८ ॥ राजा बलिने कहा—विश्वको धारण करनेवाले विशालकाय शेष भगवान्को नमस्कार है। जगत्के रचयिता भगवान् कृष्णको नमस्कार है। सांख्य और योग* शास्त्रके प्रवर्तक परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे भगवन्, आपलोगोंका दर्शन प्राणियोंको दुष्प्राप्य एवं दुर्लभ है। उसमें भी रज-तम प्रकृति प्रधान हम लोगोंको तो और भी दुर्लभ है। वही आपका दर्शन मुझे आज स्वयं मिला, यह मेरा परम सौभाग्य है ॥ ४० ॥ दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ, नायक इत्यादि हम सभी विशुद्ध सत्वमूर्ति शास्त्रशरीर आप भगवान्से सदा वैर रखते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि हमारे सरीखे ही बौद्ध आदि मनुष्य भी आपमें सदा वैर-भाव रखते हैं ॥ ४१, ४२ ॥ परन्तु उनमें हे भगवन्, कुछ तो वैर-भावसे, कुछ भक्तिसे

* सांख्य—ज्ञानशास्त्र। योग—कर्मयोग, भक्तियोग और अष्टाङ्गयोग।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा कुछ तो कामसे ही आपके सन्निकर्षको प्राप्त कर जाते हैं। बल्कि सत्वगुण प्रधान देवता आदि भी आपके सन्नि र्षको नहीं प्राप्तकर पाते ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरेश्वर, बड़े-बड़े योगेश भी 'यह यही है तथा यह इस तरहकी है'–इस प्रकार आपकी योगमायाको ठीक-ठीक नहीं जान पाते—स्वरूपतः और प्रकारतः उन्हें भी पूरा पूरा आपकी योगमायाका पता नहीं चलता। हम भला दैत्य उसे कैसे जान सकें ॥ ४४ ॥ हे भगवन्, आप मेरे ऊपर ऐसा अनुग्रह करें कि मैं निष्पृह जनोंसे भी यानी आप्तकाम पुरुषोंसे भी अन्वेषणीय आपके चरणारविन्दरूपी आश्रयसे अन्य अन्धकूप सदृश इस गृहसे निकलकर संसारकी शरणभूत वृक्षोंके नीचे फलादि खाकर अकेले शान्तिसे शेष जीवन व्यतीत कर दूँ या सबके मित्र आपके भक्त महात्माओंके साथ रहकर इस शेष जीवनको गवा दूँ ॥ ४५ ॥ हे प्रभो, हे हम नियम्य जीवोंके ईश, हमें अपनी सेवा बतलाइये,† हमें पापशून्य बनाइये, क्योंकि आपके आदेशका श्रद्धासे परिपालन करता हुआ पुरुष पुण्य और पापोंके बन्धनसे छुटकारा पाकर विधि और निषेधसे बिलकुल मुक्त हो जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आपका भक्त विधिका दास नहीं बनता

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ॥ न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥ ४४ ॥ तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्द-धिषणान्यगृहान्धकूपात् ॥ निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः शान्तो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥४५॥ शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो ॥ पुमान् यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥४६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे ॥ देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥४७॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा ॥ हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८॥ देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ॥ सा तान् शोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥ इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ॥ ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृद् घृणी ॥ षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ ॥ पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥ तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्र-

॥ ४६ ॥ बलिकी स्तुति सुनकर भगवान्ने अपने आनेका कारण बतलाना शुरू किया। भगवान्ने कहा—हे राजन, स्वायम्भुवमन्वन्तरमें मरीचिकी स्त्री ऊर्णासे छः बालक उत्पन्न हुए। वे सब देवता थे। अपनी लड़कीके साथ रमणकी इच्छा कर रहे ब्रह्माको देखकर वे हँसने लगे ॥ ४७ ॥ उस परिहासात्मक अपने निन्दनीय कर्मसे वे तुरत ही आसुरी योनिको प्राप्त हो गये। इसीलिये वे हिरण्यकशिपुके यहाँ उत्पन्न हुए। तदनन्तर योगमाया द्वारा वहाँसे दूर होते हुए वे माँ देवकीके गर्भसे उत्पन्न हो कंस द्वारा मारे गये। हे राजन्, माँ देवकी अपने उन पुत्रोंके लिये शोक कर रही हैं। वे सबके सब यहीं आपके पास रहते हैं ॥ ४८, ४९ ॥ अपनी माताका शोक मिटानेके लिये इन्हें यहाँसे ले जाऊँगा और माँका शोक दूर हो जानेके बाद शापसे विनिर्मुक्त हो वे किसी प्रकारका दुःख न प्राप्त करते हुए देवलोकको प्राप्त जायँगे ॥ ५० ॥ स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत् और घृणी– ये छःहों मेरे प्रसादसे पुनः

† कहिये हम आपकी क्या सेवा करें–इससे राजा बलि भगवान्से अपने आगमनका कारण पूछ रहे हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सज्जनोंकी गति प्राप्तकर मेरे लोकको प्राप्त हो जायँगे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार राजा बलिसे कहकर एवं उनसे सत्कृत हो द्वारकापुरीको उन सबोंको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई लौट आये तथा माताको उन्होंने पुत्रोंको अर्पित कर दिया ॥ ५२॥ उन बालकोंको देखकर पुत्रस्नेहसे देवकीके स्तन-दुग्धसे परिपूर्ण हो गये। उन्हें हृदयसे लगाकर देवकीजीने अपनी गोदमें बैठा लिया और उनके सिरको बार-बार सूँघने लगीं ॥ ५३ ॥ जिससे सृष्टि प्रवृत्ति होती है, भगवान् विष्णुकी उस मायासे मोहित होकर वे पुत्रोंके शरीर स्पर्शसे गद्‌गद् होतो हुई उन्हें बड़े प्रेमसे स्तनपान कराने लग गईं ॥ ५४ ॥ भगवान्‌के पीनेसे बचे हुए माँ देवकीके स्तनके अमृतमय दूधको पीकर वे श्रीकृष्ण भगवान्‌के अङ्गस्पर्श हो जानेसे आत्मज्ञानी हो गये ॥ ५५ ॥ और भगवान् गोविन्द, माँ देवकी, पिता वसुदेवजी तथा बलराम भैयाको प्रणाम कर सबके देखते-देखते वे देवलोकको चले गये ॥ ५६ ॥ मरकर आये हुए पुत्रोंका

स्नेहस्नुतस्तनी ॥ परिष्वज्याङ्कमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ॥ मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ॥ नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् ॥ मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ॥ मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥ जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

जाना पूर्वक पुनः निर्गमन देखकर देवी देवकीको अति विस्मय हुआ। हे राजन्, उन्होंने समझ लिया कि अहन्ता ममता रूप अथवा पुत्रादिरूप यह सब कुछ भगवान् श्रीकृष्णकी विरचित माया ही थी ॥ ५७ ॥ हे भारत, अनन्त पराक्रमशाली, परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके अनेक तरहके ऐसे अनेक अद्भुत पराक्रम (चरित) हैं ॥ ५८ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे ऋषियो, जो पुरुष अमृतकीर्ति भगवान् मुरारीके-श्रवण कीर्तनमें तत्पर मनुष्यके पापको दूर करनेवाले, सज्जनों तथा भगवद्भक्तोंके कानोंको परम आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीशुकदेवमुनिजीके द्वारा वर्णित हुए चरितका श्रवण कराता है अथवा जो पुरुष श्रवण करता है, वह भगवान्‌में अपने चित्तको स्थिर करके उनके काम, क्रोध आदिसे रहित लोकको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

पचासी अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, एक समय की बात है कि श्रीकृष्ण तथा बलदेवजी दोनों भाई सबेरे अपने पिताजीको प्रणाम करने उनके निकट पहुँचे। उनको प्रणाम करनेके बाद उन्हें आशीर्वाद देते हुए वसुदेवजीने कहा—हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे बलराम, आप दोनों ही इस संसार के आदि कारणरूप हैं। आज तक आपकी माया के फेर में पड़कर मैं आप लोगोंको अपना पुत्र समझ बैठा था, यह मेरी बड़ी भूल थी। मैंने अपनी सारी आयु यों ही बिता दी, भगवन्, अब मैं आपकी शरण में हूँ। पिता वसुदेवकी ऐसी बात सुन भगवान् कृष्णने कहा—पिताजी, बात तो ऐसी ही है। आप ठीक ही कह रहे हैं। हम सबके सब ब्रह्मस्वरूपही हैं। मायाके ही कारण हम लोगोंमें नानात्वभ्रम हो रहा है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजन् भगवान् श्रीकृष्णकी बातें सुनते ही वसुदेवजी प्रसन्नचित्त हो बिलकुल चुप रह गये। हे राजन्, इसके बाद, 'मेरे पुत्रोंने गुरु दक्षिणा में उनके मृत पुत्र को बतला दिया था' यह सुन देवकीको अपने मृत पुत्रोंको देखने की प्रबल इच्छा हुई। उन्होंने अपने पुत्रोंसे कहा—बेटा, मैं अपने मरे हुए पुत्रों को फिर देखना चाहती हूँ। हे कृष्ण, हे बलराम, मैं तुम्हें ईश्वर समझती हूँ। जैसे तुमलोगोंने गुरुपुत्र ला दिया था वैसे ही मेरे मृत पुत्रोंको ला दो।" माँ देवककी यह प्रार्थना सुनते हो वे दोनों भाई पाताल को चले गये। वहाँ इन्हें उपस्थित देख राजा बलि ने सपरिवार उठकर इन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर अर्घ्य, पाद्य आदि द्वारा यथोचित पूजन कर बाद कहा—भगवन, कहिये हम आप की क्या सेवा करें। भगवान् ने कहा—राजन्, मरीचिके उत्पन्न छवो पुत्र देवता ही थे। किन्तु एक दिन अपनी पुत्रीके साथ रमण करने की इच्छा कर रहे ब्रह्माको देख हँस दिया। अपने उस कर्म से वे तुरन्त असुर हो हिरण्यकशिपुके घर पैदा हुए। तदनन्तर मेरी माँ देवकी के गर्भसे उत्पन्न होते ही वे कंस द्वारा मार दिये गये आज कल वे आपके यहाँ हैं। मैं इन्हें ले जाता हूँ। यों कह उन्हें ले वे द्वारका को लौट आये और अपनी माँ को उन्हें समर्पित कर दिया। अपने पुत्रको देखते ही देवकीके स्तन से दूध की धारा बह चली भगवान्के पीनेसे बचे दूधका पान कर वे सबके सब नारायणके अङ्गस्पर्श से ज्ञानी बन गये। यह देख देवकीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने समझ लिया कि यह सब भगवान् की माया है। पचासी अध्याय समाप्त।

❋ अथ षडशीतितमोऽध्यायः ❋

[सुभद्राका अपहरण तथा भगवान् श्रीकृष्णका अपने भक्त मैथिल राजा एवं श्रुतदेव ब्राह्मण के ऊपर अनुग्रह करना]

राजा परीक्षित् ने पूछा—हे ब्रह्मन्, मेरे दादा अर्जुनने बलराम तथा श्रीकृष्णकी बहनके साथ कैसे विवाह किया था, जो मेरी दादी लगती हैं, यह सब मैं आप से जानना चाहता हूँ, कृपाकर कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, एक समय अर्जुन तीर्थयात्रा करते हुए प्रभासक्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ पर अपने मामाकी कन्या सुभद्राके रूप-लावण्यकी

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥ यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ॥ गतः प्रभासमशृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥ दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ॥ तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ॥ पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥

चर्चा सुनी ॥ २ ॥ और यह भी सुना कि बलराम उसे दुर्योधन को देना चाहते हैं उनके विरुद्ध वसुदेव आदि दूसरेको नहीं दे सकते। इसलिये उसकी प्राप्तिकी इच्छा से पूज्यतम त्रिदंडी संन्यासीका वेष धारण कर वे द्वारका गये ॥ ३ ॥ अपने स्वार्थ साधनके निमित्त वर्षाकालके चार महीनों तक वे वहीं ठहरे रहे। सारे नगर निवासियों तथा बलरामजीने इन्हें अर्जुन न जानकर एक संन्यासीके नाते खूब सत्कार किया ॥४॥ एक बार बलरामजी उन तपस्वी वेषधारी अर्जुनको निमन्त्रण देकर अपने घर लाये। तदनन्तर बलरामजीने भोजनकी सामग्री उनके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सामने लाकर रख दीं। संन्यासी वेषधारी अर्जुन लगे भोजन करने लगे ॥ ५ ॥ भोजन करते समय वहाँ पर उन्होंने एक अति रमणीय वीराङ्गना देखी, जो कुमारावस्था का त्याग कर ही, वीरोंका मन हरनेवाली थी। उसे देखते ही अर्जुनकी प्रेमसे आँखें खिल उठीं। वे काम से पीड़ित हो उसकी प्राप्तिकी इच्छा करने लगे ॥ ६ ॥ शर्मायी तिरछी निगाहोंसे अर्जुनकी ओर मुसकुराती हुई देखकर उसने भी अपना हृदय और अपनी आँखें अर्जुनके ऊपर रख दीं। स्त्रियोंके हृदयमें समा जानेवाले मनोहर अर्जुनको देखकर उसने उन्हें पतिरूपमें पानेकी कामना की–उसके हृदयमें यह भावना हो उठी- या परमेश्वर, कहीं ये मेरे पति हो जाते ॥ ७ ॥ अति कामातुर होनेके कारण उनका चित्त चञ्चल हो उठा। उसका हृदयमें ध्यान करते हुए अर्जुन उसके हरणका अवसर ढूँढ़ने लगे। उन्हें बलरामजीके द्वारा किया गया जरा भी सत्कार सुखद न हुआ ॥ ८ ॥ एक समय सबसे बड़ी देवयात्राका अवसर आया। वह कन्या भी रथपर बैठकर दुर्ग (किले) से बाहर निकली। देवकी, वसुदेव तथा कृष्णकी आज्ञा से महारथी अर्जुन धनुष उठा रथपर सवार हो अनेक वीरोंको जो उन्हें रोक रहे थे, वहाँसे भगाकर

एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् ॥ श्रद्धयोपहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥ सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ॥
प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥६॥ सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमम् ॥ हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥
तां परं तमनुध्यान्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ॥ न लेभे शं भ्रमचित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ॥ जहारानु-
मतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥९॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुन्धतो भटान् ॥ विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥१०॥ तच्छ्रु-
त्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ॥ गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥११॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ॥ महाधनोपस्क-
रेभरथाश्वनरयोषितः ॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ॥ कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविरलम्पटः ॥१३॥

यदुवंशियोंके चिल्लाते रहनेपर भी उस कन्याको ऐसे ले भागे, जैसे कुत्तोंके भूकते रहनेपर भी सिंह अपना भाग लेकर भाग जाता है ॥ ९, १० ॥ जिस प्रकार पूर्णिमाके रोज महासागर क्षुभित हो उठता है, उसी प्रकार इस समाचारको सुनते ही बलरामजी क्षुभित हो गये, किन्तु कृष्ण तथा अन्यान्य मित्रोंने उनके पैर पकड़कर समझा-बुझाकर उन्हें शान्त कर दिया ॥ ११ ॥ इसके बाद अति प्रसन्न हो बलरामने वर वधूको प्रेमोपहारमें देने योग्य, कीमती अलंकारोंसे भूषित हाथी, घोड़े, रथ आदि, दास-दासियाँ तथा और भी अनेक प्रिय वस्तुएँ दीं ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ एक भगवान् श्रीकृष्णका भक्त था*। जिसका श्रुतदेव नाम था और जो श्रीकृष्णकी भक्तिसे ही पूर्ण मनोरथ हो चुका था। वह शान्त, कवि एवं सीधा-सादा विषयासक्ति शून्य पुरुष था ॥ १३ ॥ वह गृहस्थ होनेपर भी बिना परिश्रमके आकस्मिक प्राप्त भोजन-सामग्री आदिसे ही अपनी सारी क्रियाएँ सिद्ध

* प्रश्नका उत्तर समाप्त हो जानेपर भी बिना राजा परीक्षितके पूछे ही श्रीशुकदेवमुनि प्रत्यक्ष स्वयं अनुभूत भगवान् श्रीकृष्णके चरितका वर्णन करते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर लेता था। हे राजन्, उसका निवास स्थान विदेहवंशोंके आवासदेशोंके अन्तर्गत मिथिलापुरीमें था ॥ १४ ॥ शरीर निर्वाहके लिये तो प्रतिदिन भाग्यवशात् कुछ न कुछ अवश्य आ ही जाता है। भाग्यसे अधिक तो नानाविध प्रयत्न करनेपर भी नहीं आता—ऐसा अपने अन्तःकरणमें मानकर अनायास प्रारब्ध प्राप्त वस्तुसे ही सन्तुष्ट रहता हुआ वह अपनी यथोचित क्रियाएँ मजेमें पूर्ण कर लेता था—अपना सारा काम उतनेसे ही चला लेता था ॥ १५ ॥ तथा हे राजन्, उस देशका राजा भी, जिसका प्रसिद्ध नाम बहुलाश्व था, अहंकारसे रहित था। वह ब्राह्मण तथा वह मैथिल राजा दोनों ही भगवान् अच्युत के परम भक्त थे ॥ १६ ॥ उनकी भक्तिसे प्रसन्न हो भगवान् दारुकसे रथ मँगवाकर उसपर बैठ, मुनियोंके साथ मिथिलादेशको चल पड़े ॥ १७ ॥ नारद, वामदेव, अत्रि, व्यास, कृष्णद्वैपायन, परशुराम, अरुणि, मैं, बृहस्पति, कण्डव, मैत्रेय तथा च्यवन आदि बहुत से ऋषि थे ॥ १८ ॥ हे रजन्,

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ॥ अनीहयाऽऽगताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥१४॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ॥ नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः। मैथिलो निरहम्मान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥१६॥ तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् ॥ आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥१७॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ॥ अहं बृहस्पतिः कण्डवो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥१८॥ तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप ॥ उपतस्थुः सार्घ्यहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥१९॥ आनर्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमत्स्यपाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोसलार्णाः ॥ अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥२०॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ॥ शृण्वन्दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥२१॥ तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ॥ अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥२२॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ॥ कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥२३॥ स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥२४॥ न्यमन्त्रयेतां

जहाँ-जहाँ भगवान् जाते थे, वहाँ वहाँ उस स्थानके लोग अर्घ, पाद्यादिके सहित भगवान्की पूजा करते थे, मानो सकलग्रहकुल उदित हुए भगवान् सूर्यदेव ही आ गये हों ॥ १९ ॥ आनर्त, धन्व, कुरु, जाङ्गल, कंक, मत्स्य, पांचाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोसल तथा अर्ण देशकी नर-नारियोंमें तो उस समय भगवान् कृष्णचन्द्रके स्निग्ध हास तथा स्नेह भरी चितवन से युक्त मुखकमलका अपनी आँखोंसे खूब पान किया ॥ २० ॥ भगवान्के दर्शनसे उनकी अज्ञानभरी दृष्टि नष्ट हो गयी। तीनों लोकके गुरु भगवान् भी अपनी कृपादृष्टिसे उन्हें तत्त्वज्ञान तथा भावविमोच प्रदान करते हुए एवं दसों दिशाओं में व्याप्त, विशुद्ध, देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा गाये जा रहे, सबके पापों के निवर्तक अपने यशका श्रवण करते हुए धीरे-धीरे मिथिलामें आ पहुँचे ॥ २१ ॥ वहाँके ग्राम, नगर तथा देशके निवासी लोग भगवान् अच्युतको आया सुनकर हाथमें अर्घ, पाद्यादि पूजनकी सामग्री ले लेकर अति प्रसन्नचित्त हो उनके पास दौड़ आये ॥२२॥ वे उत्तमश्लोक भगवान्का दर्शन कर अति प्रसन्न हुए। मारे खुशीके उनका मुखकमल तथा हृदय खिल उठा। उन सबने नतमस्तक हो हाथ जोड़ करके भगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीकृष्ण तथा श्रुतपूर्व मुनियोंको प्रणाम किया ॥ २३ ॥ मिथिलाधिपति तथा श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों ही जगद्गुरु उन भगवान् श्रीकृष्णको अपने ऊपर अनुग्रह प्रदान करनेके लिये आया जानकर उन प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े ॥ २४ ॥ मिथिलाधिपति तथा श्रुतदेव दोनोंने साथ ही उन ब्राह्मणोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर अतिथि सत्कारपूर्वक पूजाके लिये निमन्त्रण दिया—हे भगवन्, मेरा घर पवित्र कीजिये ॥ २५ ॥ उन दोनोंका निमन्त्रण स्वीकार कर दोनोंका भला करनेकी इच्छासे उन दोनोंसे अलक्षित होते हुए अर्थात् मेरे घरसे यह दूसरेके यहाँ जा रहे हैं-इस तरहका ज्ञान उन्हें न कराते हुए भगवान् अपने दो रूपोंसे उन दोनोंके घरमें एकही समय मुनि आदि सबके सहित प्रविष्ट हुए ॥ २६ ॥ दुराचारी पुरुषोंको जिनके आनेका पता भी नहीं हो पाता, घर आये हुए उन्हीं परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको तथा ईश्वर तुल्य उन मुनियोंको आसन लाकर महामना जनकजीने दिया और वे भी राजा जनक द्वारा लाये गये श्रेष्ठ उन आसनों पर सुखपूर्वक बैठ गये ॥ २७ ॥ अति निर्मल गाढ़ भक्तिके कारण राजा जनकका हृदय हर्षसे पूर्ण हो गया, उनकी आँखे प्रेमाश्रुसे डबडबा आईं।

दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ॥ मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहताञ्जली ॥२५॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ॥ उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥२६॥ श्रोतुमप्यसतां दूरान् जनकः स्वगृहागतान् ॥ आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥२७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ॥ नत्वा तदङ्घ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥२८॥ सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ॥ गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ॥ पादावङ्कगतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ॥ अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥ स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ॥ यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥३२॥ को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान् ॥ निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥३३॥

किसी प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण तथा उन मुनियोंको नमस्कार कर उनका पाद प्रक्षालन किया और लोगोंको पवित्र करनेवाले उस जलको अपने तथा घरके अन्य सभी लोगोंके ऊपर छिड़का। उसके बाद उन्होंने गन्ध, माल्य, वस्त्र, धूप, दीप, अर्घ, गौ, वृष आदि निवेदनपूर्वक मुनिवृन्दोंके सहित भगवान्की पूजा की ॥ २८,२९ ॥ तदनन्तर अन्नसे भलीभाँति तृप्त हो चुके उन लोगोंसे प्रसन्नतापूर्वक विष्णु भगवान्के चरणोंको अपने अङ्कमें रखकर धीरे-धीरे दबाते हुए राजा जनक बोलने लगे ॥ ३० ॥ राजा जनकने कहा—हे प्रभो, आप सब प्राणियोंके आत्मा तथा साक्षी हैं, आप स्वयं प्रकाश हैं। यही कारण है कि आपके चरणोंका स्मरण कर रहे हम भक्तोंकी आँखोंके सामने आज आप पधारे हैं ॥ ३१ ॥ एकान्त भक्तके सिवा मेरे भाई बलदेव, भार्या लक्ष्मी तथा मेरे पुत्र ब्रह्मा भी मुझे प्रिय नहीं हैं'—यह जो आप बराबर कहते हैं, हे भगवन्, अपने इसी कथनको सत्य प्रमाणित करने के लिये ही आज आप हमारी आँखोंके विषय बने हो ॥ ३२ ॥ आप और जो कुछ देते हैं, सो तो अलग रहे, लेकिन आप तो 'सब तरहसे विरक्त, शान्त मुनियोंको अपनेको भी दे डालते हैं' ऐसा जिस पुरुषको आपके विषयमें ज्ञान हो चुका है, ऐसा भला वह कौन पुरुष है, जो आपके चरणारविन्दको छोड़ दे ? भगवन्, मेरी दृष्टिमें तो ऐसा कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ इस संसरमें जन्म-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भरण कात्रनुभव कर रहे प्राणियोंको शान्ति प्रदान करनेके लिये ही जिसने यदुकुलमें अवतीर्ण होकर तीनोंलोकके पापोंको नष्ट करनेवाले अपने यशका विस्तार किया, उस अकुंठमेधा आप भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। दूसरोंको कष्ट न देनेवाला लोकशिक्षाके लिये तपस्या कर रहे ऋषि नारायण भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ३४,३५ ॥ हे भूमन्, ब्राह्मणोंके साथ कुछ दिनों तक इन्हीं घरोंमें निवास कीजिये और अपनी चरण-रजसे इस निमिकुलको पवित्र कीजिये ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मिथिलापतिकी प्रार्थना पर उनके निमन्त्रणको स्वीकार कर मिथिलावासी नर-नारियोंका परम कल्याण करते हुए लोकभावन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ दिन वहीं पर रह गये ॥ ३७ ॥ राजा जनककी तरह उधर श्रुतदेवने भी ऋषियोंके समेत भगवान् अच्युतको घरपर उपस्थित देखकर उन्हें प्रणाम किया। वह अति प्रसन्न हुआ और खुशीके मारे अपने कपड़े उड़ा-उड़ाकर नाचने लगा ॥ ३८ ॥ अपने घरके पीछेके दरवाजेसे

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ॥ यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥३५॥ दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान्नो निवसद्द्विजैः ॥ समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेःकुलम् ॥३६॥ इत्युपाममन्त्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ॥ उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥३७॥ श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहान् जनको यथा ॥ नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥३८॥ तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः ॥ स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ॥३९॥ तदम्भसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् ॥ स्नापयाञ्चक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥४०॥ फलार्हणोशीरशिवामृताम्बुभिर्मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः ॥ आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥४१॥ स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्गृहान्धकूपे पतितस्य सङ्गमः ॥ यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥४२॥ सूपविष्टान्कृतातिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः ॥ सभार्यस्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभि-

पड़ोसीके घर जाकर उनके यहाँसे लाये गये तृणोंके बने हुए पीढ़ों तथा कुशासनोंके ऊपर इन समागत मुनियोंको बिठाकर स्वागतप्रश्नपूर्वक अभिनन्दन करके अपनी पत्नीके साथ ब्राह्मण श्रुतदेवने उनका हर्षपूर्वक पादप्रक्षालन किया ३९ ॥ महाभाग्यवान्॥, उत्कटहर्षसे युक्त, सम्पूर्ण मनोरथोंसे परिपूर्ण उस ब्राह्मणने उस जलसे अपने घरको, घरके सारे कुटुम्बको तथा अपनेको भी नहलाया ॥ ४० ॥ तदनन्तर अनेकतरहके फलों तथा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पूजनकी सामग्रियों एवं खससे वासित शीतल अमृततुल्य जलों, सुगन्धितमिट्टी, तुलसीके पत्रों, कुशाग्रों तथा कमलके फूलोंसे एवं सत्त्वगुणवर्द्धक अन्नके द्वारा अनायास प्राप्त पूजनकी श्रुतदेव ब्राह्मणने उन सबकी पूजा की ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उसने मनमें विचार किया—गृहरूपी अन्धकूपमें पतित मेरा भगवान् श्रीकृष्ण तथा इनकी मूर्तिके निवासभूत, सम्पूर्ण तीर्थोंके आस्पद पादरेणुवाले इन ब्राह्मणोंके साथ जो आज संगम हुआ, सो कैसे हुआ ? ॥ ४२ ॥ आतिथ्य सत्कारका ग्रहणकर सुखपूर्वक बैठे हुए उन मुनियोंके समीप भार्या आत्मीयजनों तथा अपने बालबच्चोंके सहित जाकर भगवान्‌का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चरण छुवाते हुए श्रुतदेव कहने लगे ॥ ४३ ॥ श्रुतदेवने कहा—भगवन्, परम पुरुषोत्तम आपका यह कोई अपूर्वदर्शन हमें आज प्राप्त हुआ हो, सो बात नहीं है, बल्कि जब आपने अपनी शक्तियोंसे इस विश्वकी रचना कर इसके भीतर अपनी सत्तारूपसे प्रविष्ट हुए तभी हमें यह आपका दर्शन मिल चुका था ॥ ४४ ॥ आपकी मायासे मोहित मन द्वारा जैसे अकेलेही शयन कर रहा पुरुष इस जाग्रत्कालकी देहसे विलक्षणस्वप्नकालके लोकोंकी यानी देव, तिर्यक्, मनुष्यादिदेहसमूहोंको एकमात्र सृष्टिकर उसीके भीतर स्वयं प्रविष्ट हो नानाप्रकारसे अवभासित होता है, वैसे ही हे भगवन्, आप भी अवभासित होते हैं ॥ ४५ ॥ भगवन्, आपकी कथाका जो श्रवण करते हैं, यशका जो गान करते हैं, जो आपकी पूजा करते हैं, आपको ही प्रणाम करते हैं तथा आपके ही विषयमें जो विवाद करते रहते हैं, ऐसे निर्मलात्मा पुरुषोंके हृदयमें आप सदा प्रकाशित रहते हैं ॥ ४६ ॥ कर्मोंसे लौकिक वैदिक नानाप्रकारके व्यापारोंसे विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंके रहते हुए भी आप उनके बहुत दूर रहते हैं। परन्तु अहंकारादि गुणोंसे व्यवहित रहते हुए भी आप, उनके अति

मर्शनः ॥४३॥ श्रुतदेव उवाच ॥ नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ॥ यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ॥ सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥४५॥ शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाभिवन्दताम् ॥ नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥४६॥ हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ॥ आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ॥ सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे स्वमायया संवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे ॥ एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षगोचरः ॥४९॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥५०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय सम्प्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् ॥ सञ्चरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥५१॥

समीप सदा रहते हैं, जिन्होंने आपके गुणानुवादका श्रवण-कीर्तन कर अपनी आत्माको शुद्ध बना लिया है ॥ ४७ ॥ जिसके हृदयसे अहंकारादि भाव निवृत्त हो गये हैं उन्हें परमात्मस्वरूपसे भासमान होनेवाले, देहादिमें अहंभाव रखनेवाले जीवोंको अपनी आत्मासे अलग मृत्युयुक्त सांसारिकबन्धन प्रदानकरनेवाले एवं महदादिकार्य तथा उनकी कारणभूत प्रकृतिरूप उपाधिको नियमरूपसे प्राप्त करनेवाले हे—अपनी मायासे अलुप्तैश्वर्य भगवन्, मायापति होनेके कारण अन्यकी ज्ञानदृष्टिको मायासे आच्छादित करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ भगवन्, हमें आप आज्ञा दीजिये, हे देव, हम आपकी कौन-सी सेवा करें। हम सबके सब आपके सेवक हैं तभीतक प्राणियोंको क्लेश होता है, जब तक कि आप दृष्टिगोचर नहीं होते ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इस प्रकार उनके वचन सुनकर शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् हाथमें हाथ पकड़कर हँसते हुए बोलने लगे ॥ ५० ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे ब्रह्मन्, यह आप भलीभाँति जान लीजिये कि आपके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही ये ब्रह्मर्षिगण यहाँ पधारे हैं। ये लोग मुझसे प्रेरित होकर अपने चरणरजसे तीनों लोकोंको पवित्र करते फिरते हैं ॥ ५१ ॥ देवप्रतिमाएँ, अयोध्या, मथुरा आदि क्षेत्र तथा गङ्गा आदि तीर्थ स्थान दर्शन, स्पर्शन तथा अर्चन आदिके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्वारा धीरे-धीरे बहुत कालके बाद मनुष्यको पवित्र करते हैं। किन्तु ये महात्मा लोग तो तुरन्त पवित्र कर देते हैं। और देवता आदि जो पवित्र करते हैं वह भी अर्हत्तमोंके दर्शन-मात्रसे तो शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है ॥ ५२ ॥ इस संसारमें सभी प्राणियोंके बीचमें ब्राह्मण तो जन्मसे ही सबसे श्रेष्ठ हैं। अपनी—तपस्या, विद्या तथा तुष्टि आदि गुणोंसे एवं मेरी कलासे यदि वह युक्त है तो फिर उसके विषयमें हम अधिक क्या कहें ॥ ५३ ॥ यह चतुर्भुजरूपभी मुझे उतना प्यारा नहीं है, जितना कि ब्राह्मण मुझे प्यारे हैं, क्योंकि सम्पूर्णवेदस्वरूप तो ब्राह्मण हैं और मैं हूँ सर्वदेवस्वरूप । ५४ ॥ मेरे इस मतको न जानकर ही ब्राह्मणोंमें दोषदृष्टि रखनेवाले तथा प्रतिमा आदिमें अपूज्यबुद्धि रखनेवाले निर्बुद्धि लोग ही सबके गुरु विप्ररूपधारी मुझ परमात्माकी अवहेलना करते हैं ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण सर्वत्र मदीक्षासे इस चराचर विश्वको तथा जो इस विश्वके कारणभूत हैं, उन्हें भी मेरा ही रूप समझ कर अपने चित्तमें धारण करते हैं। अतः उनका अपमान करना सारे संसारका अपमान करना है ॥ ५६ ॥ इसलिए हे ब्रह्मन्, इन ब्रह्मर्षियोंकी आप उसी श्रद्धा

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ॥ शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥५२॥ ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥५३॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥५४॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ॥ गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ५५॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ॥ मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥५६॥ तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयार्चय ॥ एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥५७॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं प्रभुणादिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् ॥ आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥५८॥ एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ॥ उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥५९॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

भक्तिसे पूजा कीजिये, जैसी श्रद्धाभक्ति आपकी मुझमें विद्यमान है यदि इस तरह आप इनकी पूजा करते हैं तब तो समझ लीजिये कि आप साक्षात् मेरी ही पूजा कर चुके, अन्यथा नानाविध पूजनकी प्रचुरसामग्रियोंसे मेरा पूजन करनेपर भी मैं पूजित न हो सकूँगा ऐसा आप निश्चित जान लीजिये ॥ ५७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्के इस प्रकार कहनेपर श्रुतदेव ब्राह्मण तथा वह मिथिलाधिपति दोनों ही भगवान्के रूप ही समान यानी अभेददृष्टिसे उन ब्राह्मणों और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजाकर परम सद्गति भगवान्को ही प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥ हे राजन्, इस प्रकार भक्तकी भक्ति करनेवाले भगवान् अपनी सन्मार्गरूपभक्तिका उन्हें उपदेश करते हुए वहाँ कुछ रोज रहकर फिर अपनी पुरी द्वारिकाको चले आये ॥ ५९ ॥

छियासी अध्यायका सार—राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन्, कहिये, हमारे दादा अर्जुनका भगवान्की बहनके साथ कैसे विवाह हुआ था ? श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, एक समय तीर्थयात्रा करते हुए अर्जुनने अपने मामाकी कन्या सुभद्राके रूपकी प्रशंसा सुनी। उन्होंने यह भी सुना कि बलदेवजी दुर्योधनको उसे देना चाहते हैं। वे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संन्यासीका वेष धारणकर वहाँ पहुँचे और वहीं रहने लगे। संन्यासीके नाते सभी इनका सत्कार करते थे। एक दिन बलरामजीने इन्हें भिक्षाके लिए अपने घर बुलाया। भोजन आगे रखकर वे वहाँसे चल दिये। संन्यासीजी लगे भोजन करने। भोजन करते समय उन्होंने वहाँ एक सुन्दर लड़की देखी। देखते ही वे काम विह्वल हो गये। वह भी इन्हें सुन्दर पुरुष देखकर इनपर आसक्त हो गयी और इन्हें अपना पति बनानेकी इच्छा की। एक दिन देवयात्राके समय सुभद्रा रथपर सवार हो किलेसे बाहर आयी। भगवान् श्रीकृष्णकी रायसे धनुष ले अर्जुन भी रथपर चढ़कर वहाँ उपस्थित हुए और सभी वीरोंको वहाँसे भगाते हुए यदुवंशियोंके देखते-देखते सुभद्राको ले भागे। बलदेवजीको जब यह बात मालूम हुई तो पहले वे बहुत नाराज हुए, पर जब भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें पैर पकड़कर समझाया तब वे भी प्रसन्न हो गये। हे राजन्, इसके बाद एक और कथा सुनिये—जब द्वारिकापुरी में भूतभावन भगवान् सुखपूर्व रह रहे थे, उस समय मिथिलाप्रदेशमें एक ब्राह्मण कृष्णका परमभक्त था तथा मिथिलाधिपति भी भगवान्के परम भक्त थे। उनकी भक्तिसे सन्तुष्ट हो भगवान्ने उन्हें दर्शन देनेकी इच्छासे नारद, व्यास आदि ऋषियोंके साथ मिथिलाको प्रस्थान किया। रास्तेके नर-नारियोंने जब भगवान्को आते सुना, तो वे पाद्य, अर्घ्य आदि वस्तुएँ लेकर उनके पास आए और उनकी पूजाकर अपनेको सफल मनोरथ समझा। उनके नेत्र सफल हो गये। रास्तेमें भगवान् कृष्णचन्द्र सबको दर्शन देते हुए एवं अपनी उज्ज्वलकीर्तिका विस्तार करते हुए मिथिलामें पहुँचे। जब श्रुतदेव तथा मिथिलाधिपने सुनाको भगवान्ने यहाँ पदार्पण किया है तो परमप्रसन्न हो उनके पास आये और उन्हें अपने-अपने घर ले जानेके लिये निमन्त्रण किया। भगवान्ने दोनोंका निमन्त्रण स्वीकार किया। भगवान् ऋषियोंके साथ एकही समय दो रूप धारणकर उनके घर पधारे, किन्तु यह बात उन्हें न मालूम पड़ी। दोनोंने खूब भक्तिभावसे भगवान् तथा उन ऋषियोंका पूजन किया। उन्हें बड़े प्रेमके साथ भक्तिकी शिक्षा देते हुए वहीं कुछ दिन रहनेके बाद भगवान् द्वारकाको लौट आये। छियासी अध्याय समाप्त॥

❀ अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ❀

(भगवान्की वेदों द्वारा स्तुति)

राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन, जाति आदिके द्वारा जिसका निर्देश नहीं किया जा सकता, ऐसा कार्य और कारणसे परे जो निर्गुण ब्रह्म है, उसके विषयमें जात्यादि प्राकृत गुणोंसे प्रवर्तनशील श्रुतियाँ मुख्यवृत्तिसे कैसे प्रवृत्त होती हैं अर्थात् निर्गुण परब्रह्म परमात्माका गुणमयी श्रुतियाँ साक्षात् कैसे वर्णन कर सकती हैं?॥१॥ श्रीशुकदेवजी

परीक्षिदुवाच॥ ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः॥ कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे॥१॥ श्रीशुक उवाच॥ बुद्धीन्द्रि-
यमनःप्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः॥ मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥२॥ सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता॥ श्रद्धया धारये-

ने कहा—हे राजन्, उपाधिपारवश्यशून्य तथा सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान्ने विषयोपभोगके लिए जन्मसे लेकर जीवनपर्यन्त सम्पूर्ण कर्म करनेके लिए, स्वर्गादि तत्-तत् लोकोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भोगोंकी प्राप्तिके लिए तथा कल्पनानिवृत्तिरूपमोक्षके लिए * जीवोंकी बुद्धि, इन्द्रिय, मन एवं प्राणोंकी † सृष्टि की है ॥ २ ॥ हे राजन्, यह उभयविध ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाली उपनिषत् है । इसे लोगोंके पूर्वजोंके भी पूर्वपुरुषोंने—सनक आदिने धारण किया है । इसे तर्कादिके विना ही श्रद्धापूर्वक जो पुरुष धारण करता है, वह देहादि उपाधिका परित्याग कर परमपद मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥ हे राजन्, अब इस विषयमें मैं आपसे भगवान् नारायणसे सम्बद्ध एक इतिहासरूप गाथाका वर्णन करने चल रहा हूँ, जिसमें नारद ऋषि और नारायण भगवान्का संवाद हुआ है ॥ ४ ॥ एक समय भगवान्के सबसे प्रियभक्त नारद ऋषि सम्पूर्ण लोकोंका भ्रमण करते हुए सनातन ऋषिको देखनेकी अभिलाषासे नारायणाश्रम गये ॥ ५ ॥ जो स्वयं ही इस भारतवर्षमें प्राणियोंके कल्याणकी इच्छासे कल्पके आदिसे ही धर्म,

ध्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिञ्चनः ॥ ३ ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ॥ नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥ एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ॥ सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥ यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ॥ धर्मज्ञान-शमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥ तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ॥ परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरुद्वह ॥ ७ ॥ तस्मै ह्यवोचद्भ-गवानृषीणां शृण्वतामिदम् ॥ यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वायम्भुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा ॥

ज्ञान और शान्तिसे युक्त तप कर रहे हैं ॥ ६ ॥ हे कुरूद्वह, वहाँ कलापग्रामके रहनेवाले ऋषियोंके साथ सनातन ऋषि नारायण बैठे हुए थे । उन्हें नमस्कार कर नम्रता के साथ नारदने यही प्रश्न किया, जो आज आपने मुझसे किया है ॥ ७ ॥ हे नारद, जनलोकनिवासियोंमें ब्रह्मविषयक जो वादविवाद हुआ था, वह मैं तुमसे कहता हूँ, इसप्रकार भगवान्ने ऋषियोंके सुनते हुए नारदजीसे कहा ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे नारद, बहुत पहलेकी बात है, एक समय जनलोकमें वहाँके रहनेवाले ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुए नैष्ठिक ब्रह्मयोगी मुनियोंका एक ब्रह्मसत्र ‡ याग हुआ । उस समय तुम वहाँ उपस्थित न थे । श्वेतद्वीप निवासी अनिरुद्ध भगवान्की मूर्ति देखनेके लिए तुम श्वेतद्वीप चले गये थे ।

---

* अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्षके लिए । † जैसे परमेश्वरने जीवोंके चतुर्विध पुरुषार्थलाभके लिए सबसे पहले मुनियोंकी रचना की है, वैसे ही उन्होंने विषय आदिका अनुभव करनेके लिए, श्रुतियोंका तात्पर्य समझनेके लिये तथा ब्रह्मका अनुभव करनेके लिए बुद्धि आदिकी भी रचना की है । रूप, शब्द आदिके अनुभवके लिए चक्षु आदि इन्द्रियोंमें तत् तत् शक्ति स्पष्ट ही देखनेमें आती है, अन्यथा जन्मान्ध तथा बधिर आदिकोंकी नाईं रूप और शब्द आदि भी ब्रह्मके ही समान अविषय हो जाते । अब इधर प्रकृतमें आइये—श्रुतियोंके अर्थ श्रवणमें इन्द्रियोंकी शक्ति है, उनके मननमें मनकी तथा उनके अर्थोंका निश्चय करने एवं ब्रह्मानुभवमें भी बुद्धिकी शक्ति है । प्राणोंकी शक्तिके विषयमें तो कहना ही क्या ? उनकी शक्ति तो सबके मूलभूत जीवन धारणमें है ही ।

‡ एकही तरहके यजमान ऋत्विगादिरूपसे जहाँ कर्म करते हैं, उनका फल भी उन्हें एक-सा ही प्राप्त होता है, वही कर्म जैसे सत्र नामसे प्रसिद्ध है, वैसे ही तुल्य गुणवाले महात्मा लोग निःसन्दिग्ध ब्रह्मज्ञानके लिए श्रोता-वक्ता बनकर जो ब्रह्मके विषयमें विचार करते हैं उसे 'ब्रह्मसत्र' समझना चाहिये ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसी समय वहाँ एक बहुत सुन्दर वह ब्रह्मविचार हुआ था। जिसमें सभी श्रुतियाँ अर्थात् निर्णीत हो जाती हैं। उस जनलोकमें भी यही प्रश्न छिड़ा था, जो आज तुम मुझसे पूछ रहे हो ॥ ९,१० ॥ उन ऋषियोंमें पढ़ने-लिखनेमें कोई किसीसे कम नहीं था, तपस्या और स्वभावमें वे सभी एक-से थे। सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि होनेके कारण शत्रु, मित्र और उदासीन—सभी उनकी दृष्टिमें बराबर थे। वे सभी प्रवचन करने योग्य थे, तथापि उन सबने एक सनन्दनको ही अपना वक्ता बनाया तथा और जो सनक आदि थे वे स्वयं शुश्रूषु बन बैठे ॥ ११ ॥ सनन्दनने कहा—हे ऋषियो, अपने विरचित इस सारे संसारको अपनेमें ही लीन कर सूक्ष्मावस्थाको प्राप्त प्रकृति-पुरुष-काल आदिके साथ नींद ले रहे परम पुरुष भगवान्को—प्रलयकालके अन्तमें उन परमेश्वरके प्रथम निश्वाससे आविर्भूत हुई ये श्रुतियाँ अधिकार प्राप्त अपना कार्य होनेके कारण भगवान्के प्रतिपादक वाक्यों द्वारा—ऐसे जगाने लगी, जैसे नींद ले रहे चक्रवर्ती राजाको—प्रातःकाल आकर उसके सेवक वन्दो सब उसकी श्रेष्ठ रीतियोंसे युक्त तथा उसके पराक्रमके बोधके वचनों द्वारा—जगाते हैं ॥ १२, १३ ॥ श्रुतियोंने कहा—हे अजित, हे स्थावर तथा जंगम सभी प्राणियोंकी सम्पूर्ण शक्तियोंके अवबोधक आपकी जय हो, आपकी जय हो। दोषके लिए ही (जीवोंके आनन्द आदिके आवरणके

तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं यदीश्वरम् ॥ ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ॥ तत्र हायमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥ १० ॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः ॥ अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥ ११ ॥ सनन्दन उवाच ॥ स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ॥ तदन्ते बोधयाञ्चक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥ १२ ॥ यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः ॥ प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥१३॥ श्रुतय उचुः ॥ जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥ अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १४ ॥ बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदिवाऽविकृतात् ॥ अत ऋषयो दधुस्त्वयिमनोवचनाचरितं कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥१५॥

लिए ही) सत्वादि गुणोंको ग्रहण करनेवाली स्थावर तथा जंगम सभी प्राणियोंकी मायाको (अविद्याको) आप नष्ट कर दीजिये। कहनेका तात्पर्य यह है कि इन प्राणियोंकी अविद्याको आप इस तरहसे दूर कर दीजिये कि, फिर इन्हें पुनर्जन्मकी प्राप्ति न हो सके। क्योंकि हे भगवन, आप अपने स्वरूपसे ही समस्त ऐश्वर्य आदि गुणोंको प्राप्त किये हुए हैं, कभी (सृष्टि करते समय) अपनी मायासे क्रीड़ा कर रहे आपका 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभि "सविशन्ति तद्ब्रह्म" इत्यादि वेद समूह तथा कभी अपने स्वरूपसे ही वर्तमान रह रहे आपका 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि वेदसमूह प्रतिपादन करते हैं ॥ १४ ॥ जैसे संसारके प्राणी घटादि मिट्टीके विकार समूहको मिट्टीका ही रूप समझते हैं वैसे ही प्रलयकालमें सांसारिक सभी पदार्थोंके नष्ट हो जाने पर एकमात्र आपके ही अवशेष रह जानेके कारण सभी ऋषि लोग इस उपलब्ध (देखे या सुने गये) सारे विश्व तथा इन्द्रादि सबको आप ब्रह्मका ही रूप समझते हैं, स्वयं विकारशून्य जिस उपादानभूत आप ब्रह्मसे विकार मात्रकी (कार्यरूप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्पूर्ण जगत्को) उत्पत्ति और नाश होता है अर्थात् जैसे मिट्टीसे घट बनता है और अन्तमें नष्ट होकर फिर उसीमें उसका लय हो जाता है वैसे ही हे प्रभो, इस सारे विश्वके उपादानभूत आप ब्रह्मसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति होती है और आखिरमें आपमें ही इसका लय भी हो जाता है। * अतः ऋषियोंने यही निश्चय किया है कि मनसा वाचा आचरित सब आपमें ही स्थित है अर्थात् मन और वचनसे ग्राह्य सभी वस्तुओंका आपमें ही पर्यवसान है क्योंकि हे भगवन्, जहाँ कहीं भी रखे गये मनुष्योंके पैर पृथ्वीपर नहीं रखे गये भला कैसे कहे जा सकते हैं ॥ १५ ॥ हे त्रिगुणमयी माया मृगीके नर्तक, एकमात्र यही कारण है कि विवेकी महानुभावोंने श्रवण-कीर्तन आदिमें तत्पर सभी प्राणियोंके मनको नष्ट कर देनेवाले आप रूपी अमृत सागरका अवगाहन कर अपने आध्यात्मिक आदि त्रिविध दुःखोंका परित्याग कर दिया है। जब आपके कथा श्रवण कीर्तनादि मात्रसे इस संसार के सभी ताप निवृत्त हो जाते हैं, तो फिर हे परम, जो लोग स्वरूपसाक्षात्कारके द्वारा जिन लोगोंके अन्तःकरणके रागादिधर्मों तथा कालके जरा, मरण आदि गुणोंका परित्याग करते हुए नित्यानन्द चिदात्मक आपके स्वरूपको बराबर भजते हैं, उनके विषयमें क्या कहना—वे सांसारिक तापोंका परित्याग कर देते हैं, क्या यह भी कहनेकी बात है ? ॥ १६ ॥

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ॥ किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ १६ ॥ दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽण्डमसृजन्यदनुग्रहतः ॥ पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७॥ उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम् ॥ तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्य-

हे भगवन्, यदि मनुष्य आपका अनुसरण करते हैं तब तो उनका संसारमें, जीना सफल है। यदि वे आपका अनुसरण नहीं करते, तो फिर वे भाथीके (धौकनीके) समान व्यर्थ साँस लेते हैं अर्थात् जिस प्रकार साँस लेती हुई भी भाथी बेकार है उसी प्रकार श्वास ले रहे उन प्राणियोंका भी जीवन बेकार है। जिसके अनुग्रहसे देहारम्भक महदहमादि यानी चित्ताहङ्कार बुद्धि आदि जड़ होते हुए भी समष्टि व्यष्टिरूप सारे ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं, पुरुषकारस्वरूप जो इन अन्नमयादिकों ‡ में कारणरूपसे सम्बद्ध है तथा जो इनमें चरम है एवं जो सत् और असत्से परे, इन अन्न मयादिकोंमें अवशेष सत्यस्वरूप है, सो हे भगवन् आपही हैं ॥ १७ ॥ ऋषियोंके साम्प्रदायिक मार्गमें जो स्थूलदृष्टि वाले पुरुष हैं वे उदरमें स्थित—मणिपूरकमें स्थित ब्रह्मकी उपासना करते हैं तथा अपनी अपेक्षा जो और सूक्ष्मदृष्टिवाले अरुणमुनिके वंशज हैं वे लोग नाडियोंके चारो ओर प्रसरणके स्थानभूत हृदयके भीतर स्थित दहराकाश नामक ब्रह्मकी उपासना करते हैं। कारण कि हे अनन्त, उसी हृदय स्थानसे आपके उपलब्धिका स्थान सुषुम्ना नामक श्रेष्ठ ज्योतिर्मय मस्तक पर्यन्त ऊपरकी ओर पहुँचा हुआ है यानी मूलाधारसे लेकर हृदयके बीचसे होकर ब्रह्मरन्ध्रतक चला गया है, जहाँ पहुँचकर प्राणी पुनः इस मृत्युके मुख संसारमें नहीं गिरता ॥ १८ ॥ हे भगवन्, अपने द्वारा

* देखिये श्रुति—'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं देखना होगा सत्यम्' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

‡ अन्नमय प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—ये पाँच कोश हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विरचित ऊँच, नीच, मध्यम विचित्र तरहकी योनियोंमें यानी अभिव्यक्तिके स्थानकार्यस्वरूपदेव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदिके शरीरोंमें उपादानरूपसे पहले ही विद्यमान रहनेके कारण प्रविष्ट हो रहे-से अपनी ही विरचित देवादि योनियोंका अनुकरण करते हुए स्वतः तारतम्य शून्य रहनेपर भी आप उत्कृष्ट और अपकृष्टभावसे इसतरह प्रकाशित होते हैं, जिसतरह स्वतः तारतम्यशून्य रहनेपर भी काष्ठके अनुसार छोटे-बड़े, स्थूल एवं सूक्ष्मरूपसे काष्ठगत अग्नि अवभासित होती है। [भगवन्, वस्तुतः आपमें कोई तारतम्य नहीं है, किन्तु नानाविध देवादि योनियोंकी आकृति ग्रहण करनेसे वैसे आप प्रतीत होते हैं। *] यही कारण है कि सभी सांसारिक व्यवहारोंसे शून्य यानी ऐहिक तथा पारलौकिक किसी तरहके फलकी अभिलाषा न रखने वाले निर्मलमति विद्वान् महानुभाव लोग मिथ्याभूत इन योनियोंमें सर्वविकारशून्यसत्य, अविशेष, सदा एकरस आपका स्वरूप समझते हैं ॥ १९ ॥ हे प्रभो, कार्य और कारणसे अनावृत रहते हुए भी आध्यात्मिक सम्बन्धसे इन अपने कर्मोपार्जित देवादि शरीरोंमें भोक्तारूपसे विद्यमान जीवको ये श्रुतियाँ सम्पूर्ण शक्तियोंके आश्रय पूर्णगुण सम्पन्न आपका ही अंशकृत बतलाती हैं—आपका ही स्वरूप बनजाती है। इसतरहसे जीवतत्त्वका विवेचन करके इस धरातलके ऊपर विद्यमान उसी विवेकी महानुभाव लोग

नलवत्स्वकृतानुकृतिः ॥ अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥१९॥ स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तर-संवरणं तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ॥ इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥२०॥ दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ॥ न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्ट-गृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ॥ न बत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो

'एकमात्र भगवान्के चरणारविन्द ग्रहण करनेसे हो जीवोंको सांसारिकदुःखोंसे मुक्ति मिल सकती है, और कोई दूसरा उपाय नहीं है' ऐसा विश्वास युक्त हो करके निगमविहित समस्त कर्मरूपीबीज बोनेके क्षेत्र समर्पित जन्म-मरण आदि सांसारिक दुःखोंके निवर्तक आपके चरणका सेवन करते है ॥ २० ॥ हे ईश्वर, दुर्ज्ञेय अपना आत्मतत्त्व बतलानेके लिए शरीरधारी आपके चरितरूपी महान् अमृतके सागरमें गोता लगाकर श्रमशून्य हो, आपके चरणसरोजमें हंसकी तरह रमण करनेवाले भक्तोंके सङ्गसे गृहका भी परित्याग करके कोई लोग तो मोक्षकी भी चाह नहीं करते ॥ २१ ॥ हे भगवन्, जीवनामक जो आपका अंश है उसके सम्बन्धसे ही यानी जीवरूपसे आप परमात्माका सम्बन्ध होनेके कारण ही यह घोसलारूप शरीर आत्मा, सुहृत् तथा प्रियजनकी नाईं भासता है ‡ । किन्तु बड़े आश्चर्य तथा कष्टकी बात यह है कि जिसके सम्बन्धसे इस शरीरमें तत्-तत् वस्तुओंका भान होनेसे प्रेम उत्पन्न होता है, उस अपने हितचिन्तक, प्रिय तथा आत्मा आप परमात्माके सदा सन्मुख रहते हुए भी आपमें इस शरीरकी तरह भी जो प्रेम नहीं करते, वे सचमुच असत्की उपासना करनेसे

* देखिये श्रुति क्या कहती है—'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।' तथा 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'।

‡ मृत शरीरमें जीवका भान न होनेसे वहाँ आत्मवत् प्रतीत होता है, अहन्ताका आस्पद होनेसे सुहृद्वत् तथा विषय समर्पण द्वारा हितैषी बननेके कारण यह शरीर प्रियवत् भासता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अर्थात् देहादिके लालन-पालन द्वारा आसक्ति रखनेसे आत्मघाती हैं। प्रभो, उन आत्मघातियोंकी वासनाएँ सदा असत्की उपासनामें ही लगी रहती हैं, अतः वे अपनी उन वासनाओंके कारण सूकर तथा कुत्तों आदि का शरीर धारण करते हुए संसारमें चक्कर लगाते फिरते हैं॥ २२॥ प्राण मन तथा इन्द्रियोंका संयमन कर ये योग करनेवाले मुनिलोग जिस तत्वकी अपने शुद्ध अन्तःकरणमें उपासना करते हैं उसी तत्त्वको आपके शत्रु भी द्वेषबुद्धिपूर्वक निरन्तर आपके स्मरणसे प्राप्त कर चुके हैं। हे प्रभो, भगवान् शेषनागकी देहके सदृश आपके भुजदण्डोंमें जिनकी दृष्टि गड़ी रहती है वे परिछिन्नदृष्टि रखनेवाली गोपजनकी स्त्रियाँ और आपके चरण-सरोजका भलीभाँति ध्यान कर रही अपरिच्छिन्नदृष्टिवाली हम श्रुतियाँ भी आपकी दृष्टिमें एकसी हैं * ॥२३॥ भगवन्, अपसोस है, इस संसारमें आपके बाद जन्म लेनेवाला तथा नाशवान् कौन प्राणी सृष्टिसे पहले विद्यमान आपको जान सकता है? ब्रह्माकी भी उत्पत्ति आपके बाद हुई और उनके बाद आध्यात्मिक तथा आधिदैविक देवोंकी उत्पत्ति हुई। इसलिए अर्वाचीन होनेके कारण वे भी आपको नहीं जान सकते। जब आप सब वस्तुओंका संहार कर शयन कर लेते हैं, उस समय आपका अंशभूत जीवोंका ज्ञान नष्ट हो जाता है, क्योंकि उस समय न तो सत्—स्थूल आकाशादि रहते और न

यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः॥ २२॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्॥ स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥२३॥ क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये॥ तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा॥ २४॥ जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः॥ त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स धवेदवबो-

असत्—सूक्ष्म महदादिकी ही स्थिति रहती है। उस समय सत् और असत्से बना शरीर भी नहीं रह जाता तथा तन्निमित्तकाल विषमता भी उस समय नहीं रह जाती। यही कारण है कि उस समय इन्द्रियसमूह और प्राणादि नहीं रहते तथा उसके ज्ञापक शास्त्र भी नहीं रह जाते॥ २४॥ जो वैशेषिक लोग असत्की—अविद्यमान जगत्की उत्पत्ति बतलाते हैं, जो गौतम मतानुयायी सत्यका—इक्कीस प्रकारके दुःखका नाश बतलाते हैं, जो भेदवादी नैयायिक तथा सांख्यमतानुयायी लोग आत्मभेदका प्रतिपादन करते हैं तथा जो मीमांसक लोग कर्मफल व्यवहारको सत्य बतलाते हैं, वे सबके सब आरोपित भ्रमको लेकर ही अपने-अपने मनका उपदेश दिया करते हैं † तत्त्वदृष्टिसे नहीं। त्रिगुणमय पुरुष हैं—इस हेतुसे जो आत्मभेद व्यवहार होता है वह भी आपके विषयमें अज्ञानकृत ही है, इसलिए यह निश्चित है कि आवरण रहित असंग ज्ञानैकस्वरूप आपमें वह अज्ञान वस्तुतः नहीं है॥ २५॥

* अर्थात् हम चारों ही आपकी कृपाका विषय होनेसे समान हैं।

† अथवा लौकिक आरोपके कारण ही वे वैसी बातें किया करते हैं, उनमें उनका मुख्य तात्पर्य नहीं रहता, क्योंकि वैसा मानलेनेपर तो 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध आता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकमात्र मनका विलासस्वरूप यह दिखाई दे रहा जो त्रिगुणात्मक प्रपञ्चसमूह है, पुरुषपर्यन्ता‡ वह सब असत् होते हुए भी आप अधिष्ठानके रहनेसे सत्-सा प्रतीत होता है। आत्मज्ञानी लोग तो भोक्ता और भोग्यस्वरूप इस सारे विश्वको आत्मरूप होनेके कारण सद्रूपही‡ समझते हैं। जैसे सोना खरीदने वाले लोग असली सोना लेनेके निमित्त सुवर्णकी विकृतिभूत कटक, केयूर आदिका त्याग नहीं कर देते, बल्कि असली सोना समझ कर उसको ले लेते हैं वैसे ही आत्मज्ञानी महानुभावोंने सबके उपादानभूत आत्मद्वारा विरचित इस विश्वको तथा इस विश्वमें प्रविष्ट हुए पुरुषरूपको अर्थात् भोग्यभोक्तात्मक सारे विश्वको आत्मरूपसे ही निश्चय किया है ॥ २६ ॥ सकल प्राणियोंका निवासस्थान समझकर अर्थात् 'सम्पूर्ण वस्तुओंमें भगवान् विद्यमान हैं ऐसा समझकर जो आपकी परिचर्या करते हैं, वे मृत्युका तिरस्कार उसके सिरपर अपना पैर रखते हैं—मृत्युको पराजित कर देते हैं। जो आपसे विमुख रहते हैं—आपके अभक्त रहते हैं उन्हें आप वेदरूपवाणी द्वारा पशुओंकी तरह तत्-तत् कर्मके अधिकारीरूपसे चाहे वे विद्वान् ही क्यों न हों बाँध रखते हैं, अतः इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आपमें प्रेम करनेवाले अपने साथ औरोंको भी तार देते हैं। किन्तु अन्य जन ऐसा नहीं कर पाते ॥ २७ ॥ भगवान्, चक्षु आदि इन्द्रियोंसे शून्य रहते हुए भी

धरसे ॥ २५ ॥ सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः ॥ न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥ तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ॥ परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥ २७ ॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयाऽनिमिषाः ॥ वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ २८ ॥ स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ॥ न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवाऽपदस्य तव

आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी इन्द्रियोंके प्रवर्तक हैं, क्योंकि आप स्वराट् हैं—अपनेसे प्रकाशित रहनेवाले बिलकुल स्वतन्त्र हैं। भगवन्, अधिक हम आपसे क्या कहें, अविद्याके सहित इन्द्रादि देवता तथा उनके भी पूज्य विश्वके रचयिता ब्रह्मा आदि भी आपकी उस तरह पूजा करते हैं, जिस तरह अपनी स्त्रीके साथ नौकर अपने स्वामीकी सेवा करते हैं तथा प्रजाओं द्वारा दिये गये हव्य कव्य आदिका वे लोग स्वयं ऐसे भक्षण करते हैं, जैसे कि छोटे-छोटे प्रदेशोंके राजा लोग सम्पूर्ण पृथिवीके अधिपतिके लिए अपनी प्रजाओं द्वारा समर्पित उपहारका स्वयं उपभोग करते हैं †। हे प्रभो, इन सब देहाधिदेवोंमें जो लोग आपके द्वारा जिस कार्यमें नियुक्त किये गये रहते हैं वे सभी आपसे डरते हुए अपना-अपना कार्य भलीभाँति करते हैं ॥ २८ ॥ हे नित्यमुक्त, सङ्गरहित अज आपको जब अपनी अज मायासे क्रीडा करनेकी चाह होती है, उस समय आपकी दृष्टिमात्रसे अविर्भूत हुए पूर्वकृत कर्मोंके द्वारा ही लिङ्गशरीरसे युक्त स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं। कर्मोंका वैचित्र्य ही सृष्टि वैचित्र्यमें कारण है, आपमें तो कोई वैषम्य नहीं है। प्रभो, आकाशकी तरह सबपर समदृष्टि

‡ तात्पर्य यह कि पुरुषकी—जीवकी जो पृथक् सत्ता प्रतीत हो रही है। वह भी एकमात्र मनका विलास ही है। अर्थात् उपादानभूत आत्माका कार्य होनेसे यह विश्व भी आत्मासे पृथक् नहीं है।

† अर्थात् मायासे आवृत इसका यह तात्पर्य है—जैसे छोटे छोटे प्रदेशोंके राजा लोग अपनी प्रजाओंसे सम्राट्के लिये कर वसूल करके उसका स्वयं उपभोग करते हुए सम्राट्को भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रखनेवाले, वाणी और मनसे परे, शून्यकी समता रखनेवाले अर्थात् अतिसूक्ष्म परमकारुणिक आपका कोई अपना या पराया नहीं है ॥ २६ ॥ यदि जीव वस्तुतः अनन्त, नित्य एवं सर्वगत हों, तो हे ध्रुव, वे आपके नियम्य हैं, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वैसा माननेपर तो वे भी आपके ही समान ठहरते हैं तथा उन्हें नित्य एवं व्यापक स्वीकार करलेने पर पुण्य और पापके साधन तथा दुःख-सुख आदिके फलका कोई नियम नहीं रह सकेगा। क्योंकि व्यापक होनेसे वे सर्वत्र रह सकेंगे। अर्थात् यदि इन्हें जन्म एवं अणु मानते हैं, तो फिर वे दोनों बातें घट सकती हैं। जिस ब्रह्मका विकाररूप जीव नामक पदार्थ उत्पन्न हुआ है वह कारणरूप वस्तु स्वयं कर्ता और कारण होनेसे अपने कार्यको उपादानरूपसे न छोड़कर उस जीव नामक अपने कार्यका नियामक है ही। जो कारणरूप वस्तु सबमें अनुस्यूत है वह सामान्यतः बुद्धि विषयमात्रके दृष्ट होनेसे हमलोग उस ब्रह्मको जानते हैं ऐसा कहनेवालेको भी वस्तुतः विज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ भगवन्, प्रकृति और पुरुषकी उत्पत्ति होती है, यह कथन नहीं घटता, क्योंकि वे दोनों अजन्मा हैं। परस्पर अध्यस्त

शून्यतुलां दधतः ॥ २६ ॥ अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ॥ अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ ३० ॥ न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् ॥ त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥ नृषु तव मायया भ्रममभीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् ॥ कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥ ३२ ॥ विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः ॥ व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा

होनेसे प्राण आदि उपाधियोंसे मुक्त जीव जलके बुल्लोंकी नाईं उत्पन्न होते हैं। वास्तवमें तो इन जीवोंका जन्म उपाधिप्रयुक्त ही है, स्वतः नहीं है। चूँकि इनका जन्म वास्तविक नहीं है, इसलिए वे सभी जीव अनेकविध इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि उपाधियोंके साथ परम कारण आप परमेश्वरमें ऐसे लीन हो गये हैं, जैसे कि समुद्रमें सभी नदियाँ एवं मधुमें सकल फूलोंके रस ॥ ३१ ॥ इन जीवोंमें आपकी मायासे उत्पन्न हुए 'देहादिमें आत्माभिमानरूपी' दुस्तर भ्रमको जानकर विवेकी महानुभाव लोग संसारके निवर्तक आपमें प्रत्येक चणमें बढ़ रही श्रवणकीर्तन द्वारा अपनी मनोवृत्ति करते हैं। चूँकि जिनके आप रक्षक नहीं हैं उन्हींमें आपका भ्रूभङ्गरूपी त्रिणेमि यानी काल, जिसके नेमियोंकी तरह एक वर्षमें शीत, उष्ण और वर्षारूपी तीन अवच्छेदक हैं, जन्म-मरणकरूपभय बार-बार पैदा करता है, इसलिये आपको ही एकमात्र अपना आश्रय समझकर जो भजन करते हैं, उन्हें भला संसार का भय कैसे हो सकता है ॥ ३२ ॥ हे अज, जो लोग गुरुचरणका आश्रयण न करके अति चंचल, इन्द्रियों, वायु और प्राणोंको वशमें किये हुए योगियोंसे भी वशीभूत न होनेवाले मनरूपी घोड़ेको वशमें करनेके लिए यत्न करते हैं वे लोग नानाप्रकारके उपायोंमें तकलीफ पाते हुए तथा सैकड़ों आपत्तियोंका सामना करते हुए इस भवसागरमें ऐसे निमग्न होते हैं,

भेंट पहुँचाते हैं वैसे ही इन्द्रादि देवता भी परब्रह्म परमात्माको प्रजाओं द्वारा दिये गये हव्य-कव्यका स्वयं भक्षण करते हुए उस परमेश्वरको भी भेंट चढ़ाते हैं। परब्रह्म परमात्माकी आज्ञाका परिपालन करना ही इन देवताओंका परमात्माको उपहार देना है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जैसे कि बिना नाविकके व्यापारी लो समुद्रमें ॥ ३३ ॥ असंख्य मनुष्योंके बीचमें सर्वसुखसम्पन्न परमानन्दस्वरूप आप परमात्माका आश्रयण करनेवाले पुरुषको परिवार सुत, देह, स्त्री, धन, गृह, पृथिवी, प्राण, इन्द्रियों एवं रथादिकोंसे क्या प्रयोजन है—इनसे उसे कोई फल नहीं है। इस कारण सत्य परमार्थ सुखस्वरूप आपको न जानकर स्त्रियोंके साथ रति सुखके लिए गृहमें रह रहे पुरुषोंको स्वतः नश्वर तथा ऐश्वर्यादि भोगोंसे शून्य—निःसार इस संसारमें कौन आत्मीय सुख दे सकता है ॥ ३४ ॥ जो ऋषि अहंकारशून्य तथा आपके चरणकमलोंका सदा अपने हृदयमें स्थापना किये हुए हैं वे पापनाशक अपने चरणकमलोंके जलसे युक्त रहते हुए भी इस पृथिवीके ऊपर विद्यमान जितने अनेक पुण्यमय तीर्थ तथा क्षेत्र हैं उनकी उपासना करते हैं। प्रायः वहींपर महान् भगवद्भक्तोंकी सङ्गति मिलनेसे जो लोग नित्य सुखरूप आत्मभूत आपमें एकबार भी अपने मनको लगा देते हैं वे फिर उन घरोंकी कभी भी उपासना नहीं करते, जो पुरुषोंके विवेक, धैर्य, क्षमा, शान्ति आदि प्रमुख गुणोंका हरण कर लेनेवाले हैं ॥ ३५ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् सद्रूप ही परमात्मासे उत्पन्न है अतः

जलधौ ॥ ३३ ॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ॥ इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति को न्विह स्वविहते स्वविरस्तभगे ॥ ३४ ॥ भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उ त भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः ॥ दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥ सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ॥ व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥ न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ॥ अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यव-

यह भी सद्रूप ही है, यदि यह कोई अनुमान करे, तो उसका यह अनुमान तर्क शून्य है, क्योंकि कहींपर पिता-पुत्र आदिमें तो यह व्यभिचरित है, कहींपर रज्जु-सर्प आदिमें मिथ्या है। यहाँ भी रज्जुसर्प आदिमें सद्रूप ही नहीं है, किन्तु कारणनिष्ठ सत्त्व और स्वनिष्ठ असत्त्व दोनों तरह से युक्त है, अतः सत् नहीं है। परन्तु व्यवहार चलानेके लिए हमें विकल्प (भ्रम) भी सत्यरूपसे ही इष्ट है, क्योंकि जबतक घट सत्यरूप नहीं मान लिया जाता, तबतक कूप आदिसे उसके द्वारा जल कैसे निकाला जा सकता है? और जो यह रूपयों-पैसोंके द्वारा व्यवहार चल रहा है यह अन्धपरम्परासे ही चल रहा है, न कि विज्ञपरम्परासे। इसलिए व्यवहार दृष्टिसे जगत् सत्य ही है, किन्तु अनित्य होनेसे नश्वर है। हे भगवन्, वेदरूप आपकी वाणी गौणी लक्षणा आदि अनेक वृत्तियोंसे उन सभी मन्द-बुद्धियोंको मोहमें डाल देती है, जो कर्म श्रद्धाके भारसे आक्रान्त हैं ॥ ३६ ॥ चूँकि यह विश्व पहले नहीं था तथा महाप्रलयमें नष्ट हो जानेके बाद फिर भविष्यमें नहीं होगा। इसलिए मध्यमें भी एक रस केवल आपमें मिथ्यारूप ही यह भासित हो रहा है, यह निश्चित है। ऐसा होनेसे श्रुति इसकी उपमा—मिट्टी लोहा तथा सुवर्णादिरूप समस्त द्रव्योंके घट, कटाह, कुण्डल आदिके प्रकारोंसे देती है (जैसे घट कुण्डल आदि रूप कार्योंमें एकमात्र नाम ही है, कारणरूप मिट्टी आदि तो सत्य ही हैं वैसेही इस विश्वमें भी जो आकाश आदि पदार्थ हैं इनमें केवल नाम ही है ब्रह्मही सत्य है) इसलिए अर्थात् इस विश्वकी सत्तामें कोई प्रमाण न मिलने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से तथा असत्तामें प्रमाण मिलनेसे जो लोग मिथ्याभूत मनके विलासरूप इस विश्वको सत्यरूपसे जानते हैं वे सचमुच अज्ञ हैं ॥ ३७ ॥ वह जीव चूँकि मायाके द्वारा अविद्याका आलिङ्गन कर लेता है—उपाधिसे लिप्त हो जाता है, इसलिए देह, इन्द्रिय आदि गुणोंका सेवन करते हुए बादमें उनके धर्मोंके साथ अपना सम्बन्ध जब स्थापित कर लेता है तब ज्ञान, ऐश्वर्य, आनन्द आदि इसके अपने गुण छिप जाते हैं और तब यह संसारभागी हो जाता है। हे भगवन् , आप तो नित्य सिद्ध ज्ञान ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न हैं, अनन्त ऐश्वर्य आदि गुणोंसे युक्त हैं, साधारण मनुष्योंकी तरह आपका परिच्छिन्न ऐश्वर्य नहीं है, इसलिए आप उस मायाका परित्याग कर देते हैं। हे भगवन्, वह माया तो आपमें ही रहती है आप उसका त्याग कहाँ करते हैं। हाँ जैसे साँप अपने ही शरीरकी केचुलका त्यागकर देता है यानी गुण समझकर उसका अधिक मान नहीं करता वैसे ही आप अपनी ही मायाकी उपेक्षा कर बैठते हैं तथा अणिमा आदि आठ प्रकारकी विभूतियोंसे सम्पन्न परमानन्दस्वरूपमें आप सदा विराजमान रहते हैं। भगवन्, यही इतना तो जीव और ईश्वररूप आपमें वैलक्षण्य है ॥ ३८ ॥ हे भगवन् , योगी लोग यदि अपने हृदयके अन्दर स्थित वासनाको उखाड़कर फेंक नहीं डालते, तो फिर कामवासनाओंसे दूषित अन्तःकरण वाले प्राणियों

यन्त्यबुधाः ॥ ३७ ॥ स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ॥ त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥ यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः ॥ असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ॥ अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥ द्युपतय एव ते न

के हृदयमें स्थित रहते हुए भी आप, स्मृतिगोचरण हुए कण्ठमें स्थित मणिकी तरह, उनके लिए दुष्प्राप्य ही हैं। हे भगवन्, इन्द्रियोंकी तृप्तिकरनेमें तत्पर योगरूप कपटवेशधारी योगियों को तो मृत्युकी निवृत्ति न होनेके कारण एवं आपके स्वरूपकी प्राप्ति न होनेके कारण—यों दोनों स्थानमें भी अर्थात् इस लोकमें तथा परलोकमें भी उन्हें दुःख ही दुःख है ॥ ३९ ॥ हे सगुण, आपको जाननेवाला पुरुष कर्मफल प्रदाता आप ईश्वरसे फलोत्पत्तिके लिए समुपस्थित प्राचीन पुण्य-पापात्मककर्मोंके फलभूत सुख-दुःखके सम्बन्धोंका अनुसन्धान नहीं करता तथा आपके स्वरूपकी जानकारी हो जानेपर देहाभिमानियोंके निन्दा-स्तुति वाक्योंका भी कुछ परवा नहीं करता। यह ठीक ही है, क्योंकि हरएक युगमें सगुण आपकी गीत परम्पराके द्वारा सभी लोग प्रतिदिन श्रवण करके आपको अपने चित्तमें धारण करते हैं और तब आप उनकी मोक्षरूप गति हो जाते हैं। [भगवन् मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि जो जीवन्मुक्त तत्त्वज्ञानी महानुभाव हैं वे तो सुख–दुःखके अनुसन्धानसे रहित रहते हैं। उनका तो कर्मोंमें अधिकार ही नहीं है और जो लोग निरन्तर आपकी कथा श्रवण आदि में निष्ठा रखनेवाले हैं, उन्हें भी, जो आपके स्वरूपप्राप्तिके समीप पहुँच रहे हैं, विधि तथा निषेधकी सेवकाई की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, अब रह गये वे लोग, जो मर्यादा पालनके योग्य होते हुए भी वेदोक्त मर्यादाका त्याग करके योगसाधन आदिके बहाने इन्द्रियोंके लालन-पालनमें लगे रहते हैं। भगवन् , उन्हें तो दोनों लोकमें दुःख ही दुःख है] ॥४०॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवन्, स्वर्गलोकके अधिपति ब्रह्मा आदि भी आपका पार न पा सके। और अधिक हम आपसे क्या कहें, आप अपनी महिमाका अन्त अनन्त होनेसे खुद नहीं पा रहे हैं। भगवन्, आश्चर्य है, जिस तरह आकाशमें वायुसे रज एकसाथ परिभ्रमण करते हैं वैसे ही आपके मध्यमें उत्तरोत्तर दस गुण अधिक पृथिवी आदि सात आवरणोंसे युक्त ये ब्रह्माण्ड समूह एक साथ ठीक एक समयसे परिभ्रमण करते हैं, जिससे कि हम श्रुतियाँ भी, जिनकी समाप्ति आपमें ही है, वह स्थूल नहीं है, अणु नहीं है, ह्रस्व नहीं है—इत्यादि हमसे स्थूलत्वादिका निरास करके (खण्डन करके) तात्पर्यवृत्तिसे आपमें ही परिवसित होती हैं, किन्तु हम आपका साक्षात् नहीं प्रतिपादन करतीं ॥ ४१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—ब्रह्मपुत्र सनक आदिने इस प्रकार वेदस्तुत्यात्मक आत्मानुशासन सुनकर आत्मतत्वको भली-भाँति जानकरके कृतार्थ होते हुए आखिरमें गुरुरूप सनन्दनकी विधिवत् पूजा की ॥ ४२ ॥ इस तरह समस्त वेद, पुराण और उपनिषदोंके सारभूत अर्थका सभी प्राणियोंमें वृद्ध, किसीकी भी अपेक्षा न होनेके कारण आकाशमें विहार करनेवाले सनत्कुमार आदि महात्माओंने निर्णय किया है

यद्युरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराऽण्डनिचया ननु सावरणाः ॥ ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥४१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् ॥ सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥४२॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः ॥ समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥४३॥ त्वं चैतद् ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् । धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् ॥ पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरतव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्तये ॥ यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥४६॥ इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः ॥ ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः ॥ तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥ इत्येतद्वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ॥ यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि मनश्चरेत् ॥ ४९ ॥ योऽस्योत्प्रे-

॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मदायाद नारदमुने, आपभी मोक्ष प्रतिबन्धका वासना विशेष जो जीवोंके काम हैं उनके निवर्तक इस आत्मानुशासन (आत्मविषयकशिक्षा) को श्रद्धापूर्वक अपने चित्तमें धारण करते हुए अपनी इच्छाके अनुसार सारे भूमण्डल तथा सभी लोकोंमें घूमते रहिये ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, आत्माका अनुभव रखनेवाले, श्रुतके अनुसन्धानमें तत्पर नैष्ठिक नारदमुनि इस प्रकार ऋषिद्वारा उपदिष्ट आत्मतत्त्वको श्रद्धासे ग्रहणकर आनन्दसे पूर्ण हो नैष्ठिक श्रीनारायणसे कहने लगे ॥ ४५ ॥ नारदजीने कहा—उस स्वच्छ कीर्ति भगवान् कृष्णको नमस्कार है, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके मोक्षके लिये कमनीय कलायें धारण करते हैं ॥ ४६ ॥ इस तरह आनन्दचित्त नारदमुनिने कृष्णस्वरूप आदि ऋषिनारायणको तथा उनके शिष्योंको नमस्कार कर वहाँ मेरे परमपूज्य साक्षात् पिता व्यासजीके आश्रमके लिये प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥ वहाँ पर भगवान् व्यासने उनका सत्कार किया। तथा उनसे सत्कृत हो आसन पर बैठकर जो कुछ नारायणऋषिके मुखाम्बुजसे सुना था उसे उनसे कहा ॥ ४८ ॥ हे राजन्, निर्गुण ब्रह्ममें मन जैसे विचरण करता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है और श्रुतियाँ जैसे विहरणशील होती हैं वैसे मैंने आपसे यह सब वर्णन कर दिया। अर्थात् श्रुतियाँ निर्गुण ब्रह्मका कैसे गुन गाती हैं—यह आपने मुझसे पूछा उसका उत्तररूप से मैंने श्रुतियों द्वारा गीत सब कुछ आपसे कह दिया ॥ ४९ ॥ जो इस विश्वका उत्प्रेक्षक है, जो उसके जन्म, पालन और निधनमें वर्तमान रहता है, जो अव्यक्त तथा जीवका (प्रकृति और पुरुषका) ईश्वर है—नियामक है, जिसने इस ब्रह्माण्डकी रचना कर ऋषिरूप जीवके साथ भीतर प्रविष्ट होकर जीवोंके भोगके स्थान शरीरोंका निर्माण किया है और निर्माणके बाद पुनः उनका परिपालन करता है। जिसको प्राप्तकर जीव कार्यकारणरूप अविद्याका परित्याग कर देता है। जैसे सुप्त शरीरवालेको दूसरे देखते हैं, किन्तु सोया हुआ

त्वक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥ यं सम्पद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे उत्तरार्धे नारदनारायणसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

प्राणी शरीरको नहीं देखता वैसे ही देहवान् जीवन्मुक्तको दूसरे देखते हैं किन्तु वह कुछ नहीं देखता। कैवल्यद्वारा (अप्रच्युतस्वरूपावस्थानद्वारा) मायाका तिरस्कार कर चुके उस भय निवर्तक भगवान् श्रीहरिका निरन्तर ध्यान करना चाहिये ॥ ५० ॥

सतासी अध्यायका सार—राजाने कहा—भगवन्, निर्गुण ब्रह्मका श्रुतियाँ कैसे गुन गाती हैं कृपाकर मुझसे कहिए। श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, नारदमुनिके यही प्रश्न करनेपर ऋषि नारायण भगवान्ने उनसे कहा—मुने, एकबार ऋषियोंकी भरी सभामें सनत्कुमारसे पूछनेपर उन्होंने कहा—ऋषियो, निर्गुण ब्रह्मका श्रुतियाँ इस प्रकार वर्णन करती हैं—हे स्थावर-जंगम सभीकी शक्तियोंके अवबोधक, आपकी जय हो, आपकी जय हो। सभीके मायाका नाश कर दें। आपके अधीन सबका ऐश्वर्य है। भगवन्, सृष्टिके समय जब आप अपनी मायाशक्तिसे क्रीडा करने लग जाते हैं तब हम श्रुतियां भी आपका गुण गानेमें प्रवृत्त हो जाती हैं—जो इस विश्वका साक्षी है, जो इसकी उत्पत्ति, प्रलय और स्थितिमें विद्यमान रहता है, जो प्रकृति तथा पुरुषका नियन्ता है जिसने इस ब्रह्माण्डकी रचना कर जीवके साथ स्वयं उसमें प्रविष्ट होकर जीवोंके भोगोंके स्थान शरीरका निर्माण करता है। जिसको प्राप्तकर यह जीव अविद्याका त्याग करदेता है उस मायारहित परब्रह्म परमात्मा भगवान् विष्णु का निरन्तर ध्यान करना चाहिये। नारायणने ऋषि नारदजी से कहा—मुने, इसतरह सनत्कुमार द्वारा वर्णित आत्मज्ञानोपदेश पाकर सनक आदि सभी ऋषियोंने कृतार्थ हो उनकी विधिवत् पूजा की। हे मुने, इस आत्मतत्त्वोपदेशका श्रवणकर आप यथेच्छ विहार करते रहिये। श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, नारदमुनि उनसे उपदेश पाकर उन्हें प्रणाम कर मेरे पिताके आश्रमपर चले आये। और जो कुछ उन्होंने भगवान् नारायण भगवान्के मुखसे सुना था मेरे पिताजीको ज्योंका त्यों सुना दिया। राजन्, जो आपने पूछा था उसका उत्तर मैंने इस तरह आपको दे दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ अष्टशीतितमोऽध्यायः

[भगवान् विष्णुकी सेवासे मुक्ति तथा अन्य देवताओंकी सेवासे विभूति प्राप्त होती— यह वर्णन]

राजा परीक्षित्ने कहा—हे मुने, यह क्या बात है कि देव, असुर और मनुष्योंके बीचमें जो लोग अमंगल वेषधारी शंकरजीकी भक्ति करते हैं वे प्रायः धनी तथा सुख भोगी होते हैं, किन्तु सकल सम्वत् तथा भोगादिसेयुत लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका जो भजन करते हैं वे सर्वदा धनहीन होते हैं ॥ १ ॥ इसे मैं जानना चाहता है, मुझे इसविषयमें महान् संदेह है, क्योंकि विरुद्धशील अपने प्रभुओंकी सेवा करनेवाले भक्तोंको विरुद्धफल मिलता है ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, सदा अपनी शक्तिसे युक्त, नित्यमुक्तेश्वराविर्भाव विशेष नित्यानन्दरूप पुरुष ही शिव यानी ईश्वर होते हुए भी गुणोंमें क्षोभ होनेपर त्रिलिङ्गी हो जाता है। प्रकृतिके गुणोंसे संवृत यह अहंकार सात्विक, राजस और तामस—यों तीन तरहका है। जो तामसाहङ्कारादिका अधिष्ठाता है वही शिवादि नामवाला है। इसलिए अहंकरादिका जो अधिष्ठाता है वह भी गुणोंसे युक्त है (अतः विभूतियोंके तीनों गुणोंका

राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ॥ प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याःपतिं हरिम् ॥ १ ॥ एतद् वेदितुमिच्छामः सन्देहोऽत्र महान् हि नः ॥ विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत् त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु कञ्चन ॥ उपधावन् विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥ निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ॥

कार्य होनेसे उनके भजनसे विभूतियोंकी प्राप्ति होती है। कहनेका तात्पर्य यह कि एक उसीका सात्त्विक तथा निर्गुणरूपसे भजन करनेपर मनुष्योंको ज्ञान और मोक्ष भी प्राप्त होते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके समान शिवको भी उपाधिशून्य मान लेनेपर तो मूर्तिके नाममात्रमें ही विवाद है अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण और शङ्करमें कोई भेद नहीं है एक ही मूर्तिके सिर्फ दो नाम हो गये हैं) ॥ ३ ॥ वैकारिक (सात्त्विक) अहङ्कारसे मन, तैजस (राजस) अहङ्कार से दस इन्द्रियां और तामस अहंकारसे पाँचभूत—ये सोलहविकार उत्पन्न हुए हैं। अहङ्कारके कार्यभूत इन सोलह विकारोंके प्रजापति आदि देवताओंके मध्यमें जिसी किसका पूजन करता हुआ पुरुष सम्पूर्ण विभूतियोंके बीचमें उस अधिष्ठातृ देवताके द्वारा दिये जाने योग्य ऐश्वर्य आदि फल प्राप्त करता है (अथवा—इन सभी विभूतियोंके बीचमें उपस्थ-इन्द्रियके, जीभके या मनके उद्देश्यसे भगवान् शङ्करका भजन करता हुआ पुरुष सम्पूर्ण विभूतियोंके स्वरूपको प्राप्त होता है, क्योंकि सभी विभूतियां परस्पर सापेक्ष हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि एककी प्राप्ति होनेपर सम्पूर्ण विषयसुखोंकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् शिवके गुणमय होनेसे तथा सम्पदाओंके भी गुणमय होनेसे भगवान् शिवका भजन करनेपर सम्पदाओंकी प्राप्ति होती ही है, अतः कोई विरोध नहीं है) ॥ ४ ॥ परन्तु भगवान् विष्णु तो निर्गुण है। प्रकृतिसे परे वह साक्षात् भगवान् परमपुरुष सर्वज्ञ तथा सर्वसाक्षी हैं उनका भजन करनेवाला प्राणी निर्गुण यानी मुक्तही हो जाता है ॥ ५ ॥ अश्वमेध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

योग समाप्त होनेपर आपके पितामह युधिष्ठिरजीने भगवान्का गुणानुवाद सुनते हुए अच्युत भगवान्से यही प्रश्न कर दिया और मनुष्योंके कल्याणके लिए पृथ्वीपर यदुकुलमें अवतरित हुए प्रभु भगवान् श्रीकृष्णने शुश्रूषा करनेमें तत्पर युधिष्ठिरको बड़े प्रेमके साथ उत्तर भी दिया। उस समय भगवान्ने कहा—हे राजन्, मैं जिसके ऊपर प्रसन्न होता हूँ, धीरे-धीरे उसका धन छीन लेता हूँ। बादमें, जब उसका धन समाप्त हो जाता है, दुःख परम्पराग्रस्त निर्धन उस पुरुषका उसके अपने ही आदमी तिरस्कार करने लग जाते हैं ॥ ६, ७ ॥ वह बन्धुओंके आग्रहको देखकर जब फिर उसकी प्राप्तिका उपाय करता है, तो उस समय भी मैं उसके सम्पूर्ण मनोरथोंको विनष्ट कर देता हूँ। निष्फल मनोरथ हो वह धनार्थ व्यापारसे विरक्त होकर मेरे भक्तोंसे प्रेम करने लगता है। और तब तो मैं उसके ऊपर अनुग्रह करने लग जाता हूँ ॥ ९ ॥ चूँकि वह ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म, सन्मात्र, देश, काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे रहित है अतः परमसूक्ष्म और दुर्विज्ञेय होनेके कारण दुराराध्य मुझे छोड़कर प्राणी अन्य देवताओंका भजन करता है ॥ १० ॥ भजन करनेके बाद शीघ्र

शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ॥ ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥ स यदा वितथोद्योगो
निर्विण्णः स्याद्धनेहया ॥ मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥ तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ॥ अतो मां सुदुराराध्यं
हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥ १० ॥ ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ॥ मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरन्त्यवजानते ॥ ११ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरा-
तनम् ॥ वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाप सङ्कटम् ॥ १३ ॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुने पथि नारदम् ॥ दृष्ट्वाशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु
दुर्मतिः ॥ १४ ॥ स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिध्यसि ॥ योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तुष्टः

सन्तुष्ट हो जानेवाले भगवान् शङ्कर आदि देवताओंके द्वारा प्राप्त राज्यादि नानाप्रकारकी सम्पत्तियोंसे उत्पथगामी, गर्वित एवं अनवहित होकर उन वर प्रदान करनेवाले देवताओंको बिलकुल भूल जाते हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, शाप तथा प्रसन्न होकर वरदान देनेमें समर्थ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि अनेक देवता हैं उनमें भी तुरत शाप देने वाले तथा प्रसन्न हो जानेवाले भगवान् शिव और ब्रह्मा जी हैं। लेकिन भगवान् विष्णु ऐसे नहीं हैं, वे तो एकमात्र अनुग्रह करना ही स्वभाव है ॥ १२ ॥ इस विषयमें एक पुराने इतिहासका वृद्धलोग उदाहरण दिया करते हैं। जिसमें कि शङ्करजीमे वृकासुरको वरदान देकर किसप्रकार दुःखित हुये यह बतलाया है ॥ १३ ॥ दुर्मति वृकासुर शकुनिका लड़का था। एकबार कहीं जाते समय उसने रास्तेमें नारदमुनिको देखा। और उनके पास जाकर उनसे ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र इनमें शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाले कौन देवता हैं! यह पूछा ॥ १४ ॥ नारदजीने कहा—तुम शङ्करजीकी उपासना करो तत्काल सिद्धि पाजाओगे। वे भगवान् शङ्कर थोड़ी ही आराधनासे प्रसन्न हो जाते हैं और थोड़ेसे ही आराधना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सै क्रुद्ध भी हो जाते हैं ॥ १५ ॥ बन्दियोंकी तरह स्तुति कर रहे रावण और बाणासुरको अतुल ऐश्वर्य देखकर भगवान् शङ्करजी महान् सङ्कटको प्राप्त हो गये ॥ १६ ॥ नारदजीसे यों आदेश पाकर वह घृकासुर केदारक्षेत्रमें अपने शरीरसे माँस काटकर उस अपने माँससे हवन करते हुए अग्निमुख उस भगवान् शङ्करकी उपासना करने लगा ॥ १७ ॥ इस तरह प्रतिदिन उपासना करने पर भी जब उसको भगवान् शङ्करका दर्शन न प्राप्त हुआ तब उसे वैराग्य हो आया। वैराग्य कारण 'या तो मैं मर जाऊँगा या अपना कार्य साधन करूँगा—यों निश्चय करके जब वह सातवें रोज उसी केदारखण्डमें स्नान करके उस तीर्थजलसे आर्द्रकेशोंसे युक्त अपने मस्तकको तलवारसे काटनेको तैयार हुआ ॥ १८ ॥ तब महाकरुणा वाले उस भगवान् शङ्करजीने उस अनलसे मूर्तिमान् अग्नि-जैसे निकलकर अपने दोनों हाथोंसे उसके हाथोंको पकड़ लिया और उसके हाथसे तलवार छीनकर सिर काटकर हवन करनेसे रोक दिया, जिस तरह हम लोग मरनेकी इच्छा कर रहे किसीको रोक देते हैं। वह घृकासुर भगवान् शङ्करके शरीरका स्पर्श होते ही व्रणशून्य आकृतिसे सम्पन्न हो गया

स्तुवतोर्बन्दिनोरिव ॥ ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसङ्कटम् ॥ १६ ॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ॥ केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि ॥ शिरोऽवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात ॥ निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥१९॥ तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ॥ प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥२०॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् ॥ यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥२१॥ यच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत ॥ ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥२२॥ (इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः) ॥ स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥ स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥२३॥ तेनोपसृष्टः सन्त्रस्तः पराधावन्सवेपथुः ॥ यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥ अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः ॥

॥ १९ ॥ और उससे कहा—हे घृक, अपना सिर न काटो, न काटो, रहने दो। मस्तक काटकर हवन करनेकी आवश्यकता नहीं है। मुझसे मनवाञ्छित वर माँग लो। मैं तुम्हें दे रहा हूँ। मैं तो सिर्फ जलसे ही आराधना कर रहे अपने भक्तोंके ऊपर प्रसन्न हो जाता हूँ। तुम नाहकमें अपनी देहको अत्यन्त पीड़ित कर रहे हो ॥ २० ॥ भगवान् शङ्करने जब ऐसा कहा, तो उस महापापीने सम्पूर्ण प्राणियोंका भय उत्पन्न करने वाला "जिसके जिसके सिरपर मैं हाथ रख दूँ वह मर जाय" यह वर माँगा ॥ २१ ॥ हे भारत, यह सुनकर भगवान् रुद्रने जैसे साँपको अमृत दे दिया जाय उस तरह उस कुपात्रको अन्य मनस्क हो हँसते हुए 'ओम्—तथास्तु' कहकर वर दे दिया ॥ २२ ॥ जब भगवान् शङ्करने वर दे दिया तो वह असुर पार्वतीको निःसन्देह हरलेने इच्छासे उनके वरकी परीक्षाके लिए उन्हींके सिरपर हाथ रखने लगा। यह देखकर शङ्करजी डर गये और अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगे ॥ २३ ॥ डरकर काँपते हुए शङ्करजी वहाँसे भाग चले तथा वह उनके पीछे-पीछे चला। इस तरह सब दिशाओंमें घूम आनेपर भी उन्हें कहीं ठिकाना नहीं लगा। जहाँ तक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृथ्वी और आकाशका अन्त है वहाँ तक भागनेपर भी जब ठिकाना नही लगा। तो वे उत्तरदिशाकी ओर चल पड़े ॥ २४ ॥ देवताओंने जब यह देखा, तो वे अवाक् गये क्योंकि उन्हें इसकी प्रतिक्रिया मालूम न थी। तब शङ्करजी वैकुण्ठकी तरफ दौड़े, जो कि अन्धकार रहित अतएव प्रकाश बहुत था ॥ २५ ॥ जहाँ पर भूतोंके साथ द्रोह न करनेवाले शान्त त्यागियोंके परमफलभूत साक्षात् भगवान् नारायण विराजमान रहते हैं, जिनके पास जाकर मनुष्य पुनः वहाँसे वापस नहीं आता ॥ २६ ॥ रुद्र भगवान्को वैसे दुःखमें पड़े देखकर दुःखियोंके दुःखोंको दूरकरनेवाले भगवान् नारायण अपनी शक्तिसे ब्रह्मचारी बनकर दूरसे ही यानी वैकुण्ठसे उनके सन्मुख आये। वे मेखला कृष्णमृगचर्म, दण्ड एवं रुद्राक्षमाला धारण किये हुए थे । वे अपने तेजसे अग्निकी नाईं प्रदीप्त हो रहे थे और हाथमें कुश लिये हुए थे उन्होंने भिक्षुककी नाईं 'सावधान हो जाओ' ऐसा कहकर अपना अभिवादन कराया तथा उसके बाद स्वयं कहने लगे ॥ २७, २८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे शाकुनेय, आप बहुत शान्त मालूम पड़ते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। आपने इतने दूरतक आनेका

ततो वैकुण्ठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः ॥ शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः ॥ दूरात्प्रत्युदियाद् भूत्वा बटुको योगमायया ॥२७॥ मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ॥ अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः ॥ क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ॥२९॥ यदि नः श्रवणायालं युष्मद् व्यवसितं विभो ॥ भण्यतां प्रायशः पुम्भिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते॥३०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता पृष्टो वचसाऽमृतवर्षिणा ॥ गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥ श्रीभवानुवाच ॥ एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ॥ यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥ यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्रः जगद्गुरौ ॥ तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३॥ यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथञ्चिद्दानवर्षभ ॥ तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥ ३४ ॥ इत्थं भगवत-

क्यों कष्ट उठाया ? कुछ देरतक विश्राम कीजिए, क्योंकि यह शरीर मनुष्यके सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका साधक है, इसे नाहकसे कष्ट न दीजिये ॥ २९ ॥ यदि हम सुननेके योग्य हों, तो हे प्रभो, आप अपना निश्चितकार्य अवश्य कहिये, क्योंकि सहायकरूपसे गृहीत हुए पुरुषोंके द्वारा ही प्रायः इस संसारके मनुष्य अपना कार्य साधन करते हैं, अकेले कार्यसिद्ध नहीं होता, अतः यथाशक्ति मैं भी आपका अवश्य ही कुछ उपकार कर सकता हूँ ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, इस प्रकार अमृत बरसानेवाले वचनोंसे भगवान्के पूछने पर उसने अपनी सभी बातें उनसे ज्यों-की-त्यों सुना दीं, जैसी जो पहले हुई थीं ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—यदि बात ऐसी है, तो मैं आपसे साफ-साफ कहता हूँ कि मैं तो इनकी बातोंमें तनिक भी श्रद्धा नहीं रखता, जो ये प्रेत और पिशाचोंके सम्राट् शङ्करजी दक्षके शापसे पिशाचोंकी वृत्तिको प्राप्त हो चुके हैं ॥ ३२ ॥ हे दैत्यराज, यदि आपका उन जगद्गुरुके विषयमें विश्वास है। तो शीघ्र आप अपने सिरपर अपना हाथ रख उनके वचनकी परीक्षा कर लीजिये न ॥ ३३ ॥ यदि शङ्करका कथन किसी तरह असत्य सिद्ध हो गया,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तब हे दानवश्रेष्ठ, असत्यवादी इन रुद्रकी खूब मजेसे मरम्मत कर दीजिये, ताकि भविष्यमें फिर कभी ये ऐसी झूठी वाणी न बोलते फिरें ॥ ३४ ॥ भगवान्‌की इस तरहकी विचित्र विचित्र मीठी बातों से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। वह वरदानके अर्थको बिलकुल भूल गया। दुर्बुद्धि उस असुरने अपने ही मस्तकपर अपना हाथ तुरत रख दिया ॥ ३५ ॥ हे ईश, महान् पुरुषोंका अपराध करनेवाला ऐसा भला कौन जन्तु है, जो सुखी रह सकता है ? फिर जगद्गुरु जगदीश आपका अपराध करनेवाला जन्तु कभी सुखी नहीं रह समता, इसमें

श्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ॥ भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः सङ्कटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥ हतः को न महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः ॥ क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥ गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥४०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

क्या कहना ? ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य वाणी तथा मन आदिके विषयसे पृथक् शक्तियोंके समुद्र एवं प्रकृति आदिसे अतीत साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीविष्णुके द्वारा किये गये इस शङ्कर संकटमोचनरूपचरित्रको कहता या सुनता है, वह संसृतियों से (नानाविध योनियों में संचरणों से) तथा संसारके कारणभूत कामादि शत्रुओं से छुटकारा पा जाता है ॥ ४० ॥

अठासी अध्याय का सार—राजा परीक्षित् ने कहा—हे महर्षे, क्या कारण है कि भगवान् शङ्करके भक्त सुखी तथा विष्णुके भक्त बहुधा दुःखी रहा करते हैं। श्री शुकदेवजीने कहा—राजन्, शङ्कर आदि कुछ देवता त्रिगुणात्मक हैं जल्दी ही वे लोग सेवकोंके ऊपर प्रसन्न हो जाते तथा उनको शापसे ग्रस्त भी बना देते हैं। तथा ये जो संसार की विभूतियाँ हैं वे भी सब त्रिगुणात्मक हैं, । त्रिगुणमय शङ्कर आदि देवता इन त्रिगुणात्मक विभूतियों के अधिष्ठातृ-देवता हैं, अतः जिस विभूतिकी चाहसे जिस देवता की उपासना की जाता है विभूतिके अधिष्ठातृ-देवता उसे वह विभूति प्रदान करते हैं। परन्तु भगवान् विष्णु गुणातीत हैं, अतः उनकी उपासना करने पर उपासकको त्रिगुणात्मक विभूतियोंकी प्राप्ति नहीं होती, बल्कि भगवान् जिस अपने भक्तके ऊपर अनुग्रह करते हैं उसका धीरे-धीरे सब कुछ हर लेते हैं। धनादिसे हीन उस व्यक्तिका उसके सगे-सम्बन्धी सब अनादर करने लग जाते हैं। सबसे अनादर हुआ वह प्राणी संसारसे विरक्त हो भगवान्‌की ही एकमात्र शरणमें जाकर अन्तमें उनके स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। राजन्, इस विषयका एक प्राचीन आख्यान सुनिये— एकबार रास्तेमें घूमते हुए अचानक वृकासुरको नारदमुनिसे भेंट हो गई। उसने उनसे पूछ दिया कि हे मुने, बतलाइये, ब्रह्मा, विष्णु, और शंकर—इन में आशुतोष कौन है। नारदजीने कहा—शंकरकी उपासना करो, तुम्हें शीघ्र सिद्धि मिल जायगी। नारदजीके कथनानुसार वह अपना शरीर काट-काट कर प्रति दिन हवन करने लगा। लगातार छः रोज तक ऐसा करनेपर भी जब कुण्डसे शंकरजी प्रकट न हुए तो सातवें रोज तलवार लेकर अपना सिर काटनेकी उसने ज्योंही तैयार की त्योंही भगवान् शङ्कर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उस कुण्डसे प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—बेटा, ऐसा करनेकी जरूरत नहीं है, तुम चाहे जो चाहो, मुझसे माँग लो। वृकासुरने कहा—'भगवन्, मैं जिसके सिरपर हाथ रखूँ वह तत्काल ही भस्म हो जाय, भगवान् शंकरने कुछ उदास होकर 'तथाऽस्तु' कह दिया उस दुष्टने तत्काल ही शङ्करके ऊपर उस वर की परीक्षा करने लगा। यह देख शङ्करजी भागते भागते अन्तमें वैकुण्ठ पधारे। शङ्करजीके पीछे-पीछे आ रहे वृकासुरको देख भगवान् विष्णुने दूरसे ही ब्रह्मचारीका वेष धर कर सामने आकर उससे कहा—आपको इस पिशाचराट्के ऊपर भले ही विश्वास हो, किन्तु इस उत्पथगामीपर मुझे तो तनिक भी नहीं है। यदि परीक्षा करना ही चाहते हैं तो अपने ही सिरपर हाथ रखके क्यों नहीं परीक्षा कर लेते यदि सच हो, तो ठीक ही है अन्यथा इनकी अच्छी तरह मरम्मत कर दीजिये। भगवान् विष्णुकी मीठी-मीठी बातोंसे उसकी बुद्धि घूम गई। उसे उस वरदानके अर्थका स्मरण जाता रहा। उनके वचनानुसार उसने अपने सिरपर हाथ रख दिया वैसा करते ही वह जमीन पर गिर पड़ा, उसका सिर फट गया, वह सदाके लिये इस संसारसे विदा हो गया। शङ्करजी भी संकटसे बच गये। भगवान् विष्णुने कहा—महादेवजी, पापी अपने ही हाथसे मरा है बड़ोंका अपराध करनेवाला कोई सुखी नहीं रहता, फिर आपका अपराधी कैसे सुखी रह सकता है।

❋ अथ एकोननवतितमोऽध्यायः ❋

[ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इसमें सर्वश्रेष्ठ कौन है, इसकी भृगु द्वारा परीक्षा]

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्, एक समय सरस्वतीके तीरपर ऋषियोंने यज्ञ किया। उस समय उन लोगोंके मनमें कुतर्क हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों अधीशोंमें सर्वश्रेष्ठ कौन है॥ १॥ इसको जाननेकी इच्छासे उन लोगोंने ब्रह्मसुत भृगुमुनिको ब्रह्माकी सभामें भेजा, और वह भी उनकी सभामें पहुँचे॥ २॥ वहाँ पर जाकर

श्रीशुक उवाच॥ सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत॥ वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान्॥ १॥ तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप॥ तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम्॥ २॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया॥ तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा॥ ३॥ स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः॥ अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणात्मभूः॥४॥ ततः कैलास-

उन्होंने उन्हें प्रणाम आदि नहीं किया, क्योंकि उन्हें तो 'इनमें सत्त्वगुण है या नहीं' यह परीक्षा करनी थी। भृगुकी इस प्रकारकी अशिष्टता देखकर अपने तेजसे जलरहे ब्रह्माजी उनपर क्रोधित हो गये॥ ३॥ विवेकी स्वयम्भू ब्रह्माजीने अपने पुत्रके लिए मनमें उत्पन्न हुये क्रोधको विवेकात्मिकाबुद्धिसे ऐसे शान्त कर दिया, जैसे अग्निके कारणभूत अरणिसे उत्पन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुई अग्निको कोई विवेकी पुरुष जलसे शान्त कर देता है ॥ ४ ॥ उसकेबाद वह भृगुमुनि कैलासपर्वत पर गये। वहाँपर शङ्करजीने देखा कि भृगुजी आरहे हैं तो उठकर अपने भाईका बड़े प्रेमसे वे आलिङ्गन करने चले। परन्तु भृगुजीने उन्हें यह करते हुए झटक दिया कि 'आप मेरा स्पर्श न कीजिये। आप चिता भस्मधारी उत्पथगामी हैं'। यह सुनकर भगवान् त्रिलोचन क्रोधित हो उठे। उनके नेत्र लाल हो गये, वे शूल उठाकर मारने दौड़े ॥ ५, ६ ॥ क्रोधित हुए देखकर पार्वतीदेवीने किसी प्रकार उन्हें शान्त किया। उसके बाद भृगुजी वैकुण्ठलोकमें चले गये, जहाँपर भगवान् जनार्दन सदा विराजमान रहते हैं ॥ ७ ॥ वहाँ कमलापति भगवान् लक्ष्मीके अङ्गमें सिर रखकर सोरहे थे। उन्होंने जाते ही उनकी छातीपर एकलात जमा दी लात मारते ही सज्जनोंके आश्रय भगवान्ने लक्ष्मीके सहित अपने शयनासनसे उठकर उनके चरण पकड़ अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और वह कहा--हे ब्रह्मन्, आपका स्वागत है, इस आसन पर शीघ्र बैठ जाइये। हे प्रभो, मुझे आपके आनेका पता नहीं था, इसलिये मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ८, ९ ॥ भगवन्,

भगमत्स तं देवो महेश्वरः ॥ परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ॥ शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥ ६ ॥ पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वयामास तं गिरा ॥ अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥ शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ॥ तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ ८ ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ॥ अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥९॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ॥ इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० ॥ पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ॥ पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ ११ ॥ अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ॥ वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा ॥ निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥ १४ ॥

आपका चरणोदक गङ्गा आदि समस्त तीर्थोंको भी पवित्र बना देनेवाला है। आप अपने उस परम पवित्र चरणोदक इस वैकुण्ठलोकके सहित मुझे तथा मेरे समीप आये हुए इन समस्त लोकपालोंको भी पवित्र बना दीजिये ॥ १० ॥ हे तात, हे महामुने, आपके चरण अति सुकुमार हैं तथा मेरा हृदय अतिकठोर है। इसलिये आपको अवश्य दुःख हुआ होगा, ऐसा कहकर भगवान् अपने हाथोंसे उनका चरण दबाने लगे ॥ ११ ॥ हे भगवन्, आज मैं लक्ष्मीके साथ एकान्त भाजन था। आपके चरणस्पर्शसे मेरा पाप नष्ट हो गया, इसलिए आपकी चरणचिन्हरूपीभूति मेरे हृदयमें सदा विराजमान रहेगी ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा--हे राजन्, इस प्रकार भगवान् विष्णुके मीठी गम्भीरवाणीसे नम्रतापूर्वक कहनेपर भृगुजी परम प्रसन्न एवं तृप्त हो गये। भक्तिके कारण उनकी आँखें भर आयीं, गला रुध गया, वे कुछ कह न सके ॥ १३ ॥ हे राजन्, ब्रह्मवादी मुनियोंके यज्ञमें पुनः वापस आकर उन्होंने जो कुछ स्वयं अनुभव किया था, उसका ठीक-ठीक उन ऋषियोंसे पूरा वर्णन कर दिया ॥ १४ ॥ वह सुनकर ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका संशय जाता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहा भगवान् विष्णुके प्रति उनकी श्रद्धा और ज्यादा बढ़ गई। उन्होंने सर्वोत्कृष्टदेव उन भगवान् विष्णुको ही समझा, जिनमें परम शान्ति है और जिससे अभय प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जिनसे धर्मकी प्रवृत्ति होती है तथा साक्षात्कारात्मकज्ञान एवं उस ज्ञानसे युक्त वैराग्य प्राप्त होता है। इतना ही नहीं वल्कि अणिमा आदि आठ प्रकारका ऐश्वर्य भी जिनसे प्राप्त होता है तथा अपने अन्तःकरणके पापात्मकमलको नष्टकर देनेवाला यशभी मिलता है ॥ १६ ॥ मननशील, प्राणियोंके साथ द्रोह न रखनेवाले, शान्त, समचित्त, अकिंचन साधुओंकी, जिन्हें परमगति विद्वान् लोग कहते हैं ॥ १७ ॥ सत्त्वगुणमयी जिनकी मूर्ति है, ब्राह्मण ही जिनके इष्टदेवता हैं तथा जिन्हें निष्काम, शान्त निपुणमति महानुभावलोग भजते हैं ॥ १८ ॥ उस भगवान्की आकृति यद्यपि राक्षस, असुर और सुर—यों तीन प्रकारकी है, जो उनकी सर्वगुणसम्पन्नमायासे रची गयी है। तथापि उनकी जो सत्त्वगुणमयी मूर्ति है। वही सत्वही परम पुरुषार्थक साधन है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार सरस्वतीतीरवासी वे ब्राह्मण सभी प्राणियोंके संशयनाशके

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ॥ भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १५ ॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ॥ ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ॥ अकिञ्चनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥ १७ ॥ सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ॥ भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधाऽऽकृतयस्तस्य रक्षसा असुराः सुराः ॥ गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ॥ पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगन्धपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः ॥ सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ॥ जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥ २२ ॥ विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ॥ इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २३ ॥ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ॥ क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥२४॥ हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ॥ प्रजा भज-

लिये विष्णु भगवान्का महत्त्व निर्णय करके उनके चरणकमलकी सेवाकर अन्तमें परमगतिको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ श्रीसूतजीने ऋषियोंसे कहा—हे ऋषियो, इसप्रकार भवभयहारी परमपुरुष भगवान्के मुनितनय शुकदेवजीने मुखकमलसे निकले हुये सुगन्धित सुयश पीयूषका जो अपने श्रवणपुटोंसे निरन्तर पान करता है। वह संसारपथका पथिक जन्ममरणादि रूपसंसारके परिभ्रमणसे उत्पन्न परिश्रमसे सदाके लिए मुक्त होता है ॥ २१ ॥ शुकदेवजीने कहा—हे भारत, एक समय द्वारकापुरीमें किसी ब्राह्मणीको पुत्र हुआ, वह भूमिका स्पर्श करते ही मर गया ॥ २२ ॥ उस ब्राह्मणने उस मृत बालकको लेकर राजाके दरवाजे पर रख दिया, और पुत्र मर जानेसे दुःखितचित्त वह यह बोला—॥ २३ ॥ ब्रह्मद्वेषी शठबुद्धि, लोभी तथा विषयलम्पट इस नीच क्षत्रियके कुकर्मसे आज मेरा यह लड़का मर गया ॥ २४ ॥ निरन्तर एकमात्र हिंसा करना ही जिनका विहार है ऐसे दुःशील और अजि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेन्द्रिय (कामी—विषयलोलुप) राजाको जो प्रजाएँ सेवा करती हैं वे सदा दरिद्र तथा दुःखित रह कर नानाप्रकारके क्लेश प्राप्त करती हैं ॥ २५ ॥ हे महीपते, इसी प्रकार उस विप्रर्षिने अपने दूसरे तथा तीसरे बच्चेके जन्म होते ही मर जाने पर उन बच्चोंको भी ले जाकरके राजाके दरवाजे पर धर दिया और प्रत्येक बार उसने यही गाथा कह सुनायी ॥२६॥ इसी तरह कभी जब उस ब्राह्मणको नवम बच्चा पैदा हुआ और वह भी मर गया, तो पुनः उस ब्राह्मणने पहलेकी तरह उसे राजदरवाजे पर लेजाकर रखते हुये वही बात कही। उस समय राजाके समीपमें स्थित भगवान् केशवके पास अर्जुन बैठे हुये थे। उन्होंने उस ब्राह्मणकी वही पुरानी गाथा सुनकर उस ब्राह्मणसे कहा—॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्, क्यों व्यर्थमें रो रहे हैं। क्या जहाँ आप रहते हैं वहाँ नाममात्र भी धनुर्धारी कोई क्षत्रिय नहीं है (ब्राह्मणभक्त तथा शूर क्षत्रियकी बात तो दूर रहे) ये यादव तो समाजमें मिले ब्राह्मणोंकी नाईं बैठे हुए हैं ‡ ॥ २८ ॥ जिन राजोंके जीवित रहते धन, दारा और पुत्रसे वियुक्त होकर ब्राह्मण शोक सन्तप्त होते हैं, हे राजा राजकीयवेषसे नटोंकी नाईं केवल

न्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २५ ॥ एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ॥ विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २६ ॥ तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवान्तिके ॥ परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः ॥ राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २८ ॥ धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ॥ ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुम्भराः ॥ २६ ॥ अहं प्रजा वां भगवन्रक्षिष्ये दीनयोरिह ॥ अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ ३० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥ अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥ ३१ ॥ तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ॥ चिकीर्षसि त्वं बालिश्यातन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ॥ अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥ मा-

अपना पेट पालनमें तत्पर हो जीपिकाका सम्पादन करते रहते हैं ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन्, यहाँ बैठकर मैं अब आप दोनों दीन-दुःखी प्राणीके उत्पन्न होनेवाली प्रजाकी रक्षा करूँगा। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकूंगा, तो अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगा, उससे अमृतभाषणका पालन मेरा सदा के लिए समाप्ति हो जायगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मणने अर्जुनके वचन सुनकर कहा—मुझे तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं होता है। क्योंकि बलदेव, कृष्ण, धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न और अनुपमरथी अनिरुद्ध भी जब बालककी रक्षा नहीं कर पाते, तो तुम क्या कर पाओगे जगदीश्वर जिस कामको करनेमें असमर्थ हो रहे हैं, उस महान् कठिन कार्यको करने की जो तुम इच्छा कर रहे हो, यह तुम्हारी भारी मूर्खता है, इसलिए मूर्खताभरी तुम्हारी इस बातपर मुझे विश्वास नहीं होता ॥ ३१, ३२ ॥ अर्जुनने कहा—हे ब्रह्मन्, मैं बलराम कृष्ण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध नहीं हूँ। मेरा नाम अर्जुन है, जिसका गाण्डीव नामक धनुष है ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन्, भगवान् शंकरको संतुष्ट करदेनेवाले मेरे पराक्रमका आप अपमान न करें—आप मेरे पराक्रमके विषयमें तनिक भी अविश्वास न करें। हे प्रभो,

‡ अथवा—ये सब यादव तो यज्ञमें संमिलित हुये ब्राह्मणों—जैसे स्थित हैं!

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युद्धमें मृत्युको जीतकर मैं आपका बच्चा लादूँगा ॥ ३४ ॥ हे राजन्, अर्जुनने जब ऐसा कहा, तो उस ब्राह्मणको विश्वास हो गया ॥ वह प्रसन्न चित्त हो अर्जुनके पराक्रमकी प्रशंसा करते हुए अपने घर चला गया ॥ ३५ ॥ जब उसकी स्त्रीका प्रसव समय आया, तो व्याकुल होकर ब्राह्मण श्रेष्ठ अर्जुनके पास पहुँचा और यह कहा—मृत्युसे मेरे बच्चेकी रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ३६ ॥ अर्जुनने शुद्ध जलले आचमन करके ब्राह्मणकी उच्चापेकर देनेके कारण कृष्णमें आदर न होनेसे अपने इष्टदेव महेश्वको नमस्कारकर दिव्य अस्त्रों तथा मन्त्रोंका स्मरण करके प्रत्यञ्चा चढ़े हुए अपने गाण्डीव धनुषको उठा लिया ॥ ३७ ॥ उसके बायें नाना प्रकारके अस्त्रों तथा मन्त्रोंसे युक्त बाणोंद्वारा सूतिकाको ऊपर-नीचे तिरछे चारों तरफसे घेरकर बाणोंका पिंजरा बना दिया ॥ ३८ ॥ तदनन्तर विप्रपत्नीको कुमार पैदा हुआ। लेकिन वह खूब बार-बार रोता हुआ तत्क्षण ही मांगसे शरीर सहित अदर्शनको प्राप्त हो गया। [राजन्, मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि मरनेके बाद उस ब्राह्मणके और बच्चोंका शरीर वहीं पड़ा रहता था, परन्तु इसबार तो वह शरीर भी वहाँ न दीख पड़ा] ॥३९॥

ऽवमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ॥ मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परन्तप ॥
जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥३५॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ॥ पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः॥३६॥
स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥३७॥ न्यरुणत्सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ॥
तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम् ॥ ३८ ॥ ततः कुमारः सञ्जातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ॥ सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥
तदाह विप्रो विजयं विनिन्दन्कृष्णसन्निधौ ॥ मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥ ४० ॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ॥
शकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥ धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ॥ दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४२ ॥
एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ॥ ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ॥४३॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात्पुरीम् ॥ आग्नेयीं
नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ॥ रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततो लब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ॥ अग्निं

तब उस ब्राह्मणने कृष्णके पास आकर अर्जुनकी निन्दा करते हुए कहा—मेरी मूर्खता देखिये, जो मैं इस नपुंसककी बातोंमें आगया ॥ ४० ॥ जिसे प्रद्युम्न, राम तथा कृष्ण भी न बचा सके। उसे भला दूसरा कौन—बचानेमें समर्थ सकता है ॥ ४१ ॥ मृषाभाषी उस अर्जुनको धिक्कार है। तथा आत्मस्तुतिशील अर्जुनके धनुषको धिक्कार है, जो मूर्ख अपनी मूर्खताके कारण दैवद्वारा अन्यत्र पहुँचाये गये मेरे पुत्रको लौटालानेकी इच्छा करता है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब उस ब्राह्मणने अर्जुनकी निन्दाकी तब ब्राह्मण द्वारा हुई अपनी निन्दा सुनकर अर्जुन अपने योगव्रतका आश्रय लेकर संयमनीपुरीको शीघ्र चले गये। जहाँ पर भगवान् यम विराजमान रहते हैं ॥ ४३ ॥ वहाँपर ब्राह्मणके पुत्र को न देख इन्द्रलोकमें पहुँचे। वहाँपर भी उसे न देख क्रमशः अग्नि, निर्ऋति, सोम, वायु तथा वरुणलोकको चले गये। वहाँपर भी उसे न पाकर अपना अस्त्र लिए हुए रसातल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदि नीचे लोकों तथा स्वर्गके ऊपरके ब्रह्मादिके स्थानभूत विभिन्न लोकोंमें भी गये, जहाँ दूसरे नहीं जासकते हैं ॥ ४४ ॥ वहाँपर भी जब ब्राह्मण—पुत्र उन्हें नहीं मिला, तो अपनी प्रतिज्ञाको अधूरी समझकर उन्होंने अग्निप्रवेशकी इच्छाकी लेकिन अपनी युक्तियोंसे खण्डन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें मना कर दिया ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस समय कहा—अपनी आत्माका भर्त्सना मत करो। मैं तुम्हें ब्राह्मण पुत्रोंको दिखा दूँगा (उन्हें न देखनेसे ही तो तुम मृत्युकी तैयारी कर रहे हो, ऐसा करनेकी आवश्यकता नहीं है) जो मनुष्य आज तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं वे ही भविष्यमें तुम्हारी निर्मल कीर्ति स्थिर करेंगे ॥ ४६ ॥ सर्वशक्ति समन्वित भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अर्जुन कहकर उनके साथ अपने दिव्यरथपर बैठकर पश्चिमदिशाकी ओर चल पड़े ॥ ४७ ॥ सात-सात पर्वतोंसे घिरे हुए सात द्विप, सात सागर तथा लोकालोक पर्वत पारकर वे अत्यन्त घने अन्धकारमें प्रविष्ट हुए। [उसके आगे सूर्यादिका प्रकाश बिलकुल नहीं रहता] ॥ ४८ ॥ हे भारतर्षभ, उस महान् घोर अन्धकारमें उनके शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक अश्व

विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥४५॥ दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ॥ ये ते नः कीर्ति विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति॥४६॥
इति सम्भाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ॥ दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपान्सप्तसिन्धून्सप्तगिरीनथ ॥ लोका-
लोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥ तत्राश्वाः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ॥ तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ तान्दृष्ट्वा
भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ॥ सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥५०॥ तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ॥
मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमःपरं परं ज्योतिरनन्तपारम् ॥ समश्नुवानं प्रस-
मीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ॥ तत्राद्भुतं वै भवनं
द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनन्तमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणमणिद्युभिः ॥ विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं

भ्रष्टगति हो गये—उन्हें यह पता न चला कि हम अब किधर जांय ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरेश्वर भगवान् कृष्णने जब इस तरह अपने उन घोड़ोंको भटकते देखा, तो सहस्ररविके सदृश प्रकाशमान अपने सुदर्शनको उनके आगे कर दिया ॥ ५० ॥ दुष्प्रवेश, भयङ्कर, प्रकृतिके परिणामरूप अपार तमराशिको अपने खूब वृद्धिंगत तेजसे चीरता हुआ वह सुदर्शनचक्र मनके समान जिसकी तेजगति थी उस घोर अन्धकारके भीतर ऐसे प्रविष्ट हो गया, जैसे कि धनुषकी प्रत्यञ्चासे च्युत हुआ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका बाण रावणकी सेनाके भीतर प्रविष्ट हो जाता था ॥ ५१ ॥ चक्रद्वारा प्रदर्शित मार्गसे प्रविष्ट हुए अर्जुनके नेत्र उस तमके पारमें बहुत दूरस्थित सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌की परमप्रकाशरूप ज्योतिको देखकर चकाचौंधमें पड़ गये उन्होंने झट अपने दोनों नेत्र बन्दकर लिये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर प्रचण्डवायुसे कम्पि हो रही बड़ी-बड़ी लहरोंसे अलङ्कृत जलमें उन्होंने प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उन्होंने वहाँ एक अद्भुत भवन देखा। [वह भवन द्युतिमान् पदार्थोंमें सबसे चढ़-बढ़कर था, चमकरहे मणिमय हजारों खम्भे उसकी ओर शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ५३ ॥ उन्होने उस भवनमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अत्यन्त भयङ्कर, अद्भुत, सहस्रफणोंमें स्थित मणियोंकी द्युतिसे सुशोभित दो सहस्र भयङ्कर नेत्रोंसेयुक्त स्फटिक पर्वतकी तरह कान्तिवाले, नीलकण्ठ एवं जिह्वासे युक्त अनन्त भगवान् शेषको देखा ॥ ५४ ॥ उस शेषासनपर सुखसे विराजमान, अतिप्रभावयुक्त संकर्षणादि पुरुषोत्तमोंसे भी श्रेष्ठ, निविडमेघ सदृश कातिन्युत पीले वस्त्रधारण किए हुए प्रसन्न मुख दीर्घ तथा सुन्दर नेत्रोंवाले प्रभुको उन्होंने देखा ॥ ५५ ॥ अत्यधिक क़ीमती मणियोंसे अलङ्कृत किरीट और कुण्डलोंकी प्रभासे चारों तरफ उनके असंख्य कुन्तल (केश) चमक रहे थे वे अपनी लम्बी-लम्बी सुन्दर आठ भुजाओंसे युक्त थे। उनका विशालवक्षःस्थल कौस्तुभमणि, श्रीवत्सकी शोभा तथा वनमालासे आवृत था ॥ ५६ ॥ सुनन्द आदि अपने पार्षदों तथा मूर्तिमान् सुदर्शनचक्र आदि अपने आयुधोंसे एवं मूर्तिमती पुष्टि, श्री, कीर्तसहित माया अणिमादि विभूतियों और शक्तियोंसे सेवित हो रहे थे, जो द्विपरार्द्धके अन्तमें मुक्त होनेवाले ब्रह्मा आदि लोकपालोंके अधीश्वर थे ॥ ५७ ॥ जन्मादि विकारशून्य अपनी ही दूसरी मूर्तिको देखते ही अच्युत भगवान्ने प्रणाम किया तथा उस मूर्तिके दर्शनमात्रसे भयग्रस्त

सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥ ५४ ॥ ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ॥ सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥ महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ॥ प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम् ॥५६॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ॥ पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमानं परमेष्ठिनांपतिम् ॥५७॥ ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ॥ तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ॥ कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी ॥ धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना ॥ ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् ॥ विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः ॥ ६२ ॥ निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः

व्याकुल अर्जुनने भी प्रणाम किया। तदनन्तर हाथ जोड़कर खड़े रहे कृष्ण और अर्जुनसे ब्रह्मादि लोकपालोंके प्रभु भूमा (सर्वव्यापक) भगवान् पुरुषोत्तमने मुस्कुराते हुए गम्भीरवाणीसे कहा—॥ ५८ ॥ मैंने आप लोगोंकी दर्शनकी इच्छासे इन बालकोंको अपने समीप लाया है चूँकि मेरे अंशसे आप दोनों धर्मकी रक्षा तथा पृथिवीका भार हलका करनेके लिये अवतार लिया है अतः धर्मकी रक्षाके लिये वहाँपर पृथिवीके भारभूत राजाओंका नाशकर फिर शीघ्रही मेरे पास आप दोनों आजाइये ॥ ५९ ॥ यद्यपि आप दोनों पूर्ण काम श्रेष्ठ ऋषि नर-नारायण हैं, फिर भी लोकरक्षाके लिए आप लोग संसारको अपनी ओर खींच लानेवाले धर्मका आचरण करें ॥ ६० ॥ इस प्रकार भगवान् परमेष्ठिके आदेश देनेपर अर्जुन तथा अच्युत उसे स्वीकारकर उनको नमस्कार किया तथा ब्राह्मणोंके बालकों को लेकर अति प्रसन्न हो उसी रास्तेसे अपने स्थानपर लौट आये जिस रास्तेसे वहाँ गये थे। और उस ब्राह्मणको उसके वे सब लड़के दे दिये, जो जिस रूप और अवस्थाके थे ॥ ६१, ६२ ॥ इस प्रकार वैष्णवधामको देखकर अर्जुन परम विस्मित हुए। और पुरुषोंका जो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ पराक्रम है, उसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी एकमात्र अनुकम्पा ही समझी ॥ ६३ ॥ इस प्रकारके अनेक पराक्रम दिखाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने इस पृथ्वीपर ग्राम्य-विषयोंका भली-भांति उपभोग किया तथा बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया जिनमें ब्राह्मणोंको खूब दक्षिणा दी जाती थी ॥ ६४ ॥ जैसे इन्द्र-भगवान् समय समयपर यथेच्छ जल

परमविस्मितः ॥ यत्किञ्चित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥ ६३ ॥ इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् ॥ बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥६४॥ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु॥ यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवान् श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥६५॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान् घातयित्वार्जुनादिभिः ॥ अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विजकुमारानयनं नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

बरसाते हैं वैसे ही श्रेष्ठता प्राप्तकर उन्होंने ब्राह्मण आदि सभी प्रजाओंके अभिलषित विषयोंको समय समयपर खूब बरसाया—पूर्ण किया ॥ ६५ ॥ अधार्मिक दुष्ट राजाओंका स्वयं नाश कर तथा बहुतोंका अर्जुन आदिके द्वारा नाश कराकर उन्होंने बिना परिश्रमके ही युधिष्ठिर आदि धार्मिक राजाओं द्वारा पुनः धर्मको स्थापित किया ॥ ६६ ॥

नवासी अध्यायका सार—राजन, एकबार सरस्वती नदीके किनारे यज्ञ कर रहे ब्राह्मणोंको यह जाननेकी इच्छा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनोंमें महान् कौन हैं ? यह जाननेके लिए ऋषियोंके आज्ञानुसार भृगु मुनि ब्रह्माकी सभामें पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने ब्रह्माकी स्तुति न की, क्योंकि उन्हें तो ब्रह्मामें सत्वगुण अधिक है कि नहीं, इसकी परीक्षा करनी थी। ब्रह्माजी नाराज हो गये, लेकिन तुरत उन्होंने अपने क्रोधको शान्त कर दिया। उसके बाद वे कैलासपर्वत पर शंकरके पास आये। शंकरजी अपना बड़ा भाई समझकर आलिंगन करने दौड़े, लेकिन भृगुजीने 'यह कहते हुए कि आप चिताभस्मधारी उत्पथगामी हैं, मैं आपका स्पर्श नहीं चाहता' हट गये। यह देख भगवान् शंकर अपना त्रिशूल लेकर मारने दौड़े, लेकिन पार्वतीजीने मना कर दिया। उसके बाद वे वैकुण्ठमें पधारे। वहाँ भगवान् लक्ष्मीकी गोदमें शयन कर रहे थे, जाते ही मुनिजीने एक लात उनकी छातीमें जमा दी। भगवान् झट पलङ्गसे उतरकर उनके पैर पकड़ लिये और बोले—महाराज, आपके चरणकमल बहुत कोमल हैं, आपको अधिक चोट लग गयी होगी, क्षमा कीजिये, मुझे यह मालूम न था कि आप आरहे हैं। आज मैं लक्ष्मीका एकान्तभाजन था, चूँकि आपके पादस्पर्शसे मेरा पाप दूर हो गया, इसलिये आपके चरणकी लक्ष्मी मेरे वक्षःस्थलमें सदा विराजमान रहेगी। भगवान्की ऐसी विनम्रवाणी सुनते ही भृगुजी पिघल गये, वे कुछ भी न बोल सके। वहाँसे लौटकर ऋषियोंसे सारी घटना कह सुनाई। यह सुनते ही भगवान् विष्णुमें उनकी और श्रद्धा बढ़ गई, उन्होंने निश्चय कर लिया कि इनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं हैं। राजन्, और सुनिये—एक समय एक ब्राह्मणका पुत्र मर गया। ब्राह्मणने उसे ले जाकर राजद्वारपर रख दिया और कहा—पापी राजाके कारण मेरा यह पुत्र मर गया। विषयी राजाके कारण प्रजाको कष्ट होता है। इसी तरह उसे जब जब लड़का पैदा होता और मर जाता, उसे वह राजदरवाजेपर ले जाकर रख देता और उपर्युक्त वचन सुना देता था। जब उसके नवम बच्चेकी भी यही दशा हुई, तो राजाके समीप,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जहाँ कृष्ण और अर्जुन भी बैठे थे, ले जाकर वहीं गाथा सुनाई। सुनते ही अर्जुनने कहा—ब्राह्मण देवता, क्या जहाँ आप रहते हैं कोई क्षत्रिय धनुधारी राजा नहीं है ? जाइये आजसे आपके बच्चेकी रक्षा मैं करूँगा। ब्राह्मणने कहा—जिसकी रक्षा बलराम तथा कृष्ण आदि न कर सके, उसकी तुम करोगे, मुझे विश्वास नहीं होता। अर्जुनने कहा—मैं बलराम तथा कृष्ण आदि नहीं हूँ। मेरा नाम अर्जुन है, जिसका गाण्डीव धनुष सर्वत्र प्रसिद्ध है। ब्राह्मण वहाँसे उठकर चला गया। इसबार जो उसे बच्चा पैदा हुआ वह जमीन पर गिरते ही शरीर गायब होगया। यद्यपि अर्जुनने अपने बाणोंसे उसके सूतिकागृहको घेर रखा था। ब्राह्मणने अर्जुनको कड़ी फटकार सुनायी। उसके निन्दासूचक वाक्योंका श्रवण करनेपर अर्जुनने यह प्रतिज्ञा की—यदि मैं इसके बच्चेको ढूँढकर न ला सका तो अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगा। पातालसे लेकर स्वर्गतक सभी स्थानोंमें ढूँढनेपर भी जब ब्राह्मणके बच्चे अर्जुनको न मिले, तो वे अग्निमें प्रवेशकी तैयारी करने चले। उन्हें अग्निमें प्रविष्ट होते देख भगवान् कृष्णने रोकते हुए कहा—ब्राह्मणके बच्चोंको तुम्हें दिखा दूंगा, ऐसा मत करो। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको ले गये, जहाँ पुरुषोत्तम भगवान् शेषनागके ऊपर सुखसे सो रहे थे। भगवान्‌को देखते ही इन्होंने प्रणाम किया। हाथ जोड़कर खड़े रहे इन दोनोंसे मुस्कुराते हुए पुरुषोत्तम भगवान्‌ने कहा—तुम दोनों मेरे अंश हो पृथ्वीका भार उतारकर धर्मकी रक्षा करने लिए मैंने तुम्हें पृथ्वीपर भेजा है तुम दोनोंको देखने की इच्छासे मैंनें ब्राह्मण कुमारोंको अपने पास बुला लिया है। जाओ, पृथ्वीके भारभूत असुरोंको मारकर मेरेपास शीघ्र आजाओ। भगवान् पुरुषोत्तमकी आज्ञासे ब्राह्मण कुमारोंको अपने साथ लेकर उन्हें प्रणाम कर वे दोनों लौट आये और ब्राह्मणको उसके वे सभी बच्चे, जो जिस रूप एवं अवस्थाके थे, दे दिये। उस वैष्णवधामको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ, उन्होंने निश्चयकर लिया कि जो कुछ पौरुष है वह सब श्रीकृष्णका एकमात्र अनुग्रह ही है। राजन्, इसप्रकार अनेक अद्भुत पराक्रम दिखलाते हुए अधार्मिक राजाओं का नाशकर उन्होंने युधिष्ठिर आदि धार्मिक राजाओं द्वारा धर्मकी पुनः स्थापना की।

❋ अथ नवतितमोऽध्यायः ❋

(भगवान् श्रीकृष्णका स्त्रियोंके साथ विहार, उनकी प्रेमरसभरी मधुरबातें तथा यादवोंका विस्तार— इन सबका वर्णन)

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, अपनी उस द्वारकापुरीमें, जिसकी सड़कें मदश्रावी हाथियों, वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत भटों, सजाये गये घोड़ों तथा सुवर्णसे खूब चमचमा

श्रीशुक उवाच ॥ सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियःपतिः ॥ सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्न-वयौवनकान्तिभिः ॥ कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभितडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यं सङ्कुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः ॥ स्वलङ्कृतैर्भटैरश्वै रथैश्च

रहे रथोंसे निरन्तर व्याप्त रहती थी, जो अनेकों उद्यान तथा उपवनोंसे परिपूर्ण थी, जहांपर पुष्पित हुए वृक्षोंकी पंक्तियोंके ऊपर बैठ रहे भ्रमरोंके गुञ्जार तथा चिड़ियोंकी चहचह मधुर शब्द चारों ओर मच रहे थे, जो सब तरहकी सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण थी, जहाँ उत्तम यादव लोग रह रहे थे, जहाँपर अपने-अपने महलोंमें गेंद खेल रही, विजली सी द्युतिवाली, अपनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नयी युवस्थाकी प्रभासे अलंकृत तथा सर्वश्रेष्ठ वस्त्रों एवं अलंकारोंसे सुसज्जित स्त्रियाँ विराजमान थी, सुखपूर्वक निवास करते हुये सौलह हजार अपनी स्त्रियोंके एकमात्र स्वामी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण परम ऐश्वर्य सम्पन्न अपनी उन सब रानियोंके महलोंमें उतने ही विचित्ररूपसे धारणकर उनके साथ रमण करते थे ॥ १–५ ॥ उन सब रानियोंके महलोंके अन्दर खिले हुए नीलकमल कह्वार, कुमुद, और अम्भोज (कमल) के परागोंसे सुवासित निर्मल जलाशय तथा कलरव कर रहे पक्षियोंके समूहोंसे परिपूर्ण अनेक बगीचे थे ॥ ६ ॥ उन जलाशयोंमें जलका आलोडन करते हुए महावैभवशाली भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपनी भार्याओंसे आलिङ्गित हो उनके कुच कुङ्कुमसे अपने शरीरको आलिप्तकर खूब जलक्रीडा करते थे ॥ ७ ॥ उनके जलक्रीडा करते समय गन्धर्व लोग मृदङ्ग, पणव तथा आनक आदि बाजे बजा-बजाकर उनकी कीर्तिका गान करते थे एवं सूत, मगध तथा वन्दीलोग वीणा आदि बाजे बजाते हुए बड़े आनन्दसे उनका स्तुति गान करते थे ॥ ८ ॥ हँसती-हँसती अपनी स्त्रियोंसे कभी पिचकारियों द्वारा भिगो दिये जानेपर अच्युत भगवान् भी उन्हें

कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥ उद्यानोपवनाढयायां पुष्पितद्रुमराजिषु ॥ निर्विशद् भृङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ॥ ४ ॥ रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेक-
वल्लभः ॥ तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥५॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः ॥ वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥६॥
विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदयः ॥ कुचकुङ्कमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ॥ वादयद्भि-
र्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः ॥ ८ ॥ सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ॥ प्रतिसिञ्चन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥ ताः
क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ॥ कान्तं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥
कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक् क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ॥ सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः
॥ ११ ॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ॥ क्रीडालङ्कारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्याला-

भिगो देते थे। वे उन स्त्रियोंके साथ ऐसे क्रीडा करते थे, जैसे कि यक्षराज कुबेर पक्षियोंके साथ ॥ ९ ॥ आर्द्रवस्त्रके कारण उनके स्तन और ऊरु साफ-साफ दीखते थे, उनके बृहत् केशपाशमें गुथे हुए फूल विखर पड़ते थे, वे भगवान् श्रीकृष्णकी स्त्रियाँ जब उन्हें आर्द्र करती हुई उनसे पिचकारी छीन लेनेकी इच्छासे चिपक जातीं, तो उद्दीप्त हुए कामसे मुसुकुराने लग जातीं, उनके उस मुसकानसे वदनकमल विकसित हो उठते थे और तब वे खूब सुशोभित होने लग जाती थीं ॥ १० ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी वनमाला उन स्त्रियोंके स्तनोंके ऊपर लिप्त हुए कुंकुमसे बिलकुल गीली हो जाती थी, क्रीडामें अत्यधिक अभिनिवेशके कारण भगवान्के कुन्तलवृन्दके बन्ध कम्पित होने लग जाते थे। वे भगवान् भी स्वयं उन युवतियोंके ऊपर बार-बार जलके छींटें देते थे और उनके द्वारा खुद सिक्त हो जाते थे वे उनके साथ ऐसे जलक्रीडा करते थे जैसे हथिनियोंसे घिरा हुआ गजराज उनके साथ क्रीडा करता है ॥ ११ ॥ गा-बजाकर अपनी जीविका चलानेवाले नटों तथा नर्तकियोंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वे सभी अलंकार और वस्त्र दे देते जिन्हें वे क्रीडाके लिए धारण करते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा इसी प्रकार जलक्रीडाकी समाप्ति होनेपर उनकी स्त्रियाँ भी उन वस्त्रोंको दे देती थी ॥ १२ ॥ हे राजन्, इस प्रकार विहार कर भगवान् श्रीकृष्णके मस्तचाल, मीठीबोली चलचित वन मुसकान, दिलग्गी, विलास तथा नानाप्रकारके आलिङ्गन आदिसे उस स्त्रियोंकी निःसन्देह बुद्धि बिलकुल नष्ट हो गई थी ॥ १३ ॥ एकमात्र मुकुन्द भगवान्‌में ही उनकी बुद्धि सदा लगी रहती थी, इसलिए भगवान्‌के समीप रहने पर भी कामके उन्मादसे उन्हें अपनी आंखोंके सामने न देखती हुई सी एकमात्र उसी एक कमलनयनका ध्यान करती हुई वे एक क्षणके लिए बिलकुल मौन हो जाती थी, उसके बाद पागलोंकी तरह जो वाक्य उमके मुँहसे निकलते थे, उन्हें मैं आपसे कहताहूँ, हे राजन्, आप सुनिये ॥ १४ ॥ रानियाँ कहती थीं—हे कुररि, इस संसारमें रातके समय भगवान् श्रीकृष्ण बाह्यविषयोंसे अपने ज्ञानको छिपाकर सो रहे हैं किन्तु तुम अपनी निद्रा भंगकर स्वयं इधर-उधर रोती-फिरती हूँ। यह ठीक नह है। हे सखि, हम लोगोंकी तरह तुम्हारा चित्त भी कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके मनोहर हास्यमय कटाक्ष-वीक्षणसे विंध गया है क्या ? ॥ १५ ॥ हे चक्र-

पेक्षितस्मितैः ॥ नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ॥१३॥ ऊचुर्मुकुन्दैकधियोऽगिर उन्मत्तवज्जडम् ॥ चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ॥ वयमिव सखि कच्चिद् गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥ नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीसि करुणं बत चक्रवाकि ॥ दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥ भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ॥ किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ॥ कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥ किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ॥

वाकि, रातमें तुम अपनी आँखें मूँद लेती हो और करुणार्द्रस्वरसे बार-बार रोती हो, सो क्यों ? क्या तुम्हारे पति तुम्हारी आँखोंके सामने नहीं हैं ? हमलोगोंकी तरह क्या तुम भी श्रीकृष्णकी दासी बनकर उनके चरणकमलोंपर समर्पित की गई पुष्पमालाको अपने केशपाशोंमें गुंथ रखनेकी चाह कर रही हो, मालूम पड़ता है, इसलिए तुम व्यग्रचित्त दीखती हो ॥ १६ ॥ हे समुद्र, तुम क्यों बराबर गर्जन करते रहते हो, क्या तुम्हें निद्रा नहीं आती ? सदा जागे रहनेका क्या तुम्हें व्यसन हो गया है, क्या उस मोहरूप अनिवर्तनीय दशा को तुम भी प्राप्त हो गये हो, जिस दशाको हम प्राप्त हो चुकी हैं। मालूम पड़ता है—जैसे भगवान्‌ने संभोगद्वारा हमलोगोंके कुंकुमादि चिह्न हर लिये हैं वैसे ही तुम्हारे भी कौस्तुभ आदि चिह्नोंको हर लिया है। [यही कारण है कि हमारी-जैसी तुम्हारी भी दशा हो गई है] ॥ १७ ॥ हे शशि, बलवान् यक्ष्मारोगसे पकड़ लिये जानेके कारण क्षीण होकर तुम अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश क्यों नहीं कर रहे हो। क्या जिस प्रकार मुकुन्द वाणीकी प्रेमभरी एकान्तकी बातें भूलकर हमलोग अवाक् हो गई हैं उसी तरह तुमभी हो गये हो। हमें तो तुम ऐसा हो दीखते हो [कहो क्या यह सच है या नहीं ?] ॥ १८ ॥ हे मलयपवन, हमलोगोंने तुम्हारा क्या अप्रिय किया है—क्या बिगाड़ा है, जो तुम गोविन्दके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कटाक्षवीक्षणसे विदारित हमलोगोंके हृदयमें कामको प्रेरित कर रहे हो ॥ १९ ॥ श्रीमन् मेघ, तुम अवश्य ही कृष्णके सखा मालूम पड़ते हो, क्योंकि विरहताप हरण करनेवाले भगवान्की तरह तुम भी आतपहरण करते हो तथा उनके प्रेमसे आबद्ध हो उन्हीं श्रीवत्सांकका तुम ध्यान करते हो और शबल हृदय हो अत्युत्कण्ठासे विह्वल होकर उनका पुनः पुनः स्मरण कर हमारी तरह तुम भी अश्रुधारा बहा रहे हो। अरे, उनके साथ मैत्रीकर तुमने भारी भूल की, क्योंकि उनका प्रकृष्ट सङ्ग दुःखदायी होता है ॥ २० ॥ हे वल्गितकण्ठ कोकिल, तुम प्रियंवद श्रीकृष्णके समान बड़ी ही मीठी बोल बोल रहे हो * इसलिए मृतको जिला देनेवाली इस अपनी मधुरवाणीसे तुमसे मुझ बोलो, अब मैं तुम्हारा क्या भला करूँ † ॥ २१ ॥ हे उदारबुद्धे पर्वत, तुम न तो चलते-फिरते हो और न कुछ बोलते ही हो, इसलिए निश्चय ही तुम किसी महान् अर्थके विषयमें विचार कर रहे हो, ऐसा हमें प्रतीत हो रहा है। क्या हम लोगोंकी तरह तुम भी अपने शिखर रूपी स्तनोंपर श्री वसुदेवनन्दनके चरण धरना चाहते हो ?—जैसे हम सब श्रीकृष्णके चरणकमलको अपने स्तनोंके ऊपर

गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ॥
अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ॥ २० ॥ प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसञ्जीविकया-
ऽनया गिरा ॥ करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥ २१ ॥ न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्त-
मर्थम् ॥ अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्ध्रदाः कर्शिता बत सिन्धुपत्न्यः सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय
इष्टभर्तुः ॥ यद्वद्वयं मधुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां दूतं
त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ॥ किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवेकनिष्ठा

रखना चाहती हैं, क्या वैसे ही सभी हम लोगोंके स्तनतुल्य अपने शिखरों पर उनके चरणकमल रखना चाहते हो ? [हे पर्वत, ऐसी इच्छा कभी नहीं करना, अन्यथा तुम्हारी भी वैसी ही दुर्दशा होगी, जैसी आज हम भोग रही हैं] ॥ २२ ॥ हे सागरकी पत्नी नदियो, जिस तरह हम लोग श्रीकृष्णके प्रणयावलोकनको न प्राप्तकर अपहृत हृदय हो जानेसे अत्यन्त ही दुबली पतली कातर हो रही हैं उसी तरह क्या तुम सब भी इस ग्रीष्मऋतुमें अपने पति सागरके प्रणयावलोकको यानी मेघ द्वारा प्रवाहपूर्तिको न प्राप्तकर कुण्डोंके सूख जाने से कमलोंकी शोभा से शून्य हो अन्यन्न दुबली पतली कातर देख रही हो ॥ २३ ॥ हंस, आओ, तुम्हारा स्वागत है, इस आसनपर बैठ जाओ, क्षीर पान करो और श्रीकृष्णकी कुछ बातें सुनाओ। हम तो तुम्हें उनका दूत समझ रही हैं। इसलिए कहो, चञ्चल मैत्रीवाले वे अजित कुशलसे हैं न ? 'तुम्हारी जैसी रसीली प्रेयसी औरत इस रंगीली दुनियाँमें मैं और कहीं

* अथवा—हे वल्गितकण्ठ प्रियराव कोकिल, तुम अपनी इस वाणीसे हम लोगोंके विरहजनितदुःख दूर कर देनेवाले पदोंका ही उच्चारण कर रहे हो। † चूँकि विरहावस्थामें कोकिलके शब्द अत्यन्त ही दुःखदायी होते हैं, इसलिए 'प्रियराव' आदि सभी शब्द विपरीत लक्षणा द्वारा वक्रोक्तिमें पर्यवसित हैं। तुम अपनी मीठी बोलीसे मुझे दुःख दे रहे हो, कहो अब मैं तुम्हारा चोंच तोड़ डालूँ, यह सहृदय बुद्धिगम्य व्यङ्ग्यार्थ है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न देखता' इसतरहकी हमें मोहित कर देनेवाली हमलोगोंके प्रति कही गई अपनी मीठी-मीठी बातोंका भला कभी वे स्मरण भी करते हैं ? हे क्षुद्रके दूत हंस, जब उन्हें हमारी कुछ फिक्र नहीं है, तब कहो, हमीं उन्हें क्यों भजें ? हमें अपनी मीठी-मीठी बातोंसे फुसलाकर वे उस लक्ष्मीके साथ एकान्तमें रमण करते हैं। जाओ, लक्ष्मीको छोड़कर अकेले उन कामप्रद श्रीकृष्णको बुला लाओ। क्या हम सब स्त्रियोंमें अकेली वही अधिक प्रेम करनेवाली है ? जिससे उसकी इतनी दुलारी बनी है। क्या हम 'उनका प्यार नहीं करतीं ! ॥ २४ ॥ इसतरह योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णमें किये जा रहे अपने अनुपम प्रेमसे माधवकी सब स्त्रियाँ परम गतिको प्राप्त हो गईं ॥ २५ ॥ भगवान्के वियोगमें स्त्रियोंका विकल हो जाना कोई अतिविचित्र बात नहीं है, क्योंकि अनेक प्रकारके गीतों द्वारा भलीभाँति वर्णित हुए अतएव किसी तरह सिर्फ सुन लिये जाने पर भी जो भगवान् श्रीकृष्ण जबर्दस्ती स्त्रियोंका मन अपनी ओर खींच लेते हैं उन भगवान्को साक्षात् देखनेवाली स्त्रियोंका मन भला उनकी ओर क्यों न खींच जाय ? ॥ २६ ॥ जिन स्त्रियोंने प्रेमसे पैर दबाने आदिके द्वारा जगत्गुरु

स्त्रियाम् ॥ २४ ॥ इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ २५ ॥ श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः ॥ उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥ २६ ॥ याः सम्पर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः ॥ जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥ २७ ॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः ॥ गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥ आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ॥ आसन्षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥ २९ ॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ॥ रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥३०॥ एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ॥ यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥३१॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ॥ आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥ साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ॥ चिबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥ एतेषामपि राजेन्द्र

की भर्तृबुद्धिसे भलीभाँति सेवाएँ कीं, उनकी तपस्याका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ २७ ॥ इसप्रकार वेदविहित धर्मोंका खूब अनुष्ठान करते हुए सज्जनों [साधुओं] की परम गति भगवान् श्रीकृष्णने यह दुनियाँको दिखला दिया कि धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्तिका स्थान सिर्फ गृह ही है ॥ २८ ॥ गृहस्थोंके परम श्रेष्ठ धर्मका पालन करने वाले भगवान् श्रीकृष्णजीके सोलह हजार एकसौ आठ १६१०८ रानियाँ थीं ॥ २९ ॥ हे राजन्, उन स्त्रीरत्नभूता रानियोंमें रुक्मिणी प्रभृति आठ पटरानियों तथा उनके लड़कोंका क्रमशः जो मैंने पहले वर्णन किया है उन्हें छोड़कर सर्व समर्थ भगवान् श्रीकृष्णकी और जितनी रानियाँ थीं, उनमेंसे प्रत्येकमें अमोघगति ‡ भगवान् श्रीकृष्णने दस दस लड़के पैदा किये ॥ ३०, ३१ ॥ उनमें उद्दाम पराक्रम रखनेवाले अठारह महारथी हुए जो अति उदार एवं विपुलकीर्तिसम्पन्न थे। उनके ये नाम मुझसे सुनिये—॥ ३२ ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु,

‡ अन्वितार्थप्रकाशिकाटीकामें 'अमोघरति' यह पाठ मिलता है, जिसका अर्थ किया गया है—अव्यर्थसुरतान्त।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥ ३३, ३४ ॥ हे राजन्, इन सब कृष्णके पुत्रोंमेंसे रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न रूपरङ्गमें ठीक अपने पिताकी तरह तथा सर्वश्रेष्ठ था ॥ ३५ ॥ उस महारथीने अपने मामा रुक्मके पुत्रीके साथ अपना विवाह किया था। उसके पेटसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति हुई थी, जिसको दस हजार हाथियोंका बल था ॥ ३६ ॥ उस रुक्मके दौहित्र अनिरुद्धने अपने नानाकी पौत्रीके साथ अपनी शादी की जिससे वज्रहस्तकी उत्पत्ति हुई। जिसको अपने वंशमें अकेले मुसलनिमित्त यदुकुलक्षयसे भगवान्ने बचा रख छोड़ा ॥ ३७ ॥ उससे प्रतिबाहुकी उत्पत्ति हुई, जिसका लड़का सुबाहु हुआ। सुबाहुसे शान्तसेन तथा शान्तसेनसे शतसेनका जन्म हुआ ॥ ३८ ॥ इस कुलमें कोई निर्धन, अल्पायु, अल्पपराक्रमी तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला नहीं हुआ। एवं इस कुलमें ऐसा कोई नहीं हुआ, जिसको पुत्र-पौत्र आदि अनेक सन्तति न हो ३९ ॥ हे राजन्, यदुवंशमें उत्पन्न हुए प्रख्यातकीर्ति सम्पन्न पुरुषोंकी गणना हजार वर्षोंमें भी कोई नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ सुना-जाता है

तनुजानां मधुद्विषः ।। प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ॥ तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः ॥ वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥३७॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः ॥ सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः ॥ अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ॥ संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥ तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च ॥ आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामितिश्रुतम् ॥ ४१ ॥ संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् ॥ यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥ देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः ॥ ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥४३॥ तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ॥ अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४४ ॥ तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ॥ ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ॥ न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥ तीर्थं चक्रे नृपोनं

कि, यदुवंशी बालकोंको पढ़ानेवाले आचार्योंकी संख्या तीनकरोड़ अट्ठासी सौ हजार थी ॥ ४१ ॥ हे राजन्, उन यदुकुलश्रेष्ठोंकी संख्या वर्णन भला कौन कर सकता है। जहाँ पर कई अयुत-अयुत लक्ष योधाओंके सहित उग्रसेन महाराज घिरे रहते थे ॥ ४२ ॥ हे राजन्, देवासुररणमें मारे गये जो भयङ्कर असुर तथा दानव थे, वेही मनुष्यरूपमें अवतीर्ण पराक्रमी हो प्रजाओंको सताने लग गये थे ॥४३॥ उनका दमन करनेके लिए भगवान्की आज्ञासे देवतालोग यदुकुलमें अवतीर्ण हुये थे। हे राजन्, उनका एक सौ एक कुल था ॥४४॥ जो भगवान्के सेवक थे वे सब यादवोंकी संख्यामें स्वामी होनेके नाते भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र साक्षी रहे हैं, क्यों दूसरोंको तो उनकी संख्याका ज्ञान होना सर्वथा अशक्य ही था ॥ ४५ ॥ वे लोग इतने श्रीकृष्णमें आसक्त थे कि वे सोते-बैठते, घूमते-फिरते, बात-चीत, खेल-कूद तथा स्नान आदि कार्य करते समय उन कार्योंमें जुटे हुये अपने शरीर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कोभी नहीं जान पाते थे कि हमारा शरीर क्या कर रहा है। और बातोंका तो उन्हें बिलकुल पता रहाता ही न था ॥ ४६॥ हे राजन् इस यदुकुलमें अवतीर्ण होकर जिन्होंने अपने यशरूपतीर्थसे अपने चरणोदकरूपी गंगाके तीर्थको भी नीचा कर दिया, (यह एक आश्चर्य है) तथा तथा परमकारुणिक होनेके कारण जिनके शत्रु तथा प्रियभक्त भी सायुज्य को प्राप्त हो गये, (यह दसरा आश्चर्य है) और जिस लक्ष्मीके कृपाकटाक्षके लिए और लोग नानाप्रकारके यत्न करते-फिरते हैं। वह लक्ष्मीजी भी एकमात्र जिन भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवामें तत्पर रहती हैं [यह तीसरा आश्चर्य है] अर्थानुसन्धानके बिना भी कहा या सुना गया जिनका नाम समस्त अमङ्गलोंका नाशकर देता [यह चौथा आश्चर्य है] और जिन्होंने ऋषियोंके वंशमें धर्मका प्रचार किया है, [यह पांचवा आश्चर्य है] उन कालरूप सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके लिए पृथिवीका भार हलका करना काई आश्चर्यजनक बात नहीं है ॥ ४७ ॥ जो भगवान् समस्त प्राणियोंके आश्रयभूत कहनेके लिए देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले, यादवश्रेष्ठ पार्षदोंसे घिरे, अपने हाथोंसे अधर्मका नाशकरने वाले स्थावर

यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदथऽन्ययत्न ॥ यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥ ४७ ॥ जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपर्षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ॥ स्थिरचर-वृजिनघ्नः सुस्मित श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥ ४८ ॥ इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ॥ कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥४९॥ मर्त्यस्तयाऽनुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति॥ तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्ग ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहि-तायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ समाप्तोऽयं दशमस्कन्धः ॥ १० ॥

और जंगम सभी प्राणियोंके सांसारिक दुःखके नाशक तथा जो अपने मधुरहास्य युक्त श्रीमुखसे व्रजवनिताओंके प्रेमको उद्दीप्त करनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वदा विजय बनी रहती है ॥ ४८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रेमकी अभिलाषा रखनेवाले प्राणीको चाहिए कि वह इस तरहसे अपने स्थापित वेदमार्गके रक्षणकी इच्छासे लीला तनुधारी यादवश्रेष्ठ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके मनुष्यावतारके योग्य चेष्टानकारी पापनिवर्तक कर्मोंका श्रवण करे ॥ ४९ ॥ भगवान् मुकुन्दकी उस सुन्दर कथाके श्रवण-कीर्तनसे उत्पन्न हुई आसक्तिसे, जो प्रतिक्षणमें वृद्धिगत है, मनुष्य उनके उस धामकी प्राप्त हो जाता है। जहाँसे कालके दुस्तर वेगकी निवृत्ति हो जाती है अर्थात् जहाँ कालकी भी दाल नहीं गलती है। जिस धामकी प्राप्तिके लिए समस्त राजे लोग भी अपने राज्य आदिका परित्याग कर ग्रामसे बाहर श्रवणादि साधनानुष्ठानके लिए जंगलका रास्ता पकड़ लेते हैं ॥ ५० ॥

नब्बे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजींने कहा—सुसमृद्धसुन्दर द्वारिकापुरीमें अपनी स्त्रियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र खूब विहार करते थे। उनके विहार करते समय गन्धर्वलोग आनन्दसे उनकी स्तुति करते करते जलक्रीडा करते समय भगवान् अपनी स्त्रियोंके ऊपर जलके छींटे देते थे तथा उनकी स्त्रियाँ भी भगवान्के ऊपर बड़े आनन्दके साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जलके छींटे देती थीं। वह दृश्य देखते ही बनता था। राजन्, जब भगवान् जलक्रीडा कर बाहर आते, तो उन अपने सभी वस्त्रोंको उन्हें दे देते जो गाना गाकर तथा बाजे बजाकर अपनी जीविका चलाते थे। और यही आदत उनकी स्त्रियों की भी थी। राजन्, भगवान्की स्त्रियाँ उनमें एसे दत्तचित्त थीं कि उनके सामने स्थित रहते हुए भी उन्हें न देखती हुईसी पागलोंकी तरह प्रलाप करती थीं। वे कहती थीं—मेघ मालूम होता है। तुमने भी श्रीकृष्णके साथ दोस्ती करली है यही कारण है कि हम लोगोंकी तरह उनके प्रेममें आबद्ध होकर उन्हीं का निरन्तर ध्यान करते ही और बार बार उन्हें यादकर तुम आँसुओंकी धारा बहाते फिरते हो। अरे, तुम उनके साथ प्रेमकर बड़ी गलती की, उनके साथ किया गया गहरा प्रेम अत्यन्त दुखःदायी होता है। राजन, इसतरह भगवान् श्रीकृष्णके प्रेममें विह्वल हो उन्हींका निरन्तर चिन्तन करती हुईं वे परमगतिको प्राप्त हो गई। उनके साथ वेदोक्त धर्मका निरन्तर अनुष्ठान करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने संसारको दिखला दिया कि हे संसारके जीवो, धर्म, अर्थ और कामका स्थान एकमात्र घर ही है। राजन, भगवान्की सोलहहजार एकसौ आठ रानियां थीं। उनमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों तथा उनके लड़कोंका वर्णन मैं आपसे पहले ही कर चुका हूँ। उनके अतिरिक्त भगवान्ने उन सोलह हजार स्त्रियोंमेंसे प्रत्येकमें दस दस लड़के उत्पन्न किए। उनमें प्रद्युम्न आदि अठारह महारथी हुए। वे बड़े यशस्वी थे। राजन्, यदुवंशमें उत्पन्न हुए लोगोंकी गिनती नहीं हो सकती। उनके लड़कोंके तीन करोड़ अठासीसौ हजार तो शिक्षक थे। इसीसे उनकी संख्याका अनुमान किया जा सकता है। राजन्, वे यादव लोग भगवान्में इतने दत्तचित्त थे कि सोते बैठते खाते, पीते भी उन्हें अपनी देहकी सुध न रहती थी। राजन्, आपसे और अधिक हम क्या कहें, जो मनुष्य उनका निरन्तर चिन्तन करता है वह धामको पाता है। जहाँ कालकी भी दाल नहीं गलती।

अथ दशमस्कन्धश्रवणमाहात्म्यं पद्मपुराणे—हरिरुवाच—शृणु ब्रह्मन्समाङ्गेषु दशमो ब्रह्मरन्ध्रकम्। तं श्रुत्वा च महापापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ १॥ चमत्कारपुरे विप्रो वामनाख्योऽभवत्पुरा। पठनार्थं स काश्यां हि जगाम बलवत्तरः॥ २॥ श्रीकण्ठकाद् द्विजास्तत्र पपाठ निगमं द्विजः। गुरुपत्नीं रूपवतीं दृष्ट्वा रन्तुमियेष सः॥ ३॥ बहुशः प्रार्थयामास रत्यर्थं कामपीडितः। तदप्रीतिं विचार्याशु मनसा चिन्तयंश्च सः॥ ४॥ इत्थं पापं चकारासौ तच्छृणुष्व महामते॥ हत्वास्याः स्वामिनं पश्चाद्देपा लब्धुमिहार्हति॥ ५॥ एकदा गुरुणा सार्द्धं गतो देशान्तरं द्विजः। मार्गे गुरुं नाशयित्वा पाशास्त्रादिभिरेव सः॥ ६॥ गुरुगेहे रुरोदोच्चैर्हा गुरो क्व गतो भवात्। सा प्रपच्छ तदा शिष्यं कथं रोदिषि पुत्रक॥ ७॥ प्रोवाच शृणु देवि त्वं सर्पदष्टो मृतो गुरुः। तद् दाहादिककर्माणि कृत्वा चात्र समागमम्॥ ८॥ हर्षयुक्ता महापापो गुरुगेहेऽवसत्तदा। मद्यपीत्वैकदा रात्रौ हेतुं स्मृत्वा गुरोर्वधे॥ ९॥ सुरतं कृतवान्पापो हठाद् गृह्य गुरुस्त्रियम्। सुरतान्ते रुदित्वोच्चैर्नष्टसंज्ञा व्यजायत॥ १०॥ गृहीत्वा गेहगं द्रव्यं प्रदुद्राव स वामनः। चतुष्टयं पातकानां कृत्वा स्वगृहमाविशत्॥ ११॥ स विवाहं चकाराशु वामनोऽथ प्रजाशया। पत्नीं प्राप्य वरारोहां नाम्ना राज्ञीं खलस्तदा॥ १२॥ तस्यामुत्पादयामास कन्यां कमललोचनाम्। षोडशाब्दा यदा कन्या तदा पत्नी मृता शुभा॥१३॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स-मद्यपो महापापी सुतया रतिमाचरत् । तदा ज्ञानं ज्ञातिजनैस्ततो निष्कासितः कुलात् ॥ १४ ॥ यदा सुता मृता तस्य तदा स वनमध्यगात् । हत्वा पक्षिगणांस्तत्र कालक्षेपं चकार ह
॥ १५ ॥ कदाचिद् गोमतीतीरे स ययौ हिंसनाशया । तत्र मांसं भक्षितवान्सर्वगर्भसमन्वितम् ॥ १६ ॥ स तेन मूर्च्छितो भूत्वा पपात दिनविंशतिम् । तत्र गाथा मुनिकृता दशमस्कन्ध-
सम्भ ॥ १७ ॥ किञ्चित्संज्ञेन तेनाथ श्रुता पञ्चदिनं विधे । ततो मरणकालोऽस्य चागतो यमकिङ्कराः ॥ १८ ॥ विष्णुदूतास्तथायाता ब्रुवन्तो मुच्यतामिति । इति श्रुत्वा वचो याम्याः
प्रत्यूचुर्वैष्णवान्प्रति ॥ १९ ॥ कथं समागतः यूयं पापोऽयं खलु सर्वथा । अहो मूढतमा यूयं विष्णुना प्रेषिता वयम् ॥ २० ॥ दशमश्रुतिमात्रेण सन्तुष्टोऽस्य जनार्दनः । इत्युक्त्वा वैष्ण-
वास्तं हि विमाने स्थाप्य वामनन् ॥ २१ ॥ वैकुण्ठमनयल्लोकं सुरेड्यं ब्राह्मणाधमम् । सुरापं गुरुहन्तारं सुवर्णस्तेयकारिणम् ॥ २२ ॥ पुत्रीरतं गुरुस्त्रीषु संसक्तं सर्वगर्हितम् । निवृत्य
यमदूतास्ते यमराज्ञे न्यवेदयन् ॥ २३ ॥ श्रुत्वा यमः प्रत्युवाच स्वदूताञ्छृणु तद्विधे । दशमाक्षराकर्णनेन मुक्तः स्यात्पापकोटिभिः । किं श्रुतं निखिलो येन कृष्णरूपमिदं यतः ॥२४॥ इति ।

(अन्य टीकाकारोंकी अपेक्षा श्रीधरस्वामीको श्रेष्ठता)

कदाचिद्द्वैतवादिवैष्णवैरुक्तम्–श्रीधरस्वामिकृतटीकायामद्वैतस्य हठाद्वर्णनमस्ति, व्यासाभिः—प्रायबोधिकास्त्वन्या एव टीकाः सन्ति, ततः काशीस्थविद्वज्जनैरुक्तं श्रीमदिष्टदेवः श्रीजगन्नाथो यथेवं वदिष्यति तदैतदङ्गीकुर्मः । तदर्थं सर्वटीकानामङ्कितपत्राणि काशीस्थश्रीजगन्नाथाख्यं विष्णुमन्दिरे स्थापितानि । कश्चिद् ब्राह्मणबालस्तदानयनार्थं प्रेषितः श्रीभगवद्ग्रस्थापितसङ्कलितपत्रेभ्य एकं पत्रमानय इत्युक्त्वेति । तत्र तैः श्रीधरीटीकापत्रमधःस्थापितमपि भगवता निष्कास्य 'व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति शेषमैत्रेयनारदाः । पराशरोद्भवो वायुगुपुत्रश्चैव बृहस्पतिः ॥ एतेषां निखिलाः शिष्याः श्रीमद्भागवतं विदुः । श्रीधरः सर्वथा वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ ज्वरतर्पणम् ❀

कृतनित्यक्रियः अश्वत्थसमीपं गत्वाऽऽचमनम्। प्राणानायम्य देहशुद्धिं कृत्वा तं सम्पूज्य 'मम जन्मलग्नात् चन्द्रलग्नात् गोचरात् ग्रहाणां दशामहादशान्तर्दशाप्रत्यन्तर्दशारिष्टस्थानस्थितग्रहजन्यशरीरान्तः कफवातपित्तादिजन्यसमस्तज्वरपीडाशान्त्यर्थं ज्वरदेवताप्रीत्यर्थं च अश्वत्थमूले तर्पणमहं करिष्ये। तत्रादौ न्यासः--ॐत्रिपादभस्मप्रहर—इति—अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ त्रिशिखा—इति—तर्जनीभ्यां नमः। ॐ रक्तलोचन—इति—मध्यमाभ्यां०। ॐ समे प्रीतिः—इति—अनामिकाभ्यां०। ॐ सुखं दद्यादिति कनिष्ठिकाभ्यां०। ॐ सर्वामयपतिज्वरम् इति करतलकरपृष्ठाभ्यां०। एवं हृदयादिन्यासं कृत्वा अश्वत्थमूले दुग्धतिलजलैः शङ्खस्थैस्तर्पणं कुर्यात्। ॐ मारीज्वरं तर्पयामि। ॐ महामारीज्व०। ॐ बलज्व०। ॐ सर्वभूतज्व०। ॐ विलविकरणज्व०। ॐ बलप्रमथनज्व०। ॐ सर्वभूतदमनज्व०। ॐ वातज्व०। ॐ पित्तज्व० ॐ कफज्व०। ॐ रक्तज्व०। ॐ उष्णज्व०। ॐ शीतज्व०। ॐ भ्रमज्व०। नित्यज्व०। ॐ वेलाज्व०। ॐ सन्निपातज्व०। ॐ सन्ततज्व०। ॐ सन्धिज्व०। ॐ शिवालयज्व०। ॐ एकान्तज्व०। ॐ द्वितीयज्व०। ॐ तृतीयज्व०। ॐ चातुर्थिकज्व०। ॐ महाज्व०। ॐ प्रेतज्व०। ॐ प्रेतराजज्व०। ॐ गोत्रजनितज्व०। ॐ परगोत्रजनितज्व०। ॐ भूतज्व०। ॐ विविधज्व०। ॐ कालज्व०। ॐ महाकालज्व०। ॐ पाक्षिकज्व०। ॐ मासिकज्व०। ॐ सांवत्सरिकज्व०। ॐ ग्रहज्व०। ॐ आगन्तुकज्व०। ॐ श्रमज्व०। लाभज्व०। ॐ अतिसारज्व०। ॐ क्रिमिज्व०। ॐ कीटज्व०। ॐ शूलज्व०। ॐ अरिष्टज्व०। इति नामानि। ॐ त्रिपादभस्मप्रहरस्त्रिशिखारक्तलोचनः। समे प्रीतिः सुखं दद्यात्सर्वामयपतिज्वरम् तर्पयामि। इति त्रिवारम्। ॐ यो मौ सरस्वतीतीरे अपुत्रस्तापसो मृतः। वेलाज्वरनिवृत्यर्थं तस्मै दद्यात्तिलोदकम्॥ यो सौ सरस्वतीतीरे कुत्सगोत्र समुद्भवः। त्रिरात्रज्वरदाहेन मृतो गोविन्दसंज्ञिकः॥ ज्वरापनुत्तये तस्य तस्मै दद्यात्तिलोदकम्॥ अरण्ये निर्जले देशे धर्मो भवति शाश्वतः॥ सर्वज्वरविनाशाय तस्मै दद्यात्तिलोदकम्—इति ज्वरतर्पणानन्तरं विष्णुश्राद्धं तदनन्तरं ब्राह्मणान् भोजयेत् यथाशक्ति [१]दक्षिणां च दद्यात्।

❀ अथ सहस्रब्राह्मणभोजनविधिः ❀

भारते—ब्राह्मणानां सहस्रं तु संभोज्य भरतर्षभ। नरः पापात्प्रमुच्येत पापेष्वभिरतोऽपि यः॥ भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप। न्यायविद्धर्मविदुषां स्मृतिभाष्यविदां तथा॥ न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते। सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम्-इति॥ लक्षभोजनादौ तु न विधिः क्वाप्युपलभ्यः। यस्तु-मैथिलग्रन्थे क्वचिदुल्लेखि सोऽप्यनाकरः।

देशकालौ सङ्कीर्त्य—सहस्रब्राह्मणान्भोज्यादिना तृप्तिंतर्पयिष्ये—इति सङ्कल्प्य पुण्याहं वाचयित्वादिकालाष्टकं संपूज्य ब्राह्मणान् धूपदीपवस्त्रालङ्कारैः सम्पूज्य सघृताक्तेनातृप्तिभोजयेत्। ततोऽग्निस्थापनाग्निमुखान्तं कृत्वा केशवादिभिर्द्वादशनामभिः स्वाहान्तैर्घृतेन हुत्वा दध्यन्नं ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य स्विष्टकृदादिकृत्वा ब्राह्मणेभ्यः छत्रोपानहौ प्रत्येकं दत्वा स्वस्तिवाच्य तान् क्षमापयित्वा आशिषो गृहीत्वा विसर्जयेत्। ततो भुक्तशेषं बन्धुसहितौ दम्पतीहृष्टमनस्कौ भुञ्जीयाताम्। अनेन चैकस्मिन्नेव दिने सहस्रादिभोजनं कार्यमिति प्रतीयते। शिष्टास्त्वनेकदिनैरपि समापयन्ति, तत्र मूलं विचारणीयमिति दानमयूखे॥

१—नोट—देखिये विशेष—दानचन्द्रिका, बोधायन हेमाद्रि आदि निबन्ध ग्रन्थों में।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नवग्रहचक्र

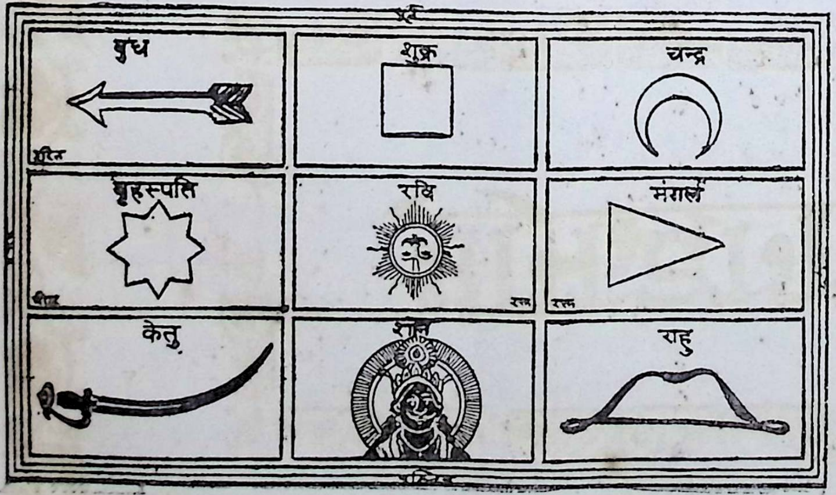

हवनकुण्ड

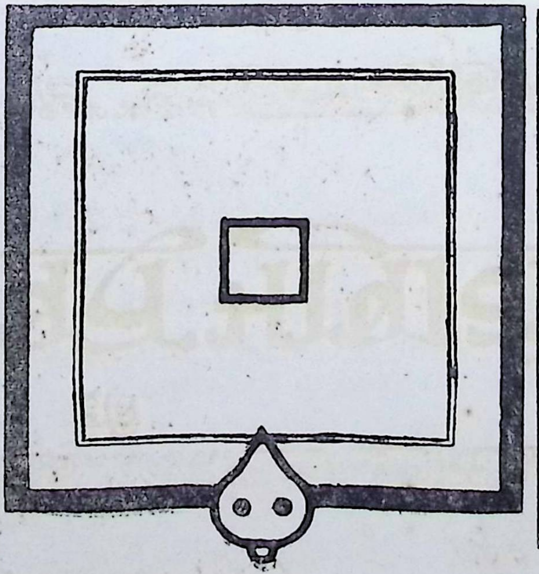

सर्वतोभद्रचक्र

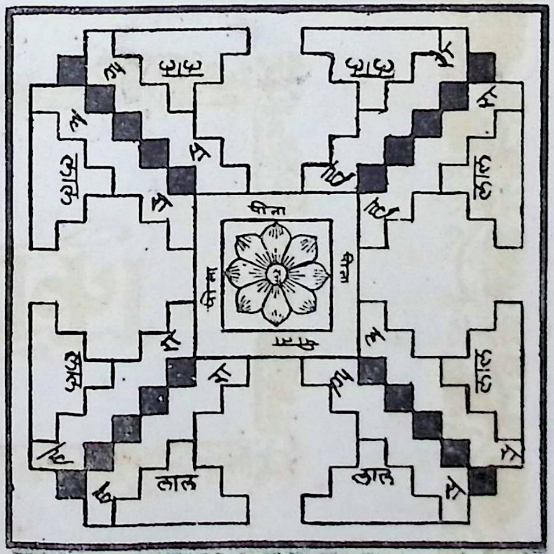

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(दशम-स्कन्ध)

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

पता—बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त बुकसेलर, राजादरवाजा, बनारस ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भारतीय–कर्मकाण्ड–मण्डल की ६९ पुष्पलता

(एकादश–स्कन्ध)

श्रीमद्भागवत भाषा टीका

('सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलङ्कृत)

संपादक—उत्तरप्रदेशीय (संयुक्तप्रान्त) सरकार द्वारा संमानित विद्वान् आचार्य श्रीदौलतरामगौड वेदाचार्य,
मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ अन्य पुराण—उपपुराणोंका ज्ञान अत्यावश्यक—

साधारण हरिकथाश्रवण विधान—

पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरनिष्ठासमन्विताम्। कथां श्रुत्वा पुनः पूजां कुर्याद्वक्तुः प्रयत्नतः ॥ नारायणं हृषीकेशं मानसे परिचिन्तयेत्। निधाय तुलसीं हस्ते पुष्पयुक्तामतन्द्रितः ॥ प्रार्थयित्वा हि तं विप्रं भोजयेत्प्रयतः शुचिः। अन्यांश्च भोजयेद्विप्रान्विधिवन्मानपूर्वकम्। एवं नित्यकथां विद्वाञ्छृणुयान्मधुघातिनः। कथासमाप्तौ विप्रस्य व्यासरूपस्य धीमतः॥ दद्याद्वित्तं च वस्त्राणि वक्तृतुष्टिकराणि च। कथाप्रसङ्गतो यानि तानि सेव्यानि सर्वशः॥ तेभ्यो वित्तं प्रदातव्यं कार्याकार्येषु मानवैः। इदमेव फलं नृणां श्रोतृणां मुनिभिः स्मृतम्॥ त्याज्यं यत्त्यज्यते सद्यो ग्राह्यं सगृह्यते ध्रुवम्

भारत श्रवण विधान—

स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये कृताह्निकविधिर्नरः। शृणुयाद् भारतं रम्यमादिपर्वपुरःसरम् ॥ प्रतिपर्वसमाप्तौ च दद्याद्धेनुं सवत्सकाम्। समाप्ते सति सर्वस्मिल्लक्षहोमो विधीयते॥ होमान्ते विधिवद्दद्याद्द्विजेभ्यो भूरिदक्षिणाम्। ततो वक्तारमानम्य संपूज्य च यथाविधि॥ भूषणैर्हस्तकर्णानां वस्त्रैः क्षौमादिभिः सुधीः। राजतं सुदृढं जिष्णुं कुञ्जरं दशभिः पलैः॥ चतुर्दन्तं सकुथकं साङ्कुशं च सर्पजठरम्। विधाय विधिवद्दद्यादाचार्याय सदक्षिणम्॥ आचार्यानीं समभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥

रामायण श्रवण विधान—

रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुधीः। चतुर्भिर्वाजिभिर्युक्तं तथा क्षौमपताकया॥ यन्त्रा चैव समायुक्तं किङ्किणीनादनादितम्। सम्पादिते रथे सम्यग्धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छतमष्टोत्तरं सुधीः। एवं कृते विधाने च महाकाव्यं फलप्रदम्। रामायणं भवेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा॥

वासिष्ठ श्रवण विधान—

वासिष्ठश्रवणे जाते कृतिनां विधिपूर्वकम्। प्रदेयं शशिनो बिम्बं राजतं पलमानतः॥ हवनं पायसे नैव साज्येनायुतसंमितम्

काशीखण्ड श्रवण विधान—

काशीखण्डे श्रुते दद्याद् गवां पञ्चकमादरात्। विधानं पूर्ववत्कार्यं गायत्र्या हवनं मतम्॥ अयुतं वा सहस्रं वा शतं वाष्टाधिकं तथा। प्रधानं पायसं साज्यं प्रायश्चित्तं चतुर्विधम्॥ कृते तु हवने पश्चाद् गवां दानं विधीयते। ततश्च भोजयेद्विप्रास्तेषां पत्नीश्च भोजयेत्॥ एवं कृते विधाने च फलप्राप्तिर्भवेन्नृणाम्॥

ब्रह्माण्डत्रय श्रवण विधान—

ब्रह्माण्डे ब्रह्मवैवर्ते तथा ब्रह्मणि संश्रुते। गां भूमिं महिषीं दद्यात्क्रमाद् गोदावगाहनात्।

कालिकापुराण श्रवण विधान—

पुराणे कालिकायाश्च श्रुते दद्यादसिं शुभम्। कांस्यपात्राणि देयानि घण्टादर्पणमञ्जसा॥ गायत्र्या हवनं कार्यं सहस्रं तिलसर्पिषा॥ होमान्ते विधिवत्कुर्याच्छतब्राह्मणभोजनम्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माघमाहात्म्य श्रवण विधान—

शृणुयान्मम माहात्म्यं माघस्नाने कृते सति । सवृषं शकटं दद्यात्कम्बलं कनकं घृतम् ॥ त्रिंशच्छूर्पाणि वंशस्य सालङ्काराणि शक्तितः । तावन्ति मिथुनान्येव भोजयेत्सादरं सुधीः ॥ भुक्तेषु मिथुनेष्वेव दद्याच्छूर्पाणि भक्तिमान् ॥

हरिवंश श्रवणनियमादि—

जपवच्छ्रवणं प्रोक्तं हरिवंशस्य सूरिभिः । श्रवणान्ते हरेर्मूर्तिः सश्रीकस्य च दीयते ॥ सुवर्णेन कृता सम्यग्लक्षणा पलमानतः ॥ विशेषोऽत्र समुद्दिष्टो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण यावद् ग्रन्थः समाप्यते ॥ समाप्तौ विधिवद्दद्याद्वस्त्रं क्षौमं द्विजातये । भोजयेन्मिथुनान्येव चतुर्विंशतिमादरात् । प्रत्यवरोहमन्त्रेण विशेषहवनं सहस्रसंख्यं कुर्यात् । एवं कृते विधाने च प्रजां प्राप्नोति मानवः । धनमारोग्यमायुष्यं सौभाग्यं गुणगौरवम् ॥ प्राप्नोति मनुजः सम्यङ् नात्र कार्या विचारणा ॥

हरिवंश पारायण नवाहविधि—

प्रथमे कृष्णजननं द्वितीये धेनुकार्दनम् । तृतीये कुण्डिनपुरे रुक्मिणीहरणं तथा ॥ चतुर्थे षट्पुरवधमार्यास्तोत्रं च पञ्चमे । मधोश्चरित्रं षष्ठे वै सप्तमे पावकस्तुतिः ॥
प्रमाणान्तरमपि—प्रथमे यदुवंशस्य कीर्तनाविधिकीर्तयेत् । अध्यायानां पञ्चत्रिंशत्कीर्तनीया हि तद्दिने ॥ द्वितीयेऽह्नि पठेद्विद्वान् धेनुकस्य वधावधि । अध्यायानां त्रयस्त्रिंशत्पठितव्या हि तद्दिने ॥ जरासन्धवधो युद्धे गोमन्तस्य च रोहणम् । तावत्प्रकीर्तयेद्विद्वान् तृतीयेह्नि विचक्षणः ॥ अध्यायानामूनं त्रिंशत्कीर्तनीया हि तद्दिने । पारिजातस्य हरणं युद्धं कृष्णेन्द्रयोर्मिथः ॥ प्रकीर्तयेच्चतुर्थेऽह्नि तावदेवापरः सुधीः । एकत्रिंशत्परिमितानध्यायान् समुदीरयेत् ॥ सैन्यभङ्गः शम्बरस्य वाक्यं श्रीनारदस्य च । तावत्प्रकीर्तयेद्विद्वान् पञ्चमेऽह्नि प्रयत्नतः ॥ त्रयस्त्रिंशत्परिमिता अध्याया विहितास्तदा । जनमेजयवंशस्य भविष्यस्य च वर्णनम् ॥ षष्ठेऽह्नि तावद्वक्तव्यं पारायणशुभेच्छुना । अध्यायास्तु चतुर्विंशन्मितस्तस्मिन्प्रकीर्तिताः ॥ सप्तमे दैत्यसैन्यानां विस्तारो यावदेव हि । अध्यायाश्चाष्टचत्वारिंशन्मिता एव च कीर्तिताः ॥ यावद्धि घण्टाकर्णस्य समाधेर्वर्णनं भवेत् । तावदेव पठेद्धीमान्-अष्टमेऽह्नि प्रयत्नतः ॥ अस्मिंस्तु दिवसेऽध्यायाः कीर्तितास्त्रिंशदेव हि । समाप्यन्तं च नवमे धीरकण्ठः शुभेच्छुकः ॥ अध्यायाः पञ्चपञ्चाशन्मितास्तु विहितास्तदा । हरिवंशनवाहस्य पारायण उदाहृतः ॥ क्षणे विश्राम्य मध्याह्ने प्रपठेत्तु दिनाविधि । गायत्र्या हवनं कुर्यात् अथवा विष्णुमन्त्रतः ॥ भोजयेत्पायसैर्विप्रान्मधुरैश्च विशेषतः । दक्षिणा चात्र सामान्याच्चिष्कत्रयमितोदिता ॥ गोद्वयं चाथ वैकां गां शय्यां वस्त्रं सुभूषणम् । दद्यात्पुत्रप्राप्तिकामे वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥

नानापुराण श्रवण विधान—

येषां प्रोक्तं मया चात्र पुराणानां विधानकम् । पृथक्त्वेनैव दृष्टं तत्पृथग्दानसमन्वितम् ॥ मत्स्यादीनां तु शेषाणां सर्वसाधारणो विधिः । पुराणश्रवणान्ते च दद्याद्धेनुं सवत्सकाम् ॥ वस्त्रालङ्कारसहितां साधुलक्षणलक्षिताम् । वेदार्थो दुर्गमो लोके मीमांसाहृदयं परम् ॥ कृष्णेन कृपया नृणां पुराणे सुगमीकृतः । प्रभु त्वं मित्रधर्मश्च कान्ता सङ्गतिरेव च ॥ वेदे पुराणे काव्ये च क्रमशः परिकीर्त्यते । पुराणे श्रूयमाणे च ग्रामे च सकलैर्जनैः ॥ न शृणोति कथं पापः पापविच्छित्तिकारकम् । तेन माता कृता वन्ध्या न श्रुतं येन भारतम् ॥ न दत्तं ब्राह्मणे किञ्चिन्न स्नातं गौतमीजले । पौराणीं वृत्तिमाश्रित्य ये जीवन्ति द्विजोत्तमाः ॥ ते यान्ति ब्रह्मसायुज्यमनन्तं गतकल्मषाः ते सूर्यमण्डलं भित्वा यान्ति ब्रह्मसनातनम् ॥ गङ्गातोयेन शुद्धेन पवित्रीकृतविग्रहाः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ये शृण्वन्ति कथां विष्णोस्तुल्यास्ते सनकादिकैः ।" विप्राणां शौनकस्तीर्णो भवाब्धिं गतकल्मषः । परीक्षितस्तु भूपानां हरिदत्तोविशां तथा ॥ पुराणश्रवणेनैव विधिपूर्वेण सत्वरम् । तस्मात्पुराणश्रवणं विधिपूर्वं हितं नृप ॥

हरिवंश नवाह विधान—

(१) हरिवंशपर्वणः—आदितः ३५ अध्यान्तपाठः अ० सं० ३५ (२) विष्णुपर्वणः १३ अध्यायान्तं पाठः । अध्यायसंख्या ३३ । (३) विष्णुपर्वणः ४२ अध्यायान्तं पाठः । अ० सं० २९ । (४) विष्णुपर्वणः ७३ अध्यायान्तं पाठः । अ० सं० ३१ । (५) विष्णुपर्वणः १०६ अध्यायान्तं पाठः । अ० सं० ३३ । (६) भविष्यपर्वणः २ द्वितीयाध्यायान्तं पाठः । अ० सं० २४ । (७) भविष्यपर्वणः ५० अध्यायान्तं पाठः । अ० सं० ४८ । (८) भविष्यपर्वणः ८० अध्यायान्तं पाठः । अ० सं० ३० । (९) भविष्यपर्वणोऽवशिष्टभागः १३५ अध्यायान्तं पाठः । अ० सं ५५ । अथ सङ्कल्पः—१—'अमुकगोत्रस्य सपत्नीकस्य मम अमुकशर्मणः—उपस्थितशरीराविरोधेन जन्मजन्मान्तरार्जित—गो—विप्र-बाल—स्त्री-हननोपस्थितातिथिजनापमान—गुरु—विप्र—देवधनापहरण- दीनानाथजनशातनादिपातकोपातकमूलकजन्मकालिकजन्मलग्नावधिकपापग्रहयुतवीक्षितापत्यस्थानप्रभृतिदोषसूचितसकलपुत्रप्राप्तिप्रतिबन्धकताऽशेषारिष्टझटिति समूलाध्वंसपूर्वकसत्वरदीर्घायुवंशकरविद्याविनयधर्मैश्वर्यशौर्यवीर्यगाम्भीर्यसौन्दर्यसामयिकाखिलगुणालङ्कृतौ रससत्पुत्रप्राप्तिकामनयाऽमुकक्षेत्रे-महाभारतान्तर्गताखिलहरिवंशपुराणस्य (आद्यं पुरुषमीशानमित्यादि—मित्यन्तस्य) नवाहपारायणं (नवाहपारायणश्रवणं) सपत्नीकोऽहं करिष्ये । २—स्त्रीरजोदोष—कन्याप्रसूतत्व-मृतवत्सात्व-काकबन्ध्यात्व-बन्ध्यात्व-दोषाणामन्यतमे सति सङ्कल्पवाक्ये स्वमत्योहः कर्त्तव्यः । ३-अविवाहिता कन्या स्वाज्ञाकरमनोऽनुकूलप्रकृतिधनैश्वर्यसुरूपौदार्य—परिवारपालनदक्षनिर्विकारवीर्यशालि-सुभगपतिप्राप्तिकानया । ४-विवाहिता तु-दीर्घायुवंशकरसत्पुत्रोत्पत्तिकामनाय । ५-विवाहितापतिपुत्रयुक्ता तु-"आजीवनपतिसुख-पुत्र पौत्रधनैश्वर्यसकलसुखप्राप्तिकामनया । ६-विधवा तु—जन्मजन्मान्तरार्जिते पापपुञ्जसूचितवैधव्यदोषदूरीकरणपूर्वकोपस्थितशरीरावशानोत्तरस्वर्गप्राप्तिसहवासकामनया सङ्कल्पं कुर्यात् ।

कार्यपरक-अनुष्ठानप्रकार—

स्त्रीणां दोषविशेषे तदावृत्तिसंख्यामाह तन्माहात्म्ये—दशावृत्तीरपुष्पार्थं मृतवत्सा तु सप्त वै । पञ्चावृत्तीः स्रवद्गर्भा काकबन्ध्या त्रयं तथा ॥ कन्या प्रसूश्चैका वृत्तिं श्रुत्वा पुत्रमवाप्नुयात् ॥

वाल्मीकिनवाह प्रमाण—

उद्योगं रामराज्यस्य भरतोद्योगमेव च । मारीचस्य वधं यावत्सुग्रीवपुरवेशनम् ॥ लक्ष्मणस्य ततो यावत्त्रिजटा स्वप्नदर्शनम् । रावणस्य ततो यात्रा जयार्थं देवसन्नसु ॥ समुद्रतरणं यावन्ति कुम्भवधमेव च । ततः पूर्णकथां कुर्यान्नवमेऽहनि सर्वदा ॥ १—आदितोऽयोध्याकाण्डस्य पञ्चमसर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ८ । २—अयोध्याकाण्डस्यैव द्व्यशीतितमसर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ७७ । ३—आरण्यकाण्डस्य चतुश्चत्वारिंशत्सर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ८१ । ४—किष्किन्धाकाण्डस्यैकत्रिंशत्सर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ७२ । ५—सुन्दरकाण्डस्य सप्तविंशतिसर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ६३ । ६—लङ्का (युद्ध) काण्डस्य द्वाविंशतिसर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ६३ । ७—लङ्काकाण्यस्यैव सप्तसप्ततिसर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ५५ । ८—उत्तरकाण्डस्य षड्विंशतिसर्गान्तं पाठः । सर्गसंख्या ७७ । ९—उत्तरकाण्डस्य समाप्तिपर्यन्तं पाठः । सर्गसंख्या ८५ ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवीभागवतस्य नवाहविधिः—

१–आदितस्तृतीयस्कन्धस्याध्यायानां अ० सं० ३५। २–चतुर्थस्कन्धस्याष्टमाध्यायान्तं यावत् अ० सं० ३५। ३–पञ्चमस्कन्धस्याष्टादशाध्यायान्तं यावत् अ० सं० ३५। ४–षष्ठस्कन्धस्याष्टादशाध्यायान्तं यावत् अ० सं० ३५। ५–सप्तस्कन्धस्याष्टादशाध्यायान्तं यावत् अ०सं ३०। ६–अष्टमस्कन्धस्य सप्तदशाध्यायान्तं यावत् अ०सं० ३७। ७–नवमस्कन्धस्याष्टाविंशतितमाध्यायान्तम् अ० सं० ३५। ८–दशमस्कन्धस्य त्रयोदशाध्यायान्तम् अ० सं० ३५। ९ द्वादशस्कन्धान्तं यावत्पारायणम् अ० सं० ३८।

काम्यपरक हरिवंश श्रवणविधान—

दशावृत्तीः शृणोत्येवं बीजसाफल्यमाप्नुयात्। दशावृत्तीरपुष्पार्थं मृतवत्सा तु सप्तवै॥ पञ्चावृत्तीः स्रवद्गर्भा काकवन्ध्या त्रयं तथा। कन्याप्रसूश्चैकावृत्तिं श्रुत्वा पुत्रमवाप्नुयात्॥ जीविताधिकं श्राव्यं सर्वदोषोपशान्तये। भविष्यं जन्म संप्राप्य न भवेत्तादृशी पुनः॥ उत्तमं सार्धपाठं च मध्यमं च निरर्थकम्। विनार्थं शुद्धपाठश्चेदुत्तमेन समं भवेत्॥ नवाहमुत्तमं प्रोक्तमेकविंशाहं मध्यमम्। निकृष्टमेकत्रिंशाहं सुखसाध्यं समाचरेत्। बहुभिर्दिवसै राजन् साध्यानां साधनां कलौ। तेन पारायणं साध्यं प्रोक्तं नारायणात्मना॥ एकत्रिंशाहिको यज्ञो वन्ध्यादोषविनाशनः। गोव्रतं तु स्त्रिया कार्यं पारणं पुरुषेण च

महाभारत विधान

अथातः संप्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते। वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजपर्वणि पर्वणि॥ स्वस्तिवाच्य द्विजानादौ ततः कार्ये प्रवर्तिते। समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या पूजयेद् द्विजान्॥ आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम्। विधिवद्भोजयेद्राजन्मधुपायसमुत्तमम्॥ ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा। आस्तिकं भोजयेद्राजन्दद्याच्चैव गुडोदनम्। अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम्। सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेत् द्विजान्॥ आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान्। अरणीपर्व चासाद्य जलकुम्भान्प्रदापयेत्॥ तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च। सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत्॥ विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च। उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम्॥ भोजनं भोजयेद्विप्रान्गन्धमाल्यैरलङ्कृता। भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्वा यानमनुत्तमम्। ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम्। द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम्॥ शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसि वरास्तथा। कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सर्वकामिकम्॥ विप्रेभ्यः संस्कृतां सम्यग्दद्यात्संयतमानसः। शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः॥ अपूपैस्तर्पणैश्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत्। गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत्॥ स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान्। घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत्पुनः॥ ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्सुसंस्कृतम्। शान्तिपर्वणि च तथा हविष्यं भोजयेत् द्विजान्॥ आश्विमेधिकमासाद्य भोजनं सर्वकामिकम्। तथाश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेत् द्विजान्॥ मौसले सार्वगुणितं गन्धमाल्यानुलेपनम्। महाप्रस्थानिके तद्वत्सर्वकामगुणान्वितम्॥ स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेत् द्विजान्। हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद् द्विजान्॥ गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत्। तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव॥ प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः। सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत्॥ हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत्। इत्यादि।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वाल्मीकिरामायणपारायणविधिः—

उद्योगं रामराज्यस्य भरतोद्योगमेव च। मारीचस्य वधं यावत्सुग्रीवपुरवेशनम् ॥ लक्ष्मणस्य ततो यावत् त्रिजटास्वप्नदर्शनम्। गवणस्य ततो यात्रा जयार्थं देवसद्मसु॥ समुद्रतरणं यावन्निकुम्भ-वधमेव च। ततः पूर्णकथां कुर्यान्नवमेऽहनि सर्वदा ॥

रामायणनवाहविधानम्—

माघकार्तिकवैशाखे चैत्रे वान्यतमेऽपि च। यथावकाशः श्रद्धा च तथैव शृणुयान्नरः ॥ पञ्चम्यां दिनमारभ्य रामायणकथामृतम्। नवाहश्रवणेनैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ 'अथ नवदिनपर्यन्तं कथाविश्रामस्थलकथानकम्। प्रथमे तु अयोध्यायाः षट्सर्गान्ते शुभा स्थितिः ॥ तस्यैवाऽशीतिसर्गान्ते द्वितीयदिवसे स्थितिः ॥ तथा विंशतिसर्गान्ते चारण्यस्य तृतीयके। दिने चतुर्थे षट्-चत्वारिंशत्सर्गे कथास्थितिः ॥ किष्किन्धाख्यस्य काण्डस्य पाठविद्भिरुदाहृता। सुसप्तचत्वारिंशत्के सर्गान्ते सुन्दरे स्थितिः ॥ पञ्चमे दिवसे कुर्यादथ षष्ठे तथोच्यते। युद्धकाण्डस्य पञ्चाश-त्सर्गान्ते विमला स्थितिः ॥ एकोनशतसंख्याके सर्गान्ते सप्तमे दिने। युद्धस्यैव तु काण्डस्य विश्रामः संप्रकीर्तितः ॥ तथा चोत्तरकाण्डस्य षट्त्रिंशत्सर्गपूरणे। अष्टमे दिवसे कृत्वा स्थितिश्च नवमे दिने ॥ शेषं समाप्य युद्धस्य चान्त्यं सर्गं पुनः पठेत्। रामराज्यकथा यस्मिन्सर्ववाञ्छितदायिनी ॥ एवं पाठक्रमः पूर्वैराचार्यैश्च विनिर्जितः। पुत्रकामो बालकाण्डं पठेत्, लक्ष्मीकामोऽयोध्याकाण्डम्, नष्टराज्यप्राप्तिकामः—किष्किन्धाकाण्डम्, सर्वकामः—सुन्दरकाण्डम्, शत्रुनाशकामः सर्वकामश्च लङ्काकाण्डं च पठेत्। ॐ आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसंपदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्—इति मन्त्रेण सम्पुटितरामायणपाठात्सकलकार्यसिद्धिः। पुत्रकामनया—ॐ रां रामाय नमः—इति मन्त्रेण सम्पुटितं बालकाण्डं पठेत्। ॐ सुप्रसन्नः शान्तमनाः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः। धर्मज्ञो नयसारज्ञः राजादाशरथिर्जयी—इति मन्त्रेण वा संपुटं दद्यात्। ॐ भरताय नमः। ॐ भरताय नमस्तस्मै सारज्ञाय महात्मने। तपसा याति शान्ताय शत्रुघ्नसहिताय च—इति मन्त्रेणसंपुटितमयोध्याकाण्डं लक्ष्मीकामनया पठेत्। ॐ सुग्रीवस्सूर्यतनयः सर्ववानरपुङ्गवः। बलवान्राघवसखा वशीरायं प्रयच्छतु—इति मन्त्रेण सम्पुटितं पठेत्। नष्टराज्यप्राप्तिः। ॐ सहस्रनयनं देवं सर्वदेव नमस्कृतम्। दिव्यवज्रधरं देवं महेन्द्रं च शचीपतिम्—इति मन्त्रेण संपुटितं पठेत्। सुन्दरकाण्डम्—ॐ श्रीसीतायै नमः—इति मन्त्रेण सम्पुटितं पठेत्। सर्वकार्यसिद्धिः। विधातारं महादेवं भक्तानामभयप्रदम्। सर्वदेवप्रीतिकरं भगवत्प्रियमीश्वरम्। इति संपुटितं पठेत् शत्रोः पराभवो विजयश्च। (१) पुनर्वसुनक्षत्रादारभ्य आर्द्रापर्यन्तं सप्तकाण्डपाठः-इत्येकः पक्षः (२) प्रतिपदमारभ्य नवरात्रं पठेत्—द्वितीयः। (३) चत्वारिंशद्दिनैः पाठः। यथा रुचि कार्यः। सुन्दरकाण्डे एकोत्तरवृत्त्या पाठः कर्तव्यः। यथा—१—एकः, २—द्वौ, ३—त्रय इति एकादशदिनपर्यन्तम्। द्वादशदिने अवशिष्टं सर्गद्वयं पठित्वा पुनः प्रथमसर्गः पठनीयः। एवं त्रिरावृत्त्या सकलकार्यसिद्धिः। श्रीहनुमत्प्रतिष्ठासमीपे सुन्दरकाण्डस्य पाठाच्छीघ्रकार्यसिद्धिः। पाठश्च तन्मनसैव कार्यः। अध्यात्मरामायणम्—संपुटीकरणमन्त्राः—ॐश्रीरामचन्द्राय स्वाहा। ॐ क्लीं श्रीरघुनाथाय नमः। ॐजय-जयरावणान्तकाय नमः। ॐ सीतापतये नमः ॐ लक्ष्मणाग्रजाय नमः। ॐ भरतशत्रुघ्नसेवितचरणाय नमः। ॐरां रामाय नमः। एषामन्यतमेन मन्त्रेण संपुटीकृत्य पाठं कुर्यात्सर्वकार्यसिद्धिः।

नोट—अनुष्ठानप्रकाश विधानमाला और कृत्यसारसमुच्चय इन मुद्रित निबन्धोंके अनुसार लिखा गया है। —दौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ॐ उन्मत्त यादवोंको पिण्डारकक्षेत्रमें ऋषियोंका भीषण शाप प्राप्त होना—यह वर्णन ॐ

श्रीशुकदेवजीने कहा—बलराम और यादवोंके साथ श्रीकृष्णने अनेक दैत्योंका संहार करके भीषण कलह उत्पन्न करते हुए भूमिका भार हलका किया* ॥ १ ॥ धार्तराष्ट्रोंने, कपटद्यूत, तिरस्कार और द्रौपदीके केशाकर्षणादि कार्योंसे जिन पाण्डवोंको चिढ़ाया था उनको निमित्त करके दोनों पक्षोंमें एकत्रित राजाओंका नाश किया और इस तरहसे भगवान्ने भूमिका भार दूर किया ॥२॥ पृथ्वीके भारभूत राजाओंकी सेनाका अपनी भुजाओंसे सुरक्षित यादवों द्वारा नाश करके अप्रमेय श्रीकृष्णने विचार किया कि भूमिका भार उतरनेपर

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ॥ भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥
ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ॥ कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥२॥
भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ॥ मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥३॥
नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ॥ अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि
धाम ॥४॥ एवं व्यवसितो राजन्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ॥ शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥५॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं

भी जबतक अजेय यादवकुल हैं तबतक वह भार न उतरनेके बराबर ही है ॥३॥ मेरे आश्रयके कारण वैभवसे उन्मत्त इन यादवोंका दूसरेसे पराजय नहीं हो सकता, इसलिए बाँसके वनमें अग्निके समान इनमें आपसमें कलह उत्पन्न करता हुआ मैं अपना अवतार समाप्त करके वैकुण्ठको चला जाऊँगा ॥४॥ हे राजन्, इस सत्य सङ्कल्प ईश्वरने इमतरह निश्चय करके ब्राह्मण शापको निमित्त बनाकर अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर लोकमें लावण्य बिखेरनेवाली अपनी मूर्तिसे लोगोंको, अपनी वाणियोंसे उन वाणियोंका ही स्मरण करनेवाले लोगोंके

---

* दृष्टान्त—श्री भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने स्वतः अपने यदुवंशका नाश क्यों किया। 'विषवृक्षोऽपि सम्वर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्' इस नियमसे भी अपने हाथसे लगाया हुआ विषवृक्ष भी नहीं काटा जाता। फिर त्रिलोकी के रक्षक भगवान् से यह कर्म क्यों होगया!

उत्तर—वे जानते थे कि यदि ये सब मेरे सामने ही मर जायँगे तो इन्हें वैकुण्ठ भेज दूँगा। बाद में तो ये सब मदिरापान में उन्मत्त हो घोर कलियुग में प्राणियोंको सतावेंगे। ऐसा मन में विचार कर अपना वंश आपस में लड़ाकर क्षय को प्राप्त करा दिया।

अर्थात्—हम लोग देख रहे हैं कि जिनकी अवस्था साठवर्ष की हो गई है उनके मरने पर उनको रोनेवाला और उनका श्राद्ध करने वाला भी कोई उनका और सपुत्र नहीं है पर विश्वनाथ आदि की शपथ द्वारा रुपयों से शूद्राक्षों में व्ययकर गुप्तरूप से जमीन बेचना. किराया हड़पना, अर्थात् सब नष्ट कर पुनः बड़ों की बनी बनाई इज्जत को खाक में मिलाना अपना कर्तव्य समझना। अतः भगवान् ने इन्हीं कारणों से अपने सामने ही अपनेवंश का नाश किया। यही तात्पर्य था। नहीं तो ऐसे २ दुष्टों से सब कुछ हो सकता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनको तथा अपने पदचिह्नोंसे उनको देखनेवालोंकी चेष्टाओंको अन्य ओरसे खींच करके भूमिपर कवियोंसे वर्णन की जानेवाली अपनी कीर्तिको प्रस्तुत करके इसीसे सहजमें ही लोग अन्धकारको पार कर जायँगे। ऐसा निश्चयकर भगवान् अपने धामको चले गए ॥ ६, ७ ॥ परीक्षित्ने प्रश्न किया—हे भगवन्, ब्राह्मणभक्त, दानी, गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले कृष्णपरायण यादवोंको ब्राह्मणोंका शाप कैसे हुआ ? ॥ ८ ॥ जिस कारणसे वह शाप हुआ और जैसा हुआ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, जिन यादवोंमें एकता थी उनमें कैसे कलह उत्पन्न हुआ वह सब कृपाकर कहिए ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—सभी सुन्दर वस्तुओंका जिसमें सन्निवेश है ऐसे शरीरको धारण करनेवाले, भूमिपर द्वारकाके भवनमें मङ्गलमय कर्म करते हुए रमण करनेवाले उदार कीर्ति नित्यतृप्त भगवानने कुछ भूभार हरणका कार्य बाकी रह गया जान करके अपने कुलका संहार करने की इच्छा की ॥ १० ॥ ऋषियोंको बुलाकर उनके द्वारा गायन करनेवाले जगत्

नृणाम् ॥ गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥६॥ आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ॥ तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥७॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ॥ विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥८॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ॥ कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं कर्माचरन्भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः ॥ आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥ कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ॥ कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिण्डारकं समगमन्मुनयो निसृष्टाः ॥ ११ ॥ विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ॥ कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥ क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ॥ उपसङ्गृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥ ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ॥ एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥ प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ॥ प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किंस्वित्सञ्जनयिष्यति ॥ १५ ॥ एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ॥ जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा तेऽतिसंत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ॥ साम्बस्य ददृशुस्तस्मिन्मुसलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥ किं कृतं मन्दभा-

का कलिकल्मष नाशकर, पुण्यमय मङ्गलकारक कर्म कराकर यदुकुलमें रहनेवाले उस कालरूपी भगवान्ने उनको पिण्डारक नामक क्षेत्रमें भेज दिया ॥ ११ ॥ उन ऋषियोंमें विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारदादि लोग थे ॥ १२ ॥ वहाँ यादवोंके कुमारोंने जाम्बवतीपुत्र साम्बको स्त्री वेष देकर मनमें छल रखकर क्रीडा करते हुए विनीत भावसे उन ऋषियोंके पास जाकर प्रश्न किया—हे यथार्थदर्शियो, यह चारुलोचना गर्भवती खुद पूछनेमें लजाती है। यह पूछना चाहती है कि—यह जल्दी ही प्रसूत होनेवाली है, इसको पुत्रकी इच्छा है। आप कृपया कहिए इसको क्या सन्तति होगी ॥ १३, १४ ॥ इस तरहसे वञ्चित मुनियोंने क्रुद्ध होकर कहा—मूर्खो, यह तुम्हारे कुलका नाश करनेवाली मूसलको जन्म देगी ॥ १६ ॥ यह सुनकर वे यादवकुमार खिन्न हुए, उन्होंने शाम्बके पेटका वस्त्र खोलकर देखा, तो उसमेंसे लोहेका मूसल गिरा ॥ १७ ॥ मन्दभाग्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हम लोगोंने यह क्या किया, हमें लोग क्या कहेंगे, ऐसा सोचकर अत्यन्त दुःखित होकर वे उस मूसलको लेकर घर गए ॥ १८ ॥ उसे लेकर म्लानमुख कुमारोंने सब यादवोंके सामने राजसभा में राजा उग्रसेनसे सब हाल कह सुनाया ॥१९॥ हे राजन्, उस प्रकार ब्राह्मणोंका अमोघ शाप सुनकर और उस मूसलको देखकर सब द्वारकावासी आश्चर्यचकित तथा भयभीत हुए ॥ २० ॥ यदुराज उग्रसेनने उसका चूर्ण कराकर वह चूर्ण और बचे हुए लोहेको भी समुद्रमें फेंकवा दिया ॥ २१ ॥ उस लोहेको एक मत्स्य निगल गया और सब चूर्ण लहरों से

॥ ४ ॥ ग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः ॥ इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ॥ राज्ञ आवेदयाञ्चक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप । विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥ तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ॥ समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ॥ उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥ २२ ॥ मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ॥ तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवान् ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ॥ कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥२४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

किनारे लगकर एरक नामक एक प्रकारके तृण बन गये ॥ २२॥ मछली पकड़नेवाले एक व्याधने अन्य मत्स्योंके साथ उसको जालमें पकड़ लिया । उसके पेटमेंके लोहेको बाणमें लगा लिया ॥ २३ ॥ सभी जाननेवाले कालरूपी ईश्वरने भी उस शापको मिथ्या नहीं करना चाहा, किन्तु उसका अनुमोदन ही किया ॥ २४ ॥

अध्यायसार—श्रीशुकदेवजी ने कहा—श्रीकृष्णने अनेक दैत्यों का संहारकर कौरव और पाण्डवोंके आपसके कलहको निमित्त बनाकर कुरुक्षेत्रमें सम्मिलित सब राजाओंका उनके सैन्यों के साथ नाश कराया। यों अपने अवतार कार्यको अनेक अङ्गोंमें पूर्ण समझते हुए भी भगवान् को अपना यह कार्य अपूर्ण सा मालूम हुआ। श्रीकृष्ण ने विचार किया कि मेरे द्वारा रक्षित होनेके कारण इन यादवोंको कोई पराजित नहीं कर सकता, अतः इन्हीमें आपस में कलह उत्पन्न करके इनका संहार करना चाहिए। इनका संहार करके मैं वैकुण्ठधामका चला जाऊँगा। हे राजन्, अपने संकल्पके अनुसार ब्राह्मण शापको निमित्त बनाकर भगवाने यादवों का संहार किया और खुद निजधामको चले गये। परीक्षित्ने पूछा—हे मुने, उदार, कृष्णभक्त, ब्राह्मणोंका सम्मान करने वाले यादवोंको ब्राह्मणोंका शाप कैसे हुआ ? यह मुझे बतलाइए। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उस कालरूपी भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें रहकर क्रीड़ा करते हुए भूभार हरणका बहुतसा कार्य सम्पन्न देखकर अपने कुलके नाशकी इच्छा की। उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको बुलाकर अनेक पुण्यमय कर्म कराये और उनको पिण्डारक नामके क्षेत्रमें भेज दिया। उनमें विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा इत्यादि अनेक महामुनि थे। क्रीड़ा करते हुए यादवोंके कुमार वहाँ पहुंचे। उन्हें महर्षियोंके भविष्यदार्शित्वकी परीक्षा करनेकी तथा उनके मजाक करनेकी सूझी। उन्होंने जाम्बवतीपुत्र साम्बको स्त्रीवेष देकर, विनीत भाव दिखाते हुए पूछा-हे महर्षियो, यह चारुनेत्रा गर्भवती है। इसकी यह जाननेकी इच्छा है कि थोड़े ही दिनोंमें जब यह प्रसूत होगी तब इसको क्या सन्तति होगी ? ऋषियोंने इस बातको दिव्यज्ञान द्वारा समझकर क्रुद्ध होकर शाप दे दिया 'मूर्खो, यह तुम्हारे कुलका नाश करने वाले मूसलको जन्म देगी'। इस शापको सुनते ही यादवकुमारोंको अपने कियेपर ॥ ४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पश्चात्ताप होने लगा। उन्होंने सोचा कि हम मूर्खों ने यह क्या किया ? लोग हमें क्या कहेंगे ? फिर उस मूसलको सब यादवों के सामने उन्होंने राजसभामें बैठे हुए राजा उग्रसेनको दिया और सब वृत्तान्त निवेदन किया। उस विचित्र मूसलको देखकर और सब वृत्तान्त सुनकर सब यादव अत्यन्त भयचकित हो गये आखिर राजा उग्रसेनने उस मूसलका चूर्ण कराकर वह चूर्ण और बचा हुआ लोहा भी समुद्र में फेंकवा दिया। वह टुकड़ा एक मछली निगल गई। एक व्याधने उसको अपने जालमें पकड़ा और काटने पर उसके अन्दर के लोहे के टुकड़ेको अपने बाण के फल में लगा लिया समुद्रकी लहरोंसे वह चूर्ण किनारेमें लगा और वहाँपर तीक्ष्णधार ऐरक नामक एक तरहका घास उत्पन्न हुआ। सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णने उस शापको उलट देने की इच्छा न की, प्रत्युत उसका अनुमोदन ही किया। प्रथम अध्याय समाप्त ❊

❀ अथ द्वितीयोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ।। गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ।। अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ।।१।। को नु राजन्निन्द्रिय-
वान्मुकुन्दचरणाम्बुजम् । न भजेत्सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ।। २ ।। तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ।। अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्य-
दमब्रवीत् ।। ३ ।। वसुदेव उवाच ।। भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ।। कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ।। ४ ।।
भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ।। सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ।।५।। भजन्ति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ।।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ।।६।। ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ।। यान् श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वतोभयात् ।।७।।

❀ वसुदेवका प्रश्न और उत्तरमें नारदका निमि आर्षेय संवाद कथन ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे कुरुराज, कृष्णके बाहुदण्डोंसे सुरक्षित उस द्वारकानगरीमें श्रीकृष्णकी उपासनाकी लालचसे नारदऋषि बार-बार आकर ठहरते थे ।। १ ।। कौन ऐसा इन्द्रियवान्, सर्वत्र मृत्युभयसे युक्त प्राणी है कि जो अमरोत्तमोंसे भी उपासना किए जानेवाले भगवान्‌के चरणकमलोंका भजन न करेगा ।। २ ।। एकबार वसुदेवके घर जानेपर उस देवकी वसुदेवने अर्घ्य पाद्यादि द्वारा पूजन करके उन्हें आसन दिया और सुखसे बैठे हुए उनसे पूछा—।। ३ ।। वसुदेवने कहा—हे भगवन्, आपकी यात्रा सभी लोगोंके कल्याणके लिए होती है। जिस तरह माता-पिताका आगमन अपत्योंको कल्याणकारी होता है उसी तरह उत्तमश्लोक भगवान्‌के मार्गदर्शक महात्माओंका आगमन दीनोंके कल्याणके लिए ही होता है ।। ४ ।। प्राणियोंके लिए देवताओंका चरित्र कभी दुःखका और कभी सुखका कारण होता है, किन्तु आपके-जैसे भगवच्चरित साधुओंका तो सुखके लिए ही होता है ।। ५ ।। कर्म के सहायक होकर छायाके समान देवलोग जो जैसा धर्म करते हैं उनको वैसाही सुखात्मक या दुःखात्मक फल देते हैं, किन्तु साधुलोग दीनवत्सल हुआ करते हैं ।। ६ ।। हे ब्रह्मन्, तथापि मैं भागवतधर्म आपसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूछता हूँ जिन्हें श्रद्धासे सुनकर प्राणी सब तरहके भयसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ७ ॥ पूर्वकालमें मैंने मुक्ति देनेवाले अन्तरहित भगवान्‌की देवमायासे मोहित होकर प्रजा होनेके लिए पूजा की थी न कि मोक्षके लिए ॥ ८ ॥ अनेक कारणोंसे सब तरफसे भययुक्त इस संसारसे सुगमतासे जिस प्रकारसे हम निश्चयसे मुक्त होंगे हे सुव्रत, हमें वह उपदेश दीजिए ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेव जीने कहा—हे राजन्, बुद्धिमान् वसुदेवके इसतरह पूछनेपर भगवान् नारदने आनन्दित होकर कहा—'हरिके गुणोंका आपने मुझे स्मरण दिलाया' ॥१०॥ नारदने कहा—हे सात्वतश्रेष्ठ, आपने यह बहुत अच्छा किया कि विश्वको पवित्र करनेवाले भागवतधर्मके विषयमें मुझसे पूछा ॥११॥ इस सद्धर्मका श्रवण करनेसे, पठन करनेसे, ध्यान करनेसे, आदर करनेसे, या

अहं किल पुराऽनन्तं प्रजार्थो भुवि मुक्तिदम् ॥ अपूजयं न मोक्षाय मोहिता देवमायया ॥८॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतोभयात् ॥ मुच्ये-
मह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥९॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ॥ प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥१०॥
नारद उवाच ॥ सम्यगेतद् व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ ॥ यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥११॥ श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो
वाऽनुमोदितः ॥ सद्यः पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपि हि ॥१२॥ *त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्मारितो भगवानद्य देवो नारा-
यणो मम ॥१३॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥१४॥ प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः
स्वायम्भुवस्य यः ॥ तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिरृषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥१५॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ॥ अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद् ब्र-
ह्मपारगम् ॥१६॥ तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ॥ विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥१७॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निग-

अनुमोदन करनेसे वह तुरन्त देव या विश्वके भी द्रोहीको पुनीत करता है* ॥१२॥ तुमने आज परम कल्याणकारी जिसका कीर्तन या श्रवण भी दुष्प्राप्य है ऐसे भगवान् नारायणको मुझको स्मरण दिलाया ॥ १३ ॥ इस विषयमें ही महात्मा जनक और ऋषभ पुत्रोंके संवादरूप यह पुरातन इतिहास कहा जाता है ॥ १४ ॥ स्वायंभू मनुको जो प्रियव्रत नामका पुत्र था, उसको अग्नीध्र नामका, अग्नीध्रको नाभी नामका और उसको ऋषभ नामका पुत्र हुआ ॥१५॥ उसको मोक्षधर्म कहनेके लिए अवतीर्ण हुए वासुदेवका अंश कहते हैं उसको ब्रह्मज्ञानी

---

*संसार में देखा गया है कि प्राणी मात्र की मति नष्ट हो जाती है—यहाँ तक कि असत्य बोलना, दूसरों से कहना कि मेरा कोई दोष नहीं, पितामहहूँ—यह मैं जानता ही नहीं कि परस्त्री सुख क्या है यदि कोई कहे या न कहे मैं विश्वनाथजी, शालिग्राम या गंगाजी की कसम खाकर कहता हूँ और साथ में रोना अर्थात् आँख में जल ले आकर कहना ये सब लाञ्छन मेरे पर ये लगाते हैं इनके पिता भी लगाते २ मर गए पर मेरा एक बाल भी टेढ़ा न कर सके। और रुपया पैसा हजम कर जाना गहनें शूद्राओं के बनवाना, मकान बनवाना, उनकी शिकायतों पर दूसरों से फटकार लगवाना उसमें भी निष्पाप बनना ऐसे प्राणियोंको पवित्र कोई नहीं कर सकता अर्थात् वे चाण्डाल से भी पतित बने रहते हैं इनसे देवता भी घृणा करते हैं। मनुष्यों को तो कहना ही क्या है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सौ पुत्र हुए ॥१६॥ उनमें नारायण परायण भरत ज्येष्ठ था, जिसके नामसे यह भारतवर्ष विख्यात हुआ ॥१७॥ उसने इस पृथ्वीका भोग करनेके बाद उसको छोड़ दिया और तपसे भगवान्‌की उपासना की तदनन्तर तीन जन्मोंमें वैकुण्ठ चला गया ॥१८॥ उनमेंसे नव लड़के इस भारतवर्षके बाहर चारों ओर नव द्वीपोंके अधिपति हुए। एकासी लड़के कर्म मार्ग प्रवर्तक ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ नव परमार्थके जानकार मुनि हुए। आत्मविद्याके अभ्यासमें वे कृतपरिश्रम और निष्णात थे तथा दिगम्बर रहते थे ॥ २० ॥ कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस, करभाजन ये उनके नाम थे ॥२१॥ वे स्थूल और सूक्ष्म विश्वको परमात्माका रूप तथा आत्मासे अभिन्न समझते थे और भूमिपर विचरते थे॥२२॥ उनकी इच्छानुसार अव्याहत गति थी। वे देव, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा नागोंके लोकोंमें मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गायोंके घरोंमें स्वच्छन्द, यथेच्छ,

तस्तपसा हरिम् ॥ उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः॥१८॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्यसमन्ततः॥ कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ॥ श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥२०॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ॥ आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥२१॥ त एते भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो व्यचरन्महीम् ॥२२॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ॥ मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥२३॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ॥ वितायमानमृषिभिरजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृपः ॥ यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ॥ प्रीतः सम्पूजयाञ्चक्रे आसनस्थान्यथार्हतः ॥ २६ ॥ तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ॥ पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥ विदेह उवाच ॥ मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ॥ विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥२८॥ दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः । तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ।२९। अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ॥ संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥३०॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ॥

संचार करते थे ॥ २३ ॥ वे एक वार दैवयोगसे भारतवर्षमें चलनेवाले ऋषियोंसे अनुष्ठित निमिके सत्रमें उपस्थित हुए ॥ २४ ॥ उन सूर्यके समान तेजस्वी महाभागवद्भक्तोंको देखकर यजमान, अग्नि, ब्राह्मण सभी खड़े हो गए ॥ २५ ॥ विदेह राजाने उनको नारायण निरत जानकर आसनपर बैठा करके प्रीतिसे यथायोग्य उनकी पूजा की ॥ २६ ॥ अपने देह कान्तिके कारण चमकनेवाले ब्रह्मपुत्र समान उनसे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर हृदयसे नम्र होकर प्रश्न किया ॥ २७ ॥ विदेहने कहा—मैं आप लोगोंको मधुदैत्य संहारक विष्णुके दूत समझता हूँ। क्योंकि विष्णुदूत लोगोंको पवित्र करनेके लिए संचार किया करते हैं ॥ २८ ॥ क्षणभंगुर ऐसा यह मनुष्य देह ही दुर्लभ है, फिर उसमें विष्णुके प्रिय भक्तोंका दर्शन तो मैं अत्यन्त ही दुर्लभ समझता हूँ ॥ २९ ॥ इसलिए मैं आपको आत्यन्तिक कल्याणका प्रश्न करता हूँ। हे निष्पापो, इस संसारमें क्षणार्ध भी सत्सङ्ग मिलना एक निधि है ॥ ३० ॥ यदि हम श्रवण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करने योग्य हैं तो उन भागवत धर्मोंको सुनाइए, जिन धर्मोंसे भक्तोंको भगवान् अपनेको अर्पित कर देते हैं ॥ ३१ ॥ नारदने कहा—हे वसुदेवजी, इसतरह निमिके पूछनेपर वे श्रेष्ठतम महात्मालोग राजाका प्रत्यभिनन्दन करके परम प्रीतिसे युक्त होकर सदस्य और ऋत्विजोंके साथ राजाको सुनाने लगे ॥ ३२ ॥ कविने कहा—हे राजन्, इस संसारमें भगवान्के चरणसरोज की उपासना ही सब भयोंको दूर करनेवाली है, क्योंकि देह आदिमें आत्मबुद्धिके कारण ही लोगोंके भीति रहती है और भगवान्की उपासनासे उस बुद्धिके निवृत हो जानेके कारण भीति भी आमूल नष्ट हो जाती है ॥ ३३ ॥ भगवान्ने साधारण जनोंके लिए भगवत्प्राप्तिके जो सुन्दर उपाय स्वयं बतला रहे हैं, वे ही भागवतधर्म हैं, ऐसा समझो ॥ ३४ ॥ इनका आश्रयण करनेसे मनुष्य कभी भी प्रमाद नहीं कर सकता है। इसमें आँखें मूँदकर दौड़ने पर भी ठोकर खानेका या गिरनेका डर नहीं है ॥ ३५ ॥ भागवतसे जो जो कर्म शरीरसे, वाणीसे इन्द्रियों

यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥३१। नारद उवाच ॥ एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ॥ प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥ कविरुवाच ॥ मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ॥ उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥ ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ॥ अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान् ॥ ३४ ॥ यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात् ॥ करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥ तन्मायाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥३७॥ अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ॥ तत्कर्म सङ्कल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥३८॥ शृण्वन्सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ॥ गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥ ३९ ॥ एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ॥ हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥४०॥

से, धनसे, बुद्धिसे, या अहङ्कारसे करता हैं वह उसका स्वाभाविक, लौकिक कर्म ही क्यों न हो, फिर भी उसका उत्तम पुरुष नारायणको समर्पण करना चाहिए ॥ ३६ ॥ भगवान् से जो विमुख रहता है उसको भगवान्की मायाके कारण भगवान्के स्वरूपका अज्ञान (अस्फूर्ति) उसके कारण देहात्मभ्रम, और उससे भय उत्पन्न होता है। इसलिए मार्गदर्शकगुरुको ही ईश्वर और प्रेमतम समझकर समझदार पुरुषको अनन्य भक्तिसे भगवानका भजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ अनन्य भक्तिके लिए सभी कार्योंके सङ्कल्प और विकल्प करनेवाले मनको सभी तरफसे रोंककर स्थिर करना चाहिए, कारण कि मनही से मायाके कारण इस द्वैतात्मक प्रपञ्चका मनुष्यको भान होता है ॥ ३८ ॥ भागवत पुरुषको चक्रपाणि भगवान्के लोकमें जो मङ्गलकर जन्म और कर्म है तथा दर्शक जो गीत या नाम हैं (यशोदानन्दन, इत्यादि) उसका गान करते हुए निस्संकोच होकर तथा निस्पृह बनकर विचरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ ऐसा भजन ही जिसका व्रत है ऐसा भक्त अपने प्रिय भगवान्के नाम कीर्तनसे उनमें अधिकाधिक अनुरक्त होकर द्रुतचित्त हो जाता है वह लोकविलक्षण रीतिसे हँसता है, कभी रोता है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कभी गाता है तो कभी उन्मत्तके समान नृत्य करता है ॥४०॥ ऐसा तन्मय भक्त आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी, नक्षत्र, प्राणी, दिशा, वृक्षादिक, नदी, समुद्र इत्यादि कोई भी भूत हो उसको भगवान् का शरीर समझकर प्रणाम करेगा। उसके मनमें दूसरे पदार्थकी स्फूर्ति ही नहीं होगी ॥४१॥ भोजन करनेवालेको प्रत्येक कौर खाने पर जैसा सन्तोष, पुष्टि, तथा भूखकी निवृत्तिका अनुभव होता है वैसा भगवान्का भजन करनेवाले एकही समयमें भगवान्में भक्ति, उसके रूपकी स्फूर्ति और अन्य विषयोंमें विरक्ति होती है ॥ ४२ ॥ इसतरह भगवान्का बार-बार भजन करने वालेकी भक्ति, विरक्ति और परमात्मारूप स्फूर्ति होती है तथा उससे परम शान्ति मिलती है ॥ ४३ ॥ राजा निमिने प्रश्न किया—हे महर्षियो, आपलोगोंके द्वारा बताए गये भागवतधर्मका आचरण करनेवालेकी क्या पहचान हैं ? वह भगवान्का प्रिय कैसा होता है। उसका स्वभाव, उसका आचरण, उसका बोलना सब किस तरहका होता है ? हरिने कहा—जो सभी पदार्थोंमें ब्रह्मरूपसे अपना समन्वय देखता है तथा ब्रह्माभिन्न अपनेमें सभी भूतोंको देखता है वह श्रेष्ठ भागवत है ॥४४॥ जो भगवान्, उसके आधीन भक्त, अज्ञानी-

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषी सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ॥ सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ । भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ॥ प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ॥ भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ॥ यथा चरति यद् ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥ हरिरुवाच ॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ॥ प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ॥ न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥४७॥ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥४८॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥४९॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥५०॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ॥ सज्जतेऽस्मिन्न-

साधारणजन तथा शत्रुओंमें अनुक्रमसे प्रेम, मैत्री, कृपा और उपेक्षाका भाव रखता है वह मध्यम भागवत है ।.४५॥ जो सिर्फ भगवत्प्रतिमामें ही श्रद्धासे भगवान्की पूजा करता है न कि भगवद्भक्तोंमें या अन्योंमें प्राथमिक भक्त है ॥४६॥ इन्द्रियोंसे सुख-दुःखदायक शीतोष्णादि विषयोंका ग्रहण करने पर भी जो न तो उसने द्वेष करता है और न आनन्दित होता है, किन्तु यह सब विष्णुकी माया है, ऐसा समझता है वह उत्तम भागवत है ॥ ४७, ४८ ॥ जो देहके जन्म और मृत्यु, प्राणके भूख तथा प्यास, मनके भय, बुद्धिकी तृष्णा एवं इन्द्रियोंके श्रम इन सांसारिक धर्मों से भगवत्स्मृतिमें लीन होनेके कारण मोह नहीं पाता वह भागवत श्रेष्ठ है । ४९॥ काम, कर्म तथा वासना जिसमें उत्पन्न ही नहीं होती, भगवान् ही जिसका एकमात्र आश्रय है वह परम भागवत है ॥५०॥ जिसके मनमें जन्म, कम, वर्ण, आश्रम, जाति आदिके कारण इस देहमें अहंभाव नहीं उत्पन्न होता वह भागवत भगवान्को अतिप्रिय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ ५१ ॥ धन-सम्पत्ति या देहमें जिसका आत्मीय-परकीय भाव नहीं है सभी भूतोंमें समदृष्टि और शान्त जो है वह भागवतोत्तम है ॥ ५२ ॥ तीनों लोकके वैभवके लोभसे जिसकी हरि स्मृति बन्द नहीं होती और केवल भगवान्में ही जिसकी आत्मा लगी हुई रहती है ऐसे देवादिकोंके लिए भी दुर्लभ भगवत्पदारविन्दसे जो एक निमि भी विचलित नहीं होता वह वैष्णव श्रेष्ठ है ॥ ५३ ॥ भगवान्के प्रबलपराक्रमी चरणोंकी शाखारूप अंगुलियोंके नखरूपी मणियोंकी चाँदनीसे जिसके हृदयका सांसारिक ताप नष्ट हो चुका है उसको फिरसे दुःख नहीं हो

हंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥५१॥ न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ॥ सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ॥ हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥५४॥ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ॥ प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते म० पु० एकादशस्कन्धे नारदवसुदेवसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सकता रातमें चन्द्रोदय होनेपर क्या किसीको सूर्यका ताप सता सकता है ॥ ५४ ॥ प्रणयरूपी रस्सीसे पैरके बँधे रहनेके कारण सहज रीतिसे जिसका नाम लिये जानेपर समस्त पापोंका नाश हो जाता है ऐसे हरि भी जिसके हृदयको नहीं छोड़ते वह भागवत श्रेष्ठ कहा जाता है ॥ ५५ ॥

दूसरे अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, नारद ऋषि भगवान्के दर्शन और उपासनाकी लालचसे बारबार द्वारकापुरीमें आकर रहते थे। एक बार इसी तरह वे वसुदेवके घर गये। वसुदेवने उनको आसन देकर उनकी योग्य पूजा की और सुखपूर्वक बैठे हुए उनसे कहा—भगवन्, आप जैसे सज्जनोंके आनेसे दीनोंका कल्याण तथा बहुत बड़ा आनन्द होता है। देवतासे तो भागवतधर्मके विषयमें मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, कृपाकर मुझसे कहिये। नारदजीने कहा—हे वसुदेवजी, जिस भगवान्का कीर्तन, श्रवण, मनन आदि सभी पुण्यदायक हैं आज आपने उसका स्मरण दिलाया, अतः आपने मेरा बड़ा ही उपकार किया। इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, सुनिये—एक बार विदेहराज निमि यज्ञ कर रहे थे। ऋषभदेवके सौ पुत्रोंमें ब्रह्मविद्यामें निष्णात नव लड़के अकस्मात् वहाँपर आ धमके। ब्राह्मणोंके साथ-साथ राजाने उनका स्वागत किया और पूजा करनेके बाद आसनपर सुखपूर्वक बैठे हुए उनसे पूछा—महानुभावो, सज्जनोंका समागम इस क्षणिक संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है, इसलिये जिन धर्मोंका आचरण करनेसे भगवान् शीघ्र भक्तके आधीन हो जाते हैं ऐसे धर्मोंको कहिए। सर्वप्रथम कविने कहा—महाराज, इस संसार में जन्ममरणसे छुटकारा पानेके लिये भगवान् के चरणारविन्दकी उपासना ही एकमात्र साधन है। प्रत्येक समझदार व्यक्तिको चाहिए कि वह अनन्य भक्तिसे उस परमात्माका भजन करे। भगवान्का भजन करनेवालेको भक्ति और विरक्ति एक साथ पैदा होती है और वह भक्त पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होताहै। हरिने कहा सभी भूतोंमें आत्माभिन्न परमात्माको और अपनेमें सब भूतों तथा परमात्माको जो देखता है वह भागवतश्रेष्ठ है। जो ईश्वरमें प्रेम उनके भक्तोंमें मैत्री भक्तोंमें कृपा और शत्रुओंमें उपेक्षाभाव रखता है वह मध्यम है। केवल प्रतिमामें ही जो श्रद्धासे भगवान्का पूजन करता हैं वह प्रारम्भिक भक्त है। शीतोष्णादि द्वन्द्वोंमें इन्द्रियसम्बन्ध होनेपर भी जो न उनसे आनन्दित होता है और न दुःखित होता है वह भागवतोत्तम है। देह, प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियोंके जन्म-मरण, क्षुत्-पिपासा, भय, तृष्णा और श्रमरूपी संसारधर्मोंसे मुग्ध न होकर भगवत्स्मृतिमें तल्लीन रहता है वह श्रेष्ठ भागवत है। जो अपना और पराया भेद नहीं रखता सर्वत्र समबुद्धि होता है वह वैष्णव श्रेष्ठ है। हे राजन्, जो भगवान्के चरणारविन्दसे क्षणार्ध भी विचलित नहीं होता वह भागवतोत्तम है। दूसरा अध्याय समाप्त ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निमिने प्रश्न किया—सभी लोगोंको मोहमें डालनेवाली परमपुरुष भगवान्‌की मायाको हम जानना चाहते हैं, कृपया आप बताए ॥ १ ॥ इस संसारतापमें तप्त होकर उस तापका औषधरूप ऐसी हरिकथामृतरूपी आपके वचनका कितना भी पान करनेपर भी मुझे तृप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ अन्तरिक्षने कहा—हे महाबाहो, उस आदि पुरुषने अपनी उपासना करनेवाले जीवको सिद्धिके लिये इन पञ्चमहाभूतोंसे सृष्टिभूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे उसने प्रवेश किया और वह मन तथा दशेन्द्रियोंमें अपनेको विभक्त करके गुणोंका भोग करता है ॥ ४ ॥ वह जीव अन्तर्यामी आत्मासे प्रकाशित इन्द्रियोंसे विषयोंका भोग करता हुआ इस उत्पन्न किये हुए शरीरको ही आत्मा समझकर उसमें आसक्त होता है ॥ ५ ॥ इस तरह यह देहधारी कर्मेन्द्रियोंसे

❀ अथ तृतीयोध्यायः ❀

राजोवाच ॥ परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ॥ मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥ नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ॥ संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष उवाच ॥ एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ॥ ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः ॥ एकधा दशधात्मानं विभजन् जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान्स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ॥ मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ॥ तत्तत्कर्मफलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥ धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ॥ अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥८॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ॥ तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥९॥ पातालतलमारभ्य सङ्कर्षणमुखानलः ॥ दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग् वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ॥ धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः

वासनात्मक कर्म करता हुआ और उसके दुःखरूपी फलको भोगता हुआ संसारमें भ्रमण किया करता है ॥६॥ इस तरह दुःखदायी अनेक कर्मगतियोंको प्राप्त होता हुआ भूतोंके प्रलयतक जन्म-मृत्यु पाता रहता है ॥७॥ जब महाभूतोंके प्रलयका समय आता है तब अनाद्यनन्त कालरूपी परमात्मा द्रव्यगुणात्मक व्यक्त कार्यको अव्यक्तमें लीनकर लेनेके लिये आकृष्ट करता है ॥ ८ ॥ सौ वर्षतक भूमिपर भयङ्कर अनावृष्टि होती है। जिसका तेज बढ़ा रहता है ऐसा सूर्य उसको तपाता है ॥ ९ ॥ संकर्षणके मुखसे निकली हुई अग्नि पातालसे लेकर वायुके कारण बढ़ती हुई ऊपरकी ओर जलती हुई जाती है ॥ १० ॥ उस समय संवर्तक नामके मेघ अपनी हाथीके सूँड़-जैसी धाराओंसे सौ वर्ष वृष्टि करते हैं और ब्रह्माण्ड जलमें लीन हो जाता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है ॥ ११ ॥ तब विराट (ब्रह्माण्ड) को छोड़ तदन्तर्यामी वैराज पुरुष इन्धन विहीन अग्नि के समान सूक्ष्ममें प्रवेश करता है ॥ १२ ॥ तदनन्तर वायुके कारण पृथ्वी निर्गन्ध होकर जल बन जाती है । जल नीरस होकर तेज रूप धारण करता है ॥ १३ ॥ अन्धकारके कारण रूपरहित होकर तेज वायु बन जाता है । आकाशके द्वारा वायुके गुण स्पर्शका नाश होने पर वह वायु आकाशमें लीन हो जाता है । कालरूपी परमात्मा उसका शब्दगुण नष्टकर देता है तदनन्तर वह तामसाहंकारमें लीन हो जाता है ॥ १४ ॥ इन्द्रिय और बुद्धि राजसाहकारमें, मनके साथ देवया सात्विक अहंकार में प्रवेश करते हैं । अहंकार महत्वमें तथा वह प्रकृतिमें लीन हो जाता है ॥ १५ ॥ यह हमने सृष्टि, स्थिति और लयकारिणी त्रिगुणात्मिका मायाका स्वरूप बताया । अब और क्या सुनना चाहते हैं ॥ १६ ॥ राजाने प्रश्न किया—जिनका चित्त वशमें नहीं रहता ऐसे लोगोंके लिये दुस्तर ईश्वरी मायाको स्थूलबुद्धि मनुष्य भी अनायाससे पार कर सकें ऐसा उपाय बताइये ॥ १७ ॥ प्रबुद्धने कहा—पति-पत्नीरूपसे रहकर दुःख नाश और सुखप्राप्तिके लिये आरम्भ किये जानेवाले कर्मोंका उलटा परिणाम देखना चाहिये ॥१८॥

पुरुषो नृप ॥ अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥ १२ ॥ वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ॥ सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ॥ हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥ १४ ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ॥ प्रविशन्ति ह्यहङ्कारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी ॥ त्रिवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१६॥ राजोवाच ॥ यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥१७॥ प्रबुद्ध उवाच ॥ कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ॥ पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ॥ गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१९॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ॥ सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥ शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥२१॥ तत्र भागवतान्धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ॥ अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः ॥ २२ ॥ सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु ॥

हे राजन्, आत्माका अधःपतन कराकर नित्य दुःख देनेवाले दुर्लभ धनके या घर, सन्तान, आप्त पशु आदि अनित्य पदार्थोंके सम्पादनसे क्या फायदा ? इससे क्या सन्तोष हो सकता है ॥१९॥ इसी तरह कर्मसे प्राप्त स्वर्गादिलोक भी मण्डलाधिपतियोंके समान अधिक और स्वांससे युक्त होनेके कारण स्पर्धा, असूया तथा भयसे रहित नहीं है ॥ २० ॥ इसलिए उत्तम कल्याण जाननेकी जिसकी इच्छा है उसको शाब्दब्रह्म वेद जाननेवाले और परब्रह्मके अपरोक्ष ज्ञानी शमादि साधन-सम्पत्तियुक्त गुरुका आश्रयण करना चाहिए ॥२१॥ उस गुरुको आत्मा और देवतास्वरूप समझकर अकपटभावसे उसकी सेवा करते हुए उनसे उन भागवतधर्मोंकी शिक्षा लेनी चाहिए, जिससे परमात्मा हरि तुष्ट होकर अपने को साधकको समर्पित करते हैं ॥ २२ ॥ सभी पदार्थोंसे मनकी आसक्ति हटाकर केवल साधुओंमें सङ्ग रखते हुए सभी प्राणियोंमें यथोचित दया, मैत्री तथा आदर रखना चाहिए ॥ २३ ॥ अन्तर्बाह्य शौच, स्वधर्मा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चरण, क्षमा, मौन, वेदाध्ययन, स्वच्छता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुख-दुःखादिरूप शीतोष्णाद्वंद्वमें समत्व ॥२४॥ सभी जगह आत्माभिन्न ईश्वरको देखना, एकान्त सेवन करना, गृहादिमें अभिमान छोड़ना, निर्जनप्रदेशमें पतित वस्त्रोंका परिधान, जो भी कुछ मिला उसीसे सन्तोष करना ॥ २५ ॥ भगवान्‌में श्रद्धा रखना, शास्त्रोंकी या अन्य विषयोंकी निन्दा न करना, प्राणायाम मौन और अनिच्छासे मन, वाणी तथा कर्मको शिक्षित करना, सत्यभाषण करना, अन्तःकरण एवं बाह्येन्द्रियोंका निग्रह करना ॥ २६ ॥ आश्चर्यकर जिसका चरित्र है ऐसे भगवान्‌के जन्म, कर्म तथा गुणोंका श्रवण और कीर्तन करना, उसीके उद्देगसे सब कर्म करना ॥ २७ ॥ होम किया हुआ, दान किया हुआ, तप, जप, सदाचार अपनेको प्रिय गन्ध पुष्पादि पदार्थ किं बहुना स्त्री, अपत्य, घर, अपने प्राणको भी परमात्मामें निवेदन करना ॥ २८ ॥ कृष्ण ही जिनके आत्मा और नाथ हैं ऐसे मनुष्योंमें सुहृद्भाव रखना, स्थावर तथा

दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥२३॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥२४॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ॥ विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येनकेनचित् ॥ २५ ॥ श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ॥ मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ॥ जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥२७॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ॥ दारान्सुतान् गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ॥ परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥२९॥ परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ॥ मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥३०॥ स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ॥ भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ॥ नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ॥ नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥३४॥ पिप्पलायन उवाच ॥ स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ॥ देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन सञ्जीवितानि तदवेहि परं

जंगमोंकी परिचर्या करना, उसमें विशेषतया मनुष्यकी उसमें भी सज्जनोंकी, उनमें भी महाभागवतोंकी परिचर्या करना । २९ ॥ भागवतोंसे मिलकर पवित्र भगवान्‌के यशको परस्पर कहना, परस्पर प्रेम रखना, खुद सन्तोष, सुख और अनासक्ति रखना ये सब गुरूसे सीखना चाहिए ॥ ३० ॥ ऐसे भागवत जब मिलते हैं तब सर्वपापनाशक हरिका स्मरण करते हुए और परस्पर स्मरण कराते हुए भक्त्युद्रेकके कारण रोमाञ्चित शरीर धारण करते हैं ॥३१॥ ये कभी रोते हैं, कभी भगवान् की चिन्तासे हँसते हैं कभी आनन्दित होते हैं तो कभी बोलते हैं ये विचित्र लोग कभी नाचते हैं तो कभी गाते हैं और कभी भगवान्‌का अभिनय करते हैं। परमात्माको पाकर ये लोग समाधानयुक्त तथा शान्त हो जाते हैं। ३२ ॥ इस तरह भागवत धर्मकी शिक्षा लेकर उससे उत्पन्न भक्तिसे नारायण परायण होकर दुस्तर मायाको मनुष्य सहजहीमें पारकर लेता है ॥ ३३ ॥ राजाने पूछा—हे महर्षियो, आप ब्रह्मवेत्ता हैं नारायण नामका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो परब्रह्म परमात्मा है उनका स्वरूप आप कृपया कहिये ॥ ३४ ॥ पिप्पलायनने कहा—हे राजन्, जो सृष्टि, स्थिति और प्रलय करता है, जिसका कोई कारण नहीं है, जो निद्रा, जागृति तथा स्वप्न एवं समाध्यादि बाह्य अवस्थाओंमें सद्रूपेण आवृत्त होता हैं, जिसके कारण चेतना पाकर देह, इन्द्रिय, प्राण, हृदय अपना काम करते हैं वह श्रेष्ठ नारायण है, ऐसा समझिये ॥ ३५ ॥ मन, वाणी, आँखें, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय ये सब वहाँ नहीं पहुँच सकते, क्योंकि ये उसीसे उत्पन्न होनेके कारण उसीके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं, जैसे अग्निसे उत्पन्न स्फुलिङ्ग अग्निको अभिव्यक्त नहीं कर सकते। अलौकिक शब्द वेद बोधकका निषेध १ ही करनेके कारण अपने मूलभूत ब्रह्मको नहीं बोधन कर सकते, किन्तु निषेधके२ अवधिरूपसे ही उसकी सिद्धि होती है ॥ ३६ ॥ ऐसा होते हुए भी प्रपञ्चमें अनेक रूपेण भासमान होनेवाला ब्रह्म ही है। अपनी महती मायाके कारण ब्रह्म ही स्थूल कार्य और सूक्ष्मकारण है, क्योंकि कार्य तथा कारण एकही होता है। जो एकही ब्रह्म है उसीको सत्व, रज, तम ऐसा कहते हैं। त्रिवृन्द प्रधान भी उसीको कहते हैं। क्रियाशक्तिके कारण सूत्र और ज्ञानशक्तिके कारण महान् भी उसीको कहते हैं। अहङ्कारकी प्रतीतिसे जीव तथा उसके उपाधि अहङ्कार भी उसीको कहते हैं। ज्ञान (देवता) क्रिया, (इन्द्रिय) विषय, सुखादि फल इन सब रूपोंसे ब्रह्म ही भासमान होता

नरेन्द्र ॥३५॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ॥ शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयात्ममूलमर्थोक्तमाह यद्दते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ॥ ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥ नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ॥ सवत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥ अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र ॥ सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते यदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥ यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि ॥ तस्मिन्विशुद्ध उप-

है ॥ ३७ ॥ यह ब्रह्म न उत्पन्न होता है न मरता है। यह न बढ़ता है न घटता है। यह घटने बढ़नेवाले, उत्पन्न और नष्ट होनेवाले बाल युवादि देहोंका कालद्रष्टा है। यह सभी जगह अविकाररूपसे रहनेवाला है। ज्ञानही इसका स्वरूप है। जिस तरहसे प्राण एक होनेपर आश्रम भूतेन्द्रियवश भिन्नरूपसे व्यवहृत होता है उसी तरह उस सत् अविकारी परब्रह्मका उपाधिवद्ज्ञान नानारूपसे भान होता है ॥ ३८ ॥ अण्डोंमें, पेशियोंमें, वृक्षोंमें प्राण जीवका अनुसरण करता है। जाग्रदवस्थामें जब इन्द्रियगण रहता है, स्वप्नमें जब उसका संस्कार अहङ्कार रहता है तब आत्मा सविकार-सा ज्ञात होता है, किन्तु सुषुप्तिमें जब ये लीन हो जाते हैं तब शुद्ध आत्मा रह जाता है, जिसकी स्मृति (इतने सुखसे सोए, ऐसी) हमको रह जाती है ॥ ३९ ॥ जब पद्मनाथ भगवान्के चरणकमलोंमें मात्र आसक्ति रखते हुए प्रखर भक्तिसे चित्तके गुणकर्मजन्य मलको फूँककर साफकर दिया जाता है तब उस शुद्ध चित्तमें आत्मतत्त्व

१ 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' यन्मनो न मनुते। २ 'अर्थात् आदेशो नेति नेति' 'अस्थूलमन' 'यतो वाचो .....' इत्यादि निषेध दूसरे जगह चरितार्थ नहीं होते। इनके चरितार्थ होनेका स्थान वही ब्रह्म है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकाशित हो जाता है, जैसा कि आँखोंके स्वच्छ होनेपर सूर्यप्रकाश भाता है ॥ ४० ॥ राजाने प्रश्न किया—मुझे कृपा करके उस कर्मयोगका निरूपण कीजिये, जिससे कि संस्कृत हो मनुष्य कर्मबन्धनसे विमुक्त होकर नैष्कर्म लाभकर सकता है ॥ ४१ ॥ यह प्रश्न मैंने पहले पिताके सामने ब्रह्मपुत्र सनकादिसे किया था, उन्होंने मुझे उत्तर नहीं दिया, इसका कारण भी बतलाइये ॥ ४२ ॥ आविर्होत्रने कहा—हे राजन्, कर्म (विहित) अकर्म (निपिद्ध) निकर्म (विहिताकरण) ये तीनों वेदसे जाने जा सकते हैं, लौकिक उपायोंसे नहीं। वेदके भी अपौरुषेय होनेके कारण उसके अर्थके बारेमें बड़े पण्डितोंको भी संशय उत्पन्न होता है ॥ ४३ ॥ प्रछन्नरूपसे वेदमें रहस्य बताये गये हैं। अज्ञ लोगोंकी रुचि उत्पन्न हो, ऐसा उसका तरीका है। उसमें कर्मसे मुक्त होनेके लिये ही कर्म कहे गये हैं, जो कि ऊपरसे स्वर्गादिफलार्थक मालूम होते हैं जैसे कि दवा खिलानेके लिये बालकको मिठाईका लोभ दिखाया जाता है ॥ ४४ ॥ जो मूर्ख बिना इन्द्रियोंकी जय किये ही वेदोक्त कर्मोंको छोड़ देता है अधर्मके कारण वह बारबार मृत्यु पाता रहता है ॥ ४५ ॥ फलोंकी इच्छा न करता हुआ जो ईश्वरार्पण

लभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥४०॥ राजोवाच ॥ कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः॥ विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥ एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ॥ नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र उवाच ॥ कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ॥ वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ॥ कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ॥ विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥४५॥ वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ॥ नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥ य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीषुः परात्मनः ॥ विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥४७॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन सन्दर्शितागमः ॥ महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥४८॥ शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ॥ पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥४९॥ अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ॥ द्रव्यक्षित्यात्मलिङ्गानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ॥ हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥५१॥ साङ्गोपाङ्गां

करके वेदोक्तकर्म करता है उसको नैष्कर्म सिद्धि मिलती है। कर्मोंकी फल श्रुति अज्ञोंको उसमें रुचि उत्पन्न करनेके लिये है ॥ ४६ ॥ जो हृदयका अहंकार वध जल्दी तोड़ना चाहता है उसको तन्त्रोक्त विधिसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए ॥ ४७ ॥ आचार्यका अनुग्रह प्राप्त करके उसके बताये हुए प्रकारसे अपनी अभीष्ट मूर्तिमें भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए ॥ ४८ ॥ पवित्र होकर प्रतिमाके सम्मुख बैठकर प्राणायामादिसे देह शुद्ध करके न्यासादिसे रक्षा करके भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए ॥ ४९ ॥ पूजाके पहले पूजाके द्रव्य पुष्पादिको, भूमिको, प्रतिमाको, स्वच्छकर आसनका प्रोक्षण करके पाद्यादिको तयारकर पासमें रखकर योग्य उपचारोंसे जिसकी हृदयमें पूजाकी उसीका मूर्तिमें ध्यानकर स्थिर चित्त हो करके हृदादि मन्त्रोंसे तथा मूलमन्त्रसे न्यास पूजा करे ॥ ५०, ५१ ॥ हृदयाद्यङ्ग और सुदर्शनाद्युपाङ्गोंसे युक्त पार्षदोंसे समन्वित उस मूर्तिकी पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजा करनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करनी चाहिए ॥ ५२ ॥ गन्ध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्य, इन उपचारोंसे साङ्ग भगवान्की यथाविधि पूजाकर स्तोत्रोंसे स्तवनकर नमस्कार करना चाहिए ॥ ५३ ॥ भगवान्का मूर्तिमें ध्यान करना चाहिए । अन्तमें निर्माल्य सिरपर धारण करके फिर अपनी जगहपर मूर्ति रखकर पूजा समाप्त करनी चाहिए ॥ ५४ ॥ इसीतरहसे अग्नि सूर्य, जल, अतिथि, तथा हृदयमें जो भगवान् की पूजा करता है वह जल्दी ही मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥

सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ॥ साङ्गं संपूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥ आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ॥ शेषामाधाय शिरसा स्वधाम्न्युद्वास्यसत्कृतम् ॥ ५४ ॥ एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ॥ यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अध्यायसार—राजाने प्रश्न किया—हे महर्षियो, सभी को मोहमें डालनेवाली भगवान् की मायाक संबन्धमें बताइए । हरिकथामृतरूपी आपका वचन सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती । अन्तरिक्ष मुनिने कहा—हे राजन्, भगवान्ने उपासना करके मुक्त होनेवाले जीवके लिए पञ्चमहाभूत और उनसे छोटे-मोटे भूतोंकी सृष्टिकी तथा मन और इन्द्रियोंकी सृष्टि की एवं उनमें प्रवेश किया । इस तरहसे निर्माण किए हुए शरीरमें रहनेवाला आत्मा उस शरीरको ही आत्मा समझकर उसमें आसक्त होता है तथा कर्मेन्द्रियों से वासनात्मक कर्म करता हुआ उसके फलका भोग करता हुआ संसारमें भ्रमण करता है । बस यही माया का स्वरूप है । राजाने प्रश्न किया—हे महर्षियो, जिनका चित्त वश में नहीं है ऐसे साधारण लोग इस मायाको अनायास न पार करें । ऐसा उपाय बताइए । प्रबुद्धने कहा—मनुष्य दुःखनाश और सुख मिलने के लिए सब कर्म करता है लेकिन ज्यादातर परिणाम उलटा ही होता है इसको गौरसे देखना चाहिए । भागवत जब परस्पर मिलते हैं तब भक्त्युद्रेकसे इनके शरीर रोमाञ्चित होते हैं ये लोग कभी गाते हैं कभी हसते हैं कभी रोते हैं कभी नाचते हैं । परमात्माको पाकर ये शान्त हो जाते हैं, ऐसे भागवत धर्मकी शिक्षा लेकर मायाको पार करना चाहिए । राजाने—पूछा हे महर्षियो, नारायण नामके परब्रह्मका स्वरूप कहिये । पिप्पलायनने कहा—जो सृष्टि, स्थिति प्रलय करता है जिसका कोई कारण नहीं जो जाग्रत् सुषुप्त्यादि अवस्थाओंमें सद्रूपसे रहता है, जिसकी चेतना पाकर मन, बुद्धि, प्राण इन्द्रिय सभी अपना काम करते हैं वह नारायण हैं । ज्ञान, क्रिया, सुख, दुःख सभीमें ब्रह्मही भासमान होता है । यह न मरता है न उत्पन्न होता है यह न घटता है न बढ़ता है । सब जगह रह कर भी अविकोरी है । ज्ञान ही उसका स्वरूप है । जाग्रत और स्वप्नावस्थामें इन्द्रिय और अहङ्कार रहनेसे यह सविकारसा लगता है, लेकिन सुषुप्तिमें शुद्ध रहता है । जब भगवान्की प्रखर भक्तिसे चित्तमें लग्नगुण-कर्म जन्य मल साफ हो जाता है तब उसमें आत्मतत्व प्रकाशित होता है । राजाने पूछा—मुझे कर्म योग कहिये, जिससे कर्म बन्धनसे छूटकर नैष्कर्म्य लाभ कर सकूं । आविर्होत्रने कहा—हे राजन्, कर्म (विहित) अकर्म (विहिताकरण) ये वेदके नियम हैं । वेद अपौरुषेय होनेके कारण पण्डितोंको उसका अर्थ नहीं समझता । उसमें कर्मसे मुक्त होनेके लिये ही कर्म कहे गये हैं । ऊपर से अज्ञ लोगोंको उसमें रुचि होनेके लिये स्वर्गादि फल बताये हैं । फलों की इच्छा न रखते हुए ईश्वरार्पण बुद्धिसे कर्म करनसे ही नैष्कर्म्य सिद्धि होती है तीसरा अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ॥ चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच ॥ यो वा

❀ भगवान्के नानाविध अवतारोंका विशिष्टतम वर्णन ❀

राजाने पूछा—अपनी इच्छाके अनुसार जन्म लेकर श्रीहरिने जो जो अद्भुत कर्म किए अभी कर रहे हैं या करनेवाले हैं वे सब आप मुझे बताइए ॥ १ ॥ द्रुमिलने कहा—जो अन्तरहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान्‌के गुण गिननेका प्रयत्न करता वह है मन्दमति है क्योंकि कदाचित् भूमिके कण गिने जा सकते हैं, किन्तु सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके गुण नहीं गिने जा सकते ॥ २ ॥ जब पञ्चमहाभूतोंकी सृष्टि करके उनसे ब्रह्माण्डरूपीपुर निर्माण करके उसमें प्रवेश किया तब आदिदेव नारायणको पुरुष नाम मिला ॥ ३ ॥ यह भुवनत्रयकी रचना जिसका शरीर है, जिसके इन्द्रियों से शरीरधारियोंके ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय बने हुए हैं, जिसके स्वतः सिद्ध सत्वके कारण सबका ज्ञान तैयार हुआ है, श्वाँससे नल, इन्द्रियशक्ति और क्रिया उत्पन्न है, जो सत्वादिगुणोंसे सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाला है यह आदिकर्ता पुरुष है ॥ ४ ॥ जो पहले रजोगुणसे सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा, सत्वगुणसे स्थितिके लिए फलदाता यज्ञपति द्विज और उनके धर्मोंका पालनकर्ता विष्णु, तमोगुणसे प्रलय करनेके लिए रुद्र होता है वह आद्य पुरुष है। इन्हीं रूपोंसे प्रजाओंमें सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होते हैं ॥ ५ ॥ धर्मको दक्षप्रजापतिकी कन्या मूर्तिमें नारायण और प्रशान्त ऋषि श्रेष्ठ नर, इन दो रूपोंसे भगवान् प्रकट हुए उन्होंने आत्मस्वरूपके ज्ञापक कर्मका उपदेश किया और खुद आचरण किया। जो अभी भी ऋषियोंसे चरणसेवा

अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ॥ रजांसि भूमेर्गणयेत्कथञ्चित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥ भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ॥ स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥३॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि॥ ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भवआदिकर्ता॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ॥ रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सतत प्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशान्तः॥ नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ॥ गत्वाऽप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥ विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतिविस्मय एजमानान् ॥ मा भैर्विभो मदनमारुत देववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः॥नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥९॥ त्वां सेवतां

लेते हुए विद्यमान हैं ॥ ६ ॥ इन्द्रने 'यह मेरा धाम लेना चाहता है' ऐसा समझकर दलबल सहित कामको बदरीमें भेजा, जहाँ नर-नारायण तप कर रहे थे। उसने अप्सरा, वसन्त, मन्द-मारुत इनके साथ जाकर उनकी महिमा न जानकर स्त्री कटाक्षरूपी बाणोंसे नर-नारायणोंको प्रहार किया ॥ ७ ॥ उस आदिदेवने यह इन्द्रकृत अपराध है ऐसा समझकर बिल्कुल आश्चर्य न करते हुए भयसे काँपते हुए उन लोगोंसे हँसकर कहा—हे समर्थमदन, मरुत अप्सराओं मत डरो, यह हमारा आतिथ्य ग्रहण करो, इस आश्रमको सुशोभित करो ॥ ८ ॥ हे राजन्, अभय देनेवाले नारायणके ऐसा कहनेपर लज्जासे जिनके मस्तक झुके हुए थे ऐसे देवलोग कृपाभाव दर्शाते हुए बोले—हे प्रभो, तुम्हारे लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, तुम मायाके परे और अविकारी हो। आत्मतृप्त तथा धीर लोग तुम्हारे पादपद्ममें मस्तक झुकाते हैं तब तुममें शोभादि कैसे हो सकता है ॥ ९ ॥ तुम्हारी सेवा करके अपने स्थान स्वर्गा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिकों उल्लंघन करके तुम्हारे स्थानको जानेवालेकेलिए देवता लोग बहुत विघ्न उपस्थित करते हैं। दूसरे जो यज्ञमें देवताओंके भाग उनको देते हैं उन्हें विघ्न नहीं करते, किन्तु यदि तुम रक्षक उपस्थित रहते हो, तो वे तुम्हारे सेवक सभी विघ्नोंके सरपर पैर रखा हैं ॥ १० ॥ कुछ लोग क्षुधा, तृष्णा,-शीत, उष्णा,वर्षा, हवा, जिह्वाके और गुह्येन्द्रियों के उपभोग तथा अपार समुद्र के समान हम लोगोंको भी पारकर आखिर क्रोधके वशीभूत होते हैं वे लोग सचमुच गोखुरभर पानीमें डूबोते हैं और व्यर्थ ही अपने तप के भारको छोड़ देते हैं ॥ ११ ॥ इस तरह वे लोग स्तुति कर रहे थे उतनेमें उन्हें प्रभुने अत्यन्त रूपवती अलंकृत शुश्रूषा करनेवाली स्त्रियोंको दिखाया ॥ १२ ॥ देवताओंके उन अनुचरोंने लक्ष्मीके समान रूपवती स्त्रियोंको जब देखा तब इनके रूप और उनकी कान्ती फीकी पड़ गयी और उन स्त्रियोंके सुगन्धसे ही मुग्ध हो गए ॥ १३ ॥ नमस्कार करनेवाले उन भगवानने हँसते हुए कहा—इनमेंसे एक अपने

सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ॥ नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ।
क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ॥ क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोमज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति
॥ ११ ॥ इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः । दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव
रूपिणी ॥ गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ॥ आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम्
॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरबन्दिनः ॥ उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौक-
साम् ॥ ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥ हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः ॥ विष्णुः शिवाय
जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥ गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम् ॥
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतितान् श्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रवि-
ष्टम् ॥ देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥ देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वाऽन्तरेषु भुवनान्यद-

समान वर्णवालीको स्वर्गकी शोभाके लिए ले जाओ ॥ १४ ॥ भगवान् का आदेश मानकर देवताओंके भृत्य नमस्कारकर उर्वशीको साथ लेकर अपने स्थान को चले गए ॥ १५ ॥ देवताओं की सभामें इन्द्रको नमस्कारकर उन्होंने नारायणकी सामर्थ्यको देवताओंको जब सुनाया तब इन्द्र आश्चर्य चकित हो गए ॥ १६ ॥ हंसस्वरूपी भगवान्ने ही दत्त, सनत्कुमार, हमारे पिता ऋषभदेवका अवतार ग्रहणकर आत्मयोगका उपदेश किया। विष्णुने अंशसे ग्रीवका अवतार लेकर हयग्रीव दैत्यको मारकर पातालसे श्रुतियां लाई ॥ १७ ॥ मत्स्यावतारमें प्रलयके समय मनु, पृथ्वी और औषधिका रक्षण किया। वराहावतारमें हिरण्याक्ष दैत्यको मारकर पानीसे पृथ्वीका उद्धार किया। कूर्मावतारमें अमृत मन्थनके समय मन्द्राचलको पीठपर धारण किया। ग्राहके द्वारा पकड़े गये गजराजको मुक्त किया ॥ १८ ॥ कश्यप ऋषिके लिए समिधा लाते समय गोष्पदमें डूबे हुए और इन्द्रसे उपहास किए जानेवाले बालखिल्योंका उसने उद्धार किया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वृत्रवधके कारण ब्रह्महत्यामें डूबे इन्द्रको बचाया। कई बार सुरस्त्रियोंको असुरोंसे छुड़ाया। सज्जनोंको अभय देनेके लिए नरसिंह बनकर हिरण्यकशिपु दैत्यको मारा ॥ १६ ॥ देवासुरोंके संग्राममें देवोंके लिए अनेक दैत्योंका संहार किया। सभी मन्वन्तरोंमें अपनी मूर्तियोंसे भुवनोंको धारण किया। वामन बनकर बलिसे दान मांगनेके बहाने पृथ्वी लेकर देवताओंको दी ॥ २० ॥ हैहयकुलके नाशकारी परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रियत्व बनाया। जिसने समुद्रपर सेतु बाँधकर लङ्काके साथ रावणका नाश किया, जिसकी कीर्ति सब पापोंकी नाशक है ऐसे सीतापति रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २१ ॥ भूमिका भार हरण करनेके लिए वह परमात्मा जन्मरहित यादवोंमें अवतार लेकर देवताओंसे भी न होनेवाले कार्योंको श्रीकृष्णावतारमें करेंगे। बुद्धावतारमें यज्ञके लिए अयोग्य शूद्रोंको अपने मतसे मोह उत्पन्न करेंगे। अन्तमें कलियुगके दुष्ट शूद्र राजाओंका नाश करेंगे ॥ २२ ॥ हे राजन्, इस रीतिसे जगत्पति भगवान्के बहुयशोपयुक्त जन्म और कर्मोंका वर्णन किया गया है ॥ २३ ॥

धात्कलाभिः ॥ भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याञ्चाछलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु
हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः ॥ सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलङ्कं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥२१॥ भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः
करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ॥ वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥ एवं विधानि कर्माणि जन्मानि
च जगत्पतेः ॥ भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

चौथे अध्यायका सार—राजाने पूछा—अपनी इच्छाके अनुसार श्रीहरिने जो अवतार लिये और जो अद्भुतकर्म किये तथा आदमी जो कर्म कर रहा है या आगे करेंगे वह मुझे बतलाइये। द्रुमिलने कहा—हे राजन्, परमात्माके गुण अनन्त हैं। परमात्माके गुणोंको गिनना असंभव है। तथापि कुछ कर्म मैं बतलाता हूँ। यह सत्यादि गुणोंसे सृष्टि और संहार करता है। यह रजोगुणसे सृष्टि के लिए ब्रह्मा सत्यगुणसे स्थितिके लिए पालनकर्ता विष्णु और तमोगुणमें संहारकरने वाला रुद्र होता है। कर्मको दक्षकी कन्या मूर्तिमें नर-नारायण रूपसे अवतीर्ण हुआ। इसने आत्मस्वरूप ज्ञान करा देनेवाले कर्मका उपदेश कर खुद आचरण किया। ऋषियोंसे सेवित होकर अभी भी वह रूप है। एक समयकी बात है कि नर-नारायण रूपसे तप कर रहे परमात्माको एक महान् तपस्वी समझ कर अपना पद छीन जानेके भयसे इन्द्रने काम और अप्सराओंको दलबल सहित भेजा। उस आदिदेवने इन्द्रका कर्तव्य जानकर हँसते हुए कामादिसे कहा—हे काम, हे अप्सराओ, उसे तुम लोग मत, हमारा आतिथ्य ग्रहण करो, आओ नारायणके कहनेपर लज्जासे उनका मुख नीचा हो गया वे स्तुति करते हुए बोले—हे प्रभो, तुम अविकारी हो, तुम्हारे लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सभी आत्मतृप्त अरि लोग तुम्हारे सामने नतमस्तक होते हैं, फिर तुम्हें क्षोभ कैसा है। वे लोग यां स्तुति कर रहे थे कि इतनेमें अत्यन्त रूपवती, अलंकृत अनेक शुश्रूषा करने वाली स्त्रियां वहां दिखाई देने लगीं। उनके रूपके सामने अप्सराओं की करनी फीकी पड़ गई। भगवान्ने कहा—यदि चाहते हो तो इनमेंसे एकको स्वर्ग की शोभा के लिए ले जाओ। भगवान् का आदेश मानकर नमस्कार कर उर्वशी को लेकर सब लोग चले गए। देवसभामें देवताओंके सामने इन्द्रको सभी वृतान्त उन्होंने सुनाया, तब इन्द्र चकित हो गए, भगवान्ने हंस आदिका रस लेकर आध्यात्मका उपदेश किया।
५ यों समय समयपर मत्स्यादि अनेक अवतार धारणकर भगवान्ने अनेक अद्भुतकर्म किए हैं। हे राजन्, आजकल परमात्मा सीतापति रामचन्द्रके नामसे अयोध्यामें विराजते हैं। हे राजन्, आगे चलकर बुद्धावतारमें अयोग्य शूद्रोंको अपने वादसे भगवान् मोहित करेंगे तथा कलियुगसे कल्कि अवतार लेकर दुष्ट शूद्र राजाओंका नाश करेंगे। चौथा अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाने प्रश्न किया—हे आत्मतत्वज्ञ ऋषियो, जो लोग भगवान्‌की प्रायः सेवा नहीं करते जिनका मन स्वाधीन नहीं है जिनकी वासनाएँ अभी तृप्त नहीं हुई ऐसे लोगोंकी क्या गति है ॥ १ ॥ चमसने उत्तर दिया—भगवान्‌के मुख-बाहु ऊरू-पादसे सत्वादिगुणयुक्त क्रमशः ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य शूद्र वर्ण तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रम उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ इनमेंसे जो अपनेको उत्पन्न करनेवाले जन्म रहित ईश्वरका भजन नहीं करते और उसकी अवज्ञा करते हैं वे स्थानसे भ्रष्ट होकर अधःपतित होते हैं ॥ ३ ॥ जो इस तरहसे हरिकथासे और अच्युत कीर्तनसे दूर रहते हैं ऐसे लोगोंके ऊपर तथा स्त्री शूद्रोंके ऊपर आप जैसे लोगोको दया करनी चाहिए ॥ ४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य भगवान्‌के चरणोंके भजनका उत्तम अधिकार होनेके कारण उसके पास रहते हुए भी वेदके अर्थवादोंसे मोहित होकर फलमें आसक्त होते हैं ॥ ५ ॥ कर्मको रहस्य न जानकर भी जाननेवालेको न पूछकर स्तब्ध रहनेवाले मूर्ख होते हुए अपने

❀ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❀

राजोवाच ॥ भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ॥ तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥१॥ चमस उवाच ॥ मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ॥ चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥२॥ य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ॥ न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ ३ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥ विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् ॥ श्रौतेन जन्मनाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥ कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः ॥ वदन्ति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः ॥ दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥ वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यपरेषु चाशिषः ॥ यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ॥ जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥ सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा

को पण्डित समझनेवाले मधुर फलबोधक अर्थवादों से मुग्ध होकर 'इसतरह स्वर्ग जायेंगे' वहाँ ऐसा अप्सराओं के साथ विहार करेंगे' ऐसा कहते हैं ॥ ६ ॥ रजोगुणके कारण अभिचारादि घोर सङ्कल्पवाले कामी साँपके-जैसा जिनका क्रोध होता है ऐसे दांभिक मानी पापी लोग भगवान्‌के प्रिय लोगोंको हँसते हैं ॥ ७ ॥ मैथुन सुख ही जिसका उद्देश्य है ऐसे गृहस्थाश्रममें रहकर सिर्फ स्त्रियोंकी उपासना करते हैं जो यज्ञ करते हैं उसमे न ठीक अन्नदान करते न दक्षिणा देते हैं, यज्ञका रहस्य न जानकर केवल पेटके लिए पशुको मारते हैं ॥ ८ ॥ ये लोग अपनी सम्पत्ति, कुल, विद्या त्याग, रूप, बल, कर्म इनसे विस्मित होकर मूढ़बुद्धि दुष्ट, ईश्वरके साथ-साथ उनके प्रिय सज्जनोंकी भी निन्दा करते हैं ॥ ९ ॥ ये मूर्ख सभी प्राणियोंमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहकर भी आकाशके समान अविकारी अविनाशी वेदमें वर्णित ईश्वरका माहात्म्य न सुनकर केवल अपने मनोरथोंकी बातें किया करते हैं ॥ १० ॥ लोकमें स्त्री समागम तथा मांस और मद्यका सेवन स्वाभाविक ही है, प्रवृत्त करनेके लिये वेदकी क्या आवश्यकता है? वेद तो केवल विवाह, यज्ञ तथा सुराग्रहमें इसका नियमन करते हैं, इन्हें छोड़ना सर्वथा इष्ट है ॥ ११ ॥ वास्तविक धन उस धर्मके लिये है जिससे अपरोक्षज्ञान सहित दृढ़ परोक्षज्ञान होता है तथा अनन्तर शान्ति प्राप्त होती है, किन्तु उस धनका उपयोग मनुष्य घरमें करता है और इस शरीरकी प्रबल मृत्यु को नहीं देखता ॥ १२ ॥ वे लोग इस शुद्ध धर्मको नहीं जानते कि सुराका केवल अवघ्राण एवं पशुका स्पर्श मात्र विहित हैं, न कि हिंसा, तथा स्त्री-सङ्ग प्रजाके लिये है आनन्दके लिये नहीं ॥ १३ ॥ जो यह रहस्य न जानकर दूसरेसे भी न पूछकर स्तब्ध रहकर अपनेको पण्डित समझते हुए पशु को मारते हैं उन्हें मरनेके बाद वे पशु

खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ॥ वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ॥ १० ॥ लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ॥ व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति ॥ गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥ यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ॥ एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥ ये त्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः ॥ पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्या खादन्ति ते च तान् ॥ १४ ॥ द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ॥ मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ॥ त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥ एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ सीदन्त्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ हित्वाऽत्यायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ॥ तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो नृभिः ॥ नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ॥ नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥ कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ॥ कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बि-

खाते हैं ॥ १४ ॥ जो दूसरे शरीरमें रहनेवाले अपने ही आत्मा ईश्वरका द्वेष करते हैं और केवल पुत्र कलत्रके साथ नश्वर इस देहमें स्नेह करते हैं वे निश्चित पतित होते हैं ॥ १५ ॥ जो निरे मूर्ख भी नहीं हैं लेकिन तत्व भी नहीं जानते ऐसे त्रिवर्ग परायण लोग भी शान्ति न पाकर गिरते हैं और अपना नाश करते हैं ॥ १६ ॥ ये आत्मघाती अज्ञानमें रहकर भी अपनेको ज्ञानी समझनेवाले अकृतार्थ होकर कालके द्वारा नष्ट मनोरथ होकर दुःखित होते हैं ॥ १७ ॥ ये भगवान्से विमुख लोग अति परिश्रमसे सम्पादित घर, धन, अपत्य, स्त्रियाँ आदि सबको छोड़कर न चाहनेपर भी अन्धतम नरकमें गिरते हैं ॥ १८ ॥ राजाने प्रश्न किया—महात्माओ, किस कालमें किस वर्णके किस नामके किस विधिसे भगवान्की लोग पूजा करते थे, यह कृपया कहिये ॥ १९ ॥ करभाजनने कहा— कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन युगोंमें लोग भिन्न वर्ग नाम तथा आकारवाले भिन्न भिन्न विधिसे सेवा करते हैं ॥ २० ॥ कृतयुगमें शुभ्रवर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चतुर्भुज, जटा वल्कलधारी कृष्णाजिन, यज्ञोपवीत, अक्षमाला और दण्ड-कमण्डलु धारण करनेवाले भगवान्की पूजा करते थे ॥ २१ ॥ उस समय मनुष्य शान्त निर्वैरी सुहृदभाव रखनेवाले, समदृष्टि, शम-दमसे युक्त होकर ध्यानसे भगवान्की उपासना किया करते थे ॥ २२ ॥ हंस, सुवर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, मनु, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त, परमात्मा ये नाम लिये जाते थे ॥ २३ ॥ त्रेतामें रक्तवर्ण, चतुर्भुज, तीन मेखलावाले, वेदरूपी, स्रुक्स्रुवादि धारण करनेवाले सर्वदेवमय प्रकाशमान् हरिको धर्मिष्ठ ब्रह्मवादी लोग वेदोक्तकर्मों से भजते हैं ॥ २४-२५ ॥ उस समय भगवान्को विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त और उरुगाय इन नामोंसे पुकारा जाता है ॥२६॥ द्वापरयुगमे भगवान् श्यामवर्ण,पीतवस्त्र पहने हुए चक्र-शंखादि आयुध लिये हुए श्रीवत्सादि चिह्नोंसे युक्त होते हैं ॥ २७ ॥ उस समय जिज्ञासु लोग उस राजा चिह्नयुक्त भगवान्की वेद और तन्त्रोंसे पूजा करते हैं ॥ २८ ॥

अक्षदण्डकमण्डलू ॥ २१ ॥ मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः ॥ यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥ हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः ॥ ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ॥ हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ॥ यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्म दनः ॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ॥ वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥२६॥ द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निज ुधः ॥ श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥२७॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ॥ यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥२८॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥ नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ॥ नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ॥ यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ॥ भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥

हे वासुदेव, तुम्हें नमस्कार है । संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध नामक भगवान्को हमारा नमस्कार है ॥ २९ ॥ महात्मा, पुरुष, ऋषि, विश्वेश्वर, सर्वभूतनिवासी, विश्वरूपी नारायणको हमारा नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन्, इस रीतिसे द्वापरमें जगदीश्वरकी स्तुति की जाती है । अनेक तन्त्रविधानोंसे कलिमें भी जैसी उपासना की जाती है वह सुनो ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्ण कान्तिसे उज्ज्वल हृदयाद्यंग श्रीवत्साद्युपांग, सुदर्शनाद्यस्त्र तथा सुनन्दादि पार्षदोंके साथ बुद्धिमान् लोग कीर्तनप्राय पूजाओंसे भगवान्की उपासना करते हैं ॥ ३२ ॥ हे प्रणाम करनेवाले लोगोंका पालन करनेवाले भगवन् महापुरुष, तिरस्कारोंको दूरकरनेवाले, इच्छितफल देनेवाले, गङ्गादितीर्थोंका आश्रम स्थान होनेके कारण पवित्र, शिव और ब्रह्मदेवसे स्तुति, शरण जाने योग्य सेवकके दुःख नाशक, संसारसागरमें नावके समान, ध्यान योग्य, आपके चरणसरोजको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥ देवादि जिसकी ईर्ष्या करते थे ऐसे राज्यको छोड़कर पिताकी आज्ञासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आप अरण्यमें गये और प्रिया सीताकी इच्छा करनेके कारण मायामृगके पीछे दौड़े । हे महापुरुष, उस दौड़नेवाले आपके चरणपंकजको मैं प्रणाम करता हूँ, कलियुगमें ऐसी स्तुति की
जाती है ॥ ३४ ॥ इस तरह सत्युगमें रहनेवाले लोग युगके अनुसार कल्याण भाजन हरिकी उपासना करते हैं ॥ ३५ ॥ गुण जाननेवाले गुणग्राही लोग कलिकी ही सम्भावना करते
हैं, जिसमें केवल कीर्तनसे ही स्वार्थ प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस संसारमें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके लिये इससे बढ़कर कोई लाभ नहीं, जिससे अज्ञान नष्ट होकर परम शान्ति मिलती है
। ३७ ॥ कृतादि युगों में भी लोग कलियुगमें जन्म लेना चाहते हैं क्यों कि प्रायः नारायणभक्त कलियुगमें जन्म लेते हैं ॥ ३८ ॥ विशेषतः जिसमें ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी तथा
महापुण्या कावेरी और प्रतीचीनदी है उस द्राविड़देशमें जो लोग इन नदियों का जल पीते हैं वे निर्मल चित्तवाले होकर भगवान्‌के परमभक्त होते हैं ॥ ३९ ॥ जो तर्कको छोड़कर

मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ॥ मनुजैरिज्यते राजन् श्रेय-
सामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥ कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ नह्यतः परमो
लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ॥ यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥ कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति संभवम् ॥ कलौ खलु
भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी
च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥ देवर्षिभूताप्त-
नृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मान्भागवतानित्थं श्रुत्वाथ
मिथिलेश्वरः ॥ जायन्तेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप
परमाङ्गतिम् ॥ ४४ ॥ त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवतान् श्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसङ्गो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु

सब तरहसे शरण्य भगवान्‌की शरणमें चला जाता है । हे राजन्, वह देव, ऋषि, भूत, आप्त, मनुष्य, पितर इनका दास या ऋणी नहीं रहता ॥ ४१ ॥ जो सब कुछ छोड़कर भगवान्‌के
चरणकमलका भजन करता है श्रीहरि परमेश्वर उस अपने प्रियभक्तके हृदयमें बैठकर उसके विहिताकरणका पाप दूर करते हैं ॥ ४२ ॥ नारदने कहा—हे वसुदेवजी, इस तरहसे मिथिलाधीश
निमिने भागवतधर्म सुनकर परमप्रीत होकर अपने उपाध्यायके साथ उन जयन्तिपुत्र मुनियोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ अनन्तर सभी लोगोंके देखतेही देखते वे सिद्ध अन्तर्हित हो गये ।
राजाने उन धर्मोंका अनुष्ठान करके परमगति पायी ॥ ४४ ॥ आप भी सुने हुए इन धर्मोंका श्रद्धासे निस्संग होकर अनुष्ठान करोगे तो परमपद पाओगे ॥ ४५ ॥ हे वसुदेवजी, चूंकि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् ईश्वर हरि आपके पुत्र हो गये हैं, इसलिये आप दम्पतीके सहित यहाँ दुनियाभरमें व्याप्त हो गये हैं ॥ ४६ ॥ कृष्णमें पुत्र स्नेह करनेके कारण दर्शन, आलिंगन, बोलना, सोना, खाना, बैठाना इत्यादिसे आप लोगों की आत्मा पवित्र हो गई है ॥ ४७ ॥ वैरके कारण भी ध्यान करनेपर बोलना चालना, देखना इत्यादिमें जिनकी बुद्धि तदाकार हो गयी थी ऐसे शिशुपाल, पौण्ड्र, शाल्य आदिने शयन आसन आदिपर परमात्माका ध्यान करनेके कारण सारूप्यमुक्ति पाई। फिर जो उसमें अनुरक्त हैं उनका क्या कहना है ॥ ४८ ॥ सभीकी आत्मा ईश्वर, मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले जिसका ऐश्वर्य गुप्त है ऐसे उत्तम, अविनाशी श्रीकृष्णमें आप पुत्रभाव न रखें ॥ ४९ ॥ भूमिके भारभूत असुर राजाओंका नाशकर सज्जनोंकी रक्षाके लिये अवतीर्ण भगवान्ने लोगोंके मोक्षकेलिये यशका प्रसार किया है ॥ ५० ॥ शुकदेवमुनिने कहा—महाभाग वसुदेव और देवकीने यह सुनकर अपना मोह छोड़ दिया ॥ ५१ ॥ जो इस इतिहासको मनमें धारण करता है वह इसी देहमें मोहसे रहित होकर ब्रह्मपद पाता है ॥ ५२ ॥

दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः॥ ४६ ॥ दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासनभोजनैः॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः॥ ४७ ॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ॥ ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥ माऽपत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम् ॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः॥ देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पाँचवें अध्यायका सार—निमिने पूछा—हे तत्वज्ञो, जिनका मन वशमें नहीं है जो प्रायः भगवान्की सेवा नहीं करते उनकी क्या गति होती है, कहिये। चमसने उत्तर दिया—भगवान्ने अपने मुखसे ब्राह्मण, बाहूसे क्षत्रिय और जांघसे वैश्य तथा पैरोंसे शूद्र उत्पन्न किए। अतः इनमेंसे जो अपने जनक परमात्माको भूलकर उसका भजन नहीं करता उसका अधःपतन होता है। ब्राह्मणादि द्विज भजनके उत्तमाधिकारी होनेपर भी फल श्रुतिसे मुग्ध होकर फलमें आसक्त होते हैं। ये मूर्ख अपने विद्या, ऐश्वर्य इत्यादिसे मत्त होकर ईश्वर और सज्जनोंकी निन्दा करते फिरते हैं। वेदमें वर्णित सर्वान्तर्यामी भगवान्का माहात्म्य न सुनकर अपनी ही बातें करते रहते हैं। धन तो धर्मके लिये है जिसके दानद्वारा शान्ति मिलती है, लेकिन मनुष्य उसका घरमें उपयोग करता है। यह मृत्युको नहीं देखता। जो दूसरे शरीरमेंकी आत्मा से द्वेष करते हैं और अपने नश्वर देहमें प्रेम, ये निश्चित गिरते हैं। राजाने पूछा—किस कालमें भगवान्का किस वर्ण, किस नाम और किस विधिसे लोग पूजन करते हैं? करभाजनने कहा चारों युगोंमें भगवान्के नाम रूप तथा पूजाविधि भिन्न-भिन्न रीतिसे करते हैं। कृतयुगमें भगवान् श्वेतवर्ण चतुर्भुज जटा, वल्कल, कृष्णाजिन, यज्ञोपवीत, माला, कमण्डलु धारण किए रहते हैं। लोग ध्यानसे भगवान्की उपासना करते हैं। हंस, सुवर्ण, धर्म इत्यादि नाम होते हैं। त्रेतायुगमें भगवान् रक्तवर्ण चतुर्भुज, पिंगला जटाधारी स्त्रुक्स्रुव हाथमें लिए रहते हैं। वेदोक्त कर्मोंसे लोग उनकी पूजा करते हैं। विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, उरुगाय इत्यादि नाम होते हैं। द्वापरमें श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, चक्रशंखधारी भगवान्की वेद और तन्त्रोंसे लोग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूजा करते हैं। वासुदेव प्रद्युम्नादि नामों से स्तुति करते हैं। कलियुगमें कृष्णवर्ण, इत्वलकान्ति, सायुध, सपार्षद, भगवान्‌की तन्त्रोक्तविधिसे कीतनप्राय पूजाओंसे उपासना करते हैं। हे शरणागत रक्षक ब्रह्मादिकोंसे बन्दित पवित्र, दुःखनाशक आपके चरणसरोजको प्रणाम करते हैं। हे महापुरुष, रामावतारमें पिताकी आज्ञासे वनमें जाकर सीताके लिए मायामृगके पीछे जिस चरणसे दौड़े उस चरणकमलको हमारा प्रणाम, ऐसी लोग स्तुति करते हैं। गुणग्राही लोग कलियुगको अच्छा समझते हैं, क्योंकि इसमें कीर्त्तनसे सब परमार्थ मिलता है। नारदजीने कहा– इसप्रकार मिथिलेश भागवत-धर्म सुनकर हर्षित हुआ उसने उन उन मुनियोंकी पूजा की। उसके बाद वे मुनि सबके सामने अन्तर्हित हो गए। राजा भी इन धर्मों का अनुष्ठान करनेके कारण परमपदको प्राप्त हो गया। हे वसुदेवजी, मायासे ईश्वरने यह अवतार लिया है, इन्हें आप अपना पुत्र न समझिये। शुकदेवजीने कहा—यह सुनकर वसुदेव और देवकीने अपना मोह छोड़ दिया। पांचवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥ गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसञ्जग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ । तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ॥ यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ॥ नैतैर्भवानजित

❀ देवताओंका द्वारकामें आकर प्रार्थना करना द्वारकामें उत्पात और उद्धवकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना ❀

श्रीशुकदेवजीने कहा—उसके बाद अपने पुत्र, देवता और प्रजापतियोंके साथ ब्रह्मदेव अपने भूतगणोंके साथ भूत तथा भव्यके स्वामी रुद्र, मरुद्गणके साथ इन्द्र, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभव, अङ्गिरस, साध्यदेव, विश्वदेव, एकादशरुद्र, द्वादशादित्य, गन्धर्व, अप्सराएं, किन्नर, नाग, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर, सभी लोग द्वारकामें सर्वलोकमनोहारी जिस शरीरसे भगवान्‌ने सभी लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले यशका प्रसार किया उस कृष्णरूपी शरीरको देखनेके लिये आये ॥ १—४ ॥ सब ऐश्वर्योंसे समृद्ध चमकदार उस द्वारकापुरीमें अद्भुत रूपशाली श्रीभगवान्‌को प्यासी आँखोंसे उन लोगोंने देखा ॥ ५ ॥ उन्होंने स्वर्गीय उद्यानके पुष्पोंसे यदुनाथको ढक दिया और विचित्रपद एवं अर्थसे युक्त वाणीसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ देवोंने कहा—हे नाथ, कर्ममय भयङ्कर पाशसे मुक्ति चाहनेवाले जिस पदारविन्दका हृदयमें ध्यान करते उसको हमलोग बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण और वाणीसे नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ तुम त्रिगुणात्मिका मायासे आत्मामें अतर्क्य ऐसे व्यक्त प्रपंचकी नियन्तृत्वेन माया गुणोंमें रहकर सृष्टि करते हो, रक्षण करते हो और संहार करते हो।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

फिर भी आत्मसुख में निरन्तर रत, निर्दोष तुम इन कर्मों से लिप्त नहीं होते ॥ ८ ॥ हे स्तुत्य, ऋषभ, रागयुक्त लोग विद्या, अध्ययन, ज्ञान, दान तप आदिसे वैसे शुद्ध नहीं होते जैसे कि सज्जन लोग तुम्हारे यशमें श्रवणके कारण वृद्धिगत श्रद्धासे शुद्ध होते हैं ॥ ९ ॥ जिनको मुनिलोग भक्तिसे आर्द्रहृदयमें धारण करते हैं, जिसकी यतचित्त यादवलोग स्वर्गका अतिक्रमण करके सारूप्यप्राप्तिके लिये वासुदेवादि व्यूहमें पूजा करते हैं वह विषयवासनाके लिये धूमकेतुके समान पादपद्म हमारा कल्याण करे ॥ १० ॥ याज्ञिक लोग वेदोक्त विधिसे हाथमें हवि लेकर जोडे हुए हाथसे आहवनीयादि अग्निमें जिसका चिन्तन करते हैं योगशास्त्रमें योगी लोग तुम्हारी अणिमादि माया समझनेके लिये जिसका चिन्तन करते हैं तथा परमभागवत जिसका सब तरहसे पूजन करते है ॥ ११ ॥ इस वासी वनमालाको यद्यपि लक्ष्मी सपत्नीके समान स्पर्धा करती है फिर भी भक्तोंने अर्पणकी है इसलिये इसको स्वीकार करके उससे सुसम्पा-

कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥ शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ॥
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥ स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृ-
दोह्यमानः ॥ यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥१०॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्यानिरुक्त-
विधिनेश हविर्गृहीत्वा ॥ अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं
संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो भूयात्सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥१२॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको
यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥ नस्योतगाव इव
यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥
अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम्
॥ १५ ॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य ययाऽस्य वीर्यं धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः ॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आण्डकोशं

दित हमारी पूजा जो ग्रहण करता है वह पाद हमारे मनोमलको धूमकेतुके समान नाशक हो ॥ १२ ॥ बलिबन्धनके समय तीन विक्रमोंसे युक्त दूसरे विक्रममें सत्यलोकमें जो विजयध्वजके समान तीन जगह गिरनेवाली गंगारूपी पताकासे युक्त शोभा देता था, जो असुर सेनाको भय और देवसेनाको अभय देता है, जो सज्जनोंको स्वर्ग तथा दुष्टोंको अधोगति देता है हे भगवन्, वह तुम्हारा चरण हमारे पापोंको धो डाले ॥१३॥ युद्धादिमें परस्पर पीड़ित ब्रह्मादि लोग बैलके समान जिसके वशमें रहते हैं उस प्रकृति पुरुषके परे कालरूपी, पुरुषश्रेष्ठ तुम्हारा चरण हमको शान्ति दे ॥ १४ ॥ इस ब्रह्माण्डके उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंसके तुम कारण हो । प्रकृति, जीव तथा महातत्त्वके काल आपको कहते हैं । तीन चातुर्मास्य जिसकी नाभी हैं ऐसा संवत्सरात्मक काल भी तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ तुमसे शक्ति लेकर पुरुष मायाके साथ इस विश्वका मानो गर्भ ऐसे महत्तत्त्वका धारण करता है । वह महत्तत्त्व मायासे व्याप्त होकर बाहर सात

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आवरणोंसे युक्त सुवर्णमय आण्डकोशको आत्मासे सृष्टि करता है ॥ १६ ॥ तुम स्थावर और जंगमके स्वामी हो । हे इन्द्रियोंके स्वामी, मायासे बढ़ी हुई जो इन्द्रिय वृत्तियाँ हैं, उनसे प्राप्त विषयोंका उपभोग लेनेपर भी तुम अलिप्त रहते हो । बाकी योगी विषयोंका त्याग करनेपर भी उनसे डरते हैं ॥ १७ ॥ मन्दस्मित युक्त अवलोकनसे रमणीय कटाक्षसे सूचित आपसे मनोहर भ्रूभंगोंसे युक्त, रतिमन्त्रमें प्रवीण सोलह हजार स्त्रियां थी तुम्हारे कामवाणसे इन्द्रियोंको क्षुब्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकीं ॥ १८ ॥ तुम्हारी अमृतमयी कथाकी सरिता और पादप्रक्षालनवाली गंगादि सरिता त्रैलोक्यके पापको नाश करनेसे समर्थ है । अपने धर्ममें दृढ़लोग वेदवर्णित कीर्तिरूपी तीर्थको कानसे एवं पादोत्पन्न सरिताओंका शरीर स्पर्शसे सबने करते हैं ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—इस तरह स्तुति करके आकाशमें स्थित रुद्रादिकोंके साथ ब्रह्मदेव कृष्णको प्रणाम कर, ऐसा कहने लगे ॥ २० ॥ ब्रह्मदेवने कहा—हे सर्वान्तर्यामिन्, भूमिका

हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥ तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ॥ अर्थान् जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥१७॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसङ्गैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ॥ १९ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥ धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥ २४ ॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥ नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठ किङ्करान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥

भार उतारने लिये हमलोगोंने पहले प्रार्थना की थी, आपने वैसाही किया ॥ २१ ॥ सज्जन लोगोंमें धर्म स्थापन करके सभी दिशाओंमें पापोंको नाश करनेवाली कीर्ति प्रसृत की ॥ २२ ॥ यादववंशमें अवतार लेकर अद्भुतरूप धारण करके पराक्रमयुक्त कर्म विश्वके हितके लिये किये ॥ २३ ॥ तुम्हारे जो चरित्र हैं उनका श्रवण और कीर्तन करते हुए सज्जन लोग कलियुगमें सरलतासे अज्ञानको पार करेंगे ॥ २४ ॥ इस वंशमें अवतीर्ण हुए तुम्हें एकसौ पचीस वर्ष बीत गये हैं ॥ २५ ॥ अब तुम्हारे लिये देवकार्य कुछ भी बाकी नहीं है । तुम्हारा कुल भी ब्राह्मणशापसे नष्टप्राय ही है ॥ २६ ॥ अब अगर चाहते हो तो अपने धामको चले आओ और लोकपालोंके साथ हमलोगोंकी रक्षा करो ॥ २७ ॥ भगवान्‌ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ, आपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो कहा वैसाही मैंने निश्चय किया है। भूमिका भार उतारकर सब कार्य किया ॥ २८ ॥ यह मेरा यादवकुल वीर्य और शौर्यसे उद्धत सागरके समान सबलोगोंको ग्रास करना चाहता है। मेरे कारण यह रुका है ॥ २६ ॥ यदि इसका नाश न करके मैं चला जाता हूँ तो मत्त और विपुल इस अमर्याद यादवकुलसे सीमाको उल्लंघन किये सागरके समान भूमण्डल नष्ट हो जाता है ॥ ३० ॥ अब ब्राह्मण शापसे इसका नाश आरम्भ हो ही गया है। अब इसके बाद हे निष्पाप तुम्हारे लोकमें आऊँगा ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—ऐसे कृष्णके कहनेपर ब्रह्मदेव उनको नमस्कारकर देवलोगोंके साथ अपने लोकमें चले गये ॥ ३२ ॥ उसके बाद द्वारकामें बहुत उत्पात होने लगे। उनको देखकर आये हुए वृद्ध यादवोंसे भगवान्‌ने कहा ॥ ३३ ॥ भगवान्‌ने कहा—यहाँपर ये भयकर सब तरहके उत्पात हो रहे हैं। हमलोगोंके कुलको ब्राह्मणका भयंकर शाप भी हुआ है ॥ ३४ ॥ हे आर्यो, अगर जीनेकी इच्छा है तो

तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥ लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २६ ॥ यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥
गन्ताऽस्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ॥ ३० ॥ इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः ॥ यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ
॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् ॥ सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥ अथ तस्यां महो-
त्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठन्तीह
सर्वतः ॥ शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽ-
द्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयं च
तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवताऽन्धसा ॥ ३७ ॥ तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै ॥
वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टा यादवाः कुलनन्दन ॥ गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्द-
नान्समयूयुजन् ॥ ३६ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजन् श्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्त उप
सङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥४१॥ उद्धव उवाच ॥ देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्य-

हमें यहाँ नहीं रहना चाहिए। आजही पुण्यक्षेत्र प्रभासको जायँगे ॥ ३५ ॥ उस क्षेत्रमें स्नानकर दक्षशापसे यक्ष्मारोगसे पीड़ित चन्द्रने उस रोगसे मुक्त होकर अपनी कला वृद्धि प्राप्त की ॥ ३६ ॥ हमलोग भी वहाँ स्नानकर देव और पितरोंका तर्पणकर अच्छे ब्राह्मणोंको अन्नसे भोजन कराकर उन ब्राह्मणोंको बड़े बड़े दान देकर उन दानोंसे, नौकासे समुद्रके समान पापोंसे तर जायेंगे ॥ ३७, ३८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—ऐसा श्रीकृष्णके कहनेपर वहां जानेके लिये सभी यादवोंने अपने अपने रथ जोत दिये ॥ ३६ ॥ वह सब देखकर भगवान्‌का वाक्य सुनकर भयङ्कर उत्पातोंको देखकर उद्धव कृष्णके पीछे-पीछे जाकर एकान्तमें कृष्णको देखकर उस लोकेश्वरोंके ईश्वरके चरणोंमें मस्तक रखकर हाथ जोड़कर कहने लगा ॥४०,४१॥ उद्धवने कहा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे देवदेवेश, योगेश, आपके श्रवण और कीर्तनसे ही पुण्य मिलता है। जब आपने साध्य होने पर भी विप्रशापका प्रतिकार नहीं किया तब आप निश्चित रूपसे इस कुलका संहार कर अपने धामको जाना चाहते हैं ॥ ४२ ॥ मैं आपके चरणकमलको छोड़कर क्षणार्ध भी नहीं रहना चाहता, इसलिए मुझे भी अपने धामको ले चलिए ॥ ४३ ॥ कानको अमृतकेसमान तुम्हारी परम मङ्गल क्रीडाएँ छोड़कर लोग दूसरे वस्तुओंकी इच्छा छोड़ देते हैं ॥ ४४ ॥ सोना, बैठना, घूमना, ठहरना, नहाना, खेलना, खाना, सभी कामोंमें तुम्हारी सेवा करनेवाले हम भक्त प्रिय आत्माके समान तुमको कैसे छोड़े ॥ ४५ ॥ तुमसे उपभोग किए गये माला, गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार, इनसे सुशोभित, तुम्हारे उच्छिष्टभोजी हम लोग दास तुम्हरी मायाको जीत जाते हैं ॥ ४६ ॥ दिगम्बर, ऊर्ध्वरेता, शान्त निष्पाप संन्यासी लोग तुम्हारे ब्रह्म नामके पदको पाते हैं ॥ ४७ ॥ हे महायोगिन्, कर्ममार्गमें भ्रमण करनेवाले हम लोग तुम्हारे भक्तोंके साथ तुम्हारी वार्तासे ही इस दुस्तर संसारको पार करेंगे ॥ ४८ ॥ इस लोकके विडम्बनके लिए तुमने यहाँ जो कृतियाँ कीं, जो बोला, चला, हँसा, परिहास किया, देखा उन्हीका स्मरण और कीर्तन हमलोग करेंगे ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, इसप्रकार उद्धवसे विज्ञापित हुए भगवान्ने अपने प्रिय एकान्तभृत्य उद्धवसे कहा—॥ ५० ॥

तत्कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥४६॥ वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥ वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरन्तः कीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन् भगवान्देवकीसुतः ॥ एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

छठवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—एक दिन सभी देवता आदिके साथ ब्रह्मादिदेवेश श्रीकृष्णरूपी भगवान्के अद्भुत रूपको देखनेके लिए द्वारकामें आये। द्वारकामें उस मनोहर रूपको देखकर उनके नेत्र तृप्त नहीं होते थे। उन्होंने देवोद्यानके पुष्पोंसे भगवान्की पूजा की और वे भगवान्की स्तुति करने लगे–इस कर्ममय संसारपाशसे मुक्तिके लिये योगी लोग जिसका ध्यान करते हैं उस चरण कमलको हम नमस्कार करते हैं। भागवतकी सब रीतिसे पूजन करते हैं। ब्रह्मादिदेव रस्सासे नाथे बैलके समान तुम्हारे अधीन हैं। सबके नाशक काल तुम ही हो। तुम्हारो ही शक्तिसे पुरुष मायासे महत्तत्व और उससे ब्रह्माण्डको उत्पन्न करता है। तुम स्थावर जंगमके स्वामी हो। तुम मायानिर्मित इन्द्रियोंसे भोग लेनेपर थी अलिप्त हो। ऐसी स्तुति करके ब्रह्माजीने कहा—हे भगवन्, हमारी प्रार्थनाके अनुसार आपने भूमिका भार उतारा। सज्जनोंमें धर्म स्थानपन कर निर्मल कीर्ति प्रसृत की। इस यदुकुलमें अवतीर्ण हुए आपको एक सौ पचीश वर्ष गुजर गये। अब देव-कार्य समाप्त है। यह यादव कुल भी विप्र शापसे नष्ट प्राय है। अगर आपकी इच्छा हो तो अपने धामको पधारिए। भगवान्ने कहा—मैंने भी ऐसाही सोचा है। भूभार हरणका कार्य पूरा हो गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह यादव कुल बल और सम्पत्तिसे मत्त है इसका नाश न करके मैं जाता हूँ, तो यह कुल लोकको नष्ट कर देता है। ब्राह्मण शापसे इसका नाश शुरू हो ही गया है। शुकदेवजीने कहा—कृष्णका भाषण सुनकर सब देवता लोग अपने स्थानको चले गए। उसके बाद द्वारकामें भयङ्कर उत्पात होने लगे। श्रीकृष्णने वहाँ एकत्रित वृद्ध यादवोंसे कहा--हे आर्यो, अगर जीनेकी इच्छा है तो यह नगरी छोड़ देनी चाहिए यहाँ भयङ्कर उत्पात हो रहे हैं। अतः आज ही हम पुण्यक्षेत्र प्रभासको प्रस्थान करें। हम वहाँ स्नान देव-पितृतर्पण तथा ब्राह्मणभोजन और दान करके पापोंसे मुक्त पायेंगे। श्रीशुकदेवजीने कहा—कृष्णका कहना मानकर यादवगण रथ सज्जित करने लगे। उद्धव यह सब देखकर कृष्णके पीछे पीछे जाकार एकान्तमें कृष्णको प्रणामकर कहने लगे–हे योगेश, आपके नाम स्मरण और कीर्तनसे ही पुण्य मिलता है। आपने समर्थ होनेपर भी ब्राह्मण शापका निराकरण नहीं किया तब आप निश्चित इस कुलका संहारकर परम धामको जाना चाहते हैं। आपके चरणोंको छोड़कर मैं क्षणभर भी अन्यत्र नहीं रह सकता, अतः कृपया मुझे अपने धाम ले चलिये। श्रीशुकदेवजीने कहा—उद्धवके इसप्रकार प्रार्थना करने पर भगवान्ने अपने प्रिय भक्त उद्धवसे कहा। ❀

❀ अवधूतका आख्यान तथा कपोतके वंशका उपाख्यान ❀

श्रीभगवान्ने कहा–हे उद्धव,तुमने जैसा कहो वैसा ही करनेका मेरा निश्चय है। ब्रह्मादि लोकपाल 'मैं स्वर्ग जाऊँ' ऐसा चाहते हैं ॥१॥ ब्रह्मदेवकी प्रार्थनाके अनुसार अंशसे अवतार लेकर

श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ॥ यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥ कुलं वै शापनिर्दग्धं नङ्क्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति॥ ३ ॥ यर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमङ्गलः ॥ भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः ॥४॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् ॥६॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम्॥७॥ पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥८॥ तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्योभयातीतो

देवकार्यको पूर्ण किया ॥ २ ॥ यह कुल शापसे दग्ध है परस्पर युद्धसे नष्ट हो जायगा। सातवें दिन इस पुरीको समुद्र डुबायेगा ॥ ३ ॥ तभी मैं इस लोकका त्याग करूँगा तभी यहाँका माङ्गल्य नष्ट हो जायगा। ज्योंही यह लोक कालसे आक्रान्त हो जायगा ॥ ४ ॥ मेरे द्वारा दिये गये भूमितलमें तुम्हें भी नहीं रहना चाहिए। कलियुगमें लोगोंकी अधर्ममें रुचि बढ़ेगी ॥ ५ ॥ तुम स्वजन तथा बान्धवोंके स्नेहको छोड़ सर्वसङ्ग परित्यागकर मुझमें मन लगाकर पृथ्वीपर घूमो ॥ ६ ॥ मन, वाणी, चक्षु तथा श्रवणादिसे जो ज्ञान होता है यह सर्व मनोमय और मायामय नश्वर है ॥ ७ । जिसका मन विक्षिप्त है ऐसे पुरुषको यह भेदका भ्रम होता है, इसीमें गुण-दोष है कर्म, अकर्म और विकर्म यह भेद गुण-दोषयुक्त बुद्धिके हैं ॥ ८ ॥ अतः इन्द्रिय और मनको संयत रखकर इस सब जगत्को आत्मामें और आत्माको मुझ अधीश्वरमें देखो । ९ ॥ परोक्ष और अपरोक्षज्ञानसे जब तृप्त होओगे तब तुम देवादि शरीरियोंकी आत्मा बनोगे। तब आत्मानुभवमें सन्तुष्ट तुमको देवता विघ्न नहीं कर सकेंगे ॥१०॥ ऐसा पुरुष दोष दृष्टसे भयके कारण न निषधसे निवृत्त होता है न गुण देखकर विहितमें प्रवृत्त होना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है, जैसा कि बालक होता है ॥ ११ ॥ सभी भूतोंमें सुहृद् भाव रखनेवाला परोक्ष और अपरोक्ष निश्चयवाला शान्त विश्वको मुझसे व्याप्त समझकर कभी संसार विपत्तिमें नहीं पड़ता ॥१२॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, भगवान्‌के ऐसा आदेश करनेपर महाभागवत तत्वजिज्ञासु उद्धव भगवान्‌को नमस्कार कर कहने लगे—॥१३॥ उद्धवने कहा—हे योगेश, हे योगियोंके ध्येय, हे योगगम्य, हे योगप्रवर्तक, आपने मोक्षके लिए मुझे अपरिग्रहरूपी त्याग बताया ॥ १४ ॥ जो तुम्हारे भक्त नहीं हैं ऐसे विषयीलोगोंके लिए यह वासनाका त्याग असम्भव है, ऐसा मैं समझता हूँ । १५ ॥ जिसको आपने उपदेश दिया है वह मैं मूर्ख हूँ तुम्हारी मायासे निर्मित पुत्रादि सहित 'मैं और मेरा' ऐसे देहमें अभिमानसे निमग्न हूँ। इसलिए आपके द्वारा कहे हुए को मैं जिस रीतिसे सरलतासे साध्य कर सकूँ, ऐसी शिक्षा मुझे दीजिए ॥ १६ ॥ स्वप्रकाश सत्य आत्मरूपी आपके विषयमें कहनेवाला मैं देवतामें भी कोई नहीं देखता, ब्रह्मादि सभी

निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्यन्मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः॥१२॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥१३॥ उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्न्यास योगात्मन्योगसंभव ॥ निःश्रेयस य मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥१४॥ त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥१५॥ सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ॥ तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम् ॥१६॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥१७॥ तस्माद्भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥ पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथापदः ॥ बह्व्यः सन्ति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥ अत्र मां मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ॥ गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥ अत्राप्युदाह-

शरीरी बाह्य विषयमें अर्थबुद्धि रखनेवाले तुम्हारी मायासे मोहित हैं ॥ १७ ॥ इसलिए दुःखतापसे निर्विण्ण मैं निर्दोष, अनन्त, सर्वज्ञ, ईश्वर नित्य वैकुण्ठलोकमें रहनेवाले नरसख, नारायण आपकी शरण आया हूँ ॥ १८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—जगत्‌में लोकतत्त्व जाननेवाले लोग अपने आपही विषयवासनासे उद्धार करते हैं ॥ १९ ॥ आत्मा ही जीवके लिए हिताहितका गुरु है विशेषतः मनुष्यके लिए क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमानसे यह कल्याण जान सकता है ॥ २० ॥ सांख्ययोगविशारद लोग पुरुषरूपसे सर्वशक्तियुक्त मुझे अति प्रकट रूपसे देखते हैं ॥ २१ ॥ एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद, चतुष्पाद, बहुपाद ऐसी बहुत-सी पुरियोंका मैंने निर्माण किया है, उनमें मुझे पुरुषकी (मनुष्यकी) पुर (शरीर) प्रिय है ॥२२॥ यहाँ बुध्यादि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ज्ञात होनेवाले हेतुओंसे मेरा योगी लोग अनुमान करते हैं ॥ २३ ॥ इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहा जाता है, जिसमें अवधूत मुनि और तेजस्वी यदुका संवाद है ॥ २४ ॥ विद्वान् तरुण, निर्भय, एक अवधूत ब्राह्मणको देखकर धर्म जाननेवाले यदुने उससे पूछा ॥ २५ ॥ यदुने कहा—हे ब्राह्मण, तुमको यह कुछ न करनेकी अच्छी बुद्धि कहाँ से आई जिसके कारण तुम जानते हुए भी बालक समान लोकमें घूमते हो ॥ २६ ॥ प्रायः लोग धर्म, अर्थ और काममें तथा आत्मविचारमें भी आयु, यश, सम्पत्ति इत्यादिकी इच्छासे ही प्रवृत्त होते हैं ॥२७॥ तम समर्थ, विद्वान् निपुण, सुन्दर, मधुरभाषी होकर न तो कुछ करते हो और न कुछ चाहते ही हो, केवल जड, उन्मत्त या पिशाचग्रस्तके समान रहते हो ॥ २८ ॥ जब सब लोग काम और लोभके दावाग्निसे जल रहे हैं तब तुम अग्निसे मुक्त गङ्गाके पानीमेंके हाथीके समान ताप रहित हो ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन्, विषयोपभोग शून्य, पुत्र कलत्रादि शून्य आपके इस आत्मा-

रन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य सम्वादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥ अवधूतं द्विजं कञ्चिचरन्तमकुतोभयम् ॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः प्रपच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥२६॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किञ्चिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भस्थ इव द्विपः ॥२९॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥३०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥३१॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान् शृणु ॥३२॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिन्धु पतङ्गो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥३४॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥ यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥३६॥ भूतैराक्र-

नन्दका कारण पूछनेवाले मुझसे बताइए ॥ ३० ॥ भगवान्ने कहा—ब्राह्मण भक्त बुद्धिमान् यदुके ऐसा पूछनेपर उससे पूजित होकर आदरसे नतमस्तक यदुसे ब्राह्मणने कहा ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे राजन्, जिनसे कुछ-कुछ ज्ञान लेकर स्वच्छन्द मैं भूमिमें घूमता हूँ, केवल बुद्धिसे मैंने जिनको गुरु किया है, ऐसे मेरे गुरु इस दुनियामें अनेक हैं उनको मैं कहता हूँ—सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, पानी, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सागर, पतङ्ग, मधुमक्खी, हाथी, मधु हरण करनेवाला, हरिण, मछली, पिङ्गला, कुरर, बालक, कुमारी, बाणकार, उर्णनाभि, सुपेशकृत् नामका कीड़ा ये मेरे चौबीस गुरु हैं जिसकी वृत्तिसे मैंने अपने लिए शिक्षणीय बातें सीखीं ॥ ३३—३५ ॥ हे नहुषके पौत्र पुरुष श्रेष्ठ, इनमें किससे क्या सीखा वह मैं कहता हूँ, सुनो ॥ ३६ ॥ दैववशात् सभी भूतोंसे आक्रान्त होनेपर धीर क्षमाशील रहना अपने मार्गसे विचलित न होना यह मैंने पृथ्वीसे सीखा है ॥ ३७ ॥ हर वख्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दूसरोंके लिए सब प्रवृत्तियाँ रखना सिर्फ परार्थ जन्मधारण करना, यह परोपकार व्रत मैंने पर्वतसे सीखा। दूसरोंके कुछ भी करनेपर विरोध नहीं करना, यह वृक्षसे सीखा ॥ ३८ ॥ केवल प्राणवृत्तिसे ही सन्तुष्ट रहना, जिससे ज्ञान नष्ट न हो और इन्द्रिय प्रिय पदार्थोंको न चाहना, जिससे वाणी और विक्षिप्त न हो, यह मैंने प्राणसे सीखा ॥ ३९ ॥ योगीको विविध स्वभाववाले विषयोंका सब तरहसे सेवन करनेपर भी गुण-दोषसे परे रहकर उसका लेप न लगने देना यह, वायुसे सीखा ॥ ४० ॥ जैसे गन्धवान् होनेपर वायु उससे अलिप्त ही रहता है वैसे ही योगीको इस पार्थिव शरीरमें प्रवेश करनेपर भी इसके गुणोंसे सम्बन्ध रहनेपर भी उनसे लिप्त न होना, यह वायुसे सीखा ॥ ४१ ॥ जैसे आकाश स्थावर जङ्गम पदार्थोंमें व्याप्त रहनेपर भी उससे व्यवछिन्न नहीं होता वैसे आत्माको समझना चाहिए, यह आकाशकी शिक्षा है। ४२ ॥ जैसे वायुसे लाये हुए मेघादिसे आकाशका स्पर्श नहीं होता, वैसे ही तेज, पानी, और

म्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः ॥ साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥ प्राणवृत्त्यैव सन्तुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ॥ भुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥ स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्सरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥ विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणे-

अन्नमय काल सृष्टि देहादिसे आत्माका ॥ ४३ ॥ पानीके समान स्वच्छ स्वभावसे स्नेहयुक्त, मधुर तथा तीर्थस्थानभूत मुनिके देखने, स्पर्श करने और कीर्तनसे[१] लोगोंको पवित्र करना चाहिए ॥ ४४ ॥ तेजस्वी, दुर्धर्ष, उदर ही जिसका वर्तन है ऐसे सर्वसाक्षी अग्निके समान तपसे दीप्त योगीको किसी मलसे सम्बद्ध नहीं होना चाहिए ॥ ४५ ॥ कभी प्रगट कभी अप्रगट रूपसे अग्नि जैसे सभी कल्याण कामियोंका उपास्य है और हवि देनेवालेके पूर्वापर पापोंका नाश करते हुए हविको उदरसात् करता है वैसे ही साधुको होना चाहिए ॥ ४६ ॥ ईश्वर अपनी मायामें उत्पादित स्थूल-सूक्ष्मरूपी जगत्में प्रवेश करके तदनुरूप होता है, फिर भी वह छोटा बड़ा उस प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार अग्नि इन्धनके अनुसार छोटा बड़ा होता है ॥ ४७ ॥

१ पानीकी आवाजको कीर्तनसे एक अर्थमें लेना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देहके जन्मसे लेकर मरण तककी अवस्थाएं कालके कारण चन्द्रकला-जैसी हैं ॥ ४८ ॥ औघवत् वेगवान् कालके कारण भूतोंकी उत्पत्ति और नाश नित्य (सन्तत) होनेपर भी अग्नि शिखा के समान समझमें नहीं आते ॥ ४९ ॥ प्रकृतिके गुणोंसे गुणोंका उपभोग करके योगी उसको योग्य कालमें छोड़ देता है, आसक्त नहीं होता, जैसा कि रश्मियोंसे जल लेकर सूर्यको छोड़ देता है ॥ ५० ॥ आत्माके एक होनेपर भी स्थूल बुद्धि लोग शरीरभेदसे उसे भिन्न समझते हैं, जैसा कि सूर्यके एक होनेपर भी अनेक वस्तुओंमें उसके अनेक प्रतिबिम्ब रहते हैं ॥ ५१ ॥ किसी भी वस्तुओंमें अतिस्नेह नहीं करना चाहिए, क्योंकि अतिस्नेह करनेसे मूर्ख कपोतके-जैसा उनको ताप करना पड़ेगा ॥ ५२ ॥ एक कबूतर अपनी भार्याके साथ अरण्यमें किसी पेड़पर अपना घोंसला बनाकर रहता था ॥ ५३ । उन गृहस्थ कपोतोंका स्नेहसे हृदय बद्ध था उन दोनों की दृष्टिमें दृष्टि, अङ्गसे अङ्ग और बुद्धि में बुद्धि बँधी हुई थी ॥ ५४ ॥ खाना,

गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति ॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन्विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता ॥ तं तं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णन्ती काल आगते ॥ अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले व्यजायन्त रचितावयवा हरेः ॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलाङ्गतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्रवत्सलौ ॥ शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थं तौ कुटुम्बिनौ ॥ परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा तांल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे

पीना, सोना, क्रीडा करना सबमें वे एक साथ रहते थे और विश्वस्त होकर वनमें घूमते थे ॥ ५५ ॥ उस कपोतको मुग्ध करती हुई कपोती जिस चीजको चाहती, अजितेन्द्रिय कपोत उसीको ला देता था ॥ ५६ ॥ कपोतीने पहली बार गर्भ धारण किया और समयपर उसने अपने पतिके पास नीडमें अण्डे भी दिए ॥ ५७ ॥ योग्य कालमें भगवान्की अचिन्त्य शक्तिसे उसमेंसे कोमल बाल और शरीरवाले बच्चे पैदा हुए ॥ ५८ ॥ उस दम्पतिने बहुत प्रीतिसे पुत्रवात्सल्यसे उनका पालन किया, उनका मधुर कूजन वे सुनते थे और कल-भाषणसे आनन्द पाते थे ॥ ५९ ॥ हृष्ट-पुष्ट ऐसे उन बच्चोंके कोमल पंखोंसे कूजनसे तथा बालक्रीडासे, सामने आनेसे माता-पिता परम हर्षित होते थे ॥ ६० ॥ विष्णुमायासे जिनके हृदय स्नेहमें आबद्ध थे ऐसे वे दम्पती बच्चोंको पालते थे । ६१ ॥ एक बार वे दोनों बगलके आरण्यमें अन्न लेनेके लिए गए और उसके लिए बहुत देर तक घूमते रहे ॥ ६२ ॥ उनको देखकर एक व्याध

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ने उनके घोंसलेके पास जाल बिछाया और अपने घरके आस-पास घूमते हुए बच्चोंको उसमें पकड़ा ॥ ६३ ॥ प्रजापालनमें सर्वदा उत्सुक वे कपोत और कपोती अन्न लेकर अपने नीडके पास गए ॥ ६४ ॥ कपोतीने अपने बालकोंको जालमें पड़ा देखा और अत्यन्त दुःखसे चिल्लानेवाले उनकी तरफ चिल्लाती हुई दौड़ी । ६५ । भगवान्‌की मायाने उन बालकोंको बँधे हुए देखकर उसका स्नेह उमड़ आया, चित्तदीन हो गया और बेहोश होकर वह भी उसमें पड़ी और जालमें फँसी ॥ ६६ ॥ अपने प्राणसे भी प्रिय पुत्र और भार्याको जालमें फँसे हुए देख कपोत दुःखी हो विलाप करने लगा ॥ ६७ ॥ अल्प पुण्य और दुर्मति मेरी गति देखो, अतृप्त और अकृत्य कृत्य मेरा त्रिवर्गसाधनीभूत गार्हस्थ नष्ट हुआ ॥ ६८ ॥ मेरी अनुरूप

जालमातत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥ ६३ ॥ कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥ कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत्क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान्पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् ॥ भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥ अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां सन्त्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृतान् शिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥ ७३ ॥ यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अनुकूल पतिपरायणा स्त्री शून्य गृहमें मुझे छोड़कर प्यारे बच्चोंके साथ स्वर्ग जा रही है ॥ ६९ ॥ तब मैं इस शून्य घरमें भार्या और प्रजाओंके मर जानेपर यह दुःखमय जीवन लेकर क्यों जिन्दा रहूँ । ७० ॥ उन सबको उसी पाशमें पकड़कर छटपटाते हुए देखनेपर भी वह मूर्ख दीन कपोत स्वयं उसीमें जा पड़ा ॥ ७१ ॥ क्रूर लुब्धक कपोत कपोती और बच्चों को पाकर आनन्दसे घर लौटा ॥ ७२ ॥ इस पक्षीके समान द्वन्द्वमें सुख मनानेवाला संसारमें स्नेहसे आबद्ध, कुटुम्बको पोषण करनेवाला अशान्त चित्त कुटुम्बी दुःख पाता है ॥ ७३ ॥ खुले हुए मुक्तिके द्वाररूप मनुष्य-लोकको प्राप्तकर जो प्राणी गृहोंमें पक्षीकी नाईं संसक्त रहता है वह मुक्ति मार्गमें आरूढ़ होकर भी उससे फिर गिर गया, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ७४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सातवें अध्यायका सार भगवान्ने कहा—हे उद्धवजी, तुमने जैसा कहा मैने वैसा ही निश्चय किया है। देवताओंकी भी यही इच्छा है। ब्रह्मदेवकी प्रार्थनासे मैंने अवतार लिया था। अब देवकार्य पूर्ण ही गया। विप्रशापग्रस्त यह कुल आपसमें लड़कर नष्ट होगा। मेरे इस लोकसे चले जानेपर इस लोकका माङ्गल्य चला जायगा। सङ्ग परित्याग करके मेरा चिन्तन करते हुए तुम सर्वत्र घूमो। मन और चक्षुरादि इन्द्रियोंसे ज्ञात होने वाला सभी विश्व मायामय है। विक्षिप्त चित्त मनुष्यका यह भ्रम है अतः इन्द्रियोंका संयम करके जगत्को आत्मामें और आत्माको मुझमें देखो। उद्धवने कहा—हे योगेश्वर, तुममें भक्ति न रखने वालेके लिए वासनात्याग असाध्य है। आपने मुझको उपदेश दिया लेकिन मैं मूर्ख हूँ माया निर्मित पुत्रादिकोंमें मेरी ममता है मैं,मेरा'इस अभिमानमें मैं फँसा हूँ अतः आपके उपदेशको सरलतासे साध्य कर सकूं, ऐसी शिक्षा दीजिये। श्री भगवान्ने कहा—सभीका विशेषतः मनुष्यका आत्मा ही हिताहित ज्ञानमें गुरु है क्योंकि इसमें प्रत्यक्षानुभावसे आत्माका ज्ञान करनेकी विशेष शक्ति है। सांख्ययोग विशारद लोग इसी मनुष्य शरीरमें मेरा प्रत्यक्ष पाते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ, हे उद्धव, सुनो—एक समय विद्वान् तरुण, निर्भय एक अवधूत ब्राह्मणको देखकर यदुने उससे पूछा हे ब्राह्मण, तुम्हें किसी कर्ममें आसक्त न होनेकी बुद्धि कहांसे सूझी? उस ब्राह्मणने कहा—हे राजन्, मैंने अनेक पदार्थोंको अपना गुरु बनाकर उनसे ही कुछ शिक्षा पायी है। पृथ्वी आदि मेरे चौबिस गुरु हैं। दैवसे सभी भूतोंसे आक्रान्त होने परभी अपने मार्गको न छोड़कर क्षमाशील रहना-यह मैंने पृथिवीसे सीखा है। सर्वत्र सञ्चार करते हुए भी अलिप्त रहना-यह मैंने वायुसे सीखा है। स्थावर जङ्गम सर्वत्र व्याप्त जैसे आकाश किसीसे परिच्छिन्न नहीं है, वैसे ही यह आत्मा है, यह बुद्धि मुझे आकाशसे मिली है। सर्वभक्षी अग्नि जैसे किसी मलसे सम्बन्ध नहीं होता वैसेही योगीको होना चहिए, यह शिक्षा मुझे अग्निसे मिली है, जैसे जल अपने स्वच्छता आदि गुण से सबको प्रसन्न रखता है वैसेही योगीको होना चाहिये, यह जलसे सीखा। चन्द्रमाकी कलाएँ जैसे सूर्य प्रकाशवशात् घटती बढ़ती रहती हैं वैसेही देहकी जन्मादि अवस्थायें होती है। जैसे किरणोंसे जल आकृष्ट कर सूर्य समयपर छोड़ देता है, वैसेही प्रकृतिके गुणोंसे गुणोंका उपभोग कर उन्हें छोड़ देना चाहिए, सूर्य जैसे उपाधिके कारण एक होता हुआ भी अनेक भासता है वैसेही एक होता हुआ भी आत्मा उपाधिवशात् अनेक भासता है यह शिक्षा भी मुझे सूर्यसे मिली है। हे राजन्, अतिस्नेह करनेसे प्राणीको इस संसार में कितना कष्ट झेलना पड़ता है, यह शिक्षा मुझे एक कबूतरसे मिली है, जिसके बच्चोंको एक व्याधने जालमें फँसा लिया था। जालमें फँसे बिलख रहे अपने बच्चोंको देखकर उसकी स्त्री तथा अन्तमें वह भी जाकर उसीमें फँस गया—यों उसका सारा परिवार नष्ट हो गया। सातवां अध्याय समाप्त❀

❀ अथाष्टमोऽध्यायः ❀

ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः ॥ १ ॥ ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेवा वा ॥ यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥ शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमेद् ग्रासो

[अवधूतका अजगरादिसे प्राप्त शिक्षाका कथन और पिङ्गला नामक वेश्याका उपाख्यान– यह वर्णन]

ब्राह्मणने कहा—हे राजन्, ऐन्द्रियक सुख जैसे स्वर्गमें है वैसे हीं नरकमें उसके लिए विद्वान्को उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिए ॥ १ ॥ रुचिकर हो नीरस हो योग हो ज्यादा हो अजगरके समान प्रयत्न न करके मिले हुए (यदृच्छालब्ध) कौरको लेना चाहिए ॥ २ ॥ अगर किसीने नहीं ला दिया, तो अजगर जैसा वातभक्ष होकर बहुत दिनों तक निराहार सोए रहना चाहिए, आहारके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिए ॥ ३ ॥ अगर इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल हो, तो भी प्रयत्न न करे। सोकर नींद न आनेपर भी इन्द्रिय व्यापार नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥ मुनिको स्तब्ध जल सागरके समान प्रसन्न, गम्भीर दुर्विगाह्य, अपार क्षोभरहित होना चाहिए ॥ ५ ॥ समृद्ध होनेपर या कङ्गाल होनेपर भगवन्निष्ठ मुनिका न हृष्ट होना चाहिए और न दुःखित, जैसा कि सागर वर्षामें नदियोंसे न बढ़ता है, न ग्रीष्ममें सूखता है ॥ ६ ॥ देवमाया निर्मित स्त्रीको देखकर अजितेन्द्रिय प्राणी उसके हाव-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भावोंसे, लोभके अग्निमें पतङ्गके समान गिरगर नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ मूर्ख मनुष्य माया रचित स्त्री, सम्पत्ति, वस्त्र आदि द्रव्योंमें लुब्ध हो अन्धा होकर पतङ्गके समान नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ जिससे देहयात्रा चल सके, उतना ही खाना चाहिए। गृहस्थोंको तकलीफ न देते हुए मधुकरकी वृत्तिसे मुनिको अपना निर्वाह करना चाहिए ॥ ९ ॥ जैसे सभी पुष्पोंसे मधुकर मधु लेता है वैसे ही कुशल मनुष्यको छोटे या बड़े शास्त्रोंसे सार ले लेना चाहिये ॥ १० ॥ साँझके लिए या कलके लिए भिक्षुकको संग्रह नहीं करना चाहिए। मक्खीके समान हाथको ही भिक्षापात्र और पेटको ही संग्रह पात्र बना लेना चाहिए ॥ ११ ॥ जो इसके विरुद्ध संग्रह करेगा वह मक्षिकाके समान उसीके साथ नष्ट हो जायगा ॥ १२ ॥ लकड़ीको भी

महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥ ओजः सहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ४ ॥ मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ७ ॥ योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता ॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद्वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥ सायन्तनं श्वस्तनं वा न सङ्गृह्णीत भिक्षितम् ॥ पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न सङ्ग्रही ॥ ११ ॥ सायन्तनं श्वस्तनं वा न सङ्गृह्णीत भिक्षुकः ॥ मक्षिका इव सङ्गृह्णन्सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥ पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसञ्चितम् ॥ भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ १५ ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ॥ मधुहेवाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादि-

युवतीका पैरसेभी स्पर्श न करना चाहिए। करनेसे हाथिनीके अङ्ग सङ्गके लिए हाथीके समान योगी फँसता है ॥ १३ ॥ अपनी मृत्युके समान स्त्रीके पास नहीं जाना चाहिए क्योंकि जानेसे बलवान् हाथियोंसे करिणीके लिए जैसे हाथी मारा जाता है वैसे ही बलवान्से मारा जायगा ॥ १४ ॥ कृपण जिस अर्थका संग्रह करके न दान करते हैं और न भोग ही, उसका वह धन दूसरा ही कोई उपभोग करता है, जैसा कि मधुको मधु उतारनेवाला ॥ १५ ॥ सुख और दुःखसे उपार्जित धनोंसे बहुत सी आशाएँ रखनेवाले गृहस्थके घर संन्यासी ही कुछ न करते हुए पहले भोजन करता है ॥ १६ ॥ वनमें रहनेवाले संन्यासीको ग्राम्यगीत नहीं सुनना चाहिए, क्योंकि सुननेसे मृगया करनेवालेके गीतसे हरिणके जैसा बद्ध होता है ॥ १७ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

ग्राम्य स्त्रियोंके नृत्य, वादन गीत इनकी तरफ ख्याल नहीं करना चाहिए, ख्याल करनेसे मृगीसुत ऋष्यशृङ्गके समान उनका खिलौना बनकर फँसता है ॥ १८ ॥ बहुत चञ्चल जिह्वासे, रससे मुग्ध होकर मृत्युको वैसे ही पाता है, जैसे कि आमिषयुक्त काँटेसे मछली ॥ १९ ॥ निराहारी पुरुष बाकी सभी इन्द्रियोंको जीत सकता है, लेकिन रसेन्द्रियकी वासना बढ़ती ही जाती है ॥ २० ॥ जब तक रसानाको नहीं जीत लेता तब तक अन्य इन्द्रियोंको जीत लेनेसे भी यह इन्द्रियजयी नहीं कहलाता। रसानाको जीत लेनेसे सभी जीतप्राय है ॥ २१ ॥ विदेह नगरोंमें पिङ्गला नामकी वेश्या थी उससे मैंने जो कुछ सीखा, उसे सुनो ॥ २२ ॥ वह स्वैरिणी एकबार किसीकान्तको संकेतकर ले जानेके लिए उत्तम रूप बनाकर दरवाजेपर बैठी थी ॥ २३ ॥ रास्तेसे जाने आनेवाले पुरुषोंको देखकर ये मेरे पास आकर मुझे पैसे देंगे, ऐसा सोचती थी ॥ २४ ॥ बहुत लोगोंको इधरसे आकर उधर चले जाते देखकर वह समझती थ

अगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनको वश्य ऋष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ १८ ॥ जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ॥
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥१९॥ इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥२०॥
तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् ॥ न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिङ्गला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा ॥
तस्या मे शिक्षितं किञ्चिन्निबोध नृपनन्दन ॥२२॥ सा स्वैरिण्येकदा कान्तं सङ्केत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥२३॥
मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ तान् शुल्कदान्वित्तवतः कान्तान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ॥
अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥२५॥ एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बती । निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥२६॥
तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥२७॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम
निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ २८ ॥ न ह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति ॥ यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममतां नृप ॥२९॥
पिङ्गलोवाच ॥ अहो मे मोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः ॥ या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥ ३० ॥ सन्तं समीपे रमणं रति-

कि दूसरा ही कोई बहुत पैसे देनेवाला मेरे पास आयेगा ॥ २५ ॥ इस तरह दुष्ट विचारसे रातमें नीद न पाकर अन्दर जाना फिर बाहर आना, यही करती हुई दरवाजेमेंही घूमती थी। यों ही आधी रात हो गई ॥ २६ ॥ इस तरह पैसेकी आशासे उसका मुँह सूख गया, चित्त उद्विग्न हो गया और उसको एकदम निर्वेद आ गया। वही सच्चा सुख देनेवाला था ॥ २७ ॥ निर्विण्ण चित्त उसने क्या गाया, सो सुनो, क्योंकि निर्वेद ही मनुष्यके आशा पाशोंको काटनेवाला खड्ग है ॥२८॥ हे राजन्, बिना निर्वेदके देहबन्धको कोई नहीं छोड़ना चाहता, जिस तरह बिना ज्ञानके ममत्व नहीं छोड़ सकता ॥ २९ ॥ पिङ्गलाने कहा—अहो! मेरी मोहपरम्परा तो देखो, मेरी इन्द्रियाँ मेरे बिल्कुल अधीन नहीं हैं। मैं एक तुच्छ मनुष्यसे अपना इच्छित पूर्ण करना चाहती हूँ ॥ मेरे पास ही आनन्द देनेवाला नित्यरमण रहते हुए उसे छोड़कर मैं कुछ इच्छा पूर्ण करनेमें असमर्थ दुःख भय शोक मोहको देनेवाले तुच्छ मनुष्यके ॥२१

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पीछे पड़ी हूँ, मैं कितनी मूर्ख हूँ ॥ ३१ ॥ जिसको अर्थ तृष्णा है ऐसे अनुपात योग्य स्त्रैण मनुष्यसे अपनेको बेचकर मैंने द्रव्य चाहा और इस अतिघृणित वेश्यावृत्तिसे आत्माको तप्त किया ॥ ३२ ॥ अस्थि ही जिसके धरण तथा बाँस हैं, रोम और नखोंसे ढके नवों द्वारोंसे जिसमें मल बहता है, जो विष्ठा एवं मूत्र से भरा है ऐसे इस शरीररूपी घरको मुझे छोड़ दूसरा कौन सेवा करेगा ॥ ३३ ॥ इस विदेह नगरीमें मैं ही एक ऐसी मूर्खा हूँ जो इच्छितार्थ और आत्मा भी देनेवाले भगवान्‌को छोड़कर दूसरे की इच्छा करती हूँ ॥ ३४ ॥ शरीरी लोगोंको आत्मा ही सुहृद और प्रियतम है। उसको बेचकर उसीसे आत्मा लेकर उसके साथ लक्ष्मीके समान मैं रममाण होऊँगी ॥ ३५ ॥ उत्पत्ति विनाश शील विषय, मनुष्य या कालग्रस्त देव भी स्त्रीका क्या प्रिय कर सकते हैं ॥ ३६ ॥ आज निश्चित रूपसे मेरे किसी सुकृतसे भगवान् प्रसन्न हुए हैं, जो दुराशा रखनेवाली मुझे यह सुखकर निर्वेद दिया ॥३७॥ मन्दभाग्या

प्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३१॥ अहो मयात्मा परितापितो वृथा साङ्केत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्यार्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥३२॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कन्या ॥ ३३ ॥ विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ३४ ॥ सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥ तं विक्रियात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३५ ॥ कियत्प्रियं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥ नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३७ ॥ मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३८ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसङ्गताः ॥ त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तयधीश्वरम् ॥ ३९ ॥ सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ॥ विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ४० ॥ संसरकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४१ ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥४२॥ ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्त-

मुझको निर्वेद के कारण क्लेश नहीं क्योंकि इस निर्वेदसे हो गृहादिका परित्यागकर मनुष्य शान्ति पाता है ॥ ३८ ॥ भगवान्‌से दिये गये इस निर्वेदको शिरोधार्य करके ग्राम्यलोगोंमें आसक्ति तथा दुराशा छोड़कर उस ईश्वरकी ही शरण जाती हूँ ॥ ३९ ॥ सन्तुष्ट होकर भगवान्‌के ऊपर श्रद्धा रखकर जो कुछ मिलेगा उसीसे जीवन निर्वाह करती हुई इस आत्मारूपी रमणके साथ विहार करूँगी ॥४०॥ संसारमें कूपमें पतित विषयोंसे जिसकी आँखें नष्ट हुई हैं, कालरूपने जिसको ग्रस्त कर लिया है ऐसे आत्माका ईश्वरके सिवा कौन त्राता है ॥ ४१ ॥ दुर्लक्ष न करके कालसर्पसे जगत्‌को ग्रस्त होते देखना चाहिए। देखकर आत्मा जब संसारसे निर्विण्ण हो जायगा, तभी आत्मा अपना रक्षण कर सकेगा। ब्राह्मणने कहा—इस तरह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निश्चयकर कान्तके इच्छासे उत्पन्न दुराशाको त्यागकर शान्त होकर वह शय्यापर सो गई ॥ ४३ ॥ आशासे ही दुःख है और निराशासे सुख है, जैसे कि कान्तकी आशा छोड़कर पिङ्गला सुखसे सो गई ॥ ४४ ॥

तर्षजाम् ॥ छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥४३॥ आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्। यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पिङ्गलोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आठवें अध्यायका सार—ब्राह्मणने कहा–इन्द्रिय जन्यसुख कहीं भी मिलसकता है, लेकिन उसके साथ दुःखभी रहता है। अतः बुद्धिमान्को उसके पीछे नहीं पड़ना चाहिये। अजगर के समान रुचिकर या नीरस जो भी मिले उसे खाना चाहिये या न मिला तो हवा खाकर पड़े रहना चाहिए। सागर जैसा गम्भीर, अपार, अक्षोभ्य मुनिको होना चाहिये। देवमाया निर्मित स्त्रीकी चेष्टाओंसे मनुष्य मुग्ध होकर पतंगके समान अपने को नष्ट कर देता है। जितना शरीरके लिए जरूरत है उतनाही मधुकरी वृत्तिसे गृहस्थोंको पीडा न देते हुये सम्पादनकर खाना चाहिये। मधुकरके समान सारग्राही होना चाहिये। हाथको भिक्षापात्र और पेटको संग्रहपात्र समझना चाहिये जैसे मक्खी होती है लकड़ीकी युवतीका पैरसे भी स्पर्श न करना चाहिये, करनेसे हाथी-जैसे हथिनीके लोभसे फँसा है। वैसेही योगी फँस जाता है कृपण जिस अर्थका न पान करता है न भोग उसका दूसरोही भोग करता है; जैसे–मधुउतारनेवाला। गृहस्थ कष्टसे अर्जन करता है लेकिन उसका भाग अप्रयत्नसे पहले यति को मिलता है। वनवासी संन्यासी ग्राम्यगीत सुननेसे हरिणकी तरह फँसता है। स्त्रियोंके नृत्यवादित्रादिको भी नहीं सुनना चाहिये उससे मृगीसुत ऋष्यशृंगके समान फंसनेका भय है। जिह्वा चाचंल्यसे मुग्ध नहीं होना चाहिये नहीं तो मछली जैसे आमिषलोभसे काटेमें फँसकर मरती है वैसी अवस्था होगी निराहारी सभी इन्द्रियोंपर विजय पासकते हैं, लेकिन रसनेन्द्रियपर नहीं उसपर जय पानेसे बाकी इन्द्रियोंको जीतना सहल है। विदेह नगरीमें पिङ्गला नामकी वेश्या रहती थी उससे हमने जो सीखा सुनो। वह एकबार किसी नागरिकके समागमकी इच्छासे सजधजकर दरवाजे में बैठी। जो रास्तेसे जाता उसीके तरफ आशासे देखती लेकिन कोई भी उस दिन उसके पास नहीं आया इसी तरह आधी रात हो गयी लेकेन जब कोईभी उस दिन उसके पास नहीं आया तब उसका मुँह सूख गया उसको एकदम निर्वेद उत्पन्न हो गया। यह निर्वेद ही देह बन्धन को काटता है। निर्विण्ण चित्तसे वह कहने लगी–हाय, मेरी मूर्खता तो देखो मेरा अपनी इन्द्रियोंपर कुछ भी अधिकार नहीं। मेरे हृदयमें परमानन्द देनेवालेके रहते हुये भी मैं बाहरी तुच्छ पुरुषोंसे अपनी कामना पुरी करनी चाहती हूँ अब मैं ग्रामीण पुरुषों में आसक्ति छोड़कर भगवान्की ही शरणमें जाऊँगी। हे राजन्, यों निश्चयकर वह सो गई। हे नहीपते, आशासे दुःख और निराशासे सुख मिलता है, यह दिक्षा मैंने इस वेश्या से ही पाई है। आठवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❃ अथ नवमोऽध्यायः ❃

[कुरपक्षी आदिसे प्राप्त शिक्षा]

ब्राह्मणने कहा—हे राजन्, किसी भी वस्तुका परिग्रह तथा कोई भी प्रिय वस्तु दुःख कारक है, यह जानकर जो निष्किञ्चन रहता है वह अनन्त सुख पाता है ॥ १ ॥ एक कुररपक्षीके पास मांस था, इसलिये उपको बाकी बली पक्षी जिनके पास मांस नहीं था वे मारने लगे। उस आमिषका जब उसने त्याग किया तो उसको सुख मिला ॥२॥ मुझे मानकी परवाह है न अपमान की और न घर या पुत्रोंकी चिन्ता ही है, अतः मैं बच्चेके समान खुद अपनेसे ही खेलता हुआ अपने ही आनन्दमें मस्त होकर फिरता हूँ ॥ ३ ॥ दो ही लोग चिन्तासे मुक्त और परमानन्दमग्न रहते हैं—एक अज्ञ, जड़ या बाल, दूसरा जो गुणके परे हैं ॥ ४ ॥ एकबार एक कुमारी जब घरके लोग बाहर गये थे तब घरमें पहुँचे अपने

ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥ अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चनः ॥ १ ॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ॥ यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥ क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥५॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन् रहसि पार्थिव ॥ अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शङ्खाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभञ्जैकैकशः शङ्खान्द्वौद्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्म शङ्खयोः तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिन्दम ॥ लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहोभवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कङ्कणः ॥ १० ॥ मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैःशनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन

वरणके लिये आये भावी पतिके घरके लोगोंका आतिथ्य करनेका तैयार हुई ॥ ५ ॥ उनके खानेके लिए जब वह धान कूट रही थी तब उसके हाथके शंखके कङ्कण शब्द करने लगे ॥६॥ वह उसको दरिद्रता द्योतक समझकर एक-एक करके फोड़ने लगी तब एक-एक हाथमें सिर्फ दो दो बाकी रक्खे ॥ ७ ॥ जब फिर कूटने लगी, तो उनकी आवाज होने लगी, अतः उसने एक-एक फोड़कर एक-एक ही बाकी रखे, तब शब्द बन्द हुआ ॥ ८ ॥ लोकतत्त्व जाननेके लिए लोकमें घूमनेवाले मैंने उससे उपदेश लिया कि बहुत लोगोंके रहनेसे कलह और दो के रहनेसे भी बात चीत होती है, इसलिए अकेले ही घूमना चाहिए ॥ ९, १० ॥ श्वास और आसनको जीत करके वैराग्य तथा योगाभ्याससे मनको स्थिर रखकर निरलस होकर उसको एक तरफ लगाना चाहिए ॥ ११ ॥ जिसमें मन स्थिर होनेपर धीरे-धीरे कर्म वासनाको छोड़ता है उस परमात्मामें ही मनको स्थिर करना चाहिए। ऐसा करनेसे सत्त्वकी जब वृद्धि होती

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है तब रज और तम अपने ही इन्धन रहित अग्निके समान शान्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥ इस तरह आत्मामें चित्त स्थिर होनेपर अन्दर या बाहरका कुछ भी वह नहीं जानता, जैसा बाण बनानेवाला पापसे गए राकाको भी नहीं देखता ॥ १३ ॥ अकेले घूमना चाहिये, गृहहीन गुफामें रहनेवाला सावधान होना चाहिए। अल्पभाषी होकर अपने गतिको न मालूम होने देना चाहिए ॥ १४॥ घर बनाना बहुत दुःखकर है और इस नश्वरदेहके लिए व्यर्थ भी है। सर्प जैसे दूसरेके द्वारा बनाये गये घरमें रहकर सुखी रहता है वैसे ही गुहादिमें रहना चाहिए ॥ १५ ॥ अकेले ही भगवान् नारायण अपनी मायासे विश्वकी सृष्टि करता है तथा अकेले कालशक्तिसे उसका संहार करता है ॥ १६ ॥ कालसे आत्मप्रभावसे सत्वादिशक्ति जब समान हो जाती है तब प्रधान और पुरुषका स्वामी आदि पुरुष अखिलाधार अकेले ही अद्वितीय नारायण रहता है ॥ १७ ॥ केवल अपनी सामर्थ्य अपनी माया त्रिगुणात्मिका

वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किञ्चिद्बहिरन्तरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥१३॥ एकचार्यऽनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥१४॥ गृहारम्भोऽतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥१५॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥१६॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिन्दम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां सन्तत्य वक्त्रतः ॥ तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥ स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥ २२ ॥ कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः ॥ याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥ देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्व-

प्रकृतिको क्षुब्ध करके उससे महान्‌की सृष्टि करता है ॥ १८ ॥ वह त्रिगुणकी अभिव्यक्ति महत्तत्व है, वह इस विविध विश्वका अहङ्कारसे निर्माण करती है। उसीमें यह विश्व ओत प्रोत है उसी सूत्ररूपी वायुमें जीव रहता है ॥ १९, २० ॥ जिस तरह मकड़ी अपने हृदयसे तन्तु निकालकर उसीसे खेलकर फिर पेटमें ले लेती है उसी तरह भगवान् विश्वकी उत्पत्ति तथा संहार करते हैं ॥ २१ ॥ प्राणी जिसमें बुद्धि लगाकर ध्यान करेगा वह स्नेहसे हो, द्वेषसे हो या भयसे हो, उसीकी तरह हो जायगा। जैसे कि कुटिमें प्रविष्ट कराके पेशस्कृतसे रुद्ध कीडा उसका ध्यानकर उसीके समान उसी देहमें होता है ॥ २२, २३ ॥ ऐसा प्रकार इन गुफाओंसे मैंने बुद्धि पायी है। अब अपनेसे मैंने क्या सीखा सुनो ॥ २४ ॥ यह देह जन्म-मरण शील तथा दुःखपर्यवसायी है, इससे मैंने विरक्ति तथा विवेक सीखा। यद्यपि इसी देहसे मैं तत्व विचार करता हूँ, फिर भी यह शृगालादिका भक्ष्य है, यह नहीं भूलता और निःसङ्ग घूमता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हूँ ॥ २५ ॥ यह देह अपनी प्रीतिके लिए स्त्री, पुत्र, पैसा, पशु, भृत्य, घर, आप्तवर्ग इनका सम्पादनकर इनको पोसता है। कष्टसे धन इकट्ठा करता है और वृत्तके समान देहान्तर बीजभूत कर्मकी सृष्टि करके नष्ट होता है ॥ २६ ॥ इसको एक तरफ भूख खींचती है, तो दूसरी तरफ प्यास, ऐसे ही गुह्य, त्वग्, उदर, कान, नाक, आँख अपनी ओर खींचते रहते हैं । इन सब कर्म शक्तियोंके बीचमें सपत्नियोंसे गृहस्थके समान यह तोड़ा जाता है ॥ २७ ॥ भगवान् वृत्त, साँप, पशु, पत्ती, कीड़े, मछली, सभीकी सृष्टि करके सन्तुष्ट न होकर ब्रह्मज्ञानके लिए जिसे बुद्धि है ऐसे मनुष्यको तैयारकर आनन्दित हुआ ॥ २८ ॥ बहुत जन्मोंके बाद अनित्य होनेपर भी पुरुषार्थ प्रापक इस मनुष्य शरीरको पाकर पीछे लगी हुई मृत्युके पहले ही मोक्षके लिए

निधनं सततात्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥ स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः सृष्ट्वास्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥२६॥ जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥२७॥ सृष्ट्वापुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥ एवं सञ्जातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसङ्गोऽनहङ्कृतिः ॥३०॥ न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः ॥ वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ ॥ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥ सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

प्रयत्न करना चाहिए । विषयोपभोग तो सभी जन्ममें रहते हैं ॥ २९ ॥ इस तरह उत्पन्न विज्ञानका प्रदीप लेकर विरक्त निस्संग, और निरहङ्कार होकर आत्मामें लीन हो पृथ्वी पर घूमता हूँ ॥ ३० ॥ एकही गुरुसे स्थिर और ज्यादा ज्ञान नहीं हो सकता । इस अद्वितीय ब्रह्मका अनेक ऋषि अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं ॥ ३१ ॥ भगवान्ने कहा—हे उद्धव, ऐसा कहकर वह ब्राह्मण राजाकी पूजा ग्रहणकर उससे विदा लेकर आनन्दसे चला गया ॥ ३२ ॥ हमारे पूर्वजोंके पूर्वज यदु उस अवधूत की वाणी सुनकर सर्वसङ्ग मुक्त हो समचित्त हो गये ॥ ३३ ॥

नवें अध्यायका सार—ब्राह्मणने कहा—सभी प्रिय वस्तु दुःखकारक होती है अतः जो अकिञ्चन रहता है वही सुखी होता है । एक कुररपत्तीके पास मांस था इसलिये उसको सब पत्ती उसके लिये मारने लगे जब उसने मांसका परित्याग किया तभी वह सुखी हुआ । मुझे न मान है न अपमान न घरबारकी चिन्ता है अतः बच्चेके समान अपनेमें ही मस्त रहता हूँ । दोही लोग निश्चिन्त और आनन्दमग्न होते हैं—एक तो मूर्ख बाल या जड़ और दूसरा त्रिगुणातीत । एक कुमारीके घर उसके भावी ससुरालके लोग देखने आये । उस समय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

घरमें दूसरा कोई नहीं था। उस कुमारीने ही उनको आवभगत करनेकी ठानी। उनके खानेके लिये घरमें चावल न होनेके कारण वह धान कूटने लगी। उसके हाथकी शंखकी चूड़ियाँ बजने लगीं। उसने सोचा—सुनेंगे तो क्या कहेंगे। उसने बाकी कंकण फोड़कर दो दो रहने दी। फिर भी आवाज होने लगी तब एक-एक फोड़ डाली अब आवाज बन्द हो गई उसी तरह अनेक लोग साथ रहनेपर लड़ते हैं और दो रहनेपर भी बातचीत करते हैं। इसप्रकार इन गुरुओंसे मैंने शिक्षा पाई। अब मैंने अपने देहसे क्या सीखा, सुनो—यह देह जन्म-मरणशील है इसके सभी कार्य दुःख पर्यवसायी हैं। इससे मैंने विरक्ति तथा विवेक सीखा। इससे मैं तत्त्वविचार करताहूँ, इसलिये यह उपकारी है, फिर भी यह शृगालादिका खाद्य है, इसको मैं नहीं भूलता। अनेक जन्मोंके बाद प्राप्त मनुष्य शरीर नश्वर होनेपर भी जबतक मृत्यु आघात नहीं करती, तबतक मोक्षसाधन करते रहना चाहिए। इस तरह ज्ञानका प्रदीप लेकर निस्संग निरहंकार हो मैं घूमता हूँ। भगवान्ने कहा—ऐसा कहकर यदुकी पूजा ग्रहण करनेके बाद वह ब्राह्मण चला गया यदुने भी अवधूतकी बातोंका आचरण किया और वे निस्संग तथा समचित्त हो गये। नवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ दशमोऽध्यायः ❀

(निष्काम कर्मकी श्रेष्ठता और सकाम कर्मकी निन्दा वर्णन)

श्री भगवान्ने कहा—मेरा आश्रयण करके मेरे द्वारा कहे गये धर्मोंका सावधानीसे पालनकर निष्काम होकर वर्णाश्रम तथा कुलधर्मका भी आचरण करना चाहिए ॥१॥ शुद्ध चित्त होकर गुणोंमें सत्यत्वाभिमानसे किये गये विषयाभिनिवेशी लोगोंके सभी आरम्भोंका दुःख पर्यवसायित्व देखना चाहिए। स्वप्नमें जो मनोरथात्मक विषयावभास होता है वह नानात्मक

श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ॥ गुणेषु तत्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयु-

होनेके कारण जिस तरह निष्फल है उसी तरह इन्द्रियोंसे होनेवाला भेद ज्ञान भी ॥ २,३ ॥ मत्परायण होकर नित्यनैमित्तिक कर्म करना चाहिए काम्यको न करना चाहिए। आत्मविचार प्रवृत्त होनेपर नित्यनैमित्तिक भी करनेकी आवश्यकता नहीं रहती ॥४॥ भगवद्भक्तको अहिंसादि नियमोंका पालका करना चाहिए, नियमोंका भी क्वचित् पालन करना चाहिए,। आत्मज्ञ-शमादि सम्पन्न मद्रूप गुरुकी सेवा करनी चाहिए ॥ ५ ॥ मानरहित, निर्मत्सर, दक्ष, ममत्वहीन, गुरुमें दृढ़ सौहार्दवाला, अव्यग्र, व्यर्थ न बोलनेवाला, अर्थ जाननेकी इच्छा करनेवाला, ईर्ष्या रहित, अपनी बात सच्ची करके दिखानेवाला होना चाहिए ॥ ६ ॥ पत्नी, पुत्र, घर, क्षेत्र, द्रव्य, स्वजन इनमें उदासीन रहकर अपनो देहके समान सभीमें अर्थ देखनेवाला होना

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चाहिए ॥ ७ ॥ स्थूल-सूक्ष्म देहसे विलक्षण द्रष्टा स्वप्रकाश आत्मा है, जैसा कि जलनेवाले काठके अतिरिक्त प्रकाशक जलनेवाला अग्नि होता है ॥ ८ ॥ जिस तरह काष्ठमें प्रवेशकर अग्नि उसके उत्पत्ति-विनाश छोटापन, बड़ापन इन गुणोंको पाता है वस्तुतः अग्निमें ये नहीं है उसी तरह देहमें प्रविष्ट आत्मामें देह गुणोंका आरोप होता है ॥ ९ ॥ प्रकृतिके गुणोंसे रचित जो यह पुरुषकी देह है उसीके कारण जीवको आत्मका ज्ञान नष्ट करनेवाला संसार है ॥ १० ॥ अतः विचार करके कार्यकारण संधानमें अवस्थित, केवल, श्रेष्ठ आत्माको ठीक जानकर शरीरमें स्थूल-सूक्ष्म क्रमसे वस्तु बुद्धिका त्याग करना चाहिए ॥ ११ ॥ आचार्य अधरारणि और शिष्य उत्तरारणि हैं, प्रवचन यह मन्था है और विद्या उसमें निकलनेवाली अग्नि है ॥ १२ ॥ वह विद्यारूपी वैशारदी बुद्धि अत्यन्त निर्मल होनेसे गुण कार्य मायाको नष्टकर देती है यद्रूप यह विश्व इसके गुणोंको भी जलाकर स्वयं भी इंधन रहित अग्निके समान शान्त हो जाती

रमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥७॥ विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ॥ यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान् गुणान् ॥ अन्तः प्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥ योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ सङ्गम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासन्धिः सुखावहः ॥१२॥ वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च सन्दह्य यदात्ममेतत्स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः ॥ १३ ॥ अथैषां कर्मकर्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ॥ तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥ एवमप्यङ्ग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ॥ कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते ॥ भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत् । १७ ॥ न देहिनां सुखं किञ्चिद्विद्यते विदुषामपि ॥ तथा च दुःखं मूढानां वृथाहङ्करणं परम् ॥ १८ ॥ यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुखदुःखयोः ॥ तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न

है ॥१३॥ अगर कर्म करनेवाले सुख दुःख भोग करनेवाले आत्माको नाना भोगकाल, कर्मबोधक आगम तथा आत्माको नित्य मानते हों, सब पदार्थोंके प्रवाहसे नित्य और सत्य मानते हो, यदि आत्मा नित्य ज्ञानरूप नहीं है, किन्तु आकार भेदसे भिन्न अनित्य ज्ञान उसको होते रहते हैं ऐसा मानते हो, तो भी सभी जीवोंको देह सम्बन्धसे कालावयव संवत्सरादिसे जन्म, मरणादि विकार होते ही रहते हैं ॥ १४, १५, १६ ॥ इसमें भी कर्म-कर्ता और सुख-दुःख भोक्ता आत्माका अस्वातंत्र्य ही व्यक्त होता है, क्योंकि न चाहनेपर भी दुष्कर्ममें प्रवृत्ति देखी जाती है । ऐसे परतंत्र आत्माको कौन विषय सुखकर हो सकता है ॥ १७ ॥ विद्वान् लोगोंको भी दुःख और मूर्खोंको भी सुख देखा जाता है अतः हम कर्मकुशल होनेके कारण सुखी हैं यह भी वृथाभिमान है ॥ १८ ॥ मान भी लिया जाय कि ये लोग सुख प्राप्ति दुःख निवृत्तिका उपाय जानते हैं फिर भी मृत्युका तो कोई उपाय नहीं जानते ॥ १९ ॥ जिसको मृत्युका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

भय है उसको कौन विषय सुख दे सकता है ? मारनेके लिए वध्य स्थानपर जिसको लाया जाता है उसको कौन चीजसे आनन्द हो सकता ॥ २० ॥ स्वर्गादि सुख भी स्पर्धा, असूया क्षय, तथा अन्न युक्त होनेके कारण एवं कृषिके समान अनेक विघ्नयुक्त होनेके कारण निष्फल ही है ॥ २१ ॥ यदि विना विघ्न पूर्वक धर्मका अनुष्ठान ठीक हुआ, तो उससे मिले हुए भी स्थानको लोग जैसे जाते हैं उसे सुनो ॥२२॥ यहाँ यज्ञसे देवताओंको तृप्त करके याज्ञिक स्वर्गको जाता है और वहाँपर अपने सम्पादित दिव्य भोगोंको भोगता है ॥२३॥ अपने पुण्य से मिले शुभ्र विमानमें सुन्दर वेष पहनकर यह बैठता है, गन्धर्व इसकी स्तुति करते हैं तथा दिव्य स्त्रियोंके बीच विहार करता है ॥ २४ ॥ स्त्रियोंके साथ छोटे घण्टियोंसे युक्त कामगामी यानमें बैठकर क्रीडा करते हुए यह जब सुरापानमें मग्न रहता है तब यह अपना पतन नहीं जानता ॥ २५ ॥ जब तक पुण्य खतम नहीं होता तब तक आनन्द लेता है। खतम होनेपर भी

भवेद्यथा ॥ १९ ॥ कोऽन्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके ॥ आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥ श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ॥ बह्वन्तरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥ अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ॥ गन्धर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥ स्त्रीभिः कामगयानेन किङ्किणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥२५॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६॥ यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वाऽजितेन्द्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७॥ पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् ॥ नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥२८॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन्देहेन तैः पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥ गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्यास्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् । य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥ काल आत्मागमो लोकः स्वभावो

न चाहनेपर कालकी प्रेरणासे नीचे गिरता है ॥ २६ ॥ यदि कोई अधार्मिक अजितेन्द्रिय कामी कृपण, लोभी, स्त्रैण, भूतहिंसक, दुष्टोंके सङ्गसे बिना विधिके पशुको मारता है तथा प्रेत या भूतगणोंकी उपासना करता है तो वह अज्ञात बहुत घोर अन्धकारमें पड़ता और नरकमें जाता है ॥ २७, २८ । देहसे दुःखात्मक फल देनेवाले कर्म करता है, फिरसे देह पाता है। इसमें जीवको क्या सुख है ॥ २९ ॥ कल्पजीवी लोगोंको तथा लोकपालोंको भी मेरा भय है। दो परार्धसे ऊपर जिसकी आयु है उस ब्रह्माको भी मुझसे भय है ॥ ३० ॥ इन्द्रिय कर्म करते हैं और सत्त्वादि गुण ही इन्द्रियोंको उत्पन्न करते हैं। गुणोंके सम्बन्धसे जीव कर्म फलोंका भोग करता है ॥ ३१ ॥ जब तक गुण वैषम्य है तबतक आत्मनानात्व है। जबतक ना-नात्व है

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तवतक पारतन्त्र्य है ॥ ३२ ॥ जब तक अस्वातंत्र्य है तबतक ईश्वरसे भय है । जो गुण वैषम्यका भजन करते हैं वे शोक और मोह पाते हैं ॥ ३३ ॥ जब मायामें क्षोभ पैदा होता है तब मुझे काल, आत्मा, आगम, लोक, धर्म ऐसा कहते हैं ॥ ३४ ॥ उद्धवने कहा—हे विभो, गुणोंमें रहनेपर भी देहजकर्मोंमें गुणोंसे अलिप्त रहकर बद्ध कैसे नहीं होता और कैसे होता है

धर्म एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥३४॥ उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥ कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुञ्जीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसम्वादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यह मुझे कहिए ॥ ३५ ॥ ये दोनों कैसे रहते हैं, विहार करते हैं, खाते हैं, सोते हैं, बैठते हैं जाते हैं कौनसे लक्षणोंसे जाने जाते हैं, हे अच्युत, यह मुझे बतलाइये प्रश्न जाननेवालोंमें आप श्रेष्ठ हैं, नित्यबद्ध और नित्यमुक्त एक ही है—ऐसा मुझे भय है ॥ ३६,३७ ॥

दसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा-हे उद्धव, मेरे भक्तको मेरे द्वारा बनाये गये धर्मोंका सावधानीसे तथा निष्काम बुद्धिसे पालन करना चाहिए । त्रिगुणात्मक पदार्थोंको सत्य समझ कर विपर्याभिनिवेश रखनेवालोंके कर्मका दुःखपर्यवसायि देखना चाहिए । स्वप्न मनोरथ नानात्मक होनेके कारण जैसे निष्फल होते हैं वैसेही इन्द्रियोंसे होनेवाला भेदज्ञान भी है । मेरे ऊपर श्रद्धा रखकर नित्य नैमित्तिक आचरण करना चाहिए, काम्यका नहीं । प्रकृतिसे रचित देहके कारण ही जीवको आत्मज्ञान नाशक संसार प्राप्त होता है, अतः इसमें रहनेवाले आत्माको ठीक रीतिसे जानकर पहले स्थूल देहमें बादमें सूक्ष्म देहमें वस्तुबुद्धिका त्यागकरना चाहिए । विद्वान्‌को दुःख और मूर्खको सुख देखनेकेबाद हम कर्मकुशल हैं अतः सुखी हैं ऐसा अभिमान करना वृथा है । सुखप्राप्ति दुःख निवृत्तिका उपाय मालूम है ऐसा माननेपर भी मृत्युका उपाय नहीं मालूम है और जबतक मृत्युका भय है तबतक किस बातसे सुख हो सकता है । जिसको मारनेके लिये वध्यस्थानमें ले जा रहे हैं उसको किस बातका सुख हो सकता है । स्वर्गादि सुख भी ईर्ष्या असूयासे युक्त तथा शान्त है और वह भी अगर साग्रकर्मका अनुष्ठान निर्विघ्न हुआ तो मिलता है । निर्विघ्न अनुष्ठान करनेके बाद मिले हुए स्वर्गादि स्थानकी भी क्या गति होती है । पुण्य खतम होनेपर इच्छा रहनेपर भी कालगतिसे वह नीचे गिरा दिया जाता है । जबतक गुण वैषम्य है तबतक यह संसार भी है । उद्धवने पूछा—हे विभो, गुणोंमें रहकर भी प्राणी गुणोंसे अलिप्त कैसे रहता है और बद्ध कैसे रहता है । किन लक्षणोंसे यह पहचाना जाय । बद्ध और मुक्त एकही जैसे हैं, ऐसा मुझे भ्रम है । दसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ एकादशोऽध्यायः ❋

(बद्ध और मुक्तोंके लक्षण तथा साधुके लक्षण)

श्रीभगवान् कहते हैं—बद्ध और मुक्त ये व्यवहार गुणके कारण तथा गुण मायामय होनेके कारण मुझे न बन्ध है न मोक्ष ॥ १ ॥ शोक, मोह सुख-दुख सब मायासे ही है। स्वप्नके समान यह बुद्धिपरिमाण है न कि वास्तव ॥ २ ॥ विद्या और अविद्या मेरी शरीर है। हे उद्धव, मेरी मायासे निर्मित ये आत्माको बंध और मोक्ष देनेवाली ये दोनों अनादि हैं ॥३॥ मेरे अंश भूत एक ही जीवके लिए अविद्यासे बंध और विद्यासे मोक्ष होता है ॥ ४ ॥ अब मैं तुम्हें एक ही धर्मी आत्मामें रहनेवाले बंध और मुक्त विरुद्ध धर्मियोंका वैलक्षण बताता हूँ ॥ ५ ॥ एक ही वृक्ष [देह] में घर बनाकर रहनेवाले ये समान [चिद्रूप] मित्र [अवियोगी] पक्षी [जीव-ईश्वर] है। उनमेंसे एक पीपलके [देहके] फल [कर्म] का स्वाद

श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ १ ॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहापत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबन्धकारी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥३॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बन्धोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥७॥ देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहङ्कुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥ दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्ताऽस्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शन-

लेता है और दूसरा [ईश्वर] उसको न खाकर भी बलसे [ज्ञानशक्तिसे] अधिक है ॥ ६ ॥ जो पिप्पलाद (कर्मफल भोग करनेवाला) नहीं है वह आत्माको सबसे विलक्षण समझता है, पिप्पलाद [जीव] नहीं समझता। जो विद्यायुक्त हैं वह नित्ययुक्त और जो अविद्यायुक्त है वह नित्यबद्ध है ॥७॥ जो ज्ञानी है वह देहमे रहनेपर भी स्वप्नसे जगे हुएके समान देहमें[1] नहीं रहता। अज्ञानी स्वप्न देखनेवालेके समान देहमें न रहनेपर भी रहता है ॥ ८ ॥ जो अविकारी विद्वान् हैं वह इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होनेपर भी गुणसे गुण गृहीत होते हैं ऐसा समझ कर मैं करता हूँ ऐसा नहीं समझता है ॥ ९ ॥ इस दैवाधीन शरीरमें रहकर गुणोंसे होनेवाले कर्मसे मैं कर्ता हूँ ऐसा समझकर बद्ध होता है ॥१०॥ इस तरह विद्वान् सोने, बैठने,

१ सुख-दुखरूपी फल नहीं भोगता। २ फल भोगता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहाने, देखने, छूने, सूँघने, खाने, सुननेमें इन्द्रिय गुणोंका भोग करते हैं ऐसा समझकर स्वयं विरक्त होकर प्रकृतिमें रहनेपर भी वायु आकाश, या अग्निके समान अलिप्त रहता है ॥११, १२ ॥ वैराग्यसे तीक्ष्ण निपुण बुद्धिसे संशयका छेद करके स्वप्नसे उठे हुएके समान नानात्वसे निवृत्त होता है ॥१३॥ जिसके प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सब संकल्प रहित होते हैं वह देहमें रहनेपर भी उसके गुणोंसे मुक्त रहता है ॥ १४ ॥ दुष्टलोगोंके द्वारा देहको पीड़ा देनेपर या कभी किसीके द्वारा पूजा करनेपर भी ज्ञानी न दुःखित होता है और न तुष्ट ही होता है ॥ १५ ॥ गुण दोषसे रहित समदृष्टि मुनिको अच्छा या बुरा कहनेवाले या करनेवालेकी न स्तुति करनी चाहिए न निन्दा ॥ १६ ॥ ऐसे लोगोंको न कुछ अच्छा-बुरा कहना चाहिए, न कुछ करना चाहिए अपनेमें ही सन्तुष्ट रहकर जड़के समान मुनिको रहना चाहिए ॥ १७ ॥ वेदमें महान् पण्डित होनेपर यदि भगवान्का ध्यान नहीं करता, उसके श्रम केवल श्रमके लिए

स्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥ १२ ॥ वैशारद्येक्षयाऽसङ्गशितया छिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्य स्युर्वीतसङ्कल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥ १४ ॥ यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किञ्चिद्यदृच्छया ॥ अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥१५॥ न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥ १६ ॥ न कुर्यान्न वदेत्किञ्चिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥ शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥ गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमङ्ग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥१९॥ यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥२०॥ एवं जिज्ञासयापोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्सङ्गलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता ॥

ही है, जिस तरह दूध न देनेवाली गायको पोसना ॥ १८ ॥ जिसका दूध दुह लिया जाता है ऐसी गाय, दुश्चरित्रा भार्या, पराधीन देह, दुष्ट प्रजा, योग्य पात्रमें दान न किया द्रव्य, मेरे कीर्तनसे हीन वाणी जो रखता है वह दुःखही दुःख पाता है ॥१९॥ जिस वाणीसे सर्ग-स्थिति-प्रलयका कारण मेरा कर्म तथा लीलावतारसे किये गये राम-कृष्णादिजन्मका कीर्तन नहीं होता, बुद्धिमान्को ऐसी वाणीको नहीं धारण करनी चाहिए ॥ २० ॥ इस प्रकार विचारसे आत्मानानात्वभ्रम दूर करके विशुद्ध मन मुझमें लगा करके शान्त होना चाहिए ॥ २१ ॥ ब्रह्ममें मन स्थिर रखनेमें असमर्थ हो, तो निष्काम होकर सब कर्म मुझे अर्पण करो ॥ २२ ॥ हे उद्धव, श्रद्धा रखकर लोकको पवित्र करनेवाली कल्याणकर मेरी कथा सुननेवाला, मेरे जन्म-कर्मका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बार-बार स्मरण, गायन तथा अभिनय करनेवाला, मेरे प्रीत्यर्थ धर्म-काम-अर्थका आचरण करनेवाला प्राणी मेरा आश्रय करके सनातन मुझमें दृढ़ भक्ति पाता है ॥ २३, २४ ॥ सज्जनोंके सङ्गसे प्राप्त भक्तिसे मेरी जो उपासना करता है वह सज्जनों द्वारा दर्शित निश्चित मेरे स्वरूपको पाता है ॥ २५ ॥ उद्धवने कहा—हे उत्तमश्लोकप्रभो, तुम्हारे मतसे साधु कैसा होता है। तुममें कैसी भक्ति उपयुक्त होगी, जो नारदादि सज्जनों द्वारा अपनाई गई ॥२६॥ हे पुरुषाध्यक्ष, लोकस्वामी, जगत्प्रभो आपपर अनुरक्त, शरणागत, नतमस्तक मुझे यह बात बताइए ॥ २७ ॥ तुम परब्रह्म हो निस्सङ्ग हो तुम प्रकृतिसे श्रेष्ठ पुरुष हो तुमने अपनी इच्छासे यह परिमित रूप धारण किया है ॥ २८ ॥ भगवान्‌ने कहा—जो सभी प्राणियोंपर दयालु, द्रोह-रहित, क्षमाशील है, सत्य जिसका बल है, जिसकी आत्मा निर्दोष है, जो सम सर्वोपकारक है, जिसका चित्त विषयोंसे क्षुब्ध नहीं होता, जो इन्द्रियविग्रही है, जो मृदु, शुद्ध, परिग्रहशून्य

स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो । भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोऽसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ॥ अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥३०॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मया दिष्टानपि स्वकान् ॥ धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥ भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥ मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥३४॥ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥३५॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥ गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥

निरिच्छ, मितभोगी, शान्त, स्थिर है, जिसने मेरी शरण ली है जो मननशील, सावधान, गम्भीर, धैर्यशील, षड्वर्गजयी, मानरहित, दूसरेको मान देनेवाला है, जो समर्थ, निर्वञ्चक, करुणामय, विद्वान् है जो उनके गुण दोष जानकर भी मेरे द्वारा वेदमें उपदिष्ट अपने धर्मको छोड़कर भी मेरा भजन करता है वह साधु श्रेष्ठ है ॥ २९, ३०, ३१, ३२ ॥ जो देशकालापरिच्छिन्न, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्दरूप मुझे जानकर या ये सब जानकर भी अनन्य भावसे मेरा भजन करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं ॥३३॥ मेरी प्रतिमा तथा भक्तोंका दर्शन स्पर्श, पूजा, परिचर्या, स्तुति, प्रणाम करना, गुण-कर्म कीर्तन, मेरे कथा श्रवणमें श्रद्धा, मेरा ध्यान, सभीका अर्पण करना, दास्यभावसे आत्मनिवेदन, मेरे जन्म-कर्म कहना, मेरे जन्माष्टम्यादि पर्वोंका अनुमोदन करना, मेरे मन्दिरमें गीत-ताण्डव-वाद्य गोष्ठियोंसे उत्सव करना, वर्षके एकादश्यादि पर्वमें यात्रा या पुष्पार्चनादि करना, वैदिक और तान्त्रिक दीक्षा‡ लेना, मेरे एकाद-

‡ मन्त्रोपदेश ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इत्यादि व्रत लेना, मेरी पूजा या स्थापनामें श्रद्धा रखनी चाहिए, अकेले या मिलकर उसके लिए उद्योग करना, उसी तरह उद्यान, उपवन, क्रीडास्थान, पुर मन्दिरके निर्माणके लिए उद्योग करना, मेरे मन्दिरको झाड़ना लीपना या नौकरके समान पानी छिड़कना, मान या दम्भ न करना, किए हुए कर्म न कहना, दूसरेके कहने पर अङ्गीकार न करना, मेरे दीपकका अपने लिए उपभोग न करना, भगवान्के लिए जो पदार्थ हैं उनका उपभोग न करना तथा अपनेको जो इष्ट या प्रिय है उसको मुझे अर्पण करना चाहिए, ऐसा अर्पित अनन्तफल देता है ॥ ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१ ॥ सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गाय, वैष्णव, अतिथि, वायु, जल, भूमि, आत्मा, सर्वभूत ये सभी मेरे पूजाके स्थान हैं ॥ ४२ ॥ सूर्यमें वेदसे,

यात्राबलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥ वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्व-मदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥ ४२ ॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ॥ आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वङ्ग यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्य-धिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वे-ष्विति मद्रूपं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥ इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन ॥ सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धव-संवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अग्निमें हविसे ब्राह्मणमें आतिथ्यसे गायमें तृणादिसे, वैष्णवमें सत्कारसे, हृदयाकाशमें ध्यानसे, वायुमें अभिमानित्वसे, पानीमें तर्पणादिसे, भूमिमें रहस्य मन्त्रन्याससे देहमें भोगोंसे सभी भूतोंमें समत्वसे मुझ क्षेत्रज्ञकी पूजा करनी चाहिए ॥ ४२, ४३, ४४, ४५ ॥ इन सभी स्थानोंमें शंख-चक्र गदा-पद्मधर चतुर्भुज शान्त मेरे रूपका ध्यान करते हुए पूजा करनी चाहिए ॥ ४६ ॥ इस तरह अग्निहोत्रादि इष्टसे और पापी कूपादि पूर्तसे जो स्थिरचित्तसे मेरी पूजा करता है वह उससे तथा साधुसेवासे मेरी भक्ति पाता है ॥ ४७ ॥ भक्तियोग और सत्सङ्गके बिना दूसरा सीधा मार्ग नहीं है। मैं सज्जनोंका आश्रय हूँ ॥ ४८ ॥ इसके बाद मैं तुमको अत्यन्त गुह्य बात कहता हूँ। हे यादव, तुम मेरे भृत्य, सुहृद और सखा हो, अतः अत्यन्त गोप्य होने पर भी तुमसे कहता हूँ ॥ ४९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्यारहवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, प्रकृतिके गुणोंके कारण बद्ध और मुक्त है। उसके परे होनेके कारण मुझे न बन्ध है, न मोक्ष। शोक-मोह, सुख-दुख, देहप्राप्ति सभी मायासे हैं। स्वप्नके समान सभी बुद्धि परिणाम है, वास्तवमें नहीं। विद्या और अविद्या ये मेरा शरीर है मायानिर्मित आत्माको ये बंध-मोक्ष देती हैं। ये अनादि हैं। एक ही जीवको अविद्यासे बंध और विद्यासे मोक्ष होता है। अब मैं बद्ध और मुक्तका वैलक्षण्य बताता हूँ। एक ही शरीररूपी वृक्षमें घर बनाकर जीव और ईश्वर ये दो पक्षी रहते हैं। उनमें एक [कर्मका] फल खाता है और दूसरा ईश्वर न खाकर भी पुष्ट [ज्ञानी] है। जो विद्यायुक्त है वह नित्यमुक्त और अविद्यायुक्त निसम्बद्ध होता है। विद्वान् इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण है, मैं उसमें कर्ता नहीं हूँ, ऐसा समझता है और मूर्ख 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा समझता है। विद्वान् उठना, बैठना, खाना, इत्यादि करने पर भी इन्द्रिय गुणोंका भोग करते हैं ऐसा मानकर प्रकृतिमें रहकर भी आकाश या वायुके समान निर्लिप्त रहता है। ज्ञानसे संशयको छोड़कर स्वप्नसे उठे हुए के समान नानात्वसे निवृत्त होता है। जिसके प्राण इन्द्रिय आदि संकल्प रहित होते हैं वह देहमें रहने पर भी गुणोंसे मुक्त हैं। उद्धवने प्रश्न किया—हे प्रभो, साधु कैसे होता है। तुम्हारी भक्ति कैसी उपयुक्त होती है मुझे बताओ। भगवान्‌ने कहा—जो सभी प्राणियों पर दयालु, क्षमाशील, सत्य जिसका बल है, जिसकी आत्मा निर्दोष है, जो शम, सर्वोपकारक, स्थिर चित्त मृदु, सावधान, गम्भीर, धीर, षड्वर्गजयी, मानरहित, समर्थ, निर्वश्वक, करुणामय विद्वान् है, जो वेदोक्त धर्मके गुण-दोषोंको जानकर भी उसका परित्याग करके भी मेरा यजन करता है वह साधु श्रेष्ठ है मेरे मन्दिरमें गीत नृत्यादिकोंसे उत्सव, एकादश्यादि पर्वोंमें यात्रा-पुष्पार्चनादि करना, वैदिक-तान्त्रिकदीक्षा लेना, एकादश्यादि व्रत लेना, श्रद्धासे अकेले या मिलकर, उद्यान, क्रीडास्थान, पुर मन्दिरके निर्माण के लिए उद्योग करना, मेरे मन्दिरको लीप पोतकर साफरखना, मान-दम्भ न करना, अपने सुकृतकी प्रशंसा न करना अपने इष्ट पदार्थको मुझे अर्पण करना ये सब आनन्दफलद हैं। सभी स्थानोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज मेरे रूपका ध्यान करना चाहिए। इष्ट और पूर्तसे भी मेरी पूजा करनी चाहिए। इससे तथा साधुसेवासे मुझमें भक्ति उत्पन्न होती है। यही एक मार्ग है। तुममेरे सखा और भृत्य हो, अतः अब मैं गुह्य बातें तुमसे कहता हूँ सुनो। ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

(परमात्मामें अनन्यभावका महत्व और आत्मज्ञान)

श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥२॥ सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥ गन्धर्वा-

श्रीभगवान्‌ने कहा–मुझे योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तपत्याग, इष्टापूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, छन्द [रहस्यमन्त्र] तीर्थ, नियम, यम, ये सब वश नहीं कर सकते, केवल सर्व-सङ्गको तोड़नेवाला सत्सङ्ग ही वश कर सकता है ॥ १,२॥ सत्सङ्गसे दैत्य, राक्षस, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चरण, गुह्यक, विद्याधर, मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ, अन्त्यज,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ये रज और तम प्रकृति प्राणी उस उस युगमें मेरा पद पाये हैं। वृत्रासुर, प्रह्लाद, बलि, नाग, मय, विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधर, धर्मव्याध, कुब्जा ये उसके उदाहरण हैं। व्रजमें गोपियाँ तथा दीक्षितोंकी पत्नियाँ एवं अन्य लोगोंको केवल सत्सङ्गसे मेरी प्राप्ति हुई है उन्होंने न श्रुतियोंका अध्ययन किया था न बड़ी उपासनाएँ की थीं, न व्रत न तप ॥३, ४ ५, ६, ७॥ केवल मुझमें भाव होनेके कारण गोपिकाएँ, गौएँ, वृक्ष तथा मृग और भी जो मूढमति नाग या सिद्ध थे, मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए, जिसको योग, सांख्य, दान, व्रत, यज्ञ, प्रवचन, स्वाध्याय, संन्याससे यत्न करनेपर भी नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ८, ९ ॥ जब रामके साथ मुझे अक्रूर मथुरामें ले गया तब मुझमें जिनका चित्त अनुरक्त था ऐसी गोपिकाओंने मुझमें दृढ़ प्रेम रहनेके कारण, मेरे वियोगसे तीव्र दुःख होने पर भी सुखकेलिए दूसरी तरफ नहीं देखा ॥ १० ॥ उन्होंने वृन्दावनमें प्रियतम मेरे साथ रातको क्षणार्ध

प्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ॥ रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥४॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषपर्वा बलिर्बाणोमयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथाऽपरे ॥ ६ ॥ ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥८॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ॥ विगाढभावेन न मे वियोग-तीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण ॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरङ्ग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥ ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः सङ्गाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः

के समान बिताई, अब मेरे बिना उसकी रात कल्पके समान हो गई ॥ ११ ॥ मेरे ऊपर आसक्तिके कारण उनका चित्त लगा रहनेसे वे अपने पति पुत्रादिको तथा अपनेको भी उसी तरह भूल जाती थीं, जिस तरह समाधिमें मुनिलोग नाम-रूप भूल जाते हैं। किन्तु वे समुद्रमें नदियोंके समान मुझमें लीन हो जाती थीं मेरा रूप न जानने पर भी जाररूपी प्रिय मुझे चाहनेवाली हजारों गोपिकाएँ मेरे पदको प्राप्त हुई हैं ॥ १३ ॥ हे उद्धव, इसलिए तुम विधि और निषेध छोड़कर प्रवृत्ति-निवृत्ति छोड़कर श्रोतव्य तथा श्रुतको छोड़कर सिर्फ मेरी शरणमें आओ, सभी देहियोंके आत्मस्वरूप मेरे पास आओ, तुमको कहींसे भी भय न रहेगा ॥ १४, १५ ॥ श्री उद्धवने पूछा—हे योगेश्वरेश्वर, तुम्हारी बात सुनने पर मेरा संशय नहीं मिटता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आत्माके विषयमें मेरे मनमें अभी भ्रम है ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—यह अपरोक्ष परमेश्वर ही पराख्य नादवान् प्राणके साथ आधार चक्रमें प्रविष्ट होते हुए मनोमय पश्यन्ती नामके रूपको पाकर मणिपूरचक्रमें तथा मध्यमाख्य रूपसे विशुद्धि चक्रमें आकर मुखमें ह्रस्वादि मात्रा उदात्तादि स्वर ककारादि वर्ण—इस प्रकार वैखरी नामक अति स्थूल रूपको प्राप्तकर नाना वेद शाखात्मक होता है❀ ॥ १७ ॥ जिस तरह आकाशमें रहनेवाला वायुसखा अग्नि जोरसे काष्ठ मंथन करने पर अति सूक्ष्म रूपसे प्रकट होता है और फिर उसमें हविर्द्रव्य होनेसे बढ़ता है उसी तरह मेरी यह वाणी अभिव्यक्त होती है ॥ १८ ॥ जिस तरह यह वाणीकी अभिव्यक्ति बताई गई है, उसी तरह वागिन्द्रियकी वृत्ति भाषण, हस्तका कर्म, पादकी गति, पायु उपस्थों

॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच । स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥१७॥ यथाऽनलः खेऽनिल-बन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च ॥ सङ्कल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजःसत्त्वतमोविकारः ॥१९॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः ॥ य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥ द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्ण-नीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसाय एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं

की विसर्ग, प्राणको अवघ्राण, रसनाकी रस, लकड़ीकी स्पर्श, श्रवणकी श्रवण और मनका सङ्कल्प, बुद्धिकी विज्ञान, अहङ्कारकी अभिमान, प्रधानकी सूत्र—ये सब वृत्तियाँ, ज्यादा क्या ? यह सब त्रिगुणात्मक प्रपञ्च मेरी अभिव्यक्ति है ॥ १९ ॥ यह लोकरूपपद्मका कारण जीव मायासे सम्बद्ध होकर त्रिगुणोंका आश्रयकर व्यक्त होता है वास्तवमें तो पहले यह ईश्वर ही था, लेकिन कालसे यह प्रकृति सम्बन्धसे अनेक रूपमें व्यक्त होता है, जैसे क्षेत्रमें पड़कर बीज नानारूप धारण करते हैं ॥ २० ॥ सीधे आडे तन्तुओंमें जैसा वस्त्र रहता है उसी तरह जीव में विश्व ओत प्रोत है और जो यह संसार वृक्ष पुराना तथा कर्मात्म है एवं पुष्पफल [भोग-मोक्ष] उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ इस संसार वृक्षके पुण्य पाप दो बीज हैं, सैकड़ों वासनाएँ मूल है तीन गुण काल है, पञ्चभूत ये बड़ी शाखाएँ हैं, शब्दादि पाँच रस इसमें उत्पन्न होते हैं, ग्यारह इन्द्रिय इसकी छोटी डालियाँ हैं, दो पक्षियोंने [जीव और ईश्वरने] इसमें

❀ इस विषयमें यह श्रुतिको याद रखनी चाहिये—'चत्वारि वाक्परमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्तीति ॥' तथा अभियुक्तोंको इस युक्तिपर भी ध्यान देना चाहिये—या सा मित्रावरुणसदना दुरश्नन्ती त्रिषष्टिं वर्णानन्तः प्रकटकरणैः प्राणसङ्गाः प्रसूते । तां पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां वाचं वक्रे करणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

घोसला बनाया है। दो सुख और दुःख इसके फल हैं, यह सूर्य मण्डल तक फैला हुआ है ॥२२॥ गाँवमें घूमनेवाले गृध्र यानी कामी गृहस्थ जीव इसका एक फल दुःख खाते हैं भोगते हैं, अरण्यवासी विवेकी हंस इसके दूसरे फल सुखका आस्वादान करते हैं। इसके परे मायामय होनेके कारण बहुरूप जो पाता है ऐसे एक परमात्माको जो जानते हैं वे वेदतत्वार्थ जानते

वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥ एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥ विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भा० म० पु० एका० भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

हैं ॥ २३ ॥ तुम धीर होकर गुरूपासना और एकान्तभक्तिसे सम्पादित विद्यारूपी तीक्ष्ण कुठारसे जीवकी उपाधि लिंग शरीरको तोड़कर परमात्माको पाकर साधनका त्याग करो ॥ २४ ॥

बारहवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—मुझे योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय आदि वश नहीं कर सकते केवल सर्व संगोंको तोड़नेवाला सत्सङ्ग ही वश कर सकता है। सत्सङ्गसे वृत्रासुर, प्रह्लाद जैसे दैत्य, विभीषणादि राक्षस, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान् आदि पशु, जटायु आदि पक्षी, तुलाधार जैसे वैश्य, धर्म व्याधि आदि शूद्र, कुब्जा ये इसीसे मेरा पद पाये। केवल मुझमें भाव रहनेके कारण गोपिकायें, व्रजके मृग, पक्षी, वृक्ष भी मेरे स्वरूपको प्राप्त हुए, जिसको योग, सांख्य, दान इत्यादि करनेवाले प्रयत्नसे भी नहीं पा सकते। उद्धव, इसलिये सब छोड़कर मेरी शरणमें आओ, तुम्हें फिर भय न रहेगा। उद्धवने कहा—आपकी बातें सुननेसे भी मेरे मनका आत्माके विषयमें संशय नहीं मिटता, उसको ठीक समझाइये। श्रीभगवान्ने कहा—भगवान् ही अन्दरके चक्रोंमें व्यक्त होते हुए मुखद्वारा प्रकट होकर, नाना वेदात्मक वैखरीरूप धारण करते हैं। जिस तरह अरणीके मन्थनसे जो थोड़ा सा अग्नि प्रकट होता है वही बादमें इंधनसे बड़ा रूप धारण करता है उसी तरह मेरा अभिव्यक्ति है। जिस तरह वाणी मेरी अभिव्यक्ति है उसी तरह सभी इन्द्रिय वृत्तियाँ अन्तःकरण वृत्ति या समस्त विश्व मेरी अभिव्यक्ति है। जीव पहले ईश्वर ही था, मायाके आश्रयसे व्यक्त और नाना हुआ। आत्मा मुझमें ही यह सब प्रपञ्च ओतप्रोत है। यह जो संसार वृक्ष है इसका आश्रय करनेवाले गृहस्थ पक्षी इसके फल दुःखका और वनस्थ हंस पक्षी दूसरे फल सुखका उपभोग करते हैं, मायासे बहुरूप दीखनेपर भी जो एक है वह परमात्मा इस सबसे परे है। उसको जो जानता है वही वेदज्ञ है। अतः हे उद्धव, तुम धीर होकर गुरुपासना और भक्तिसे सम्पादित विद्यारूपी कुठारसे लिङ्गशरीर तोड़कर भगवान्को प्राप्त करो बारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

[हंस सनकादि संवाद]

श्रीभगवानुवाच ॥ सत्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ॥ सत्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्वं सत्वेन चैव हि ॥१॥ सत्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो

श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव, सत्व, रज, और तम ये बुद्धिके गुण हैं, आत्माके नहीं। सत्वकी वृद्धिसे रज तथा तमको जीतना चाहिए एवं सत्वसे ही ॥ १ ॥ सत्वकी वृद्धि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होने से मेरी शक्तिरूप धर्मका प्रादुर्भाव होता है। सात्विक पदार्थोंके सेवनसे सत्वकी और सत्वसे धर्मकी प्रवृत्ति होती है ॥ २ ॥ जिसमें सत्वकी वृद्धि होती है ऐसे श्रेष्ठतमधर्मसे रज और तम का उपमर्द करना चाहिए। उन दोनोंका नाश करनेसे उसके कारणसे उत्पन्न होनेवाला अधर्म नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥ शास्त्र, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र, संस्कार, ये दस त्रिगुणोत्पत्तिके कारण है ॥ ४ ॥ इसमेंसे शास्त्रज्ञ लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं वह सात्विक, जिसकी निन्दा करते हैं वह तामस तथा जिससे उदासीन रहते हैं वह राजस पदार्थ है ॥ ५ ॥ मनुष्यके सत्वकी वृद्धि होनेके लिए सात्विकोंका ही सेवन करना चाहिए। उससे धर्म उससे आत्माका अपरोक्ष ज्ञान तथा स्थूल और सूक्ष्म देह एवं उसके कारणीभूत गुणोंकी निवृत्ति पर्यन्त ज्ञान होता है ॥ ६ ॥ वासोंके संघर्षसे उत्पन्न अग्नि जिस तरह उस वनको जलाकर शान्त हो जाता है उसी तरह गुण वैषम्यसे उत्पन्न देह भी अपनेमें उत्पन्न विद्यासे

मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्विकोपासया सत्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥२॥ धर्मो रजस्तमो हन्यात्सत्ववृद्धिरनुत्तमः। आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ॥ ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निन्दन्ति तामसं तत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्वविवृद्धये ॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥ वेणुसङ्घर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथापि भुञ्जते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि। उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥९॥ रजोयुक्तस्य मनसः सङ्कल्पः सविकल्पकः। ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धि दुर्मतेः ॥१०॥ करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन् रजोवेग विमोहितः ॥ ११ ॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः ॥ अतन्द्रितो मनोयुञ्जन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥१२॥ अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयन् शनैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितस्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धावेश्यते यथा ॥ १४ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन

गुणोंकी निवृत्ति करके स्वयं शान्त हो जाती है ॥ ७ ॥ उद्धवने कहा—हे कृष्ण, राजसादि विषयोंको भोग दुःखकारक है, ऐसा जानने पर भी उसका भोग करते हैं, जैसे कि कुत्ता, गदहा या बकरा ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव, विवेक शून्यके हृदयमें, देहमें अहं यह अन्यथा बुद्धि जैसे बढ़ती है वैसे ही सत्व प्रधान होने पर भी मन रजोगुणसे व्याप्त होता है ॥ ९ ॥ मन रजोयुक्त होनेपर उस विषयके बारेमें विकल्प और संकल्प उत्पन्न होते हैं। उसके बाद उसके गुणोंके ध्यानसे दुःसह काम उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ इस तरह रजोवेगसे मोहित होनेके कारण कामके वशमें होकर इसका परिणाम दुःख है यह जानकर भी उच्छृङ्खल इन्द्रियवाला मनुष्य कर्म करता है ॥ ११ ॥ इसलिये विद्वान्का रजस्तमसे मनके विक्षिप्त होनेपर भी उसमें दोष देखकर उपेक्षा न करते हुए मनको रोकना चाहिए ऐसा करनेसे आसक्ति नहीं बढ़ती ॥ १२ ॥ मेरे शिष्य सनकादिने इसीको योग कहा है कि मनको आकृष्ट करके मुझमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थिर करना ॥ १३ ॥ उद्धवने कहा—आपने कब सनकादिको कौन रूपसे योगका उपदेश दिया वह रूप मैं जानना चाहता हूँ ॥ १४ ॥ भगवान्‌ने कहा—ब्रह्माके मानस पुत्र सनकदिने अपने पिताको योगकी पराकाष्ठके बारेमें प्रश्न किया ॥ १५ ॥ सनकादिने पूछा—हे प्रभो, गुणोमें [विषयोंमें] स्वभावतः रागादि होनेके कारण मन प्रवेश करता है और विषय वासना रूपसे मनमें प्रवेश करते हैं। इसलिए विषयोंका अतिक्रम करनेकी इच्छा करनेवालेका अन्योन्य प्रविष्ट इनका त्याग कैसे करना चाहिए ॥ १६, १७ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—स्वयंभू भूतोंके स्रष्टा, महादेव, ब्रह्मासे ऐसा पूछने पर कर्मसे विक्षिप्त बुद्धि होनेके कारण वह विचार करने पर भी प्रश्नका बीज बाहर न कर सके ॥ १८ ॥ उन्होंने प्रश्नका बीज जाननेके लिए मेरा ध्यान किया, तब मैं हंसरूपसे उनके पास गया ॥१९॥ मुझे देखकर सनकादिने ब्रह्माको आगेकर मुझे नमस्कार करके पूछा—तुम कौन हो ॥२०॥ तत्वजिज्ञासु उन लोगोंके ऐसा प्रश्न करने पर

रूपेण केशव ॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ॥ १६ ॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ॥ कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षो ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः । ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥१८॥ स मामचिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥ पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥ २४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥२५॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥ यहि

मैंने क्या कहा ? हे उद्धव, उसे तुम सुनो ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मणो, यदि आप आत्माके बारेमें पूछते हैं, तो आत्मा अगर एक ही है, तो फिर यह प्रश्न ही कैसे उठता है और मैं उत्तर भी क्या दे सकता हूँ ॥ २२ ॥ यदि देहके बारेमें प्रश्न है, तो सभी देह पञ्चमहाभूतात्मक होनेके कारण समान और कारणात्मना एक हैं तब यह प्रश्न केवल वाणीका विलास अतएव निरर्थक है ॥ २३ ॥ मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे या अन्य इन्द्रियोंसे मैं ही ज्ञात होता हूँ, मुझे छोड़कर दूसरा कुछ नहीं है ऐसा समझो ॥ २४ ॥ पुत्रो, गुणोंमें चित्त तथा चित्तमें गुण प्रविष्ट होते हैं, लेकिन वे दो महत्वरूप जीवकी देह हैं ॥ २५ ॥ बार-बार विषयोपभोग करनेके कारण उसीमें चित्त जाता है और वे वासनारूपसे चित्तमें उत्पन्न होते हैं। मद्रूप जीवको दोनों का त्याग करना चाहिए ॥२६॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, ये सत्वादि गुणके कारण बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं आत्मा उनसे विलक्षण साक्षिरूप है ॥२७॥ चूँकि बुद्धिका यह बन्ध आत्माको जाग्रत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुषुप्त्यादि गुण वृत्तियाँ देता है अतः इनसे परे तुरीय मेरा आश्रयकर संसृतिके बन्धको छोड़ना चाहिए तब गुण और चित्तका अपने ही त्याग होता है ॥२८॥ अहंकारके कारण आत्मा का यह बंध अनर्थका कारण है ऐसा जानकर यह दुःखकर है ऐसा समझकर तुरीयका आश्रयकर संसार चिन्ताका त्याग करना चाहिए ॥२९॥ जब तक मनुष्यका युक्तियोंसे नानत्वभ्रम नहीं निवृत्त होता तब तक वह जागने पर स्वप्नमें हैं, जैसा स्वप्नमें आदमी जागता है ॥ ३० ॥ आत्मासे अन्य सभी पदार्थ मिथ्या होनेके कारण तत्कृत [वेदकृत] वर्णाश्रमादि भेद स्वर्गादि गति इसके हेतु भूत कर्म सब मिथ्या है जैसा स्वप्नके पदार्थ ॥३१॥ जो जाग्रदवस्थामें क्षणिक धर्मवाले पदार्थोंका सभी कारणोंसे भोग करता है स्वप्नमें भी उसीके सदृश पदार्थोंका हृदयमें उपभोग करता है तथा सुषुप्तिमें सभीका उपसंहार करता है वह तीन गुणोंकी वृत्तिवाला इन्द्रियोंका स्वामी एक ही है, क्योंकि बादमें वैसी स्मृति होती है ॥ ३२ ॥ ऐसा विचार

संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥ अहङ्कारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वा-न्निर्विद्य संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥२९॥ यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः ॥ जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥३०॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ॥ गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२ ॥ एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यव-स्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ॥ संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥ ईक्षेत विभ्र-ममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिराऽनिपा-तात् ॥ ३५ ॥ देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं

करके मेरे मायाके कारण मत्स्वरूप जीवमें ये तीन अवस्थाएँ गुणकृत और मनकी है ऐसा निश्चयकर, सज्जनोंकी उक्तियाँ, अनुमान तथा तीक्ष्ण ज्ञानरूपी खड्गसे हृदयके संशयको एवं सभी संशयोंके कारण अहङ्कारको तोड़कर मेरा भजन करो ॥ ३३ ॥ यह संसार भ्रममय केवल मनका विलास देखते-देखते नष्ट होनेवाले चञ्चलअलातचक्रके समान है। केवल एक ही विज्ञान [आत्मा] अनेक रूपसे ज्ञात होता है, इसलिए जो तीन प्रकारका भेद दीखता है वह गुण परिणामके कारण माया ही है ॥ ३४ ॥ इसलिए उससे दृष्टि हटाकर निरिच्छ होकर आत्मानन्दका अनुभव करते हुए स्वस्थ बैठे रहना चाहिए। यद्यपि देह रहने तक भोजनादिके लिए द्वैत दृष्टि देखी जाती है, फिर भी एक बार असत्य समझकर जिसे छोड़ दिया है वह फिर भ्रम नहीं पैदा कर सकता, किन्तु देहपात तक स्मृति तो बनी रहेगी ही ॥ ३५ ॥ सिद्ध पुरुष इस नश्वर देहमें बैठा है या उठा है यह नहीं देखता, क्योंकि वह उसने अपना स्वरूप पहचान लिया है। जैसा शराबी दैवसे रहे या गए वस्त्रका ख्याल नहीं करता वैसे ही ज्ञानी भी देहका ख्याल नहीं करता ॥ ३६ ॥ यह दैवाधीन देह जब तक अपना आरम्भक कर्म है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तब तक प्राण धारण करता है, किन्तु परमार्थ वस्तुके स्वरूपका ज्ञानकर समाधियोगमें जो अवस्थित है वह स्वप्नके समान इस प्रपञ्चके साथ देहको नहीं फिर पाता ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो, मैंने यह सांख्य और योगका सार बताया है। तुम्हें धर्मका उपदेश देनेके लिए आए हुए मुझे विष्णु समझो ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणो, मैं योग सांख्य प्रतीयमान धर्म, अनुष्ठीयमानधर्म, तेज,

मदिरामदान्धः ॥ ३६ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रति समीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥ मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः ॥ जानीतमागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥ मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयोऽगुणाः ॥४०॥ इति मे छिन्नसन्देहा मुनयः सनकादयः॥ सभाजयित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ।४१॥ तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्री, कीर्ति, दम इन सब गुणोंका आश्रय हूँ ॥३९॥ निर्गुण और निरपेक्ष मेरा सभी गुण भजन करते हैं, मैं सब भूतोंका सुहृद्, प्रिय तथा अन्तरात्मा हूँ, यही कारण है कि साम्य असङ्ग आदि नित्य पदार्थ भी मेरा भजन किया करते हैं ॥ ४० ॥ इससे सनकादिका संशय मिटा और उन्होंने परम भक्तिसे मेरी पूजाकर स्तुति की ॥ ४१ ॥ उनकी पूजा और स्तुति लेकर मैं ब्रह्मदेवके सामने अपने धामको चला गया ॥ ४२ ॥

तेरहवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा—सत्व-रज-तम ये बुद्धिके गुण हैं आत्माके नहीं। सत्वकी वृद्धिसे ही धर्म वृद्धि होती होती है सात्विक पदार्थों के सेवनसे सत्व बढ़ता है। रज और तमका नाश होनेने उसके कारण होनेवाला अधर्म भी नष्ट हो जाता है। सात्विक सेवन करनेसे सत्वकी वृद्धि होकर उससे धर्म उससे आत्माका अपरोक्ष तथा स्थूल-सूक्ष्म देह एवं तत्करणीभूत गुणों की निवृत्तिक ज्ञान होता है। उद्धवने पूछा—हे भगवन्, रजोमय विषयोंको दुःखकारक समझकर भी लोग उसका भोग क्यों करते हैं? भगवान्‌ने उत्तर दिया—विवेकहीनके मनमें देहविषयक अहं भाव बढ़नेके कारण सत्व प्रधान मन भी रजोगुणसे व्याप्त हो जाता है। रजोयुक्त मनमें विषयोंके बारे में संकल्प विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं, फिर उनके गुणोंका ध्यान करनेके कारण दुःसह काम उत्पन्न होता है। तब रजोगुणाभिभूत होकर परिमाण जानते हुए भी आदमी कृति करता है। अतः विद्वान्‌को रज और तमसे चित्त विक्षेप होनेपर भी दोषको देखते हुए उपेक्षा न करके मनको जबरदस्ती रोकना चाहिए। उद्धवने प्रश्न किया–हे कृष्ण, आपने सनकादिको कब योगका उपदेश दिया! भगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादिने एकबार ब्रह्मासे पूछा—प्रभो, विषयोंमें स्वभावतः मन प्रवृत्त होता है और विषयवासनारूपसे मनमें रह जाते हैं। अतः इन्हे पार करनेकी इच्छा रखनेवाले, इनका कैसे त्याग करना चाहिए। ब्रह्मदेव विचार करना चाहिए। ब्रह्मदेव विचार करने पर भी यह समझ सके कि ऐसा प्रश्न पूछनेका क्या कारण है। उन्होंने मेरा ध्यान किया। मैं हंस रूप रूपसे वहाँ उपस्थित हुआ। मुझे देखकर सब मेरे पास आकर प्रणाम करके मुझसे पूछने लगे–आप कौन है! मैंने कहा—ब्राह्मणो, आपका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह प्रश्न अयुक्त है, क्योंकि अगर आप आत्माके बारेमें प्रश्न करते हैं, तो आत्माके एक ही होनेके कारण यह आप लोगोंका प्रश्न ठीक नहीं है। यदि देहके बारेमें पूछते हैं, तो सभी देह पञ्चमहाभूतोंके कारणात्मना एक ही है, अतः वहाँ भी यह प्रश्न सङ्गत नहीं है,। सभी इन्द्रियोंसे और करणोंसे मैं ज्ञात होता हूँ। गुण और चित्त ये दोनों मद्रूप जीवके देह हैं। बार बार भोग करनेके कारण विषयोंमें चित्त जाता है तथा वे वासनारूपसे चित्तमें रहते हैं। जीवको दोनोंका त्याग करना चाहिए। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये सत्वादि गुणोंसे बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं, साक्षिरूप आत्मा इनसे अलग है। अहंकारके कारण आत्माको संसृति बन्ध है ऐसा समझकर प्राणीको तुरीयका आश्रयकर चिन्तासे मुक्त होना चाहिए। जब तक नानात्वभ्रम है तब तक वह स्वप्नमें है। युक्तियोंसे उसको दूर करना चाहिए। आत्मासे भिन्न सब मिथ्या है, वर्णाश्रमादिभेद, स्वर्गादि गति, उसके हेतुभूत कर्म सब स्वप्न समान हैं। जब तक देहारम्भक कर्म है तब तक यह शरीर भी रहेगा। ब्रह्मज्ञानीका एक बार देह पतन होनेके बाद फिर देह उसे नहीं मिलता। हे ब्राह्मणों, मैंने सांख्य और योगका सार बताया। तुम्हें धर्म कहनेके लिए आया हुआ मैं विष्णु हूँ। सांख्य, योग, धर्म, तेज, श्री कीर्तिका आश्रय हूँ। निर्गुण नित्य तथा सगुण पदार्थ मेरा ही भजन करते हैं। इस कथनसे सनकादिकोंका शंसय मिटाया। उन्होंने मुझे नमस्कार किया तथा पूजा करके मेरी स्तुति की। उसे स्वीकार कर मैं अपने स्थानको चला गया। तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❋ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ❋

(परमपुरुषार्थ तथा उसके साधनोंका वर्णन)

उद्धवने कहा—हे कृष्ण, ब्रह्मवादी लोग अनेक श्रेयसाधन बताते हैं। उनमें विकल्प यानी वह प्रत्येक अलग साधन है अथवा उसमें एक मुख्य और बाकी गौण है ॥ १ ॥ हे स्वामिन्, आपने भी भक्ति योग बताया है, जिससे कि अन्य पदार्थोंका सङ्ग छूटकर मन आपमें लगता है ॥२॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, पहले प्रलयमें वेद जब नष्ट हो गए तब

उद्धव उवाच ॥ वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः। तेषां विकल्प प्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः ॥ निरस्य सर्वतः सङ्गं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥३॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥५॥ किंदेवाः किंनरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः बह्वयस्तेषां प्रकृतयो

कल्पादिमें मैंने ब्रह्मदेवको उसका उपदेश किया, जिसमें मैंने वह धर्म बताया जिससे मुझमें मन लगे ॥३॥ उसने हम सभीके पूर्वज अपने पुत्र मनुको बताया, मनुसे भृग्वादि सात महर्षियोंने जन्म लिया ॥४॥ उनसे उनके पुत्र देव, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुष इत्यादि लोगोंने लिया। उन सबकी प्रकृति नाना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरहकी थी, जो सत्व-रज-तमोगुणसे उत्पन्न थी ॥६॥ प्रकृतियोंके कारण ही भूतोंकी बुद्धियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अपनी प्रकृतिके अनुसार इनसबने वेदार्थ व्याख्यान विषयक अनेक बातें कहीं ॥७॥ इसतरह प्रकृतिवैचित्र्यके कारण मनुष्योंकी बुद्धियाँ अलग-अलग रहती हैं। कुछ लोगोंका अध्ययनादि न करनेपर भी परम्परासे मतभेद रहता है दूसरे कुछलोग पाखंडी रहते हैं ॥८॥ मेरी मायासे जिनकी बुद्धि मोहित हो गई है वे लोग अपने कर्म तथा रुचिके अनुसार अलग-अलग श्रेय और उसके साधन बताते हैं ॥९॥ कुछ लोग धर्मको, कुछ यशको, दूसरे कामकी इसी तरह बहुत लोग सत्य, दम, शमको, कुछ स्वार्थको, कुछ ऐश्वर्यको, कुछ त्याग भोजनको तथा कुछ लोग यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियमको श्रेय बतलाते हैं ॥ १० ॥ इन सब उपायोंसे मिलनेवाले कर्मनिर्मित लोक उत्पत्ति-विनाशशील रहते हैं एवं दुःख परिणामी, तपोनिष्ठ, क्षुद्रानन्दयुक्त तथा शोकयुक्त रहते हैं ॥ ११ ॥ हे सभ्य सभी तरफसे निरपेक्ष

रजःसत्त्वतमोभुवः ॥६॥ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवन्ति हि ॥७॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भि-
द्यन्ते मतयो नृणाम् ॥ पारम्पर्येण केषाञ्चित्पाखण्डमतयोऽपरे ॥८॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथा-
रुचि ॥९॥ धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥
॥१०॥ आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥११॥ मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥
मयात्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥१२॥ अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः । मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥१३॥
न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥ १४ ॥
न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः ॥ न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥ निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ॥
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषन्ति
यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥

होकर मुझमें जिन्होंने मन लगाया है उन लोगोंको जो सुख मिलता है वह इन विषयी लोगोंको कहाँसे मिले ॥१२॥ अकिञ्चन शम-दम सम्पन्न, समचित्त मनुष्यके लिए सभी दिशाएँ सुखमय हैं वह मुझसे ही सन्तुष्ट रहता है ॥१३॥ मुझमें जिसका मन लगा है वह न तो ब्रह्माका पद, न पृथ्वीका स्वामित्व, न सार्वभौमत्व, न योगकी सिद्धियाँ और न मोक्ष ही चाहता है मेरे सिवा दूसरा कुछ वह नहीं चाहता ॥ १४ ॥ मुझे भी वह जैसा प्रियतम है वैसा न ब्रह्मा न शङ्कर न शेष न लक्ष्मी और न मेरी आत्मा प्रिय है ॥ १५ ॥ ऐसे निरपेक्ष मननशील शान्त समदर्शीका मैं अनुसरण करता हूँ, ताकि उनके पैरसे पवित्र जो धूलि हैं उसके संसर्गसे अपने भीतरके ब्रह्माण्डको पवित्र करूँ ॥ १६ ॥ निष्किञ्चन मुझमें अनुरक्त, शान्त सब जीवों पर प्रेम करनेवाले और कामसे जिसकी बुद्धि अभिभूत नहीं हुई है ऐसे महात्मादि निरपेक्ष सुख जानते हैं, दूसरे नहीं ॥ १७ ॥ मेरा अजितेन्द्रिय भक्त विषयोंके आकृष्ट किया जाने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर भी प्रगल्भ भक्तिके कारण प्रायः उनके आधीन नहीं होता ॥ १८ ॥ जैसे किसी भी कामके लिए जलाई गई अग्नि इंधनको भस्म कर देती है वैसे ही मेरे भक्ति पापोंको नष्ट कर देती है ॥ १९ ॥ मुझे योग सांख्य, धर्म, स्वाधयाय तप, त्याग ये उस तरह नहीं वश कर सकते, जिस तरह उद्रेक पूर्ण भक्ति ॥२०॥ सज्जनोंकी प्रिय आत्मा मैं केवल श्रद्धायुक्त भक्ति से पकड़ा जाता हूँ । मेरी भक्ति चाण्डालोंको भी पवित्र करती है ॥ २१ ॥ सत्य और दयामे युक्त धर्म तथा तपसे युक्त विद्या भी उस तरह ठीक-ठीक आत्माको पवित्र नहीं कर पाती, अगर भक्ति न रही ॥ २२ ॥ रोमाञ्चके विना, चित्तद्रवके बिना, आनन्दश्रुसे युक्त शुद्ध भक्तिके विना कैसे मन पवित्र होगा ॥२३॥ जिसकी वाणी गद्गद है, जिसका चित्त पिघलता है जो रोता है हंसता है, कभी निर्लज्ज होकर जोरसे गाना गाता है, नाचता है, ऐसी मेरे भक्तिसे युक्त मनुष्य भुवनको पवित्र करता है ॥ २४ ॥ जैसे अग्निसे तपाने पर सोना मल छोड़कर

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ न साधयति मां योगा न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥ भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥ भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनानन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद्भक्त्या विनाशयः ॥२३॥ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥२४॥ यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥२५॥ यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥ तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् ॥ हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥२८॥ स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥ क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥ २९ ॥ न तथास्य भवेत्क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ॥ योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥ ३० ॥ उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम

शुद्ध रूप धारण करता है वैसे ही भक्ति योगसे कर्म वासनाका शोध करके आत्मा मेरा भजन करता है ॥ २५ ॥ जैसा जैसा मेरे पुण्यमय गाथा श्रवण कीर्तनसे आत्मा परिमार्जित होता है वैसा वैसा सूक्ष्म वस्तु देखता है, जैसे कि अंजनके कारण आँखें ॥ २६ ॥ विषयोंका ध्यान करनेसे उन्हींमें चित्त आसक्त होता है और मेरा स्मरण करनेसे मुझमें ही लीन होता है ॥२७॥ अतः स्वप्न मनोरथके समान स्थूल-सूक्ष्मका ध्यान छोड़कर मेरे भजनसे शुद्ध चित्तको मुझमें ही स्थिर करो ॥ २८ ॥ स्त्रियोंका तथा स्त्री संगियोंका सङ्ग छोड़कर धीर होकर निर्भय और एकान्त स्थानमें बैठकर निरलस होकर मेरा चिन्तन करना चाहिए ॥ २९ ॥ उसको अन्य किसी प्रसङ्गसे क्लेश या बन्धन न होगा, जैसा कि स्त्री या स्त्री सङ्गियोंके सङ्गसे ॥३०॥ उद्धवने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहा—हे पुण्डरीकाक्ष, मुमुक्षुको आपका ध्यान कैसे किस रूपसे करना चाहिए मुझे कहिए ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—समतल आसनपर बैठकर शरीरको तकलीफ न देते हुए सीधा शरीर रखकर हाथ जाँघ पर रखकर अपने नाकको देखते हुए पूरक-कुम्भक-रेचक या उलटा प्राणायामकर प्राणमार्ग शुद्ध करके इन्द्रियोंको जीतकर अभ्यास करना चाहिये ॥ ३२–३३ ॥ मूलाधारसे लेकर अविच्छिन्न घण्टानादके समान जो ॐकार हृदयमें रहता है उसको प्राणवायुसे विष तन्तुके समान ऊपर द्वादशान्त तक ले जाकर उसके ऊपर अनुस्वारका सन्निवेश करना चाहिये ॥३४॥ इस तरह प्रणवयुक्त प्राणका अभ्यास करना चाहिए। रोज तीनों सवनमें दस वार अभ्यास करनेसे एक मासके अन्दर साँस ली जाती है ॥ ३५ ॥ हृदयमें जो उर्ध्वनाल और अधोमुख कमल है उसका ऊर्ध्वमुख विकसित अष्टपत्र कलिकाओंसे युक्त ध्यान करना चाहिये ॥ ३६ ॥ कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र, और अग्निका ऊपर-ऊपर ध्यान करना चाहिये ॥३७॥

आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ॥ दसकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥ हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमङ्गलम् ॥ ३७ ॥ समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारु सुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥३९॥ शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥४०॥ द्युमत्किरीटकटकटिसूत्राङ्गदायुतम् ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥४१॥ सुकुमारमभिध्यायेत्सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाकृष्य तन्मनः बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥४३ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥ एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ॥

अनुरूप अवयवयुक्त जो प्रशान्त दीर्घ सुन्दर चार हाथवाला है, जो सुन्दर अति है, जो सुन्दर कण्ठ युक्त सुन्दर गाल युक्त तथा शुद्ध मन्दहास्ययुक्त है जिसके दोनों कानोंमें चमकदार कुण्डल हैं, जो पीताम्बरधारी, मेघकी तरह श्याम वर्ण; श्रीवत्स तथा कौस्तुभसे युक्त है, जो शंख-चक्र-गदा-पद्म और वनमालासे भूषित है, नूपुरसे जिसके पाद शोभित हैं, जो कान्तिमान् हैं, जो किरीट, हस्ताभरण तथा काँची दायसे युक्त है, सर्वाङ्गसुन्दर मनोहारी जिसका मुख और सुन्दर जिसके नेत्र हैं ऐसे सुकुमार रूपका—सभी अङ्गोंमें मन रखते हुए—ध्यान करना चाहिए। मनसे इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर बुद्धि सारथियोंके द्वारा मनको खींचकर उसको मेरी तरफ लगाना चाहिए ॥ ३८—४२ ॥ उस सर्वाङ्गमें व्याप्त चित्तको खींचकर फिर किसी एक अङ्गमें लगाना चाहिए, ऐसा करते-करते सिर्फ स्मितयुक्त मुखका ही ध्यान करना चाहिए ॥ ४३ ॥ उसमें चित्तके स्थिर हो जाने पर फिर कारणरूपमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लगाना चाहिए, उससे शुद्ध परब्रह्ममें लगाकर किसीका चिन्तन नहीं करना चाहिए ॥ ४४ ॥ इस तरह स्थिर बुद्धि होकर अपनेमें मुझे और सर्वभूतात्मरूप मुझमें अपनेको जो देखता है

विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ॥ संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रिया-भ्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जैसे कि तेजमें संसक्त होता है ॥ ४५ ॥ इस तरह तीव्र ध्यानसे मन लगानेवालेका द्रव्य ज्ञान और क्रिया विषयक भ्रम शान्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

चौदहवें अध्यायका सार—उद्धवने कहा–हे भगवन्, अनेक लोग अनेक परम पुरुषार्थ तथा उसके साधन बतलाते हैं। उनमें प्रत्येक अलग अलग साधन हैं या एक मुख्य और बाकी गौण। भगवान्ने कहा–हे उद्धव, मेरी वाणीरूप वेद, प्रलयमें जो लुप्त हो गए थे, उनको फिर कल्पके आदिमें ब्रह्मदेवको बताया। उसमें तो मैंने वही धर्मबताया कि जिससे मुझमें मन लगे। ब्रह्मदेवने मनुको और मनुने भृग्वादि महर्षियोंको उसका उपदेश किया। उनसे उनके पुत्र देव, दानव, मनुष्य गन्धर्वादि लोगोंने पाया। उनकी सत्त्व, रज और तमो गुणके अनुसार भिन्न २ प्रकृतियाँ थीं। सभीने अपनी प्रकृतिके अनुसार वेदका अर्थ लगाया। हे उद्धव, अनेक आचार्योंने श्रेय साधनके अनेक उपाय बतलाये हैं, किन्तु उन सब उपायों से मिलनेवाले लोक कर्मनिमित; दुःख परिणामी, तमोनिष्ठ और क्षुद्रानन्दयुक्त हैं। अन्यनिरपेक्ष होकर मुझमें जिन्होंने मन लगाया है उनका सुख इन विषयी लोगोंकी नसीबमें कहाँ है! मन्निष्ठ मनुष्य सार्वभौम पद या ब्रह्मका पद भी नहीं चाहता है। इतना ही नहीं, वह योगकी सिद्धियाँ या मोक्ष भी नहीं चाहता, केवल मुझे चाहता है और मुझे भी वह सबसे प्रिय है। विषयोंसे आकृष्ट होनेपर मेरा अजितेन्द्रिय भक्त भी उनके अधीन प्राय नहीं होता। उद्धवने पूछा–हे पुण्डरीकाक्ष, मुमुक्षुको किस रूपसे और कैसे आपका ध्यान करना चाहिए? श्रीभगवान्ने कहा—समतल आसनपर सीधे बैठकर नासाग्रमें दृष्टि रखते हुये पूरक कुम्भक रेचक या रेचक कुम्भक पूरक इस क्रमसे प्राण मार्ग शुद्धकर इन्द्रियोंको जीतना चाहिये। मूलाधारसे लेकर अविच्छिन्न घण्टानादके समान जो ओंकार हृदयमें रहता है उस प्राण वायुसे बिस तन्तुके समान ऊपर द्वादशान्त तक खींचकर उस पर अनुस्वार देना चाहिए। इस प्रणवयुक्त प्राणायामका रोज तीनों सवनोंमें दस बार अभ्यास करने पर एक मासके अन्दर वायु पर विजय पाई जाती है। हृदयमें जो ऊपर डण्डीवाला अधोमुख कमल है उसको उलटा ऊर्ध्वमुख अष्टदल कर्णिकायुक्त ध्यानकर कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्निका ऊपर ऊपर ध्यान करना चाहिए। अग्निमें मेरे वक्ष्यमाण रूपका ध्यान करना चाहिए। जो सुगठित, प्रशान्त दीर्घ, सुन्दर चतुर्भुज, सुन्दर कण्ठ, और गालवाला है, मन्द स्मित जिसके मुख पर झलकता है, कानोंमें चमकदार मकर कुण्डल जिसने धारण किए हैं, पीतवस्त्र परिधान किया है, श्रीवत्स-कौस्तुभ वनमाला-शंख-चक्र-गदा-पद्मसे सुशोभित जो है, पादयुगलमें जिसके नूपुर सुशोभित है, जो मेघश्यामवर्णकी तरह कान्तिमान्, उज्वल किरीट, केयूर, कटक तथा काञ्चिदामसे युक्त है, सर्वांग सुन्दर जिसका मुख तथा नेत्र प्रसन्न है, ऐसे सुकुमार रूपका ध्यान करना चाहिए। मनके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे खींचकर बुद्धि द्वारा मनको खींचना चाहिये और मनको मेरी तरफ लगाना चाहिये। फिर सर्वाङ्गव्याप्त चित्तको आकृष्ट कर एक एक अङ्गका ध्यान करना चाहिए, अन्तमें स्मितयुक्त मुखका ध्यान करना चाहिए. उसमें मनके स्थिर होनेपर कारण रूप में लगाना चाहिए वहाँसे शुद्ध ब्रह्ममें लगाना चाहिए और फिर किसीका चिन्तन नहीं करना चाहिए। इस तरह स्थिर बुद्धि होकर मेरा भक्त अपनेमें मुझे और मुझमें अपनेको देखने लगता है। इस तरह तीव्र ध्यानसे मन लगानेवालेका द्रव्य, ज्ञान और क्रिया विषयक भ्रम शान्त हो जाता है। चौदहवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ❋

[सिद्धियोंका वर्णन]

श्री भगवान्‌ने कहा—इन्द्रिय और श्वासका जय करके योगसे मेरे तरफ चित्त लगानेवालेके पास सभी सिद्धियाँ आती हैं ॥ १ ॥ उद्धवने प्रश्न किया—किस तरह धारणा करनेसे कौन सी सिद्धि होती है और कितनी सिद्धियाँ हैं कृपया मुझे बतलाइए आप सिद्धि देनेवाले हैं ॥ २ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा–धारणायोगसे पारंगत लोगोंने आठ सिद्धियाँ कहा है उसमेंसे आठ सिद्धियाँ मेरा आश्रय करती हैं बाकी दस गुणकी कारण हैं ॥ ३ ॥ वे ये हैं—अणिमा [छोटा होना] महिमा [बड़ा होना] लघिमा [हलका होना] ये देहकी तीन सिद्धियाँ हैं सब प्राणियोंकी इन्द्रियों तथा देवताओंसे सम्बन्धको 'प्राप्ति' दर्शनयोग तथा स्वर्गादिगत पदार्थोंको देखनेको 'प्रकाश्य' तथा सभी जगह शक्तिके प्रेरणाको 'ईशिता'

श्रीभगवानुवाच ॥ जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच ॥ कथा धारणया का स्वित्कथं स्वित्सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥३॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ॥ प्रकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥ गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ॥ मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥ स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ॥ यथासङ्कल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहता गतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥८॥ एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां

कहते हैं ॥ ४ ॥ गुणों में आसक्त न होना वशिता है । जो जो सुख चाहेगा वह प्राप्त होना यह एक सिद्धि है । इस तरह ये मेरी स्वाभाविक सिद्धियाँ हैं ॥ ५ ॥ इसी देहमें भूख-प्यास न लगना तथा दूरका दीखना तथा सुनना । मनोवेगसे देहकी गति, दूसरेके देहमें प्रवेश ॥६॥ स्वेच्छा मृत्यु, अप्सराओंके साथ देवताओंकी क्रीडाकी प्राप्ति, जो संकल्प करे उसकी प्राप्ति, अप्रतिहत जिसकी गति है ऐसी आज्ञा ॥७॥ त्रिकालज्ञता, शीतोष्णादि द्वन्द्वोंका असर न होना, दूसरेका चित्त जानना, अग्नि, सूर्य, पानी, विष इनकी शक्तिका प्रतिबन्ध करना ॥८॥ ये मैंने उनके नाम और स्वरूप बताए, अब कौन सी धारणासे कौन सी सिद्धि प्राप्त होती है सुनो ॥९॥ भूत-सूक्ष्मोंकी उपाधिरूप मुझमें तदाकार मात्र बनाकर जो धारण करता है वह मेरा तन्मात्रोपासक अणिमा सिद्धि पाता है ॥१०॥ महत्तत्वान्तर्गत मुझमें जो तदाकार मनसे धारण करता है वह महिमा सिद्धि पाता है । अलग-अलग भूतोंमें मेरी धारणा करनेसे भूतोंकी महिमा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पाता है ॥११॥ वाय्वादिभूतोंके परमाणुमें मेरा ध्यान करनेवाला काल-जैसा सूक्ष्म होता है यानी लघिमा सिद्धि पाता है ॥१२॥ सात्विक अहंकाररूप मुझमें जो धारणा करता है सभी इन्द्रियोंका स्वामित्व रूप प्राप्तिरूपी सिद्धि पाता है ॥१३॥ महत्तत्वात्मभूतसूत्रमें जो मनको लगाता है, अव्यक्त जन्मा सूत्रात्माका—शक्ति प्रधान महत्तत्वका सर्वोत्कृष्ट, प्राकाश्य' पाता है ॥ १४ ॥ त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके नियन्ता कालान्तर्गत विष्णुमें जो चित्त लगाता है वह जीव तथा उनकी उपाधियों को प्रेरणारूप ईशित्व प्राप्त करता है ॥१५॥ भगवत् शब्द वाच्य तुरीयाख्य नारायणरूपी मुझमें जो मन लगाता है वह योगी मेरे जैसा वशिता प्राप्त करता है ॥ १६ ॥ निर्गुण ब्रह्मरूप मुझमें जो धारणा करता है वह जहाँ सब इच्छाएँ शान्त होती हैं ऐसा परमानन्द पाता है ॥ १७ ॥ जो श्वेतद्वीपाधिपति धर्ममय मुझमें चित्त लगाता है क्षुधा-मोह-जरा-मरणरूपी छः ऊर्मियोंसे रहित होकर शुद्ध रूप पाता है ॥ १८ ॥ आकाशात्मभूत प्राणरूपी

मयि रञ्जयन् ॥ कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥ महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाम्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥ विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन्विशदं मनः ॥ परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयन् श्वेतां याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥ मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ॥ तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणानुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत ॥ पिण्डं हित्वा विशेत्प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥ २३ ॥ पाष्ण्यर्यापीड्य गुदं प्राणं हृदुरः कण्ठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥ विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं

मुझमें मनसे नादका चिन्ता करनेसे वह आकाशका ज्ञाता होकर उसमेंकी विचित्र वाणियाँ सुन सकता है ॥१९॥ आदित्यको चक्षुमें तथा चक्षुको आदित्यमें संयोजित करके दोनोंके संयोग से मेरा ध्यान करनेसे सूक्ष्म दृष्टि होकर सभी विश्वको देख सकता है ॥ २० ॥ मन और देहको तदनुवर्ती वायुके साथ मुझमें लगाकर जो मेरी धारणाकी जाती है उसके प्रभावसे जहाँ मन जाता है वहाँ देह जाती है ॥ २१ ॥ मनको उपादान बनाकर वह मनुष्य अपना अभीष्टरूप धारण कर सकता है, जो मुझमें मन लगाता है ॥ २२ ॥ परकायमें जो प्रवेश करना चाहता है उसको जिसमें प्रवेश करना चाहता है वहाँ आत्माका चिन्तन करना चाहिए और पिण्ड [देह] छोड़कर प्राण प्रधान लिङ्ग देहके साथ बहिर्वायुमें मिलकर भ्रमरके समान अभीष्ट शरीरमें प्रवेश करना चाहिए ॥ २३ ॥ एड़ीसे गुदद्वार दबाकर प्राणोपाधिक आत्माको हृदय, उर, कण्ठ मूर्धा इस क्रमसे ब्रह्मरन्ध्रसे ब्रह्म या इच्छित स्थान पर ले जाना चाहिए और शरीर छोड़

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देना चाहिए ॥ २४ ॥ मेरे मूर्तिरूप शुद्ध सत्त्वका चिन्तन करनेसे सत्त्व स्वभाववाली सुरस्त्रियाँ विमानसे आती हैं उनके साथ देवताओंके क्रीडास्थानोंमें वह विहार कर सकता है ॥ २५ ॥ मनिष्ठ होकर सत्य संकल्प मुझमें मनोयोग करके बुद्धिसे जिस-जिसका संकल्प करता है, वह वह उसको मिलता है ॥ २६ ॥ सर्वशक्तिमान् और वशी मेरा जो ध्यान करता है उसकी आज्ञा अप्रतिहत रहती है, जैसी मेरी ॥ २७ ॥ मेरी भक्तिसे जिसका चित्त शुद्ध हो जाता है ऐसे ध्यानज्ञकी बुद्धि त्रिकालज्ञ होती है। अपनी उत्पत्ति और मृत्यु भी उसको ज्ञात होती है ॥२८॥ अग्न्याद्युपघातशून्य मेरे योगसे जिसका चित्त शान्त हो गया है ऐसे मुनिका योगमय शरीर अग्न्यादिसे आहत नहीं होता, जैसे कि जलचरोंको पानी बाधक नहीं होता ॥२९॥ श्रीवत्सकौस्तुभादिसे विभूषित ध्वज, छत्र, व्यजनोंके साथ मेरी विभूतियोंका जो ध्यान करता है वह अपराजित होता है ॥ ३० ॥ इस तरह योग धारणासे मेरी उपासना करनेवाले मुनिको

सत्त्वं विभावयेत् ॥ विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥ यथा सङ्कल्पयेद्बुद्ध्या यदा वा मत्सरः पुमान् ॥ मयि सत्ये मनो युञ्जं-
स्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या शुद्ध-
सत्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रान्त-
चित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥ मद्विभूतीरभिध्यायन् श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः ॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥ उपासकस्य
मामेवं योगधारणया मुनेः ॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ॥ मद्धारणां
धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अन्तरायान्वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥
जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥
अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं
तथा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पूर्व कथित सब सिद्धियाँ मिलती हैं ॥ ३१ ॥ जितेन्द्रिय, दमसम्पन्न, श्वासजयी और मेरा ध्यान करनेवालेको कौन सी ऐसी सिद्धि है, जो दुर्लभ है ॥ ३२ ॥ मेरी प्राप्तिकी इच्छा करके उत्तम, योग, करनेवालेके लिए ये सिद्धियाँ योगसे प्राप्त होती हैं किन्तु योग गतिको जन्म आदि सिद्धियोंसे नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ३४ ॥ सभी सिद्धियोंका मैं स्वामी तथा कारण हूँ। एवं सांख्य, योग, धर्म तथा ब्रह्मवादियोंका भी साधन और प्रभु हूँ ॥३५॥ मैं सब देहियोंका बाह्य तथा अन्तर आत्मा अपरिच्छिन्न हूँ जैसा चतुर्विध भूतोंमें महाभूत अन्दर और बाहर रहते हैं मैं स्वयं भी वैसा ही रहता हूँ ॥ ३६ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पन्द्रहवें अध्यायका सार—भगवान्ने कहा—श्वासका जयकर योगसे मेरा ध्यान करनेवालेको सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उद्धवने प्रश्न किया—किस तरहका ध्यान करनेसे कौनसी सिद्धि प्राप्त होती है तथा सिद्धियाँ कितनी हैं, कृपया बतलाइए। भगवान्ने कहा—योगके जानकार अठारह सिद्धियाँ बताते हैं, उनमें अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाश्य, ईशित्व, वशित्व और यत्काम—ये आठ सिद्धियाँ प्रधान हैं। अब किस धारणासे कौन सी सिद्धि मिलती है, सुनो—तन्मात्राओंके अन्तर्गत मेरे ध्यानसे अणिमा, महत्तत्वान्तर्गतका ध्यान करनेसे महिमा, अलग अलग भूतोंमें ध्यान करनेसे भूतोंकी महिमा पाता है। परमाणुओंके अन्तर्गत मेरे ध्यानसे लघिमा, सात्विकाहंकारसे ध्यान करनेसे प्राप्ति, प्रकृत्यन्तर्गत कालात्मक विष्णुके ध्यानसे-ईशित्व, सूत्रान्तर्गतके ध्यानसे प्राकाश्य, भगवच्छब्द वाच्य नारायणके ध्यानसे वशित्व और निर्गुण ब्रह्मकी धारणासे सब इच्छाओंकी शान्ति द्वारा परमानन्द प्राप्त होता है। लेकिन मेरी प्रतिमाकी इच्छासे योग करनेवालेको ये सभी सिद्धियाँ विघ्नभूत हैं। जन्म, औषधि, तप आदिसे प्राप्त होनेवाली सभी सिद्धियाँ योगसे मिलती हैं लेकिन योगकी गतिका जन्मादि सिद्धियोंसे नहीं प्राप्त कर सकते। मैं इन सिद्धियोंका प्रभु तथा कारण हूँ। सांख्य, योग, धर्म, ब्रह्मज्ञानी सबका मैं प्रभु हूँ। मैं सभी देहियोंके बाहर तथा अन्दर रहनेवाला अपरिच्छिन्न आत्मा हूँ। पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥

❀ अथ षोडशोऽध्यायः ❀

(विभूति वर्णन)

उद्धवने कहा—हे कृष्ण, आप साक्षात् आद्यन्त रहित अपरिच्छेद्य परब्रह्म है। आप सभी पदार्थों के सर्गस्थिति और प्रलयके कारण हैं॥१॥ हे भगवन् जिनका मनस्वाधीन नहीं है ऐसे लोग आपको नहीं जान सकते। ब्रह्मज्ञलोग छोटे-बड़े भूतोंमें आपकी अपने स्वरूपसे पूजा करते हैं ॥ २ ॥ किन-किन पदार्थोंमें शक्तिसे आपकी उपासना करके महर्षिलोग सिद्धि पाते हैं

उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ॥ सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥१॥ उच्चावचेषु भूतेषुदुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ॥ उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ॥ उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ॥ न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥४॥ याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते ॥ ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदाम्वर ॥

यह मुझे कहिये ॥ ३ ॥ आप अप्रकट रूपसे भूतोंमें रहते हैं आप भूतोंके अन्तर्यामी हैं, भूतोंके उत्पादक हैं। आप सबको देखते हैं, लेकिन आपकी मायासे मोहित भूत आपको नहीं देख पाते॥ ४ ॥ आपकी भूमिमें, स्वर्गमें, पातालमें, किसी शक्ति-विशेषसे संयोजित कौन-सी विभूतियाँ हैं ? मुझे बतलाइए, तीर्थों के स्थान भूत आपके चरणोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्री भगवान्‌ने कहा—हे प्रश्न करनेवालोंमें श्रेष्ठ, युद्धके समय शत्रुओंसे युयुत्सु अर्जुनने इसी तरह प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ प्राकृत बुद्धिके कारण मैं मारनेवाला और यह मरनेवाला ऐसा समझकर अर्जुन राज्यके लिए जातिवधको गर्ह्य तथा अधर्म समझता था ॥ ७ ॥ तब मैंने उसको युक्तिसे समझाया उस अवसरपर उसने भी तुम्हारे ही समान प्रश्न किया था ॥ ८ ॥ हे उद्धव, मैं इन सभी भूतोंका आत्मा, सुहृद और ईश्वर हूँ। मैं ही सभी भूत हूँ, उसका सृष्टि, स्थिति और संहार भी मैं ही हूँ ॥ ९ ॥ मैं गतिमानोंमें गति, वश करनेवाले गुणोंमें साम्य तथा गुणियोंमें स्वाभाविक गुण हूँ ॥ १० ॥ गुणियोंमें मैं सूत्र (प्रथम कार्य) बड़ोंमें महत्तत्त्व, सूक्ष्मोंमें जीव, दुर्जयोंमें मन हूँ ॥ ११ ॥ वेदोंके पढ़ानेवालोंमें ब्रह्मदेव, मन्त्रोंमें त्रिवृत् प्रणव हूँ। अक्षरोंमें अकार छन्दोंमें त्रिपदा गायत्री हूँ ॥१२॥ देवोंमें इन्द्र, वसुओंमें अग्नि, आदित्योंमें विष्णु, रुद्रोंमें नील लोहित हूँ ॥ १३ ॥ मैं ब्रह्मर्षियोंमें भृगु, राजर्षियोंमें मनु, देव-

युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥ ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो निवृत्तो हन्ताहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥९॥ अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥१०॥ गुणिनामप्यहंसूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मन्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानिच्छन्दसामहम् ॥ १२ ॥ इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ॥ आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नील-लोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहहं मनुः ॥ देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितृणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥१६॥ ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ॥ तपसां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥ उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् ॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥ नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ॥ आश्रमाणा-महं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥ तीर्थानां स्रोतसां गङ्गा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥

र्षियोंमें नारद, तथा धेनुओंमें कामधेनु हूँ ॥ १४ ॥ मैं सिद्धोंमें कपिल, पक्षियोंमें गरुड, प्रजापतियोंमें दक्ष पितरोंमें अर्यमा हूँ ॥१५॥ मैं दैत्योंमें असुरेश्वर प्रह्लाद हूँ। नक्षत्र और ओष-धियोंमें चन्द्र-सोम हूँ। यक्ष-राक्षसोंमें कुबेर हूँ ॥ १६ ॥ मैं गजेन्द्रोंमें ऐरावत, जलचरोंमें प्रभु वरुण, तपनेवाले तथा कान्तिवालोंमें सूर्य, मनुष्योंमें राजा हूँ ॥ १७ ॥ मैं घोड़ेमें उच्चैश्रवा, धातुओंमें सुवर्ण, नियमन करनेवालोंमें यम, सर्पोंमें वासुकि हूँ ॥ १८ ॥ मैं नागोंमें अनन्त, शृङ्गी तथा दंष्ट्रियोंमें सिंह हूँ। आश्रमोंमें संन्यास और वर्णोंमें ब्राह्मण हूँ ॥१९॥ तीर्थ और स्रोतोंमें गङ्गा हूँ, सरोवरोंमें समुद्र अयुधोंमें धनुष, धनुषधारियोमें त्रिपुरारि [शङ्कर] हूँ ॥ २० ॥ निवास-स्थानोंमें मैं मेरु और दुगम स्थानों हिमालय हूँ। वनस्पतियोंमें अश्वत्थ तथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

औषधियोंमें यव हूँ। मैं पुरोहितोंमें वसिष्ठ, वेदार्थज्ञोंमें बृहस्पति, सेनानियोंमें स्कन्द, सन्मार्गप्रवर्तकोंमें भगवान् ब्रह्मा हूँ ॥ २१, २२ ॥ यज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ व्रतोंमें अहिंसा, शुचि पदार्थों में वायु-अग्नि-सूर्य-जल-वाणीरूप शुचि हूँ ॥ २३ ॥ योगोंमें समाधि योग, विजिगिषुओंमें मन्त्र विचार, कौशलोंमें आन्वीक्षिकी [आत्मानात्मविवेकविद्या] और ख्यातिवादियोंमें विकल्प हूँ ॥ २४ ॥ स्त्रियोंमें शतरूपा और पुरुषोंमें स्वायंभूमनु हूँ। मुनियोंमें नारायण और ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार हूँ ॥ २५ ॥ मैं धर्मों में संन्यास हूँ, अभय स्थानोंमें अन्तर्निष्ठ हूँ। गुह्योंमें में प्रिय वचन और मौन हूँ। मिथुनोंमें ब्रह्मदेव हूँ ॥ २६ ॥ अप्रमत्तोंमें संवत्सर तथा ऋतुओंमें वसन्त, मासोंमें मार्गशीर्ष, नक्षत्रोंमें अभिजित् हूँ ॥ २७ ॥ युगोंमें सत्ययुग, धीरोंमें देवल और असित, व्यासोंमें द्वैपायन, विद्वानोंमें शुक्राचार्य हूँ ॥ २८ ॥ भगवानोंमें वासुदेव, भागवतोंमें उद्धव, किं पुरुषोंमें हनुमान्, विद्याधरोंमें सुदर्शन हूँ ॥ २९ ॥ रत्नोंमें पद्म-

धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥ २१ ॥ पुरोधसां वशिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥२४॥ स्त्रीणां तु शतरूपाहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥ धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ॥ गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥२६॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाभिजित् ॥२७॥ अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ॥ द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ॥ किंपुरुषाणां हनुमान्विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥२९॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मिपद्मकोशः सुपेशसाम् कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविःष्वहम् ॥ ३०॥ व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः॥ तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३१॥ ओजः सहोबलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वतां॥सात्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा॥३२॥ विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम्॥ भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः॥३३॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ॥ प्रभा सूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां

राग, सुन्दरोंमें पद्मकोष दर्भजातियोंमें कुश, हविर्द्रव्योंमें गव्य [गायका] आज्य हूँ ॥ ३० ॥ व्यवसायियोंमें मैं सम्पत् हूँ। कपटोंमें छलसे पाँसे डालता हूँ। तितिक्षुलोगोंमें तितिक्षा हूँ, सत्यवानोंमें सत्य हूँ ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें ओज और सहनशीलत्व हूँ, भागवतोंमें भक्तियुक्त कर्म हूँ। उन्हींके नवव्यूहार्चाके नवमूर्तियोंमें मैं वासुदेव हूँ ॥ ३२ ॥ गन्धर्व अप्सराओंमें विश्वावसु और पूर्वचित्ति हूँ। भूधरोंमें मैं स्थैर्य हूँ, भूमिमें गन्ध हूँ ॥ ३३ ॥ जलमें मधुर रस हूँ, तेजस्वियोंमें अग्नि हूँ, सूर्य, चन्द्र, और ताराओंमें प्रभा हूँ आकाशमें शब्द हूँ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणभक्तोंमें मैं बलि हूँ, वीरोंमें अर्जुन हूँ। भूतोंकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैं हूँ ॥ ३५ ॥ इन्द्रियोंमें व्यापार-बोलना, लेना, चलना, छोड़ना, आनन्द लेना, तथा आस्वाद,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रवण एवं सूँघना मैं हूँ और अर्थग्रहण शक्ति भी मैं हूँ ॥ ३६॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज इनकी तन्मात्राएँ, अहंकार महत्तत्व, पुरुष प्रकृति, सत्वरज-तमोगुण, ब्रह्म, सब मैं हूँ। इनकी परिगणना, लक्षणसे ज्ञान तत्वनिश्चय मैं हूँ॥३७॥ईश्वर, जीव, गुण, गुणी, कोई भी भाव मेरे बिना नहीं है। मैं सभीकी आत्मा तथा सर्वरूप हूँ॥३८॥मैं कुछकालमें जिनके परमाणुओं की संख्या बता सकता हूँ, लेकिन कोटिशः ब्रह्माण्डसृष्टि करनेवाले मेरी विभूतियों की कोई संख्या नहीं गिन सकता ॥३९॥ तेज, श्री, कीर्ति, त्याग, आन्हादकत्व भाग्य वीर्य तितिक्षा

स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् ॥ आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥ पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्वं तमः परम् ॥ अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्वविनिश्चयः ॥ ३७ ॥ मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ॥ सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ॥ न तथा मे विभूतिनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥ तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥ ४० ॥ एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणि च ॥ आत्मानमात्मना यच्छ भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ॥ तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ४३ ॥ तस्मान्मनोवचः प्राणान्नि-यच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विज्ञान जहाँ हैं वह मेरा अंश है ॥४०॥ ये मैंने तुम्हें संक्षेपमें विभूतियाँ बताई हैं, लेकिन ये सब वाणीसे कही जानेवाली मनोविकाररूप हैं, परमार्थ नहीं ॥४१॥ अतः तुम वाणी, मन, प्राण, इन्द्रिय, बुद्धि सभीको वशमें करो, फिर इस संसारके पथ पर न आना पड़ेगा ॥४२॥ जो वाणी और मनको अच्छी तरह संयत नहीं करता है उस यतिका तप, दान, व्रत, सभी कच्चे घड़ेसे पानीके जैसे नष्ट हो जाते हैं ॥४३॥ इसलिए मत्परायण होकर मन, वाणी, और प्राणोंका मेरी भक्तिसे मुक्त बुद्धिद्वारा संयमन करना चाहिए तब कृत्यकृत्य होता है ॥ ४४ ॥

सोलहवें अध्यायका सार—उद्धवने कहा–हे भगवन्, आप आद्यन्त रहित सभीके कारण हैं, ब्रह्मज्ञ महर्षि किन विभूतियोंमें आपकी पूजाकरके सिद्धिलाभ करते हैं ? आप भूतोंके अन्तर्यामी हैं माया मोहित लोग आपको नहीं देखते, लेकिन आप सबको देखते हैं। स्वर्ग, भूमि और पातालमें जो भी आपकी विभूतियाँ हैं, मुझे बतलाइये। श्रीभगवान्ने कहा-महाभारतके युद्ध समय मोहमें पड़कर युद्धसे विमुख अर्जुनको मैंने उपदेश दिया, उस समय उसने यही प्रश्न किया था। उद्धव, सभी भूतोंका सुहृद आत्मा ईश्वर मैं ही हूँ, उनकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय मैं करता हूँ। मैं गतिमानोंमें गति वशीकारकोंमें काल, गुणोंमें साम्य तथा मुनियोंमें स्वाभाविक गुण हूँ। इन्द्रियोंमें उनके व्यापार तथा अर्थग्रहण शक्ति मैं हूँ। प्रकृति, उसके विकार, पुरुष, ब्रह्म मैं हूँ। परमाणुओंकी गणना तो मैं कर सकूँगा, लेकिन मेरी विभूतियोंकी गणना कोई नहीं कर सकता। तेज, कीर्ति, श्री इत्यादि अच्छे गुण जिनमें हैं वे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेरी विभूतियाँ हैं। लेकिन ये सब वाग्विलास मात्र मनो विकार हूँ, परमार्थ मैं केवल शुद्ध हूँ। इसलिए तुम वाणी, मन और प्राण इनका संयम करके मुझमें मन लगाओ, फिर इस संसारसे मुक्त हो जाओगे। जो इनका संयम नहीं करता उसके दान, तप व्रत सब व्यर्थ हैं। सोलहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ सप्तदशोऽध्यायः ❀

(वर्णाश्रम धर्म प्रतिपादन)

उद्धवने कहा—आपने पहले वर्णाश्रमाचारवान् तथा समान्य मनुष्योंका अपनी भक्तिरूप धर्म बताया ॥ १ ॥ हे कमलनयन, जिस तरह स्वधर्मानुष्ठान करनेसे लोगोंकी आपमें भक्ति होगी वह हमें बतलाइये ॥ २ ॥ हे महाबाहो माधव, पूर्वकालमें आपने हंसरूपमें जो धर्म ब्रह्माको बताया, वह धर्म बहुत काल बीतनेके कारण पहले बताए हुए उसका अनुष्ठान अब आगे प्रायः न होगा ॥ ३, ४ ॥ और धर्मका वक्ता, कर्ता रक्षण कर्ता आपके सिवा भूमिमें दूसरा कोई नहीं है। ब्रह्माकी सभामें जहाँ सभी कलाएँ मूर्तिमान् हैं वहां भी वक्ता, कर्ता

उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥ यथानुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ॥ यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥ स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ॥ न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥ वक्ता कर्ताऽविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ॥ सभायामपि वैरिञ्च्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥ कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ॥ त्यक्ते महीतले देव विनिष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान्हरिः ॥ प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥ आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥ वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहंवृषरूपधृक् ॥ उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥ ११ ॥ त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे

रक्षिता, आप ही हैं, फिर इस भूमितलमें नष्टधर्म कौन कहेगा ॥ ५, ६ ॥ इसलिए हे सर्वधर्मज्ञ, आपका भक्तिरूपधर्म किसके लिए कैसा विहित है हे प्रभो, उसका वर्णन कीजिए ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेव जीने कहा—इस तरह अपने प्रमुख भक्तके पूछने पर उस भगवान् हरिमें प्रीत होकर दुनियाँके क्षेमके लिए सनातन धर्म कहे ॥८॥ श्री भगवान्ने कहा—हे उद्धव, तुम्हारा यह धर्म तथा वर्णाश्रमाचारवान् लोगोंके लिए मोक्षदायक है। मैं धर्मको कहता हूँ सुनो ॥ ९ ॥ पूर्वकालमें—कृतयुगमें लोगोंका हंस नामका वर्ण था। सभी प्रजाएँ कृतकृत्य थीं अतः उसको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कृतयुग कहा जाता था ॥१०॥ उस समय वेद प्रभावरूप था मैं वृषभरूपधारी धर्म था। हंसरूपी मेरी तपस्वी निष्पाप लोग उपासना क्रिया करते थे ॥११॥ त्रेतायुगमें मेरे प्राणसे त्रयी विद्या प्रादुर्भूत हुई उस त्रयीसे हौत्र आध्वर्यव औद्गात्र रूपी यज्ञमय मैं प्रादुर्भूत था॥१२॥ स्वधर्म ही जिनका लक्षण है ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विराट् पुरुषके मुख, बाहु, उरु और पाद से उत्पन्न हुए ॥१३॥ उसीके जघनसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ और सिरसे संन्यास निकले ॥१४॥ वर्ण और आश्रमके उत्पत्तिस्थानके अनुसार नीच, मध्यम तथा उत्तम प्रकृतियाँ हैं ॥ १५ ॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, मेरी, भक्ति, दया, सत्य ये ब्राह्मणके स्वभाव हैं ॥ १६ ॥ तेज, बल, धैर्य, शौर्य, सहिष्णुता, औदार्य, उद्योग, स्थिरता, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्य, ये क्षत्रियके स्वभाव हैं ॥ १७ ॥ आस्तिकता, दानमें निष्ठा, दम्भ न करना, ब्राह्मणोंकी सेवा करना; अर्थ वृद्धिसे असन्तोष ये वैश्यके स्वभाव हैं॥१८॥

हृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचार-लक्षणाः ॥ १३ ॥ गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ॥ वक्षःस्थानाद्वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥ १५ ॥ शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यं दान-निष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ॥ तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥ आशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥२०॥ अहिंसा सत्य-मस्तेयकामक्रोधलोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वसन् गुरुकुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाहुतः ॥ २२ ॥ मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून् ॥ जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान् दधत् ॥ २३ ॥ स्नानभोजनहो-मेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ॥ न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥२४॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णोऽवगाह्याप्सु

ब्राह्मण और गौओंकी शुश्रूषा करना तथा देवताओंकी भी निष्कपट भावसे सेवा करना उससे जो प्राप्त हो उसीमें सन्तोष मानना ये शूद्रके स्वभाव हैं ॥ १९ ॥ शुद्ध न रहना, झूठ बोलना, चोरी करना, नास्तिकता, व्यर्थ कलह, काम-क्रोध-तृष्णा, यह अन्त्यजनोंके स्वभाव हैं ॥ २० ॥ अहिंसा सत्य चोरी न करना काम-क्रोध-लोभ रहित होना, भूतोंके प्रिय तथा हितकी इच्छा करना ये सभी वर्णोंका धर्म है॥२१॥उपयनय रूप दूसरा जन्म पाकर त्रैवर्णिक द्विज बनता है। उसके बाद उसको गुरुकुलमें शान्त तथा दान्त रहकर वेदाध्ययन करना चाहिए॥२२॥ मेखला अजिन, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, दण्ड और अक्षयमाला रखनी चाहिए। जटा धारण करना चाहिए। कपड़े तथा दाँत नहीं धोना चाहिए। दर्भोंको भी धारण करना चाहिए। और रंगीन-आसनपर नहीं बैठना चाहिए ॥२३॥ स्नान, भोजन, होम तथा जपोच्चारणमें मौन रहना चाहिए, नखों और सभी जगहके रोमोंको नहीं काटना चाहिए ॥ २४ ॥ कभी भी रेतोत्सर्ग नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करना चाहिए, ब्रह्मचारीको अगर उत्सर्ग किया, तो स्नानकर प्राणायामकर गायत्रीका जप करना चाहिए ॥२५॥ शुचि और समाहित होकर अग्नि, सूर्य, आचार्य, गो, विप्र, गुरु, वृद्ध तथा देवताओंकी उपासना करनी चाहिए । मौन रहकर जप करते हुए सन्ध्या भी करनी चाहिए ॥२६॥ आचार्यको ईश्वर समझकर उनकी कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए । मनुष्य समझकर कभी भी उनकी असूया नहीं करनी चाहिए । गुरु सर्वदेवमय हैं । सायं-प्रातः भिक्षा लाकर गुरुको निवेदन करना चाहिए और भी जो उपभोग करनेकी चीज हो, गुरुकी अनुज्ञा लेकर उसका उपभोग करना चाहिए ॥२७,२८॥ गुरुकी सुश्रूषा करते समय यान-आसन-शय्या-स्थानोंसे उनकी नीचेके समान उपासना करनी चाहिए । उनसे थोड़ी ही दूरीपर हाथ जोड़कर रहना चाहिए॥२६॥ इस प्रकारसे योगरहित होकर विद्या समाप्त होने तक अखण्ड व्रत धारण करते हुए गुरुगृहमें रहना चाहिए ॥३०॥ यदि वह ब्रह्मचारी जनलोक या सत्यलोक

यतासुस्त्रिपदीं जपेत् । २५॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुरान् शुचिः ॥ समाहित उपासीत सन्ध्ये च यतवाग्जपन् ॥२६॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥ सायंप्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥ शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृताञ्जलिः ॥ २६ ॥ एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ॥ विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौ छन्दसां लोकमारोदयन् ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३१ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि न सर्वभूतेषु मां परम् ॥ अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसँल्लापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनं स्नानं सन्ध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥३४॥ सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥३५॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥३६॥ अथानन्तरमावेदयन्यथाजिज्ञासितागमः ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद्गुर्वनुमोदितः

में जाना चाहता हो तो स्वाध्यायके लिये नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारणकर उसे अपनी देह गुरुको समर्पित कर देनी चाहिये ॥३१॥ ब्रह्मवर्चस्वी तथा कल्मष रहित होकर अग्निमें, गुरुमें, आत्मामें, सर्वभूतोंमें अन्तर्यामी रूपोंमें भेदबुद्धिशून्य होकर मेरी उपासना करनी चाहिए ॥३२॥ स्त्रियोंका निरीक्षण, स्पर्श, भाषण, परिहास इत्यादि छोड़ देना चाहिए, मिथुनीभूत प्राणियोंको नहीं देखना चाहिए ॥३३॥ शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, तीर्थसेवा, जप, अस्पर्श्यास्पर्श तथा अभक्ष्य-भक्षण ये सभी आश्रमोंके लिये नियम हैं हे कुलनन्दन; इसतरह सभी भूतोंमें मेरा भाव रखना और मन वाणी तथा शरीरपर संयम रखना भी सभीके लिये है ॥ ३४, ३५ ॥ इस तरह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करनेसे, तीव्रतपसे अग्निके समान जलता हुआ सभी कर्मवासनाओंको दग्धकर शुद्ध मेरा भक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ अनन्तर अध्ययन समाप्त होनेके बाद दूसरे किसी भी आश्रममें प्रवेशकी इच्छा होनेपर गुरुको दक्षिणा दे करके उनका अनुमोदन लेकर स्नान करना चाहिये ॥३७॥ गृहस्थ या वानप्रस्थाश्रम लेसकता है, ब्राह्मण संन्यास भी ले सकता है । मत्परायणको आश्रमसे आश्रमान्तरमें जाना चाहिये आश्रम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हीन न रहना चाहिये ॥३८॥ जिसकी गृहस्थाश्रममें प्रवेशकी इच्छा हो उसको कुलीन लक्षणोंसे आनन्दित अपनेसे छोटी सवर्णा भार्याको स्वीकार करना चाहिए ॥ ३९ ॥ यज्ञ, अध्ययन दान सभी द्विजोंके लिये है। प्रतिग्रह, याजन तथा अध्यापन ब्राह्मणके लिये ही है ॥४०॥ प्रतिग्रह, तप, तेज, तथा यशको नष्ट करनेवाला समझकर याजनाध्ययनसे ही जीवनयापन करना चाहिये, अथवा उसमें भी दोष देखकर शिलोंछवृत्तिसे जीना चाहिये ॥४१॥ ब्राह्मणकी यह देह क्षुद्र इच्छापूर्तिके लिये नहीं है, किन्तु कष्टके लिये, तपके लिये और मरणके बाद अनन्तसुख [मोक्ष] के लिए है ॥ ४२ ॥ शिलोञ्छवृत्तिसे चित्त सन्तोष करके विशुद्ध महान् धर्मका पालन करनेवाला मुझमें जिसने मन लगाया है, ज्यादा आसक्ति जिसको नहीं है, उसको घरमें ही शान्ति मिलती है ॥४३॥ जो मेरा भजन करनेवाले, दुःख अनुभव करनेवाले ब्राह्मणका उद्धार करता है, उनका मैं आपत्तियोंसे उसतरह उद्धार करता हूँ, जिसतरह नौका

॥ ३७ ॥ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥३८॥ गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३९ ॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत् शिलैर्वा दोषदृक् तयोः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ॥ कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥४२॥ शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः ॥ मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शान्तिम् ॥ ४३ ॥ समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् ॥ तानुद्धरिष्ये नचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥ आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥ एवंविधोनरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ॥ खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥४७॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि ॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥४८॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम् ॥ कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९ ॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥ ५० ॥

समुद्रसे ॥४४॥ राजाको पिताके समान सभी प्रजाओंका आपत्तियोंसे उद्धार करना चाहिए। और अपना तो स्वयं उस तरह उद्धार करना चाहिए जिस तरह गजपति गजोंका उद्धारकर स्वयं अपना उद्धार कर लेता है ॥ ४५ ॥ ऐसा राजा सूर्यके समान तेजस्वी विभवसे इन्द्रके साथ आनन्द लेता है ॥ ४६ ॥ आपत्तिमें ब्राह्मणको वैश्यावृत्ति ग्रहण करनी चाहिए और दुकानदारीसे आपत्ति पार करनी चाहिए अथवा आपत्तिमें खड्ग धारण करना चाहिए यानी आपत्तिमें ब्राह्मणको क्षत्रियवृत्ति स्वीकारकर लेनी चाहिये, किन्तु सेवा वृत्तिसे कभी भी उपजीविका नहीं करनी चाहिए ॥ ४७ ॥ राजाको आपत्तिमें वैश्यवृत्तिसे जीना चाहिए या मृगया अथवा ब्राह्मणरूपसे विचरना चाहिए, श्ववृत्ति [सेवा] से कभी नहीं ॥ ४८ ॥ वैश्यको आपत्तिमें शूद्र वृत्तिसे तथा शूद्रको कारीगरीसे उपजीविका करनी चाहिए। आपत्तिसे मुक्त होनेपर निन्दित कर्मसे जीवन निर्वाह छोड़ देना चाहिए ॥ ४९ ॥ शक्तिके अनुसार वेदाध्ययन,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वधा, स्वाहा, बलि तथा अन्नोंसे देव, ऋषि, पितृ और भूतका जो मेरे रूप हैं, पूजन करना चाहिए ॥ ५० ॥ यदृच्छासे प्राप्त अथवा स्ववृत्तिसे लब्ध धनसे अपने पोष्योंको तकलीफ न पहुँचे इस तरहसे यज्ञ करना चाहिए ॥ ५१ ॥ कुटुम्बमें अधिक आसक्त नहीं होना चाहिए और ईश्वरनिष्ठामें असावधान नहीं होना चाहिए । विद्वान्‌को दृष्ट सुखके समान अदृष्ट-स्वर्गादि सुखको भी नश्वर ही समझना चाहिए ॥ ५२ ॥ पुत्र, दारा आप्त-बन्धुओंका सम्बन्ध तो प्रपामें [पौसलामें] वान्योंके सङ्गम-जैसा है । प्रत्येक देहमें ये उस तरह नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह निद्रा नष्ट होनेसे स्वप्न नष्ट हो जाता है ॥ ५३ ॥ ऐसा विचारकर गृहस्थको घरमें अतिथिके समान रहना चाहिए, ममता और अहंकारसे रहित हुए गृहस्थ पुरुषको घरमें आसक्त

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा॥ धनेनापीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ५१॥ कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत ॥ ५२ ॥ पुत्रदाराप्तबन्धूनां सङ्गमः पान्थसङ्गमः ॥ अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ।। ५३ ॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहङ्कृतः ॥ ५४ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ५६ । अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः ॥ अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः । ५७॥ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

नहीं होना चाहिए घरेलु बन्धनोंमें कभी नहीं फँसना चाहिए ॥५४॥ भक्तिमान्‌को गृह्य कर्मोंसे मेरा ही भजनकर गृहस्थाश्रममें रहना चाहिए, वनमें चाहिए या प्रजावान् होनेसे संन्यास लेना चाहिए ॥ ५५ ॥ पुत्र और वित्तकी एषणासे आतुर जो घरमें आसक्त रहता है वह स्त्रैण, मूर्ख. मूढबुद्धि 'मेरा' और 'मैं' इस अभिमानसे बद्ध होता है ॥ ५६ ॥ हाय, मेरे वृद्ध माँ बाप, स्त्री, छोटे-छोटे लड़के और पोते मेरे विना अनाथ हो जायेंगे, ये दीन दुखित होकर कैसे जीयेंगे ऐसा वह विचार करता है ॥ ५७॥ घरमें जो ऐसी वासना है उससे विक्षिप्त चित्त यह मूढमति अतृप्त रहकर उन्हींका ध्यान करता हुआ मरनेके बाद अन्धन्तममें प्रवेश करता है ॥ ५८ ॥

सत्रहवें अध्यायका सार—उद्धवने कहा—भगवन्, जिस तरह स्वधर्मानुष्ठान करनेसे आपमें भक्ति उत्पन्न होती हो, ऐसा धर्म कहिये । हंसरूपसे बताया हुआ धर्म अब इसके बाद प्रायः नहीं चल सकेगा । आपके सिवा धर्मका वक्ता, कर्ता, रक्षिता दूसरा नहीं है । भगवान्‌ने कहा —हे उद्धव, तुम्हारे प्रश्नसे वर्णाश्रमधर्मी लोगोंका बहुत उपकार होगा, उसके लिये मोक्ष सरल होगा । अब वर्णाश्रम धर्म कहता हूँ, सुनो । कृतयुगमें लोगोंका हंस नामक वर्ण था सब लोगोंके कृत कृत्य होनेके कारण उस युगका कृतयुग नाम पड़ा था तब वेद प्रणवरूपी था, धर्म वृषरूपधारी था, हंसरूपी सब लोग उपासना करते थे । त्रेतायुगमें मेरे श्वासोच्छ्वाससे तीन वेद निकले, उनसे यज्ञरूपी मेरा प्रादुर्भाव हुआ । वैराज पुरुषके मुख बाहु, ऊरु तथा पादसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए । उसी पुरुषके जघनसे गृहस्थ, हृदयसे ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ तथा सिरसे संन्यास निकला । वर्णाश्रमोंके उत्पत्तिस्थानके ॥४ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नीचोच्चताके अनुसार ही लोगोंकी उत्तम, मध्यम या अधम प्रकृति होती है। शम, दम, तप आदि ये ब्राह्मणके स्वभाव हैं। तेज, बल, धैर्य आदि ये क्षत्रियके गुण हैं। आस्तिक्य दान ब्राह्मणोंकी सेवा अर्थवृद्धिसे सन्तुष्ट न होना ये वैश्यके स्वभाव हैं। देव, गो और ब्राह्मणोंकी निष्कपट सेवा करना ही शूद्रका स्वभाव है। शुद्ध न रहना, झूठ बोलना, चोरी करना आदि अन्त्यजके स्वभाव हैं। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, आस्तिक्य, काम क्रोधादि रहित होना भूतोंका प्रिय करना ये सभी वर्णोंका धर्म है। उपनयनसे दूसरा जन्म पाकर त्रैवर्णिक लोग द्विज कहलाते हैं। उपनयनके बाद उपनीतको गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करना चाहिये। शौच, स्नान, सन्ध्योपासन, तीर्थसेवन, अभक्ष्याभक्षण अस्पृश्यास्पर्शन, सभी भूतोंमें मेरा भाव रखना, मन, वाणी और शरीरपर संयम रखना सभीका धर्म है। जिसको ब्रह्मलोक या जनलोककी इच्छा हो उसको नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए। नैष्ठिक ब्रह्मचारी तीव्र तपसे अग्निके समान जलता है। उसकी सभी कर्मवासनाएँ जब नष्ट हो जाती हैं तब वह शुद्ध मेरा भक्त होता है। द्वितीय आश्रममें प्रविष्ट होनेकी इच्छा रखनेवालेको अध्ययन समाप्त होनेके बाद गुरुकी आज्ञा लेकर स्नान करके अपना इच्छित गृहस्थ या वानप्रस्थ आश्रम लेना चाहिए। ब्राह्मण संन्यास भी ले सकता है। गृहस्थ होनेकी इच्छावालेको अपनेसे उमरमें छोटी अनिन्दित सवर्ण भार्याके साथ विवाह करना चाहिए। यज्ञ, अध्ययन, दान सभी द्विजोंको विहित है। अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह ब्राह्मण ही कर सकता है। अगर प्रतिग्रह तप और तेजका नाशक है, ऐसा समझे, तो ब्राह्मणको याजनाध्यापनसेही जीविका करनी चाहिए। राजाको पुत्रके समान प्रजाओंकी विपत्तिमें रक्षा करनी चाहिए तथा स्वयं अपना धैर्यसे उद्धार कना चाहिए। आपत्तिमें ब्राह्मणको वैश्यवृत्ति या क्षत्रियवृत्त स्वीकार करनी चाहिए। क्षत्रियको आपत्तिमें वैश्यवृत्ति, मृगया या ब्राह्मणरूपसे जीवनयापन करना चाहिए। वैश्यको आपत्तिमें शूद्रवृत्ति तथा शूद्रको शिल्पकारी आदिसे जीवन निर्वाह करना चाहिए। आपत्ति हट जानेपर दूसरेकी वृत्ति छोड़ देनी चाहिये। शक्त्यानुसार देव, ऋषि, पितृ मनुष्योंका तर्पण करना चाहिए। कुटुम्बमें ज्यादा आसक्त न होकर ईश्वरनिष्ठामें सावधान रहना चाहिए। विद्वान्को इष्टसुखके समान स्वर्गादि सुखको भी नश्वर समझना चाहिए। जो पुत्रैषणामें पड़ता है वह 'मेरा' और 'मैं' इस अभिमानसे बद्ध होता है। 'हाय! मेरे मा-बाप स्त्री-बच्चे मेरे सिवा कैसे रहेंगे' ऐसी जिसकी वासना घरमें रहती है वह अतृप्त चित्तसे उन्हींका ध्यान करता हुआ मरकर अन्धन्तममें जाता है। सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥

❀ अथ अष्टादशोऽध्यायः ❀

(वाणप्रस्थ तथा संन्यासीके धर्मोंका वर्णन)

श्रीभगवान्ने कहा—यदि वनमें जाना हो, तो पुत्रोंको भार्या सौंपकर या उसके साथ ही आयुष्यके तृतीय भागमें वनमें जाना चाहिये ॥१॥ वनमें मेध्य कन्द, मूल फलोंसे उदर निर्वाह

श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥ कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं

करके वल्कल या तृण-पर्ण, अजिन इनमेंसे कुछ पहनना चाहिए ॥ २ ॥ केश, श्मश्रु, नख, लोम धारण करना चाहिए, दन्तधावन नहीं करना चाहिए। कभी दौड़ना नहीं चाहिये, तीनों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

काल जलमें डूबकर स्नान करना चाहिए तथा जमीन पर सोना चाहिये ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्नि साधन करना चाहिये। वर्षामें वृष्टि सहते हुए और शिशिरमें जलमें आकण्ठ मग्न होकर तप करना चाहिए ॥ ४ ॥ अग्निपक्व खाना चाहिए या काल पक्व फलादि खाना चाहिए अथवा उलूखल और मूसलका उपयोग करे या केवल पत्थरसे कूटकर काम निकाले अथवा दातोंसे ही सब तरहका काम ले ॥ ५ ॥ अपनी वृत्तिके लिये स्वयं ही सामग्री जुटा लेनी चाहिये देश-कालको जानते हुए, दूसरोंके द्वारा लाये गये न ले ॥ ६ ॥ वन्य चरु तथा पुरोडाशसे तत्कालमें विहित श्रौत कर्म करना चाहिये वनाश्रमीको श्रौतपशुसे मेरा यजन नहीं करना चाहिए ॥ ७ ॥ अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य इनका ही अनुष्ठान वेद वादियोंने वानप्रस्थके लिये कहा है ॥ ८ ॥ इस तरह तपसे कृश होकर केवल शिराओंका जाल-सा होकर मुनि तपोमय मेरी आराधनासे महदादि लोकके क्रमसे मेरे पास आता है ॥ ९ ॥ जो कोई

प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वास स्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रु मलानि बिभृयाद्दतः ॥ न धावेदप्सुमज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषड् जले ॥ आकण्ठमग्नः शिशिर एवं वृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ॥ स्वयं सञ्चिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् । देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाहृतम् ॥६॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान् ॥ न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥७॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥८॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसन्ततः । मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥९॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥१०॥ यदासौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥११॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यक् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥१२॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥१४॥ बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत्किञ्चिदनापदि १५॥

पुरुष कष्टसे किये गये इस तपका क्षुद्र कामके लिये उपयोग करता है उसके जैसा मूर्ख कौन है ॥ १० ॥ जब वानप्रस्थी वृद्धावस्थाके कारण काँपने लगे और नियमोंमें असमर्थ हो जाय, तब वह आत्मामें अग्निका समारोप करके मुझमें चित्त लगाकर अग्निमें प्रवेश करे ॥ ११ ॥ जब कर्म परिणाम भूत दुःख युक्त स्वर्गादि लोकोंसे अच्छी तरह वैराग्य उत्पन्न हो जाय, तब अग्निका त्यागकर सन्न्यास ले लेवे ॥ १२ ॥ यथा विधान मेरा यजनकर ऋत्विगोंको सर्वस्व दानकर अग्निका प्राणमें समारोपकर निरपेक्ष हो करके सन्न्यास लेना चाहिए ॥१३॥ इस तरह जो सन्न्यास लेना चाहता है उसे ब्राह्मणके व्रतमें भार्यादि रूपसे देव विघ्न डालते हैं वे समझते हैं कि यह हमारा अतिक्रम कर रहा है हमें लांघकर आगे बढ़ रहा है ॥ १४ ॥ मुनि यदि वस्त्र धारण करना चाहते हों, तो उसे कौपीनमात्र आच्छादन रखना चाहिये। आपत्तिको छोड़कर अन्य समयमें दण्ड और पात्रसे भिन्न कुछ भी नहीं रखना चाहिए ॥ १५ ॥ दृष्टिसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देखकर पैर रखना चाहिये, वस्त्रसे शोधित जल पीना चाहिये, सत्यसे पवित्र वाणी बोलनी चाहिए और मनसे पवित्र आचरण करना चाहिये ॥ १६ ॥ मौनसे वाणीको, काम्यकर्म त्याग से देहको और प्राणायामसे मनको दण्डित [संयत] करना चाहिये । हे उद्धव, ये त्रिदण्ड जिसको नहीं हैं; वह केवल वेणु दण्डोंसे यति नहीं हो सकता ॥ १७ ॥ निन्दित लोगोंको छोड़ कर चारों वर्णोंके लोगोंसे भिक्षा मांगनी चाहिए, अनिश्चित सात घरोंमें घूमना चाहिये और उनमें जो मिले उसीसे सन्तुष्ट रहना चाहिये । ग्रामके बाहर जलाशयके पास जाकर हाथ-धोकर मौनसे विष्णु-ब्रह्मादिकोंका विभाग निकालकर लाया हुआ सब भोजन करना चाहिये ॥ १८, १६ ॥ निस्सङ्ग और संयतेद्रिय होकर अकेले पृथ्वीपर घूमना चाहिये । आत्मामें क्रीडा करनेवाला, आत्मामें ही सन्तुष्ट रहनेवाला धीर तथा समदर्शी होना चाहिये ॥२०॥ निर्जन और निर्भय स्थान जिसका आश्रय है मेरे ऊपर भक्तिके कारण जिसका अन्तःकरण पवित्र

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥ १६ ॥ मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम् ॥
न ह्येते यस्य सन्त्यङ्ग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्विवर्जयंश्चरेत् ॥ सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥१८॥
बर्हिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषमाहृतम् ॥१६॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसङ्गः संयतेन्द्रियः ॥ आत्म-
क्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥ २० ॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ॥ आत्मानं चिन्तयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥२१॥ अन्वी
क्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बन्धं इन्द्रियविक्षेपो मोक्षएषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः ॥ विरक्तः
क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्यात्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥ पुरग्रामव्रजन्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवीं महीम् ॥ २४ ॥ वान-
प्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिध्यत्याशवसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलान्धसा ॥२५॥ नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति ॥ आसक्त-
चित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥२६॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ॥ सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥ २७ ॥

है ऐसे मुनिको मुझसे अभिन्न आत्माका चिन्तन करना चाहिए ॥ २१ ॥ ज्ञानसे आत्माके बंध और मोक्षको ठीक तरहसे समझना चाहिए । इन्द्रिय विक्षेप ही बंध एवं उनका संयम ही मोक्ष है ॥ २२ ॥ इसलिए कामादि षड्वर्गका नियमन करके क्षुद्र इच्छाओंसे विरक्त होकर आत्मामें अनन्त सुख पाकर मुझमें मन रखते हुए मुनिको घूमना चाहिये ॥ २३ ॥ शहर, ग्राम ग्वालोंकी बस्ती व्यापारियोंके काफिले इनमें भिक्षाके लिए प्रवेश करना चाहिए । पुण्यमय देश, नदी, पर्वत और बनोंसे युक्त पृथ्वीपर घूमना चाहिए ॥ २४ ॥ वानप्रस्थोंके आश्रमोंमें ज्यादातर भिक्षाके लिए जाना चाहिए शिलवृत्तिके अन्नसे मोह रहित तथा शुद्ध सत्त्व होकर शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ यह सब दृश्यमान् पदार्थ नष्ट होनेवाला है, सत्य नहीं है, ऐसा समझकर सर्वत्र आसक्त चित्त हो करके इसलोक तथा परलोकके कृत्यसे निवृत्त होना चाहिए ॥ २६ ॥ यह जो ममतास्पद मन, वाणी और प्राण सहित जगत् है वह सब आत्मामें मायासे कल्पित है ऐसा तर्कसे जानकर आत्मनिष्ठ हो करके उसका त्यागकर फिर चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठ विरक्त या निरपेक्ष मेरे भक्तको आश्रमोंके चिह्नोंको छोड़

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर विधिसे मुक्त होकर विचरण करना चाहिए ॥ २८ ॥ पण्डित होनेपर भी बच्चेके समान क्रीडा करना चाहिये । निपुण होनेपर भी अज्ञके समान आचरण करना चाहिए । जानकार होनेपर भी उन्मत्तके जैसी बातें करनी चाहिए । वेदार्थज्ञ होनेपर भी गौके समान आचरण करना चाहिए ॥२६॥ वेदके कर्मकाण्ड व्याख्यानसे, वेदविरुद्धार्थ प्रतिपादनसे शुष्कतर्कसे दूर रहना चाहिए । व्यर्थके वाद-विवादमें किसी पक्षका आश्रय नहीं लेना चाहिये ॥३०॥ धीर संन्यासीको न तो लोगोंको डराना चाहिए और न खुद डरना ही चाहिए । कटुभाषणको सहन करना, किसीका अपमान न करना तथा देहके लिए पशुके समान किसीसे वैर नहीं करना चाहिये ॥३१॥ एक ही श्रेष्ठ आत्मा सभी भूतोंके हृदयमें है जिस तरहसे एक ही चन्द्र भिन्न भिन्न उदकपात्रोंमें अलग अलग प्रतिबिम्बित होनेपर भी एक ही है, केवल उपाधिवशात् अलग अलग प्रविबिम्ब पड़नेसे भिन्न ज्ञात होता है, उसी तरह शरीरोपाधिवशात् आत्मा

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ॥ सालिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥२८॥ बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यांनैगमश्चरेत् ॥२६॥ वेदवादरतो न स्यान्न पाखण्डी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादे न कञ्चित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥ नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं चोद्वेजयेन्न तु ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित ॥ ३१ ॥ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥ अलब्ध्वा न विषीदत काले कालेऽशनं क्वचित् ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ॥ तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥३४॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥ तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥३५॥ शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥ अन्यांश्च नियमान् ज्ञानी यथाहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ नहि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आदेहान्तात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥३७॥ दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत ॥३८॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ॥

भिन्न ज्ञात होता है । भूतोंके शरीर पञ्चमहाभूतोंसे बने होनेके कारणरूपसे एकात्मक ही है ॥ ३२ ॥ कुछ न मिलनेपर दुःख नहीं करना तथा मिलनेपर अधिक प्रसन्न नहीं होना चाहिए, क्योंकि दोनों दैवाधीन हैं ॥ ३३ ॥ आहार न पानेपर उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि प्राण धारण आवश्यक है । इसी शरीरसे तत्त्व विचार किया जाता है और तत्त्व विचारसे पुरुष मुक्त होता है ॥ ३४ ॥ दैवसे मिले हुए अच्छे या खराब अन्नको खाना चाहिये । इसी तरह वस्त्र या शय्याके बारेमें भी जो मिले उसीसे काम चलाना चाहिये ॥ ३५ ॥ शौच, आचमन, स्नान या अन्य नियम विधिके आधीन होकर नहीं, किन्तु अनासक्त होकर पुरुष करे, जैसा कि ईश्वर होनेपर भी मैं लीलासे सब करता हूँ ॥ ३६ ॥ मुनिको भेद प्रतीति नहीं रहती । जो कुछ रहती है वह भी मेरे ज्ञानसे नष्ट हो जाती है, फिर भी देहका अन्त होने तक कहीं-कहीं उसकी ख्याति देखी जाती है । उसके बाद वह मुझमें लीन हो जाता है ॥ ३७ ॥ दुःख परिणामी कामोंमें निर्वेदको प्राप्त होकर मनोजय करके मेरे धर्मका जिस धीरने विचार नहीं किया उसको सन्न्यासी गुरुके पास जाना चाहिए ॥ ३८ ॥ जब तक ब्रह्मज्ञान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राप्त नहीं होता तबतक गुरुको मुझे ही समझकर यानी ये मेरे गुरुजी साक्षात् ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं, यह समझकर श्रद्धासे तथा असूया रहित होकर उनकी परिचर्या करनी चाहिए ॥ ३९ ॥ कामादि षड्वर्गोंका दमन न करनेवाला, अत्यन्त आसक्त बुद्धिसे युक्त तथा ज्ञान-वैराग्यसे रहित जो त्रिदण्डसे उपजीविका करता है यानी सिर्फ जीविकाके लिए संन्यास धारण करता है ॥ ४० ॥ वह अपने आपको, देवताओंको और अपने अन्तर्यामी मुझको भी प्रतारित करता है। जिसकी बुद्धि अपरिपक्व है ऐसा यह संन्यासी इह और परलोकसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥ सम और अहिंसा संन्यासीके धर्म, तप तथा तत्त्वविचार वनस्थके, भूतरक्षा एवं यज्ञ गृहस्थके धर्म हैं इसलिए सामान्यतः द्विजका आचार्य सेवा धर्म है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य, तप, शौच, सन्तोष, भूतोंपर सौहार्द्र—ये गृहस्थके भी धर्म हैं। ऋतुकालमें गमन गृहस्थका भी ब्रह्मचर्य है। मेरी उपासना करना यह सभी लोगोंका धर्म है ॥ ४३ ॥ इसतरह अपने अपने

याद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः ॥ ज्ञान वैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ॥४०॥ सुरा-नात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ॥ अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥४१॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ॥ गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषो भूतसौहृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दतेऽचिरात् ॥४४॥ भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सर्वोत्प-त्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥४५॥ इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो नचिरात्समुपैति माम् ॥ ४६ ॥ वर्णा-श्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ॥ स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥४७॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् ॥ यथा स्वध-र्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

धर्मसे अनन्य भावसे मेरी जो पूजा करता है, जो सभी भूतोंमें मुझे देखता है वह शीघ्र ही मेरी भक्ति पाता है ॥ ४४ ॥ जिसमें बिलकुल अपाय है ही नहीं ऐसी भक्तिसे वह पुरुष सब लोगोंके स्वामी, सभीकी उत्पत्ति-लयरूपी कारणभूत मुझ ब्रह्मके पास आता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार स्वधर्मसे जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है वह मेरा ऐश्वर्य जानकर ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर शीघ्र ही मुझे पाता है ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमियोंके लिये आचरणरूप यह धर्म मेरी भक्तिसे युक्त मोक्ष दायक है ॥ ४७ ॥ हे साधो, यह तुमने जो पूछा था वह मैंने बताया, जिससे मेरा भक्त स्वधर्माचरण करके मेरे पास आ सकता है ॥ ४८ ॥

अठारहवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—यदि वानप्रस्थाश्रम लेना हो, तो पत्नीको पुत्रोंको सौंपकर या साथ लेकर वनमें जाना चाहिए। वनमेंके पवित्र कन्द-मूलोंसे निर्वाह करना चाहिए। केश और नख नहीं काटना चाहिए, दन्तधावन नहीं करना चाहिए। तीन बार नित्य स्नान करना और जमीनपर सोना चाहिए। भोजनादिके लिये स्वयं सामग्री जुटानी चाहिए। दूसरेकी जुटाई सामग्रीपर निर्वाह करनेसे तकलीफ हो सकती है। तपसे शरीर कृशकर सब शिराएँ दिखानी चाहिए तपस्वी मेरी आराधनासे मेरे पास महदादि लोकोंको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्रमसे आते हैं। इतने बड़े तपका क्षुद्रकामनाके लिये उपयोग करना मूर्खता है। कर्मजन्य लोकोंसे वैराग्य हो जानेपर संन्यास लेना चाहिए। संन्यास लेनेवालेको भार्यादिरूपसे देवता विघ्न करते हैं। कौपीन छोड़कर संन्यासीको और कुछ भी वस्त्र नहीं रखना चाहिए। दण्ड तथा कमण्डलुके सिवा एवं किसी दूसरे पात्रको अपने पास नहीं रखना चाहिए। मनसे वाणीको, प्राणायामसे चित्तको और कर्मत्यागसे देहको दण्डित करे, ये ही संन्यासी के सच्चे दण्ड हैं, वेणु दण्ड नहीं। बहिष्कृत लोगोंको छोड़कर चारों वर्णों से भिक्षा लेनी चाहिए। जो मिले उसीसे संन्यासी सन्तोष करे। गाँवके बाहर जलाशयके पास आकर अन्न प्रोक्षण करके भोजन करे। निस्सङ्ग तथा जितेन्द्रिय होकर पृथ्वीपर अकेले घूमे। वानप्रस्थके आश्रममें बार-बार भिक्षाके लिये जाना चाहिए, क्योंकि उनका शिल-वृत्तिका अन्न पवित्र होता है। इस जगत्को असत्य समझकर इससे चित्त हटाकर इहलोकके कृत्यमे निवृत्त होना चाहिए। ज्ञाननिष्ठ विरक्त या निरपेक्ष मेरे भक्तको आश्रमोंके चिन्होंको छोड़कर विधिमुक्त होना चाहिये। उसे ज्ञानी होनेपर भी अज्ञके समान वर्ताव करना चाहिये पाखण्डवाद और शुष्कतर्कसे दूर रहना चाहिये। व्यर्थ वादविवादमें न पड़ना चाहिये। कटु भाषणको सहन करना चाहिये। सभीमें एक आत्मा है ऐसी भावना करनी चाहिये। आहार न पाने पर उसके लिये प्रयन्त करना चाहिये। क्योंकि शरीर तत्त्वज्ञानका साधन है और तत्त्वज्ञानसे मोक्ष मिलता है। मेरे ज्ञानसे भेद प्रतीति नष्ट होती है। देहके अन्ततक कचिद् यह रहती भी है परदेहान्त होनेपर मुझमें वह लीन हो जाता है। मनमें निर्वेद होनेपर ब्रह्मज्ञ संन्यासीको गुरुके पास जाना चाहिये। गुरुको ही ईश्वर समझकर श्रद्धासे उनकी परिचर्या करनी चाहिये। जिस यतिने कामादि यह वर्ग जय नहीं किया जो आसक्त है वह वेणुदण्ड से जीविका मात्र चलाता है। ऐसा यति अपनेको तथा मुझको भी वञ्चित करता है और अपने दोनों लोकोंका नाश करता है। लाभ-अहिंसा संन्यासीके तप-तत्त्वविचार वनस्थके भूत रक्षा-यज्ञ गृहस्थके तथा आचार्य शुश्रूषा ब्रह्मचारीका धर्म है। मेरी उपासनाके सबका धर्म है। इस प्रकार अपने धर्मसे जो मेरी उपासना करता है सभी भूतोंमें मुझे देखता है। अठारहवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथैकोनविंशतितमोऽध्यायः ❀

[ज्ञान-विज्ञानका निरूपण, भक्तिके साधन तथा यम नियम आदिके लक्षण यह वर्णन]

श्रीभगवान्ने कहा—अनुभव तथा श्रुतसे सम्पन्न, एवं केवल अनुमानसे नहीं तो अपरोक्ष आत्मज्ञानसे भी सम्पन्न जो है उसे इस प्रपञ्चको मायामात्र समझकर ज्ञानका संन्यास

श्रीभगवानुवाच ॥ यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः ॥ स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मद्दते प्रियः ॥ २ ॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे

कभी देना चाहिए ॥ १ ॥ ज्ञानीके लिए मैं इष्टफल उसका हेतु तथा स्वर्ग और अपवर्ग रूपसे मैं सम्मत हूँ उसे मेरे सिवा दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है ॥ २ ॥ ज्ञान-विज्ञानसे सिद्ध लोग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेरा श्रेष्ठ स्वरूप जानते हैं। इसीलिए ज्ञानी मुझे प्रिय हैं। वह ज्ञानसे मेरा धारण करता है ॥३॥ तप, तीर्थ, जप, दान, या इतर पवित्र पदार्थोंसे वह सिद्धि नहीं मिलती, जो ज्ञानके लेशसे मिलती है ॥ ४ ॥ हे उद्धव, इसलिए ज्ञानके सहित स्वात्माको जानकर ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर भक्तिभावसे मेरा भजन करो ॥ ५ ॥ ज्ञान-विज्ञान यज्ञसे अपने हृदयमें आत्मरूपी मेरी पूजा करके अनेक मुनि लोग सर्वयज्ञपति श्रीसिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ उद्धव, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, जो देहेन्द्रिय देवतारूप विकार है वह माया है। जिसका आद्यन्त नहीं ऐसा यह बीच ही में आ गया है। इसका जो जन्म-मरणादि है उससे तुम्हें क्या प्रयोजन ? जिसके आद्यन्तमें जो [अभाव] है वही बीचमें भी है ॥ ७ ॥ उद्धवने कहा—यह पुरातन विशुद्ध विज्ञानयुक्त ज्ञान जिस तरहसे होता है तथा हे विश्वनाथ, हे विश्वमूर्ते, बड़े बड़े जिसे ढूढ़ते हैं ऐसे अपने भक्तियोगको भी कहिये ॥ ८ ॥ इस संसाररूपी बिलमें

ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥ तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ॥ नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं स्युराद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥ उद्धव उवाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश ॥ पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रिद्वन्द्वात-पत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥ दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ॥ समुद्धरैनं कृपयापवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ॥१०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् । अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्ते भारते युद्धे सुहृ-न्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धा-भक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥ नवैकादश पञ्च त्रीन्भावान्भूतेषु येन वै ॥ ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥ एतदेव हि विज्ञानं

पड़कर कालरूपी सर्पसे उसे क्षुद्र सुखकी तृष्णावाले लोगोंका अपवर्ग बोधक वचनोंसे उद्धार कीजिये ॥ ९, १० ॥ श्रीभगवान्ने कहा—इसीप्रकार धर्मज्ञोंने श्रेष्ठ भीष्मपितामहसे अजातशत्रुने हमारे सबके सामने प्रश्न किया ॥ ११ ॥ महाभारतका युद्ध खतम होनेपर सुहृदयोंके वधसे विह्वल धर्मराजने अनेक धर्म सुननेके बाद मोक्ष धर्म पूछा था ॥१२॥ उन देव-व्रतके मुखसे सुने हुए ज्ञान-वैराग्य-विज्ञान-श्रद्धा मुक्तिसे युक्त धर्मोंको तुमसे कहता हूँ ॥१३॥ प्रकृति, पुरुष, महान्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रायें ये नव पञ्चमहाभूत तीन गुण, एकादशे-न्द्रिय तथा एक ब्रह्म जो इन भूतोंमें है, इन्हें जिस ज्ञानसे जाना जाता है वही ज्ञान मेरे मनसे निश्चित ज्ञान है ॥१४॥ जिस एक ज्ञानसे अनुगत अनेकात्मक भाव पहले देखे जाते हैं वे भी पहलेकी तरह दिखाई दें, किन्तु एक परम कारण ब्रह्म ही जब दिखाई दे तब यही विज्ञान कहलाता है। इसमें ज्ञानी पुरुष त्रिगुणात्मक प्रकृति परिणात्मक भावोंका ही यानी देहोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही जन्म, स्थिति और विनाश देखता है ॥ १५ ॥ आदि-अन्त-मध्यमें जो सृज्यसे सृज्यमें अनुवृत्त होता है तथा उनके नाशके बाद जो बचता है वही सत् है ॥ १६ ॥ श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान इन प्रमाणोंसे बाधित होनेके कारण इसको विकल्प अतएव मिथ्या समझकर सत्य आत्मतत्त्वज्ञ इससे विरक्त होता है ॥ १७ ॥ कर्मोंके परिणामी होनेके कारण ब्रह्म-लोक पर्यन्त अदृष्ट लोक भी दृष्टके समान नश्वर अतएव दुःखरूप ही हैं, ऐसा विद्वान् समझे ॥१८॥ हे अनघ, प्रसन्नताको प्राप्त किये हुये तुमसे मैंने मुक्ति योग पहले ही कहा है, फिर भी अपनी भक्तिका श्रेष्ठ साधन कहता हूँ ॥१९॥ मेरी कथामें श्रद्धा, सतत मेरा कीर्तन, पूजामें विश्वास, स्तुतियोंसे मेरा स्तवन, परिचर्यामें आदर, अष्टाङ्गोंसे अभिवादन, मेरे भक्तोंकी विशेष पूजा, सभी भूतोंमें मेरा भाव रखना, मेरे लिए ही शरीरकी चेष्टायें, वाणीसे मेरे गुणोंको कहना, निरिच्छ होकर मुझमें मन लगाना, मेरे लिए अर्थ, योग और सुखका त्याग, यज्ञ,

न तथैकेन येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्यया-न्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्र-तिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ॥ प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥ कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयि-ष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृत-कथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥ आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ॥ मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥ मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ॥ मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ॥ मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्या-वशिष्यते ॥ २४॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शान्तं सत्त्वोपबृंहितम् ॥ धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितं तद्विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥ गुणेष्वसङ्गो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधिः प्रोक्तो नियमो वारिकर्शन ॥ कः शः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ॥ कस्त्यागः

तप, होम, जप, व्रत सब मेरे लिए करना ॥ २०–२३ ॥ हे उद्धव, आत्मनिवेदन करनेवालेको इन धर्मोंसे मुझमें भक्ति बढ़ती है, फिर उसके लिए कौन पुरुषार्थ बाकी रहा ॥२४॥ सत्त्वयुक्त शान्त चित्तको जब मेरा भक्त मुझमें समर्पित कर देता है तब वह धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य सब कुछ पाता है ॥ २५ ॥ मिथ्या भूत प्रपञ्चमें आसक्त चित्त जब इन्द्रियोंके साथ विषयोंमें दौड़ता है तब वहाँ रजोगुण युक्त तथा निषिद्ध विषयोंमें आसक्त हो जाता है और अधर्मादि करने लग जाता है ॥ २६ ॥ मेरी भक्ति उत्पन्न करनेवाला धर्म, ऐकात्म्यज्ञान है, गुणोंमें आसक्त न होना वैराग्य है तथा अणिमादि सिद्धि ऐश्वर्य है ॥ २७ ॥ उद्धवने कहा—हे कृष्ण, यम कितने प्रकारका है । तथा नियम कितने प्रकारका है । शम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कौन-सा है, दम कौन-सा है, तितिक्षा कौन-सी है और धृति कौन-सी है ॥ २८ ॥ तप, दान, शौर्य, सत्य ऋत, किसको कहना चाहिए। त्याग कौन-सा है, धन कौस-सा है, इष्ट कौन-सा है, यज्ञ कौन-सा है, और दक्षिणा कौन-सी है ॥ २९ ॥ हे श्रीमन्, पुरुषका बल कौन-सा है, भाग्य कौन-सा है, लाभ कौन-सा है, विद्या, ह्री, श्री, सुख और दुःख किसको कहना चाहिए ॥ ३० ॥ पण्डित कौन, मूर्ख कौन, पथ कौन-सा, उत्पथ कौन-सा, स्वर्ग कौन-सा, नरक कौन-सा, बन्धु कौन सा है घर कौन-सा है ॥ ३१ ॥ आढ्य कौन दरिद्र कौन, कृपण कौन और ईश्वर कौन है, मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर दीजिये तथा इनके विपरीत पदार्थ बतलाइए ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय१, असङ्ग२, ह्री, सञ्चयन करना, आस्तिक्य, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा, अभय, शौच३, जप, तप, होम, श्रद्धा, आतिथ्य, मेरा पूजन, तीर्थपर्यटन, दूसरेके लिए प्रवृत्ति, सन्तोष आचार्य सेवन ये यम और नियम मिलकर हैं दोनों

किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद्‌बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव । का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥ कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः । कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बन्धुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसञ्चयः ॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ॥ ३३ ॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥ एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ॥ पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ॥ तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ ३६ ॥ दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ॥ स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसङ्गमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥ धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्‌भक्तिरुत्तमः ॥

बारह बारह हैं। हे तात, इनकी उपासना करने पर ये पुरुषोंको इच्छितार्थ देते हैं ॥ ३३–३५ ॥ भगवान्‌में बुद्‌धिकी निष्ठा रहना शम४ है, इन्द्रिय संयम माने दम, दुःख सहन करना तितिक्षा, जिह्वा और गुह्येन्द्रियकी जय धृति, भूतद्रोहका त्याग ही श्रेष्ठ दान, कामका त्याग करना तप, वासनाकी जय शौर्य, सम-ब्रह्मका-आलोचन सत्य विषयक होनेके कारण सत्य, मधुर वाणी ऋत, कर्मोंमें आसक्ति न रखना शौच, कर्मोंका त्याग सन्न्यास, धर्म ही इष्ट धन है, मैं परमेश्वर यज्ञ, ज्ञानोपदेश दक्षिणा और प्राणायाम श्रेष्ठ बल है ॥ ३६–३९ ॥ मेरा ऐश्वर्यादि षाड्‌गुण्य भग, मेरी भक्ति उत्तम लाभ है, आत्मामें प्रतीत होनेवाले भेदज्ञानका बाध विद्या. निषिद्ध कर्मोंमें हेयत्वज्ञान ही ॥ ४० ॥. निरपेक्षता इत्यादि गुण ही श्री सुख-

१ चोरी न करना। २ लोक-लज्जा। ३ अन्तर्बाह्य दो प्रकारकी शुद्धता इसको दो ही गिनना चाहिए, नहीं तो बारहे नियम नहीं होते। ४ ये उपलक्षण सब अध्यात्मकी दृष्टिसे हैं लोकमें जिन पदार्थोंमें इन शब्दोंका व्योहार होता है वे अध्या मदृष्टिसे उतने उपयुक्त नहीं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुःखके परे रहना ही सुख विषयोपभोगकी अपेक्षा ही दुःख एवं बन्ध और मोक्ष जाननेवाला पण्डित है ॥ ४१ ॥ देहादिमें जिसको अहंकार बुद्धि है वह मूर्ख है, मेरे पास निश्चित ले जाने वाला रास्ता, चित्तका विक्षेप बुरा रास्ता, सत्त्वगुणका उदय होना स्वर्ग है ॥ ४२ ॥ तमो गुणका उद्रेक नरक, गुणरूपी मैं ही बन्धु, शरीर ही घर, और गुणसे युक्तको ही आढ्य कहना

विद्यात्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः ॥ दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे ॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥ दरिद्रो यस्त्वसन्तुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः ॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसङ्गो विपर्ययः ॥ ४४ ॥ एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

चाहिए ॥ ४३ ॥ जो असन्तुष्ट है वह दरिद्र; जिसने इन्द्रियोंपर विजय नहीं पायी है वह कृपण, जिसकी बुद्धि गुणोंमें आसक्त नहीं है वह ईश, तथा गुणोंमें आसक्त होना अनीशत्व[1] है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव, तुम्हारे प्रश्नोंके ये मैंने उत्तर दिए । ज्यादा क्या कहूँ, गुण दोष दर्शन दोष है और उभय दर्शन रहित रहना गुण है बस यही गुण तथा दोपका लक्षण है ॥ ४५ ॥

उन्नीसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा—अनुभव श्रुतसम्पन्न तथा परोक्ष-परोक्षज्ञानीके प्रपञ्चको माया समझकर उस ज्ञानका भी संन्यास करना चाहिए । ज्ञानीके लिये मैं ही स्वर्ग और अपवर्ग सब कुछ हूँ । ज्ञानी मेरा श्रेष्ठ स्वरूप जानते हैं वे मुझे प्रिय हैं । ज्ञानसे जो सिद्धि मिलती है वह जप तप वगैरह किसीसे नहीं मिल सकती । हे उद्धव, अतः तुम ज्ञान सम्पन्न होकर मेरी भक्ति करो । देहेन्द्रियादि विकार माया है । उसके आदिमें तथा अन्तमें अभाव है । जन्म-मरणादि उसके धर्म हैं, उससे तुम्हें क्या मतलब ? आद्यन्तमें जो है वही बीचमें भी है । उद्धवने कहा—भगवन, ज्ञान और विज्ञान किस तरह होते हैं कृपया कहिये तथा अपना भक्तियोग भी कहिए । भगवान्‌ने कहा—पहले महाभारतके युद्धके बाद ज्ञातिवन्धसे दुःखित होकर धर्मराजने भीष्म पितामहसे अनेक प्रश्न किये थे और अन्तमें मोक्षधर्म पूछा था । उस समय धर्मराजसे जो कुछ भीष्मपितामहने कहा था । वह तुमसे मैं भी कहता हूँ । प्रकृति उसके विकार तथा पुरुष और परमात्माका जो ज्ञान है उसको ज्ञान कहते हैं और उनको नश्वर समझकर उनका लक्षण करते हुये उनमें जो अनुगत सत् ब्रह्म है वह जिस ज्ञानमें गोचर होता है वह विज्ञान है यह प्रपञ्च श्रुति आदि प्रमाणोंसे बाधित होनेके कारण मिथ्या है, ऐसा जानकर सत्य आत्माको जाननेवाला विरक्त होता है । इस लोकके समानही ब्रह्मलोक पर्यन्त सब कर्म परिणामी होनेके कारण नश्वर हैं । भक्तियोग तुमसे पहले कहा ही है, फिरभी उसके श्रेष्ठ साधन कहता हूँ । मेरी कथामें श्रद्धा रखना मेरा कीर्तन पूजा स्तवन अभिवादन इत्यादि करना भक्तोंकी पूजा, मेरे लिये सब कर्म तथा सभी मुझे अर्पण करना इससे मुझमें भक्ति उत्पन्न होती है और बढ़ती है तब फिर कौन पुरुषार्थ बाकी

---

१ इसी तरह पहले बताए हुए लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोंसे मुक्तको विपरीत पदार्थ जान लेना चाहिए, इसलिए यहाँ विपरीत पदार्थोंका पृथक् निर्देश नहीं किया गया है ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहता। मन जब इन्द्रियोंके साथ विषयोंमें दौड़ता है तब रजोगुण बढ़ता है उससे प्राणी अधर्म करने लग जाता है। जिससे मेरी भक्ति उत्पन्न होती है। वही धर्म है। उद्धवने पूछा—यम- नियमके प्रकार तथा शम, दम इत्यादि किसे कहना चाहिये, कहिए। श्रीभगवान्ने कहा—अहिंसा, सत्य आदि बारह यम और शौचादि बारह नियम हैं। गुणोंमें गुणदोष देखना दोष और वैसा न देखना गुण है। उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।

❀ अथ विंशोऽध्यायः ❀

[कर्म, ज्ञान और भक्तियोग निरूपण]

उद्धवने प्रश्न किया—विधि और प्रतिषेध ईश्वरकी आज्ञाएँ हैं और वे ही कर्मका गुण दोष बतलाती हैं। तथा वेदसे ही वर्णाश्रम भेद, प्रतिलोमानुलोम, द्रव्य, देश, वय, काल, स्वर्ग, नरक, ये ज्ञात होते हैं ॥१, २॥ गुण-दोषमें भेददृष्टिके बिना आपका विधि-निषेधपरक वचन [वेद] प्रमाण कैसे होगा। और उसके अप्रमाण होनेसे लोगोंको निश्रेयस कैसे होगी, क्योंकि 'श्रोतव्यो मन्तव्य' इत्यादि विधि-निषेध जो निःश्रेयसोपयुक्त हैं वेदमें ही हैं ॥३॥ पितृ-देव-मनुष्योंके लिए प्रत्यक्षसे या अन्य प्रमाणसे जाननेके लिए असम्भव स्वर्ग-मोक्षादि तथा

उद्धव उवाच ॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥ अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ॥ द्रव्यदेशवयः कालान्स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण वचस्तव ॥ निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेद-श्चक्षुस्तवेश्वर ॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः॥ निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ॥ ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित ॥ ६ ॥ निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥७॥ तद्दच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत

उनके साधनोंके ज्ञानके लिए आपका वचन वेद ही एकमात्र श्रेष्ठ प्रमाण है ॥ ४ ॥ गुण-दोषभेद दृष्टि वेदसे ही प्राप्त होती है, वह स्वाभाविक नहीं है और भेदका निराकरण भी वेदसे ही होता है। हे भगवन्, इसमें मुझे भ्रम होता ॥५॥ श्रीभगवान्ने कहा—लोगोंका कल्याण करनेकी इच्छासे मैंने ज्ञान, कर्म और भक्ति ये तीन योग [उपाय] बताए हैं, इन्हें छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ ६ ॥ कर्मसे निर्विण्ण संन्यासियोंके लिए ज्ञान योग। जिनके चित्तमें कर्म विषयक निर्वेद नहीं उत्पन्न हुआ है ऐसे कामियोंके लिए कर्म योग है ॥ ७ ॥ दैवयोगसे मेरी कथादिमें जिसकी श्रद्धा हो गई है, जो न निर्विण्ण है, न आसक्त है उसके लिए भक्ति सिद्धि देनेवाली है ॥ ८ ॥ जब तक कर्मके ऊपर घृणा नहीं होती तबतक या मेरी कथा श्रव-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

णादिमें जबतक श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती तबतक कर्म करते रहना चाहिए ॥ ९ ॥ अपना वर्णाश्रम विहित धर्म न छोड़ते हुए कामना न रखकर जो यज्ञ यागादि करता है वह अगर दूसरे कर्म न करे, तो न वह स्वर्गको जाएगा और न नरकको ही ॥ १० ॥ इस लोकमें रहकर स्वधर्माचरण करनेवाला पाप रहित शुद्ध होकर विशुद्धज्ञान या यदृच्छासे मेरी भक्ति पाता है। ॥ ११ ॥ स्वर्ग तथा नरकमें रहनेवाले दोनों इस लोकको चाहते हैं, क्योंकि यह ज्ञान और भक्तिका साधक है। वे दोनों लोक दोनोंके साधक नहीं हैं ॥ १२ ॥ मनुष्यको न स्वर्गकी इच्छा करनी चाहिए और न नरककी ही। एवं इस लोककी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि देहकी आसक्तिसे भूल करनेकी सम्भावना है ॥ १३ ॥ इसलिये पहले विद्वानको मर्त्य-लोकको भी अर्थ सिद्धि देनेवाला समझकर सावधान रहकर मृत्यु न हो इसके लिए प्रयत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥ यमके समान निर्दयपुरुषोंसे काटे जा रहे अपने निवास स्थानरूपी

यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव ॥ न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥ ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥ स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा ॥ साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं काङ्क्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ॥ नेमं लोकं च काङ्क्षेत दोहावेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ । एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः । अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् । १४ । छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलम्पटः । १५ ॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वायुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तसङ्गः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥ १७ ॥ यदारम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ॥ अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥१८॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ॥ अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥१९। मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः ॥ सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या

पेड़को जिसके ऊपर घोंसला बनाया है, अनासक्त पक्षी छोड़कर कल्याण ही पाता है उसी तरह अनासक्त मनुष्य समय आनेपर देह छोड़नेसे क्षेम पाता है ॥१५॥ दिन-रातोंसे अपनी आयु कटते हुए देखकर भयसे काँपनेवाला आसक्ति और आशा छोड़कर परमात्माको जाकर शान्त होता है ॥ १६ ॥ नरदेहरूपी सुलभ और एकदृष्टिसे दुर्लभ नाव, गुरुरूपी योग कर्णधार, मद्रूपी अनुकूल वायु पाकर भी जो मनुष्य भवसमुद्र पार नहीं करता, वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥ जब कर्ममें निर्विण्ण होकर विरक्त हो जाय तब योगीको इन्द्रिय जय करके आत्माका ध्यान करते हुए योगसे मनको स्थिर करना चाहिए ॥ १८ ॥ मनको स्थिर करते समय शीघ्र भ्रमण करनेवाला मन अगर स्थिर न हो सके, तो सावधान होकर उसको पुचकारते हुए उसकी वासनाएँ पूरी करते हुए फिर अपने वशमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए ॥ १९ ॥ प्राण और इन्द्रियोंको जीत करके मनोगतिकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, किन्तु सत्त्वगुणयुक्त बुद्धिसे अपने वशमें लाना चाहिये ॥ २० ॥ मनको युक्तिसे काबूमें लाना ही यह श्रेष्ठ योग है। जैसे नये घोड़ेको अपनी इच्छाके अनुसार चलानेकी इच्छा करनेवाला युक्तिसे घोड़ेको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वशमें करता है ॥ २१ ॥ उक्त उपायसे मनके थोड़ा स्थिर होनेपर तत्त्वविवेकसे महदादिदेहान्त पदार्थोंकी उत्पत्ति, महान् इसक्रमसे उत्पत्तिका और पृथ्वी, जल इस क्रमसे संहारका ध्यान, मन निश्चल होने तक करना चाहिए ॥ २२ ॥ निर्विण्ण, विरक्त, तथा गुरूपदिष्ट विषय समझकर उसका बारम्बार चिन्तन करनेवालेका मन उस चिन्तनसे अपनी दुष्टता छोड़ देता है ॥ २३ ॥ यम नियमादि योगमार्गोंसे, देहात्मविवेक विचारविद्यासे या मेरी पूजा ध्यान इत्यादिसे मन परमात्माका स्मरण कर सकता है, दूसरे उपायोंसे नहीं ॥ २४ ॥ यदि योगी कोई निषिद्धकर्म करे तो योगसे ही पापका नाश करना चाहिए, दूसरे प्रायश्चित्तादि नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ अपने अपने अधिकारके अनुसार उपायका अवलम्बन करना ही गुण है, अतः निषिद्धाचरण करके कर्म मार्गोंको प्रायश्चित्तसे पाप निवारण करना तथा योगीको योगसे पाप नाश करना ही ठीक है। जात्या अशुद्धकर्मोंके बारेमें विधान भी 'इसीको करना' इस

मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै परमो योगो मनसः सङ्ग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥२१॥ सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ॥ गुणदोषविधानेन सङ्गानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥ जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥ ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ॥ जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥ प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः ॥ कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वं मद्भक्ति-

नियमके लिये है, न कि 'इसको न करना' इस निषेधके लिए। और इस नियम (विधि) तथा निषेधका—कर्मोंका सङ्ग त्याग करना ही—उद्देश्य है ॥२६॥ मेरी कथामें श्रद्धा जिसको उत्पन्न हो गई है एवं जिसे सब कर्मोंमें निर्वेद उत्पन्न हो गया है वह अगर सभी कर्मोंको दुःख पर्यवसायी समझने पर भी छोड़ नहीं सकता है तो उसको प्रीति, श्रद्धा तथा दृढ़ निश्चयसे मेरा भजन करना चाहिये और साथ ही साथ दुःख पर्यवसायी भोगोंकी निन्दा करते हुए भी उसका थोड़ा-थोड़ा उपभोग करना चाहिये ॥ २७, २८ ॥ उक्त भक्ति योगसे जो मेरा बार-बार भजन करता है उसके हृदयमें मेरे स्थिर हो जानेके बाद सभी वासनाएँ उसकी नष्ट हो जाती हैं ॥ २९ ॥ सर्वात्मक मेरा दर्शन हो जानेके बाद हृदयकी जो अहंकाररूप गाँठ है वह टूट जाती है उसके कारण पैदा हुए सब संशय मिट जाते हैं और सभी कर्मोंका क्षय हो जाता है ॥ ३० ॥ अतः मेरी भक्तिसे जो युक्त है जिसका चित्त मुझमें दृढ़ है, ऐसे योगीको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस लोकमें ज्ञान या वैराग्यकी बिलकुल जरूरत नहीं है ॥ ३१ ॥ कर्मसे, तपसे, वैराग्यसे, योगसे, दानसे, धर्मसे या दूसरे किसी भी उपायसे जो प्राप्त हो सकता है वह सब मेरे भक्तको सरलतासे प्राप्त हो सकता है। अगर वह चाहे तो स्वर्ग या मेरा धाम वैकुण्ठ पा सकता है ॥ ३२, ३३ ॥ मेरे जो साधु बुद्धिमान् एकान्त भक्त हैं वे मेरे देने पर भी पुनरावृत्ति रहित मोक्ष भी नहीं चाहते ॥ ३४ ॥ किसीकी अपेक्षा न करना ही श्रेष्ठ फल तथा उसका साधन है, इसलिये मेरी भक्ति निरपेक्ष और निष्काम ही कर सकता है ॥ ३५ ॥ साधु, समचित्त,

योगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद्यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥ न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ॥ वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥३६॥ एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ॥ क्षेमं विदन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते म० पु० एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

बुद्धिके परे पहुँचे हुए मेरे एकान्त भक्तोंको विहित या निषिद्धसे होनेवाले पुण्य-पाप नहीं होते ॥ ३६ ॥ मेरे कहे हुए इन उपायोंका जो अनुष्ठान करते हैं वे काल-मायारहित मेरे लोक को प्राप्त होते हैं तथा परब्रह्मको जानते हैं ॥ ३७ ॥

बीसवें अध्यायका सार—उद्धवने कहा—हे कृष्ण, विधि-निषेधात्मक वेद आपकी ही आज्ञा है उन्हींसे कर्मके गुण-दोष, वर्णाश्रमभेद स्वर्ग-नरक आदि ज्ञात होते हैं, अतः भेद-दृष्टि वेदोंने सिखलाई है। उसको न माननेसे अप्रमाण हो जायँगे। उनको अप्रमाण होनेसे निःश्रेयस बोधक वचन भी अप्रमाण हो जायँगे और उन वचनोंके प्रमाण भूत न होने से निःश्रेयस प्राप्ति भी असम्भव हो जायगी। यह बड़ा झमेला मालूम होता है। श्रीभगवान्ने कहा—मैंने लोगोंके कल्याणके ज्ञान, कर्म और भक्ति—ये तीन उपाय बतलाये हैं। कर्मसे निर्विण्ण संन्यासियोंके लिए ज्ञान जो निर्विण्ण नहीं हुए हैं। उनके लिये कर्म और जिनके मनमें मेरी कथामें श्रद्धा उत्पन्न हुई है तथा जो न आसक्त हैं और न निर्विण्ण हैं उनके लिये भक्ति उपाय है। कर्मपर घृणा होने तक या मेरी कथामें श्रद्धा होने तक कर्म करे। फलेच्छा छोड़कर सिर्फ विहित कर्म जो करता है वह न स्वर्गमें जाता है और न नरकमें। इस लोकमें ही जो स्वधर्माचरण करता है वह ज्ञान या भक्ति पाता है। यही लोक साधनके लिये उपयुक्त है, अतः स्वर्ग और नरकके लोग यहीं आना चाहते हैं। लेकिन साधक न तो स्वर्ग चाहे, न नरक और न इसी लोकको। इस लोकमें भी देहकी आसक्तिसे भूल हो सकती है। अतः विद्वान्को इसी लोकमें साधनोपयुक्त समझकर जिन्दा रहनेका यत्न करना चाहिए, लेकिन समय आनेपर इसको छोड़नेमें दुःख नहीं करना चाहिए। जैसे क्रूरोंसे पेड़पर आक्रमण होनेसे उसको छोड़नेवाला पक्षी सुखी होता है वैसे ही देहको निर्भय होकर छोड़नेवाला पुरुष सुखी होता है। अधिकारानुसार जो मार्ग मैंने बताए हैं, उनमेंसे अपने अधिकारानुरूप उपायका अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर है। कर्मोंके स्वभावतः अशुद्ध होनेपर भी 'इसीको करना इस नियमके लिये ही विधि है। वस्तुतः विधि और निषेधका उद्देश्य कर्मोंमें आसक्ति छुड़ाना ही है। मेरे ऊपर श्रद्धा रखनेवाला अगर कर्मोंको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दुःखपरिणामी समझकर भी नहीं छोड़सकता, तो उसको भक्तिसे मेरा भजन करते हुए भोगोंका थोड़ा-थोड़ा भोग करते रहना चाहिये। जिसकी मुझमें भक्ति है उसको ज्ञान वैराग्यकी जरूरत नहीं है ज्ञान तप हो। निरपेक्ष और निष्काम मेरा भजन कर सकता है। बुद्धिके परे पहुँचे मेरे भक्तोंको पाप-पुण्यका लेप नहीं लगता। जो मेरे बताए तीन उपायोंमेंसे किसीका भी अनुष्ठान करते हैं। वे काल-माया रहित उत्तम लोकको पाते हैं। बीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ एकविंशतितमोऽध्यायः ❀

(गुण-दोष विचार तथा वेदका रहस्य)

श्रीभगवान्ने कहा—जो मेरे इन भक्ति-ज्ञान-क्रियारूप मार्गोंको छोड़कर क्षुद्र विषयोंका—अस्थिर इन्द्रियोंसे उपभोग करते हैं वे संसारमें ही घूमते हैं—मुक्त नहीं होते ॥ १ ॥ अपने-अपने अधिकारके अनुसार मार्गका अनुसरण करना ही गुण है, उसके विरुद्ध आचरण करना दोष है यही गुण दोषका निर्णय है ॥ २ ॥ समान वस्तुओंमें भी द्रव्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति, प्रतिबन्धके लिए ही शुद्धि या अशुद्धिका विधान किया जाता है। तन्मूलक ही उस वस्तुका उपादेयत्व और अनुपादेयत्व तथा उससे उत्पन्न होनेवाला पाप-पुण्य है ॥ ३ ॥ पदार्थों

श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥२॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयते समानेष्वपि वस्तुषु ॥ द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥३॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ ॥ दर्शितोऽयं मयाचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥ भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥५॥ वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुणदोषौ विधीयते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत ॥ कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥८॥ कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ॥ यतो निवर्तते कर्म स दोषोऽक-

की शुद्धि और अशुद्धि धर्मके लिए, व्यवहारके लिए या शरीर यात्राके लिए है, अतः इन तीनोंकी दृष्टिसे शुद्धाशुद्धका विधान है। यह मैंने धर्मभार ढोनेवालोंके लिए आचार बताया है ॥ ४ ॥ भूमि, जल, तेज, वायु और आकाश ये जीवके साथ मिलकर ब्रह्मासे लेकर वृक्षोंतक शरीरारम्भक धातु हैं ॥ ५ ॥ हे उद्धव, प्राणियोंके धर्मादि पुरुषार्थ सिद्धिके लिए ही वेदके द्वारा कारण दृष्टया इन समपदार्थोंके अलग-अलग नाम और रूप कल्पित किए जाते हैं ॥ ६ ॥ हे सत्तम, मेरे कर्मोंके नियमके लिए देश, काल आदिके जितने भाव वस्तु हैं उनके गुण और दोषका विधान किया जाता है ॥ ७ ॥ जिसमें कृष्णसार [काला हरिण] नहीं रहता ब्राह्मण नहीं रहता वह देश अशुद्ध है। कृष्णसार रहनेपर भी सौवीर, कीकट ये देश तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्मार्जनादिसे असंस्कृत और ऊसर भूमि भी अशुद्ध है ॥८॥ द्रव्य सम्पत्तिसे या स्वतः पूर्वाह्न आदि जो कर्म योग्यकाल है वह उस कर्मके लिए गुणवान् है जिस कालमें कर्म निषिद्ध हैं, जैसा कि सूतकादि वह कर्मानर्ह कहा गया काल उसके लिए दोषयुक्त है ॥ ९ ॥ द्रव्यकी शुद्धि और अशुद्धि जलादि तथा मूत्रादि द्रव्यसे, ब्राह्मणादिके वचनसे, प्रोक्षणादिसंस्कारसे या छोटे-बड़े प्रमाणसे मानी जाती है ॥१०॥ शक्ति, अशक्ति, बुद्धि, समृद्धि, इनके अनुसार तथा देश-कालकी अवस्थाके अनुरूप द्रव्य-वचनादि आत्माके लिए पापकारक होते हैं ॥११॥ धान्य, लकड़ी, अस्थि, तन्तु, रस, तेज, पदार्थ [सुवर्णादि] और चर्म इनकी काल, वायु, अग्नि, मिट्टी, इन पदार्थोंसे उसमें भी पार्थिव पदार्थोंकी कुछ मिलकर या कुछ अकेले शुद्धि होती है ॥१२॥ गन्दे पदार्थका किसीमें लेप हो जानेसे जिस पदार्थसे उसका दुर्गन्ध और लेप जब छूट जायगा तब उसी पदार्थसे उसकी शुद्धि मानी जायगी ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, संस्कार, कर्म तथा मेरे स्मरणसे आत्माकी शुद्धि होती है। अशुद्ध होनेके कारण द्विजको इनसे शुद्ध होकर कर्म करना चाहिए ॥१४॥ योग्य ज्ञान यह मन्त्रकी और मुझे

र्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥ द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ॥ संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाथवा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ॥ अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् ॥ कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥ अमेध्यलिप्तं यद्येन गन्धं लेपं व्यपोहति ॥ भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोवस्था-वीर्यसंस्कार कर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः ॥१४॥ मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् । धर्मः संपद्यते षड्भिर-धर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः ॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥ समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः सङ्गो न शयानः पतत्यधः ॥१७॥ यतो यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्ततः ॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः सङ्गस्ततो भवेत् ॥ सङ्गात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ । कलेर्दुर्विषहः

अर्पण करना यह कर्मकी शुद्धि है। योग्य देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मन्त्र और कर्म इनसे धर्म तथा विरुद्ध इन्हींसे अधर्म होता है॥१५॥किसी जगह गुण भी दोष हो जाता है। क्वचित् दोष भी विशेष विधिसे गुण हो जाता है, जैसे कि आपत्में दूसरेकी वृत्तिसे अपनी जीविका चलाना। अतः इन गुण-दोषोंका अर्थविशेषसे नियामक शास्त्र ही इनके भेदका बाधक है ॥१६॥ सुरापान आदि समान कर्मोंका आचरण, जो अपतित पुरुषोंके पतनका हेतु है, जाति या कर्मसे पतित हुए पुरुषोंको और अधिक पतित नहीं बना सकता। जो संग यतिके लिए दोष है, वही गृहस्थके लिए स्वाभाविक गुण है। जैसे कि पहलेसे ही नीचे सोया हुआ पुरुष फिर गिर नहीं सकता ॥१७॥ अतः जिस जिस कर्मसे निवृत्ति होती जाय, उसे छोड़ते जाना चाहिए। यही धर्म लोगोंके लिए कल्याणकारी तथा शोक, मोह और भयको दूर करनेवाला है ॥ १८ ॥ विषयोंके गुणोंका विचार करनेपर उनमें आसक्तिसे इच्छा उत्पन्न होती है, उसके कारण कलहका निर्माण होता है और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधके कारण मोह इसको आवृत कर लेता है, उससे इसका सर्वत्र प्रसृत कार्याकार्य ज्ञान नष्ट हो जाता है। कार्याकार्य ज्ञानके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाशसे यह प्राणी मृतवत् हो जाता है। उसके कारण इस मृत या मूर्च्छितका स्वार्थनाश निश्चित है ॥ १९-२१ ॥ विषयोंमें आग्रहके कारण यह न अपनेको जानता है न दूसरेको, केवल धौंकनीके समान साँस लेते हुए वृक्षके समान मूर्च्छितवत् जीता है ॥ २२ ॥ वेदमें बताई गई कर्मोंकी फल-श्रुति रुचि उत्पन्न करनेके लिए है पुरुषार्थ परक नहीं है, जैसे कि रोग निवृत्तिके लिए जो औषधि रहता है उसके लिए प्रलोभन दिखाये जाते हैं ॥२३॥ पश्वादि फलोंमें, इन्द्रियबलादि फलोंमें तथा पुत्रादि स्वजनोंमें अनर्थ कारण होनेपर भी मनुष्यकी स्वभावतः आसक्ति रहती ही है ॥ २४ ॥ फिर स्वार्थ न समझकर कर्ममार्गमें, स्वर्गादिमें घूमकर फिर वृक्षादि योनिमें घूमनेवाले वेदपर विश्वास रखनेवाले लोगोंको आप्त वेद फिर उसीमें कैसे प्रवृत्त करेगा ॥ २५ ॥ लेकिन वेदके ठीक अभिप्रायको न समझकर कुछ मूर्ख रमणीय फलश्रुतिके पीछे पड़ते हैं सच्चे वेदज्ञ व्यासादि वैसा नहीं कहते ॥ २६ ॥ कामी, लोभी,

क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥२०॥ तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ॥ ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्च्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् । वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥ फलश्रुतिरियं नृणां श्रेयो रोचनं परम् ॥ श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैव हि कमेषु प्राणेषु स्वजनेषु च आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥२४॥ न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ॥ कथं युञ्ज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥२५॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ॥ फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥ कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ॥ अग्निमुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥ न ते मामङ्ग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः ॥ उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥ ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ॥ हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥ हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ॥ यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन्खलाः ॥ ३० ॥ स्वप्नोपममम‍ुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि सङ्कल्प्य त्यजन्त्यर्थान्यथा वणिक् ॥ ३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजः सत्त्वतमोजुषः ॥ उपासत इन्द्रमुख्यान्देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥

कृपण लोग पुष्पोंको [अवान्तर फलोंको] ही समझकर अग्निसाध्य कर्मोंमें आग्रहके कारण अन्तमें धूम-मार्गसे पित्रादि लोकोंको चले जाते हैं, ये अपना सच्चालोक नहीं जानते ॥ २७ ॥ हे उद्धव, कर्मको जिन्होंने पशुहिंसाका साधन-शास्त्र बना लिया है ऐसे प्राणोंको तृप्त करनेवाले ये लोग जिससे इस विश्वकी उत्पत्ति हुई है ऐसे हृदयस्थ मुझे नहीं जानते, मानों अन्धकारसे इनकी आँखें कुछ देख नहीं सकती ॥ २८ ॥ विषयाभिनिवेशी ये लोग परोक्ष होनेसे मेरा मन न समझकर 'हिंसामें यदि प्रवृत्ति है, तो यज्ञ ही उसका उपाय है, वे लोग यह बात नहीं समझते कि यह कोई विधि नहीं है ॥ २९ ॥ ये हिंसक लोग अपने सुखकी इच्छासे मारे गये पशुओंसे यज्ञोंमें देवता, पितर तथा भूतोंका तर्पण करते हैं ॥ ३० ॥ वे मूर्ख स्वप्नके समान अनित्य परलोककी आशा हृदयमें रखकर द्रव्योंका त्याग करते हैं, जैसे कि कोई वणिक् अत्याशासे बहुत धन व्यापारमें लगाकर दिवाला निकालता है ॥ ३१ ॥ सत्त्व-रज-तमोनिष्ठ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ये लोग उसीके अनुसार त्रिगुणात्मक फल पाते हैं, उसीके लिए इन्द्रादि देवताओंकी उपासना करते हैं, लेकिन मेरी नहीं ॥ ३२ ॥ 'यहाँ यज्ञोंसे देवताओंका यजन करके स्वर्गमें जाकर उपभोग करेंगे और फिर इस लोकमें धन-धान्य सम्पन्न कुलीन घरमें जन्म लेंगे' इस तरह कहनेवाले मनोहर अर्थवादोंसे मुग्ध, यानी और गर्वसे स्तब्ध लोगोंको मेरी बात भी अच्छी नहीं लगती ॥ ३३, ३४ ॥ ब्रह्मकाण्ड देवताकाण्ड तथा कर्मकाण्ड त्रिषयक भेदमें ब्रह्मात्मा भेद ही मुख्यतः कहा गया है। मन्त्रद्रष्टा ऋषि गूढवादी हैं, यह गूढवाद ही मुझे प्रिय है ॥ ३५ ॥ शब्द ब्रह्म-वेदको समझना बहुत कठिन है। उसका जो सूक्ष्म प्रकार है उसके प्राण-इन्द्रिय मनोमय होनेके कारण उसका स्वरूप भी दुर्बोध है। वह देश कालसे सीमित नहीं है। समुद्रके समान गम्भीर गूढार्थ अतएव उसमें बुद्धि प्रवेश नहीं कर सकती ॥ ३६, ३७ ॥ यह सूक्ष्म शब्दब्रह्म अनन्तशक्ति ब्रह्मरूपी मुझसे अधिष्ठित है। यह कमलनालमें डोरेके समान कभी

तस्थान्त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ॥ मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते ॥ ३४ ॥ वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे ॥ परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥ शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ॥ अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ ३६ ॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना ॥ भूतेषु घोषरूपेण विसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ॥ आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तस्थभूषिताम् । ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥ ४० ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब् जगत्यतिच्छन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥ ४२ ॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥ एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

प्राणियोंमें घोषरूपसे लक्षित होता है ॥ ३८ ॥ जैसे मकड़ी हृदयमेंसे मुखद्वारा तन्तु जालको निकालती है वैसे ही प्राणान्तर्गत हिरण्यगर्भरूपी अमृतमय वेदपुरुषघोषको उपादान बनाकर स्पर्शादि वर्णोंका सङ्कल्प करनेवाले मनको निमित्त बनाकर हृदयाकाशसे अनेक तरहकी, ओंकारसे प्रकाशित स्पर्श-स्वरोष्मादि वर्णोंसे विभूषित अनेक भाषाओंसे विस्तृत, चौबीस अक्षरोंवली गायत्री तथा क्रमशः चार चार अक्षरोंसे अधिक उष्णिगादि छन्दोंसे युक्त अनन्त बृहती वाणीको उत्पन्न करते हैं ॥ ३९, ४० ॥ गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहति, पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती अतिजगती, अतिविराट् ये छन्द हैं ४१ ॥ विधिवाक्यसे किसका विधान किया जाता है, मन्त्रवाक्यसे किसका प्रकाशन होता है तथा निषेधसे किसका अनुवाद करके निषेध किया जाता है या निषेधकी सीमा क्या है यह मेरे सिवा कोई नहीं जानता ॥४२॥ वह मेरा विधान करता है, मेरा प्रकाशन करता है तथा अनुवाद करके निषेध भी मेरा करता है, यह सभी वेदों का अर्थ है। आखिर मेरे ही परमार्थ रूपका आश्रयणकर मायामात्रका १ अनुवादकर निषेध २ करके अपना व्यापार खतम करता है ॥ ४३ ॥

१ 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः' इत्यादिसे अनुवाद किया जाता है। २ नेह नानास्ति किञ्चन'।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इक्कीसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा—मेरे द्वारा बनाये गये ज्ञान, भक्ति, क्रिया इनको छोड़कर जो क्षुद्र उपभोगोंके पीछे पड़ते हैं वे संसारमें ही घूमते रहते हैं। अपने अधिकारके योग्य मार्गका अवलम्बन करना श्रेयस्कर है। पदार्थोंकी शुद्धि या अशुद्धि तीन कामके लिए है—एक धर्मके लिए, दूसरी व्यवहारके लिए और तीसरी शरीर यात्रके लिए। किसी एक दृष्टिसे शुद्ध पदार्थ दूसरी दृष्टिसे अशुद्ध रहता है। शक्ति, बुद्धि, समृद्धि भी शुद्धाशुद्ध या गुण-दोषमें कारण है। शक्त, ज्ञानी और समृद्ध के लिए जो बात दोषावह होती है वही अशक्त, अज्ञ, या दरिद्रके लिए दोषावह नहीं होती। काल, वायु, अग्नि, मृत्तिका ये पदार्थ सम्मिलित या असम्मिलित द्रव्य शुद्धि कारक हैं। शुद्ध देश, काल, द्रव्यादिसे धर्म तथा अशुद्धसे अधर्म होता है। जो दोष है वह किसी जगह विशेष विधिसे गुण और जो गुण है वह दोष हो जाता है। ये विशेष विधायक शास्त्र ही तो गुण-दोषकेभेदके बाधक हैं। अगर ये कल्पित न होकर स्वाभाविक होते, तो एकमें ही गुण और दोष कैसे आता। जिस कर्मसे मनुष्य पतित होता है उसीको पुनः करनेसे और पतित नहीं होता, क्योंकि वह तो पहलेसे ही पतित हो चुका है। अतः जिसमें निवृत्ति होती जाय उसे छोड़ते जाना चाहिए, यही धर्म लोगोंके लिए कल्याणकारी और शोक, मोह तथा भयको दूर करनेवाला है। विषयोंके गुणोंको सोचनेसे उसमें आसक्ति उससे काम कामसे कलह, उससे क्रोध, उससे मोह और मोहसे कार्याकार्य बुद्धि नष्ट होती है। जिसकी बुद्धि नष्ट होगई वह मूर्च्छित या मृत है, ऐसे पुरुषका स्वार्थनाश निश्चित है। फल श्रुति अर्थावादसे मुग्ध प्राणी अपने हृदयस्थ मुझे नहीं जानते। ब्रह्मदेवता-कर्मकाण्डात्मक वेद ब्रह्मात्माका भेद ही प्रतिपादन करता है, लेकिन गूढ़ भाषामें कहे गये इस अर्थको लोग समझते नहीं। विधिसे किसका विधान होता है, मन्त्रसे कौन प्रतिपाद्य है, निषेध किसका अनुवाद करके निषेध करता है, यह सिर्फ मैं ही जानता हूँ, दूसरा कोई नहीं सबमें मैं ही प्रतिपाद्य हूँ। आखिर वेद मायामात्रका अनुवादकर 'नेह नानास्ति किञ्चन' इससे उसका निषेध करके निवृत्त हो जाता है, इस निषेधका आश्रय भी मैं ही हूँ। इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ❋

❋ अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ❋

[तत्वकी संख्याओंका वर्णन]

उद्धवने कहा—हे भगवन्, ऋषियोंने तत्त्वकी अनेक संख्याएँ बताई हैं, उनमेंसे कौनसा ठीक है! आपने नव, ग्यारह, पाँच और तीन ऐसे मिलाकर अट्ठाईस तत्त्व बतलाए हैं

उद्धव उवाच ॥ कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥१॥ केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥ गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ॥ मायां मदीयामुद्गृह्य

॥ १ ॥ कोई छब्बीस तत्त्व कहते हैं, कोई पचीस, कोई सात, कोई चार, कोई ग्यारह, कोई सत्रह, कोई सोलह और कोई तेरह तत्त्व कहते हैं। ऋषि लोग ये अलग-अलग संख्याएँ क्यों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बताते हैं, यह मुझसे कहिये ॥२, ३॥ श्रीभगवान्‌ने कहा–हे उद्धव, ब्राह्मण लोग जैसा कहते हैं वह ठीक ही है। मेरी मायाको स्वीकारकर बोलने वालेके लिये क्या कहना कठिन है ॥४॥ तुम जो कहते हो यह ठीक नहीं है मैं जो कहता हूँ वह ठीक है ऐसे विवाद करनेवालोंके विवादका कारण मेरी दुरतिक्रम्य शक्तियाँ ही हैं जिनके क्षोभके कारण बोलनेवालोंमें ऐसा भेद होता है। शम-दम प्राप्त होनेपर यह भेद नष्ट हो जाता है और उसके बाद भी शान्त हो जाता है ॥ ५, ६ ॥ तत्त्वोंका परस्पर अन्तर्भाव होनेके कारण उनकी संख्या तथा उनके कार्य-कारण भावको अपनी इच्छानुसार कह सकते हैं ॥ ७ ॥ एकही कारणीभूततत्त्वमें कर्मका तथा कार्यमें कारणका अन्तर्भाव देखा जाता है इस तरह एकमें भी बाकी सब तत्त्वोंका समावेश दीखता है ॥ ८ ॥ इस न्यायसे इनका कार्यकारणभाव या संख्या बतलानेवालेकी इच्छानुसार जैसा जिसका मुख प्रवृत्त होता है वह हम निश्चित ही समझते हैं, क्योंकि उसके लिये भी

वदतां किं न दुर्घटम् ॥ ४ ॥ नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ॥ एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां परम् ॥ प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥७॥ एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च ॥ पूर्वस्मिन्वा परस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ॥ यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥ अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ॥ स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत्॥१०॥पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः॥११॥प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः॥सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः॥१२॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च॥१३॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहङ्कारो नभोऽनिलः ॥ ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥१४॥ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्युपस्थपाय्वङ्घ्रिः कर्माण्यङ्गोभयं मनः॥१५॥ शब्दःस्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः॥ गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥१६॥सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य

शक्ति हैं ॥ ९ ॥ अनादि-अविद्यायुक्त आत्माको आत्मज्ञान खुद नहीं उत्पन्न हो सकता, अतः तत्त्वज्ञ और ज्ञान देनेवाला आत्मासे अन्य चाहिए, इसलिए प्रकृत्यादि चौबीस तथा पुरुष एवं ज्ञानद ईश्वर मिलकर छब्बीस तत्त्व होते हैं ॥ १० ॥ जीव और ईश्वरमें तनिक भी वैलक्षण्य नहीं है, अतः इन दोनोंमें भेदकी कल्पना व्यर्थ है तथा ज्ञान प्रकृतिका गुण है, इसलिए पचीस ही तत्त्व हैं, ऐसा कुछ लोगोंका अभिप्राय है ॥ ११ ॥ गुणसाम्य यानी प्रकृति, अतः तद्विशेष रूप गुण भी उसीके होंगे। आत्माके अकर्ता होनेके कारण उत्पत्तिस्थिति-नाशके कारणीभूत सत्त्व, रज और तम ये गुण उसके हो नहीं सकते ॥ १२ ॥ सत्त्वमय गुण ज्ञान है, रजोगुण कर्म तथा तमोगुण अज्ञान यहाँ कहा गया है। ईश्वर ही काल है, सूत्र (स्वभाव) भी महतत्त्वरूपही है ॥ १३ ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये नव तत्व मेरे मतसे कहे गये हैं ॥१४॥ श्रोत्र त्वग्, चक्षु, घ्राण, जिह्वा, ये ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाक्, पाणि, पायु, उपस्थ, पाद, ये कर्मेन्द्रियाँ और उभयरूप मन ये सब मिलकर ग्यारह हैं ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। चलना बोलना,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दोनों तरहका उत्सर्ग, तथा शिल्प ये कर्मेन्द्रियकी सिद्धियाँ हैं ॥ १६ ॥ सृष्टिके पहले कामरूपिणी प्रकृति सत्त्वादि गुणोंसे सृज्यत्व, पाल्यत्व, संहार्यत्व अवस्थाओंको धारण करती है पुरुष केवल देखता है ॥ १७ ॥ फिर प्रकृतिसे उत्पन्न महत्तत्त्वादि धातु, पुरुषके देखनेसे बल पाकर प्रकृतिका आश्रयकर अण्डकी सृष्टि करते हैं ॥ १८ ॥ द्रष्टाजीव, दृश्य पञ्चमहाभूत और दोनोंका आधार आत्मा इन्हींसे देहेन्द्रियादि कार्य उत्पन्न होते हैं, ऐसा सात तत्त्ववादियोंका अभिप्राय है ॥१९॥ जीवका परमात्मामें अन्तर्भाव करनेमें छः तत्त्व इस हिसाबसे होते हैं। पञ्च-महाभूतोंकी सृष्टिकर उसमें भगवान्ने प्रवेश किया ॥ २० ॥ चार जो तत्त्व कहते हैं, उनके मतसे आत्मासे तेज, जल और पृथ्वीका निर्माण हुआ है, उनसे इस अवयवी कार्यकी उत्पत्ति हुई है ॥ २१ ॥ सत्रह वालोंके मतसे मञ्चमहाभूत, ग्यारह इन्द्रियाँ और एक आत्मा यों सत्रह तत्त्व कहा गया है ॥ २२ ॥ आत्माको ही मन मान लेनेसे ये सोलह तत्त्व होते हैं। कर्मे-

कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषो व्यक्त ईक्षते ॥१७॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥१८॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः ॥ ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥१९॥ षडित्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ॥ जातानि तैरिदं जातं जन्मावय-विनः खलु ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च ॥ पञ्चपञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ॥ भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश॥२३॥ एकादशत्व आत्मासौ महाभूतेन्द्रियाणि च ॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसंख्यानं तत्वानामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरु-षश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ २६ ॥ एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं जीवानां मोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्वमेव ह्यात्म-मायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः

न्द्रियोंको न मानकर पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पञ्चमहाभूत, मन, जीव और ईश्वर मिलकर तेरह हुए ॥ २३ ॥ मन और जीवको अलग न माननेसे ये ही ग्यारह होते हैं। प्रकृति, महदादि सात और आत्मा इतने ही तत्त्व माननेसे नव तत्त्व होते हैं ॥ २४ ॥ इसतरह अनेक ऋषियोंने अनेक तत्त्व बतलाए हैं, सभी युक्ति युक्त हैं, क्योंकि विद्वान् लोगोंकी कौन-सी बात शोभित नहीं होती ॥ २५ ॥ उद्धवने कहा—हे कृष्ण, प्रकृति और पुरुष यद्यपि आत्मासे विलक्षण हैं, लेकिन उन दोनोंमें भेद नहीं दीख पड़ता। वे दोनों परस्पर ऐसे चिपके हैं कि एकके बिना दूसरे का ज्ञान नहीं होता है ॥२६॥ हेश्रीकृष्ण, इस तरहका संशय मेरे हृदयमें उत्पन्न होता है। हे सर्वज्ञ आपने नितियुक्त वचनोंसे इस संशयका वारण कीजिये ॥२७॥ आपकी ही कृपासे जीवोंको ज्ञान और ज्ञानसे भ्रंश भी आपकी ही शक्तिसे होता है। आपही अपनी मायाकी गति जानते हैं, दूसरा नहीं ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे पुरुष श्रेष्ठ, प्रकृति और पुरुष

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इनमें भेद ही है, क्योंकि यह त्रिगुणात्मक सृष्टि विकारी है और पुरुष अधिकारी है ॥२६॥ हे उद्धव, मेरी गुणमयी माया अपने गुणसे अनेक तरहकी भेदबुद्धि उत्पन्न करती है। वैकारिक सृष्टि भी तीन प्रकारकी है— अध्यात्म, अधिदैव, और अधिभूत ॥ ३० ॥ जैसा जो दृश्यमान रूप है वह अधिभूत है। उस चक्षुर्गोलकमें जो सूर्यका रूप प्रवेश करता है वह अधिदैव है। रूपज्ञानसे अन्यथानुपपत्तिसे चक्षु उसकी प्रवृत्ति सिद्धिके लिए तदधिष्ठात्री देवता सिद्ध होती है, यों तो आकाशमें सूर्य सिद्धि है ही और इन्द्रिय उसका अध्यात्मरूप है। इनका आदिकारण आत्मा इनसे भिन्न है। वह अपने स्वप्रकाशत्वमें सभीको ज्ञानका प्रकाश देनेवाला है। इसी तरहसे त्वगिन्द्रिय, स्पर्श, और वायु, जिह्वा, रस, वरुण, नासा, गन्ध, अश्विनीकुमार, श्रवण, शब्द, दिशा, मन, मन्तव्य, चन्द्र, अहंकार, अहंकर्तव्य रुद्र, बुद्धि, बोद्धव्य, ब्रह्मा, ये सभी इन्द्रिय और अतःकरणोंका त्रैविध्य है ॥ २१ ॥ गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न करके

॥ २६ ॥ ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥ दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ॥ आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याखिलसिद्धसिद्धिः ॥ एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥३२॥ आत्मापरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः ॥ व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ॥ उच्चावचान् यथा देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥ तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः ॥ न ह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ॥ लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥ ध्यायन्मनोऽनुविषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ ॥ उद्यत्सीदत्कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत्पुनः ॥ जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्म त्वा

परमात्माने प्रकृतिसे महतत्त्व उत्पन्न किया, उस महत्तत्वका विकार अहंकार है। वह वैकारिक, तेजस, तामस तीन प्रकारका है ॥ ३२ ॥ आत्माके अज्ञानके कारण ही आत्मा है और नहीं यह विवाद भेद भावनासे उत्पन्न होता है, वह वास्तविक नहीं हैं, फिर भी ये विकल्प या अहंकारसे मुझसे जो पराङ्मुख हैं उनके नष्ट नहीं होते ॥ ३३ ॥ उद्धवने कहा—हे प्रभो, आपसे जो विमुख हैं वे अपने कर्मोंसे किस तरह ऊँच, नीच जन्म ग्रहण करते हैं वह मुझे बतलाइए। यह विषय आत्मज्ञान शून्य लोगोंकी समझमें कठिन है। इस विषयको जाननेवाले प्रायः नहीं है, क्योंकि सभी आपकी मायासे मोहित हैं ॥ ३३, ३४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—लोगोंका कर्ममय मन पञ्चज्ञानेन्द्रियोंके एक देहसे दूसरी देहमें जाता है। आत्मा उससे भिन्न है, वह भी उनके पीछे जाता है ॥ ३६ ॥ कर्मके अधीन रहनेवाला मन देखे हुए या वेदादिसे सुने हुए विषयोंका ध्यान करते हुए ध्यायमान विषयोंमें आविर्भूत होते जाता है और पूर्व विषयोंको छोड़ते जाता है। उसके बाद पूर्व विषयोंकी स्मृति भी नष्ट हो जाती है ॥ ३७ ॥ कर्मसे उपस्थित देवादि देहोंमें अत्यन्ताभिमानके कारण फिर पूर्व देहका स्मरण नहीं होता। उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देहमें होनेवाले भयं, शोक, हर्षादि होनेके कारण जो पूर्व देहकी अत्यन्त विस्मृति है यही मृत्यु है। ३८ ॥ हे भूरिद, सब तरफसे पुरुषको आत्मरूपसे विषयोंका स्वीकार कर लेना तथा देहमें 'मैं' यह अभेदाभिमान उत्पन्न होना ही जन्म है; जैसे कि स्वप्न और मनोरथमें होता है ॥ ३९ ॥ स्वप्न और मनोरथमें वही मनुष्य रहनेपर भी दूसरा ही कुछ अपनेको समझता है और पहलेका कुछ नहीं स्मरण करता ॥ ४० ॥ मनके देहान्तराभिनिवेशके कारण जो सृष्टि होती है उसीके कारण उत्तम, मध्यम, अधमत्व आत्मा अपनेमें आरोपित करता है तथा बाह्य और आन्तर-सुखादि भेदोंको भी देखता है, जैसे कि दुष्ट पुत्रको पैदा करनेवाला पुरुष स्वयं सभीको समान देखनेवाला अपने पुत्रके अभिमानके कारण उसके शत्रु-मित्रोंको भी अपना शत्रु मित्र समझता है ॥ ४१ ॥ हे उद्धव, प्रतिक्षण सभी शरीर उत्पन्न और नष्ट होता रहता है, लेकिन अति सूक्ष्म होनेसे कालकी गति समझमें न आनेके कारण यह समझमें नहीं आता है ॥४२॥ दीपज्वाला, प्रवाह या वनस्पतिके फलोंमें जिस तरह स्वरूपका परिवर्तन होता है उसी तरह प्राणियोंकी काल द्वारा परिवर्तित बाल्य, कुमार आदि अवस्थाएँ समझनी चाहिये ॥४३॥

त्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥ विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥३९॥ स्वप्नं मनोरथं चेत्यं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ॥ तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥ इन्द्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ॥ बहिरन्तर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥ ४१ ॥ नित्यदा ह्यङ्ग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ॥ कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥ यथार्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ॥ तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥ सोयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सोयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥ मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ॥ म्रियते वामरो भ्रान्त्या यथाग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ॥ गुणसङ्गादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥ ४७॥ आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ ॥

जिस तरह दीपज्वालाको देखकर वही यह दीप है, ऐसा कहते या समझते हैं, जिस तरह प्रवाहमें भी वही यह पानी इसरूपसे ज्ञात होता है, उसी तरह प्रतिक्षण नाश होनेवाली देहके बारेमें भी वही यह आदमी है यह कहा जाता है। वास्तवमें दीपक ज्वाला या पानी नामही रहता है, लेकिन सत्यके कारण अभेद व्यवहार होता है इसतरह मिथ्या आयुवालोंकी बुद्धि और वाणी भी मिथ्या ही है ॥४४॥ देहान्तरका बीज भूत कर्म आत्माका नहीं है और उस कर्मसे जो यह मरता है या जन्म लेता है वे जन्म-मरण भी आत्माके नहीं होते, वह तो अजरामर है। देहके अभिमानके कारण यह जन्म-मरणकी भ्रान्ति है, जैसा कि कल्पान्त तक रहनेवाली अग्नि इन्धनके संसर्गसे उत्पन्न और नष्ट होती है ॥४५॥ गर्भमें प्रवेश, वहाँ वृद्धि, जन्म, बाल्य, कौमार, तरुणय, मध्यमावस्था, जरा और मृत्यु, ये शरीरकी नव अवस्थाएँ हैं ॥४६॥ ये सब मनोरथमय अवस्थाएँ देहकी हैं, लेकिन प्रकृति-पुरुष-विवेकज्ञान न रहनेके कारण कोई अपनी ही समझता है। कोई-कोई विवेक ज्ञान होनेके कारण इस अभिमान को छोड़ता भी है ॥४७॥ यद्यपि जन्म-मरणादिके समय अपना ज्ञान न होनेके कारण अपनी उन अवस्थाओंका ज्ञान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

नहीं रहता, लेकिन पित्रादिकोंके और्ध्वदेहिक करते समय और पुत्रादिकोंका जात कर्मादि करते समय उनकी अवस्थाओंसे अपनी अवस्थाओंका अनुमान कर सकते हैं। जो इन जन्म-मरण अवस्थाओंको समझ गया है उसके लिए जन्म-मरण नहीं हैं ॥ ४८ ॥ धान आदिकी उत्पत्ति और विनाश देखनेवाला उससे अलग देखा गया है। वैसे ही जन्म-मरण देखनेवाला जो विद्वान् है वह उससे अलग है ॥४६॥ इस तरह मूर्ख मनुष्य प्रकृतिसे अपनेको पृथक् न समझकर विषयोंको ही तत्त्व समझकर उनसे मोहित हो संसारमें चक्कर मारता रहता है ॥५०॥ सात्त्विक कर्मसे ऋषि और देवता योनिमें, राजससे मानुष और आसुर योनिमें, तामससे भूत तथा तिर्यक् योनियोंमें भ्रमण करता है ॥ ५१ ॥ गानेवाले या नाचनेवालेको देखकर जैसे मनुष्य न चाहनेपर भी उसीका अनुकरण करने लगता है वैसे ही बुद्धिके गुणोंको देखते हुए आत्मा भी उन गुणोंके प्रभावसे उसीका अनुकरण करता है ॥ ५२ ॥ पानीके वेगके कारण नदीके किनारेके पेड़ जैसे चलते हुए दीखते हैं या घूमनेवालेको भूमि ही अपने चारो ओर घूमती दिखाई देती है। हे दाशार्ह उद्धव, मनोरथकी बुद्धिके त्रिपयानुभव जैसे मिथ्या हैं या

तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४६ ॥ प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥
सत्त्वसङ्गादृषीन्देवान्रजसाऽसुरमानुषान् ॥ तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥ नृत्यतो गायतः पश्यन्यथैवानुकरोति तान् ॥
एवं बुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥५३॥
यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो
विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥ तस्मादुद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः ॥ आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ५६ ॥
क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ॥ ताडितः संनिबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥ निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रक-
म्पितः ॥ श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥५८॥ उद्‌भव उवाच ॥ यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर ॥ सुदुःसहमिमं मन्य आत्मन्य
सदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥ विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥ ऋते त्वद्धर्मनिरतान् शान्तांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवते

स्वप्नमें देखे गये पदार्थ जैसे मिथ्या हैं, वैसे ही आत्मा का संसार मिथ्या है, ॥ ५३,५४ ॥ यद्यपि त्रिपयानुभवरूप संसार नहीं है, फिर भी विषयका ध्यान करनेवालेका भ्रम नहीं दूर होता है, जैसे कि स्वप्नमें स्वशिरच्छेदादि अनर्थका अनुभव ॥ ५५ ॥ इस लिए हे उद्धव, बहिर्मुख इन्द्रियोंसे विषयोंका भोग मत करो और इस द्वैत प्रपञ्चको आत्माका स्वरूपज्ञान न होनेके कारण उत्पन्न भ्रमरूप समझो ॥ ५६ ॥ दुष्ट लोगोंके द्वारा आक्षेप करनेपर, अपमान करनेपर, फँसानेपर, ईर्ष्या करनेपर, मारनेपर, बाँधनेपर, भोजन छीन लेनेपर, थूकनेपर, मूत्रकरनेपर, या इसी तरह अन्य किसी प्रकारका त्रास देनेपर भी अपना कल्याण चाहनेवालेको धैर्य धारणकर भारी विपत्तिमें पड़कर भी परमात्मामें अटल रहना चाहिए तथा अपने आप अपना उद्धार करना चाहिए ॥ ५७, ५८ ॥ उद्धवने कहा—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र, आपने जैसा बताया वैसा तो दुष्टोंके द्वारा तिरस्कार होनेपर भी स्वस्थ रहना यह अत्यन्त कठिन है

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यह कैसे हो सकता है, मुझे बतलाइए ॥ ५६ ॥ हे विश्वात्मन्, आपके धर्ममें निरत आपके चरणोंके आश्रित शान्त लोगोंको छोड़कर औरोंके लिए यह तो असम्भव है, क्योंकि विद्वान्का भी स्वभाव बड़ा प्रबल होता है ॥ ६० ॥

महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसम्वादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

बाईसवें अध्यायका सार—उद्धवने कहा—भगवन्, अनेक लोग तत्त्वोंकी अनेक संख्याएँ बतलाते हैं। ये भिन्न-भिन्न संख्याएँ बताई जाती हैं और इनमें से कौनसी ठीक है? श्रीभगवान्ने कहा—ये सब विद्वान् लोग जो कहते हैं वह सब ठीक ही है, जो मेरी मायाको स्वीकार करता है उसके लिए क्या कहना असम्भव है। इन विवादोंका कारण मेरी शक्तियाँ हैं। शम, दम, आदि से सम्पन्न होनेपर ये सभी भेद नष्ट हो जाते हैं और विवाद शान्त होता है। तत्त्वोंका परस्परमें अन्तर्भाव रहनेके कारण उनकी संख्या तथा उनका कार्य-कारण भाव चाहे जैसा कहा जाता है। कार्योंमें कारणका और कारणमें कार्यका समावेश होनेके कारण एकमें ही सभीका समावेश कहा जा सकता है। उद्धवने कहा—भगवन्, प्रकृति और पुरुष आपसमें परस्पर ऐसे सम्बद्ध हैं कि इनका भेद नहीं ज्ञात होता अतः इनका भेद ज्ञात हो, ऐसा कहिए। श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव, प्रकृति और पुरुष भिन्न ही हैं, क्योंकि प्रकृति विकारी है और पुरुष अविकारी। उद्धवने कहा—हे कृष्ण, आत्मविमुख लोग अपने कर्मोंसे कैसे ऊँच, नीच, जन्मोंको ग्रहण करते हैं, यह कहिये। श्रीभगवान्ने कहा—कर्ममय मन इन्द्रियोंके साथ एक शरीरसे दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है उसके साथ आत्मा भी जाता है। कर्मोंके अधीन मन देखे या सुने विषयोंका ध्यान करता है और इस देहको छोड़कर दूसरे देहमें आविर्भूत होता है, फिर पूर्वदेहकी स्मृति भी धीरे-धीरे भूल जाता है। नूतन देहमें होनेवाले सुख, दुःख, भयादिके कारण और उसमें अभिमानके कारण पूर्वस्मृति नष्ट होती है, यही मृत्यु है। उस नूतन देहमें मैं यह अभेदाभिमान ही है। जिस तरह पेड़ पौधोंका जन्म तथा मृत्यु देखनेवाला अलग रहता है, उसी तरह शरीरका जन्म-मरण देखनेवाला उससे अलग है। लेकिन मूर्ख मनुष्य प्रकृतिको आत्मासे अलग न समझनेके कारण सत्त्व रज-तमोगुणात्मक योनियोंमें भ्रमण किया करता है। अतः हे उद्धव, आत्मज्ञानके कारण उत्पन्न भ्रमरूप इस प्रपञ्चको समझो और विषयोंमें आसक्ति छोड़ो। दुष्ट लोगोंके द्वारा सताये जानेपर भी आत्मनिष्ठ पुरुषको धैर्य धारण कर आत्म निष्ठाको नहीं छोड़ना चाहिये। उद्धवने कहा—हे भगवन्, आपके कहनेके अनुसार अपना अपमान और तिरस्कार आदि होनेपर भी शान्त रहना आपके भक्तके सिवा दूसरेके लिये असम्भव है, क्योंकि विद्वान् मनुष्यका भी स्वभाव प्रबल होता है। अतः यह कैसे हो सकता है, कृपया बतलाइये। बाईसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ त्रिविंशतितमोऽध्यायः ❀

[भिक्षुगीताका वर्णन]

श्रीशुकदेवजीने कहा—भागवत् श्रेष्ठ उद्धवके इस तरह प्रश्न करनेपर अपने भक्तके वाक्यकी प्रशंसा करते हुए दाशार्हों के नायक, सुनने योग्य जिनका पराक्रम है ऐसे मुक्तिदाता भगवान्ने कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव, इस लोकमें वह साधु पुरुष कोई नहीं है, जो दुष्टोंके द्वारा कहे गये कुवाक्योंसे क्षुभित मनको शान्त रखनेमें समर्थ हो सके ॥२॥ मर्मभेदी बाणोंसे मनुष्य वैसा पीड़ित नहीं होता, जैसा कि असज्जनोंके मर्मभेदी कुवाक्यरूपी बाणोंसे ॥ ३ ॥ हे उद्धव, इस विषयमें मनुष्यको बड़ा बना देनेवाला पुण्यमय एक इतिहास कहा जाता है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ यह इतिहास दुर्जनोंसे अपमानित, उसे केवल अपने कर्मोंका फल मात्र समझनेवाले एक किसी धैर्यशाली भिक्षुकके

बादरायणिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥१॥ श्रीभगवानुवाच॥बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥२ । न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः ॥ यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥ कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ॥ तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥४ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ॥ स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासदाढ्यतमः श्रिया । वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ॥ शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः ॥ दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥ ९ ॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद ॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥ ज्ञातयो जगृहुः किञ्चित्किञ्चिद्दस्यव उद्धव ॥ दैवतः कालतः किञ्चिद्ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे

द्वारा गाया हुआ है ॥ ५ ॥ अवन्ती नगरीमें कोई एक श्रीमान् ब्राह्मण रहता था । व्यापार उसकी वृत्ति थी । वह कामी, लोभी, क्रोधी तथा कृपण था ॥ ६ ॥ ज्ञातो और अतिथियोंका उसने केवल शब्दसे भी कभी सत्कार नहीं किया । अपने शून्य घरमें खुद भी समयपर उस धनसे उसने विषयोंका उपभोग नहीं किया ॥ ७ ॥ उस कृपण और दुःशील ब्राह्मणसे उसके पुत्र, बान्धव, पुत्रियाँ तथा स्त्रियाँ द्वेष करती थीं । वे लोग उससे नाराज होकर उसका कभी प्रिय नहीं करते थे ॥ ८ ॥ इसतरह जिसका पैसा केवल यक्षोंके धनकी नाई रक्षणीय मात्र था ऐसे इह लोक और परलोकसे भ्रष्ट, धर्म-कामसे रहित उस ब्राह्मणके ऊपर पञ्चयज्ञ भागी क्रुद्ध हो गये ॥ ९ ॥ उनके अनादरके कारण उसका सब पुण्य नष्ट हुआ और अत्यन्त परिश्रमसे सम्पादित उसका धन भी नष्ट हुआ ॥ १० ॥ हे उद्धव, कुछ धन ज्ञातियोंने छीना, कुछ चोरोंने लूटा, दैव-काल योगसे कुछ राजाने ले लिया ॥ ११ ॥ इसतरह पहलेसे ही धर्म-काम रहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उस कृपणका पैसा नष्ट हो जानेके कारण स्वजनोंसे भी उपेक्षित होनेसे उसको बहुत चिन्ता हुई ॥ १२ ॥ उस बिचारे नष्टधन ब्राह्मणके कण्ठमें आँसू भर आए और उसको महान् निर्वेद हो गया ॥ १३ ॥ वह कहने लगा – हाय, मैंने फजूल अपनेको तकलीफ दी। न धर्म किया न उपभोग किया व्यर्थ पैसेके लिए परिश्रम किया ॥ १४ ॥ प्रायः कृपणका धन कभी सुखके लिए नहीं होता, यहाँ वह दुःखका कारण होता है और मरनेके बाद नरकका ॥ १५ ॥ यशस्वी लोगोंके शुद्ध यश या गुणी लोगोंके श्लाघनीय गुणोंको थोड़ा-सा ही लोभ नष्ट कर देता है; जैसे कि कुष्ठ सुन्दर रूपवालेके रूपको विकृत कर देता है ॥ १६ ॥ पैसेके कमानेमें, सिद्ध करनेमें, बढ़ानेमें, रक्षण करनेमें, व्यय करनेमें, उपभोगमें, नाशमें मनुष्योंको परिश्रम तकलीफ तथा चिन्ता करनी पड़ती है और नाश होनेसे भ्रम भी होता है ॥ १७ ॥ पैसा कमानेमें चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ; काम, क्रोध ये छ अनर्थ होते हैं। कमानेके बाद अभिमान

धर्मकामविवर्जितः ॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ॥ खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत ॥ १३ ॥ स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन । इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥ यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥ स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥ भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च । १८ । एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्। तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोर्थी दूरतस्त्यजेत् ।१९।। भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ॥ द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बधंश्च भागिनः ॥ असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥

मद, फूट वैर, अविश्वास, स्पर्धा, स्त्री, द्यूत, मद्य ये तीन व्यसन, ऐसे पन्द्रह अनर्थ होते हैं। इसलिए अपना कल्याण चाहनेवालेको इस अनर्थकर पैसेका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिए ॥ १८.१९ ॥ स्नेहमय भाई, स्त्रियाँ माता-पिता सुहृद ये सभी एक पैसेसे शत्रु बन जाते हैं ॥ २० ॥ थोड़ेसे ही पैसेसे ये लोग क्षुब्ध हो जाते हैं, क्रुद्ध होते हैं, सहसा त्याग करते हैं या एकदम सब स्नेह छोड़कर मारनेके लिए तैयार हो जाते हैं ॥ २१ ॥ देव भी जिसे चाहते हैं ऐसे दुर्लभ मनुष्य जन्म उसमें भी ब्राह्मणत्व पाकर उसका ख्याल न कर जो अपने परमार्थका नाश करते हैं उसकी दुर्गति होती है ॥ २२ ॥ स्वर्ग और मोक्षके द्वारभूत इस मनुष्य लोकको पाकर कौन ऐसा मूर्ख मनुष्य है, जो अनर्थके साधन द्रव्यके पीछे लगेगा जो अर्थमें आसक्ति रखेगा ॥ २३ ॥ देव, ऋषि, पितृ, भूत, ज्ञाति, बन्धु इनको उनका भोग नहीं देता न खुद ही उपभोग करता है ऐसा केवल यक्षके लिए धन रखनेवाला अधोगति पाता है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

॥ २४ ॥ व्यर्थकी द्रव्य लिप्साके कारण असावधान हुए मेरा धन, वय, बल सब कुछ गया, कमसे कम अब वार्धक्यमें जिससे विवेकी लोग मुक्त होते हैं वही मैं वृद्ध क्यों न करूँ ॥२५॥ व्यर्थकी द्रव्य लिप्सासे क्यों विद्वान् आदमी बार-बार इतनी तकलीफ करता है? निश्चय ही किसीकी मायासे यह लोक खूब मोहित है ॥ २६ ॥ मौत जिसके सरपर लटक रही है उसको पैसेसे, पैसा देनेवालोंसे, सुख देनेवाले भोगोंसे, या जन्म देनेवाले कर्मोंसे क्या करना है ॥ २७ आज निश्चित रूपसे सब देवताओंके अन्तर्यामी भगवान् हरि मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, जिन्होंने मुझे यह दशा दी और यह निर्वेद दिया। यह निर्वेद ही संसार समुद्रमें आत्माके लिए नावके समान है ॥ २८ ॥ अब मैं आत्माके कल्याणके बारेमें सावधान होकर आत्मामें सन्तुष्ट रहकर बचे हुए समयमें तपसे शरीरको सुखाऊँगा और सम्पूर्ण अर्थोंको अपनी आत्मामें ही सिद्ध कर लूँगा, यदि मैं जिन्दा रहा ॥ २९ ॥ मेरे इस कार्यमें सब त्रिभुवनके स्वामी

ऽव्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ॥ कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये । २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयार्थेहयाऽसकृत् ॥ कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ । किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ॥ मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ॥ येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥ सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः ॥ अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः ॥ उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥ स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः ॥ भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम् ॥ पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नं च भैक्ष्यसम्पन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि ॥ यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥ तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ॥ बध्नन्ति रज्ज्वा तं

देवता मुझपर अनुग्रह करेंगे। अभी बहुत समय है। एक मुहूर्तमें साधनकर खट्वांगने ब्रह्मलोक पाया ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्ने कहा—उस अवन्तीके ब्राह्मणने ऐसा निश्चयकर अहङ्कार और ममत्वको छोड़ दिया तथा शम सम्पन्न, मुनि, भिक्षु बन गया ॥ ३१ ॥ वह मन- प्राण और इन्द्रियोंका संयमकर पृथ्वीमें विचरता था। निस्सङ्ग हो भिक्षाके लिए नगर या ग्राममें निर्लक्ष्य होकर जाता था ॥ ३२ ॥ हे भद्र, उस बूढ़े अवधूत भिक्षुक को एक दिन कुछ दुष्टोंने घेर लिया और उसको अनेक तरहकी तकलीफ दी ॥३३॥ किसीने उसका दण्ड लिया किसीने कमण्डलु, किसीने भिक्षापात्र, किसीने आसन, किसीने माला, किसीने कन्था और किसीने फटे वस्त्र ले लिए ॥ ३४ ॥ वे उसको लो लो करके दिखाते थे, फिर छीन लेते थे नदीके किनारे अन्न लेकर वह खाने बैठा था वह भी उसका छीन लिया ॥ ३५ ॥ वे पापी उसके सरपर मूतने लगे, कुछ लोग थूकने लगे कुछ मौन धारण किये हुए उसको न बोलनेके कारण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मारने लगे ॥ ३६ ॥ कुछ लोग यह चोर है ऐसा कहकर उसे चिढ़ाने लगे, बाँधो, मारो, कहकर कुछ लोग रस्सीसे उसे बाँधने लगे ॥ ३७ ॥ कुछ लोग कहने लगे —यह बदमाश है, धर्मका ढोंग करता है । पैसा चले जानेके कारण सभी बान्धवोंने इसे छोड़ दिया, अब पेटके लिए यह वेष धारण किया है ॥ ३८ ॥ कुछ कहने लगे–अहो इसमें पहाड़के जैसा धैर्य है, दृढ़ निश्चयी यह बगुलेके समान अपना स्वार्थ मौनसे साधन करना चाहता है ॥ ३९ ॥ कुछ इसकी हँसी उड़ाने लगे, कुछ इसपर अपना वायु छोड़ने लगे, उन लोगोंने इस द्विजको रोका बाँधा, वह उनका खिलौना-जैसा बन गया था ॥ ४० ॥ वह इस भौतिक, दैविक, दैहिक सब दुःखोंको दैवसे प्राप्त अपने पापफलका उपभोग समझता था ॥ ४१ ॥ इसतरह उन नराधमोंसे पीड़ित उस ब्राह्मणने धैर्यसे अपने धर्मपर दृढ़ रहकर यह गाथा गाई ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणने कहा—ये लोग मेरे सुख दुःखके कारण नहीं हैं । न देवता, ग्रह आत्मा या कर्मकाल ही

केचिद् बध्यतां बध्यतामिति ॥३७॥ क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहो एष महासारो धृतिमान् गिरिराडिव ॥ मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥ इत्येके विहसन्त्येनमेके दुर्वातयन्ति च ॥ तं बबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥ एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥ द्विज उवाच ॥ नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥ शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥४४॥ अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुणसङ्गतोऽसौ ॥४५॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥४६॥ समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥४७॥ मनोवशेऽन्ये ह्यभवंस्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ॥ भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्युञ्ज्या-

इसका कारण है, किन्तु संसार चक्रको परिवर्तित करनेवाला जो मन है वही इसका कारण है ॥ ४३ ॥ प्रबल मन ही कामादि गुणवृत्तियोंको उत्पन्न करता है और उनसे सात्त्विक, राजस और तामस विलक्षण कर्मोंकी सृष्टि करता है । कर्मके अनुरूप ही देव, मनुष्य, तिर्यक् ऐसी गति मिलती है ॥ ४४ ॥ परमात्मा निरिच्छ है वह प्रवृत्तियुक्त मनके साथ नियन्ता रूपसे रहनेपर भी स्वयं विद्या शक्तिमय जीवका नियन्ता केवल अपने स्वयं प्रकाश ज्ञानसे देखता है । यह जीव संसारको प्रकट करनेवाले मनको अपना समझकर मनके कर्मोंसे सम्बद्ध होकर कामोपभोग करते हुए बन्धनमें पड़ता है ॥ ४५ ॥ दान, धर्म, नियम, यम, कर्म व्रत सभी मनोनिग्रहत कही है । मनका रोकना ही परम योग है वही समाधि है ॥ ४६ ॥ जिसका मन शान्त और सावधान है उसको दानादिसे क्या काम ? जिसका मन संयत नहीं है या आलस्यादिसे नष्ट है उसको भी दानादि उपायोंसे क्या प्रयोजन ॥४७॥ सभी देव मनके वशमें हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मन किसीके अधीन नहीं है। मनोरूपी यह देव बड़ा भयङ्कर और बलवान् है। जो बलिष्ठ उसको वशमें रखता है वह देवोंका देव है ॥४८॥ इस दुर्जय, मर्मभेदी असह्य वेगवान् शत्रुको न जीतकर मूर्ख लोग मनुष्योंसे निकृष्ट कलह करके उनमें मित्र, उदासीन और शत्रु बना लेते हैं ॥ ४९ ॥ मनुष्य मनसे कल्पित इस देहको लेकर 'मेरा' और 'मैं' इस अभिमान बुद्धिसे अन्धे हो जाते हैं। यह मैं हूँ यह दूसरा है, ऐसा समझकर जिसका अन्त नहीं ऐसे संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ अगर लोगोंको भी सुख दुःखका कारण माना जाय तो भी आत्माका उससे क्या सम्बन्ध रहा ? वह तो दो पार्थिव पदार्थोंका आपसमें कलह हुआ, दाँतसे अगर जीभ काटी जाती है, तो उस दुःखके लिये किसको दोष दे सकते हैं ॥ ५१ ॥ यदि दुःखके कारण देवताओंको भी माना जाय, तो भी आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है। विकारी देवताओंका वह परस्पर सम्बन्ध है। अपने शरीरमें एक अवयवसे दूसरे अवयवके ताड़ित होनेपर मनुष्य किसीके ऊपर गुस्सा कर सकता है ॥ ५२ ॥ अगर आत्मा सुख-दुःखका कारण है, तो फिर दूसरेसे क्या मतलब ? अगर वह उसका स्वभाव है, तो फिर उसमें दूसरेका क्या दोष ? अगर

ह्वशे तं स हि देवदेवः ॥४८॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ॥ कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः ॥४९॥देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः ॥ एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ५० ॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र ह भौमयोस्तत् ॥ जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥ दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ॥ यदङ्गमङ्गेन निहन्यते क्वचित्क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ न ह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात्क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४॥ कर्मास्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ॥ देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्म मूलम् ॥५५ कालस्तु हेतु सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ॥

किसी दूसरे कारणसे आत्माको वह होता है, ऐसा कहेंगे, तो आत्मासे अतिरिक्त है ही क्या ? यदि शायद यह कहें कि आत्मासे अतिरिक्त कोई है, तो यह फिर वह मिथ्या ही है, अतः किसलिये किसके ऊपर क्रोध ? न तो सुख-दुःखका कोई निमित्त है और न सुख दुःख ही है ॥ ५३ ॥ यदि ग्रहोंसे सुख-दुख होता है यानी सुख-दुःखके कारण ही ग्रह हैं, तो भी वह देहको होया है, अजन्मा निर्विकारी आत्माको क्या ? वास्तवमें आकाशस्थ ग्रह ग्रहोंको ही पीड़ा देते हैं, उस लग्नमें उत्पन्न देहको उसके अभिमानसे वह पीड़ा होती है इसलिऐ ग्रहों और देहसे अन्य आत्मा किसके ऊपर क्रोध करे ? ॥ ५४ ॥ अगर कर्मोंको सुख-दुःखमें कारण मानते हैं, तो वह भी नहीं हो सकता, क्योंकि कर्मोंको कारण माननेसे उसको जड़ाजड़ मानना पड़ेगा, क्योंकि प्रवृत्तिके लिए हिताहितज्ञान चाहिये, उसको चेतन धर्म और विकारी होनेके लिए जड़ होनेकी आवश्यकता है। आत्मा तो शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, वह जड़ नहीं हो सकता देह तो जड़ है, उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती फिर धर्म कहाँ ? और किसपर क्रोध करेंगे ? क्योंकि सुख-दुःखके मूल मूत ये हैं ही नहीं ॥ ५५ ॥ यदि काल सुख दुःखका कारण है तो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वह आत्मा स्वरूप ही है, इसलिए वह किसके ऊपर क्रोध करेगा यानी उससे आत्माको पीड़ा कैसी ? अग्नि अपनेको नहीं जलाती और न वर्फसे वर्फको सर्दी होती है ॥ ५६ ॥ वास्तवमें द्वन्द्वसे जो परे हैं ऐसे इस आत्माको कोई किसी तरह कहीं दुख नहीं दे सकता। यह सब संसारके प्रकाशक अहङ्कारका भ्रम है। जिसको ज्ञान हो चुका है वह भूतोंसे नहीं डरता ॥ ५७ ॥ इसलिए पुरातन महर्षि जिस परब्रह्मनिष्ठका आश्रयण कर मुक्त हुए हैं मैं भी इसीका आश्रयणकर अपार इस अन्धकारमय संसारको भगवान्‌के पदारविन्दकी सेवासे ही तर जाऊँगा ॥५८॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, इस तरह धनके नष्ट हो जानेपर निर्विण्ण होकर परिताप छोड़कर संन्यासी होकर यों ही पृथ्वीपर यह गाथा गाई ॥५९॥ पुरुषको सुख-दुःख

नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥ न केनचित्क्वापि कथञ्चनास्य द्वन्द्वोपरागः परतः परस्य ॥ यथा-ऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥५७॥ एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ॥ अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥५८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकम्पितोऽमूं मुनिराह गाथाम् ॥५९॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ॥ मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ॥ मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥ धारयन् श्रावयन् शृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

देनेवाला कोई नहीं है, सब मनका भ्रम मात्र है। मित्र, उदासीन और शत्रु यह संसार सब अज्ञानके कारण हैं ॥६०॥ इसलिए हे उद्धव, मुझमें निरत बुद्धिके द्वारा सब तरहसे मनको रोको, यही योगका संग्रह है ॥६१॥ जो यह भिक्षुकके द्वारा गाई गई ब्रह्मनिष्ठाको सुनता है, सावधान होकर धारण करता है या सुनाता है वह सुख-दुखादि द्वन्दोंसे पीड़ित नहीं होता ॥ ६२ ॥

तेइसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्‌ने कहा—दुष्टोंके वाग्बाणोंसे विद्ध होनेपर भी शान्त रहनेवाला योगी इस लोकमें दुर्लभ है, ये वाग्बाण साधारण बाणोंसे भी तीक्ष्ण होते हैं, इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, सुनो, अवन्ति नगरीमें एक ब्राह्मण था, जो वैश्य वृत्तिसे अपनी जीविका चलाता था। उस वृत्तिसे उसने बहुत धन कमाया, लेकिन कृपण होनेके कारण उसके स्त्री, पुत्र जाति सभी उससे असन्तुष्ट रहते थे। देव पितरादिकोंका सन्तर्पण न करनेके कारण पञ्चयज्ञके भागी सभी असन्तुष्ट हुए और उसका जो पुण्य था वह नष्ट हो गया, उसके कारण उसका धन भी नष्ट हो गया। जब धन नष्ट हो गया तब सभी लोगोंने उसका साथ छोड़ दिया, तब उसके आँखोंमें आँसू आगए और उसको निर्वेद हो गया। वह कहने लगा हाय! मैंने व्यर्थ ही धनके लिए इतना कष्ट किया, न दान किया न उपभोग। सचमुच कृपणका धन इहलोकमें दुःखका और मरनेके बाद नरकका कारण होता है। इस धनकेलोभकेकारण मनुष्यके यश और सद्गुण नष्टहो जाते हैं। आज सुदैवसे मेरेऊपर भगवान्‌की कृपाहुई कि यह अवस्था और यह निर्वेद मुझे प्राप्त हुआ। निर्वेदही संसारकी नौका है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अब मैं आत्मकल्याणमें सावधान होकर इस शरीरको तपसे सुखाऊँगा। श्रीभगवान्‌ने कहा—वह ब्राह्मण ऐसा निश्चयकर अहंकारका त्यागकर प्राण, इन्द्रिय और मनका संयमकर रहने लगा। भिक्षाके लिये नगर तथा ग्राममें जाता था। एक दिन कुछ दुष्टोंने उसे घेर लिया और उसे सताना शुरू किया। उसके दण्ड, कमण्डलु वगैरह छीन लिये। उसका खाना भी जो भिक्षा मांगके लाया था छीन लिया। उसको सब गाली देने लगे। अनेक तरहसे सताये जानेपर भी वह अपने धर्मसे विचलित जब नहीं हुआ, तब उसने यह गाथा गाई—ये लोग मेरे दुःखके कारण नहीं हैं, न ग्रह, न देवता, किन्तु इस संसारचक्रका परिवर्तन करनेवाला मन ही कारण है। मनकी ही त्रिगुणात्मक वृत्तियाँ हैं, उनसे कर्मोंकी सृष्टि होती है और उस कर्मके अनुरूप योनियाँ मिलती हैं। मनुष्य मनसे कल्पित शरीरको अपना समझकर संसारमें भ्रमण करता है। लोगोंको दुःखका कारण माननेपर भी आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, यह तो दो पार्थिव पदार्थोंका व्यापार है। वास्तवमें आत्मा द्वन्द्वसे परे है, उसको कौन दुःख दे सकता है, यह केवल अहंकारका भ्रम है। ज्ञानी भूतोंसे नहीं डरता। अतः भगवान्‌की सेवा करके अपार संसार सागरसे तर जाऊँगा। श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, उस भिक्षुने यह गाथा गाई। इसलिये हे उद्धव, मन सबका कारण है, उसीको तुम वशमें रखो। जो इस भिक्षु गीताको सुनता है, उसको सुख-दुःख द्वन्द्व बाधक नहीं होते। तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥

॥ अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

[सांख्य-योगका निरूपण]

श्रीभगवान्‌ने कहा—अब तुम्हें मैं प्राचीन कपिलादि मुनियोंके द्वारा निर्णय किया हुआ सांख्य बतलाता हूँ, जिसके जाननेसे मनुष्य तुरन्त भेदभ्रमका त्याग कर देता है ॥ १ ॥ जब कृतयुगमें विवेकनिपुण लोग थे तब और प्रलयमें ज्ञान तथा अर्थ इनमें भेद नहीं माना जाता था, ये एक ही थे ॥ २ ॥ वह भेद शून्य, मन और वाणीको अगम्य, सत्यरूप महान् केवल

श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥ आसीज्ज्ञानमथो अर्थ एकमेवाविकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥२॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥ ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमो रजः सत्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातो यो

परब्रह्म उस मायाके विलाससे दो हो गया ॥ ३ ॥ उन दोनोंमेंसे एक अर्थ कार्य कारणरूपिणी प्रकृति और दूसरा अर्थ द्रष्टा हुआ, जिसको पुरुष कहा जाता है ॥ ४ ॥ मैंने प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न किया, उससे और पुरुषके अनुमतिसे उसे प्रकृतिमें सत्त्व, रज और तम तीन गुण उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उन गुणोंसे क्रिया शक्तिमान् विकार 'सूत्र' और उस सूत्रसे युक्त ज्ञान शक्ति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मान् विकार महान् उत्पन्न हुआ उसके विकारसे सभीको मोह उत्पन्न करनेवाला जो अहङ्कार है वह उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ अहङ्कार वैकारिक, तेजस, और तामस ऐसा तीन प्रकारका है। उससे शब्दादि पञ्च तन्मात्राएँ, इन्द्रिय और मन उत्पन्न हुए। वह चित्त और अचित् रूप है ॥ ७ ॥ तामसाहंकारसे तन्मात्राएँ और उनसे पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए। तैजसाहंकारसे दस इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं वैकारिक अहङ्कारसे इन्द्रियोंके अभिमानी एकादश देव तथा मन उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ मेरी प्रेरणासे सभी इन भावोंने मिलकर मेरा शरीररूप यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ उस पानीमें रहनेवाले अण्डेमें मैंने प्रवेश किया। मेरी नाभीमें ब्रह्माण्ड नामका कमल उत्पन्न हुआ और उसमें ब्रह्मदेव ॥ १० ॥ उसने तप करके मेरे अनुग्रहसे युक्त होकर रजो गुणका आश्रयणकर भूः, भुवः, स्वः ये तीन लोक और उनके लोकपालोंकी सृष्टि की ॥ ११ ॥ देवता लोगोंका स्वः निवास था भूः—अन्तरिक्ष लोक भूतोंका निवास था एवं

ऽहङ्कारो विमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ॥ अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ॥ मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ १२ ॥ अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ॥ त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १३ ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ १४ ॥ मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति ॥ सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥ यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १७ ॥ यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुते परम् ॥ आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं

भू लोक मनुष्योंका इन तीनोंके परे सिद्धोंका लोक महदादि बनाया ॥ १२ ॥ भूमिके नीचे असुर और नागोंके लिए भगवान्ने लोक बनाए। पातालादि त्रिलोकीमें ही त्रिगुणात्मक कर्मों के कारण सब गतियाँ मिलती हैं ॥ १३ ॥ योग, तप और न्यायसे मह, जन, तप, सत्य ये श्रेष्ठ लोक मिलते हैं तथा भक्ति योगसे वैकुण्ठ ॥ १४ ॥ कालरूपी मुझ परमेश्वरसे कर्मयुक्त यह जगत् इस गुण-प्रवाह-रूपी संसारमें कर्मके अनुसार कभी उत्तम गति और कभी अधम गति पाता है ॥ १५ ॥ छोटा, बड़ा, दुबला, मोटा जो जो पदार्थ है वह सब प्रकृति और पुरुष दोनोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ जिसका जो कारण है और जिसमें लय होता है उत्पत्ति तथा लयके बीचमें भी वही है वही सत्य है। विकार केवल व्यवहारके लिए है जैसा मिट्टिके घड़े, पुरवा आदि बनानेपर भी मिट्टीही उनमें तत्त्व है या सोनेके कुण्डल आदि बनानेपर भी उनमें सोना ही तत्त्व है ॥ १७ ॥ जिस उपादान कारणको लेकर कारणरूप महदादि भाव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अहङ्कार आदि भावको उत्पन्न करते हैं वही सत्य है, मृत्तिकादिमें सत्य व्यवहार जैसे घटाद्यपेक्षाकृत है। जिस समय जिसके आदि और अन्तकी विवक्षाकी जाती है उस समय उसको श्रुति सत्य बतलाती है ॥ १८ ॥ इस संसारका प्रकृति उपादान परम पुरुष आधार और इसका अभिव्यञ्जक काल है इन तीनोंमें ब्रह्मरूप मैं ही हूँ मुझसे पृथक् कुछ नहीं है ॥ १९ ॥ पिता-पुत्र इस क्रमसे यह अविच्छिन्न सृष्टि हर समय उत्पन्न होती है। यह जीवके भोगके लिए है। यह सृष्टि जबतक परमेश्वरकी इच्छा है तब तक है ॥ २० ॥ कालरूपी मुझसे व्याप्त ब्रह्माण्ड जिसमें रोज सृष्टि और लय होते रहते हैं, सम्पूर्ण भुवनों के साथ कभी पूर्ण प्रलयके योग्य हो जाता है ॥ २१ ॥ मर्त्य शरीर जिस अन्नसे उत्पन्न हुआ है, शतवर्षीय अनावृष्टिमें उसीमें लीन हो जाता है। अन्न बीजमात्रावशिष्ट रह जाता है। वह बीज भूमिमें लीन हो जाता है। भूमि अपने गुण गन्धमें लीन होती है। गन्ध जलमें लीन होता है, जल अपने गुण रसमें

त्वहम् ॥ १९ ॥ सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥ महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ २० ॥ विराण्मयासाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥२१ ॥ अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥२२॥ अप्सु प्रलीयते गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे ॥ लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥२३॥ रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे ॥ अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥ योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २५ ॥ स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥२६॥ कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥२७॥ एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २८ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः ॥ प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

रस तेजमें, तेज स्वीयगुण रूपमें, रूप वायुमें, वायु उसके गुण स्पर्शमें, स्पर्श आकाशमें, आकाश शब्दमें और वह शब्द तामस अहङ्कारमें लीन हो जाता है। इन्द्रियाँ अपने कारण राजसाहङ्कारमें लीन होती हैं ॥ २२–२४ ॥ हे सौम्य, देवता सब नियन्ता मनमें लीन होते हैं, उनके साथ मन वैकारिक अहङ्कारमें। यह तीन प्रकारका अहंकार महत्तत्वमें, वह गुणवान् श्रेष्ठ महत्तत्त्व अपने गुणोंमें और गुण प्रकृतिमें लीन होते हैं तथा प्रकृति भी अव्यय कालमें लीन होती है ॥ २५, २६ ॥ वह काल मायामय जीवमें और जीव अनादि परमात्मारूपी मुझमें लीन होता है परमात्मा किसीमें लीन नहीं होता। वह स्वयं अपना आधार है, वह विश्वकी उत्पत्ति और प्रलयकी अवधि सीमा है ॥ २७ ॥ इस तरह जिसको ज्ञान हो गया है, उसके हृदयमें मनका भेदभ्रम कैसे रह सकता है, क्या सूर्योदयके बाद आकाशमें अन्धकार रह सकता है ॥२८॥ सर्वज्ञ मैंने संशयग्रन्थिको तोड़नेवाला यह सांख्योंका कार्यकारण प्रकार प्रतिलोम और अनुलोमसे यानी उलटा सीधा करके बतलाया ॥ २९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चौबीसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव, अब मैं तुम्हें सांख्यका सिद्धान्त बतलाता हूँ, जिससे भेदभ्रम नष्ट हो जाता है। प्रलयमें द्रष्टा और दृश्यमानमें भेद नहीं था, कृतयुगमें भी विवेकी लोग ऐसा ही समझते थे। वह भेदशून्य परब्रह्म अपनी मायासे दो प्रकारका हो गया एक प्रकृति और दूसरा पुरुष। मैंने प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न किया और उसमें तीन गुण उत्पन्न किए, उन गुणोंसे क्रिया शक्तियुक्त सूत्र और ज्ञान शक्तियुक्त महान् द्विरूपात्मक तत्त्वका निर्माण हुआ। उस महान्से अहंकार उत्पन्न हुआ, तामसाहंकारसे शब्दादिक पंचतन्मात्राएँ, तैजसाहंकारसे दस इन्द्रियाँ और वैकारिकाहंकारसे एकादश देवता और मन उत्पन्न हुआ। पंच तन्मात्राओंसे पंच महाभूत उत्पन्न हुए। इन सब तत्त्वोंने मिलकर एक अण्ड बनाया, जो पानीमें स्थित था, उसमें मैंने प्रवेश किया। मेरी नाभिसे चतुर्दश भुवनात्मक कमल उत्पन्न हुआ। उसमें ब्रह्मदेव उत्पन्न हुए। रजोगुणसे भूलोक भुवर्लोक और स्वर्लोककी सृष्टि की। यहाँ जो भी भाव दीखते हैं वे सब प्रकृति पुरुषसे युक्त हैं। जिससे जो उत्पन्न होता उसीमें उसका लय भी होता है। इसलिए हे उद्धव, सभी पदार्थ अपने-अपने कारणमें, जहाँसे वे उत्पन्न हुए हैं, लीन हो जाते हैं। परमात्मा किसीमें लीन नहीं होता, वह तो सबकी उत्पत्ति प्रलयकी सीमा है। हे सौम्य, सृष्टि प्रलयका जिसे यह ज्ञान हो गया है वह भ्रममें नहीं पड़ता, उसके सब संशय नष्ट हो जाते हैं। चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥

❁ अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ❁

(सात्त्विक, राजस और तामस गुणोंका निरूपण)

श्रीभगवान्ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, परस्पर विभक्त प्रत्येक गुणसे मनुष्यमें किससे कौन-कौन गुण पैदा होते हैं, वह मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ १ ॥ शम-मनोनिग्रह, दम-इन्द्रिय-निग्रह, तितिक्षासहिष्णुत्व, तप-स्वधर्मानुवर्तित्व, सत्य दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, श्रद्धा, अनुचित कामोंमें लज्जा, दान, सरलता, विनय, आत्मरति ये सात्त्विक गुण हैं ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसम्मिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥१॥ शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दयास्मृतिः ॥ तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥२॥ काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम् ॥ मदोत्साहो यशःप्रीति-र्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥ क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः क्लमः कलिः ॥ शोकमोहौ विषादार्ती निद्राशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ॥

इच्छा, व्यापार मद, तृष्णा-मिलनेपर भी असन्तोष, गर्व, सकाम-देवता भजन, भेदबुद्धि, विषयसुख, मदसे, उत्साह, यशकी आकांक्षा, उपहास, अपना प्रभाव प्रकट करना, बलसे उद्योग करना ये राजस वृत्तियाँ हैं ॥ ३ ॥ क्रोध, लोभ, असत्य, हिंसा, प्रार्थना अधर्मोंकी शोक मोह, दुःख, दैन्य तन्द्रा, व्यर्थ आशा, भीति, जड़ता, ये तामस वृत्तियाँ हैं ॥४॥ इन तीनों गुणोंकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अलग २ वृत्तियाँ बतलाईं, अब तीनोंकी मिलकर जो वृत्तियाँ हैं उन्हें कहता हूँ, सुनो ॥५॥ हे उद्धव, 'मेरा' और 'मैं' यही जो बुद्धि है वह विश्वकर्म है तथा मन, इन्द्रियों एवं प्राणोंसे होने-वाले जो व्यवहार हैं वे सब भी मिश्रकार्य हैं ॥ ६ ॥ धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंमें प्रवृत्ति रहना भी मिश्रवृति है, इससे श्रद्धा, प्रेम तथा धन ये तीनों फल मिलते हैं ॥७॥ काम्यकर्ममें पुरुषकी प्रवृत्ति, घरमें आसक्ति और अपने नित्य नैमित्तिक कर्ममें भी श्रद्धा जब रहती है तब इन तीनों गुणोंका मिश्रप्रभाव रहता है ॥ ८ ॥ पुरुषको सत्त्वादि गुणोंसे सात्त्विक कामादि गुणोंसे राजस और क्रोधादिसे तामस समझना चाहिए ॥ ९ ॥ अपने कर्मोंसे निरपेक्ष होकर भक्तिसे जो मेरा पूजन करता है, तब उस स्त्री या पुरुषको सात्त्विक प्रकृतिका समझना चाहिए ॥ १० ॥ जब कुछ इच्छा रखकर करता है तब राजस और दूसरेकी हिंसाके लिये जब करता है तब उसे तामस प्रकृतिका समझना चाहिए ॥ ११ ॥ सत्त्व, रज और तम ये जीवके गुण हैं

व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ ६॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदासौ परिनिष्ठितः ॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥७॥ प्रवृत्तिलक्षणेनिष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव वा ॥१०॥ यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ॥ तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ॥ चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥ यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ॥ तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥ यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः सङ्गं भिदा बलम् ॥ तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥ यदा जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ॥ युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाशया ॥ १५ ॥ यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः ॥ देहोऽभयं मनोऽसङ्गं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥ विकुर्वन् क्रियया चाधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ॥ गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥ सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥१८॥ एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ॥ असुराणां

मेरे नहीं हैं, वास्तवमें ये जीवके भी नहीं हैं, मनके हैं, लेकिन जीव उनसे सम्बद्ध होकर बन्धनमें पड़ता है ॥ १२ ॥ जब प्रकाशयुक्त, स्वच्छ, शान्त सत्त्वगुण बाकी दोनों गुणोंको जीत लेता है तब मनुष्य सुख, धर्म और ज्ञान आदिसे युक्त होता है ॥ १३ ॥ जब रज दोनोंको जीत लेता है तब मनुष्य आसक्ति, भेदबुद्धि, प्रवृत्ति, दुःख, कर्म, यश, श्री इनसे युक्त होता है ॥ १४ ॥ मोहात्मक, आवरणात्मक, अनुपमात्मक तम जब सत्त्व और रजके ऊपर जयी रहता है तब पुरुष शोक, मोह, तन्द्रा और हिंसासे युक्त होता है ॥ १५ ॥ जब चित्त प्रसन्न रहे, इन्द्रियाँ उपरत रहें देहमें भय न रहे, मन अनासक्त हो, तब मेरी प्राप्तिका साधन सत्त्व बढ़ गया है, ऐसा समझो ॥ १६ ॥ क्रियासे विकारको प्राप्तकर रहा पुरुष जब विक्षिप्त बुद्धिवाला हो जाता है, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ जब उसकी अस्वस्थ हो उठती हैं, मन अशान्त हो जाता है, तब उसमें रजोगुण प्रबल हो गया है ऐसा समझ लो ॥ १७ ॥ जब चित्त सुन्न होकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ भी ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाता है, संकल्पात्मक मन भी नष्ट हो जाता है अज्ञान, ग्लानि विषाद उत्पन्न होने लगते हैं, तब तमोवृद्धि हुई है, ऐसा समझ लो ॥१८॥ हे उद्धव, सत्व वृद्धिसे देवोंका बल बढ़ता है, रजसे असुरोंका और तमसे राक्षसोंका ॥ १९ ॥ सत्त्वसे प्राणीकी जागृति, रजसे स्वप्न और तमसे निद्रा समझनी चाहिए। तुरीय चतुर्थ जो अवस्था है वह आत्माकी है, वह इन तीनोंसे सतत रहनेवाली है ॥ २० ॥ वेदानुष्ठानयुक्त ब्राह्मणलोग सत्त्वसे ऊपर-ऊपरके लोकोंमें जाते हैं, तमसे नीचे-नीचे स्थावरतक जाते हैं और रजसे मनुष्य ही होते हैं ॥ २१ ॥ सत्त्ववृद्धिमें मरनेवाले स्वर्गमें जाते हैं रजमें मनुष्यलोकको और तमसे नरकको तथा जो निर्गुण होते हैं वे मेरे पास आते हैं ॥ २२ ॥ फलकी इच्छा न रखकर या मुझे अर्पण करके जो अपना वर्णाश्रम विहित धर्माचरण किया जाता है वह सात्विक कर्म है. फलेच्छासे जो कर्म किया जाता है वह राजस कर्म है तथा शत्रुहिंसा इत्यादिके लिये जो किया

च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ॥ प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥ २० ॥
उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ॥ तमसाधोऽध आमुख्याद्रजसान्तरचारिणः ॥ २१ ॥ सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजो-
लयाः ॥ तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ॥ राजसं फलसङ्कल्पं हिंसाप्रायादि
तामसम् ॥२३॥ कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकञ्च यत् ॥ प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥२४॥ वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस
उच्यते ॥ तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसङ्गी रागान्धो राजसः स्मृतः ॥ तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणी
मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी ॥ तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमना-
यस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् । राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाशुचि ॥ २८ ॥ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ॥ तामसं
मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् । २९ ॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ॥ श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ।३०॥

जाता है वह तामसकर्म है ॥ २३ ॥ देहव्यतिरिक्त आत्मविषयक ज्ञान सात्विक है, वैकल्पिक-देहकोही आत्मा समझना, यह ज्ञान राजस है, प्राकृत-बाल या मूक जैसा ज्ञान तामस और परमात्माविषयक ज्ञान निर्गुण है ॥ २४ ॥ वनमें वास सात्विक है, ग्राममें राजस और जहाँ द्यूत होता है वहाँ वास तामस है। मेरा मन्दिर तो निर्गुण वास है ॥ २५ ॥ अनासक्त होकर कर्म करनेवाला सात्विक कर्ता, रागान्ध होकर कर्म करनेवाला राजस तथा स्मृतिभ्रष्ट होकर कर्म करनेवाला तामस कहलाता है। मेरी शरणमें आकर कर्म करनेवाला निर्गुणकर्ता कहलाता है ॥२६॥ अध्यात्मशास्त्र विषयकश्रद्धा सात्त्विकी, कर्म विषयक श्रद्धा राजसी तथा अधर्मविषयक श्रद्धा तामसी कहलाती है। मेरी सेवामें जो श्रद्धा है वह तो निर्गुणा है ॥२७॥ शरीरको हितकर, पवित्र, अनायास प्राप्त आहार सात्विक कहा गया हैं, इन्द्रियोंको रुचिकर आहार राजस तथा बादमें जिससे तकलीफ होती है और जो अशुद्ध रहता है वह अन्न तामस कहा गया है ॥ २८ ॥ अपना जो स्वरूप भूत आनन्द है वह सात्विक, विषयोपभोगसे जो आनन्द होता है वह राजस तथा मोह और दैन्यसे उत्पन्न सुख तामस है। मेरी शरणमें आनेसे जो सुख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होता है वह तो निर्गुण है ॥ २६ ॥ द्रव्य, देश; फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्ता, श्रद्धा, अवस्था, कृति, निष्ठा सभी त्रिगुणात्मक हैं ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, इन्द्रियोंसे अनुभूत, श्रुत या विचारविषयक जितना भी प्रपंच है वह सब गुणमय और प्रकृति-पुरुषसे अधिष्ठित है ॥ ३१ ॥ पुरुषके जो ये संसार हैं वे सबके सब गुणकर्म निबन्धन हैं, हे सौम्य, जिस जीवने चित्तसे उत्पन्न हुए इन गुणोंको जीत लिया है, भक्तियोगसे मेरी उपासना करनेसे उसको मोक्ष मिलता है, इसलिये जिसमें ज्ञान और विज्ञान उत्पन्न होता है ऐसा यह देह पाकर गुणोंमें आसक्ति छोड़कर विद्वान लोग मेरा भजन किया करें। जितेन्द्रिय होकर सावधानीके साथ आसक्तिशून्य हो विद्वान् मनुष्यको मेरा भजन करना चाहिए ॥ ३२,–३४ ॥ सत्त्वका सेवन रज

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः ॥ येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ॥ ३२ ॥ भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥ ३३ ॥ गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥ निःसङ्गो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ॥ ३४ ॥ रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः ॥ ३५ ॥ सम्पद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

और तमको जीतना चाहिए, योगयुक्त होकर निरपेक्षता से तथा शान्तचित्त होकर सत्वके ऊपर भी योगी को विजय पानी चाहिए ॥ ३५ ॥ गुणोंसे मुक्त जीव लिंग शरीरको भी छोड़कर मेरे पास आता है। वासनासे उत्पन्न होनेवाले गुणोंसे तथा लिंग शरीरसे मुक्त जीव न तो बाहरके विषयोपभोगसे न अन्दरके उसके स्मरणादिसे पूर्ण रहता है, किन्तु वह मुझ ब्रह्मसे पूर्ण होकर रहता है ॥ ३६ ॥

पचीचीसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव, तीन गुणोंसे प्रत्येक गुणसे मनुष्यमें कौन-कौनसे गुण उत्पन्न होते हैं, सुनो—शम, दम, तितिक्षा, आदि अच्छे गुण सब सात्त्विक हैं। इच्छा, व्यापार, मद इत्यादि राजस तथा क्रोध, लोभ इत्यादि तामस गुण हैं। "मेरा" मैं। यह बुद्धि तथा मन इन्द्रिय इत्यादिके व्यवहार तीनों गुणोंके मिस्र कार्य हैं। सात्त्विक गुणोंसे सात्त्विक, कामादिसे राजस और क्रोधादिसे युक्त रहनेवालेको तामस पुरुष समझना चाहिए। स्वधर्मसे निरपेक्ष भावसे मेरा पूजन करनेवाले सात्त्विक कामनासे करनेवाले राजस तथा शत्रुपक्षादिके लिये करनेवाले पुरुष तामस प्रकृतिके होते हैं। देहके अतिरिक्त आत्मा है ऐसा समझना सात्त्विक ज्ञान है, देहको ही आत्मा समझना राजसज्ञान तथा मूक या बच्चेके जैसा जोज्ञान है वह तामस है। आत्म विषयक सुख सात्त्विक, विषयोपभोगसे मिलनेवाला राजस तथा मोह, दैत्य इत्यादिसे मिलनेवाला तामस सुख है। द्रव्य, देश, काल कर्म, कर्ता इत्यादि सभी त्रिगुणात्मक हैं। इतना ही नहीं जितना प्रपञ्च है, सभी गुणमय तथा प्रकृतिपुरुषसे अधिष्ठित हैं। अतः इससे मोक्ष पानेके लिए मेरी उपासना करनी चाहिये। सत्त्वका सेवनकर रज और तमके ऊपर विजय पाकर आखिरमें निरपेक्षतासे सत्वको भी जीत लेना चाहिए। गुणोंसे मुक्त जीवका लिङ्ग शरीर जब नष्ट होकर वह मेरे पास आता है तब उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। पचीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ षड्विंशोऽध्यायः

(पुरूरवाका निर्वेद और सत्सङ्गकी महिमा)

श्रीभगवान्‌ने कहा—जिस शरीरसे मेरा ज्ञान हो सकता है ऐसा यह शरीर पाकर जो मेरे धर्मका आश्रयण करता है वह अपने हृदयमें रहनेवाले आनन्दमय परमात्मारूपी मुझको पाता है ॥१॥ गुणमयी जीवोपाधि यानी लिङ्गशरीर भी अभिमान जिसका ज्ञानयोगसे छूट जाता है ऐसा मेरा भक्त अवस्तुरूपसे दिखाई दे रहे इन मायामय गुणोंमें विद्यमान रहते हुए भी सम्बद्ध नहीं होता ॥२॥ शिश्न और उदरको तृप्त करनेवाले दुर्जनोंका कभी भी सङ्ग नहीं करना चाहिए। उनके पीछे जानेवाले अन्धेके समान गिरता है ॥ ३ ॥ कीर्तिमान् चक्रवर्ती पुरूरवा जब उर्वशी के विरहके कारण शोक रोकनेमें असमर्थ हुआ, तब पहले तो वह मुग्ध हुआ, लेकिन बादमें जब शोक नष्ट हुआ, तब उसने यह गाथा गाई ॥४॥ उस पुरूरवाको छोड़कर उर्वशी जब जाने लगी

श्रीभगवानुवाच ॥ मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्तमानोऽपि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥ सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ॥ तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ॥ उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठति विक्लवः ॥ ५ ॥ कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥ ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ॥ देव्या गृहीतकण्ठस्य नायुःखण्डा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाभ्युदितोऽमुया। मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥ ८ ॥ अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः ॥ क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ । सपरि-

तब वह विह्वल होकर नग्न अवस्थामें ही 'हे भयंकर औरत ठहरो' ऐसा उन्मत्तके समान विलाप करते हुए उसके पीछे दौड़ा गया ॥ ५ ॥ उर्वशीने उसका चित्त खींच लिया था, अतृप्त इन्द्रियोंसे क्षुद्र विषयोंका उपभोग करते हुए कितनी दिन-रात आई और कितनी गई उसने कुछ भी नहीं समझा ॥ ६ ॥ पुरूरवा कहने लगा–हाय! कामसे कलुषित चित्तवाला होजाने के कारण मेरा मोह कितना बढ़ गया है, देखो। उर्वशीके आलिङ्गनमें भूले हुए मेरी इस आयुका कितना भाग चला गया, मुझे बिलकुल स्मरण नहीं है ॥ ७ ॥ उसके साथ सतत रमण करते हुए मैंने सूर्यास्त हुआ या सूर्योदय हुआ, यह भी नहीं देखा। इस तरहसे मैं फँस गया था और कितने ही वर्षोंके दिन चले गये लेकिन मैं न जान पाया, एक दिन मुझे छोड़कर वह चली गई ॥ ८ ॥ मेरा आत्म संमोह तो जरा देखिये, जिसने नरश्रेष्ठ और चक्रवर्ती मुझे स्त्रियोंके हाथका खिलौना बना दिया ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित चक्रवर्ती अपनेको तृण बनाकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पागलके समान नग्न रोता हुआ भागनेवाली स्त्रीके पीछे मैं दौड़ा आया ॥ १० ॥ गधेके समान लात खानेपर भी जो मैं भाग रही स्त्रीके पीछे दौड़ा, तो फिर मेरा तेज, प्रभाव और अधिकार कहाँ रहे ॥ ११ ॥ जिसका मन स्त्रियोंने हर लिया है उसको विद्या, तप त्याग, ज्ञान एकान्त सेवा, मौन इनसे क्या ? कुछ भी फायदा नहीं ॥ १२ ॥ अपना स्वार्थ न समझनेवाले अपनेको पण्डित माननेवाले मुझ मूर्खको धिक्कार है कि जो राजा होकर बैल या गधेके समान स्त्रीसे जीता गया ॥ १३ ॥ अनेक वर्षोंतक उर्वशीका अधरासव पान करनेपर भी मनका काम अभी ऐसे शन्त नहीं होता, जैसे आहुतियोंसे अग्नि शान्त नहीं होती ॥ १४ ॥ एक वेश्याने जिसका चित्त हर लिया है उसको भगवान्, आत्मतृप्त, अधोक्षज ईश्वरके सिवा कौन छुड़ा सकता है ॥ १५ ॥ उर्वशीके द्वारा अपने यथार्थ वचनोंसे बोध दिलानेपर भी चंचल चित्त दुर्मति मेरे मनका महामोह जाता नहीं ॥ १६ ॥ उस स्त्रीका भी इसमें क्या दोष है,

च्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यान्तीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा ॥ योऽन्वगच्छं स्त्रियं यान्तीं खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥ स्वार्थस्याकोविदं धिङ्मां मूर्खं पण्डितमानिनम् ॥ योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥ सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ । पुंश्चल्यापहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ॥ मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ॥ रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं मलीमसः कायो दौर्गन्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः ॥ क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥ १८ ॥ पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥ १९ ॥ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ॥ अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥२०॥ त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदो-

उसने मेरा क्या बिगाड़ा। मैं ही खुद अपने इन्द्रियोंको अधीन नहीं रख सका। अगर किसीके दिलमें ही साँप रहता है, तो उसमें रस्सीका क्या अपराध ? जो रस्सीका स्वरूप न जानकर उसको यदि साँप समझता है, तो इसमें रस्सीका क्या दोष है ? क्योंकि जो मैं इस तरहका हूँ, सो अजितेन्द्रिय होनेके कारण मैं ही अपराधी हूँ ॥ १७ ॥ दुर्गन्धि आदिसे युक्त यह अपवित्र मलिन शरीर कहाँ और फूलके सुगन्धके समान प्रसाद आदि मनके सुन्दर भाव कहाँ। यह सब अविद्याके कारण भ्रम हुआ है ॥१८॥ इस शरीरको किसका कहना चाहिए, समझमें नहीं आता। जन्म देनेके कारण माता पिताका कहा जाय या भोग देनेके कारण स्त्रीका या उसके अधीन रहनेके कारण मालिकका या आखिर अग्निका या भक्ष्य होनेके कारण कुत्ते और गिद्धोंका या अपना या सुहृदोंका, यह कुछ भी निश्चय नहीं हो पाता ॥ १९ ॥ गन्दे अपवित्र तुच्छ शरीरको 'अरे ! स्त्रीका मुख कैसा सुन्दर है, कैसी नासिका है, कैसा मुसकान है, क्या लावण्य है ऐसा कहकर उसमें मनुष्य आसक्त होता है ॥२०॥ चमड़ा, मांस, रक्त, स्नायु, चर्बी, मज्जा और अस्थिके समूहरूपी शरीरमें रममाण करनेवाले मनुष्यमें तथा विष्ठामूत्र-मवादमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहनेवाले कीड़ेमें क्या अन्तर है ॥ २१ ॥ इसलिये स्त्रियों या स्त्रैण लोगोंसे परमार्थ जाननेवालेको सम्पर्क नहीं रखना चाहिए । विषय और इन्द्रियोंका सम्पर्क होनेसे ही मन क्षुब्ध होता, नहीं तो नहीं ॥ २२ ॥ जिसको कभी देखा नहीं या सुना नहीं ऐसे पदार्थसे मन क्षुब्ध नहीं होता और जहाँ इन्द्रियोंका सम्बन्ध नहीं रहता वहाँ मन स्तब्ध होकर शान्त हो जाता है ॥ २३ ॥ अतः स्त्रियों या स्त्रैणोंसे इन्द्रियोंके द्वारा सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए । ज्ञानी लोगोंका भी काम क्रोधादि षड्वर्गोंपर विश्वास नहीं रहता, फिर मेरे जैसे अविवेकियोंका क्या कहना है ॥ २४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—इस तरह गाते हुए नृपश्रेष्ठ वह पुरूरवा उर्वशीलोकको छोड़कर जब ज्ञानसे उसका मोह नष्ट हो गया, तब अपने अन्तस्तलमें रहनेवाले मुझ भगवान्‌को जानकर उसीमें रमण करने लगा ॥ २५ ॥ इस दुर्जनोंका संग छोड़कर बुद्धिमान्‌को सज्जनोंका संग करना चाहिए । सज्जन ही अपने वचनोंसे इसके मनकी आसक्ति छुड़ाते हैं

मज्जास्थिसंहतौ ॥ विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ २१ ॥ अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ॥ विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते ॥ असंप्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्सङ्गो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं प्रगायन्नृपदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ सन्त एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥ २६ ॥ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ॥ निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥ तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ॥ संभवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥ २८ ॥ ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः ॥ मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ॥ मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो

॥ २६ ॥ सज्जन लोग निरपेक्ष प्रशान्त, समदर्शी, ममत्व और अहंभावसे हीन, सुख-दुःखादि द्वंद्वहीन तथा परिग्रहहीन रहते हैं, उनका चित्त सर्वदा मुझमें रहता है ॥ २७ ॥ हे महाभाग, उन महाभाग्यशाली सज्जनोंमें मेरी कथाएँ सदा चलती हैं, वे कथाएँ मनुष्यके हितकर श्रवण करनेवालोंके पापोंको नष्ट करती हैं ॥ २८ ॥ जो उन कथाओंका श्रवण करते हैं, गायन करते हैं, अनुमोदन करते हैं, आदर करते हैं वे मत्परायण श्रद्धालु लोग मुझमें भक्ति पाते हैं ॥ २९ ॥ अनन्त जिसके गुण हैं, ऐसे आनन्दानुभावात्मक परब्रह्म परमात्मारूपी मुझमें जिस साधुको भक्ति मिल गई, उसे क्या मिलना बाकी रहता है ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निदेवकी सेवा करनेवालेका शीत, भय और अन्धकार चला जाता है वैसेही सज्जनोंकी सेवा करनेवाले के भी जड़ता, भय, और अज्ञान नष्ट हो जाते है ॥३१॥ इस भयंकर संसारसागरमें गाते लगानेवालोंके लिए शान्त ब्रह्मज्ञानी सन्त ही आधार हैं, जैसे समुद्रमें डूबनेवालोंके लिए मजबूत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाव ॥ ३२ ॥ सब प्राणियोंके लिए जैसे अन्न ही प्राण हैं, आर्तलोगोंके लिए जैसे मैं ही शरण हूँ, मरने बाद जैसे कर्म ही धन है, वैसे ही संसारमें गिरनेसे डरनेवालेके लिये सज्जन ही शरण है ॥ ३३ ॥ सूर्य उदय होनेपर भी एकही बाह्य चक्षु देता है, लेकिन सज्जन अन्दरके ज्ञान और विज्ञानरूपी चक्षु देते है। सज्जन ही देवता, बान्धव और आत्मा हैं। ज्यादा क्या कहूँ, साक्षात् मैं ही सन्त हूँ ॥ ३४ ॥ वह वैतसेन पुरूरवा उर्वशीके लोकसे भी निस्पृह होकर आसक्ति छोड़ करके आत्माराम बनकर पृथ्वीपर घूमने लगा ॥ ३५ ॥

वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥ ३३ ॥ सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥ वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिस्पृहः ॥ मुक्तसङ्गो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

छब्बीसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—ज्ञानके योग्य मनुष्य शरीर पाकर जो मेरे धर्मोंका सेवन करता है, वह मुझे पाता है। ज्ञानसे सब तरहका अभिमान जिसका छूट गया है, वह इन मायामय गुणोंमें रहनेपर भी उनसे अलिप्त रहता है। महाराज पुरूरवा जब उर्वशीके शोकसे विह्वल हुआ और बादमें उर्वशी लोकमें जाकर उर्वशीसे शान्त हो गया तब उसने जो गाथा गाई, वह सुनो। कामाधीन होकर इस उर्वशीके फन्देमें मैंने कितने दिन् व्यर्थ गवाँए, मुझे स्मरण भी नहीं है। उस समय मैंने न सूर्योदय देखा और न सूर्यास्त। मैं अपनेको चक्रवर्ती राजा था, एक स्त्रीका खिलौना बना दिया। मैं सब छोड़ उस स्त्रीके पीछे लात खानेवाले गधेके समान नग्न ही दौड़ा। कहाँ गया था, तब मेरा प्रभाव मेरा तेज? जिसका चित्त एक वेश्याने हर लिया उसका तप, दान, ज्ञान किस कामका। इस शरीरको किसका कहा जाय? अपना या माता पिताका अथवा स्त्रीका या पुत्रोंका या अग्निका या कुत्तों और गृद्धोंका? इसी गन्दे शरीरको देखकर स्त्रीका मुख कैसा सुन्दर है? कैसी नाक है? ऐसा कहकर मनुष्य उसमें आसक्त होता है। अस्थि, मज्जा, रक्त इत्यादिसे युक्त इस शरीरमें रममाण करनेवाले मनुष्यमें और विष्ठा-मूत्रमें कूदनेवाले कीड़ोंमें क्या फरक है? हे उद्धव, इस तरह गाते हुए पुरुरवा उर्वशी लोक छोड़कर भगवान्को जानकर निरपेक्षवृत्तिसे घूमने लगा। इसीलिए सज्जनोंका सङ्ग करना चाहिए, सज्जन ही मनको आसक्ति छुड़ा सकते हैं। छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ सप्तविंशोऽध्यायः ❀

(भगवान्की पूजाका प्रकार)

उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥ एतद्वदन्ति मुनयो

उद्धवने कहा—हे प्रभो, आपकी आराधनारूप जो क्रियायोग है वह मुझे बतलाइए। हे सात्वतश्रेष्ठ, भक्त आपकी किस अधिष्ठानमें कैसी पूजा करते हैं, कृपया कहिए ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नारद भगवान् व्यास, आचार्य बृहस्पति इत्यादि मुनिलोग इसीको मनुष्योंके मोक्षका श्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं ॥ २ ॥ आपने इसका उपदेश भगवान् ब्रह्मदेवको किया था। उन्होंने अपने भृग्वादि पुत्रोंको बताया। फिर भगवान् शंकरने पार्वतीको बताया ॥ ३ ॥ इसको मैं सभी वर्णों और आश्रमोंके लिए तथा स्त्री-शूद्रोंके लिए भी परम श्रेयस्कर समझता हूँ ॥४॥ हे कमलपत्राक्ष, यह कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला है। विश्वेश्वरोंके भी ईश्वर अनुरक्त भक्त मुझे इसका उपदेश दीजिए ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव, इस कर्मकाण्ड पूजाविधानका कोई अन्त नहीं है यह अपार है। मैं तुम्हें क्रमसे संक्षेपमें कहता हूँ ॥६॥ मेरी पूजा वैदिक, तान्त्रिक या मिश्र तीन प्रकारकी होती है। तीनोंमेंसे अपने इच्छित प्रकारसे मेरी पूजा करनी चाहिए ॥७॥ जब वेदोक्त विधिसे उपनयन प्राप्तकर त्रैवर्णिक द्विज बन जाता है तब किस प्रकार उसको मेरी आराधना करनी चाहिए, सुनो ॥ ८ ॥ प्रतिमामें, स्थण्डिलमें, अग्निमें, सूर्यमें, जलमें या

मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान्व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥२॥ निःसृतं ते मुखाम्भोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥ एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् ॥ भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव ॥ संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः । त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥८॥ अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये ॥ उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ १० ॥ सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितानि मे ॥ पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक् सङ्कल्पः कर्मपावनीम् ॥ ११ ॥ शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥ चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् ॥ उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम् ॥ स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मणमें अथवा हृदयमें शुद्ध हृदयसे उसको यथासाध्य द्रव्योंसे भक्तियुक्त होकर निष्कपट भावसे मुझे अपना गुरु मानते हुए मेरा पूजन करना चाहिए ॥ ९ ॥ दन्तधावन करनेके बाद पहले अंगशुद्धिके लिए मन्त्रोंसे और मृदादिसे स्नान करना चाहिए ॥ १० ॥ वेदविहित सन्ध्योपासनादि कर्म करना चाहिए। उनके साथ परमेश्वर विषयक संकल्प करके कर्मको शुद्ध करनेवाली मेरी विधिवत् पूजा करनी चाहिए ॥ ११ ॥ पत्थरकी, लकड़ीकी, धातुकी, मिट्टी चन्दन आदिकी चित्रमयी, बालूकी, मनोमयी, रत्नमयी, ऐसी आठ प्रकारकी प्रतिमाएँ होती हैं ॥ १२ ॥ चल और अचल दो प्रकारकी प्रतिमा होती है, जो भगवान्का मन्दिर है। हे उद्धव, स्थिर प्रतिमाके पूजनमें उद्वासन [विसर्जन] और आवाहन नहीं रहता ॥ १३ ॥ चल प्रतिमामें भी [शालिग्राममें भी] उद्वासन और आवाहन नहीं होता। बालूकी प्रतिमामें दोनों करना चाहिए, बाकीमें चाहे करे चाहे छोड़ दे। मृन्मय तथा लेख्य प्रतिमामें केवल परि-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मार्जनकर देना चाहिए, उन्हें स्नान नहीं कराना चाहिए । बाकी प्रतिमाओंको स्नान कराना चाहिए ॥ १४ ॥ सकाम भक्तको प्रतिमाओंमें द्रव्योंसे मेरा पूजन करना चाहिए । निष्काम भक्तको जो द्रव्य मिलें, उन्हींसे प्रतिमामें या अपने हृदयमें ही मानसोपचारसे पूजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ हे उद्धव, प्रतिमामें स्नान और अलंकार प्रधान है, भूमिमें तत्त्वविन्यास तथा वह्निमें आज्ययुक्त हवि प्रधान है ॥ १६ ॥ सूर्यमें उपस्थान और अर्घ्य श्रेष्ठ है । जलमें जलोपचारसे ही पूजन करना चाहिए । मेरे भक्तके द्वारा श्रद्धासे दिया गया जल भी मुझे सन्तुष्ट कर सकता है, फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य इनका क्या कहना है ? लेकिन जो भक्त नहीं हैं उसके द्वारा समर्पित पदार्थ मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सकते ॥ १७, १८ ॥ पवित्र होनेके बाद सभी पूजा सामग्रियोंको पासमें रखकर कुशाओंके आसनपर पूर्व मुख या उत्तर मुख मेरे सामने बैठकर अपनेमें तथा प्रतिमामें न्यास करके मेरी प्रतिमाका निर्माल्यादि निकालकर हाथसे

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ॥ भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥ स्नानालङ्करणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ॥
स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ॥ श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि
॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः
कल्पितासनः ॥ आसीनः प्रागुदग्वाऽर्चेदर्चायामथ संमुखः ॥ १९ ॥ कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिनाऽऽमृजेत् ॥ कलशं प्रोक्षणीयं च
यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ॥ प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥२१॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं
त्रीणि पात्राणि देशिकः ॥ हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥ पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ॥ अण्वीं
जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥ तयात्मभूतया पिण्डे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः ॥ आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत्
॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् ॥ धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वासनं मम ॥२५॥ पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥

साफ करना चाहिए । कलश तथा प्रोक्षण पात्रको चन्दन पुष्पाक्षतादिसे संस्कृत करना चाहिए ॥ १९, २० ॥ उस प्रोक्षणीजलसे देवमन्दिरको, अपनेको और पूजा द्रव्य तथा पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनीयके लिये उपस्थित तीनों पात्रोंका प्रोक्षण करना चाहिए । उसके बाद उन पात्रोंको जलसे तथा योग्य नानाविध द्रव्योंसे सजाना चाहिए ॥ २१ ॥ पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीयके तीनों पात्रोंको हृदयमन्त्र, शीर्षमन्त्र तथा शिखामन्त्रोंसे और सभीको गायत्रीसे देशिकको अभिमन्त्रण करना चाहिए॥ २२ ॥ देहके कोष्ठगत वायुसे शुष्क होनेपर आधारगत अग्निसे दग्ध होनेके बाद ललाटस्थ चन्द्रमण्डलामृतसे प्लावित होकर अमृतमय होनेपर उसमें हृदयकमलमें स्थित, नादके अन्तमें सिद्धलोक जिसका ध्यान करते हैं, उस श्रेष्ठ नारायण मूर्तिका ध्यान करना चाहिए ॥२३॥ उस हृदयस्थित उज्वल नारायणमूर्तिकी प्रभासे दीपप्रकाशसे घरके समान, शरीर जब व्याप्त हो जायगा, तब तन्मय होकर मानसोपचारसे वहीं उसकी पूजाकर प्रतिमामें उस मूर्तिका आवाहनकर स्थापना करनेके बाद न्यासपूर्वक मेरी पूजा करनी चाहिए ॥ २४ ॥ धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य, ये आसनरूपी पलंगके चार पावे हैं ऐसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कल्पना करनी चाहिए, अधर्म, अज्ञान, आसक्ति और अलक्ष्मी इन्हें उसकी पाटियाँ समझनी चाहिए तथा त्रिगुणात्मिका मायाको उसकी निवार समझनी चाहिए। यों धर्मादि नवोंसे मेरे आसनकी तथा उसके ऊपर कर्णिका और केसरोंसे एवं वहाँ स्थित सूर्यादिमण्डलोंसे उज्ज्वल आठ पत्रोंवाले कमलकी कल्पनाकर, भुक्ति और मुक्ति दोनोंकी सिद्धिके लिये मेरे वास्ते पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदि पूजन सामग्रियोंकी कल्पना करनी चाहिए यानी पहले मेरे आसनकी कल्पनाकर उसपर अष्टदल पत्रकी कल्पना करके उसमें मेरी मूर्तिकी पूजा करनी चाहिए यही मेरी पूजा करनेका तरीका है ॥ २५, २६ ॥ सुदर्शनचक्र, पांचजन्य, गदा, खड्ग, धनुष, हल, मुसल, कौस्तुभ, वनमाला और श्रीवत्स इनकी बादमें पूजा करनी चाहिए ॥ २७ ॥ नन्द, सुनन्द, गरुड़, चण्ड, प्रचण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन, गुरु, देवता इनकी योग्य स्थानमें अपने सम्मुख प्रोक्षणादिसे पूजा करनी चाहिए। धन रहनेपर चन्दन, खश, कपूर, केशर, अगुरु इनसे सुवासित जलोंसे रोज मुझे मन्त्रोंसे स्नान कराना चाहिए ॥ २८, २९, ३० ॥ 'स्वर्ण धर्म—इत्यादि सूक्तसे 'जितन्ते पुण्डरीकाक्ष'

उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ॥ मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत ॥२७॥ नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ॥ महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ॥ स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागुरुवासितैः ॥ सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥३०॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः ॥ अलङ्कुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥ पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् । धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सतिकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ अभ्यङ्गोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ॥ अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥

इत्यादि महापुरुषविद्यासे तथा पुरुषसूक्त सामवेदों और राजनादि सामोंसे मेरा अभिषेक करना चाहिए ॥ ३१ ॥ मेरे भक्तको प्रेमसे वस्त्र, यज्ञोपवीत, माला और गन्ध आदिसे मुझे उचित रीतिसे अलंकृत करना चाहिए ॥ ३२ ॥ अर्चकको श्रद्धासे पाद्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और उपहार मुझे अर्पित करना चाहिए ॥३३॥ गुड़ पायस, पूड़ी, पूए, लड्डू, मोदक तथा दहीके व्यञ्जन आदि पदार्थोंका यथाशक्ति धन रहनेपर मुझे नैवेद्य समर्पित करना चाहिए ॥ ३४ ॥ रोज या यथाशक्ति एकादशी पर्वोंमें उबटन लगाना, मर्दन करना, दतवन कराना शीशा, दिखाना, पंचामृताभिषेक करना, भक्ष्य भोज्य आदिका अर्पण करना, गीत नृत्यादि करना, ये सेवाएँ करनी चाहिए ॥ ३५ ॥ अग्निमें जो पूजा करना चाहता है उसको विधिसे निर्मित मेखलागर्त वेदीसे युक्त कुण्ड बनाना चाहिए, उसमें अग्निका आधान करके प्रज्वलित अग्निको चारों ओरसे एक जगहकर देना चाहिए। दर्भोंसे परिस्तरणकर प्रोक्षण करके अन्वाधानकर्म करके होमोपयोगी द्रव्य ठीक सजाके प्रोक्षणीके जलसे प्रोक्षण करनेके बाद उस अग्निमें मेरी भावना करनी चाहिए। उस अग्निमें तप्तसुवर्णके जैसे कान्तिमान्, शंख

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चक्र, गदा पद्मधारी चतुर्भुजयुक्त पद्मपरागके वर्णका वस्त्र पहने हुए, चमकीले किरीट, कटक, करधनी, बाजुबंद इत्यादिसे भूषित, श्रीवत्स जिसके वक्षःस्थलपर है, कौस्तुभ और वनमालासे जो अलंकृत है ऐसे मेरे शान्तस्वरूपका ध्यान करना चाहिए। उस मेरे रूपकी पूजा करके अनन्तर उसमें घृतसिक्त समिधाएं डालकर आधार और आज्यभाग नामक होम करके आज्ययुक्त हविर्द्रव्य लेकर नारायणाष्टाक्षर मन्त्रसे तथा पुरुषसूक्तकी ऋचाओंसे प्रति ऋचामें आहुति ग्रहणपूर्वक हवन करना चाहिए तथा विद्वान्‌को स्वाहान्त नाम मन्त्रोंसे पूजाके क्रमसे ही 'अग्नये स्विष्ट कृते स्वाहा' इस तरह स्विष्टकृत्‌का हवन करे ॥ ३६—४१ ॥ तदनन्तर फिर अग्निस्थनारायणकी पूजा करके नन्दादि पार्षदोंको बलिहरण करना चाहिए. उसके बाद पूजा स्थानमें आकर मूलमन्त्र जपना चाहिये, जप करते हुए नारायणात्मक ब्रह्मका स्मरण करना चाहिए ॥ ४२ ॥ भगवान्‌के भोजनके बाद उन्हें आचमन कराकर बचा नैवेद्य विष्वक्सेनको देना चाहिए। फिर मुख सुगन्धित करनेवाला ताम्बूल भगवान्‌को अर्पित करना चाहिए और फिर पुष्पाञ्जलि अर्पण करनी चाहिए ॥ ४३ ॥ उसके बाद भगवान्‌के सामने

परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ॥ प्रोक्षण्यासाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः ॥
लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवराङ्गदम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥
ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाभिघृतानि च ॥ प्रास्याज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४ ॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः ॥
धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥४१॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥
४२ ॥ दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम ॥
मत्कथाः श्रावयन्शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इति शेषां मया दत्तां
शिरस्याधाय सादरम् ॥ उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि

गाना, बजाना, नाचना, मेरी लीलाओंका अभिनय करना, मेरी कथाएँ सुनना और सुनाना आदि करके थोड़ी देरके लिये मेरा विद्वान् भक्त विश्रान्ति ले ॥ ४४ ॥ फिर पौराणिक प्राकृत छोटे-बड़े स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करे, अनन्तर 'भगवान्, मेरे ऊपर प्रसन्न होइये' ऐसा कहकर दण्डवत् प्रणाम करे। सिरको मेरे पैरोंपर रखकर दोनों हाथोंसे मूर्तिके दो पैर पड़के 'हे भगवन्, आपकी शरण आये हुए मृत्युरूपी ग्राहसे भीत मेरी इस संसार समुद्रमें रक्षा कीजिये। ऐसा कहकर प्रार्थना करनेके बाद मेरे निर्माल्यको मैंने ही दिया है, ऐसा समझकर अपने मस्तकपर धारण करे। चलप्रतिमा यदि विसर्जन करने योग्य हो, तो हृदयमेंके जिस बिम्बका उसमें चिन्तन किया था, उसको फिरसे हृदयमें रखकर उस प्रतिमाका विसर्जन करना चाहिए ॥ ४५–४७ ॥ जिस प्रतिमा आदिमें जहाँपर जब श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, उसीमें तब मेरा पूजन करना चाहिए, मैं सभी भूतों और आत्मामें भी हूँ ॥ ४८ ॥ इस तरह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूजारूपी मार्गमे जो मनुष्य मेरा पूजन वैदिक और तन्त्रोक्त विधिसे करता है उसको इहलोक तथा परलोककी अभिलाषित सिद्धियाँ मिलती हैं ॥ ४९ ॥ मेरी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करके सुन्दर मन्दिर बनवाना चाहिए, पासमें पुष्पोद्यानादि बनाने चाहिए। पूजा, यात्रा, उत्सव इत्यादि ठीक रीतिसे चलनेके लिए खेत, दूकान गाँव इत्यादिका दान देकर मनुष्य मेरे जैसा ऐश्वर्य पाता है । ५०–५१ ॥ प्रतिष्ठा करनेसे सार्वभौम राज्यको प्राप्त करता है, मन्दिर बनवानेसे त्रिभुवनको पाता है, पूजादिसे ब्रह्मपदको जाता है तथा तीनोंसे मेरे सारूप्यको प्राप्त होता है ॥ ५२ । यों जो मेरी निष्काम पूजा करता है वह भक्तियोग पाता है और फलाभिसन्धिरहित [फलोंकी आशासे शून्य] भक्तियोगसे मुझे ही वह प्राप्तकर लेता है ॥ ५३ ॥ जो

च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ॥ भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् । ५३ ॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विड्भुग्वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥ कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सप्तविंशोऽध्याय ॥ २७ ।

अपनेद्वारा दी गई या दूसरेद्वारा दी गई ब्राह्मणकी वृत्तिका हरण करता है वह लाखों वर्षोंतक विष्ठाभक्षक कृमि होता है ॥ ५४ ॥ उक्त कामोंके कर्ता और उसके प्रेरक, सहायक, अनुमोदक ये सभी कर्मके तथा फलके समभागी हैं मरनेके बाद सभीको समान ही फल मिलता है, फिर भी बड़े कार्यमें कर्ताकी नाईं उसके सहायकोंको भी अधिक फल मिलता है ॥ ५५ ॥

सत्ताईसवें अध्यायका सार—उद्धवने कहा—भगवन्, आपकी आराधनाका जो प्रकार है, उसका निरूपण कीजिए। भगवान्ने कहा—हे उद्धव, मेरे पूजा विधानका कोई अन्त नहीं है, फिर भी संक्षेपमें उसका प्रकार कहता हूँ। मेरी पूजा तीन प्रकारकी है—वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र । जिस प्रकारसे चाहे आदमी पूजा कर सकता है। प्रतिमामें, स्थण्डिलमें, अग्निमें, सूर्यमें, जलमें, हृदयमें या ब्राह्मणमें योग्य द्रव्योंसे भक्तिसे मेरा पूजन करना चाहिए। सकामको प्रसिद्ध द्रव्य पूजाके लिये चाहिये ही, किन्तु निष्कामको यथा लब्ध द्रव्योंसे प्रतिमामें या मनमें ही मानसोपकार पूजन करना चाहिए। प्रतिमामें स्नान-अलङ्कार, भूमिमें तत्त्वविन्यास, वह्निमें हविपूजा प्रधान है। जलमें जलोपचार और सूर्यमें उपस्थान प्रधान है। अपने भक्तके द्वारा भक्तिसे समर्पित जलसे भी मैं प्रसन्न होता हूँ, लेकिन अभक्तके विपुल द्रव्योंसे भी नहीं। मेरी प्रतिमाका पूजन करनेवाले भक्तको चाहिये कि वह अपनी शक्तिके अनुसार चन्दन, कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्योंसे मिश्रित जलसे मुझे स्नान करा उस समय उसे धर्मसूक्त, पुरुषसूक्त, इत्यादि मन्त्रोंको कहना चाहिए। फिर मुझे वस्त्र, यज्ञोपवीत माला, चन्दन इत्यादिसे अलंकृत करना चाहिए। अनन्तर वह श्रद्धासे गन्ध पुष्पादि उपहार अर्पित करे। अनन्तर गुड, पायस इत्यादि पक्वान्नोंका नैवेद्य चढ़ावे। उसके अनन्तर आचमन कराकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ताम्बूल अर्पित करे, फिर पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। अनन्तर मेरी प्रतिमाके सामने गावे, बजावे, नाचे, और मेरी लीलाओंका अभिनय करे। इस तरहकी पूजासे इसलोक और परलोकमें सुख तथा मेरा सारूप्य प्राप्त होता है। मेरी सेवाके कर्ताके समान ही अनुमोदक, प्रेरक और सहायकको भी फल मिलता है। सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ अष्टाविंशोऽध्यायः ❀

(संक्षेपसे ज्ञानयोगका निरूपण)

श्रीभगवान्‌ने कहा—दूसरेके स्वभाव या कर्मोंकी न तो प्रशंसा करनी चाहिए और न निन्दा, क्योंकि प्रकृति तथा पुरुष दोनों दृष्टिसे विश्व एकही है ॥१॥ जो दूसरेके स्वभाव या कर्मोंकी निन्दा या प्रशंसा करता है वह असत्य द्वैतमें आग्रहके कारण शीघ्र भ्रष्ट होता है ॥ २ ॥ जब सभी इन्द्रियाँ निद्रामें अभिभूत होती हैं तब शरीरस्थ जीव मनके कारण स्वप्नका

श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्था नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥ ३ ॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥ छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥५॥ आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः । त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥६॥ तस्मान्नह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यभावो निरूपितः ॥ निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥ आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह ९ ॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः अनात्मस्व-

अनुभव करता है और नष्टचेतन होनेपर मृत्यु या उसीके समान सुषुप्तिको प्राप्त जिस तरह होता है उसी तरह द्वैतदर्शी भी लयको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इस वस्तुरूप द्वैतमें क्या अच्छा और क्या बुरा है। वाणीसे कहा गया तथा मनसे ध्यान किया गया, सब मिथ्या है ॥४॥ प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि या शुक्तिरजतादयभास जैसे ये अविद्यमान होनेपर भी कार्यकारी हैं वैसेही देहादि पदार्थ मिथ्या होनेपर भी आमरणान्त भयदायक हैं ॥ ५ ॥ यह जो सब विश्व है वह आत्मा ही है, सब कुछ होनेमें समर्थ आत्मा ही सृष्टि करता है तथा वही सृष्ट होता है, वही पालन करनेवाला और वही पाल्य है, सब कुछ करनेमें समर्थ विश्वरूप वह आत्माही संहार करता और स्वयं संहारको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ इसलिये आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ निरूपित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इसप्रकारकी जो त्रिविध प्रतीति निरूपित है वह निर्मूल यानी भ्रम हैं। यह गुणमय जो तीन तरहका प्रतीत होता है वह सब मायाके कारण प्रतीत होता है ॥ ७ ॥ मेरेद्वारा कहे गये इस ज्ञान विज्ञानका रहस्य जाननेवाला न निन्दा करता है, न स्तुति, सूर्यके समान पृथ्वीमें विचरण करता है ॥ ८ ॥ प्रत्यच्च, अनुमान, आगम और स्वानुभवसे आदि से तथा अन्तसे युक्त जो द्वैत है वह असत् है, ऐसा समझकर निस्सङ्ग होकर इस पृथिवीपर विचरण करना चाहिए ॥ ६ ॥ उद्धवने कहा—हे ईश, अजड़ और जड़रूप तथा द्रष्टा और दृश्यस्वरूप आत्मा या देह इन दोनोंमें किसको यह जन्म-मरणादिरूप संसार अनुभूत होता है ? आत्माको तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह स्वयं प्रकाश है तथा देहको भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह जड़ है ॥ १० ॥ आत्मा अव्यय निर्गुण शुद्ध स्वप्रकाश तथा परिच्छेदशून्य है। जैसे अग्नि और काष्ठ इनमें भेद नहीं दीखनेपर भी एक प्रकाश तथा दूसरा प्रकाश्य है वैसेही देह और आत्मा है। इनमें संसार दोनोंको नहीं हो सकता। फिर संसार नहीं है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि वह उपलब्ध होता है

दृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥११॥ श्रीभगवानुवाच । यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः सन्निकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥१२॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमनो यथा ॥ १३ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानो जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतन्त्रः ॥ १६ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनया शितेन छित्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥ ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यच्चमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानापदेशैरहमस्य

॥ ११ ॥ श्रीभगवाने कहा—जबतक अविवेकी आत्माका देह, इन्द्रिय, मन और प्राण इनसे सम्बन्ध रहता है तबतक संसारके मिथ्या होनेपर भी उसका फल दिखाई देता है ॥ १२ ॥ देहादिके वस्तुतः न रहनेपर भी आत्माका संसार नहीं जाता, जैसे कि स्वप्नमें विषयोंका ध्यान करनेवालेको अनर्थ प्राप्ति ॥ १३ ॥ तथा जो जागृत नहीं है उसे स्वप्न अत्यन्त अनर्थकर होता है, लेकिन वही जागृत मनुष्यको मोह नहीं उत्पन्नकर सकता ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा, जन्म और मरण ये सब अहंकारके विकार देखे गये हैं, आत्माके नहीं ॥ १५ ॥ लेकिन देह, इन्द्रिय, प्राण और मनमें जो अभिमान आत्माको है उसीके कारण वह गुणकर्ममय होता है, तथा सूक्ष्म उपाधियोंके कारण सूत्र, महान् इत्यादि शब्दोंसे अनेक-सा व्यवहृत होता है और परमेश्वरके अधीन होकर इधर-उधर संसारमें दौड़ता है ॥ १६ ॥ जिसका कोई मूल नहीं है फिर भी जो अनेक रूपोसे प्रतिभासित होता है, ऐसे इस मन, वाणी, प्राण तथा शरीरोंके विषय विश्वके भ्रमको गुरुकी उपासनासे प्राप्त ज्ञानरूपी खड्गसे काटकर ज्ञानी निरिच्छ होकर पृथ्वीपर घूमता है ॥१७॥ इस विश्वका जो कारण और प्रकाशक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है तथा इस संसारके आदि और अन्तमें एवं जो बीच में भी है वही एक अद्वितिय सत् है न कि जगत् ऐसा जो आगम, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान इनसे विवेक उत्पन्न होता है वही ज्ञान है ॥१८॥ जैसे सुवर्ण मय पदार्थों के आदिमें तथा अन्तमें सुवर्ण ही रहता है तथा बीच अनेक नामोंसे उसीका व्यवहार होता है वैसेही इस विश्वके आदि और अन्तमें रहनेके कारण बीचमें भी मैं ही रहता हूँ। मैं ही नानाविध व्यवहारोंका अवलम्बन हूँ, मुझसे पृथक् यह जगत् नहीं ॥ १९ ॥ है हे उद्धव, जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्नात्मक जो विज्ञान है, मनकी उन अवस्थाओंका कारण जो गुणत्रय है तथा जो कार्य-अधिभूत, कारण-अध्यात्म और कर्ता अधिदैव है यह सब जिससे युक्त होकर प्रकाशित होता है तथा समाधि आदिमें जो भासमान होता है वही तुरीय आत्मा सत्य है ॥ २० ॥ जो पहले नहीं था, जो बादमें नहीं रहता वह बीचमें भी नहीं है, केवल उसका व्यवहारमात्र है। जो दूसरेसे उत्पन्न और प्रकाशित है वह प्रकाशक कारण ही है अतिरिक्त कुछ नहीं ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ २१ ॥ न रहनेपर भी भासमान होनेवाला जो यह विकार समूह है वह रजोगुणके कारण ब्रह्मका कार्य और ब्रह्मसे ही प्रकाशित

तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमङ्ग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥ अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः ॥ ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्वात्मसन्देहमुपारमेत स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥ समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः ॥ विक्षिप्यमाणैरुत किं नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥ यथा नभो वाय्वनलाम्बुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाक्षरं सत्त्वरज-

है। ब्रह्म स्वयं प्रकाश है, अतः इन्द्रिय, अर्थ, मन पञ्चमहाभूतरूपी यह विचित्र विश्व ब्रह्म ही है ॥२२॥ इस तरह स्पष्ट ब्रह्मका विवेक करानेवाले आगमादि हेतुओंसे और देहादिकोंके अपवाद तथा आत्मत्वके निपुणसे आत्मविषयक सन्देहः तोड़कर आत्मानन्दमें सन्तुष्ट होकर इन्द्रियादिकोंसे संगरहित होना चाहिए ॥ २३ ॥ इस तरह देहादिकोंमें आत्मत्वका निराकरण करना चाहिए। घड़ेके समान पार्थिव होनेसे देह आत्मा नहीं है। इस तरह इन्द्रिय, तदधिष्ठातृदेवता, प्राण, बुद्धि और अहंकार ये भी आत्मा नहीं हैं, क्योंकि ये अन्नोपजीव्य हैं, जैसा कि शरीर। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्दादि और प्रकृति ये सब आत्मा नहीं हैं, क्योंकि ये जड़ हैं, जैसे कि घड़ा ॥ २४ ॥ मेरे स्वरूपका सम्यक् ज्ञान जिसको हो गया है, जिसकी इन्द्रियां और अन्तःकरण उपरत हैं, उसे त्रिगुणात्मक इन्द्रियादिकोंसे क्या गुणदोष सम्बन्ध हो सकता है ? विक्षिप्त होरहे यानी इधर उधर दौड़ रहे मेघोंसे सूर्यमें कौनसा विकार आ जाता है या आये या चले गये ही मेघोंसे सूर्यको क्या लाभ और नुकसान होता है ॥ २५ ॥ जैसे आकाशमें वायु अग्नि और पानी आते जाते हैं लेकिन उन पृथिवीके गुणोंसे अथवा ऋतुओंके गुणोंसे आकाश का कुछ सम्बद्ध नहीं होता, उसी तरह अक्षर परमात्मा संसारके कारण भूत अहंकारके सत्त्व रजस्तमोरूपी मलोंसे कुछ भी सम्बद्ध नहीं होता ॥२६॥ फिर भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जबतक मेरी दृढ़ भक्तिके योगसे मनके रागादि दोष नहीं चले जाते तबतक मायानिर्मित गुणोंमें यानी विषयोंमें आसक्तिका परित्याग करना ही चाहिए ॥ २७ ॥ जिस तरह रोगका अगर ठीक उपाय न किया जाय, तो वह फिर-फिर उत्पन्न हो जाता है, उसी तरह जिसके रागादि और उसके कारण होनेवाले कर्म पूर्णरूपसे नष्ट नहीं हुए हैं ऐसा पुत्र आदि सबमें आसक्त हुआ मन—जिसको सम्यक् ज्ञान नहीं हुआ है ऐसे साधकको गिरा देता है ॥ २८ ॥ देवोंसे प्रेरित पुत्र-शिष्यादिके विघ्नोंद्वारा जो साधक योगभ्रष्ट हो जाते हैं वे पूर्वाभ्यासके बलसे फिर योगका मार्ग पकड़ लेते हैं कर्म विस्तारको नहीं पकड़ते ॥ २६ ॥ किसीसे प्रेरित होकर मरते दमतक देहही कर्म करता है और उस कर्मसे पुष्टि आदि प्राप्त करता है। लेकिन ज्ञानी आत्मानन्दसे ही तृष्णारहित होनेके कारण उस प्रकृतिमें रहनेपर भी किसी विकारकी प्राप्त नहीं होता ॥ ३० ॥ उठनेवाले, बैठनेवाले, चलनेवाले, सोनेवाले, मूत्र करनेवाले, खानेवाले या अपने स्वभावके अनुसार और कोई कर्म करनेवाले देहको, आत्मामें जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है, वह नहीं जानता ॥ ३१ ॥ यद्यपि बहिर्मुख इन्द्रियोंके अर्थोंको वह देखता है तथापि

स्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥ तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ २७ ॥ यथामयोऽसाधुचिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ॥ एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसङ्गम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम् ॥ २६ ॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आनिपातात् ॥ न तत्र विद्वान्प्रकृतौ स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥ तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं नानाऽनुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥ पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमङ्ग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥ यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते ॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥३४॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे

अनेक अनुमानोंसे विरुद्ध होनेके कारण ज्ञानी उसको वास्तविक नहीं समझता, जैसे कि स्वप्नसे उठा हुआ पुरुष उस नष्ट हुए स्वप्न पदार्थको सत्य नहीं मानता ॥ ३२ ॥ हे उद्धव, ज्ञान होनेके पूर्व गुण और कर्मोंसे विचित्र जो देहेन्द्रियादिरूपी अज्ञान कार्य आत्मामें अभ्याससे गृहीत हुआ था, उसीकी ज्ञानसे पुनः निवृत्ति होती है। आत्मा तो किसी रूपसे भी नहीं गृहीत होता और न उसकी निवृत्ति होती है ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्यका उदय लोगोंकी आँखोंका अन्धकार दूर करता है उसीके कारण घटादि पदार्थ दीखते हैं, न कि सूर्य उनको उत्पन्न करता है, वैसेही उत्तम जो मेरी आत्मविद्या है वह भी पुरुषकी बुद्धिके अज्ञानको नष्ट करती है। ३४ ॥ यह आत्मा स्वयंप्रकाश, अजन्मा, अप्रमेय, अपरिच्छेद्य, सभीका अनुभव विषय, एक और अद्वितीय है। उसीसे प्रेरित वाणी और इन्द्रियाँ जब वहाँ नहीं पहुँच पातीं, तो वे फिर लौटकर घूमती हैं ॥ ३५ ॥ अभिन्न आत्मामें जो विकल्प होता है, यह सब मनका भ्रम है, वास्तवमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तो वह भ्रमका आश्रय है, उसके विना भ्रम ही नहीं हो सकता ॥ ३६ ॥ नाम और आकृतियोंसे गृहीत होनेवाला पंचभूतात्मक द्वैत सत्य है, यह जो उपनिषदादिमें उसका असत्यत्व बतलाया जाता है वह सब अर्थवाद है ऐसा पण्डितमन्य लोग ही समझते हैं, उनका वह ज्ञान निराधार है ॥ ३७ ॥ जिसका योग पक्व नहीं हुआ है ऐसे योग साध रहे योगीको यदि बीचमें शारीरिक आदि उपद्रव उत्पन्न हो जायँ तो योगधारणा, आसन, तप, मन्त्र और औषध आदि उपायोंसे उनका प्रतीकार करना चाहिए ॥ ३८, ३९ ॥ कुछ अमङ्गलदायक विघ्नोंका तो मेरा ध्यान, नाम संकीर्तन, अच्छे योगियोंकी सेवा इत्यादिसे धीरे-धीरे निवारण करना चाहिए ॥ ४० ॥ कुछ धीर लोग अनेक उपायोंसे अवस्था ज्यादा होनेपर भी इस देहको ठीक रखकर सिद्धिके लिये प्रयत्न करते हैं ॥ ४१ ॥ लेकिन प्राज्ञलोग उसको ठीक नहीं समझते, क्योंकि फलके समान शरीरके नश्वर होनेसे कारण उसके स्थैर्यके लिये प्रयास करना व्यर्थ है,

येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥३५॥ एतावानात्मसन्मोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ॥ ३६॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयं पण्डितमानिनाम् ॥३७॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८ ॥ योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ॥ तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसङ्कीर्तनादिभिः ॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदान् शनैः ॥४०॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥४१॥ न हि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥४२॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् ॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः ॥४३॥ योगचर्यामिमां योगी विचरन्मदपाश्रयः ॥ नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसम्वादे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

आत्मा ही वनस्पतिके समान स्थायी है ॥ ४२ ॥ यदि नित्य योगाभ्यास करनेवालेका शरीर जरादि रहित हो भी जाय, तो भी उसपर विश्वास नहीं करना चाहिए और मुझमें भक्ति रखनेवाले मतिमान्को मेरा योग छोड़कर देह सिद्धिके पीछे नहीं लगाना चाहिये ॥ ४३ ॥ मेरा आश्रयणकर जो इस योगचर्याका अभ्यास करता है, आत्मसुखका अनुभव करनेवाला वह निस्पृह रहता है, उसे विघ्न कुछ नहीं कर सकते ॥ ४४ ॥

अट्ठाईसवें अध्यायका सार—श्रीभगवान्ने कहा—हे उद्धव, दूसरेके स्वभाव तथा कर्मोंकी निन्दा न करे, क्योंकि सभी विश्व एक है । प्रशंसा और निन्दा द्वैतके कारण होती है वह मिथ्या है । अतः निन्दा-प्रशंसा करनेवाला भ्रष्ट होता है । जो वास्तवमें है नहीं, उसमें क्या अच्छा और क्या खराब । हे उद्धव, जब तक देह, इन्द्रिय आदिके साथ आत्माका सम्बन्ध है, तब तक अविद्यमान् होने पर भी मिथ्या संसारका फल दिखाई देगा ही । जैसे स्वाप्न पदार्थ न होने पर भी विषयोंका ध्यान करनेवालेको स्वप्नमें अनेक अनर्थ दीखते हैं, लेकिन ज्ञानीको संसार मोह उत्पन्न नहीं कर सकता । शोक-हर्ष-भय-क्रोध-जन्ममरणादि विकार अहंकारके हैं, आत्माके नहीं लेकिन देहादिमें जो इसका अभिमान है उसीके कारण आत्मा गुण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्ममय होता है और सूत्र महान् इत्यादि नामोंसे व्यवहृत होता है। जिसको मेरे स्वरूपका ठीक-ठीक परिज्ञान हो चुका है उसे इन्द्रियोंके स्थैर्य या क्षोभसे गुण-दोषका सम्बन्ध नहीं होता। यद्यपि अहङ्कारके मल सत्त्वादि गुणोंसे आत्मा लिप्त नहीं होता तथापि जब तक मुझमें दृढ़ भक्ति उत्पन्न नहीं हो जाती, तब तक मानसिक रागादि दोषोंको दूर करनेके लिए गुणोंसे सम्बन्ध का परिहार करते रहना चाहिए। हे उद्धव, ज्ञानके पूर्व आत्मामें अभ्याससे गृहीत कार्योंकी ही निवृत्ति होती है। आत्मा न तो गृहीत होता है, न उसकी निवृत्ति होती है। अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ एकोनत्रिंशोऽध्याय ❀

(भगवान्का अन्तिम उपदेश और उद्धवका प्रस्थान)

उद्धवने कहा—हे अच्युत यह योगाभ्यास अति कठिन मालूम पड़ता है। जिसका मन सावधान नहीं है उसे भी यह सरलता से सिद्ध हो सके, ऐसा सुन्दर और सरल उपाय बतलाइये ॥ १ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष, प्रायः योगियोंको मनको रोकनेमें बड़ा कष्ट होता है उसका निग्रह होता नहीं, होनेपर भी बहुत श्रम पड़ता है ॥ २ ॥ इसलिये हे अरविन्दलोचन, सारासार-

उद्धव उवाच ॥ सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥ यथाञ्जसा पुमान्सिध्येत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत ॥१॥ प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः ॥ विषीदन्त्यसमधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं हन्साः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥३॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः॥४॥तं त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनु भूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥ नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ॥ योऽन्तर्बहि-

विवेकज्ञ लोग समस्त विश्वके स्वामी आपके आनन्ददायक चरणारविन्दका सुखसे निश्चित आश्रयण करते हैं ये लोग कर्मके अभिमानी आपकी मायासे मोहित होकर आपके चरणका आश्रयण नहीं करते ॥३॥ सभीके सुहृद आपके लिये यह कोई आश्चर्य नहीं है कि आप अपनी ही शरणमें आये हुए अपने दासोंके एकदम आधीन हो जाते हैं। जिसके पादपीठमें देवश्रेष्ठ ब्रह्मादि अपने श्रेष्ठ किरीटोंके अग्रभागको घिसते हैं ऐसे आपने स्वयं रामावतारमें मृग और वानरोंके साथ प्रीतिके साथ मैत्री की॥४॥ समस्त जगत्के आत्मा, प्रियतम और स्वामी, आश्रितोंको सभी इष्ट देनेवाले आपको कौन कृतज्ञ छोड़ सकता है। इस संसारसे मोक्षके लिये अथवा ऐश्वर्यके लिये आपको छोड़कर दूसरे किसीको कौन भजेगा? आपके पादरज धारणकरनेवाले हम भक्तोंको किस बातकी कमी पड़ सकती है ॥ ५ ॥ आप बाहर गुरुरूपसे और अन्दर अन्तर्यामीरूपसे रहकर प्राणियोंकी विषय-वासनाओंका नाश करते हुए ज्ञानानन्दात्मक निजस्वरूप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकट करते हैं, ऐसे आपके उपकारका प्रत्युपकार ब्रह्मादिदेव भी अपने आयुष्यभरमें नहीं कर सकते, केवल उस उपकारको स्मरणकर उनको परम आनन्दका उद्रेकमात्र होता है ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्‌में जिसका मन अनुरक्त है ऐसे उद्धवके पूछनेपर तीनरूप लेकर अपनी शक्तियोंसे विश्वका खेल करानेवाले देवाधिदेव भगवान् कृष्ण प्रेमयुक्त मनोहर हास्य करके कहने लगे ॥७॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, मैं तुम्हारे प्रश्नसे खुश हूँ। मैं तुम्हें अपना मङ्गलमय धर्म कहता हूँ, जिनका श्रद्धासे आचरण करनेवाला प्राणी दुर्जय मृत्युके ऊपर भी जय प्राप्तकर सकता है ॥ ८ ॥ मुझको मन और चित्त अर्पण करके आत्मा तथा मनको मेरे धर्ममें लगाकर धीरे-धीरे मेरा स्मरण करते हुए मेरे प्रीत्यर्थ सभी कर्म करने चाहिए ॥ ९ ॥ मेरे भक्तोंको साधुलोग जहाँ रहते हैं ऐसे पुण्यमान देशमें रहना चाहिए। देव, असुर और मनुष्योंमें जो भक्त हैं उनके चरित्रोंका आश्रयण करना चाहिए ॥ १० ॥ अकेले या कुछ

स्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्त्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमङ्गलान् ॥ यान् श्रद्धयाचरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥१०॥ पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥११॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ॥ ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥१२॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥१३॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ॥ अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पण्डितो मतः ॥१४॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ॥ स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि ॥१५॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥१६॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ॥ तावदेवमुपासीत वाङ्मनः

लोग मिलकर गीत नृत्यादिसे और राजोपचारसे मेरा पर्व, यात्रा, महोत्सव मनाना चाहिए ॥ ११ ॥ शुद्धचित्त होकर सभी भूतोंमें अन्दर और बाहर व्याप्त परमात्मारूपी, आकाशके समान निर्लिप्त मुझको अपने अन्दर भी देखना चाहिए ॥ १२ ॥ हे महाद्युते, इस तरह ब्राह्मणमें, पुल्कसमें, चोरमें, वेदमें, सूर्यमें, स्फुलिङ्गमें, क्रूरमें, शान्तमें केवल ज्ञानका आश्रयणकर मेरे रूपसे सभी जीवोंको देखनेवाला अतएव सभीको एक माननेवाला समदर्शी पण्डित कहा गया है ॥ १३, १४ ॥ सभी मनुष्योंसे सदा मेरा भाव रखनेवाले पुरुषके स्पर्धा, असूया, तिरस्कार तथा अहंकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ अपनेको देखकर हँसनेवालोंकी परवाह न करते हुए 'यह बड़ा है और यह नीच' इस दृष्टिको तथा इस दृष्टिसे हो रही लज्जाको छोड़कर कुत्ता, चाण्डाल, गाय, गधातक, सभीको भूमिमें दण्डवत् प्रणाम करे ॥१६॥ जब तक सभी भूतोंमें मेरा भाव नहीं उत्पन्न हो जाता तबतक वाणी, मन और शरीरके व्यापारोंसे इसी तरह आचरण करता रहे ॥ १७ ॥ ऐसा योगी सर्वत्र ईश्वरदृष्टिरूप विद्यासे सर्वत्र चारों ओर ब्रह्मको ही देखता हुआ संशयसे मुक्त होकर सभी कार्योंसे निवृत्त हो जाता है, उसके लिये सभी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्म हैं ॥ १८ ॥ सभी भूतोंमें मन, वाणी और शरीरके व्यापारोंसे मेरा भाव रखना ही सभी उपायोंमें श्रेष्ठ उपाय मैं समझता हूँ ॥ १९॥ हे उद्धव, मेरे इस निष्कामधर्मका थोड़ा-सा भी आचरण करनेपर उसमें तनिक भी हानि नहीं है, उसका फल मिलेगा ही, मैंने ही निर्गुण होनेके कारण भलीभाँति यह धर्म निश्चित किया है ॥ २० ॥ हे सत्तम, जो व्यर्थका प्रयास है यानि भयसे चिल्लाना आदि जो जो निष्काम भावसे अगर श्रेष्ठ मुझमें अर्पित किया जाय, तो धर्म ही होता है ॥ २१ ॥ इस असत्य मानव देहसे सत्य और अव्यय मुझको इसी जन्ममें जो प्राप्तकर लेता है, बस यही बुद्धिमानोंका विवेक और चतुरोंका चातुर्य है ॥ २२ ॥ यह मैंने तुमको संक्षेप और विस्तार विधिसे ब्रह्मवादका पूरा संग्रह बतला दिया। देवता भी इसको सहजमें नहीं जान सकते ॥ २३ ॥ मैंने बार-बार स्पष्ट युक्तिसे तुम्हें ज्ञान बताया। इसे जानकर सन्देहोंसे शून्य होकर पुरुष मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ जहाँपर तुमने मुझे प्रश्न किये

कायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥ सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययात्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥१९॥ न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥ मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः ॥२०॥ यो यो मयि परे धर्मः कल्पते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥२१ एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृताम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥ अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥ सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥ य एतन्मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात्सुपुष्कलम् । तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥२६॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ॥ स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥२७॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ॥ मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ॥ अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥२९ नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥ अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥३०॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः

हैं और मैंने जहाँपर तुम्हारे प्रश्नोंके विवेचनात्मक उत्तर दिये हैं ऐसे इस आख्यानको जो पठन, श्रवण, मनन करेगा, वह भी वेदोंके गुह्य सनातन परब्रह्मको जान जायगा ॥ २५ ॥ जो कोई मेरे भक्तोंको यह आख्यान दान करेगा यानी सुनायेगा, उस ब्रह्मदाताका वह दान बहुत हो जायगा और मैं भी अपनेको बिना कहे सुने ही उसे समर्पितकर दूँगा ॥ २६ ॥ जो इस परम पवित्र शुद्ध आख्यानका अध्ययन करेगा वह भी रोज ज्ञानदीपसे मुझको देखते हुए परम पवित्र हो जायगा ॥ २७ ॥ जो नर मुझमें उत्कृष्ट भक्ति रखकर सावधानीसे और श्रद्धासे रोज इसका श्रवण करता है वह कर्मोंसे बद्ध नहीं होता ॥ २८ ॥ हे सखे उद्धव, तुमने ब्रह्मको अच्छी तरह जान लिया न ? तुम्हारे मनका वह शोक और मोह चला गया न ॥२९॥ दाम्भिक, नास्तिक, धूर्त, शुश्रूषा न करनेवाले अभक्त, अविनीतको तुम इसे कभी मत देना ॥३०॥ इन दोषोंसे रहित ब्रह्मभक्त, प्रिय, साधु और शुचि भक्तको दे देना, यदि भक्ति है,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तो स्त्री-शूद्रोंको भी दे सकते हो ॥ ३१ ॥ इसे जान लेनेके बाद जिज्ञासुको फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता, तुम जानते ही हो कि अमृत पीनेके बाद फिर कुछ पीना बाकी नहीं रह जाता ॥ ३२ ॥ हे तात, ज्ञान, कर्मयोग, वार्ता और दण्डनीति धारणमें मनुष्योंको जो मिल सकता है वह सब चतुर्विध पुरुषार्थ तुम्हारे लिये मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥ जब मनुष्य समस्त कर्म छोड़कर मुझे अपनेको अर्पितकर देता है तब मैं उसको विशिष्ट बनाना चाहता हूँ और बादमें वह मोक्ष पाकर मेरे समान ऐश्वर्यका उपभोग करता है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा-जिसको योगमार्गका उपदेश दिया है ऐसा हाथ जोड़े हुए वह उद्धव उत्तमश्लोक भगवान्‌का वाक्य सुनकर कुछ नहीं बोल सका, उसका कण्ठ प्रीतिसे गद्गद हो गया, उसकी आँखोंमें आँसू आ गये ॥ ३५ ॥ हे राजन्, प्रणयसे क्षुभित अपने चित्तको धैर्यसे स्थिर करके अपनेको धन्य समझते हुए अपना सिर भगवान्‌के चरणारविन्दपर रखकर हाथ जोड़कर उसने यदु-

स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥३२॥ ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे ॥ यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥ मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदाऽमृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥३४॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन् बहुमन्यमानः ॥ कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् । विभावसोः किं नु समीपरास्य शीतं तमोभीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥३७॥ प्रत्यर्पितो मे भवतानुकम्पिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम् ॥ यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ॥ तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयाऽलकनन्दाया विधूताशेष-

वंशियोंमें प्रवीर भगवान्‌से कहना शुरू किया ॥ ३६ ॥ उद्धवने कहा—आपके सन्निधानसे मेरा जो मोहान्धकार था वह आज दूर भाग गया । हे अज, अग्निके पास रहनेवालेको ठण्डा, अन्धेरा या भीति कहाँसे रहेगी ॥ ३७ ॥ आपने मेरे ऊपर कृपा करके भृत्य मुझको ज्ञानमय दीप दिया, इसलिये आपका कृतज्ञ बना हुआ ऐसा कौन है, जो आपके चरणारविन्दको छोड़कर दूसरेकी शरण जायगा ॥ ३८ ॥ सृष्टिकी वृद्धिके लिये आपने दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वतोंमें जो स्नेहपाश अपनी मायासे फैलाया था वह मेरा सुदृढ़ स्नेहपाश आपने आत्मतत्त्वज्ञानरूपी शस्त्रसे तोड़ डाला ॥ ३९ ॥ हे महायोगिन्, आपको नमस्कार है, आपके चरणकमलमें निरन्तर भक्ति बनी रहे, ऐसी शिक्षा मुझे दीजिये, मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ ॥ ४० ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा—हे उद्धव, मेरी आज्ञासे बदरी नामके मेरे आश्रममें जाओ । वहाँ मेरे पादसे निकले हुए तीर्थ गंगाके जलमें स्नान और उपस्पर्शनोंसे धीरे-धीरे पवित्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बनो ॥ ४१ ॥ हे उद्धव, वहाँ अलकनन्दाके दर्शनमात्रसे पापरहित होकर वल्कल धारणकर वन्य फलादि खाकर सुखमें विस्पृह होकर रहो ॥ ४२ ॥ द्वन्द्वोंका सहन करो, इन्द्रियोंको जीत करके सुशील बनो, शान्त और समाहित बुद्धिसे ज्ञान विज्ञानसे युक्त होकर मुझसे जो सीखा है उसका विचारपूर्वक चिन्तन करते हुए वाणी तथा चित्त मुझमें लगाकर अपने धर्ममें तत्पर रहो। फिर तीन जन्मके बाद मुक्त होकर मेरे पास आ जाओगे ॥ ४३, ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—जिसकी बुद्धि संसारको हर लेती है ऐसे श्रीकृष्णके इस तरह कहनेपर उद्धवने उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की, उनके चरणकमलोंमें सिर रखकर सुख दुःख निर्मुक्त होनेपर भी जाते समय आँसुओंसे उसकी बुद्धि आर्द्र हो गई, अतः भगवान्के चरणोंको वह आँसुओंसे अभिसिक्त करने लगा ॥ ४५ ॥ स्नेह और वियोगसे, जिसका त्याग अत्यन्त कठिन है, भीत होकर वह उद्धव उस भगवान्को छोड़नेमें अति विह्वल हो गया, अत्यन्त कष्टसे भगवान्की

कल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक्सुखनिस्पृहः ॥४२॥ तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः ॥ शान्तः समाहतधिया ज्ञानविज्ञान-संयुतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यति ततः परम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥ सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ॥ कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमन्तर्हृदि सन्निवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना ततः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥ य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भगवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥४८॥ भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ॥ अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

पादुकाएँ मस्तकपर धारणकर जाने लगा। जाते समय उन्हें बार-बार नमस्कार करता था ॥ ४६ ॥ फिर भगवान्को अपने हृदयमें रखकर जगत्के एक बन्धु उनकी ही आज्ञाके अनुसार वह बदरीमें गया और वहाँ रहनेके बाद वह परम भागवत भगवान्के कथनानुसार परमगतिको प्राप्त हुआ ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंसे जिसका चरणकमल पूजित है ऐसे श्रीकृष्णके द्वारा परम-भागवत उद्धवको बताये गये आनन्दसागरमें भरे हुए इस ज्ञानामृतका जो श्रद्धासे तनिक सेवनकर स्थित रहता है वह मुक्त हो जाता है। यह क्या कहना, बल्कि उसके सङ्गसे समस्तजगत् मुक्त हो जाता है ॥ ४८ ॥ जिसने लोगोंका संसार भय नष्ट करनेके लिये ज्ञान-विज्ञानका और समस्त नियमोंका सार भृङ्गके समान निकालकर निवृत्ति और प्रवृत्तिमार्गके अपने दोनों भृत्यवर्गोंको उस समुद्रका अमृत पिलाया, उस आद्य, ऋषभ भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उन्तीसवें अध्यायका सार—उद्धवने कहा–हे भगवन्, आपने जो योग बतलाया वह बहुत कठिन मालूम होता है। जिसका मन स्वाधीन नहीं है उसको सरलतासे साध्य हो, ऐसा उपाय बतलाइये। भगवान्‌ने कहा–हे उद्धव, मैं मङ्गलकर अपना धर्म कहता हूँ, सुनो। मन और इन्द्रियोंको मेरी तरफ लगाकर मेरा स्मरण करते हुए सभी कर्मोंका सम्पादन करना चाहिये। मेरे भक्त जहाँ रहते हैं ऐसे पुण्यमय तीर्थोंमें रहना मेरे भक्तोंके चरित्रोंका अनुकरण करना चाहिए। अपना कल्याण चाहनेवाला शुद्ध चित्तसे सभी भूतोंके अन्दर और बाहर आकाशके समान निर्लेप परमात्माको देखे। योगी सर्वत्र ब्रह्मको देखता हुआ मुक्त हो जाता है। सभीमें मेराभाव रखना यही सबसे श्रेष्ठ उपाय है। इस असत्य देहसे सत्य मुझको पाना यही चातुर्य और बुद्धिमानी है। मैंने स्पष्ट युक्तिसे जो तुम्हें बार-बार ज्ञान बताया है इस ज्ञानसे सब संशय नष्ट हो जाते हैं और जीव मुक्त हो जाता है। उद्धव! मैंने जो कहा है तुमने उसका ग्रहण किया न? तुम्हारा मोह गया न? उद्धवने कहा—आपके सन्निधानसे ही मेरा मोहान्धकार दूर हो गया, आपने मुझे ज्ञानका दीप दिखाया। मेरे हृदयके स्नेह पाशको आपने आत्मतत्त्व ज्ञानसे तोड़ डाला। महायोगिन्, आपको नमस्कार है। आपके चरणारविंदमें निरन्तर भक्ति बनी रहे, ऐसी शिक्षा मुझे दीजिए। श्रीभगवान्‌ने कहा–उद्धव, तुम मेरी आज्ञासे बदरी जाओ। वहा पवित्र अलकनन्दामें नहाकर पवित्र बनो। इन्द्रियोंको जीतकर मैंने जो उपदेश दिया है उसका विचार पूर्वक ध्यान करो। मुझमें चित्त लगाकर धर्ममें तत्पर रहो, फिर तीन जन्मके बाद मेरे पास आओगे। शुकदेवजीने कहा–हे राजन्, भगवान्‌के ऐसा कहने पर उद्धवने भगवान्‌की तीन प्रदक्षिणाकी और उनके चरणोंमें सिर रखकर उनको अश्रुओंसे भिगोंने लगा। भागवान्‌को छोड़नेमें उसे कष्ट हो रहा था। अन्तमें भगवान्‌की आज्ञानुसार वह बदरी में जाकर साधन करके मुक्त हो गया। उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ त्रिंशोऽध्यायः ❀

[यादवकुलका नाश और भगवान्‌का महाप्रस्थानकी तैयारी]

परीक्षित्‌ने कहा–महाभागवत उद्धवके वनमें चले जानेके बाद द्वारिकामें भूतभावन भगवान्‌ने क्या किया॥ १ ॥ सब यादवकुलको जब ब्रह्मशाप हो गया था ऐसे समय उस

राजोवाच ॥ ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले याद-वर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सता-

भगवान्‌ने सभीके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले अपने शरीरको कैसे छोड़ा ॥२॥ जिससे लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियाँ वापस नहीं ले सकती थीं, जिसका वर्णन कर्णरन्ध्रसे अन्दर जानेपर सज्जनोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हृदयमें लिखित-सा होकर वहाँसे मिटता नहीं' जिस रूपकी शोभा कवियोंकी वाणियोंको उल्लास विशेष उत्पन्न करती है, फिर वे वाणियाँ जगत्पूज्य होती हैं, यह क्या कहना है। जिसको अर्जुनके रथपर देख युद्धमें मरनेवालोंने उसका सारूप्य लाभ किया उस रूपको भगवान्ने कैसे छोड़ा ॥ ३ ॥ शुकदेवजीने कहा-भूमि, आकाश और अन्तरिक्षमें बड़े बड़े उत्पात देखकर सुधर्मासभामें बैठे हुए यादवोंसे कृष्ण यह कहने लगे ॥४॥ श्रीभगवान्ने कहा-यमके ध्वज के समान ये महा-उत्पात द्वारकामें हो रहे हैं, अतः यहाँ मुहूर्तभर भी ठहरन ठीक नहीं है ॥५॥ स्त्रियाँ बाल और वृद्ध लोग यहांसे शङ्खोद्धारमें चले जायँ और हमलोग प्रभासमें चले जायँगे, जहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी है॥६॥ वहाँ स्नानकर शुचि होकर समाहित अन्तकरणसे देवताओंकी स्नान चन्दनादिसे पूजा करेंगे ॥ ७ ॥ स्वस्त्ययन करके महाभाग ब्राह्मणोंकी भी गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र तथा गज, अश्व, रथ और घर देकर पूजा करेंगे ॥८॥ यही अरिष्टों

मात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजन्त्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः । ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागन्कृत-स्वस्त्ययना वयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन् भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामा-ततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ॥ मिथः समेत्याश्वतरैः

के निवारण करनेकी विधि और श्रेष्ठ मंगलकर है देव, ब्राह्मण तथा गायकी पूजा ही मनुष्योंके उदयका कारण है ॥ ९ ॥ मधुदैत्यके हन्ता श्रीकृष्णका भाषण सुनकर, ठीक है, ऐसा कहकर नावसे समुद्र पारकर यादव वृद्ध प्रभासमें रथोंपर चढ़कर चले गये ॥ १० ॥ वहाँपर यदुकुल भगवान्ने जैसा कहा था, वैसाही परमश्रेयस्कर कर्म उन यादवोंने परमभक्तिसे किये ॥ ११ ॥ अनन्तर दैवसे बुद्धि भ्रंश होनेके कारण जिसके द्रवसे बुद्धि ठिकाने नहीं रहती ऐसा मैरेय मधुरका पान उन्होंने किया । १२ उस महापानसे मत्त, दर्पयुक्त कृष्णकी मायासे विमोहित हुए उन वीरोंमें महान् कलह शुरू हो गया ॥ १३ ॥ फिर क्रोधमें आकर, वे आततायी समुद्रके किनारे धनुष, खड्ग, भाला, गदा, ऋष्टि, तोमर इत्यादि आयुधोंसे युद्ध करने लगे ॥१४॥ चंचल पताकावाले रथोंसे, हाथियोंसे, गधोंसे, बैलोंसे, भैसोंसे, मनुष्योंसे भी एकत्र आकर वे सब मतवाले बाणोंसे परस्पर मारने लगे, जैसे हाथी दातोंसे वनमें प्रहार करते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं ॥१५॥ प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर और भोज, अनिरुद्ध तथा सात्यकी, सुभद्र एवं संग्रामजित्, भयंकर दोनों गद, सुमित्र, सुरथ, ये आपसमें बढ़े हुए मत्सरसे युद्ध करने लगे ॥१६॥ दूसरे भी जो निशठ, उल्मुक, शतजित्, सहस्रजित्, भानु इत्यादि लोग थे मदान्ध होकर भगवान्‌की मायासे मुग्ध होनेके कारण आपसमें खूब लड़ने लगे ॥ १७ ॥ इसके बाद दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकुर, कुन्तय सब लोग आपसका सौहार्द्र भूलकर आपसमें लड़ने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पितासे, भाई भाईसे, मित्र मित्रसे, सुहृद सुहृदसे, ज्ञात ज्ञातियोंसे एवं बहनके लड़के नाती, चाचा, मामा सब आपसमें मूढ़ होकर मारने लगे ॥ १९ ॥ जब बाण खतम हो गये, धनुष टूट गये, शस्त्र सब खतम हो गये तब मुट्ठीसे सेंठे [सरकंडे] उखाड़ लिए और मुट्ठीसे पकड़े जानेपर वे सब लोहेके दण्ड हो गये। उन्हीं वज्रप्राय सेठोंसे परस्पर प्रहार करने लगे। कृष्णके मना करनेपर वे सब उन्हींको

सुदुर्मदा न्यहन् शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ॥ सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥ अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ॥ अन्योन्यमासाद्य मदान्धकारिता जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥ दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ॥ विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृदःसुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहन् ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥ शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ॥ शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जुहुरेरकाः ॥ २० ॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः ॥ जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौजघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्धाक्रोधः क्षयं हिनन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥२४॥ एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥२७॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ॥ दिशो

मारने गये ॥ २०, २१ ॥ हे राजन्, वे आततायी बलरामको शत्रु समझकर उन्हींको मारने दौड़े ॥ २२ ॥ तब हे कुरुनन्दन, कृष्ण और बलराम भी क्रुद्ध होकर उन्हीं सेठोंकी मुष्टिका परिघ बनाकर घुमाते हुए सबको मारते हुए उस युद्धभूमिमें संचार करने लगे ॥ २३ ॥ ब्रह्मशापसे पीड़ित और कृष्णमायासे मोहित उन यादवोंका आपसकी स्पर्धा तथा क्रोधने ऐसे क्षय किया, जैसे बाँसोंके वनमें उत्पन्न अग्नि उस वनको खतम करती है ॥ २४ ॥ यों जब अपने सब कुल नष्ट हो गये, तब कृष्णने यह समझा—भूमिका बचा हुआ जो भार था, सो मैंने उतरवा दिया ॥ २५ ॥ तदनन्तर बलराम समुद्रके किनारे योगका आश्रयकर मनको आत्मामें लीनकर इस लोकको छोड़कर चले गये ॥ २६ ॥ बलभद्रका निर्वाण देखकर भगवान् श्रीकृष्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पीपलके पेड़के नीचे जमीनपर चुपचाप बैठ गये ॥ २७ ॥ वे अपने चमकीले चतुर्भुज रूपको धारणकर उसकी प्रभासे धूमरहित अग्निके समान दिशाओंको प्रकाशित करते हुए ॥ २८ ॥ ऐसे श्रीवत्सधारी, मेघश्याम, तप सुवर्णके समान कान्तिमान्, दो रेशमी वस्त्र धारण किए हुए, मंगलमय, सुन्दरस्मित जिनके मुखकमलपर झलकता है, नील केशोंसे शोभित, पुण्डरीकके समान आँखोंवाले, चमकदार मकरकुण्डल धारण किए हुए, करधनी, जनेऊ, किरीट, कटक, बाजुबन्द, हार, नूपुर, मुद्रा तथा कौस्तुभसे सुशोभित वनमाला पहने हुए, मूर्तिमान अपने आयुध धारण किए हुए एवं कमलके समान लाल बाएँ पैरको दाहिने जाँघपर रखकर बैठे हुए भगवान्के उसी चरणमें, जिसका आकार मृगमुख जैसा था, जरा नामक व्याधने उस लोहेके टुकड़ेसे बने बाणसे मृग समझकर मारा ॥ २९—३३ ॥ उस चतुर्भुज रूपको देखकर वह अपराधी डरकर असुरनाशक भगवान्के पैरपर सिरसे गिरपड़ा ॥ ३४ ॥ हे भगवन्,

वितिमिरः कुर्वन्विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ॥ २९ ॥ सुन्दर-
स्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ॥ पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकाङ्गदैः ॥ हारनूपुर-
मुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीताङ्गं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम् ॥३२॥ मुसलाव-
शेषायःखण्डकृतेषुर्लुब्धो जरा ॥ मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ॥ ३३ चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ॥ भीतः पपात
शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ॥ क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ॥ ३५ ॥ यस्यानुस्मरणं
नृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् ॥ वदन्ति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ तन्माशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ॥ यथा पुनरहं
त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥३७॥ यस्यात्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो रुद्रादयोऽस्यतनयाः पतयो गिरां ये ॥ त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदञ्जः किं
तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ॥ याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां
पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ॥ त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्वि-

मैंने न जानकर यह पाप किया है, हे निर्दोष, हे उत्तमश्लोक मधुसुदन, मुझ पापीको क्षमा करो ॥ ३५ ॥ हे प्रभो, जिसके स्मरणसे मनुष्योंका अज्ञान तिमिर नष्ट होता है, ऐसा ऋषी लोग कहते हैं, उस भगवान् विष्णुके अवतार आपका मैंने अपराध किया ॥ ३६ ॥ इसलिए हे भगवन्, मृगवध करनेवाले पापी मुझको शीघ्र मार डालिये जिससे मैं फिरसे ऐसा पाप और सज्जनोंका अतिक्रमण न कर सकूँ ॥ ३७ ॥ जिस आपकी मायाका खेल ब्रह्म उसके पुत्र रुद्रादि तथा अन्य वेदद्रष्टा भी आपकी मायाके कारण नष्ट होनेसे नहीं जान पाते, फिर हम मायासे मोहित नीच योनिके सहसा कहाँसे अचिन्त्य मायावाले उस आपका वर्णनकर सकें ॥ ३८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे जरे, तुम मत डरो उठो, तुमने यह मेरी ही इच्छासे किया है। मेरी अनुज्ञासे तुम पुण्यवानोंके स्थान स्वर्गको जाओ ॥ ३९ ॥ इच्छा शरीरी श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वह तीनबार उनकी प्रदक्षिणाकर नमस्कार करके विमानसे स्वर्गमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चला गया ॥ ४० ॥ दारुक कृष्णके उस पदचिह्नोंको ढूंढ़ते हुए उनको पाकर फिर तुलसीके सुगन्धसे युक्त वायुको सूंघकर उसी तरफ आया ॥ ४१ ॥ वहाँ तीक्ष्ण कान्तिमान् आयुधोंसे परिवेष्टित अश्वत्थके नीचे बैठे हुए अपने स्वामी श्रीकृष्णको देखकर उसका हृदय स्नेहसे भर आया, उसकी आँखोंमें आँसू आ गये और वह रथसे कूदकर झट उनके पैरपर गिर पड़ा ॥ ४२ ॥ वह कहने लगा—हे भगवन्, आपका चरणसरोज न देखनेके कारण मेरी दृष्टि नष्ट-सी हो गई, उसपर अन्धेरा छा गया न मैं दिशा जानसका, न मुझे शान्ति मिली, रातमें नाव नष्ट होनेसे जैसी अवस्था होती है वैसी मेरी अवस्था हो गई ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र, ऐसा दारुक बोलही रहा था, उतनेमें ही उसके देखते ही देखते भगवान्का गरुड़ध्वजयुक्त रथ घोड़ोंके साथ आकाशमें उड़ गया । ४४ ॥ उसीके पीछे विष्णुके दिव्य आयुध भी चले गये। उससे अत्यन्त विस्मित सूतसे भगवान्ने कहा ।४५॥ हे सूत, द्वारकामें जाकर ज्ञातियोंका आपसमें

च्छन्नधिगम्य ताम् ॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥४१॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ॥ स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य स बाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥ अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शान्तिं यथा निशायामुडुपे प्रनष्टे ॥ ४३ ॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः । खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥ तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ सङ्कर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिश्च स्वबन्धुभिः ॥ मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ॥ अर्जुनेनाविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ॥ मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसङ्क्षयोनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

मरण, बलदेवका निर्याण और मेरी दशा कहो ॥ ४६ ॥ अपने बन्धुओंके साथ आपलोग द्वारकामें मत रहिये मुझसे छोड़ी गई द्वारकाको समुद्र डूबा देगा ॥ ४७ ॥ इसलिए अपने-अपने कुटुम्बियोंको तथा हमारे माता-पिताको लेकर अर्जुनसे सुरक्षित होकर इन्द्रप्रस्थमें चले जाइये ॥ ४८ ॥ तुम तो मेरे धर्मका आश्रय लेकर ज्ञाननिष्ठ और निरपेक्ष होकर 'यह सब मेरी माया है' ऐसा समझकर शान्त रहो ॥ ४९ ॥ ऐसा कहनेपर दारुक भगवान्की प्रदक्षिणाकर उन्हें बार-बार नमस्कारकर उनके पैरपर सिर रखकर विमनस्क हो करके द्वारकाको चला गया ॥५०॥

तीसवें अध्यायका सार—परीक्षितने कहा—महर्षे, उद्धवके वनमें चले जानेके बाद यादवकुलका ब्राह्मण शापसे कैसे संहार हुआ ? भगवान्ने अपना मनोहर शरीर कैसे छोड़ा ! शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, जब सब तरह के उत्पात होने लगे तब भगवान् श्रीकृष्ण ने यादवोंसे कहा—'महानाश के चिन्ह ये उत्पात द्वारका में हो रहे हैं, यहाँ ठहरना योग्य नहीं है। भगवान् की बात सुनकर सब लोग समुद्र पार होकर प्रभास में चले गए। वहाँ उन्होंने यथेच्छ मैरेयमधुका पान किया। उसके नशासे मतवाले हो वे आपस में झगड़ने लगे। जब लड़ते-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लड़ते उनके वाण खतम होगए, तव समुद्र किनारेके सेंठे उखाड़कर परस्पर मारने लगे। इस तरह आपस में लड़ाई से सभी यादव जब खतम हो गये तब भगवान् ने समझा पृथ्वीका रहा-सहा भार भी गया। उसके वाद बलराम ने योगके द्वारा अपने शरीरको त्याग दिया। तव श्रीकृष्ण भी एक पीपलके पेड़के नीचे दाहिने जाँघपर अपना बायाँ पैर रखकर बैठ गये। इतने में एक जरा नामक व्याधने मृग समझकर उसी मूसलके लोहेके बाणसे उस पैरमें मारा। उसने पासमें आकर जब चतुर्भुज मूर्तिको देखा, तो भयसे वह काँपने लगा, वह चरणोंपर गिर पड़ा और प्रार्थना करने लगा—भगवन्, मैं अपराधी हूँ, मुझे आप मार डालिए, ताकि मुझसे फिरसे ऐसा पाप न हो।' भगवान्ने कहा —'हे जरे, तुम्हारा इसमें कोई अपराध नहीं है मेरी ही इच्छासे यह हुआ है। अब तुम मेरी अनुज्ञा ले स्वर्गमें जाओ।' ऐसा कहनेपर उसने भगवान्की प्रदक्षिणाकर नमस्कार किया और वह 'विमानसे स्वर्ग चला गया। उसके बाद भगवान्के पदचिन्होंको देखते हुए दारुक वहाँ आया। श्रीकृष्णको देखते ही प्रेमसे उसका हृदय भर आया, आँखोंमें आँसू भर आए। वह रथसे कूदकर भगवान्के चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा–भगवन्, आपको न देखनेसे मेरी दृष्टि मानो नष्ट हो गई, सामने अन्धेरा छा गया, ऐसा दारुक बोल रहा था कि उतनेमें घोड़ोंके साथ भगवान्का दिव्य रथ और भगवान्के आयुध आकाशमें चले गए। उसको देख आश्चर्यान्वित दारुकसे भगवानने कहा—दारुक इस द्वारकाको शीघ्र समुद्र डुबा देगा, इसलिए तुम द्वारकामें जाकर वहाँ जो लोग बचे हैं उनसे कहो कि वे अपने कुटुम्बों और हमारे माता-पिताको लेकर अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थमें चले जायँ। तुम भी अब ज्ञाननिष्ठाका आश्रय लेकर निरपेक्ष होकर रहो। भगवान्की बात मानकर उनको नमस्कारकर विमनस्क होकर दारुक वहाँसे चला गया। तीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

❀ अथ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ❀

(श्रीकृष्णका निर्याण तथा वसुदेवादिका प्राण त्याग एवं स्त्रियोंका अग्निप्रवेश)

श्रीशुकदेवजीने कहा—अनन्तर वहाँपर ब्रह्मदेव, पार्वतीके साथ शंकर, महेन्द्रादिदेव, प्रजापति, मुनि, पितर, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सराएँ,

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥ महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥ पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥ द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ॥ गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥ कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥ भगवान् पितामहं

२५ ब्राह्मण सभी भगवान्का निर्याण देखनेकी अत्यन्त उत्कट इच्छासे भगवान् कृष्णके जन्म और कर्मोंका गायन एवं स्तवन करते हुए आ गये ॥ १–३ ॥ राजन्, परमभक्तियुक्त होकर आये हुए उन लोगोंके विमानोंसे आकाशमें भीड़ हो गई। वे पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ ४ ॥ भगवान्ने अपनी ही विभूति ब्रह्माको देखकर आत्माको आत्मामें लगाकर अपने पद्मके समान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लोचन मूंद लिए ॥५॥ लोकोंको आनन्ददायक, ध्यान-धारणासे मंगलदायक, अपने शरीरकी आग्नेयी योग धारणासे न जलाते हुए ही अपने धाम वैकुण्ठको चले गये ॥६॥ तब स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे पुष्प गिरे, उन्हींके पीछे-पीछे सत्य, धृति, कीर्ति और श्री भी चली गई ॥ ७ ॥ ब्रह्ममुख्य देवादि अति विस्मित होकर ताकते रह गये, लेकिन जिसकी गति अतर्क्य है ऐसे कृष्णका स्वधाम गमन न देख सके ॥८॥ आकाशमें अभ्रमण्डलको छोड़कर जाती हुई बिजलीकी गति जैसे मनुष्योंकी समझमें नहीं आती, वैसेही देवलोग कृष्णकी गति न जान सके ॥ ९ ॥ ब्रह्म रुद्रादिदेव भगवान्‌की वह योगगति देख विस्मित होकर उसकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥ १० ॥ हे राजन्, सबके कारणभूत भगवान्‌का यादव आदिमें यह जन्म, लय और कर्म सब मायाका विड़म्बन है, यह आप जान लीजिये, जैसा कि नटका वेष दिखाऊ होता है। वह अपनेहीसे इस ब्रह्माण्डकी सृष्टिकर

वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम् ॥ योगधारणया-ग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥७॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ॥ अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥ सौदामन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाऽभ्रम-ण्डलम् ॥ गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥ ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ॥ सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य चात्ममहि-नोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ॥ जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥ तथाप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥ य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ॥ प्रयतः कीर्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥ तच्छ्रुत्वोद्वि-

उसमें प्रवेश करके विहार करनेके बाद आखिरमें संहारकर वह आत्म महिमासे ही उपरत रहता है ॥ ११ ॥ जिसने यमके पाससे गुरुपुत्रको उसी शरीरसे ला दिया और शरणागतकी रक्षा करनेवाले तुमको भी ब्रह्मास्त्र दग्ध होनेपर बचाया। अन्तकके भी अन्तक रुद्रको जिसने जीता, जिसने व्याधको सदेह स्वर्ग भेजा, वह क्या अपना रक्षण नहीं कर सकता था ॥ १२॥ फिर भी सभी विश्वकी सृष्टि, स्थिति, लयकर्ता सर्वशक्तिमान् परमेश्वरने यहाँ शरीर न रखना चाहा, क्योंकि उसने यह दिखाया कि देहसे कुछ भी विशेष प्रयोजन नहीं है, इससे भी उत्तम गति है ॥ १३ ॥ जो कोई रोज प्रातःकालमें उठकर स्थिर चित्तसे श्रीकृष्णके उत्कृष्ट गतिका भक्तिभाव पूर्वक कीर्तन करता है, वह वही सर्वोत्तम गति पाता है ॥ १४ ॥ दारुक द्वारकामें आकर वसुदेव और उग्रसेनके चरणोंपर गिरकर कृष्ण वियोगके कारण उनके चरणोंको आँसुओंसे भिगोने लगा ॥ १५ ॥ हे राजन्, अत्यन्त कष्टसे उसने यादवोंका पूर्ण निधन कहा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसको सुनकर लोगोंका हृदय उद्विग्न हो गया और वे शोकसे मूर्छित हो गये ॥ १६ ॥ कृष्णके वियोगसे विह्वल होकर सब लोग जहाँ आपसमें लड़कर यादव गतप्राण हो सोरहे थे, वहाँ गये और माथा पीटने लगे ॥ १७ ॥ वसुदेव, देवकी, रोहिणी अपने पुत्र कृष्ण और बलरामको न देखनेके कारण मूर्छित हो गये तथा थोड़ी देरमें भगवान्के विरहसे आतुर होकर उन्होंने प्राण भी त्याग दिये । हे तात, स्त्रियोंने अपने पतिकी देहको आलिङ्गनकर चितामें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ बलरामकी पत्नियाँ, वसुदेवकी पत्नियाँ, भगवान्की पुत्रवधुएँ, प्रद्युम्नादि की पत्नियाँ सब अपने-अपने पतिकी देहको लेकर सती हो गईं रुक्मिणी आदि कृष्ण पत्नियोंने भी अग्निमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ अर्जुन भी अपने प्रियमित्र श्रीकृष्णके विरहसे

हृदया जनाः शोकविमूर्छिताः ॥ १६ ॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ॥ व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नन्त आननम् ॥१७॥ देवकी रोहणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ॥ कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ॥ उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥ रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविसन् ॥ वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन् हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥ अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बन्धूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् ॥ हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत् क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनञ्जयः ॥ इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥२६॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च कीर्तयेत् ॥ श्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि । अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं

आतुर हुआ था उसने कृष्णके द्वारा कही गई सदुक्तियोंसे अपना सान्त्वन किया ॥ २१ ॥ जिनका कुल नष्ट हो गया था ऐसे मृतबन्धुओंकी अर्जुनने पिण्ड गोत्रादि क्रियाएँ कराईं ॥२२॥ हे महाराज, भगवान्की छोड़ी हुई द्वारकाको भगवान्का मन्दिर छोड़कर बाकीको समुद्रने तुरन्त डुबा दिया ॥ २३ ॥ उस भगवन्मन्दिरमें केवल स्मृतियोंसे ही सब अगुणोंको दूर करनेवाला सभी मंगलोंका मंगल भगवान् श्रीकृष्ण सर्वदा सन्निहित रहते हैं ॥ २४ ॥ स्त्रियों, बाल, वृद्ध, तथा और भी बचे हुए लोगोंको लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थमें गया, वहाँ उसने वज्रका अभिषेक किया ॥२५॥ राजन्, आपके पितामहोंने अर्जुनसे सुहृदोंका जब वध सुना, तब आपको वंशधर बनाकर हिमालयकी ओर चले गये ॥२६॥ जो कोई देवदेव श्रीकृष्णके इस जन्म और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चरित्रका श्रद्धासे कीर्तन करेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होगा ॥ २७ ॥ इसप्रकार जो पुरुष भगवान्‌के चमत्कारजनक परममङ्गलमय अवतार, पराक्रम और बालचरितोंका जो यहाँ तथा अन्यत्र वर्णित हैं, वर्णन करता है वह परमहंसोंकी गति श्रीकृष्णमें सर्वोत्कृष्ट भक्ति पाता है ॥ २८ ॥

परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां एकादशस्कन्धे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयमेकादशः स्कन्धः ॥ ११ ॥

एकतीसवें अध्यायका सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, उस समय समस्त ब्रह्मादिदेव और गन्धर्व यक्षआदि भगवान्‌का निर्याण देखनेके लिए विमानसे आकाशमें आए। उनको देखकर भगवान्‌ने अपनी आँखें मूँद लीं तथा सभीके देखते ही अपने धाम वैकुण्ठमें चले गए। लेकिन उनकी गति किसीकी समझमें नहीं आई। देवलोकमें नगारे बजने लगे। उस अतर्क्य गतिकी प्रशंसा करते हुए सभी लोग अपने-अपने स्थानको चले गए। इधर दारुकने आकर वसुदेव और उग्रसेनके चरणोंमें गिरकर सब वृत्तान्त सुनाया, उसे सुनकर वे मूर्च्छित हो गए फिर सब लोग जहाँ यादव् आपसमें लड़कर नष्ट हो गए थे, वहाँ गए। वहाँ वसुदेव, देवकी, रोहिणी अपने पुत्रोंको न देखकर मूर्च्छित हो गए और थोड़ी देरमें उन्होंने प्राण त्याग दिए। सभी स्त्रियाँ अपने-अपने पतिके शरीरको लेकर सती हो गई। कृष्णकी रुक्मिण्यादि स्त्रियोंने भी अग्निमें प्रवेश किया। अर्जुनने कृष्णके उपदेशसे ही अपनेको सम्हाला। सभी लोगोंकी उत्तर क्रिया कराके बचे हुए लोगोंको लेकर अर्जुन इन्द्र प्रस्थ गया, वहाँ उसने वज्रका अभिषेक किया। हे राजन्, आपके पितामहोंने भी कृष्णका निर्याण सुनकर आपको वंशधर रखकर हिमालयकी ओर चले गए। एकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(गौरीपूजन और भगवान् श्रीकृष्णजी की लीला)

सूत उवाच ॥ साधुपृष्टाः द्विजश्रेष्ठाः कृष्णस्य परमात्मनः । लीलाश्रोतसुखाः सर्वाः पावनाः परमाद्भुताः ॥ शृण्वन्तु कथयिष्यामि यथा ताभिर्वशीकृतः । कुमारिकाश्चारुरूपाः कृष्णलावण्यमोहिताः ॥ गौर्या आराधनं चक्रुर्यमुनायास्तटे शुभाः । समाहिताः कृतस्नाना गन्धपुष्पादिधूपकैः ॥ कृष्णलीला प्रगायन्त्या मार्गे मासि हरिप्रिये । ताश्च स्वप्नेऽपि ददृशुर्यमुनायास्तटं शुभम् ॥ कदम्बपादपाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम् । वृन्दावनातिशोभाढ्यं स्वच्छमृदुलवालुकम् ॥ मन आह्लादजननं तत्र कृष्णसमागमम् । वृन्दावने क्रीडनं च मनोरथपथातिगम् ॥ तदारभ्य विशेषेण चक्रुर्गौरीसमर्चनम् । कृष्णमेवप्रगायन्त्यो यमुनायास्तटं ययुः ॥ पूजोपकरणैर्युक्ता यथाकामं विभूषिताः ॥ अरुणोदयवेलायां कृतस्नानासकौतुकाः ॥ आनर्चुः सैकतमयीं देवीं प्रतिकृतिमुमाम् । गन्धैर्माल्यैः सुरभितैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ उच्चावचैश्चोपचारैः प्रवालफलतद्रुमैः । कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरुते नमः । इति मन्त्रजपः कृत्वा पूजयामासुरम्बिकाम् ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥

[राधा के नामों का कथन]

राधानामानि यान्याहुस्तन्मे शृणुत भो द्विजाः । श्रीराधा राधिका चैव आनन्दा वृषभानुजा ॥ वृन्दावनेश्वरी पुण्या श्रीकृष्णस्वान्तहारिणी । प्रगल्भा चतुरा श्यामा कामिनी-हरिमोहिनी ॥ ललिता मधुरा साध्वी किशोरी कनकप्रभा । जितनिन्द्रा जितमृगा जितहंसमतङ्गजा ॥ जितरम्भा जितप्रभा श्रीकृष्णहृदयोद्भवा । जितविम्बा जितशुका जितपद्मसिता तथा ॥ आमोदिनी मुदवती नन्दनन्दनप्रेमिका । दिव्याम्बरा दिव्यहारा मुक्तामणि विभूषिता ॥ कुञ्जप्रिया कुञ्जहासा कुञ्जनायकमोहिनी । चारुरूपा चारुवक्त्रा चारुहेमाङ्गदा शुभा ॥ श्रीकृष्णवेणुगीता च मुरलीहारिणी शिवा । भद्रा भगवती शान्ता कुमुदा सुन्दरीप्रिया ॥ कृष्णकेशा कृष्णरतिः श्रीकृष्ण सहचारिणी । वंशीवटस्थकृष्णेन युग्मायुग्मस्वरूपिणी ॥ भाण्डीरवासिनी शुभ्रा गोपिनाथ प्रियासुखा । श्रुतिनिश्वसितादिव्या गोविन्दरसदायिनी । श्रीकृष्णस्वामिनी कान्ता महानन्दप्रदायिनी । वैकुण्ठजनसंसेव्या कोटिलक्ष्मीसुखावहा ॥ कोटिकन्दर्पलावण्यारतिकोटिरतिप्रिया । भक्ति-ग्राह्या भक्तितुष्टा लावण्यहृदिनीशुभा ॥ ब्रह्मरुद्रादिभिर्ज्ञेया नित्यकौतूहलान्विता । नित्यं वृन्दावने रम्ये नन्दनन्दनसंयुता ॥ नित्यलीला नित्यकामा सर्वशृङ्गारभूषिता। गोरसद्वेपिणीशूग मन्दा-नन्ददायिनी ॥ महालीला प्रगल्भा च नागरीनगचारिणी । नित्यमाघूर्णिता घूर्णा कस्तूरी तिलकप्रिया॥ पद्मा श्यामा मृगाक्षी च सिन्धुरूपारसान्विता । कोटिचन्द्रा चन्द्रकरा गौरीकोकिलसुस्वरा॥ शीला सुगन्धनिलया नन्दनन्दनलालिता । अशोकवनसंसेव्या भाण्डीरवनवासिनी । वेदद्रुमफलासेव्या वृन्दावनरसालया ॥ एतानि राधानामानि तस्या रूपान्तराणि च । अनेकरूपो गोविन्दो-नेकरूपा च राधिका ॥

(राधा के सखियों के नाम और उनके कार्य)

राधायाः प्रियसख्यश्च तथानेकाः प्रकीर्तिताः । तासां नामानि कर्माणि वच्मि प्राधान्यतोद्विजाः ॥ ललिता च विशाखा च वृन्दा चन्द्रा च मङ्गला । तारावली श्यामला च नन्दिनी मुदिता तथा ॥ पञ्चेति तासां नामानि शृणु कर्माण्यतः परम् । ललिता वाक्यनिपुणा प्रणाली धौतसंभ्रमा ॥ उभयोर्योगमिच्छन्ति प्रत्यहं तत्सखाश्रया । विशाखा च यथा छाया तथा राधा-नुसर्पिणी । चन्द्रा गन्धतनूरागमुखवासादिसंस्कृतौ । विचक्षणा यथाकालं तत्तदेव समर्पयेत् ॥ वृन्दा वृन्दावनोद्भूतकुसुमादिनिवेदिनी । तत्तत्कालसमानेत्री तत्सुखाय यथोचितम् ॥ मङ्गला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भङ्गलगीतंवीणावाद्यादिसंयुता । गायति मधुरं पार्श्वे शाययित्वा ततो व्रजेत् ॥ तांशवली च सततमलङ्कारविधौ शुभा । वितानशयनादीनां रचनासु पटीयसी ॥ श्यामला केशसंस्कारवस्त्रादि-परिधापने । प्रेयसी सर्वदा सख्यानि युक्तङ्गप्रसाधने ॥ नन्दिनी च कराध्न्यादिलालयन्तीपटाञ्चलैः । आनन्दकारिणी बालव्यजनेन च संयुता ॥ मुदिता विविधं भोज्यं भोजयन्ती यथारुचि । ताम्बूलवीटिका दत्वा मन आह्लादकारिणी ॥ पद्मा प्रहल्लिका रूढा पदार्थकथनादिभिः । एताश्चान्याः स्वस्वकार्ये सावधानतया स्थिताः ॥

(भागवत श्लोकसंख्या)

अथ भागवतस्कन्धश्लोकसंख्याश्लोकैरुच्यते । त्रिभूमिनागा ८१३ रसनन्दरामा ३९६ सार्धनृपेन्द्रा १४१६ भुजवाणशुक्राः १४५२ । सार्धाङ्गरामाद्रिमिता ७३६ । गजेषु नागो मृताः ८५८ । सार्धखतर्कशैलाः ७६० ॥ १ ॥ गजाग्निनन्दा ९३८ श्रुतुराद्रिगावं ९७४ रुयब्धङ्करामा ३९७३ नगशैलविश्वे १३७७ । सार्धाङ्कपट्पञ्च च ५६९ गद्यपद्यसंख्याक्रमात्स्कन्ध-गतावगम्या ॥ २ ॥ समुद्रषट्द्वङ्मनवो १४२६४ऽलिखैक्यमेषामनुष्टुम्मितयस्तुवेद्याः । रामाभ्रनन्दा ९०३ अथ सार्धचक्षुः शैलाब्धयः ४१२ सार्धषडस्त्रभूपाः १६०६ ॥ ३ ॥ पादोनखद्वद्वनृपा १६१९ स्त्रिनाग सूर्या १२८३ विपादाभ्रशंराङ्कसंख्याः ९४९ । सार्धाद्रिवेदाष्ट ८ ४७ च सांध्रिचन्द्र पञ्चास्त्रभूभ्यो १०५७ मनुदिङ्मिताश्च १०१४ ॥ ४ ॥ तत्वा-ब्धिवेदा ४४२५ अथ सांध्रिवेदादीन्द्रा १४७४ सपादागुणचन्द्रतर्काः ६१३ । सर्वैक्यमङ्ग्रचु नखषट्द्विभूपाः १६ २५९ उवाच वाचो गज षड्जिनाश्च २४६८ ॥ ५ ॥ खेन्द्राश्च १४० सप्ताङ्गभुव १६७ कुबाणा ५१ भूताब्ध्रभूम्यो १०५ऽ । ब्धिगजाः ८४ कुकाष्ठाः १७१ ॥ नवेषव ५९ त्रिपुगुणा ३५३ नवेशा ११९ गोम्बूनि ४९ चैक्यं तु स्वदग्गुणाद्याः १३२० ॥ ६ ॥ प्रायेण पादान्वितपद्यमान सत्रैकमध्याय समाप्तिगद्यम् । पादोननन्देन्दुचतुर्मितानि ४१८ पद्यानि तेषामितिकल्पितानि ॥ ७ ॥ जातानि सर्वस्य युतौ महस्त्राण्यष्टादशाध्यार्थमिहोनमेकम् । तत् पाठभेदान्मम वा प्रमादात्पदत्यन्तमल्पं नहि दोषपात्रम् ।

(रावणके प्रधान सैनिक)

कोटीशो मनसः पूर्णः शलः पालोहली मुखः । पिच्छलः कौणपश्चक्रः कालवेगः प्रकालकः ॥ हिरण्यबाहुः शरणः कक्षकः कालदन्तकः । पुच्छाण्डकोमण्डलकः पिण्डसेक्कारभेणकः॥ उच्छिरवः करभो भद्रो विश्वजेता विरोहणः । शिलीशलकरोमूकः सुकुमारः प्ररेषणः ॥ मुद्गरः शशरोमा च सुरोमा च महाहनुः । पारावतः पारिपात्रः पाण्डुरो हरिणः कृशः ॥ विहङ्गः शरभो दत्तः प्रमोदः सहतापनः । कृकरः कुण्डरो वेणी वेणीस्कन्धः कुमारकः ॥ बाहुकः शङ्खवेगश्च धूर्तकः पातपातकौ । शङ्ककर्णः पिठरकः कुटीरमुखसेचकौ ॥ पूर्णाङ्गदः पूर्णमुखः प्रभापः शकु-लिर्हरिः । अमाहिठः कामठकः सुपेणोमानसोव्ययः॥भैरवोमुण्डवेदाङ्गः पिशङ्गश्चोडपालकः । ऋषभो वेगवान्नाम पिण्डारकमहाहनू ॥रक्ताङ्गः सर्वसारङ्गः समृद्धः पाटवासकौ । वराहको रावणकः सुमित्रश्चित्रवेगिकः ॥ पराशरस्तरुणिको माणिस्कन्धस्तथारुणिः । सेनाध्यक्षा महात्मानःकीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥ प्राधान्येन बहुत्वात्तु न सर्वे परिकीर्तिताः ।

(रावणके औरसपुत्र)

अद्भुतरामायणे—रावणस्यौरसाः पुत्राः सह राक्षसपुङ्गवैः । नानाप्रहरणोपेता दुद्रुवू राघवम्बरे ॥ नामान्येषां प्रवक्ष्यामि भारद्वाज शृणुष्व मे । कालकण्ठः प्रभाषश्च तथा कुम्भा-ण्डकोपरः ॥ कालकक्षः शितश्चैव भूतलोन्मथनस्तथा । यज्ञबाहुः प्रबाहुश्च देवयाजी च सोमपः ॥ मज्जालश्च महातेजा क्रथः क्राथो वसुव्रतः । तुहरश्चतुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ॥ मधुरः ॥७४॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सुप्रसादश्च किरीटश्च महाबलः। वसनो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ॥ धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् । श्वेतवक्त्रः सुवर्णवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ॥ दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा । अचलः कालकाक्षश्च बालेशो बालभक्षकः ॥ सञ्चानकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः । लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ॥ मुण्डग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च कुञ्जरः । एते रावणपुत्राश्च महावीर्यपराक्रमाः ॥ बाहुशब्दैः सिंहनादैः पूरयन्तो दिशो दश । एषां सैन्यसहस्राणां सहस्राण्यर्बुदानि च ॥ नानाकृतिवयो रूपा विविधायुधपाणयः । कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च सर्पजम्भकवक्त्रकाः ॥ गोमायुमुखवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा । खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ॥ मनुष्यमेषवक्त्राश्च शृगालवदनास्तथा । मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च केचन ॥ नकुलोलूकवक्त्राश्च काकवक्त्रास्तथा परे । आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ॥ मत्स्यमेषाननाश्चैव अजाविमहिषाननाः । ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ॥ भीमागजाननाश्चैव तथा नक्रमुखास्तथा । गोरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ॥ महाजठरपादांगास्तवकाक्षाश्च दुर्मुखाः । पारावतमुखाश्चान्य तथा वृषमुखाः परे । कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनेतित्तिरिकाननाः ॥ कृकलासमुखाश्चैव विरजोवरधारिणः । व्यालवक्त्राः शुकमुखाश्चएडवक्त्राः शुभाननाः ॥ आशीविषाश्चीरधरागोनासावरणसतथा। स्थूलोदराः कृशङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः ॥ ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः । गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥ स्कन्धे मुखाद्विजश्रेष्ठ तथा ह्युदरतो मुखाः । पृष्ठे हनुमुखास्तथा जङ्घामुखास्तथा । पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा । तथा कीटपतङ्गानां सदृशास्यामहाबलाः ॥ नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः ॥ नानावक्षोभुजाः केचिद् भुजङ्गवदनाः परे । खड्गमुखा कृकमुखा अपरे गरुडाननाः ॥ चोलसंवृतगोत्राश्च नाना फलकवाससः । नानावेषधराश्चान्ये नानामाल्यानुलेपनाः ॥ नानावस्त्रधराश्चान्ये चर्मवासस एव च । उष्णीषिणो मुकुटिनः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ॥ इत्यादि ।

(रावण के सैनिकों का नाम)

शृणु नामानि चान्येषां ये न्ये रावणसैनिकाः । शङ्कुकर्णो निकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ॥ अनन्तो द्वादशस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ । घ्राणश्रवाः कपिस्कन्धः काञ्चनाक्षोजलन्धमः ॥ अक्षसन्तर्दनो त्रक्षन्कुनदीकस्तमोभ्रकृत् । एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजराभिधः ॥ सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्रारव्यः क्षितिकम्पनः । पुण्यनामानुनामा च सुवक्त्रः प्रियदर्शनः ॥ परिश्रितः कोकननः प्रियामाल्यानुलेपनः । अजोदरोगजशिराः स्कन्धाक्षः शतलोचनः ॥ ज्वालाजिह्वः करालश्च सितकेशो जटी हरिः । चतुर्दंष्ट्रोष्ठजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः ॥ विकृताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः । उदराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः ॥ समुद्रवेगो विप्रेन्द्र शैलकंपी तथैव च । वृषमेषप्रवाहश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ धूम्रश्वेतः कलिङ्गश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा । प्रियकश्चैकनन्दश्च बहुवीर्यः प्रतापवान् ॥ आनन्दश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा । क्षेमबाहुः सुबाहुश्च सिद्धपात्रश्च सुव्रतः ॥ गोव्रजः कनकापीडो महापरिषदेश्वरः । गायनो दमनश्चैव बाणः खड्गश्च वीर्यवान् ॥ वैताली गतिताली च तथा कथकवातिकौ । हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह ॥ रणोत्कटः प्रहासश्च वेतसिद्धश्च नन्दकः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[एकादश-स्कन्ध]

इति

श्रीमद्भागवतभाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वर्गीय—महामहोपाध्याय अस्मत्पितृचरण पण्डित विद्याधरशास्त्रि गौड स्मारक—
भारतीय-कर्मकाण्ड-मण्डल की ६६ पुष्पलता

[द्वादश-स्कन्ध]

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

['सरस्वती' भाषाटीका दृष्टान्त और 'प्रकाश' टिप्पण से अलंकृत]

संपादक—उत्तरप्रदेशीय सरकारद्वारा सम्मानित विद्वान् आचार्य—श्रीदौलतराम गौड,
वेदाचार्य, मीमांसाशास्त्री, कर्मकाण्डशास्त्री, पौरोहित्यरत्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[भागवत महापुराण का श्रवण करना अत्यावश्यक]

यैर्न श्रुतं भागवतं पुराणं नाराधितो वै पुरुषः पुराणः ।
हुतं मुखेनैव धराऽमराणां तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम् ॥

(भागवतदानमें विशेषता)

श्रीमद्भागवतं दद्याद्वैष्णवाय द्विजन्मने । शक्तिश्चेन्न विलम्बेत चलमायुर्विचारयन् ॥ श्रीमद्भागवतं साक्षाद्भगवद्रूपमद्भुतम् । यो दद्याद्वैष्णवाय च पण्डिताय द्विजन्मने ॥ सकोटिकुलमुद्धृत्य ह्यप्सरोगणसेवितः । विमानमधिरुह्यैति गोलोकं योनिदुर्लभम् ॥ कन्यादानसहस्राणि वाजपेयशतानि च । सधान्यक्षेत्रदानानि तुलादानानि यानि च ॥ महादानानि यान्यष्टौ छन्दोदानानि यानि च । श्रीभागवतदानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ तस्माद्यत्नेन तद्देयं वैष्णवाय द्विजन्मने । संभूष्य वस्त्रभूषाभिर्हेमसिंहासनस्थितम् ॥ (पुरुषोत्तममाहात्म्य)

[मरणावस्थाके सान्निध्यमें भागवतके पाठ का क्रम]

गरुडपुराणे—श्लोकं श्लोकार्धपादं वा योऽन्ते भागवतं पठेत् ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥

(किन किन स्कन्धपाठ श्रवणसे विशिष्ट लाभ)

गौरीतन्त्रे—प्रथमस्कन्धश्रवणाद्वैष्णवं तनयं लभेत् । द्वितीयस्कन्धश्रवणात्परमाङ्गतिमाप्नुयात् ॥ तृतीयस्कन्धश्रवणाल्लिङ्गदेहेन मुच्यते । चतुर्थस्कन्धश्रवणात्परमं पदमाप्नुयात्॥ पञ्चमस्कन्धश्रवणान्मुक्तो भवति नारकैः । षष्ठस्य श्रवणादेवि ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ सप्तमस्कन्धश्रवणात्सत्सङ्गतिमवाप्नुयात् । अष्टमश्रवणादेवि ऐश्वर्यमतुलं लभेत् ॥ नवमस्कन्धश्रवणात्सन्ततेर्वृद्धिमाप्नुयात् । दशमश्रवणमात्रेण रसास्वादी भवेद् हरेः ॥ एकादशस्य श्रवणात् ज्ञानविज्ञानभक्तिमान् । द्वादशश्रवणादेवि आश्रयं लभते नरः ॥ बहुना किमिहोक्तेन सर्वं सर्वत्र तिष्ठति ।

(श्रीमद्भागवतसे क्या नहीं मिल सकता)

विद्याप्रकाशो विप्राणां राज्ञां शत्रुजयो विशाम् ।
धनं स्वास्थ्यं च शूद्राणां श्रीमद्भागवताद्भवेत् ।
योषितामपरेषां च सर्वं वाञ्छितपूरणम् ।

कुछ बीजों का संकलन—

कृष्ण–क्लीम् । शर्मद–क्ष्रीं । शापह–हुं । जमद–वं । क्रामद–क्लों । रक्षा–हीं । वायु - यम् । अग्नि–रम् । वरुण–वां चन्द्र–ठं । पृथ्वी–लं । प्रणव–ॐ । वाग्भव–ऐं । माया–हीं । लक्ष्मी–श्रीं । पाश–आं । कला–हुं । गरुड–क्रौं । अंकुश–क्रों । काली–क्लीं । सिद्ध–क्रां । धर्म–क्रैं । जया–क्रं । हयग्रीव–क्रूं । काम–क्लीं । गो–क्रं । साध्य–क्रें । वधू–स्त्रीं । महाक्रोध–च्रूं । क्षेत्रपाल–क्षौं । कूर्च–हूं । प्रासाद–हौं । शाकिनी–फ्रें । चण्ड–फ्रों । विश्व–प्रौं । शीर्षक–चं । शल्य–छं । शंकू–जं । निषढ–झं । टेति–जं । कील–टं । अस्थिभेदी–ठं । वैतस्तिक–डं । कटकट–ढं : रज्जु–णं । उन्माथ–तं । संमाथ–थं । क्षेपणी–दं । मुष्टिका–धं । रणी–नं । छुरिका–पं । दिग्–फं । संवर्ग–वं । ईली–भं । पाली–मं । कुला–यं । फली–रं । तर्ज्जनी–लं । धुमला–वं । वेधी–शं । दुरी–षं । दर्वी–सं । गुड–हं । द्रुमक्षं । सुधा–षौं । वषट्–वषट् । कभय–कं । कौरज–खं । गणेश–गं । कर्तरी–घं । शतघ्नी–ङं ।

—दौलतरामगौड

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१—रुद्रचिन्तामणौ—रोगोत्पातादिशान्त्यर्थे नैव कालादिशोधनम् । ईश्वराराधनार्थे वाथवा पापापनुत्तये ॥ यदि रुद्राद्यनुष्ठानं न मुहूर्तादिचिन्तयेत् । न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम् ॥२—षडङ्गानि सकृत् जप्त्वा रुद्रं च नवधा जपेत् । अन्ते जप्त्वा षडङ्गानि जपन् रुद्रीं विधानवत् ॥ ३—होमस्तस्य दशांशेन कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा । ४—गच्छ गच्छ महादेव स्वस्थाने परमेश्वर । यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय कृत्स्नशः । ऋद्धिं च विपुलां दत्वा पुनरागमनाय च ॥ ५—भूतशुद्धिं विना कर्म क्रियते यज्ञयादिकम् । तत्सर्वं निष्फलं यस्मात्तस्मातां पूर्वमुचरेत् ॥ ६—दक्षिणाहेमरूप्यादिगजवाजिरथापि वा । तुलाप्रभृतिदानानि देयानि विविधानि च ॥ एवं कृते भवेत्सिद्धो जपिनो जप इष्टदः ॥ ७—शारदातिलके—गन्धाष्टकं तत्त्रिविधं शक्तिविष्णुशिवात्मकम् । चन्दनागुरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचनाः । जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः ॥ चन्दनगुरुह्रीवेरकुष्ठकुङ्कुमसेव्यकाः । जटामांसीमुरमिति विष्णोर्गन्धाष्टकं विदुः ॥ चन्दनागुरुकर्पूरतमालजलकुङ्कुमम् । कुशीतं कुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं विदुः ॥ गणेशगन्धाष्टकम्-चन्दन, चोर, रोचन, अगर, मृग, मृगकामद, कस्तूरी और कपूर या चन्दन, अगर, रोचन, कुंकुम मद [रक्तचन्दन] ह्रीवेर । सूर्यके लिए-जल, केसर, कुष्ठ, रक्तचन्दन, चन्दन, उशीर, अगर और कपूर । ८—संस्काररत्नमालायाम्-सुवर्णकपिला पूर्णा द्वितीया गौरपिङ्गला । तृतीया चैव रक्ताक्षी चतुर्थी गुडपिङ्गला । पञ्चमी बहुवर्णा स्यात् षष्ठी च श्वेतपिङ्गला । सप्तमी श्वेतपिङ्गाक्षी अष्टमी कृष्णपिङ्गला ॥ नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुच्छपाटला । स्मृत्यन्तरे-एकवर्णा तु कपिला इत्यपि कपिलालक्षणमुक्तम् । नवाम्रपल्लवाभा या पीतनेत्रा सुलक्षणा । सा धेनुः कपिला ज्ञेया साक्षाद्विष्णुस्वरूपिणी ॥ लाक्षारससमानाभा श्वेतरोम्णी ललाटतः । सा रक्ता कथिता विष्णुस्वरूपा धेनुरुत्तमा या गौः स्फटिका संकाशा सुस्निग्धा स्निग्धलोचना । सा गौः श्वेता समादिष्टा मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥ अतसीपुष्पसंकाशा लम्बपीतपयोधरा । सा नीली सुरभिर्ज्ञेया महापापविनाशिनी ॥ भिन्नाञ्जनसमानाभा पीनोध्नी चारुमस्तका । सा कृष्णा कृष्णरूपा च महादोषनिवारिणी ॥ ९—प्राणतोषिणी—बाहौ च धारणात्ताम्रं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । हस्तयोर्धारणादेव सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥ कर्णयोर्धारणात्ताम्रं कोटितीर्थफलं लभेत् । कण्ठे च धारणात्ताम्रं योगी मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ताम्रमिति षष्ठ्यर्थे द्वितीया । १०—पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत् । यथा कथञ्चिद् विधिना रमणीयं तु कारयेत् ॥ ११—त्रिकरे पिण्डदाने च तर्पणे स्नानकर्मणि । आचान्तः सन्प्रकुर्वीत त्यजेत् दर्भं सदा बुधः ॥ १२—प्रक्षालितैस्तिलै कृष्णैस्तर्पयेत्तु पितृन्सदा । १३—ब्रह्मयामले शैवागमे च—तारताम्रसुवर्णानामर्कः षोडशरवेन्दुभिः । त्रिलोहजनितामूर्तिर्मृत्युदारिद्र्यनाशिनी ॥ दशहेम, द्विषट् ताम्रं रौप्यं षोडशकं तथा । कांस्यं चतुर्गुणं कार्यं पाः [आ] रदं सप्तभागकम् ॥ लोहयुग्मं तथा चन्द्रं त्रपुमेलनसंयुतम् । सप्तधातून् क्रमेणैव मूर्तिः सर्वत्र सिद्धिदा ॥ किञ्चित्सत्वेन संमिश्रं वागैश्वर्यप्रदायिनी ॥ १४—आचारभूषणे-सर्वत्र पावनी गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुष्यति । म्लेच्छस्पर्शे सुराभाण्डे कूपादिजलमिश्रणे ॥ हरते धृतानि पुष्पाणि ताम्रपात्रे च चन्दनम् । गङ्गोदकं च चर्मपात्रे निषिद्धं सर्वकर्मसु ॥ १५—आन्हिकभास्करे— शालग्रामशिलावारि सोमपानं दिने दिने । पात्रान्तरेण तद्ग्राह्यं न करेण कदाचन (करेण सुरया समम्) । श्रीविष्णोः पादसलिलं करे कृत्वा मुखे क्षिपेत् । अदत्वा तु पिबेत्तोयं रौरवं नरकं व्रजेत् । १६—भट्टकृतान्हिके शिवनारदसंवादे—सर्वं बाणार्पितं ग्राह्यं भक्ताभक्तैश्च सर्वदा । ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते ॥ १७—विधान मालायां दानप्रस्तावे वृक्षदानाशक्तौ तत्प्रत्याम्नायः चतुर्वर्गचिन्तामणौ वृक्षगुल्मलतादीनां दानं प्रत्यक्षमेव हि । तासामभावे राजेन्द्र गोमूल्यं तत्र कल्पयेत् ॥ वत्सरान्तं समारभ्य यावद्वर्षचतुष्टयम् । तावद् गोदानिकं कर्म कुर्यात्तत्फलसिद्धये ॥ १८—स्कान्दे- पुण्ड्रोद्धृतश्चन्दनाद्यैरिति भस्म न सन्त्यजेत् । लौकिकं चन्दनाद्यं च भस्मोपरि न धारयेत् ॥ १९—एला द्राक्षा च खर्जूरी वातादु श्रीफलं तथा । शर्कराखण्डसंयुक्तं पञ्चखाद्यमिति स्मृतम् ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

२०—शिवरहस्ये– षट्पत्रेण तु विल्वेन पूजितस्तु स्वयं शिवः । ददाति शिवसायुज्यं सप्तपत्रार्चितस्तथा ॥ षट्पत्रैः सप्तपत्रैश्च विल्वपत्रैः शिवोऽर्चितः । एकेन लक्षपत्रेण सौवर्णानां फलं लभेत् ॥ पञ्च पत्रं भवेद् विल्वं पञ्चवक्त्रः स्वयं शिवः । पञ्चपत्रार्चितो देवो लक्षपत्रार्चितो भवेत् ॥ २१—पवमानपद्धतौसमुद्रगानदीतीरे सङ्गमे वा शिवालये । आरामे विष्णुगेहे वा देवखातादिसन्निधौ ॥ गृहस्येशानभागे वा गङ्गातीरे विशेषतः । स्थण्डिले पर्वताग्रे वा गृहाग्रे वा गृहाङ्गणे ॥ मण्डपस्तु प्रकर्तव्यः शुभलक्षण-लक्षितः । गृहाग्रे यदि कुर्वीत तत्समां कुं परित्यजेत् ॥ २२—विद्यार्णवतन्त्रे–यस्य मन्त्रस्य ये न्यासाः कर्तव्या सिद्धिमिच्छता । जपतर्पणहोमार्चाः सिद्धिमन्त्रकृता अपि ॥ अङ्गन्यासादिभिर्हीना न दास्यन्ति फलान्यपि । २३—पूर्वेऽग्निर्देवता विष्णुर्दक्षिणेन हर स्थितः । पश्चिमेन स्थितो ब्रह्मा एता वै अग्निदेवता ॥ २४—देवतानां प्रातर्होमस्तु प्रहरार्धेन भूतिदः । मध्यान्हे तु मनुष्याणां मोक्षहेतो स्त्रियामिकः ॥ अपराह्णे पितृणां च सन्ध्यायां गुह्यभौतिकम् । रात्रौ पापविनाशार्थं दिवासिद्धिप्रसाधने ॥ प्रहरार्धे तु होतव्यमर्धरात्रे तदायुषम् ॥ तदायुधम् ॥ प्रत्यूषे पुत्रदं वत्स उदये सार्वकामिकम् ॥ २५—सत्याषाढसूत्रे—केशानां नास्ति नारीणां वपनं व्रतसत्रयोः । गोवधादिषु सर्वेषु छेदयेदङ्गुलद्वयम् ॥ २६—दिनकरोद्योते—अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः । रूपनारायणस्तु–चूतस्थाने वेतसमाह । पञ्चगव्यसमन्वितमितिक्वचित्पाठः । २७—यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम् । यत्रान्यदपि तद्गेहे, तदाचार्याय निवेदयेत् ॥ २८—प्रतिष्ठात्रैविक्रम्याम्–ततो मुहूर्तं विश्रम्य रत्नन्यासं समाचरेत् । २९—विश्वकोषे—स्वर्णं रूप्यं च ताम्रं च रङ्गं यशदमेव च । शीशं लोहं पारा रसश्चेति धातवोष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ अष्टधातुमयप्रतिमानिर्माणे तु रसं विहाय पित्तलं ग्रहणम् । आरकूटं तथैव चेति हेमाद्रिः भविस्योक्तेरितिभेदः । सीसा, लोहा, फौलाद, सुवर्ण, चांदी, पीतल, काँच, लौह, मुण्डलौह या सोना, चांदी, तांवा, रांगा, सीसा पीतल फौलाद । सुवर्णं रजतं ताम्रमारकूटं तथैव च । लोहं त्रपु तथा सीसं धातवः परिकीर्तिताः ॥ ३०—आचारेन्दौ-एका गणधिपे दद्याद्वे सूर्ये त्रीणि शङ्करे । चत्वारि केशवे दद्यात्सप्ताश्वस्थे प्रदक्षिणाम् ॥ एकहस्तप्रमाणं च एका चैव प्रदक्षिणा । अकालं दर्शनं चैव हन्ति पुण्यं पुरातनम् ॥ चण्डीविनायकयोरेकाऽपि प्रदक्षिणा कार्या । विशिष्य विधानान् । ३१—चित्रभानुमनड्वाहं देवं गोष्ठं चतुष्पथम् । ब्राह्मणं धार्मिकं चैव नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ॥ ३२—वैदिका-वर्णमिच्छन्ति स्वरमिच्छन्ति गायकाः । मक्षिका व्रणमिच्छन्ति अर्थमिच्छन्ति पण्डिताः ॥ ३३—अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च समिन्मध्यं प्रगृह्य च । मन्त्रान्ते जुहुयाद्वह्नौ समिदहोमो विधीयते ॥ ३४—डामरतन्त्रे—मन्त्राणं पल्लवो वासो मन्त्राणां प्रणवः शिरः । शिरः पल्लवसंयुक्तो मन्त्रः कामदुधो भवेत् ॥ ॐकारमुखरौ मन्त्रौ वेदागमसमुद्भवौ । पल्लवस्त्वागमे मन्त्रे वैदिके नास्ति पल्लवः । ३५—तन्त्रान्तरे—महाभिषेकं सर्वत्र शङ्खेनैव प्रकल्पयेत् । सर्वत्र प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना ॥ ३६—आचारेन्दौ—शिवं गवयशृङ्गेण केशवं शंखवारिणा । विघ्नार्कौ ताम्रपात्रेण स्वर्णेन जगदम्बिकाम् ॥ ३७—द्रवीभूतं घृतं चैव द्रवीभूतं च चन्दनम् । नार्पयेन्मम तुष्टयर्थं घनीभूतं तदर्पयेत् ॥ ३८—नारदपञ्चरात्ररक्षायाम्—अलाभे दन्तकाष्ठानां प्रतिपिद्धदिनेस्वपि । अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्भविष्यति ॥ ३९—अश्नाताशी मलं भुङ्क्ते अजपः पूयशोणितम् । अहुताग्निः कृमिं भुङ्क्ते अदाता कीटमश्नुते ॥ ४०—असंख्याताश्च संख्यातः सहस्रगुण उच्यते । ४१—न गृहे करवीरोत्थैः कुसुमैरर्चनं हितम् । ४२—देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदण्डिनम् । नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुद्ध्यति ॥ ४३—विधुरो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । परार्थं कर्म कुर्वाणा पातयन्ति पतन्ति च ॥ ४४—जनने मरणे चैव श्वशृगालमृगादिभिः । स्पृष्टे च विम्बे तन्त्राणां सङ्करे समुपस्थिते ॥ एवमादिषु चान्येषु संप्रोक्षणविधिर्भवेत् ॥ व्यत्यये परिवाराणां भोगादीनां च गौतमः । पूर्ववत्स्नपनं कृत्वा शान्तिहोमं समाचरेत् ॥ ३५—स्मृत्यन्तरे—कुशमालां तु यः कण्ठे समावहति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सर्वदा । लिप्यते न स तु थापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ करे कण्ठे शिखायां च कर्णयोरुभयोरपि । पवित्रधारको यश्च न स पापेन लिप्यते । कुशासनं सदा पूतं यतीनां तु विशेषतः । कुशाभावे द्विजश्रेष्ठः काशैः कुर्वीत यत्नतः । तर्पणादीनि कर्माणि काश्यः कुशसमा स्मृताः ॥ कुशाभावे कुशस्थाने काशं दूर्वां वा दद्यात् ४६—पूजाकाले होमकाले प्रागुत्तरतथाग्रयोः । दूर्वाविल्वेषु या पूजा प्रागग्रेषु विधीयते ॥ चतुरङ्गुलेषु या पूजा चतुःकाले विधीयते । प्रागग्रं पूजयत्येव धर्मकामार्थमोक्षदः । दक्षिणाग्रेषु यः पूजां शत्रुनाशो भवेदिति ॥ पश्चिमोत्तरकाग्रेषु कामो भोगश्च नित्यशः ॥ ४७—वामपात्रे वसंब्रह्म पद्मनाभश्च दक्षिणे । मध्यपात्रे स्थितः साक्षात् साम्बः सर्वार्थसाधकः ॥ इन्द्रादयो लोकपाला वृत्ताग्रे परिकीर्तितः ॥ ४८—शैववागमे स्कान्दे च—पार्थिवपूजास्थानम्—पाषाणे दारुजे देशे दर्भान्तरगते स्थले । पुष्पप्रकरसङ्कीर्णे पाणौ वा वैदिका भुवि ॥ सविल्वताम्रपात्रे वा स्थापयेत्पार्थिवं शिवम् । ४९—योगिनीतन्त्रे—यथा नाना-जलं देवि ! गङ्गायां पतितं यदि । गङ्गैव जायते सर्वं तथा तेजः सुरेश्वरि ॥ काशी लग्नं हि यत्किञ्चित्काशी भवति तत्क्षणात् । अण्डजा उष्मजाश्चैव उद्भिजाश्च जरायुषाः । ते सर्वे मुक्तिमायान्ति काश्याश्चेद्भाग्यतो मृताः ॥ ५०—इयं वाराणसी देवि ! महातेजोमयी शुभा । युगभेदाज्ञनैरेव दृश्यते हि चतुर्विधा ॥ कृते रत्नमयी काशी त्रेतायां स्वर्णजा स्मृता । द्वापरे सा शिलारूपा कलौ भूमिमयी शुभा । ५१—गन्धर्वतन्त्रे—आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादुका तथा । छायां कलत्रमन्यच्च यद्गुरोस्तत्प्रपूजयेत् ॥ गुरोशय्यासनं पीठमुपानच्छत्रपादुकाम् । स्नानोदकं तथा छायां लङ्घयेन्न कदाचन ॥ ५२—श्रुतिस्मृतिविरुद्धश्च जपं रात्रौ विवर्जयेत् । ५३—अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा । निरासनः शयानो वा गच्छन्नुस्थितः एव वा ॥ रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत्तिमरालये । प्रलपन्वा जपेद्यावत्तावन्निष्फलमुच्यते ॥ सकृदुच्चारिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत् । प्रोक्ते पामरशब्दे तु प्राणायामं सकृदुच्चरेत् ॥ बहुप्रलापे चाचम्य न स्याङ्गानि ततो जपेत् । पतितानामन्त्य जातानां दर्शने भाषणे श्रुते ॥ क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् । कृत्वाचम्य जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम् । ५४—नैरन्तर्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यतिलङ्घयेत् । दिवसातिक्रमात्पुंसः सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ ५५—अस्मिन् यत्र य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः । अत्र भ्रमो महान् दोषस्तस्माद् भ्रान्ति त्यज प्रिये ॥ सर्वकार्येषु सर्वत्र तान्त्रिके वैदिके तथा । अविश्वासो महान् दोषो यत्नतस्तं विवर्जयेत् ॥ ५६—विना मन्त्रेण चेत्पूजा देवता न प्रसीदति । ५७—हस्तमात्रं चतुरस्त्रं गोमयेनोपलेपितम् । अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं वालुकामण्डलं तथा ॥ तत्रापि ले—[ख] पनं कृत्वा तत्र होमः फलप्रदः । ५८—श्रुणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धये । पुष्पं समग्रं जुहुयाच्छतसंख्यास्तिलांस्तथा ॥ लाजा मुष्टिप्रमाणाः स्युर्घृतं कर्षप्र-माणम् । चुल्लुकार्धं मधुक्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत् ॥ समग्रैश्च सखण्डैश्च फलानां च यथेच्छया । रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं न हि ॥ नारिकेलस्य खण्डन्तु स्थूलं कुर्यान्मनः प्रियम् । पर्वस्थाने चेक्षुदण्डं मनः सन्तोषकारकम् ॥ द्राक्षाफलं समग्रं स्याद् गुञ्जामानं ततो भवेत् कर्पूरकौशि [मृगमदः] कादीनां मनः सन्तोषकारकम् ॥ ५९—धूमागारे चान्धकारे चाज्ञाते पूजनं शिवे ! नरकाय महादेव्याः पूजनं विद्धि पार्वती ॥ ६०—न स्वयं छेदयेद्देवि बलिं साधक सत्तमः । बहवो नैव हन्तव्या यदि च्छेदात्मनो हितम् ॥ ६१—आयुर्वृद्धौ तथा शान्त्यै कोटिहोमं चरेन्नृप । कोटिहोमात्परं नास्ति कर्मरिष्टि विनाशने ॥ न तुल्यं तथा राज्ञां महोत्पातविनाशनम् ॥ ६२—विद्यार्णवतन्त्रे—विद्रुमे रचिते यन्त्रे पद्मरागऽथवा प्रिये । इन्दुनीले च वैदूर्ये स्फटिके मरकतेऽपि वा ॥ धनं पुत्रं तथा दारान् यशांसि लभते ध्रुवम् । ताम्रं तु कान्तिदं यन्त्रं सुवर्णं शत्रुनाशनम् ॥ ६३—देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने च चतुष्पथे । पादुकासनविण्मूत्रमैथुनानि विवर्जयेत् ॥ ६४—अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । अष्टम्यां पूर्णिमायां च तेषु नैमित्तिको जपः ॥ ६५—पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा जपेद् य साधकाधमः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुः कीर्तिर्यशः श्रियम् ॥ पुस्तके लिखितान्मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये । ब्रह्महत्यासमं तेषां पातकं परिकीर्तितम् ॥ ६६—अङ्गप्रत्यङ्गकवचस्तोत्रपाठैर्विना मनुः । असंवृत्तः समाख्यातः सिद्धिं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नैव प्रयच्छति ॥ ६७ - मौनं विना जपेन्मन्त्रं राक्षसैर्गृह्यते जपः । मन्त्रोऽपि दुष्टतां याति सिद्धिं नैव प्रयच्छति ॥ ६८—शक्तिसङ्गमतन्त्रे—होमादिकं न सकलं कुमारी-
पूजनं विना ॥ परिपूर्णफलं नैव सकलं पूजनाद् भवेत् ॥ ६९—न प्रातर्मृत्तिकास्नानं न कुर्यान्निशिगोमयैः । ७०—प्रत्यक्षं दन्तकाष्ठं च सप्तकाष्ठं तु मारणे । मोहने
खादिरं प्रोक्तं स्तम्भने चूतपल्लवम् ॥ वश्ये चाश्वत्थकाष्ठन्तु रक्षार्थं वञ्जुलस्य हि ॥ ७१—आत्मस्थानमनुद्रव्यदेहशुद्धिश्च पञ्चमी । यावन्न कुरुते देवि तावद्देवार्चनं न हि ॥ ७२—राज-
कौस्तुभे--सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यडुण्डुभौ । ताम्रौ कुलीरमण्डूकौ आयसः शिशुमारकः । ७३--त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा । सप्तरात्रमथो कुर्यात्क्वचित्सद्योऽधिवासनम् ॥
७४—काञ्चनं हरितालं च सर्वाभावे विनिक्षिपेत् । दद्याद् बीजौषधिस्थाने सहदेवान् यवानपि ॥ सर्वारत्नस्थाने सुवर्णं क्षिपेत् ॥ ७५-पञ्चसूत्रसमायुक्तं शिवलिङ्गं समर्पयेत् । भुक्तिदं मुक्तिदं देवि धना-
रोग्यसुतप्रदम् ॥ लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो भवेत् । त्रिगुणः परिणाहश्च तथा पिण्डी प्रतिष्ठिता ॥ लिङ्गतुल्यं प्रणालं स्यात्पञ्चसूत्रस्य लक्षणम् । ७६—श्यामारहस्ये--लवणार्द्रकपि-
ण्याकगोधूममांसपञ्चकम् । लशुनञ्च महादेवि मांसप्रतिनिधौ स्मृतम् ॥ ७७—देवीपूजा सदा कार्या जलजैः स्थलजैरपि । विहितैर्वा निषिद्धैर्वा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ७८- द्विजानां चैव
सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते । शूद्राणां च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम् ॥ ७९—बृहन्नारदीयपुराणे--श्रीमद्भागवतं भक्त्या श्रोतव्यं पुरुषोत्तमे तत्पुण्यं वचसा वक्तुं विधातापि न शक्नुयात् ॥
८०—सङ्क्रान्तिर्नवमीपूर्णा चाष्टमी च चतुर्दशी । एकादशीव्यतीपाते कर्मलोपं न कारयेत् ॥ ८१--वीराणां जपकालस्तु सर्वकालः प्रशस्यते । सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यं नात्र संशयः ॥
८२--तन्त्रराजतन्त्रे—ऋणदानं तथाऽऽदानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् । न कुर्यात् गुरुणा सार्धं शिष्यो भूष्णुः कदाचन ॥ ८३—विद्यार्णवतन्त्रे-धनेच्छयाभयलोभाद्यैरयोग्यं परिदीक्षयेत् । देवता-
शापमाप्नोति कृतं च विकृतं भवेत् ॥ ८४—तत्तु क्वापि शिष्याय मन्त्रं दत्वा पुनस्तं मन्त्रं गुरुर्न जपति नाराधयति च तं पुनरन्यस्मै कस्मै चिन्न ददाति-इतिवचनं सम्प्रदायो वा न दृश्यते ।
८५—चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा वनचारिणाम् । जनकस्य तु या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥ ८६—भूमावेव कृता पूजा पुत्रायुर्धननाशिनी । ८७—पत्रत्रयात्मिका दूर्वाः प्रशस्ता
अर्घ्यकर्मणि । ८८—प्राणायामैर्विना यद्यत्कृतं कर्मनिरर्थकम् । अतो यत्नेन कर्तव्याः प्राणायामाः शुभार्थिभिः । ८९—दिक्कालनियमो नात्र तिथ्यादिनियमो न च । न जपे कालनियमो
चर्यादिषु बलिष्वपि ॥ स्वेच्छया नियम उक्तश्च महामन्त्रस्य साधने ॥ ९०—अर्धरात्रात्परं यच्च मुहूर्तद्वयमेव च । सा महारात्रिरुद्दिष्टा तद्गतं चाक्षुषं भवेत् ॥ ९१—पूर्वाशा-
भिमुखो भूत्वा वश्यकर्मणि पूजयेत् । दक्षिणाशाभिमुखो भूत्वा मारणे पूजयेत्प्रिये ॥ पश्चिमाभिमुखो भूत्वा पूजयेद् धनसिद्धये । उत्तराभिमुखो भूत्वा शान्तिकर्मणि पूजयेत् ॥
९२—शाक्तप्रमोदे—अनुक्तकल्पे यन्त्रं तु लिखेत्पद्मदलाष्टकम् । षट्कोणकर्णिकं तत्र वेदद्वारोपशोभितम् ॥ ९३—आदौ वेदोदितैर्मन्त्रैरग्न्युत्तारणमाचरेत् । धातुनिर्मितचक्राणां मूर्तीनां च
विशेषतः ॥ ९४—काशहस्तेन नाचामेत्कदाचित् विधिशङ्कया । प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च ॥ ९५—अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च । हेमात्मकपवित्रस्य ह्येकां
नार्हन्ति वै कलाम् ॥ ९६—प्रणवं पूर्वमुच्चार्य देवीप्रणवमुच्चरेत् । वटुकायेति वै पश्चादापदुद्धारणाय च ॥ कुरुद्वयं ततः पश्चाद् वटुकाय पुनः क्षिपेत् । देवीप्रणवमुद्धृत्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये ॥
ॐ ह्रीं वटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु २ वटुकाय ह्रीम् । ९७—आपस्तम्बगृह्ये—त्रिर्देवेभ्यः प्रक्षालयेत्सकृत्पितृभ्यः । ९८—बौधायनगृह्ये—भास्कराङ्गारकौ रक्तौ श्वेतौ शुक्रनिशाकरौ ।
सोमपुत्रो गुरुश्चैव तावुभौ पीतवर्णकौ । कृष्णं शनैश्चरं विद्याद्राहुं केतुं तथैव च ॥ ९९—प्रातःकालेऽथवा पूजा समये होमकर्मणि । जपकाले समस्ते वा विनियोगः पृथक् पृथक् ॥
१००—मनसा विन्यसेत् न्यासान् पुष्पेणैवाथवा मुने । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां वा अन्यथा विफलं भवेत् ॥ १०१--माषाणां षोडशद्वाभ्यां कुर्याद् हेमपवित्रकम् । तेभ्यः स्वल्पतरं न्यूनं न कुर्वीत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व.दाचन ॥ अथेष्टेन सुवर्णेन कारयेदङ्गुलीयकम् । इति आचारभूषणोक्तेः । सुवर्णपवित्रेण सुवर्णप्रमाणपेत्तया । ताम्रतारसुवर्णानामर्कषोडशखेन्दुभिः । कृतात्रिशक्तिमुद्रेयं तीव्रदारिद्र्यना-
शिनी ॥ द्वयङ्गुलं मूलतः कुर्याद् ग्रन्थिरेकाङ्गुलात्तथा । चतुरङ्गुलमग्रं स्यात्पवित्रस्य च लक्षणम् ॥ १०२—वायुपुराणे-दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च । साङ्गुष्ठेन सदा कार्यमसुरेभ्यो-
ऽन्यथा भवेत् ॥ साङ्गुष्ठेन अङ्गुलीसहिताङ्गुष्ठेन । १०३—पुरश्चर्यार्णवे—वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिरेव च । धरण्यां तु भवेद्दुःखं दौर्भाग्यं छिद्रदारुजे ॥ तृणे धनक्षयो हानिः पल्लवे
चित्तविभ्रमः । गोशकृन्मृन्मयं मिश्रं तथा पालाशपिप्पलम् ॥ लोहविद्धं सदैवार्कं वर्जयेदासनं सुधीः । मृगचर्मप्रयत्नेन वर्जयेत्पुत्रवान् गृही ॥ १०४—खादिरेण स्रुवः कार्यः पालाशी तु
जुहूर्भवेत् । त्वन्प्रदेशे तु बिल्वं स्यात्तु अन्यैर्वा यज्ञिकैर्द्रुमैः ॥ तदभावे पलाशस्य पर्णेन हूयते हविः । पलाशपर्णाभावे पर्णैर्वा पिप्पलोद्भवैः । १०५—निष्पीडयित्वा वस्त्रं तु पश्चात्सन्ध्यां
समाचरेत् । अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत् । १०६—वस्त्रं त्रिगुणितं यस्तु निष्पीडयति मूढधीः । वृथा स्नानं भवेत्तस्य निष्पीडयति चाम्बूनि ॥ १०७—ब्रह्मविष्णुमहादेवास्त्रि-
सूत्रीदेवताः स्मृताः । प्रणवो वायुवह्नी च ब्रह्मा नागः शशी रतिः । शिवश्च विश्वेदेवाश्च नवसूत्र्यधिदेवताः ॥ १०८—क्रिया च पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिताः । जया च विजया चैव
मुक्तिदा च सदा शिवा ॥ मनोमयी तु नवमी दशमी सर्वतोमुखी । ग्रन्थीनां देवता ह्येतास्तत्र तत्र निवेदयेत् ॥ १०९—स्वस्तिकासनम्—जानूर्वोरन्तरा सम्यक् कृत्वा पादतले उभे । ऋतुकायो
विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ११०—पद्मासनम्—ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक् पादतले उभे । अङ्गुष्ठौ च निवध्नीयात् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः ॥ १११—भद्रासनम्—सीमन्याः पार्श्व-
योर्न्यसेद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् । वृषणाधः पार्श्वपादौ पाणिभ्यां परिबन्धयेत् । भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः पूजितं पदम् । ११२—वीरासनम्—एकपादमधः कृत्वा विन्यस्यौरौ
तथेतरम् । ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् ॥ ११३—वज्रासनम्—ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्येज्जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली । करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥
११४—धर्मसिन्धौ—षडङ्गन्यासः कार्यो न वा कार्यो न्यासविधिरवैदिकत्वादिति गृह्यपरिशिष्टे स्पष्टम् । एतेनाक्षरन्यास-पदन्यासादीनां मुद्रादिविधेः शापविमोचनविधेश्चावैदिकत्वादनावश्यकत्वं
वेदितव्यम् ॥ ११५—संस्कारगणपतौ—प्रातस्तु सजलं भस्म मध्याह्ने चन्दनान्वितम् । सायं तु केवलं भस्म शैवधार्यं सदैव तु ॥ ११६—आचारतिलके—ब्राह्मणानां नृपाणां च भस्ममिश्रं
च चन्दनम् । ११७—विष्णुस्मृतौ—षडङ्गुलप्रमाणान्तु ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम् । नृपाणां चतुरङ्गुल्यं वैश्यानां द्वयङ्गुलं तथा ॥ शूद्राणामथ सर्वेषामेकाङ्गुल्यं त्रिपुण्ड्रकम् । ११८—पारि-
जाते—आचारेन्दौ च—स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्याद् धृत्वा चैव तु भस्मना । देवानभ्यर्च्य गन्धेन जलमध्ये जलेन तु ॥ शिवभक्तस्य त्रिपुण्ड्रं वैष्णवस्योर्ध्वपुण्ड्रमावश्यकमितरेषां तु विकल्पः ।
११९—पुरश्चर्यार्णवे—अर्धचन्द्रो गणेशस्य देवीभक्तस्य वर्तुलम् । नारायणपरो यस्तु चन्दनस्य त्रिपुण्ड्रकम् ॥ भाले बिभर्ति वन्द्योऽसौ ब्रह्मविष्णु-शिवात्मकम् ॥ १२०—आचारेन्दौ—सन्ध्यादौ
ब्रह्मयज्ञे च होमे देवार्चने तथा । श्रौतमाचमनं प्रोक्तं स्मार्ते स्मार्तं तथा स्मृतम् ॥ पौराणमथवा कार्यं सन्ध्यायां श्राद्धकर्मणि । १२१—शान्तिचिन्तामणौ—अथवा प्रतिमा कार्या लोहमृत्पि-
ण्डदारुभिः ग्रहमूर्तीनामभावे शुक्लतण्डुलैर्ग्रहा स्थाप्याः । १२२—सप्तम्यां भास्करो जातः अष्टम्या च शनिस्तथा । नवम्यां भार्गवो जातो दशम्यां मङ्गलस्तथा ॥ एकादश्यां गुरुर्जातो द्वादश्यां
बुधस्तथा। कृष्णचतुर्दश्यां सोमो राहुर्जातस्तु पूर्णिमाम् । १२३—शुक्रस्य पुष्यनक्षत्रं गुरोरुत्तरफाल्गुनी । आदित्यस्य विशाखा च पूर्वाषाढ़ा च भूमिजे ॥ बुधस्य धनिष्ठा च चन्द्रस्यैव तु
कृत्तिका । रोहिणी च शने ज्ञेया राहोर्भरणिरुच्यते ॥ आश्लेषा चैव केतूनां ग्रहऋक्षान्यनुक्रमात । १२४—ग्रहमण्डलम्—हीने कृते भवेद् हानिर्व्याधिः शोकस्तथाधिके । प्रमाणैस्तु भवेत्सिद्धि
तस्मात्प्रामाण्यमालिखेत् । १२५—विष्णुयागपद्धतौ—नित्याक्षतविष्णवे त षोडशोपचारपूजने । १२६—वीरमित्रोदये—न कार्यं सर्वथा विप्रैः गृहे स्नानाङ्गतर्पणम् । १२७—दानमयूखे—दीना-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूविमिच्छता। न तीर्थे प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि। प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्। तत्र न प्रतिगृह्णीयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि। ११९--पूजयन्ति यथा नित्यं शुभं वा
यदि वा शुभा। अशुभं नाशयत्येते पूज्यमाना ग्रहा शुभा। वृद्धिं प्रयच्छन्ति तस्माद्यत्नेन पूजयेत्॥ १३०--ऋषितर्पणचाण्डालभाषणे शवदाहने। विण्मूत्रोत्सर्जने स्त्रीणां रतिसङ्गे निवीतयः॥ १३१--
मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धिदायिनः। जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा॥ अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायने तथा। तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रिया॥१३२--मन्त्रमहार्णवे--स्नान
त्रिषणं प्रोक्तमशक्तौ द्विसकृत्तथा। अस्नातस्य फलं नास्ति न च पितृन् तर्पयेत्॥ १३३--वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे। त्रिपुराया जपे शस्ता रुद्राक्षैः रक्तचन्दनैः॥ १३४-कार्तिकमाहात्म्ये-
यत्सेवाकारिणे दत्तं दत्तं वार्धुषिकाय च। दासीशाय च यद्दत्तं यद्दत्तं छद्मकारिणे॥ तीर्थप्रतिग्राहिणे च यद्दत्तं तीर्थभोजने। धनुर्धराय यद्दत्तं दत्तं यत्प्रेतभोजिने॥ वैद्यविद्याजीवने च तथा
नक्षत्रसूचिने। ईदृशे दीयते दानं येनासौ नरकं व्रजेत्॥ १३५--अचौरे ऽपि च नक्षत्रे कुर्वीत बुधसोमयोः। युक्तोऽपि तिथिनक्षत्रे न कुर्यात् शनिभौमयोः। पुत्रजीवननेन्दौ तु न च चौरं समा-
चरेत्। निषिद्धेऽपि दिने चौरं कुर्याद्वै बुधशुक्रयोः॥ १३६--वाराहीतन्त्रे--भीष्मपर्वणि या गीता सा प्रशस्ता कलौयुगे। विष्णोर्नामसहस्राख्यं महाभारतमध्यजम्। चण्ड्याः सप्तशतीस्तोत्रं
तथा नाम सहस्रकम्॥ १३७--शाक्तानङ्गतरङ्गिण्याम् रात्रौ रहस्ये पूजायां तुलसी वर्जयेत्सदा। तुलसीघ्राणमात्रेण क्रुद्धा भवति चण्डिका॥ १३८--अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति
यो नरः। सर्वं तद्विजानीयात्फलं क्रुद्धा भवति चण्डिका॥ १३९--बृहद्धर्मपुराणे--पङ्क्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः। अदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातका॥
१४०--आयुष्कामः शिरोलेपं मृदा कुर्यात्द्विजः पुरा। श्रीकामः पादयोः शौचं मृदा पूर्वं समाचरेत्॥ मृत्तिका तु समुद्दिष्टा त्वार्द्रामलकमात्रिका। १४१--गोमयस्य प्रमाणन्तु येनाङ्गं
लेपयेत्ततः। एतच्च मलशोधनं तटे कार्यम्। १४२--मुहूर्तमार्तण्डे-ऋणं भौमे न कुर्वीत न देयं बुधवासरे। ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्सञ्चयं सोमनन्दने॥ १४३--देवार्चनमन्त्राणां नान-
ध्यायः स्मृतः सदा। १४४--पञ्चनिष्कमितामूर्तिः कर्तव्या वाऽर्धमानतः। अष्टादशभुजादेवी सर्वायुधविभूषिता॥ १४५--माहेश्वरतन्त्रे-न्यूनाधिकं न कुर्वीत जपं देवि दिने दिने। १४६--
नदीतीरे श्मशाने च स्वगृहस्य च दक्षिणे। तुलसीरोपणं कृत्वा याति कर्ता यमालयम्॥ १४७--अग्निपुराणे-तर्जन्यङ्गुष्ठमाग्रम्य न मेरुं लङ्घयेज्जपे। प्रमादात्पतिते सूत्रे जप्तव्यं तु शत-
द्वयम्॥ १४८--पाणौ भूम्याहुतावर्घ्ये पिण्डे प्राणाहुतौ तथा। तर्पणे कन्यकादाने न त्यागः सप्तसु स्मृतः॥ १४९--स्मृतिमुक्ताफले-यस्मिन्मासि मृताहः स्यात् तन्मासं पक्षमेव वा।
क्षुरकर्म न कुर्वीत परान्नं च रतिं त्यजेत्॥ १५०-मुहूर्तगणपतौ-धावनाद्गुरुवस्त्राणां देवब्राह्मणवन्दनात्। वेदादिश्रवणाद्वापि साधूनामभिभाषणात्॥ मनः शुद्ध्या जपाद्दानाद् होमा-
द्ध्वरदर्शनात्। नो कुर्वन्ति ग्रहाः पीडां दुष्टस्थानस्थिता अपि॥ १५१-अङ्गुष्ठनामिकाभ्यान्तु वश्यकर्मणि तर्पयेत्। अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यान्तु शान्तिकर्मणि तर्पयेत्॥ तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन
तर्पयेदभिचारके। कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्तम्भने तर्पयेन्प्रिये॥ १५२-देवीरहस्ये-चन्द्रसूर्यग्रहे वापि ग्रासार्वाधिविमुक्तितः। यावत्संख्यामनुर्जप्तस्तावद् होमादिकं चरेत्॥ १५३-बृहन्नीलमणि-
तन्त्रे-शुभे काले शुभे लग्ने शुभर्क्षे च शुभौ तिथौ। प्रतिष्ठां कारयेद्विद्वान्स्वयं वा गुरुणापि वा। होमतर्पयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः। १५५-मध्याह्नसमये देव्याः पूजनं सिद्धिदायकम्। १५६-विद्यार्ण-
वतन्त्रे-नैव निर्वापयेद्दीपं साधकस्तु कदाचन। यस्तु निर्वापयेद्दीपं तस्य लक्ष्मीर्विनश्यति। कूष्माण्डच्छेदिका नारी दीपनिर्वाचकः पुमान्। विधवा च दरिद्रश्च भवेत्सप्तसु जन्मसु॥ १५७-काशीखण्डे-
रात्रौ न दधि भोक्तव्यं दिवा न नवनीतकम्। १५८-बृहद्ब्रह्मसंहितायाम्-सूतके प्रेतकार्ये च तैलाभ्यङ्गे च भोजने। शयने तुलसीमालामधृत्वैव समाचरेत्॥ १५९-स्कन्दपुराणान्तर्गतनागरखण्डे--
मुहूर्तमपि गीतादि यः करोति शिवालये। न तस्य शक्यते कर्तुं संख्या धर्मस्य भद्रक॥ १६०-मुहूर्तमपि यो विघ्नं करोति च महोत्सवे। तस्य पापस्य नो संख्या कर्तुं शक्या हि केनचित्॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१६१–पुरश्चर्यार्णवे–रक्तवस्त्रं न गृह्णीयात् देवीभक्तिपरायणः । १६२–मेरुतन्त्रे–स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने । प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥ रुद्राक्षधारी भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम् । यो विप्रः सततं कुर्यात्तत्कर्म सफलं भवेत् ॥१६३–शान्तौ कुशासनं ग्राह्यं होमयेन्मृगमुद्रया ॥ १६४–पार्थिवं रचयेल्लिङ्गं न न्यूनं नाधिकं क्वचित् । पक्वजम्बूफलाकारं सर्वकामसमृद्धदम् ॥ अतिपुष्टे तु दारिद्र्यं चिपटे रोगसंभवः । मानाधिके वियोगः स्यात्स्वल्पे सिद्धिर्न जायते ॥ द्विखण्डे न भवेन्मृत्युर्वियोगो न सुखं भवेत् । १६५–औषधेऽध्ययने वादे वाहनेशयनेऽशने ; बीजवापे बुधैः प्रोक्तं शोभनं सप्तसु स्मृतम् ॥ मृत्युर्वह्निभयं हानिस्तुष्टिर्द्रव्यागमः सुखम् । क्लेशोऽर्थागमनं प्रोक्तं दिक्षु छिक्काफलं क्रमात् ॥१६६–धृत्वाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां मूले साग्रं कुशत्रयम् । तदग्रैः कृत्स्नरजसां पूर्वस्याव्यपसारणम् ॥ १६७–कर्तव्यं दक्षिणारम्भं त्रिरुदक्संस्थमेव च । गोमयोदकमादाय तेन त्रिरुपलेखनम् ॥ १६८–आज्यस्थाली अर्थात्परिमाणमिति कार्यामहारुद्रादिके तयोः । १६९–पवित्रोपरि कुशावग्रे हित्वा प्रादेशमात्रके । मूलभागे छेदकानां कुशानां स्थापनं तयोः ॥ द्विमूलेन द्वयोः कृत्वा वेष्टनं च प्रदक्षिणम् । छेदकान् छेदमूले च धृत्वा दक्षिणहस्तके ॥ वामे धृत्वा पवित्राग्रावुदगग्रौ कुशौ तथा । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु छेदयेदस्पृन्नखैः ॥ ततो दक्षिणहस्तस्थामुत्तरस्यां कुशांस्त्यजेत् । १७०—अग्नेरुल्मुकमादाय प्रारभ्यैशानकोणतः । पुनरीशानकोणान्तमाज्यादिपरितः शनैः ॥ प्रदक्षिणं भ्रामयित्वा वन्हिमध्ये च तत् क्षिपेत् ॥ १७१–ततो दक्षिणहस्तेन स्रुवमादाय तं ततः । तापयित्वा यथान्यायं प्राङ्मुखमग्नावधोमुखम् ॥ सव्ये धृत्वा तमुत्तानपुष्करं दक्षिणेन तु । कुशानादाय संमार्गास्तदग्रैरुपरिक्रमात् ॥ मूलादारभ्यवक्रान्तं संमृज्य मुखतः पुनः । तन्मूलैर्मूलपर्यन्तं संमृज्याधोऽपि तां स्त्यजेत् ॥ १७२–आज्यमुत्थाप्य चानीय चरोः पूर्वेण तच्छनैः । वन्हेरुत्तरदिग्भागे स्थापयेत्तु खराद्बहिः ॥ चरुमुत्थाप्य चानीयापरेणाज्यं तदुत्तरे । स्थाप्यानुष्ठानसौख्याय स्वपुरोग्नेस्तु पश्चिमे ॥ आज्यादीनि स्थापयन्ति सौम्यदिक्स्थानि याज्ञिकाः । १७३–गृहनिर्गमवामे च वसोर्द्धारा च वेदिका । कार्या विवाहे विद्वद्भिर्गृहे वै पूर्वदक्षिणे ॥ गृहे वै पश्चिमे द्वारे तथा उत्तर एव च । वेदिका च वसोर्द्धारा गृहनिर्गमदक्षिणे ॥ १७४–सपवित्रेण हस्तेनाशेषं तु प्रोक्षणीजलम् । गृहीत्वा तेन कर्तव्या वन्हेः पर्युक्षणक्रिया ॥ ईशानीं दिशमारभ्य पुनरीशानकोणगा । स्थापयेच्च प्रणीतासु पूर्वाग्रे ते पवित्रके ॥ १७५–हीयते यजमानो वै स्रुवमूलस्य दर्शनात् । तस्मात्संगोपयेन्मूलं प्रयत्नेन तु ॥ १७६–चतुर्दशसु चैतासु कर्तुर्दक्षिणहस्तके । अन्वारम्भं कुशैः कुर्याद् ब्रह्मा नान्यत्र संस्मृतः ॥ आघारौ नासिके ज्ञेयावाज्यभागौ च चक्षुषी । वक्त्रोदरं च कुक्षिप्य कटिर्व्याहृतयोः स्मृताः ॥ शिरोहस्तौ च पादौ च पञ्चवारुणके स्मृतम् । प्रजापत्यं स्विष्टकृत् श्रोत्रे द्वे च प्रकीतिते । १७७–प्रत्याहुति च सर्वासामाहुतीनां तु संस्रवम् । स्थापयेत्तत्र होमान्ते विधानात्प्राशनस्य तु ॥ १७८–पूर्वाघारो नैर्ऋतस्तु कोणादीशानकोणतः । होतव्यो वायुकोणात्तु वन्हिकोणान्तमुत्तरः ॥ अग्नेरुत्तरपूर्वार्द्धे अग्नेयमाज्यभागकम् । सौम्यं दक्षिणपूर्वार्द्धे । १७९–यावद्धविरुत्तरार्द्धादवदाय तदाहुतिम् । जुहुयादुत्तरार्द्धेऽग्नावसंसृष्टां हुतेन तु ॥ १८०–प्रणीतामोचनं कुर्यादग्नेः पश्चिमहस्ततः । १८१–आज्यभिन्नं यदा होम द्रव्यं स्याद्विधाबोधितम् । महाव्याहृतिहोमात्प्राक् तदा स्विष्टकृदाचरेत् ॥ ततो व्याहृतिहोमादि सर्वं होमे समापयेत् । १८२–आज्यमेव यदा होमद्रव्यं स्याद्विधिबोधितम् । तदा सकलहोमान्ते स्विष्टकृद्होमाचरेत् ॥ होमान्ते संस्रवं प्राश्याचम्य संमार्जयेत्तनुम् । यथाचारं पवित्राभ्यां वन्हौ ते प्रक्षिपेत्ततः ॥ १८३–योनि त्वं विश्वरूपासि प्रकृतिर्विश्वधारिणि । कामस्या कामरूपा च विश्वयोन्यै नमो नमः ॥ १८४–नाभेः त्वं कुण्डमध्ये तु सर्वदेवैः प्रतिष्ठिता । अतस्त्वं पूजिता देवि शुभदा ऋद्धिदा भव ॥ ततः कुण्डमध्ये निर्ऋतिकोणे वास्तुपुरुषं पूजयेत् । आवाहयामि देवेशं वास्तुदेवं महाबलम् ॥ देवदेवं गणाध्यक्षं पातालतलवासिनम् । १८५–ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम् । ईश्वरैरपि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ १८६–सिंहे गुरुस्तथादित्ये चन्द्रश्चन्द्रर्क्षयस्तथा । गोदावर्यां तथा कुम्भःसंप्राप्तेऽवनिमण्डले ॥ १८७–संस्कारगणपतौ–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पलमेकं दुग्धभागं गोमूत्रं तावदिष्यते । घृतं च पलमात्रन्तु गोमयं तोलकद्वयम् ॥ दधिप्रसृतिमात्रं स्यात्पञ्चगव्यमिदं स्मृतम् । अथवा पञ्चभागानां समानो भाग इष्यते ॥ १८८–एका चण्ड्यां रवौ सप्त तिस्रो दद्यात् विनायके । चतस्रः केशवे दद्यात् शिवे चार्धप्रदक्षिणाम् ॥ अर्धं प्रदक्षिणापि देवालये न गृहे तत्र वृषचण्डाद्यभावात् । १८९–स्मृतिसारे–अशक्तौ निर्जने देशे मृतौ जाते च सूतके । जपेच्च मानसीं सन्ध्यां कुशवारिविवर्जिताम् ॥ १९०–गायत्रीपुरश्चरणे--राष्ट्रभङ्गे नृपक्षोभे रोगार्तौ सूतकेऽपि वा । सन्ध्यावन्दनविच्छित्तिर्न दोषाय कथञ्चन ॥ विद्वत्सङ्घे विवादे च यज्ञे भूपतिदर्शने । सन्ध्यावन्दनलोपोऽयं न दोषो मुनिभिः स्मृतः ॥ १९१–तिलास्तु द्विगुणा प्रोक्ताः यवेभ्यश्चैव सर्वदा । अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धाः गुग्गुलाद्याद्यवैः समाः ॥ आयुः क्षयो यवाधिक्ये यवसाम्ये धनक्षयः । सर्वकामसमृध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि १९२–छर्दिते स्नानसङ्कल्पे क्षुरकर्मणि मैथुने । दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे षट्सु स्नानं विधीयते ॥ अजीर्णेऽभ्युदिते वान्ते श्मश्रुकर्मणि मैथुने । दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते ॥ १९३—अन्नहीनस्तु यो होमो राज्यनाशाय कल्पते । तस्मादन्नं प्रदातव्यं सर्वभूतेषु यत्नतः ॥ १९४—ॐ नमः शिवाय–सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नुयाद्वाञ्छितं श्रियम् । द्विसहस्रं जपेद्रोगान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ त्रिसहस्रं जपेन्मन्त्रं दीर्घमायुरवाप्नुयात् । सहस्रवृद्ध्या प्रजपेत्सर्वान्कामानवाप्नुयात् । १९५—माहेश्वरतन्त्रे–उष्णज्वरे महेशस्य प्रकुर्यादभिषेचनम् । शीतज्वरे तथा कुर्यादभिषेकं हरेर्बुधः ॥ कर्मविपाके—माङ्गल्येषु च कार्येषु सततं कोपवाञ्चरः । उष्णज्वरविभूतः स्यात्तत्पापस्यापनुत्तये ॥ सहस्रकलशस्नानं रुद्रेणेशस्य कारयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या जपेद्वै जातवेदसम् ॥ महार्णवे- देवस्वग्रहणाच्चैव जायते विविधज्वरः । ज्वरो महाज्वरश्चैव रौद्रो वैष्णव एव च ॥ ज्वरे रुद्रजपं कुर्यान्महारुद्रं महाज्वरे । महारुद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्द्वयं जपेत् ॥ १९६–असाध्यस्यापि रोगस्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् । सर्वरोगविनाशाय जपः कार्यो विशेषतः ॥ मृत्युञ्जयस्य रुद्रस्य होमं कुर्याद्दशांशतः । आगमोक्तविधानेन रोगनाशो भवेद्ध्रुवम् ॥ सर्वरोगोपशान्त्यर्थमभिषेकं समाचरेत् । सहस्रकलशैः स्नानं विष्णोर्वा शङ्करस्य च ॥ देवमभ्यर्च्य विप्रेभ्यो दद्यान्मिष्टान्नभोजनम् । तेभ्यश्च दक्षिणां दत्वा रोगेभ्यो मुच्यते ध्रुवम् ॥ कार्यः षडङ्गरुद्रस्य जपो वा रोगशान्तये । महारुद्रविधानेनासाध्यो रोगोऽपि शाम्यति ॥ अपामार्जनसंज्ञेन मालामन्त्रेण मार्जयेत् । मार्जनाद्रोगिणः सर्वे रोगानश्यन्त्यसंशयम् ॥ अच्युतानन्दगोविन्देत्येवं नामत्रयं हरेः । सर्वरोगोपशान्त्यर्थं सततं व्याधिमान् जपेत् ॥ सर्वेषु ज्ञातरोगेषु प्रदद्यात्सततं नरः ॥ पानीयं पायसं मुद्गाः शर्करां घृतसंयुताम् ॥ प्रतिकूलग्रहाणां च जपं होमं च पूजनम् । तद्दोषविनाशार्थं दानं कुर्याद्यथोचितम् ॥ प्रतिरोगं च यद्दानं जपहोमादिकीर्तितम् । प्रायश्चित्तं तु तत्कृत्वा चिकित्सामारभेत्ततः ॥ प्रदद्यात्सर्वरोगघ्नं छायापात्रं विधानतः । १९७–ब्रह्मयामले--खड्गुलाधिके यत्र प्रतिमे धातुनिर्मिते । नित्यं न स्नपयेत् राज्ञो न तु दोषः शिवालये ॥ १९८–विल्वपत्रैरखण्डैर्यः सकृद्देवीं प्रपूजयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १९९–वाराहे–वस्त्रप्रावृतदेहस्तु यो नमेद्देवतां नरः । स तु सञ्जायते मूर्खः सप्तजन्मसु दुःखभाक् ॥ २००–शौनकः–रुद्राक्षैर्विद्रुमैर्वापि स्फाटिकैर्वापि कल्पिता । माला ग्राह्या न काष्ठादिकल्पिता विफला यतः ॥ तुलसीकाष्ठघटितैर्मणिभिर्जयमालिकेतिरामार्चनचन्द्रिकोक्तिर्वैष्णवविषयेति केचित् । २०१–उपाकर्मणि चोत्सर्गे गते मासचतुष्टये । नव यज्ञोपवीतानि धृत्वा जीर्णानि सन्त्यजेत् ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे सूतके द्वितये तथा । श्राद्धकर्मणि यज्ञादौ शशिसूर्यग्रहेऽपि च ॥ २०२–देवीभागवते–चैत्रेऽश्विने तथाऽऽषाढे माघे कार्यो महोत्सवः । नवरात्रे महाराज पूजा कार्या विशेषतः ॥ २०३-दानसंग्रहे—देवशय्याशिरः प्राच्यामवाच्यां तु मुखे शिरः । प्रतीच्यां तीर्थशय्याया उदीच्यां प्रेमकर्मणि ॥ २०४–तन्त्रचिन्तामणौ–कुशोदकैः पञ्चगव्यैर्मालां प्रक्षालयेत्सुधीः । अश्वत्थपत्रनवके मालां संस्थापयेदथ ॥ मातृकास्तत्र विन्यस्य सद्योजातादिपञ्चभिः । अभिमन्त्र्य ततो मन्त्रैर्मालां सम्यक् प्रपूजयेत् । २०५—वृद्धमनुः –वस्त्रेणाच्छाद्य च करं दक्षिणं यः सदा जपेत् । तस्य स्यात्सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम् ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

२०६—संमोहनतन्त्रे--चतुर्भिर्वा त्रिभिर्वापि द्वयैनैकेन वा पुनः। सर्वैरावर्णै रेवं भोगार्थी विस्तरे त्यजेत् ॥ २०७—उत्तरतन्त्रे—तत्राङ्गुलीभिर्न्यासः स्याच्छिरस्यैकैत्र मध्यमा। तर्जनीमध्यमाभ्यां तु चक्षुसोर्न्यास उच्यते ॥ अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु मुखे न्यासः प्रकीर्तितः। हृदये ज्ञानमुद्रा स्यादङ्गुष्ठश्च कनिष्ठका ॥ नाभौ प्रकीर्तिता गुह्ये अनङ्गुष्ठाः प्रकीर्तिताः। सर्वाजानौ च पादे च पश्चापि परिकीर्तितः। २०८ अर्घ्यपात्रं तु वायव्ये नैरृत्यां पाद्यपात्रकम्। आग्नेय्यां स्नानकलशं ईशे त्वाचमनीयकम् ॥ मध्ये तु मधुपर्कं स्यादित्येतत्पात्रलक्षणम्। २०९—कार्तिके मार्गशीर्षे वा माघे वैशाख एव च। श्रावणे बहुले पक्षे व्रतस्यारम्भणं शुभम् ॥ २१०—एता मुद्राश्चतुर्विंशद्गायत्र्याः सुप्रतिष्ठिताः। वृथा मन्त्रजपश्चैव स्नानं भोजनमेव च ॥ तथा वै तीर्थयात्रा च मुद्राहीने वृथा हि सा। यज्ञश्च निष्फलस्तेषां होमो देवार्चनं तथा ॥ तस्मान्मुद्रा महाज्ञेया विद्वद्भिर्यत्नमास्थितैः। २११—गृहीससंपुटं कुर्यान्मोचार्थी संपुटं विना' इतिवाराहीतन्त्रोक्तत्वात् गृहस्थः संपुटं विना न पठेत्। अत्र सावर्णिः सूर्यतनयः' इत्यादि सावर्णिर्भवितामनुरित्यन्तं पाठक्रमः। कश्यपसंहितायाम्—२१२—नमः पक्षिराजाय वेदपक्षयुग प्रभो। वैनतेय नमस्तेऽतु मरुताय नमो नमः ॥ २१३—त्रिस्थलीसेतौ-- सदा कृतयुगं चास्तु सदा चास्तूत्तरायणम्। सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवतां सताम् ॥ सदा कृतयुगं चात्र महापर्वसदात्र वै। न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये ॥ सदा सौम्यायनं तत्र सदा तत्र महोदयः। सदैव मङ्गलं तत्र यत्र विश्वेश्वरस्थितिः ॥ २१४—दातव्यमिति काश्यां नो वक्तव्यं मनुजैः क्वचित्। अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥ दशोत्तरं पर्वसु च शतं चन्द्रग्रहे भवेत्। सूर्यग्रहे सहस्रं तु मरणेऽनन्तकं स्मृतम् ॥ तस्माद्दातव्यमित्युक्तं देयमेव न चान्यथा। बुधैस्तदेव वक्तव्यं दातुं शक्यं यदैव हि ॥ २१५—पूजयित्वा महादेवं काशीनाथं जगद्गुरुम्। प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा प्रणमेद्दश पञ्च वा ॥ २१६—अग्रे पृष्ठे तथा वामे समीपे गर्भमन्दिरे। जपहोमनमस्कारान्न कुर्याद्देवतालये ॥ अग्रे मृत्युमवाप्नोति पृष्ठे त्वपचयः स्मृतः। वामभागे भवेन्नाशो दक्षिणे सर्वकामदः ॥ २१७—यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय दिने दिने। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरीम् ॥ २१८—पश्चिमद्वारमारभ्य द्वारपाला अमीक्रमात्। नन्दी चैव महाकालो गणेशो वृषभस्तथा ॥ ततो भृङ्गिरिटिस्कन्दावुमा चण्डेश्वरौ ततः। एते चाष्टौ महेशस्य द्वारपालाः प्रकीर्तिताः ॥ २१९—नन्दः सुनंदचण्डौ च प्रचण्डबलसंज्ञकौ। प्रबलो भद्रनामा च सुभद्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ क्रमादमी समभ्यर्च्या वैष्णवद्वारपालकाः ॥ २२०—वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च महोदरगजाननौ। लम्बोदरश्च विकटो विघ्नराजस्ततः परम् ॥ धूम्रवर्णाश्च संप्रोक्ता विघ्नेशद्वारपालकाः। ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥ वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा च श्रिया सह। एता देव्या क्रमादष्टौ शक्तयो द्वारपालकाः ॥ २२१—मण्डपाभ्यन्तरे विद्वान् वामपादपुरः सरम्। प्रविश्य विघ्नान् त्रिविधान् पातालवन्तरिक्षगान् ॥ उत्सार्यास्त्रं समुच्चार्य पार्ष्णिघातादिभिस्त्रिभिः। २२२—विघ्नानुत्सार्य विधिवद् द्वारमाच्छाद्यवाससा। पञ्चगव्यार्घ्यतोयाभ्यां प्रोक्षयेन्मण्डपान्तरम् ॥ २२४—भैरवीतन्त्रे—मेरुपृष्ठऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द ईरितम्। पृथिवीदेवता प्रोक्ता विनियोग निजासने ॥ २२४—गौतमीतन्त्रे—उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा भुत्वा प्रयतमानसः। स्वस्तिकासनमासीनः पद्मासनमथापि वा ॥ इत्यादि। २२५—देवीरहस्ये—ऋषिहीनो भवेन्मन्त्रो जप्तो जन्मान्तरेषु च। प्रत्यवायकरो लोके साधकानां महेश्वरि ॥ २२६—बीजहीनो भवेन्मन्त्रः सिद्धिहानिः करः शिवे। २२७—पर्वताग्रे नदीतीरे देवतायतने तथा। एकान्ते च शुचौ देशे जपन्नियतमानसः ॥ ब्रह्मचर्यधरो वीरो मिताहारो जितेन्द्रियः। अमृतं मत्सरं दम्भं त्यजेत्प्रतिग्रहं तथा ॥ २२८—पञ्चकृतानि लोकेऽस्मिन् पुरश्चरणमुच्यते। यद्यत्संख्यं विहीयते तत्संख्याद्विगुणं जपः ॥ २२९—जपकाले महेशानि भार्यां यत्नेन वर्जयेत्। २३०—प्रतिमां कारयेद्देवी पलेन रजतस्य च। पलार्धेन महेशानि साध्यस्य प्रतिमां शिवे ॥ २३१—बलिं विना महादेव्याः हिंसा सर्वत्र वर्जिता। २३२—स्वर्णपात्रेऽथवा भूर्जे रौप्ये वा प्यथ सुव्रते। विलिखेद् हेमलेखन्या गन्धाष्टकसमन्वितम् ॥ दूर्वाकाण्डेन संलिप्य कुशमूलेन वा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुनः। ३३३-रात्रौ यदि जपेद् मन्त्रं स च कल्पद्रुमो भवेत्। तिथिक्रमेण देवेशि लतया वेष्टितो भवेत्॥ तथामासेन सिद्धिः स्यात्कहस्तजपमानतः। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि जप्यते॥ तदैव महतीसिद्धिर्देवानामपि दुर्लभः। २३४—कुमारीं पूजयेद् यत्नैर्द्रव्यैर्बहुविधैरपि। होमादिकं तु सकलं कुमारीपूजनं भवेत्। एकं द्वाभ्यां त्रिभिश्चैव सप्तभिर्वाष्टभिः पुनः॥ महाभयानि दुर्भिक्षाद्युत्पातानि कुलेश्वरि। दुःस्वप्नमपमृत्युश्च अन्ये ये ये समुद्भवाः॥ कुमारी पूजनादेव न तस्य प्रभवन्ति हि। २३५—आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा दिवसे परमेश्वरि। रात्रौ उदङ्मुखः कुर्याद् आह्निकं प्रियमुत्तमम्॥ २३६—एष्टव्या बहव पुत्राः अग्रप्येकः कुलं वसेत्। किं गया पिण्डदानेन किं काशीगमनेन च॥ यदि भाग्यवशेनैव कालीं सरस्वतीं शिवे। अन्नपूर्णां महादेवीं पूजयति गृहाङ्गणे॥ स ब्राह्मणः स वेदज्ञः स वशी स च साधकः। २३७—अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्—वेदवेदान्ततत्त्वज्ञो विद्यास्थानविचक्षणः। ऊहापोहनिधानज्ञो दैवपित्र्यक्रियापरः॥ अवक्ता चापवादानामकर्ता पापकर्मणाम्। अमत्सरी परोत्कर्षे परदुःखे घृणापरः॥ दयावत्सर्वभूतेषु हृष्टः परसुखोदये। पुण्येषु मुदितायुक्त उपेक्षावान्कुबुद्धिषु॥ तपः सन्तोषशौचाढ्यो योगस्वाध्यायतत्परः। पञ्चरात्रविधानज्ञस्तन्त्रान्तरविचक्षणः॥ सामान्यस्यापवादस्य वेत्ता यन्त्रविचक्षणः॥ कुण्डमण्डलभेदज्ञः क्रियाकरविचक्षणः॥ अध्यात्मज्ञानकुशलः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः। सदन्त्रवायसंभूत आचार्यो नाम वैष्णवः॥ २३८—विष्णुधर्मोत्तरे— पुष्पाभावे हि देयानि पत्राण्यपि जनार्दने। पत्राभावे पयो देयं तेन पुण्यमवान्पुयात्॥ २३९—हेमाद्रौ--विवाहमेखलाबन्धप्रतिष्ठादिषु कर्मसु। आपन्नेसु तु यद्दामक्षयं तदुदाहृतम्॥ २४०—मेरुतन्त्रे--एषां जपे च होमे च सङ्ख्यानोक्ता मनीषिभिः। तेषामष्टसहस्राणि सङ्ख्यास्याज्जपहोमयोः। २४१—आदौ कच्छस्ततो नीवी नाभिमध्ये च वाससी। नीवीदक्षिणतः स्थाप्या एतत्त्रिकच्छलक्षणम्॥ २४२—शयनं चार्द्रपादेन शुष्कपादेन भोजनम्। नोत्तरीयमधः कुर्याद्रात्रिवासस्तद्वा दिवा॥ कटिवेष्ट्यं तु यद्वस्त्रं पुरीषो येन वा कृतः। मूत्रमैथुनकृद्वस्त्रं धर्मकार्ये विवर्जयेत्॥ २४३—चतुर्भिः शान्तिके कार्यं पौष्टिके पञ्चभिस्तथा। पैतृके तु त्रि दर्भाश्च द्वौ दर्भौ नित्यकर्मणि॥ २४४--विष्णुधर्मोत्तरे। तिलकं कुङ्कुमें नैव सदा मङ्गलकर्मणि। कारयित्वा सुमतिमान्श्वेतचन्दनं मृदा॥ २४५—न च स्मरेदृच्छ्रपिं छन्दः श्राद्धे वैतानिके मुखे अग्निहोत्रे वैश्वदेवे विवाहादिविधौ तथा॥ होमकाले न दश्यन्ते ग्रायश्छन्दर्षिदेवताः॥ २४६--कुशवटुः—रुप्तभिर्नवभिर्वाऽपि सार्द्धद्वितयवेष्टितम्। ॐ कारेणैव मन्त्रेण द्विजः कुर्यात्कुशद्विजम्॥ २४७-जयसिंहकल्पद्रुमे शिवागारे झल्लकंच सूर्यागारे च शंखकम्। दुर्गागारे वंशवाद्यं मधुरीं न च वादयेत्॥ २४८--न जीवित्पितृकः कृष्णैस्तिलैस्तर्पणमाचरेत्। २४९--सङ्कल्पं सूक्तपठनं मार्जनं चाघमर्षणम्। देवादितर्पणं चैव गृहे पञ्च विवर्जयेत्॥ इति सङ्कल्पनिषेधस्तु मध्ये सङ्कल्पकरणपरः इत्याचारभूषणे। २५०—संवर्तः-सन्ध्याकाले पितृश्राद्धे वैश्वदेवे शिवार्चने। यती च ब्रह्मचारी च नाचामेच्चर्मवारिणा॥ पीतावशेषितां पीत्वा पानीयं ब्राह्मणः क्वचित्। त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याद्वामहस्तेन वा पुनः। वामहस्ते कुशान् कृत्वा सभाचामति यो द्विजः। उपस्पृष्टं भवेत्तेन रुधिरेण मलेन वा। कांस्यासनेन पात्रेण त्रपुसीसकपित्तलैः। आचान्तः शतकृत्वोऽपि न कदाचिच्छुचिर्भवेत्॥ २५१--देवलः न शंखेन पिबेत्तोयं न खादेत्कूर्मशूकरौ। २५२--दीर्घकाष्ठे शिलापृष्ठे नौकायां शकटे तटे। विवाहे बहुसंपर्के स्पर्शदोषो न विद्यते॥ २५३--संस्कारभास्करे—खल्वाटादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत्। कौशीं तदाधारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम्॥ २५४--वायुपुराणे-निवासा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ये च कीटानां लताभिर्वेष्टिताश्च ये । अयज्ञिया गर्हिताश्च वल्मीकैश्च समावृताः । शकुनीनां निवासाश्च वर्जयेत्तान महीरुहान् ॥ अन्यांश्चैव विधानसर्वान् यज्ञियांश्च विवर्जयेत् । २५५—ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद् भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम् । मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥ २५६–शमीपत्राणि दूर्वाश्च भृङ्गराजस्तथैव च । सुप्ते देवे न देयानि निद्राभङ्गकराणि वै ॥ २५७–रत्नकोषे–प्रथमं देहशुद्धिः स्यात्स्थानशुद्धिरनन्तरम् । पात्रशुद्धिस्तृतीया तु आत्मशुद्धिः चतुर्थिका ॥ पञ्चमी बिम्बशुद्धिः स्याच्छुद्धयः पञ्च वै स्मृताः ॥ बिम्बशुद्धिर्देवप्रतिमादिशुद्धिः । २५८–मनुः–मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । चमसानां गृहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च ॥ चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा । स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥ अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् । प्रक्षालनेन स्वल्पानामद्भिरेवविधीयते ॥ २५९–कालिकापुराणे–दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्यैश्च भैरव । वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ॥ २६०–संस्कारगणपतौ–घण्टानादं विनाधूपं न विद्वान् दातुमर्हसि । २६१–निर्णयसिन्धौ–रुद्राक्षकण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशतिद्वे षट्कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥ बाह्वोरिन्दोः कलभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं सस्वयं नीलकण्ठः ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीकृष्णचन्द्रके अपने परमधाम पहुँच जानेके बाद में इस पृथिवीके राजाओंका वर्णन

राजा परीक्षितने कहा—हे मुने, यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अपने परमधाम पधारने पर किस वंश वालोंने इस पृथ्वीपर शासन किया। इसे आप कृपा कर मुझे बतलावें ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, (नवमस्कन्धमें कहे हुए) बृहद्रथके वंशमें पुरञ्जयनामका राजा होगा जिसे उसका मन्त्री सुनक मारकर अपने पुत्र प्रद्योतको उसके स्थानपर राजा बनालेगा—उसका पुत्र पालक होगा और पालकका पुत्र विशाखयूप होगा, उसका पुत्र राजक और राजक का पुत्र नन्दिवर्धन होगा ॥ २,३ ॥ प्रद्योत प्रभृति ये पांचों राजा प्रद्योतन नामसे प्रसिद्ध होगें, और १३८ वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥ ४ ॥ इसकेबाद शिशुनाग नामक राजा राज्य करेगा। उसका पुत्र काकवर्ण और काकवर्ण

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥ कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने॥१॥ श्री शुक उवाच ॥ योऽन्त्यः पुरञ्जयो नाम भविष्यो बार्हद्रथो नृपः ॥ तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥२॥ प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥ ३ ॥ नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे ॥ अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥ ४ ॥ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ॥ क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ५ ॥ विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ॥ दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥६॥ नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः ॥ शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ७ ॥ समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ॥ महानन्दिसुतो राजन् शूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥८॥ महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ९ ॥ स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लङ्घितशासनः ॥ शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ १० ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ॥ य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ ११ ॥ नव

का क्षेमधर्मा और क्षेमधर्मा का क्षेत्रज्ञ नामक पुत्र होगा ॥ ५ ॥ क्षेत्रज्ञका विधिसार तथा उसका लड़का अजातशत्रु होगा। और उसका दर्भक एवं दर्भक का अजय होगा ॥ ६ ॥ अजय का नन्दिवर्धन और उसका तनय महानन्दि होगा। ये शिशुनाग इत्यादि दश राजा ३६०, वर्ष तक कलियुगमें पृथिवी का उपभोग करेंगे। इसके बाद महानन्दिका शूद्राके गर्भसे उत्पन्न अत्यन्त बलवान् नन्द नामका पुत्र होगा ॥ ७,८ ॥ वह नन्द क्षत्रियोंका नाश करेगा तथा महापद्मसंख्यक सेना या धनका स्वामी होने के कारण उसे लोग महापद्म भी कहेंगे। अब इसके बाद प्रायः सभी राजा शूद्राचारी तथा अधार्मिक होंगे ॥ ९ ॥ वह नन्द चक्रवर्ती राजा होते हुए परशुरामके सदृश प्रतापी होगा। इसलिये उसकी आज्ञा का उल्लंघन कोई न कर सकेगा ॥ १० ॥ नन्दके सुमाल्य प्रभृति आठ ८ पुत्र होंगे, जो इस पृथ्वी का शासन १०० वर्ष तक करेंगे ॥ ११ ॥ सुमाल्य प्रभृति आठों लड़कोंके सहित नन्दको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चाणक्य नामका ब्राह्मण मारेगा। इसके बाद भूमिण्डका शासन मौर्य वंशके राजाओंके हाथमें चला जायगा ॥ १२ ॥ नन्दको मारने वाला चाणक्य चन्द्रगुप्तको राज्य सिंहासन पर बैठावेगा। चन्द्रगुप्तका लड़का वारिसार होगा। और उसका अशोकवर्धन ॥ १३ ॥ अशोक वर्धनका सुयश, उसका संगत और संगतका शालिशूक, तथा शालिशूकका सोमशर्मा नामका तनय होगा ॥ १४ ॥ सोमशर्माका शतधन्वा और शतधन्वाका बृहद्रथ (दशरथ नामका राजा इस वंशमें हुआ है, यह पराशर इत्यादि ऋषियोंने कहा है, यही कारण है कि मौर्यवंशी दश कहे जाते हैं) ये चन्द्रगुप्त प्रभृति मौर्यवंशीय दस राजा १३७ वर्षतक सुखपूर्वक प्रजापालनमें निरत रहेंगे ॥ १५ ॥ शतधन्वा सुत बृहद्रथका पुत्र अग्निमित्र तथा उसका सुज्येष्ठ नामका तनय होगा ॥ १६ ॥ मौर्यवंशके राजा बृद्रथको मारकर उसका सेनापति पुष्पमित्र राज्यका अधिकारी होगा, यह शुंगवंशीय राजाओंमें पहला होगा उस

नन्दान् द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ॥ येषामभावे जगतीं मौर्या भोदयन्ति वै कलौ ॥ १२ ॥ स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेद्यति ॥
तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १३ ॥ सुयशा भविता यस्य सङ्गतः सुयशः सुतः ॥ शालिशूकस्ततस्तस्य शोमशर्मा भविष्यति
॥ १४ ॥ शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृद्रथः ॥ मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ १५ ॥ समा भोदयन्ति पृथिवीं कलौ कुरु
कुलोद्वहः अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ १६ ॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिन्दो भविता ततः ॥ ततो घोषःसुतस्तस्माद्वज्रमित्रो
भविष्यति ॥ १७ ॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः ॥ शुङ्गा दशैते भोदयन्ति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ १८ ॥ ततः कण्वानियं भूमिर्या
स्यत्यल्पगुणान्नृप ॥ शुङ्गं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ १९ ॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ तस्य पुत्रस्तु भूमित्र-
स्तस्य नारायणः सुतः ॥ २० ॥ काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ शतानि त्रीणि भोदयन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥२१॥ हत्वा
काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ॥ गां भोदयत्यन्ध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः ॥ २२ ॥ कृष्णनामाथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ॥
श्रीशान्तकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः॥२३॥ लम्बोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलकोः नृपः। मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तु तस्य च॥२४॥

के लड़के अग्निमित्रसे सुजेष्ठ नामका पुत्र होगा और सुजेष्ठका वसुमित्र—वसुमित्रका भद्रक और भद्रकसे पुलिन्द होगा एवं पुलिन्दसे घोष तथा घोषसे वज्रमित्र होगा ॥ १७ ॥ उस वज्रमित्रसे भागवत तथा भागवतसे देवभूतिनामका लड़का होगा। ये शुंगवंशीय १० राजा ११२ वर्ष तक भूमण्डल पर अपना राज्य स्थापित करेंगे ॥ १८ ॥ इसके बाद पृथिवी का शासन अल्पगुणयुक्त कण्ववंशीय राजाओंके हाथमें चला जायगा ॥ १९ ॥ और इसवंशका मन्त्री वसुदेव परस्त्रीगामी देवभूतिको मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा। उसका लड़का भूमित्र और भूमित्रका नारायण होगा ॥ २० ॥ ये कण्ववंशीय राजा ३४५ वर्ष तक इस कलियुगमें पृथिवीपर राज्य करेंगे ॥ २१ ॥ कण्ववंशके अन्तिम राजा सुशर्माको उसका सेवक वृषलबली मारकर स्वयं राज्य करेगा--और यह अन्ध्रवंशका प्रवर्तक होगा ॥ २२ ॥ उसके बाद उसका भाई कृष्ण राज्यका अधिकारी होगा, जिसके पुत्र शांतकर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से पौर्णमास नामकपुत्र उत्पन्न होगा ॥ २३ ॥ पौर्णमाससे लम्बोदर--और लम्बोदरसे चिविलक तथा चिविलकसे मेघस्वाति और उससे अटमान होगा ॥ २४ ॥ उसका अनिष्टकर्मा, अनिष्टकर्माका हालेप, हालेपसे, तलक, तलकसे पुरीषभीरु और इसके बाद इसका लड़का सुनन्दन राज्य करेगा ॥ २५ ॥ सुनन्दनका लड़का चकोर होगा, और चकोरके ६ पुत्र होंगे, जिसमें एकका नाम शिवस्वाति होगा शिवस्वातिका गोमती और गोमतीका पुरीमान् होगा ॥ २६ ॥ उसका मेदशिरा, और मेदशिराका शिवस्कन्द तथा शिवस्कन्दका यज्ञश्री होगा। यज्ञश्रीसे विजय, विजय से चन्द्रविज्ञ और चन्द्रविज्ञसे लोमधि उत्पन्न होगा ॥ २७ ॥ हे कुरुनन्दन ये ३० राजा ४५६ वर्षतक पृथिवीका पालन करेंगे। इसके बाद अवभृतिनामके नगरमें ७ आभीरवंशीय १० गर्दभवंशीय और सोलह कङ्कवंशीय राजा होंगे, जो अत्यन्त लोभी होंगे ॥ २८ ॥ इसके बाद ८ यवनवंशीय, १४ तुरुष्क और १०

अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ॥ पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥२५॥ चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिन्दमः ॥ तस्यापि गोमतीपुत्रः पुरीमान्भविता ततः ॥ २६ ॥ मेदशिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ॥ विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २७ ॥ एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ॥ षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥२८॥ सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ॥ कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यन्त्यतिलोलुपाः ॥ २९ ॥ ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ॥ भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥३०॥ एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ॥ नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ ३१ ॥ भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यङ्ग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ॥ किलिकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वङ्गिरिः ॥ ३२ ॥ शिशुनन्दिश्च तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः ॥ इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्त्यधिकानि षट् ॥ ३३ ॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ॥ पुष्पमित्रोऽस्य राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ॥३४॥ एककाला इमे भूपाः सप्तान्ध्राः सप्त कोसलाः ॥ विदूरपतयो भाव्या निषधास्तत एव हि ॥३५॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः ॥ करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिन्दयदुमद्रकान् ॥ ३६ ॥ प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥ वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥ अनुगङ्गामाप्रयागं गुप्तां

गुरुण्ड, ११ मौनवंशीय राजा पृथिवी पर शासन करेंगे ॥ २९, ३० ॥ ये राजा १०९९ वर्षतक पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥ ३१ ॥ और मौर्यवंशीय ११ राजा ३०० वर्षतक राज्य करेंगे। इन राजाओंके नष्ट हो जाने पर किलकिला नामकी नगरीमें भूतनन्द और वङ्गिरि राजा होंगे ॥ ३२ ॥ और उसके भाई शिशुनन्दि, यशोनन्दि और प्रवीरक १०६ वर्षतक राज्य करेंगे ॥ ३३ ॥ उनके बाह्लिक प्रभृति १३ लड़के होंगे। इसके बाद क्षत्रियवंशीय पुष्पमित्रका राज्य होगा और उसका लड़का दुर्मित्र होगा ॥३४॥ सात आन्ध्रवंशीय तथा सात कौशलवंशीय राजा विदूर तथा नैषधदेशमें एकसमयमेंहीं राज्य करेंगे ॥ ३५ ॥ मगधदेशीय राजाओंके वंशमें विश्वस्फूर्जि नामका राजा होगा, जिसका दूसरा नाम पुरञ्जय होगा। वह पुरञ्जय ब्राह्मणादि वर्णोंको भ्रष्ट कर पुलिन्द, यदु और मद्रक वंशोंकी स्थापना करेगा ॥ ३६ ॥ और वह दुर्मति वर्णशंकर प्रजाओंका पालन पद्मावतीपुरीमें अपनी राजधानी बनाकर करेगा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिसका विस्तार हिमालयसे लेकर प्रयाग तक होगा ॥ ३७ ॥ उस समय सौराष्ट्र [सूरत] अवन्ति [उज्जैन] आभीर [मथुरा] अर्बुद [आबू] और मालव देशोंके ब्राह्मणादि उपयनसंकारसे विहीन होनेके कारण व्रात्यसंज्ञक हो जायेंगे, और इन देशोंके राजाभी शूद्र प्राय होंगे ॥ ३८ ॥ सिन्धु तथा चन्द्रभागा नदीके समीपवर्ती देश, कौन्ती [काँची] और काश्मीरके सभी राजा शूद्र, म्लेच्छ तथा व्रात्यादि होंगे ॥ ३९ ॥ सम कालिक ये म्लेच्छादिक राजा वेदाचार शून्य अधर्म तथा असत्यनिरत, मिथ्यावादी और अत्यन्त क्रोधशील होंगे

भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥ सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः ॥ व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥३८॥ सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं कश्मीरमण्डलम् ॥ भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३९ ॥ तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ॥ एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ४० ॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनाहृताः ॥ उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥ ४१ ॥ असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा वृताः ॥ प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥ ४२ ॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥ अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ ४० ॥ स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मणोंके मारने तथा परदारा हरणमें निरत रहेंगे। हर्ष और शोककी मात्रा इनमें विशेष रहेगी । ये बलहीन तथा अल्पायु होंगे ॥ ४१ ॥ संस्कारसे हीन सन्ध्यावन्दनादि नित्य कर्मों से विमुख ये रजोगुण तथा तमोगुणके वशीभूत होकर अनेक प्रकारके कर तथा दण्डका विधानकर प्रजाओंका शोषण करेंगे अर्थात् ये नाममात्रके प्रजापलक कहे जायेंगे ॥ ४२ ॥ इन राजाओंकी प्रजाभी सत्य शौचाचारविहीन होगी और आपसके कहल तथा राजाओंके दमनसे नष्ट हो जायगी ॥ ४३ ॥

प्रथम अध्यायका सार—राजा परीक्षितने कहा—हे मुने श्रीकृष्णचन्द्रके स्वधाम पधारने पर किस वंशके राजाओंने पृथिवीपर राज्य किया ? श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन् प्रद्योत वंशके ५ राजा १३८ वर्ष तक और शिशुनाग वंशके १० राजा ३६० वर्ष तक तथा नन्दवंशीय राजा १०० वर्ष तक राज्य करेंगे। इसके बाद मौर्यवंशका शासन १३७ वर्ष तक रहेगा। उसके बाद शुंगा वंशके १० राजा ११२ वर्षतक राज्य करेंगे। तदनन्तर कण्ववंशका राज्य ३४५ वर्ष तक रहेगा। और अन्ध्रवंशके ३० राजा ४५६ वर्ष तक तथा उसके अनन्तर ७ आभीरवंश, १० गर्दभ वंश, १६ कंक वंश, ८ यवनवंश, १४ तुरुष्कवंश, १० गुरुण्डवंशके राजा ११ मौनवंश, १०९९ वर्ष तक पृथिवीका शासन करेंगे। इसके बाद मौर्यवंशक ११ राजा ३०० वर्ष तक और भूतनन्द प्रभृति ५ राजा १०३ वर्ष तक राज्य करेंगे। इसके बाद आन्ध्रवंशके राजाओंके राज करने पर इस पृथिवीका राज्य शूद्रोंके हाथमें चला जायगा। इनके राज्यमें प्रजा अधर्म तथा मिथ्या भाषणमें निरत रहेगी और स्त्री, बालक, गौ, और ब्राह्मणकी हत्या करने वाली होगी तथा ब्राह्मण लोग भी यज्ञोपवीत रहित रहेंगे। प्रथमाध्याय समाप्त॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[कल्किका दोष बढ़ जाने पर कल्कि भगवान् का अवतार]

श्री शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, विकरालकालके प्रभावसे क्षमा, धर्म, सत्य, दया, शौच, आयु और बल उत्तरोत्तर नष्ट होते जायँगे ॥ १ ॥ कलियुगमें धनके प्रभावसे ही लोग कुलीन, धार्मिक गुणवान् कहे जायँगे और जिसके पास बल होगा वही धर्म तथा न्यायका व्यवस्थापक होगा ॥ २ ॥ विवाहका कारण आपसका प्रेमही होगा और रति कुशलताही दाम्पत्यभावका निर्वाहक होगा तथा व्यवहारमें छल-कपटकी ही प्रधानता रहेगी एवं ब्राह्मणत्वका परिचायक यज्ञोपवीतही रह जायगा ॥ ३ ॥ दण्ड कमण्डलु धारणही संन्यास तथा ब्रह्मचर्यका निर्वाहक समझा जायगा । आश्रमका परिवर्तन भी दण्ड कमण्डलुके द्वाराही होगा, मुकदमामें विजयघूस परही निर्भर रहेगी और पाण्डित्यका परिचायक वाचालताही

श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ कालेन बलिना राजन्नङ्क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥ वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ॥ धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥ दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ॥ स्त्रीत्वे पुंस्त्वे हि रति-विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ॥ अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥४॥ अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ॥ स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ॥ उदरं भरता स्वार्थः सत्यत्वे धाष्टर्यमेव हि ॥ ६ ॥ दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोर्थे धर्मसेवनम् ॥ एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् ॥ शाकमूलामिषक्षौद्र-फलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥ अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां

होगी, न कि शास्त्राध्ययन ॥ ४ ॥ दरिद्रता ही चोरी तथा अन्यगर्हित अभियोगों की जननी होगी । अधिक पाखण्ड ही सज्जनताका कारण होगा । विवाह लड़के और लड़की की रजामन्दी पर निर्भर रहेगा । अन्यकृत्योंका कोई मूल्य नहीं रहेगा तथा साबुन लगाकर स्नान करना ही आभूषण माना जायगा ॥५॥ दूर प्रदेशसे जाकर जल लाना ही तीर्थ समझा जायगा । निकटवर्ती माता-पिता तथा गुरुजनोंकी अवहेलना की जायगी, और केशोंका सजाना ही सुन्दरता मानी जायगी । अपना पेट भरनाही स्वार्थ होगा तथा धृष्टतापूर्वक बोलना ही सत्यका परिचायक होगा ॥६॥ अपने परिवारका पालन कर लेना ही चतुरता समझी जायगी । अपने यशको फैलानेके लिए ही धर्माचरण किया जायगा । इस प्रकार दुष्ट प्रजाओंसे यह भूमण्डल व्याप्त हो जायगा ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में जो बलवान् होगा वही शासक होगा । लोभी राजाओं तथा डाकुओं से प्रजाओं को दुःख मिलेगा ॥ ८ ॥ ये लोग प्रजाओं की स्त्री, लड़की तथा धनका अपहरण करेंगे, इसलिए, प्रजा फल, शाक, कन्द और मधु इत्यादि भोजन कर जंगलमें निवास करेगी ॥ ९ ॥ बार-बार अनावृष्टिके कारण अकालका प्रकोप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होगा। प्रजा-वस्त्रादिके न मिलने से शीत, वर्षा और गर्मी के कारण सन्तप्त रहेगी ॥ १० ॥ क्षुधा, तृषा और व्याधिके कारण प्रजा सन्तप्त रहेगी तथा कलियुग में २० या ३० वर्ष तक परमायु होगी ॥ ११ ॥ कलिके प्रभावसे मनुष्यशरीरअल्पाकार होगा और वर्णाश्रमधर्मनष्ट होगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार जब धर्मपाखण्ड पूर्ण हो जायगा, जब डाकुओं का साम्राज्य हो जायगा, तब मनुष्य चोरी, झूठ और हिंसा में निरत हो जायँगे ॥ १३ ॥ जब सभी वर्ण शूद्र समान हो जायँगे, गायें जब बकरीयों के सदृश हो जायँगी, आश्रम जब गृह समान हो जा जायगा, जब श्वशुर, श्यालेको ही लोग अपना सम्बन्धी समझने लगेंगे औषधियों का गुण जब अल्पहो जायगा, जब समीवृक्षके समानही सभी वृक्ष हो जायँगे, और मेघमण्डलमें केवल विद्युत्का प्रकाश मात्र ही जब रह जायगा, जब सबके घर धर्मादिसे रहित हो जायँगे यानी गृहस्थ घरपर आए हुए अतिथि सत्कार से दूर हो जायँगे ॥ १४, १५ ॥ और जब घोर

व्याधिभिश्चैव सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ॥ त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ॥ वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ॥ गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौवनप्रायेषु बन्धुषु ॥१४॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ॥ विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥१५॥ इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ॥ धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतारिष्यति॥१६ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ॥ धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥ शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः । भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥१८॥ अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ॥ असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९॥ विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ॥ नृपलिङ्गच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥ अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै ॥ वासुदेवाङ्गरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ॥ पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥ यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ॥ कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥२३॥ यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥

कलिकाल अपना प्रभाव प्रकट कर समाप्त होने लगेगा, तब धर्मरक्षार्थ भगवान् अपने अंशो से अवतरित होंगे ॥ १६ ॥ अखण्डलोक नायक चराचर पति भगवान् धर्मरक्षार्थं और साधुओं को मोक्षप्रदान करनेके लिए ॥ १७ ॥ शम्भलपुर वासी विष्णुयश नामक ब्रह्मणके गृहमें कल्कि अवतार धारण करेंगे ॥ १८ ॥ शीघ्रगामी देवदत्त नामक घोड़ेपर सवार होकर अष्टगुण और ऐश्वर्योंसे युक्त भगवान् दुष्टोंको तलवारसे यमसदन पहुँचायेंगे ॥ १९ ॥ सूर्यके सदृश कान्तिमान् भूतभावन् भगवान् उस शीघ्रगामी अश्वपर बैठाकर राजाओं के वेषमें छिपे हुए हजारों दस्युओं को मार गिरायेंगे ॥ २० ॥ डाकुओंके नष्टहो जाने पर भगवान् के शरीर में लगे हुए पुष्पचन्दनादिकी सुगन्धसे प्रजाओं का मन विमल हो जायगा ॥ २१ ॥ निरन्तर विमलमूर्तिं भगवान्का ध्यान करनेसे उनकी सन्तति उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ जिस समय धर्मरक्षार्थ भगवान् अवतरित होंगे उसी समयसे कृतयुगभी पदर्पण करेगा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

और प्रजाभी सात्विक प्रकृतिकी होजायगी ॥ २३ ॥ जिस समय चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति, पुष्यनक्षत्र पर एकही साथ जायँगे, उसी समय ये सब कार्य होंगे ॥ २४ ॥ हे राजन्—सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी उन राजाओं का मैंने वर्णन कर दिया, जो पहले हो चुके हैं, इससमय जोवर्तमान हैं तथा भविष्य में होने वाले हैं ॥२५॥ आपके जन्म कालसे लेकर नन्दराजा पर्यन्त कलियुगके १११५ वर्ष बीत जायँगे ॥ २६ । सप्तर्षियोंके मध्यमें पूर्व दिशामें पहले उदय होने वाले दो नक्षत्र प्रलह और क्रतु दिखाई पड़ते हैं, उनके मध्यमें जो दक्षिणोत्तररेखा है उस रेखाके समभागमें स्थित अश्विनी आदि जो सत्ताइस नक्षत्र हैं, उनमें से एक का आश्रय करके सप्तर्षि मनुष्योंके १०० वर्ष पर्यन्त तक स्थित रहते हैं। वे ही सप्तर्षि इस समय मघा नक्षत्र पर हैं ॥ २७, २८ ॥ यदु कुलकमल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस समय अपने परमधामको पधारे उसी समय कलियुगने भी प्रवेश किया, जिस युगमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति पापकी ओर

एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति सत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यन्ति च पार्थिवाः ॥ ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥२५॥ आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ॥ एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥ सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ॥ तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ।२७॥ तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् । ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥ विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ॥ तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृष्टास्ते रमापतिः ॥ तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न चाशकत् ॥ ३० यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि ॥ तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥ तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥ प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥ दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ॥ भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ॥ तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५ ॥

अग्रसर होती है ॥ २९ ॥ जबतक श्रीकृष्णचन्द्र संसारमें वर्तमान थे, तबतक कलियुगका प्रभाव नहीं फैलसका। यद्यपि कलि, भगवान् के रहते ही प्रविष्ट हो चुका था ॥ ३० ॥ सप्तर्षि जिस समय मघा नक्षत्र पर उस समय संध्या और संध्यांस के सहित देवताओं की वर्ष गणना के अनुसार १२०० वर्ष तक भोग करने वाला कलि प्रवेश कर चुका था ॥ ३१ ॥ और जिस समय मघा नक्षत्रसे पूर्वाषाढ़ नक्षत्रपर सप्तर्षि जायेंगे, उस समम प्रद्योतन राजा से लेकर नन्दवंश तक कलिका प्रभाव अत्यन्त विस्तृत हो जायगा ॥ ३२ ॥ जिस दिन जिस काल में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र निजधामको पधारे, उसदिन उसी समय कलियुग प्रवृत्त हुआ था, कितनेही आचार्यों का यह मत है ॥ ३३ ॥ देवताओंकी वर्ष गणनाके अनुसार संध्या तथा संध्यांश के सहित जब १००० वर्ष बीत जायगा तब पुनः कृतयुगका प्रवेश होगा और उस समय मनुष्यों की बुद्धि निर्मल हो जायगी ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार मानव वंशका वर्णन जिस युगमें किया गया है, उसी प्रकार उन युगोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी वैसीही प्रवृत्तियां होंगी ॥ ३५ ॥ जिन महा—पुरुषोंका वर्णन मैंने किया है उनके पुत्र पौत्रादि तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनकी राजधानियां यद्यपि इस समय विद्यमान नहीं हैं, फिरभी उनकी विमल कीर्ति जगमगा रही है ॥ ३६ ॥ राजा सान्तनु का बड़ा भाइ देवापि जिसका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ था तथा सूर्यवंशीय मरु अपने महायोग बलसे कलापग्राममें आज भी समाधिस्थ हैं जो कि योगियों का निवासस्थान है ॥ ३७ ॥ वे दोनों कलिके अन्तमें भगवान् वासुदेवकी आज्ञासे पहले की तरह वर्ण और आश्रम धर्मों को फैलायेंगे ॥ ३८ ॥ पहले कृतयुग उसके वाद त्रेता, फिर द्वापर तथा सबके अन्तमें कलियुग, इस क्रमसे सभीयुग आते जाते रहते हैं। और प्रत्येक युगके प्राणियोंका आचार विचार भी वैसाही हो जाता है ॥ ३९ ॥ हे राजन् जिन लोगोंका मैंने वर्णन किया है तथा जिनका वर्णन नहीं भी हुआ है वे सभी इस पृथ्वी पर अपनी ममता बढ़ाकर [भूमिको अपनी समझकर] अन्तमें इसको यहीं छोड़कर कराल कालके गालमें चले गये हैं ॥ ४० ॥ जिस शरीर को आज राजा कहते हैं वही कभी क्रिमि, विष्ठा

एतेषां नाम लिङ्गानां पुरुषाणां महात्मनाम् ॥ कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥ देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ॥ कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ ॥ वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथापरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वान्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञान्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद नरयो यतः ॥ ४१ ॥ कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ॥ मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२ ॥ तेजोवन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः ॥ महीं ममतया चोभौ हित्वान्तेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ ये ये भूपतयो राजन्भुञ्जन्ति भुवमो जसा ॥ कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

के रूपमें परिणत हो जाता है। उस शरीरके लिए स्वार्थवश जो प्राणियों से द्रोह करता है वह इसके वास्तिविक तत्त्वको नहीं जानता, क्योंकि द्रोह करनेसे नरकगामी होना पड़ता है ॥ ४१ ॥ कुछ अज्ञानी राज्य पाकर यह सोचने लगते हैं कि इस अखण्ड भूमिका मेरे पूर्वजोंने किस प्रकार भोग किया है, इस समय मैं कैसे कररहा हूँ और मेरेबाद मेरे पुत्र पौत्रादि किस प्रकारसे अपना अधिकार करेंगे—इसलिए नाना तरहके प्रयत्न किया करते हैं ॥ ४२ ॥ और पंचमहाभूतविकारात्मक शरीरमें आत्मा बुद्धि रखते थे तथा इस पृथिवीको अपनी समझते थे वे दोनों ही शरीर एवं पृथिवी दोनों को खोबैठे ॥ ४३ ॥ जिन्होंने इस पृथिवीपर अपना शासन अतिपराक्रम के साथ किया था वे ही आज कालके वशीभूत होकर केवल अपनी कथा मात्र छोड़ चले गए हैं (केवल कथाओंमें ही उनके नाम सुन पड़ते हैं)। ४४ ॥

दूसरे अध्याय का सार—श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, विकराल कलिकालके प्रभावसे धर्मादि क्रमशः नष्ट होते जायंगे। व्यवहारमें छल-कपटकी ही प्रधानता रहेगी। जब सबके सब अपने पापसे भ्रष्ट हो जायंगे और पापकी मात्रा बढ़ जायगी तब सम्भलपुर ग्राममें विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर भगवान् अवतरित होंगे और पाखण्डी राजाओं का नाशकर धर्मकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्थापना करेंगे। हे राजन्, आजतक जितने राज हो चुके हैं, सबने इस पृथिवीको अपना समझा, लेकिन अफसोस है कि खाली हाथ वे सबके सब इस दुनियां से कूच कर गये। जिन्होंने इस पृथिवीके ऊपर बड़े शानके साथ शासन किया आज उनका नाम सिर्फ कथाओंमें आता है।*

* अथ तृतीयोऽध्यायः *

राज्य आदिमें ममत्व बुद्धिके दोष तथा कलिके गुणका वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, पृथिवीके जीतनेकी इच्छा रखने वाले राजा जब एक दूसरेको जीतने की इच्छा करते हैं तब पृथिवी यह कह कर हँसती है कि मरणशील राजागण मुझे जीतना चाहते हैं ॥ १ ॥ फेकने सदृश क्षणिक इस जीवन पर विश्वास रखने वाले इन राजाओंका जयरूप मनोरथ व्यर्थही है ॥ २ ॥ इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त जन राज्य प्राप्त नहीं कर सकते, इसलिए इन्द्रियषड्वर्गको पराजित करके राजमन्त्रियों को वशमें करूँगा उसके बाद शत्रुपक्षके अमात्य, पौर, इष्टजन तथा हस्तियोंको जीतकर ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥ अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि ॥ येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रम्भिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः ॥ ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥ ३ ॥ एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥ समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा ॥ कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ॥ गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ॥ जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ॥ स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥८॥ पृथुः पुरूरवा गाधिनार्नहुषो भरतोऽर्जुनः ॥

समुद्र पर्यन्त भूमिपर अधिकार कर लूँगा—ऐसी आशा राजा लोग अपने मनमें करते हैं। लेकिन अतिनिकट अपनी मृत्यु पर ध्यान नहीं देते ॥ ४ ॥ समुद्रपर्यन्त मुझे जीतकर अपने राज्यके विस्तारकी अतिप्रबल अभिलाषासे दूसरे द्वीपमें जाकर उसे भी जीतना चाहते हैं ॥ ५ ॥ मनु तथा उनके पुत्रपौत्रादि युद्धमें लड़कर परलोक सिधारे पर मुझे अपने साथ न ले जासके। लेकिन ये मूर्ख नृपगण मुझे अपने अधीन करना चाहते हैं ॥ ६ ॥ क्योंकि मेरे लिए—राज्यमें अत्यन्त आसक्त उन मूर्ख राजाओंको अपने पिता, पुत्र तथा बन्धुओं सेभी विरोध करना पड़ता है ॥ ७ ॥ और मेरे लिए ही यह पृथिवी मेरी है, "यह सम्पूर्ण राज्य मेरा है" इस प्रकार आपसमें विरोध बढ़ाकर एक दूसरेको मारते तथा मरते हैं ॥ ८ ॥ राजा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, अर्जुन, मान्धाता, सगर, राम, खट्वाङ्ग, धुन्धुहा, [धुन्धुमार] रघु, ॥ ६ ॥ तृणविन्दु, ययाति, शर्याति, सन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, कुकुत्स्थ, नैषध नृग ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, शम्बर, भौम, हिरण्याक्ष, तारक ॥११॥ इस प्रकारके और भी कितनेही राजा दैत्य, देवता, दानव इत्यादि हो चुके हैं, जो कि दुनियाँ के सभी विषयों को जानते थे तथा सबको जीतने वाले थे तथा स्वयं अजित थे ॥ १२ ॥ जिन लोगोंने मुझमें ममत्व बुद्धि रखा वे सभी निष्फल मनोरथ होकर कालके प्रभावसे इस संसारसे चल बसे। उनकी अब केवल कहानी मात्र रहगयी है ॥ १३ ॥ इस पृथ्वी पर अपने यशको फैलाकर दिवंगत राजाओं की जो कथा मैंने कही है वह ज्ञान तथा वैराग्यको बतलानेके लिए ही है और यह वागडम्बर मात्र है, पारमार्थिक तत्त्व कुछ भी नहीं है ॥ १४ ॥ भगवान्‌का अवतार तथा उनके भक्तोंका जो गुणानुवाद किया गया है, जो कि मंगल

मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः ॥ ६ ॥ तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः ॥ भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः । नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥ अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ॥ सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्यवर्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ॥ कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥ कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ॥ विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः सङ्गीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः ॥ तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ॥ विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ॥ कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥१७॥ श्रीशुकउवाच । कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ॥ सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥ सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः ॥ आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥ त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ॥ अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसन्तोषविग्रहैः ॥ २० ॥ तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लम्पटाः ॥ त्रैवर्गिका-

देने वाला है, उसको भगवान्‌की भक्ति चाहने वाला मनुष्य बार-बार तथा प्रतिदिन सुने और मनन करे ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे मुने, कलयुगके अत्यन्त बढ़े हुए दोषों का लोग किस उपायसे नाश करेंगे, मुझे यह बतलानेकी कृपा करें ॥१६॥ प्रत्येक युगको, उनके धर्मोंको, विशेष करके कलियुगके परम धर्मको, प्रत्येक युग प्रमाणको, इस सृष्टिके आत्यन्तिक प्रलय तथा उत्पत्ति को बतलानेकी कृपा कीजिए तथा ईश्वर स्वरूप कालकी गति विधि भी बतलाइये ॥ १७ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कृतयुगमें सत्य, दया, तप, दान, इन चार पादोंसे युक्तधर्म होगा, जिसका पालन सुचारु रूपसे होगा ॥ १८ ॥ उस समयके लोग सन्तुष्ट, दयाशील, प्रत्येक से मैत्रीभाव रखने वाले, शान्त, हिंसा न करने वाले, अभिलाषा रहित, आत्मसुखका अनुभव करने वाले और समदृष्टि तथा योगाभ्यासी होंगे ॥ १९ ॥ त्रेतामें अधर्मसे सत्यका, हिंसासे दयाका, असन्तोषसे तपका, विरोधसे दान का क्रमशः

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाश हो जायगा, इस तरह धर्मका एक पाद त्रेतामें नष्ट हो जायगा ॥ २० ॥ उस समयके लोग क्रियानिष्ठ, तपोनिष्ठ, हिंसारहित [अल्पहिंसक] धूर्तता रहित, धर्मार्थकामरूप त्रिवर्गकी उपासना करने वाले, वैदिक कर्मशील तथा ब्राह्मण प्रधान होंगे ॥ २१ ॥ द्वापरमें अधर्म चिह्न हिंसा, असन्तोष, असत्य और द्वेषसे तप, सत्य, दया तथा दानमें धर्मका आधाभाग नष्ट हो जायगा ॥ २२ ॥ उस समयके प्राणी यशस्वी, महायज्ञानुष्ठानशील, पठन-पाठनमें निरत, धनी, बड़े परिवार वाले, प्रसन्न तथा ब्राह्मण क्षत्रिय प्रधान होंगे ॥२३॥ कलियुगमें बढ़ते हुए पापके कारणोंसे धर्मके पाद जो सत्यादि हैं उनका चतुर्थांश शेष रह जायगा और कलियुगके अन्तमें क्रमशः वह भी नष्ट हो जायगा ॥ २४ ॥ इस युगमें लोभी, दुराचारी, दयाहीन, अकारण वैर करने वाले, भाग्हीन और अत्यन्त क्रोधी सभी प्राणी होंगे। इसमें शूद्रोंकी ही प्रधानता रहेगी ॥२५॥ यद्यपि मनुष्योंमें सत्त्व, रज, तम, ये तीनों गुण नियत रहते हैं तथापि काल

स्त्रीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ॥ हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ॥ आढ्याः कुटिम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ॥ एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः । दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ॥ कालसञ्चोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥ २६ ॥ प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ॥ तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥२७॥ यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ॥ तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥२८॥ यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः ॥ कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥२९॥ यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ॥ शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥ यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥३१॥ दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखण्डदूषिताः ॥ राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥३२॥ अव्रता

के अनुसार इनका परिवर्तन हुआ करता है ॥ २६ ॥ जिस समय मन, बुद्धि तथा अन्य इन्द्रियाँ सत्त्वसे प्रभावित होती हैं एवं ज्ञान और तपमें ही इनकी प्रवृत्ति होती है उसे सत्ययुग कहते हैं ॥ २७ ॥ जिस समय प्राणियों की प्रवृत्ति धर्म, अर्थ और काममें होती है तथा रजोगुण प्रधान होता है उसे त्रेतायुग कहते हैं ॥ २८ ॥ लोभ, असन्तोष, अहङ्कार, पाखण्ड तथा ईर्ष्याका जिस समय प्रसार होता है और काम्य कर्मों की ही उपासनाकी जाती है वह द्वापरयुग कहा जाता है। उसमें रज तथा तम प्रधान होता है ॥ २९ ॥ जिस समय माया, असत्य, आलस्य, विषाद, शोक, मोह, भय, और दीनता की प्रधानता रहती है तथा तमोगुणही सर्वत्र व्याप्त रहता उसे कलियुग कहते हैं ॥ ३० ॥ इस युगके मनुष्य अज्ञानी, मन्दभाग्य, पेटू, कामी, धनहीन होंगे और स्त्रियाँ पुंश्चली, असती होंगी ॥ ३१ ॥ इस युगमें डाकुओंकी संख्या विशेष होगी, वेद पाखण्डसे दूषित हो जायगा, राजा लोग प्रजाभक्षक होंगे और ब्राह्मण लोग शिश्न तथा उदरकी तृप्तिके लिए बेचैन रहेंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी लोग आचार-विचार शून्य होंगे भिक्षुक सकुटुम्ब हो जायँगे, तपस्वीलोग ग्रामोंमें निवास करेंगे, सन्यासी लोग लोभी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हो जायँगे ॥ ३३ ॥ स्त्रियाँ अल्प शरीर वाली ज्यादा भोजन करेंगी, सन्तान विशेष होगी तथा लज्जाहीन निरन्तर कटुभाषणं करने वाली, चोरी तथा माया करनेमें चतुर होंगी ॥ ३४ ॥ उस समयके बनाये चूद्र हो जायँगे और कूटनीतिका आश्रय ग्रहण कर क्रय विक्रयादि व्यवहार चलायेंगे तथा अनापत् कालमें भी साधु गर्हित मार्गका ही सब लोग अनुसरण करेंगे ॥ ३५ ॥ तथा उस समयके नौकर अपने सर्वोत्तम भी निर्धन स्वामी का त्याग कर देंगे तथा स्वामी भी विपद् ग्रस्त कुलीन भृत्यों का त्याग करदेंगे और दूध न देने वाली गायों को भी लोग छोड़ देंगे ॥ ३६ ॥ और इस युगके मनुष्य सुरत [विषय] के वशीभूत होकर पिता, माता, बन्धु, और स्वाभाविक मित्रोंसे भी अपना संबन्ध हटालेंगे श्याली तथा श्यालासे ही प्रेम करेंगे एवं दीन और स्त्रियोंके हावभाव करने वाले होंगे ॥ ३७ ॥ तपस्वीका वेश धारण कर शूद्र दान ग्रहण करेंगे और धर्मके नाम भी न जाननेवाले धर्मनिर्णयक तथा न्यायाधीश

वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ॥ तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ॥ शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥३४॥ पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ॥ अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥३५॥ पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ॥ भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥३६॥ पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ॥ ननान्दृस्यालसंवादा दीनाःस्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥ शूद्राः प्रतिगृहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः ॥ धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिता ॥ निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥३९॥ वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाः पिशाचसन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यन्ति च प्रियान्प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ॥ पुत्रान्सर्वार्थकुशलान् क्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः ॥ ४२ ॥ कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रिलोकनाथानतपादपङ्कजम् ॥ प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥ यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ॥ विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ ४४ ॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्

बनाए जायँगे ॥ ३८ ॥ उस समय की प्रजाएँ दुर्भिक्ष तथा अनेकप्रकारके राज्यकरोंसे पीड़ित एवं खिन्न रहा करेंगी । अकालके साथ-साथ अनावृष्टिसे भी प्रजाएँ पीड़ित रहेंगी ॥ ३९ ॥ और वस्त्र, अन्न, पान, शयनाशन, व्यवाय, स्नान, भूषण इत्यादि सामग्रीके अभावसे अत्यन्त भयङ्कर पिशाच सदृश प्रजाएँ प्रतीत होंगी ॥ ४० ॥ कलियुगमे कौड़ीके लिए भी आपसमें विरोधकर मित्रताका त्यागकर अपने बन्धुओंका हनन करेंगे तथा स्वयं भी अपना प्राण गवाँ देंगे ॥४१॥ उदर तथा शिश्नकी तृप्ति चाहने वाले मनुष्य अपने माता तथा पिताका त्याग कर देंगे ॥ ४२ ॥ अनेक प्रकारके पाखण्डसे दूषित हृदय वाले मनुष्य त्रिलोकनायक शङ्कर पूजित विष्णुका भी पूजन नहीं करेंगे ॥ ४३ ॥ जिस भगवान्‌का नामस्मरण करनेसे पतितसे पतित मनुष्य भी परमधामको प्राप्त करलेता है उस भगवान्‌का भी कलियुगके मनुष्य भजन नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥ कलियुगके प्रभावसे द्रव्य, देश तथा आत्मासे उत्पन्न दोषोंका भी हृदयस्थ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भगवान् नष्ट कर डालते हैं ॥ ४५ ॥ भगवान्‌के श्रवण, मनन, कीर्तन, निदिध्यासन तथा अर्चनसे मनुष्योंके अनेक जन्मके सञ्चित पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार सुवर्णमें स्थित अग्नि अन्यधातुओंके सम्पर्कसे उत्पन्न सुवर्णके दुवर्णको नष्ट कर देती है। उसी प्रकार हृदयस्थित भगवान् प्राणियोंके पापको नष्ट करदेते हैं ॥ ४७ ॥ विद्या, तप, योगाभ्यास, मैत्री, तीर्थाटन, अभिषेक व्रत, दान, जपादिसे हृदय की उतनी शुद्धि नहीं होती है जितनी भगवान्‌के हृदयस्थित होनेसे ॥४८॥ इसलिये हे राजन् मरते, हुए भी आप एकाग्रचित्त होकर भगवान् श्री

द्रव्यदेशात्मसंभवान् ॥ सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥४५॥ श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ॥ नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् ॥ एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥ विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ॥ नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् ॥ म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥ म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ॥ आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥५०॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ॥ कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥ द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कृष्णचन्द्रको हृदयमें स्थित कर लीजिए। अनन्तर आप परमधामको प्राप्त होही जायँगे ॥४९॥ हे राजन्, मरते हुए मनुष्यको भगवान्‌का ध्यान अवश्य करना चाहिए। ऐसा करनेपर सबके आधारभूत भगवान् उसे अपने स्वरूपमें मिला लेते हैं ॥ ५० ॥ दोषोंके विधिभूत कलियुगका एक उत्तमगुण यही है कि इस युगमें भगवान्‌के कीर्तनमात्रसे मुक्ति मिल जाती है ॥ ५१ ॥ सत्ययुगमें भगवान्‌के ध्यान करनेसे जिस भगवान्‌की प्राप्ति होती है, त्रेतामें यज्ञ करनेसे जिसकी प्राप्ति होती है और द्वापरमें परिचर्यासे जिसकी प्राप्ति होती है उसकी कलियुगमें कीर्तन मात्रसे मनुष्यको प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥

अध्याय सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, पृथ्वीको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले राजाओंको देखकर यह पृथ्वी हँसती है कि मान्धाता आदि बड़े-बड़े राजा अपने साथ मुझे न ले जा सके, लेकिन ये मूर्ख आजकलके राजा मुझे अपने अधीन रखना चाहते हैं। मुझे दया आती है इन मूर्खों की बुद्धिपर ! मेरे विषयमें ममत्व रखने वाले कितने राजा निष्फल मनोरथ होकर इस संसारसे चल बसे। आज उनकी सिर्फ कहानी शेष रह गई है। हे राजन्, मैंने जिन राजाओंका वर्णन किया है वह सिर्फ ज्ञान और वैराग्यके लिए ही। भगवान्‌का जो गुणानुवाद हुआ है उसीका श्रवण-मनन करना चाहिए। राजा परीक्षित्‌ने कहा—हे भगवन्, यह मुझे बतलाइए कि कलियुगमें बढ़े हुए दोषोंका कैसे विनाश होगा ? श्रीशुकदेवजीने कहा—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हे राजन्, योगाभ्यास आदिसे हृदयकी उतनी शुद्धि नहीं होती जितनी भगवान्को हृदयस्थ करनेसे होती है। राजन्, मरते समय भी आप भगवान्को हृदयमें कर लीजिए, फिर आप तो परमधामको चले जायँगे ही। दोषोंके सागर कलिका सबसे उत्तम गुण यही है कि इस युगमें भगवान्के कीर्तनमात्रसे मुक्ति मिल जाती है और अधिक हम क्या कहें। ❀

❀ अथ चतुर्थोऽध्यायः ❀

❀ प्रलय वर्णन ❀

श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्, मैंने आपसे परमाणुसे लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त कालके स्वरूपका वर्णन किया, और युगके भावको भी बताया। अब युगके प्रलय तथास्थिति का वर्णन सुनिए ॥ १ ॥ सहस्र चतुर्युग ब्रह्माका एक दिन होता है। इसीको कल्प भी कहते हैं। एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। कल्पके अन्तमें उतने दिन तक प्रलयकाल रहता है, जिसे कि ब्रह्माकी ब्रह्माकी रात्रि कहते हैं। उसी समय तीनों लोकोंका प्रलयमें अन्तर्भाव हो जाता हैं ॥२, ३॥ इसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, जिसमें ब्रह्मा सारे विश्वको अपनेमें समेटकर ब्रह्मा तथा

श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ॥ कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशाम्पते ॥ २ ॥ तदन्ते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रि रुदाहृता ॥ त्रयो लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥ एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ॥ शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥ द्विपरार्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ तदा प्रकृतय सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥ एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ॥ आण्डकोशस्तु संघातो विघात उपासादिते ॥ ६ ॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ॥ तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ ७ ॥ क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ॥ ८ ॥ रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥ ततः संवर्तको सङ्कर्षणमु-

भगवान् शयन करते हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माके द्विपरार्ध बीत जानेपर महत्तत्व, अहङ्कार, और पञ्चतन्मात्राएँ प्रकृतिमें लीन हो जाती हैं ॥ ५ ॥ हे राजन्, वह प्राकृतिक प्रलय है, जिसमें प्रलय के कारण उपस्थित होनेपर पञ्चमहाभूतविकारात्मक ब्रह्माण्ड अपना स्थूलरूप छोड़कर कारणरूपमें स्थित हो जाता है ॥ ६ ॥ उस समय सौ वर्षोंतक वर्षा नहीं होती अन्न न मिलनेके कारण प्रजा एक दूसरेको पकड़कर खाने लगती है ॥ ७ ॥ उस प्रलयमें इस तरह करालकालसे परिपीड़ित प्रजाएँ धीरे-धीरे नष्ट हो जायँगी, और साम्वर्तक सूर्य अपनी किरणोंसे समुद्र देह तथा पृथिवीके रसोंका शोषण कर लेगा ॥ ८ ॥ उस समय संकर्षण भगवान्के मुखसे सम्वर्तक नामकी अग्नि उत्पन्न होगी ॥ ९ ॥ और वह वायुके वेगसे प्रचण्ड होकर तल, अतल,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इत्यादि भूमण्डलको जला देता है अग्नि तथा सूर्यकी शिखायें चारो तरफसे इस भूमण्डलको जब जलाने लगती हैं तब वह ऐसा मालूम पड़ता है कि मानो धधकता हुआ गोमयपिण्ड है। उसके बाद प्रचण्डवायु किञ्चित् अधिक १०० वर्षतक चलता है ॥ १०,११ ॥ हे राजन्, और उस समय प्रलयहेतुक जब प्रचण्डवायु बहती है तब आकाश, धूम और धूलसे भर जाता है। उसके बाद अनेक प्रकारका विचित्र वर्णवाला मेघ समुदाय १०० वर्षतक गरजता तथा बरसता है। उस समय ब्रह्माण्डमध्यगत सारा विश्व जलमग्न हो जाता है ॥ १३ ॥ उस समय जल पृथिवीके गुणगन्धको ग्रहण कर लेता है और जलसे आप्लव होनेपर निर्गन्ध पृथिवीका प्रलय हो जाता है ॥ १४ ॥ जलके गुण रसको तेज खींच लेता है और वह रस विहीन होकर तेजमें मिल जाता है तथा वायु तेजके गुणरूपको ले लेता है ॥ १५ ॥ वह तेज रूप रहित होकर वायुमें मिल जाता है तथा वायुके गुण स्पर्शको आकाश ग्रस लेता है। वह वायु

स्वोत्थितः ॥ ९ ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान्भूविवरानथ॥ उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः॥ १० ॥ दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ॥ ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ ११ ॥ परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसावृतम् ॥ ततो मेघकुलान्यङ्ग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ १२ ॥ शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ॥ तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥ १३ ॥ तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे ॥ ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥ अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः ॥ ग्रसतो तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ १५ ॥ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ॥ स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥१६॥ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ॥ तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १७ ॥ महान् ग्रसत्यहङ्कारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ॥ ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान्कालेन चोदितम् ॥ १८ ॥ न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ॥ अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १९ ॥ न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ॥ न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥२०॥ न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ॥ संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २१ ॥ लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषा-

स्पर्शविहीन होकर आकाशमें लीन हो जाता है ॥ १६ ॥ आकाशके गुण शब्द को तामस अहङ्कार अपनेमें मिला लेता है उस समय आकाश गुण रहित होकर अहङ्कारमें मिल जाता है। तेजस अहंकार इन्द्रियोंको तथा इन्द्रियाधिष्ठातृ देवता और इन्द्रियवृत्तियोंको वैकारिक अहंकार ग्रस लेता है ॥ १७ ॥ इस प्रकार अहंकारको महतत्त्व और महतत्त्वको सत्त्वादिगुण ग्रस लेते हैं तथा सत्त्वादिगुणको अव्यक्त प्रकृति ग्रस लेती है ॥ १८ ॥ उस अव्यक्त प्रकृतिमें कालके अवयव वर्ष, मास, पक्ष इत्यादि द्वारा परिमाणादि विकार नहीं होते। वह आदि अन्त रहित, विकारशून्य, ह्रास और वृद्धिसे रहित तथा क्षयशून्य सबका कारण है ॥ १९ ॥ जिसमें मन, वाणी, सत्त्व, रज, तम, ये गुण तथा महदादि विकार प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय, तथा उन इन्द्रियोंके देवताओंका लोकरूप रचना विशेष नहीं होता ॥ २० ॥ उस समय स्वप्नावस्था, जागरण अवस्था तथा सुषुप्ति नहीं रहती। आकाश, जल, भूमि, अग्नि, सूर्य, वायु नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रहते । सोए हुएका तरह शून्य मालूम पड़ता है, जो कि तर्क करने योग्य भी नहीं है और जो समस्त विश्वका कारण कहा जाता है ॥ २१ ॥ हे राजन्, इस प्रकार मैंने यह प्राकृतिक प्रलय बतलाया और तब पुरुष तथा प्रकृतिकी सात्त्वादि शक्तियां कालके विवश होकर नष्ट हो जाती हैं ॥ २२ ॥ हे राजन्, इस प्रकारसे प्राकृतिक प्रलयको बतलाकर अब आत्यन्तिक प्रलय बतलाता हूँ—दृश्यत्व और आव्यतिरेकरूप हेतु होनेके कारण बुद्धि, इन्द्रिय तथा अर्थरूपसे इनका आश्रयभूत ज्ञान ही प्रतीत होता है, अतः जो आदि तथा अन्तसे युक्त है वह सब वस्तु नहीं है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार दीप, चक्षु और रूप तेजसे पृथक् नहीं है उसी प्रकार बुद्धि, इन्द्रिय तथा इनके विषय एवं तन्मात्रायें ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि ये ब्रह्मके कार्य हैं। यद्यपि कारणरूप ब्रह्म पूर्वोक्त कार्य प्रपञ्चसे भिन्न है, तथापि प्रपञ्च ब्रह्मसे भिन्न नहीं है । इसलिये कार्यके अभावसे कारणका अभाव मानना सर्वथा असम्भव है ॥ २४ ॥ हे राजन्, जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों अवस्थाएँ बुद्धिकी ही हैं अतः इनके कारण प्रत्यगात्मामें जो विश्व, तेजस और प्राज्ञकी प्रतीति होती है, वह मायामात्र है ॥ २५ ॥ जिस प्रकार

व्यक्तयोर्यदा ॥ शक्तयः संप्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २२ ॥ बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ॥ दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २३ ॥ दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ॥ एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २४ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ॥ मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २५ ॥ यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च ॥ ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥ सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ॥ विनार्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवाङ्ग तन्तवः ॥ २७ ॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः ॥ अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥२८॥ विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा । न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २९ ॥ नहि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते ॥ नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥ ३० ॥

मेघ आकाशमें कभी होते हैं, कभीं नहीं भी होते, पर आकाश ज्योंका त्यों बना रहता है, उसी प्रकार यह विश्व कभी ब्रह्ममें प्रतीत होता है कभी नहीं, पर ब्रह्मकी प्रतीति सर्वथा होती है और यह विश्व अवयवी होनेके कारण आद्यन्तवत् है अतएव मिथ्या है ॥ २६ ॥ हे राजन्, संसारमें जितने भी अवयवी पदार्थ हैं, उनके न रहनेपर भी उनका अवयव सत्य माना जाता है, क्योंकि वह कारण स्वरूप है । जैसे कि वस्त्रके न होनेपर भी उसके कारणभूत सूतकी प्रतीति होती है । उसी प्रकार अवयवीके न रहनेपर भी अवयवकी प्रतीति होती है । इसलिये जगत् का कारणभूत ब्रह्म इसके न रहने पर भी अपना अस्तित्व रखता है ॥२७॥ यहाँ ब्रह्ममें यह कार्यकारण भाव भी काल्पनिक है, क्योंकि कारण सामान्य वस्तु है कार्य विशेष वस्तु है । इस प्रकार जो सामान्य और विशेषसे जो भेद दिखाई देता है वह भ्रम है, क्योंकि सामान्य तथा विशेष अन्योन्याश्रित हैं । इसलिए जो आदि तथा अन्तसे युक्त है वह सब अवश्य ही है ॥२८॥ प्रकाशमान अणु विकार भी आत्माके बिना निरूपणीय नहीं हो सकता । यदि आत्मासे पृथक् इसका निरूपण किया भी जाय, तो वह चिद्रूपकी तरह स्वयं प्रकाशमान तथा आत्माकी भाँति एक रूप सिद्धहोगा, इसलिए इसकी कल्पना आत्मासे अतिरिक्त नहीं कर सकते ॥२९॥ सत्य वस्तुका नानात्व विद्वान् लोग स्वीकार नहीं करते यदि स्वीकार करते हैं, तो फिर वे विद्वान् नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं, क्योंकि नानात्व असत्यका मूल है । यदि कोई सत्यको नाना मानता है तो उसका मानना उसी प्रकार होगा जैसा कि महाकाश और घटाकाशका, आकाशमें स्थित सूर्य तथा जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यका तथा वाह्य वायु और अन्तः स्थितः वायुका भेद मानना ॥३०॥ जिस प्रकार एकही सुवर्णका कुण्डल कंकण इत्यादि अनेकों रूपमें परिवर्तन कर लोग अपना व्यवहार चलाते हैं उसी प्रकार विद्वज्जन लौकिक वैदिक मंत्रोंके द्वारा आत्मस्वरूप एक ब्रह्मका ही अनेकों प्रकारसे स्तवन करते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे मेघ सूर्यसे उत्पन्न होकर तथा उससे ही प्रकाशित होनेपर भी उसे ढक लेता है वैसे ही अहङ्कार ब्रह्मसे उत्पन्न होता है तथा प्रकाशित भी, किन्तु ब्रह्मके अंश जीवोंको आच्छादित कर ब्रह्म-प्राप्तिमें बाधक बन बैठता है ॥ ३२ ॥ जब मेघ जो कि सूर्य से उत्पन्न होता है, तितर-बितर हो जाता है, तब चक्षुरिन्द्रिय अपने स्वरूप सूर्यके देखनेमें समर्थ होती है । उसी प्रकार मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न जिज्ञासाके द्वारा आत्माके उपाधिभूत अहङ्कारके नष्ट हो जाने पर वह ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है ॥ ३३ ॥ हे राजन्, इस प्रकार विवेकरूपी शस्त्रके द्वारा जब मनुष्य आत्मस्वरूपके प्रत्यक्षमें बन्धनभूत मायामय अहंकारको

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ॥ एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३१ ॥ यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ॥ एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥ ३२ ॥ घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ॥ यदा ह्यहङ्कार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥ यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहङ्करणात्मबन्धनम् ॥ छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यन्तिमङ्ग संप्लवम् ॥ ३४ ॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परन्तप ॥ उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ३५ ॥ कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ॥ परिणामिनामवस्थाता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३६ ॥ अनाद्यन्तवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३७ ॥ नित्योनैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ॥ आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३८ ॥ एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ लीलाकथास्ते

काटकर ब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार करनेके लिये उपस्थित हो जाता है तब उसीको आत्यन्तिक प्रलय कहते है ॥ ३४ ॥ हे परन्तप, ब्रह्मासे लेकर तृण पर्यन्त सभी भूत सदा उत्पन्न एवं विनष्ट होते रहते हैं । सूक्ष्म विचारशील विद्वानोंने ऐसा कहा है ॥ ३५ ॥ नदी प्रवाह, दीपशिखा आदि विश्वके सभी पदार्थ क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं । इससे यह समझा जाता है कि बड़े वेगसे देह भी प्रतिक्षण कालरूप स्रोतमें बहकर बदला करता है । इसलिये क्षण क्षणमें उनकी उत्पत्ति और प्रलय होता है ॥ ३६ ॥ यदि यह सन्देह करें कि प्रतिक्षण बदलने वाली अवस्था दृष्टिगोचर क्यों नहीं होती, तो जैसे आकाशमण्डलमें तारोंके प्रतिक्षण विहरण करने पर उनकी गति स्पष्टरूपसे प्रतीत नहीं होती वैसे ही आदि-अनन्त कालरूप ईश्वरके कारण प्रतिक्षण प्राणियोंकी अगमनशील उत्पत्ति और प्रलयकी सी प्रतीति नहीं होती ॥ ३७ ॥ हे राजन्, नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय और आत्यन्तिक प्रलय मैंने कह दिया । ऐसी ही कालकी सूक्ष्म गति होती है ॥ ३८ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, जगत्-विधाता नारायण भगवान् ही समस्त प्राणियोंके आश्रय हैं, इनकी लीला कथाएँ मेरे द्वारा संक्षेपरूपसे कही गई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं, क्योंकि इसे विस्ताररूपसे कहनेमें ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि जिस कथाको पूर्णरूपसे कहनेमें ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं, उसका वर्णन क्यों किया गया है। तो इसका उत्तर यह है कि संसारसागरसे पार करनेकी इच्छा वालेके लिये तथा संसारके विविध दुःखोंसे पीडित प्राणीके उद्धारके लिये भगवान्‌के कथामृत पानके अतिरिक्त

कथिताः समासतः कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३६ ॥ संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ॥ लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ४० ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ॥ नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४१ ॥ स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ॥ इमां भगवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥ ४२ ॥ एतां वक्ष्यत्सौ सूतं ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥ दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दूसरा कोई उपाय नहीं है इसलिये संक्षेपरूपसें मैंने कही है ॥ ४० ॥ इस पुराण संहिताको सनातन ऋषि नारायणने पहले नारदसे कहा था और नारदने द्वैपायनसे ॥ ४१ ॥ हे महाराज, उसी भगवान् द्वैपायनने वेदतुल्य यह भागवत संहिता अति प्रसन्न होकर मुझे दी ॥ ४२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ, इस कथाको श्री सूतजी महाराज नैमिषारण्यके यज्ञमें सम्मिलित हुये शौनक आदि ऋषियोंके प्रति उनके प्रश्न करनेपर कहेंगे ॥ ४३ ॥

अध्याय सार—श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्, कल्पके अन्तमें प्रलयकाल उतने दिनतक रहता है जिसे ब्रह्माकी रात कहते हैं। नैमित्तिक प्रलय वह कहलाता है जिसमें सारे विश्वको अपनेमें समेटकर भगवान् ब्रह्मा शयन करते हैं। प्राकृतिक प्रलय वह है, जहां पञ्चभूत विकारात्मक ब्रह्माण्ड अपना स्थूलरूप छोड़कर कारणरूपमें स्थित हो जाता है। आत्यन्तिक प्रलय वह है जहाँ बुद्धि, इन्द्रिय और अर्थरूपसे इनका आश्रयभूत ज्ञान ही प्रतीत होता है। हे राजन्, विवेकरूपी शस्त्रके द्वारा जब मनुष्य आत्मस्वरूपके प्रत्यक्षमें बन्धनभूत मायामय अहंकारको काटकर ब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार करनेके लिए जब उपस्थित हो जाता है तब उसीको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। हे राजन्, सभी भूत नश्वर हैं सभी पदार्थ प्रतिदिन उत्पन्न और नष्ट हुआ करते हैं, लेकिन उनकी सूक्ष्मगति होनेके कारण सबको प्रतीति नहीं होती। इसीको नित्य प्रलय कहते हैं। हे राजन, मैंने चार तरहके प्रलयका वर्णन कर दिया, जो कालकी गति है। हे राजन्, भगवान् नारायण सबके आश्रय हैं, इसलिए उनकी लीला कथाओंका संक्षेपरूपसे मैंने वर्णन कर दिया है। विस्तारसे तो शायद ब्रह्मा भी करनेमें असमर्थ हैं। संसार-सागरको पार करनेकी इच्छा रखनेवालेके लिये भगवत्कथाके अतिरिक्त कोई दूसरा सरल उपाय नहीं है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❋ अथ पञ्चमोऽध्यायः ❋

परब्रह्मके उपदेशसे मृत्युके भय का निवारण

श्री शुकदेवजीने कहा–हे राजन्, इसमें संसारके नियामक उस भगवान्‌का वर्णन है, जिसके हर्षसे सर्वसृष्टि कर्त्ता ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ है तथा क्रोधसे विश्व विनाशक रुद्र भगवान् का आविर्भाव हुआ है। उस भगवान्‌का गुणानुवाद सुनते हुए आपको किससे भय है ॥ १ ॥ हे राजन्, आप 'मैं मर जाऊँगा' इस अविवेकको छोड़ दीजिए, क्योंकि जिस प्रकारसे यह शरीर पहले नहीं था अब उत्पन्न हुआ और नष्ट हो जायगा यह बात आपके विषयमें [आत्माके विषयमें] नहीं है, बल्कि आप पहले भी थे इस कालमें भी हैं तथा बादमें भी रहेंगे ॥२॥ हे राजन्, अदि आप यह सन्देह करें कि जिस शरीरमें मैं पितारूपसे था उस शरीरका विना त्याग किए पुत्ररूपसे होना असम्भव है, इसलिए मेरी उत्पत्ति तथा विनाश निश्चित है। तो

श्रीशुक उवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः । यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ॥ न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥ न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ॥ बीजाङ्कुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्ने यथाशिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् ॥ यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटे भिन्ने यथाकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा ॥ एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥ ५ ॥ मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः ॥ तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥ स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ॥ ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ॥ रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥ न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ॥ आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥

यह आपका सन्देह ठीक नहीं है क्योंकि जैसे काष्ठमें रहता हुआ भी अनल काष्ठसे पृथक् है वैसेही आप भी शरीरमें पृथक् हैं ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्नमें कटा हुआ अपना शिर स्वयं देखा जाता है, उसी प्रकार मरना जीनाभी शरीरका धर्म है, [शरीरका ही नाश और प्रादुर्भाव होता है] आत्माका नहीं। इसमें केवल मरने जीनेका भ्रम होता है, आत्मा तो अजर और अमर है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार घड़ेके फूट जाने पर घटाकाश आकाशमें मिल जाता है उसी प्रकार शरीरके नष्ट हो जाने पर यानी तत्त्वज्ञानके द्वारा लीन हो जानेपर जीवात्मा पुनः ब्रह्ममय हो जाता है ॥ ५ ॥ मन पूर्वकर्म प्रेरित होकर शरीर, सत्त्वादि गुण तथा नाना प्रकारके कर्मकी सृष्टि करता है, माया उस मनकी सृष्टि करती है तथा माया, मन और कर्म इत्यादि समुदायसे जीवका प्रादुर्भाव होता है ॥ ६ ॥ जब तक तैलपात्र, बत्ती तथा अग्निका संयोग रहता है तभी तक दीपमें दीपत्व रहता है। एवं आत्माका शरीर, मन और इन्द्रियके साथ जब तक संयोग रहता है तभी तक उसमें उत्पत्ति तथा नाशका व्यवहार होता है एवं यह व्यवहारभी रज, सत्त्व तथा तमके कारणसे ही होता है ॥ ७ ॥ वह आत्मा स्वयं प्रकाशमान तथा व्यक्ताव्यक्तसे परे है इसलिए उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता। वह आकाशकी तरह सबका आधार, नित्य, अनन्तोपम तथा विभु है ॥ ८ ॥ हे प्रभो, इस तरहसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपनेसे अपनेमें स्थित आत्मा आप स्वयं अनुमान युक्तबुद्धिसे वासुदेव भगवान्का स्मरण करते हुए मनन करें ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके वचनसे तक्षक आपको भस्म नहीं कर सकता और मृत्यु भी इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, क्योंकि यह आत्मा मृत्युका भी मृत्यु तथा सर्वसमर्थ है॥१०॥ निरुपाधिक हृदयमें अपने आत्माको रखकर मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, परमब्रह्म हूँ, परमधाम हूँ, मैं

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवाऽमृश प्रभो ॥ बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ॥ ९॥ चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः ॥ मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥१०॥ अहं ब्रह्म परंधाम ब्रह्माहं परमं पदम् ॥ एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥११॥ दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ॥ न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥१२॥ एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ॥ हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे ब्रह्मोपदेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५ ॥

परमपद हूँ, इस प्रकार आत्मा समीक्षा करते हुए आप विषैले मुखसे काट रहे तक्षकको नहीं देख सकेंगे, क्योंकि आप शरीर और विश्वको आत्मासे पृथक् नहीं समझते ॥ ११, १२ ॥ हे राजन्, जिस प्रकारसे आपने प्रश्न किया-उसके अनुसार मैंने विश्वात्मा भगवान्का वर्णन कर दिया—अब क्या सुनना चाहते हैं ॥ १३ ॥

अध्याय सार---श्री शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, मैं मर जाऊँगा, इस बुद्धिको आप भूल जाइये क्योंकि यह आत्मा उत्पत्ति तथा विनाशसे रहित अनन्त एवं नित्य है। इसमें जरा मरणका व्यवहार, शरीर, मन तथा इन्द्रियोंके संयोगसे ही होता है। यह तो वस्तुतः अविनाशी है, इसलिए आप अपनेको परमब्रह्म समझते हुए अपनेमें ही ब्रह्मका मनन करें तथा भगवान्का स्मरण करें इस प्रकार आप भेद बुद्धिसे रहित होकर पैरमें काटते हुए तक्षकको नहीं देख पायंगे।

❀ अथ षष्ठोऽध्यायः ❀

राजा परीक्षित्के मोक्ष, जनमेजयके नागयज्ञ तथा वेदों के विभागका वर्णन

श्रीसूत ने कहा—हे ऋषियों, सम्पूर्ण जगत्को आत्मरूपमें देखने वाले अतएव सम बने हुए व्यास पुत्र श्री शुकदेवजी से भगवानके परम अद्भुत उस चरितको सुनकर श्री शुकदेवजी

सूत उवाच । एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ॥ तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ॥ श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः

के चरणोंके समीप पहुँच सिर झुकाकर राजा परिक्षित, जिनका दूसरा नाम विष्णुरात था, करबद्ध प्रार्थना करने लगे ॥ १ ॥ राजाने कहा—अनादि निधन भगवान् हरिकी जो आपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साक्षात् कथा सुनाई, इससे मैं कृतार्थ हो गया। करुणात्मा आपने मुझे अनुगृहित किया ॥२॥ अच्युत भगवान् जिस महात्माओंके अन्तरात्मा में निवास करते हैं वैसे महात्मा जन संसार के परितापसे परितप्त प्राणियोंके ऊपर यदि अनुग्रह करें, तो इसमें मैं कोई आश्चर्य नहीं समझता, क्योंकि महात्माओं का यह स्वभाविक गुण है ॥ ३ ॥ आपने कृपाकर वह भागवत्पुराण हम लोगोंको सुनाया, जिसमें पद-पद पर भगवान् कृष्णका वर्णन है ॥ ४ ॥ हे भगवन्, आपने मुझे अभय प्रदान करने वाले कैवल्यब्रह्मका उपदेश दिया, जिससे कि मैंने ब्रह्मस्वरूपमें प्रविष्ट हो होकर ब्रह्म और आत्माके अभेद का साक्षात्कार कर लिया। अब मुझे तक्षकादि मृत्यु निमित्तोंसे भय नहीं है ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन्, मुझे आज्ञा प्रदान करें कि अब मैं अपनी वाणियोंको बन्द कर कामनाओं के साथ-साथ आशय तथा चित्तको समेट करके भगवान्के चरणोंमें लीन कर प्राणत्याग करदूँ ॥ ६ ॥ ज्ञान, विज्ञानमें परिनिष्ठित हो जानेसे मेरा अज्ञान बिलकुल नष्ट हो गया और आपने परम कल्याण कारक भगवान्का परम पद दिखला दिया ॥ ७ ॥ श्री सूतजी ने कहा—हे शौनकादि ऋषियों, राजा परिक्षित्ने इस प्रकार कहकर श्री

॥ २ ॥ नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ॥ अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ॥ यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ॥ प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥ अनुजानीहि मां ब्रह्मन् वाचं यच्छाम्यधोक्षजे । मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥ अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ॥ भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ॥ जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ॥ समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गङ्गाकूले उदङ्मुखः ॥ ब्रह्मभूतो महायोगी निःसङ्गश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ॥ हन्तुकामो नृप गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ॥ बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥ हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ॥ विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुर-

शुकदेवजी की विधिवत् पूजा की। तदनन्तर भगवान श्री शुकदेवजी भिक्षुकोंके साथ वहांसे चलदिए ॥८॥ और राजर्षि परीक्षित् भी अपनेसे ही अपने अन्तःकरणको परमात्मामें लीन कर सूखे वृक्षके समान श्वास-प्रश्वासको रोक कर ध्यानस्त हो गए ॥ ९ ॥ पूर्वाग्रमुख कुशोंको बिछाकर गंगा तट पर उत्तराभिमुख हो ब्रह्मभूत महायोगी राजा परीक्षित आसक्ति से शून्य तथा सन्देहों से रहित होकर बैठ गये ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो, क्रुद्ध शृङ्गि ऋषिके शापके कारण राजाको काटनेके लिए जा रहे तक्षकने मार्गमें कश्यप नासक ब्राह्मणको देखा ॥ ११ ॥ सर्पने विष हरण करने वाले उस ब्राह्मणको बहुत धन देकर लौटा दिया और स्वयं ब्राह्मणरूप धारण कर राजाके समीप गयो और डँस दिया ॥ १२ ॥ ब्रह्मभूत राजा परिक्षित्का शरीर सर्पके विष रूप अग्निमे सबके देखते देखते भस्म हो गया ॥ १३ ॥ पृथिवी, आकाश तथा दिशाओंमें चारो ओर हाहकार मच गया देवता, असुर तथा नारदादि सबके सब इस चरित्रको देखकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परम विस्मित हुए ॥ १४ ॥ देवताओं की दुन्दुभि स्वयं बजने लगी गन्धर्व और अप्सराएं गान करने लगीं, देवता लोग साधु-साधु का नारा लगाते हुए पुष्प वृष्टि करने लगे ॥ १५ ॥ जब जनमेजयने सुना कि सर्पने मेरे पिता को डँस दिया है तब सर्पाभिचार सत्रमें क्रुद्ध होकर वह ब्राह्मणोंके साथ कुण्डमें सर्पोंका हवन करने लगा ॥ १६ ॥ जब तक्षकने देखा कि जनमेजयके खूबप्रज्वलित हुई अग्नि वाले सर्प यज्ञमें बड़े-बड़े सर्प भस्म होते जारहे हैं तब भयभीत होकर वह भगवान् इन्द्रकी शरणमें गया ॥१७॥ सर्प यज्ञमें अनेक सर्पोंके भस्म हो जानेपर तक्षकको न देखकर ब्राह्मणोंसे जनमेजयने कहा—वह दुष्ट तक्षक क्यों नहीं इसमें भस्म हो रहा है ॥ १८ ॥ ब्राह्मणों ने कहा—वह इन्द्रकी शरण में चला गया है, इन्द्र उसकी रक्षा कर रहे हैं, इसीसे वह अग्निमें गिरकर भस्म नहीं होरहा है ॥ १९ ॥ यह सुनकर उदारधी जनमेजयने ऋत्विजोंसे कहा—हे ब्राह्मणों, इन्द्रके साथ तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं गिरा देते ॥ २० ॥

नरादयः ॥ १४ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वाप्सरसो जगुः ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥ जन्मेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ॥ यथाजुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ॥ १६ । सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः । १८ ॥ तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥१९॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ॥ सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वाजुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे ॥ तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः । बभूव संभ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥२२॥ तं पतन्तं विमानेन सहतक्षकमम्बरात् ॥ विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजनं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथवा अजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पञ्चत्व-

ब्राह्मणोंने यह सुनकर यागमें इन्द्रके साथ तक्षकका आह्वान किया। उन्होंने कहा कि हे तक्षक, तुम मरुत्वान् इन्द्रके साथ अग्निकुण्डमें शीघ्र आजाओ ॥ २१ ॥ जब ब्राह्मणोंने इस प्रकार मन्त्र द्वारा आह्वान किया, तब इन्द्र अपने लोकसे विचलित हो गए। तक्षक और विमानके साथ उनका दिमाग चक्कर काटने लगा ॥ २२ ॥ तक्षकके साथ इन्द्रको आकाशसे विमान द्वारा अग्निकुण्डमें गिरते देख—अङ्गिरानन्दन बृहस्पतिने जनमेजयसे कहा कि ॥ २३ ॥ हे मानुपेन्द्र जनमेजय, इस सर्पराजको आप नहीं मार सकते, क्यों कि राजन् इसने अमृत पान करलिया है अर्थात् यह अजर अमर हो चुका है ॥ २४ ॥ मनुष्यका जन्म, मरण, उसके कर्मानुसारही होता है परलोक गति भी उसीके अनुसार होती है इसलिए हे राजन् कर्मके सिवा और कोई सुख दुःख देने वाला नहीं है ॥ २५ ॥ हे जनमेजय ! यद्यपि सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, भूख-प्यास तथा रोगसे सभी प्राणियोंकी मृत्यु होती है, लेकिन ये सब मृत्युमें केवल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निमित्त मात्र होते हैं। सब कार्य प्रारब्धकर्मके अनुसार ही हुआ करते हैं। इनमें कोई भी अपनी स्वतन्त्रेच्छासे कुछ नहीं कर सकता ॥ २६ ॥ इसलिये हे राजन्, हिंसा फलक इस यज्ञ को समाप्त कीजिये। ये बेचारे सर्प बिना अपराधके मारे गये हैं। लेकिन इसमें भी आपका कोई दोष नहीं है क्योंकि सभी सर्पोंका यही अदृष्ट था सभी मनुष्य प्रारब्ध कर्मका ही उपभोग करते हैं ॥ २७ ॥ सूतजी ने कहा—हे शौनकादि ऋषियों, बृहस्पतिजीके इसप्रकार कहने पर जनमेजयजीने उनकी बात मानकर सर्पयज्ञबन्द कर दिया, और उनकी पूजा की ॥ २८ ॥ भगवान् विष्णुकी यह माया प्रबल है, इसका बाध किसीसे नहीं हो सकता। इसका निरूपण भी कोई नहीं कर सकता। इसके वशमें सभी प्राणी होकर क्रोधादि गुणवृत्तियों द्वारा भूतों पर मोहित हो जाते हैं। यद्यपि, सभी भगवान् के ही अंश हैं ॥ २९ ॥ भगवान् की कृपासे ही इस माया की निवृत्ति हो सकती है। यह उन्हीं लोगोंके ऊपर अपना प्रभाव जमाती है, जो पाखण्डी दम्भी, लोलुप रहते हैं। भगवद्भक्तोंके पास तो कभी नहीं फटकती, आत्मामें रमण करने वाले जब आत्मस्वरूपका विचार करने लगते हैं और [भगवान्

मृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥
सूत उवाच ॥ इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ॥ सर्पसत्रादुपरत पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥ सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यथा ॥ मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥ न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥ न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च सङ्कल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥ ३० ॥ न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ॥ तदेतदुत्सादि-तबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमेत्स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्य-सौहृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥ त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम्॥ ॥३३॥
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ यत्पा-

के स्वरूपका आभास जब उन्हें होने लगता है, तब वहाँ पर माया से सम्बन्ध रखने वाले विवाद, मतवाद भी नष्ट हो जाते हैं। और संकल्प-विकल्प करने वाला मन भी शान्त हो जाता है ॥ ३० ॥ जहाँ पर सृष्टि, उनके कारण तथा दोनोंका परमश्रेय भी नहीं है और न सृज्य, स्रष्ट तथा उसके फलसे युक्त अहंकारात्मक जीव ही है। इसलिये बाध्य-बाधक भाव भी जहाँ से दूर होगये हैं वह आत्मस्वरूप अहंकारादिको हटाकर अपनेमें रमण करता है ॥ ३१ ॥ आत्माके अतिरिक्त प्रत्येक वस्तुका त्याग करनेकी इच्छा वाले परमात्माको छोड़कर अन्य वस्तु में स्पृहा ही करने वाले मुमुक्षुजन 'नेति' 'नेति' के द्वारा प्रत्येक वस्तुका त्यागकर ध्यानसे अपने चित्तको एकाग्र करके जिसे प्राप्त करते हैं वही विष्णु भगवान्का परमपद है ॥ ३२ ॥ भगवान् विष्णुका जो यह परमपद है इसे वही प्राप्त करते हैं जिनके अन्तःकरणमें देहगेह विषयक 'अहं' 'मम' यह दौर्जन्य नहीं रहता। ३३ ॥ इसपदको प्राप्त करने वालेको चाहिये कि वह दूसरे की कटु वाणियोंका सहन करले, लेकिन दूसरोंका अपमान न करे। इस क्षणभङ्गुर शरीरको प्राप्त कर किसीसे वैर न करे ॥३४॥ उन व्यासजीको बार-बार नमस्कार है जिनकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बुद्धि अति तीक्ष्ण है, जिनके चरण सरोरुहों की अनुकम्पासे इस भागवतसंहिताका मैंने ज्ञान प्राप्त किया है ॥ ३५ ॥ शौनकजीने कहा—हे सूतजी, व्यासशिष्य पैलादिकोंने इस वेदको कितने भागोमें विभक्त किया ॥ ३६ ॥ सूतजीने कहा—हे शौनकजी, परमेष्ठि ब्रह्माजीने जब अपना चित्त एकाग्र किया उस समय उनके हृदय-आकाशसे एक अनाहत नाद उत्पन्न हुआ जो कि कर्णवृत्तियोंको रोकने पर हम लोगोंसे भी सुना जा सकता है ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन्, जिसकी उपासना करके योगी लोग अधिभूत, अध्यात्म तथा अधिदैवतरूप अपने द्रव्य क्रिया-कारक नामक मलको धोकर मोक्ष पद प्राप्त कर लेते हैं ॥३८॥ उस अनाहत नादमें त्रिमात्रिक ['अ'कार, 'उकार 'म'कार स्वरूप] ॐकार उत्पन्न हुआ। जिसका उत्पत्ति स्थान अव्यक्त है जो स्वतः हृदयमें प्रकाशमान है और जो भगवान् परमब्रह्म परमेश्वरका गमक [बोधक] है ॥३९॥ जो श्रोत्रके अवृत्तिक हो जाने पर [मनुष्यकी सुषुप्ति अवस्थामें] इस ॐकाररूपस्फोटको सुनता है वही

दाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥३५॥ शौनक उवाच । पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ॥ वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः ॥ द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ॥ यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ॥ येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥४०॥ स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ॥ स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ॥ धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ॥ अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ॥ सव्याहृतिकान्सोङ्कारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ॥ ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ४५ ॥ ते परम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥ चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

परमात्मा है, क्योंकि उस समय जीव सुषुप्ति अवस्थामें रहता हैं तथा कर्णेन्द्रिय अपना काम नहीं करती जिस ओंकारसे वृहती वाणीकी अभिव्यक्ति होती है और जिसकी आत्माके साथ हृदयाकाशमें अभिव्यक्ति होती है ॥४०॥ जो ॐकार अपने आश्रय परमात्मास्वरूप ब्रह्मका साक्षात् वाचक है और सम्पूर्ण मन्त्र तथा उपनिषद् भाग वेदका सनातन कारण है ।४१॥ हे शौनकजी, ॐकारके अकार उकार और मकार ये तीन वर्ण हैं और वे सत्व, रज, तम, गुणोंको, ऋग्यजुः साम नामोको, भूर्भुवः स्वः-लोकोंको यानी अर्थोंको तथा जाग्रत्स्वप्न प्रसुषुप्ति वृत्तियोंको धारण करते हैं ॥४२॥ उन्हीं वर्णोंसे, अन्तः-यरलव, ऊष्मा-शषसह, स्वर—अकारादि, स्पर्श—कखगघ आदि पचीसों वर्ण, ह्रस्व, दीर्घ प्लुत, जिह्वामूलीय उपध्मानीय इत्यादि अक्षर समूहको भगवान् ब्रह्माने उत्पन्न किया ॥४५॥ उस अक्षर समूहसे ॐकार तथा व्याहृतियोंके सहित चार वेदोंको उसी चतुरानन भगवान् ब्रह्माने अपने चार मुखोंके द्वारा चार होतृ कर्म करनेकी इच्छासे उत्पन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया ॥४४॥ उन्होंने ब्रह्मर्षि तथा वेदके उच्चारण करनेमें चतुर अपने मरीच्यादि पुत्रोंको वेदकी शिक्षादी। और उनलोगोंने धर्मका उपदेशकरने वाले अपने पुत्रोंको इस वेदकी शिक्षा दी ॥४५॥ व्रतधारी उनके शिष्यों द्वारा वे वेद परम्परया चारों युगोंमें रक्षित थे। वे द्वापरके अन्तमें महर्षियोंसे विभक्त किए गयेहैं ॥४६॥ समयके प्रभावसे इससमयके लोगोंकी अल्पमति तथा धारण शक्तिको कमजोर एवं लोगोंकी कम आयु जानकर हृदयमें स्थित भगवान् अच्युतकी प्रेरणासे ब्रह्मर्षियोंने उन वेदोंके अनेक विभाग किए ॥४७॥ हे ब्रह्मन्, इस बीचमें ब्रह्मा, शङ्कर और लोक पालोक प्रार्थना करने पर लोक भावन विष्णु भगवान्ने सत्यवतीके गर्भसे महर्षि पराशर द्वारा धर्मकी रक्षाके लिए व्यासके रूपमें मायाके सत्त्वके अंशसे अवतार ग्रहण किया और हे महा भाग, उन्होंने वेदका चार विभाग किया॥४८,४९॥ महर्षि भगवान् व्यासने मणियोंके समूहसे विभिन्न प्रकारकी मणियोंकी तरह छाट-छाटकर मन्त्र समुदायमेंसे प्रकरणोंके अनुसार ऋग्, यजुः साम और अथर्व इन चार संहिताओंमें वेदको विभक्त किया ॥५०॥ उस चतुर महा बुद्धिमान् सर्वसमर्थ महर्षि व्यासने अपने चार शिष्योंको बुलाकर प्रत्येकको एक-एक संहिताका अध्ययन

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥४७॥ अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः ॥
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ॥ अवतीर्णो महाभागं वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥
ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ॥ चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ॥
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥ वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ५२ ॥
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ॥ अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे । ५३ ॥ पैलः स्वसंहितामूच इन्द्रप्रमितये मुनिः ॥
बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ॥ पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्म
वान् ॥ ५५ । अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् ॥ तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥ शाकल्यस्तत्सुतः स्वां
तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥५७॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ बालाकपैज-

कराया ॥ ५१ ॥ पहली 'वह्वृच' नामकी ऋक् संहिता पैलको, दूसरी यजुसमुदायकी "निगद" नामकी वैसम्पायनको, तीसरी साम श्रुतियोंकी "छन्दोग" संहिता जैमिनीको, एवं "अथर्वाङ्गिरस" नामकी अथर्वकी संहिता अपने शिष्य सुमन्तुको पढ़ायी ॥ ५२- ५३ ॥ पैल मुनिने अपनी संहितामें दो भागकर इन्द्र प्रमिति तथा वाष्कलको अध्ययन कराया। वाष्कलने उसमें चार विभाग कर दिए ॥ ५४ ॥ हे भार्गव, उन्होंने प्रत्येकका अपने शिष्य, बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्रको अध्ययन कराया ॥ ५५ ॥आत्मसंयमी इन्द्रप्रमितिने अपनी संहिता का अध्ययन माण्डूकेय ऋषिको कराया। इनके शिष्यदेवमित्र हुए, जिन्होंने सौभरि इत्यादि ऋषियोंको अपनी संहिता पढ़ाई ॥ ५६ ॥ माण्डूकेयके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताका पाँच विभाग किया और प्रत्येक विभाग वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य तथा शिशिर को दिया ॥ ५७ ॥ शाकल्यके शिष्य जातूकर्ण मुनि हुए, उन्होंने अपनी संहिताका तीन विभाग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया। प्रत्येक विभाग बालाक, पैज, वैतालको पढ़ाया तथा वैदिक पदार्थ व्याख्यान रूप निरुक्तको विरज मुनिको पढ़ाया ॥ ५८ ॥ बाष्कलके पुत्र बाष्कलिने प्रत्येक शाखाओंको मिलाकर उनसे बालखिल्य नामक संहिता रची। उसे उन्होंने बालायनिभर्ज्य और कासारको दिया ॥ ५९ ॥ ऋग्वेदकी इन बह्वृच संहिताओं को अपने शिष्य गुरुपरम्परासे इन ऋषियोंने धारण किया वेदोंके इन विभागोंको सुनकर प्रत्येक प्राणी अपने पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ६० ॥ वैशम्पायनके कुछ शिष्य चरकाध्वर्यु हुए। इन लोगोंने गुरुकी ब्रह्महत्या के पाप निवृत्तिके लिए एक व्रतका अनुष्ठान किया ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्य भी वैशम्पायनजी के शिष्य थे। उन्होंने अपने गुरुसे कहा कि हे भगवन्, अल्पवीर्य इन चरकाध्वर्युओंके व्रतका कुछ प्रभाव नहीं दीखता मैं आपके लिये कठिन तपस्या करूँगा ॥ ६२ ॥ याज्ञवल्क्य की यह बात सुनकर वैशम्पान जी को क्रोध आगया। उन्होंने कहा कि तुम्हारे ऐसे ब्राह्मण निन्दक शिष्यकी मुझे जरूरत नहीं है, मेरे यहाँसे तुम चले जाओ और आज तक जो कुछ भी तुमने मुझसे पढ़ा है उसे यहीं छोड़कर यहाँसे चले जाओ। ३३ ॥ देवरातके लड़के उस याज्ञ-

वैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ।।५८।। बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ।। चक्रे बालायनिर्भज्यः कासारश्चैव तां दधुः ।। ५९ ।। बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिधृताः ।। श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। ६० ।। वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।। यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहः क्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् । ६१।। याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ।। चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ।।६२।। इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यालं त्वया ।। विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ।। ६ । देवरातसुतः सोऽपिच्छर्दित्वा यजुषां गणम् ।। ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ।। ६४ ।। यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ।। तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ६५ ।। याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधिगवेषयन् ।। गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ।। ६६ ।। याज्ञवल्क्य उवाच ।। ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ।।६७। यदु ह वाव विबु-

वल्क्यने उस यजुः समुहका वह वमन वहीं कर दिया और वहाँ से वह चल दिया। वहाँ पर रहने वाले कुछ मुनियोंने उन यजुर्वेदक समूहोंको देख ॥ ६४ ॥ उन लोगोंके मनमें लोभ आया कि इन यजुः समूहोंको हमलोग ले लें। और तितिर होकर उनलोगोंने उन्हें चुँग लिया। इसलिए यजुर्वेदके उस परम रमणीय शाखाका नाम 'तैत्तरीय' पड़ा ॥ ६५ ॥ इधर याज्ञवल्क्य मुनिकी इच्छा हुई कि मैं ऐसे छन्दोंको प्राप्त करूँ, जो मेरे गुरुके पास न हों मनमें ऐसा विचार कर वे भगवान् सूर्यकी उपासना करने लगे ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्यजी ने इस प्रकार कह कर उपस्थान किया—मैं ॐकार स्वरूप भगवान्, आदित्यको नमस्कार करता हूँ। हे भगवन्, आप निखिल ब्रह्माण्डके आत्मस्वरूपसे और कालस्वरूपसे विद्यमान हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त चार प्रकारके जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज्ज जो प्राणी हैं। उनके हृदयदेश तथा बाहरमें वर्तमान रहते हुये भी उपाधिके धर्मोंसे आप आच्छादित नहीं हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक ही आप क्षण, लव, निमेष, रूप अवयवों से संयुक्त सम्वत्सरके द्वारा तथा जलके आदान और विसर्गके द्वारा लोकयात्राका निर्वाह करते हैं ॥६७॥ हे भगवन्, आप सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी हैं। जो लोग वेदविहित विधिके द्वारा प्रतिदिन आपकी उपासना करते हैं। उनके पाप तथा दुःखके जनक कारणोंको आप नष्ट करते हैं। इसलिये आपके तेजोमय मण्डल को नमस्कार है ॥ ६८ ॥ स्थावर और जंगम जितने भी स्वाश्रित जीव समूह हैं अन्तर्यामी आपही उनके मन, इन्द्रिय और प्राणोंके प्रेरक हैं ॥ ६९ ॥ यह संसार अति अंधकार स्वरूप अजगर सर्पसे प्रतिदिन निगलित होकर मृतकके समान चेतना रहित हो जाता है परम कारुणिक आप उस अवस्थामें उसे देखकर दयासे द्रवीभूत होकर दृष्टिमात्रसे उसे सचेत करते हुये धर्मानुष्ठानोंके द्वारा आत्माभिमुख कर देते हैं। जिस प्रकार राजा लोग दुष्टोंको भयभीत करते हुये अपने राज्यमें विहार करते हैं ॥ ७० ॥ इन्द्रादि दिक्पालगण अपने-अपने

घर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥६८। य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवद-नान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मवस्थाने पवर्त-यत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥ परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतःस भगवान्वाजिरूपधरो हरिः ॥ यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥ यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पञ्चशतैर्विभुः ॥ जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥७४॥ जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमन्तुस्तनयो मुनिः ॥ सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ॥ सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः ॥ शिष्यो जगृहतुश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः

स्थान पर कमल-कलिकाके समान सुकुमार अञ्जलियोंसे आपको अर्घ प्रदान करते हैं ॥ ७१ ॥ हे भगवन्, आपके दोनों चरण कमल तीनों लोकोंके स्वामियोंसे वन्दित हैं। मैं यजुर्वेदकी प्राप्तिके लिये आपके चरणके समीप आया हूँ ॥ ७२ ॥ सूतजी ने कहा—हे ऋषियो, इस प्रकार याज्ञवल्क्यके प्रार्थना करने पर भगवान् सूर्य अश्वरूपमें प्रकट हुये। और उन्होंने यजुर्वेदके मन्त्रोंका उपदेश दिया ॥ ७३ ॥ यजुर्वेदके उन असंख्य मन्त्रोंसे १५ शाखाओंकी रचनाकी। जो कि आज वाजसनेयके नामसे प्रसिद्ध हैं। और उन्हें काण्व, माध्यन्दिन इत्यादि ऋषियोंने ग्रहण किया ॥७४ ॥ सामवेदके ज्ञाता जैमिनी मुनिने अपने पुत्र सुमन्तु, तथा पौत्र सुन्वान्को एक-एक संहिताका अध्ययन कराया ॥ ७५ ॥ जैमिनीमुनिका एक अतिमेधावी शिष्य सुकर्मा था उसने सामवेदरूपी वृक्षके सहस्रशाखाओंकी रचना की ॥७६॥ तदनन्तर सुकर्माके कोशलदेश वासी हिरण्यनाभ और पौष्यञ्जिनामक शिष्योंने उन शाखाओंका ग्रहण किया। सुकर्माका ब्रह्मवेत्ता अवन्त्यनामक एक और शिष्य था, उसने भी ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ पौष्यञ्जि और आवन्त्यकके उत्तरदेश निवासी पाँचसौ शिष्य थे उन्हींको औदिच्य सामवेदी तथा प्राच्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सामवेदी भी कहते हैं ॥ ७८ ॥ लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुशीद और कुक्षि ये पौष्यञ्जिके शिष्य थे । इनलोगोंने सौ संहिताओंका अध्ययन किया था ॥ ७९ ॥ हिरण्यनाभके शिष्य कृतने

॥ ७७ ॥ उदीच्या सामगा शिष्या आसन्पञ्चशतानि वै ॥ पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥ लौगाक्षिर्माङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ॥ पौष्यञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥७९॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ॥ शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ॥ ८० ॥ ॥ श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

चौबीस संहिताओंका अध्ययन अपने शिष्योंको कराया । शेष संहिताओंको आवन्त्यने, जो आत्मज्ञानी थे, अपने शिष्योंको दिया ॥ ८० ॥

छठवेंअध्याय का सार—श्री सूतजीने कहा—हे ऋषियो, राजा परीक्षित्ने—शुकदेवजी से ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर उनका पूजन करके उन्हें विदा किया और गङ्गा तटपर पूर्वाग्रमुख कुशाओंको बिछाकर उत्तराभिमुख होकर बैठगये । अपने प्राण, मन, इन्द्रियोंको एकाग्रकर समाधिस्थ हो गये । शृङ्गीऋषीके शापानुसार ब्राह्मणवेषमें तक्षकने आकर उन्हें डँसलिया और तत्क्षण उनका शरीर लोगोंके देखते-देखते भस्म हो गया । इस प्रकार उनकी गतिको जानकर उनके पुत्र जनमेजयने सर्पयज्ञ प्रारम्भ किया, जिसमें सभी सर्प आकर नष्ट होने लगे । लेकिन बहुत समय तक यज्ञ होनेपरभी जब तक्षक कुण्डमें न गिरा तब जनमेजयने ऋषियोंसे कहा कि क्या कारण है कि अभीतक तक्षक नहीं आया । उन लोगोंने उत्तर दिया कि हे राजन्, इन्द्रमित्र तक्षक उनके सिंहासनमें लिपट कर बैठा है, अतएव अबतक वह न आसका । जनमेजयने इन्द्रके सहित आहुति देनेके लिये ऋषियोंसे कहा तथा वैसाही उन लोगोंने किया । सिंहासनके सहित भय तक्षकके इन्द्र आहुतिके साथ नभमार्ग द्वारा कुण्डमें गिरने लगे । ऐसा देख बृहस्पतिने जनमेजयको समझाकर यज्ञ बन्द करा दिया । तदनन्तर शौनकजी ने कहा—हे भगवन्, वेदोंका विभाग बतलाइये । सूतजीने कहा—हे ऋषियो ब्रह्माने अपने मुखसे चार वेदोंकी उत्पत्तिकी । द्वापरके अन्तमें उन्हें ऋषियोंने अनेक शाखाओंमें विभक्त कर दिया था, लेकिन भगवान्ने लोगोंकी अल्पबुद्धि देखकर व्यासजीके रूपमें अवतरित होकर अनेक शाखाओंमें बिखरे हुए उन वेदोंको फिर ऋग्, यजु, साम और अथर्व इन भागोंमें विभक्त कर दिया । तदन्तर व्यासजीने अपने शिष्योंको पढ़ाया । उन्होंने अपने शिष्योंको । इसी तरह शिष्य-प्रशिष्य द्वारा वेदोंका ज्ञान हम सबोंको आज तक प्राप्त है । ❋

❋ अथ सप्तमोऽध्यायः ❋

अथर्ववेदकी संहिताओं तथा लक्षण पूर्वक पुराणोंका वर्णन

सूत उवाच ॥ अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापनत्स्वकाम् ॥ संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥१॥ शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः ॥२१॥

सूतजीने कहा—ऋषियो, अथर्ववेदके ज्ञाता सुमन्तुऋषिने अपनी संहिता अपने प्रियशिष्य कबन्धको पढ़ाई । कबन्धने भी दो भागोंमें विभक्त कर अपने शिष्य पथ्य तथा वेद

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दर्शको बताई ॥ १ ॥ शौक्लायनि, ब्रह्मवल्ली, मोदोष और पिप्लायनि नामके प्रियशिष्य वेददर्शके चार हुये और कुमुद, सुमक, जाजलि नामक पथ्यसे तीन शिष्य हुये ॥ २ ॥ हे शौनकजी, अंगिरा गोत्रोत्पन्न शुनकके बभ्रु और सैन्धवायन दो शिष्य थे। उन लोगोंने दो संहिताओंका अध्ययन किया ॥ इसके अतिरिक्त सावर्ण्यादि भी सैन्धवायनके शिष्य हुए ॥ ३ ॥ नक्षत्र कल्प, शान्ति, कश्यप, आंगिरस् इत्यादि अथर्ववेदके आचार्य हुए। हे मुने, अब पाप पौराणिकोंके नाम सुनिये—॥ ४ ॥ त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन ये छः प्रसिद्ध पौराणिक हैं ॥ ५ ॥ इनलोगोंको मेरे पिताजीने भगवान् व्याससे पुराणसंहिताओंको पढ़कर एक-एक संहिता पढ़ाई थी। मैंने इन छः आचार्योंसे उन सम्पूर्ण संहिताओं का अध्ययन किया है ॥ ६ ॥ उन संहिताओंके अतिरिक्त और भी चार मूल संहितायें थीं। उनका अध्ययन मैंने कश्यप, सावर्णि और परशुरामजीके शिष्य अकृतव्रणके साथ व्यासजीके

पिप्पलायनिः ॥ वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥ कुमुदः शुनको ब्रह्मञ्जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ॥ २ ॥ बभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च ॥ अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथापरे ॥ ३ ॥ नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः ॥ एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥४॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ॥ वैशंपायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥५॥ अधीयन्त व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ॥ एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥ काश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ॥ अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ॥ शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥ सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च ॥ वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥९॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ॥ केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ॥ भूतमात्रेन्द्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ॥ विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ॥ कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चो-

शिष्य श्रीरोमहर्षणजीसे किया था ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन्, ब्रह्मर्षियोंने वेद और शास्त्रोंके अनुसार जो पुराणका लक्षण बतलाया है, उसे आप दत्तचित्त होकर सुनिये ॥ ८ ॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था [प्रलय] [इससे आत्यन्तिक प्रलयरूपामुक्तिका भी ग्रहण होता है।] हेतु, [हेतुशब्दसे जीवाश्रयवासनाशब्दवाच्य ऊतियोंका ग्रहण किया गया है] और अपाश्रय ॥ ९ ॥ इन दस लक्षणोंसे जो युक्त होता है उसे पुराण कहते हैं। हे ब्रह्मन्, कोई-कोई आचार्य सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन पाँच लक्षणोंसे युक्तको ही महापुराण मानते हैं, उनका मत भी छोटे तथा बड़ेके भेदसे ठीक है, क्योंकि बड़े-बड़े पुराणोंमें दशलक्षण मिलते हैं और छोटे पुराणोंमें पाँचलक्षण मिलते हैं ॥ १० ॥ प्रधानप्रकृतमें लीन हुए गुण जब क्षुब्ध होते हैं तब महत्तत्वकी उत्पत्ति होती है, महत्तत्वसे राजसतासम वैकारिक घृत् अहंकारकी उत्पत्ति होती है। और त्रिवृत् अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्राओं इन्द्रियों और विषयोंकी उत्पत्ति होती है इसी उत्पत्ति क्रमको सर्ग कहते हैं ॥ ११ ॥ जब भगवान्की प्रेरणासे पूर्वजन्मकी वासनाओंके जागृत होनेपर जीव अपने एक-एक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाम और रूपको स्वीकार करता है उससमय अनेकतापूर्व स्थितिका नामही विसर्ग है ॥ १२ ॥ जगतमें जितने भी चलनेवाले सजीवप्राणी हैं, उनके जीवननिर्वाहकी सामग्री पञ्चमहाभूतात्मक स्थावर वस्तुयें है। उसमें मनुष्योंकी स्थित सबसे भिन्न है, क्योंकि अपने निर्वाहके लिए कुछ बातें अपने स्वभावके अनुसार कुछ काम वश और कुछ शास्त्रोंके आज्ञानुसार बना लेते हैं उसेही वृत्ति कहते हैं ॥ १३ ॥ भगवान् प्रत्येकयुगमें पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवताकेरूपमें अवतार लेकर अनेक प्रकारकी लीलाओंको करते हुए वेदधर्मविरोधियोंका संहार करते हैं, उसेही रक्षा कहते हैं ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, ऋषि और भगवान्के अंशावतारसे युक्त कालको मन्वन्तर कहते हैं। वह पूर्वोक्त छः प्रकारका है ॥ १५ ॥ ब्रह्मासे उत्पन्न राजाओंकी भूत, भविष्य, वर्तमान कालीन वंशको वंशपम्परा कहते हैं। उनके वंशके चरितका नाम वंशानुचरित है ॥ १६ ॥ नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक प्रलयही कवियोंसे संस्था कही गई है ॥ १७ ॥ महापुराणके दशलक्षणोंके अन्तर्गत आए हुए हेतुकाही नाम जीव है, क्योंकि सर्गादिका वहीं कारण है। दूसरे लोग उसे अनुशयी कहते हैं,

दनथापि वा ॥ १३ ॥ रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगे युगे ॥ तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥ मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः ॥ ऋषयोंऽशावतारश्चहरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ॥ वंशानुचरित तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥ १६ ॥ नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ॥ संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः ॥ १७ ॥ हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः॥ यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥१८॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥१९॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ॥ बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥२०॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ॥ योगेन वा तदात्मानं वेदेहाया निवर्तते ॥२१॥ एवंलक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ॥ मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥२२॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम् ॥ नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ॥ वाराहं

क्योंकि वे लोग उसे चेतनप्रधानकी दृष्टिसे देखते हैं। और जो उपाधिकी दृष्टिसे देखते हैं वे उसे अव्याकृत [प्रकृतिस्वरूप] मानते हैं ॥ १८ ॥ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, ये जीवकी तीन वृत्तियाँ हैं। विश्व, तेजस और प्राज्ञके नामसे प्रसिद्ध इन मायामय जीवकी वृत्तियोंमें जिसका साक्षीके रूपसे अन्वय तथा समाधिमें व्यतिरेक है, वही ब्रह्म है, उसीको अपाश्रय कहते हैं ॥ १९ ॥ नाम और रूपसे युक्त घटादि पदार्थोंमें विचार करनेपर जिस प्रकार केवल सत्तामात्रकी प्रतीति होती है ठीक उसी प्रकार गर्भाधानसे लेकर पञ्चतापर्यन्त नवदेहकी अवस्थाओंमें जो अधिष्ठान और साक्षिके रूपसे बराबर प्रतीत होता है और नहीं भी प्रतीत होता है वह ब्रह्म ही है उसीको अपाश्रय कहते है ॥ २० ॥ जब अन्तःकरण स्वयं वामदेवादिके समान–आत्मविचार तथा देवहूतिके समान योगाभ्यासके द्वारा राजस और तामस वृत्तियोंसे निवृत्त होजाता है तब शान्तवृत्ति विक्षेपके अभावसे आत्मज्ञानको जानजाता है तथा अविद्या निवृत्त हो जानेसे वह इहासे निवृत्त हो जाती है ॥ २१ ॥ इन पूर्वोक्तलक्षणोंसे लक्ष्य होनेवाले छोटे-बड़े अट्ठारह पुराण ऋषियोंके द्वारा बताये गये हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, ॥ २३ ॥ भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, मारकण्डेयपुराण, वामनपुराण, वराहपुराण,

मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमितित्रिषट् ॥२४॥ ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥ शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, और ब्रह्माण्डपुराण,—ये १८ पुराण हैं ॥ २४ ॥ हे मुने--व्यासके शिष्य प्रशिष्योंने जिस प्रकार अथर्वसंहिताओं तथा पुराणसंहिताओंका अध्ययन, अध्यापन तथा विभाजन किया उसे मैंने आपसे कह दिया, यह श्रोताओंके लिए ब्रह्मतेजका वर्धक है ॥ २५ ॥

सातवें अध्यायकासार—सूतजीने कहा—हे शौनकजी, अथर्ववेदके ज्ञाता सुमन्तुने अपने शिष्य कबन्धको अपनी संहिताका अध्ययन कराया, कबन्धने अपने शिष्योंको तथा उनलोगोंने अपने शिष्योंको अथर्व वेदकी शिक्षा दी अब आप लोग पुराणोंके लक्षण सुनिये। सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संथा, हेतु और अपाश्रय—ये दश महापुराणके नाम है। किन्ही आचार्योंके मतसे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये पाँच ही पुराणके लक्षण हैं। हे मुने, दोनोंही मत ठीक हैं, क्योंकि बड़े पुराणोंमें पूर्वोक्त दस तथा छोटे-छोटे पुराणोंमें पाँच लक्षण मिलते हैं। छोटे बड़े सब मिलाकर पुराणोंकी संख्या अठारह है। ❀

❀ अथ अष्टमोऽध्यायः ❀

(मार्कण्डेयकी तपस्या, तपस्यामें विघ्न स्वरूप आते हुए कामादि इन्द्रके गणोंकी असफलता तथा नर-नारायण की स्तुति का वर्णन)

शौनकजीने कहा—हे सूतजी, आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। आप संसारचक्रमें भटकनेवाले प्राणीको आत्मज्ञान कराकर इस चक्रसे उद्धार करादेते हैं, आप चिरञ्जीवी हों हे साधो, जो

शौनक उवाच ॥ सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ॥ तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥१॥ आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः ॥ यः कल्पान्ते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥ स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ॥ नैवाधुनापि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल ॥ वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो

हम पूछते हैं, कृपाकर कहिए ॥ १ ॥ बहुतसे लोग ऐसा कहते हैं कि मृकण्डऋषिके तनय मार्कण्डेय ऋषि चिरायु हैं। वे प्रलयकाल होने पर भी यथावस्थित रहते हैं। जिस प्रलयकाल के द्वारा यह सारा विश्वग्रस्त कर लिया जाता है ॥ २ ॥ किन्तु मार्कण्डेय हमारे कुलमें इसी कल्पमें उत्पन्न एक मान्य भृगुवंशी हैं और इसकल्पमें कोई प्रलयभी नहीं हुआ, तो फिर यह बात कैसे सच मानी जाय कि जिस समय सारी पृथ्वी प्रलयकालसे डूब गयी थी उस समय डूबते उतराते हुए केवल मार्कण्डेयने ही वटपत्रके दोनेमें शयन कर रहे बालमुकुन्द भगवान्का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दर्शन अक्षयवटवृक्षके ऊपर किया ॥ ३,४ ॥ हे सूतजी, यह हमारा बहुत भारी सन्देहात्मक विषय है चूँकि हमें इसमें बड़ा कुतूहल हो रहा है, इसलिये इस सन्देहको कृपा कर आप दूर कीजिए। आप केवल महायोगी हों सो बात नहीं है। किन्तु आप पुराणोंमें भी ज्ञातारूपसे सर्वमान्य हैं ॥ ५ ॥ श्री सूतजीने कहा–हे महर्षे, यह आपका प्रश्न हम लोगोंके भ्रमको मिटाने वाला तथा अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि इस प्रश्नके विषयमें भगवान् नारायणकी ही स्तुति की गई है जो कलिमलको नष्ट करने वाली है ॥ ६ ॥ मार्कण्डेय ऋषिके पिता मृकण्डने अपने पुत्र मार्कण्डेयके यथाकालोचित क्रमशः सभी संस्कार किए। अपने पितासे उपनयनसंस्कार लेनेके बाद मार्कण्डेय वेदोंका धर्माचरण पूर्वक यथावत् अध्यन्त कर तपस्या और स्वाध्यायमें निरत हो गए ॥ ७ ॥ हे बृहत्व्रत ब्रह्मचर्यको धारण कर शान्त, जटिल तथा वल्कलधारी होते हुए कमण्डलु, दण्ड, उपवीत और मेखला धारण कर व्रतका पालन करने लगे ॥ ८ ॥ और मृग-

भूयान्सूत कौतूहलं यतः ॥ तं नश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ॥
नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥६॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् ॥ छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपः स्वाध्यायसंयुतः ॥७॥
बृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः ॥ बिभ्रत्कमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ॥
अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्सन्ध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ॥ बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥१०॥
एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च येऽपरे ॥
नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥
तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ॥ व्यतीयाय महान्कालो मन्वन्तरषडात्मकः ॥ १४ ॥ एतत्पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे ॥

चर्म रुद्राक्षमाला, कुशा, इत्यादि अपने नियमके पालनके लिए धारण कर अग्निहोत्र, सूर्योपस्थान गुरु तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करते हुए सुबह और संध्या दोनों समय भगवान्की आराधना करने लगे ॥९॥ सायं और प्रातःकाल भिक्षा लाकर आचार्यकी सेवामें उपस्थित करते थे, गुरुकी आज्ञा होने पर एक बार मौन होकर भोजन करते थे, अन्यथा उपवास करलेते थे॥१०॥ इस प्रकार तपस्या और स्वाध्यायमें निरत होकर मार्कण्डेयने करोड़ों वर्षों तक भगवान्की आराधना कर दुर्जन मृत्युपर विजय पाई ॥११॥ इस वृतान्तको सुनकर ब्रह्मा, भृगु, दक्ष, और ब्रह्माके जो अन्य पुत्र थे वे सबके सब तथा, मनुष्य, देवता, पितर इत्यादि आश्चर्यान्वित हो गए ॥१२॥ इसतरह योगी मार्कण्डेयजी अपने बृहत्व्रत, तपस्या, स्वाध्याय और संयमोंके द्वारा जिसके सभी रागादि क्लेश तथा क्लेशोंके बीज नष्ट हो चुके हैं ऐसे अन्तरात्मासे भगवान्का ध्यान करते थे ॥१३॥ इस प्रकारकी तपस्या, योग तथा संयमके द्वारा अपने चित्तको भगवान्में लगाते हुए यानी विशुद्ध चित्त होकर भगवान्की आराधना करते हुए योगी मार्कण्डेयके छः मन्वन्तर बीत गए ॥१४॥ हे ब्रह्मन्, जब सातवें मन्वन्तरमें इन्द्रको यह पता लगा, तब इनकी तपश्चर्यासे भयभीत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होकर उन्होंने विघ्नडालना प्रारम्भकर दिया ॥१५॥ इन्द्रने तपस्यामें विघ्नडालनेके लिए अप्सराओं, गन्धर्वों, कामदेव, वसन्त, मलयानिल तथा अपने अतिप्रिय अपत्य लोभ और मदको मार्कण्डेयके आश्रमपर भेजा ॥१६॥ हे प्रभो, वे सब उत्तरकी ओर हिमालयके बगलमें, जहाँ पुष्पभद्रानदी बहती है, चित्राख्या पर्वतके समीप विराजमान मार्कण्डेयके आश्रमपर पहुँचे ॥ १७ ॥ पुष्पवृक्ष लताओंसे शोभित, पुण्यकर्मा ब्राह्मणोंसे आकीर्ण तथा अमल जलाशयोंसे वह आश्रम अत्यन्त पुण्यमय एवं मनोरम था ॥१८॥ उस आश्रमपर मदोन्मत्त भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे मतवाली कोकिलाएँ कुहू-कुहू कररही थीं, मतवाले मयूर खूब नाच कर रहे थे और मतवाले पक्षियोंके समूहसे वह आश्रम शोभित हो रहा था ॥१९॥ इस प्रकारके आश्रममें हिमालयके झरनोंसे निकलेहुए हिमकणोंके साथ पवनमें प्रवेशकर सुगन्धित पुष्पोंकी सुगन्धसे मिश्रित हो मन्द-मन्द कामभावको उत्तेजित करता हुआ बहने लगा ॥२०॥ सायंकालका समय है रजनीके मुखारविंदके चुम्बनकेलिए चन्द्रमा अपनी किरणोंका विस्तार कररहा है। वहींपर कुसुमाकरभी अविर्भूत होगया। वह प्रवालसदृश गुच्छोंकी श्रेणियों वाली हजारों डालियोंसे संक्लिष्ट हो रहे वृक्षों और लताओंसे ॥२१॥

तपोविशङ्कितो ब्रह्मन्नारोभे तद्विघातनम् ॥ १५ ॥ गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ ॥ मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥ १६ ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ॥ पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्र चित्राख्या च शिला विभो॥१७॥ तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम्। पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसङ्गीतं मत्तकोकिलकूजितम् मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम्॥१९। वायु प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ॥ सुमनोभिः परिष्वक्तो ववुत्तम्भयन्स्मरम् । २०॥ उद्यच्चन्द्र निशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ॥ गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः॥२१॥आन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ॥ अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः॥२२। हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिङ्कराः ॥ मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ॥ मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥ सन्दधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा ॥ मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥ क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौर-

वहींपर कामदेवभी देखागया। गाने-बजानेवाले गन्धर्वोंके समूह उसके पीछे-पीछे आ रहे थे। वह पुष्प धनुष तथा बाणोंको धारण किए हुए था एवं हजारों अप्सराएँ उसके पीछे पीछे चल रही थीं, उन अप्सराओंके समूहका वह पति था और वे अप्सराएँ थीं उसकी अपनी खास स्त्रियाँ थीं ॥ २२ ॥ इन्द्रके सेवकोंने आकर अग्निहोत्र करके भगवान्की आराधनामें लीन हुए तथा निमीलित नेत्रोंसे युक्त, दूसरे अग्निदेवके समान विराजमान, अजेय मार्कण्डेय मुनि को देखा ॥ २३ ॥ उनके सामने अप्सराएँ गान करने लगीं, नृत्य दिखाने लगीं, गायक लोगभी गानके साथ साथ मृदङ्ग, वीणा इत्यदि वाद्योंसे मनोरम वाद्य करने लगे ॥ २४ ॥ कामदेव भी अपने धनुषके ऊपर पंचमुख संज्ञक बाणोंको चढ़ाने लगा। पंचमुख बाण येहैं—शोषण, दीपन, संमोहन, तापन और उन्मादन। उसी समय वसन्त मार्कण्डेयके मनको विचलित करनेमें तत्पर होगया, लोभ भी इसी व्यापारमें जुट गया और अन्य इन्द्रके सेवक भी मुनिके मनको कम्पित करने लगे ॥२५॥ मार्कण्डेय ऋषिके सामने पुञ्जिकस्थली नामवाली अप्सरा गेंद खेलने लगी, खेलते खेलते २ गुरुस्तनोंके अत्यन्त भारसे उसकी कमर कभी लचक जातीथी और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उसके केशपासमें गुथे हुए फूल तथा मालाएँ विखरकर पृथिवीपर गिर जाती थीं ।।२६।। पुञ्जिकस्थली कभी कभी कटाक्ष नयनपात भी इधर उधर करती थी, कभी उसकी दृष्टि गेंदके साथ आकाशमार्ग में भी जाया करती थी । उसी बीच उसकी कटिमेखला टूट गयी मलयानिलने समय पाकर उसके सूक्ष्मवस्त्र को शरीर से अलग कर दिया ।। २७ ।। कामदेवने भी अपना अच्छा मौका देख कर मार्कण्डेयको पराजित समझते हुए अपना वाण प्रहार कर दिया, किन्तु कामदेवका वह सारा प्रयास उस तरह विफल होगया, जिस तरह भाग्यहीन पुरुषका उद्यम ।।२८।। हे मुने काम, वसन्त इत्यादि मार्कण्डेयके तपस्याको नष्ट करनेके लिये आये हुए थे, किन्तु तेजस्वी मार्कण्डेयके तेजसे उनके प्रतिकूल आचरण करते वे सबके सब जलते हुए उस तरह भाग चले, जिस तरह छोटे छोटे बच्चे सर्पको जगाकर भागते हैं ।।२९।। हे ब्रह्मन्, इन्द्र सेवकोंके द्वारा नाना प्रयत्न करने परभी मुनिका मन विचलित नहीं हुआ और इस विषयमें जो उन्हें जरा भी अहङ्कारका भाव भी नहीं आया, सो कोई विचित्र बात नहीं है, क्योंकि महात्माओंका ऐसा स्वभावही होता है ।। ३० ।। इन्द्रगणोंके साथ मलिनमुख कामदेवको देख तथा

वात् ।। भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रोसितस्रजः ।। २६ ।। इतस्ततो भ्रमद्दृष्टे श्चलन्त्या अनुकन्दुकम् ।। वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ।। २७ ।। विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ।। सर्वं तत्राभवान्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ।। २८ ।। त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने ।। दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ।। २९ ।। इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ।। यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ।। ३० ।। दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ।। श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ।। ३१ ।। तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपः स्वाध्यायसंयमैः ।। अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ।। ३२ ।। तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ ।। पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ।। ३३ ।। पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ।। तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ।। ३४ ।। ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ।। दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत् ।। ३५ ।। स

मार्कण्डेयके प्रभावको सुनकर इन्द्र भगवान् अत्यन्त विस्मयको प्राप्त होगये ।।३१।। हे मुने, इस प्रकार तपस्या, स्वाध्याय तथा संयमोंके द्वारा भगवान्में अपने चित्तको लीन किये हुए मार्कण्डेयके लिए अपने भक्तको प्रसन्न करनेकी अभिलाषासे नर नारायणरूपमें भगवान् प्रकट हुए ।।३२।। उन दोनों नर औ नारायणमें एक गौरवर्ण तथा एक श्यामवर्णके थे, दोनोंके नेत्र तत्क्षण विकसित कमलके समान मनोहर तथा विशाल थे तथा चार-चार भुजाओंको धारण किए हुए थे । एक कृष्ण मृगचर्म वस्त्रके स्थानमें धारण किए हुए थे दूसरे वल्कलधारी थे हाथोंमें कुशधारण किये हुए गलेमें यज्ञोपवीत तथा हाथमें कमण्डलु और वांसका दण्ड धारण किये हुए थे ।।३३।। वे पद्माक्षमालाको धारण किए हुए थे तथा जन्तुओंको हटानेके लिए दर्भमुष्टि धारण किए थे। इसलिए देदीप्यमान विद्युत्के समान पिशङ्ग वर्णकी कान्तिसे साक्षात् मूर्तिमान तपके सदृश प्रतीत हो रहे थे । श्रेष्ठ देवताओंसे पूजित वे दोनों बहुत लम्बे थे ।।३४।। भगवान्के साक्षात् स्वरूप नर-नारायण ऋषिको देखकर मार्कण्डेयजी उठ गये और बड़े आदरके साथ साष्टाङ्ग प्रणाम किया ।।३५।। नर-नारायणके दर्शन जन्य आनन्दमें वे इतना विभोर हो गए कि उनकी देह, मन और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन्द्रियाँ आनन्दसागरकी लहरमें प्रवाहित हो चलीं हर्षके कारण रोम खड़े होगये और उनका नेत्र आँसुओंसे पूर्णहो गया, जिससे कि वे उनके स्वरूपको ठीकसे देखभी न सके ॥ ३६ ॥ वे हाथ जोड़कर नर-नारायणके सामने खड़े हुए । उनका शरीर भगवानके सामने इतना झुका जारहा था, मानो भगवानूसे आलिङ्गन करने जा रहा हो ।—वे कहना बहुत चाहते थे, हृदय उद्गारसे उमड़ गया था, लेकिन प्रेमकी अधिकतासे उनका कण्ठ रुँध गया किसी प्रकार गद्गद् शब्दोंसे भगवान्, आप दोनोंको नमस्कार है सिर्फ इतना ही कह सके ॥ २७ ॥ उन लोगोंको आसन देकर उनका पादप्रक्षालन कर अर्घ्य, चन्दन, पुष्पादिसे उनकी पूजाकी ॥ ३८ ॥ नर-नारायण सुखपूर्वक आसनपर विराजमान थे, मार्कण्डेयको आपकी प्रसाददृष्टिसे हर्षितकर रहे थे, पूजनके पश्चात् मार्कण्डेयजीने पूज्यतम उन दोनोंकी स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयजीने कहा—हे भगवन्, मैं क्षुद्रमति आपकी महिमाका क्या वर्णन करूँ। आपसे प्रेरित होने पर प्राणवायुका शरीरमें संचार होता है और तभी वाणी, मन तथा अन्य इन्द्रियाँ अपना-अपना काम

तत्सन्दर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः ॥ हृष्टरोमाऽश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६ ॥ उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ॥
नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ॥ अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥
सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ॥ पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेय उवाच । किं वर्णये तव विभो यदुदी-
रितोऽसुः संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ॥ स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥ ४० ॥ मूर्ती इमे
भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ॥ नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥
तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशन्ति । यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्त-
दाप्त्यै ॥ ४२ ॥ नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितोभिय ईश विद्मः ॥ ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः कालस्य ते

करती हैं। यह केवल प्राणियोंके लियेही नहीं, बल्कि ब्रह्मा और शिवकी भी प्रवृत्ति इसी प्रकार की है। इसलिये मेरी भी वही गति है। यद्यपि इसप्रकार आप परम स्वतन्त्र हैं, तथापि आपके चरणोंमें अनुराग करनेवाले भक्तोंके वशमें आप सर्वदा रहते हैं ॥ ४० ॥ आप लोगोंकी मूर्तियाँ तीनों लोकोंके कल्याणके लिये, विविध तपोंकी निवृत्ति, तथा मृत्युपर विजय पानेके लिये नाना प्रकारकी मत्स्य, कूर्मादि शरीरको धारण करते हैं। और जिस प्रकार मकरी स्वयं अपने जालको फैलाकर अपनेही समेट लेती है, उसी प्रकार सृष्टिका उत्पादन स्वयं करके फिर इसका संहार करदेते हैं ॥ ४१ ॥ स्थावर तथा जंगम प्राणियोंके पालक आपके उन चरणोंमें मेरा बार बार प्रणाम है, जिनमें स्थित हुए कर्म, गुण तथा काल से उत्पन्न मल स्पर्श नहीं करते एवं जिनका नमन, यजन, और ध्यान वेदके तत्वको जानने वाले ऋषिगण सदा किया करते हैं जिसकी प्राप्तिके लिये वे लोग सदा स्तुति किया करते हैं ॥ ४२ ॥ हे स्वामिन्, अपवर्ग स्वरूप आपकी चरणप्राप्तिके सिवा सम्पूर्ण लोकोंमें भयसे ग्रस्त हुए प्राणियोंके कल्याणका कोई मार्ग नहीं है, यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मैं खूब जानता हूँ। जब ब्रह्मा भी, जिनकी दो परार्ध तक सीमित है, कालस्वरूप आपसे खूब डरते हैं, तब उनके द्वारा विरचित प्राणियोंके लिये क्या कहा जाय ॥ ४३ ॥ इसलिये मैं आपके चरण कमलोंका ही सदा भजन करूँगा। आप सत्यज्ञान स्वरूप, जीवोंके नियामक और सम्पूर्ण कारणोंसे परे हैं जो मनुष्य आत्मासे आच्छादित करने वाले, निष्फल, तुच्छ तथा नश्वर देहादि सुखोंका त्यागकर आपके चरण मूलमें केही आश्रित रहते हैं, वे अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४४ ॥ हे ईश, हे आत्मबन्धो, यद्यपि सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण आपकी मायासे अभिन्नस्थित, प्रलय, उत्पत्तिके हेतु हैं तथा इन्हींके द्वारा आप लीलाओंका प्रचार करते हैं, तथापि सत्वगुणमयीमूर्तिही जीवको शान्ति प्रदान करने वाली है। रजोगुण और तमोगुणसे तो दुखःमोद आदिकी वृद्धिही होती है ॥४५॥ हे भगवान्, इसी कारणसे आपके भक्तोंके नराख्य तथा आपके परमप्रिय सत्त्वगुण नारायण स्वरूपका ही यहाँ बुद्धिमान् लोग भजन करते हैं, क्योंकि सात्वत लोग सत्त्वको ही ईश्वर रूप मानते हैं, रज तथा तमको नहीं। यही कारण है कि उसीकी उपासनासे अपने परमधाम भय रहित और भोग युक्त

किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वै भजाम्यृताधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ॥ देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ । सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ॥ लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥ तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ॥ यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥ तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ॥ नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥४७॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः सन्तं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ॥ तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥४८॥ यद्दर्शनं निगम आत्मरहः प्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ॥ तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ हे भगवन्, षड् गुणपूर्ण भूमार पुरुष (सर्वत्र व्यापी) सर्वस्वरूप, विश्वस्वरूप, विश्वगुरु, परदैवत, नरोत्तम, शुद्धस्वरूप, नियतवाक्, वेदमार्गप्रवर्तक, नारायणस्वरूप, आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ हे भगवन्, कपटेन्द्रिय मार्गोंसे व्यवहार करनेसे जिनकी बुद्धि विक्षिप्त हो गई है ऐसे पुरुष अपनी इन्द्रिय तथा इन्द्रियविषय, प्राण, और हृदय में नियन्तारूपसे सतत विद्यमान रहनेवाले आपको, आपकी मायासे आवृत्त बुद्धि होकर नहीं देखते तथा जो मनुष्य आपसे प्रवर्तित वेदमार्गका आश्रयण करते हैं वे अखिल जगत् नियन्ता आपका साक्षात् दर्शन करते हैं ॥ ४८ ॥ हे भगवन्, आपके उस रूपको नमस्कार है, जिसका दर्शन वेदोंमें होता है और जो आत्माके रहस्यका ज्ञान कराने वाला है। ब्रह्मा आदि-कवि सब दर्शनके लिये सतत परिश्रम करने पर भी जहां मोहमें पड़ जाते हैं, क्योंकि आप भी नानामतवालोंके मतानुसार वैसा ही रूप धारण करलेते हैं। हे भगवन् देहादिक समूहोंसे जिसका ज्ञान नहीं हो पाता, ऐसे महापुरुष आपको वार-बार प्रणाम है ॥ ४९ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्यायसार–शौनकादि ऋषियोंनें कहा—हे भगवन्, यहजन श्रुति है कि मृकण्डमुनिके पुत्र मार्कण्डेयजी चिरजीवी हैं। वे प्रलयकालमें भी यथावत् स्थित रहते हैं जिस समय सारी पृथिवी जलमग्न हो गई थी उस समय मार्कण्डेयने अक्षयवटके पत्रके दोनेमें सोये हुए मुकुन्द भगवान्का दर्शन किया था किन्तु मार्कण्डेयजी हमारे गोत्रमें ही उत्पन्न हैं और अभी तक किसी प्रकारका प्रलयभी नहीं हुआ सो कहिए, यह जन श्रुति किस प्रकार सच मानी जाय ? सूतजीने कहा—ब्राह्मणों इनके पिता मृकण्डने इनका ठीक समय पर सम्पूर्ण संस्कार किया और ये संस्कृत होकर-दण्ड-कमण्डलु इत्यादि धारणकर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करने लगे। इसके बाद तप, स्वाध्याय तथा संयम आकिके द्वारा भगवान्की आराधना करने लगे। इसप्रकार इनके कितने मन्वन्तर बीत गए, सातवें मन्वन्तरमें इन्द्रने तपस्या भंग करने के लिए-कामदेवादि अपने गणोंको भेजा, किन्तु वे सब मुनिके तेजसे भस्म होते हुए भाग चले। तदनन्तर नर-नारायणरूप भगवान् इनके आश्रमपर पधारे। इन्हें देखकर मुनि आनन्दसागरमें बह चले, इनके नेत्रोंमें आँसू भरगये, कण्ठ भी रुँध गया, उठ खड़े हुए और किसी प्रकार गदगद स्वरसे इन्होंने नमस्कार पदका उच्चारण मात्र किया। तदनन्तर-आसन देकर अर्घ्यादि द्वारा पूजन करनेके बाद यों स्तुति करनेलगे-हे भगवन्, अपवर्गस्वरूप आपकी चरणप्राप्तिके सिवा सम्पूर्ण लोकोंके भयसे ग्रस्त हुए प्राणियोंके लिए कल्याणका कोई दूसरा मार्ग नहीं है। भगवन्, मैं आपके चरणकमलोंका ही सदा भजन किया करूँ, आप सत्यज्ञानस्वरूप जीवोंके नियामक तथा कारणोंसे परे हैं। हे विश्वबन्धो, सर्वव्यापक, नरोत्तम शुद्ध स्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है।

❋ अथ नवमोऽध्यायः ❋

भगवान्की माया का अवलोकन

सूतजीने कहा– इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेय द्वारा स्तुति करनेपर प्रसन्न होकर नरके साथ भगवान् नारायण मार्कण्डेयसे कहने लगे ॥ १ ॥ भगवान्ने कहा हे ऋषिश्रेष्ठ,

सूत उवाच ॥ संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता ॥ नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भो भो ब्रह्मर्षिवर्यासि सिद्ध आत्मसमाधिना ॥ मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥ वयं ते परितुष्टाः स्मत्वद्बृहद्व्रतचर्यया ॥ वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ॥ वरेणैतावतालं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥

अपनी चित्तकी एकाग्रतासे तुम स्वयं सिद्ध हो चुके हो तथा मुझमें तुम्हारी अटलभक्ति है, तपस्या, स्वाध्याय और संयमोंसे भी कभी तुम विरत नहीं होते हो ॥ २ ॥ हमलोग तुम्हारी महती तपश्चर्यासे प्रसन्न हैं। तुम वर देनेवालोंके स्वामी हमलोगोंसे यथेच्छ वर ग्रहण करो। तुम्हारा कल्याण हो ॥३॥ ऋषिने कहा—हे देवाधिदेव भक्त भयहारी, प्रणतपालक अच्युत, मुझे वरकी तनिक भी अभिलाषा नहीं है, क्योंकि अब आप दिखलाई दिये ॥ ४ ॥ हे नाथ, अत्यन्त तपश्चर्याके बाद योग परिपक मनसे ब्रह्मादि जिनके पादपद्मोंका दर्शन पाकर कृत-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कृत्य हो जाते हैं, आज वेही मेरे दृष्टगोचर हो रहे हैं, इससे मेरा मनोरथ पूर्ण होगया ॥ ५ ॥ फिर भी हे पुण्यश्लोकशिरोमणे, हे कमलपत्राक्ष, आपकी आज्ञानुसार मैं एक वर आपसे माँगता हूँ, वह यह कि आपकी उस मायाको मैं देखना चाहता हूँ, जिसके वशीभूत होकर ब्रह्मादि लोकपालोंके सहित यह सारा संसार अद्वितीय सद्वस्तुमें भी भेदबुद्धि करने लग जाता है ॥ ६ ॥ सूतजीने कहा–हे मुने, इसप्रकार मार्कण्डेके बार-बार आग्रहपूर्वक स्तुति करनेपर भगवान् नर-नारायणने कहा कि ऐसाही होगा, और यों कहकर बदरिकाश्रमको चले गये ॥ ७ ॥ मुनि मार्कण्डेयजी अपने आश्रममें निरन्तर उसी बातकी चिन्तामें रहने लगे। और वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी इत्यादिमें भगवान्का ध्यान करते हुए भावरूपी द्रव्योंसे उनकी पूजा किया करते थे। कभी तो प्रेममें इतना विह्वल हो जाते थे कि पूजाका ध्यान भी नहीं हो पाता था॥ ८,९ ॥ हे भृगुश्रेष्ठ, हे ब्रह्मन्, एक समय पुष्पभद्राके किनारे उस मुनिको

गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ॥ मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षगोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ॥
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने ॥ तथेति स स्मयन्प्रागाद्बद-
र्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेव चिन्तयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ॥ वसन्नग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ । ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यै-
रपूजयत् ॥ क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः ॥ उपासीनस्य सन्ध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान्
॥ १० ॥ तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं बलाहका अन्वभवन्करालाः ॥ अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनन्त उच्चैरभिवर्षधाराः ॥११॥ ततो व्य-
दृश्यन्त चतुःसमुद्राः समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः ॥ समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्तगभीरघोषाः १२॥ अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः शत-
ह्रदाभीरुपतापितं जगत् ॥ चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥१३॥ तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णि-
तवार्महार्णवः ॥ आपूर्यमाणो वरषद्भिरम्बुदैः क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सह

सन्ध्योपासन करते समय अति भयङ्कर वायुका संचार हुआ ॥ १० ॥ उस प्रचण्ड शब्द कर रहे उस वायुके साथ भयङ्कर बादल आकाशमें घिर आये और चारों ओर खूब मूसलाधार वृष्टि गर्जन-तर्जनके साथ होने लगी ॥ ११ ॥ तदनन्तर वायुके प्रचण्ड वेगके कारण उठी हुई बड़ी-बड़ी लहरोंसे पृथ्वी तलको अपनेमें ग्रसित कर रहे चारों समुद्र चारों ओर बढ़ने लगे। जिनमें बड़े-बड़े नक्र थे तथा जो महा भयङ्कर आवर्तोंसे और गम्भीर शब्दोंसे युक्त थे ॥ १२ ॥ आकाशतक फैले हुए जलसे तथा वायुवेग एवं विजलीसे अति भयभीत अन्डजादि चारों तरहके जगत्को बाहर भीतरसे सन्तप्त होते देखकर तथा अपनेको भी अतिभयाकुल जानकर पृथ्वीको जलपूर्ण देखते हुए मुनिजी अत्यन्त डरगये और बिलकुल उदास हो गये ॥ १३ ॥ यों उनके देखते-देखते भयङ्कर लहरें उठने लगीं। भयङ्कर वायुवेगसे महासागरकी जलराशि उछलने लगी। बरसरहे प्रचण्ड मेघसमुदाय जलराशिसे समुद्रको भरने लगा। और द्वीप-वर्षादिकोंके सहित सारी पृथिवीको महासागर अपनेमें लीन करने लगा ॥ १४ ॥ पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिमण्डलके सहित तीनों लोकसम्पूर्ण दिशाओंके साथ-साथ जलमग्न हो गया। उस समय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

केवल मार्कण्डेय मुनिही अवशिष्ट रहगये। उस समय वह अपनी जटाको फैलाकर पागल और अन्धेकी तरह इधर उधर दौड़ने लगे ॥ १५ ॥ भूख-प्याससे व्याकुल होने लगे। किसी तरफ से तिमिङ्गिल मत्स्य उनपर झपटने लगा, तो किसी तरफसे मकर—वे कभी लहरोंसे घायल हो जाते थे। इसप्रकार भारी मोहमें पड़कर वे थक कर इतने बेहोश होगये कि पृथ्वी और आकाश की भी उन्हें सुधि न रही॥१६॥कभी भारी भँवरमें पड़ जाते तो कभी तरलतरङ्गोंसे पीड़ित हो उठते। कभी जलजन्तु एक दूसरेपर जब आक्रमण करते तब उनके बीच पड़ जाते थे ॥१७॥ कहीं शोकाकुलहो उठते तो कभीं मोह तथा दुःखके भँवरमें पड़जाते थे और कभी सुखका अनुभवकर भयसे व्याकुलहो उठते थे। कभी मरे जाने और रोग ग्रस्त हो जाते थे ॥ १८ ॥ भगवान् विष्णुकी मायासे मुग्धहोकर इसतरह घूमते हुए उन्हें लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये ॥१९॥ हे ब्राह्मणो, इसप्रकार भ्रमण करते हुए ऋषिने कभी पृथ्वीके एकटीलेपर एक वृक्ष देखा।

दिग्भिराप्लुतम् ॥ स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥१५॥ क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गिलैरुपद्रुतो वीचिनभस्वताहतः तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥ क्वचिद्गतो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥१८॥ अयु तायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः ॥ न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥२०॥ प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ॥ शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥२१॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् ॥ कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् ॥ विद्रुमाधर-भासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥२३॥ पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् ॥ श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥२४॥ चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् ॥ मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचना-

जिसकी पत्तियाँ कोमल लाल-लाल थीं और उसमें फल लगे हुये थे ॥२०॥ उस वट वृक्षकी ईशान कोणकी शाखामें एक दोने पर लेटें एक बालकको देखा ॥ २१ ॥ जो मरकतमणिकी तरह श्याम, अति सुन्दर कमलमुख, शंखकी तरह ग्रीवासे युक्त, विशाल वक्षःस्थल, सुन्दर नासा तथा सुन्दर भ्रुकुटीसे युक्त था ॥ २२ ॥ श्वासके लगनेसे चञ्चल घुघुराली अलकें कपलों पर शोभा देरही थीं। शंखकी तरह घुमावदार कानोंमें अनारके लाल फूल सुशोभित हो रहे थे। मूँगेके समानलाल ओठोंपर मन्द मुसकानकी ईषत्कान्ति पड़नेसे उसकी शोभा अति रमणीय थी ॥ २३ ॥ कमल के भीतरी भागकी तरह नेत्रके कोने कुछ लाल थे। मनोहर मुस्कान तथा कटाक्ष वीक्षण हृदयको बरबस खींच लेता था। श्वास लेनेके समय लाल तोंद पर पड़ी हुई तीन रेखाओंसे उसकी गहरी नाभी हिलजाती थी जिससे उसकी शोभा और भी बढ़ जाती थी ॥ २४ ॥ सुन्दर छोटी अँगुलियों द्वारा अपने नन्हें चरण सरोरुहको मुखमें डालकर वह चूसरहा था। यह देखमुनिजी अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये ॥ २५ ॥ उस नन्हें बालकको देखकर मार्कण्डेय मुनिके आनन्दकी सीमा न रही। उनका हृदयकमल खिल उठा, कमल नेत्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रसन्न होउठे और रोंगटे हर्ष से खड़े हो गये। नानाप्रकारकी शंकायें हृदयमें उस बालकसे पूछनेके लिए कि आप कौन हैं आगे बढ़े ॥ २६ ॥ उस शिशुके पास पहुँच भी न पाये थे कि उसके श्वासके साथ मशककी तरह उसके पेटमें चले गये तथा वहाँ पर भी जाकर पहलेकी तरह इस सारी सृष्टिको देखकर अत्यन्त चकित होते हुए और मोहित हो गये ॥ २७ ॥ और उसके पेट में आकाश, अन्तरिक्ष, नक्षत्र समूह, पर्वत, समुद्र, द्वीप, वर्ष, दिशा, सुर, असुर, वन, देश, नदी, पुर, खान, किसानोंके ग्राम, अहिरोंकी वस्तो, आश्रम, वर्ण तथा इनकी वृत्तियाँ इत्यादि समूहोंको देखा ॥ २८ ॥ बड़े २ जीवों, भौतिकशरीरों, काल, अनेक युगों कल्पों तथा और भी जो व्यवहारके कारण हैं उन सबको सत्य प्रतीत होते हुये—जैसा देखा ॥ २९ ॥ हिमालयको, उस पुष्पवहा नदीको, उसके किनारे अपने आश्रमको, अपने आश्रममें निवास करने वाले ऋषियोंको तथा सारे विश्वको उस शिशुके उदरमें देख रहे थे कि, उस

म्बुजः ॥ प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशङ्कितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् २६॥ तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत् ।
तत्राप्यदा न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुराऽमुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७॥ खं रोदसी भगणानाद्रिसागरान् द्वीपान् सवर्षान् ककुभः सुरासुरान् ॥
वनानि देशान्सरितः पुराकरान् खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ॥
यत्किञ्चिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ २९ ॥ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत ॥ विश्वं
विपश्यन् श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ॥ तोकं च तत्प्रेम-
सुधास्मितेन निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन ॥३१॥ अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ॥ अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥३२॥
तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ॥ अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसंप्लवः ॥
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे मायादर्शनं नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्वास द्वारा बाहर आकर फिर उसी प्रलय-सागरमें भटकने लगे ॥ ३० ॥ पृथ्वीके उसी टीलेपर उगे हुए वटवृक्षको तथा उसके पत्तेके दोनेमें सोते हुये उस बालकको कुछ देरतक देखा। सुधामयी, मन्द मुसकानके साथ थोड़ा उस बालकने उन्हें देखा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस बालकके अवेक्षण करनेके बाद उसे नेत्र द्वारा अपने हृदयस्थकर मार्कण्डेयजी बड़े कष्टके साथ फिर उस समय लीलामय भगवान्‌से मिलने चले ॥ ३२ ॥ लेकिन उस ऋषिके भगवान्‌से मिलनेके पहलेही साक्षात् योगाधीश सर्व प्राणियोंके हृदयङ्गम भावको जाननेवाले भगवान् उस तरह तत्क्षण अन्तर्हित हो गये जिस तरह अभागेके मनोरथ तत्क्षण ही अन्तर्हित हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन्, उस बालकके अन्तर्हित होतेही वटवृक्ष, जलसमूह, लोकोंका जलमग्न होना सभी नष्ट हो गया। क्षणमात्रमें ऋषिजी पहलेकी तरह अपने आश्रममें बैठे थे ॥ ३४ ॥

नवें अध्यायकासार—मार्कण्डेयमुनिकी स्तुतिसे प्रसन्न नर-नारायणने कहा—हेमुने, तुम अपने तपस्यासे सिद्ध होगए हो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, जो चाहो मुझसे वर मांगलो।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मार्कण्डेयने कहा—हे भगवन्, आपने अपना अलभ्यदर्शन देकरके मुझे कृतार्थ किया, मुझे वरकी अभिलाषा नहीं है, मैं आपकी माया देखना चाहता हूँ। नर-नारायणने 'एवमस्तु' कह अपने आश्रमको पधारे। एक दिन बहुत जोरकी आंधी आई उसमें कर्ण विदारक शब्द होने लगे, मूसलाधार वृष्टि होने लगी और सारी पृथिवी जलमग्न हो गई। मार्कण्डेयजी अनेक प्रकारके रोग, शोकसे सन्तप्त होने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गए। एकदिन एक ऊंचे टीले पर वरगदके पेड़को उन्होंने देखा-और उसके पत्तोंके दोनेमें शयन करते हुए अपने पैरके अँगूठेको मुखमें डालकर चूस रहे मधुरमूर्ति एक बालकको देखा। प्रसन्न होकर उसके समीप गए। वहाँ जाते ही उस बालकके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होगए और पूर्वके समान जगत्को वहीं देखकर विस्मित हो गए। थाड़ो देरके बाद बाहर आकर उस बालककी स्तुति करने लगे। कुछ देरके बाद वह बालक अन्तर्हित हो गया। मार्कण्डेयजी अपने आश्रममें बैठे हुए पहलेके समान सम्पूर्ण जगत्को देखने लगे। ❁

❁ अथ दशमोऽध्यायः ❁

❁ भगवान् शङ्करका मार्कण्डेय ऋषिको वरदान ❁

श्री सूतजी ने कहा—हे शौनकजी, इस प्रकार भगवान् नारायणसे निर्मित योगमायाके इस वैभवका अनुभव कर मायासे वियुक्त होनेका भगवान्की शरणके अतिरिक्त दूसरा उपाय न समझकर भगवान्की शरणमें चले गये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयने कहा—हे विष्णो, शरणागतको अभय प्रदान करने वाले आपके चरणोंमें मैं उपस्थित हुआ हूँ। आपकी उस मायाकी

सूत उवाच ॥ स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥ वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ॥ रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ॥ पश्येमं भगवन्विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥४॥ निभृतोदझषव्रातं वातापाये यथार्णवम् ॥ कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धदो भवान् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि

प्रतीति सत्यज्ञानके समान प्रकाशित होती है, जिससे बड़े बड़े विद्वान् लोग भी आपके भजनके विना मोहमें पड़ जाते हैं ॥ २ ॥ श्रीसूतजीने कहा—इन सब भावनाओंसे इसतरह ध्यानसे उस मार्कण्डेयजी को आकाशमार्गसे विचरते हुए वृष, पार्वती तथा अपने गणोंके साथ श्री भगवान् शंकरजीने देखा ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय ऋषिको उस प्रकार ध्यानस्थ देखकर पार्वतीजीने श्रीशंकरजीसे कहा—हे भगवन्, इस ब्राह्मणके, देह, इन्द्रिय, और मन बिलकुल निश्चल हो गए हैं इसे कृपाकर आप देखें ॥ ४ ॥ जिस प्रकार समुद्रमें उठने वाले तूफानके शान्तहो जाने पर समुद्रके लहर, मत्स्य इत्यादि जिस प्रकार शान्तहो जाते हैं वैसेही इसका देह, इन्द्रिय और मन शान्त हो गया है, इसे आप शीघ्र सिद्धि प्रदान करें, क्योंकि आप सिद्धि देनेवाले हैं॥५॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शंकर भगवान्ने कहा—ब्रह्मर्षि मार्कण्डेय किसी प्रकारके कहीं लौकिक तथा पारलौकिक अभ्युदय नहीं चाहते और तो क्या मोक्ष भी इन्हें अभिप्सित नहीं है, क्योंकि इन्होंनें अनादि अनन्त भगवान्के चरणकमलोंमें भक्तिप्राप्त करली है ॥ ६ ॥ किन्तु हे प्रिये, हमलोग इनसे वार्तालाप करें। यद्यपि इन्हें हम लोगोंसे कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मनुष्योंको साधुजनका समागम बड़े भाग्यसे होता है अतः हमलोग स्वयं इनसे समागम करें ॥ ७ ॥ श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकजी, सबविद्याओंके प्रवर्तक, सभी प्राणियोंके ईश्वर तथा सज्जनोंके आश्रयभूत वह भगवान् शंकरजी पार्वतीसे उस प्रकार मार्कण्डेयके आश्रम पर पधारे ॥ ८ ॥ मार्कण्डेय मुनि अन्तःकरणकी समस्त वृत्तियोंको रोककर भगवान्की आराधनामें लीन थे, इसलिए समस्त विश्वके आत्मभूत तथा साक्षात् ईश्वर भवनी और शंकरके आगमनको न जान सके, कारण कि उस समय वे अपनेको तथा सारे विश्वको भी भूल चुके थे ॥ ९ ॥ सबके ईश्वर अन्तर्यामी भगवान् शंकर मार्कण्डेयको योगमायासे इस अवस्थामें समझकर जिसप्रकार वायु छिद्रान्वित प्रदेशमें अनायास प्रवेशकर जाता है, उसी प्रकार मुनिके हृदयमें प्रवेश कर गये ॥ १० ॥

ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ॥ भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥ अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ॥ अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्स सतां गतिः ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ॥ न देव रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया ॥ आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्माम्बरधरं शूलखट्वाङ्गचर्मभिः ॥ अक्षमालाडमरुककपालासिधनुःसह ॥१२॥ बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ॥ किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ १३ ॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयागतम् ॥ रुद्रं त्रिलोकैक गुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥ तस्मै सपर्यां व्यदधात्सगणाय सहोमया ॥ स्वागतासनपाद्यार्घगन्धस्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो । करवाम किमीशान

मार्कन्डेयमुनि अपने अन्दर अकस्मात् हृदयदेशमें भी आये हुए विजलीके समान पीली पीली जटाओंको धारण किए, उन्नत, तीन नेत्रवाले, दसभुजाओंसे शोभित, उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, व्याघ्रचर्म धारण किए हुए, शूल, खट्वांग, ढाल, अक्षमाला, डमरू, कपाल, असि, धनुष् को धारण किए हुए भगवान् शंकरको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। 'यह क्या दृश्य है और अकस्मात् कैसे प्राप्त हुआ' इस प्रकार ये मनोवृत्तियोंके उदय ध्यानसे विरत हो गए ॥ ११–१३ ॥ जब उन्होंने नेत्र खोला तो देखा कि त्रिलोकीनाथ भगवान् शंकर उमा तथा अपने गणोंके साथ विराजमान हैं ॥ १४ ॥ मुनिने मस्तक झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। पार्वती एवं सब गणोंके साथ उनका स्वागत करते हुए आसन देकर पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, मालाएँ और दीपोंसे उनकी विधिवत् पूजाकी ॥ १५ ॥ पूजनेके बाद हाथ जोड़कर मुनिने प्रार्थना की—हे विभो, आप अपनी विभूतियोंसे पूर्णकाम हैं, हे ईशान आपके सुख और शान्तिसे ही जगत् सुखी तथा शान्त रहता है, ऐसी अवस्थामें मैं आपका क्या सत्कार कर सकता हूँ ॥ १६ ॥ शान्त निर्गुणस्वरूप आपके लिए नमस्कार है, सत्त्वप्रधान आपके प्रमृड स्वरूपके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिए नमस्कार है, रजोगुणप्रधान-आपके मर्वोत्पादकस्वरूपके लिए नमस्कार है और तमोगुणप्रधान आपके अघोरस्वरूपके लिए नमस्कार है ॥१७॥ श्री सूतजीने कहा–इस प्रकार मार्कण्डेयके प्रार्थना करने पर सज्जनोंके आश्रयभूत देवाधिदेव प्रसन्नात्मा भगवान् शंकर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर हंसते हुए कहने लगे ॥ १८ ॥ भगवान्ने कहा–मैं और ब्रह्मा तथा विष्णु ये तीनों वर देने वालोंमें प्रसिद्ध हैं, हम लोगोंका दर्शन व्यर्थ नहीं होता। हम लोगोंके दर्शनसे मरणशील प्राणी मृत्युसे छुटकारा पाजाते है, इसलिए आप जो चाहें, उसे हम लोगोंसे मांग लीजिए ॥ १६ ॥ ब्राह्मण सब स्वभावतः साधुस्वभाव, शान्तचित्त, अनासक्त, प्राणिवत्सल तथा वैरभाव रहित होंते हैं। और समदर्शी होते हुए भी किसी प्राणीके कष्टको सहन नहीं करते तथा एक मात्र भक्त होते हैं ॥ २० ॥ पूर्वोक्तगुणोंसे युक्त ब्राह्मणोंकी लोकोंके साथ लोकपाल स्तुति तथा पूजन किया करते हैं तथा मैं, भगवान् ब्रह्मा और स्वयं सबके ईश्वर विष्णु भी

येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥ नमः शिवाय शान्ताय सत्वाय प्रमृडाय च ॥ रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्य तमोजुषे ॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥
एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ॥ परितुष्ट प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तम भाषत ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा
वयं त्रयः ॥ अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विन्दतेऽमृतम् ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाः साधवः शान्ताः निःसङ्गा भूतवत्सलाः ॥ एकान्तभक्ता अस्मासु
निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥ सलोका लोकपालास्तान्वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते ॥ अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ २१ ॥ न ते मय्य-
च्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ॥ नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २२ ॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ॥ ते
पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपंत्रयीमयम् । बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २४ ॥
श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोऽपि वः ॥ शुध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ॥२५॥ सूत उवाच ॥ इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृं-
हितम् ॥ वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥ स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ॥ शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्त-

उनकी सेवामें तत्पर रहते हैं ॥ २१ ॥ वे ब्राह्मणलोग मुझमें, विष्णु भगवान्में और ब्रह्मामें अपने तथा सब जीवोंका किसी प्रकारका तनिक भी भेद नहीं देखते सर्वदा एक समान सबको देखते हैं, इसलिए आपके- जैसे महापुरुषोंकी हम लोग सदा सेवा करते हैं ॥२२॥ हे मार्कण्डेय, जलमयही तीर्थ नहीं कहलाते, पाषाण निर्मित मूर्तियाँ ही देवता नहीं होते, किन्तु आप सदृश सन्त भी तीर्थही हैं, क्योंकि वे जलमयतीर्थ तथा मूर्तियाँ स्नान तथा पूजनसे बहुत कालके बाद पवित्रता प्रदान करती हैं और आपलोग तो दर्शन मात्रसे सबको पवित्र कर डालते हैं ॥२३॥ जिन ब्राह्मणोंने चित्तकी एकाग्रता, तप, स्वाध्याय, संयम तथा नियमोंके द्वारा हमारे वेदमय शरीरको धारण किया है, उन्हें हमलोग नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ हे मुने, बड़े बड़े पापशील मनुष्य तथा अन्त्यज भी आपके ऐसे महात्माओंके चरित्र सुनने तथा दर्शन मात्रसे शुद्ध हो जाते हैं, फिर भाषण और सहवास आदिसे क्या कहना ॥ २५ ॥ श्री सूतजीने कहा–हे शौन-कादि महर्षियो, धर्मके गुप्तरहस्यमय तथा अमृतके सागरभूत शंकर भगवान्के वचनोंको तन्मयताके साथ सुनते हुए भी मार्कण्डेय मुनिके कर्ण तृप्त नहीं हुए ॥२६॥ भगवान् शंकरके अमृत-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मय उपदेशने विष्णु भगवान्की मायासे चिरकाल तक भटकते रहनेके कारण अत्यन्त दुःखी हुए मार्कण्डेय मुनिके सारे क्लेशोंको--दूर कर दिया और वे प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे ॥२७॥ मार्कण्डेय ऋषिने कहा—अहो, ईश्वरकी लीला प्राणियोंसे दुर्ज्ञेय है, यह कैसा आश्चर्य है कि सारे जगत्के स्वामी भगवान् शंकर स्वयं अपने अधीन रहनेवाले हमारे कैसे प्राणियोंकी स्तुति कररहे हैं ॥ २८ ॥ धर्मप्रचारकगण प्रायः प्राणियोंको धर्मरहस्य समझाने तथा धर्ममें प्रवृत्ति करानेके लिए धर्माचरण तथा अनुमोदन करते हैं और धर्माचरण करने वालेकी स्वयं प्रशंसा भी करते हैं ॥ २९ ॥ हे भगवन्, जैसे मायावी नट या इन्द्रजाल करने वाला अपनी मायासे अनेकों प्रकारके खेलको दिखलाता है लेकिन खेलदिखानेसे उसकी मायामें अन्तर नहीं आता, वैसेही आपकी अपनी मायाकी वृत्तियोंको स्वीकार कर किसीकी बन्दना करते हैं, किन्तु उससे आपकी महिमामें कोई अन्तर नहीं पड़ता ॥ ३० ॥ जिस प्रकार स्वप्न देखने वाला मनुष्य अपने मनसेही अनेक कल्पना करलेता है, उसी प्रकार आप मनसेही विश्वकी कल्पना कर उसमें प्रवेशकर कर्मगुणोंके द्वारा कर्त्ता न होने पर भी कर्ताके समान प्रतीत होते हैं ॥ ३१ ॥ हे

मब्रवीत् ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ॥ यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥ धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ॥ आचरन्त्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २९ ॥ नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ॥ न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥ सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ॥ गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तेव स्वप्नदृग्यथा ॥ ३१ ॥ तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ॥ केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥३२॥ कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् ॥ यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामःपुमान्भवेत् ॥३३॥ वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात्॥भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥३४॥ इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ॥ तमाह भगवान् शर्वः शर्वया चाभिनन्दितः ॥ ३५ ॥ कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ॥ आकल्पन्ताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३६ ॥ ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् ॥ ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यतास्तु ते ॥ ३७ ॥

भगवन्, आपको नमस्कार है। आप त्रिगुणयुक्त होने पर भी जीवके समान उसके अधीन नहीं रहते, किन्तु आप गुणोंका नियन्त्रण करने वाले हैं। आप केवल, अद्वितीय समस्त गुणोंके मूल [गुरु] और ब्रह्मस्वरूप हैं ॥३२॥ हे सर्वव्यापक भगवन्, आपके दर्शनसे बढ़कर कौनसी चीज है, जिसे मैं आपसे मांग सकूँ। आपके दर्शनसे ही मनुष्य पूर्णकाम तथा सत्यसंकल्प हैं और अपने भक्तोंको भी अपने तुल्यही बनादेते हैं ॥ ३३ ॥ आप भक्तोंको पूर्णकाम करने वाले हैं इसलिए मैं आपके दर्शन पानेपर भी एक वरदान मांगता हूँ, वह यह है कि भगवान्के चरणोंमें तथा भगवद्भक्तोंमें एवं आपके चरणोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे ॥ ३४ ॥ श्री सूतजीने कहा—हे शौनकादि मुनियो, जब महर्षि मार्कण्डेय इस प्रकार मधुरवाणीसे शङ्करकी स्तुति तथा पूजनकर निवृत्त हुए तब भगवती पार्वतीकी प्रेरणासे भगवान् शङ्करने कहा ॥३५॥ हे मार्कण्डेयजी, आपकी सारी कामनाएँ पूर्ण हों। आपकी भक्ति भगवच्चरणोंमें सदा बनी रहे और कल्पपर्यन्त आपका निर्मल यश फैले तथा आप अजर एवं अमर हों ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन्, आपको तीनों कालका ज्ञान रहे। विरक्तिपूर्ण विज्ञानहो, तथा ब्रह्मतेजयुक्त होकर पुराणोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आप आचार्य बनो ॥ ३७ ॥ सूतजीने कहा—हे ब्रह्मन् शौनकजी, इसप्रकार मुनिजीको वरदान देकर सबके ईश्वर भगवान् शङ्करजीसे मुनिके उस कर्मको कहने लगे, जिसका उन्होंने पहले अनुभव किया था ॥ ३८ ॥ वह मार्कण्डेयजी भी महायोगकी महिमा प्राप्तकर हरिचरणोंमें अटल भक्ति युक्त होते हुए आज भी पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ॥३९॥ इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिके द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूत प्रलयकालकी भगवान्‌की अद्भुत लीला मैंने आपलोगोंसे वर्णन किया ॥४०॥ मार्कण्डेय मुनिके द्वारा अनुभूत भगवान्‌की मायाका यह वैभव नाना कल्परूप [सात कल्परूप] कदाचित्क है यानी केवल मार्कण्डेय मुनिके लिये ही है, सर्वसाधारण नहीं है। कोई-कोई अविद्वान् लोग इसे अनादि और देवताओंके दोहजार वर्षोंके बाद बार-

सूत उवाच ॥ एवं वरान्स मुनये दत्त्वागात्त्र्यक्ष ईश्वरः ॥ देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुराऽमुना ॥ ३८ ॥ सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ॥ विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ॥३९॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ॥ अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥४०॥ एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः ॥ अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ॥ संश्रावयेत्संशृणुयादु तावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥४२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

बार होने वाला मनुष्योंके सर्ग तथा प्रलयरूप भगवान्‌की माया बतलाते हैं लेकिन विद्वन् लोग ऐसा नहीं कहते। उनका कहना यह है कि सातबार प्रलयकाल देखते समय मार्कण्डेयजी सातबार शिशुके उदरमें गये और आये, इसलिये उनकी आयु एकही क्षणमें सातकल्पकी नाईं बीत गई. वस्तुतः सर्गप्रलयरूप सात कल्पोंकी उनकी लम्बी आयु नहीं थी ॥ ४१ ॥ हे शौनकजी, इस प्रकार भगवान् रथाङ्ग पाणिकी महिमाका वर्णन मैंनेकर दिया। इसे जो सुनता या सुनाता है उन दोनोंका कर्म वासना जनित संसार नहीं होता ॥ ४२ ॥

सूतजीने कहा—हे शौनकजी, भगवान् शङ्कर ध्यानस्थ मार्कण्डेयको देखकर पार्वतीकी प्रेरणासे अपने गणोंके साथ मुनिके आश्रम पर पधारे उन्होंने वायुके समान मुनिके अन्तःकरणमें प्रवेशकर अपना विशालरूप दिखलाया। मुनि भी विस्मित होकर ध्यानसे विरत होगये और आसन-पाद्य-अर्घ्यादिसे उमा तथा गणोंके साथ शङ्करकी पूजाकर प्रार्थना करने लगे भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर कहा—हे मार्कण्डेय, भगवान्‌के चरणों, उनके भक्तों एवं मुझमें आपकी अचल भक्ति बनी रहे, आप कल्पपर्यन्त अजर और अमर हों। ❀

❀ अथ एकादशोऽध्यायः ❀

[पूजा करनेके लिए महापुरुषके लक्षण वर्णनके बाद सूर्यके व्यूहका प्रतिमासका पृथक् पृथक् वर्णन]

शौनक उवाच ॥ अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम् ॥ समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान्भागवत तत्त्ववित् ॥ १ ॥ तान्त्रिकाः परिचर्यायां

११ शौनकजी ने सूतजीसे कहा—हम लोग समस्त शास्त्रोंके सिद्धान्तके विषयमें आपसे कुछ पूछना चाहते हैं, क्योंकि आप भगवद्भक्तोंमें प्रधान तथा ज्ञानशिरोमणि हैं। हम लोगोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रश्नका विषय वह क्रियायोग है, जिस क्रियायोगके द्वारा मरणधर्मा मनुष्य अमरणधर्मको प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥ तान्त्रिक लोग केवल [चैतन्यघन] भगवान्‌की उपासना करते समय किन किन तत्त्वोंके द्वारा उनके चरणादि अङ्ग तथा गरुड़ादि उपाङ्ग, सुदर्शनादि-आयुध, और कौस्तुभादि भूषणोंकी कल्पना करते हैं ॥ २ ॥ आप हमलोगोंके लिए उसे बतलाइए क्रिया-योग जानने वालोंमें आपका कल्याण हो। जिस क्रियायोगसे मरणधर्माभी अमरत्व प्राप्तकरलेते हैं॥ ३ ॥ श्रीसूतजीने कहा परम-आराध्य गुरुचरणको नमस्कार कर उस वैष्णवी विभूति को भी मैं कह रहा हूँ, जिसे वेदों और तन्त्रोंसे ब्रह्मादि आचार्योंने कहा है ॥ ४ ॥ प्रकृति, सूत्रात्मा, महतत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा इन नवतत्त्वोंके द्वारा ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत, इन षोडश विकारोंसे युक्त जो विराट्स्वरूप निर्मित है, उसीमें ये तीनोंलोक दिखाई देते हैं ॥५॥ यह भगवान्‌काही विराट् पुरुषस्वरूप है, जिसके पृथिवी चरण, स्वर्ग मस्तक, आकाश नाभि सूर्य

केवलस्य श्रियःपतेः ॥ अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः ॥ २ ॥ तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ॥ येन क्रियानैपुणेन
मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नमस्कृत्य गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ॥ याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥ ४ ॥
मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ॥ निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥ एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ।
नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥ प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ॥ तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ
यमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दन्ता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ॥ रोमाणि भूरुहा मेघाः पुरुषमूर्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयं वै पुरुषो यावत्या
संस्थया मितः ॥ तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ॥ तत्प्रभा व्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समु-
रसा विभुः ॥ १० ॥ स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ॥ वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥ बिभर्ति सांख्यं योगं च
देवो मकरकुण्डले ॥ मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयङ्करम् ॥ १२ ॥ अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ॥ धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं

नेत्र, वायु नासिका और दिशाएँ श्रोत्र हैं ॥६॥ प्रजापति जनेन्द्रिय, मृत्यु गुदा, लोकपाल भुजाएँ, चन्द्रमा मन और यम भौंह हैं ॥७॥ लज्जा ओष्ठ, लोभ अधर, दन्तपंक्ति ज्योत्स्ना, भ्रम मुसकान, वृक्ष रोम और घनमण्डल शिरके रोम हैं ॥ ८ ॥ हे शौनकजी, जिस प्रकार साधारण मनुष्य अपने बित्तेसे सात बित्तेका है उसी प्रकार समष्टि पुरुष भगवान्‌भी लोकोंके अवयव सन्निवेशसे सात बित्तेके हैं ॥ ९ ॥ आजन्मा सर्वव्यापक भगवान् जीव चैतन्यरूप आत्म ज्योतिकोही कौस्तुभस्वरूपसे वक्षःस्थल पर धारण करते हैं, और उसकी सर्वत्र व्यापिनी प्रभा ही श्रीवत्सरूपसे विराजमान है ॥ १० ॥ सत्व, रज, तमसे युक्त त्रिगुणात्मिका अपनी मायाको वनमालाके रूपमें धारण करते हैं और वेदोंको वस्त्रके रूपमें तथा त्रिवर्णात्मक ॐकारको यज्ञो-पवीतके रूपमें धारण करते हैं ॥ ११ ॥ वे भगवान् सांख्य तथा योगको मकराकार कुण्डलरूपमें और प्राणिमात्रको अभय प्रदान करने वाले मुकुटके रूपमें धारण करते हैं ॥ १२ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिसपर वे अधिष्ठित रहते हैं वह यहां मूल प्रकृतिही शेषशय्या है और धर्मज्ञानादिसे युक्त सत्त्व गुणही आसनभूत पद्म कहा गया है ॥१३॥ शरीरेन्द्रिय मनःसंयोगरूप प्राणतत्त्वही उनको गदा तथा जलतत्त्व शंख और तेजतत्त्व सुदर्शन है ॥ १४ ॥ नभके समान निर्मल आकाश तत्त्वस्वरूप खड्ग, तमोमय ढाल, कालरूप धनुष और कर्ममय तरकसको धारण करते हैं ॥१५॥ इन्द्रियाँहीं वाणरूपमें परिणत हैं, क्रियाशक्तिसे युक्त मनही स्यन्दन है तन्मात्राएँ रथके वाहरी भाग हैं तथा मुद्राओंसे वरदा और आभयदारूपको धारण करते हैं ॥ १६ ॥ सूर्यमण्डल तथा अग्निमण्डही भगवान्का पूजा स्थान है, आत्मा शुद्धिही गुरुकृतमन्त्रदीक्षा है और विहित कर्मोंके अनुष्ठान द्वारा पापोंको नष्ट करदेना ही भगवान्की परिचया है ॥१७॥ ऐश्वर्यादि षाड्गुण्य [ऐश्वर्य, धर्म, यज्ञ, लक्ष्मीज्ञान और वैराग्य] ही लीला कमल है, जिसे भगवान् स्वयं धारण करते हैं और धर्मको चामररूपसे तथा यशको व्यजन रूपसे धारण करते हैं ॥ १८ ॥ हे

पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥ ओजः सहो बलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् । अपां तत्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥१४॥ नभोनिभं नभस्तत्वमसिं
चर्म तमोमयम् ॥ कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणि शरानाहूराकूतीरस्य स्यन्दनम् ॥ तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं
मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥ मण्डलं देवयजनं दीक्षासंस्कार आत्मनः ॥ परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥१७॥ भगवान्भगशब्दार्थं
लीलाकमलमुद्वहन् ॥ धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् ॥ त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं
वहति पूरुषम् ॥ १९ ॥ अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः । विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥ नन्दादयोऽष्टौ द्वास्थाश्च
तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥ २० ॥ वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ॥ अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥२१॥ स विश्वस्तैजसः
प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ॥ अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥ अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ॥ बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भ-
गवान्हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥ द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ॥ सृजति हरति पातीत्याख्ययानावृ-

ब्राह्मणों, भगवान् अपने परमधाम वैकुण्ठको छत्रके रूपमें धारण किये हुए हैं । तीनों वेदोंके रूपमें परिवर्तित गरुड़जी इन यज्ञ पुरुष भगवान्को ढाते फिरते हैं ॥१९॥ भगवान् विष्णुकी अन-पायनी शक्तिही लक्ष्मी है क्योंकि साक्षादात्मस्वरूपके चिद्रूप होनेके कारण उसका साथ अभेद है तथा भगवान्के सभासद् विष्वक्सेन और विश्वविभूति पञ्चरात्रादि आगम स्वरूप हैं। भगवान् विष्णु के जो आठ द्वारपाल हैं वे अणिमा महिमादिरूप अष्टसिद्धियाँ हैं ॥२०॥ हे शौनकजी, स्वयं भगवान् नारायण वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धके रूपसे उपास्य हैं इसलिए इनको चतु-र्व्यूह कहते हैं ॥ २१ ॥ वे ही भगवान् जागृत अवस्थामें विश्व बनकर स्पर्श इत्यादि वाह्य विषयोंका ग्रहण करते हैं तथा स्वप्नावस्थामें तैजस बनकर वाह्यविषयोंके बिनाही मनही मन अनेक विषयोंको देखते और उनका ग्रहण करते हैं । ये ही सुषुप्तिमें प्राज्ञ बनकर विषय और मनके संस्कारोंसे युक्त अज्ञानसे ढँक जाते हैं और तुरीय बनकर समस्त ज्ञानोंके अधिष्ठानरूपसे रहते हैं ॥२२॥ पूर्वोक्त प्रकारसे- अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध तथा भूषणोंसे युक्त एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्य म्न, अनिरुद्ध इन चार स्वरूपोंमें भगवान्ही क्रमानुसार--विश्व, तैजस प्राज्ञ और तुरीयरूपसे प्रकाशित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होते हैं ॥ २३ ॥ हे शौनकजी, वह एकही भगवान् वेदोंका मूल कारण स्वयं प्रकाशमान, तथा अपनी महिमासे परिपूर्ण हैं। वे अपनी मायासे ब्रह्मरूप धारणकर सृष्टि करते हैं। विष्णुरूपसे पालन करते हैं और शंकर रूपसे संहार करते हैं इन सब कामों तथा नामोंसे उनका ज्ञान आवृत नहीं होता यद्यपि शास्त्रकारोंने भिन्नरूपसे वर्णन किया है, किन्तु अपने भक्तोंको भगवान् आत्मरूपसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ हे यादवकुलकमल श्रीकृष्ण, हे अर्जुनके मित्र, आप पृथिवीपर द्रोह करने वाले राजाओंके वंशका नाश करनेवाले हैं। आपका पराक्रम सफल है। गोप, वनिता तथा नारदादि आपका तीर्थ रूप कीर्तिका नित्यशः गान करते हैं। आपके नामके श्रवणसे ही प्राणियोंका मंगल होता है। इसलिए आप हम लोगोंकी रक्षा करें ॥ २५ ॥ जो मनुष्य नित्य सबेरे उठकर इस महापुरुषके लक्षणका यानी भगवान्के चिन्हभूत अङ्ग, उपाङ्ग और आयुध आदिका वर्णन भगवान्में अपने चित्तको लगाकर करेगा, उसे सबकी अन्तरात्मामें रहने वाले ब्रह्मका ज्ञान होजायगा ॥ २६ ॥ शौनकजीने कहा—शुकदेवजीने परीक्षितजी को कथा सुनाते समय कहा था कि ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग इत्यादिकोंका

ताद्धो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ॥ गोविन्द गोपवनिता-
व्रजभृत्यगीततीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल पाहि भृत्यान् ॥ २५ ॥ य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् । तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाश-
यम् ॥२६॥ शौनक उवाच ॥ शुको यदाह भगवान् विष्णुराताय शृण्वते ॥ सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥२७॥ तेषां नामानि
कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥२८॥ सूत उवाच ॥ अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ॥
निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्तते ॥२९॥ एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः ॥२८॥ सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥३०॥
कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः ॥ द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥ ३१ ॥ मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ॥

एक सौरगण होता है, जो कि सातभेदोंमें विभक्त है, ये गण प्रत्येक महीनेमें बदला करते हैं ॥ २७ ॥ वह सूर्यसंबन्धि सौरगणका क्या कार्य है और उनके संयुक्त तथा पृथक्-पृथक् क्या नाम हैं, सूर्यके रूपमें अवतरित भगवान्ही सौरगण हैं, इससे हम लोग तत्-तत् महीनोंके स्वामी सूर्यके साथ व्यूह विभागको जानना चाहते हैं, कृपाकर मुझे बतलाइए ॥ २८ ॥ श्रीसूतजीने कहा—समस्त जीवसमुदायकी अन्तरात्मा भगवान् विष्णु ही हैं किन्तु अनादि अविद्याके कारण उसके तत्त्वको नहीं जाननेसे इस लोकका निर्माण तथा लोकयात्रा प्रवर्तक सूर्यका व्यवहार होता है ॥ २९ ॥ एक ही भगवान् उपाधिभेदसे अनेक प्रतीत होते हैं। वस्तुतः जगत्की आत्मा आदि सृष्टिकर्ता भगवान् सूर्य ही हैं सर्ववेदोंके मूलभूत भगवान् ही हैं वे ही ऋषियोंके द्वारा अनेक प्रकारसे कहे गये हैं ॥३०॥ हे ब्रह्मन्, काल, देश, क्रिया, कर्त्ता, करण, यागादि कर्म, वेद मन्त्र व्रीह्यादि द्रव्य और फल इन नव प्रकारोंसे कालरूप धारी भगवान् ही द्वादश आदित्य भेदसे मायाके कारण कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥ लोकयात्रा निर्वाहके लिए यानी बारह सूर्योंके कार्य चलानेके लिये कालरूप भगवान् ही चैत्रादि बारह महीनोंमें अपने भिन्न-भिन्न बारह गणोंके साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भ्रमण करते हैं ॥ ३२ ॥ हे मुने, सूर्य, कृतस्थली, (अप्सरा) हेति, राक्षस, वासुकि, यक्ष, पुलस्त्य और तुम्बुरु–ये चैत्र महीनेका कार्य संचालन करते हैं ॥ ३३ ॥ अर्यमा नामके सूर्य, ऋषि, यक्ष, राक्षस, पुञ्जिकस्थली, और सर्प–ये वैशाख महीनेका कार्य संपादन करते हैं ॥ ३४ ॥ मित्र संज्ञक सूर्य, अत्रिऋषि, राक्षस, सर्प, मेनका अप्सरा हहा गन्धर्व, और यक्ष–ये ज्येष्ठ मासका कार्य संपादन करते हैं ॥ ३५ ॥ आषाढ़ महीनेमें वरुण नामक सूर्य, वशिष्ठऋषि, रम्भा, अप्सरा, यक्ष, हुहुगन्धर्व, नाग और राक्षस–ये अपना-अपना कार्य करते हैं ॥ ३६ ॥ इन्द्र नामके सूर्य, विश्वावसु, श्रोता, नाग अङ्गिराऋषि, प्रम्लोचा-अप्सरा, तथा वर्यनामक राक्षस–ये श्रावणमास व्यतीत करते हैं ॥ ३७ ॥ विवस्वान् सूर्य, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, भृगुऋषि, अनुम्लोचा-अप्सरा, और शंखपाल–ये भाद्रमासका कार्य वहन करते हैं ॥ ३८ ॥ पूषानामके सूर्य. नाग, राक्षस, गन्धर्व यक्षघृताची-अप्सरा और गौतम ऋषि–ये माघ महीनेमें कार्य भार ग्रहण

लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥ धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ॥ पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥ ३३ ॥
अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली ॥ नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम् ॥३४॥ मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका
हहाः ॥ रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ३५॥ वसिष्ठो वरुणो रम्भा सहजन्यस्तथा हुहूः ॥ शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्त्यमी ॥३६॥
इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथाङ्गिरा ॥ प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥३७॥ विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ॥
अनुम्लोचा शङ्खपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥३८॥ पूषा धनञ्जयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा॥ घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥३९॥
क्रतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा ॥ विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ४० ॥ अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी ॥
विद्युच्छत्रुर्महाशङ्खः सहोमासं नयन्त्यमी ॥४१॥ भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्णा आयुश्च पञ्चमः ॥ कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ॥४२॥
त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलश्च तिलोत्तमा ॥ ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद्धृतराष्ट्र इषंभराः ॥४३॥ विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ॥ विश्वा-
मित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ॥४४॥ एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः स्मरतां संध्ययोर्न्हणां हरन्त्यंहो दिने दिने ॥४५॥ द्वादश-

करते हैं ॥ ३९ ॥ पर्जन्यनामक सूर्य, क्रतु. (यक्ष) वर्चा (राक्षस), भरद्वाजऋषि, सेनजित-अप्सरा, विश्व नामक गन्धर्व और एरावतनाग–ये फाल्गुन महीनेमें कार्य संचालन करते हैं ॥४०॥ अंशुनामके सूर्य, कश्यप ऋषि तार्क्ष्य, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, [राक्षस] और महाशंख नाग–ये अगहन मासको व्यतीत करते हैं ॥ ४१ ॥ भगनामक सूर्य, स्फूर्ज-राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ण-यक्ष, आयुष् ऋषि, कर्कोटक नाग और पूर्वचित्ति अप्सरा–ये पौष मासमें कार्य वहन करते हैं ॥ ४२ ॥ त्वष्टा सूर्य यमदग्नि, कम्बल नाग, ब्रह्मापेत राक्षस, शतजित यक्ष, धृतराष्ट्र-गन्धर्व, तिलोत्तमा अप्सरा और इषम्भरा–ये आश्विन महीनेको व्यतीत करते हैं ॥ ४३ ॥ विष्णुनामक सूर्य, अश्वतर–नाग, रम्भा अप्सरा सूर्यवर्चा–गन्धर्व विश्वामित्र ऋषि, शतजित्–यक्ष और मखापेत-राक्षस–ये कार्तिकमासको व्यतीत करते हैं ॥ ४४ ॥ ये सब आदित्य भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हैं। जो मनुष्य इनका प्रातः सायंकाल स्मरण करते हैं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके सम्पूर्ण पापोंको वे सब नष्ट कर देती हैं ॥ ४५ ॥ छः गन्धर्वादिकोंके साथ भगवान् सूर्य बारहों महीनोंमें मनुष्यलोकमें विचरते हुए, इस लोक तथा परलोकमें चारो ओर शुभ गतिका विस्तार करते हैं ॥ ४६ ॥ सामवेद ऋग्वेद, यजुर्वेदके द्वारा ऋषिलोग तत्तन्नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तवन करते हैं और गन्धर्वलोग उनके यशका गान करते हैं तथा उनके

स्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्यवै ॥ चरन्समन्तात्तनुते च परत्रेह सन्मतिम् ॥ ४६ ॥ सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिङ्गैर्ऋषयः संस्तुवन्त्यमुम् ॥ गन्धर्वास्तं प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥४७॥ उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ॥ चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥४८॥ वाल-खिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥४९॥ एवं ह्यनादिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

आगे-आगे अप्सराएँ नृत्य करती हैं ॥ ४७ ॥ नागलोग उनके रथको रस्सी सदृश होकर बाँधे रहते हैं और यक्ष लोग उनके रथको सजाते हैं तथा बलवान् राक्षस पीछेसे ठेलते हैं ॥ ४८ ॥ साठ हजार पवित्र, निष्कल्मष वालखिल्य ब्रह्मर्षि लोग सूर्य भगवान्के सामने आकर उपस्थित होते और स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करते हैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार अनादि, अनन्त, अजन्म परमेश्वर भगवान् विष्णुकल्प-कल्पमें अपने रूपका विभागकर इस लोकका पालन करते हैं ॥ ५० ॥

ग्यारहवें अध्यायका सार—श्री सूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, भगवान्के विराटस्वरूपमेंही तीनों लोक दिखाई देते हैं। भगवान्के विराट पुरुष स्वरूपके चरण पृथ्वी, मस्तक स्वर्ग, नाभि आकाश, नेत्र सूर्य, नासिका वायु और दिशाएँ श्रोत्र हैं। सूर्य तथा अग्नि मण्डल भगवान्की पूजाका स्थान हैं। शास्त्रविहित कर्मानुष्ठानद्वारा पापोंको नष्टकर देनाही भगवान्की सेवा है। हे शौनकजी, भगवान् नारायणही वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धके नामसे उपास्य हैं। भगवान्ही वेदोंका मूलकारण, स्वयं प्रकाश तथा अपनी महिमासे पूर्ण हैं। यद्यपि भगवान्का शास्त्रकारोंने भिन्न-भिन्न रूपसे वर्णन किया है, किन्तु भगवान् अपने भक्तोंको आत्मारूपसेही प्राप्त होते हैं। श्री शौनकजीने कहा—श्री सूतजी, अब सौरगणका कार्य हमें सुनाइये। श्री सूतजीने कहा—हे शौनकजी, काल, देश आदि भेदसे भगवान्ही द्वादश आदित्य कहे जाते हैं। हे मुने, सूर्य कृतस्थली अप्सरा, हेति, राक्षस वासुकि, यक्ष पुलस्त्य और तुम्बुरु ये चैत्र महीनेका कार्य करते हैं। इसी तरह अर्यमा आदि सूर्य ऋषि, राक्षस, सर्प और अप्सराएँ वैशाख आदि मासोंके कार्य करते हैं। छः गन्धर्व आदिकोंके साथ भगवान् सूर्य बारह महीनोंमें मनुष्यलोकमें विचरते हैं तथा शुभ गतिका विस्तार करते हैं। वेदोंके द्वारा ऋषि लोग तत्-तत् नामोंसे भगवान् सूर्यका स्तवन करते हैं एवं गन्धर्व आदि उनके यशका गान करते हैं साठ हजार वालखिल्य नामक ऋषि लोग भगवान् सूर्यके सामने आकर स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं। इस प्रकार अनादि, अनन्त अज परमेश्वर विष्णुही प्रत्येक कल्पमें अपने रूपका विभागकर इस लोकका पालन करते हैं। ❀

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

❀ अथ द्वादशोऽध्यायः ❀

❀ संक्षिप्त विषयानुक्रमणिका ❀

श्री सूतजीने कहा—हरिभक्ति स्वरूप धर्म तथा परब्रह्म परमात्मा कृष्णचन्द्र एवं सर्वपूज्य ब्राह्मणोंको नमस्कार कर अब सनातन धर्मोंका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ हे शौनकादि ऋषियो, आप लोगोंके प्रश्न करने पर मनुष्योंमें पुरुषोचित विष्णु भगवान्का अद्भुत चरित मैंने आप लोगोंको सुनाया ॥२॥ इस भागवत महापुराणमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले यदुकुल कमल भगवान् साक्षात् नारायण हृषीकेषका वर्णन किया गया है । ॥ ३ ॥ इस पुराणमें परम गोप्य रहस्यमय निर्गुण तथा संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयमें स्थितके आश्रयभूत ब्रह्म का वर्णन किया गया है । और विज्ञान संयुक्त अपरोक्ष ज्ञान पर्यन्त ज्ञान तथा ज्ञानका साधनभी बताया गया है ॥ ४ ॥ तथा इस पुराणके प्रारम्भमें भक्तियोग और तदाश्रय भूत वैराग्य

सूत उवाच ॥ नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनम् ॥ १ ॥ एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ॥ भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥२॥ अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः ॥नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ३ ॥ अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ज्ञानं च तदुपाख्यनं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥ भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ॥ परीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥५॥ प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ॥ शुकस्य ब्रह्मर्षभस्य संवादश्च परीक्षितः ॥६॥ योगधारणयोत्क्रान्तिः संवादो नारदाजयोः ॥ अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ७ ॥ विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ॥ पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥८॥ ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ॥ततो ब्रह्माण्डसंभूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥९॥ कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ॥ भुव उद्धरणेऽम्भोधेर्हिरण्याक्षवधो यथा ॥१०॥ ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ॥ अर्धनारीनरस्याथ यतः

परीक्षित्की कथा एवं व्यास-नारदके प्रसंगसे नारदचरित भी कहा गया है ॥ ५ ॥ और राजर्षि परीक्षित् ब्राह्मणके शाप देनेपर किस प्रकार गंगातटपर स्थित हुए, और श्रीशुकदेवजीके साथ किस प्रकार उनका संवाद हुआ ये सभी बातें प्रारम्भमें दिखलाई गई हैं ॥६॥ दूसरे स्कन्धमें योगधारणाके द्वारा शरीर त्याग, नारद और ब्रह्माका संवाद, अवतारोंका वर्णन माहात्म्य तथा महदादि क्रमसे प्राकृतिक सृष्टि यानी प्रधानकर्म विराट्रूप-सृष्टिकी उत्पत्ति आदि विषयोंका वर्णन किया गया है ॥ ७ ॥ तदनन्तर तीसरे स्कन्धमें विदुर और उद्धवका संवाद, विदुर-तथा मैत्रेयका समागम, पुराण संहिता विषयक प्रश्न, प्रलयकालमें महापुरुष किस प्रकार स्थित रहते हैं, इसका वर्णन किया गया है ॥ ८ ॥ इसके बाद गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न प्राकृत सृष्टि महदादि सप्त प्रकृति तथा विकृतियोंके द्वारा उत्पन्न कार्य सृष्टिका वर्णन है और ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति तथा विराट् पुरुषका वर्णन किया गया है ॥ ९ ॥ तदनन्तर कालकी स्थूल तथा सूक्ष्मगति, पद्मकी उत्पत्ति और प्रलय समुद्रसे पृथिवीका उद्धार करते समय हिरण्याक्षके वधका वर्णन किया गया है ॥ १० ॥ इसके बाद देवता, पशु, पक्षी मनुष्योंकी सृष्टि, रुद्रोंकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्पत्ति और अर्धनारी नरके स्वरूपका वर्णन किया गया है। जिससे स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी उत्पत्ति हुई थी ॥ ११ ॥ स्त्रियोंकी अत्यन्त उत्तम आधा प्रकृति शतरूपका जन्म, कर्दम प्रजापतिका चरित्र, इनसे मुनिपत्नियोंका जन्म मरीचि, आदि नव प्रजापतियोंका वर्णन है ॥ १२ ॥ महात्मा भगवान् कपिलका अवतार तथा महाबुद्धिमान् कपिलमुनिके साथ देवहुति संवाद वर्णित है ॥ १३ ॥ नव मरीच्यादिकोंका विस्तार, दक्ष यज्ञका विनाश, ध्रुव, पृथुका चरित्र, प्राचीन बर्हि तथा नारदका संवाद चतुर्थस्कन्धमें हुआ है ॥ १४ ॥ हे ब्राह्मणों, पाँचवें स्कन्धमें प्रियव्रतके उपाख्यानके बाद नाभि, ऋषभ और भरतका चरित [उपाख्यान] वर्णित हैं ॥ १५ ॥ द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, तथा नदियोंका वर्णन, ज्योतिश्चक्रका विस्तार, पाताल तथा नरकके स्थितका भी वर्णन किया गया है ॥ १६ ॥ दक्षका जन्म प्रचेताओंसे किस प्रकार हुआ, इसका वर्णन, दक्ष, पुत्रियोंकी सन्तान, देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पर्वत,

स्वायंभुवो मनुः ॥११॥ शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा ॥ सन्तानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥१२॥ अवतरो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ॥ देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥ नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ॥ ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥ नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ॥ नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥ द्वीपवर्षसमुद्राणां गिरिनद्युपवर्णनम् ॥ ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥ दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च सन्ततिः ॥ यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७ ॥ त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ॥ दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥१८॥ मन्वन्तरानुकथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् ॥ मन्वन्तरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥ कौर्मं धान्वन्तरं मात्स्यं वामनं च जगत्पतेः ॥ क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २० ॥ देवासुरमहायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ॥ इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ॥ सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥२२॥ सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः ॥ खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥ २३ ॥ रामस्य कोशलेन्द्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ॥ निमेरङ्गपरित्यागो जनकानां च सम्भवः ॥ २४ ॥ रामस्य भार्गवेन्द्रस्य

और पक्षियोंका जन्म कर्म त्वाष्ट्र [वृत्रासुर] का जन्म और उसकी परम गति षष्ठस्कन्धमें वर्णित है—हे ब्राह्मणो, सातवें स्कन्धमें दितिके पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके जन्म तथा कर्म एवं महात्मा प्रह्लादके चरितका वर्णन है ॥ १७,१८ ॥ गजेन्द्रमोक्ष, मन्वन्तरोंकी कथा, मन्वन्तरोंके भगवद् अवतार, कूर्म, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि, हयग्रीवादि अवतार ॥१९॥ तथा उनका वर्णन, अमृत निकालनेके लिए देवताओंका समुद्रमन्थन ॥२०॥ एवं देवतासुर संग्रामका वर्णन आठवें स्कन्धमें हुआ है। राजाओंके वंशोंका वर्णन इक्ष्वाकुका जन्म, उनके वंशका विस्तार सुद्यम्नका चरित्र ॥ २१ ॥ तथा–इला एवं ताराके उपाख्यान, सूर्यवंशका वृत्तान्त, शशाद और नृग आदि राजाओंका वर्णन ॥२२॥ सुकन्याका चरित्र, शर्याति ककुत्स्थ खट्वाङ्ग, मान्धाता, सौभरि, सगर, कोशलपति भगवान् रामका पापसमूहके नाशक चरित, निमिका अङ्ग परित्याग, जनककी उत्पत्ति, ॥२३,२४॥ भार्गव वंशके मणि परशुरामजीका पृथिवीके समस्त क्षत्रिय राजाओं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का उनके द्वारा नाश, सोमवंशके राजा ऐल ययाति तथा नहुषका चरित ॥ २५ ॥ दुष्यन्तके पुत्र भरतजी, शन्तनु और उनके पुत्र भीष्मादि, राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदुवंश ॥ २६ ॥ और उसी वंशमें आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रका वसुदेवके घर अवतार, तथा गोकुलमें जाकर शिशुकाल व्यतीत करना इत्यादि वातोंका नवम स्कन्धमें वर्णन हुआ है ॥ २७ ॥ असुरोंके नाशक उस भगवान्का चरित दशमस्कन्धमें विस्तार पूर्वक वर्णित है। जैसे पूतनाके प्राणोंको उसके स्तनपानके साथ ही खींचलेना और वाल्यकालमेंही शकटको उलट देना—इसी स्कन्धमें कहा गया है ॥ २८ ॥ तृणावर्त, वकासुर, एवं वत्सासुरके नाशका वर्णन, भ्रातृ सहित धेनुकका तथा प्रलम्बासुरके नाशका वर्णन इसीमें हुआ है ॥ २९ ॥ फैल रही दावाग्निसे घिरे हुए गोपोंका परित्राण, कालीय नागका दमन और नन्दका अजगरसे मोच ॥ ३० ॥ लावण्यमूर्ति, मदनमोहन मुरलीधरको पति वनानेकी कामनासे गोपियोंकी तपस्या तथा उससे

निःक्षत्रकरणं भुवः ॥ ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्य च ॥ २५ ॥ दौष्यन्तेर्भरतस्यापि शन्तनोस्तत्सुतस्य च ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥ २६ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ॥ वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥ २७ ॥ तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ॥ पूतनाऽसुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥२८॥ तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ॥ धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥ गोपानां च परित्राणं दवाग्नेः परिसर्पतः दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥ व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ॥ प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥ ३१ ॥ गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ ॥ यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ॥ ३२ ॥ शङ्खचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ॥ अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥ ३३ ॥ व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ॥ गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥ ३४ ॥ मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सान्दीपनेर्गुरोः ॥ मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥ ३५ ॥ कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ॥ जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ॥ घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥ आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ॥ रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३७ ॥ हरस्य जृम्भणं युद्धे

प्रसन्न भगवान्का वर प्रदानका वर्णन है। भगवानका यज्ञपत्नियों पर प्रसन्न होना एवं उनसे उनके पतियोंके पश्चात्तापका भी वर्णन है ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धन पर्वतको नखपर धारण करने पर इन्द्र और कामधेनु द्वारा उनका अभिषेक, गोपस्त्रियोंके साथ रातमें क्रीडा ॥ ३२ ॥ शंखचूड़, अरिष्ट और केशिका वध, अक्रूरका वृन्दावनमें आगमन तथा उनके साथ कृष्ण, बलरामका गमन ॥३३॥ तदनन्तर व्रजविलासिनियोंका विलाप तथा राम और श्रीकृष्णचन्द्रका मथुरामें पहुँचकर वहाँके दृश्योंका अवलोकन एवं कुवलयापीठ गज, मुष्टिक, चाणूर, कंसादिकोंके संहार का वर्णन है ॥ ३४ ॥ सान्दीपनी गुरुके मरे हुये बालकोंको लाना मथुरामें निवास करते हुये उद्धव-बलरामके साथ यदुवंशियोंका हित करना ॥ ३५ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो, भगवान् द्वारा जरासन्धके साथ आई हुई सेनाका नाश, यवनराजका मुचुकुन्द द्वारा भस्म कराना, द्वारिका पुरीको वसा कर वहाँ यदुवंशियोंका आना स्वर्गसे पारिजात तथा सुधर्माका लाना रुक्मिणीको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शत्रुओंसे युद्ध करके लाना वर्णित है ॥ ३६,३७ ॥ युद्धमें भगवान् शङ्करको वाण द्वारा जँभाई फँसाकर वाणासुरकी भुजाओंका छेदन करना प्राग् ज्योतिष पतिके स्वामी भौमासुरको मार कर उसकी सोलह हजार कन्याओंका ग्रहण करना ॥ ३८ ॥ शिशुपाल, पौंड्रक, शाल्व, दन्तवक्र, शम्बासुर, द्विविद, पीठ, मुर, पञ्चजन, आदि दैत्योंके ॥३९॥ बलका वर्णन तथा उनका वध, वाराणसीका दाह करना, तथा पाण्डवोंको निमित्त बनाकर भूमिका भार हटाना भी इसी स्कन्धम कहा गया है ॥ ४० ॥ तदनन्तर ग्यारहवें स्कन्धमें ब्राह्मणोंके शापके बहाने अपने कुलका संहार, वासुदेव और उद्धवका अद्‌भुत् संवाद वर्णित है। जिसमें सम्पूर्ण आत्मविद्या और धर्मका अच्छी तरह निर्णय किया गया है। तदनन्तर भगवान्का आत्मयोगके प्रभावसे इस मानुष शरीरसे छुटकारा किस तरह हुआ। इसका वर्णन हुआ है ॥ ४१,४२ ॥ युगोंके लक्षण तथा प्रत्येक युगोंकी तदनुरूप घृत्तियाँ कलियुगमें मनुष्योंकी बुद्धिका व्यामोह अथवा धर्मका

बाणस्य भुजकृन्तनम् ॥ प्रग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत ॥ ३८ ॥ चैद्यपौण्ड्रकशाल्वानां दन्तवक्रस्य दुर्मतेः ॥ शम्बरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥३९॥ माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ॥ भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥४०॥ विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ॥ उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥ ४१ ॥ यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः ॥ ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥४२॥ युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ॥ चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥ ४३ ॥ देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ॥ शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ॥ महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥४४॥ इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः ॥ लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥ पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन् ॥ हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥४६॥ सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ॥ प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥४७॥ मृषागिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ॥ तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥ तदेव रम्यं रुचिरं

उलट-फेर चार प्रकारके प्रलय, प्राकृतिक नैमित्तिकी नित्य इस तरह तीन प्रकारकी घृत्तियाँ बारहवें स्कन्धमें कही गयी हैं ॥ ४३ ॥ इसके बाद राजर्षि परीक्षितका देहत्याग, भगवान् व्यास जी द्वारा वेदोंको शाखाओंके रूपमें विभाजन, मार्कण्डेयजीकी सुन्दर कथा, भगवान्के अङ्गों-उपाङ्गोंका वर्णन तथा सबके अन्तमें विश्वात्मा भगवान् आदित्यके गणोंका वर्णन है ॥ ४४ ॥ हे ऋषियों आपलोगोंके प्रश्न करने पर मैंने यहां परमपुरुष भगवान्की लीलाओं तथा कर्मों का अच्छी तरह वर्णन किया ॥४५॥ पतित, स्खलित और दुःखी भी मनुष्य छींककर या किसी भी प्रकार विवश होत हुए भी 'हरये-नमः' यदि कह देता है, तो वह सर्व पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य भगवान्का गुणानुवाद करता है उसके हृदयमें अनन्त भगवान् प्रविष्ट होकर उसके सकल व्यसनोंको ऐसे नष्ट कर देते हैं, जैसे सूर्य भगवान् अन्धकारको तथा वायुका प्रबल वेग बादलोंके समूहको नष्ट कर देता है ॥ ४७ ॥ जिस वाणीसे भगवान् के विमल यशका गान नहीं किया गया वह निरर्थक है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है तभी अच्छे-अच्छे भावोंका वर्णन करती हुई भी वह असती ही है। भगवान्के गुणोंका संकीर्तन जो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किया जाता है वही परम सत्य है वही मंगलमय तथा पुण्य देनेवाला है ॥४८॥ जो उत्तम श्लोक भगवान् सच्चिदानन्दके गुणोंका गान किया जाता है, वही सुन्दर, रमणीय, नित्य प्रति दिन नवीन है । वही निरन्तर चित्तको आनन्द देने वाला है और शोक समुद्रको सुखा देने वाला है ॥४९॥ जिस वाणीसे जगत्को पवित्र कर देनेवाले भगवान् अधोक्षजके चित्र-विचित्र नये-नये गुणोंका वर्णन नहीं किया गया वह वाणीको उच्छिष्ट देनेके स्थानकी तरह है वह हंसोंसे सेवित स्थान नहीं है । यानी काकतुल्य मनुष्योंकी रीतिकी जगह है, ज्ञानीके सेवनीय नहीं है, क्योंकि जहां भगवद्गुणानुवाद होता है वहींपर निष्पाप दूसरोंको पवित्र करने वाले महात्माओंका वास होता है ॥५०॥ जो वाणी रचनामें सुन्दर भी न हों तथा भावोंसे युक्त न हो लेकिन अनन्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नाम तथा यश रूपीमणिसे युक्त हो, तो वही लोगोंके पापप्रतापक नाश करनेमें समर्थ है, क्योंकि वही महात्माओं द्वारा बार-बार कही और सुनी जाती है

नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ॥ तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥४९॥ न तद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥ स वाग्विसर्गो जनताघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५१ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥ यशःश्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ॥ अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥ ५३ ॥ अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ॥ सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥५४॥ यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ॥ नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताविवेश्य ॥५५॥ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ॥ प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥५६॥ एतद्वः कथितं विप्र कथनीयोरुकर्मणः ॥ माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥ य एवं

तथा उसीका वे गान करते हैं ॥५१॥ ब्रह्मप्राप्ति करने वाला उपाधिनिवर्तक ज्ञान भी यदि भगवद्भाव से वर्जित है, तो वह भी अत्यन्त शोभित नहीं है आदरणीय नहीं है, जो कार्य भगवान्को अर्पित नहीं किये जाते चाहे वे सबसे उत्तम ही क्यों न हो, पर वे शोभित नहीं होते क्योंकि अन्तमें वे दुःखदायक ही होते हैं ॥५२॥ वर्णाश्रमधर्म, आचार तपस्या, तथा अध्ययनादि कार्योंमें जो अधिक परिश्रम किया जाता है, उसका फल केवल लक्ष्मीप्राप्ति एवं यशकी प्राप्तिही है, परन्तु भगवानके चरितोंके श्रवण, कीर्तन आदि उनके चरणोंमें चिरस्थायी स्मृति प्रदान करते हैं ॥५३॥ भगवान् कृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंका स्मरण सारे पाप समूहको नष्टकर कल्याण करता है, शान्ति देता है, अन्तःकरण शुद्ध करता है, भगवच्चरणारविन्दोंमें अविचल भक्ति देता है तथा विज्ञान् और वैराग्यसे युक्त ज्ञान देता है—भगवत्—स्वरूपका अनुभव करता है ॥ ५४ ॥ हे ऋषियो, आप लोग परमभाग्यवान् हैं, जोकि समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप, सर्वोपास्य, अनन्यदेव, ईशनारायण भगवान्को अपने अन्तःकरणमें बैठाकर निरन्तर अविचलचित्तसे उनकी आराधना करते हैं ॥ ५५ ॥ जिस समय राजर्षि परीक्षित् महान् श्रोता ऋषियोंकी सभामें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परम ऋषि शुकदेवजीसे भगवद्-यशका श्रवण कर रहे थे, उसी समय मैंने जो कथा उनके मुखसे सुनी थी, उसका स्मरण कराकर आप लोगोंने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। इसके लिए आप लोगोंको धन्यवाद है ॥ ५६ ॥ हे ऋषियो, मैंने कथाके प्रसंगसे सब पापोंको नष्ट करने वाली वर्णनीय उस पराक्रमी वासुदेव भगवान्की लीलाकावर्णन किया है ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य एकाग्रचि होकरर एक पहर या एक क्षणभी भगवान्के चरित्रोंको सुनाता है और जो श्रद्धावान् सुनता है, वे दोनों शरीर सहित अपनी आत्माको पवित्र करलेते हैं ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य द्वादशी, या एकादशीके रोज इस कथा का श्रवण करता है, उसे दीर्घ-आयु प्राप्त होती है। और जो मनुष्य निराहार होकर इसका पाठ करता है, उसके पूर्वके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वह पातकी नहीं बनता ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य संयम पूर्वक रहकर पुष्करतीर्थ, मथुरा, या द्वारिकामें उपवास कर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य इसका कीतंन तथा उच्चारण करता है उसके कीर्तन तथा उच्चारणको सुनकर देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनु और नरपति सन्तुष्ट होते हैं। और उसकी अभिलापाओंको पूर्ण

श्रावयेन्नित्यं यामक्षणमनन्यधीः ॥ श्रद्धावान् योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥५८। द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् ॥ पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥५६॥ पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ॥ उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥ ६० ॥ देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः ॥ यच्छन्ति कामान्गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥६१॥ ऋचो यजूंषि समानि द्विजोऽधीत्यानुविन्दते ॥ मधुकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥६२॥ पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजः ॥ प्रोक्तं भगवता यतु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ॥ वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात् ॥ ६४ ॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ॥ इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसङ्गैः ॥६५॥ तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ॥ द्युपतिभिरजशक्रशङ्कराद्यै र्दुरवासितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥६६॥ उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिरजङ्गमालयाय ॥ भगवत उपल-

करते हैं ॥ ६१ ॥ ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के अध्ययनके जो मधुकुल्या, घृतकुल्या तथा पयःकुल्याकी मधु, घृत और दूधकी नदियोंकी अर्थात् सब तरहके सुखकी प्राप्ति होती है। वह प्राप्ति इस पुराणके अध्ययन मात्रसे हो जाती है ॥ ६२ ॥ हे महात्माओं, संयत होकर इस पुराणका अध्ययन करने वाला द्विज उस पदको प्राप्त करता है, जिसका वर्णन भगवान्ने स्वयं अपने मुखसे किया है ॥ ६३ ॥ इस पुराणका अध्ययन कर ब्राह्मण तत्त्वज्ञानको प्राप्त कराने वाली बुद्धि प्राप्त करता है, क्षत्रिय समुद्र पर्यन्त भूमिका राज्य प्राप्त करता है, वैश्य धनेशका पद प्राप्त करता है और शुद्र पातकसे शुद्ध हो जाता है ॥ ६४ ॥ कराल कलिकालसे जन्य पाप समूहको नष्ट करने वाली भगवान्की कथा जिस प्रकार भागवतमें वर्णित है, उस प्रकार अन्य पुराणोंमें बार-बार नहीं वर्णित है। इस पुराणमें तो अशेषमूति भगवान् कथा प्रसङ्गसे पद-पद पर वर्णित हैं ॥ ६५ ॥ अजन्मा, अनन्त, आत्मस्वरूप, संसारके उत्पत्ति तथा स्थितिके कारण, रज आदि शक्तियोंसे युक्त तथा देवताओंसे भी दुर्जेय स्तोत्रवाले भगवान्को नमस्कार है ॥ ६६ ॥ जिन्होंने अपनी आत्मामेंही प्रकृति आदि नवशक्तियोंकी कल्पना करके चराचर जगत्की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सृष्टिकी है और जो इसके आश्रयभूत हैं, तथा जिनका परमपद केवल अनुभूत स्वरूप है, देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ उन सनातन भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ६७ ॥ सुखसे परिपूर्ण चित्तवाले

ब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥६७॥ स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ॥ व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥६८॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

[आत्मानन्द सुखमें निमग्न रहने वाले] तथा भेदभाव दृष्टिसे रहित जिस श्रीशुकदेवजी महाराजको भगवान्‌की लीलामयी कथाने अपनी ओर आकर्षित करलिया और उन्होंने जीवमात्रके उपकारके लिए परमार्थप्रकाशक इस महापुराण का कृपाकर विस्तार किया, सम्पूर्णपापोंको नष्ट करने वाले उस शुकदेवजीको नमस्कार है ॥ ६८ ॥

श्रीसूतजीने कहा—हे शौनक आदि ऋषियो, उस भागवतमें विशेषकर भगवान्‌के चरितकाही वर्णन हुआ है। प्रथम-स्कन्धमें भक्तियोगका वर्णन वैराग्यका वर्णन तथा परीचित्‌का कथा और नारद के चरित्रका वर्णन किया गया है। द्वितीयस्कन्धमें परीचित्‌का शरीर त्याग, ब्रह्मा नारद संवाद और अवतारोंकी चर्चाकी गई है। तृतीयस्कन्धमें विदुर और उद्धव तथा मैत्रेयका समागम, पुराणसंहिता विषयक प्रश्न, प्रलयकालमें परमात्माकी स्थिति एवं सृष्टिका वर्णन है। इसी तरह आगे चलकर भगवद्भक्तिमें सहायता देनेवाली वे सब बातें इसमें बड़ी खूबीके साथ वर्णित हैं। हे महात्माओ, इसका अध्ययन करने वाला मनुष्य वह पद प्राप्त करता है, जिसका वर्णन भगवान्‌ने स्वयं अपने मुखसे किया है। अधिक क्या कहें इसमें भगवत् कथा प्रसङ्गपद-पद पर वर्णित हैं। हेमहात्माओ इसका अध्ययन करने वाला मनुष्य वह पद प्राप्त करता है, खिसका वर्णन भगवान्‌ने स्वयं अपने मुखसे किया है। अधिक या कहें इसमें भगवान् कथा प्रसङ्ग पद पद पर वर्णित हैं। उस अजन्मा, अनन्त भगवान् को बार-बार नमस्कार है। जिन्होंने अपनी आत्मामें ही चराचर जगत्‌की सृष्टिकी है। उस शुकदेव मुनिको भी अनेक प्रणाम है, जिन्होंने संसारके मंगलके लिए इस महापुराणका विस्तार किया। ❀

❀ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ❀

❀ यथाक्रम पुराणश्लोकोंकी संख्या तथा भागवतके दान माहात्म्यका वर्णन ❀

सूतजीने कहा—उस परम ब्रह्म परमेश्वरदेवको साष्टाङ्ग प्रणाम है, जिसकी स्तुति ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और वायु अपने सुन्दर स्तोत्रों द्वारा करते हैं, सामगान करनेवाले साङ्ग,

सूत उवाच ॥ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः । ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुःसुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ । पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ॥ यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनाम्भसां यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥२॥

वेद, पद, क्रम, उपनिषदों द्वारा जिसकी स्तुति करते हैं, जिसको योगी लोग तल्लीन होकर [अपने मनको उसीमें पूर्णरूपसे लगाकर] अपनी ज्ञान दृष्टि द्वारा देखते हैं तथा जिसके अन्त का पता सुर असुरोंको आजतक भी नहीं लग सका ॥ १ ॥ कच्छपावतारके समय जिस भगवान्‌की पीठपर भ्रमित हो रहे अमन्द मन्दराचलके अग्रभागोंसे खुजलाने पर खुजलाहट

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जनित सुखके कारण नींदमें लीन हुए भगवान्‌की नासिकासे निकले हुए श्वासानिल आप लोगोंकी रक्षा करे, जिनके संस्कारलेशोंके अनुवर्तन वशात् तटके ऊपर धक्का लगनेके बहाने सागरके जलका आनन्दित आवागमन आज भी नहीं रुकता। तात्पर्य यह है कि भगवान्‌की नासिकासे निकले हुए श्वासानिलोंसे जो समुद्रके जलको धक्का लगा उसका संस्कार आज भी समुद्रमें वर्तमान है, जिसके फलस्वरूप रातदिन समुद्र घटता बढ़ता रहता है ॥ २ ॥ हे शौनकजी, अब आप पुराणोंकी श्लोक संख्या, उनका समाहार [जोड़] इस भागवतका वाच्य, विषय और प्रयोजन तथा दान और पाठका माहात्म्य सुनिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुराणकी श्लोक संख्या दश हजार है, पद्मपुराणकी श्लोक संख्या पचपन हजार, विष्णुपुराणकी तेइस हजार और शिवपुराणकी चौबीस हजार ॥ ४ ॥ अट्ठारह हजार भागवत, पचीस हजार नारदपुराण, नव हजार मार्कण्डेय पुराण, तथा पन्द्रह हजार चार सौ अग्निपुराणकी श्लोक संख्या है ॥५॥ चौदह हजार ५ सौ भविष्यपुराण की और अट्ठारह हजार ब्रह्मवैवर्त पुराणकी और ग्यारह हजार लिङ्गपुराणकी श्लोक संख्या है ॥ ६ ॥ वाराह पुराणमें चौबीस हजार स्कन्दपुराणमें इक्यासी हजार एक सौ और वामनपुराणमें दस हजार श्लोक हैं ॥७॥ कूर्मपुराणमें सत्रह हजार, मत्स्यपुराणमें चौदह हजार, गरुड, पुराणमें, उन्नीस हजार और ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार

पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने ॥ दानं दानस्य महात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥३॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च । श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥४॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः ॥ मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्चचतुःशतम् ॥ ५ ॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च ॥ दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु ॥ ६ ॥ चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् ॥ ॥ स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश ॥ एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥ एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ॥ तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥९॥ इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥ स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥१०॥ आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् ॥ हरिलीलाकथांव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥ ११ ॥ सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ॥ वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥१२॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ॥ १३॥ राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतांगणे ॥ यावन्न दृश्यते साक्षाच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥ १४ ॥ सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवत-

श्लोक हैं ॥ ८ ॥ पूर्वोक्त प्रकारसे सब पुराणोंकी श्लोक संख्या चार लाख होती है। उनमें श्रीमद्भागवत अट्ठारह हजार श्लोकोंका है ॥ ९ ॥ हे शौनकजी, भगवान् विष्णुने अपने नाभि कमलपर स्थित तथा संसार चक्रसे भयभीत ब्रह्मापर दया करके इस पुराणको पहले प्रकाशित किया ॥ १० ॥ इस पुराणके आदि, मध्य, तथा, अन्तमें अनेक वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथायें हैं एवं सत्पुरुष तथा देवताओंको आनन्द देनेवाली भगवान्‌की लीला-कथाओंकाभी चित्रण है ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण वेदान्तोंका सार जो ब्रह्म औ आत्माका स्वरूप अद्वितीय सद्वस्तु है, वही इस पुराणका प्रतिपाद्य विषय है। और प्रयोजन तो केवल कैवल्य प्राप्ति ही है ॥१२॥ जो मनुष्य भाद्रपदकी पूर्णिमाके दिन भागवतको स्वर्ण सिंहासन पर रखकर दान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ सज्जनोंके मध्यमें अन्य पुराण तभीतक शोभित होते हैं, जबतक साक्षात् सर्वश्रेष्ठ पुराण श्रीमद्भागवतका दर्शन नहीं होता ॥१४॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सर्व वेदान्तका सार भागवत रसामृतका आस्वादन जब कोई कर लेता है, तब उसकी तृप्ति अन्य पुराणोंके कथाओंसे नहीं होती ॥ १५ ॥ नदियोंमें गङ्गा जिस प्रकार श्रेष्ठ मानी जाती हैं, देवताओंमें अच्युत भगवान् तथा वैष्णवोंमें शङ्करजी जैसे श्रेष्ठ माने जाते हैं, उसी प्रकार पुराणोंमें भागवत श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ हे शौनकादि ऋषियो, जिस प्रकार सब क्षेत्रोंमें काशी श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुराणोंमें भागवत श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ यह श्रीमद्भागवत दोष रहित है । और भगवान्के भक्त इससे बहुत प्रेम रखते हैं । इस पुराणमें जीवन मुक्त परमहंसोंके सर्व श्रेष्ठ अद्वितीय और मायाके लेशसे रहित ज्ञानका गान किया गया है । इस भागवतमें निष्कर्म [कर्मोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति] भी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे युक्त प्रकटिक है । जो इसका पठन, श्रवण तथा मनन करता है, उसे भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है तथा वह मुक्त हो जाता है ॥ १८ ॥ यह श्रीमद्भागवत और पुराणों की अपेक्षा भगवत्तत्त्वज्ञानका अद्वितीय प्रकाशक है । इसे पहले पहल ब्रह्माजीके लिये भगवान् ने उपदेश दिया था । तदनन्तर उन्होंनेही ब्रह्माकेरूपसे महर्षि नारदको उपदेश दिया । और नारद रूपधारी भगवान्ने व्यासजीको उपदेश दिया उसके बाद

मिष्यते ॥ तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥ निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा ॥ वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥ क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ॥ तथा पुराणव्रतानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भावतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।। तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ १८ ॥ कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥ योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ।। १९ ॥ नमस्तस्मैभगवते वासुदेवाय साक्षिणे॥ य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥ योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ॥ संसार-सर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ।। २१ ॥ भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ॥ तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥ नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

व्यासके रूपसे शुकदेवजीको और शुकदेवजीके रूपसे राजा परीक्षित्को उपदेश दिया । परम शुद्ध-बुद्ध, माया रहित, शोक और मृत्युसे अतीत, सत्यस्वरूप उस परमेश्वरका लोग ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ हम लोग उस शुकदेव भगवान्को नमस्कार कहते हैं जिन्होंने मोक्षाभिलाषी ब्रह्माजीको इस भागवतका उपदेश दिया ॥ २० ॥ और ब्रह्म स्वरूप शुकदेवजीको भी नमस्कार है, जिन्होंने भागवत महा पुराणको सुनकर संसार सबसे डरते हुए परीक्षित्को मुक्त किया ॥ २१ ॥ हे भगवन् , हे देवेश, हे प्रभो, आप ऐसी कृपा करें कि बार बार जन्म ग्रहण करते हुए भी हमारी भक्ति आपके चरणकमलमें अविचल रहे । क्योंकि आप हम लोगोंके स्वामी हैं ॥२२॥ जिसके नामोंका संकीर्तन मानवोंके पापोंका नष्ट करने वाला है तथा नमस्कार मात्रसे जो दुःखोंको शान्त कर देता है । उस परम भगवान् विष्णुको बार-बार प्रणाम है ॥ २३ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीसूतजीने कहा—हे ब्राह्मणो, यह भागवत पुराण सब पुराणोंमें श्रेष्ठ है इसमें अट्ठारह हजार श्लोक है। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक पठन, श्रवण और मनन करता है उसे भगवान्‌की प्राप्ति होती है। हे ऋषियो, हम उस परमब्रह्म परमात्माका ध्यान करते हैं, जिन्होंने सबसे पहले इस भागवतका ब्रह्माको उपदेश दिया। हे भगवन्, आप ऐसी कृपा करें कि आपके चरण,-कमलोंमें हमारी भक्ति सदा बनी रहे। हे देवदेवेश, आपको अनेक नमस्कार है॥ ❀

पुराणम्--यत्र सृष्टिस्थित्युत्पत्तिप्रलयाः कथ्यन्ते तत्पुराणम्। २—वैष्णवभेदाः वैखानसो भवेदादौ श्रीराधावल्लभस्तथा। गोकुलेशो महेशानि तथा वृन्दावनी भवेत्॥ पाञ्चरात्रः पञ्चमः स्यात् षष्ठः श्रीवीरवैष्णवः। रामानन्दी हरिव्यासी निम्बार्कश्च महेश्वरि। ततो भागवतो देवि दशभेदाः प्रकीर्तिताः॥ ३-दशनामसंन्यासी-तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः। सरस्वती भारती च पुरी नाम यतेर्दश॥ ४—अक्षौहिणी--खद्वयं स्वरवस्वेन्दुनेत्रैरक्षौहिणी मता [२१८७०००] अक्षौहिण्यां प्रादष्टानां रथानां धर्मचारिणाम्। सङ्ख्यागणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः। उपर्यष्टौ शतान्याहुस्तथा भूयश्च सप्ततिः। गजानां तु परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्। ज्ञेयं लक्ष्यं पदातीनां सहस्राणि तथा नव। शतानि त्रीणि पञ्चाशच्छराणां शस्त्रधारिणाम्। पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाऽश्वानां शतानि च। दशोत्तराणि यत्प्राहुः संख्या तत्त्वविदो जनाः। खद्वयं निधिवेदाक्षिचन्द्राख्याग्निहिमांशुभिः। महाक्षौहिणिका प्रोक्ता संख्यागणितकोविदैः [१३२१२४६१०] 'मुहूर्तविचारः--याम्यायनेऽपि वाराहमातृभैरववामनात्। महिषासुरहन्त्री च नृसिंहं स्थापयेद् बुधः॥ श्रावणे स्थापयेल्लिंगमाश्विने जगदम्बिकाम्। मार्गशीर्षे हरिं चैत्र सर्वान्पौषेऽपि केचन॥ [मुहूर्तमार्तण्डे]। सौम्यप्रकृतीनां देवानामुत्तरायणे। स्थापनमुक्त्वा उग्रप्रकृतीनां दक्षिणायनेऽपि स्थापनं कार्यम्। मातृभैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने। दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः। 'सर्वेषां जातीनां वसन्तः शोभनो भवेत्। सर्वान्पौषेऽपि केचन। [बृहद्दैवज्ञरञ्जने] अतिसौम्यप्रकृतीनां देवतानामुत्तरायणे स्थापनमुक्तम्। उग्रप्रकृतीनां दक्षिणायनं स्थापनं कार्यम्। तदुक्तं-वैखानससंहितायाम्--दक्षिणे तु मुमुक्षूणामित्यापि मातृभैरवेत्यादिपरतया योज्यम्'''[मुहूर्तचिन्तामणौ] 'श्रीवाराहो मातरो भैरवश्च चण्डी स्थाप्या दक्षिणे चायनेऽपि। 'रात्रौ देवस्थापनं चापि कार्यम्। 'देव्या मासे चाश्विने तद्विशेषात्।

विष्णुरुवाच—द्वादशस्कन्धश्रवणं पुण्यसंख्या न विद्यते। यतोऽयमात्मा मे ब्रह्मञ्जगद्धर्तु जगद्गुरोः इहेतिहासं वक्ष्यामि भृगुक्षेत्रे नृपोऽभवत्। सूर्यरश्मिरिति ख्यातः सूर्यतुल्यपराक्रमः॥ यज्ञानां च शतं तेन कृतं दत्तं गवां शतम्। विप्रकन्यासहस्राणां विवाहास्तेन कारिताः॥ नित्यं शृणोति स कथां व्यासं कृत्वा द्विजोत्तमम्। देवदत्त इति ख्यातं शान्तं दत्तं प्रतापवान्॥ब्रह्मोवाच—व्यासस्य लक्षणं ब्रूहि कथं श्राव्या कथा प्रभो। हरिरुवाच—रागद्वेषविनिर्मुक्तः शास्त्रज्ञो विष्णुपूजकः। अङ्गैरविकलो धीरो ब्राह्मणः सत्यभाषणः॥ गृहस्थोऽध्यापनरत ऊर्ध्वपुण्ड्रधरस्तथा। व्यासः प्रोक्तः श्रोतृजनाह्लादकृत्प्रियदर्शनः॥ तन्मुखेन श्रुता गाथा सर्वसिद्धिप्रदा भवेत्। अवैष्णवमुखाद्गाथा न श्रोतव्या कदाचन॥ शुकशास्त्रं विशेषेण न श्रोतव्यमवैष्णवात्। ब्राह्मणा वैष्णवा मुख्या यतो विष्णुमुखोद्भवाः॥ विप्रैः कृता वैष्णवास्तु त्रयो वर्णा भवन्ति हि। विप्रोऽत्र वैष्णवो ग्राह्यो यश्च विष्णोरुपासकः॥ वैदिकेन विधानेन दयालुः समदर्शनः। भेदं न कुरुते यस्तु दुर्गाविष्णुशिवादिषु॥ ब्रह्मत्वेनैव जानाति वैष्णवः स परो मतः। विप्रेतरमुखाच्छास्त्रं श्रुतं हि नरकप्रदम्॥ राष्ट्रे यस्य तु शृण्वन्ति गाथां विप्रेतरेरिताम्। तस्य राज्ञो भवेद् हानिरतः संशृणुयाद्विजात्॥ ये शूद्रमुखतः शास्त्रं शृण्वन्ति हि नराधमाः। तेषां कर्णे त्रपु सिक्त्वा वक्तु जिह्वां प्रकर्तयेत्॥ पराशराद्या मुनय इत्थमेव वदन्ति हि। यावद्विप्रमुखे शास्त्रं शास्त्रत्वं तावदेव हि॥ विप्रेतरगतं शास्त्रमशास्त्रत्वं प्रपद्यते। यथा पतिरता साध्वी स्वैरिणि स्यात्ततोऽन्यथा॥ तथा विप्रकृता गाथा तदन्या स्यात्प्रहेलिका। वक्तारं तोषयेन्नित्यं वस्त्राद्याभरणादिभिः॥ दुर्वाक्यं न वदेत्क्वापि व्यासं विष्णुस्वरूपिणम्। ये तु व्यासासनं मोहादाक्रामन्ति द्विजेतराः॥ पच्यन्ते ते महामूढा निरये बहुवत्सरम्॥ व्यासनोपवेशाच्च शालग्रामशिलार्चनात्॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कपिलाक्षीरपानाच्च ब्राह्मणीगमनात्तथा । वेदाक्षरोच्चारणाच्च शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥ विप्रस्यैवाधिकारोऽस्ति व्यासासनसमाक्रमे । वक्ता समं न चैवोच्चं श्रोतॄणामिष्टमासनम् ॥ समासनात्पुण्यहा-
निरुच्चाच्च निरयं व्रजेत् । श्रोतव्यं मौनमाश्रित्य नरैर्नियतमानसैः ॥ वाग्वादकरणाद्गाथा नीरसा जायते स्फुटम्। गाथारसविघातेन पशुत्वं लभते पुमान् ॥ पौराणिक्यां कथायां च न कार्याः-
कथता सह । पूर्वपक्षाश्च सिद्धान्ता परस्परजिगीषया ॥ नाम्ना शुकोदरो विप्रस्तेन जातो विहङ्गमः । वामदेवस्य शिष्योऽपि पूर्वकल्पे वसुन्धरे ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्वाराहे हरिणा मया । कथा-
यां सम्प्रवृत्तायामितिहासपुराणयोः ॥ योऽन्यवः किञ्चिदपि ब्रूते विना वक्तारमत्र हि । स वाग्वाद इति प्रोक्तः कथारसविघातकः॥वाग्वादात्स्यात्कथाभङ्गो ब्रह्महत्यासमो हि सः । पृच्छेत्कथान्ते
सन्देहं न कथायां कदाचन ॥ श्रोता जनः कथाभङ्गभयान्मौनं समाश्रयेत् । पाद्मे पुराणे संप्रोक्तं शङ्करेण स्वयं द्विजाः ॥ श्रीमते रामचन्द्राय परब्रह्मस्वरूपिणे । वाग्देवता भवेत्क्रुद्धा कथाया
भङ्गमात्रतः ॥ तेन जन्मान्तरे मूकः पुनर्मूढस्त्रिजन्मसु । वायसो वा भवेदन्यो वक्तुर्वक्ता ततो वदेत् ॥ पुराणानां पूजकस्तु हेमान्नवसनादिभिः । वैष्णवं पदमाप्नोति कर्तव्यो नात्र संशयः ॥
श्रोतुर्दानमनन्त्याय वक्तुर्नैव प्रतिग्रहः । श्लोकैकश्रवणे यस्य रत्नकोटिर्न निष्क्रिया ॥ सर्वस्य तस्य यो वक्ता प्रतिग्राही कथ हि सः । गृहीतेऽनुपकर्ता यो ज्ञेयः स च प्रतिग्रही ॥ विधातरित्थं
प्रोवाच यथा प्रोक्तं मया तव । देवदत्तः सूर्यरश्मिं ब्राह्मणानां विशेषताम् ॥ स सूर्यरश्मिनृपतिः श्रुत्वा प्रोवाच तं द्विजम् । असदुक्तं त्वया गर्वाद्यच्छ्रैष्यं हि द्विजन्मनाम् ॥ त्वत्तोऽपि शोभनां
गाथां करिष्यामि न संशयः । त्वमुत्तिष्ठासनादस्मादित्थं व्यासो तिरोऽकरोत् ॥ आशीर्दत्वा च राजनं गतो गेहं द्विजोत्तमः । न च राज्ञा समाहूतो न च विप्रः स्वयं गतः ॥ मासद्वयान्ते
राज्ञा हि कृतो वक्ताऽपरो विधे । व्यासावज्ञानदोषेण स राजा नरकं गतः । तद्भुक्त्वा वर्षनियुतं तदन्ते स मृगोऽभवत् । जातिस्मरः पूर्वपुण्यैः स्वजातौ न मिलत्यसौ ॥ नित्यं स्नात्वा तीर्थ-
जले भानुं नत्वा पुनः पुनः । तपोधनाश्रम प्राप्य निःश्वसंश्च स्थितोऽभवत् ॥ प्रातः स्नातुं मुनिवरो विश्वेश्वर इति श्रुतः । एकदा गतवांस्तीरे नद्यास्तत्र समागतः ॥ तदैव मृग आगत्य स्ना-
त्वा सूर्यं ननाम सः । तदङ्क तमृषिं दृष्ट्वा प्रोवाच हरिणं तदा । को भवान्मृगरूपेण श्रुत्वा जातिस्मरो मृगः ॥ प्रोवाच नरवाचा तु त्यजन्नश्रुगणं मुहुः । मृग उवाच—भृगुक्षेत्राधिपोऽभूवं ना
म्नाहं सूर्यरश्मिकः । धर्मात्मा मुनिशार्दूल कुर्वे व्यासद्विजं तिरः ॥ तदंहसः प्रभावेण नरकान्गतवानहम् । तदन्ते मृगयोनौ च प्राप्तोऽहं शृणु मे वचः ॥ इति श्रुत्वा मुनिवरः प्रोक्तवान्मृगस-
त्तमम् । अन्येषां पापसंघानां निष्कृतिर्विहिता बुधैः ॥ न च व्यासतिरस्कर्तुर्निष्कृतिर्विद्यते भुवि । परश्चैक उपायोऽस्ति शृणु मृगकुलसत्तम ॥ द्वादशस्कन्धश्रवणं कुरु भागवतस्य हि । तेनं
स्याराव मनुष्यमिति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ इति श्रुत्वा मृगस्तस्य पादयोः पातितस्तदा ॥ विश्वेश्वरी मुनिस्तस्य शिरसि प्रददौ करम् । द्वादशश्रवणाच्चैव मुनिहस्तस्य सङ्गमात् ॥ क्रोशन्तो दग्ध-
पक्षाश्च तद्देहान्निःसृतास्तदा । काका मह्यां तत्र पेतुः स निष्णातोऽभवत्तदा ॥ आगामिजन्मनि भवान्वैश्यतामाप्स्यति ध्रुवम् । धनी भागवतं दत्वा विप्राय प्राप्स्यसे परम् ॥ इति प्रोवाच स
मुनिर्देहान्ते सोऽभवत्तथा । अथ दानप्रकारन्ते वक्ष्ये ब्रह्मन्यथाविधि ॥ लिखित्वा लेखयित्वा वा दद्याद्विप्राय पुस्तकम् । द्वादशस्कन्धसंयुक्तं कौशेयाच्छादितं शुभम् । हेमसिंहासने स्थाप्य
चतुर्विंशतिकर्षके ॥ विष्णुभक्ताय दातव्यं पुत्रपौत्रयुताय वै । वस्त्रालङ्कारसहितं शास्त्रज्ञाय द्विजाय च ॥ अश्वमेधायुतोत्पन्नं पुण्यं तेन समं न हि । यदेकश्लोकदानेन श्रीमद्भागवतस्य हि ॥
नित्यं गोदानलक्षैश्च यत्फलं प्राप्यते नरैः । तदेकश्लोकदानेन दुर्लभं न हि पद्मज ॥ सर्वं भागवतं येन दत्तं लोके महात्मना । तस्य पुण्यस्य या संख्या तां वक्तुं कोऽपि न क्षमः ॥ इति
ज्ञात्वा नरैर्देयं श्रीमद्भागतं कलौ । सर्वयागविहीनेऽस्मिन्यागोऽयं सुलभः खलु ॥ शेषवृत्तं शृणु विधे स्थिरो भूत्वाऽद्भुतं पुनः । वैश्यदेहं मृगो लब्ध्वा जातिस्मरणमागतः ॥ विप्रं श्रीरङ्गश-
र्माणं व्यासं कृत्वा महादरात् । श्रुत्वा भागवतं तस्माद्दत्तवान्पुस्तकं विधे ॥ तस्मा एव तदा वैश्यस्ततो मत्साम्यमाप सः । ब्रह्मोवाच—इत्थं श्रुतं मया विष्णोः श्रीमद्भागवते फलम्। त्वत्प्रीत्या
कथितं तुभ्यं वत्सैतद्दुर्लभं भुवि । श्रीमद्भागवतं शास्त्रं श्रीकृष्णे परमात्मनि । अन्तरं ये प्रपश्यन्ति ते नरा ब्रह्मघातिनः॥ इति ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[द्वादश-स्कन्ध]

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ (भागवत)

जो लोग श्रीमद्भागवत महापुराणकी कथा सुनना चाहते हों वे निम्नलिखित बातोंपर भी ध्यान दे सकते हैं—समुद्रमन्थनारम्भ समयपर—केसर-कस्तूरी मिश्रित दूध, दधि, नवरतकी पुड़िया, तथा भगवान्‌का षोडशोपचारसामग्रीसे पूजन करना। षष्ठस्कन्धमें—पुत्रकामनाके लिए पुंसवनव्रतका विधान कहा गया है और उसी स्कन्धमें नारायणकवच भी है जिसके अनुष्ठानसे सब आपत्तियाँ दूर हो जा सकती है। विशेष आपत्तियोंमें अष्टमस्कन्धस्थित—गजेन्द्रमोक्षका पाठ करना लिखा है।

(१) भगवान् श्रीकृष्णके जन्म समय पर व्यासके समीप इन वस्तुओंको रखना—माखन, मिश्री, मिठाई, ऋतुफल, दूध, दधि सहत, चीनी, घृत गाने-बजानेका सामान छिकहर, चाँदीकी सीढी।

(२) वामनजन्मके अवसरपर—छिकहर, कपड़ा, सुपारी, रोली, चन्दन, दण्ड, चाँदीकी खडाँऊ, चाँदीका कमण्डलु, कटोरा, छाता, जूता, छड़ी, और गिलास।

(३) भगवान् श्रीकृष्णके विवाहोत्सवपर—सौभाग्यद्रव्य, सोहागपिटारी, आभूषण तथा तुलसीविवाह सविधि करना।

(४) भगवान् श्रीकृष्णके बरसातीखेल के समयपर-नाना प्रकारकी लकड़ी सोने तथा चाँदीके खिलौने रखना।

(५) गोवर्धनपूजापर—नानाप्रकारकी मिठाई, फूलमाला, तुलसी, ऋतुफल, दूध, दधि सहत, चीनी, घृत, रोली, मौली, धूप, रुई, पान, सुपारी, अबीर, बुका, वस्त्र, और कपूर।

(६) रासक्रीडा के अवसरपर—गुडियें गुडियों का रास बनाना अनेक तरहका झूलोत्सव बनाना।

(७) भगवान् श्रीकृष्णके नामकरण तथा बाललीला के समयपर—ब्राह्मणों द्वारा नामकरणविधि करना, माखन, मिश्री, दूध, बिलोनी, मथनी, मथनेकी रस्सी आदि रखना।

(८) भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके उपनयनसंस्कारके समय—भिक्षापात्र, चाँदीकी खड़ाऊ, आदि वस्तुओंको रखना।

(९) वसुदेवके विष्णुयज्ञोत्सव के समयपर—भगवान्‌की विविध सामग्रियों द्वारा पूजन करना।

(१०) भगवान्‌के उलूखलबन्धनावसरपर उलूखल आदिका स्थापन।

(११) भगवान्‌के गोचारण के समयपर—नानारंगकी कुछ चाँदी सोने आदिकी निर्मित गौओंको रखना।

(१२) प्रत्येक स्कन्ध तथा अध्यायान्तमें श्रीव्यासजीको भगवान् कृष्णके प्रीत्यर्थ कुछ दान दे तथा भगवान्‌की आरती भी करे।

(१३) कालियनाग के दमन समयपर—नागराजका स्थापन, स्तोत्र तथा षोडशोपचारसे भगवान्‌का पूजन करना

(१४) चीरहरणके अवसर पर—अनेक कीमती वस्त्रों द्वारा भगवान्‌से वर प्राप्त करना।

नोट—भागवत सम्बन्धके लिये-हरिभक्तिविलास, सात्वततन्त्र (जिसमें कृष्णजीके एकहजार नाम आदि हैं), क्रमदीपिका, गौतमीतन्त्र, राधातन्त्र, कृष्णजन्मखण्ड, नारदपञ्चरात्ररक्षा, वायुपुराण (जिसमें वसुदेवजीकी अठारह पत्नियोंके नाम आदि हैं, भागवतपुराण-श्यामचरणकविरत्नकृत, प्राणतोषिणी, हरिश्चन्द्रकला मासिकपत्र, स्कन्दपुराण वृद्धहारीतस्मृति आदि (आचार्यलक्षण वैष्णवोंके पाँच संस्कार दोलोत्सवविधान, उत्सवपूजन, कामनापरकपूजन उत्सव और समयपर उत्पातमें शान्ति विधान आदि...) आदि पुस्तकोंसे सहायता ले सकते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गौडजी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें-

१ राज्याभिषेकपद्धति
२ दत्तकप्रकाशपद्धति
३ दशमुखकोटिहोमपद्धति
४ होमात्मकविष्णुयागप्रयोग
५ क्षत्रियसन्ध्या
६ श्रावणीपद्धति
७ वासिष्ठीहवनपद्धति
८ रुद्री-सभाष्य
९ ग्रहशान्ति-प्रयोग-पद्धति
१० सत्यनारायणव्रतकथा
११ यजुर्वेदसंहिताका गुटका
१२ संक्षिप्तग्रहशान्तिप्रयोग
१३ रुद्रयामलोक्त लक्ष्मीसूक्तविधि
१४ संक्षिप्त लक्ष्मीयाग
१५ पायगुण्डेकृत लक्ष्मीयाग
१६ प्रजापतियाग
१७ सूर्ययाग
१८ संक्षिप्त गणेशयाग
१९ मूल षडङ्गरुद्री
२० दुर्गामूल
२१ दुर्गा हिन्दी
२२ दुर्गाप्रतिष्ठा
२३ हरिहरयागप्रयोग
२४ दुर्गा गुटका छोटा
२५ रुद्री मूल
२६ संक्षिप्त वासिष्ठी
२७ ऋषिपंचमी व्रतकथा
२८ हरतालिका व्रतकथा
२९ तर्पण
३० सन्ध्या और तर्पण
३१ वटुकभैरवस्तोत्र
३२ आदित्यहृदय
३३ स्वस्त्ययनकलशप्रतिष्ठा
३४ पार्थिवपूजनप्रयोग
३५ उपनयनप्रयोग
३६ गायत्रीपुरश्चरणप्रयोग
३७ चूडाकरणप्रयोग
३८ विस्तृत गणेशयागप्रयोग
३९ सत्यनारायणव्रतकथा पञ्चाध्यायी
४० सत्यनारायणव्रतकथा सप्ताध्यायी
४१ विवाहपद्धति (हिन्दी)
४२ चित्रगुप्तव्रतकथा
४३ अनन्तव्रतकथा
४४ गोपालसहस्रनाम
४५ गणपतिपूजा
४६ गोदानप्रयोग
४७ पदपाठादिसंग्रह
४८ प्रतिष्ठाप्रभु (द्वितीयभाग)
४९ गायत्रीकोटिहोमविधि
५० भागवतप्रकाश
५१ यज्ञनियमप्रकाश
५२ गृहवास्तुका नकशा
५३ गयाश्राद्धप्रयोग अनन्तदेवकृत
५४ विष्णुयागप्रयोग अनन्तदेवकृत
५५ विष्णुयागप्रयोग कामदेवकृत
५६ शिखास्थापननिर्णय
५७ गरुडपुराण
५८ लक्ष्मीयाग
५९ बगलामुखीस्तोत्र
६० विधानप्रकाश
६१ कर्णवेधप्रयोग
६२ शतचण्डी-सहस्रचण्डीप्रयोग
६३ अपात्रिक पार्वणश्राद्धप्रयोग
६४ अपात्रिक एकोद्दिष्टश्राद्धप्रयोग
६५ विवाहपद्धति (संस्कृत)
६६ पुत्रेष्टियज्ञप्रयोग
६७ शुक्लयजुर्वेदीय सन्ध्योपासनप्रयोग
६८ रामयज्ञप्रयोग
६९ श्रीमद्भागवत महापुराण
७० शतरुद्रियपद्धति
७१ सन्तानगोपालस्तोत्र
७२ मृत्युञ्जयस्तोत्र
७३ दुर्गा गुटका ३२ पेजी
७४ कर्मकाण्डप्रकाशकुञ्जिका
७५ निर्णयसिन्धु
७६ कार्तिकेयपूजन
७७ पुरुषसूक्त (हिन्दी और संस्कृत)
७८ यजुर्वेदसंहिता १-४ (हिन्दी टीका)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूजनसामग्री

- केसर
- चदन
- रोली
- मौली
- रुई
- पान
- धूपवत्ती
- सुपारी
- अवीर
- बुका
- पीलीसरसों
- यज्ञोपवीत
- कपूर
- सिन्दूर
- कच्चाक्षत
- केलेके खम्बे
- बन्दरवाल
- सुतरी
- दूध
- दधि
- सहत

- चीनी
- घृत
- दियासलाई
- धानका लावा
- चावल
- तिल
- यव
- ऋतुफल
- पेड़ा
- वतासा
- पत्तल
- पुरवा
- दोना
- सकोरा
- परई
- मट्टीका छोटा दिया
- अथरी
- नारिकेल
- गिरिगोला
- लालरङ्ग
- हरारङ्ग
- कालारङ्ग

- पीलारङ्ग
- हलदी पीसी
- मुरा
- जटामासी
- वच
- कुट
- कत्था
- दारुहलदी
- कचूर
- चम्पा
- नागरमोथा
- आवां हलदी
- भस्म
- गोमूत्र
- गोवर
- पुष्पमाला फूल
- गुलाबका फूल
- तुलसी
- अनेक तरहके पुष्प
- कमलपुष्प
- वादाम
- पिस्ता

- छुवारा
- अखरोट
- किसमिस
- चिरोंजी
- मखाना
- मिसरी
- कस्तूरी
- अगर
- गोरोचन
- हरताल
- मैनसिल
- चन्दनका चूर
- भोजपत्र
- लवंग
- इलायची छोटी
- जावित्री
- जायफल
- होरसा वड़ा
- चन्दनका मुट्ठा
- खसका इत्र
- गुलाबजल

- कड़ुवा तेल
- केवड़ा जल
- गुलाब इत्र
- गुग्गुल
- उड़दी
- चौकी
- पीढ़ा
- सूप
- कूष्माण्ड
- पापड़
- पलासकी समिधा
- आमकी सूखी लकड़ी
- नवग्रह समित्—
- मदार
- पलाश
- खैर
- चिचड़ा
- पीपल
- गूलर
- दूर्वा
- शमी
- कुशा

- सांवा
- गेहूँ
- मूंग
- चना
- अरणी
- अधराणी
- मन्था
- मृगचर्म
- कम्बल
- प्रणीता
- प्रोक्षणी
- स्रुक्
- स्रुव
- स्फ्य
- वसोर्द्धारा
- आमपत्र
- गूलरपत्र
- पाकरपत्र
- वटपत्र
- जामुनपत्र
- अशोकपत्र

- मालाओंकीवंदरवाल
- लोहेका कांटा ४
- घोड़ेके जगहकी मिट्टी
- हाथीकी
- संगमकी
- तालावकी
- राजद्वारकी
- गोशालाकी
- वल्मीकको
- क्षेत्रपालप्रतिमा सोनेकी
- स्वर्णशलाका सोनेकी
- स्वर्णलेखिनी
- स्वर्णजिह्वा
- विष्णुकलश सोनेका
- चांदीका पत्र
- चांदीकी थाली छोटी
- और वड़ी
- चांदीका पंचपात्र
- चांदीकी आचमनी
- चांदीका तष्टा
- चांदीका अर्घा

- चांदीका गिलास
- चांदीका कटोरा
- चांदीकी कटोरी
- सोनेका सिंहासन
- चांदीका छत्र
- विष्णुप्रतिमा
- वस्तुप्रतिमा
- योगिनी प्रतिमा
- महाकाली प्रतिमा
- महालक्ष्मी प्रतिमा
- महासरस्वती प्रतिमा
- असंख्यातरुद्र प्रतिमा
- चान्दीका नन्दी
- आभूषणप्रधानदेवताके
- चांदीका यज्ञोपवीत
- गरुड प्रतिमा
- वरण सामान
- चढ़ानेके वस्त्र
- प्रधानादि कलश
- मण्डपका सामान
- शय्यादान आदि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इति

श्रीमद्भागवत भाषाटीका

बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त द्वारा—बम्बई प्रेस, राजादरवाजा बनारस सिटी में मुद्रित ।

प्रकाशक-बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त बुकसेलर, राजादरवाजा, ब्राञ्च-कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

मूल्य
३७)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection